# MAHABHARATAM

*with*

***the Commentary***

*of*

## NĪLAKANTHA.

# 1 Adiparva.

*Illustrated*

PRINTED AND PUBLISHED

BY

*Ja. Narhar Joshi*, at Chitrashala Press, Poona City.

**POONA.**

1929.

॥ श्रीः ॥

# महाभारतम्।

( नीलकण्ठकृतया भारतभावदीपाख्यया टीकया समेतम्।)

## १ आदिपर्व ।

अयं ग्रन्थः पुण्यपत्तने १०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये शंकर नरहर जोशी इत्याख्यैरधिकारिभिर्मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

शाकः १८५०.

# प्रस्तावः ।

इह खलु निखिलेऽपि भरतखण्डे न तादृशः कोऽपि ग्रन्थो यः किल महाभारत-तुलामधिरोक्ष्यति । तत्र नानाविधाः खलु विषयास्तत्तत्स्थलेषु विशदीकृता भगवता व्यासमहर्षिणा । सर्वेष्वपि पुराणग्रन्थेषु प्रामुख्येन वरीवर्ततेऽसौ । ऐतिहासिकग्रन्थेष्वपि प्रमाणत्वेन स्वीक्रियते सूरिभिरयं ग्रन्थः । 'भारतं पञ्चमो वेदः' 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इत्यादीनि सूक्तान्यपि महत्त्वमेतस्य प्रकटीकुर्वन्ति नित्यशः । बालवृद्धानां सर्वेषामपि स्त्रीपुरुषाणामुपकारकोऽयं ग्रन्थराजः इति नास्त्यत्र संशयावसरः । अनेकाः कथा उपकथा आख्यानान्याख्यायिकाश्चात्र सर्वत्र दरीदृश्यन्ते । तेन च विदुषामिव सामान्यानामपि जनानां मार्गदर्शकोऽयं ग्रन्थ इति विदितमेव सर्वेषाम् । एतद्गतान्याख्यानानि पुरस्कृत्य बहुभिः कविभिः प्रबन्धकृद्भिश्च नानाविधाः समलंकृता देशभाषा इत्यपि लोकप्रियत्वं प्रदर्शयन्त्यस्य प्रयत्नसमवायाः । न केवलं भारतं वर्षं किं तु निखिलमपि जगत्प्रभया ग्रन्थस्यास्य प्रकाशितमित्यहो महाभाग्यं भारतवर्षीयाणाम् । श्रीमद्भगवद्गीतासदृशानि निखिलजगद्धूलामभूतानि देदीप्यमानानि नानाविधानि रत्नान्यपि प्रादुरभूवंस्तस्मादेव ग्रन्थमहोदधेरिति विदितमेव महाशयानाम् । महासमुद्राच्चतुर्दशैव रत्नानि समुद्धृतानि गीर्वाणैरिति श्रूयते किं तु भारतवर्षीयैर्महाग्रन्थसागरादस्मान्नानाविधानि दिव्यानि चिरस्थायीनि रत्नानि समुद्धृतानीति महान्खलु लाभोऽयमभूतपूर्वः ।

अतिविस्तृतोऽप्ययं ग्रन्थः सर्वैरपि जगद्विश्रुतैर्विद्वद्भिः संपूज्यतेऽनुवाच्यते संगृह्यते स्वस्वभाषासु छायया चालंक्रियते इति महत्येतस्य लोकमान्यता । कैश्चित्तु सादरमारभ्यते पाठसंशोधनकार्यमप्येतस्य । वैदेशिकैश्च ग्रन्थमेतं पुरस्कृत्यानेकविधाः प्रबन्धाः प्रकाशितास्ते च सर्वैरनुमताः । संप्रति ग्रन्थस्यास्य दौर्लभ्यं विचिन्तयद्भिः कैश्चिद्विद्वद्भिः प्रकाशनविषये साग्रहमनुज्ञाता वयं प्रयतिष्यामहे तथाविधेऽतिमहत्यपि कर्मणि वाचकमहाशयानामनुग्रहेण । महाराष्ट्रेषु 'गणपत कृष्णाजी' इत्येतैः, 'गोपाल नारायण' इत्येतैश्च मुद्रितं 'निर्णयसागरमुद्रणालये मुद्रयित्वा कुम्भकोणनगरे प्राकाश्यं नीतं'चेति पुस्तकत्रितयं प्रागेवासीत् । संप्रति तु तस्यात्यतिदुर्लभत्वात्पुनः संस्करणमावश्यकमित्याकलय्यादिसभापर्वणोः प्रथमखण्डमिदं प्रसिद्धीक्रियतेऽस्माभिः । अत्र च नीलकण्ठकृता भारतभावदीपाख्या टीका संनिवेशिता । त्रिचतुरासु टीकास्वियमेव विशेषतो महाराष्ट्रेष्वाद्रियते सुधीभिः । संपूर्णा चेयमुपलभ्यते न खण्डिता । एवं खलु धार्ष्ट्यमिदमाचरन्तो वयं सर्वथाऽनुग्राह्याः सहृदयैर्वाचकमहाशयैरिति सादरमभ्यर्थ्य विरमामः इति शिवम् ।

श्रीमहाशिवरात्रिः<br>शाक १८५०

चित्रशालामुद्रणालयाधिपतिः ।

श्रीः

# आदिपर्व ।

## १

### अनुक्रमणिका ।


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| १ | २७५ | ( १ ) अनुक्रमणिकापर्व । | १ |
| २ | ३९६ | ( २ ) पर्वसंग्रहपर्व । | २४ |
| ३ | १८८ | ( ३ ) पौष्यपर्व । | ४० |
| | | ( ४ ) पौलोमपर्व । | |
| ४ | १२ | कथाप्रवेशः । | ५४ |
| ५ | ३४ | पुलोमाग्निसंवादः | ५४ |
| ६ | १४ | अग्निशापः | ५६ |
| ७ | २९ | अग्निशापमोचनम् | ५६ |
| ८ | २७ | प्रमद्वरासर्पदंशः | ५७ |
| ९ | २३ | प्रमद्वरासंजीवनम् | ५८ |
| १० | ८ | रुरुडुण्डुभसंवादः | ५९ |
| ११ | १९ | डुण्डुभशापमोक्षः | ६० |
| १२ | ६ | सर्पसत्रप्रस्तावना | ६० |
| | | ( ५ ) आस्तीकपर्व । | |
| १३ | ३२ | जरत्कारुतत्पितृसंवादः | ६१ |
| १४ | ७ | वासुकिस्वसृवरणम् | ६२ |
| १५ | ११ | सर्पाणां मातृशापप्रस्तावः | ६२ |
| १६ | २५ | सर्पाद्युत्पत्तिः | ६३ |
| १७ | १३ | अमृतमन्थनम् | ६४ |
| १८ | ४६ | नारायणेन मोहिनीरूपं धृत्वा देवानाममृतप्राशनम् | ६४ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांका |
|---|---|---|---|
| १९ | ३१ | देवासुरयुद्धम् | ६६ |
| २० | १६ | सौपर्णाख्यानारम्भः | ६८ |
| २१ | १८ | कद्रूविनतयोरुच्चैःश्रवसो दर्शनाय गमनम् | ६८ |
| २२ | १२ | सर्पैर्मातृवचनादुच्चैःश्रवःपुच्छवेष्टनम् | ६९ |
| २३ | २७ | गरुडोत्पत्तिः | ६९ |
| २४ | २० | अरुणेन सूर्यसारथ्यकरणम् | ७१ |
| २५ | १७ | विनतागरुडाभ्यां कद्रूसर्पवहनम् | ७२ |
| २६ | ८ | इन्द्रेण जलवर्षणम् | ७३ |
| २७ | १६ | सर्पैर्दास्यमोचनोपायकथनम् | ७४ |
| २८ | २१ | अमृताहरणाय गरुडगमनम् | ७४ |
| २९ | ४४ | गरुडकश्यपसंवादः | ७५ |
| ३० | ५२ | उत्पातान्दृष्ट्वा देवैरमृतरक्षणम् | ७७ |
| ३१ | ३५ | गरुडस्य पक्षीन्द्रत्वेऽभिषेकः | ७९ |
| ३२ | २५ | देवगरुडयुद्धम् | ८० |
| ३३ | २५ | अमृतं गृहीत्वा गच्छतो गरुडस्य विष्णुदर्शनम् | ८१ |
| ३४ | २६ | इन्द्रगरुडसख्यं विनतादास्यमोचनम् | ८२ |
| ३५ | १९ | सर्पनामकथनम् | ८३ |
| ३६ | २५ | शेषवृत्तकथनम् | ८४ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| ३७ | ३४ | वासुक्यादिमन्त्रणम् | ८५ |
| ३८ | १९ | एलापत्रवाक्यम् | ८६ |
| ३९ | १४ | जरत्कार्वन्वेषणम् | ८७ |
| ४० | ३२ | परीक्षिदुपाख्यानम् | ८८ |
| ४१ | ३३ | परीक्षिच्छापः | ८९ |
| ४२ | ४१ | काश्यपागमनम् | ९० |
| ४३ | ३६ | तक्षकदंशः | ९२ |
| ४४ | ११ | जनमेजयराज्याभिषेकः | ९३ |
| ४५ | ३४ | जरत्कारुपितृदर्शनम् | ९४ |
| ४६ | २३ | वासुकिजरत्कारुसमागमः | ९५ |
| ४७ | ४३ | जरत्कारुनिर्गमः | ९६ |
| ४८ | २२ | आस्तीकोत्पत्तिः | ९७ |
| ४९ | ३१ | परीक्षिद्वृत्तम् | ९८ |
| ५० | ५४ | परीक्षिन्मन्त्रिसंवादः | १०० |
| ५१ | १७ | सर्पसत्रोपक्रमः | १०२ |
| ५२ | १० | " | १०२ |
| ५३ | २६ | सर्पसत्रे वासुकिवाक्यम् | १०३ |
| ५४ | ३० | आस्तीकागमनम् | १०४ |
| ५५ | १७ | आस्तीककृतराजस्तवः | १०५ |
| ५६ | २७ | आस्तीकवरप्रदानम् | १०६ |
| ५७ | २४ | सर्पनामकथनम् | १०७ |
| ५८ | ३२ | आस्तीकपर्वसमाप्तिः | १०८ |
| | | **( ६ ) अंशावतरणपर्व** | |
| ५९ | १० | कथानुबन्धः | ११० |
| ६० | २४ | " | ११० |
| ६१ | ५३ | भारतसूत्रम् | १११ |
| ६२ | ५३ | महाभारतप्रशंसा | ११३ |
| ६३ | १२७ | व्यासाद्युत्पत्तिः | ११५ |
| ६४ | ५४ | अंशावतरणपर्वसमाप्तिः | १२० |
| | | **( ७ ) संभवपर्व** | |
| ६५ | ५६ | आदित्यादिवंशकथनम् | १२२ |
| ६६ | ७२ | [illegible] | १२४ |
| ६७ | [illegible] | [illegible] अंशावतरणसमाप्तिः | १२७ |
| ६८ | [illegible] | [illegible] | १३१ |
| ६९ | [illegible] | [illegible] | १३२ |
| ७० | [illegible] | [illegible] | १३३ |
| ७१ | ४२ | शकुन्तलया विश्वामित्रोपाख्यानकथनम् | १३५ |
| ७२ | १९ | शकुन्तलाजन्म | १३७ |
| ७३ | ३४ | शकुन्तलाविवाहः | १३८ |
| ७४ | १३३ | शकुन्तलाया भरतोत्पत्तिः | १३९ |
| ७५ | ५८ | ययात्युपाख्यानारम्भः | १४३ |
| ७६ | ७२ | कचोपाख्यानम् | १४६ |
| ७७ | २३ | कचदेवयान्याः परस्परं शापदानम् | १४९ |
| ७८ | ४१ | शर्मिष्ठादेवयान्योर्विरोधः देवयान्याः कूपादुद्धरणं च | १५० |
| ७९ | १३ | शुक्रदेवयानी संवादः | १५२ |
| ८० | २७ | शर्मिष्ठया देवयानीदास्यस्वीकारः | १५३ |
| ८१ | ३८ | ययातिदेवयान्योर्विवाहमङ्गलम् | १५४ |
| ८२ | २७ | शर्मिष्ठादेवयान्यो राज्ञः पुत्रोत्पत्तिः | १५७ |
| ८३ | ४२ | ययातेः शुक्रशापाज्जराप्राप्तिः | १५७ |
| ८४ | ३४ | ययातिना पूरोर्वरदानम् | १५८ |
| ८५ | ३५ | पुरो राज्याभिषेचनम् | १६० |
| ८६ | १७ | ययातेः स्वर्यात्रा उत्तरयायातारम्भश्च | १६१ |
| ८७ | १३ | इन्द्रययातिसंवादः | १६२ |
| ८८ | १३ | ययातेः स्वर्गाच्च्यावनम् | १६३ |
| ८९ | २३ | ययात्यष्टकसंलापः | १६४ |
| ९० | २७ | " | १६६ |
| ९१ | १८ | " | १६९ |
| ९२ | १९ | अष्टकप्रतर्दनयोर्ययातिना संलापः | १७१ |
| ९३ | २८ | ययातेः पुनः स्वर्गमनम् । ययात्युपाख्यानसमाप्तिः | १७२ |
| ९४ | ६४ | पुरुवंशकथनम् | १७४ |
| ९५ | ९० | " | १७६ |
| ९६ | २३ | महाभिषोपाख्यानारम्भः | १७९ |
| ९७ | ३२ | शान्तनूपाख्यानम् | १८० |
| ९८ | २४ | भीष्मोत्पत्तिः | १८१ |
| ९९ | ४९ | आपवोपाख्यानम् । गङ्गायाः स्वर्लोकगमनम् | १८२ |
| १०० | १०३ | सत्यवतीलाभोपाख्यानम् | १८४ |
| १०१ | १९ | चित्राङ्गदोपाख्यानम् | १८७ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| १०२ | ७३ | विचित्रवीर्यस्योपरमः | १८८ |
| १०३ | २६ | भीष्मसत्यवतीसंवादः | १९० |
| १०४ | ५६ | दीर्घतमस उपाख्यानम् | १९१ |
| १०५ | ५४ | सत्यवत्युपदेशः | १९३ |
| १०६ | ३२ | विचित्रवीर्यसुतोत्पत्तिः | १९५ |
| १०७ | १७ | अणीमाण्डव्योपाख्यानम् | १९६ |
| १०८ | १९ | ,, | १९७ |
| १०९ | २६ | पाण्डुराज्याभिषेकः | १९८ |
| ११० | १९ | धृतराष्ट्रविवाहः | १९९ |
| १११ | ३१ | कर्णोत्पत्तिः | २०० |
| ११२ | १३ | कुन्तीविवाहः | २०१ |
| ११३ | ४५ | पाण्डुदिग्विजयः | २०१ |
| ११४ | १४ | विदुरपरिणयः | २०३ |
| ११५ | ४४ | गान्धारीपुत्रोत्पत्तिः | २०४ |
| ११६ | १८ | दुःशीलोत्पत्तिः | २०५ |
| ११७ | १८ | धृतराष्ट्रपुत्रनामानि | २०६ |
| ११८ | ३४ | पाण्डुमृगशापः | २०६ |
| ११९ | ५० | पाण्डोस्तपश्चर्या | २०८ |
| १२० | ४१ | पाण्डुपृथासंवादः | २१० |
| १२१ | ३७ | व्युषिताश्वोपाख्यानम् | २१२ |
| १२२ | ४४ | कुन्तीपुत्रोत्पत्यनुज्ञानम् | २१४ |
| १२३ | ७८ | पाण्डवोत्पत्तिः | २१५ |
| १२४ | ३२ | ,, | २१८ |
| १२५ | ३१ | पाण्डोर्मरणम् | २१९ |
| १२६ | ३५ | ऋषिसंवादः | २२० |
| १२७ | ३२ | पाण्डोरन्त्येष्टिः | २२२ |
| १२८ | ७२ | भीमसेनरसपानम् | २२३ |
| १२९ | ४३ | भीमप्रत्यागमनम् | २२५ |
| १३० | ६७ | द्रोणस्य भार्गवादस्त्रप्राप्तिः | २२६ |
| १३१ | ७९ | भीष्मद्रोणसमागमः | २२९ |
| १३२ | ७९ | द्रोणशिष्यपरीक्षा | २३१ |
| १३३ | २२ | द्रोणग्राहमोक्षणम् | २३४ |
| १३४ | ३५ | अस्त्रदर्शनम् | २३५ |
| १३५ | ३२ | ,, | २३७ |
| १३६ | ४१ | कर्णाभिषेकः | २३८ |
| १३७ | २५ | कर्णस्य भीमेनाधिक्षेपः | २३९ |
| १३८ | ७७ | द्रुपदशासनम् | २४० |
| १३९ | २७ | पाण्डवोत्कर्षं विज्ञाय धृतराष्ट्रस्य चिन्ता | २४३ |
| १४० | ९३ | कणिकनीतिः | २४४ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| | | (८) जतुगृहपर्व । | |
| १४१ | ३८ | दुर्योधनेर्ष्या | २४८ |
| १४२ | २४ | दुर्योधनपरामर्शः | २५१ |
| १४३ | १९ | वारणावतयात्रा | २५१ |
| १४४ | १९ | पुरोचनोपदेशः | २५२ |
| १४५ | ३४ | वारणावतगमनम् | २५२ |
| १४६ | ३१ | भीमयुधिष्ठिरसंवादः | २५५ |
| १४७ | २० | जतुगृहवासः | २५६ |
| १४८ | २२ | जतुगृहदाहः | २५७ |
| १४९ | १५ | गङ्गोत्तरणम् | २५८ |
| १५० | २६ | पाण्डवानां वनप्रवेशः | २५८ |
| १५१ | ४५ | भीमजलाहरणम् | २५९ |
| | | (९) हिडिम्बवधपर्व । | |
| १५२ | ३६ | भीमेन हिडिम्बासंवादः | २६१ |
| १५३ | ४५ | हिडिम्बयुद्धम् | २६२ |
| १५४ | ३६ | हिडिम्बवधः | २६४ |
| १५५ | ४६ | घटोत्कचोत्पत्तिः | २६५ |
| १५६ | १९ | व्यासदर्शनम् | २६७ |
| | | (१०) बकवधपर्व | |
| १५७ | ४१ | ब्राह्मणचिन्ता | २६८ |
| १५८ | ३८ | ब्राह्मणीवाक्यम् | २६९ |
| १५९ | २४ | ब्राह्मणकन्यापुत्रवाक्ये | २७० |
| १६० | १७ | कुन्तीप्रश्नः | २७१ |
| १६१ | २० | भीमेन बकवधाङ्गीकारः | २७२ |
| १६२ | २६ | कुन्तीयुधिष्ठिरसंवादः | २७३ |
| १६३ | २८ | बकभीमसेनयोर्युद्धम् | २७४ |
| १६४ | २१ | बकवधः | २७५ |
| | | (११) चैत्ररथपर्व । | |
| १६५ | १२ | द्रौपदीसंभवः | २७६ |
| १६६ | २८ | ,, | २७६ |
| १६७ | ५६ | ,, | २७७ |
| १६८ | ११ | पाञ्चालदेशयात्रा | २८० |
| १६९ | १६ | द्रौपदीजन्मान्तरकथनम् | २८० |
| १७० | ८० | गन्धर्वपराभवः | २८१ |
| १७१ | ४४ | तपत्युपाख्यानम् | २८४ |
| १७२ | २६ | ,, | २८६ |
| १७३ | ५० | ,, | २८७ |
| १७४ | १५ | पुरोहितवरणम् | २८९ |
| १७५ | ४८ | विश्वामित्रपराभवः | २८९ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| १७६ | ४९ | वासिष्ठशोकः | २९१ |
| १७७ | ४७ | सौदाससुतोत्पत्तिः | २९३ |
| १७८ | २९ | और्वोत्पत्तिः | २९४ |
| १७९ | २२ | लोकविनाशार्थं तपस्यत और्वस्य निवारणम् | २९५ |
| १८० | २३ | और्वेण समुद्रे क्रोधत्यागः | २९६ |
| १८१ | २३ | पराशरेण राक्षसनाशार्थं यज्ञारम्भः तस्य मध्ये समाप्तिश्च | २९७ |
| ८२ | २६ | कल्माषपादकथा | २९८ |
| ८३ | १२ | पाण्डवैर्धौम्यस्य पौरोहित्ये वरणम् | २९९ |
| | | (१२) स्वयंवरपर्व । | |
| १८४ | २० | पाण्डवागमनम् | ३०० |
| १८५ | ३७ | धृष्टद्युम्नवाक्यम् | ३०१ |
| १८६ | २४ | राजनामकीर्तनम् | ३०२ |
| १८७ | २९ | राज्ञां पराङ्मुखीभवनम् | ३०३ |
| १८८ | २८ | लक्ष्यच्छेदनम् | ३०५ |
| १८९ | २४ | कृष्णवाक्यम् | ३०६ |
| १९० | ४७ | पाण्डवप्रत्यागमनम् | ३०७ |
| १९१ | २५ | रामकृष्णगमनम् | ३०९ |
| १९२ | १८ | धृष्टद्युम्नप्रत्यागमनम् | ३१० |
| | | (१३) वैवाहिकपर्व | |
| १९३ | २९ | पुरोहितयुधिष्ठिरसंवादः | ३११ |
| १९४ | १५ | युधिष्ठिरादिपरीक्षणम् | ३१३ |
| १९५ | ३३ | द्वैपायनागमनम् | ३१४ |
| १९६ | २३ | व्यासवाक्यम् | ३१६ |
| १९७ | ५३ | पञ्चेन्द्रोपाख्यानम् | ३१७ |
| १९८ | १८ | द्रौपदीविवाहः | ३२० |
| १९९ | १९ | द्रौपदीं प्रति कुन्त्या आशीर्वादः | ३२१ |
| | | (१४) विदुरागमनराज्यलम्भपर्व । | |
| २०० | ३१ | दुर्योधनवाक्यम् | ३२२ |
| २०१ | २० | धृतराष्ट्रदुर्योधनसंवादः | ३२३ |
| २०२ | २५ | धृतराष्ट्रमन्त्रणम् | ३२४ |
| २०३ | १९ | भीष्मवाक्यम् | ३२५ |
| २०४ | २८ | द्रोणवाक्यम् | ३२६ |
| २०५ | ३० | विदुरवाक्यम् | ३२७ |
| २०६ | २६ | विदुरद्रुपदसंवादः | ३२८ |
| २०७ | ५२ | पुरनिर्माणम् | ३२९ |
| २०८ | २४ | युधिष्ठिरनारदसंवादः | ३३१ |
| २०९ | ३३ | सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम् | ३३२ |
| २१० | २७ | ,, | ३३३ |
| २११ | ३२ | ,, | ३३४ |
| २१२ | ३१ | ,, | ३३५ |
| | | (१५) अर्जुनवनवासपर्व । | |
| २१३ | ३५ | अर्जुनतीर्थयात्रा | ३३७ |
| २१४ | ३६ | उलूपीसंगमः | ३३८ |
| २१५ | २७ | चित्राङ्गदासंगमः | ३३९ |
| २१६ | २३ | तीर्थग्राहविमोचनम् | ३४० |
| २१७ | २५ | अर्जुनस्य गोकर्णक्षेत्रे गमनम् | ३४१ |
| २१८ | २१ | अर्जुनस्य द्वारकागमनम् | ३४३ |
| | | (१६) सुभद्राहरणपर्व । | |
| २१९ | २५ | युधिष्ठिरानुज्ञा | ३४३ |
| २२० | ३२ | बलदेवक्रोधः | ३४४ |
| २२१ | | (१७) हरणाहरणपर्व । | ८९ |
| | | (१८) खाण्डवदाहपर्व । | |
| २२२ | ३३ | ब्राह्मणरूप्यनलागमनम् | ३४९ |
| २२३ | ८३ | अग्निपराभवः | ३५० |
| २२४ | २१ | अर्जुनाग्निसंवादः | ३५३ |
| २२५ | ३७ | गाण्डीवादिदानम् | ३५४ |
| २२६ | २२ | इन्द्रक्रोधः | ३५५ |
| २२७ | ५२ | देवकृष्णार्जुनयुद्धम् | ३५६ |
| | | (१९) मयदर्शनपर्व । | |
| २२८ | ७४ | मयदानवरक्षणम् | ३५८ |
| २२९ | ३४ | शार्ङ्गकोपाख्यानम् | ३५९ |
| २३० | २१ | जरिताविलापः | ३६१ |
| २३१ | १८ | जरितायाः स्थानान्तरगमनम् | ३६२ |
| २३२ | २५ | अग्निना मार्जारदाहः | ३६३ |
| २३३ | ३२ | मन्दपालं प्रति भार्यया पुत्रैश्चोपालम्भः | ३६५ |
| २३४ | १९ | कृष्णार्जुनमयादीनां नदीकूले उपवेशनम् | ३६६ |


आदिपर्वसमाप्तिः ।

आदिपर्व १ अवान्तरपर्वाणि १९ अध्यायाः २३४ श्लोकाः ८३७३.

॥ श्रीः ॥

# महाभारतम् ।

## ( सटीकम् )

# आदिपर्व

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥**

---

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ यं वक्त्रं मुररा देवेन्द्रियमनोमायाः पराञ्चयताम्। निन्युस्तस्याविमादिनापि च निराट्कृष्णेशभावंगतम् ॥ तं प्रत्यग्गहदयमक्षरमणुं त्वकोपनेत्रग्रयाः । श्रीगोपालगुराम्महे श्रुतिशिरोवंशीरवैर्दर्शितम् ॥ १ ॥ यान्नः मौनाभिभाषी बहिरन्तर्वेंगितं पाति तर्कःप्रतिष्ठो । मीमांसा प्रातिहार्यं भजति गुणगणं यस्य संख्यानिगांस्यः ॥ हरपीठे योगशुद्धे निहितमुपनिषद्वाहवृन्दैः परं मे । भाग्यं श्रीलक्ष्मणार्यो जगति विजयते यस्य लेशः शिवायाः ॥ २ ॥ हरिविधिहरगिरिशक्तिपराशरव्यासगुरुदेवान् ॥ वैशंपायनमुग्रश्रवसं च नुमः पुराणगुरुमुख्यान् ॥३॥ कणभक्षमक्षचरणं जैमिनिकपिलौ पतंजलिं च नुमः । श्रीमद्भाष्यकारान्बोधि नय शीकरवर्षिणोमुदीरान् ॥ ४ ॥ सर्वविद्येशतामाशिश्रिक्षीर्पू पूर्वपूरुषौ । श्रीनारायणधोरेशाख्यौ हरिहरौ नुमः ॥ ५ ॥ बहून्समाहृत्य विभिन्नदेश्यान्कोशान्विनिश्चित्य च पाठमग्र्यम् । प्राचां गुरूणामनुसृत्य वाचमारभ्यते भारतभावदीपः ॥ ६ ॥ टीकान्तराणीन्दुरविप्रभाणि वाक्यार्थरत्नानि चकासयन्तु ॥ अन्तर्निगूढार्थचयप्रकाशे दीपःक्षमो भारतमन्दिरेऽस्मिन् ॥ ७ ॥ ईशप्रसादादवितुं स्ववंश्यान्भगीरथेनेव मया प्रणीता ॥ एषा महाभारततीर्थगंगा लोकत्रयीजाड्यमलं धुनोतु ॥ ८ ॥ उतानेष्विह कोशविभ्रहयलं पद्येषु नैवाश्रितम् । गंभीरेषु न सेतवो न विहिताः कूटाननस्फोटिताः ॥ न च्छिन्नानतमक्षराननततिर्भक्तानमाल्हादिता नोदीना न विभीषणाश्च विहिताः श्रीलक्ष्मणार्यश्रितैः ॥ ९ ॥

१. गृहम् । २. मेघान् ।

इह खलु भगवान्पाराशर्यः परमकारुणिको मन्दमध्यममतीननुग्रहीतुं चतुर्दश विद्यास्थानरहस्यान्येकत्र प्रदिदर्शयिषुर्महाभारताख्यमितिहासं प्रणेष्यन्प्रारिप्सितस्य ग्रन्थस्य निष्प्रत्यूहपरिपूरणाय प्रचयगमनाय च कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं श्लोकरूपेण निबध्नन्नर्थात्तत्र प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यङ्गमभिधेयादि दर्शयति । **नारायणमिति** । नरोऽविद्यावच्छिन्नं चैतन्यं जीवः तेन विषयीकृतेऽनवच्छिन्नचैतन्यरूपे ब्रह्मणि शुक्तौ रजतवत्कल्पितं चराचरं अप्शब्दवाच्यं नारं तदेव अयनं शुक्तिदेशगस्य रजतमिव प्रवेशस्थानं यस्य स नारायणः । स्वस्मिन् जीवकल्पितस्य प्रपञ्चस्य सत्तास्फूर्तिप्रदत्वेन कारणीभूत इत्यर्थः । यथोक्तम्–' आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृत ' इति तं नारायणं नमस्कृत्य तथा नरं उक्तरूपं नमस्कृत्य एनं विशिनष्टि नरोत्तममिति जीवो हि चेतनत्वेन जडवर्गादुत्कृष्टस्ततः उत्कृष्टतरः कारणात्मा नारायणस्ततोऽप्युत्कृष्टतमं निरुपाधिचैतन्यं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मविज्ञानमानन्दं ब्रह्मेत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धं तदेव नरोत्तमस्य निरस्ताविद्यस्य जीवस्य निष्प्रपञ्चं पारमार्थिकं रूपमिति युक्तं तन्नोत्तमत्वविशेषणं यथोक्तं ' पिण्डब्रह्माण्डनेतृत्वान्नरौ जीवेश्वरावुभौ । तयोश्च नयनाच्छुद्धं ब्रह्मापि नर उच्यते ॥ न रजानामपां कार्यं नारं ब्रह्माण्डमिष्यते । तद्यस्य वसतिस्थानं तेन नारायणो विभुः ॥ स्वाविद्यासृष्टपिण्डेन तादात्म्यं यो गतो नरः । स जीवः स परं ब्रह्म नरोत्तमपदाभिधम् ॥ तद्द्योतिकां गिरं नत्वा ततो व्यासस्तथैव सन् । संसारजयिनं ग्रन्थं जयनामानमीरयेत् ॥' इति एवं च जीवाविद्याकल्पितत्वात् जगतो मिथ्यात्वं ब्रह्मणश्च तत्र

सतास्फूर्तिप्रदत्वेन सत्यत्वं जीवस्य तदभिन्नत्वं चेति विषयो दर्शितः । अविद्या निवृत्तौ तत्कृतस्य प्रपञ्चस्य त्रैकालिकबाधादात्यन्तिक्यनर्थनिवृत्तिः प्रयोजनम् । अर्थात्तत्कामोऽधिकारी ग्रन्थस्य उक्तविषयस्य च ज्ञाप्यज्ञापकभावः संबन्ध इति च दर्शितम् । देवीं नरनारायणनरोत्तमतत्त्वप्रद्योतनीं सरस्वतीं च नमस्कृत्यैव ततो व्यासस्तयैव सरस्वत्या परमकारुणिकया जनबोधायाविष्टो जयं जयो नामेतिहासोऽयमिति वक्ष्यमाणत्वाज्जयसंज्ञं भारताख्यमितिहासं वा 'अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा । कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः ॥ तथैव विष्णुधर्माश्च शिवधर्माश्च शाश्वताः । जयेति नाम तेषां च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥' इति भविष्यवचनात् पुराणादिकं वा चतुर्णां पुरुषार्थानामपि हेतौ जयो स्त्रियामिति कोशादन्यं वा सर्वपुरुषार्थप्रतिपादकं ग्रन्थं शारीरकसूत्रभाष्यादिरूपं उदीरयेत् उच्चारयेत् । अत्र लिङा मंगलाचरणस्य ग्रन्थपाठेप्यावश्यकत्वं दर्शयता रचनारंभे सुतरां तद्दर्शितं नन्वेतन्न पठनीयं न व्याख्येयं च पौरुषेयत्वात्पुरुषेषु च भ्रमविप्रलंभकत्वयोः संभवादिति चेन्न । सर्वज्ञेषु वेदैकप्रमाणेषु मन्वादिषु तदसंभवात् । पूर्वतन्त्रे च स्मृत्यादिधर्मे प्रामाण्यस्य सिद्धत्वात् । यस्यां तु स्मृतौ लोभमूलकत्वं प्रत्यक्षं दृश्यते यथा वै सर्जनहोमीयं वासोऽध्वर्युः परिगृह्णातीति तत्रास्त्वप्रामाण्यं नत्वष्टकाः कर्तव्या प्रपाः कर्तव्या ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यादित्यादीनां तासां लोभमूलकत्वादर्शनात् । यां जनाः प्रतिनन्दन्ति धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्ने श्रोणामेक उदकं गामवाजतीति मन्त्रलिङ्गानुमितविधिमूलकत्वाच्च धन्वधन्वानि निरुदकप्रदेशे किमुश्रेष्ठः षड्ना आर्भवं त्रिष्टुवंतमित्यनुक्रमणिकायां किमुश्रेष्ठ इति सूक्तस्य चतुर्दशर्चस्य ऋभुदैवत्यस्य नवम दशम्यावेते ऋचौ आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् । वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत १ श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतं आनिम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किंस्वित्पुत्रेभ्यः पितरावुपावतुः २ अत्र ऋभ्वाख्य देवतास्तुतिव्याजेन श्रेयःसाधनानि विधीयन्ते । हे ऋभवः । भवतां मध्ये एकः कश्चित्तीर्थाश्रयेणैव प्राप्तदेवताभाव आप एव भूयिष्ठा उत्कृष्टतमा इत्यब्रवीत् । एवं यज्ञादिना प्राप्तदेवताभावोऽन्योऽग्निर्भूयिष्ठ इत्यब्रवीत् । वधर्यन्तीं अवपूर्वाद्भुजोविच् प्रत्यये भागुरिमतेनाकारलोपे चेदं रूपं स्वरादि पाठादव्ययत्वं निपातत्वादाद्युदात्तत्वं च वधरित्यव्ययं पालनार्थे अवगत्य धारयतीति योगात् । तदर्थं यन्तीं गच्छन्तीं चेतोवृत्तिं दयां बहुभ्यः प्रमाणेभ्यो निश्चित्य एकः दययैव प्राप्तदेवताभावः प्रकर्षेण अब्रवीत् । ते यूयं ऋताऋतानि सत्यान्येव तान्यवादीनि देवताभावप्राप्तिसाधनानि वदन्त उपदिशन्तो यज्ञेषु चमसान् सोमयुक्तान् अपिंशत व्यभजन्त । अत्र सेतिहासमुपाख्यायते । ऋभवो नाम त्रयो देवा एकं चमसमासंस्तत्र वह्निरपि तद्रूपं गृहीत्वा आगतस्ते तमतितरामभ्यात पृथग्ज्ञातुमशक्ता एकं चमसं चतुर्धा व्यभजन्तेति । यद्वा सत्यवादिनामेव तीर्थादिफलप्राप्तिं कृत्वा वदन्त इत्यस्यार्थः । श्रोणामेकः हे ऋभवः भवतां मध्ये एकः श्रोणां श्लक्ष्णां गां मृदं गोपीचन्दनादिरूपां तीर्थनिकटस्थां मुख्यकर्मभूतां प्रति उदकं जलं गौणं कर्म अवाजति अवगमयति अन्तर्भावितण्यर्थोऽयं श्रोणां गां उदकेन मिश्रयतीत्यर्थः । श्रोणां गां रक्तचन्दनादिरूपां वा तथा एकः सूनया हिंसया तत्कर्त्रा आभृत आहृतं मांसं गोरोचनाख्यं पिंशति पिनष्टि उदकेन सहेति शेषः । निम्रुचः नितरामस्तं गच्छतो दर्भेन्धनस्याग्नेः संबन्धि शकृत् गोमयं शुष्कगोमयोत्थं भस्मेति यावत् । अपाभरत् अपाहृतवान् । अत्राप्युदकेन सहेति शेषः । व्यवहिताश्चेतिच्छंदसि व्यवहितेनाप्युपसर्गेण क्रियायाः संबन्धः । हृग्रहोर्भश्छन्दसीति हस्य भः एतानि मन्त्रपदानि असंपूर्णार्थत्वात् । स्वार्थलाभाय ब्राह्मणमपेक्षन्ते इषे त्वोर्जे त्वेत्यादि मन्त्रवत् । तत्र यथा । इषे त्वेति शाखामाच्छिनत्ति । ऊर्जे त्वेत्यनुमार्ष्टीति ब्राह्मणानुसारात् । हे शाखे त्वा त्वां इषे अन्नाय छिनद्मीति ऊर्जे पशुभ्यः अनुमार्ज्मीति व्याख्यातम् । एवमिहापि वासुदेवोपनिषद्ब्राह्मणतंत्रपुराणोपबृंहणानुसारात् ऊर्ध्वपुण्ड्रार्थं श्लक्ष्णां मृदं जलेन मिश्रयेदिति व्याख्येयम् । तथा कालाग्निरुद्रबृहज्जाबालाद्युपनिषद्ब्राह्मणतन्त्रपुराणोपबृंहणानुसारात् । त्रिपुण्ड्रं कर्तुं निम्रुचः शकृदपाभरादिति च व्याख्येयम् । एवमितरस्यापि पादस्य ब्राह्मणमन्त्रलिङ्गादुपबृंहणस्मृतिभ्यश्चाष्टकाप्रपाविधिवदनुमेयम् । तथा च श्रोणामिति पदस्य रक्तामिति व्याख्याने सौरशाक्तगाणेशानां रक्तमेव पार्थिवं द्रव्यं पुण्यार्थं तत्तत्तन्त्रे विधीयते । वैष्णवानां पीतं शैवानां भस्मेति अनेन तत्तत्पुण्ड्रविशेषोपलक्षिततत्तद्देवताभजनेनापि देवताभावं प्राप्नुवन्तीति विधियते । केवलं वैदिकानां तु श्रोणां श्लक्ष्णामिति व्याख्यानेन त्रितयस्यापि समुच्चयः स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्धुत्वा चैव तु भस्मना देवान् विप्रान् समभ्यर्च्य चन्दनेन समाचरेदिति स्मृतिभ्यः अत्र गोरोचनाग्रहणं चन्दनाद्यष्टगन्धोपलक्षणार्थं एतेषां विकल्पसमुच्चयपक्षाणां पितृपैतामहपरंपराक्रमेण व्यवस्थामाह । किंस्वित्पुत्रेभ्यः पितरावुपावतुरिति पुत्रहितार्थं यत्किंचिद्व्रतं पितरौ मातापितरौ पितृपितामहौ वा उपेत्य स्वीकृत्य अवतुः व्रतं सम्यक्परिपालयामासतुः तदेवं तस्य पुत्रस्य श्रेयः साधनमित्यर्थः । एवं सत्यवादिनां तीर्थानि यज्ञादयस्तन्त्रमार्गेण सूर्याद्यन्यतमोपास्तिः केवलवैदिकता चेति देवताभावप्राप्तिसाधनानीति मन्त्रद्वयतात्पर्यं सिद्धम् । तस्मादस्मदादिभिरल्पज्ञैर्दृष्टमूलमदृष्टमूलं वा मनुव्यासादिसर्वज्ञप्रणीतं स्मृतिजातं वेदवद्वेदविदां वचनमिति न्यायेनागमयितव्यं पठनीयं व्याख्येयं चेति सर्वमनवद्यम् ॥१॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। ॐ नमः पितामहाय। ॐ नमः प्रजापतिभ्यः। ॐ नमः कृष्णद्वैपायनाय।
ॐ नमः सर्वविघ्नविनायकेभ्यः ।

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे॥१॥

सुखासीनानभ्यगच्छद्ब्रह्मर्षीन्संशितव्रतान् ।
विनयावनतो भूत्वा कदाचित्सूतनन्दनः ॥ २

तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनाम् ।
चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥ ३

अभिवाद्य मुनींस्तांस्तु सर्वानेव कृताञ्जलिः ।
अपृच्छत्स तपोवृद्धिं सद्भिश्चैवाभिपूजितः ॥ ४

अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव तपस्विषु ।
निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लोमहर्षणिः ॥ ५

सुखासीनं ततस्तं तु विश्रान्तमुपलक्ष्य च ।
अथापृच्छदृषिस्तत्र कश्चित्प्रस्तावयन्कथाः ॥ ६

कुत आगम्यते सौते क्व चायं विहृतस्त्वया ।
कालः कमलपत्राक्ष शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ ७

एवं पृष्टोऽब्रवीत्सम्यग्यथावल्लोमहर्षणिः ।
वाक्यं वचनसंपन्नस्तेषां च चरिताश्रयम् ॥ ८

तस्मिन्सदसि विस्तीर्णे मुनीनां भावितात्मनाम्

सौतिरुवाच ।

जनमेजयस्य राजर्षेः सर्पसत्रे महात्मनः ॥ ९

---

महतः शास्त्रस्यारंभे वसुदेवांशभावनयात्मीयात्मानं वासुदेवं ग्रहदाश्रयेण प्रणम्य 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥' इत्युक्तेरीश्वरवत् परात्परं गुरुं पितामहं परमगुरून् वसिष्ठमरीच्यादीन् प्रजापतींश्च प्रणम्य अहं मनुरभवं सूर्यश्चेत्यादिना वामदेव इव स्वपर्षि ब्रह्मभावमवमात्मा ग्रथ्रोति शास्त्रमनुसंदधानः प्रत्यगात्मानमेव नमस्करोति । ॐ नमः कृष्णद्वैपायनायेति । ततो विघ्नविनायकान्नमस्कृत्य सुखासीनानिति भारतारंभश्लोकेऽपेक्षितं पूरयति गद्येन । लोमहर्षणपुत्र इति । लोमानि हर्षयांचक्रे श्रोतृणां यः स्वभाषितैः कर्मणा प्रथितस्तेन लोमहर्षणसंज्ञयेति कौर्मे निरुक्तार्थनाम्नः पुत्रः उग्रश्रवाः उग्रस्य नृसिंहतापनीयोपनिषत्प्रतिपाद्यस्य वस्तुनः श्रवः श्रवणं यस्य सः अधिगतोपनिषद्रहस्य इत्यर्थः । सौतिः सूतजातेरुत्पत्तिरुक्ता वायुपुराणे । 'वैन्यस्य तु पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः । सुत्यायामभवत्सूतः प्रथमं वर्णवैकृतम् ॥ ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः । जुहावेन्द्राय दैवेन ततः सूतो व्यजायत ॥ शिष्यहव्येन संपृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः। अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥' इति ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूत इति याज्ञवल्क्योक्तं विलोमजत्वं तस्य सूतस्यापरं सौतिः पौराणिकः पुराणे कृतश्रमः नैमिषारण्ये वाराहे 'एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा। उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलं ॥ अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम्' ॥ इति उक्तरूपे। नैमिशेति पाठे तु वायवीये 'एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते। यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः' ॥ इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम्॥ प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः।तेऽपि हृष्टतरा विप्रा प्रणम्य जगतां प्रभुं । प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्व्यशीर्यत॥ तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपूजितामिति॥ तन्निर्वचनं द्रष्टव्यं शौनकस्य शुनः सर्वविवेकदृगिति लीलावत्यां शौन एव शौनकस्तस्य कुलपतेः 'एको दशसहस्राणि योऽन्नदानादिना भरेत्। स वै कुलपतिरित्युक्तलक्षणस्य सत्रे ये यजमानास्त एव ऋत्विजो यस्मिन्बहुकर्तृके क्रतौ स सत्रसंज्ञः यथोक्तम् । 'बहुभ्यो दीयते यत्र तृप्यन्ति प्राणिनो बहु । कर्तारो बहवो यत्र तत्सत्रमभिधीयते । इति ॥१॥ सुखासीनानिति कर्मच्छिद्रेषु सुखं स्वरूपानन्दं विचारयितुमासीनान् अभ्यगच्छत् आभिमुख्येन स्वयमेव तेषां पुरः कथां वक्तुं वांछितवानागतवान् । नानाहूतोऽध्वरं गच्छेदन्यत्र तु कुतूहलादिति उक्तेः संशितव्रतान्सम्यक् शितं तीक्ष्णं खड्गधारावद्दुःसहं दुर्धर्षं व्रतं ब्रह्मचर्यादिकं येषां तान् ।२। नैमिषारण्यवासिनामाश्रममनुप्राप्तं तं तपस्विनः परिवव्रुरिति संबन्धः। अनुप्राप्त इति पाठेऽनूत्तरार्धे तामित्यध्याहार्यम् ॥३॥ तपोधनाना तपोवृद्धिरेव प्रष्टव्यातस्मात्तपोवृद्धिमपृच्छत्पृच्छेर्द्विकर्मकत्वात् तपोवृद्धानिति पाठे तपोवृद्धिमित्यन्वयः ॥४॥ निर्दिष्टमिहोपविश्यतामिति दर्शितम् ॥ ५ ॥ प्रस्तावयन्नुपोद्घातयन् प्राप्तवया इति पाठे वृद्ध इत्यर्थः ॥६॥ उपोद्घातमेवाह कुत इति विहृत नीत. ॥७॥ एवमिति सम्यक्शब्दतः शुद्धं यथावदर्थतः शुद्धं वचनसंपन्नः शब्दप्रयोगकौशलयुक्तः तेषां चरिताश्रयं तेषां मुनीनां चान्येषां राजादीनां च संबंधीनि यानि चरितानि तेषामाश्रयभूतं वचनम् ॥ ८ ॥ भावितात्मना विशोधितचित्तानाम् । सौतिरुवाच जनमेजयस्य राजर्षेरित्यक्षराधिक्यमार्षम् यत्तु जन्मनैवातिशुद्धेन शत्रूनेजितवान् यतः एजृकंपनेधातुर्हि जन्मेजय इति श्रुत इति निरुच्य चतुरक्षरं नामेत्याहुस्तन्निर्मूलं जनमेजयः पारिक्षित इति श्रौताक्षरसंख्याविरोधात्। जन्मशब्दस्यानुपसर्गत्वाच्चैडि पररूपं दुर्लभं च। युक्तं तु जनशब्दपूर्वादेजृभ्रेजृभ्राजृदीप्ताविति दीप्त्यर्थाण्ण्यंतादेजेः खशितिखशिमुमागमे जनमेजय इति।९।

समीपे पार्थिवेन्द्रस्य सम्यक्पारिक्षितस्य च ।
कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाःकथाः ॥ १०
कथिताश्चापि विधिवद्या वैशंपायनेन वै ।
श्रुत्वाऽहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः ॥ ११
बहूनि संपरिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च ।
समन्तपञ्चकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम् ॥ १२
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत्पुरा ।
कुरूणां पाण्डवानां च सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ १३
दिदृक्षुरागतस्तस्मात्समीपं भवतामिह ।
आयुष्मन्तः सर्व एव ब्रह्मभूता हि मे मताः ।
अस्मिन्यज्ञे महाभागाः सूर्यपावकवर्चसः ॥ १४
कृताभिषेकाःशुचयःकृतजप्याहुताग्नयः ।
भवन्त आसने स्वस्था ब्रवीमि किमहं द्विजाः॥ १५
पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः ।
इतिवृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम् ॥ १६

ऋषय ऊचुः ।

द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा ।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम् ॥ १७
तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः ।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च ॥ १८
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम् ।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम् ॥ १९
जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशंपायन उक्तवान् ।
यथावत्स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया ॥ २०
वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तां व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
संहितां श्रोतुमिच्छामः पुण्यां पापभयापहाम् ॥ २१

सौतिरुवाच ।

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ २२

---

पार्थिवेन्द्रस्य समीपे कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः वैशंपायनेन कथिताश्चेति संबन्धः ॥१०॥ विशं प्रजां पातीति विशंपो जनमेजयस्तस्यायनं गुरुत्वेनाश्रयभूतो विशंपायनः स एव वैशंपायनः स्वार्थे तद्धितः । यद्वाविरिवविर्जीवः पक्षिवद्देहान्तसंक्रमणात् । शंपः सुखस्य पालक ईशः तयोरयनमधिष्ठानं शुद्धं ब्रह्म तदधीते तद्वेदेति वा वैशंपायनस्तेन वैशंपायनेन । ताः श्रुत्वा तं देशं गतवानस्मीति संबन्धः महाभारतं 'चत्वार एकतो वेदा महाभारतमेकतः । महर्षिभिः समागत्य तुलामारोपितं पुरा॥ महत्त्वाद्भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते । ' इत्युक्तलक्षणं तत्र संश्रिताः सम्यक्श्रिताः सर्ववेदार्थगर्भा इत्यर्थः । तपूपर्वमरुद्भ्यामित्यन्यत्रस्मृतो मत्वर्थीयस्तप्प्रत्ययोबाहुलकाद्भारशब्दादपीति ज्ञेयम् ॥ ११ ॥ तीर्थानि जलप्राधान्यात्पुष्करादीनि आयतनानि स्थलप्राधान्यान्नैमिषादीनि ॥१२॥१३॥१४॥ कृतेति आसने स्वस्थाभवन्तो भवंत्विति शेषः । आसते इति पाठे स्वास्थ्यं पृच्छति । कथां प्रस्तोतुमित्यर्थः । अहं च पुराणादिष्वन्यतमं किं ब्रवीमीत्याज्ञापयतेति शेषः॥ १५ ॥ पुराणेति 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्च लक्षणम् ' इति ॥ स्मृत्युक्तं पुराणं पुरापि नवं वर्णपदानुपूर्वीविभ्रंशेऽपि प्रतिकल्पं तदर्थानां सर्गादीनां समाननाम रूपत्वात् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदिति श्रुतेः पुराणस्य संहिताः धर्माश्रिताः कथाः दानमोक्षधर्माद्याः अर्थाश्रिताः राजधर्माद्याः नरेन्द्राणां नलरामादीनां इतिवृत्तं आचारप्रकारं ऋषीणां भृग्वादीनां चात्पतिव्रतादीनाम् ॥१६॥ सुरैः ब्रह्मर्षिभिश्च यदभिपूजितं स्वस्वलोके इति शेषः ॥ १७ ॥ विचित्राणि स्वरूपतोऽर्थतश्च रम्याणि पदानि वाक्यादेरुपलक्षणं पर्वाणि पौष्यपौलोमादीनि आदिसभादीनि वा यत्र तस्य सूक्ष्मा अतर्क्या अर्था आत्मतत्त्वादयः 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् । नाप्रतिष्ठितं तर्केण गंभीरार्थस्य निश्चयः ॥' नैषां तर्केण मतिरापनेयेति स्मृतिभ्यां न्यायस्तत्प्रतीत्यनुकूलायुक्तिः वेदार्थैः वेदतात्पर्यविषयभूतैरर्थैश्च भूषितस्य ॥१८॥ संस्कारोपगतां पदादिव्युत्पतिमतीं ब्राह्मीं वाचं ब्राह्मीं गौर्भारतीभाषेत्यमरः। नानाशास्त्रैरुपबृंहितां उद्दीपितां शास्त्रान्तराविरुद्धामित्यर्थः ॥ १९ ॥ राज्ञोग्रे इति शेषः ॥ २० ॥ वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तां चतुर्वेदार्थवतीं समितामिति पाठे तुल्यामित्यर्थः । पुण्यां श्रेयो वर्धिनीं पापभयापहां चित्तशोधिकाम् ॥२१॥ मङ्गलाचरणपूर्वकं मुनिभिः प्रार्थितमर्थं वक्तुं प्रतिजानीते आद्यमित्यादिचतुर्भिः हरिं नमस्कृत्य महर्षेर्मतं प्रवक्ष्यामीति तृतीयचतुर्थयोरन्वयः । अत्र भूबीजाङ्कुरतरुफलोपमाः पञ्च ईश्वरपुरुषाः शुद्धशबल सूत्रविराड्विष्णुसंज्ञाः निरुपाधिमायोपाधिमायाकार्यां पञ्चीकृतमहाभूतोपाधिपञ्चीकृतमहाभूतोपाधिपुरुषाकारमूर्त्युपाधिविशिष्टचैतन्यरूपाः तत्र त्रीनत्रोद्दिशति नमस्कार्यत्वेन आद्यं पुरुषं निरुपाधिचैतन्यं ईशानं मायिनं तु महेश्वरमिति श्रुतिप्रसिद्धं।पुरुहूतं यज्ञेषु पुरुभिर्बहुभिर्होतृभिर्हूतमाहूतं पुरुभिः सामगैः स्तुतमध्वर्युभिरिष्टं चेत्यपि द्रष्टव्यम् । तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्यतस्यैव सा विसृष्टिरिति हिरण्यगर्भाख्ये सूत्रे सर्वयष्टव्यदेवतात्मत्वश्रुतेः यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्तीति स्मृतेश्च पुरुहं पूरुभूयिष्ठमित्यमरः । एतदेव त्रयं व्युत्क्रमेण विशिनष्टि व्यक्ताव्यक्तं सनातनमिति । व्यक्तं सूत्रात्मा हविर्भोक्तृत्वफलप्रदातृत्वादियोगात् अव्यक्तं ईशानः सुषुप्तिप्रलययोः सर्वलयात्मत्वात् सनातनं अखण्डदण्डायमानं एतेन तस्मादव्यक्तमुत्पन्नमितिस्मृतेश्चे-

**असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम् । परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥ २३ ॥**

तयोरुत्पत्तिमत्त्वेन लयो दर्शित ऋतं यथाभूतं यथा स्फटिके स्वतःशुद्धे हिङ्गुलाश्रयत्वेन रक्तत्वं तत्रैव स्फटिकाश्मभ्रमोपे पद्मरागत्वं तत्रैव चन्द्रिकायामिन्द्रनीलत्वं चाध्यस्यते । तथा चैतन्ये मायायोगादीशत्वं ईशेऽप्यविद्यायोगात् सूत्रत्वं सूत्रेऽपि अविद्यादार्ढ्याद्विराट्त्वं चाध्यस्यते । तत्र उत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वं ऋतं परमतत्त्वाय पुरुष एव । एकमिति मायाद्युपाधिकृतभेदनिरासः । अक्षरं अक्षः सरन् व्यापकं । तेन आकाशात् पृथिव्यादेरिव नास्मात् पृथग्भूतोऽपि तत्त्वमस्तीति दर्शितं । अत एव ब्रह्मनिरवधिकमहत्त्वाद्देशतः कालतो वस्तुतश्च परिच्छेदशून्यम् ॥ २२ ॥

चतुर्थं विराजमाह । असच्चेति । यत्सदसत्परं सदसद्भ्यां कार्यकारणाभ्यां सूत्रेशाभ्यां परमन्यत्सनातनाख्यं तदेव वस्तु विश्वं विराड्रूपमित्यर्थः । ब्रह्मैवेदं सर्वमित्यादिश्रुतेः । किं भूतं विश्वमसत् दृश्यमानत्वात् । असच्च नेह नानास्ति किंचनेति तत्त्वज्ञानबाध्यत्वश्रुतेः नन्वर्थंतयोरसत्त्वे च गन्धर्वनगरादिवत् दृष्टं नेत्याह । असच्चेति रज्जुरगवत्प्रतिभासमानमपि कालत्रयेऽपि नास्तीत्यर्थः । फलोपमं पञ्चमं विष्णुमाह परेति परे सूत्रात्मानोऽवरे विराडादि पर्यन्ताः । बहुत्वमनन्तशक्तित्वसूचनार्थं तेषां स्रष्टारम् । नन्वण्डान्तर्वर्तिनस्य कथं परादिस्रष्टृत्वमत आह । पुराणमिति पुरापि नवम् । अनादिरेव सन् ब्रह्माण्डान्तश्चतुर्भुजेन रूपेणाविर्भूतोऽनन्तशक्तिः परिणतबीजगर्भं फलमङ्कुरादीनामिव परावराणां स्रष्टा भवतीत्यर्थः । अत एव परमव्ययमत्यन्तं व्ययशून्यं संसारस्यानन्त्यात्तत्कारणीभूतस्य तस्य व्ययो युज्यत इत्यर्थः । ननु सोऽयमात्मा चतुष्पादित्यादिना निरुपाधितुर्यप्रतिपत्तये परमात्मन्त्रीण्येव सोपाधिकानि रूपाणि विश्वतैजसप्राज्ञसंज्ञानि माण्डूक्यादिषु श्रूयन्ते न तु चतुर्थमिति चेत्सत्यम् । तथापि । य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्ण इति तृतीयस्यापि द्वितीयादि प्रभृति हिरण्मयं वेश्मेति छान्दोग्ये पुरुषाकारेणैव ब्रह्मणस्तस्य आदेशश्रवणात् । कौषीतकिब्राह्मणे च पर्यङ्कस्थस्य ब्रह्मणस्तेन सह संवादादेश्च श्रवणात्तदप्यस्तीति गम्यते । आरण्यकेऽपि गन्धमादनप्रवेशे धौम्यवाक्ये महामेरुर्महाभागेत्यादिना मेरुपृष्ठे ब्रह्मलोकादन्यं विष्णुलोकं प्राच्या नारायणस्थानं मेरावतिविराजते इत्यादिना स्थानमेतन्महाभाग ध्रुवमक्षयमव्ययमित्यन्तेन ग्रन्थेनोक्तविशेषणमामनन्ति । तत्रैव च तत्र स्थानामनावृत्तिः स्मृता तत्र गत्वा पुनर्नमं लोकमायान्ति भारतेति । स्थानान्तरेभ्यश्चावृत्तिर्गीतासूक्ता । आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुनेति । इमावेव ब्रह्मविष्णुलोकावभिप्रेत्य चिन्तितं चतुर्थे कार्यवादरिरित्यत्र छान्दोग्ये हि अर्चिरादिमार्गं प्रकृत्य श्रूयते स एतान्ब्रह्म गमयतीत्यत्र मानवः पुरुषः उपासकान्कार्यं ब्रह्म प्रापयत्युत निष्पाद्यं परमिति । प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति प्रकृत्य यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति कखयोरभेदमुक्त्वा प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुरिति प्राणाकाशाख्ययोः कार्यकारणब्रह्मणोरुपास्यत्वेनोपसंहारात्संशयः । तत्र परस्मिन्ब्रह्मणि न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्त इति श्रुतिप्रसिद्धं पारमार्थिकं गत्यभावमभिप्रेत्य कार्यं ब्रह्मैव गतिप्राप्यमिति पूर्वः पक्षः । न्यायते परमिति सिद्धान्तः । अस्मिन्पक्षे श्रुतिसूत्रयोः स्वारस्य कतरेण गतव्य ईक्षति । कर्माधिकरणे भाष्येऽपि हि एवंविधौ पूर्वोत्तरपक्षौ सर्वत्र दृश्येते । यत्तूक्तं परमेश्वरे हिरण्यश्मश्रुत्वादिरूपश्रवणं नोपपद्यते इति तत्र ब्रूमः स्यात्परमेश्वरस्यापीच्छावशान्मायामयं रूपं साधकानुग्रहार्थमित्यादिना तद्वदिहापि । अथ तत्र पूर्वपक्षे फलं इमं मानवमावर्तं नावर्तन्त इत्यत्र इमामिति विशेषणान्मानवान्तरे आवृत्तिरिति सिद्धान्ते तु न च पुनरावर्तन्त इति श्रुत्यन्तरात् । यतो वा इमानि भूतानि जायन्त इतिवदिदं शब्द उपप्रदर्शनार्थ इत्यनावृत्तिरिति । कथं तर्हि भाष्ये सूत्रक्रममुल्लङ्घ्य परं गतिप्राप्यमिति । प्रापय्य कार्यमेव गतिप्राप्यमिति सिद्धान्तितं शृणु नोव्योमापरो यदिति परव्योमाख्यस्याव्याकृताकाशस्य सर्वजगत्कारणस्यापि सृष्टेः प्राङ्निषेधश्रवणात् तस्मादव्यक्तमुत्पन्नमिति । तदुत्पत्तिश्रुतेर्हिरण्यश्मश्रुत्वादिमतोऽपि कारणब्रह्मण शुद्धापेक्षया कार्यत्वं विवक्षित्वा तद्विषयत्वं गतिश्रुतीनां वर्णितं परशब्देन च शुद्धं विवक्षित्वा तत्र गत्ययोगश्च दर्शित इति । न च हिरण्यश्मश्रुत्वादिश्रवणं कार्यब्रह्मविषयमेवेति वाच्यम् । अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् दहर उत्तरेभ्य इत्यादिन्यायैस्तस्य जगत्कारणत्वसिद्धेः इयमेव र्गिभ सामवागेव र्क्प्राण सामेत्यादिना ऋक्सामात्मकत्वेन निरूपितस्य कृत्स्नास्याधिदैविकाध्यात्मिकप्रपञ्चस्य तस्य ऋक्सामचरणाविति तदङ्गुलिपर्वमात्रत्वोक्तेश्च तस्मात् शास्त्रान्त्यन्यायेन यदधीनं जगद्व्यापारवर्जं इतरेषामुपासनासिद्धानां हिरण्यगर्भादीनामैश्वर्यं येन सह तेषां भोगसाम्यं यथैतान्देवतासर्वाणि भूतान्यवन्त्येवं हैवंविदं सर्वाणि भूतान्यवन्तीति लिङ्गाद्गम्यते । यस्य स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलमिति घटादिभ्यो मृद इव इन्द्रजालादैन्द्रजालिकस्येव च विकारवर्ति तदवर्ति च रूप स्थितिश्च श्रूयते । यत्रैकं प्राप्तानामनावृत्तिस्तद्भूतभूतचतुर्वक्त्रेण सह मुक्ताधिकारिणामभुक्तविद्याफलानां तल्लोकगतानामपि यावदधिकारं कल्पान्तरेऽप्यवस्थितिश्चेति श्रूयते । तस्य विग्रहादिकं सर्वशास्त्रप्रामाण्यदभ्युपेयम् । अयमेव भगवत्पादीये वेदान्तसारे वनवृक्षदृष्टान्तेन स्थूलसूक्ष्मकारणोपाधिभेदेन त्रिविधस्य समष्टिव्यष्टिप्रतिपाद्य समष्टिर्वनदृष्टान्तेन प्रतिपादितः । किं च

शुद्धे ब्रह्मणि प्रणिधीयमानं चित्तं स्थूलसूक्ष्मक्रमात्सर्वं चिदात्मनि प्रविलापयेदिति पञ्चीकरणोक्तक्रमेण स्वाभाविकपरिच्छेदाभिमानं त्यक्त्वाऽमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोक इति शास्त्रीयसार्वात्म्याभिमानयुक्तं व्यक्तभावनामन्तरेण सहसा कर्तुमशक्यम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यत इत्युक्तेः। देहवद्भिर्देहाभिमानवद्भिः। तस्मात् भावनामयं प्रणिधानमयं चेति द्विविधमपि ध्यानं शुद्धं वस्तुप्रविविक्षोरावश्यकम्। तत्राद्यं नष्टवनितावदसंनिहितविषयं पुरुषव्यापारतन्त्रम्। तेन वशीकृतं चित्तं क्रमशो मूर्त्याकारतः प्रच्याव्याव्यक्तमात्रालम्बनो भूत्वा विराडादौ कारणे ब्रह्मणि चित्तं प्रणिदध्यात्। अयमेव ध्यानक्रमः श्रीमद्भागवतादिसर्वपुराणेषूक्तः। प्रणिधानं च वस्तुतत्त्वविषयं पूर्वोक्तस्फटिकदृष्टान्तेन आत्मन्यध्यस्तस्य विराडादित्रयस्य रज्जुसर्पस्येव चित्तस्थिरीकरणेन अधिष्ठानभूतशुद्धवस्तुदर्शनेन प्रविलापनकरणम्। तच्च दर्शनं दग्धेन्धनानलवत्स्वयमुपशान्तचेतस्सुषुप्तिसरूपाकाचिदानन्दावस्थाविर्भवति। सा च श्रूयते यथा निरिन्धनो वन्हिः स्वयोनावुपशाम्यति। एवं वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यतीति। तत्र माण्डूक्यादौ यद्यपि प्रणिधानगोचरत्वेन रूपत्रयमुक्तं तथापि मन्दाधिकारिणां भावनागोचरमपि चतुर्थं सोपाधिकं ऐश्वरं रूपं श्रुत्युक्तं प्रत्याख्येयम्। नन्वस्य नित्यत्वे तल्लोकादिकमपि नित्यं वाच्यं तथा च सृष्टेः प्राक् सदेवसोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमिति त्रिविधभेदशून्यसन्मात्रसद्भावावधारणं विरुध्येतेति चेन्न। व्यवहारपरमार्थदृष्टिभ्यामुभयोपपत्तेः। तथा हि। "न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा। अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥ अस्यार्थः। न रूपमस्य नान्तोऽस्य छित्त्वैनामिति चेश्वरः। इन्द्रजालोपमत्वेन भवाश्वत्थं न्यरूपयत्॥१॥ सम्यग्दृशा वीक्ष्यमाणं रूपं नास्योपलभ्यते। एतत्प्रयोक्तुर्नित्यत्वादयमाद्यन्तवर्जितः॥ २॥ रज्जुसर्पसमस्यास्य तुच्छाज्ञानोद्भवत्त्वतः। प्रतिष्ठाख्यं लयस्थानं नास्ति कुम्भस्य मृद्यथा॥३॥ अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणं। अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्मकारणमुच्यते॥ ४॥ इत्येवं वार्तिकाचार्यैरुपचारात्परात्मनः। उक्तोपाप्रादानता तस्मादप्रतिष्ठो भवद्भ्रमः॥५॥ दुःस्वप्न इव संसारः सङ्गमात्रेण दुःखदः। तमसङ्गासिनाच्छित्त्वा प्रयाहि परमं पदम्॥६॥ नित्यं बद्धदृशामिन्द्रजालं शुद्धदृशां त्विदम्। कालत्रयेऽपि नास्तीति न्यायमत्रापि योजयेत्॥७॥ प्रवाहनित्यं जगदित्याहुर्मीमांसकाः स्फुटम्। व्यवहारे भाट्टनयो ह्यस्माकमपि संमतः॥८॥ न कार्यत्वादनित्योऽयं नन्दनन्दन विग्रहः। उपचाराद्धि कार्यत्वं तत्र पौराणिका जगुः॥ ९॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा। उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥१०॥ दुर्गा विनायको विष्णुर्भवो भानुरितीह हि। नामरूपान्तराण्यस्य श्रृणुमः पार्थसारथेः॥ ११॥ वेदान्तेष्वपि नित्यत्वं खादीनां व्यावहारिकम्। सिद्धवत्कृत्यदृष्टान्ते कीर्त्यते हि परिस्फुटम्"॥१२॥ तथा ह्याकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः इत्याकाशात्मनोर्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः सर्वगतत्वनित्यत्वे संगच्छेते। अन्यथा द्वयोरपि सत्यत्वे सर्वगतत्त्वस्यैवासंभव इत्यास्तां तावत्। ततश्च यथाऽस्मदादिसुप्तिकाले स यदा स्वपिति तदैवं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येतिचक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येतीत्यादिना श्रूयमाणेऽपि सर्वनामरूपप्रलये इतरेषां व्यवहारो न विच्छिद्यते। एवं ब्राह्मप्रलयकालेऽपि वैकुण्ठवासिनामिति। स देवसोम्येत्यादिकमपि आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथेतिन्यायेन नेह नानास्ति किंचनेति श्रूयमाणस्य व्यवहारकालेऽपि प्रपञ्चासत्त्वस्य प्रदर्शनार्थं न तु कदाचित्कस्य तदसत्त्वस्य ज्ञापनार्थम्। 'नासतो विद्यते भाव' इत्यसदुत्पत्तिनिषेधात् 'नान्तो न चादिरिति' गीताविरोधाच्च। तस्मादखण्डदण्डायमानेन्द्रजालतुल्यस्य जगतो दर्शनादर्शने एवाद्यलयावित्यभिप्रायेण सृष्टिश्रुतय इत्याकाशवद्व्यावहारिकं विष्णुमूर्त्यादेरपि नित्यत्वसिद्धम्। परमार्थतस्तु निर्विशेषचिन्मात्रादन्यकालत्रयेऽप्यस्तीति दिक्। "रज्ज्वज्ञानात्सर्पभीतिपातक्षतमिव क्रमात्। आत्माज्ञानादहंसङ्गक्रियादेहं समुत्थितम्॥ १॥ घृतवल्लीयते सुप्तो वासनामात्रदेहकः। बोधे स हन्यते चैव पुनः पुनरहं भ्रमः॥२॥ अहं तद्वासनाधारा नाज्ञाने सति शाम्यति। सङ्गक्रियादेहचक्रं नानश्टेहं विनश्यति॥ ३॥ रज्जुज्ञानाद्भयं नश्येन्न तु पातोद्भवं क्षतम्। आत्मज्ञानात्तथासङ्गो न तु कर्मोद्भवं वपुः॥४॥ यावत्कर्म वपुस्तावद्यावद्देहश्च तिष्ठति। तावत्कर्माहं भ्रमश्च वर्तेते दग्धवस्त्रवत्॥ ५॥ तत्रैवं सति कर्मोत्थं कर्मनाशात्प्रणश्यति। अकर्मजं तु बोधेन बाध्यते न तु नश्यति॥६॥ एवं श्रीकृष्णदेहोऽयमकर्मोत्थो न नश्यति। बोधेन बाध्यते चैव स्वप्ने दृष्ट इवेश्वरः॥७॥ अन्योन्यबाधकौ जाग्रत्स्वप्नावात्मनि कल्पितौ। नोत्पद्येते न नश्येते रज्ज्वां सर्पस्रजाविव॥८॥ आत्मैव हीश्वरोऽस्माकं धीदर्पणपृथक्कृतः। धीनाश एवं तद्बाधः कार्यत्वाद्धीश्च नश्यति॥ ९॥ नन्वैश्वर्यमकार्यत्वान्न नश्येत्प्रत्यगात्मनः। बाढं बाधस्तु तस्य स्यान्मायाबाधेन सर्वथा॥ १०॥ अत्रोक्तं वार्तिकसारे–'ब्रह्मत्वादेव जीवस्य भ्रान्तजीवत्ववारणात्। वशित्वाद्या ब्रह्मधर्माः शिष्यन्तेऽतोऽयमीश्वरः॥११॥ निवृत्तत्वाज्जीवधर्मा भासन्ते नैव कस्यचित्। अनिवृत्ता ईशधर्मा अकर्मापादि तत्त्वतः॥१२॥ भान्ति तेत्वीश्वरस्यापि बुद्धानां च स्वबुद्धितः। ईश्वरस्य ततो धर्माः सन्तु न त्विह विस्मयः॥१३॥ तिष्ठन्त्वपीशधर्मेषु धर्माणां मायिकत्वतः। ईशो निर्धर्मको बोध्यो विमुक्त्यर्थं मुमुक्षुभिः" इति। प्रपञ्चस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः। कस्यचित् विदेहमुक्तादेः

अयं च ईश्वरोऽयमधर्मवत्स्वस्वबुद्धिभेदाद्वर्णवद्लिपिभेदादा-
कारभेदे विष्णुरिति शिव इति च शास्त्राद्गृह्यते । एवं तल्लो-
कोऽपि वैकुण्ठ इति कैलास इति च एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति
यो देवानां नामधा एक एवेत्यादिश्रुतिभ्यः । तं यथा यथो-
पासते तथैव प्रेत्य भवन्तीति श्रुतेस्तद्भावनावतां तत्साह-
प्यप्राप्तिः कीटभृङ्गन्यायेन भवति न तु तदैक्यप्राप्तिरिति
व्युत्पादितं वेदान्तकतके । केचित्तु पूर्वोक्तमनःप्रणिधाना-
त्मकध्यानसंप्रदायानभिज्ञाः एतल्लोकप्राप्तिरेव मुक्तिरयमेवेश्वरो
न समष्टयाख्योऽन्य ईश्वरोऽस्तीति वदन्ति । ते सर्वशास्त्र-
प्रसिद्धं मुक्तौ द्वैतादर्शनं बाधमानाः स्वाप्ययसंपत्त्योरित्यादि-
न्यायेन न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु
तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं पश्येदिति सुषुप्तिकैवल्ययो-
रविशेषाद्द्वैतादर्शनश्रवणेन च विरुध्यन्ते । अनयैव च श्रुत्या
द्वितीयाभावादेव द्वैतादर्शनं न तु दृग्लोपादिति वदन्त्या द्वैत-
स्येन्द्रजालतुल्यत्वं दर्शितं तेन विष्णुः सर्वोत्तमः शिवो जीवः ।
शिवः सर्वोत्तमो विष्णुर्जीव ' इत्युपासकानामाग्रहो विष्ण्वा-
द्युत्कर्षप्रतिपादकश्रीभागवतसूतसंहितादीनामनार्षत्वासुर-
त्वादिवचनैर्दूषणं च शास्त्रमर्यादानवबोधमूलमेव । विकल्पो
विशिष्टफलत्वादिति न्यायेन ऐकात्म्ये चित्तावतारार्थं यस्य-
कस्यचिदप्याकारस्यालम्बनीयत्वात् । यत्तु शैववैष्णवपुरा-
णेषु इतरनिन्दास्मरणं तत्र हि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते
अपि तु विधेयं स्तोतुमिति न्यायेन विधेयस्तुत्यर्थं ' यथा
उद्यन्तु खलु वा आदित्य आहवनीयेन रश्मीन्संदधातीत्युप-
क्रम्य प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति पुरोदयाज्जुह्वति येऽग्निहो-
त्रम् । दिवाकीर्त्यमदिवाकीर्तयन्तः सूर्यो ज्योतिर्न तदा ज्योति-
रेषामिति । आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशतीति श्रुतिमुप-
जाव्य यदुदिते सूर्ये प्रातर्जुहुयात् । यथातिथये प्रद्रुताय शून्या-
यावसथायाहार्यं हरन्ति तादृगेव तदिति उदितानुदितहोमयोः
प्रकरणे इतरनिंदाविधेयस्तुत्यर्थैव तद्वत् । न तु तत्र निन्दायां
तात्पर्यमस्ति । उभयस्यापि त्याज्यत्वापत्तेः न हि विष्णु-
भजनं शिवभजनं वा तदङ्गमूर्ध्वपुण्ड्रत्रिपुण्ड्रादिवा सुरापाना-
दिवद्रागतः प्राप्तं येन दृष्टार्थत्वादनुमितनिषेधशास्त्रबलादनर्थ-
करं स्यात् । यद्वा सत्यपि निषेधे शास्त्रतः प्राप्तत्वात् अति-
रात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णातीति
विहितप्रतिषिद्धत्वात्षोडशिग्रहणाग्रहणवत्विकल्प्यताम् ।
विशिष्टफलत्वेनाविरोधे वा समुच्चीयताम् । न तु तद्विधायक-
शास्त्राप्रामाण्यमध्यवसातुं शक्यम् । इतरस्यापि तथात्वा-
पत्तेः सर्वपुराणोच्छेदप्रसंगः तस्मात्तस्याल्लशुनकन्यायेन शिव-
विष्णुगोचरे निन्दास्तुतिसंकेतभेदमाश्रित्य कार्यकारणब्रह्म-
गोचरतया व्याख्येये । यथाहि—कश्चित्कुतुकी मुग्धां भार्यां
कोपयितुं गृहशुनकं स्यालनाम्ना संकेत्य गालयति । सा च
मद्भ्रातरमङ्गगालयतीति कुप्यति । तद्वच्छैवे विष्णुशब्देन
कार्यं ब्रह्मविवक्षितत्वात्तद्भजनात्भावनातारतम्येनैश्वर्यवतार-
तम्यवत्तया हीनसंपदां पुंसां दुःखकरत्वात् नरकशब्दोदि-
तस्य ब्रह्मलोकस्य प्राप्तिरिष्यते । एवं पक्षान्तरेऽपि तथा च
व्याख्यातं मोक्षधर्मेषु जापकोपाख्याने । अमूनि यानि
स्थानानि देवानां परमात्मनामित्यादिना तस्य स्थानवरस्येह
सर्वे निरयसंज्ञिता इत्यन्तेन । तमिमं पौराणं भाषाभेदमजा-
नन्तः पामराः शैववैष्णवापसदाः ' ब्रह्माणं केशवं रुद्रं भेद-
भावेन मोहिताः । पश्यन्त्येकं न जानन्ति पाखण्डोपहता
जना ' इति तत्रैव स्मर्यमाणं शिवविष्ण्वोर्भेददर्शने दोषमुदा-
हरणाभेदश्रुतीश्चापश्यन्तो मूलकारणमेवान्त्यारकार्यान्नट इव
तत्तद्रूपेण भागत इति शास्त्रतत्त्वमजानन्तोऽन्यतररूपपरि-
ग्रहेणेतरं निन्दन्तः परस्परं कलहायमानाः स्वामिद्रोहाक्षर-
कायैव गच्छन्त इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या । तस्मादस्ति
चतुर्भ्य आत्मनः पादेभ्योऽतिरिक्तो विष्ण्वाख्यः पञ्चमः
पुरुषः सोऽयं प्रतिपाद्यते । परावराणां स्रष्टारमित्यादिना ।
नन्वयं नन्दनन्दनो यदि परावराणामुच्चनीचानां स्रष्टा तर्हि
वैषम्यनैर्घृण्यभागी स्यात् न च तत्तत्प्राणिकर्मापेक्षो विष-
मानर्थान्सृजतीति वाच्यम् । कर्मण एव मुख्यत्वेन तस्या-
किंचित्करत्वात् । कर्मणश्च कृष्यादेः गर्वाद्युपसंहारयतो
विनेश्वरानुग्रहं फलसाधनत्वदर्शनात् । तस्मादुपासनार्थत्वेन
कल्पनामात्रं तद्विग्रहादिकमिति चेत्सत्यम् । देवताधिकरण-
न्यायेनोपासनायामद्वैते वा शास्त्रस्य परमतात्पर्यवत्त्वेऽपि
तत्प्रतिपत्त्युपायतया श्रुतस्येश्वरस्य अवान्तरतात्पर्यविषय-
तयाङ्गविधीनामिव देवताविग्रहादिविधीनां प्रामाण्यं सिद्धम् ।
मानान्तराविरोधात् । न च वैषम्यादिदोषः । दाशतय्यां
निरस्तत्वात् । तथा हि न स स्वो दक्षो वरुणध्रुतिः सा सुरा मन्यु-
र्विभीदको अचित्तिः । अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्च
नेदनृतस्य प्रयोतेति मन्त्रे सः स्वो दक्षो नियेन महदशस्यं कर्म
कृतं तत् स्वसामर्थ्यं न भवति किं तु हे वरुण परमेश्वर सा
तवैव ध्रुतिः त्वदीयमेवाधिष्ठातृत्वं तवैव माहात्म्यं तदि-
त्यर्थः । नन्वन्यसामर्थ्येनान्यः करोतीत्ययुक्तमिति चेत्तत्राह ।
सुरेति यथा सुरामयं मन्युः क्रोधः । विभीदको विभीतक-
स्तत्स्थः कलिः अचित्तिर्भूतावेशपित्ताद्युद्रेकजन्मा उन्मादः
एते अशक्तमपि पुरुषं वशीकृत्य महाशक्तसाध्यमपि कदर्यं
कर्म कारयन्ति । तद्वदीश्वरोऽपि सर्वस्मिन्नशक्ये कर्मणि जीवं
प्रवर्तयतीत्यर्थः । अयं भावः न हि त्वदारे निमिषश्चनेशे इति
श्रुतेः । ईश्वरानुग्रहं विना निमिषोऽपि स्वयं चलितुं न ईष्ट इति
सर्वापि सात्त्विकी राजसी तामसी वा प्रवृत्तिरीश्वरायत्तैव ।
तथापि यथा सर्वरसप्रकृतेर्मधुरैकस्वभावस्य जलस्य इक्षुरसाति-
शयेन माधुर्यमभिव्यक्तं । जम्बीरमरीचमरसयोस्तु स्वाभाविकं
तदभिभूतं औपाधिकमम्लत्वं कटुत्वं चाभिव्यक्तम् । एवं
सर्वजगत्प्रकृतेः सत्त्वैकस्वभावस्येश्वरस्य नन्दनन्दनविग्रहेति-
शयेन सत्त्वमभिव्यक्तम् । अत एव तस्मिन्निरतिशयं धर्म-

मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ २४
महर्षेः पूजितस्येह सर्वलोकैर्महात्मनः ।
प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥ २५
आचख्युः कवयः केचित्संप्रत्याचक्षते परे ।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ॥ २६
इदं तु त्रिषु लोकेषु महज्ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ।
विस्तरैश्च समासैश्च धार्यते यद्द्विजातिभिः ॥ २७

ज्ञानवैराग्यैश्वर्यादिकमस्ति । कामक्रोधादिभिमानिदेवताविग्रहे सत्त्वं तिरोभूतम् । औपाधिकं लोभवृत्त्याग्रादिकं प्रमादमोहादिकं चाविर्भूतं । तथा च यथा गोधूमादिचूर्णं इक्षुरसाद्यनुग्रहात्तद्रसवद्भवति । एवं जीवान्तःकरणमपि ईश्वरानुग्रहाद्धर्मोपगं कामानुग्रहाल्लाभोपगं च भवति । अत एव भगवद्गीतासूक्तम् । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' इति ॥ सर्वभूतान्तर्यामिणं प्रकृत्य । 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत । तत्प्रसादात्परां शान्तिं मत्संस्थामधिगच्छसि' इति । तदनुग्रहफलं शान्त्यादिकमित्युक्तं । तथा । 'अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः । अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः' इति । प्रश्नस्य उत्तरम् । 'काम एष क्रोध एष' इत्यादिना कामक्रोधलोभा एव पुरुषं पापे प्रवर्तयन्ति । नत्वीश्वर इत्युक्तम् । एष ह्येवासाधु कर्म कारयति । ईश्वरप्रेरितो गच्छेच्छ्वभ्रं वा स्वर्गमेवेत्यादिश्रुतिस्मृतिजातं तु पर्जन्यवदीश्वरस्यासाधारणकारणत्वमित्याह । न च तावता जलवत्सर्वान्तर्यामिणोपीश्वरस्य वैषम्यादिगन्धोऽस्ति । कल्पादयश्चाचारव्यभिचार एवाभिभवन्तीति परंपरया कर्मापेक्षत्वमपीश्वरस्य युज्यते । अङ्कुरादि जननस्य कार्यत्वेनाकर्तृकत्वानुपपत्तेश्च तत्कर्ता ईश्वरः सिद्ध एवास्ति । क तर्ह्यसावित्यत आह । अस्ति ज्यायाकनीयस उपार इति । उभावप्येकत्वादनुपाधिना रूपेण ज्येष्ठौ सोपाधिना कनिष्ठौ तथाप्युपाधिशुद्ध्यशुद्ध्यतिशयादीश्वरो ज्यायान् जीवः कनीयान् तस्य संघाताभिमानिन उपरि समीपे अन्तर्यामितयास्ति । अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मेत्यादिश्रुत्यंतरप्रसिद्धेः । केन लिङ्गेन तर्ह्यसौ ज्ञेय इत्यत आह । स्वप्नश्च नेदनृत्यस्य प्रयोतेति । स्वप्नश्च न स्वप्न इव इत एव । अनृतस्य मिथ्याभूतस्यैव अहंकारादिघटान्तस्य प्रपञ्चस्य प्रयोता युमिश्रणामिश्रणयोः प्रकर्षेण भूयो भूयः संयोजयिता वियोजयिता च । यो दृष्टिसमयां सृष्टिमिन्द्रजालवदाविर्भावयति । तिरोभावयति स भगवान् महामायावी समस्तपापसंछेदनकामैराराधनीय इति भावः । नन्वमूर्तस्यान्तर्यामिणस्तस्य कथमाराधनं कर्तव्यमित्यत आह । अरंदासोनमीह्ळुषे कराण्यहं देवाय भूर्णये नागाः । अचेतयदचित्तो देवो अर्योगृत्संरायेकवितरोजुनातीति न शब्द इवार्थः । अहं मीह्ळुषे भूयसीं धनस्य वृष्टिं कृतवते स्वामिने दासो न दास इव देवाय षड्भुजमूर्तये अरंकराणि अलंकरवाणि प्रार्थनायां लोट् । यथा दासाः स्वामिनं स्रक्चंदनमुकुटादिनालंकुर्वंति एवमहं पार्थिवं नन्दनन्दनविग्रहं भूषयेयमित्यर्थः । अनागाः निषिद्धाचरणवर्जितः । ननु चेतनो ह्यलंक्रियमाणः सद्यः फलं ददाति किमचेतनायालंकरणेनेत्यत आह । भूर्णये भूरियनुष्यराजाद्यपेक्षया अधिकं द्रव्यादिकं नयति भक्ताय प्रापयति भूर्णिस्तस्मै भूर्णये अचेतनोऽप्ययं सर्वान् कामान्दास्यतीति भावः । ननु दृष्टविरुद्धमेतत् । न हि प्रतिमाराधनेन धनं प्रतिमातः प्राप्यत इत्यत आह । अचेतयादिति । अर्यः भुक्तिमुक्तिकामैरभिगम्यः स्वामी देवः प्रतिमादिरूपः । अचितः चेतनारहितान् सर्वान् पिण्डान् अचेतयत् चेतनायुक्तान् करोति । अहल्यावत् भूतनिर्देशश्छांदसः । अयं भावः । देह इव प्रतिमायापि तीव्रभावनावता चैतन्यं स्पष्टमुपलभ्यते । प्रसिद्धं चैतत्प्रतिमोन्मेषणं मन्त्रशास्त्रे । उपाख्यायते च पुराणादौ । तस्मात्प्रतिमायाश्चेतनाधिष्ठितत्वेन चेतनस्य च सर्वपुरुषप्रवर्तकत्वे ततः फलसंभावनास्तीति । एवं परमेश्वरे श्रीमाधवादिप्रतिमारूपे सर्वपुरुषार्थप्रदे सत्यपिकवितरो बुद्धियूतरो जनो गृत्संप्राणंप्राणो वै गृत्स इति श्रुतेः प्राणवन्तं जावं राजादिं राये धनार्थं जुनाति अनुसरति नानाविधैः काव्यैः क्षुद्र प्रभुं प्रस्तौति अहो दौर्भाग्यमस्येति श्रुतिरुरस्ताडं मंदानाक्रोशति । कवितमस्तु परमेश्वरमेव नन्दनन्दनापरपर्यायं समस्तपुरुषार्थकामः शरणीकुर्यादिति भावः । तस्माद्युक्तमुक्तं परावराणां स्रष्टारमिति ॥ २३ ॥ मङ्गल्यं मङ्गलावहं मङ्गलं स्वरूपेणैव । एष ह्येवानन्दयातीति आनन्दो ब्रह्मेति च श्रुतिभ्याम् । विष्णुं यज्ञात्मानं यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः । वरेण्यं वरणीयम् । भोगमोक्षकांक्षिभिरवश्यमादरणीयं अनघं आगन्तुकदोषास्पर्शिनम् । शुचिं स्वभावशुद्धं । शिवमिति पाठे शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्त इति श्रुतिप्रसिद्धं निर्गुणं । हृषीकेशं हृषीकानामिन्द्रियाणामीशितारम् । चराचरगुरुं चराचराणां गुरुं विद्याप्रदं अत एव हरिं संसार हरणं ॥ २४ ॥ ईदृशं हरिं नमस्कृत्य व्यासस्य मतं अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यादिसूत्रैर्निर्णीतं यद्ब्रह्माद्वैतं तत्प्रकर्षेण नानोपाख्यानोपबृंहणेन वक्ष्यामि । तत्र श्रद्धोत्पादनार्थं महर्षेरित्यादिव्यासविशेषणं । ऋषीणां मन्त्रद्रष्टृणां महत इति तन्मतस्य श्रौतत्वमुक्तं । अद्भुतकर्मण इति ब्रह्माद्वैतप्रतिपत्त्युपायभूतेन नानाव्याख्यानदृष्टान्तप्रणयेन न विचित्रग्रन्थकारित्वमुक्तम् ॥ २५ ॥ आचख्युरिति कवयः क्रान्तदर्शिनः ॥ २६ ॥ त्रैकालिकानामपि कवीनामेतदाख्याने गुणमाह । इदमिति । ज्ञानं ज्ञानसाधनं त्रयीरूपं द्विजातिभिस्त्रैवर्णिकैर्यद्धार्यते तादिदं इति-

अलङ्कृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः ।
छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम् ॥ २८
निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते ।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम् ॥ २९
युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते ।
यस्मिन्संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम् ॥ ३०
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम् ।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत्तत्सदसदात्मकम् ॥ ३१
यस्मात्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः ।
ब्रह्मा सुरगुरुः स्थाणुर्मनुः कः परमेष्ठ्यथ ॥ ३२
प्राचेतसस्तथा दक्षो दक्षपुत्राश्च सप्त वै ।
ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥ ३३
पुरुषश्चाप्रमेयात्मा यं सर्वऋषयो विदुः ।
विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि ॥ ३४
यक्षाः साध्याः पिशाचाश्च गुह्यकाः पितरस्तथा
ततः प्रसूता विद्वांसः शिष्टा ब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ ३५
राजर्षयश्च बहवः सर्वैः समुदिता गुणैः ।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥३६
संवत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात् ।
यच्चान्यदपि तत्सर्वं संभूतं लोकसाक्षिकम् ॥ ३७
यदिदं दृश्यते किंचिद्भूतं स्थावरजंगमम् ।
पुनः संक्षिप्यते सर्वं जगत्प्राप्ते युगक्षये ॥ ३८
यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥३९
एवमेतदनाद्यन्तं भूतसंहारकारकम् ।
अनादिनिधनं लोके चक्रं संपरिवर्तते ॥ ४०
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ।
त्रयस्त्रिंशच्च देवानां सृष्टिः संक्षेपलक्षणा ॥ ४१

---

हासरूपेण त्रिषु लोकेषु जातित उत्तममध्यमाधमजनेषु प्रतिष्ठितं ज्ञानकरत्वेनेत्यर्थः ॥२७॥ समयैः संकेतैः 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः दिव्यमानुषैः वैदिकलौकिकैः । संस्कृतप्राकृतैर्वा तथाह्यमृतमन्धमादौ जलादिषु घृतादिपदप्रयोगे वेदनिघंटुप्रसिद्धो दृश्यते । तथा जतुगृहदाहेपार्श्वचरादिषु वक्षप्रादिशब्दा म्लेच्छप्रसिद्धा दृश्यन्ते । छंदोवृत्तैः त्रिष्टुबादिच्छंदोन्तर्गतैरिन्द्रवज्रादिभिर्वृत्तैः ॥२८॥ निष्प्रभे इति । यत्प्रजानां बीजं जगदुपादानं एकं निमित्तान्तरानपेक्षं ।अव्ययं अपरिणामिकूटस्थं वस्तु तत् बृहदण्डं ब्रह्माण्डरूपमभूत् । तदात्मानं स्वयमकुरुत । सच्चत्यच्चाभवदित्यादिश्रुतिभ्यो ब्रह्मण एव सर्वभावावगमात् । कदाण्डमभूदित्यत आह । अस्मिन् प्रजानां बीजे निष्प्रभे प्रकर्षेण भानं विशेषविज्ञानं रूपाद्याकारं तद्रहितेति । प्रलयकाले बुद्धिबोद्धव्ययोरभावात् । निरालोके आलोक्यतेऽनेनेत्यालोकः सत्त्वं ईश्वरोपाधिभूतं विक्षेपशक्तिमन्मायां तद्रहिते मायाया अप्यभावे कुतोऽण्डोत्पत्तिरत आह । सर्वतस्तमसावृत इति । मायाया आवरणशक्तिरूपात्तुच्छात्तमस एव स्वप्नप्रपञ्चवदण्डमुत्पन्नमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः । नो व्योमापरो यदिति । सृष्टेः प्रागव्याकृताख्यमायाया अपि सत्वं निषिध्य तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत् । तमसस्तन्महिनाजायतैकमिति तमोमात्रात्सृष्टिं दर्शयति ॥ २९ ॥ युगस्य ब्रह्मकल्पस्यादौ जातं तत् निमित्तं चतुर्विधभूतग्रामोपादानम् । यस्मिन् अण्डे ब्रह्म प्रविष्टमितिशेषः तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदितिश्रुतेः किं तत् सत्यं विकारत्वहीनम् । वाचारम्भणं विकार इति विकारस्यानृतत्वश्रुतेः । किं जडप्रकृतिरूपं न ज्योतिः चिद्रूपं सनातनं सततैकरूपम् ॥ ३० ॥ अद्भुतं प्रत्यगात्मत्वेविदुर्ज्ञेयत्वात् । अचिन्त्यं वाङ्मनसातीतत्वात् । सर्वत्रदेशे काले वस्तुनि च समता साम्यं ऐक्यमिति यावत् । गतंप्राप्तम् । अव्यक्तं अव्याकृतम् । कारणं हेतुः सूक्ष्मत्वात् इन्द्रियाविषयत्वात् । सदसदात्मकं तुच्छातुच्छव्यावृत्तस्वरूपं अनिर्वचनीयमित्यर्थः ॥३१॥ यस्मादण्डात् पितामहः स वै शरीरी प्रथमः । हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः 'अस्य रजः सत्त्वतमोगुणप्रधानानि त्रीणि रूपाण्याह ब्रह्मा सुरगुरुर्विष्णुः स्थाणू रुद्रः ब्रह्मणो विभूती सृष्टिकर्मप्रधाना आह मनुरित्यादिना ॥ ३२ ॥ दक्षपुत्राः सप्त । 'क्रोधस्तमोदमश्चैव विक्रीतोथाङ्गिरास्तथा । कर्दमोऽश्वश्च सप्तैते दक्षपुत्राः प्रकीर्तिताः' इत्यन्यत्रोक्ताः । एकविंशतिर्मरीच्यादयः सप्तमनवश्चतुर्दशेति । यथोक्तं ब्रह्माण्डपुराणे। 'ऋषयः सप्तपूर्वे ये मनवश्च चतुर्दश । एते प्रजानां पतय एभिः कल्पः समाप्यते' इति ॥ ३३ ॥ विष्णोर्विभूतिं पालनकर्मप्रधानामसंख्यतामाह । पुरुषश्चेति । यं मत्स्यकूर्मैरालादिविग्रहम् ॥ ३४ ॥ स्थाणोर्विभूतीः संहारकर्मप्रधाना आह । यक्षा इति । ततोब्रह्माण्डात् । ब्रह्मर्षयाः कृत्स्नसंसारसंहारकर्त्राज्ञाप्रधानाः ॥ ३५ ॥ आप इत्यादिकैः द्वे वन्हिपुरुषयोरप्युपलक्षणम्।दिशः द्यौरित्येताभ्यां तदभिमानिनौ चन्द्रसूर्यौ गृह्येते। अन्तरिक्षं आकाशः एतच्च मूर्त्यष्टकं स्थाणोरेवविभूतिः ॥३६॥ संवत्सरादिः कालोपिसंहारकत्वात्स्थाणोरेव विभूतिः । यच्चान्यदपि दृष्टं श्रुतं वा तत्सर्वं ततः एवाण्डात्संभूतमिति पूर्वेण सबन्धः ॥ ३७ ॥ यदिदं दृश्यते बाह्यं रूपादि आन्तरं च अहंकारतद्धर्मसुखदुःखादिसाक्षिदृश्यम् तत्सर्वं युगक्षये कल्पान्ते पुनः संक्षिप्यते । सूक्ष्मीभवत्तिरोभवति स्वाधिष्ठाने ब्रह्मण्येव शुक्काविव रजतम् ॥ ३८ । प्रतिकल्पं सृष्टेः समाननामरूपत्वमाह । यथेति ॥ ३९ ॥ कल्पानामानन्त्यमाह । एवमिति । अनाद्यन्तं परमात्मावगत्यवसानम् ॥ ४० ॥ एवं पिण्डब्रह्माण्डात्मिका जडसृष्टिमुक्त्वा तदभिमानिचेतनसृष्टिमाह । त्रयस्त्रिंशदिति शाकल्यब्राह्मणे त्रयश्च त्री च

दिवः पुत्रो बृहद्भानुश्चक्षुरात्मा विभावसुः ।
सविता स ऋचीकोऽर्को भानुराशावहो रविः ॥४२

पुत्रा विवस्वतः सर्वे मह्यस्तेषां तथावरः ।
देवभ्राट् तनयस्तस्य सुभ्राडिति ततः स्मृतः ॥४३

शतात्रयश्च त्री च सहस्रेत्याद्युपक्रम्य महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशदेव देवा । इत्युक्तेस्त्रयस्त्रिंशद्देवदेवाः तानेति शतानि सहस्राणि वा तेषामेव विभूतिरित्यर्थः । ते चाष्टौ वसव एकादशरुद्रा द्वादशादित्याः । इन्द्रः प्रजापतिश्च तत्र वसवः पृथिव्यग्नी अन्तरिक्षवायू आदित्यादिवौ चन्द्रो नक्षत्राणि च रुद्रा एकादशेन्द्रियाणि आदित्याद्वादशमासाः इन्द्रः पर्जन्यः प्रजापतिर्यज्ञः एतेषामभिमानिनश्चेतना अत्र विवक्षिताः शरीराणि प्रागुक्तत्वात् । सोयं रुद्रिसंक्षेपः । विस्तरस्त्वन्यत्रोक्तः । 'त्रिंशः कोट्यस्तु रुद्राणामादित्यानां दश स्मृताः । अग्नीनां पुत्रपौत्रं तु संख्यातुं नैव शक्यते' इति ॥ ४१ ॥ कतम एकादेवतेति प्राण इति स ब्रह्मेत्युपसंहारे तत्रैवोक्तमेकं सूत्रात्मानं चेतनं विवक्षितत्वात्तद्विभूतयोऽन्ये चेतना इत्याह । दिवः पुत्र इत्यादिना सुविस्तरा इत्यन्तेन । दिवो नानारूपेण द्योतमानाया मायायाः पुत्र इव पुत्रो गर्भस्थत्वात् । मायायां चित्प्रतिबिम्बः सूत्रात्मेत्यर्थः । तस्यैवावयवा बृहद्भान्वादय एकादशसमनस्केन्द्रियाधिष्ठातृदेवताः । दिग्वातार्कप्रचेतोश्वि वह्नीन्द्रोपेन्द्र मित्रप्रजापतिबृहस्पतिसंज्ञा अपि अत्र सूर्यपर्यायैरेवाभिधीयन्ते। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति श्रुतेस्तद्विभूतयोन्यादेवता इति स्मृतेश्च दिगादीनां सूर्यविभूतित्वात् । स बृहत् स भानुः स चक्षुरिति प्रत्येकं तच्छब्दः संबध्यते । अत्र बृहदादिपदार्थास्तु 'बृहद्व्योममयत्वेन श्रोत्रमिन्द्रियमुच्यते। द्रव्याणां भासनाद्भानुशब्देनोक्तं त्वगिन्द्रियम् ॥ १ ॥ चक्षुः प्रसिद्धमात्मा तु प्रेयस्त्वाद्रसनेन्द्रियम् । वागग्निदैवतत्वेन विभावसुपदोदिता ॥ २ ॥ कर्मणा प्रसवात्पाणिस्तौ सवितृशब्दितौ । विशिष्टगतिमत्त्वादप्यर्कः पादेन्द्रियं मतम् ॥ ३ ॥ उपस्थः स्यादृचीकाख्य ऋचां सर्वाङ्गतेजसाम् । सङ्गमो रतिकालेत्रेत्थमेवमरीचिकः ॥ ४ ॥ वायुराशावहः प्रोक्तो भासनादवनाच्च सः । भानूरविश्चोच्यते तौ घ्राणपायुपदोदितौ ' इति ॥ ५ ॥ ४२ ॥ पुत्राः प्रतिबिम्बाः विवस्वतः सूर्यवत्सर्वावभासकस्य चैतन्यस्य । यद्वा विशेषेण वस्ते आच्छादयति सर्वं ज्ञेयं व्याप्नोतीति विवोज्ञानं तद्वान् । आजानसिद्धज्ञानवान् ब्रह्मा । ' ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम्' । इति स्मृतेः । तस्य पुत्र्यपि भार्याभूता द्यौः । प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरिति श्रुतेस्तस्यामुत्पन्नाबृहद्भान्वादयम् इति ज्ञेयम् । पुरा विवस्वत इति पाठे विवस्वतः संबन्धी दिवः पुत्र इति योज्यम् महानेव मह्यः मनुः स्वार्थे[१] तेषां मध्ये वरः श्रेष्ठः बुद्धितत्त्वाभिमानीत्यर्थः तस्य तनयो देवभ्राट् दैवैरिन्द्रियैर्भ्राज्यते दीप्यते इति अहंकारो देवभ्राट् । अहमिदं पश्यामि अहमिदं शृणोमीत्यभिमानवान् । तस्य पुत्रः सुभ्राट् शोभितः सन् भाति [illegible] इति [illegible] । [illegible] देवानां [illegible] । [illegible] । [illegible] इति [illegible] न्यायात् । [illegible] देवानां वंशानः तत्र [illegible] इति [illegible] । दिवः पुत्र इत्यादिना । अत एव एतत्स्मिन् सूर्यवंशवर्णनक्रमविरोधो नाशङ्कनीयः । दिवः पुत्र इत्येवं नाम दिवः पुत्रादयो दादशादित्यपर्यन्ताः सृष्टा जाताः । तस्मात् स्थोपन्यस्तः । तेषां सर्वोऽवरः कनिष्ठः । मह्य इति न पाठः । तस्य पृथक् निर्देशो वैशस्करत्वात् । तेभ्यः सप्तवंशेभ्य एतावमेतत्कल्पीय कुरुवंशादिरस्वास्तस्मिन्कल्पेऽन्येषां वंशानां संभवात् । अत एव यदुभरतययातिवंशानां पृथगुपादानम् । तत्तातेभ्य एवेदानींमिहोत्पन्नेभ्यः कुरुवंशादय इत्यर्थः । विमलबोधव्याख्यात्रदिवः पुत्र इत्यारभ्य तेभूता बहवो वंशा इत्यन्तेन। ननु द्वौ वंशौराज्ञामिहोक्तौ सूर्यवंशश्चन्द्रवंशश्च । तत्रादित्यवंशस्तावद्ब्रह्मणो मरीचिर्मरीचेः कश्यपः कश्यपाद्विवस्वान्विवस्वतो मनुर्मनोरिक्ष्वाकुरिक्ष्वाकोर्विकुक्षिः स एव शशादस्ततः काकुत्स्थस्तस्मादनेनास्ततः पृथुः पृथोराद्रैस्ततो बृहदश्वस्तस्माद्धुंधुमारादयो यावन्मरुत इति तावदादित्यवंशः । सोमवंशस्तावत् । ब्रह्मणोत्रिरत्रेः सोमः सोमाद्बुधस्ततः पुरूरवाः पुरूरवस आयुरायोर्नहुषस्ततोययातिर्ययातेः पुरुप्रभृतयो यावदेव वक्रपुत्र इति । एतौ द्वौ राजवंशौ ततः केऽमी दिवः पुत्रादयो राजानः । तथा पुरार्विवस्वतश्चेति न संगतम्। विवस्वतः पूर्वं कश्यपस्ततः पूर्वं ब्रह्मा ततश्च कथमुच्यते पुराविवस्वतश्चेति । तथा सुभ्राजश्चत्रायः पुत्रा दशज्योतिरादय इत्यपि न संगतम् ते हि दशज्योतिरादयः पार्थिवा उभयोरपि वंशयोः पुराणेतिहासादिषु न श्रूयन्ते। अत्रोच्यते।कानिदसंगतिर्नात्र। तत्र दिवः पुत्रस्तावदादित्य एव स्वरश्मिभिर्दिवः पूरणात् बृहद्भानुरपि स एव बृहंतो विश्वव्यापकाः भानवोऽस्येति । चक्षुर्विश्वप्रकाशकत्वात् आत्मा च स एव सहिश्रब्रह्मज्योतिरित्यागमप्रामाण्यात् विभावसुश्च स एव ऋतुषु विविधप्रकारा रश्मयो यस्य । सविता च स एव ऋतुक्रमेण लोकोपकारार्थं सलिलगर्भप्रसवात् । मरीचिकः स एव । लोकोपकारार्थं मरीचीन्

[१] बाहुलकात्

सुभ्राजस्तु त्रयः पुत्राः प्रजावन्तो बहुश्रुताः ।
दशज्योतिः शतज्योतिः सहस्रज्योतिरेव च ॥ ४४
दशपुत्रसहस्राणि दशज्योतेर्महात्मनः ।
ततो दशगुणाश्चान्ये शतज्योतेरिहात्मजाः ॥ ४५
भूयस्ततो दशगुणाः सहस्रज्योतिषः सुताः ।
तेभ्योऽयं कुरुवंशश्च यदूनां भरतस्य च ॥ ४६
ययातीक्ष्वाकुवंशश्च राजर्षीणां च सर्वशः ।
संभूता बहवो वंशा भूतसर्गाः सुविस्तराः ॥ ४७
भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत् ।
वेदा योगः सविज्ञानो धर्मोऽर्थः काम एव च ४८
धर्मकामार्थयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च ।
लोकयात्राविधानं च सर्वं तद्दृष्टवानृषिः ॥ ४९
इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च ।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम् ॥ ५०
विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत् ।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम् ॥ ५१

कायति कीर्तयति प्रकाशयतीति यावत् । मरीचिभिः सहस्ररश्मिभिः कीर्त्यत इति वा । अर्कः ऋछगतौ स्तुतौ धातुरस्य कप्रत्यये गुणः । आह च 'ऋछगतौ स्मृतो धातुस्तस्मात्कप्रत्ययः स्मृतः । गतौ यस्मात्परो नास्ति तस्मादर्कः स उच्यते' । भानुः स एव लोकोपकारार्थं भाः नौति प्रणौतीति । आशावह इति लोकानामाशामावहत्याराध्यमानः सफलीकरोतीति । रविरिति । अवेति रक्षणे धातुः प्रत्ययस्य इडागमः । अवति जीर्निर्मोक्षोकाल्लेनामौरविरुच्यत इति । पुरेति पुराकल्पे एते देवाः पुत्रादयः पुंशब्दा विवस्वतो वाचकाः पठ्यन्ते पुराकल्पविद्भिः तेषां शब्दानां मध्येऽवरो जघन्यो मह्यशब्दः । मह्यशब्दोऽपि गर्भधारकवाचकतया पावनाद्वा अनघतया पठ्यते । मह्यो मही-गर्भाधायकत्वात् । उक्तं च । 'पौषस्य कृष्णगतस्या मया सह भवेद्दवि । देवश्राद्धनयस्तस्य इति तस्यमथानन्तरं देवान् भ्राजयति रश्मिभिः । तनयो विस्तारकः । तस्मादनन्तरं सुमृडिनि मुदुशीलाः पुत्राः । सुभ्राजयोनन्तरं त्रयः पुत्रा दशज्योतिरादयो ग्रहनक्षत्रतारकाप्रकाशका रश्मयः प्रादुरासन् । ते च पूरणाज्जगत्त्राणाद्वा पावनाद्वाऽनघयोनित्वात्पुत्रा उच्यन्ते । बहुशश्चास्य वामीये सूक्ते पुत्रशब्दो रश्मिषु दृष्टो विस्तरातिशयाश्च पठ्यन्ते । अत्र दशशतसहस्रशब्दा रश्मिबहुत्ववाचकास्तेभ्योयं कुरुवंशश्चेत्यादयश्चोभयवंशप्रभवराजाभिधानमस्तु सूर्यस्यैवोभयवंशहेतुत्वकथनपरम् । तथाहि । आदित्यान्मनुर्मनोरिक्ष्वाकुरित्यादिपौत्रः सूर्यवंशः । तथादित्यान्मनुर्मनोरिडाइडातःपुरूरवा इत्यादिना दौहित्रः सोमवंश इति । अत एभिः श्लोकैरादित्यस्तुतिभिस्तन्मूलकत्वं कथितम् । उक्तं च । 'आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं यदुनन्दन । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्' इत्यादि सर्वमवदातम् ॥ ४३ ॥ दशज्योतींषि धूम्रार्चिरूष्माज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी सुश्री सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथेति दशकलारूपाणि यस्य सदशज्योतिरग्निः । शतज्योतिश्चन्द्रः स हि हृदयायतनः । चन्द्रमामनसोभूत्वाहृदयंप्राविशदितिश्रुतेः । हृदयस्य च शतंचैका च नाड्यः तासामूर्धन्यासौरक्रममुक्तिस्थानप्रापिका इतराः शतं जन्मान्तरहेतुगतिप्रदास्तासां प्रकाशकत्वाच्चन्द्रः शतज्योतिः सहस्रज्योति सूर्यः ॥ ४४ ॥ ज्योतेरितीदं तत्त्वमार्षम् ॥ ४५ ॥ तेभ्यः समष्टिमनः कल्पितेभ्योऽग्निचन्द्रसूर्येभ्यः क्रमादयं पुरोवर्ती ब्राह्मणवंश कुर्वादिवंश इक्ष्वाकुवंशश्च संभूता इति योज्यम् । तादृशादग्नेर्ब्राह्मण उत्पन्न इति चकाराद्वा लभ्यते । 'आग्नेयो वै ब्राह्मणः' इति श्रुतेर्ब्राह्मणस्याग्निवंश्यत्वम् । इतरेषा चन्द्रसूर्यवंश्यत्वं प्रसिद्धमेव ॥ ४६ ॥ राजर्षीणा राज्ञामृषीणांचेतिद्वंद्वः । भूतसर्गाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जसृष्टयः ॥ ४७ ॥ भूतस्थानानीति । नृणां वासस्थानानि राजकृतानि दुर्गनगरादीनि । ब्राह्मणकृतानि तीर्थक्षेत्रादीनि । त्रिविधं रहस्यं धर्मरहस्यम् । कृष्णद्वेषिणोपि शिशुपालस्य कृष्णैकत्वप्राप्तिस्तत्र रहस्यं यथा कथंचित्तत्राभिनिवेशेन ध्यानमेव श्रेय इति सोऽधर्माभासोऽपि धर्म एव । तथा हिंसाफलो धर्मोप्यधर्म एव यथा सत्यवादिनाचोरेभ्यः कार्पटिकमार्गं तत्त्वेनोपदिशत इति । एवं अर्थकामयोरपि रहस्यमूह्यम् । वेदाः कर्मकाण्डः योगउपासनाकाण्डः सविज्ञानो ज्ञानकाण्डसहितः धर्मः स्मार्तः अर्थकामौ लोकप्रसिद्धौ ॥ ४८ ॥ धर्मेति एतत्त्रयप्रतिपादकानि शास्त्राणि मीमांसाकौटिल्यकामन्दकानि । लोकयात्राविधानं च लोकयात्रा येन निर्वहति तस्य आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्ववेदादेर्विधानं ज्ञापनं च एतत्सर्वं तेभ्यः संभूतमिति पूर्वेण संबन्धः । सर्वं तद्दृष्टवान् योगबलेन । ऋषिर्व्यासः ॥ ४९ ॥ सवैयाख्याः व्याख्यामधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वैयाख्यस्तद्युक्ताः । यथा ब्रह्मविदाप्नोति परमिति सूत्रस्य व्याख्या सत्यंज्ञानमितिमन्त्रः । अनुव्याख्यानं तस्माद्वा एतस्मादित्यादि ब्राह्मणम् । एवमत्रापि प्रथमेध्याये सूत्रितस्यार्थस्य द्वितीयतृतीयाभ्यां व्याख्यानमुत्तरग्रन्थेनानुव्याख्यानं च । विविधाः लिङ्गादिनार्थप्रत्यायकाः । प्रपाः कर्तव्या इत्यादिस्मृतिमूलभूता धन्वन्निव प्रपा असित्वमग्ने इत्यादयः । हे अग्ने ! त्वं धन्वन् निरुदके प्रदेशे प्रपेवलोकतृप्तिकरोसीति तदर्थः । प्रपा असीत्यत्रासन्धिश्छांदसः । इहेति । अनुक्रान्तमनुक्रमेणोक्तं इदमेव यथोक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम् । विषयःप्रतिपाद्योऽर्थः ॥ ५० ॥ समासः संक्षेपः । व्यासो विस्तरः ॥ ५१ ॥

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे ।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते ॥ ५२
विविधं संहिताज्ञानं दीपयन्ति मनीषिणः ।
व्याख्यातुं कुशलाः केचिद्ग्रन्थान्धारयितुं परे ॥ ५३
तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम् ।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥ ५४
पराशरात्मजो विद्वान्ब्रह्मर्षिः संशितव्रतः ।
तदाख्यानवरिष्ठं स कृत्वा द्वैपायनः प्रभुः ॥ ५५
कथमध्यापयानीह शिष्यानित्यन्वाचिन्तयत् ।
तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च ॥ ५६
तत्राजगाम भगवान्ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम् ।
प्रीत्यर्थं तस्य चैवर्षेर्लोकानां हितकाम्यया ॥ ५७
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः
आसनं कल्पयामास सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः ॥ ५८
हिरण्यगर्भमासीनं तस्मिंस्तु परमासने ।
परिवृत्यासनाभ्याशे वासवेयः स्थितोऽभवत् ५९
अनुज्ञातोऽथ कृष्णस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
निषसादासनाभ्याशे प्रीयमाणः शुचिस्मितः ६०
उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
कृतं मयेदं भगवान्काव्यं परमपूजितम् ॥ ६१
ब्रह्मन्वेदरहस्यं च यच्चान्यत्स्थापितं मया ।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ॥ ६२
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ॥ ६३
जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयः ।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम् ६४
चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः ।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ ६५

ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह ।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च ॥ ६६
न्यायशिक्षाचिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा ।
हेतुनैव समं जन्म दिव्यमानुषसंज्ञितम् ॥ ६७
तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्तनम् ।
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च ॥ ६८
पुराणां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम् ।
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः ॥ ६९
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम् ।
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते ॥ ७०

ब्रह्मोवाच ।

तपोविशिष्टादपि वै विशिष्टान्मुनिसंचयात् ।
मन्ये श्रेष्ठतरं त्वां वै रहस्यज्ञानवेदनात् ॥ ७१
जन्मप्रभृति सत्यां ते वेद्मि गां ब्रह्मवादिनीम् ।
त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात्काव्यं भविष्यति ॥
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे ।
विशेषणे गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः ॥ ७३
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने ।

सौतिरुवाच ।

एवमाभाष्य तं ब्रह्मा जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ७४
ततः सस्मार हेरम्बं व्यासः सत्यवतीसुतः ।
स्मृतमात्रो गणेशानो भक्तचिन्तितपूरकः ॥ ७५
तत्राजगाम विघ्नेशो वेदव्यासो यतः स्थितः ।
पूजितश्चोपविष्टश्च व्यासेनोक्तस्तदाऽनघ ॥ ७६
लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक ।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥ ७७
श्रुत्वैतत्प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम् ।
लिखितो नावातिष्ठेत तदास्यां लेखको ह्यहम् ७८

---

वर्णानुपूर्वीभेदेऽपि प्रतिकल्पमर्थानां समाननामरूपक्रमत्वाद्भारतारंभे मतभेदमाह । मन्वादीति । मनुर्मन्त्रः नारायणंनमस्कृत्येति । ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति वा तदादिं इति प्राञ्चः । दिवः पुत्रो वैवस्वतमह्यसंज्ञोमनुस्तदादीति तत्वं आस्तीकं आस्तीकचरितं तदादि । उपरिचरो वसुस्तच्चरितादि वा ॥ ५२ ॥ बह्वर्थत्वाद्विविधं ज्ञानं दीपयन्ति प्रकाशयन्ति ॥ ५३ ॥ व्यस्य वेदं आध्वर्यवादिकाण्डशो विभज्य तेन वेदार्थोत्र संगृहीत इति दर्शितम् ॥ ५४ ॥ तदाख्यानवरिष्ठं स इत्यादि अच्छेद्यममरैरपीत्यन्तो ग्रन्थः स्पष्टार्थः ॥ ५५ ॥ अभ्याशे समीपे वसुरुपरिचरस्तस्य कन्या वासवी सत्यवती तस्याः पुत्रो वासवेयो व्यासः ॥ ५९ ॥ कृष्णो व्यासः ॥ ६० ॥ उन्मेषं उपबृंहणम् ॥ ६३ ॥ पाशुपतं पशूनां जीवानां पत्युरन्तर्यामिण इदं माहात्म्यं पाशुपतं हेतुना सात्विकादिकर्मणा समं तुल्यम् ॥ ६८ ॥ कल्पानां धनुर्वेदोक्तशस्त्रादिविधीनां दुर्गसेनाव्यूहरचनादिविधीनां वा । 'कल्पः शास्त्रे विधौ न्याये संवर्ते ब्रह्मणो दिने' इति मेदिनी । वाक्यजातिविशेषाः राजामात्यचेटादिवक्तृविशेषप्रयुक्तवैलक्षण्यानि स्तुतिनिन्दान्यायदेशादयो वापरकृत्यादि रूपार्थवादभेदा वा लोकयात्राक्रमो नीतिशास्त्रं ॥ ६९ ॥ मुनिसंचयात् मुनिसमूहात् विशिष्टात् कुलेन ॥ ७१ ॥ गां वाचं ब्रह्मवादिनीं वेदवादिनीम् ॥ ७२ ॥ विशेषणे अतिशायने ॥ ७३ ॥ यतः यत्र देशे ॥ ७६ ॥

व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित् ।
ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः ७९
ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात् ।
यस्मिन्प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ॥ ८०
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ८१
तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने ।
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात्प्रश्रितस्य च ॥ ८२
सर्वज्ञोऽपि गणेशो यत्क्षणमास्ते विचारयन् ॥
तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान्बहूनपि ॥८३
अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम् ॥ ८४
धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः ।
तथा भारतसूर्येण नृणां विनिहतं तमः ॥ ८५
पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः ।
नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत्प्रकाशनम् ॥ ८६
इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत्संप्रकाशितम् ॥ ८७
संग्रहाध्यायबीजो वै पौलोमास्तीकमूलवान् ।
संभवस्कन्धविस्तारः सभारण्यविटङ्कवान् ॥ ८८
अरणीपर्वरूपाढ्यो विराटोद्योगसारवान् ।
भीष्मपर्वमहाशाखो द्रोणपर्वपलाशवान् ॥ ८९
कर्णपर्वसितैः पुष्पैः शल्यपर्वसुगन्धिभिः ।
स्त्रीपर्वैषीकविश्रामः शान्तिपर्वमहाफलः ॥ ९०
अश्वमेधामृतरसस्त्वाश्रमस्थानसंश्रयः ।
मौसलः श्रुतिसंक्षेपः शिष्टद्विजनिषेवितः ॥ ९१
सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति ।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः ॥ ९२

सौतिरुवाच ।
तस्य वृक्षस्य वक्ष्यामि शश्वत्पुष्पफलोदयम् ।
स्वादुमेध्यरसोपेतमच्छेद्यममरैरपि ॥ ९३
मातुर्नियोगाद्धर्मात्मा गाङ्गेयस्य च धीमतः
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा ॥ ९४
त्रीनग्नीनिव कौरव्याञ्जनयामास वीर्यवान् ।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च ॥ ९५
जगाम तपसे धीमान्पुनरेवाश्रमं प्रति ।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् ॥ ९६
अब्रवीद्भारतं लोके मानुषेऽस्मिन्महानृषिः ।
जनमेजयेन पृष्टः सन्ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥ ९७
शशास शिष्यमासीनं वैशंपायनमन्तिके ।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम् ९८
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः ।
विस्तरं कुरुवंशस्य गान्धार्या धर्मशीलताम् ॥ ९९
क्षत्तुः प्रज्ञां धृतिं कुन्त्याः सम्यग्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम् ॥
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान्भगवानृषिः ।
इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम् ॥ १०१
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् ।
चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ॥ १०२
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः ।
ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः ॥ ३
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम् ।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥ ४
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः ।
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्॥ ५
त्रिंशच्छतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम् ।
पित्र्ये पञ्चदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश ॥ १०६

---

अबुद्ध्वा अर्थमिति शेष : ओमित्यङ्गीकारे ॥ ७९ ॥ ग्रन्थग्रन्थिं ग्रंन्थे दुर्भेद्यस्थानम् ॥ ८० ॥ श्लोककूटे श्लोकेषु गुढार्थे अन्यार्थत्वे सत्यर्थान्तरप्रत्यायकत्वमित्यर्थः अर्थस्य प्रमेयस्य गूढत्वात् । प्रश्रितस्य प्रेमेयण स्वप्रकाशार्थे श्रितं शब्दप्रमाणं तस्यापि गौण्यादिवृत्तिभेदेन गूढत्वम् यथा मत्स्यः स्वप्नक्तनिमिषतीति ॥ ८२ ॥ यद्यदा यावत् ॥८३॥ कारकमिति 'तुमुण्ण्वुलौ क्रियायाम् क्रियार्थायाम्' इतिण्वुला नेत्रोन्मीलनं कर्तुमित्यर्थः । एतत्प्रकाशनं कृतमिति तृतीयेनान्वयः ॥ ८४ ॥ प्रकाशनं विकसनम् ॥८६॥ विटङ्काः पक्ष्युपवेशनस्थानानि 'कपोतपालिकायां तु विटङ्कं पुं नपुंसकम्' इत्यमरः ॥ ८८ ॥ सारोमज्जा ॥ ८९ ॥ विश्रामंत्यस्यामिति विश्रामच्छाया ॥ ९० ॥ आश्रमेति आश्रमवासिकस्थण्डिलः मौसलादिग्रन्थः श्रुतिस्थानीयदीर्घशाखान्तः ॥ ९१ ॥ पुष्पं धर्मः फलं मोक्षः तदुभयं सत्याख्यं पुण्यं हि फलं वाचः सत्यमिति श्रुतेः । अत एव क्रमात् स्वादु च अच्छेद्यं च ॥९३॥ भारतसूत्रभूतश्लोकत्रयमाह मातुरिति मातुःसत्यवत्याःगाङ्गेयस्य भीष्मस्य च नियोगात् न तु कामतः क्षेत्रे अम्बिकादिषु क्रमेण धृतराष्ट्रादीन् जनयामास ॥ ९४ ॥ तेषु धृतराष्ट्रादिषु जातेषु पुत्रपौत्रादिरूपेण प्रादुर्भूतेषु प्रवृद्धेषु राज्यभागिषु पुत्रपौत्रादीनां राज्यार्थिनां परमां गतिं मृत्युं गतेषु ॥ ९६ ॥ शशास त्वमेतान् भारतं श्रावयेत्याज्ञापितवान ॥ ९८ ॥ कर्मान्तरेषु कर्मच्छिद्रेषु ॥ ९९ ॥ क्षत्तुर्विदुरस्य ॥ १०० ॥ धार्त्तराष्ट्राणां दुर्योधनादीनाम् ॥ १०१ ॥ तावत् तावत्संख्याकं अध्यर्धशतं सार्धशतम् ॥३॥ शुकग्रहणं तत्सदृशायैव देयमिति ज्ञापनार्थम् ॥ ४ ॥ षष्टिशतसहस्राणि षष्टिलक्षाणि श्लोकाः ॥ १०५ ॥

एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ।
नारदो श्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् ॥ १०७
गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ।
अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशंपायन उक्तवान् ॥१०८
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः ।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ॥ १०९

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।
दुःशासनः फलपुष्पे समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥ ११०
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः ।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥ ११

पाण्डुर्जित्वा बहून्देशान्बुद्ध्या विक्रमणेन च ।
अरण्ये मृगयाशीलो न्यवसन्मुनिभिः सह ॥ १२
मृगव्यवायनिधनात्कृच्छ्रां प्राप स आपदम् ।
जन्मप्रभृति पार्थानां तत्राचारविधिक्रमः ॥ १३
मात्रोरभ्युपपत्तिश्च धर्मोपनिषदं प्रति ।
धर्मस्य वायोः शक्रस्य देवयोश्च तथाश्विनोः ॥१४
तापसैः सह संवृद्धा मातृभ्यां परिरक्षिताः ।
मेध्यारण्येषु पुण्येषु महतामाश्रमेषु च ॥ १५
ऋषिभिर्यत्तदानीता धार्तराष्ट्रान्प्रति स्वयम् ।
शिशवश्चाभिरूपाश्च जटिला ब्रह्मचारिणः ॥ १६
पुत्राश्च भ्रातरश्चेमे शिष्याश्च सुहृदश्च वः ।
पाण्डवा एत इत्युक्त्वा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः ॥ १७
तांस्तैर्निवेदितान्दृष्ट्वा पाण्डवान्कौरवास्तदा ।
शिष्टाश्च वर्णाः पौरा ये ते हर्षाच्चुक्रुशुर्भृशम् ॥१८
आहुः केचिन्न तस्यैते तस्यैत इति चापरे ।
यदा चिरमृतः पाण्डुः कथं तस्येति चापरे ॥ १९

मया उच्यमानं वैशंपायनेन उक्तं निबोधत अर्थतो बुध्यध्वम् ॥ ९ ॥ इदानीं भारततात्पर्यसंग्राहकौ द्वौ श्लोकौ पठति । दुर्योधन इति । मन्युः क्रोधः तेन द्वेषेर्ष्यासूयादिकमपि ग्राह्यम् । तन्मयो महान्नुच्छेद्यो द्रुमो दुर्योधनस्तेन सह अत्यन्तमैक्यं प्राप्ताः कर्णशकुनिदुःशासनास्तस्य स्कन्धशाखाः पुष्पादितुल्यास्तादृशा एव। तस्य मूलं राजा धृतराष्ट्रः स च अमनीषी मनोनिग्रहासमर्थः तेनैव हि पुत्रस्नेहान्धेन दत्तावसरो दुर्योधनो दृढमूलोऽभवत् । अन्यथा बाल्य एव विदुरादिवचसा तस्य त्यागे कृते सति गराग्निदानद्रौपदीकचग्रहणादिमूलः कुलक्षयो न जातः स्यात्। एतेन दृढाज्ञानमूलो दैन्यतरुः क्रोधलोभादिस्कन्धो हिंसास्तेयादिशाखो वधबन्धनरकादिफलपुष्पः पुरुषार्थकामैर्मूलाज्ञानच्छेदेन नाशनीय इति सूचितम्। मन्युः पुमान् क्रुधि दैन्ये शोके च यज्ञेचेति मेदिनीकोशः ॥११०॥ युधिष्ठिर इति । धर्मः पुण्यं तेन तत्कारणीभूतशमदमसत्याहिंसादिकं ग्राह्यम् । तन्मयो महाद्रुमो युधिष्ठिरः तदेकात्मानोर्जुनभीममाद्रेयास्तस्य स्कन्धादितुल्यास्तादृशा एव । तस्य मूलं कृष्णः शुद्धसत्वमयज्ञानविग्रहः परमात्मा। तेन हि दृढं ज्ञातेन धर्मो दृढमूलो भवेत्। अन्यथा कामादिभिरुपहतः स्यात् । यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिंल्लोके यजति ददाति तपस्तप्यतेपि बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्यतद्भवतीतिश्रुतेः । ज्ञानस्य मूलं ब्रह्मदेवः वेदाद्धियोगक्रत्वाख्यपरापरधर्मज्ञानं जायते । धर्मस्य शब्दमूलत्वादिति न्यायात्। वेदस्यापिमूलं ब्राह्मणास्तत्संप्रदायप्रवर्तकत्वात्। एवं च ब्राह्मणानामुपदेष्टृत्वेन वेदस्य प्रमाणत्वेन परमात्मानोनुग्राहकत्वेन च धर्ममूलत्वम्। एतेन वेदब्राह्मणभक्तेन संपाद्यमानो वेदोक्तो योगादिधर्मवृक्षोऽहिंसासत्यादिस्कन्धो धारणाध्यानादिशाखस्तत्वसाक्षात्कारफलः पुरुषार्थकामेन भगवदाराधनबलेन संपादनीय इति सूचितम् ॥ ११ ॥ मातुर्नियोगादिति पूर्वोक्तस्यैव सूत्रभूतस्य श्लोकत्रयस्यवृत्तिरूपोध्यायशेषस्तत्र दुर्योधनस्य मन्युमयत्वादिकं युधिष्ठिरस्य धर्ममयत्वादिकं च व्याख्यायते । पाण्डुर्जित्वेत्यादि ॥ १२ ॥ मृगव्यवायनिधनात् मृगरूपिणो ऋषेर्व्यवायनिधनं मैथुनकाले मरणं तस्माद्धेतोः। कृच्छ्रां अतिकष्टां आपदं प्रजोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वमपि व्यवायकाले मरिष्यसीति शापं प्राप । तत्र आपदि एवं सत्यामपि पार्थानां पाण्डवानां जन्मप्रभृति जातकर्मादिसंस्कारः प्रभृतिशब्दार्थः । तच्च आचारविधेः क्रमश्चशीलरक्षाख्योभूदितिशेषः ॥ १३ ॥ न चैतद्द्वयं विरुद्धमित्याह । मात्रोरिति । च शब्दो हेतौ । यस्माद्धर्मोपनिषदं प्रति धर्मः कुलस्त्रीभिरापद्यपत्यार्थेविशिष्टः पुमान्प्रार्थनीय इत्येवंरूपो व्यासवसिष्ठादिभ्योऽपत्यंवत्सुविचित्रवीर्यकल्माषपादादिराजदारेषु दृष्टस्तस्य संरक्षणार्थां उपनिषत् दुर्वाससा दत्ता विद्या तां आवर्त्तितां प्रतिप्रतीत्य धर्मादीनां मात्रोः मातरौप्रति अभ्युपपत्तिः। रेतः सेकार्थं गमनं उपपन्नम्। तस्मात्सत्यामप्यापदि पाण्डोः पुत्रजन्मादिकं न विरुद्धमेतदित्यर्थः ॥ १४ ॥ अत्र मातृभ्यामित्यनेन पितुर्मरणं सूच्यते ॥ १५ ॥ ऋषिभिरिति । यत् यदा संवृद्धा इति पूर्वेणान्वयः । तदा धार्त्तराष्ट्रान् धृतराष्ट्रसंबन्धिगृहान्प्रति आनीता इत्यर्थः ॥१६॥ पुत्राश्चेत्यादि धृतराष्ट्रादीन् प्रति यथायोग्यं योज्यं पाण्डवाः पाण्डोः पुत्रा एते ॥ १७ ॥ तानिति शिष्टाः साधवः ॥ १८ ॥ न तस्यैत इति पित्रपेक्षया अत्युदारमूर्तित्वात् । तस्यैत इति मात्रोः सतीत्वात्। अतिदुष्टानामुक्तिर्यदेति । चिरमृतः चिरे शापदग्धः अल्पकालाश्च शिशव इति संदेहबीजं यद्वा चिरं ऋतोदीप्तः कामेनेति शेषः विप्रशापात् । ऋत-

स्वागतं सर्वथा दिष्ट्या पाण्डोः पश्याम संततिम् ।
उच्यतां स्वागतमिति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥१२०

तस्मिन्नुपरते शब्दे दिशः सर्वा निनादयन् ।
अन्तर्हितानां भूतानां निःस्वनस्तुमुलोऽभवत् ॥२१

पुष्पवृष्टिः शुभा गन्धाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ।
आसन्प्रवेशे पार्थानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २२

तत्प्रीत्या चैव सर्वेषां पौराणां हर्षसंभवः ।
शब्द आसीन्महांस्तत्र दिवस्पृक्कीर्तिवर्धनः ॥ २३

तेऽधीत्य निखिलान्वेदाञ्छास्त्राणि विविधानि च ।
न्यवसन्पाण्डवास्तत्र पूजिता अकुतोभयाः ॥ २४

युधिष्ठिरस्य शौचेन प्रीताः प्रकृतयोऽभवन् ।
धृत्या च भीमसेनस्य विक्रमेणार्जुनस्य च ॥१२५

गुरुशुश्रूषया क्षान्त्या यमयोर्विनयेन च ।
तुतोष लोकः सकलस्तेषां शौर्यगुणेन च ॥ २६

समवाये ततो राज्ञां कन्यां भर्तृस्वयंवराम् ।
प्राप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ २७

ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन्पूज्यः सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरेष्वपि चाभवत् ॥ २८

स सर्वान्पार्थिवाञ्जित्वा सर्वांश्च महतो गणान् ।
आजहारार्जुनो राज्ञो राजसूयं महाक्रतुम् ॥ २९

अन्नवान्दक्षिणावांश्च सर्वैः समुदितो गुणैः ।
युधिष्ठिरेण संप्राप्तो राजसूयो महाक्रतुः ॥ १३०

सुनयाद्वासुदेवस्य भीमार्जुनबलेन च ।
घातयित्वा जरासन्धं चैद्यं च बलगर्वितम् ॥ ३१

दुर्योधनं समागच्छन्नर्हणानि ततस्ततः ।
मणिकाञ्चनरत्नानि गोहस्त्यश्वधनानि च ॥ ३२

विचित्राणि च वासांसि प्रावारावरणानि च ।
कम्बलाजिनरत्नानि राङ्कवास्तरणानि च ॥ ३३

समृद्धां तां तथा दृष्ट्वा पाण्डवानां तदा श्रियम् ।
ईर्ष्यासमुत्थः सुमहांस्तस्य मन्युरजायत ॥ ३४

विमानप्रतिमां तत्र मयेन सुकृतां सभाम् ।
पाण्डवानामुपहृतां स दृष्ट्वा पर्यतप्यत ॥ ३५

तत्रावहसितश्चासीत्प्रस्कन्दन्निव संभ्रमात् ।
प्रत्यक्षं वासुदेवस्य भीमेनानभिजातवत् ॥ ३६

स भोगान्विविधान्भुञ्जन्रत्नानि विविधानि च ।
कथितो धृतराष्ट्रस्य विवर्णो हरिणः कृशः ॥ ३७

अन्वजानात्ततो द्यूतं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य कोपः समभवन्महान् ॥ ३८

नातिप्रीतमनाश्चासीद्विवादांश्चान्वमोदत ।
द्यूतादीननयान्घोरान्विविधांश्चाप्युपैक्षत ॥ १३९

---

मुंडशिले जले सत्ये दीप्ते पूजितेस्यादिति मेदिनी । यद्वा ऋता-त्सत्यमुपैमीति व्रतोपायनीय मन्त्रलिङ्गाद्दतं ब्रह्मचर्याख्यं सत्यं तद्वान् ॥ ११९ ॥ स्वागतं शोभनमागमनं युष्माकं यतो वयं दिष्ट्या भाग्येन पाण्डोः संततिं पश्यामेति पौरैरुक्ते स्वागतं सम्यगागतमस्माभिर्युष्मान्प्रतीति उच्यता वदता पाण्डवाना-मपि वाचोऽश्रूयन्ते । सर्वशः सर्वं. ॥ २० ॥ संदिग्धाना सं-देहापनोदकं तदा देवचेष्टितमाह द्वाभ्याम् । तस्मिन्निति निःस्वनः निश्चितस्वनः पाण्डवा एत इत्येवं रूप.शब्द ॥२१॥ अद्भुतं दिव्यपुष्पवृष्ट्यादि अत्याश्चर्यम् ॥ १२२ ॥ तत्प्री-त्या तेषु पाण्डवेषु प्रेम्णा हर्षसंभवः साधुशब्दः दिवस्पृक् स्पष्टा ॥ २३ ॥ अकुतोभयाः निर्भयाः ॥ २४ ॥ शौचेनेति । 'आचारापरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः । आचारे च व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते'॥ शीलेनेति पाठे शीलमप्ये-तदेव । 'इष्टानिष्टार्थसंपत्तौ चित्तस्याविकृतिर्धृतिः । सर्वातिश यसामर्थ्यं विक्रमं परिचक्षते' ॥१२५॥ वृत्तानुवृत्तिः शुश्रूषा क्षान्तिरागस्य विक्रिया । जितेन्द्रियत्वं विनयोऽथवानुद्धतशी-लता । शौर्यमध्यवसायः स्याद्बलिनोपि पराभवे' ॥ २६ ॥ समवाये समाजे भर्तारं स्वयमेव वृणुत इति भर्तृस्वयंवराम् । कर्म अधोमुखेनोपरिस्थस्य भ्रमतो मत्स्यस्य वेधनम् ॥ २७ ॥ पूज्यः समरेषु दुष्प्रेक्ष्योपि चाभवदित्यन्वयः ॥ २८ ॥

पार्थिवान् एकैकशः गणान्सङ्घीभूतांश्च जित्वा । आजहार संपादितवान् ॥ २९ ॥ गुणैः ऋत्विगारम्भधनजायादक्षा-दिभिः ॥१३०॥ जरासन्धं भीमेन चैद्यं शिशुपालं कृष्णेन च घातयित्वा युधिष्ठिरेण राजसूयः प्राप्त इति पूर्वेण संबन्धः ॥३१॥ अर्हणानि उपायनानि मणयो विषरोगादिहरादिव्यो-पलाः रत्नानि वज्रवैदूर्यादीनि ॥३२॥ प्रावाराण्युपरिवस्त्राणि । आवरणानि परिधानीयानि । यद्वा वस' शब्देनैव तेषां ग्रहणा-त्प्रावाराणि शिबिराणि । आवरणानि जवनिकाः । कम्बलरत्ना-नि अजिनरत्नानि च कम्बलादिष्वत्युत्कृष्टानि जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिति कोशात् राङ्कवास्तरणानि । रङ्कुः पशु-विशेपस्तल्लोमजानि पक्ष्मलान्यास्तरणानि ॥ ३३ ॥ ईर्ष्या परोत्कर्षासहिष्णुत्वं तदुत्थो मन्युः क्रोधः । सुमहान्यावद्देह-भावी ॥ ३४ ॥ सुकृता पुण्यकृताम् ॥१३५॥ अनभिजातवत् ग्रामीणवदवहसितः जले स्थलभ्रमात् स्थले जलभ्रमादद्वारे द्वारभ्रमाच्च प्रस्कन्दन् स्खलन् । किं कृत्वेव संभ्रमादिव संभ्रमं भ्रमियन्त्रं प्राप्येव ॥ ३६ ॥ हरिणः पाण्डुरः 'हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः' इत्यमरः॥३७॥ ततः पुत्रकार्श्यादिज्ञानानन्तरं सुतप्रियः न तु धर्मप्रियः ॥ ३८ ॥ नातीति यत् विवादानन्वमोदत यच्चानयानुपैक्षत । तत्रहेतुः दहन् क्षत्रं परस्परमित्युत्तरेण संबन्धः । हेतौ शतृप्रत्ययः। क्षत्रस्य दाहायेत्यर्थः । दुष्टसंहा-

निरस्य विदुरं भीष्मं द्रोणं शारद्वतं कृपम् ।
विग्रहे तुमुले तस्मिन्दहन्क्षत्रं परस्परम् ॥ १४०
जयत्सु पाण्डुपुत्रेषु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
दुर्योधनमतं ज्ञात्वा कर्णस्य शकुनेस्तथा । ४१
धृतराष्ट्रश्चिरं ध्यात्वा संजयं वाक्यमब्रवीत् ।
शृणु संजय सर्वं मे न चासूयितुमर्हसि ॥ ४२
श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान्प्राज्ञसंमतः ।
न विग्रहे मम मतिर्न च प्रीये कुलक्षये ॥ ४३
न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ।
वृद्धं मामभ्यसूयन्ति पुत्रा मन्युपरायणाः ॥ ४४
अहं त्वचक्षुः कार्पण्यात्पुत्रप्रीत्या सहामि तत् ।
मुह्यन्तं चानुमुह्यामि दुर्योधनमचेतनम् ॥ ४५
राजसूये श्रियं दृष्ट्वा पाण्डवस्य महौजसः ।
तच्चावहसनं प्राप्य सभारोहणदर्शने ॥ ४६
अमर्षणः स्वयं जेतुमशक्तः पाण्डवान्रणे ।
निरुत्साहश्च संप्राप्तुं सुश्रियं क्षत्रियोऽपि सन् ॥ ४७
गान्धारराजसहितश्छद्मद्यूतममन्त्रयत् ।
तत्र यद्यद्यथा ज्ञातं मया संजय तच्छृणु ॥ ४८
श्रुत्वा तु मम वाक्यानि बुद्धियुक्तानि तत्त्वतः ।
ततो ज्ञास्यसि मां सौते प्रज्ञाचक्षुषमित्युत ॥ ४९
यदाश्रौषं धनुरायम्य चित्रं
विद्धं लक्ष्यं पातितं वै पृथिव्याम् ।
कृष्णां हृतां प्रेक्षतां सर्वराज्ञां
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५०
यदाश्रौषं द्वारकायां सुभद्रां
प्रसह्योढां माधवीमर्जुनेन ।
इन्द्रप्रस्थं वृष्णिवीरौ च यातौ
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ५१
यदाश्रौषं देवराजं प्रवृष्टं
शरैर्दिव्यैर्वारितं चार्जुनेन ।
अग्निं तथा तर्पितं खाण्डवे च
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ५२
यदाश्रौषं जातुषाद्वेश्मनस्तान्
मुक्तान्पार्थान्पञ्च कुन्त्या समेतान् ।
युक्तं चैषां विदुरं स्वार्थसिद्धौ
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ५३
यदाश्रौषं द्रौपदीं रङ्गमध्ये
लक्ष्यं भित्वा निर्जितामर्जुनेन ।
शूरान्पञ्चालान्पाण्डवेयांश्च युक्तां-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ५४
यदाश्रौषं मागधानां वरिष्ठं
जरासन्धं क्षत्रमध्ये ज्वलन्तम् ।
दोर्भ्यां हतं भीमसेनेन गत्वा
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ५५
यदाश्रौषं दिग्जये पाण्डुपुत्रै-
र्वशीकृतान्भूमिपालान्प्रसह्य ।
महाक्रतुं राजसूयं कृतं च
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५६

---

राथेत्वात्तदवतारस्य ॥ ३९ ॥ निरस्य अवगणय्य प्रवृत्ते सतीतिशेषः ॥ १४० ॥ दुर्योधनमतं जयो मृत्युर्वाऽस्तु न तु राज्यार्धं देयमिति ॥ ४१ ॥ ध्यात्वा वृत्तमर्थमनुस्मृत्य असूयितुं मदीयं प्रज्ञाचक्षुष्ट्वं दूषयितुं नार्हसि ॥ ४२ ॥ तत्र-हेतुः श्रुतवानसीति । श्रुतवान् अधीती मेधावीपाटतोर्थतश्च-ग्रन्थधारकः बुद्धिमान् ऊहापोहकुशलः । अत एव प्राज्ञानां पण्डितानां संमतः । न च प्रीयेनैव प्रीतिमानास्मि ॥ ४३ ॥ अचक्षुः कार्पण्यात् आन्ध्येन दीनत्वात् पुत्रप्रीत्या च तत्सहामि सहे । अचेतनं अल्पबुद्धिम् ॥१४५॥ सभायामारोहणे दर्शने च ॥४६॥ अमर्षणः अशान्तः निरुत्साहोभूदितिशेषः । सुश्रियं शोभनाश्रीर्यस्य तं युधिष्ठिरं संप्राप्तुं वशे कर्तुम् । श्रियमक्षत्रियो यथेति पाठान्तरे स्पष्टोर्थः ॥ ४७ ॥ गान्धारराजः शकुनिः । तत्तत्र तस्मिन् द्यूते मन्त्रिते सति पूर्वं पश्चाच्च यद्यज्जातं जयाशा प्रविरोधकं तत्सर्वं मया निगद्यमानं शृणु ॥ ४८ ॥ लोकद्व-यहितज्ञानाभावेपि मूढा लौकिकवृत्तार्थस्मृतिमात्रेण स्वात्मानं स्तुवन्तीति धृतराष्ट्रोक्तिव्याजेन दर्शयति । श्रुत्वेति केचित्तु प्रज्ञाचक्षुषमिति विशेषणादनागतार्थकथनं धृतराष्ट्रेण क्रियते यदाश्रौषमित्यादिनेत्याहुस्तन्न । अश्रौषमितिभूतार्थेलुङ्प्रयो-गानुपपत्तेः ॥ ४९ ॥

सकृदपि केनचिन्निमित्तेन स्थालीपुलाकन्यायेन परप्राबल्ये निश्चिते प्राकृता अपि बलवता सह प्रसङ्गं न कुर्वन्ति । धृतराष्ट्रपुत्रस्तु जयाशाविच्छेदकेष्वनेकेषु निमित्तेषु दृष्टेष्वपि तां न जहौ । अहो मोहस्य माहात्म्यमिति वर्णयन् अर्था-द्धारतार्थं च संगृह्णाति । यदाश्रौषं धनुरित्यादिभिः सप्त-षष्ट्याश्लोकैः । प्रेक्षतां प्रेक्षमाणानाम् । तानना‌दृत्य लक्ष्यं पातितं तथैव द्रुपदेन प्रतिज्ञातत्वात् । विजयाय विजयार्थम् । तदा तदारभ्य नाशंसे आशां न करोमि ॥ १५० ॥ माधवीं मधु-वंशजां प्रसह्य यदूनप्यभिभाव्य । वृष्णिवीरौ रामकृष्णौ मह-त्यपराधेयेन सौहार्दं गतौ तत्र कास्माकं जयाशेति भावः ॥ ५१ ॥ प्रवृष्टं वर्षणे प्रवृत्तं कर्तरि क्तः ॥ ५२ ॥ जातुषात् लाक्षामयात् विदुरं चैषां पाण्डवानां स्वार्थसिद्धौ युक्तं यदा-श्रौषम् ॥ ५३ ॥ केवला अप्यस्माकमजेयाः पाण्डवाः किमुत पञ्चालैरतिशूरैः समेता इति भावः ॥ ५४ ॥ ज्वलन्तं भास-मानं दोर्भ्यामेव न शस्त्रेण ॥ ५५ ॥ प्रसह्य दण्डेनैव न तु भेदादिना ॥ १५६ ॥

यदाश्रौषं द्रौपदीमश्रुकण्ठीं
सभां नीतां दुःखितामेकवस्त्राम् ।
रजस्वलां नाथवतीमनाथव-
त्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५७

यदाश्रौषं वाससां तत्र राशिं
समाक्षिपत्कितवो मन्दबुद्धिः ।
दुःशासनो गतवान्नैव चान्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ५८

यदाश्रौषं हृतराज्यं युधिष्ठिरं
पराजितं सौबलेनाक्षवत्याम् ।
अन्वागतं भ्रातृभिरप्रमेयै-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥५९

यदाश्रौषं विविधास्तत्र चेष्टा
धर्मात्मनां प्रस्थितानां वनाय ।
ज्येष्ठप्रीत्या क्लिश्यतां पाण्डवानां
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६०

यदाश्रौषं स्नातकानां सहस्रै-
रन्वागतं धर्मराजं वनस्थम् ।
भिक्षाभुजां ब्राह्मणानां महात्मनां
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६१

यदाश्रौषमर्जुनं देवदेवं
किरातरूपं त्र्यम्बकं तोष्य युद्धे ।
अवाप्तवन्तं पाशुपतं महास्त्रं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६२

यदाश्रौषं त्रिदिवस्थं धनंजयं
शक्रात्साक्षाद्दिव्यमस्त्रं यथावत् ।
अधीयानं शंसितं सत्यसन्धं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६३

यदाश्रौषं कालकेयास्ततस्ते
पौलोमानो वरदानाच्च दृप्ताः ।
देवैरजेया निर्जिताश्चार्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६४

यदाश्रौषमसुराणां वधार्थे
किरीटिनं यान्तममित्रकर्शनम् ।
कृतार्थं चाप्यागतं शक्रलोका-
त्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६५

यदाश्रौषं वैश्रवणेन सार्धं
समागतं भीममन्यांश्च पार्थान् ।
तस्मिन्देशे मानुषाणामगम्ये
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६६

यदाश्रौषं घोषयात्रागतानां
बन्धं गंधर्वैर्मोक्षणं चार्जुनेन ।
स्वेषां सुतानां कर्णबुद्धौ रतानां
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६७

यदाश्रौषं यक्षरूपेण धर्मं
समागतं धर्मराजेन सूत ।
प्रश्नान्कांश्चिद्विब्रुवाणं च सम्यक्
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६८

यदाश्रौषं न विदुर्मामकास्तान्
प्रच्छन्नरूपान्वसतः पाण्डवेयान ।
विराटराष्ट्रे सह कृष्णया च
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६९

यदाश्रौषं मामकानां वरिष्ठा-
न्धनंजयेनैकरथेन भग्नान् ।
विराटराष्ट्रे वसता महात्मना
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १७०

यदाश्रौषं सत्कृतां मत्स्यराज्ञा
सुतां दत्तामुत्तरामर्जुनाय ।
तां चार्जुनः प्रत्यगृह्णात्सुतार्थे
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७१

यदाश्रौषं निर्जितस्याधनस्य
प्रव्राजितस्य स्वजनात्प्रच्युतस्य ।
अक्षौहिणीः सप्त युधिष्ठिरस्य
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १७२

---

यदाश्रौषं द्रौपदीमिति पतिव्रताकोपात् पाण्डवानां क्षोभाच्च नष्टा जयाशेत्यर्थः ॥५७॥ यदा वाससामिति अचिन्त्यमहिमत्त्वाद्रौपद्या नास्माकं जयः । कितवः आक्षिको धूर्तः ॥५८॥ अक्षवत्यां पाशवत्यां द्यूतक्रीडाया मौबलेन शकुनिना अन्वागतमनुगतम् ॥५९॥ चेष्टाः बाहुवीक्षणाद्याः ॥१६०॥ ब्राह्मणानुग्रहादपि तेषामेव जय इत्याह । यदाश्रौषं स्नातकानामिति द्वाभ्याम् । स्नातकाः समापितविद्याव्रताः ॥ ६१ ॥ यदाश्रौषमर्जुनमित्यादि चतुर्भिरर्जुनस्यामानुषपराक्रमदर्शिना ॥ ६२ ॥ शंसितं प्रशंस्यम सत्यसन्धं अवितथप्रतिज्ञम् ॥ ६३ ॥ यदाश्रौषं घोषेति । वल्कलधारिभ्यः पाण्डवेभ्यः स्वैश्वर्यं प्रकाशयितुं वत्सांकनव्याजेन घोषयात्रागताना धार्तराष्ट्राणाम् । यैर्मत्सुताबद्धास्तेषामपि जेतृत्व मत्सुता जेतुं शक्ता इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ धर्मानुग्रहादपि तेषामेव जय इत्याह । यदाश्रौषं यक्षेति ॥ ६८ ॥ कृष्णाया द्रौपद्यावेदने पुनर्द्वादशवर्षाणि वनवासस्त्रयोदशे प्रच्छन्नचर्येतिप्रतिज्ञानात् ॥ ६९ ॥ विराटराष्ट्रे गोग्रहे ॥ १७० ॥ मत्स्यराज्ञा विराटेन । समासान्तविधेरनित्यत्वान्नटच् ॥७१॥ निर्जितत्वादिनात्यन्तपराभूतस्यापि सप्ताक्षौहिणीसंपत्तेर्दैवानु-

यदाश्रौषं माधवं वासुदेवं
सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टम् ।
यस्येमां गां विक्रममेकमाहु-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १७३

यदाश्रौषं नरनारायणौ तौ
कृष्णार्जुनौ वदतो नारदस्य ।
अहं द्रष्टा ब्रह्मलोके च सम्यक्
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७४

यदाश्रौषं लोकहिताय कृष्णं
शमार्थिनमुपयातं कुरूणाम् ।
शमं कुर्वाणमकृतार्थं च यातं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १७५

यदाश्रौषं कर्णदुर्योधनाभ्यां
बुद्धिं कृतां निग्रहे केशवस्य ।
तं चात्मानं बहुधा दर्शयानं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७६

यदाश्रौषं वासुदेवे प्रयाते
रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठमानाम् ।
आर्तां पृथां सान्त्वितां केशवेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७७

यदाश्रौषं मन्त्रिणं वासुदेवं
तथा भीष्मं शान्तनवं च तेषाम् ।
भारद्वाजं चाशिषोऽनुब्रुवाणं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७८

यदाश्रौषं कर्ण उवाच वाक्यं
नाहं योत्स्ये युध्यमाने त्वयीति ।
हित्वा सेनामपचक्राम चापि
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७९

यदाश्रौषं वासुदेवार्जुनौ तौ
तथा धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
त्रीण्युग्रवीर्याणि समागतानि
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १८०

यदाश्रौषं कश्मलेनाभिपन्ने
रथोपस्थे सीदमानेऽर्जुने वै ।
कृष्णं लोकान्दर्शयानं शरीरे
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८१

यदाश्रौषं भीष्मममित्रकर्शनं
निघ्नन्तमाजावयुतं रथानाम् ।
नैषां कश्चिद्वध्यते ख्यातरूप-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८२

यदाश्रौषं चापगेयेन संख्ये
स्वयं मृत्युं विहितं धार्मिकेण ।
तच्चाकार्षुः पाण्डवेयाः प्रहृष्टा-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८३

यदाश्रौषं भीष्ममत्यन्तशूरं
हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम् ।
शिखण्डिनं पुरतः स्थापयित्वा
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८४

यदाश्रौषं शरतल्पे शयानं
वृद्धं वीरं सादितं चित्रपुङ्खैः ।
भीष्मं कृत्वा सोमकानल्पशेषां-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८५

यदाश्रौषं शान्तनवे शयाने
पानीयार्थे चोदितेनार्जुनेन ।
भूमिं भित्वा तर्पितं तत्र भीष्मं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ८६

यदा वायुश्चन्द्रसूर्यौ च युक्तौ
कौन्तेयानामनुलोमा जयाय ।
नित्यं चास्माञ्श्वापदा भीषयन्ति
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८७

यदा द्रोणो विविधानस्त्रमार्गा-
न्निदर्शयन्समरे चित्रयोधी ।
न पाण्डवाञ्श्रेष्ठतरान्निहन्ति
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८८

---

कुल्यात्तेषामजय्यत्वं दृढमित्यर्थः ॥ ७२ ॥ इमां गां पृथिवीं यस्य एकं विक्रमं पदमात्रमाहुः । यस्येन्द्राद्या इति पाठे विक्रमं पराक्रमं । एकं असाधारणम् ॥७३॥ वदतो नारदस्य मुखादिति शेषः ॥ ७४ ॥ ॥ बहुधा वैश्वरूप्येण ॥७६॥ पृथां कुन्तीम् ॥ ७७ ॥ तेषां पाण्डवानाम् ॥ ७८ ॥ स्वयूथ्यकलहोऽपि पराजयावह इत्याह । यदाश्रौषं कर्ण इति ॥७९॥ गण्डोऽस्यास्तीति गण्डी खड्गमृगः।'गण्डः स्यात्पुंसि खड्गिनि'इति मेदिनी। तेन सह वाति गच्छतीति गाण्डिवं तस्य पृष्ठवंशं तद्विकारो गाण्डिवम् । दीर्घमध्योप्ययं शब्दः क्वचिदस्ति तदार्षम् ॥१८०॥ कश्मलेन मोहेन ॥ ८१ ॥ अयुतं दशसहस्राणि ॥ ८२ ॥ आपगेयेन भीष्मेण विहितं प्रकाशितं तच्च मृत्युप्रापकं द्वारम् ॥ ८३ ॥ तदेवाह यदाश्रौषं भीष्ममिति ॥ ८४ ॥ सोमकानिवाल्पशेषान् कृत्वा नत्वन्यान् ॥ ८५ ॥ भूमिं भित्वेत्यलौकिकं कर्म ॥ ८६ ॥ वायोरानुलोम्यं दक्षिणपृष्ठवाहित्वं चन्द्रसूर्ययोर्लाभस्थानस्थत्वेन । शक्रसूर्याविति पाठे शक्रस्यानुकूल्यं परेषां सैन्येऽशनिपातादिना । श्वापदाः श्वपक्षिक्रोष्ट्रादयः ॥ ८७ ॥

यदाश्रौषं चास्मदीयान्महारथा-
न्व्यवस्थितानर्जुनस्यान्तकाय ।
संशप्तकान्निहतानर्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १८९

यदाश्रौषं व्यूहमभेद्यमन्यै-
र्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम् ।
भित्त्वा सौभद्रं वीरमेकं प्रविष्टं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९०

यदाऽभिमन्युं परिवार्य बालं
सर्वे हत्वा हृष्टरूपा बभूवुः ।
महारथाः पार्थमशक्नुवन्त-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९१

यदाश्रौषमभिमन्युं निहत्य
हर्षान्मूढान्क्रोशतो धार्तराष्ट्रान् ॥
क्रोधादुक्तं सैन्धवे चार्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९२

यदाश्रौषं सैन्धवार्थे प्रतिज्ञां
प्रतिज्ञातां तद्वधायार्जुनेन ।
सत्यां तीर्णां शत्रुमध्ये च तेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९३

यदाश्रौषं श्रान्तहये धनंजये
मुक्त्वा हयान्पाययित्वोपवृत्तान् ।
पुनर्युक्त्वा वासुदेवं प्रयातं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९४

यदाश्रौषं वाहनेष्वक्षमेषु
रथोपस्थे तिष्ठता पाण्डवेन ।
सर्वान्योधान्वारितानर्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९५

यदाश्रौषं नागबलैः सुदुःसहं
द्रोणानीकं युयुधानं प्रमथ्य ।
यातं वार्ष्णेयं यत्र तौ कृष्णपार्थौ
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९६

यदाश्रौषं कर्णमासाद्य मुक्तं
वधाद्भीमं कुत्सयित्वा वचोभिः ।
धनुष्कोट्या तुद्य कर्णेन वीरं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९७

यदा द्रोणः कृतवर्मा कृपश्च
कर्णो द्रौणिर्मद्रराजश्च शूरः ।
अमर्षयन्सैन्धवं वध्यमानं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९८

यदाश्रौषं देवराजेन दत्तां
दिव्यां शक्तिं व्यंसितां माधवेन ।
घटोत्कचे राक्षसे घोररूपे
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९९

यदाश्रौषं कर्णघटोत्कचाभ्यां
युद्धे मुक्तां सूतपुत्रेण शक्तिम् ।
यया वध्यः समरे सव्यसाची
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ २००

यदाश्रौषं द्रोणमाचार्यमेकं
धृष्टद्युम्नेनाभ्यतिक्रम्य धर्मम् ।
रथोपस्थे प्रायगतं विशस्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १

यदाश्रौषं द्रौणिना द्वैरथस्थं
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये ।
समं युद्धे मण्डलेभ्यश्चरन्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ २

यदा द्रोणे निहते द्रोणपुत्रो
नारायणं दिव्यमस्त्रं विकुर्वन् ।
नैषामन्तं गतवान्पाण्डवानां
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ३

यदाश्रौषं भीमसेनेन पीतं
रक्तं भ्रातुर्युधि दुःशासनस्य ।
निवारितं नान्यतमेन भीमं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ २०४

---

पार्थं अशक्नुवन्तो हन्तुमितिशेषः । तेन अर्जुनकोपाग्नेरत्यन्तं प्रदीपनान्नास्माकं जयाशेत्यर्थः ॥ ९१ ॥ मूढान् अनेन स्वेषां क्षय एव भविष्यतीति जयाप्ययं पराजय एवेत्यजानतः । सैन्धवे जयद्रथे उक्तं 'अद्यैनं न हनिष्यामि चेदग्निं प्रवेक्ष्यामि' इति प्रतिज्ञातम् ॥ ९२ ॥ युयुधानं युध्यमानं वार्ष्णेयं सात्यकिम् ॥९६॥ कर्णमासाद्यापि वधान्मुक्तं अप्राप्तमृत्युं भीमं यदाश्रौषमित्यन्वयः । धनुष सर्वतो व्यथयित्वा वचोभिर्न तु मनसा तुत्सयित्वा मूढ औदरिकेत्यादिशब्दैर्निन्दित्वोपेक्षितमिति शेषः ॥ ९७ ॥ अमर्षयन् मर्षणं सहनं कृतवन्तः अशक्त्या ॥ ९८ ॥ व्यंसिता व्यर्थीकृता माधवेन कर्णस्यापि धिय प्रवर्तकेन । घोररूपे इति घटोत्कचस्यापि वध्यत्वेन तद्वधेनापि कृष्णस्य हर्ष एव न क्षतिरिति भाव. ॥ ९९ ॥ यदा कर्णघटोत्कचाभ्यां युद्धे क्रियमाणे इति शेष. । अर्जुनस्यावध्यत्वे सिद्धे का जयाशेति भावः ॥ २०० ॥ प्रायगतं मरणार्थमनशनं प्रायस्तत्रगतं तदर्थं निश्चलं स्थितम । विशस्तं छिन्नम् ॥१॥ द्रौणिना नकुलमिति द्रौणेर्निकृष्टत्वमुक्तम् ॥ २ ॥

यदाश्रौषं कर्णमत्यन्तशूरं
हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम् ।
तस्मिन्भ्रातॄणां विग्रहे देवगुह्ये
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ २०५

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रं च शूरं
दुःशासनं कृतवर्माणमुग्रम् ।
युधिष्ठिरं धर्मराजं जयन्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ६

यदाश्रौषं निहतं मद्रराजं
रणे शूरं धर्मराजेन सूत
सदा संग्रामे स्पर्धते यस्तु कृष्णं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ७

यदाश्रौषं कलहद्यूतमूलं
मायाबलं सौबलं पाण्डवेन ।
हतं संग्रामे सहदेवेन पापं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ८

यदाश्रौषं श्रान्तमेकं शयानं
ह्रदं गत्वा स्तम्भयित्वा तदम्भः ।
दुर्योधनं विरथं भग्नशक्तिं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ९

यदाश्रौषं पाण्डवांस्तिष्ठमानान्
गत्वा ह्रदे वासुदेवेन सार्धम् ।
अमर्षणं धर्षयतः सुतं मे
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ २१०

यदाश्रौषं विविधांश्चित्रमार्गान्
गदायुद्धे मण्डलशश्चरन्तम् ।
मिथ्या हतं वासुदेवस्य बुद्ध्या
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ ११

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रादिभिस्तै-
र्हतान्पञ्चालान्द्रौपदेयांश्च सुप्तान् ।
कृतं बीभत्समयशस्यं च कर्म
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १२

यदाश्रौषं भीमसेनानुयाते-
नाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम् ।
क्रुद्धेनैषीकमवधीद्येन गर्भं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १३

यदाश्रौषं ब्रह्मशिरोऽर्जुनेन
स्वस्तीत्युक्त्वाऽस्त्रमस्त्रेण शान्तम् ।
अश्वत्थाम्ना मणिरत्नं च दत्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रेण गर्भे
वैराट्या वै पात्यमाने महास्त्रैः ।
द्वैपायनः केशवो द्रोणपुत्रं
परस्परेणाभिशापैः शशाप ॥ २१५

शोच्या गान्धारी पुत्रपौत्रैर्विहीना
तथा बन्धुभिः पितृभिर्भ्रातृभिश्च ।
कृतं कार्यं दुष्करं पाण्डवेयैः
प्राप्तं राज्यमसपत्नं पुनस्तैः ॥ १६

कष्टं युद्धे दश शेषाः श्रुता मे
त्रयोऽस्माकं पाण्डवानां च सप्त ।
द्व्यूना विंशतिराहताऽक्षौहिणीनां
तस्मिन्संग्रामे भैरवे क्षत्रियाणाम् ॥ १७

तमस्त्वतीव विस्तीर्णं मोह आविशतीव माम् ।
संज्ञां नोपलभे सूत मनो विह्वलतीव मे ॥ १८

सौतिरुवाच ।

इत्युक्त्वा धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहुदुःखितः ।
मूर्च्छितः पुनराश्वस्तः संजयं वाक्यमब्रवीत् २१९

देवगुह्ये पार्थानां कर्णे सोदर्यत्वाज्ञानात् प्रवृत्ते विग्रहे युद्धे ॥५॥ युधिष्ठिरं द्रोणपुत्रादीन् जयन्तामित्यन्वयः ॥६॥ मद्रराजं शल्यं स्पर्धते जेतुमिच्छतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ यदा० कलहेति पुनर्द्यूतप्रसंजनेनापि जयाशा नास्तीतिभावः ॥ ८ ॥ भग्ना शक्तिः मन्त्रोत्साहादिजं सामर्थ्यं यस्य ॥९॥ प्रच्छन्नोपि परैरदृष्टश्चेद्दैवात्कालान्तरेऽपि जयाशा स्यात्सापि नास्तीत्याह । यदाश्रौषं पाण्डवानिति । अमर्षणं अशक्तस्यापीतितिक्षोर्मरणमवश्यं भावीति भावः ॥ १० ॥ मिथ्याहतं नाभेरधः प्रहारात् कपटेन हतम् । तस्मिन् हते जयाशा नास्ति मूलोच्छेदादिति भावः ॥ ११ ॥ यदा० द्रोणेति दुष्कर्मकारिणो दुर्योधनस्य दारेषु कश्चिन्महानुभावः पुत्रमपि नोत्पादयिष्यति । अतस्तद्द्वारापि जयाशा नास्तीतिभावः ॥ १२ ॥ अनुयातेन हन्तुं अनुद्रुतेन । अग्रिम श्लोकत्रयेण स्वीयस्याप्यश्वत्थाम्नोऽति जगुप्सितकर्मत्वान्मणिहीनत्वाद्बहुशापग्रस्तत्वाच्च दुर्योधनक्षेत्रेषु पुत्रजननद्वारा राज्यलाभरूपजयाशंसापि नास्तीति सूच्यते। यदा शशाप तदा नाशंसे विजयायेत्यन्तिमश्लोके पूर्वानुकर्षेणान्वयः॥१३॥शोच्या गान्धारी। अहं तु तामपि शोचन् शोच्यतर इति भावः। यद्वा गान्धार्येव शोच्या न त्वहं उदासीनत्वात्। न मे विशेष इति प्रागुक्तेः। अतः पाण्डवानां जयोऽपि ममैव जय इति भावः ॥ १६ ॥ त्रयः कृपोऽश्वत्थामा कृतवर्मा च । सप्त कृष्णसात्यकी पञ्च पाण्डवाश्च ॥ १७ ॥ तमः शोकावेशाच्चक्षुरावरणं बाह्यम् । मोहः कार्याकार्ययोरप्रतिपत्तिः । अत एव संज्ञां विशेषविज्ञानं नोपलभे । विह्वलति शोकेनाकुलीभवति ॥ १८ ॥ अत एव मूर्च्छितः अन्तःसंज्ञाशून्यः॥१९॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

संजयैवं गते प्राणांस्त्यक्तुमिच्छामि मा चिरम् ।
स्तोकं ह्यपि न पश्यामि फलं जीवितधारणे २२०

सौतिरुवाच ।

तं तथा वादिनं दीनं विलपन्तं महीपतिम् ।
निःश्वसन्तं यथा नागं मुह्यमानं पुनः पुनः ॥ २१
गावल्गणिरिदं धीमान्महार्थं वाक्यमब्रवीत् ।

संजय उवाच ।

श्रुतवानसि वै राजन्महोत्साहान्महाबलान् २२
द्वैपायनस्य वदतो नारदस्य च धीमतः ।
महत्सु राजवंशेषु गुणैः समुदितेषु च ॥ २३
जातान्दिव्यास्त्रविदुषः शक्रप्रतिमतेजसः ।
धर्मेण पृथिवीं जित्वा यज्ञैरिष्ट्वाप्तदक्षिणैः ॥ २४
अस्मिँल्लोके यशः प्राप्य ततः कालवशं गतान् ।
शैब्यं महारथं वीरं संजयं जयतां वरम् ॥ २५
सुहोत्रं रन्तिदेवं च काक्षीवन्तमथौशिजम् ।
बाल्हीकं दमनं चैद्यं शर्यातिमजितं नलम् ॥ २६
विश्वामित्रममित्रघ्नमम्बरीषं महाबलम् ।
मरुत्तं मनुमिक्ष्वाकुं गयं भरतमेव च ॥ २७
रामं दाशरथिं चैव शशबिन्दुं भगीरथम् ।
कृतवीर्यं महाभागं तथैव जनमेजयम् ॥ २८
ययातिं शुभकर्माणं देवैर्यो याजितः स्वयम् ।
चैत्ययूपाङ्किता भूमिर्यस्येयं सवनाकरा ॥ २९
इति राज्ञां चतुर्विंशन्नारदेन सुरर्षिणा ।
पुत्रशोकाभितप्ताय पुरा श्वैत्याय कीर्तितम् २३०
तेभ्यश्चान्ये गताः पूर्वं राजानो बलवत्तराः ।
महारथा महात्मानः सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ३१
पूरुः कुरुर्यदुः शूरो विष्वगश्वो महाद्युतिः ।
अणुहो युवनाश्वश्च ककुत्स्थो विक्रमी रघुः ॥ ३२
विजयो वीतिहोत्रोऽङ्गो भवः श्वेतो बृहद्गुरुः ।
उशीनरः शतरथः कङ्को दुलिदुहो द्रुमः ॥ ३३
दम्भोद्भवः परो वेनः सगरः संकृतिर्निमिः ।
अजेयः परशुः पुण्ड्रः शम्भुर्देवावृधोऽनघः ॥ ३४
देवाह्वयः सुप्रतिमः सुप्रतीको बृहद्रथः ।
महोत्साहो विनीतात्मा सुक्रतुर्नैषधो नलः ॥ ३५
सत्यव्रतः शान्तभयः सुमित्रः सुबलः प्रभुः ।
जानुजङ्घोऽनरण्योऽर्कः प्रियभृत्यः शुचिव्रतः ॥ ३६
बलबन्धुर्निरामर्दः केतुशृङ्गो बृहद्बलः ।
धृष्टकेतुर्बृहत्केतुर्दीप्तकेतुर्निरामयः ॥ ३७
अविक्षिश्चपलो धूर्तः कृतबन्धुर्दृढेषुधिः ।
महापुराणसंभाव्यः प्रत्यङ्गः परहा श्रुतिः ॥ ३८
एते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः ।
श्रूयन्ते शतशश्चान्ये संख्याताश्चैव पद्मशः ॥ ३९
हित्वा सुविपुलान्भोगान्बुद्धिमन्तो महाबलाः ।
राजानो निधनं प्राप्तास्तव पुत्रा इव प्रभो ॥ २४०
येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च ।
माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यं शौचं दयार्जवम् ४१
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः ।
सर्वर्द्धिगुणसंपन्नास्ते चापि निधनं गताः ॥ ४२
तव पुत्रा दुरात्मानः प्रतप्ताश्चैव मन्युना ।
लुब्धा दुर्वृत्तभूयिष्ठा न ताञ्छोचितुमर्हसि ॥ ४३
श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान्प्राज्ञसंमतः ।
येषां शास्त्रानुगा बुद्धिर्न ते मुह्यन्ति भारत ॥ ४४
निग्रहानुग्रहौ चापि विदितौ ते नराधिप ।
नात्यन्तमेवानुवृत्तिः कार्या ते पुत्ररक्षणे ॥ ४५
भवितव्यं तथा तच्च नानुशोचितुमर्हसि ।
दैवं प्रज्ञाविशेषेण को निवर्तितुमर्हति ॥ ४६
विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते ।
कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे ॥ ४७

---

गवल्गणस्यापत्यं गावल्गणिः संजयः ॥ २२ ॥ चैत्यं चयनमति ... विहिताश्चैत्या ते च ते यूपाश्च तैरङ्कितेन ॥ २९ ॥ चतुर्विंशदितीकारलोपश्छान्दसः ॥ २३० ॥ तव पुत्रा इवेति निधने दृष्टान्तः । अत एव 'तव पुत्रा दुरात्मानः' इत्युच्यते ॥ ४० ॥ त्यागो दानं आस्तिक्यं गुरुदेववाक्यादिषु परमादरं भावनिश्चयः । सत्यं भूतद्रोहवर्जितं यथार्थभाषणम् । दया परदुःखप्रहाणेच्छा आर्जवं अकौटिल्यम् ॥४१॥ ते चापि तथाविधा अपि ॥ ४२ ॥ दुरात्मानो दुष्टचित्ताः प्रतप्ताः ... दुर्वृत्तमेव भूयिष्ठं येषां ते तथा ॥ ४३ ॥ स्वयं ... ऽनर्थे किं शोकेनेत्याह । श्रुतवानसीत्यादिना ॥ ४४॥ निग्रहः पाण्डवेषु अनुग्रहः स्वपुत्रेषु तौ त्वत्कृतौ तवैव विदितौ अतः स्वपुत्राणां रक्षणे त्वयानुवृत्तिर्ध्यानं न कार्यम् । श्रूयत इति पाठे अन्यैः कृतेति न श्रूयतेऽतस्त्वयापि न कार्या । गताभिदानीं दिष्टापकृता नाशस्यावश्यंभावित्वादिति भावः ॥ ४५ ॥ 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' इतिन्यायेन प्राक्कृतस्य कर्मणो दुर्निवारत्वाच्च स्वकृतेऽपि नात्यन्तं पश्चात्तापेन शोकः कर्तव्य इत्याह । भवितव्यमिति ॥ ४६ ॥ मार्गं 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' इत्येवंरूपां पद्धतिम् । ननु प्राक्कृतमेव शोचामीति चेन्नेत्याह । कालेति । यथा तरुषु फलपुष्पाद्युद्गमः कालैकहेतुस्तथा पुरुषेषु सदसद्बुद्ध्युद्गमोऽपीत्यर्थः । भावाभावौ वस्तूनामुद्भवानुद्भवौ ऐश्वर्यानैश्वर्यं वा ॥ ४७ ॥ कालः निमेषादिर्वत्सरान्तः । भूतानि जरायुजादीनि । सृजति संहरते च

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः ॥२४८
कालो हि कुरुते भावान्सर्वलोके शुभाशुभान् ।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः ॥ ४९
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ।
कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविधृतः समः ॥२५०
अतीतानागता भावा ये च वर्तन्ति सांप्रतम् ।
तान्कालनिर्मितान्बुध्वा न संज्ञां हातुमर्हसि ॥ ५१
सौतिरुवाच ।
इत्येवं पुत्रशोकार्तं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
आश्वास्य स्वस्थमकरोत्सूतो गावल्गणिस्तदा ॥५२
अत्रोपनिषदं पुण्यां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः ॥ ५३
भारताध्ययनं पुण्यमपि पादमधीयतः ।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥ ५४
देवादेवर्षयो ह्यत्र तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
कीर्त्यन्ते शुभकर्माणस्तथा यक्षा महोरगाः ॥५५
भगवान्वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः ।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च ॥ २५६

प्रजास्ता एव । एवं शोचन्तं धृतराष्ट्रम् । 'तरति शोकमात्मवित्' इति श्रुतेरात्मज्ञानप्रदानेन निःशोकं कर्तुं प्रथमं जीवानां कालादृष्टादिपारतन्त्र्यप्रदर्शनेनाकिंचित्करत्वप्रबोधनेन च तस्य वैराग्यमुत्पाद्यात्मानमुपदिशति । 'संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुन'इति । 'मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्'इति श्रुतेः कालस्यापि कालः परमात्मास्तीत्यर्थः । निर्दहति प्रजाः काल इति पाठे तु यो निर्दहति कालस्तमपि कालः शमयत इति यत्तच्छब्दाध्याहारेण योज्यम् ॥ ४८ ॥ कालो हीति । अयं महाकालो हि अतिप्रसिद्धो वेदे । 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते'इत्यादौ । कुरुते भावानर्थान् क्वचित्प्रयोजकत्वेन क्वचित्प्रयोज्यत्वेन ईशानांशरूपोयमेवेत्यर्थः । प्रजाः अव्यक्तमहदादयः ॥ ४९ ॥ सुप्तेषु तेष्वेवं लीनेषु जागर्ति । सुप्तौ प्रलये मोक्षे च अलुप्तदृक्शक्तिरास्ते । न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो दृश्यतेऽविनाशित्वादिति श्रुतेः । कालो हि प्रसिद्धं दुरतिक्रमः अलङ्घनीयः । 'पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः' इति श्रुतेः । चरति शास्यशास्तृभावेन । 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' इति श्रुतेः । अविधृतः न केनचित् विधृतः । सर्वाधिष्ठानत्वात् । अत एव समः आत्मा । 'सम आत्मेतिविद्यात्' । 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' इति प्रत्यगभिन्ने ब्रह्मणि समशब्दप्रयोगात् ॥ २५० ॥ सर्वमात्मप्रभवमिति बुध्वा संज्ञां ज्ञाननिष्ठां न त्यक्तुमर्हसि । इतोन्यस्य शोकतरणोपायस्याभावादित्यर्थः ॥ ५१ ॥ स्वस्थं शोकहेतुं देहाद्यभिमानं त्याजयित्वा निरुपाधौ स्वस्वरूपे प्रतिष्ठितमकरोदित्यर्थः ॥ ५२ ॥ अत्र शोकार्तानां स्वास्थ्यकरणे विषये उपनिषदम् । 'उपनीये ममात्मानं ब्रह्मापास्तद्वयं यतः । निहन्त्यविद्यां तज्जं च तस्मादुपनिषद्भवेत्' इति यथोक्तविद्याहेतुत्वाद्ग्रन्थोऽप्युपनिषद्भवेदिति च वचनात् । ब्रह्मात्मैकत्वविद्याप्रतिपादकं ग्रन्थं सत्रद्वयोः प्रागुक्तयोर्वार्तिककृत्स्थानीयमुपनिषद्भाष्यं अब्रवीत् । यद्यपि पुरुषार्थचतुष्टयप्रतिपादनं कृत्वा तथापि कामार्थयोर्लोकप्रसिद्धयोरेव स्वरूपज्ञा- क्रियैव पराक्रियेतिन्यायेन हानार्थमनुवादाद्धर्मस्य च विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादिश्रुत्या विद्याशेषत्वस्य दर्शितत्वात्परमतात्पर्यं विद्यायामेवेति ध्येयम् । अस्याः सांप्रदायिकत्वमाह । विद्वद्भिरिति । कथ्यते अनादिसिद्धमेव कीर्त्यते न तु कादम्बर्यादिवदभिनवकथा कल्प्यते कविसत्तमैः पूर्वपूर्वकल्पीयैर्व्यासादिभिः । एवं च व्यासादिशब्दानां सेनापत्यादिशब्दवदधिकारिकवचनत्वेन व्यक्त्यानित्यत्वेऽपि तदर्थानां नित्यत्वान्न पुराणानां सकर्तृकत्वमात्रादनित्यत्वम् । अत एव 'सुमन्तुजैमिनिवैशंपायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्या' इति मन्त्रस्य पुराणादिप्रणेत्राचार्यसंग्रहवतो नित्येन तर्पणविधिना संयोगः संगच्छते । अन्यथा नित्यानित्यसंयोगविरोधो दुर्वारः स्यात् । अत एव पुराणे पुरापि नवे ॥ ५३ ॥ भारतेति । नित्ये ब्रह्मयज्ञे ऋचोधीते पय आहुतिभिरेव देवतास्तर्पयतीत्यृगादीनामिव इतिहासपुराणानीत्यमृताहुतिभिरिति तदध्ययनफलश्रुतिरपि युज्यत इत्यभिप्रेत्याह । पुण्यमिति । पूयन्ते नश्यन्ति । अस्य श्लोकस्य चतुर्थांशोच्चारणमात्रादपि सर्वपापनाशः किं वाच्यं कृत्स्नाध्ययनात्तदर्थस्य ज्ञानात् साक्षात्काराद्वेतिभावः ॥ ५४ ॥ एवं ग्रन्थस्य स्वास्थ्यं मुख्यं फलं पापक्षयं गुणफलं चोक्त्वात्र प्रतिपाद्यं विषयमाह । देवा इति । देवादीनां शुभकर्माण इति विशेषणेन तेषां शुभं कर्मैवोपादेयं विवक्षितम् । तस्यैव परंपरया परमपुरुषार्थहेतुत्वात् ॥५५॥ मुख्यं विषयमाह भगवानिति । 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीगना' इत्युक्तरूपषड्गुणैश्वर्यवान्परमात्मा वासुदेवः वसुदेवोत्पन्नशरीरोपाधिः सर्वशरीरोपाधिरपि तेन शरीरेणातिमानुषाणि वह्निपानादीनि कर्माणि कृतवानिति तदुपादानम् । तथाहि ब्रह्माणं प्रति भगवद्वाक्यम् । 'विधेऽहं सर्वोस्मि व्रजपृथुकगोवत्सवदहं बिभर्मि ब्रह्माण्डं गिरिवदहमाद्रि ज्वलनवत् । सृजामि द्रौपद्या वसनवदहं प्राणभृदहं यदत्राहं तृप्तो मुनिरिति मदन्यन्न किमपि' इति । तस्य वास्तवं रूपमाह । सनातन इति । आकाशादिवत् प्रवाहनित्यतया वा मायाया आद्यन्त

शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम् ।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः ॥ ५७
असच्च सदसच्चैव यस्माद्विश्वं प्रवर्तते ।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः ॥ ५८
अध्यात्मं श्रूयते यच्च पञ्चभूतगुणात्मकम् ।
अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते ॥ ५९
यत्तद्यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ॥ २६०
श्रद्दधानः सदायुक्तः सदा धर्मपरायणः ।
आसेवन्निममध्यायं नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ ६१
अनुक्रमणिकाध्यायं भारतस्येममादितः ।
आस्तिकः सततं शृण्वन्न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥ ६२
उभे संध्ये जपन्किंचित्सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ।
अनुक्रमण्या यावत्स्यादह्ना रात्र्या च संचितम् ॥ ६३
भारतस्य वपुर्ह्येतत्सत्यं चामृतमेव च ।
नवनीतं यथा दध्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ ६४
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ।
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ ६५
यथैतानीतिहासानां तथा भारतमुच्यते ।
यश्चैनं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ॥ ६६
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥ ६७
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्श्रावयित्वार्थमश्नुते ॥ ६८
भ्रूणहत्यादिकं चापि पापं जह्यादसंशयम्
य इमं शुचिरध्यायं पठेत्पर्वणि पर्वणि ६९
अधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः ।
यश्चैनं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धासमन्वितः ॥ २७०
स दीर्घमायुः कीर्तिं च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः ।
एकतश्चतुरो वेदा भारतं चैतदेकतः ॥ ७१
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम् ।
चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो ह्यधिकं यदा ॥ ७२

---

शून्यत्वाद्वा तन्मयस्य भगवच्छरीरस्य नित्यत्वात्पर्यायं सनातनत्वं युज्यत इत्यर्थः । स वासुदेवो हि प्रसिद्धम् । सत्यं अनुष्ठीयमानं कर्म । ऋतं तदेव वेदात् ज्ञायमानम् । पवित्रं पापनाशकं पुण्यं अभ्युदयहेतुः । सर्वधर्मफलभूतं ब्रह्माण्डं स एवेति भावः ॥ ५६ ॥ अस्यैव निर्विशेषत्वमाह । शाश्वतं शश्वत् निरन्तरं भवं शाश्वतं तेन वस्तुतोदेशतश्चापरिच्छिन्नम् । अत एव ब्रह्म बृहत् परमं कार्यकारणातीतम् । ध्रुवं कूटस्थम् । ज्योतिः चिन्मात्रम् । सनातनं कालतोऽपरिच्छिन्नम् । यस्य ईशस्यापि मायया विग्रहवतः ५७॥ ईशादपि यस्मात् असत् अनिर्वचनीयं सदसच्च कार्यं कारणं च तदुभयात्मकम् । विश्वं जातं संततिर्निग्रहादिः प्रवृत्तिर्यागादिः ॥ ५८ ॥ आत्मनीत्यध्यात्मं देहे । यत् पञ्चभूतकार्यस्याः गुणाः श्रोत्रादयस्तदात्मकम् । स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति वदन् वाक् पश्यन् चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मन इत्यादि श्रुत्या यच्छ्रूयते जीवरूपम् । इति त्वं पदार्थमनूद्य तत्पदार्थमाह । अव्यक्तादि । अव्यक्तस्य आदिभूतं यत्परं निर्विशेषं च । तयोरभेदमाह । स एवेति । परिगीयते वेदे 'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादौ । नन्वन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानामिति शास्तृशास्यभावेन श्रुतयोरीशजीवयो राजभृत्यवदभेद औपचारिको न तु तात्त्विक इति चेन्न । अन्तःप्रविष्ट इति श्रुतेः किं जीवोऽणुर्विभुर्वा । नाद्यः । अणूदरे शास्तुः प्रवेशायोगात् । प्रवेशे च सान्तरत्वस्याणुत्वायोगात् । मध्यमस्य च सावयवत्वेन घटादिवदनित्यत्वावश्यं भावात् । न द्वितीयः विभुनोश्च तयोः । कालाकाशादेरिव तुल्यत्वेन मिथः शास्यशास्तृत्वायोगात् । तस्मादुपादानोपादेयभावेन वाधिष्ठानाध्यस्तभावेन वा ईशजीवयोः प्रवेष्टृप्रवेश्यभावेन । शास्तृशास्यभावः । नेनेशस्यान्तःप्रविष्टत्वं संगच्छते तथा च तयोरभेदोपि तात्त्विक एव ॥ ५९ ॥ अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति । यत्तदिति । आत्मनि हार्दाकाशे पश्यन्ति प्रत्यगभेदेन । प्रतिबिम्बमिव आदर्श इति असंदिग्धत्वे दृष्टान्तो न तु दृश्यत्वे । अन्यथा दृश्यस्य जडत्वापत्त्या वाङ्मनसातीतत्वश्रुतिव्याकोप एव ॥ २६० ॥ युक्तः नियमवान् । आसेवन् जपन् ॥ ६१ ॥ आदितः नारायणं नमस्कृत्येत्यारभ्य अनेन भारतकथाशास्त्रं पराशरात्मजो विद्वानित्यत एवारभ्य तद्वक्ष्यामिति नादर्तव्यमिति भावः ॥ ६२ ॥ जपन् किंचित् अनुक्रमण्याः कांश्चिदपि श्लोकान् ॥ ६३ ॥ एतद्भारतस्य वपुः शरीरम् । सत्यं ब्रह्म अमृतं देवभावश्च अत्रैवास्तीत्यर्थः । उत्तरग्रन्थस्त्वस्य राज्ञ इव परिवारस्थानीयः । तत्त्वं त्वत्रैव सूत्रितमित्यर्थः ॥ ६४ ॥ आरण्यकं उपनिषत् । ओषधिभ्यो यवादिभ्यः । अमृतं यज्ञशेषम् ॥ ६५ ॥ इतिहासानां शिवरहस्यादीनां मध्ये ॥ ६६ ॥ इतिहासेति । यदन्यं मायिनं मृगं त्वमुत्वं माययावधीरिति मन्त्रावयवो हि रामायणीयमारीचवधेन नैवोपबृंहितु शक्यो नन्वन्येनातस्तस्मादल्पश्रुताद्वेदस्य भयमुचितमेव । वेदार्थजिज्ञासुना इदमवश्यमध्येतव्यमित्यर्थः ॥ ६७ ॥ कार्ष्णं कृष्णेन व्यासेन प्रोक्तम् । वेदं पुरुषार्थचतुष्कं वेदयन्तम् ॥ ६८ ॥ तुलया धृतं न्यूनाधिकभावेन परीक्षितम् । सरहस्येभ्यः सोपनिषत्केभ्यः । अधिकं अर्थगौरवयुक्तम् ॥ ७२ ॥

तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन्महाभारतमुच्यते ।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम् ॥ ७३
महत्त्वाद्भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७४

तपो न कल्कोऽध्ययनं नकल्कः
स्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः ।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कस्तान्येव
भावोपहतानि कल्कः ॥ २७५ ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अनुक्रमणिकापर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अनुक्रमणीपर्व समाप्तम् ।

## पर्वसंग्रहपर्व

ऋषयऊचुः ।
समन्तपञ्चकमिति यदुक्तं सूतनन्दन ।
एतत्सर्वं यथातत्त्वं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १

सौतिरुवाच ।
शृणुध्वं मम भो विप्रा ब्रुवतश्च कथाः शुभाः ।
समन्तपञ्चकाख्यं च श्रोतुमर्हथ सत्तमाः ॥ २
त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥ ३
स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रौधिरान्ह्रदान् ॥ ४
स तेषु रुधिराम्भःसु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः ।
पितॄन्संतर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥ ५
अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो राममब्रुवन् ।
राम राम महाभाग प्रीताःस्म तव भार्गव ॥ ६
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण तव प्रभो ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यमिच्छसि महाद्युते ॥ ७

राम उवाच ।
यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यतामयि ।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ८

महत्त्वे ग्रन्थत आधिक्ये गुरुत्वे अर्थत आधिक्ये ॥ ७३ ॥ नन्वत्रानर्थको युद्धादिप्रलापो भूयान् दृश्यते कणिकनीत्यादिश्चाधर्मप्रवर्तकोऽपि ग्रन्थोऽस्ति। ततश्च क्वचिद्धर्मादिकथने सत्यपि विषसंपृक्तान्नवत्कृत्स्नमप्येतद्धेयमेवस्यादित्याशंक्याह । तप इति तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि कल्कः पापं तदभावो न कल्कः । कल्कोस्त्रीशमलैनसोरित्यमरः । नभ्राडादिवन्नञः प्रकृतिभावः । तपो निर्मलं नैर्मल्यसाधनमित्यर्थः । विरोधित्वं वा नञर्थः । तेन तपः पापनाशकमित्यर्थः । अध्ययनं वेदस्य स्वाभाविकः स्वस्ववर्णाश्रमादिपुरस्कारेण विहितः शमो दमस्तपः शौचमित्यादिर्वेदविधिर्वेदोक्तो विधिरग्निहोत्रसंध्योपासनादिः । प्रसह्य प्रकर्षेण सोढ्वा क्षुधादिदुःखमपि सोढ्वा वित्तस्य आहरणं शिलोञ्छादिना अर्जनं तदपि न कल्को नैर्मल्यसाधनम् । तान्येव तप आदीनि भावेन चित्ताभिप्रायेण उपहतानि कल्कः पापं पापहेतुर्भवन्ति । यथा शीतादिसहनं वानप्रस्थैः कटकस्थैश्च तुल्यवत्क्रियते तथापि भावभेदात्तदेकस्य स्वर्गायान्यस्य नरकाय भवति । वक्ष्यति च । ‘ चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि । मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुतमानयज्ञ’ इति ॥ एवं शिलोञ्छादिकमपि दम्भेन कृतं पापा यान्यथा श्रेयसे भवति। एवं भारतेऽपि धर्मब्रह्मप्रतिपादने एव परमतात्पर्यम् । अर्थवादजातमपि युधिष्ठिरादिवद्व्यवहर्तव्यं न दुर्योधनादिवदित्याशयेनोक्तम् । तत्र हीनं पक्षमुपाददानः स्वार्थात् भ्रश्यति तेनाधीतमपि भारतं पापायैव भवतीत्यर्थः । तथा च सर्वस्मादपि ग्रन्थात्सारमेवादेयमितरत् त्याज्यमिति श्रूयते । ‘ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः’ इति ॥ २७५ ॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

एवं प्रथमेऽध्याये सूत्रितानामर्थानां प्रकरणशो विभागं शिष्याणामवधानाय प्रदर्शयिष्यन् वैराग्यमुत्पादयितुं कुरुषु परशुरामकृतं क्षत्रक्षयं प्रसङ्गात्प्रदर्शयति । समन्तेति । ‘समन्तपञ्चकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम् । गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत्पुरा’इत्यादिना यदुक्तम्। एतत्सर्वं तं देशं तद्युद्धं च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १ ॥ मम मत्तः कथा अन्याः ॥ २ ॥ क्षत्रं क्षत्रियजातिम् । अमर्षःस्वपितुः क्षत्रियेण हतत्वाज्जातस्य क्रोधस्यासहनं तेन चोदितः प्रेरितः॥३॥ रौधिरान् रुधिरपूर्णान् ॥ ४ ॥ नः अस्माभिः । रुधिरेण पितॄणां तर्पणात्सर्वा हिंसा पितृतृप्त्याद्युद्देशेनैव कर्तव्या न कामकारेणेति सूचितम् ॥ ५ ॥ यदिति सार्धेन क्रोधकृतं सर्वं पापायैव हीनबलेषु शस्त्रनिक्षेपादिति भावः ॥ ८ ॥

अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः ।
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥ ९
एवं भविष्यतीत्येवं पितरस्तमथाब्रुवन् ।
तं क्षमस्वेति निषिषिधुस्ततः स विरराम ह ॥ १०
तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम् ।
समन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम् ॥ ११
येन लिङ्गेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते ।
तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः ॥ १२
अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ १३
तस्मिन्परमधर्मिष्ठे देशे भूदोषवर्जिते ।
अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया ॥ १४
समेत्य तं द्विजास्ताश्च तत्रैव निधनं गताः ।
एतन्नामाभिनिर्वृत्तं तस्य देशस्य वै द्विजाः ॥ १५
पुण्यश्च रमणीयश्च स देशो वः प्रकीर्तितः ।
तदेतत्कथितं सर्वं मया ब्राह्मणसत्तमाः ॥
यथा देशः स विख्यातस्त्रिषु लोकेषु सुव्रताः ॥ १६

ऋषय ऊचुः ।

अक्षौहिण्य इति प्रोक्तं यत्त्वया सूतनन्दन ।
एतदिच्छामहे श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥ १७
अक्षौहिण्याः परीमाणं नराश्वरथदन्तिनाम् ।
यथावच्चैव नो ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥ १८

सौतिरुवाच ।

एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥ १९
पत्तिं तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः ।
त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥ २०
त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः ।
स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ॥ २१
चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चम्वस्त्वनीकिनी ।
अनीकिनीं दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः ॥ २२
अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः ।
संख्यागणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ २३
शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः ।
गजानां च परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत् ॥ २४
ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु ।
नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः ॥ २५
पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च ।
दशोत्तराणि षट्प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥ २६
एतामक्षौहिणीं प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः ।
यां वः कथितवानस्मि विस्तरेण तपोधनाः ॥ २७
एतया संख्यया ह्यासन्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठाः पिण्डिताष्टादशैव तु ॥ २८
समेतास्तत्र वै देशे तत्रैव निधनं गताः ।
कौरवान्कारणं कृत्वा कालेनाद्भुतकर्मणा ॥ २९
अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित् ।
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम् ॥ ३०
अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः ।
शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमतः परम् ॥ ३१
तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्यगौतमाः ।
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ३२
यत्तु शौनकसत्रे ते भारताख्यानमुत्तमम् ।
जनमेजयस्य तत्सत्रे व्यासशिष्येण धीमता ॥ ३३
कथितं विस्तरार्थं च यशोवीर्यं महीक्षिताम् ।
पौष्यं तत्र च पौलोममास्तीकं चादितः स्मृतम् ॥

निषिषिधुः निषिद्धवन्तः । अक्षराधिक्यमार्षम् । अभ्यासलोपो वा आर्षः । सिषिधुरिति पाठे शशासुः । हिंसातो विरमस्वेति शिक्षितवन्त इत्यर्थः ॥ १० ॥ भूदोषाः निम्नोन्नतकण्टकिलादयस्तद्रहिते ॥ १४ ॥ समन्ते ह्रदानां पञ्चकं समन्तपञ्चकम् । तत्परिसरवर्ती देशोऽपि तन्नामेत्युक्तम् । तत्र समन्तशब्दस्यावयवार्थं दर्शयति । समेत्येति । समेताना अन्तो नाशो यस्मिन्निति समन्त इत्यर्थः । अभिनिर्वृत्तं निर्व्यूढम् ॥ १५ ॥ पदातय इति रथादिगतानां नराणां व्युदासः ॥ १९ ॥ अक्षौहिण्याः परीमाणं रथाद्रिभूत्याक्षिभिर्गजैः २१८७० रथैरेतैः २१८७० हयैस्त्रिभिः ६५६१० पंचभिः १०९३५० श्चपदातिभिरिति संग्रहः ॥ २७ ॥ पिण्डिताः एकीभूताः । सन्धिरार्षः ॥२८॥ द्रौणिरश्वत्थामा हार्दिक्यः कृतवर्मा । गौतमः कृपाचार्यः ॥ ३२ ॥ पर्वसंग्रहं वक्तुं प्रस्तौति । यत्तु शौनकेत्यादिना । हे शौनक । हे वृद्धतम । श्वयतेर्वृद्ध्यर्थात् । निशायां शूना वृद्धाः तेषु वृद्धतरत्वेन विदितः शौनकः । बुन्छणादिसूत्रेणारिहणादित्वात् वुञ् । ते तव सत्रे यत् भारताख्यानं मत्तः प्रवृत्तं तत् जनमेजयस्य सत्रे व्यासशिष्येण कथितमित्युत्तरेण संबन्धः ॥ ३३ ॥ ननु सर्पसत्रे जनमेजयं प्रति यद्वैशंपायनेनोक्तं तदेव शौनकं प्रति सूतेन वक्तुं प्रतिज्ञातम् । तत्र पौष्यं पौलोममास्तीकं च किमित्यप्रतिज्ञातमप्युच्यते सूतेनेतिचेत्तत्राह । कथितमिति । सत्रे व्यासशिष्येण यत कथितं तत्र भारते पौष्यं पौलोमं आस्तीकं च महीक्षितां यशोवीर्यं च वक्तुमिति दोषः । आदितः स्मृतमितियोजना । स्मरणं तु विस्तारार्थम् । अयं भावः । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं अविद्यया मृत्युं तीर्त्वेत्यादि श्रुतेर्गुरुसेवामाहात्म्यं गुरूणां च माहात्म्यं यज्ञादीनां विद्यार्थत्वं च निरूपणीयं तेष्वन्यतमाभावेऽपि विद्यानैवोदेतुमर्हतीति तदर्थमत्रा-

विचित्रार्थपदाख्यानमनेकसमयान्वितम् ।
प्रतिपन्नं नरैः प्राज्ञैर्वैराग्यमिव मोक्षिभिः ॥ ३५
आत्मैव वेदितव्येषु प्रियेष्विव हि जीवितम् ।
इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम् ॥ ३६
अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते ।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम् ॥ ३७
तदेतद्भारतं नाम कविभिस्तूपजीव्यते ।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥ ३८
इतिहासोत्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा ।
स्वरव्यञ्जनयोः कृत्स्ना लोकवेदाश्रयेव वाक् ॥ ३९
तस्य प्रज्ञाभिपन्नस्य विचित्रपदपर्वणः ।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च ॥ ४०
भारतस्येतिहासस्य श्रूयतां पर्वसंग्रहः ।
पर्वानुक्रमणी पूर्वं द्वितीयः पर्वसंग्रहः ॥ ४१
पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम् ।
ततः संभवपर्वोक्तमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ४२
दाहो जतुगृहस्यात्र हैडिम्बं पर्व चोच्यते ।
ततो बकवधः पर्व पर्व चैत्ररथं ततः ॥ ४३

ततः स्वयंवरो देव्याः पाञ्चाल्याः पर्व चोच्यते ।
क्षात्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम् ॥
विदुरागमनं पर्व राज्यलम्भस्तथैव च ।
अर्जुनस्य वने वासः सुभद्राहरणं ततः ॥ ४५
सुभद्राहरणादूर्ध्वं ज्ञेया हरणहारिका ।
ततः खाण्डवदाहाख्यं तत्रैव मयदर्शनम् ॥ ४६
सभापर्व ततः प्रोक्तं मन्त्रपर्व ततः परम् ।
जरासंधवधः पर्व पर्व दिग्विजयं तथा ॥ ४७
पर्व दिग्विजयादूर्ध्वं राजसूयिकमुच्यते ।
ततश्चार्घाभिहरणं शिशुपालवधस्ततः ॥ ४८
द्यूतपर्व ततः प्रोक्तमनुद्यूतमतः परम् ।
तत आरण्यकं पर्व किर्मीरवध उच्यते ॥ ४९
अर्जुनस्याभिगमनं पर्व ज्ञेयमतः परम् ।
ईश्वरार्जुनयोर्युद्धं पर्व कैरातसंज्ञितम् ॥ ५०
इन्द्रलोकाभिगमनं पर्व ज्ञेयमतः परम् ।
नलोपाख्यानमपि च धार्मिकं करुणोदयम् ॥ ५१
तीर्थयात्रा ततः पर्व कुरुराजस्य धीमतः ।
जटासुरवधः पर्व यक्षयुद्धमतः परम् ॥ ५२

---

चार्येणाख्यायिकामुखेनैव पौष्ये गुरुशुश्रूषामाहात्म्यं पौलोमे भार्गवाणां गुरूणां महाभाग्यमुक्तम्। आस्तीके जरत्कारोरप्रतिपन्नगार्हस्थ्यस्याकृतार्थत्वदर्शनेन यज्ञादीनामाविद्यकानामपि विद्याङ्गत्वमुक्तम् । विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादिश्रुतेः । तस्मान्महोपनिषदारम्भे एतत्त्रयकथनमावश्यकमिति आख्यायिकामुखेन कथ्यमानगहनोऽप्यर्थः। सुग्रहोभवतीत्यभिप्रेत्य महीभृतां यशोवीर्ये चोक्तमिति ॥ ३४ ॥ मोक्षिभिर्मोक्षार्थिभिर्नरैः । प्रतिपन्नं शरणीकृतं वैराग्यमिव । यथा परवैराग्यस्य नान्तरीयकं फलं कैवल्यमेवमेतच्छ्रवणस्यापीति भावः ॥ ३५ ॥ आत्मेति । आत्मज्ञानमेव स्वतः पुरुषार्थ इत्यात्मैव मुख्यं वेदितव्यम् । तत्प्रमाणस्य तत्त्वावेदकत्वात् । अन्यत् ज्ञानं तु सर्वं पुरुषसंस्कारद्वारा कर्माङ्गम्। यथोक्तं भट्टपादैः । 'सर्वत्रैव हि विज्ञानं संस्कारत्वेन गम्यते । पराङ्गं चात्मविज्ञानादन्यत्रेत्यवधार्यताम्' इति ॥ प्रधानार्थः ब्रह्मावाप्तिप्रयोजनः ॥ ३६ ॥ कविभिः काव्यकर्तृभिः 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति प्रसिद्धेस्तेषामद्भुतकाव्यरचने इदमेवालम्बनमित्यर्थः । अभिजातः कुलीनः ॥ ३८ ॥ उत्तमा चरमा बुद्धिर्ब्रह्मविद्याख्यान्तःकरणवृत्तिः ॥ ३९ ॥ प्रज्ञयाभिपन्नं प्राप्तं तस्य ॥ ४० ॥ पर्वणां उपक्रमोपसंहारैकरूप्यादिना एकमर्थं पूरयन्ति कार्त्स्न्येन प्रतिपादयन्ति । तानि पर्वाणि प्रकरणानि तेषां संग्रहः सम्यक् विविच्य ग्रहो यस्मिन् स पर्वसंग्रहो द्वितीयं पर्व ॥ ४१ ॥ अत्र केवलस्य सोपाख्यानस्य च भारतस्य स्मरणे आद्ययोः पर्वणोस्तात्पर्यं पौष्यादि त्रयस्य तूक्तमेवेति पर्व पञ्चकतात्पर्यमुक्तम् । तत्रास्तीके कर्मप्राधान्यमुक्तं तत्कार्मिणो देवभावं प्राप्यापीह जन्म लभन्ते । इत्यादावंशावतरणमुक्तं षष्ठे । अंशावतारणं देवानां भूमौ भागशोवतरणं आदिः प्रथमं पर्वेत्यर्थः । तेन पूर्वोक्ता सूतप्रतिज्ञा संगच्छते संभवे । अत्र लब्धजन्मनामपि न तेषां नियमेन स्वर्गतिः । किंतु सर्पनागादितामसयोनिप्राप्तिरपि कर्मवशाद्भवतीत्युक्तं सप्तमे । तत्राप्यर्थार्थिनो बन्धूनप्यन्यायेन घ्नन्तीति जातुषे दर्शितमष्टमे । तथा कामुकाः स्त्रियो बन्धूनपि घातयन्तीत्यविश्वसनीयास्ता इति हैडिम्बे नवमे दर्शितम् । श्वशूकरभक्ष्यस्यापि शरीरस्यार्थे परप्राणानपि पामराः प्रत्यहमाददते इति बकवधे दशमे सूचितम् । ततः कष्टतरां गतिं तमःप्रधानाः प्राणिनः प्राप्नुवन्तीति प्रबन्धेन परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेनेति श्रुत्यर्थ उपबृंहितः । एवमग्रेऽपि तत्तदाख्यानतात्पर्योन्नयनेन राजसानां सात्विकानां च गतिः परीक्षणीया । अग्रे प्रतिप्रकरणं वक्ष्यमाणत्वादिह ग्रन्थविस्तरभयान्न प्रपञ्च्यते ॥ ४२ ॥ चैत्ररथं अङ्गारपर्णचरितं पर्व ॥ ४३ ॥ विदुरागमनं राज्यलम्भश्चैकं पर्व लम्भो लाभः ॥ ४५ ॥ हरणं दायः पारिबर्हमिति यावत् । तस्य हारिकासमानयनं खाण्डवदाहो मयदर्शनं चैकैकं पर्व ॥ ४६ ॥ सभापर्व सभारचनं पर्व । मन्त्रो राजसूयार्थं मन्त्रणम् ॥ ४७ ॥ अनुद्यूतं पुनर्द्यूतम् ॥ ४९ ॥ अभिगमनं तपसे गमनम् ॥ ५० ॥ यक्षयुद्धं भीमेन ॥ ५१ ॥

निवातकवचैर्युद्धं पर्व चाजगरं ततः ।
मार्कण्डेयसमास्या च पर्वानन्तरमुच्यते ॥ ५३
संवादश्च ततः पर्व द्रौपदीसत्यभामयोः ।
घोषयात्रा ततः पर्व मृगस्वप्नोद्भवं ततः ॥ ५४
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमैन्द्रद्युम्नं तथैव च ।
द्रौपदीहरणं पर्व जयद्रथविमोक्षणम् ॥ ५५
पतिव्रताया माहात्म्यं सावित्र्याश्चैवमद्भुतम् ।
रामोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम् ॥ ५६
कुण्डलाहरणं पर्व ततः परमिहोच्यते ।
आरणेयं ततः पर्व वैराटं तदनन्तरम् ।
पाण्डवानां प्रवेशश्च समयस्य च पालनम् ॥ ५७
कीचकानां वधः पर्व पर्व गोग्रहणं ततः ।
आभिमन्योश्च वैराट्याः पर्व वैवाहिकं स्मृतम् ५८
उद्योगपर्व विज्ञेयमत ऊर्ध्वं महाद्भुतम् ।
ततः संजययानाख्यं पर्व ज्ञेयमतः परम् ॥ ५९
प्रजागरं तथा पर्व धृतराष्ट्रस्य चिन्तया ।
पर्व सानत्सुजातं वै गुह्यमध्यात्मदर्शनम् ॥ ६०
यानसन्धिस्ततः पर्व भगवद्यानमेव च ।
मातलीयमुपाख्यानं चरितं गालवस्य च ॥ ६१
सावित्रं वामदेव्यं च वैन्योपाख्यानमेव च ।
जामदग्न्यमुपाख्यानं पर्व षोडशराजकम् ॥ ६२
सभाप्रवेशः कृष्णस्य विदुलापुत्रशासनम् ।
उद्योगः सैन्यनिर्याणं विश्वोपाख्यानमेव च ॥ ६३
ज्ञेयं विवादपर्वात्र कर्णस्यापि महात्मनः ।
निर्याणं च ततः पर्व कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६४
रथातिरथसंख्या च पर्वोक्तं तदनन्तरम् ।
उलूकदूतागमनं पर्वामर्षविवर्धनम् ॥ ६५
अम्बोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम् ।
भीष्माभिषेचनं पर्व ततश्चाद्भुतमुच्यते ॥ ६६
जम्बूखण्डविनिर्माणं पर्वोक्तं तदनन्तरम् ।
भूमिपर्व ततः प्रोक्तं द्वीपविस्तारकीर्तनम् ॥ ६७
पर्वोक्तं भगवद्गीता पर्व भीष्मवधस्ततः ।
द्रोणाभिषेचनं पर्व संशप्तकवधस्ततः ॥ ६८
अभिमन्युवधः पर्व प्रतिज्ञापर्व चोच्यते ।
जयद्रथवधः पर्व घटोत्कचवधस्ततः ॥ ६९
ततो द्रोणवधः पर्व विज्ञेयं लोमहर्षणम् ।
मोक्षो नारायणास्त्रस्य पर्वानन्तरमुच्यते ॥ ७०
कर्णपर्व ततो ज्ञेयं शल्यपर्व ततः परम् ।
ह्रदप्रवेशनं पर्व गदायुद्धमतः परम् ॥ ७१
सारस्वतं ततः पर्व तीर्थवंशानुकीर्तनम् ।
अत ऊर्ध्वं सुबीभत्सं पर्व सौप्तिकमुच्यते ॥ ७२
ऐषीकं पर्व चोद्दिष्टमत ऊर्ध्वं सुदारुणम् ।
जलप्रदानिकं पर्व स्त्रीविलापस्ततः परम् ॥ ७३
श्राद्धपर्व ततो ज्ञेयं कुरूणामौर्ध्वदेहिकम् ।
चार्वाकनिग्रहः पर्व रक्षसो ब्रह्मरूपिणः ॥ ७४
आभिषेचनिकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः ।
प्रविभागो गृहाणां च पर्वोक्तं तदनन्तरम् ॥ ७५
शान्तिपर्व ततो यत्र राजधर्मानुशासनम् ।
आपद्धर्मश्च पर्वोक्तं मोक्षधर्मस्ततः परम् ॥ ७६
शुकप्रश्नाभिगमनं ब्रह्मप्रश्नानुशासनम् ।
प्रादुर्भावश्च दुर्वासः संवादश्चैव मायया ॥ ७७
ततः पर्व परिज्ञेयमानुशासनिकं परम् ।
स्वर्गारोहणिकं चैव ततो भीष्मस्य धीमतः ॥ ७८
ततोऽश्वमेधिकं पर्व सर्वपापप्रणाशनम् ।
अनुगीता ततः पर्व ज्ञेयमध्यात्मवाचकम् ॥ ७९
पर्व चाश्रमवासाख्यं पुत्रदर्शनमेव च ।
नारदागमनं पर्व ततः परमिहोच्यते ॥ ८०
मौसलं पर्व चोद्दिष्टं ततो घोरं सुदारुणम् ।
महाप्रस्थानिकं पर्व स्वर्गारोहणिकं ततः ॥ ८१
हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम् ।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा ॥ ८२

---

समास्या सहावस्थानम् ॥ ५३ ॥ घोषयात्रा कौरवाणाम् । मृगस्वप्नो धर्मराजस्य ॥ ५४ ॥ ऐन्द्रद्युम्नमित्यत्र क्रमो न विवक्षितः । संख्यायां तात्पर्यात् । समास्यान्तर्गतं चेदं पर्व ॥ ५५ ॥ कुण्डलाहरणं कर्णस्य । आरणेयं अरणीहरणं ब्राह्मणस्य । धर्मेण प्रवेशो विराटनगरे । समयस्य प्रतिज्ञातस्य प्राक् प्रवेशाद्वर्षस्य ॥ ५७ ॥ अभिमन्योः अर्जुनपुत्रस्य ॥ ५८ ॥ संजययानं पाण्डवान्प्रति ॥ ५९ ॥ भगवद्यानं कौरवान् प्रति ॥ ६१ ॥ विवादपर्व कृष्णकर्णसंवादरूपं पर्व ॥ ६४ ॥ संख्या भीष्मकृता उलूकदूतस्य पाण्डवान् प्रति आगमनम् ॥ ६५ ॥ आभिषेचनं सैनापत्ये ॥ ६६ ॥ जम्बूखण्डविनिर्माणं जम्बूद्वीपसन्निवेशः भूमिपर्वण्येव द्वीपविस्तारकीर्तनम् ॥ ६७ ॥ प्रतिज्ञा जयद्रथवधार्थम् ॥ ६९ ॥ ह्रदप्रवेशनं दुर्योधनस्य । गदायुद्धं तस्यैव भीमेन ॥ ७१ ॥ जलप्रदानिके एव स्त्रीविलापनम् ॥ ७३ ॥ कुरूणामौर्ध्वदेहिकं श्राद्धं पर्व । चार्वाकस्य ब्रह्मरूपिणो राक्षसस्य विप्रक्षोभान्निग्रहः पर्व ॥ ७४ ॥ शान्तिपर्वाह द्वाभ्यां शान्तीति ॥ ७६ ॥ भामयेति पाठान्तरं उभयत्रापि सुलभयेत्यर्थः ॥ ७७ ॥ अनुशासनं धर्माधर्मोपदेशः तत्संबद्धमानुशासनिकम् ॥ ७८ ॥ हरिवंशः पुराणं प्राक्प्रवृत्तं पर्व खिलसंज्ञितम् । शाखान्तरस्थं शाखान्तरे यदपेक्षा-

भविष्यपर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् ।
एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ ८३
यथावत्सूतपुत्रेण लौमहर्षणिना ततः ।
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु ॥ ८४
समासो भारतस्यायमत्रोक्तः पर्वसंग्रहः ।
पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम् ॥ ८५
संभवो जतुवेश्माख्यं हिडिम्बवकयोर्वधः ।
तथा चैत्ररथं देव्याः पाञ्चाल्याश्च स्वयंवरः ॥ ८६
क्षात्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम् ।
विदुरागमनं चैव राज्यलम्भस्तथैव च ॥ ८७
वनवासोऽर्जुनस्यापि सुभद्राहरणं ततः ।
हरणाहरणं चैव दहनं खाण्डवस्य च ॥ ८८
मयस्य दर्शनं चैव आदिपर्वणि कथ्यते ।
पौष्ये पर्वणि माहात्म्यमुत्तङ्कस्योपवर्णितम् ॥ ८९
पौलोमे भृगुवंशस्य विस्तारः परिकीर्तितः ।
आस्तीके सर्वनागानां गरुडस्य च संभवः ॥ ९०
क्षीरोदमथनं चैव जन्मोच्चैःश्रवसस्तथा ।
यजतः सर्पसत्रेण राज्ञः पारिक्षितस्य च ॥ ९१
कथेयमभिनिर्वृत्ता भरतानां महात्मनाम् ।
विविधाः संभवा राज्ञामुक्ताः संभवपर्वणि ॥ ९२
अन्येषां चैव शूराणामृषेर्द्वैपायनस्य च ।
अंशावतरणं चात्र देवानां परिकीर्तितम् ॥ ९३
दैत्यानां दानवानां च यक्षाणां च महौजसाम् ।
नागानामथ सर्पाणां गन्धर्वाणां पतत्रिणाम् ॥ ९४
अन्येषां चैव भूतानां विविधानां समुद्भवः ।
महर्षेराश्रमपदे कण्वस्य च तपस्विनः ॥ ९५
शकुन्तलायां दुष्यन्ताद्भरतश्चापि जज्ञिवान् ।
यस्य लोकेषु नाम्नेदं प्रथितं भारतं कुलम् ॥ ९६
वसूनां पुनरुत्पत्तिर्भागीरथ्यां महात्मनाम् ।
शान्तनोर्वेश्मनि पुनस्तेषां चारोहणं दिवि ॥ ९७

---

वशात्पठ्यते तात्खिलमिति वैदिकी प्रसिद्धिः । यथा बह्वृचानां श्रीसूक्तमेधासूक्तादीनां संहिताकाले पाठो दृश्यते । एवमस्मिन्नितिहासे यत्पुराणान्तरस्थमाकांक्षावशात्पठ्यते तत्खिलं हरिवंशाख्यमित्याह । हरिवंश इति । अत एवास्य खिलस्य पुराणमिति विशेषणम् । तथा हि अत्र विष्णुचर्या विष्णुपुराणोक्ता साकल्येन दृश्यते ॥ ८२ ॥ एवं भविष्यपुराणकथा च । खिलेष्वेवाद्भुतं महदिति पृथग्वाक्यम् । अद्भुतं पुष्करवाराहनारसिंहवामनप्रादुर्भावादिकैलासयात्रात्रिपुरवधान्तम् । एतदेव पर्वशतम् । एकैकस्मिन्महाप्रकरणे अवान्तरप्रकरणानामन्तर्भावविवक्षयाऽष्टादशसंख्यात्वेन लौमहर्षणिना उक्तम् ॥ ८३ ॥ तत्र कस्मिन्महापर्वणि कत्यवान्तरपर्वाणि तेषु च के केऽर्थाः प्रतिपाद्याः । एकैकस्मिन्महापर्वणि श्लोकसंख्या च का इत्येतद्वक्तुमुपक्रमते । समास इति । अयं बुद्धिस्थोऽनुक्रमण्यध्यायः । स च भारतस्य समासः संक्षेपपर्वेत्यर्थः । अत्र प्रस्तुते द्वितीयेऽध्याये पर्वसंग्रहः । एवं पौष्यादिभिश्च मयदर्शनान्तैः सप्तदशभिश्चैवमेकोनविंशत्या पर्वभिरादिपर्व । आदित्वं चास्य न प्राथम्यात्किंतु सर्वेषामादिरुत्पत्तिरिह कीर्त्यत इति । एवं सभादीनामपि संज्ञा तत्तदेकैकार्थप्राधान्याद्बोध्या । अत्रायं* संग्रहः । "आदौ सभारण्यविराटउद्यमे भीष्मे गुरौ सूर्यजशल्यसौप्तिके । स्त्रीशान्तिदानाश्वमखाश्रमास्थितौ मौसल्ययानद्युगमे खिलेषु च" पर्वाणिवृ १८ त्यंक ९ नृप १६ वार्धी ४ द्‌ ११ धी ५ मै ८ क १ केट्‌ ४ त्रि ३ धीः ५ वार्द्धौ ४ दु १ द्वि २ त्रि ३ भू १ भू १ भू १ ग्रामा ३ श्चेति शतं क्रमादीति ॥ ८५ ॥ अत्र प्राधान्यस्तत्तदाख्यानतात्पर्याणि गाणेश्यां संगृहीतानि कुत्स्वदृपवद्गृत्वाव्यञ्जोयः सेवते गुरुम् । तं विद्या देवताश्चानुगृह्णन्तीत्याह पौष्यकृत् ।" खलो न प्रार्थनासाध्यः स च दैवेन ताडितः । अभ्येति मृदुतां पश्चादुत्तङ्के तक्षको यथा ॥ ८९ ॥ शास्त्रोल्लंघनतो वह्निपुलोमानाववापतुः । शापमृत्यू इति पुनः पौलोमे तुर्यमीरितम् । लोकान्मन्त्रान्महेन्द्राच्च ब्राह्मणे वीर्यमद्भुतम् । तक्षको येन खे तस्थावित्यास्तीकेऽनुवर्णितम् । अन्याय्यमपि मात्रोक्तं सद्यो यो नानुतिष्ठति । तं भस्मीकुर्वते विप्रा वेदाश्चाहिगणं यथा ॥ मिथ्यावादेन ये दासीकृतास्तत्संततिः स्वकाम् ॥ संततिं नाशयत्येव गरुत्मानिव पन्नगान् - आयुर्हानिर्महान् शोको हिंसायां चाति संभ्रमः ॥ दरोरिव भवन्त्येव दारसक्तस्य दुर्मतेः । प्रजया पैतृकमृणं छेत्तुं दारान् करोति चेत् ॥ तदा जरत्कारुरिव कार्यान्ते प्रव्रजेद्गृहात् ॥ ९० ॥ तत्त्वामृतं शास्त्रसिन्धोः समं लब्धं सुरासुरैः । आस्वादितं विष्णुभक्तैः सुरैर्नान्यैः क्रिया जितैः ॥ देवपङ्क्तौ सुधां लेभे दैत्यो देहच्छिदा समम् । सूचितश्चित्तचक्षुर्भ्यां काश्यामिव महेश्वरात् ॥ ९१ ॥ क्रिया मायन्ति सन्तोपीत्युक्तं व्यासस्य जन्मनि । देवासुरनरेष्वेवं सन्तीत्यंशावतारणे ॥ ९३ ॥ अत्यल्पस्यापि पापस्य विपाकमतिदारुणम् । अन्वभूतां चिरं वह्नगणीमाण्डव्यडुण्डुभौ ॥ ९४ ॥ शिष्टानां चेतसस्तुष्टिर्धर्मे प्रामाण्यमश्नुते । शकुन्तलामीहमानं दुष्यन्तस्य मनो यथा ॥ ९६ । पितुर्दुःखं हरन् पुत्रः श्रेयो लक्ष्मीं च विन्दति । भीष्मस्पूरुवन्मानात्पतान्ति च ययातिवत् ॥ ९७ ॥

*अयं संग्रहःप्राचीनरीत्या स्वमतानुरोधेनत्वग्रे वक्ष्यते इति । अग्रे बहुश आदिपर्वण्येकोनविंशति पर्वाणि हरिवंशे पर्वद्वयं चेति गणनायाः कृतत्वात् ।

तेजोंऽशानां च संपातो भीष्मस्याप्यत्र संभवः ।
राज्यान्निवर्तनं तस्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितिः ॥ ९८
प्रतिज्ञापालनं चैव रक्षा चित्राङ्गदस्य च ।
हते चित्राङ्गदे चैव रक्षा भ्रातुर्यवीयसः ॥ ९९
विचित्रवीर्यस्य तथा राज्ये संप्रतिपादनम् ।
धर्मस्य नृषु संभूतिरणीमाण्डव्यशापजा ॥ १००
कृष्णद्वैपायनाच्चैव प्रसूतिर्वरदानजा ।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च पाण्डवानां च संभवः ॥१
वारणावतयात्रायां मन्त्रो दुर्योधनस्य च ।
कूटस्य धार्तराष्ट्रेण प्रेषणं पाण्डवान्प्रति ॥ २
हितोपदेशश्च पथि धर्मराजस्य धीमतः ।
विदुरेण कृतो यत्र हितार्थं म्लेच्छभाषया ॥ ३
विदुरस्य च वाक्येन सुरुङ्गोपक्रमक्रिया ।
निषाद्याः पञ्चपुत्रायाः सुप्ताया जतु वेश्मनि॥४
पुरोचनस्य चात्रैव दहनं संप्रकीर्तितम् ।
पाण्डवानां वने घोरे हिडिम्बायाश्च दर्शनम् ॥ ५
तत्रैव च हिडिम्बस्य वधो भीमान्महाबलात् ।
घटोत्कचस्य चोत्पत्तिरत्रैव परिकीर्तिता ॥ ६
महर्षेर्दर्शनं चैव व्यासस्यामिततेजसः ।
तदाज्ञयैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ ७
अज्ञातचर्यया वासो यत्र तेषां प्रकीर्तितः ।
बकस्य निधनं चैव नागराणां च विस्मयः ॥ ८

संभवश्चैव कृष्णाया धृष्टद्युम्नस्य चैव ह ॥
ब्राह्मणात्समुपश्रुत्य व्यासवाक्यप्रचोदिताः । ९
द्रौपदीं प्रार्थयन्तस्ते स्वयंवरदिदृक्षया ।
पञ्चालानभितो जग्मुर्यत्र कौतूहलान्विताः ॥ १०
अङ्गारपर्णं निर्जित्य गङ्गाकूलेऽर्जुनस्तदा ।
सख्यं कृत्वा ततस्तेन तस्मादेव च शुश्रुवे ॥ ११
तापत्यमथ वासिष्ठमौर्वं चाख्यानमुत्तमम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पञ्चालानभितो ययौ ॥१२
पाञ्चालनगरे चापि लक्ष्यं भित्त्वा धनंजयः ।
द्रौपदीं लब्धवानत्र मध्ये सर्वमहीक्षिताम् ॥ १३
भीमसेनार्जुनौ यत्र संरब्धान्पृथिवीपतीन् ।
शल्यकर्णौ च तरसा जितवन्तौ महामृधे ॥ १४
दृष्ट्वा तयोश्च तद्वीर्यमप्रमेयममानुषम् ।
शङ्कमानौ पाण्डवांस्तान् रामकृष्णौ महामती॥१५
जग्मतुस्तैः समागन्तुं शालां भार्गववेश्मनि ।
पञ्चानामेकपत्नीत्वे विमर्शो द्रुपदस्य च ॥ १६
पञ्चेन्द्राणामुपाख्यानमत्रैवाद्भुतमुच्यते ।
द्रौपद्या देवविहितो विवाहश्चाप्यमानुषः ॥ १७
क्षत्तुश्च धार्तराष्ट्रेण प्रेषणं पाण्डवान्प्रति ।
विदुरस्य च संप्राप्तिर्दर्शनं केशवस्य च ॥ १८
खाण्डवप्रस्थवासश्च तथा राज्यार्धसर्जनम् ।
नारदस्याज्ञया चैव द्रौपद्याः समयक्रिया ॥ १९

क्षेत्रबीजे विना द्रोणधृष्टद्युम्नपुर्जनि. । केवलात्कर्मण इतिप्रोक्तं संभवपर्वणि ॥ १ ॥ विपक्षार्यमिभिर्लुब्धा घातयन्तिस्म बान्धवान् । ईश्वरस्तानरन्येरेत्युक्तं जातुपर्वणि ॥ २ ॥ अविश्वास्याः स्त्रियः कामाद्धातयन्त्यपि बान्धवान् । इति दर्शितवान्व्यासो हिडिम्बवधपर्वणि ॥ ६ ॥ यस्मिन्गेहे पुरे वापि वसेत्पुण्यतमो जनः । उपकुर्यात्तमित्येवमुक्तं बकवधेऽपि च ॥ ८ ॥ ब्राह्मणानुग्रहादेव क्षत्रं जयति नान्यथा । इति तापत्यदृष्टान्तादाह चैत्ररथे मुनिः ॥ ११ ॥ सूर्यस्य कन्यातपतीं नष्टं राज्यं च लब्धवान् । वसिष्ठस्य प्रसादेन राजा संवरणो यथा । वसिष्ठस्य शतं पुत्रानाशयामास कौशिकः । नैनं बबाधिरे ब्रह्महत्यास्तास्तपसो बलात् ॥ प्राज्ञः खलार्दितो देहं संत्यक्षति न तु क्षमाम् । न शशाप वसिष्ठो हि पुत्रघ्नमपि कौशिकम् ॥ कौशिके कार्यतपसि राधेये शौर्यभीरुते । खले च वाचि माधुर्यं बीजसंस्कारसंकरात् ॥ ब्राह्मणो गर्भसंस्थोऽपि माननीयो मनीषिणाम् । और्वो हि मातुरुरुस्थः क्षत्रमन्धमचीकरत् ॥१२॥ लोकवेदाविरोधेऽपि मातुर्वाक्यं न लङ्घयेत् । इत्येकस्या रेमिरेऽमी पञ्चेत्युक्तं स्वयंवरे ॥ ननु वेदविरुद्धेयमेकस्या बहुभर्तृता । नैकस्यै बहवो नैका द्वौ पती इति च श्रुती ॥ 'नैकस्यै बहवः सह पतय इति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते' इति च श्रुतिविशेष । 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥ द्रोणोवहिचतुष्कोत्थो योषिदमेरभावतः । अमित्रयोत्थितासीता भूस्थापित्रोरभावत. ॥ अग्निद्वयोत्थिता देवा न स्पृशन्ति क्षितिं हिते । देवजा. पार्थ माद्रेया भूपुमाभिविवर्जिता.॥ क्षिप्तमात्रं हविर्वह्नौ मिथुनत्वमुपागतम् । एकाभिजावत पुत्रौ द्रुपदस्य सुराधिकौ ॥ सर्वे सर्वात्मका देवा विरजोवयवा यतः । सर्वे एव समाः सर्वेऽनन्ता इति हि वेदगीः ॥ न तेषां व्यभिचारोऽस्ति न चेत्सूर्ययमौ कथम् । पितापुत्रौ सती कुन्तीमुपेयातां सुरोत्तमौ ॥ द्रौपदी देवजा पार्था देवजा यदि भुञ्जते । न तेषामत्र दोषोऽस्ति देवा एव हि ते स्वयम् ॥ श्रूयते न हि वै देवान् पापं गच्छति सर्वथा । तस्माद्यज्ञैर्देवभावं प्रार्थयीत निरेनसम् ॥ एतद्वैवाहिके व्यासो नानाख्यानोपबृंहणे. । दर्शयामास लोकाना संशयस्यापनुत्तये ॥ १३ ॥ प्रणमन्ति जिघांसन्तोऽप्यनुकूले विधातरि । पाण्डुपुत्रान्धार्तराष्ट्रा इत्युक्तं विदुरागमे ॥ यान् त्यक्ता दग्धुमिच्छन्ति तान्वर्धयति केशव । निरस्ता. पाण्डवा दारान् राज्यं कीर्तिं च लेभिरे ॥११८॥

सुन्दोपसुन्दयोस्तद्वदाख्यानं परिकीर्तितम् ।
अनन्तरं च द्रौपद्या सहासीनं युधिष्ठिरम् १२०
अनुप्रविश्य विप्रार्थे फाल्गुनो गृह्य चायुधम् ।
मोक्षयित्वा गृहं गत्वा विप्रार्थं कृतनिश्चयः ॥ २१
समयं पालयन्वीरो वनं यत्र जगाम ह ।
पार्थस्य वनवासे च उलूप्या पथि संगमः ॥ २२
पुण्यतीर्थानुसंयानं बभ्रुवाहनजन्म च ।
तत्रैव मोक्षयामास पञ्च सोऽप्सरसः शुभाः ॥२३
शापाद्ग्राहत्वमापन्ना ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।
प्रभासतीर्थे पार्थेन कृष्णस्य च समागमः ॥ २४
द्वारकायां सुभद्रा च कामयानेन भामिनी ।
वासुदेवस्यानुमते प्राप्ता चैव किरीटिना ॥ २५
गृहीत्वा हरणं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ।
अभिमन्योः सुभद्रायां जन्म चोत्तमतेजसः ॥ २६
द्रौपद्यास्तनयानां च संभवोनुप्रकीर्तितः ।
विहारार्थं च गतयोः कृष्णयोर्यमुनामनु ॥ २७
संप्राप्तिश्चक्रधनुषोः खाण्डवस्य च दाहनम् ।
मयस्य मोक्षो ज्वलनाद्भुजंगस्य च मोक्षणम् ॥२८
महर्षेर्मन्दपालस्य शार्ङ्ग्यां तनयसंभवः ।
इत्येतदादिपर्वोक्तं प्रथमं बहुविस्तरम् ॥ २९

अध्यायानां शते द्वे तु संख्याते परमर्षिणा ।
सप्तविंशतिरध्याया व्यासेनोत्तमतेजसा ॥ ३०
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।
श्लोकाश्च चतुराशीतिर्मुनिनोक्ता महात्मना ॥ ३१
द्वितीयं तु सभापर्व बहुवृत्तान्तमुच्यते ।
सभाक्रिया पाण्डवानां किंकराणां च दर्शनम् ३२
लोकपालसभाख्यानं नारदाद्देवदर्शिनः ।
राजसूयस्य चारम्भो जरासंधवधस्तथा ॥ ३३
गिरिव्रजे निरुद्धानां राज्ञां कृष्णेन मोक्षणम् ।
तथा दिग्विजयोऽत्रैव पाण्डवानां प्रकीर्तितः ॥३४
राज्ञामागमनं चैव सार्हणानां महाक्रतौ ।
राजसूयेऽर्घसंवादे शिशुपालवधस्तथा ॥ ३५
यज्ञे विभूतिं तां दृष्ट्वा दुःखामर्षान्वितस्य च ।
दुर्योधनस्यावहासो भीमेन च सभातले ॥ ३६
यत्रास्य मन्युरुद्भूतो येन द्यूतमकारयत् ।
यत्र धर्मसुतं द्यूते शकुनिः कितवोऽजयत् ॥ ३७
यत्र द्यूतार्णवे मग्नां द्रौपदीं नौरिवार्णवात् ।
धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः स्नुषां परमदुःखिताम् ॥ ३८
तारयामास तांस्तीर्णाञ्ज्ञात्वा दुर्योधनो नृपः ।
पुनरेव ततो द्यूते समाह्वयत पाण्डवान् ॥ १३९

---

एकात्मानोऽपि भिद्यन्ते स्त्रीभिः सुन्दोपसुन्दवत् । तस्मात्सख्युरपि स्त्रीभिर्न संभाषेत बुद्धिमान् । विप्रार्थान्पालयेज्ज्ञात्वाप्यापदं द्वादशाब्दिकीम् । इति दर्शितवान् व्यास आर्जुन्या तीर्थयात्रया॥१२०॥न ज्ञातीनां वचः प्रेक्ष्यं वरे श्रेयस्युपागते। इतीव कृष्णो विजयं स्वस्वसारमहारयत् । मातुलस्य सुतां पार्थो धर्मतो भगिनीं सतीम् । कथं जहार धर्मात्मापीति चेत्तच्छृणुष्व मे। भ्रातृस्वस्रोः सुतौ भ्रातृस्वसारौ यदि शौनक। सप्तमादूर्ध्वमप्येष संबन्धश्छिद्यतां कथम्। तस्मात्तयोः स्वसृभ्रातृभावो भाक्तो विगोत्रयोः । दाम्पत्यभावस्तु तयोर्मन्त्रालिङ्गात्परिस्फुटः । आयाहीन्द्रपथिभिरीळितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व । तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव । योषापत्यं मातुलीयं यथा भागः पितृष्वसुः । पुत्रस्यैवं वपान्तेंऽशं जुषस्वेन्द्रेत्यृषिर्जगौ ॥ २५ ॥ मानघ्नस्यापि जामातुर्मानं संवर्द्धयेद्बुधः । स्वसुर्हर्त्रेर्जुनायापि ददुर्वित्तानि वृष्णयः ॥ २६ ॥ अग्निमप्यग्निमांद्यार्तं नरनारायणावृषी । खाण्डवौषधिदानेन नीरोगं चक्रतुर्यथा । देवोऽपि दैत्यदुःखार्तो मानुषादेस्तु का कथा । शरणीकरणीयोऽतः सर्वदुःखापहो हरिः '। भुजंगस्य अश्वसेनस्य ॥ २८ ॥' पित्र्यादृणादमुक्तस्य सकलं सुकृतं वृथा । वियोनावप्यतः पुत्रान् जनयेन्मन्दपालवत् । शार्ङ्गकान्स्वतपोरक्षनागं मातार्जुनो-मयम् । भवाग्नि तत्तुकोमार्तस्त्रोनतान् शरणं व्रजेत् ॥ २९ ॥ चतुराशीतीतिदैर्घ्यमार्षम् । इत्यादिपर्वतात्पर्यं संक्षेपेणोपवर्णितम् ॥ ३१ ॥ सभापर्वादितात्पर्यं मुख्यतः कथ्यतेऽधुना । दानवेन्द्रेण तुष्टेन सभा दत्ताद्भुता भुवि । दिवि देवी सभा यज्ञप्राप्या तस्याः शताधिका ॥ ३२ ॥ ततः शतगुणा ब्राह्मी लभ्या विष्णोः समर्चनात् । इत्युक्त्या नारदः पार्थं यज्ञेशार्चामचीकरत् । बहूनां यो वधेयत्तस्तं छलेनापि निर्दहेत् । जरासन्धवधेनैतद्दर्शितं मुनिना मुने ॥ ३३ ॥ वित्तार्जनं मखायैव महतामिति दर्शयन् । ऊचे दिग्विजयादूर्ध्वं राजसूयक्रतुक्रियाम् ॥ ३४ ॥ तत्रैवार्घाभिहरणे विष्णुर्देवनरर्षिषु । आदौ पूज्योऽथ तद्द्वेष्टा सद्यो नश्येदितीरितम् । गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः । तीव्रध्यानाद्धरेः साम्यं लेभिरे कीटभृङ्गवत् ॥ ३५ ॥ न तथा शूलयक्ष्माद्याः पीडयन्ति गदा नरान् । यथा परेषामुत्कर्षः पापिनं धार्तराष्ट्रवत् ' ॥ ३६ ॥ कितवो द्यूतकारः ॥ ३७ ॥ द्रौपदीं तारयामासेत्युत्तरेणान्वयः । 'न बाह्योनान्तरः शत्रुर्बाधते भगवज्जनम् । क्रोधदुःशासनौ कृष्णामापद्यपि न तेरतुः ॥ ३८ ॥ ज्ञात्वापि परमाहात्म्यं न खलः खलतां त्यजेत् । दृष्ट्वापि कृष्णमाहात्म्यं नैवाशाम्यत्सुयोधनः' । द्यूते द्यूतनिमित्तम् ॥ १३९ ॥

जित्वा स वनवासाय प्रेषयामास तांस्ततः
एतत्सर्वं समापर्वं समाख्यातं महात्मना ॥ १४०
अध्यायाः सप्ततिर्ज्ञेयास्तथा चाष्टौ प्रसंख्यया
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु पञ्च श्लोकशतानि च ॥४१
श्लोकाश्चैकादश ज्ञेयाः पर्वण्यस्मिन्द्विजोत्तमाः ।
अतःपरं तृतीयं तु ज्ञेयमारण्यकं महत् ॥ ४२
वनवासं प्रयातेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
पौरानुगमनं चैव धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥ ४३
अन्नौषधीनां च कृते पाण्डवेन महात्मना ।
द्विजानां भरणार्थं च कृतमाराधनं रवेः ॥ ४४
धौम्योपदेशात्तिग्मांशुप्रसादादन्नसंभवः ।
हितं च ब्रुवतः क्षत्तुः परित्यागोऽम्बिकासुतात् ४५
त्यक्तस्य पाण्डुपुत्राणां समीपगमनं तथा ।
पुनरागमनं चैव धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ४६
कर्णप्रोत्साहनाच्चैव धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
वनस्थान्पाडवान्हन्तुं मन्त्रो दुर्योधनस्य च॥ ४७
तं दुष्टभावं विज्ञाय व्यासस्यागमनं द्रुतम् ।
निर्याणप्रतिषेधश्च सुरभ्याख्यानमेव च ॥ ४८
मैत्रेयागमनं चात्र राज्ञश्चैवानुशासनम् ।
शापोत्सर्गश्च तेनैव राज्ञो दुर्योधनस्य च ॥ ४९
किर्मीरस्य वधश्चात्र भीमसेनेन संयुगे ।
वृष्णीनामागमश्चात्र पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ५०
श्रुत्वा शकुनिना द्यूते निकृत्या निर्जितांश्च तान् ।
क्रुद्धस्यानुप्रशमनं हरेश्चैव किरीटिना ॥ ५१
परिदेवनं च पाञ्चाल्या वासुदेवस्य सन्निधौ ।
आश्वासनं च कृष्णेन दुःखार्तायाः प्रकीर्तितम् ५२
तथा सौभवधाख्यानमत्रैवोक्तं महर्षिणा ।
सुभद्रायाःसपुत्रायाः कृष्णेन द्वारकां पुरीम् ॥ ५३
नयनं द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नेन चैव ह ।
प्रवेशः पाण्डवेयानां रम्ये द्वैतवने ततः ॥ ५४

धर्मराजस्य चात्रैव संवादः कृष्णया सह ।
संवादश्च तथा राज्ञा भीमस्यापि प्रकीर्तितः ॥५५
समीपं पाण्डुपुत्राणां व्यासस्यागमनं तथा ।
प्रतिस्मृत्याथ विद्याया दानं राज्ञो महर्षिणा ॥५६
गमनं काम्यके चापि व्यासे प्रतिगते ततः ।
अस्त्रहेतोर्विवासश्च पार्थस्यामिततेजसः ॥ ५७
महादेवेन युद्धं च किरातवपुषा सह ।
दर्शनं लोकपालानामस्त्रप्राप्तिस्तथैव च ॥ ५८
महेन्द्रलोकगमनमस्त्रार्थे च किरीटिनः ।
यत्र चिन्ता समुत्पन्ना धृतराष्ट्रस्य भूयसी ॥ ५९
दर्शनं बृहदश्वस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
युधिष्ठिरस्य चार्तस्य व्यसने परिदेवनम् ॥ १६०
नलोपाख्यानमत्रैव धर्मिष्ठं करुणोदयम् ।
दमयन्त्याः स्थितिर्यत्र नलस्य चरितं तथा ॥ ६१
तथाऽक्षहृदयप्राप्तिस्तस्मादेव महर्षितः
लोमशस्यागमस्तत्र स्वर्गात्पाण्डुसुतान्प्रति ॥ ६२
वनवासगतानां च पाण्डवानां महात्मनाम् ।
स्वर्गे प्रवृत्तिराख्याता लोमशेनार्जुनस्य वै ॥ ६३
संदेशादर्जुनस्यात्र तीर्थाभिगमनक्रिया ।
तीर्थानां च फलप्राप्तिःपुण्यत्वं चापि कीर्तितम् ।६४
पुलस्त्यतीर्थयात्रा च नारदेन महर्षिणा ।
तीर्थयात्रा च तत्रैव पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ६५
कर्णस्य परिमोक्षोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरंदरात् ।
तथा यज्ञविभूतिश्च गयस्यात्र प्रकीर्तिता ॥ ६६
आगस्त्यमपि चाख्यानं यत्र वातापिभक्षणम् ।
लोपामुद्राभिगमनमपत्यार्थमृषेस्तथा ॥ ६७
ऋष्यशृङ्गस्य चरितं कौमारब्रह्मचारिणः
जामदग्न्यस्य रामस्य चरितं भूरितेजसः ॥ ६८
कार्तवीर्यवधो यत्र हैहयानां च वर्ण्यते ।
प्रभासतीर्थे पाण्डूनां वृष्णिभिश्च समागमः ॥ ६९

---

सत्यं सता महान्पाशो येन बद्धाः पदात्पदम् । वञ्चिता अपि नो चेलुः समर्था अपि पाण्डवाः ॥४०॥ पौरानुगमनं पौरकर्तृकमनुगमनम् ॥४३॥ विप्रार्थं भास्करं भेजे न तु राज्याय धर्मराट् । धर्मायाभ्यर्चयेद्देवं न राज्यायेति दर्शयन् । प्रव्राजित-पथि रिपुं यद्वन्यान्मङ्गलाय तन् ।पाण्डवानां प्रवसतां किर्मीरोन्मथनं यथा ॥ ४४ ॥ उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये । भ्रातरं पथ्यवक्तारं धृतराष्ट्रो व्यवासयत् १४५ ॥ शत्रुस्तव ऊरू भेत्स्यतीति शापोत्सर्गः ॥ ४९ ॥ अत्र धृतराष्ट्रसमीपे कथिन इति शेषः ॥ ५० ॥ निकृत्या छलेन ॥ ५१ ॥ परिदेवनं विलापः ॥ ५२ ॥ महर्षिणा कृष्णेन ॥ ५३ ॥ देवतासु प्रसन्नासु देवशत्रून्विनाशयेत् । इतीव देवैर्दत्तास्त्रो निर्जघानार्जुनोऽसुरान् । अकामे कामिनीशापो देहगुप्त्यै क्वचिद्भवेत् । पार्थस्येवोर्वशीशापः प्रच्छन्नं वा समीप्सतः ॥ ५८ ॥ व्यसनं द्यूतजमनर्थम् ॥ ६० ॥ स्थितिर्विपद्यपि मर्यादाप्रतिपालनम् । दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्तेन शोकोपनीयते । इतीव श्रावितो राजा नलोपाख्यानमद्भुतम् ॥६१ ॥ स्वर्गे प्रवृत्तिःस्वर्गीयवृत्तान्तः ॥ ६३॥ ऋषेरगस्त्यस्य ॥६७॥ क्रोधीपुत्रान्कलत्रं च हन्ति लोकांश्च भूरिशः । जमदग्निःसपुत्रोऽत्र निदर्शनमुदीरितम् ॥ ६८॥

सौकन्यमपि चाख्यानं च्यवनो यत्र भार्गवः ।
शर्यातियज्ञे नासत्यौ कृतवान्सोमपीतिनौ ॥ १७०
ताभ्यां च यत्र स मुनिर्यौवनं प्रतिपादितः ।
मांधातुश्चाप्युपाख्यानं राज्ञोऽत्रैव प्रकीर्तितम् ७१
जन्तूपाख्यानमत्रैव यत्र पुत्रेण सोमकः ।
पुत्रार्थमयजद्राजा लेभे पुत्रशतं च सः ॥ ७२
ततः श्येनकपोतीयमुपाख्यानमनुत्तमम् ।
इन्द्राग्नी यत्र धर्मश्चाप्यजिज्ञासञ्छिबिं नृपम् ॥ ७३
अष्टावक्रीयमत्रैव विवादो यत्र बन्दिना ।
अष्टावक्रस्य विप्रर्षेर्जनकस्याध्वरेऽभवत् ॥ ७४
नैयायिकानां मुख्येन वरुणस्यात्मजेन च ।
पराजितो यत्र बन्दी विवादेन महात्मना ॥ ७५
विजित्य सागरं प्राप्तं पितरं लब्धवानृषिः ।
यवक्रीतस्य चाख्यानं रैभ्यस्य च महात्मनः ॥
गन्धमादनयात्रा च वासो नारायणाश्रमे ॥ ७६
नियुक्तो भीमसेनश्च द्रौपद्या गन्धमादने ।
व्रजन्पथि महाबाहुर्दृष्टवान्पवनात्मजम् ॥ ७७
कदलीषण्डमध्यस्थं हनूमन्तं महाबलम् ।
यत्र सौगन्धिकार्थेऽसौ नलिनीं तामधर्षयत् ॥ ७८
यत्रास्य युद्धमभवत्सुमहद्राक्षसैः सह ।
यक्षैश्चैव महावीर्यैर्मणिमत्प्रमुखैस्तथा ॥ ७९
जटासुरस्य च वधो राक्षसस्य वृकोदरात् ।
वृषपर्वणो राजर्षेस्ततोऽभिगमनं स्मृतम् ॥ ८०
आर्ष्टिषेणाश्रमे चैषां गमनं वास एव च ।
प्रोत्साहनं च पाञ्चाल्या भीमस्यात्र महात्मना ८१
कैलासारोहणं प्रोक्तं यत्र यक्षैर्बलोत्कटैः ।
युद्धमासीन्महाघोरं मणिमत्प्रमुखैः सह ॥ ८२

समागमश्च पाण्डूनां यत्र वैश्रवणेन च ।
समागमश्चार्जुनस्य तत्रैव भ्रातृभिः सह ॥ ८३
अवाप्य दिव्यान्यस्त्राणि गुर्वर्थं सव्यसाचिना ।
निवातकवचैर्युद्धं हिरण्यपुरवासिभिः ॥ ८४
निवातकवचैर्घोरैर्दानवैः सुरशत्रुभिः ।
पौलोमैः कालकेयैश्च यत्र युद्धं किरीटिनः ॥ ८५
वधश्चैषां समाख्यातो राज्ञस्तेनैव धीमता ।
अस्त्रसंदर्शनारम्भो धर्मराजस्य संनिधौ ॥ ८६
पार्थस्य प्रतिषेधश्च नारदेन सुरर्षिणा ।
अवरोहणं पुनश्चैव पाण्डूनां गन्धमादनात् ॥ ८७
भीमस्य ग्रहणं चात्र पर्वताभोगवर्ष्मणा ।
भुजगेन्द्रेण बलिना तस्मिन्सुगहने वने ॥ ८८
अमोक्षयद्यत्र चैनं प्रश्नानुक्त्वा युधिष्ठिरः ।
काम्यकागमनं चैव पुनस्तेषां महात्मनाम् ॥ ८९
तत्रस्थांश्च पुनर्द्रष्टुं पाण्डवान्पुरुषर्षभान् ।
वासुदेवस्यागमनमत्रैव परिकीर्तितम् ॥ ९०
मार्कण्डेयसमास्यायामुपाख्यानानि सर्वशः ।
पृथोर्वैन्यस्य यत्रोक्तमाख्यानं परमर्षिणा ॥ ९१
संवादश्च सरस्वत्यास्तार्क्ष्यर्षेः सुमहात्मनः ।
मत्स्योपाख्यानमत्रैव प्रोच्यते तदनन्तरम् ॥ ९२
मार्कण्डेयसमास्या च पुराणं परिकीर्त्यते ।
ऐन्द्रद्युम्नमुपाख्यानं धौन्धुमारं तथैव च ॥ ९३
पतिव्रतायाश्चाख्यानं तथैवाङ्गिरसं स्मृतम् ।
द्रौपद्याः कीर्तितश्चात्र संवादः सत्यभामया ॥ ९४
पुनर्द्वैतवनं चैव पाण्डवाः समुपागताः ।
घोषयात्रा च गन्धर्वैर्यत्र बद्धः सुयोधनः ॥ १९५

देवत्वं देवतानां हि ब्राह्मण्याच्च्यवनो यतः । शर्यातियज्ञे नासत्यौ कृतवान्सोमपायिनौ । सोमस्य पीतं पानं तद्वन्तौ सोमपीतिनौ ॥ १७० ॥ पुत्रेण पशुभूतेन याजको नरकं याति न याज्यः पापमाचरन् जन्तुं हत्वा सोमकाय शतं पुत्रान्ददद्यथा ॥ ७२ ॥ अजिज्ञासत् परीक्षितवान् उत्कृत्यापि स्वमांसानि दत्वा वाप्यखिलं वपुः । शिबिः कपोतामिव च त्रायेत शरणागतम् ॥ ७३ ॥ नैयायिकानां मुख्येन युक्तिरेव बलीयसी । न तु श्रुतिरि ति मन्यमानेन ॥ ७५ ॥ सागरं प्राप्तं सागरं गतं पितरं कहोडम् । ऋषिः अष्टावक्रः । न वेद्यं युक्तितो लभ्यं न च वेद्यो गुरुं विना । अष्टावक्रयवक्रीतकथाभ्यामेतदीरितम् ॥ ७६ ॥ निर्गुणः परमात्मायं देहं व्याप्यावतिष्ठते । इत्युक्त्वाह कपीन्द्राय नावमन्ये न लङ्घये ॥ ७७ ॥ सौगन्धिकार्थे कल्हारार्थे 'सौगन्धिकं तु कल्हारे पद्मरागे पिकत्तृणे' इति मेदिनी । नलिनीं पुष्करिणीम् । अधर्षयत् आकुलीकृतवान् ॥ ७८ ॥ तीर्थयात्राखल्वधौ समानाविति दर्शयन् । पपाठतीर्थयात्रान्ते जटासुरवधादिकम् ॥ १८० ॥ राज्ञोग्र इति शेषः । तेनैव अर्जुनेनैव एषां दानवानां वध आख्यातः ॥ ८६ ॥ शारीराद्बलतो ब्रह्मन्बलं वैद्यं महत्तमं । भीमं ह्यजगरग्रस्तं धर्मराजो ह्यमोचयत् । पर्वतवत् आभोगः परिपूर्णत्वं यस्य तादृशं वर्ष्म शरीरं यस्य तेन । पर्वततुल्येनेत्यर्थः ॥ ८८ ॥ समास्यायां सहोपवेशने ॥ ९१ ॥ यावत्कीर्तिरकीर्तिर्वा तावत्स्वर्नरकेऽथवा । पुमानस्तीति जानीयादिन्द्रद्युम्ननिदर्शनात् ॥ ९३ ॥ पित्रोः शुश्रूषया व्याधः सिद्धः पत्युः पतिव्रता । सिध्यन्ति ब्राह्मणा वन्हेर्योगिनस्त्वात्मसेवया । पतिव्रतानां धर्माश्च द्रौपदीसत्यभामयोः । संवादादधिगन्तव्याः सेव्यास्तासां सुखावहाः ॥ १९४ ॥

ह्रियमाणस्तु मन्दात्मा मोक्षितोऽसौ किरीटिना
धर्मराजस्य चात्रैव मृगस्वप्ननिदर्शनात् ॥ ९६
काम्यके काननश्रेष्ठे पुनर्गमनमुच्यते ।
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमत्रैव बहुविस्तरम् ॥ ९७
दुर्वाससोऽप्युपाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम् ।
जयद्रथेनापहारो द्रौपद्याश्चाश्रमान्तरात् ॥ ९८
यत्रैनमन्वयाद्भीमो वायुवेगसमो जवे ।
चक्रे चैनं पञ्चशिखं यत्र भीमो महाबलः ॥ ९९
रामायणमुपाख्यानमत्रैव बहुविस्तरम् ।
यत्र रामेण विक्रम्य निहतो रावणो युधि ॥२००
सावित्र्याश्चाप्युपाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम् ।
कर्णस्य परिमोक्षोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरंदरात् ॥ १
यत्रास्य शक्तिं तुष्टोऽसावदादेकवधाय च ।
आरणेयमुपाख्यानं यत्र धर्मोऽन्वशात्सुतम् ॥ २
जग्मुर्लब्धवरा यत्र पाण्डवाः पश्चिमां दिशम् ।
एतदारण्यकं पर्व तृतीयं परिकीर्तितम् ॥ ३
अत्राध्यायशते द्वे तु संख्यया परिकीर्तिते ।
एकोनसप्ततिश्चैव तथाध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ ४
एकादश सहस्राणि श्लोकानां षट् शतानि च
चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ५
अतःपरं निबोधेदं वैराटं पर्व विस्तरम् ।
विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम् ॥ ६
दृष्ट्वा संनिदधुस्तत्र पाण्डवा ह्यायुधान्युत ।
यत्र प्रविश्य नगरं छद्मना न्यवसंस्तु ते ॥ ७
पाञ्चालीं प्रार्थयानस्य कामोपहतचेतसः ।
दुष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात् ॥ ८
पाण्डवान्वेषणार्थं च राज्ञो दुर्योधनस्य च ।
चाराः प्रस्थापिताश्चात्र निपुणाः सर्वतो दिशम् ॥९
न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पाण्डवानां महात्मनाम् ।
गोग्रहश्च विराटस्य त्रिगर्तैः प्रथमं कृतः ॥ २१०
यत्रास्य युद्धं सुमहत्तैरासील्लोमहर्षणम् ।
ह्रियमाणश्च यत्रासौ भीमसेनेन मोक्षितः ॥ ११
गोधनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवैः ।
अनन्तरं च कुरुभिस्तस्य गोग्रहणं कृतम् ॥ १२
समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरवो युधि ।
प्रत्याहृतं गोधनं च विक्रमेण किरीटिना ॥ १३
विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिनः ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य सौभद्रमरिघातिनम् ॥ १४
चतुर्थमेतद्विपुलं वैराटं पर्व वर्णितम् ।
अत्रापि परिसंख्याता अध्यायाः परमर्षिणा ॥१५
सप्तषष्टिरथो पूर्णा श्लोकानामपि मे शृणु ।
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु श्लोकाः पञ्चाशदेव तु ॥१६
उक्तानि वेदविदुषा पर्वण्यस्मिन्महर्षिणा ।
उद्योगपर्व विज्ञेयं पञ्चमं शृण्वतः परम् ॥ १७
उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु जिगीषया ।
दुर्योधनोऽर्जुनश्चैव वासुदेवमुपस्थितौ ॥ १८
साहाय्यमस्मिन्समरे भवान्नौ कर्तुमर्हति ।
इत्युक्ते वचने कृष्णो यत्रोऽवाच महामतिः ॥ १९
अयुध्यमानमात्मानं मन्त्रिणं पुरुषर्षभौ ।
अक्षौहिणीं वा सैन्यस्य कस्य किं वा ददाम्यहम्२०
वव्रे दुर्योधनः सैन्यं मन्दात्मा यत्र दुर्मतिः ।
अयुध्यमानं सचिवं वव्रे कृष्णं धनंजयः ॥ २२१

---

साधूनभिबुभूषुर्हि स्वयमेवाभिभूयते । इति संदर्शयन्नाह घोषयात्रां महामुनिः । न देवब्राह्मणार्थेऽपि हिंसा वह्वी प्रशस्यते । इति संदर्शयन्नाह मृगस्वप्ननिदर्शनम् ॥९६॥ व्रीहिद्रौणिकदृष्टान्ताद्वृत्तिशुद्धोऽतिथिप्रियः । अत्यल्पेनापि दानेन सिध्यतीत्येतदीरितम् ॥ ९७ ॥ दौर्वाससे तु सार्वात्म्यं कारुण्यं चेरितं हरेः । तत्तृप्त्याहि जगत्तृप्तमत्यल्पेनापि तृप्यतः ॥ ९८ ॥ भीमो भयंकरः भीमः पाण्डवः । पञ्चसटामिति पाठेऽपि स एवार्थः । परस्त्रीस्पर्शमात्रेण जयद्रथदशास्ययोः । आद्यः पञ्चसटो जातः सकुटुम्बो हतः परः ॥ ९९ ॥ कार्यार्थी मित्रमान्विच्छन्नृशंसः स्यान्महानपि । जघान वालिनं रामो निर्दोषमपि साहसात् ॥ २०० ॥ पतिव्रताया माहात्म्यं कुलद्वयसुखावहम् । भर्तृमृत्युहरं चैव सावित्रीह निदर्शनम् । परिमोक्षो वियोगः ॥ १ ॥ कर्णो दाता पात्रमिन्द्रो देयं स्वात्मसमं धनम् । शक्त्या विनिमयात्तज्जो धर्मो नाभ्यभवद्रिपुम् । आरणेयं अरणीहरणम् । धर्मेण मृगरूपिणा । सर्वत्र चोदितार्थानामुपसंहारवर्णनम् । आरणेये धर्मपार्थसंवादव्याजतः कृतम् ॥ २ ॥ आदिरेकोनविंशत्या पर्वभिर्नवभिः सभा । आरण्यकं षोडशभिर्धर्ममेव न्यरूपयत् ॥ ३ ॥ धर्मं उक्तस्त्रिभिः सेवा नीतियुद्धादि हेतुकम् । शोकभोगफलं चार्थं वक्ति पर्वभिरष्टभिः ॥ ६ ॥ विराटे प्रथमं प्रोक्तः सेवाधर्मः प्रवेशने । तत्रापि खलबाधास्तीत्युक्तं कीचकदारणे ॥ ८ ॥ पौरुषं दर्शयित्वैव स्वामिने गोत्रनामनी । प्रकीर्तयेदिति प्रोचे मुनिर्गोग्रहपर्वणि ॥ १२ ॥ धर्मेणैवापदं तीर्त्वा परंसौभाग्यमश्नुते । अभिमन्योर्विवाहाख्ये पर्वण्येतत्प्रदर्शितम् ॥ १४ ॥ मंदात्मा स्वार्थानभिज्ञः । दुर्मतिर्विक्षिप्तचित्तः । एक एव सहायोऽलक्ष्मीशः किं सैन्यकोटिभिः । इति वव्रेऽर्जुनः कृष्णं न सैन्यं धार्तराष्ट्रवत् ॥ २१ ॥

मद्रराजं च राजानमायान्तं पाण्डवान्प्रति ।
उपहारैर्वञ्चयित्वा वर्त्मन्येव सुयोधनः ॥ २२२
वरदं तं वरं वव्रे साहाय्यं क्रियतां मम ।
शल्यस्तस्मै प्रतिश्रुत्य जगामोद्दिश्य पाण्डवान् २३
शान्तिपूर्वं चाकथयद्यत्रेन्द्रविजयं नृपः
पुरोहितप्रेषणं च पाण्डवैः कौरवान्प्रति ॥ २४
वैचित्रवीर्यस्य वचः समादाय पुरोधसः ।
तथेन्द्रविजयं चापि यानं चैव पुरोधसः ॥ २५
संजयं प्रेषयामास शमार्थी पाण्डवान्प्रति ।
यत्र दूतं महाराजो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ॥ २६
श्रुत्वा च पाण्डवान्यत्र वासुदेवपुरोगमान् ।
प्रजागरः सम्प्रजज्ञे धृतराष्ट्रस्य चिन्तया ॥ २७
विदुरो यत्र वाक्यानि विचित्राणि हितानि च ।
श्रावयामास राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ॥ २८
तथा सनत्सुजातेन यत्राध्यात्ममनुत्तमम् ।
मनस्तापान्वितो राजा श्रावितः शोकलालसः॥२९
प्रभाते राजसमितौ संजयो यत्र वा विभो ।
ऐकात्म्यं वासुदेवस्य प्रोक्तवानर्जुनस्य च ॥ २३०
यत्र कृष्णो दयापन्नः संधिमिच्छन्महामतिः ।
स्वयमागाच्छमं कर्तुं नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३१
प्रत्याख्यानं च कृष्णस्य राज्ञा दुर्योधनेन वै ।
शमार्थे याचमानस्य पक्षयोरुभयोर्हितम् ॥ ३२
दम्भोद्भवस्य चाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम् ।
वरान्वेषणमत्रैव मातलेश्च महात्मनः ॥ ३३
महर्षेश्चापि चरितं कथितं गालवस्य वै ।
विदुलायाश्च पुत्रस्य प्रोक्तं चाप्यनुशासनम्॥ ३४
कर्णदुर्योधनादीनां दुष्टं विज्ञाय मन्त्रितम् ।
योगेश्वरत्वं कृष्णेन यत्र राज्ञां प्रदर्शितम् ॥ ३५
रथमारोप्य कृष्णेन यत्र कर्णोऽनुमन्त्रितः ।
उपायपूर्वं शौटीर्यात्प्रत्याख्यातश्च तेन सः ॥ ३६
आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिंदमः ।
पाण्डवानां यथावृत्तं सर्वमाख्यातवान् हरिः॥ ३७
ते तस्य वचनं श्रुत्वा मन्त्रयित्वा च यद्धितम् ।
सांग्रामिकं ततः सर्वं सज्जं चक्रुः परंतपाः ॥ ३८
ततो युद्धाय निर्याता नराश्वरथदन्तिनः ।
नगराद्धास्तिनपुराद्बलसंख्यानमेव च ॥ ३९
यत्र राज्ञाह्युलूकस्य प्रेषणं पाण्डवान्प्रति ।
श्वो भाविनि महायुद्धे दौत्येन कृतवान्प्रभुः २४०
रथातिरथसंख्यानमम्बोपाख्यानमेव च ।
एतत्सुबहुवृत्तान्तं पञ्चमं पर्व भारते ॥ ४१
उद्योगपर्व निर्दिष्टं संधिविग्रहमिश्रितम् ।
अध्यायानां शतं प्रोक्तं षडशीतिर्महर्षिणा ॥ ४२
श्लोकानां षट्सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथैवाष्टौ महात्मना ॥ ४३
व्यासेनोदारमतिना पर्वण्यस्मिंस्तपोधनाः ।
अतः परं विचित्रार्थं भीष्मपर्व प्रचक्षते ॥ ४४
जम्बूखण्डविनिर्माणं यत्रोक्तं संजयेन ह ।
यत्र यौधिष्ठिरं सैन्यं विषादमगमत्परम् ॥ ४५
यत्र युद्धमभूद्घोरं दशाहानि सुदारुणम् ।
कश्मलं यत्र पार्थस्य वासुदेवो महामतिः ॥ ४६
मोहजं नाशयामास हेतुभिर्मोक्षदर्शिभिः ।
समीक्ष्याधोक्षजः क्षिप्रं युधिष्ठिरहिते रतः ॥२४७

---

वैचित्रवीर्यस्य पाण्डवस्य पुरोधसः सकाशात् वचः इन्द्रविजयतात्पर्यं पुरोहितप्रेषणौचित्यं च समादाय अभ्युपेत्य संजयं प्रेषयामासेति उत्तरेण संबन्धः । भवेत्सहायवान् पूर्वं साम्ना शत्रुमथार्थयेत् । उद्योगसंजयप्रेष्य पर्वभ्यामेतदीरितम् ॥ २५ ॥ शोके लालसा आसक्तिर्यस्य स तथाभूतस्तापहरं अध्यात्मं श्रावितोऽपि तापं न जहाविति भावः । न निद्राति परार्थार्थी न च बुध्यति बोधितः । इति प्रजागरे सानत्सुजाते चापि वर्णितम् ॥२९॥ समितौ सभायाम् । ऐकात्म्यं एकचित्तत्वम् । वस्तुतस्तु यत्र कुत्रचित्प्रसङ्गे वासुदेवार्जुनयोर्जीवेशयोरैकात्म्यमभेदमेव शास्ति संजयः । तज्ज्ञानं विना राज्ञः शोकतरणासंभवात् । राजा तु मौढ्यात् अधिलोकपरतयैव तमर्थं निगृह्णातीति नास्यशोको नश्यतीति शास्त्रहृदयम् ॥२३०॥ संधिम् अविरोधम् । नागो हस्ती । तेन समानसंज्ञं हस्तिनापुरमित्यर्थः ॥ ३१ ॥

दुष्टं कृष्णनिग्रहरूपं योगेश्वरत्वं वैश्वरूप्यं ऐश्वर्यं वैश्वरूप्यं च हरेः श्रुत्वावलोक्य च दुर्योधनो न मेनेऽस्य वाक्यं म्लेच्छः श्रुतेरिव ॥३५॥ अनुमन्त्रितः उपजापितः उपायपूर्वं भेदपूर्वम् । शौटीर्यात् गर्वात् । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोर्विश्वस्तमाश्रितम् । न त्यजेद्देहनाशेऽपीत्युक्तं कर्णोपजापतः॥ ३६ ॥ निन्दन्त्यसन्तोऽपि सतो बैडालव्रतिका इति । युधिष्ठिरमिवोलूक इत्यूचे बादरायणः ॥ ४० ॥ यद्बलाज्जयमाशास्ते धार्तराष्ट्रस्तमर्कजम् । प्राहार्धरथ इत्युच्चैर्भीष्मस्तेजोवधेप्सया ॥ न किंचित्तपसोऽसाध्यं यतो जन्मान्तरं विना । पुंस्त्वं शिखण्डिनी प्रापेत्यम्बोपाख्यान ईरितम् ॥ ४१ ॥ संधिविग्रहमिश्रितं कृष्णदौत्येन संधिः उलूकदौत्येन विग्रहः ताभ्यां मिश्रितम् ॥ ४२ ॥ अश्वेपतिं विना सेना कूर्मामलकमुष्टिवत् । इति सेनापतिं भीष्मं चक्रे कौरवनन्दनः ॥ वैराजदर्शनादूर्ध्वं परब्रह्मान्वेक्षणम् । इतीव जम्बूखण्डादि गीतायाः पूर्वमीरितम् । कश्मलं विषादम् ॥ ४६ ॥ मोहजं

रथादाप्लुत्य वेगेन स्वयं कृष्ण उदारधीः ।
प्रतोदपाणिराधावद्भीष्मं हन्तुं व्यपेतभीः ॥ २४८
वाक्यप्रतोदाभिहतो यत्र कृष्णेन पाण्डवः ।
गाण्डीवधन्वा समरे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४९
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य यत्र पार्थो महाधनुः ।
विनिघ्नन्निशितैर्बाणै रथाद्भीष्ममपातयत् ॥ २५०
शरतल्पगतश्चैव भीष्मो यत्र बभूव ह ।
षष्ठमेतत्समाख्यातं भारते पर्व विस्तृतम् ॥ ५१
अध्यायानां शतं प्रोक्तं तथा सप्तदशापरे ।
पञ्च श्लोकसहस्राणि संख्ययाष्टौ शतानि च ५२
श्लोकाश्च चतुराशीतिरस्मिन्पर्वणि कीर्तिताः ।
व्यासेन वेदविदुषा संख्याता भीष्मपर्वणि ॥ ५३
द्रोणपर्व ततश्चित्रं बहुवृत्तान्तमुच्यते ।
सैनापत्येऽभिषिक्तोऽथ यत्राचार्यः प्रतापवान्॥५४
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ।
ग्रहणं धर्मराजस्य पाण्डुपुत्रस्य धीमतः ॥ ५५
यत्र संशप्तकाः पार्थमपनिन्यू रणाजिरात् ।
भगदत्तो महाराजो यत्र शक्रसमो युधि ॥ ५६
सुप्रतीकेन नागेन स हि शान्तः किरीटिना ।
यत्राभिमन्युं बहवो जघ्नुरेकं महारथाः ॥ ५७
जयद्रथमुखा बाल शूरमप्राप्तयौवनम् ।
हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन यत्र पार्थेन संयुगे ॥ ५८
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ।
यत्र भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ॥ ५९
अन्वेषणार्थं पार्थस्य युधिष्ठिरनृपाज्ञया ।
प्रविष्टौ भारतीं सेनामप्रधृष्यां सुरैरपि ॥ २६०
संशप्तकावशेषं च कृतं निःशेषमाहवे ।
संशप्तकानां वीराणां कोट्यो नव महात्मनाम् ६१
किरीटिनाभिनिष्क्रम्य प्रापिता यमसादनम् ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राश्च तथा पाषाणयोधिनः ॥ ६२
नारायणाश्च गोपालाः समरे चित्रयोधिनः ।
अलंबुपः श्रुतायुश्च जलसंधश्च वीर्यवान् ॥ ६३
सौमदत्तिर्विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ।
घटोत्कचादयश्चान्ये निहता द्रोणपर्वणि ॥ ६४
अश्वत्थामाऽपि चात्रैव द्रोणे युधि निपातिते ।
अस्त्रं प्रादुश्चकारोग्रं नारायणममर्षितः ॥ ६५
आग्नेयं कीर्त्यते यत्र रुद्रमाहात्म्यमुत्तमम् ।
व्यासस्य चाप्यागमनं माहात्म्यं कृष्णपार्थयोः॥६६
सप्तमं भारते पर्व महदेतदुदाहृतम् ।
यत्र ते पृथिवीपालाः प्रायशो निधनं गताः ॥६७
द्रोणपर्वणि ये शूरा निर्दिष्टाः पुरुषर्षभाः ।
अत्राध्यायशतं प्रोक्तं तथाध्यायाश्च सप्ततिः ॥ ६८
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा नव शतानि च ।
श्लोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥ ६९
पाराशर्येण मुनिना संचिन्त्य द्रोणपर्वणि ।
अतः परं कर्णपर्व प्रोच्यते परमाद्भुतम् ॥ २७०
सारथ्ये विनियोगश्च मद्रराजस्य धीमतः ।
आख्यातं यत्र पौराणं त्रिपुरस्य निपातनम् ॥७१
प्रयाणे परुषश्चात्र संवादः कर्णशल्ययोः ।
हंसकाकीयमाख्यानं तत्रैवाक्षेपसंहितम् ॥ ७२
वधः पाण्ड्यस्य च तथा अश्वत्थाम्ना महात्मना ।
दण्डसेनस्य च ततो दण्डस्य च वधस्तथा ॥ ७३
द्वैरथे यत्र कर्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
संशयं गमितो युद्धे मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ७४
अन्योन्यं प्रति च क्रोधो युधिष्ठिरकिरीटिनोः ।
यत्रैवानुनयः प्रोक्तो माधवेनार्जुनस्य हि ॥ ७५
प्रतिज्ञापूर्वकं चापि वक्षो दुःशासनस्य च ।
भित्त्वा वृकोदरो रक्तं पीतवान्यत्र संयुगे ॥ ७६
द्वैरथे यत्र पार्थेन हतः कर्णो महारथः ।
अष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद्भारतचिन्तकैः ॥ ७७
एकोनसप्ततिः प्रोक्ता अध्यायाः कर्णपर्वणि ।
चत्वार्येव सहस्राणि नव श्लोकशतानि च ॥ ७८
चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ।
अतः परं विचित्रार्थं शल्यपर्व प्रकीर्तितम् ॥ २७९

---

ममतोत्थं समीक्ष्य भीष्मस्य दुर्जयत्वामितिशेष ॥ ४७ ॥ श्रुति स्मृतेर्बलवती भक्तौ त्वेताद्विपर्यय । भीष्मं जिघासता पार्थसूतेनैतत्प्रदर्शितम् ॥ ४८ ॥ न देहमनुशोचन्ते वैष्णवा जितमृत्यव । भीष्म कालान्तराकाङ्क्षी शरतल्पेऽवसच्चिरम् ॥ ५१ ॥ क्षात्रात् ब्राह्मं मह श्रेष्ठमिति मत्वा सुयोधन । जयाशया स्वमाचार्यं सैनापत्येऽभ्यषेचयत ॥५४॥ संशप्तकास्तु ये संख्ये सर्वथाप्यनिवर्तिनस्ते अपनिन्युं अपसृतवन्त रणाजिराद्रणस्थानात् ॥ ५६ ॥ संशप्तकवधोत्साही जिष्णु पुत्रवधार्दितः । प्रतिज्ञां महती कृत्वा 'तीर्णश्रीपतिमायया ॥ ५९ ॥ संतोष्य साधुता यान्ति प्रतिकूले विधातरि । द्रोणस्य मृत्युकाले हि धर्मोप्यनृतभागभूत् । अनृतेन हतो द्रोणो नत्वा नारायणास्त्रम् नानोपायैररीन् हत्वा स्वीयान् रक्षितवान् हरि ' ॥ ६५ ॥ मिषता पश्यताम् ॥ ७४ ॥ 'कार्याकार्यविचार हि क्रोधाविष्टा न कुर्वते । अपिबच्छोणित भ्रातुर्भीमसेनो हि संयुगे ॥ ७६ ॥ सौरैरैन्द्रि निजध्ने प्रागिदानी तद्विपर्यय' । सहायो हन्तुरीशान' पक्षपातविवर्जित ॥ ७७ ॥

हतप्रवीरे सैन्ये तु नेता मद्रेश्वरोऽभवत् ।
यत्र कौमारमाख्यानमभिषेकस्य कर्म च ॥ २८०
वृत्तानि रथयुद्धानि कीर्त्यन्ते यत्र भागशः ।
विनाशः कुरुमुख्यानां शल्यपर्वणि कीर्त्यते ॥ ८१
शल्यस्य निधनं चात्र धर्मराजान्महात्मनः ।
शकुनेश्च वधोऽत्रैव सहदेवेन संयुगे ॥ ८२
सैन्ये च हतभूयिष्ठे किंचिच्छिष्टे सुयोधनः ।
ह्रदं प्रविश्य यत्रासौ संस्तभ्यापो व्यवस्थितः ॥ ८३
प्रवृत्तिस्तत्र चाख्याता यत्र भीमस्य लुब्धकैः ।
क्षेपयुक्तैर्वचोभिश्च धर्मराजस्य धीमतः ॥ ८४
ह्रदात्समुत्थितो यत्र धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ।
भीमेन गदया युद्धं यत्रासौ कृतवान्सह ॥ ८५
समवाये च युद्धस्य रामस्यागमनं स्मृतम् ।
सरस्वत्याश्च तीर्थानां पुण्यता परिकीर्तिता ॥ ८६
गदायुद्धं च तुमुलमत्रैव परिकीर्तितम् ।
दुर्योधनस्य राज्ञोऽथ यत्र भीमेन संयुगे ॥ ८७
ऊरू भग्नौ प्रसह्याजौ गदया भीमवेगया ।
नवमं पर्व निर्दिष्टमेतदद्भुतमर्थवत् ॥ ८८
एकोनषष्टिरध्यायाः पर्वण्यत्र प्रकीर्तिताः ।
संख्याता बहुवृत्तान्ताः श्लोकसंख्याऽत्र कथ्यते ॥ ८९
त्रीणि श्लोकसहस्राणि द्वे शते विंशतिस्तथा ।
मुनिना संप्रणीतानि कौरवाणां यशोभृता ॥ २९०
अतः परं प्रवक्ष्यामि सौप्तिकं पर्व दारुणम् ।
भग्नोरुं यत्र राजानं दुर्योधनममर्षणम् ॥ ९१
अपयातेषु पार्थेषु त्रयस्तेऽभ्याययू रथाः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सायाह्ने रुधिरोक्षितम् ॥ ९२
समेत्य ददृशुर्भूमौ पतितं रणमूर्धनि ।
प्रतिजज्ञे दृढक्रोधो द्रौणिर्यत्र महारथः ॥ ९३
अहत्वा सर्वपञ्चालान्धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
पाण्डवांश्च सहामात्यान्न विमोक्ष्यामि दंशनम् ॥ ९४
यत्रैव मुक्त्वा राजानमपक्रम्य त्रयो रथाः ।
सूर्यास्तमनवेलायामासेदुस्ते महद्वनम् ॥ ९५
न्यग्रोधस्याथ महतो यत्राधस्ताद्व्यवस्थिताः ।
ततः काकान्बहून् रात्रौ दृष्ट्वोलूकेन हिंसितान् ॥ ९६

द्रौणिः क्रोधसमाविष्टः पितुर्वधमनुस्मरन् ।
पञ्चालानां प्रसुप्तानां वधं प्रति मनो दधे ॥ ९७
गत्वा च शिबिरद्वारि दुर्दर्शं तत्र राक्षसम् ।
घोररूपमपश्यत्स दिवमावृत्य धिष्ठितम् ॥ ९८
तेन व्याघातमस्त्राणां क्रियमाणमवेक्ष्य च ।
द्रौणिर्यत्र विरूपाक्षं रुद्रमाराध्य सत्वरः ॥ ९९
प्रसुप्तान्निशि विश्वस्तान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
पञ्चालान्सपरीवारान्द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ३००
कृतवर्मणा च सहितः कृपेण च निजघ्निवान् ।
यत्रामुच्यन्त ते पार्थाः पञ्च कृष्णबलाश्रयात् ॥ १
सात्यकिश्च महेष्वासः शेषाश्च निधनं गताः ।
पञ्चालानां प्रसुप्तानां यत्र द्रोणसुताद्वधः ॥ २
धृष्टद्युम्नश्च सूतेन पाण्डवेषु निवेदितः ।
द्रौपदी पुत्रशोकार्ता पितृभ्रातृवधार्दिता ॥ ३
कृतानशनसंकल्पा यत्र भर्तॄनुपाविशत् ।
द्रौपदीवचनाद्यत्र भीमो भीमपराक्रमः ॥ ४
प्रियं तस्याश्चिकीर्षन्वै गदामादाय वीर्यवान् ।
अन्वधावत्सुसंक्रुद्धो भारद्वाजं गुरोः सुतम् ॥ ५
भीमसेनभयाद्यत्र दैवेनाभिप्रचोदितः ।
अपाण्डवायेति रुषा द्रौणिरस्त्रमवासृजत् ॥ ६
मैवमित्यब्रवीत्कृष्णः शमयंस्तस्य तद्वचः ।
यत्रास्त्रमस्त्रेण च तच्छमयामास फाल्गुनः ॥ ७
द्रौणेश्च द्रोहबुद्धित्वं वीक्ष्य पापात्मनस्तदा ।
द्रौणिद्वैपायनादीनां शापाश्चान्योन्यकारिताः ॥ ८
मणिं तथा समादाय द्रोणपुत्रान्महारथात् ।
पाण्डवाः प्रददुर्हृष्टा द्रौपद्यै जितकाशिनः ॥ ९
एतद्वै दशमं पर्व सौप्तिकं समुदाहृतम् ।
अष्टादशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्युक्ता महात्मना ॥ ३१०
श्लोकानां कथितान्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया ।
श्लोकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता मुनिना ब्रह्मवादिना ॥ ११
सौप्तिकैषीके संबद्धे पर्वण्युत्तमतेजसी ।
अत ऊर्ध्वमिदं प्राहुः स्त्रीपर्व करुणोदयम् ॥ १२
पुत्रशोकाभिसंतप्तः प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
कृष्णोपनीतां यत्रासावायसीं प्रतिमां दृढाम् ॥ १३

जयाशा जीविताशा च सुक्षीणस्यापि दुस्त्यजा । शल्यं ह्रदं च शरणं कृतवान्यत्सुयोधनः'॥८३॥ समवाये समये । 'युद्धान्ते तीर्थयात्रां यत्प्रभूते बादरायणः । तेन जानीमहे हिंसा धर्म्यापि दुरितप्रदा ॥ ८६ ॥ नाधर्मेण विना शत्रुः शक्यो निर्जेतुमुल्बणः'। भीमसेनो ह्यधो नाभेः प्रजहार सुयोधनम्'॥ ८७ ॥ दंशनं कवचम् ॥ ९४ ॥ 'विदुषो ब्राह्मणस्यापि दैन्यात्स्याद्दारुणा मतिः । अश्वत्थामापि यत्सुप्तानभांश्च न्यवधीद्रुषा'॥३००॥उपाविशत् भर्तॄनुपरुद्धवती ॥४॥ जितकाशिनः जयश्लाघिनः ॥ ९ ॥ सौप्तिकैषीके आख्याने अत्र पर्वणि संबद्धे इत्यर्थः ॥ १२ ॥

भीमसेनद्रोहबुद्धिर्धृतराष्ट्रो बभञ्ज ह ।
तथा शोकाभितप्तस्य धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥३१४
संसारगहनं बुद्ध्या हेतुभिर्मोक्षदर्शनैः ।
विदुरेण च यत्रास्य राज्ञ आश्वासनं कृतम् ॥ १५
धृतराष्ट्रस्य चात्रैव कौरवायोधनं तथा ।
सान्तःपुरस्य गमनं शोकार्तस्य प्रकीर्तितम् ॥ १६
विलापो वीरपत्नीनां यत्रातिकरुणः स्मृतः ।
क्रोधावेशः प्रमोहश्च गान्धारीधृतराष्ट्रयोः ॥ १७
यत्र तान् क्षत्रियाः शूरान्संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंश्चैव ददृशुर्निहतान् रणे ॥ १८
पुत्रपौत्रवधार्तायास्तथात्रैव प्रकीर्तिता ।
गान्धार्याश्चापि कृष्णेन क्रोधोपशमनक्रिया ॥ १९
यत्र राजा महाप्राज्ञः सर्वधर्मभृतां वरः ।
राज्ञां तानि शरीराणि दाहयामास शास्त्रतः ३२०
तोयकर्माणि चारब्धे राज्ञामुदकदानिके ।
गूढोत्पन्नस्य चाख्यानं कर्णस्य पृथयात्मनः॥ २१
सुतस्यैतदिह प्रोक्तं व्यासेन परमर्षिणा ।
एतदेकादशं पर्व शोकवैक्लव्यकारणम् ॥ २२
प्रणीतं सज्जनमनो वैक्लव्याश्रुप्रवर्तकम् ।
सप्तविंशतिरध्यायाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ॥ २३
श्लोकसप्तशतीचापि पञ्चसप्ततिसंयुता ।
संख्यया भारताख्यानमुक्तं व्यासेन धीमता ॥२४
अतःपरं शान्तिपर्व द्वादशं बुद्धिवर्धनम् ।
यत्र निर्वेदमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२५
घातयित्वा पितॄन् भ्रातॄन्पुत्रान्संबन्धिमातुलान् ।
शान्तिपर्वणि धर्माश्च व्याख्याताः शारतल्पिकाः ॥
राजभिर्वेदितव्यास्ते सम्यग्ज्ञानबुभुत्सुभिः ।
आपद्धर्माश्च तत्रैव कालहेतुप्रदर्शिनः॥ २७
यान्बुद्ध्वा पुरुषः सम्यक्सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ।
मोक्षधर्माश्च कथिता विचित्रा बहुविस्तराः ॥ २८
द्वादशं पर्व निर्दिष्टमेतत्प्राज्ञजनप्रियम् ।
अत्र पर्वणि विज्ञेयमध्यायानां शतत्रयम् ॥ २९
त्रिंशच्चैव तथाध्याया नव चैव तपोधनाः ।
चतुर्दश सहस्राणि तथा सप्त शतानिच ॥ ३३०
सप्त श्लोकास्तथैवात्र पञ्चविंशतिसंख्यया ।
अत ऊर्ध्वं च विज्ञेयमनुशासनमुत्तमम् ॥ ३१
यत्र प्रकृतिमापन्नः श्रुत्वा धर्मविनिश्चयम् ।
भीष्माद्भागीरथीपुत्रात्कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ३२
व्यवहारोऽत्र कार्त्स्न्येन धर्मार्थी यः प्रकीर्तितः ।
विविधानां च दानानां फलयोगाः प्रकीर्तिताः ३३
तथा पात्रविशेषाश्च दानानां च परो विधिः ।
आचारविधियोगश्च सत्यस्य च परागतिः ॥ ३४
महाभाग्यं गवां चैव ब्राह्मणानां तथैव च ।
रहस्यं चैव धर्माणां देशकालोपसंहितम् ॥ ३५
एतत्सुबहुवृत्तांतमुत्तमं चानुशासनम् ।
भीष्मस्यात्रैव संप्राप्तिः स्वर्गस्य परिकीर्तिता ॥३६
एतत्त्रयोदशं पर्व धर्मनिश्चयकारकम् ।
अध्यायानां शतं त्वत्र षट्चत्वारिंशदेव तु ॥ ३७
श्लोकानां तु सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टौ प्रसंख्यया ।
ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम् ॥ ३८
तत्संवर्तमरुत्तीयं यत्राख्यानमनुत्तमम् ।
सुवर्णकोशसंप्राप्तिर्जन्म चोक्तं परीक्षितः ॥ ३३९

आयोधनम् युद्धस्थानं ॥ १६ ॥ क्षत्रियाः क्षत्रियस्त्रियः ॥ १८ ॥ 'अर्थार्थी वधमाप्नोति विलपन्ति च तास्त्रियः । तस्मादर्थे न लिप्सेत श्रेयोर्थी धार्तराष्ट्रवत् ॥ द्विनवाक्षौहिणीर्हत्वा लेभे राज्यं युधिष्ठिरः । एवं भूतक्षयेणैव भवत्यर्थः सतामपि ॥ बन्धूनपि नयेद्युद्धे स्वर्गं श्राद्धैश्च तर्पयेत् । इत्येवं निर्मलं क्षात्रं कर्मोक्तं तोयकर्माणि ॥ २१ ॥ अर्थाप्ती इत्यादि योगे वा यत्सुखं कामशब्दितम् । तदापुः पाण्डवाः क्लेशैर्लब्धराज्याः पृथग्गृहाः ॥ चतुर्भिरेवं वैराटमेकादशभिरुद्यमम् । पञ्चभिर्भीष्ममष्टाभिर्द्रोणमेकेन सूर्यजम् ॥ चतुस्त्रिपञ्चभिः शल्यसौप्तिकस्त्र्यभिधानि च । पर्वभिर्दीपयन्त्यर्थं शान्त्यादिः कामदीपिका' ॥ निर्वेदं दुःखम् ॥ २५ ॥ शारतल्पिकाः शरा एव तल्पो यस्य तेन भीष्मेण व्याख्याता इत्यर्थः ॥ २६ ॥ 'यथोक्तं दण्डयन्दण्ड्यान् धर्ममक्षयमश्नुते ।' भूप इत्येव तद्धर्माः सापद्धर्मा निरूपिताः ' ॥ कालहेतुप्रदर्शिनः कालो- दुर्भिक्षादिर्हेतुर्वैररोगादेश्च तत्प्रदर्शिनः देशकालाद्यपेक्षया वर्तितव्यमित्यर्थः ॥२७॥ सर्वज्ञत्वं कार्याकार्यविभागज्ञत्वम् ॥ २८ ॥ प्रकृतिं स्वाभाविकीमवस्थाम् । 'सर्वाधिकारिका मोक्षधर्माः सम्यगुदीरिताः । तत्राधिकारसिद्ध्यर्थं दानधर्माश्च कीर्तिता' ॥ ३२ ॥ व्यवहार आचारः धर्मार्थी यः धर्मार्थयोर्हितः ॥ ३३ ॥ सत्यस्य हिंसाशून्यस्य यथार्थभाषणस्य परागतिः पराकाष्ठा ॥ ३४ ॥ महाभाग्यं माहात्म्यं रहस्यं अल्पायासेनापि महाफलप्रदत्वं देशकालोपसंहितं तीर्थपर्वोपधानात् ॥ ३५ ॥ 'स्वच्छन्दमरणः सर्वो योगी भीष्मसमो भवेत् । इति प्रदर्शयन् भीष्मनिर्याणं चाप्यवर्णयत् ॥३६ ॥ वाराणस्यामविज्ञातो वसेद्विप्रभयात्सुधीः । व्यासमैत्रेयसंवर्तैरेतत्सम्यक् प्रदर्शितम् ॥ काश्यां मृतस्य कुणपं शिवलिङ्गत्वमृच्छति । अपूर्वमेतत्संवर्तमरुत्तीये प्रकाशितम् । क्रममुक्तिप्रसिद्ध्यर्थमश्वमेधोऽपि कीर्तितः ॥ तत्त्वस्य दुर्ग्रहत्वाच्च पुनरुपाख्यानमीरितम् '। तत्पुराणप्रसिद्धं संवर्तमरुत्तीयम् ॥३३९॥

दग्धस्यास्त्राग्निना पूर्वं कृष्णात्संजीवनं पुनः ।
चर्यायां हयमुत्सृष्टं पाण्डवस्यानुगच्छतः ॥ ३४०
तत्र तत्र च युद्धानि राजपुत्रैरमर्षणैः ।
चित्राङ्गदायाः पुत्रेण पुत्रिकाया* धनंजयः ॥ ४१
संग्रामे बभ्रुवाहेन संशयं चात्र दर्शितः ।
अश्वमेधे महायज्ञे नकुलाख्यानमेव च ॥ ४२
इत्याश्वमेधिकं पर्व प्रोक्तमेतन्महाद्भुतम् ।
अध्यायानां शतं चैव त्रयोऽध्यायाश्च कीर्तिताः ४३
त्रीणि श्लोकसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ४४
ततस्त्वाश्रमवासाख्यं पर्व पंचदशं स्मृतम् ।
यत्र राज्यं समुत्सृज्य गान्धार्या सहितो नृपः ४५
धृतराष्ट्रोऽश्रमपदं विदुरश्च जगाम ह ।
यं दृष्ट्वा प्रस्थितं साध्वी पृथाप्यनुययौ तदा ॥ ४६
पुत्रराज्यं परित्यज्य गुरुशुश्रूषणे रता ।
यत्र राजा हतान्पुत्रान्पौत्रानन्यांश्च पार्थिवान् ४७
लोकान्तरगतान्वीरानपश्यत्पुनरागतान् ।
ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् ॥ ४८
त्यक्त्वा शोकं सदारश्च सिद्धिं परमिकां गतः ।
यत्र धर्मं समाश्रित्य विदुरः सुगतिं गतः ॥ ४९
संजयश्च सहामात्यो विद्वान्गावल्गणिर्वशी ।
ददर्श नारदं यत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५०
नारदाच्चैव शुश्राव वृष्णीनां कदनं महत् ।
एतदाश्रमवासाख्यं पर्वोक्तं महदद्भुतम् ॥ ५१
द्विचत्वारिंशदध्यायाः पर्वैतदभिसंख्यया ।
सहस्रमेकं श्लोकानां पंच श्लोकशतानि च ॥ ५२
षडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ।
अतः परं निबोधेदं मौसलं पर्व दारुणम् ॥ ५३

यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शस्त्रस्पर्शहता युधि ।
ब्रह्मदण्डविनिष्पिष्टाः समीपे लवणाम्भसः ॥ ५४
आपाने पानकलिता दैवेनाभिप्रचोदिताः ।
एरकारूपिभिर्वज्रैर्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ५५
यत्र सर्वक्षयं कृत्वा तावुभौ रामकेशवौ ।
नातिचक्रामतुः कालं प्राप्तं सर्वहरं महत् ॥ ५६
यत्रार्जुनो द्वारवतीमेत्य वृष्णिविनाकृताम् ।
दृष्ट्वा विषादमगमत्परां चार्तिं नरर्षभः ॥ ५७
स संस्कृत्य नरश्रेष्ठं मातुलं शौरिमात्मनः ।
ददर्श यदुवीराणामापाने वैशसं महत् ॥ ५८
शरीरं वासुदेवस्य रामस्य च महात्मनः ।
संस्कारं लम्भयामास वृष्णीनां च प्रधानतः ५९
स वृद्धबालमादाय द्वारवत्यास्ततो जनम् ।
ददर्शापदि कष्टायां गाण्डीवस्य पराभवम् ॥ ३६०
सर्वेषां चैव दिव्यानामस्त्राणामप्रसन्नताम् ।
नाशं वृष्णिकलत्राणां प्रभावानामनित्यताम् ॥ ६१
दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नो व्यासवाक्यप्रचोदितः ।
धर्मराजं समासाद्य संन्यासं समरोचयत् ॥ ६२
इत्येतन्मौसलं पर्व षोडशं परिकीर्तितम् ।
अध्यायाष्टौ समाख्याताः श्लोकानां च शतत्रयम्
श्लोकानां विंशतिश्चैव संख्याता तत्त्वदर्शिना ।
महाप्रस्थानिकं तस्मादूर्ध्वं सप्तदशं स्मृतम् ॥ ६४
यत्र राज्यं परित्यज्य पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ।
द्रौपद्या सहिता देव्या महाप्रस्थानमास्थिताः ॥६५
यत्र तेऽग्निं ददृशिरे लौहित्यं प्राप्य सागरम् ।
यत्राग्निना चोदितश्च पार्थस्तस्मै महात्मने ॥ ६६
ददौ संपूज्य तद्दिव्यं गाण्डीवं धनुरुत्तमम् ।
यत्र भ्रातॄन्निपतितान्द्रौपदीं च युधिष्ठिरः ॥ ३६७

चर्यायां पर्यटने ॥ ३४० ॥ संशयं प्राणान्तं गङ्गाशापमोक्षार्थं धनंजयो दर्शितः । 'क्लेशेन श्रद्धया दत्तमत्यल्पमपि सज्जने । अश्वमेधाधिकं पुण्यं तत इत्याह नाकुले' ॥ ४२ ॥ धृतराष्ट्रोश्रमपदमित्यत्र आकारस्य पूर्वरूपमार्षम् । तपो हिततमं नृणां भोगा नरकयोनयः । इतीव कुन्तीपुत्राणां राज्यं त्यक्त्वा वनं ययौ ॥ ४६ ॥ मायामात्रं सुतादीनि विज्ञायाश्चर्यपर्वतः। धृतराष्ट्र इव त्यक्त्वा शोकं मोक्षं समाश्रयेत्' ॥ ४८ ॥ संजयश्च सुगतिं गत इत्यनुवर्तते ॥ ३५० ॥ पञ्चश्लोकशतानि चेत्यत्रपञ्च च श्लोकशतं चेति समासः । पञ्चाधिकं शतमित्यर्थः । तेनात्र एकादशशतीह श्लोकसंख्या ज्ञेया । तावत्या एव पुस्तकेषूपलम्भात् ॥ ५२ ॥ आपाने सुरापानस्थाने । पानकलिताः सुरापानेन वशीकृताः । एरकानिर्ग्रन्थितृणम् ॥ ५५ ॥ रामकृष्णौ महत्परं ब्रह्मापि सन्तौ कालं नातिचक्रामतुः । समर्थावपि मर्यादां नोल्लङ्घितवन्तावित्यर्थः । 'ब्राह्मक्षोभात्सुरापानाद्विनष्टाः सर्वयादवाः । तस्मादेतद्द्वयं सद्भिर्नैव कार्यं कदाचन ॥' ५६ ॥ आर्तिं पीडाम् ॥ ५७ ॥ वैशसं परस्परं विशसनम् ॥ ५८ ॥ 'सर्वे क्षयान्ता निचया तृष्णानामपि संक्षयात् । पराभवादर्जुनस्य पतनान्ताः समुच्छ्र्याः' ॥ ३६० ॥ अप्रसन्नतां अस्फुरणम् ॥ ६१ ॥ संन्यासं राज्यत्यागम् ॥ ६२ ॥ अध्यायाष्टौ संधिरार्षः ॥ ६३ ॥ महाप्रस्थानं देहत्यागार्थं उदग्गमनम् ॥ ६५ ॥ 'स्वस्य मृत्युं विनिश्चित्य परं शोचेत कः पुमान् । युधिष्ठिर इवोपेक्षां कुर्याद्बन्धोर्मुमूर्षतः' ॥ ६७ ॥

*पुत्रिकायाः पुत्रत्वेन कल्पितायाः

दृष्ट्वा हित्वा जगामैव सर्वाननवलोकयन् ।
एतत्सप्तदशं पर्व महाप्रस्थानिकं स्मृतम् ॥ ३६८
यत्राध्यायास्त्रयः प्रोक्ताः श्लोकानां च शतत्रयम् ।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥
स्वर्गपर्व ततो ज्ञेयं दिव्यं यत्तदमानुषम् ।
प्राप्तं दैवरथं स्वर्गान्नेष्टवान्यत्र धर्मराट् ॥३७०
आरोढुं सुमहाप्राज्ञ आनृशंस्याच्छुना विना ।
तामस्या विचलां ज्ञात्वा स्थितिं धर्मे महात्मनः७१
श्वरूपं यत्र तत्त्यक्त्वा धर्मेणासौ समन्वितः ।
स्वर्गं प्राप्तः स च तथा यातना विपुला भृशम्७२
देवदूतेन नरकं यत्र व्याजेन दर्शितम् ।
शुश्राव यत्र धर्मात्मा भ्रातॄणां करुणा गिरः ॥७३
निदेशे वर्तमानानां देशे तत्रैव वर्तताम् ।
अनुदर्शितश्च धर्मेण देवराज्ञा च पाण्डवः ॥ ७४
आप्लुत्याकाशगङ्गायां देहं त्यक्त्वा स मानुषम् ।
स्वधर्मनिर्जितं स्थानं स्वर्गे प्राप्य स धर्मराट् ॥ ७५
मुमुदे पूजितः सर्वैः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ।
एतदष्टादशं पर्व प्रोक्तं व्यासेन धीमता ॥ ७६
अध्यायाः पञ्च संख्याताः पर्वण्यस्मिन्महात्मना ।
श्लोकानां द्वे शते चैव प्रसंख्याते तपोधनाः ॥७७
नव श्लोकास्तथैवान्ये संख्याताः परमर्षिणा ।
अष्टादशैवमेतानि पर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ ७८
खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यं च प्रकीर्तितम् ।
दश श्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च ॥७९
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा ।
एतत्सर्वं समाख्यातं भारते पर्वसंग्रहः ॥ ३८०
अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया ।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत् ॥ ८१
यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चाख्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥८२
अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत् ।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥ ८३
श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते ।
पुंस्कोकिलगिरं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव८४
इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः ।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः ॥ ८५
अस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्तते द्विजाः ।
अन्तरिक्षस्य विषये प्रजा इव चतुर्विधाः ॥ ८६
क्रियागुणानां सर्वेषामिदमाख्यानमाश्रयः ।
इन्द्रियाणां समस्तानां चित्रा इव मनःक्रियाः॥८७
अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते ।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम् ॥ ८८
इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते ।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥ ८९
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे ।
साधोरिव गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः ॥ ३९०

शतं च त्रयं चेति समासे शतत्रयमित्यस्य त्र्यधिकं शतमित्यर्थः । ततश्च त्रयोविंशत्यधिकं शतं श्लोका इत्यर्थः । तावतामेवोपलम्भात् ॥ ६९ ॥ आनृशंस्यात्कारुण्यात् । 'आनृशंस्यं परो धर्मो येन राजा युधिष्ठिर' । श्वानं भ्रातॄन्विना दैवरथं स्वर्गं च नारुहत् ॥ ७१ ॥ एवं सर्वत्र तात्पर्यं कथायामुन्नयेद्यतः । न प्रवृत्तिनिवृत्तिभ्यां विना वाचः कृतार्थता ॥ अर्थो धर्माय भोगाय धर्मः स्वर्गाय मुक्तये । कामो धर्मार्थनाशाय मोक्षः स्वार्थस्त्रिवर्गजित्' ॥ स्वर्गमिति । राज्यान्ते महतामपि यातनाप्राप्तिरस्तीति दर्शितमिति भावः ॥ ७२ ॥ निदेशे-यमस्य शासने यातनायामित्यर्थः । अनुदर्शितः ईदृक् फलं ऐश्वर्यसुखमस्तीति बोधितः ॥ ७४ ॥ खिलेषु आख्यानान्तरेषु सत्स्वपि हरिवंशभविष्ययोर्ग्रहणं तयोरभ्यर्हितत्वप्रदर्शनार्थम् । दशश्लोकसहस्राणीति । हरिवंशे भविष्यान्तग्रन्थस्य द्वादशसहस्रोन्मितत्वम् । न तु कृत्स्नहरिवंशस्य अधिकस्य ग्रन्थस्य दर्शनात् तावन्मात्रविवक्षायां च लक्षपूर्तेरयोगात् । तथाह्यत्र कण्ठोक्तायाः संख्यायाः संकलने षण्णवतिः सहस्राणि द्वे शते षोडश च श्लोकाः । परिशेषात् पुष्करप्रादुर्भावाद्युपरितनग्रन्थे कैलासयात्रासहिते किंचिदूनं सहस्रचतुष्टयं ज्ञेयम् । तेन ततोप्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः । अनुक्रमणिकाध्यायमित्यादौ भूय शब्दात् अध्यर्धशताधिकं लक्षं परिपूर्णं ज्ञेयम् । अष्टादशसहस्राणीत्यादयो विगीतपाठास्तु इष्टसंख्याप्रातिकूल्यादुपेक्षणीयाः ॥ ७९ ॥ युयुत्सया योद्धुमिच्छया ॥ ८१ ॥ अङ्गानि शिक्षाकल्पादीनि । उपनिषदो रहस्यविद्यास्तत्सहितान् साङ्गोपनिषदः विचक्षणः स्वार्थज्ञः ॥ ८२ ॥ ध्वाङ्क्षस्य काकस्य ॥ ८४ ॥ लोकसंविधयस्त्रयः आध्यात्माधिभूताधिदैवाना सम्यग्विधयो रचनाः ॥ ८५ ॥ विषये देशे अन्तरित्यर्थः । पुराणं अष्टादशभेदं पाद्मादि । चतुर्विधाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः॥ ८६॥ क्रियाः लौकिक्यो वैदिक्यश्च तासां गुणाः उत्कृष्टफलसाधनानि । अथवा क्रियाः दानध्यानादयः । गुणाः शमादयः मनसि इंद्रियाणीवात्र सर्वे शास्त्रार्थाः प्रतिष्ठिता इत्यर्थः ॥ ८७ ॥ इदं कविभिः उपजीव्यते । एतच्छायाहरणेनैव काव्यनिर्वाहात् ॥ ८९ ॥ विशेषणे अतिशयकरणे । अनेन ग्रन्थस्य सर्वोत्कृष्टत्वमुक्तम् ॥ ३९० ॥

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
सह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः ।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ९१
द्वैपायनौष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथपापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ ९२
यदह्नात्कुरुते पापं ब्राह्मणस्त्विन्द्रियैश्चरन् ।
महाभारतमाख्याय संध्यां मुच्यति पश्चिमाम् ९३
यद्रात्रौ कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा ।
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते ॥ ९४
योगो शतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च नित्यं
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ९५
आख्यानं तदिदमनुत्तमं महार्थं
विज्ञेयं महदिह पर्वसंग्रहेण ।
श्रुत्वादौ भवति नृणां सुखावगाहं
विस्तीर्णं लवणजलं यथा प्लवेन ॥ ३९६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पर्वसंग्रहपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ समाप्तं पर्वसंग्रहपर्व ॥

## पौष्यपर्व

सौतिरुवाच ।

जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे। दीर्घसत्रमुपास्ते । तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेन इति । तेषु तत्सत्रमुपासीनेष्वागच्छत्सारमेयः ॥ १ ॥

भारतसंप्रदायप्रवर्तकान् वाचकानाशिषाऽभिनन्दति धर्मे इति ॥९१॥ श्रोतॄन् प्रोत्साहयति द्वैपायनेति। अप्रमेयं नास्ति प्रकृष्टं मेयं विज्ञेयं यस्मादित्यप्रमेयम् । अवश्यं श्राव्यमित्यर्थः पुण्यं पुण्यहेतुः । पवित्रं पविरिवपाविर्वज्रतुल्यो मृत्युस्तस्मात् त्रायत इति पवित्रं मृत्युतरणमित्यर्थः । यस्मात्पापहरं पुण्यहेतुत्वादेव ।शिवं कल्याणं समधिगच्छति शब्दतोर्थतश्च जानाति। यद्वा अप्रमेयं आशायस्य गंभीरत्वादगाधं पुण्यं ज्योतिष्टोमादिवत्स्वर्ग्यम् । पवित्रं संध्योपासनादिवच्चित्तशुद्धिकरम् पापहरं प्रायश्चित्तवद्ब्रह्महत्यादि दोषघ्नम्। शिवं योगाभ्यासवत्सर्वकल्याणप्रदम्। पुष्करं आदितीर्थं शुण्डाग्रं वा तदुपाहृतजलैः । एतच्छृण्वतस्तीर्थफलं साम्राज्यफलं चानायाससिद्धं भवतीति भावः ॥ ९२ ॥ संध्यां संध्यायां अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। आख्याय पठित्वा प्रमुच्यते । तस्मात्पापादिति शेषः ॥ ९३ ॥ आख्यानमिति । इदं आख्यानं पर्वसंग्रहेण कृतेन सुखावगाहं सुखग्राह्यं भवतीति शेषः द्विन्याय्यं इति पाठे द्वौ शब्दार्थौ न्याय्यौ न्यायादनपेतौ यस्मिंस्तद्विन्याय्यम्। अन्ये तु द्वाभ्यां संक्षेपविस्ताराभ्यां कृतेन पर्वसंग्रहेण शतपर्वाष्टादशपर्वरूपेण न्याय्यम् । एतच्छ्रवणेन कृत्स्नग्रन्थार्थावधारणादिति व्याचख्युः । तत्र पर्वसंग्रहो वररुचिप्रोक्तया कादिनवटादिनवपादिपंचयाद्यष्टाविति परिभाषया क्रियते । आदिध्यान १९ सभाधनं ९ वनचगं १६ वैराटभृ ४ योगयुक् ११ भीष्मद्रोणम ५ जं ८ च कर्णकु १ तथा शल्येभ ४ सौप्तग ३ म् । स्त्रीशं ५ शांतिभ ४ दानधर्मकु १ हयेज्यारा २ श्रमावासगं ३ कं १ कं १ मौसलयानयोर्द्युगतिकं १ वंशेख २ मेतच्छतम्॥ आदिपर्वणि एकोनविंशतिः पर्वाणीत्यर्थः । एवमग्रेऽपि भीष्मेम ५ द्रोणेज ८ हयेज्या आश्वमेधिकं रा २ यानं महाप्रस्थानिकं द्युगतिः स्वर्गारोहणं वंशे हरिवंशे । एतच्छतं पर्वणामिति शेषः । शेषं स्पष्टं । श्लोकसंख्यापि प्रागुक्तैव ज्ञेया । अथ सर्वपर्वतात्पर्यसंग्रहः । 'आदौ सर्वे द्वयोः क्रत्वृतधृतिगुरुसत्तीर्थसेवोत्थधर्मः सेवानीत्यार्यहत्या प्रमुखदुरितजः शोकदोर्थोष्टसूक्तः । एकस्मिन्काममोक्षावसुखमयसुखौ षट्सुमुक्त्यैददाज्यातापोवैराग्यहानेस्वरपिनिखिलकृत्कृष्णभाक्तिः खिलेषु' । ददि दानं तापः कृच्छ्रादिकं ताप आश्रमवासे उक्त इति सर्वत्रानुषज्जते । हानंत्यागः स्वः स्वर्गतिरपिक्रममुक्त्यै भवतीत्यर्थः । 'यः सर्गप्रतिसर्गवंशत इदं चिद्योनिचित्कर्तृकं चिद्रूपं जडमात्थ तन्तुपटवच्छूतोर्णवद्बीजवत्। सत्वाध्येमनुभेदपूर्वचीरतै वैराग्ययोगौदिशन् भोःपञ्चाङ्गपुराणकर्तरमलं व्यासस्त्वद्देहि मे' ॥३९६॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

जनमेजयस्य सर्पसत्रे कथेयं प्रवृत्तेत्युक्तं तदुपोद्घातत्वेन, जनमेजयस्य सरमाशापादिकमाह । जनमेजयः पारिक्षित इत्यादिना । दीर्घसत्रं बहुवार्षिकं सत्रं उपास्ते अनुतिष्ठति । सारमेयः श्वा ॥ १ ॥

जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतो रोरूयमाणो मातुः समीपमुपागच्छत् ॥ २ ॥

तं माता रोरूयमाणमुवाच । किं रोदिषि केनास्याभिहत इति ॥ ३ ॥

स एवमुक्तो मातरं प्रत्युवाच जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतोस्मीति ॥ ४ ॥

तं माता प्रत्युवाच व्यक्तं त्वया तत्रापराद्धं येनात्राभिहत इति ॥ ५ ॥

स तां पुनरुवाच नापराध्यामि किंचिन्नावेक्षे हवींषि नावलिह इति ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा तस्य माता सरमा पुत्रदुःखार्ता तत्सत्रमुपागच्छद्यत्र स जनमेजयः सह भ्रातृभिर्दीर्घसत्र मुपास्ते ॥ ७ ॥

स तया क्रुद्धया तत्रोक्तोऽयं मे पुत्रो न किंचिदपराध्यति नावेक्षते हवींषि नावलेढि किमर्थ मभिहत इति ॥ ८ ॥

न किंचिदुक्तवन्तस्ते सा तानुवाच यस्मादयमभिहतोऽनपकारी तस्माददृष्टं त्वां भयमागमिष्यतीति ॥ ९ ॥

जनमेजय एवमुक्तो देवशुन्या सरमया भृशं संभ्रान्तो विषण्णश्चासीत् ॥ १० ॥

स तस्मिन्सत्रे समाप्ते हास्तिनपुरं प्रत्येत्य पुरोहितमनुरूपमन्विष्यमाण:परं यत्नमकरोद्यो मे पापकृत्यां शमयेदिति ॥ ११ ॥

स कदाचिन्मृगयां गतः पारिक्षितो जनमेजयः कस्मिंश्चित्स्वविषय आश्रममपश्यत् ॥ १२ ॥

तत्र कश्चिदृषिरासांचक्रे श्रुतश्रवा नाम । तस्य तपस्यभिरतः पुत्र आस्ते सोमश्रवा नाम ॥ १३ ॥

तस्य तं पुत्रमभिगम्य जनमेजयः पारिक्षितः पौरोहित्याय वव्रे ॥ १४ ॥

स नमस्कृत्य तमृषिमुवाच भगवन्नयं तव पुत्रो ममपुरोहितोऽस्त्विति ॥ १५ ॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच जनमेजयं भो जनमेजय पुत्रोऽयं मम सर्प्यां जातो महातपस्वी स्वाध्यायसंपन्नो मत्तपोवीर्यसंभृतो मच्छुक्रं पीतवत्यास्तस्याः कुक्षौ जातः ॥ १६ ॥

समर्थोऽयं भवतः सर्वाः पापकृत्याः शमयितुमन्तरेण महादेवकृत्याम् ॥ १७ ॥

अस्य त्वेकमुपांशुव्रतं यदेनं कश्चिद्ब्राह्मणःकंचिदर्थमभियाचेत्तं तस्मै दद्यादयं यद्येतदुत्सहसे ततो नयस्वैनमिति ॥ १८ ॥

तेनैवमुक्तो जनमेजयस्तं प्रत्युवाच भगवंस्तत्तथा भविष्यतीति ॥१९ ॥

स तं पुरोहितमुपादायोपावृत्तो भ्रातॄनुवाच मयाऽय वृत उपाध्यायो यदयं ब्रूयात्तत्कार्यमविचारयद्भिर्भवद्भिरिति । तेनैवमुक्ता भ्रातरस्तस्य तथा चक्रुः स तथा भ्रातॄन्संदिश्य तक्षशिलां प्रत्यभिप्रतस्थे तं च देशं वशे स्थापयामास ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदृषिर्धौम्यो नामापोदस्तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुः ॥२१ ॥

उपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति स एकं शिष्यमारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास गच्छ केदारखण्डं बधानेति ।

स उपाध्यायेन संदिष्ट आरुणिः पाञ्चाल्यस्तत्र गत्वा तत्केदारखण्डं बद्धुं नाशकत्। स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायं भवत्वेवं करिष्यामि ॥२३ ॥

स तत्र संविवेश केदारखण्डे शयाने च तथा तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ ॥ २४ ॥

---

रोरूयमाण भृश रुदन् ॥ २ ॥ नावेक्षे हविषामनेक्षणमपि न कृतं तत्रावलेहन दूरतोऽपास्त मित्यर्थ ।'कुक्कुट. पक्षवातेन श्वा दृष्ट्वान्नं प्रदूषयेत् ' इति वचनाच्छुना दृष्टमपि हविर्दुष्यतीत्याहु ॥ ६ ॥ सा तानुवाच । मा शुनी तानभिलक्ष्य जनमेजय प्रत्युवाचेत्यर्थ । अदृष्टं अतर्कितम्॥९॥ संभ्रान्तोऽत्यन्त भीत विषण्ण वाङ्मनकायक्रियाविकल । एतेन निरपराधिना हिंसा हिंसकस्य सद्यो दुःखावहेति दर्शितम् ॥ १० ॥ पापकृत्या शापरूपा बलायु प्राणानिकृन्तनीं देवनाम् शमयेत् अक्रोधना कुर्यात् ॥ ११ ॥ सर्प्यां सर्पजातीयाया जातत्वाद्विचित्रोत्पत्तिमत्वादलौकिकशक्तिमानिति भाव ॥ १६ ॥ उपांशुव्रतं निगूढनियम ॥ १८ ॥ उपावृत्त स्वदेशप्रत्यागतः । तक्षशिला देशविशेषं विजेतुमिति शेष ॥ २० ॥ एतस्मिन्निति एव गुरुप्रसादादपेतभयो विजयी उत्तङ्केन प्रोत्साहित सर्पसत्रं कृतवानिति वक्तुं तद्गुरोर्वेदस्य प्रशंसाप्रसंगादितरावपि तत्सहाध्यायिना वारुण्युपमन्यू प्रस्तौति । तेन च गुरुभक्तिमाहात्म्यमत्र मुख्य प्रमेयं ज्ञेयं । धौम्यो नामत अपोऽस्तीत्यपोद अब्भक्षस्तस्यापत्यमापोदः । अयोद इतिपाठे अयोद लोहदंत । दन्छब्दान्तसमासान्तोऽदद् । उपाध्यायस्य ते कार्ष्णायसा दंता इतिवाक्यशेषात् क्रूरवचा इत्यर्थ ॥ २१ ॥ केदारो महाक्षेत्रान्तर्गतं चतुरस्त्र तस्य खण्ड जलनिरोधभित्तिस्ता बधान बध्नीहि । केदारे बहुजलप्रवेशेन बीजनाशो मा भूदिति भावः ॥ २२ ॥ नाशकत् शिष्यपरीक्षार्थं गुरुणा योगबलेन जलप्रवाहस्य दुर्वारत्वसंपादनादित्यर्थ ॥ २३ ॥

ततः कदाचिदुपाध्याय आपोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत् क आरुणिः पाञ्चाल्यो गत इति ॥ २५॥

ते तं प्रत्यूचुर्भगवंस्त्वयैव प्रेषितो गच्छ केदारखण्डं बधानेति । स एवमुक्तस्तान् शिष्यान् प्रत्युवाच तस्मात्तत्र सर्वे गच्छामो यत्र स गत इति२६

स तत्र गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार । भो आरुणे पाञ्चाल्य क्वासि वत्सैहीति ॥ २७ ॥

स तच्छ्रुत्वा आरुणिरुपाध्यायवाक्यं तस्मात्केदारखण्डात्सहेसात्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे २८ ॥

प्रोवाच चैनमयमस्म्यत्र केदारखण्डे निःसरमाणमुदकमवारणीयं संरोद्धुं संविष्टो भगवच्छब्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्य केदारखण्डं भवन्तमुपस्थितः ॥ २९ ॥

तदभिवादये भगवन्तमाज्ञापयतु भवान्कमर्थं करवाणीति ॥ ३० ॥

स एवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच यस्माद्भवान्केदारखण्डं विदार्योत्थितस्तस्मादुद्दालक एव नाम्ना भवान् भविष्यतीत्युपाध्यायेनानुगृहीतः ॥ ३१ ॥

यस्माच्च त्वया मद्वचनमनुष्ठितं तस्माच्छ्रेयोऽवाप्स्यसि । सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति ॥ ३२ ॥

स एवमुक्त उपाध्यायेनेष्टं देशं जगाम । अथापरः शिष्यस्यैवापोदस्य धौमस्योपमन्युर्नाम ॥ ३३

तं चोपाध्यायः प्रेषयामास वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति ॥ ३४ ॥

स उपाध्यायवचनादरक्षद्गाः स चाहनि गा रक्षित्वा दिवसक्षये गुरुगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ३५ ॥

तमुपध्यायः पीवानमपश्यदुवाच चैनं वत्सोपमन्यो केनवृत्तिं कल्पयासि पीवानसि दृढमिति ३६

स उपाध्यायं प्रत्युवाच भो भैक्ष्येण वृत्तिं कल्पयामीति ॥ ३७ ॥

तमुपध्यायः प्रत्युवाच मय्यनिवेद्य भैक्ष्यं नोपयोक्तव्यायमिति । स तथेत्युक्तो भैक्ष्यं चरित्वोपाध्यायाय न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥

स तस्मादुपाध्यायः सर्वमेव भैक्ष्यमगृह्णात् । स तथेत्युक्तः पुनररक्षद्गा अहनि रक्षित्वा निशामुखे गुरुकुलमागम्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ३९॥

तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वोवाच । वत्सोपमन्यो सर्वमशेषतस्ते भैक्ष्यं गृह्णामि केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसीति ॥ ४० ॥

स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच । भगवते निवेद्य पूर्वमपरं चरामि तेन वृत्तिं कल्पयामीति॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच नैषा न्याय्या गुरुवृत्तिरन्येषामपि भैक्ष्योपजीविनां वृत्त्युपरोधं करोषि इत्येवं वर्तमानो लुब्धोऽसीति ॥ ४२ ॥

स तथेत्युक्त्वा गा अरक्षत् । रक्षित्वा च पुनरुपाध्यायगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ४३ ॥

तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वा पुनरुवाच । वत्सोपमन्यो अहं ते सर्वं भैक्ष्यं गृह्णामि न चान्यच्चरसि पीवानसि भृशं केन वृत्तिं कल्पयसीति ॥ ४४ ॥

स एवमुक्तस्तमुपाध्यायं प्रत्युवाच । भो एतासां गवां पयसा वृत्तिं कल्पयामीति । तमुवाचोपाध्यायो नैतन्न्याय्यं पय उपयोक्तुं भवतो मया नाभ्यनुज्ञातमिति ॥ ४५ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय गा रक्षित्वा पुनरुपाध्यायगृहमेत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे ॥ ४६ ॥

तमुपाध्यायः पीवानमेव दृष्ट्वोवाच। वत्सोपमन्यो भैक्ष्यं नाश्नासि न चान्यच्चरसि पयो न पिबसि पीवानसि भृशं केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसीति ४७

स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच । भोः फेनं पिबामि यमिमे वत्सा मातॄणां स्तनात्पिबन्त उद्गिरन्ति ॥ ४८ ॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच। एते त्वदनुकम्पया गुणवन्तो वत्साः प्रभूततरं फेनमुद्गिरन्ति । तदेषामपि वत्सानां वृत्त्युपरोधं करोष्येवं वर्तमानः। फेनमपि भवान्न पातुमर्हतीति। स तथेति प्रतिश्रुत्य पुनररक्षद्गाः ॥ ४९ ॥

तथा प्रतिषिद्धो भैक्ष्यं नाश्नाति नचान्यच्चरति पयो न पिबति फेनं नोपयुङ्क्ते स कदाचिदरण्ये क्षुधार्तोऽर्कपत्राण्यभक्षयत् ॥ ५० ॥

---

उत् ऊर्ध्वं दारयतीत्युद्दालकः रलयोरभेदादुद्दालक इति निरुक्तिः ण्वुल् ॥ ३१ ॥ श्रेयः ऐहिकामुष्मिकसुखमपवर्गश्च । सर्वे चेति । विनाप्यध्ययनमैकाग्र्येण गुरुमाराधयता सर्वापि विद्या लभ्यत इति भावः ॥ ३२ ॥

पीवानं पुष्टं भूयोन्नादिरसं पीतवन्तामित्यर्थः । वृत्तिं जीविकाम् ॥ ३६ ॥ वृत्त्युपरोधो वृत्तिप्रतिबन्धः ॥ ४२ ॥ चरसि भक्षयसि ॥ ४४ ॥ उपयोक्तुम् भोक्तुम् ॥ ४५ ॥ अर्कपत्राणि अर्कवृक्षपत्राणि ॥ ५० ॥

स तैरर्कपत्रैर्भक्षितैः क्षारतिक्तकटुरूक्षैस्तीक्ष्णविपाकैश्चक्षुष्युपहतोऽन्धो बभूव । ततः सोऽन्धोऽपि चंक्रम्यमाणः कूपे पपात ॥ ५१ ॥

अथ तस्मिन्ननागच्छति सूर्ये चास्ताचलावलम्बिनि उपाध्यायः शिष्यानवोचत् । नायात्युपमन्युस्त ऊचुर्वनं गतो गा रक्षितुमिति ॥ ५२ ॥

तानाह उपाध्यायः मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिषिद्धः स नियतं कुपितस्ततो नागच्छति चिरं ततोऽन्वेष्य इत्येवमुक्त्वा शिष्यैः सार्धमरण्यं गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार । भो उपमन्यो क्वासि वत्सैहीति ॥ ५३ ॥

स उपाध्यायवचनं श्रुत्वा प्रत्युवाचोच्चैरयमस्मिन्कूपे पतितोऽहमिति तमुपाध्यायः प्रत्युवाच कथं त्वमस्मिन्कूपे पतित इति ॥ ५४ ॥

स उपाध्यायं प्रत्युवाच । अर्कपत्राणि भक्षयित्वाऽन्धीभूतोऽस्म्यतः कूपे पतित इति ॥ ५५ ॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच । अश्विनौ स्तुहि । तौ देवभिषजौ त्वां चक्षुष्मन्तं कर्ताराविति । स एवमुक्त उपाध्यायेनोपमन्युरश्विनौ स्तोतुमुपचक्रमे देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः ॥ ५६ ॥

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू
गिरा वाऽऽशंसामि तपसा ह्यनन्तौ ।
दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमाना-
वधिक्षिपन्तौ भुवनानि विश्वा ॥१॥५७

---

क्षारेति । अन्यदपि क्षारादिरूपं द्रव्यं चक्षुरुपघातकमेवेति भावः तीक्ष्णविपाकैः पाककाले उदरेऽग्निज्वालोत्थापकैः ॥ ५१ ॥ कर्ताराविति लुडन्तम् । तौ त्वा चक्षुष्मन्तं करिष्यत इत्यर्थः । अत्र गुर्वनुज्ञात उपमन्युर्ऋग्भिरश्विनौ तुष्टावेति स्मर्यते । एतासामृचां कर्मसमवेतार्थप्रकाशकत्वं तत्तत्समानार्थमन्त्रान्तरोदाहरणपूर्वकं कर्ममीमांसकाः प्राहुः । तदनुरागबलेन चानन्तत्वादीनि ब्रह्मलिङ्गान्यन्यथा निन्युस्तन्मन्दम् । आसां कर्मणि विनियोगस्यादर्शनात् । प्रत्यक्षब्रह्मलिङ्गैरर्थवत्त्वोपपत्तौ लिङ्गमात्रात्कर्मणस्तत्र ऋग्विनियोगस्य च कल्पनाया अनुदयात् । किं च ' समारोप्यस्य रूपेण विषयो रूपवान् भवेत् । विषयस्य तु रूपेण समारोप्यं न रूपवत्' । इति न्यायेन यथारोपितभुजंगधर्मेण भीषणत्वादिना रज्जुर्विशेष्यते न तु रज्जुधर्मेणाभिगम्यत्वादिना भुजंगो विशेष्टुं शक्यः । तत्स्वरूपलोपप्रसङ्गात् । एवं ब्रह्माध्यस्ताश्विदेवताधर्मेण विग्रहवत्त्वादिना ब्रह्म विशेष्टुं शक्यं न तु ब्रह्मधर्मेणास्थूलत्वादिना देवता विशेष्टुं शक्या । तत्स्वरूपलोपप्रसङ्गात् । अत एवाकाशश्रुतिः । 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते ' इत्यनन्यथासिद्धभूतोपादानत्वप्रकाशनसामर्थ्यरूपब्रह्मलिङ्गाद्ब्रह्मपरतयानीता आकाशस्तल्लिङ्गादित्यत्र । दृश्यते च 'उभा उनूनम्' इति मन्त्रे वितन्वाते धिय इत्यश्विनोरन्तर्यामित्वं तच्च धियो यो नः प्रचोदयादित्यनेन तुल्यार्थं ब्रह्मलिङ्गम् । सृण्येवेति मन्त्रे 'जर्भरीतुर्फरीतू' इति भर्तृत्वहंतृत्वे ब्रह्मलिङ्गे 'जर्भरी भर्ताराविस्यर्थस्तुर्फरीतू हंतारौ' इति यास्कीयनिर्वचनात् । न चैतान्यसतिबाधके संकोचयितुं शक्यानि । शास्त्रदृष्टिन्यायेनाश्विविग्रहोपलक्षितब्रह्मोपदेशार्थत्वोपपत्तेः । अत्र हि इन्द्रेण प्रतर्दनं प्रति मामेव विजानीहीत्युक्तेर्देवतात्मन एव वेद्यत्वापत्तौ यच्छास्त्रदृष्टं शुद्धं ब्रह्म तदभिप्रायेणायमुपदेशो न देवतात्माभिप्रायेणेति स्थितम् । अश्विनाविति द्वित्वं तु द्वा सुपर्णेत्यस्यामृचि तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्वमनश्नन्नन्योऽभिपश्यति ज्ञ इति पैङ्गिरहस्यव्याख्यातप्रकारेणोपाध्युपधेयभूतसत्वचैतन्यभेदाभिप्रायेण । तेनात्र मायोपाधिकं जगत्कारणं ब्रह्म प्रतिपाद्यते । तज्ज्ञानस्य परमपुरुषार्थहेतुत्वात् । चक्षुःप्राप्तिस्तु 'तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्राभिषजावनर्वन्' इति मन्त्रेऽश्विनोश्चक्षुःप्रदत्वदर्शनादवान्तरफलम् । विचक्षे विचक्षुषे । आधत्तं दत्तवन्तौ । अनर्वन्नाहननशून्ये कुण्ठितगतावपि भिषजौ भैषज्यकरणेनाऽनुग्राहकौ । अत एव लिङ्गात्सूर्यचन्द्रपरत्वमस्याः स्तुतेर्विरुद्धम् । आख्यायिका तु गुरुदेवताभक्तेर्विद्याप्राप्त्यर्थत्वसूचनार्था । भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमीति परमेश्वरे भिषक्त्वश्रवणाद्देवभिषजावित्युक्तम् । शेषं स्पष्टार्थम् ॥ ५६ ॥ ऋग्भिरित्युक्तास्ता ऋचः पठति । प्रपूर्वगौ सृष्टेः प्राग्विद्यमानौ । 'स देवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतेः । पूर्वजौ तावेव हिरण्यगर्भात्मकतां गतौ पूर्वोत्पन्नौ । 'स वै शरीरी प्रथमः' इति श्रुतेः । चित्रभानू विचित्रप्रपञ्चाकारेण भासमानौ । 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इति श्रुतेः । गिरा श्रवणजज्ञानेन वा शब्दश्चार्थे । तपसा मननध्यानात्मकेनालोचनेन । आशसामि प्रत्यगात्मत्वेन प्राप्तुमिच्छामि । हि यस्मादनन्तौ देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्नौ । एतेन सत्त्वस्यावस्तुत्वमुक्तम् । अन्यथा चितो वस्तुपरिच्छेदापत्तेः । यस्मादनन्तौ तस्मादाशंसाम्यभयाय । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः । तज्ज्ञानादहमप्यनन्तः स्यामित्यर्थः । अन्यथा ' द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति श्रुतेः संसारभयानिवृत्तिप्रसङ्गः । दिव्यौ द्युतिः तदुपारूढचैतन्यरूपेण द्योतमानौ । सुपर्णौ पक्षिवच्छरीरवृक्षारूढौ । अधिक्षिपन्तौ भुवनानि विश्वा सत्वगतविक्षेपशक्त्या सर्वाणि भुवनानि विक्षिपन्तौ । तदेतत् सत्त्वं येन स्वप्नं पश्यतीति श्रुतेः । विश्वा विश्वानि । सुपां सुलु-

एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं
षण्णाभिमेकाक्षमृतस्य धारणम् ।
यस्मिन्देवा अधि विश्वे विषक्ता-
स्तावश्विनौ मुञ्चतं मा विषीदतम् ६॥ ६२
अश्विनाविंदुममृतं वृत्तभूयौ
तिरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी ।
हित्वा गिरिमश्विनौ गा मुदा चरन्तौ
तद्वृष्टिमह्ना प्रस्थितौ बलस्य ७ ॥ ६३

युवां दिशो जनयथो दशाग्रे
समानं मूर्ध्नि रथयानं वियन्ति ।
तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति
देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ८ ॥ ६४
युवां वर्णान्विकुरुथो विश्वरूपां-
स्तेऽधिक्षियन्ते भुवनानि विश्वा ।
ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति
देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ९ ॥ ६५

चर्षणी ऐहिक्यामुष्मिक्यौ प्रजे । ततश्च द्विविधमपि भोगं नेच्छेत्क्षयिष्णुत्वादिति भावः ॥ ६१ ॥ एवं भचक्रस्य षष्टिघटिकात्मकैकाहोरात्रं निर्वर्त्य प्रदक्षिणप्रक्रमै षष्ट्यधिकशतत्रयसंमितैः सावनाख्यं संवत्सरचक्रं जगदायुःक्षेपणमुक्तं द्वाभ्याम् । इदानीं प्रदक्षिणावर्ते भचक्रे सूर्यचन्द्रयोरप्रदक्षिणप्रक्रमेण निर्वर्त्ये सौरचान्द्रसंवत्सरचक्रे कर्मोपयोगिनी आह । तत्र एकस्मिन् शंकौ प्रोताः षट्शलाकाः पृथक् अन्ताश्चेद्द्वादशारं षण्णाभि एकं चक्रं भवति । तत्र संवत्सरोक्षः । मेषाद्या राशयो द्वादशाराः । षड् ऋतवो नाभयः । तच्चक्रं ऋतस्य कर्मफलस्य धारणं ध्रियतेऽस्मिन्निति तथा । अत्र हेतुः । यस्मिन्विश्वेदेवाः कालाभिमानिना. अधि विषक्ताः । व्यवहिताश्चेति छंदसि व्यवहितक्रियया‌प्युपसर्गाणा संबन्धस्मरणात् । तावश्विनौ मा मा मुञ्चतं मोचयन्तम् । अस्माच्चक्रादिति शेषः । किं भूतं मा विषीदतं जन्मादिदुःखेन विषादं प्राप्नुवन्तम् । नुमभावश्छान्दसः । ततः कालोचितकर्मकरणोचिताः कालाभिमानिन्यो देवतास्तृप्यन्ति इष्टं फलं च यजमानाय प्रयच्छन्त्यन्यथा विपरीतं कुर्वन्तीति भावः ॥ ६२ ॥ एवं कर्मणा विविदिषोत्पादनद्वारा विद्याहेतुत्वमुक्त्वा सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीतेति श्रुत्युक्ता ब्रह्मोपास्तिमाह चित्तैकाग्र्याय । अश्विनौ वृत्तभूयौ वृत्त निवृत्तमुत्पन्नं वियदादि तस्य भूयं भावः । 'भुवोभावे' इति क्यप् । आश्विनौ कृत्स्नप्रपञ्चात्मकावित्यर्थः । एतदेवाश्विनोर्ल्यकारणप्रदर्शनेन द्रढयति । आश्विनौ इन्दुं सोमं तदुपलक्षितानि कर्माणि । अमृतं तत्फलभूतमैहिकामुष्मिकं भोग्यजातम् । दासपत्नी । सुपासुलुगितिपूर्वसवर्णः । अपः नैरुक्तप्रसिद्धेः । अप्युपलक्षितं वियदादि च तिरोधत्ता रज्जुरिव स्वाध्यस्तभुजंगमन्तर्हितं कुरुतः । अश्विनावेव सर्वात्मरूपेणोपास्यावितिभावः । एवमुपासनालब्धचित्तैकाग्र्यस्य प्रत्यक्तत्वख्यापनाय ब्रह्मण एव तावद्बन्धप्रसक्तिमाह । हित्वेति । अश्विनौ स्वरूपेण ब्रह्मैव सन्तौ बलस्य गिरिं साधनसंपत्तेरुच्छ्रायं अनाद्यविद्यया हित्वा गाः इन्द्रियाणि मुदा विषयेन्द्रियसंयोगजहर्षेण चरन्तौ चारयन्तौ विषयभूमिषु । तद्वृष्टिमह्ना तस्याः मुदो वृष्टिस्तद्वृष्टिस्तन्माहात्म्येन प्रस्थितौ विषयजसुखर्धिमाहात्म्यात्पराक्प्रावण्यमेव प्राप्तौ । अत्र 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य' इत्यत्र बलशब्दस्य बोधसाधनसंपद्वाचित्वं दृष्टम् । गिरिशब्दस्यापि गिरति ह वै द्विषन्तं पाप्मानमिति श्रौतनिर्वचनबलात्साधनसंपदुच्छ्राय परतयाख्यानं कृतम् । एवं चानादिविषयवासनावशाद्ब्रह्मैव बद्धमिति दर्शितम् ॥ ६३ ॥ अस्य जीवस्य ब्रह्मात्मतावबोधार्थं तत्पदार्थस्वरूपं तावदाह । हे आश्विनौ युवां अग्रे सृष्टेःप्राक् दशदिशः प्राच्याद्याःजनयथः । अत्राकाश एव सूर्योपाधिकी दिक्कल्पनात्तत्स्रष्टृत्वमप्याह । मूर्ध्नि अर्थाद्दिशाम् । अन्तरिक्षे इत्यर्थः । रथयानं रथेन यानं गमनमस्य तं सूर्यं समानं सर्वेषामेकं तथा वियन्ति व्योमानि । कल्पभेदात्सृष्टिभेदाद्वा बहुत्वम् । जनयथ इत्यनुवर्तते । तासां दिशां यातम् । अर्थात्तत्संबन्धिनः सूर्यस्य यातं गमनमनुसूर्यकृतादिक्कालावनुलक्ष्य ऋषयः प्रयान्ति कर्मभिः प्रचरन्ति । तथा देवा मनुष्याश्च यथाधिकारं क्षितिं ऐश्वर्यं आचरन्ति आसमंताद्भुञ्जते ॥ ६४ ॥ एवं भूतसृष्टिमुक्त्वा भौतिकीं सृष्टिमाह । भो अश्विनौ युवां वर्णान् तेजोबन्नानि लोहितशुक्लकृष्णवर्णवन्ति विकुरुथ । परस्परमिश्रणेन विविधाकारान् कुरुथः सेयं देवतैक्षतहन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि इति श्रुतेः । विश्वरूपान् त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमितिश्रुतेः । सर्वेषां रूपाणां त्रिष्वेवान्तर्भावाद्वर्णानां वैश्वरूप्यं ते वर्णा अधियन्ते जनयन्ति भुवनानि चतुर्दशभौतिकानि । विश्वा सर्वाणि । ते प्रसिद्धा जीवाः अर्थात् भानवोंशा इवांशा अपि विश्वानि भूतानि अनुसृताः । देहेन्द्रियबुद्धिरूपविकारानुसारिणो भूत्वा चरन्ति विषयान् भुञ्जते । त एते देवा मनुष्याः अन्येऽपि पश्वादयः क्षितिं भूमिमाश्रित्य चरन्ति वर्तन्ते । अत्राद्यश्लोकेन 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत' इत्यादिश्रुतेरर्थो दर्शितः । द्वितीये ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पितेत्येतत्प्रदर्शनेन तत्पदार्थतत्त्वं सर्वभूतस्रष्टृत्वं सर्वान्तःप्रविष्टत्वं चेत्येवं लक्षणं प्रदर्शितम् ॥ ६५ ॥

तौ नासत्यावश्विनौ वां महेऽहं
स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य ।
तौ नासत्यावमृतावृतावृधा-
वृते देवास्तत्प्रपदे न सूते १० ॥ ६६

सुखेन गर्भं लभेतां युवानौ
गतासुरेतत्प्रपदेन सूते ।
सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भ-
स्तावश्विनौ मुञ्चथो जीवसे गाः ११ ॥ ६७

स्तोतुं न शक्नोमि गुणैर्भवन्तौ
चक्षुर्विहीनः पथि संप्रमोहः ।
दुर्गेहमस्मिन्पतितोऽस्मि कूपे
युवां शरण्यौ शरणं प्रपद्ये १२ ॥ ६८

इत्येवं तेनाभिष्टुतावश्विनावाजग्मतुराहतुश्चैनं प्रीतौ स्व एष तेऽपूपोऽशानैनमिति ॥६९॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच नानृतमूचतुर्भगवन्तौ नत्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुत्सहे गुरवेऽनिवेद्येति ॥७०

ततस्तमश्विनावूचतुः आवाभ्यां पुरस्ताद्भवत उपाध्यायेनैवमेवाभिष्टुताभ्यामपूपो दत्त उपयुक्तः स तेनानिवेद्य गुरवे त्वमपि तथैव कुरुष्व यथा कृतमुपाध्यायेनेति ॥ ७१ ॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच एतत्प्रत्यनुनये भवन्तावश्विनौ नोत्सहेऽहमनिवेद्य गुरवेऽपूपमुपयोक्तुमिति ॥७२॥

तमश्विनावाहतुः प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुभक्त्या उपाध्यायस्य ते : कार्ष्णायसा दन्ता भवतोऽपि हिरण्मया भविष्यन्ति चक्षुष्मांश्च भविष्यसीति श्रेयश्चावाप्स्यसीति ॥७३॥

स एवमुक्तोऽश्विभ्यां लब्धचक्षुरुपाध्यायसकाशमागम्याभ्यवादयत् ॥७४॥

आचचक्षे च स चास्य प्रीतिमान्बभूव ॥७५॥

---

उक्तविधं तत्पदार्थमनूद्य. स एव संघातप्रवर्तको जीवो नान्यस्ततोऽस्तीत्याह । तौ प्रसिद्धौ नासत्यावश्विनौ वां युवां महे पूजयेऽहम् । वां युवां पुष्करस्य व्योमपुष्करमम्बरम् । आकाशोऽव्याकृतमव्यक्तमित्यनर्थान्तरम् । तस्य स्रजं सृज्यते इति स्रक्कार्यजातं बिभृथः । प्रविश्य धारयथस्तदपि महे इत्यनुषज्यते । तौ नासत्यौ अमृतौ नित्यमुक्तौ ऋतावृधौ ऋतस्य कर्मफलस्योपबृंहकौ । न हि वृत्तिवृधीत्यादिना दीर्घः । ऋते विना देवा वागाद्यभिमानिनोऽग्न्यादयः।तत्प्रपदे तेषां वागादिविषयाणां वचनादीनां प्रपदे प्राप्तये न सूते न सुवते न समर्था भवन्ति । सूते इति च्छान्दसो व्यत्ययः । कोह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यादिति श्रुतेः। न चेतनं प्रवर्तकमृते शकटवदचेतनः । संघातः प्रवर्तत इति भावः । तदेवं नान्योतोस्ति द्रष्टेति चेतनान्तरऽनिषेधात् तत्त्वमसीति जीवेशयोरभेदश्रवणात्प्रपञ्चस्य च वाचारंभणं विकारो नामधेयमित्यनृतत्वश्रवणाच्चाद्वैतं ब्रह्मशास्त्रसिद्धमत्रापि अश्विनोर्जगदुपादानत्वोक्त्या तौ नासत्याविति पदद्वयेन तत्त्वं पदार्थयोः पूर्वापरार्धयोस्तुल्यशब्दोपादाने न जीवेशाभेदप्रतिपादनेन च प्रसाधितम् ॥ ६६ ॥ एवं ब्रह्मविद्यां समाप्य केषांचिन्मते संघात एव चेतयते नान्यस्ततश्चेतनोस्तीति तद्दूषणपूर्वकं स्वस्य चक्षुः प्रार्थयते । युवानौ मातापितरौ । अन्नात्पुरुष इति श्रुतेः । सुखेनान्नरूपं गर्भं प्रथमं लभेतां ततः एतत् एतं गर्भं छान्दसं क्लीबत्वं पुंसि रेतोरूपेण । योषिति शोणितरूपेण परिणतम् । गतासुरचेतनो देहः प्रपदेन प्रकर्षेण पद्यते गम्यतेऽनेनेति प्रपदमुपस्थेन्द्रियम् । सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमिति श्रुतेः । तेन पूर्वं रेतःसिक् सूते पश्चात्स्त्री । अतः संघातस्य मलपिण्डवदचेतनत्वं सिद्धम् । सद्यो जात उत्पन्नमात्रो गर्भो बालः मातरं अत्ति स्तनपाने प्रवर्तत इत्यर्थः । तदेतज्जन्मान्तरीयानुभवाहितसंस्कारमन्तरेण संभवतीत्यस्ति पूर्वसिद्धः संघातादन्यश्चेतनस्तत्प्रवर्तक इति सिद्धम् । तावश्विनौ स्तः अभ्युपलक्षितं ब्रह्म । नाविति विधेयापेक्षया द्वित्वम् । शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्येतिवत् । एतेन तत्त्वमसीति वाक्यार्थ उक्तः । जीवसे जीवनाय । गाः चक्षूंषि मुंचथः चक्षुःप्रतिबन्धापनयनक्रियास्तामित्यर्थः ॥ ६७ ॥ अपूपः बहुच्छिद्रं स्नेहपक्वं भक्ष्यम् । यावन्त्यपूपाच्छिद्राणीति व्रतविशेषप्रसिद्धेः । मधुविद्यायां मध्वपूपशब्देन मधुपेश्या बहुबिलाया ग्रहणात्तत्सदृशेनैवापूपद्रव्येण भवितव्यमिति च अशान भक्षय ॥ ६९ ॥ दन्ता इव दन्ताः सुखदुःखभोजकत्वात् कर्माणि । कृष्णं अयः मलिनत्वात् बन्धकत्वाच्च अविद्या तन्मयाः । उपाध्यायः केवलकर्मार्जिते एव सुखदुःखे भुंक्ते इत्यर्थः । तव तु हरतीति हिरण्यं संकल्पस्तन्मयास्तत्प्रधानाः दन्ताः अतस्त्वं स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्तीति श्रुतेः । संकल्पमात्रासिद्धविषयोपनीतं सुखं भोक्ष्यसि ब्रह्मवित्त्वादित्यर्थः । एतेनानात्मज्ञस्यापि गुरोराराधनादात्मज्ञानं भक्तस्य भवति । एकलव्यस्येव मृन्मयद्रोणाराधनादिति दर्शितम् । श्रेयो ज्ञानम् ॥ ७३ ॥

* यथा श्रुते कार्ष्णायसा दन्ता इत्युपाध्यायस्य निर्दयत्वं सूचितम् तव हिरण्मया इति त्वं शिष्येषु दयावान्भविष्यसीति । तेनानुपताप्यैवानुग्राह्यमनुगृह्णीयादित्युक्तं भवति ।

आह चैनं यथाऽश्विनावाहतुस्तथा त्वं श्रेयोऽवाप्स्यसि ॥ ७६ ॥

सर्वे च ते वेदाःप्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति । एषा तस्यापि परीक्षोपमन्योः ॥

अथापरः शिष्यस्तस्यैवापोदस्य धौम्यस्य वेदो नाम तमुपाध्यायः समादिदेश वत्स वेद इहास्यतां तावन्मम गृहे कंचित्कालं शुश्रूषुणा च भवितव्यं श्रेयस्ते भविष्यतीति ॥ ७८ ॥

स तथेत्युक्त्वा गुरुकुले दीर्घकालं गुरुशुश्रूषणपरोऽवसत् गौरिव नित्यं गुरुणा धूर्षु नियोज्यमानःशीतोष्णक्षुत्तृष्णादुःखसहःसर्वत्राप्रतिकूलस्तस्य महताकालेन गुरुः परितोषं जगाम ॥ ७९ ॥

तत्परितोषाच्च श्रेयः सर्वज्ञतां चावाप । एषा तस्यापि परीक्षा वेदस्य ॥ ८० ॥

स उपाध्यायेनानुज्ञातः समावृत्तस्तस्माद्गुरुकुलवासाद्गृहाश्रमं प्रत्यपद्यत । तस्यापि स्वगृहे वसतस्त्रयः शिष्या बभूवुः स शिष्यान्नकिंचिदुवाच कर्म वा क्रियतां गुरुशुश्रूषा चेति । दुःखाभिज्ञो हि गुरुकुलवासस्य शिष्यान्परिक्लेशेन योजयितुं नेयेष ॥ ८१ ॥

अथ कस्मिंश्चित्काले वेदं ब्राह्मणं जनमेजयः पौष्यश्च क्षत्रियावुपेत्य वरयित्वोपाध्यायं चक्रतुः ॥ ८२ ॥

स कदाचिद्याज्यकार्येणाभिप्रस्थित उत्तङ्कनामानं शिष्यं नियोजयामास ॥ ८३ ॥

भो यत्किंचिदस्मद्गृहे परिहीयते तदिच्छाम्यहमपरिहीयमानं भवता क्रियमाणमिति स एवं प्रतिसंदिश्योत्तङ्कं वेदः प्रवासं जगाम ॥ ८४ ॥

अथोत्तङ्कः शुश्रूषुर्गुरुनियोगमनुतिष्ठमानो गुरुकुले वसति स्म । स तत्र वसमान उपाध्यायस्त्रीभिः सहिताभिराहूयोक्तः ॥ ८५ ॥

उपाध्यायिनी ते ऋतुमती उपाध्यायश्च प्रोषितोऽस्या यथाऽयमृतुर्वन्ध्यो न भवति तथा क्रियेतामेषा विषीदतीति ॥ ८६ ॥

एवमुक्तस्ताः स्त्रियःप्रत्युवाच । न मया स्त्रीणां वचनादिदमकार्यं करणीयम् । न ह्यहमुपाध्यायेन संदिष्टोऽकार्यमपि त्वया कार्यमिति ॥ ८७॥

तस्य पुनरुपाध्यायः कालान्तरेण गृहमाजगाम तस्मात्प्रवासात् । स तु तद्वृत्तं तस्याशेषमुपलभ्य प्रीतिमानभूत ॥ ८८ ॥

उवाच चैनं वत्सोत्तङ्क किं ते प्रियं करवाणीति । धर्मतो हि शुश्रूषितोऽस्मि भवता तेन प्रीतिः परस्परेण नौ संवृद्धा तदनुजाने भवन्तं सर्वानेव कामानवाप्स्यसि गम्यतामिति ॥ ८९ ॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच किं ते प्रियं करवाणीति एवमाहुः ॥ ९० ॥

यश्चाधर्मेण वै ब्रूयाद्यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ९१ ॥

सोहमनुज्ञातो भवता इच्छामीष्टं गुर्वर्थमुपहर्तुमिति । तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तङ्क उष्यतां तावदिति ॥ ९२ ॥

स कदाचिदुपाध्यायमाहोत्तङ्क आज्ञापयतु भवान्किं ते प्रियमुपाहरामि गुर्वर्थमिति ॥ ९३ ॥

---

यथाश्विनावित्युक्तया स्वस्य तादृक् श्रेयः प्रदाने सामर्थ्याभावः सूचित उपाध्यायेन ॥७६॥ एषा तस्येति सूतवाक्यम ॥७७॥ शुश्रूषुणा सेवापरेण॥७८॥गौर्बलीवर्दः ॥७९॥ अत्र उद्दालकपरीक्षायास्तात्पर्यमत्यल्पमपि गुरुकार्यं देहत्यागेनापि कर्तव्यम । उपमन्युपरीक्षाया अत्यावश्यकमप्याहारादिकं गुरुणा प्रतिषिद्धं चेत्त्यक्तव्यमेवेति । वेदपरीक्षाया अनर्हेपि कर्मणि गुरुणा नियुक्तः शीतोष्णादिना बाध्यमानोऽपि न विषीदेदनुग्रह इत्येव मत्वा तिष्ठेदिति । एवमग्रेप्याख्यायिकातात्पर्याण्यूह्यानि ॥ ८० ॥ 'अथ सेवामनिच्छन्तं गुरुमर्थेन तोषयेत् । गुर्वर्थे यतमानं तमनुगृह्णन्ति देवता.' इत्येतद्दर्शयितुमुत्तङ्काख्यायिकामाह । स उपाध्यायेनेत्यादिना । स वेद· समावृत्तो मेखलाजिनादि ब्रह्मचर्याश्रमलिङ्गं त्यक्त्वा स्नातकत्वं प्राप्त. । नेयेष न कामितवान् ॥ ८१ ॥ नियोजयामास अग्निशुश्रूषादौ इति शेष. ॥८३॥ वसमानो वसन् । उपाध्यायस्त्रीभिः उपाध्यायाश्रमस्थाभिः ॥ ८५ ॥ वंध्य उपागमशून्य. । पाठान्तरे एतत्कर्म । विषीदति परिहीयते ॥८६॥ आहुर्वृद्धाः ॥९०॥ यथेति याजने हि ददतं वै ते तमयाजयंस्तस्माद्ददयाज्य.प्रतिगृह्णन्तो वै ते तमयाजयंस्तस्मात्प्रतिगृह्णता याज्यमुभये राध्नुवन्तीति श्रूयते । तद्वदध्यापनेऽपि याजने प्रतिग्रहवर्जाविकारूपे ददद्देवाध्याप्य प्रतिगृह्णतैवाध्याप्यमिति धर्मः। तत्र यो दक्षिणाया अग्रहणेन अधर्मेण यो ब्रूयात् अध्यापयेत् । यश्च अधर्मेण तस्या असमर्पणेन पृच्छति अधीते । अन्यतरः अदाता अप्रतिग्रहीता वा प्रैति म्रियते । विद्वेषं चान्यतरोऽदानादप्रतिग्रहाद्वाधिगच्छति । मद्दत्तदक्षिणाया अग्रहे तव अधर्मः स्यात् मम च त्वयि द्वेषः स्यादहमनेन कृतार्थो न कृत इति भाव· ॥९१॥ उष्यतामिति । कालान्तरे एतस्य गुरुदक्षिणादाननिर्बन्धमपनेष्यामीति भावः ॥९२॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तङ्क बहुशो मां चोदयसि गुर्वर्थमुपाहरामीति तद्गच्छैनां प्रविश्योपाध्यायिनीं पृच्छ किमुपाहरामीति ॥ ९४ ॥

एषा यद्ब्रवीति तदुपाहरस्वेति।स एवमुक्त उपाध्यायेनोपाध्यायिनीमपृच्छद्भगवत्युपाध्यायेनास्म्यनुज्ञातो गृहं गंतुमिच्छामीष्टं ते गुर्वर्थमुपहृत्यानृणो गन्तुमिति ॥ ९५ ॥

तदाज्ञापयतु भवती किमुपहरामि गुर्वर्थमिति । सैवमुक्तोपाध्यायिनी तमुत्तङ्कं प्रत्युवाच। गच्छ पौष्यं प्रति राजानं कुण्डले भिक्षितुं तस्य क्षत्रियया पिनद्धे ॥ ९६ ॥

आनयस्व चतुर्थेऽहनि पुण्यकं भविता ताभ्यामाबद्धाभ्यां शोभमाना ब्राह्मणान्परिवेष्टुमिच्छामि। तत्संपादयस्व एवं हि कुर्वतःश्रेयो भविता ऽन्यथा कुतःश्रेय इति ॥ ९७ ॥

स एवमुक्तस्तया प्रातिष्ठतोत्तङ्कःस पथि गच्छन्नपश्यदृषभमतिप्रमाणं तमधिरूढं च पुरुषमतिप्रमाणमेव स पुरुष उत्तङ्कमभ्यभाषत ॥ ९८ ॥ भो उत्तङ्कैतत्पुरीषमस्य ऋषभस्य भक्षयस्वेति स एवमुक्तो नैच्छत् ॥ ९९ ॥

तमाह पुरुषो भूयो भक्षयस्वोत्तङ्क मा विचारयोपाध्यायेनापि ते भक्षितं पूर्वमिति॥ १०० ॥

स एवमुक्तो बाढमित्युक्त्वा तदा तदृषभस्य मूत्रं पुरीषं च भक्षयित्वोत्तङ्कःसंभ्रमादुत्थित एवाप उपस्पृश्य प्रतस्थे ॥ १ ॥

यत्र स क्षत्रियः पौष्यस्तमुपेत्यासीनमपश्यदुत्तङ्कः।सउत्तङ्कस्तमुपेत्याशीर्भिरभिनंद्योवाच ॥२ ॥

अर्थी भवन्तमुपागतोऽस्मीति स एनमभिवाद्योवाच । भगवन्पौष्यःखल्वहं किं करवाणीति ॥

तमुवाच गुर्वर्थं कुण्डलयोरर्थेनाभ्यागतोऽस्मीति। ये वै ते क्षत्रियया पिनद्धे कुण्डले ते भवान्दातुमर्हतीति ॥ ४ ॥

तं प्रत्युवाच पौष्यः प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रिया याच्यतामिति । स तेनैवमुक्तः प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रियां नापश्यत् ॥ ५ ॥

स पौष्यं पुनरुवाच न युक्तं भवताऽहमनृतेनोपचरितुं न हि तेऽन्तःपुरे क्षत्रिया सन्निहिता नैनां पश्यामि ॥ ६ ॥

स एवमुक्तः पौष्यःक्षणमात्रं विमृश्योत्तङ्कं प्रत्युवाच । नियतं भवानुच्छिष्टः स्मर तावन्न हि सा क्षत्रिया उच्छिष्टेनाशुचिना शक्या द्रष्टुं पतिव्रतात्वात्सैषा नाशुचेर्दर्शनमुपैतीति ॥ ७ ॥

अथैवमुक्त उत्तङ्कः स्मृत्वोवाचास्ति खलु मयोत्थितेनोपस्पृष्टं गच्छता चेति । तं पौष्यः प्रत्युवाच एष ते व्यतिक्रमो नोत्थितेनोपस्पृष्टं भवतीति शीघ्रं गच्छता चेति ॥ ८ ॥

अथोत्तङ्कस्तं तथेत्युक्त्वा प्राङ्मुख उपविश्य सुप्रक्षालितपाणिपादवदनो निःशब्दाभिरफेनाभिरनुष्णाभिर्हृद्गताभिरद्भिस्त्रिः पीत्वा द्विः परिमृज्य खान्यद्भिरुपस्पृश्य चान्तःपुरं प्रविवेश ॥ ९ ॥

ततस्तां क्षत्रियामपश्यत् सा च दृष्ट्वोत्तङ्कं प्रत्युत्थायाभिवाद्योवाच स्वागतं त भगवन्नाज्ञापय किं करवाणीति ॥ ११० ॥

स तामुवाचैते कुण्डले गुर्वर्थं मे भिक्षिते दातुमर्हसीति। सा प्रीता तेन तस्य सद्भावेन पात्रमयमनतिक्रमणीयश्चेति मत्वा ते कुण्डलेऽवमुच्यास्मै प्रायच्छदाह तक्षको नागराजः सुभृशं प्रार्थयत्यप्रमत्तो नेतुमर्हसीति ॥ ११ ॥

स एवमुक्तस्तां क्षत्रियां प्रत्युवाच भगवति सुनिर्वृता भव । न मां शक्तस्तक्षको नागराजो धर्षयितुमिति ॥ १२ ॥

स एवमुक्त्वा तां क्षत्रियामामन्त्र्य पौष्यसकाशमागच्छत् । आह चैनं भोः पौष्य प्रीतोऽस्मीति तमुत्तङ्कं पौष्यः प्रत्युवाच ॥ ११३ ॥

पिनद्धे परिहिते ॥ ९६ ॥ पुण्यकं व्रतविशेषः। परिवेषणं अन्नादिदानम् ॥ ९७ ॥ ऋषभो वृषभः। स्वाध्यायाध्ययनजो धर्मः । तमाधिरूढः पुमांस्तदधिष्ठाता परमेश्वरः ॥ ९८ ॥ तेन प्रेरित उत्तङ्कः पुरीषं धर्मफलं अमृतं मरणभयनिवृत्तये भक्षयस्वाङ्गीकुरुष्व ॥ ९९ ॥ स तदनिच्छन्नपि बलादिन्द्रेण धर्मफलं ग्राहितः ॥ १०० ॥ स तु पुरीषमेवेदमिति मत्वा भक्षयित्वा उत्थितः अनुपविश्यैव अप उपस्पृश्य कार्यशैघ्र्यात्प्रतस्थे । अत्र ऋषभादिरूपकेण धर्मबलादानिष्टनिवृत्तिरिष्टप्राप्तिश्च भवतीति दर्शितम् ॥ १ ॥ तावतैवापराधेन क्षत्रियां नापश्यत् । अशुचित्वदोषादेवेदानीं तं नाना देवर्षिदर्शनादिकं न जायत इति भावः ॥ ५ ॥ पतिव्रतात्वादिति । पातिव्रत्याद्देवतावदल्पापराधेऽपि स्त्रियो दुर्लक्ष्या भवन्तीति तद्धर्ममहात्म्यं दर्शितम् ॥ ७ ॥ अथेति । तिष्ठता गच्छता चोपस्पृष्टं आचमनं कृतम् । तदकृतमेवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ खानिइन्द्रियाणि ॥ १०९ ॥ सद्भावेन गुरुभक्त्या ॥ ११ ॥ हे भगवति त्वं निर्वृता निश्चिन्ता भव इत्युवाचेति संबन्धः ॥ १२ ॥

भगवंश्चिरेण पात्रमासाद्य ते भवांश्च गुणवानतिथिस्तदिच्छे श्राद्धं कर्तुं क्रियतां क्षण इति ॥१४

तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच कृतक्षण एवास्मि शीघ्रमिच्छामि। यथोपपन्नमन्नमुपस्कृतं भवतेति स तथेत्युक्त्वा यथोपपन्नेनान्नेनैनं भोजयामास ॥१५॥

अथोत्तङ्कः सकेशं शीतमन्नं दृष्ट्वा अशुच्येतदिति मत्वा तं पौष्यमुवाच। यस्मान्मे अशुच्यन्नं ददासि तस्मादन्धो भविष्यसीति ॥१६॥

तं पौष्यः प्रत्युवाच यस्मात्त्वमप्यदुष्टमन्नं दूषयसि तस्मात्त्वमनपत्यो भविष्यसीति तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच ॥१७॥

न युक्तं भवताऽन्नमशुचि दत्त्वा प्रतिशापं दातुं तस्मादन्नमेव प्रत्यक्षीकुरु। ततः पौष्यस्तदन्नमशुचि दृष्ट्वा तस्याशुचिभावमपरोक्षयामास ॥१८॥

अथ तदन्नं मुक्तकेश्या स्त्रिया यदुपहृतमनुष्णं सकेशं चाशुच्येतदिति मत्वा तमृषिमुत्तङ्कं प्रसादयामास ॥१९॥

भगवन्नेतदज्ञानादन्नं सकेशमुपाहृतं शीतं तत्क्षामये भवन्तं न भवेयमन्ध इति तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच ॥१२०॥

न मृषा ब्रवीमि भूत्वा त्वमन्धो न चिरादनन्धो भविष्यसीति। ममापि शापो भवता दत्तो न भवेदिति ॥२१॥

तं पौष्यः प्रत्युवाच न चाहं शक्तः शापं प्रत्यादातुं न हि मे मन्युरद्याप्युपशमं गच्छति किं चैतद्भवता न ज्ञायते तथा ॥२२॥

नवनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य वाचि क्षुरो निशितस्तीक्ष्णधारः। तदुभयमेतद्विपरीतं क्षत्रियस्य वाङ्नवनीतं हृदयं तीक्ष्णधारमिति ॥ २३ ॥

तदेवं गते न शक्तोऽहं तीक्ष्णहृदयत्वात्तं शापमन्यथा कर्तुं गम्यतामिति तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच। भवताऽहमन्नस्याशुचिभावमालक्ष्य प्रत्यनुनीतः प्राक् च तेऽभिहितम् ॥२४॥

यस्माददुष्टमन्नं दूषयसि तस्मादनपत्यो भविष्यसीति। दुष्टे चान्ने नैष मम शापो भविष्यतीति२५

साधयामस्तावदित्युक्त्वा प्रातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुण्डले गृहीत्वा सोऽपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानं च ॥२६॥

अथोत्तङ्कस्ते कुण्डले संन्यस्य भूमावुदकार्थं प्रचक्रमे। एतस्मिन्नन्तरे स क्षपणकस्त्वरमाण उपसृत्य ते कुण्डले गृहीत्वा प्राद्रवत् ॥२७॥

तमुत्तङ्कोऽभिसृत्य कृतोदककार्यः शुचिः प्रयतो नमो देवेभ्यो गुरुभ्यश्च कृत्वा महता जवेन तमन्वयात् ॥२८॥

तस्य तक्षको दृढमासन्नः स तं जग्राह गृहीतमात्रः स तद्रूपं विहाय तक्षकस्वरुपं कृत्वा सहसा धरण्यां विवृतं महाबिलं प्रविवेश॥ २९ ॥

प्रविश्य च नागलोकं स्वभवनमगच्छत्। अथोत्तङ्कस्तस्याः क्षत्रियाया वचः स्मृत्वा तं तक्षकमन्वगच्छत् ॥३०॥

स तद्बिलं दण्डकाष्ठेन चखान न चाशकत्। तं क्लिश्यमानमिन्द्रोऽपश्यत्स वज्रं प्रेषयामास ॥३१॥

गच्छास्य ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुरुष्वेति। अथ वज्रं दण्डकाष्ठमनुप्रविश्य तद्बिलमदारयत्३२

तमुत्तङ्कोऽनुविवेश तेनैव बिलेन प्रविश्य च तं नागलोकमपर्यन्तमनेकविधप्रासादहर्म्यवलभीनिर्यूहशतसंकुलमुच्चावचक्रीडाश्चर्यस्थानावकीर्णमपश्यत् ॥ ३३ ॥

स तत्र नागांस्तानस्तुवदेभिः श्लोकैः—
य ऐरावतराजानः सर्पाः समितिशोभनाः।
क्षरन्त इव जीमूताः सविद्युत्पवनेरिताः ॥३४॥

---

अत्र सर्वत्र शापव्याजेन सत्पात्रे वैशसीदाद्यवपन्नमन्नं ददन्धो भवतीति दर्शितम्। तस्मात्परीक्ष्य देयमिति भाव। विनापराध दत्त शापो विनिष्फलो भवतीत्यप्युन्नेयम्। राज्ञा दत्तस्य शापस्य वैयर्थ्यदर्शनात् ॥ १२० ॥ न चिरात् शीघ्रम् ॥ २१ ॥ प्रत्यादातु उपसहर्तुम् ॥ २२ ॥ नवनीतवत् शीघ्रद्रावि। वाक् क्षुरवत्स्वयो विच्छेदित्रा सुखजीवितादेरित्यर्थ ॥ २३ ॥ गम्यता त्वयेति शेष। ते त्वया ॥ २४ ॥ साधयाम शापाभाव निश्चिनुम क्षपणकं पाखण्टभिक्षुकम् ॥ २६ ॥ उदकार्थं शौचाचमनादि प्रचक्रमे। कर्तुमितिशेष ॥ २७ ॥ नमस्कृत्वेति सबन्ध ॥ २८ ॥ दृढमासन्न अत्यन्तसान्निहित ॥ २९ ॥ अन्वगच्छत् आज्ञातवान् ॥३०॥ प्रासादा देवनृदेवगृहाणि। हर्म्याणि धनिकाना गृहाणि। वलभ्यो मध्योच्छ्रिता उभयतो न मत्पक्षा गृहविशेषा। निर्यूहा पट्टशाला ॥ ३३ ॥ ऐरावतो राजा येषा ते। समितौ रणे शोभना श्लाघिन। जीमूता इव शस्त्रधारा क्षरन्त। सविद्युत पवनस्येव ईरित गमनं यासा ता शीघ्रा सफालाश्च। शस्त्रधारा इत्यध्याहार ॥३४॥

सुरूपा बहुरूपाश्च तथा कल्माषकुण्डलाः ।
आदित्यवन्नाकपृष्ठे रेजुरैरावतोद्भवाः ॥ ३५
बहूनि नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे ।
तत्रस्थानपि संस्तौमि महतः पन्नगानहम् ॥ ३६
इच्छेत्कोऽर्कांशुसेनायां चर्तुमैरावतं विना ।
शतान्यशीतिरष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः॥ ३७
सर्पाणां प्रग्रहा यान्ति धृतराष्ट्रो यदैजति ।
ये चैनमुपसर्पन्ति ये च दूरपथं गताः ॥ ३८
अहमैरावतज्येष्ठभ्रातृभ्योऽकरवं नमः ।
यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चासवत्पुरा ॥ ३९
तं नागराजमस्तौषं कुण्डलार्थाय तक्षकम् ।
तक्षकश्चाश्वसेनश्च नित्यं सहचरावुभौ ॥ १४०
कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमिक्षुमतीमनु ।
जघन्यजस्तक्षकश्च श्रुतसेनेति यः सुतः ॥ ४१
अवसद्यो महद्युम्नि प्रार्थयन्नागमुख्यताम् ।
करवाणि सदा चाहं नमस्तस्मै महात्मने ॥ ४२
एवं स्तुत्वा स विप्रर्षिरुत्तङ्को भुजगोत्तमान् ।
नैव ते कुण्डले लेभे ततश्चिन्तामुपागमत् ॥ ४३

एवं स्तुवन्नपि नागान्यदा ते कुण्डले नालभत्तदाऽपश्यत्स्त्रियौ तन्त्रे अधिरोप्य सुवेमे पटं वयन्त्यौ । तस्मिंस्तन्त्रे कृष्णाः सिताश्च तन्तवश्चक्रं चापश्यत् द्वादशारं षड्भिः कुमारैः परिवर्त्यमानं पुरुषं चापश्यदश्वं च दर्शनीयम् ॥ ४४
स तान्सर्वास्तुष्टाव एभिर्मन्त्रवदेव श्लोकैः ॥ १४५

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानि मध्ये
षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेऽस्मिन् ।
चक्रे चतुर्विंशतिपर्वयोगे
षड्वै कुमाराः परिवर्तयन्ति ॥ १ ॥४६॥

कल्माषकुण्डलाः चित्रकुण्डलाः ॥ ३५ ॥ अर्कांशूनामतितीक्ष्णानाम्। अयं धृतराष्ट्र ऐरावतभ्राता यदा एजति दीप्यते। 'एजृभ्रेजृभ्राजृदीप्तौ' इत्यस्य धातो रूपम् । तदाष्टाधिकान्यष्टाविंशतिसहस्राणि सर्पाणां प्रग्रहाः सूर्यहयरश्मिभूता नागा यान्ति । सौरं तेजोऽपि यत्तेजसा निरुद्धं प्रग्रहसर्पान्न दग्धुमीष्टे इत्यर्थः सार्धः ॥ ३८ ॥ महद्युम्नि तीर्थविशेष इति प्राञ्चः । महद्युम्नि सूर्ये तत्समीपे नागमुख्यतां प्रार्थयन् कुरुक्षेत्रेऽवसदिति पूर्वेण संबन्धः कुरुक्षेत्रवासमात्रादेव महत्स्थानं प्राप्यत इत्याशयः । *द्युमानित्यत्रमनिच आदिलोप आर्षः । अत्रायमाख्यायिकातात्पर्यार्थः । कुण्डलरत्नं वस्तुतत्त्वम् । तक्षकेणेव पाखण्डिना अपहृतं परमेश्वरप्रसादलब्धविवेकवज्रबलेन पाखण्डमतविलमवदार्य विवेकमनुनागराजविलतुल्यमान्तरमान्तरंकोशं पूर्वपूर्वकोशाद्रमणीयतरं प्रविश्य तत्रत्यां सत्यसंकल्पत्वादि संपदं दृष्ट्वा तदभिमानिनां सर्पतुल्यानामिन्द्रियबुध्यादि स्थानीयानामनुनयेनापि तत्त्वरत्नं यदा न प्राप्तं तदा संकटस्थः स्वयमेवपूर्वार्जितसाङ्गाध्ययनधर्मबलादालोचितवानिति । तत्र वेदेऽपि छांदोग्यादौ गुरुशुश्रूषया तुष्टः परमात्मा स्वयमेवानुगृह्णातीति दृष्टम् । यथा सत्यकामस्य उपाध्यायगवीरभिरक्षतोऽमानुषेभ्य ऋषभादिभ्यो विद्यालाभः । तथा उपकोसलस्य गुरोरग्नीन्सेवमानस्याग्निभ्य एव विद्यालाभः । एवमुत्तङ्कस्यापि ब्रह्मचर्यदार्ढ्यात्प्रजापतेरिव स्वत एव ज्ञानमुद्भाविति युज्यत एवेति ॥ ४२ ॥ तत्र संवत्सरात्मकपटरूपकेण प्रपञ्चस्वरूपमत्रनिरूप्यते । तत्र स्त्रियौ चितिर्माया च । तन्त्रं यत्र दीर्घतन्तवः प्रोता भवन्ति तत्स्थानीयमविद्याकामकर्मात्मकं वासनाजालं तत्र ह्येतत्सर्वं प्रतिष्ठितम् । पटः संसारस्तं वयन्त्यौ अविच्छिन्नतन्तुसन्तानेन निर्वर्तयन्त्यौ। प्रकाशाप्रकाशाभ्यामेव रज्जूरगादि जायते न त्वन्यतरेण तादृशत्वात्संसारस्य चिदचिद्रूपयुवतीद्वयनिर्वर्त्यत्वं युक्तम् । तस्मिंस्तन्त्रे सुवेमे शोभने वेमे तिर्यक्तान्तुविक्षेपणे तत्तुल्ये पुण्यपापे । तत्प्रयोज्ये सितकृष्णतन्तुस्थानीये सुखदुःखे । चक्रं तत्स्थूलशरीरम् । षड्भिर्वक्ष्यमाणैः कुमारैः परिवर्त्यमानं संचार्यमाणं पुरुषं च तदधिष्ठातारमन्तर्यामिणं मायाविनम् । अश्वं चाशुवस्वभावं बुद्धिवशवर्तित्वात्तिरोहितासंगस्वभावं जीवं चादर्शनीयमहं प्रत्ययगोचरं चापश्यत् ॥ ४४ ॥ स तान्सर्वास्तुष्टाव एभिर्वक्ष्यमाणैः श्लोकैः । मन्त्रवद्वेदगतऋग्भागवत् । तत्त्वार्थप्रकाशकैरिति शेषः । मन्त्रवादेति पाठे मन्त्रवादो मन्त्रस्वरूपम् ॥१४५॥ श्लोकानेवाह । त्रीणीति । अत्र संवत्सरः प्रजापतिरिति श्रुतेः संवत्सररूपकेण प्रजापतिं विश्वात्मानं कृत्स्नसंसाराभिमानिनं समष्टिजीवं स्तौति । तत्र संवत्सरस्य षष्ट्यधिकशतत्रयमहोरात्रा दर्शपूर्णमासाख्यानि चतुर्विंशतिपर्वाणि षड्ऋतवश्चेत्यवयवाः । एवं प्रजापतेरपि चतुर्विंशतेस्तत्त्वानां योगे संघातरूपे चक्रे स्थूलसूक्ष्मशरीरात्मके । तत्त्वानि च मूलप्रकृतिः महान् अहंकारः पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानीति । तत्र ध्रुवे यावन्मोक्षस्थायिनि चक्रे चक्रवदनिशं भ्राम्यमाणे । मध्येऽन्तर्यो-नित्यं चरति विषयान् भुंक्ते । भोक्ताऽत्मा । अत्रास्मिन्नेव प्रत्यग्रूपे त्रीणि शतानि षष्टिश्च वासनातन्तुयूथानि समर्पितानि । तथा हृदयस्य हि ता नाड्यो द्वासप्ततिः । सहस्राणीति श्रूयमाणसंख्याका नाड्यस्तत्तल्लोकगतिप्रदाः सन्ति । तासां चैकैकस्मिँल्लोके शब्दादीनां पञ्चानामपि सत्त्वात्प्रत्येकं

तन्त्रं चेदं विश्वरूपे युवत्यौ
वयतस्तंतून्सततं वर्तयन्त्यौ ॥
कृष्णान्सितांश्चैव विवर्तयन्त्यौ
भूतान्यजस्रं भुवनानि चैव २॥ १४७

वज्रस्य भर्ता भुवनस्य गोप्ता
वृत्रस्य हन्ता नमुचेर्निहन्ता ॥
कृष्णे वसानो वसने महात्मा
सत्यानृते यो विविनक्ति लोके ३॥ ४८

यो वाजिनं गर्भमपां पुराणं
वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति ॥
नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय
लोकत्रयेशाय पुरंदराय ४॥ ४९

ततः स एनं पुरुषः प्राह प्रीतोऽस्मि तेऽहमनेन स्तोत्रेण किं ते प्रियं करवाणीति स तमुवाच ॥१५०॥

---

यथाविधत्वम् । तथा च विस्तरेण तावत्सहस्रसंख्याका अपि संक्षेपात्त्रीणि शतानि षष्टिश्चोच्यन्ते । एवं चास्मिन् भोक्तरि तावन्तो वासना अर्पिता इत्यर्थः । षट्कुमाराः जीवगता अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाख्याः । 'तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः । अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः' इति स्मृत्युक्तम आद्याख्या वा पञ्चक्लेशाः । अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मधीरविद्या । अहमेव महानस्मीति धीरस्मिता । शेषाः प्रसिद्धाः । षष्ठी ऐश्वरी माया च । एते षट्कुमारा इव विवेकवैराग्यबलवता सुजेया अपि ते परिवर्तयन्ति जन्ममरणप्रबन्धं घटीयन्त्रवदनिशं चालयन्तीत्यर्थः ॥ १ ॥ तन्त्रं चेदमिति । इदं तन्त्रं वासनाजालं विश्वरूपे विश्वरूपा तावन्मायैव तामनुचितिरपि विश्वरूपा । 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' । 'रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव ' इत्यादि श्रुतिभ्यः । युवत्यौ बाल्यवार्धक्यकृतापकर्षशून्ये । वयतः संतनुतः । कथं सततं तन्तून् वासनामयान् वर्तयन्त्यौ चालयन्त्यौ । तन्तुवायाविव इमे एव बुद्धिचिदाभासरूपाभ्यां घटादिकं कवलीकृत्य तद्विषयां वासना द्रढयत इत्यर्थः । यद्वा युवत्यौ धाताविधातारौ तत्र धाता मायोपाधिरीश्वरः पर्जन्यवत्साधारणं कारणम् । विधाता विविधवासनामयत्वेन विचित्ररूपः सन् कर्ता जीवः तत्तद्बीजवदसाधारणं कारणम् । तावेतौ प्रयोज्यप्रयोजकरूपेणेदं तन्त्रं संसाराख्यं वयतः इत्यादि यथायोग्यं व्याख्येयम् । कृष्णान् दुःखरूपान्सितान्सुखमयान् । विवर्तयन्त्यौ वैपरीत्येन सुखे दुःखबुद्धिं दुःखे सुखबुद्धिं च संपादयन्त्यौ । तथाऽजस्रं भूतानि जरायुजादीनि भुवनानि तदाश्रयरूपाणि चतुर्दश । तानि सर्वाणि विवर्तयन्त्यावित्यनुषज्यते । उर्ध्वाधरीभावेन चालयन्त्यावित्यर्थः ॥ २॥ ॥१४७॥ एवं बन्धस्वरूपं प्रदर्श्य तस्याज्ञानकार्यत्वेन ज्ञानमात्रापनोद्यत्वमाह । वज्रस्येति । योऽयं चक्रे चरति मौढ्यदशायां स एव साधकदशायां वज्रस्य विवेकस्य भर्ता भवति शास्त्रश्रवणेन गुर्वाद्यनुग्रहात् । अत एव भुवनस्य गोप्ता विवेकवत्त्वादेव सर्वभूताभयदायी वृत्रस्य स्वरूपावरकस्याज्ञानस्य निहन्ता । सर्वत्र इन्द्रवृत्रवज्रशब्दानामात्ममायाविवेकवाचित्वमाश्वमेधिके स्पष्टीभविष्यति । अनयैव दिशा कृत्स्नो वेदार्थोऽपि निर्वोढव्यः । नमुचेः न मुञ्चतीति आवरणापगमे सत्यपि प्रतिबिम्बभ्रमवदित्यज्ञानगतविक्षेपशक्तिर्नमुचिः । तस्यापि निहन्ता । भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरिति सत्यपि विद्ययाऽविद्योच्छेदे तद्विक्षेपशक्तेर्देहान्त एव नाशश्रवणात् । कृष्णे विद्याविद्ये । मायाकार्यत्वादुभे अपि कृष्णे । यथोक्तं श्रीमद्भागवते । 'विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धवशरीरिणाम् । मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ' इति । वसने वसनवदावरके । वसान स्वीकृतवान् । उभे अपि स्वरूपाद्बहिर्भूते इत्यर्थः । अत एव महात्मा व्यापकत्वेन त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वमुक्तम् । अस्य चिद्रूपत्वमाह । सत्यानृते सत्यं अबाधितं प्रत्यगात्मतत्त्वम् । अनृतं अहंकारादि तदुभयं यो विविनक्ति पृथक्करोति यस्तस्मै नम इत्युत्तरेण संबन्धः । स्थूलसूक्ष्मकारणाख्योपाधित्रयं निरस्य स्वमहिमप्रतिष्ठो भवतीत्यर्थः । एतेन दृश्यस्याहंकारादेः पृथक्करणेन दृङ्मात्रमात्मतत्त्वमिति दर्शितम् ॥ ३ ॥ अथैवंभूतस्य चिदात्मनः समष्टिव्यष्टिपिण्डान्तः प्रविष्टत्वं दर्शयति । य इति । यः आत्मा पूर्वोक्तो वैश्वानरं विराजं विश्वं वा वाहनं स्वारोहणस्थानम् अभ्युपैति अभितःउपैत्युपगच्छति । ' तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् 'इति श्रुतेः । उपाध्यात्मता धत्ते इत्यर्थः । आकस्मिकत्वं अभ्युपगन्तव्याभ्युपगमयोर्वारयति । पुराणमिति । कार्यरूपेण क्षयिष्णुमपि कारणरूपेण सततं सन्तमित्यर्थः । अपां गर्भमिव गर्भं प्रतिबिम्बभूतं न तु ब्रह्मैकदेशभूतम् । तस्यासङ्गत्वात् । अनंशत्वाच्च । वाजिनं इन्द्रियं वै वीर्यं वाजिनमिति श्रुतेश्चिदात्मनो जडशक्तिरूपम् । य एवं भूतोऽपि जीवत्वं मिथ्यैव प्रतिबिम्बरूपेणापद्यते तस्मै नमोऽस्तु । जगदीश्वराय चतुर्दशभुवननियन्त्रे । लोकत्रयं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तानि तेषामीशाय । एवं तत्त्वं पदवाच्यार्थरूपित्वमुक्तम् । तल्लक्ष्यार्थरूपित्वमाह । पुरंदरायेति । पुराणि व्यष्टिसमष्ट्यात्मकानि त्रीणि त्रीणि शरीराणि दारयति विद्ययाऽविद्योच्छेदेन समूलमुन्मूलयतीति तथा सर्वोपाधिशून्यचिन्मात्रायेत्यर्थः । पुराणि दारयतीति स्थिते 'वाचं यमपुरंदरौ च' इति खशमुमागमश्च निपात्येते ४॥४९

नागा मे वशमीयुरिति स चैनं पुरुषः पुनरुवाच एतमश्वमपाने धमस्वेति ॥ १५१ ॥

ततोऽश्वस्यापानमधमत्ततोऽश्वाद्धम्यमानात्स-र्वस्रोतोभ्यःपावकार्चिषः सधूमा निष्पेतुः ॥ ५२ ॥

ताभिर्नागलोक उपधूपितेऽथ संभ्रान्तस्तक्षकोऽग्नेस्तेजोभयाद्विषण्णः कुण्डले गृहीत्वा सहसा भवनान्निष्क्रम्योत्तङ्कमुवाच ॥ ५३ ॥

इमे कुण्डले गृह्णातु भवानिति स ते प्रतिजग्राहोत्तङ्कः प्रतिगृह्य च कुण्डलेऽचिन्तयत् ॥५४॥

अद्य तत्पुण्यकमुपाध्यायिन्या दूरं चाहमभ्यागतः स कथं संभावयेयमिति तत एवं चिन्तयानमेव स पुरुष उवाच ॥५५॥

उत्तङ्क एनमेवाश्वमधिरोह त्वां क्षणेनैवोपाध्यायकुलं प्रापयिष्यतीति ॥ ५६ ॥

स तथेत्युक्त्वा तमश्वमधिरुह्य प्रत्याजगामोपाध्यायकुलमुपाध्यायिनी च स्नाता केशानावापयन्त्युपविष्टोत्तङ्को नागच्छतीति शापायास्य मनो दध्रे ॥ ५७ ॥

अथतस्मिन्नन्तरे स उत्तङ्कः प्रविश्य उपाध्यायकुलमुपाध्यायिनीमभ्यवादयत् ते चास्यै कुण्डले प्रायच्छत्सा चैनं प्रत्युवाच ॥५८॥

उत्तङ्क देशे कालेऽभ्यागतः स्वागतं ते वत्स त्वमनागासि मया न शप्तः श्रेयस्तवोपस्थितं सिद्धिमाप्नुहीति ॥ ५९ ॥

अथोत्तङ्क उपाध्यायमभ्यवादयत्। तमुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तङ्क स्वागतं ते किं चिरं कृतमिति ॥१६०॥

तमुत्तङ्क उपाध्यायं प्रत्युवाच भोस्तक्षकेण मे नागराजेन विघ्नः कृतोऽस्मिन्कर्मणि तेनाऽस्मि नागलोकं गतः ॥ ६१ ॥

तत्र च मया दृष्टे स्त्रियौ तन्त्रेऽधिरोप्य पटं वयन्त्यौ तस्मिंश्च कृष्णाः सिताश्च तन्तवः किं तत् ॥६२॥

तत्र च मया चक्रं दृष्टं द्वादशारं षड्चैनं कुमाराः परिवर्तयन्ति तदपि किम् ॥ पुरुषश्चापि मया दृष्टः स चाऽपि कः । अश्वश्चातिप्रमाणो दृष्टः स चाऽपि कः ॥६३॥

पथि गच्छता च मया ऋषभो दृष्टस्तं च पुरुषोऽधिरूढस्तेनाऽस्मि सोपचारमुक्त उत्तङ्कास्य ऋषभस्य पुरीषं भक्षय उपाध्यायेनापि ते भक्षितमिति ॥ ६४ ॥

ततस्तस्य वचनान्मया तदृषभस्य पुरीषमुपयुक्तं स चापि कः । तदेतद्भवतोपदिष्टमिच्छेयं श्रोतुं किं तदिति । स तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच ॥ ६५ ॥

ये ते स्त्रियौ धाता विधाता च ये च ते कृष्णाः सितास्तन्तवस्ते रात्र्यहनी। यदपि तच्चक्रं द्वादशारं षड्वै कुमाराः परिवर्तयन्ति तेऽपि षड्ऋतवः संवत्सरश्चक्रम् ॥ ६६ ॥

यः पुरुषः स पर्जन्यो योऽश्वः सोऽग्निर्य ऋषभस्त्वया पथि गच्छता दृष्टः स ऐरावतो नागराट् ॥६७॥

---

एतमश्वमपाने धमस्वेति वैराजमैश्वर्यं प्रदर्शयेत्यर्थः ५१ ॥ स्रोतोभ्यः शरीररन्ध्रेभ्यः ॥ ५२ ॥ उपधूपिते धूमेन व्याप्ते । तत एव सर्वेश्वरत्वाविर्भावात्तक्षकः शरणागतो बभूवेति तात्पर्यम् ॥ १५३ ॥ तत एव सत्यसंकल्पत्वाख्यं वैराजं भावमारूढः क्षणेन गुरुकुलं प्राप । आवापयन्ती दन्तपत्रिकया वेणीरूपेण संग्रथनं केशानां कारयन्ती ॥५७॥ यदि क्षणं नागतः स्यास्तर्हि आनागासि अपराधाभावेऽपि मया शप्तः स्या इत्यर्थः । श्रेयस्तत्त्वज्ञानम् सिद्धिमणिमाद्यैश्वर्यम् ॥५९॥ इदानीं स्वयमपरोक्षीकृतमर्थं गुरुमुखेनाधिगन्तुमुत्तङ्कः पृच्छति तत्र चेत्यादिना ॥६२॥ सोपचारं सानुनयम् ॥६४॥ आचार्याद्धै विद्या विदिता साधिष्ठं प्राप इति श्रुतेरमानुषैरुक्ताऽपि विद्यागुरुमुखेन दृढीकृता वाढं फलवतीतिभवतीति भावः ॥६५॥ स्त्रियौ धाताविधाता चेति। दधाति सत्तास्फूर्तीकार्येष्विति धाताचितिः विविधरूपेण दधाति धारयत्यात्मानमितिनेकाविकारवती माया विधाता । रात्रिवद्व्यामोहकत्वाद्दुःखं रात्रिः । अहर्वत् प्रसादकत्वात् सुखमहः ऋतुवदनिशं भ्रममाणत्वादृतुशब्देनाविद्यादिपञ्चकं मायाचेति पूर्वोक्तमेव षट्कम् । संवत्सरः प्रजापतिः । सर्वोपाधित्वसाम्यादुदाहृतश्रुतेश्च । न हि संवत्सराख्यः कालो नाम किंचित्सूर्यादिपरिस्पन्दाल्पत्वबहुत्वादिनानुमेयं वस्तुनि जीर्णत्वनूतनत्वादिव्यवहारहेतुतया सिद्धमिदानीं तदानीमित्यादिव्यवहारालम्बनं द्रव्यमस्ति । घटादि द्रव्यस्यैव पूर्वापरदेशसंबन्धेन नूतनत्वातीतत्वाद्यवस्थाभेदेन च तदुपपत्तेः किमन्तर्गडुना कालेनेति । प्रजापतिरेव संवत्सरशब्दार्थः ॥ ६६ ॥ यः पुरुषः स पर्जन्यः पर्जन्यवत्तापनाशकत्वादाचार्यरूपी ईश्वरः योऽश्वः सोऽग्निः भोक्ता जीव इत्यर्थः । इर

यश्चैनमधिरूढः पुरुषः स चेन्द्रो यदपि ते भक्षितं तस्य ऋषभस्य पुरीषं तदमृतं तेन खल्वासि तस्मिन्नागभवने न व्यापन्नस्त्वम् ॥ ६८ ॥

स हि भगवानिन्द्रो मम सखा त्वदनुक्रोशादिममनुग्रहं कृतवान् । तस्मात्कुण्डले गृहीत्वा पुनरागतोऽसि ॥ ६९ ॥

तत्सौम्य गम्यतामनुजाने भवन्तं श्रेयोऽवाप्स्यसीति।स उपाध्यायेनानुज्ञातो भगवानुत्तङ्कः क्रुद्धस्तक्षकं प्रतिचिकीर्षमाणो हास्तिनपुरं प्रतस्थे।१७०

स हास्तिनपुरं प्राप्य न चिराद्विप्रसत्तमः ।
समागच्छत राजानमुत्तङ्को जनमेजयम् ॥ ७१ ॥
पुरा तक्षशिलासंस्थं निवृत्तमपराजितम् ॥
सम्यग्विजयिनं दृष्ट्वा समन्तान्मन्त्रिभिर्वृतम् ॥७२॥
तस्मै जयाशिषः पूर्वं यथान्यायं प्रयुज्य सः ॥
उवाचैनं वचः काले शब्दसंपन्नया गिरा ॥ ७३ ॥

उत्तङ्क उवाच ।

अन्यस्मिन्करणीये तु कार्ये पार्थिवसत्तम ।
बाल्यादिवान्यदेव त्वं कुरुषे नृपसत्तम ॥ ७४

सौतिरुवाच ।

एवमुक्तस्तु विप्रेण स राजा जनमेजयः ।
अर्चयित्वा यथान्यायं प्रत्युवाच द्विजोत्तमम् ॥७५॥

जनमेजय उवाच ।

आसां प्रजानां परिपालनेन
स्वं क्षत्रधर्मं परिपालयामि ।
प्रब्रूहि मे किं करणीयमद्य
येनासि कार्येण समागतस्त्वम् ॥ ७६

सौतिरुवाच ।

स एवमुक्तस्तु नृपोत्तमेन
द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः ।
उवाच राजानमदीनसत्वं
स्वमेव कार्यं नृपते कुरुष्व ॥ १७७ ॥

उत्तङ्क उवाच ।

तक्षकेण महीन्द्रेन्द्र येन ते हिंसितः पिता ।
तस्मै प्रतिकुरुष्व त्वं पन्नगाय दुरात्मने ॥ ७८ ॥
कार्यकालं हि मन्येऽहं विधिदृष्टस्य कर्मणः ।
तद्गच्छापचितिं राजन्पितुस्तस्य महात्मनः ॥७९॥
तेन ह्यनपराधी स दष्टो दुष्टान्तरात्मना ।
पञ्चत्वमगमद्राजा वज्राहत इव द्रुमः ॥ १८० ॥
बलदर्पसमुत्सिक्तस्तक्षकः पन्नगाधमः ।
अकार्यं कृतवान्पापो योऽदशत्पितरं तव ॥ ८१ ॥
राजर्षिवंशगोप्तारममरप्रतिमं नृपम् ।
यियासुं कश्यपं चैव न्यवर्तयत पापकृत् ॥ ८२ ॥
होतुमर्हसि तं पापं ज्वलिते हव्यवाहने ।
सर्पसत्रे महाराज त्वरितं तद्विधीयताम् ॥८३ ॥
एवं पितुश्चापचितिं कृतवांस्त्वं भविष्यसि ।
मम प्रियं च सुमहत्कृतं राजन् भविष्यति ॥ ८४ ॥
कर्मणः पृथिवीपाल मम येन दुरात्मना ।
विघ्नः कृतो महाराज गुर्वर्थं चरतोऽनघ ॥ ८५ ॥

सौतिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु नृपतिस्तक्षकाय चुकोप ह ।
उत्तङ्कवाक्यहविषा दीप्तोऽग्निर्हविषा यथा ॥ ८६
अपृच्छत्स तदा राजा मन्त्रिणस्तान्सुदुःखितः ।
उत्तङ्कस्यैव सान्निध्ये पितुः स्वर्गगतिं प्रति ॥८७॥
तदैव हि स राजेन्द्रो दुःखशोकाप्लुतोऽभवत् ।
यदैव वृत्तं पितरमुत्तङ्कादशृणोत्तदा ॥ १८८ ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौष्यपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

समाप्तं पौष्यपर्व ।

---

अश्वं तद्वान् इरावान् क्रतुस्तत उत्पन्न ऐरावतो धर्म । नागराडिव अप्रकृप्य शेषमुक्तार्थम् ॥ ६७ ॥ न व्यापन्न न मृत ॥ ६८ ॥ सहीति । मम जीवस्य सखा । परमेश्वरो हि अन्तरात्मत्वात्सर्वेषां सखा । द्वासुपर्णासयुजासखायेति मन्त्रवर्णात् । स हि सर्वान्स्वधर्मस्थाननुगृह्णाति । तत्प्रतिकूलस्य तक्षकस्येव कुलक्षयं च करोतीत्याख्यायिकातात्पर्यम् । 'खलो न प्रार्थनासाध्य स च दैवेन दण्डित । अभ्येति मृदुता पश्चादुत्तङ्के तक्षको यथा' ॥ ६९ ॥ प्रतिचिकीर्षमाणः हेतौ शानच् । तक्षक बाधितुमित्यर्थः ॥ १७० ॥ हर्षकाले राजानमर्थयेतेति भाव ॥ ७१ ॥ शब्द्यत इति शब्दोर्थस्तेन संपन्नया विशिष्टार्थवत्या ॥ ७३ ॥ योस्मान्द्वेष्टि य च वयं द्विष्मस्त हन्मि' इति मन्त्रलिङ्गानुमिते शत्रुर्हन्तव्य एवेत्यस्मिन् विधौ साध्ये दृष्टं यत्कर्म सर्पसत्राख्य तस्य कार्यस्यावश्यानुष्ठेयस्य कर्तव्यताया वा काल मन्ये । अपचितिं प्रतिक्रियाम् ॥ ७९ ॥ मुख्यमपराधमाह । यियासुमिति । विषहरणाय जिगमिषुमर्थदानेन न्यवर्तयत् । पिपासुमिति पाठे रिरक्षिषुमित्यर्थ ॥ ८२ ॥ वाक्यहविषा वाक्यरूपेणोद्दीपकेन हविषा घृतादिना ॥ ८६ ॥ वृत्त मृतम् । 'वृत्तोऽतीते दृढे ख्याते वर्तुलेऽपि मृते वृते 'इति विश्व । तक्षकविषेणेतिशेष । 'धर्मो-धर्मेऽनुकूला स्युर्देवास्तत्प्रतिबध्नत । तक्षकस्यैव तु स्वास्तिरिति पौष्ये व्यवस्थितम्' इति रत्नगर्भ ॥८८॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

## पौलोमपर्व ।

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ऋषीनभ्यागतानुपतस्थे ॥ १

पौराणिकः पुराणे कृतश्रमः स कृताञ्जलिस्तानुवाच । किं भवन्तः श्रोतुमिच्छन्ति किमहं ब्रवाणीति ॥ २

तमृषय ऊचुः परमं लौमहर्षणे वक्ष्यामस्त्वां नः प्रतिवक्ष्यसि वचः शुश्रूषतां कथायोगं नः कथायोगे ॥३

तत्र भगवान् कुलपतिस्तु शौनकोऽग्निशरणमध्यास्ते ॥ ४

योऽसौ दिव्याःकथा वेद देवतासुरसंश्रिताः ।
मनुष्योरगगन्धर्वकथा वेद च सर्वशः ॥ ५
स चाप्यस्मिन्मखे सौते विद्वान् कुलपतिर्द्विजः ।
दक्षो धृतव्रतो धीमान् शास्त्रे चारण्यके गुरुः ॥६॥
सत्यवादी शमपरस्तपस्वी नियतव्रतः ।
सर्वेषामेव नो मान्यः स तावत्प्रतिपाल्यताम् ॥ ७
तस्मिन्नध्यासति गुरावासनं परमार्चितम् ।
ततो वक्ष्यसि यत्त्वां स प्रक्ष्यति द्विजसत्तमः ॥ ८

सौतिरुवाच ।

एवमस्तु गुरौ तस्मिन्नुपविष्टे महात्मनि ।
तेन पृष्टः कथाः पुण्या वक्ष्यामि विविधाश्रयाः॥९
सोऽथ विप्रर्षभः सर्वं कृत्वा कार्यं यथाविधि ।
देवान्वाग्भिः पितॄनद्भिस्तर्पयित्वा जगाम ह॥१०॥
यत्र ब्रह्मर्षयः सिद्धाः सुखासीना धृतव्रताः ।
यज्ञायतनमाश्रित्य सूतपुत्रपुरःसराः ॥ ११ ॥
ऋत्विक्ष्वथ सदस्येषु स वै गृहपतिस्तदा ।
उपविष्टेषूपविष्टः शौनकोऽथाब्रवीदिदम् ॥ १२ ॥

इ० श्रीम० आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि कथाप्रवेशो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

शौनक उवाच ।

पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान्पुरा ।
कच्चित्त्वमपि तत्सर्वमधीषे लौमहर्षणे ॥ १
पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम् ॥
कथ्यन्ते ये पुराऽस्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव॥२॥
तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम् ॥
कथयस्व कथामेतां कल्याः स्म श्रवणे तव ॥ ३ ॥

---

एवं कृतोपोद्घातं भारतमारभते । लोमहर्षणेत्यादि पूर्ववद्व्याख्येयम् । अत्र सौतिरुवाचेति पाठे लोमहर्षणपुत्रादीनां सृष्टिप्रवाहानादितया प्रतिकल्पं समाननामरूपाधिकारपुरुषविशेषवचनानां ' सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्'इत्यादि श्रुतिभ्यः स्थानपतिसेनापत्यादिशब्दवदधिकारविशेषवाचित्वादेतत्कल्पीय सौतिवचनं पूर्वकल्पीयलोमहर्षणपुत्रादि परमिति । एवं सर्पसत्रादि कथाऽपि कृतत्रेतादियुगस्थान् रुरुप्रभृतीन्प्रत्युच्यमाना पूर्वकल्पीयसर्पसत्रादि परेति ध्येयम् ॥ १ ॥ पौराणिकः पुराणं पण्यं जीविकास्येऽति व्युत्पत्तिं निराकरोति । पुराणे कृतश्रम इति । अत्र 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतः' इति स्मृत्युक्तो विलोमजो जातिसूतः संजयाधिरथादिरन्यः । यस्य जीविका सारथ्यं वा पुराणराज्ञां शौर्यौदार्यादिवर्णनेन स्वामिप्रोत्साहनं च । अत एवाऽस्य पौराणिक इति संज्ञा । उग्रश्रवास्तु सौतिरेव न जातिसूतः । तथा त्वेतत्राऽपि सूतशब्दप्रयोगोपपत्तेः सौतिरित्यपत्यार्थस्य तद्धितस्यानर्थक्यं स्यात् । किं तर्हि । ''अग्निकुण्डसमुद्भूतसूतानिर्मलमानसः''इति रोमहर्षणं प्रति शौनकवचनस्य पुराणांतरे दर्शनादग्निजो रोमहर्षणः सूतस्तस्य च ब्राह्मणसंकल्पात् ब्रह्मासनार्हत्वम् । धृष्टद्युम्नस्य क्षत्रियत्ववत् । ब्रह्मासनं च वैशंपायनशान्तव्रतमार्कण्डेयादि तुल्यस्तत्संजातीय एवार्हति न हीनः । न हि महान्तः शौनकादयो हीनात्परं रहस्यं जगृहुरिति वक्तुं युक्तम् । न हीनतः परमभ्याददीतेत्यत्रैव तन्निषेधात् । नीचादप्युत्तमा विद्या ग्राह्येति त्वापद्विषयमेतत् । अत एव तद्वधाद्बलरामेण ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णमिति स्मर्यते । तत्र सूतशब्दस्तु कथाप्रवक्तृत्वसामान्यात् । तस्माद्ब्राह्मण एव पुराणप्रवक्तृत्वेन वरणीयः श्रोतुकामैर्न हीनः पौराणिकपदं न जातिसूतपरमपितु पुराणाध्येतृब्राह्मणपरमिति ॥ २ ॥ परममिति । हे लौमहर्षणे ! त्वां परमं वचो वक्ष्यामः । परमं ब्रह्म वक्ष्यामः । तत्प्रयोजकत्वेन वाचयिष्यामः । शौनके समागते इतिशेषः । कथायोगं कथासमुदायं शुश्रूषतां नः त्वं प्रतिवक्ष्यसीति ज्ञात्वेति शेषः। नः अस्माकं कथायोगे कथाप्रसंगे इति व्यवहितान्वयेन योज्यम् ॥ ३ ॥ अग्निशरणमग्निगृहम् ॥ ४ ॥ वेदतात्पर्यं बोद्धुमितिशेषः ॥ ५ ॥ शास्त्रे विधिनिषेधप्रधाने कर्मकाण्डे । आरण्यके उपनिषदि ज्ञानकाण्डे ॥ ६ ॥ प्रतिपाल्यतां प्रतीक्ष्यताम् ॥ ७ ॥ ततः तत् प्रथमार्थेतसिः ॥ ८ ॥ वाग्भिः ब्रह्मयज्ञीयाभिः ' यद्दचोधीते पय आहुतिभिरेव तद्देवतास्तर्पयति' इत्यादिवचनात् आजगामेतिच्छेदः॥ १० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

---

पुराणमिति पुराणं पुरावृत्तम् ॥१॥ कल्याः समर्थाः तव त्वत्तः श्रोतुमिति संबन्धः ॥ ३ ॥

सौतिरुवाच ।

यदधीतं पुरा सम्यक् द्विजश्रेष्ठैर्महात्मभिः ।
वैशंपायनविप्राग्र्यैस्तैश्चापि कथितं यथा ॥ ४
यदधीतं च पित्रा मे सम्यक् चैव ततो मया ।
तावच्छृणुष्व यो देवैः सेन्द्रैः सर्षिमरुद्गणैः ॥५॥
पूजितः प्रवरो वंशो भार्गवो भृगुनन्दन ।
इमं वंशमहं पूर्वं भार्गवं ते महामुने ॥ ६ ॥
निगदामि यथा युक्तं पुराणाश्रयसंयुतम् ।
भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा ॥ ७ ॥
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम् ।
भृगोः सुदयितः पुत्रश्च्यवनो नाम भार्गव. ॥ ८
च्यवनस्य च दायादः प्रमतिर्नाम धार्मिकः ।
प्रमतेरप्यभूत्पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत ॥ ९ ॥
रुरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः ।
प्रमद्वरायां धर्मात्मा तव पूर्वपितामहः ॥ १०
तपस्वी च यशस्वी च श्रुतवान् ब्रह्मवित्तमः ।
धार्मिकः सत्यवादी च नियतो नियताशनः॥ ११

शौनक उवाच ।

सूतपुत्र यथा तस्य भार्गवस्य महात्मनः ।
च्यवनत्वं परिख्यातं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १२

सौतिरुवाच ।

भृगोः सुदयिता भार्या पुलोमेत्यभिविश्रुता ।
तस्यां समभवद्गर्भो भृगुवीर्यसमुद्भवः ॥ १३
तस्मिन् गर्भेऽथ संभूते पुलोमायां भृगूद्वह ।
समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः ॥ १४
अभिषेकाय निष्क्रान्ते भृगौ धर्मभृतां वरे ।
आश्रमं तस्य रक्षोऽथ पुलोमाभ्याजगाम ह ॥ १५
तं प्रविश्याश्रमं दृष्ट्वा भृगोर्भार्यामनिन्दिताम् ।
हृच्छयेन समाविष्टो विचेताः समपद्यत ॥ १६
अभ्यागतं तु तद्रक्षः पुलोमा चारुदर्शना ।
न्यमन्त्रयत वन्येन फलमूलादिना तदा ॥ १७
तां तु रक्षस्तदा ब्रह्मन् हृच्छयेनाभिपीडितम् ।
दृष्ट्वा हृष्टमभूद्राजन् जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम्॥१८
जातमित्यब्रवीत्कार्यं जिहीर्षुर्मुदितः शुभाम् ।
सा हि पूर्वं वृता तेन पुलोम्ना तु शुचिस्मिता १९
तां तु प्रादात्पिता पश्चाद्भृगवे शास्त्रवत्तदा ।
तस्य तत्किल्बिषं नित्यं हृदि वर्तति भार्गव ॥ २०
इदमन्तरमित्येवं हर्तुं चक्रे मनस्तदा ।
अथाग्निशरणे पश्यज्ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥ २१
तमपृच्छत्ततो रक्षः पावकं ज्वलितं तदा ।
शंसमेकस्य भार्येयमग्ने पृच्छे ऋतेन वै ॥ २२
मुखं त्वमसि देवानां वद पावक पृच्छते ।
मया हीयं वृता पूर्वं भार्यार्थे वरवर्णिनी ॥ २३
पश्चादिमां पिता प्रादाद्भृगवेऽनृतकारकः ।
सेयं यदि वरारोहा भृगोर्भार्या रहोगता ॥ २४
तथा सत्यं समाख्याहि जिहीर्षाम्याश्रमादिमाम् ।
समन्युस्तत्र हृदयं प्रदहन्निव तिष्ठति ।
मत्पूर्वभार्यां यदिमां भृगुराप सुमध्यमाम् ॥ २५

सौतिरुवाच ।

एवं रक्षस्तमामन्त्र्य ज्वलितं जातवेदसम् ।
शङ्कमानं भृगोर्भार्यां पुनःपुनरपृच्छत ॥ २६
त्वमग्ने! सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यदा ।
साक्षिवत्पुण्यपापेषु सत्यं ब्रूहि कवे वचः ॥ २७
मत्पूर्वाऽपहृता भार्या भृगुणाऽनृतकारिणा ।
सेयं यदि तथा मे त्वं सत्यमाख्यातुमर्हसि ॥ २८
श्रुत्वा त्वत्तो भृगोर्भार्यां हरिष्याम्याश्रमादिमाम्।
जातवेदः पश्यतस्ते वद सत्यां गिरं मम ॥२९॥

सौतिरुवाच ।

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा सप्तार्चिर्दुःखितोऽभवत् ।
भीतोऽनृताच्च शापाच्च भृगोरित्यब्रवीच्छनैः ॥३०

अग्निरुवाच ।

त्वया वृता पुलोमेयं पूर्वं दानवनन्दन ।
किं त्वियं विधिना पूर्वं मन्त्रवन्न वृता त्वया ॥३१

---

कथितं मह्यमिति शेष. ॥ ४ ॥ ततो मयेति पितु सकाशान्मयाऽधीतामित्यावर्तनीयम् ॥ ५ ॥ पुराणस्याश्रय उपोद्घातस्तत्संयुतम ॥ ७ ॥ पूर्वपितामह कुलप्रधानपुरुष ॥ १० ॥ नियत शमादिमान् । नियताशनः हित मित मेध्य चाश्नाति नत्वनशनमेवेति भाव । नियतेन्द्रिय इति पाठे यमनियमयुक्त ॥११॥ हृच्छयेन कामेन ॥ १६ ॥ कथ परदारेषु काम इत्यत आह । साहीति । बाल्ये किल रुदतीं कन्या रोदनानिवृत्त्यर्थं भीषयितुं पित्रा उक्तं रे रक्ष एना गृहाणेति तावत्तत्र गृहे सन्निहितेन रक्षसा वृता ममेयं भार्येति भाव ॥ १९ ॥ अत एव तस्या पिता अनृतकारक । अनृतकारिणे इति पाठे तु भृगोरेव विशेषणम् । परिहासेनापि ददामीत्युक्त्वा न दत्तं चेद्दोषो भवतीति भाव । वरारोहा श्रेष्ठनितम्बा ॥ २४ ॥ शङ्कमानं छलवचनेन पूर्वं मह्यं दत्ता पश्चाद्विधिपूर्वकं भृगवे दत्ताऽतो मम वा इयं भृगोर्वेति संदिहानम् ॥ २६ ॥ कवे सर्वज्ञ ॥ २७ ॥ यदि तथेति । मत्पूर्वा सा चेत् भृगुश्चानृतकारी चेत्तर्हि सत्यं ब्रूहि ॥ २८ ॥ भृगोरित्युक्तेऽनृतपूर्वं रक्ष परिग्रहत्वात्तस्या रक्षस इत्युक्ते भृगुत शापभयम् ॥ ३० ॥

पित्रा तु भृगवे दत्ता पुलोमेयं यशस्विनी ।
ददाति न पिता तुभ्यं वरलोभान्महायशाः ॥ ३२
अथेमां वेददृष्टेन कर्मणा विधिपूर्वकम् ।
भार्यामृषिर्भृगुः प्राप मां पुरस्कृत्य दानव ॥ ३३
सेयमित्यवगच्छामि नानृतं वक्तुमुत्सहे ।
नानृतं हि सदा लोके पूज्यते दानवोत्तम ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि पुलोमाग्निसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

---

सौतिरुवाच ।

अग्नेरथ वचः श्रुत्वा तद्रक्षः प्रजहार ताम् ।
ब्रह्मन्वराहरूपेण मनोमारुतरंहसा ॥ १
ततः स गर्भो निवसत्कुक्षौ भृगुकुलोद्वह ।
रोषान्मातुश्च्युतः कुक्षेश्च्यवनस्तेन सोऽभवत् ॥ २
तं दृष्ट्वा मातुरुदराच्च्युतमादित्यवर्चसम् ॥
तद्रक्षो भस्मसाद्भूतं पपात परिमुच्य ताम् ॥ ३
सा तमादाय सुश्रोणी ससार भृगुनन्दनम् ।
च्यवनं भार्गवं पुत्रं पुलोमा दुःखमूर्च्छिता ॥ ४
तां ददर्श स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
रुदतीं बाष्पपूर्णाक्षीं भृगोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥ ५
सान्त्वयामास भगवान्वधूं ब्रह्मा पितामहः ।
अश्रुबिन्दूद्भवा तस्याः प्रावर्तत महानदी ॥ ६
आवर्तन्ती सृतिं तस्या भृगोः पत्न्यास्तपस्विनः ।
तस्या मार्गं सृतवतीं दृष्ट्वा तु सरितं तदा ॥ ७
नाम तस्यास्तदा नद्याश्चक्रे लोकपितामहः ।
वधूसरेति भगवांश्च्यवनस्याश्रमं प्रति ॥ ८
स एवं च्यवनो जज्ञे भृगोः पुत्रः प्रतापवान् ।
तं ददर्श पिता तत्र च्यवनं तां च भाविनीम् ।
स पुलोमां ततो भार्यां पप्रच्छ कुपितो भृगुः ॥९

भृगुरुवाच ।

केनाऽसि रक्षसे तस्मै कथिता त्वं जिहीर्षते ।
न हि त्वां वेद तद्रक्षो मद्भार्यां चारुहासिनीम्१०
तत्त्वमाख्याहि तं ह्यद्य शप्तुमिच्छाम्यहं रुषा ।
बिभेति को न शापान्मे कस्य चायं व्यतिक्रमः११

पुलोमोवाच ।

अग्निना भगवंस्तस्मै रक्षसेऽहं निवेदिता ।
ततो मामनयद्रक्षः क्रोशन्तीं कुररीमिव ॥ १२
साऽहं तव सुतस्यास्य तेजसा परिमोक्षिता ।
भस्मीभूतं च तद्रक्षो मामुत्सृज्य पपात वै ॥ १३

सौतिरुवाच ।

इति श्रुत्वा पुलोमाया भृगुः परममन्युमान् ।
शशापाग्निमतिक्रुद्धः सर्वभक्षो भविष्यसि ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि अग्निशापे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

सौतिरुवाच ।

शप्तस्तु भृगुणा वह्निः क्रुद्धो वाक्यमथाब्रवीत् ।
किमिदं साहसं ब्रह्मन्कृतवानसि मां प्रति ॥ १
धर्मे प्रयतमानस्य सत्यं च वदतः समम् ।
पृष्टो यदब्रुवं सत्यं व्यभिचारोऽत्र को मम ॥ २
पृष्टो हि साक्षी यः साक्ष्यं जानानोऽप्यन्यथा वदेत्।
स पूर्वानात्मनः सप्त कुले हन्यात्तथा परान् ॥ ३
यश्च कार्यार्थतत्त्वज्ञो जानानोऽपि न भाषते ।
सोऽपि तेनैव पापेन लिप्यते नात्र संशयः ॥ ४
शक्तोऽहमपि शप्तुं त्वां मान्यास्तु ब्राह्मणा मम ।
जानतोऽपि च ते ब्रह्मन्कथयिष्ये निबोध तत् ॥५
योगेन बहुधात्मानं कृत्वा तिष्ठामि मूर्तिषु ।
अग्निहोत्रेषु सत्रेषु क्रियासु च मखेषु च ॥ ६

---

सेयमिति या त्वया पूर्वं वृता सेयं त्वदीयैवेयमित्यर्थः ३४॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः५

केन कथिताऽसि ॥ १० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

छलवचनाद्द्वैध एव विधिः श्रेयान् । तयोः साम्यं पश्यन्नग्निः शापं प्राप । आद्यस्य प्राबल्यं मन्वानो राक्षसो नाशं च प्रापेति षष्ठाध्यायतात्पर्यम् । अग्नेरथेति ॥१॥ तेन च्युच्यावेति योगेन ॥२॥ सृतिं मार्गम् ॥७॥ मद्भार्या इयं ममैव भार्या न तु भृगोरित्येवं रूपेण त्वां रक्षो न वेदेत्यर्थः । तवेयं भार्येति

शप्तस्त्विति ॥ १ ॥ सत्यं च वदतः समं सत्यं च यथार्थम् । समं पक्षपातहीनम् । व्यभिचार अपराधः ॥ २ ॥ योगेन योगसिद्धिबलेन । मूर्तिषु गार्हपत्यदक्षिणाग्न्यादिषु । सत्रेष्वनेककर्तृकेषु गवामयनादिषु । क्रियासु स्मार्तासु गर्भाधानादिषु । मखे ज्योतिष्टोमादौ ॥ ६ ॥

वेदोक्तेन विधानेन मयि यद्धूयते हविः ।
देवताः पितरश्चैव तेन तृप्ता भवन्ति वै ॥ ७
आपो देवगणाः सर्वे आपः पितृगणास्तथा ।
दर्शश्च पौर्णमासश्च देवानां पितृभिः सह ॥ ८
देवताः पितरस्तस्मात्पितरश्चापि देवताः ।
एकीभूताश्च दृश्यन्ते पृथक्त्वेन च पर्वसु ॥ ९
देवताः पितरश्चैव भुञ्जते मयि यद्धुतम् ।
देवतानां पितृणां च मुखमेतदहं स्मृतम् ॥ १०
अमावास्यां हि पितरः पौर्णमास्यां हि देवताः ।
मन्मुखेनैव हूयन्ते भुञ्जते च हुतं हविः ॥ ११
सर्वभक्षः कथं त्वेषां भविष्यामि मुखं त्वहम् ।

सौतिरुवाच ।

चिन्तयित्वा ततो वह्निश्चक्रे संहारमात्मनः ॥ १२
द्विजानामग्निहोत्रेषु यज्ञसत्रक्रियासु च ।
निरोंकारवषट्काराः स्वधास्वाहाविवर्जिताः १३
विनाऽग्निना प्रजाः सर्वास्तत आसन्सुदुःखिताः ।
अथर्षयः समुद्विग्ना देवान्गत्वा ब्रुवन्वचः ॥ १४
अग्निनाशात्क्रियाभ्रंशाद्भ्रान्ता लोकास्त्रयोऽनघाः
विदध्वमत्र यत्कार्यं न स्यात्कालात्ययो यथा ॥१५
अथर्षयश्च देवाश्च ब्रह्माणमुपगम्य तु ।
अग्नेरावेदयन्शापं क्रियासंहारमेव च ॥ १६
भृगुणा वै महाभाग शप्तोऽग्निः कारणान्तरे ।
कथं देवमुखो भूत्वा यज्ञभागाग्रभुक्तथा ॥ १७
हुतभुक्सर्वलोकेषु सर्वभक्षत्वमेष्यति ।
श्रुत्वा तु तद्वचस्तेषामग्निमाहूय विश्वकृत् ॥ १८
उवाच वचनं श्लक्ष्णं भूतभावनमव्ययम् ।
लोकानामिह सर्वेषां त्वं कर्ता चान्त एव च ॥ १९
त्वं धारयसि लोकांस्त्रीन् क्रियाणां च प्रवर्तकः।
स तथा कुरु लोकेश नोच्छिद्येरन्यथा क्रियाः २०
कस्मादेवं विमूढस्त्वमीश्वरः सन्हुताशन ।
त्वं पवित्रं सदा लोके सर्वभूतगतिश्च ह ॥ २१
न त्वं सर्वशरीरेण सर्वभक्षत्वमेष्यसि ।
अपाने ह्यर्चिषो यास्ते सर्वं भक्ष्यन्ति ताःशिखिन्२२
क्रव्यादा च तनुर्याते सा सर्वं भक्षयिष्यति ।
यथा सूर्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि विभाव्यते॥ २३
तथा त्वदर्चिर्निर्दग्धं सर्वं शुचि भविष्यति ।
त्वमग्ने परमं तेजः स्वप्रभावाद्विनिर्गतम् ॥ २४
स्वतेजसैव तं शापं कुरु सत्यमृषेर्विभो ।
देवानां चात्मनो भागं गृहाण त्वं मुखे हुतम्॥ २५

सौतिरुवाच ।

एवमस्त्विति तं वह्निः प्रत्युवाच पितामहम् ।
जगाम शासनं कर्तुं देवस्य परमेष्ठिनः ॥ २६
देवर्षयश्च मुदितास्ततो जग्मुर्यथागतम् ।
ऋषयश्च यथापूर्वं क्रियाः सर्वाः प्रचक्रिरे ॥ २७
दिवि देवा मुमुदिरे भूतसंघाश्च लौकिकाः ।
अग्निश्च परमां प्रीतिमवाप हतकल्मषः ॥ २८
एवं स भगवाञ्छापं लेभेऽग्निर्भृगुतः पुरा ।
एवमेष पुरावृत्त इतिहासोऽग्निशापजः ।
पुलोम्नश्च विनाशोऽयं च्यवनस्य च संभवः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि अग्निशापमोचने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

सौतिरुवाच ।

स चापि च्यवनो ब्रह्मन्भार्गवो जनयत्सुतम् ।
सुकन्यायां महात्मानं प्रमतिं दीप्ततेजसम् ॥ १
प्रमतिस्तु रुरुं नाम घृताच्यां समजीजनत् ।
रुरुः प्रमद्वरायां तु शुनकं समजीजनत् ॥ २
शुनकस्तु महासत्त्वः सर्वं भार्गवनन्दनः ।
जातस्तपसि तीव्रे च स्थितः स्थिरयशास्ततः ॥ ३
तस्य ब्रह्मन् रुरोः सर्वं चरितं भूरितेजसः ।
विस्तरेण प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वमशेषतः ॥ ४

---

आपः गोमाज्यपयःप्रभृतयोऽग्नौ हूयमाना देवपितृरूपाः । 'आपः पुरुषवचसो भवन्ति' इतिश्रुतेरग्नौ हुता आप एव देवताशरीररूपेण परिणमन्त इत्यर्थः ॥ ८ ॥ देवादिभावस्यापि कर्मप्राप्यत्वाद्देवानां पितृणां च मिथो भेदो नास्त्येव तुल्यहेतुकत्वादित्याह । देवता इति॥९॥ अमावास्याममावास्यायाम् । हूयन्ते इज्यन्ते ॥ ११ ॥ संहारं तिरोभावम् ॥ १२ ॥ क्रियाभ्रंशात् अग्निहोत्रादिलोपात् । भ्रान्ताः कर्तव्याकर्तव्यविमूढाः ॥ १५ ॥ भूतभावनं जरायुजादि भूतस्रष्टारम् ॥ १९ ॥ भक्ष्यन्ति भक्षयिष्यन्ति शिखिन् अग्ने ॥ २२ ॥ क्रव्यादा मनुष्याद्यमेध्यमांसभक्षिणी ॥ २३ ॥ स्वप्रभावाद्विनिर्गतं शापं सत्यं कुर्विति भाव । यथोक्तं शिक्षायाम् 'आत्मा बुध्या समेत्यार्थान्मनो युंक्ते विवक्षया । मन कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ॥' इत्याद्युक्तत्वादग्नेर्वागधिष्ठातृत्वाच्च ॥२४॥ ब्राह्मणैरनपराधबाधितोऽपि न तेषु प्रतीकारं प्रयुञ्जीतेत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ २८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥ स चापीति ॥ १॥

ऋषिरासीन्महान्पूर्वं तपोविद्यासमन्वितः
स्थूलकेश इति ख्यातः सर्वभूतहिते रतः ॥ ५
एतस्मिन्नेव काले तु मेनकायां प्रजज्ञिवान्।
गन्धर्वराजो विप्रर्षे विश्वावसुरिति स्मृतः ॥ ६
अप्सरा मेनका तस्य तं गर्भं भृगुनन्दन।
उत्ससर्ज यथा कालं स्थूलकेशाश्रमं प्रति ॥ ७
उत्सृज्य चैव तं गर्भं नद्यास्तीरे जगाम सा।
अप्सरा मेनका ब्रह्मन्निर्दया निरपत्रपा ॥ ८
कन्याममरगर्भाभां ज्वलन्तीमिव च श्रिया।
तां ददर्श समुत्सृष्टां नदीतीरे महानृषिः ॥ ९
स्थूलकेशः स तेजस्वी विजने बन्धुवर्जिताम्।
स तां दृष्ट्वा तदा कन्यां स्थूलकेशो महाद्विजः १०
जग्राह च मुनिश्रेष्ठः कृपाविष्टः पुपोष च।
ववृधे सा वरारोहा तस्याश्रमपदे शुभे ॥ ११
जातकाद्याः क्रियाश्चास्या विधिपूर्वं यथाक्रमम्।
स्थूलकेशो महाभागश्चकार सुमहानृषिः ॥ १२
प्रमदाभ्यो वरा सा तु सत्त्वरूपगुणान्विता।
ततः प्रमद्वरेत्यस्या नाम चक्रे महानृषिः ॥ १३
तामाश्रमपदे तस्य रुरुर्दृष्ट्वा प्रमद्वराम्।
बभूव किल धर्मात्मा मदनोपहतस्तदा ॥ १४
पितरं सखिभिः सोऽथ श्रावयामास भार्गवम्।
प्रमतिश्चाभ्ययाचत्तां स्थूलकेशं यशस्विनम् ॥ १५
ततः प्रादात्पिता कन्यां रुरवे तां प्रमद्वराम्।
विवाहं स्थापयित्वाऽग्रे नक्षत्रे भगदैवते ॥ १६
ततः कतिपयाहस्य विवाहे समुपस्थिते।
सखीभिः क्रीडती सार्धं सा कन्या वरवर्णिनी १७
नापश्यत्संप्रसुप्तं वै भुजंगं तिर्यगायतम्।
पदा चैनं समाक्रामन्मुमूर्षुः कालचोदिता ॥ १८
स तस्याः संप्रमत्तायाश्चोदितः कालधर्मणा।
विषोपलिप्तान्दशनान्भृशमङ्गे न्यपातयत् ॥ १९
सा दष्टा तेन सर्पेण पपात सहसा भुवि।
विवर्णा विगतश्रीका भ्रष्टाभरणचेतना ॥ २०
निरानन्दकरी तेषां बन्धूनां मुक्तमूर्धजा।
व्यसुरप्रेक्षणीया सा प्रेक्षणीयतमाऽभवत् ॥ २१
प्रसुप्तेवाभवच्चापि भुवि सर्पविषार्दिता।
भूयो मनोहरतरा बभूव तनुमध्यमा ॥ २२
ददर्श तां पिता चैव ये चैवान्ये तपस्विनः।
विचेष्टमानां पतितां भूतले पद्मवर्चसम् ॥ २३
ततः सर्वे द्विजवराः समाजग्मुः कृपान्विताः।
स्वस्त्यात्रेयो महाजानुः कुशिकः शङ्खमेखलः॥२४
उद्दालकः कठश्चैव श्वेतश्चैव महायशाः।
भरद्वाजः कौणकुत्स्य आर्ष्टिषेणोऽथ गौतमः॥ २५
प्रमतिः सहपुत्रेण तथाऽन्ये वनवासिनः।
तां ते कन्यां व्यसुं दृष्ट्वा भुजंगस्य विषार्दिताम्॥२६
रुरुदुः कृपयाविष्टा रुरुस्त्वार्तो बहिर्ययौ।
ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठास्तत्रैवोपाविशंस्तदा ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि प्रमद्वरासर्पदंशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८

---

सौतिरुवाच।

तेषु तत्रोपविष्टेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु।
रुरुश्चुक्रोश गहनं वनं गत्वाऽतिदुःखितः ॥ १
शोकेनाभिहतः सोऽथ विलपन्करुणं बहु।
अब्रवीद्वचनं शोचन्प्रियां स्मृत्वा प्रमद्वराम् ॥ २
शेते सा भुवि तन्वङ्गी मम शोकविवर्धिनी।
बान्धवानां च सर्वेषां किं नु दुःखमतःपरम् ॥ ३
यदि दत्तं तपस्तप्तं गुरवो वा मया यदि।
सम्यगाराधितास्तेन संजीवतु मम प्रिया ॥ ४
यथा च जन्मप्रभृति यतात्माऽहं धृतव्रतः।
प्रमद्वरा तथा ह्येषा समुत्तिष्ठतु भामिनी ॥ ५
एवं लालप्यतस्तस्य भार्यार्थे दुःखितस्य च।
देवदूतस्तदाऽभ्येत्य वाक्यमाह रुरुं वने ॥ ६

देवदूत उवाच।

अभिधत्से ह यद्वाचा रुरो दुःखेन तन्मृषा।
यतो मर्त्यस्य धर्मात्मन्नायुरस्ति गतायुषः ॥७
गतायुरेषा कृपणा गन्धर्वाप्सरसोः सुता।
तस्माच्छोके मनस्तात मा कृथास्त्वं कथंचन ॥८

---

प्रजज्ञिवानुत्पादितवान् ॥६॥ भगदैवते पूर्वयोः फल्गुन्योरिति लौकिकाः। फल्गुनीनक्षत्रमर्यमादेवता फल्गुनीनक्षत्रं भगो देवतेति श्रुतेरुत्तराफल्गुन्योर्वा विवाहं स्थापयित्वा निश्चित्य ॥ १६ ॥ विवाहे समुपस्थिते प्रागेव विवाहात् शब्दतः परिग्रहमात्रेण भार्यात्वेन कल्पिताया अपि नाशे रुरोर्दुरन्तदुःखावाप्तिरिति परिग्रहस्य दुःखदत्वं व्यक्तम् ॥ १७ ॥ कालधर्मणा मृत्युना। विषोपलिप्तान् सविषान् ॥ १९ ॥ व्यसुर्विगतप्राणा ॥ २१ ॥

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

महामहिम्नाप्यायुषः क्षणोऽपि दुर्लभ इत्यर्थमध्याय आरभ्यते तेषु तत्रेत्यादिः ॥ १ ॥ गतायुषः आयुर्लाभो नास्ति ॥ ७ ॥

उपायश्चात्र विहितः पूर्वं देवैर्महात्मभिः ।
तं यदीच्छसि कर्तुं त्वं प्राप्स्यसीह प्रमद्वराम् ॥ ९

रुरुरुवाच ।

क उपायः कृतो देवैर्ब्रूहि तत्त्वेन खेचर ।
करिष्येऽहं तथा श्रुत्वा त्रातुमर्हति मां भवान् १०

देवदूत उवाच ।

आयुषोऽर्धं प्रयच्छ त्वं कन्यायै भृगुनन्दन ।
एवमुत्थास्यति रुरो तव भार्या प्रमद्वरा ॥ ११

रुरुरुवाच ।

आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै खेचरोत्तम ।
श्रृङ्गाररूपाभरणा समुत्तिष्ठतु मे प्रिया ॥ १२

सौतिरुवाच ।

ततो गन्धर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमौ ।
धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम् ॥ १३
धर्मराजायुषोऽर्धेन रुरोर्भार्या प्रमद्वरा ।
समुत्तिष्ठतु कल्याणी मृतैवं यदि मन्यसे ॥ १४

धर्मराज उवाच ।

प्रमद्वरां रुरोर्भार्यां देवदूत यदीच्छसि ।
उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरोरेव समन्विता ॥ १५

सौतिरुवाच ।

एवमुक्ते ततः कन्या सोदतिष्ठत्प्रमद्वरा ।
रुरोस्तस्यायुषोऽर्धेन सुप्तेव वरवर्णिनी ॥ १६
एतदृष्टं भविष्ये हि रुरोरुत्तमतेजसः ।
आयुषोऽतिप्रवृद्धस्य भार्यार्थेऽर्धमलुप्यत ॥ १७
तत इष्टेऽहनि तयोः पितरौ चक्रतुर्मुदा ।
विवाहं तौ च रेमाते परस्परहितैषिणौ ॥ १८
स लब्ध्वा दुर्लभां भार्यां पद्मकिञ्जल्कसुप्रभाम् ।
व्रतं चक्रे विनाशाय जिह्मगानां धृतव्रतः ॥ १९
स दृष्ट्वा जिह्मगान्सर्वांस्तीव्रकोपसमन्वितः ।
अभिहन्ति यथा सत्त्वं गृह्य प्रहरणं सदा ॥ २०
स कदाचिद्वनं विप्रो रुरुरभ्यागमन्महत् ।
शयानं तत्र चापश्यत् डुण्डुभं वयसान्वितम् ॥२१
तत उद्यम्य दण्डं स कालदण्डोपमं तदा ।
जिघांसुः कुपितो विप्रस्तमुवाचाऽथ डुण्डुभः २२
नापराध्यामि ते किंचिदहमद्य तपोधन ।
संरंभाच्च किमर्थं मामभिहंसि रुषाऽन्वितः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि प्रमद्वराजीवने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

रुरुरुवाच ।

मम प्राणसमा भार्या दष्टासीद्भुजगेन ह ।
तत्र मे समयो घोर आत्मनोरग वै कृतः ॥ १
भुजंगं वै सदा हन्यां यं यं पश्येयमित्युत ।
ततोऽहं त्वां जिघांसामि जीवितेनाद्य मोक्ष्यसे २

डुण्डुभ उवाच ।

अन्ये ते भुजगा ब्रह्मन् ये दशन्तीह मानवान् ।
डुण्डुभानहिगन्धेन न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥ ३
एकानर्थान्पृथगर्थानेकदुःखान्पृथक्सुखान् ।
डुण्डुभान्धर्मविद्भूत्वा न त्वं हिंसितुमर्हसि ॥ ४

सौतिरुवाच ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भुजगस्य रुरुस्तदा ।
नावधीद्भयसंविग्नमृषिं मत्वाऽथ डुण्डुभम् ॥ ५
उवाच चैनं भगवान् रुरुः संशमयन्निव ।
कामं मां भुजग ब्रूहि कोऽसीमां विक्रियां गतः ६

डुण्डुभ उवाच ।

अहं पुरा रुरो नाम्ना ऋषिरासं सहस्रपात् ।
सोऽहं शापेन विप्रस्य भुजगत्वमुपागतः ॥ ७

रुरुरुवाच ।

किमर्थं शप्तवान्क्रुद्धो द्विजस्त्वां भुजगोत्तम ।
कियन्तं चैव कालं ते वपुरेतद्भविष्यति ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि रुरुडुण्डुभसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

-रुरोरेव नान्यस्य दंपत्योरेकात्मकत्वात्॥१५॥न चैवमायुषोऽर्धप्रदानेनेतरेषामप्यायुर्लाभो भवतीत्याह । भविष्ये रुरोरेव-जातके इदं दृष्टं नान्यत्रेत्यर्थः ॥ १७ ॥ एवं कामप्रतीघाते क्रोधावेशादविवेकेनाधर्ममपि महान्तोनुतिष्ठन्तीत्याह । व्रत-मिति । व्रतं नियमम् । जिह्मगाना सर्पाणाम् ॥ १९ ॥ गृह्य गृहीत्वा ॥ २० ॥ डुण्डुभं निर्विषं स्थूलसर्पं वयसान्वितं वृद्धम् ॥ २१ ॥ संरंभादावेशात् ॥२३॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ममेति॥१॥ अहिगन्धेन सर्पसादृश्यमात्रेण॥३॥अत्राध्याये विधेयांशमाह । एकानर्थानिति । अनर्थो हानिः । अर्थो लाभः । तत्रार्थः सुखं च कर्तुर्भोक्तुश्च भवति । अन-र्थो दुःखं चैकस्यापराधेन सर्वेषां तत्सजातीयाना भव-तीत्यर्थः । धर्मवित् यस्यापराधः स एव दण्ड्यो नान्य इति धर्मस्तज्ज्ञः ॥ ४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

डुण्डुभ उवाच ।
सखा बभूव मे पूर्वं खगमो नाम वै द्विजः ।
भृशं संशितवाक्तात तपोबलसमन्वितः ॥ १
स मया क्रीडता बाल्ये कृत्वा तार्णं भुजंगमम् ।
अग्निहोत्रे प्रसक्तस्तु भीषितः प्रमुमोह वै ॥ २
लब्ध्वा स च पुनः संज्ञां मामुवाच तपोधनः ।
निर्दहन्निव कोपेन सत्यवाक्संशितव्रतः ॥ ३
यथा वीर्यस्त्वया सर्पः कृतोऽयं मद्विभीषया ।
तथा वीर्यो भुजंगस्त्वं मम शापाद्भविष्यसि ॥ ४
तस्याहं तपसो वीर्यं जानन्नासं तपोधन ।
भृशमुद्विग्नहृदयस्तमवोचमहं तदा ॥ ५
प्रणतः संभ्रमाच्चैव प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ।
सखेति सहसेदं ते नर्मार्थं वै कृतं मया ॥ ६
क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मन् शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।
सोऽथ मामब्रवीद्दृष्ट्वा भृशमुद्विग्नचेतसम् ॥ ७
मुहुरुष्णं विनिःश्वस्य सुसंभ्रान्तस्तपोधनः ।
नानृतं वै मया प्रोक्तं भवितेदं कथंचन ॥ ८
यत्तु वक्ष्यामि ते वाक्यं शृणु तन्मे तपोधन ।
श्रुत्वा च हृदि ते वाक्यमिदमस्तु सदाऽनघ ॥ ९
उत्पत्स्यति रुरुर्नाम प्रमतेरात्मजः शुचिः ।
तं दृष्ट्वा शापमोक्षस्ते भविता न चिरादिव ॥ १०
स त्वं रुरुरितिख्यातः प्रमतेरात्मजोऽपि च ।
स्वरूपं प्रतिपद्याहमद्य वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ११
स डौण्डुभं परित्यज्य रूपं विप्रर्षभस्तदा ।
स्वरूपभास्वरं भूयः प्रतिपेदे महायशाः ॥ १२
इदं चोवाच वचनं रुरुमप्रतिमौजसम् ।
अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतां वर ॥ १३
तस्मात्प्राणभृतः सर्वान्न हिंस्याद्ब्राह्मणः क्वचित् ।
ब्राह्मणः सौम्य एवेह भवतीति परा श्रुतिः ॥ १४
वेदवेदाङ्गविन्नाम सर्वभूताभयप्रदः ।
अहिंसा सत्यवचनं क्षमा चेति विनिश्चितम् ॥ १५
ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणापि च ।
क्षत्रियस्य हि यो धर्मः स हि नेष्येत वै तव ॥ १६
दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम् ।
तदिदं क्षत्रियस्यासीत्कर्म वै शृणु मे रुरो ॥ १७
जनमेजयस्य यज्ञेऽस्मिन् सर्पाणां हिंसनं पुरा ।
परित्राणं च भीतानां सर्पाणां ब्राह्मणादपि ॥ १८
तपोवीर्यबलोपेताद्वेदवेदाङ्गपारगात् ।
आस्तीकाद्द्विजमुख्याद्वै सर्पसत्रे द्विजोत्तम ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि डुण्डुभशापमोक्षे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सौतिरुवाच ।
रुरुश्चापि वनं सर्वं पर्यधावत्समन्ततः ।
तमृषिं नष्टमान्विच्छन्संश्रान्तो न्यपतद्भुवि ॥ ४
स मोहं परमं गत्वा नष्टसंज्ञ इवाभवत् ।
तदृषेर्वचनं तथ्यं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ५
लब्धसंज्ञो रुरुश्चायात्तदाचख्यौ पितुस्तदा ।
पिता चास्य तदाख्यानं पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६

रुरुरुवाच ।
कथं हिंसितवान्सर्पान्स राजा जनमेजयः ।
सर्पा वा हिंसितास्तत्र किमर्थं द्विजसत्तम ॥ १
किमर्थं मोक्षिताश्चैव पन्नगास्तेन धीमता ।
आस्तीकेन द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २
ऋषिरुवाच ।
श्रोष्यसि त्वं रुरो सर्वमास्तीकचरितं महत् ।
ब्राह्मणानां कथयतामित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ३

इति श्रीमहाभारते आदिप० पौलोमप० सर्पसत्रप्रस्तावनायां द्वादशोध्यायः ॥ १२

समाप्तं पौलोमपर्व ।

---

नर्मपूर्विकाऽपि परपीडा न कर्तव्या किमुत वास्तवी साप्यधर्मेणेत्याहाध्यायेन । सखा बभूवेत्यादिना । खगमो नाम वाडव इति पाठे । वाडवो ब्राह्मणः । संशितवाक् तीक्ष्णवचनः ॥ १ ॥ तार्णं तृणमयम् ॥ २ ॥ संभ्रमात् भयात् । पुर इत्यपेक्षिते पुरत इत्यार्षम् ॥ ६ ॥ सौम्यः अतीक्ष्णस्वभावः ॥ १४ ॥ अहिंसा अविधिस्पृष्टहिंसाया अभावः ॥ १५ ॥ परित्राणं दृष्टमितिशेषः । परैर्हिंस्यमानस्य ब्राह्मणेन त्राणं कर्तव्यं न तु हिंसेत्यर्थः ॥१८॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोध्यायः ॥ ११ ॥

कथमिति ॥१॥ नष्टमन्तार्हितम् ॥४॥ 'सद्रोहं सत्यवचनमतिरागश्च योषिति । अनागसामपि द्रोहः पौलोमेर्थाद्विनिन्दितः' इति रत्नगर्भः ॥६॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## आस्तीकपर्व ।

शौनक उवाच ।

किमर्थं राजशार्दूलः स राजा जनमेजयः ।
सर्पसत्रेण सर्पाणां गतोऽन्तं तद्वदस्व मे ॥ १
निखिलेन यथातत्त्वं सौते सर्वमशेषतः ।
आस्तीकश्च द्विजश्रेष्ठः किमर्थं जपतां वरः ॥ २
मोक्षयामास भुजगान्प्रदीप्ताद्वसुरेतसः ।
कस्य पुत्रः स राजासीत्सर्पसत्रं य आहरत् ॥ ३
स च द्विजातिप्रवरः कस्य पुत्रोऽभिधत्स्व मे ।

सौतिरुवाच ।

महदाख्यानमास्तीकं यथैतत्प्रोच्यते द्विजः ॥ ४
सर्वमेतदशेषेण शृणु मे वदतां वर ।

शौनक उवाच ।

श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण कथामेतां मनोरमाम् ॥ ५
आस्तीकस्य पुराणर्षेर्ब्राह्मणस्य यशस्विनः ।

सौतिरुवाच ।

इतिहासमिमं विप्राः पुराणं परिचक्षते ॥ ६
कृष्णद्वैपायनप्रोक्तं नैमिषारण्यवासिषु ।
पूर्वं प्रचोदितः सूतः पिता मे लोमहर्षणः ॥ ७
शिष्यो व्यासस्य मेधावी ब्राह्मणेष्विदमुक्तवान् ।
तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥ ८
इदमास्तीकमाख्यानं तुभ्यं शौनक पृच्छते ।
कथयिष्याम्यशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९
आस्तीकस्य पिता ह्यासीत्प्रजापतिसमः प्रभुः ।
ब्रह्मचारी यताहारस्तपस्युग्रे रतः सदा ॥ १०
जरत्कारुरिति ख्यात ऊर्ध्वरेता महातपाः ।
यायावराणां प्रवरो धर्मज्ञः संशितव्रतः ॥ ११
स कदाचिन्महाभागस्तपोबलसमन्वितः ।
चचार पृथिवीं सर्वां यत्र सायंगृहो मुनिः ॥ १२
तीर्थेषु च समाप्लावं कुर्वन्नटति सर्वशः ।
चरन्दीक्षां महातेजा दुश्चरामकृतात्मभिः ॥ १३
वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्ननिमिषो मुनिः ।
इतस्ततः परिचरन्दीप्तपावकसप्रभः ॥ १४
अटमानः कदाचित्स्वान् स ददर्श पितामहान् ।
लम्बमानान्महागर्ते पादैरूर्ध्वैरवाङ्मुखान् ॥ १५
तानब्रवीत्स दृष्ट्वैव जरत्कारुः पितामहान् ।
के भवन्तोऽवलम्बन्ते गर्ते ह्यस्मिन्नधोमुखाः ॥ १६
वीरणस्तम्बके लग्नाः सर्वतः परिभक्षिते ।
मूषकेन निगूढेन गर्तेऽस्मिन्नित्यवासिना ॥ १७

पितर ऊचुः ।

यायावरा नाम वयमृषयः संशितव्रताः ।
संतानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्नधो गच्छाम मेदिनीम् ॥ १८
अस्माकं संततिस्त्वेको जरत्कारुरिति स्मृतः ।
मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां तप एव समास्थितः ॥ १९
न स पुत्राञ्जनयितुं दारान्मूढश्चिकीर्षति ।
तेन लम्बामहे गर्ते संतानस्य क्षयादिह ॥ २०
अनाथास्तेन नाथेन यथा दुष्कृतिनस्तथा ।
कस्त्वं बन्धुरिवास्माकमनुशोचसि सत्तम ॥ २१
ज्ञातुमिच्छामहे ब्रह्मन् कोऽभवानिह नः स्थितः ।
किमर्थं चैव नः शोच्याननुशोचसि सत्तम ॥ २२

जरत्कारुरुवाच ।

मम पूर्वे भवन्तो वै पितरः सपितामहाः ।
ब्रूत किं करवाण्यद्य जरत्कारुरहं स्वयम् ॥ २३

---

पौलोमे दारपरिग्रहस्य महाद्रोहहेतुत्वमुक्त्वा संततिमात्रार्थं स आवश्यको न तु भोगार्थमिति दर्शयितुमास्तीकाख्यानमारभते । किमर्थमिति । अन्तमन्तकरत्वम् ॥ १ ॥ जयतां जितेन्द्रियाणाम् । यद्वा 'अराजा सन्विधया समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्परीयाय' इति ब्राह्मणाद्विधयैव जयतामिति व्याख्येयम् । जपतामित्यपि केचित्पठन्ति ॥ २ ॥ वसुरेतसः अग्नेः आहरत् कृतवान् ॥३॥ परिचक्षते मादृशा इति शेषः ॥ ६ ॥ तदेवाह पूर्वमिति ॥ ७ ॥ तस्मादित्यनेन स्वस्य संप्रदायवित्त्वं स्फुटीकृतम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मचारी अकृतदारत्वान्नित्यं वेदाध्ययनमात्रपरः ॥ १० ॥ यायावराणां ग्रामैकरात्रवासिनां गृहस्थानाम् । येभ्योऽयं पक्षहोमसंप्रदायः प्रवृत्तः । तथा च भरद्वाजः । 'यायावरा नाम ब्राह्मणा आसंस्तेऽर्धमासायाग्निहोत्रमजुहवान्निति' ॥ ११ ॥ यत्र सायंगृह इत्येकं पदं यत्रैव सायंकालस्तत्रैव गृहमस्येति स तथा ॥ १२ ॥ दीक्षां व्रतनियमं चरन् ॥ १३ ॥ वायुभक्षोः जितपवनः । आहरणं आहारो विषयभोगस्तच्छून्यो निराहारः । अनिमिषो जितनिद्रः । इतस्ततो वृक्षादिभ्यः शीर्णं पर्णादिकं परितः काले सर्वदाचरन्नश्नन् ॥ १४ ॥ अटमानः नित्यं पर्यटनकरः । अत्र प्रक्षीणसंतानस्य वंशस्य गतिमनेन रूपकेण प्रदर्शयति । लम्बमानानित्यादिना ॥ १५ ॥ वीरणस्तम्बके तृणस्तम्बे । अत्र गर्तो भूलोकः ऊर्ध्वपादत्वाऽधोमुखत्वाभ्यां स्वर्गस्थत्वेऽपि पातभयेन व्याकुलत्वमुक्तं वीरणस्तम्बो वंशस्तोमः । मूषकः कालः ॥१७॥ नः स्थितःअस्माकं स्वामी वेति शेषः ॥ २२ ॥

पितर ऊचुः ।

*यतस्व *यत्नवांस्तात संतानाय कुलस्य नः ।*
आत्मनोऽर्थेऽस्मदर्थे च धर्म इत्येव वा विभो ॥२४
न हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसंचितैः ।
तां गतिं प्राप्नुवन्तीह पुत्रिणो यां व्रजन्ति वै ॥२५
तद्दारग्रहणे यत्नं संतत्यां च मनः कुरु ।
पुत्रकास्मन्नियोगात्त्वमेतन्नः परमं हितम् ॥ २६

जरत्कारुरुवाच ।

न दारान्वै करिष्येऽहं न धनं जीवितार्थतः ।
भवतां तु हितार्थाय करिष्ये दारसंग्रहम् ॥ २७
समयेन च कर्ताऽहमनेन विधिपूर्वकम् ।
*यथा यद्युपलप्स्यामि करिष्ये नान्यथा ह्यहम् ॥२८*
सनाम्नी या भवित्री मे दित्सिता चैव बन्धुभिः ।
भैक्ष्यवत्तामहं कन्यामुपयंस्ये विधानतः ॥ २९
दरिद्राय हि मे भार्यां को दास्यति विशेषतः ।
प्रतिग्रहीष्ये भिक्षां तु यदि कश्चित्प्रदास्यति॥ ३०
एवं दारक्रियाहेतोः प्रयतिष्ये पितामहः ।
अनेन विधिना शश्वन्न करिष्येऽहमन्यथा ॥ ३१
तत्र चोत्पत्स्यते जन्तुर्भवतां तारणाय वै ।
शाश्वतं स्थानमासाद्य मोदन्तां पितरो मम ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कारुतत्पितृसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३

---

सौतिरुवाच ।

ततो निवेशाय तदा स विप्रः संशितव्रतः ।
महीं चचार दारार्थी न च दारानविन्दत ॥ १
स कदाचिद्वनं गत्वा विप्रः पितृवचः स्मरन् ।
चुक्रोश कन्याभिक्षार्थी तिस्रो वाचः शनैरिव ॥२
तं वासुकिः प्रत्यगृह्णादुद्यम्य भगिनीं तदा ।
न स तां प्रतिजग्राह न सनाम्नीति चिन्तयन्॥ ३
सनाम्नीं चोद्यतां भार्यां गृह्णीयामिति तस्य हि ।
मनो निविष्टमभवज्जरत्कारोर्महात्मनः ॥ ४
तमुवाच महाप्राज्ञो जरत्कारुर्महातपाः ।
किं नाम्नी भगिनीयं ते ब्रूहि सत्यं भुजंगम ॥ ५

वासुकिरुवाच ।

जरत्कारो जरत्कारुः स्वसेयमनुजा मम ।
प्रतिगृह्णीष्व भार्यार्थे मया दत्तां सुमध्यमाम् ।
त्वदर्थं रक्षिता पूर्वं प्रतीच्छेमां द्विजोत्तम ॥ ६
एवमुक्त्वा ततः प्रादाद्भार्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
स च तां प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि वासुकिस्वसृवरणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४

---

सौतिरुवाच ।

मात्रा हि भुजगाः शप्ताः पूर्वं ब्रह्मविदां वर ।
जनमेजयस्य वो यज्ञे धक्ष्यत्यनिलसारथिः ॥ १
तस्य शापस्य शान्त्यर्थं प्रददौ पन्नगोत्तमः ।
स्वसारमृषये तस्मै सुव्रताय महात्मने ॥ २
स च तां प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ।
आस्तीको नामपुत्रश्च तस्यां जज्ञे महामनाः ॥ ३
तपस्वी च महात्मा च वेदवेदाङ्गपारगः ।
समः सर्वस्य लोकस्य पितृमातृभयापहः ॥ ४
अथ दीर्घस्य कालस्य पाण्डवेयो नराधिपः ।
आजहार महायज्ञं सर्पसत्रमिति श्रुतिः ॥ ५
तस्मिन्प्रवृत्ते सत्रे तु सर्पाणामन्तकाय वै ।
मोचयामास तान्नागानास्तीकः सुमहातपाः ॥ ६

---

न दारानित्यध्यायतात्पर्यमुक्तम् । भोगाय धनदारासंग्रहो न कार्यः किं तु पुत्रकत्वोरेवार्थे इति भावः ॥ २७ ॥ सनाम्नीति । प्रायेण वस्तूनां यथार्थनामत्वात् जरत्कारुशब्देन तपसा जीर्यमाणशरीरत्वं विवक्षितम् । तादृशोऽहं सदृशीमेव भार्यां स्वीकरिष्यामि । 'बन्धुभिर्दित्सितामिति ऋत्विजे वितते कर्मणि दद्यादलंकृत्य स दैवो गोमिथुनं दत्वोपयच्छेत स आर्षः' इत्यार्त्विज्य गोमिथुनपूर्वयोर्दैवार्षयोर्विवाहयोर्व्यावृत्तिर्दर्शिता । भैक्ष्यवदिति तस्या ब्राह्मप्राजापत्यविधिना अलंकृताया अनलंकृताया वा लाभेऽपि अन्नवस्त्रादिना भरणे मम धनादिकं नास्तीति च दर्शितम् । उपयंस्ये परिणेष्ये॥२९॥इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

तत इति निवेशाय दारसंग्रहाय पाठान्तरे यतिर्ब्रह्मचारी ॥ १ ॥ तिस्रो वाचः कन्याभिक्षां देहीत्येवंरूपाः ॥ २ ॥ प्रतीच्छ प्रतिगृह्णीष्व ॥ ६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

एवमास्तीकोत्पत्तिप्रकारमुक्त्वा सर्पसत्रनिमित्तं सर्पाणां मातृशापमुपक्षिपति । मात्रा हीत्यादिना । अनिलसारथिर्वह्निः । धक्ष्यति दाहं करिष्यति ॥ १ ॥ जज्ञे जातः ॥ ३ ॥ पितृमातृपक्षीयाणां भयापहः पितृमातृभयापह इति मध्यमपदलोपः ॥ ४ ॥ आजहार चक्रे ॥ ५ ॥

* तपोविषये

भ्रातॄंश्च मातुलांश्चैव तथैवान्यान्स पन्नगान्।
पितॄंश्च तारयामास संतत्या तपसा तथा ॥ ७
व्रतैश्च विविधैर्ब्रह्मन्स्वाध्यायैश्चानृणोऽभवत्।
देवांश्च तर्पयामास यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ॥ ८
ऋषींश्च ब्रह्मचर्येण संतत्या च पितामहान्।
अपहृत्य गुरुं भारं पितॄणां संशितव्रतः ॥ ९
जरत्कारुर्गतः स्वर्गं सहितः स्वैः पितामहैः।
आस्तीकं च सुतं प्राप्य धर्मं चानुत्तमं मुनिः॥१०
जरत्कारुः सुमहता कालेन स्वर्गमेयिवान्।
एतदाख्यानमास्तीकं यथावत्कथितं मया।
प्रब्रूहि भृगुशार्दूल किमन्यत्कथयामि ते ॥ ११

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पाणां मातृशापप्रस्तावे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५

---

शौनक उवाच।
सौते त्वं कथयस्वेमां विस्तरेण कथां पुनः।
आस्तीकस्य कवेः साधोः शुश्रूषा परमा हि नः॥ १
मधुरं कथ्यते सौम्य श्लक्ष्णाक्षरपदं त्वया।
प्रीयामहे भृशं तात पितेवेदं प्रभाषसे ॥ २
अस्मच्छुश्रूषणे नित्यं पिता हि निरतस्तव।
आचष्टैतद्यथाख्यानं पिता ते त्वं तथा वद ॥ ३
सौतिरुवाच।
आयुष्मन्निदमाख्यानमास्तीकं कथयामि ते।
यथाश्रुतं कथयतः सकाशाद्वै पितुर्मया ॥ ४
पुरा देवयुगे ब्रह्मन्प्रजापतिसुते शुभे।
आस्तां भगिन्यौ रूपेण समुपेतेऽद्भुतेऽनघ ॥ ५
ते भार्ये कश्यपस्यास्तां कद्रूश्च विनता च ह।
प्रादात्ताभ्यां वरं प्रीतः प्रजापतिसमः पतिः ॥ ६
कश्यपो धर्मपत्नीभ्यां मुदा परमया युतः।
वरातिसर्गं श्रुत्वैवं कश्यपादुत्तमं च ते ॥ ७
हर्षादप्रतिमां प्रीतिं प्रापतुःस्म वरस्त्रियौ।
वव्रे कद्रूः सुतान्नागान्सहस्रं तुल्यवर्चसः ॥ ८
द्वौ पुत्रौ विनता वव्रे कद्रूपुत्राधिकौ बले।
तेजसा वपुषा चैव विक्रमेणाधिकौ च तौ ॥ ९
तस्यै भर्ता वरं प्रादादध्यर्धं पुत्रमीप्सितम्।
एवमस्त्विति तं चाह कश्यपं विनता तदा॥ १०
यथावत्प्रार्थितं लब्ध्वा वरं तुष्टाऽभवत्तदा।
कृतकृत्या तु विनता लब्ध्वा वीर्याधिकौ सुतौ११
कद्रूश्च लब्ध्वा पुत्राणां सहस्रं तुल्यवर्चसाम्।
धार्यौ प्रयत्नतो गर्भावित्युक्त्वा स महातपाः॥१२
ते भार्ये वरसंतुष्टे कश्यपो वनमाविशत्।
सौतिरुवाच।
कालेन महता कद्रूरण्डानां दशतीर्दश ॥ १३
जनयामास विप्रेन्द्र द्वे चाण्डे विनता तदा।
तयोरण्डानि निदधुः प्रहृष्टाः परिचारिकाः॥ १४
सोपस्वेदेषु भाण्डेषु पञ्चवर्षशतानि च।
ततः पञ्चशते काले कद्रूपुत्रा विनिःसृताः ॥ १५
अण्डाभ्यां विनतायास्तु मिथुनं न व्यदृश्यत।
ततः पुत्रार्थिनी देवी व्रीडिता च तपस्विनी ॥१६
अण्डं बिभेद विनता तत्र पुत्रमपश्यत।
अध्यर्धकायसंपन्नमितरेणाप्रकाशता ॥ १७
स पुत्रः क्रोधसंरब्धः शशापैनामिति श्रुतिः।
योऽहमेवं कृतो मातस्त्वया लोभपरीतया ॥ १८
शरीरेणासमग्रेण तस्माद्दासी भविष्यसि।
पञ्चवर्षशतान्यस्या यया विस्पर्धसे सह ॥ १९
एष च त्वां सुतो मातर्दासीत्वान्मोचयिष्यति।
यद्येनमपि मातस्त्वं मामिवाण्डविभेदनात्॥ २०

---

भ्रातॄन्मातुलपुत्रान्॥ ७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्याय. ॥ १५ ॥

सौते इति शुश्रूषा श्रोतुमिच्छा॥१॥अस्मच्छुश्रूषणे अस्माकं श्रावणे। आचष्टे साकल्येन व्यक्तं कथितवान्॥ ३ ॥ कथयतः पितुः सकाशात् ॥ ४ ॥ देवयुगे सत्ययुगे रूपेण प्रकाशेन अद्भुते इति संबन्धः 'रूपं स्वभावे सौंदर्ये आलोके पशुग्रन्थयोः' इति मेदिनी। अद्भुत इत्यादि पूर्वरूपमार्षम्॥५॥ वरातिसर्गं वरदानम् ॥ ७ ॥ तेजसा दीप्त्या विक्रमेण पराभिभवसामर्थ्येन। ओजसा तेजसेति पाठे ओजसा इन्द्रियबलेन ॥ ९ ॥ पुत्रं पुनातीति तं पवित्रं वरं दिव्यपुत्रद्वयलाभरूपम् ॥ १०॥ यथा दशावृत्ता नवनवतिः तथा दशावृत्ता दशदशति शतमित्यर्थः। दशदशती दशशतानीत्यर्थः ॥ १३ ॥ सोपस्वेदेषु उष्मवत्सु। तत्र ह्याण्डान्तर्जलमूष्मणा शीघ्रं घनीभवतीति। पञ्चशते पञ्चशत्याः पूरणे काले संवत्सरे पूर्णे सतीतिशेषः ॥ १५ ॥ मिथुनं निःसृतं सत्। न व्यदृश्यत न दृष्टं स्वरूपेणेऽतिशेष.। व्रीडिता सपत्न्याः पुत्रसमृध्द्या लज्जिता ॥ १६ ॥ अपश्यत अपश्यत्। अध्यर्धेति चरणादारभ्य अर्धादुपरितनेन देहेन कृत्स्नोऽन्येनाकृत इत्यर्थः। पूर्वार्धेति पाठः सुगमः ॥ १७ ॥ क्रोधसंरब्धः क्रोधेन द्वेषेण संरब्ध. अभिनिविष्टः ॥ १८ ॥

न करिष्यस्यनङ्गं वा व्यङ्गं वापि तपस्विनम् ।
प्रतिपालयितव्यस्ते जन्मकालोऽस्य धीरया ॥ २१
विशिष्टं बलमीप्सन्त्या पञ्चवर्षशतात्परः ।
एवं शप्त्वा ततः पुत्रो विनतामन्तरिक्षगः ॥ २२
अरुणो दृश्यते ब्रह्मन्प्रभातसमये यदा ।
आदित्यरथमध्यास्ते सारथ्यं समकल्पयत् ॥ २३
गरुडोऽपि यथा कालं जज्ञे पन्नगभोजनः ।
स जातमात्रो विनतां परित्यज्य खमाविशत् ॥ २४
आदास्यन्नात्मनो भोज्यमन्नं विहितमस्य यत् ।
विधात्रा भृगुशार्दूल क्षुधितः पतगेश्वरः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पादीनामुत्पत्तौ षोडशोऽध्यायः ॥ १६

---

सूत उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु भगिन्यौ ते तपोधन ।
अपश्यतां समायाते उच्चैःश्रवसमन्तिकात् ॥ १
यं तं देवगणाः सर्वे हृष्टरूपमपूजयन् ।
मथ्यमानेऽमृते जातमश्वरत्नमनुत्तमम् ॥ २
अमोघबलमश्वानामुत्तमं जगतां वरम् ।
श्रीमन्तमजरं दिव्यं सर्वलक्षणपूजितम् ॥ ३

शौनक उवाच ।

कथं तदमृतं देवैर्मथितं क्व च शंस मे ।
यत्र जज्ञे महावीर्यः सोऽश्वराजो महाद्युतिः ॥ ४

सौतिरुवाच ।

ज्वलन्तमचलं मेरुं तेजोराशिमनुत्तमम् ।
आक्षिपन्तं प्रभां भानोःस्वशृङ्गैःकाञ्चनोज्ज्वलैः ॥ ५
कनकाभरणं चित्रं देवगन्धर्वसेवितम् ।
अप्रमेयमनाधृष्यमधर्मबहुलैर्जनैः ॥ ६
व्यालैरावारितं घोरैर्दिव्यौषधिविदीपितम् ।
नाकमावृत्य तिष्ठन्तमुच्छ्रयेण महागिरिम् ॥ ७
अगम्यं मनसाऽप्यन्यैर्नदीवृक्षसमन्वितम् ।
नानापतगसङ्घैश्च नादितं सुमनोहरैः ॥ ८
तस्य शृङ्गमुपारुह्य बहुरत्नाचितं शुभम् ।
अनन्तकल्पमुद्विद्धं सुराः सर्वे महौजसः ॥ ९
ते मन्त्रयितुमारब्धास्तत्रासीना दिवौकसः ।
अमृताय समागम्य तपोनियमसंयुताः ॥ १०
तत्र नारायणो देवो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।
चिन्तयत्सु सुरेष्वेवं मन्त्रयत्सु च सर्वशः ॥ ११
देवैरसुरसङ्घैश्च मथ्यतां कलशोदधिः ।
भविष्यत्यमृतं तत्र मथ्यमाने महोदधौ ॥ १२
सर्वौषधीः समावाप्य सर्वरत्नानि चैव ह ।
मन्थध्वमुदधिं देवा वेत्स्यध्वममृतं ततः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि अमृतमन्थने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७

---

सौतिरुवाच ।

ततोऽभ्रशिखराकारैर्गिरिशृङ्गैरलंकृतम् ।
मन्दरं पर्वतवरं लताजालसमाकुलम् ॥ १
नानाविहगसंघुष्टं नानादंष्ट्रिसमाकुलम् ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च देवैरपि च सेवितम् ॥ २
एकादशसहस्राणि योजनानां समुच्छ्रितम् ।
अधोभूमेः सहस्रेषु तावत्स्वेव प्रतिष्ठितम् ॥ ३
तमुद्धर्तुमशक्ता वै सर्वे देवगणास्तदा ।
विष्णुमासीनमभ्येत्य ब्रह्माणं चेदमब्रुवन् ॥ ४

---

अनङ्गं मामिव वाव्यङ्गमदृढावयवम् ।प्रतीपालयितव्यः प्रतीक्षणीयः॥२१॥भर्तृशुश्रूषयैव नारीणां मनोरथसिद्धिः ईर्ष्यया च सिद्धमपि सुखं हीयत इत्यध्यायतात्पर्यम्।विधात्रा विहितमिति योजना ॥२५॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

एतस्मिन्निति समायाते एकीभूते॥१॥ज्वलन्तं मेरुं समागम्य दिवौकसः अमृताय मन्त्रयितुमारब्धा इति षष्ठेनान्वयः। किं कृत्वा तस्य मेरोः शृङ्गमुपारुह्येति संबन्धः ॥५॥ अप्रमेयं अतिमनोहरत्वात् मनसा वाचा वाकलयितुमशक्यम् ॥६ ॥ आवारितं आचीर्णम्॥७॥ अगम्यं अप्राप्यम् अन्यैः प्राकृतैः ॥ ८ ॥ अनन्तकल्पं अनन्तो विष्णुराकाशो वा तत ईषन्न्यूनम् । बहुगुणाढ्यत्वादतिप्रमाणत्वाच्च । ईषदसमाप्तौ कल्पप् । उद्विद्धमुच्चम् ॥ ९ ॥ कलश इव कलशो मन्थनाधारत्वात् । उदधिः समुद्रः कलशोदधिः क्षीरसमुद्र इति केचित् । कलाः पाषाणमयाः पर्वता मैनाकादयः शेरतेऽस्मिन्निति कलशः । समुद्रः स च उदधिः । उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति योगात् जलसमुद्र इत्यर्थः । विशेषणं विशेष्येण बहुलमिति समासः । कलशब्दो दृषदि रूढो लाटेषु । क्षोभ्यतां कलशः सर्वैरिति वाक्यशेषात् । आर्यप्रसिध्यभावे म्लेच्छप्रसिध्याप्यर्थनिर्णयाभ्युपगमात् ॥ १२ ॥ वेत्स्यध्वं लप्स्यध्वम् ॥ १३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ तत इति ॥ १ ॥

भवन्तावत्र कुर्वातां बुद्धिं नैःश्रेयसीं पराम् ।
मन्दरोद्धरणे यत्नः क्रियतां च हिताय नः ॥ ५

सौतिरुवाच ।

तथेति चाब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्मणा सह भार्गव ।
अचोदयदमेयात्मा फणीन्द्रं पद्मलोचनः ॥ ६
ततोऽनन्तः समुत्थाय ब्रह्मणा परिचोदितः ।
नारायणेन चाप्युक्तस्तस्मिन्कर्मणि वीर्यवान् ॥ ७
अथ पर्वतराजानं तमनन्तो महाबलः ।
उज्जहार बलाद्ब्रह्मन् सवनं सवनौकसम् ॥ ८
ततस्तेन सुराः सार्धं समुद्रमुपतस्थिरे ।
तमूचुरमृतस्यार्थे निर्मथिष्यामहे जलम् ॥ ९
अपां पतिरथोवाच ममाप्यंशो भवेत्ततः ।
सोढास्मि विपुलं मर्दं मन्दरभ्रमणादिति ॥ १०
ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः ।
अधिष्ठानं गिरेरस्य भवान्भवितुमर्हति ॥ ११
कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समर्पितम् ।
तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं यन्त्रेणेन्द्रो न्यपीडयत् ॥ १२
मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम् ।
देवा मथितुमारब्धाः समुद्रं निधिमम्भसाम् ॥ १३
अमृतार्थे पुरा ब्रह्मंस्तथैवासुरदानवाः ।
एकमन्तमुपाश्लिष्टा नागराज्ञो महासुराः ॥ १४
विबुधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः स्थिताः
अनन्तो भगवान्देवो यतो नारायणस्ततः ।
शिर उत्क्षिप्य नागस्य पुनः पुनरवाक्षिपत् ॥ १५
वासुकेरथ नागस्य सहसाक्षिप्यतः सुरैः ।
सधूमाः सार्चिषो वाता निष्पेतुरसकृन्मुखात् ॥ १६
ते धूमसंघाः संभूता मेघसंघाः सविद्युतः ।
अभ्यवर्षन्सुरगणान् श्रमसंतापकर्शितान् ॥ १७
तस्माच्च गिरिकूटाग्रात्प्रच्युताः पुष्पवृष्टयः ।
सुरासुरगणान्सर्वान्समन्तात्समवाकिरन् ॥ १८
बभूवात्र महानादो महामेघरवोपमः ।
उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥ १९
तत्र नानाजलचरा विनिष्पिष्टा महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मुः शतशो लवणाम्भसि ॥ २०
वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः ।
पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ॥ २१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्यन्तः परस्परम् ।
न्यपतन्पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥ २२
तेषां संघर्षजश्चाग्निरर्चिर्भिः प्रज्वलन्मुहुः ।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥ २३
ददाह कुञ्जरांस्तत्र सिंहांश्चैव विनिर्गतान् ।
विगतासूनि सर्वाणि सत्त्वानि विविधानि च ॥ २४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वशः ॥ २५
ततो नानाविधास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ॥ २६
तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनस्य च निस्रवात् ॥ २७
ततस्तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः ।
रसोत्तमैर्विमिश्रं च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ॥ २८
ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वरदमब्रुवन् ।
श्रान्ताः स्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतं च तत् ॥ २९
विना नारायणं देवं सर्वेऽन्ये देवदानवाः ।
चिरारब्धमिदं चापि सागरस्यापि मन्थनम् ॥ ३०
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानत्र परायणम् ॥ ३१

---

अनन्तः शेषः ॥ ७ ॥ पर्वतराजानं अनित्यत्वात्समासान्तष्टच् न । सवनं सुनोतीति यज्ञसाधनं वनैः सहितं वा ॥ ८ ॥ तेन पर्वतधृतानन्तेन तं समुद्रमूचुः जलं तवेति शेषः ॥ ९ ॥ अकूपारे समुद्रसमीपे । द्वितीयान्तपाठे उपेत्येत्यध्याहारः । अधिष्ठानं गौरवात्तलं जिगमिषतो मन्दरस्याधारः ॥ ११ ॥ मन्थानं मन्थनदण्डं नेत्रं मन्थनरज्जुम् ॥ १३ ॥ एकमन्तं एकं प्रदेशं मुखभागं उपाश्लिष्टाः दृढं धृतवन्तः ॥ १४ ॥ अनन्त इति शेषो विष्णुपर्यायः । वासुकेः शिर उत्क्षिप्योत्क्षिप्य भूमावाक्षिपत्तन्मुखनिःसृतं विषं स्वयं सोढवानिति भावः ॥ १५ ॥ वासुकिमुखोत्थं वाय्वादिदेवोपकारायाभूदित्याह । वासुकेरिति द्वाभ्याम् । आक्षिप्यतः आक्षिप्यमाणस्य मुखेन मेघस्य धूमज्योतिर्वातवारिमयत्वमुक्तम् ॥ १६ ॥ जलचराः मत्स्यादयः । अस्मदादिवत्पार्थिवांशप्रधानशरीराः ॥ २० ॥ वारुणानि वरुणलोकस्थानि आप्यांशप्रधानदेहानि ॥ २१ ॥ पर्वताग्रात्पतमानानां द्रुमाणां संघर्षाज्जातोऽग्निः पर्वतं व्याप्नुवंस्तत्रस्थान् पश्वादीन्ददाहेत्याह । त्रिभिस्तस्मिन्नित्यादिभिः ॥ २२ ॥ तेषां द्रुमौषधीनां येऽमृतवीर्या रसास्तज्जेन पयसा क्षीरेण काञ्चनस्य स्वर्णमयस्य पर्वतस्य निस्रवात् दिव्यप्रभावानेकमणिभ्यो निःसृतात् जलाच्च सुरा अमृतत्वं जग्मुः ॥ २७ ॥ ततः पयो निःस्रवं प्राप्य समुद्रस्य तत्क्षारं उदकम् । लवणाम्भसीत्युपक्रमात् । पयः क्षीरं जातम् । यथा क्षारमक्षारं वा जलं गवि तृणादि रसं प्राप्य क्षीरं भवति तद्वदित्यर्थः । पयोऽपि रसोत्तमैर्विमिश्रमस्ति । ततो हेतोः क्षीरादभूद्घृतम् ॥ २८ ॥

विष्णुरुवाच ।

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः ।
क्षोभ्यतां कलशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ॥ ३२

सूत उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधेः ।
तत्पयः सहिता भूयश्चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥ ३३
ततः शतसहस्रांशुर्मथ्यमानात्तु सागरात् ।
प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥३४
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
सुरादेवी समुत्पन्नातुरगः पाण्डुरस्तथा ॥ ३५
कौस्तुभस्तु मणिर्दिव्य उत्पन्नो घृतसंभवः ।
मरीचिविकचः श्रीमान्नारायण उरोगतः ॥ ३६
श्रीः सुरा चैव सोमश्च तुरगश्च मनोजवः ।
यतो देवास्ततो जग्मुरादित्यपथमाश्रिताः ॥ ३७
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत ।
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ॥ ३८
एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ।
अमृतार्थे महान्नादो ममेदमिति जल्पताम् ॥ ३९
श्वेतैर्दन्तैश्चतुर्भिस्तु महाकायस्ततः परम् ।
ऐरावणो महानागोऽभवद्वज्रभृता धृतः ॥ ४०
अतिनिर्मथनादेव कालकूटस्ततः परः ।
जगदावृत्य सहसा सधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥४१
त्रैलोक्यं मोहितं यस्य गन्धमाघ्राय तद्विषम् ।
प्राग्रसल्लोकरक्षार्थं ब्रह्मणो वचनाच्छिवः ॥ ४२
दधार भगवान्कण्ठे मन्त्रमूर्तिर्महेश्वरः ।
तदा प्रभृति देवस्तु नीलकण्ठ इति श्रुतिः ॥ ४३
एतत्तदद्भुतं दृष्ट्वा निराशा दानवाः स्थिताः ।
अमृतार्थे च लक्ष्म्यर्थे महान्तं वैरमाश्रिताः ॥ ४४
ततो नारायणो मायां मोहिनीं समुपाश्रितः ।
स्त्रीरूपमद्भुतं कृत्वा दानवानभिसंश्रितः ॥ ४५
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतसः ।
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि अमृतमन्थने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

सौतिरुवाच ।

अथावरणमुख्यानि नानाप्रहरणानि च ।
प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान्सहिता दैत्यदानवाः ॥ १
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥ २
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
विष्णोः सकाशात्संप्राप्य संभ्रमे तुमुले सति ॥ ३
ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवः प्रापिबत्तदा ॥ ४
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥५
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥ ६
तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरो महत् ।
चक्रच्छिन्नं खमुत्पत्य ननादातिभयंकरम् ॥ ७
तत्कबन्धं पपातास्य विस्फुरद्धरणीतले ।
सपर्वतवनद्वीपां दैत्यस्याकम्पयन्महीम् ॥ ८
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै ।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां ग्रसत्यद्यापि चैव तौ ॥ ९
विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः ।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान्समकम्पयत् ॥ १०

---

शतसहस्रं लक्षं अनन्ता अंशवः आप्यायनीयौषधिभिदात् रश्मयो यस्य स शतसहस्रांशुः । शतसहस्रान्त इति पाठे अन्तशब्दोगम्यप्रदेशपरः ॥ ३४ ॥ घृतेन द्यावापृथिवीक्युंधीति । पार्जन्ये दर्शनान्नैघण्टुकप्रसिद्धेश्च घृतं जलं तस्मात् श्रीरुत्पन्ना द्रुमौषधिरसाज्जलस्य क्षीरत्वं ततो घृतमिति क्रमे सारत्वमात्रं विवक्षितम् ॥३५॥ मरीचिविकचः रश्मिभिरुज्ज्वलः नारायणउरोगत इत्यसंधिरार्षः ॥ ३६ ॥ ऐरावण ऐरावतः महानागो महाहस्ती ॥ ४० ॥ निराशाः विषमध्येतैर्गृहीतं अस्माभिस्तु तद्ग्रहणासमर्थैः कथममृतं लब्धुं शक्यमिति भावः । महान् अन्तः संहारो येन तन्महान्तम् ॥ ४४ ॥ अभिसंश्रितः संमुखः मोहनार्थमित्यर्थः ॥ ४५ ॥ ‘ अमृतादपि विभ्रंशः सङ्गमात्रेण योषिताम् । दधता मोहिनीरूपं हरिणैवं प्रकाशितम् ’ इति रत्नगर्भः ॥ ४६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथेति । आवरणमुख्यानि कवचाग्र्याणि । प्रहरणानि आयुधानि ॥ १ ॥ संभ्रमे उभयेषाममृतादरे सति ॥ ३

ततः प्रवृत्तः संग्रामः समीपे लवणाम्भसः ।
सुराणामसुराणां च सर्वघोरतरो महान् ॥ ११

प्रासाश्च विपुलास्तीक्ष्णा न्यपतन्त सहस्रशः ।
तोमराश्च सुतीक्ष्णाग्राः शस्त्राणि विविधानि च १२

ततोऽसुराश्चक्रभिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।
असिशक्तिगदारुग्णा निपेतुर्धरणीतले ॥ १३

छिन्नानि पट्टिशैश्चैव शिरांसि युधि दारुणैः ।
तप्तकाञ्चनमालीनि निपेतुरनिशं तदा ॥ १४

रुधिरेणानुलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ।
अद्रीणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ॥ १५

हाहाकारः समभवत्तत्र तत्र सहस्रशः ।
अन्योऽन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति १६

परिघैरायसैस्तीक्ष्णैः संनिकर्षे च मुष्टिभिः ।
निघ्नतां समरेऽन्योऽन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत् १७

छिन्धि भिन्धि प्रधाव त्वं पातयाभिसरेति च ।
व्यश्रूयन्त महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः ॥ १८

एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ।
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् ॥ १९

तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ।
चिन्तयामास तच्चक्रं विष्णुर्दानवसूदनम् ॥ २०

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं
महाप्रभं चक्रममित्रतापनम् ।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं
सुदर्शनं संयति भीमदर्शनम् ॥ २१

तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं
भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः ।
मुमोच वै प्रबलवदुग्रवेगवान्
महाप्रभं परनगरावदारणम् ॥ २२

तदन्तकज्वलनसमानवर्चसं
पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा ।
विदारयद्दितिदनुजान्सहस्रशः
करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ॥ २३

दहत्क्वचिज्ज्वलन इवावलेलिहत्
प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत ।
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तथा
पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत् ॥ २४

तथाऽसुरा गिरिभिरदीनचेतसो
मुहुर्मुहुः सुरगणमार्दयंस्तदा ।
महाबला विगलितमेघवर्चसः
सहस्रशो गगनमभिप्रपद्य ह ॥ २५

अथाम्बराद्भयजननाः प्रपेदिरे
सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ।
महाद्रयः परिगलिताग्रसानवः
परस्परं द्रुतमभिहत्य सस्वनाः ॥ २६

ततो मही प्रविचलिता सकानना
महाद्रिपाताभिहता समन्ततः ।
परस्परं भृशमभिगर्जतां मुहू
रणाजिरे भृशमभिसंप्रवर्तिते ॥ २७

नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैः
महेषुभिर्गगनपथं समावृणोत् ।
विदारयन्गिरिशिखराणि पत्रिभिः
महाभयेऽसुरगणविग्रहे तदा ॥ २८

ततो महीं लवणजलं च सागरं
महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ।
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं
सुदर्शनं परिकुपितं निशाम्य ते ॥ २९

ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः
स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ।
विनाद्य खं दिवमपि चैव सर्वशः
ततो गताः सलिलधरा यथागतम् ॥३०

---

प्रासाः हस्तक्षेप्याः क्षुद्रभल्लाः 'चिंधे' फरकादीनि प्रसिद्धाः। तोमराः दीर्घदण्डास्त एव क्षेप्याः। 'लादेण्डिला' इति प्रसिद्धाः। विविधानि शस्त्राणि यमदंष्ट्रादीनि लोकप्रसिद्धानि 'जमधड' इत्यादीनि ॥ १२ ॥ असिः खड्गः शक्तिर्हस्तक्षेप्यो लोहदण्डः पृथुकुक्षिः गदा ... स एव ॥ १३ ॥ पट्टिशः खड्गविशेष उभयतो धारस्तीक्ष्णाग्रः 'पट्टा' इति प्रसिद्धः ॥ १४ ॥ परिघः परितो हन्तीति तथा। गर्तैः कण्टकितो लोहदण्डः। एतमग्रेऽपि ... ... शब्दानामर्थो बोध्यः ॥ १७ ॥ संयति युद्धे ॥ २१ ॥ प्रेरितं प्रेरितम्। अशोभनमस्य भागुरिमते नाकारलोपः। विगलिता ... मेघास्तत्सदृशतया श्वेतभास्वरा इत्यर्थः ॥ २५ ॥ बहुविधा नीललोहितादिधातुमत्त्वात्। मेघरूपिणं गगनगामित्वात् ॥ २६ ॥ गगनविगलिता ... देवाः। असुराश्च गणाश्च तेषां विग्रहे 'गणः प्रमथसंख्यौघे' इति मेदिनी॥ २८ ॥ निशाम्य विलोक्य असुराः ॥ २९ ॥ सलिलधराः अमृतार्थी देवाः॥ ३० ॥

ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे
सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददौ च तं निधिममृतस्य रक्षितुं
किरीटिने बलभिदथामरैः सह ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि अमृतमन्थनसमाप्तिर्नाम एकोनविंशोऽध्यायः १९.

---

सौतिरुवाच ।
एतत्ते कथितं सर्वममृतं मथितं तथा ।
यत्र सोऽश्वः समुत्पन्नः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ १
यं निशाम्य तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् ।
उच्चैःश्रवा हि किं वर्णो भद्रे प्रब्रूहि मा चिरम् २
विनतोवाच ।
श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे ।
ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततोऽत्र विपणावहे ॥ ३
कद्रूरुवाच ।
कृष्णवालमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते ।
एहि सार्धं मया दीव्य दासीभावाय भामिनि ॥४
सौतिरुवाच ।
एवं ते समयं कृत्वा दासीभावाय वै मिथः ।
जग्मतुः स्वगृहानेव श्वो द्रक्ष्याव इति स्म ह ॥ ५
ततः पुत्रसहस्रं तु कद्रूर्जिह्मं चिकीर्षती ।
आज्ञापयामास तदा वाला भूत्वाञ्जनप्रभाः ॥ ६
आविशध्वं हयं क्षिप्रं दासी न स्यामहं यथा ।
नावपद्यन्त ये वाक्यं ताञ्शशाप भुजंगमान् ॥ ७
सर्पसत्रे वर्तमाने पावको वः प्रधक्ष्यति ।
जनमेजयस्य राजर्षेः पाण्डवेयस्य धीमतः ॥ ८
शापमेनं तु शुश्राव स्वयमेव पितामहः ।
अतिक्रूरं समुत्सृष्टं कद्र्वा दैवादतीव हि ॥ ९
सार्धं देवगणैः सर्वैर्वाचं तामन्वमोदत ।
बहुत्वं प्रेक्ष्य सर्पाणां प्रजानां हितकाम्यया ॥ १०
तिग्मवीर्यविषा ह्येते दन्दशूका महाबलाः ।
तेषां तीक्ष्णविषत्वाद्धि प्रजानां च हिताय च ११
युक्तं मात्रा कृतं तेषां परपीडोपसर्पिणाम् ।
अन्येषामपि सत्त्वानां नित्यं दोषपरास्तु ये ॥ १२
तेषां प्राणान्तिको दण्डो दैवेन विनिपात्यते ।
एवं संभाष्य देवस्तु पूज्य कद्रूं च तां तदा ॥ १३
आहूय कश्यपं देव इदं वचनमब्रवीत् ।
यदेते दन्दशूकाश्च सर्पा जातास्त्वयानघ ॥ १४
विषोल्बणा महाभोगा मात्रा शप्ताः परंतप ।
तत्र मन्युस्त्वया तात न कर्तव्यः कथंचन ॥ १५
दृष्टं पुरातनं ह्येतद्यज्ञे सर्पविनाशनम् ।
इत्युक्त्वा सृष्टिकृद्देवस्तं प्रसाद्य प्रजापतिम् ।
प्रादाद्विषहरीं विद्यां कश्यपाय महात्मने ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

---

सौतिरुवाच ।
ततो रजन्यां व्युष्टायां प्रभातेऽभ्युदिते रवौ ।
कद्रूश्च विनताचैव भगिन्यौ ते तपोधन ॥ १
अमर्षिते सुसंरब्धे दास्ये कृतपणे तदा ।
जग्मतुस्तुरगं द्रष्टुमुच्चैःश्रवसमन्तिकात् ॥ २
ददृशातेऽथ ते तत्र समुद्रं निधिमम्भसाम् ।
महान्तमुदकागाधं क्षोभ्यमाणं महास्वनम् ॥ ३
तिमिङ्गिलझषाकीर्णं मकरैरावृतं तथा ।
सत्त्वैश्च बहुसाहस्रैर्नानारूपैः समावृतम् ॥ ४

---

किरीटिने नराय 'तुल्यायासेप्यविबुधानाब्धिजं विमुखा हरेः । देवास्तु वशगा विष्णोः प्रापुरेतादिहोच्यते' इति रत्नगर्भः ॥३१॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

एतदिति ॥ १ ॥ विपणावहे पणं कुर्वहे ॥ ३ ॥ दीव्य विजिगीषस्व दासभावाय मां वा दासीकर्तुं त्वं वा दासीभवितुं ब्रूहीत्यर्थः ॥ ४ ॥ जिह्मं कौटिल्यम् ॥ ६ ॥ नावपद्यन्त नानुमोदितवन्तः ॥ ७ ॥ दन्दशूकाः भृशं दंशनशीलाः ॥ ११ ॥ महाभोगाः महाशरीराः ॥ १५ ॥ विषहरीं विषघ्नीं विषहरामिति पाठः ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

तत इति । व्युष्टायां व्यतीतायाम् ॥१॥ दास्ये विषये ॥२॥ उदकेन अगाधं तलस्पर्शशून्यं क्षोभ्यमाणं मकरादिभिः ॥३॥

भीषणैर्विकृतैरन्यैर्घोरैर्जलचरैस्तथा ।
उग्रैर्नित्यमनाधृष्यं कूर्मग्राहसमाकुलम् ॥ ५
आकरं सर्वरत्नानामालयं वरुणस्य च ।
नागानामालयं रम्यमुत्तमं सरितां पतिम् ॥ ६
पातालज्वलनावासमसुराणां च बान्धवम् ।
भयंकरं च सत्त्वानां पयसां निधिमर्णवम् ॥ ७
शुभं दिव्यममर्त्यानाममृतस्याकरं परम् ।
अप्रमेयमचिन्त्यं च सुपुण्यजलमद्भुतम् ॥ ८
घोरं जलचरारावरौद्रं भैरवनिःस्वनम् ।
गंभीरावर्तकलिलं सर्वभूतभयंकरम् ॥ ९
वेलादोलानिलचलं क्षोभोद्वेगसमुच्छ्रितम् ।
वीचीहस्तैः प्रचलितैर्नृत्यन्तमिव सर्वतः ॥ १०
चन्द्रवृद्धिक्षयवशादुद्वृत्तोर्मिसमाकुलम् ।
पाञ्चजन्यस्य जननं रत्नाकरमनुत्तमम् ॥ ११
गां विन्दता भगवता गोविन्देनामितौजसा ।
वराहरूपिणा चान्तर्विक्षोभितजलाविलम् ॥ १२
ब्रह्मर्षिणा व्रतवता वर्षाणां शतमत्रिणा ।
अनासादितगाधं च पातालतलमव्ययम् ॥ १३
अध्यात्मयोगनिद्रां च पद्मनाभस्य सेवतः ।
युगादिकालशयनं विष्णोरमिततेजसः ॥ १४
वज्रपातनसंत्रस्तमैनाकस्याभयप्रदम् ।
डिम्बाहवार्दितानां च असुराणां परायणम् ॥ १५
वडवामुखदीप्ताग्नेस्तोयहव्यप्रदं शिवम् ।
अगाधपारं विस्तीर्णमप्रमेयं सरित्पतिम् ॥ १६
महानदीभिर्बह्वीभिः स्पर्धयेव सहस्रशः
अभिसार्यमाणमनिशं ददृशाते महार्णवम् ॥
आपूर्यमाणमत्यर्थं नृत्यमानमिवोर्मिभिः ॥ १७
गंभीरं तिमिमकरोग्रसंकुलं तं
गर्जन्तं जलचररावरौद्रनादैः ।
विस्तीर्णं ददृशतुरम्बरप्रकाशं
तेऽगाधं निधिमुरुमम्भसामनन्तम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

---

सौतिरुवाच ।

नागाश्च संविदं कृत्वा कर्तव्यमिति तद्वचः ।
निःस्नेहा वै दहेन्माता असंप्राप्तमनोरथा ॥ १
प्रसन्ना मोक्षयेदस्मांस्तस्माच्छापाच्च भामिनी ।
कृष्णं पुच्छं करिष्यामस्तुरगस्य न संशयः ॥ २
तथा हि गत्वा ते तस्य पुच्छे वाला इति स्मृताः ।
एतस्मिन्नन्तरे ते तु सपत्न्यौ पणिते तदा ॥ ३
ततस्ते पणितं कृत्वा भगिन्यौ द्विजसत्तम ।
जग्मतुः परया प्रीत्या परं पारं महोदधेः ॥ ४
कद्रूश्च विनताचैव दाक्षायण्यौ विहायसा ।
आलोकयन्त्यावक्षोभ्यं समुद्रं निधिमम्भसाम् ॥ ५
वायुनाऽतीव सहसा क्षोभ्यमाणं महास्वनम् ।
तिमिंगिलसमाकीर्णं मकरैरावृतं तथा ॥ ६
संयुतं बहुसाहस्रैः सत्त्वैर्नानाविधैरपि ।
घोरैर्घोरमनाधृष्यं गंभीरमतिभैरवम् ॥ ७
आकरं सर्वरत्नानामालयं वरुणस्य च ।
नागानामालयं चापि सुरम्यं सरितां पतिम् ॥ ८
पातालज्वलनावासमसुराणां तथालयम् ।
भयंकराणां सत्त्वानां पयसो निधिमव्ययम् ॥ ९

---

पातालज्वलनो वाडवाग्निस्तस्यावासम् । बान्धवं शरणम् । बन्धनमिति पाठे कारागारम् ॥ ७ ॥ वेलायाः दोल आंदोलनं तज्जेनानिलेन चलम् ॥ १० ॥ गां पृथ्वीं विन्दता लम्भमानेन हेतौ शतृप्रत्ययः । तेन हेतुना विक्षोभितेन जलेनाविलं व्याप्तम् ॥ १२ ॥ अत्रिणा तलान्वेषिणेति शेषः । गाधं तलम् । पातालस्यापि तलं अधःस्थम् । अव्ययं पातालादि व्ययेऽप्यविनाशम् ॥ १३ ॥ सेवतः सेवमानस्य युगादिकालशयनम् । युगं कृतादिकं तस्य आदिभूतो युगादिकालस्तस्मिन् । शयनं तल्पभूतम् ॥ १४ ॥ डिम्बाहवे डिम्बो भयवतामाक्रन्दस्तद्वति आहवे 'डिम्बोभयध्वनाडेवे' इति मेदिनी । तिग्माहव इति पाठः स्पष्टार्थः ॥१५ ॥ वडवा अश्वा तस्या मुखात् उत्पन्नो दीप्तो योऽग्निस्तस्मै तोयहव्यप्रदं गाधः पारश्च नास्ति यस्य सोऽगाधपारस्तं अत एव विस्तीर्णं विशेषेण स्तीर्णं समन्तत आस्तीर्णम् ॥१६॥ अभिसार्यमाणं अभितो गम्यमानम् ॥ १७ ॥ ते कद्रूविनते अगाधं पूर्वरूपमार्षम् ॥ १८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

---

नागाश्च संविदं कृत्वेति द्वादशश्लोकमध्यायं केचिन्न पठन्ति । कांश्चिदन्यान् श्लोकान्पूर्वत्रैव च पठन्ति । अन्ये तु पञ्च-षान्यठन्त्यपीत्यत्र कोशशुद्धिं न प्रतीमः । संविदं मिथ आलोचनम् ॥ २ ॥ पणिते पणं कृतवत्यौ ॥ ३ ॥ उक्तानुक्तविशेषणैः पुनः स्तौति समुद्रं अक्षोभ्यमित्यादिना ॥ ५ ॥

ग्रं दिव्यममर्त्यानाममृतस्याकरं परम् ।
प्रमेयमाचिन्त्यं च सुपुण्यजलसंमितम् ॥ १०
हानदीभिर्बह्वीभिस्तत्र तत्र सहस्रशः ।
ापूर्यमाणमत्यर्थं नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ॥ ११

इत्येवं तरलतरोर्मिसंकुलं ते
गंभीरं विकसितमम्बरप्रकाशम् ।
पातालज्वलनशिखाविदीपिताङ्गं
गर्जन्तं द्रुतमभिजग्मतुस्ततस्ते ॥ १२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे समुद्रदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२

---

सौतिरुवाच ।

तं समुद्रमतिक्रम्य कद्रूर्विनतया सह ।
न्यपतत्तुरगाभ्याशे न चिरादिव शीघ्रगा ॥ १
ततस्ते तं हयश्रेष्ठं ददृशाते महाजवम् ।
शशाङ्ककिरणप्रख्यं कालवालमुभे तदा ॥ २
निशम्य च बहून्वालान् कृष्णान्पुच्छसमाश्रितान् ।
विषण्णरूपां विनतां कद्रूर्दास्ये न्ययोजयत् ॥ ३
ततः सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता ।
अभवद्दुःखसंतप्ता दासीभावं समास्थिता ॥ ४
एतस्मिन्नन्तरे चापि गरुडः काल आगते ।
विना मात्रा महातेजा विदार्याण्डमजायत ॥ ५
महासत्त्वबलोपेतः सर्वा विद्योतयन्दिशः ।
कामरूपः कामगमः कामवीर्यो विहंगमः ॥ ६
अग्निराशिरिवोद्भासन्समिद्धोऽतिभयंकरः ।
विद्युद्विस्पष्टपिङ्गाक्षो युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ७
प्रवृद्धः सहसा पक्षी महाकायो नभोगतः ।
घोरो घोरस्वनो रौद्रो वन्हिरौर्व इवापरः ॥ ८
तं दृष्ट्वा शरणं जग्मुर्देवाः सर्वे विभावसुम् ।
प्रणिपत्याब्रुवंश्चैनमासीनं विश्वरूपिणम् ॥ ९
अग्ने मा त्वं प्रवर्धिष्ठाः कच्चिन्नो न दिधक्षसि ।
असौ हि राशिः सुमहान्समिद्धस्तव सर्पति ॥१०

अग्निरुवाच ।

नैतदेवं यथा यूयं मन्यध्वमसुरार्दनाः ।
गरुडो बलवानेष मम तुल्यश्च तेजसा ॥ ११
जातः परमतेजस्वी विनतानन्दवर्धनः ।
तेजोराशिमिमं दृष्ट्वा युष्मान्मोहः समाविशत् १२
नागक्षयकरश्चैव काश्यपेयो महाबलः ।
देवानां च हिते युक्तस्त्वहितो दैत्यरक्षसाम् ॥१३
न भीः कार्या कथं चात्र पश्यध्वं सहिता मम ।
एवमुक्तास्तदा गत्वा गरुडं वाग्भिरस्तुवन् ॥ १४
ते दूरादभ्युपेत्यैनं देवाः सर्षिगणास्तदा ।

देवा ऊचुः ।

त्वमृषिस्त्वं महाभागस्त्वं देवः पतगेश्वरः ॥ १५
त्वं प्रभुस्तपनः सूर्यः परमेष्ठी प्रजापतिः ।
त्वमिन्द्रस्त्वं हयमुखस्त्वं शरस्त्वं जगत्पतिः ॥ १६
त्वं मुखं पद्मजो विप्रस्त्वमग्निः पवनस्तथा ।
त्वं हि धाता विधाता च त्वं विष्णुः सुरसत्तमः१७

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तमिति ॥ १ ॥ शशाङ्ककिरणवत् प्रख्यादीप्तिर्यस्य तं तादृशमपि कालवालं कृष्णकेशम् ॥ २ ॥ निशम्य दृष्ट्वा ॥ ३ ॥ कामरूपः इच्छाकृतमेव रूपं यस्य स तथा ॥ ६ ॥ उद्भासन् उत्कर्षेण भासमानः ॥ ७ ॥ और्वः वाडवः ॥ ८ ॥ विभावसुं वह्निम् ॥ ९ ॥ अग्ने मा त्वमिति देवानां भ्रमवर्णनमग्निगरुडयोरतिसादृश्यकथनार्थम् ॥ १० ॥ अत्रापि पूर्ववत् सुपर्णोपाधिकं ब्रह्मैव स्तूयते । न हि विष्णुवाहने पक्षिमात्रे प्रकृतानि सर्वाणि विशेषणानि अंजसा संगच्छन्ते । 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः' इति श्रुतेरिन्द्रादिबहुप्रकारेण स देवैकमुच्यत इत्यवगमात् । ऋषिः प्रणवरूपो मन्त्रः । मन्त्राणां सर्वेषां द्रष्टा मधुच्छंद आदिरूपो वा । महाभागः कृत्स्नस्य यज्ञस्य भोक्ता । देवो द्योतमानः । पतगानां जीवपक्षिणामीश्वरः । अतिशीघ्रगो वा । तद्धावतोऽन्यानत्येति शश्वदितिश्रुतेः ॥ १५ ॥ प्रभुश्चेतनाचेतनस्य कृत्स्नस्याधिष्ठाता । तपनः तपतीति तपनः अन्तकर्ता । सूर्यः सूते इति सूर्यः उत्पादक उपादानमित्यर्थः । परमेष्ठी हिरण्यगर्भरूपेण । प्रजापतिः दक्षादिरूपेण च निमित्तमपीत्यर्थः त्वमिन्द्रो देवराजः हयमुखो हयग्रीवावतारः । त्वं शरः महादेवस्य त्रिपुरवधे बाणभूतो विष्णुः ॥१६॥ त्वं मुखं 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'इति श्रुतेः । पद्मजश्चतुर्मुखः । विप्रो विज्ञानवान् । अग्निर्वायुश्चेत्यादि सर्वदेवतात्मा । धाताचितिः । विधाता मायेति प्राग्व्याख्यातमेव । विष्णुर्व्यापकः सुरसत्तमः देवेश्वरः ॥ १७ ॥

त्वं महानभिभूः शश्वदमृतं त्वं महद्यशः ।
त्वं प्रभास्त्वमभिप्रेतं त्वं नस्त्राणमनुत्तमम् ॥ १८
बलोर्मिमान्साधुरदीनसत्त्वः
समृद्धिमान्दुर्विषहस्त्वमेव ।
त्वत्तः सृतं सर्वमहीनकीर्ते
ह्यनागतं चोपगतं च सर्वम् ॥ १९
त्वमुत्तमः सर्वमिदं चराचरं
गभस्तिभिर्भानुरिवावभाससे ।
समाक्षिपन्भानुमतः प्रभां मुहुः
त्वमन्तकः सर्वमिदं ध्रुवाध्रुवम् ॥ २०
दिवाकरः परिकुपितो यथा दहेत्
प्रजास्तथा दहसि हुताशनप्रभः ।
भयंकरः प्रलय इवाग्निरुत्थितः
विनाशयन्युगपरिवर्तनान्तकृत् ॥ २१
खगेश्वरं शरणमुपागता वयं
महौजसं ज्वलनसमानवर्चसम् ।
तडित्प्रभं वितिमिरमभ्रगोचरं
महाबलं गरुडमुपेत्य खेचरम् ॥ २२
परावरं वरदमजय्यविक्रमं
तवौजसा सर्वमिदं प्रतापितम् ।
जगत्प्रभो तप्तसुवर्णवर्चसा
त्वं पाहि सर्वांश्च सुरान्महात्मनः ॥ २३
भयान्विता नभसि विमानगामिनो
विमानिता विपथगतिं प्रयान्ति ते ।
ऋषेः सुतस्त्वमसि दयावतः प्रभो
महात्मनः खगवर कश्यपस्य ह ॥ २४
स मा क्रुधः कुरु जगतो दयां परां
त्वमीश्वरः प्रशममुपैहि पाहि नः ।
महाशनिस्फुरितसमस्वनेन ते
दिशोम्बरं त्रिदिवमियं च मेदिनी ॥ २५
चलन्ति नः खगहृदयानि चानिशं
निगृह्यतां वपुरिदमग्निसंनिभम् ।
तव द्युतिं कुपितकृतान्तसंनिभां
निशम्य नश्चलति मनोऽव्यवस्थितम् ।
प्रसीद नः पतगपते प्रयाचतां
शिवश्च नो भव भगवन्सुखावहः ॥ २६
एवं स्तुतः सुपर्णस्तु देवैः सर्षिगणैस्तदा ।
तेजसः प्रतिसंहारमात्मनः स चकार ह ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

सौतिरुवाच ।
स श्रुत्वाऽथात्मनो देहं सुपर्णः प्रेक्ष्य च स्वयम् ।
शरीरप्रतिसंहारमात्मनः संप्रचक्रमे ॥ १

सुपर्ण उवाच ।
न मे सर्वाणि भूतानि विभियुर्देहदर्शनात् ।
भीमरूपात्समुद्विग्नास्तस्मात्तेजस्तु संहरे ॥ २

---

महान् महत्तत्त्वम् । अभिभूः अभितो भवतीत्यभिभूः । अभिमानोऽहंकार इत्यर्थः । शश्वत् सर्वदा अमृतं अविकृतं महद्यशः 'तस्य नाम महद्यशः' इति श्रुतेर्निर्गुणं ब्रह्म। त्वं प्रभाः सूर्यादीनां तेजांसि । त्वं अभिप्रेतं बुद्धिवृत्तिः । त्राणं रक्षणम् ॥ १८ ॥ बलस्य पुण्यस्य ऊर्मिमान्सागरः । अत एव अदीनं रज आदिनाऽनुपक्षीणं सत्वं यस्य सः । अत एव समृद्धिरैश्वर्यं तद्वान् । दुर्विषहो युद्धे । त्वत्तः सृतं निर्गतं सर्वम् । अहीनकीर्ते पुण्यश्लोक । अनागतादि च त्वमेव ॥१९॥ उत्तमश्चिन्मात्रः चराचरं चेतनाचेतनम् । स्थावरजंगमं वा गभस्तिभिर्वृत्तिज्ञानैः । भानुरिव किरणैः । अवभाससे घटादिज्ञानरूपेण। यथोक्तम् । 'परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता। संवित्सैवेह मे योऽर्थो वेदान्तोक्तिप्रमाणतः ' इति । भानुमतः सूर्यस्य अन्तको मृत्युः । ध्रुवाध्रुवं क्षराक्षरं प्रधानपुरुषात्मकम् ॥२०॥ युगपरिवर्तनं सहस्रकृत्वो जायमानं तस्यान्तस्तत्कर्ता कालस्यापि काल इत्यर्थः ॥ २१ ॥ खगेश्वरमुपेत्य समीपे गत्वा वयं शरणमुपागता इति संबन्धः ॥ २२ ॥ परावरं कारणं कार्यं च अजय्यो जेतुमशक्यो विक्रमो यस्य तम् ॥ २३ ॥ विमानगामिनो देवा विमानिताः पराजिताः विपथगतिं हीनमार्गानुसृतिम् ॥ २४ ॥ स त्वं मा क्रुधः क्रोधं मा कार्षीः । महाशनेः स्फुरितं तेन समस्तुल्यः स्वनः शब्दस्तेन दिशश्चलन्तीत्युत्तरादपकृष्यते ॥ २५ ॥ निगृह्यतां संक्षिप्तं क्रियताम् अव्यवस्थितमिति च्छेदः व्याकुलमित्यर्थः ॥२६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

स इति। स सुपर्णः स्तुतिव्याजेन देवैर्बोधितस्तेभ्य आत्मनो देहं स्वरूपं श्रुत्वा प्रेक्ष्यानुभूय च सर्वभूताभयाय सौम्यो बभूवेत्यर्थः ॥१॥ समुद्विग्ना जना इति शेषः ॥ २ ॥

सौतिरुवाच ।

ततः कामगमः पक्षी कामवीर्यो विहंगमः ।
अरुणं चात्मनः पृष्ठमारोप्य स पितुर्गृहात् ॥ ३
मातुरन्तिकमागच्छत्परं तीरं महोदधेः ।
तत्रारुणश्च निक्षिप्तो दिशं पूर्वां महाद्युतिः ॥ ४
सूर्यस्तेजोभिरत्युग्रैर्लोकान्दग्धुमना यदा ।

रुरुरुवाच ।

किमर्थं भगवान्सूर्यो लोकान्दग्धुमनास्तदा ॥ ५
किमस्यापहृतं देवैर्येनेमं मन्युराविशत् ।

प्रमतिरुवाच ।

चन्द्रादित्यैर्यदा राहुराख्यातो ह्यमृतं पिबन् ॥ ६
वैरानुबन्धं कृतवांश्चन्द्रादित्ये तदाऽनघ ।
बध्यमाने ग्रहेणाथ आदित्ये मन्युराविशत् ॥ ७
सुरार्थाय समुत्पन्नो रोषो राहोस्तु मां प्रति ।
बह्वनर्थकरं पापमेकोऽहं समवाप्नुयाम् ॥ ८
सहाय एव कार्येषु न च कृच्छ्रेषु दृश्यते ।
पश्यन्ति ग्रस्यमानं मां सहन्ते वै दिवौकसः ॥ ९
तस्माल्लोकविनाशार्थं ह्यवतिष्ठे न संशयः ।
एवं कृतमतिः सूर्यो ह्यस्तमभ्यगमद्गिरिम् ॥ १०
तस्माल्लोकविनाशाय संतापयत भास्करः ।
ततो देवानुपागम्य प्रोचुरेवं महर्षयः ॥ ११
अद्यार्धरात्रसमये सर्वलोकभयावहः ।
उत्पत्स्यते महान्दाहस्त्रैलोक्यस्य विनाशनः॥ १२
ततो देवाः सर्षिगणा उपगम्य पितामहम् ।
अब्रुवन्किमिवेहाद्य महद्दाहकृतं भयम् ॥ १३
न तावद्दृश्यते सूर्यः क्षयोऽयं प्रतिभाति च ।
उदिते भगवन्भानौ कथमेतद्भविष्यति ॥ १४

पितामह उवाच ।

एष लोकविनाशाय रविरुद्यन्तुमुद्यतः ।
दृश्यन्नेव हि लोकान्स भस्मराशीकरिष्यति ॥ १५
तस्य प्रतिविधानं च विहितं पूर्वमेव हि ।
कश्यपस्य सुतो धीमानरुणेत्यभिविश्रुतः ॥ १६
महाकायो महातेजाः स स्थास्यति पुरो रवेः ।
करिष्यति च सारथ्यं तेजश्चास्य हरिष्यति ॥ १७
लोकानां स्वस्ति चैवं स्यादृषीणां च दिवौकसाम् ।

प्रमतिरुवाच ।

ततः पितामहाज्ञातः सर्वं चक्रे तदाऽरुणः ॥१८
उदितश्चैव सविता ह्यरुणेन समावृतः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्सूर्यं मन्युराविशत् ॥ १९
अरुणश्च यथैवास्य सारथ्यमकरोत्प्रभुः ।
भूय एवापरं प्रश्नं शृणुपूर्वमुदाहृतम् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

सौतिरुवाच ।

ततः कामगमः पक्षी महावीर्यो महाबलः ।
मातुरन्तिकमागच्छत्परं पारं महोदधेः ॥ १
यत्र सा विनता तस्मिन्पणितेन पराजिता ।
अतीव दुःखसंतप्ता दासीभावमुपागता ॥ २
ततः कदाचिद्विनतां प्रणतां पुत्रसंनिधौ ।
काले चाहूय वचनं कद्रूरिदमभाषत ॥ ३
नागानामालयं भद्रे सुरम्यं चारुदर्शनम् ।
समुद्रकुक्षावेकान्ते तत्र मां विनते नय ॥ ४
ततः सुपर्णमाता तामवहत्सर्पमातरम् ।
पन्नगान्गरुडश्चापि मातुर्वचनचोदितः ॥ ५
स सूर्यमभितो याति वैनतेयो विहंगमः ।
सूर्यरश्मिप्रतप्ताश्च मूर्छिताः पन्नगाऽभवन् ॥ ६
तदवस्थान्सुतान्दृष्ट्वा कद्रूः शक्रमथास्तुवत् ।
नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते बलसूदन ॥ ७

---

अरुणं मातुर्विवशतया यत्र कुत्रापि स्थितम् ॥ ३ ॥ सूर्यो दग्धुमना यदाऽभूत्तदा पूर्वां दिशं गत्वा तत्र सूर्यस्याग्रेऽरुणो निक्षिप्त इति योज्यम् ॥ ४ ॥ आदित्यस्य मूर्तिबहुत्वेन चन्द्रादित्यैरिति बहुवचनम् ॥ ६ ॥ चन्द्रादित्येकत्वं च समाहारात् । ग्रहेण राहुणा ग्रहणेन वा ॥७॥ सुराणाम् अर्थाय हिताय ॥ ८॥ सहन्ते मर्षयन्ति सहदेवैरिति पाठे दिवौकसः उपदेवा मरीच्यादयः प्रजापतयः ॥९॥ तस्मात् अस्ताचलं गत्वेतिल्यब्लोपे पञ्चमी ॥ १० ॥ संतापयत समतापयत । अडभाव आर्षः । तिरोभूत एव सन्नेवं दहत्युदये तु भस्मीकरिष्यति लोकानित्याह तत इत्यादिना ॥ ११ ॥ दृश्यन्पश्यन् कंड्वादेराकृतिगणत्वाद्दृशेरपि स्वार्थे यक् ॥ १५ ॥ प्रतिविधानं प्रतीकारः ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

तत इति ॥ १ ॥ अभितः संमुखं पन्नगा अभवन् संधिरार्षः ॥ ६ ॥ अत्रापींद्रोपाधिकं ब्रह्म स्तूयते नमस्ते इत्यादिना । लोकस्रष्टृत्वसंहर्तृत्वादेस्तल्लिङ्गदर्शनात् ॥७॥

नमुचिघ्न नमस्तेऽस्तु सहस्राक्ष शचीपते ।
सर्पाणां सूर्यतप्तानां वारिणा त्वं प्लवो भव ॥ ८
त्वमेव परमं त्राणमस्माकममरोत्तम ।
ईशो ह्यसि पयः स्रष्टुं त्वमनल्पं पुरंदर ॥ ९
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वमग्निर्विद्युतोऽम्बरे ।
त्वमभ्रगणविक्षेप्ता त्वामेवाहुर्महाघनम् ॥ १०
त्वं वज्रमतुलं घोरं घोषवांस्त्वं बलाहकः ।
स्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्ता चापराजितः ॥ ११
त्वं ज्योतिः सर्वभूतानां त्वमादित्यो विभावसुः ।
त्वं महद्भूतमाश्चर्यं त्वं राजा त्वं सुरोत्तमः ॥ १२
त्वं विष्णुस्त्वं सहस्राक्षस्त्वं देवस्त्वं परायणम् ।
त्वं सर्वममृतं देव त्वं सोमः परमार्चितः ॥ १३
त्वं मुहूर्तस्तिथिस्त्वं च त्वं लवस्त्वं पुनः क्षणः ।
शुक्लस्त्वं बहुलस्त्वं च कला काष्ठा त्रुटिस्तथा ।
संवत्सरर्तवो मासा रजन्यश्च दिनानि च ॥ १४
त्वमुत्तमा सगिरिवना वसुन्धरा
सभास्करं वितिमिरमम्बरं तथा ।
महोदधिः सतिमितिमिंगिलस्तथा
महोर्मिमान्बहुमकरो झषाकुलः ॥ १५
महायशास्त्वमिति सदाऽभिपूज्यसे
मनीषिभिर्मुदितमना महर्षिभिः ।
अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे
वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥ १६
त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं
वेदाङ्गेष्वतुलबलौघ गीयसे च ।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा
वेदाङ्गान्यभिगमयन्ति सर्वयत्नैः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५

---

सौतिरुवाच ।
एवं स्तुतस्तदा कद्र्वा भगवान्हरिवाहनः ।
नीलजीमूतसंघातैः सर्वमम्बरमावृणोत् ॥ १
मेघानाज्ञापयामास वर्षध्वममृतं शुभम् ।
ते मेघा मुमुचुस्तोयं प्रभूतं विद्युदुज्ज्वलाः ॥ २
परस्परमिवात्यर्थं गर्जन्तः सततं दिवि ।
संवर्तितमिवाकाशं जलदैः सुमहाद्भुतैः ॥ ३
सृजद्भिरतुलं तोयमजस्रं सुमहारवैः ।
संप्रनृत्तमिवाकाशं धारोर्मिभिरनेकशः ॥ ४
मेघस्तनितनिर्घोषैर्विद्युत्पवनकम्पितैः ।
तैर्मेघैः सततासारं वर्षद्भिरनिशं तदा ॥ ५
नष्टचन्द्रार्ककिरणमम्बरं समपद्यत ।
नागानामुत्तमो हर्षस्तथा वर्षति वासवे ॥ ६
आपूर्यत मही चापि सलिलेन समन्ततः ।
रसातलमनुप्राप्तं शीतलं विमलं जलम् ॥ ७
तदा भूरभवच्छन्ना जलोर्मिभिरनेकशः ।
रामणीयकमागच्छन्मात्रा सह भुजंगमाः ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

ज्योतिश्चिद्रूपम् ॥ १२ ॥ सर्वममृतं मोक्षः आपेक्षिके ह्यमृतत्वे सर्वत्वं नास्ति । मोक्षेऽवशिष्यमाणं यद्रूपं तत्त्वमेवेत्यर्थः । सोम ईश्वरः । परमैःश्रेष्ठैरर्चितः । 'सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोतविष्णोः' इति श्रुतिप्रसिद्धः ॥ १३ ॥ बहुलः कृष्णपक्षः ॥ १४ ॥ कालोपादानत्वात्तद्रूपत्वमुक्त्वा भूम्यादिरूपत्वमाह । त्वमुत्तमेति ॥ १५ ॥ यज्ञभोक्ताऽपि त्वमेवेत्याह । महायशा इति ॥ १६ ॥ यज्ञफलदोऽपि त्वमेवेत्याह । त्वं विप्रैरिति । त्वद्धेतोस्त्वत्प्राप्तये । विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादिश्रुतेः । वेदाङ्गानि षड् यज्ञसाद्गुण्यार्थम् । तत्र शिक्षा पाठशुद्ध्यर्थं कल्पः प्रयोगज्ञानार्थं व्याकरणमूहादिसिद्ध्यर्थम् । छंदो गायत्र्यो याज्यानुवाक्या भवन्तीति विध्यपेक्षितगायत्र्यादिज्ञानार्थम् । निरुक्तं वेदार्थज्ञानार्थम् । ज्योतिषं कर्मकालज्ञानार्थमिति । एतान्येव वेदाङ्गानि ॥ १७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

एवमिति । हरयोऽश्वा. वाहने रथे यस्य स हरिवाहनः ॥ १ ॥ संवर्तितं संवर्तः कल्पान्तः संजातोऽस्मिन्निति संवर्तितमिव ॥ ३ ॥ सततासारम् अनवच्छिन्नधारासंपातं यथा-स्यात्तथा ॥ ५ ॥ रामणीयकं द्वीपविशेषम् ॥ ८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सौतिरुवाच ।

संप्रहृष्टास्ततो नागा जलधाराप्लुतास्तदा ।
सुपर्णेनोह्यमानास्ते जग्मुस्तं द्वीपमाशु वै ॥ १
तं द्वीपं मकरावासं विहितं विश्वकर्मणा ।
तत्र ते लवणं घोरं ददृशुः पूर्वमागताः ॥ २
सुपर्णसहिताः सर्पाः काननं च मनोरमम् ।
सागराम्बुपरिक्षिप्तं पक्षिसंघनिनादितम् ॥ ३
विचित्रफलपुष्पाभिर्वनराजिभिरावृतम् ।
भवनैरावृतं रम्यैस्तथा पद्माकरैरपि ॥ ४
प्रसन्नसलिलैश्चापि ह्रदैर्दिव्यैर्विभूषितम् ।
दिव्यगन्धवहैः पुण्यैर्मारुतैरुपवीजितम् ॥ ५
उत्पतद्भिरिवाकाशं वृक्षैर्मलयजैरपि ।
शोभितं पुष्पवर्षाणि मुञ्चद्भिर्मारुतोद्धतैः ॥ ६
वायुविक्षिप्तकुसुमैस्तथाऽन्यैरपि पादपैः ।
किरद्भिरिव तत्रस्थान्नागान्पुष्पाम्बुवृष्टिभिः ॥ ७
मनःसंहर्षजं दिव्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् ।
मत्तभ्रमरसंघुष्टं मनोज्ञाकृतिदर्शनम् ॥ ८
रमणीयं शिवं पुण्यं सर्वैर्जनमनोहरैः ।
नानापक्षिरुतं रम्यं कद्रूपुत्रप्रहर्षणम् ॥ ९
तत्ते वनं समासाद्य विजह्रुः पन्नगास्तदा ।
अब्रुवंश्च महावीर्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १०
वहास्मानपरं द्वीपं सुरम्यं विमलोदकम् ।
त्वं हि देशान्बहून्रम्यान्व्रजन्पश्यसि खेचर ॥ ११
स विचिन्त्याब्रवीत्पक्षी मातरं विनतां तदा ।
किं कारणं मया मातः कर्तव्यं सर्पभाषितम् ॥ १२

विनतोवाच ।

दासीभूताऽस्मि दुर्योगात्सपत्न्याः पतगोत्तम ।
पणं वितथमास्थाय सर्पैरुपधिना कृतम् ॥ १३
तस्मिंस्तु कथिते मात्रा कारणे गगनेचरः ।
उवाच वचनं सर्पांस्तेन दुःखेन दुःखितः ॥ १४
किमाहृत्य विदित्वा वा किं वा कृत्वेह पौरुषम् ।
दास्याद्वो विप्रमुच्येयं तथ्यं वदत लेलिहाः ॥ १५

सौतिरुवाच ।

श्रुत्वा तमब्रुवन्सर्पा आहरामृतमोजसा ।
ततो दास्याद्विप्रमोक्षो भविता तव खेचर ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

सौतिरुवाच ।

इत्युक्तो गरुडः सर्पैस्ततो मातरमब्रवीत् ।
गच्छाम्यमृतमाहर्तुं भक्ष्यमिच्छामि वेदितुम् ॥ १

विनतोवाच ।

समुद्रकुक्षावेकान्ते निषादालयमुत्तमम् ।
निषादानां सहस्राणि तान्भुक्त्वाऽमृतमानय ॥ २
न च ते ब्राह्मणं हन्तुं कार्या बुद्धिः कथंचन ।
अवध्यः सर्वभूतानां ब्राह्मणो ह्यनलोपमः ॥ ३ ॥
अग्निरर्को विषं शस्त्रं विप्रो भवति कोपितः ।
गुरुर्हि सर्वभूतानां ब्राह्मणः परिकीर्तितः ॥ ४
एवमादिभिरूपैस्तु सतां वै ब्राह्मणो मतः ।
स ते तात न हन्तव्यः संक्रुद्धेनापि सर्वथा ॥ ५
ब्राह्मणानामभिद्रोहो न कर्तव्यः कथंचन ।
न ह्येवमग्निर्नादित्यो भस्म कुर्यात्तथाऽनघ ॥ ६
यथा कुर्यादभिक्रुद्धो ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
तदेतैर्विविधैर्लिङ्गैस्त्वं विद्यास्तं द्विजोत्तमम् ॥ ७
भूतानामग्रभूर्विप्रो वर्णश्रेष्ठः पिता गुरुः ।

गरुड उवाच ।

किं रूपो ब्राह्मणो मातः किं शीलः किं पराक्रमः ॥ ८
किंस्विदग्निनिभो भाति किंस्वित्सौम्यप्रदर्शनः ।
यथाहमभिजानीयां ब्राह्मणं लक्षणैः शुभैः ॥ ९
तन्मे कारणतो मातः पृच्छतो वक्तुमर्हसि ।

विनतोवाच ।

यस्ते कण्ठमनुप्राप्तो निगीर्णं बडिशं यथा ॥ १०

---

संप्रहृष्टा इति । तं द्वीपं रामणीयकमेव ॥ १ ॥ लवणं लवणासुरं पूर्वं ददृशुः पुनर्गमने स नास्तीति भावः ॥ २ ॥ पद्माकरैः सरोभिः ॥ ४ ॥ ह्रदैः नदीषु गम्भीरप्रदेशैः ॥ ५ ॥ मनः संहर्षाय जातं मनःसंहर्षजं जनैः सर्वविभक्त्युपपदाङ्डः । प्रजापतेर्यो मनःसंहर्षः संकल्पोल्लासस्तज्जं वा ॥ ८ ॥ सर्वैर्गुणैरिति शेषः ॥ ९ ॥ सुरम्यमितोऽपि रमणीयम् ॥ १२ ॥ दुर्योगात् दुष्टभावात् वितथं शुक्लेऽपि कृष्णत्वं दृष्ट्वा सर्पैर्वालभूतैः उपधिना छलेन ॥ १३ ॥ धनक्रीतो विद्यार्थी पणजितो वा दास्यं करोति तेषां मुक्तिः दानेन विद्यालाभेन पणान्तरजयेन वा भवतीति किमितेषु मया कर्तव्यमित्याह किमिति । लेलिहाः भो सर्पाः ॥१५॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

इत्युक्त इति ॥ १ ॥ बडिशं मत्स्यादिधरणार्थो गलग्रहः ॥ १० ॥

दहेद्दहारवत्पुत्र तं विद्याद्ब्राह्मणर्षभम् ।
विप्रस्त्वया न हन्तव्यः संक्रुद्धेनापि सर्वदा ॥ ११
प्रोवाच चैनं विनता पुत्रहार्दादिदं वचः ।
जठरे न च जीर्येद्यस्तं जानीहि द्विजोत्तमम् ॥ १२
पुनः प्रोवाच विनता पुत्रहार्दादिदं वचः ।
जानन्त्यप्यतुलं वीर्यमाशीर्वादपरायणा ॥ १३
प्रीता परमदुःखार्ता नागैर्विप्रकृता सती ।

विनतोवाच ।

पक्षौ ते मारुतः पातु चन्द्रसूर्यौ च पृष्ठतः ॥ १४
शिरश्च पातु वह्निस्ते वसवः सर्वतस्तनुम् ।
अहं च ते सदा पुत्र शान्तिस्वस्तिपरायणा ॥ १५
इहासीना भविष्यामि स्वस्तिकारे रता सदा ।
अरिष्टं व्रज पन्थानं पुत्र कार्यार्थसिद्धये ॥ १६

सौतिरुवाच ।

ततः स मातुर्वचनं निशम्य
वितत्य पक्षौ नभ उत्पपात ।
ततो निषादान्बलवानुपागतो
बुभुक्षितः काल इवान्तकोऽपरः ॥ १७
स तान्निषादानुपसंहरंस्तदा
रजः समुद्धूय नभःस्पृशं महत् ।
समुद्रकुक्षौ च विशोषयन्पयः
समीपजान्भूधरजान्विचालयन् ॥ १८
ततः स चक्रे महदाननं तदा
निषादमार्गं प्रतिरुध्य पक्षिराट् ।
ततो निषादास्त्वरिताः प्रवव्रजुः
यतो मुखं तस्य भुजंगभोजिनः ॥ १९
तदाननं विवृतमतिप्रमाणवत्
समभ्ययुर्गगनमिवार्दिताः खगाः ।
सहस्रशः पवनरजोविमोहिता
यथाऽनिलप्रचलितपादपे वने ॥ २०
ततः खगो वदनममित्रतापनः
समाहरत्परिचपलो महाबलः ।
निषूदयन्बहुविधमत्स्यजीविनो
बुभुक्षितो गगनचरेश्वरस्तदा ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

---

सौतिरुवाच ।

तस्य कण्ठमनुप्राप्तो ब्राह्मणः सह भार्यया ।
दहन्दीप्त इवाङ्गारस्तमुवाचान्तरिक्षगः ॥ १
द्विजोत्तम विनिर्गच्छ तूर्णमास्यादपावृतात् ।
न हि मे ब्राह्मणो वध्यः पापेष्वपि रतः सदा ॥२
ब्रुवाणमेवं गरुडं ब्राह्मणः प्रत्यभाषत ।
निषादी मम भार्येयं निर्गच्छतु मया सह ॥ ३

गरुड उवाच ।

एतामपि निषादीं त्वं परिगृह्याशु निष्पत ।
तूर्णं संभावयात्मानमजीर्णं मम तेजसा ॥ ४

सौतिरुवाच ।

ततः स विप्रो निष्क्रान्तो निषादीसहितस्तदा ।
वर्धयित्वा च गरुडमिष्टं देशं जगाम ह ॥ ५
सह भार्ये विनिष्क्रान्ते तस्मिन्विप्रे च पक्षिराट् ।
वितत्य पक्षावाकाशमुत्पपात मनोजवः ॥ ६
ततोऽपश्यत्स पितरं पृष्टश्चाख्यातवान्पितुः ।
यथान्यायममेयात्मा तं चोवाच महानृषिः ॥ ७

कश्यप उवाच ।

कच्चिद्वः कुशलं नित्यं भोजने बहुलं सुत ।
कच्चिच्च मानुषे लोके तवान्नं विद्यते बहु ॥ ८

गरुड उवाच ।

माता मे कुशला शश्वत्तथा भ्राता तथा ह्यहम् ।
न हि मे कुशलं तात भोजने बहुले सदा ॥ ९
अहं हि सर्पैः प्रहितः सोममाहर्तुमुत्तमम् ।
मातुर्दास्यविमोक्षार्थमाहरिष्ये तमद्य वै ॥ १०

---

हार्दात् स्नेहात् ॥१२॥ विप्रकृता वञ्चिता ॥१४॥ इहासतीति पाठे आसीना । चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकादनुदात्तेत्त्वलक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वादसे शतृप्रत्ययः । स्वस्तिकारे कल्याणकरणे । अनिष्टं निर्विघ्नं यथा स्यात्तथा ॥ १६ ॥ काले समये ॥ १७ ॥ भूधरजान् पर्वतजान् वृक्षान् ॥ १८ ॥ भुजंगभोजिनो गरुडस्य ॥ १९ ॥ परिचपल तेषां ग्रहणाय सर्वतो भ्रमन् ॥ २१ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

---

तस्येति ॥ १ ॥ संभावय संजीवय ॥ ४ ॥ पृष्टः आख्यातवांश्च वक्ष्यमाणरीत्या ॥ ७ ॥ व युष्माकं मातृभ्रात्रपेक्षया बहुलम् ॥ ८ ॥ भोजने बहुले विषये मम कुशलं न हि पूर्णाहारस्याभावात्॥९॥सोमम् अमृतम् ॥१०

मात्रा चात्र समादिष्टो निषादान्भक्षयेति ह ।
न च मे तृप्तिरभवद्भक्षयित्वा सहस्रशः ॥ ११
तस्माद्भक्ष्यं त्वमपरं भगवन्प्रदिशस्व मे ।
यद्भुक्त्वाऽमृतमाहर्तुं समर्थः स्यामहं प्रभो ॥ १२
क्षुत्पिपासाविघातार्थं भक्ष्यमाख्यातु मे भवान् ।

कश्यप उवाच ।

इदं सरो महापुण्यं देवलोकेऽपि विश्रुतम् ॥ १३
यत्र कूर्मोग्रजं हस्ती सदाकर्षत्यवाङ्मुखः ।
तयोर्जन्मान्तरे वैरं संप्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १४ ॥
तन्मे तत्त्वं निबोधस्व यत्प्रमाणौ च तावुभौ ।
आसीद्विभावसुर्नाम महर्षिः कोपनो भृशम् ॥ १५
भ्राता तस्यानुजश्चासीत्सुप्रतीको महातपाः ।
स नेच्छति धनं भ्राता सहैकस्थं महामुनिः ॥१६
विभागं कीर्तयत्येव सुप्रतीको हि नित्यशः ।
अथाब्रवीच्च तं भ्राता सुप्रतीकं विभावसुः ॥ १७
विभागं बहवो मोहात्कर्तुमिच्छन्ति नित्यशः ।
ततो विभक्तास्त्वन्योऽन्यं विक्रुध्यन्तेऽर्थमोहिताः ॥
ततः स्वार्थपरान्मूढान्पृथग्भूतान्स्वकैर्धनैः ।
विदित्वा भेदयन्त्येतानमित्रामित्ररूपिणः ॥ १९
विदित्वा चापरे भिन्नानन्तरेषु पतन्त्यथ ।
भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्तते ॥ २०
तस्माद्विभागं भ्रातॄणां न प्रशंसन्ति साधवः ।
गुरुशास्त्रे निबद्धानामन्योऽन्येनाभिशंकिनाम् २१
नियन्तुं न हि शक्यस्त्वं भेदतो धनमिच्छसि ।
यस्मात्तस्मात्सुप्रतीक हस्तित्वं समवाप्स्यसि ॥२२
शप्तस्त्वेवं सुप्रतीको विभावसुमथाब्रवीत् ।
त्वमप्यन्तर्जलचरः कच्छपः संभविष्यसि ॥ २३
एवमन्योन्यशापात्तौ सुप्रतीकविभावसू ।
गजकच्छपतां प्राप्तावर्थार्थं मूढचेतसौ ॥ २४
रोषदोषानुषङ्गेण तिर्यग्योनिगतावुभौ ।
परस्परद्वेषरतौ प्रमाणबलदर्पितौ ॥ २५
सरस्यस्मिन्महाकायौ पूर्ववैरानुसारिणौ ।
तयोरन्यतरः श्रीमान्समुपैति महागजः ॥ २६

यस्य बृंहितशब्देन कूर्मोऽप्यन्तर्जलेशयः ।
उत्थितोऽसौ महाकायः कृत्स्नं विक्षोभयन्सरः२७
यं दृष्ट्वा वेष्टितकरः पतत्येष गजो जलम् ।
दन्तहस्ताग्रलाङ्गूलपादवेगेन वीर्यवान् ॥ २८
विक्षोभयंस्ततो नागः सरो बहुझषाकुलम् ।
कूर्मोऽप्यभ्युद्यतशिरा युद्धायाभ्येति वीर्यवान् ॥
षडुच्छ्रितो योजनानि गजस्तद्द्विगुणायतः ।
कूर्मस्त्रियोजनोत्सेधो दशयोजनमण्डलः ॥ ३०
तावुभौ युद्धसंमत्तौ परस्परवधैषिणौ ।
उपयुज्याशु कर्मेदं साधयेहितमात्मनः ॥ ३१
महाभ्रघनसंकाशं तं भुक्त्वामृतमानय ।
महागिरिसमप्रख्यं घोररूपं च हस्तिनम् ॥ ३२

सौतिरुवाच ।

इत्युक्त्वा गरुडं सोऽथ माङ्गल्यमकरोत्तदा ।
युध्यतः सह देवैस्ते युद्धे भवतु मङ्गलम् ॥ ३३
पूर्णकुम्भो द्विजा गावो यच्चान्यत्किंचिदुत्तमम् २९
शुभं स्वस्त्ययनं चापि भविष्यति तवाण्डज ॥३४
युध्यमानस्य संग्रामे देवैः सार्धं महाबल ।
ऋचो यजूंषि सामानि पवित्राणि हवींषि च ३५
रहस्यानि च सर्वाणि सर्वे वेदाश्च ते बलम् ।
इत्युक्तो गरुडः पित्रा गतस्तं ह्रदमन्तिकात् ॥ ३६
अपश्यन्निर्मलजलं नानापक्षिसमाकुलम् ।
स तत्स्मृत्वा पितुर्वाक्यं भीमवेगोऽन्तरिक्षगः॥३७
नखेन गजमेकेन कूर्ममेकेन चाक्षिपत् ।
समुत्पपात चाकाशं तत उच्चैर्विहंगमः ॥ ३८
सोऽलम्बं तीर्थमासाद्य देववृक्षानुपागमत् ।
ते भीताः समकम्पन्त तस्य पक्षानिलाहताः ॥३९
न नो भञ्ज्यादिति तदा दिव्याः कनकशाखिनः ।
प्रचलाङ्गान्स तान्दृष्ट्वा मनोरथफलद्रुमान् ॥ ४०
अन्यानतुलरूपाङ्गानुपचक्राम खेचरः ।
काञ्चनै राजतैश्चैव फलैर्वैदूर्यशाखिनः ।
सागराम्बुपरिक्षिप्तान्भ्राजमानान्महाद्रुमान् ॥४१

---

कूर्माग्रजं कूर्मभूतं ज्येष्ठभ्रातरम् ॥ १४ ॥ विभागं करिष्यामीति कीर्तयत्येव न तु कृतवान् ॥ १७ ॥ अन्तरेषु छिद्रेषु पतन्ति अन्योन्यस्य छिद्राणि बहुलीकृत्य नाशहेतुं वैरमुद्दीपयन्तीत्यर्थः ॥ २० ॥ 'कनिष्ठान्पुत्रवत्पश्येज्ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः' इति गुरुशास्त्रे अलङ्घनीये शासने अनिबद्धानाम् अतिशाङ्किनां मर्यादाभङ्गभयेन ॥२१॥ आख्यानतात्पर्यमाह । एवमिति । लोभात्तामसीं योनिं गच्छन्तीतिभावः ॥ २४ ॥ आवेष्टितकरः कुण्डलीकृतशुण्डादण्डः ॥ २८ ॥ उपयुज्य भुक्त्वा ईहितं ईप्सितं ॥ ३१ ॥ ते तुभ्यं बलं दास्यन्तीतिशेषः ॥ ३६ ॥ सोऽलम्बं सः अलम्बं निरालम्बं यथा स्यात्तथा । गगनमार्गेण तीर्थं भक्षणार्थं मेरुशृङ्गं क्षेत्रमासाद्य वृक्षान् आरोढुम् ॥ ३९ ॥ कनके कनकाचले स्थिताः शाखिनः कनकशाखिनः ॥ ४० ॥

मुवाच खगश्रेष्ठं तत्र रौहिणपादपः ।
ातिप्रवृद्धः सुमहानापतन्तं मनोजवम् ॥ ४२

रौहिण उवाच ।

या मम महाशाखा शतयोजनमायता ।
एतामास्थाय शाखां त्वं खादेमौ गजकच्छपौ ४३

ततो द्रुमं पतगसहस्रसेवितम्
महीधरप्रतिमवपुः प्रकम्पयन् ।
खगोत्तमो द्रुतमभिपत्य वेगवान्
बभञ्जतामविरलपत्रसंचयाम् ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

सौतिरुवाच ।

स्पृष्टमात्रा तु पद्भ्यां सा गरुडेन बलीयसा ।
अभज्यत तरोः शाखां भग्नां चैकामधारयत् ॥ १
तां भङ्क्त्वा स महाशाखां स्मयमानो विलोकयन् ।
अथात्र लम्बतोऽपश्यद्वालखिल्यानधोमुखान् ॥ २
ऋषयो ह्यत्र लम्बन्ते न हन्यामिति तानृषीन् ।
तपोरतान्लम्बमानान्ब्रह्मर्षीनभिवीक्ष्य सः ॥ ३
हन्यादेतान्संपतन्ती शाखेत्यथ विचिन्त्य सः ।
नखैर्दृढतरं वीरः संगृह्य गजकच्छपौ ॥ ४
स तद्विनाशसंत्रासादभिपत्य खगाधिपः ।
शाखामास्येन जग्राह तेषामेवान्ववेक्षया ॥ ५
अतिदैवं तु तत्तस्य कर्म दृष्ट्वा महर्षयः ।
विस्मयोत्कम्पहृदया नाम चक्रुर्महाखगे ॥ ६
गुरुं भारं समासाद्योड्डीन एष विहंगमः ।
गरुडस्तु खगश्रेष्ठस्तस्मात्पन्नगभोजनः ॥ ७
ततः शनैः पर्यपतत्पक्षैः शैलान्प्रकम्पयन् ।
एवं सोऽभ्यपतद्देशान्बहून्सगजकच्छपः ॥ ८
दयार्थं वालखिल्यानां न च स्थानमविन्दत ।
स गत्वा पर्वतश्रेष्ठं गन्धमादनमञ्जसा ॥ ९
ददर्श कश्यपं तत्र पितरं तपसि स्थितम् ।
ददर्श तं पिता चापि दिव्यरूपं विहंगमम् ॥ १०
तेजोवीर्यबलोपेतं मनोमारुतरंहसम् ।
शैलशृङ्गप्रतीकाशं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥ ११
अचिन्त्यमनभिध्येयं सर्वभूतभयंकरम् ।
महावीर्यधरं रौद्रं साक्षादग्निमिवोद्यतम् ॥ १२
अप्रधृष्यमजेयं च देवदानवराक्षसैः ।
भेत्तारं गिरिशृङ्गाणां समुद्रजलशोषणम् ॥ १३
लोकसंलोडनं घोरं कृतान्तसमदर्शनम् ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य भगवान्कश्यपस्तदा ।
विदित्वा चास्य संकल्पमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४

कश्यप उवाच ।

पुत्र मा साहसं कार्षीर्मा सद्यो लप्स्यसे व्यथाम् ।
मा त्वां दहेयुः संक्रुद्धा वालखिल्या मरीचिपाः १५

सौतिरुवाच ।

ततः प्रसादयामास कश्यपः पुत्रकारणात् ।
वालखिल्यान्महाभागांस्तपसा हतकल्मषान् ॥ १६

कश्यप उवाच ।

प्रजाहितार्थमारम्भो गरुडस्य तपोधनाः ।
चिकीर्षति महत्कर्म तदनुज्ञातुमर्हथ ॥ १७

सौतिरुवाच ।

एवमुक्ता भगवता मुनयस्ते समभ्ययुः ।
मुक्त्वा शाखां गिरिं पुण्यं हिमवन्तं तपोऽर्थिनः १८
ततस्तेष्वपयातेषु पितरं विनतासुतः ।
शाखाव्याक्षिप्तवदनः पर्यपृच्छत कश्यपम् ॥ १९
भगवन्क विमुञ्चामि तरोः शाखामिमामहम् ।
वर्जितं मानुषैर्देशमाख्यातु भगवान्मम ॥ २०
ततो निःपुरुषं शैलं हिमसंरुद्धकन्दरम् ।
अगम्यं मनसाप्यन्यैस्तस्याचख्यौ स कश्यपः २१
तं पर्वतं महाकुक्षिमुद्दिश्य स महाखगः ।
जवेनाभ्यपतत्तार्क्ष्यः सशाखागजकच्छपः ॥ २२

---

रोहेव रौहिणो वटः स्वार्थे तद्धितः । राक्षसवायसादिवत् रोही रोहितकेऽश्वत्थवटपादपयोः पुमानिति मेदिनी ॥ ४२ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भा० भा० ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

स्पृष्टमात्रेति ॥१॥ अतिदैवं दैवैरपिकर्तुमशक्यम् ॥ ६ ॥ गुरुमिति । गुरुशब्दपूर्वाड्डीङ् विहायसा गतौ अस्माड्डः आदेरकारश्च पृषोदरादित्वात् । गरुडशब्दो निष्पन्न इत्यर्थः ॥ ७ ॥ आचिन्त्यं अद्भुताकारत्वात् । अनभिध्येयं क्रूरमूर्तित्वात् तदेवाह सर्वेति ॥ १२ ॥ वालखिल्याः नामतः मरीचिपाः सूर्यमरीचीनेव पीत्वा तृप्यन्ति । 'असौ वा आदित्यो देवमधुर' इत्यादिना छांदोग्यप्रसिद्धमधुविद्याविद इत्यर्थः ॥१५॥ शाखां मुक्त्वा गिरिं समभ्ययुरिति संबन्धः ॥ १६ ॥ शाखया मुखस्थया व्याक्षिप्तं विकलं वदनं वचनक्रिया यस्य स तथा । अव्यक्तवर्णं यथा स्यात्तथाऽपृच्छदित्यर्थः ॥ १९ ॥

न तां वध्री परिणहेच्छतचर्मा महातनुम् ।
शाखिनो महतीं शाखां यां प्रगृह्य ययौ खगः २३
स ततः शतसाहस्रं योजनान्तरमागतः ।
कालेन नातिमहता गरुडः पतगेश्वरः ॥ २४
स तं गत्वा क्षणेनैव पर्वतं वचनात्पितुः ।
अमुञ्चन्महतीं शाखां सस्वनं तत्र खेचरः ॥ २५
पक्षानिलहतश्चास्य प्राकम्पत स शैलराट् ।
मुमोच पुष्पवर्षं च समागलितपादपः ॥ २६
शृङ्गाणि च व्यशीर्यन्त गिरेस्तस्य समन्ततः ।
मणिकाञ्चनचित्राणि शोभयन्ति महागिरिम् २७
शाखिनो बहवश्चापि शाखयाऽभिहतास्तया ।
काञ्चनैः कुसुमैर्भान्ति विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः ॥२८
ते हेमविकचा भूमौ युताः पर्वतधातुभिः ।
व्यराजञ्छाखिनस्तत्र सूर्यांशुप्रतिरञ्जिताः ॥ २९
ततस्तस्य गिरेः शृङ्गमास्थाय स खगोत्तमः ।
भक्षयामास गरुडस्तावुभौ गजकच्छपौ ॥ ३०
तावुभौ भक्षयित्वा तु स तार्क्ष्यः कूर्मकुञ्जरौ ।
ततः पर्वतकूटाग्रादुत्पपात महाजवः ॥ ३१ ॥
प्रावर्तन्ताथ देवानामुत्पाताभयशंसिनः ।
इन्द्रस्य वज्रं दयितं प्रजज्वाल भयात्ततः ॥ ३२
सधूमा न्यपतत्सार्चिर्दिवोल्का नभसश्च्युता ।
तथा वसूनां रुद्राणामादित्यानां च सर्वशः ॥३३
साध्यानां मरुतां चैव ये चान्ये देवतागणाः ।
स्वं स्वं प्रहरणं तेषां परस्परमुपाद्रवत् ॥ ३४
अभूतपूर्वं संग्रामे तदा देवासुरेऽपि च ।
ववुर्वाताः सनिर्घाताः पेतुरुल्काः सहस्रशः ॥ ३५
निरभ्रमेव चाकाशं प्रजगर्ज महास्वनम् ।
देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत शोणितम्॥३६
मम्लुर्माल्यानि देवानां नेशुस्तेजांसि चैव हि ।
उत्पातमेघा रौद्राश्च ववृषुः शोणितं बहु ॥ ३७
रजांसि मुकुटान्येषामुत्थितानि व्यधर्षयन् ।
ततस्त्राससमुद्विग्नः सह देवैः शतक्रतुः ।
उत्पातान्दारुणान्पश्यन्नित्युवाच बृहस्पतिम् ॥३८

इन्द्र उवाच ।

किमर्थं भगवन्घोरा उत्पाताः सहसोत्थिताः ।
न च शत्रुं प्रपश्यामि युधि यो नः प्रधर्षयेत् ॥३९

बृहस्पतिरुवाच ।

तवापराधाद्देवेन्द्र प्रमादाच्च शतक्रतो ।
तपसा वालखिल्यानां महर्षीणां महात्मनाम्॥४०
कश्यपस्य मुनेः पुत्रो विनतायाश्च खेचरः ।
हर्तुं सोममभिप्राप्तो बलवान्कामरूपधृक् ॥ ४१
समर्थो बलिनां श्रेष्ठो हर्तुं सोमं विहंगमः ।
सर्वं संभावयाम्यस्मिन्नसाध्यमपि साधयेत् ॥ ४२

सौतिरुवाच ।

श्रुत्वैतद्वचनं शक्रः प्रोवाचामृतरक्षिणः ।
महावीर्यबलः पक्षी हर्तुं सोममिहोद्यतः ॥ ४३
युष्मान्संबोधयाम्येष यथा न स हरेद्बलात् ।
अतुलं हि बलं तस्य बृहस्पतिरुवाच ह ॥ ४४
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं विस्मिता यत्नमास्थिताः।
परिवार्यामृतं तस्थुर्वज्री चेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ४५
धारयन्तो विचित्राणि काञ्चनानि मनस्विनः ।
कवचानि महार्हाणि वैदूर्यविकृतानि च ॥ ४६
चर्माण्यपि च गात्रेषु भानुमन्ति दृढानि च ।
विविधानि च शस्त्राणि घोररूपाण्यनेकशः॥ ४७
शिततीक्ष्णाग्रधाराणि समुद्यम्य सुरोत्तमाः ।
सविस्फुलिङ्गज्वालानि सधूमानि च सर्वशः ४८
चक्राणि परिघांश्चैव त्रिशूलानि परश्वधान् ।
शक्तीश्च विविधास्तीक्ष्णाः करवालांश्च निर्मलान्
स्वदेहरूपाण्यादाय गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥ ४९
तैः शस्त्रैर्भानुमद्भिस्ते दिव्याभरणभूषिताः ।
भानुमन्तः सुरगणास्तस्थुर्विगतकल्मषाः ॥ ५०
अनुपमबलवीर्यतेजसो
धृतमनसः परिरक्षणेऽमृतस्य ।
असुरपुरविदारणाः सुरा
ज्वलनसमिद्धवपुः प्रकाशिनः ॥ ५१

गजकच्छपयोः परिमाणमुक्तं शाखायास्तदाह न तामिति । परिणहेत्परितो वध्नीयात् वेष्टयेत् । वध्री एकतन्तुका चर्मरज्जुः । शतचर्मा एकेन गोचर्मणा कृतया रज्ज्वा आक्रान्तभूर्गोचर्ममात्रा इयं तु शतगोचर्मरज्ज्वाप्यनाक्रमणीयेत्यतिपुष्टत्वमुक्तं शाखायाः ॥ २३ ॥ हेमविकचाः हेमवदुज्ज्वलाः ॥ २९ ॥ सधूमेति । दिवा अन्हि ॥ ३२ ॥ अभूतपूर्वं यथा स्यात्तथा प्राद्रवत् । प्रहरणमायुधम् । जात्यभिप्रायेणैकवचनम् ॥ ३४ ॥ सनिर्घाताः अशनिनिर्घातसहिताः । उल्काः वन्हिविस्फुलिङ्गसंघाः ॥ ३५ ॥ देवानां देवः पर्जन्यः ॥ ३६ ॥ अपराधाद्वालखिल्यावमानात् । प्रमादात्स्वबलदर्पेण अनवधानात् ॥४०॥ असाध्यमन्येषां साधयेत् ॥ ४२ ॥ कवचानि धातुमयानि कण्ठादिनाभित्राणानि ॥ ४६ ॥ चर्माणि चर्ममयानि हस्तावापोर्ध्वमुखीप्रभृतीनि । भानुमन्ति दीप्तिमन्ति ॥ ४७ ॥ स्वदेहरूपाणि स्वदेहानुरूपाणि ॥ ४९ ॥ ज्वलनवत्समिद्धैर्दीप्यमानैर्वपुर्भिः प्रकाशिनः ॥ ५१ ॥

इति समरवरं सुराः स्थितास्ते
परिघसहस्रशतैः समाकुलम् ।
विगलितमिव चाम्बरान्तरं
तपनमरीचिविकाशितं बभासे ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

शौनक उवाच ।

कोऽपराधो महेन्द्रस्य कः प्रमादश्च सूतज ।
तपसा वालखिल्यानां संभूतो गरुडः कथम् ॥१
कश्यपस्य द्विजातेश्च कथं वै पक्षिराट्सुतः ।
अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्चाभवत्कथम् ॥ २
कथं च कामचारी स कामवीर्यश्च खेचरः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पुराणे यदि पठ्यते ॥ ३

सौतिरुवाच ।

विषयोऽयं पुराणस्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
शृणु मे वदतः सर्वमेतत्संक्षेपतो द्विज ॥ ४
यजतः पुत्रकामस्य कश्यपस्य प्रजापतेः ।
साहाय्यमृषयो देवा गन्धर्वाश्च ददुः किल ॥ ५
तत्रेध्मानयने शक्रो नियुक्तः कश्यपेन ह ।
मुनयो वालखिल्याश्च ये चान्ये देवतागणाः ॥ ६
शक्रस्तु वीर्यसदृशमिध्मभारं गिरिप्रभम् ।
समुद्यम्यानयामास नातिकृच्छ्रादिव प्रभुः ॥ ७
अथापश्यदृषीन्ह्रस्वानङ्गुष्ठोदरवर्ष्मणः ।
पलाशवर्तिकामेकां वहतः संहतान्पथि ॥ ८
प्रलीनान्स्वेष्विवाङ्गेषु निराहारांस्तपोधनान् ।
क्लिश्यमानान्मन्दबलान्गोष्पदे संप्लुतोदके ॥ ९
तान्सर्वान्विस्मयाविष्टो वीर्योन्मत्तः पुरंदरः ।
अवहस्याभ्यगाच्छीघ्रं लङ्घयित्वावमन्य च ॥ १०
तेऽथ रोषसमाविष्टाः सुभृशं जातमन्यवः ।
आरेभिरे महत्कर्म यदा शक्रभयंकरम् ॥ ११ ॥
जुहुवुस्ते सुतपसो विधिवज्जातवेदसम् ।
मन्त्रैरुच्चावचैर्विप्रा येन कामेन तच्छृणु ॥ १२
कामवीर्यः कामगमो देवराजभयप्रदः ।
इन्द्रोऽन्यः सर्वदेवानां भवेदिति यतव्रताः ॥ १३
इन्द्राच्छतगुणः शौर्ये वीर्ये चैव मनोजवः ।
तपसो नः फलेनाद्य दारुणः संभवत्विति ॥ १४
तद्बुद्ध्वा भृशसंतप्तो देवराजः शतक्रतुः ।
जगाम शरणं तत्र कश्यपं संशितव्रतम् ॥ १५
तच्छ्रुत्वा देवराजस्य कश्यपोऽथ प्रजापतिः ।
वालखिल्यानुपागम्य कर्मसिद्धिमपृच्छत ॥ १६
एवमस्त्विति तं चापि प्रत्यूचुः सत्यवादिनः ।
तान्कश्यप उवाचेदं सान्त्वपूर्वं प्रजापतिः ॥ १७
अयमिन्द्रस्त्रिभुवने नियोगाद्ब्रह्मणः कृतः ।
इन्द्रार्थे च भवन्तोऽपि यत्नवन्तस्तपोधनाः ॥ १८
न मिथ्या ब्रह्मणो वाक्यं कर्तुमर्हथ सत्तमाः ।
भवतां हि न मिथ्याऽयं संकल्पो वै चिकीर्षितः१९
भवत्वेष पतत्रीणामिन्द्रोऽतिबलसत्त्ववान् ।
प्रसादः क्रियतामस्य देवराजस्य याचतः ॥ २०
एवमुक्ताः कश्यपेन वालखिल्यास्तपोधनाः ।
प्रत्यूचुरभिसंपूज्य मुनिश्रेष्ठं प्रजापतिम् ॥ २१

वालखिल्या ऊचुः ।

इन्द्रार्थोऽयं समारम्भः सर्वेषां नः प्रजापते ।
अपत्यार्थं समारम्भो भवतश्चायमीप्सितः ॥ २२
तदिदं सफलं कर्म त्वयैव प्रतिगृह्यताम् ।
तथा चैवं विधत्स्वात्र यथा श्रेयोऽनुपश्यसि॥२३

सौतिरुवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु देवी दाक्षायणी शुभा ।
विनता नाम कल्याणी पुत्रकामा यशस्विनी ॥२४

---

विगलितमिव अकस्मादागतमिव ॥ ५२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०

---

कोऽपराध इति ॥ १ ॥ यजत यजमानस्य । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवन्निर्देश । यियक्षमाणस्येत्यर्थ ॥ ५ ॥ इध्मानि अग्निसमिन्धनार्था समिध ॥ ६ ॥ अङ्गुष्ठोदरप्रमाणं वर्ष्म शरीरं येषा तान् । वर्तिका दीर्घयष्टिम् । संहतान् एकीभूतान् ॥ ८ ॥ स्वेष्वङ्गेषु प्रलीनानिवातिकृशानित्यर्थ । क्लिश्यमानानिति । गोष्पदमात्रेऽपि जले मज्जनेनेत्यर्थ ॥ ९ ॥ जातमन्यवो दीना । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इति कोश ॥ ११ ॥ यावदिच्छित वीर्यं गतिश्च यस्येति कामवीर्य कामगमश्च ॥ १३ ॥ दारुण इन्द्रं प्रत्येव ॥ १४ ॥ कर्मसिद्धिमपृच्छत । सिद्ध व कर्मेत्यपृच्छदित्यर्थ ॥ १६ ॥ एवमस्तु सिद्धमस्तु ॥ १७ ॥ पतत्रीणा पक्षिणाम् पतेरत्रिन्इत्यौणादिकत्रिन्प्रत्ययातोऽयं 'विविष्किरपतत्रय' इत्यमर ॥ २० ॥

तपस्तप्त्वा व्रतपरा स्नाता पुंसवने शुचिः ।
उपचक्राम भर्तारं तामुवाचाथ कश्यपः ॥ २५
आरम्भः सफलो देवि भविता यस्त्वयेप्सितः ।
जनयिष्यसि पुत्रौ द्वौ वीरौ त्रिभुवनेश्वरौ ॥ २६
तपसा वालखिल्यानां मम संकल्पजौ तथा ।
भविष्यतो महाभागौ पुत्रौ त्रैलोक्यपूजितौ ॥ २७
उवाच चैनां भगवान्कश्यपः पुनरेव ह ।
धार्यतामप्रमादेन गर्भोऽयं सुमहोदयः ॥ २८
एतौ सर्वपतत्रीणामिन्द्रत्वं कारयिष्यतः ।
लोकसंभावितौ वीरौ कामरूपौ विहंगमौ ॥ २९
शतक्रतुमथोवाच प्रियमाणः प्रजापतिः ।
त्वत्सहायौ महावीर्यौ भ्रातरौ ते भविष्यतः ॥ ३०
नैताभ्यां भविता दोषः सकाशात्ते पुरंदर ।
व्येतु ते शक्रसंतापस्त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि ॥ ३१
न चाप्येवं त्वया भूयः क्षेप्तव्या ब्रह्मवादिनः ।
न चावमान्या दर्पात्ते वाग्वज्रा भृशकोपनाः ॥ ३२
एवमुक्तो जगामेन्द्रो निर्विशङ्कस्त्रिविष्टपम् ।
विनता चापि सिद्धार्था बभूव मुदिता तथा ॥ ३३
जनयामास पुत्रौ द्वावरुणं गरुडं तथा ।
विकलाङ्गोरुणस्तत्र भास्करस्य पुरस्सरः ॥ ३४
पतत्रीणां च गरुडमिन्द्रत्वेनाभ्यषिञ्चत ।
तस्यैतत्कर्म सुमहच्छ्रूयतां भृगुनन्दन ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

सौतिरुवाच ।
ततस्तस्मिन्द्विजश्रेष्ठ समुदीर्णे तथाविधे ।
गरुडः पक्षिराट् तूर्णं संप्राप्तो विबुधान्प्रति ॥ १
तं दृष्ट्वातिबलं चैव प्राकम्पन्त सुरास्ततः ।
परस्परं च प्रत्यघ्नन्सर्वप्रहरणान्युत ॥ २
तत्र चासीदमेयात्मा विद्युदग्निसमप्रभः ।
भौमनः सुमहावीर्यः सोमस्य परिरक्षिता ॥ ३
स तेन पतगेन्द्रेण पक्षतुण्डनखक्षतः ।
मुहूर्तमतुलं युद्धं कृत्वा विनिहतो युधि ॥ ४
रजश्चोद्धूय सुमहत्पक्षवातेन खेचरः ।
कृत्वा लोकान्निरालोकांस्तेन देवानवाकिरत् ॥ ५
तेनावकीर्णा रजसा देवा मोहमुपागमन् ।
न चैवं ददृशुश्छन्ना रजसाऽमृतरक्षिणः ॥ ६
एवं संलोडयामास गरुडस्त्रिदिवालयम् ।
पक्षतुण्डप्रहारैस्तु देवान्स विददार ह ॥ ७
ततो देवः सहस्राक्षस्तूर्णं वायुमचोदयत् ।
विक्षिपेमां रजोवृष्टिं तवेदं कर्म मारुत ॥ ८
अथ वायुरपोवाह तद्रजस्तरसा बली ।
ततो वितिमिरे जाते देवाः शकुनिमार्दयन् ॥ ९
ननादोच्चैः स बलवान्महामेघ इवाम्बरे ।
वध्यमानः सुरगणैः सर्वभूतानि भीषयन् ॥ १०
उत्पपात महावीर्यः पक्षिराट् परवीरहा ।
समुत्पत्यान्तरिक्षस्थं देवानामुपरिस्थितम् ॥ ११
वर्मिणो विबुधाः सर्वे नानाशस्त्रैरवाकिरन् ।
पट्टिशैः परिघैः शूलैर्गदाभिश्च सवासवाः ॥ १२
क्षुरप्रैर्ज्वलितैश्चापि चक्रैरादित्यरूपिभिः ।
नानाशस्त्रविसर्गैस्तैर्वध्यमानः समन्ततः ॥ १३
कुर्वन्सुतुमुलं युद्धं पक्षिराण्न व्यकम्पत ।
निर्दहन्निव चाकाशे वैनतेयः प्रतापवान् ।
पक्षाभ्यामुरसा चैव समन्ताद्व्याक्षिपत्सुरान् ॥ १४
ते विक्षिप्तास्ततो देवा दुद्रुवुर्गरुडार्दिताः ।
नखतुण्डक्षताश्चैव सुस्रुवुः शोणितं बहु ॥ १५
साध्याः प्राचीं सगन्धर्वा वसवो दक्षिणां दिशम् ।
प्रजग्मुः सहिता रुद्राः पतगेन्द्रप्रधर्षिताः ॥ १६
दिशं प्रतीचीमादित्या नासत्या उत्तरां दिशम् ।
मुहुर्मुहुः प्रेक्षमाणा युध्यमाना महौजसः ॥ १७
अश्वक्रन्देन वीरेण रेणुकेन च पक्षिराट् ।
क्रथनेन च शूरेण तपनेन च खेचरः ॥ १८

---

पुंसवने ऋतुकाले ॥ २५ ॥ कारयिष्यत इति स्वार्थे णिच् । रामो राज्यमचीकरदितिवत् ॥ २९ ॥ दर्पात्ते त्वया ॥ ३२ ॥ गरुडं इन्द्रत्वे । ना नरः । हिरण्यगर्भः अभ्यषिञ्चत । गरुड इन्द्रत्वेनाभ्यषिच्यतेति पाठे हिरण्यगर्भेणेति शेषः ॥ ३५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

तत इति । तस्मिन् देवानीके तथाविधे नानायुधायुपेते समुदीर्णे संग्रामायोद्गते सति ॥ १ ॥ ततः तेषां षष्ठ्यर्थे तसिः ॥ २ ॥ भौमनः विश्वकर्मा ॥ ३ ॥ विनिहतो मृतकल्पः कृतः ॥ ४ ॥ संलोडयामास आकुलीचकार ॥ ७ ॥ अपोवाह अपसारितवान् ॥ ९ ॥ अन्तरिक्षस्थं गरुडमिति शेषः । व्यक्षिपत् विशेषेण क्षिप्तवान् ॥ १४ ॥ अश्वक्रन्दादयो नवयक्षाः ॥ १८ ॥

उलूकश्वसनाभ्यां च निमेषेण च पक्षिराट्।
रुजेन च संग्रामं चकार पुलिनेन च ॥ १९
तान्पक्षनखतुण्डाग्रैरभिनद्विनतासुतः।
युगान्तकाले संक्रुद्धः पिनाकीव परंतप ॥ २०
महाबला महोत्साहास्तेन ते बहुधा क्षताः।
रेजुरभ्रघनप्रख्या रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ २१
तान्कृत्वा पतगश्रेष्ठः सर्वानुत्क्रान्तजीवितान्।
अतिक्रान्तोऽमृतस्यार्थे सर्वतोऽग्निमपश्यत ॥ २२
आवृण्वानं महाज्वालमर्चिर्भिः सर्वतोऽम्बरम्।
दहन्तमिव तीक्ष्णांशुं चण्डवायुसमीरितम् ॥ २३
ततो नवत्या नवतीर्मुखानां
कृत्वा महात्मा गरुडस्तपस्वी।
नदीः समापीय मुखैस्ततस्तैः
सुशीघ्रमागम्य पुनर्जवेन ॥ २४
ज्वलन्तमग्निं तममित्रतापनः
समास्तरत्पत्ररथो नदीभिः।
ततः प्रचक्रे वपुरन्यदल्पं
प्रवेष्टुकामोऽग्निमभिप्रशाम्य ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

---

सौतिरुवाच।
जाम्बूनदमयो भूत्वा मरीचिनिकरोज्ज्वलः।
प्रविवेश बलात्पक्षी वारिवेग इवार्णवम् ॥ १
सचक्रं क्षुरपर्यन्तमपश्यदमृतान्तिके।
परिभ्रमन्तमनिशं तीक्ष्णधारमयस्मयम् ॥ २
ज्वलनार्कप्रभं घोरं छेदनं सोमहारिणाम्।
घोररूपं तदत्यर्थं यन्त्रं देवैः सुनिर्मितम् ॥ ३
तस्यान्तरं स दृष्ट्वैव पर्यवर्तत खेचरः।
अरान्तरेणाभ्यपतत्संक्षिप्याङ्गं क्षणेन ह ॥ ४
अधश्चक्रस्य चैवात्र दीप्तानलसमद्युती।
विद्युज्जिह्वौ महावीर्यौ दीप्तास्यौ दीप्तलोचनौ ॥ ५
चक्षुर्विषौ महाघोरौ नित्यं क्रुद्धौ तरस्विनौ।
रक्षार्थमेवामृतस्य ददर्श भुजगोत्तमौ ॥ ६
सदा संरब्धनयनौ सदा चानिमिषेक्षणौ।
तयोरेकोऽपि यं पश्येत्स तूर्णं भस्मसाद्भवेत् ॥ ७
तयोश्चक्षूंषि रजसा सुपर्णः सहसाऽऽवृणोत्।
ताभ्यामदृष्टरूपोऽसौ सर्वतः समताडयत् ॥ ८
तयोरङ्गे समाक्रम्य वैनतेयोऽन्तरिक्षगः।
आच्छिनत्तरसा मध्ये सोममभ्यद्रवत्ततः ॥ ९
समुत्पाट्यामृतं तत्र वैनतेयस्ततो बली।
उत्पपात जवेनैव यन्त्रमुन्मथ्य वीर्यवान् ॥ १०
अपीत्वैवाऽमृतं पक्षी परिगृह्याशुनिःसृतः।
आगच्छदपरिश्रान्त आवार्यार्कप्रभां ततः ॥ ११
विष्णुना च तदाकाशे वैनतेयः समेयिवान्।
तस्य नारायणस्तुष्टस्तेनालौल्येन कर्मणा ॥ १२
तमुवाचाऽव्ययो देवो वरदोऽस्मीति खेचरम्।
स वव्रे तव तिष्ठेयमुपरीत्यन्तरिक्षगः ॥ १३
उवाच चैनं भूयोऽपि नारायणमिदं वचः।
अजरश्चामरश्च स्याममृतेन विनाऽप्यहम् ॥ १४
एवमस्त्विति तं विष्णुरुवाच विनतासुतम्।
प्रतिगृह्य वरौ तौ च गरुडो विष्णुमब्रवीत् ॥ १५
भवतेऽपि वरं दद्यां वृणोतु भगवानपि।
तं वव्रे वाहनं विष्णुर्गरुत्मन्तं महाबलम् ॥ १६
ध्वजं च चक्रे भगवानुपरि स्थास्यसीति तम्।
एवमस्त्विति तं देवमुक्त्वा नारायणं खगः ॥ १७

---

अत एव उत्क्रान्तजीवितान्कृत्वेत्याह ॥ २२ ॥ नवत्या नवतीः शताधिकाष्टसाहस्री। नवतीरिति बहुवचनात्साप्यनेकगुणा। ततश्चानन्तमुखैरित्यर्थः। नवत्यो नवतीरिति पाठे ङितामाङभाव आर्षः ॥ २४ ॥ समास्तरत् आच्छादितवान् शमितवान्। अग्निमभिप्रशाम्य प्रवेष्टुकामः। सोमसमीपमिति शेषः ॥ २५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

---

जाम्बूनदमय इति। प्रविवेश चक्रमित्युत्तरेणान्वयः ॥ १ ॥ चक्रं यन्त्रं क्षुरपर्यन्तं समन्ततः कदम्बमुकुलवत् क्षुरसहस्रयुतम्। चक्रवद्वेगेन वंभ्रम्यमाणम्। यत्र प्रविष्टो मशकोऽपि सहस्रधा छिद्यते। परिभ्रमन्तमिति पुंस्त्वमार्षम्। अयस्मयं लोहमयम्। 'अयस्मयादीनि छंदसि' इतिभत्वमार्षम् ॥ २ ॥ अरा चक्रस्य नाभिनेम्यो संभेदकाष्ठानि। तेषामन्तरेण मध्यत. अङ्गं संक्षिप्य अणुतरं कृत्वा ॥४॥ तयोः अङ्गे देहौ। आच्छिनत् खण्डशः कृतवान् ॥ ९ ॥ यन्त्रमुन्मथ्य अमृतकुम्भं समुत्पाट्य उत्पपातेत्यन्वयः ॥ १० ॥ आवार्य वारयित्वा तिरस्कृत्येत्यर्थः ॥ ११ ॥ समेयिवान् सङ्गतः अलौल्येन अमृतपानलोभराहित्येन ॥ १२ ॥ उपरि ध्वजे इत्यर्थः ॥ १३ ॥

वव्राज तरसा वेगाद्वायुं स्पर्धन्महाजवः ।
तं व्रजन्तं खगश्रेष्ठं वज्रेणेन्द्रोऽभ्यताडयत् ॥ १८
हरन्तममृतं रोषाद्गरुडं पक्षिणां वरम् ।
तमुवाचेन्द्रमाक्रन्दे गरुडः पततां वरः ॥ १९
प्रहसन् श्लक्ष्णया वाचा तथा वज्रसमाहतः ।
ऋषेर्मानं करिष्यामि वज्रं यस्यास्थिसंभवम् ॥ २०
वज्रस्य च करिष्यामि तवैव च शतक्रतो ।
एतत्पत्रं त्यजाम्येकं यस्यान्तं नोपलप्स्यसे ॥ २१
न च वज्रनिपातेन रुजा मेऽस्तीह काचन ।
एवमुक्त्वा ततः पत्रमुत्ससर्ज स पक्षिराट् ॥ २२
तदुत्सृष्टमभिप्रेक्ष्य तस्य पर्णमनुत्तमम् ।
हृष्टानि सर्वभूतानि नाम चक्रुर्गरुत्मतः ॥ २३ ॥
सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति ।
तदृष्ट्वा महदाश्चर्यं सहस्राक्षः पुरंदरः ॥
खगो महदिदं भूतमिति मत्वाऽभ्यभाषत ॥ २४

शक्र उवाच ।

बलं विज्ञातुमिच्छामि यत्ते परमनुत्तमम् ।
सख्यं चानन्तमिच्छामि त्वया सह खगोत्तम ॥२५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

गरुड उवाच ।

सख्यं मेऽस्तु त्वया देव यथेच्छसि पुरंदर ।
बलं तु मम जानीहि महच्चासह्यमेव च ॥ १
कामं नैतत्प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् ।
गुणसंकीर्तनं चापि स्वयमेव शतक्रतो ॥ २
सखेति कृत्वा तु सखे पृष्टो वक्ष्याम्यहं त्वया ।
न ह्यात्मस्तवसंयुक्तं वक्तव्यमनिमित्ततः ॥ ३
सपर्वतवनामुर्वीं ससागरजलामिमाम् ।
वहे पक्षेण वै शक्र त्वामप्यत्रावलम्बिनम् ॥ ४
सर्वान्संपिण्डितान्वापि लोकान्सस्थाणुजङ्गमान् ।
वहेयमपरिश्रान्तो विद्धीदं मे महद्बलम् ॥ ५

सौतिरुवाच ।

इत्युक्तवचनं वीरं किरीटी श्रीमतां वरः ।
आह शौनक देवेन्द्रः सर्वलोकहितः प्रभुः ॥ ६
एवमेव यथात्थ त्वं सर्वं संभाव्यते त्वयि ।
संगृह्यतामिदानीं मे सख्यमत्यन्तमुत्तमम् ॥ ७
न कार्यं यदि सोमेन मम सोमः प्रदीयताम् ।
अस्मांस्ते हि प्रबाधेयुर्येभ्यो दद्याद्भवानिमम् ॥ ८

गरुड उवाच ।

किंचित्कारणमुद्दिश्य सोमोऽयं नीयते मया ।
न दास्यामि समादातुं सोमं कस्मैचिदप्यहम् ॥ ९
यत्रेमं तु सहस्राक्ष निक्षिपेयमहं स्वयम् ।
त्वमादाय ततस्तूर्णं हरेथास्त्रिदिवेश्वर ॥ १०

शक्र उवाच ।

वाक्येनानेन तुष्टोऽहं यत्त्वयोक्तमिहाण्डज ।
यमिच्छसि वरं मत्तस्तं गृहाण खगोत्तम ॥ ११

सौतिरुवाच ।

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं कद्रूपुत्राननुस्मरन् ।
स्मृत्वा चैवोपधिकृतं मातुर्दास्यनिमित्ततः ॥ १२
ईशोऽहमपि सर्वस्य करिष्यामि तु तेऽर्थिताम् ।
भवेयुर्भुजगाः शक्र मम भक्ष्या महाबलाः ॥ १३
तथेत्युक्त्वाऽन्वगच्छत्तं ततो दानवसूदनः ।
देवदेवं महात्मानं योगिनामीश्वरं हरिम् ॥ १४
स चान्वमोदत्तं चार्थं यथोक्तं गरुडेन वै ।
इदं भूयो वचः प्राह भगवांस्त्रिदशेश्वरः ॥ १५
हरिष्यामि विनिक्षिप्तं सोममित्यनुभाष्य तम् ।
आजगाम ततस्तूर्णं सुपर्णो मातुरन्तिकम् ॥ १६

---

स्पर्धावानिवाचरतीति स्पर्धन् वायुं जेतुमिच्छन्नित्यर्थः १८॥आक्रन्दे कलकले॥१९॥ऋषेः दधीचेः॥२०॥पत्रं पक्षम् ॥ २२ ॥ सुपर्णशब्दं निर्वक्ति सुरूपमिति ॥ २४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः३३

सख्यमिति ॥ १ ॥ कामं स्वेच्छया बलं शरीरसामर्थ्यं गुणो बुद्धिसामर्थ्यं ज्ञानौदार्यादि ॥ २ ॥ निमित्ते रणभूमौ शत्रोः पुरस्तादात्मस्तवोऽपि कर्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ संपिण्डितान् एकीकृतान् । संपीडितानित्यपपाठः । स्थाणुं स्थावरम् ॥ ५ ॥ किरीटी इन्द्रः सर्वलोकहितः सर्पेभ्योऽमृतं दातुमनिच्छत्वात् ॥ ६ ॥ न कार्यमिति । विष्णुनाऽमृतं विनाप्यमरत्वस्य दत्तत्वात् ॥ ८ ॥ किंचित्कारणं मातुर्दास्यविमोक्षरूपमितिभावः । समादातुं पातुं न हि मम कश्चिद्देवेभ्य आप्तोऽस्तीति भावः ॥९॥ उपधिकृतं छलकृतम् । दास्यनिमित्ततः । निमित्तमिन्द्राश्वस्य कृष्णकेशत्वं दास्यमिति पाठे निमित्ततोऽरुणशापात् ॥१२॥ ईशः समर्थः अर्थिताम्-न्यस्मै अमृतं न देयमित्यर्थेप्सुताम् ॥ १३ ॥ तं गरुडं तथेत्युक्त्वा हरिमन्वगच्छत् । अनुसृतवान् । स्वोक्तिनिर्वाहार्थमिति भावः ॥ १४ ॥ विनिक्षिप्तं त्वयेतिशेषः । अनुभाष्य हे गरुडेति संबोध्य ॥ १६ ॥

अथ सर्पानुवाचेदं सर्वान्परमहृष्टवत् ।
इदमानीतममृतं निक्षेप्स्यामि कुशेषु वः ॥ १७
स्नाता मङ्गलसंयुक्तास्ततः प्राश्नीत पन्नगाः ।
भवद्भिरिदमासीनैर्यदुक्तं तद्वचस्तदा ॥ १८
अदासी चैव मातेयमद्यप्रभृति चास्तु मे ।
यथोक्तं भवतामेतद्वचो मे प्रतिपादितम् ॥ १९
ततः स्नातुं गताः सर्पाः प्रत्युक्त्वा तं तथेत्युत ।
शक्रोप्यमृतमाक्षिप्य जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ २०
अथागतास्तमुद्देशं सर्पाः सोमार्थिनस्तदा ।
स्नाताश्च कृतजप्याश्च प्रहृष्टाः कृतमङ्गलाः ॥ २१
यत्रैतदमृतं चापि स्थापितं कुशसंस्तरे ।
तद्विज्ञाय हृतं सर्पाः प्रतिमाया कृतं च तत् ॥ २२
सोमस्थानमिदं चेति दर्भास्ते लिलिहुस्तदा ।
ततो द्विधाकृता जिह्वाः सर्पाणां तेन कर्मणा २३
अभवंश्चामृतस्पर्शाद्दर्भास्तेऽथ पवित्रिणः ।
एवं तदमृतं तेन हृतमाहृतमेव च ।
द्विजिह्वाश्च कृताः सर्पा गरुडेन महात्मना ॥ २४
ततः सुपर्णः परमप्रहर्षवान्
विहृत्य मात्रा सह तत्र कानने ।
भुजंगभक्षः परमार्चितः खगै-
रहीनकीर्तिर्विनतामनन्दयत् ॥ २५
इमां कथां यः शृणुयान्नरः सदा
पठेत वा द्विजगणमुख्यसंसदि ।
असंशयं त्रिदिवमियात्स पुण्यभाक्
महात्मनः पतगपतेः प्रकीर्तनात् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सौपर्णे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

शौनक उवाच ।
भुजंगमानां शापस्य मात्रा चैव सुतेन च ।
विनतायास्त्वया प्रोक्तं कारणं सूतनन्दन ॥ १
वरप्रदानं भर्त्रा च कद्रूविनतयोस्तथा ।
नामनी चैव ते प्रोक्ते पक्षिणोर्वैनतेययोः ॥ २
पन्नगानां तु नामानि न कीर्तयसि सूतज ।
प्राधान्येनापि नामानि श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ३
सौतिरुवाच ।
बहुत्वान्नामधेयानि पन्नगानां तपोधन ।
न कीर्तयिष्ये सर्वेषां प्राधान्येन तु मे शृणु ॥ ४
शेषः प्रथमतो जातो वासुकिस्तदनन्तरम् ।
ऐरावतस्तक्षकश्च कर्कोटकधनंजयौ ॥ ५
कालियो मणिनागश्च नागश्चापूरणस्तथा ।
नागस्तथापिञ्जरक एलापत्रोऽथ वामनः ॥ ६
नीलानीलौ तथा नागौ कल्माषशबलौ तथा ।
आर्यकश्चोग्रकश्चैव नागः कलशपोतकः ॥ ७
सुमनाख्यो दधिमुखस्तथा विमलपिण्डकः ।
आप्तः कर्कोटकश्चैव शङ्खो वालिशिखस्तथा ॥ ८
निष्टानको हेमगुहो नहुषः पिङ्गलस्तथा ।
बाह्यकर्णो हस्तिपदस्तथा मुद्गरपिण्डकः ॥ ९
कम्बलाश्वतरौ चापि नागः कालीयकस्तथा ।
वृत्तसंवर्तकौ नागौ द्वौ च पद्माविति श्रुतौ ॥ १०
नागः शङ्खमुखश्चैव तथा कूष्माण्डकोऽपरः ।
क्षेमकश्च तथा नागो नागः पिण्डारकस्तथा ॥ ११
करवीरः पुष्पदंष्ट्रो बिल्वको बिल्वपाण्डुरः ।
मूषकादः शङ्खशिराः पूर्णभद्रो हरिद्रकः ॥ १२
अपराजितो ज्योतिकश्च पन्नगः श्रीवहस्तथा ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च शङ्खपिण्डश्च वीर्यवान् ॥ १३
विरजाश्च सुबाहुश्च शालिपिण्डश्च वीर्यवान् ।
हस्तिपिण्डः पिठरकः सुमुखः कौणपाशनः ॥ १४
कुठरः कुञ्जरश्चैव तथा नागः प्रभाकरः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च तित्तिरिर्हलिकस्तथा ॥ १५
कर्दमश्च महानागो नागश्च बहुमूलकः ।
कर्कराकर्करौ नागौ कुण्डोदरमहोदरौ ॥ १६
एते प्राधान्यतो नागाः कीर्तिता द्विजसत्तम ।
बहुत्वान्नामधेयानामितरे नानुकीर्तिताः ॥ १७

---

इदं वः युष्माकममृतं न तु मम । कुशेषु निक्षेप्स्यामि गृह्णीतेति भावः॥१७॥भवतां भवद्भिः मे मया॥१९॥प्रतिमाया-कृतं मायाकृतं यथा दास्यं तथाऽमृतदानमपीतरेणकृतमित्यर्थः ॥ २२ ॥ पवित्रममृतं विद्यते येषु ते पवित्रिणः त्स्तं देवलोकात् आह्तं सर्पसमीपे ॥ २४ ॥ 'पदं महत्प्राप्तुमिच्छुर्नीचो नीचतरं व्रजेत् । अमृतप्रेप्सवो याता भुजंगास्तर्क्ष्यभक्ष्यताम्' । रत्नगर्भस्तु 'विप्रस्यावज्ञया शक्रो मातुः सर्पा विपद्गताः । सुपर्णस्त्वभयः प्रीत्या हरेरप्युपरिस्थितः' ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

भुजंगमानामिति । भुजंगमानां मात्रा शापो दत्तस्य कारणमवज्ञया मातुराज्ञाकारित्वम् । विनतायाः सुतेन शापो दत्तस्तस्य कारणं सपत्नीर्ष्या ॥ १ ॥

एतेषां प्रसवो यश्च प्रसवस्य च संततिः ।
असंख्येयेति मत्वा तान्न ब्रवीमि तपोधन ॥ १८
बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अशक्यान्येव संख्यातुं पन्नगानां तपोधन ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पनामकथने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

---

शौनक उवाच ।
आख्याता भुजगास्तात वीर्यवन्तो दुरासदाः ।
शापं तं तेऽभिविज्ञाय कृतवन्तः किमुत्तरम् ॥ १
सौतिरुवाच ।
तेषां तु भगवाञ्छेषः कद्रूं त्यक्त्वा महायशाः ।
उग्रं तपः समातस्थे वायुभक्षो यतव्रतः ॥ २
गन्धमादनमासाद्य बदर्यां च तपोरतः ।
गोकर्णे पुष्करारण्ये तथा हिमवतस्तटे ॥ ३
तेषु तेषु च पुण्येषु तीर्थेष्वायतनेषु च ।
एकान्तशीलो नियतः सततं विजितेन्द्रियः ॥ ४
तप्यमानं तपो घोरं तं ददर्श पितामहः ।
संशुष्कमांसत्वक्स्नायुं जटाचीरधरं मुनिम् ॥ ५
तमब्रवीत्सत्यधृतिं तप्यमानं पितामहः ।
किमिदं कुरुषे शेष प्रजानां स्वस्ति वै कुरु ॥ ६
त्वं हि तीव्रेण तपसा प्रजास्तापयसेऽनघ ।
ब्रूहि कामं च मे शेष यस्ते हृदि व्यवस्थितः ॥ ७
शेष उवाच ।
सोदर्या मम सर्वे हि भ्रातरो मन्दचेतसः ।
सह तैर्नोत्सहे वस्तुं तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ८
अभ्यसूयन्ति सततं परस्परममित्रवत् ।
ततोऽहं तप आतिष्ठं नैतान्पश्येयमित्युत ॥ ९
न मर्षयन्ति ससुतां सततं विनतां च ते ।
अस्माकं चापरो भ्राता वैनतेयोऽन्तरिक्षगः ॥ १०
तं च द्विषन्ति सततं स चापि बलवत्तरः ।
वरप्रदानात्स पितुः कश्यपस्य महात्मनः ॥ ११
सोऽहं तपः समास्थाय मोक्ष्यामीदं कलेवरम् ।
कथं मे प्रेत्यभावेऽपि न तैः स्यात्सहसंगमः ॥ १२
तमेवं वादिनं शेषं पितामह उवाच ह ।
जानामि शेष सर्वेषां भ्रातॄणां ते विचेष्टितम् ॥ १३
मातुश्चाप्यपराधाद्वै भ्रातॄणां ते महद्भयम् ।
कृतोऽत्र परिहारश्च पूर्वमेव भुजंगम ॥ १४
भ्रातॄणां तव सर्वेषां न शोकं कर्तुमर्हसि ।
वृणीष्व च वरं मत्तः शेष यत्तेऽभिकाङ्क्षितम् ॥ १५
दास्यामि हि वरं तेऽद्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि ।
दिष्ट्या बुद्धिश्च ते धर्मे निविष्टा पन्नगोत्तम ।
भूयो भूयश्च ते बुद्धिर्धर्मे भवतु सुस्थिरा ॥ १६
शेष उवाच ।
एष एव वरो देव काङ्क्षितो मे पितामह ।
धर्मे मे रमतां बुद्धिः शमे तपसि चेश्वर ॥ १७
ब्रह्मोवाच ।
प्रीतोऽस्म्यनेन ते शेष दमेन च शमेन च ।
त्वया त्विदं वचः कार्यं मन्नियोगात्प्रजाहितम् ॥ १८
इमां महीं शैलवनोपपन्नां
ससागरग्रामविहारपत्तनाम् ।
त्वं शेष सम्यक् चलितां यथावत्
संगृह्य तिष्ठस्व यथाऽचला स्यात् ॥ १९
शेष उवाच ।
यथाऽऽह देवो वरदः प्रजापति-
र्महीपतिर्भूतपतिर्जगत्पतिः ।
तथा महीं धारयिताऽस्मि निश्चलां
प्रयच्छतां मे शिरसि प्रजापते ॥ २०
ब्रह्मोवाच ।
अधो महीं गच्छ भुजंगमोत्तम
स्वयं तवैषा विवरं प्रदास्यति ।
इमां धरां धारयता त्वया हि मे
महत्प्रियं शेषकृतं भविष्यति ॥ २१
सौतिरुवाच ।
तथैव कृत्वा विवरं प्रविश्य स
प्रभुर्भुवो भुजगवराग्रजः स्थितः ।
बिभर्ति देवीं शिरसा महीमिमां
समुद्रनेमिं परिगृह्य सर्वतः ॥ २२

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

पित्राचार्यादिभ्यः पूज्यतमापि माताऽनृताभिसन्धिनी चेत्त्याज्यैवेति दर्शयितुं * शेषाध्यायमारभते । आख्याता इत्यादिना उत्तरमनन्तरम् ॥ १ ॥ स्नायुः शिराः ॥ ५ ॥ प्रेत्यभावेऽपि देहान्तरेऽपि ॥ १२ ॥ धर्मे वेदबोधितेऽर्थे शमे मनोजये तपसि तत्त्वालोचने ॥ १७ ॥ दमेन बाह्येन्द्रियजयेन प्रश्रयेण चेति पाठे प्रश्रयो विनयः ॥ १८ ॥ तिष्ठस्व 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' इति तङ् ॥ १९ ॥ प्रयच्छतामुत्थाप्य भवानिति शेषः ॥ २० ॥

* शेषवृत्तकथनादयं शेषाध्यायः

ब्रह्मोवाच।
शेषोऽसि नागोत्तम धर्मदेवो
महीमिमां धारयसे यदेकः।
अनन्तभोगैः परिगृह्य सर्वां
यथाऽहमेवं बलभिद्यथा वा ॥ २३

सौतिरुवाच।
अधोभूमौ वसत्येवं नागोऽनन्तः प्रतापवान्।
धारयन्वसुधामेकः शासनाद्ब्रह्मणो विभुः ॥ २४
सुपर्णं च सहायं वै भगवानमरोत्तमः।
प्रादादनन्ताय तदा वैनतेयं पितामहः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि शेषवृत्तकथने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

सौतिरुवाच।
मातुः सकाशात्तं शापं श्रुत्वा वै पन्नगोत्तमः।
वासुकिश्चिन्तयामास शापोऽयं न भवेत्कथम् ॥ १
ततः स मन्त्रयामास भ्रातृभिः सह सर्वशः।
ऐरावतप्रभृतिभिः सर्वधर्मपरायणैः ॥ २

वासुकिरुवाच।
अयं शापो यथोद्दिष्टो विदितं वस्तथाऽनघाः।
तस्य शापस्य मोक्षार्थं मन्त्रयित्वा यतामहे ॥ ३
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते।
न तु मात्राभिशप्तानां मोक्षः क्व च न विद्यते ॥४
अव्ययस्याप्रमेयस्य सत्यस्य च तथाऽग्रतः।
शप्ता इत्येव मे श्रुत्वा जायते हृदि वेपथुः ॥ ५
नूनं सर्वविनाशोऽयमस्माकं समुपागतः।
न ह्येतां सोऽव्ययो देवः शपन्तीं प्रत्यषेधयत् ॥ ६
तस्मात्संमन्त्रयामोऽद्य भुजंगानामनामयम्।
यथा भवेद्धि सर्वेषां मा नः कालोऽत्यगादयम्॥७
सर्व एव हि न स्तावद्बुद्धिमन्तो विचक्षणाः।
अपि मन्त्रयमाणा हि हेतुं पश्याम मोक्षणे ॥ ८
यथा नष्टं पुरा देवा गूढमग्निं गुहागतम्।
यथा स यज्ञो न भवेद्यथा वापि पराभवः।
जनमेजयस्य सर्पाणां विनाशकरणाय वै ॥ ९

सौतिरुवाच।
तथेत्युक्त्वा ततः सर्वे काद्रवेयाः समागताः।
समयं चक्रिरे तत्र मन्त्रबुद्धिविशारदाः ॥ १०
एके तत्राब्रुवन्नागा वयं भूत्वा द्विजर्षभाः।
जनमेजयं तु भिक्षामो यज्ञस्तेन भवेदिति ॥ ११
अपरे त्वब्रुवन्नागास्तत्र पण्डितमानिनः।
मन्त्रिणोऽस्य वयं सर्वे भविष्यामः सुसंमताः॥१२
स नः प्रक्ष्यति सर्वेषु कार्येष्वर्थविनिश्चयम्।
तत्र बुद्धिं प्रदास्यामो यथा यज्ञो निवर्त्स्यति ॥१३
स नो बहुमतान्राजा बुद्ध्वा बुद्धिमतां वरः।
यज्ञार्थं प्रक्ष्यति व्यक्तं नेति वक्ष्यामहे वयम् ॥१४
दर्शयन्तो बहून्दोषान्प्रेत्य चेह च दारुणान्।
हेतुभिः कारणैश्चैव यथा यज्ञो भवेन्न सः ॥ १५

---

अनन्तभोगैः फणाभिः ॥२३॥ सहायं मित्रम् ॥२५॥ इति आदि पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

मातुरिति। पत्यते वशीक्रियते नगोत्तमो येन पन्नगोत्तम। अमृतमन्थनकाले मन्दरं परिवर्तयन् वासुकिः पूर्वोक्तरूपं मातुः शापं श्रुत्वा ॥ १ ॥ ततः योगबलेन शरीरान्तरमादाय स मन्त्रयामास। अयं भावः। मन्थनव्यापृते नागराजे प्रथमोत्पन्नमश्वं निमित्तीकृत्य कद्रूः पुत्रान् शशाप। तं च शापं निवर्तयितुं मन्त्रयत्सु सर्पेष्वेलापत्रेण तत्प्रतीकारोपाये उक्तेऽपि कार्यगौरवादप्रत्ययाच्चामृतमन्थनान्ते वासुकिर्ब्रह्माणं गतवान् तेन च एलापत्रोक्तमेव वचनमुक्त्वा सान्त्वितः। अत एवाऽथ देवासुराः सर्वे इत्यादिराग्रिमाध्यायस्था विचारानन्तरमप्यमृतमन्थनकथा संगच्छते ॥ २ ॥ अभिशप्तानां साक्षाच्छप्तानाम् ॥ ४ ॥ सत्यस्य सत्यलोकपतेः अग्रतः अव्ययस्य जरामरणवर्जितस्य। अप्रमेयस्य अनंतमाहात्म्यस्य। ब्रह्मणोऽग्रे शप्ता इति श्रुत्वा ॥ ५ ॥ सोऽव्ययो देवो ब्रह्मा ॥ ६ ॥ अनामयं कुशलं मा नः कालोत्यगात् प्राक्सत्रारम्भात्प्रतीकारः कर्तव्य इत्यर्थ ॥ ७ ॥ अपीति यथा गूढमग्निं मन्त्रेण देवा अपश्यन् एवं मोक्षणे हेतुं पश्यामेत्यर्थः ॥ ८ ॥ गुहागतं स्वकारणे वायौ लीनं अत एव नष्टं अदर्शनं गतम्। जनमेजयस्य स यज्ञो यथा न भवेद्यथा वा यज्ञस्य पराभवः स्यात्तथा पश्यामेत्यनुषज्यते। विनाशकरणाय प्रवृत्त इति शेषः ॥ ९ ॥ समयं ऐकमत्यम्। मन्त्रबुद्धिविशारदाः नीतिनिश्चयनिपुणाः ॥ १० ॥ भिक्षामः याचयामहे ॥ ११ ॥ निवर्त्स्यति निवृत्तो भविष्यति ॥ १३ ॥ प्रेत्य दोषाः हिंसाकृता नरकाः इह दोषा पुररुद्रदंशादयः। हेतुभिर्विप्रशापामोघत्वाभिः. कारणै स्तन्मूलैर्विप्रावज्ञादिभिः प्रदर्शितैरिति शेषः। तथा च न सर्पस्यापराधोऽस्तीति उक्त्वा यज्ञं निषेत्स्याम इत्यर्थ ॥१५॥

अथवाऽयमुपाध्यायः क्रतोस्तस्य भविष्यति ।
सर्पसत्रविधानज्ञो राजकार्यहिते रतः ॥ १६
तं गत्वा दशतां कश्चिद्भुजंगः स मरिष्यति ।
तस्मिन्मृते यज्ञकारे क्रतुः स न भविष्यति ॥ १७
ये चान्ये सर्पसत्रज्ञा भविष्यन्त्यस्य चर्त्विजः ।
तांश्च सर्वान्दशिष्यामः कृतमेवं भविष्यति ॥ १८
अपरे त्वब्रुवन्नागा धर्मात्मानो दयालवः ।
अबुद्धिरेषा भवतां ब्रह्महत्या न शोभनम् ॥ १९
सम्यक्सद्धर्ममूला वै व्यसने शान्तिरुत्तमा ।
अधर्मोत्तरता नाम कृत्स्नं व्यापादयेज्जगत् ॥ २०
अपरे त्वब्रुवन्नागाः समिद्धं जातवेदसम् ।
वर्षैर्निर्वापयिष्यामो मेघा भूत्वा सविद्युतः ॥ २१
स्रुग्भाण्डं निशि गत्वा च अपरे भुजगोत्तमाः ।
प्रमत्तानां हरन्त्वाशु विघ्न एवं भविष्यति ॥ २२
यज्ञे वा भुजगास्तस्मिञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
जनान्दशन्तु वै सर्वे नैवं त्रासो भविष्यति ॥ २३
अथवा संस्कृतं भोज्यं दूषयन्तु भुजंगमाः ।
स्वेन मूत्रपुरीषेण सर्वभोज्यविनाशिना ॥ २४
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र ऋत्विजोऽस्य भवामहे ।
यज्ञविघ्नं करिष्यामो दीयतां दक्षिणा इति ॥ २५
वश्यतां च गतोऽसौ नः करिष्यति यथेप्सितम् ।
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र जले प्रक्रीडितं नृपम् ॥ २६
गृहमानीय बध्नीमः क्रतुरेवं भवेन्न सः ।
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र नागाः पण्डितमानिनः ॥ २७
दशामस्तं प्रगृह्याशु कृतमेवं भविष्यति ।
छिन्नं मूलमनर्थानां मृते तस्मिन्भविष्यति ॥ २८
एषा नो नैष्ठिकी बुद्धिः सर्वेषामीक्षणश्रवः ।
अथ यन्मन्यसे राजन्द्रुतं तत्संविधीयताम् ॥ २९
इत्युक्त्वा समुदैक्षन्त वासुकिं पन्नगोत्तमम् ।
वासुकिश्चापि संचिन्त्य तानुवाच भुजङ्गमान् ३०
नैषा वो नैष्ठिकी बुद्धिर्मता कर्तुं भुजंगमाः ।
सर्वेषामेव मे बुद्धिः पन्नगानां न रोचते ॥ ३१
किं तत्र संविधातव्यं भवतां स्याद्धितं तु यत् ।
श्रेयः प्रसादनं मन्ये कश्यपस्य महात्मनः ॥ ३२
ज्ञातिवर्गस्य सौहार्दादात्मनश्च भुजंगमाः ।
न च जानाति मे बुद्धिः किंचित्कर्तुं वचो हि वः ३३
मयाहीदं विधातव्यं भवतां यद्धितं भवेत् ।
अनेनाहं भृशं तप्ये गुणदोषौ मदाश्रयौ ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि वासुक्यादिमन्त्रणे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७॥

---

सौतिरुवाच ।
सर्पाणां तु वचः श्रुत्वा सर्वेषामिति चेति च ।
वासुकेश्च वचः श्रुत्वा एलापत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १
न स यज्ञो न भविता न स राजा तथाविधः ।
जनमेजयः पाण्डवेयो यतोऽस्माकं महद्भयम् ॥ २
दैवेनोपहतो राजन्यो भवेदिह पूरुषः ।
स दैवमेवाश्रयते नान्यत्तत्र परायणम् ॥ ३
तदिदं चैवमस्माकं भयं पन्नगसत्तमाः ।
दैवमेवाश्रयामोऽत्र शृणुध्वं च वचो मम ॥ ४
अहं शापे समुत्सृष्टे समश्रौषं वचस्तदा ।
मातुरुत्संगमारूढो भयात्पन्नगसत्तमाः ॥ ५
देवानां पन्नगश्रेष्ठास्तीक्ष्णास्तीक्ष्णा इति प्रभो ।
पितामहमुपागम्य दुःखार्तानां महाद्युते ॥ ६

---

सम्यगिति । सम्यगविकलः सतां धर्मो देवब्राह्मणप्रार्थना तन्मूला । व्यसने आपदि शान्तिः आपन्नाशः । एकभूपहत्यादोषोऽनेकर्त्विगादिवधेन मार्ज्यते चेत्तावद्दोषापमार्जने कृत्स्नजगद्वधः कर्तव्यो भविष्यतीत्याह । अधर्मेति । सधर्ममूलेतिपाठे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चेत्युक्तेर्विष्णुवेदब्राह्मणरूपं धर्ममूलं समानमविरुद्धं यस्यां सा सधर्ममूलेत्यर्थः २० स्रुग्भाण्डं स्रुगादि यज्ञपात्रं प्रमत्तानां व्यग्राणाम् ॥ २२ ॥ नोऽस्माकं नैष्ठिकी पार्यन्तिकी ईक्षणमेव श्रवः श्रोत्रं यस्य तथाभूत हे वासुके ॥२९॥ नैषेति न मता न संमता ममेति शेषः ॥ ३१ ॥ किं तत्रेति । अत्यापदि ब्राह्मण एव शरणीकरणीय इति भावः ॥ ३२ ॥ मयेति । ज्ञातिरक्षानाशनिमित्तौ गुणदोषौ मदाश्रयौ ज्येष्ठत्वान्ममेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

सर्पाणामिति । इति चेति चेति तद्वचनाभिनयप्रदर्शनम् ॥१॥ नेति भवितैवेत्यर्थः न तथाविधः यस्य राष्ट्रमृत्विजः स्वरूपं वा द्रष्टुं शक्यं तादृशं न भवति । मन्त्रवीर्यसंपन्नत्वात् ॥ २ ॥ दैवेनेति । दृष्टदोषाभावेप्यागता विपन्नदृष्टोपायपरिहार्येत्यर्थः ॥ ३ ॥ अहमिति युग्मं वक्तुर्व्याकुलत्वात्समानार्थं संबोधनद्वयम् । देवानां वचः समश्रौषमिति संबन्धः।वच एवाऽऽह। तीक्ष्णास्तीक्ष्णा इति स्त्रिय इति शेषः। पुत्रमपि शपन्तीनां स्त्रीणां दौष्ट्यमालक्ष्य हा कष्टं कथं स्त्रीसङ्गिनां सुखं स्यादिति चिन्तया दुःखार्तानाम् ॥ ५ ॥

देवा ऊचुः ।
का हि लब्ध्वा प्रियान्पुत्राञ्छपेदेवं पितामह ।
ऋते कद्रूं तीक्ष्णरूपां देव देव तवाग्रतः ॥ ७
तथेति च वचस्तस्यास्त्वयाप्युक्तं पितामह ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं कारणं यन्न वारिता ॥ ८
ब्रह्मोवाच ।
बहवः पन्नगास्तीक्ष्णा घोररूपा विषोल्बणाः ।
प्रजानां हितकामोऽहं न च वारितवांस्तदा ॥ ९
ये दन्दशूकाः क्षुद्राश्च पापाचारा विषोल्बणाः ।
तेषां विनाशो भविता न तु ये धर्मचारिणः ॥ १०
यन्निमित्तं च भविता मोक्षस्तेषां महाभयात् ।
पन्नगानां निबोधध्वं तस्मिन्काले समागते ॥ ११
यायावरकुले धीमान्भविष्यति महानृषिः ।
जरत्कारुरिति ख्यातस्तपस्वी नियतेन्द्रियः ॥ १२
तस्य पुत्रो जरत्कारोर्भविष्यति तपोधनः ।
आस्तीको नाम यज्ञं स प्रतिषेत्स्यति तं तदा ।
तत्र मोक्ष्यन्ति भुजगा ये भविष्यन्ति धार्मिकाः॥१३
देवा ऊचुः ।
स मुनिप्रवरो ब्रह्मञ्जरत्कारुर्महातपाः ।
कस्यां पुत्रं महात्मानं जनयिष्यति वीर्यवान्॥१४
ब्रह्मोवाच ।
सनामायां सनामा स कन्यायां द्विजसत्तमः ।
अपत्यं वीर्यसंपन्नं वीर्यवाञ्जनयिष्यति ॥ १५
वासुकेः सर्पराजस्य जरत्कारुः स्वसा किल ।
स तस्यां भविता पुत्रः शापान्नागांश्च मोक्ष्यति१६
एलापत्र उवाच ।
एवमस्त्विति तं देवाः पितामहमथाब्रुवन् ।
उक्त्वैवं वचनं देवान्विरिञ्चिस्त्रिदिवं ययौ ॥ १७
सोऽहमेवं प्रपश्यामि वासुके भगिनीं तव ।
जरत्कारुरितिख्यातां तां तस्मै प्रतिपादय ॥ १८
भैक्षवद्भिक्षमाणाय नागानां भयशान्तये ।
ऋषये सुव्रतायैनामेष मोक्षः श्रुतो मया ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि एलापत्रवाक्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

सौतिरुवाच ।
एलापत्रवचः श्रुत्वा ते नागा द्विजसत्तम ।
सर्वे प्रहृष्टमनसः साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ १
ततः प्रभृति तां कन्यां वासुकिः पर्यरक्षत ।
जरत्कारुं स्वसारं वै परं हर्षमवाप च ॥ २
ततो नातिमहान्कालः समतीत इवाभवत् ।
अथ देवासुराः सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम् ॥ ३
तत्र नेत्रमभून्नागो वासुकिर्बलिनां वरः ।
समाप्यैव च तत्कर्म पितामहमुपागमन् ॥ ४
देवा वासुकिना सार्धं पितामहमथाब्रुवन् ।
भगवञ्छापभीतोऽयं वासुकिस्तप्यते भृशम् ॥ ५
अस्यैतन्मानसं शल्यं समुद्धर्तुं त्वमर्हसि ।
जनन्याः शापजं देव ज्ञातीनां हितमिच्छतः ॥ ६
हितो ह्ययं सदाऽस्माकं प्रियकारी च नागराट् ।
प्रसादं कुरु देवेश शमयास्य मनोज्वरम् ॥ ७
ब्रह्मोवाच ।
मयैव तद्वितीर्णं वै वचनं मनसाऽमराः ।
एलापत्रेण नागेन यदस्याभिहितं पुरा ॥ ८
तत्करोत्वेष नागेन्द्रः प्राप्तकालं वचः स्वयम् ।
विनशिष्यन्ति ये पापा न तु ये धर्मचारिणः ॥९
उत्पन्नः स जरत्कारुस्तपस्युग्रे रतो द्विजः ।
तस्यैष भगिनीं काले जरत्कारुं प्रयच्छतु ॥ १०
एलापत्रेण यत्प्रोक्तं वचनं भुजगेन ह ।
पन्नगानां हि तं देवास्तत्तथा न तदन्यथा ॥ ११
सौतिरुवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु नागेन्द्रः पितामहवचस्तदा ।
संदिश्य पन्नगान्सर्वान्वासुकिः शापमोहितः॥१२

---

तथेति त्वयाप्येतन्नोपेक्षणीयमिति भावः ॥ ८ ॥ उपेक्षाकारणं ब्रह्मोवाच बहव इति ॥ ९ ॥ दन्दशूकाः दंशनशीलाः । क्षुद्राः अल्पेऽपि निमित्ते प्राणग्राहकाः । पापाचाराः निर्निमित्तं हिंसकाः । मातापि पापिष्ठान्हन्ति किमुतान्ये इति भावः ॥ १० ॥ स्वसा भगिनी । मोक्ष्यति मोक्षयिष्यति ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एलापत्रेति ॥ १ ॥ समतीत इव अत्यल्पत्वात् शापात् प्राक् ह्येतोत्पत्तिस्ततोऽपि प्राक् प्रवृत्तं मन्थनमनुवदति शापमोक्षोपायं प्रदर्शयितुम् । अथेत्यादिना ॥ ३ ॥ नेत्रं रज्जुः ॥ ४ ॥ शल्यं शापजम् ॥ ६ ॥ प्रियकारी प्रतिकल्पं नेत्रीभूय मन्थनोपयोगित्वात् ॥ ७ ॥ जरत्कारौ जरत्कारुनिमित्तं

स्वसारमुद्यम्य तदा जरत्कारुमृषिं प्रति ।
सर्पान्बहूञ्जरत्कारौ नित्ययुक्तान्समादधत् ॥ १३

जरत्कारुर्यदा भार्यामिच्छेद्वरयितुं प्रभुः ।
शीघ्रमेत्य तदाख्येयं तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥१४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कार्वन्वेषणे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९

---

शौनक उवाच ।

जरत्कारुरिति ख्यातो यस्त्वया सूतनन्दन ।
इच्छामि तदहं श्रोतुं ऋषेस्तस्य महात्मनः ॥ १
किं कारणं जरत्कारोर्नामैतत्प्रथितं भुवि ।
जरत्कारुनिरुक्तिं त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २

सौतिरुवाच ।

जरेति क्षयमाहुर्वै दारुणं कारुसंज्ञितम् ।
शरीरं कारु तस्यासीत्तत्स धीमाञ्छनैः शनैः ॥३
क्षपयामास तीव्रेण तपसेत्यत उच्यते ।
जरत्कारुरिति ब्रह्मन्वासुकेर्भगिनी तथा ॥ ४
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा शौनकः प्राहसत्तदा ।
उग्रश्रवसमामन्त्र्य उपपन्नमिति ब्रुवन् ॥ ५

शौनक उवाच ।

उक्तं नाम यथापूर्वं सर्वं तच्छ्रुतवानहम् ।
यथा तु जातो ह्यास्तीक एतदिच्छामि वेदितुम् ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सूतः प्रोवाच शास्त्रतः ॥ ६

सौतिरुवाच ।

संदिश्य पन्नगान्सर्वान्वासुकिः सुसमाहितः ।
स्वसारमुद्यम्य तदा जरत्कारुमृषिं प्रति ॥ ७
अथकालस्य महतः स मुनिः संशितव्रतः ।
तपस्यभिरतो धीमान्स दारान्नाभ्यकाङ्क्षत ॥ ८
स तूर्ध्वरेतास्तपसि प्रसक्तः
स्वाध्यायवान्वीतभयः कृतात्मा ।
चचार सर्वां पृथिवीं महात्मा
न चापि दारान्मनसाप्यकाङ्क्षत ॥ ९

ततो परस्मिन्संप्राप्ते काले कस्मिंश्चिदेव तु ।
परिक्षिन्नाम राजासीद्ब्रह्मन्कौरववंशजः ॥ १०
यथा पाण्डुर्महाबाहुर्धनुर्धरवरो युधि ।
बभूव मृगयाशीलः पुराऽस्य प्रपितामहः ॥ ११
मृगान्विध्यन्वराहांश्च तरक्षून्महिषांस्तथा ।
अन्यांश्च विविधान्वन्यांश्चचार पृथिवीपतिः ॥१२
स कदाचिन्मृगं विध्वा बाणेनानतपर्वणा ।
पृष्ठतो धनुरादाय ससार गहने वने ॥ १३
यथैव भगवान्रुद्रो विध्वा यज्ञमृगं दिवि ।
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः पर्यन्वेष्टुमितस्ततः ॥ १४
न हि तेन मृगो विद्धो जीवन्गाच्छति वै वने ।
पूर्वरूपं तु तत्तूर्णं सोऽगात्स्वर्गगतिं प्रति ॥ १५
परिक्षितो नरेन्द्रस्य विद्धो यन्नष्टवान्मृगः ।
दूरं चापहृतस्तेन मृगेण स महीपतिः ॥ १६
परिश्रान्तः पिपासार्त आससाद मुनिं वने ।
गवां प्रचारेष्वासीनं वत्सानां मुखनिःसृतम् १७
भूयिष्ठमुपयुञ्जानं फेनमापिबतां पयः ।
तमभिद्रुत्य वेगेन स राजा संशितव्रतम् ॥ १८
अपृच्छद्धनुरुद्यम्य तं मुनिं क्षुच्छ्रमान्वितः ।
भो भो ब्रह्मन्नहं राजा परीक्षिदभिमन्युजः ॥ १९
मया विद्धो मृगो नष्टः कच्चित्तं दृष्टवानसि ।
स मुनिस्तं तु नोवाच किंचिन्मौनव्रते स्थितः २०
तस्य स्कन्धे मृतं सर्पं क्रुद्धो राजा समासजत् ।
समुत्क्षिप्य धनुष्कोट्या स चैनं समुपैक्षत ॥ २१

---

तदन्वेषणायेत्यर्थः। समादधत् सम्यक् नियोजितवान् ॥ १३॥ अन्वेषणफलमाह । जरत्कारुरिति ॥१४॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९ ॥

जरत्कारुरिति ॥ १ ॥ जरत्कारुनाम निर्वक्ति । जरेति । जरच्छब्दः क्षयवाची कारुशब्दो दारुणवाची । तस्यास्तीकपितुः शरीरं कारुकामायुद्धवमूलत्वात् दारुणमासीत् । तस्य तेन तपसा क्षेपणं कृतमतोऽसौ जरत्कारुरित्यर्थ ॥ ३ ॥ वासुकेर्भगिनी तथेति तादृश्येव । अभर्तृकाया युवत्याः शरीरक्षेपणमेव श्रेयस्करमिति भावः ॥ ४ ॥ प्राहसत् अतिजीर्णयोरपि ब्रह्मचर्यविनाशः प्रसक्त इत्याश्चर्यं मत्वेति भावः । आमन्त्र्य हे उग्रश्रव इति संबोध्य । उपपन्नं युक्तम् । यत्तुल्यवयोरूपयोर्विवाह इति भावः ॥ ५ ॥ सर्पसत्रकारणं वक्तुमाह । तत इत्यादिना । ततो वासुकेराश्वासनानन्तरं अपरास्मिन्पश्चाद्भूते कस्मिंश्चित्काले । अमङ्गलत्वान्नामाप्यवाच्यं कलेस्तदादौ इत्यर्थः ॥ १० ॥ पूर्वरूपमिति । परिक्षितः तूर्णं स्वर्गगतिं प्रति तत् मृगस्यादर्शनं पूर्वरूपं कारणं स राजा अगात्प्राप्तवान् तत एव हि मूढो राजा विप्रावमाननां शापमूलभूतां कृतवानित्यर्थः ॥ १५ ॥ प्रचारेषु गोष्ठेषु ॥ १७ ॥ उपयुंजानं भक्षयन्तम् ॥१८॥ समासजत् आरोपयामास धनुष्कोट्या धनुष्प्रान्तेन ॥ २१ ॥

न स किंचिदुवाचैनं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
स राजा क्रोधमुत्सृज्य व्यथितस्तं तथागतम्।
दृष्ट्वा जगाम नगरमृषिस्त्वासीत्तथैव सः॥ २२
न हि तं राजशार्दूलं क्षमाशीलो महामुनिः।
स्वधर्मनिरतं भूपं समाक्षिप्तोऽप्यधर्षयत्॥ २३
न हि तं राजशार्दूलस्तथा धर्मपरायणम्।
जानाति भरतश्रेष्ठस्तत एनमधर्षयत्॥ २४
तरुणस्तस्य पुत्रोऽभूत्तिग्मतेजा महातपाः।
शृङ्गी नाम महाक्रोधो दुष्प्रसादो महाव्रतः॥ २५
स देवं परमासीनं सर्वभूतहिते रतम्।
ब्रह्माणमुपतस्थे वै काले काले सुसंयतः॥ २६
स तेन समनुज्ञातो ब्रह्मणा गृहमेयिवान्।
सख्योक्तः क्रीडमानेन स तत्र हसता किल॥ २७
संरम्भात्कोपनोऽतीव विषकल्पो मुनेः सुतः।
उद्दिश्य पितरं तस्य यच्छ्रुत्वा रोषमाहरत्।
ऋषिपुत्रेण धर्मार्थं कृशेन द्विजसत्तम॥ २८

कृश उवाच।

तेजस्विनस्तव पिता तथैव च तपस्विनः।
शवं स्कन्धेन वहति मा शृङ्गिन्गर्वितो भव॥ २९
व्याहरत्स्वृषिपुत्रेषु मा स्म किंचिद्वचो वद।
अस्मद्विधेषु सिद्धेषु ब्रह्मवित्सु तपस्विषु॥ ३०
क्व ते पुरुषमानित्वं क्व ते वाचस्तथाविधाः।
दर्पजाः पितरं द्रष्टा यस्त्वं शवधरं तथा॥ ३१
पित्रा च तव तत्कर्म नानुरूपमिवात्मनः।
कृतं मुनिजनश्रेष्ठ येनाहं भृशदुःखितः॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि परिक्षिदुपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

---

सौतिरुवाच।

एवमुक्तः स तेजस्वी शृङ्गी कोपसमन्वितः।
मृतधारं गुरुं श्रुत्वा पर्यतप्यत मन्युना॥ १
स तं कृशमभिप्रेक्ष्य सूनृतां वाचमुत्सृजन्।
अपृच्छत्तं कथं तातः समेऽद्य मृतधारकः॥ २

कृश उवाच।

राज्ञा परिक्षिता तात मृगयां परिधावता।
अवसक्तः पितुस्तेऽद्य मृतः स्कन्धे भुजंगमः॥ ३

शृङ्गयुवाच

किं मे पित्रा कृतं तस्य राज्ञोऽनिष्टं दुरात्मनः।
ब्रूहि तत्कृश तत्त्वेन पश्य मे तपसो बलम्॥ ४

कृश उवाच।

स राजा मृगयां यातः परिक्षिदभिमन्युजः।
ससार मृगमेकाकी विद्ध्वा बाणेन शीघ्रगम्॥ ५
न चापश्यन्मृगं राजा चरंस्तस्मिन्महावने।
पितरं ते स दृष्ट्वैव पप्रच्छानभिभाषिणम्॥ ६
तं स्थाणुभूतं तिष्ठन्तं क्षुत्पिपासाश्रमातुरः।
पुनः पुनर्मृगं नष्टं पप्रच्छ पितरं तव॥ ७
स च मौनव्रतोपेतो नैव तं प्रत्यभाषत।
तस्य राजा धनुष्कोट्या सर्पं स्कन्धे समासजत्॥ ८
शृङ्गिंस्तव पिता सोऽपि तथैवास्ते यतव्रतः।
सोऽपि राजा स्वनगरं प्रस्थितो गजसाह्वयम्॥ ९

सौतिरुवाच।

श्रुत्वैवमृषिपुत्रस्तु शवं स्कन्धे प्रतिष्ठितम्।
कोपसंरक्तनयनः प्रज्वलन्निव मन्युना॥ १०
आविष्टः स हि कोपेन शशाप नृपतिं तदा।
वार्युपस्पृश्य तेजस्वी क्रोधवेगबलात्कृतः॥ ११

शृङ्गयुवाच।

योऽसौ वृद्धस्य तातस्य तथा कृच्छ्रगतस्य ह।
स्कन्धे मृतं समास्राक्षीत्पन्नगं राजकिल्बिषी॥ १२

---

स राजेति। तं तथागतं दृष्टसमाधिं दृष्ट्वा क्रोधमुत्सृज्य व्यथितः सन् जगाम नगरम्। व्यथितेनापि सर्पापसारणं न कृतं दीर्घद्रोहित्वात्क्षत्रस्य किंचित्क्रोधोनुवर्तत एवेति ज्ञेयम्। तयोक्तं पौप्येणः—क्षत्रियस्य वाक्सूनृता हृदयं तीक्ष्णधारमिति॥ २२॥ तदिदमुक्तम्। स्वधर्मनिरतमिति। स्वधर्मः तीक्ष्णहृदयत्वं तन्निरतम्। जातिस्वभावज्ञो मुनिः समाक्षिप्तोऽपि अधर्षयत्। धृष्टत्वं कोपस्य निग्रहे धैर्यं अकरोत्॥ २३॥ संरम्भात्क्रोधावेशात् कोपनस्तीक्ष्णः॥ २८॥ पित्रा चेति तत्तत्र धर्षणे विषये अपराधाख्यं च तव पित्रा न कृतं येन तव पितुर्धर्षणे नाहं भृशं दुःखितोऽस्मि। आत्मन इव दृष्टान्तः। विनाऽपराधं तव पितुर्धर्षणा दृष्टा मातिपितुर्धर्षणयेवाहं भृशं दुःखितोऽस्मीत्यर्थः॥ ३२॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

---

एवमुक्त इति। मन्युना क्रोधेन॥ १॥ अनभिभाषिणं मौनशीलम्॥ ६॥ नष्टं पलायनेनादर्शनं गतम्॥ ७॥ गजसाह्वयं हस्तिनापुरम्॥ ९॥ क्रोधवेगबलात्कृतः क्रोधावेशपरवशः॥ ११॥ कृच्छ्रगतस्य मौनव्रतधरस्य। राजा चासौ किल्बिषी च राजकल्बिषी॥ १२॥

तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगेश्वरः ।
आशीविषस्तिग्मतेजा मद्वाक्यबलचोदितः ॥ १३
सप्तरात्रादितो नेता यमस्य सदनं प्रति ।
द्विजानामवमन्तारं कुरूणामयशस्करम् ॥ १४
सौतिरुवाच ।
इति शप्त्वाऽतिसंक्रुद्धः शृङ्गी पितरमभ्यगात् ।
आसीनं गोव्रजे तस्मिन्वहन्तं शवपन्नगम् ॥ १५
स तमालक्ष्य पितरं शृङ्गी स्कन्धगतेन वै ।
शवेन भुजगेनासीद्भूयः क्रोधसमाकुलः ॥ १६
दुःखाच्चाश्रूणि मुमुचे पितरं चेदमब्रवीत् ।
श्रुत्वेमां धर्षणां तात तव तेन दुरात्मना ॥ १७
राज्ञा परिक्षिता कोपादशपन्तमहं नृपम् ।
यथार्हति स एवोग्रं शापं कुरुकुलाधमः ।
सप्तमेऽहनि तं पापं तक्षकः पन्नगोत्तमः ॥ १८
वैवस्वतस्य सदनं नेता परमदारुणम् ।
तमब्रवीत्पिता ब्रह्मंस्तथा कोपसमन्वितम् ॥ १९
शमीक उवाच ।
न मे प्रियं कृतं तात नैष धर्मस्तपस्विनाम् ।
वयं तस्य नरेन्द्रस्य विषये निवसामहे ॥ २०
न्यायतो रक्षितास्तेन तस्य पापं न रोचये ।
सर्वथा वर्तमानस्य राज्ञो ह्यस्मद्विधैः सदा ॥ २१
क्षन्तव्यं पुत्रधर्मो हि हतो हन्ति न संशयः ।
यदि राजा न संरक्षेत्पीडा नः परमा भवेत् ॥ २२
न शक्नुयाम चरितुं धर्मं पुत्र यथासुखम् ।
रक्ष्यमाणा वयं तात राजभिर्धर्मदृष्टिभिः ॥ २३
चरामो विपुलं धर्मं तेषां भागोऽस्ति धर्मतः ।
सर्वथा वर्तमानस्य राज्ञः क्षन्तव्यमेव हि ॥ २४
परिक्षित्तु विशेषेण यथाऽस्य प्रपितामहः ।
रक्षत्यस्मांस्तथा राज्ञा रक्षितव्याः प्रजा विभो ॥ २५
तेनेह क्षुधितेनाद्य श्रान्तेन च तपस्विना ।
अजानता कृतं मन्ये व्रतमेतादिदं मम ॥ २६
अराजके जनपदे दोषा जायन्ति वै सदा ।
उद्वृत्तं सततं लोकं राजा दण्डेन शास्ति वै ॥ २७
दण्डात्प्रतिभयं भूयः शान्तिरुत्पद्यते तदा ।
नोद्विग्नश्चरते धर्मं नोद्विग्नश्चरते क्रियाम् ॥ २८
राज्ञा प्रतिष्ठितो धर्मो धर्मात्स्वर्गः प्रतिष्ठितः ।
राज्ञो यज्ञक्रियाः सर्वा यज्ञाद्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥ २९
देवाद्वृष्टिः प्रवर्तेत वृष्टेरोषधयः स्मृताः ।
ओषधिभ्यो मनुष्याणां धारयन्सततं हितम् ॥ ३०
मनुष्याणां च यो धाता राजा राज्यकरः पुनः ।
दशश्रोत्रियसमो राजा इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३१
तेनेह क्षुधितेनाद्य श्रान्तेन च तपस्विना ।
अजानता कृतं मन्ये व्रतमेतदिदं मम ॥ ३२
कस्मादिदं त्वया बाल्यात्सहसा दुष्कृतं कृतम् ।
न ह्यर्हति नृपः शापमस्मत्तः पुत्र सर्वथा ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि परिक्षिच्छापे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१ ॥

---

शृङ्ग्युवाच ।
यद्येतत्साहसं तात यदि वा दुष्कृतं कृतम् ।
प्रियं वाऽप्यप्रियं वा ते वागुक्ता न मृषा भवेत् ॥१
नैवान्यथेदं भविता पितरेष ब्रवीमि ते ।
नाहं मृषा ब्रवीम्येवं स्वैरेष्वपि कुतः शपन् ॥ २
शमीक उवाच ।
जानाम्युग्रप्रभावं त्वां तात सत्यगिरं तथा ।
नानृतं चोक्तपूर्वं ते नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ ३
पित्रा पुत्रो वयस्थोऽपि सततं वाच्य एव तु ।
यथा स्याद्गुणसंयुक्तः प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ४
किं पुनर्बाल एव त्वं तपसा भावितः सदा ।
वर्धते च प्रभवतां कोपोऽतीव महात्मनाम् ॥ ५
सोऽहं पश्यामि वक्तव्यं त्वयि धर्मभृतां वर ।
पुत्रत्वं बालतां चैव तवावेक्ष्य च साहसम् ॥ ६

---

आशीविषः दंष्ट्राविषः ॥ १३ ॥ नेता नेष्यति ॥ १४ ॥ विषये देशे ॥ २० ॥ तस्य पापं द्रोहं सर्वथा अस्मास्वपराधेनाऽपि वर्तमानस्य ॥ २१ ॥ हतो नाशितो धर्मो हन्त्येव धर्मनाशमेवाह यदीत्यादिना ॥२२॥ राज्ञा परिक्षिता रक्षितव्याः । अस्य नाशे प्रजोच्छेदकृतं पापं तवेति भावः ॥ २५ ॥ व्रतं अजानतेति संबन्धः ॥ २६ ॥ दोषा दस्युपीडादयः जायन्ति उद्भवन्ति ॥ २७ ॥ धारयन् कुर्वन्मनुष्याणां हितम् ॥ ३० ॥ धाता पोषकः श्रोत्रियो वेदाध्यायी अक्षराधिक्यमार्षम् ॥ ३१ ॥ बाल्यात् अविवेकात् ॥ ३३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

यद्येतदिति ॥ १ ॥ स्वैरेष्वपि परिहासादिष्वपि ॥ २ ॥ वयस्थोऽपि प्रौढोऽपि वाच्यः शास्यः ॥ ४ ॥ प्रभवतां योगैश्वर्यवतां कोपोऽतीव वर्धते ॥ ५ ॥ स च तपोनाशक इति शिक्षणीय एव त्वं मयेत्याशयेनाह सोऽहमिति। बालतां विवेकशून्यताम् । साहसं आकस्मिकमकार्यकारित्वं पुत्रत्वं चावेक्ष्य त्वयि वक्तव्यं उपदेश्यत्वं पश्यामि॥६

स त्वं शमपरो भूत्वा वन्यमाहारमाचरन् ।
चर क्रोधमिमं हत्वा नैवं धर्मं प्रहास्यसि ॥ ७
क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःखसंचितम् ।
ततो धर्मविहीनानां गतिरिष्टा न विद्यते ॥ ८
शम एव यतीनां हि क्षमिणां सिद्धिकारकः ।
क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ॥ ९
तस्माच्चरेथाः सततं क्षमाशीलो जितेन्द्रियः ।
क्षमया प्राप्स्यसे लोकान्ब्रह्मणः समनन्तरान् ॥ १०
मया तु शममास्थाय यच्छक्यं कर्तुमद्य वै ।
तत्करिष्याम्यहं तात प्रेषयिष्ये नृपाय वै ॥ ११
मम पुत्रेण शप्तोऽसि बालेन कृशबुद्धिना ।
ममेमां धर्षणां त्वत्तः प्रेक्ष्य राजन्नमर्षिणा ॥ १२

सौतिरुवाच ।

एवमादिश्य शिष्यं स प्रेषयामास सुव्रतः ।
परिक्षिते नृपतये दयापन्नो महातपाः ॥ १३
संदिश्य कुशलप्रश्नं कार्यवृत्तान्तमेव च ।
शिष्यं गौरमुखं नाम शीलवन्तं समाहितम् ॥ १४
सोऽभिगम्य ततः शीघ्रं नरेन्द्रं कुरुवर्धनम् ।
विवेश भवनं राज्ञः पूर्वं द्वास्थैर्निवेदितः ॥ १५
पूजितस्तु नरेन्द्रेण द्विजो गौरमुखस्तदा ।
आचख्यौ च परिश्रान्तो राज्ञः सर्वमशेषतः ॥१६
शमीकवचनं घोरं यथोक्तं मन्त्रिसंनिधौ ।

गौरमुख उवाच ।

शमीको नाम राजेन्द्र वर्तते विषये तव ॥ १७
ऋषिः परमधर्मात्मा दान्तः शान्तो महातपाः ।
तस्य त्वया नरव्याघ्र सर्पः प्राणैर्वियोजितः ॥ १८
अवसक्तो धनुष्कोट्या स्कन्धे मौनान्वितस्य च ।
क्षान्तवांस्तव तत्कर्म पुत्रस्तस्य न चक्षमे ॥ १९
तेन शप्तोऽसि राजेन्द्र पितुरज्ञातमद्य वै ।
तक्षकः सप्तरात्रेण मृत्युस्तव भविष्यति ॥ २०
तत्र रक्षां कुरुष्वेति पुनः पुनरथाब्रवीत् ।
तदन्यथा न शक्यं च कर्तुं केनचिदप्युत ॥ २१
न हि शक्नोति तं यन्तुं पुत्रं कोपसमन्वितम् ।
ततोऽहं प्रेषितस्तेन तव राजन्हितार्थिना ॥ २२

सौतिरुवाच ।

इति श्रुत्वा वचो घोरं स राजा कुरुनन्दनः ।
पर्यतप्यत तत्पापं कृत्वा राजा महातपाः ॥ २३
तं च मौनव्रतं श्रुत्वा वने मुनिवरं तदा ।
भूय एवाभवद्राजा शोकसंतप्तमानसः ॥ २४
अनुक्रोशात्मतां तस्य शमीकस्यावधार्य च ।
पर्यतप्यत भूयोऽपि कृत्वा तत्किल्बिषं मुनेः ॥ २५
न हि मृत्युं तथा राजा श्रुत्वा वै सोऽन्वतप्यत ।
अशोचदमरप्रख्यो यथा कृत्वेह कर्म तत् ॥ २६
ततस्तं प्रेषयामास राजा गौरमुखं तदा ।
भूयः प्रसादं भगवान्करोत्विह ममेति वै ॥ २७
तस्मिंश्च गतमात्रेऽथ राजा गौरमुखे तदा ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास सह संविग्नमानसः ॥ २८
संमन्त्र्य मन्त्रिभिश्चैव स तथा मन्त्रतत्त्ववित् ।
प्रासादं कारयामास एकस्तम्भं सुरक्षितम् ॥२९
रक्षां च विदधे तत्र भिषजश्चौषधानि च ।
ब्राह्मणान्मन्त्रसिद्धांश्च सर्वतो वै न्ययोजयत् ॥३०
राजकार्याणि तत्रस्थः सर्वाण्येवाकरोच्च सः ।
मन्त्रिभिः सह धर्मज्ञः समन्तात्परिरक्षितः ॥ ३१
न चैनं कश्चिदारूढं लभते राजसत्तमम् ।
वातोऽपि निश्चरंस्तत्र प्रवेशे विनिवार्यते ॥ ३२
प्राप्ते च दिवसे तस्मिन्सप्तमे द्विजसत्तमः ।
काश्यपोऽभ्यागमद्विद्वांस्तं राजानं चिकित्सितुम् ॥
श्रुतं हि तेन तदभूद्यथा तं राजसत्तमम् ।
तक्षकः पन्नगश्रेष्ठो नेष्यते यमसादनम् ॥ ३४
तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण करिष्येऽहमपज्वरम् ।
तत्र मेऽर्थश्च धर्मश्च भवितेति विचिन्तयन् ॥ ३५
तं ददर्श स नागेन्द्रस्तक्षकः काश्यपं पथि ।
गच्छन्तमेकमनसं द्विजो भूत्वा वयोऽतिगः ॥ ३६
तमब्रवीत्पन्नगेन्द्रः काश्यपं मुनिपुंगवम् ।

---

सत्वमिति । क्रोधाद्धनने धर्मं हास्यस्येवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ यतीनां आमुष्मिकहितार्थं यतमानानाम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मणः समनन्तरान् प्रत्यासन्नान् क्रममुक्तिप्रदानित्यर्थः ॥ १० ॥ प्रेषयिष्ये संदेशहरमिति शेषः ॥ ११ ॥ परिश्रान्तः परिवर्जने श्रमहीनः ॥ १६ ॥ न चक्षमे न क्षान्तवान् ॥ १९ ॥ तेन च पितुरज्ञातं यथा स्यात्तथा शप्तोऽसि ॥ २० ॥ पापं कृत्वैव पर्यतप्यत न तु मृत्युं श्रुत्वा ॥ २३॥ ब्राह्मणस्यावज्ञा तत्रापि मौनिनस्तत्रापि मयि दयालोरित्यालोच्य शोकोऽतीव तस्य ववृधे इत्याह । तं चेत्यादिना ॥ २४ ॥ अनुक्रोशात्मतां दयालुताम् ॥ २५ ॥ सर्वत एवात्मानं गोपायेदिति शास्त्रादात्मरक्षार्थं यत्नं कृतवानित्याह । प्रासादमित्यादिना ॥ २९ ॥ आरूढं प्रासादारूढम् । न लभते द्रष्टुमपि न शक्नोति । आरोढुमिति पाठे एनं प्रासादमिति द्रष्टव्यम् । राजसत्तमं राज्ञः समीचीनतमम् ॥ ३२ ॥ चिकित्सितुं निर्विषं कर्तुम् ॥ ३३ ॥ अर्थः स्पष्ट एव भविता । धर्मोऽपि सर्वलोकोपकारकस्य राज्ञो जीवनेन । एतेन मृत्यस्यापि निष्कपटं महत्सेवांशुवता

क भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति ॥

काश्यप उवाच ।

नृपं कुरुकुलोत्पन्नं परिक्षितमरिन्दमम् ।
तक्षकः पन्नगश्रेष्ठस्तेजसाऽद्य प्रधक्ष्यति ॥ ३८
तं दष्टं पन्नगेन्द्रेण तेनाग्निसमतेजसम् ।
पाण्डवानां कुलकरं राजानममितौजसम् ।
गच्छामि त्वरितं सौम्य सद्यः कर्तुमपज्वरम् ॥३९

तक्षक उवाच ।

अहं स तक्षको ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम् ।
निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम्॥४०

काश्यप उवाच ।

अहं तं नृपतिं गत्वा त्वया दष्टमपज्वरम् ।
करिष्यामीति मे बुद्धिर्विद्याबलसमन्विता ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि काश्यपागमने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

तक्षक उवाच ।

यदि दष्टं मयेह त्वं शक्तः किंचिच्चिकित्सितुम् ।
ततो वृक्षं मयादष्टमिमं जीवय काश्यप ॥ १
परं मन्त्रबलं यत्ते तद्दर्शय यतस्व च ।
न्यग्रोधमेनं धक्ष्यामि पश्यतस्ते द्विजोत्तम ॥ २

काश्यप उवाच ।

दश नागेन्द्र वृक्षं त्वं यद्येतदभिमन्यसे ।
अहमेनं त्वया दष्टं जीवयिष्ये भुजंगम ॥ ३

सौतिरुवाच ।

एवमुक्तः स नागेन्द्रः काश्यपेन महात्मना ।
अदशद्वृक्षमभ्येत्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तमः ॥ ४
स वृक्षस्तेन दष्टस्तु पन्नगेन महात्मना ।
आशीविषविषोपेतः प्रजज्वाल समन्ततः ॥ ५
तं दग्ध्वा स नगं नागः काश्यपं पुनरब्रवीत् ।
कुरु यत्नं द्विजश्रेष्ठ जीवयैनं वनस्पतिम् ॥ ६

सौतिरुवाच ।

भस्मीभूतं ततो वृक्षं पन्नगेन्द्रस्य तेजसा ।
भस्म सर्वं समाहृत्य काश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥७
विद्याबलं पन्नगेन्द्र पश्य मेऽद्य वनस्पतौ ।
अहं संजीवयाम्येनं पश्यतस्ते भुजंगम ॥ ८
ततः स भगवान्विद्वान्काश्यपो द्विजसत्तमः ।
भस्मराशीकृतं वृक्षं विद्यया समजीवयत् ॥ ९
अङ्कुरं कृतवांस्तत्र ततः पर्णद्वयान्वितम् ।
पलाशिनं शाखिनं च तथा विटपिनं पुनः ॥ १०
तं दृष्ट्वा जीवितं वृक्षं काश्यपेन महात्मना ।
उवाच तक्षको ब्रह्मन्नैतदत्यद्भुतं त्वयि ॥ ११
द्विजेन्द्र यद्विषं हन्या मम वा मद्विधस्य वा ।
कं त्वमर्थमभिप्रेप्सुर्यासि तत्र तपोधन ॥ १२
यत्तेभिलषितं प्राप्तुं फलं तस्मान्नृपोत्तमात् ।
अहमेव प्रदास्यामि तत्ते यद्यपि दुर्लभम् ॥ १३
विप्रशापाभिभूते च क्षीणायुषि नराधिपे ।
घटमानस्य ते विप्र सिद्धिः संशयिता भवेत्॥१४
ततो यशः प्रदीप्तं ते त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
निरंशुरिव घर्मांशुरन्तर्धानमितो व्रजेत् ॥ १५

काश्यप उवाच ।

धनार्थी याम्यहं तत्र तन्मे देहि भुजंगम ।
ततोऽहं विनिवर्तिष्ये स्वापतेयं प्रगृह्य वै ॥ १६

तक्षक उवाच ।

यावद्धनं प्रार्थयसे तस्माद्राज्ञस्ततोऽधिकम् ।
अहमेव प्रदास्यामि निवर्तस्व द्विजोत्तम ॥ १७

सौतिरुवाच ।

तक्षकस्य वचः श्रुत्वा काश्यपो द्विजसत्तमः ।
प्रदध्यौ सुमहातेजा राजानं प्रति बुद्धिमान् ॥ १८
दिव्यज्ञानः स तेजस्वी ज्ञात्वा तं नृपतिं तदा ।
क्षीणायुषं पाण्डवेयमपावर्तत काश्यपः ॥ १९
लब्ध्वा वित्तं मुनिवरस्तक्षकाद्यावदीप्सितम् ।
निवृत्ते काश्यपे तस्मिन्समयेन महात्मनि ॥ २०

---

धर्मवृद्धिरस्तीति ज्ञेयम् ॥ ३५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

यदीति ॥१॥ दश दंशं कुरु॥३॥ नगं वृक्षम् ॥६॥ नैतदिति हे ब्रह्मन् त्वयि सर्वशक्तिमति ब्रह्मीभूते एतत् अद्भुतं न । एतदिति पाठे यथाश्रुतोऽर्थः॥ ११ ॥ प्राप्तुं अभिलषितं फलमित्यन्वयः ॥ १३ ॥ घटमानस्य सज्जमानस्य ॥१४॥ निरंशुः राह्वादिना हतप्रभः ॥ १५ ॥ स्वापतेयं हिरण्यं स्वं धनं तस्य पतिः अग्निर्भुवद्रयिपतीरयीणामिति लिङ्गात् रयिरिति धननाम स्वपतेरिदं स्वापतेयम् । आग्नेयं वै हिरण्यमिति श्रुतेश्च । 'द्रव्यं वित्तं स्वापतेयम्' इत्यमरः ॥ १६ ॥ प्रदध्यौ ध्यानं चक्रे राजानं प्रति राज्ञो मृत्युमुद्दिश्येत्यर्थः ॥ १८ ॥ समयेन कालेन संकेतविशेषेण गुप्तवेषेणेति वा ॥ २० ॥

वेष्टयित्वा च वेगेन विनद्य च महास्वनम् ।
अदशत्पृथिवीपालं तक्षकः पन्नगेश्वरः ॥

आदि० ४३.३६

जगाम तक्षकस्तूर्णं नगरं नागसाह्वयम्।
अथ शुश्राव गच्छन्स तक्षको जगतीपतिम् ॥ २१
मन्त्रैर्गदैर्विषहरै रक्ष्यमाणं प्रयत्नतः।

सौतिरुवाच।

स चिन्तयामास तदा मायायोगेन पार्थिवः ॥ २२
मया वञ्चयितव्योऽसौ क उपायो भवेदिति।
ततस्तापसरूपेण प्राहिणोत्स भुजंगमान् ॥ २३
फलदर्भोदकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः।

तक्षक उवाच।

गच्छध्वं यूयमव्यग्रा राजानं कार्यवत्तया ॥ २४
फलपुष्पोदकं नाम प्रतिग्राहयितुं नृपम्।

सौतिरुवाच।

ते तक्षकसमादिष्टास्तथा चक्रुर्भुजंगमाः ॥ २५
उपनिन्युस्तथा राज्ञे दर्भानापः फलानि च।
तच्च सर्वं स राजेन्द्रः प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥ २६
कृत्वा तेषां च कार्याणि गम्यतामित्युवाच तान्।
गतेषु तेषु नागेषु तापसच्छद्मरूपिषु ॥ २७
अमात्यान्सुहृदश्चैव प्रोवाच स नराधिपः।
भक्षयन्तु भवन्तो वै स्वादूनीमानि सर्वशः ॥ २८
तापसैरुपनीतानि फलानि सहिता मया।
ततो राजा ससचिवः फलान्यादातुमैच्छत ॥ २९
विधिना संप्रयुक्तो वै ऋषिवाक्येन तेन तु।
यस्मिन्नेव फले नागस्तमेवाभक्षयत्स्वयम् ॥ ३०
ततो भक्षयतस्तस्य फलात्क्रिमिरभूदणुः।
ह्रस्वकः कृष्णनयनस्ताम्रवर्णोऽथ शौनक ॥ ३१
स तं गृह्य नृपश्रेष्ठः सचिवानिदमब्रवीत्।
अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥ ३२
सत्यवागस्तु स मुनिः क्रिमिर्मां दशतामयम्।
तक्षको नाम भूत्वा वै तथा परिहृतं भवेत् ॥ ३३
ते चैनमन्ववर्तन्त मन्त्रिणः कालचोदिताः।
एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संनिवेश्य ह ॥ ३४
क्रिमिकं प्राहसत्तूर्णं मुमूर्षुर्नष्टचेतनः।
प्रहसन्नेव भोगेन तक्षकेण त्ववेष्ट्यत ॥ ३५
तस्मात्फलाद्विनिष्क्रम्य यत्तद्राज्ञे निवेदितम्।
वेष्टयित्वा च वेगेन विनद्य च महास्वनम्।
अदशत्पृथिवीपालं तक्षकः पन्नगेश्वरः ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि तक्षकदंशे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३॥

---

सौतिरुवाच।

ते तथा मन्त्रिणो दृष्ट्वा भोगेन परिवेष्टितम्।
विषण्णवदनाः सर्वे रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ १
तं तु नादं ततः श्रुत्वा मन्त्रिणस्ते प्रदुद्रुवुः।
अपश्यन्त तथा यान्तमाकाशे नागमद्भुतम् ॥ २
सीमन्तमिव कुर्वाणं नभसः पद्मवर्चसम्।
तक्षकं पन्नगश्रेष्ठं भृशं शोकपरायणाः ॥ ३
ततस्तु ते तद्गृहमग्निनावृतं
प्रदीप्यमानं विषजेन भोगिनः।
भयात्परित्यज्य दिशः प्रपेदिरे
पपात राजाऽशनिताडितो यथा ॥ ४
ततो नृपे तक्षकतेजसा हते
प्रयुज्य सर्वाः परलोकसत्क्रियाः।
शुचिर्द्विजो राजपुरोहितस्तदा
तथैव ते तस्य नृपस्य मन्त्रिणः ॥ ५
नृपं शिशुं तस्य सुतं प्रचक्रिरे
समेत्य सर्वे पुरवासिनो जनाः।
नृपं यमाहुस्तममित्रघातिनं
कुरुप्रवीरं जनमेजयं जनाः ॥ ६
स बाल एवार्यमतिर्नृपोत्तमः
सहैव तैर्मन्त्रिपुरोहितैस्तदा।
शशास राज्यं कुरुपुंगवाग्रजो
यथाऽस्य वीरः प्रपितामहस्तथा ॥ ७
ततस्तु राजानममित्रतापनं
समीक्ष्य ते तस्य नृपस्य मन्त्रिणः।
सुवर्णवर्माणमुपेत्य काशिपं
वपुष्टमार्थं वरयांप्रचक्रमुः ॥ ८

---

गदैः दंशस्थाने क्षुरेणोत्कीर्णे मर्दमानैरौषधविशेषैः ॥ २२ आपः अपः ॥ २६ ॥ तेषां कार्याणि पारितोषिकदानानि ॥ २७ ॥ आदातुं भक्षितुम् ॥ २९ ॥ विधिना दैवेन। तमेव तदेव ॥ ३० ॥ ह्रस्वक इत्सितो ह्रस्वः ॥ ३१ ॥ परिहृतं परिहारः ब्राह्मणावमाननादोषस्य भवेत् ॥ ३३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

---

ते तथेति ॥ १ ॥ सीमन्तं स्त्रीणां द्विफालवद्वेषु केशेषु मध्ये सिंदूररेखा। तं कुर्वाणं पद्मवत् रक्तवर्णत्वात्। आकाशस्य च नीलत्वात् ॥ ३ ॥ अशनिताडितो वज्राहतः ॥ ४ ॥ प्रपितामहो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥ वपुष्टमा काशिराजकन्या ॥ ८ ॥

ततः स राजा प्रददौ वपुष्टमां
कुरुप्रवीराय परीक्ष्य धर्मतः ।
स चापि तां प्राप्य मुदायुतोऽभवन्
न चान्यनारीषु मनो दधे क्वचित् ॥ ९
सरःसु फुल्लेषु वनेषु चैव
प्रसन्नचेता विजहार वीर्यवान् ।
तथा स राजन्यवरो विजह्रिवान्
यथोर्वशीं प्राप्य पुरा पुरूरवाः ॥ १०
वपुष्टमा चापि वरं पतिव्रता
प्रतीतरूपा समवाप्य भूपतिम् ।
भावेन रामा रमयांबभूव
विहारकालेष्ववरोधसुन्दरी ॥ ११

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जनमेजयराज्याभिषेके चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

---

सौतिरुवाच ।
एतस्मिन्नेव काले तु जरत्कारुर्महातपाः ।
चचार पृथिवीं कृत्स्नां यत्र सायंगृहो मुनिः ॥ १
चरन्दीक्षां महातेजा दुश्चरामकृतात्मभिः ।
तीर्थेष्वाप्लवनं कृत्वा पुण्येषु विचचार ह ॥ २
वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्नहरहर्मुनिः ।
स ददर्श पितॄन्गर्ते लम्बमानानधोमुखान् ॥ ३
एकतन्त्ववशिष्टं वै वीरणस्तम्बमाश्रितान् ।
तं तन्तुं च शनैराखुमाददानं बिलेशयम् ॥ ४
निराहारान्कृशान्दीनान्गर्ते स्वत्राणमिच्छतः ।
उपसृत्य स तान्दीनान्दीनरूपोऽभ्यभाषत ॥ ५
के भवन्तोऽवलम्बन्ते वीरणस्तम्बमाश्रिताः ।
दुर्बलं खादितैर्मूलैराखुना बिलवासिना ॥ ६
वीरणस्तम्बके मूलं यदप्येकमिहस्थितम् ।
तदप्ययं शनैराखुरादत्ते दशनैः शितैः ॥ ७
छेत्स्यतेऽल्पावशिष्टत्वादेतदप्यचिरादिव ।
ततस्तु पतितारोऽत्र गर्ते व्यक्तमधोमुखाः ॥ ८
तस्य मे दुःखमुत्पन्नं दृष्ट्वा युष्मानधोमुखान् ।
कृच्छ्रमापदमापन्नान्प्रियं किं करवाणि वः ॥ ९
तपसोऽस्य चतुर्थेन तृतीयेनाथवा पुनः ।
अर्धेन वापि निस्तर्तुमापदं ब्रूत मा चिरम् ॥ १०
अथवाऽपि समग्रेण तरन्तु तपसा मम ।
भवन्तः सर्व एवेह काममेवं विधीयताम् ॥ ११

पितर ऊचुः ।
वृद्धो भवान्ब्रह्मचारी यो न स्त्रातुमिहेच्छसि ।
न तु विप्राग्र्यतपसा शक्यते तद्व्यपोहितुम् ॥ १२
अस्ति नस्तात तपसः फलं प्रवदतां वर ।
संतानप्रक्षयाद्ब्रह्मन्पताम निरये शुचौ ॥ १३
संतानं हि परो धर्म एवमाह पितामहः ।
लम्बतामिह नस्तात न ज्ञानं प्रतिभाति वै ॥ १४
येन त्वां नाभिजानीमो लोके विख्यातपौरुषम् ।
वृद्धो भवान्महाभागो यो नः शोच्यान्सुदुःखितान् ॥
शोचते चैव कारुण्याच्छृणुये वै वयं द्विज ।
यायावरा नाम वयमृषयः संशितव्रताः ॥ १६
लोकात्पुण्यादिह भ्रष्टाः संतानप्रक्षयान्मुने ।
प्रनष्टं नस्तपस्तीव्रं न हि नस्तन्तुरस्ति वै ॥ १७
अस्ति त्वेकोऽद्य नस्तन्तुः सोऽपि नास्ति यथा तथा ।
मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां तप एकं समास्थितः १८
जरत्कारुरिति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ।
नियतात्मा महात्मा च सुव्रतः सुमहातपाः ॥ १९
तेन स्म तपसो लोभात्कृच्छ्रमापादिता वयम् ।
न तस्य भार्या पुत्रो वा बान्धवो वाऽस्ति कश्चन २०
तस्माल्लम्बामहे गर्ते नष्टसंज्ञा ह्यनाथवत् ।
स वक्तव्यस्त्वया दृष्टो ह्यस्माकं नाथवत्तया ॥ २१
पितरस्तेऽवलम्बन्ते गर्ते दीना अधोमुखाः ।
साधु दारान्कुरुष्वेति प्रजामुत्पादयेति च ॥ २२

---

वरं वरणीयम् । प्रतीतरूपा हृष्टरूपा । प्रतीतं प्रख्यातं रूपं सौंदर्यं यस्या इति वा । भावेनानुरागातिशयेन । 'अनुभूतमिहाकूतं मृगयापदमापदाम् । विष्णुरातोऽपियद्रागादगात्तक्षकभक्ष्यताम्' इति रत्नगर्भः ॥ ११ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

---

एतस्मिन्निति ॥ १ ॥ स्वत्राणं स्वरक्षाम् । दीनरूपः करुणापीडितत्वात् ॥ ५ ॥ पतितारः पतिष्यथ ॥ ८ ॥ कृच्छ्रं दुस्तरं यथा स्यात्तथा । आपदं आपन्नान्प्राप्तान् ॥९॥ तत् व्यपोहितुं अस्मदीयं कृच्छ्रं अपनेतुम् ॥ १२ ॥ प्रवदतां प्रवक्तॄणां अध्यापकानाम् ॥ १३ ॥ ज्ञानं संज्ञा यया संज्ञया त्वां जानीमः मूर्च्छितकल्पाः स्म इत्यर्थः ॥ १४ ॥ नियतात्मा जितचित्तः महात्मा महामतिः ॥ १९ ॥ कृच्छ्रं संकटं आपादिताः प्रापिताः ॥ २० ॥ नाथवत्तया दयया परवशतया ॥ २१ ॥

कुलतन्तुर्हि नः शिष्टस्त्वमेवैकस्तपोधन ।
यस्त्वं पश्यसि नो ब्रह्मन्वीरणस्तम्बमाश्रितान् ॥ २३
एषोऽस्माकं कुलस्तम्ब आस्ते स्वकुलवर्धनः ।
यानि पश्यसि वै ब्रह्मन्मूलानीहास्य वीरुधः ॥ २४
एते नस्तन्तवस्तात कालेन परिभक्षिताः ।
यत्त्वेतत्पश्यसि ब्रह्मन्मूलमस्यार्धभक्षितम् ॥ २५
यत्र लम्बामहे गर्ते सोऽप्येकस्तप आस्थितः ।
यमाखुं पश्यसि ब्रह्मन्काल एष महाबलः ॥ २६
स तं तपोरतं मन्दं शनैः क्षपयते तुदन् ।
जरत्कारुं तपोलुब्धं मन्दात्मानमचेतसम् ॥ २७
न हि नस्तत्तपस्तस्य तारयिष्यति सत्तम ।
छिन्नमूलान्परिभ्रष्टान्कालोपहतचेतसः ॥ २८
अधः प्रविष्टान्पश्यास्मान्यथा दुष्कृतिनस्तथा ।
अस्मासु पतितेष्वत्र सह सर्वैः सबान्धवैः ॥ २९
छिन्नः कालेन सोऽप्यत्र गन्ता वै नरकं ततः ।
तपोऽवाप्ययवा यज्ञो यच्चान्यत्पावनं महत् ॥ ३०
तत्सर्वमपरं तात न संतत्या समं मतम् ।
स तात दृष्ट्वा ब्रूयास्त्वं जरत्कारुं तपोधन ॥ ३१
यथा दृष्टमिदं चात्र त्वयाख्येयमशेषतः ।
यथा दारान्प्रकुर्यात्स पुत्रानुत्पादयेद्यथा ॥ ३२
तथा ब्रह्मंस्त्वया वाच्यः सोऽस्माकं नाथवत्तया ।
बान्धवानां हितस्येह यथा चात्मकुलं तथा ॥ ३३
कस्त्वं बन्धुमिवास्माकमनुशोचसि सत्तम ।
श्रोतुमिच्छाम सर्वेषां को भवानिह तिष्ठति ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कारुपितृदर्शने पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

सौतिरुवाच ।
एतच्छ्रुत्वा जरत्कारुर्भृशं शोकपरायणः ।
उवाच तान्पितॄन्दुःखाद्बाष्पसंदिग्धया गिरा ॥ १

जरत्कारुरुवाच ।
मम पूर्वे भवन्तो वै पितरः सपितामहाः ।
तद्ब्रूत यन्मया कार्यं भवतां प्रियकाम्यया ॥ २
अहमेव जरत्कारुः किल्बिषी भवतां सुतः ।
ते दण्डं धारयत मे दुष्कृतेरकृतात्मनः ॥ ३

पितर ऊचुः ।
पुत्र दिष्ट्याऽसि संप्राप्त इमं देशं यदृच्छया ।
किमर्थं च त्वया ब्रह्मन्न कृतो दारसंग्रहः ॥ ४

जरत्कारुरुवाच ।
ममायं पितरो नित्यं हृद्यर्थः परिवर्तते ।
ऊर्ध्वरेताः शरीरं वै प्रापयेयममुत्र वै ॥ ५
न दारान्वै करिष्येहमिति मे भावितं मनः ।
एवं दृष्ट्वा तु भवतः शकुन्तानिव लम्बतः ॥ ६
मया निवर्तिता बुद्धिर्ब्रह्मचर्यात्पितामहाः ।
करिष्ये वः प्रियं कामं निवेक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ७
सनाम्नीं यद्यहं कन्यामुपलप्स्ये कदाचन ।
भविष्यति च या काचिद्भैक्ष्यवत्स्वयमुद्यता ॥ ८
प्रतिग्रहीता तामस्मि न भरेयं च यामहम् ।
एवं विधमहं कुर्यां निवेशं प्राप्नुयां यदि ।
अन्यथा न करिष्येऽहं सत्यमेतत्पितामहाः ॥ ९
तत्र चोत्पत्स्यते जन्तुर्भवतां तारणाय वै
शाश्वताश्चाव्ययाश्चैव तिष्ठन्तु पितरो मम ॥ १०

सौतिरुवाच ।
एवमुक्त्वा तु स पितॄंश्चचार पृथिवीं मुनिः ।
न च स्म लभते भार्यां वृद्धोऽयमिति शौनक ॥ ११
यदा निर्वेदमापन्नः पितृभिश्चोदितस्तथा ।
तदाऽरण्यं स गत्वोच्चैश्चुक्रोश भृशदुःखितः ॥ १२
स त्वरण्यगतः प्राज्ञः पितॄणां हितकाम्यया ।
उवाच कन्यां याचामि तिस्रो वाचः शनैरिमाः ॥ १३
यानि भूतानि सन्तीह स्थावराणि चराणि च ।
अन्तर्हितानि वा यानि तानि शृण्वन्तु मे वचः ॥ १४

---

मन्दात्मानं अदीर्घदर्शिनं अचेतसं पाषाणतुल्यम् ॥ २७ ॥ अपरं ज्ञानादर्वाचीनम् । 'किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोकः' इति श्रुतेः । 'किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं यक्ष्यामहे वाचि हि प्राणं जुहुमः' इत्यादि श्रुतेश्च पित्र्यमृणमज्ञानमेवेति भाव ॥ ३१ ॥ बान्धवाना-मित्यादिसार्धः श्लोकः । तस्य बान्धवानां अस्माकं सर्वेषा मध्ये कस्त्वम् । यथा आत्मकुलं तथा बन्धुमिव वा अस्मान् शुशोचसि ततस्तस्माच्छ्रोतुमिच्छामः को भवानिह तिष्ठतीति योजना ॥ ३३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

एतदिति ॥ १ ॥ दुष्टाकृतिर्यस्य तस्य दुष्कृतेः ॥ ३ ॥ दिष्ट्या भाग्येन ॥ ४ ॥ भावितं भावयुक्तम् ॥ ६ ॥ निवेक्ष्ये निवेशं विवाहं करिष्ये ॥ ७ ॥ न भरेयं धारणपोषणे न कुर्याम् ॥ ९ ॥ शाश्वता नित्याः अव्यया अपक्षयशून्याः ॥ १० ॥ याचामि याचे ॥ १३ ॥

उग्रे तपसि वर्तन्ते पितरश्चोदयन्ति माम् ।
निविशस्वेति दुःखार्ताः संतानस्य चिकीर्षया॥१५
निवेशायाखिलां भूमिं कन्याभैक्ष्यं चरामि भोः ।
दरिद्रो दुःखशीलश्च पितृभिः संनियोजितः॥१६
यस्य कन्यास्ति भूतस्य ये मयेह प्रकीर्तिताः ।
ते मे कन्यां प्रयच्छन्तु चरतः सर्वतो दिशम्॥ १७
मम कन्या सनाम्नीया भैक्ष्यवच्चोदिता भवेत् ।
भरेयं चैव यां नाहं तां मे कन्यां प्रयच्छत॥ १८
ततस्ते पन्नगा ये वै जरत्कारौ समाहिताः ।
तामादाय प्रवृत्तिं ते वासुकेः प्रत्यवेदयन् ॥ १९
तेषां श्रुत्वा स नागेन्द्रस्तां कन्यां समलंकृताम् ।
प्रगृह्यारण्यमगमत्समीपं तस्य पन्नगः ॥ २०
तत्र तां भैक्ष्यवत्कन्यां प्रादात्तस्मै महात्मने ।
नागेन्द्रो वासुकिर्ब्रह्मन्न स तां प्रत्यगृह्णत ॥ २१
असनामेति वै मत्वा भरणे चाविचारिते ।
मोक्षभावे स्थितश्चापि द्वन्द्वभूतः परिग्रहे ॥ २२
ततो नाम स कन्यायाः पप्रच्छ भृगुनन्दन ।
वासुकिं भरणं चास्या न कुर्यामित्युवाच ह॥२३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि वासुकिजरत्कारुसमागमे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६

---

सौतिरुवाच ।
वासुकिस्त्वब्रवीद्वाक्यं जरत्कारुमृषिं तदा ।
सनाम्नीं तव कन्येयं स्वसा मे तपसान्विता ॥ १
भरिष्यामि च ते भार्यां प्रतीच्छेमां द्विजोत्तम ।
रक्षणं च करिष्येऽस्याः सर्वशक्त्या तपोधन ।
त्वदर्थं रक्ष्यते चैषा मया मुनिवरोत्तम ॥ २
ऋषिरुवाच ।
न भरिष्येहमेतां वै एष मे समयः कृतः ।
अप्रियं च न कर्तव्यं कृते चैनां त्यजाम्यहम् ॥ ३
सौतिरुवाच ।
प्रतिश्रुते तु नागेन भरिष्ये भगिनीमिति ।
जरत्कारुस्तदा वेश्म भुजगस्य जगाम ह॥ ४
तत्र मन्त्रविदां श्रेष्ठस्तपोवृद्धो महाव्रतः ।
जग्राह पाणिं धर्मात्मा विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ५
ततो वासगृहं रम्यं पन्नगेन्द्रस्य संमतम् ।
जगाम भार्यामादाय स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ६
शयनं तत्र संक्लृप्तं स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् ।
तत्र भार्यासहायो वै जरत्कारुरुवास ह ॥ ७
स तत्र समयं चक्रे भार्यया सह सत्तमः ।
विप्रियं मे न कर्तव्यं न च वाच्यं कदाचन ॥ ८
त्यजेयं विप्रिये च त्वां कृते वासं च ते गृहे ।
एतद्गृहाण वचनं मया यत्समुदीरितम् ॥ ९
ततः परमसंविग्ना स्वसा नागपतेस्तदा ।
अतिदुःखान्विता वाक्यं तमुवाचैवमस्त्विति १०
तथैव सा च भर्तारं दुःखशीलमुपाचरत् ।
उपायैः श्वेतकाकीयैः प्रियकामा यशस्विनी ११
ऋतुकाले ततः स्नाता कदाचिद्वासुकेः स्वसा ।
भर्तारं वै यथान्यायमुपतस्थे महामुनिम् ॥ १२
तत्र तस्याः समभवद्गर्भो ज्वलनसंनिभः ॥
अतीव तेजसा युक्तो वैश्वानरसमद्युतिः ॥ १३
शुक्लपक्षे यथा सोमो व्यवर्धत तथैव सः ।
ततः कतिपयाहस्य जरत्कारुर्महायशाः ॥ १४
उत्सङ्गेऽस्याः शिरः कृत्वा सुष्वाप परिखिन्नवत् ।
तस्मिंश्च सुप्ते विप्रेन्द्रे सविताऽस्तमियाद्गिरिम्॥१५
अह्नः परिक्षये ब्रह्मंस्ततः साऽचिन्तयत्तदा ।
वासुकेर्भगिनी भीता धर्मलोपान्मनस्विनी ॥१६
किं नु मे सुकृतं भूयाद्भर्तुरुत्थापनं न वा ।
दुःखशीलो हि धर्मात्मा कथं नास्यापराध्नुयाम् ॥

---

जरत्कारौ समाहिताः जरत्कारोरन्वेषणे यत्ताः ॥१९॥ असनामेति मोक्षे स्थितस्य परिग्रहो दुःखायेति पितृप्रयोजनमात्रं कार्यमित्याशयः ॥ २२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

---

वासुकिरिति ॥ १ ॥ प्रतीच्छ प्रतिगृहाण ॥ २ ॥ स्पर्ध्यं बहुमूल्यं तूलिकाद्यास्तरणं तेन संयुतम् ॥ ७ ॥ विप्रिये कृते त्वां तव गृहे वासं च त्यजेयम् ॥ ९ ॥ दुःखशीलं दुःखप्रदस्वभावम् । श्वेतकाकीयैः श्वा च एतश्च काकश्च तेषामिमे श्वेतकाकीयास्तैः । नित्यजागरूकत्वभयचकितत्वेङ्गितत्वज्ञैः । उपाचरत् आराधितवती । एतः कर्बुर आगते इति मेदिनीकोशाद्वर्णवाच्यपि एत शब्दस्तद्वति मृगे वर्तते शोणादिपदवत् । श्वेत इत्यत्र 'ओमाङोश्च' इति पररूपम् । अन्ये तु श्वेतकाको बकस्तदीयैः । तं हि वर्षासु नीडस्थं बक्येव पुष्णाति तद्वदिति ॥ ११ ॥ उत्सङ्गे अङ्के ॥ १५ ॥ दुःखशीलो दुःखप्रदशीलो धर्मात्मा च कथं केन प्रकारेणापराधिनी न भवेयमित्यर्थः ॥ १७ ॥

कोपो वा धर्मशीलस्य धर्मलोपोऽथवा पुनः ।
धर्मलोपो गरीयान्वै स्यादित्यत्राकरोन्मतिम् १८
उत्थापयिष्ये यद्येनं ध्रुवं कोपं करिष्यति ।
धर्मलोपो भवेदस्य संध्यातिक्रमणे ध्रुवम् ॥ १९
इति निश्चित्य मनसा जरत्कारुर्भुजंगमा ।
तमृषिं दीप्ततपसं शयानमनलोपमम् ॥ २०
उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं ततो मधुरभाषिणी ।
उत्तिष्ठ त्वं महाभाग सूर्योऽस्तमुपगच्छति ॥ २१
संध्यामुपास्व भगवन्नपः स्पृष्ट्वायतव्रतः ।
प्रादुष्कृताग्निहोत्रोऽयं मुहूर्तो रम्यदारुणः ॥ २२
संध्या प्रवर्तते चेयं पश्चिमायां दिशि प्रभो ।
एवमुक्तः स भगवान् जरत्कारुर्महातपाः ॥ २३
भार्यां प्रस्फुरमाणौष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ।
अवमानः प्रयुक्तोऽयं त्वया मम भुजंगमे ॥ २४
समीपे ते न वत्स्यामि गमिष्यामि यथागतम् ।
शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः ॥२५
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते ।
न चाप्यवमतस्येह वासो रोचेत कस्यचित् ॥ २६
किं पुनर्धर्मशीलस्य मम वा मद्विधस्य वा ।
एवमुक्ता जरत्कारुर्भर्त्रा हृदयकम्पनम् ॥ २७
अब्रवीद्भगिनी तत्र वासुकेः संनिवेशने ।
नावमानात्कृतवती तवाहं विप्रबोधनम् ॥ २८
धर्मलोपो न ते विप्र स्यादित्येतन्मया कृतम् ।
उवाच भार्यामित्युक्तो जरत्कारुर्महातपाः ॥ २९
ऋषिः कोपसमाविष्टस्त्यक्तुकामो भुजंगमाम् ।
न मे वागनृतं प्राह गमिष्येऽहं भुजंगमे ॥ ३०
समयो ह्येष मे पूर्वं त्वया सह मिथः कृतः ।
सुखमस्म्युषितो भद्रे ब्रूयास्त्वं भ्रातरं शुभे ॥ ३१
इतो मयि गते भीरु गतः स भगवानिति ।
त्वं चापि मयि निष्क्रान्ते न शोकं कर्तुमर्हसि॥३२
इत्युक्ता साऽनवद्याङ्गी प्रत्युवाच मुनिं तदा ।
जरत्कारुं जरत्कारुश्चिन्ताशोकपरायणा ॥ ३३
बाष्पगद्गदया वाचा मुखेन परिशुष्यता ।
कृताञ्जलिर्वरारोहा पर्यश्रुनयना ततः ॥ ३४
धैर्यमालम्ब्य वामोरूर्हृदयेन प्रवेपता ।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥ ३५
धर्मे स्थितां स्थितो धर्मे सदा प्रियहिते रताम् ।
प्रदाने कारणं यच्च मम तुभ्यं द्विजोत्तम ॥ ३६
तदलब्धवतीं मन्दां किं मां वक्ष्यति वासुकिः ।
मातृशापाभिभूतानां ज्ञातीनां मम सत्तम ॥ ३७
अपत्यमीप्सितं त्वत्तस्तच्च तावन्न दृश्यते ।
त्वत्तो ह्यपत्यलाभेन ज्ञातीनां मे शिवं भवेत् ॥३८
संप्रयोगो भवेन्नायं मम मोघस्त्वया द्विज ।
ज्ञातीनां हितमिच्छन्ती भगवंस्त्वां प्रसादये ॥ ३९
इममव्यक्तरूपं मे गर्भमाधाय सत्तम ।
कथं त्यक्त्वा महात्मा सन्गन्तुमिच्छस्यनागसम्४०
एवमुक्तस्तु स मुनिर्भार्यां वचनमब्रवीत् ।
यद्युक्तमनुरूपं च जरत्कारुं तपोधनः ॥४१
अस्त्ययं सुभगे गर्भस्तव वैश्वानरोपमः ।
ऋषिः परमधर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः ॥४२
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा जरत्कारुर्महानृषिः ।
उग्राय तपसे भूयो जगाम कृतनिश्चयः ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि जरत्कारुनिर्गमे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

---

सौतिरुवाच ।
गतमात्रं तु भर्तारं जरत्कारुरवेदयत् ।
भ्रातुः सकाशमागत्य याथातथ्यं तपोधन ॥ १
ततः स भुजगश्रेष्ठः श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
उवाच भगिनीं दीनां तदा दीनतरः स्वयम् ॥ २

वासुकिरुवाच ।
जानासि भद्रे यत्कार्यं प्रदाने कारणं च यत् ।
पन्नगानां हितार्थाय पुत्रस्ते स्यात्ततो यदि ॥ ३
स सर्पसत्रात्किल नो मोक्षयिष्यति वीर्यवान् ।
एवं पितामहः पूर्वमुक्तवांस्तु सुरैः सह ॥ ४

---

कर्तव्यकोटिद्वयमुपन्यस्य धर्मलोपमेव गुरुकरोति । कोपो वेति ॥ १८ ॥ प्रादुष्कृतः अग्निहोत्री वन्हिर्यस्मिन्स प्रादुष्कृताग्निहोत्रः । 'अग्निहोत्रोऽग्निहविषोः' इति मेदिनी । रम्यो धर्मसाधनत्वात् । दारुणो भूतादिप्रचारात् ॥२२॥ विभावसोः सूर्यस्य ॥ २५ ॥ मिथः अन्योन्यम् ॥ ३१ ॥ चिन्ता भ्रातृकार्यविषयिणी । शोको भर्तृवियोगजः ॥३३॥ संप्रयोगः संबन्धः मोघो निष्फलः ॥३९॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७ ॥

---

गतमात्रमिति ॥ १ ॥ अचूचुदं कार्यसिद्धिं वक्तुं प्रेरितवान् ॥ ६ ॥

अप्यस्ति गर्भः सुभगे तस्मात्ते मुनिसत्तमात् ।
न चेच्छाम्यफलं तस्य दारकर्म मनीषिणः ॥ ५
कामं च मम न न्याय्यं प्रष्टुं त्वां कार्यमीदृशम् ।
किं तु कार्यगरीयस्त्वात्ततस्त्वाहमचूचुदम् ॥ ६
दुर्वार्यतां विदित्वा च भर्तुस्तेऽतितपस्विनः ।
नैनमन्वागमिष्यामि कदाचिद्धि शपेत्स माम् ॥७
आचक्ष्व भद्रे भर्तुः स्वं सर्वमेव विचेष्टितम् ।
उद्धरस्व च शल्यं मे घोरं हृदि चिरस्थितम् ॥ ८
जरत्कारुस्ततो वाक्यमित्युक्त्वा प्रत्यभाषत ।
आश्वासयन्ती संततं वासुकिं पन्नगेश्वरम् ॥ ९

जरत्कारुरुवाच ।

पृष्टो मयाऽपत्यहेतोः स महात्मा महातपाः ।
अस्तीत्युत्तरमुद्दिश्य ममेदं गतवांश्च सः ॥ १०
स्वैरेष्वपि न तेनाहं स्मरामि वितथं वचः ।
उक्तपूर्वं कुतो राजन्सांपराये स वक्ष्यति ॥ ११
न संतापस्त्वया कार्यः कार्यं प्रति भुजंगमे ।
उत्पत्स्यति च ते पुत्रो ज्वलनार्कसमप्रभः ॥ १२
इत्युक्त्वा स हि मां भ्रातर्गतो भर्ता तपोधनः ।
तस्माद्व्येतु परं दुःखं तवेदं मनसि स्थितम् ॥१३

सौतिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा स नागेन्द्रो वासुकिः परया मुदा ।
एवमस्त्विति तद्वाक्यं भगिन्याः प्रत्यगृह्णत ॥ १४
सान्त्वमानार्थदानैश्च पूजया चानुरूपया ।
सोदर्यां पूजयामास स्वसारं पन्नगोत्तमः ॥ १५
ततः प्रववृधे गर्भो महातेजा महाप्रभः ।
यथा सोमो द्विजश्रेष्ठ शुक्लपक्षोदितो दिवि ॥ १६
अथ काले तु सा ब्रह्मन्प्रजज्ञे भुजगस्वसा ।
कुमारं देवगर्भाभं पितृमातृभयापहम् ॥ १७
ववृधे स तु तत्रैव नागराजनिवेशने ।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान्भार्गवाच्च्यवनान्मुने ॥ १८
चीर्णव्रतो बाल एव बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः ।
नाम चास्या भवत्ख्यातं लोकेष्वास्तीक इत्युत॥१९
अस्तीत्युक्त्वा गतो यस्मात्पिता गर्भस्थमेव तम् ।
वनं तस्मादिदं तस्य नामास्तीकेति विश्रुतम् ॥२०
स बाल एव तत्रस्थश्चरन्नमितबुद्धिमान् ।
गृहे पन्नगराजस्य प्रयत्नात्परिरक्षितः ॥ २१
भगवानिव देवेशः शूलपाणिर्हिरण्मयः ।
विवर्धमानः सर्वांस्तान्पन्नगानभ्यहर्षयत् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि आस्तीकोत्पत्तौ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

शौनक उवाच ।

यदपृच्छत्तदा राजा मन्त्रिणो जनमेजयः ।
पितुः स्वर्गगतिं तन्मे विस्तरेण पुनर्वद ॥ १

सौतिरुवाच ।

शृणु ब्रह्मन्यथा पृच्छन्मन्त्रिणो नृपतिस्तदा ।
यथा चाख्यातवन्तस्ते निधनं तत्परिक्षितः ॥ २

जनमेजय उवाच ।

जानन्ति स्म भवन्तस्तद्यथा वृत्तं पितुर्मम ।
आसीद्यथा स निधनं गतः काले महायशाः ॥ ३
श्रुत्वा भवत्सकाशाद्धि पितुर्वृत्तमशेषतः ।
कल्याणं प्रतिपत्स्यामि विपरीतं न जातुचित् ॥ ४

सौतिरुवाच ।

मन्त्रिणोऽथाब्रुवन्वाक्यं पृष्टास्तेन महात्मना ।
सर्वे धर्मविदः प्राज्ञा राजानं जनमेजयम् ॥ ५

मन्त्रिण ऊचुः ।

शृणु पार्थिव यद्ब्रूषे पितुस्तव महात्मनः ।
चरितं पार्थिवेन्द्रस्य यथा निष्ठां गतश्च सः ॥ ६
धर्मात्मा च महात्मा च प्रजापालः पिता तव ।
आसीदिह यथावृत्तः स महात्मा शृणुष्व तत् ॥ ७

---

जरत्कारुस्ततो वाक्यमित्युक्त्वा प्रत्यभाषतेति वाक्यं वचनीयं मयोच्यत इति शेषः । इत्युक्त्वा प्रत्यभाषत गुह्यवचनारम्भे ह्येवं वक्तारो भवन्ति पश्चात्संदेशं वदन्ति । यथोक्तं ब्रह्मवैवर्ते 'इदं वचनमुक्त्वाग्रे वाक्यं वाक्यविशारदः । चकारावश्यकं कर्म नर्मदातीरमाश्रितः' इति ॥ ९ ॥ ममेदं कार्यमुद्दिश्य अस्तीत्युत्तरं दत्तवानिति शेषः ॥ १० ॥ वितथं तेन उक्तपूर्वं न स्मरामि । सांपराये संकटे 'सांपरायो रणापदोः' इति कोशः ॥११॥ प्रजज्ञे जनयामास ॥ १७ ॥ बुद्धिः कार्यनिष्ठा सत्त्वगुण इति सत्त्वकार्याणि धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि तैरन्वितः ॥ १९ ॥ हिरण्मयः दीप्तिमान् ॥२२॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सर्पसत्रं प्रस्तावयन् शौनक उवाच । यदपृच्छदिति ॥ १ ॥ निधनं मरणम् ॥२॥ कल्याणं सर्वलोकहितं चेत्प्रतिपत्स्यामि प्रतीकारं करिष्यामि नान्यथेत्यर्थः ॥ ४ ॥ ब्रूषे पृच्छसि । निष्ठां समाप्तिम् ॥ ६ ॥ धर्मात्मा उदारचित्तः । महात्मा महानुभावः । कलिनिग्राहकत्वात् ॥ ७ ॥

चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं स कृत्वा पर्यरक्षत ।
धर्मतो धर्मविद्राजा धर्मो विग्रहवानिव ॥ ८
ररक्ष पृथिवीं देवीं श्रीमानतुलविक्रमः ।
द्वेष्टारस्तस्य नैवासन्स च द्वेष्टि न कंचन ॥ ९
समः सर्वेषु भूतेषु प्रजापतिरिवाभवत् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव स्वकर्मसु ॥१०
स्थिताः सुमनसो राजंस्तेन राज्ञा स्वधिष्ठिताः ।
विधवानाथविकलान्कृपणांश्च बभार सः ॥ ११
सुदर्शः सर्वभूतानामासीत्सोम इवापरः ।
तुष्टपुष्टजनः श्रीमान्सत्यवाग्दृढविक्रमः ॥ १२
धनुर्वेदे तु शिष्योऽभून्नृपः शारद्वतस्य सः ।
गोविन्दस्य प्रियश्चासीत्पिता ते जनमेजय ॥ १३
लोकस्य चैव सर्वस्य प्रिय आसीन्महायशाः ।
परिक्षीणेषु कुरुषु सोत्तरायामजीजनत् ॥ १४
परिक्षिदभवत्तेन सौभद्रस्यात्मजो बली ।
राजधर्मार्थकुशलो युक्तः सर्वगुणैर्वृतः ॥ १५
जितेन्द्रियश्चात्मवांश्च मेधावी धर्मसेविता ।
षड्वर्गजिन्महाबुद्धिर्नीतिशास्त्रविदुत्तमः ॥ १६
प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत् ।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन् ॥ १७
ततस्त्वं पुरुषश्रेष्ठ धर्मेण प्रतिपेदिवान् ।
इदं वर्षसहस्राणि राज्यं कुरुकुलागतम् ।
बाल एवाभिषिक्तस्त्वं सर्वभूतानुपालकः ॥ १८

जनमेजय उवाच ।

नास्मिन्कुले जातु बभूव राजा
यो न प्रजानां प्रियकृत्प्रियश्च ।
विशेषतः प्रेक्ष्य पितामहानां
वृत्तं महद्वृत्तपरायणानाम् ॥ १९
कथं निधनमापन्नः पिता मम तथाविधः ।
आचक्षध्वं यथावन्मे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२०

सौतिरुवाच ।

एवं संचोदिता राज्ञा मन्त्रिणस्ते नराधिपम् ।
ऊचुः सर्वे यथावृत्तं राज्ञः प्रियहितैषिणः ॥ २१

मन्त्रिण ऊचुः ।

स राजा पृथिवीपालः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
बभूव मृगयाशीलस्तव राजन्पिता सदा ॥ २२
यथा पाण्डुर्महाबाहुर्धनुर्धरवरो युधि ।
अस्मास्वासज्य सर्वाणि राजकार्याण्यशेषतः॥ २३
स कदाचिद्वनगतो मृगं विव्याध पत्रिणा ।
विद्ध्वा चान्वसरत्तूर्णं तं मृगं गहने वने ॥ २४
पदातिर्बद्धनिस्त्रिंशस्तताायुधकलापवान् ।
न चाससाद गहने मृगं नष्टं पिता तव ॥ २५
परिश्रान्तो वयस्थश्च षष्टिवर्षो जरान्वितः ।
क्षुधितः स महारण्ये ददर्श मुनिसत्तमम् ॥ २६
स तं पप्रच्छ राजेन्द्रो मुनिं मौनव्रते स्थितम् ।
न च किंचिदुवाचैनं पृष्टोऽपि स मुनिस्तदा ॥२७
ततो राजा क्षुच्छ्रमार्तस्तं मुनिं स्थाणुवत्स्थितम् ।
मौनव्रतधरं शान्तं सद्यो मन्युवशंगतः ॥ २८
न बुबोध च तं राजा मौनव्रतधरं मुनिम् ।
स तं क्रोधसमाविष्टो धर्षयामास ते पिता ॥ २९
मृतं सर्पं धनुष्कोट्या समुत्क्षिप्य धरातलात् ।
तस्य शुद्धात्मनः प्रादात्स्कन्धे भरतसत्तम ॥ ३०
न चोवाच स मेधावी तमथो साध्वसाधु वा ।
तस्थौ तथैव चाक्रुद्धः सर्पं स्कन्धेन धारयन् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि पारिक्षितीये एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

---

चातुर्वर्ण्यं चतुरो वर्णान् ॥ ८ ॥ स्वधिष्ठिताः सुष्ठुपालिताः । बभार पोषितवान् ॥ ११ ॥ शारद्वतस्य कृपाचार्यस्य ॥ १३ ॥ सोत्तरायामिति पादपूरणार्थः सन्धिः अजीजनत् जातः ॥ १४ ॥ राजधर्मो ग्रन्थस्तस्यार्थःफलं तदुक्तानुष्ठानम् । शाब्दभावनाया प्रवृत्तेरेव भाव्यत्वात् । तत्र कुशलो दक्षः ॥ १५ ॥ आत्मवान् बुद्धिमान् । मेधावी बहुग्रन्थधारणसमर्थः । षड्वर्गः कामादिस्तस्य जेता षड्वर्गजित् । नीतिशास्त्रं कामन्दकीयपालकाप्यादि ॥ १६ ॥ षष्टिवर्षाणि जन्मतः षष्टिवर्षपर्यन्तं न तु राज्यलाभात् । अपालयत् पालितवान् । षड्विंशे वर्षे लब्धराज्यः । चतुर्विंशतिवर्षपर्यन्तं तत्पालनस्य दृष्टत्वादित्यर्थः । दिष्टं धर्माधर्मौ तयोरन्तमवसानं विदेहकैवल्यमित्यर्थः ॥ १७ ॥ पितामहानां पाण्डवानाम् ॥ १९ ॥ आचक्षध्वं भ्वादेराकृतिगणत्वात् शपो लुङ् न ॥ २० ॥ गहने दुर्गमे ॥ २४ ॥ निस्त्रिंशः खड्गः तताायुधकलापवान् ततो विस्तीर्णे आयुधानां बाणादीनां कलापस्तूणस्तद्वान् । 'कलापः संहतौ बर्हे काञ्चीभूषणतूणयोः' इति मेदिनि ॥ २५ ॥ वयस्थो वृद्धः ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

मन्त्रिण ऊचुः ।

ततः स राजा राजेन्द्रः स्कन्धे तस्य भुजंगमम् ।
मुनेः क्षुत्क्षाम आसज्य स्वपुरं प्रययौ पुनः ॥ १
ऋषेस्तस्य तु पुत्रोऽभूद्गवि जातो महायशाः ।
शृङ्गी नाम महातेजास्तिग्मवीर्योऽतिकोपनः ॥ २
ब्रह्माणं समुपागम्य मुनिः पूजां चकार ह ।
सोऽनुज्ञातस्ततस्तत्र शृङ्गी शुश्राव तं तदा ॥ ३
सख्युः सकाशात्पितरं पित्रा ते धर्षितं पुरा ।
मृतं सर्पं समासक्तं स्थाणुभूतस्य तस्य तम् ॥ ४
वहन्तं राजशार्दूलः स्कन्धेनानपकारिणम् ।
तपस्विनमतीवाथ तं मुनिप्रवरं नृप ॥ ५
जितेन्द्रियं विशुद्धं च स्थितं कर्मण्यथाद्भुतम् ।
तपसा द्योतितात्मानं स्वेष्वङ्गेषु यतं तदा ॥ ६
शुभाचारं शुभकथं सुस्थितं तमलोलुपम् ।
अक्षुद्रमनसूयं च वृद्धं मौनव्रते स्थितम् ।
शरण्यं सर्वभूतानां पित्रा विनिकृतं तव ॥ ७
शशापाथ महातेजाः पितरं ते रुषान्वितः ।
ऋषेः पुत्रो महातेजा बालोऽपि स्थविरद्युतिः ॥ ८
स क्षिप्रमुदकं स्पृष्ट्वा रोषादिदमुवाच ह ।
पितरं तेऽभिसंधाय तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ९
अनागसि गुरौ यो मे मृतं सर्पमवासृजत् ।
तं नागस्तक्षकः क्रुद्धस्तेजसा प्रदहिष्यति ॥ १०
आशीविषस्तिग्मतेजा मद्वाक्यबलचोदितः ।
सप्तरात्रादितः पापं पश्य मे तपसो बलम् ॥ ११
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र पिता यत्राऽस्य सोऽभवत् ।
दृष्ट्वा च पितरं तस्मै तं शापं प्रत्यवेदयत् ॥ १२
स चापि मुनिशार्दूलः प्रेरयामास ते पितुः ।
शिष्यं गौरमुखं नाम शीलवन्तं गुणान्वितम् ॥ १३
आचख्यौ स च विश्रान्तो राज्ञः सर्वमशेषतः ।
शप्तोऽसि मम पुत्रेण यतो भव महीपते ॥ १४
तक्षकस्त्वां महाराज तेजसाऽसौ दहिष्यति ।
श्रुत्वा च तद्वचो घोरं पिता ते जनमेजय ॥ १५
यत्तोऽभवत्परित्रस्तस्तक्षकात्पन्नगोत्तमात् ।
ततस्तस्मिंस्तु दिवसे सप्तमे समुपस्थिते ॥ १६
राज्ञः समीपं ब्रह्मर्षिः काश्यपो गन्तुमैच्छत ।
तं ददर्शाथ नागेन्द्रस्तक्षकः काश्यपं तदा ॥ १७
तमब्रवीत्पन्नगेन्द्रः काश्यपं त्वरितं द्विजम् ।
क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति १८

काश्यप उवाच ।

यत्र राजा कुरुश्रेष्ठः परिक्षिन्नाम वै द्विज ।
तक्षकेण भुजंगेन धक्ष्यते किल सोऽद्य वै ॥ १९
गच्छाम्यहं तं त्वरितः सद्यः कर्तुमपज्वरम् ।
मयाऽभिपन्नं तं चापि न सर्पो धर्षयिष्यति ॥ २०

तक्षक उवाच ।

किमर्थं तं मया दष्टं संजीवयितुमिच्छसि ।
अहं स तक्षको ब्रह्मन्पश्य मे वीर्यमद्भुतम् ॥ २१
न शक्तस्त्वं मया दष्टं तं संजीवयितुं नृपम् ।
इत्युक्त्वा तक्षकस्तत्र सोऽदशद्वै वनस्पतिम् ॥ २२
स दष्टमात्रो नागेन भस्मीभूतोऽभवन्नगः ।
काश्यपश्च ततो राजन्नजीवयत तं नगम् ॥ २३
ततस्तं लोभयामास कामं ब्रूहीति तक्षकः ।
स एवमुक्तस्तं प्राह काश्यपस्तक्षकं पुनः ॥ २४
धनलिप्सुरहं तत्र यामीत्युक्तश्च तेन सः ।
तमुवाच महात्मानं तक्षकः श्लक्ष्णया गिरा ॥ २५
यावद्धनं प्रार्थयसे राज्ञस्तस्मात्ततोऽधिकम् ।
गृहाण मत्त एव त्वं संनिवर्तस्व चानघ ॥ २६
स एवमुक्तो नागेन काश्यपो द्विपदां वरः ।
लब्ध्वा वित्तं निववृते तक्षकाद्यावदीप्सितम् ॥ २७
तस्मिन्प्रतिगते विप्रे छद्मनोपेत्य तक्षकः ।
तं नृपं नृपतिश्रेष्ठं पितरं धार्मिकं तव ॥ २८
प्रासादस्थं यत्तमपि दग्धवान्विषवह्निना ।
ततस्त्वं पुरुषव्याघ्र विजयायाभिषेचितः ॥ २९
एतद्दृष्टं श्रुतं चापि यथावन्नृपसत्तम ।
अस्माभिर्निखिलं सर्वं कथितं तेऽतिदारुणम् ॥ ३०
श्रुत्वा चैनं नरश्रेष्ठ पार्थिवस्य पराभवम् ।
अस्य चर्षेरुत्तङ्कस्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ३१

सौतिरुवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु स राजा जनमेजयः ।
उवाच मन्त्रिणः सर्वानिदं वाक्यमरिंदमः ॥ ३२

---

तत इति ॥ १ ॥ ब्रह्माणं आचार्यम् । पूजां तस्यैव चकार । तेनानुज्ञातस्तत्र आचार्यगृहे तं सर्पधरं स्वपितरं सख्युः सहाध्यायिनः सकाशाच्छुश्रावेति संबन्धः ॥ ३ ॥ अङ्गेषु वागादिषु यतं नियतं शमदमवन्तमित्यर्थः ॥ ६ ॥ अक्षुद्रं गंभीरम् । अनसूयं परगुणेषु दोषाविष्करणशून्यम् । तव पित्रा विनिकृतं अपकृतम् ॥ ७ ॥ प्रदहिष्यति प्रधक्ष्यति ॥ १० ॥ पश्य हे मत्पितृद्रोहिन् ॥ ११ ॥ दहिष्यति धक्ष्यति ॥ १५ ॥ अभिपन्नं त्रातम् । धर्षयिष्यति अभिभविष्यति ॥ २० ॥ कामं काम्यमानमर्थम् ॥ २४ ॥ द्विपदां पुरुषाणां निववृते निवृत्तः ॥ २७ ॥ एवं पार्थिवस्य उत्तङ्कस्य च पराभवं श्रुत्वा ॥ ३१ ॥

जनमेजय उवाच ।

अथ तत्कथितं केन यद्वृत्तं तद्वनस्पतौ ।
आश्चर्यभूतं लोकस्य भस्मराशीकृतं तदा ॥ ३३
यद्वृक्षं जीवयामास काश्यपस्तक्षकेण वै ।
नूनं मन्त्रैर्हतविषो न प्रणश्येत काश्यपात् ॥ ३४
चिन्तयामास पापात्मा मनसा पन्नगाधमः ।
दष्टं यदि मया विप्रः पार्थिवं जीवयिष्यति॥ ३५
तक्षकः संहतविषो लोके यास्यति हास्यताम् ।
विचिन्त्यैवं कृता तेन ध्रुवं तुष्टिर्द्विजस्य वै ॥ ३६
भविष्यति ह्युपायेन यस्य दास्यामि यातनाम् ।
एकं तु श्रोतुमिच्छामि तद्वृत्तं निर्जने वने ॥ ३७
संवादं पन्नगेन्द्रस्य काश्यपस्य च कस्तदा ।
श्रुतवान्दृष्टवांश्चापि भवत्सु कथमागतम् ।
श्रुत्वा तस्य विधास्येऽहं पन्नगान्तकरीं मतिम् ३८

मन्त्रिण ऊचुः ।

शृणु राजन्यथाऽस्माकं येन तत्कथितं पुरा ।
समागतं द्विजेन्द्रस्य पन्नगेन्द्रस्य चाध्वनि ॥ ३९
तस्मिन्वृक्षे नरः कश्चिदिन्धनार्थाय पार्थिव ।
विचिन्वन्पूर्वमारूढः शुष्कशाखावनस्पतौ ॥ ४०
न बुध्येतामुभौ तौ च नगस्थं पन्नगद्विजौ ।
सह तेनैव वृक्षेण भस्मीभूतोऽभवन्नृप ॥ ४१
द्विजप्रभावाद्राजेन्द्र व्यजीवत्स वनस्पतिः ।
तेनागम्य द्विजश्रेष्ठं पुंसाऽस्मासु निवेदितम् ॥ ४२
यथावृत्तं तु तत्सर्वं तक्षकस्य द्विजस्य च ।
एतत्ते कथितं राजन्यथा दृष्टं श्रुतं च यत् ।
श्रुत्वा च नृपशार्दूल विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ४३

सौतिरुवाच ।

मन्त्रिणां तु वचः श्रुत्वा स राजा जनमेजयः ।
पर्यतप्यत दुःखार्तः प्रत्यपिंषत्करं करे ॥ ४४
निःश्वासमुष्णमसकृद्दीर्घं राजीवलोचनः ।
मुमोचाश्रूणि च तदा नेत्राभ्यां प्ररुदन्नृपः ॥ ४५
उवाच च महीपालो दुःखशोकसमन्वितः ।
* दुर्धरं बाष्पमुत्सृज्य स्पृष्ट्वा चापो यथाविधि॥४६
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा निश्चित्य मनसा नृपः ।
अमर्षी मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४७

जनमेजय उवाच ।

श्रुत्वैतद्भवतां वाक्यं पितुर्मे स्वर्गतिं प्रति ।
निश्चितेयं मम मतिर्या च तां मे निबोधत ।
अनन्तरं च मन्येऽहं तक्षकाय दुरात्मने ॥ ४८
प्रतिकर्तव्यमित्येवं येन मे हिंसितः पिता ।
शृङ्गिणं हेतुमात्रं यः कृत्वा दग्ध्वा च पार्थिवम्४९
इयं दुरात्मता तस्य काश्यपं यो न्यवर्तयत् ।
यदा गच्छेत्स वै विप्रो ननु जीवेत्पिता मम ॥५०
परिहीयेत किं तस्य यदि जीवेत्स पार्थिवः ।
काश्यपस्य प्रसादेन मन्त्रिणां विनयेन च ॥ ५१
स तु वारितवान्मोहात्काश्यपं द्विजसत्तमम् ।
संजिजीवयिषुं प्राप्तं राजानमपराजितम् ॥ ५२
महानतिक्रमो ह्येष तक्षकस्य दुरात्मनः ।
द्विजस्य योऽददद्द्रव्यं मा नृपं जीवयेदिति ॥ ५३
उत्तङ्कस्याप्रियं कर्तुमात्मनश्च महत्प्रियम् ।
भवतां चैव सर्वेषां गच्छाम्यपचितिं पितुः ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि परिक्षिन्मन्त्रिसंवादे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

---

संहतविषः सम्यक् हतं नष्टं विषं यस्य स तथा। संत्दत-विष इति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ ३६ ॥ यस्य दास्यामि यातना यस्य प्रयासं कृत्वा। यसु प्रयत्ने अस्मादसमासे-ऽप्यार्षत्वाल्ल्यप् । यातना प्रतिक्रियाम् ॥ ३७ ॥ समागतं समागमं भावे निष्ठा ॥ ३९ ॥ पुरुषं द्विजाविति पाठे द्विजौ अण्डज· सर्पो विप्रश्च ' दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्युक्तेः । अर्थभेदेऽपि सरूपत्वादेकशेषः ॥ ४१ ॥ व्यजीवत् विशेषेण अत्युल्लसितेन रूपेण जीवितवान् । आगम्य आगत्य । 'वाल्यपि'इतिपक्षेऽनुनासिकलोपाभावः । द्विजश्रेष्ठपुंसा ब्राह्मणदासेन ॥ ४२ ॥ करं करे निधाय प्रत्यपिंषत् । क्रोधावेशात् घर्षितवानित्यर्थः ॥ ४४ ॥ अनन्तरमव्यवहितं यथा स्यात्तथा ॥ ४८ ॥ मोहात् मदीयसामार्थ्याज्ञानात् ॥ ५२ ॥ यदि क्षितायुर्यदि वापरेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव । तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ' इति मन्त्रवर्णाद्ब्राह्मणस्यायुःप्रदानेऽपि सामर्थ्यमस्ति अतस्तं बहुधनदानेन निवर्तयतस्तक्षकस्यैवापराधोऽयमित्याह । महानिति । ददिति हेतौ शतृप्रत्ययः । द्रव्यं दत्वापि तेनैव नृपो बलान्मारित इत्यर्थः ॥ ५३ ॥ अपचितिं वैरनिर्यातनम् ॥ ५४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

---

* दुर्धरमित्यादिः सार्ध. श्लोकः क्षिप्त इति भाति । उवाच अब्रवीदितिपौनरुक्त्यात् । केषुचित्पुस्तकेष्वदर्शनाच्च ।

सौतिरुवाच ।

एवमुक्त्वा ततः श्रीमान्मन्त्रिभिश्चानुमोदितः ।
आरुरोह प्रतिज्ञां स सर्पसत्राय पार्थिवः ॥ १
ब्रह्मन्भरतशार्दूलो राजा पारिक्षितस्तदा ।
पुरोहितमथाहूय ऋत्विजो वसुधाधिपः ॥ २
अब्रवीद्वाक्यसंपन्नः कार्यसंपत्करं वचः ।
यो मे हिंसितवांस्तातं तक्षकः स दुरात्मवान् ॥ ३
प्रतिकुर्यां तथा तस्य तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ।
अपि तत्कर्म विदितं भवतां येन पन्नगम् ॥ ४
तक्षकं संप्रदीप्तेऽग्नौ प्रक्षिपेयं सबान्धवम् ।
यथा तेन पिता मह्यं पूर्वं दग्धो विषाग्निना ।
तथाऽहमपि तं पापं दग्धुमिच्छामि पन्नगम् ॥ ५

ऋत्विज ऊचुः ।

अस्ति राजन्महत्सत्रं त्वदर्थं देवनिर्मितम् ।
सर्पसत्रमिति ख्यातं पुराणे परिपठ्यते ॥ ६
आहर्ता तस्य सत्रस्य त्वन्नान्योऽस्ति नराधिप ।
इति पौराणिकाः प्राहुरस्माकं चास्ति स क्रतुः ७
एवमुक्तः स राजर्षिर्मेने दग्धं हि तक्षकम् ।
हुताशनमुखे दीप्ते प्रविष्टमिति सत्तम ॥ ८
ततोऽब्रवीन्मन्त्रविदस्तान्राजा ब्राह्मणांस्तदा ।
आहरिष्यामि तत्सत्रं संभाराः संम्रियन्तु मे ॥ ९
ततस्ते ऋत्विजस्तस्य शास्त्रतो द्विजसत्तम ।
तं देशं मापयामासुर्यज्ञायतनकारणात् ॥ १०
यथावद्वेदविद्वांसः सर्वे बुद्धेः परंगताः ।
ऋद्ध्या परमया युक्तमिष्टं द्विजगणैर्युतम् ॥ ११
प्रभूतधनधान्याढ्यमृत्विग्भिः सुनिषेवितम् ।
निर्माय चापि विधिवद्यज्ञायतनमीप्सितम् ॥ १२
राजानं दीक्षयामासुः सर्पसत्राप्तये तदा ।
इदं चासीत्तत्र पूर्वं सर्पसत्रे भविष्यति ॥ १३
निमित्तं महदुत्पन्नं यज्ञविघ्नकरं तदा ।
यज्ञस्यायतने तस्मिन्क्रियमाणे वचोऽब्रवीत् ॥१४
स्थपतिर्बुद्धिसंपन्नो वास्तुविद्याविशारदः ।
इत्यब्रवीत्सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तदा ॥ १५
यस्मिन्देशे च काले च मापनेयं प्रवर्तिता ।
ब्राह्मणं कारणं कृत्वा नायं संस्थास्यते क्रतुः॥ १६
एतच्छ्रुत्वा तु राजाऽसौ प्राग्दीक्षाकालमब्रवीत् ।
क्षत्तारं न हि मे कश्चिदज्ञातः प्रविशेदिति ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रोपक्रमे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१

सौतिरुवाच ।

ततः कर्म प्रववृते सर्पसत्रविधानतः ।
पर्यक्रामंश्च विधिवत्स्वे स्वे कर्मणि याजकाः ॥ १
प्रावृत्य कृष्णवासांसि धूम्रसंरक्तलोचनाः ।
जुहुवुर्मन्त्रवच्चैव समिद्धं जातवेदसम् ॥ २
कम्पयन्तश्च सर्वेषामुरगाणां मनांसि च ।
सर्पानाजुहुवुस्तत्र सर्वानग्निमुखे तदा ॥ ३
ततः सर्पाः समापेतुः प्रदीप्ते हव्यवाहने ।
विचेष्टमानाः कृपणमाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ४
विस्फुरन्तः श्वसन्तश्च वेष्टयन्तः परस्परम् ।
पुच्छैः शिरोभिश्च भृशं चित्रभानुं प्रपेदिरे ॥ ५
श्वेताः कृष्णाश्च नीलाश्च स्थविराः शिशवस्तथा ।
नदन्तो विविधान्नादान्पेतुर्दीप्ते विभावसौ ॥ ६
क्रोशयोजनमात्रा हि गोकर्णस्य प्रमाणतः ।
पतन्त्यजस्रं वेगेन वन्हावग्निमतां वर ॥ ७
एवं शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अवशानि विनष्टानि पन्नगानां तु तत्र वै ॥ ८
तुरगा इव तत्रान्ये हस्तिहस्ता इवापरे ।
मत्ता इव च मातङ्गा महाकाया महाबलाः ॥ ९

---

एवमुक्त्वेति॥१॥मह्यं मम॥ ५॥ त्वन्नान्यः त्वमेव नान्य यद्वा त्वत् त्वत्तो नान्योस्ति ॥७ ॥ आहरिष्यामि करिष्यामि संम्रियन्तु संम्रियन्ताम् ॥९॥दीक्षयामासुः दीक्षां ग्राहितवन्तः। सर्पसत्राप्तये सर्पसत्रफलाप्तये भविष्यति भाविनि ॥ १३ ॥ इति वक्ष्यमाणं यास्मिन्देशे इत्यादि सूतो जात्या पौराणिकः शिल्पागमवेत्ता ॥ १५ ॥ नायं संस्थास्यते न समाप्स्यते ॥ १६ ॥ दीक्षाकालस्य प्रागिति प्राग्दीक्षाकालं क्षत्तारं द्वास्थम् ॥१७॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

तत इति पर्यक्रामन् पराक्रान्तवन्तः ॥ १ ॥ मन्त्रवन्मन्त्रयुक्तं यथा स्यात्तथा ॥ २ ॥ आजुहुवुः आहूतवन्तः ॥३॥ चित्रभानुं अग्निम् ॥ ५ ॥ प्रमाणतः प्रमाणं प्राप्य ॥ ७ ॥ परिघः महाद्वारार्गलादण्डस्तत्तुल्याः । मातृवाग्दण्डपीडिता इति यैर्मातुर्वचनं नानुष्ठितं त एव पेतुरित्यर्थः ॥ ९ ॥

उच्चावचाश्च बहवो नानावर्णा विषोल्बणाः । घोराश्च परिघप्रख्या दन्दशूका महाबलाः ।
प्रपेतुरग्नावुरगा मातृवाग्दण्डपीडिताः ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रोपक्रमे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

---

शौनक उवाच ।
सर्पसत्रे तदा राज्ञः पाण्डवेयस्य धीमतः ।
जनमेजयस्य के त्वासन्नृत्विजः परमर्षयः ॥ १
के सदस्या बभूवुश्च सर्पसत्रे सुदारुणे ।
विषादजननेऽत्यर्थं पन्नगानां महाभये ॥ २
सर्वं विस्तरशस्तात भवाञ्शंसितुमर्हति ।
सर्पसत्रविधानज्ञविज्ञेयाः के च सूतज ॥ ३
सौतिरुवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि नामानीह मनीषिणाम् ।
ये ऋत्विजः सदस्याश्च तस्यासन्नृपतेस्तदा ॥ ४
तत्र होता बभूवाथ ब्राह्मणश्चण्डभार्गवः ।
च्यवनस्यान्वये ख्यातो जातो वेदविदां वरः ॥ ५
उद्गाता ब्राह्मणो वृद्धो विद्वान्कौत्सोऽथ जैमिनिः
ब्रह्माऽभवच्छार्ङ्गरवोथाध्वर्युश्चापि पिङ्गलः ॥ ६
सदस्यश्चाभवद्व्यासः पुत्रशिष्यसहायवान् ।
उद्दालकः प्रमतकः श्वेतकेतुश्च पिङ्गलः ॥ ७
असितो देवलश्चैव नारदः पर्वतस्तथा ।
आत्रेयः कुण्डजठरौ द्विजः कालघटस्तथा ॥ ८
वात्स्यः श्रुतश्रवा वृद्धो जपस्वाध्यायशीलवान्
कोहलो देवशर्मा च मौद्गल्यः समसौरभः ॥ ९
एते चान्ये च बहवो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
सदस्याश्चाभवंस्तत्र सत्रे पारिक्षितस्य ह ॥ १०
जुह्वत्स्वृत्विक्ष्वथ तदा सर्पसत्रे महाक्रतौ ।
अहयः प्रापतंस्तत्र घोराः प्राणिभयावहाः ॥ ११
वसामेदोवहाः कुल्या नागानां संप्रवर्तिताः ।
ववौ गन्धश्च तुमुलो दह्यतामनिशं तदा ॥ १२
पततां चैव नागानां धिष्टितानां तथाम्बरे ।
अश्रूयतानिशं शब्दः पच्यतां चाग्निना भृशम् ॥१३
तक्षकस्तु स नागेन्द्रः पुरंदरनिवेशनम् ।
गतः श्रुत्वैव राजानं दीक्षितं जनमेजयम् ॥ १४
ततः सर्वं यथावृत्तमाख्याय भुजगोत्तमः ।
अगच्छच्छरणं भीत आगस्कृत्वा पुरंदरम् ॥ १५
तमिन्द्रः प्राह सुप्रीतो न तवास्तीह तक्षक ।
भयं नागेन्द्र तस्माद्वै सर्पसत्रात्कदाचन ॥ १६
प्रसादितो मया पूर्वं तवार्थाय पितामहः ।
तस्मात्तव भयं नास्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥१७
सौतिरुवाच ।
एवमाश्वासितस्तेन ततः स भुजगोत्तमः ।
उवास भवने तस्मिञ्छक्रस्य मुदितः सुखी॥ १८
अजस्रं निपतत्स्वग्नौ नागेषु भृशदुःखितः ।
अल्पशेषपरीवारो वासुकिः पर्यतप्यत ॥ १९
कश्मलं चाविशद्घोरं वासुकिं पन्नगोत्तमम्।
स घूर्णमानहृदयो भगिनीमिदमब्रवीत् ॥ २०
दह्यन्त्यङ्गानि मे भद्रे न दिशः प्रतिभान्ति च ।
सीदामीव च संमोहात् घूर्णतीव च मे मनः॥२१
दृष्टिर्भ्राम्यति मेतीव हृदयं दीर्यतीव च ।
पतिष्याम्यवशोऽद्याहं तस्मिन्दीप्ते विभावसौ॥२२
पारिक्षितस्य यज्ञोऽसौ वर्ततेऽस्मज्जिघांसया ।
व्यक्तं मयाऽपि गन्तव्यं प्रेतराजनिवेशनम् । २३
अयं स कालः संप्राप्तो यदर्थमसि मे स्वसः ।
जरत्कारौ मया दत्ता त्रायस्वास्मान्सबान्धवान्२४
आस्तीकः किल यज्ञं तं वर्तन्तं भुजगोत्तमे ।
प्रतिषेत्स्यति मां पूर्वं स्वयमाह पितामहः ॥ २५
तद्वत्से ब्रूहि वत्सं स्वं कुमारं वृद्धसंमतम् ।
ममाद्य त्वं सभृत्यस्य मोक्षार्थं वेदवित्तमम् ॥२६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे वासुकिवाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३ ॥

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

सर्पसत्र इति । ऋत्विजो यज्ञे कर्मकराः ॥ १ ॥ सदस्या उपद्रष्टारः ॥ २ ॥ विधानज्ञेषु विज्ञेयाः श्रेष्ठाः ॥ ३ ॥ पच्यता पच्यमानानाम् ॥ १३ ॥ आगः अपराधं कृत्वा ॥ १५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

सौतिरुवाच ।
तत आहूय पुत्रं स्वं जरत्कारुर्भुजंगमा ।
वासुकेर्नागराजस्य वचनादिदमब्रवीत् ॥ १
अहं तव पितुः पुत्र भ्रात्रा दत्ता निमित्ततः ।
कालः स चायं संप्राप्तस्तत्कुरुष्व यथातथम् ॥ २
आस्तीक उवाच ।
किं निमित्तं मम पितुर्दत्ता त्वं मातुलेन मे ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन श्रुत्वा कर्ताऽस्मि तत्तथा ॥३
सौतिरुवाच ।
तत आचष्ट सा तस्मै बान्धवानां हितैषिणी ।
भगिनी नागराजस्य जरत्कारुरविक्लवा ॥ ४
जरत्कारुरुवाच ।
पन्नगानामशेषाणां माता कद्रूरिति श्रुता ।
तया शप्ता रुषितया सुता यस्मान्निबोध तत् ॥ ५
उच्चैःश्रवाः सोऽश्वराजो यन्मिथ्या न कृतो मम ।
विनतार्थाय पणिते दासभावाय पुत्रकाः ॥ ६
जनमेजयस्य वो यज्ञे धक्ष्यत्यनिलसारथिः ।
तत्र पञ्चत्वमापन्नाः प्रेतलोकं गमिष्यथ ॥ ७
तां च शप्तवतीं देवः साक्षाल्लोकपितामहः ।
एवमस्त्विति तद्वाक्यं प्रोवाचानुमुमोद च ॥ ८
वासुकिश्चापि तच्छ्रुत्वा पितामहवचस्तदा ।
अमृते मथिते तात देवाञ्छरणमीयिवान् ॥ ९
सिद्धार्थाश्च सुराः सर्वे प्राप्यामृतमनुत्तमम् ।
भ्रातरं मे पुरस्कृत्य पितामहमुपागमन् ॥ १०
ते तं प्रसादयामासुः सुराः सर्वेऽब्जसंभवम् ।
राज्ञा वासुकिना सार्धं शापोऽसौ न भवेदिति ११
देवा ऊचुः ।
वासुकिर्नागराजोऽयं दुःखितो ज्ञातिकारणात् ।
अभिशापः स मातुस्तु भगवन्न भवेत्कथम् ॥ १२
ब्रह्मोवाच ।
जरत्कारुर्जरत्कारुं यां भार्यां समवाप्स्यति ।
तत्र जातो द्विजः शापान्मोक्षयिष्यति पन्नगान् १३
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वासुकिः पन्नगोत्तमः ।
प्रादान्माममरप्रख्य तव पित्रे महात्मने ॥ १४
प्रागेवानागते काले तस्मात्त्वं मय्यजायथाः ।
अयं स कालः संप्राप्तो भयान्नस्त्रातुमर्हसि ॥ १५
भ्रातरं चापि मे तस्मात्त्रातुमर्हसि पावकात् ।
न मोघं तु कृतं तत्स्याद्यदहं तव धीमते ।
पित्रे दत्ता विमोक्षार्थं कथं वा पुत्र मन्यसे ॥ १६
सौतिरुवाच ।
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सास्तीको मातरं तदा ।
अब्रवीद्दुःखसंतप्तं वासुकिं जीवयन्निव । १७
अहं त्वां मोक्षयिष्यामि वासुके पन्नगोत्तम ।
तस्माच्छापान्महासत्त्व सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १८
भव स्वस्थमना नाग न हि ते विद्यते भयम् ।
प्रयतिष्ये तथा राजन्यथा श्रेयो भविष्यति ॥ १९
न मे वागनृतं प्राह स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ।
तं वै नृपवरं गत्वा दीक्षितं जनमेजयम् ॥ २०
वाग्भिर्मङ्गलयुक्ताभिस्तोषयिष्येऽद्य मातुल ।
यथा स यज्ञो नृपतेर्निवर्तिष्यति सत्तम ॥ २१
स संभावय नागेन्द्र मयि सर्वं महामते ।
न ते मयि मनो जातु मिथ्या भवितुमर्हति ॥ २२
वासुकिरुवाच ।
आस्तीक परिघूर्णामि हृदयं मे विदीर्यते ।
दिशो न प्रतिजानामि ब्रह्मदण्डनिपीडितः ॥ २३
आस्तीक उवाच ।
न संतापस्त्वया कार्यः कथंचित्पन्नगोत्तम ।
प्रदीप्ताग्नेः समुत्पन्नं नाशयिष्यामि ते भयम् ॥ २४
ब्रह्मदण्डं महाघोरं कालाग्निसमतेजसम् ।
नाशयिष्यामि मात्र त्वं भयं कार्षीः कथंचन ॥ २५
सौतिरुवाच ।
ततः स वासुकेर्घोरमपनीय मनोज्वरम् ।
आधाय चात्मनोऽङ्गेषु जगाम त्वरितो भृशम् २६
जनमेजयस्य तं यज्ञं सर्वैः समुदितं गुणैः ।
मोक्षाय भुजगेन्द्राणामास्तीको द्विजसत्तमः॥ २७
स गत्वा पश्यदास्तीको यज्ञायतनमुत्तमम् ।
वृतं सदस्यैर्बहुभिः सूर्यवह्निसमप्रभैः ॥ २८
स तत्र वारितो द्वास्थैः प्रविशन्द्विजसत्तमः ।
अभितुष्टाव तं यज्ञं प्रवेशार्थी परंतपः ॥ २९

---

तत आहूयेति ॥ १ ॥ आचष्ट व्यक्तं कथितवती । अविक्लवा अनाकुला । अविप्लवेति पाठे साध्वी ॥ ४ ॥ आभिशापः शापः ॥ १२ ॥ सास्तीक इति पादपूरणार्थः सुलोपः । सोऽस्तीक इत्यपपाठः॥ १७॥ मयि अयमस्मान्मोचयिष्यत्येवं रूपो मनः संकल्पो जातु कदाचित् मिथ्याऽन्यथा न ॥२२ ॥ ब्रह्म वेदः 'मातृदेवो भव' इति मातुराज्ञाकरत्वविधानपरस्तदन्यकरणप्रयुक्तो दण्डो मातृशापरूपो ब्रह्मदण्डः ॥ २३ ॥ ततः स इति वासुकेश्चिन्ताज्वरं स्वयं गृहीत्वेत्यर्थः ॥ २६ ॥

स प्राप्य यज्ञायतनं वरिष्ठं
द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः ।
तुष्टाव राजानमनन्तकीर्ति-
मृत्विक्सदस्यांश्च तथैव चाग्निम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे आस्तीकागमने चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

---

आस्तीक उवाच ।

सोमस्य यज्ञो वरुणस्य यज्ञः
प्रजापतेर्यज्ञ आसीत्प्रयागे ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ १

शक्रस्य यज्ञः शतसंख्य उक्त-
स्तथा परं तुल्यसंख्यं शतं वै ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ २

यमस्य यज्ञो हरिमेधसश्च
यथा यज्ञो रन्तिदेवस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ३

गयस्य यज्ञः शशबिन्दोश्च राज्ञो
यज्ञस्तथा वैश्रवणस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ४

नृगस्य यज्ञस्त्वजमीढस्य चासी-
द्यथा यज्ञो दाशरथेश्च राज्ञः ।
तथा यज्ञोयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ५

यज्ञः श्रुतो दिवि देवस्य सूनो-
र्युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ६

कृष्णस्य यज्ञः सत्यवत्याः सुतस्य
स्वयं च कर्म प्रचकार यत्र ।
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥ ७

इमे च ते सूर्यसमानवर्चसः
समासते वृत्रहणः क्रतुं यथा ।
नैषां ज्ञातुं विद्यते ज्ञानमद्य
दत्तं येभ्यो न प्रणश्येत्कदाचित् ॥ ८

ऋत्विक्समो नास्ति लोकेषु चैव
द्वैपायनेनेति विनिश्चितं मे ।
एतस्य शिष्या हि क्षितिं संचरन्ति
सर्वर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षाः ॥ ९

विभावसुश्चित्रभानुर्महात्मा
हिरण्यरेता हुतभुक्कृष्णवर्त्मा ।
प्रदक्षिणावर्तशिखः प्रदीप्तो
हव्यं तवेदं हुतभुग्वष्टि देवः ॥ १०

नेह त्वदन्यो विद्यते जीवलोके
समो नृपः पालयिता प्रजानाम् ।
धृत्या च ते प्रीतमनाः सदाहं
त्व वा वरुणो धर्मराजो यमो वा ॥ ११

शक्रः साक्षाद्वज्रपाणिर्यथेह
त्राता लोकेऽस्मिंस्त्वं तथेह प्रजानाम् ।
मतस्त्वं नः पुरुषेन्द्रेह लोके
न च त्वदन्यो भूपतिरस्ति जज्ञे ॥ १२

खट्वाङ्गनाभागदिलीपकल्प
ययातिमांधातृसमप्रभाव ।
आदित्यतेजः प्रतिमानतेजा
भीष्मो यथा राजसि सुव्रतस्त्वम् ॥ १३

---

इति आदि० नैलकण्ठीये भार० चतुःपञ्चाशत्तमो० ॥५४॥

---

सोमस्येति । स्वस्ति नोस्तु प्रियेभ्यः। न इति यजमानादीन्वासुकिप्रभृतींश्चात्मीयत्वेनाभिसंधाय तेभ्यः स्वस्ति कल्याणमस्त्वित्याशास्ते ॥ १ ॥ शक्रस्येति यथा शतं शतक्रतोर्यज्ञाः यथा वा ततोऽपि परं तुल्यसंख्यं शतं शतक्रतवो वा तथाऽयं तव यज्ञोऽयुतक्रतुतुल्य इत्यर्थः ॥ २ ॥ देवस्य धर्मराजस्य ॥ ६ ॥ नैषामिति । ज्ञानशब्दः कर्मन्युत्पन्नो ज्ञेयवचनः । अद्य संप्रति ज्ञातुं ज्ञेयं न विद्यते सर्वस्य ज्ञातत्वादित्यर्थः । अत एव तेभ्यो दत्तं साक्षाद्ब्रह्मण्येवार्पितमतस्तस्य कदाचिदपि दानजपुण्यस्य नाशो नास्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥ लोकेषु परलोकसाधनेषु दीक्षाः दीक्षावन्तः कुशलाः । दक्षा इत्यपि पाठः ॥ ९ ॥ अग्निं स्तौति विभावसुरिति । वष्टि कामयते । वष्टि देवानिति पाठे प्रापयितुमिति शेषः ॥१०॥ त्वं वा वरुण इत्यत्र त्वं वा राजेत्यपि पाठः ॥ ११ ॥ न च त्वदन्यस्त्राता भूपतिरस्ति इदानीम् । न च जज्ञे प्रागपि । अस्ति यज्ञे इत्यपिपाठः । तथा सति यज्ञे त्रातास्तीति योज्यम् । तेन प्रकृतहिंसानिवृत्तिः कर्तव्येति व्यज्यते ॥१२

वाल्मीकिवत्ते निभृतं स्ववीर्यं
वसिष्ठवत्ते नियतश्च कोपः ।
प्रभुत्वमिन्द्रत्वसमं मतं मे
द्युतिश्च नारायणवद्विभाति ॥ १४

यमो यथा धर्मविनिश्चयज्ञः
कृष्णो यथा सर्वगुणोपपन्नः ।
श्रियां निवासोऽसि यथा वसूनां
निधानभूतोऽसि तथा क्रतूनाम् ॥ १५

दम्भोद्भवेनासि समो बलेन
रामो यथा शास्त्रविदस्त्रविच्च ।
और्वत्रिताभ्यामसि तुल्यतेजा
दुष्प्रेक्षणीयोऽसि भगीरथेन ॥ १६

सौतिरुवाच ।

एवं स्तुताः सर्व एव प्रसन्ना
राजा सदस्या ऋत्विजो हव्यवाहः ।
तेषां दृष्ट्वा भावितानीङ्गितानि
प्रोवाच राजा जनमेजयोऽथ ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्व० आस्तीकपर्व० सर्पसत्रे आस्तीककृतराजस्तवे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

---

जनमेजय उवाच ।

बालोऽप्ययं स्थविर इवावभाषते
नायं बालः स्थविरोऽयं मतो मे ।
इच्छाम्यहं वरमस्मै प्रदातुं
तन्मे विप्राः संविदध्वं यथावत् ॥ १

सदस्या ऊचुः ।

बालोऽपि विप्रो मान्य एवेह राज्ञां
विद्वान्यो वै स पुनर्वै यथावत् ।
सर्वान्कामांस्त्वत्त एवार्हतेऽद्य
यथा च नस्तक्षक एति शीघ्रम् ॥ २

सौतिरुवाच ।

व्याहर्तुकामे वरदे नृपे द्विजं
वरं वृणीष्वेति ततोऽभ्युवाच ।
होता वाक्यं नातिहृष्टान्तरात्मा
कर्मण्यस्मिंस्तक्षको नैति तावत् ॥ ३

जनमेजय उवाच ।

यथा चेदं कर्म समाप्यते मे
यथा च वै तक्षक एति शीघ्रम् ।
तथा भवन्तः प्रयतन्तु सर्वे
परं शक्त्या स हि मे विद्विषाणः ॥ ४

ऋत्विज ऊचुः ।

यथा शास्त्राणि नः प्राहुर्यथा शंसति पावकः ।
इन्द्रस्य भवने राजंस्तक्षको भयपीडितः ॥ ५

यथा सूतो लोहिताक्षो महात्मा
पौराणिको वेदितवान्पुरस्तात् ।
स राजानं प्राह पृष्टस्तदानीं
यथाहुर्विप्रास्तद्वदेतन्नृदेव ॥ ६

पुराणमागम्य ततो ब्रवीम्यहं
दत्तं तस्मै वरमिन्द्रेण राजन् ।
वसेह त्वं मत्सकाशे सुगुप्तो
न पावकस्त्वां प्रदहिष्यतीति ॥ ७

एतच्छ्रुत्वा दीक्षितस्तप्यमान
आस्ते होतारं चोदयन्कर्मकाले ।
होता च यत्तोऽस्याजुहावाथ मन्त्रै-
रथो महेन्द्रः स्वयमाजगाम ॥ ८

विमानमारुह्य महानुभावः
सर्वैर्देवैः परिसंस्तूयमानः ।
बलाहकैश्चाप्यनुगम्यमानो
विद्याधरैरप्सरसां गणैश्च ॥ ९

---

निभृतं गुप्तम् । नियतो निगृहीतः ॥ १४ ॥ वसूनां श्रियां निवासोऽसि । वसवोऽष्टौ तत्संबन्धिनीनां श्रियाम् ॥१५ ॥ रामो भार्गवः और्वत्रिताव्रृषी ॥ १६ ॥ तेषामृत्विगादीनां भावितानि मनसि संकल्पितानि । इङ्गितानि बहिश्चेष्टितानि वक्त्रादिचिह्नानि आस्तीकातिथ्यविषयाणि । भारतस्त्विङ्गितानीति पाठे भारतो राजा भरतवंशजत्वात् ॥ १७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

बालोऽपीति । संविदध्वं ऐकमत्यं कुरुध्वम् ॥ १ ॥ एति शीघ्रं प्राग्वरदानादिति तथा कर्तव्यमिति भावः ॥ २ ॥ तक्षकस्तावन्नैतीति वाक्यं होता उवाचेति संबन्धः । तावद्वरो न देय इति भावः ॥ ३ ॥ विद्विषाणः द्वेषं कृतवान् । लिटः कानच् । अभ्यासलोप आर्षः।दिद्विषाण इति वा पाठः ॥ ४ ॥ शास्त्राणि शंसनमन्त्रदेवताः । शास्त्राणीति पाठे पुराकल्परूपा अर्थवादाः ॥ ५ ॥ पुराणं पूर्वकल्पीयवृत्तान्तम्। आगम्य ज्ञात्वा तेनास्मिन्नपि कल्पे तथैव भवितेति भावः॥७

तस्योत्तरीये निहितः स नागो
भयोद्विग्नः शर्म नैवाभ्यगच्छत् ।
ततो राजा मन्त्रविदोऽब्रवीत्पुनः
क्रुद्धो वाक्यं तक्षकस्यान्तमिच्छन् ॥१०

जनमेजय उवाच ।

इन्द्रस्य भवने विप्रा यदि नागः स तक्षकः ।
तमिन्द्रेणैव सहितं पातयध्वं विभावसौ ॥ ११

सौतिरुवाच ।

जनमेजयेन राज्ञा तु नोदितस्तक्षकं प्रति ।
होता जुहाव तत्रस्थं तक्षकं पन्नगं तथा ॥ १२
हूयमाने तथा चैव तक्षकः स पुरंदरः ।
आकाशे ददृशे चैव क्षणेन व्यथितस्तदा ॥ १३
पुरंदरस्तु तं यज्ञं दृष्ट्वोरुभयमाविशत् ।
हित्वा तु तक्षकं त्रस्तः स्वमेव भवनं ययौ ॥ १४
इन्द्रे गते तु राजेन्द्र तक्षको भयमोहितः ।
मन्त्रशक्त्या पावकार्चिः समीपमवशो गतः ॥१५

ऋत्विज ऊचुः ।

वर्तते तव राजेन्द्र कर्मैतद्विधिवत्प्रभो ।
अस्मै तु द्विजमुख्याय वरं त्वं दातुमर्हसि ॥ १६

जनमेजय उवाच ।

बालाभिरूपस्य तवाप्रमेय
वरं प्रयच्छामि यथानुरूपम् ।
वृणीष्व यत्तेऽभिमतं हृदि स्थितं
तत्ते प्रदास्याम्यपि चेददेयम् ॥ १७

ऋत्विज ऊचुः ।

अयमायाति तूर्णं स तक्षकस्ते वशं नृप ।
श्रूयतेऽस्य महान्नादो नदतो भैरवं रवम् ॥ १८
नूनं मुक्तो वज्रभृता स नागो
भ्रष्टो नाकान्मन्त्रविस्रस्तकायः ।
घूर्णन्नाकाशे नष्टसंज्ञोऽभ्युपैति
तीव्रान्निःश्वासान्निःश्वसन्पन्नगेन्द्रः ॥ १९

सौतिरुवाच ।

पतिष्यमाणे नागेन्द्रे तक्षके जातवेदसि ।
इदमन्तरमित्येवं तदास्तीकोऽभ्यचोदयत् ॥ २०

आस्तीक उवाच ।

वरं ददासि चेन्मह्यं वृणोमि जनमेजय ।
सत्रं ते विरमत्वेतन्न पतेयुरिहोरगाः ॥ २१
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मन्पारिक्षितस्तु सः ।
नातिहृष्टमनाश्चेदमास्तीकं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२
सुवर्णं रजतं गाश्च यच्चान्यन्मन्यसे विभो ।
तत्ते दद्यां वरं विप्र न निवर्तेत्क्रतुर्मम ॥ २३

आस्तीक उवाच ।

सुवर्णं रजतं गाश्च न त्वां राजन्वृणोम्यहम् ।
सत्रं ते विरमत्वेतत्स्वस्ति मातृकुलस्य नः ॥ २४

सौतिरुवाच ।

आस्तीकेनैवमुक्तस्तु राजा पारिक्षितस्तदा ।
पुनः पुनरुवाचेदमास्तीकं वदतां वरः ॥ २५
अन्यं वरय भद्रं ते वरं द्विजवरोत्तम ।
अयाचत न चाप्यन्यं वरं स भृगुनन्दन ॥ २६
ततो वेदविदस्तात सदस्याः सर्व एव तम् ।
राजानमूचुः सहिता लभतां ब्राह्मणो वरम् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि आस्तीकवरप्रदानं षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

---

शौनक उवाच ।

ये सर्पाः सर्पसत्रेऽस्मिन्पतिता हव्यवाहने ।
तेषां नामानि सर्वेषां श्रोतुमिच्छामि सूतज ॥ १

सौतिरुवाच ।

सहस्राणि बहून्यस्मिन्प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
न शक्यं परिसंख्यातुं बहुत्वाद्द्विजसत्तम ॥ २
यथास्मृति तु नामानि पन्नगानां निबोध मे ।
उच्यमानानि मुख्यानां हुतानां जातवेदसि ॥ ३
वासुकेः कुलजातांस्तु प्राधान्येन निबोध मे ।
नीलरक्तान्सितान्घोरान्महाकायान्विषोल्बणान् ४
अवशान्मातृवाग्दण्डपीडितान्कृपणान्हुतान् ।
कोटिशो मानसः पूर्णः शलः पालो हलीमकः ॥५

---

विभावसौ वन्हौ ॥ ११ ॥ भयं आविशत्प्राप्तवान् ॥ १४ ॥ इन्द्रादपि ब्राह्मणसामर्थ्यमधिकं तथापि ब्राह्मणैर्देवहेलनं न कर्तव्यमित्याशयेन ऋत्विज ऊचुः वर्तत इति ॥ १६ ॥ हे बाल ॥ १७ ॥ नाकात्स्वर्गात् ॥ १९ ॥

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

---

ये सर्पा इति ॥ १ ॥

पिच्छलः कौणपश्चक्रः कालवेगः प्रकालनः ।
हिरण्यबाहुः शरणः कक्षकः कालदन्तकः ॥ ६
एते वासुकिजा नागाः प्रविष्टा हव्यवाहने ।
अन्ये च बहवो विप्र तथा वै कुलसंभवाः ।
प्रदीप्ताग्नौ हुताः सर्वे घोररूपा महाबलाः ॥ ७
तक्षकस्य कुले जातान्प्रवक्ष्यामि निबोध तान् ।
पुच्छाण्डको मण्डलकः पिण्डसेक्ता रभेणकः ॥८
उच्छिखः शरभो भङ्गो बिल्वतेजा विरोहणः ।
शिली शलकरो मूकः सुकुमारः प्रवेपनः ॥ ९
मुद्गरः शिशुरोमा च सुरोमा च महाहनुः ।
एते तक्षकजा नागाः प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ १०
पारावतः पारियातः पाण्डरो हरिणः कृशः ।
विहङ्गः शरभो मेदः प्रमोदः संहतापनः ॥ ११
ऐरावतकुलादेते प्रविष्टा हव्यवाहनम् ।
कौरव्यकुलजान्नागाञ्शृणु मे त्वं द्विजोत्तम ॥ १२
एरकः कुण्डलो वेणी वेणीस्कन्धः कुमारकः ।
बाहुकः शृङ्गवेरश्च धूर्तकः प्रातरातकौ ॥ १३
कौरव्यकुलजास्त्वेते प्रविष्टा हव्यवाहनम् ।
धृतराष्ट्रकुले जाताञ्शृणु नागान्यथातथम् ॥ १४
कीर्त्यमानान्मया ब्रह्मन्वातवेगान्विषोल्बणान् ।
शङ्कुकर्णः पिठरकः कुठारमुखसेचकौ ॥ १५
पूर्णाङ्गदः पूर्णमुखः प्रहासः शकुनिर्दरिः ।
अमाहठः कामठकः सुषेणो मानसोऽव्ययः ॥ १६
भैरवो मुण्डवेदाङ्गः पिशङ्गश्चोद्रपारकः ।
ऋषभो वेगवान्नागः पिण्डारकमहाहनू ॥ १७
रक्ताङ्गः सर्वसारङ्गः समृद्धपटवासकौ ।
वराहको वीरणकः सुचित्रश्चित्रवेगिकः ॥ १८
पराशरस्तरुणको मणिः स्कन्धस्तथारुणिः ।
इति नागा मया ब्रह्मन्कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥१९
प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तिताः ।
एतेषां प्रसवो यश्च प्रसवस्य च संततिः ॥ २०
न शक्यं परिसंख्यातुं ये दीप्तं पावकं गताः ।
त्रिशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च दशशीर्षास्तथाऽपरे ॥ २१
कालानलविषा घोरा हुताः शतसहस्रशः ।
महाकाया महावेगाः शैलशृङ्गसमुच्छ्रयाः ॥ २२
योजनायामविस्तारा द्वियोजनसमायताः ।
कामरूपाः कामबला दीप्तानलविषोल्बणाः ॥२३
दग्धास्तत्र महासत्रे ब्रह्मदण्डनिपीडिताः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पनामकथने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

---

सौतिरुवाच ।

इदमत्यद्भुतं चान्यदास्तीकस्यानुशुश्रुम ।
तथा वरैश्छन्द्यमाने राज्ञा पारिक्षितेन हि ॥ १
इन्द्रहस्ताच्च्युतो नागः ख एव यदतिष्ठत ।
ततश्चिन्तापरो राजा बभूव जनमेजयः ॥ २
हूयमाने भृशं दीप्ते विधिवद्वसुरेतसि ।
न स्म स प्रापतद्वन्हौ तक्षको भयपीडितः ॥ ३

शौनक उवाच ।

किं सूत तेषां विप्राणां मन्त्रग्रामो मनीषिणाम् ।
न प्रत्यभात्तदाऽग्नौ यत्स पपात न तक्षकः ॥ ४

सौतिरुवाच ।

तमिन्द्रहस्ताद्विस्रस्तं विसंज्ञं पन्नगोत्तमम् ।
आस्तीकस्तिष्ठ तिष्ठेति वाचस्तिस्रोऽभ्युदैरयत् ॥५
वितस्थे सोऽन्तरिक्षे च हृदयेन विदूयता ।
यथा तिष्ठति वै कश्चित्खं च गां चान्तरा नरः ॥६
ततो राजाऽब्रवीद्वाक्यं सदस्यैश्चोदितो भृशम् ।
काममेतद्भवत्वेवं यथास्तीकस्य भाषितम् ॥ ७
समाप्यतामिदं कर्म पन्नगाः सन्त्वनामयाः ।
प्रीयतामयमास्तीकः सत्यं सूतवचोऽस्तु तत् ॥ ८
ततो हलहलाशब्दः प्रीतिदः समजायत ।
आस्तीकस्य वरे दत्ते तथैवोपरराम च ॥ ९
स यज्ञः पाण्डवेयस्य राज्ञः पारिक्षितस्य ह ।
प्रीतिमांश्चाभवद्राजा भारतो जनमेजयः ॥ १०
ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो ये तत्रासन्समागताः ।
तेभ्यश्च प्रददौ वित्तं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११
लोहिताक्षाय सूताय तथा स्थपतये विभुः ।
येनोक्तं तस्य तत्राग्रे सर्पसत्रनिवर्तने ॥ १२

---

योजनायामविस्तारा अपि मन्त्रसामर्थ्यात्स्वल्पप्रमाणाः । अगस्त्यकरगतसमुद्रवत् । वन्हौ प्रवेशयोग्या भवन्ति ॥ २३ ॥ ब्रह्म वेदस्तत्तुल्यं मातृवाक्यं तद्रूपो दण्डो ब्रह्मदण्डस्तेन निपीडिताः ॥ २४॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इदमिति ॥ १ ॥ खं च गां चान्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये अन्तरिक्ष इत्यर्थः ॥ ६ ॥ स यज्ञ उपररामेत्यन्वयः ॥१० ॥ स्थपतये शिल्पिने ॥ १२ ॥

निमित्तं ब्राह्मण इति तस्मै वित्तं ददौ बहु ।
दत्वा द्रव्यं यथान्यायं भोजनाच्छादनान्वितम् १३
प्रीतस्तस्मै नरपतिरप्रमेयपराक्रमः ।
ततश्चकारावभृथं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १४
आस्तीकं प्रेषयामास गृहानेव सुसंस्कृतम् ।
राजा प्रीतमनाः प्रीतं कृतकृत्यं मनीषिणम् ॥ १५
पुनरागमनं कार्यमिति चैनं वचोऽब्रवीत् ।
भविष्यसि सदस्यो मे वाजिमेधे महाक्रतौ ॥ १६
तथेत्युक्त्वा प्रदुद्राव तदास्तीको मुदा युतः ।
कृत्वा स्वकार्यमतुलं तोषयित्वा च पार्थिवम् ॥१७
स गत्वा परमप्रीतो मातुलं मातरं च ताम् ।
अभिगम्योपसंगृह्य तथावृत्तं न्यवेदयत् । १८

सौतिरुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा प्रीयमाणाः समेता
ये तत्रासन्पन्नगा वीतमोहाः ।
आस्तीके वै प्रीतिमन्तो बभूवु-
रूचुश्चैनं वरमिष्टं वृणीष्व ॥ १९
भूयो भूयः सर्वशस्तेऽब्रुवंस्तं
किं ते प्रियं करवामाद्य विद्वन् ।
प्रीता वयं मोक्षिताश्चैव सर्वे
कामं किं ते करवामाद्य वत्स ॥ २०

आस्तीक उवाच ।

सायंप्रातर्ये प्रसन्नात्मरूपा
लोके विप्रा मानवा ये परेऽपि ।
धर्माख्यानं ये पठेयुर्ममेदं
तेषां युष्मद्भ्यो नैव किंचिद्भयं स्यात् ॥ २१
तैश्चाप्युक्तो भागिनेयः प्रसन्नै-
रेतत्सत्यं काममेवं वरं ते ।
प्रीत्या युक्ताः कामितं सर्वशस्ते
कर्तारः स्म प्रवणा भागिनेय ॥ २२
असितं चार्तिमन्तं च सुनीथं चापि यः स्मरेत् ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत् ॥ २३
यो जरत्कारुणा जातो जरत्कारौ महायशाः ।
आस्तीकः सर्पसत्रे वः पन्नगान्योऽभ्यरक्षत ।
तं स्मरन्तं महाभागा न मां हिंसितुमर्हथ ॥ २४
सर्पापसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष ।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥ २५
आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते ।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा ॥ २६

सौतिरुवाच ।

स एवमुक्तस्तु तदा द्विजेन्द्रः
समागतैस्तैर्भुजगेन्द्रमुख्यैः ।
संप्राप्य प्रीतिं विपुलां महात्मा
ततो मनो गमनायाय दध्रे ॥ २७
मोक्षयित्वा तु भुजगान्सर्पसत्राद्द्विजोत्तमः ।
जगाम काले धर्मात्मा दिष्टान्तं पुत्रपौत्रवान् ॥२८
इत्याख्यानं मयास्तीकं यथावत्तव कीर्तितम् ।
यत्कीर्तयित्वा सर्पेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् २९

सौतिरुवाच ।

यथा कथितवान्ब्रह्मन्प्रमतिः पूर्वजस्तव ।
पुत्राय रुरवे प्रीतः पृच्छते भार्गवोत्तम ॥ ३०
यद्वाक्यं श्रुतवांश्चाहं तथा च कथितं मया ।
आस्तीकस्य कवेर्विप्र श्रीमच्चरितमादितः ॥ ३१
श्रुत्वा धर्मिष्ठमाख्यानमास्तीकं पुण्यवर्धनम् ।
यन्मां त्वं पृष्टवान्ब्रह्मन्श्रुत्वा डुण्डुभभाषितम् ।
व्येतु ते सुमहद्ब्रह्मन्कौतूहलमरिंदम ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि आस्तीकपर्वणि सर्पसत्रे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

---

समाप्तमास्तीकपर्व ।

---

अवभृथं यज्ञसमाप्तिम् ॥ १४ ॥ सुसंस्कृतं वस्त्रालंकरणादिभि शोभितम् ॥ १५ ॥ प्रदुद्राव शीघ्रं मातुलाय हर्षमाख्यातुम् ॥ १७ ॥ प्रवणा नम्रा ॥ २२ ॥ प्रसंगात्सर्पभयनिवर्तनान्मन्त्रान्पठति । असितामित्यादीन् । तत्र द्वितीय पद्पाद ॥ २३ ॥ दिष्टान्तं मोक्षम् ॥ २८ ॥ कौतूहलं कद्रुवसर्पसत्रमित्याश्चर्यम् । 'रहस्यं सौपर्णे कुमतिसुमतीकद्रूविनते भुजङ्गा कामाद्या सुकृतमरुणस्तापशमन । सुपर्णः प्रत्यर्थी कृतकममृत नेच्छति पणी तदिच्छन्वन्ध्याशो ह्यजनि हरिशक्रौ परनरौ ॥ १ ॥ 'अमृतमथनगुह्यं यत्नतौल्येपि देवैरमृतमसुरसंघ स्त्रीमनस्को न लेभे । अपि फणिमखगोप्यं साध्वसाध्वोरपिस्तोभयमभयमवश्यं विप्रहेलाश्रयाभ्याम्' ॥ २ ॥ रन्तगर्भस्तु । ' संततिस्तुतिरास्तीके तथा सर्वापदामपि । निवृत्तिर्ब्राह्मणात्तस्य शक्तिश्चातीव कथ्यते ॥ ३२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५८ ॥

## अंशावतरणपर्व ।

शौनक उवाच ।

भृगुवंशात्प्रभृत्येव त्वया मे कीर्तितं महत् ।
आख्यानमखिलं तात सौते प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥ १
वक्ष्यामि चैव भूयस्त्वां यथावत्सूतनन्दन ।
याः कथा व्याससंपन्नास्ताश्च भूयो विचक्ष्व मे २
तस्मिन्परमदुष्पारे सर्पसत्रे महात्मनाम् ।
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य सदस्यानां तथाऽध्वरे ॥ ३
या बभूवुः कथाश्चित्रा येष्वर्थेषु यथातथम् ।
त्वत्त इच्छामहे श्रोतुं सौते त्वं वै प्रचक्ष्व नः ॥ ४

सौतिरुवाच ।

कर्मान्तरेष्वकथयन्द्विजा वेदाश्रयाः कथाः ।
व्यासस्त्वकथयच्चित्रमाख्यानं भारतं महत् ॥ ५

शौनक उवाच ।

महाभारतमाख्यानं पाण्डवानां यशस्करम् ।
जनमेजयेन पृष्टः सन्कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ ६
श्रावयामास विधिवत्तदा कर्मान्तरे तु सः ।
तामहं विधिवत्पुण्यां श्रोतुमिच्छामि वै कथाम् ॥ ७
मनः सागरसंभूतां महर्षेर्भावितात्मनः ।
कथयस्व सतां श्रेष्ठ सर्वरत्नमयीमिमाम् ॥ ८

सौतिरुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् ।
कृष्णद्वैपायनमतं महाभारतमादितः ॥ ९
शृणु सर्वमशेषेण कथ्यमानं मया द्विज ।
शंसितुं तन्महान्हर्षो ममापीह प्रवर्तते ॥ १०

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि कथानुबन्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

---

सौतिरुवाच ।

श्रुत्वा तु सर्पसत्राय दीक्षितं जनमेजयम् ।
अभ्यगच्छदृषिर्विद्वान्कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ १
जनयामास यं काली शक्तेः पुत्रात्पराशरात् ।
कन्यैव यमुनाद्वीपे पाण्डवानां पितामहम् ॥ २
जातमात्रश्च यः सद्य इष्ट्या देहमवीवृधत् ।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान्सेतिहासान्महायशाः ॥ ३
यन्नात्येति तपसा कश्चिन्न वेदाध्ययनेन च ।
न व्रतैर्नोपवासैश्च न प्रसूत्या न मन्युना ॥ ४
विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः ।
परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः ॥ ५
यः पाण्डुं धृतराष्ट्रं च विदुरं चाप्यजीजनत् ।
शान्तनोः संततिं तन्वन्पुण्यकीर्तिर्महायशाः ॥ ६
जनमेजयस्य राजर्षेः स महात्मा सदस्तथा ।
विवेश सहितः शिष्यैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ७

---

भृग्विति ॥ १ ॥ विचक्ष्व विशेषेण स्पष्टं कथय ॥ २ ॥ कर्मान्तरेष्विति । वेदाश्रयाः शौनःशेपाख्यानादयः । अकथयद्वैशंपायनं कथाः कथयितुं प्रयोजितवान् । वेदाश्रयाभ्योपि कथाभ्य एताः कथाः श्रेष्ठतरा इति भावः ॥ ५ ॥ भावितः योगसंस्कृत आत्मा मनो यस्य स भावितात्मा तस्य । पाठान्तरे । न हि तृप्यामि कथ्यति त्वयि कथयति सति ॥ ८ ॥ इति आदिप० नै० भारतभा० एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

---

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ काली सत्यवती ॥ २ ॥ इष्टया इच्छया देहं सद्योऽवीवृधत् वर्धितवान् । देवीमितिपाठे देवीं मातरं वरदानेन वा स सरस्वतीं वा उपबृंहणैरवीवृधत् वर्धितवान् । देवी वृद्धिमेवाह । वेदानिति । चाद्वेदार्थान् । अधिजगे अधिगतवान् ॥ ३ ॥ यन्नेतीति । यत्तप आदिना कश्चिन्नैति नात्येति नातिशेते इति प्राञ्चः । यद्वस्तु तप आदिना कश्चिन्नैति न प्राप्नोति तदप्यात्मतत्त्वमधिजगे इति पूर्वेण संबन्धः । तथा च न कर्मणा न प्रजया धनेन नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन इत्यादिश्रुतिभ्यस्तप आदिनापि दुष्प्रापमात्मतत्त्वं जातमात्र एवाधिगतवानित्यर्थः । मन्युना यज्ञेन ॥ ४ ॥ विव्यास विभक्तवान् । हौत्राध्वर्यवौद्गात्राणि काण्डानि त्रेतानुपयुक्तं काण्डं च पृथक्कृतवानित्यर्थः । परावरे निरुपाधिसोपाधिब्रह्मणी जानातीति परावरज्ञः ब्रह्मर्षिः । ब्राह्मणश्चासौ मन्त्रद्रष्टा चेत्यर्थः । कविः क्रान्तं अतीतादितद्दर्शी ॥ ५ ॥ पुण्यकीर्तिर्महायशाः । यो गुणौघः । श्रूयमाणस्तादृशगुणार्जने पुरुषं व्यापारयति सा कीर्तिः । यथा युधिष्ठिरस्य धर्मनिष्ठत्वम् । कृविक्षेपेऽस्मात्संज्ञायांक्तिच् । *यश्च गुणौघो गृह्यमाणः पुरुषमाल्हादयत्येव न प्रवर्तयति स* यशः । यथा ज्योत्स्ना चन्द्रस्य । यथा विष्णोर्लोकत्रयाक्रमणं पदत्रयेण वसिष्ठस्य क्षमा रामस्य सेतुर्यशः ॥ ६ ॥ सदः यज्ञमण्डपम् ॥ ७ ॥ देवैरित्यत्र मेधैरिति पाठे मेधाश-

तत्र राजानमासीनं ददर्श जनमेजयम् ।
वृतं सदस्यैर्बहुभिर्देवैरिव पुरंदरम् ॥ ८
तथा मूर्धाभिषिक्तैश्च नानाजनपदेश्वरैः ।
ऋत्विग्भिर्ब्रह्मकल्पैश्च कुशलैर्यज्ञसंस्तरे ॥ ९
जनमेजयस्तु राजर्षिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ।
सगणोभ्युद्ययौ तूर्णं प्रीत्या भरतसत्तमः ॥ १०
काञ्चनं विष्टरं तस्मै सदस्यानुमतः प्रभुः ।
आसनं कल्पयामास यथा शक्रो बृहस्पतेः ॥ ११
तत्रोपविष्टं वरदं देवर्षिगणपूजितम् ।
पूजयामास राजेन्द्रः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १२
पाद्यमाचमनीयं च अर्घ्यं गां च विधानतः ।
पितामहाय कृष्णाय तदर्हाय न्यवेदयत् ॥ १३
प्रतिगृह्य तु तां पूजां पाण्डवाज्जनमेजयात् ।
गां चैव समनुज्ञाप्य व्यासः प्रीतोभवत्तदा ॥ १४
तथा च पूजयित्वा तं प्रणयात्प्रपितामहम् ।
उपोपविश्य प्रीतात्मा पर्यपृच्छदनामयम् ॥ १५
भगवानपि तं दृष्ट्वा कुशलं प्रतिवेद्य च ।
सदस्यैः पूजितः सर्वैः सदस्यान्प्रत्यपूजयत् ॥ १६
ततस्तु सहितः सर्वैः सदस्यैर्जनमेजयः ।
इदं पश्चाद्द्विजश्रेष्ठं पर्यपृच्छत्कृताञ्जलिः ॥ १७

जनमेजय उवाच ।

कुरूणां पाण्डवानां च भवान्प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
तेषां चरितमिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज ॥ १८
कथं समभवद्भेदस्तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
तच्च युद्धं कथं वृत्तं भूतान्तकरणं महत् ॥ १९
पितामहानां सर्वेषां दैवेनाविष्टचेतसाम् ।
कार्त्स्न्येनैतन्ममाचक्ष्व यथावृत्तं द्विजोत्तम ॥ २०

सौतिरुवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा ।
शशास शिष्यमासीनं वैशंपायनमन्तिके ॥ २१

व्यास उवाच ।

कुरूणां पाण्डवानां च यथा भेदोऽभवत्पुरा ।
तदस्मै सर्वमाचक्ष्व यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥ २२
गुरोर्वचनमाज्ञाय स तु विप्रर्षभस्तदा ।
आचचक्षे ततः सर्वमितिहासं पुरातनम् ॥ २३
राज्ञे तस्मै सदस्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च सर्वशः ।
भेदं सर्वविनाशं च कुरुपाण्डवयोस्तदा ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि कथानुबन्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

गुरवे प्राङ्नमस्कृत्य मनोबुद्धिसमाधिभिः ।
संपूज्य च द्विजान्सर्वांस्तथान्यान्विदुषो जनान् १
महर्षेर्विश्रुतस्येह सर्वलोकेषु धीमतः ।
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यास्य महात्मनः॥ २
श्रोतुं पात्रं च राजंस्त्वं प्राप्येमां भारतीं कथाम् ।
गुरोर्वक्त्रपरिस्पन्दो मनः प्रोत्साहतीव मे ॥ ३
शृणु राजन्यथा भेदः कुरुपाण्डवयोरभूत् ।
राज्यार्थे द्यूतसंभूतो वनवासस्तथैव च ॥ ४

---

द्वान्मत्वर्थीयोऽर्शआद्यच् । मेधावद्भिर्बहुभिर्बृहस्पतिभिरिवेत्य भूतोपमा । बृहस्पतेरेकत्वात् ॥८॥ मूर्ध्नि पट्टस्थानेऽभिषिक्तैर्मूर्धाभिषिक्तैः । यज्ञसंस्तरे यज्ञाङ्गाना रचनानुष्ठाने इत्यर्थ ॥ ९ ॥ पितामहाय ब्रह्मतुल्याय । कृष्णाय व्यासाय ॥ १३ ॥ विष्टरादिभिर्मधुपर्कार्चनं दर्शितम् । तत्र निवेदिता गा समनुज्ञापितवान् व्यासो मा गामनागामिति मन्त्रलिङ्गात्तस्या अवध्यत्व मन्यमान । तद्यर्थवादो मनुष्यराज आगतेऽन्यस्मिन्वार्हत्युक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्ते इत्यर्थवादस्तु रागप्राप्तानुवादस्वरूपो न विधायक । मावधिष्टेति निषेधलिङ्गस्य अनागामिति निरपराधत्वहेतूपोद्बलितस्य प्रबलतरत्वात् । वेहत वध्या गा क्षदन्ते हिंसन्ति ॥१४॥ उपोपविश्य समीपे उपविश्य ॥ १५ ॥ प्रतिवेद्य प्रतिरयाप्य । अत्र पूजास्तुतिरेव ॥ १६ ॥ इदं वक्ष्यमाणम् ॥ १७ ॥ प्रत्यक्षदर्शिवान् प्रत्यक्षदर्शी । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति वनिप् ॥ १८ ॥ भेद वैरं । अक्लिष्टं रागद्वेषादिशून्यं कर्म येषा तेषा अक्लिष्टकर्मणाम् ॥ १९ ॥ पितामहाना प्रपितामहानाम् ॥ २० ॥ भेद वैरमूलं सर्वविनाश च तत्फलम् ॥ २४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

---

गुरव इति । मनोबुद्धिसमाधिभि मन इत्यष्टाङ्गोपलक्षणं बुद्धीति भक्तिश्रद्धयो । समाधिश्चित्तैकाग्र्य । संपूज्य नमस्कारादिना मानयित्वा ॥ १ ॥ प्रोत्साहयतीव परिस्पन्दमुत्प्रोत्साहयतीव मे इति पाठे परिस्पन्दशब्दे क्लीबत्वमार्षं । गुरोर्वक्त्रपरिस्पन्दस्त्वं कथा कथयेत्याज्ञावचन तज्जन्याभुत्प्रीति सा प्रोत्साहयति ॥ ३ ॥

यथा च युद्धमभवत्पृथिवीक्षयकारकम् ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि पृच्छते भरतर्षभ ॥ ५
मृते पितरि ते वीरा वनादेत्य स्वमन्दिरम् ।
न चिरादेव विद्वांसो वेदे धनुषि चाभवन् ॥ ६
तांस्तथा सत्ववीर्यौजःसंपन्नान्पौरसंमतान् ।
नामृष्यन्कुरवो दृष्ट्वा पाण्डवाञ्छ्रीयशोभृतः ॥ ७
ततो दुर्योधनः क्रूरः कर्णश्च सह सौबलः ।
तेषां निग्रहनिर्वासान्विविधांस्ते समारभन् ॥ ८
ततो दुर्योधनः शूरः कुलिङ्गस्य मते स्थितः ।
पाण्डवान्विविधोपायै राज्यहेतोरपीडयत् ॥ ९
ददावथ विषं पापो भीमाय धृतराष्ट्रजः ।
जरयामास तद्वीरः सहान्नेन वृकोदरः ॥ १०
प्रमाणकोट्यां संसुप्तं पुनर्बध्वा वृकोदरम् ।
तोयेषु भीमं गङ्गायाः प्रक्षिप्य पुरमाव्रजत् ॥ ११
यदा विबुद्धः कौन्तेयस्तदा संच्छिद्य बन्धनम् ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्भीमसेनो गतव्यथः ॥ १२
आशीविषैः कृष्णसर्पैः सुप्तं चैनमदंशयत् ।
सर्वेष्वेवाङ्गदेशेषु न ममार च शत्रुहा ॥ १३
तेषां तु विप्रकारेषु तेषु तेषु महामतिः ।
मोक्षणे प्रतिकारे च विदुरोऽवहितोऽभवत् ॥ १४
स्वर्गस्थो जीवलोकस्य यथा शक्रः सुखावहः ।
पाण्डवानां तथा नित्यं विदुरोऽपि सुखावहः ॥ १५
यदा तु विविधोपायैः संवृतैर्विवृतैरपि ।
नाशक्नुवन्निहन्तुं तान्दैवभाव्यर्थरक्षितान् ॥ १६
ततः संमन्त्र्य सचिवैर्वृषदुःशासनादिभिः ।
धृतराष्ट्रमनुज्ञाप्य जातुषं गृहमादिशत् ॥ १७
सुतप्रियैषी तान्राजा पाण्डवानम्बिकासुतः ।
ततो विवासयामास राज्यभोगबुभुक्षया ॥ १८
ते प्रातिष्ठन्त सहिता नगरान्नागसाह्वयात् ।
प्रस्थाने चाभवन्मन्त्री क्षत्ता तेषां महात्मनाम् १९
तेन मुक्ता जतुगृहान्निशीथे प्राद्रवन्वनम् ।
ततः संप्राप्य कौन्तेया नगरं वारणावतम् ॥ २०
न्यवसन्त महात्मानो मात्रा सह परंतपाः ।
धृतराष्ट्रेण चाज्ञप्ता उषिता जातुषे गृहे ॥ २१
पुरोचनाद्रक्षमाणाः संवत्सरमतन्द्रिताः ।
सुरुङ्गां कारयित्वा तु विदुरेण प्रचोदिता ॥ २२
आदीप्य जातुषं वेश्म दग्ध्वा चैव पुरोचनम् ।
प्राद्रवन्भयसंविग्ना मात्रा सह परंतपाः ॥ २३
ददृशुर्दारुणं रक्षो हिडिम्बं वननिर्झरे ।
हत्वा च तं राक्षसेन्द्रं भीताः समवबोधनात् २४
निशि संप्राद्रवन्पार्था धार्तराष्ट्रभयार्दिताः ।
प्राप्ता हिडिम्बा भीमेन यत्र जातो घटोत्कचः ॥२५
एकचक्रां ततो गत्वा पाण्डवाः संशितव्रताः ।
वेदाध्ययनसंपन्नास्तेऽभवन्ब्रह्मचारिणः ॥ २६
ते तत्र नियताः कालं कंचिद्रूषुर्नरर्षभाः ।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २७
तत्रासससाद क्षुधितं पुरुषादं वृकोदरः ।
भीमसेनो महाबाहुर्बकं नाम महाबलम् ॥ २८
तं चापि पुरुषव्याघ्रो बाहुवीर्येण पाण्डवः ।
निहत्य तरसा वीरो नागरान्पर्यसान्त्वयत् ॥ २९
ततस्ते शुश्रुवुः कृष्णां पञ्चालेषु स्वयंवराम् ।
श्रुत्वा चैवाभ्यगच्छन्त गत्वा चैवालभन्त ताम् ३०
ते तत्र द्रौपदीं लब्ध्वा परिसंवत्सरोषिताः ।
विदिता हास्तिनपुरं प्रत्याजग्मुररिंदमाः ॥ ३१
ते उक्ता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ।
भ्रातृभिर्विग्रहस्तात कथं वो न भवेदिति ॥ ३२
अस्माभिः खाण्डवप्रस्थे युष्मद्वासोऽनुचिन्तितः ।
तस्माज्जनपदोपेतं सुविभक्तमहापथम् ॥ ३३
वासाय खाण्डवप्रस्थं व्रजध्वं गतमत्सराः ।
तयोस्ते वचनाज्जग्मुः सहसर्वैः सुहृज्जनैः ॥ ३४

---

न चिरात् शीघ्रं विद्वांसोऽभवन् ॥ ६ ॥ सत्वं देहबलम् । वीर्यं उत्साहः ओजश्चित्तेन्द्रियबलम् ॥ ७ ॥ कुलिङ्गस्य पक्षिणो मते साहसे । स हि सिंहदंष्ट्रान्तर्गतं मांसमादातुं यतते । कलिङ्गस्येत्यपपाठः ॥९॥ साहसमेवाह ददावित्यादिना ॥ १० ॥ प्रमाणकोट्यां गङ्गायास्तीर्थविशेषे । वृकनामा बहुभक्षोऽग्निरुदरे यस्य स वृकोदरः ॥ ११ ॥ विप्रकारेषु अपकारेषु मोक्षणे प्राप्तापन्निवारणे प्रतिकारे प्रातिभटयेन शत्रोरप्यापदि निपातने ॥ १४ ॥ संवृतैः गुप्तैः । विवृतैः प्रकाशैः । दैवभाव्यर्थरक्षितान् दैवेनादृष्टेन भावी कुरुक्षयपाण्डवराज्यलाभादिरर्थस्तस्मै रक्षितान् ॥ १६ ॥ वृषः कर्णः । जातुषं लाक्षामयम् ॥ १७ ॥ क्षत्ता विदुरः ॥१९॥ तेन क्षत्तुर्मन्त्रेण ॥२०॥ पुरोचनात् आत्मानं रक्षमाणाः रक्षन्त । सुरुङ्गामुभयतो बिलं विवरम् ॥ २२ ॥ वननिर्झरे वननिर्झरसमीपे । अवबोधनात् प्राकट्यात् ॥ २४ ॥ निहत्य नागराणां शोकं अपनीतवानित्यर्थः ॥ २९ ॥ स्वयं वृणुते इति स्वयंवरा ताम् ॥ ३० ॥ शान्तनवेन भीष्मेण ॥ ३२ ॥

नगरं खाण्डवप्रस्थं रत्नान्यादाय सर्वशः ।
तत्र ते न्यवसन्पार्थाः संवत्सरगणान्बहून् ॥ ३५
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीभृतः ।
एवं धर्मप्रधानास्ते सत्यव्रतपरायणाः ॥ ३६
अप्रमत्तोत्थिताः क्षान्ताः प्रतपन्तोऽहितान्बहून् ।
अजयद्भीमसेनस्तु दिशं प्राचीं महायशाः ॥ ३७
उदीचीमर्जुनो वीरः प्रतीचीं नकुलस्तथा ।
दक्षिणां सहदेवस्तु विजिग्ये परवीरहा ॥ ३८
एवं चक्रुरिमां सर्वे वशे कृत्स्नां वसुंधराम् ।
पञ्चभिः सूर्यसंकाशैः सूर्येण च विराजता ॥ ३९
*षट्सूर्येवाभवत्पृथ्वी पाण्डवैः सत्यविक्रमैः ।*
ततो निमित्ते कस्मिंश्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४०
वनं प्रस्थापयामास तेजस्वी सत्यविक्रमः ।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरं भ्रातरं सव्यसाचिनम् ॥४१
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं स्थिरात्मानं गुणैर्युतम् ।
स वै संवत्सरं पूर्णं मासं चैकं वने वसन् ॥ ४२
ततो गच्छद्धृषीकेशं द्वारवत्यां कदाचन ।
लब्धवांस्तत्र बीभत्सुर्भार्यां राजीवलोचनाम् ॥४३
अनुजां वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीम् ।
सा शचीव महेन्द्रेण श्रीः कृष्णेनेव संगता ॥ ४४
सुभद्रा युयुजे प्रीत्या पाण्डवेनार्जुनेन ह ।
अतर्पयच्च कौन्तेयः खाण्डवे हव्यवाहनम् ॥ ४५
बीभत्सुर्वासुदेवेन सहितो नृपसत्तम ।
नातिभारो हि पार्थस्य केशवेन सहाभवत् ॥ ४६
व्यवसायसहायस्य विष्णोः शत्रुवधेष्विव ।
पार्थायाग्निर्ददौ चापि गाण्डीवं धनुरुत्तमम् ॥ ४७
इषुधी चाक्षयैर्बाणै रथं च कपिलक्षणम् ।
मोक्षयामास बीभत्सुर्मयं यत्र महासुरम् ॥ ४८
स चकार सभां दिव्यां सर्वरत्नसमाचिताम् ।
तस्यां दुर्योधनो मन्दो लोभं चक्रे सुदुर्मतिः ॥४९
ततोऽक्षैर्वञ्चयित्वा च सौबलेन युधिष्ठिरम् ।
वनं प्रस्थापयामास सप्त वर्षाणि पञ्च च ॥ ५०
अज्ञातमेकं राष्ट्रे च ततो वर्षं त्रयोदशम् ।
ततश्चतुर्दशे वर्षे याचमानाः स्वकं वसु ॥ ५१
नालभन्त महाराज ततो युद्धमवर्तत ।
ततस्ते क्षत्रमुत्साद्य हत्वा दुर्योधनं नृपम् ॥ ५२
राज्यं विहतभूयिष्ठं प्रत्यपद्यन्त पाण्डवाः ।
एवमेतत्पुरावृत्तं तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
भेदो राज्यविनाशाय जयश्च जयतां वर ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि भारतसूत्रं नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

---

जनमेजय उवाच ।

कथितं वै समासेन त्वया सर्वं द्विजोत्तम ।
महाभारतमाख्यानं कुरूणां चरितं महत् ॥ १
कथां त्वनघ चित्रार्थां कथयस्व तपोधन ।
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे ॥ २
स भवान्विस्तरेणेमां पुनराख्यातुमर्हति ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ ३
न तत्कारणमल्पं वै धर्मज्ञा यत्र पाण्डवाः ।
अवध्यान्सर्वशो जघ्नुः प्रशस्यन्ते च मानवैः ॥ ४
किमर्थं ते नरव्याघ्राः शक्ताः सन्तो ह्यनागसः ।
प्रयुज्यमानान्संक्लेशान्क्षान्तवन्तो दुरात्मनाम् ॥ ५
कथं नागायुतप्राणो बाहुशाली वृकोदरः ।
परिक्लिश्यन्नपि क्रोधं धृतवान्वै द्विजोत्तम ॥ ६
कथं सा द्रौपदी कृष्णा क्लिश्यमाना दुरात्मभिः ।
शक्ता सती धार्तराष्ट्रान्नादहत्क्रोधचक्षुषा ॥ ७
कथं व्यसनिनं द्यूते पार्थौ माद्रीसुतौ तदा ।
अन्वयुस्ते नरव्याघ्रा बाध्यमाना दुरात्मभिः ॥ ८

---

स वै संवत्सरं पूर्णं मासं चैकं वने वसदिति दशसंख्यापूरकत्वात्पूर्णशब्देन दशगुणमुच्यते संवत्सरं पूर्णं एकं च तथा मासं पूर्णमेव । तेन एकादशसंवत्सरा दशमासाश्च भवन्ति । तेषां च सौराणां प्रत्यब्दं सपादपञ्चदिनवृध्या सावना द्वादशाब्दा भवन्ति । *अन्ये तु मासशब्देन द्वादशसंख्यां लक्षयन्त* एकशब्दवैयर्थ्यं एकवचनानुपपत्तिं च नेक्षन्ते । वने इत्युपलक्षणं नगरस्यापि ॥ ४२ ॥ नातीति । खाण्डवदाह इति शेषः ॥ ४६ ॥ व्यवसायः एवमेवेदं करिष्यामीति निश्चयः ॥४७॥ बाणैर्युक्ताविति शेषः । कपिलक्षणं वानरध्वजं । यत्र खाण्डवदाहे ॥ ४८ ॥ अक्षैः पाशैर्द्यूतेनेत्यर्थः ॥ ५० ॥ विहतभूयिष्ठं नष्टप्रायम् ॥ ५३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

---

कथितामिति ॥ १ । अवध्यान् भीष्मद्रोणादीन् ॥ ४ ॥ बाहुशाली बाहुबलवान् । कथं क्रोधं धृतवान् निरुद्धवान् ॥ ६ ॥ शक्ता दग्धुमिति शेषः ॥ ७ ॥

कथं धर्मभृतां श्रेष्ठः सुतो धर्मस्य धर्मवित् ।
अनर्हः परमं क्लेशं सोढवान्स युधिष्ठिरः ॥ ९
कथं च बहुलाः सेनाः पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
अस्यन्नेकोऽनयत्सर्वाः पितृलोकं धनंजयः ॥ १०
एतदाचक्ष्व मे सर्वं यथावृत्तं तपोधन ।
यद्यच्च कृतवन्तस्ते तत्र तत्र महारथाः ॥ ११

वैशंपायन उवाच ।

क्षणं कुरु महाराज विपुलोऽयमनुक्रमः ।
पुण्याख्यानस्य वक्तव्यः कृष्णद्वैपायनेरितः ॥ १२
महर्षेः सर्वलोकेषु पूजितस्य महात्मनः ।
प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यामिततेजसः ॥ १३
इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम् ।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥ १४
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ये चेदं शृणुयुर्नराः ।
ते ब्रह्मणः स्थानमेत्य प्राप्नुयुर्देवतुल्यताम् ॥ १५
इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् ।
श्राव्याणामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥ १६
अस्मिन्नर्थश्च कामश्च निखिलेनोपदेक्ष्यते ।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ॥ १७
अक्षुद्रान्दानशीलांश्च सत्यशीलाननास्तिकान् ।
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्छ्रावयित्वाऽर्थमश्नुते ॥१८
भ्रूणहत्याकृतं चापि पापं जह्यादसंशयम् ।
इतिहासमिमं श्रुत्वा पुरुषोऽपि सुदारुणः ॥ १९
मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा ।
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा २०
महीं विजयते राजा शत्रूंश्चापि पराजयेत् ।
इदं पुंसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २१
महिषी युवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा ।
वीरं जनयते पुत्रं कन्यां वा राज्यभागिनीम् ॥२२
धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥ २३
संप्रत्याचक्षते चेदं तथा श्रोष्यन्ति चापरे ।
पुत्राः शुश्रूषवः सन्ति प्रेष्याश्च प्रियकारिणः ॥२४
शरीरेण कृतं पापं वाचा च मनसैव च ।
सर्वं संत्यजति क्षिप्रं य इदं शृणुयान्नरः ॥ २५
भरतानां महज्जन्म शृण्वतामनसूयताम् ।
नास्ति व्याधिभयं तेषां परलोकभयं कुतः ॥ २६
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वर्ग्यं तथैव च ।
कृष्णद्वैपायनेनेदं कृतं पुण्यचिकीर्षुणा ॥ २७
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ २८
सर्वविद्यावदातानां लोके प्रथितकर्मणाम् ।
य इदं मानवो लोके पुण्यार्थे ब्राह्मणाञ्शुचीन् २९
श्रावयेत महापुण्यं तस्य धर्मः सनातनः ।
कुरूणां प्रथितं वंशं कीर्तयन्सततं शुचिः ॥ ३०
वंशमाप्नोति विपुलं लोके पूज्यतमो भवेत् ।
योऽधीते भारतं पुण्यं ब्राह्मणो नियतव्रतः ॥ ३१
चतुरो वार्षिकान्मासान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
विज्ञेयः स च वेदानां पारगो भारतं पठन् ॥ ३२
देवा राजर्षयो ह्यत्र पुण्या ब्रह्मर्षयस्तथा ।
कीर्त्यन्ते धूतपाप्मानः कीर्त्यते केशवस्तथा ॥ ३३
भगवांश्चापि देवेशो यत्र देवी च कीर्त्यते ।
अनेकजननो यत्र कार्तिकेयस्य संभवः ॥ ३४
ब्राह्मणानां गवां चैव माहात्म्यं यत्र कीर्त्यते ।
सर्वश्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः ॥ ३५
य इदं श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणानिह पर्वसु ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्म गच्छति शाश्वतम् ॥३६
श्रावयेद्ब्राह्मणाञ्छ्राद्धे यश्चेमं पादमन्ततः ।
अक्षय्यं तस्य तच्छ्राद्धमुपावर्तेत्पितॄनिह ॥ ३७
अह्ना यदेनः क्रियते इन्द्रियैर्मनसाऽपि वा ।
ज्ञानादज्ञानतो वाऽपि प्रकरोति नरश्च यत् ॥३८
तन्महाभारताख्यानं श्रुत्वैव प्रविलीयते ।
भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते ॥ ३९
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
भरतानां यतश्चायमितिहासो महाद्भुतः ॥ ४०
महतो ह्येनसो मर्त्यान्मोचयेदनुकीर्तितः ।
*त्रिभिर्वर्षैर्लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ ४१
*नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः ।
तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा ॥ ४२

---

अस्यन् शरान् क्षिपन् । स कथं क्लेशं सोढवानित्यनुषज्यते ॥ १० ॥ ऋषिभिर्मन्त्रैस्तद्द्रष्टृभिर्वा संस्तुतं सम्यं स्तुतं वा ॥ १६ ॥ परिनैष्ठिकी परिनिष्ठा मोक्षस्तदुचिता ॥१७॥ पुंसवनं पुमांसः सूयन्तेऽस्मिन्निति श्रुतेः २१ महिषी पट्टराज्ञी ॥ २२ ॥ अनसूयतां गुणेषु दोषारोपमकुर्वताम् ॥ २६ ॥ अनेकजननः अनेकेभ्यः षड्भ्यः कृत्तिकाभ्यः जननं उत्पत्तिरस्मिन्निति तथा ॥ ३४ ॥ सर्वश्रुतिसमूहः सर्वासां श्रुतीनां कर्मब्रह्मपराणां समूह एवायम् ॥३५॥

* लब्धकामः अभूदिति शेषः । * नित्योत्थित इत्यादि पूर्वान्वयि एतन्महाभारतं महर्षिणा कृतमित्यन्वयः ।

तस्मान्नियमसंयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम् ।
कृष्णप्रोक्तामिमां पुण्यां भारतीमुत्तमां कथाम् ४३
श्रावयिष्यन्ति ये विप्रा ये च श्रोष्यन्ति मानवाः ।
सर्वथा वर्तमाना वै न ते शोच्याः कृताकृतैः ४४
नरेण धर्मकामेन सर्वः श्रोतव्य इत्यपि ।
निखिलेनेतिहासोऽयं ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ४५
न तां स्वर्गगतिं प्राप्य तुष्टिं प्राप्नोति मानवः ।
यां श्रुत्वैव महापुण्यमितिहासमुपाश्नुते ॥ ४६
शृण्वञ्छ्राद्धः पुण्यशीलः श्रावयंश्चेदमद्भुतम् ।
नरः फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ४७
यथा समुद्रो भगवान्यथा मेरुर्महागिरिः ।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥ ४८
इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् ।
श्रव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम् ॥ ४९
य इदं भारतं राजन्वाचकाय प्रयच्छति ।
तेन सर्वा मही दत्ता भवेत्सागरमेखला ॥ ५०
पारिक्षितकथां दिव्यां पुण्याय विजयाय च ।
कथ्यमानां मया कृत्स्नां शृणु हर्षकरीमिमाम् ॥५१
त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥ ५२
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥५३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि महाभारतप्रशंसायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
राजोपरिचरो नाम धर्मनित्यो महीपतिः ।
बभूव मृगयां गन्तुं सदा किल धृतव्रतः ॥ १
स चेदिविषयं रम्यं वसुः पौरवनन्दनः ।
इन्द्रोपदेशाज्जग्राह रमणीयं महीपतिः ॥ २
तमाश्रमे न्यस्तशस्त्रं निवसन्तं तपोनिधिम् ।
देवाः शक्रपुरोगा वै राजानमुपतस्थिरे ॥ ३
इन्द्रत्वमर्हो राजाऽयं तपसेत्यनुचिन्त्य वै ।
तं सान्त्वेन नृपं साक्षात्तपसः संन्यवर्तयन् ॥ ४
देवा ऊचुः ।
न संकीर्येत धर्मोऽयं पृथिव्यां पृथिवीपते ।
त्वया हि धर्मो विधृतः कृत्स्नं धारयते जगत् ५
इन्द्र उवाच ।
लोके धर्मं पालय त्वं नित्ययुक्तः समाहितः ।
धर्मयुक्तस्ततो लोकान्पुण्यान्पश्यसि शाश्वतान् ६
दिविष्ठस्य भुविष्ठस्त्वं सखा भूतो मम प्रियः ।
रम्यः पृथिव्यां यो देशस्तमावस नराधिप ॥ ७
पशव्यश्चैव पुण्यश्च प्रभूतधनधान्यवान् ।
स्वा रक्ष्यश्चैव सौम्यश्च भोग्यैर्भूमिगुणैर्युतः ॥ ८
अर्थवानेष देशो हि धनरत्नादिभिर्युतः ।
वसुपूर्णा च वसुधा वस चेदिषु चेदिप ॥ ९
धर्मशीला जनपदाः सुसंतोषाश्च साधवः ।
न च मिथ्याप्रलापोऽत्र स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा १०
न च पित्रा विभज्यन्ते पुत्रा गुरुहिते रताः ।
युञ्जते धुरि नो गाश्च कृशान्संधुक्षयन्ति च ॥ ११

---

सर्वथा साधुनाऽसाधुना वा वर्त्मना वर्तमाना अपि कृताकृतैः क्रमेण पापपुण्यैस्तेन शोच्याः । एतच्छ्रवणादेव सर्वप्रत्यवायपरिहारो भवतीति भावः ॥ ४४ ॥ सिद्धिर्धर्मफलं चित्तशुध्यादिः॥४५॥न तामिति । स्वर्गादप्येतच्छ्रवणं सुखकरं मुक्तिहेतुत्वादिति भावः ॥४६॥ श्राद्धः श्रद्धावान् ॥४७॥ श्रव्यं अर्थतो रम्यं श्रुतिसुखं शब्दतो रम्यम्॥४९॥सदोत्थायी सदोद्युक्तः ॥ ५२ ॥ अद्भुतत्वमेवाह । धर्मे चेति धर्मादिचतुष्टये उपादेये चकारचतुष्टयोक्ते अधर्मानर्थदुःखसंसाररूपे चतुष्के हातव्ये च विषये हेयमुपादेयं च कृत्स्नमत्रैव निरूपितम् । इतोऽधिकं ग्रन्थान्तरे नास्तीति कार्त्स्न्येन सर्वेषां शास्त्राणां अर्थं ज्ञातुकामेनैतदेवादर्तव्यमित्यर्थः ॥ ५३ ॥

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२

राजेति । रञ्जकत्वाद्राजा । महीपतिः पृथ्वीपालकः ॥ १ ॥ वसुः उपरिचरः ॥ २ ॥ साक्षात्प्रत्यक्षीभूय ॥४॥ न संकीर्येत निर्नायकत्वात् ॥ ५ ॥ पशव्यः पशुभ्यो हितः स्वा रक्ष्यः स्वः स्वर्गस्तत्तुल्यः अत एव रक्ष्यः ॥ ८ ॥ गाः बलीवर्दान् देशोऽकृष्टपच्य इति हलधुरि न युञ्जते । नापि शकटधुरि । पृष्ठवाहैरेव तत्कार्यसिद्धेरिति भावः । कृशान् दीनानाथादीन्संधुक्षयन्ति पुष्टान्कुर्वन्ति । यद्वा वृषभान्कृशान्न धुरि युञ्जते प्रत्युत संधुक्षयन्तीति । अन्ये तु गाः स्त्री गवीः तासामप्यान्ध्रादि दुर्देशेषु धुरि योजनं दृष्टं तदिह नास्तीत्याहुः ॥ ११ ॥

सर्वे वर्णाः स्वधर्मस्थाः सदा चेदिषु मानद ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु यद्भवेत् १२
देवोपभोग्यं दिव्यं त्वामाकाशे स्फाटिकं महत् ।
आकाशगं त्वां मद्दत्तं विमानमुपपत्स्यते ॥ १३
त्वमेकः सर्वमर्त्येषु विमानवरमास्थितः ।
चरिष्यस्युपरिस्थो हि देवो विग्रहवानिव ॥ १४
ददामि ते वैजयन्तीं मालामम्लानपङ्कजाम् ।
धारयिष्यति संग्रामे या त्वां शस्त्रैरविक्षतम् ॥१५
लक्षणं चैतदेवेह भविता ते नराधिप ।
इन्द्रमालेति विख्यातं धन्यमप्रतिमं महत् ॥ १६
यष्टिं च वैणवीं तस्मै ददौ वृत्रनिषूदनः ।
इष्टप्रदानमुद्दिश्य शिष्टानां प्रतिपालिनीम् ॥ १७
तस्याः शक्रस्य पूजार्थं भूमौ भूमिपतिस्तदा ।
प्रवेशं कारयामास गते संवत्सरे तदा ॥ १८
ततःप्रभृति चाद्यापि यष्टेः क्षितिपसत्तमैः ।
प्रवेशः क्रियते राजन्यथा तेन प्रवर्तितः ॥ १९
अपरेद्युस्ततस्तस्याः क्रियतेऽत्युच्छ्रयो नृपैः ।
अलंकृतायाः पिटकैर्गन्धमाल्यैश्च भूषणैः ॥ २०
माल्यदामपरिक्षिप्ता विधिवत्क्रियतेऽपि च ।
भगवान्पूज्यते चाऽत्र हंसरूपेण चेश्वरः ॥ २१
स्वयमेव गृहीतेन वसोः प्रीत्या महात्मनः ।
स तां पूजां महेन्द्रस्तु दृष्ट्वा देवः कृतां शुभाम् ॥२२
वसुना राजमुख्येन प्रीतिमानब्रवीत्प्रभुः ।
ये पूजयिष्यन्ति नरा राजानश्च महं मम ॥ २३
कारयिष्यन्ति च मुदा यथा चेदिपतिर्नृपः ।
तेषां श्रीर्विजयश्चैव सराष्ट्राणां भविष्यति ॥ २४
तथा स्फीतो जनपदो मुदितश्च भविष्यति ।
एवं महात्मना तेन महेन्द्रेण नराधिप ॥ २५
वसुः प्रीत्या मघवता महाराजोऽभिसत्कृतः ।
उत्सवं कारयिष्यन्ति सदा शक्रस्य ये नराः २६
भूमिरत्नादिभिर्दानैस्तथा पूज्या भवन्ति ते ।
वरदानमहायज्ञैस्तथा शक्रोत्सवेन च ॥ २७
संपूजितो मघवता वसुश्चेदीश्वरो नृपः ।
पालयामास धर्मेण चेदिस्थः पृथिवीमिमाम् ॥२८
इन्द्रप्रीत्या चेदिपतिश्चकारेन्द्रमहं वसुः ।
पुत्राश्चाऽस्य महावीर्याः पञ्चासन्नमितौजसः॥२९
नानाराज्येषु च सुतान्स सम्राडभ्यषेचयत् ।
महारथो मागधानां विश्रुतो यो बृहद्रथः ॥ ३०
प्रत्यग्रहः कुशाम्बश्च यमाहुर्मणिवाहनम् ।
मावेल्लश्च यदुश्चैव राजन्यश्चापराजितः ॥ ३१
एते तस्य सुता राजन्राजर्षेर्भूरितेजसः ।
न्यवशयन्नामभिः स्वैस्ते देशांश्च पुराणि च ॥३२
वासवाः पञ्च राजानः पृथग्वंशाश्च शाश्वताः ।
वसन्तमिन्द्रप्रासादे आकाशे स्फाटिके च तम् ३३
उपतस्थुर्महात्मानं गन्धर्वाप्सरसो नृपम् ।
राजोपरिचरेत्येवं नाम तस्याथ विश्रुतम् ॥ ३४
पुरोपवाहिनीं तस्य नदीं शुक्तिमतीं गिरिः ।
अरौत्सीच्चेतनायुक्तः कामात्कोलाहलः किल ३५
गिरिं कोलाहलं तं तु पदा वसुरताडयत् ।
निश्चक्राम ततस्तेन प्रहारविवरेण सा ॥ ३६
तस्यां नद्यां स जनयन्मिथुनं पर्वतः स्वयम् ।
तस्माद्विमोक्षणात्प्रीता नदी राज्ञे न्यवेदयत् ३७
यः पुमानभवत्तत्र तं स राजर्षिसत्तमः ।
वसुर्वसुप्रदश्चक्रे सेनापतिमरिंदमः ॥ ३८
चकार पत्नीं कन्यां तु तथा तां गिरिकां नृपः ।
वसोः पत्नी तु गिरिका कामकालं न्यवेदयत् ३९
ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः ।
तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति ॥ ४०

न त इति । आत्मज्ञानात्सर्वज्ञो भविष्यसीत्यर्थः ॥ १२ ॥ उपपत्स्यते उपस्थास्यते ॥ १३ ॥ वैजयन्तीं विजयहेतुं अविक्षतमेव धारयिष्यति पालयिष्यति न तु विक्षतम् । अनया शस्त्रमेव त्वां न बाधिष्यत इति भावः ॥ १५ ॥ लक्षणं चिह्नम् ॥ १६ ॥ इष्टप्रधानं प्रीतिदानमुद्दिश्य यष्टिं ददौ ॥ १७ ॥ शक्रस्य पूजार्थं मानार्थम् । तस्याः यष्टेः । गते संवत्सरे संवत्सरान्ते यष्टिप्रवेशोद्यापि महाराष्ट्रादिषु दृश्यते ॥ १८ ॥ अपरेद्युः प्रतिपदि द्वितीयसंवत्सरादौ । अत्युच्छ्रय ऊर्ध्वे स्थापनम् । पिटकैः मञ्जूषारूपैर्वस्त्रमयैः कोशैः । यद्वा काश्यामिव पिटकाः स्वर्णादिमया वेष्टका पेट्य इति भाषायां प्रसिद्धा ग्राह्याः। 'पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषाथ विहंगिका' इत्यमरः॥२०॥हंसरूपेण युक्तो हंसरूपी। तस्यैव बुद्धिस्थस्य रूपस्य विशेषणं स्वयमेव गृहीतेनेति हंसरूपेण वासव इति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ २१ ॥ देवः कृतामिति पाठः विसर्गाभावे तु देवेति जनमेजयसंबोधनम् ॥ २२ ॥ मां उत्सवम् । मह उद्धव उत्सव इत्यमरः ॥ २३ ॥ वरदानं महायज्ञाश्च तैः ॥ २७ ॥ वासवाः वसुपुत्राः । इन्द्रप्रासादे इन्द्रदत्ते विमाने ॥ ३३ ॥ पुरोपवाहिनीं पुरसमीपे वहन्तीं अरौत्सीत् आत्मन्येवावरुरोध ॥ ३५ ॥ नदी राज्ञे न्यवेदयन्मिथुनमित्यनुषज्यते ॥ ३७ ॥ पुंसवने पुंप्रसवयोग्ये काले । तदहः तस्मिन् दिने ॥ ४० ॥

तं राजसत्तमं प्रीतास्तदा मतिमतां वर ।
*स पितॄणां नियोगं तमनतिक्रम्य पार्थिवः ॥ ४१*
चकार मृगयां कामी गिरिकामेव संस्मरन् ।
अतीवरूपसंपन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥ ४२
अशोकैश्चम्पकैश्चूतैरनेकैरतिमुक्तकैः ।
पुंनागैः कर्णिकारैश्च बकुलैर्दिव्यपाटलैः ॥ ४३
पाटलैर्नारिकेलैश्च चन्दनैश्चार्जुनैस्तथा ।
एतै रम्यैर्महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्युतम् ॥ ४४
कोकिलाकुलसंनादं मत्तभ्रमरनादितम् ।
वसन्तकाले तत्तस्य वनं चैत्ररथोपमम् ॥ ४५
मन्मथाभिपरीतात्मा नापश्यद्गिरिकां तदा ।
अपश्यन्कामसंतप्तश्चरमाणो यदृच्छया ॥ ४६
पुष्पसंच्छन्नशाखाग्रं पल्लवैरुपशोभितम् ।
अशोकं स्तबकैश्छन्नं रमणीयमपश्यत ॥ ४७
अधस्तात्तस्य च्छायायां सुखासीनो नराधिपः ।
मधुगन्धैश्च संयुक्तं पुष्पगन्धमनोहरम् ॥ ४८
वायुना प्रेर्यमाणस्तु धूम्राय मुदमन्वगात् ।
तस्य रेतः प्रचस्कन्द चरतो गहने वने ॥ ४९
स्कन्नमात्रं च तद्रेतो वृक्षपत्रेण भूमिपः ।
प्रतिजग्राह मिथ्या मे न पतेद्रेत इत्युत ॥ ५०
इदं मिथ्या परिस्कन्नं रेतो मे न भवेदिति ।
ऋतुश्च तस्याः पत्न्या मे न मोघः स्यादिति प्रभुः ५१
संचिन्त्यैवं तदा राजा विचार्य च पुनः पुनः ।
अमोघत्वं च विज्ञाय रेतसो राजसत्तमः ॥ ५२
शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य वै ।
अभिमन्त्र्याथ तच्छुक्रमारात्तिष्ठन्तमाशुगम् ॥ ५३
सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्वज्ञो गत्वा श्येनं ततोऽब्रवीत् ।
मत्प्रियार्थमिदं सौम्य शुक्रं मम गृहं नय ॥ ५४
गिरिकायाः प्रयच्छाशु तस्या ह्यार्तवमद्य वै ।
गृहीत्वा तत्तदा श्येनस्तूर्णमुत्पत्य वेगवान् ॥ ५५
जवं परममास्थाय प्रदुद्राव विहंगमः ।
तमपश्यदथायान्तं श्येनं श्येनस्तथापरः ॥ ५६
अभ्यद्रवच्च तं सद्यो दृष्ट्वैवामिषशङ्कया ।
तुण्डयुद्धमथाकाशे तावुभौ संप्रचक्रतुः ॥ ५७
*युध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि ।*
तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद्वराप्सराः ॥ ५८
मीनभावमनुप्राप्ता बभूव यमुनाचरी ।
श्येनपादपरिभ्रष्टं तद्वीर्यमथ वासवम् ॥ ५९
जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी ।
कदाचिदपि मत्सीं तां बबन्धुर्मत्स्यजीविनः ॥६०
मासे च दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम ।
उज्जह्रुरुदरात्तस्याः स्त्रीं पुमांसं च मानुषम् ॥६१
आश्चर्यभूतं तद्गत्वा राज्ञेऽथ प्रत्यवेदयन् ।
काये मत्स्या इमौ राजन्संभूतौ मानुषाविति ६२
तयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा ।
स मत्स्यो नाम राजासीद्धार्मिकः सत्यसंगरः ६३
साप्सरा मुक्तशापा च क्षणेन समपद्यत ।
या पुरोक्ता भगवता तिर्यग्योनिगता शुभा ॥ ६४
मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि ।
ततः सा जनयित्वा तौ विशस्ता मत्स्यघातिना
संत्यज्य मत्स्यरूपं सा दिव्यं रूपमवाप्य च ।
सिद्धर्षिचारणपथं जगामाथ वराप्सराः ॥ ६६
सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यसगन्धिनी
राज्ञा दत्ता च दाशाय कन्येयं ते भवत्विति ६७
रूपसत्त्वसमायुक्ता सर्वैः समुदिता गुणैः ।
सा तु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात् ६८
आसीत्सा मत्स्यगन्धैव कंचित्कालं शुचिस्मिता
शुश्रूषार्थं पितुर्नावं वाहयन्तीं जले च ताम् ॥ ६९
तीर्थयात्रां परिक्रामन्नपश्यद्वै पराशरः ।
अतीवरूपसंपन्नां सिद्धानामपि काङ्क्षिताम् ॥ ७०
दृष्ट्वैव स च तां धीमांश्चकमे चारुहासिनीम् ।
दिव्यां तां वासवीं कन्यां रम्भोरुं मुनिपुङ्गवः ७१
संगमं मम कल्याणि कुरुष्वेत्यभ्यभाषत ।
सा ब्रवीत्पश्य भगवन्पारावारे स्थितानृषीन् ७२
आवयोर्दृष्टयोरेभिः कथं तु स्यात्समागमः ।
एवं तयोक्तो भगवान्नीहारमसृजत्प्रभुः ॥ ७३

---

सिंहावलोकनेनाशोकमेव विशिनष्टि मधुगन्धैरिति ॥ ४८ ॥ वायुना कामोद्दीपकेन । धूम्रं मलिनं रतिकर्म तदर्थं मुदं स्त्रीविषयां प्रीतिमनुसृत्य तामेव मनसाऽगात् । तया सह मानसं सुरतमकरोदित्यर्थः । प्रचस्कन्द पपात ॥ ४९ ॥ मिथ्याप्रसवशून्यत्वेनालीकप्रायम् ॥ ५० ॥ अभिमन्त्र्य पुत्रोत्पत्तिलिङ्गैर्मन्त्रैः स्पृष्ट्वा आरात् विमानैकदेशसमीपे ॥ ५३ ॥ आर्तवं ऋतुकालीनं स्नानम् ॥५५॥ युध्यतोः सतोः । अद्रिकागिरिकेति नामसाम्यादेकस्या एवाप्सरसो व्यूहभेदेन देहद्वयं ज्ञेयम् । अन्यथा राज्ञो मिथ्यासंकल्पत्वापत्तेः ॥ ५८ ॥ मासे दशमे प्राप्ते बबन्धुरिति संबन्धः ॥ उज्जह्रुः उद्धृतवन्तः ॥६१॥ काये देहे मत्स्याः मत्स्ययोषायाः ॥ ६२ ॥ मत्स्यसगन्धिनी मत्स्यसमानगन्धा । दाशाय कैवर्ताय ॥६७॥ चकमे कामितवान् ॥ ७१ ॥ नीहारं धूमिकाम् ॥ ७३ ॥

येन देशः स सर्वस्तु तमोभूत इवाभवत् ।
दृष्ट्वा सृष्टं तु नीहारं ततस्तं परमर्षिणा ॥ ७४
विस्मिता साऽभवत्कन्या व्रीडिता च तपस्विनी।

सत्यवत्युवाच ।

विद्धि मां भगवन्कन्यां सदा पितृवशानुगाम् ७५
त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममाऽनघ ।
कन्यात्वे दूषिते वाऽपि कथं शक्ष्ये द्विजोत्तम॥७६
गृहं गन्तुमृषे चाहं धीमन्न स्थातुमुत्सहे ।
एतत्संचिन्त्य भगवान्विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ७७
एवमुक्तवतीं तां तु प्रीतिमानृषिसत्तमः ।
उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥७८
वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि ।
वृथा हि न प्रसादो मे भूतपूर्वः शुचिस्मिते ॥ ७९
एवमुक्ता वरं वव्रे गात्रसौगन्ध्यमुत्तमम् ।
स चास्यै भगवान्प्रादान्मनसः काङ्क्षितं भुवि॥ ८०
ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभावगुणभूषिता ।
जगाम सह संसर्गमृषिणाऽद्भुतकर्मणा ॥ ८१
तेन गन्धवतीत्येवं नामास्याः प्रथितं भुवि ।
तस्यास्तु योजनाद्गन्धमाजिघ्रन्त नरा भुवि ॥ ८२
तस्या योजनगन्धेति ततो नामापरं स्मृतम् ।
इति सत्यवती हृष्टा लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ॥ ८३
पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा ।
जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः स वीर्यवान् ॥ ८४
स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे ।
स्मृतोऽहं दर्शयिष्यामि कृत्येष्विति च सोऽब्रवीत्
एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ।
न्यस्तो द्वीपे स यद्बालस्तस्माद्द्वैपायनः स्मृतः ॥८६
पादापसारिणं धर्मं स तु विद्वान्युगे युगे ।
आयुःशक्तिं च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च ॥
ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथाऽनुग्रहकाङ्क्षया ।
विव्यास वेदान्यस्मात्स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥
वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥ ८९
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशंपायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥९०
तथा भीष्मः शान्तनवो गङ्गायाममितद्युतिः ।
वसुवीर्यात्समभवन्महावीर्यो महायशाः ॥ ९१
वेदार्थविच्च भगवानृषिर्विप्रो महायशाः ।
शूले प्रोतः पुराणर्षिरचौरश्चौरशङ्कया ॥ ९२
अणीमाण्डव्य इत्येवं विख्यातः स महायशाः ।
स धर्ममाहूय पुरा महर्षिरिदमुक्तवान् ॥ ९३
इषीकया मया बाल्यादेका विद्धा शकुन्तिका ।
तत्किल्बिषं स्मरे धर्म नान्यत्पापमहं स्मरे ॥ ९४
तन्मे सहस्रसमितं कस्मान्नेहाजयत्तपः ।
गरीयान्ब्राह्मणवधः सर्वभूतवधाद्यतः ॥ ९५
तस्मात्त्वं किल्बिषी धर्म शूद्रयोनौ जनिष्यसि ।
तेन शापेन धर्मोऽपि शूद्रयोनावजायत ॥ ९६
विद्वान्विदुररूपेण धार्मी तनुरकिल्बिषी ।
संजयो मुनिकल्पस्तु जज्ञे सूतो गवल्गणात् ॥ ९७
सूर्याच्च कुन्तिकन्याया जज्ञे कर्णो महाबलः ।
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्योतिताननः ॥ ९८
अनुग्रहार्थं लोकानां विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
वसुदेवात्तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः ॥ ९९
अनादिनिधनो देवः स कर्ता जगतः प्रभुः ।
अव्यक्तमक्षरं ब्रह्म प्रधानं त्रिगुणात्मकम् ॥ १००

---

पितुर्वश इच्छा तदनुसारिणीं पितृवशानुगाम् ॥ ७५ ॥ न स्थातुं जीवितुं नोत्सहे । कन्यात्वदूषणादित्यर्थः ॥७७॥ स्त्रीभावे यो गुणः पुष्पवत्ता तेन भूषिता सद्यः पुष्पवत्यभूदित्यर्थः ॥ ८१ ॥ वरं कन्याभावं सौगन्ध्यं च लब्ध्वा सद्यो गर्भं च सुषावेति संबन्धः ॥ ८३ ॥ द्वीपमेव अयनं न्यासस्थानं यस्य द्वीपायनः स्वार्थे तद्धितः । द्वीपायन एव द्वैपायन इति नाम निर्वक्ति । न्यस्त इति ॥ ८६ ॥ पादापसारिणं युगे युगे पादशः क्षीयमाणम् । कलेरादौ पादमात्रमवशिष्टमित्यर्थः । एवं आयुरादिन्ह्रासं चावेक्ष्य ॥ ८७ ॥ ब्रह्मणो वेदस्य । अनुग्रहो रक्षणम् । विव्यास शाखाभेदेन विस्तारितवान् । अतो व्यास इत्यपि तस्य नामेत्यर्थः ॥ ८८ ॥ महाभारतपञ्चमानिति । भारतं पञ्चमो वेदः । सर्वश्रुतिसमूहोऽयमित्यसकृदुक्तेः । इतरपुराणवदिदं न मन्तव्यमित्यर्थः ॥ ८९ ॥ भारतस्य मूलभूताः संहिताः मन्त्रब्राह्मणरूपा वेदाः । तैः सुमंतुप्रभृतिभिः प्रकाशिताः इदमस्य मूलमिदमस्य मूलमिति स्पष्टीकृतास्तेन प्रत्यक्षवेदमूलमेतदिति भावः ॥ ९० ॥ वसुवीर्यात् अष्टानां वसूनां अंशात् ॥ ९१ ॥ आहूय समीपमानीय । आहत्येति पाठे आधिक्षिप्य ॥ ९३ ॥ वधः पीडाऽपमानो वा ॥ ९५ ॥ कुन्तिभोजस्य कन्यायां कुन्त्याम् ॥ ९८ ॥ अनादिनिधन इति स्थूलदेहधर्मयोर्जन्ममरणयोर्व्यावृत्तिः । देवो दीव्यमानो जगत्कर्ता । किं तैजसो न प्रभुः जीवस्य स्वप्नेऽपि जगत्कर्तृत्वाभावात् । अन्यथा स्वप्ने प्रतिकूलस्रष्टृत्वनुपपत्तिः । एतेन कर्मद्वाराऽपि जगत्कर्तृत्वं जीवस्य लाङ्गलं गवादीनुद्वहतीतिव-

आत्मानमव्ययं चैव प्रकृतिं प्रभवं प्रभुम् ।
पुरुषं विश्वकर्माणं सत्त्वयोगं ध्रुवाक्षरम् ॥ १०१
अनन्तमचलं देवं हंसं नारायणं प्रभुम् ।
धातारमजमव्यक्तं यमाहुः परमव्ययम् ॥ २
कैवल्यं निर्गुणं विश्वमनादिमजमव्ययम् ।
पुरुषः स विभुः कर्ता सर्वभूतपितामहः ॥ ३
धर्मसंवर्धनार्थाय प्रजज्ञेऽन्धकवृष्णिषु ।
अस्त्रज्ञौ तु महावीर्यौ सर्वशास्त्रविशारदौ ॥ ४
सात्यकिः कृतवर्मा च नारायणमनुव्रतौ ।
सत्यकाद्धृदिकाच्चैव जज्ञातेऽस्त्र विशारदौ ॥ ५
भरद्वाजस्य च स्कन्नं द्रोण्यां शुक्रमवर्धत ।
महर्षेरुग्रतपसस्तस्माद्द्रोणो व्यजायत ॥ ६
गौतमान्मिथुनं जज्ञे शरस्तम्बाच्छरद्वतः ।
अश्वत्थाम्नश्च जननी कृपश्चैव महाबलः ॥ ७
अश्वत्थामा ततो जज्ञे द्रोणादेव महाबलः ।
तथैव धृष्टद्युम्नोऽपि साक्षादग्निसमद्युतिः ॥ ८
वैताने कर्मणि तते पावकात्समजायत ।
वीरो द्रोणविनाशाय धनुरादाय वीर्यवान् ॥ ९
तत्रैव वेद्यां कृष्णाऽपि जज्ञे तेजस्विनी शुभा ।
विभ्राजमाना वपुषा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ ११०
प्रह्लादशिष्यो नग्नजित्सुबलश्चाभवत्ततः ।
तस्य प्रजा धर्महन्त्री जज्ञे देवप्रकोपनात् । ११

---

न्निमित्तत्वमात्रेण नत्वीश्वरत्वेनेति दर्शितम् । अव्यक्तं अव्याकृतम् । किं गौपुतं कारण । यथोक्तं 'सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानं यद्बीजं स्वप्नबोधयोः' इति । तद्व्यावर्तयति । अक्षरमिति । न क्षरत्यपरिणामित्वात् । तत्तु क्षयोद्भवयुक्तम् । एतेन व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणं देहव्यावर्तनेन त्वं पदार्थशोध उक्त । अन्यथा भगवति जन्माद्यप्रसक्तेस्तद्वारकमनादिनिधन इति विशेषणमनुपपन्नम् । तत्पदार्थमाह । ब्रह्म बृहत् प्रधानं प्रधीयतेऽस्मिन्सर्वमिति व्यस्थानम् । त्रिगुणात्मकं सत्वरजस्तमोमयम् ॥ १०० ॥ अस्य सांख्याभिमतं अनात्मत्वं परिणामित्वं च वारयति आत्मानमव्ययमिति विशेषणाभ्याम् । प्रधानत्वादेव प्रकृतिं उपादनाम् । प्रभवं उत्पत्तिनिमित्तम् । प्रभुं अधिष्ठातारम् । ननु घटादेर्मृदुपादानं चक्रं निमित्तं कुलालः कर्ता । अत्र तु त्रयमपि देव एवेत्युक्तं तत्कथमित्याशंक्य तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदितिश्रुत्यर्थमाह । पुरुषं पूर्षु वसतीति पुरुष पुरश्च । ज्ञानेन्द्रियाणि खलु पञ्च तथापराणि कर्मेन्द्रियाणि मन आदिचतुष्टयं च । 'प्राणादिपञ्चकमथोवियदादिकं च कामश्च कर्म च तम पुनरष्टमीपूरित्युक्ता.' । आत्मानमेव स्वाविद्यया पूर्यष्टकाकारं कृत्वा तत्र प्रविष्ट इत्यर्थ । एवमैश्वरीं प्रवेशाता सृष्टिमुक्त्वा जाग्रदादिविमोक्षाता जैवीं सृष्टिं तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवदित्यादिश्रुत्युक्ता संगृह्णाति । विश्वकर्माणमिति विश्वं पृथिव्यप्तेजोरूपं सच्छब्दवाच्यं वाय्वाकाशादिरूपं त्यच्छब्दवाच्यं चेत्येनमादिरूपं कर्मघटादिवत्क्रियाफलभूतं यस्येति विश्वकर्मा तम् । एवं विशेषणैरेव ब्रह्मण एव जीवभावं प्रदर्श्य तन्निवृत्त्युपायमपि तैरेव प्रलाययति । सत्वयोगं सत्वेनैव धर्मज्ञानवैराग्यमूलेन योगः प्राप्तिरस्य तम् । सत्ववतो ब्रह्मभावप्राप्तावालम्बनमाह । ध्रुवाक्षरं प्रणवाख्यवर्णस्वरूपम् । वाच्यवाचकयोरभेदात्प्रणवमात्राभिरकारोकारमकारार्धमात्राभिरुपासितामिस्तदर्थभूता विराट्सूत्रान्तर्यामितुरीयाख्या प्राप्यन्त इति भावः ॥ १०१ ॥ एतेषु कतमो मुख्यः प्राप्य इत्यत आह । अनन्तमिति । देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नं तुरीयमित्यर्थः । ननु तत्तदवस्थायां सर्वेषामानन्त्यमविशिष्टमित्याशङ्क्याह । अचलं अबाधितम् । इतरेषां बाधोऽस्तीत्यापेक्षिकमनन्तत्वमिति भावः । नन्वेवं कारणत्वादिनिषेधे शून्यमेवस्यादित्याह । देवं द्योतमानं चिद्रूपमित्यर्थ । एवं तर्ङ्कुरबीजद्वारा गुरु इव विराट्सूत्रेशद्वारा तुरीयप्राप्तिमुक्त्वा तत्रैव द्वारान्तरमाह हंसं संन्यासाश्रमरूपम् । तत्र ह्यविक्षेपेण श्रवणादिकं सिध्यतीति सोऽपि द्वारम् । नारायणं फलस्थानीयं पञ्चमं महाविष्णुम् । एतद्विग्रहध्यानद्वारैव हि विराडादिभावमारोहन्ति ध्यायिनः । फलगर्भे बीजानीवास्य गर्भेऽनन्तानि कारणानि सन्तीत्येनं तुरीयविशेषणैरेव विशिनष्टि । प्रभुं प्रभवत्यस्मात्कार्यमिति जगद्भ्रमाधिष्ठानम् । धातारं कार्ये सत्तास्फूर्त्यो समर्पकम् । अजं उरगोपादानभूतरज्जुवदजातम् । अव्यक्तं अप्रकटम् । अधिष्ठानव्यक्तौ हि अध्यस्तमेव लुप्येतातोऽव्यक्तम् । परं आदित्यवर्णं तमस परस्तादित्यादयो मन्त्राः यं कारणात्परं प्राहुः । अत एवाव्ययं नाशबाधाभ्यां हीनम् ॥ २ ॥ कैवल्यं केवलमेव कैवल्यं असङ्गम् । निर्गुणं रूपादिभिश्चक्षुरादिभिश्च हीनम् । अत्रे विग्रहवत्त्वात्प्रसक्तं परिच्छिन्नत्वं कारणवत्त्वं जन्ममरणं चेति । तच्चतुष्कं क्रमेण व्यावर्तयति । विश्वमनादिमजमव्ययमिति । मायिकत्वाद्विग्रहस्य न तत्कृतपरिच्छेदादयोऽस्मिन्संभवन्तीत्यर्थः । य एवंरूपो नारायण स एव देवकीसूनुरित्याह । पुरुष इत्यादि सार्धेन । स एवंभूतोऽग्रजो रामाकृष्णौ जज्ञे । तदुभयरूपेण जात इत्यर्थः ॥ ३ ॥ विशारदौ प्रयोगकुशलौ ॥ ५ ॥ द्रोण्यां गिरिदर्याम् ॥ ६ ॥ शरस्तम्बात् शरस्तम्बस्कन्नात् द्वैधीभूताद्रेतस ॥ ७ ॥ वैताने त्रेताग्निसाध्ये ॥ ९ ॥ तस्य सुबलस्य प्रजा पुंरूपैव शकुनिरूपा । दुर्योधनमातुर्धर्महन्तृत्वं पुत्रद्वारैव ॥११॥

गान्धारराजपुत्रोऽभूच्छकुनिः सौबलस्तथा ।
दुर्योधनस्य जननी जज्ञातेऽर्थविशारदौ ॥ १२
कृष्णद्वैपायनाज्जज्ञे धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य पाण्डुश्चैव महाबलः ॥ १३
धर्मार्थकुशलो धीमान्मेधावी धूतकल्मषः ।
विदुरः शूद्रयोनौ तु जज्ञे द्वैपायनादपि ॥ १४
पाण्डोस्तु जज्ञिरे पञ्च पुत्रा देवसमाः पृथक् ।
द्वयोः स्त्रियोर्गुणज्येष्ठस्तेषामासीद्युधिष्ठिरः ॥ ११५
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ।
इन्द्राद्धनंजयः श्रीमान्सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १६
जज्ञाते रूपसंपन्नावश्विभ्यां च यमावपि ।
नकुलः सहदेवश्च गुरुशुश्रूषणे रतौ ॥ १७
तथा पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
दुर्योधनप्रभृतयो युयुत्सुः करणस्तथा ॥ १८
ततो दुःशासनश्चैव दुःसहश्चापि भारत ।
दुर्मर्षणो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ॥ १९
जयः सत्यव्रतश्चैव पुरुमित्रश्च भारत ।
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च एकादश महारथाः ॥ १२०
अभिमन्युः सुभद्रायामर्जुनादभ्यजायत ।
स्वस्रीयो वासुदेवस्य पौत्रः पाण्डोर्महात्मनः ।२१
पाण्डवेभ्यो हि पाञ्चाल्यां द्रौपद्यां पञ्च जज्ञिरे ।
कुमारा रूपसंपन्नाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ २२
प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात्सुतसोमो वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २३
तथैव सहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान् ।
हिडिम्बायां च भीमेन वने जज्ञे घटोत्कचः ॥ २४
शिखण्डी द्रुपदाज्जज्ञे कन्या पुत्रत्वमागता ।
यां यक्षः पुरुषं चक्रे स्थूणः प्रियचिकीर्षया ॥ २५
कुरूणां विग्रहे तस्मिन्समागच्छन्बहून्यथा ।
राज्ञां शतसहस्राणि योत्स्यमानानि संयुगे ॥ २६
तेषामपरिमेयानां नामधेयानि सर्वशः ।
न शक्यानि समाख्यातुं वर्षाणामयुतैरपि ।
एते तु कीर्तिता मुख्या यैराख्यानमिदं ततम् ॥२७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि व्यासाद्युत्पत्तौ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

---

जनमेजय उवाच ।

य एते कीर्तिता ब्रह्मन्ये चान्ये नानुकीर्तिताः ।
सम्यक्तांश्छ्रोतुमिच्छामि राज्ञश्चान्यान्सहस्रशः॥१
यदर्थमिह संभूता देवकल्पा महारथाः ।
भुवि तन्मे महाभाग सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

रहस्यं खल्विदं राजन्देवानामिति नः श्रुतम् ।
तत्तु ते कथयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ॥ ३
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां पुरा ।
जामदग्न्यस्तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥ ४
तदा निःक्षत्रिये लोके भार्गवेण कृते सति ।
ब्राह्मणान्क्षत्रिया राजन्सुतार्थिन्योऽभिचक्रमुः ॥५
ताभिः सह समापेतुर्ब्राह्मणाः संशितव्रताः ।
ऋतावृतौ नरव्याघ्र न कामान्नानृतौ तथा ॥ ६
तेभ्यश्च लेभिरे गर्भं क्षत्रियास्ताः सहस्रशः ।
ततः सुषुविरे राजन्क्षत्रियान्वीर्यवत्तरान् ॥ ७
कुमारांश्च कुमारीश्च पुनः क्षत्राभिवृद्धये ।
एवं तद्ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः ॥ ८
जातं वृद्धं च धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम् ।
चत्वारोऽपि ततो वर्णा बभूवुर्ब्राह्मणोत्तराः ॥ ९
अभ्यगच्छन्नृतौ नारीं न कामान्नानृतौ तथा ।
तथैवान्यानि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ १०
ऋतौ दारांश्च गच्छन्ति तत्तथा भरतर्षभ ।
ततो वर्धन्त धर्मेण सहस्रशतजीविनः ॥ ११
ताः प्रजाः पृथिवीपाल धर्मव्रतपरायणाः ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव विमुक्ताः सर्वशो नराः १२
अथेमां सागरापाङ्गीं गां गजेन्द्रगताखिलाम् ।
अध्यतिष्ठत्पुनः क्षत्रं सशैलवनपत्तनाम् ॥ १३
प्रशासति पुनः क्षत्रे धर्मेणेमां वसुंधराम् ।
ब्राह्मणाद्यास्ततो वर्णा लेभिरे मुदमुत्तमाम् ॥१४

---

प्रसङ्गात्पुनर्विदुरजन्मोक्तिः ॥ १४ ॥ युयुत्सुः शताधिकः करणस्तु। वैश्यायां क्षत्रियाजातः करणः परिकीर्तितः इति स्मृत्युक्तः ॥ १८ ॥ स्थूणो नाम्ना ॥ १२५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः

य एत इति ॥ १ ॥ त्रिःसप्तकृत्वः एकविंशतिवारान् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोत्तराः ब्राह्मणप्रधानाः ॥ ९ ॥ जीविनः जीविन्यः॥११॥ आधिभिः शोकादिभिः व्याधिभिर्ज्वरादिभिः ॥१२॥ अपाङ्ग इवापाङ्गः प्रान्तः सागरान्तामित्यर्थः । अध्यातिष्ठत् अधिष्ठितवान् । हे गजेन्द्रगत ॥ १३ ॥-

कामक्रोधोद्भवान्दोषान्निरस्य च नराधिपाः ।
धर्मेण दण्डं दण्ड्येषु प्रणयन्तोऽन्वपालयन् ॥ १५
तथा धर्मपरे क्षत्रे सहस्राक्षः शतक्रतुः ।
स्वादु देशे च काले च वर्षेणापालयत्प्रजाः ॥ १६
न बाल एव म्रियते तदा कश्चिज्जनाधिप ।
न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिदप्राप्तयौवनः ॥ १७
एवमायुष्मतीभिस्तु प्रजाभिर्भरतर्षभ ।
इयं सागरपर्यन्ता समापूर्यत मेदिनी ॥ १८
ईजिरे च महायज्ञैः क्षत्रिया बहुदक्षिणैः ।
साङ्गोपनिषदान्वेदान्विप्राश्चाधीयते तदा ॥ १९
न च विक्रीणते ब्रह्म ब्राह्मणाश्च तदा नृप ।
न च शूद्रसमाभ्यासे वेदानुच्चारयन्त्युत ॥ २०
कारयन्तः कृषिं गोभिस्तथा वैश्याः क्षिताविह ।
युञ्जते धुरि नो गाश्च कृशां गांश्चाप्यजीवयन् ॥ २१
फेनपांश्च तथा वत्सान्न दुहन्ति स्म मानवाः ।
न कूटमानैर्वणिजः पण्यं विक्रीणते तदा ॥ २२
कर्माणि च नरव्याघ्र धर्मोपेतानि मानवाः ।
धर्ममेवानुपश्यन्तश्चक्रुर्धर्मपरायणाः ॥ २३
स्वकर्मनिरताश्चासन्सर्वे वर्णा नराधिप ।
एवं तदा नरव्याघ्र धर्मो न ह्रसते क्वचित् ॥ २४
काले गावः प्रसूयन्ते नार्यश्च भरतर्षभ ।
भवन्त्यृतुषु वृक्षाणां पुष्पाणि च फलानि च ॥ २५
एवं कृतयुगे सम्यग्वर्तमाने तदा नृप ।
आपूर्यत मही कृत्स्ना प्राणिभिर्बहुभिर्भृशम् ॥ २६
एवं समुदिते लोके मानुषे भरतर्षभ ।
असुरा जज्ञिरे क्षेत्रे राज्ञां तु मनुजेश्वर ॥ २७
आदित्यैर्हि तदा दैत्या बहुशो निर्जिता युधि ।
ऐश्वर्याद्भ्रंशिताः स्वर्गात्संबभूवुः क्षिताविह ॥ २८
इह देवत्वमिच्छन्तो मानुषेषु मनस्विनः ।
जज्ञिरे भुवि भूतेषु तेषु तेष्वसुरा विभो ॥ २९
गोष्वश्वेषु च राजेन्द्र खरोष्ट्रमहिषेषु च ।
क्रव्यात्सु चैव भूतेषु गजेषु च मृगेषु च ॥ ३०
जातैरिह महीपाल जायमानैश्च तैर्मही ।
न शशाकात्मनात्मानमियं धारयितुं धरा ॥ ३१
अथ जाता महीपालाः केचिद्बहुमदान्विताः ।
दितेः पुत्रा दनोश्चैव तदा लोक इहाच्युताः ॥ ३२
वीर्यवन्तोऽवलिप्तास्ते नानारूपधरा महीम् ।
इमां सागरपर्यन्तां परीयुररिमर्दनाः ॥ ३३
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चैवाप्यपीडयन् ।
अन्यानि चैव सत्त्वानि पीडयामासुरोजसा ॥ ३४
त्रासयन्तोऽभिनिघ्नन्तः सर्वभूतगणांश्च ते ।
विचेरुः सर्वशो राजन्महीं शतसहस्रशः ॥ ३५
आश्रमस्थान्महर्षींश्च धर्षयन्तस्ततस्ततः ।
अब्रह्मण्या वीर्यमदा मत्ता मदबलेन च ॥ ३६
एवं वीर्यबलोत्सिक्तैर्भूयिष्ठैर्महासुरैः ।
पीड्यमाना मही राजन्ब्रह्माणमुपचक्रमे ॥ ३७
न ह्यमीभूतसत्त्वौघाः पन्नगाः सनगां महीम् ।
तदा धारयितुं शेकुः संक्रान्तां दानवैर्बलात् ॥ ३८
ततो मही महीपाल भारार्ता भयपीडिता ।
जगाम शरणं देवं सर्वभूतपितामहम् ॥ ३९
सा संवृतं महाभागैर्देवद्विजमहर्षिभिः ।
ददर्श देवं ब्रह्माणं लोककर्तारमव्ययम् ॥ ४०
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च देवकर्मसु निष्ठितैः ।
वन्द्यमानं मुदोपेतैर्ववन्दे चैनमेत्य सा ॥ ४१
अथ विज्ञापयामास भूमिस्तं शरणार्थिनी ।
संनिधौ लोकपालानां सर्वेषामेव भारत ॥ ४२
तत्प्रधानात्मनस्तस्य भूमेः कृत्यं स्वयंभुवः ।
पूर्वमेवाभवद्राजन्विदितं परमेष्ठिनः ॥ ४३
स्रष्टा हि जगतः कस्मान्न संबुध्येत भारत ।
ससुरासुरलोकानामशेषेण मनोगतम् ॥ ४४
तामुवाच महाराज भूमिं भूमिपतिः प्रभुः ।
प्रभवः सर्वभूतानामीशः शंभुः प्रजापतिः ॥ ४५

---

स्वादु रोचकं यथा स्यात्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्म वेदं न विक्रीणते भृतकाध्यापनं न कुर्वत इत्यर्थः२० वैश्याः स्वयं धुरि गाः बलीवर्दान् न युञ्जते ॥ २१ ॥ फेनपान् अतृणादानभिलक्ष्य न दुहन्ति धेनूरितिशेषः । कूटमानैः कपटतुलाप्रस्थादिभिः ॥ २२ ॥ ऋतुषु वसन्तादिषु स्वस्वकाले ॥ २५ ॥ समुदिते मुदितया प्रीत्या सहिते ॥२७॥ देवत्वं राज्यं देवभावं वा ॥२९॥ मही उपचक्रमे गन्तुमितिशेषः । महाराजेति पाठान्तरे तु महीतिशेषः ॥ ३७ ॥ न ह्यमी इति । भूतसत्त्वौघाः भूतानां शेषकूर्मदिग्गजानां धराभूतां सत्त्वौघाः बलसंघाः। पन्नगाः शेषाः।बहुवचनं तेषां प्रत्येकं बहूनामप्यसामर्थ्यं किं पुनरेकैकस्येति सूचनार्थम् । न ह्येनामिति पाठे एनां बुद्धिस्थां भूमिम् ॥ ३८ ॥ अव्ययं अजरत्वादपक्षयशून्यम् ॥४० ॥ एनं ब्रह्माणम् । सा पृथ्वी ॥ ४१ ॥ तद्भूमेः कृत्यम् । प्रधानात्मनः प्रधानजयी आत्मा मनो यस्य तस्य । सांख्ययोगानां हि प्रधानजयिनः सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वं च भवतीति प्रसिद्धम् । सर्वज्ञस्य नाविदितं किंचिदस्तीत्यर्थः । प्रधानात्मनः कारणात्मनः तद्भूमेः कृत्यमिति वार्थः ॥ ४३ ॥ तदेवाह स्रष्टाहीति ॥ ४४ ॥ अस्य त्रिमूर्तित्वमाह । प्रभव इति ईशो विष्णुः ॥ ४५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

यदर्थमभिसंप्राप्ता मत्सकाशं वसुंधरे ।
तदर्थं संनियोक्ष्यामि सर्वानेव दिवौकसः ॥ ४६

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा स महीं देवो ब्रह्मा राजन्विसृज्य च ।
आदिदेश तदा सर्वान्विबुधान्भूतकृत्स्वयम् ॥ ४७
अस्या भूमेर्निरसितुं भारं भागैः पृथक्पृथक् ।
अस्यामेव प्रसूयध्वं विरोधायेति चाब्रवीत् ॥४८
तथैव च समानीय गन्धर्वाप्सरसां गणान् ।
उवाच भगवान्सर्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ ४९

ब्रह्मोवाच ।

स्वैः स्वैरंशैः प्रसूयध्वं यथेष्टं मानुषेषु च ।
अथ शक्रादयः सर्वे श्रुत्वा सुरगुरोर्वचः ।
तथ्यमर्थ्यं च पथ्यं च तस्य ते जगृहुस्तदा ॥ ५०
अथ ते सर्वशोंऽशैः स्वर्गन्तुं भूमिं कृतक्षणाः ।
नारायणममित्रघ्नं वैकुण्ठमुपचक्रमुः ॥ ५१
यः स चक्रगदापाणिः पीतवासाः शितिप्रभः ।
पद्मनाभः सुरारिघ्नः पृथुचार्वञ्चितेक्षणः ॥ ५२
प्रजापतिपतिर्देवः सुरनाथो महाबलः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ५३
तं भुवः शोधनायेन्द्र उवाच पुरुषोत्तमम् ।
अंशेनावतरेत्येवं तथेत्याह च तं हरिः ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि अंशावतरणपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥
समाप्तमंशावतरणपर्व ॥

---

## संभवपर्व ।

वैशंपायन उवाच ।

अथ नारायणेनेन्द्रश्चकार सह संविदम् ।
अवतर्तुं महीं स्वर्गादंशतः सहितः सुरैः ॥ १
आदिश्य च स्वयं शक्रः सर्वानेव दिवौकसः ।
निर्जगाम पुनस्तस्मात्क्षयान्नारायणस्य ह ॥ २
तेऽमरारिविनाशाय सर्वलोकहिताय च ।
अवतेरुः क्रमेणैव महीं स्वर्गाद्दिवौकसः ॥ ३
ततो ब्रह्मर्षिवंशेषु पार्थिवर्षिकुलेषु च ।
जज्ञिरे राजशार्दूल यथाकामं दिवौकसः ॥ ४
दानवान्राक्षसांश्चैव गन्धर्वान्पन्नगांस्तथा ।
पुरुषादानि चान्यानि जघ्नुः सत्त्वान्यनेकशः ॥ ५
दानवा राक्षसाश्चैव गन्धर्वाः पन्नगास्तथा ।
न तान्बलस्थान्बाल्येऽपि जघ्नुर्भरतसत्तम ॥ ६

जनमेजय उवाच ।

देवदानवसङ्घानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
मानवानां च सर्वेषां तथा वै यक्षरक्षसाम् ॥ ७
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन संभवं कृत्स्नमादितः ।
प्राणिनां चैव सर्वेषां संभवं वक्तुमर्हसि ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे ।
सुरादीनामहं सम्यग्लोकानां प्रभवाप्ययम् ॥ ९
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतु ॥ १०
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाः प्रजाः ।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ११
अदितिर्दितिर्दनुः कालादनायुः सिंहिका तथा ।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनिः॥
कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत ।
एतासां वीर्यसंपन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ १२

---

विरोधाय विरोधमूलकाय भूभारनाशायेत्यर्थः ॥ ४८ ॥ तथ्यं यथार्थम् । अर्थ्यम् प्रार्थनीयम् । पथ्यं हितकरम्॥५०॥ कृतक्षणाः कृतनियमाः ॥ ५१ ॥ पृथुचार्वञ्चितेक्षणः पृथुनी चार्वञ्चिते सदयनिपाते ईक्षणे यस्य सः । पृथुवक्षाञ्चितेक्षण इति पाठे वक्षःशब्दोऽकारान्तः पृथुनि वक्षे वक्षसि अञ्चितं गमनं ययोस्ते ध्यानारूढतया ईक्षणे यस्य सः ॥ ५२ ॥ शोधनाय कण्टकभूतखलोन्मूलनाय ॥ ५४ ॥ इति आदिप० नै० भा० भा० चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

---

अथेति ॥ १ ॥ क्षयात् स्थानात् ॥ २ ॥ दानवादयो बाल्ये एव देवान्कुतो न हतवन्त इत्याशङ्क्याह दानवा इति । बाल्येऽपि बलिन एव देवा इति तेषामवध्या एवेत्यर्थः ॥६॥ हन्तेति वाक्यारम्भे प्रभवाप्ययमुत्पत्तिप्रलयम् ॥९॥ जघन्यजः पश्चाज्जातः ॥ १६ ॥

अदित्यां द्वादशादित्याः संभूता भुवनेश्वराः ।
ये राजन्नामतस्तांस्ते कीर्तयिष्यामि भारत ॥ १४
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च ।
भगो विवस्वान्पूषा च सविता दशमस्तथा ॥१५
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
जघन्यजस्तु सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः ॥ १६
एक एव दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुः स्मृतः ।
नाम्नाख्यातास्तु तस्येमे पञ्च पुत्रा महात्मनः॥१७
प्रह्लादः पूर्वजस्तेषां संह्लादस्तदनन्तरम् ।
अनुह्लादस्तृतीयोऽभूत्तस्माच्च शिबिबाष्कलौ॥ १८
प्रह्लादस्य त्रयः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत ।
विरोचनश्च कुम्भश्च निकुम्भश्चेति भारत ॥ १९
विरोचनस्य पुत्रोऽभूद्बलिरेकः प्रतापवान्
बलेश्च प्रथितः पुत्रो बाणो नाम महासुरः ॥ २०
रुद्रस्यानुचरः श्रीमान्महाकालेति यं विदुः ।
*चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत२१
तेषां प्रथमजो राजा विप्रचित्तिर्महायशाः ।
शम्बरो नमुचिश्चैव पुलोमा चेति विश्रुतः ॥ २२
असिलोमा च केशी च दुर्जयश्चैव दानवः ।
अयःशिरा अश्वशिरा अश्वशङ्कुश्च वीर्यवान्॥ २३
तथा गगनमूर्धा च वेगवान्केतुमांश्च सः ।
स्वर्भानुरश्वोऽश्वपतिर्वृषपर्वाजकस्तथा ॥ २४
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुहुण्डश्च महाबलः ।
इषुपादेकचक्रश्च विरूपाक्षहराहरौ ॥ २५
निचन्द्रश्च निकुम्भश्च कुपटः कपटस्तथा ।
शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
एते ख्याता दनोर्वंशे दानवाः परिकीर्तिताः ॥२६
अन्यौ तु खलु देवानां सूर्याचन्द्रमसौ स्मृतौ ।
अन्यौ दानवमुख्यानां सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ २७
इमे च वंशाः प्रथिताः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
दनुपुत्रा महाराज दश दानववंशजाः ॥ २८
एकाक्षो मृतपा वीरः प्रलम्बनरकावपि ।
वातापी शत्रुतपनः शठश्चैव महासुरः ॥ २९
गविष्ठश्च वनायुश्च दीर्घजिह्वश्च दानवः ।
असंख्येयाः स्मृतास्तेषां पुत्राः पौत्राश्च भारत३०
सिंहिका सुषुवे पुत्रं राहुं चन्द्रार्कमर्दनम् ।
सुचन्द्रं चन्द्रहर्तारं तथा चन्द्रप्रमर्दनम् ॥ ३१
क्रूरस्वभावं क्रूरायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
गणः क्रोधवशो नाम क्रूरकर्माऽरिमर्दनः ॥ ३२
दनायुषः पुनः पुत्राश्चत्वारोऽसुरपुङ्गवाः ।
विक्षरो बलवीरौ च वृत्रश्चैव महासुरः ॥ ३३
कालायाः प्रथिताः पुत्राः कालकल्पाः प्रहारिणः।
प्रविख्याता महावीर्या दानवेषु परंतपाः ॥ ३४
विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहन्ता तथैव च ।
क्रोधशत्रुस्तथैवान्ये कालकेया इति श्रुताः ॥ ३५
असुराणामुपाध्यायः शुक्रस्त्वृषिसुतोऽभवत्।
ख्याताश्चोशनसः पुत्राश्चत्वारोऽसुरयाजकाः॥३६
त्वष्टाधरस्तथात्रिश्च द्वावन्यौ रौद्रकर्मिणौ ।
तेजसा सूर्यसंकाशा ब्रह्मलोकपरायणाः ॥ ३७
इत्येष वंशप्रभवः कथितस्ते तरस्विनाम् ।
असुराणां सुराणां च पुराणे संश्रुतो मया ॥ ३८
एतेषां यदपत्यं तु न शक्यं तदशेषतः ।
प्रसंख्यातुं महीपाल गुणभूतमनन्तकम् ॥ ३९
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च तथैव गरुडारुणौ ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव वैनतेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ४०
शेषोऽनन्तो वासुकिश्च तक्षकश्च भुजंगमः
कूर्मश्च कुलिकश्चैव काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ४१
भीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च सप्तमः ॥ ४२
सत्यवागर्कपर्णश्च प्रयुतश्चापि विश्रुतः ।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद्वशी ॥ ४३
तथा शालिशिरा राजन्पर्जन्यश्च चतुर्दशः ।
कलिः पञ्चदशस्तेषां नारदश्चैव षोडशः ।
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ॥ ४४
अथ प्रभूतान्यन्यानि कीर्तयिष्यामि भारत ।
अनवद्यां मनुं वंशामसुरां मार्गणप्रियाम् ॥ ४५
अरूपां सुभगां भासीमिति प्राधा व्यजायत ।
सिद्धः पूर्णश्च बर्हिश्च पूर्णायुश्च महायशाः ॥ ४६
ब्रह्मचारी रतिगुणः सुपर्णश्चैव सप्तमः ।
विश्वावसुश्च भानुश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा ॥ ४७
इत्येते देवगन्धर्वाः प्राधायाः परिकीर्तिताः ।
इमं त्वप्सरसां वंशं विदितं पुण्यलक्षणम् ॥ ४८
प्राधाऽसूत महाभागा देवी देवर्षितः पुरा ।
अलम्बुषा मिश्रकेशी विद्युत्पर्णा तिलोत्तमा ॥ ४९

---

क्रूरायाः क्रोधायाः ॥३२॥ गुणभूतं अप्रधानरूपम् ॥३९॥

*अग्रे त्रयस्त्रिंशतामेव नामतो गणनात् पाठभ्रंशो वा चत्वारिंशत्यत्र त्रयस्त्रिंशदिति पाठो वेति न ज्ञायते। अत्रैव प्रकरणे विश्वाया वंशो नोपलभ्यते ।

अरुणा रक्षिता चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा ।
केशिनी च सुबाहुश्च सुरता सुरजा तथा ॥ ५०
सुप्रिया चातिबाहुश्च विख्यातौ च हाहा हूहूः ।
तुम्बुरुश्चेति चत्वारः स्मृता गन्धर्वसत्तमाः ॥ ५१
अमृतं ब्राह्मणा गावो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
अपत्यं कपिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम् ॥ ५२
इति ते सर्वभूतानां संभवः कथितो मया ।
यथावत्संपरिख्यातो गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ ५३
भुजंगानां सुपर्णानां रुद्राणां मरुतां तथा ।
गवां च ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यकर्मणाम् ५४
आयुष्यश्चैव पुण्यश्च धन्यः श्रुतिसुखावहः ।
श्रोतव्यश्चैव सततं श्राव्यश्चैवानसूयता ॥ ५५
इमं तु वंशं नियमेन यः पठेत्
महात्मनां ब्राह्मणदेवसंनिधौ ।
अपत्यलाभं लभते स पुष्कलम्
श्रियं यशः प्रेत्य च शोभनां गतिम्॥५६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि आदित्यादिवंशकथने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

---

वैशंपायन उवाच ।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
एकादश सुताः स्थाणोः ख्याताः परमतेजसः ॥ १
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतपः ॥ २
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः ।
स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ३
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
षडेते ब्रह्मणः पुत्रा वीर्यवन्तो महर्षयः ॥ ४
त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः ।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च धृतव्रताः ॥ ५
अत्रेस्तु बहवः पुत्राः श्रूयन्ते मनुजाधिप ।
सर्वे वेदविदः सिद्धाः शान्तात्मानो महर्षयः ॥ ६
राक्षसाश्च पुलस्त्यस्य वानराः किंनरास्तथा ।
यक्षाश्च मनुजव्याघ्र पुत्रास्तस्य च धीमतः ॥ ७
पुलहस्य सुता राजञ्छलभाश्च प्रकीर्तिताः ।
सिंहाः किंपुरुषा व्याघ्रा यक्षा ईहामृगास्तथा॥८
क्रतोः क्रतुसमाः पुत्राः पतङ्गसहचारिणः ।
विश्रुतास्त्रिषु लोकेषु सत्यव्रतपरायणाः ॥ ९
दक्षस्त्वजायताङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्भगवानृषिः ।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल शान्तात्मा सुमहातपाः ॥१०
वामादजायताङ्गुष्ठाद्भार्या तस्य महात्मनः ।
तस्यां पञ्चाशतं कन्याः स एवाजनयन्मुनिः ॥ ११
ताः सर्वास्त्वनवद्याङ्ग्यः कन्याः कमललोचनाः ।
पुत्रिकाः स्थापयामास नष्टपुत्रः प्रजापतिः ॥ १२
ददौ स दश धर्माय सप्तविंशतिमिन्दवे ।
दिव्येन विधिना राजन्कश्यपाय त्रयोदश ॥ १३
नामतो धर्मपत्न्यस्ताः कीर्त्यमाना निबोध मे ।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया तथा ॥
बुद्धिर्लज्जा मतिश्चैव पत्न्यो धर्मस्य ता दश ।
द्वाराण्येतानि धर्मस्य विहितानि स्वयंभुवा ॥ १५
सप्तविंशतिः सोमस्य पत्न्यो लोकस्य विश्रुताः ।
कालस्य नयने युक्ताः सोमपत्न्यः शुचिव्रताः॥१६
सर्वा नक्षत्रयोगिन्यो लोकयात्रा विधानतः ।
पैतामहो मुनिर्देवस्तस्य पुत्रः प्रजापतिः ।
तस्याष्टौ वसवः पुत्रास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥
धरो ध्रुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १८
धूम्रायास्तु धरः पुत्रो ब्रह्मविद्यो ध्रुवस्तथा ।
चन्द्रमास्तु मनस्विन्याः श्वासायाः श्वसनस्तथा ॥
रतायाश्चाप्यहः पुत्रः शाण्डिल्याश्च हुताशनः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च प्रभातायाः सुतौ स्मृतौ ॥ २०

---

ब्राह्मणवैद्यसंनिधाविति पाठे ब्राह्मणेषु वैद्यो विद्यावान् तत्संनिधौ ॥५६॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

---

ब्रह्मण इति षण्महर्षयः स्थाणुश्च सप्तम इति बोध्यम् । तत्रादौ स्थाणु संततिमेवाह एकादशेति ॥ १ ॥ ईहामृगाः वृकाः ॥ ८ ॥ पतङ्गसहचारिणः सूर्यसहचरा वालखिल्याः ॥ ९ ॥ बुद्धिर्निश्चयः । मतिः परामर्शः । कीर्त्यादयो दशधर्मद्वाराणि धर्मप्रवेशमार्गाः ॥ १५ ॥ नयने ज्ञापने ॥१६॥ नक्षत्रयोगिन्यो नक्षत्रनामयुक्ताः विधानतः विधानार्थे अभवन् । पैतामहो देवो धर्मः पितामहस्तनाजातत्वात् । तस्य पितामहस्य पुत्रो दक्षः । तदङ्गुष्ठाजातत्वात् । तस्य संबन्धिनी वसुनाम्नी कन्या तस्यां धर्माद्वसवोऽष्टौ जाता इत्यर्थः । 'वसोस्तु वसवः पुत्रा ' इत्यन्यत्रोक्तेः ॥१७॥ धूम्राया इति वसोरेव धूम्रादीनि नामान्तराणि कल्पभेदात् । अन्याः एतान दक्षकन्या इति वा ॥ १९ ॥

धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः ॥ २१
सोमस्य तु सुतो वर्चा वर्चस्वी येन जायते ।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥२२
अह्नः सुतस्तथा ज्योतिः शमः शान्तस्तथा मुनिः ।
अग्नेः पुत्रः कुमारस्तु श्रीमाञ्छरवणालयः ॥ २३
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः ।
कृत्तिकाभ्युपपत्तेश्च कार्तिकेय इति स्मृतः ॥ २४
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥ २५
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाऽथ देवलम् ।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी ॥ २६
योगसक्ता जगत्कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ।
प्रभासस्य तु भार्या सा वसूनामष्टमस्य ह ॥ २७
विश्वकर्मा महाभागो जज्ञे शिल्पप्रजापतिः ।
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः २८
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ।
यो दिव्यानि विमानानि त्रिदशानां चकार ह २९
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ।
पूजयन्ति च यं नित्यं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥ ३०
स्तनं तु दक्षिणं भित्त्वा ब्रह्मणो नरविग्रहः ।
निःसृतो भगवान्धर्मः सर्वलोकसुखावहः ॥ ३१
त्रयस्तस्य वराः पुत्राः सर्वभूतमनोहराः ।
शमः कामश्च हर्षश्च तेजसा लोकधारिणः ॥ ३२
कामस्य तु रतिर्भार्या शमस्य प्राप्तिरङ्गना ।
नन्दा तु भार्या हर्षस्य यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ३३
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य सुरासुराः ।
जज्ञिरे नृपशार्दूल लोकानां प्रभवस्तु सः ॥ ३४
त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या वडवारूपधारिणी ।
असूयत महाभागा सान्तरिक्षेऽश्विनावुभौ ॥ ३५
द्वादशैवादितेः पुत्राः शक्रमुख्या नराधिप ।
तेषामवरजो विष्णुर्यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३६
त्रयस्त्रिंशत इत्येते देवास्तेषामहं तव ।
अन्वयं संप्रवक्ष्यामि पक्षैश्च कुलतो गणान् ॥ ३७
रुद्राणामपरः पक्षः साध्यानां मरुतां तथा ।
वसूनां भार्गवं विद्याद्विश्वेदेवांस्तथैव च ॥ ३८
वैनतेयस्तु गरुडो बलवानरुणस्तथा ।
बृहस्पतिश्च भगवानादित्येष्वेव गण्यते ॥ ३९
अश्विनौ गुह्यकान्विद्धि सर्वौषध्यस्तथा पशून् ।
एते देवगणा राजन्कीर्तितास्तेऽनुपूर्वशः ॥ ४०
यान्कीर्तयित्वा मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ब्रह्मणो हृदयं भित्त्वा निःसृतो भगवान्भृगुः ॥ ४१
भृगोः पुत्रः कविर्विद्वाञ्शुक्रः कविसुतो ग्रहः ।
त्रैलोक्यप्राणयात्रार्थं वर्षावर्षे भयाभये ।
स्वयंभुवा नियुक्तः सन्भुवनं परिधावति ॥ ४२
योगाचार्यो महाबुद्धिर्दैत्यानामभवद्गुरुः ।
सुराणां चापि मेधावी ब्रह्मचारी यतव्रतः ॥ ४३
तस्मिन्नियुक्ते विधिना योगक्षेमाय भार्गवे ।
अन्यमुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिन्दितम् ॥ ४४
च्यवनं दीप्ततपसं धर्मात्मानं यशस्विनम् ।
यः स रोषाच्च्युतो गर्भान्मातुर्मोक्षाय भारत॥ ४५
आरुषी तु मनोः कन्या तस्य पत्नी मनीषिणः ।
और्वस्तस्यां समभवदूरुं भित्त्वा महायशाः ॥ ४६
महातेजा महावीर्यो बाल एव गुणैर्युतः ।
ऋचीकस्तस्य पुत्रस्तु जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥४७
जमदग्नेस्तु चत्वार आसन्पुत्रा महात्मनः ।
रामस्तेषां जघन्योऽभूदजघन्यैर्गुणैर्युतः ।
सर्वशस्त्रेषु कुशलः क्षत्रियान्तकरो वशी ॥ ४८
और्वस्यासीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् ।
तेषां पुत्रसहस्राणि बभूवुर्भुवि विस्तरः ॥ ४९
द्वौ पुत्रौ ब्रह्मणस्त्वन्यौ ययोस्तिष्ठति लक्षणम् ।
लोके धाता विधाता च यौ स्थितौ मनुना सह ५०

---

कृत्तिकाना षण्णा मातृत्वेनाभ्युपपत्तेरङ्गीकारात् ॥ २४ ॥ त्रय इति। अत्र धर्मसंतानाना सर्वेषा नामान्यन्वर्थकानि ॥ ३२ ॥ वडवा अश्वा । अन्तरिक्षे अश्विनावसूत नासिकया शुक्रप्रक्षेपात् ॥ ३५ ॥ त्रयस्त्रिंशत् अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या. प्रजापतिश्च वषट्कारश्च ॥ ३७ ॥ शुक्रो ग्रहत्वादेव लोकाना प्राणयात्रायां वर्षाऽवर्षादिकार्ये नियुक्तः ॥ ४२ ॥ योगाचार्य इति चापीभ्यस्तौ । सुराणामपि च गुरुरिति संबन्ध· । देवानां गुरुरेव योगाचार्यो योगबलेन कायद्वयं कृत्वा देवानामप्याचार्यो भवदित्यर्थः । तथा च मैत्रायणीये समाम्नातम् । 'बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वेन्द्रस्याभयायासुरेभ्य· क्षयायेमामविद्यामसृजत्'इति ॥४३॥ धर्मप्रधाना सृष्टिरुक्ताथाधर्मप्रधानां विवक्षुस्तत्र श्रोतॄणामनादरनिवृत्त्यर्थमुभयसाधारणीं सृष्टिं मध्ये प्राह । द्वाविति। ययोर्लक्षणं लोके तिष्ठति तावन्यौ धर्माधर्मभयात्कार्यात्परौ उदासीनौ ब्रह्मणः पुत्रौ यौ धाता-विधाता चेति संज्ञावन्तौ मनुना सह नित्यं स्थिताविति योजना। इयमत्र प्रक्रिया । 'वृत्तितस्थाचिदाभासावुभौ व्याप्नुवतो घटम् । तत्राज्ञानं धिया नश्येदाभासेन घटः स्फुरेत् ।'

तयोरेव स्वसा देवी लक्ष्मीः पद्मगृहा शुभा ।
तस्यास्तु मानसाः पुत्रास्तुरगा व्योमचारिणः ५१
वरुणस्य भार्या या ज्येष्ठा शुक्राद्देवी व्यजायत ।
तस्याः पुत्रं बलं विद्धि सुरां च सुरनन्दिनीम् ५२
प्रजानामन्नकामानामन्योन्यपरिभक्षणात् ।
अधर्मस्तत्र संजातः सर्वभूतविनाशकः ॥ ५३
तस्यापि निर्ऋतिर्भार्या नैर्ऋता येन राक्षसाः ।
घोरास्तस्यास्त्रयः पुत्राः पापकर्मरताः सदा ॥५४
भयो महाभयश्चैव मृत्युर्भूतान्तकस्तथा ।
न तस्य भार्या पुत्रो वा कश्चिदस्त्यन्तको हि सः
काकीं श्येनीं तथा भासीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम्
ताम्रा तु सुषुवे देवी पञ्चैता लोकविश्रुताः ॥ ५६
उलूकान्सुषुवे काकी श्येनी श्येनान्व्यजायत ।
भासी भासानजनयद्गृध्रांश्चैव जनाधिप ॥ ५७
धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः ।
चक्रवाकांश्च भद्रा तु जनयामास सैव तु ॥ ५८
शुकी च जनयामास शुकानेव यशस्विनी ।
कल्याणगुणसंपन्ना सर्वलक्षणपूजिता ॥ ५९

नव क्रोधवशा नारीः प्रजज्ञे क्रोधसंभवाः ।
मृगी च मृगमन्दा च हरी भद्रमना अपि ॥ ६०
मातङ्गी त्वथ शार्दूली श्वेता सुरभिरेव च ।
सर्वलक्षणसंपन्ना सुरसा चैव भामिनी ॥ ६१
अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम ।
ऋक्षाश्च मृगमन्दायाः सृमराश्च परंतप ॥ ६२
ततस्त्वैरावतं नागं जज्ञे भद्रमनाः सुतम् ।
ऐरावतः सुतस्तस्या देवनागो महागजः ॥ ६३
हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तरस्विनः ।
गोलांगूलांश्च भद्रं ते हर्याः पुत्रान्प्रचक्षते ॥ ६४
प्रजज्ञे त्वथ शार्दूली सिंहान्व्याघ्राननेकशः ।
द्वीपिनश्च महासत्त्वान्सर्वानेव न संशयः ॥ ६५
मातङ्ग्यपि च मातङ्गानपत्यानि नराधिप ।
दिशां गजं तु श्वेताख्यं श्वेताऽजनयदाशुगम् ६६
तथा दुहितरौ राजन्सुरभिर्वै व्यजायत ।
रोहिणीं चैव भद्रं ते गन्धर्वीं तु यशस्विनीं ॥६७
विमलामपि भद्रं ते अनलामपि भारत ।
रोहिण्यां जज्ञिरे गावो गन्धर्व्यां वाजिनः सुताः ।
सप्त पिण्डफलान्वृक्षाननलाऽपि व्यजायत ॥ ६८

---

अस्यार्थः । यथा दीपप्रभा चक्षुर्भ्यां युगपद्घटो व्याप्यते तत्र प्रभया घटावरकं तमो नश्यति चक्षुषा घटः प्रकाशते तद्वत् वृत्तितत्स्थचिदाभासाभ्यां घटाज्ञाननाशघटस्फुरणे क्रियेते इति । ते अत्र क्रमाद्धातृविधातृसंज्ञे । तयोर्लक्षणं जाड्यस्फुरणात्मकं लोके दृश्यते । जडो घटः। स्फुरति घट इति स्फुरणजन्यहर्षविषादयोर्मन्ता. जीवो मनुस्तेन सह नित्यसंबद्धौ धाताविधातारौ । सुषुप्तावपि सूक्ष्मवृत्तिस्फुरणयोः सत्त्वात् । 'आनन्दभुक्चेतोमुख' इति श्रुतेः। सुखमहमस्वाप्समित्यनुभूतसौषुप्तसुखपरामर्शाच्च । ततश्च सर्वं दृष्टं श्रुतं ब्रह्मपुत्राभ्यां व्याप्तं ब्रह्मैव । तत्र दीपवदुदासीनोऽपि चिदात्मा बुद्धितादात्म्याध्यासात्तदीयदोषाक्रान्तो रागद्वेषादिमानिव भवति । विद्वांस्तु सर्वस्य चिद्विलासत्वं मत्वा अधर्मादिकथादिभ्योऽपि नोद्विजेतेतिभावः ॥ ५० ॥ ननु केयं विद्या यया सर्वं चिन्मात्रमित्येव पश्यति तस्याः कर्मजन्यत्वे उपासनाजन्यत्वे वाऽनित्यत्वापत्तिः प्रकारान्तरस्य चासंभवादित्याशङ्क्याह । तयोरेवेति । यथा धीस्फुरणे प्रमाणपरतन्त्रे न कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं वा शक्ये तथैवेयं विद्येति सादृश्यं स्वसृशब्देन लक्ष्यते । देवी द्योतमाना शुद्धसत्वमयी अहं ब्रह्मास्मीति वाक्यजन्याधीवृत्तिर्दशमस्त्वमिति वाक्यजावृत्तिर्दशमत्वमिव ब्रह्मभावं जीवस्य गोचरयन्ती । लक्ष्मीः परब्रह्मोपलक्षकत्वात् । पद्मगृहाहृदयगुहायामेव स्फुरन्ती । शुभा बन्धनिवर्तकत्वात् । न चैवं वृत्तिविषयत्वे ब्रह्मणो नात्मत्वं घटादिवत्स्यादिति वाच्यम् । वृत्तिव्याप्यत्वेऽपि फलव्याप्यत्वानङ्गीकारात् । यथोक्तं फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निराकृतम् । ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्ष्यते इति । तथा च वस्तुतत्त्वविषयिण्येव विद्या अविद्योन्मूलिका न कर्मोपास्तिरूपा येनानित्यास्यादिति भावः । अस्याः फलमाह । तस्या इति । तस्याः विद्यायाः पुत्रा इव पुत्राः फलानि । मानसाः मनःसंकल्पमात्रजन्याः पित्रादयः । 'संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति' इति श्रुतेः । अस्य हार्दब्रह्मविदः । 'तुरगाः तुरं गच्छन्ति ते तुरगाः सद्यो मनःसंहार्या एव।यतो व्योमचारिणः व्योम्नि हार्दाकाशे चारिणः। य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति। स इदं सर्वं भवति इति श्रुतेर्ब्रह्मज्ञानात्सार्वात्म्यं स्वीयमवगच्छतः सर्वप्राप्तिरस्तीत्यर्थः। तस्मादधर्मप्रभवसृष्टिश्रवणेऽपि न विगानं कार्यं सर्वस्य ब्रह्ममात्रत्वात् ॥ ५१ ॥ एवमुपपादितारम्भं सृष्ट्यन्तरं वक्तुमुपक्रमते । वरुणस्येत्यादिना । वरुणस्य शुक्रात् ज्येष्ठावलं पुत्रं सुरां च पुत्रीं व्यजायतेति संबन्धः ॥ ५२ ॥ पिण्डफलान्सप्त । 'खर्जूरतालहिन्तालौ ताली खर्जूरिका तथा । गुवाको नारिकेलश्च सप्तपिण्डफला द्रुमाः' । इत्युक्तरूपान् । इह पुराणान्तराविरोधो नामभेदात्कल्पभेदाद्वापनेयः ॥ ६८ ॥

अनलायाः शुकी पुत्री कद्रूस्तु सुरसासुतः ।
अरुणस्य भार्या श्येनी तु वीर्यवन्तौ महाबलौ ॥ ६९
संपातिं जनयामास वीर्यवन्तं जटायुषम् ।
सुरसाऽजनयन्नागान्कद्रूः पुत्रांस्तु पन्नगान् ॥ ७०
द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु विख्यातौ गरुडारुणौ ।
इत्येष सर्वभूतानां महतां मनुजाधिप ॥
प्रभवः कीर्तितः सम्यङ्मया मतिमतांवर ॥७१॥
यं श्रुत्वा पुरुषः सम्यङ्मुक्तो भवति पाप्मनः ।
सर्वज्ञतां च लभते गतिमग्र्यां च विन्दति ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

---

जनमेजय उवाच ।

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सिंहव्याघ्रमृगाणां च पन्नगानां पतत्रिणाम् ॥ १
सर्वेषां चैव भूतानां संभवं भगवन्नहम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन मानुषेषु महात्मनाम् ।
जन्म कर्म च भूतानामेतेषामनुपूर्वशः ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

मानुषेषु मनुष्येन्द्र संभूता ये दिवौकसः ।
प्रथमं दानवांश्चैव तांस्ते वक्ष्यामि सर्वशः ॥ ३
विप्रचित्तिरिति ख्यातो य आसीद्दानवर्षभः ।
जरासन्ध इति ख्यातः स आसीन्मनुजर्षभः ॥ ४
दितेः पुत्रस्तु यो राजन्हिरण्यकशिपुः स्मृतः ।
स जज्ञे मानुषे लोके शिशुपालो नरर्षभः ॥ ५
संह्राद इति विख्यातः प्रह्रादस्यानुजस्तु यः ।
स शल्य इति विख्यातो जज्ञे बाह्लीकपुंगवः ॥ ६
अनुह्रादस्तु तेजस्वी योऽभूत्ख्यातो जघन्यजः ।
धृष्टकेतुरिति ख्यातः स बभूव नरेश्वरः ॥ ७
यस्तु राजञ्शिबिर्नाम दैतेयः परिकीर्तितः ।
द्रुम इत्यभिविख्यातः स आसीद्भुवि पार्थिवः ॥८
बाष्कलो नाम यस्तेषामासीदसुरसत्तमः ।
भगदत्त इति ख्यातः स जज्ञे पुरुषर्षभः ॥ ९
अयःशिरा अश्वशिरा अयःशङ्कुश्च वीर्यवान् ।
तथा गगनमूर्धा च वेगवांश्चात्र पञ्चमः ॥ १०
पञ्चैते जज्ञिरे राजन्वीर्यवन्तो महासुराः ।
केकयेषु महात्मानः पार्थिवर्षभसत्तमाः ।
केतुमानिति विख्यातो यस्ततोऽन्यः प्रतापवान्॥११
अमितौजा इति ख्यातः सोग्रकर्मा नराधिपः ।
स्वर्भानुरिति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः॥१२
उग्रसेन इति ख्यात उग्रकर्मा नराधिपः ।
यस्त्वश्व इति विख्यातः श्रीमानासीन्महासुरः॥१३
अशोको नाम राजाऽभून्महावीर्योऽपराजितः ।
तस्मादवरजो यस्तु राजन्नश्वपतिः स्मृतः ॥ १४
दैतेयः सोऽभवद्राजा हार्दिक्यो मनुजर्षभः ।
वृषपर्वेति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ॥ १५
दीर्घप्रज्ञ इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ।
अजकस्त्ववरो राजन्य आसीद्वृषपर्वणः ॥ १६
स शाल्व इति विख्यातः पृथिव्यामभवन्नृपः ।
अश्वग्रीव इति ख्यातः सत्त्ववान्यो महासुरः॥ १७
रोचमान इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ।
सूक्ष्मस्तु मतिमान्राजन्कीर्तिमान्यः प्रकीर्तितः॥१८
बृहद्रथ इति ख्यातः क्षितावासीत्स पार्थिवः ।
तुहुण्ड इति विख्यातो य आसीदसुरोत्तमः ॥ १९
सेनाबिन्दुरिति ख्यातः स बभूव नराधिपः ।
इषुपान्नाम यस्तेषामसुराणां बलाधिकः ॥ २०
नग्नजिन्नाम राजासीद्भुवि विख्यातविक्रमः ।
एकचक्र इति ख्यात आसीद्यस्तु महासुरः ॥ २१
प्रतिविन्ध्य इति ख्यातो बभूव प्रथितः क्षितौ ।
विरूपाक्षस्तु दैतेयश्चित्रयोधी महासुरः ॥ २२
चित्रधर्मेति विख्यातः क्षितावासीत्स पार्थिवः ।
हरस्त्वरिहरो वीर आसीद्यो दानवोत्तमः ॥ २३
सुबाहुरिति विख्यातः श्रीमानासीत्स पार्थिवः ।
अहरस्तु महातेजाः शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥ २४
बाह्लीको नाम राजा स बभूव प्रथितः क्षितौ ।
निचन्द्रश्चन्द्रवक्त्रस्तु य आसीदसुरोत्तमः ॥ २५
मुञ्जकेश इति ख्यातः श्रीमानासीत्स पार्थिवः ।
निकुम्भस्त्वजितः संख्ये महामतिरजायत ॥ २६

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

---

देवानामिति अध्यायो निगदव्याख्यातः ॥१॥

भूमौ भूमिपतिः श्रेष्ठो देवाधिप इति स्मृतः ।
शरभो नाम यस्तेषां दैतेयानां महासुरः ॥ २७
पौरवो नाम राजर्षिः स बभूव नरोत्तमः ।
कुपटस्तु महावीर्यः श्रीमान्राजन्महासुरः ॥ २८
सुपार्श्व इति विख्यातः क्षितौ जज्ञे महीपतिः ।
क्रथस्तु राजन्राजर्षिः क्षितौ जज्ञे महासुरः ॥२९
पार्वतेय इति ख्यातः काञ्चनाचलसंनिभः ।
द्वितीयः शलभस्तेषामसुराणां बभूव ह ॥ ३०
प्रह्लादो नाम बाह्लीकः स बभूव नराधिपः ।
चन्द्रस्तु दितिजश्रेष्ठो लोके ताराधिपोपमः ॥ ३१
चन्द्रवर्मेति विख्यातः काम्बोजानां नराधिपः ।
अर्क इत्यभिविख्यातो यस्तु दानवपुङ्गवः ॥ ३२
ऋषिको नाम राजर्षिर्बभूव नृपसत्तमः ।
मृतपा इति विख्यातो य आसीदसुरोत्तमः ॥३३
पश्चिमानूपकं विद्धि तं नृपं नृपसत्तम ।
गविष्ठस्तु महातेजा यः प्रख्यातो महासुरः ॥ ३४
द्रुमसेन इति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ।
मयूर इति विख्यातः श्रीमान्यस्तु महासुरः ॥ ३५
स विश्व इति विख्यातो बभूव पृथिवीपतिः ।
सुपर्ण इति विख्यातस्तस्मादवरजस्तु यः ॥ ३६
कालकीर्तिरिति ख्यातः पृथिव्यां सोऽभवन्नृपः ।
चन्द्रहन्तेति यस्तेषां कीर्तितः प्रवरोऽसुरः ॥ ३७
शुनको नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः ।
विनाशनस्तु चन्द्रस्य य आख्यातो महासुरः ॥३८
जानकिर्नाम विख्यातः सोभवन्मनुजाधिपः ।
दीर्घजिह्वस्तु कौरव्य य उक्तो दानवर्षभः ॥ ३९
काशिराजः स विख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
ग्रहं तु सुषुवे यं तु सिंहिकार्केन्दुमर्दनम् ।
स क्राथ इति विख्यातो बभूव मनुजाधिपः ॥ ४०
दनायुषस्तु पुत्राणां चतुर्णां प्रवरोसुरः ।
विक्षरो नाम तेजस्वी वसुमित्रो नृपः स्मृतः ॥ ४१
द्वितीयो विक्षराद्यस्तु नराधिप महासुरः ।
पाण्ड्यराष्ट्राधिप इति विख्यातः सोऽभवन्नृपः ४२
बली वीर इति ख्यातो यस्त्वासीदसुरोत्तमः ।
पौण्ड्रमात्स्यक इत्येवं बभूव स नराधिपः ॥ ४३
वृत्र इत्यभिविख्यातो यस्तु राजन्महासुरः ।
मणिमान्नाम राजर्षिः स बभूव नराधिपः ॥ ४४
क्रोधहन्तेति यस्तस्य बभूवावरजोऽसुरः ।
दण्ड इत्यभिविख्यातः स आसीन्नृपतिः क्षितौ ४५
क्रोधवर्धन इत्येवं यस्त्वन्यः परिकीर्तितः ।
दण्डधार इति ख्यातः सोभवन्मनुजर्षभः ॥ ४६
कालेयानां तु ये पुत्रास्तेषामष्टौ नराधिपाः ।
जज्ञिरे राजशार्दूल शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ४७
मगधेषु जयत्सेनस्तेषामासीत्स पार्थिवः ।
अष्टानां प्रवरस्तेषां कालेयानां महासुरः ॥ ४८
द्वितीयस्तु ततस्तेषां श्रीमान्हरिहयोपमः ।
अपराजित इत्येवं स बभूव नराधिपः ॥ ४९
तृतीयस्तु महातेजा महामायो महासुरः ।
निषादाधिपतिर्जज्ञे भुवि भीमपराक्रमः ॥ ५०
तेषामन्यतमो यस्तु चतुर्थः परिकीर्तितः ।
श्रेणिमानिति विख्यातः क्षितौ राजर्षिसत्तमः ५१
पञ्चमस्त्वभवत्तेषां प्रवरो यो महासुरः ।
महौजा इति विख्यातो बभूवेह परंतपः ॥ ५२
षष्ठस्तु मतिमान्यो वै तेषामासीन्महासुरः ।
अभीरुरिति विख्यातः क्षितौ राजर्षिसत्तमः ॥५३
समुद्रसेनस्तु नृपस्तेषामेवाभवद्गणात् ।
विश्रुतः सागरान्तायां क्षितौ धर्मार्थतत्त्ववित् ॥५४
बृहन्नामाष्टमस्तेषां कालेयानां नराधिप ।
बभूव राजा धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः ॥ ५५
कुक्षिस्तु राजन्विख्यातो दानवानां महाबलः ।
पार्वतीय इति ख्यातः काञ्चनाचलसंनिभः ॥ ५६
क्रथनश्च महावीर्यः श्रीमान्राजा महासुरः ।
सूर्याक्ष इति विख्यातः क्षितौ जज्ञे महीपतिः ५७
असुराणां तु यः सूर्यः श्रीमांश्चैव महासुरः ।
दरदो नाम बाह्लीको वरः सर्वमहीक्षिताम् ॥५८
गणः क्रोधवशो नाम यस्ते राजन्प्रकीर्तितः ।
ततः संजज्ञिरे वीराः क्षिताविह नराधिपाः ॥५९
मद्रकः कर्णवेष्टश्च सिद्धार्थः कीटकस्तथा ।
सुवीरश्च सुबाहुश्च महावीरोऽथ बाह्लिकः ॥ ६०
क्रथो विचित्रः सुरथः श्रीमान्नीलश्च भूमिपः ।
चीरवासाश्च कौरव्य भूमिपालश्च नामतः ॥ ६१
दन्तवक्त्रश्च नामासीद्दुर्जयश्चैव दानवः ।
रुक्मी च नृपशार्दूलो राजा च जनमेजयः ॥ ६२
आषाढो वायुवेगश्च भूरितेजास्तथैव च ।
एकलव्यः सुमित्रश्च वाटधानोऽथ गोमुखः ॥ ६३
कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिस्तथैव च ।
श्रुतायुरुद्वहश्चैव बृहत्सेनस्तथैव च ॥ ६४
क्षेमोग्रतीर्थः कुहरः कलिङ्गेषु नराधिपः ।
मतिमांश्च मनुष्येन्द्र ईश्वरश्चेति विश्रुतः ॥ ६५
गणात्क्रोधवशादेष राजपूगोऽभवत्क्षितौ ।
जातः पुरा महाभागो महाकीर्तिर्महाबलः ॥ ६६

कालनेमिरिति ख्यातो दानवानां महाबलः ।
स कंस इति विख्यात उग्रसेनसुतो बली ॥ ६७
यस्त्वासीद्देवको नाम देवराजसमद्युतिः ।
स गन्धर्वपतिर्मुख्यः क्षितौ जज्ञे नराधिपः ॥ ६८
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्देवर्षेर्विद्धि भारत ।
अंशाद्द्रोणं समुत्पन्नं भारद्वाजमयोनिजम् ॥ ६९
धन्विनां नृपशार्दूल यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ।
महाकीर्तिर्महातेजाः स जज्ञे मनुजेश्वर ॥ ७०
धनुर्वेदे च वेदे च यं तं वेदविदो विदुः ।
वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ॥ ७१
महादेवान्तकाभ्यां च कामात्क्रोधाच्च भारत ।
एकत्वमुपपन्नानां जज्ञे शूरः परंतपः ॥ ७२
अश्वत्थामा महावीर्यः शत्रुपक्षभयावहः ।
वीरः कमलपत्राक्षः क्षितावासीन्नराधिपः ॥ ७३
जज्ञिरे वसवस्त्वष्टौ गङ्गायां शान्तनोः सुताः ।
वसिष्ठस्य च शापेन नियोगाद्वासवस्य च ॥ ७४
तेषामवरजो भीष्मः कुरूणामभयंकरः ।
मतिमान्वेदविद्वाग्मी शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥ ७५
जामदग्न्येन रामेण सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
योऽयुध्यत महातेजा भार्गवेण महात्मना ॥ ७६
यस्तु राजन्कृपो नाम ब्रह्मर्षिरभवत्क्षितौ ।
रुद्राणां तु गणाद्विद्धि संभूतमतिपौरुषम् ॥ ७७
शकुनिर्नाम यस्त्वासीद्राजा लोके महारथः ।
द्वापरं विद्धि तं राजन्संभूतमरिमर्दनम् ॥ ७८
सात्यकिः सत्यसन्धश्च योऽसौ वृष्णिकुलोद्वहः ।
पक्षात्स जज्ञे मरुतां देवानामरिमर्दनः ॥ ७९
द्रुपदश्चैव राजर्षिस्तत एवाभवद्गणात् ।
मानुषे नृपलोकेऽस्मिन्सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ८०
ततश्च कृतवर्माणं विद्धि राजञ्जनाधिपम् ।
तमप्रतिमकर्माणं क्षत्रियर्षभसत्तमम् ॥ ८१
मरुतां तु गणाद्विद्धि संजातमरिमर्दनम् ।
विराटं नाम राजानं परराष्ट्रप्रतापनम् ॥ ८२
अरिष्टायास्तु यः पुत्रो हंस इत्यभिविश्रुतः ।
स गन्धर्वपतिर्जज्ञे कुरुवंशविवर्धनः ॥ ८३
धृतराष्ट्र इति ख्यातः कृष्णद्वैपायनात्मजः ।
दीर्घबाहुर्महातेजाः प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ॥ ८४
मातुर्दोषादृषेः कोपादन्ध एव व्यजायत ।
तस्यैवावरजो भ्राता महासत्त्वो महाबलः ॥ ८५
स पाण्डुरिति विख्यातः सत्यधर्मरतः शुचिः ।
अत्रेस्तु सुमहाभागं पुत्रं पुत्रवतां वरम् ।
विदुरं विद्धि तं लोके जातं बुद्धिमतां वरम् ॥ ८६
कलेरंशस्तु संजज्ञे भुवि दुर्योधनो नृपः ।
दुर्बुद्धिर्दुर्मतिश्चैव कुरूणामयशस्करः ॥ ८७
जगतो यस्तु सर्वस्य विद्विष्टः कलिपूरुषः ।
यः सर्वां घातयामास पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ८८
उद्दीपितं येन वैरं भूतान्तकरणं महत् ।
पौलस्त्या भ्रातरश्चास्य जज्ञिरे मनुजेष्विह ॥ ८९
शतं दुःशासनादीनां सर्वेषां क्रूरकर्मणाम् ।
दुर्मुखो दुःसहश्चैव ये चान्येनानुकीर्तिताः ॥ ९०
दुर्योधनसहायास्ते पौलस्त्या भरतर्षभ ।
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च धार्तराष्ट्रः शताधिकः ॥ ९१

जनमेजय उवाच ।

ज्येष्ठानुज्येष्ठतामेषां नामधेयानि वा विभो ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्येण कीर्तय ॥ ९२

वैशंपायन उवाच ।

दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन्दुःशासनस्तथा ।
दुःसहो दुःशलश्चैव दुर्मुखश्च तथा परः ॥ ९३
विविंशतिर्विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः ।
विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ॥ ९४
दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ।
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्राङ्गदश्च ह ॥ ९५
दुर्मदो दुष्प्रहर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ।
ऊर्णनाभः पद्मनाभस्तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ९६
सेनापतिः सुषेणश्च कुण्डोदरमहोदरौ ।
चित्रबाहुश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विरोचनः ॥ ९७
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्रचापसुकुण्डलौ ।
भीमवेगो भीमबलो बलाकी भीमविक्रमः ॥ ९८
उग्रायुधो भीमशरः कनकायुर्दृढायुधः ।
दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥ ९९
जरासन्धो दृढसन्धः सत्यसन्धः सहस्रवाक् ।
उग्रश्रवा उग्रसेनः क्षेममूर्तिस्तथैव च ॥ १००
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षो दुराधनः ॥ १
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ।
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तानुयायिनौ ॥ २
कवची निषङ्गी दण्डी दण्डधारो धनुर्ग्रहः ।
उग्रो भीमरथो वीरो वीरबाहुरलोलुपः ॥ ३

---

अत्रेरिति । यश्चोदितो भास्करेऽभूत्प्रनष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम इत्यत्रेर्भास्करकार्यकारित्वस्मरणात् । अत्रिशब्देन सूर्यो गृह्यते । तस्य पुत्रं धर्मं विदुरं विद्धीत्यर्थः ॥ ८६ ॥

अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथश्च यः ।
अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी दीर्घलोचनः ॥ ४
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरः कनकाङ्गदः ।
कुण्डजश्चित्रकश्चैव दुःशला च शताधिका ॥ ५
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च धार्तराष्ट्रः शताधिकः ।
एतदेकशतं राजन्कन्या चैका प्रकीर्तिता ॥ ६
नामधेयानुपूर्व्या च ज्येष्ठानुज्येष्ठतां विदुः ।
सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ७
सर्वे वेदविदश्चैव राजशास्त्रे च पारगाः ।
सर्वे संग्रामविद्यासु विद्याभिजनशोभिनः ॥ ८
सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते ।
दुःशलां समये राजन्सिन्धुराजाय कौरवः ॥ ९
जयद्रथाय प्रददौ सौबलानुमते तदा ।
धर्मस्यांशं तु राजानं विद्धि राजन्युधिष्ठिरम् ॥१०
भीमसेनं तु वातस्य देवराजस्य चार्जुनम् ।
अश्विनोस्तु तथैवांशौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि ॥ ११
नकुलः सहदेवश्च सर्वभूतमनोहरौ ।
यस्तु वर्चा इति ख्यातः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥१२
सोऽभिमन्युर्बृहत्कीर्तिरर्जुनस्य सुतोभवत् ।
यस्यावतरणे राजन्सुरान्सोमोऽब्रवीदिदम् ॥ १३
नाहं दद्यां प्रियं पुत्रं मम प्राणैर्गरीयसम् ।
समयः क्रियतामेष न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ १४
सुरकार्यं हि नः कार्यमसुराणां क्षितौ वधः ।
तत्र यास्यत्ययं वर्चा न च स्थास्यति वै चिरम् १५
ऐन्द्रिर्नरस्तु भविता यस्य नारायणः सखा ।
सोऽर्जुनेत्यभिविख्यातः पाण्डोः पुत्रः प्रतापवान् १६
तस्यायं भविता पुत्रो बालो भुवि महारथः ।
ततः षोडशवर्षाणि स्थास्यत्यमरसत्तमाः ॥ १७
अस्य षोडशवर्षस्य स संग्रामो भविष्यति ।
यत्रांशा वः करिष्यन्ति कर्मवीरनिषूदनम् ॥ १८
नरनारायणाभ्यां तु स संग्रामो विना कृतः ।
चक्रव्यूहं समास्थाय योधयिष्यन्ति वः सुराः ॥१९
विमुखाञ्छात्रवान्सर्वान्कारयिष्यति मे सुतः ।
बालः प्रविश्य च व्यूहमभेद्यं विचरिष्यति ॥ २०
महारथानां वीराणां कदनं च करिष्यति ।
सर्वेषामेव शत्रूणां चतुर्थांशं नयिष्यति ॥ २१
दिनार्धेन महाबाहुः प्रेतराजपुरं प्रति ।
ततो महारथैर्वीरैः समेत्य बहुशो रणे ॥ २२
दिनक्षये महाबाहुर्मया भूयः समेष्यति ।
एकं वंशकरं पुत्रं वीरं वै जनयिष्यति ॥ २३
प्रनष्टं भारतं वंशं स भूयो धारयिष्यति ।
एतत्सोमवचः श्रुत्वा तथास्त्विति दिवौकसः ॥२४
प्रत्यूचुः सहिताः सर्वे ताराधिपमपूजयन् ।
एवं ते कथितं राजंस्तव जन्म पितुः पितुः ॥ २५
अग्नेर्भागं तु विद्धि त्वं धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
शिखण्डिनमथो राजंस्त्रीपूर्वं विद्धि राक्षसम् ॥ २६
द्रौपदेयाश्च ये पञ्च बभूवुर्भरतर्षभ ।
विश्वान्देवगणान्विद्धि संजातान्भरतर्षभ ॥ २७
प्रतिविन्ध्यः सुतसोमः श्रुतकीर्तिस्तथापरः ।
नाकुलिस्तु शतानीकः श्रुतसेनश्च वीर्यवान् ॥ २८
शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत् ।
तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥ २९
पितुः स्वस्रीयपुत्राय सोऽनपत्याय वीर्यवान् ।
अग्रमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यस्य वै तदा ॥ ३०
अग्रजातेति तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकाङ्क्षया ।
अददत्कुन्तिभोजाय स तां दुहितरं तदा ॥ ३१
सा नियुक्ता पितुर्गेहे ब्राह्मणातिथिपूजने ।
उग्रं पर्यचरद्घोरं ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ३२
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।
तमुग्रं शंसितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत् ॥ ३३
तुष्टोभिचारसंयुक्तमाचचक्षे यथाविधि ।
उवाच चैनां भगवान्प्रीतोऽस्मि सुभगे तव ॥ ३४
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि ।
तस्य तस्य प्रसादात्त्वं देवि पुत्राञ्जनिष्यसि ॥३५
एवमुक्ता च सा बाला तदा कौतूहलान्विता ।
कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ॥ ३६
प्रकाशकर्ता भगवांस्तस्यां गर्भं दधौ तदा ।
अजीजनत्सुतं चास्यां सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ३७
सकुण्डलं सकवचं देवगर्भश्रियान्वितम् ।
दिवाकरसमं दीप्त्या चारुसर्वाङ्गभूषितम् ॥ ३८
निगूहमाना जातं वै बन्धुपक्षभयात्तदा ।
उत्ससर्ज जले कुन्ती तं कुमारं यशस्विनम् ॥ ३९
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्ता महायशाः ।
राधायाः कल्पयामास पुत्रं सोऽधिरथस्तदा ४०
चक्रतुर्नामधेयं च तस्य बालस्य तावुभौ ।
दम्पतीव सुषेणेति दिक्षु सर्वासु विश्रुतम् ॥ ४१
संवर्धमानो बलवान्सर्वास्त्रेषूत्तमोऽभवत् ।
वेदाङ्गानि च सर्वाणि जजाप जयतां वरः ॥ ४२
यस्मिन्काले जपन्नास्ते धीमान्सत्यपराक्रमः ।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीत्तस्मिन्काले महात्मनः ॥४३

तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा पुत्रार्थे भूतभावनः ।
ययाचे कुण्डले वीरं कवचं च सहाङ्गजम् ॥ ४४
उत्कृत्य कर्णो ह्यददत्कवचं कुण्डले तथा ।
शक्तिं शक्रो ददौ तस्मै विस्मितश्चेदमब्रवीत् ४५
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
यस्मिन्क्षेप्स्यसि दुर्धर्ष स एको न भविष्यति ४६
पुरा नाम च तस्यासीद्वसुषेण इति क्षितौ ।
ततो वैकर्तनः कर्णः कर्मणा तेन सोऽभवत् ॥ ४७
आमुक्तकवचो वीरो यस्तु जज्ञे महायशाः ।
स कर्ण इति विख्यातः पृथायाः प्रथमः सुतः ४८
स तु सूतकुले वीरो ववृधे राजसत्तम ।
कर्णं नरवरश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ४९
दुर्योधनस्य सचिवं मित्रं शत्रुविनाशनम् ।
दिवाकरस्य तं विद्धि राजन्नंशमनुत्तमम् ॥ ५०
यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः ।
तस्यांशो मानुषेष्वासीद्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ५१
शेषस्यांशश्च नागस्य बलदेवो महाबलः ।
सनत्कुमारं प्रद्युम्नं विद्धि राजन्महौजसम् ॥ ५२
एवमन्ये मनुष्येन्द्रा बहवोंशा दिवौकसाम् ।
जज्ञिरे वसुदेवस्य कुले कुलविवर्धनाः ॥ ५३
गणस्त्वप्सरसां यो वै मया राजन्प्रकीर्तितः ।
तस्य भागः क्षितौ जज्ञे नियोगाद्वासवस्य ह ५४
तानि षोडशदेवीनां सहस्राणि नराधिप ।
बभूवुर्मानुषे लोके वासुदेवपरिग्रहः ॥ ५५
श्रियस्तु भागः संजज्ञे रत्यर्थं पृथिवीतले ।
भीष्मकस्य कुले साध्वी रुक्मिणी नाम नामतः ॥
द्रौपदी त्वथ संजज्ञे शचीभागादनिन्दिता ।
द्रुपदस्य कुले कन्या वेदिमध्यादनिन्दिता ॥ ५७
नातिह्रस्वा न महती नीलोत्पलसुगन्धिनी ।
पद्मायताक्षी सुश्रोणी स्वसिताञ्चितमूर्धजा ॥ ५८
सर्वलक्षणसंपूर्णा वैदूर्यमणिसंनिभा ।
पञ्चानां पुरुषेन्द्राणां चित्तप्रमथनी रहः ॥ ५९
सिद्धिर्धृतिश्च ये देव्यौ पञ्चानां मातरौ तु ते ।
कुन्ती माद्री च जज्ञाते मतिस्तु सुबलात्मजा ६०
इति देवासुराणां ते गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
अंशावतरणं राजन्राक्षसानां च कीर्तितम् ॥ ६१
ये पृथिव्यां समुद्भूता राजानो युद्धदुर्मदाः ।
महात्मानो यदूनां च ये जाता विपुले कुले ॥ ६२
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मया ते परिकीर्तिताः ।
धन्यं यशस्यं पुत्रीयमायुष्यं विजयावहम् ।
इदमंशावतरणं श्रोतव्यमनसूयता ॥ ६३
अंशावतरणं श्रुत्वा देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
प्रभवाप्ययवित्प्राज्ञो न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वण्यंशावतरणसमाप्तौ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

---

जनमेजय उवाच ।
त्वत्तः श्रुतमिदं ब्रह्मन्देवदानवरक्षसाम् ।
अंशावतरणं सम्यग्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ १
इमं तु भूय इच्छामि कुरूणां वंशमादितः ।
कथ्यमानं त्वया विप्र विप्रर्षिगणसंनिधौ ॥ २
वैशंपायन उवाच ।
पौरवाणां वंशकरो दुष्यन्तो नाम वीर्यवान् ।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता भरतसत्तम ॥ ३
चतुर्भागं भुवः कृत्स्नं यो भुङ्क्ते मनुजेश्वरः ।
समुद्रावरणांश्चापि देशान्स समितिंजयः ॥ ४
आम्लेच्छावधिकान्सर्वान्स भुङ्क्ते रिपुमर्दनः ।
रत्नाकरसमुद्रांतांश्चातुर्वर्ण्यजनावृतान् ॥ ५

---

सुबलात्मजा गान्धारी ॥ ६० ॥ धन्यं धनप्रदम् । यशस्यं यशस्करम् ॥ ६३ ॥ प्रभवाप्ययः परमात्मा । विश्वोत्पत्तिप्रलयाधिष्ठानत्वात् । तं वेत्तीति प्रभवाप्ययवित्त्वेतिशेषः । कृच्छ्रेषु संसारगहनेषु । अयं भावः यथा शास्त्रे वियदादिसृष्टिः ब्रह्मोपादानिका ब्रह्माद्वैतप्रतिपत्तये कीर्त्यते । वियत्प्राणपादयोः सृष्टिश्रुतीनां परस्परविरोधपरिहारश्च कीर्त्यते । तथापि सृष्टौ तात्पर्यं नास्ति । एवमिहाऽपि नाशावतरणे तात्पर्यमस्ति । किं तु तद्द्वारा ब्रह्माद्वैतप्रतिपत्तावेव । तथा सृष्टिस्मृतीनां विरोधः कल्पभेदाभिप्रायेण वावर्णनीय उपेक्षणीयो वा । स्वार्थे तात्पर्याभावादिति दिक् ॥ ६४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

त्वत्त इति ॥ १ ॥ चतुरन्तायाः चतुःसमुद्रावच्छिन्नायाः ॥ ३ ॥ चतुर्भागं भागचतुष्कं सर्वामिति यावत् ॥ ४ ॥

न वर्णसंकरकरो न कृष्याकरकृज्जनः ।
न पापकृत्कश्चिदासीत्तस्मिन्राजनि शासति ॥ ६
धर्मे रतिं सेवमाना धर्मार्थावभिपेदिरे ।
तदा नरा नरव्याघ्र तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥ ७
नासीच्चौरभयं तात न क्षुधाभयमण्वपि ।
नासीद्व्याधिभयं चापि तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥ ८
स्वधर्मे रेमिरे वर्णा दैवे कर्मणि निःस्पृहाः ।
तमाश्रित्य महीपालमासंश्चैवाकुतोभयाः ॥ ९
कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि रसवन्ति च ।
सर्वरत्नसमृद्धा च मही पशुमती तथा ॥ १०
स्वकर्मनिरता विप्रा नानृतं तेषु विद्यते ।
स चाद्भुतमहावीर्यो वज्रसंहननो युवा ॥ ११
उद्यम्य मन्दरं दोर्भ्यां वहेत्सवनकाननम् ।
चतुष्पथगदायुद्धे सर्वप्रहरणेषु च ॥ १२
नागपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च बभूव परिनिष्ठितः ।
बले विष्णुसमश्चासीत्तेजसा भास्करोपमः ॥ १३
अक्षोभ्यत्वेऽर्णवसमः सहिष्णुत्वे धरासमः ।
संमतः स महीपालः प्रसन्नपुरराष्ट्रवान् ॥ १४
भूयो धर्मपरैर्भावैर्मुदितं जनमादिशत् । १५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

---

जनमेजय उवाच ।
संभवं भरतस्याहं चरितं च महामतेः ।
शकुन्तलायाश्चोत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १
दुष्यन्तेन च वीरेण यथा प्राप्ता शकुन्तला ।
तं वै पुरुषसिंहस्य भगवन्विस्तरं त्वहम् ॥ २
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वज्ञ सर्वं मतिमतां वर ।
वैशंपायन उवाच ।
स कदाचिन्महाबाहुः प्रभूतबलवाहनः ॥ ३
वनं जगाम गहनं हयनागशतैर्वृतः ।
बलेन चतुरङ्गेण वृतः परमवल्गुना ॥ ४
खड्गशक्तिधरैर्वीरैर्गदामुसलपाणिभिः ।
प्रासतोमरहस्तैश्च ययौ योधशतैर्वृतः ॥ ५
सिंहनादैश्च योधानां शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ।
रथनेमिस्वनैश्चैव सनागवरबृंहितैः ॥ ६
नानायुधधरैश्चापि नानावेषधरैस्तथा ।
हेषितस्वनमिश्रैश्च क्ष्वेडितास्फोटितस्वनैः ॥ ७
आसीत्किलकिलाशब्दस्तस्मिन्गच्छति पार्थिवे ।
प्रासादवरशृङ्गस्थाः परया नृपशोभया ॥ ८
ददृशुस्तं स्त्रियस्तत्र शूरमात्मयशस्करम् ।
शक्रोपमममित्रघ्नं परवारणवारणम् ॥ ९
पश्यन्तः स्त्रीगणास्तत्र वज्रपाणिं स्म मेनिरे ।
अयं स पुरुषव्याघ्रो रणे वसुपराक्रमः ॥ १०
यस्य बाहुबलं प्राप्य न भवन्त्यसुहृद्गणाः ।
इति वाचो ब्रुवन्त्यस्ताः स्त्रियः प्रेम्णा नराधिपम् ।
तुष्टुवुः पुष्पवृष्टीश्च ससृजुस्तस्य मूर्धनि ।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रैः स्तूयमानः समन्ततः ॥ १२
निर्ययौ परमप्रीत्या वनं मृगजिघांसया ।
तं देवराजप्रतिमं मत्तवारणधूर्गतम् ॥ १३
द्विजक्षत्रियविट्शूद्रा निर्यान्तमनुजग्मिरे ।
ददृशुर्वर्धमानास्ते आशीर्भिश्च जयेन च ॥ १४
सुदूरमनुजग्मुस्तं पौरजानपदास्तथा ।
न्यवर्तन्त ततः पश्चादनुज्ञाता नृपेण ह ॥ १५
सुपर्णप्रतिमेनाथ रथेन वसुधाधिपः ।
महीमापूरयामास घोषेण त्रिदिवं तथा ॥ १६
स गच्छन्ददृशे धीमान्नन्दनप्रतिमं वनम् ।
बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसंकुलम् । १७

---

न कृष्याकरकृत्कृषिकृन्न । भुवोऽकृष्टपच्यत्वात् । आकरः सुवर्णादिधातूत्पत्तिस्थानम् । तत्रापि यत्नं न करोति । पृथिव्या रत्नैर्धातुभिश्च पूर्णत्वात् ॥ ६ ॥ दैवे कर्मणि वृष्ट्याद्यर्थे कारीर्यादिकाम्यकर्मणि ॥ ९ ॥ तदेवाह कालेति वसुमतीति पाठे धनवती ॥ १० ॥ वज्रसंहननो दृढदेहः ॥ ११ ॥ सवनकाननं वनं जलं उपवनं वा । चत्वारः प्रक्षेपविक्षेपपरिक्षेपाभिक्षेपाख्याः पन्थानो यस्य तद्गदायुद्धम् । प्रक्षेपो दूरस्थे शत्रौ त्यागः। विक्षेपः समीपस्थे कोट्या प्रहारः। परिक्षेपो बहुषु समन्तात्परिभ्रमणेन शत्रूणां क्षेपः । अभिक्षेपोऽग्रेण ताडनम् ॥ १२ ॥ आदिशत् शशास ॥ १५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

---

संभवमिति ॥१ ॥ चतुरङ्गेण हस्त्यश्वरथपादातवतावल्गुरम्यम् ॥ ४ ॥ परवारणवारणं शत्रुगजानां निवारकं सिंहम् ॥ ९ ॥ धूर्गतं स्कन्धारूढम् ॥ १३ ॥ अथ रथेन पौरपरावृत्त्यनन्तरम् ॥ १६ ॥

विषमं पर्वतप्रस्थैरश्मभिश्च समावृतम् ।
निर्जलं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम् ॥ १८
मृगसिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः ।
तद्वनं मनुजव्याघ्रः सभृत्यबलवाहनः ॥ १९
लोडयामास दुष्यन्तः सूदयन्विविधान्मृगान् ।
बाणगोचरसंप्राप्तांस्तत्र व्याघ्रगणान्बहून् ॥ २०
पातयामास दुष्यन्तो निर्बिभेद च सायकैः ।
दूरस्थान्सायकैः कांश्चिदभिनत्स नराधिपः ॥ २१
अभ्याशमागतांश्चान्यान्खड्गेन निरकृन्तत ।
कांश्चिदेणान्समाजघ्ने शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ २२
गदामण्डलतत्त्वज्ञश्चचारामितविक्रमः ।
तोमरैरसिभिश्चापि गदामुसलकम्पनैः ॥ २३
चचार स विनिघ्नन्वै वन्यांस्तत्र मृगद्विजान् ।
राज्ञा चाद्भुतवीर्येण योधैश्च समरप्रियैः ॥ २४
लोड्यमानं महारण्यं तत्यजुः स्म मृगाधिपाः ।
तत्र विद्रुतयूथानि हतयूथपतीनि च ॥ २५
मृगयूथान्यथौत्सुक्याच्छब्दं चक्रुस्ततस्ततः ।
शुष्काश्चापि नदीर्गत्वा जलनैराश्यकर्शिताः ॥ २६
व्यायामक्लान्तहृदयाः पतन्ति स्म विचेतसः ।
क्षुत्पिपासापरीताश्च श्रान्ताश्च पतिता भुवि ॥ २७
केचित्तत्र नरव्याघ्रैरभक्ष्यन्त बुभुक्षितैः ।
केचिदग्निमथोत्पाद्य संसाध्य च वनेचराः ॥ २८
भक्षयन्ति स्म मांसानि प्रकुट्य विधिवत्तदा ।
तत्र केचिद्गजा मत्ता बलिनः शस्त्रविक्षताः ॥ २९
संकोच्याग्रकरान्भीताः प्राद्रवन्ति स्म वेगिताः ।
शकृन्मूत्रं सृजन्तश्च क्षरन्तः शोणितं बहु ॥ ३०
वन्या गजवरास्तत्र ममृदुर्मनुजान्बहून् ।
तद्वनं बलमेघेन शरधारेण संवृतम् ।
व्यरोचत मृगाकीर्णं राज्ञा हतमृगाधिपम् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
ततो मृगसहस्राणि हत्वा सबलवाहनः ।
राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश ह ॥ १
एक एवोत्तमबलः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः ।
स वनस्यान्तमासाद्य महच्छून्यं समासदत् ॥ २
तच्चाप्यतीत्य नृपतिरुत्तमाश्रमसंयुतम् ।
मनःप्रह्लादजननं दृष्टिकान्तमतीव च ॥ ३
शीतमारुतसंयुक्तं जगामान्यन्महद्वनम् ।
पुष्पितैः पादपैः कीर्णमतीव सुखशाद्वलम् ॥ ४
विपुलं मधुरारावैर्नादितं विहगैस्तथा ।
पुंस्कोकिलनिनादैश्च झिल्लीकगणनादितम् ॥ ५
प्रवृद्धविटपैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ।
षट्पदाघूर्णिततलं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥ ६
नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कण्टकी ।
षट्पदैर्नाप्यपाकीर्णस्तस्मिन्वै काननेऽभवत् ॥ ७
विहगैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव च ।
सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ ८
मनोरमं महेष्वासो विवेश वनमुत्तमम् ।
मारुताकलितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशाखिनः ॥ ९
पुष्पवृष्टिं विचित्रां तु व्यसृजंस्ते पुनःपुनः ।
दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पक्षिभिर्मधुरस्वनैः ॥ १०
विरेजुः पादपास्तत्र विचित्रकुसुमाम्बराः ।
तेषां तत्र प्रवालेषु पुष्पभारावनामिषु ॥ ११
रुवन्ति रावान्मधुरान्षट्पदा मधुलिप्सवः ।
तत्र प्रदेशांश्च बहून्कुसुमोत्करमण्डितान् ॥ १२
लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ।
संपश्यन्सुमहातेजा बभूव मुदितस्तदा ॥ १३
परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमान्वितैः ।
अशोभत वनं तत्तु महेन्द्रध्वजसंनिभैः ॥ १४
सिद्धचारणसंघैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
सेवितं वनमत्यर्थं मत्तवानरकिंनरम् ॥ १५
सुखः शीतः सुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः ।
परिक्रामन्वने वृक्षानुपैतीव रिरंसया ॥ १६

---

औत्सुक्यात् वैयग्र्यात् ॥ २६ ॥ संसाध्य पाकादिना संस्कृत्य ॥ २८ ॥ प्रकुट्य चूर्णीकृत्य गजाः वनगजाः ॥ २९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

तत इति ॥ १ ॥ शून्यं वृक्षादिरहितं ऊषरम् ॥ २ ॥ लक्ष्म्या शोभया ॥ ६ ॥ नाप्यपाकीर्णः अनावृतो न ॥ ७ ॥ कुसुमवच्छाखावन्तः कुसुमशाखिनः ॥ ९ ॥ महेन्द्रे पर्वते ध्वजा इव ध्वजा उच्चतरा वृक्षास्तत्तुल्यैरिन्द्रध्वजवदत्युच्चैर्वा ॥ १४ ॥

एवंगुणसमायुक्तं ददर्श स वनं नृपः ।
नदीकच्छोद्भवं कान्तमुच्छ्रितध्वजसंनिभम् ॥ १७
प्रेक्षमाणो वनं तत्तु सुप्रहृष्टविहंगमम् ।
आश्रमप्रवरं रम्यं ददर्श च मनोरमम् ॥ १८
नानावृक्षसमाकीर्णं संप्रज्वलितपावकम् ।
तं तदाऽप्रतिमं श्रीमानाश्रमं प्रत्यपूजयत् ॥ १९
यतिभिर्वालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणान्वितम् ।
अग्न्यगारैश्च बहुभिः पुष्पसंस्तरसंस्तृतम् ॥ २०
महाकच्छैर्बृहद्भिश्च विभ्राजितमतीव च ।
मालिनीमभितो राजन्नदीं पुण्यां सुखोदकाम् २१
नैकपक्षिगणाकीर्णां तपोवनमनोरमाम् ।
तत्र व्यालमृगान्सौम्यान्पश्यन्प्रीतिमवाप सः॥२२
तं चाप्रतिरथः श्रीमानाश्रमं प्रत्यपद्यत ।
देवलोकप्रतीकाशं सर्वतः सुमनोहरम् ॥ २३
नदीं चाश्रमसंश्लिष्टां पुण्यतोयां ददर्श सः ।
सर्वप्राणभृतां तत्र जननीमिव धिष्ठिताम् ॥ २४
सचक्रवाकपुलिनां पुष्पफेनप्रवाहिनीम् ।
सकिंनरगणावासां वानरर्क्षनिषेविताम् ॥ २५
पुण्यस्वाध्यायसंघुष्टां पुलिनैरुपशोभिताम् ।
मत्तवारणशार्दूलभुजगेन्द्रनिषेविताम् ॥ २६
तस्यास्तीरे भगवतः काश्यपस्य महात्मनः ।
आश्रमप्रवरं रम्यं महर्षिगणसेवितम् ॥ २७
नदीमाश्रमसंबद्धां दृष्ट्वाश्रमपदं तथा ।
चकाराभिप्रवेशाय मतिं स नृपतिस्तदा ॥ २८
अलंकृतं द्वीपवत्या मालिन्या रम्यतीरया ।
नरनारायणस्थानं गङ्गयेवोपशोभितम् ॥ २९
मत्तबर्हिणसंघुष्टं प्रविवेश महद्वनम् ।
तत्सचैत्ररथप्रख्यं समुपेत्य नरर्षभः ॥ ३०

अतीवगुणसंपन्नमनिर्देश्यं च वर्चसा ।
महर्षिं काश्यपं द्रष्टुमथ कण्वं तपोधनम् ॥ ३१
ध्वजिनीमश्वसंबाधां पदातिगजसंकुलाम् ।
अवस्थाप्य वनद्वारि सेनामिदमुवाच सः ॥ ३२
मुनिं विरजसं द्रष्टुं गमिष्यामि तपोधनम् ।
काश्यपं स्थीयतामत्र यावदागमनं मम ॥ ३३
तद्वनं नन्दनप्रख्यमासाद्य मनुजेश्वरः ।
क्षुत्पिपासे जहौ राजा मुदं चावाप पुष्कलाम् ॥ [३४]
सामात्यो राजलिङ्गानि सोपनीय नराधिपः ।
पुरोहितसहायश्च जगामाश्रममुत्तमम् ॥ ३५
दिदृक्षुस्तत्र तमृषिं तपोराशिमथाव्ययम् ।
ब्रह्मलोकप्रतीकाशमाश्रमं सोऽभिवीक्ष्य ह ।
षट्पदोद्गीतसंघुष्टं नानाद्विजगणायुतम् ॥ ३६
ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः ।
शुश्राव मनुजव्याघ्रो विततेष्विह कर्मसु ॥ ३७
यज्ञविद्याङ्गविद्भिश्च यजुर्विद्भिश्च शोभितम् ।
मधुरैः सामगीतैश्च ऋषिभिर्नियतव्रतैः ॥ ३८
भारुण्डसामगीताभिरथर्वशिरसोद्गतैः ।
यतात्मभिः सुनियतैः शुशुभे स तदाश्रमः ॥ ३९
अथर्ववेदप्रवराः पूगयज्ञियसामगाः ।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते ॥ ४०
शब्दसंस्कारसंयुक्तैर्ब्रुवद्भिश्चापरैर्द्विजैः ।
नादितः स बभौ श्रीमान्ब्रह्मलोक इवापरः ॥ ४१
यज्ञसंस्तरविद्भिश्च क्रमशिक्षाविशारदैः ।
न्यायतत्त्वात्मविज्ञानसंपन्नैर्वेदपारगैः ॥ ४२
नानावाक्यसमाहारसमवायविशारदैः ।
विशेषकार्यविद्भिश्च मोक्षधर्मपरायणैः ॥ ४३

---

रिरंसया रमयितुमिच्छया ॥ १६ ॥ नदीकच्छोद्भवं कच्छः सजलोऽनूपप्रदेशः ॥ १७ ॥ महाकच्छैः महातुन्नकैः* । बृहद्भिः पुष्टैः । 'अथ कच्छः स्यादनूपे तुन्नकद्रुमे' इति मेदिनी । मालिनीं अभितः । आश्रममध्ये नैव मालिनी गच्छति न तु प्रान्तेन ॥ २१ ॥ अप्रतिरथः अप्रतिमः ॥ २३ ॥ काश्यपस्य कश्यपगोत्रस्य कण्वस्य ॥ २७ ॥ विततेषु वैतानिकेषु इष्टिपशुसोमादिषु प्रवर्तमानेषु ॥ ३७ ॥ यज्ञविद्यायामङ्गभूतानि कल्पसूत्रादीनि ॥ ३८ ॥ भारुण्डसामानि पूगयज्ञियसामानि च साम्नां अवान्तरभेदाः ॥३९॥

*नांदरुखीति प्रसिद्धेः ।

शब्दसंस्कारः यथास्थानकरणप्रयत्नमुच्चारणम् । स्थानं ताल्वादि । करणं जिह्वाग्रादि । प्रयत्नो घोषादिः ॥ ४१ ॥ यज्ञसंस्तरः इष्टकाद्युपधानक्रमः न्यायतत्त्वं युक्तैर्मर्यादा । आत्मविज्ञानं स्वानुभवः ॥ ४२ ॥ नानावाक्यानां एकशाखागतानां समिधो यजतीत्यादि प्रयाजाद्यङ्गविधिपराणां प्रयोगविधिपराणां प्रयोगविधिना दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेतेत्यादिना एकवाक्यत्वं समाहारः । भिन्नशाखास्थानां गुणविधीनामेकस्यां शाखायामुपसंहारः समवायः । तत्र विशारदैः । विशेषकार्यमुपासनाब्रह्मलोकफला । कर्मभ्यो विशिष्टत्वात्तस्याः । मोक्षधर्मेति पृथगुपादानेन मोक्षस्य विशेषकार्यत्वं निरस्तम् ॥ ४३ ॥ स्थापनं

स्थापनाक्षेपसिद्धान्तपरमार्थज्ञतां गतैः ।
शब्दच्छन्दोनिरुक्तज्ञैः कालज्ञानविशारदैः ॥ ४४
द्रव्यकर्मगुणज्ञैश्च कार्यकारणवेदिभिः ।
पक्षिवानररुतज्ञैश्च व्यासग्रन्थसमाश्रितैः ॥ ४५
नानाशास्त्रेषु मुख्यैश्च शुश्राव स्वनमीरितम् ।
लोकायतिकमुख्यैश्च समन्तादनुनादितम् ॥ ४६
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान्संशितव्रतान् ।
जपहोमपरान्विप्रान्ददर्श परवीरहा ॥ ४७
आसनानि विचित्राणि रुचिराणि महीपतिः ।
प्रयत्नोपहितानि स्म दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥ ४८
देवतायतनानां च प्रेक्ष्य पूजां कृतां द्विजैः ।
ब्रह्मलोकस्थमात्मानं मेने स नृपसत्तमः ॥ ४९
स काश्यपतपोगुप्तमाश्रमप्रवरं शुभम् ।
नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै तपोवनगुणैर्युतम् ॥ ५०
स काश्यपस्यायतनं महाव्रतै-
र्वृतं समन्तादृषिभिस्तपोधनैः ।
विवेशसामात्यपुरोहितोऽरिहा
विविक्तमत्यर्थमनोहरं शुभम् ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

ततो गच्छन्महाबाहुरेकोऽमात्यान्विसृज्य तान् ।
नापश्यदाश्रमे तस्मिंस्तमृषिं संशितव्रतम् ॥ १
सोऽपश्यमानस्तमृषिं शून्यं दृष्ट्वा तथाश्रमम् ।
उवाच क इहेत्युच्चैर्वनं संनादयन्निव ॥ २
श्रुत्वाऽथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीरिवरूपिणी ।
निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तापसी वेषधारिणी ॥ ३
सा तं दृष्ट्वैव राजानं दुष्यन्तमसितेक्षणा ।
स्वागतं त इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च ॥ ४
आसनेनार्चयित्वा च पाद्येनार्घ्येण चैव हि ।
पप्रच्छानामयं राजन्कुशलं च नराधिपम् ॥ ५
यथावदर्चयित्वाथ पृष्ट्वा चानामयं तदा ।
उवाच स्मयमानेव किं कार्यं क्रियतामिति ॥ ६
तामब्रवीत्ततो राजा कन्यां मधुरभाषिणीम् ।
दृष्ट्वा चैवानवद्याङ्गीं यथावत्प्रतिपूजितः ॥ ७
आगतोऽहं महाभागमृषिं कण्वमुपासितुम् ।
क्व गतो भगवान्भद्रे तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥ ८

शकुन्तलोवाच ।

गतः पिता मे भगवान्फलान्याहर्तुमाश्रमात् ।
मुहूर्तं संप्रतीक्षस्व द्रष्टास्येनमुपागतम् ॥ ९

वैशंपायन उवाच ।

अपश्यमानस्तमृषिं तथा चोक्तस्तया च सः ।
तां दृष्ट्वा च वरारोहां श्रीमतीं चारुहासिनीम् १०
विभ्राजमानां वपुषा तपसा च दमेन च ।
रूपयौवनसंपन्नामित्युवाच महीपतिः ॥ ११
का त्वं कस्याऽसि सुश्रोणि किमर्थं चागता वनम् ।
एवंरूपगुणोपेता कुतस्त्वमसि शोभने ॥ १२
दर्शनादेव हि शुभे त्वया मेऽपहृतं मनः ।
इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥१३
एवमुक्ता तु सा कन्या तेन राज्ञा तमाश्रमे ।
उवाच हसती वाक्यमिदं सुमधुराक्षरम् ॥ १४

---

प्रथमं स्वसिद्धान्तव्यवस्था । ततस्तत्र शङ्काक्षेपः तस्याः परिहारः सिद्धान्तः तैर्या परमार्थज्ञता तां गतैः । शब्दो व्याकरणम् । कालेति ज्यौतिषम् । शिक्षाकल्पावप्येतैरेवोपलक्षणीयौ॥४४॥ द्रव्यं व्रीह्यादि । कर्म निर्वापादि । गुणोऽष्टाकपालत्वादिः । कार्यं फलं स्वर्गादि । कारणं यागादि । पक्षीति । द्रव्यादीनां प्रकाशकं इषेत्वेत्यादिवाक्यम् । पक्षिवानररुतमिवाव्यक्तार्थं मन्त्रादिरूपं तदर्थाभिज्ञैः। व्यासग्रन्थो विस्तृतप्रबन्धे 'इषेत्वा' इतिशाखामाच्छिनत्ति इति तदीयब्राह्मणादिस्तं सम्यगाश्रितैः। न तु स्वकपोलकल्पितैः प्रकारैर्मन्त्रान् व्याचक्षत इत्यर्थः ॥४५॥ लोके एव आयतंते ते लोकायतिकाः । तेषु लोकरञ्जनपरेषु मुख्यैः ॥ ४६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

---

तत इति ॥ १ ॥ अनामयं आरोग्यम् । कुशलं राष्ट्रादिक्षेमम् ॥ ५ ॥ द्रष्टाऽसि द्रक्ष्यसि ॥९ ॥ अपश्यमान इति । तथा च स्वागतादिप्रकारेण विजने संलापरूपाभ्या स तया मोहित इत्यर्थः ॥ १० ॥ दर्शनादेवेति । शुभे कल्याणावहे । एतेन स्वस्य तत्परिग्रहाधिकारोऽस्तीति दर्शितम् । तत्र प्रमाणं स्वचेतस. प्रवृत्तिरेव । यथोक्तमभियुक्तैः । 'असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः । सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः ॥' इति ॥१३॥ हसती हसन्ती ॥ १४ ॥

कण्वस्याहं भगवतो दुष्यन्त दुहिता मता ।
तपस्विनो धृतिमतो धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥ १५

दुष्यन्त उवाच ।

ऊर्ध्वरेता महाभागे भगवाँल्लोकपूजितः ।
चलेद्धि वृत्ताद्धर्मोऽपि न चलेत्संशितव्रतः ॥ १६
कथं त्वं तस्य दुहिता संभूता वरवर्णिनी ।
संशयो मे महानत्र तन्मे छेत्तुमिहार्हसि ॥ १७

शकुन्तलोवाच ।

यथायमागमो मह्यं यथा चेदमभूत्पुरा ।
शृणु राजन्यथातत्त्वं यथाऽस्मि दुहिता मुनेः १८
ऋषिः कश्चिदिहागम्य मम जन्माभ्यचोदयत् ।
तस्मै प्रोवाच भगवान्यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ १९

कण्व उवाच ।

तप्यमानः किल पुरा विश्वामित्रो महत्तपः ।
सुभृशं तापयामास शक्रं सुरगणेश्वरम् ॥ २०
तपसा दीप्तवीर्योऽयं स्थानान्मां च्यावयेदिति ।
भीतः पुरंदरस्तस्मान्मेनकामिदमब्रवीत् ॥ २१
गुणैरप्सरसां दिव्यैर्मेनके त्वं विशिष्यसे ।
श्रेयो मे कुरु कल्याणि यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु २२
असावादित्यसंकाशो विश्वामित्रो महातपाः ।
तप्यमानस्तपो घोरं मम कम्पयते मनः ॥ २३
मेनके तव भारोऽयं विश्वामित्रः सुमध्यमे ।
शंसितात्मा सुदुर्धर्ष उग्रे तपसि वर्तते ॥ २४
स मां न च्यावयेत्स्थानात्तं वै गत्वा प्रलोभय ।
चर तस्य तपो विघ्नं कुरु मेऽविघ्नमुत्तमम् ॥ २५
रूपयौवनमाधुर्यचेष्टितस्मितभाषणैः ।
लोभयित्वा वरारोहे तपसस्तं निवर्तय ॥ २६

मेनकोवाच ।

महातेजाः स भगवांस्तथैव च महातपाः ।
कोपनश्च तथा ह्येनं जानाति भगवानपि ॥ २७
तेजसस्तपसश्चैव कोपस्य च महात्मनः ।
त्वमप्युद्विजसे यस्य नोद्विजेयमहं कथम् ॥ २८
महाभागं वसिष्ठं यः पुत्रैरिष्टैर्व्ययोजयत् ।
क्षत्रजातश्च यः पूर्वमभवद्ब्राह्मणो बलात् ॥ २९
शौचार्थं यो नदीं चक्रे दुर्गमां बहुभिर्जलैः ।
यां तां पुण्यतमां लोके कौशिकीति विदुर्जनाः ॥
बभार यत्रास्य पुरा काले दुर्गे महात्मनः ।
दारान्मतङ्गो धर्मात्मा राजर्षिर्व्याधतां गतः ॥३१
अतीतकाले दुर्भिक्षे अभ्येत्य पुनराश्रमम् ।
मुनिः पारेति नद्या वै नाम चक्रे तदा प्रभुः ॥३२
मतङ्गं याजयांचक्रे यत्र प्रीतमनाः स्वयम् ।
त्वं च सोमं भयाद्यस्य गतः पातुं सुरेश्वर ॥ ३३
चकारान्यं च लोकं वै क्रुद्धो नक्षत्रसंपदा ।
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ।
गुरुशापहतस्यापि त्रिशङ्कोः शरणं ददौ ॥ ३४
एतानि यस्य कर्माणि तस्याहं भृशमुद्विजे ।
यथाऽसौ न दहेत्क्रुद्धस्तथाज्ञापय मां विभो ३५
तेजसा निर्दहेल्लोकान्कम्पयेद्धरणीं पदा ।
संक्षिपेच्च महामेरुं तूर्णमावर्तयेद्दिशः ॥ ३६
तादृशं तपसा युक्तं प्रदीप्तमिव पावकम् ।
कथमस्मद्विधा नारी जितेन्द्रियमभिस्पृशेत् ॥ ३७
हुताशनमुखं दीप्तं सूर्यचन्द्राक्षितारकम् ।
कालजिह्वं सुरश्रेष्ठ कथमस्मद्विधा स्पृशेत् ॥ ३८

यमश्च सोमश्च महर्षयश्च
साध्या विश्वे वालखिल्याश्च सर्वे ।
एतेऽपि यस्योद्विजन्ते प्रभावा-
त्तस्मात्कस्मान्मादृशी नोद्विजेत ॥ ३९
त्वयैव मुक्ता च कथं समीप-
मृषेर्न गच्छेयमहं सुरेन्द्र ।
रक्षां तु मे चिन्तय देवराज
यथा त्वदर्थं रक्षिताऽहं चरेयम् ॥ ४०
कामं तु मे मारुतस्तत्र वासः
प्रक्रीडिताया विवृणोतु देव ।
भवेच्च मे मन्मथस्तत्र कार्ये
सहायभूतस्तु तव प्रसादात् ॥ ४१

---

आगमो गुरूपदेशः । इदं मज्जन्मादि पुरा यथाभूत्तथा शृणु इत्युत्तरेणान्वयः ॥ १८ ॥ अभ्यचोदयत्पृष्टवान् ॥ १९ ॥ मे अविघ्नमितिच्छेदः ॥२५॥बभार पोषितवान् । मतङ्गः त्रिशङ्कुः व्याधतां गतः। विवाहविघ्नदोषदर्शिनः पितुः कोपादितिशेषः ॥ ३१ ॥ आश्रमं अभ्येत्य तपस्तप्त्वेतिशेषः । नद्याः कौशिक्याः ॥ ३२ ॥ शरणं त्राणं त्रिशङ्कोः। त्रीणि पितुः कोपो वसिष्ठधेनोर्वधो वृथा गोमांसभक्षणं चेति शङ्कुनिशङ्कुतुल्यानि पापानि यस्य स त्रिशङ्कुस्तस्य यथोक्तं हरिवंशे त्रिशङ्कुं प्रति वसिष्ठेन । 'पितुश्च परितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः' इति ॥ ३४ ॥ तस्य तस्मात् ॥ ३५ ॥ आवर्तयेदेकीकुर्यात् ॥ ३६ ॥ सूर्यचन्द्रावेव अक्ष्णोः संबन्धिनी तारके यस्य तावपि भ्रूभङ्गमात्रेण स्रष्टुं समर्थ इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ प्रक्रीडितायाः प्रकृष्टं क्रीडितं यस्याः । विवृणोतु अपसारयतु ॥ ४१ ॥

प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिनीमाभितो नदीम् ।
जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु ॥

आदि० ७२.१०

अथापश्यद्वरारोहा तपसा दग्ध किल्बिषम् ।
विश्वामित्रं तप्यमानं मेनका भीरुराश्रमे ॥
आदि० ७२.२

वनाच्च वायुः सुरभिः प्रवायात्तस्मिन्काले तम्रूपं लोभयन्त्याः ।
तथेत्युक्त्वा विहिते चैव तस्मिंस्ततो ययौ साश्रमं कौशिकस्य ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

---

कण्व उवाच ।
एवमुक्तस्तया शक्रः संदिदेश सदागतिम् ।
प्रातिष्ठत तदा काले मेनका वायुना सह ॥ १
अथापश्यद्वरारोहा तपसा दग्धकिल्बिषम् ।
विश्वामित्रं तप्यमानं मेनका भीरुराश्रमे ॥ २
अभिवाद्य ततः सा तं प्राक्रीडदृषिसंनिधौ ।
अपोवाह च वासोऽस्या मारुतः शशिसंनिभम् ३
साऽगच्छत्त्वरिता भूमिं वासस्तदभिलिप्सती ।
स्मयमानेव सव्रीडं मारुतं वरवर्णिनी ॥ ४
पश्यतस्तत्र तत्रर्षेरप्यग्निसमतेजसः ।
विश्वामित्रस्ततस्तां तु विषमस्थामनिन्दिताम् ॥५
गृद्धां वाससि संभ्रान्तां मेनकां मुनिसत्तमः ।
अनिर्देश्य वयोरूपामपश्यद्विवृतां तदा ॥ ६
तस्या रूपगुणान्दृष्ट्वा स तु विप्रर्षभस्तदा ।
चकार भावं संसर्गात्तया कामवशं गतः ॥ ७
न्यमन्त्रयत चाप्येनां सा चाप्यैच्छदनिन्दिता ।
तौ तत्र सुचिरं कालमुभौ व्यहरतां तदा ॥ ८
रममाणौ यथाकामं यथैकदिवसं तथा ।
जनयामास स मुनिर्मेनकायां शकुन्तलाम् ॥ ९
प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिनीमभितो नदीम् ।
जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु ॥ १०
कृतकार्या ततस्तूर्णमगच्छच्छक्रसंसदम् ।
तं वने विजने गर्भं सिंहव्याघ्रसमाकुले ॥ ११
दृष्ट्वा शयानं शकुनाः समन्तात्पर्यवारयन् ।
नेमां हिंस्युर्वने बालां क्रव्यादा मांसगृद्धिनः १२
पर्यरक्षन्त तां तत्र शकुन्ता मेनकात्मजाम् ।
उपस्प्रष्टुं गतश्चाहमपश्यं शयितामिमाम् ॥ १३
निर्जने विपिने रम्ये शकुन्तैः परिवारिताम् ।
आनयित्वा ततश्चैनां दुहितृत्वे न्यवेशयम् ॥ १४
शरीरकृत्प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते ।
क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने ॥ १५
निर्जने तु वने यस्माच्छकुन्तैः परिवारिता ।
शकुन्तलेति नामास्याः कृतं चापि ततो मया १६
एवं दुहितरं विद्धि मम विप्र शकुन्तलाम् ।
शकुन्तला च पितरं मन्यते मामनिन्दिता ॥ १७
शकुन्तलोवाच ।
एतदाचष्ट पृष्टः सन्मम जन्म महर्षये ।
सुतां कण्वस्य मामेवं विद्धि त्वं मनुजाधिप १८
कण्वं हि पितरं मन्ये पितरं स्वमजानती ।
इति ते कथितं राजन्यथावृत्तं श्रुतं मया ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

---

तस्मिन्कामवायुसाहाय्यके इन्द्रेण विहिते संदिष्टे सति ॥ ४२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७१ ॥

एवमुक्त इति सदागतिं वायुम् ॥ १ ॥ गृद्धां सक्तां विवृतां अनाच्छादिताम् ॥ ६ ॥ भावं संसर्गात्संदर्शनात् तस्या मनश्चकार । तया हेतुभूतया ॥ ७ ॥ न्यमन्त्रयत एहीत्याकारितवान् । व्यहरतां विहारं चक्रतु ॥ ८ ॥ उपस्प्रष्टुं आह्निकं जलकार्यं कर्तुम् ॥ १३ ॥ शरीरकृन्निषेक्ता प्राणदाताऽभयप्रदः ॥ १५ ॥ निर्जन इति । शकुन्तैः परिवारिता उपात्तेति ला आदानेऽस्मात्कप्रत्यये शकुन्तलेति नाम निर्वचनम् ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७२ ॥

दुष्यन्त उवाच ।

सुव्यक्तं राजपुत्री त्वं यथा कल्याणि भाषसे ।
भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १
सुवर्णमालां वासांसि कुण्डले परिहाटके ।
नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्ने च शोभने ॥ २
आहरामि तवाद्याहं निष्कादीन्यजिनानि च ।
सर्वं राज्यं तवाद्यास्तु भार्या मे भव शोभने ॥ ३
गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेनैहि सुंदरि ।
विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठः उच्यते ॥ ४

शकुन्तलोवाच ।

फलाहारो गतो राजन्पिता मे इत आश्रमात् ।
मुहूर्तं संप्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥ ५

दुष्यन्त उवाच ।

इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते ।
त्वदर्थं मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥ ६
आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः
आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥ ७
अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः ।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ ८
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः ।
तेषां धर्मान्यथापूर्वं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ९
प्रशस्तांश्चतुरः पूर्वान्ब्राम्हणस्योपधारय ।
षडानुपूर्व्या क्षत्रस्य विद्धि धर्माननिन्दिते ॥ १०
राज्ञां तु राक्षसोप्युक्तो विट्शूद्रेष्वासुरः स्मृतः ।
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या अधर्म्यौ द्वौ स्मृताविह ११
पैशाच आसुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ।
अनेन विधिना कार्यो धर्मस्यैषा गतिः स्मृता १२
गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशङ्किथाः ।
पृथग्वा यदि वा मिश्रौ कर्तव्यौ नात्र संशयः॥ १३
सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनी ।
गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि ॥ १४

शकुन्तलोवाच ।

यदि धर्मपथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम ।
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रभो ॥ १५
सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहं रहः ।
मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरः ॥ १६
युवराजो महाराज सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे संगमस्त्वया ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाऽविचारयन् ।
अपि च त्वां हि नेष्यामि नगरं स्वं शुचिस्मिते ॥
यथा त्वमर्हा सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एवमुक्त्वा स राजर्षिस्तामनिन्दितगामिनीम् ॥१९
जग्राह विधिवत्पाणावुवास च तया सह ।
विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः ॥२०
प्रेषयिष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् ।
तया त्वानाययिष्यामि निवासं स्वं शुचिस्मिते २१

वैशंपायन उवाच ।

इति तस्याः प्रतिश्रुत्य स नृपो जनमेजय ।
मनसा चिन्तयन्प्रायात्काश्यपं प्रति पार्थिवः ॥२२

---

सुव्यक्तमिति। गोत्रप्रवर्तकोऽपि तपसा ब्राह्मणोऽपि जातितः क्षत्रिय एव विश्वामित्र इति भावः । इत ऊर्ध्वं वा तस्य ब्राह्मणत्वमिति कल्प्यम् ॥ १ ॥ गान्धर्वो वरवध्वोरैकमत्येन कृतः ॥४ ॥ फलाहारः फलान्याहर्तुं गतः ॥५॥ 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति' इति न्यायविरोधमाशंक्याह । आत्मन इति ॥ ७ ॥ पूर्वोक्तगान्धर्वविवाहस्य कर्तव्यतां वक्तुं विवाहभेदानाह । अष्टाविति । ब्राह्मः अलंकृत्य कन्यादानम् । तद्वदेव यज्ञान्ते ऋत्विजे दानं दैवः । सहोभौ धर्मं चरतामिति बुध्यादानं प्राजापत्यः । वराद्गोमिथुनं शुल्कं गृहीत्वा दानमार्षः । बहु धनं गृहीत्वा दानमासुरः ॥८॥ गान्धर्वो व्याख्यातः । सुप्तानां प्रमत्तानां वापहरेत्स पैशाचः । हत्वा भित्वा च शीर्षाणि रुदतीं रुदद्भ्यो हरेत्स राक्षसः। इत्येतेऽष्टौ क्रमाद्व्याख्याताः ॥ ९ ॥ पञ्चानां ब्राह्मादीनां त्रयः ब्राह्मदैवप्राजापत्या धर्म्याः। द्वावार्षासुरौ कन्याशुल्कग्रहणादधर्म्यौ ॥ ११ ॥ तयोरप्यासुरः पैशाचवदत्यन्तंहेय इत्याह पैशाच इति ॥ १२ ॥ परिशेषाद्गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रियस्य धर्म्याविित्याह गान्धर्वेति । मिश्रौ रुक्मिणी विवाहे ॥ १३ ॥ उवास सङ्गं कृतवान् । अत्राधिकःग्रन्थे । 'मूकाश्चैव किराताश्च कुब्जवामनकैः सह । सहिता कञ्चुकिवरैर्वाहिनी सूतमागधैः ॥' इति श्लोकः पठ्यते । तस्यार्थः । मूकाः अन्तः पुररक्षणयोग्याहितमितभाषिणः । किराताश्चामरवाहिन्यः स्त्रियः।'किरातो म्लेच्छभे देस्याद्भूनिम्बेल्पतनावपि। 'स्त्रियां चामरवाहिन्यां कुट्टनी दुर्गयोरपि' इति मेदिनी । कुब्जवामनकाश्चन्दनपुष्पोदकादिधराश्चेट्यश्चेटाश्च । कञ्चुकिनः अन्तःपुराध्यक्षाः । 'कञ्चुक्यन्तःपुराध्यक्षे' इति मेदिनी । वाहिनी प्रेष्या इति शेषः ॥ २० ॥ तया वाहिन्या ॥ २१ ॥

आहरामि तवाद्याह निष्कादीन्यजिनानि च ।
सर्वं राज्यं तवाद्यास्तु भार्या मे भव शोभने ॥

आदि० ७३.४

भगवांस्तपसा युक्तः श्रुत्वा किं नु करिष्यति ।
एवं स चिन्तयन्नेव प्रविवेश स्वकं पुरम् ॥ २३
मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु कण्वोऽप्याश्रममागमत् ।
शकुन्तला च पितरं ह्रिया नोपजगाम तम् ॥ २४
विज्ञायाथ च तां कण्वो दिव्यज्ञानो महातपाः ।
उवाच भगवान्प्रीतः पश्यन्दिव्येन चक्षुषा ॥ २५
त्वयाऽद्य भद्रे रहसि मामनादृत्य यः कृतः ।
पुंसा सह समायोगो न स धर्मोपघातकः ॥ २६
क्षत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते ।
सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः २७
धर्मात्मा च महात्मा च दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः ।
अभ्यगच्छः पतिं यत्त्वं भजमानं शकुन्तले ॥ २८
महात्मा जनिता लोके पुत्रस्तव महाबलः ।
य इमां सागरापाङ्गीं कृत्स्नां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥
परं चाभिप्रयातस्य चक्रं तस्य महात्मनः ।
भविष्यत्यप्रतिहतं सततं चक्रवर्तिनः ॥ ३०
ततः प्रक्षाल्य पादौ सा विश्रान्तं मुनिमब्रवीत् ।
विनिधाय ततो भारं संनिधाय फलानि च ॥३१

शकुतलोवाच ।

मया पतिर्वृतो राजा दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३२

कण्व उवाच ।

प्रसन्न एव तस्याहं त्वत्कृते वरवर्णिनि ।
गृहाण च वरं मत्तस्त्वं शुभे यदभीप्सितम् ॥३३

वैशंपायन उवाच ।

ततो धर्मिष्ठतां वव्रे राज्याच्चास्खलनं तथा ।
शकुन्तला पौरवाणां दुष्यन्तहितकाम्यया ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

प्रतिज्ञाय तु दुष्यन्ते प्रतियाते शकुन्तलाम् ।
गर्भं सुषाव वामोरूः कुमारममितौजसम् ॥ १
त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु दीप्तानलसमद्युतिम् ।
रूपौदार्यगुणोपेतं दौष्यन्तिं जनमेजय ॥ २
जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतां वरः ।
विधिवत्कारयामास वर्धमानस्य धीमतः ॥ ३
दन्तैः शुक्लैः शिखरिभिः सिंहसंहननो महान् ।
चक्राङ्कितकरः श्रीमान्महामूर्धा महाबलः ॥ ४
कुमारो देवगर्भाभः स तत्राशु व्यवर्धत ।
षड्वर्ष एव बालः स कण्वाश्रमपदं प्रति ॥ ५
सिंहव्याघ्रान्वराहांश्च महिषांश्च गजांस्तथा ।
बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥ ६
आरोहन्दमयंश्चैव क्रीडंश्च परिधावति ।
ततोऽस्य नाम चक्रुस्ते कण्वाश्रमनिवासिनः ॥ ७
अस्त्वयं सर्वदमनः सर्वं हि दमयत्यसौ ।
स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत ॥ ८
विक्रमेणौजसा चैव बलेन च समन्वितः ।
तं कुमारमृषिर्दृष्ट्वा कर्म चास्यातिमानुषम् ॥ ९
समयो यौवराज्यायेत्यब्रवीच्च शकुन्तलाम् ।
तस्य तद्बलमाज्ञाय कण्वः शिष्यानुवाच ह ॥ १०
शकुन्तलामिमां शीघ्रं सहपुत्रामितो गृहात् ।
भर्तुः प्रापयतागारं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥ ११
नारीणां चिरवासो हि बान्धवेषु न रोचते ।
कीर्तिचारित्रधर्मघ्नस्तस्मान्नयत मा चिरम् ॥ १२
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः ।
शकुन्तलां पुरस्कृत्य सपुत्रां गजसाह्वयम् ॥ १३
गृहीत्वाऽमरगर्भाभं पुत्रं कमललोचनम् ।
आजगाम ततः शुभ्रूर्दुष्यन्तं विदिताद्वनात् ॥१४
अभिसृत्य च राजानं विदिता च प्रवेशिता ।
सह तेनैव पुत्रेण बालार्कसमतेजसा ॥ १५
निवेदयित्वा ते सर्वे आश्रमं पुनरागताः ।
पूजयित्वा यथान्यायमब्रवीच्च शकुन्तला ॥ १६
अयं पुत्रस्त्वया राजन्यौवराज्येऽभिषिच्यताम् ।
त्वया ह्ययं सुतो राजन्मय्युत्पन्नः सुरोपमः ।
यथा समयमेतस्मिन्वर्तस्व पुरुषोत्तम ॥ १७
यथा मत्संगमे पूर्वं यः कृतः समयस्तथा ।
तं स्मरस्व महाभाग कण्वाश्रमपदं प्रति ॥ १८

---

परं शत्रुम् । चक्रं सैन्यम् । चक्रः कोके पुमान् क्लीबं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः इति मेदिनी । इदमेव चक्रवर्तिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् ॥ ३० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

प्रतिज्ञायेति ॥१॥ विक्रमः पराभिभवसामर्थ्यम् । ओजः कान्तिः बलं शारीरम् ॥ ९ ॥ न रोचते न शोभते । चारित्रं शीलम् । धर्मः पातिव्रत्यम् ॥१२॥

सोऽथ श्रुत्वैव तद्वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि ।
अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥ १९
धर्मकामार्थसंबन्धं न स्मरामि त्वया सह ।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद्वापीच्छसि तत्कुरु २०
सैवमुक्ता वरारोहा व्रीडितेव तपस्विनी ।
निःसंज्ञेव च दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला २१
संरम्भामर्षताम्राक्षी स्फुरमाणौष्ठसंपुटा ।
कटाक्षैर्निर्दहन्तीव तिर्यग्राजानमैक्षत ॥ २२
आकारं गूहमाना च मन्युना च समीरिता ।
तपसा संभृतं तेजो धारयामास वै तदा ॥ २३
सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा दुःखामर्षसमन्विता ।
भर्तारमभिसंप्रेक्ष्य क्रुद्धा वचनमब्रवीत् ॥ २४
जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे ।
न जानामीति निःशङ्कं यथान्यः प्राकृतो जनः २५
अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च ।
कल्याणं वद साक्ष्येण मात्मानमवमन्यथाः ॥ २६
योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ २७
एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं
न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम् ।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य
तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि ॥ २८
मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति ।
विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तरपूरुषः ॥ २९
आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये
धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ ३०
यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम् ।
हृदि स्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति ३१
न तु तुष्यति यस्यैष पुरुषस्य दुरात्मनः ।
तं यमः पापकर्माणं वियातयति दुष्कृतम् ॥ ३२
योऽवमन्यात्मनात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
न तस्य देवाः श्रेयांसो यस्यात्माऽपि न कारणम् ॥
स्वयं प्राप्तेति मामेवं माऽवमंस्थाः पतिव्रताम् ।
अर्चार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम् ॥
किमर्थं मां प्राकृतवदुपप्रेक्षसि संसदि ।
न खल्वहमिदं शून्ये रौमि किं न शृणोषि मे ३५
यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि ।
दुष्यन्त शतधा मूर्धा ततस्तेऽद्य स्फुटिष्यति ॥३६
भार्यां पतिः संप्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः ।
जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाः कवयो विदुः ॥
यदागमवतः पुंसस्तदपत्यं प्रजायते ।
तत्तारयति संतत्या पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥ ३८
पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ ३९
सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥
अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥४१
भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः ।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ॥
सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ।
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ॥ ४३
कान्तारेष्वपि विश्रामो जनस्याध्वनिकस्य वै ।
यः सदारः सविश्वास्यस्तस्माद्दाराः परा गतिः ४४
संसरन्तमपि प्रेतं विषमेष्वेकपातिनम् ।
भार्यैवान्वेति भर्तारं सततं या पतिव्रता ॥ ४५
प्रथमं संस्थिता भार्या पतिं प्रेत्य प्रतीक्षते ।
पूर्वं मृतं च भर्तारं पश्चात्साध्व्यनुगच्छति ॥ ४६

---

धर्मार्थकामसंबन्धम् । धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेयं नातिचरामीति विवाहमन्त्रप्रकाशितं वैवाहिकसंबन्धम् ॥ २० ॥ साक्ष्येण साक्षिधर्मेण औदासीन्यबोधरूपेण ॥ २६ ॥ हृच्छयमन्तर्यामिणम् । मुनिं नारायणम् ॥२८॥ निर्यातयति परिहरति । दुष्कृतं पापम् ॥३१॥ वियातयति विशेषेण यातनां पीडां करोति । दुष्कृतं दुष्टं कृतमस्य तम् ॥ ३२ ॥ न कारणं श्रेयसे इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ पौराणाः कवयो वैदिकाः ' तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ' इत्यादि मन्त्रविदः ॥ ३७ ॥ आगमवतो वेदोक्तमन्त्रादिकर्मविदो यत्तदामितप्रभावमपत्यं जायते तत्तारयति ॥ ३८॥ पुंनाम्न इत्यतः परं 'पौत्रेण लोकान् जयते पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पौत्रस्य पुत्रेण मोदन्ते प्रपितामहाः ' इति पठन्ति । तत्र पुत्रेण नरकादुद्धृतः पौत्रेण स्वर्गं नीयते प्रपौत्रेण ततोऽप्युपरिनीयते । पुत्रेणैव स्वर्गं नीतः पौत्रेण ब्रह्मलोके प्रापित आनन्त्यं मोक्षं लभते । तेनासौ प्रपौत्रमपेक्षत इत्यर्थः ॥ ३९॥ पितरः पितृवद्धितैषिण्यः मातरः मातृवद्दुःखहन्त्र्यः ॥ ४३ ॥ विषमेषु नरकेषु एक एव पततीति तं एकपातिनम् अन्वेति अनुगमनं करोति भर्तारं नरकादुद्धर्तुम् । यथोक्तं 'व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् । नरकस्थं पतिं तद्वत्पतिप्राणानुगा सती' इति ॥ ४५ ॥

एतस्मात्कारणाद्राजन्पाणिग्रहणमिष्यते ।
यदाप्नोति पतिर्भार्यामिहलोके परत्र च ॥ ४७
आत्मात्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ।
तस्माद्भार्यां नरः पश्येन्मातृवत्पुत्रमातरम् ॥ ४८
भार्यायां जनितं पुत्रमादर्शेष्विव चाननम् ।
ह्लादते जनिता प्रेक्ष्य स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥ ४९
दह्यमाना मनोदुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः ।
ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्ताः सलिलेष्विव ॥ ५०
सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि ॥ ५१
आत्मनो जन्मनः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम् ।
ऋषीणामपि का शक्तिः स्रष्टुं रामामृते प्रजाम् ५२
प्रतिपद्य यदा सूनुर्धरणी रेणुगुण्ठितः ।
पितुराश्लिष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्यधिकं ततः ५३
स त्वं स्वयमभिप्राप्तं साभिलाषमिमं सुतम् ।
प्रेक्षमाणं कटाक्षेण किमर्थमवमन्यसे । ५४
अण्डानि बिभ्रति स्वानि न भिन्दति पिपीलिकाः।
न भरेथाः कथं नु त्वं धर्मज्ञः सन्स्वमात्मजम् ॥ ५५
न वाससां न रामाणां नापां स्पर्शस्तथाविधः ।
शिशोरालिङ्ग्यमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः ५६
ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।
गुरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥ ५७
स्पृशतु त्वां समाश्लिष्य पुत्रोऽयं प्रियदर्शनः ।
पुत्रस्पर्शात्सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते ॥ ५८
त्रिषु वर्षेषु पूर्णेषु प्रजाताऽहमरिंदम ।
इमं कुमारं राजेन्द्र तव शोकविनाशनम् ॥ ५९
आहर्ता वाजिमेधस्य शतसंख्यस्य पौरव ।
इति वागन्तरिक्षे मां सूतकेऽभ्यवदत्पुरा ॥ ६०
ननु नामाङ्कमारोप्य स्नेहाद्ग्रामान्तरं गताः ।
मूर्ध्नि पुत्रानुपाघ्राय प्रतिनन्दन्ति मानवाः॥ ६१
वेदेष्वपि वदन्तीमं मन्त्रग्रामं द्विजातयः ।
जातकर्मणि पुत्राणां तवापि विदितं तथा ॥ ६२
अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ६३
जीवितं त्वदधीनं मे संतानमपि चाक्षयम् ।
तस्मात्त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम् ॥६४
त्वदङ्गेभ्यः प्रसूतोऽयं पुरुषात्पुरुषोपरः ।
सरसीवामलेत्मानं द्वितीयं पश्य वै सुतम् ॥ ६५
यथा ह्याहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यात्प्रणीयते ।
तथा त्वत्तः प्रसूतोऽयं त्वमेकः सन्द्विधाकृतः ६६
मृगावकृष्टेन पुरा मृगयां परिधावता ।
अहमासादिता राजन्कुमारी पितुराश्रमे ॥ ६७
उर्वशीपूर्वचित्तिश्च सहजन्या च मेनका ।
विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वराः ६८
तासां सा मेनका नाम ब्रह्मयोनिर्वराप्सराः ।
दिवः संप्राप्य जगतीं विश्वामित्रादजीजनत् ॥६९
सा मां हिमवतः प्रस्थे सुषुवे मेनकाऽप्सराः ।
अवकीर्य च मां याता परात्मजमिवासती ॥ ७०
किं नु कर्माशुभं पूर्वं कृतवत्यन्यजन्मनि ।
यदहं बान्धवैस्त्यक्ता बाल्ये संप्रति च त्वया ॥७१
कामं त्वया परित्यक्ता गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ।
इमं तु बालं संत्यक्तुं नार्हस्यात्मजमात्मनः ॥ ७२

दुष्यन्त उवाच ।

न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले ।
असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः ॥ ७३
मेनका निरनुक्रोशा बन्धकी जननी तव ।
यया हिमवतः पृष्ठे निर्माल्यमिव चोज्झिता ॥ ७४
स चापि निरनुक्रोशः क्षत्रयोनिः पिता तव ।
विश्वामित्रो ब्राह्मणत्वे लुब्धः कामवशं गतः ७५
मेनकाऽप्सरसां श्रेष्ठा महर्षीणां पिता च ते ।
तयोरपत्यं कस्मात्त्वं पुंश्चलीव प्रभाषसे ॥ ७६
अश्रद्धेयमिदं वाक्यं कथयन्ती न लज्जसे ।
विशेषतो मत्सकाशे दुष्टतापसि गम्यताम् ॥ ७७
क्व महर्षिः स चैवाग्र्यः साऽप्सरा क्व च मेनका ।
क्व च त्वमेवं कृपणा तापसी वेषधारिणी ॥ ७८
अतिकायश्च ते पुत्रो बालोऽतिबलवानयम् ।
कथमल्पेन कालेन शालस्तम्भ इवोद्गतः ॥ ७९
सुनिकृष्टा च ते योनिः पुंश्चलीव प्रभाषसे ।
यदृच्छया कामरागाज्जाता मेनकया ह्यसि ॥ ८०

---

मातृवज्जन्मभूमिवत् ॥ ४८ ॥ सुसंरब्धोऽपि अतिक्रुद्धोऽपि । रामाणां रम्यस्त्रीणाम् ॥ ५१ ॥ प्रतिपद्य प्रत्येत्य ॥ ५३ ॥ शिशोरजातदन्तस्य सूनोः ॥ ५६ ॥ मन्त्रग्राममेव पठति । अङ्गादिति । शरद वर्षाणि ॥ ६३ ॥ त्वाम आत्मानं द्वितीयम् । प्रतिबिम्बे इव तव सादृश्यमत्र पश्येति भावः ॥ ६५ ॥ एकः सन्पुत्रे जाते योगीवद्द्विधाकृतो द्वैरूप्यं गतः ॥ ६६ ॥ सा प्रसिद्धा अजीजनत् मामितिशेषः ॥६९॥ अवकीर्य अधस्त्यक्त्वा । असती अपत्यस्नेहहीना ॥ ७० ॥ तत्र पितरौ नीचौ उच्चौ चेत्कथं त्वमेवं भाषस इत्याह द्वाभ्यां स चेति॥७५॥

सर्वमेतत्परोक्षं मे यत्त्वं वदसि तापसि ।
नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया ॥ ८१

शकुन्तलोवाच ।

राजन्सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यसि ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि ॥ ८२
मेनका त्रिदशेष्वेव त्रिदशाश्चानुमेनकाम् ।
ममैवोद्रिच्यते जन्म दुष्यन्त तव जन्मनः ॥ ८३
क्षितावटसि राजेन्द्र अन्तरिक्षे चराम्यहम् ।
आवयोरन्तरं पश्य मेरुसर्षपयोरिव ॥ ८४
महेन्द्रस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
भवनान्यनुसंयामि प्रभावं पश्य मे नृप ॥ ८५
सत्यश्चापि प्रवादोयं यं प्रवक्ष्यामि तेऽनघ ।
निदर्शनार्थं न द्वेषाच्छ्रुत्वा तं क्षन्तुमर्हसि ॥ ८६
विरूपो यावदादर्शे नात्मनः पश्यते मुखम् ।
मन्यते तावदात्मानमन्येभ्यो रूपवत्तरम् ॥ ८७
यदा स्वमुखमादर्शे विकृतं सोऽभिवीक्षते ।
तदान्तरं विजानीते आत्मानं चेतरं जनम् ॥ ८८
अतीवरूपसंपन्नो न कंचिदवमन्यते ।
अतीवजल्पन्दुर्वाचो भवतीह विहेठकः ॥ ८९
मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव सूकरः ॥ ९०
प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥ ९१
अन्यान्परिवदन्साधुर्यथा हि परितप्यते ।
तथा परिवदन्नन्यांस्तुष्टो भवति दुर्जनः ॥ ९२
अभिवाद्य यथा वृद्धान्सन्तो गच्छन्ति निर्वृतिम् ।
एवं सज्जनमाक्रुश्य मूर्खो भवति निर्वृतः ॥ ९३
सुखं जीवन्त्यदोषज्ञा मूर्खा दोषानुदर्शिनः ।
यत्र वाच्याः परैः सन्तः परानाहुस्तथाविधान् ९४
अतो हास्यतरं लोके किंचिदन्यन्न विद्यते ।
यत्र दुर्जनमित्याह दुर्जनः सज्जनं स्वयम् ॥ ९५
सत्यधर्मच्युतात्पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव ।
अनास्तिकोऽप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः ९६
स्वयमुत्पाद्य वै पुत्रं सदृशं यो न मन्यते ।
तस्य देवाः श्रियं घ्नन्ति न च लोकानुपाश्नुते॥९७
कुलवंशप्रतिष्ठां हि पितरः पुत्रमब्रुवन् ।
उत्तमं सर्व धर्माणां तस्मात्पुत्रं न संत्यजेत् ॥९८
स्वपत्नीप्रभवान्पञ्च लब्धान्क्रीतान्विवर्धितान् ।
कृतानन्यासु चोत्पन्नान्पुत्रान्वै मनुरब्रवीत् ॥ ९९
धर्मकीर्त्यावहान्नृणां मनसः प्रीतिवर्धनाः ।
त्रायन्ते नरकाज्जाताः पुत्रा धर्मप्लवाः पितॄन् १००
स त्वं नृपतिशार्दूल पुत्रं न त्यक्तुमर्हसि ।
आत्मानं सत्यधर्मौ च पालयन्पृथिवीपते ।
नरेन्द्रसिंहकपटं न वोढुं त्वमिहार्हसि ॥ १
वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः ।
वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशताद्वरम् ॥ २
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ ३
सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सत्यं च वचनं राजन्समं वा स्यान्न वा समम् ॥४
नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम् ।
न हि तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते ॥ ५
राजन्सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयः परः ।
मा त्याक्षीः समयं राजन्सत्यं संगतमस्तु ते ॥ ६
अनृते चेत्प्रसङ्गस्ते श्रद्दधासि न चेत्स्वयम् ।
आत्मना हन्त गच्छामि त्वादृशेनास्ति संगतम् ७
त्वामृतेपि हि दुष्यन्त शैलराजावतंसकाम् ।
चतुरंतामिमामुर्वीं पुत्रो मे पालयिष्यति ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।

एतावदुक्त्वा राजानं प्रातिष्ठत शकुन्तला ।
अथान्तरिक्षाद्दुष्यन्तं वागुवाचाशरीरिणी ॥ ९
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मन्त्रिभिश्च वृतं तदा ।
भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः१०

---

परोक्षं अविश्वसनीयम् ॥८१॥ विहेठकः निन्दकः परोपतापको वा'हेठ'विबाधायाम् ॥ ८९॥ निर्वृतः सुखी ॥९३॥ यत्र विषये परैः साद्भिः वाच्याः निन्द्याः सन्तो दुरात्मानः परान्साधून्निन्द्यानाहुः ॥ ९४ ॥ अनास्तिकः आस्तिकाद्भिन्नः ॥ ९६ ॥ इह श्रियं घ्नन्ति लोकानमुत्र ॥ ९७ ॥ स्वपत्नीप्रभवान् अन्यासु चोत्पन्नांश्चतुर्विधानेवं पञ्च पुत्रान्प्रचक्षते । कृतान् उपनयनादिना संस्कृतान्॥ ९९ ॥ आत्मानं पालयन् पालनहेतोः ॥ १ ॥ समयः नियमः संगतं सख्यम् ॥६॥ अत्र 'ऋतेऽपि गर्दभक्षीरात्पयः प्रास्यति मे सुतः'इति क्वचित्पठ्यते तस्यायं भावः। गर्दभी क्षीरवत्त्वया दत्तमपि राज्यं परित्यज्य स्वभुजबलेनैव मत्पुत्रो राज्यं करिष्यतीति । त्वामिति चतुरन्तां चतुःसमुद्रान्ताम् ॥ ८ ॥ भस्त्रा चर्मकोशः । तत्र निहितं बीजं यथा तदीयं न भवति एवं मातापि भस्त्रेव । येन हेतुना यो जातः स एव सः । कार्यस्य कारणानन्यत्वात् ॥ ११० ॥

भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ।
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेवयमक्षयात् ॥ ११
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।
जाया जनयते पुत्रमात्मनोङ्गं द्विधाकृतम् ॥ १२
तस्माद्भरस्व दुष्यन्त पुत्रं शाकुन्तलं नृप ।
अभूतिरेषा यत्त्यक्त्वा जीवेज्जीवन्तमात्मजम् १३
शाकुन्तलं महात्मानं दौष्यन्तिं भर पौरव ।
भर्तव्योऽयं त्वया यस्मादस्माकं वचनादपि ॥१४
तस्माद्भवत्वयं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः ।
तच्छ्रुत्वा पौरवो राजा व्याहृतं त्रिदिवौकसाम् १५
पुरोहितममात्यांश्च संप्रहृष्टोऽब्रवीदिदम् ।
शृण्वन्त्वेतद्भवन्तोऽस्य देवदूतस्य भाषितम् ॥१६
अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम् ।
यद्यहं वचनादेव गृह्णीयामि स्वमात्मजम् ॥ १७
भवेद्धि शङ्क्यो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम् ।

वैशंपायन उवाच ।

तं विशोध्य तदा राजा देवदूतेन भारत ।
हृष्टः प्रमुदितश्चापि प्रतिजग्राह तं सुतम् ॥ १८
ततस्तस्य तदा राजा पितृकर्माणि सर्वशः ।
कारयामास मुदितः प्रीतिमानात्मजस्य ह ॥ १९
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय सस्नेहं परिषस्वजे ।
सभाज्यमानो विप्रैश्च स्तूयमानश्च बन्दिभिः ।
स मुदं परमां लेभे पुत्रसंस्पर्शजां नृपः ॥ १२०
तां चैव भार्यां दुष्यन्तः पूजयामास धर्मतः ।
अब्रवीच्चैव तां राजा सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ २१
कृतो लोकपरोक्षोऽयं संबन्धोऽयं त्वया सह ।
तस्मादेतन्मया देवि त्वच्छुद्ध्यर्थं विचारितम् ॥२२
मन्यते चैव लोकास्ते स्त्रीभावान्मयि संगतम् ।
पुत्रश्चायं वृतो राज्ये मया तस्माद्विचारितम् २३
यच्च कोपितयात्यर्थं त्वयोक्तोऽस्म्यप्रियं प्रिये ।
प्रणयिन्या विशालाक्षि तत्क्षान्तं ते मया शुभे २४
तामेवमुक्त्वा राजर्षिर्दुष्यन्तो महिषीं प्रियाम् ।
वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास भारत ॥ २५
दुष्यन्तस्तु तदा राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा ।
भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २६
तस्य तत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः ।
भास्वरं दिव्यमजितं लोकसंनादनं महत् ॥ २७
स विजित्य महीपालांश्चकार वशवर्तिनः ।
चचार च सतां धर्मं प्राप चानुत्तमं यशः ॥ २८
स राजा चक्रवर्त्यासीत्सार्वभौमः प्रतापवान् ।
ईजे च बहुभिर्यज्ञैर्यथा शक्रो मरुत्पतिः ॥ २९
याजयामास तं कण्वो विधिवद्भूरिदक्षिणम् ।
श्रीमान्गोविततं नाम वाजिमेधमवाप सः ।
यस्मिन्सहस्रं पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥१३०
भरताद्भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ।
अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः ॥ ३१
भरतस्यान्ववाये हि देवकल्पा महौजसः ।
बभूवुर्ब्रह्मकल्पाश्च बहवो राजसत्तमाः ॥ ३२
येषामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वशः ।
तेषां तु ते यथामुख्यं कीर्तयिष्यामि भारत ।
महाभागान्देवकल्पान्सत्यार्जवपरायणान् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

---

वैशंपायन उवाच ।

प्रजापतेस्तु दक्षस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ।
भरतस्य कुरोः पूरोराजमीढस्य चानघ ॥ १
यादवानामिमं वंशं कौरवाणां च सर्वशः ।
तथैव भरतानां च पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २

---

भरस्व धारयस्व पोषयस्व वा । रेतोधाः रेतः सेक्ता यः स एव पुत्रः पितुरनन्य एवेत्यर्थः । उन्नयति ऊर्ध्वं नयति । यमक्षयात् नरकात् पितॄनिति शेषः ॥ ११ ॥ धाता निषेक्ता ॥ १२ ॥ अभूतिः अभाग्यम् ॥ १३ ॥ गृह्णीयामि गृह्णीया इ*तोलोपाभाव आर्षः ॥ १७ ॥ पितृकर्माणि पित्रा कर्तव्यान्युपनयनादीनि ॥ १९ ॥ सभाज्यमानः पूज्यमानः ॥ २० ॥ चक्रं रथचक्रं आज्ञा वा अन्यतरेण सर्वं व्याप्नोतीति चक्रवर्ती । सार्वभौमः सर्वभूमीश्वरः ॥ २९ ॥ पद्मानां कोटिशतानाम् ॥ ३० ॥ सत्यं ब्रह्म । आर्जवं धर्मः । ते एव परं अयनं प्राप्यं येषां तान् ॥ ३३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

* अमादेशाभाव आर्ष इति वक्तव्यम् ।

---

वंशस्य भारतत्वे निमित्तमुक्त्वा तमेवाह । प्रजापतेरित्यादिना ॥ १ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ।
तेजोभिरुदिताः सर्वे महर्षिसमतेजसः ॥ ३
दश प्राचेतसः पुत्राः सन्तः पुण्यजनाः स्मृताः ।
मुखजेनाग्निना यैस्ते पूर्वं दग्धा महौजसः ॥ ४
तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षो दक्षादिमाः प्रजाः ।
संभूताः पुरुषव्याघ्र स हि लोकपितामहः ॥ ५
वीरिण्या सह संगम्य दक्षः प्राचेतसो मुनिः ।
आत्मतुल्यानजनयत्सहस्रं संशितव्रतान् ॥ ६
सहस्रसंख्यान्संभूतान्दक्षपुत्रांश्च नारदः ।
मोक्षमध्यापयामास सांख्यज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसंदधे ।
प्रजापतिः प्रजादक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥ ८
ददौ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ९
त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा ।
मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान्समजीजनत् १०
इन्द्रादीन्वीर्यसंपन्नान्विवस्वन्तमथापि च ।
विवस्वतः सुतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रभुः ॥ ११
मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः ।
यमश्चापि सुतो जज्ञे ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः ॥१२
धर्मात्मा स मनुर्धीमान्यत्र वंशः प्रतिष्ठितः ।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् १३
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ।
ततोऽभवन्महाराज ब्रह्मक्षत्रेण संगतम् ॥ १४
ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमधारयन् ।
वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ॥ १५
कारूषमथ शर्यातिं तथा चैवाष्टमीमिलाम् ।
पृषध्रं नवमं प्राहुः क्षत्रधर्मपरायणम् ॥ १६
नाभागारिष्टदशमान्मनोः पुत्रान्प्रचक्षते ।
पञ्चाशत्तु मनोः पुत्रास्तथैवान्येऽभवन् क्षितौ १७
अन्योन्यभेदात्ते सर्वे विनेशुरिति नः श्रुतम् ।
पुरूरवास्ततो विद्वानिलायां समपद्यत ॥ १८
सा वै तस्याभवन्माता पिता चैवेति नः श्रुतम् ।
त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः ॥ १९
अमानुषैर्वृतः सत्वैर्मानुषः सन्महायशाः ।
विप्रैः स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मत्तः पुरूरवाः ॥ २०
जहार च स विप्राणां रत्नान्युत्क्रोशतामपि ।
सनत्कुमारस्तं राजन्ब्रह्मलोकादुपेत्य ह ॥ २१
अनुदर्शं ततश्चक्रे प्रत्यगृह्णान्न चाप्यसौ ।
ततो महर्षिभिः क्रुद्धैः सद्यः शप्तो व्यनश्यत ॥ २२
लोभान्वितो बलमदान्नष्टसंज्ञो नराधिपः ।
स हि गन्धर्वलोकस्थानुर्वश्या सहितो विराट् २३
आनिनाय क्रियार्थेऽग्नीन्यथावद्विहितांस्त्रिधा ।
षट्सुता जज्ञिरे चैलादायुर्धीमानमावसुः ॥ २४

---

प्राचेतसः प्राचे देशाय यज्ञक्रियया अतति-सततं गच्छतीति प्राचेताः । चतुर्थ्या अलुक् । अत सातत्यगमनेऽस्मात्समरे अतमाना इत्यादौ यज्ञसातत्यार्थत्वेन दृष्टादसुन् । तस्य प्राचेतसः प्राचीनबर्हिषः । यद्वा प्राचे अतसं तृणमस्येति प्राचेतसः । नीचा तं धक्ष्यत सत्रशुष्कं इत्यादौ तृणेप्यतस शब्दो दृष्टः । अविमृष्टविधेयांशत्वदोषमाश्रित्य प्रचेतसामयं पिता प्राचेतस इति वा । अस्मिन्पक्षद्वये सुपांसुलुगितिषष्ठयाःसुः । अन्ये तु प्रचेतस इति पाठं प्रकल्प्य प्राचीनबर्हिष इत्यध्याहरन्ति । पुण्यजनाः पुण्योत्पादकास्तपःशीला इत्यर्थः । यैस्ते महौजसो महाप्रभावा वृक्षौषधयो दग्धाः । ये ते पूर्वमिति पाठे तु ये पूर्वं पुण्यजना राक्षसाः स्मृतास्तेमी महौजसो वृक्षा भूमिमावृत्य प्राणिनां पीडाकरा दग्धा यैरिति शेषः ॥ ४ ॥ वीरिण्या वीरणपुत्र्या ॥ ६ ॥ मोक्षं मोक्षहेतुम् । सांख्यज्ञानं विवेकजं विज्ञानम् । एतेन ज्ञाततत्त्वाः प्रजा न कामयन्त इति दर्शितम् । तथा च श्रुतिः । ' किं प्रजया करिष्यामो येषां नोयमात्माऽयं लोकः' इति ॥ ७ ॥ तत इति । स्त्रियः प्रायेण ज्ञानानर्हा इति भावः। तथा च श्रुतिः । 'स्त्रिया अशास्यं मनः'इति । अभिसंदधे पुत्रिका एव दौहित्रद्वारा मम पुत्रा इति मेने संकल्पितवान्वा ॥ ८ ॥ मार्तण्डस्य विवस्वतः । यमश्चेति पुनरुक्तिर्मनुतः कनिष्ठत्वप्रख्यापनार्था ॥ १२ ॥ चतुर्थानाभागादन्योऽयंना भागारिष्टो दशमः ॥ १७ ॥ अन्योन्यभेदात्परस्परवैरात् ॥ १८ ॥ मातैव लब्धपुंभावा राज्यदानात्पिताप्यभूत् । मुख्यः पिता तु बुध एव । त्रयोदशद्वीपाः । अवान्तरभेदात् । ते च स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलोलंकारोमकपत्तनं सिद्धपुरं यमकोटिरित्येकादशजम्बूद्वीपस्योपद्वीपाः । द्वादशो जंबुद्वीपः प्लक्षादिषट्कं चेत्यष्टादशद्वीपाः । प्लक्षादिषट्कस्यैकत्वविवक्षया त्रयोदश ॥ १९ ॥ अनुदर्शं दर्शो दर्शनम् स पश्चाद्यस्य श्रुतियुक्त्युपदेशोऽनुदर्शस्तम् । ततस्तदुपदेशमित्यर्थः । पाठान्तरे तु अनुदर्शयांचक्रे पूर्वराजचरितमिति शेषः । 'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्'इत्यादौ दर्शनेनामंतानुप्रयोगयोस्तत इति व्यवधानेऽपि न दोषः ॥ २२ ॥ विराड्विराजमानः ॥ २३ ॥ त्रिधा गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयभेदेन । आयुः शब्द उकारान्तः सान्तश्च ॥२४ ॥

दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ।
नहुषं वृद्धशर्माणं रजिं गयमनेनसम् ॥ २५
स्वर्भानवी सुतानेतानायोः पुत्रान्प्रचक्षते ।
आयुषो नहुषः पुत्रो धीमान्सत्यपराक्रमः ॥ २६
राज्यं शशास सुमहद्धर्मेण पृथिवीपते ।
पितॄन्देवानृषीन्विप्रान्गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ २७
नहुषः पालयामास ब्रह्मक्षत्रमथो विशः ।
स हत्वा दस्युसंघातानृषीन्करमदापयत् ॥ २८
पशुवच्चैव तान्पृष्ठे वाहयामास वीर्यवान् ।
कारयामास चेन्द्रत्वमभिभूय दिवौकसः ॥ २९
तेजसा तपसा चैव विक्रमेणौजसा तथा ।
यतिं ययातिं संयातिमायातिमयतिं ध्रुवम् ॥ ३०
नहुषो जनयामास षट्सुतान्प्रियवादिनः ।
यतिस्तु योगमास्थाय ब्रह्मभूतोभवन्मुनिः ॥ ३१
ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत्सत्यपराक्रमः ।
स पालयामास महीमीजे च बहुभिर्मखैः ॥ ३२
अतिभक्त्या पितॄनर्चन्देवांश्च प्रयतः सदा ।
अन्वगृह्णात्प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः ॥ ३३
तस्य पुत्रा महेष्वासाः सर्वैः समुदिता गुणैः ।
देवयान्यां महाराज शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे ॥ ३४
देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेव च ।
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे ॥ ३५
स शाश्वतीः समा राजन्प्रजा धर्मेण पालयन् ।
जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम् ॥ ३६
जराऽभिभूतः पुत्रान्स राजा वचनमब्रवीत् ।
यदुं पूरुं तुर्वसुं च द्रुह्युं चानुं च भारत ॥ ३७
यौवनेन चरन्कामान्युवा युवतिभिः सह ।
विहर्तुमहमिच्छामि साह्यं कुरुत पुत्रकाः ॥ ३८
तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो वाक्यमब्रवीत् ।
किं कार्यं भवतः कार्यमस्माकं यौवनेन ते ॥ ३९
ययातिरब्रवीत्तं वै जरा मे प्रतिगृह्यताम् ।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥ ४०
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः ।
कामार्थः परिहीणोऽयं तप्येयं तेन पुत्रकाः ॥ ४१
मामकेन शरीरेण राज्यमेकः प्रशास्तु वः ।
अहं तन्वाऽभिनवया युवा काममवाप्नुयाम् ॥ ४२
तेन तस्य प्रत्यगृह्णन्यदुप्रभृतयो जराम् ।
तमब्रवीत्ततः पूरुः कनीयान्सत्यविक्रमः ॥ ४३
राजंश्चराभिनवया तन्वा यौवनगोचरः ।
अहं जरां समादाय राज्ये स्थास्यामि ते ज्ञया ॥४४
एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्यसमाश्रयात् ।
संचारयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि ॥ ४५
पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः ।
यायातेनापि वयसा राज्यं पूरुरकारयत् ॥ ४६
ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः ।
स्थितः स नृपशार्दूलः शार्दूलसमविक्रमः ॥ ४७
ययातिरपि पत्नीभ्यां दीर्घकालं विहृत्य च ।
विश्वाच्या सहितो रेमे पुनश्चैत्ररथे वने ॥ ४८
नाध्यगच्छत्तदा तृप्तिं कामानां स महायशाः ।
अवेत्य मनसा राजन्निमां गाथां तदा जगौ ॥४९
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ५०
पृथिवी रत्नसंपूर्णा हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ५१
यदा न कुरुते पापं सर्वभूतेषु कर्हिचित् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ५२
यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ५३

---

सहत्वेति । ऋषिभ्यः करं जग्राहेत्यर्थः ॥ २८ ॥ कारयामास चकार स्वार्थे णिच् ॥ २९ ॥ तेजसा देहकान्त्या । विक्रमेण पराभिभवसामर्थ्येन । ओजसा बुद्धीन्द्रियबलेन ॥ ३० ॥ शाश्वतीः बह्वीः समाः वर्षाणि । आर्च्छत्प्राप्तवान् ॥ ३६ ॥ साह्यं सोढुं मर्षितुं योग्यम् । जराग्रहणजं दुःखं कुरुत अङ्गीकुरुत । साह्यं साहायकं वा ॥ ३८ ॥ कार्यं प्रयोजनं कार्यं कर्तव्यम् ॥ ३९ ॥ व्रतनिर्बन्धात् शुक्रशापाच्च कामरूपः पुरुषार्थो हीनः ॥ ४१ ॥ शरीरेण शरीरस्थजरया युक्त इति शेषः । वः युष्माकं मध्ये कामं कामसुखम् ॥ ४२ ॥ ते ज्ञया तव आज्ञया पूर्वरूपं आकारलोपो वार्षः ॥ ४४ ॥ कामानां कामभोगेन अवेत्य कामसेवया तृप्त्यभावं ज्ञात्वा ॥ ४९ ॥ हविषा समिदाज्यादिना ॥ ५० ॥ एकस्य कामिनः सर्वं नालमपर्याप्तं शमं कामशान्तिम् ॥ ५१ ॥ सर्वथा कामशमे ब्रह्मैव भवतीत्याह । यदेति । पापं कामं भूतेषु पञ्चभूतात्मकेषु स्त्र्यादिषु विषयेषु । चतस्रो हि कामस्यावस्थाः । प्रसुप्तातन्वी विच्छिन्ना उदरा च । तत्र सुप्तिप्रलययोर्बीजमात्रावशेषा प्रसुप्ता वासनामात्रशेषे मनसि स्थिता । तन्वी तु लब्धवृत्तिके मनसि रूपादिदर्शनेन उद्भूता मनोरथात्मिका। विच्छिन्ना च समाधिकाले । तदा मूलज्ञानस्याभावात् ।

इत्यवेक्ष्य महाप्राज्ञः कामानां फल्गुतां नृप ।
समाधाय मनो बुध्या प्रत्यगृह्णाज्जरां सुतात् ॥५४
दत्त्वा च यौवनं राजा पूरुं राज्येऽभिषिच्य च ।
अतृप्त एव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥ ५५
त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः ।
पौरवो वंश इति ते ख्यातिं लोके गमिष्यति॥५६

वैशंपायन उवाच ।

ततः स नृपशार्दूल पूरुं राज्येऽभिषिच्य च ।
ततः सुचरितं कृत्वा भृगुतुङ्गे महातपाः ॥ ५७
कालेन महता पश्चात्कालधर्ममुपेयिवान् ।
कारयित्वा त्वनशनं सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

---

जनमेजय उवाच ।

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः ।
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् ॥ १
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
आनुपूर्व्या च मे शंस राज्ञो वंशकरान्पृथक् ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

ययातिरासीन्नृपतिर्देवराजसमद्युतिः ।
तं शुक्रवृषपर्वाणौ वव्राते वै यथा पुरा ॥ ३
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि पृच्छते जनमेजय ।
देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च ॥ ४
सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः ।
ऐश्वर्यं प्रतिसंघर्षस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५
जिगीषया ततो देवा वव्रिरेऽङ्गिरसं मुनिम् ।
पौरोहित्येन याज्यार्थे काव्यं तूशनसं परे ॥६
ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यस्पर्धिनौ भृशम् ।
तत्र देवा निजघ्नुर्यान्दानवान्युधि संगतान् ॥ ७
तान्पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात् ।
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयांचक्रिरे सुरान् ॥ ८
असुरास्तु निजघ्नुर्यान्सुरान्समरमूर्धनि ।
न तान्संजीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ९
न हि वेद स तां विद्यां यां काव्यो वेत्ति वीर्यवान् ।
संजीविनीं ततो देवा विषादमगमन्परम् ॥ १०
ते तु देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा ।
ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठं पुत्रं बृहस्पतेः ॥ ११
भजमानान्भजस्वास्मान्कुरु नः साह्यमुत्तमम् ।
या सा विद्या निवसति ब्राह्मणेऽमिततेजसि ॥१२
शुक्रे तामाहर क्षिप्रं भागभाङ्नो भविष्यसि ।
वृषपर्वसमीपे हि शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विजः ॥ १३
रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान् ।
तमाराधयितुं शक्तो भवान्पूर्ववयाः कविम् ॥१४
देवयानीं च दयितां सुतां तस्य महात्मनः ।
त्वमाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चन विद्यते ॥ १५
शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दमेन च ।
देवयान्यां हि तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम्१६

---

उदारा भोगकाले । तत्र कर्मणेति उदाराया व्यावृत्तिः । वाचेति तन्व्याः । मनसेति प्रसुप्तायाः । यदैवं तदैव ब्रह्म संपद्यते समाधौ विदेहकैवल्ये च । तथा च श्रुतिः । 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्यो मृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति सर्वे उदाराद्याः ॥ ५२ ॥ अयमेव कामः किंचिद्विघ्नितः क्रोधो भवति सोऽपि स्वपरभयदायी नाशनीय इत्याह । यदा चेति । भयेच्छाद्वेषराहित्यादेव ब्रह्म संपद्यत इत्यर्थः ॥ ५३ ॥ कामप्रवणं मनोबुध्या कामतुच्छत्वनिश्चयेन समाधाय निगृह्य ॥ ५४ ॥ अतृप्त इति । द्विधा हि कामनिवृत्तिः । दोषदृष्ट्या तृप्त्या च। ते च विवेकविज्ञानोत्थे इति विवेकवतो राज्ञो दोषदृष्ट्या कामेभ्यो निवृत्तावपि ब्रह्मज्ञानाभावादतृप्तिरिति भावः ॥ ५५ ॥ दायादवान् पुत्रवान् ॥ ५६ ॥ सुचरितं सत्कर्म भृगुतुङ्गे पर्वतविशेषे ॥ ५७ ॥ कारयित्वा कृत्वा । पारयित्वेति पाठे समाप्य ॥ ५८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

---

ययातिरिति ॥ १ ॥ विप्रदानवौ वव्राते जामातृत्वेनेतिशेषः ॥ ३ ॥ सुराणामिति । त्रैलोक्यैश्वर्ये विषये । प्रतिसंघर्षो 'वयमीश्वरा भविष्यामो वयमीश्वरा भविष्याम' इति स्पर्धा ॥ ५ ॥ जिगीषयेति सार्धश्लोकः । याज्यार्थेऽन्योन्यस्पर्धिनाविति संबन्धः ॥६॥ रक्षते । कर्मव्यतिहारे 'तङ्' । शुक्रं हि दानवा रक्षन्ति अयमस्मत्तो मा गादिति । शुक्रस्तु तान् रक्षत्येव । अदानवान्देवान् । मृतसंजीविन्या न रक्षति ॥ १४ ॥

तथेत्युक्त्वा ततः प्रायाद्बृहस्पतिसुतः कचः ।
तदाऽभिपूजितो देवैः समीपे वृषपर्वणः ॥ १७
स गत्वा त्वरितो राजन्देवैः संप्रेषितः कचः ।
असुरेन्द्रपुरे शुक्रं दृष्ट्वा वाक्यमुवाच ह ॥ १८
ऋषेरङ्गिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद्बृहस्पतेः ।
नाम्ना कचमितिख्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान् १९
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरौ ।
अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन्सहस्रं परिवत्सरान् ॥ २०

शुक्र उवाच ।

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः ।
अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः॥२१

वैशंपायन उवाच ।

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद्व्रतम् ।
आदिष्टं कविपुत्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम् ॥ २२
व्रतस्य प्राप्तकालं स यथोक्तं प्रत्यगृह्णत ।
आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत ॥ २३
नित्यमाराधयिष्यंस्तौ युवा यौवनगोचरे ।
गायन्नृत्यन्वादयंश्च देवयानीमतोषयत् ॥ २४
स शीलयन्देवयानीं कन्यां संप्राप्तयौवनाम् ।
पुष्पैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भारत ॥ २५
देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतधारणम् ।
गायन्ती च ललन्ती च रहः पर्यचरत्तथा ॥ २६
पञ्चवर्षशतान्येवं कचस्य चरतो व्रतम् ।
तत्रातीयुरथोबुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम् ॥ २७
गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येकममर्षिताः ।
जघ्नुर्बृहस्पतेर्द्वेषाद्विद्यारक्षार्थमेव च ॥ २८
हत्वा शालावृकेभ्यश्च प्रायच्छँल्लवशः कृतम् ।
ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाः स्वं निवेशनम् २९
सा दृष्ट्वा रहिता गाश्च कचेनाभ्यागता वनात् ।
उवाच वचनं काले देवयान्यथ भारत ॥ ३०

देवयान्युवाच ।

आहुतं चाग्निहोत्रं ते सूर्यश्चास्तं गतः प्रभो ।
अगोपाश्चागता गावः कचस्तात न दृश्यते ॥ ३१
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति ।
तं विना न च जीवेयमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥३२

शुक्र उवाच ।

अयमेहीति संशब्द्य मृतं संजीवयाम्यहम् ।
ततः संजीविनीं विद्यां प्रयुज्य कचमाह्वयत् ॥३३
भित्त्वा भित्त्वा शरीराणि वृकाणां स विनिर्गतः ।
आहूतः प्रादुरभवत्कचो हृष्टोऽथ विद्यया ॥ ३४
कस्माच्चिरायितोऽसीति पृष्टस्तामाह भार्गवीम् ।
समिधश्च कुशादीनि काष्ठभारं च भाविनी ॥३५
गृहीत्वाश्रममाराद्‌धं वटवृक्षं समाश्रितः ।
गावश्च सहिताः सर्वा वृक्षच्छायामुपाश्रिताः ३६
असुरास्तत्र मां दृष्ट्वा कस्त्वमित्यभ्यचोदयन् ।
बृहस्पतिसुतश्चाहं कच इत्यभिविश्रुतः ॥ ३७
इत्युक्तमात्रे मां हत्वा पेषीकृत्वा तु दानवाः ।
दत्वा शालावृकेभ्यस्तु सुखं जग्मुः स्वमालयम् ३८
आहूतो विद्यया भद्रे भार्गवेण महात्मना ।
त्वत्समीपमिहायातः कथंचित्समजीवितः ॥ ३९
हतोऽहमिति चाचख्यौ पृष्टो ब्राह्मणकन्यया ।
स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहारो यदृच्छया ॥ ४०
वनं ययौ कचो विप्रो ददृशुर्दानवाश्च तम् ।
पुनस्तं पेषयित्वा तु समुद्राम्भस्यमिश्रयन् ॥ ४१
चिरं गतं पुनः कन्या पित्रे तं संन्यवेदयत् ।
विप्रेण पुनराहूतो विद्यया गुरुदेहजः ।
पुनरावृत्य तद्वृत्तं न्यवेदयत तद्यथा ॥ ४२
ततस्तृतीयं हत्वा तं दग्ध्वा कृत्वा च चूर्णशः ।
प्रायच्छन्ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तथा ॥ ४३
देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत् ।
पुष्पाहारः प्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते ॥ ४४
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति ।
तं विना न च जीवेयं कचं सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४५

शुक्र उवाच ।

बृहस्पतेः सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः ।
विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवाम किम् ४६
मैवं शुचो मा रुद देवयानि
न त्वादृशी मर्त्यमनुप्रशोचते ।
यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च
सेन्द्रा देवा वसवोऽथाश्विनौ च ॥ ४७

---

भृगो पुत्र कविस्तत्पुत्र शुक्र काव्य । स कविरित्यप्युपचारादुच्यते । शुक्रेण रुद्रशुक्ररूपेण ॥ २२ ॥ प्राप्त काल 'प्राप्तापन्ने च द्वितीया' इति समास । प्राप्तकालं कचम् ॥ २३ ॥ प्रेषणै प्रेष्यत्वादिभि ॥ २५ ॥ अतीयु ब्राह्मणस्यावध्यत्वमतिक्रान्तवन्त इत्यर्थः ॥ २७ ॥ उवाच शुक्रं प्रति ॥ ३० ॥ संशब्द्य शब्दं कृत्वा ॥ ३३ ॥ भाविनि हे शुद्धभाववति ! ॥३५॥ पेष पिष्टं पिष्टीकृत्येत्यर्थ । पेषीकृत्वेति समासेऽपि क्त्वोल्यबादेशाभाव आर्ष ॥३८॥ समं संपूर्णं जीवितं यस्य स । अन्तरा मरणे हि अप्राप्तविद्यत्वाद्व्यर्थं जीवनमिति भाव ॥ ३९ ॥ गुरुदेहज कच आवृत्य आगत्य तद्वृत्त असुरचेष्टितम् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणाय शुक्राय ॥ ४३ ॥ पेषणकृत्कार्यकर्ता ॥ ४४ ॥ मर्त्ये त्व तु मत्प्रभावादमरकल्पाऽसि । ब्रह्म वेद । तस्य नमन स्वार्थप्रकाशेन ४७

सुरद्विषश्चैव जगच्च सर्व-
मुपस्थाने संनमन्ति प्रभावात् ।
अशक्योऽसौ जीवयितुं द्विजातिः
संजीवितो वध्यते चैव भूयः ॥ ४८

देवयान्युवाच ।

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो
बृहस्पतिश्चापि पिता तपोनिधिः ।
ऋषेः पुत्रं तमथो वापि पौत्रं
कथं न शोचेयमहं न रुद्याम् ॥ ४९
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च
सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः ।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये
प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः ॥ ५०

वैशंपायन उवाच ।

स पीडितो देवयान्या महर्षिः
समाह्वयत्संरंभाच्चैव काव्यः ।
असंशयं मामसुरा द्विषन्ति
ये मे शिष्यानागतान्सूदयन्ति ॥ ५१
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रा-
स्ते मां यथा व्यभिचरन्ति नित्यम् ।
अप्यस्य पापस्य भवेदिहान्तः
कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम् ॥ ५२
गुरोर्हि भीतो विद्यया चोपहूतः
शनैर्वाक्यं जठरे व्याजहार ।

वैशंपायन उवाच ।

तमब्रवीत्केन पथोपनीत-
स्त्वं चोदरे तिष्ठसि ब्रूहि विप्र ॥ ५३

कच उवाच ।

तव प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः
स्मरामि सर्वं यच्च यथा च वृत्तम् ।
न त्वेवं स्यात्तपसः संक्षयो मे
ततः क्लेशं घोरमिमं सहामि ॥ ५४
असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो
हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य ।
ब्राह्मीं मायां चासुरीं विप्र मायां
त्वयि स्थिते कथमेवातिवर्तेत् ॥ ५५

शुक्र उवाच ।

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से
वधेन मे जीवितं स्यात्कचस्य ।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनेन
दृश्येत्कचो मद्गतो देवयानि ॥ ५६

देवयान्युवाच ।

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेताम्
कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः ।
कचस्य नाशे मम शर्म नास्ति
तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता ॥ ५७

शुक्र उवाच ।

संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पतेः सुत
यत्त्वां भक्तं भजते देवयानी ।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं
न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य ॥ ५८
न निवर्तेत्पुनर्जीवन्कश्चिदन्यो ममोदरात् ।
ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद्विद्यामवाप्नुहि ॥ ५९
पुत्रो भूत्वा भावय भावितो मा-
मस्मद्देहादुपनिष्क्रम्य तात ।
समीक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां
गुरोः सकाशात्प्राप्य विद्यां सविद्यः ६०

वैशंपायन उवाच ।

गुरोः सकाशात्समवाप्य विद्यां
भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः ।
कचोऽभिरूपस्तत्क्षणाद्ब्राह्मणस्य
शुक्लात्यये पौर्णमास्यामिवेन्दुः ॥ ६१

---

प्रभावान्ममेति शेषः । उपस्थाने संध्योपस्थानकाले त्रिसंध्यमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ समाह्वयत् आक्रोशं कृतवान् । संरंभात् क्रोधात् । सर्वान्दैत्यानिकत्राहूय उपालब्धवानित्यर्थः । उपालम्भमेवाह । असंशयमिति । द्विषन्तीति मध्यमपुरुषाप्रयोगः क्रोधावेशसूचनार्थः ॥ ५१ ॥ मां अब्राह्मणं उदरे कचस्य पाकेन ब्रह्महत्याप्रसञ्जनेन कर्तुमिच्छन्ति । व्यभिचरन्ति विरुद्धमाचरन्ति मदुदरे ब्राह्मणप्रवेशनेन । अन्तः परिपाकः ॥ ५२ ॥ तपसः संक्षयो गुरूदरविदारणात् । क्लेशं संकीर्णोदरे वासजम् ॥ ५४ ॥ ब्राह्मीं मायाम् । मायात्रयविदि त्वयि सति को देवोऽसुरो ब्राह्मणो वाऽतिक्रामेत् । अतस्त्वदुदरभेदनं मम दुःसाध्यमेवेति भावः ॥ ५५ ॥ न चेदिन्द्रः । इन्द्रश्चेत्त्वन्तर्हि त्वामुदरे जीर्णं करिष्याम्येवेति भावः ॥ ५८ ॥ नेति । त्वं तु ब्राह्मणत्वादवध्यो ममेत्यर्थः ॥ ५९ ॥ भावय जीवय । भावितो मया जीवितः । कृतघ्नो माभूरिति भावः ॥ ६० ॥ शुक्लस्य अन्होरवेर्वा अत्यये शुक्लात्यये ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा च तं पतितं ब्रह्मराशि-
मुत्थापयामास मृतं कचोऽपि
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य
ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच ॥ ६२

यः श्रोत्रयोरमृतं संनिषिञ्चे-
द्यो मे न विद्यस्य यथा ममायम् ।
तं मन्येऽहं पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन् ॥ ६३

ऋतस्य दातारमनुत्तमस्य
निधिं निधीनामपि लब्धविद्याः ।
येनाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयं
पापाँल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः ॥ ६४

वैशंपायन उवाच ।

सुरापानाद्वचनां प्राप्य विद्वा-
न्संज्ञानाशं चैव महातिघोरम् ।
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं
पीतं तदा सुरया मोहितेन ॥ ६५

समन्युरुत्थाय महानुभाव-
स्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः ।
सुरापानं प्रतिसंजातमन्युः
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद ॥ ६६

यो ब्राह्मणोऽद्यप्रभृतीह कश्चि-
न्मोहात्सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्या-
दस्मिँल्लोके गर्हितः स्यात्परे च ॥ ६७

मया चैतां विप्रधर्मोक्तिसीमां
मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां
देवा लोकाश्चोपशृण्वन्तु सर्वे ॥ ६८

इतीदमुक्त्वा स महानुभाव-
स्तपोनिधीनां निधिरप्रमेयः ।
तान्दानवान्दैवविमूढबुद्धी-
निदं समाहूय वचोऽभ्युवाच ॥ ६९

आचक्षे वो दानवा बालिशाःस्थ
सिद्धः कचो वत्स्यति मत्सकाशे ।
संजीविनीं प्राप्य विद्यां महात्मा
तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः ॥ ७०

एतावदुक्त्वा वचनं विरराम स भार्गवः ।
दानवा विस्मयाविष्टः प्रययुः स्वं निवेशनम् ॥ ७१

गुरोरुष्य सकाशे तु दशवर्षशतानि सः ।
अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम् ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

समावृतव्रतं तं तु विसृष्टं गुरुणा तदा ।
प्रस्थितं त्रिदशावासं देवयान्यब्रवीदिदम् ॥ १

ऋषेरङ्गिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च ।
भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च ॥ २

ऋषिर्यथाङ्गिरा मान्यः पितुर्मम महायशाः ।
तथा मान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः ॥ ३

एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद्ब्रवीमि तपोधन ।
व्रतस्थे नियमोपेते यथा वर्ताम्यहं त्वयि ॥ ४

---

ब्रह्मराशिं वेदराशिम् ॥ ६२ ॥ यः श्रोत्रयोरिति यथा मम श्रोत्रयोरयं शुक्र अमृतं अमरणसाधनीं विद्या निषिक्तवान् तथान्योऽपि यो मे मम न विद्यस्य विद्याशून्यस्य । समासेऽपि नञोनभ्राडादिवत्प्रकृतिभाव । श्रोत्रयोः सद्वस्तुनिषिञ्चेत् । य यत्सत् पुंस्त्वमार्षम् । अमृतं मोक्षरूपम् । तं निषेक्तारं अहं पितरं मातरं च मन्ये । तस्मै निषेक्त्रे न द्रुह्येत् । क अस्य कृतं अनेन उपकृतं जानन्नद्रुह्येहम् । क्रुधद्रुहेर्ष्येति संप्रदानत्वम् ॥ ६३ ॥ ऋतस्य कर्मोपास्तिज्ञानभाण्डारमरस्य वेदस्य निधीना विद्याना निधिं आश्रयम् । विद्याया निधित्वं गोपायमाशेवधिष्टेऽहमस्मीति विद्यावचनात् । मा माम् । शेवधिर्निधि । प्रतिष्ठा विद्याफलं तच्छून्या अप्रतिष्ठा । निधीना चतुरन्वयानामिति पाठे अध्ययन अर्थज्ञानं अनुष्ठानं शिष्येभ्य प्रतिपादनं चेति चत्वारि कर्माणि तेषु अन्वय संबन्धो येषा निधीना विद्यानामित्यर्थ. ॥ ६४ ॥ बालिशाः ममोदरे कचं पातयित्वा शीघ्रं तत्कार्यं सिद्धं कृतवन्त· ॥ ७० ॥ उष्य उषित्वा ॥ ७२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

---

समावृतव्रतमिति । समावृतव्रतं समाप्तव्रतम् ॥ १ ॥

स समावृतविद्यो मां भक्तां भजितुमर्हसि ।
गृहाण पाणिं विधिवन्मम मन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ५

कच उवाच ।

पूज्यो मान्यश्च भगवान्यथा तव पिता मम ।
तथा त्वमनवद्याङ्गि पूजनीयतरा मम ॥ ६
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्गवस्य महात्मनः ।
त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम ॥ ७
यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव ।
देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि ॥ ८

देवयान्युवाच ।

गुरुपुत्रस्य पुत्रो वै न त्वं पुत्रश्च मे पितुः ।
तस्मात्पूज्यश्च मान्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम ॥९
असुरैर्हन्यमाने च कच त्वयि पुनः पुनः ॥
तदा प्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमद्य स्मरस्व मे ॥१०
सौहार्दे चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम् ।
न मामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसम् ॥ ११

कच उवाच ।

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनङ्क्षि शुभव्रते ।
प्रसीद सुभ्रु त्वं मह्यं गुरोर्गुरुतरा शुभे ॥ १२
यत्रोषितं विशालाक्षि त्वया चन्द्रनिभानने ।
तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भाविनी ॥१३
भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः सुमध्यमे ।
सुखमस्म्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम ॥ १४
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमाशंस मे पथि।
अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे ।
अप्रमत्तोत्थिता नित्यमाराधय गुरुं मम ॥ १५

देवयान्युवाच ।

यदि मां धर्मकामार्थे प्रत्याख्यास्यसि याचितः ।
ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति १६

कच उवाच ।

गुरुपुत्रीति कृत्वाऽहं प्रत्याचक्षे न दोषतः ।
गुरुणा चाननुज्ञातः काममेवं शपस्व माम् ॥ १७
आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया ।
शप्तो नार्होऽस्मि शापस्य कामतोऽद्य न धर्मतः१८
तस्माद्भवत्या यः कामो न तथा स भविष्यति ।
ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति ॥१९
फलिष्यति न ते विद्या यत्त्वं मामात्थ तत्तथा ।
अध्यापयिष्यामि तु यं तस्य विद्या फलिष्यति २०

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठो देवयानीं कचस्तदा ।
त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः ॥ २१
तमागतमभिप्रेक्ष्य देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
बृहस्पतिं सभाज्येदं कचं वचनमब्रुवन् ॥ २२

देवा ऊचुः ।

यत्त्वयाऽस्मद्धितं कर्म कृतं वै परमाद्भुतम् ।
न ते यशःप्रणशिता भागभाक्च भविष्यसि ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः ।
कचादधीत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ ॥ १
सर्व एव समागम्य शतक्रतुमथाब्रुवन् ।
कालस्ते विक्रमस्याद्य जहि शत्रून्पुरंदर ॥ २
एवमुक्तस्तु सहितैस्त्रिदशैर्मघवांस्तदा ।
तथेत्युक्त्वा प्रचक्राम सोऽपश्यत वने स्त्रियः ॥ ३
क्रीडन्तीनां तु कन्यानां वने चैत्ररथोपमे ।
वायुभूतः स वस्त्राणि सर्वाण्येव व्यमिश्रयत् ॥ ४

---

गुरुः पुत्रो यस्य अङ्गिरसः पुत्रः पौत्रः॥९॥ उत्थिता अनलसा ॥१५॥ अननुज्ञातस्त्वदुक्तकार्ये ॥१७ ॥ आर्षं ऋषिप्रणीतं सोदर्योरविवाहं कामतः शप्तोऽस्मि न धर्मतः ॥१८॥ प्रणशिता प्रणंक्ष्यति । भागभाक् भागः अयमेव कचो वेदे 'शंयु' शब्देनोच्यते । यदेवाब्रह्मणोक्तोश्रद्दधानो यजते शंयुमेव तस्य बार्हस्पत्यं यज्ञस्याशीर्गच्छति एतन्मे मेत्यब्रवीत्किं मे प्रजाया इति योपगुरातैशतेन यातयाद्योनिहनत्सहस्रेण यातयाद्यो लोहितं करवद्यावतः प्रस्कन्य पांसून्संगृह्णात्तावतः संवत्सरान्पितृलोकं न प्राजानादिति । तस्माद्ब्राह्मणाय नापगुरेत न निहन्यान्न लोहितं कुर्यादिति श्रुतो वरस्तद्भाक् । अपगुरेत न गालयेत् । शतादयो नरकविशेषाः ॥ २३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

---

कृतविद्य इति ॥१॥ मघवान् इन्द्रः । 'मखेषु मघवान्सौ'इति भक्तिः । प्रचक्राम भूतलं प्रतीति शेषः ॥ ३ ॥ वायुभूत इन्द्रः । कन्याद्वयद्वारा शुक्रदानवयोर्विरोधोत्पादनार्थम् ॥ ४ ॥

ततो जलात्समुत्तीर्य कन्यास्ताः सहितास्तदा ।
वस्त्राणि जगृहुस्तानि यथा सन्नान्यनेकशः ॥ ५
तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा ।
व्यतिमिश्रमजानन्ती दुहिता वृषपर्वणः ॥ ६
ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत ।
देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते ॥ ७

देवयान्युवाच ।

कस्माद्गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममासुरि ।
समुदाचारहीनाया न ते साधु भविष्यति ॥ ८

शर्मिष्ठोवाच ।

आसीनं च शयानं च पिता ते पितरं मम ।
स्तौति वन्दीव चाभीक्ष्णं नीचैः स्थित्वा विनीतवत् ॥
याचतस्त्वं हि दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः ।
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥ १०
आदुन्वस्व विदुन्वस्व द्रुह्य कुप्यस्व याचकि ।
अनायुधा सायुधाया रिक्ता क्षुभ्यासि भिक्षुकि ।
लप्स्यसे प्रतियोद्धारं न हि त्वां गणयाम्यहम् ११

वैशंपायन उवाच ।

समुच्छ्रयं देवयानीं गतां सक्तां च वाससि ॥१२
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे ततः स्वपुरमागमत् ।
हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया ॥ १३
अनवेक्ष्य ययौ वेश्म क्रोधवेगपरायणा ।
अथ तं देशमभ्यागाद्ययातिर्नहुषात्मजः ॥ १४
श्रान्तयुग्मः श्रान्तहयो मृगलिप्सुः पिपासितः ।
स नाहुषः प्रेक्षमाण उदपानं गतोदकम् ॥ १५
ददर्श राजा तां तत्र कन्यामग्निशिखामिव ।
तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्याममरवर्णिनीम् ॥ १६
सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना ।
का त्वं ताम्रनखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला १७
दीर्घं ध्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छोचसि चातुरा ।
कथं च पतिताऽस्यस्मिन्कूपे वीरुत्तृणावृते ॥ १८
दुहिता चैव कस्य त्वं वद सत्यं सुमध्यमे ।

देवयान्युवाच ।

योऽसौ देवैर्हतान्दैत्यानुत्थापयति विद्यया ॥ १९
तस्य शुक्रस्य कन्याऽहं स मां नूनं न बुध्यते ।
एष मे दक्षिणो राजन्पाणिस्ताम्रनखाङ्गुलिः ॥ २०
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः ।
जानामि हि त्वां संशान्तं वीर्यवन्तं यशस्विनम् ॥
तस्मान्मां पतितामस्मात्कूपादुद्धर्तुमर्हसि । २१

वैशंपायन उवाच ।

तामथो ब्राह्मणीं राजा विज्ञाय नहुषात्मजः ॥२२
गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततोऽवटात् । -
उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात्कूपान्नराधिपः ॥ २३
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं ययौ ।
गते तु नाहुषे तस्मिन्देवयान्यप्यनिन्दिता ॥ २४
उवाच शोकसंतप्ता घूर्णिकामागतां पुरः ।

देवयान्युवाच ।

त्वरितं घूर्णिके गच्छ शीघ्रमाचक्ष्व मे पितुः ॥२५
नेदानीं संप्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः ।

वैशंपायन उवाच ।

सा तत्र त्वरितं गत्वा घूर्णिकाऽसुरमन्दिरम् २६
दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं संभ्रमाविष्टचेतना ।
आचचक्षे महाप्राज्ञं देवयानीं वने हताम् ॥ २७
शर्मिष्ठया महाभाग दुहित्रा वृषपर्वणः ।
श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तत्र शर्मिष्ठया हताम् ॥ २८
त्वरया निर्ययौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने ।
दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं ततो वने ॥ २९
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ।
आत्मदोषैर्नियच्छन्ती सर्वे दुःखसुखे जनाः ॥ ३०
मन्ये दुश्चरितं तेऽस्ति यस्येयं निष्कृतिः कृता ।

देवयान्युवाच ।

निष्कृतिर्मेऽस्तु वा माऽस्तु शृणुष्वावहितो मम ३१

---

समुदाचरः सदाचारः ॥८ ॥ आदुन्वस्वेति । अत्र यथा इन्द्रेण युजातरुषेमत्रामित्यत्रउःसिप्शप् चेतिवहुलं छंदसीति बाहुलकाद्विकरणत्रयम् । एवमिहाप्यार्षत्वात्श्नुः शप् चेतिविकरणद्वयम् । आदुन्वस्व आभिमुख्येन वक्षस्ताडनादिना संतापं प्राप्नुहि । विदुन्वस्व पांसुषु लुंठनादिना । द्रुह्य द्रोहं चिरकालिकं क्रोधं कुरु । कुप्यस्व सद्यः परानिष्टफलो यत्नः कोपस्तं कुरु । रिक्ता दरिद्रा ॥ ११ ॥ प्रतियोद्धारं प्रहर्तारं शत्रुं मामेव । समुच्छ्रयं सत्यवचनेन महत्त्वम् ॥ १२ ॥ युग्याः रथवाहकाः । हयाः केवलाश्वाः । उदकं पीयतेऽस्मादिति उदपानं कूपम् ॥ १५ ॥ वल्गुना मन्जुना । श्यामा षोडशवार्षिकी यौवनारूढा । सुमृष्टानि दिव्यानि ॥ १७ ॥ वीरुधो लताः ॥ १८ ॥ अवटात् गर्तात् ॥ २३ ॥ घूर्णिकां दासीम् ॥२५॥ हताम् ताडिताम् ॥ २७ ॥ नियच्छान्ति प्रयच्छान्ति । आत्मदोषैर्हेतुभिः स्वकर्मभिरेव सुखदुःखे जनात्प्राप्येते न तु जनस्यापराध इत्यर्थः ॥ ३० ॥ एतदेवाह । मन्ये इति । निष्कृतिः फलभोगेन निरसनम् ॥ ३१ ॥

शर्मिष्ठया यदुक्ताऽस्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ।
सत्यं किलैतत्सा प्राह दैत्यानामसि गायनः ॥३२
एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणि ।
वचनं तीक्ष्णपरुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ॥ ३३
स्तुवतो दुहिता नित्यं याचतः प्रतिगृह्णतः ।
अहं तु स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥ ३४
इदं मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः ।
क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णा पुनःपुनः ॥ ३५
यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः ।
प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता तु सखी मया ३६

शुक्र उवाच ।

स्तुवतो दुहिता न त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः ।
अस्तोतुः स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि ॥ ३७
वृषपर्वैव तद्वेद शक्रो राजा च नाहुषः ।
अचिन्त्यं ब्रह्मनिर्द्वंद्वमैश्वरं हि बलं मम ॥ ३८
यच्च किंचित्सर्वगतं भूमौ वा यदि वा दिवि ।
तस्याहमीश्वरो नित्यं तुष्टेनोक्तः स्वयंभुवा ॥ ३९
अहं जलं विमुञ्चामि प्रजानां हितकाम्यया ।
पुष्णाम्यौषधयः सर्वा इति सत्यं ब्रवीमि ते ॥४०

वैशंपायन उवाच ।

एवं विषादमापन्नां मन्युना संप्रपीडिताम् ।
वचनैर्मधुरैः श्लक्ष्णैः सान्त्वयामास तां पिता ४१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्यानेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

शुक्र उवाच ।

यः परेषां नरो नित्यमतिवादांस्तितिक्षते ।
देवयानी विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ १
यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा ।
स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते ॥ २
यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन निरस्यति ।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ ३
यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयेह निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ४
यः संधारयते मन्युं योतिवादांस्तितिक्षते ।
यश्च तप्तो न तपति दृढं सोऽर्थस्य भाजनम् ॥ ५
यो यजेदपरिश्रान्तो मासि मासि शतं समाः ।
न क्रुध्येद्यश्च सर्वस्य तयोरक्रोधनोऽधिकः ॥ ६
यत्कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः ।
न तत्प्राज्ञोऽनुकुर्वीत न विदुस्ते बलाबलम् ॥ ७

देवयान्युवाच ।

वेदाहं तात बालाऽपि धर्माणां यदिहान्तरम् ।
अक्रोधे चापि वादे च वेद चापि बलाबलम् ॥ ८
शिष्यस्याशिष्यवृत्तेस्तु न क्षन्तव्यं बुभूषता ।
तस्मात्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते ॥ ९
पुमांसो ये हि निन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च ।
न तेषु निवसेत्प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु ॥ १०
ये त्वेनमभिजानन्ति वृत्तेनाभिजनेन वा ।
तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ११
वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः ।
मम मथ्नाति हृदयमग्निकाम इवारणिम् ॥ १२
न ह्यतो दुष्करतरं मन्ये लोकेष्वपि त्रिषु ।
यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपासते ।
मरणं शोभनं तस्य इति विद्वज्जना विदुः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

तीक्ष्णं मर्मभित् । यतः परुषं निष्ठुराक्षरम् । ॥ ३३ ॥ इदं पूर्वोक्तम् ॥ ३५ ॥ नाहुषो ययातिः । मम ऐश्वरं निर्द्वंद्वमप्रतिपक्षं बलमास्ति ॥ ३८ ॥ ईश्वरत्वमेवाह । यच्चेति । स्वयंभुवा तत्त्वमसीत्यादिना वेदेन करणेन तुष्टेन गुरुणेति शेषः ॥ ३९ ॥ अहं मनुरभवं यत्सूर्यश्चेति वदन्वामदेव इव स्वस्य सार्वात्म्यानुभवमाह । अहमिति ॥ ४० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

य इति । अतिवादान्निन्दावचनानि ॥ १ ॥ रश्मिषु क्रोधफलभूतास्वापत्सु पक्षे स्पष्टोऽर्थः ॥ २ ॥ अक्रोधेन क्रोधविरोधिन्या क्षमया ॥ ३ ॥ अर्थस्य पुरुषार्थचतुष्टयस्य ॥ ५ ॥ यजेत्पितृयज्ञेन । तस्मान्मासि पितृभ्यः क्रियत इति श्रुतेः । एतेन अन्ययज्ञेभ्यः पितृयज्ञः श्रेष्ठ इति सूचितम् ॥ ६ ॥ यदिति । अचेतसो मूढाः । बाल्यात् शर्मिष्ठया कृतमस्माभिः क्षन्तव्यमेवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

वैशंपायन उवाच ।
ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह ।
वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन् ॥ १
नाधर्मश्चरितो राजन्सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्यमानो हि कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ २
पुत्रेषु वा नप्तृषु वा न चेदात्मनि पश्यति ।
फलत्येव ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे ॥ ३
यदघातयथा विप्रं कचमाङ्गिरसं तदा ।
अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम् ॥ ४
वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम ।
वृषपर्वन्निबोधेदं त्यक्ष्यामि त्वां सबान्धवम् ।
स्थातुं त्वद्विषये राजन्न शक्ष्यामि त्वया सह ॥ ५
अहो मामभिजानासि दैत्य मिथ्याप्रलापिनम् ।
यथेममात्मनो दोषं न नियच्छस्युपेक्षसे ॥ ६
वृषपर्वोवाच ।
नाधर्मं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव ।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च तत्प्रसीदतु नो भवान् ॥ ७
यद्यस्मानपहाय त्वमितो गच्छसि भार्गव ।
समुद्रं संप्रवेक्ष्यामो नान्यदस्ति परायणम् ॥ ८
शुक्र उवाच ।
समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा द्रवतासुराः ।
दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहं दयिता हि मे ॥ ९
प्रसाद्यतां देवयानी जीवितं यत्र मे स्थितम् ।
योगक्षेमकरस्तेहमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः ॥ १०
वृषपर्वोवाच ।
यत्किंचिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव ।
भुवि हस्तिगवाश्वं च तस्य त्वं मम चेश्वरः ॥ ११
शुक्र उवाच ।
यत्किंचिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर ।
तस्येश्वरोऽस्मि यद्येषा देवयानी प्रसाद्यताम् १२
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तथेत्याह वृषपर्वा महाकविः ।
देवयान्यन्तिकं गत्वा तमर्थं प्राह भार्गवः ॥ १३

देवयान्युवाच ।
यदि त्वमीश्वरस्तात राज्ञो वित्तस्य भार्गव ।
नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा तु वदतु स्वयम् १४
वृषपर्वोवाच ।
यं काममभिकामाऽसि देवयानि शुचिस्मिते ।
तत्तेऽहं संप्रदास्यामि यदि वापि हि दुर्लभम् १५
देवयान्युवाच ।
दासीं कन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये ।
अनु मां तत्र गच्छेत्सा यत्र दद्याच्च मे पिता ॥१६
वृषपर्वोवाच ।
उत्तिष्ठ त्वं गच्छ धात्रि शर्मिष्ठां शीघ्रमानय ।
यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम् ॥ १७
वैशंपायन उवाच ।
ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठां वाक्यमब्रवीत् ।
उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह ॥ १८
त्यजति ब्राह्मणः शिष्यान्देवयान्या प्रचोदितः ।
सा यं कामयते कामं स कार्योऽद्य त्वयाऽनघे १९
शर्मिष्ठोवाच ।
यं सा कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम् ।
यद्येवमाह्वयेच्छुक्रो देवयानीकृते हि माम् ।
मद्दोषान्माऽगमच्छुक्रो देवयानी च मत्कृते ॥ २०
वैशंपायन उवाच ।
ततः कन्यासहस्रेण वृता शिबिकया तदा ।
पितुर्नियोगात्त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात् ॥ २१
शर्मिष्ठोवाच ।
अहं दासीसहस्रेण दासी ते परिचारिका ।
अनु त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता २२
देवयान्युवाच ।
स्तुवतोदुहिताऽहं ते याचतः प्रतिगृह्णतः ।
स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि ॥२३
शर्मिष्ठोवाच ।
येन केनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत् ।
अतस्त्वामनुयास्यामि यत्र दास्यति ते पिता २४

---

तत इति । काव्य कविपुत्र समन्यु सक्रोध ॥ १ ॥ पुत्रेष्विति । ननुपितृकृतं पुत्रेण भुज्यते चेच्छास्त्रफलं प्रयोक्तृगामीति न्यायविरोधापत्तिरिति चेन्न । यो वै भागिनं भागान्नुदते चयते वैनं सयदि वैनं न चयतेऽथ पुत्रमथ पौत्रं चयत इति धनमानभागिना दूरीकरणादवश्यं स्वयंपुत्रः पौत्रो वा नश्यतीति श्रुते । न्यायस्य तु जातेष्ट्यादिवत्पुत्रगतमपि फलं तदैकात्म्याभिमानात्पितर्यपि वक्तुं शक्यमतो न व्याकोपः । मृतेऽपि पितरि पुत्राणा दारिद्र्यदौर्जन्यादिना श्राद्धलोपादिकृतं दु खादिफलमन्वेत्येवेति सुष्ठूक्तं पुत्रेषु वेत्यादि ॥ ३ ॥ उपेक्षसे शपथमात्रेण मा सान्त्वयसि न तु दुष्टं दोषं निगृह्णासि ॥ ६ ॥ महाकविरित्यादि पृथग्वाक्यम् ॥ १३ ॥ दासीमिति । इदं देवयान्या प्रार्थितं दासीसहस्रं शर्मिष्ठापरिवारभूताद्दासीसहस्रादन्यत् । द्वाभ्या कन्यासहस्राभ्यामिति वाक्यशेषात् ॥ १६ ॥

वैशंपायन उवाच ।

प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः ।
देवयानी नृपश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २५

देवयान्युवाच ।

प्रविशामि पुरं तात तुष्टाऽस्मि द्विजसत्तम ।
अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्या बलं च ते ॥ २६

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तो दुहित्रा स द्विजश्रेष्ठो महायशाः ।
प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्यानेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

अथ दीर्घस्य कालस्य देवयानी नृपोत्तम ।
वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी ॥ १
तेन दासीसहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा ।
तमेव देशं संप्राप्ता यथाकामं चचार सा ॥ २
ताभिः सखीभिः सहिता सर्वाभिर्मुदिता भृशम् ।
क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधुमाधवीम्
खादन्त्यो विविधान्भक्ष्यान्विदशन्त्यः फलानि च
पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया ॥ ४
तमेव देशं संप्राप्तो जलार्थी श्रमकर्शितः ।
ददृशे देवयानीं स शर्मिष्ठां ताश्च योषितः ५
पिबन्तीर्ललमानाश्च दिव्याभरणभूषिताः ।
उपविष्टां च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम् ॥ ६
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम् ।
शर्मिष्ठया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः ॥ ७

ययातिरुवाच ।

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते ।
गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यहं शुभे ॥ ८

देवयान्युवाच ।

आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप ।
शुक्रो नामा सुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम् ९
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी ।
दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥ १०

ययातिरुवाच ।

कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी ।
असुरेन्द्रसुता सुभ्रूः परं कौतूहलं हि मे ॥ ११

देवयान्युवाच ।

सर्व एव नरश्रेष्ठ विधानमनुवर्तते ।
विधानविहितं मत्वा मा विचित्राः कथाः कृथाः॥
राजवद्रूपवेषौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च ।
को नाम त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे ॥१२

ययातिरुवाच ।

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः ।
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः ॥ १४

देवयान्युवाच ।

केनास्यर्थेन नृपते इमं देशमुपागतः ।
जिघृक्षुर्वारिजं किंचिदथवा मृगलिप्सया ॥ १५

ययातिरुवाच ।

मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमुपागतः ।
बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १६

देवयान्युवाच ।

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्याशर्मिष्ठया सह ।
त्वदधीनाऽस्मि भद्रं ते सखा भर्ता च मे भव १७

ययातिरुवाच ।

विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वामर्होऽस्मि भाविनी ।
अविवाह्या हि राजानो देवयानि पितुस्तव ॥ १८

---

विज्ञानं ब्रह्मानुभवः । विद्यामृतसंजीविनी ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

अथेति ॥ १ ॥ तेन स्वयंवृतेन शर्मिष्ठया स्वीयदासीसहस्रोपेतया ॥ २ ॥ मधुमाधवीं मधुवृक्षजां मदिराम् ॥ ३॥ पिबन्तीःपेयं ललमानाः क्रीडन्तीः ॥ ६ ॥ द्वाभ्यामित्युक्तार्थे गोत्रे वंशकरान्नृषी ॥ ८ ॥ विधानं दैवं अनुवर्तते अनुसृत्यास्ति ॥ १२ ॥ राज्ञो रूपं ब्राह्मी वाक्चेत्यत्र हेतुद्वयं व्युत्क्रमेणाह ब्रह्मेति ॥ १४ ॥ अर्थेन कार्येण वारिजं मीनं पद्मादि वा ॥१५॥ * अनुयुक्तोऽस्मि पलायिते मृगे श्रान्तोऽस्मि ॥ १६

देवयान्युवाच ।
संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रेण ब्रह्मसंहितम् ।
ऋषिश्चाप्यृषिपुत्रश्च नाहुषाङ्ग वहस्व माम् ॥ १९
ययातिरुवाच ।
एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वराङ्गने ।
पृथग्धर्माः पृथक्शौचास्तेषां तु ब्राह्मणो वरः २०
देवयान्युवाच ।
पाणिधर्मो नाहुषाऽयं न पुंभिः सेवितः पुरा ।
तं मे त्वमग्रहीरग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ॥ २१
कथं नु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान्स्पृशेत् ।
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया ॥ २२
ययातिरुवाच ।
क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्रो ज्ञेयः पुंसा विजानता ॥ २३
देवयान्युवाच ।
कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ॥ २४
ययातिरुवाच ।
एकमाशीविषो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः २५
दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद्भीरु मतो मम ।
अतोऽदत्तां च पित्रा त्वां भद्रे न विवहाम्यहम् २६
देवयान्युवाच ।
दत्तां वहस्व तन्मा त्वं पित्रा राजन्वृतो मया ।
अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः ॥ २७
वैशंपायन उवाच ।
त्वरितं देवयान्याथ संदिष्टं पितुरात्मनः ।
सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ॥ २८
श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः ।
दृष्ट्वैव चागतं शुक्रं ययातिः पृथिवीपतिः ।
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः २९
देवयान्युवाच ।
राजाऽयं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत् ।
नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे ॥ ३०
शुक्र उवाच ।
वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं ममेष्टया ।
गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ॥ ३१
ययातिरुवाच ।
अधर्मो न स्पृशेदेष महान्मामिह भार्गव ।
वर्णसंकरजो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम् ॥ ३२
शुक्र उवाच ।
अधर्मात्त्वां विमुञ्चामि वृणु त्वं वरमीप्सितम् ।
अस्मिन्विवाहे मा म्लासीरहं पापं नुदामि ते ३३
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं सुमध्यमाम् ।
अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ॥ ३४
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणि ।
संपूज्या सततं राजन्मा चैनां शयने ह्वये ॥ ३५
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
शास्त्रोक्तविधिना राजा विवाहमकरोच्छुभम् ३६
लब्ध्वा शुक्रान्महद्वित्तं देवयानीं तदोत्तमाम् ।
द्विसहस्रेण कन्यानां तथा शर्मिष्ठया सह ॥ ३७
संपूजितश्च शुक्रेण दैत्यैश्च नृपसत्तमः ।
जगाम स्वपुरं हृष्टोऽनुज्ञातोऽथ महात्मना ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

---

संसृष्टं उच्छिन्नस्य क्षत्रस्य ब्राह्मणवीर्यादेव पुनरुद्भवात् ब्रह्मणा क्षत्रं संसृष्टम् । क्षत्रियस्त्रीसु लोपामुद्रादिषु ब्राह्मणानामुत्पत्तिदर्शनात् । क्षत्रेण ब्रह्मसंहितं संमिश्रं ऋषि बुधादिलाया पुरुरवास्तत आयुस्ततो नहुषस्ततस्त्वमिति । क्षत्रियस्त्र्याया ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मण क्षत्रियदारेषु ब्राह्मणाज्जातस्तु क्षत्रिय एवेत्याग्रहेऽपि इलाया क्षत्रियदारत्वाभावाद्युष्माकमृषित्वमेव तथ्यमित्यर्थ । हे अङ्ग वहस्व परिणयस्व ॥ १९ ॥ एकस्येश्वरस्य देहो देहावयवा मुखबाहूरुपादास्तदुद्भवा ॥ २० ॥ प्रागेव त्वया मम पाणिग्रहणं कृतमत इदानीं विचारावसरो नास्तीत्याशयेनाह । पाणीति पाणिधर्मं पाणिग्रहणाख्यो धर्मं ॥ २१॥ ययातिस्तु स्वस्य शर्मिष्ठासक्तया देवयान्या प्रकोपे सति शुक्राद्भीत सन्मनस्येव उवाच क्रुद्धादिति ॥ २३ ॥ अदत्तामिति च्छेद ॥ २६ ॥ मा मा भय क्षत्रियेण ब्राह्मणीपरिणयनदोषजम् ॥ २७ ॥ दुर्गमे संकटे ॥ ३० ॥ ईप्सित वर च वृणीष्वेत्युक्तोऽपीदानीं न वृतवान् । पश्चात्तु अन्यत्र जरासंक्रमणसामर्थ्यरूप शुक्रेणैव स्वप्रतिज्ञासिद्धये दत्त इति ध्येयम् ॥ ३३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्याय ॥ ८१ ॥

वैशंपायन उवाच ।

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसंनिभम् ।
प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत् ॥ १

देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः ।
अशोकवनिकाऽभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत् ॥ २

वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठां वार्षपर्वणीम् ।
वासोभिरन्नपानैश्च संविभज्य सुसत्कृताम् ॥ ३

देवयान्या तु सहितः स नृपो नहुषात्मजः ।
विजहार बहूनब्दान्देववन्मुदितः सुखी ॥ ४

ऋतुकाले तु संप्राप्ते देवयानी वराङ्गना ।
लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारं च व्यजायत ॥ ५

गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा चान्वचिन्तयत् ॥ ६

ऋतुकालस्य संप्राप्तो न च मेऽस्ति पतिर्वृतः ।
किं प्राप्तं किं नु कर्तव्यं किं वा कृत्वा कृतं भवेत् ७

देवयानी प्रजाताऽसौ वृथाऽहं प्राप्तयौवना ।
यथा तया वृतो भर्ता तथैवाहं वृणोमि तम् ॥ ८

राज्ञा पुत्रफलं देयमिति मे निश्चिता मतिः ।
अपीदानीं स धर्मात्मा इयान्मे दर्शनं रहः ॥ ९

अथ निष्क्रम्य राजाऽसौ तस्मिन्काले यदृच्छया ।
अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठां प्रेक्ष्य धिष्ठितः॥१०

तमेकं रहिते दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी ।
प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत् ११

शर्मिष्ठोवाच ।

सोमस्येन्द्रस्य विष्णोर्वा यमस्य वरुणस्य च ।
तव वा नाहुषगृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति ॥ १२

रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन्वेत्थ मां सदा ।
सा त्वां याचे प्रसाद्याहमृतं देहि नराधिप ॥ १३

ययातिरुवाच ।

वेद्मि त्वां शीलसंपन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम् ।
रूपं च ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निन्दितम् ॥१४

अब्रवीदुशना काव्यो देवयानीं यदाऽवहम् ।
नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणि ॥ १५

शर्मिष्ठोवाच ।

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले ।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १६

पृष्टं तु साक्ष्ये प्रवदन्तमन्यथा
वदन्ति मिथ्या पतितं नरेन्द्र ।
एकार्थतायां तु समाहितायां
मिथ्या वदन्तं त्वनृतं हिनस्ति ॥ १७

ययातिरुवाच ।

राजा प्रमाणं भूतानां स नश्येत मृषा वदन् ।
अर्थकृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ १८

शर्मिष्ठोवाच ।

समावेतौ मतौ राजन्पतिः सख्याश्च यः पतिः ।
समं विवाहमित्याहुः सख्या मेऽसि वृतः पतिः१९

ययातिरुवाच ।

दातव्यं याचमानेभ्य इति मे व्रतमाहितम् ।
त्वं च याचसि मां कामं ब्रूहि किं करवाणि ते२०

शर्मिष्ठोवाच ।

अधर्मात्पाहि मां राजन्धर्मं च प्रतिपादय ।
त्वत्तोऽपत्यवती लोके चरेयं धर्ममुत्तमम् ॥ २१

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम् ॥२२

---

ययातिरिति ॥ १ ॥ व्यजायत अजनयत् ॥ ५ ॥प्रजाता प्रजारूपेण वितता वल्लीवत् ॥ ८ ॥ रहिते विजने ॥ ११ ॥ अवहं ऊढवान् अहम् ॥ १५ ॥ नर्मयुक्तं परिहासयुक्तं वचनं अनृतमपि न हिनस्ति । दोषजनकं न भवतीत्यर्थः । स्त्रीषु गम्यासु अहमेनां न रमये इत्युक्तिरनृतापि कृता चेन्न हिनास्ति । धनेत्युपलक्षणं स्त्र्यादेरपि ॥ १६ ॥ स्त्रीष्वनृतं न हिनास्ति प्रत्युतत्स त्यादेरेण तत्त्याग एव हिनस्तीत्याह । पृष्टंत्विति । साक्ष्ये पृष्टं सदस्यैः अन्यथा प्रवदन्तं पुरुषं पतितं यद्वदन्ति तन्मिथ्या । गोब्राह्मणस्त्रीदीनानाथाद्यर्थे कूटसाक्ष्यस्यापि पुण्यहेतुत्वात्। तथा च हिंसाहेतुः सत्यमप्यनृतमेव । अहिंसाहेतुरनृतमपि सत्यमेवेति भावः । प्रकृतमाह । एकार्थतायां एकप्रयोजनतायां समाहितायां आवयोस्त्वदाराधनरूपे प्रयोजने तुल्यत्वेन निश्चिते सति देवयान्येव मम भार्या न शर्मिष्ठेति मिथ्यावदन्तं त्वामेवानृतं हिनास्तित्यर्थः ॥१७॥ एकार्थतामेव व्याचष्टे । समाविति । हे राजन् एतौ विवाहौ मतौ बुद्धावारूढौ समौ तुल्यावेव । यदैव देवयान्या त्वं मनसा वृतस्तदैव मयापीत्यर्थः । अतः यस्त्वं सख्याःपतिः स एव चकारान्ममापि पतिः । एतल्लोकप्रसिध्या द्रढयति । समं सहविवाहं सख्या सहैवेतरासां विवाहं सिद्धमाहुः । द्वयोः प्रदेयद्रव्यत्ववरणीयत्वादेस्तुल्यत्वात्। अतः मे मया वृतोऽसि ऋतुप्राप्त्यै यतः पतिरसि ॥ १९ ॥ राजा तु भार्यासमत्वं दासीनार्हतीत्येवं मत्वा प्रकारान्तरेण तदभीष्टं दातुं प्रतिजानीते दातव्यमिति ॥ २० ॥ अधमार्त् त्वदन्यवरणजाद्व्यभिचारात् ॥ २१ ॥ ननु त्वमपि पित्रा दत्तेन धनेन धर्मं चरन्तीं गतिं प्राप्नुहि किं संतत्येत्याशंक्याह । त्रय इति॥२२

देवयान्या भुजिष्यास्मि वश्या च तव भार्गवी ।
सा चाहं च त्वया राजन्भजनीये भजस्व माम् २३
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु राजा स तथ्यमित्यभिजज्ञिवान् ।
पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रत्यपादयत् ॥ २४
स समागम्य शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च ।
अन्योऽन्यं चाभिसंपूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम् २५
तस्मिन्समागमे सुभ्रूः शर्मिष्ठा चारुहासिनी ।
लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्नृपतिसत्तमात् ॥ २६
प्रजज्ञे च ततः काले राजन्राजीवलोचना ।
कुमारं देवगर्भाभं राजीवनिभलोचनम् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
श्रुत्वा कुमारं जातं तु देवयानी शुचिस्मिता ।
चिन्तयामास दुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत ॥ १
अभिगम्य च शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम् ।
देवयान्युवाच ।
किमिदं वृजिनं सुभ्रु कृतं वै कामलुब्धया ॥ २
शर्मिष्ठोवाच ।
ऋषिरभ्यागतः कश्चिद्धर्मात्मा वेदपारगः ।
स मया वरदः कामं याचितो धर्मसंहितम् ॥ ३
नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते ।
तस्मादृषेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४
देवयान्युवाच ।
शोभनं भीरु यद्येवमथ स ज्ञायते द्विजः ।
गोत्रनामाभिजनतो वेत्तुमिच्छामि तं द्विजम् ॥ ५
शर्मिष्ठोवाच ।
तपसा तेजसा चैव दीप्यमानं यथा रविम् ।
तं दृष्ट्वा मम संप्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मिते ॥ ६
देवयान्युवाच ।
यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम ।
अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात्७
वैशंपायन उवाच ।
अन्योन्यमेवमुक्त्वा तु संप्रहस्य च ते,मियः ।
जगाम भार्गवी वेश्म तथ्यमित्यवजग्मुषी ॥ ८
ययातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः ।
यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ ॥ ९
तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणि ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च त्रीन्कुमारानजीजनत् ॥ १०
ततः काले तु कस्मिंश्चिद्देवयानी शुचिस्मिता ।
ययातिसहिता राजन्जगाम रहितं वनम् ॥ ११
ददर्श च तदा तत्र कुमारान्देवरूपिणः ।
क्रीडमानान्सुविश्रब्धान्विस्मिता चेदमब्रवीत्॥१२
देवयान्युवाच ।
कस्यैते दारका राजन्देवपुत्रोपमाः शुभाः ।
वर्चसा रूपतश्चैव सदृशा मे मतास्तव ॥ १३
वैशंपायन उवाच ।
एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान्पर्यपृच्छत ।
देवयान्युवाच ।
किं नामधेयं वंशो वः पुत्रकाः कश्च वः पिता ।
प्रब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुमिच्छामि तं ह्यहम् ॥ १४
तेऽदर्शयन्प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम् ।
शर्मिष्ठां मातरं चैव तथाचख्युश्च दारकाः ॥ १५
वैशंपायन उवाच ।
इत्युक्त्वा सहितास्ते तु राजानमुपचक्रमुः ।
नाभ्यनन्दत तान्राजा देवयान्यास्तदान्तिके ॥ १६
रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्ततः ।
श्रुत्वा तु तेषां बालानां सव्रीड इव पार्थिवः ॥१७
दृष्ट्वा तु तेषां बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति ।
बुद्ध्वा च तत्त्वं सा देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ॥ १८
देवयान्युवाच ।
मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम ।
तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि मे ॥ १९
शर्मिष्ठोवाच ।
यदुक्तमृषिरित्येव तत्सत्यं चारुहासिनि ।
न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते ॥ २०

---

भुजिष्या देवयान्या भुक्तं त्वां इच्छन्तीति योगात् दासी ॥ २३ ॥ भुजिष्या त्वमस्यास्तथ्यमिति अभिजज्ञिवान् । अभितः साकल्येन ज्ञातवान् धर्मं ऋतुदानेन आर्तत्राणम् ॥ २४ ॥ प्रजज्ञे प्रजनितवती ॥ २७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ अवजग्मुषी ज्ञातवती ॥ ८ ॥ वंशो वः क इत्यत्रापि संबध्यते ॥ १४ ॥ प्रदेशिन्या तर्जन्या ॥१५॥ राजानं आलिङ्गितुमितिशेषः । नाभ्यनन्दत दूरीकृतवानित्यर्थः ॥ १६ ॥

यदा त्वया वृतो भर्ता वृत एव तदा मया ।
सखी भर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने ॥ २१
पूज्यासि मम मान्या च ज्येष्ठा च ब्राह्मणी ह्यसि ।
त्वत्तोऽपि मे पूज्यतमो राजर्षिः किं न वेत्थ तत् ॥
वैशंपायन उवाच ।
श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम् ।
राजन्नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे कृतं त्वया ॥ २३
सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम् ।
तूर्णं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा २४
अनुवव्राज संभ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन्नृपः ।
न्यवर्तत न चैव स्म क्रोधसंरक्तलोचना ॥ २५
अविब्रुवन्ती किंचित्सा राजानं साश्रुलोचना ।
अचिरादेव संप्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम् ॥२६
सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता ।
अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम् ॥ २७
देवयान्युवाच ।
अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
शर्मिष्ठयाऽतिवृत्ताऽस्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ २८
त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञाऽनेन ययातिना ।
दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते ॥ २९
धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह ।
अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत्कथयामि ते ॥ ३०
शुक्रउवाच ।
धर्मज्ञः सन्महाराज योऽधर्ममकृथाः प्रियम् ।
तस्माज्जरा त्वामचिराद्धर्षयिष्यति दुर्जया ॥ ३१
ययातिरुवाच ।
ऋतुं वै याचमानाया भगवन्नान्यचेतसा ।
दुहितुर्दानवेन्द्रस्य धर्म्यमेतत्कृतम् मया ॥ ३२
ऋतुं वै याचमानाया न ददाति पुमानृतुम् ।
भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन्स इह ब्रह्मवादिभिः ॥ ३३
अभिकामां स्त्रियं यश्च गम्यां रहसि याचितः ।
नोपैति स च धर्मेषु भ्रूणहेत्युच्यते बुधैः ॥ ३४
इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्वह ।
अधर्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान् ॥ ३५
शुक्र उवाच ।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव ।
मिथ्याचारस्य धर्मेषु चौर्यंभवति नाहुष ॥ ३६
वैशंपायन उवाच ।
क्रुद्धेनोशनसा शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा ।
पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत ॥ ३७
ययातिरुवाच ।
अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह ।
प्रसादं कुरु मे ब्रह्मञ्जरेयं न विशेच्च माम् ॥ ३८
शुक्र उवाच ।
नाहं मृषा ब्रवीम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप ।
जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन्संक्रामय यदीच्छसि ३९
ययातिरुवाच ।
राज्यभाक्स भवेद्ब्रह्मन्पुण्यभाक्कीर्तिभाक्तथा ।
यो मे दद्याद्वयः पुत्रस्तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ४०
शुक्र उवाच ।
संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मज ।
मामनुध्याय भावेन न च पापमवाप्स्यसि ॥ ४१
वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति ।
आयुष्मान्कीर्तिमांश्चैव बह्वपत्यस्तथैव च ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि ।
पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः ॥ १
ययातिरुवाच ।
जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने २

---

अधरोत्तरं नीचस्याभिवृद्धिरुत्तमस्य ह्रासः अतिवृत्तास्मि राज्ञः काशादपत्यत्रयाधिगमेनातिक्रान्ता उल्लङ्घिताऽस्मि ॥ २८ ॥ तदेवाह त्रय इति ॥ २९ ॥ अधर्ममेव प्रियं अकृथाः ॥ ३१ ॥ नान्यचेतसा न कामलोभेन ॥ ३२ ॥ 'न काञ्चनपरिहरेत्' इति श्रुतिनिषेधातिक्रमस्याधर्मस्य भयात्संविग्नः अनन्यपूर्विकां गम्यां यां काञ्चन स्त्रियं ऋतुं याचमानां न परिहरेन्नप्रत्याचक्षीतेति श्रुत्यर्थः ॥३५॥ प्रत्यवेक्ष्यः अस्मिन्कर्मणि मदाज्ञाऽपि त्वया प्रार्थनीयेती भावः ॥३६॥ ज्येष्ठस्य राज्याप्रदानजं पापम् ॥४१॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥८३॥

---

जरामिति ॥ १ ॥ वली त्वचः संवलनं पलितानि केशरोम्णां शौक्ल्यम् । पर्यगुः परितः शरीरे गतानि प्राप्तानि यौवने यौवनसाध्ये कामभोगे ॥२॥

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥ ३
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनस्ते यौवनं त्वहम् ।
दत्वा स्वं प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥४

यदुरुवाच ।

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ।
तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीष्य इति मे मतिः ॥ ५
सितश्मश्रुर्निरानन्दो जरया शिथिलीकृतः ।
वलीसंगतगात्रस्तु दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः ॥ ६
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः सयौवतैः ।
सहोपजीविभिश्चैव तां जरां नाभिकामये ॥ ७
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।
जरां ग्रहीतुं धर्मज्ञ तस्मादन्यं वृणीष्व वै ॥ ८

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्मादराज्यभाक्तात प्रजा तव भविष्यति ॥ ९
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक ॥ १०
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् ।
स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ११

तुर्वसुरुवाच ।

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् ।
बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीम् ॥ १२

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्मात्प्रजासमुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥ १३
संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च ।
पिशिताशिषु चान्त्येषु मूढ राजा भविष्यसि १४
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च ।
पशुधर्मेषु पापेषु म्लेच्छेषु त्व भविष्यसि ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः ।
शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६

ययातिरुवाच ।

द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ।
जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं ददस्व च ॥ १७
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् ।
स्वं चाऽदास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह १८

द्रुह्युरुवाच ।

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् ।
वाक्सङ्गश्चास्य भवति तां जरां नाभिकामये १९

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते संपत्स्यते क्वचित् २०
यत्राश्वरथमुख्यानामश्वानां स्याद्गतं न च ।
हस्तिनां पीठकानां च गर्दभानां तथैव च ॥ २१
बस्तानां च गवां चैव शिबिकायास्तथैव च ।
उडुपप्लवसंतारो यत्र नित्यं भविष्यति ।
अराजा भोजशब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः२२

ययातिरुवाच ।

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
एकं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥ २३

अनुरुवाच ।

जीर्णः शिशुवदादत्ते कालेऽन्नमशुचिर्यथा ।
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये २४

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।
जरादोषस्त्वया प्रोक्तस्तस्मात्त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥२५
प्रजाश्च यौवनप्राप्ता विनाशिष्यन्त्यनो तव ।
अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि ॥ २६

ययातिरुवाच ।

पुरो त्वं मे प्रियः पुत्रस्त्वंवरीयान्भविष्यसि ।
जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ॥२७
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ।
पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
कंचित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव ॥ २८
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् ।
स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥२९

---

पाप्मानं भोगसामर्थ्येऽपि तदिन्छाल्पं चितस्य दौस्थ्यं चरेयं भुञ्जीय ॥३॥ दोषा कफाद्याधिक्याद्वमनादयः ॥५॥ दोषानेवाह सितेति ॥६॥ तिर्यग्योनीनामिव गतं प्रकाश मैथुनाद्याचरणं येषा तेषु॥१५॥वाक्संग दन्ताना पतनात् कफादिरुद्धेश्च वाच सङ्ग इव सङ्गः सन्नत्वम् । अव्यक्तत्वमिति यावत् ॥ १९ ॥ पीठकाना राजयोग्याना नरयानविशेषाणा तरवतरावा इति म्लेच्छेषु प्रसिद्धानाम् ॥ २१ ॥ प्रतिलप्स्यसे प्रजा ताश्च विनशिष्यन्तीति द्वयो संबन्ध ॥ २५॥ अग्निप्रस्कन्दनं श्रौतस्मार्ताद्यग्निसाध्यकर्मत्यागस्तत्पर ॥ २६ ॥ वरीयान्स्वभ्रातृभ्यो महान् जरा देहेन्द्रियशक्तिघात. ॥२७॥

वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा ।
यथात्थ मां महाराज तत्करिष्यामि ते वचः॥३०
प्रतिपत्स्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह ।
गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान् ॥ ३१
जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।
यौवनं भवते दत्वा चरिष्यामि यथात्थ माम् ३२
ययातिरुवाच ।
पूरो प्रीतोऽस्मि ते वत्स प्रीतश्चेदं ददामि ते ।
सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥ ३३
एवमुक्त्वा ययातिस्तु स्मृत्वा काव्यं महातपाः ।
संक्रामयामास जरां तदा पूरौ महात्मनि ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः ।
प्रीतियुक्तो नृपश्रेष्ठश्चचार विषयान्प्रियान् ॥ १
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम् ।
धर्माविरुद्धं राजेन्द्र यथाऽर्हति स एव हि ॥ २
देवानतर्पयद्यज्ञैः श्राद्धैस्तद्वत्पितॄनपि ।
दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥३
अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च परिपालनैः ।
आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्संनिग्रहेण च ॥ ४
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन् ।
ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ ५
स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः ।
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥ ६
स संप्राप्य शुभान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः ।
कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः ॥ ७
परिसंख्याय कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान् ।
यौवनं प्राप्य राजर्षिः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ८
विश्वाच्या सहितो रेमे व्यभ्राजन्नन्दने वने ।
अलकायां स कालं तु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे ॥ ९
यदा स पश्यते कालं धर्मात्मा तं महीपतिः ।
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥ १०
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालमरिंदम ।
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ॥ ११
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १२
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् १३
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतःसुखम्
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः ।
तथाप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वभिजायते ॥ १५
तस्मादेनामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यामि मृगैः सह १६
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौऽवनम् ।
राज्यं चेदं गृहाण त्वं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः ॥१७
वैशंपायन उवाच ।
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा ।
यौवनं प्रतिपेदे च पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥ १८
अभिषेक्तुकामं नृपतिं पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥ १९
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो ।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रयच्छसि ॥ २०

---

अञ्जसा आर्जवेन ॥ ३० ॥ यथेप्सिता नित्यस्य यावज्जीवमपीति भावः ॥ ३१ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

---

पौरवेणेति चचार बुभोज ॥ १ ॥ विषयाः दिव्यगन्धादयो गोचरे वशे यस्य सः विषयगोचरः ॥ ६ ॥ परीति । सौरवर्षे हि प्रत्यब्दं पञ्चदिनानि पञ्चदशनाड्यस्त्रिंशत्पलानि एकत्रिंशदक्षराणिवर्धन्ते। सावनैःषष्ट्यधिकशतत्रय दिनात्मकैर्वर्षैरायुर्गण्यतेऽतःकलाःकाष्ठाश्च । 'अष्टादशनिमेषास्तु काष्ठात्रिंशत्तुताः कला, इत्युक्तरूपाः संख्यायेत्युक्तम् ॥ ८ ॥ अलकायां कुबेरपुर्याम् ॥९॥ पश्यते सः कालं कालोऽपि तं ग्रसितुं पश्यतीत्याशयेन कर्मव्यतिहारे 'तङ्' ॥१० ॥ एतदेव ज्ञात्वा पश्चात्तापेनाह । न जात्वित्यादि ॥ १२ ॥ ब्रह्मज्ञानमेवात्यन्तिकतृप्तिहेतुर्न विषयभोग इत्याशयेनाह । तस्मादिति । एनां तृष्णां द्वन्द्वानि शीतोष्णमानापमानसुखदुःखादीनि तद्रहितो निर्द्वन्द्वः । द्वन्द्वकल्पकस्य मानसस्य ब्रह्मणि निधानात् अत एव निर्ममः अहंकारस्यैव ममतामूलस्य त्यागात् ॥१६॥ कनीयसं कनीयांसम् ॥१९॥ नप्तारं दौहित्रम् २०

यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः ।
शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पूरुरेव च ॥ २१
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति ।
एतत्संबोधयामस्त्वां धर्मं त्वं प्रतिपालय ॥ २२
ययातिरुवाच ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ।
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन ॥ २३
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥ २४
मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः ।
स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्तते पितृमातृषु ॥ २५
यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपि च ।
द्रुह्युना चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥ २६
पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितं च विशेषतः ।
कनीयान्मम दायादो धृता येन जरा मम ॥ २७
मम कामः स च कृतः पूरुणा मित्ररूपिणा ।
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ॥२८
पुत्रो यस्त्वाऽनुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः ।
भवतोऽनुनयाम्येवं पूरू राज्येऽभिषिच्यताम्॥२९
प्रकृतय ऊचुः ।
यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि सत्तमः ॥ ३०
अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतः प्रियकृत्तव ।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥ ३१
वैशंपायन उवाच ।
पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ।
अभ्यषिञ्चत्ततः पूरुं राज्ये स्वे सुतमात्मनः ॥ ३२
दत्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः ।
पुरात्स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ॥ ३३
यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः ।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः
पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव ।
इदं वर्षसहस्राणि राज्यं कारयितुं वशी ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ययात्युपाख्याने पूर्वययातसमाप्तौ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
एवं स नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम् ।
राज्येऽभिषिच्य मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः १
उषित्वा च वने वासं ब्राह्मणैः संशितव्रतः ।
फलमूलाशनो दान्तस्ततः स्वर्गमितो गतः ॥ २
स गतः स्वर्निवासं तं निवसन्मुदितः सुखी ।
कालेन नातिमहता पुनः शक्रेण पातितः ॥ ३
निपतन्प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम् ।
स्थित आसीदन्तरिक्षे स तदेति श्रुतं मया ॥ ४
तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतम् ।
राज्ञा वसुमता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान् ॥ ५
प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि ।
जनमेजय उवाच ।
कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः ॥ ६
सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कथ्यमानं त्वया विप्र विप्रर्षिगणसंनिधौ ॥ ७
देवराजसमो ह्यासीद्ययातिः पृथिवीपतिः ।
वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः ॥ ८
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि दिवि चेह च सर्वशः ॥९
वैशंपायन उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमां कथाम् ।
दिवि चेह च पुण्यार्थां सर्वपापप्रणाशिनीम् १०
ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।
राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राज वनं तदा ॥ ११
अन्त्येषु स विनिक्षिप्य पुत्रान्यदुपुरोगमान् ।
फलमूलाशनो राजा वने संन्यवसच्चिरम् ॥ १२
शंसितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन्पितृदेवताः ।
अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन्वानप्रस्थविधानतः ॥ १३

---

नियोगः आज्ञा ॥ २४ ॥ मातेति । अनौरसोऽपि यः पुत्रवद्वर्तते स एव पुत्रो नत्वन्यः ॥ २५ ॥ कारयितुं कर्तुम् ॥ ३५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

एवमिति ॥ १ ॥ अन्त्येषु म्लेच्छेषु ॥ १२ ॥

अतिथीन्पूजयामास वन्येन हविषा विभुः ।
शिलोञ्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः ॥ १४
पूर्णं वर्षसहस्रं च एवं वृत्तिरभून्नृपः ।
अब्भक्षः शरदस्त्रिंशदासीन्नियतवाङ्मनाः ॥ १५

ततश्च वायुभक्षोऽभूत्संवत्सरमतन्द्रितः ।
तथा पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे स वत्सरम् ॥ १६
एकपादः स्थितश्चासीत् षण्मासानानिलाशनः ।
पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामावृत्य रोदसी ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
स्वर्गतः स तु राजेन्द्रो निवसन्देव वेश्मनि ।
पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ॥ १
देवलोकं ब्रह्मलोकं संचरन्पुण्यकृद्वशी ।
अवसत्पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः ॥ २
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागमत् ।
कथान्ते तत्र शक्रेण स पृष्टः पृथिवीपतिः ॥ ३
शक्र उवाच ।
यदा स पूरुस्तव रूपेण राजन्
जरां गृहीत्वा प्रचचार भूमौ ।
तदा च राज्यं संप्रदायैव तस्मै
त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम् ॥ ४
ययातिरुवाच ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव ।
मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्त्याधिपास्तव ५
अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्ट-
स्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।
अमानुषेभ्यो मानुषाश्च प्रधाना
विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः ॥ ६
आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।
अक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ७
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥ ८
अरुन्तुदं परुषं तीक्ष्णवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम् ॥ ९
सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्या-
त्सद्भिस्तथा पृष्ठतो रक्षितः स्यात् ।
सदाऽसतामतिवादांस्तितिक्षे-
त्सतां वृत्तं चाददीतार्यवृत्तः ॥ १०
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य ना मर्मसु ते पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ११

---

शिलोञ्छवृत्ति 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्'। तच्च वने एव न तु नगरे क्षेत्रेषु वा॥१४॥पञ्चाग्नयः चत्वारोऽग्नयः पञ्चमः सूर्यः ॥१६॥ आवृत्य व्याप्य रोदसी द्यावाभूमी पृथिव्यामिव स्वर्गेऽपि मुख्योऽभूदित्यर्थः ॥१७॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

स्वर्गत इति ॥ १ ॥ अन्त्याधिपाः प्रान्त्यदेशाधिपाः ॥ ५ ॥ विद्वत्त्वाभिमानात् किं मया सर्वज्ञस्येन्द्रस्य पुरो वक्तव्यमित्यविमृशन् ययातिराह । अक्रोधन इति । वैशिष्ट्यं पूजातारतम्यार्थमुच्यते । समासमाभ्यां विषमसमे पूजात इति समयोर्विषमां विषमयोः समां च पूजा प्रयुञ्जानस्यापाङ्क्तेयत्वस्मरणात् ॥ ६ ॥ अक्रुश्यमान इति । अस्य आक्रोष्टुः सुकृतं तितिक्षुर्विन्दति न त्वाक्रोशी । प्रत्याक्रोशी तु स्वीयमपि सुकृतं नाशयतीति भावः ॥ ७ ॥ नारुन्तुद इति । कोपेन न नृशंसवादीति वाचा परपीडां न कुर्यादित्युक्तम् । न हीनतः परमभ्याददीतेति हीनेनाभिचारादिकर्मणा परं शत्रुं न वशे कर्तुमिच्छेदिति न मनसापि परपीडां कुर्यादित्युक्तम् । अरुः क्षतं तद्वदत्यन्तं तुदति व्यथयतीति कण्टकवन्न स्यादिति पदार्थः । न नृशंसवादी स्यादित्येतत्सार्धेन प्रपञ्चयति । ययास्येति । उषतीं दहन्तीम् । रुषतीमितिपाठे हिंस्राम् ॥ ८ ॥ विद्यादलक्ष्मीकतममित्येनेन परुषवचसां दर्शनमप्यलक्ष्मीकरत्वात् परिहार्यमित्युक्तम् ॥ ९ ॥ के तर्ह्यनुसर्तव्या इत्यत आह । सद्भिरिति । असतामतिवादान् दुष्टानामतिक्रमवचनानि तितिक्षेत् ॥ १० ॥

न हीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥१२
तस्मात्सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान्संपूजयेद्द्याच्च च याचेत्कदाचन ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

---

इन्द्र उवाच ।
सर्वाणि कर्माणि समाप्य राजन्
गृहं परित्यज्य वनं गतोऽसि ।
तत्त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र
केनाऽसि तुल्यस्तपसा ययाते ॥ १

ययातिरुवाच ।
नाहं देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु महर्षिषु ।
आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित्पश्यामि वासव ॥ २

इन्द्र उवाच ।
यदाऽवमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च
अल्पीयसश्चाविदितप्रभावः ।
तस्माल्लोकास्त्वन्तवन्तस्तवेमे
क्षीणे पुण्ये पतिताऽस्यद्य राजन् ॥ ३

ययातिरुवाच ।
सुरर्षिगन्धर्वनरावमाना-
त्क्षयं गता मे यदि शक्रलोकाः ।
इच्छाम्यहं सुरलोकाद्विहीनः
सतां मध्ये पतितुं देवराज ॥ ४

इन्द्र उवाच ।
सतां सकाशे पतिताऽसि राजं-
श्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धाऽसि भूयः ।
एतद्विदित्वा च पुनर्ययाते
त्वं माऽवमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।
ततः प्रहायामरराजजुष्टान्
पुण्याँल्लोकान्पतमानं ययातिम् ।
संप्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्त-
मुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता ॥ ६

अष्टक उवाच ।
कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः
स्वतेजसा दीप्यमानो यथाऽग्निः ।
पतस्युदीर्णाम्बुधरान्धकारात्
खात्खेचराणां प्रवरो यथाऽर्कः ॥ ७

दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात्पतन्तं
वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम् ।
किं नु स्विदेतत्पततीति सर्वे
वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः ॥ ८

दृष्ट्वा च त्वां धिष्ठितं देवमार्गे
शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम् ।
अभ्युद्गतास्त्वां वयमद्य सर्वे
तत्त्वं प्रपाते तव जिज्ञासमानाः ॥ ९

न चापि त्वां धृष्णुमः प्रष्टुमग्रे
न च त्वमस्मान्पृच्छसि ये वयं स्मः ।
तत्त्वां पृच्छामि स्पृहणीयरूप
कस्य त्वं वा किंनिमित्तं त्वमागाः ॥१०

भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ
त्यजाशु चैवेन्द्रसमप्रभाव ।
त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे
नालं प्रसोढुं बलहाऽपि शक्रः ॥ ११

सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां
सतां सदैवामरराजकल्प ।
ते संगताः स्थावरजङ्गमेशाः
प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु ॥ १२

प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः ।
प्रभुः सूर्यः प्रकाशित्वे सतां चाभ्यागतः प्रभुः १३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

---

न हीदृशमिति । दयादिचतुष्कं संवननं संभजनं परमेश्वरस्याराधनम् ॥ १२ ॥ इति आदि प० नैलकण्ठीये भारत भा० सप्ताशीतिमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

---

किमयं परोपदेशमेव कृतवानुत स्वयमप्यनुद्वेगकरमेव वदतीति परीक्षितुमिन्द्र उवाच । सर्वाणीति ॥ १ ॥ ययातिः स्वोत्कर्षोक्त्या पराभिभवमजानन् यथार्थमेव मत्वाह । नाहमिति ॥ २ ॥ अवमंस्थाः सर्वेभ्य आत्मन आधिक्योक्त्या । सदृशः सदृशान् । अल्पीयस इति । नृगादीनामपि कृकलासादिरूपत्वदर्शनात्तिर्यञ्चोऽपि नावमन्तव्याः । किमुत सदृशो मनुष्याः श्रेयांसो देवा ऋषयश्चेत्यर्थः ॥ ३ ॥ च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धासि भूय इति । इन्द्रेण स्वस्य दयालुत्वं दर्शितम् । यत्र पतित्वा प्रतिष्ठा लब्धासि लप्स्यासि ॥ ५ ॥ आवपने संग्रहे ॥ १३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

ययातिरुवाच ।

अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः
पूरोः पिता सर्वभूतावमानात् ।
प्रभ्रंशितः सुरसिद्धर्षिलोका-
त्परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः ॥ १

अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्य-
स्तेनाभिवादं भवतां न प्रयुञ्जे ।
यो विद्यया तपसा जन्मना वा
वृद्धः स पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥ २

अष्टक उवाच ।

अवादीस्त्वं वयसा यः प्रवृद्धः
स वै राजन्नाभ्यधिकः कथ्यते च ।
यो विद्यया तपसा संप्रवृद्धः
स एव पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥ ३

ययातिरुवाच ।

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहु-
स्तद्वर्ततेऽप्रवणे पापलोक्यम् ।
सन्तोऽसतां नानुवर्तन्ति चैनं
यथा चैषामनुकूलास्तथासन् ॥ ४

अभूद्धनं मे विपुलं गतं त-
द्विचेष्टमानो नाधिगन्ता तदस्मि ।
एवं प्रधार्यात्महिते निविष्टो
यो वर्तते स विजानाति धीरः ॥ ५

महाधनो यो यजते सुयज्ञै-
र्यः सर्वविद्यासु विनीतबुद्धिः ।
वेदानधीत्य तपसा योज्य देहं
दिवं समायात्पुरुषो वीतमोहः ॥ ६

न जातु हृष्येन्महता धनेन
वेदानधीयीतानहंकृतः स्यात् ।
नानाभावा बहवो जीवलोके
दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः ।
तत्तत्प्राप्य न विहन्येत धीरो
दिष्टं बलीय इति मत्वात्मबुद्ध्या ॥ ७

सुखं हि जन्तुर्यदि वाऽपि दुःखं
दैवाधीनं विन्दते नात्मशक्त्या ।
तस्माद्दिष्टं बलवन्मन्यमानो
न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कथंचित् ॥ ८

दुःखैर्न तप्येन्न सुखैः प्रहृष्ये-
त्समेन वर्तेत सदैव धीरः ।
दिष्टं बलीय इति मन्यमानो
न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कथंचित् ॥ ९

भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचि-
त्संतापो मे मानसो नाऽस्ति कश्चित् ।
धाता यथा मां विदधीत लोके
ध्रुवं तथाऽहं भवितेति मत्वा ॥ १०

संस्वेदजा अण्डजा उद्भिदश्च
सरीसृपाः कृमयोऽथाप्सु मत्स्याः ।

---

अहमिति ॥ १ ॥ स्वर्देहित्वेषु नन्वयोगात्तेषां स्तब्धोयमिति धीर्माभूदित्येतदर्थमपनीततपोविद्यागर्वत्वात्स्वयः श्रेष्ठयमेव पुरस्कृत्याह । अहं हि पूर्वो वयसेति ॥ २ ॥ अवादीरित्येतद्दूषणपूर्वकं विद्यातपसोःश्रैष्ठ्ये अष्टकेन स्तुते तत्र स्वानुभूतं विघ्नं दर्शयन्ययातिरुवाच । प्रतिकूलमिति । कर्मणां पुण्यानां प्रतिकूलं नाशकं पापं गर्वरूपमप्रवणेऽनम्रे दर्पवति वर्तते । पापलोक्यं नरकप्रदम् । एतत्पापं असतां संबन्धि सन्तो नानुवर्तन्त इदानीमपि । किंच प्राग्योऽपि सन्तो यथैषां कर्मणामनुकूला उपबृंहकाः स्युस्तथा तेन प्रकारेण दम्भदर्पादिराहित्येन आसन् । अहंत्वतादृशत्वात्स्वर्गादिन्द्रेण च्यावित इत्याशयः ॥ ४ ॥ अभूद्धनं मे विपुलं गतं तदिति । तद्दम्भादिराहित्येन प्रसिद्धं धनं पुण्यं मे मम विपुलं यदभूत्तद्गतं नष्टं दर्पादित्यर्थः । पुनरिदानीं तच्चेष्टमानोऽपि तत्पुनर्नाधिगन्ताऽस्मि । एवं प्रधार्य मामिकां गतिं ज्ञात्वा धीरो धियमीरयन् धीदोषेण कामादिनाऽनभिभूतो भवेदित्यर्थः । ॥ ५ ॥ वीतमोहो मानमकुर्वन् ॥ ६ ॥ एतदेवाह । न जात्विति । धनेन तपसा । नहि त्वमेव पुण्योऽहंकारं कुर्वित्यत आह । नानेति । जीवलोकेऽस्मिन् जीवा नानाभावाः पृथक्स्वभावाः । केचिद्धर्मरताः । केचित्पापरताः । सर्वे दैवाधीनाः । अत एव नष्टा वृथाभूता चेष्टा उद्योगः अधिकारो योग्यता च येषां ते तथा । मूढानां पुण्ये पण्डितानां पापे न प्रवृत्तिकरं दैवमेव बलवदित्यर्थः। एवं विद्वांस्तत्तत्प्राप्य न विहन्येत । तत्तत्सुखं दुःखं वा प्राप्य न विहन्येत हर्षविषादाभ्यामात्मानं न हिंस्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥ एतदेव विवृणोति सुखं हीति द्वाभ्याम् ॥८॥ भयं तु ते व्येतु विषादमोहाविति यदष्टकेनोक्तं तत्रोत्तरमाह भये इति। धाता दिष्टम्॥१०॥ अहमिवान्येऽपि दिष्टाधीना एवेत्याह । संस्वेदजा इति।एतेऽपि दिष्टक्षये पुण्यपापोच्छेदे स्वां प्रकृतिं परं ब्रह्म भजन्ति प्राप्नुवन्ति । आरोहक्रमेण मोक्षयोग्यां योनिं प्राप्येति शेषः यद्वा जाबालोपनिषदि । अविमुक्तं प्रकृत्य । अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवतीति जन्तुपदेन प्राणिमात्रसाधारणेन संस्वेदजा

तथाऽऽत्मानं तृणकाष्ठं च सर्वं
दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ति ॥ ११
अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा
कस्मात्संतापमष्टकाहं भजेयम् ।
किं कुर्यां वै किं च कृत्वा न तप्ये
तस्मात्संतापं वर्जयाम्यप्रमत्तः ॥ १२

वैशंपायन उवाच ।

एवं ब्रुवाणं नृपतिं ययाति-
मथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत् ।
मातामहं सर्वगुणोपपन्नं
तत्र स्थितं स्वर्गलोके यथावत् ॥ १३

अष्टक उवाच ।

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्रप्रधाना-
स्त्वया भुक्ता यं च कालं यथावत् ।
तान्मे राजन्ब्रूहि सर्वान्यथाव-
त्क्षेत्रज्ञवद्भाषसे त्वं हि धर्मान् ॥ १४

ययातिरुवाच ।

राजाऽहमासमिह सार्वभौम-
स्ततो लोकान्महतश्चाजयं वै ।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं
ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १५
ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां
सहस्रद्वारां शतयोजनायताम् ।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं
ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १६
ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं
प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम् ।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं
ततो लोकं परमस्म्यभ्युपेतः ॥ १७
स देवदेवस्य निवेशने च
विहृत्य लोकानवसं यथेष्टम् ।
संपूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तै-
स्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १८
तथावसं नन्दने कामरूपी
संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
सहाप्सरोभिर्विहरन्पुण्यगन्धा-
न्पश्यन्नगान्पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥ १९
तत्र स्थितं मां देवसुखेषु सक्तं
कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम् ।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो
ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ २०
एतावन्मे विदितं राजसिंह
ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात्क्षीणपुण्यः ।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणां
सानुक्रोशाः शोचतां मां नरेन्द्र ॥ २१
अहो कष्टं क्षीणपुण्यो ययातिः
पतत्यसौ पुण्यकृत्पुण्यकीर्तिः ।
तानब्रुवं पतमानस्ततोऽहं
सतां मध्ये निपतेयं कथं नु ॥ २२
तैराख्याता भवतां यज्ञभूमिः
समीक्ष्य चेमां त्वरितमुपागतोऽस्मि ।
हविर्गन्धं देशिकं यज्ञभूमे-
र्धूमापाङ्गं प्रतिगृह्य प्रतीतः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

---

दीनामपि साक्षाद्वाराणस्यां मोक्षाधिकारदर्शनात् । आथर्वणे रामतापनीये मणिकर्णिकायां वा क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनरित्युपक्रम्य कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथेति जन्तुमात्रविषयत्वाच्चास्तु साक्षादेव स्वेदजादीनामपि दिष्टक्षयस्तेन मोक्षयोग्यां योनिं प्राप्येत्यध्याहारदोषोऽप्यपास्तः । अत्राप्याश्वमेधिके संवर्तमरुत्तीये एतद्दर्शितम् । उन्मत्तवेषं बिभ्रच्च चंक्रमीति यथासुखम् । 'वाराणस्यां महाराज दर्शनेप्सुर्महेश्वरम् । तस्या द्वारं समासाद्य न्यसेथाः कुणपं क्वचित् । तं दृष्ट्वा यो निवर्तेत स संवर्तो महीपते' । इति कुणपदर्शनेन महेश्वरदर्शनमिति सूचयता वाक्यजातेन ॥ ११ ॥ अहं तु दिष्टक्षयाभावात्प्राप्तेऽपि दुःखेन तप्ये इत्याह अनित्यतामिति ॥१२॥ मातामहमिति । तत्र स्थितमन्तरिक्षे स्थितम् ॥१३॥ तानिति । क्षेत्रज्ञवत् क्षेत्रं महाभूतादि तत्स्थं तं तज्जानन्तो नारदादयः क्षेत्रज्ञास्तद्वत् ॥ १४ ॥ तैरिति । देशिकं उपदेष्टारम् । धूम एवापाङ्ग इव सूचको यस्य तं धूमापाङ्गं प्रतीतः हृष्टः ॥ २३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अष्टक उवाच ।

यदाऽवसो नन्दने कामरूपी
संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान
हित्वा च त्वं वसुधामन्वपद्यः ॥ १

ययातिरुवाच ।

ज्ञातिः सुहृत्स्वजनो वा यथेह
क्षीणे वित्ते त्यजते मानवैर्हि ।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं
त्यजन्ति सद्यः सेश्वरा देवसङ्घाः ॥ २

अष्टक उवाच ।

तस्मिन्कथं क्षीणपुण्या भवन्ति
संमुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।
किं वा विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति
तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे ॥ ३

ययातिरुवाच ।

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति
लालप्यमाना नरदेव सर्वे ।
ये कङ्कगोमायुबलाशनार्थे
क्षीणा विवृद्धिं बहुधा व्रजन्ति ॥ ४

तस्मादेतद्वर्जनीयं नरेन्द्र
दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेत-
द्भूयश्चेदानीं वद किं ते वदामि ॥ ५

अष्टक उवाच ।

यदा तु तान्वितुदन्ते वयांसि
तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति
न भौममन्यं नरकं शृणोमि ॥ ६

ययातिरुवाच ।

ऊर्ध्वं देहात्कर्मणा जृम्भमाणा
व्यक्तं पृथिव्यामनुसंचरन्ति ।
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति
नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥ ७

षष्टिं सहस्राणि पतन्ति व्योम्नि
तथा अशीतिं परिवत्सराणि ।
तान्वै तुदन्ति पततः प्रपातं
भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ॥ ८

अष्टक उवाच ।

यदेनसस्ते पततस्तुदन्ति
भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति
कथं भूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ९

---

यदेति । कार्तयुगप्रधान । कृतयुगे भवाः कार्तयुगाः । अत्यन्तनिष्पापास्तेषां मुख्यतमेत्यर्थः ॥ १ ॥ तस्मिन्निति । मे मम । अपामसोमममृता अभूमेति कर्मफलस्य नित्यत्वं श्रुतवतः । अत्र पातविषये मनः संमुह्यत इत्येकः प्रश्नः । 'न च पुनरावर्तते' इति प्रजापतिलोकादनावृत्तिः श्रुता । त्वया तु प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापमिति तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रमिति न ततोऽपि स्वस्यावृत्तिरुदिता । तत्र कस्य प्रजापतेः किं धामविशिष्टा अनावृत्तियोग्या उपयान्तीत्यन्यः प्रश्नः।तत्राद्यस्योत्तरं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंहेत्यन्तम् । शेषग्रन्थो द्वितीयस्येति विभागः ॥ ३ ॥ इमं भौममिति । भूमिरेव भौमो नरकः आध्यात्मादितापत्रयवत्त्वात्तं पतन्ति प्राप्नुवन्ति । इमं प्राप्ताश्च ते बहुधा पुत्रपौत्रादिरूपेण विविधवासनामूलेन विवृद्धिं विषमां वृद्धिं लभन्ते । बहुप्रजानिर्ऋतिमाविवेशेति श्रुतेः । कालपाशमेव द्रढयन्तीत्यर्थः । ते के ये कङ्केति गृध्रादेरुपलक्षणम् । गोमायु इति श्वादेः । तेषां बलं संघस्तस्याशनं भक्ष्यं शरीरं तस्यार्थे क्षीणाः । दिव्येन भौमेन वा देहेन भोगान्भोक्तुं कृतश्रमा इत्यर्थः॥४॥ तस्मादेतत्काम्यकर्म दुष्टं निषिद्धं गर्हणीयं आभिचारिकं च वर्जनीयम् ॥ ५ ॥ ननु कङ्कादिभक्षितस्य कथं स्वरूपसत्ता कथं वा शरीरान्तरेणाविर्भवन्ति इति देहान्तरस्याभावादाक्षिप्य शङ्कते । भौमो नरकश्च क इति पृच्छति च । यदा तु तानीति ॥ ६ ॥ उत्तरमाह । ऊर्ध्वमिति । न देहनाशेनात्मनाशः । कृतनाशादिप्रसङ्गात् । किं तु 'योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्' । इति श्रुतेर्निमित्तभूतेन कर्मणा मातुरुदरे जृम्भमाणं देहं प्राप्य निर्गमादूर्ध्वं व्यक्तं सर्वलोकप्रत्यक्षं यथास्यात्तथा पृथिव्यां संचरन्ति । तदेव संचरणं भौमो नरकः । कुतोऽस्य नरकत्वमत आह । नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् यस्मादत्र पतिता गतं वयो न बुध्यन्ते कर्मभूमिं प्राप्ताऽपि स्वहिताय न यतन्तेऽतोऽतिमोहप्रदोऽयं लोको नरक एवेत्यर्थः । एतेन कङ्कादिभक्षितस्यापि सत्त्वं देहयोगश्चास्तीत्युक्तम् ॥ ७ ॥ स्वर्गतस्यापि पुनः पातावश्यंभावादयं लोको दुष्परिहर इत्याह । षष्टिं सहस्राणीति षष्टिं सहस्राणि । अशीतिं च सहस्राणि परिवत्सराणि व्योम्नि स्वर्गे स्थित्वा पतन्तीति योजना । रक्ष रक्षेति वदन्तो दारादयो भीमा राक्षसाः ॥ ८ ॥ स्वर्गच्युतिप्रकारं पृच्छति । यदेनसस्ते पततस्तुदन्ति । यत् यान् । एनसः पापाद्धेतोः पततः स्वर्गाच्च्यवमानान् । ते राक्षसास्तुदन्ति । ते पुरुषाः कथं भवन्ति प्रपातभ्रष्टा इव कथं न शीर्यन्ते ।

यथातिरुवाच ।

अस्रं रेतः पुष्पफलानुपृक्त-
मन्वेति तद्वै पुरुषेण सृष्टम् ।
स वै तस्या रज आपद्यते वै
स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥ १०

वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति
अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदं चातिसर्व-
मेवंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ११

अष्टक उवाच ।

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भ-
मुताहोस्वित्स्वेन कायेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमेता-
माचक्ष्व मे संशयात्प्रब्रवीमि ॥ १२

शरीरभेदादिसमुच्छ्रयं च
चक्षुःश्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत्तत्त्वं सर्वमाचक्ष्व पृष्टः
क्षेत्रज्ञं त्वां तात मन्याम सर्वे ॥ १३

ययातिरुवाच ।

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनि-
मृतौ रेतः पुष्परसानुपृक्तम् ।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः
क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम् ॥ १४

---

कथं वा आभवन्ति । इन्द्रियादिमन्तो भवन्ति । कथं वा गर्भत्वं प्राप्नुवन्तीति प्रश्नत्रयम् ॥ ९ ॥ 'तत्र यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते ' इति श्रुत्यनुसार्युत्तरम् । अस्रं रेत इति । अस्रशब्दो दुःखाश्रुवाचीसन् 'आपः पुरुषवचसो भवन्ति' इति श्रुतेर्देहारम्भकेष्वबहुलेषु भूतसूक्ष्मेषु वर्तते । स्वर्गाच्च्याव्यमानस्य दुःखाज्जलमयं शरीरं भवतीति युज्यते च । तत् अस्रमेव रेतो देहबीजं पुष्पफलस्थानीयेन चरणाख्येन कर्मशेषेणानुपृक्तं रमणीयचरणा रमणीयां योनिमापद्यन्ते ' इति श्रुतेरन्वेति अनुसरति जीवः । तज्जलानुगमस्रं पुरुषेण रेतः सिचा सृष्टं संसृष्टं भवति स भूतसूक्ष्मावृतो जीवो रेतोभावं प्राप्तः संस्तस्याः स्त्रियो रजोगर्भपेशीतामापद्यते प्राप्नोति ततो गर्भभूतो भवति ॥१०॥ कथमस्रं रेतः सिचा संसृज्यते तदाह । वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति । ओषधिषु संसृष्टमस्रं तद्भुजि संसृज्यत इत्यर्थः । ओषधिसंसर्गोप्यस्रस्य पृथिव्यम्बुवाय्वन्तरिक्षक्रमेणोदाहृतश्रुतेरित्यर्थः । आपो वायुं पृथिवीमन्तरिक्षमित्यत्र पृथिवी अद्भ्यः पूर्वं बोध्या । वाय्वम्बुनोर्मध्ये धूमाभ्रमेघा अपि बोध्याः उदाहृतश्रुतेरेव । एवमोषधिभूताः सन्तो द्विपदं मनुष्यशकुन्तादिचतुष्पदं पश्वादि चाविश्येति शेषः । ततो गर्भभूता भवन्ति ॥११॥ एवं यदेनसस्ते पतत इति श्लोकेन कृतस्य प्रश्नत्रयस्य उत्तरमुक्तम् । तेनैव स्थूलदेहाद्विवेचितं जीवं सूक्ष्मादपि विवेक्तुं प्रश्नमवतारयति । अन्यद्वपुरिति । नरयोनिमापद्यमानो जीवः स्वेन कायेन जैवेनैव रूपेण गर्भे मातुरुदरं याति उत तत्र प्रवेष्टुं अन्यद्वपुरुपाधिभूतं विदधाति ॥ १२ ॥ शरीरेति । अन्यजन्मानङ्गीकारे शरीराविशेषं करणानि संज्ञा च नायं लभेत् । मलपिण्डवत् । अङ्गीकारे च तेषां स्वाभाविकत्वात् । उपाधिसंतत्यविच्छेदाद्वा नित्यसंसारित्वं स्यात ॥१३॥तदेतदनाद्ये कोपाधिस्वीकारेण परिहरति । वायुः समुत्कर्षतीति । वायुर्व्यष्टिलिङ्गम् । 'वायुर्वै गौतमतत्सूत्रं वायुरेव व्यष्टिर्वायुःसमष्टिः' इति श्रुतिभ्याम् 'पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् । अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्' इत्युक्तरूपं तत्कर्तृ । गर्भस्थानं मुख्यव र्मभूतम् । ऋतौ स्त्रीरजसि रेतः पूर्वोक्तम् । पुष्परसेन पुष्पं कर्मफलोत्पादकत्वसाम्यात्तस्य रसोऽपूर्वं तेनानुपृक्तं गौणकर्म समुत्कर्षति । 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः' इति स्मृतेः । 'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' इति श्रुतेश्च । सोमाज्यपय आदिरूपाः । कर्मसमवायिनीर्देहान्तरारम्भिका आपो रेतोरूपा गृहीत्वा लिङ्गोपाधिर्जीवो गर्भाशयं विशतीत्यर्थः । अन्यथा ऋतौ सिक्तमपि रेतः पूयेन्न संभवेत् न स्थिरीभवेच्च । स वायुः तत्र गर्भाशये तन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि तैः उपादानभूतैः कृतः अधिकारो यावदपवर्गमवस्थानं यस्य स तन्मात्रकृताधिकारः । एवंभूतो वायुः क्रमेण गर्भं वर्धयति । यथाहुर्नैरुक्ताः । 'शुक्रातिरेके पुमान् भवति । शोणितातिरेके स्त्री भवति । द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति । शुक्रभिन्नेन यमो भवति । एकरात्रोषितं कललं भवति । पञ्चरात्राद्बुद्बुदाः । सप्तरात्रात्पेशी । द्विःसप्तरात्रादर्बुदः । पञ्चविंशतिरात्रः स्वस्थितो घनो भवति । मासमात्रात्कठिनो भवति । द्विमासाभ्यन्तरे शिरः संपद्यते । मासत्रयेण ग्रीवाव्यादेशः । मासचतुष्टयेन त्वग्व्यादेशः । पञ्चमे मासे नखरोमव्यादेशः । षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोत्रं च संभवति । सप्तमे चलनसमर्थो भवति । अष्टमे बुध्याऽध्यवस्यति । नवमे सर्वाङ्गसंपूर्णो भवति' । 'मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः' इत्यादि जातश्च वायुना स्पृष्टस्तन्न स्मरति जन्ममरणमन्ते च शुभाशुभं कर्मेत्यन्तेन ग्रन्थेन ॥ १४॥

स जायमानो विगृहीतमात्रः
संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः ।
स श्रोताभ्यां वेदयतीह शब्दं
स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥ १५
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाऽथो रसं च
त्वचा स्पर्शं मनसा वेद भावम् ।
इत्यष्टकेहोपहितं हि विद्धि
महात्मनां प्राणभृतां शरीरे ॥ १६

अष्टक उवाच ।

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा
निखन्यते वाऽपि निकृष्यते वा ।
अभावभूतः स विनाशमेत्य
केनात्मना चेतयते परस्तात् ॥ १७

ययातिरुवाच ।

हित्वा सोऽसून्सुप्तवन्निष्टनित्वा
पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं वा ।
अन्यां योनिं पवनाग्रानुसारी
हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥ १८
पुण्यां योनिं पुण्यकृतो व्रजन्ति
पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति ।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापा
न मे विवक्षाऽस्ति महानुभाव ॥ १९
चतुष्पदा द्विपदाः षट्पदाश्च
तथाभूता गर्भभूता भवन्ति ।
आख्यातमेतन्निखिलेन सर्वं
भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥ २०

अष्टक उवाच ।

किंस्वित्कृत्वा लभते तात लोका-
न्मर्त्यः श्रेष्ठांस्तपसा विद्यया वा ।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथाव-
च्छुभाँल्लोकान्येन गच्छेत्क्रमेण ॥ २१

ययातिरुवाच ।

तपश्च दानं च शमो दमश्च
ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा ।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो
द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम् ।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः
पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥ २२

स इति युग्मम् । स गर्भो जायमानो वर्धमानः। विगृहीतमात्रः विग्रहेण सर्वाङ्गकलापेन संपन्नमात्रः संज्ञां प्राग्भवीयां वासनामधिष्ठायानुसंधाय ततो जातः सन् योनेर्बहिर्निःसरणान्मनुष्योऽहमित्यभिमानवान्भवति। एवंभूतस्य प्राणभृतो जीवस्य प्राणाख्यं लिङ्गं शरीरे स्थूले उपहितं उपाधिं विद्धि । स्वतस्तु महात्मनः विभोः किं तदुपहितं येन श्रोत्रादिरूपेण शब्दादीन्विषयान् जानीत इति-द्वयोः श्लोकयोरन्वयः ॥१५॥१६॥ तन्मात्रकृताधिकार इति लिङ्गस्य यावन्मोक्षस्थायित्वमुक्तं तदाक्षिपति । यः संस्थित इति । संस्थितो मृतः । स्थूलदेहदाहेनैव लिङ्गदेहदाहः कुतो न भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ स्वप्नवद्देहान्तरप्राप्तौ सत्यां नायं दोषः संभवतीत्याह । हित्वा सोऽसून्सुप्तवन्निष्टनित्वा सःसंस्थितः असून्प्राणान् हित्वा धारयित्वा गृहीत्वेत्यर्थः।धावः त्वाप्रत्यये परे दधातेर्हिरिति हि भावः । 'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति। प्राणमनूत्क्रामंतं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति'इत्यसुसंहितस्यैव लोकान्तरप्राप्तिश्रुतेः। निष्टनित्वा शब्दं कृत्वा । सुप्तवत् स्वप्नवदन्यां योनिं देहं भजते । हित्वा त्यक्त्वा देहं स्थूलम् ॥ १८ ॥ पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं वेत्युक्तं तद्विभजते । पुण्यां योनिमिति । आरोहे ।' अन्यं नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वा'इति श्रुतेः। पित्र्याद्यन्यतमां योनिम् अवरोहे तु 'रमणीयचरणा अभ्याशोहयत्तेरमणीयां योनिं प्रपद्यन्ते ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा' इति । पुण्यां योनिं भजन्ति । एवं पापामपि । 'पापकृतो नारकीं योनिं भुक्त्वा कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा'इति श्रुतेः।पापां योनिं भजन्ति। कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापाः पापिकस्वभावाः । अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानमिति श्रुतेः । कीटादियोनिं असकृद्व्रजन्ति । अत एव योनिसंचारस्य दुःखबहुलत्वान्न मे विवक्षास्ति 'महानुभावजायामेस्यादथ प्रजायेय वित्तं मेस्यादथ कर्म कुर्वीय'इति श्रूयमाण जायादिभारं वोढुमिच्छा मम नास्ति।किं तु भूमिं प्राप्य नैष्कर्म्यमेव साधयिष्यामीतिभावः ॥ १९ ॥ एवं स्थूलात्सूक्ष्माच्च देहाद्विवेचितस्य देहिनस्तत्संबन्धादुत्क्रान्तिगत्यागतयो दर्शिताः । आगतेश्च न मे विविक्षास्तीति तुच्छत्वं चोक्तम् । अतुच्छस्थानप्रापकमुपायं पृच्छति । किं स्विदिति। श्रेष्ठान् आवृत्तिशून्यान् । तपसा कर्मणा विद्यया उपास्त्या वा ॥ २१ ॥ उत्तरमाह सार्धेन । तपश्च दानं चेति । नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंस इति । तप आदयः सप्तस्वर्गस्य द्वारभूता अपि पुंसः पुरुषस्य मानेन अहमेव श्रेष्ठः कर्ता इत्यभिमानेन नश्यन्ति । यतस्ते तमोभिभूताः मानरूपेण तमसाऽभिभूता षण्ढीकृताः ॥ २२ ॥

अधीयानः पण्डितं मन्यमानो
यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम् ।
तस्यान्तवन्तश्च भवन्ति लोका
न चास्य तद्ब्रह्म फलं ददाति ॥ २३
चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ २४
न मानमान्यो मुदमाददीत
न संतापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके
नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते ॥ २५
इति दद्यामिति यज इत्यधीय इति व्रतम् ।
इत्येतानि भयान्याहुस्तानि वर्ज्यानि सर्वशः ॥२६
ये चाश्रयं वेदयन्ते पुराणं
मनीषिणो मानसमार्गरुद्धम् ।
तद्वः श्रेयस्तेन संयोगमेत्य
परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

---

अष्टक उवाच ।
चरन्गृहस्थः कथमेति धर्मा-
न्कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा ।
वानप्रस्थः सत्पथे संनिविष्टो
बहून्यस्मिन्संप्रति वेदयन्ति ॥ १
ययातिरुवाच ।
आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्यः
*पूर्वोत्थायी चरमं चोपशायी ।*
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः
स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी ॥ २
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत
दद्यात्सदैवातिथीन्भोजयेच्च ।
अनाददानश्च परैरदत्तं
सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ॥ ३
स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो
दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां
वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ॥ ४
*अशिल्पजीवी गुणवांश्चैव नित्यं*
जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रयुक्तः ।
अनोकशायी लघुरल्पप्रचार-
श्चरन्देशानेकचरः स भिक्षुः ॥ ५

---

दर्पवता कृतमध्ययनादि न मोक्षोपयोगिनापि स्वर्गदं प्रत्युत भयावहमित्याह द्वाभ्याम्। अधीयान इति॥२३॥चत्वारीत्यत्र अधीतं ब्रह्मचारिणो धर्मः। मौनं यतेः । यज्ञाग्निहोत्रे इतरयोर्द्वयोरपि साधारणे ॥ २४ ॥ अतो मानापमानादिद्वन्द्वसहिष्णुर्भवेदित्याह । न मानमान्य इति ॥ २५ ॥ इति दद्यामिति दाम्भिकस्य स्वधर्मप्रकाशनाभिनयः । अतस्तप आदिदम्भविवर्जितं चेन्मोक्षद्वारं नान्यथेत्यर्थः ॥ २६ ॥ तपसा विद्यया वेति तपो विद्ययोः कतरदात्यन्तिकशान्त्यस्थानं प्रापकमिति पृष्टे तपसस्तन्नारादुपकारकत्वमुक्त्वा विद्यायाः साक्षादेव तत्प्रापकत्वमाह । ये चेति । मनीषिणो मनोनिग्रहशीलस्य प्रमातुः आश्रयं स्वाध्यासाधिष्ठानम् । पुराणं पुरापि नवम् । कूटस्थकार्यकारणवद्विकारे न भवतीत्यर्थः । मानसस्य मार्गः परानप्रावण्यं तेन रुद्धमावृतं यद्वस्तु ये विद्वांसो वेदयन्ते विदन्ति । स्वार्थे णिच् । तमेवैकं जानथ आत्मानं न चेदवेदीमहतीविनष्टिः । निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्याद्यागमेनानुमानानुभवाभ्यां च जानन्ति । तद्वस्तु वो युष्माकं श्रेयः यस्मात्ते ब्रह्मणा संयोगमेत्य ऐक्यं प्राप्य परां शान्तिं कैवल्यं प्राप्नुयुस्ते इह जीवत्येव देहे । प्रेत्य देहाभिमानादुत्थाय । तथा च श्रुतिः । 'शरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' इति ॥२७॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भा०भाव०नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

---

चरन्निति । अस्मिन्धर्मे विषये बहूनि प्रसिद्धानि वेदयन्ति वैदिकाः ॥ १ ॥ चत्वारि कर्माण्यभयंकराणीत्याश्रमकर्मणामभयंकरत्वमुक्तं तदेव विस्तरेणाह । आहूताध्यायीत्यादिना ॥ २ ॥ अनोकशायी शून्यागारदेवालयकुलालशालादौ गृहस्थागारभिन्ने स्थाने शयीत । ओक इति सलोप आर्षः । लघुः परिग्रहशून्यः ॥ ५ ॥ 'यदहरेव

रात्र्या यया वाऽभिजिताश्च लोका
भवन्ति कामाभिजिताः सुखाश्च ।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वा-
नरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ॥ ६
दशैव पूर्वान्दश चापरांश्च
ज्ञातीनथात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृते दधाति
विमुच्यारण्ये स्वशरीरधातून् ॥ ७
अष्टक उवाच ।
कतिस्विदेवमुनयः कति मौनानि चाप्युत ।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ८
ययातिरुवाच ।
अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप ९
अष्टक उवाच ।
कथंस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ॥ १०

ययातिरुवाच ।
न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् ।
तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ॥ ११
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः ।
कौपीनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च चीवरम् ॥ १२
यावत्प्राणाभिसंधानं तावदिच्छेच्च भोजनम् ।
तथाऽस्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः ॥ १३
यस्तु कामान्परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः ।
आतिष्ठेच्च मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १४
धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलंकृतम् ।
असितं सितकर्माणं कस्तमर्हति नार्चितुम् ॥ १५
तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः ।
स च लोकमिमं जित्वा लोकं विजयते परम् १६
यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः ।
अथ लोकमिमं जित्वा लोकं विजयते परम् ॥ १७
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।
अथास्य लोकः सर्वोऽयं सोऽमृतत्वाय कल्पते १८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इति श्रुत्युक्तं परिग्रहत्यागकालमाह । रात्र्येति । लोक्यंत इति लोकाः शब्दाद्या विषयाः यथैव रात्र्या यदैव अभिजितास्तुच्छीकृताः । सुखाः सुखावहा अपि कामाभिजिताः वशवर्तिनोऽपि तामेव रात्रिं तदैव सर्वपरिग्रहं संन्यस्यारण्यसंस्थः । 'अथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदरश्चहैवण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि' इति श्रुतिप्रसिद्धां ब्रह्मनिष्ठां कर्तुं यतेतेत्यर्थः ॥ ६ ॥ अरण्यवासी हार्दब्रह्मनिष्ठः तत्रैव हार्दशरीरधातून् स्थूलसूक्ष्मभूतरूपान् । विमुच्य प्रविलाप्य । तमपि हार्दम् । सुकृते निष्कले ब्रह्मणि'तस्मात्तत्सुकृतमुच्यते' इति श्रुतिप्रसिद्धे चिदेकरसे दधाति प्रविलापयति ॥ ७ ॥ सर्वेष्वाश्रमेषु सिद्धिरस्तीत्युक्तं रात्र्याययेति संन्यासे चात्यादरोदर्शितस्तत्किं तत्रैव मोक्षोस्त्युताश्रमान्तरेष्वपीति संशयानः पृच्छति कतीति । मोक्षिणः । मौनानि मुनयो मोक्षमार्गाः ॥८॥ योगी ज्ञानी चेति द्वौ मुनी इत्याह । अरण्य इति । अरण्ये वसतोन्तर्निष्ठस्य योगिनः ग्रामो बाह्यं वस्तु पृष्ठतः समीपत एव भवति । योगप्रभावात्सर्वमस्यास्तीत्यर्थः । ग्रामे लोके वसतो मायापुरदर्शिन इव द्विचन्द्रन्यायेन तद्बाधेनाधिष्ठानदृष्टिर्नित्यमप्रमुषितास्तीत्यर्थः ॥ ९ ॥ द्वयमप्येतदाश्चर्यमिति मत्वा पृच्छति । कथमिति ॥ १० ॥ आद्यं तीव्रवैराग्यपूर्वकं योगमभ्यस्यतः सुलभमित्याह न ग्राम्यमिति ॥ ११ ॥ द्वितीयं विवेकिनः संन्यासिनः सुलभमित्याह । अनग्निरनिकेत इति । अनग्निः संन्यासी । अनिकेतः कुटीचकव्यावृत्तः परमहंसः । अत एव अगोत्रचरणः गोत्रं जन्मवंशः चरणं विद्यावंशः । तद्व्यपदेशशून्याः कौपीनेति स्पष्टार्थः ॥ १२ ॥ एवं प्रकारेण ग्रामेऽपि वसतो विवेकिनोऽरण्यमेव समीपेऽस्तीत्याह । तथास्येति । त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियो मौनं योगविवेकान्यतरदभ्यस्यन् सिध्यतीत्याह । यस्त्विति ॥ १४ ॥ धौतदन्तं शुद्धाहारम् । 'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः'इति श्रुतेस्तदपेक्षणात् । कृत्तनखं त्यक्तहिंसासाधनम् । अत एव सदा स्नातं नित्यं शुद्धचित्तम् । अलंकृतं योगैश्वर्येण शमादिना च । असितं वासनाबन्धशून्यम् । सितकर्माणं हिंसायुक्तम् धर्ममपि त्यजन्तम् । 'यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः' इति श्रुतेः । सर्वोऽपि तमर्चितुमर्हतीति ॥१५॥ मन्दाधिकारिणा कामादिजयाय तपोऽपि कर्तव्यमित्याह । तपसेति । इमं वैराग्येण जित्वा तुच्छं कृतं परं स्वर्गं विजयते प्राप्नोति ॥ १६ ॥ मध्यमं प्रति प्राह यदा तु निर्द्वन्द्वः सुखदुःखमानापमानादिद्वन्द्वदुःखरहितः । मौनं समास्थितो ध्यानमनुतिष्ठन् । इमं लोकं जित्वा प्रविलाप्य परं लोकं ब्रह्म विजयते प्राप्नोति ॥ १७ ॥ उत्तमं प्रतिप्राह । आस्येनेति । मुखेनैवाहारं मृगयते नतु रसे सज्जते । एवं सुबालस्तनपानवत् विषयान्गृह्णन्नपि गृह्णाति । प्रत्यङ्मात्र निष्ठत्वात् । सचक्षुरचक्षुरिवेत्यादिश्रुतेः ।'अथास्य लोकः सर्वोऽयमात्मा भवति सर्वस्यात्मा भवति सर्वमस्यात्मा भवति' इतिश्रुतेः। अतः सोमृतत्वाय कल्पते ॥१८॥ एकनवतितमोऽध्यायः ९१

अष्टक उवाच ।

कतरस्त्वनयोः पूर्वं देवानामेति सात्मताम् ।
उभयोर्धावतो राजन्सूर्याचन्द्रमसोरिव ॥ १

ययातिरुवाच ।

अनिकेतो गृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः ।
ग्राम एव वसन्भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः ॥ २
अप्राप्य दीर्घमायुस्तु यः प्राप्तो विकृतिं चरेत् ।
तप्यते यदि तत्कृत्वा चरेत्सोऽन्यत्तपस्ततः ॥ ३
पापानां कर्मणां नित्यं बिभ्येद्यस्तु मानवः ।
सुखमप्याचरन्नित्यं सोऽत्यन्तं सुखमेधते ॥ ४

तद्वै नृशंसं तदसत्यमाहु-
र्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः ।
अर्थोप्यनीशस्य तथैव राजं-
स्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम् ॥ ५

अष्टक उवाच ।

केनासि दूतः प्रहितोऽसि राज-
न्युवा स्रग्वी दर्शनीयः सुवर्चाः ।
कुत आयातः कतरस्यां दिशि त्व-
मुताहोस्वित्पार्थिवं स्थानमस्ति ॥ ६

ययातिरुवाच ।

इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः
प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद्विप्रहीणः ।
उक्त्वाऽहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरं
त्वरन्ति मां लोकपा ब्रह्मणो ये ॥ ७
सतां सकाशे तु वृतः प्रपात-
स्ते संगता गुणवन्तस्तु सर्वे ।
शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैषः
पतिष्यता भूमितलं नरेन्द्र ॥ ८

अष्टक उवाच ।

पृच्छामि त्वां मा प्रपत प्रपातं
यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि स्थिताः
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ९

ययातिरुवाच ।

यावत्पृथिव्यां विहितं गवाश्वं
सहारण्यैः पशुभिः पार्वतैश्च ।
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै
तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह ॥ १०

---

कतर इति एतयोर्योगिज्ञानिनोर्मध्ये देवाना सात्मता ब्रह्मप्राप्तिं आत्मा ह्येषा स भवतीति श्रुते । एषा देवाना स विद्वानिति श्रुतिपदयोरर्थ । धावतो यतमानयो क पूर्वं कृतकृत्यो भवतीत्यर्थ. ॥ १ ॥ उत्तरं अनिकेत इति । संयत धारणाध्यानसमाधिमान् । अनिकेतो भिक्षुर्गृहस्थो वा योगी मुच्यत इति पूर्वार्धार्थे. । ज्ञानी पूर्वोक्तरूपस्तु सद्यो मुच्यत इत्युत्तरार्धार्थ । अयं भाव । ज्ञानिन श्रुतियुक्तिभ्या जगन्मिथ्यात्वनिश्चयात् । क्षणिकेनापि निर्विकल्पसाक्षात्कारेण ब्रह्माद्वैतनिश्चयो भवति । योगिनस्तु तदभावान्निर्विकल्पसमाध्यभासबलेनैव द्वैतविस्मरणं संपादनीयमिति विलम्बाच्छ्रमसाध्यामुक्तिरिति । गृहस्थेषु वसन्नपि स्वयं संयत ॥ २ ॥ अस्यैवमस्मिन् जन्मन्यलब्धोत्तमभूमेर्जन्मान्तरेपि तल्लाभोस्तीत्याह । अप्राप्येति । आयु साधनं कालं वा । दीर्घं उक्तविधनिष्ठापर्याप्तम् । विकृतिं दिव्यादिव्यविषयभोगं योगसिद्धिबलेन चरेत् । सोऽपि सौभर्यादिवत्पश्चात्तापं प्राप्तसन्पुनर्योगं चरति इह जन्मनि जन्मान्तरे वा योगभ्रष्ट स्मृतिप्रामाण्यादित्यर्थ ॥ ३ ॥ ज्ञानिनस्तत आधिक्यमाह पापानामिति । यस्तु मानवो ज्ञानी नित्यं अविनाशिवस्तु ब्रह्माख्यं बिभृयात्तत्त्वमसीति शास्त्रात्प्रत्यगात्मत्वेनावधारयेत् । सपापाना कर्मणाम् । कर्माणि षष्ठी । तानि सुखं यथष्टं आचरन्नपि मुच्यत एवेत्यर्थ. । न लिप्यते कर्मणा पापकेन हत्वापि स इमाँल्लोकान्नहन्ति न निबद्धयत इत्यादि शास्त्रात् ॥ ४ ॥ इदं पदमप्राप्तो मोक्षेच्छया धर्ममेवसेवेतेत्याह । तद्वा इति । य पुरुषोऽनर्थबुद्धि नास्ति अर्थे मोक्षे बुद्धिर्यस्य स तथाभूत सन् । स्वर्गाद्यर्थं धर्मं सेवते । तत्सेवनं नृशंसं असत्यं च मुमुक्षाहीनत्वादनित्यफलत्वाच्च । विविदिषन्ति यज्ञेन दानेनेत्यादि श्रुतिसिद्धं धर्मस्य मोक्षहेतुत्वं परित्यज्य काम्यधर्मकृत आत्मानं नानादुःखमये संसारे पातयित्वा घ्नन्तीत्यर्थ । एवमनीशस्याजितेन्द्रियस्यार्थो धनमपि नृशंसमसत्यं च । यत्तु मोक्षार्थं कर्मकरणं तदार्जवं कर्मणामुचितं फलम् । तदेव समाधि योगसिद्धिमूलम् । तदार्यं तदेव गम्यं प्राप्यं ज्ञानसाधनामित्यर्थ. । ऋगतौअस्मात्ऋहलोर्ण्यत् । द्वयोरपि योगज्ञानमूलयोर्मूलं निष्काम धर्म एवेत्यर्थ ॥ ५ ॥ केन कतरस्या दिशि प्रहितोसीत्यन्वय ॥ ६ ॥ विप्रहीण. च्युत उक्त्वा आपृच्छ्य व युष्मान् ॥ ८ ॥ प्रपातं पतित्वा माप्रपत पातं मा प्राप्नुहीत्यर्थः । कषादित्वादनुप्रयोग 'समूलघातं न्यवधीदरींश्च' इत्यादिवत् । लोका भोग्यविषया । दिवि मेरुपृष्ठे । अन्तरिक्षे नक्षत्रमण्डलादौ । क्षेत्रं सिद्धं स्थानं तदभिज्ञम् ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच ।
तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं
ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-
स्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः ॥ ११

ययातिरुवाच ।
नास्मद्विधो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च
प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य ।
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्य-
स्तथाऽददं पूर्वमहं नरेन्द्र ॥ १२
नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवे-
द्याच्ञापि स्याद्ब्राह्मणी वीरपत्नी ।
सोऽहं नैवाकृतपूर्वं चरेयं
विधित्समानः किमु तत्र साधुः ॥ १३

प्रतर्दन उवाच ।
पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप
प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १४

ययातिरुवाच ।
सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र
अप्येकैकः सप्तसप्ताप्यहानि ।
मधुच्युतो घृतपृक्ता विशोका-
स्ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥ १५

प्रतर्दन उवाच ।
तांस्ते ददानि मा प्रपत प्रपातं
ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-
स्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः ॥ १६

ययातिरुवाच ।
न तुल्यतेजाः सुकृतं कामयेत
योगक्षेमं पार्थिव पार्थिवः सन् ।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वां-
श्चरेन्नृशंसं न हि जातु राजा ॥ १७
धर्म्यं मार्गं यतमानो यशस्यं
कुर्यान्नृपो धर्ममवेक्षमाणः ।
न मद्विधो धर्मबुद्धिः प्रजान-
न्कुर्यादेवं कृपणं मां यथात्थ ॥ १८
कुर्यादपूर्वं न कृतं यदन्यै-
र्विधित्समानः किमु तत्र साधु ।
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं
नृपोत्तमो वसुमानब्रवीत्तम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायाते द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

---

वसुमानुवाच ।
पृच्छामि त्वां वसुमानौषदश्वि-
र्यद्यस्ति लोको दिवि मे नरेन्द्र ।
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन्
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १

ययातिरुवाच ।
यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च
यत्तेजसा तपते भानुमांश्च ।
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै
ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥ २

वसुमानुवाच ।
तांस्ते ददानि मा प्रपत प्रपातं
ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
क्रीणीष्वैतांस्तृणकेनापि राज-
न्प्रतिग्रहस्ते यदि श्रीमन्प्रदुष्टः ॥ ३

---

आक्रम आक्रमस्व ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोऽपि ब्रह्मवित् वेदविदेव प्रतिग्रहे वर्तेत नत्वन्यः । अस्मद्विधस्तु नैव वर्तेतेत्यर्थः ॥ १२ ॥ कृपणो याच्ञा दैन्ययुक्तः । वीरस्य विद्यया दिग्विजयिनः पत्नी तत्र कर्मभूमौ- साधु सत्कर्म । विधित्समानः कर्तुमिच्छन् किमु कथं चरेयं नैव कुर्यामित्यर्थः । विवित्समान इति पाठे तत्र स्वर्गे साधुलेब्धुमिच्छन् ॥ १३ ॥ प्रत्येकं सप्त सप्ताप्यहानि सेविताः । सन्तो नान्तवन्तः मधुच्युतः सुखस्रवाः घृतपृक्ता तेजोयुक्ताः ते त्वां प्रतिपालयन्ति प्रतीक्षन्ते ॥ १५ ॥ नृशंसं निंद्यम् ॥ १७ ॥ अन्यै राजभिः यत्प्रतिग्रहाख्यं न कृतं तत् अपूर्वं प्रथमं अहमेव कथं कुर्यामिति भावः ॥ १९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

पृच्छामीति ॥ १ ॥ यत् यान् तपते प्रकाशयति ॥ २ ॥

ययातिरुवाच ।

न मिथ्याऽहं विक्रयं वै स्मरामि
वृथा गृहीतं शिशुकाच्छङ्कमानः ।
कुर्यां न चैवाकृतपूर्वमन्यै-
र्विधित्समानः किमु तत्र साधु ॥ ४

वसुमानुवाच ।

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राज-
न्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते ।
अहं न तान्वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र
सर्वे लोकास्तव ते वै भवन्तु ॥ ५

शिबिरुवाच ।

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोहं
ममापि लोका यदि सन्तीह तात ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ६

ययातिरुवाच ।

यत्त्वं वाचा हृदयेनापि साधू-
न्परीप्समानान्नावमंस्था नरेन्द्र ।
तेनानन्ता दिवि लोकाः श्रितास्ते
विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥ ७

शिबिरुवाच ।

तांस्त्वं लोकान्प्रतिपद्यस्व राज-
न्मया दत्तान्यदि नेष्टः क्रयस्ते ।
न चाहं तान्प्रतिपत्स्ये ह दत्वा
यत्र गत्वा नानुशोचन्ति धीराः ॥ ८

ययातिरुवाच ।

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभाव-
स्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः ।
तथाऽद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते
तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि देयम् ॥ ९

अष्टक उवाच ।

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान्नः प्रतिनन्दसि ।
सर्वे प्रदाय भवते गन्तारो नरकं वयम् ॥ १०

ययातिरुवाच ।

यदर्होऽहं तद्यतध्वं सन्तः सत्याभिनन्दिनः ।
अहं तन्नाभिजानामि यत्कृतं न मया पुरा ॥ ११

अष्टक उवाच ।

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः ।
यानारुह्य नरो लोकानभिवाञ्छति शाश्वतान् १२

ययातिरुवाच ।

युष्मानेते वहिष्यन्ति रथाः पञ्च हिरण्मयाः ।
उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव ॥

अष्टक उवाच ।

अतिष्ठस्व रथान्राजन्विक्रमस्व विहायसम् ।
वयमप्यनुयास्यामो यदा कालो भविष्यति ॥ १४

ययातिरुवाच ।

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गजितो वयम् ।
एष नो विरजः पन्था दृश्यते देवसद्मनः ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

तेऽधिरुह्य रथान्सर्वे प्रयाता नृपसत्तमाः ।
आक्रमन्तो दिवं भाभिर्धर्मेणावृत्य रोदसी ॥ १६

अष्टक उवाच ।

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽस्मि गन्ता
सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा ।
कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽय-
मेकोऽत्यगात्सर्ववेगेन वाहान् ॥ १७

ययातिरुवाच ।

अददद्देवयानाय यावद्वित्तमविन्दत ।
उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि वः शिबिः ॥

दानं तपः सत्यमथाऽपि धर्मो
ह्रीः श्रीः क्षमा सौम्यमथो विधित्सा ।
राजन्नेतान्यप्रमेयाणि राज्ञः
शिबेः स्थितान्यप्रतिमस्य बुद्ध्या ॥ १९
एवंवृत्तो ह्रीनिषेवश्च यस्मा-
त्तस्माच्छिबिरत्यगाद्वै रथेन ।

वैशंपायन उवाच ।

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छ-
न्मातामहं कौतुकेनेन्द्रकल्पम् ॥ २०

---

शिशुकात् शिशुमारप्रधानात्कालचक्रात् शङ्कमानः । 'अहश्च-रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्'इत्युक्तेः। मिथ्याक्रियात्मकं कापट्यं दुस्तरामिति भावः'शिशुकः शिशुमारे स्यादिति मेदिनी । शिशुकान्मन्दबालकादिति वा ॥ ४ ॥ परीप्समानान् याचकान् नावमंस्था नावमानं कृतवानसि । स्वनवन्तः प्रख्याता इत्यर्थः ॥ ७ ॥ गन्तारः मृत्वा प्राप्स्यामहः नरकं भूलोकम् ॥ १० ॥ यतध्वं कर्तुं नाभिजानामि नाङ्गीकरोमि॥ ११ ॥ प्रकाशन्ते दृश्यन्ते ज्वलन्तो दीप्यमानाः ॥ १३ ॥ देवयानाय ब्रह्मलोकमार्गप्राप्तये यावत्सर्वस्वं अददत्सर्वत्यागीत्यर्थः । अन्ये पितृयाने नैव गता इत्यर्थाज्ज्ञेयम् ॥ १८ ॥ सौम्यमक्रूरत्वम् । विधित्सा पालनेच्छा ॥ १९ ॥ सत्यमेव श्रेयःसाधनमिति विधातुं पूर्वोक्तप्रश्नोत्तरे अनुवदति । अथाष्टक इत्यादिना ॥ २० ॥

पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं
कुतश्च कश्चासि सुतश्च कस्य ।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता
लोके त्वदन्यः क्षत्रियो ब्राह्मणो वा ॥ २१

ययातिरुवाच ।

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः
पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम् ।
गुह्यं चार्थं मामकेभ्यो ब्रवीमि
मातामहोऽहं भवतां प्रकाशम् ॥ २२
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय
प्रादामहं छादनं ब्राह्मणेभ्यः ।
मेध्यानश्वानेकशतान्सुरूपां-
स्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥ २३
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः
पूर्णामिमामखिलां वाहनेन ।
गोभिः सुवर्णेन धनैश्च मुख्यै-
स्तदाददं गाः शतमर्बुदानि ॥ २४
सत्येन मे द्यौश्च वसुंधरा च
तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु ।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं
सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥ २५
यदष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं
प्रतर्दनं चौपदश्विं तथैव ।
सर्वे च लोका मुनयश्च देवाः
सत्येन पूजा इति मे मनोगतम् ॥ २६
यो नः स्वर्गजितः सर्वान्यथावृत्तं निवेदयत् ।
अनुसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स लभेन्नः सलोकताम् २७

वैशंपायन उवाच ।

एवं राजा स महात्मा ह्यतीव
स्वैर्दौहित्रैस्तारितो मित्रसाहः ।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा
स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि उत्तरयायातसमाप्तौ त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३

---

जनमेजय उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पूरोर्वंशकरान्नृपान् ।
यद्वीर्यान्यादृशांश्चापि यावतो यत्पराक्रमान् ॥ १
न ह्यस्मिञ्शीलहीनो वा निर्वीर्यो वा नराधिपः ।
प्रजाविरहितो वाऽपि भूतपूर्वः कथंचन ॥ २
तेषां प्रथितवृत्तानां राज्ञां विज्ञानशालिनाम् ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
पूरोर्वंशधरान्वीराञ्शक्रप्रतिमतेजसः ।
भूरिद्रविणविक्रान्तान्सर्वलक्षणपूजितान् ॥ ४
प्रवीरेश्वररौद्राश्वास्त्रयः पुत्रा महारथाः ।
पूरोः पौष्ट्यामजायन्त प्रवीरो वंशकृत्ततः ॥ ५
मनस्युरभवत्तस्माच्छूरसेनीसुतः प्रभुः ।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता राजीवलोचनः ॥ ६
शक्तः संहननो वाग्मी सौवीरीतनयास्त्रयः ।
मनस्योरभवन्पुत्राः शूराः सर्वे महारथाः ॥ ७
अन्वग्भानुप्रभृतयो मिश्रकेश्यां मनस्विनः ।
रौद्राश्वस्य महेष्वासा दशाप्सरसि सूनवः ॥ ८
यज्वानो जज्ञिरे शूराः प्रजावन्तो बहुश्रुताः ।
सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ९
ऋचेयुरथ कक्षेयुः कृकणेयुश्च वीर्यवान् ।
स्थण्डिलेयुर्वनेयुश्च जलेयुश्च महायशाः ॥ १०
तेजेयुर्बलवान्धीमान्सत्येयुश्चेन्द्रविक्रमः ।
धर्मेयुः संनतेयुश्च दशमो देवविक्रमः ॥ ११
अनाधृष्टिरभूत्तेषां विद्वान्भुवि तथैकराट् ।
ऋचेयुरथ विक्रान्तो देवानामिव वासवः ॥ १२

---

प्रकाशं प्रागुक्तमपि स्पष्टतरम् ॥ २२ ॥ छादनं जीविकात्वेन परिधानम् । अतीतफलत्वादस्य धर्मस्य स्वमुखेन कीर्तनं न दोषः।अन्यथा'धर्मः क्षरति कीर्तनात्'इत्युक्तेरश्रेयसे स्यात् प्रस्थे दत्वा विपिनं ब्राह्मणेभ्य इतिपाठे ब्राह्मणेभ्यो दत्वा विपिनं वनं प्रस्थे प्रतस्थेऽहं प्रस्थानं कृतवानस्मि । अभ्यासलोप आर्षः । मेध्यानश्वान्यदा देवेभ्यः उत्सृजति तदा देवास्तं पुण्यवन्तं भजन्तीत्यर्थः ॥२३॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

भगवन्निति ॥ १ ॥ चतुरन्तायाश्चतुःसमुद्रावच्छिन्नायाः ॥ ६ ॥

अनाधृष्टिसुतस्त्वासीद्राजसूयाश्वमेधकृत्।
मतिनार इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ॥ १३
मतिनारसुता राजंश्चत्वारोऽमितविक्रमाः।
तंसुर्महानतिरथो द्रुह्युश्चाप्रतिमद्युतिः ॥ १४
तेषां तंसुर्महावीर्यः पौरवं वंशमुद्वहन्।
आजहार यशो दीप्तं जिगाय च वसुंधराम् ॥ १५
ईलिनं तु सुतं तंसुर्जनयामास वीर्यवान्।
सोऽपि कृत्स्नामिमां भूमिं विजिग्ये जयतां वरः॥
रथन्तर्यां सुतान्पञ्च पञ्चभूतोपमांस्ततः।
ईलिनो जनयामास दुष्यन्तप्रभृतीन्नृपान् ॥ १७
दुष्यन्तं शूरभीमौ च प्रवसुं वसुमेव च।
तेषां श्रेष्ठोऽभवद्राजा दुष्यन्तो जनमेजय ॥ १८
दुष्यन्ताद्भरतो जज्ञे विद्वाञ्शाकुन्तलो नृपः।
तस्माद्भरतवंशस्य विप्रतस्थे महद्यशः ॥ १९
भरतास्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत्।
नाभ्यनन्दत तान्राजा नानुरूपा ममेत्युत ॥ २०
ततस्तान्मातरः क्रुद्धाः पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम्।
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्म तत् ॥ २१
ततो महद्भिः क्रतुभिरीजानो भरतस्तदा।
लेभे पुत्रं भरद्वाजाद्भुमन्युं नाम भारत ॥ २२
ततः पुत्रिणमात्मानं ज्ञात्वा पौरवनन्दनः।
भुमन्युं भरतश्रेष्ठ यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २३
ततो दिविरथो नाम भुमन्योरभवत्सुतः।
सुहोत्रश्च सुहोता च सुहविः सुयजुस्तथा ॥ २४
पुष्करिण्यामृचीकश्च भुमन्योरभवन्सुताः।
तेषां ज्येष्ठः सुहोत्रस्तु राज्यमाप महीक्षिताम् २५
राजसूयाश्वमेधाद्यैः सोयजद्बहुभिः सवैः।
सुहोत्रः पृथिवीं कृत्स्नां बुभुजे सागराम्बराम् २६
पूर्णां हस्तिगजाश्वैश्च बहुरत्नसमाकुलाम्।
ममज्जेव मही तस्य भूरिभारावपीडिता ॥ २७
हस्त्यश्वरथसंपूर्णा मनुष्यकलिला भृशम्।
सुहोत्रे राजनि तदा धर्मतः शासति प्रजाः ॥ २८
चैत्ययूपाङ्किता चासीद्भूमिः शतसहस्रशः।
प्रवृद्धजनसस्या च सर्वदैव व्यरोचत ॥ २९
ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात्पृथिवीपतेः।
अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत। ३०

अजमीढो वरस्तेषां तस्मिन्वंशः प्रतिष्ठितः।
षट्पुत्रान्सोप्यजनयत्तिसृषु स्त्रीषु भारत ॥ ३१
ऋक्षं धूमिन्यथो नीली दुष्यन्तपरमेष्ठिनौ।
केशिन्यजनयज्जह्नुं सुतौ व्रजनरूपिणौ ॥ ३२
तथेमे सर्वपञ्चाला दुष्यन्तपरमेष्ठिनोः।
अन्वयाः कुशिका राजञ्जह्नोरमिततेजसः ३३
व्रजनरूपिणयोर्ज्येष्ठमृक्षमाहुर्जनाधिपम्।
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे राजन्वंशकरः सुतः ॥ ३४
आर्क्षे संवरणे राजन्प्रशासति वसुंधराम्।
संक्षयः सुमहानासीत्प्रजानामिति नः श्रुतम् ॥३५
व्यशीर्यत ततो राष्ट्रं क्षयैर्नानाविधैस्तदा।
क्षुन्मृत्युभ्यामनावृष्ट्या व्याधिभिश्च समाहतम्॥
अभ्यघ्नन्भारतांश्चैव सपत्नानां बलानि च।
चालयन्वसुधां चेमां बलेन चतुरङ्गिणा ॥ ३७
अभ्ययात्तं च पाञ्चाल्यो विजित्य तरसा महीम्।
अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एनं समरेऽजयत् ॥ ३८
ततः सदारः सामात्यः सपुत्रः ससुहृज्जनः।
राजा संवरणस्तस्मात्पलायत महाभयात् ॥ ३९
सिन्धोर्नदस्य महतो निकुञ्जे न्यवसत्तदा।
नदीविषयपर्यन्ते पर्वतस्य समीपतः ॥ ४०
तत्रावसन्बहून्कालान्भारता दुर्गमाश्रिताः।
तेषां निवसतां तत्र सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ४१
अथाभ्यगच्छद्भरतान्वसिष्ठो भगवानृषिः।
तमागतं प्रयत्नेन प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च ॥ ४२
अर्घ्यमभ्याहरंस्तस्मै ते सर्वे भारतास्तदा।
निवेद्य सर्वमृषये सत्कारेण सुवर्चसे ॥ ४३
तमासने चोपविष्टं राजा वव्रे स्वयं तदा।
पुरोहितो भवान्नोऽस्तु राज्याय प्रयतेमहि ॥ ४४
ओमित्येवं वसिष्ठोऽपि भारतान्प्रत्यपद्यत।
अथाभ्यषिञ्चत्साम्राज्ये सर्वक्षत्रस्य पौरवम् ॥ ४५
विषाणभूतं सर्वस्यां पृथिव्यामिति नः श्रुतम्।
भरताध्युषितं पूर्वं सोऽध्यतिष्ठत्पुरोत्तमम् ॥ ४६
पुनर्बलिभृतश्चैव चक्रे सर्वमहीक्षितः।
ततः स पृथिवीं प्राप्य पुनरीजे महाबलः ॥ ४७
आजमीढो महायज्ञैर्बहुभिर्भूरिदक्षिणैः।
ततः संवरणात्सौरी तपती सुषुवे कुरुम् ॥ ४८

---

वितथं विगतस्तथा भावो जनकमादृश्यं यत्र तत्तादृशं पुत्रजन्म ॥ २१ ॥ सवैःसवसंज्ञैर्यज्ञैः ॥ २६ ॥ व्रजनरूपिणयोरित्यक्षराधिक्यमार्षम् ॥ ३४ ॥ आर्क्षे ऋक्षपुत्रे ॥ ३५ ॥ क्षयैः नाशेहतुभिः क्षुत्प्रभृतिभिः अभ्ययात्तं संवरणं एनं संवरणमेव ॥ ३८ ॥ पलायत अडभाव आर्षः ॥ ३९ ॥ ओमित्यङ्गीकारे। विषाणवत् गिरिशृङ्गवत् श्रेष्ठभूतम् ॥ ४६ ॥ बलिभृतः करदान् ॥ ४७ ॥ सौरी सूर्यकन्या ॥ ४८ ॥

राजत्वे तं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे ।
तस्य नाम्नाऽभिविख्यातं पृथिव्यां कुरुजाङ्गलम् ॥
कुरुक्षेत्रं स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः ।
अश्ववन्तमभिष्यन्तं तथा चैत्ररथं मुनिम् ॥ ५०
जनमेजयं च विख्यातं पुत्रांश्चास्यानुशुश्रुम ।
पञ्चैतान्वाहिनीपुत्रान्व्यजायत मनस्विनी ॥ ५१
अविक्षितः परिक्षित्तु शबलाश्वस्तु वीर्यवान् ।
आदिराजो विराजश्च शाल्मलिश्च महाबलः ५२
उच्चैःश्रवा भङ्गकारो जितारिश्चाष्टमः स्मृतः ।
एतेषामन्ववाये तु ख्यातास्ते कर्मजैर्गुणैः ।
जनमेजयादयः सप्त तथैवान्ये महारथाः ॥ ५३
परीक्षितोऽभवन्पुत्राः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ।
कक्षसेनोग्रसेनौ तु चित्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ५४
इन्द्रसेनः सुषेणश्च भीमसेनश्च नामतः ।
जनमेजयस्य तनया भुवि ख्याता महाबलाः ५५
धृतराष्ट्रः प्रथमजः पाण्डुर्बाह्लीक एव च ।
निषधश्च महातेजास्तथा जाम्बूनदो बली ॥ ५६
कुण्डोदरः पदातिश्च वसातिश्चाष्टमः स्मृतः ।
सर्वे धर्मार्थकुशलाः सर्वभूतहिते रताः ॥ ५७
धृतराष्ट्रोऽथ राजासीत्तस्य पुत्रोऽथ कुण्डिकः ।
हस्ती वितर्कः क्राथश्च कुण्डिनश्चापि पञ्चमः ५८
हविः श्रवास्तथेन्द्राभो भुमन्युश्चापराजितः ।
धृतराष्ट्रसुतानां तु त्रीनेतान्प्रथितान्भुवि ॥ ५९
प्रतीपं धर्मनेत्रं च सुनेत्रं चापि भारत ।
प्रतीपः प्रथितस्तेषां बभूवाप्रतिमो भुवि ॥ ६०
प्रतीपस्य त्रयः पुत्रा जज्ञिरे भरतर्षभ ।
देवापिः शान्तनुश्चैव बाह्लीकश्च महारथः ॥ ६१
देवापिश्च प्रवव्राज तेषां धर्महितेप्सया ।
शान्तनुश्च महीं लेभे बाह्लीकश्च महारथः ॥ ६२
भरतस्यान्वये जाताः सत्ववन्तो नराधिपाः ।
देवर्षिकल्पा नृपते बहवो राजसत्तमाः ॥ ६३
एवंविधाश्चाप्यपरे देवकल्पा महारथाः ।
जाता मनोरन्ववाये ऐलवंशविवर्धनाः ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पुरुवंशानुकीर्तने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

---

जनमेजय उवाच ।
श्रुतस्त्वत्तो मया ब्रह्मन्पूर्वेषां संभवो महान् ।
उदाराश्चापि वंशेऽस्मिन्राजानो मे परिश्रुताः ॥१
किं तु लघ्वर्थसंयुक्तं प्रियाख्यानं न मामति ।
प्रीणात्यतो भवान्भूयो विस्तरेण ब्रवीतु मे ॥ २
एतामेव कथां दिव्यामाप्रजापतितो मनोः ।
तेषामाजननं पुण्यं कस्य न प्रीतिमावहेत् ॥ ३
सद्धर्मगुणमाहात्म्यैरभिवर्धितमुत्तमम् ।
विष्टभ्य लोकांस्त्रीनेषां यशःस्फीतमवस्थितम् ॥४
गुणप्रभाववीर्यौजःसत्वोत्साहवतामहम् ।
न तृप्यामि कथां शृण्वन्नमृतास्वादसंमिताम् ॥ ५
वैशंपायन उवाच ।
शृणु राजन्पुरा सम्यङ्मया द्वैपायनाच्छ्रुतम् ।
प्रोच्यमानं मया कृत्स्नं स्ववंशजननं शुभम् ॥ ६
दक्षाददितिरदितेर्विवस्वान्विवस्वतो मनुर्मनोरिला इलायाः पुरूरवाः । पुरूरवस आयुरायुषो नहुषो नहुषाद्ययातिर्ययातेर्द्वे भार्ये बभूवतुः ॥ ७
उशनसो दुहिता देवयानी वृषपर्वणश्च दुहिता शर्मिष्ठा नाम ॥ ८
अत्रानुवंशश्लोको भवति ।
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ९
तत्र यदोर्यादवाः पूरोः पौरवाः ॥ १०
पूरोस्तु भार्या कौसल्या नाम तस्यामस्य जज्ञे जनमेजयो नाम यस्त्रीनश्वमेधानाजहार विश्वजिता चेष्ट्वा वनं विवेश ॥ ११

---

अश्ववन्त एवाविक्षिदिति संज्ञातरम् ॥ ५२ ॥ सुतानां कुण्डिकादीनां मध्ये प्रथितान् आहुरिति शेषः । सुतानाहुरिति पाठे तु एतांस्तेभ्योन्यान्वक्ष्यमाणान् प्रथितानाहुरिति व्याख्येयम् ॥ ५९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

श्रुत इति ॥ १ ॥ गुणाः दातृत्वादयः प्रभावो देवतादिवशित्वम् । वीर्यं शारीरं बलम् । ओजः मानसं सामर्थ्यं धैर्यादि । सत्वमदीनत्वं उत्साहः प्रयतमानता ॥ ५ ॥ अदितेर्दक्षोऽजायत दक्षाद्वादितिरिति परिश्रुतयोः सृष्टिक्रमयोरन्यमाह । दक्षाददितिरिति । आद्यस्तु हरिवंशे वक्ष्यते । अदितेर्दक्षो द्वादश इति । अनयोश्च पक्षयोः कल्पभेदेन व्यवस्था ॥७॥

जनमेजयः खल्वनन्तां नामोपयेमे माधवीं तस्यामस्य जज्ञे प्राचिन्वान् यः प्राचीं दिशं जिगाय यावत्सूर्योदयात्ततस्तस्य प्राचिन्वत्वम् ॥ १२ ॥

प्राचिन्वान्खल्वश्मकीमुपयेमे यादवीं तस्यामस्य जज्ञे संयातिः ॥ १३

संयातिः खलु दृषद्वतो दुहितरं वराङ्गीं नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे अहंयातिः ॥ १४

अहंयातिः खलु कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भानुमतीं नाम तस्यामस्य जज्ञे सार्वभौमः ॥ १५

सार्वभौमः खलु जित्वा जहार कैकेयीं सुनन्दां नाम तामुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे जयत्सेनो नाम ॥ १६

जयत्सेनः खलु वैदर्भीमुपयेमे सुश्रवां नाम तस्यामस्य जज्ञे अवाचीनः ॥ १७

अवाचीनोऽपि वैदर्भीमपरामेवोपयेमे मर्यादां नाम तस्यामस्य जज्ञे अरिहः ॥ १८

अरिहः खल्वाङ्गीमुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे महाभौमः ॥ १९

महाभौमः खलु प्रासेनजितिमुपयेमे सुयज्ञां नाम तस्यामस्य जज्ञे अयुतनायी यः पुरुषमेधानामयुतमानयत्तेनास्यायुतनायित्वम् ॥ २०

अयुतनायी खलु पृथुश्रवसो दुहितरमुपयेमे कामां नाम तस्यामस्य जज्ञे अक्रोधनः ॥ २१

स खलु कालिङ्गीं करम्भां नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे देवातिथिः ॥ २२

देवातिथिः खलु वैदेहीमुपयेमे मर्यादां नाम तस्यामस्य जज्ञेऽरिहो नाम ॥ २३

अरिहः खल्वाङ्गेयीमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यां पुत्रमजीजनदृक्षम् ॥ २४

ऋक्षः खलु तक्षकदुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयामास ॥ २५

मतिनारः खलु सरस्वत्यां गुणसमन्वितं द्वादशवार्षिकं सत्रमाहरत् । समाप्ते च सत्रे सरस्वत्यभिगम्य तं भर्तारं वरयामास तस्यां पुत्रमजीजनत्तंसुं नाम ॥ २६

अत्रानुवंशश्लोको भवति ।

तंसुं सरस्वतीपुत्रं मतिनारादजीजनत् ।
ईलिनं जनयामास कालिङ्ग्यां तं सुरात्मजम् २७

ईलिनस्तु रथन्तर्यां दुष्यन्ताद्यान्पञ्च पुत्रानजीजनत् ॥ २८

दुष्यन्तः खलु विश्वामित्रदुहितरं शकुन्तलां नामोपयेमे तस्यामस्यजज्ञे भरतः ॥ २९

अत्रानुवंशश्लोकौ भवतः ।

भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ३०
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ३१

ततोऽस्य भरतत्वं भरतः खलु काशेयीमुपयेमे सार्वसेनीं सुनन्दां नाम तस्यामस्य जज्ञे भुमन्युः ॥ ३२

भुमन्युः खलु दाशार्हीमुपयेमे विजयां नाम तस्यामस्य जज्ञे सुहोत्रः ॥ ३३

सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकुकन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम तस्यामस्य जज्ञे हस्ती । य इदं हास्तिनपुरं स्थापयामास । एतदस्य हास्तिनपुरत्वम् ॥ ३४

हस्ती खलु त्रैगर्तीमुपयेमे यशोधरां नाम तस्यामस्य जज्ञे विकुण्ठनो नाम ॥ ३५

विकुण्ठनः खलु दाशार्हीमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यामस्य जज्ञे अजमीढो नाम ॥ ३६

अजमीढस्य चतुर्विंशं पुत्रशतं बभूव कैकेय्यां गान्धार्यां विशालायामृक्षायां चेति पृथक्पृथक् वंशधरा नृपतयः । तत्र वंशकरः संवरणः ॥ ३७

संवरणः खलु वैवस्वतीं तपतीं नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे कुरुः ॥ ३८

कुरुः खलु दाशार्हीमुपयेमे शुभाङ्गीं नाम तस्यामस्य जज्ञे विदूरः ॥ ३९

विदूरस्तु माधवीमुपयेमे संप्रियां नाम तस्यामस्य जज्ञे अनश्वा नाम ॥ ४०

अनश्वा खलु मागधीमुपयेमे अमृतां नाम तस्यामस्य जज्ञे परीक्षित् ॥ ४१

परीक्षित्खलु बाहुदामुपयेमे सुयशां नाम तस्यामस्य जज्ञे भीमसेनः ॥ ४२

भीमसेनः खलु कैकेयीमुपयेमे कुमारीं नाम तस्यामस्य जज्ञे प्रतिश्रवा नाम ॥ ४३

प्रतिश्रवसः प्रतीपः खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम तस्यां पुत्रानुत्पादयामास देवापिं शान्तनुं बाह्लीकं चेति ॥ ४४

यावत्सूर्योदयात् उदयाचलपर्यन्तम् एकेनैवाह्ना इति तु भावः ॥ १२ ॥

देवापिः खलु बाल एवारण्यं विवेश । शान्तनुस्तु महीपालो बभूव ॥ ४५

अत्रानुवंशश्लोको भवति ।

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं स सुखमश्नुते ।
पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शान्तनुं विदुः ॥

इति तदस्य शान्तनुत्वम् ॥ ४६

शान्तनुः खलु गङ्गां भागीरथीमुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे देवव्रतो नाम यमाहुर्भीष्ममिति ॥ ४७

भीष्मः खलु पितुः प्रियचिकीर्षया सत्यवतीं मातरमुदवाहयत् यामाहुर्गन्धकालीमिति ॥ ४८

तस्यां पूर्वं कानीनो गर्भः पराशरात् द्वैपायनोऽभवत् । तस्यामेव शान्तनोरन्यौ द्वौ पुत्रौ बभूवतुः ॥ ४९

विचित्रवीर्यश्चित्राङ्गदश्च तयोरप्राप्तयौवन एव चित्राङ्गदो गन्धर्वेण हतः विचित्रवीर्यस्तु राजासीत् ॥ ५०

विचित्रवीर्यः खलु कौसल्यात्मजेऽम्बिकाम्बालिके काशिराजदुहितरावुपयेमे ॥ ५१

विचित्रवीर्यस्त्वनपत्य एव विदेहत्वं प्राप्तस्ततः सत्यवत्यचिन्तयन्मा दौष्यन्तो वंश उच्छेदं व्रजेदिति ॥ ५२

सा द्वैपायनमृषिं मनसा चिन्तयामास ।
स तस्याः पुरतः स्थितः किं करवाणीति ॥ ५३

सा तमुवाच भ्राता तवानपत्य एव स्वर्यातो विचित्रवीर्यः साध्वपत्यं तस्योत्पादयेति ॥ ५४

स तथेत्युक्त्वा त्रीन्पुत्रानुत्पादयामास । धृतराष्ट्रं पाण्डुं विदुरं चेति ॥ ५५

तत्र धृतराष्ट्रस्य राज्ञः पुत्रशतं बभूव गान्धार्यां वरदानात् द्वैपायनस्य ॥५६

तेषां धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां चत्वारः प्रधाना बभूवुः । दुर्योधनो दुःशासनो विकर्णश्चित्रसेनश्चेति ॥ ५७

पाण्डोस्तु द्वे भार्ये बभूवतुः कुन्ती पृथा नाम माद्री चेत्युभे स्त्रीरत्ने ॥ ५८

अथ पाण्डुर्मृगयां चरन्मैथुनगतमृषिमपश्यन्मृग्यां वर्तमानं तथैवाद्भुतमनासादितकामरसमतृप्तं च बाणेनाजघान ॥ ५९

स बाणविद्ध उवाच पाण्डुं चरता धर्ममिमं येन त्वयाऽभिज्ञेन कामरसस्याहमनवाप्तकामरसो निहतस्तस्मात्त्वमप्येतामवस्थामासाद्यानवाप्तकामरसः पञ्चत्वमाप्स्यसि क्षिप्रमेवेति स विवर्णरूपस्तथा पाण्डुः शापं परिहरमाणो नोपासर्पत भार्ये वाक्यं चोवाच ॥ ६०

स्वचापल्यादिदं प्राप्तवानहं शृणोमि च नानपत्यस्य लोकाः सन्तीति । सा त्वं मदर्थे पुत्रानुत्पादयेति कुन्तीमुवाच सा तथोक्ता पुत्रानुत्पादयामास । धर्माद्युधिष्ठिरं मारुताद्भीमसेनं शक्रादर्जुनमिति ॥ ६१

तां संहृष्टः पाण्डुरुवाच ।

इयं ते सपत्न्यनपत्या साध्वस्या अपत्यमुत्पाद्यतामिति । एवमस्त्विति कुन्ती तां विद्यां माद्र्याः प्रायच्छत् ॥ ६२

माद्र्यामश्विभ्यां नकुलसहदेवावुत्पादितौ ६३

माद्रीं खल्वलंकृतां दृष्ट्वा पाण्डुर्भावं चक्रे स तां स्पृष्ट्वैव विदेहत्वं प्राप्तः ॥ ६४

तत्रैनं चिताग्निस्थं माद्री समन्वारुरोह । उवाच कुन्तीं यमयोरप्रमत्तया त्वया भवितव्यमिति ॥ ६५

ततस्ते पाण्डवाः कुन्त्या सहिता हास्तिनपुरमानीय तापसैर्भीष्मस्य च विदुरस्य च निवेदिताः । सर्ववर्णानां च निवेद्यां तर्हितास्तापसा बभूवुः प्रेक्ष्यमाणानां तेषाम् ॥ ६६

तच्च वाक्यमुपश्रुत्य भगवतामन्तरिक्षात्पुष्पवृष्टिः पपात देवदुन्दुभयश्च प्रणेदुः ॥ ६७

प्रतिगृहीताश्च पाण्डवाः पितुर्निधनमावेदयन्तस्तस्यौर्ध्वदेहिकं न्यायतश्च कृतवन्तस्तांस्तत्र निवसतः पाण्डवान्बाल्यात्प्रभृति दुर्योधनो नामर्षयत् ॥ ६८

पापाचारो राक्षसीं बुद्धिमाश्रितोऽनेकैरुपायैरुद्धर्तुं च व्यवसितो भावित्वाच्चार्थस्य न शकितास्ते समुद्धर्तुम् ॥ ६९

ततश्च धृतराष्ट्रेण व्याजेन वारणावतमनुप्रेषिता गमनमरोचयन् ॥ ७०

तत्रापि जतुगृहे दग्धुं समारब्धा न शकिता विदुरमन्त्रितेनेति ॥ ७१

तस्माच्च हिडिम्बमन्तरा हत्वा एकचक्रां गताः ७२

तस्यामप्येकचक्रायां बकं नाम राक्षसं हत्वा पाञ्चालनगरमधिगताः ॥ ७३

तत्र द्रौपदीं भार्यामविन्दन् स्वविषयं चाभिजग्मुः ॥ ७४

कुशलिनः पुत्रांश्चोत्पादयामासुः प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरः सुतसोमं वृकोदरः श्रुतकीर्तिमर्जुनः

शतानीकं नकुलः श्रुतकर्माणं सहदेव इति ॥ ७५

युधिष्ठिरस्तु गोवासनस्य शैब्यस्य देविकां नाम कन्यां स्वयंवराल्लेभे। तस्यां पुत्रं जनयामास यौधेयं नाम ॥ ७६

भीमसेनोपि काश्यां बलन्धरां नामोपयेमे वीर्यशुल्कां तस्यां पुत्रं सर्वगं नामोत्पादयामास।

अर्जुनः खलु द्वारवतीं गत्वा भगिनीं वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीं भार्यामुदावहत्। स्वविषयं चाभ्याजगाम कुशली तस्यां पुत्रमभिमन्युमतीव गुणसंपन्नं दयितं वासुदेवस्याऽजनयत् ॥ ७८

नकुलस्तु चैद्यां करेणुमतीं नाम भार्यामुदावहत्तस्यां पुत्रं निरामित्रं नामाजनयत् ॥ ७९

सहदेवोपि माद्रीमेव स्वयंवरे विजयां नामोपयेमे मद्रराजस्य द्युतिमतो दुहितरं तस्यां पुत्रमजनयत्सुहोत्रं नाम ॥ ८०

भीमसेनस्तु पूर्वमेव हिडिम्बायां राक्षसं घटोत्कचं पुत्रमुत्पादयामास ॥ ८१

इत्येत एकादश पाण्डवानां पुत्रास्तेषां वंशकरोऽभिमन्युः ॥ ८२

स विराटस्य दुहितरमुपयेमे उत्तरां नाम। तस्यामस्य परासुर्गर्भोऽभवत्तमुत्सङ्गेन प्रतिजग्राह पृथा नियोगात् पुरुषोत्तमस्य वासुदेवस्य पाण्मासिकं गर्भमहमेनं जीवयिष्यामीति ॥ ८३

स भगवता वासुदेवेनासंजातबलवीर्यपराक्रमो कालजातोऽस्त्राग्निना दग्धस्तेजसा स्वेन संजीवितः। जीवयित्वा चैनमुवाच परिक्षीणे कुले जातो भवत्वयं परिक्षिन्नामेति ॥ ८४

परिक्षित्खलु माद्रवतीं नामोपयेमे त्वन्मातरं तस्यां भवान् जनमेजयः ॥ ८५

भवतो पुष्टमायां द्वौ पुत्रौ जज्ञाते। शतानीकः शङ्कुकर्णश्च शतानीकस्य वैदेह्यां पुत्र उत्पन्नोऽश्वमेधदत्त इति ॥ ८६

एष पूरोर्वंशः पाण्डवानां च कीर्तितो धन्यः पुण्यः परमपवित्रः सततं श्रोतव्यो ब्राह्मणैर्नियमवद्भिरनन्तरं क्षत्रियैः स्वधर्मनिरतैः प्रजापालनतत्परैर्वैश्यैरपि च श्रोतव्योधिगम्यश्च तथा शूद्रैरपि त्रिवर्णशुश्रूषुभिः श्रद्दधानैरिति ॥ ८७

इतिहासमिमं पुण्यमशेषतः श्रावयिष्यन्ति ये नराः श्रोष्यन्ति वा नियतात्मानो विमत्सरा मैत्रा वेदपरास्तेपि स्वर्गजितः पुण्यलोका भवन्ति सततं देवब्राह्मणमनुष्याणां मान्याः संपूज्याश्च॥

परं हीदं भारतं भगवता व्यासेन प्रोक्तं पावनं ये ब्राह्मणादयो वर्णाः श्रद्दधाना अमत्सरा मैत्रा वेदसंपन्नाः श्रोष्यन्ति तेऽपि स्वर्गजितः सुकृतिनोऽशोच्याः कृताकृते भवन्ति ॥ ८९

भवति चात्र श्लोकः।

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं नियतात्मभिः ॥९०

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पूरुवंशानुकीर्तने पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

---

वैशंपायन उवाच।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो राजासीत्पृथिवीपतिः।
महाभिष इति ख्यातः सत्यवाक्सत्यविक्रमः ॥ १
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
तोषयामास देवेशं स्वर्गं लेभे ततः प्रभुः ॥ २
ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासांचक्रिरे सुराः।
तत्र राजर्षयो ह्यासन्स च राजा महाभिषः ॥ ३
अथ गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम्।
तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥ ४
ततो भवन्सुरगणाः सहसा वाङ्मुखास्तदा।
महाभिषस्तु राजर्षिरशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥ ५
सोऽपध्यातो भगवता ब्रह्मणा तु महाभिषः।
उक्तश्च जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ ६
ययाहृतमनाश्चासि गङ्गया त्वं हि दुर्मते।
सा ते वै मानुषे लोके विप्रियाण्याचरिष्यति ७
यदा ते भविता मन्युस्तदा शापाद्विमोक्ष्यसे।

वैशंपायन उवाच।

स चिन्तयित्वा नृपतिर्नृपानन्यांस्तपोधनान् ॥ ८

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

---

भीष्मोत्पत्तिं वक्तुं तत्पितुः शान्तनोरुत्पत्तिमाह इक्ष्वाकुवंशेति ॥ १ ॥ अपध्यातः शप्तः ॥ ६ ॥

प्रतीपं रोचयामास पितरं भूरितेजसम् ।
महाभिषं तु तं दृष्ट्वा नदी धैर्याच्च्युतं नृपम् ॥ ९
तमेव मनसा ध्यायन्त्युपावर्तत्सरिद्वरा ।
सा तु विध्वस्तवपुषः कश्मलाभिहतान्नृप ॥ १०
ददर्श पथि गच्छन्ती वसून्देवान्दिवौकसः ।
तथारूपांश्च तान्दृष्ट्वा पप्रच्छ सरितां वरा ॥ ११
किमिदं नष्टरूपाः स्थ कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ।
तामूचुर्वसवो देवाः शप्ताः स्मो वै महानदि ॥१२
अल्पेऽपराधे संरम्भाद्वसिष्ठेन महात्मना ।
विमूढा हि वयं सर्वे प्रच्छन्नमृषिसत्तमम् ॥ १३
संध्यां वसिष्ठमासीनं तमत्यभिसृताः पुरा ।
तेन कोपाद्वयं शप्ता योनौ संभवतेति ह ॥ १४
न तच्छक्यं निवर्तयितुं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ।
त्वमस्मान्मानुषी भूत्वा सृज पुत्रान्वसून्भुवि ॥१५
न मानुषीणां जठरं प्रविशेम वयं शुभे ।
इत्युक्ता तैश्च वसुभिस्तथेत्युक्त्वाऽब्रवीदिदम् १६

गङ्गोवाच ।

मर्त्येषु पुरुषश्रेष्ठः को वः कर्ता भविष्यति ।

वसव ऊचुः

प्रतीपस्य सुतो राजा शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
भविता मानुषेलोके स नः कर्ता भविष्यति ॥१७

गङ्गोवाच ।

ममाप्येवं मतं देवा यथा मां वदतानघाः ।
प्रियं तस्य करिष्यामि युष्माकं चैतदीप्सितम् १८

वसव ऊचुः ।

जातान्कुमारान्स्वानप्सु प्रक्षेप्तुं वै त्वमर्हसि ।
यथा न चिरकालं नो निष्कृतिः स्यात्त्रिलोकगे ॥

गङ्गोवाच ।

एवमेतत्करिष्यामि पुत्रस्तस्य विधीयताम् ।
नास्य मोघः संगमः स्यात्पुत्रहेतोर्मया सह ॥२०

वसव ऊचुः ।

तुरीयार्धं प्रदास्यामो वीर्यस्यैकैकशो वयम् ।
तेन वीर्येण पुत्रस्ते भविता तस्य चेप्सितः ॥ २१
न संपत्स्यति मर्त्येषु पुनस्तस्य तु संततिः ।
तस्मादपुत्रः पुत्रस्ते भविष्यति स वीर्यवान् ॥२२
एवं ते समयं कृत्वा गङ्गया वसवः सह ।
जग्मुः संहृष्टमनसो यथा संकल्पमञ्जसा ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि महाभिषोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।

ततः प्रतीपो राजासीत्सर्वभूतहितः सदा ।
निषसाद समा बह्वीर्गङ्गाद्वारगतो जपन् ॥ १
तस्य रूपगुणोपेता गङ्गा स्त्रीरूपधारिणी ।
उत्तीर्य सलिलात्तस्माल्लोभनीयतमाकृतिः ॥ २
अधीयानस्य राजर्षेर्दिव्यरूपा मनस्विनी ।
दक्षिणं शालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना ॥ ३
प्रतीपस्तु महीपालस्तामुवाच यशस्विनीम् ।
करोमि किं ते कल्याणि प्रियं यत्तेऽभिकांक्षितम्

स्त्र्युवाच ।

त्वामहं कामये राजन्भजमानां भजस्व माम् ।
त्यागः कामवतीनां हि स्त्रीणां सद्भिर्विगर्हितः ५

प्रतीप उवाच ।

नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वरवर्णिनि ।
न चासवर्णां कल्याणि धर्म्यमेतद्धि मे व्रतम् ॥ ६

स्त्र्युवाच ।

नाश्रेयस्यास्मि नागम्या न वक्तव्या च कर्हिचित्।
भजन्तीं भज मां राजन्दिव्यां कन्यां वरस्त्रियम् ॥

प्रतीप उवाच ।

त्वया निवृत्तमेतत्तु यन्मां चोदयसि प्रियम् ।
अन्यथा प्रतिपन्नं मां नाशयेद्धर्मविप्लवः ॥ ८
प्राप्य दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्टा वराङ्गने ।
अपत्यानां स्नुषाणां च भीरु विध्द्येतदासनम् ॥ ९

---

विध्वस्तवपुषः दिवश्च्युतत्वात् ॥ १० ॥ अत्यभिसृताः अतिक्रान्तवन्तः । वक्ष्यमाणेन तद्धेनुहरणेनेति शेषः ॥ १४ ॥ सृज उत्पादय ॥ १५ ॥ न चिरकालं शीघ्रम् । नः अस्माकम् ॥ १९ ॥ तुरीयार्धं अष्टमांशम् । एवमष्टभिरष्टमांशैरेको द्योर्भविता यो मुख्योऽपराधी॥२१॥

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

---

तत इति ॥ १ ॥ दिव्यां दिवि भवाम् ॥ ७ ॥ त्वया हेतुभूतया निवृत्तं निरस्तम् ॥ ८ ॥ आश्लिष्टा संगता ॥९॥

सव्योरुः कामिनीभोग्यस्त्वया स च विवर्जितः ।
तस्मादहं नाचरिष्ये त्वयि कामं वराङ्गने ॥ १०
स्नुषा मे भव सुश्रोणि पुत्रार्थं त्वां वृणोम्यहम् ।
स्नुषापक्षं हि वामोरु त्वमागम्य समाश्रिता ११
स्त्र्युवाच ।
एवमप्यस्तु धर्मज्ञ संयुज्येयं सुतेन ते ।
त्वद्भक्त्या तु भजिष्यामि प्रख्यातं भारतं कुलम् १२
पृथिव्यां पार्थिवा ये च तेषां यूयं परायणम् ।
गुणा न हि मया शक्या वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ १३
कुलस्य ये वः प्रथितास्तत्साधुत्वमथोत्तमम् ।
समयेनेह धर्मज्ञ आचरेयं च यद्विभो ॥ १४
तत्सर्वमेव पुत्रस्ते न मीमांसेत कर्हिचित् ।
एवं वसन्ती पुत्रे ते वर्धयिष्याम्यहं रतिम् ॥ १५
पुत्रैः पुण्यैः प्रियैश्चैव स्वर्गं प्राप्स्यति ते सुतः ।
वैशंपायन उवाच ।
तथेत्युक्त्वा तु सा राजंस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६
पुत्रजन्म प्रतीक्षन्वै स राजा तदधारयत् ।
एतस्मिन्नेव काले तु प्रतीपः क्षत्रियर्षभः ॥ १७
तपस्तेपे सुतस्यार्थे सभार्यः कुरुनन्दन ।
तयोः समभवत्पुत्रो वृद्धयोः स महाभिषः ॥ १८
शान्तस्य जज्ञे संतानस्तस्मादासीत्स शान्तनुः ।
संस्मरंश्चाक्षयाँल्लोकान्विजितान्स्वेन कर्मणा ॥१९
पुण्यकर्मकृदेवासीच्छान्तनुः कुरुसत्तमः ।
प्रतीपः शान्तनुं पुत्रं यौवनस्थं ततोऽन्वशात् ॥२०
पुरा स्त्री मां समभ्यागाच्छान्तनो भूतये तव ।
त्वामाव्रजेद्यदि रहः सा पुत्र वरवर्णिनी ॥ २१
कामयानाऽभिरूपाढ्या दिव्यस्त्री पुत्रकाम्यया ।
सा त्वया नानुयोक्तव्या कासि कस्यासि चाङ्गने
यच्च कुर्यान्न तत्कर्म सा प्रष्टव्या त्वयाऽनघ ।
मन्नियोगाद्भजन्तीं तां भजेथा इत्युवाच तम् ॥२३
वैशंपायन उवाच ।
एवं संदिश्य तनयं प्रतीपः शान्तनुं तदा ।
स्वे च राज्येऽभिषिच्यैनं वनं राजा विवेश ह २४
स राजा शान्तनुर्धीमान्देवराजसमद्युतिः ।
बभूव मृगयाशीलः सततं वनगोचरः ॥ २५
स मृगान्महिषांश्चैव विनिघ्नन्राजसत्तमः ।
गङ्गामनुचचारैकः सिद्धचारणसेविताम् ॥ २६
स कदाचिन्महाराज ददर्श परमां स्त्रियम् ।
जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षाच्छ्रियमिवापराम् २७
सर्वानवद्यां सुदतीं दिव्याभरणभूषिताम् ।
सूक्ष्माम्बरधरामेकां पद्मोदरसमप्रभाम् ॥ २८
तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाऽभूद्विस्मितो रूपसंपदा ।
पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत नराधिपः ॥ २९
सा च दृष्ट्वैव राजानं विचरन्तं महाद्युतिम् ।
स्नेहादागतसौहार्दा नातृप्यत विलासिनी ॥ ३०
तामुवाच ततो राजा सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ।
देवी वा दानवी वा त्वं गन्धर्वी चाथ वाप्सराः ३१
यक्षी वा पन्नगी वापि मानुषी वा सुमध्यमे ।
याचे त्वां सुरगर्भाभे भार्या मे भव शोभने ॥३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि शान्तनूपाख्याने सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञः सस्मितं मृदु वल्गु च ।
वसूनां समयं स्मृत्वाऽथाभ्यगच्छदनिन्दिता ॥ १
उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा ।
भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा ॥ २
यत्तु कुर्यामहं राजन शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
न तद्वारयितव्याऽस्मि न वक्तव्या तथाऽप्रियम् ३
एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव ।
वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम् ॥४
तथेति सा यदा तूक्ता तदा भरतसत्तम ।
प्रहर्षमतुलं लेभे प्राप्य तं पार्थिवोत्तमम् ॥ ५

---

समयेन नियमेन ॥ १४ ॥ न मीमांसेत न विचारयेत ॥ १५ ॥ शान्तनुशब्दव्युत्पत्तिमाह । शान्तस्येति । शान्तस्योपरतस्य वंशस्य संतानो विस्तार इति शान्तनुः । तकारलोपेन शान्तनुरिति नाम संस्मरन्निति । व्यवहितमपि ज्ञानबलेन जानातीत्यर्थः ॥ १९ ॥ नानुयोक्तव्या न प्रष्टव्या ॥ २२ ॥ सर्वत्र रूपौदार्यादावनिन्द्याम् ॥२८॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

---

एतदिति अनिन्दिता गङ्गा ॥१॥ राज्ञः शान्तनोः ॥२॥

आसाद्य शान्तनुस्तां च बुभुजे कामतो वशी ।
न प्रष्टव्येति मन्वानो न स तां किंचिदूचिवान् ६
स तस्याः शीलवृत्तेन रूपौदार्यगुणेन च ।
उपचारेण च रहस्तुतोष जगतीपतिः ॥ ७
दिव्यरूपा हि सा देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा श्रीमन्तं वरवर्णिनी ॥ ८
भाग्योपनतकामस्य भार्या चोपनताऽभवत् ।
शान्तनोर्नृपसिंहस्य देवराजसमद्युतेः ॥ ९
संभोगस्नेहचातुर्यैर्हावलास्यमनोहरैः ।
राजानं रमयामास यथा रेमे तथैव सः ॥ १०
स राजा रतिसक्तत्वादुत्तमस्त्रीगुणैर्हृतः ।
संवत्सरानृतून्मासान्बुबुधे न बहून्गतान् ॥ ११
रममाणस्तया सार्धं यथाकामं नरेश्वरः ।
अष्टावजनयत्पुत्रांस्तस्याममरसंनिभान् ॥ १२
जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि भारत ।
प्रीणाम्यहं त्वामित्युक्त्वा गङ्गा स्रोतस्यमज्जयत् १३
तस्य तन्न प्रियं राज्ञः शान्तनोरभवत्तदा ।
न च तां किंचनोवाच त्यागाद्भीतो महीपतिः १४
अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसतीमिव ।
उवाच राजा दुःखार्तः परीप्सन्पुत्रमात्मनः॥ १५
मा वधीः कस्य काऽसीति किं हिनत्सि सुतानिति
पुत्रघ्नि सुमहत्पापं संप्राप्तं ते सुगर्हितम् ॥ १६
स्त्र्युवाच ।
पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर ।
जीर्णस्तु मम वासोऽयं यथा स समयः कृतः १७
अहं गङ्गा जह्नुसुता महर्षिगणसेविता ।
देवकार्यार्थसिध्यर्थमुषिताहं त्वया सह ॥ १८
इमेऽष्टौ वसवो देवा महाभागा महौजसः ।
वसिष्ठशापदोषेण मानुषत्वमुपागताः ॥ १९
तेषां जनयिता नान्यस्त्वदृते भुवि विद्यते ।
मद्विधा मानुषी धात्री लोकेनास्तीह काचन॥२०
तस्मात्तज्जननीहेतोर्मानुषत्वमुपागता ।
जनयित्वा वसूनष्टौ जिता लोकास्त्वयाऽक्षयाः२१
देवानां समयस्त्वेष वसूनां संश्रुतो मया ।
जातं जातं मोक्षयिष्ये जन्मतो मानुषादिति २२
तत्ते शापाद्विनिर्मुक्ता आपवस्य महात्मनः ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुत्रं पाहि महाव्रतम्२३
एष पर्यायवासो मे वसूनां संनिधौ कृतः ।
मत्प्रसूतं विजानीहि गङ्गादत्तमिमं सुतम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मोत्पत्तावष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

---

शान्तनुरुवाच ।
आपवो नाम कोन्वेष वसूनां किं च दुष्कृतम् ।
यस्याभिशापात्ते सर्वे मानुषीं योनिमागताः ॥ १
अनेन च कुमारेण त्वया दत्तेन किं कृतम् ।
यस्य चैव कृतेनायं मानुषेषु निवत्स्यति ॥ २
ईशा वै सर्वलोकस्य वसवस्ते च वै कथम् ।
मानुषेषूदपद्यन्त तन्ममाचक्ष्व जाह्नवि ॥ ३
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्ता तदा गङ्गा राजानमिदमब्रवीत् ।
भर्तारं जाह्नवी देवी शान्तनुं पुरुषर्षभ ॥ ४
गङ्गोवाच ।
यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भरतसत्तम ।
वसिष्ठनामा स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥ ५
तस्याश्रमपदं पुण्यं मृगपक्षिसमन्वितम् ।
मेरोः पार्श्वे नगेन्द्रस्य सर्वर्तुकुसुमावृतम् ॥ ६
स वारुणिस्तपस्तेपे तस्मिन्भरतसत्तम ।
वने पुण्यकृतां श्रेष्ठः स्वादुमूलफलोदके ॥ ७
दक्षस्य दुहिता या तु सुरभीत्यभिशब्दिता ।
गां प्रजाता तु सा देवी कश्यपाद्भरतर्षभ ॥ ८

---

भाग्योपनतकामस्य शुभादृष्टेन प्राप्ताभिलषितस्य ॥ ९॥ हावः शृङ्गारजो भावः लास्यं सुकुमारनृत्यम् ॥१०॥ पाठान्तरे अमराणामपि वर्णिनः चित्रकरान् ॥ १२ ॥ प्रीणामि मानुषदेहवियोजनेन प्रीणयामि । त्वां देवतारूपम् । स्रोतसि प्रवाहे ॥ १३ ॥ ते त्वया ॥ १६ ॥ धात्री गर्भधारिणी ॥ २० ॥ तज्जननीहेतोः ब्रह्मसभायां मयि तवाभिलाषात् ॥ २१ ॥ संश्रुतोऽङ्गीकृतः ॥ २२ ॥ आपवस्य वसिष्ठस्य ॥ २३ ॥ एष पुत्रः मे मया अष्टानां वसूनां संनिधौ कृतस्त्वदर्थं संप्रार्थितः । किं भूतः वसूनां पर्यायाः रूपान्तराणि एकैकस्याष्टमांशप्रदानात् । तेषां वासः स्थानं सर्वेषामंशैर्घटितोयं मया त्वदर्थं प्रार्थित इत्यर्थः ॥ २४ ॥ इति आ० नै० भा० भा० अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

---

आपवो नामेति ॥ १ ॥ गां प्रजाता नन्दिनी जनितवती ॥ ८ ॥

मा वधीः कस्य काऽसीति किं हिनस्सि सुतानिति।
पुत्रघ्नि सुमहत्पापं संप्राप्तं ते सुगर्हितम् ॥

आदि० ९८.१६

अनुग्रहार्थं जगतः सर्वकामदुहां वरा ।
तां लेभे गां तु धर्मात्मा होमधेनुं स वारुणिः॥ ९
सा तस्मिंस्तापसारण्ये वसन्ती मुनिसेविते ।
चचार पुण्ये रम्ये च गौरपेतभया तदा ॥ १०
अथ तद्वनमाजग्मुः कदाचिद्भरतर्षभ ।
पृथ्वाद्या वसवः सर्वे देवा देवर्षिसेवितम् ॥ ११
ते सदारा वनं तच्च व्यचरन्त समन्ततः ।
रेमिरे रमणीयेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १२
तत्रैकस्याथ भार्या तु वसोर्वासवविक्रम ।
संचरन्ती वने तस्मिन्गां ददर्श सुमध्यमा ॥ १३
नन्दिनीं नाम राजेन्द्र सर्वकामधुगुत्तमाम् ।
सा विस्मयसमाविष्टा शीलद्रविणसंपदा ॥ १४
द्यवे वै दर्शयामास तां गां गोवृषभेक्षण ।
आपीनां च सुदोग्ध्रीं च सुवालधिखुरां शुभाम्॥१५
उपपन्नां गुणैः सर्वैः शीलेनानुत्तमेन च ।
एवं गुणसमायुक्तां वसवे वसुनन्दिनी ॥ १६
दर्शयामास राजेन्द्र पुरा पौरवनन्दन ।
द्यौस्तदा तां तु दृष्ट्वैव गां गजेन्द्रेन्द्रविक्रम ॥ १७
उवाच राजंस्तां देवीं तस्या रूपगुणान्वदन् ।
एषा गौरुत्तमा देवी वारुणेरसितेक्षणा ॥ १८
ऋषेस्तस्य वरारोहे यस्येदं वनमुत्तमम् ।
अस्याः क्षीरं पिबेन्मर्त्यः स्वादु यो वै सुमध्यमे॥१९
दशवर्षसहस्राणि स जीवेत्स्थिरयौवनः ।
एतच्छ्रुत्वा तु सा देवी नृपोत्तम सुमध्यमा ॥ २०
तमुवाचानवद्याङ्गी भर्तारं दीप्ततेजसम् ।
अस्ति मे मानुषे लोके नरदेवात्मजा सखी ॥ २१
नाम्ना जितवती नाम रूपयौवनशालिनी ।
उशीनरस्य राजर्षेः सत्यसंधस्य धीमतः ॥ २२
दुहिता प्रथिता लोके मानुषे रूपसंपदा ।
तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां ममेप्सिताम्॥२३
आनयस्वामरश्रेष्ठ त्वरितं पुण्यवर्धन ।
यावदस्याः पयः पीत्वा सा सखी मम मानद॥२४
मानुषेषु भवत्वेका जरारोगविवर्जिता ।
एतन्मम महाभाग कर्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ २५
प्रियं प्रियतरं ह्यस्मान्नास्ति मेऽन्यत्कथंचन ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्या देव्याः प्रियचिकीर्षया॥२६
पृथ्वाद्यैर्भ्रातृभिः सार्धं द्यौस्तदा तां जहार गाम् ।
तया कमलपत्राक्ष्या नियुक्तो द्यौस्तदा नृप ॥ २७
ऋषेस्तस्य तपस्तीव्रं न शशाक निरीक्षितुम् ।
हृता गौः सा तदा तेन प्रपातस्तु न तर्कितः॥२८
अथाश्रमपदं प्राप्तः फलान्यादाय वारुणिः ।
न चापश्यत्स गां तत्र सवत्सां काननोत्तमे ॥२९
ततः स मृगयामास वने तस्मिंस्तपोधनः ।
नाध्यागमच्च मृगयंस्तां गां मुनिरुदारधीः ॥३०
ज्ञात्वा तथापनीतां तां वसुभिर्दिव्यदर्शनः ।
ययौ क्रोधवशं सद्यः शशाप च वसूंस्तदा ॥ ३१
यस्मान्मे वसवो जह्रुर्गां वै दोग्ध्रीं सुवालधिम् ।
तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ॥ ३२
एवं शशाप भगवान्वसूंस्तान्भरतर्षभ ।
वशं क्रोधस्य संप्राप्त आपवो मुनिसत्तमः ॥ ३३
शप्त्वा च तान्महाभागस्तपस्येव मनो दधे ।
एवं स शप्तवान्राजन्वसूनष्टौ तपोधनः ॥ ३४
महाप्रभावो ब्रह्मर्षिर्देवान्क्रोधसमन्वितः ।
अथाश्रमपदं प्राप्तास्ते वै भूयो महात्मनः ॥ ३५
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः ।
प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः पार्थिवर्षभ ॥ ३६
लेभिरे न च तस्मात्ते प्रसादमृषिसत्तमात् ।
आपवात्पुरुषव्याघ्र सर्वधर्मविशारदात् ॥ ३७
उवाच च स धर्मात्मा शप्ता यूयं धरादयः ।
*अनुसंवत्सरात्सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ* ॥ ३८
अयं तु यत्कृते यूयं मया शप्ताः स वत्स्यति ।
द्यौस्तदा मानुषे लोके दीर्घकालं स्वकर्मणा ॥ ३९
नानृतं तच्चिकीर्षामि क्रुद्धो युष्मान्यदब्रुवम् ।
न प्रजास्यति चाप्येष मानुषेषु महामनाः ॥ ४०
भविष्यति च धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ।
पितुः प्रियहिते युक्तः स्त्रीभोगान्वर्जयिष्यति॥४१
एवमुक्त्वा वसून्सर्वान्स जगाम महानृषिः ।
ततो मामुपजग्मुस्ते समेता वसवस्तदा ॥ ४२
अयाचन्त च मां राजन्वरं तच्च मया कृतम् ।
जाताञ्जातान्प्रक्षिपास्मान्स्वयं गङ्गे त्वमम्भसि ४३
एवं तेषामहं सम्यक् शप्तानां राजसत्तम ।
मोक्षार्थं मानुषाल्लोकाद्यथावत्कृतवत्यहम् ॥ ४४
अयं शापादृषेस्तस्य एक एव नृपोत्तम ।
द्यौ राजन्मानुषे लोके चिरं वत्स्यति भारत॥ ४५

---

द्यवे वसुसंज्ञाय वसवे वालधिः पुच्छम् ॥ १५ ॥ वसुनन्दिनी वसुप्रिया ॥ १६ ॥ प्रपातः वसिष्ठशापरूपो भृगुपतनं वा न तर्कितः रागान्धत्वात् ॥ २८ ॥ सुवालधिं सुपुच्छाम् ॥३२॥ न प्रजास्यति आत्मनः प्रजेच्छां न करिष्यति । क्यजंतोयम् ॥४०॥ तत्र हेतुः पितुरिति ॥ ४१ ॥

वैशंपायन उवाच ।
एतदाख्याय सा देवी तत्रैवान्तरधीयत ।
आदाय च कुमारं तं जगामाथ यथेप्सितम्॥ ४६
स तु देवव्रतो नाम गाङ्गेय इति चाभवत् ।
द्युनामा शान्तनोः पुत्रः शान्तनोरधिको गुणैः ४७
शान्तनुश्चापि शोकार्तो जगाम स्वपुरं ततः ।
तस्याहं कीर्तयिष्यामि शान्तनोरधिकान्गुणान्४८
महाभाग्यं च नृपतेर्भारतस्य महात्मनः ।
यस्येतिहासो द्युतिमान्महाभारतमुच्यते ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवप० आपवोपाख्याने नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

---

वैशंपायन उवाच ।
स राजा शान्तनुर्धीमान्देवराजर्षिसत्कृतः ।
धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्रुतः ॥ १
दमो दानं क्षमा बुद्धिर्ह्रीर्धृतिस्तेज उत्तमम् ।
नित्यान्यासन्महासत्त्वे शान्तनौ पुरुषर्षभे ॥ २
एवं स गुणसंपन्नो धर्मार्थकुशलो नृपः ।
आसीद्भरतवंशस्य गोप्ता सर्वजनस्य च ॥ ३
कम्बुग्रीवः पृथुव्यंसो मत्तवारणविक्रमः ।
अन्वितः परिपूर्णार्थैः सर्वैर्नृपतिलक्षणैः ॥ ४
तस्य कीर्तिमतो वृत्तमवेक्ष्य सततं नराः ।
धर्म एव परः कामादर्थाच्चेति व्यवस्थिताः ॥ ५
एतान्यासन्महासत्त्वे शान्तनौ पुरुषर्षभे ।
न चास्य सदृशः कश्चिद्धर्मतः पार्थिवोऽभवत् ॥६
वर्तमानं हि धर्मेषु सर्वधर्मभृतां वरम् ।
तं महीपा महीपालं राजराज्येऽभ्यषेचयन् ॥ ७
वीतशोकभयाबाधाः सुखस्वप्ननिबोधनाः ।
पतिं भारतगोप्तारं समपद्यन्त भूमिपाः ॥ ८
तेन कीर्तिमता शिष्टाः शक्रप्रतिमतेजसा ।
यज्ञदानक्रियाशीलाः समपद्यन्त भूमिपाः ॥ ९
शान्तनुप्रमुखैर्गुप्ते लोके नृपतिभिस्तदा ।
नियमात्सर्ववर्णानां धर्मोत्तरमवर्तत ॥ १०
ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः ।
ब्रह्मक्षत्रानुरक्ताश्च शूद्राः पर्यचरन्विशः ॥ ११
स हास्तिनपुरे रम्ये कुरूणां पुटभेदने ।
वसन्सागरपर्यन्तामन्वशासद्वसुंधराम् ॥ १२
स देवराजसदृशो धर्मज्ञः सत्यवागृजुः ।
दानधर्मतपोयोगाच्छ्रिया परमया युतः ॥ १३
अरागद्वेषसंयुक्तः सोमवत्प्रियदर्शनः ।
तेजसा सूर्यकल्पोऽभूद्वायुवेगसमो जवे ॥
अन्तकप्रतिमः कोपे क्षमया पृथिवीसमः ॥ १४
वधः पशुवराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ।
शान्तनौ पृथिवीपाले नावर्तत तथा नृप ॥ १५
ब्रह्मधर्मोत्तरे राज्ये शान्तनुर्विनयात्मवान् ।
समं शशास भूतानि कामरागविवर्जितः ॥ १६
देवर्षिपितृयज्ञार्थमारभ्यन्त तदा क्रियाः ।
न चाधर्मेण केषांचित्प्राणिनामभवद्वधः ॥ १७
असुखानामनाथानां तिर्यग्योनिषु वर्तताम् ।
स एव राजा सर्वेषां भूतानामभवत्पिता ॥ १८
तस्मिन्कुरुपतिश्रेष्ठे राजराजेश्वरे सति ।
श्रिता वागभवत्सत्यं दानधर्माश्रितं मनः ॥ १९
स समाः षोडशाष्टौ च चतस्रोऽष्टौ तथापराः ।
रतिमप्राप्नुवन्स्त्रीषु बभूव वनगोचरः ॥ २०
तथारूपस्तथाचारस्तथावृत्तस्तथाश्रुतः ।
गाङ्गेयस्तस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना देवव्रतो वसुः ॥ २१
सर्वास्त्रेषु स निष्णातः पार्थिवेष्वितरेषु च ।
महाबलो महासत्त्वो महावीर्यो महारथः ॥ २२
स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन्नदीम् ।
भागीरथीमल्पजलां शान्तनुर्दृष्टवान्नृपः ॥ २३
तां दृष्ट्वा चिन्तयामास शान्तनुः पुरुषर्षभः ।
स्यन्दते किं त्वियं नाद्य सरिच्छ्रेष्ठा यथा पुरा २४

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

स राजेति ॥१॥ पुटभेदने पत्तने । 'पत्तनं पुटभेदनम्' इत्यमरः ॥ १२ ॥ दानं वहिर्वेदि धर्मः स्वाचारः तपः जपोपवासादि योग आत्मानुसंधानं एतच्चतुष्टयात् ॥ १३ ॥ ब्रह्म धर्मोत्तरे अहिंसाधर्मप्रधाने विनयात्मवान् विनयवान् आत्मवान् जितचित्तश्च ॥ १६ ॥ वाक्सत्यं श्रिताभवत ॥ १९ ॥ षोडशादीनां संकलने षट्त्रिंशत्समाः वर्षाणि ॥२०॥ अस्त्रेषु मन्त्रमयेषु शस्त्रेषु । पार्थिवेषु धनुर्बाणगदादिपृथिवीविकारेषु शस्त्रेषु ॥ २२ ॥ शरसंधानेन गङ्गाप्रवाहस्य निरोधादल्पजलाम् ॥ २३ ॥ स्यन्दते प्रस्रवति ॥ २४ ॥

एतदाख्याय सा देवी तत्रैवान्तरधीयत ।
आदाय च कुमारं तं जगामाथ यथेप्सितम् ॥
आदि० ९९ ४६

कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि ।
साऽब्रवीद्दाशकन्याऽस्मि धर्मार्थं वाहये तरिम् ॥
आदि० १००.४८

ततो निमित्तमन्विच्छन्ददर्श स महामनाः ।
कुमारं रूपसंपन्नं बृहन्तं चारुदर्शनम् ॥ २५
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरंदरम् ।
कृत्स्नां गङ्गां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम् ॥ २६
तां शरैराचितां दृष्ट्वा नदीं गङ्गां तदन्तिके ।
अभवद्विस्मितो राजा दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ २७
जातमात्रं पुरा दृष्ट्वा तं पुत्रं शान्तनुस्तदा ।
नोपलेभे स्मृतिं धीमानभिज्ञातुं तमात्मजम् ॥ २८
स तु तं पितरं दृष्ट्वा मोहयामास मायया ।
संमोह्य तु ततः क्षिप्रं तत्रैवान्तरधीयत ॥ २९
तदद्भुतं ततो दृष्ट्वा तत्र राजा स शान्तनुः ।
शङ्कमानः सुतं गङ्गामब्रवीद्दर्शयेति ह ॥ ३०
दर्शयामास तं गङ्गा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलंकृतम् ॥ ३१
अलंकृतामाभरणैर्विरजोम्बरसंवृताम् ।
दृष्टपूर्वामपि स तां नाभ्यजानात्स शान्तनुः ॥ ३२

गङ्गोवाच ।

यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्वं पुरा मय्यविन्दथाः ।
स चायं पुरुषव्याघ्र सर्वास्त्रविदुत्तमः ॥ ३३
गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम् ।
आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो ॥ ३४
वेदानधिजगे साङ्गान्वसिष्ठादेष वीर्यवान् ।
कृतास्त्रः परमेष्वासो देवराजसमो युधि ॥ ३५
सुराणां संमतो नित्यमसुराणां च भारत ।
उशना वेदयच्छास्त्रमयं तद्वेद सर्वशः ॥ ३६
तथैवाङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः ।
यद्वेदशास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ ३७
तव पुत्रे महाबाहौ साङ्गोपाङ्गं महात्मनि ।
ऋषिः परैरनाधृष्यो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ ३८
यदस्त्रं वेद रामश्च तदेतस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
महेष्वासमिमं राजन्राजधर्मार्थकोविदम् ॥ ३९
मया दत्तं निजं पुत्रं वीरं वीर गृहं नय ।

वैशंपायन उवाच ।

तयैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शान्तनुः ॥ ४०
भ्राजमानं यथादित्यमाययौ स्वपुरं प्रति ।
पौरवस्तु पुरीं गत्वा पुरंदरपुरोपमाम् ॥ ४१
सर्वकामसमृद्धार्थं मेने सोत्मानमात्मना ।
पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम् ॥ ४२
गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।
पौरवाञ्छान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः ॥ ४३
राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ ।
स तथा सहपुत्रेण रममाणो महीपतिः ॥ ४४
वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः ।
स कदाचिद्वनं यातो यमुनामभितो नदीम् ॥ ४५
महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गन्धमुत्तमम् ।
तस्य प्रभवमन्विच्छन्विचचार समन्ततः ॥ ४६
स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् ।
तामपृच्छत्स दृष्ट्वैव कन्यामसितलोचनाम् ॥ ४७
कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि
साऽब्रवीद्दाशकन्याऽस्मि धर्मार्थं वाहये तरिम् ॥ ४८
पितुर्नियोगाद्भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः ।
रूपमाधुर्यगन्धैस्तां संयुक्तां देवरूपिणीम् ॥ ४९
समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शान्तनुः ।
स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा ॥ ५०
पर्यपृच्छत्ततस्तस्याः पितरं सोत्मकारणात् ।
स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम् ॥ ५१
जातमात्रैव मे देया वराय वरवर्णिनी ।
हृदि कामस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥ ५२
यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ ।
सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥ ५३
समयेन प्रदद्यां ते कन्यामहमिमां नृप ।
न हि मे त्वत्समः कश्चिद्वरो जातु भविष्यति ॥ ५४

शान्तनुरुवाच ।

श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येयमहं तव ।
दातव्यं चेत्प्रदास्यामि न त्वदेयं कथंचन ॥ ५५

दाश उवाच ।

अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते ।
त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव ॥ ५६

वैशंपायन उवाच ।

नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शान्तनुः ।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥ ॥ ५७
स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः ।
प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः ॥ ५८

---

अभिज्ञातुं परिवेत्तुम् ॥ २८॥ अधिजगे अधीतवान् ॥३५॥ उशनाः शुक्रः ॥ ३६ ॥ अङ्गिरसः पुत्रो बृहस्पतिः ॥३७॥ सोत्मानं सः आत्मानम् ॥ ४२ ॥ दाशानां धीवराणाम् ॥ ४७ ॥ तरिं नावम् ॥ ४८॥ व्यवस्येयं विनिश्चिनुयां देयं न वेति ॥ ५५ ॥ शरीरजेन कामेन ॥५७ ॥

ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तनुं ध्यानमास्थितम् ।
पुत्रो देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५९
सर्वतो भवतः क्षेमं विधेयाः सर्वपार्थिवाः ।
तत्किमर्थमिहाभीक्ष्णं परिशोचसि दुःखितः॥ ६०
ध्यायन्निव च मां राजन्नाभिभाषसि किंचन ।
न चाश्वेन विनिर्यासि विवर्णो हरिणः कृशः ६१
व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यां हि तत्र वै ।
एवमुक्तः स पुत्रेण शान्तनुः प्रत्यभाषत ॥ ६२
असंशयं ध्यानपरो यथा वत्स तथा शृणु ।
अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत ॥ ६३
शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः ।
अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक ॥ ६४
कथंचित्तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम् ।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः ॥ ६५
न चाप्यहं वृथा भूयो दारान्कर्तुमिहोत्सहे ।
संतानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते ॥ ६६
अनपत्यतैकपुत्रत्वमित्याहुर्धर्मवादिनः ।
अग्निहोत्रं त्रयी विद्या संतानमपि चाक्षयम् ॥६७
सर्वाण्येतान्यपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
एवमेतन्मनुष्येषु तच्च सर्वं प्रजास्विति ॥ ६८
यदपत्यं महाप्राज्ञ तत्र मे नाऽस्ति संशयः ।
एषा त्रयी पुराणानां देवतानां च शाश्वती ॥६९
त्वं च शूरः सदामर्षी शस्त्रनित्यश्च भारत ।
नान्यत्र युद्धात्तस्मात्ते निधनं विद्यते क्वचित्॥७०
सोऽस्मि संशयमापन्नस्त्वयि शान्ते कथं भवेत् ।
इति ते कारणं तात दुःखस्योक्तमशेषतः ॥ ७१

वैशंपायन उवाच ।

ततस्तत्कारणं राज्ञो ज्ञात्वा सर्वमशेषतः ।
देवव्रतो महाबुद्धिः प्रज्ञया चान्वचिन्तयत् ॥ ७२
अभ्यगच्छत्तदैवाशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम् ।
तमपृच्छत्तदाऽभ्येत्य पितुस्तच्छोककारणम् ॥७३
तस्मै स कुरुमुख्याय यथावत्परिपृच्छते ।
वरं शशंस कन्यां तामुद्दिश्य भरतर्षभ ॥ ७४
ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा ।
अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ॥७५
तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत्प्रतिपूज्य च ।
अब्रवीच्चैनमासीनं राजसंसदि भारत ॥ ७६
त्वमेव नाथः पर्याप्तः शान्तनोर्भरतर्षभ ।
पुत्रः शस्त्रभृतां श्रेष्ठः किं तु वक्ष्यामि ते वचः ७७
को हि संबन्धकं श्लाघ्यमीप्सितं यौनमीदृशम् ।
अतिक्रामन्न तप्येत साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ७८
अपत्यं चैतदार्यस्य यो युष्माकं समो गुणैः ।
यस्य शुक्रात्सत्यवती संभूता वरवर्णिनी ॥ ७९
तेन मे बहुशस्तात पिता ते परिकीर्तितः ।
अर्हः सत्यवतीं वोढुं धर्मज्ञः स नराधिपः ॥ ८०
असितो ह्यपि देवर्षिः प्रत्याख्यातः पुरा मया ।
सत्यवत्या भृशं चार्थी स आसीदृषिसत्तमः ॥८१
कन्यापितृत्वात्किंचित्तु वक्ष्यामि त्वां नराधिप ।
बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलम् ॥ ८२
यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्यासुरस्य वा ।
न स जातु चिरं जीवेत्त्वयि क्रुद्धे परंतप ॥ ८३
एतावानत्र दोषो हि नान्यः कश्चन पार्थिव ।
एतज्जानीहि भद्रं ते दानादाने परंतप ॥ ८४

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु गाङ्गेयस्तद्युक्तं प्रत्यभाषत ।
शृण्वतां भूमिपालानां पितुरर्थाय भारत ॥ ८५
इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतांवर ।
नैव जातो न वा जात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत् ॥ ८६
एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे ।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति
इत्युक्तः पुनरेवाथ तं दाशः प्रत्यभाषत ।
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म राज्यार्थे भरतर्षभ ॥ ८८
त्वमेव नाथः संप्राप्तः शान्तनोरमितद्युते ।
कन्यायाश्चैव धर्मात्मन्प्रभुर्दानाय चेश्वरः ॥ ८९
इदं तु वचनं सौम्य कार्यं चैव निबोध मे ।
कौमारिकाणां शीलेन वक्ष्याम्यहमरिंदम ॥ ९०
यत्त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण ।
राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत् ॥ ९१
नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन ।
तवापत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयो महान् ॥ ९२

---

हरिणः पाण्डुगात्रः ॥६१॥ विद्यासंतानं शिष्यप्रशिष्यद्वारा ॥६७॥ एवमिति । एतत् संतानस्य श्रेयः साधनत्वं मनुष्येषु तदन्यासु प्रजासु पश्वादिषु च प्रसिद्धं ।'नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः । तस्मात्तु पुत्रो मातरं स्वसारं चाधिरोहति' इति मन्त्रलिङ्गात् ॥ ६८ ॥ अपत्यं श्रेयःसाधनं इति यत् तत्र मे संशयो नास्ति । तस्मान्मन्दपालवत् यथा कथंचित्प्रजोत्पादनं कर्तव्यमिति भावः । त्रयी वेदः सोऽयं लोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा । 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः'इत्यादिः पुराणानां मूलभूता देवतानां प्रमाणभूता ॥६९॥ वरं वरणीयम् ॥७४॥ कौमारिकाणां कुमारीस्नेहवताम् ॥ ८९ ॥

अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि ॥
आदि० १००.९६

वैशंपायन उवाच ।

तस्यैतन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः ।
प्रत्यजानात्तदा राजन्पितुः प्रियचिकीर्षया ॥ ९३

गाङ्गेय उवाच ।

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम ।
शृण्वतां भूमिपालानां यद्ब्रवीमि पितुः कृते ॥९४
राज्यं तावत्पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः ।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयम् ॥ ९५
अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ।
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि ९६

वैशंपायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संप्रहृष्टतनूरुहः ।
ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ॥ ९७
ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवाः सर्षिगणास्तदा ।
अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ९८
ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम् ।
अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ॥ ९९

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु भीष्मस्तु रथमारोप्य भाविनीम् ।
आगम्य हास्तिनपुरं शान्तनोः संन्यवेदयत् १००
तस्य तद्दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः ।
समेताश्च पृथक्चैव भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ १
तच्छ्रुत्वा दुष्करं कर्म कृतं भीष्मेण शान्तनुः ।
स्वच्छन्दमरणं तुष्टो ददौ तस्मै महात्मने ॥ २
न ते मृत्युः प्रभविता यावज्जीवितुमिच्छसि ।
त्वत्तो ह्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभवितानघ ॥१०३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि सत्यवतीलाभोपाख्याने शततमोऽध्यायः ॥१००॥

## १०१

वैशंपायन उवाच ।

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शान्तनुर्नृपः ।
तां कन्यां रूपसंपन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ॥ १
ततः शान्तनवो धीमान्सत्यवत्यामजायत ।
वीरश्चित्राङ्गदो नाम वीर्यवान्पुरुषेश्वरः ॥ २
अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभुः ।
विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ॥ ३
अप्राप्तवति तस्मिंस्तु यौवनं पुरुषर्षभे ।
स राजा शान्तनुर्धीमान्कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ४
स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिंदमम् ।
स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः ॥५
स तु चित्राङ्गदः शौर्यात्सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान् ।
मनुष्यं न हि मेने स कंचित्सदृशमात्मनः ॥ ६
तं क्षिपन्तं सुरांश्चैव मनुष्यानसुरांस्तथा ।
गन्धर्वराजो बलवांस्तुल्यनामाऽभ्ययात्तदा ॥ ७
तेनास्य सुमहद्युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह ।
तयोर्बलवतोस्तत्र गन्धर्वकुरुमुख्ययोः ।
नद्यास्तीरे सरस्वत्याः समास्तिस्रोऽभवद्रणः ॥ ८
तस्मिन्विमर्दे तुमुले शस्त्रवर्षसमाकुले ।
मायाधिकोऽवधीद्वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम् ॥ ९
स हत्वा तु नरश्रेष्ठं चित्राङ्गदमरिंदमम् ।
अन्ताय कृत्वा गन्धर्वो दिवमाचक्रमे ततः ॥ १०
तस्मिन्पुरुषशार्दूले निहते भूरितेजसि ।
भीष्मः शान्तनवो राजा प्रेतकार्याण्यकारयत् ११
विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयौवनम् ।
कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिञ्चदनन्तरम् ॥ १२
विचित्रवीर्यः स तदा भीष्मस्य वचने स्थितः ।
अन्वशासन्महाराज पितृपैतामहं पदम् ॥ १३
स धर्मशास्त्रकुशलं भीष्मं शान्तनवं नृपः ।
पूजयामास धर्मेण स चैनं प्रत्यपालयत् ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि चित्राङ्गदोपाख्याने एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१

---

भीष्मोऽयं भयंकरकर्मकारित्वात् ॥९८॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे शततमोऽध्याय ॥१००

१०१

तत इति ॥ १ ॥ कालधर्मं मृत्युम् ॥ ४ ॥ तुल्यनामा चित्राङ्गदनामा ॥ ८ ॥ अन्ताय कृत्वा अन्तं कर्तुं युद्धं कृत्वेत्यर्थ ॥ १० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०१

# १०२

वैशंपायन उवाच

हते चित्राङ्गदे भीष्मो बाले भ्रातरि कौरव।
पालयामास तद्राज्यं सत्यवत्या मते स्थितः॥ १
संप्राप्तयौवनं दृष्ट्वा भ्रातरं धीमतां वरः।
भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाकरोन्मतिम् २
अथ काशिपतेर्भीष्मः कन्यास्तिस्रोऽप्सरोपमाः।
शुश्राव सहिता राजन्वृण्वाना वै स्वयंवरम् ॥ ३
ततः स रथिनां श्रेष्ठो रथेनैकेन शत्रुजित्।
जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रभुः ॥ ४
तत्र राज्ञः समुदितान्सर्वतः समुपागतान्।
ददर्श कन्यास्ताश्चैव भीष्मः शान्तनुनन्दनः ॥ ५
कीर्त्यमानेषु राज्ञां तु तदा नामसु सर्वशः।
एकाकिनं तदा भीष्मं वृद्धं शान्तनुनन्दनम् ॥ ६
सोद्वेगा इव तं दृष्ट्वा कन्याः परमशोभनाः।
अपाक्रामन्त ताः सर्वा वृद्ध इत्येव चिन्तया ॥ ७
वृद्धः परमधर्मात्मा वलीपलितधारणः।
किं कारणमिहायातो निर्लज्जो भरतर्षभः ॥ ८
मिथ्याप्रतिज्ञो लोकेषु किं वदिष्यति भारत।
ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि ॥ ९
इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्ति स्म नृपाधमाः।

वैशंपायन उवाच।

क्षत्रियाणां वचः श्रुत्वा भीष्मश्चुक्रोध भारत ॥१०
भीष्मस्तदा स्वयं कन्या वरयामास ताः प्रभुः।
उवाच च महीपालान्राजञ्जलदनिःस्वनः॥ ११
रथमारोप्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः।
आहूय दानं कन्यानां गुणवद्भ्यः स्मृतं बुधैः॥ १२
अलंकृत्य यथाशक्ति प्रदाय च धनान्यपि।
प्रयच्छन्त्यपरे कन्या मिथुनेन गवामपि ॥ १३
वित्तेन कथितेनान्ये बलेनान्येऽनुमान्य च।
प्रमत्तामुपयन्त्यन्ये स्वयमन्ये च विन्दते ॥ १४
आर्षं विधिं पुरस्कृत्य दारान्विन्दति चापरे।
अष्टमं तमथो वित्त विवाहं कविभिर्वृतम् ॥ १५
स्वयंवरं तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च।
प्रमथ्य तु हृतामाहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ॥ १६
त इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः।
ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा ॥ १७
स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतनिश्चयः।
एवमुक्त्वा महीपालान्काशिराजं च वीर्यवान् ॥
सर्वाः कन्याः स कौरव्यो रथमारोप्य च स्वकम्
आमन्त्र्य च स तान्प्रायाच्छीघ्रं कन्याः प्रगृह्य ताः
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्षिताः।
संस्पृशन्तः स्वकान्बाहून्दशन्तो दशनच्छदान् ॥
तेषामाभरणान्याशु त्वरितानां विमुञ्चताम्।
आमुञ्चतां च वर्माणि संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ २१
ताराणामिव संपातो बभूव जनमेजय।
भूषणानां च सर्वेषां कवचानां च सर्वशः ॥ २२
स वर्मभिर्भूषणैश्च प्रकीर्यद्भिरितस्ततः।
सक्रोधामर्षजिह्मभ्रू कषायीकृतलोचनाः ॥ २३
सूतोपक्लृप्तान्रुचिरान्सदश्वैरुपकल्पितान्।
रथानास्थाय ते वीराः सर्वप्रहरणान्विताः ॥ २४
प्रयान्तमथ कौरव्यमनुसस्रुरुदायुधाः।
ततः समभवद्युद्धं तेषां तस्य च भारत।
एकस्य च बहूनां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २५
तेत्विन्दशसाहस्रांस्तस्मिन्युगपदाक्षिपन्।
अप्राप्तांश्चैव तानाशु भीष्मः सर्वांस्तथान्तरा २६
अच्छिनच्छरवर्षेण महता लोमवाहिना।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे सर्वतः परिवार्य तम् ॥ २७
ववृषुः शरवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः।
स तं बाणमयं वर्षं शरैरावार्य सर्वतः ॥ २८
ततः सर्वान्महीपालान्पर्यविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः।
एकैकस्तु ततो भीष्मं राजन्विव्याध पञ्चभिः २९
स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमन्।
तद्युद्धमासीत्तुमुलं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ३०
पश्यतां लोकवीराणां शरशक्तिसमाकुलम्।
स धनूंषि ध्वजाग्राणि वर्माणि च शिरांसि च३१
चिच्छेद समरे भीष्मः शतशोऽथ सहस्रशः।
तस्यातिपुरुषानन्याँल्लाघवं रथचारिणः ॥ ३२

---

हते इति ॥ १ ॥ आहूयेति ब्राह्मः ॥ १२ ॥ मिथुनेन गृहीतेनेत्यार्षः ॥ १३ ॥ वित्तेनेत्यासुरः। बलेनेति राक्षसः अनुमान्येति गान्धर्वः। प्रमत्तामिति पैशाचः। स्वयमन्ये इति प्राजापत्यः ॥ १४ ॥ आर्षं विधिं यज्ञं तेन दैव उक्तः एतेऽष्टौ विवाहाः प्राग्व्याख्याताः। अष्टमं राक्षसं विवाहम् ॥ १५ ॥ प्रशसन्ति स्वयंवरमिति ॥ १६ ॥ प्रकीर्यद्भिर्भूषणैरुपलक्षिता अनुसस्रुरिति तृतीयेनान्वयः ॥ २३ ॥ अन्यान्प्रति तस्य रथचारिणः लाघवं शैघ्र्यं परध्वजादिच्छेदे यत् तत् शत्रवोऽप्यपूजयन्निति संबन्धः ॥३२ ॥

रक्षणं चात्मनः संख्ये शत्रवोऽप्यभ्यपूजयन् ।
तान्विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३३
कन्याभिः सहितः प्रायाद्भारतो भारतान्प्रति ।
ततस्तं पृष्ठतो राजञ्छाल्वराजो महारथः ॥ ३४
अभ्यगच्छदमेयात्मा भीष्मं शान्तनवं रणे ।
वारणं जघने भिन्दन्दन्ताभ्यामपरो यथा ॥ ३५
वासितामनुसंप्राप्तो यूथपो बलिनां वरः ।
स्त्रीकामस्तिष्ठ तिष्ठेति भीष्ममाह स पार्थिवः ॥
शाल्वराजो महाबाहुरमर्षेण प्रचोदितः ।
ततः सः पुरुषव्याघ्रो भीष्मः परबलार्दनः ॥ ३७
तद्वाक्याकुलितः क्रोधाद्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
विततेषु धनुष्पाणिर्विकुञ्चितललाटभृत् ॥ ३८
क्षत्रधर्मं समास्थाय व्यपेतभयसंभ्रमः ।
निवर्तयामास रथं शाल्वं प्रति महारथः ॥ ३९
निवर्तमानं तं दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते ।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त भीष्मशाल्वसमागमे ॥ ४०
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
अन्योन्यमभिवर्तेतां बलविक्रमशालिनौ ॥ ४१
ततो भीष्मं शान्तनवं शरैः शतसहस्रशः ।
शाल्वराजो नरश्रेष्ठः समवाकिरदाशुगैः ॥ ४२
पूर्वमभ्यर्दितं दृष्ट्वा भीष्मं शाल्वेन ते नृपाः ।
विस्मिताः समपद्यन्त साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥
लाघवं तस्य ते दृष्ट्वा समरे सर्वपार्थिवाः ।
अपूजयन्त संहृष्टा वाग्भिः शाल्वं नराधिपम् ४४
क्षत्रियाणां ततो वाचः श्रुत्वा परपुरंजयः ।
क्रुद्धः शान्तनवो भीष्मस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत ॥ ४५
सारथिं चाब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्रैव पार्थिवः ।
यावदेनं निहन्म्यद्य भुजङ्गमिव पक्षिराट् ॥ ४६
ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग्योजयामास कौरवः ।
तेनाश्वांश्चतुरोऽमृद्नाच्छाल्वराजस्य भूपते ॥ ४७
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शाल्वराजस्य कौरवः ।
भीष्मो नृपतिशार्दूल न्यवधीत्तस्य सारथिम् ४८
अस्त्रेण चास्याथैन्द्रेण न्यवधीत्तुरगोत्तमान् ।
कन्याहेतोर्नरश्रेष्ठ भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ४९
जित्वा विसर्जयामास जीवन्तं नृपसत्तमम् ।
ततः शाल्वः स्वनगरं प्रययौ भरतर्षभ ॥ ५०

स्वराज्यमन्वशाच्चैव धर्मेण नृपतिस्तदा ।
राजानो ये च तत्रासन्स्वयंवरदिदृक्षवः ॥ ५१
स्वान्येव तेऽपि राष्ट्राणि जग्मुः परपुरंजयाः ।
एवं विजित्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः ५२
प्रययौ हास्तिनपुरं यत्र राजा स कौरवः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा प्रशास्ति वसुधामिमाम् ॥
यथा पितास्य कौरव्यः शान्तनुर्नृपसत्तमः ।
सोऽचिरेणैव कालेन अत्यक्रामन्नराधिप ॥ ५४
वनानि सरितश्चैव शैलांश्च विविधान्द्रुमान् ।
अक्षतः क्षपयित्वाऽरीन्संख्येऽसंख्येयविक्रमः ५५
आनयामास काश्यस्य सुताः सागरगासुतः ।
स्नुषा इव स धर्मात्मा भगिनीरिव चानुजाः ५६
यथा दुहितरश्चैव परिगृह्य ययौ कुरून् ।
आनिन्ये स महाबाहुर्भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥५७
ताः सर्वगुणसंपन्ना भ्राता भ्रात्रे यवीयसे ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विक्रमाहृताः ॥५८
एवं धर्मेण धर्मज्ञः कृत्वा कर्मातिमानुषम् ।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे ॥ ५९
सत्यवत्या सह मिथः कृत्वा निश्चयमात्मवान् ।
विवाहं कारयिष्यन्तं भीष्मं काशिपतेः सुता ।
ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्धसती तदा ॥ ६०
मयाऽसौ भूपतिः पूर्वं मनसा हि वृतः पतिः ।
तेन चास्मि वृता पूर्वमेष कामश्च मे पितुः ॥ ६१
मया वरयितव्योऽभूच्छाल्वस्तस्मिन्स्वयंवरे ।
एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ धर्मतत्त्वं समाचर ॥ ६२
एवमुक्तस्तया भीष्मः कन्यया विप्रसंसदि ।
चिन्तामभ्यगमद्वीरो युक्तां तस्यैव कर्मणः ॥ ६३
विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम् ॥६४
अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद्भ्रात्रे यवीयसे ।
भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ६५
तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥ ६६
ते चापि बृहती श्यामे नीलकुञ्चितमूर्धजे ।
रक्ततुङ्गनखोपेते पीनश्रोणिपयोधरे ॥ ६७

---

चासिता करिणीं प्राप्तं वारणं यथाऽपरोऽनुप्राप्तो जघने भिन्दन् इति संबन्धः । वासिता स्त्रीकरेण्वोश्चेत्यमरः ॥ ३५ ॥ वृषौ रेतःसेककामौ गजौ गोवृषाविव वा तत्साहचर्याद्वासिता पुष्पिणी-गौस्तदन्तरे तन्निमित्तम् ॥४१॥ जीवन्तं प्राणमात्रावशेषितम् ॥ ५० ॥ काश्यस्य काशिराजस्य ॥ २६ ॥ अनुजाः कनिष्ठाः ॥ ५७ ॥ तस्य वैवाहिकस्य कर्मणः काले ॥६३॥ बृहत्यौ च ते श्यामे च प्रौढे अप्रसूते च बृहतीपुष्पवद्रक्त-श्यामे इत्यन्ये ॥ ६७ ॥

आत्मनः प्रतिरूपोऽसौ लब्धः पतिरिति स्थिते ।
विचित्रवीर्यं कल्याण्यौ पूजयामासतुः शुभे ॥६८
स चाश्विरूपसदृशो देवतुल्यपराक्रमः ।
सर्वासामेव नारीणां चित्तप्रमथनो रहः ॥ ६९
ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन्पृथिवीपतिः ।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥ ७०
सुहृदां यतमानानामाप्तैः सह चिकित्सकैः ।
जगामाऽस्तमिवादित्यः कौरव्यो यमसादनम् ७१
धर्मात्मा स तु गाङ्गेयश्चिन्ताशोकपरायणः ।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि तस्य सम्यगकारयत् ॥ ७२
राज्ञो विचित्रवीर्यस्य सत्यवत्या मते स्थितः ।
ऋत्विग्भिः सहितो भीष्मः सर्वैश्च कुरुपुङ्गवैः ७३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि विचित्रवीर्योपरमे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२

---

## १०३

वैशंपायन उवाच ।

ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी ।
पुत्रस्य कृत्वा कार्याणि स्नुषाभ्यां सह भारत ॥१
समाश्वास्य स्नुषे ते च भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।
धर्मं च पितृवंशं च मातृवंशं च भाविनी ।
प्रसमीक्ष्य महाभागा गाङ्गेयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २
शान्तनोर्धर्मनित्यस्य कौरव्यस्य यशस्विनः ।
त्वयि पिण्डश्च कीर्तिश्च संतानं च प्रतिष्ठितम् ३
यथा कर्म शुभं कृत्वा स्वर्गोपगमनं ध्रुवम् ।
यथा चायुर्ध्रुवं सत्ये त्वयि धर्मस्तथा ध्रुवः ॥ ४
वेत्थ धर्मांश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च ।
विविधास्त्वं श्रुतीर्वेत्थ वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ५
व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं च लक्षये ।
प्रतिपत्तिं च कृच्छ्रेषु शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ ६
तस्मात्सुभृशमाश्वस्य त्वयि धर्मभृतां वर ।
कार्ये त्वां विनियोक्ष्यामि तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि ७
मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्यवान्सुप्रियश्च ते ।
बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ ॥ ८
इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे ।
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च भारत ॥ ९
तयोरुत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य नः ।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि ॥ १०
राज्ये चैवाभिषिच्यस्व भारताननुशाधि च ।
दारांश्च कुरु धर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ॥११

वैशंपायन उवाच ।

तथोच्यमानो मात्रा स सुहृद्भिश्च परंतपः ।
इत्युवाचाथ धर्मात्मा धर्म्यमेवोत्तरं वचः ॥ १२
असंशयं परो धर्मस्त्वया मातरुदाहृतः ।
त्वमपत्यं प्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वै पराम् ॥१३
जानासि च यथावृत्तं शुल्कहेतोस्त्वदन्तरे ।
स सत्यवति सत्यं ते प्रतिजानाम्यहं पुनः ॥ १४
परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः ।
यद्वाऽप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥ १५
त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः ।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत् १६
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम् ।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्
विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट् ।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥ १८
एवमुक्ता तु पुत्रेण भूरिद्रविणतेजसा ।
माता सत्यवती भीष्ममुवाच तदनन्तरम् ॥ १९
जानामि ते स्थितिं सत्ये परां सत्यपराक्रम ।
इच्छन्सृजेथास्त्रीँल्लोकानन्यांस्त्वं स्वेन तेजसा २०
जानामि चैवं सत्यं तन्मदर्थं यच्च भाषितम् ।
आपद्धर्मं त्वमावेक्ष्य वह पैतामहीं धुरम् ॥ २१

---

स्थिते तत्रैव निष्ठावत्यौ ॥६८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२

१०३

तत इति ॥ १ ॥ इतरेण विस्तरेण ॥ ५ ॥ आश्वस्य विश्वासं प्राप्य ॥ ७ ॥ राज्ये चैव राज्य एव वा आत्मानं अभिषिच्यस्व अभिषेचय कुरु ब्रह्मचर्यसंकल्पात्प्रभृति त्यक्तान् संतत्यर्थमङ्गीकुरु मा निमज्जीः मा निमज्जय ॥ ११ ॥ त्वदन्तरे त्वन्निमित्तम् ॥ १४ ॥ भूरिद्रविणतेजसा बहुबलोत्साहवता ॥ १९ ॥

यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत् ।
सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परंतप ॥ २२
लालप्यमानां तामेवं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।
धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मोभूयोऽब्रवीदिदम् ॥ २३
राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मा नः सर्वान्व्यनीनशः ।
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ २४
शान्तनोरपि सन्तानं यथा स्यादक्षयं भुवि ।
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥ २५
श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सह पुरोहितैः ।
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मसत्यवतीसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३

---

## १०४

भीष्म उवाच ।
जामदग्न्येन रामेण पितुर्वधममृष्यता ।
राजा परशुना पूर्वं हैहयाधिपतिर्हतः ॥ १
शतानि दश बाहूनां निकृत्तान्यर्जुनस्य वै ।
लोकस्याचरितो धर्मस्तेनाति किल दुश्चरः ॥ २
पुनश्च धनुरादाय महास्त्राणि प्रमुञ्चता ।
निर्दग्धं क्षत्रमसकृद्रथेन जयता महीम् ॥ ३
एवमुच्चावचैरस्त्रैर्भार्गवेण महात्मना ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥४
एवं निःक्षत्रिये लोके कृते तेन महर्षिणा ।
ततः संभूय सर्वाभिः क्षत्रियाभिः समन्ततः ॥ ५
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥ ६
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः ।
लोकेऽप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः ॥ ७
ततः पुनः समुदितं क्षत्रं समभवत्तदा ।
इमं चैवात्र वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ ८
अथोतथ्य इति ख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा ।
ममता नाम तस्यासीद्भार्या परमसंमता ॥ ९
उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम् ।
बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥ १०
उवाच ममता तं तु देवरं वदतां वरम् ।
अन्तर्वत्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनारम्यतामिति ॥ ११
अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते ।
औतथ्यो वेदमत्रापि षडङ्गं प्रत्यधीयत ॥ १२
अमोघरेतास्त्वं चापि द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः ।
तस्मादेवंगते त्वद्य उपारमितुमर्हसि ॥ १३
एवमुक्तस्तदा सम्यग्बृहस्पतिरुदारधीः ।
कामात्मानं तदात्मानं न शशाक नियच्छितुम् १४
स बभूव ततः कामी तया सार्धमकामया ।
उत्सृजन्तं तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १५
भोस्तात मा गमः कामं द्वयोर्नास्तीह संभवः ।
अल्पावकाशो भगवन्पूर्वं चाहमिहागतः ॥ १६

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १०३ ॥

---

१०४

जामदग्न्येनेति ॥ १ ॥ निकृत्तानि छिन्नानि ॥ २ ॥ ब्राह्मणै सभूय सङ्ग कृत्वा उत्पादितानीति संबन्ध ॥ ६ ॥ ननु कथं तर्हि 'माता भस्त्रा पितु पुत्रो येन जात स एव स' इत्युक्तम् । 'अन्योदर्योमनसा मतवा उ' इतिश्रुतेरन्योदर्योमनसापि न मतव्यो मऽमायं पुत्र इति तन्निर्वचनाञ्च शेषो अग्रे अन्यजातमस्तीति श्रुतेश्चान्यक्षेत्रेन्यस्मात्स्वस्माद्वा जात शेपशब्दितो न स्वपुत्र किं तु क्षेत्रपतेरेवेति निश्चयात् । तेन दत्तक्रीतान्यक्षेत्रजादीनामपुत्रत्वं सिद्धमत आह । धर्ममिति । धर्मं ममाय पुत्रो भविष्यतीत्यभिलापम् । अथ खलु 'क्रतुमय पुरुष' इति संकल्पप्राधान्यश्रुते । स्त्रीपुंसयोर्मध्ये यस्य संकल्पो दृढस्तस्यैव पुत्र इत्यर्थ । माता भस्त्रेति तु विवाहविषयम् । नन्वेव शालिक्षेत्रे यवबीजादपि शाल्यङ्कुरोत्पत्तिः स्यादितिचेन्न । दावाग्निदग्धात् कदलीकाण्डादपि वेत्राङ्कुरोत्पत्तिदृष्टेः श्वमस्तकेन्युप्तगोधूमयावनालादे पलाण्डुलशुनाङ्कुरोत्पत्तिदृष्टेश्च भावनाविशेषजन्यधर्मस्यैव विशेषाधायकत्वाभ्युपगमात् । धनादिनोपानिमन्त्रणाच्च क्षेत्रपतेरेव सा संततिर्न विप्रस्य लोकेऽपीति । कल्माषपादक्षेत्रे मदयन्त्या वसिष्ठेन पुत्रा उत्पादिता इति लोकेऽप्याचरितोऽनुष्ठितो दृष्ट । क्षत्रियाणा भव उत्पत्तिर्ब्राह्मणेभ्य इति शेष ॥ ७ ॥ अन्वपद्यत उपगतवान् ॥ १० ॥ आरम्यता उपरम्यताम् ॥ ११ ॥ आत्मान चित्तं नियच्छितु नियन्तुम् ॥१४॥ तया कामनिग्रहाशक्तया ॥ १५ ॥ कामं मैथुनं मा गम ॥ १६ ॥

अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्तुमर्हति ।
अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः ॥ १७
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम् ।
शुक्रोत्सर्गे ततो बुद्ध्वा तस्या गर्भगतो मुनिः ॥ १८
पद्भ्यामारोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः ।
स्थानमप्राप्तमथ तच्छुक्रं प्रतिहतं तदा ॥ १९
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो बृहस्पतिः ।
तं दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः ॥२०
उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः ।
यन्मां त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ॥ २१
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ।
स वै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ॥ २२
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिवौजसा ।
जात्यन्धो वेदवित्प्राज्ञः पत्नीं लेभे स विद्यया २३
तरुणीं रूपसंपन्नां प्रद्वेषीं नाम ब्राह्मणीम् ।
स पुत्राञ्जनयामास गौतमादीन्महायशाः ॥ २४
ऋषेरुतथ्यस्य तदा संतानकुलवृद्धये ।
धर्मात्मा च महात्मा च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २५
गोधर्मं सौरभेयाच्च सोऽधीत्य निखिलं मुनिः ।
प्रावर्तत तदा कर्तुं श्रद्धावांस्तमशङ्कया ॥ २६
ततो वितथमर्यादं तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमाः ।
क्रुद्धा मोहाभिभूतास्ते सर्वे तत्राश्रमौकसः ॥ २७
अहोऽयं भिन्नमर्यादो नाश्रमे वस्तुमर्हति ।
तस्मादेनं वयं सर्वे पापात्मानं त्यजामहे ॥ २८
इत्यन्योऽन्यं समाभाष्य ते दीर्घतमसं मुनिम् ।
पुत्रलाभा च सा पत्नी न तुतोष पतिं तदा ॥ २९
प्रद्विषन्तीं पतिर्भार्यां किं मां द्वेक्षीति चाब्रवीत् ।

प्रद्वेष्युवाच ।

भार्याया भरणाद्भर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः॥ ३०
अहं त्वद्भरणाशक्ता जात्यन्धं ससुतं तदा ।
नित्यकालं श्रमेणार्ता न भरेयं महातपः ॥३१

भीष्म उवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिः कोपसमन्वितः ।
प्रत्युवाच ततः पत्नीं प्रद्वेषीं ससुतां तदा ॥ ३२
नियतां क्षत्रियकुले धनार्थश्च* भविष्यति ।

प्रद्वेष्युवाच ।

त्वया दत्तं धनं विप्र नेच्छेयं दुःखकारणम् ॥ ३३
यथेष्टं कुरु विप्रेन्द्र न भरेयं पुरा यथा ।

दीर्घतमा उवाच ।

अद्यप्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता ॥ ३४
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम् ।
मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम् ॥ ३५
अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः ।
अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम् ॥ ३६
यद्यस्ति चेद्धनं सर्वे वृथाभोगा भवन्तु ताः ।
अकीर्तिः परिवादाश्च नित्यं तासां भवन्तु वै ॥३७
इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणी भृशकोपिता ।
गङ्गायां नीयतामेष पुत्रा इत्येवमब्रवीत् ॥ ३८
लोभमोहाभिभूतास्ते पुत्रास्तं गौतमादयः ।
बध्वोडुपे परिक्षिप्य गङ्गायां समवासृजन् ॥ ३९
कस्मादन्धश्च वृद्धश्च भर्तव्योऽयमिति स्म ते ।
चिन्तयित्वा ततः क्रूराः प्रतिजग्मुरथो गृहान् ४०

---

तं शशापेति संबन्धः ॥ २० ॥ दीर्घं तमः अन्धत्वम् ॥२२॥ सम्यक् तानं विस्तारो यस्य तस्य कुलस्य वृद्धये विस्तीर्णस्यापि वृद्धये इत्यर्थः ॥ २५ ॥ गोधर्मं प्रकाशमैथुनम् । सौरभेयात् कामधेनुपुत्रात् अधीत्य अधिगम्य ॥ २६ ॥ मोहाभिभूतत्वं अपापे पापदर्शित्वात् ॥ २७ ॥ पुत्रलाभा लब्धपुत्रा । तदा गोधर्मकाले न तुतोष ते मुनयः पत्नी च तं त्यक्तवन्त इत्यर्थः । यतः अत एव प्रद्वेषीति तस्याः नाम ॥ २९ ॥ द्वेक्षि द्वेषं करोषि पतिः पालनादुपसर्गेभ्यः भरणादन्नादिना भर्ता च ॥ ३०॥ अहं तु प्रत्युत त्वद्भरणाशक्ता सती न भरेयम् । तदा तदेव । लुप्तोपमा । पूर्ववदित्यर्थः ॥ ३१ ॥ धनं अर्थश्च उपभोगादिः ॥ ३३ ॥ न भरेयं यथा पुरा । भर्त्रन्तरं करिष्यामीत्याशयः ॥ ३४ ॥ एक एवेति। ननु ' यदेकस्मिन्यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नैकां रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते' इत्यार्थवादिकनिषेधविधेरेकस्याः पतिद्वयस्याप्राप्तत्वात्कथमियं दीर्घतमसा मर्यादा क्रियते इति चेत्तत्राह । मृते इति । ' तस्मादेकस्य बह्वयो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सह पतयः' इति श्रुत्यन्तरे 'सह' शब्दात्पर्यायेणानेकपतित्वप्रसञ्जनाद्रागतः प्राप्तत्वाच्च तन्निषेधोपपत्तिः । सह शब्दोऽपि रागतः प्राप्तनुवाद एव न विधायकः । अन्यथा विहितप्रतिषिद्धत्वादनेकपतित्वे विकल्पः स्यात् । कथं तर्हि द्रौपद्याः पञ्चपाण्डवा मारिषायाश्च दशप्राचेतसः । इदानीं तनानां नीचानां च द्वित्रादयः पतयो दृश्यन्त इति चेन्न । 'न देवचरितं चरेत्'इति न्यायेन देवताकल्पेषु पर्यनुयोगायोगात् । नीचानां पशुप्रायाणां चाचारस्याप्रामाण्याच्च । अधिकारिविषयवत्त्वाच्च नियोगस्येति दिक् ॥ ३५ ॥ भोगः पुंयोगः । वृथा ऐहिकप्रतिष्ठाकरसंततिशून्यः प्रत्युतान्यथैव तत्स्यादित्याहाकीर्तिश्चेति ॥ ३७ ॥ उडुपे प्लवे 'उडुपं तु प्लवः कोलः' इत्यमरः॥३९॥

* धनसहितोऽर्थ इति समासः

सोऽनुस्रोतस्तदा विप्रः प्लवमानो यदृच्छया ।
जगाम सुबहून्देशानन्धस्तेनोडुपेन ह ॥ ४१
तं तु राजा बलिर्नाम सर्वधर्मविदां वरः ।
अपश्यन्मज्जनगतः स्रोतसाभ्याशमागतम् ॥ ४२
जग्राह चैनं धर्मात्मा बलिः सत्यपराक्रमः ।
ज्ञात्वा चैवं स वव्रेऽथ पुत्रार्थे भरतर्षभ ॥ ४३
सन्तानार्थं महाभाग भार्यासु मम मानद ।
पुत्रान्धर्मार्थकुशलानुत्पादयितुमर्हसि ॥ ४४
एवमुक्तः स तेजस्वी तं तथेत्युक्तवानृषिः ।
तस्मै स राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां प्राहिणोत्तदा॥
अन्धं वृद्धं च तं मत्वा न सा देवी जगाम ह ।
स्वां तु धात्रेयिकां तस्मै वृद्धाय प्राहिणोत्तदा ४६
तस्यां काक्षीवदादीन्स शूद्रयोनावृषिस्तदा ।
जनयामास धर्मात्मा पुत्रानेकादशैव तु ॥ ४७
काक्षीवदादीन्पुत्रांस्तान्दृष्ट्वा सर्वानधीयतः ।
उवाच तमृषिं राजा ममेम इति भारत ॥ ४८
नेत्युवाच महर्षिस्तं ममेम इति चाब्रवीत् ।
शूद्रयोनौ मया हीमे जाताः काक्षीवदादयः ॥४९
अन्धं वृद्धं च मां दृष्ट्वा सुदेष्णा महिषी तव ।
अवमन्य ददौ मूढा शूद्रां धात्रेयिकां मम ॥ ५०
ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम् ।
बलिः सुदेष्णां स्वां भार्यां तस्मै स प्राहिणोत्पुनः५१
तां स दीर्घतमाङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवीमथाब्रवीत् ।
भविष्यन्ति कुमारास्ते तेजसादित्यवर्चसः ॥ ५२
अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः ।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनाम कथिता भुवि५३
अङ्गस्याङ्गोऽभवद्देशो वङ्गो वङ्गस्य च स्मृतः ।
कलिङ्गविषयश्चैव कलिङ्गस्य च स स्मृतः ॥ ५४
पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याताः सुह्माः सुह्मस्य च स्मृताः
एवं बलेः पुरा वंशः प्रख्यातो वै महर्षिजः ॥ ५५
एवमन्ये महेष्वासा ब्राह्मणैः क्षत्रिया भुवि ।
जाताः परमधर्मज्ञा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥
एतच्छ्रुत्वा त्वमप्यत्र मातः कुरु यथेप्सितम् ॥ ५६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मसत्यवतीसंवादे चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

---

## १०५

भीष्म उवाच ।
पुनर्भरतवंशस्य हेतुं सन्तानवृद्धये ।
वक्ष्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १
ब्राह्मणो गुणवान्कश्चिद्धनेनोपनिमन्त्र्यताम् ।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत्प्रजाः ॥ २
वैशंपायन उवाच ।
ततः सत्यवती भीष्मं वाचा संसज्जमानया ।
विहसन्तीव सव्रीडमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
विश्वासात्ते प्रवक्ष्यामि सन्तानाय कुलस्य नः॥ ४
न ते शक्यमनाख्यातुमापद्धर्मं तथाविधम् ।
त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं परा गतिः ॥ ५
तस्मान्निशम्य सत्यं मे कुरुष्व यदनन्तरम् ।
धर्मयुक्तस्य धर्मार्थं पितुरासीत्तरी मम ॥ ६
सा कदाचिदहं तत्र गता प्रथमयौवनम् ।
अथ धर्मविदां श्रेष्ठः परमर्षिः पराशरः ॥ ७
आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन्यमुनां नदीम् ।
स तार्यमाणो यमुनां मामुपेत्याब्रवीत्तदा ॥ ८
सान्त्वपूर्वं मुनिश्रेष्ठः कामार्तो मधुरं वचः ।
उक्तं जन्मकुलं मह्यमस्मि दाशसुतेत्यहम् ॥ ९
तमहं शापभीता च पितुर्भीता च भारत ।
वरैरसुलभैरुक्ता न प्रत्याख्यातुमुत्सहे ॥ १०

---

मज्जनगतः स्नानार्थं गतः । स्रोतसा प्रवाहेण । अभ्याशं समीपम्॥४२॥ धात्रेयिका दासी ॥४६॥ अङ्गेषु स्पृष्ट्वा स्वरूपज्ञानार्थमिति भावः संधिरार्षः ॥५२॥ यथेप्सितं ब्राह्मणेभ्यो वंशवृद्धिमित्यर्थः ॥५६॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

१०५

पुनरिति ॥ १ ॥ संसज्जमानया स्खलन्त्या ॥ ३ ॥ विश्वासात् अन्तरङ्गत्वबुद्धेः । संतानाय विस्ताराय ॥ ४ ॥ आपद्धर्मं अवेक्ष्येति शेषः । धर्मो धर्मरक्षकः ॥ ५ ॥ सत्यं वचनमिति शेषः । तरी नौका ॥ ६ ॥ उक्ता प्रलोभितेत्यर्थः ॥ १० ॥

अभिभूय स मां बालां तेजसा वशमानयत् ।
तमसा लोकमावृत्य नौगतामेव भारत ॥ ११
मत्स्यगन्धो महानासीत्पुरा मम जुगुप्सितः ।
तमपास्य शुभं गन्धमिमं प्रादात्स मे मुनिः ॥ १२
ततो मामाह स मुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम् ।
द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि॥१३
पराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः ।
कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः ॥ १४
यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः ।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात्कृष्णत्वमेव च ॥१५
सत्यवादी शमपरस्तपस्वी दग्धकिल्बिषः ।
समुत्पन्नः स तु महान्सह पित्रा ततो गतः ॥ १६
स नियुक्तो मया व्यक्तं त्वया चाप्रतिमद्युतिः ।
भ्रातुः क्षेत्रेषु कल्याणमपत्यं जनयिष्यति ॥ १७
स हि मामुक्तवांस्तत्र स्मरेः कृच्छ्रेषु मामिति ।
तं स्मरिष्ये महाबाहो यदि भीष्म त्वमिच्छसि१८
तव ह्यनुमते भीष्म नियतं स महातपाः ।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु पुत्रानुत्पादयिष्यति ॥ १९

वैशंपायन उवाच ।

महर्षेः कीर्तने तस्य भीष्मः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
धर्ममर्थं च कामं च त्रीनेतान्योऽनुपश्यति ॥ २०
अर्थमर्थानुबन्धं च धर्मं धर्मानुबन्धनम् ।
कामं कामानुबन्धं च विपरीतान्पृथक् पृथक्॥२१
यो विचिन्त्य धिया धीरो व्यवस्यति स बुद्धिमान् ।
तदिदं धर्मयुक्तं च हितं चैव कुलस्य नः ॥ २२
उक्तं भवत्या यच्छ्रेयस्तन्मह्यं रोचते भृशम् ।

वैशंपायन उवाच ।

ततस्तस्मिन्प्रतिज्ञाते भीष्मेण कुरुनन्दन ॥ २३
कृष्णद्वैपायनं काली चिन्तयामास वै मुनिम् ।
स वेदान्विब्रुवन्धीमान्मातुर्विज्ञाय चिन्तितम् २४
प्रादुर्बभूवाविदितः क्षणेन कुरुनन्दन ।
तस्मै पूजां ततः कृत्वा सुताय विधिपूर्वकम् २५
परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रस्नवैरभ्यषिञ्चत ।
मुमोच बाष्पं दाशेयी पुत्रं दृष्ट्वा चिरस्य तु ॥ २६
तामद्भिः परिषिच्यार्तां महर्षिरभिवाद्य च ।
मातरं पूर्वजः पुत्रो व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ २७
भवत्या यदभिप्रेतं तदहं कर्तुमागतः ।
शाधि मां धर्मतत्त्वज्ञे करवाणि प्रियं तव ॥ २८
तस्मै पूजां ततोकार्षीत्पुरोधाः परमर्षये ।
स च तां प्रतिजग्राह विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ २९
पूजितो मन्त्रपूर्वं तु विधिवत्प्रीतिमाप सः ।
तमासनगतं माता पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ॥ ३०
सत्यवत्यथ वीक्ष्यैनमुवाचेदमनन्तरम् ।
मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे ३१
तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः ।
विधानविहितः सत्यं यथा मे प्रथमः सुतः ॥ ३२
विचित्रवीर्यो ब्रह्मर्षे तथा मे वरजः सुतः ।
यथैव पितृतो भीष्मस्तथा त्वमपि मातृतः ॥ ३३
भ्राता विचित्रवीर्यस्य यथा वा पुत्र मन्यसे ।
अयं शान्तनवः सत्यं पालयन्सत्यविक्रमः ॥ ३४
बुद्धिं न कुरुतेऽपत्ये तथा राज्याऽनुशासने ।
स त्वं व्यपेक्षया भ्रातुः संतानाय कुलस्य च ३५
भीष्मस्य चास्य वचनान्नियोगाच्च ममानघ ।
अनुक्रोशाच्च भूतानां सर्वेषां रक्षणाय च ॥ ३६
आनृशंस्याच्च यद्ब्रूयां तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि ।
यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे ॥ ३७
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च धर्मतः ।
तयोरुत्पादयापत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक ॥ ३८
अनुरूपं कुलस्यास्य संतत्याः प्रसवस्य च ।

व्यास उवाच ।

वेत्थ धर्मं सत्यवति परं चापरमेव च ॥ ३९

---

बालां पुंयोगमनिच्छन्तीं बालामिव ॥ ११ ॥ मामकं गर्भमुत्सृज्य कन्यैव त्वं भविष्यसीति मुनिवचनाज्जातापत्याया अपि कन्यात्वाविनाशात् पुनर्दाशसंसर्गजं हीनवर्णत्वं नाभूत् । कन्यात्वावस्थायां कामभक्षादिनिषेधाभावात् । किं च पृथासत्यवत्योरनिच्छन्त्योरेव सूर्यपराशराभ्यामपत्योत्पादनं कृतं अतो न तयोः कन्यात्वोच्छित्तिरिति भावः ॥ १३ ॥ कार्ष्ण्यात् कृष्णत्वात् ईश्वरादनन्यत्वादेव कृष्णत्वमित्यर्थः ॥ १५ ॥ व्यक्तं निःसंशयम् ॥१७॥ अनुबध्यतेऽनेनेत्यनुबन्धः फलं परिणामे सुखकरमेव । अर्थादिकं तद्विपर्ययं वाऽर्थनाशादिकं पश्येत् । अत्यल्पदोषानुसंधानेन महतः फलस्य नाशो न कार्य इत्यभिप्रायः॥ २१ ॥ विधानविहितः पूर्वपुण्यप्रसूतः ॥ ३२ ॥ व्यपेक्षया स्नेहानुबन्धेन ॥ ३५ ॥ नियोगात् आज्ञातः अनुक्रोशात् कृपातः ॥ ३६ ॥ आनृशंस्यात् अनैष्ठुर्यात् ॥ ३७ ॥ परं धर्मं निवृत्तिरूपम् । अपरं धर्मं प्रवृत्तिरूपम् । आमुष्मिकमैहिकमिति वा ॥३९॥

तथा तव महाप्राज्ञे धर्मे प्रणिहिता मतिः ।
तस्मादहं त्वन्नियोगाद्धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥ ४०
ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत्सनातनम् ।
भ्रातुः पुत्रान्प्रदास्यामि मित्रावरुणयोः समान् ४१
व्रतं चरेतां ते देव्यौ निर्दिष्टमिह यन्मया ।
संवत्सरं यथान्यायं ततः शुद्धे भविष्यतः ॥ ४२
न हि मामव्रतोपेता उपेयात्काचिदङ्गना ।
सत्यवत्युवाच ।
सद्यो यथा प्रपद्येते देव्यौ गर्भं तथा कुरु ॥ ४३
अराजकेषु राष्ट्रेषु प्रजानाथा विनश्यति ।
नश्यन्ति च क्रियाः सर्वा नास्ति वृष्टिर्न देवता ४४
कथं चाराजकं राष्ट्रं शक्यं धारयितुं प्रभो ।
तस्माद्गर्भं समाधत्स्व भीष्मः संवर्धयिष्यति ॥४५
व्यास उवाच ।
यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया भ्रातुरकालिकः ।
विरूपतां मे सहतां तयोरेतत्परं व्रतम् ॥ ४६
यदि मे सहते गन्धं रूपं वेषं तथा वपुः ।
अद्यैव गर्भं कौसल्या विशिष्टं प्रतिपद्यताम् ॥ ४७
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा महातेजा व्यासः सत्यवतीं तदा ।
शयने सा च कौसल्या शुचिवस्त्रा ह्यलंकृता ॥४८
समागमनमाकांक्षेदिति सोन्तर्हितो मुनिः ।
ततोऽभिगम्य सा देवी स्नुषां रहसि संगताम् ४९
धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम् ।
कौसल्ये धर्मतन्त्रं त्वां यद्ब्रवीमि निबोध तत् ५०
भरतानां समुच्छेदो व्यक्तं मद्भाग्यसंक्षयात् ।
व्यथितां मां च संप्रेक्ष्य पितृवंशं च पीडितम् ५१
भीष्मो बुद्धिमदान्मह्यं कुलस्यास्य विवृद्धये ।
सा च बुद्धिस्त्वय्यधीना पुत्रि प्रापय मां तथा ५२
नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर ।
पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम् ॥ ५३
स हि राज्यधुरं गुर्वीमुद्वक्ष्यति कुलस्य नः ।
सा धर्मतोऽनुनीयैनां कथंचिद्धर्मचारिणीम् ।
भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनतिथींस्तथा ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि सत्यवत्युपदेशे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५

## १०६

वैशंपायन उवाच ।
ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा ।
संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमब्रवीत् ॥ १
कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वाऽनुप्रवेक्ष्यति ।
अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे ह्यागमिष्यति ॥ २
श्वश्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे ।
साचिन्तयत्तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान् ॥ ३
ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः ।
दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह ॥ ४
तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने ।
बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥ ५
संबभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया ।
भयात्काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥ ६
ततो निष्क्रान्तमागम्य माता पुत्रमुवाच ह ।
अप्यस्या गुणवान्पुत्र राजपुत्रो भविष्यति ॥ ७
निशम्य तद्वचो मातुर्व्यासः सत्यवतीसुतः ।
नागायुतसमप्राणो विद्वान्राजर्षिसत्तमः ॥ ८
महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति ।
तस्य चापि शतं पुत्रा भविष्यन्ति महात्मनः ॥९
किं तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माता पुत्रमथाब्रवीत् ॥ १०
नान्धः कुरूणां नृपतिरनुरूपस्तपोधन ।
ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितॄणां वंशवर्धनम् ॥ ११
द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हसि ।
स तथेति प्रतिज्ञाय निश्चक्राम महायशाः ॥ १२

---

देव्यौ राजभार्ये ॥ ४२ ॥ यथा भीष्मेणोक्तं तथा मां प्रापय इष्टार्थेन योजय ॥ ५२ ॥ उद्वक्ष्यति धुरं उद्वहनं करिष्यति ॥ ५३ ॥ एनां पुरुषान्तरस्पर्शमनिच्छन्तीमिति सूचयति । कथंचिदिति ॥ ५४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

१०६

तत इति ॥ १ ॥ अनुप्रवेक्ष्यति पुत्ररूपेण तवोदरमागमिष्यति ॥ २ ॥ सा अचिन्तयदित्यनेन गर्भधारणकाले यं पुरुषं स्त्री चिन्तयति तादृग्गुणः पुत्रो भवतीति सूचितम् ॥ ३॥ शरणं गृहं 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः ॥४॥

साऽपि कालेन कौसल्या सुषुवेन्धं तमात्मजम् ।
पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः ॥ १३
ऋषिमावाहयत्सत्या यथा पूर्वमरिन्दम ।
ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत ॥ १४
अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम् ।
विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत ॥ १५
तां भीतां पाण्डुसकाशां विषण्णां प्रेक्ष्य भारत ।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १६
यस्मात्पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह ।
तस्मादेष सुतस्ते वै पाण्डुरेव भविष्यति ॥ १७
नाम चास्यैतदेवेह भविष्यति शुभानने ।
इत्युक्त्वा स निराक्रामद्भगवानृषिसत्तमः ॥ १८
ततो निष्क्रान्तमालोक्य सत्या पुत्रमथाब्रवीत् ।
शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्य पाण्डुताम् ॥ १९
तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत ।
तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत ॥ २०
ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत् ।
पाण्डुं लक्षणसंपन्नं दीप्यमानमिव श्रिया ॥ २१
यस्य पुत्रामहेष्वासा जज्ञिरे पञ्च पाण्डवाः ।
ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत् ॥२२
सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम् ।
नाकरोद्वचनं देव्या भयात्सुरसुतोपमा ॥ २३
ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाऽप्सरोपमाम् ।
प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता ॥ २४
सा तमृषिमनुप्राप्तं प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च ।
संविवेशाभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह ॥ २५
कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः ।
तया सहोषितो राजन्महर्षिः संशितव्रतः ॥ २६
उत्तिष्ठन्नब्रवीदेनामभुजिष्या भविष्यसि ।
अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः ।
धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ २७
स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः ।
धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चैव महात्मनः ॥ २८
धर्मो विदुररूपेण शापात्तस्य महात्मनः ।
माण्डव्यस्यार्थतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ॥ २९
कृष्णद्वैपायनोऽप्येतत्सत्यवत्यै न्यवेदयत् ।
प्रलम्भमात्मनश्चैव शूद्रायाः पुत्रजन्म च ॥ ३०
स धर्मस्यानृणो भूत्वा पुनर्मात्रा समेत्य च ।
तस्यै गर्भं समावेद्य तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३१
एते विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादपि ।
जज्ञिरे देवगर्भाभाः कुरुवंशविवर्धनाः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि विचित्रवीर्यसुतोत्पत्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

---

## १०७

जनमेजय उवाच ।
किं कृतं कर्म धर्मेण येन शापमुपेयिवान् ।
कस्य शापाच्च ब्रह्मर्षेः शूद्रयोनावजायत ॥ १
वैशंपायन उवाच ।
बभूव ब्राह्मणः कश्चिन्माण्डव्य इति विश्रुतः ।
धृतिमान्सर्वधर्मज्ञः सत्ये तपसि च स्थितः ॥ २
स आश्रमपदद्वारि वृक्षमूले महातपाः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी तस्थौ मौनव्रतान्वितः ॥ ३
तस्य कालेन महता तस्मिंस्तपसि वर्ततः ।
तमाश्रममनुप्राप्ता दस्यवो लोप्त्रहारिणः ॥ ४
अनुसार्यमाणा बहुभी रक्षिभिर्भरतर्षभ ।
ते तस्यावसथे लोप्त्रं दस्यवः कुरुसत्तम ॥ ५
निधाय च भयाल्लीनास्तत्रैवानागते बले ।
तेषु लीनेष्वथो शीघ्रं ततस्तद्रक्षिणां बलम् ॥ ६
आजगाम ततो पश्यंस्तमृषिं तस्करानुगाः ।
तमपृच्छंस्ततो राजंस्तथावृत्तं तपोधनम् ॥ ७

---

सत्या सत्यवती ॥१४॥ अभुजिष्या अदासी ॥२७॥ भ्राता भुजिष्या पुत्रस्यापि भ्रातृत्वं पित्रन्वयात् ॥ २८ ॥ प्रलम्भं आत्मस्थाने दासीनियोजनम् ॥ ३० ॥ एत इति क्षेत्रत्वं दास्या अपीत्यनेनैवगम्यत इति केचित् ॥ ३२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

किं कृतमिति ॥ १ ॥ लोप्त्रं लुप्यत इति व्युत्पत्त्या चोरापहृतं धनम् ॥ ५ ॥

कतमेन पथा याता दस्यवो द्विजसत्तम ।
तेन गच्छामहे ब्रह्मन्पथा शीघ्रतरं वयम् ॥ ८
तथा तु रक्षिणां तेषां ब्रुवतां स तपोधनः ।
न किंचिद्वचनं राजन्नवदत्साध्वसाधु वा ॥ ९
ततस्ते राजपुरुषा विचिन्वानास्तमाश्रमम् ।
ददृशुस्तत्र लीनांस्तांश्चौरांस्तद्द्रव्यमेव च ॥ १०
ततः शङ्का समभवद्रक्षिणां तं मुनिं प्रति ।
संयम्यैनं ततो राज्ञे दस्यूंश्चैव न्यवेदयन् ॥ ११
तं राजा सह तैश्चौरैरन्वशाद्वध्यतामिति ।
स रक्षिभिस्तैरज्ञातः शूले प्रोतो महातपाः ॥ १२
ततस्ते शूलमारोप्य तं मुनिं रक्षिणस्तदा ।
प्रतिजग्मुर्महीपालं धनान्यादाय तान्यथ ॥ १३
शूलस्थः स तु धर्मात्मा कालेन महता ततः ।
निराहारोऽपि विप्रर्षिर्मरणं नाभ्यपद्यत ॥ १४
धारयामास च प्राणानृषींश्च समुपानयत् ।
शूलाग्रे तप्यमानेन तपस्तेन महात्मना ॥ १५
संतापं परमं जग्मुर्मुनयस्तपसान्विताः ।
ते रात्रौ शकुना भूत्वा संनिपत्य तु भारत ।
दर्शयन्तो यथाशक्ति तमपृच्छन्द्विजोत्तमम् ॥ १६
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्किं पापं कृतवानसि ।
येनेह समनुप्राप्तं शूले दुःखभयं महत् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि अणीमाण्डव्योपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

---

## १०८

वैशंपायन उवाच ।
ततः स मुनिशार्दूलस्तानुवाच तपोधनान् ।
दोषतः कं गमिष्यामि न हि मेऽन्योऽपराध्यति ॥१
तं दृष्ट्वा रक्षिणस्तत्र तथा बहुतिथेऽहनि ।
न्यवेदयंस्तथा राज्ञे यथावृत्तं नराधिप ॥ २
श्रुत्वा च वचनं तेषां निश्चित्य सह मन्त्रिभिः ।
प्रसादयामास तदा शूलस्थमृषिसत्तमम् ॥ ३
राजोवाच ।
यन्मयाऽपकृतं मोहादज्ञानादृषिसत्तम ।
प्रसादये त्वां तत्राऽहं न मे त्वं क्रोद्धुमर्हसि ॥ ४
एवमुक्तस्ततो राज्ञा प्रसादमकरोन्मुनिः ।
कृतप्रसादं राजा तं ततः समवतारयत् ॥ ५
अवतार्य च शूलाग्रात्तच्छूलं निश्चकर्ष ह ।
अशक्नुवंश्च निष्क्रष्टुं शूलं मूले स चिच्छिदे ॥ ६
स तथान्तर्गतेनैव शूलेन व्यचरन्मुनिः ।
तेनातितपसा लोकान्विजिग्ये दुर्लभान्परैः ॥ ७
अणीमाण्डव्य इति च ततो लोकेषु गीयते ।
स गत्वा सदनं विप्रो धर्मस्य परमात्मवित् ॥ ८
आसनस्थं ततो धर्मं दृष्ट्वोपालभत प्रभुः ।
किं नु तद्दुष्कृतं कर्म मया कृतमजानता ॥ ९
यस्येयं फलनिर्वृत्तिरीदृश्यासादिता मया ।
शीघ्रमाचक्ष्व मे तत्त्वं पश्य मे तपसो बलम् ॥ १०
धर्म उवाच ।
पतङ्गिकानां पुच्छेषु त्वयेषीका प्रवेशिता ।
कर्मणस्तस्य ते प्राप्तं फलमेतत्तपोधन ॥ ११
स्वल्पमेव यथा दत्तं दानं बहुगुणं भवेत् ।
अधर्म एवं विप्रर्षे बहुदुःखफलप्रदः ॥ १२
अणीमाण्डव्य उवाच ।
कस्मिन्काले मया तत्तु कृतं ब्रूहि यथातथम् ।
तेनोक्तो धर्मराजेन बालभावे त्वया कृतम् ॥ १३
अणीमाण्डव्य उवाच ।
बालो हि द्वादशाद्वर्षाज्जन्मतो यत्करिष्यति ।
न भविष्यत्यधर्मोऽत्र न प्रज्ञास्यन्ति वै दिशः ॥१४

---

संयम्य चौरवन्निगृह्य ॥ ११ ॥ ऋषीन् वेदान् समुपानयत् स्वाधीनानकरोत् । चिरं वेदनार्तोऽपि वेदाञ्च विस्मृतवानित्यर्थः । यद्वा ऋषीन्मुनीन् स्वसमीपे उपानयदित्युक्तं तदेव विवृणोति । शूलाग्र इत्यादिना ॥१५॥ दर्शयन्तः स्वानि रूपाणि प्रकाशयन्तः ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

१०८

तत इति । दोषतः न कमपि दोषिणं कथयामि । स्वकृतमेव भुञ्जे इत्यर्थः ॥ १ ॥ मूले देहान्तःप्रविष्टशूलभागस्यान्तिके । 'मूलं वित्तान्तिके' इति मेदिनी ॥ ६ ॥ व्यचरत आचरत् तप इति शेषः ॥७॥ अणी शूलाग्रं तद्युक्तो माण्डव्यः ॥ ८ ॥ उपालभत गर्हितवान् ॥ ९ ॥ दिशो देशनाः धर्मशास्त्राणि । यतो न प्रज्ञास्यन्ति बालत्वात् ॥ १४ ॥

अल्पेऽपराधेऽपि महान्मम दण्डस्त्वया धृतः ।
गरीयान्ब्राह्मणवधः सर्वभूतवधादपि ॥ १५
शूद्रयोनावतो धर्म मानुषः संभविष्यसि ।
मर्यादां स्थापयाम्यद्य लोके धर्मफलोदयाम् ॥१६
आचतुर्दशकाद्वर्षान्न भविष्यति पातकम् ।
परतः कुर्वतामेव दोष एव भविष्यति ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

एतेन त्वपराधेन शापात्तस्य महात्मनः ।
धर्मो विदुररूपेण शूद्रयोनावजायत ॥ १८
धर्मे चार्थे च कुशलो लोभक्रोधविवर्जितः ।
दीर्घदर्शी शमपरः कुरूणां च हिते रतः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि अणीमाण्डव्योपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

---

## १०९

वैशंपायन उवाच ।

तेषु त्रिषु कुमारेषु जातेषु कुरुजाङ्गलम् ।
कुरवोऽथ कुरुक्षेत्रं त्रयमेतदवर्धत ॥ १
ऊर्ध्वसस्याऽभवद्भूमिः सस्यानि रसवन्ति च ।
यथर्तुवर्षी पर्जन्यो बहुपुष्पफला द्रुमाः ॥ २
वाहनानि प्रहृष्टानि मुदिता मृगपक्षिणः ।
गन्धवन्ति च माल्यानि रसवन्ति फलानि च ३
वणिग्भिश्चान्वकीर्यन्त नगराण्यथ शिल्पिभिः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च सन्तश्च सुखिनोऽभवन् ॥ ४
नाभवन्दस्यवः केचिन्नाधर्मरुचयो जनाः ।
प्रदेशेष्वपि राष्ट्राणां कृतं युगमवर्तत ॥ ५
धर्मक्रिया यज्ञशीलाः सत्यव्रतपरायणाः ।
अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ता व्यवर्धन्त प्रजास्तदा ॥ ६
मानक्रोधविहीनाश्च नरा लोभविवर्जिताः ।
अन्योऽन्यमभ्यनन्दन्त धर्मोत्तरमवर्तत ॥ ७
तन्महोदधिवत्पूर्णं नगरं वै व्यरोचत ।
द्वारतोरणनिर्यूहैर्युक्तमभ्रचयोपमैः ॥ ८
प्रासादशतसंबाधं महेन्द्रपुरसंनिभम् ।
नदीषु वनखण्डेषु वापीपल्वलसानुषु ।
काननेषु च रम्येषु विजह्रुर्मुदिता जनाः ॥ ९
उत्तरैः कुरुभिः सार्धं दक्षिणाः कुरवस्तथा ।
विस्पर्धमाना व्यचरंस्तथा देवर्षिचारणैः ॥ १०
नाभवत्कृपणः कश्चिन्नाभवन्विधवाः स्त्रियः ।
तस्मिञ्जनपदे रम्ये कुरुभिर्बहुलीकृते ॥ ११
कूपारामसभावाप्यो ब्राह्मणावसथास्तथा ।
बभूवुः सर्वर्धियुतास्तस्मिन् राष्ट्रे सदोत्सवाः १२
भीष्मेण धर्मतो राजन्सर्वतः परिरक्षिते ।
बभूव रमणीयश्च चैत्ययूपशताङ्कितः ॥ १३
स देशः परराष्ट्राणि विमृज्याभिप्रवर्धितः ।
भीष्मेण विहितं राष्ट्रे धर्मचक्रमवर्तत ॥ १४
क्रियमाणेषु कृत्येषु कुमाराणां महात्मनाम् ।
पौरजानपदाः सर्वे बभूवुः परमोत्सुकाः ॥ १५
गृहेषु कुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप ।
दीयतां भुज्यतां चेति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥१६
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः ।
जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्परिपालिताः ॥ १७

---

ब्राह्मणवधो ब्राह्मणपीडनम् ॥ १५ ॥ मर्यादामिति । बालो हीति हेतून्यासपूर्वकं द्वादशवर्षपर्यन्तं कृताकृतप्रत्यवायो नास्तीत्युत्सर्ग उक्तः । स्वयं तु वर्षद्वयं तत्राधिकं प्रचिक्षेप ॥ १६ ॥ चतुर्दशादूर्ध्वं पापमस्तीति पौराणं मतमिदम् । वस्तुतस्तूक्तहेतोः पुण्यपापविभागज्ञानपर्यन्तमेव पापानुत्पत्तिः । तेन पञ्चवर्षाद्यन्तर एव दोषो *नास्तीत्यादि वचनं विद्वदभिप्रायम् । अन्यथा कलिशेषे* अल्पायुष्ट्वेन पापाभावप्रसङ्गः स्यात् ॥ १७ ॥ दीर्घदर्शी सर्वकालपरामर्शी । शमपरो निर्वैरः ॥ १९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

---

१०९

तेष्विति । कुरुजाङ्गलं देशः कुरवः पुरुषाः कुरुक्षेत्रं तेषां वासस्थानम् ॥ १ ॥ देशं स्तौति । ऊर्ध्वेति । ऊर्ध्वसस्या प्रचुरसस्या ॥ २ ॥ कुरूनस्तौति । शूराश्चेति ॥ ४ ॥ स्थानं स्तौति । तन्महेति ॥ ८ ॥ विमृज्य परराष्ट्रस्था अपि सुखार्थिनोऽत्रैव प्रविष्टा इत्यर्थः ॥ १४ ॥

संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः ।
श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम् ॥ १८
धनुर्वेदे च वेदे च गदायुद्धेऽसि चर्मणि ।
तथैव गजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः ॥ १९
इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः ॥ २०
पाण्डुर्धनुषि विक्रान्तो नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ।
अन्येभ्यो बलवानासीद्धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ २१
त्रिषु लोकेषु न त्वासीत्कश्चिद्विदुरसंमितः ।
धर्मनित्यस्तथा राजन्धर्मे च परमं गतः ॥ २२
प्रनष्टं शान्तनोर्वंशं समीक्ष्य पुनरुद्धृतम् ।
ततो निर्वचनं लोके सर्वराष्ट्रेष्ववर्तत ॥ २३
वीरसूनां काशिसुते देशानां कुरुजाङ्गलम् ।
सर्वधर्मविदां भीष्मः पुराणां गजसाह्वयम् ॥ २४
धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद्राज्यं न प्रत्यपद्यत ।
पारसवत्वाद्विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह ॥ २५
कदाचिदथ गाङ्गेयः सर्वनीतिमतां वरः ।
विदुरं धर्मतत्त्वज्ञं वाक्यमाह यथोचितम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुराज्याभिषेके नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## ११०

भीष्म उवाच ।
गुणैः समुदितं सम्यगिदं नः प्रथितं कुलम् ।
अत्यन्यान्पृथिवीपालान्पृथिव्यामधिराज्यभाक् १
रक्षितं राजभिः पूर्वं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ।
नोत्सादमगमच्चेदं कदाचिदिह नः कुलम् ॥ २
मया च सत्यवत्या च कृष्णेन च महात्मना ।
समवस्थापितं भूयो युष्मासु कुलतन्तुषु ॥ ३
तच्चैतद्वर्धते भूयः कुलं सागरवद्यथा ।
तथा मया विधातव्यं त्वया चैव न संशयः ॥ ४
श्रूयते यादवी कन्या स्वनुरूपा कुलस्य नः ।
सुबलस्यात्मजा चैव तथा मद्रेश्वरस्य च ॥ ५
कुलीना रूपवत्यश्च ताः कन्याः पुत्रसर्वशः ।
उचिताश्चैव संबन्धे नेऽस्माकं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६
मन्ये वरयितव्यास्ता इत्यहं धीमतां वर ।
संतानार्थं कुलस्यास्य यद्वा विदुर मन्यसे ॥ ७
विदुर उवाच ।
भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः ।
तस्मात्स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरु यद्धितम्॥८
वैशंपायन उवाच ।
अथ शुश्राव विप्रेभ्यो गान्धारीं सुबलात्मजाम् ।
आराध्य वरदं देवं भगनेत्रहरं हरम् ॥ ९
गान्धारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभा ।
इति शुश्राव तत्त्वेन भीष्मः कुरुपितामहः ॥ १०
ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत ।
अचक्षुरिति तत्रासीत्सुबलस्य विचारणा ॥ ११
कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्ध्या तु प्रसमीक्ष्य सः।
ददौ तां धृतराष्ट्राय गान्धारीं धर्मचारिणीम् १२
गान्धारी त्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम् ।
आत्मानं दित्सितं चास्मै पित्रा मात्रा च भारत॥
ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा ।
बबन्ध नेत्रे स्वे राजन्पतिव्रतपरायणा ॥ १४
नाभ्यसूयां पतिमहमित्येवं कृतनिश्चया।
ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरभ्ययात् १५
स्वसारं वयसा लक्ष्म्या युक्तामादाय कौरवान्।
तां तदा धृतराष्ट्राय ददौ परमसत्कृताम् ॥
भीष्मस्यानुमते चैव विवाहं समकारयत् ॥ १६
दत्वा स भगिनीं वीरो यथार्हं च परिच्छदम् ।
पुनरायात्स्वनगरं भीष्मेण प्रतिपूजितः ॥ १७
गान्धार्यपि वरारोहा शीलाचारविचेष्टितैः ।
तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास भारत ॥ १८

श्रम. शास्त्राभ्यास । व्यायामो बाहुयुद्धाद्यभ्यास. ॥ १८ ॥ धर्मे च परमं आत्मदर्शनं गत प्राप्त । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनमिति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥२२॥ निर्वचनं प्रशंसा ॥२३॥ पारसवत्वात् शूद्राया ब्राह्मणाज्जातत्वात् । करणत्वाच्चेत्यपपाठ । लक्षणया वा तथा व्याख्येयम् । शूद्राया करणो वैश्यादिति तन्निर्वचनात् ॥२५॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०९ ॥

११०

गुणैरिति ॥ १ ॥ यादवी यादवस्य शूरस्य कुन्तिभोजस्य वा अपत्यम् ॥ ५ ॥ प्रेषयामास दूतमिति शेषः ॥ ॥ ११ ॥ दित्सितं दातुमिष्टं ॥ १३ ॥ बहुगुणं बहुधा गुणितं ॥ १४ ॥ नाभ्यसूया पत्युराभिभवं न कुर्याम् ॥१५॥

वृत्तेनाराध्य तान्सर्वान्गुरून्पतिपरायणा । वाचापि पुरुषानन्यान्सुव्रता नान्वकीर्तयत् ॥ १९
इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रविवाहे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## १११

वैशंपायन उवाच ।
शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताऽभवत् ।
तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ १
पितृष्वस्रीयाय स तामनपत्याय भारत ।
अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यं स सत्यवाक् ॥ २
अग्रजामथ तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकाङ्क्षिणे ।
प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ॥ ३
नियुक्ता सा पितुर्गेहे ब्राह्मणातिथिपूजने ।
उग्रं पर्यचरत्तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ४
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।
तमुग्रं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयत् ॥ ५
तस्मै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया ।
अभिचाराभिसंयुक्तमब्रवीच्चैव तां मुनिः ॥ ६
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि ।
तस्य तस्य प्रभावेण तव पुत्रो भविष्यति ॥ ७
तथोक्ता सा तु विप्रेण कुन्ती कौतूहलान्विता ।
कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ॥ ८
सा ददर्श तमायान्तं भास्करं लोकभावनम् ।
विस्मिता चानवद्याङ्गी दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ ९
तां समासाद्य देवस्तु विवस्वानिदमब्रवीत् ।
अयमस्म्यसितापाङ्गि ब्रूहि किं करवाणि ते ॥१०
कुन्त्युवाच ।
कश्चिन्मे ब्राह्मणः प्रादाद्वरं विद्यां च शत्रुहन् ।
तद्विजिज्ञासयाह्वानं कृतवत्यस्मि ते विभो ॥ ११
एतस्मिन्नपराधे त्वां शिरसाऽहं प्रसादये ।
योषितो हि सदा रक्ष्याः स्वापराद्धाऽपि नित्यशः॥
सूर्य उवाच ।
वेदाहं सर्वमेवैतद्यद्दुर्वासा वरं ददौ ।
संत्यज्य भयमेवेह क्रियतां संगमो मम ॥ १३
अमोघं दर्शनं मह्यमाहूतश्चास्मि ते शुभे ।
वृथाह्वानेऽपि ते भीरु दोषः स्यान्नात्र संशयः १४
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्ता बहुविधं सान्त्वपूर्वं विवस्वता ।
सा तु नैच्छद्वरारोहा कन्याहमिति भारत ॥ १५
बन्धुपक्षभयाद्भीता लज्जया च यशस्विनी ।
तामर्कः पुनरेवेदमब्रवीद्भरतर्षभ ॥ १६
मत्प्रसादान्न ते राज्ञि भविता दोष इत्युत ।
एवमुक्त्वा स भगवान्कुन्तिराजसुतां तदा ॥ १७
प्रकाशकर्ता तपनः संबभूव तया सह ।
तत्र वीरः समभवत्सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
आमुक्तकवचः श्रीमान्देवगर्भः श्रियान्वितः १८
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलो द्योतिताननः ।
अजायत सुतः कर्णः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ १९
प्रादाच्च तस्यै कन्यात्वं पुनः स परमद्युतिः ।
दत्वा च तपतां श्रेष्ठो दिवमाचक्रमे ततः ॥ २०
दृष्ट्वा कुमारं जातं सा वार्ष्णेयी दीनमानसा ।
एकाग्रं चिन्तयामास किं कृत्वा सुकृतं भवेत् २१
गूहमानापचारं सा बन्धुपक्षभयात्तदा ।
उत्ससर्ज कुमारं तं जले कुन्ती महाबलम् ॥ २२
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्ता महायशाः ।
पुत्रत्वे कल्पयामास सभार्यः सूतनन्दनः ॥ २३
नामधेयं च चक्राते तस्य बालस्य तावुभौ ।
वसुना सह जातोऽयं वसुषेणो भवत्विति ॥ २४
स वर्धमानो बलवान्सर्वास्त्रेषूद्यतोऽभवत् ।
आपृष्ठतापादादित्यमुपातिष्ठत वीर्यवान् ॥ २५

---

नान्वकीर्तयत् न प्रत्युत्तरं दत्तवती ॥ १९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

१११

शूर इति ॥ १ ॥ अग्र्यं प्रथमं अग्रे जन्मतः पूर्वं प्रतिज्ञाय मया प्रथममपत्यं तुभ्यं देयमिति प्रतिश्रुत्य ॥२॥ धर्मे निगूढनिश्चयं बहिः क्रौर्यदर्शनपरत्वात् ॥ ५ ॥ आपद्धर्मान्ववेक्षयेति भावि संतानप्रतिबन्धस्यानागतावेक्षणेन।अभिचारो: वश्याकर्षणादि दृष्टफलं तद्युक्तम् ॥६॥ स्वापराद्धापि संधिरार्षः ॥ १२ ॥ मह्यं मम ॥ १४ ॥ गूहमाना छादयन्ती । अपचारं अनाचारं ॥ २२ ॥ वसुना कुण्डलकवचादि द्रव्येण बद्ध इति वसुषेणः ॥ २४ ॥ आपृष्ठतापात् मध्यान्हात् परत इत्यर्थः ॥ २५ ॥

तस्मिन्काले तु जपतस्तस्य वीरस्य धीमतः ।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीत्किंचिद्वसु महीतले ॥ २६
तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षार्थी समुपागमत् ।
कवचं प्रार्थयामास फाल्गुनस्य हिते रतः ॥ २७
स्वशरीरात्समुत्कृत्य कवचं स्वं निसर्गजम् ।
विप्ररूपाय शक्राय ददौ कर्णः कृताञ्जलिः ॥ २८
प्रतिगृह्य तु देवेशस्तुष्टस्तेनास्य कर्मणा ।
ददौ शक्तिं सुरपतिर्वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २९
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
यमेकं जेतुमिच्छेथाः सोऽनया न भविष्यति॥३०
प्राङ्नाम तस्य कथितं वसुषेण इति क्षितौ ।
कर्णो वैकर्तनश्चैव कर्मणा तेन सोभवत् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कर्णसंभवे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

## ११२

वैशंपायन उवाच ।
सत्त्वरूपगुणोपेता धर्मारामा महाव्रता ।
दुहिता कुन्तिभोजस्य पृथा पृथुललोचना ॥ १
तां तु तेजस्विनीं कन्यां रूपयौवनशालिनीम् ।
व्यावृण्वन्पार्थिवाः केचिदतीव स्त्रीगुणैर्युताम् ॥ २
ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाहूय नराधिपान् ।
पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम ॥ ३
ततः सा रङ्गमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी ।
ददर्श राजशार्दूलं पाण्डुं भरतसत्तमम् ॥ ४
सिंहदर्पं महोरस्कं वृषभाक्षं महाबलम् ।
आदित्यमिव सर्वेषां राज्ञां प्रच्छाद्य वै प्रभाः ॥५
तिष्ठन्तं राजसमितौ पुरंदरमिवापरम् ।
तं दृष्ट्वा सानवद्याङ्गी कुन्तिभोजसुता शुभा ॥ ६
पाण्डुं नरवरं रङ्गे हृदयेनाकुलाभवत् ।
ततः कामपरीताङ्गी सकृत्प्रचलमानसा ॥ ७
व्रीडमाना स्रजं कुन्ती राज्ञः स्कन्धे समासजत् ।
तं निशम्य वृतं पाण्डुं कुन्त्या सर्वे नराधिपाः ८
यथागतं समाजग्मुर्गजैरश्वै रथैस्तथा ।
ततस्तस्याः पिता राजन्विवाहमकरोत्प्रभुः ॥ ९
स तया कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरुनन्दनः ।
युयुजेऽमितसौभाग्यः पौलोम्या मघवानिव ॥१०
कुन्त्याः पाण्डोश्च राजेन्द्र कुन्तिभोजो महीपतिः
कृत्वोद्वाहं तदा तं तु नानावसुभिरर्चितम् ।
स्वपुरं प्रेषयामास स राजा कुरुसत्तम ॥ ११
ततो बलेन महता नानाध्वजपताकिना ।
स्तूयमानः स चाशीर्भिर्ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥१२
संप्राप्य नगरं राजा पाण्डुः कौरवनन्दनः ।
न्यवेशयत तां भार्यां कुन्तीं स्वभवने प्रभुः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कुन्तीविवाहे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

## ११३

वैशंपायन उवाच ।
ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः ।
विवाहस्यापरस्यार्थे चकार मतिमान्मतिम् ॥ १
सोमात्यैः स्थविरैः सार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
बलेन चतुरङ्गेण ययौ मद्रपतेः पुरम् ॥ २
तमागतमभिश्रुत्य भीष्मं वाह्लीकपुङ्गवः ।
प्रत्युद्गम्यार्चयित्वा च पुरं प्रावेशयन्नृपः ॥ ३
दत्त्वा तस्यासनं शुभ्रं पाद्यमर्घ्यं तथैव च ।
मधुपर्कं च मद्रेशः प्रपच्छागमनेऽर्थिताम् ॥ ४

---

कर्ण इति सहजकवचकर्तनात् कर्णः । विशेषतः कर्तनेन वैकर्तनः । स्वार्थे तद्धितः । वस्तुतस्तु विकर्तनस्य सूर्यस्यापत्यत्वाद्वैकर्तनः॥३१॥इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

सत्त्वेति । धर्मारामा धर्मैकनिष्ठा ॥ १ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

तत इति ॥ १ ॥

तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं कुरूद्वहः ।
आगतं मां विजानीहि कन्यार्थिनमरिंदम ॥ ५
श्रूयते भवतः साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी ।
तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थे यशस्विनीम् ॥ ६
युक्तरूपो हि संबन्धे त्वं नो राजन्वयं तव ।
एतत्संचिन्त्य मद्रेश गृहाणास्मान्यथाविधि ॥ ७
तमेवं वादिनं भीष्मं प्रत्यभाषत मद्रपः ।
न हि मेऽन्यो वरस्त्वत्तः श्रेयानिति मतिर्मम ॥ ८
पूर्वैः प्रवर्तितं किंचित्कुलेऽस्मिन्नृपसत्तमैः ।
साधु वा यदि वासाधु तन्नातिक्रान्तुमुत्सहे ॥ ९
व्यक्तं तद्भवतश्चापि विदितं नात्र संशयः ।
न च युक्तं तथा वक्तुं भवान्देहीति सत्तम ॥ १०
कुलधर्मः स नो वीर प्रमाणं परमं च तत् ।
तेन त्वां न ब्रवीम्येतदसंदिग्धं वचोऽरिहन् ॥ ११
तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं जनाधिपः ।
धर्म एष परो राजन् स्वयमुक्तः स्वयंभुवा ॥ १२
नात्र कश्चन दोषोऽस्ति पूर्वैर्विधिरयं कृतः ।
विदितेयं च ते शल्य मर्यादा साधुसंमता ॥ १३
इत्युक्त्वा स महातेजाः शातकुम्भं कृताकृतम् ।
रत्नानि च विचित्राणि शल्यायादात्सहस्रशः १४
गजानश्वान्रथांश्चैव वासांस्याभरणानि च ।
मणिमुक्ताप्रवालं च गाङ्गेयो व्यसृजच्छुभम् ॥१५
तत्प्रगृह्य धनं सर्वं शल्यः संप्रीतमानसः ।
ददौ तां समलंकृत्य स्वसारं कौरवर्षभे ॥ १६
स तां माद्रीमुपादाय भीष्मः सागरगासुतः ।
आजगाम पुरीं धीमान्प्रविष्टो गजसाह्वयम् ॥ १७
तत इष्टेऽहनि प्राप्ते मुहूर्ते साधुसंमते ।
जग्राह विधिवत्पाणिं माद्र्याः पाण्डुर्नराधिपः १८
ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा कुरुनन्दनः ।
स्थापयामास तां भार्यां शुभे वेश्मनि भाविनीम् ॥
स ताभ्यां व्यचरत्सार्धं भार्याभ्यां राजसत्तमः ।
कुन्त्या माद्र्या च राजेन्द्रो यथाकामं यथासुखम्
ततः स कौरवो राजा विहृत्य त्रिदशा निशाः ।
जिगीषया महीं पाण्डुर्निरक्रामत्पुरात्प्रभो ॥ २१
स भीष्मप्रमुखान्वृद्धानभिवाद्य प्रणम्य च ।
धृतराष्ट्रं च कौरव्यं तथान्यान्कुरुसत्तमान् ।
आमन्त्र्य प्रययौ राजा तैश्चैवाप्यनुमोदितः ॥ २२
मङ्गलाचारयुक्ताभिराशीर्भिरभिनन्दितः ।
गजवाजिरथौघेन बलेन महतागमत् ॥ २३
स राजा देवगर्भाभो विजिगीषुर्वसुंधराम् ।
हृष्टपुष्टबलैः प्रायात्पाण्डुः शत्रूननेकशः ॥ २४
पूर्वमागस्कृतो गत्वा दशार्णाः समरे जिताः ।
पाण्डुना नरसिंहेन कौरवाणां यशोभृता ॥ २५
ततः सेनामुपादाय पाण्डुर्नानाविधध्वजाम् ।
प्रभूतहस्त्यश्वयुतां पदातिरथसंकुलाम् ॥ २६
आगस्कारी महीपानां बहूनां बलदर्पितः ।
गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दीर्घो राजगृहे हतः ॥ २७
ततः कोशं समादाय वाहनानि च भूरिशः ।
पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः २८
तथा काशिषु सुह्मेषु पुण्ड्रेषु च नरर्षभ ।
स्वबाहुबलवीर्येण कुरूणामकरोद्यशः ॥ २९
तं शरौघमहाज्वालं शस्त्रार्चिषमरिंदमम् ।
पाण्डुपावकमासाद्य व्यदह्यन्त नराधिपाः ॥ ३०
ते ससेनाः ससेनेन विध्वंसितबला नृपाः ।
पाण्डुना वशगाः कृत्वा कुरुकर्मसु योजिताः ३१
तेन ते निर्जिताः सर्वे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
तमेकं मेनिरे शूरं देवेष्विव पुरंदरम् ॥ ३२
तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः ।
उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च ॥ ३३
मणिमुक्ताप्रवालं च सुवर्णं रजतं बहु ।
गोरत्नान्यश्वरत्नानि रथरत्नानि कुञ्जरान् ॥ ३४
खरोष्ट्रमहिषीश्चैव यच्च किंचिदजाविकम् ।
कम्बलाजिनरत्नानि राङ्कवास्तरणानि च ।
तत्सर्वं प्रतिजग्राह राजा नागपुराधिपः ॥ ३५
तदादाय ययौ पाण्डुः पुनर्मुदितवाहनः ।
हर्षयिष्यन्स्वराष्ट्राणि पुरं च गजसाह्वयम् ॥ ३६
शान्तनो राजसिंहस्य भरतस्य च धीमतः ।
प्रनष्टः कीर्तिजः शब्दः पाण्डुना पुनराहृतः ॥ ३७

यद्यपि कन्याशुल्कग्रहणं आसुरे विवाहे दृष्टं तथापि कुलधर्मत्वादपरिहार्यमित्याह । पूर्वैरिति ॥ ९ ॥ धर्म एषः । आर्षेऽपि विवाहे कन्याशुल्कत्वेन गोमिथुनग्रहस्य विधानात् । तथा च शिष्टादृतत्वादयमपि धर्मः स्वयंभुवा वेदेनैवोक्त इत्यवसेयम् । एतेन विगीतोपि कुलाचारो न त्याज्य इत्युक्तम् ॥ १२ ॥ शातकुम्भं काञ्चनं कृताकृतं घटितमघटितं च ॥ १४ ॥ व्यसृजत् प्रादात् ॥ ॥ १५ ॥ त्रिदशाः त्रिंशत् ॥ २१ ॥ आगस्कृतः चोरप्रायः पर्वताद्याश्रयित्वात् ॥ २५ ॥ कुरुकर्मसु योजिताः कुरूणां दासभूताः कृताः ॥ ३१ ॥ नागपुराधिपः हस्तिनापुरेशः ॥ ३५ ॥

ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जह्रुः कुरुधनानि च ।
ते नागपुरसिंहेन पाण्डुना करदीकृताः ॥ ३८
इत्यभाषन्त राजानो राजामात्याश्च संगताः ।
प्रतीतमनसो हृष्टाः पौरजानपदैः सह । ३९
प्रत्युद्ययुश्च तं प्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः ॥
तेन दूरमिवाध्वानं गत्वा नागपुरालयात् । ४०
आवृतं ददृशुर्हृष्टा लोकं बहुविधैर्धनैः ॥
नानायानसमानीतै रत्नैरुच्चावचैस्तदा । ४१
हस्त्यश्वरथरत्नैश्च गोभिरुष्ट्रैस्तथाविभिः ॥
नान्तं ददृशुरासाद्य भीष्मेण सह कौरवाः । ४२
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कौसल्यानन्दवर्धनः
यथार्हं मानयामास पौरजानपदानपि । ४३
प्रमृद्य पुरराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम् ।
पुत्रमाश्लिष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रुण्यवर्तयत् । ४४
स तूर्यशतशंखानां भेरीणां च महास्वनैः ॥
हर्षयन्सर्वशः पौरान्विवेश गजसाह्वयम् ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुदिग्विजये त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११३॥

---

## ११४

वैशंपायन उवाच ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम् ।
भीष्माय सत्यवत्यै च मात्रे चोपजहार सः ॥ १
विदुराय च वै पाण्डुः प्रेषयामास तद्धनम् ।
सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत् ॥ २
ततः सत्यवतीं भीष्मं कौसल्यां च यशस्विनीम् ।
शुभैः पाण्डुजितैरर्थैस्तोषयामास भारत ॥ ३
ननन्द माता कौसल्या तमप्रतिमतेजसम् ।
जयन्तमिव पौलोमी परिष्वज्य नरर्षभम् ॥ ४
तस्य वीरस्य विक्रान्तैः सहस्रशतदक्षिणैः ।
अश्वमेधशतैरीजे धृतराष्ट्रो महामखैः ॥ ५
संप्रयुक्तस्तु कुन्त्या च माद्र्या च भरतर्षभ ।
जिततन्द्रीस्तदा पाण्डुर्बभूव वनगोचरः ॥ ६
हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च ।
अरण्यनित्यः सततं बभूव मृगयापरः ॥ ७
स चरन्दक्षिणं पार्श्वं रम्यं हिमवतो गिरेः ।
उवास गिरिपृष्ठेषु महाशालवनेषु च ॥ ८
रराज कुन्त्या माद्र्या च पाण्डुः सह वने चरन् ।
करेण्वोरिव मध्यस्थः श्रीमान्पौरंदरो गजः ॥ ९
भारतं सह भार्याभ्यां खड्गबाणधनुर्धरम् ।
विचित्रकवचं वीरं परमास्त्रविदं नृपम् ।
देवोऽयमित्यमन्यन्त चरन्तं वनवासिनः ॥ १०
तस्य कामांश्च भोगांश्च नरा नित्यमतन्द्रिताः ।
उपजह्रुर्वनान्तेषु धृतराष्ट्रेण चोदिताः ॥ ११
अथ पारसवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः ।
रूपयौवनसंपन्नां स शुश्रावापगासुतः ॥ १२
ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभः ।
विवाहं कारयामास विदुरस्य महामतेः ॥ १३
तस्यां चोत्पादयामास विदुरः कुरुनन्दनः ।
पुत्रान्विनयसंपन्नानात्मनः सदृशान्गुणैः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि विदुरपरिणये चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ११४

---

प्रतीतमनसः निष्कलुषचित्ताः अत एव हृष्टाः ॥ ३९ ॥ न दूरमिव अदूरमिव । जयोत्साहेन मार्गश्रमाभावात् ॥४० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

११४

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञात इति ॥ १ ॥ अश्वमेधशतैस्तत्तुल्यैर्महामखैः पञ्चमहायज्ञैः गर्भान्धस्य श्रौतयज्ञेष्वनधिकारात् ॥ ५ ॥ पारसवीं व्याख्यानरूपा ब्राह्मणेन शूद्रायां जाताम् ॥ १४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

## ११५

वैशंपायन उवाच ।

ततः पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां जनमेजय ।
धृतराष्ट्रस्य वैश्यायामेकश्चापि शतात्परः ॥ १
पाण्डोः कुन्त्यां च माद्र्यां च पुत्राः पञ्च महारथाः ।
देवेभ्यः समपद्यन्त सन्तानाय कुलस्य वै ॥ २

जनमेजय उवाच ।

कथं पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां द्विजसत्तम ।
कियता चैव कालेन तेषामायुश्च किं परम् ॥ ३
कथं चैकः स वैश्यायां धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ।
कथं च सदृशीं भार्यां गान्धारीं धर्मचारिणीम् ४
आनुकूल्ये वर्तमानां धृतराष्ट्रोऽभ्यवर्तत ।
कथं च शप्तस्य सतः पाण्डोस्तेन महात्मना ॥ ५
समुत्पन्ना दैवतेभ्यः पुत्राः पञ्च महारथाः ।
एतद्विद्वन्यथान्यायं विस्तरेण तपोधन ॥ ६
कथयस्व न मे तृप्तिः कथ्यमानेषु बन्धुषु ।

वैशंपायन उवाच ।

क्षुच्छ्रमाभिपरिग्लानं द्वैपायनमुपस्थितम् ॥ ७
तोषयामास गान्धारी व्यासस्तस्यै वरं ददौ ।
सा वव्रे सदृशं भर्तुः पुत्राणां शतमात्मनः ॥ ८
ततः कालेन सा गर्भं धृतराष्ट्रादथाग्रहीत् ।
संवत्सरद्वयं तं तु गान्धारी गर्भमाहितम् । ९
अप्रजा धारयामास ततस्तां दुःखमाविशत् ।
श्रुत्वा कुन्तीसुतं जातं बालार्कसमतेजसम् ॥ १०
उदरस्यात्मनः स्थैर्यमुपलभ्यान्वचिन्तयत् ।
अज्ञातं धृतराष्ट्रस्य यत्नेन महता ततः ॥ ११
सोदरं घातयामास गान्धारी दुःखमूर्च्छिता ।
ततो जज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठीलेव संहता ॥ १२
द्विवर्षसंभृता कुक्षौ तामुत्स्रष्टुं प्रचक्रमे ।
अथ द्वैपायनो ज्ञात्वा त्वरितः समुपागमत् ॥ १३
तां स मांसमयीं पेशीं ददर्श जपतां वरः ।
ततोऽब्रवीत्सौबलेयीं किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ १४
सा चात्मनो मतं सत्यं शशंस परमर्षये ।

गान्धार्युवाच ।

ज्येष्ठं कुन्तीसुतं जातं श्रुत्वा रविसमप्रभम् ॥ १५
दुःखेन परमेणेदमुदरं घातितं मया ।
शतं च किल पुत्राणां वितीर्णं मे त्वया पुरा १६
इयं च मे मांसपेशी जाता पुत्रशताय वै ।

व्यास उवाच ।

एवमेतत्सौबलेयि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ॥ १७
वितथं नोक्तपूर्वं मे स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ।
घृतपूर्णं कुण्डशतं क्षिप्रमेव विधीयताम् ॥ १८
सुगुप्तेषु च देशेषु रक्षा चैव विधीयताम् ।
शीताभिरद्भिरष्ठीलामिमां च परिषिञ्चय ॥ १९

वैशंपायन उवाच ।

सा सिच्यमाना त्वष्ठीला बभूव शतधा तदा ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां गर्भाणां पृथगेव तु ॥ २०
एकाधिकशतं पूर्णं यथायोगं विशांपते ।
मांसपेश्यास्तदा राजन् क्रमशः कालपर्ययात् ॥ २१
ततस्तांस्तेषु कुण्डेषु गर्भानवदधे तदा ।
स्वनुगुप्तेषु देशेषु रक्षां वै व्यदधात्ततः ॥ २२
शशंस चैव भगवान्कालेनैतावता पुनः ।
उद्घाटनीयान्येतानि कुण्डानीति च सौबलीम् २३
इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तथा प्रतिनिधाय च ।
जगाम तपसे धीमान्हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥ २४
जज्ञे क्रमेण चैतेन तेषां दुर्योधनो नृपः ।
जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ॥ २५
तदाख्यातं तु भीष्माय विदुराय च धीमते ।
यस्मिन्नहनि दुर्धर्षो जज्ञे दुर्योधनस्तदा ॥ २६
तस्मिन्नेव महाबाहुर्जज्ञे भीमोऽपि वीर्यवान् ।
स जातमात्र एवाथ धृतराष्ट्रसुतो नृप ॥ २७
रासभारावसदृशं रुराव च ननाद च ।
तं खराः प्रत्यभाषन्त गृध्रगोमायुवायसाः ॥ २८
वाताश्च प्रववुश्चापि दिग्दाहश्चाभवत्तदा ।
ततस्तु भीतवद्राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २९
समानीय बहून्विप्रान्भीष्मं विदुरमेव च ।
अन्यांश्च सुहृदो राजन्कुरून्सर्वांस्तथैव च ॥ ३०
युधिष्ठिरो राजपुत्रो ज्येष्ठो नः कुलवर्धनः ।
प्राप्तः स्वगुणतो राज्यं न तस्मिन्वाच्यमस्ति नः ३१
अयं त्वनन्तरस्तस्मादपि राजा भविष्यति ।
एतद्विब्रूत मे तथ्यं यदत्र भविता ध्रुवम् ॥ ३२

---

११५

तत इति ॥१॥ लोहाष्ठीला लोहमया गण्डिका तद्वत् संहता कठिना ॥ १२ ॥ अवदधे धृतवती ॥२२॥ रुराव च ननाद च व्यक्तमव्यक्तं च शब्दं खरसदृशमेवाकरोत् ॥२८॥

वाक्यस्यैतस्य निधने दिक्षु सर्वासु भारत ।
क्रव्यादाः प्राणदन्घोराः शिवाश्चाशिवशंसिनः ३३
लक्षयित्वा निमित्तानि तानि घोराणि सर्वशः ।
तेऽब्रुवन्ब्राह्मणा राजन्विदुरश्च महामतिः ॥ ३४
यथेमानि निमित्तानि घोराणि मनुजाधिप ।
उत्थितानि सुते जाते ज्येष्ठे ते पुरुषर्षभ ॥ ३५
व्यक्तं कुलान्तकरणो भवितैष सुतस्तव ।
तस्य शान्तिः परित्यागे गुप्तावपनयो महान् ३६
शतमेकोनमप्यस्तु पुत्राणां ते महीपते ।
त्यजैनमेकं शान्तिं चेत्कुलस्येच्छसि भारत ३७
एकेन कुरु वै क्षेमं कुलस्य जगतस्तथा ।
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥३८
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।
स तथा विदुरेणोक्तस्तैश्च सर्वैर्द्विजोत्तमैः ॥ ३९
न चकार तथा राजा पुत्रस्नेहसमन्वितः ।
ततः पुत्रशतं पूर्णं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥ ४०
मासमात्रेण संजज्ञे कन्या चैका शताधिका ।
गान्धार्यां क्लिश्यमानायामुदरेण विवर्धता ॥ ४१
धृतराष्ट्रं महाराजं वैश्या पर्यचरत्किल ।
तस्मिन्संवत्सरे राजन्धृतराष्ट्रान्महायशाः ॥ ४२
जज्ञे धीमांस्ततस्तस्यां युयुत्सुः करणो नृप ।
एवं पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ ४३
महारथानां वीराणां कन्या चैका शताधिका ।
युयुत्सुश्च महातेजा वैश्यापुत्रः प्रतापवान् ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि गान्धारीपुत्रोत्पत्तौ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

---

## ११६

जनमेजय उवाच ।

धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामादितः कथितं त्वया ।
ऋषेः प्रसादात्तु शतं न च कन्या प्रकीर्तिता ॥ १
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च कन्या चैका शताधिका ।
गान्धारराजदुहिता शतपुत्रेति चानघ ॥ २
उक्ता महर्षिणा तेन व्यासेनामिततेजसा ।
कथं त्विदानीं भगवन्कन्यां त्वं तु ब्रवीषि मे ॥ ३
यदि भागशतं पेशी कृता तेन महर्षिणा ।
न प्रजास्यति चेद्भूयः सौबलेयी कथंचन ॥ ४
कथं तु संभवस्तस्या दुःशलाया वदस्व मे ।
यथावदिह विप्रर्षे परं मेऽत्र कुतूहलम् ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

साध्वयं प्रश्न उद्दिष्टः पाण्डवेय ब्रवीमि ते ।
तां मांसपेशीं भगवान्स्वयमेव महातपाः ॥ ६
शीताभिरद्भिरासिच्य भागं भागमकल्पयत् ।
यो यथा कल्पितो भागस्तं तं धात्र्या तथा नृप ७
घृतपूर्णेषु कुण्डेषु एकैकं प्राक्षिपत्तदा ।
एतस्मिन्नन्तरे साध्वी गान्धारी सुदृढव्रता ॥ ८
दुहितुः स्नेहसंयोगमनुध्याय वराङ्गना ।
मनसाऽचिन्तयद्देवी एतत्पुत्रशतं मम ॥ ९
भविष्यति न संदेहो न ब्रवीत्यन्यथा मुनिः ।
ममेयं परमा तुष्टिर्दुहिता मे भवेद्यदि ॥ १०
एका शताधिका बाला भविष्यति कनीयसी ।
ततो दौहित्रजाल्लोकादबाह्योऽसौ पतिर्मम ॥ ११
अधिका किल नारीणां प्रीतिर्जामातृजा भवेत् ।
यदि नाम ममापि स्याद्दुहितैका शताधिका १२
कृतकृत्या भवेयं वै पुत्रदौहित्रसंवृता ।
यदि सत्यं तपस्तप्तं दत्तं वाप्यथवा हुतम् ॥ १३
गुरवस्तोषिता वापि तथास्तु दुहिता मम ।
एतस्मिन्नेव काले तु कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥ १४
व्यभजत्स तदा पेशीं भगवानृषिसत्तमः ।
गणयित्वा शतं पूर्णमंशानामाह सौबलीम् ॥ १५

व्यास उवाच ।

पूर्णं पुत्रशतं त्वेतन्न मिथ्यावागुदाहृता ।
दौहित्रयोगाय भाग एकः शिष्टः शतात्परः ॥ १६

---

करण इव करणः क्षत्रियात् वैश्यायां जातत्वान्न तु वैश्यात् शूद्रायाम् ॥ ४३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ ११५ ॥

११६

धृतराष्ट्रस्येति ॥ १ ॥ न प्रजास्यति प्रजामात्मनो नेच्छति। क्यजंतोयं शब्दः सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्यचि लालसायां सुगसुगाविति वार्तिकात्सुगागमः ॥ ४ ॥ अबाह्यः दौहित्रजानपि लोकान्प्राप्स्यतीत्यर्थः ॥ ११ ॥

एषा ते सुभगा कन्या भविष्यति यथेप्सिता । ततोऽन्यं घृतकुम्भं च समानाय्य महातपाः ।
तं चापि प्राक्षिपत्तत्र कन्याभागं तपोधनः ॥ १७
एतत्ते कथितं राजन्दुःशलाजन्म भारत । ब्रूहि राजेन्द्र किं भूयो वर्तयिष्यामि तेऽनघ १८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि दुःशलोत्पत्तौ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

## ११७

जनमेजय उवाच ।
ज्येष्ठानुज्येष्ठतां तेषां नामानि च पृथक्पृथक् ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्यात्प्रकीर्तय ॥ १
वैशंपायन उवाच ।
दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन्दुःशासनस्तथा ।
दुःसहो दुःशलश्चैव जलसन्धः समः सहः ॥ २
विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।
दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ॥ ३
विविंशतिर्विकर्णश्च शलः सत्वः सुलोचनः ।
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ ४
दुर्मदो दुर्विगाहश्च विवित्सुर्विकटाननः ।
ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ५
चित्रबाणश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विमोचनः ।
अयो बाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः ॥ ६
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्धनः ।
उग्रायुधः सुषेणश्च कुण्डधारो महोदरः ॥ ७
चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा ।
दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ॥ ८
दृढसन्धो जरासन्धः सत्यसन्धः सदः सुवाक् ।
उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः ॥ ९
अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ।
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥ १०
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तोग्रयाय्यपि ।
कवची क्रथनः कुण्डी कुण्डधारो धनुर्धरः ॥ ११
उग्रभीमरथौ वीरौ वीरबाहुरलोलुपः ।
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथाश्रयः ॥ १२
अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी चित्रकुण्डलः ।
प्रमथश्च प्रमाथी च दीर्घरोमश्च वीर्यवान् ॥ १३
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरःकनकध्वजः ।
कुण्डाशी विरजाश्चैव दुःशला च शताधिका १४
इति पुत्रशतं राजन् कन्या चैव शताधिका ।
नामधेयानुपूर्व्येण विद्धि जन्मक्रमं नृप ॥ १५
सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वेयुद्धविशारदाः ।
सर्वे वेदविदश्चैव सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ॥ १६
सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते ।
धृतराष्ट्रेण समये परीक्ष्य विधिवन्नृप ॥ १७
दुःशलां चापि समये धृतराष्ट्रो नराधिपः ।
जयद्रथाय प्रददौ विधिना भरतर्षभ ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रपुत्रनामकथने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ११७

## ११८

जनमेजय उवाच ।
कथितो धार्तराष्ट्राणामार्षः संभव उत्तमः ।
अमनुष्यो मनुष्याणां भवता ब्रह्मवादिना ॥ १
नामधेयानि चाप्येषां कथ्यमानानि भागशः ।
त्वत्तः श्रुतानि मे ब्रह्मन्पाण्डवानां च कीर्तय ॥ २

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७

ज्येष्ठेति ॥ १ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

११८

कथित इति । आर्षःऋषिप्रसादहेतुकः । अमनुष्यो मनुष्येष्वदृष्टः । युगपद्बहूनां जननात् ॥ १ ॥

ते हि सर्वे महात्मानो देवराजपराक्रमाः ।
त्वयैवांशावतरणे देवभागाः प्रकीर्तिताः ॥ ३
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुमतिमानुषकर्मणाम् ।
तेषामाजननं सर्वं वैशंपायन कीर्तय ॥ ४

वैशंपायन उवाच ।

राजा पाण्डुर्महारण्ये मृगव्यालनिषेविते ।
चरन्मैथुनधर्मस्थं ददर्श मृगयूथपम् ॥ ५
ततस्तां च मृगीं तं च रुक्मपुङ्खैः सुपत्रिभिः ।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः पाण्डुः पञ्चभिराशुगैः ॥ ६
स च राजन्महातेजा ऋषिपुत्रस्तपोधनः ।
भार्यया सह तेजस्वी मृगरूपेण संगतः ॥ ७
संसक्तश्च तया मृग्या मानुषीमीरयन्गिरम् ।
क्षणेन पतितो भूमौ विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ८

मृग उवाच ।

काममन्युपरीता हि बुध्या विरहिता अपि ।
वर्जयन्ति नृशंसानि पापेष्वपि रता नराः ॥ ९
न विधिं ग्रसते प्रज्ञा प्रज्ञां तु ग्रसते विधिः ।
विधिपर्यागतानर्थान्प्राज्ञो न प्रतिपद्यते ॥ १०
शश्वद्धर्मात्मनां मुख्ये कुले जातस्य भारत ।
कामलोभाभिभूतस्य कथं ते चलिता मतिः ११

पाण्डुरुवाच ।

शत्रूणां या वधे वृत्तिः सा मृगाणां वधे स्मृता ।
राज्ञां मृग न मां मोहात्त्वं गर्हयितुमर्हसि ॥ १२
अच्छद्मना मायया च मृगाणां वध इष्यते ।
स एव धर्मो राज्ञां तु तद्विद्वान्किं नु गर्हसे ॥१३
अगस्त्यः सत्रमासीनश्चचार मृगयामृषिः ।
आरण्यान्सर्वदैवत्यान्मृगान्प्रोक्ष्य महावने ॥ १४
प्रमाणदृष्टधर्मेण कथमस्मान्विगर्हसे ।
अगस्त्यस्याभिचारेण युष्माकं च वपा हुता ॥१५

मृग उवाच ।

न रिपून्वै समुद्दिश्य विमुञ्चन्ति नराः शरान् ।
रन्ध्र एषां विशेषेण वधकालः प्रशस्यते ॥ १६

पाण्डुरुवाच ।

प्रमत्तमप्रमत्तं वा विवृतं घ्नन्ति चौजसा ।
उपायैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कस्मान्मृग विगर्हसे ॥१७

मृग उवाच ।

नाहं घ्नन्तं मृगान् राजन्विगर्हे चात्मकारणात् ।
मैथुनं तु प्रतीक्ष्यं मे त्वयेहाद्यानृशंस्यतः ॥ १८
सर्वभूतहिते काले सर्वभूतेप्सिते तथा ।
को हि विद्वान्मृगं हन्याच्चरन्तं मैथुनं वने ॥ १९
अस्यां मृग्यां च राजेन्द्र हर्षान्मैथुनमाचरम् ।
पुरुषार्थफलं कर्तुं तत्त्वया विफलीकृतम् ॥ २०
पौरवाणां महाराज तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
वंशे जातस्य कौरव्य नानुरूपमिदं तव ॥ २१
नृशंसं कर्म सुमहत्सर्वलोकविगर्हितम् ।
अस्वर्ग्यमयशस्यं चाप्यधर्मिष्ठं च भारत ॥ २२
स्त्रीभोगानां विशेषज्ञः शास्त्रधर्मार्थतत्त्ववित् ।
नार्हस्त्वं सुरसंकाश कर्तुमस्वर्ग्यमीदृशम् ॥ २३
त्वया नृशंसकर्तारः पापाचाराश्च मानवाः ।
निग्राह्याः पार्थिवश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिवर्जिताः ॥ २४

---

कामेति कामक्रोधावृता अपि मूढाः पापाचारस्वभावा ईदृशानि नृशंसानि बीभत्सानि वर्जयन्ति। अतस्त्वं नृशंसकर्ता सर्वेभ्योऽप्यधम इत्यर्थः ॥९॥ विधिं दैवं न ग्रसते नातिक्रामति । प्रज्ञा शास्त्रीयाबुद्धिः। प्राज्ञः प्रज्ञावान्। अर्थान्विधिपर्यागतान्दैवोपगतान्। न प्रतिपद्यते न वेत्ति। किं तु प्रज्ञाबलेनैवैतन्मयाकृतमिति मन्यतेऽतो नायं तवापराध इति भावः।प्रज्ञावानिति पाठे तु प्रज्ञावानेवैतज्जानाति न मूढ इत्यर्थः ॥१०॥ तवापि मोह इत्याश्चर्यमित्याह । शश्वदिति ॥ ११ ॥ पाठान्तरे मृगयुता मृगहन्तृत्वम् ॥१२॥ अच्छद्मना प्राकट्येन। मायया प्रच्छन्नरूपेण। चो वार्थे ॥ १३ ॥ सत्रमासीनः अनुतिष्ठन्। व्रतस्थानां तत्रापि ब्राह्मणानामपि मृगया दृष्टा किं पुनर्मम राज्ञः। प्रोक्ष्येत्यनेनोपाकरणसंज्ञपना दिकं लक्ष्यते। मुखं व्यादाय स्वपितीतिवन्मृगयां कृत्वा प्रोक्षयामासेति व्याख्येयम् ॥ १४ ॥ प्रमाणं वेदः। अस्मान्वर्तमानान्। ननु पर्यग्निकृतानारण्यानुत्सृजतीत्यारण्यानामुत्सर्ग एव विहितो न वध इत्याशंक्याह । अगस्त्यस्येति। अभिचारेण शत्रुमारणेन। अतिचारेणेति पाठे शास्त्रातिक्रमेण। वपा कदलीगर्भपत्रसदृशो मांसाऽपूपः। तस्मादगस्त्यप्रदर्शितेन मार्गेण शत्रुवधकामा नृपाः शत्रुवन्मृगान् घ्नन्ति ॥ १५ ॥ न रिपूनिति । रन्ध्रे विशस्त्रत्वव्यसनाक्रान्तत्वादिसमये शरान्न विमुञ्चन्तीति संबन्धः। किंतु एषां शत्रूणां वधकालः सर्वलोकप्रसिद्धः संग्राम आभिमुख्यादिमान्स एव प्रशस्यतेऽन्यो निन्द्यत इत्यर्थः ॥१६॥ प्रमत्तं असावधानम्। तीक्ष्णैः गुप्तशस्त्राग्नेयादिभिः। विवृतं व्यक्तम्। घ्नन्ति मृगान्। मत्तभीतपलायितादीनां शत्रूणां वधो निन्द्यो न तु मृगादीनामित्याशयः ॥ १७ ॥ हर्षात् ऋष्यशृङ्गादितुल्यः पुत्रो मे भविष्यतीत्युत्साहात्। पुरुषार्थफलं पुरुषैर्मैथुनेनार्थनीयं फलं पुत्रः तं कर्तुं उत्पादयितुम् ॥ २० ॥ त्रिवर्गेति । धर्मार्थकामहीनाः ॥ २४ ॥

किं कृतं ते नरश्रेष्ठ मामिहानागसं घ्नता ।
मुनिं मूलफलाहारं मृगवेषधरं नृप ॥ २५
वसमानमरण्येषु नित्यं शमपरायणम् ।
त्वयाऽहं हिंसितो यस्मात्तस्मात्त्वामप्यहं शपे २६
द्वयोर्नृशंसकर्तारमवशं काममोहितम् ।
जीवितान्तकरो भाव एवमेवागमिष्यति ॥ २७
अहं हि किंदमो नाम तपसा भावितो मुनिः ।
व्यपत्रपन्मनुष्याणां मृग्यां मैथुनमाचरम् ॥ २८
मृगो भूत्वा मृगैः सार्धं चरामि गहने वने ।
न तु ते ब्रह्महत्येयं भविष्यत्यविजानतः ॥ २९
मृगरूपधरं हत्वा मामेवं काममोहितम् ।
अस्य तु त्वं फलं मूढ प्राप्स्यसीदृशमेव हि ॥ ३०
प्रियया सह संवासं प्राप्य कामविमोहितः ।
त्वमप्यस्यामवस्थायां प्रेतलोकं गमिष्यसि ॥ ३१
अन्तकाले हि संवासं यया गन्तासि कान्तया ।
प्रेतराजपुरं प्राप्तं सर्वभूतदुरत्ययम् ।
भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठ सैव त्वानुगमिष्यति ॥ ३२
वर्तमानः सुखे दुःखं यथाहं प्रापितस्त्वया ।
तथा त्वां च सुखं प्राप्तं दुःखमभ्यागमिष्यति ३३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो जीवितात्स व्यमुच्यत ।
मृगः पाण्डुश्च दुःखार्तः क्षणेन समपद्यत ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुमृगशापेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## ११९

वैशंपायन उवाच ।

तं व्यतीतमतिक्रम्य राजा स्वमिव बान्धवम् ।
सभार्यः शोकदुःखार्तः पर्यदेवयदातुरः ॥ १

पाण्डुरुवाच ।

सतामपि कुले जाताः कर्मणा बत दुर्गतिम् ।
प्राप्नुवन्त्यकृतात्मानः कामजालविमोहिताः ॥ २
शश्वद्धर्मात्मना जातो बाल एव पिता मम ।
जीवितान्तमनुप्राप्तः कामात्मैवेति नः श्रुतम् ॥ ३
तस्य कामात्मनः क्षेत्रे राज्ञः संयतवागृषिः ।
कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्भगवान्मामजीजनत् ॥ ४
तस्याद्य व्यसने बुद्धिः संजातेयं ममाधमा ।
त्यक्तस्य देवैरनयान्मृगयां परिधावतः ॥ ५
मोक्षमेव व्यवस्यामि बन्धो हि व्यसनं महत् ।
सुवृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥ ६
अतीव तपसात्मानं योजयिष्याम्यसंशयम् ।
तस्मादेकोहमेकाकी एकैकस्मिन्वनस्पतौ ॥ ७
चरन्भैक्ष्यं मुनिर्मुण्डश्चरिष्याम्याश्रमानिमान् ।
पांसुना समवच्छन्नः शून्यागारकृतालयः ॥ ८
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ।
न शोचन्न प्रहृष्यंश्च तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ ९
निराशीर्निर्नमस्कारो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
न चाप्यवहसन्कंचिन्न कुर्वन्भ्रुकुटीं क्वचित् ॥ १०
प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वभूतहिते रतः ।
जङ्गमाजङ्गमं सर्वमविहिंसंश्चतुर्विधम् ॥ ११

---

ते त्वया ॥२५॥ द्वयोः स्त्रीपुंसयोः नृशंसं निन्द्यं मैथुनासक्तयोर्वधस्तस्य कर्तारम् ॥२७॥ प्राप्तं त्वा त्वाम्॥३२॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ ११८ ॥

११९

तमिति । राजातिक्रम्य तं पर्यदेवयदिति संबन्धः कीदृशं तं व्यतीतं मारितमित्यर्थः ॥ १ ॥ कामजालं विधित्साजालम् ॥२॥ देवैस्त्यक्तस्य अपुत्रतया स्वर्गमनानर्हत्वात् ॥ ५ ॥ मोक्षं मोक्षमार्गं व्यवस्यामि निश्चिनोमि श्रेयस्करत्वेन । तत्र हि पुत्राद्यनपेक्षा दृष्टा 'किं प्रजायाकरिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोक' इति । इष्टमेवैतज्जातमित्याह । बन्धो हीति । बन्धः पुत्रैषणादिः । सुवृत्तिं ब्रह्मचर्याख्यां वृत्तिम् । पितुर्व्यासस्य ॥ ६ ॥ तपसा श्रवणमननात्मकेनालोचनेन । आत्मानं चित्तं योजयिष्यामि समाधातुमिच्छामि । तत्र साधनान्याह । तस्मादिति । एकः स्त्रीहीनः एकाकी शिष्यादिभिः सहायैर्हीनः॥७॥इमान्वानप्रस्थाश्रमान्संनिहितान् । पांसुनेति भूमिशायित्वमुक्तम् ॥ ८ ॥ निराशीर्निर्नमस्कारः । आशिषं नमस्कारं वा नेच्छामीत्यर्थः । निर्द्वन्द्वः सुखदुःखादिहीनः । निष्परिग्रहः कंथापादुकादिहीनः ॥१०॥

स्वासु प्रजास्विव सदा समः प्राणभृतां प्रति ।
एककालं चरन्भैक्ष्यं कुलानि दश पञ्च वा ॥ १२
असंभवे वा भैक्ष्यस्य चरन्ननशनान्यपि ।
अल्पमल्पं च भुञ्जानः पूर्वालाभे न जातुचित् १३
अन्यान्यपि चरँल्लोभादलाभे सप्त पूरयन् ।
अलाभे यदि वा लाभे समदर्शी महातपाः ॥ १४
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः ।
नाकल्याणं न कल्याणं चिन्तयन्नुभयोस्तयोः१५
न जिजीविषुवत्किंचिन्न मुमूर्षुवदाचरन् ।
जीवितं मरणं चैव नाभिनन्दन्न च द्विषन् ॥ १६
याः काश्चिज्जीवता शक्याः कर्तुमभ्युदयक्रियाः।
ताः सर्वाः समतिक्रम्य निमेषादिव्यवस्थिताः१७
तासु चाप्यनवस्थासु त्यक्तसर्वेन्द्रियक्रियः ।
संपरित्यक्तधर्मार्थः सुनिर्णिक्तात्मकल्मषः ॥ १८
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो व्यतीतः सर्ववागुराः ।
न वशे कस्यचित्तिष्ठन्सधर्मा मातरिश्वनः ॥ १९
एतया सततं धृत्या चरन्नेवं प्रकारया ।
देहं संस्थापयिष्यामि निर्भयं मार्गमास्थितः २०
नाहं सुकृपणे मार्गे स्ववीर्यक्षयशोचिते ।
स्वधर्मात्सततापेते चरेयं वीर्यवर्जितः ॥ २१
सत्कृतोऽसत्कृतो वापि योऽन्यं कृपणचक्षुषा ।
उपैति वृत्तिं कामात्मा स शुनां वर्तते पथि ॥२२

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निःश्वासपरमो नृपः ।
अवेक्षमाणः कुन्तीं च माद्रीं स समभाषत ॥ २३
कौसल्या विदुरः क्षत्ता राजा च सह बन्धुभिः ।
आर्या सत्यवती भीष्मस्ते च राजपुरोहिताः ॥२४
ब्राह्मणाश्च महात्मानः सोमपाः संशितव्रताः ।
पौरवृद्धाश्च ये तत्र निवसन्त्यस्मदाश्रयाः ।
प्रसाद्य सर्वे वक्तव्याः पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् ॥२५
निशम्य वचनं भर्तुर्वनवासे धृतात्मनः ।
तत्समं वचनं कुन्ती माद्री च समभाषताम् ॥२६
अन्येऽपि ह्याश्रमाः सन्ति ये शक्या भरतर्षभ ।
आवाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां सह तप्तुं तपो महत् ॥२७
शरीरस्यापि मोक्षाय स्वर्ग्यं प्राप्य महाफलम् ।
त्वमेव भविता भर्ता स्वर्गस्यापि न संशयः ॥२८
प्रणिधायेन्द्रियग्रामं भर्तृलोकपरायणे ।
त्यक्त्वा कामसुखे ह्यावां तप्स्यावो विपुलं तपः
यदि चावां महाप्राज्ञ त्यक्ष्यसि त्वं विशांपते ।
अद्यैवावां प्रहास्यावो जीवितं नात्र संशयः ॥ ३०

पाण्डुरुवाच ।

यदि व्यवसितं ह्येतद्युवयोर्धर्मसंहितम् ।
स्ववृत्तिमनुवर्तिष्ये तामहं पितुरव्ययाम् ॥ ३१

---

पूर्वं संन्यासिधर्मानेव करिष्यामीत्युक्तं इदानीं संन्यासमेव करिष्यामीत्याह । एककालमिति सार्धः । पूर्वालाभे पूर्वं एकैकस्मिन्वनस्पतौ चरन् भैक्ष्यमित्युक्तं तदभावे सति । कुलानि गृहाणि ॥ १२ ॥ न जातुचिन्न कदाचित् ॥१३॥ लोभादन्यानि दशाधिकानि चरन् । अलाभे अपूर्तौ ॥ १४ ॥ वास्यावास्येन काष्ठतक्षणेन । सुपोडादेश आर्षःविभक्तिलोपो वा ॥१५॥ अभ्युदयाक्रियाः स्वर्गादिहेतुदर्शपूर्णमासादयः । समतिक्रम्य प्राजापत्येष्टयादिपूर्वकं विधिवत् त्यक्त्वा । निमेषादिः कालस्तत्रव्यवस्थिता नियतकालाः ॥ १७ ॥ अनवस्थासु आनित्यफलासु । संपरित्यक्तो धर्मसाध्योऽर्थो ब्रह्मलोकान्तो येन सः । सुनिर्णिक्तात्मकल्मषः यस्मात् धर्मेण सम्यक् क्षालितं चित्तकल्मषं रागादि तस्मात् । तेन कृतार्थेन नातः परं कार्यमस्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ रागादिक्षयोऽपि तन्मूलभूतपापक्षयादेवेत्याह । निर्मुक्त इति । वागुरा इव वागुराः बन्धनानि अविद्याकामकर्माणि । सधर्मा असंगः ॥१९॥ संस्थापयिष्यामि नाशयिष्यामि । निर्भयं मार्गं संसारभयरहितम् ॥ २० ॥ बाह्यसाधनाधीने सुकृपणे मार्गे कर्ममार्गे। यो वा हतदक्सर गार्ग्यविदित्वास्मिन् लोके यजति ददाति तपस्तप्यतेपि बहूनि वर्षसहस्राण्यं तव देवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपण इति श्रुतिनिन्दिते । स्ववीर्यक्षयशोचिते स्वस्य प्रत्यनात्मनो वीर्यं सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिरित्यादिश्रु इतिप्रसिद्धं वशित्वादि तस्य क्षयो विषयसंगकृतो ह्रासस्तेन शोचिते शोच्ये । ननु न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोतिथिप्रियः । श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते इति स्मृतेर्गृह एव मोक्षसिद्धौ किं संन्यासेनेत्याशंक्याह । सधर्मा इति।'जाया मेस्यादथ प्रजायेय'इति श्रुतेःप्रजोत्पादनमेव गृहस्थधर्मः ततोऽपेते गार्हस्थ्ये किमवस्थाने नेति आशयः। वीर्यवर्जितोऽपत्योत्पादन सामर्थ्यरहितः॥२१॥ अपत्योत्पादनमपि ब्राह्मणद्वारा सुसंपाद्यमित्याशंक्याह । सत्कृत इति अन्यं पुरुषं वृत्तिं वृत्तिपदं । कृपणचक्षुषा । अपत्यं मे देहीति याच्ञा दीनदृष्टया । कामात्मा अपत्यकाम आत्मा चित्तं यस्य सः । कामपूर्त्यन्ते शुनामिवापत्यकामानामपि तत्कृतं महद्दुःखमस्ति अतः पारिव्राज्यमेव श्रेय इति भावः ॥ २२ ॥ क्षत्ताऽत्र विदुर एव कौसल्यादिसाहचर्यात् ॥ २४ ॥ तत्समं उक्तस्य योग्यम् ॥ २६ ॥

---

* वासी शब्द ईबंतोपि 'वासी तु तक्षणी न द्वौ' इति त्रिकाण्डशेषात्

त्यक्त्वा ग्राम्यसुखाहारं तप्यमानो महत्तपः ।
वल्कली फलमूलाशी चरिष्यामि महावने ॥ ३२
अग्नौ जुह्वन्नुभौ कालावुभौ कालावुपस्पृशन् ।
कृशः परिमिताहारश्चीरचर्मजटाधरः ॥ ३३
शीतवातातपसहः क्षुत्पिपासानवेक्षकः ।
तपसा दुश्चरेणेदं शरीरमुपशोषयन् ॥ ३४
एकान्तशीली विमृशन्पक्वापक्वेन वर्तयन् ।
पितॄन्देवांश्च वन्येन वाग्भिरद्भिश्च तर्पयन् ॥ ३५
वानप्रस्थजनस्यापि दर्शनं कुलवासिनाम् ।
नाप्रियाण्याचरिष्यामि किं पुनर्ग्रामवासिनाम् ॥
एवमारण्यशास्त्राणामुग्रमुग्रतरं विधिम् ।
कांक्षमाणोऽहमास्थास्ये देहस्यास्यासमापनात् ॥

वैशंपायन उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भार्ये ते राजा कौरवनन्दनः ।
ततश्चूडामणिं निष्कमङ्गदे कुण्डलानि च ॥ ३८
वासांसि च महार्हाणि स्त्रीणामाभरणानि च ।
प्रदाय सर्वं विप्रेभ्यः पाण्डुः पुनरभाषत ॥ ३९
गत्वा नागपुरं वाच्यं पाण्डुः प्रव्रजितो वनम् ।
अर्थं कामं सुखं चैव रतिं च परमात्मिकाम् ॥४०
प्रतस्थे सर्वमुत्सृज्य सभार्यः कुरुनन्दनः ।
ततस्तस्यानुयातारस्ते चैव परिचारकाः ॥ ४१
श्रुत्वा भरतसिंहस्य विविधाः करुणा गिरः ।
भीममार्तस्वरं कृत्वा हाहेति परिचुक्रुशुः ॥ ४२
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तस्तं विहाय महीपतिम् ।
ययुर्नागपुरं तूर्णं सर्वमादाय तद्वनम् ॥ ४३
ते गत्वा नगरं राज्ञो यथावृत्तं महात्मनः ।
कथयांचक्रिरे राज्ञस्तद्धनं विविधं ददुः ॥ ४४
श्रुत्वा तेभ्यस्ततः सर्वं यथावृत्तं महावने ।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठः पाण्डुमेवान्वशोचत ॥ ४५
न शय्यासनभोगेषु रतिं विन्दति कर्हिचित् ।
भ्रातृशोकसमाविष्टस्तमेवार्थं विचिन्तयन् ॥ ४६
राजपुत्रस्तु कौरव्य पाण्डुर्मूलफलाशनः ।
जगाम सहपत्नीभ्यां ततो नागशतं गिरिम् ॥४७
स चैत्ररथमासाद्य कालकूटमतीत्य च ।
हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गन्धमादनम् ॥ ४८
रक्ष्यमाणो महाभूतैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
उवास स महाराज समेषु विषमेषु च ॥ ४९
इन्द्रद्युम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्य च ।
शतशृङ्गे महाराज तापसः समतप्यत ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुचरिते ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

---

## १२०

वैशंपायन उवाच ।

तत्रापि तपसि श्रेष्ठे वर्तमानः स वीर्यवान् ।
सिद्धचारणसंघानां बभूव प्रियदर्शनः ॥ १
शुश्रूषुरनहंवादी संयतात्मा जितेन्द्रियः ।
स्वर्गं गन्तुं पराक्रान्तः स्वेन वीर्येण भारत ॥ २
केषांचिदभवद्भ्राता केषांचिदभवत्सखा ।
ऋषयस्त्वपरे चैनं पुत्रवत्परिपालयन् ॥ ३
स तु कालेन महता प्राप्य निष्कल्मषं तपः ।
ब्रह्मर्षिसदृशः पाण्डुर्बभूव भरतर्षभ ॥ ४
अमावास्यां तु सहिता ऋषयः संशितव्रताः ।
ब्रह्माणं द्रष्टुकामास्ते संप्रतस्थुर्महर्षयः ॥ ५
संप्रयातानृषीन्दृष्ट्वा पाण्डुर्वचनमब्रवीत् ।
भवन्तः क्व गमिष्यन्ति ब्रूत मे वदतां वराः ॥ ६

---

विमृशन् हिंसादिदोषम् । पक्वापक्वेन पक्वं फलादि अपक्वं कन्दादि । पक्षापक्षेणेति पाठे पक्षान्तकर्म इष्ट्यादिकं पक्षस्तदन्यदग्निहोत्रादिकमपक्षः ॥ ३५ ॥ अप्रियाणि च नाचरिष्यामि । तथा कुलवासिनां भ्रात्रादीनाम् ॥३६॥ आरण्या वानप्रस्थास्तेषां शास्त्राणि धर्मविधायकानि तेषां मध्ये विहितं उग्रम् । आस्थास्ये अङ्गीकरिष्ये । आसमापनात् यावत्समाप्तिम् ॥ ३७ ॥ निष्कं ग्रैवेयकम् ॥ ३८ ॥ रतिं स्त्रीसंगं परमात्मिकां परमः नूतनत्वादुत्कृष्टः आत्मा आत्मा वै पुत्रनामासिति श्रुतेः पुत्रःस यया तां ॥ ४० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

---

१२०

तत्रापीति ॥ १ ॥ परिपालयन् अडभाव आर्षः ॥ ३ ॥ अमावास्यां प्राप्य ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः ।

समवायो महानद्य ब्रह्मलोके महात्मनाम् ।
देवानां च ऋषीणां च पितॄणां च महात्मनाम् ।
वयं तत्र गमिष्यामो द्रष्टुकामाः स्वयम्भुवम् ॥ ७

वैशंपायन उवाच ।

पाण्डुरुत्थाय सहसा गन्तुकामो महर्षिभिः ।
स्वर्गपारं तितीर्षुः स शतशृङ्गादुदङ्मुखः ॥ ८
प्रतस्थे सह पत्नीभ्यामब्रुवंस्तं च तापसाः ।
उपर्युपरि गच्छन्तः शैलराजमुदङ्मुखाः ॥ ९
दृष्टवन्तो गिरौ रम्ये दुर्गान्देशान्बहून्वयम् ।
विमानशतसंबाधां गीतस्वरनिनादिताम् ॥ १०
आक्रीडभूमिं देवानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
उद्यानानि कुबेरस्य समानि विषमाणि च ॥ ११
महानदीनितम्बांश्च गहनान्गिरिगह्वरान् ।
सन्ति नित्यहिमा देशा निर्वृक्षमृगपक्षिणः ॥ १२
सन्ति क्वचिन्महादर्यो दुर्गाः काश्चिद्दुरासदाः ।
नातिक्रामेत पक्षी यान्कुत एवेतरे मृगाः ॥ १३
वायुरेको हि यात्यत्र सिद्धाश्च परमर्षयः ।
गच्छन्त्यौ शैलराजेऽस्मिन्राजपुत्र्यौ कथं त्विमे ॥
न सीदेतामदुःखार्हे मागमो भरतर्षभ ।

पाण्डुरुवाच ।

अप्रजस्य महाभागा न द्वारं परिचक्षते ॥ १५
स्वर्गे तेनाभितप्तोऽहमप्रजस्तु ब्रवीमि वः ।
पित्र्यादृणादनिर्मुक्तस्तेन तप्ये तपोधनाः ॥ १६
देहनाशे ध्रुवो नाशः पितॄणामेष निश्चयः ।
ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायन्ते मानवा भुवि ॥१७
पितृदेवर्षिमनुजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मतः ।
एतानि तु यथाकालं यो न बुध्यति मानवः ॥१८
न तस्य लोकाः सन्तीति धर्मविद्भिः प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञैस्तु देवान्प्रीणाति स्वाध्यायतपसा मुनीन्१९
पुत्रैः श्राद्धैः पितॄंश्चापि आनृशंस्येन मानवान् ।
ऋषिदेवमनुष्याणां परिमुक्तोऽस्मि धर्मतः ॥ २०
त्रयाणामितरेषां तु नाश आत्मनि नश्यति ।
पित्र्यादृणादनिर्मुक्त इदानीमस्मि तापसाः ॥ २१
इह तस्मात्प्रजाहेतोः प्रजायन्ते नरोत्तमाः ।
यथैवाहं पितुः क्षेत्रे जातस्तेन महर्षिणा ॥ २२
तथैवास्मिन्मम क्षेत्रे कथं वै संभवेत्प्रजा ।

ऋषय ऊचुः ।

अस्ति वै तव धर्मात्मन्विद्म देवोपमं शुभम् ॥२३
अपत्यमनघं राजन्वयं दिव्येन चक्षुषा ।
दैवोद्दिष्टं नरव्याघ्र कर्मणेहोपपादय ॥ २४
अक्लिष्टं फलमव्यग्रो विन्दते बुद्धिमान्नरः ।
तस्मिन्दृष्टे फले राजन्प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥ २५
अपत्यं गुणसंपन्नं लब्धा प्रीतिकरं ह्यसि ।

वैशंपायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा तापसवचः पाण्डुश्चिन्तापरोऽभवत्२६
आत्मनो मृगशापेन जानन्नुपहतां क्रियाम् ।
सोऽब्रवीद्विजने कुन्तीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ।
अपत्योत्पादने यत्नमापदि त्व समर्थय ॥ २७
अपत्यं नाम लोकेषु प्रतिष्ठा धर्मसंहिता ।
इति कुन्ति विदुर्धीराः शाश्वतं धर्मवादिनः ॥२८
इष्टं दत्तं तपस्तप्तं नियमश्च स्वनुष्ठितः ।
सर्वमेवानपत्यस्य न पावनमिहोच्यते ॥ २९
सोऽहमेवं विदित्वैतत्प्रपश्यामि शुचिस्मिते ।
अनपत्यः शुभाँल्लोकान्न प्राप्स्यामीति चिन्तयन् ॥
मृगाभिशापान्नष्टं मे जननं ह्यकृतात्मनः ।
नृशंसकारिणो भीरु यथैवोपहतं पुरा ॥ ३१

---

विमानशतेन संबाध संकटं यस्या सा । 'संबाध संकटे भगे' इति मेदिनी ॥ १० ॥ सिद्धाश्च परमर्षय इति । वक्ष्यमाणऋणचतुष्टयनिर्मुक्ता सिद्धादिव्यज्ञानवन्त. परमर्षयस्तेपि यान्ति । त्वं तु न तथेति भाव । तत्र लोकदृष्टं हेतुमाह । गच्छन्त्याविति ॥ १४ ॥ तमेनं मुनीनामाशयं बुद्ध्वा पाण्डुरुवाच । अप्रजस्येति । न परिचक्षते परित सर्वथा न पश्यन्ति ॥ १५ ॥ नाशो ममैव । यत पितृणामेष निश्चय । अप्रजस्य स्वर्गद्वारनिरोधेन यज्ञादिकं विफलीकर्तव्यमित्येष निश्चय पितृणा तेन तादृशोऽस्वर्ग्य भूमौ सन्नपि नष्टप्राय एव किमुतदेहनाशे इति भाव. । एतदेव विवृणोति । ऋणैरित्यादिना ॥ १७ ॥ ऋषिदेवमनुष्याणा ऋणादिति शेष ॥२०॥इतरेषा पितृणामृणात्तु नाश अप्रकाशता मम आत्मनि देहे नश्यति सति । सोयं लोक' पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणेति श्रुते । स्वदेहनाशेऽपि पुत्ररूपेणास्त्येव पुनाभावे तु नास्त्येवेत्यर्थ तदेवाह । पित्र्यादृणादिति ॥ २१ ॥ दैवोद्दिष्टं दृष्टादृष्टकारणकलापजन्यत्वात्कार्यमात्रस्येत्यर्थ ॥ २४ ॥ अव्यग्रो विन्दतेऽतो व्यग्रो माभूदित्यर्थ ॥ २५ ॥ लभते इति लब्धा तादृशोसि लप्स्यसीत्यर्थ ॥ २६ ॥ क्रिया पुत्रोत्पादिकाम् ॥ २७ ॥ धर्मसंहिता धर्ममयी ॥ २८ ॥ मृगाभिशापात् मृगरूपस्य मुने॰। शापान्नष्टं असद्रूपं जातं जननं स्त्रीसंगाख्य रतिकर्म यत उपहतं यथा मृगस्य तथैवान्तरा मैथुनं ममापि मरणप्राप्ति निश्चयान्न तु क्लीबत्वात् ॥ ३१ ॥

इमे वै बन्धुदायादाः षट्पुत्रा धर्मदर्शने।
षडेवाबन्धुदायादाः पुत्रास्ताञ्छृणु मे पृथे ॥ ३२
स्वयंजातः प्रणीतश्च परिक्रीतश्च यः सुतः।
पौनर्भवश्च कानीनः स्वैरिण्यां यश्च जायते ॥ ३३
दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत्स्वयं च यः।
सहोढो ज्ञातिरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः ॥ ३४
पूर्वपूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतम्।
उत्तमाद्देवरात्पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्रमापदि ॥ ३५
अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः।
आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥३६
तस्मात्प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात्स्वयम्।
सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि ॥ ३७
शृणु कुन्ति कथामेतां शारदण्डायिनीं प्रति।
सा वीरपत्नी गुरुणा नियुक्ता पुत्रजन्मनि ॥ ३८
पुष्पेण प्रयता स्नाता निशि कुन्ति चतुष्पथे।
वरयित्वा द्विजं सिद्धं हुत्वा पुंसवनेऽनलम् ॥३९
कर्मण्यवसिते तस्मिन्सा तेनैव सहावसत्।
तत्र त्रीञ्जनयामास दुर्जयादीन्महारथान् ॥ ४०
तथा त्वमपि कल्याणि ब्राह्मणात्तपसाधिकात्।
मन्नियोगाद्यत क्षिप्रमपत्योत्पादनं प्रति ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुपृथासंवादे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

---

# १२१

वैशंपायन उवाच।
एवमुक्ता महाराज कुन्ती पाण्डुमभाषत।
कुरूणामृषभं वीरं तदा भूमिपतिं पतिम् ॥ १
न मामर्हसि धर्मज्ञ वक्तुमेवं कथंचन।
धर्मपत्नीमभिरतां त्वयि राजीवलोचने ॥ २
त्वमेव तु महाबाहो मय्यपत्यानि भारत।
वीर वीर्योपपन्नानि धर्मतो जनयिष्यसि ॥ ३
स्वर्गं मनुजशार्दूल गच्छेयं सहिता त्वया।
अपत्याय च मां गच्छ त्वमेव कुरुनन्दन ॥ ४
न ह्यहं मनसाप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम्।
त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोन्योऽस्ति भुवि मानवः ॥ ५
इमां च तावद्धर्मात्मन्पौराणीं शृणु मे कथाम्।
परिश्रुतां विशालाक्ष कीर्तयिष्यामि यामहम् ॥६

---

धर्मदर्शने धर्मशास्त्रे उक्त इति शेषः। बन्धुदायादाः रिक्थहराः। अबन्धुदायादास्तदन्ये ॥ ३२ ॥ षडाद्यानाह। स्वयं जातःऊढायां वोढुःसकाशाज्जातः १ तस्यामेवोत्तमानुग्रहाज्जातः प्रणीतः २ परिक्रीतः रेतो मूल्यदानेन तस्यामेव जनितः ३ पौनर्भवः पूर्वमन्येन ऊढा पश्चादन्येन तस्यां द्वितीयतो जातो धर्मतोः यद्यपि पूर्वस्य क्षेत्रजस्तथापि तस्यापि परिणेतृत्वात्तदीय एव ४ कानीनः विवाहात्प्रागेव अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यतीति समयबन्धेन या दीयते तस्यामुत्पन्नः ५ स्वैरिण्यामप्यूढायामेवानीचाज्जातः कुण्डनामा ६ एतेष्वाद्य चतुर्थौ औरसौ पञ्चमो व्यवहितौरसः इतरे क्षेत्रजास्त्रयः ॥ ३६ ॥ अथ षडबन्धुदायादाः दत्तः मातापितृभ्यां समर्पितः ॥ १ ॥ क्रीतः धनादिकं दत्वा गृहीतः ॥ २ ॥ कृत्रिमश्चेति चकारो भिन्नक्रमः। क्रीतश्चेति संबन्धः। कृत्रिमः उक्तप्रकाराष्टकाभावेपि यः स्वयमुपगच्छेत। अहं तव पुत्रोस्मीत्युपेयात्स तृतीयः ३ सहोढः यस्य माता गर्भवत्येव ऊढा स चतुर्थः। कर्णादिसदृशस्य *कानीनस्याप्यत्रैवान्तर्भावः। ज्ञातिरेतान्यवहितभ्रात्रादेः पुत्रः पञ्चमः। 'सर्वेषामेकपुत्राणां यद्येकोऽपि भवेत्सुतः। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्' इति स्मृतेः। साक्षाद्भ्रातुः पुत्रस्य औरसत्वाविशेषात्। हीनयोनौ धृत उत्पादितः षष्ठः ६ ॥ ३४ ॥ प्रणीते विशेषमाह। उत्तमादिति ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठं पितुः कुलादपि यः प्रशस्यत्तमस्तज्जं श्रेष्ठमपत्यमिति सामानाधिकरण्यं। श्रेष्ठादनन्यत्वादपत्यस्य ॥ ३६ ॥ प्रहेष्यामि गतिवृद्धिकर्मणोहिनोतेरूपं। अद्येति क्षिप्रवचनसंयोगाल्लट्। त्वां शरणं गतोऽस्मि वर्धयामि वेति चार्थः ॥३७॥ शारदण्डायनेर्भार्याम् ॥ ३८ ॥ गुरुणा भर्त्रा पुष्पेण आर्तवेन उपलक्षिते प्रयता रजस्वला व्रतवतीं स्नाता च चतुर्थेह्नि ॥ ३९ ॥ यत यतस्व ॥ ४१ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

* विवाहात्प्रागेव कन्यायां भवस्तस्यापि मातृद्वारकः परिणेतुः सवन्धोस्ति।

---

१२१

एवमिति ॥ १ ॥

व्युषिताश्व इति ख्यातो बभूव किल पार्थिवः ।
पुरा परमधर्मिष्ठः पूरोर्वंशविवर्धनः ॥ ७
तस्मिंश्च यजमाने वै धर्मात्मनि महाभुजे ।
उपागमंस्ततो देवाः सेन्द्रा देवर्षिभिः सह ॥ ८
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
व्युषिताश्वस्य राजर्षेस्ततो यज्ञे महात्मनः ॥ ९
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव चक्रुः कर्म स्वयं तदा ।
व्युषिताश्वस्ततो राजन्नतिमर्त्यान्व्यरोचत ॥१०
सर्वभूतान्प्रति यथा तपनः शिशिरात्यये ।
स विजित्य गृहीत्वा च नृपतीन्राजसत्तमः ॥ ११
प्राच्यानुदीच्यान्पाश्चात्यान्दाक्षिणात्यानकालयत् ।
अश्वमेधे महायज्ञे व्युषिताश्वः प्रतापवान् ॥ १२
बभूव स हि राजेन्द्रो दशनागबलान्वितः ।
अप्यत्र गाथां गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥
व्युषिताश्वे यशोवृद्धे मनुष्येन्द्रे कुरूत्तम ।
व्युषिताश्वः समुद्रान्तां विजित्येमां वसुंधराम् ॥
अपालयत्सर्ववर्णान्पिता पुत्रानिवौरसान् ।
यजमानो महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ १५
अनन्तरत्नान्यादाय स जहार महाक्रतून् ।
सुषाव च बहून्सोमान्सोमसंस्थास्ततान च ॥ १६
आसीत्काक्षीवती चास्य भार्या परमसंमता ।
भद्रा नाम मनुष्येन्द्र रूपेणासदृशी भुवि ॥ १७
कामयामासतुस्तौ च परस्परमिति श्रुतम् ।
स तस्यां कामसंपन्नो यक्ष्मणा समपद्यत ॥ १८
तेनाचिरेण कालेन जगामास्तमिवांशुमान् ।
तस्मिन्प्रेते मनुष्येन्द्रे भार्यास्य भृशदुःखिता ॥१९
अपुत्रा पुरुषव्याघ्र विललापेति नः श्रुतम् ।
भद्रा परमदुःखार्ता तन्निबोध जनाधिप ॥ २०

भद्रोवाच ।

नारी परमधर्मज्ञ सर्वा भर्तृविनाकृता ।
पतिं विना जीवति या न सा जीवति दुःखिता ॥
पतिं विना मृतं श्रेयो नार्याः क्षत्रियपुंगव ।
त्वद्गतिं गन्तुमिच्छामि प्रसीदस्व नयस्व माम् ॥
त्वया हीना क्षणमपि नाहं जीवितुमुत्सहे ।
प्रसादं कुरु मे राजन्नितस्तूर्णं नयस्व माम् ॥ २३
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि समेषु विषमेषु च ।
त्वामहं नरशार्दूल गच्छन्तमनिवर्तितुम् ॥ २४
छायेवानुगता राजन्सततं वशवर्तिनी ।
भविष्यामि नरव्याघ्र नित्यं प्रियहिते रता ॥ २५
अद्यप्रभृति मां राजन्कष्टा हृदयशोषणाः ।
आधयोऽभिभविष्यन्ति त्वामृते पुष्करेक्षण ॥ २६
अभाग्यया मया नूनं वियुक्ताः सहचारिणः ।
तेन मे विप्रयोगोऽयमुपपन्नस्त्वया सह ॥ २७
विप्रयुक्ता तु या पत्या मुहूर्तमपि जीवति ।
दुःखं जीवति सा पापा नरकस्थेव पार्थिव ॥२८
संयुक्ता विप्रयुक्ताश्च पूर्वदेहे कृता मया ।
तदिदं कर्मभिः पापैः पूर्वदेहेषु संचितम् ॥ २९
दुःखं मामनुसंप्राप्तं राजंस्त्वद्विप्रयोगजम् ।
अद्यप्रभृत्यहं राजन्कुशसंस्तरशायिनी ।
भविष्याम्यसुखाविष्टा त्वद्दर्शनपरायणा ॥ ३०
दर्शयस्व नरव्याघ्र शाधि मामसुखान्विताम् ।
कृपणां चाथ करुणं विलपन्तीं नरेश्वर ॥ ३१

कुन्त्युवाच ।

एवं बहुविधं तस्यां विलपन्त्यां पुनः पुनः ।
तं शवं संपरिष्वज्य वाक्किलान्तर्हिताब्रवीत् ३२
उत्तिष्ठ भद्रे गच्छ त्वं ददानीह वरं तव ।
जनयिष्याम्यपत्यानि त्वय्यहं चारुहासिनि ॥३३
आत्मकीये वरारोहे शयनीये चतुर्दशीम् ।
अष्टमीं वा ऋतुस्नाता संविशेथा मया सह ॥ ३४
एवमुक्ता तु सा देवी तथा चक्रे पतिव्रता ।
यथोक्तमेव तद्वाक्यं भद्रा पुत्रार्थिनी तदा ॥ ३५
सा तेन सुषुवे देवी शवेन भरतर्षभ ।
त्रीन् शाल्वांश्चतुरो मद्रान्सुतान्भरतसत्तम ३६
तथा त्वमपि मय्येवं मनसा भरतर्षभ ।
शक्तो जनयितुं पुत्रांस्तपोयोगबलान्वितः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि व्युषिताश्वोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमो० ॥१२१॥

---

अकालयत् वशीकृतवान् ॥ १२ ॥ जहार आहृतवान् चकारेत्यर्थः । सोमसंस्थाः अग्निष्टोमात्यग्निष्टोमादयः सप्त ॥ १६ ॥ काक्षीवती कक्षीवतो दुहिता ॥ १७ ॥ मृतं मरणं अमृतं मुक्तिर्वा न तु ब्रह्मलोकान्तमैश्वर्यम् ॥२२॥ अनिवर्तितुं गच्छन्तं म्रियमाणमित्यर्थः ॥ २४ ॥ आधयो मनोव्यथाः ॥ २६ ॥ सहचारिणः मिथुनिनः ॥ २७ ॥ शवं प्रेतशरीरं संपरिष्वज्य विलपन्त्यामित्यन्वयः ॥ ३२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

# १२२

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तया राजा तां देवीं पुनरब्रवीत् ।
धर्मविद्धर्मसंयुक्तमिदं वचनमुत्तमम् ॥ १

पाण्डुरुवाच ।

एवमेतत्पुरा कुन्ति व्युषिताश्वश्चकार ह ।
यथा त्वयोक्तं कल्याणि सह्यासीदमरोपमः ॥ २
अथ त्विदं प्रवक्ष्यामि धर्मतत्त्वं निबोध मे ।
पुराणमृषिभिर्दृष्टं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ॥ ३
अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन्वरानने ।
कामचारविहारिण्यः स्वतंत्राश्चारुहासिनि ॥ ४
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगे पतीन् ।
नाधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मः पुराभवत् ॥ ५
तं चैव धर्मं पौराणं तिर्यग्योनिगताः प्रजाः ।
अद्याप्यनुविधीयन्ते कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ६
प्रमाणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः ।
उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्यापि पूज्यते ॥ ७
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः ।
अस्मिंस्तु लोके न चिरान्मर्यादेयं शुचिस्मिते ॥८
स्थापिता येन यस्माच्च तन्मे विस्तरतः शृणु ।
बभूवोद्दालको नाम महर्षिरिति नः श्रुतम् ॥ ९
श्वेतकेतुरिति ख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः ।
मर्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना ॥ १०
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोध मे ।
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः ॥ ११
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत् ।
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः ॥ १२
मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव ।
क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाच ह ॥ १३
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः ।
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामङ्गना भुवि ॥ १४
यथा गावः स्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजाः
ऋषिपुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे ॥ १५
चकार चैव मर्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि ।
मानुषेषु महाभागे न त्वेवान्येषु जन्तुषु ॥ १६
तदाप्रभृति मर्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम् ।
व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्यप्रभृति पातकम् १७
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम् ।
भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम् ॥१८
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि ।
पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च ॥१९
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेव हि ।
इति तेन पुरा भीरु मर्यादा स्थापिता बलात् २०
उद्दालकस्य पुत्रेण धर्म्या वै श्वेतकेतुना ।
सौदासेन च रम्भोरु नियुक्ता पुत्रजन्मनि ॥ २१
मदयन्ती जगामर्षिं वसिष्ठमिति नः श्रुतम् ।
तस्माल्लेभे च सा पुत्रमश्मकं नाम भाविनी ॥२२
एवं कृतवती सापि भर्तुः प्रियचिकीर्षया ।
अस्माकमपि ते जन्म विदितं कमलेक्षणे ॥ २३
कृष्णद्वैपायनाद्भीरु कुरूणां वंशवृद्धये ।
अत एतानि सर्वाणि कारणानि समीक्ष्य वै ॥२४
ममैतद्वचनं धर्म्यं कर्तुमर्हस्यनिन्दिते ।
ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते ॥ २५
नातिवर्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः ।
शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातंत्र्यं स्त्री किलार्हति॥ २६
धर्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ।
भर्ता भार्यां राजपुत्रि धर्म्यं वाऽधर्म्यमेव वा॥२७

---

१२२

एवमिति ॥ १ ॥ अनावृताः सर्वैर्द्रष्टुं योग्याः । कामचारो रतिसुखं तदर्थं विहारिण्यः पर्यटनशीलाःस्वतंत्राः भर्त्रादिभिरनिवार्याः ॥४॥ पतीन्व्युच्चरमाणानां व्यभिरन्तानां च ॥ ५ ॥ अनुविधीयन्ते । अनुसार्यन्ते ईश्वरेण ॥ ६ ॥ दृश्यते च वेदे नकांचनपारहिरेत्'इति वामदेव्यव्रतेषु मैथुनार्थिन्याः स्त्रियाः प्रत्याख्याननिषेधः ॥ ७ ॥ न चिरात् अल्पकालतः ॥ ८ ॥ श्वेतकेतोर्मातरं पितुः समक्षम् ॥ ११ ॥ स्थिताः व्यवस्थिताः ॥ न चक्षमेन क्षमां कृतवान् यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनौ रेतः सिञ्चतीत्ययोनौ आदारेषु पुंसां गमनात् प्रत्यवायः श्रुतिसिद्धः तथा अमीषां निष्कृतं जारिणीवेति मन्त्रे जारिण्या निष्कृतेः पीडायाश्च दर्शनात् स्त्रीणामपि परसंगे दोषोस्त्येवोक्तः । तथापि श्रौतार्थस्यैव कयाचिद्भंग्याव्यवस्थेयं विहितेति ज्ञेयम् ।अथवा व्युच्चरणे तेजस्विनां न दोषः किं तु पृथग्जनानामेवेति तात्पर्यम् । अन्यथा कृष्णस्यापि पारदार्यदोषप्रसक्तेः । अहल्यादि जाराणामिन्द्रादीनां तदप्रसक्तेश्चेत्यास्तां तावत् ॥ १५ ॥ प्रकृतोपयुक्तमाह । पत्येति । अयुक्तमपि भर्त्राज्ञया स्त्रीभिरवश्यं कर्तव्यमिति भावः ॥ १९ ॥ पुराणं युगान्तरीयम् ॥२७॥

यद्ब्रूयात्तत्तथा कार्यमिति वेदविदो विदुः ।
विशेषतः पुत्रगृद्धी हीनः प्रजननात्स्वयम् ॥ २८
यथाहमनवद्याङ्गि पुत्रदर्शनलालसः ।
तथा रक्ताङ्गुलिनिभः पद्मपत्रनिभः शुभे ॥ २९
प्रसादार्थं मया तेऽयं शिरस्यभ्युद्यतोऽञ्जलिः ।
मन्नियोगात्सुकेशान्ते द्विजातेस्तपसाधिकात् ॥
पुत्रान्गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ।
त्वत्कृतेऽहं पृथुश्रोणि गच्छेयं पुत्रिणां गतिम् ३१

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्ता ततः कुन्ती पाण्डुं परपुरंजयम् ।
प्रत्युवाच वरारोहा भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ३२
पितृवेश्मन्यहं बाला नियुक्ताऽतिथिपूजने ।
उग्रं पर्यचरं तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ ३३
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।
तमहं संशितात्मानं सर्वयत्नैरतोषयम् ॥ ३४
समेऽभिचारसंयुक्तमाचष्ट भगवान्वरम् ।
मन्त्रं त्विमं च मे प्रादादब्रवीच्चैव मामिदम् ॥३५
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि ।
अकामो वा सकामो वा वशं ते समुपैष्यति॥३६
तस्य तस्य प्रसादात्ते राज्ञि पुत्रो भविष्यति ।
इत्युक्ताहं तदानेन पितृवेश्मनि भारत ॥ ३७
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तस्य कालोऽयमागतः ।
अनुज्ञाता त्वया देवमाह्वयेयमहं नृप ॥ ३८
तेन मन्त्रेण राजर्षे यथास्यान्नौ प्रजा हिता ।
आवाहयामि कं देवं ब्रूहि सत्यवतां वर ।
त्वत्तोऽनुज्ञाप्रतीक्षां मां विध्यस्मिन्कर्मणि स्थिताम्

पाण्डुरुवाच ।

अद्यैव त्वं वरारोहे प्रयतस्व यथाविधि ।
धर्ममावाहय शुभे स हि लोकेषु पुण्यभाक् ॥ ४०
अधर्मेण न नो धर्मः संयुज्यति कथंचन ।
लोकश्चायं वरारोहे धर्मोऽयमिति मन्यते ॥ ४१
धार्मिकश्च कुरूणां स भविष्यति न संशयः ।
धर्मेण चापि दत्तस्य नाधर्मे रंस्यते मनः ॥ ४२
तस्माद्धर्मं पुरस्कृत्य नियता त्वं शुचिस्मिते ।
उपचाराभिचाराभ्यां धर्ममावाहयस्व वै ॥ ४३

वैशंपायन उवाच ।

सा तथोक्ता तथेत्युक्त्वा तेन भर्त्रा वराङ्गना ।
अभिवाद्याभ्यनुज्ञाता प्रदक्षिणमवर्तत ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कुन्तीपुत्रोत्पत्त्यनुज्ञाने द्वाविंशत्यधिकशततमो० ॥१२२॥

---

## १२३

वैशंपायन उवाच ।

संवत्सरधृते गर्भे गान्धार्या जनमेजय ।
आह्वयामास वै कुन्ती गर्भार्थं धर्ममच्युतम् ॥ १
सा बलिं त्वरिता देवी धर्मायोपजहार ह ।
जजाप विधिवज्जप्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा ॥ २
आजगाम ततो देवो धर्मो मन्त्रबलात्ततः ।
विमाने सूर्यसंकाशे कुन्ती यत्र जपास्थिता ॥ ३
विहस्य तां ततो ब्रूयाः कुन्ति किं ते ददाम्यहम् ।
सा तं विहस्यमानापि पुत्रं देह्यब्रवीदिदम् ॥ ४

---

रक्ताङ्गुलिभिर्नितरां भातीति रक्ताङ्गुलिनिभः । पद्मपत्रं निभा उपमा यस्य स तथा ॥२९ ॥ अभिचारो देवताकर्षणशक्तिस्तद्युक्तम् ॥ ३५ ॥ विलंबासह· पाण्डुरुवाचाद्यैवेति ॥४०॥ नःक्षत्रियाणा धर्मः पालनं अधर्मेण न संयुज्यति न संभवति अतः केवलाद्धर्मादेव पुत्र एष्टव्य इति भावः । यं धर्म इति मन्यते लोकः स नः धर्म इति संबन्धः ॥ ४१ ॥ धार्मिकश्चेत्यत्र हेतुमाह । धर्मेणेति । धर्मेण स्वविहितेन लौकिकवैदिकाचारेण ॥ ४२ ॥ उपचार आदरः । अभिचारो व्याख्यातस्ताभ्याम् ॥ ४३ ॥ भर्त्रा तथोक्ता सती तथेत्युक्तेति योजना प्रदक्षिणं आज्ञानुकूलं अवर्तत वर्तनं कृतवती ॥ ४४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

---

१२३

संवत्सरधृते इति ॥१॥ जप्यं मन्त्रं धर्मदेवतारूपम् ॥२॥ विमाने स्थित्वा आजगामेत्यन्वयः । जपास्थिता जपनिष्ठा ॥३॥ ततो विहस्य ता अब्रवीदित्यपकृष्यते । हे कुन्ति किं ते ददामि तद्ब्रूया इति संबन्धः । ब्रूयादित्यपपाठो लकारव्यत्ययो वार्षः विहस्यमाना धर्मेण ॥ ४ ॥

संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह ।
लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां हितम् ॥ ५
ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे ।
दिवामध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते ॥ ६
समृद्धयशसं कुन्ती सुषाव प्रवरं सुतम् ।
जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥ ७
एष धर्मभृतां श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः ।
विक्रान्तः सत्यवाक्चैव राजा पृथ्व्यां भविष्यति॥
युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजः सुतः ।
भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ९
यशसा तेजसा चैव वृत्तेन च समन्वितः ।
धार्मिकं तं सुतं लब्ध्वा पाण्डुस्तां पुनरब्रवीत् ॥१०
प्राहुः क्षत्रं बलज्येष्ठं बलज्येष्ठं सुतं वृणु ।
ततस्तथोक्ता भर्त्रा तु वायुमेवाजुहाव सा ॥ ११
ततस्तामागतो वायुर्मृगारूढो महाबलः ।
किं ते कुन्ति ददाम्यद्य ब्रूहि यत्ते हृदि स्थितम् १२
सा सलज्जा विहस्याह पुत्रं देहि सुरोत्तम ।
बलवन्तं महाकायं सर्वदर्पप्रभञ्जनम् ॥ १३
तस्याज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
तमप्यतिबलं जातं वागुवाचाशरीरिणी ॥ १४
सर्वेषां बलिनां श्रेष्ठो जातोऽयमिति भारत ।
इदमत्यद्भुतं चासीज्जातमात्रे वृकोदरे ॥ १५
यदङ्कात्पतितो मातुः शिलां गात्रैर्व्यचूर्णयत् ।
कुन्ती व्याघ्रभयोद्विग्ना सहसोत्पतिता किल ॥१६
नान्वबुध्यत संसुप्तमुत्सङ्गे स्वे वृकोदरम् ।
ततः स वज्रसंघातः कुमारोन्यपतद्गिरौ ॥ १७
पतता तेन शतधा शिलागात्रैर्विचूर्णिता ।
तां शिलां चूर्णितां दृष्ट्वा पाण्डुर्विस्मयमागतः॥१८
यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भरतसत्तम ।
दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप ॥ १९
जाते वृकोदरे पाण्डुरिदं भूयोऽन्वचिन्तयत् ।
कथं नु मे वरः पुत्रो लोकश्रेष्ठो भवेदिति ॥ २०
दैवे पुरुषकारे च लोकोऽयं संप्रतिष्ठितः ।
तत्र दैवं तु विधिना कालयुक्तेन लभ्यते ॥ २१
इन्द्रो हि राजा देवानां प्रधान इति नः श्रुतम् ।
अप्रमेयबलोत्साहो वीर्यवानमितद्युतिः ॥ २२
तं तोषयित्वा तपसा पुत्रं लप्स्ये महाबलम् ।
यं दास्यति समे पुत्रं स वरीयान्भविष्यति ॥ २३
अमानुषान्मानुषांश्च संग्रामे स हनिष्यति ।
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्तप्स्ये महत्तपः ॥ २४
ततः पाण्डुर्महाराजो मन्त्रयित्वा महर्षिभिः ।
दिदेश कुन्त्याः कौरव्यो व्रतं सांवत्सरं शुभम् ॥
आत्मना च महाबाहुरेकपादस्थितोऽभवत् ।
उग्रं स तप आस्थाय परमेण समाधिना ॥ २६
आरिराधयिषुर्देवं त्रिदशानां तमीश्वरम् ।
सूर्येण सह धर्मात्मा पर्यतप्यत भारत ॥ २७
तं तु कालेन महता वासवः प्रत्यपद्यत ।

शक्र उवाच ।

पुत्रं तव प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २८
ब्राह्मणानां गवां चैव सुहृदां चार्थसाधकम् ।
दुर्हृदां शोकजननं सर्वबान्धवनन्दनम् ॥ २९
सुतं तेऽग्र्यं प्रदास्यामि सर्वामित्रविनाशनम् ।
इत्युक्तः कौरवो राजा वासवेन महात्मना ॥ ३०
उवाच कुन्तीं धर्मात्मा देवराजवचः स्मरन् ।
उदर्कस्तव कल्याणि तुष्टो देवगणेश्वरः ॥ ३१
दातुमिच्छति ते पुत्रं यथा संकल्पितं त्वया ।
अतिमानुषकर्माणं यशस्विनमरिंदमम् ॥ ३२
नीतिमन्तं महात्मानमादित्यसमतेजसम् ।
दुराधर्षं क्रियावन्तमतीवाद्भुतदर्शनम् ॥ ३३
पुत्रं जनय सुश्रोणि धामक्षत्रियतेजसाम् ।
लब्धः प्रसादो देवेन्द्रात्तमाह्वय शुचिस्मिते ॥ ३४

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्ता ततः शक्रमाजुहाव यशस्विनी ।
अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥ ३५
जातमात्रे कुमारे तु वागुवाचाशरीरिणी ।
महागम्भीरनिर्घोषा नभो नादयती तदा ॥ ३६
शृण्वतां सर्वभूतानां तेषां चाश्रमवासिनाम् ।
कुन्तीमाभाष्य विस्पष्टमुवाचेदं शुचिस्मिताम् ॥

---

ऐन्द्रे जेष्ठानक्षत्रे अष्टमे संवत्सरारम्भात् । आभिजितेऽभिजिति । त्रिंशन्मुहूर्तस्याह्नोऽष्टमे मुहूर्ते । दिवा शुक्लपक्षे । मध्यगते तुलायनगते तिथौ पूर्णायां पञ्चम्यां अयं योगः प्रायेणाश्विनशुक्लपञ्चम्यां भवतीति तत्रैव धर्मराजस्य जन्मेत्यर्थः ॥६॥ प्रथितो महान् विश्रुतः कीर्तिमान् ॥ ९ ॥ अङ्कात्पतने हेतुमाह कुन्तीति ॥ १६ ॥ संसुप्तं येन शिलापि चूर्णीभूता तादृशेप्याघाते सति यस्य निद्राभङ्गोपि न जातः निर्वेदनत्वात् वज्रशरीरित्वादित्यर्थः । उत्सङ्गे समीपे ॥ १७ ॥ समाधिना ध्यानेन परमेणानन्यवृत्तिना सूर्येण सह उदयादस्तमयावधि ॥ २७ ॥ आभाष्य हे कुन्ति इति संबोध्य॥३७॥

कार्तवीर्यसमः कुन्ति शिवतुल्यपराक्रमः ।
एष शक्र इवाजय्यो यशस्ते प्रथयिष्यति ॥ ३८
अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाभूदभिवर्धिता ।
तथा विष्णुसमः प्रीतिं वर्धयिष्यति तेऽर्जुनः ३९
एष मद्रान्वशे कृत्वा कुरूंश्च सह सोमकैः ।
चेदिकाशिकरूषांश्च कुरुलक्ष्मीं वहिष्यति ॥ ४०
एतस्य भुजवीर्येण खाण्डवे हव्यवाहनः ।
मेदसा सर्वभूतानां तृप्तिं यास्यति वै पराम् ॥४१
ग्रामणीश्च महीपालानेष जित्वा महाबलः ।
भ्रातृभिः सहितो वीरस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥४२
जामदग्न्यसमः कुन्ति विष्णुतुल्यपराक्रमः ।
एष वीर्यवतां श्रेष्ठो भविष्यति महायशाः ॥ ४३
एष युद्धे महादेवं तोषयिष्यति शंकरम् ।
अस्त्रं पाशुपतं नाम तस्मात्तुष्टादवाप्स्यति ॥ ४४
निवातकवचा नाम दैत्या विबुधविद्विषः ।
शक्राज्ञया महाबाहुस्तान्वधिष्यति ते सुतः ॥ ४५
तथा दिव्यानि चास्त्राणि निखिलेनाहरिष्यति ।
विप्रनष्टां श्रियं चायमाहर्ता पुरुषर्षभः ॥ ४६
एतामत्यद्भुतां वाचं कुन्ती शुश्राव सूतके ।
वाचमुच्चारितामुच्चैस्तां निशम्य तपस्विनाम्॥४७
बभूव परमो हर्षः शतशृङ्गनिवासिनाम् ।
तथा देवनिकायानां सेन्द्राणां च दिवौकसाम् ॥
आकाशे दुंदुभीनां च बभूव तुमुलः स्वनः ।
उदतिष्ठन्महाघोषः पुष्पवृष्टिभिरावृतः ॥ ४९
समवेत्य च देवानां गणाः पार्थमपूजयन् ।
काद्रवेया वैनतेया गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
प्रजानां पतयः सर्वे सप्त चैव महर्षयः ॥ ५०
भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च
विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः ।
यश्चोदितो भास्करेऽभूत्प्रनष्टे
सोप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥ ५१
मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षः प्रजापतिश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ५२
दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वालंकारभूषिताः ।
उपगायन्ति बीभत्सुं नृत्यन्तेऽप्सरसां गणाः ॥५३
तथा महर्षयश्चापि जेपुस्तत्र समन्ततः ।
गन्धर्वैः सहितः श्रीमान्प्रागायत च तुंबुरुः ॥ ५४
भीमसेनोग्रसेनौ च ऊर्णायुरनघस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथाष्टमः ॥ ५५
युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्चित्ररथस्तथा ।
त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ॥ ५६
कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चात्र षोडशः ।
ऋत्वा बृहत्त्वा बृहकः करालश्च महामनाः ॥ ५७
ब्रह्मचारी बहुगुणः सुवर्णश्चेति विश्रुतः ।
विश्वावसुर्भुमन्युश्च सुचन्द्रश्च शरुस्तथा ॥ ५८
गीतमाधुर्यसंपन्नौ विख्यातौ च हहाहुहू ।
इत्येते देवगन्धर्वा जग्मुस्तत्र नराधिप ॥ ५९
तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालंकारभूषिताः ।
ननृतुर्वै महाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥ ६०
अनूचानाऽनवद्या च गुणमुख्या गुणावरा ।
अद्रिका च तथा सोमा मिश्रकेशी त्वलंबुषा ॥६१
मरीचिः शुचिका चैव विद्युत्पर्णा तिलोत्तमा ।
अम्बिका लक्षणा क्षेमा देवी रंभा मनोरमा ॥ ६२
असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया च वपुस्तथा ।
पुण्डरीका सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी ॥ ६३
काम्या शारद्वती चैव ननृतुस्तत्र संघशः ।
मेनका सहजन्या च कर्णिका पुंजिकस्थला ॥ ६४
ऋतुस्थला घृताची च विश्वाची पूर्वचित्त्यपि ।
उम्लोचेति च विख्याता प्रम्लोचेति च ता दश६५
ऊर्वश्येकादशी तासां जगुश्चायतलोचनाः ।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ ६६
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ।
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ।
महिमानं पाण्डवस्य वर्धयन्तोऽम्बरे स्थिताः ॥६७
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतप ॥ ६८
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशांपते ।
स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्तत्रावतस्थिरे ॥ ६९
अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः ।
विश्वेदेवास्तथा साध्यास्तत्रासन्परितःस्थिताः ७०
कर्कोटकोऽथ सर्पश्च वासुकिश्च भुजंगमः ।
कश्यपश्चाथ कुण्डश्च तक्षकश्च महोरगः ॥ ७१
आययुस्तपसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः ।
एते चान्ये च बहवस्तत्र नागा व्यवस्थिताः ॥७२
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्चासितध्वजः ।
अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया व्यवस्थिताः ॥ ७३

---

वहिष्यति पालयिष्यति ॥ ४० ॥ मेधानश्वमेधान् ॥४२॥ देवनिकायानां देवतानिलयानां विमानानां तेन तत्स्थाना-देवानामिति लक्ष्यते ॥ ४८ ॥

तांश्च देवगणान्सर्वांस्तपः सिद्धा महर्षयः ।
विमानगिर्यग्रगतान्ददृशुर्नेतरे जनाः ॥ ७४
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मिता मुनिसत्तमाः ।
अधिकां स्म ततो वृत्तिमवर्तन्पाण्डवान्प्रति ॥ ७५
पाण्डुस्तु पुनरेवैनां पुत्रलोभान्महायशाः ।
वक्तुमैच्छद्धर्मपत्नीं कुन्तीत्वेनमथाब्रवीत् ॥ ७६
नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत ।
अतः परं स्वैरिणीस्याद्बन्धकी पञ्चमे भवेत्॥ ७७
स त्वं विद्वन्धर्ममिममधिगम्य कथं नु माम् ।
अपत्यार्थं समुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे ॥ ७८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डवोत्पत्तौ त्रयोविंशत्यधिकशततमो० ॥१२३॥

---

## १२४

वैशंपायन उवाच ।
कुन्तीपुत्रेषु जातेषु धृतराष्ट्रात्मजेषु च ।
मद्रराजसुता पाण्डुं रहो वचनमब्रवीत् ॥ १
न मेऽस्ति त्वयि संतापो विगुणेऽपि परंतप ।
नावरत्वे वरार्हायाः स्थित्वा चानघ नित्यदा ॥२
गान्धार्यश्चैव नृपते जातं पुत्रशतं तथा ।
श्रुत्वा न मे तथा दुःखमभवत्कुरुनन्दन ॥ ३
इदं तु मे महद्दुःखं तुल्यतायामपुत्रता ।
दिष्ट्या त्विदानीं भर्तुर्मे कुन्त्यामप्यस्ति संततिः॥
यदि त्वपत्यसंतानं कुन्तिराजसुता मयि ।
कुर्यादनुग्रहो मे स्यात्तव चापि हितं भवेत् ॥ ५
संरम्भो हि सपत्नीत्वाद्वक्तुं कुन्तिसुतां प्रति ।
यदि तु त्वं प्रसन्नोमे स्वयमेनां प्रचोदय ॥ ६
पाण्डुरुवाच ।
ममाप्येष सदा माद्रि हृद्यर्थः परिवर्तते ।
न तु त्वां प्रसहे वक्तुमिष्टानिष्टविवक्षया ॥ ७
तव त्विदं मतं मत्वा प्रयतिष्याम्यतः परम् ।
मन्ये ध्रुवं मयोक्ता सा वचनं प्रतिपत्स्यते ॥ ८
वैशंपायन उवाच ।
ततः कुन्तीं पुनः पाण्डुर्विविक्त इदमब्रवीत् ।
कुलस्य मम संतानं लोकस्य च कुरु प्रियम् ॥ ९
मम चापिण्डनाशाय पूर्वेषामपि चात्मनः ।
मत्प्रियार्थं च कल्याणि कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥१०
यशसोऽर्थाय चैव त्वं कुरु कर्म सुदुष्करम् ।
प्राप्याधिपत्यमिन्द्रेण यज्ञैरिष्टं यशोऽर्थिना ॥ ११
तथा मन्त्रविदो विप्रास्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ।
गुरूनभ्युपगच्छन्ति यशसोऽर्थाय भाविनि ॥ १२
तथा राजर्षयः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपोधनाः ।
चक्रुरुच्चावचं कर्म यशसोऽर्थाय दुष्करम् ॥ १३
सा त्वं माद्रीं प्लवेनैव तारयैनामनिन्दिते ।
अपत्यसंविभागेन परां कीर्तिमवाप्नुहि ॥ १४
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा ब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिंतय दैवतम् ।
तस्मात्ते भवितापत्यमनुरूपमसंशयम् ॥ १५
ततो माद्री विचार्यैवं जगाम मनसाश्विनौ ।
तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ ॥ १६
नकुलं सहदेवं च रूपेणाप्रतिमौ भुवि ।
तथैव तावपि यमौ वागुवाचाशरीरिणी ॥ १७
सत्त्वरूपगुणोपेतौ भवतोऽत्यश्विनाविति ।
भासतस्तेजसात्यर्थं रूपद्रविणसंपदा ॥ १८
नामानि चक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः ।
भक्त्या च कर्मणा चैव तथाशीर्भिर्विशांपते ॥१९

---

इति आदिपर्वणिनैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

१२४

कुन्तीति ॥ १ ॥ विगुणे प्रजोत्पादनाधिकृते अवरत्वे कनिष्ठत्वे वरार्हायाःकुन्त्या अपेक्षया ॥ २ ॥ संरम्भः अभिमानः ॥६ ॥ ममेति । इष्टमनिष्टं वा वक्ष्यसीति संदेहेन त्वां वक्तुं न प्रसहे इत्यर्थः ॥ ७ ॥ मत्वा ज्ञात्वा प्रतिपत्स्यते अङ्गीकरिष्यति ॥ ८ ॥ संतानं अविच्छेदं लोकस्य प्रियं बलवत्प्रजात्वेन निर्भयत्वम् ॥ ९ ॥ मम पूर्वेषां च अपिण्डविनाशाय पिण्डविनाशाभावाय । बहुषु पुत्रेषु कस्यचिदपि पुत्रस्य संततेरविच्छेदसंभवादित्यर्थः । कल्याणं पुत्रान्तरोत्पादनम् ॥ १० ॥ यशस इति । कृतकृत्या अपि यशोर्थं देवगुर्वाद्याराधनं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥ एवं पाण्डुं प्रति उक्त्वा कुन्त्या मन्त्रे कृते सति कुन्ती माद्रीं अब्रवीदिति योजना॥१५॥ अत्यश्विनौ अश्विभ्यामधिकौ१८

ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्येवं भीमसेनेति मध्यमम् ।
अर्जुनेति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकल्पयन् ॥ २०
पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चापरम् ।
माद्रीपुत्रावकथयंस्ते विप्राः प्रतिमानसाः ॥ २१
अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः ।
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्च संवत्सरा इव ॥ २२
महासत्त्वा महावीर्या महाबलपराक्रमाः ।
पाण्डुर्दृष्ट्वा सुतांस्तांस्तु देवरूपान्महौजसः ॥ २३
मुदं परामिकां लेभे ननन्द च नराधिपः ।
ऋषीणामपि सर्वेषां शतशृङ्गनिवासिनाम् ॥ २४
प्रिया बभूवुस्तासां च तथैव मुनियोषिताम् ।
कुन्तीमथ पुनः पाण्डुर्माद्र्यर्थे समचोदयत् ॥ २५
तमुवाच पृथा राजन् रहस्युक्ता तदा सती ।
उक्ता सकृद्द्वन्द्वमेषा लेभे तेनास्मि वञ्चिता ॥ २६
बिभेम्यस्याः परिभवात्कुस्त्रीणां गतिरीदृशी ।
नाज्ञासिषमहं मूढा द्वन्द्वाह्वाने फलद्वयम् ॥ २७
तस्मान्नाहं नियोक्तव्या त्वयैषोऽस्तु वरो मम ।
एवं पाण्डोः सुताः पञ्च देवदत्ता महाबलाः ॥ २८
संभूताः कीर्तिमन्तश्च कुरुवंशविवर्धनाः ।
शुभलक्षणसंपन्नाः सोमवत्प्रियदर्शनाः ॥ २९
सिंहदर्पा महेष्वासाः सिंहविक्रान्तगामिनः ।
सिंहग्रीवा मनुष्येन्द्रा ववृधुर्देवविक्रमाः ॥ ३०
विवर्धमानास्ते तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ।
विस्मयं जनयामासुर्महर्षीणां समेयुषाम् ॥ ३१
ते च पञ्चशतं चैव कुरुवंशविवर्धनाः ।
सर्वे ववृधुरल्पेन कालेनाप्स्विव नीरजाः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डवोत्पत्तौ चतुर्विंशत्यधिकशततमो० ॥ १२४ ॥

---

## १२५

वैशंपायन उवाच ।
दर्शनीयांस्ततः पुत्रान्पाण्डुः पञ्च महावने ।
तान्पश्यन्पर्वते रम्ये स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १
सुपुष्पितवने काले कदाचिन्मधुमाधवे ।
भूतसंमोहने राजा सभार्यो व्यचरद्वनम् ॥ २
पलाशैस्तिलकैश्चूतैश्चम्पकैः पारिभद्रकैः ।
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः फलपुष्पसमृद्धिभिः ॥ ३
जलस्थानैश्च विविधैः पद्मिनीभिश्च शोभितम् ।
पाण्डोर्वनं तत्संप्रेक्ष्य प्रजज्ञे हृदि मन्मथः ॥ ४
प्रहृष्टमनसं तत्र विचरन्तं यथामरम् ।
तं माद्र्यनुजगामैका वसनं बिभ्रती शुभम् ॥ ५
समीक्षमाणः स तु तां वयस्थां तनुवाससम् ।
तस्य कामः प्रववृते गहनेऽग्निरिवोद्गतः ॥ ६
रहस्येकां तु तां दृष्ट्वा राजा राजीवलोचनाम् ।
न शशाक नियन्तुं तं कामं कामवशीकृतः ॥ ७
तत एनां बलाद्राजा निजग्राह रहो गताम् ।
वार्यमाणस्तया देव्या विस्फुरन्त्या यथाबलम् ॥ ८
स तु कामपरीतात्मा तं शापं नान्वबुध्यत ।
माद्रीं मैथुनधर्मेण सोऽन्वगच्छद्बलादिव ॥ ९
जीवितान्ताय कौरव्य मन्मथस्य वशंगतः ।
शापजं भयमुत्सृज्य विधिना संप्रचोदितः ॥ १०
तस्य कामात्मनो बुद्धिः साक्षात्कालेन मोहिता ।
संप्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रनष्टा सह चेतसा ॥ ११
स तया सह संगम्य भार्यया कुरुनन्दनः ।
पाण्डुः परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥ १२

---

अनुसंवत्सरं संवत्सरमनुपश्चाज्जाता अपि देवताभावात्सर्वे पञ्चसंवत्सरा इवादृश्यन्तेत्यर्थः। यद्वा पञ्चापि पुत्रा व्यराजन्त। संवत्सराः प्रभवादय इवानुसंवत्सरं जाता इति योज्यम् ॥ २२ ॥ ते पञ्चपाण्डवाः शतं चान्ये धार्तराष्ट्राः नीरजाः पद्मा इव ॥ ३२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

१२५

दर्शनीयानिति ॥ १ ॥ मधुमाधवे चैत्रवैशाखयोः संधौ तदात्मके वसन्ते ॥ २ ॥ वयःस्था युवतीं तनुवाससं सूक्ष्मवस्त्रां किंचित् विवृतागामित्यर्थः ॥ ६ ॥ कामपरीतात्मा कामेन व्याप्तचित्तः ॥ ९ ॥ बुद्धिर्भयनिश्चयः चेतसा विचारेण ॥ ११ ॥ कालस्यातीतत्वादि व्यवहारतोः षष्ठद्रव्यस्यैव धर्मः कालनात्मको यस्य मरणस्य तेन कालधर्मणा मृत्युना ॥ १२ ॥

ततो माद्री समालिङ्ग्य राजानं गतचेतसम् ।
मुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव हि ॥ १३
सहपुत्रैस्ततः कुन्ती माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
आजग्मुः सहितास्तत्र यत्र राजा तथागतः ॥१४
ततो माद्यब्रवीद्राजन्नार्ता कुन्तीमिदं वचः ।
एकैव त्वमिहागच्छ तिष्ठन्त्वत्रैव दारकाः ॥ १५
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यास्तत्रैवाधाय दारकान् ।
हताहमिति विक्रुश्य सहसैवाजगाम सा ॥ १६
दृष्ट्वा पाण्डुं च माद्रीं च शयानौ धरणीतले ।
कुन्ती शोकपरीताङ्गी विललाप सुदुःखिता॥१७
रक्ष्यमाणो मया नित्यं वीरः सततमात्मवान् ।
कथं त्वामत्यतिक्रान्तः शापं जानन्वनौकसः॥१८
ननु नाम त्वया माद्रि रक्षितव्यो नराधिपः ।
सा कथं लोभितवती विजने त्वं नराधिपम्॥ १९
कथं दीनस्य सततं त्वामासाद्य रहोगताम् ।
तं विचिन्तयतः शापं प्रहर्षः समजायत ॥ २०
धन्या त्वमसि बाह्लीकि मत्तो भाग्यतरा तथा ।
दृष्टवत्यसि यद्वक्त्रं प्रहृष्टस्य महीपतेः ॥ २१

माद्युवाच ।

विलपन्त्या मया देवि वार्यमाणेन चासकृत् ।
आत्मा न वारितोऽनेन सत्यं दिष्टं चिकीर्षुणा २२

कुन्त्युवाच ।

अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम ।
अवश्यं भाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्तय॥२३
अन्विष्यामीह भर्तारमहं प्रेतवशं गतम् ।
उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमान्पालय दारकान्॥ २४

माद्युवाच ।

अहमेवानुयास्यामि भर्तारमपलायिनम् ।
न हि तृप्तास्मि कामानां ज्येष्ठा मामनुमन्यताम् ॥
मां चाभिगम्य क्षीणोऽयं कामाद्भरतसत्तमः ।
तमुच्छिन्द्यामस्य कामं कथं नु यमसादने ॥ २६
न चाप्यहं वर्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते ।
वृत्तिमार्ये चरिष्यामि स्पृशेदेनस्तथा च माम् ॥२७
तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्तितव्यं स्वपुत्रवत् ।
मां च कामयमानोऽयं राजा प्रेतवशं गतः ॥ २८
राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं कलेवरम् ।
दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु ॥ २९
दारकेष्वप्रमत्ता च भवेथाश्च हिता मम ।
अतोऽन्यन्न प्रपश्यामि संदेष्टव्यं हि किंचन ॥ ३०

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तं चिताग्निस्थं धर्मपत्नी नरर्षभम् ।
मद्रराजसुता तूर्णमन्वारोहद्यशस्विनी ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डूपरमे पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

---

## १२६

वैशंपायन उवाच ।

पाण्डोरुपरमं दृष्ट्वा देवकल्पा महर्षयः ।
ततो मन्त्रविदः सर्वे मन्त्रयांचक्रिरे मिथः ॥ १

तापसा ऊचुः ।

हित्वा राज्यं च राष्ट्रं च स महात्मा महायशाः।
अस्मिन्स्थाने तपस्तप्त्वा तापसाञ्शरणं गतः ॥ २
स जातमात्रान्पुत्रांश्च दारांश्च भवतामिह ।
प्रादायोपनिधिं राजा पाण्डुः स्वर्गमितो गतः ॥३
तस्येमानात्मजान्देहं भार्यां च सुमहात्मनः ।
स्वराष्ट्रं गृह्य गच्छामो धर्म एष हि नः स्मृतः॥ ४

वैशंपायन उवाच ।

ते परस्परमामन्त्र्य देवकल्पा महर्षयः ।
पाण्डोः पुत्रान्पुरस्कृत्य नगरं नागसाह्वयम् ॥ ५
उदारमनसः सिद्धा गमने चक्रिरे मनः ।
भीष्माय पाण्डवान्दातुं धृतराष्ट्राय चैव हि ॥ ६
तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे ।
पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरे ते च तापसाः ॥ ७

---

त्वां अत्यतिक्रान्तो बलादाक्रान्तवान् शोकाकुलत्वादिति शब्दस्याभ्यासः ॥ १८ ॥ त्वया च रक्षितव्यः ॥ १९ ॥ प्रहर्षः कामः ॥ २० ॥ आत्मा चित्तं दिष्टं शापजं दुरदृष्टम् ॥ २२ ॥ प्रेतवशं प्रेतराजवशं अन्विष्यामि अनुगमिष्यामि ॥ २४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

१२५

पाण्डोरुपरमं दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ देहं देहयोरस्थीनि अग्निहोत्राग्निभिः संस्कारलम्भनार्थम् ॥ ४ ॥ तत् गमनं संक्षिप्त-

सुखिनी सा पुरा भूत्वा सततं पुत्रवत्सला ।
प्रपन्ना दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तदमन्यत ॥ ८
सा त्वदीर्घेण कालेन संप्राप्ता कुरुजांगलम् ।
वर्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्विनी ॥ ९
द्वारिणं तापसा ऊचू राजानं च प्रकाशय ।
ते तु गत्वा क्षणेनैव सभायां विनिवेदिताः ॥ १०
ते चारणसहस्राणां मुनीनामागमं तदा ।
श्रुत्वा नागपुरे नृणाम् विस्मयः समपद्यत ॥ ११
मुहूर्तोदित आदित्ये सर्वे बालपुरस्कृताः ।
स दारास्तापसान्द्रष्टुंनिर्ययुः पुरवासिनः ॥ १२
स्त्रीसंघाः क्षत्रसंघाश्च यानसंघसमास्थिताः ।
ब्राह्मणैः सह निर्जग्मुर्ब्राह्मणानां च योषितः ॥१३
तथा विट्शूद्रसंघानां महान्व्यतिकरोऽभवत् ।
न कश्चिदकरोदीर्ष्यामभवन्धर्मबुद्धयः ॥ १४
तथा भीष्मः शान्तनवः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः
प्रज्ञाचक्षुश्च राजर्षिः क्षत्ता च विदुरः स्वयम् ॥१५
सा च सत्यवती देवी कौसल्या च यशस्विनी ।
राजदारैः परिवृता गान्धारी चापि निर्ययौ ॥१६
धृतराष्ट्रस्य दायादा दुर्योधनपुरोगमाः ।
भूषिता भूषणैश्चित्रैः शतसंख्या विनिर्ययुः ॥ १७
तान्महर्षिगणान्दृष्ट्वा शिरोभिरभिवाद्य च ।
उपोपविविशुः सर्वे कौरव्याः सपुरोहिताः॥ १८
तथैव शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।
उपोपविविशुः सर्वे पौरा जानपदा अपि ॥ १९
तमकूजमभिज्ञाय जनौघं सर्वशस्तदा ।
पूजयित्वा यथान्यायं पाद्येनार्घ्येण च प्रभो ॥ २०
भीष्मो राज्यं च राष्ट्रं च महर्षिभ्यो न्यवेदयत् ।
तेषामथो वृद्धतमः प्रत्युत्थाय जटाजिनी ॥
ऋषीणां मतमाज्ञाय महर्षिरिदमब्रवीत् ॥ २१

यः स कौरव्य दायादः पाण्डुर्नाम नराधिपः ।
कामभोगान्परित्यज्य शतशृङ्गमितो गतः ॥ २२
ब्रह्मचर्यव्रतस्थस्य तस्य दिव्येन हेतुना ।
साक्षाद्धर्मादयं पुत्रस्तत्र जातो युधिष्ठिरः ॥ २३
तथैनं बलिनां श्रेष्ठं तस्य राज्ञो महात्मनः ।
मातरिश्वा ददौ पुत्रं भीमं नाम महाबलम् ॥ २४
पुरुहूतादयं जज्ञे कुन्त्यामेव धनंजयः ।
यस्य कीर्तिर्महेष्वासान्सर्वानभिभविष्यति ॥ २५
यौ तु माद्री महेष्वासावसूत पुरुषोत्तमौ ।
अश्विभ्यां पुरुषव्याघ्राविमौ तावपि पश्यत ॥ २६
चरता धर्मनित्येन वनवासं यशस्विना ।
नष्टः पैतामहो वंशः पाण्डुना पुनरुद्धृतः ॥ २७
पुत्राणां जन्मवृद्धिं च वैदिकाध्ययनानि च ।
पश्यन्तः सततं पाण्डोः परां प्रीतिमवाप्स्यथ २८
वर्तमानः सतां वृत्ते पुत्रलाभमवाप्य च ।
पितृलोकं गतः पाण्डुरितः सप्तदशेऽहनि ॥ २९
तं चितागतमाज्ञाय वैश्वानरमुखे हुतम् ।
प्रविष्टा पावकं माद्री हित्वा जीवितमात्मनः॥३०
सा गता सह तेनैव पतिलोकमनुव्रता ।
तस्यास्तस्य च यत्कार्यं क्रियतां तदनन्तरम् ॥३१
इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः ।
क्रियाभिरनुगृह्यन्तां सह मात्रा परंतपाः ॥ ३२
प्रेतकार्ये निवृत्ते तु पितृमेधं महायशाः ।
लभतां सर्वधर्मज्ञः पाण्डुः कुरुकुलोद्वहः ॥ ३३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान्कुरूणामेव पश्यताम् ।
क्षणेनान्तर्हिताः सर्वे तापसा गुह्यकैः सह ॥ ३४
गन्धर्वनगराकारं तथैवान्तर्हितं पुनः ।
ऋषिसिद्धगणं दृष्ट्वा विस्मयं ते परं ययुः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि ऋषिसंवादे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६॥

---

मन्यत । मुनीनां योगप्रभावात् स्वदेशगमनौत्कण्ठयाद्वा ॥ ८ ॥ वर्धमानपुरद्वारं मुख्यद्वारम् ॥ ९ ॥ चारणाः देवगायकाः गुह्यकाख्यास्तेषां सहस्राणा मुनीनां चागममिति चोध्याहर्तव्यः । पाठान्तरे आरण्यानां सहस्रसंख्यानां मुनीनां चेति योज्यम् ॥ ११ ॥ व्यतिकरः संघर्षः ॥१४॥ कौसल्या काशिराजसुता ॥१६॥ उपोपाविविशुः परिवार्योपविष्टवन्तः ॥ १८ ॥ अकूजं निःशब्दम् ॥ २० ॥ दिव्येन हेतुना मन्त्रेण देवताह्वानाद्यलौकिककारणेन ॥ २३ ॥ प्रेतकार्ये सपिण्डीकरणान्ते पितृमेधं यज्ञविशेषं वृषोत्सर्गादिकं वा ॥३३॥ गन्धर्वनगरं खपुरम् । यथोक्तं ज्योतिःशास्त्रे । 'अनेक रत्नाकृति खे प्रकाशते पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम् । यदा तदा नागमनुष्यवाजिना पिबत्यसृग्भूरि रणे वसुंधरा'इति।३५॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## १२७

धृतराष्ट्र उवाच ।

पाण्डोर्विदुर सर्वाणि प्रेतकार्याणि कारय ।
राजवद्राजसिंहस्य माद्र्याश्चैव विशेषतः ॥ १
पशून्वासांसि रत्नानि धनानि विविधानि च ।
पाण्डोः प्रयच्छ माद्र्याश्च येभ्यो यावच्च वाञ्छितम्
यथा च कुन्ती सत्कारं कुर्यान्माद्र्यास्तथा कुरु ।
यथा न वायुर्नादित्यः पश्येतां तां सुसंवृताम् ॥२
न शोच्यः पाण्डुरनघः प्रशस्यः स नराधिपः ।
यस्य पञ्चसुता वीरा जाताः सुरसुतोपमाः ॥ ४

वैशंपायन उवाच ।

विदुरस्तं तथेत्युक्त्वा भीष्मेण सह भारत ।
पाण्डुं संस्कारयामास देशे परमपूजिते ॥ ५
ततस्तु नगरात्तूर्णमाज्यगन्धपुरस्कृताः ।
निर्हृताः पावका दीप्ताः पाण्डो राजन्पुरोहितैः ६
अथैनामार्तवैः पुष्पैर्गन्धैश्चविविधैर्वरैः ।
शिबिकां तामलंकृत्य वाससाच्छाद्य सर्वशः ७
तां तथा शोभितां माल्यैर्वासोभिश्च महाधनैः ।
अमात्या ज्ञातयश्चैनं सुहृदश्चोपतस्थिरे ॥ ८
नृसिंहं नरयुक्तेन परमालंकृतेन तम् ।
अवहन्यानमुख्येन सह माद्र्या सुसंवृतम् ॥ ९
पाण्डुरेणातपत्रेण चामरव्यजनेन च ।
सर्ववादित्रनादैश्च समलंचक्रिरे ततः ॥ १०
रत्नानि चाप्युपादाय बहूनि शतशो नराः ।
प्रददुः काङ्क्षमाणेभ्यः पाण्डोस्तस्यौर्ध्वदेहिके॥११॥
अथ छत्राणि शुभ्राणि चामराणि बृहन्ति च ।
आजह्रुः कौरवस्यार्थे वासांसि रुचिराणि च॥१२
याजकैः शुक्लवासोभिर्हूयमाना हुताशनाः ।
आगच्छन्नग्रतस्तस्य दीप्यमानाः स्वलंकृताः ॥१३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ।
रुदन्तः शोकसंतप्ता अनुजग्मुर्नराधिपम् ॥ १४
अयमस्मानपाहाय दुःखे चाधाय शाश्वते ।
कृत्वा चास्माननाथांश्च क यास्यति नराधिपः१५
क्रोशन्तः पाण्डवाः सर्वे भीष्मो विदुर एव च ।
रमणीये वनोद्देशे गङ्गातीरे समे शुभे ॥ १६
न्यासयामासुरथ तां शिबिकां सत्यवादिनः ।
सभार्यस्य नृसिंहस्य पाण्डोरक्लिष्टकर्मणः ॥ १७
ततस्तस्य शरीरं तु सर्वगन्धाधिवासितम् ।
शुचिकालीयकादिग्धं दिव्यचन्दनरूषितम् ॥ १८
पर्यषिञ्चञ्जलेनाशु शातकुम्भमयैर्घटैः ।
चन्दनेन च शुक्लेन सर्वतः समलेपयन् ॥ १९
कालागुरुविमिश्रेण तथा तुङ्गरसेन च ।
अथैनं देशजैः शुक्लैर्वासोभिः समयोजयन् ॥ २०
संछन्नः स तु वासोभिर्जीवन्निव नराधिपः ।
शुशुभे स नरव्याघ्रो महार्हशयनोचितः ॥ २१
याजकैरभ्यनुज्ञाते प्रेतकर्मण्यनुष्ठिते ।
घृतावसिक्तं राजानं सहमाद्र्या स्वलंकृतम् ॥ २२
तुङ्गपद्मकमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना ।
अन्यैश्च विविधैर्गन्धैर्विधिना समदाहयन् ॥ २३
ततस्तयोः शरीरे द्वे दृष्ट्वा मोहवशं गता ।
हाहा पुत्रेति कौसल्या पपात सहसा भुवि ॥ २४
तां प्रेक्ष्य पतितामार्तां पौरजानपदो जनः ।
रुरोद दुःखसंतप्तो राजभक्त्या कृपान्वितः ॥ २५
कुन्त्याश्चैवार्तनादेन सर्वाणि च विचुक्रुशुः ।
मानुषैः सह भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ २६
तथा भीष्मः शान्तनवो विदुरश्च महामतिः ।
सर्वशः कौरवाश्चैव प्राणदन्भृशदुःखिताः ॥ २७
ततो भीष्मोऽथ विदुरो राजा च सह पाण्डवैः ।
उदकं चक्रिरे तस्य सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥ २८
चुक्रुशुः पाण्डवाः सर्वे भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
विदुरो ज्ञातयश्चैव चक्रुश्चाप्युदकक्रियाः ॥ २९
कृतोदकांस्तानादाय पाण्डवाञ्छोककर्शितान् ।
सर्वाः प्रकृतयो राजञ्शोचमाना न्यवारयन् ॥३०
यथैव पाण्डवा भूमौ सुषुपुः सह बान्धवैः ।
तथैव नागरा राजन् शिश्यिरे ब्राह्मणादयः ॥ ३१
तद्गतानन्दमस्वस्थमाकुमारमहृष्टवत् ।
बभूव पाण्डवैः सार्धं नगरं द्वादशक्षपाः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि पाण्डुदाहे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७

---

१२७

पाण्डोरिति ॥ १ ॥ नृसिंहं पाण्डुं नृसिंहेति पाठे जनमजेयसंबोधनम् ॥९॥ कालीयकादिग्धं कृष्णागुरुलिप्तम् ॥१८॥ तुङ्गपद्मकौ गन्धद्रव्यविशेषौ ॥२३॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः१२७

# १२८

वैशंपायन उवाच ।

ततः कुन्ती च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभिः ।
ददुः श्राद्धं तदा पाण्डोः स्वधामृतमयं तदा ॥ १
कुरूंश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयित्वा सहस्रशः ।
रत्नौघान्विप्रमुख्येभ्यो दत्त्वा ग्रामवरांस्तथा ॥ २
कृतशौचांस्ततस्तांस्तु पाण्डवान्भरतर्षभान् ।
आदाय विविशुः सर्वे पुरं वारणसाह्वयम् ॥ ३
सततं स्मानुशोचन्तस्तमेव भरतर्षभम् ।
पौरजानपदाः सर्वे मृतं स्वमिव बान्धवम् ॥ ४
श्राद्धावसाने तु तदा दृष्ट्वा तं दुःखितं जनम् ।
संमूढां दुःखशोकार्तां व्यासो मातरमब्रवीत् ॥ ५
अतिक्रान्तसुखाः कालाः पर्युपस्थितदारुणाः ।
श्वः श्वः पापिष्ठदिवसाः पृथिवी गतयौवना ॥ ६
बहुमायासमाकीर्णो नानादोषसमाकुलः ।
लुप्तधर्मक्रियाचारो घोरः कालो भविष्यति ॥ ७
कुरूणामनयाच्चापि पृथिवी न भविष्यति ।
गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोवने ॥ ८
माद्राक्षीस्त्वं कुलस्यास्य घोरं संक्षयमात्मनः ।
तथेति समनुज्ञाय सा प्रविश्याब्रवीत्स्नुषाम् ॥ ९
अम्बिके तव पौत्रस्य दुर्नयात्किल भारताः ।
सानुबन्धा विनङ्क्ष्यन्ति पौराश्चैवेति नः श्रुतम् १०
तत्कौसल्यामिमामार्तां पुत्रशोकाभिपीडिताम् ।
वनमादाय भद्रं ते गच्छामि यदि मन्यसे ॥ ११
तथेत्युक्तात्वम्बिकया भीष्ममामन्त्र्य सुव्रता ।
वनं ययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारत ॥ १२
ताः सुघोरं तपस्तप्त्वा देव्यो भरतसत्तम ।
देहं त्यक्त्वा महाराज गतिमिष्टां ययुस्तदा ॥ १३

वैशंपायन उवाच ।

अथाप्तवन्तो वेदोक्तान्संस्कारान्पाण्डवास्तदा ।
संव्यवर्धन्त भोगांस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि ॥१४
धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम् ।
बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाभवन् १५
जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ।
धार्तराष्ट्रान्भीमसेनः सर्वान्स परिमर्दति ॥ १६
हर्षात्प्रक्रीडमानांस्तान्गृह्य राजन्निलीयते ।
शिरः सु विनिगृह्यैतान्योधयामास पाण्डवैः ॥१७
शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महौजसाम् ।
एक एव निगृह्णाति नातिकृच्छ्राद्वृकोदरः ॥ १८
कचेषु च निगृह्यैनान्विनिहत्य बलाद्बली ।
चकर्ष क्रोशतो भूमौ घृष्टजानुशिरोंसकान् ॥ १९
दश बालाञ्जलेक्रीडन्भुजाभ्यां परिगृह्य सः ।
आस्ते स्म सलिले मग्नो मृतकल्पान्विमुञ्चति २०
फलानि वृक्षमारुह्य विचिन्वन्ति च ये तदा ।
तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते द्रुमान् ॥ २१
प्रहारवेगाभिहता द्रुमा व्याघूर्णितास्ततः ।
सफलाः प्रपतन्ति स्म द्रुतं त्रस्ताः कुमारकाः २२
न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन ।
कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम् ॥ २३
एवं स धार्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः ।
अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥ २४
ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।
भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत् ॥ २५
तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः ।
मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा मतिरजायत ॥ २६
अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ।
मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या स निगृह्यताम्२७
प्राणवान्विक्रमी चैव शौर्येण महतान्वितः ।
स्पर्धते चापि सहितानस्मानेको वृकोदरः ॥ २८
तं तु सुप्तं पुरोद्याने गङ्गायां प्रक्षिपामहे ।
अथ तस्मादवरजं श्रेष्ठं चैव युधिष्ठिरम् ॥ २९
प्रसह्य बन्धने बद्ध्वा प्रशासिष्ये वसुंधराम् ।
एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा ।
नित्यमेवान्तरप्रेक्षी भीमस्यासीन्महात्मनः ॥ ३०
ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत ।
चैलकम्बलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति च ३१
सर्वकामैः सुपूर्णानि पताकोच्छ्रायवन्ति च ।
तत्र संजनयामास नानागाराण्यनेकशः ॥ ३२

---

१२८

तत इति ॥ १ ॥ श्वःश्वःपूर्वपूर्वदिनापेक्षया उत्तरमुत्तरं पापिष्ठम् । गतयौवना सम्यक्फलशून्या ॥६॥ योगं चित्तवृत्तीनिरोधं प्रयाणोद्योगं वा युक्ता समाहिता ॥८॥जवे धावनक्रीडायां लक्ष्याभिहरणे अहं पूर्वमहं पूर्वमिति दृष्टफलादि ग्रहणे भोज्ये पांसुविकर्षणे बालक्रीडाविशेषे परिमर्दति सर्वत उपमृद्नाति ॥ १६ ॥ योग्यासु शिक्षाभ्यासेषु उत्तरं उत्कर्षम् ॥ २३ ॥ निकृत्या कपटेन ॥ २७ ॥ प्राणवान् बलवान् ॥ २८ ॥ प्रसह्य बलात्कारेण ॥ ३० ॥

उदकक्रीडनं नाम कारयामास भारत ।
प्रमाणकोट्यां तं देशं स्थलं किंचिदुपेत्य ह ॥ ३३
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यमथापि च ।
उपपादितं नरैस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि ॥ ३४
न्यवेदयंस्तत्पुरुषा धार्तराष्ट्राय वै तदा ।
ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः ॥ ३५
गङ्गां चैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम् ।
सहिता भ्रातरः सर्वे जलक्रीडामवाप्नुमः ॥ ३६
एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।
ते रथैर्नगराकारैर्देशजैश्च गजोत्तमैः ॥ ३७
निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह ।
उद्यानवनमासाद्य विसृज्य च महाजनम् ॥ ३८
विशन्ति स्म तदा वीराः सिंहा इव गिरेर्गुहाम् ।
उद्यानमभिपश्यन्तो भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ३९
उपस्थानगृहैः शुभ्रैर्वलभीभिश्च शोभितम् ।
गवाक्षकैस्तथा जालैर्यन्त्रैः सांचारिकैरपि ॥ ४०
संमार्जितं सौधकारैश्चित्रकारैश्च चित्रितम् ।
दीर्घिकाभिश्च पूर्णाभिस्तथा पुष्करिणीभिर्हि ४१
जलं तच्छुशुभे च्छन्नं फुल्लैर्जलरुहैस्तथा ।
उपच्छन्ना वसुमती तथा पुष्पैर्यथर्तुकैः ॥ ४२
तत्रोपविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह ।
उपच्छन्नान्बहून्कामांस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः ॥ ४३
अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथा क्रीडागताश्च ते ।
परस्परस्य वक्त्रेभ्यो ददुर्भक्ष्यांस्ततस्ततः ॥ ४४
ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम् ।
विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया ॥ ४५
स्वयमुत्थाय चैवाथ हृदयेन क्षुरोपमः ।
स वाचा मृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद्यथा ॥ ४६
स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत् ।
प्रतीक्षितं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता ॥ ४७
ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते पुरुषाधमः ॥ ४८
ततस्ते सहिताः सर्वे जलक्रीडामकुर्वत ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः ॥४९
क्रीडावसाने ते सर्वे शुचिवस्त्राः स्वलंकृताः ।
दिवसान्ते परिश्रान्ता विहृत्य च कुरूद्वहाः ॥५०
विहारावसथेष्वेव वीरावासमरोचयन् ।
खिन्नस्तु बलवान्भीमो व्यायम्याभ्यधिकं तदा ५१
वाहयित्वा कुमारांस्ताञ्जलक्रीडागतांस्तदा ।
प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापावाप्य तत्स्थलम्५२
शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः ।
विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः ॥ ५३
ततो बध्द्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम् ।
मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत् ॥ ५४
स निःसंज्ञो जलस्यान्तमथ वै पाण्डवोऽविशत् ।
आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान् ॥ ५५
ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः ।
अदश्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥ ५६
ततोऽस्य दश्यमानस्य तद्विषं कालकूटकम् ।
हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जंगमेन तु ॥५७
दंष्ट्राश्च दंष्ट्रिणां तेषां मर्मस्वपि निपातिताः ।
त्वचं नैवास्य बिभिदुः सारत्वात्पृथुवक्षसः ॥५८
ततः प्रबुद्धः कौन्तेयः सर्वं संछिद्य बन्धनम् ।
पोथयामास तान्सर्वान्केचिद्भीताः प्रदुद्रुवः ॥५९
हतावशेषा भीमेन सर्वे वासुकिमभ्ययुः ।
ऊचुश्च सर्पराजानं वासुकिं वासवोपमम् ॥ ६०
अयं नरो वै नागेन्द्र ह्यप्सु बध्द्वा प्रवेशितः ।
यथा च नो मतिर्वीर विषपीतो भविष्यति ॥ ६१
निश्चेष्टोऽस्माननुप्राप्तः स च दष्टोऽन्वबुध्यत ।
स संज्ञश्चापि संवृत्तश्छित्वा बन्धनमाशु नः ॥६२

---

प्रमाणकोट्यां गङ्गायां प्रदेशविशेषे । स्थलं किंचित् अर्धं जलेऽर्धं स्थले च क्रीडागारम् ॥ ३३ ॥ भक्ष्यं दन्तैश्छित्वा छित्वा ग्राह्यं अपूपादि । भोज्यं जिह्वाव्यापारैकग्राह्यं पायसादि । पेयं तदुभयानपेक्षं पानकादि । चोष्यं रसमात्रं गृहीत्वा त्याज्यमिक्षुकाण्डादि । लेह्यं मुखलालया द्रवीभावमापद्यमानं खण्डशर्करादि । उपपादितं उपाहृतामित्यपि पठन्ति ॥ ३४ ॥ उपस्थानगृहैःयत्र राजानं कार्यिणः शूराश्चोपतिष्ठन्ति तैर्गृहैः । वलभीभिः रुभयतो न मत्पक्षाभिः स्तम्भशालाभिः यन्त्रैः जलयन्त्रैः शतधाराभिः । यतो युगपच्छतं धारा उच्छलंत्यो नीहारीभूय भवनोदरं व्याप्नुवन्ति । सांचारिकैः संचारयोग्यैः ॥ ४० ॥ दीर्घिकाभिः कुल्याभिः पुष्करिणीभिर्हीति. उपांत्यस्याल्घुत्वेऽप्यनुष्टुब्त्वाहानेर्न दोषः ॥४१॥ उपच्छन्ना संच्छन्ना ॥ ४२ ॥उपच्छनानुपागतान् कामान् शब्दादि विषयान् ॥ ४३ ॥ वक्त्रेभ्यो वक्त्रेषु ॥ ४४ ॥ प्रतीक्षितं प्रीत्यावेक्षितं भक्षितं न तु शत्रोरिति निरस्तं तत्र हेतुरजानतेति ॥ ४७ ॥ व्यायम्य श्रमं कृत्वा ॥ ५१ ॥ जलस्य अन्तं अवसानं । आक्रामन् शरीराभोगेन नागानाक्रान्तवान् ॥५५॥ ततस्तैर्भारखिन्नैरदश्यत दष्टः ॥५६॥ विषपीतः पीतविषः ६१

पोथयन्तं महाबाहुं त्वं वै तं ज्ञातुमर्हसि ।
ततो वासुकिरभ्येत्य नागैरनुगतस्तदा ॥ ६३
पश्यति स्म महाबाहुं भीमं भीमपराक्रमम् ।
आर्यकेण च दृष्टः स पृथाया आर्यकेण च ॥ ६४
तदा दौहित्रदौहित्रः परिष्वक्तः सुपीडितम् ।
सुप्रीतश्चाभवत्तस्य वासुकिः स महायशाः ॥ ६५
अब्रवीत्तं च नागेन्द्रः किमस्य क्रियतां प्रियम् ।
धनौघो रत्ननिचयो वसु चास्य प्रदीयताम् ॥ ६६
एवमुक्तस्तदा नागो वासुकिं प्रत्यभाषत ।
यदि नागेन्द्र तुष्टोऽसि किमस्य धनसंचयैः ॥६७
रसं पिबेत्कुमारोऽयं त्वयि प्रीते महाबलः ।
बलं नागसहस्रस्य यस्मिन्कुण्डे प्रतिष्ठितम् ॥ ६८
यावत्पिबति बालोऽयं तावदस्मै प्रदीयताम् ।
एवमस्त्विति तं नागं वासुकिः प्रत्यभाषत ॥ ६९
ततो भीमस्तदा नागैः कृतस्वस्त्ययनः शुचिः ।
प्राङ्मुखश्चोपविष्टश्च रसं पिबति पाण्डवः ॥ ७०
एकोच्छ्वासात्ततः कुण्डं पिबति स्म महाबलः ।
एवमष्टौ स कुण्डानि ह्यपिबत्पाण्डुनन्दनः ॥ ७१
ततस्तु शयने दिव्ये नागदत्ते महाभुजः ।
अशेत भीमसेनस्तु यथासुखमरिंदमः ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीमसेनरसपाने अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२८

---

## १२९

वैशंपायन उवाच ।
ततस्ते कौरवाः सर्वे विना भीमं च पाण्डवाः ।
वृत्तक्रीडाविहारास्तु प्रतस्थुर्गजसाह्वयम् ॥ १
रथैर्गजैस्तथा चाश्वैर्यानैश्चान्यैरनेकशः ।
ब्रुवन्तो भीमसेनस्तु यातो ह्यग्रत एव नः ॥ २
ततो दुर्योधनः पापस्तत्रापश्यन्वृकोदरम् ।
भ्रातृभिः सहितो हृष्टो नगरं प्रविवेश ह ॥ ३
युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा ह्यविदन्पापमात्मनि ।
स्वेनानुमानेन परं साधुं समनुपश्यति ॥ ४
सोऽभ्युपेत्य तदा पार्थो मातरं भ्रातृवत्सलः ।
अभिवाद्याब्रवीत्कुन्तीमम्ब भीम इहागतः ॥ ५
क्व गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे ।
उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः ॥ ६
तदर्थं न च तं वीरं दृष्टवन्तो वृकोदरम् ।
मन्यमानास्ततः सर्वे यातो नः पूर्वमेव सः ॥ ७
आगताः स्म महाभागे व्याकुलेनान्तरात्मना ।
इहागम्य क्व नु गतस्त्वया वा प्रेषितः क्व नु ॥ ८
कथयस्व महाबाहुं भीमसेनं यशस्विनि ।
न हि मे शुध्यते भावस्तं वीरं प्रति शोभने ॥ ९
यतः प्रसुप्तं मन्येऽहं भीमं नेति हतस्तु सः ।
इत्युक्ता च ततः कुन्ती धर्मराजेन धीमता ॥ १०
हाहेति कृत्वा संभ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ।
न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति ॥११
शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्यानुजैः सह ।
इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता ॥ १२
क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमब्रवीत् ।
क्व गतो भगवन्क्षत्तर्भीमसेनो न दृश्यते ॥ १३
उद्यानान्निर्गताः सर्वे भ्रातरो भ्रातृभिः सह ।
तत्रैकस्तु महाबाहुर्भीमो नाभ्येति मामिह ॥ १४
न च प्रीणयते चक्षुः सदा दुर्योधनस्य सः ।
क्रूरोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः १५
निहन्यादपि तं वीरं जातमन्युः सुयोधनः ।
तेन मे व्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च ॥ १६

---

आर्यकेण नागराजेन । पृथाया आर्यकेण मातामहेन । कुन्तिभोजद्वाराऽय सबन्ध इति गम्यते ॥ ६४ ॥ दौहित्रदौहित्र इति त्वार्यकनागस्य दौहित्रः शूरस्तद्दौहित्रो भीम इत्यविरुद्धमेतत् । अन्ये तु शूरमातामह एवोपचारात् कुन्त्या मातामहोपीत्याहु ॥ ६५ ॥ नागदन्ते भित्तितो बहिर्निर्गते दारुणि कृत यत् आसनस्थान तत्र 'झरोखा(का)' इति भाषाया प्रसिद्धे॥७२॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारत० अष्टाविंशत्यधिकशततमो० ॥१२८॥

---

१२९

तत इति वृत्त समाप्त ॥ १ ॥ अम्ब हे मातः ॥ ५ ॥ भावश्चित्त न शुध्यते जीवतातिं न मनुते ॥ ९ ॥ यत भीमं प्रसुप्त न मन्येऽपि तु हत इत्येव मन्ये ॥ १० ॥ न चेति दुर्योधनस्त दृष्टु न शक्नोतीत्यर्थ ॥ १५ ॥

विदुर उवाच ।

मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणं कुरु ।
प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा शेषेऽपि प्रहरेत्तव ॥ १७
दीर्घायुषस्तव सुता यथोवाच महामुनिः ।
आगमिष्यति ते पुत्रः प्रीतिं चोत्पादयिष्यति ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा ययौ विद्वान्विदुरः स्वं निवेशनम् ।
कुन्ती चिन्तापरा भूत्वा सहासीना सुतैर्गृहे ॥ १९
ततोऽष्टमे तु दिवसे प्रत्यबुध्यत पाण्डवः ।
तस्मिंस्तदा रसे जीर्णे सोऽप्रमेयबलो बली ॥ २०
तं दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्तं पाण्डवं ते भुजङ्गमाः ।
सान्त्वयामासुरव्यग्रा वचनं चेदमब्रुवन् ॥ २१
यत्ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसंभृतः ।
तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यसि ॥ २२
गच्छाद्य त्वं च स्वगृहं स्नातो दिव्यैरिमैर्जलैः ।
भ्रातरस्तेऽनुतप्यन्ति त्वां विना कुरुपुङ्गव ॥ २३
ततः स्नातो महाबाहुः शुचिः शुक्लाम्बरस्रजः ।
ततो नागस्य भवने कृतकौतुकमङ्गलः ॥ २४
ओषधीभिर्विषघ्नीभिः सुरभीभिर्विशेषतः ।
भुक्तवान्परमान्नं च नागैर्दत्तं महाबलः ॥ २५
पूजितो भुजगैर्वीर आशीर्भिश्चाभिनन्दितः ।
दिव्याभरणसंच्छन्नो नागानामन्त्र्य पाण्डवः ॥ २६
उदतिष्ठत्प्रहृष्टात्मा नागलोकादरिंदमः ।
उत्क्षिप्तः स तु नागेन जलाज्जलरुहेक्षणः ॥ २७
तस्मिन्नेव वनोद्देशे स्थापितः कुरुनन्दनः ।
ते चान्तर्दधिरे नागाः पाण्डवस्यैव पश्यतः ॥ २८
तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः ।
आजगाम महाबाहुर्मातुरन्तिकमञ्जसा ॥ २९
ततोऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च ।
कनीयसः समाघ्राय शिरःस्वरिविमर्दनः ॥ ३०
तैश्चापि संपरिष्वक्तः सह मात्रा नरर्षभैः ।
अन्योन्यगतसौहार्दाद्दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रुवन् ॥ ३१
ततस्तत्सर्वमाचष्ट दुर्योधनविचेष्टितम् ।
भ्रातॄणां भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥ ३२
नागलोके च यद्वृत्तं गुणदोषमशेषतः ।
तच्च सर्वमशेषेण कथयामास पाण्डवः ॥ ३३
ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थवत् ।
तूष्णीं भव न ते जल्प्यमिदं कार्यं कथंचन ॥ ३४
एवमुक्त्वा महाबाहुर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरप्रमत्तोऽभवत्तदा ॥ ३५
सारथिं चास्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान् ।
धर्मात्मा विदुरस्तेषां पार्थानां प्रददौ मतिम् ॥ ३६
भोजने भीमसेनस्य पुनः प्राक्षेपयद्विषम् ।
कालकूटं नवं तीक्ष्णं संभृतं लोमहर्षणम् ॥ ३७
वैश्यापुत्रस्तदाचष्ट पार्थानां हितकाम्यया ।
तच्चापि भुक्त्वाजरयदविकारं वृकोदरः ॥ ३८
विकारं न ह्यजनयत्सुतीक्ष्णमपि तद्विषम् ।
भीमसंहनने भीमे अजीर्यत वृकोदरे ॥ ३९
एवं दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अनेकैरभ्युपायैस्ताञ्जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ॥
पाण्डवाश्चापि तत्सर्वं प्रत्यजानन्नमर्षिताः ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥ ४१
कुमारान्क्रीडमानांस्तान्दृष्ट्वा राजातिदुर्मदान् ।
गुरुं शिक्षार्थमन्विष्य गौतमं तान्न्यवेदयत् ॥ ४२
शरस्तम्बे समुद्भूतं वेदशास्त्रार्थपारगम् ।
अधिजग्मुश्च कुरवो धनुर्वेदं कृपात्तु ते ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीमप्रत्यागमने ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

## १३०

जनमेजय उवाच ।

कृपस्यापि मम ब्रह्मन्संभवं वक्तुमर्हसि ।
शरस्तम्बात्कथं जज्ञे कथं वाऽस्त्राण्यवाप्तवान् ॥१

वैशंपायन उवाच ।

महर्षेर्गौतमस्यासीच्छरद्वान्नाम गौतमः ।
पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभो ॥ २

*वदस्व विपरीतं मन्येथाः प्रत्यादिष्टः कुतो भीमं हतवानसीत्युपालब्ध ॥ १७ ॥ तान्कुरुबालकान् न्यवेदयत् ॥ ४२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

* विमतावात्मनेपदम्

१३०

गुरुद्वारकमपि कौरवाणां माहात्म्यं वक्तुं गुर्वोः कृपद्रोणयोरप्युत्पत्तिं विशिष्टामाहाध्यायाभ्यां कृपस्यापीत्यादिना ॥ १ ॥ शरद्वान्नामतः गौतमो गोत्रतः शरैः सहजातः शरा एव वास्य बन्धुवत्प्रिया इत्यर्थः ॥ २ ॥

न तस्य वेदाध्ययने तथा बुद्धिरजायत ।
यथास्य बुद्धिरभवद्धनुर्वेदे परंतप ॥ ३
अधिजग्मुर्यथा वेदांस्तपसा ब्रह्मचारिणः ।
तथा स तपसोपेतः सर्वाण्यस्त्राण्यवाप ह ॥ ४
धनुर्वेदपरत्वाच्च तपसा विपुलेन च ।
भृशं संतापयामास देवराजं स गौतमः ॥ ५
ततो जानपदीं नाम देवकन्यां सुरेश्वरः ।
प्राहिणोत्तपसो विघ्नं कुरु तस्येति कौरव ॥ ६
सा हि गत्वाश्रमं तस्य रमणीयं शरद्वतः ।
धनुर्बाणधरं बाला लोभयामास गौतमम् ॥ ७
तामेकवसनां दृष्ट्वा गौतमोऽप्सरसं वने ।
लोकेऽप्रतिमसंस्थानां प्रोत्फुल्लनयनोऽभवत् ॥ ८
धनुश्च हि शरास्तस्य कराभ्यामपतन्भुवि ।
वेपथुश्चापि तां दृष्ट्वा शरीरे समजायत ॥ ९
स तु ज्ञानगरीयस्त्वात्तपसश्च समर्थनात् ।
अवतस्थे महाप्राज्ञो धैर्येण परमेण ह ॥ १०
यस्तस्य सहसा राजन्विकारः समदृश्यत ।
तेन सुस्राव रेतोऽस्य स च तन्नान्वबुध्यत ॥ ११
धनुश्च सशरं त्यक्त्वा तथा कृष्णाजिनानि च ।
स विहायाश्रमं तं च तां चैवाप्सरसं मुनिः ॥ १२
जगामरेतस्तत्तस्य शरस्तम्बे पपात च ।
शरस्तम्बे च पतितं द्विधा तदभवन्नृप ॥ १३
तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्वतः ।
मृगयां चरतो राज्ञः शान्तनोस्तु यदृच्छया ॥ १४
कश्चित्सेनाचरोरण्ये मिथुनं तदपश्यत ।
धनुश्च सशरं दृष्ट्वा तथा कृष्णाजिनानि च ॥ १५
ज्ञात्वा द्विजस्य चापत्ये धनुर्वेदान्तगस्य ह ।
स राज्ञे दर्शयामास मिथुनं सशरं धनुः ॥ १६
स तदादाय मिथुनं राजा च कृपयान्वितः ।
आजगाम गृहानेव मम पुत्राविति ब्रुवन् ॥ १७
ततः संवर्धयामास संस्कारैश्चाप्ययोजयत् ।
प्रातिपेयो नरश्रेष्ठो मिथुनं गौतमस्य तत् ॥ १८
गौतमोऽपि ततोऽभ्येत्य धनुर्वेदपरोऽभवत् ।
कृपया यन्मया बालाविमौ संवर्धिताविति ॥ १९
तस्मात्तयोर्नाम चक्रे * तदेव स महीपतिः ।
गोपितौ गौतमस्तत्र तपसा समविन्दत ॥ २०
आगत्य तस्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवांस्तदा ।
चतुर्विधं धनुर्वेदं शास्त्राणि विविधानि च ॥ २१
निखिलेनास्य तत्सर्वं गुह्यमाख्यातवांस्तदा ।
सोऽचिरेणैव कालेन परमाचार्यतां गतः ॥ २२
ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महारथाः ।
धृतराष्ट्रात्मजाश्चैव पाण्डवाः सह यादवैः ॥ २३
वृष्णयश्च नृपाश्चान्ये नानादेशसमागताः ।

वैशंपायन उवाच ।

विशेषार्थी ततो भीष्मः पौत्राणां विनयेप्सया २४
इष्वस्त्रज्ञान्पर्यपृच्छदाचार्यान्वीर्यसंमतान् ।
नाल्पधीर्नामहाभागस्तथा नानास्त्रकोविदः ॥२५
नादेवसत्त्वो विनयेत्कुरूनस्त्रे महाबलात् ।
इति संचिन्त्य गाङ्गेयः सदा भरतसत्तमः ॥ २६
द्रोणाय वेदविदुषे भारद्वाजाय धीमते ।
पाण्डवान्कौरवांश्चैव ददौ शिष्यान्नरर्षभ ॥ २७
शास्त्रतः पूजितश्चैव सम्यक्तेन महात्मना ।
स भीष्मेण महाभागस्तुष्टोऽस्त्रविदुषां वरः ॥ २८
प्रतिजग्राह तान्सर्वान् शिष्यत्वेन महायशाः ।
शिक्षयामास च द्रोणो धनुर्वेदमशेषतः ॥ २९
तेऽचिरेणैव कालेन सर्वशस्त्रविशारदाः ।
बभूवुः कौरवा राजन्पाण्डवाश्चामितौजसः ॥ ३०

जनमेजय उवाच ।

कथं समभवद्द्रोणः कथं चास्त्राण्यवाप्तवान् ।
कथं चागात्कुरून्ब्रह्मन्कस्य पुत्रः स वीर्यवान् ३१
कथं चास्य सुतो जातः सोऽश्वत्थामास्त्रवित्तमः
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण प्रकीर्तय ॥ ३२

वैशंपायन उवाच ।

गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूव भगवानृषिः ।
भरद्वाज इति ख्यातः सततं संशितव्रतः ॥ ३३
सोऽभिषेक्तुं ततो गङ्गां पूर्वमेवागमन्नदीम् ।
महर्षिभिर्भरद्वाजो हविर्धाने चरन्पुरा ॥ ३४

---

तदेवाह न तस्येत्यादिना ॥ ३ ॥ समर्थनात् सामर्थ्यात् समन्वयादिति पाठान्तरम् ॥ १० ॥ पुत्री च पुत्रश्च पुत्रौ ॥ १७ ॥ प्रातिपेयः प्रतीपपुत्रः ॥ १८ ॥ गोपितौ राज्ञा पालितौ ॥ २० ॥ चतुर्विधं मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं मन्त्रमुक्तं चेति । मुक्तं बाणादि । अमुक्तं खड्गादि । मुक्तामुक्तं सोपसंहारमस्त्रम् । निरुपसंहारमस्त्रं मन्त्रमुक्तम् यद्वा शस्त्रमस्त्रं प्रत्यस्त्रं परमास्त्रं च । यद्वा आदानं संधानं विमोक्षः संहारश्च ॥ २१ ॥ विनयेप्सया शिक्षेच्छया ॥ २४ ॥ अदेवसत्त्वः नास्ति देवस्येव सत्त्वं सामर्थ्यं यस्य सः ॥ २६ ॥ स इति ततः पूर्वमेवागतामिति संबन्धः । अङ्गलग्नवस्त्रा विवृताङ्गी ददर्शेति भावः सार्धः ॥ ३४ ॥ * कृपः कृपीचेति

ददर्शाप्सरसं साक्षाद्घृताचीमाप्लुतामृषिः ।
रूपयौवनसंपन्नां मदद्दप्तां मदालसाम् ॥ ३५
तस्याः पुनर्नदीतीरे वसनं पर्यवर्तत ।
व्यपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे ततः ॥ ३६
तत्र संसक्तमनसो भरद्वाजस्य धीमतः ।
ततोऽस्य रेतश्चस्कन्द तद्दृषिर्द्रोण आदधे ॥ ३७
ततः समभवद्द्रोणः कलशे तस्य धीमतः ।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ३८
अग्निवेशं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान् ।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३९
अग्नेस्तु जातः स मुनिस्ततो भरतसत्तम ।
भारद्वाजं तदाग्नेयं महास्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ४०
भरद्वाजसखा चासीत्पृषतो नाम पार्थिवः ।
तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥ ४१
स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्थिवः ।
चिक्रीडाध्यायनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥ ४२
ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत् ।
पञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः ॥ ४३
भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा ।
तत्रैव च वसन्द्रोणस्तपस्तेपे महातपाः ॥ ४४
वेदवेदाङ्गविद्वान्स तपसा दग्धकिल्बिषः ।
ततः पितृनियुक्तात्मा पुत्रलोभान्महायशाः ॥ ४५
शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोऽन्वविन्दत ।
अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम् ॥ ४६
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च ।
स जातमात्रो व्यनदद्यथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ४७
तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतमन्तरिक्षस्थमब्रवीत् ।
अश्वस्येवास्य यत्स्थाम नदतः प्रदिशो गतम् ॥ ४८
अश्वत्थामैव बालोयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति ।
सुतेन तेन सुप्रीतो भारद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ ४९
तत्रैव च वसन्धीमान्धनुर्वेदपरोऽभवत् ।
स शुश्राव महात्मानं जामदग्न्यं परंतपम् ॥ ५०
सर्वज्ञानविदं विप्रं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तदा राजन्दित्सन्तं वसु सर्वशः ॥ ५१
स रामस्य धनुर्वेदं दिव्यान्यस्त्राणि चैव ह ।
श्रुत्वा तेषु मनश्चक्रे नीतिशास्त्रे तथैव च ॥ ५२
ततः स व्रतिभिः शिष्यैस्तपोयुक्तैर्महातपाः ।
वृतः प्रायान्महाबाहुर्महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥ ५३
ततो महेन्द्रमासाद्य भारद्वाजो महातपाः ।
क्षान्तं दान्तममित्रघ्नमपश्यद्भृगुनन्दनम् ॥ ५४
ततो द्रोणो वृतः शिष्यैरुपगम्य भृगूद्वहम् ।
आचख्यावात्मनो नाम जन्म चाङ्गिरसः कुले ५५
निवेद्य शिरसा भूमौ पादौ चैवाभ्यवादयत् ।
ततस्तं सर्वमुत्सृज्य वनं जिगमिषुं तदा ॥ ५६
जामदग्न्यं महात्मानं भारद्वाजोऽब्रवीदिदम् ।
भरद्वाजात्समुत्पन्नं तथा त्वं मामयोनिजम् ॥ ५७
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तमम् ।
तमब्रवीन्महात्मा स सर्वक्षत्रियमर्दनः ॥ ५८
स्वागतं ते द्विजश्रेष्ठ यदिच्छसि वदस्व मे ।
एवमुक्तस्तु रामेण भारद्वाजोऽब्रवीद्वचः ॥ ५९
रामं प्रहरतां श्रेष्ठं दित्सन्तं विविधं वसु ।
अहं धनमनन्तं हि प्रार्थये विपुलव्रत ॥ ६०

राम उवाच ।

हिरण्यं मम यच्चान्यद्वसु किंचिदिह स्थितम् ।
ब्राह्मणेभ्यो मया दत्तं सर्वमेतत्तपोधन ॥ ६१
तथैवेयं धरा देवी सागरान्ता सपत्तना ।
कश्यपाय मया दत्ता कृत्स्ना नगरमालिनी ॥ ६२
शरीरमात्रमेवाद्य ममेदमवशेषितम् ।
शस्त्राणि च महार्हाणि शस्त्राणि विविधानि च
अस्त्राणि वा शरीरं वा वरयैतन्मयोद्यतम् ।
वृणीष्व किं प्रयच्छामि तुभ्यं द्रोण वदाशु तत्

द्रोण उवाच ।

अस्त्राणि मे समग्राणि ससंहाराणि भार्गव ।
सप्रयोगरहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः ॥ ६
तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रादादस्त्राणि भार्गवः ।
सरहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः ॥ ६
प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं कृतास्त्रो द्विजसत्तमः ।
प्रियं सखायं सुप्रीतो जगाम द्रुपदं प्रति ॥ ६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणस्य भार्गवादस्त्रप्राप्तौ त्रिंशदधिकशततमो० ॥१३०

---

द्रोणे द्रोणकलशाख्ये यज्ञियपात्रविशेषे ॥ ३७ ॥ यतो द्रोणकलशेऽभवत्ततो द्रोण इति नाम निर्वाक्ति तत इति ॥ ३८ ॥ भरद्वाज आग्नेयमस्त्रं अग्निवेशाय ददौ । स चाग्नेः पुत्रोऽग्निवेशो भारद्वाजं द्रोणं स्वगुरुपुत्रमाग्नेयमस्त्रमशिक्षयदिति श्लोकद्वयार्थः ॥३९॥४०॥ पितृभिः पुत्रमुत्पादयेति नियुक्त आत्मा मनो यस्य स पितृनियुक्तात्मा ॥४५ स्थामशब्दसकारस्य तकारादेशेऽश्वत्थामेति ॥ ४८ ॥ इ आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशदधिकश तमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

# १३१

वैशंपायन उवाच ।

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत्पार्थिवं राजन्सखायं विद्धिमामिह ॥ १
इत्येवमुक्तः सख्या स प्रीतिपूर्वं जनेश्वरः ।
भारद्वाजेन पाञ्चाल्यो नामृष्यत वचोऽस्य तत् २
सक्रोधामर्षजिह्मभ्रूः कषायीकृतलोचनः ।
ऐश्वर्यमदसंपन्नो द्रोणं राजाऽब्रवीदिदम् ॥ ३

द्रुपद उवाच ।

अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नातिसमञ्जसा ।
यन्मां ब्रवीषि प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ॥ ४
न हि राज्ञामुदीर्णानामेवं भूतैर्नरैः क्वचित् ।
सख्यं भवति मन्दात्मन् श्रिया हीनैर्धनच्युतैः ॥५
सौहृदान्यपि जीर्यन्ते कालेन परिजीर्यतः ।
सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् ॥ ६
न सख्यमजरं लोके हृदि तिष्ठति कस्यचित् ।
कालो ह्येनं विहरति क्रोधो वैनं रहत्युत ॥ ७
मैवं जीर्णमुपास्स्व त्वं सख्यं भवत्वपाकृधि ।
आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् ॥८
न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान्विदुषः सखा ।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ९
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।
तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ १०
नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥११

वैशंपायन उवाच ।

द्रुपदेनैवमुक्तस्तु भारद्वाजः प्रतापवान् ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ १२
स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चाल्यं प्रति बुद्धिमान् ।
जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥ १३
स नागपुरमागम्य गौतमस्य निवेशने ।
भारद्वाजोऽवसत्तत्र प्रच्छन्नं द्विजसत्तमः ॥ १४
ततोऽस्य तनुजः पार्थान्कृपस्यानन्तरं प्रभुः ।
अस्त्राणि शिक्षयामास नाबुध्यन्त च तं जनाः १५
एवं स तत्र गूढात्मा कंचित्कालमुवास ह ।
कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात्॥१६
क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन्मुदा ।
पपात कूपे सा वीटा तेषां वै क्रीडतां तदा ॥१७
ततस्ते यत्नमातिष्ठन्वीटामुद्धर्तुमादृताः ।
न च ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये ॥ १८
ततोऽन्योन्यमवैक्षन्त व्रीडयावनताननाः ।
तस्या योगमविन्दन्तो भृशं चोत्कण्ठिताभवन्
तेऽपश्यन्ब्राह्मणं श्याममापन्नं पलितं कृशम् ।
कृत्यवन्तमदूरस्थमग्निहोत्रपुरस्कृतम् ॥ २०
ते तं दृष्ट्वा महात्मानमुपगम्य कुमारकाः ।
भग्नोत्साहक्रियात्मानो ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥ २१
अथ द्रोणः कुमारांस्तान् दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा ।
प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ २२
अहो वो धिग्बलं क्षात्रं धिगेतां वः कृतास्त्रताम् ।
भरतस्यान्वये जाता ये वीटां नाधिगच्छत ॥ २३
वीटां च मुद्रिकां चैव ह्यहमेतदपि द्वयम् ।
उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम् ॥ २४
एवमुक्त्वा कुमारांस्तान्द्रोणः स्वाङ्गुलिवेष्टनम् ।
कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिंदमः ॥ २५
ततोऽब्रवीत्तदा द्रोणं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कृपस्यानुमते ब्रह्मन् भिक्षामाप्नुहि शाश्वतीम् ॥२६

---

१३१

तत इति ॥१॥ कषायीकृते रक्ते लोचने यस्य सः ॥३॥ अकृता असंस्कृता ॥ ४ ॥ सामर्थ्यत्यनेनासमर्थस्य सौहृदं जीर्यत इत्युक्तम् ॥ ६ ॥ एनं सखायं विरहति पृथक्करोति । रहति सख्यात्त्याजयति ॥ ७ ॥ मैवमिति । एवं जीर्णं भवत् जीर्णत्वं प्राप्नुवत् सख्यं मा उपास्स्व तु पुनः अपाकृधि दूरीकुरु । यद्वा भवतु जीर्णं सख्यं तत्तु एवं पूर्ववत् मा उपास्स्व किंत्वपाकृधि नाशय त्यजेत्यर्थः । हिंसार्थस्य स्वादिकृञो रूपम् । अत्रापि हेतुः । अर्थनिबन्धनम् ॥८॥ एतदेव विवृणोति । न दरिद्र इत्यादिना । पूर्वं सखा इति सखिपूर्वं जीर्णं सख्यं तत्किमिष्यते अपि तु नैवेति काक्वा योज्यम्॥९॥ विपुष्टः कृशो निर्धनो वा ॥ १० ॥ द्रुपदेनेति पाञ्चाल्यं गर्वितं चिन्तयित्वा तत्पराभवोपायं मनसा विनिश्चित्य प्रतिबुद्धिः प्रतीपबुद्धिः शत्रुबुद्धिस्तद्वान् सन् नागसाह्वयं जगामेति द्वयोः संबन्धः ॥ १२ ॥ अस्य तनुजोऽश्वत्थामा नाबुध्यन्त द्रोणपुत्रोयमिति न ज्ञातवन्तः ॥ १५ ॥ वीटया यवाकारेण प्रादेशमात्रकाष्ठेन । यत् हस्तमात्रदण्डेन उपर्युपरि कुमाराः प्रक्षिपन्ति । लोहगुलिकयेत्यन्ये ॥ १७ ॥ पैशल्यात् कौशल्यात् ॥ २२ ॥ मुद्रिकां च मया त्यज्यमानाम् ॥ २४ ॥ सांप्रतं युक्तं प्रतिपत्स्यते ज्ञास्यति ॥२६॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच प्रहस्य भरतानिदम् ।
द्रोण उवाच ।
एषा मुष्टिरिषीकाणां मयाऽस्त्रेणाभिमन्त्रिता २७
अस्या वीर्यं निरीक्षध्वं यदन्यस्य न विद्यते ।
भेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकां तथाऽन्यया ॥
तामन्यया समायोगे वीटायां ग्रहणं मम ।
वैशंपायन उवाच ।
ततो यथोक्तं द्रोणेन तत्सर्वं कृतमञ्जसा ॥ २९
तदवेक्ष्य कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ।
आश्चर्यमिदमत्यन्तमिति मत्वा वचोऽब्रुवन् ॥ ३०
कुमारा ऊचुः ।
मुद्रिकामपि विप्रर्षे शीघ्रमेतां समुद्धर ।
वैशंपायन उवाच ।
ततः शरं समादाय धनुर्द्रोणो महायशाः ॥ ३१
शरेण विद्ध्वा मुद्रां तामूर्ध्वमावाहयत्प्रभुः ।
स शरं समुपादाय कूपादङ्गुलिवेष्टनम् ॥ ३२
ददौ ततः कुमाराणां विस्मितानामविस्मितः ।
मुद्रिकामुद्धृतां दृष्ट्वा तमाहुस्ते कुमारकाः ॥ ३३
कुमारा ऊचुः
अभिवादयामहे ब्रह्मन्नैतदन्येषु विद्यते ।
कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्ततो द्रोणः प्रत्युवाच कुमारकान् ।
द्रोण उवाच ।
आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्च माम् ३५
स एव सुमहातेजाः सांप्रतं प्रतिपत्स्यते ।
वैशंपायन उवाच ।
तथेत्युक्त्वा च गत्वा च भीष्ममूचुः कुमारकाः॥
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तच्च कर्म तथाविधम् ।
भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं तं प्रत्यजानत ३७
युक्तरूपः स हि गुरुरित्येवमनुचिन्त्य च ।
अथैनमानीय तदा स्वयमेव सुसत्कृतम् ॥ ३८
परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्रभृतां वरः ।
हेतुमागमने तच्च द्रोणः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ३९
द्रोण उवाच ।
महर्षेरग्निवेशस्य सकाशमहमच्युत ।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदचिकीर्षया ॥ ४०
ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो बहुलाः समाः ।
अवसं सुचिरं तत्र गुरुशुश्रूषणे रतः ॥ ४१
पाञ्चाल्यो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबलः ।
इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत्तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः ॥ ४२
स मे तत्र सखा चासीदुपकारी प्रियश्च मे ।
तेनाहं सह संगम्य वर्तयन्सुचिरं प्रभो ॥ ४३
बाल्यात्प्रभृति कौरव्य सहाध्ययनमेव च ।
स मे सखा सदा तत्र प्रियवादी प्रियंकरः ॥ ४४
अब्रवीदिति मां भीष्म वचनं प्रीतिवर्धनम् ।
अहं प्रियतमः पुत्रः पितुर्द्रोण महात्मनः ॥ ४५
अभिषेक्ष्यति मां राज्ये स पाञ्चाल्यो यदा तदा ।
त्वद्भोग्यं भविता तात सखे सत्येन ते शपे ॥ ४६
मम भोगाश्च वित्तं च त्वदधीनं सुखानि च ।
एवमुक्त्वाऽथ वव्राज कृतास्त्रः पूजितो मया ४७
तच्च वाक्यमहं नित्यं मनसा धारयंस्तदा ।
सोऽहं पितृनियोगेन पुत्रलोभाद्यशस्विनीम् ॥ ४८
नातिकेशीं महाप्रज्ञामुपयेमे महाव्रताम् ।
अग्निहोत्रे च सत्रे च दमे च सततं रताम् ॥ ४९
अलभद्गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमौरसम् ।
भीमविक्रमकर्माणमादित्यसमतेजसम् ॥ ५०
पुत्रेण तेन प्रीतोऽहं भरद्वाजो मया यथा ।
गोक्षीरं पिबतो दृष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान् ।
अश्वत्थामारुदद्बालस्तन्मे संदेहयद्दिशः ॥ ५१
न स्नातकोऽवसीदेत वर्तमानः स्वकर्मसु ।
इति संचिन्त्य मनसा तं देशं बहुशो भ्रमन् ॥ ५२
विशुद्धमिच्छन्गाङ्गेय धर्मोपेतं प्रतिग्रहम् ।
अन्तादन्तं परिक्रम्य नाध्यगच्छं पयस्विनीम् ५३
अथ पिष्टोदकेनैनं लोभयन्ति कुमारकाः ।
पीत्वा पिष्टरसं बालः क्षीरं पीतं मयाऽपि च ५४
ननर्तोत्थाय कौरव्य हृष्टो बाल्याद्विमोहितः ।
तं दृष्ट्वा नृत्यमानं तु बालैः परिवृतं सुतम् ॥ ५५
हास्यतामुपसंप्राप्तं कश्मलं तत्र मेऽभवत् ।
द्रोणं धिगस्त्वधनिनं यो धनं नाधिगच्छति ५६
पिष्टोदकं सुतो यस्य पीत्वा क्षीरस्य तृष्णया ।
नृत्यति स्म मुदाविष्टः क्षीरं पीतं मयाऽप्युत ॥५७

---

चिकीर्षया जिज्ञासया 'कृ'विज्ञाने इत्यस्य रूपम्॥४०॥ सखा वयस्यः उपकारकर्तृत्वादेव प्रियो वल्लभश्च । वर्तयन् वसन् ॥४३॥ दिशः संदेहयत् दिङ्मोहमजनयत् । अडभाव आर्षः शत्रंतं वा ॥ ५१ ॥ स्नातको यः कश्चिदल्पगोधनः स्वधर्मलोपान्नावसीदेतातो बहुगोधनवतो ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहमिच्छन् ॥ ५२ ॥ अन्तादन्तम् देशाद्देशम् ॥ ५३ ॥

इति संभाषतां वाचं श्रुत्वा मे बुद्धिरच्यवत् ।
आत्मानं चात्मना गर्हन्मनसेदं व्यचिन्तयम् ॥५८
अपि चाहं पुरा विप्रैर्वर्जितो गर्हितो वसे ।
परोपसेवां पापिष्ठां न च कुर्यां धनेप्सया ॥ ५९
इति मत्वा प्रियं पुत्रं भीष्मादाय ततो ह्यहम् ।
पूर्वस्नेहानुरागित्वात्सदारः सौमकिं गतः ॥ ६०
अभिषिक्तं तु श्रुत्वैव कृतार्थोऽस्मीति चिन्तयन् ।
प्रियं सखायं सुप्रीतो राज्यस्थं समुपागमम् ॥६१
संस्मरन्संगमं चैव वचनं चैव तस्य तत् ।
ततो द्रुपदमागम्य सखिपूर्वमहं प्रभो ॥ ६२
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र सखाऽयं विद्धिमामिति ।
उपस्थितस्तु द्रुपदं सखिवच्चास्मि संगतः ॥ ६३
स मां निराकारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन्नातिसमञ्जसा ॥ ६४
यदात्थ मां त्वं प्रसभं सखा तेऽहमिति द्विज ।
संगतानीह जीर्यन्ति कालेन परिजीर्यतः ॥ ६५
सौहृदं मे त्वया ह्यासीत्पूर्वं सामर्थ्यबन्धनम् ।
नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ६६
साम्याद्धि सख्यं भवति वैषम्यान्नोपपद्यते ।
न सख्यमजरं लोके विद्यते जातु कस्यचित् ॥६७
कालो वैनं विहरति क्रोधो वैनं हरत्युत ।
मैवं जीर्णमुपास्व त्वं सख्यं भवत्वपाकृधि ॥ ६८
आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम् ।
न ह्यनाढ्यः सखाढ्यस्य नाविद्वान्विदुषः सखा६९
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते ।
न हि राज्ञामुदीर्णानामेवं भूतैर्नरैः क्वचित् ॥ ७०
सख्यं भवति मन्दात्मन् श्रियाहीनैर्धनच्युतैः ।
नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा ७१
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ।
अहं त्वया न जानामि राज्यार्थे संविदं कृताम् ७२
एकरात्रं तु ते ब्रह्मन्कामं दास्यामि भोजनम् ।
एवमुक्तस्त्वहं तेन सदारः प्रस्थितस्तदा ॥ ७३
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय यां कर्तास्म्यचिरादिव ।
द्रुपदेनैवमुक्तोऽहं मन्युनाऽभिपरिप्लुतः ॥ ७४
अभ्यागच्छं कुरून्भीष्म शिष्यैरर्थी गुणान्वितैः ।
ततोऽहं भवतः कामं संवर्धयितुमागतः ॥ ७५
इदं नागपुरं रम्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ।

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तदा भीष्मो भारद्वाजमभाषत ॥ ७६

भीष्म उवाच ।

अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय ।
भुंक्ष्व भोगान्भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरुक्षये ॥७७
कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम् ।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥ ७८
यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन्कृतं तदिति चिन्त्यताम् ।
दिष्ट्या प्राप्तोसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः ७९

इति श्रीमहा० आदिपर्वणि संभवपर्वणि भीष्मद्रोणसमागमे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

---

# १३२

वैशंपायन उवाच ।

ततः संपूजितो द्रोणो भीष्मेण द्विपदां वरः ।
विशश्राम महातेजाः पूजितः कुरुवेश्मनि ॥ १
विश्रान्तेऽथ गुरौ तस्मिन्पौत्रानादाय कौरवान् ।
शिष्यत्वेन ददौ भीष्मो वसूनि विविधानि च २
गृहं च सुपरिच्छन्नं धनधान्यसमाकुलम् ।
भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपादयत प्रभुः ॥ ३

---

संभाषता संभाषमाणानाम् । अच्यवत् धर्मच्युताऽभूत् । आत्मानं दरिद्रदोषादात्मना मनसा गर्हन् । इदं वक्ष्यमाणम् ।५८।पुरा पूर्वं दरिद्रोयमिति गर्वितोऽपि वसे उपवासं कुर्वे न तु सेवा कुर्यां इति मत्वा निश्चित्यापि पुत्रस्य प्रियत्वात् सौमकिं द्रुपदं गत इति संबन्ध ॥ ६० ॥ तत्तस्य वचनं मम राज्यं त्वद्भोग्यं भविष्यतीति ॥ ६२ ॥ निराकारं निरस्तोत्तमरूपं हीनजनमिव । अकृतेत्यादि प्राग्व्याख्यातम् ॥ ६४ ॥ राज्यार्थे संविदं त्वद्भोग्यं मम राज्यमिति संकेतम् ॥ ७२ ॥ प्रतिपादय अस्मत्कुमारेभ्य इति शेषः । कुरुक्षये कुरुगृहे ॥७७॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

---

१३२

तत इति ॥ १ ॥ सुपरिच्छन्नं सुधायालिप्तम् ॥ ३ ॥

स तान्शिष्यान्महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान् ।
पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः ॥ ४
प्रतिगृह्य च तान्सर्वान्द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
रहस्येकः प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तथा ॥ ५

द्रोण उवाच ।

कार्यं मे कांक्षितं किंचिद्धृदि संपरिवर्तते ।
कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं मे तदेतद्वदतानघाः ॥ ६

वैशंपायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा कौरवेयास्ते तूष्णीमासन्विशांपते ।
अर्जुनस्तु ततः सर्वं प्रतिजज्ञे परंतप ॥ ७
ततोऽर्जुनं तदा मूर्ध्नि समाघ्राय पुनः पुनः ।
प्रीतिपूर्वं परिष्वज्य प्ररुरोद मुदा तदा ॥ ८
ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च ।
ग्राहयामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्यवान् ९
राजपुत्रास्तथा चान्ये समेत्य भरतर्षभ ।
अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ॥ १०
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नाना देश्याश्च पार्थिवाः ।
सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात्तदा ॥ ११
स्पर्धमानस्तु पार्थेन सूतपुत्रोऽत्यमर्षणः ।
दुर्योधनं समाश्रित्य सोऽवमन्यत पाण्डवान् ॥१२
अभ्ययात्स ततो द्रोणं धनुर्वेदचिकीर्षया ।
शिक्षाभुजबलोद्योगैस्तेषु सर्वेषु पाण्डवः ॥ १३
अस्त्रविद्यानुरागाच्च विशिष्टोऽभवदर्जुनः ।
तुल्येष्वस्त्रप्रयोगेषु लाघवे सौष्ठवेषु च ॥ १४
सर्वेषामेव शिष्याणां बभूवाभ्यधिकोऽर्जुनः ।
ऐन्द्रिमप्रतिमं द्रोण उपदेशेष्वमन्यत ॥ १५
एवं सर्वकुमाराणामिष्वस्त्रं प्रत्यपादयत् ।
कमण्डलुं च सर्वेषां प्रायच्छच्चिरकारणात् ॥ १६
पुत्राय च ददौ कुम्भमाविलम्बनकारणात् ।
यावत्तेनोपगच्छन्ति तावदस्मै परां क्रियाम् ॥१७
द्रौण आचष्ट पुत्राय तत्कर्म जिष्णुरौहत ।
ततः स वारुणास्त्रेण पूरयित्वा कमण्डलुम् ॥१८
सममाचार्यपुत्रेण गुरुमभ्येति फाल्गुनः ।
आचार्यपुत्रात्तस्मात्तु विशेषोपचयेऽपृथक् ॥ १९
न व्यहीयत मेधावी पार्थोऽप्यस्त्रविदां वरः ।
अर्जुनः परमं यत्नमातिष्ठद्गुरुपूजने ॥ २०
अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत् ।
तं दृष्ट्वा नित्यमुद्युक्तमिष्वस्त्रं प्रति फाल्गुनम् ॥ २१
आहूय वचनं द्रोणो रहः सूदमभाषत ।
अन्धकारेऽर्जुनायान्नं न देयं ते कदाचन ।
न चाख्येयमिदं चापि मद्वाक्यं विजये त्वया २२
ततः कदाचिद्भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने ।
तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः ॥ २३
भुङ्क्त एव तु कौन्तेयो नास्यादन्यत्र वर्तते ।
हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहणकारणात् ॥ २४
तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः ।
योग्यां चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दनः ॥ २५
तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारत ।
उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ २६

द्रोण उवाच ।

प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः ।
त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २७

वैशंपायन उवाच ।

ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो हयेषु च गजेषु च ।
रथेषु भूमावपि च रणशिक्षामशिक्षयत् ॥ २८
गदायुद्धेऽसि चर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु ।
द्रोणः संकीर्णयुद्धे च शिक्षयामास कौरवान् २९
तस्य तत्कौशलं श्रुत्वा धनुर्वेदजिघृक्षवः ।
राजानो राजपुत्राश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ३०

---

प्रतीतात्मा हृष्टचित्तः कृतोपसदनान् कृतपादग्रहणान् ॥ ५ ॥ धनुर्वेदस्य चिकीर्षया जिज्ञासया । शिक्षादिभिः पाण्डवो द्रोणमभ्ययादभिगतः । तत्तुल्योऽभवदित्यर्थः ॥ १३ ॥ अत एव तेषु विशिष्टः एतदेवाह तुल्येष्विति ॥ १४ ॥ कमण्डलुं सूक्ष्ममुखत्वाद्विलम्बेन पूरणीयम् ॥ १६ ॥ कुम्भं विस्तीर्णमुखत्वात्सद्यः पूरणीयं तस्य फलमाह यावदिति ॥ १७ ॥ औहत तर्कितवान् ॥ १८ ॥ विशेषोपचये गुणवृद्धौ अपृथक् सहैवास्ते ॥ १९ ॥ अतो न व्यहीयत न विहीनोभूत् ॥२०॥ योगं ऐकाग्र्यम् ॥ २१ ॥ सूदं सूपकारं प्रति अन्नं न देयं किंत्वन्धकारे मुखादन्यत्र ग्रासाः पतिष्यन्तीति नान्नं ददामीति स त्वया वाच्य इति भावः । विजये अर्जुने । अयं भावः । अत्यभ्यासान्मुखादन्यत्र ग्रासा न पतन्त्येव एवं तमसि शब्दादिलक्ष्यादन्यत्र शरा अपि न पतेयुरित्युक्तोर्जुनो यदि केनेदमुक्तमिति पृच्छेत्तर्हि लौकिक एवायमर्थ इति तं प्रतिवक्तव्यं न तु द्रोणवाक्यमेतदिति ॥ २२ ॥ एवं गुरुणा शिष्यस्याभ्यासे प्रवृत्तौ ज्ञापितायां ततः प्रागेवार्जुनः स्वदृष्टान्तेनैव तज्ज्ञातवानित्याह द्वाभ्यां तत इति ॥ २३ ॥ अनुग्रहणं अभ्यासः ॥ २४ ॥ योग्यं अभ्यासम् ॥ २५ ॥ श्रवणोत्तरं उत्थायोपेत्येतिक्रमः ॥ २६ ॥ संकीर्णयुद्धे युगपदनेकायुधप्रयोगे युगपदनेकैः सह युद्धे वा ॥ २९ ॥

ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः ।
एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम ह ॥ ३१
न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन् ।
शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवान्ववेक्षया ॥ ३२
स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतपः ।
अरण्यमनुसंप्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् ॥ ३३
तस्मिन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा ।
इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियममास्थितः ३४
परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च ।
विमोक्षादानसंधाने लघुत्वं परमाप सः ॥ ३५
अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाताः कदाचित्कुरुपाण्डवाः ।
रथैर्विनिर्ययुः सर्वे मृगयामरिमर्दन ॥ ३६
तत्रोपकरणं गृह्य नरः कश्चिद्यदृच्छया ।
राजन्ननुजगामैकः श्वानमादाय पाण्डवान् ॥ ३७
तेषां विचरतां तत्र तत्तत्कर्मचिकीर्षया ।
श्वा चरन्स वने मूढो नैषादिं प्रति जग्मिवान् ३८
स कृष्णमलदिग्धाङ्गं कृष्णाजिनजटाधरम् ।
नैषादिं श्वा समालक्ष्य भषंस्तस्थौ तदन्तिके ३९
तदा तस्याथ भषतः शुनः सप्त शरान्मुखे ।
लाघवं दर्शयन्नस्त्रे मुमोच युगपद्यथा ॥ ४०
स तु श्वा शरपूर्णास्यः पाण्डवानाजगाम ह ।
तं दृष्ट्वा पाण्डवा वीराः परं विस्मयमागताः ॥४१
लाघवं शब्दवेधित्वं दृष्ट्वा तत्परमं तदा ।
प्रेक्ष्य तं व्रीडिताश्चासन्प्रशशंसुश्च सर्वशः ॥ ४२
तं ततोऽन्वेषमाणास्ते वने वननिवासिनम् ।
ददृशुः पाण्डवा राजन्नस्यन्तमनिशं शरान् ॥ ४३
न चैनमभिजानंस्ते तदा विकृतदर्शनम् ।
तथैनं परिपप्रच्छुः को भवान्कस्य वेत्युत ॥ ४४

एकलव्य उवाच ।

निषादाधिपतेर्वीरा हिरण्यधनुषः सुतम् ।
द्रोणशिष्यं च मां वित्त धनुर्वेदकृतश्रमम् ॥ ४५

वैशंपायन उवाच ।

ते तमाज्ञाय तत्त्वेन पुनरागम्य पाण्डवाः ।
यथावृत्तं वने सर्वं द्रोणायाचख्युरद्भुतम् ॥ ४६
कौन्तेयस्त्वर्जुनो राजन्नेकलव्यमनुस्मरन् ।
रहो द्रोणं समासाद्य प्रणयादिदमब्रवीत् ॥ ४७

अर्जुन उवाच ।

तदाहं परिरभ्यैकः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ।
भवतोक्तो न मे शिष्यस्त्वद्विशिष्टो भविष्यति ४८
अथ कस्मान्मद्विशिष्टो लोकादपि च वीर्यवान् ।
अन्योऽस्ति भवतः शिष्यो निषादाधिपतेः सुतः ॥

वैशंपायन उवाच ।

मुहूर्तमिव तं द्रोणश्चिन्तयित्वा विनिश्चयम् ।
सव्यसाचिनमादाय नैषादिं प्रति जग्मिवान् ५०
ददर्श मलदिग्धाङ्गं जटिलं चीरवाससम् ।
एकलव्यं धनुष्पाणिमस्यन्तमनिशं शरान् ॥ ५१
एकलव्यस्तु तं दृष्ट्वा द्रोणमायान्तमन्तिकात् ।
अभिगम्योपसंगृह्य जगाम शिरसा महीम् ॥ ५२
पूजयित्वा ततो द्रोणं विधिवत्स निषादजः ।
निवेद्य शिष्यमात्मानं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५३
ततो द्रोणोऽब्रवीद्राजन्नेकलव्यमिदं वचः ।
यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतनं दीयतां मम ॥ ५४
एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणोऽब्रवीदिदम् ।

एकलव्य उवाच ।

किं प्रयच्छामि भगवन्नाज्ञापयतु मां गुरुः ॥ ५५
न हि किंचिददेयं मे गुरवे ब्रह्मवित्तम ।

वैशंपायन उवाच ।

तमब्रवीत्त्वयाङ्गुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति ॥ ५६
एकलव्यस्तु तच्छ्रुत्वा वचो द्रोणस्य दारुणम् ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्ये च स नियतः सदा॥५७
तथैव हृष्टवदनस्तथैवादीनमानसः ।
छित्त्वाविचार्य तं प्रादाद्द्रोणायाङ्गुष्ठमात्मनः ॥ ५८
ततः शरं तु नैषादीरङ्गुलीभिर्व्यकर्षत ।
न तथा च स शीघ्रोऽभूद्यथा पूर्वं नराधिप ॥ ५९
ततोऽर्जुनः प्रीतमना बभूव विगतज्वरः ।
द्रोणश्च सत्यवागासीन्नान्योऽभिभविताऽर्जुनम् ॥
द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यौ बभूवतुः ।
दुर्योधनश्च भीमश्च सदा संरब्धमानसौ ॥ ६१

---

तेषामन्ववेक्षया तेभ्योऽधिको मा भूदिति बुध्या ॥३२॥ महीमयं मृन्मयम्॥३३॥इष्वस्त्रे इषुप्रयोगे योगं ऐकाग्र्यम्॥३४ लघुत्वं शीघ्रप्रयोक्तृत्वम् ॥३५॥ उपकरणं श्ववागुरादि मुख्यं तु करणं आयुधमेव ॥ ३७ ॥ अस्त्रे प्रयोगे लाघवं कौशलं येन शरा मुखे प्रविष्टा एव न तु तद्विद्धवन्त ॥ ४० ॥ वेतनं गुरुदक्षिणारूपम् ॥५४॥ छित्त्वेति अविचार्येति च्छेदः "स सत्यसंधं नैषादिं दृष्ट्वा प्रीतोऽब्रवीदिदम् । एवं कर्तव्यमिति वा एकलव्यमभाषत" इति क्वचित्पद्यं पठन्ति । तत्र एवं कर्तव्यमिति तर्जनीमध्यमाभ्यां शरं धृत्वा ज्याकर्षणं कर्तव्यमित्यभिनीय दर्शयति॥५८॥ गदायोग्यौ गदायुद्धेऽभ्यासवन्तौ६१

अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत् ।
तथातिपुरुषानन्यान्त्सारुकौ यमजावुभौ ॥ ६२
युधिष्ठिरो रथश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनंजयः ।
प्रथितः सागरान्तायां रथयूथपयूथपः ॥ ६३
बुद्धियोगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः ।
अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुनः ॥ ६४
तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सौष्ठवेन च वीर्यवान् ।
एकः सर्वकुमाराणां बभूवातिरथोऽर्जुनः ॥ ६५
प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनंजयम् ।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानो नामृष्यन्त परस्परम् ॥ ६६
तांस्तु सर्वान्समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान् ।
द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः ॥ ६७
कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम् ।
अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यभूतमुपादिशत् ॥ ६८

द्रोण उवाच ।

शीघ्रं भवन्तः सर्वेऽपि धनूंष्यादाय सर्वशः ।
भासमेतं समुद्दिश्य तिष्ठध्वं संधितेषवः ॥ ६९
मद्वाक्यसमकालं तु शिरोऽस्य विनिपात्यताम् ।
एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः ॥ ७०

वैशंपायन उवाच ।

ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाङ्गिरसां वरः ।
संधत्स्व बाणं दुर्धर्ष मद्वाक्यान्ते विमुञ्च तम् ७१
ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृह्य परंतपः ।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥७२
ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् ।
स मुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥ ७३
पश्यैनं तं द्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज ।
पश्यामीत्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥ ७४
स मुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत ।

द्रोण उवाच ।

अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातॄन्वापि प्रपश्यसि ॥ ७५
तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम् ।
भवन्तं च तथा भ्रातॄन्भासं चेति पुनः पुनः ७६
तमुवाचापसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव ।
नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ७७
ततो दुर्योधनादींस्तान्धार्तराष्ट्रान्महायशाः ।
तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥ ७८
अन्यांश्च शिष्यान्भीमादीन्राज्ञश्चैवान्यदेशजान् ।
तथा च सर्वे तत्सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः ७९

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणशिष्यपरीक्षायां द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२

## १३३

वैशंपायन उवाच ।

ततो धनंजयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
त्वयेदानीं प्रहर्तव्यमेतल्लक्ष्यं विलोक्यताम् ॥ १
मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः ।
वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ २
एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः ।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः ॥ ३
मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत ।
पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चार्जुन ॥ ४
पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत ।
न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥ ५
ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम् ॥ ६
भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः ।
शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत्
अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः ।
मुञ्चस्वेत्यब्रवीत्पार्थं स मुमोचाविचारयन् ॥ ८

---

त्सारुकौ त्सरुः खड्गादिमुष्टिस्तद्ग्रहणप्रधाने युद्धे कुशलौ ॥६२॥ रथश्रेष्ठः 'सप्तमी शौण्डै' इति समासः ॥६३॥ प्रहरणज्ञाने कः कथं प्रहरतीति विचारे ॥ ६७ ॥ भासं नीलपक्षं पक्षिणं शकुन्तमित्यन्ये गृध्रमित्यपरे ॥ ६८ ॥ आङ्गिरसां वरः द्रोणः ॥ ७१ ॥ भासं पश्य तदेकाग्रदृष्टिर्भवेत्यर्थः ॥ ७४ ॥ तमिति वृक्षादिदर्शनात् व्यग्रदृष्टित्वं तेषां ज्ञात्वा सर्वानपि निराचकार ॥ ७७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

१३३

तत इति ॥ १ ॥

ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन च ।
शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥ ९
तस्मिन्कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम् ।
मेने च द्रुपदं संख्ये सानुबन्धं पराजितम् ॥ १०
कस्यचित्त्वथ कालस्य स शिष्योऽङ्गिरसां वरः ।
जगाम गङ्गामभितो मज्जितुं भरतर्षभ ॥ ११
अवगाढमथो द्रोणं सलिले सलिलेचरः ।
ग्राहो जग्राह बलवाञ्जङ्घान्ते कालचोदितः १२
स समर्थोऽपि मोक्षाय शिष्यान्सर्वानचोदयत् ।
ग्राहं हत्वा तु मोक्षध्वं मामिति त्वरयन्निव ॥ १३
तद्वाक्यसमकालं तु बीभत्सुर्निशितैः शरैः ।
अवार्यैः पञ्चभिर्ग्राहं मग्नमम्भस्यताडयत् ॥ १४
इतरे त्वथ संमूढास्तत्र तत्र प्रपेदिरे ।
तं तु दृष्ट्वा क्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम् ॥१५
विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमांश्चाभवत्तदा ।
स पार्थबाणैर्बहुधा खण्डशः परिकल्पितः ॥ १६
ग्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घां त्यक्त्वा महात्मनः ।
अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम् ॥ १७
गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम् ॥ १८
न च ते मानुषेष्वेतत्प्रयोक्तव्यं कथंचन ।
जगद्विनिर्दहेदेतदल्पतेजसि पातितम् ॥ १९
असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते ।
तद्धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचो मम ॥ २०
बाधेतामानुषः शत्रुर्यदि त्वां वीर कश्चन ।
तद्वधाय प्रयुञ्जीथास्तदस्त्रमिदमाहवे ॥ २१
तथेति संप्रतिश्रुत्य बीभत्सुः स कृताञ्जलिः ।
जग्राह परमास्त्रं तदाह चैनं पुनर्गुरुः ।
भविता त्वत्समो नान्यः पुमाँल्लोके धनुर्धरः॥ २२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रोणग्राहमोक्षणे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

---

## १३४

वैशंपायन उवाच ।
कृतास्त्रान्धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्राजन्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ १
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ।
गाङ्गेयस्य च सांनिध्ये व्यासस्य विदुरस्य च २
राजन्संप्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम ।
ते दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव ॥ ३
ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
धृतराष्ट्र उवाच ।
भारद्वाज महत्कर्म कृतं ते द्विजसत्तम ॥ ४
यदानुमन्यसे कालं यस्मिन्देशे यथा यथा ।
तथा तथा विधानाय स्वयमाज्ञापयस्व माम् ॥ ५
स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात्पुरुषाणां सचक्षुषाम् ।
अस्त्रहेतोः पराक्रान्तान्ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान् ॥६
क्षत्तर्यद्गुरुराचार्यो ब्रवीति कुरु तत्तथा ।
न हीदृशं प्रियं मन्ये भविता धर्मवत्सल ॥ ७
ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः ।
भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम् ॥ ८
समामवृक्षां निर्गुल्मामुदक्प्रस्रवणान्विताम् ।
तस्यां भूमौ बलिं चक्रे तिथौ नक्षत्रपूजिते ॥ ९
अवघुष्टे समाजे च तदर्थं वदतां वरः ।
रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि ॥ १०
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः ।
राज्ञः सर्वायुधोपेतं स्त्रीणां चैव नरर्षभ ॥ ११

---

तस्य भासस्य नगस्थस्य वृक्षाग्रस्थितस्य ॥ ९ ॥ सानुबन्धम् ससहायम्॥१०॥ अवगाढम् जलावगाहिनम् ॥१२॥ मोक्ष्यध्वम् मोचयध्वम्॥१३॥क्रियोपेतम् कृतकार्यम्॥१५॥असामान्यम् असाधारणम् ॥२०॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

१३४

कृतास्त्रान् धार्तराष्ट्रांश्चेति ॥ १ ॥ कर्म कुमारशिक्षाख्यम् ॥ ४ ॥ मन्यसेऽस्त्रशिक्षादर्शनस्य कालम् विधानाय रङ्गभूमेः ॥ ५ ॥ निर्वेदात् दुःखात् सचक्षुषां स्पृहयामि सुखायेति शेषः ॥ ६ ॥ हे क्षत्तः हे विदुर ॥७॥ निर्गुल्मां तृणसमूहमूलपिण्डरहिताम् । उदक् प्रस्रवणान्वितां उदक् निम्नाम्॥९॥ तदर्थं बल्यर्थं समाजे वीरसमूहे अवघुष्टे डिण्डीरवशब्देनाहूते सति बलिं चक्रे इति पूर्वेणान्वयः ॥ १० ॥ राज्ञः स्त्रीणां प्रेक्षार्थमागारम् मञ्चाश्च इतरेषाम् प्रेक्षार्थं रङ्गभूमौ चक्रुरिति द्वयोः संबन्धः ॥ ११ ॥

मञ्चांश्च कारयामासुस्तत्र जानपदा जनाः ।
विपुलानुच्छ्रयोपेताशिन् बिकाश्च महाधनाः ॥१२
तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा ।
ष्मं प्रमुखतः कृत्वा कृतं चाचार्यसत्तमम् ॥ १३
परिक्षिप्तं वैदूर्यमणिशोभितम् ।
शातकुम्भमयं दिव्यं प्रेक्षागारमुपागमत् ॥ १४
गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतां वर ।
स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः
हर्षादारुरुहुर्मञ्चान्मेरुं देवस्त्रियो यथा ।
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद्द्रुतम् ॥ १६
दर्शनेप्सुः समभ्यागात्कुमाराणां कृतास्त्रताम् ।
क्षणेनैकस्थतां तत्र दर्शनेप्सुर्जगाम ह ॥ १७
प्रवादितैश्च वादित्रैर्जनकौतूहलेन च ।
महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत्तदा ॥ १८
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ १९
रङ्गमध्यं तदाचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह ।
नभो जलधरैर्हीनं साङ्गारक इवांशुमान् ॥ २०
स यथा समयं चक्रे बलिं बलवतां वरः ।
ब्राह्मणांस्तु सुमन्त्रज्ञान्कारयामास मङ्गलम् ॥ २१
सुखपुण्याहघोषस्य पुण्यस्य समनन्तरम् ।
विविशुर्विविधं गृह्य शस्त्रोपकरणं नराः ॥ २२
ततो बद्धाङ्गुलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः ।
बद्धतूणाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥ २३
अनुज्येष्ठं तु ते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥ २४
केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे ।
मनुजा धृष्टमपरे वीक्षां चक्रुः सुविस्मिताः ॥ २५
ते स्म लक्ष्याणि बिभिदुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितैः ।
विविधैर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिर्द्रुतम् ॥ २६
तत्कुमारबलं तत्र गृहीतशरकार्मुकम् ।
गन्धर्वनगराकारं प्रेक्ष्य ते विस्मिताऽभवन् ॥ २७
सहसा चुक्रुशुश्चान्ये नराः शतसहस्रशः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधु साध्विति भारत ॥२८
कृत्वा धनुषि ते मार्गान्रथचर्यासु चासकृत् ।
गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलः ॥ २९
गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः ।
त्सरुमार्गान्यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु ॥ ३०
लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं दृढमुष्टिताम् ।
ददृशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगं खड्गचर्मणोः ॥ ३१
अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ ।
अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाचलौ ॥ ३२
बद्धकक्षौ महाबाहू पौरुषे पर्यवस्थितौ ।
बृंहन्तौ वासिताहेतोः समदाविव कुञ्जरौ ॥ ३३
तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ ।
चेरतुर्मण्डलगतौ समदाविव कुञ्जरौ ॥ ३४
विदुरो धृतराष्ट्राय गान्धार्याः पाण्डवारणिः ।
न्यवेदयेतां तत्सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वण्यस्त्रदर्शने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

---

साङ्गारकः सभौमः अंशुमान् चन्द्रः ॥ २० ॥ बद्धकक्षाः वस्त्रादिना संवृतं सपृष्ठोदरा इत्यर्थः । कक्षा वाहुमूलम् ॥ २३ ॥ अस्त्रं अस्त्रविद्यां चक्रुः प्रादुश्चक्रुः ॥ २४ ॥ धृष्टं निर्भयम् यथा स्यात्तथा ॥ २५ ॥ लाघवोत्सृष्टैः गतिचातुरीप्रयुक्तैः उह्यन्तः उह्यमानाः ॥ २६ ॥ गन्धर्वनगराकारमद्भुतरूपम् ॥ २७ ॥ धनुषि मार्गान् तिर्यगूर्ध्वान् चललक्ष्यपातनादीन् । रथचर्यासु मार्गान् शीघ्रंगतप्रत्यागतप्रदक्षिणा प्रदक्षिणमण्डलगत्यादिरूपान् ॥ २९ ॥ त्सरुमार्गान् तिर्यगूर्ध्वाधःखड्गप्रचलनरूपान् । सर्वासु भूमिषु रथादिपृष्ठेषु भुवि वा ॥३०॥ लाघवं शैघ्र्यं सौष्ठवं चातुरीम् । एकेनैव खड्गेन समन्ताद्भ्रामितेन युगपदनेकायुधनिवारणम् । शोभां सर्वतो झलझलायमानैकखड्गांशुमण्डलान्तरगतत्वेनाभिनवाम् । स्थिरत्वमभीतत्वम् । दृढमुष्टितां खड्गभृतां हस्त एव परितश्चलति न त्वङ्गुल्य इत्यर्थः । प्रयोगं निदर्शनम् ॥३१॥ संहृष्टौ परस्परम् जेतुं सकामौ॥३२॥ बृंहन्तौ शब्दम् कुर्वाणौ । वासिता हस्तिनी ॥ ३३ ॥ चेरतुः पद्भ्याम् । मण्डलगतौ अलातचक्रवद्भ्राम्यमाणगदापरिवेषान्तर्गतौ । निर्मलगदाविति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ ३४ ॥ पाण्डवारणिः कुन्ती ॥ ३५ ॥

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

## १३५

वैशंपायन उवाच ।

कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे ।
पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाभवज्जनः ॥ १
ही वीर कुरुराजेति ही भीम इति जल्पताम् ।
पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः ॥२
ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान् ।
भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ३

द्रोण उवाच ।

वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि ।
मा भूद्रङ्गप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥ ४

वैशंपायन उवाच ।

ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ ।
युगान्तानिलसंक्षुब्धौ महावेलाविवार्णवौ ॥ ५
ततो रङ्गाङ्गणगतो द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
निवार्य वादित्रगणं महामेघनिभस्वनम् ॥ ६
यो मे पुत्रात्प्रियतरः सर्वशस्त्रविशारदः ।
ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥ ७
आचार्यवचने नाथ कृतस्वस्त्ययनो युवा ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पूर्णतूणः सकार्मुकः ॥ ८
काञ्चनं कवचं बिभ्रत्प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।
सार्कः सेन्द्रायुधतडित्ससंध्य इव तोयदः ॥ ९
ततः सर्वस्य रङ्गस्य समुत्पिञ्जलकोऽभवत् ।
प्रावाद्यन्त च वाद्यानि शङ्खानि समन्ततः ॥ १०
एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यमपाण्डवः ।
एष पुत्रो महेन्द्रस्य कुरूणामेष रक्षिता ॥ ११
एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतां वरः ।
एष शीलवतां चापि शीलज्ञाननिधिः परः ॥ १२
इत्येवं तुमुला वाचः शुश्रुवुः प्रेक्षकेरिताः ।
कुन्त्याः प्रस्नवसंयुक्तैरस्रैः क्लिन्नमुरोऽभवत् ॥ १३
तेन शब्देन महता पूर्णश्रुतिरथाब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानसः ॥ १४
क्षत्तः क्षुब्धार्णवनिभः किमेष सुमहास्वनः ।
सहसैवोत्थितो रङ्गे भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥ १५

विदुर उवाच ।

एष पार्थो महाराज फाल्गुनः पाण्डुनन्दनः ।
अवतीर्णः सकवचस्तत्रैव सुमहास्वनः ॥ १६

धृतराष्ट्र उवाच ।

धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रक्षितोऽस्मि महामते ।
पृथारणिसमद्भूतैस्त्रिभिः पाण्डववह्निभिः ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

तस्मिन्प्रमुदिते रङ्गे कथंचित्प्रत्युपस्थिते ।
दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायास्त्रलाघवम् ॥ १८
आग्नेयेनासृजद्वह्निं वारुणेनासृजत्पयः ।
वायव्येनासृजद्वायुं पार्जन्येनासृजद्घनान् ॥ १९
भौमेन प्राविशद्भूमिं पार्वतेनासृजद्गिरीन् ।
अन्तर्धानेन चास्त्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ २०
क्षणात्प्रांशुः क्षणाद् ह्रस्वः क्षणाच्च रथधूर्गतः ।
क्षणेन रथमध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम् ॥ २१
सुकुमारं च सूक्ष्मं च गुरुं चापि गुरुप्रियः ।
सौष्ठवेनाभिसंक्षिप्तः सोऽविध्यद्विविधैः शरैः ॥ २२
भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम् ।
पञ्च बाणानसंसक्तान्संमुमोचैकबाणवत् ॥ २३
गव्ये विषाणकोषे च चले रज्ज्ववलम्बिनि ।
निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम् ॥ २४
इत्येवमादि सुमहत्खड्गे धनुषि चानघ ।
गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि ह्यदर्शयत् ॥ २५
ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन्कर्मणि भारत ।
मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निःस्वने ॥ २६
द्वारदेशात्समुद्भूतो माहात्म्यबलसूचकः ।
वज्रनिष्पेषसदृशः शुश्रुवे भुजनिःस्वनः ॥ २७
दीर्यन्ते किं नु गिरयः किंस्विद्भूमिर्विदीर्यते ।
किंस्विदापूर्यते व्योम जलधाराघनैर्घनैः ॥ २८
रङ्गस्यैवं मतिरभूत्क्षणेन वसुधाधिप ।
द्वारं चाभिमुखाः सर्वे बभूवुः प्रेक्षकास्तदा ॥ २९

---

१३५

कुर्विति कुरुराजे दुर्योधने ॥ १ ॥ ही विस्मये आश्चर्ये भीमदुर्योधनौ कुरुत इत्यर्थः । हा भीमेत्यपपाठः ॥ २ ॥ कृतयोग्यौ सुशिक्षितौ ॥ ४ ॥ इन्द्रानुजसमः विष्णुतुल्यः ॥ ७ ॥ बद्धे गोधाङ्गुलित्राणे येन गोधातलाख्यं ज्याघातवारणं अङ्गुलित्राणं प्रसिद्धं चर्ममयम् ॥ ८ ॥ काञ्चनमिति तूणकार्मुककवचानां तत्प्रभाजालस्यार्जुनस्य च क्रमादर्केन्द्रायुधतडित्संध्यातोयदैरुपमा ॥ ९ ॥ समुत्पिञ्जलकः उत्कुल्लता । प्रमुदिते रङ्गे इति वाक्यशेषात् । अन्ये कलकलशब्दो व्याकुलत्वम् चेत्याहुः ॥ १० ॥ अस्रैः प्रेमाश्रुभिः ॥ १३ ॥ सुकुमारम् पूर्णघटकुक्कुटाण्डादीनि लक्ष्याणि अविचाल्य अविध्यत् । सूक्ष्मं गुञ्जादिलक्ष्यम् गुरुं घनावयवं च सोऽविध्यत् ॥ २२ ॥ गव्ये गोसंबन्धिनि ॥ २४ ॥

पञ्चभिर्भ्रातृभिः पार्थैर्द्रोणः परिवृतो बभौ ।
पञ्चतारेण संयुक्तः सावित्रेणैव चन्द्रमाः ॥ ३०
अश्वत्थाम्ना च सहितं भ्रातॄणां शतमूर्जितम् ।
दुर्योधनममित्रघ्नमुत्थितं पर्यवारयत् ॥ ३१
स तैस्तदा भ्रातृभिरुद्यतायुधै-
र्गदाग्रपाणिः समवस्थितैर्वृतः ।
बभौ यथा दानवसंक्षये पुरा
पुरंदरो देवगणैः समावृतः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि अस्त्रदर्शने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

## १३६

वैशंपायन उवाच ।
दत्तेऽवकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
विवेश रङ्गं विस्तीर्णं कर्णः परपुरंजयः ॥ १
सहजं कवचं बिभ्रत्कुण्डलोद्योतिताननः ।
स धनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः ॥ २
कन्यागर्भः पृथुयशाः पृथायाः पृथुलोचनः ।
तीक्ष्णांशोर्भास्करस्यांशः कर्णोऽरिगणसूदनः ॥ ३
सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्यपराक्रमः ।
दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपमः ॥ ४
प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा ।
असंख्येयगुणः श्रीमान्भास्करस्यात्मसंभवः ॥ ५
स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम् ।
प्रणामं द्रोणकृपयोर्नात्यादृतमिवाकरोत् ॥ ६
स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः ।
कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ७
सोऽब्रवीन्मेघगम्भीरस्वरेण वदतां वरः ।
भ्राता भ्रातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासनिम् ॥ ८
पार्थ यत्ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः ।
करिष्ये पश्यतां नृणामात्मना विस्मयंगमः ॥ ९
असमाप्ते ततस्तस्य वचने वदतां वरः ।
यन्त्रोत्क्षिप्त इवोत्तस्थौ क्षिप्रं वै सर्वतो जनः १०
प्रीतिश्च मनुजव्याघ्र दुर्योधनमुपाविशत् ।
ह्रीश्च क्रोधश्च बीभत्सुं क्षणेनान्वाविवेश ह ॥ ११
ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा ।
यत्कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ॥ १२
अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत ।
कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत् ॥ १३

दुर्योधन उवाच ।
स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद ।
अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम् ॥ १४
कर्ण उवाच ।
कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे ।
द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १५
दुर्योधन उवाच ।
भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद्भव ।
दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिंदम ॥ १६
वैशंपायन उवाच ।
ततः क्षिप्तमिवात्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत ।
कर्णं भ्रातृसमूहस्य मध्ये चलमिव स्थितम् ॥ १७
अर्जुन उवाच ।
अनाहूतोपसृष्टानामनाहूतोपजल्पिनाम् ।
ये लोकास्तान्हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे १८
कर्ण उवाच ।
रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्गुन ।
वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥ १९
किं क्षेपैर्दुर्बलायासैः शरैः कथय भारत ।
गुरोः समक्षं यावत्ते हराम्यद्य शिरः शरैः ॥ २०
वैशंपायन उवाच ।
ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरंजयः ।
भ्रातृभिस्त्वरयाश्लिष्टो रणायोपजगाम तम् २१
ततो दुर्योधनेनापि सभ्रात्रा समरोद्यतः ।
परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ २२
ततः सविद्युत्स्तनितैः सेन्द्रायुधपुरोगमैः ।
आवृतं गगनं मेघैर्बलाकापङ्क्तिहासिभिः ॥ २३

---

सावित्रेण हस्तनक्षत्रेण ॥ ३० ॥ गदाग्रं आलम्बनं यस्य तादृशः पाणिर्यस्य स गदाग्रपाणिः । गदामात्रसहाय इत्यर्थः । अग्रम् पुरस्तादुपरीत्युपक्रम्य आलम्बने समूहेचेति मेदिनी ॥ ३२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

१३६

दत्ते इति ॥ १ ॥

ततः स्नेहाद्धरिहयं दृष्ट्वा रङ्गावलोकिनम् ।
भास्करोऽप्यनयन्नाशं समीपोपगतान्घनान् ॥ २४
मेघच्छायोपगूढस्तु ततोऽदृश्यत फाल्गुनः ।
सूर्यातपपरिक्षिप्तः कर्णोऽपि समदृश्यत ॥ २५
धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः ।
भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन् ॥
द्विधा रङ्गः समभवत्स्त्रीणां द्वैधमजायत ।
कुन्तिभोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगाम ह ॥ २७
तां तथा मोहमापन्नां विदुरः सर्वधर्मवित् ।
कुन्तीमाश्वासयामास प्रेष्याभिश्चन्दनोदकैः ॥ २८
ततः प्रत्यागतप्राणा तावुभौ परिदंशितौ ।
पुत्रौ दृष्ट्वा सुसंभ्रान्ता नान्वपद्यत किंचन ॥ २९
तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित् ॥ ३०
अयं पृथायास्तनयः कनीयान्पाण्डुनन्दनः ।
कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति ॥ ३१
त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् ।
कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणम् । ३२
ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा न वा ।
वृथाकुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः ॥ ३३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम् ।
बभौ वर्षाम्बुविक्लिन्नं पद्ममागलितं यथा ॥ ३४

दुर्योधन उवाच ।

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये ।
सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥ ३५
यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति ।
तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते ॥ ३६

वैशंपायन उवाच ।

ततस्तस्मिन्क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः ।
काञ्चनैः काञ्चने पीठे मन्त्रविद्भिर्महारथः ॥ ३७
अभिषिक्तोऽङ्गराज्ये स श्रिया युक्तो महाबलः ।
सच्छत्रवालव्यजनो जयशब्दोत्तरेण च ॥ ३८
उवाच कौरवं राजन्वचनं स वृषस्तदा ।
अस्य राज्यप्रदानस्य सदृशं किं ददानि ते ॥ ३९
प्रब्रूहि राजशार्दूल कर्ता ह्यस्मि तथा नृप ।
अत्यन्तं सख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोधनः ४०
एवमुक्तस्ततः कर्णस्तथेति प्रत्युवाच तम् ।
हर्षाच्चोभौ समाश्लिष्य परां मुदमवापतुः ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कर्णाभिषेके षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

## १३७

वैशंपायन उवाच ।

ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः ।
विवेशाधिरथो रङ्गं *यष्टिप्राणो ह्वयन्निव ॥ १
तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरवयन्त्रितः ।
कर्णोऽभिषेकार्द्रशिराः शिरसा समवन्दत ॥ २
ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससंभ्रमः ।
पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद्रथसारथिः ॥ ३
परिष्वज्य च तस्याथ मूर्धानं स्नेहविक्लवः ।
अङ्गराज्याभिषेकार्द्रमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥ ४
तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति संचिन्त्य पाण्डवः ।
भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥ ५
न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम् ।
कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥ ६
अङ्गराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम ।
श्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥ ७
एवमुक्तस्ततः कर्णः किंचित्प्रस्फुरिताधरः ।
गगनस्थं विनिःश्वस्य दिवाकरमुदैक्षत ॥ ८
ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः ।
भ्रातृपद्मवनात्तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः ॥ ९

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

१३७

तत इति ॥ १ ॥ यष्टिर्वेणुदण्ड एव प्राणः शक्तिर्यस्य सः ॥

सोऽब्रवीद्भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितम् ।
वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥ १०
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ।
शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ११
सलिलादुत्थितो वह्निर्येन व्याप्तं चराचरम् ।
दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम् ॥ १२
आग्नेयः कृत्तिकापुत्रो रौद्रो गाङ्गेय इत्यपि ।
श्रूयते भगवान्देवः सर्वगुह्यमयो गुहः ॥ १३
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः ।
विश्वामित्रप्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥ १४
आचार्यः कलशाज्जातो द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
गौतमस्यान्ववाये च शरस्तम्बाच्च गौतमः ॥ १५
भवतां च यथा जन्म तदप्यागमितं मया ।
सकुण्डलं सकवचं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ॥ १६
पृथिवीराज्यमर्होऽयं नाङ्गराज्यं नरेश्वरः ।
अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्तिना ॥ १७
यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम् ।
रथमारुह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम् ॥ १८
ततः सर्वस्य रङ्गस्य हाहाकारो महानभूत् ।
साधुवादानुसंबद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत् ॥ १९
ततो दुर्योधनः कर्णमालम्ब्याग्रकरे नृपः ।
दीपिकाग्निकृतालोकस्तस्माद्रङ्गाद्विनिर्ययौ ॥ २०
पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशांपते ।
भीष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् २१
अर्जुनेति जनः कश्चित्कश्चित्कर्णेति भारत ।
कश्चिद्दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥ २२
कुन्त्याश्च प्रत्यभिज्ञाय दिव्यलक्षणसूचितम् ।
पुत्रमङ्गेश्वरं स्नेहाच्छन्ना प्रीतिरजायत ॥ २३
दुर्योधनस्यापि तदा कर्णमासाद्य पार्थिव ।
भयमर्जुनसंजातं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ २४
स चापि वीरः कृतशस्त्रनिश्रमः
परेण साम्नाऽभ्यवदत्सुयोधनम् ।
युधिष्ठिरस्याप्यभवत्तदा मति-
र्नकर्णतुल्योऽस्ति धनुर्धरः क्षितौ ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि अस्त्रदर्शने सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७

## १३८

वैशंपायन उवाच ।
पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च कृतास्त्रान्प्रसमीक्ष्य सः ।
गुर्वर्थं दक्षिणाकाले प्राप्तेऽमन्यत वै गुरुः ॥ १
ततः शिष्यान्समानीय आचार्योऽर्थमचोदयत् ।
द्रोणः सर्वानशेषेण दक्षिणार्थं महीपते ॥ २
पञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात्परमदक्षिणा ॥ ३
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः ।
आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः ॥ ४
ततोऽभिजग्मुः पञ्चालान्निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः ।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः ॥ ५
दुर्योधनश्च कर्णश्च युयुत्सुश्च महाबलः ।
दुःशासनो विकर्णश्च जलसंधः सुलोचनः ॥ ६
एते चान्ये च बहवः कुमारा बहुविक्रमाः ।
अहं पूर्वमहंपूर्वमित्येवं क्षत्रियर्षभाः ॥ ७
ततो वररथारूढाः कुमाराः सादिभिः सह ।
प्रविश्य नगरं सर्वे राजमार्गमुपाययुः ॥ ८
तस्मिन्काले तु पाञ्चालः श्रुत्वा दृष्ट्वा महद्बलम् ।
भ्रातृभिः सहितो राजंस्त्वरया निर्ययौ गृहात् ९
ततस्तु कृतसन्नाहो यज्ञसेनो महीधरः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तः प्रणेदुः सर्व एव ते ॥ १०

---

यस्य येन न क्षान्तं न सोढम् सोऽस्मत्समक्षं कार्मुकं पादेन स्पृष्ट्वा अस्मद्वध्यतां वा यातु अस्मान्वा हंतु इति क्षत्रप्रसिद्धां प्रतिज्ञां करोतीत्यर्थः ॥ १८ ॥ स चापि कर्णोऽपि निश्रमः नितरां श्रमः ॥ २५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

१३८

पाण्डवानिति । अमन्यत चिन्तितवान् ॥१॥ अर्थं गुरवे देयं दक्षिणार्थं दक्षिणायै ॥ २ ॥ ततो गृहान्निर्गमादूर्ध्वं मार्गे कृतसन्नाहोभूत् । ते प्रणेदुः यज्ञसेनमालक्ष्येति शेषः ॥१०॥

ततो रथेन शुभ्रेण समासाद्य तु कौरवान् ।
यज्ञसेनः शरान्घोरान्ववर्ष युधि दुर्जयः ॥ ११

वैशंपायन उवाच ।

पूर्वमेव तु संमन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाऽब्रवीत् ।
दर्पोद्रेकात्कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम् ॥ १२
एषां पराक्रमस्यान्ते वयं कुर्याम साहसम् ।
एतैरशक्यः पाञ्चालो ग्रहीतुं रणमूर्धनि ॥ १३
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
अर्धक्रोशे तु नगरादतिष्ठद्बहिरेव सः ॥ १४
द्रुपदः कौरवान्दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः ।
शरजालेन महता मोहयन्कौरवीं चमूम् ॥ १५
तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १६
द्रुपदस्य शरा घोरा विचेरुः सर्वतो दिशम् ।
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्च सहस्रशः ॥ १७
प्रावाद्यन्त महाराज पञ्चालानां निवेशने ।
सिंहनादश्च संजज्ञे पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ १८
धनुर्ज्यातलशब्दश्च संस्पृश्य गगनं महान् ।
दुर्योधनो विकर्णश्च सुबाहुर्दीर्घलोचनः ॥ १९
दुःशासनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासः पार्षतो युधि दुर्जयः २०
व्यधमत्तान्यनीकानि तत्क्षणादेव भारत ।
दुर्योधनं विकर्णं च कर्णं चापि महाबलम् ॥ २१
नानानृपसुतान्वीरान्सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत्सर्वं चरन्बाणैरतर्पयत् ॥ २२
ततस्तु नागराः सर्वे मुसलैर्यष्टिभिस्तदा ।
अभ्यवर्षन्त कौरव्यान्वर्षमाणा घना इव ॥ २३
सबालवृद्धास्ते पौराः कौरवानभ्ययुस्तदा ।
श्रुत्वा सुतुमुलं युद्धं कौरवानेव भारत ॥ २४
द्रवन्ति स्म नदन्ति स्म क्रोशन्तः पाण्डवान्प्रति ।
पाण्डवास्तु स्वनं श्रुत्वा आर्तानां लोमहर्षणम् २५
अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा ।
युधिष्ठिरं निवार्याशु मा युध्यस्वेति पाण्डवम् २६
माद्रेयौ चक्ररक्षौ तु फाल्गुनश्च तदाऽकरोत् ।
सेनाग्रगो भीमसेनः सदाभूद्गदया सह ॥ २७
तदा शत्रुस्वनं श्रुत्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथेनानादयन्दिशः ॥ २८
पञ्चालानां ततः सेनामुद्धतार्णवनिःस्वनाम् ।
भीमसेनो महाबाहुर्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ २९
प्रविवेश महासेनां मकरः सागरं यथा ।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमो नागानीकं गदाधरः ॥ ३०
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चातुलः ।
अहनत्कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृत् ॥ ३१
ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तो रुधिरं बहु ।
भीमसेनस्य गदया भिन्नमस्तकपिण्डकाः ॥ ३२
पतन्ति द्विरदा भूमौ वज्रघातादिवाचलाः ।
गजानश्वान्रथांश्चैव पातयामास पाण्डवः ॥ ३३
पदातींश्च रथांश्चैव न्यवधीदर्जुनाग्रजः ।
गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ॥ ३४
चालयन्रथनागांश्च संचचाल वृकोदरः ।

वैशंपायन उवाच ।

भारद्वाजप्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा ॥ ३५
पार्षतं शरजालेन क्षिपन्नागात्स पाण्डवः ।
हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च समन्ततः ॥ ३६
पातयन्समरे राजन्युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ।
ततस्ते हन्यमाना वै पञ्चालाः सृंजयास्तथा ॥३७
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पार्थं संछाद्य सर्वशः ।
सिंहनादं मुखैः कृत्वा समयुध्यन्त पाण्डवम्॥ ३८
तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहाद्भुतदर्शनम् ।
सिंहनादस्वनं श्रुत्वा नामृष्यत्पाकशासनिः ॥३९
ततः किरीटी सहसा पञ्चालान्समभेद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४०
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्संदधानस्य चानिशम् ।
नान्तरं ददृशे किंचित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४१
सिंहनादश्च संजज्ञे साधुशब्देन मिश्रितः ।
ततः पाञ्चालराजस्तु तथा सत्यजिता सह ॥ ४२
त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शम्बरो यथा ।
महता शरवर्षेण पार्थः पाञ्चालमावृणोत् ॥ ४३
ततो हलहलाशब्द आसीत्पाञ्चालके बले ।
जिघृक्षति महासिंहो गजानामिव यूथपम् ॥ ४४
दृष्ट्वा पार्थं तदायान्तं सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
पाञ्चालं वै परिप्रेप्सुर्धनंजयमदुद्रुवत् ॥ ४५
ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ ।
व्यक्षोभयेतां तौ सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥ ४६
ततः सत्यजितं पार्थो दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
विव्याध बलवद्गाढं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४७

---

कुर्यामकुर्वीमहि ॥ १३॥ तुमुलं युद्धमुपस्थितं श्रुत्वा चारमुखात् न तु दृष्ट्वा कौरवाः न इवेति च्छेदः न द्रवन्तीति न अपि तु द्रवन्त्येव पाण्डवान्प्रतीत्यर्थः तथा नदन्तीत्यपि ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

ततः शरशतैः पार्थं पाञ्चालः शीघ्रमार्दयत् ।
पार्थस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः ॥ ४८
वेगं चक्रे महावेगो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ततः सत्यजितश्चापं छित्वा राजानमभ्ययात् ॥
अथान्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
साश्वं ससूतं सरथं पार्थं विव्याध सत्वरः ॥ ५०
स तं न ममृषे पार्थः पाञ्चालेनार्दितो युधि ।
ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ ५१
हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥ ५२
हयेषु विनियुक्तेषु विमुखोऽभवदाहवे ।
स सत्यजितमालोक्य तथा विमुखमाहवे ॥ ५३
वेगेन महता राजन्नभ्यवर्षत पाण्डवम् ।
तदा चक्रे महद्युद्धमर्जुनो जयतां वरः ॥ ५४
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत् ।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ५५
तत उत्सृज्य तच्चापमाददानं शरावरम् ।
खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनादमथाकरोत् ॥ ५६
पाञ्चालस्य रथस्येषामाप्लुत्य सहसाऽपतत् ।
पाञ्चालरथमास्थाय अवित्रस्तो धनंजयः ॥ ५७
विक्षोभ्याम्भोनिधिं पार्थस्तं नागमिव सोऽग्रहीत् ।
ततस्तु सर्वपञ्चाला विद्रवन्ति दिशो दश ॥ ५८
दर्शयन्सर्वसैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः ।
सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम धनंजयः ॥ ५९
आयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कुमाराः सहितास्तदा ।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महात्मनः ॥ ६०

अर्जुन उवाच ।

संबन्धी कुरुवीराणां द्रुपदो राजसत्तमः ।
मा वधीस्तद्बलं भीम गुरुदानं प्रदीयताम् ॥ ६१

वैशंपायन उवाच ।

भीमसेनस्तदा राजन्नर्जुनेन निवारितः ।
अतृप्तो युद्धधर्मेषु न्यवर्तत महाबलः ॥ ६२
ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि ।
उपाजह्रुः सहामात्यं द्रोणाय भरतर्षभ ॥ ६३
भग्नदर्पं हृतधनं तं तथा वशमागतम् ।
स वैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत् ॥ ६४
विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया ।
प्राप्य जीवं रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते ॥ ६५
एवमुक्त्वा प्रहस्यैवं किंचित्स पुनरब्रवीत् ।
मा भैः प्राणभयाद्वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम् ॥ ६६
आश्रमे क्रीडितं यत्तु त्वया बाल्ये मया सह ।
तेन संवर्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ ॥ ६७
प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप ।
वरं ददामि ते राजन्राज्यस्यार्धमवाप्नुहि ॥ ६८
अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हसि ।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव ॥ ६९
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे ॥

द्रुपद उवाच ।

अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन्विक्रान्तेषु महात्मसु ।
प्रीये त्वयाऽहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम्

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः स तं द्रोणो मोक्षयामास भारत ।
सत्कृत्य चैनं प्रीतात्मा राज्यार्धं प्रत्यपादयत् ॥
माकन्दीमथ गङ्गायास्तीरे जनपदायुताम् ।
सोऽध्यावसद्दीनमनाः कांपिल्यं च पुरोत्तमम् ॥
दक्षिणांश्चापि पाञ्चालान्यावच्चर्मण्वती नदी ।
द्रोणेन चैवं द्रुपदः परिभूयाथ पालितः ॥ ७४
क्षात्रेण च बलेनास्य नापश्यत्स पराजयम् ।
हीनं विदित्वा चात्मानं ब्राह्मेण स बलेन तु ॥
पुत्रजन्म परीप्सन्वै पृथिवीमन्वसंचरत् ।
अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत ॥ ७६
एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता ।
युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि द्रुपदशासने अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

---

ताच्छिन्नं धनुःततः उत्सृज्य चापं शरावरं तूणं चाददानं तमुद्दिश्य खड्गमुद्धृत्य सिंहनादमकरोदिति संबन्धः ॥ ५६ ॥ ईषारथस्ययुगचक्रयोः संलग्नं महादारुः ॥ ५७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

## १३९

वैशंपायन उवाच ।

ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव ।
स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १
धृतिस्थैर्यसहिष्णुत्वादानृशंस्यात्तथार्जवात् ।
भृत्यानामनुकम्पार्थं तथैव स्थिरसौहृदात् ॥ २
ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्तसमाधिभिः ॥ ३
असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः ।
संकर्षणादशिक्षद्वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः ॥ ४
समाप्तशिक्षो भीमस्तु द्युमत्सेनसमो बले ।
पराक्रमेण संपन्नो भ्रातॄणामचरद्वशे ॥ ५
प्रगाढदृढमुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा ।
क्षुरनाराचभल्लानां विपाठानां च तत्त्ववित् ॥ ६
ऋजुवक्रविशालानां प्रयोक्ता फाल्गुनोऽभवत् ।
ाघवे सौष्ठवे चैव नान्यः कश्चन विद्यते ॥ ७
भत्सुसदृशो लोके इति द्रोणो व्यवस्थितः ।
तोऽब्रवीद्गुडाकेशं द्रोणः कौरवसंसदि ॥ ८
ास्त्वस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा ।
वेश इति ख्यातस्तस्य शिष्योऽस्मि भारत ९
तीर्थात्तीर्थं गमयितुमहमेतत्समुद्यतः ।
तपसा यन्मया प्राप्तममोघमशनिप्रभम् ॥ १०
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम यद्दहेत्पृथिवीमपि ।
ददता गुरुणा चोक्तं न मनुष्येष्विदं त्वया ॥ ११
भारद्वाज विमोक्तव्यमल्पवीर्येष्वपि प्रभो ।
त्वया प्राप्तमिदं वीर दिव्यं नान्योऽर्हति त्विदम् ॥
समयस्तु त्वया रक्ष्यो मुनिसृष्टो विशांपते ।
आचार्यदक्षिणां देहि ज्ञातिग्रामस्य पश्यतः ॥ १३
ददानीति प्रतिज्ञाते फाल्गुनेनाब्रवीद्गुरुः ।
युद्धेऽहं प्रतियोद्धव्यो युध्यमानस्त्वयाऽनघ ॥ १४
तथेति च प्रतिज्ञाय द्रोणाय कुरुपुङ्गवः ।
उपसंगृह्य चरणौ स प्रायादुत्तरां दिशम् ॥ १५
स्वभावादगमच्छब्दो महीं सागरमेखलाम् ।
अर्जुनस्य समो लोके नास्ति कश्चिद्धनुर्धरः ॥ १६
गदायुद्धेऽसियुद्धे च रथयुद्धे च पाण्डवः ।
पारगश्च धनुर्युद्धे बभूवाथ धनंजयः ॥ १७
नीतिमान्सकलां नीतिं विबुधाधिपतेस्तदा ।
अवाप्य सहदेवोऽपि भ्रातॄणां वव्रृते वशे ॥ १८
द्रोणेनैव विनीतश्च भ्रातॄणां नकुलः प्रियः ।
चित्रयोधी समाख्यातो बभूवातिरथोदितः ॥ १९
त्रिवर्षकृतयज्ञस्तु गन्धर्वाणामुपप्लवे ।
अर्जुनप्रमुखैः पार्थैः सौवीरः समरे हतः ॥ २०
न शशाक वशे कर्तुं यं पाण्डुरपि वीर्यवान् ।
सोऽर्जुनेन वशं नीतो राजासीद्यवनाधिपः ॥ २१
अतीव बलसंपन्नः सदा मानी कुरून्प्रति ।
विपुलो नाम सौवीरः शस्तः पार्थेन धीमता ॥ २२
दत्तामित्र इति ख्यातं संग्रामे कृतनिश्चयम् ।
सुमित्रं नाम सौवीरमर्जुनोऽदमयच्छरैः ॥ २३
भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः ।
अर्जुनः समरे प्राच्यान्सर्वानेकरथोऽजयत् ॥ २४
तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयद्दिशम् ।
धनौघं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनंजयः ॥ २५
एवं सर्वे महात्मानः पाण्डवा मनुजोत्तमाः ।
परराष्ट्राणि निर्जित्य स्वराष्ट्रं ववृधुः पुरा ॥ २६

---

१३९

ततः संवत्सरस्यान्ते इति ॥१॥ धृतिः प्रजाना धारणं स्थैर्यं अचापलं सहिष्णुत्वं तितिक्षा शमाहारद्वन्द्वोपमानृशंस्यं अनैष्ठुर्यं आर्जवमवक्रता एतेभ्यो हेतुभ्यःप्रजानामनुकम्पार्थम् धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रो यौवराज्याय स्थापित इति द्वयोः संबन्धः ॥ २ ॥ अदीर्घेणेति च्छेदः शीलं विनयादिः सदाचारः । वृत्तं शौर्यतेज आदिमत्त्वाविष्करणम् । समाधिः प्रजानां समाधानम् ॥ ३ ॥ क्षुरनाराचौ पार्श्वधारतीक्ष्णाग्रान् । भल्लः वडिशवदुद्धरणकाले अन्त्राण्युद्धरतीति वरः । विपाठो विशालो बृहत्पसुरत्न ॥ ६ ॥ गुडाका निद्रा तस्या ईशमर्जुनं जितनिद्रम् ॥ ८ ॥ तीर्थात्पात्रात्पात्रान्तरं गमयितुम् । संप्रदायाविच्छेदार्थमित्यर्थः ॥१०॥ अल्पवीर्येषु अमानुषेषु त्वया प्राहान्ना मोचयता प्राप्तं प्रागेव ॥ १२ ॥ समयो विद्यालाभादनन्तरं गुरवे दक्षिणादानम् ॥१३॥ उत्तरामुत्कृष्टतराम् दिशमुपदेशं प्रायात् प्राप्तवान् चरणावुपसंगृह्याचार्यात् ब्रह्मशिरोऽस्त्रं लब्धवानित्यर्थः ॥ १५ ॥ विबुधाधिपतेर्देवाचार्याद्द्रोणरूपात् ॥ १८ ॥ विनीतः शिक्षितः अतिरथेषु उदितः ख्यातः ॥ १९ ॥ त्रिवर्षेति । गन्धर्वोपद्रवेऽपि यस्य सौवीरस्य यज्ञो न विप्लुत इत्यभोग्यत्वमुक्तम् ॥ २० ॥ शस्तः हिंसित शसु हिंसायाम् ॥२२॥ ववृधुः वर्धितवन्तः ॥ २६ ॥

ततो बलमतिख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम् । दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु ॥
स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि ॥ २७ ॥

इति श्रीमहा० आदिपर्वणि संभवपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायामूनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३९॥

---

## १४०

वैशंपायन उवाच ।
श्रुत्वा पाण्डुसुतान्वीरान्बलोद्रिक्तान्महौजसः ।
धृतराष्ट्रो महीपालश्चिन्तामगमदातुरः ॥ १
तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थवित्तमम् ।
कणिकं मन्त्रिणां श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ॥ २
धृतराष्ट्र उवाच ।
उत्सक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम ।
तत्र मे निश्चिततमं संधिविग्रहकारणम् ।
कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव ॥ ३
वैशंपायन उवाच ।
स प्रसन्नमनास्तेन परिपृष्टो द्विजोत्तमः ।
उवाच वचनं तीक्ष्णं राजशास्त्रार्थदर्शनम् ॥ ४
शृणु राजन्निदं तत्र प्रोच्यमानं मयानघ ।
न मेऽभ्यसूया कर्तव्या श्रुत्वैतत्कुरुसत्तम ॥ ५
नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात्परेषां विवरानुगः ॥ ६
नित्यमुद्यतदण्डाद्धि भृशमुद्विजते जनः ।
तस्मात्सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत् ॥७
नास्य छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेण परमन्वियात् ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ८
नासम्यक्कृतकारी स्यादुपक्रम्य कदाचन ।
कण्टको ह्यपि दुश्छिन्न आस्रावं जनयेच्चिरम् ॥ ९
वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम् ।
सुविदीर्णं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम् ॥ १०
आपद्यापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत् ।
नावज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथंचन ॥ ११

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

१४०

श्रुत्वेति । उद्रिक्तान् आधिकान् ॥ १ ॥ राजशास्त्रं दण्डनीतिशास्त्रम् ॥ २ ॥ उत्सक्ताः उत्कर्षेण सर्वत्र व्याप्ताः षञ्ज-संगेऽस्य रूपम् । असूये गुणवत्त्वेऽपि दोषवत्त्वेन पश्यामि । तेभ्य इति चतुर्थ्या तेषु कोपादेवं पश्यामि न तु अज्ञानादिति गम्यते । क्रुधद्रुहेति स्मरणात् । पाण्डवैः सह संधिकारणं विग्रहकारणम् वा तयोरन्यतरप्रयोजकं संधिविग्रहकारणम् त्वं ममाचक्ष्व ॥३॥ ब्राह्मणोऽयम् तीक्ष्णमेवोपायम् वदतीति प्रसक्ताभ्यसूया न कार्येत्याह । न मे इति ॥ ५ ॥ भीमसेनदुर्योधनयोरर्जुनकर्णयोश्च वैरस्याचिकित्स्यत्वादसंभावनीयं संधिं त्यक्त्वा विग्रहमेवाश्रित्याह । नित्यमिति । उद्यतो न तु क्षिप्तो दण्डो येन स तथा । अपकृष्टान् भीषयेदेव न तूच्छिन्द्यान्न वा उपेक्षेतेति भावः। समेषु नित्यं विवृतपौरुषः स्यात् । समानं उत्कृष्टं बलं संपाद्य हन्यादिवेत्यर्थः । उत्कृष्टेषु च शत्रुषु अच्छिद्रः स्यात् । स्वस्य न्यूनं कोशबलादिकं ते यथा न जानन्ति तथा स्थेयम् । छिद्रदर्शी दूरामात्यस्वभृतिकूलदेशावस्थितत्वादीनि छिद्राणि तद्दर्शी स्यात् । तथा भूत्वा च तदेव विवरमनुसृत्य शत्रुं हन्यादित्याह । परेषां विवरानुग इति ॥६ ॥ अस्य श्लोकस्याद्यं पादं व्याचष्टे । नित्यमिति ॥ ७ ॥ तस्यैवोत्तरार्धं व्याचष्टे । नास्येति । अङ्गानि सहायसाधनोपायादीनि गूहेत्संवृणुयात् । तथा चैनं अगणयन् शत्रुश्छिद्रे तैरेवाङ्गैः प्रहर्तव्यं इति भावः । आत्मनो विवरं रक्षेत् गूहेत् ॥८ ॥ तथा स्वयं सम्यक् कार्त्स्न्येन कृतं निष्पादितं कार्यं तत्करणशीलः स्यात् । शत्रुशेषं नावशेषयेदित्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । कण्टकः इति । दुश्छिन्नः अर्धच्छिन्नःआस्रावं व्रणम्॥ ९ ॥ उपसंहरति वधमिति कथं वधः कर्तव्य इत्याह सुविदीर्णमिति । सुविक्रान्तमपि शत्रुं काले आपदि आपन्नम् आलम्भ्य सुविदीर्णं विनष्टं कुर्वीत । तथा सुयुद्धमपि शत्रुं आपदि काले सुपलायितं कुर्वीत । यस्य च भावेन भावलक्षणमिति सप्तमी । आपदा शत्रोर्विदारणकालो लक्षणीय इत्यर्थः । आपदि आपदीति द्वित्वम् यदा शत्रोरापत्तदा तदेतत्कर्तव्यं न तु अनुबन्धादिकं सौभ्रात्रादिकं वा विचारयेत् । सार्धश्लोकः ॥ १० ॥ मध्यमं प्रत्येवमुक्त्वाऽधमोऽपि नोपेक्षणीय इत्याह । नावज्ञेय इति ॥११ ॥

अल्पोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात् ।
अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि चाश्रयेत् १२
कुर्यात्तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम् ।
सान्त्वादिभिरुपायैस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम् १३
दया न तस्मिन्कर्तव्या शरणागत इत्युत ।
निरुद्विग्नो हि भवति न हताज्जायते भयम् ॥ १४
हन्यादमित्रं दानेन तथा पूर्वापकारिणम् ।
हन्यात्त्रीन्पञ्च सप्तेति परपक्षस्य सर्वशः ॥ १५
मूलमेवादितश्छिन्द्यात्परपक्षस्य नित्यशः
ततः सहायांस्तत्पक्षान्सर्वांश्च तदनन्तरम् ॥ १६
छिन्नमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीविनो हताः ।
कथं नु शाखास्तिष्ठेरंश्छिन्नमूले वनस्पतौ ॥ १७
एकाग्रः स्यादविवृतो नित्यं विवरदर्शकः ।
राजन्नित्यं सपत्नेषु नित्योद्विग्नः समाचरेत् ॥ १८
अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः ।
लोकान्विश्वासयित्वैव ततो लुम्पेद्यथा वृकः॥१९
अङ्कुशं शौचमित्याहुरर्थानामुपधारणे ।
आनाम्य फलितां शाखां पक्वं पक्वं प्रशातयेत् २०
फलार्थोऽयं समारम्भो लोके पुंसां विपश्चिताम् ।
वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः ॥ २१
ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद्घटमिवाश्मनि ।
अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन् ॥ २२
कृपा न तस्मिन्कर्तव्या हन्यादेवापकारिणम् ।
हन्यादमित्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः ॥ २३
तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशातयेत् ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

कथं सान्त्वेन दानेन भेदैर्दण्डेन वा पुनः ॥ २४
अमित्रः शक्यते हन्तुं तन्मे ब्रूहि यथातथम् ।

कणिक उवाच ।

शृणु राजन्यथावृत्तं वने निवसतः पुरा ॥ २५
जम्बुकस्य महाराज नीतिशास्त्रार्थदर्शिनः ।
अथ कश्चित्कृतप्रज्ञः शृगालः स्वार्थपण्डितः ॥ २६
सखिभिर्न्यवसत्सार्धं व्याघ्राखुवृकबभ्रुभिः ।
तेऽपश्यन्विपिने तस्मिन्बलिनं मृगयूथपम् ॥ २७
अशक्ता ग्रहणे तस्य ततो मन्त्रममन्त्रयन् ।

जम्बुक उवाच ।

असकृद्यतितो ह्येष हन्तुं व्याघ्र वने त्वया ॥ २८
युवा वै जवसंपन्नो बुद्धिशाली न शक्यते ।
मूषिकोऽस्य शयानस्य चरणौ भक्षयत्वयम् ॥२९
अथैनं भक्षितैः पादैर्व्याघ्रो गृह्णातु वै ततः ।
ततो वै भक्षयिष्यामः सर्वे मुदितमानसाः ॥ ३०
जम्बुकस्य तु तद्वाक्यं तथा चक्रुः समाहिताः ।
मूषिका भक्षितैः पादैर्मृगं व्याघ्रोऽवधीत्तदा ॥३१

---

आश्रयो दुर्गादि इन्धनं अग्नेः तस्य संश्रयात् बलात् । आश्रयाभावे तु स किं कुर्यात्तत्राह । अन्ध इति । स हि अन्धवेलाया रात्रौ ।'अन्ध तु तिमिरे क्लीबे' इति मेदिनी । सामर्थ्यप्रतिघातसमये अन्ध हीनोपस्करणःस्यात् भवेत् । शस्त्रं त्यक्त्वा शत्रु शरणमेनीत्यर्थः । बाधिर्यमपि चाश्रयेत् । तदानीं धिकृतोपि अश्रुतवदेव तत्कृत्यं क्षमेत् ॥ १२ ॥ अयं शत्रुः चाप तृणमय तृणवन्निष्प्रयोजन कुर्यात् । क्षात्रं धर्मं त्यक्त्वा शत्रुगृहे भिक्षाभुगपि स्यादित्यर्थः । ननु सिद्धस्तर्हि पुरुषार्थ इति चेत्तत्राह । शयीत मृगशायिकाम् । मृगहन्तु शय्या शयीत शेते । यथा व्याधो मृगान्विश्वासयितुं मृषा निद्राति निश्वस्तेषु च तेषु प्रहरति एव स हन्तुमेवाकारं गोपयतीत्यर्थः । उप सहरति । सान्त्वेति तु तस्मात् । तमेवं कपटेन वशे स्थितं स्वयमपि सान्त्वादिना विश्वास्य हन्यादेवेत्यर्थः ॥१३ । बलाधिक्यमुद्दिश्याह । हन्यादिति । अमित्र सहजशत्रु दायाद दानेन तत्परिचारकान्वशीकृत्य विषाद्युपायैर्हन्यात्।तथा संप्रति दासभूतमपि पूर्वापकारिणं हन्यादेवेत्युक्तं भवति।अत्रोपायमाह हन्यादिति । परपक्षस्य बलवान् ऐश्वर्यमन्त्रोत्साहान् ऐश्वर्यं तदीयदुर्गाद्याक्रमणेन । मन्त्रं चारैः । उत्साहमाप्तद्वारा तेजो वधेन । तथा पञ्चैते त्वया यौवराज्यार्हशनाया इति भाव । तथा पञ्च 'अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि कोशो दण्डश्च पञ्चम' इति प्रकृतिपञ्चकहनने शत्रोरैश्वर्यभ्रंशो भवतीत्यर्थ । दण्डोत्र सैन्यम् । 'साम्ना दानेन भेदेन दण्डेनोद्बन्धनेन वा । विषेण वन्हिना वापि प्रकृती पञ्च निर्हरेत्' इत्याह सप्तेति । उद्बन्धनं प्रमत्तस्य पाशेन मारण । यद्वा उद्बन्धनादिना मूलं शत्रुमेव नाशयेत् ॥ १५ ॥ अन्नपानताम्बूलादिद्वारा तद्भृत्यान् भेदयित्वा विषादिना नाशयेदिति मित्रैरित्याह । मूलमेवेति । ॥ १६ ॥ एकाग्र एक शत्रुरेव अग्रे दृष्टिगोचरो यस्य तादृश स्यात् । अन्यत्र मनो न दद्यात् । अविवृतो गुप्ताङ्ग । विवरदर्शक । परच्छिद्रं द्रष्टुमित्यर्थ । नित्योद्विग्न विश्वास कृत्वा क्वचिदपि निश्चितो न भवेदित्यर्थ । दर्शक इति ' क्रियाया क्रियार्थाया ण्वुल् ' ॥ १८ ॥ दम्भादिनापि शत्रुर्जेय इत्याह । अग्न्याधानेनेति ॥ १९ ॥ अङ्कुशं अङ्कुशवत्परचित्ताकर्षणम् । शौचमग्न्याधानादि । अत्र दृष्टान्त । आनाम्येति । आनामयित्वा॥२०॥ एतत्प्रयोजनमाह । फलार्थ इति । फल शत्रुवध प्रसिद्धं च सेवया निर्दयत्वेन शत्रु हन्यादित्याह । वहेदित्यादिना ॥ २१ ॥ बभ्रुर्नकुल मृगयूथप महान्त हरिणम् ॥ २७ ॥ मूषिकेण आ इपद्भक्षितैः ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वैवाचेष्टमानं तु भूमौ मृगकलेवरम् ।
स्नात्वागच्छत भद्रं वो रक्षामीत्याह जम्बुकः ॥३२
शृगालवचनात्तेऽपि गताः सर्वे नदीं ततः ।
स चिन्तापरमो भूत्वा तस्थौ तत्रैव जम्बुकः ३३
अथाजगाम पूर्वं तु ज्ञात्वा व्याघ्रो महाबलः ।
ददर्श जम्बुकं चैव चिन्ताकुलितमानसम् ॥ ३४

व्याघ्र उवाच ।

किं शोचसि महाप्राज्ञ त्वं नो बुद्धिमतां वरः ।
अशित्वा पिशितान्यद्य विहरिष्यामहे वयम् ॥३५

जम्बुक उवाच ।

शृणु मे त्वं महाबाहो यद्वाक्यं मूषिकोऽब्रवीत् ।
धिग्बलं मृगराजस्य मयाद्यायं मृगो हतः ॥ ३६
मद्बाहुबलमाश्रित्य तृप्तिमद्य गमिष्यति ।
गर्जमानस्य तस्यैवमतो भक्ष्यं न रोचये ॥ ३७

व्याघ्र उवाच ।

ब्रवीति यदि स ह्येवं काले ह्यस्मिन्प्रबोधितः ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य हनिष्येऽहं वनेचरान् ॥ ३८
खादिष्ये तत्र मांसानि इत्युक्त्वा प्रस्थितो वनम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु मूषिकोऽप्याजगाम ह ॥३९
तमागतमभिप्रेत्य शृगालोऽप्यब्रवीद्वचः ।

जम्बुक उवाच ।

शृणु मूषिक भद्रं ते नकुलो यदिहाब्रवीत् ॥ ४०
मृगमांसं न खादेयं गरमेतन्न रोचते ।
मूषिकं भक्षयिष्यामि तद्भवाननुमन्यताम् ॥ ४१
तच्छ्रुत्वा मूषिको वाक्यं संत्रस्तः प्रगतो बिलम् ।
ततः स्नात्वा स वै तत्र आजगाम वृको नृप ॥४२
तमागतमिदं वाक्यमब्रवीज्जम्बुकस्तदा ।
मृगराजो हि संक्रुद्धो न ते साधु भविष्यति ४३
सकलत्रस्त्विहायाति कुरुष्व यदनन्तरम् ।
एवं संचोदितस्तेन जम्बुकेन तदा वृकः ॥ ४४
ततोऽवलुम्पनं कृत्वा प्रयातः पिशिताशनः ।
एतस्मिन्नेव काले तु नकुलोऽप्याजगाम ह ॥ ४५
तमुवाच महाराज नकुलं जम्बुको वने ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य निर्जितास्तेऽन्यतो गताः ४६
मम दत्वा नियुद्धं त्वं भुङ्क्ष्व मांसं यथेप्सितम् ।

नकुल उवाच ।

मृगराजो वृकश्चैव बुद्धिमानपि मूषिकः ॥ ४७
निर्जिता यत्त्वया वीरास्तस्माद्वीरतरो भवान् ।
न त्वयाप्युत्सहे योद्धुमित्युक्त्वा सोऽप्युपागमत्

कणिक उवाच ।

एवं तेषु प्रयातेषु जम्बुको हृष्टमानसः ।
खादति स्म तदा मांसमेकस्मिन्मन्त्रनिश्चयात् ४९
एवं समाचरन्नित्यं सुखमेधेत भूपतिः ।
भयेन भेदयेद्भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा ॥ ५०
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा ।
एवं ते कथितं राजन् शृणु चाप्यपरं तथा ॥ ५१
पुत्रः सखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः ।
रिपुस्थानेषु वर्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता ॥ ५२
शपथेनाप्यरिं हन्यादर्थदानेन वा पुनः ।
विषेण मायया वापि नोपेक्षेत कथंचन ।
उभौ चेत्संशयोपेतौ श्रद्धावांस्तत्र वर्द्धते ॥ ५३
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ॥ ५४
क्रुद्धोऽप्यक्रुद्धरूपः स्यात्स्मितपूर्वाभिभाषिता ।
न चाप्यन्यमपध्वंसेत्कदाचित्कोपसंयुतः ॥ ५५
प्रहरिष्यन्प्रियं ब्रूयात्प्रहरन्नपि भारत ।
प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च ॥ ५६
आश्वासयेच्चापि परं सान्त्वधर्मार्थवृत्तिभिः ।
अथास्य प्रहरेत्काले यदा विचलिते पथि ॥ ५७
अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्य तिष्ठतः ।
स हि प्रच्छाद्यते दोषः शैलो मेघैरिवासितैः ॥५८
यः स्यादनुप्राप्तवधस्तस्यागारं प्रदीपयेत् ।
अधनान्नास्तिकांश्चौरान्विषये स्वे न वासयेत् ॥

मृगराजस्य व्याघ्रस्य ॥३६॥ गरं गरवद्दुष्यं व्याघ्रामिषत्वात् ॥४१॥ अवलुम्पनं गात्रसंकोचनं वर्त्मान्तरेण गमनमित्यन्ये ॥४५॥ भयेनेति । अत्र व्याघ्रस्य साम्ना आखुवृकयोर्व्याघ्राद्भयदर्शनेन नकुलस्य ओजसा स्वसामर्थ्येन च बुद्धिभेदः कृतः ॥ ५० ॥ हन्तव्या इत्यत्र कर्तव्या इति पाठेऽपि च्छेत्तव्या इत्येवार्थः । कृहिंसायामित्यस्य रूपम् । भूतिवर्धना इति पाठे भूतिच्छेदनाः ॥ ५२ ॥ उभौ जिगीषू तुल्योपायतया संशयापन्नौ चेत् श्रद्धावान् यो मदुक्तादरवान् स वर्धते । श्रद्धा दरे च काङ्क्षायाम् इति मेदिनी ॥५३ ॥ ननु ज्येष्ठो युधिष्ठिरः कथं हन्तव्य इत्याशंक्याह । गुरोरिति । अवलिप्तस्य भ्रातृबलेन गर्वितस्य । धृतराष्ट्रस्य राज्यं पाण्डौ न्यासभूतमित्यजानतो राज्यलब्धस्य शासनं कार्यमेव ॥ ५४ ॥ अपध्वंसेत् कुत्सयेत् ॥५५ ॥ अस्य एनं विचलिते विचलने सति ॥ ५७ ॥ अनुप्राप्तवधः शीघ्रं हन्तुमिष्टः चौरादिः । अधना दरिद्राः सन्तो नास्तिकाः परलोकश्रद्धारहितास्तान् चौरांश्च । एवं धर्मे पक्षपातं प्रदर्शयेदित्याशयः ॥ ५९ ॥

प्रत्युत्थानासनाद्येन संप्रदानेन केनचित् ।
प्रतिविस्रब्धघाती स्यात्तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नकः ॥ ६०
अशङ्कितेभ्यः शङ्केत शङ्कितेभ्यश्च सर्वशः ।
अशङ्क्याद्भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति ॥ ६१
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ६२
चारः सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य वा ।
पाषण्डांस्तापसादींश्च परराष्ट्रेषु योजयेत् ॥ ६३
उद्यानेषु विहारेषु देवतायतनेषु च ।
पानागारेषु रथ्यासु सर्वतीर्थेषु चाप्यथ ॥ ६४
चत्वरेषु च कूपेषु पर्वतेषु वनेषु च ।
समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत् ॥ ६५
वाचा भृशं विनीतः स्याद्धृदयेन तथा क्षुरः ।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्सृष्टो रौद्रेण कर्मणा ६६
अञ्जलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम् ।
आशाकरणमित्येवं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ६७
सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान्स्याद्दुरारुहः ।
आमः स्यात्पक्वसंकाशो न च जीर्येत कर्हिचित् ॥

त्रिवर्गे त्रिविधा पीडा ह्यनुबन्धस्तथैव च ।
अनुबन्धाः शुभा ज्ञेयाः पीडास्तु परिवर्जयेत् ॥ ६९
धर्मं विचरतः पीडा सापि द्वाभ्यां नियच्छति ।
अर्थं चाप्यर्थलुब्धस्य कामं चातिप्रवर्तिनः ॥ ७०
अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनसूयिता ।
अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह ॥ ७१
कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च ।
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ७२
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥ ७३
यस्य बुद्धिः परिभवेत्तमतीतेन सान्त्वयेत् ।
अनागतेन दुर्बुद्धिं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम् ॥ ७४
योऽरिणा सह संधाय शयीत कृतकृत्यवत् ।
स वृक्षाग्रे यथासुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥ ७५
मन्त्रसंवरणे यत्नः सदा कार्योऽनसूयता ।
आकारमभिरक्षेत चारेणाप्यनुपालितः ॥ ७६
नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम् ।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥

---

प्रतिविस्रब्धघाती अत्यन्तविस्रब्धहननशील तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नः गाढ प्रहरेद्यथा पुनर्नोन्मज्जेदित्यर्थ ॥६०॥ योऽन्यं हन्तुमिच्छति तमन्योपि जिघांसतीति स्वयमशङ्कितेभ्य इति ॥६१॥ सर्वत्र शङ्कावत किमपि कार्यं न सिध्यतीत्याशंक्याह नेति ॥६२॥ सुविहित सम्यक् परीक्षित ॥६३॥ उद्यानादिस्थानेषु ये समवाया जनसमूहास्तेषु तीर्थेषु । ' मन्त्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः । पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोन्तर्वेशिकस्तथा ॥ कारागाराधिकारी च द्रव्यसंचयकृत्तथा । कृत्याकृत्येषु चार्थाना नवमो विनियोजकः ॥ प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्यनिर्माणकृत्तथा। धर्माध्यक्ष. सभाध्यक्षो दण्डपालस्त्रिपञ्चम । षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तपालक । अटवी पालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु ' ॥ इति नीतिशास्त्रोक्तेषु । विचारयेत् चारद्वारा शत्रुम् । चिकीर्षितुमिति शेष ॥ ६४ ॥ आशाकरणं तुभ्यं धनादिकं दास्ये इत्युक्त्या प्रलोभनं भूतिमिच्छता । भूतिकामस्यैवैतदुचित न परलोककामस्येत्यर्थ ॥ ६७ ॥ अस्मिन्नर्थे नीतिशास्त्रीयं वृक्षरूपकश्लोकमाह । सुपुष्पित इति । पुष्पित शब्देनैव फलाशा दर्शयेत् न तु फलम् । दर्शितस्य प्राप्तावपि विघ्नं योजयेत् । प्राप्तमप्यप्राप्तवत् । आम पक्वो भूत्वा तिष्ठेत् । न च जीर्येत धनव्ययेन शत्रून्पोषयित्वा हीयेत ॥ ६८ ॥ एवं नानोपायैः शत्रूणां दण्डमुक्त्वा नीतिमाह । त्रिवर्ग इति । त्रिवर्गे धर्मार्थकामेषु त्रिविधा त्रिप्रकारा पीडा । एक एकैकेन प्रकारेण पीड्यत इत्यर्थ. । तथा अनुपश्चाद्बध्यत इत्यनुबन्ध फल तदपि तथैव त्रिविधं शुभ पीडास्तु न शुभा । त्रिवर्गं परस्परापीडया सेवेतेत्यर्थ ॥ ६९ ॥ तत्र पीडामाह । धर्ममिति । धर्ममत्यन्तं विचरत' पुंसो द्वाभ्यामर्थकामाभ्या धनव्ययब्रह्मचर्यापरिक्षिप्ताभ्या पीडा चित्तवैकल्यं भवति । सापि पुंस पीडाधर्मं नियच्छति निगृह्णाति । कर्तुः पीडैव धर्मपीडेत्यर्थ । एवमर्थं चाप्यर्थलुब्धस्य कामं चातिप्रवर्तिन इति व्याख्येयम् लुब्धस्यार्थं विचरत पुंसो द्वाभ्या कामधर्माभ्या पीडिताभ्या पीडा भवति । सा पीडार्थं नियच्छति । एवमतिप्रवर्तिन कामं विचरत पुंसो द्वाभ्या धर्मार्थाभ्या पीडा भवति । सापि पीडा कामं नियच्छतीति योज्यम् । अर्थस्य कामस्येति पाठे कर्मणि षष्ठ्यौ ॥ ७० ॥ समर्थो धर्ममाचरेदित्यनेन पूर्वोक्तं सर्वं कौटिल्यादिकं आपद्येव कार्यं नान्यथेत्युक्तम् ॥ ७२ ॥ संशयं प्राणसंकटम् ॥ ७३ ॥ परिभवेत् शोकेन तमतीतेन नलरामाद्याख्यानेन । अनागतेन । कालान्तरे तव श्रेयो भविष्यतीत्याशाप्रदर्शनेन । पण्डितं प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानेन धनादिना सान्त्वयेत् ॥ ७४ ॥ संधिपक्षं निन्दति योऽरिणेति ॥ ७५ ॥ मन्त्रेति । परचारेभ्यो मन्त्रस्य गूहनम् । आकारस्य क्रोधाद्यावेशस्य च गूहनं कर्तव्यम् । स्वयं चचार प्रधान स्यादित्यर्थ ॥ ७६ ॥ दण्डस्यैव प्राधान्यमाह नाच्छित्वेति ॥ ७७ ॥

कर्शितं व्याधितं क्लिन्नमपानीयमघासकम् ।
परिविश्वस्तमन्दं च प्रहर्तव्यमरेर्बलम् ॥ ७८
नार्थिकोऽर्थिनमभ्येति कृतार्थे नास्ति संगतम् ।
तस्मात्सर्वाणि साध्यानि सावशेषाणि कारयेत् ॥ ७९
संग्रहे विग्रहे चैव यत्नः कार्योऽनसूयता ।
उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ ८०
नास्य कृत्यानि बुध्येरन्मित्राणि रिपवस्तथा ।
आरब्धान्येव पश्येरन्सुपर्यवसितान्यपि ॥ ८१
भीतवत्संविधातव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥ ८२
दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः ।
समृत्युमुपगृह्णीयाद्गर्भमश्वतरी यथा ॥ ८३
अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरः स्थितम् ।
न तु बुद्धिक्षयात्किंचिदतिक्रामेत्प्रयोजनम् ॥ ८४
उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता ।
विभज्य देशकालौ च दैवं धर्मादयस्त्रयः ।
नैःश्रेयसौ तु तौ ज्ञेयौ देशकालाविति स्थितिः ॥ ८५
तालवत्कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः ।
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान् ॥८६
अग्निं स्तोकमिवात्मानं संधुक्षयति यो नरः ।
स वर्धमानो ग्रसते महान्तमपि संचयम् ॥ ८७
आशां कालवतीं कुर्यात्कालं विघ्नेन योजयेत् ।
विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं चाऽपि हेतुतः ॥८८
क्षुरो भूत्वा हरेत्प्राणान्निशितः कालसाधनः ।
प्रतिच्छन्नो लोमहारी छिंदतां परिकर्तनः ॥ ८९
पाण्डवेषु यथान्यायमन्येषु च कुरूद्वह ।
वर्तमानो न मज्जेस्त्वं तथा कृत्यं समाचर ॥ ९०
सर्वकल्याणसंपन्नो विशिष्ट इति निश्चयः ।
तस्मात्त्वं पाण्डुपुत्रेभ्यो रक्षात्मानं नराधिप ॥ ९१
भ्रातृव्या बलिनो यस्मात्पाण्डुपुत्रा नराधिप ।
पश्चात्तापो यथा न स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा संप्रतस्थे कणिकः स्वगृहं ततः ।
धृतराष्ट्रोऽपि कौरव्यः शोकार्तः समपद्यत ॥ ९२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि संभवपर्वणि कणिकवाक्ये चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

समाप्तं संभवपर्व ।

---

## १४१

## जतुगृहपर्व ।

वैशंपायन उवाच ।

ततः सुबलपुत्रस्तु राजा दुर्योधनश्च ह । दुःशासनश्च कर्णश्च दुष्टं मन्त्रममन्त्रयन् ॥ १
ते कौरव्यमनुज्ञाप्य धृतराष्ट्रं नराधिपम् । दहने तु सपुत्रायाः कुन्त्या बुद्धिमकारयन् ॥ २

---

विग्रहकालमाह कर्शितमिति । अघासकमनाहारम् ॥७८॥ नार्थिक इति । संगतं सख्यम् । कार्येषु सावशेषेषु कार्थिणः स्ववशे तिष्ठन्ति । अन्यथा न गणयन्तीत्यर्थः ॥ ७९ ॥ संग्रहे सहायादीनां विग्रहे रिपुभिः सार्धम् ॥ ८० ॥ संविधातव्यं प्रतिकर्तव्यम् ॥ ८२ ॥ उपनतं वशीकृतं अनुगृह्णाति धनमानादिना अश्वतरी अश्वगर्दभसंकीर्णजातिः ॥ ८३ ॥ अनागतं कार्यं बुध्येत बुद्ध्वा च तदनुगुणं कुर्यादित्यर्थः । पुरःस्थितं वर्तमानं बुद्धिक्षयादनवधारणात् ॥ ८४ ॥ देशाद्यनुगुण उत्साहोऽपि कर्तव्यो न त्वलसो भवेत् । दैवं प्राक्तनं कर्म ये धर्मादयस्त्रयस्तांश्च विभज्य तेषां मध्ये नैःश्रेयसौ श्रेयो हेतू इति स्थितिर्निश्चयः ॥ ८५ ॥ बालः अल्पोपि ॥ ८६॥ आत्मानं संधुक्षयति सहायादिना वर्धयति । संचयमिन्धनानां पक्षे शत्रूणाम् ॥८७॥ आशां कालवतीं दद्यादित्यतः । प्राग्दक्षिणात्या "आदातव्यं न दातव्यमाशामेव प्रदापयेत्" इत्यर्धं पठन्ति । कालवतीं दीर्घावधिमतीं निमित्ततो हेतुतः तमपि हेत्वन्तरेण ॥ ८८ ॥ क्षुरः क्षुरवत् । निशितस्तीक्ष्णो निर्दय इति यावत् । पक्षे शाणोल्लीढः । कालसाधनः छिद्रकालापेक्षः । पक्षे काललोहोपादानकः प्रतिच्छन्नो गूढाशयः । पक्षे चर्मपुटच्छन्नः । लोमहारी अनुलोमसंग्राही । पक्षे लोमच्छेदकः । लोमवाहीति पाठेऽपि तावेवार्थौ ॥ ८९ ॥ कल्याणैर्धनपुत्रराज्यादिभिः संपन्नः विशिष्टः कुलशीलबलादिभिः श्रेष्ठः ॥ ९१ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

---

१४१

तत इति ॥ १ ॥ अनुज्ञाप्य पृष्ट्वा ॥ २ ॥

तेषामिङ्गितभावज्ञो विदुरस्तत्त्वदर्शिवान् ।
आकारेण च तं मन्त्रं बुबुधे दुष्टचेतसाम् ॥ ३
ततो विदितवेद्यात्मा पाण्डवानां हिते रतः ।
पलायने मतिं चक्रे कुन्त्याः पुत्रैः सहानघः ॥ ४
ततो वातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् ।
ऊर्मिक्षमां दृढां कृत्वा कुन्तीमिदमुवाच ह ॥ ५
एष जातः कुलस्यास्य कीर्तिवंशप्रणाशनः ।
धृतराष्ट्रः परीतात्मा धर्मं त्यजति शाश्वतम् ॥ ६
इयं वारिपथे युक्ता तरङ्गपवनक्षमा ।
नौर्यया मृत्युपाशात्त्वं सपुत्रा मोक्ष्यसे शुभे ॥ ७
तच्छ्रुत्वा व्यथिता कुन्ती पुत्रैः सह यशस्विनी ।
नावमारुह्य गङ्गायां प्रययौ भरतर्षभ ॥ ८
ततो विदुरवाक्येन नावं विक्षिप्य पाण्डवाः ।
धनं चादाय तैर्दत्तमरिष्टं प्राविशन्वनम् ॥ ९
निषादी पञ्चपुत्रा तु जातुषे तत्र वेश्मनि ।
कारणाभ्यागता दग्धा सह पुत्रैरनागसा ॥ १०
स च म्लेच्छाधमः पापो दग्धस्तत्र पुरोचनः ।
वञ्चिताश्च दुरात्मानो धार्तराष्ट्राः सहानुगाः ॥ ११
अविज्ञाता महात्मानो जनानामक्षतास्तथा ।
जनन्या सह कौन्तेया मुक्ता विदुरमन्त्रिताः १२
ततस्तस्मिन्पुरे* लोका नगरे वारणावते ।
दृष्ट्वा जतुगृहं दग्धमन्वशोचन्त दुःखिताः ॥ १३
प्रेषयामासू राजानं यथावृत्तं निवेदितुम् ।
संवृत्तस्ते महान्कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥ १४
सकामो भव कौरव्य भुङ्क्ष्व राज्यं सपुत्रकः ।
तच्छ्रुत्वा धृतराष्ट्रस्तु सह पुत्रेण शोचयन् ॥ १५
प्रेतकार्याणि च तथा चकार सह बान्धवैः ।
पाण्डवानां तथा क्षत्ता भीष्मश्च कुरुसत्तमः १६

जनमेजय उवाच ।

पुनर्विस्तरशः श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तम ।
दाहं जतुगृहस्यैव पाण्डवानां च मोक्षणम् ॥ १७
सुनृशंसमिदं कर्म तेषां क्रूरोपसंहितम् ।
कीर्तयस्व यथावृत्तं परं कौतूहलं मम ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

शृणु विस्तरशो राजन्वदतो मे परंतप ।
दाहं जतुगृहस्यैतत्पाण्डवानां च मोक्षणम् ॥ १९
प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनंजयम् ।
दुर्योधनो लक्षयित्वा पर्यतप्यत दुर्मनाः ॥ २०
ततो वैकर्तनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अनेकैरभ्युपायैस्ते जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् २१
पाण्डवा अपि तत्सर्वं प्रतिचक्रुर्यथागतम् ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ॥ २२
गुणैः समुदितान्दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा ।
कथयांचक्रिरे तेषां गुणान्संसत्सु भारत ॥ २३
राज्यप्राप्तिं च संप्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा ।
कथयन्ति स्म संभूय चत्वरेषु सभासु च ॥ २४
प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्ट्वाद्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
राज्यं न प्राप्तवान्पूर्वं स कथं नृपतिर्भवेत् ॥ २५
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसंधो महाव्रतः ।
प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु ग्रहीष्यति २६
ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।
अभ्यषिञ्चाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम् ॥ २७
स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित् ।
सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन् ॥ २८
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पतः ।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥ २९
स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे ।
ईर्ष्यया चापि संतप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥ ३०
ततो विरहितं दृष्ट्वा पितरं प्रतिपूज्य सः ।
पौरानुरागसंतप्तः पश्चादिदमभाषत ॥ ३१

---

इङ्गितं चेष्टितं तेन सार्धं चित्ताभिप्रायं जानातीति इङ्गितभावज्ञः आकारेण च नेत्रादिविकारेण यथाहु. 'नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मन.' इति॥३॥विदितवेद्यो ज्ञाततत्त्वः आत्मा चित्तं यस्य ॥ ४ ॥ यन्त्रं महत्यपि वाते जलाशये नौकास्तम्भकं लोहलाङ्गलमयं सामुद्रिकप्रसिद्धम् । एवं पताकावती नौर्वायुना वेगेन उह्यमाना न चोर्मिभिः पूरयितुं शक्या । अत उक्तं पताकिनीमूर्मिक्षमामिति ॥५॥ परीतात्मा विपरीतबुद्धिः । परीतो मसताक्रान्त आत्मा चित्तं यस्येति वा॥६॥ नावमारुह्य प्रययाविति जतुगृहे स्वदाहो माभूदिति विलमार्गेण वारणावतं त्यक्त्वा गङ्गातीरप्राप्त्यनन्तरम् ॥८॥ अरिष्टं निर्विघ्नम् ॥९॥ क्रूरेण कणिकेन उपसंहितं उपदिष्टम् ॥१८॥ प्राणाधिकं बलाधिकम् ॥ २०॥ यथागतं यथोपस्थितं तथैव प्रतिचक्रु. ॥ २२ ॥ राज्यप्राप्तिं राज्ययोग्यताम् ॥ २४ ॥ प्रज्ञाचक्षुरन्धः अत एवानधिकाराद्राज्यं न प्राप्तवान् । स इदानीमपि पुत्रद्वारा कथं नृपतिर्भवेन्न कथमपि द्वारलोपादित्यर्थः ॥ २५ ॥ सत्यं कारुण्यं वेदश्च तद्वन्तम् ॥ २७ ॥ विरहितमेकाकिनम् ॥३१॥

* पुरे प्रेषयामासुरित्युत्तरेण संबन्धः

दुर्योधन उवाच ।

श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः ।
त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ॥
मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति ।
अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः ३३
पितृतः प्राप्तवान्राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा ।
त्वमन्धगुणसंयोगात्प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥ ३४
स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः ।
तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः ३५
ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि ।
अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते ॥ ३६
सततं निरयं प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः ।
न भवेम यथा राजंस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥३७
यदि त्वं हि पुरा राजन्निदं राज्यमवाप्तवान् ।
ध्रुवं प्राप्स्याम च वयं राज्यमप्यवशे जने ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि दुर्योधनेर्ष्यायामेकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४१

## १४२

वैशंपायन उवाच ।

एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
कणिकस्य च वाक्यानि तानि श्रुत्वा स सर्वशः१
धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः शोकार्तः समपद्यत ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सौबलस्तथा ॥ २
दुःशासनचतुर्थास्ते मन्त्रयामासुरेकतः ।
ततो दुर्योधनो राजा धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ३
पाण्डवेभ्यो भयं न स्यात्तान्विवासयतां भवान् ।
निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥ ४
धृतराष्ट्रस्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमीरितम् ।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ५

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मनित्यः सदा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।
सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद्विशेषतः ॥ ६
नासौ किंचिद्विजानाति भोजनादि चिकीर्षितम्
निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतव्रतः ॥ ७
तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः ।
गुणवाँल्लोकविख्यातः पौरवाणां सुसंमतः ॥ ८
स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्तुं बलादितः ।
पितृपैतामहाद्राज्यात्स सहायो विशेषतः ॥ ९
भृता हि पाण्डुनाऽमात्या बलं च सततं भृतम् ।
भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः ॥ १०
ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डुना नागरा जनाः ।
कथं युधिष्ठिरस्यार्थे ननो हन्युः सबान्धवान्॥ ११

दुर्योधन उवाच ।

एवमेतन्मया तात भावितं दोषमात्मनि ।
दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेनपूजिताः ॥ १२
ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः ।
अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥ १३
स भवान्पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हति ।
मृदुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥ १४
यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मयि राजन्भविष्यति ।
तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत ॥ १५

धृतराष्ट्र उवाच ।

दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि संपरिवर्तते ।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥ १६
न च भीष्मो न च द्रोणो न च क्षत्ता न गौतमः
विवास्यमानान्कौन्तेयाननुमंस्यन्ति कर्हिचित् १७
समा हि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक ।
नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥ १८
ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम् ।
कथं न वध्यतां तात गच्छाम जगतस्तथा ॥ १९

---

अस्माकं तु परां पीडामिति मिथ्यैवोक्तं राज्ञः पाण्डवेषु द्वेषमुत्पादयितुं राज्यापहरणाद्वा पीडाम् ॥ ३३ ॥ प्राप्तं ज्येष्ठत्वात्प्राप्तमपि ॥३४ ॥ दायाद्यं दायादः पुत्रस्तद्योग्यं राज्यं तस्य पाण्डवस्य ॥ ३५ ॥ निरयं दुःखम् ॥ ३७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

१४२

एवमिति ॥ १ ॥ भावितं वर्धितम् ॥ १२ ॥ प्रधानतः प्राधान्येन । अर्थवर्गः धनकोशः । मत्संस्थः मदधीनः ॥ १३ ॥

दुर्योधन उवाच ।
मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः ।
यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः ॥ २०
कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत् ।
द्रोणं च भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित् ॥
क्षत्ताऽर्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः ।
न चैकः स समर्थोऽस्मान्पाण्डवार्थेऽधिबाधितुम्
सुविस्रब्धः पाण्डुपुत्रान्सह मात्रा प्रवासय ।
वारणावतमद्यैव यथा यान्ति तथा कुरु ॥ २३
विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम् ।
शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय ॥ २४

इति श्रीमहा० आदि० जतुगृहपर्वणि दुर्योधनपरामर्शे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

## १४३

वैशंपायन उवाच ।
ततो दुर्योधनो राजा सर्वाः प्रकृतयः शनैः ।
अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥ १
धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित्कुशलमन्त्रिणः ।
कथयांचक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥ २
अयं समाजः सुमहान्रमणीयतमो भुवि ।
उपस्थितः पशुपतेर्नगरे वारणावते ॥ ३
सर्वरत्नसमाकीर्णे पुंसां देशे मनोरमे ।
इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः ॥ ४
कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते ।
गमने पाण्डुपुत्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥ ५
यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति ।
उवाचैतानेत्य तदा पाण्डवानम्बिकासुतः ॥ ६
ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः ।
रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम् ॥ ७
ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते ।
सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथाऽमराः ॥ ८
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि गायनेभ्यश्च सर्वशः ।
प्रयच्छध्वं यथाकामं देवा इव सुवर्चसः ॥ ९
कंचित्कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदम् ।
इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥ १०
वैशंपायन उवाच ।
धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः ।
आत्मनश्चासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥ ११
ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरं च महामतिम् ।
द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम् ॥ १२
कृपमाचार्यपुत्रं च भूरिश्रवसमेव च ।
मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान्॥१३
पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम् ।
युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा ॥ १४
रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते ।
सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥
प्रसन्नमनसः सर्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत ।
आशीर्भिर्बृंहितानस्मान्न पापं प्रसहिष्यते ॥ १६
एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः ।
प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽन्ववर्तन्त पाण्डवान् ॥ १७
स्वस्त्यस्तु वः पथि सदा भूतेभ्यश्चैव सर्वशः ।
मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित्सर्वशः पाण्डुनन्दनाः ॥
ततः कृतस्वस्त्ययना राज्यलम्भाय पार्थिवाः ।
कृत्वा सर्वाणि कार्याणि प्रययुर्वारणावतम् ॥१९

इति श्रीमहा० आदि० जतुगृहपर्वणि वारणावतयात्रायां त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

---

सुविस्रब्धः निःशंकः ॥ २३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

१४३

तत इति । प्रकृतयः प्रकृतीः । संजहार स्वाधीनाश्चक्रे॥१॥ समाजः पशुपतेः पूजार्थं मेलकः ॥ ३ ॥ जातकौतूहलाः जातकौतुकदिदृक्षा. ॥ ६ ॥ सगणा. सपरिवाराः सान्वयाः अन्वयो वंशः सकुन्तीका इत्यर्थ सानुयात्रा इति पाठे यात्रामनुविधीयमानाः शिबिकाकोशाद्युपस्करास्तत्सहिताः ॥८॥ प्रसहिष्यते स्प्रष्टुं शक्नोति ॥ १६ ॥ राज्यलम्भाय राज्याशालाभाय ॥ १९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

## १४४

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारत ।
दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत्स दुरात्मवान् ॥ १
स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥२
ममेयं वसुसंपूर्णा पुरोचन वसुंधरा ।
यथेयं मम तद्वत्ते स तां रक्षितुमर्हसि ॥ ३
न हि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया ।
सहायो येन संधाय मन्त्रयेयं यथा त्वया ॥ ४
संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर ।
निपुणेनाभ्युपायेन यद्ब्रवीमि तथा कुरु ॥ ५
पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम् ।
उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६
स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ।
वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु ॥ ७
तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम् ।
नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥ ८
शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित् ।
आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय ॥ ९
सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया ।
मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय १०
शणं तैलं घृतं चैव जतु दारूणि चैव हि ।
तस्मिन्वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः ११
यथा च तत्र पश्येरन्परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः ।
आग्नेयमिति तत्कार्यमपि चान्येऽपि मानवाः १२
वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान्परमार्चितान् ।
वासयेथाः पाण्डवेयान्कुन्तीं च ससुहृज्जनाम् १३
आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च ।
विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत वै पिता १४
यथा च तन्न जानन्ति नगरे वारणावते ।
तथा सर्वं विधातव्यं यावत्कालस्य पर्ययः ॥१५
ज्ञात्वा च तान्सुविश्वस्तान् शयानानकुतोभयान्
अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः ॥ १६
दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः ।
न गर्हयेयुरस्मान्वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित् ॥१७
स तथेति प्रतिज्ञाय कौरवाय पुरोचनः ।
प्रायाद्रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥ १८
स गत्वा त्वरितं राजन्दुर्योधनमते स्थितः ।
यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः ॥ १९

इति श्रीमहा० आदि० जतुगृहपर्वणि पुरोचनोपदेशे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

---

## १४५

वैशंपायन उवाच ।

पाण्डवास्तु रथान्युक्त्वा सदश्वैरनिलोपमैः ।
आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरार्तवत् ॥ १
राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च ॥ २
एवं सर्वान्कुरून्वृद्धानभिवाद्य यतव्रताः ।
समालिङ्ग्य समानान्वै बालैश्चाप्यभिवादिताः ३
सर्वा मातृस्तथापृच्छ्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम् ॥ ४
विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथाऽन्ये कुरुपुङ्गवाः ।
पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वीयुः शोककर्शिताः ॥ ५
तत्र केचिद्ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा ।
दीनान्दृष्ट्वा पाण्डुसुतानतीव भृशदुःखिताः ॥ ६

---

१४४

एवमिति ॥ १ ॥ सःत्वं तां मर्दीयां च ॥ ३ ॥ विश्वासिकतरः विश्वासेनाप्राप्ततरः संधाय मिलित्वा ॥ ४ ॥ उद्धर उन्मूलय ॥ ५ ॥ रासभेति तदुत्पन्नाश्वतरग्रहणम् ॥ ७ ॥ महाधनं बहुधनसाध्यम् ॥८ ॥ आग्नेयानि अग्निसंदीपकानि ॥ ९ ॥ पिता धृतराष्ट्रः ॥ १४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमो० १४४

१४५

पाण्डवा इति ॥ १ ॥ प्रकृतयः प्रकृतीः ॥४ ॥ अन्वीयुः अनुजग्मुः ॥ ५ ॥

विधर्मं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति ॥ ७
न हि पापमपापात्मा रोचयिष्यति पाण्डवः ।
भीमो वा बलिनां श्रेष्ठः कौन्तेयो वा धनञ्जयः॥८
कुत एव महात्मानौ माद्रीपुत्रौ करिष्यतः ।
तान्राज्यं पितृतः प्राप्तान्धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥ ९
अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते ।
विवास्यमाना न स्थाने नगरे योऽभिमन्यते ॥ १०
पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा ।
विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः ॥ ११
स तस्मिन्पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति ।
राजपुत्रानिमान्बालान्धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥ १२
वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात् ।
गृहान्विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः १३
तांस्तथावादिनः पौरान्दुःखितान्दुःखकर्शितः ।
उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१४

पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः ।
अशङ्कमानैस्तत्कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम् ॥ १५
भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान्कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
प्रतिनन्द्य तथाशीर्भिर्निवर्तध्वं यथा गृहम् ॥ १६
यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भिरुपपत्स्यते ।
तदा करिष्यथास्माकं प्रियाणि च हितानि च १७
एवमुक्तास्तदा पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
आशीर्भिश्चाभिनन्द्यैताञ्जग्मुर्नगरमेव हि ॥ १८
पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सत्यधर्मवित् ।
बोधयन्पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९
प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः ।
प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञः प्रलापज्ञं वचोऽब्रवीत्॥ २०
यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम् ।
विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद्यथा ॥ २१
अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम् ।
यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥२२

ऽस्थाने अयुक्तम् ॥ १० ॥ गन्ता गमिष्यति ॥ १३ ॥ पौरेष्विति । पाण्डवश्रेष्ठं युधिष्ठिरं बोधयन् । अज्ञातं दुर्योधनकृतं कपटं ज्ञापयन् । इदं वक्ष्यमाणं वचनं अब्रवीत् ॥ १९ ॥ न केवलं पौरेभ्य एव तद्वचनं गोपनीयमपि तु समीपस्थैरपि युधिष्ठिरादन्येन ज्ञातुं शक्यमित्याह । प्राज्ञ इति । प्राज्ञो बुद्धिमाननेकभाषाभिज्ञत्वात् । प्राज्ञत्वमेवाह । प्राज्ञप्रलापज्ञ इति । प्रकर्षेणाज्ञानां पशुप्रायाणां वेदविरोधिना म्लेच्छानां प्रलापोऽनर्थकम् सम्यक्प्रकृतिप्रत्ययविभागेनानिष्पन्नत्वादर्थानवबोधकं वचनं देशभाषारूपं लुप्तवर्णं अधिकवर्णं विकृतवर्णं च पदजातं यत्र तादृशभाषाभिज्ञ इत्यर्थः । तत्र लुप्तवर्णं काण्वशतपथे इन्द्रेणासुरान्प्रति भवतामम्रौ इमां चित्राख्यां मदीयां इष्टकामुपधास्ये इति पृष्टे उपदीत्यसुरवचनम् । तथा आदास्ये इत्युक्ते आहीति प्रतिवचनम् । तत्र उपधेहि आदेहीति वक्तव्ये वर्णलोपः । अधिकवर्णं तु गौरिति वक्तव्ये गावी गोणी गोता गोपोतलिकेति प्रयुञ्जते । तथा विकृतवर्णं ते सुरा हेलयो हेलय इति वदन्तः पराबभूवुरिति । अरय इत्यपेक्षिते रेफस्थाने लकारः प्रयुज्यते वेदेपि असुरभाषानुवादे तेनेयं शङ्काप्यपास्ता । यद्यपि युधिष्ठिरं प्रति विदुरेण म्लेच्छभाषया उक्तं तथापि व्यासेन तत्संस्कृतेनैवोपनिबद्धमिति । आदिपर्वणि नानादेशभाषाश्चात्र प्रयुज्यन्त इति प्रतिज्ञानात् । स एवं प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञश्च विदुरो युधिष्ठिरं प्रलापज्ञं म्लेच्छभाषाभिज्ञं इदं वक्ष्यमाणं वचो म्लेच्छभाषारूपं प्राज्ञः प्रकर्षेणाजानतः । प्राज्ञं प्रकर्षेण अर्थतो ज्ञातुमशक्यं अज्ञापकं अर्थानामनवबोधकं वा । कथं तर्हि तेन वचनेनास्यापि बोधो भविष्यतीत्याशङ्क्याह । प्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिति प्रलापं जानतः प्रलापज्ञापकं प्रलापज्ञमिति पूर्वार्धे शब्दतो म्लेच्छभाषाभिज्ञत्वमुक्तम् । इह त्वर्थतस्तदभिज्ञत्वमित्यपौनरुक्त्यम् । प्राज्ञ इति प्रलापज्ञ इति च उत्तरार्धे क्विबन्तस्य षष्ठ्यन्तस्य रूपे । प्राज्ञं प्रलापज्ञमिति तु अन्तर्भावितण्यर्थात् ज्ञाधातोः कप्रत्ययान्तस्य रूपे । वचो वचनीयमवश्यं वक्तव्यमित्यर्थः । अत एवाब्रवीत् अत्रोत्तरार्धं गौडपाठ एव दृश्यते । तदभावे तु पूर्वार्धादेवायमर्थः प्रत्येतव्यः । सर्वथापि म्लेच्छभाषयोक्तोर्थो म्लेच्छभाषयैव संगृह्यत इति तात्पर्यम् । अन्यथा अलोहमित्याद्यपि व्यासो नावक्ष्यत् । यथाश्रुतं जातुषमेव गृहं भवद्दाहार्थं तत्र कृतमिति म्लेच्छभाषया विदुरेण युधिष्ठिरो बोधित इत्येव तेनोक्तं स्यात् ॥ २० ॥ तदेव वचनं श्रावयितुं युधिष्ठिरमभिमुखीकरोति । योजानातीति । परस्य शत्रोः प्रज्ञां नीतिशास्त्रं कपटेन विश्वासमुत्पाद्यापि शत्रुर्हन्तव्य इति कणिकवचनरूपं तदनुसारिणीं यो जानाति स पुमानिह यथा शत्रुकल्पितां आपदं निस्तरेत्तथा कुर्याद्यत्नमिति शेषः ॥ २१ ॥ तामेवापदमाह । अलोहमित्यादिना । तं शत्रुणा कृतं वारणावतस्थम् । शस्त्रं सास्ति शेते अस्मिन्निति व्युत्पत्त्या प्रासादम् । यो वेत्ति तं द्विषो न घ्नन्तीति संबन्धः। शस्त्रमिति दन्त्यसकारस्थाने तालव्यशकारो म्लेच्छभाषात्वात् । हेलय इतिवत् वर्णविकारः । वसस्वापे इत्यदादेस्त्रन्प्रत्ययान्तस्य रूपम् । तमेव विशिनष्टि । अलोहमिति । अलो अनलोग्निः । आहि उपहीतिवद्वर्णलोपः तेन आग्नेयानि द्रव्याणि जतुशणसर्ज-

कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे विलौकसः ।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षेति स जीवति ॥ २३
नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः ।
नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः ॥ २४
अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम् ।
श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥ २५
चरन्मार्गान्विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः ।
आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन्नानुपीड्यते ॥ २६
एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विदुरं विदुषां श्रेष्ठं ज्ञातमित्येव पाण्डवः ॥ २७
अनुशिक्ष्यानुगम्यैतान्कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान् ॥ २८
निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा ।
अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ २९
क्षत्ता यदब्रवीद्वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव ।
त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद्वयम् ३०
यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातुं न च सदोषवत् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं संवादं तव तस्य च ॥ ३१

---

सार्दानि लक्ष्यन्ते । तेषां ऊहः समूहो यस्मिन् । अभियैर्दाह्कैर्द्रव्यैरुपेतमित्यर्थः । तर्हि किं तानि ज्ञातुमशक्यानि न वेत्यत आह । शरीरपरिकर्तनमिति । शरीरं स्वरूपम् ।म्लेच्छभाषात्वादविभक्तिकमिदं पदम् । परि परिलुप्य अच्छाद्य। वर्णद्वयलोपः । परिवर्जनार्थो वा । कर्तनं हिंसकम् । तस्मिन् गृहेन्तर्हितान्येवाभेयानि द्रव्याणि भित्त्यादौ वर्तन्ते न स्वरूपेण दृश्यन्ते अतस्तं शरीरपरिकर्तनं प्रासादं परित्याज्यं यो वेत्ति । कर्तनमिति हिंसार्थस्य कृणत्ते रूपं न छेदनार्थस्य कृन्ततेरिति ज्ञेयम्।कर्तन कालमाह।निशीति अत्र निशितं कर्तनमिति पदत्रयव्यतिरेकेण पूर्वार्धे म्लेच्छभाषयैवोक्तम् । एवमग्रेपि श्लोके कतिपयपदान्येव म्लेच्छभाषा भवति न सर्वः श्लोक इति ज्ञेयम् । यो वेत्ति तं प्रतिघातविदं तस्य शस्त्रस्य प्रतिघातः प्रतीकारः । तद्विदं द्विषः शत्रवो न घ्नंति हन्तुं न शक्नुवन्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥ कस्तर्हि साहसी तस्मिन् गृहे वसतोस्मान् भस्मीकर्तुं यतिष्यतीत्यत आह । कक्षघ्न इति । कक्षः कुक्षिः पार्श्व इति यावत् । तत्र हन्ति गच्छतीति कक्षघ्नः पार्श्वचरः पुरोचन एव । अत्र स्वरस्यैव प्रथमे पदे व्यत्ययो हंतेरप्रसिद्धं गत्यर्थत्वं च म्लेच्छभाषात्वात् । कक्षघ्न एव शिशिरघ्नः । शृणाति हिनस्तीति शिशिरोऽग्निः। शृ हिंसायामित्यस्य रूपं । तेन हन्तीतिशिशिरघ्नः गावी गोणीतिवद्वर्णाधिक्यं शिकारद्वयरूपम्। अयमेव पार्श्ववर्ती युष्मानग्निना हन्तुमायातीत्यर्थः । एवं तर्ह्ययमेवहन्तव्य उत वारणावते तद्गृहं वा न प्रवेष्टव्यमुत वारणावतमगत्वैव हास्तिनपुरं प्रत्येवागन्तव्यमित्याशंक्याह । महाकक्ष इति । महातिकं सुखं क्षिणोतीति कक्षयः।शत्रुर्वर्णलोपेन कक्षे महति शत्रौ सति एतत्त्रयं कर्तुमशक्यम्। ज्ञातकपटो हि बलवान् शत्रुः प्रत्यक्षमेव प्रहरेदिति भावः । कस्तर्ह्यत्र उपाय इत्यत आह । विलौकसः विलान्तः प्रविष्टान्युष्मान्स पुरोचनो न दहेत् । तत्र दाहसंभावना नास्ति । तत्र गृहान्तर्विलं कर्तव्यमित्यर्थः । इत्यनेन प्रकारेणात्मानं यो रक्षति स जीवति । तस्मात्त्वयाप्येवं ज्ञात्वा उपायेनात्मा संरक्षणीय इत्यर्थः ॥ २३ ॥ ननु विलेप्रविष्टानामस्माकं विलमुखे प्रदीप्ते न वन्हिना अन्तरूष्मणा नाशः कर्तव्य इत्याशंक्य विवेकं विना मार्गज्ञानं दिग्ज्ञानं च न भवति धैर्यं विना ऐश्वर्यं च न प्राप्यत इति विवेकं धैर्यं चाश्रयस्वेत्याह ।नाचक्षुरिति । चष्टे पश्यत्यनेनेति चक्षुर्विवेकः। संस्कृत एवायं श्लोको नीतिप्रदर्शनार्थः ॥ २४ ॥ तत्र मार्गविवेकं तावदाह । अनाप्तैरिति । अनाप्तैः शत्रुभिर्दत्तं स्वीकारितं शस्त्रं गृहं अलोहजं पूर्ववत् आग्नेयद्रव्यसमूहजं आदत्ते स्वीकरोति चेन्नरस्तर्हि श्वावित् शललस्तस्य शरणं गृहं तद्वत् । तस्य हि विलमुभयतो मुखं भवति तादृशं बिलमासाद्य प्राप्य हुताशनात् प्रमुच्येत आत्मानं मोचयेत् । तेन बिलप्रवेशेन मार्गान्तरेण सद्य एव बिलाद्बहिर्निःसरतां युष्माकं नान्तरूष्मणा मरणं भविष्यतीत्युक्तम् ॥ २५ ॥ विलान्निःसृतानामपि मार्गज्ञानं कथं भवेदित्याशंक्य मृगयाव्याजेन सर्वे मार्गा ज्ञातव्या इत्याशयेनाह । चरन्मार्गान्विजानातीति । एवं ज्ञातिष्वपि मार्गेषु हास्तिनपुरं प्रति नागन्तव्यमित्याशयेनाह । नक्षत्रैर्विन्दते दिश इति ननु कथमस्माभिर्लोकानामविदितं विलं कारयितुं शक्यं कथं वा विदेशे वन्धूंश्च त्यक्त्वा स्थातव्यमित्याशंक्याह आत्मनेति । आत्मनः अहं धर्मांशस्त्वं च धर्मपुत्रः । अतोहं तव आत्मा तस्य मम आत्मेवात्मा सखा कश्चिन्मया नियोक्तव्यस्तेन सहायेन विलादिसंपादयता हेतुना । पञ्च इन्द्रियाणि विदेशवासात् इष्टविषयासमर्पणेन पीडयन् । हेतौ शतृप्रत्ययः । मत्प्रहितेन भृत्येन स्वधैर्येणेति यावत् । एताभ्यां द्वाभ्यामुपेतो नानुतप्यते । मयाऽकृत्यं कृतं इति पश्चात्तापं न प्राप्नोति । मदीय आप्तः सुरंगं कृत्वा दास्यति तेन मार्गेण देशान्तरे एव गतव्यं न तु हास्तिनपुरे प्रवेष्टव्यम् । ज्ञातकपटो हि प्रवलः शत्रुः प्रत्यक्षमेव प्रहरेदिति प्रागुक्त एवाशयः । धैर्ये सति पुनर्लक्ष्मीप्राप्तिर्भविष्यतीति भावः ॥२६॥ अब्रुवन्निव व्यक्तां वाचमकुर्वन्निव ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत् ।
पन्थाश्च वो नाविदितः कश्चित्स्यादिति धर्मधीः
जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च मेऽब्रवीत् ।
विज्ञातमिति तत्सर्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया ॥ ३३

वैशंपायन उवाच ।

अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाताः फाल्गुनस्य ते ।
वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥ ३४

इति श्रीमहा० आदि० जतुगृहपर्वणि वारणावतगमने पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

---

## १४६

*वैशंपायन उवाच ।*

ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद्वारणावतात् ।
सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतन्द्रिताः ॥ १
श्रुत्वागतान्पाण्डुपुत्रान्नानायानैः सहस्रशः ।
अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठान् श्रुत्वैव परया मुदा ॥ २
ते समासाद्य कौन्तेयान्वारणावतका जनाः ।
कृत्वा जयाशिषः सर्वे परिवार्यावतस्थिरे ॥ ३
तैर्वृतः पुरुषव्याघ्रो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विबभौ देवसंकाशो वज्रपाणिरिवामरैः ॥ ४
सत्कृताश्चैव पौरैस्ते पौरान्सत्कृत्य चानघ ।
अलंकृतं जनाकीर्णं विविशुर्वारणावतम् ॥ ५
ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान् ।
ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥ ६
नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तदा ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहाण्यपि ॥ ७
अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभ ।
जग्मुरावसथं पश्चात्पुरोचनपुरःसराः ॥ ८
तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च ।
आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥ ९
तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः ।
उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः ॥ १०
दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः ।
निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥ ११
तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः ।
*पुरोचनस्य वचनात्कैलासमिव गुह्यकाः ॥* १२
तच्चागारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतां वरः ।
उवाचाग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥ १३

युधिष्ठिर उवाच ।

जिघ्राणोऽस्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम् ।
कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परंतप ॥ १४
शणसर्जरसंव्यक्तमानीय गृहकर्मणि ।
मुञ्जबल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वं घृतोक्षितम् ॥ १५
शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि ।
विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः ॥ १६
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ।
इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तथा ॥ १७
आपदं तेन मां पार्थ स संबोधितवान्पुरा ।
ते वयं बोधितास्तेन नित्यमस्मद्धितैषिणा ॥ १८
पित्रा कनीयसा स्नेहाद्बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम् ।
अनार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः ॥ १९

भीमसेन उवाच ।

यदीदं गृहमाग्नेयं विहितं मन्यते भवान् ।
तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥२०

युधिष्ठिर उवाच ।

इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये ।
अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः ॥ २१
यदि विन्देत चाकारमस्माकं स पुरोचनः ।
क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रसह्यापि दहेत नः ॥ २२

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

१४६

तत इति ॥ १ ॥ आगतानिति च्छेदः ॥ २ ॥ शिवमित्याख्यामात्रं अर्थतस्त्वशिवं मरणार्थं कृतत्वात् ॥ ११ ॥ मुञ्जः शरवल्कः ॥ १५ ॥ इममापदं भाविनीं दृष्टवान् तर्कतः तेन हेतुना अशिवं गृहमित्यस्मान् बोधितवान् इति संबन्धः ॥ १७ ॥ योगरूपकेण गृहवासकर्तव्यतामाह । इहेति । निराकारैः अनाविष्कृतबाह्यचेष्टैः इष्टां गतिं निरुपद्रवं मार्गम् । पक्षे इह देहे निराकारैराकारविशेषमनालम्ब्य स्थेयम् यत्तैः शमादिपरैः अप्रमत्तैः स्मृतिमद्भिः ध्रुवां गतिं मोक्षम् ॥२१॥

नायं बिभेत्युपक्रोशादधर्माढ्या पुरोचनः ।
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ॥ २३
अपि चायं प्रदग्धेषु भीष्मोऽस्मासु पितामहः ।
कोपं कुर्यात्किमर्थं वा कौरवान्कोपयीत सः ॥२४
अथवापीह दग्धेषु भीष्मोऽस्माकं पितामहः ।
धर्म इत्येव कुप्येरन्ये चान्ये कुरुपुङ्गवाः ॥ २५
वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेमहि ।
स्पशैर्नोघातयेत्सर्वान्राज्यलुब्धः सुयोधनः ॥ २६
अपदस्थान्पदे तिष्ठन्न पक्षान्पक्षसंस्थितः ।
हीनकोशान्महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद्ध्रुवम् ॥ २७
तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् ।
वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्नावासं क्वचित्क्वचित् ॥ २८
ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम् ।
तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम् ॥
भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम् ।
गूढश्वासान्न नस्तत्र हुताशः संप्रधक्ष्यति ॥ ३०
वसतोऽत्र यथा चास्मान्न बुध्येत पुरोचनः ।
पौरो वापि जनः कश्चित्तथा कार्यमतन्द्रितैः ॥३१

इति श्रीमहा० आदि० जतुगृहपर्वणि भीमसेनयुधिष्ठिरसंवादे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४६

---

## १४७

वैशंपायन उवाच ।
विदुरस्य सुहृत्कश्चित्खनकः कुशलो नरः ।
विविक्ते पाण्डवान्राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १
प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम् ।
पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः ॥२
प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तः श्रेयस्त्वमिह पाण्डवान् ।
प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः ॥ ३
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्यां पुरोचनः ।
भवनस्य तव द्वारि प्रदास्यति हुताशनम् ॥ ४
मात्रा सह प्रदग्धव्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ।
इति व्यवसितं तस्य धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ ५
किंचिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि पाण्डव ।
त्वया च तत्तथेत्युक्तमेतद्विश्वासकारणम् ॥ ६
उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै ॥ ७
शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च दृढभक्तिकम् ।
न विद्यते कवेः किंचिदविज्ञातं प्रयोजनम् ॥ ८
यथा तस्य तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्वयि ।
भवतश्च यथा तस्य पालयास्मान्यथा कविः ॥ ९
इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः ।
पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १०
स पापः कोषवांश्चैव ससहायश्च दुर्मतिः ।
अस्मानपि च पापात्मा नित्यकालं प्रबाधते ॥११
स भवान्मोक्षयत्वस्मान्यत्नेनास्माद्धुताशनात् ।
अस्मास्विह हि दग्धेषु सकामः स्यात्सुयोधनः १२
समृद्धमायुधागारमिदं तस्य दुरात्मनः ।
वप्रान्तं निष्प्रतीकारमाश्रित्येदं कृतं महत् ॥ १३
इदं तदशुभं नूनं तस्य कर्म चिकीर्षितम् ।
प्रागेव विदुरो वेद तेनास्मानन्वबोधयत् ॥ १४
सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्ता यां दृष्टवान्पुरा ।
पुरोचनस्याविदितानस्मांस्त्वं प्रतिमोचय ॥ १५

---

उपक्रोशात् गर्हातः ॥ २३ ॥ अयं भीष्म इति संबन्धः ॥ २४ ॥ दग्धेषु अस्मासु अग्निदेषु कोपो धर्म इत्येव कारणं कृत्वा भीष्मोन्ये च कुप्येरन् ॥२५ ॥ दाहस्य दाहात् स्पशैश्चारैः ॥ २६ ॥ अपदं देशकोशाद्यक्षमत्वं तत्र स्थितान् । अपक्षान् असहायान् प्रयोगैरुपायैः ॥ २७ ॥ छन्नावासं गूढस्थानं वस्तव्यं अधिष्ठातव्यम् ॥ २८ ॥ क्वचित्काले च्छन्नावासमेवाह भौममिति गूढःश्वासोपि येषां तान् इतरैरविदितकर्तव्यानित्यर्थः ॥ ३० ॥ अत्र बिले ॥ ३१ ॥ इति आदि० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

१४७

विदुरस्येति ॥ १ ॥ प्रच्छन्नं यथास्यात्तथा पाण्डवान् श्रेयः प्रतिपादयेत्युक्तोहं वः किं करवाणि ॥ ३ ॥ म्लेच्छवाचा म्लेच्छभाषया ॥ ६ ॥ कवेः सर्वज्ञस्य क्रान्तदर्शिनो वा ॥ ८ ॥ यथा वयं तस्य तथा भवतश्च पालनीयाः । अतोस्मान्यथा कविः पालयति तथा त्वमपि पालयेत्यर्थः ॥ ९ ॥ शरणं गृहम् ॥१० ॥ वप्रान्तं प्राकारमूलम् । निष्प्रतीकारं बहिर्निर्गमनप्रकारशून्यम् ॥ १३ ॥

स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः ।
परिखामुत्किरन्नाम चकार च महाबिलम् ॥ १६
चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्येनातिमहद्बिलम् ।
कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्याश्च भारत ॥ १७
पुरोचनभयादेव व्यदधात्संवृतं मुखम् ।
स तस्य तु गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा॥
तत्र ते सायुधाः सर्वे वसन्ति स्म क्षपां नृप ॥१८
दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद्वनम् ।
विश्वस्तवदविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम् ।
अतुष्टा तुष्टवद्राजन्नूषुः परमविस्मिताः ॥ १९
न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः ।
अन्यत्र विदुरामात्यात्तस्मात्खनकसत्तमात् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि जतुगृहवासे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४७॥

---

## १४८

वैशंपायन उवाच ।

तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान् ।
विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः ॥ १
पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ प्रोवाच धर्मवित् ॥ २
अस्मानयं सुविश्वस्तान्वेत्ति पापः पुरोचनः ।
वञ्चितोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने ॥ ३
आयुधागारमादीप्य दग्ध्वा चैव पुरोचनम् ।
षट्प्राणिनो निधायेह द्रवामोऽनभिलक्षिताः ॥ ४
अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम् ।
चक्रे निशि महाराज आजग्मुस्तत्र योषितः ॥ ५
ता विहृत्य यथाकामं भुक्त्वा पीत्वा च भारत ।
जग्मुर्निशि गृहानेव समनुज्ञाप्य माधवीम् ॥ ६
निषादी पञ्चपुत्रा तु तस्मिन्भोज्ये यदृच्छया ।
अन्नार्थिनी समभ्यागात्सपुत्रा कालचोदिता ॥ ७
सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदविह्वला ।
सहसर्वैः सुतै राजंस्तस्मिन्नेव निवेशने ॥ ८
सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ।
अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने तदा ॥ ९
तदुपादीपयद्भीमः शेते यत्र पुरोचनः ।
ततो जतुगृहद्वारं दीपयामास पाण्डवः ॥ १०
समन्ततो ददौ पश्चादग्निं तत्र निवेशने ।
ज्ञात्वा तु तद्गृहं सर्वमादीप्तं पाण्डुनन्दनाः ॥ ११
सुरङ्गां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्धमरिंदमाः ।
ततः प्रतापः सुमहाञ्छब्दश्चैव विभावसोः ॥ १२
प्रादुरासीत्तदा तेन बुबुधे स जनव्रजः ।
तदवेक्ष्य गृहं दीप्तमाहुः पौराः कृशाननाः ॥ १३

पौरा ऊचुः ।

दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना ।
गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥ १४
अहो धिग्धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसा ।
यः शुचीन्पाण्डुदायादान्दाहयामास शत्रुवत्॥१५
दिष्ट्या त्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः
अनागसः सुविश्वस्तान्यो ददाह नरोत्तमान्॥ १६

वैशंपायन उवाच ।

एवं ते विलपन्ति स्म वारणावतका जनाः ।
परिवार्य गृहं तच्च तस्थू रात्रौ समन्ततः ॥ १७
पाण्डवाश्चापि ते सर्वे सह मात्रा सुदुःखिताः ।
बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः ॥ १८
तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः ।
न शेकुः सहसा गन्तुं सह मात्रा परंतपाः ॥ १९
भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः ।
जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥ २०
स्कन्धमारोप्य जननीं यमावङ्केन वीर्यवान् ।
पार्थौ गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरौ सुमहाबलः २१

---

परिखा प्राकारपरिधिभूतो गर्तः ताम् । नाम प्रसिद्धम् । उत्किरन्परिखापरिष्कारव्याजेन बिलान्मृदं उत्किरन् बहिः क्षिपन् महाबिलं सुरङ्गाख्यं चकार॥१६॥मध्येन मध्यतः १७ व्यदधात् विहितवान्। स पुरोचनस्ते च पञ्च गृहद्वारि क्षपां वसन्ति स्म ॥ १८ ॥ दिवा च मृगयां चरन्ति अतो न दग्धुं पुरोचनश्छिद्रं प्राप्नोति भावः ॥ १९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

१४८

तांस्त्विति॥१॥ षट्प्राणिन इति अन्यथा पलायनशङ्कया पुनरस्मदन्वेषणे मतिः स्यात्सा माभूदिति भावः॥ ४ ॥

उरसा पादपान्भञ्जन्महीं पद्भ्यां विदारयन्। स जगामाशु तेजस्वी वातरंहा वृकोदरः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि जतुगृहदाहे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

## १४९

वैशंपायन उवाच।

एतस्मिन्नेव काले तु यथासंप्रत्ययं कविः।
विदुरः प्रेषयामास तद्वनं पुरुषं शुचिम् ॥ १
स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान्ददृशे वने।
जनन्या सह कौरव्य मापयानान्नदीजलम् ॥ २
विदितं तन्महाबुद्धेर्विदुरस्य महात्मनः।
ततस्तस्यापि चारेण चेष्टितं पापचेतसः ॥ ३
ततः प्रवासितो विद्वान्विदुरेण नरस्तदा।
पार्थानां दर्शयामास मनो मारुतगामिनीम् ॥ ४
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्।
शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विस्रम्भिभिः कृताम् ॥ ५
ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम्।
युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः ॥ ६
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः।
न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥ ७
तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञयाऽनया।
भूयश्चैवाह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित् ॥ ८
कर्णं दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे।
शकुनिं चैव कौन्तेय विजेताऽसि न संशयः ॥ ९
इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी।
मोचयिष्यति वः सर्वानस्माद्देशान्न संशयः ॥ १०
अथ तान्व्यथितान्दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान्।
नावमारोप्य गङ्गायां प्रस्थितानब्रवीत्पुनः ॥ ११
विदुरो मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य वचो मुहुः।
अरिष्टं गच्छता व्यग्राः पन्थानमिति चाब्रवीत् १२
इत्युक्त्वा स तु तान्वीरान्पुमान्विदुरचोदितः।
तारयामास राजेन्द्र गङ्गां नावा नरर्षभान् ॥ १३
तारयित्वा ततो गङ्गां पारं प्राप्तांश्च सर्वशः।
जयाशिषः प्रयुज्याथ यथागतमगाद्धि सः ॥ १४
पाण्डवाश्च महात्मानः प्रतिसंदिश्य वै कवेः।
गङ्गामुत्तीर्य वेगेन जग्मुर्गूढमलक्षिताः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि गङ्गोत्तरणे ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

वैशंपायन उवाच।

## १५०

अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः।
तत्राजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान् ॥ १
निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना ददृशुस्ततः।
जातुषं तद्गृहं दग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥ २
नूनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा।
पाण्डवानां विनाशायेत्येवं ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३
विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्तराष्ट्रो न संशयः।
दग्धवान्पाण्डुदायादान्न ह्येनं प्रतिषिद्धवान् ॥ ४

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

१४९

एतस्मिन्निति। यथासंप्रत्ययं यथासंकेतं शुचिं नाविकं। मापयानान् जलपरिमाणं परीक्षमाणान् ॥ १ ॥ तस्य चेष्टितं चारेण विदुरस्य विदितं यतस्ततो हेतोः विदुरेण ततः स्वस्थानात् नरः प्रवासितः प्रेषित इति सार्धश्लोको वाक्यम् ॥३॥ स नरः दर्शयामास ॥४॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९॥

१५०

अथेति ॥ १ ॥ व्यपोहमानाः निर्वापयन्तः ॥ ७ ॥

नूनं शान्तनवोऽपीह न धर्ममनुवर्तते ।
द्रोणश्च विदुरश्चैव कृपश्चान्ये च कौरवाः ॥ ५
ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामो दुरात्मनः ।
संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥ ६
ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम् ।
निषादीं ददृशुर्दग्धां पञ्चपुत्रामनागसम् ॥ ७
खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता बिलम् ।
पांसुभिः पिहितं तच्च पुरुषैस्तैर्न लक्षितम् ॥ ८
ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः ।
पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम् ॥ ९
श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद्राजा सुमहदप्रियम् ।
विनाशं पाण्डुपुत्राणां विललाप सुदुःखितः ॥१०
अद्य पाण्डुर्मृतो राजा मम भ्राता महायशाः ।
तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥ ११
गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् ।
सत्कारयन्तु तान्वीरान्कुन्तिराजसुतां च ताम् ॥
कारयन्तु च कुल्यानि शुभानि च बृहन्ति च ।
ये च तत्र मृतास्तेषां सुहृदो यान्तु तानपि ॥ १३
एवं गते मया शक्यं यद्यत्कारयितुं हितम् ।
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च तत्सर्वं क्रियतां धनैः १४
एवमुक्त्वा ततश्चक्रे ज्ञातिभिः परिवारितः ।
उदकं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ १५
रुरुदुः सहिताः सर्वे भृशं शोकपरायणाः ।
हा युधिष्ठिर कौरव्य हा भीम इति चापरे ॥ १६
हा फाल्गुनेति चाप्यन्ये हा यमाविति चापरे ।
कुन्तीमार्ताश्च शोचन्त उदकं चक्रिरे जनाः ॥१७
अन्ये पौरजनाश्चैवमन्वशोचन्त पाण्डवान् ।
विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः॥ १८
पाण्डवाश्चापि निर्गत्य नगराद्वारणावतात् ।
नदीं गङ्गामनुप्राप्ता मातृषष्ठा महाबलाः ॥ १९
दाशानां भुजवेगेन नद्याः स्रोतोजवेन च ।
वायुना चानुकूलेन तूर्णं पारमवाप्नुवन् ॥ २०
ततो नावं परित्यज्य प्रययुर्दक्षिणां दिशम् ।
विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रगणसूचितम् ॥ २१
यतमानां वनं राजन्गहनं प्रतिपेदिरे ।
ततः श्रान्ताः पिपासार्ता निद्रान्धाः पाण्डुनन्दनाः
पुनरूचुर्महावीर्यं भीमसेनमिदं वचः ।
इतः कष्टतरं किं तु यद्वयं गहने वने ।
दिशश्च न विजानीमो गन्तुं चैव न शक्नुमः ॥ २३
तं च पापं न जानीमो यदि दग्धः पुरोचनः ।
कथं तु विप्रमुच्येम भयादस्मादलक्षिताः ॥ २४
पुनरस्मानुपादाय तथैव व्रज भारत ।
त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा ॥ २५
इत्युक्तो धर्मराजेन भीमसेनो महाबलः ।
आदाय कुन्तीं भ्रातॄंश्च जगामाशु महाबलः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि पाण्डववनप्रवेशे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

---

वैशंपायन उवाच ।

## १५१

तेन विक्रममाणेन ऊरुवेगसमीरितम् ।
वनं सवृक्षविटपं व्याघूर्णितमिवाभवत् ॥ १
जङ्घावातो ववौ चास्य शुचिशुक्रागमे यथा ।
आवर्जितलतावृक्षं मार्गं चक्रे महाबलः ॥ २
समृद्धपुष्पितांश्चैव फलितांश्च वनस्पतीन् ।
अवरुज्य ययौ गुल्मान्पथस्तस्य समीपजान् ॥ ३
स रोषित इव क्रुद्धो वने भञ्जन्महाद्रुमान् ।
त्रिःप्रस्रुतमदः शुष्मी षष्टिवर्षो मतङ्गराट् ॥ ४

---

कुल्यानि अस्थीनि । कारयन्तु संस्कारयन्तु । 'कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेपि च । भवने च तनौ क्लीबं कष्टकार्यौषधी पुत्री' इति मेदिनी । 'कुल्यं स्यात्कीकसेपि' इति च । कुल्यानि चैत्यानीत्यन्ये । महाशृङ्गेण वा महाप्रसादेन वा आङ्कितानि चत्वराणीत्यर्थः ॥ १३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१

तेनेति ॥ १ ॥ शुचिशुक्रागमे ज्येष्ठाषाढयोः समये । आवर्जिताः समीकृताः लताः वृक्षाश्च यस्मिन् ॥ २ ॥ अवरुज्य भङ्क्त्वा ॥ ३ ॥ रोषितः रोषं प्रापितः । त्रिषु गण्डकर्णमूलगुह्यदेशेषु प्रस्रुतो मदो यस्य सः । शुष्मी तेजस्वी 'शुष्मं तेजसि सूर्ये ना' इति मेदिनी । षष्टिवर्षोति पूर्णयौवनः ॥ ४ ॥

गच्छतस्तस्य वेगेन तार्क्ष्यमारुतरंहसः ।
भीमस्य पाण्डुपुत्राणां मूर्च्छेव समजायत ॥ ५
असकृच्चापि संतीर्य दूरपारं भुजप्लवैः ।
पथि प्रच्छन्नमासेदुर्धार्तराष्ट्रभयात्तदा ॥ ६
कृच्छ्रेण मातरं चैव सुकुमारीं यशस्विनीम् ।
अवहत्स तु पृष्ठेन रोधःसु विषमेषु च ॥ ७
अगमच्च वनोद्देशमल्पमूलफलोदकम् ।
क्रूरपक्षिमृगं घोरं सायाह्ने भरतर्षभ ॥ ८
घोरा समभवत्संध्या दारुणा मृगपक्षिणः ।
अप्रकाशा दिशः सर्वा वातैरासन्ननार्तवैः ॥ ९
शीर्णपर्णफलै राजन्बहुगुल्मक्षुपैर्द्रुमैः ।
भग्नावभग्नभूयिष्ठैर्नानाद्रु*मसमाकुलैः ॥ १०
ते श्रमेण च कौरव्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः ।
नाशक्नुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया ॥ ११
न्यविशन्त हि ते सर्वे निरास्वादे महावने ।
ततस्तृषा परिक्रान्ता कुन्ती पुत्रानथाब्रवीत् ॥ १२
माता सती पाण्डवानां पञ्चानां मध्यतः स्थिता ।
तृष्णया हि परीताऽस्मि पुत्रान्भृशमथाब्रवीत् ॥ १३
तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्य मातृस्नेहात्प्रजल्पितम् ।
कारुण्येन मनस्तप्तं गमनायोपचक्रमे ॥ १४
ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत् ।
न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्श ह ॥ १५
तत्र निक्षिप्य तान्सर्वानुवाच भरतर्षभः ।
पानीयं मृगयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥ १६
एते रुवन्ति मधुरं सारसा जलचारिणः ।
ध्रुवमत्र जलस्थानं महच्चेति मतिर्मम ॥ १७
अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत ।
जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः ॥ १८
स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ ।
तेषामर्थे च जग्राह भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलः ।
उत्तरीयेण पानीयमानयामास भारत ॥ १९
गव्यूतिमात्रादागत्य त्वरितो मातरं प्रति ।
शोकदुःखपरीतात्मा निशश्वासोरगो यथा ॥ २०
स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च वसुधातले ।
भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥ २१

अतः कष्टतरं किंतु द्रष्टव्यं हि भविष्यति ।
यत्पश्यामि महीसुप्तान्भ्रातॄनद्य सुमन्दभाक् ॥ २२
शयनेषु परार्ध्येषु ये पुरा वारणावते ।
नाधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले ॥ २३
स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसंघावमर्दिनः ।
कुन्तिराजसुतां कुन्तीं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥ २४
स्नुषां विचित्रवीर्यस्य भार्यां पाण्डोर्महात्मनः ।
तथैव चास्मज्जननीं पुण्डरीकोदरप्रभाम् ॥ २५
सुकुमारतरामेनां महार्हशयनोचिताम् ।
शयानां पश्यताऽद्येह पृथिव्यामतथोचिताम् ॥ २६
धर्मादिन्द्राच्च वाताच्च सुषुवे यासु तानिमान् ।
सेयं भूमौ परिश्रान्ता शेते प्रासादशायिनी ॥ २७
किं नु दुःखतरं शक्यं मया द्रष्टुमतः परम् ।
योऽहमद्य नरव्याघ्रान्सुप्तान्पश्यामि भूतले ॥ २८
त्रिषु लोकेषु यो राज्यं धर्मनित्योऽर्हते नृपः ।
सोऽयं भूमौ परिश्रान्तः शेते प्राकृतवत्कथम् ॥ २९
अयं नीलाम्बुदश्यामो नरेष्वप्रतिमोऽर्जुनः ।
शेते प्राकृतवद्भूमौ ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३०
अश्विनाविव देवानां याविमौ रूपसंपदा ।
तौ प्राकृतवदद्येमौ प्रसुप्तौ धरणीतले ॥ ३१
ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांसनाः ।
स जीवेत सुखं लोके ग्रामद्रुम इवैकजः ॥ ३२
एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत्पर्णफलान्वितः ।
चैत्यो भवति निर्ज्ञातिरर्चनीयः सुपूजितः ॥ ३३
येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः ।
ते जीवन्ति सुखं लोके भवन्ति च निरामयाः ॥ ३४
बलवन्तः समृद्धार्था मित्रबान्धवनन्दनाः ।
जीवन्त्यन्योन्यमाश्रित्य द्रुमाः काननजा इव ॥ ३५
वयं तु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना ।
विवासिता न दग्धाश्च कथंचिद्दैवसंश्रयात् ॥ ३६
तस्मान्मुक्ता वयं दाहादिमं वृक्षमुपाश्रिताः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्लेशमनुत्तमम् ॥ ३७
सकामो भव दुर्बुद्धे धार्तराष्ट्राल्पदर्शन ।
नूनं देवाः प्रसन्नास्ते नानुज्ञां मे युधिष्ठिरः ॥ ३८

---

दूरपारं गङ्गाप्रवाहं वनेऽपि तस्माद्बिभ्यतीति भावः भुजप्लवैः भुजाभ्यां प्लवनैः बहुत्वं व्यापारभेदात् ॥ ६ ॥ रोधःसु उच्चभागेषु ॥ ७ ॥ अनार्तवैः अनृतुभवैः उत्पातरूपैरित्यर्थः ॥ ९ ॥ गुल्मः स्तम्बः क्षुपो ह्रस्वशाखो वृक्षः अवभुग्नो नामितः ॥ १० ॥ तृषा तृष्णया ॥ ११ ॥ गव्यूतिमात्रात्क्रोशद्वयात् ॥ २० ॥ सुमन्दभाक् अतिमन्दभाग्यः ॥ २२ ॥ एकजः एक एव जातः असहायः ॥ ३२ ॥ बान्धवानां नन्दनाः सुखदाः ॥ ३५ ॥

* 'द्रुमो महीरुहे पारिजाते किंपुरुषे स्वरे' इति मेदिनीकोशान्नानाविधपक्षिध्वनिर्द्रुमः ।

प्रयच्छति वधे तुभ्यं तेन जीवसि दुर्मते ।
नन्वद्य ससुतामात्यं सकर्णानुजसौबलम् ॥ ३९
गत्वा क्रोधसमाविष्टः प्रेषयिष्ये यमक्षयम् ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यत्ते न कुप्यते नृपः ॥४०
धर्मात्मा पाण्डवश्रेष्ठः पापाचारो युधिष्ठिरः ।
एवमुक्त्वा महाबाहुः क्रोधसंदीप्तमानसः ॥ ४१
करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन्दीनमानसः ।
पुनर्दीनमना भूत्वा शान्तार्चिरिव पावकः ॥ ४२
भ्रातॄन्महीतले सुप्तानवैक्षत वृकोदरः ।
विश्वस्तानिव संविष्टान्पृथग्जनसमानिव ॥ ४३
नातिदूरेण नगरं वनादस्माद्धि लक्षये ।
जागर्तव्ये स्वपन्तीमे हन्त जागर्म्यहं स्वयम् ॥ ४४
पास्यन्तीमे जलं पश्चात्प्रतिबुद्धा जितक्लमाः ।
इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा ॥ ४५

इति श्रीमहाभा०आदिपर्वणि जतुगृहपर्वणि भीमजलाहरणे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

समाप्तं जतुगृहपर्व ।

---

## हिडिम्बवधपर्व ।

## १५२

वैशंपायन उवाच ।

तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः ।
अविदूरे वनात्तस्माच्छालवृक्षं समाश्रितः ॥ १
क्रूरो मानुषमांसादो महावीर्यपराक्रमः ।
प्रावृड्जलधरश्यामः पिङ्गाक्षो दारुणाकृतिः ॥ २
दंष्ट्राकरालवदनः पिशितेप्सुः क्षुधार्दितः ।
लम्बस्फिग्लम्बजठरो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥ ३
महावृक्षगलस्कन्धः शङ्कुकर्णो विभीषणः ।
यदृच्छया तानपश्यत्पाण्डुपुत्रान्महारथान् ॥ ४
विरूपरूपः पिङ्गाक्षः करालो घोरदर्शनः ।
पिशितेप्सुः क्षुधार्तश्च तानपश्यद्यदृच्छया ॥ ५
ऊर्ध्वाङ्गुलिः स कण्डूयन्धुन्वन्रूक्षान् शिरोरुहान्
जृम्भमाणो महावक्त्रः पुनः पुनरवेक्ष्य च ॥ ६
हृष्टो मानुषमांसस्य महाकायो महाबलः ।
आघ्राय मानुषं गन्धं भगिनीमिदमब्रवीत् ॥ ७
उपपन्नश्चिरस्याद्य भक्षोऽयं मम सुप्रियः ।
स्नेहस्रवान्प्रस्रवति जिह्वा पर्येति मे सुखम् ॥ ८
अष्टौ दंष्ट्राः सुतीक्ष्णाग्राश्चिरस्यापातदुःसहाः ।
देहेषु मज्जयिष्यामि स्निग्धेषु पिशितेषु च ॥ ९
आक्रम्य मानुषं कण्ठमाच्छिद्य धमनीमपि ।
उष्णं नवं प्रपास्यामि फेनिलं रुधिरं बहु ॥ १०
गच्छ जानीहि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः ।
मानुषो बलवान्गन्धो घ्राणं तर्पयतीव मे ॥ ११
हत्वैतान्मानुषान्सर्वानानयस्व ममान्तिकम् ।
अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते ॥ १२
एषामुत्कृत्य मांसानि मानुषाणां यथेष्टतः ।
भक्षयिष्याव सहितौ कुरु तूर्णं वचो मम ॥ १३
भक्षयित्वा च मांसानि मानुषाणां प्रकामतः ।
नृत्याव सहितावावां दत्ततालावनेकशः ॥ १४
एवमुक्ता हिडिम्बा तु हिडिम्बेन तदा वने ।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणेव राक्षसी ॥ १५
जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ ।
ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान्पृथया सह ।
शयानान्भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ॥१६
दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालपोतमिवोद्गतम् ।
राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ १७
अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ।
कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम ॥ १८
नाहं भ्रातृवचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम् ।
पतिस्नेहोऽतिबलवान्न तथा भ्रातृसौहृदम् ॥ १९
मुहूर्तमेव तृप्तिश्च भवेद्भ्रातुर्ममैव च ।
हतैरेतैरहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः ॥ २०

---

तुभ्यं तव ॥ ३९ ॥ लक्षये यामिरानामाक्रोशादिना ॥ ४४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे, एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

---

१५२

तत्रेति ॥ १ ॥ पिशितेप्सुः मांसार्थी स्फिक् जंघामूलम् ॥३ ॥ पर्येति मानुषमांसस्य लाभं सूचयन्ती चलतीव ॥८॥ धमनीं नाडीम् ॥१०॥ शालपोतमिव शालाङ्कुरमिव ॥१७॥ श्याम स्तरुणः अग्रे नवहेमाभमिति वक्ष्यमाणत्वात् ॥१८॥ क्रूरोपसंहितं हिंसायुक्तम् ॥ १९ ॥

सा कामरूपिणी रूपं कृत्वा मानुषमुत्तमम् ।
उपतस्थे महाबाहुं भीमसेनं शनैः शनैः ॥ २१
लज्जमानेव ललना दिव्याभरणभूषिता ।
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं भीमसेनमथाब्रवीत् ॥ २२
कुतस्त्वमसि संप्राप्तः कश्चासि पुरुषर्षभ ।
क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः ॥ २३
केयं वै बृहती श्यामा सुकुमारी तवानघ ।
शेते वनमिदं प्राप्य विश्वस्ता स्वगृहे यथा ॥ २४
नेदं जानाति गहनं वनं राक्षससेवितम् ।
वसति ह्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः २५
तेनाहं प्रेषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा ।
बिभक्षयिषता मांसं युष्माकममरोपमाः ॥ २६
साऽहं त्वामभिसंप्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम् ।
नान्यं भर्तारमिच्छामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २७
एतद्विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचर ।
कामोपहतचित्ताङ्गीं भजमानां भजस्व माम् ॥२८
त्रास्यामि त्वां महाबाहो राक्षसात्पुरुषादकात् ।
वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्ता भव ममानघ ॥ २९
अन्तरिक्षचरी ह्यस्मि कामतो विचरामि च ।
अतुलामाप्नुहि प्रीतिं तत्र तत्र मया सह ॥ ३०

भीमसेन उवाच ।

मातरं भ्रातरं ज्येष्ठं सुखसुप्तान्कथं त्विमान् ।
परित्यजेत कोन्वद्य प्रभवन्निह राक्षसि ॥ ३१
को हि सुप्तानिमान्भ्रातॄन्दत्वा राक्षसभोजनम् ।
मातरं च नरो गच्छेत्कामार्त इव मद्विधः ॥ ३२

राक्षस्युवाच ।

यत्ते प्रियं तत्करिष्ये सर्वानेतान्प्रबोधय ।
मोक्षयिष्याम्यहं कामं राक्षसात्पुरुषादकात् ३३

भीमसेन उवाच ।

सुखसुप्तान्वने भ्रातॄन्मातरं चैव राक्षसि ।
न भयाद्बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः ॥ ३४
न हि मे राक्षसा भीरु सोढुं शक्ताः पराक्रमम् ।
न मनुष्या न गन्धर्वा न यक्षाश्चारुलोचने ॥ ३५
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद्वापीच्छसि तत्कुरु ।
तं वा प्रेषय तन्वङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम् ॥ ३६

इति श्रीमहा०आदि० हिडिम्बवधपर्वणि भीमहिडिम्बासंवादे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५२॥

---

## १५३

वैशंपायन उवाच ।

तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
अवतीर्य द्रुमात्तस्मादाजगामाशु पाण्डवान् ॥ १
लोहिताक्षो महाबाहुरूर्ध्वकेशो महाननः ।
मेघसंघातवर्ष्मा च तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥ २
तमापतन्तं दृष्ट्वैव तथा विकृतदर्शनम् ।
हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः ॥ ३
आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः ।
साऽहं त्वां भ्रातृभिः सार्धं यद्ब्रवीमि तथा कुरु ४
अहं कामगमा वीर रक्षोबलसमन्विता ।
आरुहे मां मम श्रोणिं नेष्यामि त्वां विहायसा ५
प्रबोधयैतान्संसुप्तान्मातरं च परंतप ।
सर्वानेव गमिष्यामि गृहीत्वा वो विहायसा ॥ ६

भीम उवाच ।

माभैस्त्वं पृथुसुश्रोणि नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं हनिष्यामि प्रेक्षन्त्यास्ते सुमध्यमे ॥ ७
नायं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मम ।
सोढुं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसाः ॥ ८
पश्य बाहू सुवृत्तौ मे हस्तिहस्तनिभाविमौ ।
ऊरू परिघसंकाशौ संहतं चाप्युरो महत् ॥ ९
विक्रमं मे यथेन्द्रस्य साऽद्य द्रक्ष्यसि शोभने ।
मावमंस्थाः पृथुश्रोणि मत्वा मामिह मानुषम् ॥१०

हिडिम्बोवाच ।

नावमन्ये नरव्याघ्र त्वामहं देवरूपिणम् ।
दृष्टप्रभावस्तु मया मानुषेष्वेव राक्षसः ॥ ११

---

बिभक्षयिषता भक्षयितुमिच्छता॥२६॥इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥

१५३

तामिति ॥१॥ मेघसंघातवर्ष्मा अतिकृष्णशरीरः॥२॥

वैशंपायन उवाच ।

तथा संजल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत ।
वाचः शुश्राव ताः क्रुद्धो राक्षसः पुरुषादकः १२
अवेक्ष्यमाणस्तस्याश्च हिडिम्बो मानुषं वपुः ।
स्रग्दामपूरितशिखं समग्रेन्दुनिभाननम् ॥ १३
सुभ्रूनासाक्षिकेशान्तं सुकुमारनखत्वचम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं सुसूक्ष्माम्बरवाससम् ॥ १४
तां तथा मानुषं रूपं बिभ्रतीं सुमनोहरम् ।
पुंस्कामां शङ्कमानश्च चुक्रोध पुरुषादकः ॥ १५
संक्रुद्धो राक्षसस्तस्या भगिन्याः कुरुसत्तम ।
उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमब्रवीत् ॥१६
को हि मे भोक्तुकामस्य विघ्नं चरति दुर्मतिः ।
न बिभेषि हिडिम्बे किं मत्कोपाद्विप्रमोहिता॥१७
धिक्त्वामसति पुंस्कामे मम विप्रियकारिणि ।
पूर्वेषां राक्षसेन्द्राणां सर्वेषामयशस्करि ॥ १८
यानिमानाश्रिताऽकार्षीर्विप्रियं सुमहन्मम ।
एष तानद्य वै सर्वान्हनिष्यामि त्वया सह ॥ १९
एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः ।
वधायाभिपपातैनान्दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ २०
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य भीमः प्रहरतां वरः ।
भर्त्सयामास तेजस्वी तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥२१

वैशंपायन उवाच ।

भीमसेनस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं प्रहसन्निव ।
भगिनीं प्रतिसंक्रुद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२
किं ते हिडिम्ब एतैर्वा सुखसुप्तैः प्रबोधितैः ।
मामासादय दुर्बुद्धे तरसा त्वं नराशन ॥ २३
मय्येव प्रहरैहि त्वं न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
विशेषतोऽनपकृते परेणापकृते सति ॥ २४
न हीयं स्ववशाद्बाला कामयत्यद्य मामिह ।
चोदितैषा ह्यनङ्गेन शरीरान्तरचारिणा ॥ २५
भगिनी तव दुर्वृत्त रक्षसां वै यशोहर ।
त्वन्नियोगेन चैवेयं रूपं मम समीक्ष्य च ॥ २६
कामयत्यद्य मां भीरुस्तव नैषापराध्यति ।
अनङ्गेन कृते दोषे नेमां गर्हितुमर्हसि ॥ २७
मयि तिष्ठति दुष्टात्मन्न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
संगच्छस्व मया सार्धमेकेनैको नराशन ॥ २८
अहमेको गमिष्यामि त्वामद्य यमसादनम् ।
अद्य मद्बलनिष्पिष्टं शिरो राक्षस दीर्यताम् ।
कुञ्जरस्येव पादेन विनिष्पिष्टं बलीयसः ॥ २९
अद्य गात्राणि ते कङ्काः श्येना गोमायवस्तथा ।
कर्षन्तु भुवि संहृष्टा निहतस्य मया मृधे ॥ ३०
क्षणेनाद्य करिष्येऽहमिदं वनमराक्षसम् ।
पुरा यद्दूषितं नित्यं त्वया भक्षयता नरान् ॥ ३१
अद्य त्वां भगिनी रक्षः कृष्यमाणं मयाऽसकृत् ।
द्रक्ष्यत्यद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महाद्विपम् । ३२
निराबाधास्त्वयि हते मया राक्षसपांसन ।
वनमेतच्चरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः ॥ ३३

हिडिम्ब उवाच ।

गर्जितेन वृथा किं ते कत्थितेन च मानुष ।
कृत्वैतत्कर्मणा सर्वं कत्थेथा मा चिरं कृथाः ३४
बलिनं मन्यसे यच्चाप्यात्मानं सपराक्रमम् ।
ज्ञास्यस्यद्य समागम्य मयात्मानं बलाधिकम् ३५
न तावदेतान्हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथासुखम् ।
एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याप्रियंवदम् ॥ ३६
पीत्वा तवासृग्गात्रेभ्यस्ततः पश्चादिमानपि ।
हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विप्रियकारिणीम् ३७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो भीमसेनमरिंदम ॥ ३८
तस्याभिद्रवतस्तूर्णं भीमो भीमपराक्रमः ।
वेगेन प्रहितं बाहुं निजग्राह हसन्निव ॥ ३९
निगृह्य तं बलाद्भीमो विस्फुरन्तं चकर्ष ह ।
तस्माद्देशाद्धनूंष्यष्टौ सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४०
ततः स राक्षसः क्रुद्धः पाण्डवेन बलार्दितः ।
भीमसेनं समालिङ्ग्य व्यनदद्भैरवं रवम् ॥ ४१
पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः ।
मा शब्दः सुखसुप्तानां भ्रातॄणां मे भवेदिति ॥४२
अन्योन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा ।
हिडिम्बो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम् ॥ ४३
बभञ्जतुस्तदा वृक्षाँल्लताश्चाकर्षतुस्तदा ।
मत्ताविव च संरब्धौ वारणौ षष्टिहायनौ ॥ ४४
तयोः शब्देन महता विबुद्धास्ते नरर्षभाः ।
सह मात्रा च ददृशुर्हिडिम्बामग्रतः स्थिताम् ४५

इति श्रीमहा० आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि हिडिम्बयुद्धे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

---

ः वाससामिति समासान्तष्टच् । तेन अकारान्तःशब्दः॥१४॥ गमिष्यामि गमयिष्यामि नयिष्यामिति वा पाठ ॥२९॥आकर्षतुः आचकर्षतुः ॥४४ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भवरतभावदीपे त्रिपञ्चाशदाधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥ आर्षत्वात्

## १५४

वैशंपायन उवाच ।
प्रबुद्धास्ते हिडिम्बाया रूपं दृष्ट्वातिमानुषम् ।
विस्मिताः पुरुषव्याघ्रा बभूवुः पृथया सह ॥ १
ततः कुन्ती समीक्ष्यैनां विस्मिता रूपसंपदा ।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः ॥ २
कस्य त्वं सुरगर्भाभे का वाऽसि वरवर्णिनि ।
केन कार्येण संप्राप्ता कुतश्चागमनं तव ॥ ३
यदि वाऽस्य वनस्य त्वं देवता यदि वाऽप्सराः ।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं किमर्थं चेह तिष्ठसि ॥ ४
हिडिम्बोवाच ।
यदेतत्पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत् ।
निवासो राक्षसस्यैष हिडिम्बस्य ममैव च ॥ ५
तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भाविनि ।
भ्रात्रा संप्रेषितामार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसितुम् ६
क्रूरबुद्धेरहं तस्य वचनादागता त्विह ।
अद्राक्षं नवहेमाभं तव पुत्रं महाबलम् ॥ ७
ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे ।
चोदिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा ॥ ८
ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः ।
अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया ॥ ९
चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः ।
स्वयमेवागतो हन्तुमिमान्सर्वांस्तवात्मजान् ॥ १०
स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता ।
बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना ॥११
विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जमानौ परस्परम् ।
पश्यैवं युधि विक्रान्तावेतौ च नरराक्षसौ ॥ १२
वैशंपायन उवाच ।
तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः ।
अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ १३
तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम् ।
काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहाविव बलोत्कटौ ॥१४
अथान्योन्यं समाश्लिष्य विकर्षन्तौ पुनः पुनः ।
दावाग्निधूमसदृशं चक्रतुः पार्थिवं रजः ॥ १५
वसुधारेणुसंवीतौ वसुधाधरसंनिभौ ।
बभ्राजतुर्यथा शैलौ नीहारेणाभिसंवृतौ ॥ १६
राक्षसेन तदा भीमं क्लिश्यमानं निरीक्ष्य च ।
उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्छनकैरिव ॥ १७
भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम् ।
समेतं भीमरूपेण रक्षसा श्रमकर्शिताः ॥ १८
साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातयिष्यामि राक्षसम्
नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपायिष्यतः ॥ १९
भीम उवाच ।
उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः संभ्रमस्त्वया ।
न जात्वयं पुनर्जीवेन्मद्बाह्वन्तरमागतः ॥ २०
अर्जुन उवाच ।
किमनेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा ।
गन्तव्येन चिरं स्थातुमिह शक्यमरिंदम ॥ २१
पुरा संरज्यते प्राची पुरा संध्या प्रवर्तते ।
रौद्रे मुहूर्ते रक्षांसि प्रबलानि भवन्त्युत ॥ २२
त्वरस्व भीम माक्रीड जहि रक्षो विभीषणम् ।
पुरा विकुरुते मायां भुजयोः सारमर्पय ॥ २३
वैशंपायन उवाच ।
अर्जुनेनैवमुक्तस्तु भीमो रोषाज्ज्वलन्निव ।
बलमाहारयामास यद्वायोर्जगतः क्षये ॥ २४
ततस्तस्याम्बुदाभस्य भीमो रोषात्तु रक्षसः ।
उत्क्षिप्याभ्रामयद्देहं तूर्णं शतगुणं तदा ॥ २५
भीम उवाच ।
वृथामांसैर्वृथापुष्टो वृथावृद्धो वृथामतिः ।
वृथामरणमर्हस्त्वं वृथाद्य न भविष्यसि ॥ २६
क्षेममद्य करिष्यामि यथा वनमकण्टकम् ।
न पुनर्मानुषान्हत्वा भक्षयिष्यसि राक्षस ॥ २७
अर्जुन उवाच ।
यदि वा मन्यसे भारं त्वमिमं राक्षसं युधि ।
करोमि तव साहाय्यं शीघ्रमेव निपात्यताम् ॥२८
अथवाऽप्यहमेवैनं हनिष्यामि वृकोदर ।
कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम ॥ २९

---

१५४

प्रबुद्धा इति ॥ १ ॥ जिघांसितुं हन्तुं स्वार्थे सन् ॥६॥ भावे चित्ते ॥ ८ ॥ व्यपनीतो दूरे नीतः ॥११ ॥ गन्तव्ये सति चिरं स्थातुं न शक्यम् ॥ २१ ॥ विभीषणम् विशेषेण भयंकरं पुरा प्रागेव मायां विकुरुते रक्षो रौद्रे मुहूर्तेऽतः अस्मिन्सारं बलं अर्पय निपातय एनं शीघ्रं जहीत्यर्थः ॥ २३ ॥ आभ्रामयत्समन्ताद्भ्रामितवान् ॥ २५ ॥ वृथावृद्धो दीर्घत्वं गतः वृथामरणं बाहुयुद्धेन हतस्य स्वर्गकीर्त्योरभावात् ॥ २६ ॥ क्रोधोद्दीपनायार्जुन उवाच यदिवेति ॥ २८ ॥

वैशंपायन उवाच ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
निष्पिष्यैनं बलाद्भूमौ पशुमारममारयत् ॥ ३०
स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम् ।
पूरयंस्तद्वनं सर्वं जलार्द्र इव दुन्दुभिः ॥ ३१
बाहुभ्यां योक्त्रयित्वा तं बलवान्पाण्डुनन्दनः ।
मध्ये भङ्क्त्वा महाबाहुर्हर्षयामास पाण्डवान् ३२
हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः ।
अपूजयन्नरव्याघ्रं भीमसेनमरिंदमम् ॥ ३३
अभिपूज्य महात्मानं भीमं भीमपराक्रमम् ।
पुनरेवार्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम् ॥ ३४
न दूरं नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो ।
शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात्सुयोधनः ३५
ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा मात्रा सह महारथाः ।
प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥ ३६

इति श्रीमहा० आदिपर्वणि हिडिम्बवधपर्वणि हिडिम्बवधे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५४॥

---

## १५५

भीमसेन उवाच ।
स्मरन्ति वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम् ।
हिडिम्बे व्रज पन्थानं त्वमिमं भ्रातृसेवितम् ॥ १
युधिष्ठिर उवाच ।
क्रुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मा स्म स्त्रियं वधीः ।
शरीरगुप्त्यभ्यधिकं धर्मं गोपाय पाण्डव ॥ २
वधाभिप्रायमायांतमवधीस्त्वं महाबलम् ।
रक्षसस्तस्य भगिनी किं नः क्रुद्धा करिष्यति ॥३
वैशंपायन उवाच ।
हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४
आर्ये जानासि यद्दुःखमिह स्त्रीणामनङ्गजम् ।
तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥ ५
सोढं तत्परमं दुःखं मया कालप्रतीक्षया ।
सोऽयमभ्यागतः कालो भविता मे सुखोदयः ॥६
मयाह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्मं स्वजनं तथा ।
वृतोऽयं पुरुषव्याघ्रस्तव पुत्रः पतिः शुभे ॥ ७
वीरेणाऽहं तथानेन त्वया चापि यशस्विनि ।
प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ८
तदर्हसि कृपां कर्तुं मयि त्वं वरवर्णिनि ।
मत्वा मूढेति तन्मां त्वं भक्ता वाऽनुगतेति वा ९
भर्त्राऽनेन महाभागे संयोजय सुतेन ह ।
तमुपादाय गच्छेयं यथेष्टं देवरूपिणम् ।
पुनश्चैवानयिष्यामि विस्रम्भं कुरु मे शुभे ॥ १०
अहं हि मनसा ध्याता सर्वान्नेष्यामि वः सदा ।
वृजिनात्तारयिष्यामि दुर्गेषु विषमेषु च ॥ ११
पृष्ठेन वो वहिष्यामि शीघ्रं गतिमभीप्सतः ।
यूयं प्रसादं कुरुत भीमसेनो भजेत माम् ॥ १२
आपदस्तरणे प्राणान्धारयेद्येन तेन वा ।
सर्वमावृत्य कर्तव्यं तं धर्ममनुवर्तता ॥ १३
आपत्सु यो धारयति धर्मं धर्मविदुत्तमः ।
व्यसनं ह्येव धर्मस्य धर्मिणामापदुच्यते ॥ १४
पुण्यं प्राणान्धारयति पुण्यं प्राणदमुच्यते ।
येन येनाचरेद्धर्मं तस्मिन्गर्हा न विद्यते ॥ १५
युधिष्ठिर उवाच ।
एवमेतद्यथात्थ त्वं हिडिम्बे नात्र संशयः ।
स्थातव्यं तु त्वया सत्ये यथा ब्रूयां सुमध्यमे ॥१६
स्नातं कृताह्निकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम् ।
भीमसेनं भजेथास्त्वं प्रागस्तगमनाद्रवेः ॥ १७
अहःसु विहरानेन यथाकामं मनोजवा ।
अयं त्वानयितव्यस्ते भीमसेनः सदा निशि ॥१८

---

योक्त्रयित्वा निबध्य उरोदेशे गृहीत्वा प्रतीपं विनाम्य यष्टिवन्मध्यदेशे भङ्क्त्वा त्रोटयित्वा । पशुमारं अमारयत् । पाण्डवांश्च हर्षयामासेत्यन्वयः ॥ ३२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

१५५

स्मरन्तीति । भ्रातृसेवितं पन्थानं मृत्युम् ॥ १ ॥ अभिवाद्य आर्ये इत्याभाष्य चौरादिकस्यवदेरूपं ॥ ४ ॥ वहिष्यामि प्रापयिष्यामि आर्षं इट् प्रवक्ष्यामीति पाठेऽपिवहेरेव रूपं । गतिं गम्यं देशम् ॥१२॥ आवृत्य अङ्गीकृत्य ॥१३॥ व्यसनं बाधकम् ॥ १४ ॥

वैशंपायन उवाच ।

तथेति तत्प्रतिज्ञाय भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ।
शृणु राक्षसि सत्येन समयं ते वदाम्यहम् ॥ १९
यावत्कालेन भवति पुत्रस्योत्पादनं शुभे ।
तावत्कालं गमिष्यामि त्वया सह सुमध्यमे ॥२०

वैशंपायन उवाच ।

तथेति तत्प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा ।
भीमसेनमुपादाय सोर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥ २१
शैलशृङ्गेषु रम्येषु देवतायतनेषु च ।
मृगपक्षिविघुष्टेषु रमणीयेषु सर्वदा ॥ २२
कृत्वा च रूपं परमं सर्वाभरणभूषिता ।
संजल्पन्ती सुमधुरं रमयामास पाण्डवम् ॥ २३
तथैव वनदुर्गेषु पुष्पितद्रुमवल्लिषु ।
सरःसु रमणीयेषु पद्मोत्पलयुतेषु च ॥ २४
नदीद्वीपप्रदेशेषु वैदूर्यसिकतासु च ।
सुतीर्थवनतोयासु तथा गिरिनदीषु च ॥ २५
काननेषु विचित्रेषु पुष्पितद्रुमवल्लिषु ।
हिमवद्गिरिकुञ्जेषु गुहासु विविधासु च ॥ २६
प्रफुल्लशतपत्रेषु सरःस्वमलवारिषु ।
सागरस्थप्रदेशेषु मणिहेमचितेषु च ॥ २७
पल्वलेषु च रम्येषु महाशालवनेषु च ।
देवारण्येषु पुण्येषु तथा पर्वतसानुषु ॥ २८
गुह्यकानां निवासेषु तापसायतनेषु च ।
सर्वर्तुफलरम्येषु मानसेषु सरःसु च ॥ २९
बिभ्रती परमं रूपं रमयामास पाण्डवम् ।
रमयन्ती तथा भीमं तत्र तत्र मनोजवा ॥ ३०
प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम् ।
विरूपाक्षं महावक्त्रं शङ्कुकर्णं विभीषणम् ॥ ३१
भीमनादं सुताम्रोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाबलम् ।
महेष्वासं महावीर्यं महासत्त्वं महाभुजम् ॥ ३२
महाजवं महाकायं महामायमरिंदमम् ।
दीर्घघोणं महोरस्कं विकटोद्बद्धपिण्डिकम् ॥ ३३
अमानुषं मानुषजं भीमवेगं महाबलम् ।
यः पिशाचानतीत्यान्यान्बभूवातीव राक्षसान् ३४
बालोऽपि यौवनं प्राप्तो मानुषेषु विशांपते ।
सर्वास्त्रेषु परं वीरः प्रकर्षमगमद्बली ॥ ३५
सद्यो हि गर्भान्राक्षस्यो लभन्ते प्रसवन्ति च ।
कामरूपधराश्चैव भवन्ति बहुरूपिकाः ॥ ३६
प्रणम्य विकचः पादावगृह्णात्स पितुस्तदा ।
मातुश्च परमेष्वासस्तौ च नामास्य चक्रतुः ॥ ३७
घटो हास्योत्कच इति माता तं प्रत्यभाषत ।
अब्रवीत्तेन नामास्य घटोत्कच इति स्म ह ॥ ३८
अनुरक्तश्च तानासीत्पाण्डवान्स घटोत्कचः ।
तेषां च दयितो नित्यमात्मनित्यो बभूव ह ॥ ३९
संवाससमयो जीर्ण इत्याभाष्य ततस्तु तान् ।
हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत ॥ ४०
घटोत्कचो महाकायः पाण्डवान्पृथया सह ।
अभिवाद्य यथान्यायमब्रवीच्च प्रभाष्यताम् ॥ ४१
किं करोम्यहमार्याणां निःशङ्कं वदतानघाः ।
तं ब्रुवन्तं भैमसेनिं कुन्ती वचनमब्रवीत् ॥ ४२
त्वं कुरूणां कुले जातः साक्षाद्भीमसमो ह्यसि ।
ज्येष्ठः पुत्रोऽसि पञ्चानां साहाय्यं कुरु पुत्रक ॥४३

वैशंपायन उवाच ।

पृथयाऽप्येवमुक्तस्तु प्रणम्यैव वचोऽब्रवीत् ।
यथा हि रावणो लोके इन्द्रजिच्च महाबलः ।
वर्ष्मवीर्यसमो लोके विशिष्टश्चाभवं नृषु ॥ ४४
कृत्यकाल उपस्थास्ये पितॄनिति घटोत्कचः ।
आमन्त्र्य रक्षसां श्रेष्ठः प्रतस्थे चोत्तरां दिशम् ॥
स हि सृष्टो मघवता शक्तिहेतोर्महात्मना ।
कर्णस्याप्रतिवीर्यस्य प्रतियोद्धा महारथः ॥ ४६

इति श्रीमहा० आदि० हिडिम्बवधपर्वणि घटोत्कचोत्पत्तौ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

---

शङ्कुकर्णं तीक्ष्णाग्रस्तब्धकर्णम् ॥ ३१ ॥ दीर्घघोणं दीर्घनासिकम् । विकटे वक्रे उद्बद्धे उच्चे पिण्डिके जानुगुल्फान्तरे पाश्चात्यप्रदेशः पिण्डिका ते द्वे यस्य तं विकटोद्बद्धपिण्डिकम् ॥ ३३ ॥ विकचः केशहीनः ॥ ३७ ॥ घट इति । घटसादृश्याद्घटः शिरः । 'घटः समाधिभेदे ना शिरः कूटकटेषु च' इति मेदिनी । ह स्पष्टं अस्य पुत्रस्य उत्कचः विकेशो यतस्ततो घटःउत्कचो यस्येति योगाद्घटोत्कच इति नामाब्रवीत् ॥ ३८ ॥ आत्मनित्यः स्ववशः ॥ ३९ ॥ संवाससमयः सहवासकालः जीर्णोऽतीतः पुत्रोत्पत्तिपर्यन्तमेव तस्य कृतत्वात् ॥ ४० ॥ समयमेवाह कृत्येति ॥४५॥ घटोत्कचोत्पत्तिप्रयोजनमाह सहीति॥४६॥

इति आदिप० नै० भा० भा० पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

## १५६

वैशंपायन उवाच ।

ते वनेन वनं गत्वा घ्नन्तो मृगगणान्बहून् ।
अपक्रम्य ययू राजंस्त्वरमाणा महारथाः ॥ १

मत्स्यांस्त्रिगर्तान्पञ्चालान्कीचकानन्तरेण च ।
रमणीयान्वनोद्देशान्प्रेक्षमाणाः सरांसि च ॥ २

जटाः कृत्वात्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः ।
सह कुन्त्या महात्मानो बिभ्रतस्तापसं वपुः ॥ ३

क्वचिद्वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः ।
क्वचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः ॥ ४

ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
नीतिशास्त्रं च सर्वज्ञा ददृशुस्ते पितामहम् ॥ ५

तेऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं तदा ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परंतपाः ॥ ६

व्यास उवाच ।

मयेदं व्यसनं पूर्वं विदितं भरतर्षभाः ।
यथा तु तैरधर्मेण धार्तराष्ट्रैर्विवासिताः ॥ ७

तद्विदित्वाऽस्मि संप्राप्तश्चिकीर्षुः परमं हितम् ।
न विषादोऽत्र कर्तव्यः सर्वमेतत्सुखाय वः ॥ ८

समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः ।
दीनतो बालतश्चैव स्नेहं कुर्वन्ति मानवाः ।
तस्मादभ्यधिकः स्नेहो युष्मासु मम सांप्रतम् ॥९

स्नेहपूर्वं चिकीर्षामि हितं वस्तन्निबोधत ।
इदं नगरमभ्याशे रमणीयं निरामयम् ।
वसतेह प्रतिच्छन्ना ममागमनकाङ्क्षिणः ॥ १०

वैशंपायन उवाच ।

एवं स तान्समाश्वास्य व्यासः सत्यवतीसुतः ।
एकचक्रामभिगतः कुन्तीमाश्वासयत्प्रभुः ॥ ११

व्यास उवाच ।

जीवत्पुत्रि सुतस्तेऽयं धर्मनित्यो युधिष्ठिरः ।
धर्मेण पृथिवीं जित्वा महात्मा पुरुषर्षभः ।
पृथिव्यां पार्थिवान्सर्वान्प्रशासिष्यति धर्मराट् ॥
पृथिवीमखिलां जित्वा सर्वां सागरमेखलाम् ।
भीमसेनार्जुनबलाद्भोक्ष्यते नात्र संशयः ॥ १३

पुत्रास्तव च माद्र्याश्च सर्व एव महारथाः ।
स्वराष्ट्रे विहरिष्यन्ति सुखं सुमनसः सदा ॥ १४

यक्ष्यन्ति च नरव्याघ्रा निर्जित्य पृथिवीमिमाम् ।
राजसूयाश्वमेधाद्यैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ १५

अनुगृह्य सुहृद्वर्गं भोगैश्वर्यसुखेन च ।
पितृपैतामहं राज्यमिमे भोक्ष्यन्ति ते सुताः ॥१६

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा निवेश्यैनान्ब्राह्मणस्य निवेशने ।
अब्रवीत्पाण्डवश्रेष्ठमृषिर्द्वैपायनस्तदा ॥ १७

इह मासं प्रतीक्षध्वमागमिष्याम्यहं पुनः ।
देशकालौ विदित्वैव लप्स्यध्वं परमां मुदम् ॥ १८

स तैः प्राञ्जलिभिः सर्वैस्तथेत्युक्तो नराधिप ।
जगाम भगवान्व्यासो यथागतमृषिः प्रभुः ॥ १९

इति श्रीमहा० आदि० हिडिम्ब० एकचक्राप्रवेशे व्यासदर्शने षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

समाप्तं हिडिम्बवधपर्व ।

---

## बकवधपर्व ।

## १५७

जनमेजय उवाच ।

एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
अत ऊर्ध्वं द्विजश्रेष्ठ किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
ऊषुर्नातिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २

---

१५६

ते इति । वनेन वनं वनाद्वनम् ॥ १ ॥ ब्राह्मं वेदं ब्रह्मप्रतिपादकं उपनिषद्भागं ब्राह्मणयोग्यं वा । पितामहं व्यासम् ॥ ५ ॥ एकचक्रा आभिगत. तैः सहेतिशेष ॥११॥

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय. ॥ १५६ ॥

१५७

एकचक्रामिति ॥ १ ॥

रमणीयानि पश्यन्तो वनानि विविधानि च ।
पार्थिवानपि चोद्देशान्सरितश्च सरांसि च ॥ ३
चेरुर्भैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशांपते ।
बभूवुर्नागराणां च स्वैर्गुणैः प्रियदर्शनाः ॥ ४
निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि ।
तया विभक्तान्भागांस्ते भुञ्जते स्म पृथक्पृथक् ॥
अर्धं ते भुञ्जते वीराः सह मात्रा परंतपाः ।
अर्धं सर्वस्य भैक्षस्य भीमो भुङ्क्ते महाबलः ॥ ६
तथा तु तेषां वसतां तस्मिन्राष्ट्रे महात्मनाम् ।
अतिचक्राम सुमहान्कालोऽथ भरतर्षभ ॥ ७
ततः कदाचिद्भैक्षाय गतास्ते पुरुषर्षभाः ।
संगत्या भीमसेनस्तु तत्रास्ते पृथया सह ॥ ८
अथार्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने ।
भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव भारत ॥ ९
रोरूयमाणांस्तान्दृष्ट्वा परिदेवयतश्च सा ।
कारुण्यात्साधुभावाच्च कुन्ती राजन्न चक्षमे ॥१०
मथ्यमानेव दुःखेन हृदयेन पृथा तदा ।
उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः ॥११
वसाम सुसुखं पुत्र ब्राह्मणस्य निवेशने ।
अज्ञाता धार्तराष्ट्रस्य सत्कृता वीतमन्यवः ॥ १२
सा चिन्तये सदा पुत्र ब्राह्मणस्यास्य किं न्वहम् ।
प्रियं कुर्यामिति गृहे यत्कुर्युरुषिताः सुखम् ॥ १३
एतावान्पुरुषस्तात कृतं यस्मिन्न नश्यति ।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः ॥१४
तदिदं ब्राह्मणस्यास्य दुःखमापतितं ध्रुवम् ।
तत्रास्य यदि साहाय्यं कुर्यामुपकृतं भवेत् ॥ १५

भीमसेन उवाच ।

ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम् ।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥

वैशंपायन उवाच ।

एवं तौ कथयन्तौ च भूयः शुश्रुवतुः स्वनम् ।
आर्तिजं तस्य विप्रस्य सभार्यस्य विशांपते ॥ १७
अन्तःपुरं ततस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
विवेश त्वरिता कुन्ती बद्धवत्सेव सौरभी ॥ १८
ततस्तं ब्राह्मणं तत्र भार्यया च सुतेन च ।
दुहित्रा चैव सहितं ददर्शावनताननम् ॥ १९

ब्राह्मण उवाच ।

धिगिदं जीवितं लोके गतसारमनर्थकम् ।
दुःखमूलं पराधीनं भृशमप्रियभागि च ॥ २०
जीविते परमं दुःखं जीविते परमो ज्वरः ।
जीविते वर्तमानस्य दुःखानामागमो ध्रुवः ॥ २१
आत्मा ह्येको हि धर्मार्थौ कामं चैव निषेवते ।
एतैश्च विप्रयोगोऽपि दुःखं परमनन्तकम् ॥ २२
आहुः केचित्परं मोक्षं स च नास्ति कथंचन ।
अर्थप्राप्तौ तु नरकः कृत्स्न एवोपपद्यते ॥ २३
अर्थेप्सुता परं दुःखमर्थप्राप्तौ ततोऽधिकम् ।
जातस्नेहस्य चार्थेषु विप्रयोगे महत्तरम् ॥ २४
न हि योगं प्रपश्यामि येन मुच्येयमापदः ।
पुत्रदारेण वा सार्धं प्राद्रवेयमनामयम् ॥ २५
यतितं वै मया पूर्वं वेत्थ ब्राह्मणि तत्तथा ।
क्षेमं यतस्ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम् ॥ २६
इह जाता विवृद्धाऽस्मि पिता चापि ममेति वै ।
उक्तवत्यसि दुर्मेधे याच्यमाना मयाऽसकृत् ॥२७
स्वर्गतोऽपि पिता वृद्धस्तथा माता चिरं तव ।
बान्धवा भूतपूर्वाश्च तत्र वासे तु का रतिः ॥२८
सोऽयं ते बन्धुकामाया अशृण्वन्त्या वचो मम ।
बन्धुप्रणाशः संप्राप्तो भृशं दुःखकरो मम ॥ २९
अथवा मद्विनाशोऽयं न हि शक्ष्यामि कंचन ।
परित्यक्तुमहं बन्धुं स्वयं जीवन्नृशंसवत् ॥ ३०
सहधर्मचरीं दान्तां नित्यं मातृसमां मम ।
सखायं विहितां देवैर्नित्यं परमिकां गतिम् ॥३१
पित्रा मात्रा च विहितां सदा गार्हस्थ्यभागिनीम्
वरयित्वा यथान्यायं मन्त्रवत्परिणीय च ॥ ३२
कुलीनां शीलसंपन्नामपत्यजननीमपि ।
त्वामहं जीवितस्यार्थे साध्वीमनपकारिणीम् ३३
परित्यक्तुं न शक्ष्यामि भार्यां नित्यमनुव्रताम् ।
कुत एव परित्यक्तुं सुतं शक्ष्याम्यहं स्वयम् ॥ ३४
बालमप्राप्तवयसमजातव्यञ्जनाकृतिम् ।
भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना ॥३५
यया दौहित्रजाँल्लोकानाशंसे पितृभिः सह ।
स्वयमुत्पाद्य तां बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥ ३६

---

पार्थिवान्पृथिवीसंबन्धिनः ॥ ३ ॥ भैक्षं भिक्षालब्धमन्नं चेरुर्भक्षितवन्तः आपदि क्षात्रियस्यापि तदौचित्यात् ॥ ४ ॥ परिदेवयतः विविधं लालप्यमानान् ॥ १० ॥ गृहे सुखं उषिताः दुर्वासःप्रभृतय इव ॥ १३ ॥ कृतं उपकृतं न नश्यति प्रत्युपकारं विना नावसीदति । एतावानेव पुरुषो न चान्यः ॥१४॥ सौरभी कामधेनुसंततिर्गौः ॥ १८ ॥ योगं उपायं ॥ २५ ॥ भूतपूर्वाः पूर्वं भूताः नष्टा इत्यर्थः॥२८॥ मातृसमां आदिभूमिसमां गोसमां वा ' माता गौर्यादिजननी गोत्रह्माण्यादि भूमिषु'इति मेदिनी ॥३१॥

मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः ।
कन्यायां केचिदपरे मम तुल्यावुभौ स्मृतौ ॥ ३७
यस्यां लोकाः प्रसूतिश्च स्थिता नित्यमथो सुखम्
अपापां तामहं बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ॥ ३८
आत्मानमपि चोत्सृज्य तप्स्यामि परलोकगः ।
त्यक्ता ह्येते मया व्यक्तं नेह शक्ष्यन्ति जीवितुम्॥
एषां चान्यतमत्यागो नृशंसो गर्हितो बुधैः ।
आत्मत्यागे कृते चेमे मरिष्यन्ति मया विना ४०
स कृच्छ्रामहमापन्नो न शक्तस्तर्तुमापदम् ।
अहो धिक्कां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः ।
सर्वैः सह मृतं श्रेयो न च मे जीवितं क्षमम् ॥४१

इति श्रीमहा० आदिपर्व० बकवधपर्वणि ब्राह्मणचिन्तायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

---

## १५८

ब्राह्मण्युवाच ।
न संतापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव कर्हिचित् ।
न हि संतापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते ॥ १
अवश्यं निधनं सर्वैर्गन्तव्यमिह मानवैः ।
अवश्यभाविन्यर्थे वै संतापो नेह विद्यते ॥ २
भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थमिष्यते ।
व्यथां जहि सुबुध्द्या त्वं स्वयं यास्यामि तत्र च३
एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम् ।
प्राणानपि परित्यज्य यद्भर्तृहितमाचरेत् ॥ ४
तच्च तत्र कृतं कर्म तवापीदं सुखावहम् ।
भवत्यमुत्र चाक्षय्यं लोकेऽस्मिंश्च यशस्करम् ॥५
एष चैव गुरुर्धर्मो यं प्रवक्ष्याम्यहं तव ।
अर्थश्च तव धर्मश्च भूयानत्र प्रदृश्यते ॥ ६
यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तःसोऽर्थस्त्वया मयि ।
कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया ॥ ७
समर्थः पोषणे चासि सुतयो रक्षणे तथा ।
न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे ॥ ८
मम हि त्वद्विहीनायाः सर्वप्राणधनेश्वर ।
कथं स्यातां सुतौ बालौ भरेयं च कथं त्वहम् ९
कथं हि विधवाऽनाथा बालपुत्रा विना त्वया ।
मिथुनं जीवयिष्यामि स्थिता साधुगते पथि १०
अहं कृतावलिप्तैश्च प्रार्थ्यमानामिमां सुताम् ।
अयुक्तैस्तव संबन्धे कथं शक्ष्यामि रक्षितुम् ॥ ११
उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः ।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम् ॥
साऽहं विचाल्यमाना वै प्रार्थ्यमाना दुरात्मभिः
स्थातुं पथि न शक्ष्यामि सज्जनेष्टे द्विजोत्तम ॥१३
कथं तव कुलस्यैकामिमां बालामनागसम् ।
पितृपैतामहे मार्गे नियोक्तुमहमुत्सहे ॥ १४
कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन्गुणानाधातुमीप्सितान्
अनाथे सर्वतो लुप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान् ॥ १५
इमामपि च ते बालामनाथां परिभूय माम् ।
अनर्हाः प्रार्थयिष्यन्ति शूद्रा वेदश्रुतिं यथा ॥ १६
तां चेदहं न दित्सेयं त्वद्गुणैरुपबृंहिताम् ।
प्रमथ्यैनां हरेयुस्ते हविर्ध्वाङ्क्षा इवाध्वरात् ॥ १७
संप्रेक्षमाणा पुत्रं ते नानुरूपमिवात्मनः ।
अनर्हवशमापन्नामिमां चापि सुतां तव ॥ १८
अवज्ञाता च लोकेषु तथात्मानमजानती ।
अवलिप्तैर्नरैर्ब्रह्मन्मरिष्यामि न संशयः १९
तौ च हीनौ मया बालौ त्वया चैव तथात्मजौ ।
विनश्येतां न संदेहो मत्स्याविव जलक्षये ॥ २०
त्रितयं सर्वथाप्येवं विनशिष्यत्यसंशयम् ।
त्वया विहीनं तस्मात्त्वं मां परित्यक्तुमर्हसि ॥ २१
व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम् ।
गन्तुं ब्रह्मन्सपुत्राणामिति धर्मविदो विदुः ॥ २२
परित्यक्तः सुतश्चायं दुहितेयं तथा मया ।
बान्धवाश्च परित्यक्तास्त्वदर्थं जीवितं च मे ॥२३

---

इति आदिपर्वणि नै० भा० भा० सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

१५८

नेति । वैद्यस्य विद्यावतः ॥१॥ तत्र भर्तृहितनिमित्तं तच्च प्राणत्यागरूपं कर्म ॥५॥ अहंकृताः गर्विताः अवलिप्ताः कलङ्किताः 'अवलेपस्तु गर्वस्यालेपने दूषणेऽपि च' इति मेदिनी ॥११॥ मार्गे सत्कुलसंबन्धरूपे॥१४॥ गुणान्विद्यादीन्॥१५॥ ध्वाङ्क्षाः काकाः ॥१७॥ परा व्युष्टिर्महद्भाग्यम् । 'व्युष्टिः फले समृद्धौ स्त्री' इति मेदिनी ॥ २२ ॥

यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा ।
विशिष्यते स्त्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः ॥
तदिदं यच्चिकीर्षामि धर्मं परमसंमतम् ।
इष्टं चैव हितं चैव तव चैव कुलस्य च ॥ २५
इष्टानि चाप्यपत्यानि द्रव्याणि सुहृदः प्रियाः ।
आपद्धर्मप्रमोक्षाय भार्या चापि सतां मतम् ॥ २६
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ २७
दृष्टादृष्टफलार्थं हि भार्या पुत्रो धनं गृहम् ।
सर्वमेतद्विधातव्यं बुधानामेष निश्चयः ॥ २८
एकतो वा कुलं कृत्स्नमात्मा वा कुलवर्धनः ।
न समं सर्वमेवेति बुधानामेष निश्चयः ॥ २९
स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना ।
अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिपालय ॥ ३०
अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ।
धर्मज्ञान्राक्षसानाहुर्न हन्यात्स च मामपि ॥ ३१
निःसंशयं वधः पुंसां स्त्रीणां संशयितो वधः ।
अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापयितुमर्हसि ॥ ३२
भुक्तं प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान् ।
त्वत्प्रसूतिः प्रिया प्राप्ता न मां तप्स्यत्यजीवितम् ॥
जातपुत्रा च वृद्धा च प्रियकामा च ते सदा ।
समीक्ष्यैतदहं सर्वं व्यवसायं करोम्यतः ॥ ३४
उत्सृज्यापि हि मामार्य प्राप्स्यस्यन्यामपि स्त्रियम् ।
ततः प्रतिष्ठितो धर्मो भविष्यति पुनस्तव ॥ ३५
न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकृतां नृणाम् ।
स्त्रीणामधर्मः सुमहान्भर्तुः पूर्वस्य लङ्घने ॥ ३६
एतत्सर्वं समीक्ष्य त्वमात्मत्यागं च गर्हितम् ।
आत्मानं तारयाद्याशु कुलं चेमौ च दारकौ ॥ ३७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तया भर्ता तां समालिङ्ग्य भारत ।
मुमोच बाष्पं शनकैः सभार्यो भृशदुःखितः ॥ ३८

इति श्री म० आ० बकवधपर्वणि ब्राह्मणीवाक्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

## १५९

वैशंपायन उवाच ।

तयोर्दुःखितयोर्वाक्यमतिमात्रं निशम्य तु ।
ततो दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥ १
किमेवं भृशदुःखार्तौ रोरूयेतामनाथवत् ।
ममापि श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा च क्रियतां क्षमम् ॥
धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः ।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्राहि सर्वं मयैकया ॥ ३
इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति ।
अस्मिन्नुपस्थिते काले तरध्वं प्लववन्मया ॥ ४
इह वा तारयेद्दुर्गादुत वा प्रेत्य भारत ।
सर्वथा तारयेत्पुत्रः पुत्र इत्युच्यते बुधैः ॥ ५
आकाङ्क्षन्ते च दौहित्रान्मयि नित्यं पितामहाः ।
तत्स्वयं वै परित्रास्ये रक्षन्ती जीवितं पितुः ॥ ६
भ्राता च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्वयि ।
अचिरेणैव कालेन विनश्येत न संशयः ॥ ७
तातेपि हि गते स्वर्गं विनष्टे च ममानुजे ।
पिण्डः पितॄणां व्युच्छिद्येत्तत्तेषां विप्रियं भवेत् ॥
पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा भ्रात्रा चाहमसंशयम् ।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य म्रियेयमतथोचिता ॥ ९
त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते माता भ्राता च मे शिशुः ।
संतानश्चैव पिण्डश्च प्रतिष्ठास्यत्यसंशयम् ॥ १०
आत्मा पुत्रः सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल ।
स कृच्छ्रान्मोचयात्मानं मां च धर्मे नियोजय ११

---

फलार्थं विधातव्यमिति संबन्धः ॥ २८ ॥ आत्मना समं सर्वं नेति एष बुधानां निश्चयः ॥ २९ ॥ त्वत् त्वत्तः प्रसूतिः संततिः अजीवितं मरणम् ॥ ३३ ॥ पूर्वस्य लङ्घने तं विना भर्त्रन्तरकरणे ॥ ३६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

१५९

तयोरिति ॥ १ ॥ त्यक्तव्यां अवश्यदेयां परित्यज्य रक्षसे दत्वा ॥ ३ ॥ प्लववत् नौकयेव मया तरध्वं दुःसहं दुःखनदीमतिक्रामध्वम् ॥ ४ ॥ पुत्रः पुन्नाम्नो नरकात्त्रायत इति योगात्पुत्र इत्यर्थः । तत्स्वयमिति । दौहित्रापेक्षया संनिहिता दुहितैवाहं तारयामीत्यर्थः ॥ ६ ॥

ततः स तृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत् ।
अनेनाहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥ आदि० १५९.२२

अनाथा कृपणा बाला यत्र क्वचनगामिनी ।
भविष्यामि त्वया तात विहीना कृपणा सदा ॥
अथवाऽहं करिष्यामि कुलस्यास्यविमोचनम् ।
फलसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम् १३
अथवा यास्यसे तत्र त्यक्त्वा मां द्विजसत्तम ।
पीडिताऽहं भविष्यामि तदवेक्षस्व मामपि ॥ १४
तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं स सत्तम ।
आत्मानं परिरक्षस्व त्यक्तव्यां मां च संत्यज १५
अवश्यकरणीये च मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ।
किं त्वतः परमं दुःखं यद्वयं स्वर्गते त्वयि ॥ १६
याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि श्ववत् ।
त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते क्लेशादस्मात्सबान्धवे ।
अमृते वसती लोके भविष्यामि सुखान्विता १७
इतःप्रदाने देवाश्च पितरश्चेति न श्रुतम् ।
त्वया दत्तेन तोयेन भविष्यन्ति हिताय वै ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम् ।
पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुरुदुस्त्रयः १९
ततः प्ररुदितान्सर्वान्निशम्याथ सुतस्तदा ।
उत्फुल्लनयनो बालः कलमव्यक्तमब्रवीत् ॥ २०
मा पिता रुद मा मातर्मास्वसस्त्विति चाब्रवीत्
प्रहसन्निव सर्वांस्तानेकैकमनुसर्पति ॥ २१
ततः स तृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत् ।
अनेनाहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥ २२
तथापि तेषां दुःखेन परीतानां निशम्य तत् ।
बालस्य वाक्यमव्यक्तं हर्षः समभवन्महान् ॥२३
अयं काल इति ज्ञात्वा कुन्ती समुपसृत्य तान् ।
गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत् ॥ २४

इति श्रीम० आदि० बकवधपर्वणि ब्राह्मणकन्यापुत्रवाक्ये ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

## १६०

कुन्त्युवाच ।

कुतो मूलमिदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
विदित्वाप्यपकर्षेयं शक्यं चेदपकर्षितुम् ॥ १

ब्राह्मण उवाच ।

उपपन्नं सतामेतद्यद्ब्रवीषि तपोधने ।
न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम् ॥ २
समीपे नगरस्यास्य बको वसति राक्षसः ।
ईशो जनपदस्यास्य पुरस्य च महाबलः ॥ ३
पुष्टो मानुषमांसेन दुर्बुद्धिः पुरुषादकः ।
रक्षत्यसुरराण्नित्यमिमं जनपदं बली ॥ ४
नगरं चैव देशं च रक्षोबलसमन्वितः ।
तत्कृते परचक्राच्च भूतेभ्यश्च न नो भयम् ॥ ५
वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम् ।
महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति ॥ ६
एकैकश्चापि पुरुषस्तत्प्रयच्छति भोजनम् ।
स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुकरो नरैः ॥ ७
तद्विमोक्षाय ये केचिद्यतन्ति पुरुषाः क्वचित् ।
स पुत्रदारांस्तान्हत्वा तद्रक्षो भक्षयत्युत ॥ ८
वेत्रकीयगृहे राजा नायं नयमिहास्थितः ।
उपायं तं न कुरुते यत्नादपि स मन्दधीः ।
अनामयं जनस्यास्य येन स्यादद्य शाश्वतम् ॥ ९

---

फलसंस्था सफलमरणा ॥१३॥ तत्र राक्षससमीपे ॥१४॥ प्रसवार्थं वंशार्थम्॥१५॥अमृतेव जीवन्तीव । इहलोके कीर्तेः सत्त्वात् ॥ १७ ॥ इतः प्रदाने अस्मिन् राक्षसाहाराय कन्यादाने दुर्दानत्वात् पितुर्दुर्मरणाच्च कन्याया देवाश्च पितरश्च हिताय नेति श्रुतं यद्यपि तथापि त्वया दत्तेन तोयेन तव मम च हिताय ते भविष्यन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ कलं मधुरम् ॥ २० ॥ हे पितः मारुद रोदनं मा कुरु । एतेन बाललीलापि शुभाशुभसूचिकेति सूचितम् ॥ २१ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

१६०

कुत इति । कुतो मूलं कुत उत्थितमित्यर्थः ॥ १ ॥ शालिवाहः विंशतिखारीमितशालितण्डुलौदनः'वाहो विंशतिखारीक ' इत्युक्तेः ॥ ६॥ वारः पर्यायागतो दिवसः ॥७॥ वेत्रकीयगृहे स्थानविशेषे । इतः अदूरे राजाऽस्ति अयं इह नगरे नयं न आस्थितः अस्य नगरस्यावेक्षां न करोतीत्यर्थः॥ स्वयं राक्षसं हन्तुमशक्तत्वादुपायमप्यन्यद्वारा न कुरुते यतो मन्दधीः ॥ ९ ॥

एतदर्हा वयं नूनं वसामो दुर्बलस्य ये ।
विषये नित्यवास्तव्याः कुराजानमुपाश्रिताः ॥ १०
ब्राह्मणाः कस्य वक्तव्याः कस्य वा छन्दचारिणः
गुणैरेते हि वत्स्यन्ति कामगाः पक्षिणो यथा ॥११
राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् ।
त्रयस्य संचयेनास्य ज्ञातीन्पुत्रांश्च तारयेत् ॥१२
विपरीतं मया चेदं त्रयं सर्वमुपार्जितम् ।
तदिमामापदं प्राप्य भृशं तप्यामहे वयम् ॥ १३
सोयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः ।
भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥ १४
न च मे विद्यते वित्तं संक्रेतुं पुरुषं क्वचित् ।
सुहृज्जनं प्रदातुं च न शक्ष्यामि कदाचन ॥ १५
गतिं चैव न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ।
सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुकरे भृशं ॥ १६
सहैवैतैर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम् ।
ततो न सहितान्क्षुद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति ॥ १७

इति श्रीमहा० आदि० बकवधपर्वणि कुन्तीप्रश्ने षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

---

## १६१

कुन्त्युवाच ।
न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात्कथंचन ।
उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १
एकस्तवसुतो बालः कन्याचैका तपस्विनी ।
न चैतयोस्तथा पत्न्या गमनं तव रोचये ॥ २
मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति ।
त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥ ३
ब्राह्मण उवाच ।
नाहमेतत्करिष्यामि जीवितार्थी कथंचन ।
ब्राह्मणस्यातिथेश्चैव स्वार्थे प्राणान्वियोजयन् ॥ ४
न त्वेतदकुलीनासु नाधर्मिष्ठासु विद्यते ।
यद्ब्राह्मणार्थे विसृजेदात्मानमपि चात्मजम् ॥ ५
आत्मनस्तु मया श्रेयो बोद्धव्यमिति रोचते ।
ब्रह्मवध्यात्मवध्या वा श्रेयानात्मवधो मम ॥ ६
ब्रह्मवध्या परं पापं निष्कृतिर्नात्र विद्यते ।
अबुद्धिपूर्वं कृत्वापि वरमात्मवधो मम ॥ ७
न त्वहं वधमाकाङ्क्षे स्वयमेवात्मनः शुभे ।
परैः कृते वधे पापं न किंचिन्मयि विद्यते ॥ ८
अभिसंधिकृते तस्मिन्ब्राह्मणस्य वधे मया ।
निष्कृतिं न प्रपश्यामि नृशंसं क्षुद्रमेव च ॥ ९
आगतस्य गृहं त्यागस्तथैव शरणार्थिनः ।
याचमानस्य च वधो नृशंसो गर्हितो बुधैः ॥१०
कुर्यान्न निन्दितं कर्म न नृशंसं कथंचन ।
इति पूर्वे महात्मान आपद्धर्मविदो विदुः ॥ ११
श्रेयांस्तु सहदारस्य विनाशोऽद्य मम स्वयम् ।
ब्राह्मणस्य वधं नाहमनुमंस्ये कदाचन ॥ १२
कुन्त्युवाच ।
ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन्विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा ।
न चाप्यनिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत् ॥ १३
न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने ।
वीर्यवान्मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ॥ १४

---

एतदर्हाः एतस्य दुःखस्य योग्या वयम् । तत्र हेतुः वसाम इत्यादिः। विषये देशे नित्यवास्तव्याः नित्यं वासकर्तारः नित्यमुद्विग्ना इत्यपि पठन्ति ॥१०॥ कस्य केन हेतुना कस्य केन पुंसा वक्तव्याः। इतो मागच्छतेति वक्तुं शक्याः। कृष्यादिकारित्वाभावात्। अत एव छन्दचारिणः।गुणैः देशस्य राज्ञो वा वत्स्यन्ति वासं करिष्यन्ति न तु निर्बन्धेनेत्यर्थः ॥ ११ ॥ संचयेन समृध्या । अराजके हि राष्ट्रे कृता भार्या चोरहार्या स्यात्। अभार्यस्यायज्वनो धनं राजहार्यं स्यात् ॥ १२ ॥ विपरीतं कुराज्ये भार्योद्वहनात् उद्वाहानन्तरं धनालाभाच्च ॥ १३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

### १६१

न विषाद इति ॥१॥ एतत्त्वदुक्तम्। अकुलीनासु अधर्मिष्ठास्वपि प्रजासु न विद्यते तत्कथं मादृशेषु स्यादित्यर्थः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणार्थे आत्मादिविसर्जनमेव आत्मनः श्रेयो मया बोद्धव्यमिति संबन्धः ॥ ५ ॥ अबुद्धिपूर्वकब्रह्मवधाद्बुद्धिपूर्वकृते आत्मवधे स्वल्पं पापम्। तदपि मम परेण कृते वधे नास्तीत्याह सार्धेन। अबुद्धीत्यादिना ॥ ७ ॥ अभिसंधिकृते बुद्धिपूर्वं कृते ॥ ९ ॥

राक्षसाय च तत्सर्वं प्रापयिष्यति भोजनम् ।
मोक्षयिष्यति चात्मानमिति मे निश्चिता मतिः॥
समागताश्च वीरेण दृष्टपूर्वाश्च राक्षसाः ।
बलवन्तो महाकाया निहताश्चाप्यनेकशः ॥ १६
न त्विदं केषुचिद्ब्रह्मन्व्याहर्तव्यं कथंचन ।
विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान्विप्रकुर्युः कुतूहलात् १७
गुरुणा चाननुज्ञातो ग्राहयेद्यत्सुतो मम ।
न स कुर्यात्तथा कार्यं विद्ययेति सतां मतम् १८
एवमुक्तस्तु पृथया स विप्रो भार्यया सह ।
हृष्टः संपूजयामास तद्वाक्यममृतोपमम् ॥ १९
ततः कुन्ती च विप्रश्च सहितावनिलात्मजम् ।
तमब्रूतां कुरुष्वेति स तथेत्यब्रवीच्च तौ ॥ २०

इति श्रीमहा० आदि० बकवध० भीमबकवधाङ्गीकारे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

---

# १६२

वैशंपायन उवाच ।
करिष्य इति भीमेन प्रतिज्ञातेऽथ भारत ।
आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्षमादाय पाण्डवाः ॥ १
आकारेणैव तं ज्ञात्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
रहः समुपविश्यैकस्ततः पप्रच्छ मातरम् ॥ २
युधिष्ठिर उवाच ।
किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः ।
भवत्यनुमते कच्चित्स्वयं वा कर्तुमिच्छति ॥ ३
कुन्त्युवाच ।
ममैव वचनादेष करिष्यति परंतपः ।
ब्राह्मणार्थे महत्कृत्यं मोक्षाय नगरस्य च ॥ ४
युधिष्ठिर उवाच ।
किमिदं साहसं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतम् ।
परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः॥ ५
कथं परसुतस्यार्थे स्वसुतं त्यक्तुमिच्छसि ।
लोकवेदविरुद्धं हि पुत्रत्यागात्कृतं त्वया ॥ ६
यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे शयामहे ।
राज्यं चापहृतं क्षुद्रैराजिहीर्षामहे पुनः ॥ ७
यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः ।
न शेते रजनीः सर्वा दुःखाच्छकुनिना सह ॥ ८
यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद्वयम् ।
अन्येभ्यश्चैव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः ॥ ९
यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुंधराम् ।
इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान् ॥ १०
तस्य व्यवसितस्त्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया
कच्चिन्नु दुःखैर्बुद्धिस्ते विलुप्ता गतचेतसः ॥ ११
कुन्त्युवाच ।
युधिष्ठिर न संतापस्त्वया कार्यो वृकोदरे ।
न चायं बुद्धिदौर्बल्याद्व्यवसायः कृतो मया ॥ १२
इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुखोषिताः ।
अज्ञाता धार्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः ॥ १३
तस्य प्रतिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता ।
एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन्न नश्यति ॥ १४
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद्बहुगुणं ततः ।
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तं तदा जतुगृहे महत् ।
हिडिम्बस्य वधाच्चैव विश्वासो मे वृकोदरे ॥ १५
बाह्वोर्बलं हि भीमस्य नागायुतसमं महत् ।
येन यूयं गजप्रख्या निर्व्यूढा वारणावतात् ॥ १६
वृकोदरेण सदृशो बलेनान्यो न विद्यते ।
यो व्यतीयाद्युधि श्रेष्ठमपि चक्रधरं स्वयम् ॥ १७
जातमात्रः पुरा चैव ममाङ्कात्पतितो गिरौ ।
शरीरगौरवादस्य शिला गात्रैर्विचूर्णिता ॥ १८
तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव ।
प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मतिम् ॥ १९

---

विप्रकुर्युः बाधेरन् ॥ १७ ॥ नन्वयमपि तान्बाधतां नेत्याह । गुरुणा चेति ग्राहयेत् ग्राहवदाचरेत् कवलयेत् स मम सुतः तत्कार्यं तथा न कुर्यात् । यथा विद्यया शिक्षया गुर्वाज्ञया कुर्यादिति ॥ १८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६१

१६२

करिष्ये इति ॥ १ ॥ मोक्षाय बकभयादिति शेषः ॥४॥ विश्वासः असाध्यमपि साधयेदिति प्रत्ययः ॥ १५ ॥ निर्व्यूढाः बहिर्निष्काशिताः निगूढा इति पाठे गूढाः रक्षिताः वारणावतात् वारणावतं त्यक्त्वा पथीति शेषः ॥ १६ ॥ प्रतिकार्ये शत्रौ मतिं कृतवती । प्रतिकर्तुमिति शेषः ॥ १९ ॥

नेदं लोभान्न चाज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम् ।
बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया ॥ २०
अर्थौ द्वावपि निष्पन्नौ युधिष्ठिर भविष्यतः ।
प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चरितो महान् ॥ २१
यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्यादर्थेषु कर्हिचित् ।
क्षत्रियः स शुभाँल्लोकानाप्नुयादिति मे मतिः २२
क्षत्रियस्यैव कुर्वाणः क्षत्रियो वधमोक्षणम् ।
विपुलां कीर्तिमाप्नोति लोकेऽस्मिंश्च परत्र च ॥
वैश्यस्यार्थे च साहाय्यं कुर्वाणः क्षत्रियो भुवि ।
स सर्वेष्वपि लोकेषु प्रजा रञ्जयते ध्रुवम् ॥ २४
शूद्रं तु मोचयेद्राजा शरणार्थिनमागतम् ।
प्राप्नोतीह कुले जन्म सद्द्रव्ये राजपूजिते ॥ २५
एवं मां भगवान्व्यासः पुरा पौरवनन्दन ।
प्रोवाचासुकरप्रज्ञस्तस्मादेवं चिकीर्षितम् ॥ २६

इति श्रीमहा० आ० बकवधपर्वणि कुन्तीयुधिष्ठिरसंवादे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

---

## १६३

युधिष्ठिरउवाच ।
उपपन्नमिदं मातस्त्वया यद्बुद्धिपूर्वकम् ।
आर्तस्यब्राह्मणस्यैतदनुक्रोशादिदं कृतम् ॥ १
ध्रुवमेष्यति भीमोऽयं निहत्य पुरुषादकम् ।
सर्वथा ब्राह्मणस्यार्थे यदनुक्रोशवत्यसि ॥ २
यथा त्विदं न विन्देयुर्नरा नगरवासिनः ।
तथाऽयं ब्राह्मणो वाच्यः परिग्राह्यश्च यत्नतः ॥ ३
वैशंपायन उवाच ।
ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः ।
भीमसेनो ययौ तत्र यत्रासौ पुरुषादकः ॥ ४
आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली ।
आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपपादयन् ॥ ५
ततः स राक्षसः क्रुद्धो भीमस्य वचनात्तदा ।
आजगाम सुसंक्रुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ६
महाकायो महावेगो दारयन्निव मेदिनीम् ।
लोहिताक्षः करालश्च लोहितश्मश्रुमूर्धजः ॥ ७
आकर्णाद्भिन्नवक्त्रश्च शङ्कुकर्णो विभीषणः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा संदश्य दशनच्छदम् ॥ ८
भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः ।
विवृत्य नयने क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९
कोऽयमन्नमिदं भुङ्क्ते मदर्थमुपकल्पितम् ।
पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम् ॥ १०
भीमसेनस्ततः श्रुत्वा प्रहसन्निव भारत ।
राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क्त एव पराङ्मुखः ॥ ११
रवं स भैरवं कृत्वा समुद्यम्य करावुभौ ।
अभ्यद्रवद्भीमसेनं जिघांसुः पुरुषादकः ॥ १२
तथापि परिभूयैनं प्रेक्षमाणो वृकोदरः ।
राक्षसं भुङ्क्त एवान्नं पाण्डवः परवीरहा ॥ १३
अमर्षेण तु संपूर्णः कुन्तीपुत्रं वृकोदरम् ।
जघान पृष्ठे पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः १४
तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः ।
नैवावलोकयामास राक्षसं भुङ्क्त एव सः ॥ १५
ततः स भूयः संक्रुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः ।
ताडयिष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद्बली ॥ १६
ततो भीमः शनैर्भुक्त्वा तदन्नं पुरुषर्षभः ।
वार्युपस्पृश्य संहृष्टस्तस्थौ युधि महाबलः ॥ १७
क्षिप्तं क्रुद्धेन तं वृक्षं प्रतिजग्राह वीर्यवान् ।
सव्येन पाणिना भीमः प्रहसन्निव भारत ॥ १८
ततः स पुनरुद्यम्य वृक्षान्बहुविधान्बली ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय तस्मै भीमश्च पाण्डवः ॥ १९
तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् ।
घोररूपं महाराज नरराक्षसराजयोः ॥ २०
नाम विश्राव्य तु बकः समभिद्रुत्य पाण्डवम् ।
भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम् ॥ २१
भीमसेनोऽपि तद्रक्षः परिरभ्य महाभुजः ।
विस्फुरन्तं महाबाहुं विचकर्ष बलाद्बली ॥ २२

---

प्रतीकारः प्रत्युपकारः ॥ २१ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भारतभा० द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६२ ॥

१६३

उपपन्नमिति कृतं त्राणमिति शेषः॥१॥परिग्राह्यःअनुग्राह्यः ॥३॥ भिन्नवक्त्रः विदीर्णवक्त्रः । भ्रुकुटिं भ्रूमध्यम् । त्रिशिखाम् त्रिरेखाम् ॥ ८ ॥ यियासुः गन्तुमिच्छुः यमसादनं यमगृहं ॥ १० ॥ उपदेवत्वाद्राक्षसस्य तत्स्पर्शेऽपि दोषाभावाद्भुङ्क्त एवेति भावः ॥ १५ ॥ परिजग्राह आलिङ्गितवान् ॥ २१॥ विस्फुरन्तमिति पुंस्त्वं बकनामलिङ्गापेक्षया ॥ २२ ॥

तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः ।
नैवावलोकयामास राक्षसं भुङ्क्त एव स ॥

आदि० १-३.१५

स कृष्यमाणो भीमेन कर्षमाणश्च पाण्डवम् ।
समयुज्यत तीव्रेण क्रमेन पुरुषादकः ॥ २३
तयोर्वेगेन महता पृथिवी समकम्पत ।
पादपांश्च महाकायांश्चूर्णयामासतुस्तदा ॥ २४
हीयमानं तु तद्रक्षः समीक्ष्य पुरुषादकम् ।
निष्पिष्य भूमौ जानुभ्यां समाजघ्ने वृकोदरः॥ २५
ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव ।
बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम् ॥ २६
सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः ।
तद्रक्षो द्विगुणं चक्रे रवन्तं भैरवं रवम् ॥ २७
ततोऽस्य रुधिरं वक्त्रात्प्रादुरासीद्विशांपते ।
भज्यमानस्य भीमेन तस्य घोरस्य रक्षसः ॥ २८

इति श्रीमहा० आदि० बकवधपर्वणि बकभीमसेनयुद्धे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

## १६४

वैशंपायन उवाच ।
ततः स भग्नपार्श्वाङ्गो नदित्वा भैरवं रवम् ।
शैलराजप्रतीकाशो गतासुरभवद्बकः ॥ १
तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याथ रक्षसः ।
निष्पपात गृहाद्राजन्सहैव परिचारिभिः ॥ २
तान्भीतान्विगतज्ञानान्भीमः प्रहरतां वरः ।
सान्त्वयामास बलवान्समये च न्यवेशयत् ॥ ३
न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिति कर्हिचित् ।
हिंसतां हि वधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति ॥ ४
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तानि रक्षांसि भारत ।
एवमस्त्विति तं प्राहुर्जगृहुः समयं च तम् ॥ ५
ततः प्रभृति रक्षांसि तत्र सौम्यानि भारत ।
नगरे प्रत्यदृश्यन्त नरैर्नगरवासिभिः ॥ ६
ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम् ।
द्वारदेशे विनिक्षिप्य जगामानुपलक्षितः ॥ ७
दृष्ट्वा भीमबलोद्धूतं बकं विनिहतं तदा ।
ज्ञातयोऽस्य भयोद्विग्नाः प्रतिजग्मुस्ततस्ततः ॥ ८
ततः स भीमस्तं हत्वा गत्वा ब्राह्मणवेश्म तत् ।
आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः ॥ ९
ततो नरा विनिष्क्रान्ता नगरात्कल्यमेव तु ।
ददृशुर्निहतं भूमौ राक्षसं रुधिरोक्षितम् ॥ १०
तमद्रिकूटसदृशं विनिकीर्णं भयानकम् ।
दृष्ट्वा संहृष्टरोमाणो बभूवुस्तत्र नागराः ॥ ११
एकचक्रां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रददुः पुरे ।
ततः सहस्रशो राजन्नरा नगरवासिनः ॥ १२
तत्राजग्मुर्बकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः ।
ततस्ते विस्मिताः सर्वे कर्म दृष्ट्वाऽतिमानुषम् ।
दैवतान्यर्चयांचक्रुः सर्व एव विशांपते ॥ १३
ततः प्रगणयामासुः कस्य वारोऽद्य भोजने ।
ज्ञात्वा चागम्य तं विप्रं पप्रच्छुः सर्व एव ते ॥१४
एवं पृष्टः स बहुशो रक्षमाणश्च पाण्डवान् ।
उवाच नागरान्सर्वानिदं विप्रर्षभस्तदा ॥ १५
आज्ञापितं मामशने रुदन्तं सह बन्धुभिः ।
ददर्श ब्राह्मणः कश्चिन्मन्त्रसिद्धो महामनाः ॥१६
परिपृच्छ्य स मां पूर्वं परिक्लेशं पुरस्य च ।
अब्रवीद्ब्राह्मणश्रेष्ठो विश्वास्य प्रहसन्निव ॥ १७
प्रापयिष्याम्यहं तस्मा अन्नमेतद्दुरात्मने ।
मन्निमित्तं भयं चापि न कार्यमिति चाब्रवीत् ॥
स तदन्नमुपादाय गतो बकवनं प्रति ।
तेन नूनं भवेदेतत्कर्म लोकहितं कृतम् ॥ १९
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च सुविस्मिताः ।
वैश्याः शूद्राश्च मुदिताश्चक्रुर्ब्रह्ममहं तदा ॥ २०

---

शिरोधरा कन्धराम् ॥ २६ ॥ चक्रे कृतं कटिकन्धरयोर्योजनेन पृष्ठवंशं बभञ्जेत्यर्थ रवन्तमिति रववत् प्रागवन्निः ॥ २७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६३ ॥

१६४

तत इति । भग्नानि पार्श्वानि पर्शवो अङ्गानि च हस्तपादादीनि यस्य स तथा ॥ १ ॥ गत्वा गतवान् । अन्येभ्योपि दृश्यन्त इति गमे क्वनिप् । ततोऽनुनासिकलोपे तुगागमे चैतद्रूपम् । आचचक्षे ब्राह्मण इति शेष ॥९॥ कल्यं प्रात काले ॥ १० ॥ अज्ञापितं राजन्नरैरिति शेषः । अशने राक्षसस्य भोजनार्थम् ॥ १६ ॥ ब्रह्ममहं । ब्राह्मणेन राक्षसो हत इति श्रुत्वा ब्राह्मणाना सुखार्थ महं उत्सवं ब्राह्मणपूजनादिकं चक्रु ॥ २० ॥

ततो जानपदाः सर्वे आजग्मुर्नगरं प्रति । तदद्भुततमं दृष्ट्वा पार्थास्तत्रैव चावसन् ॥ २१

इति श्रीमहा० आ० बकवधपर्वणि बकवधे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

समाप्तं बकवधपर्व ।

## चैत्ररथपर्व ।

### १६५

जनमेजय उवाच ।

ते तथा पुरुषव्याघ्रा निहत्य बकराक्षसम् ।
अत ऊर्ध्वं ततो ब्रह्मन्किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

तत्रैव न्यवसन्राजन्निहत्य बकराक्षसम् ।
अधीयानाः परं ब्रह्म ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ २
ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
प्रतिश्रयार्थी तद्वेश्म ब्राह्मणस्य जगाम ह ॥ ३
स सम्यक्पूजयित्वा तं विप्रं विप्रर्षभस्तदा ।
ददौ प्रतिश्रयं तस्मै सदा सर्वातिथिव्रतः ॥ ४
ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सह कुन्त्या नरर्षभाः ।
उपासांचक्रिरे विप्रं कथयन्तं कथाः शुभाः ॥ ५
कथयामास देशांश्च तीर्थानि सरितस्तथा ।
राज्ञश्च विविधाश्चर्यान्देशांश्चैव पुराणि च ॥ ६
स तत्राकथयद्विप्रः कथान्ते जनमेजय ।
पञ्चालेष्वद्भुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥ ७
धृष्टद्युम्नस्य चोत्पत्तिमुत्पत्तिं च शिखण्डिनः ।
अयोनिजत्वं कृष्णाया द्रुपदस्य महामखे ॥ ८
तदद्भुततमं श्रुत्वा लोके तस्य महात्मनः ।
विस्तरेणैव पप्रच्छुः कथान्ते पुरुषर्षभाः ॥ ९

पाण्डवा ऊचुः ।

कथं द्रुपदपुत्रस्य धृष्टद्युम्नस्य पावकात् ।
वेदीमध्याच्च कृष्णायाः संभवः कथमद्भुतः ॥ १०
कथं द्रोणान्महेष्वासात्सर्वाण्यस्त्राण्यशिक्षत ।
कथं विप्र सखायौ तौ भिन्नौ कस्य कृतेन वा

वैशंपायन उवाच ।

एवं तैश्चोदितो राजन्स विप्रः पुरुषर्षभैः ।
कथयामास तत्सर्वं द्रौपदीसंभवं तदा ॥ १२

इति श्रीमहा० आ० चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

---

### १६६

ब्राह्मण उवाच ।

गङ्गाद्वारं प्रति महान्बभूवर्षिर्महातपाः । भरद्वाजो महाप्राज्ञः संततं संशितव्रतः ॥ १
सोभिषेक्तुं गतो गङ्गां पूर्वमेवागतां सतीम् । ददर्शाप्सरसं तत्र घृताचीमाप्लुतामृषिम् ॥ २
तस्या वायुर्नदीतीरे वसनं व्यहरत्तदा । अपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे तदा ॥ ३

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६४ ॥

१६५

ते तथा पुरुषव्याघ्रा इति ॥ १ ॥ ब्रह्म उपनिषदं परं अत्यन्तं अधीयाना इति संबन्धः ॥ २ ॥ शंसितव्रत इति तालव्यादिदन्त्यमध्यपाठे शंसा प्रशंसा संजाता यस्य तत् शंसितं व्रतं यस्य सः।प्रशस्यव्रत इत्यर्थः प्रतिश्रयार्थी वासार्थी ॥ ३ ॥ अतिथिव्रतः अतिथिपूजनैकनिष्ठः ॥ ४ ॥ याज्ञसेन्याः द्रौपद्याः ॥ ७ ॥ हे विप्र तौ द्रोणद्रुपदौ भिन्नौ वैरं प्राप्तौ ॥ ११ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

१६६

गङ्गाद्वारमिति ॥ १ ॥ ततो गङ्गामिति पाठे तु गङ्गां। ततः पूर्वं भरद्वाजागमनात् पूर्वं अभिषेक्तुं आगतामित्यर्थः ॥ २ ॥ व्यहरद्विशेषेण हृतवान् चकमे कामितवान् ॥ ३ ॥

तस्यां संसक्तमनसः कौमारब्रह्मचारिणः।
चिरस्य रेतश्चस्कन्द तदपिद्रोण आदधे ॥ ४
ततः समभवद्द्रोणः कुमारस्तस्य धीमतः।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ५
भरद्वाजस्य तु सखा पृषतो नाम पार्थिवः।
तस्यापि द्रुपदो नाम तदा समभवत्सुतः ॥ ६
स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्षतः।
चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियर्षभः ॥ ७
ततस्तु पृषतेऽतीते स राजा द्रुपदोभवत्।
द्रोणोऽपि रामं शुश्राव दित्सन्तं वसु सर्वशः ॥८
वनं तु प्रस्थितं रामं भरद्वाजसुतोऽब्रवीत्।
आगतं वित्तकामं मां विद्धि द्रोणं द्विजोत्तम ॥९

राम उवाच।

शरीरमात्रमेवाद्य मया समवशेषितम्।
अस्त्राणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु ॥ १०

द्रोण उवाच।

अस्त्राणि चैव सर्वाणि तेषां संहारमेव च।
प्रयोगं चैव सर्वेषां दातुमर्हति मे भवान् ॥ ११

ब्राह्मण उवाच।

तथेत्युक्त्वा ततस्तस्मै प्रददौ भृगुनन्दनः।
प्रतिगृह्य तदा द्रोणः कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२
संप्रहृष्टमना द्रोणो रामात्परमसंमतम्।
ब्रह्मास्त्रं समनुज्ञप्य नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् ॥ १३
ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान्।
अब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः सखायं विद्धि मामिति ॥ १४

द्रुपद उवाच।

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते ॥१५

ब्राह्मण उवाच।

स विनिश्चित्य मनसा पाञ्चाल्यं प्रति बुद्धिमान्।
जगाम कुरुमुख्यानां नगरं नागसाह्वयम् ॥ १६
तस्मै पौत्रान्समादाय वसूनि विविधानि च।
प्राप्ताय प्रददौ भीष्मः शिष्यान्द्रोणाय धीमते ॥
द्रोणः शिष्यांस्ततः पार्थानिदं वचनमब्रवीत्।
समानीय तु तान् शिष्यान्द्रुपदस्यासुखाय वै १८
आचार्यवेतनं किंचिद्धृदि यद्वर्तते मम।
कृतास्त्रैस्तत्प्रदेयं स्यात्तदृतं वदतानघाः।
सोऽर्जुनप्रमुखैरुक्तस्तथास्त्विति गुरुस्तदा ॥ १९
यदा च पाण्डवाः सर्वे कृतास्त्राः कृतनिश्चयाः।
ततो द्रोणोऽब्रवीद्भूयो वेतनार्थमिदं वचः ॥ २०
पार्षतो द्रुपदो नाम छत्रवत्यां नरेश्वरः।
तस्मादाकृष्य तद्राज्यं मम शीघ्रं प्रदीयताम् ॥ २१
ततः पाण्डुसुताः पञ्च निर्जित्य द्रुपदं युधि।
द्रोणाय दर्शयामासुर्बद्ध्वा ससचिवं तदा ॥ २२

द्रोण उवाच।

प्रार्थयामि त्वया सख्यं पुनरेव नराधिप।
अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति ॥२३
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन त्वया सह।
राजाऽसि दक्षिणे कूले भागीरथ्याऽहमुत्तरे २४

ब्राह्मण उवाच।

एवमुक्तो हि पाञ्चाल्यो भारद्वाजेन धीमता।
उवाचास्त्रविदां श्रेष्ठो द्रोणं ब्राह्मणसत्तमम् ॥ २५
एवं भवतु भद्रं ते भारद्वाज महामते।
सख्यं तदेव भवतु शश्वद्यदभिमन्यसे ॥ २६
एवमन्योऽन्यमुक्त्वा तौ कृत्वा सख्यमनुत्तमम्।
जग्मतुर्द्रोणपाञ्चाल्यौ यथागतमरिंदमौ ॥ २७
असत्कारः स तु महान्मुहूर्तमपि तस्य तु।
नापैति हृदयाद्राज्ञो दुर्मनाः स कृशोऽभवत् २८

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

---

कुमाराणां सनत्कुमारादीनां समूहः कौमारं तत्तुल्यस्य ब्रह्मचारिणः ॥ ४ ॥ एकतमं एकतरं अस्त्रसमुदायस्याविवक्षितत्वाद्वा तमप् ॥ १० ॥ समनुज्ञप्य निशम्य । 'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा इति मित्त्वात् ह्रस्वः। ज्ञाप्येत्यपपाठः प्राप्येत्यपि पठन्ति ॥ १३ ॥ पूर्वं सखा इति सखिपूर्वं बाल्ये कृतं सख्यं किं कथं इष्यते प्राज्ञैर्न कथमपीत्यर्थः । बालो हि मौढ्याद्तुल्येनापि सख्यमिच्छति न तु प्राज्ञ इति भावः ॥ १५ ॥ समादाय हस्ते गृहीत्वा प्रददौ ॥ १७ ॥ छत्रवत्यां अहिच्छत्रे॥२१॥ राज्ये राज्यार्थम्। त्वयासह संगम्येति शेषः। भागीरथ्याहमिति संधिरार्षः ॥ २४ ॥ उक्त्वा वचनेनैव सख्यं कृत्वा न तु मनसा । ब्राह्मणस्याद्रोहित्वेपि क्षत्रियस्य दीर्घद्रोहित्वात् ॥ २७ ॥ तदेवाह असत्कार इति ॥ २८ ॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

## १६७

ब्राह्मण उवाच ।

अमर्षी द्रुपदो राजा कर्मसिद्धान्द्विजर्षभान् ।
अन्विच्छन्परिचक्राम ब्राह्मणावसथान्बहून् ॥ १
पुत्रजन्म परीप्सन्वै शोकोपहतचेतनः ।
नास्ति श्रेष्ठमपत्यं मे इति नित्यमचिन्तयत् ॥ २
जातान्पुत्रान्सनिर्वेदाद्धिग्बन्धूनिति चाब्रवीत् ।
निःश्वासपरमश्चासीद्द्रोणं प्रति चिकीर्षया ॥ ३
प्रभावं विनयं शिक्षां द्रोणस्य चरितानि च ।
क्षात्रेण च बलेनास्य चिन्तयन्नाध्यगच्छत ॥ ४
प्रतिकर्तुं नृपश्रेष्ठो यतमानोऽपि भारत ।
अभितः सोऽथ कल्माषीं गङ्गाकूले परिभ्रमन् ॥ ५
ब्राह्मणावसथं पुण्यमाससाद महीपतिः ।
तत्र नास्नातकः कश्चिन्न चासीदव्रती द्विजः ॥ ६
तथैव च महाभागः सोपश्यत्संशितव्रतौ ।
याजोपयाजौ ब्रह्मर्षी शाम्यन्तौ परमेष्ठिनौ ॥ ७
संहिताध्ययने युक्तौ गोत्रतश्चापि काश्यपौ ।
तारणेयौ युक्तरूपौ ब्राह्मणावृषिसत्तमौ ॥ ८
स तावामन्त्रयामास सर्वकामैरतन्द्रितः ।
बुद्ध्वा बलं तयोस्तत्र कनीयांसमुपह्वरे ॥ ९
प्रपेदे छन्दयन्कामैरुपयाजं धृतव्रतम् ।
पादशुश्रूषणे युक्तः प्रियवाक्सर्वकामदः ॥ १०
अर्चयित्वा यथान्यायमुपयाजमुवाच सः ।
येन मे कर्मणा ब्रह्मन्पुत्रः स्याद्द्रोणमृत्यवे ॥ ११
उपयाजकृते तस्मिन्गवां दाताऽस्मि तेऽर्बुदम् ।
यद्वा तेऽन्यद्द्विजश्रेष्ठ मनसः सुप्रियं भवेत् ।
सर्वं तत्ते प्रदाताऽहं न हि मेऽस्त्यत्र संशयः ॥ १२
इत्युक्तो नाहमित्येवं तमृषिः प्रत्यभाषत ।
आराधयिष्यन्द्रुपदः स तं पर्यचरत्पुनः ॥ १३
ततः संवत्सरस्यान्ते द्रुपदं स द्विजोत्तमः ।
उपयाजोऽब्रवीत्काले राजन्मधुरया गिरा ॥ १४
ज्येष्ठो भ्राता ममागृह्णाद्विचरन्गहने वने ।
अपरिज्ञातशौचायां भूमौ निपतितं फलम् ॥ १५
तदपश्यमहं भ्रातुरसांप्रतमनुव्रजन् ।
विमर्शं संकरादाने नायं कुर्यात्कदाचन ॥ १६
दृष्ट्वा फलस्य नापश्यद्दोषान्पापानुबन्धकान् ।
विविनक्ति न शौचं यः सोऽन्यत्रापि कथं भवेत् ॥ १७
संहिताध्ययनं कुर्वन्वसन्गुरुकुले च यः ।
भैक्ष्यमुत्सृष्टमन्येषां भुङ्क्ते स्म च यदा तदा ॥ १८
कीर्तयन्गुणमन्नानामघृणी च पुनः पुनः ।
तं वै फलार्थिनं मन्ये भ्रातरं तर्कचक्षुषा ॥ १९
तं वै गच्छस्व नृपते स त्वां संयाजयिष्यति ।
जुगुप्समानो नृपतिर्मनसेदं विचिन्तयन् ॥ २०
उपयाजवचः श्रुत्वा याजस्याश्रममभ्यगात् ।
अभिसंपूज्य पूजार्हमथ याजमुवाच ह ॥ २१
अयुतानि ददान्यष्टौ गवां याजय मां विभो ।
द्रोणवैराभिसंतप्तं प्रह्लादयितुमर्हसि ॥ २२
स हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ब्रह्मास्त्रे चाप्यनुत्तमः ।
तस्माद्द्रोणः पराजैष्ट मां वै स सखिविग्रहे ॥ २३
क्षत्रियो नास्ति तस्यास्यां पृथिव्यां कश्चिदग्रणीः ।
कौरवाचार्यमुख्यस्य भारद्वाजस्य धीमतः ॥ २४
द्रोणस्य शरजालानि प्राणिदेहहराणि च ।
षडरत्नि धनुश्चास्य दृश्यते परमं महत् ॥ २५
स हि ब्राह्मणवेषेण क्षात्रं वेगमसंशयम् ।
प्रतिहन्ति महेष्वासो भारद्वाजो महामनाः ॥ २६
क्षत्रोच्छेदाय विहितो जामदग्न्य इवास्थितः ।
तस्य ह्यस्त्रबलं घोरमप्रधृष्यं नरैर्भुवि ॥ २७
ब्राह्मं संधारयंस्तेजो हुताहुतिरिवानलः ।
समेत्य स दहत्याजौ क्षात्रधर्मपुरःसरः ॥ २८

---

१६७

अमर्षीति ॥ १ ॥ पुत्रान्बन्धूंश्च धिगित्यब्रवीदित्यन्वयः ॥ ३ ॥ कल्माषीं कृष्णवर्णां यमुनामभितः गङ्गाकूले च परिभ्रमन् । कल्माषपादस्य कल्माषीमभितः समीपे इत्यन्ये ॥५॥ परमे ब्रह्मणि वेदे वा स्थातुं शीलं ययोस्तौ ॥ ७॥ तारणेयौ कुमारीप्रभवौ कर्णवत्कानीनौ। 'तरणिर्द्युमणौ पुंसि कुमारीनौकयोः स्त्रियाम्'इति मेदिनी । सूर्यभक्तौ वा ब्राह्मणौ ब्रह्मविदौ ऋषिसत्तमौ मन्त्रद्रष्टृषु श्रेष्ठौ ॥ ८ ॥ उपह्वरे एकान्ते ॥ ९ ॥ प्रपेदे शरणं गतवान् ॥ १० ॥ तस्मिन्कार्ये कृते सति अर्बुदं दशकोटीः दातास्मि दास्यामि ॥ १२ ॥ असांप्रतं अयुक्तं अनुव्रजन्नपश्यं । विमर्शं विचारम् । संकरादाने संकरो दोषसंपर्कः तद्युक्तवस्त्वादाने ॥ १६ ॥ उत्सृष्टं उच्छिष्टं ॥ १८ ॥ अघृणी लज्जाहीनः ॥ १९ ॥ हे नृपते तं गच्छ हे स्व हे आत्मीय । मनसा इदं याजचरितं जुगुप्समानो निन्दन् । विचिन्तयन् स्वकार्यं चेति शेषः ॥ २० ॥ अष्टावयुतानि ददानि । 'रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम्'इति स्मृतेरुपायनमात्रमेतत् न दक्षिणा अर्बुदप्रतिज्ञानात् ॥ २२ ॥ पराजैष्ट पराजितवान् । विपराभ्यां जेरिति तङ् ॥ २३ ॥ तस्य तस्मात् अग्रणीः श्रेष्ठः ॥ २४ ॥

ब्रह्मक्षत्रे च विहिते ब्राह्मं तेजो विशिष्यते ।
सोऽहं क्षात्राद्बलाद्धीनो ब्राह्मं तेजः प्रपेदिवान् ॥
द्रोणाद्विशिष्टमासाद्य भवन्तं ब्रह्मवित्तमम् ।
द्रोणान्तकमहं पुत्रं लभेयं युधि दुर्जयम् ॥ ३०
तत्कर्म कुरु मे याज वितराम्यर्बुदं गवाम् ।
तथेत्युक्त्वा तु तं याजो याज्यार्थमुपकल्पयत् ॥
गुर्वर्थ इति चाकाममुपयाजमचोदयत् ।
याजो द्रोणविनाशाय प्रतिजज्ञे तथा च सः ॥३२
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य उपयाजो महातपाः ।
आचख्यौ कर्म वैतानं तदा पुत्रफलाय वै ॥ ३३
स च पुत्रो महावीर्यो महातेजा महाबलः ।
इष्यते यद्विधो राजन्भविता ते तथाविधः ॥ ३४
भारद्वाजस्य हन्तारं सोऽभिसंधाय भूपतिः ।
आजह्रे तत्तथा सर्वं द्रुपदः कर्मसिद्धये ॥ ३५
याजस्तु हवनस्यान्ते देवीमाज्ञापयत्तदा ।
प्रेहि मां राज्ञि पृषति मिथुनं त्वामुपस्थितम्॥३६

राज्युवाच ।

अवलिप्तं मुखं ब्रह्मन्दिव्यान्गन्धान्बिभर्मि च ।
सुतार्थेनोपलब्धाऽस्मि तिष्ठ याज मम प्रिये ॥३७

याज उवाच ।

याजेन श्रपितं हव्यमुपयाजाभिमन्त्रितम् ।
कथं कामं न संदध्यात्सा त्वं विप्रेहि तिष्ठ वा ३८

ब्राह्मण उवाच ।

एवमुक्त्वा तु याजेन हुते हविषि संस्कृते ।
उत्तस्थौ पावकात्तस्मात्कुमारो देवसन्निभः ॥३९
ज्वालावर्णो घोररूपः किरीटी वर्म चोत्तमम् ।
बिभ्रत्सखड्गः सशरो धनुष्मान्विनदन्मुहुः॥ ४०
सोऽध्यारोहद्रथवरं तेन च प्रययौ तदा ।
ततः प्रणेदुः पञ्चालाः प्रहृष्टाः साधु साध्विति॥४१
हर्षाविष्टांस्ततश्चैतान्नेयं सेहे वसुंधरा ।
भयापहो राजपुत्रः पञ्चालानां यशस्करः ॥ ४२
राज्ञः शोकापहो जात एष द्रोणवधाय वै ।
इत्युवाच महद्भूतमदृश्यं खेचरं तदा ॥ ४३
कुमारी चापि पाञ्चाली वेदीमध्यात्समुत्थिता ।
सुभगा दर्शनीयाङ्गी स्वसितायतलोचना ॥ ४४
श्यामा पद्मपलाशाक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूश्चारुपीनपयोधरा ॥ ४५
मानुषं विग्रहं कृत्वा साक्षादमरवर्णिनी ।
नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रधावति ॥
या बिभर्ति परं रूपं यस्या नास्त्युपमा भुवि ।
देवदानवयक्षाणामीप्सितां देवरूपिणीम् ॥ ४७
तां चापि जातां सुश्रोणीं वागुवाचाशरीरिणी ।
सर्वयोषिद्वरा कृष्णा निनीषुः क्षत्रियान्क्षयम् ॥४८
सुरकार्यमियं काले करिष्यति सुमध्यमा ।
अस्या हेतोः कौरवाणां महदुत्पस्यते भयम् ॥४९
तच्छ्रुत्वा सर्वपाञ्चालाः प्रणेदुः सिंहसङ्घवत् ।
न चैतान्हर्षसंपूर्णानियं सेहे वसुंधरा ॥ ५०
तौ दृष्ट्वा पार्षती याजं प्रपेदे वै सुतार्थिनी ।
न वै मदन्यां जननीं जानीयातामिमाविति ॥ ५१

---

ब्रह्मक्षत्रे इति सार्ध. श्लोक । चोऽप्यर्थे ब्रह्मतेजसहितक्षत्रतेजसि द्रोणगते विहिते श्रेष्ठे सत्यपि केवल ब्राह्मं त्वदीयं विशिष्यते क्षात्राद्बलात् । अहं तु हीनो ब्राह्मबलेन । भीत इति पाठे ब्राह्माद्बलाद्भीतो ब्राह्मं तेज प्रपेदिवान् शरणं कृतवान् ॥ २९ ॥ येन पुत्रं लभेयं तत्कर्म कुरु । याज्यार्थं द्रुपदस्येष्टसाधनं याग उपकल्पयत् मनसा तत्प्रयोगं स्मृतवान् । अडभाव आर्ष. ॥ ३१ ॥ गुर्वर्थे गुरुश्चासावर्थश्चेति । अतिभारोयं यद्द्रोणहन्तु पुत्रस्योत्पादनं इति हेतो उपयाजं अकाममप्यचोदयत् उपकल्पने प्रेरितवान् । 'आत्मन्यप्रत्ययं चेत' इति न्यायेन उपयाजमपि निश्चयार्थं संवादितवान् ॥ ३२ ॥ वैतानं श्रौतामिसाध्यं आचख्यौ आख्यातवान् ॥ ३३ ॥ स चेति उपयाज उवाच ॥ ३४॥ वैशंपायन उवाच भारद्वाजस्येति । आजह्रे कृतवान् । कर्मसिद्धये कर्मफलसिध्यर्थम् ॥ ३५ ॥ प्रेहि प्रकर्षेणशीघ्रमेहि । हविर्ग्रहीतुमिति शेष पृषति पृषतस्नुषे इत एव संबन्धात्पुंयोगे ङीप् । अन्ये तु पार्षतीति पाठं कल्पयन्ति॥३६॥ अवलिप्तं दूषितं लालादिना । अप्रक्षालितत्वादिति भाव । 'अवलेपस्तु गर्वेस्यालेपने दूषणेपि च' इति मेदिनी । गन्धान् अङ्गरागादिजान् । अस्नाताऽस्मीति भाव । 'यादतो धावते तस्यै श्यावदन् या स्नाति तस्या अप्सुमारुकः' 'इत्याद्युक्त्वा तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत्' इति विहितौ अस्पृश्याधर्मावितौ । तदेवाह । नोपलब्धास्मि उपलब्धुं स्प्रष्टुं योग्या नास्मि । तस्मान्मलवद्वाससा न संवदेतेति तया सह संवादस्यापि निषेधात् । अतो हेतो हे *याज मम प्रिये* इष्टे *सुतार्थे* सुतरूपे प्रयोजने *तिष्ठ* शुद्धिकालं प्रतीक्षस्वेत्यर्थ ॥ ३७॥ श्रपितं पक्वम् । क्षेत्रं रेत सेकं च विना आवयो सामर्थ्यान्मिथुनमुत्पत्स्यत इत्यर्थ । विप्रेहि दूरं वा गच्छ तिष्ठ वा । प्रयोगविधिस्तु न विलंबं सहते इत्यर्थ. ॥३८॥ नेयं सेहे न सोढवती । अयोनिजस्य धृष्टद्युम्नस्य तेजसो दु सहत्वादिति भाव ॥ ४२ ॥ अमरवर्णिनी देवकुमारी दुष्टवधायोद्यता दुर्गेत्यर्थः ॥ ४६ ॥

तथेत्युवाच तं याजो राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
तयोश्च नामनी चक्रुर्द्विजाः संपूर्णमानसाः ॥ ५२
धृष्टत्वादत्यमर्षित्वाद्द्युम्नाद्युत्संभवादपि ।
धृष्टद्युम्नः कुमारोऽयं द्रुपदस्य भवत्विति ॥ ५३
कृष्णेत्येवाब्रुवन्कृष्णां कृष्णाऽभूत्सा हि वर्णतः ।
तथा तन्मिथुनं जज्ञे द्रुपदस्य महामखे ॥ ५४
धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यमानीय स्वं निवेशनम् ।
उपाकरोदस्त्रहेतोर्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५५
अमोक्षणीयं दैवं हि भावि मत्वा महामतिः ।
तथा तत्कृतवान्द्रोण आत्मकीर्त्यनुरक्षणात् ॥ ५६

इति श्रीमहा० आ० चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीसंभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

## १६८

वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयाः शल्यविद्धा इवाभवन् ।
सर्वे चास्वस्थमनसो बभूवुस्ते महाबलाः ॥ १
ततः कुन्तीसुतान्दृष्ट्वा सर्वांस्तद्गतचेतसः ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी ॥ २
कुन्त्युवाच ।
चिररात्रोषिताः स्मेह ब्राह्मणस्य निवेशने ।
रममाणाः पुरे रम्ये लब्धभैक्षा महात्मनः ॥ ३
यानीह रमणीयानि वनान्युपवनानि च ।
सर्वाणि तानि दृष्टानि पुनः पुनररिंदम ॥ ४
पुनर्द्रष्टुं हि तानीह प्रीणयन्ति न नस्तथा ।
भैक्षं च न तथा वीर लभ्यते कुरुनन्दन ॥ ५
ते वयं साधु पञ्चालान्गच्छाम यदि मन्यसे ।
अपूर्वदर्शनं वीर रमणीयं भविष्यति ॥ ६
सुभिक्षाश्चैव पञ्चालाः श्रूयन्ते शत्रुकर्शन ।
यज्ञसेनश्च राजासौ ब्रह्मण्य इति शुश्रुम ॥ ७
एकत्र चिरवासश्च क्षमो न च मतो मम ।
ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे ॥ ८
युधिष्ठिर उवाच ।
भवत्या यन्मतं कार्यं तदस्माकं परं हितम् ।
अनुजांस्तु न जानामि गच्छेयुर्नेति वा पुनः ॥ ९
वैशंपायन उवाच ।
ततः कुन्ती भीमसेनमर्जुनं यमजौ तथा ।
उवाच गमनं ते च तथेत्येवाब्रुवंस्तदा ॥ १०
तत आमन्त्र्य तं विप्रं कुन्ती राजन्सुतैः सह ।
प्रतस्थे नगरीं रम्यां द्रुपदस्य महात्मनः ॥ ११

इति श्रीमहाभा० आदि० चैत्ररथपर्वणि पाञ्चालदेशयात्रायामष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

## १६९

वैशंपायन उवाच ।
वसत्सु तेषु प्रच्छन्नं पाण्डवेषु महात्मसु । आजगामाथ तान्द्रष्टुं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १
तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युद्गम्य परंतपाः । प्रणिपत्याभिवाद्यैनं तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ २
समनुज्ञाप्य तान्सर्वानासीनान्मुनिरब्रवीत् । प्रच्छन्नं पूजितः पार्थैः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ ३

---

धृष्टत्वात् प्रगल्भत्वात् । धृष्णुत्वादिति पाठे पालने शक्तत्वात् । अत्यन्तं अमर्षः । शत्रूत्कर्षासहिष्णुत्वं तद्वत्त्वात् । द्युम्नं वित्तं तच्च राज्ञां बलमेव कवचकुण्डलादिकं वा सहोत्पन्नं तदादिर्यस्य शस्त्रास्त्रशौर्योत्साहादेस्तत् द्युम्नादि तस्य उत्संभवात् उत्कर्षेणोत्पत्तेश्च ॥ ५३ ॥ उपाकरोत् उपकृतवान् । अस्त्रहेतोः अस्त्रदानेन हेतुना राज्यार्धस्य हृतत्वात् तावतैवोपाकरोत् ॥ ५५ ॥ कीर्त्यनुरक्षणात् अन्यथा द्रोणो द्वेषात् भयाच्च न विद्यां दत्तवानित्यकीर्तिःस्यात् ॥ ५६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभाव० सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७

१६८

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेया इति स्पष्टार्थोऽध्यायः ॥ १ ॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

१६९

वसत्स्विति । प्रतस्थे इत्युक्तं ततः प्रागेवाजगामेत्यर्थः ॥ १ ॥

अपि धर्मेण वर्तध्वं शास्त्रेण च परंतपाः ।
अपि विप्रेषु पूजा वः पूजार्हेषु न हीयते ॥ ४
अथ धर्मार्थवद्वाक्यमुक्त्वा स भगवानृषिः ।
विचित्राश्च कथास्तास्ताः पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ ५

व्यास उवाच ।

आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः ।
विलग्नमध्या सुश्रोणी सुभ्रूः सर्वगुणान्विता ॥ ६
कर्मभिः स्वकृतैः सा तु दुर्भगा समपद्यत ।
नाध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ॥७
ततस्तप्तुमथारेभे पत्यर्थमसुखा ततः ।
तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शंकरम् ॥ ८
तस्याः स भगवांस्तुष्टस्तामुवाच यशस्विनीम् ।
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीति शंकरः ॥ ९
अथेश्वरमुवाचेदमात्मनः सा वचो हितम् ।
पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ १०
तामथ प्रत्युवाचेदमीशानो वदतां वरः ।
पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यन्तीति भारताः ॥ ११
एवमुक्ता ततः कन्या देवं वरदमब्रवीत् ।
एकमिच्छाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्पतिं प्रभो ॥ १२
पुनरेवाब्रवीद्देव इदं वचनमुत्तमम् ।
पञ्चकृत्वस्त्वया ह्युक्तः पतिं देहीत्यहं पुनः ॥ १३
देहमन्यं गतायास्ते यथोक्तं तद्भविष्यति ।
द्रुपदस्य कुले जज्ञे सा कन्या देवरूपिणी ॥ १४
निर्दिष्टा भवतां पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता ।
पाञ्चालनगरे तस्मान्निवसध्वं महाबलाः ।
सुखिनस्तामनुप्राप्य भविष्यथ न संशयः ॥ १५
एवमुक्त्वा महाभागः पाण्डवान्स पितामहः ।
पार्थानामन्त्र्य कुन्तीं च प्रातिष्ठत महातपाः ॥१६

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वणि द्रौपदीजन्मान्तरकथने ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

---

## १७०

वैशंपायन उवाच ।

गते भगवति व्यासे पाण्डवा हृष्टमानसाः ।
ते प्रतस्थुः पुरस्कृत्य मातरं पुरुषर्षभाः ॥ १
आमन्त्र्य ब्राह्मणं पूर्वमभिवाद्यानुमान्य च ।
समैरुदङ्मुखैर्मार्गैर्यथोद्दिष्टं परंतपाः ॥ २
ते त्वगच्छन्नहोरात्रा तीर्थं सोमाश्रयायणम् ।
आसेदुः पुरुषव्याघ्रा गङ्गायां पाण्डुनन्दनाः ॥ ३
उल्मुकं तु समुद्यम्य तेषामग्रे धनंजयः ।
प्रकाशार्थं ययौ तत्र रक्षार्थं च महारथः ॥ ४
तत्र गङ्गाजले रम्ये विविक्ते क्रीडयन्स्त्रियः ।
ईर्ष्युर्गन्धर्वराजो वै जलक्रीडामुपागतः ॥ ५
शब्दं तेषां स शुश्राव नदीं समुपसर्पताम् ।
तेन शब्देन चाविष्टश्चुक्रोध बलवद्बली ॥ ६
स दृष्ट्वा पाण्डवांस्तत्र सह मात्रा परंतपान् ।
विस्फारयन्धनुर्घोरमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७
संध्या संरज्यते घोरा पूर्वरात्रागमेषु या ।
अशीतिभिर्लवैर्हीनं तन्मुहूर्तं प्रचक्षते ॥ ८
विहितं कामचाराणां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ।
शेषमन्यन्मनुष्याणां कर्मचारेषु वै स्मृतम् ॥ ९
लोभात्प्रचारं चरतस्तासु वेलासु वै नरान् ।
उपक्रान्तानि गृह्णीमो राक्षसैः सह बालिशान् १०
अतो रात्रौ प्राप्नुवन्तो जलं ब्रह्मविदो जनाः ।
गर्हयन्ति नरान्सर्वान्बलस्थान्नृपतीनपि ॥ ११
आरात्तिष्ठत मामह्य समीपमुपसर्पत ।
कस्मान्मां नाभिजानीत प्राप्तं भागीरथीजलम् १२

---

अयीति कोमलामन्त्रणे ॥ ४ ॥ विलग्नमध्या कृशमध्या ॥ ६ ॥ पार्षती पार्षतदुहिता ॥ १५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

१७०

गते इति ॥ १ ॥ सोमाश्रयः चन्द्रधरो रुद्रः तस्य स्थानं सोमाश्रयायणम् ॥३॥ उल्मुकं ज्वलत्काष्ठम् ॥ ४ ॥ बलवत् अतिशयितम् ॥ ६॥ पूर्वरात्रागमेषु पश्चिमाया दिशि अर्धास्तमितार्कमण्डलरूपायां संध्या संरज्यते रक्ता भवति तस्यां मुहूर्तं प्रस्थानकालं अशीतिभिर्लवैर्निमेषार्धैर्हीनं प्रचक्षते ॥८॥ तदेव मुहूर्तं यक्षादीनां कर्मचारेषु विहितं अन्यन्मनुष्याणां कर्मचारेषु स्मृतमित्यन्वयः । संध्यायामशीतिलवोपरि रात्रौ यक्षादीनामेव संचारकालः । अन्यदहर्मनुष्याणामित्यर्थः ॥ ९ ॥ जलं प्राप्नुवतो नरान् ॥ ११॥

अङ्गारपर्णं गन्धर्वं वित्त मां स्वबलाश्रयम् ।
अहं हि मानी चेर्ष्युश्च कुबेरस्य प्रियः सखा ॥१३
अङ्गारपर्णमित्येवं ख्यातं चेदं वनं मम ।
अनुगङ्गं चरन्कामांश्चित्रं यत्र रमाम्यहम् ॥ १४
न कौणपाः श्रृङ्गिणो वा न देवा न च मानुषाः ।
इदं समुपसर्पन्ति तत्किं समनुसर्पथ ॥ १५

अर्जुन उवाच ।

समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्या च दुर्मते ।
रात्रावहनि संध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ॥ १६
भुक्तो वाप्यथवाऽभुक्तो रात्रावहनि खेचर ।
न कालनियमो ह्यस्ति गङ्गा प्राप्य सरिद्वराम् ॥
वयं च शक्तिसंपन्ना अकाले त्वामधृष्णुम ।
अशक्ता हि रणे क्रूर युष्मानर्चन्ति मानवाः ॥ १८
पुरा हिमवतश्चैषा हेमश्रृङ्गाद्विनिःसृता ।
गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा समपद्यत ॥ १९
गङ्गां च यमुनां चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम् ।
रथस्थां सरयूं चैव गोमतीं गण्डकीं तथा ॥ २०
अपर्युषितपापास्ते नदीः सप्त पिबन्ति ये ।
इयं भूत्वा चैकवप्रा शुचिराकाशगा पुनः ॥ २१
देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दताम् ।
तथा पितॄन्वैतरणी दुस्तरा पापकर्मभिः ।
गङ्गा भवति वै प्राप्य कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥२२
असंबाधा देवनदी स्वर्गसंपादनी शुभा ।
कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ॥ २३
अनिवार्यमसंबाधं तव वाचा कथं वयम् ।
न स्पृशेम यथाकामं पुण्यं भागीरथीजलम् ॥ २४

वैशंपायन उवाच ।

अङ्गारपर्णस्तच्छ्रुत्वा क्रुद्ध आनम्य कार्मुकम् ।
मुमोच बाणान्निशितानहीनाशीविषानिव ॥ २५
उल्मुकं भ्रामयंस्तूर्णं पाण्डवश्चर्म चोत्तरम् ।
व्यपोहत शरांस्तस्य सर्वानेव धनंजयः ॥ २६

अर्जुन उवाच ।

बिभीषिका वै गन्धर्व नास्त्रज्ञेषु प्रयुज्यते ।
अस्त्रज्ञेषु प्रयुक्तेयं फेनवत्प्रविलीयते ॥ २७
मानुषानतिगन्धर्वान्सर्वान्गन्धर्व लक्षये ।
तस्मादस्त्रेण दिव्येन योत्स्येऽहं न तु मायया ॥२८
पुरास्त्रमिदमाग्नेयं प्रादात्किल बृहस्पतिः ।
भरद्वाजाय गन्धर्व गुरुर्मान्यः शतक्रतोः ॥ २९
भरद्वाजादग्निवेश्य अग्निवेशाद्गुरुर्मम ।
साध्विदं मह्यमददद्द्रोणो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ३०

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा पाण्डवः क्रुद्धो गन्धर्वाय मुमोच ह ।
प्रदीप्तमस्त्रमाग्नेयं ददाहास्य रथं तु तत् ॥ ३१
विरथं विप्लुतं तं तु स गन्धर्वं महाबलः ।
अस्त्रतेजःप्रमूढं च प्रपतन्तमवाङ्मुखम् ॥ ३२
शिरोरुहेषु जग्राह माल्यवत्सु धनंजयः ।
भ्रातॄन्प्रति चकर्षाथ सोऽस्त्रपातादचेतसम् ॥ ३३
युधिष्ठिरं तस्य भार्या प्रपेदे शरणार्थिनी ।
नाम्ना कुम्भीनसी नाम पतित्राणमभीप्सती ॥ ३४

गन्धर्व्युवाच ।

त्रायस्व मां महाभाग पतिं चेमं विमुञ्च मे ।
गन्धर्वी शरणं प्राप्ता नाम्ना कुम्भीनसी प्रभो॥ ३५

---

'न नंहसाः श्रृङ्गिणो वा न च देवाञ्जनस्रजः । कुबेरस्य यथोष्णीषं किं मां समुपसर्पथ ॥' इति प्राचीनः पाठो देवबोधादिभिर्व्याख्यातत्वात् । हसान्ति विकसन्ति ते हसाः । नमन्तो हसाः येषां ते नंहसाः । भक्तानुग्राहका देवाः सर्वत्राप्रतिहतगतयस्ते भवन्तो न भूचरत्वात् । कौणपा इति पाठे तु राक्षसाः करालाकृतयो यूयं न । रम्याकृतित्वात् । न कुलसा इति पाठेऽपि स एवार्थः । कुलं स्यन्ति अन्तं नयन्ति ते कुलसाः । कुलकण्टका इत्यर्थः । श्रृङ्गिणः कापालिकाः आभिचारिका वीरसाधनादिपरास्तेऽपि निशिथे जलप्रवेशार्हाः न च श्रृङ्गकपालादि तच्चिह्नं युष्मासु दृश्यते । न च देवाञ्जनस्रजः । देवानां संबन्धीनि अञ्जनादीनि दिव्यदृष्टिप्रदानि स्रजश्च आकाशादिगतिप्रदा येषु सन्ति ते गन्धर्वयक्षादयः उल्मुकधारित्वात् । जले शब्दकरत्वाच्च यक्षादिसङ्घविदामप्यज्ञातत्वात् । कुबेरस्य उष्णीषमिवोष्णीषं शिरोमण्डनभूतं सन्तं मां किं समनुसर्पथ हेलया उपयाथ । यद्वा कुबेरस्य कुत्सितशरीरस्य हीनशक्तेः यथा उष्णीषं यः कश्चित् हेलया उपसर्पति तद्वन्मां कथं जानीथेत्यर्थः ॥१५॥ यत्तु रात्रौ जलं न स्प्रष्टव्यमित्युक्तं तत्राह समुद्रे इति ॥१६॥ अहं हि मानीत्युक्तं तत्राह वयमिति अधृष्णुम धर्षितवन्तः ॥१८॥ सप्तधा वस्वोकसारा नलिनीपावनी सीता चक्षुः सिन्धुरलकनन्देति सप्तधा गत्वा समुद्राम्भः समपद्यतेति योजना ॥१९॥ अपर्युषितपापाः निःशोषितपापाः । एकं आकाशरूपं वप्रं तटं यस्याः सा । 'तटं वप्रम्' इति मेदिनी ॥ २१ ॥ असंबाधा निःसङ्कटा इतरनदीवत्प्रावृषि रजस्वलात्वेन क्षणमप्यस्पृश्यत्वं न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ अहीन्सर्पान् आशीविषान्विषदंष्ट्रान् ॥२५॥ चर्म छत्राकारं आयुधपातत्राणम् । व्यपोहत अपसारितवान् ॥ २६ ॥ मानुषानतिमानुषाधिकान् लक्षयेऽतो दिव्येनास्त्रेण योत्स्ये ॥ २८ ॥ विप्लुतं रथाच्च्युतं अत एव प्रमूढम् ॥ ३२ ॥

गन्धर्व उवाच ।
संयोगो वै प्रीतिकरो महत्सु प्रतिदृश्यते ।
जीवितस्य प्रदानेन प्रीतो विद्यां ददामि ते ॥ ५६
त्वत्तोऽप्यहं ग्रहीष्यामि अस्त्रमाग्नेयमुत्तमम् ।
तथैव योग्यं बीभत्सो चिराय भरतर्षभ ॥ ५७
अर्जुन उवाच ।
त्वत्तोऽस्त्रेण वृणोम्यश्वान्संयोगः शाश्वतोऽस्तु नौ
सखे तद्ब्रूहि गन्धर्व युष्मभ्यो यद्भयं भवेत् ॥ ५८
कारणं ब्रूहि गन्धर्व किं तद्येन स्म धर्षिताः ।
यान्तो वेदविदः सर्वे सन्तो रात्रावरिंदमाः॥ ५९
गन्धर्व उवाच ।
अनग्नयोऽनाहुतयो न च विप्रपुरस्कृताः ।
यूयं ततो धर्षिताः स्थ मया वै पाण्डुनन्दनाः ६०
यक्षराक्षसगन्धर्वाः पिशाचोरगदानवाः ।
विस्तरं कुरुवंशस्य धीमन्तः कथयन्ति ते ॥ ६१
नारदप्रभृतीनां तु देवर्षीणां मया श्रुतम् ।
गुणान्कथयतां वीर पूर्वेषां तव धीमताम् ॥ ६२
स्वयं चापि मया दृष्टश्चरता सागराम्बराम् ।
इमां वसुमतीं कृत्स्नां प्रभावः सुकुलस्य ते ॥ ६३
वेदे धनुषि चाचार्यमभिजानामि तेऽर्जुन ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु भारद्वाजं यशस्विनम् ॥ ६४
धर्मं वायुं च शक्रं च विजानाम्यश्विनौ तथा ।
पाण्डुं च कुरुशार्दूल षडेतान्कुरुवर्धनान् ।
पितॄनेतानहं पार्थ देवमानुषसत्तमान् ॥ ६५
दिव्यात्मानो महात्मानः सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
भवन्तो भ्रातरः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ॥ ६६
उत्तमां च मनोबुद्धिं भवतां भावितात्मनाम् ।
जानन्नपि च वः पार्थ कृतवानिह धर्षणाम् ॥ ६७
स्त्रीसकाशे च कौरव्य न पुमान् क्षन्तुमर्हति ।
धर्षणामात्मनः पश्यन्बाहुद्रविणमाश्रितः ॥ ६८
नक्तं च बलमस्माकं भूय एवाभिवर्धते ।
यतस्ततो मां कौन्तेय सदारं मन्युराविशत् ॥ ६९
सोऽहं त्वयेह विजितः संख्ये तापत्यवर्धन ।
येन तेनेह विधिना कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ७०
ब्रह्मचर्यं परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मि विजितस्त्वया ॥
यस्तु स्यात्क्षत्रियः कश्चित्कामवृत्तः परंतप ।
नक्तं च युधि युध्येत न स जीवेत्कथंचन ॥ ७२
यस्तु स्यात्कामवृत्तोऽपि पार्थ ब्रह्मपुरस्कृतः ।
जयेन्नक्तंचरान्सर्वान्सपुरोहितधूर्गतः ॥ ७३
तस्मात्तापत्य यत्किंचिन्नृणां श्रेय इहेप्सितम् ।
तस्मिन्कर्मणि योक्तव्या दान्तात्मानः पुरोहिताः
वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः ।
धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नृपाणां पुरोहिताः ७५
जयश्च नियतो राज्ञः स्वर्गश्च तदनन्तरम् ।
यस्य स्याद्धर्मविद्वाग्मी पुरोधाः शीलवान् शुचिः॥
लाभं लब्धुमलब्धुं वा लब्धं वा परिरक्षितुम् ।
पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितम् ॥ ७७
पुरोहितमते तिष्ठेद्य इच्छेद्भूतिमात्मनः ।
प्राप्तुं वसुमतीं सर्वां सर्वशः सागराम्बराम् ॥ ७८
न हि केवलशौर्येण तापत्याभिजनेन च ।
जयेदब्राह्मणः कश्चिद्भूमिं भूमिपतिः क्वचित् ॥७९
तस्मादेवं विजानीहि कुरूणां वंशवर्धन ।
ब्राह्मणप्रमुखं राज्यं शक्यं पालयितुं चिरम् ॥ ८०

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वणि गन्धर्वपराभवे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

## १७१

अर्जुन उवाच ।
तापत्य इति यद्वाक्यमुक्तवानसि मामिह । तदहं ज्ञातुमिच्छामि तापत्यार्थं विनिश्चितम् ॥ १
तपती नाम का चैषा तापत्या यत्कृते वयम् । कौन्तेया हि वयं साधो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् २

आर्यं पक्षमादत्ते संयोग इत्यादिना ॥ ५६ ॥ युष्मभ्यः युष्मत्तः । यत् यस्माद्धेतोः ॥ ५८ ॥ अनग्नयः दारहीनत्वात् । अनाहुतयः समावृतत्वात् । आश्रमविशेषहीनोऽब्राह्मणो धर्षणीय इत्यर्थः ॥ ६० ॥ मनोबुद्धिं मनः सहितां बुद्धिं संकल्पनिश्चयौ । भावितात्मनां शोधितचित्तानाम् ॥ ६७ ॥ बाहुद्रविणं बाहुबलम् ॥ ६८ ॥ कामवृत्तः कृतदारः ॥ ७२ ॥ लाभं लब्धव्यं धनम् ॥ ७७॥ इति आदिपर्वणि नै० भारतभावदीपे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७०॥

१७१

पुरोहितप्रसादादेव तापत्यत्वं ख्यापयितुं तापत्येति संबोधनं कृतं तदर्थं पृच्छति । तापत्य इति । तापत्यार्थं तापत्यपदार्थम् ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तः स गन्धर्वः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु श्रावयामास वै कथाम् ॥ ३
गन्धर्व उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ।
यथावदखिलां पार्थ सर्वबुद्धिमतां वर ॥ ४
उक्तवानस्मि येन त्वां तापत्य इति यद्वचः ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना भव ॥ ५
य एष दिवि धिष्ण्येन नाकं व्याप्नोति तेजसा ।
एतस्य तपती नाम बभूव सदृशी सुता ॥ ६
विवस्ततो वै देवस्य सावित्र्यवरजा विभो ।
विश्रुता त्रिषु लोकेषु तपती तपसा युता ॥ ७
न देवी नासुरी चैव न यक्षी न च राक्षसी ।
नाप्सरा न च गन्धर्वी तथारूपेण काचन ॥ ८
सुविभक्ताऽनवद्याङ्गी स्वसितायतलोचना ।
स्वाचारा चैव साध्वी च सुवेषा चैव भामिनी ॥
न तस्याः सदृशं कंचित्त्रिषु लोकेषु भारत ।
भर्तारं सविता मेने रूपशीलगुणश्रुतैः ॥ १०
संप्राप्तयौवनां पश्यन्देयां दुहितरं तु ताम् ।
नोपलेभे ततः शान्तिं संप्रदानं विचिन्तयन् ॥ ११
अथर्क्षपुत्रः कौन्तेय कुरूणामृषभो बली ।
सूर्यमाराधयामास नृपः संवरणस्तदा ॥ १२
अर्घ्यमाल्योपहाराद्यैर्गन्धैश्च नियतः शुचिः ।
नियमैरुपवासैश्च तपोभिर्विविधैरपि ॥ १३
शुश्रूषुरनहंवादी शुचिः पौरवनन्दन ।
अंशुमन्तं समुद्यन्तं पूजयामास भक्तिमान् ॥ १४
ततः कृतज्ञं धर्मज्ञं रूपेणासदृशं भुवि ।
तपत्याः सदृशं मेने सूर्यः संवरणं पतिम् ॥ १५
दातुमैच्छत्ततः कन्यां तस्मै संवरणाय ताम् ।
नृपोत्तमाय कौरव्य विश्रुताभिजनाय च ॥ १६
यथा हि दिवि दीप्तांशुः प्रभासयति तेजसा ।
तथा भुवि महीपालो दीप्त्या संवरणोऽभवत् ॥
यथाऽर्चयन्ति चादित्यमुद्यन्तं ब्रह्मवादिनः ।
तथा संवरणं पार्थ ब्राह्मणावरजाः प्रजाः ॥ १८
स सोममतिकान्तत्वादादित्यमतितेजसा ।
बभूव नृपतिः श्रीमान्सुहृदां दुर्हृदामपि ॥ १९
एवंगुणस्य नृपतेस्तथावृत्तस्य कौरव ।
तस्मै दातुं मनश्चक्रे तपतीं तपनः स्वयम् ॥ २०
स कदाचिदथो राजा श्रीमानमितविक्रमः ।
चचार मृगयां पार्थ पर्वतोपवने किल ॥ २१
चरतो मृगयां तस्य क्षुत्पिपासासमन्वितः ।
ममार राज्ञः कौन्तेय गिरावप्रतिमो हयः ॥ २२
स मृताश्वश्चरन्पार्थ पद्भ्यामेव गिरौ नृपः ।
ददर्शासदृशीं लोके कन्यामायतलोचनाम् ॥ २३
स एक एकामासाद्य कन्यां परबलार्दनः ।
तस्थौ नृपतिशार्दूलः पश्यन्नविचलेक्षणः ॥ २४
स हि तां तर्कयामास रूपतो नृपतिः श्रियम् ।
पुनः संतर्कयामास रवेर्भ्रष्टामिव प्रभाम् ॥ २५
वपुषा वर्चसा चैव शिखामिव विभावसोः ।
प्रसन्नत्वेन कान्त्या च चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥ २६
गिरिपृष्ठे तु सा यस्मिन्स्थिता स्वसितलोचना ।
विभ्राजमाना शुशुभे प्रतिमेव हिरण्मयी ॥ २७
तस्या रूपेण स गिरिर्वेषेण च विशेषतः ।
स सवृक्षक्षुपलतो हिरण्मय इवाभवत् ॥ २८
अवमेने च तां दृष्ट्वा सर्वलोकेषु योषितः ।
अवाप्तं चात्मनो मेने स राजा चक्षुषः फलम् ॥
जन्मप्रभृति यत्किंचिद्दृष्टवान्स महीपतिः ।
रूपं न सदृशं तस्यास्तर्कयामास किंचन ॥ ३०
तया बद्धमनश्चक्षुः पाशैर्गुणमयैस्तदा ।
न चचाल ततो देशाद्बुबुधे न च किंचन ॥ ३१
अस्या नूनं विशालाक्ष्याः सदेवासुरमानुषम् ।
लोकं निर्मथ्य धात्रेदं रूपमाविष्कृतं कृतम् ॥ ३२
एवं संतर्कयामास रूपद्रविणसंपदा ।
कन्यामसदृशीं लोके नृपः संवरणस्तदा ॥ ३३
तां च दृष्ट्वैव कल्याणीं कल्याणाभिजनो नृपः ।
जगाम मनसा चिन्तां कामबाणेन पीडितः ॥ ३४
दह्यमानः स तीव्रेण नृपतिर्मन्मथाग्निना ।
अप्रगल्भां प्रगल्भस्तां तदोवाच मनोहराम् ॥ ३५
काऽसि कस्यासि रम्भोरु किमर्थं चेह तिष्ठसि ।
कथं च निर्जनेऽरण्ये चरस्येका शुचिस्मिते ॥ ३६
त्वं हि सर्वानवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता ।
विभूषणमिवैतेषां भूषणानामभीप्सितम् ॥ ३७
न देवीं नासुरीं चैव न यक्षीं न च राक्षसीम् ।
न च भोगवतीं मन्ये न गन्धर्वीं न मानुषीम् ॥ ३८
या हि दृष्टा मया काश्चिच्छ्रुता वाऽपि वराङ्गनाः ।
न तासां सदृशीं मन्ये त्वामहं मत्तकाशिनि ॥ ३९

धिष्ण्येन मण्डलेन ॥ ६ ॥ संप्रदानं दानमात्रम् ॥ ११ ॥ सुहृदां दुर्हृदामपि मध्ये श्रीमान् ॥ १९ ॥. क्षुपः गुल्मः 'ह्रस्वशाखा शिफः क्षुपः' इत्यमरः ॥ २८ ॥ मत्तेवकाशत इति मत्तकाशिनी ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वैव चारुवदने चन्द्रात्कान्ततरं तव ।
वदनं पद्मपत्राक्षं मां मथ्नातीव मन्मथः ॥ ४०
एवं तां स महीपालो बभाषे न तु सा तदा ।
कामार्तं निर्जनेऽरण्ये प्रत्यभाषत किंचन ॥ ४१
ततो लालप्यमानस्य पार्थिवस्यायतेक्षणा ।
सौदामिनीव चाभ्रेषु तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४२
तामन्वेष्टुं स नृपतिः परिचक्राम सर्वतः ।
वनं वनजपत्राक्षीं भ्रमन्नुन्मत्तवत्तदा ॥ ४३
अपश्यमानः स तु तां बहु तत्र विलप्य च ।
निश्चेष्टः पार्थिवश्रेष्ठो मुहूर्तं स व्यतिष्ठत ॥ ४४

इति श्रीमहा० आ० चैत्ररथपर्वणि तपत्युपाख्याने एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

---

## १७२

गन्धर्व उवाच ।
अथ तस्यामदृश्यायां नृपतिः काममोहितः ।
पातनः शत्रुसङ्घानां पपात धरणीतले ॥ १
तस्मिन्निपतिते भूमावथ सा चारुहासिनी ।
पुनः पीनायतश्रोणी दर्शयामास तं नृपम् ॥ २
अथाबभाषे कल्याणी वाचा मधुरया नृपम् ।
तं कुरूणां कुलकरं कामाभिहतचेतसम् ॥ ३
उवाच मधुरं वाक्यं तपती प्रहसन्निव ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते न त्वमर्हस्यरिंदम ॥ ४
मोहं नृपतिशार्दूल गन्तुमाविष्कृतः क्षितौ ।
एवमुक्तोऽथ नृपतिर्वाचा मधुरया तदा ॥ ५
ददर्श विपुलश्रोणीं तामेवाभिमुखे स्थिताम् ।
अथ तामसितापाङ्गीमाबभाषे स पार्थिवः ॥ ६
मन्मथाग्निपरीतात्मा संदिग्धाक्षरया गिरा ।
साधु त्वमसितापाङ्गि कामार्तं मत्तकाशिनि ॥७
भजस्व भजमानं मां प्राणा हि प्रजहन्ति माम् ।
त्वदर्थं हि विशालाक्षि मामयं निशितैः शरैः ॥८
कामः कमलगर्भाभे प्रतिविध्यन्न शाम्यति ।
दष्टमेवमनाक्रन्दे भद्रे काममहाहिना ॥ ९
सा त्वं पीनायतश्रोणि मामाप्नुहि वरानने ।
त्वदधीना हि मे प्राणाः किंनरोद्गीतभाषिणि १०
चारुसर्वानवद्याङ्गि पद्मेन्दुप्रतिमानने ।
न ह्यहं त्वदृते भीरु शक्ष्यामि खलु जीवितुम् ११
कामः कमलपत्राक्षि प्रतिविध्यति मामयम् ।
तस्मात्कुरु विशालाक्षि मय्यनुक्रोशमङ्गने ॥ १२
भक्तं मामसितापाङ्गि न परित्यक्तुमर्हसि ।
त्वं हि मां प्रीतियोगेन त्रातुमर्हसि भाविनि ॥१३
त्वद्दर्शनकृतस्नेहं मनश्चलति मे भृशम् ।
न त्वां दृष्ट्वा पुनरन्यां द्रष्टुं कल्याणि रोचते ॥ १४
प्रसीद वशगोऽहं ते भक्तं मां भज भाविनि ।
दृष्ट्वैव त्वां वरारोहे मन्मथो भृशमङ्गने ॥ १५
अन्तर्गतं विशालाक्षि विध्यति स्म पतत्रिभिः ।
मन्मथाग्निसमुद्भूतं दाहं कमललोचने ॥ १६
प्रीतिसंयोगयुक्ताभिरद्भिः प्रह्लादयस्व मे ।
पुष्पायुधं दुराधर्षं प्रचण्डशरकार्मुकम् ॥ १७
त्वद्दर्शनसमुद्भूतं विध्यन्तं दुःसहैः शरैः ।
उपशामय कल्याणि आत्मदानेन भाविनि ॥ १८
गान्धर्वेण विवाहेन मामुपैहि वराङ्गने ।
विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥१९
तपत्युवाच ।
नाहमीशात्मनो राजन्कन्या पितृमती ह्यहम् ।
मयि चेदस्ति ते प्रीतिर्याचस्व पितरं मम ॥ २०
यथा हि ते मया प्राणाः संगृहीता नरेश्वर ।
दर्शनादेव भूयस्त्वं तथा प्राणान्ममाहरः ॥ २१
न चाहमीशा देहस्य तस्मान्नृपतिसत्तम ।
समीपं नोपगच्छामि न स्वतन्त्रा हि योषितः २२

---

वनजपत्राक्षीं जलजपत्राक्षीम् ॥४३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्तत्यधिकशततमो० ॥१७१

१७२

अथेति ॥ १ ॥ प्रहसन् अन्य इव ॥ ४ ॥ आविष्कृतः प्रख्यातः स्त्रीलिङ्गपाठे तु आविर्भूतास्मि ॥ ५ ॥ प्रजहन्ति प्रजहति ॥ ८ ॥ अनाक्रन्दे अत्रातरि काले । 'आक्रन्दः क्रन्दने ह्वाने मित्रदारुणयुद्धयोः। त्रातर्यपि च पुंसि स्यात्' इति मेदिनी ॥ ९ ॥ रोचते रुचिर्भवति ॥ १४ ॥ भूयः अधिकं अहरः हृतवानासि ॥ २१ ॥ तर्हि क्रियतां सङ्ग इति चेत्तत्राह । न चेति ॥ २२ ॥

का हि सर्वेषु लोकेषु विश्रुताभिजनं नृपम् ।
कन्या नाभिलषेन्नाथं भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ २३
तस्मादेवं गते काले याचस्व पितरं मम ।
आदित्यं प्रणिपातेन तपसा नियमेन च ॥ २४
स चेत्कामयते दातुं तव मामरिसूदन ।
भविष्याम्यद्य ते राजन्सततं वशवर्तिनी ॥ २५
अहं हि तपती नाम सावितुःअवरजा सुता ।
अस्य लोकप्रदीपस्य सवितुः क्षत्रियर्षभ ॥ २६

इति श्रीमहा० आदिपर्वणि चैत्ररथप० तपत्युपाख्याने द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

## १७३

गन्धर्व उवाच ।
एवमुक्त्वा ततस्तूर्णं जगामोर्ध्वमनिन्दिता ।
स तु राजा पुनर्भूमौ तत्रैव निपपात ह ॥ १
अन्वेषमाणः सबलस्तं राजानं नृपोत्तमम् ।
अमात्यः सानुयात्रश्च तं ददर्श महावने ॥ २
क्षितौ निपतितं काले शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ।
तं हि दृष्ट्वा महेष्वासं निरस्तं पतितं भुवि ॥ ३
बभूव सोऽस्य सचिवः संप्रदीप्त इवाग्निना ।
त्वरया चोपसंगम्य स्नेहादागतसंभ्रमः ॥ ४
तं समुत्थापयामास नृपतिं काममोहितम् ।
भूतलाद्भूमिपालेशं पितेव पतितं सुतम् ॥ ५
प्रज्ञया वयसा चैव वृद्धः कीर्त्या नयेन च ।
अमात्यस्तं समुत्थाप्य बभूव विगतज्वरः ॥ ६
उवाच चैनं कल्याण्या वाचा मधुरयोत्थितम् ।
मा भैर्मनुजशार्दूल भद्रमस्तु तवानघ ॥ ७
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तं तर्कयामास वै नृपम् ।
पतितं पातनं संख्ये शात्रवाणां महीतले ॥ ८
वारिणा च सुशीतेन शिरस्तस्याभ्यषेचयत् ।
अस्फुटन्मुकुटं राज्ञः पुण्डरीकसुगन्धिना ॥ ९
ततः प्रत्यागतप्राणस्तद्बलं बलवान्नृपः ।
सर्वं विसर्जयामास तमेकं सचिवं विना ॥ १०
ततस्तस्याज्ञया राज्ञो विप्रतस्थे महद्बलम् ।
स तु राजा गिरिप्रस्थे तस्मिन्पुनरुपाविशत् ॥ ११
ततस्तस्मिन्गिरिवरे शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः ।
आरिराधयिषुः सूर्यं तस्थावूर्ध्वमुखः क्षितौ ॥ १२
जगाम मनसा चैव वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
पुरोहितममित्रघ्नं तदा संवरणो नृपः ॥ १३
नक्तं दिनमथैकत्र स्थिते तस्मिञ्जनाधिपे ।
अथाजगाम विप्रर्षिस्तदा द्वादशमेऽहनि ॥ १४
स विदित्वैव नृपतिं तपत्या हृतमानसम् ।
दिव्येन विधिना ज्ञात्वा भावितात्मा महानृषिः ॥
तथा तु नियतात्मानं तं नृपं मुनिसत्तमः ।
आबभाषे स धर्मात्मा तस्यैवार्थचिकीर्षया ॥ १६
स तस्य मनुजेन्द्रस्य पश्यतो भगवानृषिः ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे द्रष्टुं भास्करं भास्करद्युतिः ॥ १७
सहस्रांशुं ततो विप्रः कृताञ्जलिरुपस्थितः ।
वसिष्ठोऽहमिति प्रीत्या स चात्मानं न्यवेदयत् १८
तमुवाच महातेजा विवस्वान्मुनिसत्तमम् ।
महर्षे स्वागतं तेऽस्तु कथयस्व यथेप्सितम् ॥ १९
यदिच्छसि महाभाग मत्तः प्रवदतां वर ।
तत्ते दद्याममिप्रेतं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ २०
एवमुक्तः स तेनर्षिर्वसिष्ठः प्रत्यभाषत ।
प्रणिपत्य विवस्वन्तं भानुमन्तं महातपाः ॥ २१
वसिष्ठ उवाच ।
यैषा ते तपती नाम सावित्र्यवरजा सुता ।
तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो ॥ २२

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

१७३

एवमिति ॥ १ ॥ अनुयात्रः शिबिरभाण्डाद्याहर्तृभिः सहितः सानुयात्रः ॥ २ ॥ निरस्तं तपत्या त्यक्तम् ॥ ३ ॥ आगतसंभ्रमः जातभयः ॥ ४ ॥ पुण्डरीकयुक्तेन सुगन्धिना । उशीरमूलेन निर्मितं मुकुटं दाहापनयनार्थं राज्ञः शिरसि निहितमात्रं अस्फुटत् विशीर्णं सद्यः शुष्कमभूदित्यर्थः । पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः ॥९॥ बलं सैन्यम् ॥ १० ॥ गिरिप्रस्थे शैलशिखरे ॥ ११ ॥ द्वादशमे द्वादशसंख्यामिते ॥ १४ ॥ दिव्येन विधिना योगबलेन ॥ १५ ॥ पश्यतः सतः पश्यतोर्थे वा ॥ १७ ॥

* अस्पृशत्सुखमिति

स हि राजा बृहत्कीर्तिर्धर्मार्थविदुदारधीः ।
युक्तः संवरणो भर्ता दुहितुस्ते विहंगम ॥ २३
इत्युक्तः स तदा तेन ददानीत्येव निश्चितः ।
प्रत्यभाषत तं विप्रं प्रतिनन्द्य दिवाकरः ॥ २४
वरः संवरणो राज्ञां त्वमृषीणां वरो मुने ।
तपती योषितां श्रेष्ठा किमन्यदपवर्जनात् ॥ २५
ततः सर्वानवद्याङ्गीं तपतीं तपनः स्वयम् ।
ददौ संवरणस्यार्थे वसिष्ठाय महात्मने ॥ २६
प्रतिजग्राह तां कन्यां महर्षिस्तपतीं तदा ।
वासिष्ठोऽथ विसृष्टस्तु पुनरेवाजगाम ह ॥ २७
यत्र विख्यातकीर्तिः स कुरूणामृषभोऽभवत् ।
स राजा मन्मथाविष्टस्तद्गतेनान्तरात्मना ॥ २८
दृष्ट्वा च देवकन्यां तां तपतीं चारुहासिनीम् ।
वासिष्ठेन सहायान्तीं संहृष्टोऽभ्यधिकं बभौ ॥२९
रुरुचे साधिकं सुभ्रूरापतन्ती नभस्तलात् ।
सौदामिनीव विभ्रष्टा द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ३०
कृच्छ्राद्द्वादशरात्रे तु तस्य राज्ञः समाहिते ।
आजगाम विशुद्धात्मा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ३१
तपसाराध्य वरदं देवं गोपतिमीश्वरम् ।
लेभे संवरणो भार्यां वसिष्ठस्यैव तेजसा ॥ ३२
ततस्तस्मिन्गिरिश्रेष्ठे देवगन्धर्वसेविते ।
जग्राह विधिवत्पाणिं तपत्याः स नरर्षभः ॥ ३३
वासिष्ठेनाभ्यनुज्ञातस्तस्मिन्नेव धराधरे ।
सोऽकामयत राजर्षिर्विहर्तुं सह भार्यया ॥ ३४
ततः पुरे च राष्ट्रे च वनेषूपवनेषु च ।
आदिदेश महीपालस्तमेव सचिवं तदा ॥ ३५
नृपतिं त्वभ्यनुज्ञाप्य वासिष्ठोऽथापचक्रमे ।
सोऽथ राजा गिरौ तस्मिन्विजहारामरो यथा ३६
ततो द्वादशवर्षाणि काननेषु वनेषु च ।
रेमे तस्मिन्गिरौ राजा तथैव सह भार्यया ३७
तस्य राज्ञः पुरे तस्मिन्समा द्वादश सत्तम ।
न ववर्ष सहस्राक्षो राष्ट्रे चैवास्य भारत ॥ ३८
ततस्तस्यामनावृष्ट्यां प्रवृत्तायामरिंदम ।
प्रजाः क्षयमुपाजग्मुः सर्वाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥३९
तस्मिंस्तथाविधे काले वर्तमाने सुदारुणे ।
नावश्यायः पपातोर्व्यां ततः सस्यानि नारुहन्४०
ततो विभ्रान्तमनसो जनाः क्षुद्भयपीडिताः ।
गृहाणि संपरित्यज्य बभ्रमुः प्रदिशो दिशः ॥ ४१
ततस्तस्मिन्पुरे राष्ट्रे त्यक्तदारपरिग्रहाः ।
परस्परममर्यादाः क्षुधार्ता जघ्निरे जनाः ॥ ४२
तत्क्षुधार्तैर्निराहारैः शवभूतैस्तथा नरैः ।
अभवत्प्रेतराजस्य पुरं प्रेतैरिवावृतम् ॥ ४३
ततस्तत्तादृशं दृष्ट्वा स एव भगवानृषिः ।
अभ्यवर्षत धर्मात्मा वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ४४
तं च पार्थिवशार्दूलमानयामास तत्पुरम् ।
तपत्या सहितं राजन्व्युषितं शाश्वतीः समाः ।
ततः प्रवृष्टस्तत्रासीद्यथापूर्वं सुरारिहा ॥ ४५
तस्मिन्नृपतिशार्दूले प्रविष्टे नगरं पुनः ।
प्रववर्ष सहस्राक्षः सस्यानि जनयन्प्रभुः ॥ ४६
ततः सराष्ट्रं मुमुदे तत्पुरं परया मुदा ।
तेन पार्थिवमुख्येन भावितं भावितात्मना ॥ ४७
ततो द्वादशवर्षाणि पुनरीजे नराधिपः ।
तपत्या सहितः पत्न्या यथा शच्या मरुत्पतिः ४८

गन्धर्व उवाच ।

एवमासीन्महाभागा तपती नाम पौर्विकी ।
तव वैवस्वती पार्थ तापत्यस्त्वं यथा मतः ॥ ४९
तस्यां संजनयामास कुरुं संवरणो नृपः ।
तपत्यां तपतां श्रेष्ठ तापत्यस्त्वं ततोऽर्जुन ॥ ५०

इति श्रीम० आदिप० चैत्ररथप० तपत्युपाख्यानसमाप्तौ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

---

विहंगम हे खेचर ॥ २३ ॥ किमन्यत् श्रेष्ठम् । अपवर्जनात् दानात् ॥ २५ ॥ कृच्छ्रात् क्लेशात् द्वादशरात्रसाध्ये समाहिते समाधौ नियमे समाप्ते सति ॥३१॥ गोपतिं सूर्यम् ॥ ३२ ॥ न ववर्ष राज्ञः कामासक्त्या वार्षिकज्योतिष्टोमादिक्रियालोपात् ॥ ३८ ॥ अवश्यायः नीहारोऽपि न पपात कुतो वृष्टिरित्यर्थः ॥ ४० ॥ तत् तदा शवभूतैः मृतसदृशैः ॥ ४३ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भारतभावदीपे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

## १७४

वैशंपायन उवाच।

स गन्धर्ववचः श्रुत्वा तत्तदा भरतर्षभ ।
अर्जुनः परया भक्त्या पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥ १
उवाच च महेष्वासो गन्धर्वं कुरुसत्तमः ।
जातकौतूहलोऽतीव वसिष्ठस्य तपोबलात् ॥ २
वासिष्ठ इति तस्यैतदृषेर्नाम त्वयेरितम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यथावत्तद्वदस्व मे ॥ ३
य एष गन्धर्वपते पूर्वेषां नः पुरोहितः ।
आसीदेतन्ममाचक्ष्व क एष भगवानृषिः ॥ ४

गन्धर्व उवाच ।

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वसिष्ठोऽरुन्धतीपतिः ।
तपसा निर्जितौ शश्वदजेयावमरैरपि ॥ ५
कामक्रोधावुभौ यस्य चरणौ संववाहतुः ।
इन्द्रियाणां वशकरो वासिष्ठ इति चोच्यते ॥ ६
यस्तु नोच्छेदनं चक्रे कुशिकानामुदारधीः ।
विश्वामित्रापराधेन धारयन्मन्युमुत्तमम् ॥ ७
पुत्रव्यसनसंतप्तः शक्तिमानप्यशक्तवत् ।
विश्वामित्रविनाशाय न चक्रे कर्म दारुणम् ॥ ८
मृतांश्च पुनराहर्तुं शक्तः पुत्रान्यमक्षयात् ।
कृतान्तं नातिचक्राम वेलामिव महोदधिः॥ ९
यं प्राप्य विजितात्मानं महात्मानं नराधिपाः ।
इक्ष्वाकवो महीपाला लेभिरे पृथिवीमिमाम् ॥१०
पुरोहितमिमं प्राप्य वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
ईजिरे क्रतुभिश्चैव नृपास्ते कुरुनन्दन ॥ ११
स हि तान्याजयामास सर्वान्नृपतिसत्तमान् ।
ब्रह्मर्षिः पाण्डवश्रेष्ठ बृहस्पतिरिवामरान् ॥ १२
तस्माद्धर्मप्रधानात्मा वेदधर्मविदीप्सितः ।
ब्राह्मणो गुणवान्कश्चित्पुरोधाः प्रतिदृश्यताम् १३
क्षत्रियेणाभिजातेन पृथिवीं जेतुमिच्छता ।
पूर्वं पुरोहितः कार्यः पार्थ राज्याभिवृद्धये ॥ १४
महीं जिगीषता राज्ञा ब्रह्मकार्यं पुरःसरम् ।
तस्मात्पुरोहितः कश्चिद्गुणवान्विजितेन्द्रियः ।
विद्वान्भवतु वो विप्रो धर्मकामार्थतत्त्ववित् ॥१५

इ० श्रीम० आदिप० चैत्ररथप० पुरोहितकरणकथने चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

---

## १७५

अर्जुन उवाच ।

किंनिमित्तमभूद्वैरं विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
वसतोराश्रमे दिव्ये शंस नः सर्वमेव तत् ॥ १

गन्धर्व उवाच ।

इदं वासिष्ठमाख्यानं पुराणं परिचक्षते ।
पार्थ सर्वेषु लोकेषु यथावत्तन्निबोध मे ॥ २
कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ ।
गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः ॥ ३
तस्य धर्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः ।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥ ४
स चचार सहामात्यो मृगयां गहने वने ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च रम्येषु मरुधन्वसु ॥ ५
व्यायामकर्शितः सोऽथ मृगलिप्सुः पिपासितः ।
आजगाम नरश्रेष्ठ वसिष्ठस्याश्रमं प्रति ॥ ६
तमागतमभिप्रेक्ष्य वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
विश्वामित्रं नरश्रेष्ठं प्रतिजग्राह पूजया ॥ ७
पाद्यार्घ्याचमनीयैस्तं स्वागतेन च भारत ।
तथैव परिजग्राह वन्येन हविषा तदा ॥ ८
तस्याथ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुह्यते सदा ९
ग्राम्यारण्याश्चौषधीश्च दुदुहे पय एव च ।
षड्रसं चामृतनिभं रसायनमनुत्तमम् ॥ १०
भोजनीयानि पेयानि भक्ष्याणि विविधानि च ।
लेह्यान्यमृतकल्पानि चोष्याणि च तथार्जुन ॥११
रत्नानि च महार्हाणि वासांसि विविधानि च ।
तैः कामैः सर्वसंपूर्णैः पूजितश्च महीपतिः ॥ १२

---

१७४

स गन्धर्वेति ॥१॥ अपराधेन पुत्रशतवधरूपेण ॥ ७ ॥ प्रकरणार्थमुपसंहरति तस्मादिति ॥१५॥ इति आ०नै०भा० भा० चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७४ ॥

१७५

किंनिमित्तमिति ॥ १ ॥ मरुधन्वसु मरुसंज्ञकेष्वल्पजलप्रदेशेषु।'धन्वा तु मरुदेशे ना क्लीबे चापे स्थलेपि च'इति मेदिनी ॥ ५ ॥ व्यायामकर्शितः श्रमेण म्लानः ॥ ६ ॥ श्रेष्ठभाक्पूज्यपूजकः ॥ ७ ॥ परिजग्राह निमन्त्रितवान् ॥ ८ ॥ ग्राम्या व्रीह्यादयः । आरण्या नीवारादयः । षड्रसाः मधुरादयः । रसायनं दिव्यदेहतापादकम् ॥ १० ॥ पेयानि क्षीरादीनि भक्ष्याणि दंतैरवखण्डनीयान्यपूपादीनि । लेह्यानि पायसादीनि । चोष्याणि इक्षुकाण्डादीनि ॥ ११ ॥

सामात्यः सबलश्चैव तुतोष स भृशं तदा ।
षडुन्नतां सुपार्श्वोरुं पृथुपञ्चसमावृताम् ॥ १३
मण्डूकनेत्रां स्वाकारां पीनोधसमनिन्दिताम् ।
सुवालधिं शङ्कुकर्णां चारुशृङ्गां मनोरमाम् ॥१४
पुष्टायतशिरोग्रीवां विस्मितः सोऽभिवीक्ष्य ताम् ।
अभिनन्द्य स तां राजा नन्दिनीं गाधिनन्दनः १५
अब्रवीच्च भृशं तुष्टः स राजा तमृषिं तदा ।
अर्बुदेन गवां ब्रह्मन्मम राज्येन वा पुनः ॥ १६
नन्दिनीं संप्रयच्छस्व भुङ्क्ष्व राज्यं महामुने ।
वसिष्ठ उवाच ।
देवतातिथिपित्रर्थं याज्यार्थं च पयस्विनी ॥ १७
अदेया नन्दिनीयं वै राज्येनापि तवानघ ।
विश्वामित्र उवाच ।
क्षत्रियोऽहं भवान्विप्रस्तपः स्वाध्यायसाधनः १८
ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु ।
अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम् ॥ १९
स्वधर्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम् ।
वसिष्ठ उवाच ।
बलस्थश्चासि राजा च बाहुवीर्यश्च क्षत्रियः ॥२०
यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय ।
गन्धर्व उवाच ।
एवमुक्तस्तथा पार्थ विश्वामित्रो बलादिव ॥ २१
हंसचन्द्रप्रतीकाशां नन्दिनीं तां जहार गाम् ।
कशादण्डप्रणुदितां काल्यमानामितस्ततः ॥ २२
हम्भायमाना कल्याणी वासिष्ठस्याथ नन्दिनी ।
आगम्याभिमुखी पार्थ तस्थौ भगवदुन्मुखी २३
भृशं च ताड्यमाना वै न जगामाश्रमात्ततः ।
वसिष्ठ उवाच ।
शृणोमि ते रवं भद्रे विनदन्त्याः पुनः पुनः ॥ २४
ह्रियसे त्वं बलाद्भद्रे विश्वामित्रेण नन्दिनी ।
किं कर्तव्यं मया तत्र क्षमावान्ब्राह्मणो ह्यहम् २५
गन्धर्व उवाच ।
सा भयान्नन्दिनी तेषां बलानां भरतर्षभ ।
विश्वामित्रभयोद्विग्ना वसिष्ठं समुपागमत् ॥ २६
गौरुवाच ।
कशाग्रदण्डाभिहतां क्रोशन्तीमामनाथवत् ।
विश्वामित्रबलैर्घोरैर्भगवन्किमुपेक्षसे ॥ २७
गन्धर्व उवाच ।
नन्दिन्यामेवं क्रन्दन्त्यां धर्षितायां महामुनिः ।
न चुक्षुभे तदा धैर्यान्न चचाल धृतव्रतः ॥ २८
वसिष्ठ उवाच ।
क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम् ।
क्षमा मां भजते यस्माद्गम्यतां यदि रोचते ॥ २९
नन्दिन्युवाच ।
किं नु त्यक्ताऽस्मि भगवन्यदेवं त्वं प्रभाषसे ।
अत्यक्ताऽहं त्वया ब्रह्मन्नेतुं शक्या न वै बलात् ३०
वसिष्ठ उवाच ।
न त्वां त्यजामि कल्याणि स्थीयतां यदि शक्यते
दृढेन दाम्ना बध्वैष वत्सस्ते ह्रियते बलात् ॥ ३१
गन्धर्व उवाच ।
स्थीयतामिति तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्य पयस्विनी ।
ऊर्ध्वाञ्चितशिरोग्रीवा प्रबभौ रौद्रदर्शना ॥ ३२
क्रोधरक्तेक्षणा सा गौर्हम्भारवघनस्वना ।
विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं व्यद्रावयत सर्वशः ॥ ३३
कशाग्रदण्डाभिहता काल्यमाना ततस्ततः ।
क्रोधरक्तेक्षणा क्रोधं भूय एव समाददे ॥ ३४
आदित्य इव मध्याह्ने क्रोधदीप्तवपुर्बभौ ।
अङ्गारवर्षं मुञ्चन्ती मुहुर्वालधितो महत् ॥ ३[५]
असृजत्पह्लवान्पुच्छात्प्रस्रवाद्द्राविडाञ्छकान् ।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शबरान्बहून् ॥ ३[६]
मूत्रतश्चासृजत्कांश्चिच्छबरांश्चैव पार्श्वतः ।
पौण्ड्रान्किरातान्यवनान्सिंहलान्बर्बरान्खसान् ३[७]
चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान्हूणान्सकेरलान् ।
ससर्ज फेनतः सा गौर्म्लेच्छान्बहुविधानपि ३[८]
तैर्विसृष्टैर्महासैन्यैर्नानाम्लेच्छगणैस्तदा ।
नानावरणसंच्छन्नैर्नानायुधधरैस्तथा ॥ ३[९]
अवाकीर्यत संरब्धैर्विश्वामित्रस्य पश्यतः ।
एकैकश्च तदा योधः पञ्चभिः सप्तभिर्वृतः ॥ ४[०]

सबलः ससैन्यः॥षडुन्नताम् षडायतां । शिरो ग्रीवा सक्थिनी च सास्ना पुच्छमथस्तनाः। शुभान्येतानि धेनूनामायतानि प्रचक्षते । तथा पृथुभिः पञ्चभिरङ्गैः समावृतां युक्ताम् । ललाटं श्रवणौ चैव नयनद्वितयं तथा । पृथून्येतानि शस्यन्ते धेनूनां पञ्चसूरिभिः ॥ १३ ॥ मण्डूकस्येव उच्छूने नेत्रे यस्याः । पीनं ऊधः क्षीराशयो यस्यास्तां पीनोधसं । सुवालधिं शोभनपुच्छां । शङ्कुः इव तीक्ष्णाग्रौ कर्णौ यस्याः सा ॥ १४ ॥ नन्दिनीं नामतः ॥ १५ ॥ कशादण्डप्रणुदितां कशाघातैः खेदं प्रापिताम् । काल्यमानां इतस्ततो निरोध्यमानाम्॥ २२ पल्हवादयो म्लेच्छविशेषाः प्रस्रवात् ऊधःप्रदेशात् शकृत गोमयात् ॥ ३६ ॥ विष्टभ्य व्याप्य ॥ ४७ ॥

अमुञ्चन्तं तु पन्थानं तमृषिं ऋषिसत्तमः ।
जघान कशया मोहात्तदा राक्षसवन्मुनिम् ॥
आदि० १७६.११

अस्त्रवर्षेण महता बध्यमानं बलं तदा ।
प्रभग्नं सर्वतस्त्रस्तं विश्वामित्रस्य पश्यतः ॥ ४१
न च प्राणैर्वियुज्यन्ते केचित्तत्रास्य सैनिकाः ।
विश्वामित्रस्य संक्रुद्धैर्वासिष्ठैर्भरतर्षभ ॥ ४२
सा गौस्तत्सकलं सैन्यं कालयामास दूरतः ।
विश्वामित्रस्य तत्सैन्यं काल्यमानं त्रियोजनम् ४३
क्रोशमानं भयोद्विग्नं त्रातारं नाध्यगच्छत ।
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं ब्रह्मतेजोभवं तदा ॥ ४४
विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विण्णो वाक्यमब्रवीत् ।
धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ॥ ४५
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम् ।
स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ॥
भोगांश्च पृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनो दधे ।
स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान्विष्टभ्य तेजसा ४७
तताप सर्वान्दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ।
अपिबच्च ततः सोममिन्द्रेण सह कौशिकः ॥ ४८

इति श्रीमहा० आदि० चैत्र० वासिष्ठे विश्वामित्रपराभवे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

---

## १७६

गन्धर्व उवाच ।
कल्माषपाद इत्येवं लोके राजा बभूव ह ।
इक्ष्वाकुवंशजः पार्थ तेजसाऽसदृशो भुवि ॥ १
स कदाचिद्वनं राजा मृगयां निर्ययौ पुरात् ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च चचार रिपुमर्दनः ॥ २
तस्मिन्वने महाघोरे खड्गांश्च बहुशोऽहनत् ।
हत्वा च सुचिरं श्रान्तो राजा निववृते ततः ॥ ३
अकामयत्तं याज्यार्थे विश्वामित्रः प्रतापवान् ।
स तु राजा महात्मानं वासिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ४
तृषार्तश्च क्षुधार्तश्च एकायनगतः पथि ।
अपश्यदजितः संख्ये मुनिं प्रतिमुखागतम् ॥ ५
[शक्]तिं नाम महाभागं वासिष्ठकुलवर्धनम् ।
[ज्ये]ष्ठं पुत्रं पुत्रशताद्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६
[अ]पगच्छ पथोऽस्माकमित्येवं पार्थिवोऽब्रवीत् ।
[तथ]ा ऋषिरुवाचैनं सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ॥७
[मम] पन्था महाराज धर्म एष सनातनः ।
[राज्ञ]ा सर्वेषु धर्मेषु देयः पन्था द्विजातये ॥ ८
[एवं] परस्परं तौ तु पथोऽर्थं वाक्यमूचतुः ।
[अपस]र्पापसर्पेति वागुत्तरमकुर्वताम् ॥ ९
ऋषिस्तु नापचक्राम तस्मिन्धर्मपथे स्थितः ।
नापि राजा मुनेर्मानात्क्रोधाच्चाथ जगाम ह ॥१०
अमुञ्चन्तं तु पन्थानं तमृषिं नृपसत्तमः ।
जघान कशया मोहात्तदा राक्षसवन्मुनिम् ॥ ११
कशाप्रहाराभिहतस्ततः स मुनिसत्तमः ।
तं शशाप नृपश्रेष्ठं वासिष्ठः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२
हंसि राक्षसवद्यस्माद्राजापसद तापसम् ।
तस्मात्त्वमद्यप्रभृति पुरुषादो भविष्यसि ॥ १३
मनुष्यपिशिते सक्तश्चरिष्यसि महीमिमाम् ।
गच्छ राजाधमेत्युक्तः शक्तिना वीर्यशक्तिना १४
ततो याज्यनिमित्तं तु विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
वैरमासीत्तदा तं तु विश्वामित्रोऽन्वपद्यत ॥ १५
तयोर्विवदतोरेवं समीपमुपचक्रमे ।
ऋषिरुग्रतपाः पार्थ विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ १६
ततः स बुबुधे पश्चात्तमृषिं नृपसत्तमः ।
ऋषेः पुत्रं वसिष्ठस्य वासिष्ठमिव तेजसा ॥ १७
अन्तर्धाय ततोऽत्मानं विश्वामित्रोऽपि भारत ।
तावुभावतिचक्राम चिकीर्षन्नात्मनः प्रियम् ॥ १८

---

[आ]दिपर्वणि नै०भा०भा०पञ्चसप्तत्यधिकशततमो० १७५

१७६

कल्माषपाद इति । असदृशः नास्ति सदृशस्तुल्यो यस्य सः ॥ १ ॥ याज्यार्थे अयं मम याज्यो भवत्वित्येतदर्थम् ॥४॥ एकायनगतः एकस्यैव अयनं गमनं यत्र तत्र गतः अतिसंकुचितमार्गे गत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ पथो मार्गात् ॥ ७ ॥ धर्मःसनातनः राज्ञ. पन्था ब्राह्मणेनासमेत्य समेत्य तु ब्राह्मणस्यैव पन्था इत्यादि शास्त्रविहित. ॥ ८ ॥ मानात् क्रोधाच्च मुनेर्मार्गात् नापचक्राम अथ हठातिशयानन्तरम् ॥ १० ॥ तत इति । एवं विश्वामित्रः स्वविद्याबलात् शक्तिनृपयोर्वैरमुत्पाद्य तं नृपं याज्यं यदा विश्वामित्रोऽन्वपद्यत तदा तयोर्वैरमासीदित्यर्थः ॥ १५ ॥ तयोः शक्तिनृपयोर्विवदतोः सतोः ऋषिः राजर्षिः ॥ १६ ॥ पश्चाद्विश्वामित्रागमनानन्तरं ऋषिं शक्तिं ॥ १७ ॥ ततोत्मानं तत आत्मानं उभौ शक्तिराजानौ अतिचक्राम वञ्चितवान् ॥ १८ ॥

स तु शप्तस्तदा तेन शक्तिना वै नृपोत्तमः ।
जगाम शरणं शक्तिं प्रसादयितुमर्हयन् ॥ १९
तस्य भावं विदित्वा स नृपतेः कुरुसत्तम ।
विश्वामित्रस्ततो रक्ष आदिदेश नृपं प्रति ॥ २०
शापात्तस्य तु विप्रर्षेर्विश्वामित्रस्य चाज्ञया ।
राक्षसः किंकरो नाम विवेश नृपतिं तदा ॥ २१
रक्षसा तं गृहीतं तु विदित्वा मुनिसत्तमः ।
विश्वामित्रोऽप्यपाक्रामत्तस्माद्देशादरिंदम ॥ २२
ततः स नृपतिस्तेन रक्षसान्तर्गतेन वै ।
बलवत्पीडितः पार्थ नान्वबुध्यत किंचन ॥ २३
ददर्शाथ द्विजः कश्चिद्राजानं प्रस्थितं वनम् ।
अयाचत क्षुधापन्नः समांसं भोजनं तदा ॥ २४
तमुवाचाथ राजर्षिर्द्विजं मित्र*सहस्तदा ।
आस्स्व ब्रह्मंस्त्वमत्रैव मुहूर्तं प्रतिपालयन् ॥ २५
निवृत्तः प्रतिदास्यामि भोजनं ते यथेप्सितम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा तस्थौ च द्विजसत्तमः २६
ततो राजा परिक्रम्य यथाकामं यथासुखम् ।
निवृत्तोऽन्तःपुरं पार्थ प्रविवेश महामनाः ॥ २७
ततोऽर्धरात्र उत्थाय सूदमानाय्य सत्वरम् ।
उवाच राजा संस्मृत्य ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुतम् ॥२८
गच्छामुष्मिन्वनोद्देशे ब्राह्मणो मां प्रतीक्षते ।
अन्नार्थी तं त्वमन्नेन समांसेनोपपादय ॥ २९

गन्धर्व उवाच ।

एवमुक्तस्ततः सूदः सोऽनासाद्यामिषं क्वचित् ।
निवेदयामास तदा तस्मै राज्ञे व्यथान्वितः ॥३०
राजा तु रक्षसाविष्टः सूदमाह गतव्यथः ।
अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः ॥ ३१
तथेत्युक्त्वा ततः सूदः संस्थानं वध्यघातिनाम् ।
गत्वाजहार त्वरितो नरमांसमपेतभीः ॥ ३२
एतत्संस्कृत्य विधिवदन्नोपहितमाशु वै ।
तस्मै प्रादाद्ब्राह्मणाय क्षुधिताय तपस्विने ॥ ३३
स सिद्धचक्षुषा दृष्ट्वा तदन्नं द्विजसत्तमः ।
अभोज्यमिदमित्याह क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३४

ब्राह्मण उवाच ।

यस्मादभोज्यमन्नं मे ददाति स नृपाधमः ।
तस्मात्तस्यैव मूढस्य भविष्यत्यत्र लोलुपा ॥ ३५
सक्तो मानुषमांसेषु यथोक्तः शक्तिना तथा ।
उद्वेजनीयो भूतानां चरिष्यति महीमिमाम् ॥ ३६
द्विरनुव्याहृते राज्ञः स शापो बलवानभूत् ।
रक्षोबलसमाविष्टो विसंज्ञश्चाभवन्नृपः ॥ ३७
ततः स नृपतिश्रेष्ठो रक्षसापहृतेन्द्रियः ।
उवाच शक्तिं तं दृष्ट्वा न चिरादिव भारत ॥ ३८
यस्मादसदृशः शापः प्रयुक्तोऽयं मयि त्वया ।
तस्मात्त्वत्तः प्रवर्तिष्ये खादितुं पुरुषानहम् ॥ ३९
एवमुक्त्वा ततः सद्यस्तं प्राणैर्विप्रयुज्य च ।
शक्तिनं भक्षयामास व्याघ्रः पशुमिवेप्सितम् ॥
शक्तिनं तु मृतं दृष्ट्वा विश्वामित्रः पुनः पुनः ।
वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः संदिदेश ह ॥ ४१
स ताञ्छक्त्यवरान्पुत्रान्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
भक्षयामास संक्रुद्धः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ४२
वसिष्ठो घातिताञ्छ्रुत्वा विश्वामित्रेण तान्सुतान् ।
धारयामास तं शोकं महाद्रिरिव मेदिनीम् ॥ ४३
चक्रे चात्मविनाशाय बुद्धिं स मुनिसत्तमः ।
नत्वेव कौशिकोच्छेदं मेने मतिमतां वरः ॥ ४४
स मेरुकूटादात्मानं मुमोच भगवानृषिः ।
गिरेस्तस्य शिलायां तु तूलराशाविवापतत् ४५
न ममार च पातेन स यदा तेन पाण्डव ।
तदाग्निमिद्धं भगवान्संविवेश महावने ॥ ४६
तं तदा सुसमिद्धोऽपि न ददाह हुताशनः ।
दीप्यमानोऽप्यमित्रघ्न शीतोऽग्निरभवत्ततः ॥ ४७
स समुद्रमभिप्रेक्ष्य शोकाविष्टो महामुनिः ।
बद्ध्वा कण्ठे शिलां गुर्वीं निपपात तदाम्भसि ॥४८
स समुद्रोर्मिवेगेन स्थले न्यस्तो महामुनिः ।
न ममार यदा विप्रः कथंचित्संशितव्रतः ।
जगाम स ततः खिन्नः पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ ४९

इति श्रीम० आदिप० चैत्ररथप० वासिष्ठे वसिष्ठशोके षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

---

तस्य राज्ञो भावं शक्तिप्रसादनपरं ज्ञात्वा तदन्तरे रक्षः प्रवेशितवान् ॥ २० ॥ बलवत् अत्यन्तम् ॥ २३ ॥ अत्र नरमांसे लोलुपा आसक्तिः ॥ ३५ ॥ मुमोच पातयामास आत्मानं देहम् ॥ ४५ ॥ 'कौशिकः कृत्रिमो विप्रो जन्नेऽल्पार्थे शतं मुनीन् । जातिविप्रो वसिष्ठस्तु खेदितोपि क्षमापरः ' ॥ ४९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

* मित्रपालकः सौदास एव

## १७७

गन्धर्व उवाच।

ततो दृष्ट्वाश्रमपदं रहितं तैः सुतैर्मुनिः।
निर्जगाम सुदुःखार्तः पुनरप्याश्रमात्ततः ॥ १
सोपश्यत्सरितं पूर्णां प्रावृट्काले नवाम्भसा।
वृक्षान्बहुविधान्पार्थ हरन्तीं तीरजान्बहून् ॥ २
अथ चिन्तां समापेदे पुनः कौरवनन्दन।
अम्भस्यस्या निमज्जेयमिति दुःखसमन्वितः ॥ ३
ततः पाशैस्तदात्मानं गाढं बद्ध्वा महामुनिः।
तस्या जले महानद्या निममज्ज सुदुःखितः ॥ ४
अथ छित्त्वा नदीपाशांस्तस्यारिबलसूदन।
स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत् ॥ ५
उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः।
विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः ॥ ६
शोकबुद्धिं तदा चक्रे न चैकत्र व्यतिष्ठत।
सोऽगच्छत्पर्वतांश्चैव सरितश्च सरांसि च ॥ ७
दृष्ट्वा स पुनरेवर्षिर्नदीं हैमवतीं तदा।
चण्डग्राहवतीं भीमां तस्याः स्रोतस्यपातयत् ॥८
सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा।
शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता ॥ ९
ततः स्थलगतं दृष्ट्वा तत्राप्यात्मानमात्मना।
मर्तुं न शक्यमित्युक्त्वा पुनरेवाश्रमं ययौ ॥ १०
स गत्वा विविधाञ्शैलान्देशान्बहुविधांस्तथा।
अदृश्यन्त्याख्यया वध्वाथाश्रमेऽनुसृतोऽभवत् ॥
अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिःस्वनम्।
पृष्ठतः परिपूर्णार्थं षड्भिरङ्गैरलंकृतम् ॥ १२
अनुव्रजति कोऽन्वेष मामित्येवाथ सोऽब्रवीत्।
अहमित्यदृश्यन्तीमं सा स्नुषा प्रत्यभाषत।
शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनी ॥ १३

वासिष्ठ उवाच।

पुत्रि कस्यैष साङ्गस्य वेदस्याध्ययनस्वनः।
पुरा साङ्गस्य वेदस्य शक्तेरिव मया श्रुतः ॥ १४

अदृश्यन्त्युवाच।

अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते।
समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यस्यतो मुने ॥ १५

गन्धर्व उवाच।

एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः।
*अस्ति संतानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थ न्यवर्तत ॥*
ततः प्रतिनिवृत्तः स तया वध्वा सहानघ।
कल्माषपादमासीनं ददर्श विजने वने ॥ १७
स तु दृष्ट्वैव तं राजा क्रुद्ध उत्थाय भारत।
आविष्टो रक्षसोग्रेण इयेषात्तुं तदा मुनिम् ॥ १८
अदृश्यन्ती तु तं दृष्ट्वा क्रूरकर्माणमग्रतः।
भयसंविग्नया वाचा वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ १९
असौ मृत्युरिवोग्रेण दण्डेन भगवन्नितः।
प्रगृहीतेन काष्ठेन राक्षसोऽभ्येति दारुणः ॥ २०
तं निवारयितुं शक्तो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन।
त्वदृतेऽद्य महाभाग सर्ववेदविदां वर ॥ २१
पाहि मां भगवन्पापादस्माद्दारुणदर्शनात्।
राक्षसोऽयमिहात्तुं वै नूनमावां समीहते ॥ २२

वसिष्ठ उवाच।

मा भैः पुत्रि न भेतव्यं राक्षसात्तु कथंचन।
नैतद्रक्षो भयं यस्मात्पश्यसि त्वमुपस्थितम् ॥ २३
राजा कल्माषपादोयं वीर्यवान्प्रथितो भुवि।
स एषोऽस्मिन्वनोद्देशे निवसत्यतिभीषणः ॥ २४

गन्धर्व उवाच।

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य वसिष्ठो भगवानृषिः।
वारयामास तेजस्वी हुंकारेणैव भारत ॥ २५
मन्त्रपूतेन च पुनः स तमभ्युक्ष्य वारिणा।
मोक्षयामास वै शापात्तस्माद्योगान्नराधिपम् २६
स हि द्वादशवर्षाणि वसिष्ठस्यैव तेजसा।
ग्रस्त आसीद्ग्रहेणेव पर्वकाले दिवाकरः ॥ २७
रक्षसा विप्रमुक्तोऽथ स नृपस्तद्वनं महत्।
तेजसा रञ्जयामास संध्याभ्रमिव भास्करः ॥ २८
प्रतिलभ्य ततः संज्ञामभिवाद्य कृताञ्जलिः।
उवाच नृपतिः काले वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ २९
सौदासोऽहं महाभाग याज्यस्ते मुनिसत्तम।
अस्मिन्काले यदिष्टं ते ब्रूहि किं करवाणि ते ॥३०

---

१७७

ततो दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ वध्वा स्नुषया ॥ ११ ॥ मा भैः मा भैषीः गातिस्थेति सूत्रे भ्य इति बिभेतेरपि ग्रहणपक्षे सिचो लुक् ॥ २३ ॥ तस्माद्योगात् अभ्युक्षणात् योगजसामर्थ्यात् ॥ २६ ॥ प्रागेवैतत्कुतो न कृतमित्यत आह स हीति वसिष्ठस्य शक्तिरूपस्य ॥ २७ ॥

वसिष्ठ उवाच ।
वृत्तमेतद्यथाकालं गच्छ राज्यं प्रशाधि वै ।
ब्राह्मणं तु मनुष्येन्द्र माऽवमंस्थाः कदाचन ॥ ३१
राजोवाच ।
नावमंस्ये महाभाग कदाचिद्ब्राह्मणर्षभान् ।
त्वन्निदेशे स्थितः सम्यक्पूजयिष्याम्यहं द्विजान् ॥
इक्ष्वाकूणां च येनाहमनृणः स्यां द्विजोत्तम ।
तत्त्वत्तः प्राप्तुमिच्छामि सर्ववेदविदांवर ॥ ३३
अपत्यमीप्सितं मह्यं दातुमर्हसि सत्तम ।
शीलरूपगुणोपेतमिक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥ ३४
गन्धर्व उवाच ।
ददानीत्येव तं तत्र राजानं प्रत्युवाच ह ।
वसिष्ठः परमेष्वासं सत्यसंधो द्विजोत्तमः ॥ ३५
ततः प्रतिययौ काले वसिष्ठः सह तेन वै ।
ख्यातां पुरीमिमां लोकेष्वयोध्यां मनुजेश्वर ३६
तं प्रजाः प्रतिमोदन्त्यः सर्वाः प्रत्युद्गतास्तदा ।
विपाप्मानं महात्मानं दिवौकस इवेश्वरम् ॥ ३७
सुचिराय मनुष्येन्द्रो नगरीं पुण्यलक्षणाम् ।
विवेश सहितस्तेन वसिष्ठेन महर्षिणा ॥ ३८
ददृशुस्तं महीपालमयोध्यावासिनो जनाः ।
पुरोहितेन सहितं दिवाकरमिवोदितम् ॥ ३९
स तां पूरयामास लक्ष्म्या लक्ष्मीवतां वरः ।
अयोध्यां व्योम शीतांशुः शरत्काल इवोदित ४०
संसिक्तमृष्टपन्थानं पताकाध्वजशोभितम् ।
मनः प्रह्लादयामास तस्य तत्पुरमुत्तमम् ॥ ४१
तुष्टपुष्टजनाकीर्णा सा पुरी कुरुनन्दन ।
अशोभत तदा तेन शक्रेणेवामरावती ॥ ४२
ततः प्रविष्टे राजर्षौ तस्मिंस्तत्पुरमुत्तमम् ।
राज्ञस्तस्याज्ञया देवीं वसिष्ठमुपचक्रमे ॥ ४३
महर्षिः संविदं कृत्वा संबभूव तया सह ।
देव्या दिव्येन विधिना वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ४४
ततस्तस्यां समुत्पन्ने गर्भे स मुनिसत्तमः ।
राज्ञाभिवादितस्तेन जगाम मुनिराश्रमम् ॥ ४५
दीर्घकालेन सा गर्भं सुषुवे न तु तं यदा ।
तदा देव्यश्मना कुक्षिं निर्बिभेद यशस्विनी ॥ ४६
ततोऽपि द्वादशे वर्षे स जज्ञे पुरुषर्षभः ।
अश्मको नाम राजर्षिः पौदन्यं यो न्यवेशयत् ४७

इति श्रीमहा० आदि० चैत्र० वासिष्ठे सौदाससुतोत्पत्तौ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

## १७८

गन्धर्व उवाच ।
आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन्द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥ १
जातकर्मादिकास्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥ २
परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥ ३
अमन्यत स धर्मात्मा वसिष्ठं पितरं मुनिः ।
जन्मप्रभृति तस्मिंस्तु पितरीवान्ववर्तत ॥ ४
स तात इव विप्रर्षिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत ।
मातुः समक्षं कौन्तेय अदृशन्त्याः परंतप ॥ ५
तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः
अदृश्यन्त्यश्रुपूर्णाक्षी शृण्वती तमुवाच ह ॥ ६
मा तात तात तातेति ब्रूह्येनं पितरं पितुः ।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥ ७
मन्यसे यं तु तातेति नैष तातस्तवानघ ।
आर्य एष पिता तस्य पितुस्तव यशस्विनः ॥ ८

---

वृत्तं निष्पन्नं एतत् यत्त्वया कर्तव्यं अस्मदिष्टं । विरुद्धलक्षणया इयमुक्तिः । त्वयैव रक्षोभिभूतेन मम पुत्रशतं भक्षितमिति भावः ॥३१॥ पन्थानमित्यार्षं पुंस्त्वम् ॥४१॥ संविदं ऐकमत्यम् । संबभूव मिथुनीबभूव । दिव्येन स्वर्ग्येण अलौल्येनेत्यर्थः ॥ ४४ ॥ पौदन्यं पुरम् । वौदन्यमिति तु पठितुं युक्तम् । आदिविकारो वा वोदनं निशामनं तदर्हं वोदनमिति भाषायां प्रसिद्धम् ॥४७॥ इति आदि० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

१७८

आश्रमस्थेति ॥ १ ॥ परासुरिति । परासोराशासनमवस्थानं येन स पराशरः परा आङ् पूर्वात् शासेर्डरन्प्रत्ययः कल्प्यः ॥ ३ ॥

स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥ ९
तं तथा निश्चितात्मानं स महात्मा महातपाः ।
ऋषिर्ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मैत्रावरुणिरन्त्यधीः ॥ १०
वसिष्ठो वारयामास हेतुना येन तच्छृणु ।
वसिष्ठ उवाच ।
कृतवीर्य इति ख्यातो बभूव पृथिवीपतिः ॥ ११
याज्यो वेदविदां लोके भृगूणां पार्थिवर्षभः ।
स तानग्रभुजस्तात धान्येन च धनेन च ॥ १२
सोमान्ते तर्पयामास विपुलेन विशांपतिः ।
तस्मिन्नृपतिशार्दूले स्वर्यातेऽथ कथंचन ॥ १३
बभूव तत्कुलेयानां द्रव्यकार्यमुपस्थितम् ।
भृगूणां तु धनं ज्ञात्वा राजानः सर्व एव ते ॥ १४
याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तांस्ततो भार्गवसत्तमान् ।
भूमौ तु निदधुः केचिद्भृगवो धनमक्षयम् ॥ १५
ददुः केचिद्द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम् ।
भृगवस्तु ददुः केचित्तेषां वित्तं यथेप्सितम् ॥ १६
क्षत्रियाणां तदा तात कारणान्तरदर्शनात् ।
ततो महीतलं तात क्षत्रियेण यदृच्छया ॥ १७
खनताधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ।
तद्वित्तं ददृशुः सर्वे समेताः क्षत्रियर्षभाः ॥ १८
अवमन्य ततः क्रोधाद्भृगूंस्ताञ्छरणागतान् ।
निजघ्नुः परमेष्वासाः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः ॥
आगर्भादवकृन्तन्तश्चेरुः सर्वां वसुंधराम् ।
तत उच्छिद्यमानेषु भृगुष्वेवं भयात्तदा ॥ २०
भृगुपत्न्यो गिरिं दुर्गं हिमवन्तं प्रपेदिरे ।
तासामन्यतमा गर्भं भयाद्दध्रे महौजसम् ॥ २१
ऊरुणैकेन वामोरूर्भर्तुः कुलविवृद्धये ।
तद्गर्भमुपलभ्याशु ब्राह्मणी या भयार्दिता ॥ २२
गत्वैका कथयामास क्षत्रियाणामुपह्वरे ।
ततस्ते क्षत्रिया जग्मुस्तं गर्भं हन्तुमुद्यताः ॥ २३
ददृशुर्ब्राह्मणीं तेऽथ दीप्यमानां स्वतेजसा ।
अथ गर्भः स भित्त्वोरुं ब्राह्मण्या निर्जगाम ह ॥२४
मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां मध्याह्न इव भास्करः ।
ततश्चक्षुर्विहीनास्ते गिरिदुर्गेषु बभ्रमुः ॥ २५
ततस्ते मोहमापन्ना राजानो नष्टदृष्टयः ।
ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्दृष्ट्यर्थं तामनिन्दिताम् ॥२६
ऊचुश्चैनां महाभागां क्षत्रियास्ते विचेतसः ।
ज्योतिःप्रहीणा दुःखार्ताः शान्तार्चिष इवाग्नयः ॥
भगवत्याः प्रसादेन गच्छेत्क्षत्रं सचक्षुषम् ।
उपारम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मिणः ॥ २८
सपुत्रा त्वं प्रसादं नः कर्तुमर्हसि शोभने ।
पुनर्दृष्टिप्रदानेन राज्ञः संत्रातुमर्हसि ॥ २९

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वण्यौर्वोपाख्याने अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

## १७९

ब्राह्मण्युवाच ।
नाहं गृह्णामि वस्ताता दृष्टीर्नास्मि रुषान्विता ।
अयं तु भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥ १
तेन चक्षूंषि वस्ताता व्यक्तं कोपान्महात्मना ।
स्मरता निहतान्बन्धूनादत्तानि न संशयः ॥ २
गर्भानपि यदा यूयं भृगूणां घ्नतपुत्रकाः ।
तदायमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः ॥ ३
षडङ्गश्चाखिलो वेद इमं गर्भस्थमेव ह ।
विवेश भृगुवंशस्य भूयः प्रियचिकीर्षया ॥ ४
सोऽयं पितृवधाद्व्यक्तं क्रोधाद्वो हन्तुमिच्छति ।
तेजसा तस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः ॥ ५
तमिमं तात याचध्वमौर्वं मम सुतोत्तमम् ।
अयं वः प्रणिपातेन तुष्टो दृष्टीः प्रमोक्ष्यति ॥ ६

---

मैत्रावरुणिर्मित्रावरुणयोः पुत्रः अन्त्यधीः अन्ते सिद्धान्ते साध्वी अन्त्याधीर्यस्य सोन्त्यधीः ॥ १० ॥ तद्गर्भं तस्याः गर्भं उपलभ्य ब्राह्मणी या काचित् भयार्दिता ज्ञातस्यापि गर्भस्य किमिति गोपनं कृतमिति हेतोर्भीता ॥ २२॥ उपह्वरे समीपे ॥ २३ ॥ *दुद्रुवुस्तामनिन्दितामिति पाठे हन्तुमिति शेषः ॥ २४ ॥ उपारम्य पापनिवृत्तिं कृत्वा पापकर्मिणोपि वयम् ॥ २८ ॥ इति आ० नै० भा० भा० अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

* ददृशुर्ब्राह्मणीं तेथेत्यग्रे इति शेषः

१७९

नाहमिति भो ताताः ॥ १ ॥ आदत्तानि आत्तानि । ददानेस्य रूपम् ॥ २ ॥ तात हे ताताः संबोधनार्थो निपातो वायम् ॥ ६ ॥

वसिष्ठ उवाच ।
एवमुक्तास्ततः सर्वे राजानस्ते तमूरुजम् ।
ऊचुः प्रसीदेति तदा प्रसादं च चकार सः ॥ ७
अनेनैव च विख्यातो नाम्ना लोकेषु सत्तमः ।
स और्व इति विप्रर्षिरूरुं भित्त्वा व्यजायत ॥ ८
चक्षूंषि प्रतिलभ्ध्वा च प्रतिजग्मुस्ततो नृपाः ।
भार्गवस्तु मुनिर्मेने सर्वलोकपराभवम् ॥ ९
स चक्रे तात लोकानां विनाशाय महामनाः ।
सर्वेषामेव कार्त्स्न्येन मनः प्रवणमात्मनः ॥ १०
इच्छन्नपचितिं कर्तुं भृगूणां भृगुनन्दनः ।
सर्वलोकविनाशाय तपसा महतैधितः ॥ ११
तापयामास ताँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ।
तपसोग्रेण महता नन्दयिष्यन्पितामहान् ॥ १२
ततस्तं पितरस्तात विज्ञाय कुलनन्दनम् ।
पितृलोकादुपागम्य सर्व ऊचुरिदं वचः ॥ १३
पितर ऊचुः ।
और्व दृष्टः प्रभावस्ते तपसोग्रस्य पुत्रक ।
प्रसादं कुरु लोकानां नियच्छ क्रोधमात्मनः ॥१४
नानीशैर्हि तदा तात भृगुभिर्भावितात्मभिः ।
वधो ह्युपेक्षितः सर्वैः क्षत्रियाणां विहिंसताम् ॥
आयुषा विप्रकृष्टेन यदा नः खेद आविशत् ।
तदास्माभिर्वधस्तात क्षत्रियैरीप्सितः स्वयम् १६
निखातं यच्च वै वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ।
वैरायैव तदा न्यस्तं क्षत्रियान्कोपयिष्णुभिः ॥१७
किं हि वित्तेन नः कार्यं स्वर्गेप्सूनां द्विजोत्तम ।
यदस्माकं धनाध्यक्षः प्रभूतं धनमाहरत् ॥ १८
यदा तु मृत्युरादातुं न नः शक्नोति सर्वशः ।
तदास्माभिरयं दृष्ट उपायस्तात संमतः ॥१९॥
आत्महा च पुमांस्तात न लोकाँल्लभते शुभान् ।
ततोऽस्माभिः समीक्ष्यैवं नात्मनात्मा निपातितः॥
न चैतन्नः प्रियं तात यदिदं कर्तुमिच्छसि ।
नियच्छेदं मनः पापात्सर्वलोकपराभवात् ॥ २१
मा वधीः क्षत्रियांस्तात न लोकान्सप्त पुत्रक ।
दूषयन्तं तपस्तेजः क्रोधमुत्पतितं जहि ॥ २२

इति श्रीमहा०-आदि० चैत्ररथपर्वण्यौर्ववारणे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

---

## १८०

और्व उवाच ।
उक्तवानस्मि यां क्रोधात्प्रतिज्ञां पितरस्तदा ।
सर्वलोकविनाशाय न सा मे वितथा भवेत् ॥ १
वृथारोषप्रतिज्ञो वै नाहं भवितुमुत्सहे ।
अनिस्तीर्णो हि मां रोषो दहेदग्निरिवारणिम्॥ २
यो हि कारणतः क्रोधं संजातं क्षन्तुमर्हति ।
नालं स मनुजः सम्यक् त्रिवर्गं परिरक्षितुम् ॥ ३
अशिष्टानां नियन्ता हि शिष्टानां परिरक्षिता ।
स्थाने रोषः प्रयुक्तः स्यान्नृपैः सर्वजिगीषुभिः ॥ ४
अश्रौषमहमूरुस्थो गर्भशय्यागतस्तदा ।
आरावं मातृवर्गस्य भृगूणां क्षत्रियैर्वधे ॥ ५
संहारो हि यदा लोके भृगूणां क्षत्रियाधमैः ।
आगर्भोच्छेदनात्क्रान्तस्तदा मां मन्युराविशत् ६

---

ऊरुत उत्पन्न और्व इति निरुक्तिमाह अनेनेति ॥ ८ ॥ आत्मनो मनः सर्वेषां अपचितिं कर्तुं प्रवणं उन्मुखं इच्छन्स्वमनोपचितिं कर्तुं योजयतीत्यर्थः ॥ १० ॥ विप्रकृष्टेन अतिदूरगेन बहुना क्षत्रियैर्निमित्तमात्रैः ॥ १६ ॥ आत्महेति। एतेन भृगुपतनादिना मरणं ब्राह्मणेतरविषयं दर्शितम् ॥ २० ॥ मावधीरिति । क्षत्रियान् तदनियंतृत्वेनानपराधिनः । सप्तलोकान् भूरादींश्च मा वधीः किं तु तपःसंभृतं तेजो दूषयन्तं क्रोधं जहि । पाठान्तरमुपेक्ष्यं ॥ २२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

१८०

उक्तवानिति ॥ १ ॥ अनिस्तीर्णः अकृतकार्यः ॥ २ ॥ वृथोत्पन्नः क्रोधो जेतव्यो न तु सकारणक इत्याह यो हीति ॥ ३ ॥ क्रोधकारणान्याह अशिष्टानामिति स्थाने युक्तम् ॥ ४ ॥ तद्विपरीतं क्षत्रियाश्चक्रुरित्याह अश्रौषमिति ॥५ ॥ क्रान्तः उपक्रान्तः ॥ ६ ॥

संपूर्णकोशाः किल मे मातरः पितरस्तथा ।
भयात्सर्वेषु लोकेषु नाधिजग्मुः परायणम् ॥ ७
तान्भृगूणां यदा दारान्कश्चिन्नाभ्युपपद्यत ।
माता तदा दधारेयमूरुणैकेन मां शुभा ॥ ८
प्रतिषेद्धा हि पापस्य यदा लोकेषु विद्यते ।
तदा सर्वेषु लोकेषु पापकृन्नोपपद्यते ॥ ९
यदा तु प्रतिषेद्धारं पापो न लभते क्वचित् ।
तिष्ठन्ति बहवो लोकास्तदा पापेषु कर्मसु ॥ १०
जानन्नपि च यः पापं शक्तिमान्न नियच्छति ।
ईशः सन्सोऽपि तेनैव कर्मणा संप्रयुज्यते ॥ ११
राजभिश्चेश्वरैश्चैव यदि वै पितरो मम ।
शक्तैर्न शकितास्त्रातुमिष्टं मत्वेह जीवितम् ॥ १२
अत एषामहं क्रुद्धो लोकानामीश्वरो ह्यहम् ।
भवतां च वचो नालमहं समभिवर्तितुम् ॥ १३
ममापि चेद्भवेदेवमीश्वरस्य सतो महत् ।
उपेक्षमाणस्य पुनर्लोकानां किल्बिषाद्भयम् १४
यश्चायं मन्युजो मेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
दहेदेष च मामेव निगृहीतः स्वतेजसा ॥ १५
भवतां च विजानामि सर्वलोकहितेप्सुताम् ।
तस्माद्विधध्वं यच्छ्रेयो लोकानां मम चेश्वराः १६

पितर ऊचुः ।

य एष मन्युजस्तेऽग्निर्लोकानादातुमिच्छति ।
अप्सु तं मुञ्च भद्रं ते लोका ह्यप्सु प्रतिष्ठिताः १७
आपोमयाः सर्वरसाः सर्वमापोमयं जगत् ।
तस्मादप्सु विमुञ्चेमं क्रोधाग्निं द्विजसत्तम ॥ १८
अयं तिष्ठतु ते विप्र यदीच्छसि महोदधौ ।
मन्युजोऽग्निर्दहन्नापो लोका ह्यापोमयाः स्मृताः॥
एवं प्रतिज्ञा सत्येयं तवानघ भविष्यति ।
न चैवं सामरा लोका गमिष्यन्ति पराभवम् २०

वसिष्ठ उवाच ।

ततस्तं क्रोधजं तात और्वोऽग्निं वरुणालये ।
उत्ससर्ज स चैवाप उपयुङ्क्ते महोदधौ ॥ २१
महद्धयशिरो भूत्वा यत्तद्वेदविदो विदुः ।
तमग्निमुद्गिरद्वक्त्रात्पिबत्यापो महोदधौ ॥ २२
तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्हन्तुमर्हसि ।
पराशर परॉंल्लोकाञ्जानञ्ज्ञानवतां वर ॥ २३

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वण्यौर्वोपाख्यानेऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

---

## १८१

गन्धर्व उवाच ।

एवमुक्तः स विप्रर्षिर्वसिष्ठेन महात्मना ।
न्ययच्छदात्मनः क्रोधं सर्वलोकपराभवात् ॥ १
ईजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
ऋषी राक्षससत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः ॥ २
ततो वृद्धांश्च बालांश्च राक्षसान्स महामुनिः ।
ददाह वितते यज्ञे शक्तेर्वधमनुस्मरन् ॥ ३
न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात् ।
द्वितीयामस्य मा भाङ्क्षं प्रतिज्ञामिति निश्चयात्
त्रयाणां पावकानां च सत्रे तस्मिन्महामुनिः ।
आसीत्पुरस्ताद्दीप्तानां चतुर्थ इव पावकः ॥ ५
तेन यज्ञेन शुभ्रेण हूयमानेन शक्तिजः ।
तद्विदीपितमाकाशं सूर्येणेव घनात्यये ॥ ६

---

तर्हि क्षत्रिया एव वध्या न तु लोका इत्यत आह । संपूर्णेति द्वाभ्याम् । कोशो जरायुरूपा मांसपेशी । संपूर्णः कोशो यासां ताः । परिपक्वगर्भा इत्यर्थः । 'कोशोऽर्थसंचये मांसपेश्याम्'इति विश्वः । संपूर्णशोका इत्यपि पठन्ति। लोकैः सत्यपि सामर्थ्ये मन्मातॄणां त्राणं न कृतमतस्तेऽपि वध्या एवेत्यर्थः ॥७॥ एतदेवोपपादयति प्रतिषेद्धेति। प्रतिषेद्धरि सति पापकृदेव नोपलभ्यते । असति तु सर्वोपि पाप एव प्रवर्तत इति श्लोकद्वयार्थः ॥ ९ ॥ पापं पापकारिणम् ॥ ११ ॥ किल्बिषात् अशासनजात् ॥ १४ ॥ आदातुं उच्छेत्तुम्॥१७॥आपोमया इति । कारणीभूतास्वप्सु दग्धासु लोका अपि दग्धप्राया इत्यर्थः ॥ १८ ॥ उपयुङ्क्ते भक्षयति ॥ २१ ॥ हयशिरः वडवामुखम् ॥ २२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

### १८१

एवमिति ॥ १ ॥ मा भाङ्क्षं न नाशयेयम् ॥ ४ ॥ शुभ्रेण पापिनां निग्रहान्निर्मलेन । तेन यज्ञेन यज्ञियेन द्रव्येण हूयमानेन ॥ ६ ॥

तं वसिष्ठादयः सर्वे मुनयस्तत्र मेनिरे ।
तेजसा दीप्यमानं वै द्वितीयमिव भास्करम् ॥ ७
ततः परमदुष्प्रापमन्यैर्ऋषिरुदारधीः ।
समापिपयिषुः सत्रं तमत्रिः समुपागमत् ॥ ८
तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुः ।
तत्राजग्मुरमित्रघ्न रक्षसां जीवितेप्सया ॥ ९
पुलस्त्यस्तु वधात्तेषां रक्षसां भरतर्षभ ।
उवाचेदं वचः पार्थ पराशरमरिन्दमम् ॥ १०
कच्चित्तातापविघ्नं ते कच्चिन्नन्दसि पुत्रक ।
अजानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥ ११
प्रजोच्छेदमिमं मह्यं न हि कर्तुं त्वमर्हसि ।
नैष तात द्विजातीनां धर्मो दृष्टस्तपस्विनाम् ॥ १२
शम एव परो धर्मस्तमाचर पराशर ।
अधर्मिष्ठं वरिष्ठः सन्कुरुषे त्वं पराशर ॥ १३
शक्तिं चापि हि धर्मज्ञं नातिक्रान्तुमिहार्हसि ।
प्रजायाश्च ममोच्छेदं न चैवं कर्तुमर्हसि ॥ १४
शापाद्धि शक्तेर्वासिष्ठ तदा तदुपपादितम् ।
आत्मजेन स दोषेण शक्तिर्नीत इतो दिवम् ॥ १५
न हि तं राक्षसः कश्चिच्छक्तो भक्षयितुं मुने ।
आत्मनैवात्मनस्तेन दृष्टो मृत्युस्तदाऽभवत् ॥ १६
निमित्तभूतस्तत्रासीद्विश्वामित्रः पराशर ।
राजा कल्माषपादश्च दिवमारुह्य मोदते ॥ १७
ये च शक्त्यवराः पुत्रा वसिष्ठस्य महामुने ।
ते च सर्वे मुदा युक्ता मोदन्ते सहिताः सुरैः ॥ १८
सर्वमेतद्वसिष्ठस्य विदितं वै महामुने ।
रक्षसां च समुच्छेद एष तात तपस्विनाम् ॥ १९
निमित्तभूतस्त्वं चात्र क्रतौ वासिष्ठनन्दन ।
तत्सत्रं मुञ्च भद्रं ते समाप्तमिदमस्तु ते ॥ २०

गन्धर्व उवाच ।

एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता ।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तो महामुनिः ॥ २१
सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं तदा ।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥ २२
स तत्राद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मन एव च ।
भक्षयन्दृश्यते वह्निः सदा पर्वणि पर्वणि ॥ २३

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वण्यौर्वोपाख्याने एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

---

## १८२

अर्जुन उवाच ।

राज्ञा कल्माषपादेन गुरौ ब्रह्मविदां वरे ।
कारणं किं पुरस्कृत्य भार्या वै संनियोजिता ॥ १
जानता वै परं धर्मं वसिष्ठेन महात्मना ।
अगम्यागमनं कस्मात्कृतं तेन महर्षिणा ॥ २
अधर्मिष्ठं वसिष्ठेन कृतं चापि पुरा सखे ।
एतन्मे संशयं सर्वं छेत्तुमर्हसि पृच्छतः ॥ ३

गन्धर्व उवाच ।

धनंजय निबोधेदं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
वासिष्ठं प्रति दुर्धर्षं तथा मित्रसहं नृपम् ॥ ४
कथितं ते मया सर्वं यथा शप्तः स पार्थिवः ।
शक्तिना भरतश्रेष्ठ वासिष्ठेन महात्मना ॥ ५
स तु शापवशं प्राप्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
निर्जगाम पुराद्राजा सहदारः परंतपः ॥ ६
अरण्यं निर्जनं गत्वा सदारः परिचक्रमे ।
नानामृगगणाकीर्णं नानासत्त्वसमाकुलम् ॥ ७
नानागुल्मलताच्छन्नं नानाद्रुमसमावृतम् ।
अरण्यं घोरसंनादं शापग्रस्तः परिभ्रमन् ॥ ८

---

अपविघ्नं ते सत्रमिति शेषः । अजानतामिति पापमपि कृत्वा नन्दसीति साधिक्षेपप्रश्नः ॥ ११ ॥ मह्यं मम ॥ १३ ॥ शक्तिं चेति । पुत्रदोषेण पिता नश्यतीत्युक्तम् ॥ १४ ॥ शापात् शक्तिना शप्तो राजा शक्तिमेव भक्षितवान् अतः शक्तेरेवायमपराधो न रक्षसामित्यर्थः ॥ १५ ॥ मोदते शक्तिः ॥ १७ ॥ समुच्छेदे एष त्वं निमित्तभूत इति योजना ॥ १९ ॥ मुञ्च त्यज ॥ २० ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

१८२

राज्ञेति ॥ १ ॥ अगम्या स्नुषातुल्यत्वात् ॥ २ ॥

स कदाचित्क्षुधाविष्टो मृगयन्भक्ष्यमात्मनः ।
ददर्श सुपरिक्लिष्टः कस्मिंश्चिन्निर्जने वने ॥ ९
ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव मिथुनायोपसंगतौ ।
तौ तं वीक्ष्य सुवित्रस्तावकृतार्थौ प्रधावितौ १०
तयोः प्रद्रवतोर्विप्रं जग्राह नृपतिर्बलात् ।
दृष्ट्वा गृहीतं भर्तारमथ ब्राह्मण्यभाषत ॥ ११
शृणु राजन्मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि सुव्रत ।
आदित्यवंशप्रभवस्त्वं हि लोके परिश्रुतः ॥ १२
अप्रमत्तः स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतः ।
शापोपहतदुर्धर्ष न पापं कर्तुमर्हसि ॥ १३
ऋतुकाले तु संप्राप्ते भर्तृव्यसनकर्शिता ।
अकृतार्था ह्यहं भर्त्रा प्रसवार्थं समागता ॥ १४
प्रसीद नृपतिश्रेष्ठ भर्ताऽयं मे विसृज्यताम् ।
एवं विक्रोशमानायास्तस्यास्तु स नृशंसवत् ॥ १५
भर्तारं भक्षयामास व्याघ्रो मृगमिवेप्सितम् ।
तस्याः क्रोधाभिभूताया यान्यश्रूण्यपतन्भुवि १६
सोऽग्निः समभवद्दीप्तस्तं च देशं व्यदीपयत् ।
ततः सा शोकसंतप्ता भर्तृव्यसनकर्शिता ॥ १७
कल्माषपादं राजर्षिमशपद्ब्राह्मणी रुषा ।
यस्मान्ममाकृतार्थायास्त्वया क्षुद्र नृशंसवत् १८
प्रेक्षन्त्या भक्षितो मेऽद्य प्रियो भर्ता महायशाः ।
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे मच्छापपरिविक्षतः ॥ १९
पत्नीमृतावनुप्राप्य सद्यस्त्यक्ष्यसि जीवितम् ।
यस्य चर्षेर्वसिष्ठस्य त्वया पुत्रा विनाशिताः ॥२०
तेन संगम्यते भार्या तनयं जनयिष्यति ।
स ते वंशकरः पुत्रो भविष्यति नृपाधम ॥ २१
एवं शप्त्वा तु राजानं सा तमाङ्गिरसी शुभा ।
तस्यैव संनिधौ दीप्तं प्रविवेश हुताशनम् ॥ २२
वासिष्ठश्च महाभागः सर्वमेतदवैक्षत ।
ज्ञानयोगेन महता तपसा च परंतप ॥ २३
मुक्तशापश्च राजर्षिः कालेन महता ततः ।
ऋतुकालेऽभिपतितो मदयन्त्या निवारितः ॥ २४
न हि सस्मार स नृपस्तं शापं काममोहितः ।
देव्याः सोऽथ वचः श्रुत्वा संभ्रान्तो नृपसत्तमः॥
तं शापमनुसंस्मृत्य पर्यतप्यद्भृशं तदा ।
एतस्मात्कारणाद्राजा वसिष्ठं संन्ययोजयत् ।
स्वदारेषु नरश्रेष्ठ शापदोषसमन्वितः ॥ २६

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वणि वसिष्ठोपाख्याने द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

## १८३

अर्जुन उवाच ।
अस्माकमनुरूपो वै यः स्याद्गन्धर्व वेदवित् ।
पुरोहितस्तमाचक्ष्व सर्वं हि विदितं तव ॥ १
गन्धर्व उवाच ।
यवीयान्देवलस्यैष वने भ्राता तपस्यति ।
धौम्य उत्कोचके तीर्थे तं वृणुध्वं यदीच्छथ ॥ २
वैशंपायन उवाच ।
ततोऽर्जुनोऽस्त्रमाग्नेयं प्रददौ तद्यथाविधि ।
गन्धर्वाय तदा प्रीतो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३
त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया गन्धर्वसत्तम ।
कार्यकाले ग्रहीष्यामः स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत्
तेऽन्योन्यमभिसंपूज्य गन्धर्वः पाण्डवाश्च ह ।
रम्याद्भागीरथीतीराद्यथाकामं प्रतस्थिरे ॥ ५
तत उत्कोचकं तीर्थं गत्वा धौम्याश्रमं तु ते ।
तं वव्रुः पाण्डवा धौम्यं पौरोहित्याय भारत ॥ ६
तान्धौम्यः प्रतिजग्राह सर्ववेदविदां वरः ।
वन्येन फलमूलेन पौरोहित्येन चैव ह ॥ ७
ते समाशंसिरे लब्धां श्रियं राज्यं च पाण्डवाः ।
ब्राह्मणं तं पुरस्कृत्य पाञ्चालीं च स्वयंवरे ॥ ८
पुरोहितेन ते नाथ गुरुणा संगतास्तदा ।
नाथवन्तमिवात्मानं मेनिरे भरतर्षभाः ॥ ९
स हि वेदार्थतत्त्वज्ञस्तेषां गुरुरुदारधीः ।
तेन धर्मविदा पार्था याज्या धर्मविदः कृताः १०

अकृतार्थौ अकृतपुत्रत्वात् ॥१०॥ मदयन्त्या महिष्या ॥२४॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

१८३

अस्माकमिति ॥ १ ॥ प्रतिजग्राह अङ्गीचकार ॥ ७ ॥ पाञ्चालीं च लब्धामाशंसिरे ॥ ८ ॥

वीरांस्तु सहितान्मेने प्राप्तराज्यान्स्वधर्मतः ।
बुद्धिवीर्यबलोत्साहैर्युक्तान्देवानिव द्विजः ॥ ११

कृतस्वस्त्ययनास्तेन ततस्ते मनुजाधिपाः ।
मेनिरे सहिता गन्तुं पाञ्चाल्यास्तं स्वयंवरम् ॥१२

इति श्रीमहा० आदि० चैत्ररथपर्वणि धौम्यपुरोहितकरणे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

समाप्तं चैत्ररथपर्व ।

## स्वयंवरपर्व ।

### १८४

वैशंपायन उवाच ।
ततस्ते नरशार्दूला भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
प्रययुर्द्रौपदीं द्रष्टुं तं च देशं महोत्सवम् ॥ १
ते प्रयाता नरव्याघ्राः सह मात्रा परंतपाः ।
ब्राह्मणान्ददृशुर्मार्गे गच्छतः संगतान्बहून् ॥ २
त ऊचुर्ब्राह्मणा राजन्पाण्डवान्ब्रह्मचारिणः ।
भवन्तो गमिष्यन्ति कुतो वाऽभ्यागता इह ॥३

युधिष्ठिर उवाच ।
आगतानेकचक्रायाः सोदर्यानेकचारिणः ।
भवन्तो वै विजानन्तु सह मात्रा द्विजर्षभाः ॥ ४

ब्राह्मणा ऊचुः ।
गच्छताद्यैव पञ्चालान्द्रुपदस्य निवेशने ।
स्वयंवरो महांस्तत्र भविता सुमहाधनः ॥ ५
एकसार्थप्रयाताः स्म वयं तत्रैव गामिनः ।
तत्र ह्यद्भुतसंकाशो भविता सुमहोत्सवः ॥ ६
यज्ञसेनस्य दुहिता द्रुपदस्य महात्मनः ।
वेदीमध्यात्समुत्पन्ना पद्मपत्रनिभेक्षणा ॥ ७
दर्शनीयानवद्याङ्गी सुकुमारी मनस्विनी ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी द्रोणशत्रोः प्रतापिनः ॥ ८
यो जातः कवची खड्गी सशरः सशरासनः ।
सुसमिद्धे महाबाहुः पावके पावकोपमः ॥ ९
स्वसा तस्यानवद्याङ्गी द्रौपदी तनुमध्यमा ।
नीलोत्पलसमो गन्धो यस्याः क्रोशात्प्रवाति वै ॥
यज्ञसेनस्य च सुतां स्वयंवरकृतक्षणाम् ।
गच्छामो वै वयं द्रष्टुं तं च दिव्यं महोत्सवम् ११
राजानो राजपुत्राश्च यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
स्वाध्यायवन्तः शुचयो महात्मानो यतव्रताः ॥
तरुणा दर्शनीयाश्च नानादेशसमागताः ।
महारथा कृतास्त्राश्च समुपेष्यन्ति भूमिपाः ॥ १३
ते तत्र विविधान्दायान्विजयार्थं नरेश्वराः ।
प्रदास्यन्ति धनं गाश्च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः॥१४
प्रतिगृह्य च तत्सर्वं दृष्ट्वा चैव स्वयंवरम् ।
अनुभूयोत्सवं चैव गमिष्यामो यथेप्सितम् ॥ १५
नटा वैतालिकास्तत्र नर्तकाः सूतमागधाः ।
नियोधकाश्च देशेभ्यः समेष्यन्ति महाबलाः ॥१६
एवं कौतूहलं कृत्वा दृष्ट्वा च प्रतिगृह्य च ।
सहास्माभिर्महात्मानः पुनः प्रतिनिवर्त्स्यथ ॥१७
दर्शनीयांश्च वः सर्वान्देवरूपानवस्थितान् ।
समीक्ष्य कृष्णा वरयेत्संगत्यैकतमं वरम् ॥ १८
अयं भ्राता तव श्रीमान्दर्शनीयो महाभुजः ।
नियुज्यमानो विजये संगत्या द्रविणं बहु ।
आहरिष्यन्नयं नूनं प्रीतिं वो वर्धयिष्यति ॥ १९

युधिष्ठिर उवाच ।
परमं भो गमिष्यामो द्रष्टुं चैव महोत्सवम् ।
भवद्भिः सहिताः सर्वे कन्यायास्तं स्वयंवरम् ॥२०

इति श्रीमहा० आदि० स्वयंवरपर्वणि पाण्डवागमने चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

---

इति आ० नै० भा० भा० त्र्यशीत्यधिकशततमो० ॥१८३॥

१८४

ततस्ते इति ॥ १ ॥ दायान् देयानि तानेवाह धनमित्यादि ॥ १४ ॥ नटाः वेषभेदकारिणः । वैतालिकाः मङ्गलपाठकारिणः । नर्तकाः प्रसिद्धाः । सूताः पौराणिकाः मागधाः वंशसूचकाः नियोधकाः मल्लाः ॥ १६ ॥ संगत्या दैवयोगेन ॥ १८ ॥ परमं यथेष्टम् ॥ २० ॥ इति आ० नै० भा० भा० चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४॥

## १८५

वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्ताः प्रयातास्ते पाण्डवा जनमेजय ।
राज्ञा दक्षिणपञ्चालान्द्रुपदेनाभिरक्षितान् ॥ १
ततस्तेपु महात्मानं शुद्धात्मानमकल्मपम् ।
ददृशुः पाण्डवा वीरा मुनिं द्वैपायनं तदा ॥ २
तस्मै यथावत्सत्कारं कृत्वा तेन च सत्कृताः ।
कथान्ते चाभ्यनुज्ञाताः प्रययुर्द्रुपदक्षयम् ॥ ३
पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च ।
तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः ॥ ४
स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः ।
आनुपूर्व्येण संप्राप्ताः पञ्चालान्पाण्डुनन्दनाः ॥ ५
ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः ।
कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा ॥ ६
तत्र भैक्षं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः ।
तान्संप्राप्तांस्तथा वीराञ्जज्ञिरे न नराः क्वचित् ॥
यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने ।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद्विवृणोति सः ॥८
सोऽन्वेपमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय ।
दृढं धनुरनानम्यं कारयामास भारत ॥ ९
यन्त्रं वैहायसं चापि कारयामास कृत्रिमम् ।
तेन यन्त्रेण समितं राजा लक्ष्यं चकार सः॥ १०
द्रुपद उवाच ।
इदं सज्यं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः ।
अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥
वैशंपायन उवाच ।
इति स द्रुपदो राजा स्वयंवरमघोपयत् ।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे समीयुस्तत्र भारत ॥१२
ऋपयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षवः ।
दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः कुरवो नृप ॥ १३
ब्राह्मणाश्च महाभागा देशेभ्यः समुपागमन् ।
ततोऽर्चिता राजगणा द्रुपदेन महात्मना ॥ १४
उपोपविष्टा मञ्चेपु द्रष्टुकामाः स्वयंवरम् ।
ततः पौरजनाः सर्वे सागरोद्धूतनिःस्वनाः ॥ १५
शिशुमारशिरः प्राप्य न्यविशंस्ते स्म पार्थिवाः ।
प्रागुत्तरेण नगराद्भूमिभागे समे शुभे ।
समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः ॥ १६
प्राकारपरिखोपेतो द्वारतोरणमण्डितः ।
वितानेन विचित्रेण सर्वतः समलंकृतः ॥ १७
तूर्यौघशतसंकीर्णः परार्ध्यागुरुधूपितः ।
चन्दनोदकसिक्तश्च माल्यदामोपशोभितः ॥ १८
कैलासशिखरप्रख्यैर्नभस्तलविलेखिभिः ।
सर्वतः संवृतः शुभ्रैः प्रासादैः सुकृतोच्छ्रयैः ॥१९
सुवर्णजालसंवीतैर्मणिकुट्टिमभूपणैः ।
सुखारोहणसोपानैर्महासनपरिच्छदैः ॥ २०
स्रग्दामसमवच्छन्नैरगुरूत्तमवासितैः ।
हंसांशुवर्णैर्बहुभिरायोजनसुगन्धिभिः ॥ २१
असंबाधशतद्वारैः शयनासनशोभितैः ।
बहुधा तु पिनद्धाङ्गैर्हिमवच्छिखरैरिव ॥ २२
तत्र नानाप्रकारेपु विमानेपु स्वलंकृताः ।
स्पर्धमानास्तदाऽन्योन्यं निषेदुः सर्वपार्थिवाः २३
तत्रोपविष्टान्ददृशुर्महासत्त्वपराक्रमान् ।
राजसिंहान्महाभागान्कृष्णागुरुविभूपितान् ॥ २४
महाप्रसादान्ब्रह्मण्यान्स्वराष्ट्रपरिरक्षिणः ।
प्रियान्सर्वस्य लोकस्य सुकृतैः कर्मभिः शुभैः २५
मञ्चेपु च परार्ध्येपु पौरजानपदा जनाः ।
कृष्णादर्शनसिद्ध्यर्थं सर्वतः समुपाविशन् ॥ २६

---

१८५

एवमिति ॥ १ ॥ स्कन्धावारं राजगृहप्राकारं लोकसमूहस्थानं वा। 'स्कन्धः स्यान्नृपतावंसे सापरायसमूहयो.' इति मेदिनी ॥ ६ ॥ न जज्ञिरे न ज्ञातवन्तः ॥ ७ ॥ अनानम्यं नमयितुमशक्यम ॥९॥ वैहायसं अन्तरिक्षगतम् । यन्त्रं तीव्रवेगवत्तया भ्रमणेन लक्ष्यमार्गसंकोचकमन्तराबद्धम् समितं यन्त्रच्छिद्रद्वारा उपलक्षितम् । लक्ष्यमपि वैहायसमित्यर्थः । अस्त्रशिक्षाया एकेनार्जुनेनैव चललक्ष्यपातनं कृतमतः स एव चलयन्त्रद्वारा लक्ष्यं भेत्स्यति नान्य इति। तदन्वेपणायायं यत्नो द्रुपदेन कृतः । यद्यपि कर्णस्याप्येतत्सुकरं तथापि हीनकुलत्वात्स सुपरिहर इति भावः ॥ १० ॥ सज्यं धनुः कृत्वा इदं यन्त्रमतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा वेद्धुं समर्थः ॥ ११ ॥ उपोपविष्टाः पादपूरणार्था उपेत्यस्यावृत्तिः 'प्रसमुपोदःपादपूरणे' इति ॥ १५ ॥ शिशुमारो जलजन्तुः तदाकारस्तारासमूहात्मको विष्णुः तस्य शिरःप्रदेशे ऐशान्यां दिशि । अत एव सा अपराजिता दिक् । तां दिशं प्राप्य न्यविशन् । तामेव दिशमाह प्रागिति । प्रागुत्तरेण प्रागुदीच्योरन्तराले नगरात्समीपे ।'एनवन्यतरस्यामदूरे पञ्चम्या' इत्येनवंतमिदम् ॥१६॥ विमानेपु सप्तभूमिगृहेपु । 'विमानो व्योमयाने च सप्तभूमिगृहेपि च' इति मेदिनी ॥ २३ ॥

ब्राह्मणैस्ते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन् ।
ऋद्धिं पञ्चालराजस्य पश्यन्तस्तामनुत्तमाम् ॥२७
ततः समाजो ववृधे स राजन्दिवसान्बहून् ।
रत्नप्रदानबहुलः शोभितो नटनर्तकैः ॥ २८
वर्तमाने समाजे तु रमणीयेऽह्नि षोडशे ।
आप्लुताङ्गी सुवसना सर्वाभरणभूषिता ॥ २९
मालां च समुपादाय काञ्चनीं समलंकृताम् ।
अवतीर्णा ततो रङ्गं द्रौपदी भरतर्षभ ॥ ३०
पुरोहितः सोमकानां मन्त्रविद्ब्राह्मणः शुचिः ।
परिस्तीर्य जुहावाग्निमाज्येन विधिवत्तदा ॥ ३१
संतर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
वारयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः ॥ ३२
निःशब्दे तु कृते तस्मिन्धृष्टद्युम्नो विशांपते ।
कृष्णामादाय विधिवन्मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ ३३
रङ्गमध्ये गतस्तत्र मेघगम्भीरया गिरा ।
वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥ ३४

इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः
शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः ।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं
शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः ॥ ३५
एतन्महत्कर्म करोति यो वै
कुलेन रूपेण बलेन युक्तः ।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं
कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि ॥ ३६
तानेवमुक्त्वा द्रुपदस्य पुत्रः
पश्चादिदं तां भगिनीमुवाच ।
नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च
संकीर्तयन्भूमिपतीन्समेतान् ॥ ३७

इति श्रीमहा० आदि० स्वयंवरपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

## १८६

धृष्टद्युम्न उवाच ।
दुर्योधनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुष्प्रधर्षणः ।
विविंशतिर्विकर्णश्च सहो दुःशासनस्तथा ॥ १
युयुत्सुर्वायुवेगश्च भीमवेगरवस्तथा ।
उग्रायुधो बलाकी च करकायुर्विरोचनः ॥ २
कुण्डकश्चित्रसेनश्च सुवर्चाः कनकध्वजः ।
नन्दको बाहुशाली च तुहुण्डो विकटस्तथा ॥ ३
एते चान्ये च बहवो धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
कर्णेन सहिता वीरास्त्वदर्थं समुपागताः ॥ ४
असंख्याता महात्मानः पार्थिवाः क्षत्रियर्षभाः ।
शकुनिः सौबलश्चैव वृषकोऽथ बृहद्बलः ॥ ५
एते गान्धारराजस्य सुताः सर्वे समागताः ।
अश्वत्थामा च भोजश्च सर्वशस्त्रभृतां वरौ ॥ ६
समवेतौ महात्मानौ त्वदर्थे समलंकृतौ ।
बृहन्तो मणिमांश्चैव दण्डधारश्च पार्थिवः । ७
सहदेवजयत्सेनौ मेघसन्धिश्च पार्थिवः ।
विराटः सह पुत्राभ्यां शंखेनैवोत्तरेण च ॥ ८
वार्धक्षेमिः सुशर्मा च सेनाबिन्दुश्च पार्थिवः ।
सुकेतुः सहपुत्रेण सुनाम्ना च सुवर्चसा ॥ ९
सुचित्रः सुकुमारश्च वृकः सत्यधृतिस्तथा ।
सूर्यध्वजो रोचमानो नीलश्चित्रायुधस्तथा ॥ १०
अंशुमांश्चेकितानश्च श्रेणिमांश्च महाबलः ।
समुद्रसेनपुत्रश्च चन्द्रसेनः प्रतापवान् ॥ ११
जलसन्धः पितापुत्रौ विदण्डो दण्ड एव च ।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १२
कालिङ्गस्ताम्रलिप्तश्च पत्तनाधिपतिस्तथा ।
मद्रराजस्तथा शल्यः सहपुत्रो महारथः ॥ १३
रुक्माङ्गदेन वीरेण तथा रुक्मरथेन च ।
कौरव्यः सोमदत्तश्च पुत्रश्चास्य महारथः ॥ १४
समवेतास्त्रयः शूरा भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ।
सुदक्षिणश्च काम्बोजो दृढधन्वा च पौरवः ॥ १५
बृहद्बलः सुषेणश्च शिबिरौशीनरस्तथा ।
पटच्चरनिहन्ता च कारुषाधिपतिस्तथा ॥ १६

---

परिस्तीर्य दर्भैः परितः स्तीर्त्वा ॥ ३१ ॥ इदं धनुः इदं च लक्ष्यं इमे च बाणाः । चलयन्त्रच्छिद्रद्वारा युगपत्पञ्चबाणान्लक्ष्ये यः समर्पयति तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयमिति द्वयोः संबन्धः व्योमचरैर्बाणैः ॥ ३५ ॥ तान् नृपान्प्रति ॥ ३७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

१८६

दुर्योधन इत्यादिः स्पष्टार्थो ग्रन्थः ॥ १ ॥

संकर्षणो वासुदेवो रौक्मिणेयश्च वीर्यवान् ।
साम्बश्च चारुदेष्णश्च प्राद्युम्निः सगदस्तथा ॥ १७
अक्रूरः सात्यकिश्चैव उद्धवश्च महामतिः ।
कृतकर्मा च हार्दिक्यः पृथुर्विपृथुरेव च ॥ १८
विदूरथश्च कङ्कश्च शङ्कुश्च सगवेषणः ।
आशावहोऽनिरुद्धश्च समीकः सारिमेजयः ॥ १९
वीरो वातपतिश्चैव झिल्ली पिण्डारकस्तथा ।
उशीनरश्च विक्रान्तो वृष्णयस्ते प्रकीर्तिताः ॥ २०
भगीरथो बृहत्क्षत्रः सैन्धवश्च जयद्रथः ।
बृहद्रथो बाह्लिकश्च श्रुतायुश्च महारथः ॥ २१
उलूकः कैतवो राजा चित्राङ्गदशुभाङ्गदौ ।
वत्सराजश्च मतिमान्कोसलाधिपतिस्तथा ॥ २२
शिशुपालश्च विक्रान्तो जरासंधस्तथैव च ।
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ॥ २३
त्वदर्थमागता भद्रे क्षत्रियाः प्रथिता भुवि ।
एते भेत्स्यन्ति विक्रान्तास्त्वदर्थे लक्ष्यमुत्तमम् ।
विध्येत य इदं लक्ष्यं वरयेथाः शुभेऽद्य तम् ॥ २४

इति श्रीमहा० आदि० स्वयंवरपर्वणि राजनामकीर्तने षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

---

## १८७

वैशंपायन उवाच ।
तेऽलंकृताः कुण्डलिनो युवानः
परस्परं स्पर्धमाना नरेन्द्राः ।
अस्त्रं बलं चात्मनि मन्यमानाः
सर्वे समुत्पेतुरुदायुधास्ते ॥ १
रूपेण वीर्येण कुलेन चैव
शीलेन वित्तेन च यौवनेन ।
समिद्धदर्पा मदवेगभिन्ना
मत्ता यथा हैमवता गजेन्द्राः ॥ २
परस्परं स्पर्धया प्रेक्षमाणाः
संकल्पजेनाभिपरिप्लुताङ्गाः ।
कृष्णा ममैवेत्यभिभाषमाणा
नृपासनेभ्यः सहसोदतिष्ठन् ॥ ३
ते क्षत्रिया रङ्गगताः समेता
जिगीषमाणा द्रुपदात्मजां ताम् ।
चकाशिरे पर्वतराजकन्या-
मुमां यथा देवगणाः समेताः ॥ ४
कंदर्पबाणाभिनिपीडिताङ्गाः
कृष्णागतैस्ते हृदयैर्नरेन्द्राः ।
रङ्गावतीर्णा द्रुपदात्मजार्थे
द्वेषं प्रचक्रुः सुहृदोऽपि तत्र ॥ ५
अथाययुर्देवगणा विमानै
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च ।
साध्याश्च सर्वे मरुतस्तथैव
यमं पुरस्कृत्य धनेश्वरं च ॥ ६
दैत्याः सुपर्णाश्च महोरगाश्च
देवर्षयो गुह्यकाश्चारणाश्च ।
विश्वावसुर्नारदपर्वतौ च
गन्धर्वमुख्याः सहसाप्सरोभिः ॥ ७
हलायुधस्तत्र जनार्दनश्च
वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथाप्रधानम् ।
प्रेक्षां स्म चक्रुर्यदुपुङ्गवास्ते
स्थिताश्च कृष्णस्य मते महान्तः ॥ ८
दृष्ट्वा तु तान्मत्तगजेन्द्ररूपान्
पञ्चाभिपद्मानिव वारणेन्द्रान् ।
भस्मावृताङ्गानिव हव्यवाहान्
कृष्णः प्रदध्यौ यदुवीरमुख्यः ॥ ९
शशंस रामाय युधिष्ठिरं स
भीमं सजिष्णुं च यमौ च वीरौ ।
शनैःशनैस्तान्प्रसमीक्ष्य रामो
जनार्दनं प्रीतमना ददर्श ह ॥ १०

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

१८७

तेऽलंकृता इति॥१॥ संकल्पजेन कामेन॥३॥अभितः पद्मा लक्ष्मीर्येषा तान्सर्वाङ्गसुंदरानित्यर्थः अतिपद्मानिति पाठेपि स एवार्थः । अतिमत्तानित्यपपाठः ॥ ९

अन्ये तु वीरा नृपपुत्रपौत्राः
कृष्णागतैर्नेत्रमनःस्वभावैः ।
व्यायच्छमाना ददृशुर्न तान्वै
संदष्टदन्तच्छदताम्रनेत्राः ॥ ११

तथैव पार्थाः पृथुबाहवस्ते
वीरौ यमौ चैव महानुभावौ ।
तां द्रौपदीं प्रेक्ष्य तदा स्म सर्वे
कंदर्पबाणाभिहता बभूवुः ॥ १२

देवर्षिगन्धर्वसमाकुलं तत्
सुपर्णनागासुरसिद्धजुष्टम् ।
दिव्येन गन्धेन समाकुलं च
दिव्यैश्च पुष्पैरवकीर्यमाणम् ॥ १३

महास्वनैर्दुन्दुभिनादितैश्च
बभूव तत्संकुलमन्तरिक्षम् ।
विमानसंबाधमभूत्समन्तात्
सवेणुवीणापणवानुनादम् ॥ १४

ततस्तु ते राजगणाः क्रमेण
कृष्णानिमित्तं कृतविक्रमाश्च ।
सकर्णदुर्योधनशाल्वशल्य-
द्रौणायनिक्राथसुनीथवक्राः ॥ १५

कलिङ्गवङ्गाधिपपाण्ड्यपौण्ड्रा
विदेहराजो यवनाधिपश्च ।
अन्ये च नानानृपपुत्रपौत्रा
राष्ट्राधिपाः पङ्कजपत्रनेत्राः ॥ १६

किरीटहाराङ्गदचक्रवालै-
र्विभूषिताङ्गाः पृथुबाहवस्ते ।
अनुक्रमं विक्रमसत्त्वयुक्ता
बलेन वीर्येण च नर्दमानाः ॥ १७

तत्कार्मुकं संहननोपपन्नं
सज्यं न शेकुर्मनसापि कर्तुम् ।
ते विक्रमन्तः स्फुरता दृढेन
विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्राः ॥ १८

विचेष्टमाना धरणीतलस्था
यथाबलं शैक्ष्यगुणक्रमाश्च ।
गतौजसः स्रस्तकिरीटहारा
विनिःश्वसन्तः शमयांबभूवुः ॥ १९

हाहाकृतं तद्धनुषा दृढेन
विस्रस्तहाराङ्गदचक्रवालम् ।
कृष्णानिमित्तं विनिवृत्तकामं
राज्ञां तदा मण्डलमार्तमासीत् ॥ २०

सर्वान्नृपांस्तान्प्रसमीक्ष्य कर्णो
धनुर्धराणां प्रवरो जगाम ।
उद्धृत्य तूर्णं धनुरुद्यतं तत्
सज्यं चकाराशु युयोज बाणान् ॥ २१

दृष्ट्वा सूतं मेनिरे पाण्डुपुत्रा
भित्त्वा नीतं लक्ष्यवरं धरायाम् ।
धनुर्धरा रागकृतप्रतिज्ञ-
मत्यग्निसोमार्कमथार्कपुत्रम् ॥ २२

दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्यमुच्चै-
र्जगाद नाहं वरयामि सूतम् ।
सामर्षहासं प्रसमीक्ष्य सूर्यं
तत्याज कर्णः स्फुरितं धनुस्तत् ॥ २३

एवं तेषु निवृत्तेषु क्षत्रियेषु समन्ततः ।
चेदीनामधिपो वीरो बलवानन्तकोपमः ॥ २४

दमघोषसुतो धीरः शिशुपालो महामतिः ।
धनुरादायमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥ २५

ततो राजा महावीर्यो जरासंधो महाबलः ।
धनुषोऽभ्याशमागत्य तस्थौ गिरिरिवाचलः २६

धनुषा पीड्यमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ।
तत उत्थाय राजा स स्वराष्ट्राण्यभिजग्मिवान् ॥

ततः शल्यो महावीरो मद्रराजो महाबलः ।
तदप्यारोप्यमाणस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥ २८

तस्मिंस्तु संभ्रान्तजने समाजे
निक्षिप्तवादेषु जनाधिपेषु ।
कुन्तीसुतो जिष्णुरियेष कर्तुं
सज्यं धनुस्तत्सशरं प्रवीरः ॥ २९

इति श्रीमहा० आदिप० स्वयंवरप० राजपराङ्मुखीभवने सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

---

व्यायच्छमानाः व्याददानाः चक्षुः प्रसार्य कृष्णामेव ददृशुर्न पाण्डवान् ॥ ११ ॥ तथैव पार्था इति । कामाभिभूतत्वाद्रामकृष्णादीन्न ददृशुरिति भावः ॥ १२ ॥ विमानसंबाधं विमानसंकीर्णम् ॥१४॥ संहननोपपन्नं अत्यन्तं काठिन्येन युक्तं । स्फुरता नामयितुमसामर्थ्यात्करान्निःसरत्कोटितया । अत एव विक्षिप्यमाणाः दण्डेन वीटा इव । धनुषा धनुष्कोट्या शमयांबभूवुरिति द्वयोः संबन्धः ॥१८॥ चक्रवालं मण्डलं ॥ २० ॥ सामर्षहासं नीचकुलयोगादमर्षः सूर्यापराधत्वात् हासः ॥२३॥ धनुरादायमानः परीक्षमाणः दैव शोधनेऽस्य रूपं ॥ २५ ॥ अभ्याशं समीपं ॥ २६ ॥ धनुषा आकृष्यमाणेन ॥२७॥आरोप्यमाणः सज्जीकर्तुमिच्छन् ॥ २८ ॥ निक्षिप्तवादेषु त्यक्तधनुरुद्यमनकथेषु ॥२९ ॥ इति आ० नै० भा० सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७ ॥

## १८८

वैशंपायन उवाच ।
यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मणः ।
अथोदतिष्ठद्विप्राणां मध्याज्जिष्णुरुदारधीः ॥ १
उदक्रोशन्विप्रमुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च ।
दृष्ट्वा संप्रस्थितं पार्थमिन्द्रकेतुसमप्रभम् ॥ २
केचिदासन्विमनसः केचिदासन्मुदान्विताः ।
आहुः परस्परं केचिन्निपुणा बुद्धिजीविनः ॥ ३
यत्कर्णशल्यप्रमुखैः क्षत्रियैर्लोकविश्रुतैः ।
नानतं बलवद्भिर्हि धनुर्वेदपरायणैः ॥ ४
तत्कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा ।
बटुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर्द्विजाः ॥ ५
अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु ।
कर्मण्यस्मिन्नसंसिद्धे चापलादपरीक्षिते ॥ ६
यद्येष दर्पाद्धर्षाद्वाऽप्यथ ब्राह्मणचापलात् ।
प्रस्थितो धनुरायन्तुं वार्यतां साधु मा गमत् ॥७
ब्राह्मणा ऊचुः ।
नावहास्या भविष्यामो न च लाघवमास्थिताः ।
न च विद्विष्टतां लोके गमिष्यामो महीक्षिताम् ॥८
केचिदाहुर्युवा श्रीमान्नागराजकरोपमः ।
पीनस्कन्धोरुबाहुश्च धैर्येण हिमवानिव ॥ ९
सिंहखेलगतिः श्रीमान्मत्तनागेन्द्रविक्रमः ।
संभाव्यमस्मिन्कर्मेदमुत्साहाच्चानुमीयते ॥ १०
शक्तिरस्य महोत्साहा न ह्यशक्तः स्वयं व्रजेत् ।
न च तद्विद्यते किंचित्कर्म लोकेषु यद्भवेत् ॥ ११
ब्राह्मणानामसाध्यं च नृषु संस्थानचारिषु ।
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च फलाहारा दृढव्रताः ॥ १२
दुर्बला अपि विप्रा हि बलीयांसः स्वतेजसा ।
ब्राह्मणो नावमन्तव्यः सदसद्वा समाचरन् ॥ १३
सुखं दुःखं महद्ध्रस्वं कर्म यत्समुपागतम् ।
जामदग्न्येन रामेण निर्जिताः क्षत्रिया युधि ॥१४
पीतः समुद्रोऽगस्त्येन अगाधो ब्रह्मतेजसा ।
तस्माद्ब्रुवन्तु सर्वेऽत्र बटुरेष धनुर्महान् ॥ १५
आरोपयतु शीघ्रं वै तथेत्यूचुर्द्विजर्षभाः ।
एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः ॥१६
अर्जुनो धनुषोऽभ्याशे तस्थौ गिरिरिवाचलः ।
स तद्धनुः परिक्रम्य प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ १७
प्रणम्य शिरसा देवमीशानं वरदं प्रभुम् ।
कृष्णं च मनसा कृत्वा जगृहे चार्जुनो धनुः ॥ १८

यत्पार्थिवै रुक्मसुनीथवक्रै
राधेयदुर्योधनशल्यशाल्वैः ।
तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः
कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात् ॥ १९
तदर्जुनो वीर्यवतां सदर्प
स्तदैन्द्रिरिन्द्रावरजप्रभावः ।
सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण
शरांश्च जग्राह दशार्धसंख्यान् ॥ २०
विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च
छिद्रेण भूमौ सहसातिविद्धम् ।
ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः
समाजमध्ये च महान्निनादः ॥ २१
पुष्पाणि दिव्यानि ववर्ष देवः
पार्थस्य मूर्ध्नि द्विषतां निहन्तुः ॥ २२

चैलानि विव्यधुस्तत्र ब्राह्मणाश्च सहस्रशः ।
विलक्षितास्ततश्चक्रुर्हाहाकारांश्च सर्वशः ।
न्यपतंश्चात्र नभसः समन्तात्पुष्पवृष्टयः ॥ २३
शताङ्गानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन् ।
सूतमागधसङ्घाश्चाप्यस्तुवंस्तत्र सुस्वराः ॥ २४
तं दृष्ट्वा द्रुपदः प्रीतो बभूव रिपुसूदनः ।
सह सैन्यैश्च पार्थस्य साहाय्यार्थमियेष सः ॥२५

---

१८८

यदेति जिष्णुरर्जुनः ॥१॥ प्राणतः शक्तितः ॥५॥ दर्पात् गर्वात्। हर्षात् औत्सुक्यात्। चापलात् अनवस्थितत्वात् ७॥ लोकेषु ब्रह्मलोकान्तेषु नृषु पुरुषेषु संस्थानचारिषु देवासुराद्याकारैश्चरत्सु । तत्कर्म न विद्यते यत् ब्राह्मणानामसाध्यमिति संबन्धः ॥ ११ ॥महत् ह्रस्वं । महदपि क्षुद्रं भवति यत्र तत् कर्म । तदेवोदाहरति जामदग्न्येनेति ॥१४॥ ब्राह्मणवचसा क्षुद्रेणापि महत्कर्म कर्तुं शक्यमित्यभिप्रेत्य सर्वेप्यैकमत्येनाहुः तस्मादिति ॥ १५ ॥ राधेयः कर्णः ॥ १९ ॥ विव्यधुः विजयध्वजवदुच्छ्रितवन्तः । विलक्षिताः विषमं लक्षितं दृष्टिर्येषां ते तथाभूताः शत्रवः लक्ष्येण विना कृता वा ॥ २३ ॥ शतं अनन्तानि अङ्गानि नखाङ्गुलिदण्डधनुर्ज्यावस्त्रादीनि वादनोपाया येषां तानि । 'अङ्गं गात्रान्तिकोपायप्रतीकेषु' इति विश्वः ॥ २४ ॥ साहाय्यार्थं द्रौपदीलाभात् क्षुब्धैर्नृपान्तरैर्युद्धप्रसक्तौ सत्याम् ॥२५॥

तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृद्धे
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
आवासमेवोपजगाम शीघ्रम्
सार्धं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम् ॥ २६
विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा
पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य ।
आदाय शुक्लाम्बरमाल्यदाम
जगाम कुन्तीसुतमुत्स्मयन्ती ॥ २७
स तामुपादाय विजित्य रङ्गे
द्विजातिभिस्तैरभिपूज्यमानः ।
रङ्गान्निरक्रामदचिन्त्यकर्मा
पत्न्या तया चाप्यनुगम्यमानः ॥ २८

इति श्रीमहा० आ० स्वयंवरपर्वणि लक्ष्यच्छेदनेऽष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

## १८९

वैशंपायन उवाच ।

तस्मै दित्सति कन्यां तु ब्राह्मणाय तदा नृपे ।
कोप आसीन्महीपानामालोक्यान्योन्यमन्तिकात् ॥ १
अस्मानयमतिक्रम्य तृणीकृत्य च संगतान् ।
दातुमिच्छति विप्राय द्रौपदीं योषितां वराम् ॥ २
अवरोप्येह वृक्षं तु फलकाले निपात्यते ।
निहन्मैनं दुरात्मानं योऽयमस्मान्न मन्यते ॥ ३
न ह्यर्हत्येष संमानं नापि वृद्धक्रमं गुणैः ।
हन्मैनं सह पुत्रेण दुराचारं नृपद्विषम् ॥ ४
अयं हि सर्वानाहूय सत्कृत्य च नराधिपान् ।
गुणवद्भोजयित्वान्नं ततः पश्चान्न मन्यते ॥ ५
अस्मिन्राजसमावाये देवानामिव संनये ।
किमयं सदृशं कंचिन्नृपतिं नैव दृष्टवान् ॥ ६
न च विप्रेष्वधीकारो विद्यते वरणं प्रति ।
स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः ॥ ७
अथवा यदि कन्येयं न च कंचिद्बुभूषति ।
अग्नावेनां परिक्षिप्य याम राष्ट्राणि पार्थिवाः ॥ ८
ब्राह्मणो यदि चापल्याल्लोभाद्वा कृतवानिदम् ।
विप्रियं पार्थिवेन्द्राणां नैष वध्यः कथंचन ॥ ९
ब्राह्मणार्थं हि नो राज्यं जीवितं हि वसूनि च ।
पुत्रपौत्रं च यच्चान्यदस्माकं विद्यते धनम् ॥ १०
अवमानभयाच्चैव स्वधर्मस्य च रक्षणात् ।
स्वयंवराणामन्येषां मा भूदेवंविधा गतिः ॥ ११
इत्युक्त्वा राजशार्दूला हृष्टाः परिघबाहवः ।
द्रुपदं तु जिघांसन्तः सायुधाः समुपाद्रवन् ॥ १२
तान्गृहीतशरावापान्क्रुद्धानापततो बहून् ।
द्रुपदो वीक्ष्य संत्रासाद्ब्राह्मणाञ्छरणं गतः ॥ १३
वेगेनापततस्तांस्तु प्रभिन्नानिव वारणान् ।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ प्रतियातावरिंदमौ ॥ १४
ततः समुत्पेतुरुदायुधास्ते
महीक्षितो बद्धगोधाङ्गुलित्राः ।
जिघांसमानाः कुरुराजपुत्रा-
वमर्षयन्तोऽर्जुनभीमसेनौ ॥ १५
ततस्तु भीमोऽद्भुतभीमकर्मा
महाबलो वज्रसमानसारः ।
उत्पाट्य दोर्भ्यां द्रुममेकवीरो
निष्पत्रयामास यथा गजेन्द्रः ॥ १६
तं वृक्षमादाय रिपुप्रमाथी
दण्डीव दण्डं पितृराज उग्रम् ।
तस्थौ समीपे पुरुषर्षभस्य
पार्थस्य पार्थः पृथुदीर्घबाहुः ॥ १७
तत्प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यबुद्धि-
र्जिष्णुः स हि भ्रातुरचिन्त्यकर्मा ।
विसिष्मिये चापि भयं विहाय
तस्थौ धनुर्गृह्य महेन्द्रकर्मा ॥ १८
तत्प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यबुद्धि-
र्जिष्णोः सहभ्रातुरचिन्त्यकर्मा ।
दामोदरो भ्रातरमुग्रवीर्यं
हलायुधं वाक्यमिदं बभाषे ॥ १९
य एष सिंहर्षभखेलगामी
महद्धनुः कर्षति तालमात्रम् ।

---

उत्स्मयन्ती उत्तमपतिलाभादत्यन्तं गर्वं कुर्वती ॥ २७ ॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भा० भा० अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८ ॥

१८९

तस्मै दित्सतीति ॥ १ ॥ अवरोप्येत्यस्य व्याख्या अयं हीति व्यवहितश्लोकेन ॥ ४ ॥ संत्रासात् ब्राह्मणकोपेन सर्वं क्षत्रं नश्येदिति शङ्कोत्थात् भयात् ॥ १३ ॥

एषोऽर्जुनो नात्र विचार्यमस्ति
यद्यस्मि संकर्षण वासुदेवः ॥ २०
यस्त्वेष वृक्षं तरसाऽवभज्य
राज्ञां निकारे सहसा प्रवृत्तः ।
वृकोदरान्नान्य इहैतदद्य
कर्तुं समर्थः समरे पृथिव्याम् ॥ २१
योऽसौ पुरस्तात्कमलायताक्ष-
स्तनुर्महासिंहगतिर्विनीतः ।
गौरः प्रलम्बोज्ज्वलचारुघोणो
विनिःसृतः सोऽच्युतधर्मपुत्रः ॥ २२
यौ तौ कुमाराविव कार्तिकेयौ
द्वावश्विनेयाविति मे वितर्कः ।
मुक्ता हि तस्माज्जतुवेश्मदाहात्
मया श्रुताः पाण्डुसुताः पृथा च ॥ २३
तमब्रवीन्निर्जलतोयदाभो
हलायुधोऽनन्तरजं प्रतीतः ।
प्रीतोऽस्मि दृष्ट्वा हि पितृष्वसारम्
पृथां विमुक्तां सह कौरवाग्र्यैः ॥ २४

इति श्रीमहा० आ० स्वयंवरपर्वणि कृष्णवाक्ये ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

---

## १९०

वैशंपायन उवाच ।
अजिनानि विधुन्वन्तः करकांश्च द्विजर्षभाः ।
ऊचुस्ते भीर्न कर्तव्या वयं योत्स्यामहे परान् ॥१
तानेवं वदतो विप्रानर्जुनः प्रहसन्निव ।
उवाच प्रेक्षका भूत्वा यूयं तिष्ठत पार्श्वतः ॥ २
अहमेनानजिह्माग्रैः शतशो विकिरञ्शरैः ।
वारयिष्यामि संक्रुद्धान्मन्त्रैराशीविषानिव ॥ ३
इति तद्धनुरानम्य शुल्कावाप्तं महाबलः ।
भ्रात्रा भीमेन सहितस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४
ततः कर्णमुखान्दृष्ट्वा क्षत्रियान्युद्धदुर्मदान् ।
संपेततुरभीतौ तौ गजौ प्रतिगजानिव ॥ ५
ऊचुश्च वाचः परुषास्ते राजानो युयुत्सवः ।
आहवे हि द्विजस्यापि वधो दृष्टो युयुत्सतः ॥ ६
इत्येवमुक्त्वा राजानः सहसा दुद्रुवुर्द्विजान् ।
ततः कर्णो महातेजा जिष्णुं प्रति ययौ रणे ॥ ७
युद्धार्थी वासिताहेतोर्गजः प्रतिगजं यथा ।
भीमसेनं ययौ शल्यो मद्राणामीश्वरो बली ॥ ८
दुर्योधनादयः सर्वे ब्राह्मणैः सह संगताः ।
मृदुपूर्वमयत्नेन प्रत्ययुध्यंस्तदाहवे ॥ ९
ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं शितैः शरैः ।
कर्णं वैकर्तनं श्रीमान्विकृष्य बलवद्धनुः ॥ १०
तेषां शराणां वेगेन शितानां तिग्मतेजसाम् ।
विमुह्यमानो राधेयो यत्नात्तमनुधावति ॥ ११
तावुभावप्यनिर्देश्यौ लाघवाज्जयतां वरौ ।
अयुध्येतां सुसंरब्धावन्योन्यविजिगीषिणौ ॥ १२
कृते प्रतिकृतं पश्य पश्य बाहुबलं च मे ।
इति शूरार्थवचनैरभाषेतां परस्परम् ॥ १३
ततोऽर्जुनस्य भुजयोर्वीर्यमप्रतिमं भुवि ।
ज्ञात्वा वैकर्तनः कर्णः संरब्धः समयोधयत् ॥ १४
अर्जुनेन प्रयुक्तांस्तान्बाणान्वेगवतस्तदा ।
प्रतिहन्य ननादोच्चैः सैन्यानि तदपूजयन् ॥ १५
कर्ण उवाच ।
तुष्यामि ते विप्रमुख्य भुजवीर्यस्य संयुगे ।
अविषादस्य चैवास्य शस्त्रास्त्रविजयस्य च ॥ १६
किं त्वं साक्षाद्धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम ।
अथ साक्षाद्धरिहयः साक्षाद्वा विष्णुरच्युतः ॥ १७
आत्मप्रच्छादनार्थं वै बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
विप्ररूपं विधायेदं मन्ये मां प्रतियुध्यसे ॥ १८

---

घोणा नासा ॥ २२ ॥ कार्तिकेयावित्यभूतोपमा ॥ २३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

१९०

अजिनानीति ॥१॥ शुल्कावाप्तं पणप्राप्तम् ॥४॥ विजिगीषिणौ विजिगीषावन्तौ ॥ १२ ॥ शराणा अर्थवद्भिर्वचनैः शूरार्थवचनैः ॥१३॥ प्रतिहन्य प्रतिहत्या वा ल्यपीति पक्षेऽनुनासिकलोपाभावान्न तुक् । तत प्रतिहननम् ॥१५॥

न हि मामाहवे क्रुद्धमन्यः साक्षाच्छचीपतेः ।
पुमान्योधयितुं शक्तः पाण्डवाद्वा किरीटिनः १९
तमेवं वादिनं तत्र फाल्गुनः प्रत्यभाषत ।
नास्मि कर्ण धनुर्वेदो नास्मि रामः प्रतापवान् २०
ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
ब्राह्मे पौरंदरे चास्त्रे निष्ठितो गुरुशासनात् ॥ २१
स्थितोऽस्म्यद्य रणे जेतुं त्वां वै वीर स्थिरो भव ।

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात्कर्णो न्यवर्तत ॥ २२
ब्राह्मं तेजस्तदाऽजय्यं मन्यमानो महारथः ।
अपरस्मिन्वनोद्देशे वीरौ शल्यवृकोदरौ ॥ २३
बलिनौ युद्धसंपन्नौ विद्यया च बलेन च ।
अन्योन्यमाह्वयन्तौ तु मत्ताविव महागजौ ॥ २४
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव निघ्नन्तावितरेतरम् ।
प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षविकर्षणैः ॥ २५
आचकर्षतुरन्योऽन्यं मुष्टिभिश्चापि जघ्नतुः ।
ततश्चटचटाशब्दः सुघोरो ह्यभवत्तयोः ॥ २६
पाषाणसंपातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः ।
मुहूर्तं तौ तदाऽन्योन्यं समरे पर्यकर्षताम् ॥ २७
ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे ।
अपातयत्कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणा जहसुस्तदा ॥ २८
तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः ।
यच्छल्यं पातितं भूमौ नावधीद्बलिनं बली ॥२९
पातिते भीमसेनेन शल्ये कर्णे च शङ्किते ।
शङ्किताः सर्वराजानः परिवव्रुर्वृकोदरम् ॥ ३०
ऊचुश्च सहितास्तत्र साध्विमौ ब्राह्मणर्षभौ ।
विज्ञायेतां क्व जन्मानौ क्व निवासौ तथैव च॥३१
को हि राधासुतं कर्णं शक्तो योधयितुं रणे ।
अन्यत्र रामाद्द्रोणाद्वा पाण्डवाद्वा किरीटिनः॥३२
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्कृपाद्वापि शरद्वतः ।
को वा दुर्योधनं शक्तः प्रतियोधयितुं रणे ॥ ३३

तथैव मद्राधिपतिं शल्यं बलवतां वरम् ।
बलदेवादृते वीरात्पाण्डवाद्वा वृकोदरात् ॥ ३४
वीराद्दुर्योधनाद्वाऽन्यः शक्तः पातयितुं रणे ।
क्रियतामवहारोऽस्माद्युद्धाद्ब्राह्मणसंवृतात् ॥ ३५
ब्राह्मणा हि सदा रक्ष्याः सापराधाऽपि नित्यदा ।
अथैनानुपलभ्येह पुनर्योत्स्याम हृष्टवत् ॥ ३६
तांस्तथावादिनः सर्वान्प्रसमीक्ष्य क्षितीश्वरान् ।
अथान्यान्पुरुषांश्चापि कृत्वा तत्कर्म संयुगे ॥३७

वैशंपायन उवाच ।

तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः
कुन्तीसुतौ तौ परिशङ्कमानः ।
निवारयामास महीपतींस्तान्
धर्मेण लब्धेत्यनुनीय सर्वान् ॥ ३८
एवं ते विनिवृत्तास्तु युद्धाद्युद्धविशारदाः ।
यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः॥३९
वृत्तो ब्रह्मोत्तरो रङ्गः पाञ्चाली ब्राह्मणैर्वृता ।
इति ब्रुवन्तः प्रययुर्ये तत्रासन्समागताः ॥ ४०
ब्राह्मणैस्तु प्रतिच्छन्नौ रौरवाजिनवासिभिः ।
कृच्छ्रेण जग्मतुस्तौ तु भीमसेनधनंजयौ ॥ ४१
विमुक्तौ जनसंबाधाच्छत्रुभिः परिवीक्षितौ ।
कृष्णयानुगतौ तत्र नृवीरौ तौ विरेजतुः ॥ ४२
पौर्णमास्यां घनैर्मुक्तौ चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
तेषां माता बहुविधं विनाशं पर्यचिन्तयत् ॥ ४३
अनागच्छत्सु पुत्रेषु भैक्षकालेऽभिगच्छति ।
धार्तराष्ट्रैर्हता न स्युर्विज्ञाय कुरुपुङ्गवाः ॥ ४४
मायान्वितैर्वा रक्षोभिः सुघोरैर्दृढवैरिभिः ।
विपरीतं मतं जातं व्यासस्यापि महात्मनः ॥ ४५
इत्येवं चिन्तयामास सुतस्नेहावृता पृथा ।
ततः सुप्तजनप्राये दुर्दिने मेघसंप्लुते ॥ ४६
महत्यथापराह्णे तु घनैः सूर्य इवावृतः ।
ब्राह्मणैः प्राविशत्तत्र जिष्णुर्भार्गववेश्म तत् ॥४७

इति श्रीमहा० आ० स्वयंवरपर्वणि पाण्डवप्रत्यागमने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

---

मन्ये त्वां यस्मात् मां प्रतियुध्यसे ॥ १८ ॥ वनोद्देशे रङ्गदशां निवासस्थाने । 'वनं नपुंसकं नीरे निवासाल्यकानने' इति मेदिनी ॥ २३ ॥ प्रकर्षणं दूरे नोदनं आकर्षणं अर्वाक्कर्षणं अभ्याकर्षणं अभिमुखमास्फालनं विकर्षणं तिर्यक्पातनम् ॥ २५ ॥ समुत्क्षिप्य कूष्माण्डफलवदपातयत् ॥ २८ ॥ अवहारो युद्धान्निवर्तनम् ॥३५॥ सापराधा अपीति संधिरार्षः । अथ अथवा कालान्तरे उपलभ्य॥३६॥संयुगे तत्कर्म कृत्वा तूष्णीं भूताविति शेषः॥३७ ब्रह्म ब्राह्मणजातिः उत्तरं उत्कृष्टं यस्मिन्स ब्रह्मोत्तरः ॥४०॥ अभिगच्छति उपस्थिते सति ॥ ४४ ॥ भार्गववेश्म कुलधलगृहम् ॥४७॥ इति आ० नै० भा० भा० नवत्यधिकशाततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

## १९१

वैशंपायन उवाच ।

गत्वा तु तां भार्गवकर्मशालां
　पार्थौ पृथां प्राप्य महानुभावौ ।
तां याज्ञसेनीं परमप्रतीतौ
　भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ ॥ १

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ
　प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे ।
पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीक्ष्य कृष्णाम्
　कष्टं मया भाषितमित्युवाच ॥ २

साऽधर्मभीता परिचिन्तयन्ती
　तां याज्ञसेनीं परमप्रतीताम् ।
पाणौ गृहीत्वोपजगाम कुन्ती
　युधिष्ठिरं वाक्यमुवाच चेदम् ॥ ३

कुन्त्युवाच ।

इयं तु कन्या द्रुपदस्य राज्ञः
　तवानुजाभ्यां मयि संनिविष्टा ।
यथोचितं पुत्र मयापि चोक्तम्
　समेत्य भुङ्क्तेति नृप प्रमादात् ॥ ४

मया कथं नानृतमुक्तमद्य
　भवेत्कुरूणामृषभ ब्रवीहि ।
पञ्चालराजस्य सुतामधर्मो
　न चोपवर्तेत न विभ्रमेच्च ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

स एवमुक्तो मतिमान्नृवीरो
　मात्रा मुहूर्तं तु विचिन्त्य राजा ।
कुन्तीं समाश्वास्य कुरुप्रवीरो
　धनंजयं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ६

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी
　त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री ।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह
　गृहाण पाणिं विधिवत्त्वमस्याः ॥ ७

अर्जुन उवाच ।

मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं
　कृथा न धर्मोऽयमशिष्टदृष्टः ।
भवान्निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं
　भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ ८

अहं ततो नकुलोऽनन्तरं मे
　पश्चादयं सहदेवस्तरस्वी ।
वृकोदरोऽहं च यमौ च राज-
　न्नियं च कन्या भवतो नियोज्याः ॥ ९

एवं गते यत्करणीयमत्र
　धर्म्यं यशस्यं कुरु तद्विचिन्त्य ।
पञ्चालराजस्य हितं च यत्स्यात्
　प्रशाधि सर्वे स्म वशे स्थितास्ते ॥ १०

वैशंपायन उवाच ।

जिष्णोर्वचनमाज्ञाय भक्तिस्नेहसमन्वितम् ।
दृष्टिं निवेशयामासुः पाञ्चाल्यां पाण्डुनन्दनाः ११
दृष्ट्वा ते तत्र पश्यन्तीं सर्वे कृष्णां यशस्विनीम् ।
संप्रेक्ष्यान्योन्यमासीना हृदयैस्तामधारयन् ॥ १२
तेषां तु द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषाममितौजसाम् ।
संप्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः ॥ १३
काम्यं हि रूपं पांचाल्या विधात्रा विहितं स्वयम्
बभूवाधिकमन्याभ्यः सर्वभूतमनोहरम् ॥ १४
तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
द्वैपायनवचः कृत्स्नं सस्मार मनुजर्षभः ॥ १५
*अब्रवीत्सहितान्भ्रातॄन्मिथो भेदभयान्नृपः ।*
सर्वेषां द्रौपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा १६

वैशंपायन उवाच ।

भ्रातुर्वचस्तत्प्रसमीक्ष्य सर्वे
　ज्येष्ठस्य पाण्डोस्तनयास्तदानीम् ।
तमेवार्थं ध्यायमाना मनोभिः
　सर्वे च ते तस्थुरदीनसत्त्वाः ॥ १७

वृष्णिप्रवीरस्तु कुरुप्रवीरा-
　नाशंसमानः सहरौहिणेयः ।
जगाम तां भार्गवकर्मशालाम्
　यत्रासते ते पुरुषप्रवीराः ॥ १८

तत्रोपविष्टं पृथुदीर्घबाहुम्
　ददर्श कृष्णः सहरौहिणेयः ।
*अजातशत्रुं परिवार्य तांश्चा-*
　प्युपोपविष्टाञ्ज्वलनप्रकाशान् ॥ १९

---

१९१

गत्वेति ॥१॥ अधर्मो बहुभर्तृतारूपस्तस्माद्भीता ॥३॥ अधर्मो बहुभर्तृतारूपः विभ्रमेच्च तेनाधर्मेण तिर्यग्योनौ पुनः पुनर्विशेषेण भ्रमेत् ॥५॥ न धर्मोऽयं दृष्टः अयं कः यं मां भवान् आशिष्ट शासितवान् । निवेश्यः विवाह्यः॥ ८ ॥ भेदभयं यस्य द्रौपदी तस्येतरे शत्रवः स्युरिति भेदः ॥१६॥ रौहिणेयो बलदेवः ॥ १८ ॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवोऽभिगम्य
कुन्तीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥ २०
तथैव तस्याप्यनु रौहिणेय-
स्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन् ।
पितृष्वसुश्चापि यदुप्रवीरा-
वगृह्णतां भारतमुख्यपादौ ॥ २१
अजातशत्रुश्च कुरुप्रवीरः
पप्रच्छ कृष्णं कुशलं विलोक्य ।
कथं वयं वासुदेव त्वयेह
गूढा वसन्तो विदिताश्च सर्वे ॥ २२
तमब्रवीद्वासुदेवः प्रहस्य
गूढोऽप्यग्निर्ज्ञायत एव राजन् ।
तं विक्रमं पाण्डवेयानतीत्य
कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु ॥ २३
दिष्ट्या सर्वे पावकाद्विप्रमुक्ता
यूयं घोरात्पाण्डवाः शत्रुसाहाः ।
दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः
सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत् ॥ २४
भद्रं वोऽस्तु निहितं यद्गुहायाम्
विवर्धध्वं ज्वलना इवैधमानाः ।
मा वो विदुः पार्थिवाः केचिदेव
यास्यावहे शिबिरायैव तावत् ॥
सोऽनुज्ञातः पाण्डवेनाव्ययश्रीः
प्रायाच्छीघ्रं बलदेवेन सार्धम् ॥ २५

इति श्रीमहा० आदिप० स्वयंवरप० रामकृष्णागमने एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

## १९२

वैशंपायन उवाच ।
धृष्टद्युम्नस्तु पाञ्चाल्यः पृष्ठतः कुरुनन्दनौ ।
अन्वगच्छत्तदा यान्तौ भार्गवस्य निवेशने ॥ १
सोऽज्ञायमानः पुरुषानवधाय समन्ततः ।
स्वयमारान्निलीनोऽभूद्भार्गवस्य निवेशने ॥ २
सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी
जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ ।
भैक्षं चरित्वा तु युधिष्ठिराय
निवेदयांचक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ३
ततस्तु कुन्ती द्रुपदात्मजां ता-
मुवाच काले वचनं वदान्या ।
त्वमग्रमादाय कुरुष्व भद्रे
बलिं च विप्राय च देहि भिक्षाम् ॥ ४
ये चान्नमिच्छन्ति ददस्व तेभ्यः
परिश्रिता ये परितो मनुष्याः ।
ततश्च शेषं प्रविभज्य शीघ्र-
मर्धं चतुर्धा मम चात्मनश्च ॥ ५
अर्धं तु भीमाय च देहि भद्रे
य एष नागर्षभतुल्यरूपः ।
गौरो युवा संहननोपपन्न
एषो हि वीरो बहुभुक्सदैव ॥ ६
सा हृष्टरूपेव तु राजपुत्री
तस्या वचः साधु विशङ्कमाना ।
यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी
ते चापि सर्वे बुभुजुस्तदन्नम् ॥ ७
कुशैस्तु भूमौ शयनं चकार
माद्रीपुत्रः सहदेवस्तरस्वी ।
यथा स्वकीयान्यजिनानि सर्वे
संस्तीर्य वीराः सुषुपुर्धरण्याम् ॥ ८
अगस्त्यशास्तामभितो दिशं तु
शिरांसि तेषां कुरुसत्तमानाम् ।
कुन्ती पुरस्तात्तु बभूव तेषाम्
पादान्तरे चाथ बभूव कृष्णा ॥ ९

शत्रुसाहाः शत्रुवेगस्य सोढारः ॥ २४ ॥ यद्भद्रं गुहायां बुद्धौ वो निहितं तद्वोऽस्तु ॥ २५ ॥ इति आदिपर्वणि नैल० भारतभावदीपे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

१९२

धृष्टद्युम्न इति ॥ १ ॥ सः अज्ञायमानः पाण्डवैरितरैश्च । आरात्समीपे ॥ २ ॥ अग्रं प्रथममादाय बलिं कुरुष्व भिक्षां च देहि ॥ ४ ॥ परिश्रिताः अन्येऽन्नोपजीविनः । चतुर्धा मम चात्मनश्चेत्यर्धं षोढाऽर्धं भीमायेत्यर्थः ॥ ५॥ संहननोपपन्नो दृढः पुष्टश्च ॥ ६ ॥ साधु विशङ्कमाना स्वस्य श्रेयस्तर्कयन्ती । 'शङ्का त्रासे वितर्के च' इति मेदिनी ॥७॥ अगस्त्येन शास्ता शिक्षिता तां दक्षिणां अभितः । सर्वेऽपि दक्षिणाशिरसः पुरस्तात् शिरोदेशस्यैव पादान्तरे पादसमीपप्रदेशे ॥ ९ ॥

अशेत भूमौ सह पाण्डुपुत्रैः
पादोपधानीव कृता कुशेषु ।
न तत्र दुःखं मनसापि तस्या
न चावमेने कुरुपुङ्गवांस्तान् ॥ १०
ते तत्र शूराः कथयांबभूवुः
कथा विचित्राः पृतनाधिकाराः ।
अस्त्राणि दिव्यानि रथांश्च नागान्
खड्गान्गदाश्चापि परश्वधांश्च ॥ ११
तेषां कथास्ताः परिकीर्त्यमानाः
पञ्चालराजस्य सुतस्तदानीम् ।
शुश्राव कृष्णां च तदा निषण्णां
ते चापि सर्वे ददृशुर्मनुष्याः ॥ १२
धृष्टद्युम्नो राजपुत्रस्तु सर्वं
वृत्तं तेषां कथितं चैव रात्रौ ।
सर्वं राज्ञे द्रुपदायाखिलेन
निवेदयिष्यंस्त्वरितो जगाम ॥ १३
पञ्चालराजस्तु विषण्णरूप-
स्तान्पाण्डवानप्रतिविन्दमानः ।
धृष्टद्युम्नं पर्यपृच्छन्महात्मा
क्व सा गता केन नीता च कृष्णा ॥ १४
कच्चिन्न शूद्रेण न हीनजेन
वैश्येन वा करदेनोपपन्ना ।
कच्चित्पदं मूर्ध्नि न पङ्कदिग्धम्
कच्चिन्न माला पतिता श्मशाने ॥ १५
कच्चित्सवर्णप्रवरो मनुष्य
उद्रिक्तवर्णोप्युत एव कच्चित् ।
कच्चिन्न वामो मम मूर्ध्नि पादः
कृष्णाभिमर्शेन कृतोऽद्य पुत्र ॥ १६
कच्चिन्न तप्स्ये परमप्रतीतः
संयुज्य पार्थेन नरर्षभेण ।
वदस्व तत्त्वेन महानुभाव
कोसौ विजेता दुहितुर्ममाद्य ॥ १७
विचित्रवीर्यस्य सुतस्य कच्चित्
कुरुप्रवीरस्य ध्रियन्ति पुत्राः ।
कच्चित्तु पार्थेन यवीयसाऽद्य
धनुर्गृहीतं निहतं च लक्ष्यम् ॥ १८

इति श्रीमहा० आदिप० स्वयंवरप० धृष्टद्युम्नप्रत्यागमने द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

समाप्तं स्वयंवरपर्व ।

---

## वैवाहिकपर्व ।

## १९३

वैशंपायन उवाच ।
ततस्तथोक्तः परिहृष्टरूपः
पित्रे शशंसाथ स राजपुत्रः ।
धृष्टद्युम्नः सोमकानां प्रबर्हो
वृत्तं यथा येन हृता च कृष्णा ॥ १
धृष्टद्युम्न उवाच ।
योऽसौ युवा व्यायतलोहिताक्षः
कृष्णाजिनी देवसमानरूपः ।
यः कार्मुकाग्र्यं कृतवानधिज्यं
लक्ष्यं च यः पातितवान्पृथिव्याम् ॥ २
असज्जमानश्च ततस्तरस्वी
वृत्तो द्विजाग्र्यैरभिपूज्यमानः ।
चक्राम वज्रीव दितेः सुतेषु
सर्वैश्च देवैर्ऋषिभिश्च जुष्टः ॥ ३
कृष्णा प्रगृह्याजिनमन्वयात्तम्
नागं यथा नागवधूः प्रहृष्टा ।

---

पादोपधानीव सर्वेषां पादस्पर्शं लभमाना । कुशेषु कुशासनेषु ॥ १० ॥ पृतनाधिकाराः सेनाधीशयोग्याः ॥ ११ ॥ अप्रतिविन्दमानः अजानन् ॥ १४ ॥ मूर्ध्नि पदं हीनवर्णयोगात् वैश्यपक्षे तु न पातित्यम् शूद्रपक्षे तु 'पद्यु वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रः' इति शूद्रस्य पादयुक्तश्मशानत्वश्रुतेस्तत्र मालावत् सुकुमारी बाला न पतितेति स्पष्टमुक्तम् ॥ १५ ॥ सवर्णप्रवरः क्षात्रियश्रेष्ठः । उद्रिक्तवर्णो ब्राह्मणः। मूर्ध्नि पादस्तु वेषमात्रेण ब्राह्मणत्वानिश्चयात् शौर्यस्य च कर्णैकलव्ययोः सूतशूद्रयोरपि दृष्टत्वात् संभावितः ॥१६॥ कच्चिदिति कामप्रवेदने । पार्थेन संयुज्य परमप्रतीतोऽत्यन्तहृष्टोसि । तादृशशौर्यस्यान्यत्रासंभवात् ॥ १७ ॥ ध्रियन्ति जीवन्ति ॥ १८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

१९३

तत इति। प्रबर्ह उत्तमः ॥ १ ॥

अमृष्यमाणेषु नराधिपेषु
क्रुद्धेषु वै तत्र समापतत्सु ॥ ४
ततोऽपरः पार्थिवसङ्घमध्ये
प्रवृद्धमारुज्य महीप्ररोहम् ।
प्रकालयन्नेव स पार्थिवौघान्
क्रुद्धोऽन्तकः प्राणभृतो यथैव ॥ ५
तौ पार्थिवानां मिषतां नरेन्द्र
कृष्णामुपादाय गतौ नराग्र्यौ ।
विभ्राजमानाविव चन्द्रसूर्यौ
बाह्यां पुराद्भार्गवकर्मशालाम् ॥ ६
तत्रोपविष्टार्चिरिवानलस्य
तेषां जनित्रीति मम प्रतर्कः ।
तथाविधैरेव नरप्रवीरै-
रुपोपविष्टैस्त्रिभिरग्निकल्पैः ॥ ७
तस्यास्ततस्तावभिवाद्य पादौ
उक्ता च कृष्णा त्वभिवादयेति ।
स्थितां च तत्रैव निवेद्य कृष्णाम्
भिक्षाप्रचाराय गता नराग्र्याः ॥ ८
तेषां तु भैक्षं प्रतिगृह्य कृष्णा
दत्वा बलिं ब्राह्मणसाच्च कृत्वा ।
तां चैव वृद्धां परिवेष्य तांश्च
नरप्रवीरान्स्वयमप्यभुङ्क्त ॥ ९
सुप्तास्तु ते पार्थिव सर्व एव
कृष्णा च तेषां चरणोपधाने ।
आसीत्पृथिव्यां शयनं च तेषां
दर्भाजिनाग्र्यास्तरणोपपन्नम् ॥ १०
ते नर्दमाना इव कालमेघाः
कथा विचित्राः कथयांबभूवुः ।
न वैश्यशूद्रौपयिकीः कथास्ता
न च द्विजानां कथयन्ति वीराः ॥ ११
निःसंशयं क्षत्रियपुङ्गवास्ते
यथा हि युद्धं कथयन्ति राजन् ।
आशा हि नो व्यक्तमियं समृद्धा
मुक्तान्हि पार्थाञ्छृणुमोऽग्निदाहात् १२
यथा हि लक्ष्यं निहतं धनुश्च
सज्यं कृतं तेन तथा प्रसह्य ।
यथा हि भाषन्ति परस्परं ते
छन्ना ध्रुवं ते प्रचरन्ति पार्थाः ॥ १३

ततः स राजा द्रुपदः प्रहृष्टः
पुरोहितं प्रेषयामास तेषाम् ।
विद्याम युष्मानिति भाषमाणो
महात्मानः पाण्डुसुतास्तु कच्चित् ॥ १४
गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा
गत्वा प्रशंसामभिधाय तेषाम् ।
वाक्यं समग्रं नृपतेर्यथाव-
दुवाच चानुक्रमविक्रमेण ॥ १५
विज्ञातुमिच्छत्यवनीश्वरो वः
पञ्चालराजो वरदो वरार्हः ।
लक्ष्यस्य वेद्धारमिमं हि दृष्ट्वा
हर्षस्य नान्तं प्रतिपद्यते सः ॥ १६
आख्यात च ज्ञातिकुलानुपूर्वीं
पदं शिरःसु द्विषतां कुरुध्वम् ।
प्रह्लादयध्वं हृदयं ममेदं
पञ्चालराजस्य च सानुगस्य ॥ १७
पाण्डुर्हि राजा द्रुपदस्य राज्ञः
प्रियः सखा चात्मसमो बभूव ।
तस्यैष कामो दुहिता ममेयं
स्नुषां प्रदास्यामि हि कौरवाय ॥ १८
अयं हि कामो द्रुपदस्य राज्ञो
हृदि स्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गाः ।
यदर्जुनो वै पृथुदीर्घबाहु-
र्धर्मेण विन्देत सुतां ममैताम् ॥ १९
कृतं हि तत्स्यात्सुकृतं ममेदं
यशश्च पुण्यं च हितं तदेतत् ।
अथोक्तवाक्यं हि पुरोहितं स्थितं
ततो विनीतं समुदीक्ष्य राजा ॥ २०
समीपतो भीममिदं शशास
प्रदीयतां पाद्यमर्घ्यं तथाऽस्मै ।
मान्यः पुरोधा द्रुपदस्य राज्ञः
तस्मै प्रयोज्याभ्यधिका हि पूजा ॥ २१
भीमस्ततस्तत्कृतवान्नरेन्द्र
तां चैव पूजां प्रतिगृह्य हर्षात् ।
सुखोपविष्टं तु पुरोहितं तदा
युधिष्ठिरो ब्राह्मणमित्युवाच ॥ २२

महीप्ररोहं वृक्षम् ॥५॥ उक्ता ताभ्यामिति शेषः ॥८॥ ब्राह्मणसात् ब्राह्मणाधीनम् ॥ ९ ॥ दर्भाणां अजिनाग्र्यं उपर्यजिनं च तदास्तरणं चेति समासः ॥ १० ॥ विद्याम वेदितुमिच्छामः ॥१४॥ आख्यात कथयत ॥ १७ ॥

पञ्चालराजेन सुता निसृष्टा
स्वधर्मदृष्टेन यथा न कामात् ।
प्रदिष्टशुल्का द्रुपदेन राज्ञा
सा तेन वीरेण तथानुवृत्ता ॥ २३

न तत्र वर्णेषु कृता विवक्षा
न चापि शीले न कुले न गोत्रे ।
कृतेन सज्येन हि कार्मुकेण
विद्धेन लक्ष्येण हि सा विसृष्टा ॥ २४

सेयं तथानेन महात्मनेह
कृष्णा जिता पार्थिवसङ्घमध्ये ।
नैवंगते सौमकिरद्य राजा
संतापमर्हत्यसुखाय कर्तुम् ॥ २५

कामश्च योऽसौ द्रुपदस्य राज्ञः
स चापि संपत्स्यति पार्थिवस्य ।
संप्राप्यरूपां हि नरेन्द्रकन्या-
मिमामहं ब्राह्मण साधु मन्ये ॥ २६

न तद्धनुर्मन्दबलेन शक्यं
मौर्व्या समायोजयितुं तथा हि ।
न चाकृतास्त्रेण न हीनजेन
लक्ष्यं तथा पातयितुं हि शक्यम् ॥ २७

तस्मान्न तापं दुहितुर्निमित्तं
पञ्चालराजोऽर्हति कर्तुमद्य ।
न चापि तत्पातनमन्यथेह
कर्तुं हि शक्यं भुवि मानवेन ॥ २८

एवं ब्रुवत्येव युधिष्ठिरे तु
पञ्चालराजस्य समीपतोऽन्यः ।
तत्राजगामाशु नरो द्वितीयो
निवेदयिष्यन्निह सिद्धमन्नम् ॥ २९

इति श्रीमहा० आदिप० वैवाहिकप० पुरोहितयुधिष्ठिरसंवादे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

---

## १९४

दूत उवाच ।

जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा
विवाहहेतोरुपसंस्कृतं च ।
तदाप्नुवध्वं कृतसर्वकार्याः
कृष्णां च तत्रैव चिरं न कार्यम् ॥ १

इमे रथाः काञ्चनपद्मचित्राः
सदश्वयुक्ता वसुधाधिपार्हाः ।
एतान्समारुह्य परैत सर्वे
पञ्चालराजस्य निवेशनं तत् ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

ततः प्रयाताः कुरुपुङ्गवास्ते
पुरोहितं तं परियाप्य सर्वे ।
आस्थाय यानानि महान्ति तानि
कुन्ती च कृष्णा च सहैकयाने ॥ ३

श्रुत्वा तु वाक्यानि पुरोहितस्य
यान्युक्तवान्भारत धर्मराजः ।
जिज्ञासयैवाथ कुरूत्तमानां
द्रव्याण्यनेकान्युपसंजहार ॥ ४

फलानि माल्यानि च संस्कृतानि
वर्माणि चर्माणि तथासनानि ।
गाश्चैव राजन्नथ चैव रज्जू-
र्बीजानि चान्यानि कृषीनिमित्तम् ॥ ५

अन्येषु शिल्पेषु च यान्यपि स्युः
सर्वाणि कृत्यान्यखिलेन तत्र ।
क्रीडानिमित्तान्यपि यानि तत्र
सर्वाणि तत्रोपजहार राजा ॥ ६

---

शुल्कं मूल्यपण तेनैव अनुवृत्ता अनुसृता ॥ २३ ॥ तदेवाह कृतेनेति ॥ २४ ॥ सौमकिर्द्रुपद ॥ २५ ॥ संप्राप्यरूपा अस्माकं योग्यस्वरूपाम् ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १९३ ॥

१९४

जन्यार्थमिति । जन्यार्थं वरपक्षीयजनार्थम् । कृष्णा च तत्रैवाप्नुवध्वं पाणिग्रहणविधिना । कृष्णा चेति पाठे आप्नोतु अन्नं भवदीयत्वात् भवद्भि सहैवेति भाव ॥ १ ॥ परियाप्य प्रस्थाप्य ॥ ३ ॥ पुन क्षत्रियत्वं परीक्षितुं द्रव्याण्युपसंजहार एकत्र कृत्वा दर्शितवान् ॥ ४ ॥ फलवर्म गवादीनि क्रमात्त्रैवर्णिकयोग्यानि ॥ ५ ॥ कृन्तन्तीति कृत्यानि । कृती छेदनेस्मात् क्यप् । शिल्पिना प्रहरणानि वास्यादीनि । क्रीडानिमित्तानि शुष्केष्टिसदोरंजनादिरूपा ब्राह्मणक्षत्रियादीना क्रीडास्तासा साधनानि । अल्पानि यज्ञपात्राणि कृत्रिमाश्वादीनि सरङ्गपटानि च । तत्र देशे तत्र काले तत्र परीक्षणे निमित्ते ॥ ६ ॥

वर्माणि चर्माणि च भानुमन्ति
खड्गा महान्तोऽश्वरथाश्च चित्राः ।
धनूंषि चाग्र्याणि शराश्च चित्राः
शक्त्यृष्टयः काञ्चनभूषणाश्च ॥ ७

प्रासा भुशुण्ड्यश्च परश्वधाश्च
सांग्रामिकं चैव तथैव सर्वम् ।
शय्यासनान्युत्तमवस्तुवन्ति
तथैव वासो विविधं च तत्र ॥ ८

कुन्ती तु कृष्णां परिगृह्य साध्वी-
मन्तःपुरं द्रुपदस्याविवेश ।
स्त्रियश्च तां कौरवराजपत्नीं
प्रत्यर्चयामासुरदीनसत्त्वाः ॥ ९

तान्सिंहविक्रान्तगतीन्निरीक्ष्य
महर्षभाक्षानजिनोत्तरीयान् ।
गूढोत्तरांसान्भुजगेन्द्रभोग-
प्रलम्बबाहून्पुरुषप्रवीरान् ॥ १०

राजा च राज्ञः सचिवाश्च सर्वे
पुत्राश्च राज्ञः सुहृदस्तथैव ।
प्रेष्याश्च सर्वे निखिलेन राजन्
हर्षं समापेतुरतीव तत्र ॥ ११

ते तत्र वीराः परमासनेषु
सपादपीठेष्वविशङ्कमानाः ।
यथानुपूर्वं विविशुर्नराग्र्याः
तथा महार्हेषु न विस्मयन्तः ॥ १२

उच्चावचं पार्थिवभोजनीयं
पात्रीषु जाम्बूनदराजतीषु ।
दासाश्च दास्यश्च सुमृष्टवेषाः
संभोजकाश्चाप्युपजह्रुरन्नम् ॥ १३

ते तत्र भुक्त्वा पुरुषप्रवीरा
यथात्मकामं सुभृशं प्रतीताः ।
उत्क्रम्य सर्वाणि वसूनि राजन्
सांग्रामिकं ते विविशुर्नृवीराः ॥ १४

तल्लक्षयित्वा द्रुपदस्य पुत्रो
राजा च सर्वैः सह मन्त्रिमुख्यैः ।
समर्थयामासुरुपेत्य हृष्टाः
कुन्तीसुतान्पार्थिवराजपुत्रान् ॥ १५

इति श्रीमहा० आदि० वैवाहिकपर्वणि युधिष्ठिरादिपरीक्षणे चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९४॥

---

## १९५

वैशंपायन उवाच ।

तत आहूय पाञ्चाल्यो राजपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
परिग्रहेण ब्राह्मेण परिगृह्य महाद्युतिः ॥ १
पर्यपृच्छददीनात्मा कुन्तीपुत्रं सुवर्चसम् ।
कथं जानीम भवतः क्षत्रियान्ब्राह्मणानुत ॥ २
वैश्यान्वा गुणसंपन्नानथवा शूद्रयोनिजान् ।
मायामास्थाय वा विप्रांश्चरतः सर्वतो दिशम् ॥ ३
कृष्णाहेतोरनुप्राप्ता देवाः संदर्शनार्थिनः ।
ब्रवीतु नो भवान्सत्यं संदेहो ह्यत्र नो महान् ॥ ४
अपि नः संशयस्यान्ते मनः संतुष्टिमावहेत् ।
अपि नो भागधेयानि शुभानि स्युः परंतप ॥ ५
इच्छया ब्रूहि तत्सत्यं सत्यं राजसु शोभते ।
इष्टापूर्तेन च तथा वक्तव्यमनृतं न तु ॥ ६
श्रुत्वा ह्यमरसंकाश तव वाक्यमरिंदम ।
ध्रुवं विवाहकरणमास्थास्यामि विधानतः ॥ ७

युधिष्ठिर उवाच ।

मा राजन्विमना भूस्त्वं पाञ्चाल्य प्रीतिरस्तु ते ।
ईप्सितस्ते ध्रुवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम् ॥ ८
वयं हि क्षत्रिया राजन्पाण्डोः पुत्रा महात्मनः ।
ज्येष्ठं मां विद्धि कौंतेयं भीमसेनार्जुनाविमौ ॥ ९

---

उत्तमवस्तूनि रत्नखचितताम्बूलधानीप्रभृतीनि तद्वन्ति । मतोर्मस्यवत्त्वमार्षम् ॥ ८ ॥ गूढोत्तरांसान्गूढजत्रून् ॥१०॥ सुमृष्टः अभ्यञ्जनवासोलंकरणादिभिः सम्यक् परिष्कृतः पाण्डवानां वेषो यैस्ते सुमृष्टवेषाः । ते च संभोजकाश्च यथायोग्यं ताम्बूलादिकमपूपादिकं चान्नमदनीयं उपाजह्रुः ॥ १३ ॥ इति आदि० नैल० भारतभावदीपे चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

१९५

तत इति । ब्राह्मेण ब्राह्मणार्थमुचितेनाभ्युत्थानादिना । परिग्रहेण आतिथ्येन ॥ १ ॥ इष्टं यागादि आपूर्तं वाप्यादि तव धर्मकृत्यं नश्येद्यद्यसत्यं ब्रूया इत्यर्थः ॥ ६ ॥

आभ्यां तव सुता राजन्निर्जिता राजसंसदि ।
यमौ च तत्र कुन्ती च यत्र कृष्णा व्यवस्थिता ॥
व्येतु ते मानसं दुःखं क्षत्रियाः स्मो नरर्षभ ।
पद्मिनीव सुतेयं ते ह्रदादन्यह्रदं गता ॥ ११
इति तथ्यं महाराज सर्वमेतद्ब्रवीमि ते ।
भवान्हि गुरुरस्माकं परमं च परायणम् ॥ १२
वैशंपायन उवाच ।
ततः स द्रुपदो राजा हर्षव्याकुललोचनः ।
प्रतिवक्तुं मुदा युक्तो नाशकत्तं युधिष्ठिरम् ॥ १३
यत्नेन तु स तं हर्षं संनिगृह्य परंतपः ।
अनुरूपं तदा वाचा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ १४
पप्रच्छ चैनं धर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरात् ।
स तस्मै सर्वमाचख्यावानुपूर्व्येण पाण्डवः ॥ १५
तच्छ्रुत्वा द्रुपदो राजा कुन्तीपुत्रस्य भाषितम् ।
विगर्हयामास तदा धृतराष्ट्रं नरेश्वरम् ॥ १६
आश्वासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
प्रतिजज्ञे च राज्याय द्रुपदो वदतां वरः ॥ १७
ततः कुन्ती च कृष्णा च भीमसेनार्जुनावपि ।
यमौ च राज्ञा संदिष्टं विविशुर्भवनं महत् ॥ १८
तत्र ते न्यवसन्राजन्यज्ञसेनेन पूजिताः ।
प्रत्याश्वस्तस्ततो राजा सह पुत्रैरुवाच तम् ॥ १९
गृह्णातु विधिवत्पाणिमद्यायं कुरुनन्दनः ।
पुण्येऽहनि महाबाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम् ॥ २०
वैशंपायन उवाच ।
तमब्रवीत्ततो राजा धर्मात्मा च युधिष्ठिरः ।
ममापि दारसंबन्धः कार्यस्तावद्विशांपते ॥ २१
द्रुपद उवाच ।
भवान्वा विधिवत्पाणिं गृह्णातु दुहितुर्मम ।
यस्य वा मन्यसे वीर तस्य कृष्णामुपादिश ॥२२
युधिष्ठिर उवाच ।
सर्वेषां महिषी राजन्द्रौपदी नो भविष्यति ।
एवं प्रव्याहृतं पूर्वं मम मात्रा विशांपते ॥ २३
अहं चाप्यनिविष्टो वै भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पार्थेन विजिता चैषा रत्नभूता सुता तव ॥ २४
एष नः समयो राजन् रत्नस्य सह भोजनम् ।
न च तं हातुमिच्छामः समयं राजसत्तम ॥ २५
सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति ।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां गृह्णातु ज्वलने करान् ॥ २६
द्रुपद उवाच ।
एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन ।
नैकस्य बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित् ॥ २७
लोकवेदविरुद्धं त्वं नाधर्मं धर्मविच्छुचिः ।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी ॥ २८
युधिष्ठिर उवाच ।
सूक्ष्मो धर्मो महाराज नास्य विद्मो वयं गतिम् ।
पूर्वेषामानुपूर्व्येण यातं वर्त्मानुयामहे ॥ २९
न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
एवं चैव वदन्त्यम्बा मम चैतन्मनोगतम् ॥ ३०
एष धर्मो ध्रुवो राजंश्चरैनमविचारयन् ।
मा च शङ्का तत्र ते स्यात्कथंचिदपि पार्थिव॥३१
द्रुपद उवाच ।
त्वं च कुन्ती च कौन्तेय धृष्टद्युम्नश्च मे सुतः ।
कथयन्त्विति कर्तव्यं श्वः काले करवामहे ॥ ३२
वैशंपायन उवाच ।
ते समेत्य ततः सर्वे कथयन्ति स्म भारत ।
अथ द्वैपायनो राजन्नभ्यागच्छद्यदृच्छया ॥ ३३

इति श्रीमहाभा० आदिप० वैवाहिकप० द्वैपायनागमने पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

---

क्षणं देवपूजादिपर्वोत्सवं विवाहात्प्राक्कालीनं कुलधर्मम् 'क्षणः पर्वोत्सवेपि स्यात्तथा मानेष्यनेहस.' इति मेदिनी॥२० अनिविष्टः अकृतविवाहः ॥२४॥ समयो नियमः ॥ २५ ॥ ज्वलने ज्वलनसमीपे करान् गृह्णातु पञ्चपाणिग्रहणानि करोतु ॥ २६ ॥ पुंसः पुमांसः यद्वा पुंसः वेदकर्तुः परमात्मनःसकाशान्न श्रूयन्ते । तस्मान्नैका द्वौ पतीं विन्दत इति वेदविरुद्धं च । अविहितं निषिद्धं चैतदित्यर्थः ॥ २७ ॥ सूक्ष्मः 'नैकस्यै बहवः सहपतयः' इति श्रुत्वा सहेति युगपद्बहुपतित्वनिषेधो विहितो न तु समयभेदेन ततश्चापि निषिद्धम् । मात्रा समेत्य भुङ्क्तेत्याज्ञप्तं च न लङ्घनीयम् । पित्रोराज्ञया निषिद्धमपि कर्तव्यम् । परशुरामकृतमातृवधवत् । किमुताऽनिषिद्धमिति भावः । पूर्वेषां प्रचेत.प्रभृतीनां तैर्यातं वर्त्म बहूनामेकपत्नीत्वं अनुयामहे । तच्च आनुपूर्व्येणैव नत्वक्रमेण ॥ २९ ॥ इति आ० नै० भा० भा० पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

## १९६

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे पाञ्चाल्यश्च महायशाः ।
प्रत्युत्थाय महात्मानं कृष्णं सर्वेभ्यवादयन् ॥ १
प्रतिनन्द्य स तां पूजां पृष्ट्वा कुशलमन्ततः ।
आसने काञ्चने शुद्धे निषसाद महामनाः ॥ २
अनुज्ञातास्तु ते सर्वे कृष्णेनामिततेजसा ।
आसनेषु महार्हेषु निषेदुर्द्विपदां वराः ॥ ३
ततो मुहूर्तान्मधुरां वाणीमुच्चार्य पार्षतः ।
पप्रच्छ तं महात्मानं द्रौपद्यर्थं विशांपते ॥ ४
कथमेका बहूनां स्याद्धर्मपत्नी न संकरः ।
एतन्मे भगवान्सर्वं प्रब्रवीतु यथातथम् ॥ ५

व्यास उवाच ।

अस्मिन्धर्मे विप्रलब्धे लोकवेदविरोधके ।
यस्य यस्य मतं यद्यच्छ्रोतुमिच्छामि तस्य तत् ६

द्रुपद उवाच ।

अधर्मोऽयं मम मतो विरुद्धो लोकवेदयोः ।
न ह्येका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम ॥ ७
न चाप्याचरितः पूर्वैरयं धर्मो महात्मभिः ।
न चाप्यधर्मो विद्वद्भिश्चरितव्यः कथंचन ॥ ८
ततोहं न करोम्येनं व्यवसायं क्रियां प्रति ।
धर्मः सदैव संदिग्धः प्रतिभाति हि मे त्वयम् ॥९

धृष्टद्युम्न उवाच ।

यवीयसः कथं भार्यां ज्येष्ठो भ्राता द्विजर्षभ ।
ब्रह्मन्समभिवर्तेत सवृत्तः संस्तपोधन ॥ १०
न तु धर्मस्य सूक्ष्मत्वाद्गतिं विद्म कथंचन ।
अधर्मो धर्म इति वा व्यवसायो न शक्यते ॥ ११
कर्तुमस्मद्विधैर्ब्रह्मंस्ततोऽयं न व्यवस्यते ।
पञ्चानां महिषी कृष्णा भवत्विति कथंचन ॥ १२

युधिष्ठिर उवाच ।

न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
वर्तते हि मनो मेऽत्र नैषो धर्मः कथंचन ॥ १३
श्रूयते हि पुराणेपि जटिला नाम गौतमी ।
ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतां वरा ॥ १४
तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः ।
संगताभूद्दश भ्रातॄनेकनाम्नः प्रचेतसः ॥ १५
गुरोर्हि वचनं प्राहुर्धर्म्यं धर्मज्ञसत्तम ।
गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः ॥ १६
सा चाप्युक्तवती वाचं भैक्षवद्भुज्यतामिति ।
तस्मादेतदहं मन्ये परं धर्मं द्विजोत्तम ॥ १७

कुन्त्युवाच ।

एवमेतद्यथा प्राह धर्मचारी युधिष्ठिरः ।
अनृतान्मे भयं तीव्रं मुच्येऽहमनृतात्कथम् ॥ १८

व्यास उवाच ।

अनृतान्मोक्ष्यसे भद्रे धर्मश्चैष सनातनः ।
ननु वक्ष्यामि सर्वेषां पाञ्चाल शृणु मे स्वयम् १९
यथायं विहितो धर्मो यतश्चायं सनातनः ।
यथा च प्राह कौन्तेयस्तथा धर्मो न संशयः २०

वैशंपायन उवाच ।

तत उत्थाय भगवान्व्यासो द्वैपायनः प्रभुः ।
करे गृहीत्वा राजानं राजवेश्म समाविशत् ॥२१
पाण्डवाश्चापि कुन्ती च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विविशुर्यत्र तत्रैव प्रतीक्षन्ते स्म तावुभौ ॥ २२
ततो द्वैपायनस्तस्मै नरेन्द्राय महात्मने ।
आचख्यौ तद्यथा धर्मो बहूनामेकपत्निता ॥ २३

इति श्रीमहाभा० आदिप० वैवाहिकप० व्यासवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

---

१९६

ततस्ते इति । कृष्णं व्यासम् ॥ १ ॥ विप्रलब्धे अतिगहनतया शास्त्रीयेन कापट्येन हते । अत एव लोकवेदविरोधके ॥ ६ ॥ क्रियां प्रति व्यवसायं निश्चयम् ॥ ९ ॥ न मे इति । वक्तृत्वं वाच एव धर्मो न पुरुषस्य निर्विशेषस्य अत उक्तं न मे वागिति । एवं मतिमनसोरपि ज्ञेयम् । वागादीनां वक्तृत्वादिधर्मवतां असङ्गेन पुंसा संबन्धस्तु न वास्तवः संभवति । अत एवोक्तम् । 'निःसंगेस्य ससंगेन कूटस्थस्य विकारिणा । आत्मनोऽनात्मनायोगो वास्तवो नोपपद्यते' इति । अत्र पञ्चानामेकपत्नीत्वे ॥ १३ ॥ राजानं द्रुपदम् ॥ २१ ॥ उभौ व्यासद्रुपदौ ॥ २२ ॥ अत्र यत्तद्देवाददुरित्यादिना त्रिपथगां नदीमित्यन्तो नारायणुपाख्यानग्रन्थोऽध्यायद्वयात्मकः क्वचित्पुस्तके पठ्यते ॥ २३ ॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

## १९७

व्यास उवाच ।
पुरा वै नैमिषारण्ये देवाः सत्रमुपासते ।
तत्र वैवस्वतो राजन् शामित्रमकरोत्तदा ॥ १
ततो यमो दीक्षितस्तत्र राजन्
नामारयत्कंचिदपि प्रजानाम् ।
ततः प्रजास्ता बहुला बभूवुः
कालातिपातान्मरणप्रहीणाः ॥ २
सोमश्च शक्रो वरुणः कुबेरः
साध्या रुद्रा वसवोऽथाश्विनौ च ।
प्रजापतिर्भुवनस्य प्रणेता
समाजग्मुस्तत्र देवास्तथाऽन्ये ॥ ३
ततोऽब्रुवन्लोकगुरुं समेता
भयात्तीव्रान्मानुषाणां विवृध्द्या ।
तस्माद्भयादुद्विजन्तः सुखेप्सवः
प्रयाम सर्वे शरणं भवन्तम् ॥ ४
पितामह उवाच ।
किं वो भयं मानुषेभ्यो यूयं सर्वे यदाऽमराः ।
मा वो मर्त्यसकाशाद्वै भयं भवितुमर्हति ॥ ५
देवा ऊचुः ।
मर्त्या अमर्त्याः संवृत्ता न विशेषोऽस्ति कश्चन ।
अविशेषादुद्विजन्तो विशेषार्थमिहागताः ॥ ६
श्रीभगवानुवाच ।
वैवस्वतो व्यापृतः सत्रहेतो-
स्तेन त्विमे न म्रियन्ते मनुष्याः ।
तस्मिन्नेकाग्रे कृतसर्वकार्ये
तत एषां भवितैवान्तकालः ॥ ७
वैवस्वतस्यैव तनुर्विभक्ता
वीर्येण युष्माकमुत प्रवृद्धा ।
सैषामन्तो भविता ह्यन्तकाले
न तत्र वीर्यं भविता नरेषु ॥ ८
व्यास उवाच ।
ततस्तु ते पूर्वजदेववाक्यं
श्रुत्वा जग्मुर्यत्र देवा यजन्ते ।
समासीनास्ते समेता महाबला
भागीरथ्यां ददृशुः पुण्डरीकम् ॥ ९
दृष्ट्वा च तद्विस्मितास्ते बभूवु-
स्तेषामिन्द्रस्तत्र शूरो जगाम ।
सोऽपश्यद्योषामथ पावकप्रभां
यत्र देवी गङ्गा सततं प्रसूता ॥ १०
सा तत्र योषा रुदती जलार्थिनी
गङ्गां देवीं व्यवगाह्य व्यतिष्ठत् ।
तस्याश्रुबिन्दुः पतितो जले य-
स्तत्पद्ममासीदथ तत्र काञ्चनम् ॥ ११
तदद्भुतं प्रेक्ष्य वज्री तदानी-
मपृच्छत्तां योषितमन्तिकाद्वै ।
का त्वं भद्रे रोदिषि कस्य हेतो-
र्वाक्यं तथ्यं कामयेऽहं ब्रवीहि ॥ १२
स्त्र्युवाच ।
त्वं वेत्स्यसे मामिह याऽस्मि शक्र
यदर्थं चाहं रोदिमि मन्दभाग्या ।
आगच्छ राजन्पुरतो गमिष्ये
द्रष्टाऽसि तद्रोदिमि यत्कृतेऽहम् ॥ १३
व्यास उवाच ।
तां गच्छन्तीमन्वगच्छत्तदानीं
सोऽपश्यदारात्तरुणं दर्शनीयम् ।
सिद्धासनस्थं युवतीसहायं
क्रीडन्तमक्षैर्गिरिराजमूर्ध्नि ॥ १४
तमब्रवीद्देवराजो ममेदं
त्वं विद्धि विद्वन्भुवनं वशे स्थितम् ।
ईशोऽहमस्मीति समन्युरब्रवी-
द्दृष्ट्वा तमक्षैः सुभृशं प्रमत्तम् ॥ १५
क्रुद्धं च शक्रं प्रसमीक्ष्य देवो
जहास शक्रं च शनैरुदैक्षत ।
संस्तम्भितोऽभूदथ देवराज-
स्तेनेक्षितः स्थाणुरिवावतस्थे ॥ १६

---

१९७

पुरेति । शमिता यज्ञे पशुवधकर्ता तस्य कर्म शामित्रम् ॥ १ ॥ यमो दीक्षित. । सत्रे हि ये यजमानास्त ऋत्विज. सर्वेषा दीक्षास्ति यजमानत्वात् । कालातिपातात् मरणकालातिक्रमात् ॥ २ ॥ यत्र प्रजापतिस्तत्र सोमादय. समाजग्मु ॥ ३ ॥ तस्मिन्कृतसर्वकार्ये समापितयज्ञे सति एषां लोकानामन्तकालो भविता ॥ ७ ॥ अत वैवस्वतस्यैव तनु' प्रवृद्धा योगबलेन विपुला विभक्ता द्वैधीभावं गता सती । सा एषां अन्तो विनाशो भविता वीर्यं देवतासाम्यम् ॥ ८ ॥ तस्या. अश्रुबिन्दु संधिरार्ष ॥ ११ ॥ कामये श्रोतुम् ॥ १२ ॥ युवतीसहाय रुद्रम् ॥१४ ॥ अक्षैः हेतुभि प्रमत्तं असावधानम् ॥ १५ ॥ संस्तम्भित. वज्रं मोक्तुं उद्यतः सन् अत एव स्थाणुरिव ॥ १६ ॥

यदा तु पर्याप्तमिहास्य क्रीडया
तदा देवीं रुदतीं तामुवाच ।
आनीयतामेष यतोऽहमारा-
न्नैनं दर्पः पुनरप्याविशेत ॥ १७
ततः शक्रः स्पृष्टमात्रस्तया तु
स्रस्तैरङ्गैः पतितोऽभूद्धरण्याम् ।
तमब्रवीद्भगवानुग्रतेजा
मैवं पुनः शक्र कृथाः कथंचित् ॥ १८
निवर्तयैनं च महाद्रिराजं
बलं च वीर्यं च तवाप्रमेयम् ।
छिद्रस्य चैवाविश मध्यमस्य
यत्रासते त्वद्विधाः सूर्यभासः ॥ १९
स तद्विवृत्य विवरं महागिरे-
स्तुल्यद्युतींश्चतुरोन्यान्ददर्श ।
स तानभिप्रेक्ष्य बभूव दुःखितः
कच्चिन्नाहं भविता वै यथेमे ॥ २०
ततो देवो गिरिशो वज्रपाणिं
विवृत्य नेत्रे कुपितोऽभ्युवाच ।
दरीमेतां प्रविश त्वं शतक्रतो
यन्मां बाल्यादवमंस्थाः पुरस्तात् ॥ २१
उक्तस्त्वेवं विभुना देवराजः
प्रावेपतार्तो भृशमेवाभिषङ्गात् ।
स्रस्तैरङ्गैरनिलेनेव नुन्न-
मश्वत्थपत्रं गिरिराजमूर्ध्नि ॥ २२
स प्राञ्जलिर्वै वृषवाहनेन
प्रवेपमानः सहसैवमुक्तः ।
उवाच देवं बहुरूपमुग्र-
मद्याशेषस्य भुवनस्य त्वं भवाद्यः ॥ २३
तमब्रवीदुग्रवर्चाः प्रहस्य
नैवंशीलाः शेषमिहाप्नुवन्ति ।
एतेऽप्येवं भवितारः पुरस्ता-
त्तस्मादेतां दरीमाविश्य शेध्व ॥ २४
तत्र ह्येवं भवितारो न संशयो
योनिं सर्वे मानुषीमाविशध्वम् ।
तत्र यूयं कर्म कृत्वाऽविषह्यं
बहूनन्यान्निधनं प्रापयित्वा ॥ २५
आगन्तारः पुनरेवेन्द्रलोकं
स्वकर्मणा पूर्वजितं महार्हम् ।
सर्वं मया भाषितमेतदेवं
कर्तव्यमन्यद्विविधार्थयुक्तम् ॥ २६

पूर्वेन्द्रा ऊचुः ।

गमिष्यामो मानुषं देवलोका-
द्दुराधरो विहितो यत्र मोक्षः ।
देवास्त्वस्मानादधीरञ्जनन्यां
धर्मो वायुर्मघवानश्विनौ च ।
अस्त्रैर्दिव्यैर्मानुषान्योधयित्वा
आगन्तारः पुनरेवेन्द्रलोकम् ॥ २७

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वज्रपाणिर्वचस्तु
देवश्रेष्ठं पुनरेवेदमाह ।
वीर्येणाहं पुरुषं कार्यहेतो-
र्दद्यामेषां पञ्चमं मत्प्रसूतम् ॥ २८
विश्वभुग्भूतधामा च शिबिरिन्द्रः प्रतापवान् ।
शान्तिश्चतुर्थस्तेषां वै तेजस्वी पञ्चमःस्मृतः ॥२९
तेषां कामं भगवानुग्रधन्वा
प्रादादिष्टं सन्निसर्गाद्यथोक्तम् ।
तां चाप्येषां योषितं लोककान्तां
श्रियं भार्यां व्यदधान्मानुषेषु ॥ ३०
तैरेव सार्धं तु ततः स देवो
जगाम नारायणमप्रमेयम् ।
अनन्तमव्यक्तमजं पुराणं
सनातनं विश्वमनन्तरूपम् ॥ ३१
स चापि तद्व्यदधात्सर्वमेव
ततः सर्वे संबभूवुर्धरण्याम् ।
स चापि केशौ हरिरुद्बबर्ह
शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् ॥ ३२

---

क्रीडया। पर्याप्ते क्रीडा समाप्ता॥१७॥एनं बिलद्वाररोधिनं अद्रिराजं निवर्तय दूरीकुरु यथा बलादिकं तवाप्रमेयं तथा निवर्तय ॥१९॥ ततः शीघ्रं अप्रवेशाद्धेतोः ॥ २१ ॥ एवं दरीं प्रविशेत्युक्तः उवाच हे भव अद्य त्वं अशेषस्य भुवनस्य आद्यः पतिरसि । अद्येत्यनेन मां जित्वैव न त्वन्यथेति सूचितम् ॥ २३॥ शेषं प्रसादम् 'शेषः संकर्षणे वधे अनन्ते ना प्रसादे च' इति मेदिनी ॥२४॥ दुराधरो दुष्प्रापः ॥ २७ ॥ वीर्येण शुक्रद्वारा पुरुषं अंशभूतं दद्यां स्वयं तु आधिकारिकत्वादिहैव तिष्ठेयमिति भावः ॥ २८ ॥ तेजस्वी इन्द्रांशः ॥ २९ ॥ सन्निसर्गात्सुस्वभावात् । श्रियमिति । द्रौपदी स्वर्गश्रीः ताम् ॥ ३० ॥ तैः विश्वभुगादिभिः स देवो महादेवः ॥ ३१ ॥ व्यदधात् विहितवान् आज्ञप्तवानित्यर्थः । उद्बबर्ह उद्धृतवान् ॥ ३२ ॥

तौ चापि केशौ निविशेतां यदूनां
कुले स्त्रियौ देवकी रोहिणीं च ।
तयोरेको बलदेवो बभूव
योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः ।
कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव
केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः ॥ ३३
ये ते पूर्वं शक्ररूपा निबद्धा-
स्तस्यां दर्यां पर्वतस्योत्तरस्य ।
इहैव ते पाण्डवा वीर्यवन्तः
शक्रस्यांशः पाण्डवः सव्यसाची ॥३४
एवमेते पाण्डवाः संबभूवु-
र्ये ते राजन्पूर्वमिन्द्रा बभूवुः ।
लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा
भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा ॥ ३५
कथं हि स्त्री* कर्मणा ते महीतलात्
समुत्तिष्ठेदन्यतो दैवयोगात् ।
यस्या रूपं सोमसूर्यप्रकाशं
गन्धश्चास्याः क्रोशमात्रात्प्रवाति ॥ ३६
इदं चान्यत्प्रीतिपूर्वं नरेन्द्र
ददानि ते वरमत्यद्भुतं च ।
दिव्यं चक्षुः पश्य कुन्तीसुतांस्त्वं
पुण्यैर्दिव्यैः पूर्वदेहैरुपेतान् ॥ ३७

वैशंपायन उवाच ।

ततो व्यासः परमोदारकर्मा
शुचिर्विप्रस्तपसा तस्य राज्ञः ।
चक्षुर्दिव्यं प्रददौ तांश्च सर्वान्
राजाऽपश्यत्पूर्वदेहैर्यथावत् ॥ ३८
ततो दिव्यान्हेमकिरीटमालिनः
शक्रप्रख्यान्पावकादित्यवर्णान् ।
बद्धापीडांश्चारुरूपांश्च यूनो
व्यूढोरस्कांस्तालमात्रान्ददर्श ॥ ३९
दिव्यैर्वस्त्रैररजोभिः सुगन्धै-
र्माल्यैश्चाग्र्यैः शोभमानानतीव ।
साक्षात्त्र्यक्षान्वा वसूंश्चापि रुद्रा-
नादित्यान्वा सर्वगुणोपपन्नान् ॥ ४०
तान्पूर्वेन्द्रानभिवीक्ष्याभिरूपान्
शक्रात्मजं चेन्द्ररूपं निशाम्य ।
प्रीतो राजा द्रुपदो विस्मितश्च
दिव्यां मायां तामवेक्ष्याप्रमेयाम् ॥ ४१
तां चैवाग्र्यां स्त्रियमतिरूपयुक्तां
दिव्यां साक्षात्सोमवह्निप्रकाशाम् ।
योग्यां तेषां रूपतेजोयशोभिः
पत्नीं मत्वा हृष्टवान्पार्थिवेन्द्रः ॥ ४२
स तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यरूपं
जग्राह पादौ सत्यवत्याः सुतस्य ।
नैतच्चित्रं परमर्षे त्वयीति
प्रसन्नचेताः स उवाच चैनम् ॥ ४३

व्यास उवाच ।

आसीत्तपोवने काचिदृषेः कन्या महात्मनः ।
नाध्यगच्छत्पतिं सा तु कन्या रूपवती सती ४४
तोषयामास तपसा सा किलोग्रेण शंकरम् ।
तामुवाचेश्वरः प्रीतो वृणु काममिति स्वयम्॥४५
सैवमुक्ताऽब्रवीत्कन्यां देवं वरदमीश्वरम् ।
पतिं सर्वगुणोपेतमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ ४६
ददौ तस्यै स देवेशस्तं वरं प्रीतमानसः ।
पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यन्तीति शंकरः ॥ ४७
सा प्रसादयती देवमिदं भूयोऽभ्यभाषत ।
एकं पतिं गुणोपेतं त्वत्तोऽर्हामीति शंकर ॥ ४८
तां देवदेवः प्रीतात्मा पुनः प्राह शुभं वचः ।
पञ्चकृत्वस्त्वयोक्तोऽहं पतिं देहीति वै पुनः ॥ ४९

---

अत्र केशावेव रेतोरूपौ । पाण्डवानामिव रामकृष्णयोरपि प्रकरणसंगत्यर्थं साक्षाद्दिवरेतस उत्पत्तेरवश्यवक्तव्यत्वात् । अत एव देवक्या रोहिण्या च साक्षात्केशप्रवेश उच्यते न तु वसुदेवे । तथा सति तु 'देवाना रेतो वर्ष वर्षस्य रेत ओषधय.'इत्यादि श्रौतप्रमाण्याऽस्मदादिवत्तयोरपि व्यवधानेन देवप्रभवत्वं स्यात् । तथा च । एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययमिति भगवतः साक्षान्मत्स्याद्यवतारबीजत्वमुच्यमानं विरुध्येत । अपि च केशरेतसोर्देहजत्वे समानेपि रेत.प्रभवत्वेऽर्वाक्स्रोतस्त्वेन मनुष्यत्वं पुत्रत्वं च स्यात् । तथा च'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' इति श्रीमद्भागवतोक्ति संगच्छते । न च केशोद्धरणात्कृष्णस्याप्यंशत्वं प्रतीयत इति वाच्यम् । केशस्य देहावयवत्वाभावात् । तस्मान्नमुचिवधे कर्तव्ये यथाऽपा फेने वज्रस्य प्रवेश एवं देवकीरोहिण्योर्जठरप्रवेशे कर्तव्ये केशद्वयेन द्वारभूतेन भगवत. कात्स्न्येनैवाविर्भावो द्रष्टव्य इति युक्तम् ॥ ३३ ॥ दिव्यं द्योतमानं दिवि विहितं वा सार्वज्ञ्यप्रदत्वात् ॥३७॥ तस्य राज्ञ तस्मै राज्ञे ॥ ३८ ॥ बद्धापीडान् परिहितालंकारान् । तालमात्रान् तालवृक्षप्रमाणान् ॥ ३९ ॥

* ते कर्मणा यजनेन ।

तत्तथा भविता भद्रे वचस्तद्भद्रमस्तु ते ।
देहमन्यं गतायास्ते सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ५०
द्रुपदस्यैषा हि सा जज्ञे सुता वै देवरूपिणी ।
पञ्चानां विहिता पत्नी कृष्णा पार्षत्यनिन्दिता ५१
स्वर्गश्रीः पाण्डवार्थं तु समुत्पन्ना महामखे ।
सेह तप्त्वा तपो घोरं दुहितृत्वं तवागता ॥ ५२
सैषा देवी रुचिरा देवजुष्टा
पञ्चानामेका स्वकृतेनेह कर्मणा ।
सृष्टा स्वयं देवपत्नी स्वयंभुवा
श्रुत्वा राजन्द्रुपदेष्टं कुरुष्व ॥ ५३

इति श्रीमहाभा० आदिप० वैवाहिकप० पञ्चेन्द्रोपाख्याने सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

---

## १९८

द्रुपद उवाच ।
अश्रुत्वैवं वचनं ते महर्षे
मया पूर्वं यतितं संविधातुम् ।
न वै शक्यं विहितस्यापयानं
तदेवेदमुपपन्नं विधानम् ॥ १
दिष्टस्य ग्रन्थिरनिवर्तनीयः
स्वकर्मणा विहितं नेह किंचित् ।
कृतं निमित्तं हि वरैकहेतो-
स्तदेवेदमुपपन्नं विधानम् ॥ २
यथैव कृष्णोक्तवती पुरस्ता-
न्नैकान्पतीन्मे भगवान्ददातु ।
स चाप्येवं वरमित्यब्रवीत्ताम्
देवो हि वेत्ता परमं यदत्र ॥ ३
यदि चैवं विहितः शंकरेण
धर्मोऽधर्मो वा नात्र ममापराधः ।
गृह्णन्त्विमे विधिवत्पाणिमस्या
यथोपजोषं विहितैषां हि कृष्णा ॥ ४
वैशंपायन उवाच ।
ततोऽब्रवीद्भगवान्धर्मराज-
मद्यैव पुण्याहमुत वः पाण्डवेयाः ।
अद्य पौष्यं योगमुपैति चन्द्रमाः
पाणिं कृष्णायास्त्वं गृहाणाद्य पूर्वम् ॥५
ततोऽराजा यज्ञसेनः सपुत्रो
जन्यार्थमुक्तं बहु तत्तदग्र्यम् ।
समानयामास सुतां च कृष्णा-
माप्लाव्य रत्नैर्बहुभिर्विभूष्य ॥ ६
ततस्तु सर्वे सुहृदो नृपस्य
समाजग्मुः सहिता मन्त्रिणश्च ।
द्रष्टुं विवाहं परमप्रतीता
द्विजाश्च पौराश्च यथा प्रधानाः ॥ ७
ततोऽस्य वेश्माग्र्यजनोपशोभितं
विस्तीर्णपद्मोत्पलभूषिताजिरम् ।
बलौघरत्नौघविचित्रमाबभौ
नभो यथा निर्मलतारकान्वितम् ॥ ८
ततस्तु ते कौरवराजपुत्रा
विभूषिताः कुण्डलिनो युवानः ।
महार्हवस्त्राम्बरचन्दनोक्षिताः
कृताभिषेकाः कृतमङ्गलक्रियाः ॥ ९
पुरोहितेनाग्निसमानवर्चसा
सहैव धौम्येन यथाविधि प्रभो ।
क्रमेण सर्वे विविशुस्ततः सदो
महर्षभागोष्ठमिवाभिनन्दिनः ॥ १०
ततः समाधाय स वेदपारगो
जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं हुताशनम् ।
युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मन्त्रवि-
न्नियोजयामास सहैव कृष्णया ॥ ११

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

१९८

अश्रुत्वेति । विहितस्य दैवोपस्थापितस्य अपयानं उपेक्षा । तदेव विधानं प्राकृतं उपपन्नं कर्तुं युक्तम् ॥ १ ॥ ग्रन्थिर्ग्रथना । स्वकर्मणा इदानीं तनेन विहितं सिद्धं निमित्तं तपः ॥ २ ॥ पौष्यं पुष्यत्यनेनेति तं न तु पुष्यं तस्या वैवाहिकत्वात् । पौष्पमिति पाठे पुष्पाय हितं बहुसंततिप्रदमित्यर्थः । हे आद्य हे ज्येष्ठ ॥ ५ ॥

प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणी
परिणाय्ययामास स वेदपारगः ।
ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं
पुरोहितो राजगृहाद्विनिर्ययौ ॥ १२

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा
वरस्त्रियस्ते जगृहुस्तदा करम् ।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो
महारथाः कौरववंशवर्धनाः ॥ १३

इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं
जगाद देवर्षिरतीतमानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा
बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ॥ १४

कृते विवाहे द्रुपदो धनं ददौ
महारथेभ्यो बहुरूपमुत्तमम् ।
शतं रथानां वरहेममालिनां
चतुर्युजां हेमखलीनमालिनाम् ॥ १५

शतं गजानामपि पद्मिनां तथा
शतं गिरीणामिव हेमशृङ्गिणाम् ।
तथैव दासीशतमग्र्ययौवनं
महार्हवेषाभरणाम्बरस्रजम् ॥ १६

पृथक्पृथक् दिव्यदृशां पुनर्ददौ
तदा धनं सौमकिरग्निसाक्षिकम् ।
तथैव वस्त्राणि विभूषणानि
प्रभावयुक्तानि महानुभावः ॥ १७

कृते विवाहे च ततस्तु पाण्डवाः
प्रभूतरत्नामुपलभ्य तां श्रियम् ।
विजह्रुरिन्द्रप्रतिमा महाबलाः
पुरे तु पाञ्चालनृपस्य तस्य ह ॥ १८

इति श्रीमहा० आदि० वैवाहिकपर्वणि द्रौपदीविवाहे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९८॥

## १९९

वैशंपायन उवाच ।

पाण्डवैः सह संयोगं गतस्य द्रुपदस्य ह ।
न बभूव भयं किंचिद्देवेभ्योऽपि कथंचन ॥ १

कुन्तीमासाद्य ता नार्यो द्रुपदस्य महात्मनः ।
नाम संकीर्तयन्त्योऽस्या जग्मुः पादौ स्वमूर्धभिः

कृष्णा च क्षौमसंवीता कृतकौतुकमङ्गला ।
कृताभिवादना श्वश्र्वा तस्थौ प्रह्वा कृताञ्जलिः॥३

रूपलक्षणसंपन्नां शीलाचारसमन्विताम् ।
द्रौपदीमवदत्प्रेम्णा पृथाशीर्वचनं शुभम् ॥ ४

यथेन्द्राणी हरिहये स्वाहा चैव विभावसौ ।
रोहिणी च यथा सोमे दमयन्ती यथा नले ॥ ५

यथा वैश्रवणे भद्रा वसिष्ठे चाप्यरुन्धती ।
यथा नारायणे लक्ष्मीस्तथा त्वं भव भर्तृषु ॥ ६

जीवसूर्वीरसूर्भद्रे बहुसौख्यसमन्विता ।
सुभगा भोगसंपन्ना यज्ञपत्नी पतिव्रता ॥ ७

अतिथीनागतान्साधून्वृद्धान्बालांस्तथा गुरून् ।
पूजयन्त्या यथान्यायं शश्वद्गच्छन्तु ते समाः ॥ ८

कुरुजाङ्गलमुख्येषु राष्ट्रेषु नगरेषु च ।
अनु त्वमभिषिच्यस्व नृपतिं धर्मवत्सला ॥ ९

पतिभिर्निर्जितामुर्वीं विक्रमेण महाबलैः ।
कुरु ब्राह्मणसात्सर्वामश्वमेधे महाक्रतौ ॥ १०

पृथिव्यां यानि रत्नानि गुणवन्ति गुणान्विते ।
तान्याप्नुहि त्वं कल्याणि सुखिनी शरदां शतम् ॥

यथा च त्वाभिनन्दामि वध्वद्य क्षौमसंवृताम् ।
तथा भूयोऽभिनन्दिष्ये जातपुत्रां गुणान्विताम् ॥

चतुर्युजा अश्वचतुष्टययुजाम् । हेममयं खलीनं अश्वमुखस्थं नियामकं 'लगाम' इति भाषया प्रसिद्धम् । रथप्रसङ्गाद्वा खलीनं युगं तेन मालिनाम् ॥ १५ ॥ पद्मानि गजोत्तमलक्षणानि तद्वता पद्मिनां श्रीमता वा । यद्वा हेमशृङ्गिणामिति दृष्टान्तानुगुण्यात्पद्मं पद्माकारं गजपल्याणं अष्टकोणमष्टस्तम्भं शिखरकलशादियुक्तं तद्वताम् ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १९८ ॥

१९९

पाण्डवैरिति ॥१॥ क्षुमा अतसी तद्विकारभूतं वस्त्रं क्षौमम् ॥ ३ ॥ जीवसूः आयुष्मत्संततिप्रसूः ॥ ७ ॥ अभिषिच्यस्व अभिषेकं प्राप्नुहि । नृपतिं पट्टाभिषिक्तं राजानमनु ॥ ९ ॥ हे वधु अद्य ॥ १२ ॥

वैशंपायन उवाच ।

ततस्तु कृतदारेभ्यः पाण्डुभ्यः प्राहिणोद्धरिः ।
वैदूर्यमणिचित्राणि हैमान्याभरणानिच ॥ १३
वासांसि च महार्हाणि नानादेश्यानि माधवः ।
कम्बलाजिनरत्नानि स्पर्शवन्ति शुभानि च ॥ १४
शयनासनयानानि विविधानि महान्ति च ।
वैदूर्यवज्रचित्राणि शतशो भाजनानि च ॥ १५
रूपयौवनदाक्षिण्यैरुपेताश्च स्वलंकृताः ।
प्रेष्याः संप्रददौ कृष्णो नानादेश्याः स्वलंकृताः ॥
गजान्विनीतान्भद्रांश्च सदश्वांश्च स्वलंकृतान् ।
रथांश्च दान्तान्सौवर्णैः शुभ्रैः पट्टैरलंकृतान् ॥ १७
कोटिशश्च सुवर्णं च तेषामकृतकं तथा ।
वीथीकृतममेयात्मा प्राहिणोन्मधुसूदनः ॥ १८
तत्सर्वं प्रतिजग्राह धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुदा परमया युक्तो गोविन्दप्रियकाम्यया ॥ १९

इति श्रीमहा० आदि० वैवाहिकपर्वणि नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

समाप्तं वैवाहिकपर्व ।

## विदुरागमनराज्यलम्भपर्व ।

### २००

वैशंपायन उवाच ।

ततो राज्ञां चरैराप्तैः प्रवृत्तिरुपनीयत ।
पाण्डवैरुपसंपन्ना द्रौपदी पतिभिः शुभा ॥ १
येन तद्धनुरादाय लक्ष्यं विद्धं महात्मना ।
सोऽर्जुनो जयतां श्रेष्ठो महाबाणधनुर्धरः ॥ २
यः शल्यं मद्रराजं वै प्रोत्क्षिप्यापातयद्बली ।
त्रासयामास संक्रुद्धो वृक्षेण पुरुषान्रणे ॥ ३
न चास्य संभ्रमः कश्चिदासीत्तत्र महात्मनः ।
स भीमो भीमसंस्पर्शः शत्रुसेनाङ्गपातनः ॥ ४
ब्रह्मरूपधराञ्छ्रुत्वा प्रशान्तान्पाण्डुनन्दनान् ।
कौन्तेयान्मनुजेन्द्राणां विस्मयः समजायत ॥ ५
सपुत्रा हि पुरा कुन्ती दग्धा जतुगृहे श्रुता ।
पुनर्जातानिव च तांस्तेऽमन्यन्त नराधिपाः ॥ ६
धिगकुर्वंस्तदा भीष्मं धृतराष्ट्रं च कौरवम् ।
कर्मणाऽतिनृशंसेन पुरोचनकृतेन वै ॥ ७
वृत्ते स्वयंवरे चैव राजानः सर्व एव ते ।
यथागतं विप्रजग्मुर्विदित्वा पाण्डवान्वृतान् ॥ ८
अथ दुर्योधनो राजा विमना भ्रातृभिः सह ।
अश्वत्थाम्ना मातुलेन कर्णेन च कृपेण च ॥ ९
विनिवृत्तो वृतं दृष्ट्वा द्रौपद्या श्वेतवाहनम् ।
तं तु दुःशासनोव्रीडो मन्दं मन्दमिवाब्रवीत् ॥ १०
यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद्विन्देत द्रौपदीं न सः ।
न हि तं तत्त्वतो राजन्वेद कश्चिद्धनंजयम् ॥ ११
दैवं च परमं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम् ।
धिगस्तु पौरुषं तात ध्रियन्ते यत्र पाण्डवाः ॥ १२
एवं संभाषमाणास्ते निन्दन्तश्च पुरोचनम् ।
विविशुर्हास्तिनपुरं दीना विगतचेतसः ॥ १३
त्रस्ता विगतसंकल्पा दृष्ट्वा पार्थान्महौजसः ।
मुक्तान्हव्यभुजश्चैव संयुक्तान्द्रुपदेन च ॥ १४
धृष्टद्युम्नं तु संचिन्त्य तथैव च शिखण्डिनम् ।
द्रुपदस्यात्मजांश्चान्यान्सर्वयुद्धविशारदान् ॥ १५
विदुरस्त्वथ तां श्रुत्वा द्रौपदीं पाण्डवैर्वृताम् ।
व्रीडितान्धार्तराष्ट्रांश्च भग्नदर्पानुपागतान् ॥ १६
ततः प्रीतमनाः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशांपते ।
उवाच दिष्ट्या कुरवो वर्धन्त इति विस्मितः ॥
विचित्रवीर्यस्तु नृपो निशम्य विदुरस्य तत् ।
अब्रवीत्परमप्रीतो दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥ १८

---

प्रेष्याः दासीः ॥ १६ ॥ भद्रान् भद्रजातीयान् ॥ १७ ॥ अकृतकं जाम्बूनदं आकरेषु धमनादिना अनुत्पादितं । वीथीकृतं धान्यराशिवत् पृथक्पृथक् मालया राशीकृतम् । राशीकृतमिति पाठे पिण्डीकृतं । कृताकृतमिति पाठे घटितमघटितंच ॥ १८ ॥ इति आदिप० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

२००

तत इति । चरैः चारैः ॥ १ ॥ सेनाङ्गानां रथगजादीनां पातनः ॥ ४ ॥ विस्मये हेतुमाह सपुत्रेति ॥ ६ ॥ अव्रीड इति छेदः । व्रीडन्नित्येव पाठः । अन्यथा मन्दं मन्दमित्यस्यानुपपत्तिः ॥ १० ॥

मन्यते स वृतं पुत्रं ज्येष्ठं द्रुपदकन्यया ।
दुर्योधनमविज्ञानात्प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ॥ १९
अथ त्वाज्ञापयामास द्रौपद्या भूषणं बहु ।
आनीयतां वै कृष्णेति पुत्रं दुर्योधनं तदा ॥ २०
अथास्य पश्चाद्विदुर आचख्यौ पाण्डवान्वृतान् ।
सर्वान्कुशलिनो वीरान्पूजितान्द्रुपदेन ह ॥ २१
तेषां संबन्धिनश्चान्यान्बहून्बलसमन्वितान् ।
समागतान्पाण्डवेयैस्तस्मिन्नेव स्वयंवरे ॥ २२

धृतराष्ट्र उवाच ।

यथैव पाण्डोः पुत्रास्तु तथैवाभ्यधिका मम ।
यथा चाभ्यधिका बुद्धिर्मम तान्प्रति तच्छृणु ॥ २३
यत्ते कुशलिनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः ।
तेषां संबन्धिनश्चान्ये बहवश्च महाबलाः ॥ २४
को हि द्रुपदमासाद्य मित्रं क्षत्तः सबान्धवम् ।
न बुभूषेद्भवेनार्थी गतश्रीरपि पार्थिवः ॥ २५

वैशंपायन उवाच ।

तं तथा भाषमाणं तु विदुरः प्रत्यभाषत ।
नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्छतं समाः ।
इत्युक्त्वा प्रययौ राजन्विदुरः स्वं निवेशनम् २६
ततो दुर्योधनश्चापि राधेयश्च विशांपते ।
धृतराष्ट्रमुपागम्य वचोऽब्रूतामिदं तदा ॥ २७
संनिधौ विदुरस्य त्वां दोषं वक्तुं न शक्नुवः ।
विविक्तमिति वक्ष्यावः किं तवेदं चिकीर्षितम् २८
सपत्नवृद्धिं यत्तात मन्यसे वृद्धिमात्मनः ।
अभिष्टौषि च यत्क्षत्तः समीपे द्विपतां वर ॥ २९
तेषां बलविघातो हि कर्तव्यस्तात नित्यशः ॥ ३०
ते वयं प्राप्तकालस्य चिकीर्षां मन्त्रयामहे ।
यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान् ॥ ३१

इति श्रीमहाभा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि दुर्योधनवाक्ये द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

---

## २०१

धृतराष्ट्र उवाच ।

अहमप्येवमेवैतच्चिकीर्षामि यथा युवाम् ।
विवेक्तुं नाहमिच्छामि त्वाकारं विदुरं प्रति ॥ १
ततस्तेषां गुणानेव कीर्तयामि विशेषतः ।
नावबुध्येत विदुरो ममाभिप्रायमिङ्गितैः ॥ २
यच्च त्वं मन्यसे प्राप्तं तद्ब्रवीहि सुयोधन ।
राधेय मन्यसे यच्च प्राप्तकालं वदाशु मे ॥ ३

दुर्योधन उवाच ।

अद्य तान्कुशलैर्विप्रैः सुगुप्तैराप्तकारिभिः ।
कुन्तीपुत्रान्भेदयामो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४
अथवा द्रुपदो राजा महद्भिर्वित्तसंचयैः ।
पुत्राश्चास्य प्रलोभ्यन्ताममात्याश्चैव सर्वशः ॥ ५
परित्यजेद्यथा राजा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अथ तत्रैव वा तेषां निवासं रोचयन्तु ते ॥ ६
इहैषां दोषवद्वासं वर्णयन्तु पृथक्पृथक् ।
ते भिद्यमानास्तत्रैव मनः कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥ ७
अथवा कुशलाः केचिदुपायनिपुणा नराः ।
इतरेतरतः पार्थान्भेदयन्त्वनुरागतः ॥ ८
व्युत्थापयन्तु वा कृष्णां बहुत्वात्सुकरं हि तत् ।
अथवा पाण्डवांस्तस्यां भेदयन्तु ततश्च ताम् ॥ ९
भीमसेनस्य वा राजन्नुपायकुशलैर्नरैः ।
मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः १०
तमाश्रित्य हि कौन्तेयः पुरा चास्मान्न मन्यते ।
स हि तीक्ष्णश्च शूरश्च तेषां चैव परायणम् ॥ ११
तस्मिंस्त्वभिहते राजन् हतोत्साहा हतौजसः ।
यतिष्यन्ते न राज्याय स हि तेषां व्यपाश्रयः १२

---

वै चार्ये । कृष्णाभूषणं च तत्परिधानार्थमानीयतामित्यर्थः ॥ २० ॥ गतश्रीः नष्टश्रीः कः भवेन ऐश्वर्येणार्थी न बुभूषेद्भवितुमिच्छेत् अपि तु सर्वोपीच्छेत् ॥ २५ ॥ सपत्नवृद्धिं तत्कृतां बुद्धिम् । वृद्धिमिति पाठः स्वच्छः । हे वरश्रेष्ठ द्विपतां द्विपतः शत्रून् ॥ २९ ॥ प्राप्तकालस्य कर्मणः चिकीर्षां कर्तव्यताम् ॥ ३१ ॥ इति आदिप० नैलक० भारतभावदीपे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

२०१

अहमिति । विवेक्तुं व्यक्तीकर्तुम् ॥ १ ॥ इङ्गितैःचेष्टितैः ॥ २ ॥ यच्च कर्तव्यम् ॥ ३ ॥ आप्तकारिभिः अवञ्चकैः ॥ ४ ॥ भिद्यमानाः अस्मत्तः पृथग्भवन्तः ॥ ७ ॥

अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे ।
तमृते फाल्गुनो युद्धे राधेयस्य न पादभाक् ॥१३
ते जानानास्तु दौर्बल्यं भीमसेनमृते महत् ।
अस्मान्बलवतो ज्ञात्वा न यतिष्यन्ति दुर्बलाः १४
इहागतेषु वा तेषु निदेशवशवर्तिषु ।
प्रवर्तिष्यामहे राजन् यथाशास्त्रं निबर्हणम् ॥ १५
अथवा दर्शनीयाभिः प्रमदाभिर्विलोभ्यताम् ।
एकैकस्तत्र कौन्तेयस्ततः कृष्णा विरज्यताम् १६
प्रेष्यतां चैव राधेयस्तेषामागमनाय वै ।
तैस्तैः प्रकारैः संनीय पात्यन्तामाप्तकारिभिः १७
एतेषामप्युपायानां यस्ते निर्दोषवान्मतः ।
तस्य प्रयोगमातिष्ठ पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ १८
यावदप्यकृतविश्वासा द्रुपदे पार्थिवर्षभे ।
तावदेव हि ते शक्या न शक्यास्तु ततः परम् १९
एषा मम मतिस्तात निग्रहाय प्रवर्तते ।
साध्वी वा यदि वाऽसाध्वी किं वा राधेय मन्यसे

इति श्रीमहा० आ० विदुरागमनराज्यलम्भप० दुर्योधनवाक्ये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

---

## २०२

कर्ण उवाच ।

दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः ।
न ह्युपायेन ते शक्याः पाण्डवाः कुरुवर्धन ॥ १
पूर्वमेव हि ते सूक्ष्मैरुपायैर्यतितास्त्वया ।
निग्रहीतुं तदा वीर न चैव शकितास्त्वया ॥ २
इहैव वर्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव ।
अजातपक्षाः शिशवः शकिता नैव बाधितुम् ॥ ३
जातपक्षा विदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते ।
नोपायसाध्याः कौन्तेया ममैषा मतिरच्युत ॥ ४
न च ते व्यसनैर्योक्तुं शक्या दिष्टकृतेन च ।
शकिताश्चेप्सवश्चैव पितृपैतामहं पदम् ॥ ५
परस्परेण भेदश्च नाधातुं तेषु शक्यते ।
एकस्यां ये रताः पत्न्यां न भिद्यन्ते परस्परम् ६
न चापि कृष्णा शक्येत तेभ्यो भेदयितुं परैः ।
परिद्यूनान्वृतवती किमुताद्य मृजावतः ॥ ७
ईप्सितश्च गुणः स्त्रीणामेकस्या बहुभर्तृता ।
तं च प्राप्तवती कृष्णा न सा भेदयितुं क्षमा ॥ ८
आर्यव्रतश्च पाञ्चाल्यो न स राजा धनप्रियः ।
न संत्यक्षति कौन्तेयान् राज्यदानैरपि ध्रुवम् ॥९
यथाऽस्य पुत्रो गुणवाननुरक्तश्च पाण्डवान् ।
तस्मान्नोपायसाध्यांस्तानहं मन्ये कथंचन ॥ १०
इदं त्वद्य क्षमं कर्तुमस्माकं पुरुषर्षभ ।
यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशांपते ॥ ११
तावत्प्रहरणीयास्ते तत्तुभ्यं तात रोचताम् ।
अस्मत्पक्षो महान्यावद्यावत्पाञ्चालको लघुः ।
तावत्प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय ॥ १२
वाहनानि प्रभूतानि मित्राणि च कुलानि च ।
यावन्न तेषां गान्धारे तावद्विक्रम पार्थिव ॥ १३
यावच्च राजा पाञ्चाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः ।
सह पुत्रैर्महावीर्यैस्तावद्विक्रम पार्थिव ॥ १४
यावन्नायाति वार्ष्णेयः कर्षन्यादववाहिनीम् ।
राज्यार्थे पाण्डवेयानां पाञ्चाल्यसदनं प्रति ॥ १५
वसूनि विविधान्भोगान्राज्यमेव च केवलम् ।
नात्याज्यमस्ति कृष्णस्य पाण्डवार्थे कथंचन १६
विक्रमेण मही प्राप्ता भरतेन महात्मना ।
विक्रमेण च लोकांस्त्रीञ्जितवान्पाकशासनः ॥१७
विक्रमं च प्रशंसन्ति क्षत्रियस्य विशांपते ।
स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षभ ॥१८

---

व्युत्थापनं तु स्वभर्तॄणां त्यागः स च बहुत्वदोषेण सुकरः। अथवेति। तस्याः भर्तृषु वैषम्यं प्रदर्श्य पाण्डवानेव वा तस्यां भेदयन्तु ततश्च तां लप्स्यामहे इति शेषः ॥९॥ न पादभाक् न चतुर्थांशतुल्यः ॥ १३ ॥ एकैकः कौन्तेयः प्रलोभनीयः । तत्र तेषु । ततः प्रलोभमानात् ॥ १६ ॥ संनीय ऐक्यं नीत्वा ॥ १७ ॥ शक्याः घातयितुमिति शेषः ॥ १९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

२०२

दुर्योधनेति ॥ १ ॥ जातपक्षाः सहायवन्तः तदन्ये अजातपक्षाः ॥ ३ ॥ दिष्टकृतेन दैवनिर्माणेन शकिताः शक्तिमन्तः जतुगृहादिभ्य आत्मानं मोचयितुं शक्ता अभूवन्नित्यर्थः ॥ ५ ॥ परिद्यूनान् शोच्यान् भिक्षाभोजित्वादिना मृजावतःसुवेषान्॥७॥ लघुः अल्पकः॥१२॥

ते बलेन वयं राजन्महता चतुरङ्गिणा ।
प्रमथ्य द्रुपदं शीघ्रमानयामेह पाण्डवान् ॥ १९
न हि साम्ना न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः ।
शक्याः साधयितुं तस्माद्विक्रमेणैव ताञ्जहि ॥२०
तान्विक्रमेण जित्वेमामखिलां भुङ्क्ष्व मेदिनीम् ।
अतो नान्यं प्रपश्यामि कार्योपायं जनाधिप ॥२१
वैशंपायन उवाच ।
श्रुत्वा तु राधेयवचो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।
अभिपूज्य ततः पश्चादिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२
उपपन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे सूतनन्दने ।
त्वयि विक्रमसंपन्नमिदं वचनमीदृशम् ॥ २३
भूय एव तु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च ।
युवां च कुरुतं बुद्धिं भवेद्या नः सुखोदया ॥ २४
तत आनाय्य तान्सर्वान्मन्त्रिणः सुमहायशाः ।
धृतराष्ट्रो महाराज मन्त्रयामास वै तदा ॥ २५

इति श्रीमहाभा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भप० धृतराष्ट्रमन्त्रणे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०२ ॥

## २०३

भीष्म उवाच ।
न रोचते विग्रहो मे पाण्डुपुत्रैः कथंचन ।
यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डुरसंशयम् ॥ १
गान्धार्याश्च यथा पुत्रास्तथा कुन्तीसुता मम ।
यथा च मम ते रक्ष्या धृतराष्ट्र तथा तव ॥ २
यथा च मम राज्ञश्च तथा दुर्योधनस्य ते ।
तथा कुरूणां सर्वेषामन्येषामपि पार्थिव ॥ ३
एवं गते विग्रहं तैर्न रोचे
संधाय वीरैर्दीयतामर्धभूमिः ।
तेषामपीदं प्रपितामहानां
राज्यं पितुश्चैव कुरूत्तमानाम् ॥ ४
दुर्योधन यथा राज्यं त्वमिदं तात पश्यसि ।
मम पैतृकमित्येवं तेऽपि पश्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५
यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेया यशस्विनः ।
कुत एव तवापीदं भारतस्यापि कस्यचित् ॥ ६
अधर्मेण च राज्यं त्वं प्राप्तवान्भरतर्षभ ।
तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेवेति मे मतिः ॥ ७
मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्धं प्रदीयताम् ।
एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च ॥ ८
अतोऽन्यथा चेत्क्रियते न हितं नो भविष्यति ।
तवाप्यकीर्तिः सकला भविष्यति न संशयः ॥ ९
कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् ।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥ १०
यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य न प्रणश्यति कौरव ।
तावज्जीवति गान्धारे नष्टकीर्तिस्तु नश्यति ॥ ११
तमिमं समुपातिष्ठ धर्मं कुरुकुलोचितम् ।
अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु ॥ १२
दिष्ट्या ध्रियन्ते पार्था हि दिष्ट्या जीवति सा पृथा
दिष्ट्या पुरोचनः पापो न सकामोऽत्ययं गतः १३
यदा प्रभृति दग्धास्ते कुन्तीभोजसुतासुताः ।
तदा प्रभृति गान्धारे न शक्नोम्यभिवीक्षितुम् ॥१४
लोके प्राणभृतां कंचिच्छ्रुत्वा कुन्तीं तथागताम् ।
न चापि दोषेण तथा लोको मन्येत्पुरोचनम् ।
यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छति १५
तदिदं जीवितं तेषां तव किल्बिषनाशनम् ।
संमन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम् ॥ १६
न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरुनन्दन ।
पित्र्योंशः शक्य आदातुमपि वज्रभृता स्वयम् १७
ते सर्वेऽवस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः ।
अधर्मेण निरस्ताश्च तुल्ये राज्ये विशेषतः ॥ १८
यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे ।
क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥

इति श्रीमहा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भप० भीष्मवाक्ये त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

---

आनयाम स्ववशमिति शेषः॥१९॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भा० भा० द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०२॥

२०३

न रोचते इति ॥ १ ॥ मधुरेण प्रीत्या ॥ ८ ॥ ध्रियन्ते जीवन्ति । सकामो नासीत् । अत्ययं नाशम् ॥१३॥ दोषेण युक्तं गच्छति जानाति ॥ १५ ॥ संमन्तव्यं संमतं कर्तव्यम् ॥१६॥ अधर्मेण जतुगृहदाहादिना ॥१८॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

# २०४

द्रोण उवाच ।

मन्त्राय समुपानीतैर्धृतराष्ट्र हितैर्नृप ।
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च वाच्यमित्यनुशुश्रुम ॥ १
ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः ।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥ २
प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चित्प्रियंवदः ।
बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥ ३
मिथः कृत्यं च तस्मै स आदाय वसु गच्छतु ।
वृद्धिं च परमां ब्रूयात्त्वत्संयोगोद्भवां तथा ॥ ४
संप्रीयमाणं त्वां ब्रूयाद्राजन्दुर्योधनं तथा ।
असकृद्द्रुपदे चैव धृष्टद्युम्ने च भारत ॥ ५
उचितत्वं प्रियत्वं च योगस्यापि च वर्णयेत् ।
पुनः पुनश्च कौन्तेयान्माद्रीपुत्रौ च सान्त्वयन् ॥
हिरण्मयानि शुभ्राणि बहून्याभरणानि च ।
वचनात्तव राजेन्द्र द्रौपद्याः संप्रयच्छतु ॥ ७
तथा द्रुपदपुत्राणां सर्वेषां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां कुन्त्या युक्तानि यानि च
एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह ।
उक्त्वा सोऽनन्तरं ब्रूयात्तेषामागमनं प्रति ॥ ९
अनुज्ञातेषु वीरेषु बलं गच्छतु शोभनम् ।
दुःशासनो विकर्णश्चाप्यानेतुं पाण्डवानिह ॥ १०
ततस्ते पाण्डवाः श्रेष्ठाः पूज्यमानाः सदा त्वया ।
प्रकृतीनामनुमते पदे स्थास्यन्ति पैतृके ॥ ११
एतत्तव महाराज पुत्रेषु तेषु चैव हि ।
वृत्तमौपयिकं मन्ये भीष्मेण सह भारत ॥ १२

कर्ण उवाच ।

योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनन्तरौ ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः किमद्भुततरं ततः ॥ १३
दुष्टेन मनसा यो वै प्रच्छन्नेनान्तरात्मना ।
ब्रूयान्निःश्रेयसं नाम कथं कुर्यात्सतां मतम् ॥ १४
न मित्राण्यर्थकृच्छ्रेषु श्रेयसे चेतराय वा ।
विधिपूर्वं हि सर्वस्य दुःखं वा यदि वा सुखम् १५
कृतप्रज्ञोऽकृतप्रज्ञो बालो वृद्धश्च मानवः ।
ससहायोऽसहायश्च सर्वं सर्वत्र विन्दति ॥ १६
श्रूयते हि पुरा कश्चिदम्बुवीच इतीश्वरः ।
आसीद्राजगृहे राजा मागधानां महीक्षिताम् ॥
स हीनः करणैः सर्वैरुच्छ्वासपरमो नृपः ।
अमात्यसंस्थः सर्वेषु कार्येष्वेवाभवत्तदा ॥ १८
तस्यामात्यो महाकर्णिर्बभूवैकेश्वरस्तदा ।
स लब्धबलमात्मानं मन्यमानोवमन्यते ॥ १९
स राज्ञ उपभोग्यानि स्त्रियो रत्नधनानि च ।
आददे सर्वशो मूढ ऐश्वर्यं च स्वयं तदा ॥ २०
तदादाय च लुब्धस्य लोभाल्लोभोप्यवर्धत ।
तथा हि सर्वमादाय राज्यमस्य जिहीर्षति ॥ २१
हीनस्य करणैः सर्वैरुच्छ्वासपरमस्य च ।
यतमानोऽपि तद्राज्यं न शशाकेति नः श्रुतम् ॥

---

२०४

मन्त्रायेति । हितैर्मित्रैः ॥१॥ तेषां पाण्डवानाम् ॥३॥ मिथःकृत्यं सांबन्धिकं वरपक्षीयैर्वस्त्रलङ्कारादि कन्यापक्षीयैर्वरालङ्कारादि । तस्मै द्रुपदाय तदर्थे । ऐतन मिथःकृत्ये एव श्वशुरो जामातृदायं गृह्णीयान्नान्यथेति सिद्धम् । वृद्धिं चेति । त्वत्संयोगादस्माकं महत्वाप्तिर्जातेति धृतराष्ट्रो दुर्योधनश्च मन्यत इति तत्र वक्तव्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ योगस्य संबन्धस्य ॥ ६ ॥ संप्रयच्छतु त्वदीयोऽमात्यादिः ॥७॥ तथा आभरणानि प्रयच्छन्त्वित्यनुषज्य प्रत्येकं द्रुपदपुत्राणामित्यादिषु योज्यम् ॥ ८ ॥ औपयिकं अवश्यकर्तव्यम् ॥ १२ ॥ अनन्तरौ अन्तरङ्गौ भीष्मद्रोणौ ॥ १३ ॥ नन्वन्तरङ्गौ चेत्कथं मच्छ्रेयो नानुमन्त्रयेतामित्याशङ्क्यान्तरङ्गाभासाविमौ नत्वन्तरङ्गावित्याह । दुष्टेनेति । दुष्टेन मित्रद्रोहवता । मनसा संकल्पेन । प्रच्छन्नेन शत्रुहितेप्सुनापि स्वामिहितवदाभासमानेन । अन्तरात्मना बुध्या । योब्रूयान्मन्त्रम् स सतां साधूनां विश्वस्तानां स्वामिनां मतं इष्टं निःश्रेयसं कल्याणं कथं कुर्यान्न कथमपि । शठमित्रं हि पातयत्येव न हितायेत्यर्थः ॥१४॥ ननु शठमित्रत्वं तस्य त्वय्यप्याशङ्क्येत तथा च सर्वत्रानाश्वासप्रसंग इत्याशङ्क्य दैवमेव मुख्यं वृद्धिह्रासादिहेतुरित्याह । न मित्राणीति । मित्राणि साध्वसाधूनि । अर्थकृच्छ्रेषु कार्यसंकटेषु । श्रेयसे इतराय नाशाय वा न प्रभवन्ति । हि यस्माद्विधिपूर्वं पुण्यापुण्यैकहेतुकं सर्वं सुखादिकम् ॥ १५ ॥ एतदेव स्पष्टयति । कृतेति । सर्वं दैवोपनीतम् । सर्वत्र देशे काले च ॥ १६ ॥ अत्राख्यायिकामाह । श्रूयत इति । ईश्वरः समर्थः । राजगृहे तन्नामके नगरे ॥ १७ ॥ करणैश्चक्षुरादिभिर्हीनो विकलः । उच्छ्वास एव परमो भवतीति ज्ञानहेतुर्यस्य सः । अमात्यसंस्थः अमात्याधीनः ॥ १८ ॥ अवमन्यते राजानमिति शेषः ॥ १९ ॥ न शशाक हर्तुमिति शेषः ॥ २२ ॥

किमन्यद्विहिता नूनं तस्य सा पुरुषेन्द्रता ।
यदि ते विहितं राज्यं भविष्यति विशांपते ॥२३
मिषतः सर्वलोकस्य स्थास्यते त्वयि तद्ध्रुवम् ।
अतोन्यथा चेद्विहितं यतमानो न लप्स्यसे ॥ २४
एवं विद्धयुपादत्स्व मन्त्रिणां साध्वसाधुताम् ।
दुष्टानां चैव बोद्धव्यमदुष्टानां च भाषितम् ॥ २५

द्रोण उवाच ।
विद्म ते भावदोषेण यदर्थमिदमुच्यते ।
दुष्ट पाण्डवहेतोस्त्वं दोषमाख्यापयस्युत ॥ २६
हितं तु परमं कर्ण ब्रवीमि कुलवर्धनम् ।
अथ त्वं मन्यसे दुष्टं ब्रूहि यत्परमं हितम् ॥ २७
अतोऽन्यथा चेत्क्रियते यद्ब्रवीमि परं हितम् ।
कुरवो वै विनङ्क्ष्यन्ति न चिरेणैव मे मतिः ॥ २८

इति श्रीमहा० आ० विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि द्रोणवाक्ये चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

---

## २०५

विदुर उवाच ।
राजन्निःसंशयं श्रेयो वाच्यस्त्वमसि बान्धवैः ।
न त्वशुश्रूषमाणे वै वाक्यं संप्रति तिष्ठति ॥ १
प्रियं हितं च तद्वाक्यमुक्तवान्कुरुसत्तमः ।
भीष्मः शान्तनवो राजन्प्रतिगृह्णासि तन्न च ॥ २
तथा द्रोणेन बहुधा भाषितं हितमुत्तमम् ।
तच्च राधासुतः कर्णो मन्यते न हितं तव ॥ ३
चिन्तयंश्च न पश्यामि राजंस्तव सुहृत्तमम् ।
आभ्यां पुरुषसिंहाभ्यां यो वा स्यात्प्रज्ञयाऽधिकः
इमौ हि वृद्धौ वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च ।
समौ च त्वयि राजेन्द्र तथा पाण्डुसुतेषु च ॥ ५
धर्मे चानवरौ राजन्सत्यतायां च भारत ।
रामाद्दाशरथेश्चैव गयाच्चैव न संशयः ॥ ६
न चोक्तवन्तावश्रेयः पुरस्तादपि किंचन ।
न चाप्यपकृतं किंचिदनयोर्लक्ष्यते त्वयि ॥ ७
तावुभौ पुरुषव्याघ्रावनागसि नृपे त्वयि ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः कथं सत्यपराक्रमौ ॥ ८
प्रज्ञावन्तौ नरश्रेष्ठावस्मिँल्लोके नराधिप ।
त्वन्निमित्तमतो नेमौ किंचिज्जिह्मं वदिष्यतः ॥ ९
इति मे नैष्ठिकी बुद्धिर्वर्तते कुरुनन्दन ।
न चार्थहेतोर्धर्मज्ञौ वक्ष्यतः पक्षसंश्रितम् ॥ १०
एतद्धि परमं श्रेयो मन्येऽहं तव भारत ।
दुर्योधनप्रभृतयः पुत्रा राजन्यथा तव ॥ ११
तथैव पाण्डवेयास्ते पुत्रा राजन्न संशयः ।
तेषु चेदहितं किंचिन्मन्त्रयेयुरतद्विदः ॥ १२
मन्त्रिणस्ते न च श्रेयः प्रपश्यन्ति विशेषतः ।
अथ ते हृदये राजन्विशेषः स्वेषु वर्तते ।
अन्तरस्थं विवृण्वानाः श्रेयः कुर्युर्न ते ध्रुवम्॥१३
एतदर्थमिमौ राजन्महात्मानौ महाद्युती ।
नोचतुर्विवृतं किंचिन्न ह्येष तव निश्चयः ॥ १४
यच्चाप्यशक्यतां तेषामाहतुः पुरुषर्षभौ ।
तत्तथा पुरुषव्याघ्र तव तद्भद्रमस्तु ते ॥ १५
कथं हि पाण्डवः श्रीमान्सव्यसाची धनंजयः ।
शक्यो विजेतुं संग्रामे राजन्मघवतापि हि ॥ १६

---

आख्यायिकातात्पर्यमाह । किमिति । तस्य अम्बुवीचस्य सा पुरुषेन्द्रता तन्नरेन्द्रत्वं नूनं विहिता विधिप्राप्तैव न तु यत्नसंपादिता । किमन्यद्दृष्टात्परायणमस्ति न किमपीति भावः । प्रकृते योजयति यदीति ॥ २३ ॥ ते तव मतं विद्म भावदोषेण चित्तगतद्वेषेण ॥ २६ ॥ अहं यद्ब्रवीमि अतोन्यथा ॥ २८ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुराधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

---

२०५

राजन्निति ॥ १ ॥ आभ्यां भीष्मद्रोणाभ्याम् । पश्यन्त्या इदम् ॥ ४ ॥ अनवरौ श्रेष्ठौ ॥ ६ ॥ अनयोः एताभ्यां कर्तरि षष्ठी ॥ ७ ॥ पक्षसंश्रितं अन्यतरस्यैव हितम् ॥१०॥ तेषु पाण्डवेषु ॥ १२ ॥ ते तव मन्त्रिणस्तवान्तरस्थं विशेषं विवृण्वानास्ते ध्रुवं शाश्वतं हितं न कुर्युः । तव वैषम्यदोषमेव ते प्रकाशयिष्यन्ति न तु कार्यं साधयिष्यन्तीत्यर्थः ॥१३॥ एतदर्थं पाण्डवानां श्रेयोर्थम् । विवृतं विस्पष्टम् । विकृतमिति पाठे परुषम् । एष पाण्डवानां श्रेयो भवत्वित्येवंरूपः । हिशब्देन तत्र तस्यैव प्रतीतिं प्रमाणयति ॥ १४ ॥ यच्चेति । अशक्यतां अजय्यताम् तव पुरस्तात् यच्चाहतुरिति संबन्धः । तद्भद्रमस्तु ते तत्तेभ्यः पाण्डवेभ्यस्तव भद्रमस्तु । क्रुद्धाः पाण्डवास्तव सर्वान्पुत्रान्मा हिंसुरिति भावः ॥ १५ ॥

भीमसेनो महाबाहुर्नागायुतबलो महान् ।
कथं स्म युधि शक्येत विजेतुममरैरपि ॥ १७
तथैव कृतिनौ युद्धे यमौ यमसुताविव ।
कथं विजेतुं शक्यौ तौ रणे जीवितुमिच्छता ॥१८
यस्मिन्धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः ।
नित्यानि पाण्डवे ज्येष्ठे स जीयेत रणे कथम् ॥
येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः ॥
द्रुपदः श्वशुरो येषां येषां स्यालाश्च पार्षताः ।
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा भ्रातरो द्रुपदात्मजाः ॥ २१
सोऽशक्यतां च विज्ञाय तेषामग्रे च भारत ।
दायाद्यतां च धर्मेण सम्यक्तेषु समाचर ॥ २२
इदं निर्दिष्टमयशः पुरोचनकृतं महत् ।
तेषामनुग्रहेणाद्य राजन्प्रक्षालयात्मनः ॥ २३
तेषामनुग्रहश्चायं सर्वेषां चैव नः कुले ।
जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्धनम् ॥ २
द्रुपदोऽपि महाराजा कृतवैरश्च नः पुरा ।
तस्य संग्रहणं राजन्स्वपक्षस्य विवर्धनम् ॥ २
बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशांपते ।
यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः ॥२
यच्च साम्नैव शक्येत कार्यं साधयितुं नृप ।
को दैवशप्तस्तत्कार्यं विग्रहेण समाचरेत् ॥ २७
श्रुत्वा च जीवतः पार्थान्पौरजानपदा जनाः ।
बलवद्दर्शने हृष्टास्तेषां राजन्प्रियं कुरु ॥ २८
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः॥२९
उक्तमेतत्पुरा राजन्मया गुणवतस्तव ।
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं वै विनङ्क्ष्यति ॥ ३०

इति श्रीमहा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि विदुरवाक्ये पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०५॥

## २०६

धृतराष्ट्र उवाच ।
भीष्मः शान्तनवो विद्वान्द्रोणश्च भगवानृषिः ।
हितं च परमं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम् ॥
यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः ॥ २
यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते ।
तथैव पाण्डुपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः ॥ ३
क्षत्तरानय गच्छैतान्सह मात्रा सुसत्कृतान् ।
तया च देवरूपिण्या कृष्णया सह भारत ॥ ४
दिष्ट्या जीवन्ति ते पार्था दिष्ट्या जीवति सा पृथा
दिष्ट्या द्रुपदकन्या च लब्धवन्तो महारथाः ॥५
दिष्ट्या वर्धामहे सर्वे दिष्ट्या शान्तः पुरोचनः ।
दिष्ट्या मम परं दुःखमपनीतं महाद्युते ॥ ६
वैशंपायन उवाच ।
ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रस्य शासनात् ।
सकाशं यज्ञसेनस्य पाण्डवानां च भारत ॥ ७
समुपादाय रत्नानि वसूनि विविधानि च ।
द्रौपद्याः पाण्डवानां च यज्ञसेनस्य चैव ह ॥ ८
तत्र गत्वा स धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
द्रुपदं न्यायतो राजन्संयुक्तमुपतस्थिवान् ॥ ९
स चापि प्रतिजग्राह धर्मेण विदुरं ततः ।
चक्रतुश्च यथान्यायं कुशलप्रश्नसंविदम् ॥ १०
ददर्श पाण्डवांस्तत्र वासुदेवं च भारत ।
स्नेहात्परिष्वज्य स तानपृच्छदनामयं ततः ॥ ११
तैश्चाप्यमितबुद्धिः स पूजितो हि यथाक्रमम् ।
वचनाद्धृतराष्ट्रस्य स्नेहयुक्तं पुनः पुनः ॥ १२
पप्रच्छानामयं राजंस्ततस्तान्पाण्डुनन्दनान् ।
प्रददौ चापि रत्नानि विविधानि वसूनि च ॥१३
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च द्रौपद्याश्च विशांपते ।
द्रुपदस्य च पुत्राणां यथा दत्तानि कौरवैः ॥ १४
प्रोवाच चामितमतिः प्रश्रितं विनयान्वितः ।
द्रुपदं पाण्डुपुत्राणां संनिधौ केशवस्य च ॥ १५
विदुर उवाच ।
राजञ्शृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम ।
धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः ॥१६

---

अग्रे तात्पितुरेव पाण्डोः राज्याभागित्वकाले । दायाद्यतां पितृधनभोजनार्हताम् ॥ २२ ॥ बलवत् अत्यन्तम् ॥ २८ ॥
इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

२०६

भीष्म इति ॥१॥ न्यायतो ज्येष्ठानुक्रमेण । संयुक्तमालिङ्गननमस्कारादिना मिलितम् ॥ ९ ॥

अब्रवीत्कुशलं राजन्प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
प्रीतिमांस्ते दृढं चापि संबन्धेन नराधिप ॥ १७
तथा भीष्मः शान्तनवः कौरवैः सह सर्वशः ।
कुशलं त्वां महाप्राज्ञः सर्वतः परिपृच्छति ॥ १८
भारद्वाजो महाप्राज्ञो द्रोणः प्रियसखस्तव ।
समाश्लेषमुपेत्य त्वां कुशलं परिपृच्छति ॥ १९
धृतराष्ट्रश्च पाञ्चाल्य त्वया संबन्धमीयिवान् ।
कृतार्थं मन्यतेत्मानं तथा सर्वेपि कौरवाः ॥ २०
न तथा राज्यसंप्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता ।
यथा संबन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह ॥ २१
एतद्विदित्वा तु भवान्प्रस्थापयतु पाण्डवान् ।
द्रष्टुं हि पाण्डुपुत्रांश्च त्वरन्ति कुरवो भृशम् ॥ २२
विप्रोषिता दीर्घकालमेते चापि नरर्षभाः ।
उत्सुका नगरं द्रष्टुं भविष्यन्ति तथा पृथा ॥ २३
कृष्णामपि च पाञ्चालीं सर्वाः कुरुवरस्त्रियः ।
द्रष्टुकामाः प्रतीक्षन्ते पुरं च विषयाश्च नः ॥ २४
स भवान्पाण्डुपुत्राणामाज्ञापयतु मा चिरम् ।
गमनं सहदाराणामेतदत्र मतं मम ॥ २५
निसृष्टेषु त्वया राजन्पाण्डवेषु महात्मसु ।
ततोऽहं प्रेषयिष्यामि धृतराष्ट्रस्य शीघ्रगान् ।
आगमिष्यन्ति कौन्तेयाः कुन्ती च सह कृष्णया२६

इति श्रीमहा० आदि० विदुरागमनराज्यलम्भप० विदुरद्रुपदसंवादे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६

---

## २०७

द्रुपद उवाच ।
एवमेतन्महाप्राज्ञ यथात्थ विदुराद्य माम् ।
ममापि परमो हर्षः संबन्धेस्मिन्कृते प्रभो ॥ १
गमनं चापि युक्तं स्याद्दृढमेषां महात्मनाम् ।
न तु तावन्मया युक्तमेतद्वक्तुं स्वयं गिरा ॥ २
यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ३
रामकृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः ।
एतौ हि पुरुषव्याघ्रावेषां प्रियहिते रतौ ॥ ४
युधिष्ठिर उवाच ।
परवन्तो वयं राजंस्त्वयि सर्वे सहानुगाः ।
यथा वक्ष्यसि नः प्रीत्या तत्करिष्यामहे वयम् ५
वैशंपायन उवाच ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो गमनं रोचते मम ।
यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्वधर्मवित् ॥ ६
द्रुपद उवाच ।
यथैव मन्यते वीरो दाशार्हः पुरुषोत्तमः ।
प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम ॥ ७
यथैव हि महाभागाः कौन्तेया मम सांप्रतम् ।
तथैव वासुदेवस्य पाण्डुपुत्रा न संशयः ॥ ८
न तद्ध्यायति कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथैषां पुरुषव्याघ्रः श्रेयो ध्यायति केशवः ॥ ९
वैशंपायन उवाच ।
ततस्ते समनुज्ञाता द्रुपदेन महात्मना ।
पाण्डवाश्चैव कृष्णश्च विदुरश्च महीपते ॥ १०
आदाय द्रौपदीं कृष्णां कुन्तीं चैव यशस्विनीम् ।
सविहारं सुखं जग्मुर्नगरं नागसाह्वयम् ॥ ११
श्रुत्वा चाप्यागतान्वीरान्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान् ॥ १२
विकर्णं च महेष्वासं चित्रसेनं च भारत ।
द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च ॥ १३
तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महाबलाः ।
नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा ॥ १४
कौतूहलेन नगरं दीप्यमानमिवाभवत् ।
तत्र ते पुरुषव्याघ्राः शोकदुःखविनाशनाः ॥ १५
तत उच्चावचा वाचः पौरैः प्रियचिकीर्षुभिः ।
उदीरिता अशृण्वंस्ते पाण्डवा हृदयंगमाः ॥ १६

---

मन्यतेत्मानं ते आत्मानमिति छेदः ॥ २० ॥ निसृष्टेषु अनुज्ञातेषु ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

२०७

एवमिति ॥ १ ॥ सविहारं सलीलम् ॥ ११ ॥ प्रतिग्रहाय प्रत्युद्गमनाय ॥ १२ ॥ कौतूहलेन दर्शनेच्छया ॥ १५ ॥

अयं स पुरुषव्याघ्रः पुनरायाति धर्मवित् ।
यो नः स्वानिव दायादान्धर्मेण परिरक्षति ॥ १७
अद्य पाण्डुर्महाराजो वनादिव जनप्रियः ।
आगतः प्रियमस्माकं चिकीर्षुर्नात्र संशयः ॥ १८
किं नु नाद्य कृतं तात सर्वेषां नः परं प्रियम् ।
यन्नः कुन्तीसुता वीरा नगरं पुनरागताः॥ १९
यदि दत्तं यदि हुतं विद्यते यदि नस्तपः ।
तेन तिष्ठन्तु नगरे पाण्डवाः शरदां शतम् ॥ २०
ततस्ते धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
अन्येषां च तदर्हाणां चक्रुः पादाभिवन्दनम् २१
कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नगरेण च ।
न्यविशन्ताथ वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात् २२
विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित्कालं महाबलाः ।
आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥ २३

धृतराष्ट्र उवाच ।

भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम ।
पुनर्नो विग्रहो माभूत्खाण्डवप्रस्थमाविश ॥ २४
न च वो वसतस्तत्र कश्चिच्छक्तः प्रबाधितुम् ।
संरक्ष्यमाणान्पार्थेन त्रिदशानिव वज्रिणा ॥ २५
अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश ।

वैशंपायन उवाच ।

प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं नृपं सर्वे प्रणम्य च ॥ २६
प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः ।
अर्धं राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविशन् ॥
ततस्ते पाण्डवास्तत्र गत्वा कृष्णपुरोगमाः ।
मण्डयांचक्रिरे तद्वै परं स्वर्गवदच्युताः ॥ २८
ततः पुण्ये शिवे देशे शान्तिं कृत्वा महारथाः ।
नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः ॥ २९
सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृतम् ।
प्राकारेण च संपन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता ॥ ३०
पाण्डुराभ्रप्रकाशेन हिमराशिनिभेन च ।
शुशुभे तत्पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवतीमिव ॥ ३१
*द्विपक्षगरुडप्रख्यैर्द्वारैः सौधैश्च शोभितम् ।
गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरैर्मन्दरोपमैः ॥ ३२
विविधैरपि निर्विद्धैः शस्त्रोपेतैः सुसंवृतैः ।
शक्तिभिश्चावृतं तद्धि द्विजिह्वैरिव पन्नगैः ॥ ३३
×तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम् ।
तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम् ॥३४
आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभे तत्पुरोत्तमम् ।
सुविभक्तमहारथ्यं देवताबाधवर्जितम् ॥ ३५
विरोचमानं विविधैः पाण्डुरैर्भवनोत्तमैः ।
तत्त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत ॥ ३६
मेघवृन्दमिवाकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम् ।
तत्र रम्ये शिवे देशे कौरव्यस्य निवेशनम् ॥ ३७
शुशुभे वनसंपूर्णं धनाध्यक्षक्षयोपमम् ।
तत्रागच्छन्द्विजा राजन्सर्ववेदविदां वराः ॥ ३८
निवासं रोचयन्ति स्म सर्वभाषाविदस्तथा ।
वणिजश्चाययुस्तत्र नानादिग्भ्यो धनार्थिनः ॥ ३९
सर्वशिल्पविदस्तत्र वासायाभ्यागमंस्तदा ।
उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः ॥ ४०
आम्रैराम्रातकैर्नीपैरशोकैश्चम्पकैस्तथा ।
पुंनागैर्नागपुष्पैश्च लकुचैः पनसैस्तथा ॥ ४१
शालतालतमालैश्च वकुलैश्च सकेतकैः ।
मनोहरैः सुपुष्पैश्च फलभारावनामितैः ॥ ४२
प्राचीनामलकैर्लोध्रैरङ्कोलैश्च सुपुष्पितैः ।
जम्बूभिः पाटलाभिश्च कुब्जकैरतिमुक्तकैः ॥ ४३
करवीरैः पारिजातैरन्यैश्च विविधैर्द्रुमैः ।
नित्यपुष्पफलोपेतैर्नानाद्विजगणायुतैः ॥ ४४
मत्तबर्हिणसंघुष्टकोकिलैश्च सदामदैः ।
गृहैरादर्शविमलैर्विविधैश्च लतागृहैः ॥ ४५
मनोहरैश्चित्रगृहैस्तथाऽजगतिपर्वतैः ।
वापीभिर्विविधाभिश्च पूर्णाभिः परमाम्भसा ॥

---

किं नु नः प्रियं न कृतं अपि तु सर्वं कृतमेव । किं तु इति पाठे तु शब्दो वाक्यालङ्कारे पुनःशब्दार्थः । किं पुनर्न कृतं अपि तु सर्वं कृतमेवेति पूर्ववदेवार्थः ॥१९॥ नगरेण सह कुशलप्रश्नं कृत्वा । नगरेणापि कृतकुशलप्रश्नाः ॥ २२ ॥ पार्थेन अर्जुनेन ॥ २५ ॥ घोरं वनमिति । भूमेरध सस्यशून्यो देशः पाण्डवेभ्यो दत्त इति ज्ञायते॥२७॥तद्वैतद्घोरं वनं सत्स्वर्गवन्मण्डयांचक्रिरे ॥ २८ तदेवाह । नगरं मापयामासुरित्यादिना॥ २९ ॥ भोगवतीमिवेति प्रथमार्थे द्वितीया । ईमिति निपातप्रश्लेषो वा । भोगवती यथेत्यपेक्षिते प्रमादपाठो वा ॥ ३१ ॥ निर्विद्धैः आच्छिद्रैः अभेद्यैर्वा । शक्तिभिर्हस्तक्षेप्याभिर्लोहमयीभिः ॥ ३३ ॥ तीक्ष्णाश्च तेऽङ्कुशाश्च शतघ्न्यश्च ताभिः । आग्नेयौषधबलेनोत्क्षिप्तेन दृषत्पिण्डेन या युगपच्छतं सहस्रं वा मनुष्यादीन् घ्नन्ति ताभिः शतघ्नीभिर्दुर्गारूढाभिः ॥३४॥ विद्धं मिथः श्लिष्टम्॥३७॥ क्षयोपमं गृहोपमम्॥३८॥ अजगतिपर्वतैः नृपलीलायात्रार्थैः कृत्रिमैः पर्वतैः । 'अजश्छागेहरिब्रह्म विल्वस्मरहरेनृपे । गतिःस्त्रीमार्गदशयोर्ज्ञाने यात्राभ्युपाययोः'इति च मेदिनी ॥ ४६ ॥

*द्वाभ्यां पक्षाभ्यां कपाटाभ्यां गरुडप्रख्यानि भयानकत्वात्।

× तल्पैः राक्षिभिः पुरुषैः तेषामेव विशेषणमाभ्यासिकैरिति मिश्राः । तत्राभ्यासिकैरित्यस्य शस्त्राद्यभ्यासे नियुक्तैरित्यर्थः।

सरोभिरतिरम्यैश्च पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
हंसकारण्डवयुतैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥ ४७
रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः ।
तडागानि च रम्याणि बृहन्ति सुबहूनि च ॥ ४८
तयां पुण्यजनोपेतं राष्ट्रमाविशतां महत् ।
पाण्डवानां महाराज शश्वत्प्रीतिरवर्धत ॥ ४९
तत्र भीष्मेण राज्ञा च धर्मप्रणयने कृते ।
पाण्डवाः समपद्यन्त खाण्डवप्रस्थवासिनः ॥ ५०
पञ्चभिस्तैर्महेष्वासैरिन्द्रकल्पैः समन्वितम् ।
शुशुभे तत्पुरश्रेष्ठं नागैर्भोगवती यथा ॥ ५१
तां निवेश्य ततो वीरो रामेण सह केशवः ।
ययौ द्वारवतीं राजन्पाण्डवानुमते तदा ॥ ५२

इति श्रीमहा० आदिप०विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि पुरनिर्माणे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०७॥

---

## २०८

जनमेजय उवाच ।
एवं संप्राप्य राज्यं तदिन्द्रप्रस्थं तपोधन ।
अत ऊर्ध्वं महात्मानः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १
सर्व एव महासत्त्वा मम पूर्वपितामहाः ।
द्रौपदी धर्मपत्नी च कथं तानन्ववर्तत ॥ २
कथं च पञ्च कृष्णायामेकस्यां ते नराधिपाः ।
वर्तमाना महाभागा नाभिद्यन्त परस्परम् ॥ ३
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं विस्तरेण तपोधन ।
तेषां चेष्टितमन्योन्यं युक्तानां कृष्णया सह ॥ ४
वैशंपायन उवाच ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञाताः कृष्णया सह पाण्डवाः ।
रेमिरे खाण्डवप्रस्थे प्राप्तराज्याः परंतपाः ॥ ५
प्राप्य राज्यं महातेजाः सत्यसंधो युधिष्ठिरः ।
पालयामास धर्मेण पृथिवीं भ्रातृभिः सह ॥ ६
जितारयो महाप्राज्ञाः सत्यधर्मपरायणाः ।
मुदं परमिकां प्राप्तास्तत्रोषुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ७
कुर्वाणाः पौरकार्याणि सर्वाणि पुरुषर्षभाः ।
आसांचक्रुर्महार्हेषु पार्थिवेष्वासनेषु च ॥ ८
अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव महात्मसु ।
नारदस्त्वथ देवर्षिराजगाम यदृच्छया ॥ ९
आसनं रुचिरं तस्मै प्रददौ स्वं युधिष्ठिरः ।
देवर्षेरुपविष्टस्य स्वयमर्घ्यं यथाविधि ॥ १०
प्रादाद्युधिष्ठिरो धीमान्राज्यं तस्मै न्यवेदयत् ।
प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिः प्रीतमनास्तदा ॥ ११
आशीर्भिर्वर्धयित्वा च तमुवाचास्यतामिति ।
निषसादाभ्यनुज्ञातस्ततो राजा युधिष्ठिरः ॥ १२
कथयामास कृष्णायै भगवन्तमुपस्थितम् ।
श्रुत्वैतद्द्रौपदी चापि शुचिर्भूत्वा समाहिता ॥१३
जगाम तत्र यत्रास्ते नारदः पाण्डवैः सह ।
तस्याभिवाद्य चरणौ देवर्षेर्धर्मचारिणी ॥ १४
कृताञ्जलिः सुसंवीता स्थिताऽथ द्रुपदात्मजा ।
तस्याश्चापि स धर्मात्मा सत्यवागृषिसत्तमः १५
आशिषो विविधाः प्रोच्य राजपुत्र्यास्तु नारदः ।
गम्यतामिति होवाच भगवांस्तामनिन्दिताम् १६
गतायामथ कृष्णायां युधिष्ठिरपुरोगमान् ।
विविक्ते पाण्डवान्सर्वानुवाच भगवानृषिः ॥ १७
नारद उवाच ।
पाञ्चाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी ।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम्॥
सुन्दोपसुन्दौ हि पुरा भ्रातरौ सहितावुभौ ।
आस्तामवध्यावन्येषां त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ॥ १९
एकराज्यावेकगृहावेकशय्यासनाशनौ ।
तिलोत्तमायास्तौ हेतोरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २०

---

वनावृताः वनैः आरामैः आवृताः जलपूर्णा वा ॥४८॥ पुण्यैर्जनैरुपेतम् ॥ ४९ ॥ राज्ञा धृतराष्ट्रेण धर्मस्य युधिष्ठिरस्य । प्रणयने प्रापणे ॥ ५० ॥ इति आ० नै० भा० आ० सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

२०८

एवमिति ॥१॥ तत्रोषुः तत्र इन्द्रप्रस्थे ऊषुर्वासं कृतवन्तः ॥ ७ ॥ आसांचक्रु स्थिरासना बभूवुः । पार्थिवेषु राजसंबन्धिषु आसनेष्वधिकारविशेषेषु ॥ ८ ॥ सुसंवीता सम्यक्कृतावगुण्ठना ॥१५॥

रक्ष्यतां सौहृदं तस्मादन्योन्यप्रीतिभावकम् ।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्तत्कुरुष्व युधिष्ठिर २१
युधिष्ठिर उवाच ।
सुन्दोपसुन्दावसुरौ कस्य पुत्रौ महामुने ।
उत्पन्नश्च कथं भेदः कथं चान्योऽन्यमघ्नताम् ॥२२
अप्सरा देवकन्या वै कस्य चैषा तिलोत्तमा ।
यस्याः कामेन संमत्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥ २३
एतत्सर्वं यथावृत्तं विस्तरेण तपोधन ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि मे ॥ २४

इति श्रीमहा०आदि०विदुरागमनराज्यलम्भप०युधिष्ठिरनारदसंवादेऽष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः २०८

---

## २०९

नारद उवाच ।
शृणु मे विस्तरेणेममितिहासं पुरातनम् ।
भ्रातृभिः सहितः पार्थ यथावृत्तं युधिष्ठिर ॥ १
महासुरस्यान्ववाये हिरण्यकशिपोः पुरा ।
निकुम्भो नाम दैत्येन्द्रस्तेजस्वी बलवानभूत् ॥ २
तस्य पुत्रौ महावीर्यौ जातौ भीमपराक्रमौ ।
सुन्दोपसुन्दौ दैत्येन्द्रौ दारुणौ क्रूरमानसौ ॥ ३
तावेकनिश्चयौ दैत्यावेककार्यार्थसंमतौ ।
निरन्तरमवर्तेतां समदुःखसुखावुभौ ॥ ४
विनाऽन्योन्यं न भुञ्जाते विनाऽन्योन्यं न जल्पतः
अन्योऽन्यस्य प्रियकरावन्योऽन्यस्य प्रियंवदौ ॥५
एकशीलसमाचारौ द्विधैवैकोऽभवत्कृतः ।
तौ विवृद्धौ महावीर्यौ कार्येष्वप्येकनिश्चयौ ॥ ६
त्रैलोक्यविजयार्थाय समाधायैकनिश्चयम् ।
दीक्षां कृत्वा गतौ विन्ध्यं तावुग्रं तेपतुस्तपः ॥ ७
तौ तु दीर्घेण कालेन तपोयुक्तौ बभूवतुः ।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ जटावल्कलधारिणौ ॥ ८
[illegible] वायुभक्षौ बभूवतुः ।
[illegible] जुह्वन्तौ पादाङ्गुष्ठाग्राधिष्ठितौ ।
[illegible] चानिमिषौ दीर्घकालं धृतव्रतौ ॥ ९
तयोस्तपःप्रभावेण दीर्घकालं प्रतापितः ।
धूमं प्रमुमुचे विन्ध्यस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०
ततो देवा भयं जग्मुरुग्रं दृष्ट्वा तयोस्तपः ।
तपोविघातार्थमथो देवा विघ्नानि चक्रिरे ॥ ११
रत्नैः प्रलोभयामासुः स्त्रीभिश्चोभौ पुनः पुनः ।
न च तौ चक्रतुर्भङ्गं व्रतस्य सुमहाव्रतौ ॥ १२
अथ मायां पुनर्देवास्तयोश्चक्रुर्महात्मनोः ।
भगिन्यो मातरो भार्यास्तयोश्चात्मजनस्तथा १३
प्रपात्यमाना विस्रस्ताः शूलहस्तेन रक्षसा ।
भ्रष्टाभरणकेशान्ता भ्रष्टाभरणवाससः ॥ १४
अभिभाष्य ततः सर्वास्तौ त्राहीति विचुक्रुशुः ।
न च तौ चक्रतुर्भङ्गं व्रतस्य सुमहाव्रतौ ॥ १५
यदा क्षोभं नोपयाति नार्तिमन्यतरस्तयोः ।
ततः स्त्रियस्ता भूतं च सर्वमन्तरधीयत ॥ १६
ततः पितामहः साक्षादभिगम्य महासुरौ ।
वरेण छन्दयामास सर्वलोकहितः प्रभुः ॥ १७
ततः सुन्दोपसुन्दौ तौ भ्रातरौ दृढविक्रमौ ।
दृष्ट्वा पितामहं देवं तस्थतुः प्राञ्जली तदा ॥ १८
ऊचतुश्च प्रभुं देवं ततस्तौ सहितौ तदा ।
आवयोस्तपसाऽनेन यदि प्रीतः पितामहः ॥ १९
मायाविदावस्त्रविदौ बलिनौ कामरूपिणौ ।
उभावप्यमरौ स्याव: प्रसन्नो यदि नौ प्रभुः ॥२०
ब्रह्मोवाच ।
ऋतेऽमरत्वं युवयोः सर्वमुक्तं भविष्यति ।
अन्यद्वृणीतं मृत्योश्च विधानममरैः समम् ॥ २१
प्रभविष्याव इति यन्महदभ्युद्यतं तपः ।
युवयोर्हेतुनानेन नामरत्वं विधीयते ॥ २२

---

अन्योन्यप्रीतिभावकम् परस्परप्रीत्या भावो वृद्धिर्यस्य तत्तथा ॥ २१ ॥ अघ्नतां हतवन्तौ ॥ २२ ॥ कस्य देवस्य कन्या ॥ २३ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भा० भा० अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

२०९

शृण्विति॥१॥ निरन्तरं मतिभेदं विना॥४॥येनामरतुल्यत्वं भवेत्तादृशं विधानं वृणीतं ज्ञापयतम् ॥ २१ ॥ प्रभविष्यावः प्रभुत्वमैश्वर्यं करिष्यावः । यत्कामो यदारभेतत्तत्समाप्तौ तदेव लभते नान्यदित्यर्थः ॥ २२ ॥

त्रैलोक्यविजयार्थाय भवद्भ्यामास्थितं तपः ।
हेतुनाऽनेन दैत्येन्द्रौ न वा कामं करोम्यहम् २३
सुन्दोपसुन्दावूचतुः ।
त्रिषु लोकेषु यद्भूतं किंचित्स्थावरजङ्गमम् ।
सर्वस्मान्नौ भयं न स्यादृतेन्योऽन्यं पितामह ॥२४
पितामह उवाच ।
यत्प्रार्थितं यथोक्तं च काममेतद्ददानि वाम् ।
मृत्योर्विधानमेतच्च यथावद्वा भविष्यति ॥ २५
नारद उवाच ।
ततः पितामहो दत्वा वरमेतत्तदा तयोः ।
निवर्त्य तपसस्तौ च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २६
लब्ध्वा वराणि दैत्येन्द्रावथ तौ भ्रातरावुभौ ।
अवध्यौ सर्वलोकस्य स्वमेव भवनं गतौ ॥ २७
तौ तु लब्धवरौ दृष्ट्वा कृतकामौ मनस्विनौ ।
सर्वः सुहृज्जनस्ताभ्यां प्रहर्षमुपजग्मिवान् ॥ २८
ततस्तौ तु जटा भित्वा मौलिनौ संबभूवतुः ।
महार्हाभरणोपेतौ विरजोम्बरधारिणौ ॥ २९
अकालकौमुदीं चैव चक्रतुः सार्वकालिकीम् ।
नित्यः प्रमुदितः सर्वस्तयोश्चैव सुहृज्जनः ॥ ३०
भक्ष्यतां भुज्यतां नित्यं दीयतां रम्यतामिति ।
गीयतां पीयतां चेति शब्दश्चासीद्गृहे गृहे ॥ ३१
तत्र तत्र महानादैरुत्कृष्टतलनादितैः ।
हृष्टं प्रमुदितं सर्वं दैत्यानामभवत्पुरम् ॥ ३२
तैस्तैर्विहारैर्बहुभिर्दैत्यानां कामरूपिणाम् ।
समाः संक्रीडतां तेषामहरेकमिवाभवत् ॥ ३३

इति श्रीमहा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि सुंदोपसुन्दोपाख्याने नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥

## २१०

नारद उवाच ।
उत्सवे वृत्तमात्रे तु त्रैलोक्याकाङ्क्षिणावुभौ ।
मन्त्रयित्वा ततः सेनां तावाज्ञापयतां तदा ॥ १
सुहृद्भिरप्यनुज्ञातौ दैत्यैर्वृद्धैश्च मन्त्रिभिः ।
कृत्वा प्रास्थानिकं रात्रौ मघासु ययतुस्तदा ॥ २
गदापट्टिशधारिण्या शूलमुद्गरहस्तया ।
प्रस्थितौ सह धर्मिण्या महत्या दैत्यसेनया ॥ ३
मङ्गलैः स्तुतिभिश्चापि विजयप्रतिसंहितैः ।
चारणैः स्तूयमानौ तौ जग्मतुः परया मुदा ॥ ४
तावन्तरिक्षमुत्प्लुत्य दैत्यौ कामगमावुभौ ।
देवानामेवभवनं जग्मतुर्युद्धदुर्मदौ ॥ ५
तयोरागमनं ज्ञात्वा वरदानं च तत्प्रभोः ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्ब्रह्मलोकं ततः सुराः ॥ ६
ताविन्द्रलोकं निर्जित्य यक्षरक्षोगणांस्तदा ।
खेचराण्यपि भूतानि जघ्नतुस्तीव्रविक्रमौ ॥ ७
अन्तर्भूमिगतान्नागाञ्जित्वा तौ च महारथौ ।
समुद्रवासिनीः सर्वा म्लेच्छजातीर्विजिग्यतुः ॥
ततः सर्वां महीं जेतुमारब्धावुग्रशासनौ ।
सैनिकांश्च समाहूय सुतीक्ष्णं वाक्यमूचतुः ॥ ९
राजर्षयो महायज्ञैर्हव्यकव्यैर्द्विजातयः ।
तेजो बलं च देवानां वर्धयन्ति श्रियं तथा ॥ १०
तेषामेवं प्रवृत्तानां सर्वेषामसुरद्विषाम् ।
संभूय सर्वैरस्माभिः कार्यः सर्वात्मना वधः ॥ ११
एवं सर्वान्समादिश्य पूर्वतीरे महोदधेः ।
क्रूरां मतिं समास्थाय जग्मतुः सर्वतोमुखौ ॥
यज्ञैर्यजन्ति ये केचिद्याजयन्ति च ये द्विजाः ।
तान्सर्वान्प्रसभं हत्वा बलिनौ जग्मतुस्ततः ॥ १३
आश्रमेष्वग्निहोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
गृहीत्वा प्रक्षिपन्त्यप्सु विश्रब्धं सैनिकास्तयोः ॥
तपोधनैश्च ये क्रुद्धैः शापा उक्ता महात्मभिः ।
नाक्रामन्त तयोस्तेपि वरदाननिराकृताः ॥ १५

---

*यथावद्वा यथावदेव* ॥ २५ ॥ *मौलिनौ किरीटवन्तौ* । ' मौलिःकिरीटे धम्मिल्ले ' इति मेदिनी । व्रीह्यादित्वादिनिः ॥ २९ ॥ *तलनादितैः* करतलध्वनिभिः वाद्यघोषैर्वा ॥ ३२ ॥ *समाः* बहूनि वर्षाणि एकं दिनमिवाभूत् ॥ ३३ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकद्विशततमोऽध्याय. ॥ २०९ ॥

२१०

*उत्सवे* इति ॥ १ ॥ *मघासु* गमनार्थं निषिद्धेपि नक्षत्रे आसुरत्वाद्ययतुः ॥२॥ *विजयप्रतिसंहितैः* विजयकथकैः॥४॥ *नाक्रामन्त* न व्याप्तवन्तः । *तयोः* तौ । कर्मणि षष्ठी॥१५॥

नाक्रामन्त यदा शापा बाणा मुक्ताः शिलास्विव ।
नियमांस्तान्परित्यज्य व्यद्रवन्त द्विजातयः ॥ १६
पृथिव्यां ये तपःसिद्धा दान्ताः शमपरायणाः ।
तयोर्भयाद्दुद्रुवुस्ते वैनतेयादिवोरगाः ॥ १७
मथितैराश्रमैर्भग्नैर्विकीर्णकलशस्रुचैः ।
शून्यमासीज्जगत्सर्वं कालेनेव हतं तदा ॥ १८
ततो राजन्नदृश्यद्भिर्ऋषिभिश्च महासुरौ ।
उभौ विनिश्चयं कृत्वा विकुर्वाते वधैषिणौ ॥ १९
प्रभिन्नकरटौ मत्तौ भूत्वा कुञ्जररूपिणौ ।
संलीनमपि दुर्गेषु निन्यतुर्यमसादनम् ॥ २०
सिंहौ भूत्वा पुनर्व्याघ्रौ पुनश्चान्तर्हितावुभौ ।
तैस्तैरुपायैस्तौ क्रूरावृषीन्दृष्ट्वा निजघ्नतुः ॥ २१
निवृत्तयज्ञस्वाध्याया प्रणष्टनृपतिद्विजा ।
उत्सन्नोत्सवयज्ञा च बभूव वसुधा तदा ॥ २२
हाहाभूता भयार्ता च निवृत्तविपणापणा ।
निवृत्तदेवकार्या च पुण्योद्वाहविवर्जिता ॥ २३
निवृत्तकृषिगोरक्षा विध्वस्तनगराश्रमा ।
अस्थिकङ्कालसंकीर्णा भूर्बभूवोग्रदर्शना ॥ २४
निवृत्तपितृकार्यं च निर्वषट्कारमङ्गलम् ।
जगत्प्रतिभयाकारं दुष्प्रेक्ष्यमभवत्तदा ॥ २५
चन्द्रादित्यौ ग्रहास्तारा नक्षत्राणि दिवौकसः ।
जग्मुर्विषादं तत्कर्म दृष्ट्वा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ २६
एवं सर्वा दिशो दैत्यौ जित्वा क्रूरेण कर्मणा ।
निःसपत्नौ कुरुक्षेत्रे निवेशमभिचक्रतुः ॥ २७

इति श्रीमहा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि सुन्दोपसुन्दोपाख्याने दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

---

## २११

नारद उवाच ।
ततो देवर्षयः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ।
जग्मुस्तदा परामार्तिं दृष्ट्वा तत्कदनं महत् ॥ १
तेऽभिजग्मुर्जितक्रोधा जितात्मानो जितेन्द्रियाः ।
पितामहस्य भवनं जगतः कृपया तदा ॥ २
ततो ददृशुरासीनं सह देवैः पितामहम् ।
सिद्धैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव समन्तात्परिवारितम् ॥ ३
तत्र देवो महादेवस्तत्राग्निर्वायुना सह ।
चन्द्रादित्यौ च शक्रश्च पारमेष्ठ्यास्तथर्षयः ॥ ४
वैखानसा वालखिल्या वानप्रस्था मरीचिपाः ।
अजाश्चैवाविमूढाश्च तेजोगर्भास्तपस्विनः ॥ ५
ऋषयः सर्व एवैते पितामहमुपागमन् ।
ततोऽभिगम्य ते दीनाः सर्व एव महर्षयः ॥ ६
सुन्दोपसुन्दयोः कर्म सर्वमेव शशंसिरे ।
यथा हृतं यथा चैव कृतं येन क्रमेण च ॥ ७
न्यवेदयंस्ततः सर्वमखिलेन पितामहे ।
ततो देवगणाः सर्वे ते चैव परमर्षयः ॥ ८
तमेवार्थं पुरस्कृत्य पितामहमचोदयन् ।
ततः पितामहः श्रुत्वा सर्वेषां तद्वचस्तदा ॥ ९
मुहूर्तमिव संचिन्त्य कर्तव्यस्य च निश्चयम् ।
तयोर्वधं समुद्दिश्य विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥ १०
दृष्ट्वा च विश्वकर्माणं व्यादिदेश पितामहः ।
सृज्यतां प्रार्थनीयेह प्रमदेति महातपाः ॥ ११
पितामहं नमस्कृत्य तद्वाक्यमभिनन्द्य च ।
निर्ममे योषितं दिव्यां चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥
त्रिषु लोकेषु यत्किंचिद्भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
समानयद्दर्शनीयं तत्तदत्र स विश्ववित् ॥ १३
कोटिशश्चैव रत्नानि तस्या गात्रे न्यवेशयत् ।
तां रत्नसंघातमयीमसृजद्देवरूपिणीम् ॥ १४
सा प्रयत्नेन महता निर्मिता विश्वकर्मणा ।
त्रिषु लोकेषु नारीणां रूपेणाप्रतिमाभवत् ॥ १५

---

अदृश्यद्भिरन्तर्हितैः। ऋषिभिर्हेतुभूतैस्तौ विकुर्वाते विविधानि सिंहव्याघ्रादीनि रूपाणि जगृहाते विनाशाय । ततस्तद्रूपाज्ञानात्प्रकटान्मुनीन् गजादिरूपौ निजघ्नतुरित्यर्थः ॥ १९ ॥ तदेवाह प्रभिन्नेति प्रभिन्नौ मदेन भिन्नौ करटौ गण्डदेशौ ययोस्तौ । संलीनमपि मुनिम्॥२०॥उत्सवो यात्राविवाहादिः ॥ २२ ॥ निवृत्तविपणाः क्रयविक्रयादिव्यवहारशून्या आपणाः हट्टा यस्याम् ॥ २३ ॥ अस्थीनि हस्तपादादिसंव-र्माणि । कङ्कालाः देहमध्यास्थीनि पार्श्वादिसहितानि ॥२४॥ ग्रहाः कुजादयः ताराः [illegible] । नक्षत्राणि अश्विन्यादीनि ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

न तस्याः सूक्ष्ममप्यस्ति यद्गात्रे रूपसंपदा ।
नियुक्ता यत्र या दृष्टिर्न सज्जति निरीक्षताम् ॥१६
सा विग्रहवतीव श्रीः कामरूपा वपुष्मती ।
जहार सर्वभूतानां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ १७
तिलं तिलं समानीय रत्नानां यद्विनिर्मिता ।
तिलोत्तमेति तत्तस्या नाम चक्रे पितामहः ॥१८
ब्रह्माणं सा नमस्कृत्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
किं कार्यं मयि भूतेश येनास्म्यद्येह निर्मिता ॥१९
पितामह उवाच ।
गच्छ सुन्दोपसुन्दाभ्यामसुराभ्यां तिलोत्तमे ।
प्रार्थनीयेन रूपेण कुरु भद्रे प्रलोभनम् ॥ २०
त्वत्कृते दर्शनादेव *रूपसंपत्कृतेन वै ।
विरोधः स्याद्यथा ताभ्यामन्योन्येन तथा कुरु ॥
नारद उवाच ।
सा तथेति प्रतिज्ञाय नमस्कृत्य पितामहम् ।
चकार मण्डलं तत्र विबुधानां प्रदक्षिणम् ॥ २२
प्राङ्मुखो भगवानास्ते दक्षिणेन महेश्वरः ।
देवाश्चैवोत्तरेणासन्सर्वतस्त्वृषयोऽभवन् ॥ २३
कुर्वत्या तु तदा तत्र मण्डलं तत्प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रः स्थाणुश्च भगवान्धैर्येण प्रत्यवस्थितौ ॥ २४
द्रष्टुकामस्य चात्यर्थं गतया पार्श्वतस्तया ।
अन्यदञ्चितपक्ष्माक्षं दक्षिणं निःसृतं मुखम् ॥ २५
पृष्ठतः परिवर्तन्त्या पश्चिमं निःसृतं मुखम् ।
गतया चोत्तरं पार्श्वमुत्तरं निःसृतं मुखम् ॥२६
महेन्द्रस्यापि नेत्राणां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।
रक्तान्तानां विशालानां सहस्रं सर्वतोऽभवत् ॥
एवं चतुर्मुखः स्थाणुर्महादेवोऽभवत्पुरा ।
तथा सहस्रनेत्रश्च बभूव बलसूदनः ॥ २८
तथा देवनिकायानां महर्षीणां च सर्वशः ।
मुखानि चाभ्यवर्तन्त येन याति तिलोत्तमा ॥२९
तस्या गात्रे निपतिता दृष्टिस्तेषां महात्मनाम् ।
सर्वेषामेव भूयिष्ठमृते देवं पितामहम् ॥ ३०
गच्छन्त्या तु तया सर्वे देवाश्च परमर्षयः ।
कृतमित्येव तत्कार्यं मेनिरे रूपसंपदा ॥ ३१
तिलोत्तमायां तस्यां तु गतायां लोकभावनः ।
सर्वान्विसर्जयामास देवानृषिगणांश्च तान् ॥ ३२

इति श्रीमहा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भपर्वणि सुन्दोपसुन्दोपाख्याने तिलोत्तमाप्रस्थापने एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

---

## २१२

नारद उवाच ।
जित्वा तु पृथिवीं दैत्यौ निःसपत्नौ गतव्यथौ ।
कृत्वा त्रैलोक्यमव्यग्रं कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥ १
देवगन्धर्वयक्षाणां नागपार्थिवरक्षसाम् ।
आदाय सर्वरत्नानि परां तुष्टिमुपागतौ ॥ २
यदा न प्रतिषेद्धारस्तयोः सन्तीह केचन ।
निरुद्योगौ तदा भूत्वा विजह्रातेऽमराविव ॥ ३
स्त्रीभिर्माल्यैश्च गन्धैश्च भक्ष्यभोज्यैः सुपुष्कलैः ।
पानैश्च विविधैर्हृद्यैः परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४
अन्तःपुरवनोद्याने पर्वतेषु वनेषु च ।
यथेप्सितेषु देशेषु विजह्रातेऽमराविव ॥ ५
ततः कदाचिद्विन्ध्यस्य प्रस्थे समशिलातले ।
पुष्पिताग्रेषु शालेषु विहारमभिजग्मतुः ॥ ६
दिव्येषु सर्वकामेषु समानीतेषु तावुभौ ।
वरासनेषु संहृष्टौ सहस्त्रीभिर्निषीदतुः ॥ ७
ततो वादित्रनृत्याभ्यामुपातिष्ठन्त तौ स्त्रियः ।
गीतैश्च स्तुतिसंयुक्तैः प्रीत्या समुपजग्मिरे ॥ ८

---

२११

तस्या गात्रे सूक्ष्ममपि तदङ्गं नास्ति । यच्छन्दस्तदर्थे । रूपसंपदाहेतुभूतया यत्र नियुक्ता निरीक्षतां दृष्टिर्न सज्जतीति संबन्धः ॥ १६ ॥ प्रलोभनं अर्थात्सुन्दोसुन्दयोरेव ॥२०॥ ताभ्यां तयोः ॥ २१ ॥ मण्डलं समुदायं ॥२२॥ भगवान्विष्णुः । प्राङ्मुखीभावादिना तेषामपि तत्र मोहो द्योतितः ॥ २३ ॥ द्रष्टुकामस्य स्थाणोः ॥ २५ ॥ देवनिकायानां देवसंघाना येन देशेन मार्गेण सा याति तथा मुखानि अभ्यवर्तन्त ॥ २९ ॥ इति आदिप० नै० भा० भा० एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

* रूपसंपत्करणेन हेतुना

२१२

जित्वेति । कृत्वा स्वाधीनं अव्यग्रं निर्विशेषं यथा स्यात्तथा ॥ १ ॥ प्रस्थे शिखरे ॥ ६ ॥

ततस्तिलोत्तमा तत्र वने पुष्पाणि चिन्वती ।
वेषं साक्षिप्तमाधाय रक्तेनैकेन वाससा ॥ ९
नदीतीरेषु जातान्सा कर्णिकारान्प्रचिन्वती ।
शनैर्जगाम तं देशं यत्रास्तां तौ महासुरौ ॥ १०
तौ तु पीत्वा वरं पानं मदरक्तान्तलोचनौ ।
दृष्ट्वैव तां वरारोहां व्यथितौ संबभूवतुः ॥ ११
तावुत्थायासनं हित्वा जग्मतुर्यत्र सा स्थिता ।
उभौ च कामसंमत्तावुभौ प्रार्थयतश्च ताम् ॥ १२
दक्षिणे तां करे सुभ्रूं सुन्दो जग्राह पाणिना ।
उपसुन्दोपि जग्राह वामे पाणौ तिलोत्तमाम् ॥
वरप्रदानमत्तौ तावौरसेन बलेन च ।
धनरत्नमदाभ्यां च सुरापानमदेन च ॥ १४
सर्वैरेतैर्मदैर्मत्तावन्योऽन्यं भ्रुकुटीकृतौ ।
मदकामसमाविष्टौ परस्परमथोचतुः ॥ १५
मम भार्या तव गुरुरिति सुन्दोऽभ्यभाषत ।
मम भार्या तव वधूरुपसुन्दोऽभ्यभाषत ॥ १६
नैषा तव ममैषेति ततस्तौ मन्युराविशत् ।
तस्या रूपेण संमत्तौ विगतस्नेहसौहृदौ ॥ १७
तस्या हेतोर्गदे भीमे संगृह्णीतामुभौ तदा ।
प्रगृह्य च गदे भीमे तस्यां तौ काममोहितौ ॥१८
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्यन्योऽन्यं निजघ्नतुः ।
तौ गदाभिहतौ भीमौ पेततुर्धरणीतले ॥ १९
रुधिरेणावसिक्ताङ्गौ द्वाविवार्कौ नभश्च्युतौ ।
ततस्ता विद्रुता नार्यः स च दैत्यगणस्तथा ॥२०
पातालमगमत्सर्वो विषादभयकम्पितः ।
ततः पितामहस्तत्र सह देवैर्महर्षिभिः ॥ २१
आजगाम विशुद्धात्मा पूजयंश्च तिलोत्तमाम् ।
वरेण छन्दयामास भगवान्प्रपितामहः ॥ २२
वरं दित्सुः स तत्रैनां प्रीतः प्राह पितामहः ।
आदित्यचरिताँल्लोकान्विचरिष्यसि भाविनि २३
तेजसा च सुदृष्टां त्वां न करिष्यति कश्चन ।
एवं तस्यै वरं दत्वा सर्वलोकपितामहः ॥ २४
इन्द्रे त्रैलोक्यमाधाय ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ।

नारद उवाच ।

एवं तौ सहितौ भूत्वा सर्वार्थेष्वेकनिश्चयौ ॥ २५
तिलोत्तमार्थे संक्रुद्धावन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ।
तस्माद्ब्रवीमि वः स्नेहात्सर्वान्भरतसत्तमाः ॥ २६
यथा वो नात्र भेदः स्यात्सर्वेषां द्रौपदीकृते ।
तथा कुरुत भद्रं वो मम चेत्प्रियमिच्छथ ॥ २७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्ता महात्मानो नारदेन महर्षिणा ।
समयं चक्रिरे राजंस्तेऽन्योऽन्यवशमागताः ।
समक्षं तस्य देवर्षेर्नारदस्यामितौजसः ॥ २८
द्रौपद्या नः सहासीनानन्योऽन्यं योऽभिदर्शयेत् ।
स नो द्वादशवर्षाणि ब्रह्मचारी वने वसेत् ॥ २९
कृते तु समये तस्मिन्पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ।
नारदोऽप्यगमत्प्रीत इष्टं देशं महामुनिः ॥ ३०
एवं तैः समयः पूर्वं कृतो नारदचोदितैः ।
न चाभिद्यन्त ते सर्वे तदाऽन्योऽन्येन भारत ३१

इति श्रीमहा० आदिप० विदुरागमनराज्यलम्भप० सुन्दोपसुन्दोपाख्याने द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

समाप्तं विदुरागमनराज्यलम्भपर्व ।

---

वेषं शृङ्गारं आधाय साक्षिप्तं आक्षिप्तं आक्षेपो मनोवैकल्यं तेन सह यथा स्यात्तथा । सूक्ष्मैकवाससो धारितत्वाद्विविक्तावयवत्वेन जनं व्याकुलयन्तीत्यर्थः ॥९॥ व्यथितौ कामेन ॥ ११ ॥ तेजसाऽर्कवत्परदृष्ट्यभिभावकत्वात्सुदृष्टां सम्यग्दृष्टां न करिष्यति कश्चित् ॥ २४ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भा० भा० द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

दक्षिणे तां करे सुभ्रूं सुन्दो जग्राह पाणिना ।
उपसुन्दोपि जग्राह वामे पाणौ तिलोत्तमाम् ॥

आदि० २१२.१३

## अर्जुनवनवासपर्व

## २१३

वैशंपायन उवाच ।

एवं ते समयं कृत्वा न्यवसंस्तत्र पाण्डवाः ।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीक्षितः ॥ १
तेषां मनुजसिंहानां पञ्चानाममितौजसाम् ।
बभूव कृष्णा सर्वेषां पार्थानां वशवर्तिनी ॥ २
ते तया तैश्च सा वीरैः पतिभिः सह पञ्चभिः ।
बभूव परमप्रीता नागैरिव सरस्वती ॥ ३
वर्तमानेषु धर्मेण पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यवर्धन्कुरवः सर्वे हीनदोषाः सुखान्विताः ॥ ४
अथ दीर्घेण कालेन ब्राह्मणस्य विशांपते ।
कस्यचित्तस्करा जह्रुः केचिद्गा नृपसत्तम ॥ ५
ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः ।
आगम्य खाण्डवप्रस्थमुदक्रोशत्स पाण्डवान् ॥ ६
ह्रियते गोधनं क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
प्रसह्य चास्मद्विषयादभ्यधावत पाण्डवाः ॥ ७
ब्राह्मणस्य प्रशान्तस्य हविर्ध्वाङ्क्षैः प्रलुप्यते ।
शार्दूलस्य गुहां शून्यां नीचः क्रोष्टाभिमर्दति ॥८
अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रं पापचारिणम् ॥ ९
ब्राह्मणस्वे हृते चोरैर्धर्मार्थे च विलोपिते ।
रोरूयमाणे च मयि क्रियतां हस्तधारणा ॥ १०

वैशंपायन उवाच ।

रोरूयमाणस्याभ्याशे भृशं विप्रस्य पाण्डवः ।
तानि वाक्यानि शुश्राव कुन्तीपुत्रो धनंजयः ११
श्रुत्वैव च महाबाहुर्माभैरित्याह तं द्विजम् ।
आयुधानि च यत्रासन्पाण्डवानां महात्मनाम् १२
कृष्णया सह तत्रास्ते धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
संप्रवेशाय चाशक्तो गमनाय च पाण्डवः ॥ १३
तस्य चार्तस्य तैर्वाक्यैश्चोद्यमानः पुनः पुनः ।
आक्रन्दे तत्र कौन्तेयश्चिन्तयामास दुःखितः १४
ह्रियमाणे धने तस्मिन्ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।
अश्रुप्रमार्जनं तस्य कर्तव्यमिति निश्चयः ॥ १५
उपप्रेक्षणजोऽधर्मः सुमहान्स्यान्महीपतेः ।
यद्यस्य रुदतो द्वारि न करोम्यद्य रक्षणम् ॥ १६
अनास्तिक्यं च सर्वेषामस्माकमपि रक्षणे ।
प्रतितिष्ठेत लोकेऽस्मिन्नधर्मश्चैव नो भवेत् ॥ १७
अनापृच्छ्य तु राजानं गते मयि न संशयः ।
अजातशत्रोर्नृपतेर्मम चैवाप्रियं भवेत् ॥ १८
अनुप्रवेशे राज्ञस्तु वनवासो भवेन्मम ।
सर्वमन्यत्परिहृतं धर्षणात्तु महीपतेः ॥ १९
अधर्मो वै महानस्तु वने वा मरणं मम ।
शरीरस्य विनाशेन धर्म एव विशिष्यते ॥ २०
एवं विनिश्चित्य ततः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
अनुप्रविश्य राजानमापृच्छ्य च विशांपते ॥ २१
धनुरादाय संहृष्टो ब्राह्मणं प्रत्यभाषत ।
ब्राह्मणागम्यतां शीघ्रं यावत्परधनैषिणः ॥ २२
न दूरे ते गताः क्षुद्रास्तावद्गच्छावहे सह ।
यावन्निवर्तयाम्यद्य चौरहस्ताद्धनं तव ॥ २३
सोऽनुसृत्य महाबाहुर्धन्वी वर्मी रथी ध्वजी ।
शरैर्विध्वस्य तांश्चौरानवजित्य च तद्धनम् ॥ २४
ब्राह्मणं समुपाकृत्य यशः प्राप्य च पाण्डवः ।
ततस्तद्गोधनं पार्थो दत्त्वा तस्मै द्विजातये ॥ २५
आजगाम पुरं वीरः सव्यसाची धनंजयः ।
सोऽभिवाद्य गुरून्सर्वान्सर्वैश्चाप्यभिनन्दितः २६
धर्मराजमुवाचेदं व्रतमादिश मे प्रभो ।
समयः समतिक्रान्तो भवत्संदर्शने मया ॥ २७

---

२१३

एवमिति ॥ १ ॥ नागैर्गजैः । सरस्वती बहुसरोयुक्ता वनस्थली । सा हि गजैर्युक्ताऽन्यैश्छेत्तुमशक्या । तथा च गजा बलिनः । एवं ते मिथो वृद्धिहेतव इत्यर्थः ॥ ३ ॥ हस्तधारणा क्रियता अभयं दीयतामित्यर्थः ॥ १० ॥ उपप्रेक्षणजः उपेक्षाजन्य. अधर्म इति छेदः ॥ १६ ॥ अनास्तिक्यं आस्तिक्याभावः । रक्षणे विषये । प्रतितिष्ठेत स्थिरः स्यात् । तेन च नोऽस्माकं अधर्मश्च महान् भवेत् ॥ १७ ॥ राजानं सस्त्रीकं आयुधागारस्थं प्रति मयि गते सति ॥ १८ ॥ अनुप्रवेशे एकस्मिन् स्त्रिया सह रममाणेऽन्यस्य तत्र गमने । अन्यत् वनवासादिकम् । परिहृतं तुच्छम् । धर्षणात्तु अधर्मो महान् इति संबन्ध. ॥ १९ ॥ वा शब्द इवार्थे । येनाधर्मेण मम वने मरणमिव स्यात्स एवास्तु यतोऽस्मात् ब्रह्मस्वरक्षणजो धर्म श्रेष्ठ ॥ २० ॥ आपृच्छ्य धनुश्चादाय ॥ २१ ॥ समुपाकृत्य प्रसाद्य स्वपुरं आजगामेति द्वितीयेनान्वयः ॥ २५ ॥

वनवासं गमिष्यामि समयो ह्येष नः कृतः ।
इत्युक्तो धर्मराजस्तु सहसा वाक्यमप्रियम् ॥ २८
कथमित्यब्रवीद्वाचा शोकार्तः सज्जमानया ।
युधिष्ठिरो गुडाकेशं भ्राता भ्रातरमच्युतम् ॥ २९
उवाच दीनो राजा च धनंजयमिदं वचः ।
प्रमाणमस्मि यदि ते मत्तः शृणु वचोऽनघ ॥ ३०
अनुप्रवेशे यद्वीर कृतवांस्त्वं ममाप्रियम् ।
सर्वं तदनुजानामि व्यलीकं न च मे हृदि ॥ ३१
गुरोरनुप्रवेशो हि नोपघातो यवीयसः ।
यवीयसोऽनुप्रवेशो ज्येष्ठस्य विधिलोपकः ॥ ३२
निवर्तस्व महाबाहो कुरुष्व वचनं मम ।
न हि ते धर्मलोपोस्ति न च ते धर्षणा कृता ॥३३

अर्जुन उवाच ।

न व्याजेन चरेद्धर्ममिति मे भवतः श्रुतम् ।
न सत्याद्विचलिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ ३४

वैशंपायन उवाच ।

सोभ्यनुज्ञाय राजानं वनचर्याय दीक्षितः ।
वने द्वादश वर्षाणि वासायानुजगाम ह ॥ ३५

इति श्रीमहा० आदिप० अर्जुनवनवासपर्वणि अर्जुनतीर्थयात्रायां त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३

---

## २१४

वैशंपायन उवाच ।

तं प्रयान्तं महाबाहुं कौरवाणां यशस्करम् ।
अनुजग्मुर्महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १
वेदवेदाङ्गविद्वांसस्तथैवाध्यात्मचिन्तकाः ।
भैक्षाश्च भगवद्भक्ताः सूताः पौराणिकाश्च ये ॥ २
कथकाश्चापरे राजन् श्रमणाश्च वनौकसः ।
दिव्याख्यानानि ये चापि पठन्ति मधुरं द्विजाः ३
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः सहायैः पाण्डुनन्दनः ।
वृतः श्लक्ष्णकथैः प्रायान्मरुद्भिरिव वासवः ॥ ४
रमणीयानि चित्राणि वनानि च सरांसि च ।
सरितः सागरांश्चैव देशानपि च भारत ॥ ५
पुण्यान्यपि च तीर्थानि ददर्श भरतर्षभः ।
स गङ्गाद्वारमाश्रित्य निवेशमकरोत्प्रभुः ॥ ६
तत्र तस्याद्भुतं कर्म शृणु त्वं जनमेजय ।
कृतवान्यद्विशुद्धात्मा पाण्डूनां प्रवरो हि सः ॥ ७
निविष्टे तत्र कौन्तेये ब्राह्मणेषु च भारत ।
अग्निहोत्राणि विप्रास्ते प्रादुश्चक्रुरनेकशः ॥ ८
तेषु प्रबोध्यमानेषु ज्वलितेषु हुतेषु च ।
कृतपुष्पोपहारेषु तीरान्तरगतेषु च ॥ ९
कृताभिषेकैर्विद्वद्भिर्नियतैः सत्पथि स्थितैः ।
शुशुभेऽतीव तद्राजन् गङ्गाद्वारं महात्मभिः ॥ १०
तथा पर्याकुले तस्मिन्निवेशे पाण्डवर्षभः ।
अभिषेकाय कौन्तेयो गङ्गामवततार ह ॥ ११
तत्राभिषेकं कृत्वा स तर्पयित्वा पितामहान् ।
उत्तितीर्षुर्जलाद्राजन्नग्निकार्यचिकीर्षया ॥ १२
अपकृष्टो महाबाहुर्नागराजस्य कन्यया ।
अन्तर्जले महाराज उलूप्या कामयानया ॥ १३
ददर्श पाण्डवस्तत्र पावकं सुसमाहितः ।
कौरव्यस्याथ नागस्य भवने परमार्चिते ॥ १४
तत्राग्निकार्यं कृतवान्कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
अशङ्कमानेन हुतस्तेनातुष्यद्धुताशनः ॥ १५
अग्निकार्यं स कृत्वा तु नागराजसुतां तदा ।
प्रहसन्निव कौन्तेय इदं वचनमब्रवीत् ॥ १६
किमिदं साहसं भीरु कृतवत्यसि भाविनि ।
कश्चायं सुभगे देशः का च त्वं कस्य वात्मजा १७

---

समयः अनुप्रवेष्टुर्द्वादशवार्षिको वनवासनियमः ॥ २८ ॥ सज्जमानया स्खलन्त्या ॥ २९ ॥ अनुजानामि ब्राह्मणार्थत्वेन गुणत्वेनैवाङ्गीकरोमि । व्यलीकं अप्रियम् ॥ ३१ ॥ उपघातोऽनिष्टः । विधिलोपको धर्मघ्नः ॥ ३२ ॥ न च ते त्वया ॥ ३३ ॥ इति आ० नै० भा० भा० त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

२१४

तं प्रयान्तमिति ॥ १ ॥ भैक्षाः भिक्षाजीविनो यतयो ब्रह्मचारिणश्च । चौक्षा इति पाठे चोक्षाः शुचयस्त एव चौक्षाः 'चोक्षो गीते शुचौ दक्षे तथा तीक्ष्णमनोज्ञयोः' इति मेदिनी । चोक्षा इत्येव मुख्यः पाठः ॥ २ ॥ श्रमणाः ऊर्ध्वरेतसो यतयो ब्रह्मचारिणश्च ॥ ३ ॥ अग्निकार्यचिकीर्षयेति । पत्नीसांनिध्याभावेपि प्रवसता औपासनहोमः कर्तव्य इति दर्शितम् ॥ ११ ॥ अपकृष्टोऽपनीतः । कामयानया तं पतिमिच्छन्त्या ॥ १३ ॥ अशङ्कमानेन आपद्धर्मनिश्चयवता विस्मयरहितेन ॥ १५ ॥

उलूप्युवाच ।

ऐरावतकुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः ।
तस्यास्मि दुहिता राजन्नुलूपी नाम पन्नगी ॥ १८
साऽहं त्वामभिषेकार्थमवतीर्णं समुद्रगाम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषव्याघ्र कन्दर्पेणाभिमूर्च्छिता ॥ १९
तां मामनङ्गग्लपितां त्वत्कृते कुरुनन्दन ।
अनन्यां नन्दयस्वाद्य प्रदानेनात्मनोऽनघ ॥ २०

अर्जुन उवाच ।

ब्रह्मचर्यमिदं भद्रे मम द्वादशवार्षिकम् ।
धर्मराजेन चादिष्टं नाहमस्मि स्वयं वशः ॥ २१
तव चापि प्रियं कर्तुमिच्छामि जलचारिणि ।
अनृतं नोक्तपूर्वं च मया किंचन कर्हिचित् ॥ २२
कथं च नानृतं मे स्यात्तव चापि प्रियं भवेत् ।
न च पीड्येत मे धर्मस्तथा कुर्या भुजङ्गमे ॥ २३

उलूप्युवाच ।

जानाम्यहं पाण्डवेय यथा चरासि मेदिनीम् ।
यथा च ते ब्रह्मचर्यमिदमादिष्टवान्गुरुः ॥ २४
परस्परं वर्तमानां द्रुपदस्यात्मजां प्रति ।
यो नोऽनुप्रविशेन्मोहात्स वै द्वादशवार्षिकम् २५
वने चरेद्ब्रह्मचर्यमिति वः समयः कृतः ।
तदिदं द्रौपदीहेतोरन्योऽन्यस्य प्रवासनम् ॥ २६
कृतवांस्तत्र धर्मार्थमत्र धर्मो न दुष्यति ।
परित्राणं च कर्तव्यमार्तानां पृथुलोचन ॥ २७
कृत्वा मम परित्राणं तव धर्मो न लुप्यते ।
यदि वाप्यस्य धर्मस्य सूक्ष्मोऽपि स्याद्व्यतिक्रमः ॥
स च ते धर्म एव स्याद्दत्त्वा प्राणान्ममार्जुन ।
भक्तां च भज मां पार्थ सतामेतन्मतं प्रभो ॥ २९
न करिष्यसि चेदेवं मृतां मामुपधारय ।
प्राणदानान्महाबाहो चर धर्ममनुत्तमम् ॥ ३०
शरणं च प्रपन्नास्मि त्वामद्य पुरुषोत्तम ।
दीनाननाथान्कौन्तेय परिरक्षसि नित्यशः ॥ ३१
साऽहं शरणमभ्येमि रोरवीमि च दुःखिता ।
याचे त्वां चाभिकामाहं तस्मात्कुरु मम प्रियम् ।
स त्वमात्मप्रदानेन सकामां कर्तुमर्हसि ॥ ३२

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पन्नगेश्वरकन्यया ।
कृतवांस्तत्तथा सर्वं धर्ममुद्दिश्य कारणम् ॥ ३३
स नागभवने रात्रिं तामुषित्वा प्रतापवान् ।
उदितेऽभ्युत्थितः सूर्ये कौरव्यस्य निवेशनात् ३४
आगतस्तु पुनस्तत्र गङ्गाद्वारं तया सह ।
परित्यज्य गता साध्वी उलूपी निजमन्दिरम् ॥३५
दत्त्वा वरमजेयत्वं जले सर्वत्र भारत ।
साध्या जलचराः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ३६

इति श्रीमहा० आदि० अर्जुनवनवासपर्वणि उलूपीसङ्गे चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

---

## २१५

वैशंपायन उवाच ।

कथयित्वा च तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यः स भारत ।
प्रययौ हिमवत्पार्श्वं ततो वज्रधरात्मजः ॥ १
अगस्त्यवटमासाद्य वसिष्ठस्य च पर्वतम् ।
भृगुतुङ्गे च कौन्तेयः कृतवान् शौचमात्मनः ॥ २
प्रददौ गोसहस्राणि सुबहूनि च भारत ।
निवेशांश्च द्विजातिभ्यः सोऽददत्कुरुसत्तमः ॥ ३
हिरण्यबिन्दोस्तीर्थे च स्नात्वा पुरुषसत्तमः ।
दृष्टवान्पाण्डवश्रेष्ठः पुण्यान्यायतनानि च ॥ ४
अवतीर्य नरश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सह भारत ।
प्राचीं दिशमभिप्रेप्सुर्जगाम भरतर्षभः ॥ ५
आनुपूर्व्येण तीर्थानि दृष्टवान्कुरुसत्तमः ।
नदीं चोत्पलिनीं रम्यामरण्यं नैमिषं प्रति ॥ ६

---

समुद्रगां गङ्गाम् ॥ १९ ॥ अनङ्गग्लपितां कामेन पीडिताम् ॥ २० ॥ जानाम्यहं पाण्डवेयेत्यादिना स्वस्यातीन्द्रियं ज्ञानं दर्शयन्ती द्रौपदीनिमित्तमेव तव ब्रह्मचर्यं नान्यत्रेत्याह । अत एवाग्रेपि चित्राङ्गदासुभद्रयोः पाणिग्रहणं संगच्छते ॥ २४ ॥ परित्यज्य मुनिसमाजे तं विसृज्य ॥ ३५ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

२१५

कथयित्वेति ॥१॥ भृगुतुङ्गे तुङ्गनाथ इति प्रसिद्धे ॥२॥

नन्दामपरनन्दां च कौशिकीं च यशस्विनीम् ।
महानदीं गयां चैव गङ्गामपि च भारत ॥ ७
एवं तीर्थानि सर्वाणि पश्यमानस्तथाश्रमान् ।
आत्मनः पावनं कुर्वन्ब्राह्मणेभ्यो ददौ च गाः ॥८
अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु यानि तीर्थानि कानिचित् ।
जगाम तानि सर्वाणि पुण्यान्यायतनानि च ॥९
दृष्ट्वा च विधिवत्तानि धनं चापि ददौ ततः ।
कलिङ्गराष्ट्रद्वारेषु ब्राह्मणाः पाण्डवानुगाः ।
अभ्यनुज्ञाय कौन्तेयमुपावर्तन्त भारत ॥ १०
स तु तैरभ्यनुज्ञातः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
सहायैरल्पकैः शूरः प्रययौ यत्र सागरः ॥ ११
स कलिङ्गानतिक्रम्य देशानायतनानि च ।
हर्म्याणि रमणीयानि प्रेक्षमाणो ययौ प्रभुः ॥ १२
महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसैरुपशोभितम् ।
समुद्रतीरेण शनैर्मणिपूरं जगाम ह ॥ १३
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
अभिगम्य महाबाहुरभ्यगच्छन्महीपतिम् ॥ १४
मणिपूरेश्वरं राजन्धर्मज्ञं चित्रवाहनम् ।
तस्य चित्राङ्गदा नाम दुहिता चारुदर्शना ॥ १५
तां ददर्श पुरे तस्मिन्विचरन्तीं यदृच्छया ।
दृष्ट्वा च तां वरारोहां चकमे चैत्रवाहिनीम् ॥ १६
अभिगम्य च राजानमवदत्स्वं प्रयोजनम् ।
देहि मे खल्विमां राजन् क्षत्रियाय महात्मने १७
तच्छ्रुत्वा त्वब्रवीद्राजा कस्य पुत्रोऽसि नाम किम्
उवाच तं पाण्डवोऽहं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १८
तमुवाचाथ राजा स सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
राजा प्रभञ्जनो नाम कुलेऽस्मिन्संबभूव ह ॥ १९
अपुत्रः प्रसवेनार्थी तपस्तेपे स उत्तमम् ।
उग्रेण तपसा तेन देवदेवः पिनाकधृक् ॥ २०
ईश्वरस्तोषितः पार्थ देवदेव उमापतिः ।
स तस्मै भगवान्प्रादादेकैकं प्रसवं कुले ॥ २१
एकैकः प्रसवस्तस्माद्भवत्यस्मिन्कुले सदा ।
तेषां कुमाराः सर्वेषां पूर्वेषां मम जज्ञिरे ॥ २२
एका च मम कन्येयं कुलस्योत्पादिनी भृशम् ।
पुत्रो ममायमिति मे भावना पुरुषर्षभ ॥ २३
पुत्रिका हेतुविधिना संज्ञिता भरतर्षभ ।
तस्मादेकः सुतो योऽस्यां जायते भारत त्वया २४
एतच्छुल्कं भवत्वस्याः कुलकृज्जायतामिह ।
एतेन समयेनेमां प्रतिगृह्णीष्व पाण्डव ॥ २५
स तथेति प्रतिज्ञाय तां कन्यां प्रतिगृह्य च ।
उवास नगरे तस्मिंस्तिस्रः कुन्तीसुतः समाः २६
तस्यां सुते समुत्पन्ने परिष्वज्य वराङ्गनाम् ।
आमन्त्र्य नृपतिं तं तु जगाम परिवर्तितुम् ॥ २७

इति श्रीमहाभा० आदिप० अर्जुनवनवासप० चित्राङ्गदासंगमे पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१५

---

## २१६

वैशंपायन उवाच ।
ततः समुद्रे तीर्थानि दक्षिणे भरतर्षभ ।
अभ्यगच्छत्सुपुण्यानि शोभितानि तपस्विभिः १
वर्जयन्ति स्म तीर्थानि तत्र पञ्च स्म तापसाः ।
अवकीर्णानि यान्यासन्पुरस्तात्तु तपस्विभिः ॥ २
अगस्त्यतीर्थं सौभद्रं पौलोमं च सुपावनम् ।
कारन्धमं प्रसन्नं च हयमेधफलं च तत् ॥ ३
भारद्वाजस्य तीर्थं तु पापप्रशमनं महत् ।
एतानि पञ्च तीर्थानि ददर्श कुरुसत्तमः ॥ ४

---

निवेशान् गृहाणि ॥३॥ महानदीं गयास्थामेव नदीम् ॥७॥ राष्ट्रद्वारेषु पर्वतसन्धिमार्गेषु। कलिङ्गस्थतीर्थानामनतिप्रशस्तत्वात् उपावर्तन्त परावृत्ताः ॥ १० ॥ चैत्रवाहिनीं चित्रवाहनस्य दुहितरम् ॥१६॥ हेतुविधिना पुत्रहेतौ । पुत्रिकायामपि पुत्रशब्दप्रयोगविधानात् । लाङ्गलं जीवनमितिवत् तथा च लिङ्गं पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्निति। तेन पुत्र्यपि पुत्रसंज्ञिता ॥२४॥ शुल्कं मौल्यम् । अद्यापि पुत्रिकापुत्रस्यैव राज्यमिति दाक्षिणकेरलेष्वाचारो दृश्यते ॥ २५ ॥ समाः वर्षाणि । हिमा इति पाठेपि हेमन्तत्रयेण स एवार्थो लक्ष्यः । पश्येम त्वा शतꣳहिम इति वेदे प्रयोगाच ॥ २६ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भा० भावदीपे पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

२१६

तत इति ॥ १॥ पञ्च तीर्थानि आगस्त्यसौभद्रपौलोमकारन्धमभारद्वाजीयानि पञ्च तीर्थानि ॥ २ ॥

विविक्तान्युपलक्ष्याथ तानि तीर्थानि पाण्डवः ।
दृष्ट्वा च वर्ज्यमानानि मुनिभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ५
तपस्विनस्ततोऽपृच्छत्प्राञ्जलिः कुरुनन्दनः ।
तीर्थानीमानि वर्ज्यन्ते किमर्थं ब्रह्मवादिभिः ॥ ६
तापसा ऊचुः ।
ग्राहाः पञ्च वसन्त्येषु हरन्ति च तपोधनान् ।
तत एतानि वर्ज्यन्ते तीर्थानि कुरुनन्दन ॥ ७
वैशंपायन उवाच ।
तेषां श्रुत्वा महाबाहुर्वार्यमाणस्तपोधनैः ।
जगाम तानि तीर्थानि द्रष्टुं पुरुषसत्तमः ॥ ८
ततः सौभद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम् ।
विगाह्य सहसा शूरः स्नानं चक्रे परंतपः ॥ ९
अथ तं पुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरो महान् ।
जग्राह चरणे ग्राहः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ १०
स तमादाय कौन्तेयो विस्फुरन्तं जलेचरम् ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेन बलिनां वरः ॥ ११
उत्कृष्ट एव ग्राहस्तु सोऽर्जुनेन यशस्विना ।
बभूव नारी कल्याणी सर्वाभरणभूषिता ॥ १२
दीप्यमाना श्रिया राजन्दिव्यरूपा मनोरमा ।
तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १३
तां स्त्रियं परमप्रीत इदं वचनमब्रवीत् ।
का वै त्वमसि कल्याणि कुतो वाऽसि जलेचरी ॥
किमर्थं च महत्पापमिदं कृतवती पुरा ।
वर्गोवाच ।
अप्सराऽस्मि महाबाहो देवारण्यविहारिणी १५
इष्टा धनपतेर्नित्यं वर्गा नाम महाबल ।
मम सख्यश्चतस्रोऽन्याः सर्वाः कामगमाः शुभाः १६
ताभिः सार्धं प्रयाताऽस्मि लोकपालनिवेशनम् ।
ततः पश्यामहे सर्वा ब्राह्मणं संशितव्रतम् ॥ १७
रूपवन्तमधीयानमेकमेकान्तचारिणम् ।
तस्यैव तपसा राजंस्तद्वनं तेजसा वृतम् ॥ १८
आदित्य इव तं देशं कृत्स्नं सर्वं व्यकाशयत् ।
तस्य दृष्ट्वा तपस्तादृग्रूपं चाद्भुतमुत्तमम् ॥ १९
अवतीर्णाः स्म तं देशं तपोविघ्नचिकीर्षया ।
अहं च सौरभेयी च समीची बुद्बुदा लता ॥ २०
यौगपद्येन तं विप्रमभ्यगच्छाम भारत ।
गायन्त्योऽथ हसन्त्यश्च लोभयित्वा च तं द्विजम्
स च नास्मासु कृतवान्मनो वीर कथंचन ।
नाकम्पत महातेजाः स्थितस्तपसि निर्मले ॥ २२
सोऽशपत्कुपितोऽस्मासु ब्राह्मणः क्षत्रियर्षभ ।
ग्राहभूता जले यूयं चरिष्यथ शतं समाः ॥ २३

इति श्रीमहा० आदिप० अर्जुनवनवासपर्वणि तीर्थग्राहविमोचने षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६

## २१७

वर्गोवाच ।
ततो वयं प्रव्यथिताः सर्वा भारतसत्तम ।
अयाम शरणं विप्रं तं तपोधनमच्युतम् ॥ १
रूपेण वयसा चैव कन्दर्पेण च दर्पिताः ।
अयुक्तं कृतवत्यः स्म क्षन्तुमर्हसि नो द्विज ॥ २
एष एव वधोऽस्माकं सुपर्याप्तस्तपोधन ।
यद्वयं संशितात्मानं प्रलोब्धुं त्वामिहागताः ॥ ३
अवध्यास्तु स्त्रियः सृष्टा मन्यन्ते धर्मचारिणः ।
तस्माद्धर्मेण वर्ध त्वं नास्मान्हिंसितुमर्हसि ॥ ४
सर्वभूतेषु धर्मज्ञ मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
सत्यो भवतु कल्याण एष वादो मनीषिणाम् ॥ ५
शरणं च प्रपन्नानां शिष्टाः कुर्वन्ति पालनम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मस्तस्मात्त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ६
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तः स धर्मात्मा ब्राह्मणः शुभकर्मकृत् ।
प्रसादं कृतवान्वीर रविसोमसमप्रभः ॥ ७

धर्मबुद्धिभिः दुर्मरणजं दोषं तीर्थेनाप्यविनाश्यं पश्यद्भिः ॥ ५ ॥ उत्कृष्ट एव उद्धृतमात्रः ॥ १२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

२१७

ततो वयमिति । अयाम गतवत्यः ॥ १ ॥ प्रलोब्धुं प्रलोभयितुम् ॥ ३ ॥ वर्ध वर्धस्व ॥ ४ ॥ मैत्रः सर्वभूतसुहृत् । एष वादः मैत्रो ब्राह्मण इत्युद्घोषः ॥ ५ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

शतं शतसहस्रं तु सर्वमक्षय्यवाचकम् ।
परिमाणं शतं त्वेतन्नेदमक्षय्यवाचकम् ॥ ८
यदा च वो ग्राहभूता गृह्णन्तीः पुरुषाञ्जले ।
उत्कर्षति जलात्तस्मात्स्थलं पुरुषसत्तमः ॥ ९
तदा यूयं पुनः सर्वाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यथ ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे हसताऽपि कदाचन ॥ १०
तानि सर्वाणि तीर्थानि ततः प्रभृति चैव ह ।
नारीतीर्थानि नाम्नेह ख्यातिं यास्यन्ति सर्वशः ।
पुण्यानि च भविष्यन्ति पावनानि मनीषिणाम् ११

वर्गोवाच ।

ततोभिवाद्य तं विप्रं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
अचिन्तयामोऽपसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः १२
क्व नु नाम वयं सर्वाः कालेनाल्पेन तं नरम् ।
समागच्छेम यो नस्तद्रूपमापादयेत्पुनः ॥ १३
ता वयं चिन्तयित्वैव मुहूर्तादिव भारत ।
दृष्टवत्यो महाभागं देवर्षिमुत नारदम् ॥ १४
संप्रहृष्टाः स्म तं दृष्ट्वा देवर्षिममितद्युतिम् ।
अभिवाद्य च तं पार्थ स्थिताः स्म व्रीडिताननाः १५
स नोपृच्छद्दुःखमूलमुक्तवत्यो वयं च तम् ।
श्रुत्वा तत्र यथावृत्तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १६
दक्षिणे सागरानूपे पञ्च तीर्थानि सन्ति वै ।
पुण्यानि रमणीयानि तानि गच्छत मा चिरम् १७
तत्राशु पुरुषव्याघ्रः पाण्डवेयो धनंजयः ।
मोक्षयिष्यति शुद्धात्मा दुःखादस्मान्न संशयः १८
तस्य सर्वा वयं वीर श्रुत्वा वाक्यमितो गताः ।
तदिदं सत्यमेवाद्य मोक्षिताहं त्वयाऽनघ ॥ १९
एतास्तु मम ताः सख्यश्चतस्रोऽन्या जले श्रिताः ।
कुरु कर्म शुभं वीर एताः सर्वा विमोक्षय ॥ २०

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ताः पाण्डवश्रेष्ठः सर्वा एव विशांपते ।
तस्माच्छापाददीनात्मा मोक्षयामास वीर्यवान् २१
उत्थाय च जलात्तस्मात्प्रतिलभ्य वपुः स्वकम् ।
तास्तदाऽप्सरसो राजन्नदृश्यन्त यथा पुरा ॥ २२
तीर्थानि शोधयित्वा तु तथानुज्ञाय ताः प्रभुः ।
चित्राङ्गदां पुनर्द्रष्टुं मणिपूरं पुनर्ययौ ॥ २३
तस्यामजनयत्पुत्रं राजानं बभ्रुवाहनम् ।
तं दृष्ट्वा पाण्डवो राजंश्चित्रवाहनमब्रवीत् ॥ २४
चित्राङ्गदायाः शुल्कं त्वं गृहाण बभ्रुवाहनम् ।
अनेन च भविष्यामि ऋणान्मुक्तो नराधिप ॥२५
चित्राङ्गदां पुनर्वाक्यमब्रवीत्पाण्डुनन्दनः ।
इहैव भव भद्रं ते वर्धेथा बभ्रुवाहनम् ॥ २६
इन्द्रप्रस्थनिवासं मे त्वं तत्रागत्य रंस्यसि ।
कुन्तीं युधिष्ठिरं भीमं भ्रातरौ मे कनीयसौ ॥२७
आगत्य तत्र पश्येथा अन्यानपि च बान्धवान् ।
बान्धवैः सहिताः सर्वैर्नन्दसे त्वमनिन्दिते ॥ २८
धर्मे स्थितः सत्यधृतिः कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः ।
जित्वा तु पृथिवीं सर्वां राजसूयं करिष्यति ॥ २९
तत्रागच्छन्ति राजानः पृथिव्यां नृपसंज्ञिताः ।
बहूनि रत्नान्यादाय आगमिष्यति ते पिता ॥ ३०
एकसार्थं प्रयातासि चित्रवाहनसेवया ।
द्रक्ष्यामि राजसूये त्वां पुत्रं पालय मा शुचः ३१
बभ्रुवाहननाम्ना तु मम प्राणो महीचरः ।
तस्माद्भरस्व पुत्रं वै पुरुषं वंशवर्धनम् ॥ ३२
चित्रवाहनदायादं धर्मात्पौरवनन्दनम् ।
पाण्डवानां प्रियं पुत्रं तस्मात्पालय सर्वदा ॥ ३३
विप्रयोगेन संतापं मा कृथास्त्वमनिन्दिते ।
चित्राङ्गदामेवमुक्त्वा गोकर्णमभितोगमत् ॥ ३४
आद्यं पशुपतेः स्थानं दर्शनादेव मुक्तिदम् ।
यत्र पापोपि मनुजः प्राप्नोत्यभयदं पदम् ॥ ३५

इति श्रीमहाभा०आदिप०अर्जुनवनवासपर्वण्यर्जुनतीर्थयात्रायां सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१७

---

शतसहस्रादयः शब्दा अनन्तवाचकाः इह तु शतशब्दः शतमेव वक्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥ यदा चेति । उत्कर्षणमेवावधिर्न शतसंख्येति भावः ॥ ९ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

## २१८

वैशंपायन उवाच ।
सोऽपरान्तेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
सर्वाण्येवानुपूर्व्येण जगामामितविक्रमः ॥ १
समुद्रे पश्चिमे यानि तीर्थान्यायतनानि च ।
तानि सर्वाणि गत्वा स प्रभासमुपजग्मिवान् ॥ २
प्रभासदेशं संप्राप्तं बीभत्सुमपराजितम् ।
सुपुण्यं रमणीयं च शुश्राव मधुसूदनः ॥ ३
ततोऽभ्यगच्छत्कौन्तेयं सखायं तत्र माधवः ।
ददृशाते तदान्योन्यं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ ॥ ४
तावन्योऽन्यं समाश्लिष्य पृष्ट्वा च कुशलं वने ।
आस्तां प्रियसखायौ तौ नरनारायणवृषी ॥ ५
ततोऽर्जुनं वासुदेवस्तां चर्यां पर्यपृच्छत ।
किमर्थं पाण्डवैतानि तीर्थान्यनुचरस्युत ॥ ६
ततोऽर्जुनो यथावृत्तं सर्वमाख्यातवांस्तदा ।
श्रुत्वोवाच च वार्ष्णेय एवमेतदिति प्रभुः ॥ ७
तौ विहृत्य यथाकामं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ ।
महीधरं रैवतकं वासायैवाभिजग्मतुः ॥ ८
पूर्वमेव तु कृष्णस्य वचनात्तं महीधरम् ।
पुरुषा मण्डयांचक्रुरुपजह्रुश्च भोजनम् ॥ ९
प्रतिगृह्यार्जुनः सर्वमुपभुज्य च पाण्डवः ।
सहैव वासुदेवेन दृष्टवान्नटनर्तकान् ॥ १०
अभ्यनुज्ञाय तान्सर्वानर्चयित्वा च पाण्डवः ।
सत्कृतं शयनं दिव्यमभ्यगच्छन्महामतिः ॥ ११
ततस्तत्र महाबाहुः शयानः शयने शुभे ।
तीर्थानां पल्वलानां च पर्वतानां च दर्शनम् ।
आपगानां वनानां च कथयामास सात्वते ॥ १२
एवं स कथयन्नेव निद्रया जनमेजय ।
कौन्तेयोपि हृतस्तस्मिन्शयने स्वर्गसंनिभे ॥ १३
मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव ह ।
प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मङ्गलैस्तथा ॥ १४
स कृत्वाऽवश्यकार्याणि वार्ष्णेयेनाभिनन्दितः ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन द्वारकामभिजग्मिवान् ॥ १५
अलंकृता द्वारका तु बभूव जनमेजय ।
कुन्तीपुत्रस्य पूजार्थमपि निष्कुटकेष्वपि ॥ १६
दिदृक्षन्तश्च कौन्तेयं द्वारकावासिनो जनाः ।
नरेन्द्रमार्गमाजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः ॥ १७
अवलोकेषु नारीणां सहस्राणि शतानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकानां च समवायो महानभूत् ॥ १८
स तथा सत्कृतः सर्वैर्भोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः ।
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः ॥ १९
कुमारैः सर्वशो वीरः सत्कारेणाभिचोदितः ।
समानवयसः सर्वानाश्लिष्य स पुनः पुनः ॥ २०
कृष्णस्य भवने रम्ये रत्नभोज्यसमावृते ।
उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः ॥ २१

इति श्रीमहा० आदिपर्व० अर्जुनवनवासपर्व० अर्जुनद्वारकागमनेऽष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

समाप्तं अर्जुनवनवासपर्व ।

# सुभद्राहरणपर्व ।

## २१९

वैशंपायन उवाच ।
ततः कतिपयाहस्य तस्मिन्रैवतके गिरौ ।
वृष्ण्यन्धकानामभवदुत्सवो नृपसत्तम ॥ १
तत्र दानं ददुर्वीरा ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ।
भोजवृष्ण्यन्धकाश्चैव महे तस्य गिरेस्तदा ॥ २
प्रासादै रत्नचित्रैश्च गिरेस्तस्य समन्ततः ।
स देशः शोभितो राजन्कल्पवृक्षैश्च सर्वशः ॥ ३

---

२१८

स इति । अपरान्तेषु पश्चिमसमुद्रतीरेषु ॥ १ ॥ काञ्चनाङ्गेन स्वर्णमयध्वजादिमता ॥ १५ ॥ निष्कुटेषु गृहारामेष्वपि अलंकृता किमुत राजमार्गादिषु ॥ १६ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥

२१९

तत इति ॥ १ गिरेः महे पर्वतदैवत्ये उत्सवे ॥ २ ॥

वादित्राणि च तत्रान्ये वादकाः समवादयन् ।
ननृतुर्नर्तकाश्चैव जगुर्गेयानि गायनाः ॥ ४
अलंकृताः कुमाराश्च वृष्णीनां सुमहौजसाम् ।
यानैर्हाटकचित्रैश्च चञ्चूर्यन्ते स्म सर्वशः ॥ ५
पौराश्च पादचारेण यानैरुच्चावचैस्तथा ।
सदाराः सानुयात्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६
ततो हलधरः क्षीबो रेवतीसहितः प्रभुः ।
अनुगम्यमानो गन्धर्वैरचरत्तत्र भारत ॥ ७
तथैव राजा वृष्णीनामुग्रसेनः प्रतापवान् ।
अनुगीयमानो गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसहायवान् ॥ ८
रौक्मिणेयश्च साम्बश्च क्षीबौ समरदुर्मदौ ।
दिव्यमाल्याम्बरधरौ विजह्रातेऽमराविव ॥ ९
अक्रूरः सारणश्चैव गदो बभ्रुर्विदूरथः ।
निशठश्चारुदेष्णश्च पृथुर्विपृथुरेव च ॥ १०
सत्यकः सात्यकिश्चैव भङ्गकारमहारवौ ।
हार्दिक्य उद्धवश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ११
एते परिवृताः स्त्रीभिर्गन्धर्वैश्च पृथक्पृथक् ।
तमुत्सवं रैवतके शोभयांचक्रिरे तदा ॥ १२
चित्रकौतूहले तस्मिन्वर्तमाने महाद्भुते ।
वासुदेवश्च पार्थश्च सहितौ परिजग्मतुः ॥ १३
तत्र चङ्क्रममाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम् ।
अलंकृतां सखीमध्ये भद्रां ददृशतुस्तदा ॥ १४
दृष्ट्वैव तामर्जुनस्य कन्दर्पः समजायत ।
तं तदैकाग्रमनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत् ॥ १५
अब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः प्रहसन्निव भारत ।
वनेचरस्य किमिदं कामेनालोड्यते मनः ॥ १६
ममैषा भगिनी पार्थ सारणस्य सहोदरा ।
सुभद्रा नाम भद्रं ते पितुर्मे दयिता सुता ।
यदि ते वर्तते बुद्धिर्वक्ष्यामि पितरं स्वयम् ॥ १७

अर्जुन उवाच ।

दुहिता वसुदेवस्य वासुदेवस्य च स्वसा ।
रूपेण चैषा संपन्ना कमिवैषा न मोहयेत् ॥ १८
कृतमेव तु कल्याणं सर्वं मम भवेद्ध्रुवम् ।
यदि स्यान्मम वार्ष्णेयी महिषीयं स्वसा तव ॥ १९
प्राप्तौ तु क उपायः स्यात्तं ब्रवीहि जनार्दन ।
आस्थास्यामि तदा सर्वं यदि शक्यं नरेण तत् ॥ २०

वासुदेव उवाच ।

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ ।
स च संशयितः पार्थ स्वभावस्यानिमित्ततः ॥ २१
प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।
विवाहहेतुः शूराणामिति धर्मविदो विदुः ॥ २२
स त्वमर्जुन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम ।
हर स्वयंवरे ह्यस्याः को वै वेद चिकीर्षितम् ॥ २३
ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येतिकृत्यताम् ।
शीघ्रगान्पुरुषानन्यान्प्रेषयामासतुस्तदा ॥ २४
धर्मराजाय तत्सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै ।
श्रुत्वैव च महाबाहुरनुजज्ञे स पाण्डवः ॥ २५

इति श्रीमहा० आदिप० सुभद्राहरणपर्वणि युधिष्ठिरानुज्ञायामूनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१९

## २२०

वैशंपायन उवाच ।

ततः संवादिते तस्मिन्ननुज्ञातो धनंजयः ।
गतां रैवतके कन्यां विदित्वा जनमेजय ॥ १
वासुदेवाभ्यनुज्ञातः कथयित्वेतिकृत्यताम् ।
कृष्णस्य मतमादाय प्रययौ भरतर्षभः ॥ २
रथेन काञ्चनाङ्गेन कल्पितेन यथाविधि ।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ॥ ३
सर्वशस्त्रोपपन्नेन जीमूतरवनादिना ।
ज्वलिताग्निप्रकाशेन द्विषतां हर्षघातिना ॥ ४

---

चञ्चूर्यन्ते देदीप्यन्ते ॥ ५ ॥ क्षीबो मधुमत्तः ॥ ७ ॥ वक्ष्यामि पितरं स्वयमिति कृष्णेन दापयिष्यामीति सूचितेपि प्राप्तौ तु क उपाय इति पृच्छन्नर्जुनः प्रतिग्रहं नानुमन्यत इति गम्यते ॥ २० ॥ स्वभावस्यानिमित्ततः स्त्रीचित्तस्य शौर्यपाण्डित्याद्यनपेक्षत्वात्। स्त्रियो ह्यपरीक्षितेपि पुंसि आपाततो रमणीये सद्यः सकामा भवन्तीति भावः ॥२१॥ अनुजज्ञे अनुज्ञातवान् ॥ २५ ॥ इति आ० नै० भा० भा० ऊनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१९ ॥

२२०

तत इति । तस्मिन् विवाहसन्देशे ॥ १ ॥ इतिकृत्यतां अग्रेतनी इतिकर्तव्यताम् ॥ २ ॥

संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
मृगयाव्यपदेशेन प्रययौ पुरुषर्षभः ॥ ५
सुभद्रा त्वथ शैलेन्द्रमभ्यर्च्यैव हि रैवतम् ।
दैवतानि च सर्वाणि ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ॥
प्रदक्षिणं गिरेः कृत्वा प्रययौ द्वारकां प्रति ।
तामभिद्रुत्य कौन्तेयः प्रसह्यारोपयद्रथम् ।
सुभद्रां चारुसर्वाङ्गीं कामबाणप्रपीडितः ॥ ७
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तामादाय शुचिस्मिताम् ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन प्रययौ स्वपुरं प्रति ॥ ८
ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिका जनाः ।
विक्रोशन्तोऽद्रवन्सर्वे द्वारकामभितः पुरीम् ॥ ९
ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम् ।
सभापालस्य तत्सर्वमाचख्युः पार्थविक्रमम् १०
तेषां श्रुत्वा सभापालो भेरीं सांनाहिकीं ततः ।
समाजघ्ने महाघोषां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥ ११
क्षुब्धास्तेनाथ शब्देन भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा ।
अन्नपानमपास्याथ समापेतुः समन्ततः ॥ १२
तत्र जाम्बूनदाङ्गानि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च ।
मणिविद्रुमचित्राणि ज्वलिताग्निप्रभाणि च ॥१३
भेजिरे पुरुषव्याघ्रा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सिंहासनानि शतशो धिष्ण्यानीव हुताशनाः १४
तेषां समुपविष्टानां देवानामिव संनये ।
आचख्यौ चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सहानुगः१५
तच्छ्रुत्वा वृष्णिवीरास्ते मदसंरक्तलोचनाः ।
अमृष्यमाणा पार्थस्य समुत्पेतुरहंकृताः ॥ १६
योजयध्वं रथानाशु प्रासानाहरतेति च ।
धनूंषि च महार्हाणि कवचानि बृहन्ति च ॥ १७
सूतानुच्चुक्रुशुः केचिद्रथान्योजयतेति च ।
स्वयं च तुरगान्केचिद्युञ्जन्हेमभूषितान् ॥ १८
रथेष्वानीयमानेषु कवचेषु ध्वजेषु च ।
अभिक्रन्दे नृवीराणां तदासीत्तुमुलं महत् ॥ १९
वनमाली ततः क्षीबः कैलासशिखरोपमः ।
नीलवासा मदोत्सिक्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ २०
किमिदं कुरुथाप्रज्ञास्तूष्णींभूते जनार्दने ।
अस्य भावमविज्ञाय संक्रुद्धा मोघगर्जिताः ॥ २१
एष तावदभिप्रायमाख्यातु स्वं महामतिः ।
यदस्य रुचिरं कर्तुं तत्कुरुध्वमतन्द्रिताः ॥ २२
ततस्ते तद्वचः श्रुत्वा ग्राह्यरूपं हलायुधात् ।
तूष्णीं भूतास्ततः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन्
समं वचो निशम्यैव बलदेवस्य धीमतः ।
पुनरेव सभामध्ये सर्वे ते समुपाविशन् ॥ २४
ततोऽब्रवीद्वासुदेवं वचो रामः परंतपः ।
किमवागुपविष्टोऽसि प्रेक्षमाणो जनार्दन ॥ २५
सत्कृतस्त्वत्कृते पार्थः सर्वैरस्माभिरच्युत ।
न च सोऽर्हति तां पूजां दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥
को हि तत्रैव भुक्त्वान्नं भाजनं भेत्तुमर्हति ।
मन्यमानः कुले जातमात्मानं पुरुषः क्वचित् २७
इच्छन्नेव हि संबन्धं कृतं पूर्वं च मानयन् ।
को हि नाम भवेनार्थी साहसेन समाचरेत् ॥२८
सोऽवमन्य तथाऽस्माकमनादृत्य च केशवम् ।
प्रसह्य हृतवानद्य सुभद्रां मृत्युमात्मनः ॥ २९
कथं हि शिरसो मध्ये कृतं तेन पदं मम ।
मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३०
अद्य निष्कौरवामेकः करिष्यामि वसुंधराम् ।
न हि मे मर्षणीयोऽयमर्जुनस्य व्यतिक्रमः ॥ ३१
तं तथा गर्जमानं तु मेघदुन्दुभिनिःस्वनम् ।
अन्वपद्यन्त ते सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा ॥ ३२

इति श्रीमहा० आदिप० सुभद्राहरणपर्वणि बलदेवक्रोधे विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

समाप्तं सुभद्राहरणपर्व ।

---

भेरीं दुंदुभिम् । सांनाहिकीं संनद्धाः सर्वे भवतेति सूचयन्तीम् ॥ ११ ॥ संनये समुदाये ॥१५॥ श्रुत्वा पार्थस्य विक्रमं श्रुत्वा ग्राह्य गृहीत्वा रूपं उपदेशात्मकमालोक्य ॥ २३ ॥ भवेन ऐश्वर्येण ॥२८॥ अन्वपद्यन्त अनुमोदितवन्तः ॥३२॥ इति आ० नै० भा० विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

## हरणाहरणपर्व ।

### २२१

वैशंपायन उवाच ।
उक्तवन्तो यथा वीर्यमसकृत्सर्ववृष्णयः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो वाक्यं धर्मार्थसंयुतम् ॥ १
नावमानं कुलस्यास्य गुडाकेशः प्रयुक्तवान् ।
संमानोऽभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोयं न संशयः ॥ २
अर्थलुब्धान्न वः पार्थो मन्यते सात्वतान्सदा ।
स्वयंवरमनाधृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः ॥ ३
प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनुमन्यते ।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात्पुरुषो भुवि ॥ ४
एतान्दोषांस्तु कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः ।
अतः प्रसह्य हृतवान्कन्यां धर्मेण पाण्डवः ॥ ५
उचितश्चैव संबन्धः सुभद्रां च यशस्विनीम् ।
एष चापीदृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति ॥ ६
भरतस्यान्वये जातं शान्तनोश्च यशस्विनः ।
कुन्तिभोजात्मजापुत्रं को बुभूषेत नार्जुनम् ॥ ७
न च पश्यामि यः पार्थं विजयेत रणे बलात् ।
वर्जयित्वा विरूपाक्षं भगनेत्रहरं हरम् ॥ ८
अपि सर्वेषु लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ।
स च नाम रथस्तादृङ्मदीयास्ते च वाजिनः ॥ ९
योद्धा पार्थश्च शीघ्रास्त्रः को नु तेन समो भवेत् ।
तमभिद्रुत्य सान्त्वेन परमेण धनंजयम् ॥ १०
न्यवर्तयत संहृष्टा ममैषा परमा मतिः ।
यदि निर्जित्य वः पार्थो बलाद्गच्छेत्स्वकं पुरम् ॥
प्रणश्येद्वो यशः सद्यो न तु सान्त्वे पराजयः ।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य तथा चक्रुर्जनाधिप ॥ १२
निवृत्तश्चार्जुनस्तत्र विवाहं कृतवान्प्रभुः ।
उषित्वा तत्र कौन्तेयः संवत्सरपराः क्षपाः ॥ १३
विहृत्य च यथाकामं पूजितो वृष्णिनन्दनैः ।
पुष्करे तु ततः शेषं कालं वर्तितवान्प्रभुः ॥ १४
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे खाण्डवप्रस्थमागतः ।
अभिगम्य च राजानं नियमेन समाहितः ॥ १५
अभ्यर्च्य ब्राह्मणान्पार्थो द्रौपदीमभिजग्मिवान् ।
तं द्रौपदी प्रत्युवाच प्रणयात्कुरुनन्दनम् ॥ १६
तत्रैव गच्छ कौन्तेय यत्र सा सात्वतात्मजा ।
सुबद्धस्यापि भारस्य पूर्वबन्धः श्लथायते ॥ १७
तथा बहुविधं कृष्णां विलपन्तीं धनंजयः ।
सान्त्वयामास भूयश्च क्षमयामास चासकृत् ॥ १८
सुभद्रां त्वरमाणश्च रक्तकौशेयवासिनीम् ।
पार्थः प्रस्थापयामास कृत्वा गोपालिकावपुः ॥
साऽधिकं तेन रूपेण शोभमाना यशस्विनी ।
भवनं श्रेष्ठमासाद्य वीरपत्नी वराङ्गना ॥ २०
ववन्दे पृथुताम्राक्षी पृथां भद्रा यशस्विनी ।
तां कुन्ती चारुसर्वाङ्गीमुपाजिघ्रत मूर्धनि ॥ २१
प्रीत्या परमया युक्ता आशीर्भिर्युञ्जतातुलाम् ।
ततोऽभिगम्य त्वरिता पूर्णेन्दुसदृशानना ॥ २२
ववन्दे द्रौपदीं भद्रा प्रेष्याऽहमिति चाब्रवीत् ।
प्रत्युत्थाय तदा कृष्णा स्वसारं माधवस्य च ॥२३
परिष्वज्यावदत्प्रीत्या निःसपत्नोऽस्तु ते पतिः ।
तथैव मुदिता भद्रा तामुवाचैवमस्त्विति ॥ २४
ततस्ते हृष्टमनसः पाण्डवेया महारथाः ।
कुन्ती च परमप्रीता बभूव जनमेजय ॥ २५
श्रुत्वा तु पुण्डरीकाक्षः संप्राप्तं स्वं पुरोत्तमम् ।
अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठमिन्द्रप्रस्थगतं तदा ॥ २६
आजगाम विशुद्धात्मा सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकमहामात्रैः सह वीरैर्महारथैः ॥ २७
भ्रातृभिश्च कुमारैश्च योधैश्च बहुभिर्वृतः ।
सैन्येन महता शौरिरभिगुप्तः परंतपः ॥ २८
तत्र दानपतिर्धीमानाजगाम महायशाः ।
अक्रूरो वृष्णिवीराणां सेनापतिररिंदमः ॥ २९
अनाधृष्टिर्महातेजा उद्धवश्च महायशाः ।
साक्षाद्बृहस्पतेः शिष्यो महाबुद्धिर्महामनाः ॥ ३०

---

२२१

उक्तवन्त इति ॥ १ ॥ अनाधृष्यं कन्यालाभानियमाद्नादेयम् ॥ ३ ॥ प्रदानं प्रतिग्रहो नीचं कर्मेत्यर्थः ॥ ४ ॥ बुभूषेत प्राप्तुमिच्छेत् ॥ ७ ॥ अद्य निष्कौरवामित्युक्तं तत्राह । न चेति । अहं तु भक्त्यैव तेन जितोस्मि परिशेषात्तु हर एव तत्प्रतियोद्धा नान्य इति भावः ॥ ८ ॥ संवत्सरपराः संवत्सरादधिकाः ॥ १३ ॥ शेषं द्वादशवर्षपूरणम् ॥ १४ ॥ श्लथायते दृढतरे बन्धान्तरेऽसति ॥ १७ ॥ गोपालिकावपुः बल्लवीवेषम् । गोपालकृष्णसंबन्धात् । पट्टमहिषीवेषेण द्रौपद्याः कोपो माभूदिति ॥ १९ ॥ भद्रा सुभद्रा ॥ २१ ॥ युञ्जत अयुंक्त ॥ २२ ॥ महामात्रैः श्रेष्ठैः ॥ २७ ॥ दानपतिरित्यक्रूरस्यैव कर्मनाम ॥ २९ ॥

सत्यकः सात्यकिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
प्रद्युम्नश्चैव साम्बश्च निशठः शङ्कुरेव च ॥ ३१
चारुदेष्णश्च विक्रान्तो झिल्ली विपृथुरेव च ।
सारणश्च महाबाहुर्गदश्च विदुषां वरः ॥ ३२
एते चान्ये च बहवो वृष्णिभोजान्धकास्तथा ।
आजग्मुः खाण्डवप्रस्थमादाय हरणं बहु ॥ ३३
ततो युधिष्ठिरो राजा श्रुत्वा माधवमागतम् ।
प्रतिग्रहार्थं कृष्णस्य यमौ प्रास्थापयत्तदा ॥ ३४
ताभ्यां प्रतिगृहीतं तु वृष्णिचक्रं महर्द्धिमत् ।
विवेश खाण्डवप्रस्थं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ३५
संमृष्टसिक्तपन्थानं पुष्पप्रकरशोभितम् ।
चन्दनस्य रसैः शीतैः पुण्यगन्धैर्निषेवितम् ॥ ३६
दह्यताऽगुरुणा चैव देशे देशे सुगन्धिना ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं वणिग्भिरुपशोभितम् ॥ ३७
प्रतिपेदे महाबाहुः सह रामेण केशवः ।
वृष्ण्यन्धकैस्तथा भोजैः समेतः पुरुषोत्तमः ॥ ३८
संपूज्यमानः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ।
विवेश भवनं राज्ञः पुरन्दरगृहोपमम् ॥ ३९
युधिष्ठिरस्तु रामेण समागच्छद्यथाविधि ।
मूर्ध्नि केशवमाघ्राय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ ४०
तं प्रीयमाणो गोविन्दो विनयेनाभिपूजयन् ।
भीमं च पुरुषव्याघ्रं विधिवत्प्रत्यपूजयत् ॥ ४१
तांश्च वृष्ण्यन्धकश्रेष्ठान्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रतिजग्राह सत्कारैर्यथाविधि यथागतम् ॥ ४२
गुरुवत्पूजयामास कांश्चित्कांश्चिद्वयस्यवत् ।
कांश्चिदभ्यवदत्प्रेम्णा कैश्चिदप्यभिवादितः ॥ ४३
तेषां ददौ हृषीकेशो जन्यार्थे धनमुत्तमम् ।
हरणं वै सुभद्राया ज्ञातिदेयं महायशाः ॥ ४४
रथानां काञ्चनाङ्गानां किङ्किणीजालमालिनाम् ।
चतुर्युजामुपेतानां सूतैः कुशलशिक्षितैः ॥ ४५
सहस्रं प्रददौ कृष्णो गवामयुतमेव च ।
श्रीमान्माथुरदेश्यानां दोग्ध्रीणां पुण्यवर्चसाम् ४६
वडवानां च शुद्धानां चन्द्रांशुसमवर्चसाम् ।
ददौ जनार्दनः प्रीत्या सहस्रं हेमभूषितम् ॥ ४७
तथैवाश्वतरीणां च दान्तानां वातरंहसाम् ।
शतान्यञ्जनकेशीनां श्वेतानां पञ्च पञ्च च ॥ ४८
स्नानपानोत्सवे चैव प्रयुक्तं वयसान्वितम् ।
स्त्रीणां सहस्रं गौरीणां सुवेषाणां सुवर्चसाम् ४९
सुवर्णशतकण्ठीनामरोमाणां स्वलंकृताम् ।
परिचर्यासु दक्षाणां प्रददौ पुष्करेक्षणः ॥ ५०
पृष्ठ्यानामपि चाश्वानां बाल्हिकानां जनार्दनः ।
ददौ शतसहस्राख्यं कन्याधनमनुत्तमम् ॥ ५१
कृताकृतस्य मुख्यस्य कनकस्याग्निवर्चसः ।
मनुष्यभारान्दाशार्हो ददौ दश जनार्दनः ॥ ५२
गजानां तु प्रभिन्नानां त्रिधा प्रस्रवतां मदम् ।
गिरिकूटनिकाशानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ५३
गुप्तानां पटुघण्टानां चारूणां हेममालिनाम् ।
हस्त्यारोहैरुपेतानां सहस्रं साहसप्रियः ॥ ५४
रामः पाणिग्रहणिकं ददौ पार्थाय लाङ्गली ।
प्रीयमाणो हलधरः संबन्धं प्रतिमानयन् ॥ ५५
स महाधनरत्नौघो वस्त्रकम्बलफेनवान् ।
महागजमहाग्राहः पताकाशैवलाकुलः ॥ ५६
पाण्डुसागरमाविद्धः प्रविवेश महाधनः ।
पूर्णमापूरयंस्तेषां द्विषच्छोकावहोऽभवत् ॥ ५७
प्रतिजग्राह तत्सर्वं धर्मराजा युधिष्ठिरः ।
पूजयामास तांश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथान् ॥ ५८
ते समेता महात्मानः कुरुवृष्ण्यन्धकोत्तमाः ।
विजह्रुरमरावासे नराः सुकृतिनो यथा ॥ ५९
तत्र तत्र महानादैरुत्कृष्टतलनादितैः ।
यथायोगं यथाप्रीति विजह्रुः कुरुवृष्णयः ॥ ६०

---

हरणं प्रीतिदायम् ॥ ३३ ॥ प्रतिग्रहार्थं सन्मानेन आनेतुम् ॥ ३४ ॥ प्रतिपेदे प्राप्तवान् खाण्डवप्रस्थमिति संबन्धः ॥ ३८ ॥ जन्यार्थे जनी वधूस्तामर्हन्तो जन्याः वरपक्षीयास्तेषामर्थे ॥ ४४ ॥ चतुर्युजां वाहचष्कयुजाम् ॥ ४५ ॥ सहस्रं रथानां गवां दोग्ध्रीणाम् ॥ ४६ ॥ वडवानां अश्वानाम् ॥ ४७ ॥ गौरीणां अदृष्टरजसाम् ॥ ४९ ॥ सुवर्णशतं सुवर्णमणिशतं कण्ठे यासां तासाम् । अरोमाणां अनुद्भिन्नरोमावलीनां स्वलंकृतां सुतराम-लंकृतानाम् ॥५०॥ पृष्ठ्यानां पृष्ठवाहिनाम् । बाल्हिकानां बाल्हिकदेशजानाम् ॥ ५१ ॥ कृताकृतस्य कृतं आकरजं धमनादिना साधितं अकृतं जांबूनदं स्वतःसिद्धं तस्य ॥ ५२ ॥ प्रभिन्नानाम् मत्तानां । त्रिधा गण्डगुह्यकर्णमूलैः ॥५३॥ स रत्नौघः पाण्डुसागरं प्रविवेशेति संबन्धः ॥ ५६ ॥ आविद्धः सर्वतो विप्रकीर्णः । महाधनो बहुमूल्यः ॥५७॥ तत्रेति । तल-स्तन्त्रीनादः गायन्तो वादयन्तश्च विजह्रुरित्यर्थः ॥६०॥

एवमुक्तमवीर्यास्ते विहृत्य दिवसान्बहून् ।
पूजिताः कुरुभिर्जग्मुः पुनर्द्वारवतीं प्रति ॥ ६१
रामं पुरस्कृत्य ययुर्वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
रत्नान्यादाय शुभ्राणि दत्तानि कुरुसत्तमैः ॥ ६२
वासुदेवस्तु पार्थेन तत्रैव सह भारत ।
उवास नगरे रम्ये शक्रप्रस्थे महात्मना ॥ ६३
व्यचरद्यमुनातीरे मृगयां स महायशाः ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च रेमे सार्धं किरीटिना ॥६४
ततः सुभद्रा सौभद्रं केशवस्य प्रिया स्वसा ।
जयन्तीमिव पौलोमी ख्यातिमन्तमजीजनत् ॥ ६५
दीर्घबाहुं महोरस्कं वृषभाक्षमरिंदमम् ।
सुभद्रा सुषुवे वीरमभिमन्युं नरर्षभम् ॥ ६६
अभिश्च मन्युमांश्चैव ततस्तमरिमर्दनम् ।
अभिमन्युमिति प्राहुरार्जुनिं पुरुषर्षभम् ॥ ६७
स सात्वत्यामतिरथः संबभूव धनंजयात् ।
मखे निर्मथनेनेव शमीगर्भाद्धुताशनः ॥ ६८
यस्मिञ्जाते महातेजाः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अयुतं गा द्विजातिभ्यः प्रादान्निष्कांश्च भारत ६९
दयितो वासुदेवस्य बाल्यात्प्रभृति चाभवत् ।
पितॄणामिव सर्वेषां प्रजानामिव चन्द्रमाः ॥ ७०
जन्मप्रभृति कृष्णश्च चक्रे तस्य क्रियाः शुभाः ।
स चापि ववृधे बालः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ७१
चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेदमरिंदमः ।
अर्जुनाद्वेदवेदज्ञः सकलं दिव्यमानुषम् ॥ ७२
विज्ञानेष्वपि चास्त्राणां सौष्ठवे च महाबलः ।
क्रियास्वपि च सर्वासु विशेषानभ्यशिक्षयत् ७३
आगमे च प्रयोगे च चक्रे तुल्यमिवात्मना ।
तुतोष पुत्रं सौभद्रं प्रेक्षमाणो धनंजयः ॥ ७४
सर्वसंहननोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
दुर्धर्षमृषभस्कन्धं व्यात्ताननमिवोरगम् ॥ ७५
सिंहदर्पं महेष्वासं मत्तमातङ्गविक्रमम् ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ॥ ७६
कृष्णस्य सदृशं शौर्ये वीर्ये रूपे तथा कृतौ ।
ददर्श पुत्रं बीभत्सुर्मघवानिव तं यथा ॥ ७७
पाञ्चाल्यपि तु पञ्चभ्यः पतिभ्यः शुभलक्षणा ।
लेभे पञ्च सुतान्वीरान् श्रेष्ठान्पञ्चाचलानिव ॥७८
युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यं सुतसोमं वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकर्माणं शतानीकं च नाकुलिम् ॥ ७९
सहदेवाच्छ्रुतसेनमेतान्पञ्च महारथान् ।
पाञ्चाली सुषुवे वीरानादित्यानदितिर्यथा ॥ ८०
शास्त्रतः प्रतिविन्ध्यं तमूचुर्विप्रा युधिष्ठिरम् ।
परप्रहरणज्ञाने प्रतिविन्ध्यो भवत्वयम् ॥ ८१
सुते सोमसहस्रे तु सोमार्कसमतेजसम् ।
सुतसोमं महेष्वासं सुषुवे भीमसेनतः ॥ ८२
श्रुतं कर्म महत्कृत्वा निवृत्तेन किरीटिना ।
जातः पुत्रस्तथेत्येवं श्रुतकर्मा ततोऽभवत् ॥ ८३

---

अभि इति ह्रस्वत्वमार्षम् मन्युमान् क्रोधवान् आतिशूरः इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ शमीगर्भात् शमीगर्भे जातादश्वत्थात् । निर्मथनेन अधरारण्यां संघर्षणेन । अत्राश्वत्थवदर्जुनः 'तस्यार्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' इति श्रुतेरधःस्थार्धदेहरूपत्वादधरारणिवत्सुभद्रा अग्निवदभिमन्युरिति साम्यम् ॥ ६८ ॥ निष्कान् सुवर्णमणिमालाः ॥ ६९ ॥ क्रियाः लालनपालनालंकरणादिकाः॥७१॥चतुष्पादमिति । 'मंत्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तामुक्तं तथैवच । अमुक्तं च धनुर्वेदे चतुष्पाच्छस्त्रमीरितम्'यस्य प्रयोग एवास्ति नतूपसंहारस्तदाद्यम् बाणादि द्वितीयम् प्रयोगोपसंहाराभ्यां युक्तं तृतीयम्। चतुर्थं मन्त्रसाधितं ध्वजादियद्दर्शनादेव शत्रवः पलायन्ते । यद्वा सूत्रशिक्षाप्रयोगरहस्यानीति चत्वारो ग्रन्थपादाः।दशविधं ग्रन्थार्थानुष्ठानं यथा।'आदानमथ संधानं मोक्षणं विनिवर्तनं । स्थानं मुष्टिः प्रयोगश्च प्रायश्चित्तानि मण्डलम्। रहस्यं चेति दशधा धनुर्वेदाङ्गमिष्यते।'आदानं बाणस्य निषङ्गात् । संधानं मौर्व्या योगः । मोक्षणं लक्ष्ये निपातनम् । विनिवर्तनं हीनशक्तौ लक्ष्ये पातितस्यास्त्रस्य प्रत्यावर्तनम् । स्थानं मध्यं उपमध्यं वा धनुषो ज्यायाश्च धारणे शरसन्धाने च । मुष्टिस्त्र्यंगुलिश्चतुरंगुलिर्वा । प्रयोगस्तर्जनीमध्यमयोर्मध्यमांगुष्ठयोर्वा मध्येन बाणसंयोजनम् । प्रायश्चित्तानि स्वतः परतो वा प्राप्तस्य प्राप्स्यमानस्य वा ज्याघातशरघातादेरभिघातार्थास्तलत्राणप्रत्यस्त्रादिविधयः । मण्डलानि चक्रवत् भ्रमता रथेन भ्राम्यमाणस्य लक्ष्यस्य वेधः । रहस्यं शब्दादिवेधो युगपदनेकेषु लक्ष्येषु शरपात इत्यादि । दिव्यं ब्रह्मास्त्रादि । मानुषं खड्गादि ॥७२॥ अस्त्राणां अकाले प्रयोगानां विज्ञाने विशिष्टे ज्ञाने । सौष्ठवे अन्येषां प्रयोगपटुत्वे। क्रियासु शारीरीषु उत्सर्पणप्रसर्पणादिषु । विशेषान् आधिक्यानि । अभितः साकल्येनाशिक्षयदर्जुनः पुत्रम् ॥७३ आगमे शास्त्रे प्रयोगे अनुष्ठाने ॥ ७४ ॥ सर्वसंहननोपेतं संहननैः पराभिभावकैर्गुणैरुपेतम् ॥ ७५॥ कृष्णस्येति । 'नराणां मातुलक्रमः' इति न्यायेन रेतः सेक्तार्नैत्यं कृष्णध्यायित्वेन वा कृष्णस्य सदृशम् । तं अर्जुनं यथा मघवान् ॥७७ ॥ परप्रहारणज्ञाने शत्रुकृतप्रहारवेदनायां विन्ध्य इव निर्विज्ञान इति प्रतिविन्ध्यः स्पष्टार्थमन्यत् ॥ ८१ ॥

शतानीकस्य राजर्षेः कौरव्यस्य महात्मनः ।
चक्रे पुत्रं स नामानं नकुलः कीर्तिवर्धनम् ॥ ८४
ततस्त्वजीजनत्कृष्णा नक्षत्रे वह्निदैवते ।
सहदेवात्सुतं तस्माच्छ्रुतसेनेति यं विदुः ॥ ८५
एकवर्षान्तरास्त्वेते द्रौपदेया यशस्विनः ।
अन्वजायन्त राजेन्द्र परस्परहितैषिणः ॥ ८६
जातकर्माण्यानुपूर्व्याच्चूडोपनयनानि च ।
चकार विधिवद्धौम्यस्तेषां भरतसत्तम ॥ ८७
कृत्वा च वेदाध्ययनं ततः सुचरितव्रताः ।
जगृहुः सर्वमिष्वस्त्रमर्जुनाद्दिव्यमानुषम् ॥ ८८
दिव्यगर्भोपमैः पुत्रैर्व्यूढोरस्कैर्महारथैः ।
अन्विता राजशार्दूल पाण्डवा मुदमाप्नुवन् ॥ ८९

इति श्रीमहा० आदिप० हरणाहरणपर्वणि एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

समाप्तं हरणाहरणपर्व ।

---

## खाण्डवदाहपर्व ।

## २२२

वैशंपायन उवाच ।
इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्ते जघ्नुरन्यान्नराधिपान् ।
शासनाद्धृतराष्ट्रस्य राज्ञः शान्तनवस्य च ॥ १
आश्रित्य धर्मराजानं सर्वलोकोऽवसत्सुखम् ।
पुण्यलक्षणकर्माणं स्वदेहमिव देहिनः ॥ २
स समं धर्मकामार्थान्सिषेवे भरतर्षभ ।
त्रीनिवात्मसमान्बन्धून्बन्धूनिव मानयन् ॥ ३
तेषां समविभक्तानां क्षितौ देहवतामिव ।
बभौ धर्मार्थकामानां चतुर्थ इव पार्थिवः ॥ ४
अध्येतारं परं वेदान्प्रयोक्तारं महाध्वरे ।
रक्षितारं शुभाँल्लोकाँल्लेभिरे तं जनाधिपम् ॥ ५
अधिष्ठानवती लक्ष्मीः परायणवती मतिः ।
वर्धमानोऽखिलो धर्मस्तेनासीत्पृथिवीक्षिताम् ॥ ६
भ्रातृभिः सहितो राजा चतुर्भिरधिकं बभौ ।
प्रयुज्यमानैर्विततो वेदैरिव महाध्वरः ॥ ७
तं तु धौम्यादयो विप्राः परिवार्योपतस्थिरे ।
बृहस्पतिसमा मुख्याः प्रजापतिमिवामराः ॥ ८
धर्मराजे ह्यतिप्रीत्या पूर्णचन्द्र इवामले ।
प्रजानां रेमिरे तुल्यं नेत्राणि हृदयानि च ॥ ९
न तु केवलदैवेन प्रजाभावेन रेमिरे ।
यद्बभूव मनःकान्तं कर्मणा स चकार तत् ॥ १०
न ह्ययुक्तं न चासत्यं नासह्यं न च वाऽप्रियम् ।
भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य धीमतः ॥ ११
स हि सर्वस्य लोकस्य हितमात्मन एव च ।
चिकीर्षन्सुमहातेजा रेमे भरतसत्तम ॥ १२

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

२२२

इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्त इति ॥ १ ॥ पुण्यानि लक्षणानि ऊर्ध्वरेखादीनि गाम्भीर्यादीनि च कर्माणि आरम्भकाणि क्रियमाणानि च यस्य तम् ॥ २ ॥ समं परस्परापीडया ॥ ३ ॥ तेषामिति । यथा त्रयाणाममात्यानां चतुर्थो राजा आराध्यत्वेन भाति यथा वा धर्मार्थकामानां त्रयाणां चतुर्थो मोक्षस्वरूप आत्मा आराध्यत्वेन भाति तथैनं धर्मादयः स्वयमुपतिष्ठन्तीत्यर्थः ॥४॥ परं अध्येतारं परस्य ब्रह्मणोऽधिगन्तारम् । वेदान्वेदानाम् । ब्रह्मकर्मणीतिनिष्ठमिति विशेषणद्वयार्थः ॥५॥ अधिष्ठानेति । चलापि लक्ष्मीर्दृढास्पदाऽभूत् । परायणं परा काष्ठा तद्वती ता प्राप्तेत्यर्थः ॥ ६ ॥ महान् अथर्ववेदोक्ततत्तत्कर्माङ्गोपासनायुक्तः । ऋग्यजुःसामसाध्यो ज्योतिष्टोमादिः ॥ ७॥ तुल्यं युगपत् । तुल्यमित्यत्र गुरुवेति पाठे गुरुत्वा नेत्राणि प्रीत्या हृदयानि च रेमिरे इत्यन्वयः ॥ ९ ॥ दैवेन देवो राजा तत्कर्मणा पालनेन न केवलं रेमिरे अपि तु भावेन भक्त्या । तत्र हेतुः । यदिति । मनःकान्तं मनोरमं प्रजानाम् ॥ १० ॥ कर्मणा प्रियकरत्वमुक्त्वा वाङ्मनसाभ्यामपि तदाह द्वाभ्याम् । न हीति । असह्यं दुःखदम् । अहितमिति पाठेऽपि स एवार्थः । अप्रियं प्रीत्यनुत्पादकम् । भाषितं वचनम् । जज्ञे प्रादुर्बभूव ॥ ११ ॥

तथा तु मुदिताः सर्वे पाण्डवा विगतज्वराः ।
अवसन्पृथिवीपालांस्तापयन्तः स्वतेजसा ॥ १३
ततः कतिपयाहस्य बीभत्सुः कृष्णमब्रवीत् ।
उष्णानि कृष्ण वर्तन्ते गच्छावो यमुनां प्रति १४
सुहृज्जनवृतौ तत्र विहृत्य मधुसूदन ।
सायाह्ने पुनरेष्यावो रोचतां ते जनार्दन ॥ १५

वासुदेव उवाच ।

कुन्तीमातर्ममाप्येतद्रोचते यद्वयं जले ।
सुहृज्जनवृताः पार्थ विहरेम यथासुखम् ॥ १६

वैशंपायन उवाच ।

आमन्त्र्य तौ धर्मराजमनुज्ञाप्य च भारत ।
जग्मतुः पार्थगोविन्दौ सुहृज्जनवृतौ ततः ॥ १७
विहारदेशं संप्राप्य नानाद्रुममनुत्तमम् ।
गृहैरुच्चावचैर्युक्तं पुरन्दरपुरोपमम् ॥ १८
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च रसवद्भिर्महाधनैः ।
माल्यैश्च विविधैर्गन्धैर्युक्तं वार्ष्णेयपार्थयोः ॥ १९
विवेशान्तःपुरं तूर्णं रत्नैरुच्चावचैः शुभैः ।
यथोपजोषं सर्वश्च जनश्चिक्रीड भारत ॥ २०
स्त्रियश्च विपुलश्रोण्यश्चारुपीनपयोधराः ।
मदस्खलितगामिन्यश्चिक्रीडुर्वामलोचनाः ॥ २१
वने काश्चिज्जले काश्चित्काश्चिद्वेश्मसु चाङ्गनाः ।
यथादेशं यथाप्रीति चिक्रीडुः पार्थकृष्णयोः २२
द्रौपदी च सुभद्रा च वासांस्याभरणानि च ।
प्रायच्छतां महाराज स्त्रीणां ते स्म मदोत्कटे २३
काश्चित्प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथा पराः ।
जहसुश्च परा नार्यः पपुश्चान्या वरासवम् ॥ २४
रुरुधुश्चापरास्तत्र प्रजघ्नुश्च परस्परम् ।
मन्त्रयामासुरन्याश्च रहस्यानि परस्परम् ॥ २५
वेणुवीणामृदङ्गानां मनोज्ञानां च सर्वशः ।
शब्देन पूर्यते हर्म्यं तद्वनं सुमहर्द्धिमत् ॥ २६
तस्मिंस्तदा वर्तमाने कुरुदाशार्हनन्दनौ ।
समीपं जग्मतुः कंचिदुद्देशं सुमनोहरम् ॥ २७
तत्र गत्वा महात्मानौ कृष्णौ परपुरंजयौ ।
महार्हासनयो राजंस्ततस्तौ संनिषीदतुः ॥ २८
तत्र पूर्वव्यतीतानि विक्रान्तानीतराणि च ।
बहूनि कथयित्वा तौ रेमाते पार्थमाधवौ ॥ २९
तत्रोपविष्टौ मुदितौ नाकपृष्ठेऽश्विनाविव ।
अभ्यागच्छत्तदा विप्रो वासुदेवधनंजयौ ॥ ३०
बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः ।
हरिपिङ्गोज्ज्वलश्मश्रुः प्रमाणायामतःसमः ॥ ३१
तरुणादित्यसंकाशश्चीरवासा जटाधरः ।
पद्मपत्राननः पिङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ३२
उपसृष्टं तु तं कृष्णौ भ्राजमानं द्विजोत्तमम् ।
अर्जुनोवासुदेवश्चतूर्णमुत्पत्य तस्थतुः ॥ ३३

इति श्री० आ० खाण्डवदाहपर्वणि ब्राह्मणरूप्यनलागमने द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

# २२३

वैशंपायन उवाच ।

सोऽब्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम् ।
लोकप्रवीरौ तिष्ठन्तौ खाण्डवस्य समीपतः ॥ १
ब्राह्मणो बहुभोक्तास्मि भुञ्जेऽपरिमितं सदा ।
भिक्षे वार्ष्णेयपार्थौ वामेकां तृप्तिं प्रयच्छतम् ॥ २
एवमुक्तौ तमब्रूतां ततस्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
केनान्नेन भवांस्तृप्येत्तस्यान्नस्य यतावहे ॥ ३
एवमुक्तः स भगवानब्रवीत्तावुभौ ततः ।
भाषमाणौ तदा वीरौ किमन्नं क्रियतामिति ॥ ४

ब्राह्मण उवाच ।

नाहमन्नं बुभुक्षे वै पावकं मां निबोधतम् ।
यदन्नमनुरूपं मे तद्युवां संप्रयच्छतम् ॥ ५

---

उष्णानि निदाघदिनानि ॥ १४ ॥ कुन्ती माता यस्येति हे कुन्तीमातर्हेऽर्जुन ॥ १६ ॥ गृहैः मध्येयमुनं निर्मितैःक्रीडावाप्यादियुक्तैः॥१८॥भक्ष्याद्यैर्युक्तं विहारस्थानम् ॥१९॥ विवेशान्तःपुरं कर्तृ रत्नैर्युक्तम् ॥२०॥ उद्देशं प्रदेशम् ॥ २७ ॥ हरिपिङ्गः नीलपीताखिलाङ्गः ज्वलश्मश्रुः ज्वालावत्पीतश्मश्रुः ॥ ३१ ॥ उपसृष्टं समीपागतं उपलक्ष्य उत्पत्य आसनात् ॥३३॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

२२३

सोऽब्रवीदिति ॥ १ ॥ वां भिक्षे युवां दातुं समर्थौ प्रार्थये ॥ २ तस्यान्नस्य दाने ॥ ३ ॥ क्रियतामिति । भाषमाणौ तौ प्रति अब्रवीदित्यन्वयः ॥ ४ ॥

इदमिन्द्रः सदा दावं खाण्डवं परिरक्षति।
न च शक्नोम्यहं दग्धुं रक्ष्यमाणं महात्मना ॥ ६
वसत्यत्र सखा तस्य तक्षकः पन्नगः सदा।
सगणस्तत्कृते दावं परिरक्षति वज्रभृत् ॥ ७
तत्र भूतान्यनेकानि रक्षतेऽस्य प्रसङ्गतः।
तं दिधक्षुर्न शक्नोमि दग्धुं शक्रस्य तेजसा ॥ ८
स मां प्रज्वलितं दृष्ट्वा मेघाम्भोभिः प्रवर्षति।
ततो दग्धुं न शक्नोमि दिधक्षुर्दावमीप्सितम् ॥ ९
स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्त्रविद्भ्यां समागतः।
दहेयं खाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया ॥ १०
युवां ह्युदकधारास्ता भूतानि च समन्ततः।
उत्तमास्त्रविदौ सम्यक्सर्वतो वारयिष्यथः ॥ ११

जनमेजय उवाच।

किमर्थं भगवानग्निः खाण्डवं दग्धुमिच्छति।
रक्ष्यमाणं महेन्द्रेण नानासत्त्वसमायुतम् ॥ १२
न ह्येतत्कारणं ब्रह्मन्नल्पं संप्रति भाति मे।
यद्ददाह सुसंक्रुद्धः खाण्डवं हव्यवाहनः ॥ १३
एतद्विस्तरशो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
खाण्डवस्य पुरा दाहो यथा समभवन्मुने ॥ १४

वैशंपायन उवाच।

शृणु मे ब्रुवतो राजन्सर्वमेतद्यथातथम्।
यन्निमित्तं ददाहाग्निः खाण्डवं पृथिवीपते ॥ १५
हन्त ते कथयिष्यामि पौराणीमृषिसंस्तुताम्।
कथामिमां नरश्रेष्ठ खाण्डवस्य विनाशिनीम् ॥
पौराणः श्रूयते राजन् राजा हरिहयोपमः।
श्वेतकिर्नाम विख्यातो बलविक्रमसंयुतः ॥ १७
यज्वा दानपतिर्धीमान्यथा नान्योस्ति कश्चन।
ईजे च स महायज्ञैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥ १८
तस्य नान्याऽभवद्बुद्धिर्दिवसे दिवसे नृप।
सत्रे क्रियासमारम्भे दानेषु विविधेषु च ॥ १९
ऋत्विग्भिः सहितो धीमानेवमीजे स भूमिपः।
ततस्तु ऋत्विजश्चास्य धूमव्याकुललोचनाः ॥२०
कालेन महता खिन्नास्तत्यजुस्ते नराधिपम्।
ततः प्रचोदयामास ऋत्विजस्तान्महीपतिः ॥ २१
चक्षुर्विकलतां प्राप्ता न प्रपेदुश्च ते क्रतुम्।
ततस्तेषामनुमते तद्विप्रैस्तु नराधिपः ॥ २२

सत्रं समापयामास ऋत्विग्भिरपरैः सह।
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित्कालपर्यये ॥ २३
सत्रमाहर्तुकामस्य संवत्सरशतं किल।
ऋत्विजो नाभ्यपद्यन्त समाहर्तुं महात्मनः ॥ २४
स च राजाऽकरोद्यत्नं महान्तं ससुहृज्जनः।
प्रणिपातेन सान्त्वेन दानेन च महायशाः ॥ २५
ऋत्विजोऽनुनयामास भूयो भूयस्त्वतन्द्रितः।
ते चास्य तमभिप्रायं न चक्रुरमितौजसः ॥ २६
स चाश्रमस्थान्राजर्षिस्तानुवाच रुषाऽन्वितः।
यद्यहं पतितो विप्राः शुश्रूषायां न च स्थितः ॥
आशु त्याज्योऽस्मि युष्माभिर्ब्राह्मणैश्च जुगुप्सितः।
तन्नार्हथ क्रतुश्रद्धां व्याघातयितुमद्य ताम् ॥ २८
अस्थाने वा परित्यागं कर्तुं मे द्विजसत्तमाः।
प्रपन्न एव वो विप्राः प्रसादं कर्तुमर्हथ ॥ २९
सान्त्वदानादिभिर्वाक्यैस्तत्त्वतः कार्यवत्तया।
प्रसादयित्वा वक्ष्यामि यन्नः कार्यं द्विजोत्तमाः ॥
अथवाहं परित्यक्तो भवद्भिर्द्वेषकारणात्।
ऋत्विजोऽन्यान्गमिष्यामि याजनार्थं द्विजोत्तमाः
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम स पार्थिवः।
यदा न शेकू राजानं याजनार्थं परंतप ॥ ३२
ततस्ते याजकाः क्रुद्धास्तमूचुर्नृपसत्तमम्।
तव कर्माण्यजस्रं वै वर्तन्ते पार्थिवोत्तम ॥ ३३
ततो वयं परिश्रान्ताः सततं कर्मवाहिनः।
श्रमादस्मात्परिश्रान्तान्स त्वं नस्त्यक्तुमर्हसि ॥३४
बुद्धिमोहं समास्थाय त्वरासंभावितोऽनघ।
गच्छ रुद्रसकाशं त्वं स हि त्वां याजयिष्यति ॥
साधिक्षेपं वचः श्रुत्वा संक्रुद्धः श्वेतकिर्नृपः।
कैलासं पर्वतं गत्वा तप उग्रं समास्थितः ॥ ३६
आराधयन्महादेवं नियतः संशितव्रतः।
उपवासपरो राजन्दीर्घकालमतिष्ठत ॥ ३७
कदाचिद्द्वादशे काले कदाचिदपि षोडशे।
आहारमकरोद्राजा मूलानि च फलानि च ॥३८
ऊर्ध्वबाहुस्त्वनिमिषस्तिष्ठन्स्थाणुरिवाचलः।
षण्मासानभवद्राजा श्वेतकिः सुसमाहितः ॥ ३९
तं तथा नृपशार्दूलं तप्यमानं महत्तपः।
शंकरः परमप्रीत्या दर्शयामास भारत ॥ ४०

भूतानि बहिर्निर्गन्तुकामानि ॥ ८ ॥ महायज्ञैः पञ्चभिर्देवयज्ञादिभिः स्मार्तैः क्रतुभिः श्रौतैर्ज्योतिष्टोमादिभिः। महासत्रैरिति पाठे सत्रमन्नदानं लोकप्रसिद्धं ॥ १८ ॥ सत्रे यज्ञे ॥ १९ ॥ बुद्धिमोहं बुद्धिवैकल्यम्। त्वरासंभावितस्त्वरावश अस्मदीयश्रमाज्ञानादित्यर्थः ॥३५॥

उवाच चैनं भगवान्स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
प्रीतोऽस्मि नरशार्दूल तपसा ते परंतप ॥ ४१
वरं वृणीष्व भद्रं ते यं त्वमिच्छसि पार्थिव ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रुद्रस्यामिततेजसः ॥ ४२
प्रणिपत्य महात्मानं राजर्षिः प्रत्यभाषत ।
यदि मे भगवान्प्रीतः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ४३
स्वयं मां देवदेवेश याजयस्व सुरेश्वरः ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञा तेन प्रभाषितम् ॥ ४४
उवाच भगवान्प्रीतः स्मितपूर्वमिदं वचः ।
नास्माकमेतद्विषये वर्तते याजनं प्रति ॥ ४५
त्वया च सुमहत्तप्तं तपो राजन्वरार्थिना ।
याजयिष्यामि राजंस्त्वां समयेन परंतप ॥ ४६

रुद्र उवाच ।

समा द्वादश राजेन्द्र ब्रह्मचारी समाहितः ।
सततं त्वाज्यधाराभिर्यदि तर्पयसेऽनलम् ॥ ४७
कामं प्रार्थयसे यं त्वं मत्तः प्राप्स्यसि तं नृप ।
एवमुक्तश्च रुद्रेण श्वेतकिर्मनुजाधिपः ॥ ४८
तथा चकार तत्सर्वं यथोक्तं शूलपाणिना ।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे पुनरायान्महेश्वरः ॥ ४९
दृष्ट्वैव च स राजानं शंकरो लोकभावनः ।
उवाच परमप्रीतः श्वेतकिं नृपसत्तमम् ॥ ५०
तोषितोऽहं नृपश्रेष्ठ त्वयेहाद्येन कर्मणा ।
याजनं ब्राह्मणानां तु विधिदृष्टं परंतप ॥ ५१
अतोऽहं त्वां स्वयं नाद्य याजयामि परंतप ।
ममांशस्तु क्षितितले महाभागो द्विजोत्तमः ॥ ५२
दुर्वासा इति विख्यातः स हि त्वां याजयिष्यति
मन्नियोगान्महातेजाः संभाराः संभ्रियन्तु ते ॥ ५३
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रुद्रेण समुदाहृतम् ।
स्वपुरं पुनरागम्य संभारान्पुनरार्जयत् ॥ ५४
ततः संभृतसंभारो भूयो रुद्रमुपागमत् ।
संभृता मम संभाराः सर्वोपकरणानि च ॥ ५५
त्वत्प्रसादान्महादेव श्वो मे दीक्षा भवेदिति ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ ५६
दुर्वाससं समाहूय रुद्रो वचनमब्रवीत् ।
एष राजा महाभागः श्वेतकिर्द्विजसत्तम ॥ ५७
एनं याजय विप्रेन्द्र मन्नियोगेन भूमिपम् ।
बाढमित्येव वचनं रुद्रं त्वृषिरुवाच ह ॥ ५८
ततः सत्रं समभवत्तस्य राज्ञो महात्मनः ।
यथाविधि यथाकालं यथोक्तं बहुदक्षिणम् ॥ ५९
तस्मिन्परिसमाप्ते तु राज्ञः सत्रे महात्मनः ।
दुर्वाससाऽभ्यनुज्ञाता विप्रतस्थुः स्म याजकाः ६०
ये तत्र दीक्षिताः सर्वे सदस्याश्च महौजसः ।
सोऽपि राजन्महाभागः स्वपुरं प्राविशत्तदा ६१
पूज्यमानो महाभागैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
बन्दिभिः स्तूयमानश्च नागरैश्चाभिनन्दितः ॥ ६२
एवं वृत्तः स राजर्षिः श्वेतकिर्नृपसत्तमः ।
कालेन महता चापि ययौ स्वर्गमभिष्टुतः ॥ ६३
ऋत्विग्भिः सहितः सर्वैः सदस्यैश्च समन्वितः ।
तस्य सत्रे पपौ वह्निर्हविर्द्वादशवत्सरान् ॥ ६४
सततं चाज्यधाराभिरैकात्म्ये तत्र कर्मणि ।
हविषा च ततो वह्निः परां तृप्तिमगच्छत ॥ ६५
न चैच्छत्पुनरादातुं हविरन्यस्य कस्यचित् ।
पाण्डुवर्णो विवर्णश्च न यथावत्प्रकाशते ॥ ६६
ततो भगवतो वन्हेर्विकारः समजायत ।
तेजसा विप्रहीणश्च ग्लानिश्चैनं समाविशत् ॥ ६७
स लक्षयित्वा चात्मानं तेजोहीनं हुताशनः ।
जगाम सदनं पुण्यं ब्रह्मणो लोकपूजितम् ॥ ६८
तत्र ब्रह्माणमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ।
भगवन्परमा प्रीतिः कृता मे श्वेतकेतुना ॥ ६९
अरुचिश्चाभवत्तीव्रा तां न शक्नोम्यपोहितुम् ।
तेजसा विप्रहीणोऽस्मि बलेन च जगत्पते ॥ ७०
इच्छेय त्वत्प्रसादेन स्वात्मनः प्रकृतिं स्थिराम् ।
एतच्छ्रुत्वा हुतवहाद्भगवान्सर्वलोककृत् ॥ ७१
हव्यवाहमिदं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव ।
त्वया द्वादशवर्षाणि वसोर्धाराहुतं हविः ॥ ७२
उपयुक्तं महाभाग तेन त्वां ग्लानिराविशत् ।
तेजसा विप्रहीणत्वात्सहसा हव्यवाहन ॥ ७३

---

याजनंप्रति याजनं उद्दिश्य । त्वया च सुमहत्तपस्तप्तम् । एतद्याजनं अस्माकं विषये न वर्तते इति संबन्धः । वयं तु न याजनेऽधिकारिण इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ सततं त्वाज्यधाराभिः। अच्छिन्नया आज्यधारया । बहुत्वमवयवाभिप्रायम् ॥ ४६ ॥ आद्येन अनादिवेदबोधितेन । विधिदृष्टं ब्राह्मणानामिदं हविरिति चतुर्धाकरणमन्त्रलिङ्गानुमितविधिदृष्टम् ॥ ५१ ॥ अत इति । स्वयं यज्ञभोक्ता भूत्वा ऋत्विज्ञानभङ्गभयात्स्वयं न याजयामीत्यर्थः ॥ ५२ ॥ दीक्षिताः कर्मसु निष्णाताः ॥ ६१ ॥ प्रकृतिं स्वभावम् ॥ ७१ ॥ वसोर्धारा पात्रविशेषः येन हूयमानं घृतद्रव्यं सन्ततधारारूपेण क्षरति । तेन हुतं हविर्थाद्घृतमेव । वसोर्धारां जुहोतीत्युपक्रम्य घृतस्य वा एनमेषा धारेति वाक्यशेषात् ॥ ७२ ॥ उपयुक्तं भुक्तम् ॥ ७३ ॥

मा गमस्त्वं यथा वह्ने प्रकृतिस्थो भविष्यसि ।
अरुचिं नाशयिष्येहं समयं प्रतिपद्यते ॥ ७४
पुरा देवनियोगेन यत्त्वया भस्मसात्कृतम् ।
आलयं देवशत्रूणां सुघोरं खाण्डवं वनम् ॥ ७५
तत्र सर्वाणि सत्त्वानि निवसन्ति विभावसो ।
तेषां त्वं मेदसा तृप्तः प्रकृतिस्थो भविष्यति ॥७६
गच्छ शीघ्रं प्रदग्धुं त्वं ततो मोक्ष्यसि किल्बिषात्
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं परमेष्ठिमुखाच्च्युतम् ॥ ७७
उत्तमं जवमास्थाय प्रदुद्राव हुताशनः ।
आगम्य खाण्डवं दावमुत्तमं वीर्यमास्थितः ।
सहसा प्राज्वलच्चाग्निः क्रुद्धो वायुसमीरितः ७८
प्रदीप्तं खाण्डवं दृष्ट्वा ये स्युस्तत्र निवासिनः ।
परमं यत्नमातिष्ठन्पावकस्य प्रशान्तये ॥ ७९
करैस्तु करिणः शीघ्रं जलमादाय सत्वराः ।
सिषिचुः पावकं क्रुद्धाः शतशोऽथ सहस्रशः ८०
बहुशीर्षास्ततो नागाः शिरोभिर्जलसंततिम् ।
मुमुचुः पावकाभ्याशे सत्वराः क्रोधमूर्च्छिताः ॥
तथैवान्यानि सत्त्वानि नानाप्रहरणोद्यमैः ।
विलयं पावकं शीघ्रमनयन्भरतर्षभ ॥ ८२
अनेन तु प्रकारेण भूयो भूयश्च प्रज्वलन् ।
सप्तकृत्वः प्रशमितः खाण्डवे हव्यवाहनः ॥ ८३

इति श्रीमहा० आदि० खाण्डवदाहप० अग्निपराभवे त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

---

## २२४

वैशंपायन उवाच ।
स तु नैराश्यमापन्नः सदा ग्लानिसमन्वितः ।
पितामहमुपागच्छत्संक्रुद्धो हव्यवाहनः ॥ १
तच्च सर्वं यथान्यायं ब्रह्मणे संन्यवेदयत् ।
उवाच चैनं भगवान्मुहूर्तं स विचिन्त्य तु ॥ २
उपायः परिदृष्टो मे यथा त्वं धक्ष्यसेऽनघ ।
कालं च कंचित्क्षमतां ततस्त्वां वक्ष्यतेऽनल ॥ ३
भविष्यतः सहायौ ते नरनारायणौ तदा ।
ताभ्यां त्वं सहितो दावं धक्ष्यसे हव्यवाहन ॥ ४
एवमस्त्विति तं वह्निर्ब्रह्माणं प्रत्यभाषत ।
संभूतौ तौ विदित्वा तु नरनारायणावृषी ॥ ५
कालस्य महतो राजंस्तस्य वाक्यं स्वयंभुवः ।
अनुस्मृत्य जगामाथ पुनरेव पितामहम् ॥ ६
अब्रवीच्च तदा ब्रह्मा यथा त्वं धक्ष्यसेऽनल ।
खाण्डवं दावमद्यैव मिषतोऽस्य शचीपतेः ॥ ७
नरनारायणौ यौ तौ पूर्वदेवौ विभावसो ।
संप्राप्तौ मानुषे लोके कार्यार्थं हि दिवौकसाम् ८
अर्जुनं वासुदेवं च यौ तौ लोकोऽभिमन्यते ।
तावेतौ सहितावेहि खाण्डवस्य समीपतः ॥ ९
तौ त्वं याचस्व साहाय्ये दाहार्थं खाण्डवस्य च ।
ततो धक्ष्यसि तं दावं रक्षितं त्रिदशैरपि ॥ १०
तौ तु सत्त्वानि सर्वाणि यत्नतो वारयिष्यतः ।
देवराजं च सहितौ तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ११
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं त्वरितो हव्यवाहनः ।
कृष्णपार्थावुपागम्य यमर्थं त्वभ्यभाषत ॥ १२
तं ते कथितवानस्मि पूर्वमेव नृपोत्तम ।
तच्छ्रुत्वा वचनं त्वग्नेर्बीभत्सुर्जातवेदसम् ॥ १३
अब्रवीन्नृपशार्दूल तत्कालसदृशं वचः ।
दिधक्षुं खाण्डवं दावमकामस्य शतक्रतोः ॥ १४
अर्जुन उवाच ।
उत्तमास्त्राणि मे सन्ति दिव्यानि च बहूनि च ।
यैरहं शक्नुयां योद्धुमपि वज्रधरान्बहून् ॥ १५
धनुर्मे नास्ति भगवन्बाहुवीर्येण संमितम् ।
कुर्वतः समरे यत्नं वेगं यद्विषहेन्मम ॥ १६
शरैश्च मेऽर्थो बहुभिरक्षय्यैः क्षिप्रमस्यतः ।
न हि वोढुं रथः शक्तः शरान्मम यथेप्सितान् ॥
अश्वांश्च दिव्यानिच्छेयं पाण्डुरान्वातरंहसः ।
रथं च मेघनिर्घोषं सूर्यप्रतिमतेजसम् ॥ १८

---

मा गम ग्लानिमिति विपरिणामेनानुषज्यते । यथेत्यस्य यथापूर्वमित्यर्थः ॥ ७४ ॥ किं तत्खाण्डवमित्याकाङ्क्षाया पुरावृत्तं स्मारयति पुरेति ॥ ७५ ॥ किल्बिषात् ग्लानिरूपात् ॥ ७७ ॥ नानाप्रहरणोद्यमैः । नानाविधैः प्रहरणैः पांसुप्रक्षेपवृक्षशाखाताडनादिभिः । उद्यमैर्जलसेकादिभिश्च ॥ ८२ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२३॥

२२४

सहिताविति ॥ १ ॥ मिषतः पश्यतः ॥ ७ ॥ शतक्रतोः संबन्धि ॥ १४ ॥

तथा कृष्णस्य वीर्येण नायुधं विद्यते समम् ।
येन नागान्पिशाचांश्च निहन्यान्माधवो रणे १९
उपायं कर्मसिद्धौ च भगवन्वक्तुमर्हसि ।
निवारयेयं येनेन्द्रं वर्षमाणं महावने ॥ २०
पौरुषेण तु यत्कार्यं तत्कर्तारौ स्व पावक ।
करणानि समर्थानि भगवन्दातुमर्हसि ॥ २१

इति श्रीमहा० आदिप० खाण्डवदाहप० अर्जुनाग्निसंवादे चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

---

## २२५

वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तः स भगवान्धूमकेतुर्हुताशनः ।
चिन्तयामास वरुणं लोकपालं दिदृक्षया ॥ १
आदित्यमुदके देवं निवसन्तं जलेश्वरम् ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास पावकम् २
तमब्रवीद्धूमकेतुः प्रतिगृह्य जलेश्वरम् ।
चतुर्थं लोकपालानां देवदेवं सनातनम् ॥ ३
सोमेन राज्ञा यद्दत्तं धनुश्चैवेषुधी च ते ।
तत्प्रयच्छोभयं शीघ्रं रथं च कपिलक्षणम् ॥ ४
कार्यं च सुमहत्पार्थो गाण्डीवेन करिष्यति ।
चक्रेण वासुदेवश्च तन्ममाद्य प्रदीयताम् ॥ ५
ददानीत्येव वरुणः पावकं प्रत्यभाषत ।
तदद्भुतं महावीर्यं यशः कीर्तिविवर्धनम् ॥ ६
सर्वशस्त्रैरनाधृष्यं सर्वशस्त्रप्रमाथि च ।
सर्वायुधमहामात्रं परसैन्यप्रधर्षणम् ॥ ७
एकं शतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्धनम् ।
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः शोभितं श्लक्ष्णमव्रणम् ॥ ८
देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ।
प्रादाच्चैव धनूरत्नमक्षय्यौ च महेषुधी ॥ ९
रथं च दिव्याश्वयुजं कपिप्रवरकेतनम् ।
उपेतं राजतैरश्वैर्गान्धर्वैर्हेममालिभिः ॥ १०
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशैर्मनोवायुसमैर्जवे ।
सर्वोपकरणैर्युक्तमजय्यं देवदानवैः ॥ ११
भानुमन्तं महाघोषं सर्वरत्नमनोरमम् ।
ससर्ज यं सुतपसा भौमनो भुवनप्रभुः ॥ १२
प्रजापतिरनिर्देश्यं यस्य रूपं रवेरिव ।
यं स्म सोमः समारुह्य दानवानजयत्प्रभुः ॥ १३
नवमेघप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव च श्रिया ।
आश्रितौ तं रथश्रेष्ठं शक्रायुधसमावुभौ ॥ १४
तापनीया सुरुचिरा ध्वजयष्टिरनुत्तमा ।
तस्यां तु वानरो दिव्यः सिंहशार्दूलकेतनः ॥१५
दिधक्षन्निव तत्र स्म संस्थितो मूर्ध्न्यशोभत ।
ध्वजे भूतानि तत्रासन्विविधानि महान्ति च ॥
नादेन रिपुसैन्यानां येषां संज्ञा प्रणश्यति ।
स तं नानापताकाभिः शोभितं रथसत्तमम् ॥१७
प्रदक्षिणमुपावृत्य दैवतेभ्यः प्रणम्य च ।
संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रकः ॥ १८
आरुरोह तदा पार्थो विमानं सुकृती यथा ।
तच्च दिव्यं धनुः श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥१९
गाण्डीवमुपसंगृह्य बभूव मुदितोऽर्जुनः ।
हुताशनं पुरस्कृत्य ततस्तदपि वीर्यवान् ॥ २०
जग्राह बलमास्थाय ज्यया च युयुजे धनुः ।
मौर्व्यां तु योज्यमानायां बलिना पाण्डवेन ह २१
येऽशृण्वन्कूजितं तत्र तेषां वै व्यथितं मनः ।
लब्ध्वा रथं धनुश्चैव तथाक्षय्ये महेषुधी ॥ २२
बभूव कल्यः कौन्तेयः प्रहृष्टः साह्यकर्मणि ।
वज्रनाभं ततश्चक्रं ददौ कृष्णाय पावकः ॥ २३

---

करणानि युद्धसाधनानि धनुरादीनि ॥ २१ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

२२५

एवमिति ॥ १ ॥ आदित्यं अदितेः पुत्रम् ॥२॥ प्रतिगृह्य पूजादिना स्वायत्तीकृत्य ॥ ३ ॥ महामात्रं अतिप्रमाणं समृद्धं प्रधानं वा ॥ ७ ॥ राजतैः रजतवर्णैः ॥१०॥ भानुमन्तं दीप्तिमन्तं भौमनो विश्वकर्मा ॥१२॥ शक्रायुधसमौ देहवासश्छविभ्यां नीलपिशङ्गवर्णौ ॥१४॥ तापनीया सौवर्णी । सिंहशार्दूलवत् भयंकरः केतनः कायो यस्य सः । 'केतनं लांछने काये ' इति विश्वः ॥१५॥ नादेन येषाम् ॥ १७ ॥ ज्यया मौर्व्या ॥२१॥ कल्यः समर्थः । साह्यकर्मणि साहाय्यके । वज्रं वस्त्रासा नाभौ यस्य तत् । सूत्रबद्धशकुनिवत्पुनः प्रयोक्तुर्हस्तमायातीत्यर्थः ' वज्रं त्रपुवरत्रयोः ' इति मेदिनी ॥ २३ ॥

आग्नेयमस्त्रं दयितं स च कल्योऽभवत्तदा ।
अब्रवीत्पावकश्चैवमेतेन मधुसूदन ॥ २४
अमानुषानपि रणे जेष्यसि त्वमसंशयम् ।
अनेन तु मनुष्याणां देवानामपि चाहवे ॥ २५
रक्षःपिशाचदैत्यानां नागानां चाधिकस्तथा ।
भविष्यसि न संदेहः प्रवरोऽपि निबर्हणे ॥ २६
क्षिप्तं क्षिप्तं रणे चैतत्त्वया माधव शत्रुषु ।
हत्वाऽप्रतिहतं संख्ये पाणिमेष्यति ते पुनः ॥ २७
वरुणश्च ददौ तस्मै गदामशनिनिःस्वनाम् ।
दैत्यान्तकरणीं घोरां नाम्ना कौमोदकीं प्रभुः २८
ततः पावकमब्रूतां प्रहृष्टावर्जुनाच्युतौ ।
कृतास्त्रौ शस्त्रसंपन्नौ रथिनौ ध्वजिनावपि ॥ २९
कल्यौ स्वो भगवन्योद्धुमपि सर्वैः सुरासुरैः ।
किं पुनर्वज्रिणैकेन पन्नगार्थे युयुत्सता ॥ ३०

अर्जुन उवाच ।

चक्रपाणिर्हृषीकेशो विचरन्युधि वीर्यवान् ।
चक्रेण भस्मसात्सर्वं विसृष्टेन तु वीर्यवान् ।
त्रिषु लोकेषु तन्नास्ति यन्न कुर्याज्जनार्दनः ॥ ३१
गाण्डीवं धनुरादाय तथाक्षय्ये महेषुधी ।
अहमप्युत्सहे लोकान्विजेतुं युधि पावक ॥ ३२
सर्वतः परिवार्यैवं दावमेतं महाप्रभो ।
कामं संप्रज्वलाद्यैव कल्यौ स्वः साह्यकर्मणि ३३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः स भगवान्दाशार्हेणार्जुनेन च ।
तैजसं रूपमास्थाय दावं दग्धुं प्रचक्रमे ॥ ३४
सर्वतः परिवार्याथ सप्तार्चिर्ज्वलनस्तथा ।
ददाह खाण्डवं दावं युगान्तमिव दर्शयन् ॥ ३५
प्रतिगृह्य समाविश्य तद्वनं भरतर्षभ ।
मेघस्तनितनिर्घोषः सर्वभूतान्यकम्पयत् ॥ ३६
दह्यतस्तस्य च बभौ रूपं दावस्य भारत ।
मेरोरिव नगेन्द्रस्य कीर्णस्यांशुमतोंऽशुभिः ॥ ३७

इति श्रीमहा० आदि० खाण्डवदाहप० गाण्डीवादिदाने पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

---

## २२६

वैशंपायन उवाच ।

तौ रथाभ्यां रथश्रेष्ठौ दावस्योभयतः स्थितौ ।
दिक्षु सर्वासु भूतानां चक्राते कदनं महत् ॥ १
यत्र यत्र च दृश्यन्ते प्राणिनः खाण्डवालयाः ।
पलायन्तः प्रवीरौ तौ तत्र तत्राभ्यधावताम् ॥ २
छिद्रं न स्म प्रपश्यन्ति रथयोराशुचारिणोः ।
आविद्धाविव दृश्येते रथिनौ तौ रथोत्तमौ ॥ ३
खाण्डवे दह्यमाने तु भूताः शतसहस्रशः ।
उत्पेतुर्भैरवान्नादान्विनदन्तः समन्ततः ॥ ४
दग्धैकदेशा बहवो निष्टप्ताश्च तथापरे ।
स्फुटिताक्षा विशीर्णाश्च विप्लुताश्च तथापरे ॥ ५
समालिङ्ग्य सुतानन्ये पितॄन्भ्रातॄनथापरे ।
त्यक्तुं न शेकुः स्नेहेन तत्रैव निधनं गताः ॥ ६
संदष्टदशनाश्चान्ये समुत्पेतुरनेकशः ।
ततस्तेऽतीव घूर्णन्तः पुनरग्नौ प्रपेदिरे ॥ ७
दग्धपक्षाक्षिचरणा विचेष्टन्तो महीतले ।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते विनश्यन्तः शरीरिणः ॥ ८
जलाशयेषु तप्तेषु क्वाथ्यमानेषु वह्निना ।
गतसत्त्वाः स्म दृश्यन्ते कूर्ममत्स्याः समन्ततः ९
शरीरैरपरे दीप्तैर्देहवन्त इवाग्नयः ।
अदृश्यन्त वने तत्र प्राणिनः प्राणिसंक्षये ॥ १०
कांश्चिदुत्पततः पार्थः शरैः संछिद्य खण्डशः ।
पातयामास विहगान्प्रदीप्ते वसुरेतसि ॥ ११

---

अत एवाग्नेयं अस्त्रमिवास्त्रम् ॥२४॥ तदेवाह क्षिप्तं क्षिप्तमिति ॥२७॥ युयुत्सता योद्धुमिच्छता॥३०॥सप्तार्चिःकालीकरालीप्रभृतिसप्तजिह्वावान् ॥ ३५ ॥ दह्यतः दह्यमानस्य ॥३७॥ इति आदिप० नै० भा० भा० पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

२२६

तौ रथाभ्यामिति । आश्विनौ तं रथं श्रेष्ठमिति द्वयोरेकरथस्थत्वं प्रागुक्तं तच्छोभामात्रं भाव्युपयोगसूचनार्थम् । इह तु पृथग्रथस्थावेवेति ज्ञेयम् ॥ १ ॥ आविद्धाविव अलातचक्रवद्भ्रामिताविव ॥ ३ ॥ निष्टप्ता अतितप्ताः विशीर्णाः कर्कटीफलवद्विदीर्णाः । विप्लुताः भयाद्द्रुताः ॥ ५॥ शरीरैर्दीप्तैर्लोहप्रतिमावदत्यन्ततप्तैः ॥१०॥ वसुरेतसि वह्नौ ॥११॥

ते शराचितसर्वाङ्गा निनदन्ते महारवान् ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य वेगेन निपेतुः खाण्डवे पुनः ॥ १२
शरैरभ्याहतानां च सहशः स्म वनौकसाम् ।
विरावः शुश्रुवे घोरः समुद्रस्येव मथ्यतः ॥ १३
वह्नेश्चापि प्रदीप्तस्य खमुत्पेतुर्महार्चिषः ।
जनयामासुरुद्वेगं सुमहान्तं दिवौकसाम् ॥ १४
तेनार्चिषा सुसन्तप्ता देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
ततो जग्मुर्महात्मानः सर्व एव दिवौकसः ।
शतक्रतुं सहस्राक्षं देवेशमसुरार्दनम् ॥ १५

देवा ऊचुः ।

किं न्विमे मानवाः सर्वे दह्यन्ते चित्रभानुना ।
कच्चिन्न संक्षयः प्राप्तो लोकानाममरेश्वर ॥ १६

वैशंपायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा वृत्रहा तेभ्यः स्वयमेवान्ववेक्ष्य च ।
पाण्डवस्य विमोक्षार्थं प्रययौ हरिवाहनः ॥ १७
महता रथवृन्देन नानारूपेण वासवः ।
आकाशं समवाकीर्य प्रववर्ष सुरेश्वरः ॥ १८
ततोऽक्षमात्रा व्यसृजन्धाराः शतसहस्रशः ।
चोदिता देवराजेन जलदाः खाण्डवं प्रति ॥ १९
असंप्राप्तास्तु ता धारास्तेजसा जातवेदसः ।
ख एव समशुष्यन्त न काश्चित्पावकं गताः ॥ २०
ततो नमुचिहा क्रुद्धो भृशमर्चिष्मतस्तदा ।
पुनरेव महामेघैरम्भांसि व्यसृजद्बहु ॥ २१
अर्चिर्धाराभिसंबद्धं धूमविद्युत्समाकुलम् ।
बभूव तद्वनं घोरं स्तनयित्नुसमाकुलम् ॥ २२

इति श्रीमहा० आदि० खाण्डवदाहप० इन्द्रक्रोधे षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

## २२७

वैशंपायन उवाच ।

तस्याथ वर्षतो वारि पाण्डवः प्रत्यवारयत् ।
शरवर्षेण बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ १
खाण्डवं च वनं सर्वं पाण्डवो बहुभिः शरैः ।
आच्छादयदमेयात्मा नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥ २
न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः ।
संच्छाद्यमाने खे बाणैरस्यता सव्यसाचिना ॥ ३
तक्षकस्तु न तत्रासीन्नागराजो महाबलः ।
दह्यमाने वने तस्मिन्कुरुक्षेत्रं गतो हि सः ॥ ४
अश्वसेनोऽभवत्तत्र तक्षकस्य सुतो बली ।
स यत्नमकरोत्तीव्रं मोक्षार्थं जातवेदसः ॥ ५
न शशाक स निर्गन्तुं निरुद्धोऽर्जुनपत्रिभिः ।
मोक्षयामास तं माता निगीर्य भुजगात्मजा ॥ ६
तस्य पूर्वं शिरो ग्रस्तं पुच्छमस्य निगीर्यते ।
निगीर्यमाणा साक्रामत्सुतं नागी मुमुक्षया ॥ ७
तस्याः शरेण तीक्ष्णेन पृथुधारेण पाण्डवः ।
शिरश्चिच्छेद गच्छन्त्यास्तामपश्यच्छचीपतिः ॥ ८
तं मुमोचयिषुर्वज्री वातवर्षेण पाण्डवम् ।
मोहयामास तत्कालमश्वसेनस्त्वमुच्यत ॥ ९
तां च मायां तदा दृष्ट्वा घोरां नागेन वञ्चितः ।
द्विधा त्रिधा च खगतान्प्राणिनः पाण्डवोच्छिनत् ॥ १०
शशाप तं च संक्रुद्धो बीभत्सुर्जिह्मगामिनम् ।
पावको वासुदेवश्चाप्यप्रतिष्ठो भविष्यसि ॥ ११
ततो जिष्णुः सहस्राक्षं खं वितत्याशुगैः शरैः ।
योधयामास संक्रुद्धो वञ्चनां तामनुस्मरन् ॥ १२
देवराजोऽपि तं दृष्ट्वा संरब्धं समरेऽर्जुनम् ।
स्वमस्त्रमसृजत्तीव्रं छादयित्वाऽखिलं नभः ॥ १३
ततो वायुर्महाघोषः क्षोभयन्सर्वसागरान् ।
वियत्स्थो जनयन्मेघाञ्जलधारासमाकुलान् ॥ १४
ततोऽशनिमुचो घोरांस्तडित्स्तनितनिःस्वनान् ।
तद्विघातार्थमसृजदर्जुनोऽप्यस्त्रमुत्तमम् ॥ १५
वायव्यमभिमन्त्र्याथ प्रतिपत्तिविशारदः ।
तेनेन्द्राशनिमेघानां वीर्यौजस्तद्विनाशितम् ॥ १६
जलधाराश्च ताः शोषं जग्मुर्नेशुश्च विद्युतः ।
क्षणेन चाभवद्व्योम संप्रशान्तरजस्तमः ॥ १७

---

मथ्यतः मथ्यमानस्य ॥ १३ ॥ अक्षः रथचक्रद्वयसंधानकाष्ठं तत्प्रमाणा अक्षमात्राः ॥ १९ ॥ इति आदिप० नै० भा० भा० षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

२२७

तस्याथेति ॥ १ ॥ निगीर्यते यावता कालेन तावतैव निगीर्यमाणा अर्जुनेन हन्यमाना सती आक्रामत् क्रान्तवती खमिति शेषः । मुमुक्षया मोचनेच्छया ॥ ७ ॥ अप्रतिष्ठो निराश्रय असंततिर्वा ॥ ११ ॥

सुखशीतानिलवहं प्रकृतिस्थार्कमण्डलम् ।
निष्प्रतीकारहृष्टश्च हुतभुग्विविधाकृतिः ॥ १८
सिच्यमानो वसौघैस्तैः प्राणिनां देहनिःसृतैः ।
प्रजज्वालाथ सोऽर्चिष्मान्स्वनादैः पूरयञ्जगत् ॥
कृष्णाभ्यां रक्षितं दृष्ट्वा तं च दावमहंकृताः ।
खमुत्पेतुर्महाराज सुपर्णाद्याः पतत्रिणः ॥ २०
गरुत्मान्वज्रसदृशैः पक्षतुण्डनखैस्तथा ।
प्रहर्तुकामो न्यपतदाकाशात्कृष्णपाण्डवौ ॥ २१
तथैवोरगसंघाताः पाण्डवस्य समीपतः ।
उत्सृजन्तो विषं घोरं निपेतुर्ज्वलिताननाः ॥ २२
तांश्चकर्त शरैः पार्थः सरोषाग्निसमुक्षितैः ।
विविशुश्चापि तं दीप्तं देहाभावाय पावकम् ॥ २३
ततोऽसुराः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
उत्पेतुर्नादमतुलमुत्सृजन्तो रणार्थिनः ॥ २४
अयःकणपचक्राश्मभुशुण्ड्युद्यतबाहवः ।
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः क्रोधसंमूर्छितौजसः २५
तेषामतिव्याहरतां शस्त्रवर्षं प्रमुञ्चताम् ।
प्रममाथोत्तमाङ्गानि बीभत्सुर्निशितैः शरैः ॥ २६
कृष्णश्च सुमहातेजाश्चक्रेणारिविनाशनः ।
दैत्यदानवसंघानां चकार कदनं महत् ॥ २७
अथापरे शरैर्विद्धाश्चक्रवेगेरितास्तथा ।
वेलामिव समासाद्य व्यतिष्ठन्नमितौजसः ॥ २८
ततः शक्रोऽतिसंक्रुद्धस्त्रिदशानां महेश्वरः ।
पाण्डुरं गजमास्थाय तावुभौ समुपाद्रवत् ॥ २९
वेगेनाशनिमादाय वज्रमस्त्रं च सोऽसृजत् ।
हतावेताविति प्राह सुरानसुरसूदनः ॥ ३०
ततः समुद्यतां दृष्ट्वा देवेन्द्रेण महाशनिम् ।
जगृहुः सर्वशस्त्राणि स्वानि स्वानि सुरास्तथा ॥
कालदण्डं यमो राजन्गदां चैव धनेश्वरः ।
पाशांश्च तत्र वरुणो विचित्रां च तथाशनिम् ३२
स्कन्दः शक्तिं समादाय तस्थौ मेरुरिवाचलः ।
ओषधीर्दीप्यमानाश्च जगृहातेऽश्विनावपि ॥ ३३
जगृहे च धनुर्धाता मुसलं तु जयस्तथा ।
पर्वतं चापि जग्राह क्रुद्धस्त्वष्टा महाबलः ॥ ३४
अंशस्तु शक्तिं जग्राह मृत्युर्देवः परश्वधम् ।
प्रगृह्य परिघं घोरं विचचारार्यमा अपि ॥ ३५
मित्रश्च क्षुरपर्यन्तं चक्रमादाय तस्थिवान् ।
पूषा भगश्च संक्रुद्धः सविता च विशांपते ॥ ३६
आत्तकार्मुकनिस्त्रिंशाः कृष्णपार्थौ प्रदुद्रुवुः ।
रुद्राश्च वसवश्चैव मरुतश्च महाबलाः ॥ ३७
विश्वेदेवास्तथा साध्या दीप्यमानाः स्वतेजसा ।
एते चान्ये च बहवो देवास्तौ पुरुषोत्तमौ ॥ ३८
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः प्रतीयुर्विविधायुधाः ।
तत्राद्भुतान्यदृश्यन्त निमित्तानि महाहवे ॥ ३९
युगान्तसमरूपाणि भूतसंमोहनानि च ।
तथा दृष्ट्वा सुसंरब्धं शक्रं देवैः सहाच्युतौ ॥ ४०
अभीतौ युधि दुर्धर्षौ तस्थतुः सज्जकार्मुकौ ।
आगच्छतस्ततो देवानुभौ युद्धविशारदौ ॥ ४१
व्यताडयेतां संक्रुद्धौ शरैर्वज्रोपमैस्तदा ।
असकृद्भग्नसंकल्पाः सुराश्च बहुशः कृताः ॥ ४२
भयाद्रणं परित्यज्य शक्रमेवाभिशिश्रियुः ।
दृष्ट्वा निवारितान्देवान्माधवेनार्जुनेन च ॥ ४३
आश्चर्यमगमंस्तत्र मुनयो नभसि स्थिताः ।
शक्रश्चापि तयोर्वीर्यमुपलभ्यासकृद्रणे ॥ ४४
बभूव परमप्रीतो भूयश्चैतावयोधयत् ।
ततोऽश्मवर्षं सुमहद्व्यसृजत्पाकशासनः ॥ ४५
भूय एव तदा वीर्यं जिज्ञासुः सव्यसाचिनः ।
तच्छरैरर्जुनो वर्षं प्रतिजघ्नेऽत्यमर्षितः ॥ ४६

---

निष्प्रतीकारं बलवदाश्रयात् क्वापि ग्लानिहीनं हृष्टं हर्षो यस्य स ॥ १८ ॥ अयःकणान् लोहगुलिकाः पिबतीति तथाविधं आग्नेयौषधबलेन गर्भसंभृता लोहगुलिकास्ताः रका इव विकीर्यन्ते येन तदन्त्रमयःकणपं लोहमयम् । तथा चक्राश्ममर्गं यस्य भ्रमिबलेन महान्तोऽपि पाषाणा अतिदूरे क्षिप्यन्ते तत्काष्ठमयं यन्त्रं भुशुण्डी चर्मरज्जुमयं यन्त्रं पाषाणक्षेपणमेव । ते उद्यता बाहवो येषां ते असुरादयः । अयःकणपचक्राश्मभुशुण्ड्युद्यतबाहवः । क्रोधसंमूर्छितौजसः क्रोधेन संवर्धिततेजसः ॥ २५ ॥ अतिव्याहरतां कत्थमानानाम् ॥ २६ ॥ यथा चक्रवेगेन जलावर्तप्रवाहेण ईरितास्तृणादयो वेलां प्राप्य विष्ठितत्वं स्तब्धत्वं प्राप्य तिष्ठन्ति । एवं चक्रवेगेन अस्त्रबलजवेन ईरिता असुराद्याः कृष्णार्जुनौ प्राप्य व्यतिष्ठन्नित्यर्थः । चक्रं कोके इत्युपक्रम्य 'कुम्भकारोपकरणास्त्रयोः जलावर्ते' इति मेदिनी ॥ २८ ॥ गदां चैवेत्यत्र शिथिकामिति पाठे शिबिका गदेति प्राञ्चः । शिबिकामिति सानुस्वारपाठे तु तत्सदृशमोषधीक्रमायुधमिति तु तत्त्वम् । तच्च द्रविडकैवर्तेषु प्रसिद्धं दारुमयम् । लोहमयमपि बलवत्सु संभाव्यत एव ॥ ३२ ॥ पर्वतं चापीत्यत्र विचक्रं परीतिपाठे विचक्रं त्रिशूलम् ॥ ३४ ॥ अर्यमा अपीत्यत्र संधिरविवक्षित ॥ ३५ ॥ निमित्तानि सूचकानि उल्कापातादीनि ॥ ३९ ॥

विफलं क्रियमाणं तत्समवेक्ष्य शतक्रतुः ।
भूयः संवर्धयामास तद्वर्षं पाकशासनः ॥ ४७
सोऽश्मवर्षं महावेगैरिषुभिः पाकशासनिः ।
विलयं गमयामास हर्षयन्पितरं तथा ॥ ४८
तत उत्पाट्य पाणिभ्यां मन्दराच्छिखरं महत् ।
स द्रुमं व्यसृजच्छक्रो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ४९
ततोऽर्जुनो वेगवद्भिर्ज्वलिताग्रैरजिह्मगैः ।
शरैर्विध्वंसयामास गिरेः शृङ्गं सहस्रधा ॥ ५०
गिरेर्विशीर्यमाणस्य तस्य रूपं तदा बभौ ।
सार्कचन्द्रग्रहस्येव नभसः परिशीर्यतः ॥ ५१
तेनाभिपतिता दावं शैलेन महता भृशम् ।
शृङ्गेण निहतास्तत्र प्राणिनः खाण्डवालयाः ॥५२

इतिश्रीमहा०आदि० खाण्डवदाहपर्वणि देवकृष्णार्जुनयुद्धे सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२७॥

समाप्तं खाण्डवदाहपर्व ।

———×———

## मयदर्शनपर्व ।

### २२८

वैशंपायन उवाच ।
तथा शैलनिपातेन भीषिताः खाण्डवालयाः ।
दानवा राक्षसा नागास्तरक्ष्वृक्षवनौकसः ॥ १
द्विपाः प्रभिन्नाः शार्दूलाः सिंहाः केसरिणस्तथा
मृगाश्च महिषाश्चैव शतशः पक्षिणस्तथा ॥ २
समुद्विग्ना विससृपुस्तथान्या भूतजातयः ।
तं दावं समुदैक्षन्त कृष्णौ चाभ्युद्यतायुधौ ॥ ३
उत्पातनादशब्देन संत्रासित इव स्थिताः ।
ते वनं प्रसमीक्ष्याथ दह्यमानमनेकधा ॥ ४
कृष्णमभ्युद्यतास्त्रं च नादं मुमुचुरुल्बणम् ।
तेन नादेन रौद्रेण नादेन च विभावसोः ॥ ५
ररास गगनं कृत्स्नमुत्पातजलदैरिव ।
ततः कृष्णो महाबाहुः स्वतेजोभास्वरं महत् ॥६
चक्रं व्यसृजदत्युग्रं तेषां नाशाय केशवः ।
तेनार्ता जातयः क्षुद्राः सदानवनिशाचराः ॥ ७
निकृत्ताः शतशः सर्वा निपेतुरनलं क्षणात् ।
तत्राद्दृश्यन्त ते दैत्याः कृष्णचक्रविदारिताः ॥ ८
वसारुधिरसंपृक्ताः संध्यायामिव तोयदाः ।
पिशाचान्पक्षिणो नागान्पशूंश्चैव सहस्रशः ॥ ९
निघ्नंश्चरति वार्ष्णेयः कालवत्तत्र भारत ।
क्षिप्तं क्षिप्तं पुनश्चक्रं कृष्णस्यामित्रघातिनः ॥ १०
छित्त्वानेकानि सत्त्वानि पाणिमेति पुनः पुनः ।
तथा तु निघ्नतस्तस्य पिशाचोरगराक्षसान् ॥ ११
बभूव रूपमत्युग्रं सर्वभूतात्मनस्तदा ।
समेतानां च सर्वेषां दानवानां च सर्वशः ॥ १२
विजेता नाभवत्कश्चित्कृष्णपाण्डवयोर्मृधे ।
तयोर्बलात्परित्रातुं तं च दावं यदा सुराः ॥१३
नाशक्नुवञ्शमयितुं तदाऽभूवन्पराङ्मुखाः ।
शतक्रतुस्तु संप्रेक्ष्य विमुखानमरांस्तथा ॥ १४
बभूव मुदितो राजन्प्रशंसन्केशवार्जुनौ ।
निवृत्तेष्वथ देवेषु वागुवाचाशरीरिणी ॥ १५
शतक्रतुं समाभाष्य महागम्भीरनिःस्वना ।
न ते सखा संनिहितस्तक्षको भुजगोत्तमः ॥ १६
दाहकाले खाण्डवस्य कुरुक्षेत्रं गतो ह्यसौ ।
न च शक्यौ युधा जेतुं कथंचिदपि वासव ॥ १७
वासुदेवार्जुनावेतौ निबोध वचनान्मम ।
नरनारायणावेतौ पूर्वदेवौ दिवि श्रुतौ ॥ १८
भवानप्यभिजानाति यद्वीर्यौ यत्पराक्रमौ ।
नैतौ शक्यौ दुराधर्षौ विजेतुमजितौ युधि ॥ १९
अपि सर्वेषु लोकेषु पुराणावृषिसत्तमौ ।
पूजनीयतमावेतावपि सर्वैः सुरासुरैः ॥ २०

---

गिरेः गिरिशृङ्गस्य ॥ ५१ ॥ शैलेन शिलासमूहेन करणेन शृङ्गेण कर्त्रा ॥ ५२ ॥ इति आ० नै० भा० भा० सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

———

२२८

तथेति । तरक्षवः स्वल्पव्याघ्राः ऋक्षाः भल्लाः ॥१॥ प्राभिन्नाः मदच्युताः केसरिणः उत्पन्नकेसराः युवान इत्यर्थः ॥ २ ॥ दावं वनम् ॥३॥ उत्पातनादाः निर्घातादयस्तच्छब्देन संत्रासिते वने इति शेषः। संचारिते इति पाठेपि स एवार्थः ॥४॥ ररास शब्दं कृतवान् ॥ ६ ॥

यक्षराक्षसगन्धर्वनरकिंनरपन्नगैः ।
तस्मादितः सुरैः सार्धं गन्तुमर्हसि वासव ॥ २१
दिष्टं चाप्यनुपश्यैतत्खाण्डवस्य विनाशनम् ।
इति वाक्यमुपश्रुत्य तथ्यमित्यमरेश्वरः ॥ २२
क्रोधामर्षौ समुत्सृज्य संप्रतस्थे दिवं तदा ।
तं प्रस्थितं महात्मानं समवेक्ष्य दिवौकसः ॥ २३
सहिताः सेनया राजन्ननुजग्मुः पुरंदरम् ।
देवराजं तदा यान्तं सह देवैरवेक्ष्य तु ॥ २४
वासुदेवार्जुनौ वीरौ सिंहनादं विनेदतुः ।
देवराजे गते राजन्प्रहृष्टौ केशवार्जुनौ ॥ २५
निर्विशङ्कं वनं वीरौ दाहयामासतुस्तदा ।
स मारुत इवाभ्राणि नाशयित्वार्जुनः सुरान् ॥ २६
व्यधमच्छरसंघातैर्देहिनः खाण्डवालयान् ।
न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः ॥ २७
संछिद्यमानमिषुभिरस्यता सव्यसाचिना ।
नाशक्नुवंश्च भूतानि महान्त्यपि रणेऽर्जुनम् ॥ २८
निरीक्षितुममोघास्त्रं योद्धुं चापि कुतो रणे ।
शतं चैकेन विव्याध शतेनैकं पतत्रिणाम् ॥ २९
व्यसवस्तेऽपतन्नग्नौ साक्षात्कालहता इव ।
न चालभन्त ते शर्म रोधःसु विषमेषु च ॥ ३०
पितृदेवनिवासेषु संतापश्चाप्यजायत ।
भूतसंघाश्च बहवो दीनाश्चक्रुर्महास्वनम् ॥ ३१
रुरुदुर्वारणाश्चैव तथा मृगतरक्षवः ।
तेन शब्देन वित्रेसुर्गङ्गोदधिचरा झषाः ॥ ३२
विद्याधरगणाश्चैव ये च तत्र वनौकसः ।
न त्वर्जुनं महाबाहो नापि कृष्णं जनार्दनम् ॥ ३३
निरीक्षितुं वै शक्नोति कश्चिद्योद्धुं कुतः पुनः ।
एकायनगता येऽपि निष्पेतुस्तत्र केचन ॥ ३४
राक्षसा दानवा नागा जघ्ने चक्रेण तान्हरिः ।
ते तु भिन्नशिरोदेहाश्चक्रवेगाद्गतासवः ॥ ३५
पेतुरन्ये महाकायाः प्रदीप्ते वसुरेतसि ।
स मांसरुधिरौघैश्च वसाभिश्चापि तर्पितः ॥ ३६
उपर्याकाशगो भूत्वा विधूमः समपद्यत ।
दीप्ताक्षो दीप्तजिह्वश्च संप्रदीप्तमहाननः ॥ ३७
दीप्तोर्ध्वकेशः पिङ्गाक्षः पिबन्प्राणभृतां वसाम् ।
तां स कृष्णार्जुनकृतां सुधां प्राप्य हुताशनः ॥ ३८
बभूव मुदितस्तृप्तः परां निर्वृतिमागतः ।
तथाऽसुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात् ॥ ३९
विप्रद्रवन्तं सहसा ददर्श मधुसूदनः ।
तमग्निः प्रार्थयामास दिधक्षुर्वातसारथिः ॥ ४०
शरीरवाञ्जटी भूत्वा नदन्निव बलाहकः ।
विज्ञाय दानवेन्द्राणां मयं वै शिल्पिनां वरम् ॥ ४१
जिघांसुर्वासुदेवस्तं चक्रमुद्यम्य धिष्ठितः ।
स चक्रमुद्यतं दृष्ट्वा दिधक्षन्तं च पावकम् ॥ ४२
अभिधावार्जुनेत्येवं मयस्त्राहीति चाब्रवीत् ।
तस्य भीतस्वनं श्रुत्वा मा भैरिति धनंजयः ॥ ४३
प्रत्युवाच मयं पार्थो जीवयन्निव भारत ।
तं न भेतव्यमित्याह मयं पार्थो दयापरः ॥ ४४
तं पार्थेनाभये दत्ते नमुचेर्भ्रातरं मयम् ।
न हन्तुमैच्छद्दाशार्हः पावको न ददाह च ॥ ४५

वैशंपायन उवाच ।

तद्वनं पावको धीमान्दिनानि दश पञ्च च ।
ददाह कृष्णपार्थाभ्यां रक्षितः पाकशासनात् ॥ ४६
तस्मिन्वने दह्यमाने षडग्निर्न ददाह च ।
अश्वसेनं मयं चैव चतुरः शार्ङ्गकांस्तथा ॥ ४७

इति श्रीमहा० आदि० मयदर्शनप० मयदानवत्राणे अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

---

## २२९

जनमेजय उवाच ।

किमर्थं शार्ङ्गकानाग्निर्न ददाह तथागते । तस्मिन्वने दह्यमाने ब्रह्मन्नेतत्प्रचक्ष्व मे ॥ १
अदाहे ह्यश्वसेनस्य दानवस्य मयस्य च । कारणं कीर्तितं ब्रह्मञ्छार्ङ्गकाणां न कीर्तितम् ॥ २

---

गङ्गोदधिचरा इति अतिदूरस्थोपलक्षणम् ॥ ३२ ॥ एकायनगताः संधीभूताः ॥ ३४ ॥ कृता दत्तां सुधां स्वभोजनम् ॥ ३८ ॥ शार्ङ्गकान् पक्षिविशेषान् ॥ ४७ ॥ इति आदिपर्वणि नै० भारतभा० अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

२२९

किमर्थमिति ॥ १ ॥

तदेतदद्भुतं ब्रह्मञ्छार्ङ्गकाणामनामयम् ।
कीर्तयस्वाग्निसंमर्दे कथं ते न विनाशिताः ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

यदर्थं शार्ङ्गकानग्निर्न ददाह तथागते ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि यथाभूतमरिंदम ॥ ४
धर्मज्ञानां मुख्यतमस्तपस्वी संशितव्रतः ।
आसीन्महर्षिः श्रुतवान्मन्दपाल इति श्रुतः ॥ ५
स मार्गमाश्रितो राजन्नृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्वाध्यायवान्धर्मरतस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ ६
स गत्वा तपसः पारं देहमुत्सृज्य भारत ।
जगाम पितृलोकाय न लेभे तत्र तत्फलम् ॥ ७
स लोकानफलान्दृष्ट्वा तपसा निर्जितानपि ।
पप्रच्छ धर्मराजस्य समीपस्थान्दिवौकसः ॥ ८

मन्दपाल उवाच ।

किमर्थमावृता लोका ममैते तपसार्जिताः ।
किं मया न कृतं तत्र यस्यैतत्कर्मणः फलम् ॥ ९
तत्राहं तत्करिष्यामि यदर्थमिदमावृतम् ।
फलमेतस्य तपसः कथयध्वं दिवौकसः ॥ १०

देवा ऊचुः ।

ऋणिनो मानवा ब्रह्मञ्जायन्ते येन तच्छृणु ।
क्रियाभिर्ब्रह्मचर्येण प्रजया च न संशयः ॥ ११
तदपाक्रियते सर्वं यज्ञेन तपसा श्रुतैः ।
तपस्वी यज्ञकृच्चासि न च ते विद्यते प्रजा ॥ १२
त इमे प्रसवस्यार्थे तव लोकाः समावृताः ।
प्रजायस्व ततो लोकानुपभोक्ष्यसि पुष्कलान् १३
पुंनाम्नो नरकात्पुत्रस्त्रायते पितरं श्रुतिः ।
तस्मादपत्यसंताने यतस्व ब्रह्मसत्तम ॥ १४

वैशंपायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा मन्दपालस्तु वचस्तेषां दिवौकसाम् ।
क्व नु शीघ्रमपत्यं स्याद्बहुलं चेत्यचिन्तयत् ॥ १५
स चिन्तयन्नभ्यगच्छत्सुबहुप्रसवान् खगान् ।
शार्ङ्गिकां शार्ङ्गिको भूत्वा जरितां समुपेयिवान्॥
तस्यां पुत्रानजनयच्चतुरो ब्रह्मवादिनः ।
तानपास्य स तत्रैव जगाम लपितां प्रति ॥ १७
बालान्स तानण्डगतान्सह मात्रा मुनिर्वने ।
तस्मिन्गते महाभागे लपितां प्रति भारत ॥ १८
अपत्यस्नेहसंयुक्ता जरिता बह्वचिन्तयत् ।
तेन त्यक्ता न संत्याज्यानृषीनण्डगतान्वने ॥ १९
न जहौ पुत्रशोकार्ता जरिता खाण्डवे सुतान् ।
बभार चैतान्संजातान्स्ववृत्त्या स्नेहविक्लवा ॥ २०
ततोऽग्निं खाण्डवं दग्धुमायान्तं दृष्टवानृषिः ।
मन्दपालश्चरंस्तस्मिन्वने लपितया सह ॥ २१
तं संकल्पं विदित्वाग्नेर्ज्ञात्वा पुत्रांश्च बालकान् ।
सोऽभितुष्टाव विप्रर्षिर्ब्राह्मणो जातवेदसम् ॥ २२
पुत्रान्प्रतिवदन्भीतो लोकपालं महौजसम् ।

मन्दपाल उवाच ।

त्वमग्ने सर्वलोकानां मुखं त्वमसि हव्यवाट् ॥२३
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि पावक ।
त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ॥ २४
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन् ।
त्वया विश्वमिदं सृष्टं वदन्ति परमर्षयः ॥ २५
त्वदृते हि जगत्कृत्स्नं सद्यो नश्येद्धुताशन ।
तुभ्यं कृत्वा नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम्॥
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ।
त्वामग्ने जलदानाहुः खे विषक्तान्सविद्युतः ॥ २७
दहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः ।
जातवेदस्त्वयैवेदं विश्वं सृष्टं महाद्युते ॥ २८
तवैव कर्म विहितं भूतं सर्वं चराचरम् ।
त्वयापो विहिताः पूर्वं त्वयि सर्वमिदं जगत्॥२९
त्वयि हव्यं च कव्यं च यथावत्संप्रतिष्ठितम् ।
त्वमेव दहनो देव त्वं धाता त्वं बृहस्पतिः ॥ ३०
त्वमश्विनौ यमौ मित्रः सोमस्त्वमसि चानिलः ।

वैशंपायन उवाच ।

एवं स्तुतस्तदा तेन मन्दपालेन पावकः ॥ ३१

---

आवृताः प्रतिषिद्धभोगाः ॥ ९ ॥ प्रजायस्व प्रजेच्छां कुरु ॥१३॥ अपत्यसंताने संततेरविच्छेदे ॥१४॥ जरितां नाम भार्याम्॥१६॥लपितां नामापरां भार्याम्॥१७॥ तान्बालानपास्येति संबन्धः॥१८॥मुखमिति जीवरूपेण भोक्तृत्वं॥२३॥ गूढ इति ब्रह्मरूपेणागोचरत्वम्। त्रिविधं दिव्यं भौममौदर्यं च ॥२४॥ अष्टधापञ्चभूतात्मना सूर्यचन्द्रयजमानरूपेण च। यज्ञवाहं यज्ञनिर्वाहकम् ॥२५॥ त्वया सद्रूपेण विना नश्येदर्शनं गच्छेत्। निरधिष्ठानकभ्रमायोगादित्यर्थः। कर्मिणां त्वमेव गतिरित्याह तुभ्यमिति॥२६॥ पालनं संहारश्च तवैव कर्मणी इत्याह त्वामिति॥२७॥ हेतयः ज्वालाः। जगत्स्रष्टिस्त्वत्त एवेत्याह जातवेद इति॥२८॥ तवैवेति। कर्मविधायको वेदोपि तवैव वाक्यम्। 'निःश्वसितमेतदृग्वेदः, इत्यादिश्रुतेः। आप इति भूतान्तरोपलक्षणम्। त्वयि अधिष्ठाने ॥२९॥ हव्यादिप्रतिष्ठाभोक्तृत्वेन फलदातृत्वेन च त्वमेवेत्याह। त्वयीति ॥३०॥

तुतोष तस्य नृपते मुनेरमिततेजसः ।
उवाच चैनं प्रीतात्मा किमिष्टं करवाणि ते ॥ ३२
तमब्रवीन्मन्दपालः प्राञ्जलिर्हव्यवाहनम् ।
प्रदहन्खाण्डवं दावं मम पुत्रान्विसर्जय ॥ ३३
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य भगवान्हव्यवाहनः ।
खाण्डवे तेन कालेन प्रजज्वाल दिधक्षया ॥ ३४

इति श्रीमहा० आदिप० मयदर्शनपर्वणि शार्ङ्गकोपाख्याने ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९

---

## २३०

वैशंपायन उवाच ।
ततः प्रज्वलिते वह्नौ शार्ङ्गकास्ते सुदुःखिताः ।
व्यथिताः परमोद्विग्ना नाधिजग्मुः परायणम् ॥ १
निशम्य पुत्रकान्बालान्माता तेषां तपस्विनी ।
जरिता शोकदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता ॥
जरितोवाच ।
अयमग्निर्दहन्कक्षमित आयाति भीषणः ।
जगत्संदीपयन्भीमो मम दुःखविवर्धनः ॥ ३
इमे च मां कर्षयन्ति शिशवो मन्दचेतसः ।
अबर्हाश्चरणैर्हीनाः पूर्वेषां नः परायणाः ॥ ४
त्रासयंश्चायमायाति लेलिहानो महीरुहान् ।
अजातपक्षाश्च सुता न शक्ताः सरणे मम ॥ ५
आदाय च न शक्नोमि पुत्रांस्तरितुमात्मना ।
न च त्यक्तुमहं शक्ता हृदयं दूयतीव मे ॥ ६
कं तु जह्यामहं पुत्रं कमादाय व्रजाम्यहम् ।
किं नु मे स्यात्कृतं कृत्वा मन्यध्वं पुत्रकाः कथम्
चिन्तयाना विमोक्षं वो नाधिगच्छामि किंचन ।
छादयिष्यामि वो गात्रैः करिष्ये मरणं सह ॥ ८
जरितारौ* कुलं ह्येतज्ज्येष्ठत्वेन प्रतिष्ठितम् ।
सारिसृक्वः प्रजायेत पितॄणां कुलवर्धनः ॥ ९
स्तम्बमित्रस्तपः कुर्याद्द्रोणो ब्रह्मविदां वरः ।
इत्येवमुक्त्वा प्रययौ पिता वो निर्घृणः पुरा ॥१०
कमुपादाय शक्येयं गन्तुं कष्टापदुत्तमा ।
किं नु कृत्वा कृतं कार्यं भवेदिति च विह्वला ।
नापश्यत्स्वधिया मोक्षं स्वसुतानां तदानलात् ११
वैशंपायन उवाच ।
एवं ब्रुवाणां शार्ङ्गास्ते प्रत्यूचुरथ मातरम् ।
स्नेहमुत्सृज्य मातस्त्वं पत यत्र न हव्यवाट् ॥ १२
अस्मास्विह विनष्टेषु भवितारः सुतास्तव ।
त्वयि मातर्विनष्टायां न नः स्यात्कुलसंततिः १३
अन्ववेक्ष्यैतदुभयं क्षेमं स्याद्यत्कुलस्य नः ।
तद्वै कर्तुं परः कालो मातरेष भवेत्तव ॥ १४
मा त्वं सर्वविनाशाय स्नेहं कार्षीः सुतेषु नः
न ह्येदं कर्म मोघं स्याल्लोककामस्य नः पितुः॥१५
जरितोवाच ।
इदमाखोर्बिलं भूमौ वृक्षस्यास्य समीपतः ।
तदाविशध्वं त्वरिता वह्नेरत्र न वो भयम् ॥ १६
ततोऽहं पांसुना छिद्रमपि धास्यामि पुत्रकाः ।
एवं प्रतिकृतं मन्ये ज्वलतः कृष्णवर्त्मनः ॥ १७
तत एष्याम्यतीतेऽग्नौ विहर्तुं पांसुसंचयम् ।
रोचतामेष वो वादो मोक्षार्थं च हुताशनात् ॥
शार्ङ्गका ऊचुः ।
अबर्हान्मांसभूतान्नः क्रव्यादाखुर्विनाशयेत् ।
पश्यमाना भयमिदं प्रवेष्टुं नात्र शक्नुमः ॥ १९

---

खाण्डवे वने । तेन हेतुना । काले दाहवेलायाम् । शार्ङ्गकाणां दिधक्षया न प्रजज्वाल ॥ ३४ ॥ इति आदिप० नै० भा० भा० ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

२३०

तत इति । परायणं त्रातारम् ॥ १ ॥ निशम्य आलोच्य ॥ २ ॥ कक्षं वनम् ॥ ३ ॥ कर्षयन्ति पीडयन्ति । अबर्हा अजातपक्षाः । परायणास्त्रातारः ॥ ४ ॥ सरणे गमने ॥ ५ ॥ तरितुं वनं लङ्घितुम् । नि सारयितुमन्तत इति पाठे अन्ततो निरभिदेशे ॥६॥ किं न्विति किं कृत्वा कृतकृत्या स्यामित्यर्थः ॥ ७ ॥ प्रजायेत प्रजारूपेणोत्पद्येत ॥ ९ ॥ गन्तुं लङ्घितुम् ॥ ११ ॥ पत गच्छ ॥ १२ ॥ नोऽस्माकं सर्वविनाशाय सर्वेषां विनाशाय सुतेषु स्नेहं माकार्षीरिति संबन्धः ॥१५॥ विहर्तुं दूरीकर्तुम् वादो वचनम् ॥१८॥ क्रव्यादाखुः मांसाद उन्दुरुः पश्यमानाः पश्यन्तः ॥ १९ ॥

* जरितारिसारिसृक्वस्तम्बमित्रद्रोणाः पुत्राः ॥

कथमग्निर्न नो धक्ष्येत्कथमाखुर्न नाशयेत् ।
कथं न स्यात्पिता मोघः कथं माता भ्रियेत न ॥
बिल आखोर्विनाशः स्यादग्नेराकाशचारिणाम् ।
अन्ववेक्ष्यैतदुभयं श्रेयान्दाहो न भक्षणम् ॥ २१
गर्हितं मरणं न स्यादाखुना भक्षिते बिले ।
शिष्टादिष्टः परित्यागः शरीरस्य हुताशनात् २२

इति श्रीमहा० आदिप० मयदर्शनपर्वणि जरिताविलापे त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

## २३१

जरितोवाच ।

अस्माद्बिलान्निष्पतितमाखुं श्येनो जहार तम् ।
क्षुद्रं पद्भ्यां गृहीत्वा च यातो नात्र भयं हि वः ॥

शार्ङ्गका ऊचुः ।

न हृतं तं वयं विद्मः श्येनेनाखुं कथंचन ।
अन्येऽपि भवितारोऽत्र तेभ्योऽपि भयमेव नः ॥२
संशयो वह्निरागच्छेद्दृष्टं वायोर्निवर्तनम् ।
मृत्युर्नो बिलवासिभ्यो बिले स्यान्नात्र संशयः ॥३
निःसंशयात्संशयितो मृत्युर्मातर्विशिष्यते ।
चर खे त्वं यथान्यायं पुत्रानाप्स्यसि शोभनान् ॥

जरितोवाच ।

अहं वेगेन तं यान्तमद्राक्षं पततां वरम् ।
बिलादाखुं समादाय श्येनं पुत्रा महाबलम् ॥ ५
तं पतन्तं महावेगा त्वरिता पृष्ठतोऽन्वगाम् ।
आशिषोऽस्य प्रयुञ्जाना हरतो मूषिकं बिलात् ॥
यो नो द्वेष्टारमादाय श्येनराज प्रधावसि ।
भव त्वं दिवमास्थाय निरामित्रो हिरण्मयः ॥ ७
स यदा भक्षितस्तेन श्येनेनाखुः पतत्रिणा ।
तदाहं तमनुज्ञाप्य प्रत्युपायां पुनर्गृहम् ॥ ८
प्रविशध्वं बिलं पुत्रा विस्रब्धा नास्ति वो भयम् ।
श्येनेन मम पश्यन्त्या हृत आखुर्महात्मना ॥ ९

शार्ङ्गका ऊचुः ।

न विद्महे हृतं मातः श्येनेनाखुं कथंचन ।
अविज्ञाय न शक्यामः प्रवेष्टुं विवरं भुवः ॥ १०

जरितोवाच ।

अहं तमभिजानामि हृतं श्येनेन मूषिकम् ।
नास्ति वोऽत्र भयं पुत्राः क्रियतां वचनं मम ॥ ११

शार्ङ्गका ऊचुः ।

न त्वं मिथ्योपचारेण मोक्षयेथा भयाद्धि नः ।
समाकुलेषु ज्ञानेषु न बुद्धिकृतमेव तत् ॥ १२
न चोपकृतमस्माभिर्न चास्मान्वेत्थ ये वयम् ।
पीड्यमाना बिभर्ष्यस्मान्का सती के वयं तव १३
तरुणी दर्शनीयाऽसि समर्था भर्तुरेषणे ।
अनुगच्छ पतिं मातः पुत्रानाप्स्यसि शोभनान् १४
वयमग्निं समाविश्य लोकानाप्स्याम शोभनान् ।
अथास्मान्न दहेदग्निरायास्त्वं पुनरेव नः ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा ततः शार्ङ्गी पुत्रानुत्सृज्य खाण्डवे ।
जगाम त्वरिता देशं क्षेममग्नेरनामयम् ॥ १६
ततस्तीक्ष्णार्चिरभ्यागात्त्वरितो हव्यवाहनः ।
यत्र शार्ङ्गा बभूवुस्ते मन्दपालस्य पुत्रकाः ॥ १७
ततस्तं ज्वलितं दृष्ट्वा ज्वलनं ते विहंगमाः ।
जरितारिस्ततो वाक्यं श्रावयामास पावकम् १८

इति श्रीमहाभा० आदिप० मयदर्शनप० शार्ङ्गकोपाख्याने एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३१॥

मोघः निष्फलाऽपत्योत्पत्तिः । भ्रियेत जीवेत ॥ २० ॥ शिष्टादिष्टः शिष्टैरादिष्टः ॥२२॥ इति आ० नै० भा० भा० त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

२३१

अस्मादिति ॥ १ ॥ वह्निरागच्छेदित्यत्र संशयः यतो वायोः सकाशाद्वह्नेर्निवर्तनं दृष्टम् ॥३ ॥ दिवं आस्थाय निरमित्रः अशत्रुर्भव अक्षयःस्वर्गस्तेऽस्त्विति भावः । हिरण्मयः दिव्यदेहः ॥ ७ ॥ प्रत्युपायां प्रत्यागतवत्यस्मि ॥ ८ ॥ न त्वमिति। अस्मांस्त्यक्त्वा गन्तुमिच्छन्त्यास्तव मिथ्यैवायमुपचारो न वास्तव इति भावः । समाकुलेषु संदिग्धेषु । ज्ञानेषु ज्ञातव्यकार्येषु । तत् बिलप्रवेशनम् । बुद्धिकृतं बुद्धिमदाचरितं नैव । बिले शत्रुसद्भावशङ्कायां सत्यां बलात्तत्र प्रवेशो न युक्त इति भावः ॥ १२ ॥ न चेति । अस्मान् अग्रे वा उपकर्तॄन् भूतभाव्युपकारशून्यान् किमिति बिभर्षि । वयं तव के न केऽपीत्यर्थः। त्वं वा सती अस्माकं का न कापि । मातृसंबन्धस्य भ्रान्तिकल्पितत्वादित्यर्थः ॥ १३ ॥ आयाः आगच्छेः नः अस्मान् ॥ १५ ॥ तत इति । अग्निदाहात्प्रागेव तक्षकवज्जरितापि गताऽतो दाहात् षडेवमुक्ता इति पूर्वोक्तमविरुद्धम् ॥ १७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारत भावदीपे एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

## २३२

जरितारिरुवाच ।
पुरतः कृच्छ्रकालस्य धीमाञ्जागर्ति पूरुषः ।
स कृच्छ्रकालं संप्राप्य व्यथां नैवैति कर्हिचित् ॥ १
यस्तु कृच्छ्रमनुप्राप्तं विचेता नावबुध्यते ।
स कृच्छ्रकाले व्यथितो न श्रेयो विन्दते महत् ॥ २
सारिसृक्व उवाच ।
धीरस्त्वमसि मेधावी प्राणकृच्छ्रमिदं च नः ।
प्राज्ञः शूरो बहूनां हि भवत्येको न संशयः ॥ ३
स्तम्बमित्र उवाच ।
ज्येष्ठस्तातो भवति वै ज्येष्ठो मुञ्चति कृच्छ्रतः ।
ज्येष्ठश्चेन्न प्रजानाति कनीयान्किं करिष्यति ॥ ४
द्रोण उवाच ।
हिरण्यरेतास्त्वरितो ज्वलन्नायाति नः क्षयम् ।
सप्तजिह्वाननः क्रूरो लेलिहानो विसर्पति ॥ ५
वैशंपायन उवाच ।
एवं संभाष्य तेऽन्योन्यं मन्दपालस्य पुत्रकाः ।
तुष्टुवुः प्रयता भूत्वा यथाग्निं शृणु पार्थिव ॥ ६

जरितारिरुवाच ।
आत्माऽसि वायोर्ज्वलन शरीरमसि वीरुधाम् ।
योनिरापश्च ते शुक्रं योनिस्त्वमसि चाम्भसः ॥ ७
ऊर्ध्वं चाधश्च सर्पन्ति पृष्ठतः पार्श्वतस्तथा ।
अर्चिषस्ते महावीर्य रश्मयः सवितुर्यथा ॥ ८
सारिसृक्व उवाच ।
माता प्रणष्टा पितरं न विद्मः
पक्षा जाता नैव नो धूमकेतो ।
न नस्त्राता विद्यते वै त्वदन्य-
स्तस्मादस्मांस्त्राहि बालांस्त्वमग्ने ॥ ९
यदग्ने ते शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः ।
तेन नः परिपाहि त्वमार्तान्नः शरणैषिणः ॥ १०
त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो
नान्यस्तप्ता विद्यते गोषु देव ।
ऋषीनस्मान्बालकान्पालयस्व
परेणास्मान्प्रेहि वै हव्यवाह ॥ ११

---

### २३२

पुरत इति । अत्र संसाराख्या महामोहानलज्वालामार्ता मातापि न त्रातुं समर्था किं तु सर्वे स्वार्थकामा एवेति संसूच्य अग्निरेव सर्वांस्त्रातुं समर्थ इत्यस्मिन्नध्याये सूच्यते यथापक्षे तु स्पष्ट एवार्थः । तत्र जरितारिर्नामेतरमादिमसुगण आह पुरत इति । मरणात् प्रागेव ज्ञानार्थं यतितव्यं ततश्च मरणव्यथा ज्ञानी न प्राप्नोति। 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते' इति श्रुतेरित्याद्यश्लोकतत्त्वम् कृच्छ्रकालो मरणकाल. । व्यथां प्राणोत्क्रमणपीडाम् ॥१॥ एतदेव व्यतिरेकमुखेनाह यस्त्विति । विचेताः अजितचित्त । व्यथितो देहान्तरे निपात्य कर्मणा वशीकृतो महच्छ्रेयो मोक्षम् ॥ २ ॥ उक्तव्यथानाशः सत्संगादेव भवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामाह द्वाभ्याम् धीर इति । धीरो ध्यानवान् । मेधावी ऊहापोहकुशलः अतस्त्वमेवास्मान्पाहीति भावः ॥ ३ ॥ त्वदनुग्रहं विना नास्ति तरणोपाय इत्याह ज्येष्ठ इति ॥ ४ ॥ द्रोणवाक्ये क्षयं गृहं अध्यात्मं तु हरतीति हिरण्यं विषयवासना सैव रेतो बीजं यस्य स मोहो मरणकालिकः । क्षयं देहगेहं एति । सप्तजिह्वाः । 'काली मनोजवा धूम्रा कराली लोहिता तथा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुचिः सप्तजिह्वा विभावसोः॥' पक्षे पञ्चेन्द्रियाणि बुद्धिमनसी च तद्युक्तमाननं मुखं भोगसाधनं यस्य सः । लेलिहानो ग्रसिष्यन्विसर्पति व्याप्नोति। अतः स्वमोक्षाय स्वयमेव यतितव्यमिति भावः ॥ ५ ॥ एवमधिकारिणमुत्थाप्य अग्निस्तुतिव्याजेन तत्त्वमुपदिशति । अग्नेस्त्वयाप्यत्तं त्वयेत्युपसंहारेऽग्निवाक्यात् । तत्र मुख्यब्रह्मविद्याधिकारार्थं समष्ट्युपासना जरितारिराह्वारमासीति द्वाभ्याम् वायोः सूत्रात्मनः 'वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिः' इति श्रुतेः । आत्मा स्वरूपमसि शरीरमसि वीरुधामिति विराडात्मत्वमुक्तम् । वीरुधा योनिः पृथ्वी आपश्च ते तव शुक्रं बीजं त्वदुत्पन्नम् । 'अग्नेरापः अद्भ्यःपृथिवी ' इति च श्रुतेः । आपस्ते शुक्रमित्यस्य व्याख्या योनिस्त्वमसि चाम्भस इति । यद्वा वायोरात्मा अन्तरिक्षं मरीचिशब्दितं वीरुधां योनिः पृथ्वी-मरशब्दिता यत्पृथिव्या अधस्तात्तदापः यद्दिव उपरिष्टात्तदम्भः । तथा च लोकसृष्टिरुक्ता भवति । 'अदोम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः इत्यैतरेये श्रुता लोकसृष्टिरुक्ता भवति । स इमान् लोकानसृजताम्भो मरीचिर्मरमाप इति उपक्रम्यात्र लोकात्मत्वेन स्तुतिर्न लोककर्तृत्वेनेत्यत. समष्ट्युपासनायामेव तात्पर्यम् ॥ ७ ॥ अत्रानधिकारी सारिणी सृक्के स्रक्किणी गण्डभागौ यस्य सः सारिसृक्वो बाह्यभोगासक्तो व्यष्टिरूपमेवाग्निं प्रार्थयते मातेति । प्रणष्टा अदर्शनं गता ॥ ९ ॥ शिवं शान्तं लोकहितम् । हेतयो ज्वालाः पूर्वोक्ताः ॥१०॥ गोषु रविरश्मिषु रविरपि त्वमेवेत्यर्थः । परेणास्मान् अस्मत्तो दूरे प्रेहि । परेणेत्येनबन्तम् ॥ ११ ॥

स्तम्बमित्र उवाच ।

सर्वमग्ने त्वमेवैकस्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ १२

त्वमग्निर्हव्यवाहस्त्वं त्वमेव परमं हविः ।
मनीषिणस्त्वां जानन्ति बहुधा चैकधापि च १३

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह
काले प्राप्ते पचासि पुनः समिद्धः ।
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूति-
स्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा ॥ १४

द्रोण उवाच ।

त्वमन्नं प्राणिभिर्भुक्तमन्तर्भूतो जगत्पते ।
नित्यप्रवृद्धः पचसि त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५

सूर्यो भूत्वा रश्मिभिर्जातवेदो
भूमेरम्भो भूमिजातान्रसांश्च ।
विश्वानादाय पुनरुत्सृज्य काले
दृष्ट्वा वृष्ट्या भावयसीह शुक्र ॥ १६

त्वत्त एताः पुनः शुक्र वीरुधो हरितच्छदाः ।
जायन्ते पुष्करिण्यश्च सुभद्रश्च महोदधिः ॥ १७

इदं वै सद्म तिग्मांशो वरुणस्य परायणम् ।
शिवस्त्राता भवास्माकं माऽस्मानद्य विनाशय ॥

पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन्हुताशन ।
परेण प्रेहि मुञ्चास्मान्सागरस्य गृहानिव ॥ १९

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तो जातवेदा द्रोणेन ब्रह्मवादिना ।
द्रोणमाह प्रतीतात्मा मन्दपालप्रतिज्ञया ॥ २०

अग्निरुवाच ।

ऋषिर्द्रोणस्त्वमसि वै ब्रह्मैतद्व्याहृतं त्वया ।
ईप्सितं ते करिष्यामि न च ते विद्यते भयम् ॥ २१

मन्दपालेन वै यूयं मम पूर्वं निवेदिताः ।
वर्जयेः पुत्रकान्मह्यं दहन्दावमिति स्म ह ॥ २२

---

एवं व्यष्ट्युपासनासिद्धस्य सार्वात्म्योपासनां सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादिशास्त्रप्रसिद्धां शाण्डिल्यविद्यादिरूपां स्तम्बमित्राख्यः सर्वप्राणिसमुदायसखा आह सर्वमित्यादिना । त्वयीदं कनके कुण्डलादिवत् ॥ १२ ॥ बहुधा कार्यरूपेण एकधा कारणरूपेण ॥ १३ ॥ त्रीन् लोकानिति ब्रह्माण्डोपलक्षणम् । पचसि संहरसि । समिद्धः तमोगुणेन प्रवृद्धः । अत्र हेतुं श्रौतं दर्शयति । त्वं सर्वस्येति । प्रसूतिरुत्पत्तिस्थानम् । प्रतिष्ठा लयस्थानम् । एतेन 'एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्' इतिश्रुतेरर्थो दर्शितः ॥ १४ ॥ यत्तु नान्तःप्रज्ञमित्यादिश्रुतिप्रसिद्धं तुरीयं निर्विशेषं तदेतत् द्रोणो ब्रह्मविदां वर इत्युपक्रमात् ब्रह्मैतद्व्याहृतं त्वयेत्यग्निनापि द्रोणस्यैव स्तुतत्वाच्च द्रोणवाक्यस्य विषय इति ज्ञायते । अत्र च नान्तःप्रज्ञादिवाक्यार्थो न च दृश्यतेऽतः कष्टमेतत् । श्रुतिबलेनैव स्पष्टीकुर्मः त्वमन्नमिति । हे जगत्पते त्वं अन्नम् । 'अद्यतेत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते' इति श्रुतेर्विराडसि । किमसौ नित्यः । नेत्याह । प्राणिभिर्भुक्तमिति । प्राणः सूत्रात्मा स उपास्यत्वेनास्ति येषां ते प्राणिनः सूत्रोपासकास्तैर्भुक्तमुपसंहृतम् । एतेन स्थूलस्य सूक्ष्मे लय उक्तः । तथा अन्तर्मध्ये भूतानि सूत्रशरीरारम्भकाणि अपञ्चीकृतवियदादीनि यस्य सः अन्तर्भूतोसि । भूतलयस्थानमप्यसि । एतेन सूक्ष्मस्य कारणे विलापनमुक्तम् । अत एव जगतः स्थूलसूक्ष्मकार्यस्यपते सृष्टिसंहारयोः स्वतन्त्रत्वम् । नित्यं प्रवृद्धोसि । कार्यकारणब्रह्मणोः सोपाधिकयोरुपाधितिरोभावाविर्भावानुसारि प्रवृद्धत्वम् । निरुपाधिकस्य तु नित्यमेव तत् । त्वयि शुद्धे प्रतिष्ठितं सर्वं कार्यकारणात्मकं रज्वामिवोरगादिकर्माभूतं त्वं पचसि संहरसि । एवं च नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञमित्यादिश्रुतेरर्थः स्थूलसूक्ष्मकारणरूपातीतं निष्कलं शिवशब्दाभिधेयं प्रतिपादितम् ॥ १५॥ सूर्य इति । हे शुक्र शुक्र सर्वोपाधिकालुष्यहीन त्वं सूर्यो भूत्वा रसानादाय पुनरुत्सृज्य काले वृष्ट्या भावयसीति संबन्धः । त्वं भूम्यादीनां रसान् सत्वानि आदाय संहृत्य सूर्यः कारणात्मा भूत्वा बीजमात्ररूपेण स्थित्वा पुनः प्रबोधकाले वृष्ट्या चित्सत्ताप्रदानेन पृथिव्यादीनि जनयसीत्यर्थः ॥ १६ ॥ एताः रसस्य ब्रह्मसत्ताया आश्रयत्वेन दृश्यमानाः सत्सदितिप्रत्ययविषयभूता वीरुदादयो जडपदार्था अपि त्वत्त एवोत्पन्ना इत्यर्थः । तेन प्रधानादेः कारणत्वं निरस्तम् । सुभद्रश्चेत्यत्र समुद्रश्चेति पाठे महोदधिशब्देन महान्ति ब्रह्माण्डाद्बहिः स्थितानि उदकानि धीयन्तेस्मिन्निति व्युत्पत्याऽनेकब्रह्माण्डशुक्तिसंपुटाश्रयभूतो जलावरणरूपः समुद्रो ग्राह्यः । तच्चावरणान्तराणामप्युपलक्षणम् ॥ १७ ॥ एवं परापरब्रह्मरूपेणाग्निं स्तुत्वा उपस्थितभयनिवृत्तिं प्रार्थयते । इदमिति । हे तिग्मांशो तीक्ष्णकर वह्ने । सद्मेव सद्म शरीरम् । वरुणस्य रसनेन्द्रियाधिपतेः । परायणं अत्यन्तालम्बनम् । पक्षिदेहेन हिं सर्वरसास्वादो लभ्यते । अतस्त्वं शिवः अन्तरात्मा । अस्माकं त्राता भव ॥ १८ ॥ सागरस्य गृहान् नदीप्रवाहानिव अनभिभाव्यान् स्वाभिभावकांश्च ज्ञात्वा मुञ्च ॥ १९ ॥ प्रतीतात्मा हृष्टः ॥ २० ॥ मह्यं मम ॥ २२ ॥

तस्य तद्वचनं द्रोण त्वया यच्चेह भाषितम् ।
उभयं मे गरीयस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते ।
भृशं प्रीतोस्मि भद्रं ते ब्रह्मंस्तोत्रेण सत्तम ॥ २३

द्रोण उवाच ।

इमे मार्जारकाः शुक्र नित्यमुद्वेजयन्ति नः ।
एतान्कुरुष्व दग्धांस्त्वं हुताशन सबान्धवान् २४

वैशंपायन उवाच ।

तथा तत्कृतवानग्निरभ्यनुज्ञाय शार्ङ्गकान् ।
ददाह खाण्डवं दावं समिद्धो जनमेजय ॥ २५

इति श्रीमहा० आदि० मयदर्शनपर्वणि शार्ङ्गकोपाख्याने द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३२

## २३३

वैशंपायन उवाच ।

मन्दपालोपि कौरव्य चिन्तयामास पुत्रकान् ।
उक्त्वाऽपि च स तिग्मांशुं नैव शर्माधिगच्छति
स तप्यमानः पुत्रार्थं लपितामिदमब्रवीत् ।
कथं न शक्ताः शरणे लपिते मम पुत्रकाः ॥ २
वर्धमाने हुतवहे वाते चाशु प्रवायति ।
असमर्था विमोक्षाय भविष्यन्ति ममात्मजाः ॥३
कथं त्वशक्ता त्राणाय माता तेषां तपस्विनी ।
भविष्यति हि शोकार्ता पुत्रत्राणमपश्यती ॥ ४
कथमुड्डीयनेऽशक्तान्पतने च ममात्मजान् ।
संतप्यमाना बहुधा वाशमाना प्रधावती ॥ ५
जरितारिः कथं पुत्रः सारिसृक्कः कथं च मे ।
स्तम्बमित्रः कथं द्रोणः कथं सा च तपस्विनी ६
लालप्यमानं तमृषिं मन्दपालं तथा वने ।
लपिता प्रत्युवाचेदं सासूयमिव भारत ॥ ७
न ते पुत्रेष्ववेक्षाऽस्ति यानृषीनुक्तवानसि ।
तेजस्विनो वीर्यवन्तो न तेषां ज्वलनाद्भयम् ॥ ८
त्वयाऽग्नौ ते परीताश्च स्वयं हि मम संनिधौ ।
प्रतिश्रुतं तथा चेति ज्वलनेन महात्मनः ॥ ९
लोकपालो न तां वाचमुक्त्वा मिथ्या करिष्यति
समक्षं बन्धुकृत्येन तेन ते स्वस्थ मानसम् ॥ १०
तामेव तु ममामित्रां चिन्तयन्परितप्यसे ।
ध्रुवं मयि न ते स्नेहो यथा तस्यां पुराऽभवत् ११
न हि पक्षवता न्याय्यं निःस्नेहेन सुहृज्जने ।
पीड्यमान उपद्रष्टुं शक्तेनात्मा कथंचन ॥ १२
गच्छ त्वं जरितामेव यदर्थं परितप्यसे ।
चरिष्याम्यहमप्येका यथा कुपुरुषाश्रिता॥ १३

मन्दपाल उवाच ।

नाहमेवं चरे लोके यथात्वमभिमन्यसे ।
अपत्यहेतोर्विचरे तच्च कृच्छ्रगतं मम ॥ १४
भूतं हित्वा च भाव्यर्थे योवलम्बेत्स मन्दधीः ।
अवमन्येत तं लोको यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १५
एष हि प्रज्वलन्नग्निर्लेलिहानो महीरुहान् ।
आविग्ने हृदि संतापं जनयत्यशिवं मम ॥ १६

वैशंपायन उवाच ।

तस्माद्देशादतिक्रान्ते ज्वलने जरिता पुनः ।
जगाम पुत्रकानेव जरिता पुत्रगृद्धिनी ॥ १७
सा तान्कुशलिनः सर्वान्विमुक्ताञ्जातवेदसः ।
रोरूयमाणान्ददृशे वने पुत्रान्निरामयान् ॥ १८

---

इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२

२३३

मन्दपाल इति । उक्त्वा मम पुत्रान्मा दहेति प्रार्थ्यापि ॥ १ ॥ शरणे गृहे । कथं नु न कथमपि ॥ २ ॥ उड्डीयने ऊर्ध्वपतने । पतने तिर्यग्गमने । वाशमाना रुदती ॥ ५ ॥ परीताः ज्ञापिताः ॥९॥ समक्षमिति । हे स्वस्थ ते तव मानसं तेन हेतुना बन्धुकृत्य लक्षणे रक्षणे समक्षं अभिमुखं न किंतु तामेवेत्यादिस्पष्टार्थम् ॥ १० ॥ न हीति । पक्षवता सहायवता । सुहृज्जनेन निःस्नेहेन नितरां स्नेहवता शक्तेन च पीड्यमान आत्मा पुत्रदाररूपः कथं च न उपद्रष्टुम् उपेक्षितुं न हि न्याय्यम्॥१२॥ अतस्त्वं जरितामेव गच्छेत्यधिक्षिप्याह । गच्छेति ॥ १३ ॥ एवं कामवृत्तो नाहं चरे न चरामि ॥ १४ ॥ भूतं जरितायामपत्यम् । भाव्यर्थे त्वयि जनयितव्ये अपत्ये ॥ १५ ॥ जरितानामतः जरा संजाता अस्याः सा जरिता । सर्वेन्द्रियव्याकुला ॥ १७ ॥

अश्रूणि मुमुचे तेषां दर्शनात्सा पुनः पुनः ।
एकैकश्येन तान्सर्वान्क्रोशमानान्वपद्यत ॥ १९
ततोऽभ्यगच्छत्सहसा मन्दपालोपि भारत ।
अथ ते सर्व एवैनं नाभ्यनन्दंस्तदा सुताः ॥ २०
लालप्यमानमेकैकं जरितां च पुनः पुनः ।
न चैवोचुस्तदा किंचित्तमृषिं साध्वसाधु वा २१
मन्दपाल उवाच ।
ज्येष्ठः सुतस्ते कतमः कतमस्तस्य चानुजः ।
मध्यमः कतमश्चैव कनीयान्कतमश्च ते ॥ २२
एवं ब्रुवन्तं दुःखार्तं किं मां न प्रतिभाषसे ।
कृतवानपि हि त्यागं नैव शान्तिमितो लभे ॥२३
जरितोवाच ।
किं नु ज्येष्ठेन ते कार्यं किमनन्तरजेन ते ।
किं वा मध्यमजातेन किं कनिष्ठेन वा पुनः ॥२४
यां त्वं मां सर्वतो हीनामुत्सृज्यासि गतः पुरा ।
तामेव लपितां गच्छ तरुणीं चारुहासिनीम् ॥२५
मन्दपाल उवाच ।
न स्त्रीणां विद्यते किंचिदमुत्र पुरुषान्तरात् ।
सापत्नकमृते लोके नान्यदर्थविनाशनम् ॥ २६
वैराग्निदीपनं चैव भृशमुद्वेगकारि च ।
सुव्रता चापि कल्याणी सर्वभूतेषु विश्रुता ॥ २७
अरुन्धती महात्मानं वसिष्ठं पर्यशङ्कत ।
विशुद्धभावमत्यन्तं सदा प्रियहिते रतम् ॥ २८
सप्तर्षिमध्यगं वीरमवमेने च तं मुनिम् ।
अपध्यानेन सा तेन धूमारुणसमप्रभा ।
लक्ष्याऽलक्ष्या नाभिरूपा निमित्तमिव पश्यति ॥
अपत्यहेतोः संप्राप्तं तथा त्वमपि मामिह ।
इष्टमेवं गते हि त्वं सा तथैवाद्य वर्तते ॥ ३०
न हि भार्येति विश्वासः कार्यः पुंसा कथंचन ।
न हि कार्यमनुध्याति नारी पुत्रवती सती ॥३१
वैशंपायन उवाच ।
ततस्ते सर्व एवैनं पुत्राः सम्यगुपासते ।
स च तानात्मजान्सर्वानाश्वासयितुमुद्यतः ॥ ३२

इति श्रीमहा० आदिप० मयदर्शनप० शार्ङ्गकोपाख्याने त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३३॥

---

## २३४

मन्दपाल उवाच ।
युष्माकमपवर्गार्थं विज्ञप्तो ज्वलनो मया ।
अग्निना च तथेत्येवं प्रतिज्ञातं महात्मना ॥ १
अग्नेर्वचनमाज्ञाय मातुर्धर्मज्ञतां च वः ।
भवतां च परं वीर्यं पूर्वं नाहमिहागतः ॥ २
न संतापो हि वः कार्यः पुत्रका हृदि मां प्रति ।
ऋषीन्वेद हुताशोऽपि ब्रह्म तद्विदितं च वः ॥ ३
वैशंपायन उवाच ।
एवमाश्वासितान्पुत्रान्भार्यामादाय स द्विजः ।
मन्दपालस्ततो देशादन्यं देशं जगाम ह ॥ ४
भगवानपि तिग्मांशुः समिद्धः खाण्डवं ततः ।
ददाह सह कृष्णाभ्यां जनयञ्जगतो हितम् ॥ ५
वसामेदोवहाः कुल्यास्तत्र पीत्वा च पावकः ।
जगाम परमां तृप्तिं दर्शयामास चार्जुनम् ॥ ६
ततोऽन्तरिक्षाद्भगवानवतीर्य पुरंदरः ।
मरुद्गणैर्वृतः पार्थं केशवं चेदमब्रवीत् ॥ ७
कृतं युवाभ्यां कर्मेदममरैरपि दुष्करम् ।
वरं वृणीतं तुष्टोस्मि दुर्लभं पुरुषेष्विह ॥ ८

---

णां अमुत्र परलोके पुरुषान्तरादृते सापत्नकं च ऋतेन्यत् तृतीयं अर्थनाशनं पुरुषार्थघातकं नास्ति ॥ २६ ॥ तदुभयं निन्दति वैराग्नीति । एतच्चापरिहार्यं सतीनामपीत्याह सुव्रतेति॥२७॥निमित्तं भर्तुर्लक्षणमिव पश्यति कपटेन । अत एव नाभिरूपा प्रच्छन्नवेषा । तेन हेतुना लक्ष्याऽलक्ष्या च॥२९॥ इष्टं आसं तथारुन्धतीव शङ्कमाना । त्वमिव सापि तथैव । मयि अपत्यहेतोर्व्याकुले सति सा लपितापि तथैव वर्तते ॥ ३० ॥ यतः स्त्रीणामाप्तो नास्तीत्याह । न हीति । कार्यं भर्तृशुश्रूषादि । अनुध्याति मनसिकरोति ॥ ३१ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

२३४

युष्माकमिति ॥ १ ॥ मातुर्धर्मज्ञतां च वः मातुः वः युष्मत्संबन्धितया धर्मज्ञतां युष्मदीयं परमधर्मज्ञानं मातुरस्तीति विज्ञायेत्यर्थः ॥२॥ ब्रह्म तत् वेदान्तप्रसिद्धम् ॥ ३ ॥

पार्थस्तु वरयामास शक्रादस्त्राणि सर्वशः ।
प्रदातुं तच्च शक्रस्तु कालं चक्रे महाद्युतिः ॥ ९
यदा प्रसन्नो भगवान्महादेवो भविष्यति ।
तदा तुभ्यं प्रदास्यामि पाण्डवास्त्राणि सर्वशः १०
अहमेव च तं कालं वेत्स्यामि कुरुनन्दन ।
तपसा महता चापि दास्यामि भवतोऽप्यहम् ११
आग्नेयानि च सर्वाणि वायव्यानि च सर्वशः ।
मदीयानि च सर्वाणि ग्रहीष्यसि धनंजय ॥ १२
वासुदेवोपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम् ।
ददौ सुरपतिश्चैव वरं कृष्णाय धीमते ॥ १३
एवं दत्वा वरं ताभ्यां सहदेवैर्मरुत्पतिः ।
हुताशनमनुज्ञाप्य जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ १४
पावकश्च तदा दावं दग्ध्वा समृगपक्षिणम् ।
अहानि पञ्च चैकं च विरराम सुतर्पितः ॥ १५
जग्ध्वा मांसानि पीत्वा च मेदांसि रुधिराणि च
युक्तः परमया प्रीत्या तावुवाचाच्युतार्जुनौ ॥ १६
युवाभ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां तर्पितोऽस्मि यथासुखम्
अनुजानामि वां वीरौ चरतं यत्र वाञ्छितम् १७
एवं तौ समनुज्ञातौ पावकेन महात्मना ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दानवश्च मयस्तथा ॥ १८
परिक्रम्य ततः सर्वे त्रयोपि भरतर्षभ ।
रमणीये नदीकूले सहिताः समुपाविशन् ॥ १९

इति श्रीमहाभा० शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां आदिप० मयदर्शन० वरप्रदाने चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥ समाप्तं मयदर्शनपर्वादिपर्व च ॥

---

अतःपरं सभापर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः ॥
वैशंपायन उवाच ।
ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य संनिधौ । प्राञ्जलिः श्लक्ष्णया वाचा पूजयित्वा पुनः पुनः ॥ १

---

चरतं यत्र वाञ्छितमित्यनेनाप्रतिहतगतित्वं द्वयोरपि दत्तं मये यथ ॥ १७ ॥ इति आदिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥ २३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते आदिपर्व समाप्तम् ॥

# MAHĀBHĀRATAM

*with*

*the Commentary*

*of*

**NĪLAKAṆṬHA.**

## 2 Sabhāparva.

*Illustrated.*

PRINTED AND PUBLISHED

BY

*Shankar Narhar Joshi,* at Chitrashala Press, Poona City.



POONA.

1929.

॥ श्रीः ॥

# महाभारतम् ।

( नीलकण्ठकृतया भारतभावदीपाख्यया टीकया समेतम् । )

## २ सभापर्व ।

अयं ग्रन्थः पुण्यपत्तने १०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये
शंकर नरहर जोशी इत्याख्यैरधिकारिभिर्मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

शाकः १८५०,

श्रीः।

# सभापर्व।

# २

## अनुक्रमणिका।


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| | | **( १ ) सभाक्रियापर्व।** | |
| १ | २१ | अर्जुनं प्रति मयेन प्रत्युपकारस्वीकारप्रार्थना मयेन सभारचनोपक्रमः | २ |
| २ | ३६ | द्वारकां प्रति प्रस्थितस्य श्रीकृष्णस्य युधिष्ठिरादिभिः सारथ्यकरणम्। अर्धयोजनगतानां पाण्डवादीनां परस्परानुज्ञया स्वस्वनगरगमनम् श्रीकृष्णस्य द्वारकां प्रति गमनम् | ४ |
| ३ | ३७ | सभानिर्माणसामग्र्यानयनार्थं मयस्य बिन्दुसरोगमनम्। बिन्दुसरोवर्णनम्। मयेन भीमार्जुनाभ्यां गदाशङ्खदानम्। मयसभावर्णनम् | ६ |
| ४ | ४१ | पाण्डवानां सभागृहप्रवेशः। तदा समागतानां ऋषीणां राज्ञां गन्धर्वाणां च नामानि | ७ |
| | | **( २ ) लोकपालसभाख्यानपर्व।** | |
| ५ | १२८ | नारदवर्णनम्। तदागमनकथनम्। नारदेन युधिष्ठिरस्य कुशलप्रश्नद्वारेण राजधर्मानुशासनम् | १८ |
| ६ | १९ | युधिष्ठिरस्य लोकपालसभाजिज्ञासा | १९ |
| ७ | ३० | नारदेन इन्द्रसभावर्णनम् | २० |
| ८ | ४१ | यमसभावर्णनम् | २१ |
| ९ | ३० | वरुणसभावर्णनम् | २२ |
| १० | ४० | कुबेरसभावर्णनम् | २४ |
| ११ | ६२ | ब्रह्मसभावर्णनम् | २६ |
| १२ | ३४ | हरिश्चन्द्रकथा। युधिष्ठिरं प्रति पाण्डुसंदेशकथनम्। नारदगमनम् | २८ |
| | | **( ३ ) राजसूयारम्भपर्व।** | |
| १३ | ५१ | युधिष्ठिरेण स्वकीयराजसूयार्थमाहूतस्य श्रीकृष्णस्य इन्द्रप्रस्थं प्रति गमनम् | ३० |
| १४ | ७० | श्रीकृष्णेन जरासंधस्य शौर्यादिकथनम् | ३२ |
| १५ | २६ | राजसूयविषये युधिष्ठिरभीमकृष्णानां मिथः संभाषणम् | ३४ |
| १६ | १७ | युधिष्ठिरार्जुनयोर्जरासंधवधविचारः | ३५ |
| १७ | ५२ | बृहद्रथराजकथा। जरासंधोत्पत्तिः | ३७ |
| १८ | १२ | जरायाः स्वरूपेऽन्तर्धानम् | " |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| १९ | २८ | जरासंधप्रशंसा | ३८ |
| | | **( ४ ) जरासंधवधपर्व ।** | |
| २० | ३० | भीमार्जुनाभ्यां सह माधवस्य मगधदेशगमनम् | ४० |
| २१ | ५४ | कृष्णजरासंधसंवादः | ४२ |
| २२ | ३६ | जरासंधस्य युद्धोद्योगः | ४३ |
| २३ | ३५ | भीमजरासंधयोर्युद्धम् | ४५ |
| २४ | ६० | जरासंधवधः । तेन बंदीकृतानां भूभुजां मुक्तिः । जरासंधपुत्रं सहदेवाख्यं राज्येऽभिषिच्य श्रीकृष्णभीमार्जुनानामिन्द्रप्रस्थं प्रति गमनम् | ४७ |
| | | **( ५ ) दिग्विजयपर्व ।** | |
| २५ | ११ | संक्षेपतः पाण्डवदिग्विजयवर्णनम् | ४८ |
| २६ | १६ | अर्जुनदिग्विजये भगदत्तजयः । | ” |
| २७ | २९ | नानादेशजयः । | ४९ |
| २८ | २१ | उत्तरदिग्विजयः । | ५० |
| २९ | २६ | दिग्विजये पांचालदेशगमनम् | ५१ |
| ३० | ३० | भीमप्राचीदिग्जयः | ५२ |
| ३१ | ७८ | सहदेवदक्षिणादिग्विजयः | ५४ |
| ३२ | २० | नकुलप्रतीचीजयः | ५५ |
| | | **( ६ ) राजसूयपर्व ।** | |
| ३३ | ५५ | राज्यव्यवस्थावर्णनम् । श्रीकृष्णस्य द्वारकाया आगमनम् । यज्ञसामग्री संपादनम् । ऋत्विजां व्यासेनानयनम् । धृतराष्ट्राद्यामन्त्रणार्थं नकुलगमनम् । युधिष्ठिरस्य राजसूयदीक्षाग्रहणम् | ५७ |
| ३४ | २५ | निमन्त्रितानामागमनम् | ५८ |
| ३५ | १९ | भीष्मादीनामागतानां तत्तदधिकारे नियोजनम् । राजसूययागः | ५९ |
| | | **( ७ ) अर्घाभिहरणपर्व ।** | |
| ३६ | ३२ | श्रीकृष्णस्य भीष्माज्ञया सहदेवेन अग्रपूजाकरणम् । | ६१ |
| ३७ | ३१ | श्रीकृष्णाग्रपूजामसहमानेन शिशुपालेन श्रीकृष्णोपालम्भः । | ६२ |
| ३८ | ३३ | शिशुपालं मधुरवचसा सान्त्वयन्तं युधिष्ठिरं निवार्य भीष्मेण श्रीकृष्णमाहात्म्यकथनम् | ६४ |
| ३९ | १८ | सहदेवेन कृष्णाग्रपूजाविरुद्धभाषिणः सनिकारं वधे प्रतिज्ञाते राज्ञां तूष्णींभावः । सहदेवशिरसि पुष्पवृष्टिः । नारदेन कृष्णद्वेषिणां निर्भर्त्सना । शिशुपालेन यज्ञविघातार्थं राज्ञां निमन्त्रणम् | ६५ |
| | | **( ८ ) शिशुपालवधपर्व ।** | |
| ४० | १५ | क्रुद्धं राजमण्डलं दृष्ट्वा भीतस्य युधिष्ठिरस्य भीष्मेण समाश्वासनम् | ६६ |
| ४१ | ४० | भीष्मपरिहासपूर्वकं शिशुपालेन कृष्णमाहात्म्यभर्त्सनम् | ७० |
| ४२ | २० | शिशुपालस्य निन्दावाक्यं श्रुत्वा क्रुधा शिशुपालं हन्तुं प्रवृत्तस्य भीमस्य भीष्मेण निवारणम् | ७१ |
| ४३ | २५ | भीष्मेण शिशुपालस्य जन्मप्रभृति दुश्चरित्रकथनम् | ७२ |
| ४४ | ४२ | भीष्मवचनं श्रुत्वा क्रुद्धेन शिशुपालेन भीष्मनिन्दा । ततश्चेदिपतेः शिशुपालस्य वचनं श्रुत्वा भीष्मस्य प्रतिवचनम् | ७४ |
| ४५ | ६८ | शिशुपालेन राज्ञः संनाह्य युद्धार्थं कृष्णाह्वानम् । श्रीकृष्णेन शिशुपालकृतापराधकथनम् । श्रीकृष्णेन चक्रेण शिशुपालस्य शिरश्छेदः । श्रीकृष्णस्य द्वारकां प्रति गमनम् | ७७ |
| | | **( ९ ) द्यूतपर्व ।** | |
| ४६ | ३३ | व्यासं प्रति युधिष्ठिरेण शिशुपालवधोत्पन्नोत्पातफलप्रश्नः । उत्पातस्याशुभं फलमुक्त्वा व्यासस्य कैलासं प्रति गमनम् । उत्पातफलं श्रुत्वा खिन्नस्य युधिष्ठिरस्य अर्जुनेन सान्त्वनम् । युधिष्ठिरसभया। | ७८ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| ४७ | ४० | मयसभायां स्थले जलभ्रमेण जले स्थलभ्रमेण अद्वारे द्वारभ्रमेण द्वारे च भित्तिभ्रमेण दुर्योधने पतति भीमादिभिस्तस्योपहासः । तत्परिहासदुःखोद्विग्नस्य दुर्योधनस्य पाण्डवसंपदाहरणे मतिः | ८० |
| ४८ | २३ | शकुनिना पाण्डवान् जेतुं द्यूतोपायकथनम् | " |
| ४९ | ६० | शकुनिना दुर्योधनस्य चिन्ताकार्श्यादिकस्य धृतराष्ट्राय निवेदनम् । धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनं प्रति चिन्तानिमित्तप्रश्नः । दुर्योधनेन स्वविचारकथनम् । धृतराष्ट्रेण द्यूतार्थं पाण्डवानयनाय विदुरप्रेरणा । विदुरभाषणम् | ८३ |
| ५० | ३६ | विस्तरेण द्यूतवृत्तान्तः । धृतराष्ट्रेण द्यूतनिषेधः । दुर्योधनेन पाण्डवैश्वर्यवर्णनं भीमादिकृतस्वोपहासकथनं च | ८४ |
| ५१ | ३५ | राजसूयसमये नानादेशागतभूपालप्रदत्तोपायनवर्णनम् | ८६ |
| ५२ | ४९ | " " | ८८ |
| ५३ | २६ | दुर्योधनेन राजसूयवर्णनम् | ८९ |
| ५४ | ११ | धृतराष्ट्रेण पाण्डवद्वेषनिषेधः | " |
| ५५ | २१ | दुर्योधनेन राजनीतिनिरूपणम् | ९० |
| ५६ | २२ | शकुनिना "द्यूतेन पाण्डवाञ्जेष्यामि' इति प्रतिज्ञाकरणम् । द्यूते दुर्योधनसंमतिः । धृतराष्ट्रेण पुनः पुनः पाण्डववैरनिषेधः । दैवानुरोधेन पुत्रप्रेम्णा व्यामोहितस्य धृतराष्ट्रस्याज्ञया द्यूतसभानिर्माणं पाण्डवानयनाय विदुरप्रेषणं च | ९१ |
| ५७ | ५ | द्यूतविषये विदुरधृतराष्ट्रयोर्मिथः संवादः | ९२ |
| ५८ | ३८ | विदुरस्य पाण्डवसमीपे गमनम् । विदुरयुधिष्ठिरसंवादः । पाण्डवानां हास्तिनपुरीगमनं च | ९४ |
| ५९ | २१ | पाण्डवानां द्यूतसभाप्रवेशः । शकुनियुधिष्ठिरसंवादः | ९६ |
| ६० | ९ | भीष्मादीनां द्यूतसभाप्रवेशः । युधिष्ठिरदुर्योधनयोः 'पण'विषये मिथः समयः | " |
| ६१ | ३१ | युधिष्ठिरेण पणीकृतानां शकुनिनापहरणम् | ९८ |
| ६२ | १७ | द्यूतविषये विदुरहितवाक्यम् | ९९ |
| ६३ | १० | विदुरवाक्ये द्यूतस्यानर्थकारित्वम् । | १०० |
| ६४ | २० | विदुरस्य दुर्योधनेनोपालम्भः । विदुरस्य प्रतिवचनम् | १०२ |
| ६५ | ४५ | युधिष्ठिरेण पणीकृतानां तद्भ्रातॄणां पराजयः । पणीभूतस्य युधिष्ठिरस्य पराजयः । युधिष्ठिरेण पणीकृतायाः द्रौपद्याः पराजयः । सभाक्षोभः । धृतराष्ट्रस्य हर्षः | १०४ |
| ६६ | १२ | द्रौपदीमुद्दिश्यावाच्यं वाक्यमुक्तवन्तं दुर्योधनं प्रति विदुरवाक्यम् | १०६ |
| ६७ | ५४ | दुःशासनेन हठात् सभां प्रति द्रौपद्या आनयनम् । सभ्यान्प्रति स्वविषये द्रौपदीप्रश्नः | १०९ |
| ६८ | ९० | ' द्रौपदी अजिता ' इति सत्पक्षपातिनो धार्तराष्ट्रान्तःपातिनो विकर्णस्य वचनम् । कर्णस्य तत्प्रतिकूलवचनम् । दुःशासनेन द्रौपदीवस्त्राकर्षणम् । भगवतः श्रीकृष्णस्य कृपया द्रौपद्या रक्षणम् । भीमप्रतिज्ञा । विदुरवाक्यम् | ११३ |
| ६९ | २१ | द्रौपद्याः सभ्यानुद्दिश्य प्रश्नः । ' अस्य प्रश्नस्य युधिष्ठिरेण उत्तरं वक्तव्यम्' इति भीष्मवचनम् | ११४ |
| ७० | १८ | दुर्योधस्य द्रौपदीमुद्दिश्य संभाषणम् । भीमेन स्वपराक्रमवर्णनम् | ११५ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|---|---|---|
| ७१ | ३६ | द्रौपदीमुद्दिश्य कर्णप्रलपनम् । दुर्योधनेन प्रेक्षमाणायाः द्रौपद्याः सव्योरुप्रदर्शनम् । तत् दृष्ट्वा ' यदि एतमूरुं गदया न भिन्द्यां तदा पितृभिः सह वृकोदरः सालोक्यं मास्म गच्छेत् ' इति भीमप्रतिज्ञा । विदुरवाक्यम् । दुर्योधनवाक्यम् । अर्जुनवाक्यम् । धृतराष्ट्रेण पाञ्चालीं प्रत्यभीष्टं वरं वरय इति सूचनम् । द्रौपद्या स्वेनसह पाण्डवानामदासत्ववरणम् | ११७ |
| ७२ | १७ | भीमक्रोधः। तस्य युधिष्ठिरेण परिसान्त्वनम् | ११८ |
| ७३ | १८ | धृतराष्ट्रवरप्रदानपूर्वकमिन्द्रप्रस्थं प्रति युधिष्ठिरगमनम् | ११९ |
| | | ( १० ) अनुद्यूतपर्व । | |
| ७४ | २७ | दुर्योधनेन पाण्डवपराक्रमवर्णनम् । धृतराष्ट्रस्य पुनरपि द्यूतार्थं पाण्डवानयनाय संमतिः । द्रोणादीनां द्यूतनिषेधः | १२० |
| ७५ | १२ | गान्धार्या धृतराष्ट्रकृत्यनिषेधः । धृतराष्ट्रस्य पुनर्द्यूतनिश्चयः | १२१ |
| ७६ | २४ | पाण्डवानां मध्येमार्गं प्रतिनिवृत्य द्यूतसमाप्रवेशः । शकुनिना युधिष्ठिरपराजयः | १२२ |
| ७७ | ४६ | वनाय प्रस्थितानां पाण्डवानां दुःशासनेन परुषवचसा उपहासः । तत् श्रुत्वाऽमर्षितैः पाण्डवैः कौरववधे प्रतिज्ञाकरणम् | १२४ |
| ७८ | २४ | पाण्डवानां विदुरस्याशीर्वचनम् । भीष्मद्रोणौ नमस्कृत्य युधिष्ठिरस्य वनप्रस्थानम् | १२५ |
| ७९ | ३६ | विदुरवचनात् कुन्त्यास्तस्य गृहे वासः । द्रौपदीकुन्तीसंवादः | १२७ |
| ८० | ५२ | पाण्डवविषयके धृतराष्ट्रविदुरयोर्वचनप्रतिवचने । द्रोणवाक्यम् | १२९ |
| ८१ | ३९ | धृतराष्ट्रसंजयसंवादः | १३० |


सभापर्वसमाप्तिः ।

सभापर्व २, उपपर्वाणि १०, अध्यायाः ८१, श्लोकाः २७२२.

॥ श्रीः ॥

# महाभारतम् ।

## ( सटीकम् )

# सभापर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य संनिधौ ।
प्राञ्जलिः श्लक्ष्णया वाचा पूजयित्वा पुनः पुनः २

मय उवाच ।

अस्मात्कृष्णात्सुसंरब्धात्पावकाच्च दिधक्षतः ।
त्वया त्रातोस्मि कौन्तेय ब्रूहि किं करवाणि ते ३

अर्जुन उवाच ।

कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्ति गच्छ महासुर ।
प्रीतिमान्भव मे नित्यं प्रीतिमन्तो वयं च ते ॥ ४

मय उवाच ।

युक्तमेतत्त्वयि विभो यथात्थ पुरुषर्षभ ।
प्रीतिपूर्वमहं किंचित्कर्तुमिच्छामि भारत ॥
अहं हि विश्वकर्मा वै दानवानां महाकविः ।
सोहं वै त्वत्कृते कर्तुं किंचिदिच्छामि पाण्डव ॥६

अर्जुन उवाच ।

प्राणकृच्छ्राद्विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया ।
एवं गते न शक्ष्यामि किंचित्कारयितुं त्वया ॥ ७
न चापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव ।
कृष्णस्य क्रियतां किंचित्तथा प्रतिकृतं मयि ॥ ८

१

श्रीगणेशायनमः ॥ बीजांकुरद्रुमममेश्वरसूत्रविश्वान्मोक्षाय चिन्तयन यूयमभेदबुध्या । दास्याय बीजशतगर्भफलाभमेकं गोपालमेव कलयाम जगन्निदानम् ॥१॥ जीवे भुजिः स्वपरमृष्टवपुर्युजेव यत्रेशतापराधिया निजमायया वा । छष्टरुपाधिभिरसंगचितावपीष्टा तस्मिन्ममास्तु रतिरात्मनि लक्ष्मणार्ये ॥२॥प्रणम्य नारायणतीर्थवर्यान् धीरेशमिश्रांश्च हमीरपुर्यान्। प्राच्या गुरूणां हृदयानुरूपं कुर्मः सभापर्वणि भावदीपम् ॥३॥ तत्र पूर्वस्मिन्पर्वणि अन्ते शार्ङ्गकाः ज्ञानबलादेव वह्निमुखाद्विमुक्ता इत्युक्तं तच्च ज्ञानं भगवद्भक्तिबलादेव लभ्यत इति प्रतिपादनायेदं सभापर्व आरभ्यते । तत्र भक्तावपि रुच्युत्पादनार्थं भक्तिबलेनैव पाण्डवानां दिव्यसभालाभाद्यैश्वर्यं द्वेषेणापि भगवध्यानम् भगवत्सायुज्यप्रापकमिति शिशुपालनिर्याणेन ध्यानमाहात्म्यम् । निरपराधिष्वपि पाण्डवेषु अभक्तानां दुर्योधनादीना द्वेषोत्पत्त्याऽभक्तदोषाः । द्यूते द्रौपदीत्राणेन भगवतो भक्तपक्षपातित्वं समर्थानामपि पाण्डवाना सापराधेष्वपि दुर्योधनादिषु अप्रकोपेन भक्ताना तितिक्षा चेति भक्तगुणाश्च दर्शिताः । तत्र उपकर्त्रे प्रत्युपकारोऽवश्यं कर्तव्य इत्येतद्दर्शयितुं पाण्डवार्थे मयेन वह्नितो मोचितेन अभूतपूर्वा सभा कृतेति तावद्वर्ण्यते ततोऽब्रवीन्मयःपार्थमित्यादिना ॥ २ ॥ खाण्डवदाहे कृष्णात् चक्रेण जिघांसतः ॥ ३ ॥ विश्वं कर्म कृतिसाध्यं यस्य स विश्वकर्मा महाकविः शिल्पपण्डितः ॥ ६ ॥ एवं गते प्रत्युपकारार्थं प्राप्ते त्वयि सति ॥ ७ ॥

चोदितो वासुदेवस्तु मयेन भरतर्षभ ।
मुहूर्तमिव संदध्यौ किमयं चोद्यतामिति ॥ ९
ततो विचिन्त्य मनसा लोकनाथः प्रजापतिः ।
चोदयामास तं कृष्णः सभा वै क्रियतामिति १०
यदि त्वं कर्तुकामोसि प्रियं शिल्पवतां वर ।
धर्मराजस्य दैतेय यादृशीमिह मन्यसे ॥ ११
यां कृतां नानुकुर्वन्ति मानवाः प्रेक्ष्य धिष्ठिताः ।
मनुष्यलोके सकले तादृशीं कुरु वै सभाम् ॥ १२
यत्र दिव्यानभिप्रायान्पश्येम हि कृतांस्त्वया ।
आसुरान्मानुषांश्चैव सभां तां कुरु वै मय ॥ १३
वैशंपायन उवाच ।
प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं संप्रहृष्टो मयस्तदा ।
विमानप्रतिमां चक्रे पाण्डवस्य शुभां सभाम् ॥
ततः कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
सर्वमेतत्समावेद्य दर्शयामासतुर्मयम् ॥ १५
तस्मै युधिष्ठिरः पूजां यथार्हमकरोत्तदा ।
स तु तां प्रतिजग्राह मयः सत्कृत्य भारत ॥ १६
स पूर्वदेवचरितं तदा तत्र विशांपते ।
कथयामास दैतेयः पाण्डुपुत्रेषु भारत ॥ १७
स कालं कंचिदाश्वस्य विश्वकर्मा विचिन्त्य तु ।
सभां प्रचक्रमे कर्तुं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १८
अभिप्रायेण पार्थानां कृष्णस्य च महात्मनः ।
पुण्येऽहनि महातेजाः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ १९
तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठान्पायसेन सहस्रशः ।
धनं बहुविधं दत्वा तेभ्य एव च वीर्यवान् ॥ २०
सर्वर्तुगुणसंपन्नां दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
दशकिष्कुसहस्रां तां मापयामास सर्वतः ॥ २१

इति श्रीमहा० सभाप० सभाक्रियापर्वणि सभास्थाननिर्णये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशंपायन उवाच ।
उषित्वा खाण्डवप्रस्थे सुखवासं जनार्दनः ।
पार्थैः प्रीतिसमायुक्तैः पूजनार्होभिपूजितः ॥ १
गमनाय मतिं चक्रे पितुर्दर्शनलालसः ।
धर्मराजमथामन्त्र्य पृथां च पृथुलोचनः ॥ २
ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना जगद्वन्द्यः पितृष्वसुः ।
स तया मूर्ध्न्युपाघ्रातः परिष्वक्तश्च केशवः ॥ ३
ददर्शानन्तरं कृष्णो भगिनीं स्वां महायशाः ।
तामुपेत्य हृषीकेशः प्रीत्या बाष्पसमन्वितः ॥ ४
अर्थ्यं तथ्यं हितं वाक्यं लघुयुक्तमनुत्तरम् ।
उवाच भगवान्भद्रां सुभद्रां भद्रभाषिणीम् ॥ ५
तया स्वजनगामीनि श्रावितो वचनानि सः ।
संपूजितश्चाप्यसकृच्छिरसा चाभिवादितः ॥ ६
तामनुज्ञाय वार्ष्णेयः प्रतिनन्द्य च भामिनीम् ।
ददर्शानन्तरं कृष्णां धौम्यं चापि जनार्दनः ॥ ७

---

संदध्यौ विचारितवान् ॥ ९ ॥ हे दैतेय हे दानव ॥ ११ ॥ आसुरान्मानुषानित्युपलक्षणम् । देवगन्धर्वादीनामप्यभिप्रायान् । लेपचित्रे लेख्यचित्रे च चतुर्दशभुवनान्तरस्थतत्तज्जातीयस्वाभाविकनानाविधलीलाप्रदर्शनेन मनोवृत्तीः पश्येम । यद्दर्शनेन ब्रह्माण्डान्तरवर्ति सर्वं वस्तुजातं दृष्टप्रायं भवतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ विमानप्रतिमेति नाम विमानसदृशीं वा ॥ १४ ॥ पूर्वदेवो वृषपर्वा दानवः तस्य चरितं विन्दुसरसि यज्ञकरणादि ॥ १७ ॥ आश्वस्य स्वस्थचित्तो भूत्वा । प्रचक्रमे आरब्धवान् ॥ १८ ॥ किष्कुर्हस्तः । सर्वतश्चतुर्दिक्षु ॥ २१ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

उषित्वेति ॥ १ ॥ अर्थ्यं अर्थादनपेतम् । तथ्यं सत्यम् । लघु स्वल्पाक्षरं युक्तं युक्तिमत् अत एवानुत्तरं पूर्वपक्षवदप्रत्याख्येयम् । 'तथ्यं पथ्यं हितं वाक्यं गुरु स्वल्पाक्षरं मृदु' इति पाठे पथ्यं सन्मार्गादनपेतं गुरु बह्वर्थम् ॥ ५ ॥ स्वजनगामीनि मात्रादिषु स्वबान्धवेषु कुशलसंदेशरूपाणि ॥ ६ ॥ भामिनीं दीप्तिमतीं भाविनीमिति पाठे सद्भावयुक्ताम् ॥ ७ ॥

ववन्दे च यथान्यायं धौम्यं पुरुषसत्तमः ।
द्रौपदीं सान्त्वयित्वा च आमन्त्र्य च जनार्दनः ८
भ्रातृनभ्यगमद्धीमान्पार्थेन सहितो बली ।
भ्रातृभिः पञ्चभिः कृष्णो वृतः शक्र इवामरैः॥ ९
यात्राकालस्य योग्यानि कर्माणि गरुडध्वजः ।
कर्तुकामः शुचिर्भूत्वा स्नातवान्समलंकृतः ॥ १०
अर्चयामास देवांश्च द्विजांश्च यदुपुङ्गवः ।
माल्यजाप्यनमस्कारैर्गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ ११
स कृत्वा सर्वकार्याणि प्रतस्थे तस्थुषां वरः ।
उपेत्य स यदुश्रेष्ठो बाह्यकक्षाद्विनिर्गतः ॥ १२
स्वस्तिवाच्यार्हतो विप्रान्दधिपात्रफलाक्षतैः ।
वसु प्रदाय च ततः प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ १३
काञ्चनं रथमास्थाय तार्क्ष्यकेतनमाशुगम् ।
गदाचक्रासिशार्ङ्गाद्यैरायुधैरावृतं शुभम् ॥ १४
तिथावप्यथ नक्षत्रे मुहूर्ते च गुणान्विते ।
प्रययौ पुण्डरीकाक्षः शैब्यसुग्रीववाहनः ॥ १५
अन्वारुरोह चाप्येनं प्रेम्णा राजा युधिष्ठिरः ।
अपास्य चास्य यन्तारं दारुकं यन्तृसत्तमम् ॥१६
अभीषून्संप्रजग्राह स्वयं कुरुपतिस्तदा ।
उपारुह्यार्जुनश्चापि चामरव्यजनं सितम् ॥ १७
रुक्मदण्डं बृहद्बाहुर्विदुधाव प्रदक्षिणम् ।
तथैव भीमसेनोपि यमाभ्यां सहितो बली ॥१८
पृष्ठतोऽनुययौ कृष्णमृत्विक्पौरजनैः सह ।
स तथा भ्रातृभिः सर्वैः केशवः परवीरहा ॥ १९
अन्वीयमानः शुशुभे शिष्यैरिव गुरुः प्रियैः ।
पार्थमामन्त्र्य गोविन्दः परिष्वज्य सुपीडितम् २०
युधिष्ठिरं पूजयित्वा भीमसेनं यमौ तथा ।
परिष्वक्तो भृशं तैस्तु यमाभ्यामभिवादितः ॥२१

ववन्दे चेति । पुरुषसत्तमः पुरुषेषु अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयेषु पञ्चसु । आद्यो व्यवहारतः सत्यः । उत्तरोत्तरेषां तु पूर्वपूर्वाधिष्ठानत्वात् तत्तदपेक्षया सत्यतरत्वम । पुच्छं ब्रह्म तु षष्ठं तेषामधिष्ठानभूतं मोक्षेप्यनाच्यत्वा[त्स]त्तमः । ननु कथं सत्तमे ' अस्थूलमनणु निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' इत्यादिश्रुतेः । सर्वविशेषशून्ये नामरूपवन्दनादिक्रियायोगो घटेतेति चेत् । अत्र ब्रूमः । ' कौलिके प्रतिमाद्वारा चैत्रे भोग इवेशता । असङ्गे भूम्नि जीवौघकल्पितोपाधियोगतः ' ॥ अनादौ संसारे जीवेश्वरविभागस्याप्यनादित्वाद्रज्वां भुजङ्ग इव जीवौघस्याविद्यया शुद्धेपि चिदात्मनि ईशसूत्रादिकं कल्पितम् । इदमेव ब्रह्मणः शरीरमिति । यथा कौलिकः प्रतिमां कृत्वा इदमेव चैत्रस्य शरीरमिति भावयति तद्वत् । यथा च प्रतिमाद्वारा चैत्रस्य भोगो भवत्येवं शुद्धायामपि चिति जीवौघकल्पितोपाधिद्वारा ईशनादिकं भवति । एतावांस्तु विशेषः । जीवस्य स्वाविद्याकल्पितं शरीरान्तरमस्तीति प्रतिमानिमित्तकोपि भोगः स्वदेहावच्छेदेनैव जायते न प्रतिमावच्छेदेन । चितस्तु तदभावाद्विभुत्वाच्च परकल्पितोपाध्यवच्छेदेनैव नियन्तृत्वादिकं भवति । तच्चाकर्मजत्वाच्चितौ न संसृज्यते । यथा जीवे भोगः यथा वा कल्पितसर्पगतं भीषणत्वं रज्ज्वाम् । एवं च व्यवहारतः संसारस्याद्यन्तशून्यत्वात् तत्कारणभूतस्य ईशादेरपि तथात्वं वक्तव्यं किमुत ईशादिकारणभूतायाः कृष्णमूर्तेः । तथा हि बीजाङ्कुरतरूपमेषु ईशसूत्रविराट्सु अनन्तबीजगर्भफलोपमः श्रीकृष्णः अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक इति प्रसिद्धम् । अयमेव श्रीमच्छंकरभगवत्पादैर्वेदान्तसारे वनवृक्षदृष्टान्तेन समष्टिव्यष्टिरूपेण स्थूलसूक्ष्मकारणानि प्रतिपाद्य समष्टिवनदृष्टान्तेन प्रतिपादितः । शास्त्रेपि 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'इत्यत्र 'य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद' इति नामरूपवन्त आदित्यमण्डलान्तर्वर्तिनं नारायणमुदाहृत्य 'तस्य ऋक् च साम च गेष्णौ' इति नारायणस्य कृत्स्नप्रपञ्चात्मके ऋक्सामे अंगुलिपर्वणी इत्युक्तम् । ततोऽनन्तकोटिब्रह्माण्डाश्रयत्वं सूर्याकृतेर्ब्रह्मणो युज्यते । अयमेव नन्दनन्दनो महामायावी सुप्तिप्रलयकैवल्येषु कर्मोपरमे सति जगदिन्द्रजालं स्वमूर्त्या सह तिरोधायाशास्तममस्ताविशेषं ब्रह्मात्मानं प्रापयति कर्मशेषसत्त्वे पुनरुद्भावयति च । तत्रश्चास्य स्वाविद्याभावादसंगत्वं परविद्याकल्पितोपाधिसंबन्धात्प्रतिमाया भोजकत्ववत् नियन्तृत्वं अविद्यायाश्चाद्यन्तशून्यत्वान्नित्यत्वं चेति सिद्धम् । ततश्चासंगत्वाद्युक्तमस्य पुरुषसत्तमत्वं जनगमयितृत्वरूपजनार्दनत्वेन नियन्तृत्वं नियन्तृत्वादेव च 'उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्'इति वक्ष्यमाणरीत्या जनशिक्षार्थं धौम्यवन्दनेन वैदिकमर्यादापारिपालकत्वं द्रौपदीसान्त्वनेन च सुहृदनुग्राहकत्वं चेत्यादि सर्वं समञ्जसम् । अयमेवार्थो मङ्गलश्लोकाभ्यामस्माभिः संगृहीतो न विस्मर्तव्यः ॥ ८ ॥ भ्रातॄन् पितृष्वसुः पुत्रान् ॥ ९ ॥ तस्थुषां स्थितिमतां वरः सनातन इत्यर्थः ॥ १२ ॥ अभीषून् रथाश्वरश्मीन् ॥१७॥

योजनार्धमथो गत्वा कृष्णः परपुरंजयः ।
युधिष्ठिरं समामन्त्र्य निवर्तस्वेति भारत ॥ २२
ततोभिवाद्य गोविन्दः पादौ जग्राह धर्मवित् ।
उत्थाप्य धर्मराजस्तु मूर्ध्न्युपाघ्राय केशवम् ॥ २३
पाण्डवो यादवश्रेष्ठं कृष्णं कमललोचनम् ।
गम्यतामित्यनुज्ञाप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २४
ततस्तैः संविदं कृत्वा यथावन्मधुसूदनः ।
निवर्त्य च तथा कृच्छ्रात्पाण्डवान्सपदानुगान् ॥
स्वां पुरीं प्रययौ हृष्टो यथा शक्रोऽमरावतीम् ।
लोचनैरनुजग्मुस्ते तमादृष्टिपथात्तदा ॥ २६
मनोभिरनुजग्मुस्ते कृष्णं प्रीतिसमन्वयात् ।
अतृप्तमनसामेव तेषां केशवदर्शने ॥ २७
क्षिप्रमन्तर्दधे शौरिश्चक्षुषां प्रियदर्शनः ।
अकामा एव पार्थास्ते गोविन्दगतमानसाः ॥ २८
निवृत्योपययुस्तूर्णं स्वं पुरं पुरुषर्षभाः ।
स्यन्दनेनाथकृष्णोपि त्वरितं द्वारकामगात् ॥ २९
सात्वतेन च वीरेण पृष्ठतो यायिना तदा ।
दारुकेण च सूतेन सहितो देवकीसुतः ।
स गतो द्वारकां विष्णुर्गरुत्मानिव वेगवान् ॥ ३०

वैशंपायन उवाच ।

निवृत्य धर्मराजस्तु सह भ्रातृभिरच्युतः ।
सुहृत्परिवृतो राजा प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ ३१
विसृज्य सुहृदः सर्वान्भ्रातॄन्पुत्रांश्च धर्मराट् ।
मुमोद पुरुषव्याघ्रो द्रौपद्या सहितो नृप ॥ ३२
केशवोपि मुदा युक्तः प्रविवेश पुरोत्तमम् ।
पूज्यमानो यदुश्रेष्ठैरुग्रसेनमुखैस्तथा ॥ ३३
आहुकं पितरं वृद्धं मातरं च यशस्विनीम् ।
अभिवाद्य बलं चैव स्थितः कमललोचनः ॥ ३४
प्रद्युम्नसाम्बनिशठांश्चारुदेष्णं गदं तथा ।
अनिरुद्धं च भानुं च परिष्वज्य जनार्दनः ॥ ३५
स वृद्धैरभ्यनुज्ञातो रुक्मिण्या भवनं ययौ ।
मयोपि स महाभागः सर्वरत्नविभूषिताम् ।
विधिवत्कल्पयामास सभां धर्मसुताय वै ॥ ३६

इति श्रीमहाभा० सभाप० सभाक्रियाप० भगवद्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

वैशंपायन उवाच ।

अथाब्रवीन्मयः पार्थमर्जुनं जयतां वरम् ।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि पुनरेष्यामि चाप्यहम् १
उत्तरेण तु कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।
यियक्षमाणेषु पुरा दानवेषु मया कृतम् ॥ २
चित्रं मणिमयं भाण्डं रम्यं बिन्दुसरः प्रति ।
सभायां सत्यसंधस्य यदासीद्वृषपर्वणः ॥ ३
आगमिष्यामि तद्गृह्य यदि तिष्ठति भारत ।
ततःसभां करिष्यामि पाण्डवस्य यशस्विनीम् ४
मनः प्रह्लादिनीं चित्रां सर्वरत्नविभूषिताम् ।
अस्ति बिन्दुसरस्युग्रा गदा च कुरुनन्दन ॥ ५
निहिता भावयाम्येवं राज्ञा हत्वा रणे रिपून् ।
सुवर्णबिन्दुभिश्चित्रा गुर्वी भारसहा दृढा ॥

---

सुपीडितं गाढं यथा भवति तथा परिष्वज्य ॥ २० ॥ संविदं पुनरेष्यामीति निश्चयं कृत्वा ॥ २५ ॥ लोचनैरिति सर्वेन्द्रियाग्राह्यमपि परमात्मानं प्रथमं प्रतिमादिषु संचिन्त्य मनोभिरिति पश्चात्प्रतिमां त्यक्त्वा मनसैव चिन्तयेदित्युक्तम् ॥२६॥ मनसो लये शौरिर्मानसमूर्तिरूपोऽन्तर्दधे अत एव ते अकामाः निर्विकल्पसमाधिस्थाः 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि श्रिताः।अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत' इति श्रुतेः यतो गोविन्दे निर्विकल्पे ब्रह्मणि गतं लीनं मानसं येषां ते तथा भूताः ॥२८॥ निवृत्येति समाधिसुखानुभवानन्तरं व्युत्थानं ध्वनितम् ॥ २९ ॥ स गत्वेति पाठे गत्वा शीघ्रगमनशीलः गमेः'अन्येभ्योपि दृश्यते' इति क्वनिप् ।अनुदात्तोपदेशेति अनुनासिकलोपे ह्रस्वस्येति तुगागमः ॥ ३० ॥ कल्पयामास एवमेवं करिष्यामीति मनसि विचारयामासेत्यर्थः ॥ ३६ ॥ इति सभा० नैलकण्ठीये भारतभा० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

अथेति ॥१॥ भाण्डमिव भाण्डं मूलधनं विचित्ररङ्गोपादानद्रव्यं कृतं हिङ्गुलादिवन्निर्मितं मणिमयं मणिप्रचुरं येन। कृत्रिममयूरादीनां चन्द्रकलोचनादीनि क्रियन्ते ॥३॥ राज्ञा वृषपर्वणा निहिता सा इदानीमप्यस्तीति भावयीत योज्यम् ततोऽर्वाग्भीमसेनं विना तदुद्यमनयोग्यस्य पुंसोऽजातत्वादिति भावः। भारसहा गदान्तरेण संनिपाते सत्यविचाल्या यतो दृढा ॥६॥

सा वै शतसहस्रस्य संमिता शत्रुघातिनी ।
अनुरूपा च भीमस्य गाण्डीवं भवतो यथा ॥ ७
वारुणश्च महाशङ्खो देवदत्तः सुघोषवान् ॥
सर्वमेतत्प्रदास्यामि भवते नात्र संशयः ॥ ८
इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थं प्रागुदीचीं दिशं गतः ।
अथोत्तरेण कैलासान्मैनाकं पर्वतं प्रति ॥ ९
हिरण्यशृङ्गः सुमहान्महामणिमयो गिरिः ।
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥ १०
द्रष्टुं भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः ।
यत्रेष्टं सर्वभूतानामीश्वरेण महात्मना ॥ ११
आहृताः क्रतवो मुख्याः शतं भरतसत्तम ।
यत्र यूपा मणिमयाश्चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥ १२
शोभार्थं विहितास्तत्र न तु दृष्टान्ततः कृताः ।
यत्रेष्ट्वा स गतः सिद्धिं सहस्राक्षः शचीपतिः १३
यत्र भूतपतिः सृष्ट्वा सर्वाँल्लोकान्सनातनः ।
उपास्यते तिग्मतेजाः स्थितो भूतैः सहस्रशः १४
नरनारायणौ ब्रह्मा यमः स्थाणुश्च पञ्चमः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ १५
यत्रेष्टं वासुदेवेन सत्रैर्वर्षगणान्बहून् ।
श्रद्दधानेन सततं धर्मसंप्रतिपत्तये ॥ १६
सुवर्णमालिनो यूपांश्चैत्यांश्चाप्यतिभास्वरान् ।
ददौ यत्र सहस्राणि प्रयुतानि च केशवः ॥ १७
तत्र गत्वा स जग्राह गदां शङ्खं च भारत ।
स्फाटिकं च सभाद्रव्यं यदासीद्वृषपर्वणः ॥ १८
किंकरैः सह रक्षोभिर्यदरक्षन्महद्धनम् ।
तदगृह्णान्मयस्तत्र गत्वा सर्वं महासुरः ॥ १९
तदाहृत्य च तां चक्रे सोऽसुरोऽप्रतिमां सभाम् ।
विश्रुतां त्रिषु लोकेषु दिव्यां मणिमयीं शुभाम् ॥
गदां च भीमसेनाय प्रवरां प्रददौ तदा ।
देवदत्तं चार्जुनाय शङ्खप्रवरमुत्तमम् ॥ २१
यस्य शङ्खस्य नादेन भूतानि प्रचकम्पिरे ।
सभा च सा महाराज शातकुम्भमयद्रुमा ॥ २२
दशकिष्कुसहस्राणि समन्तादायताभवत् ।
यथा वह्नेर्यथार्कस्य सोमस्य च यथा सभा ॥ २३
भ्राजमाना तयात्यर्थं दधार परमं वपुः ।
अभिघ्नतीव प्रभया प्रभामर्कस्य भास्वराम् ॥ २४
प्रबभौ ज्वलमानेव दिव्या दिव्येन वर्चसा ।
नवमेघप्रतीकाशा दिवमावृत्य विष्ठिता ।
आयता विपुला रम्या विपाप्मा विगतक्लमा २५
उत्तमद्रव्यसंपन्ना रत्नप्राकारतोरणा ।
बहुचित्रा बहुधना सुकृता विश्वकर्मणा ॥ २६
न दाशार्ही सुधर्मा वा ब्रह्मणो वाथ तादृशी ।
सभारूपेण संपन्ना यां चक्रे मतिमान्मयः ॥ २७
तां स्म तत्र मयेनोक्ता रक्षन्ति च वहन्ति च ।
सभामष्टौ सहस्राणि किंकरा नाम राक्षसाः २८
अन्तरिक्षचरा घोरा महाकाया महाबलाः ।
रक्ताक्षाः पिङ्गलाक्षाश्च शुक्तिकर्णाः प्रहारिणः२९
तस्यां सभायां नलिनीं चकाराप्रतिमां मयः ।
वैडूर्यपत्रविततां मणिनालमयाम्बुजाम् ॥ ३०

सा वै शतसहस्रस्य लक्षस्य गदालक्षेण तुल्येत्यर्थ । स्वर्णभारसहस्रस्येति पाठे तु 'तुला पलशतं प्राहुर्भार स्याद्विंशतिस्तुल' इति शास्त्रोक्तमानेन गुर्वीत्यर्थ ॥७॥ प्रागुदीचीमैशानीं उत्तरेण उत्तरत ॥ ९ ॥ हिरण्यशृङ्गो मैनाकावयवभूतो गिरि ॥ १० ॥ ईश्वरेण प्रजापतिना ॥ ११ ॥ दृष्टान्तत शास्त्रसिद्धान्तत ॥ १३ ॥ भूतपतिर्महादेव सृष्ट्वा सृष्टिकर्ता । अत्रापि गत्वेतिवत् क्तनिप् ॥ १४ ॥ शिष्टसंप्रतिपत्तये इति पाठेपि शिष्टान् धर्मानुष्ठाने प्रवर्तयितुमित्यर्थ ॥ १६ ॥ स्फाटिकं स्फटिक इत्युपलक्षण नानारत्नमयम् । सितसारङ्गपिशङ्गादिवर्णाना महामणीना चूर्णानि यथापेक्षितं मिश्राणि शुकपारावतमयूरजपादाडिमजम्बूफलवर्णाद्यवान्तरामिश्ररङ्गरचनार्थं वृषपर्वयागे सभार्थं संपादितं तत्रोपयुक्तावशिष्टं आनीतवानित्यर्थ ॥ १८ ॥ किंकरै रक्षसा जातिविशेषै. ॥ १९ ॥ दिव्या दिव्येन वर्चसा अलौकिकेन च तेजसा नवमेघप्रतीकाशा नवभिर्मेघैरिव मेघैश्चित्रक्षेत्र चमत्कारामृतवर्षिभि शृङ्गारादिभी रसैस्तत्तच्चित्रैष्वभिनीय प्रदर्शितै शोभमाना दिव आवृत्य व्याप्य अभिभूयेति यावत् विष्ठिता विशेषेण स्थिता विपाप्मा पापघ्नी दिव्यतेज - संपन्नत्वात् विगतक्लमा श्रमच्छेदिनी । व्यूढास्त्वत्र विचित्र मणिवेदिकेति पाठं कल्पयन्ति ॥ २५ ॥ प्राकार परिधि - भित्ति तोरणानि बहिर्द्वाराणि । प्राकारमालिनीत्यपि पाठः ॥ २६ ॥ दश अहिंसादीन् यमनियमान् अर्हन्ति ते दशार्हा भगवद्भक्ता बलिबाणप्रभृतय तेषामियं दाशार्ही । सात्वतीति पाठे सात्पतरमात्मा सोस्त्येषा ते । सात्वन्तस्तेषामियं सात्वतीति स एवार्थ ॥ २७ ॥ वहन्तीति सभाया. जंगमत्वमुक्तम् । अत एव विमानप्रतिमेति नाम तस्या युक्तम् ॥ २८ ॥ नलिना कमलवती सरसीं वैदूर्यै इन्द्रनीलमणिमयै पत्रैर्व्याप्ता मणिनालमयाम्बुजा मणिमयनाला कनकाम्बुजा च मय शिल्पिनि दैत्याना करभेऽश्वतरेपि च' इति विश्व. 'करभः कलभो वाष्टापदे' इति च विश्व । मणिनालोज्ज्वलाम्बुजामिति पाठे तु मणिमयानि नालेषु विकस्वराणि अम्बुजानि यस्या सा तथा । मणिमयनालेषु स्वच्छाम्बुजा वा ॥३०॥

पद्मसौगन्धिकवतीं नानाद्विजगणायुताम् ।
पुष्पितैः पङ्कजैश्चित्रां कूर्मैर्मत्स्यैश्च काञ्चनैः ।
चित्रस्फटिकसोपानां निष्पङ्कसलिलां शुभाम् ३१
मन्दानिलसमुद्धूतां मुक्ताबिन्दुभिराचिताम् ।
महामणिशिलापट्टबद्धपर्यन्तवेदिकाम् ॥ ३२
मणिरत्नाचितां तां तु केचिदभ्येत्य पार्थिवाः ।
दृष्ट्वापि नाभ्यजानन्त तेऽज्ञानात्प्रपतन्त्युत ॥ ३३
तां सभामभितो नित्यं पुष्पवन्तो महाद्रुमाः ।
आसन्नानाविधा लोलाः शीतच्छाया मनोरमाः ॥ ३४
काननानि सुगन्धीनि पुष्करिण्यश्च सर्वशः ।
हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३५
जलजानां च पद्मानां स्थलजानां च सर्वशः ।
मारुतो गन्धमादाय पाण्डवान्स्म निषेवते ॥ ३६
ईदृशीं तां सभां कृत्वा मासैः परिचतुर्दशैः ।
निष्ठितां धर्मराजाय मयो राजन्न्यवेदयत् ॥ ३७

इति श्रीमहाभा० सभाप० सभाक्रियापर्वणि सभानिर्माणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

वैशंपायन उवाच ।
ततः प्रवेशनं तस्यां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।
अयुतं भोजयित्वा तु ब्राह्मणानां नराधिपः ॥ १
साज्येन पायसेनैव मधुना मिश्रितेन च ।
भक्ष्यैर्मूलैः फलैश्चैव मांसैर्वाराहहारिणैः ।
कृसरेणाथ जीवन्त्या हविष्येण च सर्वशः ॥ २
मांसप्रकारैर्विविधैः खाद्यैश्चापि तथा नृप ।
चोष्यैश्च विविधै राजन्पेयैश्च बहुविस्तरैः ॥ ३
अहतैश्चैव वासोभिर्माल्यैरुच्चावचैरपि ।
तर्पयामास विप्रेन्द्रान्नानादिग्भ्यः समागतान् ॥ ४
ददौ तेभ्यः सहस्राणि गवां प्रत्येकशः पुनः ।
पुण्याहघोषस्तत्रासीद्दिवस्पृगिव भारत ॥ ५
वादित्रैर्विविधैर्दिव्यैर्गन्धैरुच्चावचैरपि ।
पूजयित्वा कुरुश्रेष्ठो दैवतानि निवेश्य च ॥ ६
तत्र मल्ला नटा झल्लाः सूता वैतालिकास्तथा ।
उपतस्थुर्महात्मानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ७
तथा स कृत्वा पूजां तां भ्रातृभिः सह पाण्डवः ।
तस्यां सभायां रम्यायां रेमे शक्रो यथा दिवि ८
सभायामृषयस्तस्यां पाण्डवैः सह आसते ।
आसांचक्रुर्नरेन्द्राश्च नानादेशसमागताः ॥ ९
असितो देवलः सत्यः सर्पिर्माली महाशिराः ।
अर्वावसुः सुमित्रश्च मैत्रेयः शुनको बलिः ॥ १०

---

पद्मसौगन्धिकवतीं । पद्माकारैः सौगन्धिकैः पद्मरागैर्युक्ताम् । पद्मरागमयपद्मामित्यर्थः । 'सौगन्धिकं तु कल्हारे पद्मरागे च' इति मेदिनी । हैमसौगन्धिकवतीमिति पाठः स्पष्टार्थः । पुष्पितैर्विकसितैः । निष्पङ्केति विद्यमानमपि सलिलमतिस्वच्छत्वात् आशयरूपेणैव प्रकाशते न स्वरूपेण स्फटिकजपाकुसुमवत् । अनेन तत्र स्थलभ्रमकारणमुक्तम् ॥ ३१ ॥ मन्दानिलेन समुद्धूतां समुच्छलितबिन्दुम् । अत एव सर्वतः प्रसृतनालिनपत्रेषु मुक्तातुल्यैर्जलबिन्दुभिः आचितां व्याप्ताम् । महामणिमयाः शिलापट्टाः दीर्घचतुरस्रपाषाणाः तैर्बद्धाः पर्यन्ते समीपे चतुर्दिक्षु वेदिकाः यस्यास्ताम् ॥ ३२ ॥ मणिरत्नाचितां तां नलिनीं तु अभ्येत्य अधिगत्य ज्ञात्वा । अयं भावः अदृष्टपूर्वैरतिभास्वरैः पत्रनालपुष्पैराच्छन्नत्वात्सलिलस्य काच सम्यांवैदूर्यमणिमय्यां वा भुवि कृत्रिमाण्येव कमलादीनीति भ्रमान्मणिरत्नचिताभूमिरेवेयमिति तां नलिनीं ज्ञात्वा स्थलभ्रमाज्जले पतन्तीति ॥ ३३ ॥ तां सभां अभित इति कर्मप्रवचनीययोगात् द्वितीया । तस्याः सभायाः समन्तत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ पुष्करिण्यस्तटाकाः ॥ ३५ ॥ परिचतुर्दशैः चतुर्दशाधिकैः ॥ ३७ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभा० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

तत इति ॥ १ ॥ कृसरेण तिलमिश्रौदनेन । 'ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः । तिलकल्कान्विनिक्षिप्य श्रितो वा कृसरो भवेत्' इति गृह्यविदः । जीवन्त्या पाकविशेषेण । ओदनस्यैव यवनभाषया 'बिरिंजि' इत्युच्यते शाकविशेषेणेत्यन्ये ॥ २ ॥ अहतैः अनुपभुक्तैः ॥ ४ ॥ दैवतानि द्वारादिषु स्थानेषु पितामहादीनि । 'द्वारे पितामहं विद्यात्' इति गृह्यात् ॥ ६ ॥ मल्लाः बाहुयोधिनः झल्लाः लकुटयोधिनः ॥ ७ ॥

बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुकः ।
सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम् ॥
तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो लोमहर्षणः ।
अप्सुहोम्यश्च धौम्यश्च अणीमाण्डव्यकौशिकौ ॥
दामोष्णीषस्त्रैवलिश्च पर्णादो घटजानुकः ।
मौञ्जायनो वायुभक्षः पाराशर्यश्च सारिकः ॥ १३
बलिवाकः सिनीवाकः सत्यपालः कृतश्रमः ।
जातूकर्णः शिखावांश्च आलम्बः पारिजातकः ॥
पर्वतश्च महाभागो मार्कण्डेयो महामुनिः ।
पवित्रपाणिः सावर्णो भालुकिर्गालवस्तथा ॥ १५
जङ्घाबन्धुश्च रैभ्यश्च कोपवेगस्तथा भृगुः ।
हरिबभ्रुश्च कौण्डिन्यो बभ्रुमाली सनातनः ॥ १६
काक्षीवानौशिजश्चैव नाचिकेतोऽथ गौतमः ।
पैङ्ग्यो वराहः शुनकः शाण्डिल्यश्च महातपाः १७
कुक्कुरो वेणुजङ्घोऽथ कालापः कठ एव च ।
मुनयो धर्मविद्वांसो धृतात्मानो जितेन्द्रियाः १८
एते चान्ये च बहवो वेदवेदाङ्गपारगाः ।
उपासते महात्मानं सभायामृषिसत्तमाः ॥ १९
कथयन्तः कथाः पुण्या धर्मज्ञाः शुचयोऽमलाः ।
तथैव क्षत्रियश्रेष्ठा धर्मराजमुपासते ॥ २०
श्रीमान्महात्मा धर्मात्मा मुञ्जकेतुर्विवर्धनः ।
संग्रामजिद्दुर्मुखश्च उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ २१
कक्षसेनः क्षितिपतिः क्षेमकश्चापराजितः ।
कम्बोजराजः कमठः कम्पनश्च महाबलः ॥ २२
सततं कम्पयामास यवनानेक एव यः ।
बलपौरुषसंपन्नान्कृतास्त्रानमितौजसः ।
यथासुरान्कालकेयान्देवो वज्रधरस्तथा ॥ २३
जटासुरो मद्रकानां च राजा
कुन्तिः पुलिन्दश्च किरातराजः ।
तथाङ्गवाङ्गौ सह पुण्ड्रकेण
पाण्ड्योड्रराजौ च सहान्ध्रकेण॥ २४
अङ्गो वङ्गः सुमित्रश्च शैब्यश्चामित्रकर्शनः ।
किरातराजः सुमना यवनाधिपतिस्तथा ॥ २५
चाणूरो देवरातश्च भोजो भीमरथश्च यः ।
श्रुतायुधश्च कालिङ्गो जयसेनश्च मागधः ॥ २६
सुकर्मा चेकितानश्च पुरुश्चामित्रकर्शनः ।
केतुमान्वसुदानश्च वैदेहोऽथ कृतक्षणः ॥ २७
सुधर्मा चानिरुद्धश्च श्रुतायुश्च महाबलः ।
अनूपराजो दुर्धर्षः क्रमजिच्च सुदर्शनः ॥ २८
शिशुपालः ससुतः करूषाधिपतिस्तथा ।
वृष्णीनां चैव दुर्धर्षाः कुमारा देवरूपिणः ॥ २९
आहुको विपृथुश्चैव गदः सारण एव च ।
अक्रूरः कृतवर्मा च सत्यकश्च शिनेः सुतः ॥ ३०
भीष्मकोऽथाकृतिश्चैव द्युमत्सेनश्च वीर्यवान् ।
केकयाश्च महेष्वासा यज्ञसेनश्च सौमकिः ॥ ३१
केतुमान्वसुमांश्चैव कृतास्त्रश्च महाबलः ।
एते चान्ये च बहवः क्षत्रिया मुख्यसंमताः ॥३२
उपासते सभायां स्म कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अर्जुनं ये च संश्रित्य राजपुत्रा महाबलाः ॥ ३३
अशिक्षन्त धनुर्वेदं रौरवाजिनवाससः ।
तत्रैव शिक्षिता राजन्कुमारा वृष्णिनन्दनाः ॥३४
रौक्मिणेयश्च साम्बश्च युयुधानश्च सात्यकिः ।
सुधर्मा चानिरुद्धश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ३५
एते चान्ये च बहवो राजानः पृथिवीपते ।
धनंजयसखा चात्र नित्यमास्ते स्म तुम्बुरुः ॥३६
उपासते महात्मानमासीनं सप्तविंशतिः ।
चित्रसेनः सहामात्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ३७
गीतवादित्रकुशलाः साम्यतालविशारदाः ।
प्रमाणेऽथ लये स्थाने किंनराः कृतनिश्रमाः ॥ ३८
संचोदितास्तुम्बुरुणा गन्धर्वसहितास्तदा ।
गायन्ति दिव्यतानैस्ते यथान्यायं मनस्विनः ॥३९
पाण्डुपुत्रानृषींश्चैव रमयन्त उपासते ।
तस्यां सभायामासीनाः सुव्रताः सत्यसंगराः ४०
दिवीव देवा ब्रह्माणं युधिष्ठिरमुपासते ॥ ४१

*इति श्री महाभा० सभापर्वणि सभाक्रियापर्वणि सभाप्रवेशो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥*

समाप्तं सभाक्रियापर्व ।

---

कालकेयाः कालकाया अपत्यानि असुराः ॥२३॥ रौरवाजिनवाससः मृगचर्मपरीधानाः॥३४॥ सप्तविंशतिश्चित्रसेनाद्या गन्धर्वगणाः ॥३७॥ साम्यं तालविशेषः शंपेत्यपि पाठः शंपा दक्षिणहस्तगृहीततालविशेषः 'शंपा दक्षिणपातस्तु वामे ताल इति स्मृतः' इत्युक्तेः । प्रमाणे गीतवाद्यतालानां ध्वनिसाम्ये लये द्रुतमध्यविलम्बिते स्थाने उरःशिरःकण्ठादौ ॥ ३८ ॥

इति सभाप० नैलकण्ठीये भारतभा० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

# लोकपालसभाख्यानपर्व ।

## ५

वैशंपायन उवाच ।

अथ तत्रोपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च भारत ॥ १

वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुरगणार्चितः ।
इतिहासपुराणज्ञः पुराकल्पविशेषवित् ॥ २
न्यायविद्धर्मतत्त्वज्ञः षडङ्गविदनुत्तमः ।
ऐक्यसंयोगनानात्वसमवायविशारदः ॥ ३

५

अथ तत्रोपविष्टेष्विति । अत्र नारदो युधिष्ठिरं प्रश्नमुखेन राजधर्माननुशास्ति ॥ १ ॥ तत्र शास्तुः स्वरूपं तावत् व्याचष्टे । अस्यापि कणिकतुल्यता माभूदिति वेदोपनिषदां वेत्तेति । वेदाःऋग्यजुःसामाथर्वाणः। उपनिषदो रहस्यविद्याश्चतुर्विधाः । तत्र कर्माङ्गावबद्धोपासनं 'उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः' इत्यादि शास्त्रविहितं कर्माङ्गेष्वश्वादिषु विराड्दृष्टिकरणम् । प्रतीकोपासनं 'अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः' इत्यादित्यादिमूर्तिषु ब्रह्मदृष्टिकरणम् । अहंग्रहोपासनं 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि'इति व्यतिहारेणात्मनो देवतायाश्चाभेदचिन्तनं ज्ञानं ब्रह्मात्मानुभवः । वेदानां कर्मप्रतिपादकानां तदन्तर्गतानामुपनिषदां च वेत्ता पाठतोऽर्थतश्च ज्ञाता । अतः एव ऋषिःगन्ता फलं प्रति वेदोक्तकृत्स्नफलभागी । कृतानुष्ठानत्वात् । अत एव सुरगणार्चितः इतिहासपुराणे प्रसिद्धे पुराकल्पः बहुकर्तृकमन्वाख्यानं 'देवासुरा संयता आसन्'इत्यादिकं वेदोक्तम् विशेषःएककर्तृकमन्वाख्यानं पारिक्रियाख्यं 'हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस' इत्यादि तस्य योगबलात् प्रत्यक्षदर्शी ॥२॥ न्यायः पञ्चाङ्गमधिकरणम् यथा 'विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। संगतिश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं विदुः' अत्र यूपस्य स्वरुं करोतीति वाक्यं विषयः । तत्र षष्ठी यूपसंबन्धीतिकर्तव्यतालक्षणार्था । उत यूपावयवलक्षणार्थेति संदेहो विशयः । एतावेव पूर्वोत्तरपक्षौ ज्ञेयौ । कल्पनालाघवानुग्रहादुत्तरः सिद्धान्तः । फलं अनुष्ठानभेदः । पूर्वपक्षे तक्षणाश्रीकरणादिना काष्ठान्तरं यूपसदृशं निर्मातव्यम् । सिद्धान्ते एकदेशस्य पृथक्करणमात्रमिति। इदमेव पञ्चकं मोक्षधर्मेषूक्तम् । 'सूक्ष्मं सांख्यं क्रमौ चोभौ निर्णयः सप्रयोजनः । पञ्चैतान्यनुजानीहि वाक्यमित्युच्यते बुधैः॥' इति सूक्ष्मं गहनार्थत्वाद्विषयः। सांख्यं एवमेवं वेति विचारः । क्रमः अतिक्रमः । सिद्धान्तस्य पूर्वपक्ष इत्यर्थः । निर्णयः सिद्धान्तः । प्रयोजनं फलमिति वाक्यं वाक्यार्थनिर्णयोपायः । एवं पूर्वोत्तरमीमांसाधिकरणानि न्यायः तद्वित् । धर्मज्ञः मन्वादिप्रणीतशास्त्रतत्त्वज्ञः । षडङ्गवित् । शिक्षा कल्पो व्याकरणं छंदोविचितिर्निरुक्तं ज्योतिषमिति षड्वेदाङ्गानि । अनुत्तमःअत्युत्कृष्टः । ऐक्यसंयोगनानात्वसमवायविशारदः । ऐक्यादित्रयं सर्वेष्वपि शास्त्रेषु समानम् । यथा मीमांसायां समिधो यजतीत्यादि प्रयाजाद्यङ्गवाक्यानां दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेतेति महावाक्येनैकवाक्यत्वमैक्यम् । संयोगनानात्वं संयोगपृथक्त्वम् । यथा दध्ना जुहोतीति वाक्यान्नित्यमपि दधि दध्नेन्द्रियकामस्येति वाक्यान्तरेणेन्द्रियार्थमपि पृथग्विधीयते तेन द्वयमपि युगपद्दध्ना साध्यत इति । समवायः एकस्मिन्कर्मण्यनेकेषां धर्माणां संनिपातः । यथा इष्टिपशुसोमात्मके राजसूये इष्टयादीनां दर्शादित्रिकद्वयस्येव साक्षात्परमापूर्वजनकत्वे उपनिपातः न त्वङ्गानामिव परंपरया परमापूर्वोपकारकत्वम्। यद्वा 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन' इति आत्मविविदिषोत्पादकापूर्वे वेदानुवचनादीनामेककार्यकारित्वलक्षणमैक्यम्। नन्वेककर्माङ्गत्वाभावे कथमेपामैक्यं अत आह। संयोगनानात्वेति । स्वस्ववाक्योत्पन्नानां पृथक्फलानामप्येषां संयोगपृथक्त्वन्यायेन विविदिषार्थत्वमपि युक्तमेवेत्यर्थः । नन्वेषां समुच्चितानामेककार्यकारित्वे समुच्चयासंभवः । राजसूयादीनां ब्राह्मणाद्यनुपयोगित्वात् । प्रत्येकं चेदितरवैयर्थ्यमित्याशंक्याह समवायविशारद इति । समवायः यथाधिकारंकर्मसंबन्धः । अयमर्थः ब्राह्मणादीनां राजसूयादिष्वनधिकारान्न तत्प्राप्तिः । विविदिषायाःपापनिवृत्तिफलकैर्नित्यैरेवोत्पत्तेर्न तदर्थं फलतो निषिद्धानां श्येनादीनां प्राप्तिः । अत एव हेतुद्वयात्पवित्रेष्ट्यादिकं काम्यमपि न निवार्यते। नित्यानामपि न सर्वेषां समुच्चयः । विविदिषाख्यदृष्टफलकत्वात् । तस्मान्न सर्वकर्मसमुच्चयो नापीतरवैयर्थ्यमिति । एवंरूप एव समुच्चयोत्र समवायशब्दार्थः । अस्मिंस्त्रये विशारदः विवेकसमर्थः । यद्वा ऐक्यं साधर्म्यात्पृथिव्यादीनां द्रव्यत्वेन रूपेण । संयोगनानात्वं असाधारणधर्मसंबन्धः तेन पृथिवीत्वजलत्वादिरूपेण भेदोपि। समवायः शरीरे पञ्चानामपि भूतानां मेलकः एतेषां तत्त्वं साधर्म्यं वैधर्म्यं संकरं च ज्ञातुं कुशल इत्यर्थः ॥ ३ ॥

वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान्नयवित्कविः ।
परापरविभागज्ञः प्रमाणकृतनिश्चयः ॥ ४
पञ्चावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित् ।
उत्तरोत्तरवक्ता च वदतोपि बृहस्पतेः ॥ ५
धर्मकामार्थमोक्षेषु यथावत्कृतनिश्चयः ।
तथा भुवनकोशस्य सर्वस्यास्य महामतिः ॥ ६
प्रत्यक्षदर्शी लोकस्य तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
सांख्ययोगविभागज्ञो निर्विवित्सुः सुरासुरान् ७
संधिविग्रहतत्त्वज्ञस्त्वनुमानविभागवित् ।
षाड्गुण्यविधियुक्तश्च सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ८

न केवलं ज्ञातुमेव कुशलः किं तु वक्तुमित्याह । वक्तेति । वक्तापि समानाधिकरण एवेत्याह प्रगल्भ इति । असंबद्धप्रलापी नेत्यर्थः । यतः मेधावी ऊहापोहकुशलः । तादृशोपि स्मृतिमान् । अधीतं न नाशितवानित्यर्थः । नयवित् दायविभागादिव्यवहारवित् । कविः अनागतदर्शी । परापरविभागज्ञः परापरयोर्ज्ञानकाण्डकर्मकाण्डयोर्विभागः यथायोग्यं शिष्येषु विभजनं तज्ज्ञः । यतः प्रमाणकृतनिश्चयः प्रमाणं प्रत्यक्षानुमानागमादि । तच्च द्विविधं लौकिकमलौकिकं च । आद्यं घटादिस्वर्गादिविषयम् । द्वितीयं निर्विशेषात्मवस्तुतत्त्वविषयम् । तथा हि अहंकारादिकमात्मनि सुषुप्त्यादावदृष्टत्वान्मिथ्येति तत्र प्रत्यक्षं सुप्तौ निर्विशेषत्वम् । तथा द्रष्टृदृश्यौ एकोपादानकौ भास्यभासकत्वात् प्रदीपघटवत् भास्यभासकौ च दृश्यद्रष्टारौ तस्मादेकोपादानकौ यौ न तथा तौ नैकोपादानकौ यथा शब्दघ्राणाविति व्यतिरेकतो वा साध्यसिद्धौ सत्याम् उपादानोपादेययोरभेदाद्द्रष्टृमात्रवस्तुतत्त्वमिति सिध्यति । अनुमानादप्यात्मनो निर्विशेषत्वं घटज्ञानं पटज्ञानमिति दृशिविशेषदर्शनानुभवस्य घटाकाशादिवदौपाधिकत्वात् । तथागमोपि आत्मनो निर्विशेषत्वे प्रसिद्धः 'अस्थूलमनणु निर्गुणं निष्क्रियम्' इत्यादि ॥ ४ ॥ नन्वनुमानबलात् चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षं यजमानः प्रस्तर इत्यादिरागमश्च शिथिलीक्रियते । अनुमानमपि नरशिरःकपालं शुचि प्राण्यङ्गत्वात् शङ्खवदित्यादिकं 'नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं सवासा जलमाविशेत्' इत्यागमेन तथा च सर्वमपि प्रमाणं सदोषमतस्तत्र कृतनिश्चयत्वं दूरापेतमित्याशङ्क्याह । पञ्चावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित् । तत्र परं बोधयितुं प्रवृत्तस्यानुमानवाक्ये प्रतिज्ञादयः पञ्चावयवाः । तत्र पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा । धूमादिति हेतुः । यथा महानस इति दृष्टान्त उदाहरणम् । धूमवांश्चायं इत्युपनयः । तस्माद्वह्निमानिति निगमनम् । अस्मिन्वाक्ये गुणोनुकूलतर्कः यदि वह्निमान्न स्यात्तर्हि धूमवानपि न स्यात् । दोषः ह्रदो वह्निमानित्यादावबाधाश्रयासिद्धिप्रभृति । तावुभौ वेत्तीति तथा । तथा चानुमानं प्रत्यक्षागमौ शिथिलीकरोतु नीहिमसूरादौ शुचित्वाशुचित्वविभागस्य शास्त्रैकगम्यत्वात् । तत्रानुकूलतर्काभाव एवानुमानबाधको न त्वागम इति स्थितम् । तथा च लौकिकप्रमाणाधिकारिणे अपरं कर्मकाण्डमेव विभजते इतरस्य इतरदिति विवेकः ॥ ५ ॥ यथावत्कृतनिश्चयः । लौकिकानां प्रमाणानां प्रामाण्यमादाय धर्मार्थकामानां पुरुषार्थत्वनिश्चयः । इतरेषां प्रामाण्यमुपजीव्यमप्युपमृद्य मोक्षस्यैव पुरुषार्थत्वनिश्चयः । तदा लौकिकप्रमाणबाधात् । वेदा अवेदा इति श्रुतेः । 'लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात्' इत्यभियुक्तोक्तेश्च । आत्मनिश्चयाद्वर्गेणेति शेषः आ आत्मनिश्चयादिति वा छेदः । महामतिः आत्मज्ञः । 'आत्मनो वा अरे दर्शनेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' इति तस्यैव सार्वज्ञ्यश्रुतेः ॥ ६ ॥ सांख्ययोगविभागज्ञः । सांख्यं वेदान्तविचारः । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अनयोर्विभागः । उपयोगः । तत्र श्रवणात्मको वाक्यार्थविचारः प्रमाणगतासंभावनानिवृत्त्युपयोगी । मननाख्यः श्रुतस्यार्थस्य तर्केणानुसन्धानरूपो विचारः प्रमेयगतासंभावनानिवृत्त्युपयोगी । अद्वैतमेव वेदो वदति युक्तियुक्तं चैतदेवेति सांख्यविभागः । निदिध्यासनापरपर्यायो योगः अनात्मसु देहादिष्वात्मप्रत्ययरूपां विपरीतभावनां निवर्त्य ज्ञातृज्ञानज्ञेयाभाववन्तं दृङ्मात्रप्रत्ययं गोचरयतीति योगविभागः । ये तु 'द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव । योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्' इति वासिष्ठवचनमुदाहृत्य चित्तनाशस्यात्मदर्शनस्य द्वावुपायाविति वदन्ति । 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति श्रुतिविरोधः । संनादिश्रमयोगोपि ज्ञानं जनयित्वैव फलदः इति चेत्तस्योपसर्जनत्वं कर्मणामिव स्यात्तथा च नोपायान्तरं योग इत्यापतति । वासिष्ठवाक्यं तु क्रमभेदमाह न तूपायभेदम् । तथा च कृतोपास्तेर्योग उपसर्जनं वाक्यार्थप्रभवं ज्ञानं प्रधानम् । अकृतोपास्तेस्तु ज्ञानमुपसर्जनं योगः प्रधानम् । यथा दृष्टगोपिण्डस्यापि अगृहीतशब्दार्थसंगतिकस्य इयं गौरिति वाक्यमेव गवाज्ञाननुत् न चक्षुस्तेन विषयीकृतेपि गोपिण्डे गोबुभुत्सानुवृत्तेः । एवं साक्षात्कृततत्पदार्थस्यापि तत्त्वमसीति वाक्यमेव संसारानर्थमूलब्रह्माज्ञानस्य निवर्तकं न मनः तेन दृष्टेपि त्वमर्थे ब्रह्माज्ञानानुवृत्तिदर्शनात् । एवं सास्नादिमती गौरिति लक्षणतो ज्ञातगोपदार्थस्यापि गोपिण्डदर्शनमेव गोबुभुत्सानिवर्तकं न तु वाक्यम् । तथा श्रवणादिना ज्ञातब्रह्मपदार्थ-

युद्धगान्धर्वसेवी च सर्वत्राप्रतिघस्तथा ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्युक्तो गुणगणैर्मुनिः ॥ ९
लोकाननुचरन्सर्वानागमत्तां सभां नृप ।
नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥ १०
पारिजातेन राजेन्द्र पर्वतेन च धीमता ।
सुमुखेन च सौम्येन देवर्षिरमितद्युतिः ॥ ११
सभास्थान्पाण्डवान्द्रष्टुं प्रीयमाणो मनोजवः ।
जयाशीर्भिस्तु तं विप्रो धर्मराजानमार्चयत् ॥१२
तमागतमृषिं दृष्ट्वा नारदं सर्वधर्मवित् ।
सहसा पाण्डवश्रेष्ठः प्रत्युत्थायानुजैः सह ॥ १३
अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा ।
तदर्हमासनं तस्मै संप्रदाय यथाविधि ॥ १४
गां चैव मधुपर्कं च संप्रदायार्घ्यमेव च ।
अर्चयामास रत्नैश्च सर्वकामैश्च धर्मवित् ॥ १५
तुतोष च यथावच्च पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात् ।
सोर्चितः पाण्डवैः सर्वैर्महर्षिर्वेदपारगः ।
धर्मकामार्थसंयुक्तं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरम् ॥ १६

नारद उवाच ।

कच्चिदर्थाश्च कल्पन्ते धर्मे च रमते मनः ।
सुखानि चानुभूयन्ते मनश्च न विहन्यते ॥ १७
कच्चिदाचरितं पूर्वैर्नरदेव पितामहैः ।
वर्तसे वृत्तिमक्षुद्रां धर्मार्थसहितां त्रिषु ॥ १८

स्यापि योगादेव दर्शनं न तु वाक्यात् तेन नं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति मननेनैवानुद्रक्ष्यामिति न शब्दमननयोः ज्ञानकरणत्वानुवादकश्रुत्योर्व्यवस्था सिध्यति । तदिदमुक्तं सांख्ययोगविभागज्ञ इति । विभागो हि द्वयोः समुच्चित्यैककार्यकारित्वे सति संभवति न तु व्रीहियवदविकल्पैककार्यकारित्वे इत्यास्तां तावत् । 'सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः' इत्यत्र प्रपञ्चयिष्यमाणत्वात् । एवं ब्राह्म्या विद्यया संपन्नत्वमुक्त्वा राजयोगविद्यान्तरसंपत्तिमप्याह । निर्विवित्सुः सुरासुरानित्यादिना । निर्विवित्सुः विवित्सुर्विचारं कर्तुमिच्छुः निर्विवित्सुस्तद्विरोधी उभयेषां धर्मप्रमोषणेन कलहप्रवर्तकः । यद्वा निर्वेदो युद्धादुपरतिस्तं कर्तुमिच्छुः लोकनाशभयादित्यर्थः। एतेन भेदाभिज्ञत्वमुक्तम्॥७॥ संधिः साम विग्रहो निग्रहो दण्ड इत्यर्थः । अनुमानविभागवित् । स्वपरशक्तिबलाबलेऽनुमानतो निश्चित्य विभागं विभजनं परामात्यादिभ्यो धनप्रदानं तद्वित् । अनुमाय विभागविदिति गौडाः पठन्ति । एवं च नीतिशास्त्रप्रसिद्धोपायचतुष्ट्याभिज्ञत्वं उक्तम् । षाड्गुण्यविधियुक्तश्च षड्गुणाः संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयाख्याः त एव षाड्गुण्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । तस्य विधिः अज्ञातज्ञापनं तेन युक्तः। सर्वदा विजिगीषुभ्यः षाड्गुण्यादिकमुपदिशति स्वस्य निःशत्रुत्वेप्याधिकारिकत्वात् । तत्र संधिविग्रहौ प्रत्येकं द्विविधौ । प्रबलदुर्बलयोर्विजिगीषावतोः समभूमौ युद्धप्रसंगे आद्यो विग्रहमिच्छति दण्डेनैव । परः संधिमिच्छति दानेनेति । तयोरेव दुर्बलोऽमेयदुर्गाश्रितश्चेद्बलवतापि सह देशोल्लुण्ठनादिना विग्रहमिच्छति । इतरस्तु तेन सहाल्पकरग्रहेणापि संधिमेवेच्छति । तथा च दुर्बलद्वारकौ सन्धिविग्रहावन्यौ प्रबलद्वारकावन्यौ । तदिदमुक्तं रामायणे 'द्वियोनी संधिविग्रहौ' इति तत्र प्रबलयोनिर्विग्रहः यानासनयोः प्रयोजकः । दुर्बलयोनिः संधिर्द्वैधीभावसमाश्रययोः । तथोक्तं कामन्दकीये । 'संधेश्च विग्रहस्यापि द्वैगुण्यं संप्रचक्षते । यानासने विग्रहस्य रूपं संधेः परं द्वयम्' इति । द्वौ गुणभूतौ यस्य स द्विगुणः। स च स च तौ तयोर्भावो द्वैगुण्यं तत्र यानं विजिगीषोररिं प्रति यात्रा । आसनं कदाचिच्छक्तिप्रतिबन्धे न तत्रैव शत्रोर्दुर्गमावेष्ट्य तत्र धान्यादिप्रवेशनं प्रतिबध्नतावस्थानम् । बलवता विग्रहे बलवत्तरेण तच्छत्रुणा संधिं कृत्वा उभयत्र दासोऽस्मीति वाचैवात्मसमर्पणं कर्तव्यं न कर्मणेति स द्वैधीभावः । यथोक्तं तत्रैव 'बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचात्मानं समर्पयन् । द्वैधीभावेन वर्तेत काकाक्षिवदलक्षित' इति । अरिणा पीड्यमानस्य बलवद्दुर्गभूपालाद्याश्रयणं समाश्रयः। एवं नोपायान्तर्गतौ संधिविग्रहावन्यौ षाड्गुण्यान्तर्गतौ चान्याविति न पुनरुक्तिः ८ युद्धगान्धर्वसेवी तदुभयप्रिय इत्यर्थः । सर्वत्र सर्वासु विद्यासु सर्वेषु कर्मसु च अप्रतिघः अप्रतिहतः पूर्णशक्तित्वात् । अन्यैः असंगत्वकारुण्यादिभिः मुनिःआत्मतत्त्वानुसंधानवान् ॥९॥ आगमत् आगतवान् ॥ १० ॥ आर्चयत् पूजितवान् १२ ॥ कच्चिदर्थाश्च कल्पन्त इति कच्चिदिति कामप्रवेदने स्वाभिप्रायाविष्करणे त्वदीया अर्थाः स्वकार्ये यागदानकुटुंबभरणादौ समर्था भवन्त्विति ममाभिप्राय इत्यर्थः। एवं करिष्यामि यथैतदुक्तमित्यन्ते राज्ञाङ्कितत्वादुपदेशपरोयं ग्रन्थ इत्यवसीयते । अर्थधर्मकाममोक्षान् त्वदीयान् अविहतानिच्छामीति क्रमेण पादचतुष्टयार्थः कच्चिदिति सर्वत्र संबन्धनीयम् । तत्रापि मनश्चान्तरात्मनि प्रणिधीयमानं प्रतिहन्यते वृत्त्यन्तरैरित्यन्त्यपादार्थः ॥ १७ ॥ त्रिषु उत्तमाधममध्यमेषु ऋत्विक्पुरोहितादिषु धर्मेण सहितां वृत्तिं वर्तसे दण्डयद्वेष्यादिषु अर्थेन सहितां प्रजासु पालनषड्भागहाराभ्यां धर्मार्थसहितामिति विवेकः धर्मार्थौ च धर्मार्थौ चेति द्वन्द्वैकशेषः तैः सहितामिति समासः ॥ १८ ॥

कच्चिदर्थेन वा धर्मं धर्मेणार्थमथापि वा ।
उभौ वा प्रीतिसारेण न कामेन प्रबाधसे ॥ १९
कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च जयतां वर ।
विभज्य काले कालज्ञः सदा वरद सेवसे ॥ २०
कच्चिद्राजगुणैः षड्भिः सप्तोपायांस्तथानघ ।
बलाबलं तथा सम्यक्चतुर्दश परीक्षसे ॥ २१
कच्चिदात्मानमन्वीक्ष्य परांश्च जयतां वर ।
तथा सन्धाय कर्माणि अष्टौ भारत सेवसे ॥ २२
कच्चित्प्रकृतयः सप्त न लुप्ता भरतर्षभ ।
आढ्यास्तथा व्यसनिनः स्वनुरक्ताश्च सर्वशः ॥

कच्चिदर्थेनेति । अर्थलोभाद्धर्मबाधो नीचानां धर्मलोभादर्थबाधो विरक्तानां कामेन प्रीतिसारेण तात्कालिकसुखाभासप्रदर्शनबलेन मोहयता धर्मार्थयोर्बाध कामुकानां प्रसक्त त्वयि राज्यप्रतिकूलानां नीचत्वाविरक्तत्वकामुकत्वानामभावमिच्छामीत्यर्थ ॥ १९ ॥ परस्परविरोधिनामेषां कथमेकेनानुष्ठानमित्याशङ्क्य कालभेदेनेत्याह । कच्चिदर्थमिति। 'पूर्वाह्णे चाचरेद्धर्मं मध्याह्नेऽर्थमुपार्जयेत् । सायाह्ने चाचरेत्काममित्येषा वैदिकी श्रुति 'इति दक्षोक्तकालव्यवस्थामास्थाय त्रिवर्गं सेवेतेत्यर्थ । सदा वरदेति सबोधनेन परानुग्रहरूपो धर्म सर्वस्मिन्नपि काले कर्तव्य इति सूचयति ।समामिति पाठे अवैषम्येण आत्मसाम्येनेत्यर्थ ॥२०॥कच्चिद्राजेति षड्गुणा 'वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान्नयवित्कवि 'इति नारदस्तुतौ सूचिता वक्तृत्वादय । अत्र राजगुणेषु वक्तृत्व चाराामात्यादिषु यथायोग्य कार्योपदेशकौशलम् । प्रागल्भ्य शत्रुदमनादौ उत्कर्षप्रदर्शनम्। मेधावित्व तर्ककौशलम्। स्मृतिमान् कविरिति च अतीतानागतयो परामर्शित्वम्। नयविदिति नीतिशास्त्रवित्त्वम्। एतै राजगुणैरुपायान्बलाबल अन्यांश्चतुर्दश त्व परीक्षसे इति योजना। हे अनघ चतुर्दशभी राजदोषै र्वर्जित ते च वक्ष्यन्ते ' नास्तिक्यमनृत क्रोध प्रमाद दीर्घसूत्रताम्। अदर्शनं ज्ञानवतामालस्य पञ्चवृत्तिताम् ॥ एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम् । निश्चितानामनारम्भ मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ।मङ्गलाद्यप्रयोग च प्रत्युत्थान च सर्वत ॥ कच्चित्त्व वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश'इति ॥ नास्तिक्य परलोकापलाप । प्रमादोऽनवधानता । दीर्घसूत्रता चिरक्रियत्वम्।पञ्चवृत्तिता पञ्चेन्द्रियपरवशताम्।अर्थानां प्रयोजनाना एकचिन्तन एकेनैव चिंतनम् । अनर्थज्ञै विपरीतार्थदर्शिभि सह चिन्तन मन्त्र' । मङ्गल उत्सव ।आदिपदाद्देवपूजादि तस्याप्रयोगमननुष्ठानम् । प्रत्युत्थान च सर्वत युगपत्सर्वदिगवस्थितशत्रूद्देशेन दण्डयात्रेति तदर्थ । यद्वा अत्र पराजयमूल विंशतिवर्गस्तद्रहित । स च कामन्दकीये उक्त । 'बालो वृद्धो दीर्घरोगी तथा ज्ञातिबहिष्कृत । भीरुको भीरुजनको लुब्धो लुब्धजनस्तथा॥ विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वपि सक्तिमान् । अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दक ॥ दैवोपहतकश्चैव दैवचिन्तक एव च । दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसकुल । अदेशस्थो बहुरिपुर्युक्तो कालेन यश्च स ॥ सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशति पुरुषा अमी । एतै सार्धं न कुर्वीत विग्रही स्यात्तु केवलम् ' इति। उपायाः सप्त सामदानभेददण्डमन्त्रौषधेन्द्रजालाख्या ॥ बलाबल स्वपरपक्षयो साम्य परस्य हीनता स्वस्य वा हीनतेति त्रिविधम्। यथायोग बुद्ध्यादिभिः सामादय परीक्षणीयाः। किमनेन शत्रुणा साम कर्तव्य न वा । कर्तुमारब्ध चेत् सिध्यति न वा । सिद्ध चेद ते कुशल नवेति चारप्रेषणादिना च बलाबलप्रभृतिक परीक्षणीयम्। तथा चतुर्दश देशादयोपि परीक्षणीया। ते च नीतिशास्त्रोक्ता। 'देशो दुर्गं रथो हस्तिवाजियोधाधिकारिण । अन्त पुरान्नगणना शास्त्रलेख्यधनासवा ॥ परीक्ष्या ह्यधिपास्तेषा चतुर्दश नरेश्वरे 'इति। योधा शूराः अधिकारिण देशपालदुर्गपालसेनापत्यादय गणना अश्वरथधनादीनां सख्या । लेख्य आयव्ययनिर्णयाय सर्वस्य पत्रारोहकरणम् । धन पर्याप्तमपर्याप्त चेति विचार्यम्। आसवा मद्यवदपकारिण प्रच्छन्नशत्रव असव इति पाठे असुर्बलमित्यर्थ । बलाबलेन सम्यक्त्वमिति स्वीय परकीय च देशादिकं उक्तविधेन बलाबलेन बुद्ध्याचारैश्च परीक्षणीयमित्यर्थ ॥ २१ ॥ एतदेवाह कच्चिदात्मानमिति। आत्मान प्रबल परान् दुर्बलान्परीक्ष्य से वस्ये राज्य तथा विपरीते जयमूलस्य कोशस्य वृद्धये सन्धाय परै सह साम कृत्वाऽष्टौ कर्माणि। 'कृषिर्वणिक्पथो दुर्ग सेतुः कुञ्जरबन्धनम् । खन्याकरकरादान शून्यानां च निवेशनम् अष्टौ सधानकर्माणि प्रयुक्तानि मनीषिभिः'इति शास्त्रोक्तानि सेवसे। कुञ्जरबन्धन बहुभक्षकत्वात्तेषा यथाविभाग ग्रामीणधनैरेव ग्रामे ग्रामे पोषणार्थ बन्धनम् । खनीरत्नाद्युत्पत्तिस्थान आकर सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानामितिभेद । खननमात्रेण धमनादिनाऽभिमुखीकरणेन च तयोस्तल्लाभहेतुत्वात् ॥२२॥ कृष्यादिनापि कोशवृद्धि स्वाम्यादिप्रकृतिसप्तकस्य परैर्धनादिना मोहने कृते सति न भवतात्यत आह कच्चित्प्रकृतय इति । सप्त ' स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतय पौराणा श्रेणयोपि च'इति कोशोक्ता ।तत्र स्वामिरूपा प्रकृति सप्तविधा। 'दुर्गाध्यक्षो बलाध्यक्षो धर्माध्यक्षश्चमूपति । पुरोधा वैद्यदेवज्ञौ सप्त प्रकृतय स्मृता ' इति प्रोक्ताः। बलाध्यक्ष बलस्य चतुरङ्गस्याहारादिदानेन पालक ।

कच्चिन्न कृतकैर्दूतैर्ये चाप्यपरिशंकिताः ।
त्वत्तो वा तव चामात्यैर्भिद्यते मन्त्रितं तथा ॥ २४
मित्रोदासीनशत्रूणां कच्चिद्वेत्सि चिकीर्षितम् ।
कच्चित्सन्धिं यथाकालं विग्रहं चोपसेवसे ॥ २५
कच्चिद्वृत्तिमुदासीने मध्यमे चानुमन्यसे ।
कच्चिदात्मसमा वृद्धाः शुद्धाः संबोधनक्षमाः ॥ २६
कुलीनाश्चानुरक्ताश्च कृतास्ते वीरमन्त्रिणः ।
विजयो मन्त्रमूलो हि राज्ञो भवति भारत ॥ २७
कच्चित्संवृतमन्त्रैस्ते अमात्यैः शास्त्रकोविदैः ।
राष्ट्रं सुरक्षितं तात शत्रुभिर्न विलुप्यते ॥ २८
कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित्काले विबुध्यसे ।
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थमर्थवित् ॥ २९
कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो न राष्ट्रं परिधावति ॥ ३०
कच्चिदर्थान्विनिश्चित्य लघुमूलान्महोदयान् ।
क्षिप्रमारभसे कर्तुं न विघ्नयसि तादृशान् ॥ ३१
कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः परोक्षास्ते विशङ्किताः ।
सर्वे वा पुनरुत्सृष्टाः संसृष्टं चात्र कारणम् ॥ ३२
आप्तैरलुब्धैः क्रमिकैस्ते च कच्चिदनुष्ठिताः ।
कच्चिद्राजन्कृतान्येव कृतप्रायाणि वा पुनः ॥ ३३
विदुस्ते वीर कर्माणि नानवाप्तानि कानिचित् ।
कच्चित्कारणिका धर्मे सर्वशास्त्रेषु कोविदाः ।
कारयन्ति कुमारांश्च योधमुख्यांश्च सर्वशः ॥ ३४
कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकं क्रीणासि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं परम् ॥ ३५

---

चमूपतिर्युद्धे चम्वाः प्रणेता । धर्मः कार्यमात्रम् । अमात्यः मन्त्री। सुहृत् न्यायान्यायविभागकर्ता पर्षद्रूपः। एते न तावका लुप्ताः परैर्मोहिता माभूवन्। लुप्यतेर्मोहनार्थस्येदं रूपम्। लुप्ताश्चेद्दुर्गादीनामेव नाशापत्तिरित्यर्थः । अथवा त एवाढ्याः सन्तो व्यसनिनो द्यूतपानादिरताः माभूवन्। 'हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति धर्मातिक्रमात्पापं करोति' इति स्मृतेः अस्त्याद्यस्य व्यसनप्रसक्तिस्तदापि न कोशादीनां वृद्धिः स्यात् । कथं तर्हि स्युः । सर्वप्रकारैः स्वनुरक्ता अत्यन्तं स्वामिकार्ये प्रीतिमन्तः ॥ २३ ॥ दुर्गाध्यक्षादीनां लोभतो विपरीतकार्यकारित्वेन नाशहेतुत्वं प्रसिद्धम् । अमात्यसुहृदोस्तु लोभेन कथं नाशहेतुत्वमित्याशंक्य मन्त्रभेदेनेत्याह । कच्चिन्नेत्यादिना । अपरिशङ्किताः येषु दौष्ट्यशङ्का नास्ति तैः कृतकैः कृत्रिमैः सुहृद्भूतैर्दूतैः उभयवेतनैः तव मन्त्रितं मन्त्रः न भिद्यते प्रकाश्यते कच्चित् । तर्कैर्दूतैर्वेति पाठे सम्यगपि मन्त्रितं कुयुक्तिभिर्न विप्लाव्यत इत्यर्थः । त्वत्तो वा कृतकमित्रं प्रति कथयतः अमात्यैर्वा कृतकैः मन्त्रितं भिद्यत इति सर्वत्र संबन्धनीयम् ॥ २४ ॥ मित्रेति । मित्रं सम्यक् परीक्ष्य तेन सह संमन्त्र्य बलवता शत्रुणा सन्धिं दुर्बलेन सह विग्रहं मध्यमेन उभयवेतनेन उदासीनेन राज्ञा च सह वृत्तिसाम्येन स्थितिं च कुर्यादिति सार्धश्लोकार्थः ॥ २५ ॥ तत्र मित्रं कैर्गुणैः परीक्षितेत्यत आह । कच्चिदात्मसमा इति । शुद्धाचारत्वं कुलीनत्वं च नैर्मल्यस्यासाधारणं लिङ्गम् । शुद्धाः संबोधनक्षमा इत्यत्र शुचयो जीवितक्षमा इति पाठे आपन्नमग्नस्य राज्ञ उज्जीवने क्षमा इत्यर्थः ॥ २६ ॥ किमेवंविधेन मन्त्रेणेत्यत आह अर्थेन विजय इति ॥ २७ ॥ मन्त्रभेदो माभूदित्युक्तं तत्फलमाह कच्चित्संवृतेति ॥ २८ ॥ कच्चिन्निद्रेति । यथाकालं स्वप्नप्रबोधवता ब्राह्मे मुहूर्तेऽमात्यादिभिः सह कृतस्य मन्त्रस्य पर्यालोचनं कर्तव्यम् । 'ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्' इति स्मृतेस्तदा निर्णीतोर्थो न विप्लवत इत्यवसायात् ॥ २९ ॥ कच्चिन्मन्त्रेति । 'षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र' इति प्रसिद्धेर्द्वाभ्यामेव मन्त्रयितव्यमित्यर्थः । मन्त्रभेदो न कर्तव्य इत्युक्तं तदुपसंहरति कच्चित्त इति ॥ ३० ॥ स्वाम्यमात्यादिप्रकृतिसप्तकानुग्रहात् कृष्यादिकर्माष्टकसिद्धितश्च कोशवृद्धिरित्युक्तं तदनुवदति विशेषविधानार्थम् । कच्चिदर्थानिति । अर्थान् अर्थप्राप्त्युपायान् लघुमूलान् अल्पव्ययसाध्यान्। महोदयान् प्रचुरफलान् । तादृशान्कृष्याद्यारम्भकर्तृनन्यान् वैश्यादीन् तेभ्योऽपि करादानेन कोशवृद्धिरेव भवतीति भावः ॥ ३१ ॥ कच्चिन्न सर्वे इति । कर्मणा अञ्चन्ते बध्यन्त इति कर्मान्ताः कृष्यादिकर्मबद्धाः कृषीवलादयः कच्चित्ते परोक्षा अज्ञाता न सन्ति । अथवा विशंकिता अविश्वास्याः न सन्ति । अथवा पुनरुत्सृष्टाः । पुनःपुनस्त्यक्तोपात्ताः । संसृष्टं स्नेहः । 'संसृष्टं त्रिषु संगते' इति मेदिनी । चिरपरिग्रहान् ज्ञाताः विश्वास्याः स्निग्धाश्च कर्मकरा अत्र महोदये कर्मणि कारणं उदयनिमित्तं ज्ञात्वा तादृशानेव संगृह्णीयादित्यर्थः ॥ ३२ ॥ एतदेवाहाप्तैरिति । क्रमिकैः वृद्धक्रमागतैः । ते च कृष्यादयश्च । कच्चिदिति । मन्त्रगुप्तिवत् कर्मगुप्तिरपि कर्तव्येत्यर्थः ॥ ३३ ॥ अनवाप्तानि अनारब्धानि न विदुः कच्चिदिति आवृत्त्या योज्यम् । कोशवृद्ध्युपायमुक्त्वा बलवृद्ध्युपायमाह । कच्चित्कारणिका इति । कारणं ज्ञापनं शिष्येभ्यो विद्याप्रतिपादनं तदर्थं चरन्ति ते कारणिकाः कृपद्रोणसदृशा आचार्याः कारयन्ति शिक्षयन्ति ॥ ३४ ॥ सुहृद्दुर्गामात्यसंपदं क्रमेण त्रिभिराह । कच्चित्सहस्रैरित्यादिभिः । अर्थकृच्छ्रेषु प्रयोजनसंकटेषु । निःश्रेयसं कल्याणम् ॥ ३५ ॥

कच्चिद्दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः ।
यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥ ३६
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दान्तो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥ ३७
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पंच च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥ ३८
कच्चिद्द्विषामविदितः प्रतिपन्नश्च सर्वदा ।
नित्ययुक्तो रिपून्सर्वान्वीक्षसे रिपुसूदन ॥ ३९
कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः ।
अनसूयुरनुप्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥ ४०
कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥ ४१
कच्चिदङ्गेषु निष्णातो ज्योतिषः प्रतिपादकः ।
उत्पातेषु च सर्वेषु दैवज्ञः कुशलस्तव ॥ ४२
कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः ॥
अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहान् शुचीन् ।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु ॥ ४३
कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्विजसे प्रजाः ।
राष्ट्रं तवानुशासन्ति मन्त्रिणो भरतर्षभ ॥ ४४
कच्चित्त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ॥ ४५
कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च मतिमान्धृतिमान् शुचिः ।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिस्तथा ॥ ४६
कच्चिद्बलस्य ते मुख्याः सर्वयुद्धविशारदाः ।
धृष्टावदाता विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ॥ ४७
कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
संप्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि ॥ ४८
कालातिक्रमणादेते भक्तवेतनयोर्भृताः ।
भर्तुः कुप्यन्ति दौर्गत्यात्सोऽनर्थः सुमहान्स्मृतः ॥
कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः ।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति सदा युधि ॥ ५०

षष्ठीं राष्ट्रसंपदमाह । कच्चिदष्टादशान्येष्विति । तीर्थानि मन्त्रिप्रभृतीन्यष्टादश यान्यवगाह्य राजा कृतकृत्यो भवति । तानि चोक्तानि नीतिशास्त्रे । 'मन्त्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः । पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोऽन्तर्वेशिकस्तथा ॥१॥ कारागाराधिकारी च द्रव्यसंचयकृत्तथा । कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ॥ २ ॥ प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्यनिर्माणकृत्तथा । धर्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दण्डपालस्त्रिपञ्चमः ॥ ३ ॥ षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तपालकः । अटवीपालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु ॥ ४ ॥ चारान्विचारयेत्तीर्थेष्वात्मनश्च परस्य च । पाषण्डादीनविज्ञातानन्योन्यमितरेष्वपि ॥ ५ ॥ मन्त्रिणं युवराजं च हित्वा स्वेषु पुरोहितम् ।' इति । एषा तीर्थशब्दवाच्यत्वे हलायुधः । 'योनौ जलावतारे च मन्त्र्याद्यष्टादशस्वपि । पुण्यक्षेत्रे तथा पात्रे तीर्थं स्याद्दर्शनेष्वपि ' इति । परेषामष्टादशसु स्वस्य मन्त्रिपुरोहितयुवराजवर्जं पञ्चदशसु च तीर्थेषु चारान् अन्यैः परस्परं चाविज्ञातान् त्रींस्त्रीन्प्रयुज्य तत्रत्यां वार्तां सर्वचारसंवादे तथ्यां जानीयात् ज्ञात्वा च स्वप्रजानामनुरञ्जनेन परप्रजानां दुःखितानामभयदानादिना आकर्षणेन च स्वराष्ट्रं वर्धयेदित्युक्तं भवति ॥ ३८ ॥ पूर्वोक्तानां गौणस्वामिनां संपदं विवक्षुः मुख्यस्वामिसंपदं तावदाह । कच्चिद्द्विषामिति । अविदितः परकिंकरैः प्रतिपन्नः सावधानः । प्रतियत्त इति पाठे प्रतीकारे यत्नवान् । नित्ययुक्तो नित्योद्योगी ॥ ३९ ॥ विनयसंपन्नः शिक्षायुक्तः । कुलपुत्रः सत्कुलजः । अनसूयुः परगुणेषु दोषारोपमकुर्वन् । अनुप्रष्टा शास्त्रार्थानुशीलः । अमर्षिणं इति पाठे सदसद्विवेकवान् ॥ ४० ॥ ऋजुरकुटिलः ॥ ४१ ॥ अङ्गेषु सामुद्रिकशास्त्रोक्तरीत्या अङ्गानां परीक्षायाम् । उत्पातेषु दिव्यभौमशारीरेषु धूमकेतुभूकंपवामनेत्रस्फुरणादिषु आगाम्यशुभसूचकेषु ॥४२॥ सेनाबलाकरकोशाध्यक्षकृष्याद्यवेक्षणानि मुख्यमध्यमनीचानि । उपधातीतान् छलरहितान् श्रेष्ठेषु ॥४३॥ मन्त्रकार्येषु ॥४४॥ पतितमिति व्यतिरेकदृष्टान्तः । नावजानन्ति नावमन्यन्ते । तत्र हेतुः । उग्रप्रतिग्रहीतारं उग्रमिति क्रियाविशेषणम् । यद्वा उग्रं हिंस्रं कर्म तेन प्रतिग्रहीतारं धनस्य प्रजापीडकमित्यर्थः । यथोक्तं ' प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो महानलः । राज्ञः प्राणान् बलं कोशं नादग्ध्वा विनिवर्तते ' इति । तथा च नाशहेतुकर्मकारिणः अवज्ञैव उचिताऽतस्त्वया तन्न कर्तव्यमित्यर्थः । कामयानं कामतो यानं पर्यटनं यस्य तं स्वैरिणमिव भ्रष्टत्वादरतिप्रदत्वाच्च स्त्रियोऽवमन्यन्ते तद्वत् ॥४५॥ तुष्टो धनमानादिना ॥४६॥ धृष्टावदाताः प्रगल्भाः निष्कपटाश्च अत एव विक्रान्ता जयं कृतवन्तः । एवं गौणस्वामिसंपदमुक्त्वा तद्वृद्धिहेतुमाह । त्वया सत्कृत्य मानिता इत्यादिना ॥४७॥ भक्तं अहरहर्देयं धान्यादि । वेतनं मासांतदेयं वित्तम् । विकर्षणं कालातिक्रमः ॥ ४८ ॥ दौर्गत्यात् दारिद्र्येण ॥ ४९ ॥ प्रधानतः मन्त्रिणमारभ्य मन्त्रिप्रभृतय इत्यर्थः ॥ ५० ॥

कच्चिन्नैको बहूनर्थान्सर्वशः सांपरायिकान् ।
अनुशास्ति यथाकामं कामात्मा शासनातिगः ५१
कच्चित्पुरुषकारेण पुरुषः कर्म शोभयन् ।
लभते मानमधिकं भूयो वा भक्तवेतनम् ॥ ५२
कच्चिद्विद्याविनीतांश्च नरान् ज्ञानविशारदान् ।
यथार्हं गुणतश्चैव दानेनाभ्युपपद्यसे ॥ ५३
कच्चिद्दारान्मनुष्याणां तवार्थे मृत्युमीयुषाम् ।
व्यसनं चाभ्युपेतानां बिभर्षि भरतर्षभ ॥ ५४
कच्चिद्भयादुपगतं क्षीणं वा रिपुमागतम् ।
युद्धे वा विजितं पार्थ पुत्रवत्परिरक्षसि ॥ ५५
कच्चित्त्वमेव सर्वस्याः पृथिव्याः पृथिवीपते ।
समश्चानभिशंक्यश्च यथा माता यथा पिता ५६
कच्चिद्व्यसनिनं शत्रुं निशम्य भरतर्षभ ।
अभियासि जवेनैव समीक्ष्य त्रिविधं बलम् ॥५७
यात्रामारभसे दिष्ट्या प्राप्तकालमरिंदम ।
पार्ष्णिमूलं च विज्ञाय व्यवसायं पराजयम् ॥५८
बलस्य च महाराज दत्त्वा वेतनमग्रतः ।
कच्चिच्च बलमुख्येभ्यः परराष्ट्रे परंतप ।
उपच्छन्नानि रत्नानि प्रयच्छसि यथार्हतः ॥ ५९
कच्चिदात्मानमेवाग्रे विजित्य विजितेन्द्रियः ।
परान् जिगीषसे पार्थ प्रमत्तानजितेन्द्रियान् ॥६०
कच्चित्ते यास्यतः शत्रून्पूर्वं यान्ति स्वनुष्ठिताः ।
सामदानं च भेदश्च दण्डश्च विधिवद्गुणाः ॥ ६१
कच्चिद्बलं दृढं कृत्वा परान्यासि विशांपते ।
तांश्च विक्रमसे जेतुं जित्वा च परिरक्षसि ॥ ६२
कच्चिदष्टाङ्गसंयुक्ता चतुर्विधबला चमूः ।
बलमुख्यैः सुनीता ते द्विषतां प्रतिवर्धिनी ॥ ६३

सांपरायिकान् संग्रामहितान् शूरान् गजरथतुरगारोहान् पदातींश्च अर्थान्प्रयोजनानि नानुशास्ति । सर्वस्यैकाधिपत्ये तद्भेदेन सर्वनाशो युगपदेव स्यादिति भावः ॥५१॥ कच्चित्पुरुषेति । कृतज्ञो भवेदिति भावः ॥ ५२ ॥ कच्चिद्विद्येति । वृद्धिदान् मानयस्वेति भावः ॥ ५३ ॥ कच्चिद्दारानिति । जीवतां शूराणां विश्वासार्थं व्यसनं चेति परलोकार्थम् ॥ ५४ ॥ तदेवाह युद्धे वेति ॥ ५५ ॥ सर्वस्या इति । प्रजानुकूल्यमपि जयहेतुः॥५६॥एवं विजयहेतुं प्रकृतिसंपदमुक्त्वा विजयकालमाह । कच्चिद्व्यसनिनमिति । व्यसनैः 'स्त्री द्यूतं मृगया मद्यं नृत्यं गीतं वृथाटनम् । वाद्यं निन्दा दिवास्वापो व्यसनानि नृणां दश 'इत्युक्तैर्युक्तम् । त्रिविधं बलं । मन्त्रकोशभृत्यबलानि प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तीर्वा ॥ ५७ ॥ पार्ष्णिमूलं पार्ष्णिग्राहकः आदिर्यस्य तत् द्वादशविधं मण्डलम् । तच्चोक्तं कामन्दकीये 'अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि कोशो दण्डश्च पञ्चमः । एताः प्रकृतयस्तज्ज्ञैर्विजिगीषोरुदाहृताः ॥ संपन्नस्तु प्रकृतिभिर्महोत्साहः कृतश्रमः । जेतुमेषणशीलश्च विजिगीषुरितिस्मृतः ॥ अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम् । अथारिमित्रमित्रं च विजिगीषोः पुरस्कृताः ॥ पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम् । आसारावनयोश्चैव विजिगीषोस्तु पृष्ठतः ॥ अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः । अनुग्रहे संहतयोर्व्यस्तयोर्निग्रहे प्रभुः॥ मण्डलाद्बहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः । अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानां च वधे प्रभुः ' इति विजिगीषुशत्रू तयोर्मित्रे तन्मित्रे चेति त्रीणि द्वन्द्वानि क्रमेण पुरतः विजिगीषोः पृष्ठतः पार्ष्णिग्राहाक्रन्दौ । पार्ष्णिग्राहः पृष्ठरक्षकः । आक्रन्दः प्रोत्साहकः । एतयोरनुग्राहकौ आसारौ तत्तत्पृष्ठगतौ पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासारश्चेति दश पुरुषाः । विजिगीषुशत्र्वोः पार्श्वे मध्यमः सर्वेषां पार्श्वे उदासीनः । इति मण्डलं पार्ष्णिमूलमित्युच्यते । व्यवसायं कृत्यानिश्चयं कृत्यं च । 'अलब्धवेतनो लुब्धो मानी चाप्यवमानितः । क्रुद्धश्च कोपितोऽकस्मात्तथा भीतश्च भीषितः ॥ यथाभिलषितैः कामैर्भिन्द्यादेतांश्चतुर्विधान् । परकीयान् स्वकीयांस्तु रक्षेद्विजयकामुकः ॥' इति नीतिशास्त्रोक्तम् । पराजयं पराजयमूलानां व्यसनानां परपक्षे सद्भावं स्वपक्षे चाभावं विज्ञाय दिष्ट्या विशेषतो दैवज्ञादिद्वारा ज्ञात्वा। तत्र दैवं व्यसनं पञ्चविधम्। मानुषं च पञ्चविधम् । यथोक्तं कामन्दकीये । ' हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरकस्तथा । इति पञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परम् ॥ अयुक्तेभ्यश्च चोरेभ्यः परेभ्यो राजवल्लभात् । पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयम्॥' इति ॥५८॥ उपच्छन्नानि परैरलक्ष्याणि । रत्नानि उत्कृष्टवस्तूनि भेदायेत्यर्थः ॥ ५९ ॥ स्वनुष्ठिताः शोभनेन पुरुषेण सम्यगनुष्ठिताः । विधिवद्गुणाः ये सामादयः विधिवत् अनुष्ठिताःसन्तो गुणाः हिताय भवन्ति । अन्यथा विपरीताय । यथोक्तमभियुक्तैः । ' चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया'इति। यद्वा सामादयोऽवश्यमनुष्ठेयाः यतो राज्ञां गुणाः संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसंश्रयाः विधिवदग्निहोत्रादिविधिवदवश्यानुष्ठेयाः तदकरणे स्वराष्ट्रभङ्गादिना जातेन प्रजापीडनेन राज्ञां दोषोत्पत्तिः ॥ ६१ ॥ मूलं स्वराज्यं दृढप्रत्ययिभिः शूरैराधिष्ठितं सत् दृढं परानभिभाव्यं कृत्वा ॥ ॥ ६२ ॥ अष्टाङ्गसंयुक्ता ' रथा नागा हया योधाः पत्तयः कर्मकारकाः । चारा दैशिकमुख्याश्च ध्वजिन्यष्टाङ्गिका मता' चतुर्विधबला मौलमैत्रभृत्याटविकैर्बलैर्युक्ता बलमुख्यैःसेनापतिभिः प्रतिवर्धिनां प्रातिकूल्येन छेदिनी ॥ ६३ ॥

कच्चिल्लवं च मुष्टिं च परराष्ट्रे परंतप ।
अविहाय महाराज निहंसि समरे रिपून् ॥ ६४
कच्चित्स्वपरराष्ट्रेषु बहवोऽधिकृतास्तव ।
अर्थान्समधितिष्ठन्ति रक्षन्ति च परस्परम् ॥ ६५
कच्चिदभ्यवहार्याणि गात्रसंस्पर्शनानि च ।
घ्रेयाणि च महाराज रक्षन्त्यनुमतास्तव ॥ ६६
कच्चित्कोशश्च कोष्ठं च वाहनं द्वारमायुधम् ।
आयश्च कृतकल्याणैस्तव भक्तैरनुष्ठितः ॥ ६७
कच्चिदाभ्यन्तरेभ्यश्च बाह्येभ्यश्च विशांपते ।
रक्षस्यात्मानमेवाग्रे तांश्च स्वेभ्यो मिथश्च तान् ॥ ६८
कच्चिन्न पाने द्यूते वा क्रीडासु प्रमदासु च ।
प्रतिजानन्ति पूर्वाह्णे व्ययं व्यसनजं तव ॥ ६९
कच्चिदायस्य चार्धेन चतुर्भागेन वा पुनः ।
पादभागैस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुद्ध्यते तव ॥ ७०
कच्चिज्ज्ञातीन्गुरून्वृद्धान्वणिजः शिल्पिनः श्रितान् ।
अभीक्ष्णमनुगृह्णासि धनधान्येन दुर्गतान् ॥ ७१
कच्चिदायव्यये युक्ताः सर्वे गणकलेखकाः ।
अनुतिष्ठन्ति पूर्वाह्णे नित्यमायं व्ययं तव ॥ ७२

कच्चिदर्थेषु संप्रौढान् हितकामाननुप्रियान् ।
नापकर्षसि कर्मभ्यः पूर्वमप्राप्य किल्बिषम् ॥ ७३
कच्चिद्विदित्वा पुरुषानुत्तमाधममध्यमान् ।
त्वं कर्मस्वनुरूपेषु नियोजयसि भारत ॥ ७४
कच्चिन्न लुब्धाश्चौरा वा वैरिणो वा विशांपते ।
अप्राप्तव्यवहारा वा तव कर्मस्वनुष्ठिताः ॥ ७५
कच्चिन्न चौरैर्लुब्धैर्वा कुमारैः स्त्रीबलेन वा ।
त्वया वा पीड्यते राष्ट्रं कच्चित्तुष्टाः कृषीबलाः ॥ ७६
कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि च बृहन्ति च ।
भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका ॥ ७७
कच्चिन्न भक्तं बीजं च कर्षकस्यावसीदति ।
प्रत्येकं च शतं वृध्या ददास्यृणमनुग्रहम् ॥ ७८
कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोयं सुखमेधते ॥ ७९
कच्चिच्छूराः कृतप्रज्ञाः पञ्च पञ्च स्वनुष्ठिताः ।
क्षेमं कुर्वन्ति संहत्य राजञ्जनपदे तव ॥ ८०
कच्चिन्नगरगुप्त्यर्थं ग्रामा नगरवत्कृताः ।
ग्रामवच्च कृताः प्रान्तास्ते च सर्वे त्वदर्पणाः ॥ ८१

लवः सस्यच्छेदनकालः मुष्टिः सस्यानां गोपनकालः दुर्भिक्षमिति यावत् । लूञ् छेदने मुषस्तेये आभ्यां अधिकरणे घञ्क्तिनौ । परराष्ट्रे क्षेत्रस्थेषु सस्येषु मुषलब्धार्थैर्दुर्भिक्षे च राजकुललब्धभक्तोपजीविभिर्निरन्तराक्रांताः शत्रवः सुखं जेया इत्यर्थः ॥६४॥ स्वपरराष्ट्रेष्विति दृष्टान्तार्थं स्वराष्ट्रे इव परराष्ट्रे प्रविष्टाः बहवः अधिकृताः स्थाने स्थाने स्थिताः सैनापत्यादयोऽर्थान् प्रयोजनानि प्रजावशीकरणकरग्रहणादीनि रक्षन्ति च परस्परं संभूय परकीयमागतं सेनापत्यादिकं आभिभूय राष्ट्रं स्वीयांश्च रक्षन्तीत्यर्थः ॥ ६५ ॥ अभ्यवहार्याणि भक्ष्याणि । गात्रसंस्पर्शनानि वस्त्राणि । संघर्षणानीति पाठे चन्दनागुरुकुंकुमकस्तूरिकादीनि घ्रेयाणि उत्तमधूपादीनि । अनुमताः विश्वस्ताः । तव त्वदर्थं रक्षन्ति न तु देशान्तरोत्पन्नानि तानि स्वयमेव स्वीकुर्वन्तीत्यर्थः॥६६॥ कोशो धनगृहम् । कोष्ठं धान्यस्थानम् ॥६७॥ आभ्यन्तरेभ्यः सूदादिभ्यः । बाह्येभ्यः सेनापत्यादिभ्यः । तानुभयान्स्वेभ्यः पुत्रामात्यादिभ्यः। तानपि मिथः पुत्रममात्यादमात्यं च पुत्राद्रक्षसि ॥६८॥ कच्चिन्नेति। पानादिभ्यमनजं व्ययं तव पूर्वाह्णे धर्माचरणकाले भृत्याः न प्रतिजानन्ति नावेदयन्ति। आवेदने हि तदानीमागताः शिष्टाः पुरोहितादयः पानादिदुर्व्यसनासक्तं त्वां ज्ञात्वा त्यजेयुरिति भावः ॥ ६९ ॥ सुभिक्षसाम्यदुर्भिक्षेषु आयस्य पादेन पादाभ्यां त्रिभिः पादैर्वा व्ययः संशुद्ध्यते पूर्यते । सर्वथापि कोशवृद्धिः कार्येति भावः ॥७०॥ दुर्गतान् दरिद्रान् ॥ ७१ ॥ अनुतिष्ठन्ति निवेदयन्ति ॥ ॥ ७२ ॥ अनु प्रौढत्वहितकामत्वज्ञानानन्तरं प्रियान् कर्मभ्योपकर्षःअधिकारच्युतिः सा च पूर्वं किल्बिषं अप्राप्य दोषमदृष्ट्वा न कर्तव्येत्यर्थः ॥ ७३ ॥ अप्राप्तव्यवहाराः अप्रौढाः ॥ ७५ ॥ देवमातृका वृष्टिनिष्पाद्यसस्या ॥ ७७ ॥ प्रत्येकं च शतं प्रतिशतमेकं वृद्ध्येति संबन्धः। एकैकः प्रतिमासं वर्धनीय इत्यर्थः। पादिकं च शतं वृद्ध्येति पाठे तु वर्षस्य शतचतुर्थांशो वृद्धिः । तथा च किंचिदधिकाद्व्युत्तरवृद्धिः।आद्ये संबन्धके वृद्धिरन्यत्र निर्बन्धके इति विभागः । यत्तु ' द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च समं शतम्। मासस्य वृद्धिं गृह्णीयात्' इति त्रिकादिपक्षस्तु आधमर्णिकव्यवसायानुसारेणेति ज्ञेयम् ॥ ७८ ॥ वार्ता कृषिर्वाणिज्यं पाशुपाल्यं कुसीदं चेति चतुर्विधा ॥७९॥ कच्चिच्छूरा इति । प्रतिग्रामं पञ्च पञ्चेति स्वनुष्ठिताः शोभनमनुष्ठितमनुष्ठानं येषां ते तथा । ते च प्रशास्ता समाहर्ता संविधाता लेखकः साक्षी चेति । समाहर्ता प्रजाभ्यो द्रव्यमुद्गृह्यैकीकृत्य राज्ञेऽर्पयिता । संविधाता प्रजासमाहर्त्रोरैकवाक्यताघटकः । संहत्य एकीभूय ॥ ॥ ८० ॥ नगरवदित्यनेन बहुभिः शूरैराधिष्ठिता ग्रामाः । बहुतरैर्नगराणि । बहुतमैर्जनपदेश्वरस्थानं पुरसंज्ञम् । ग्रामाः शूद्रजनबहुलाः। आपणादियुक्तं नगरम् । प्रान्ताः सीमास्थाः आटविकानां ग्रामाः । ते च सर्वे त्वदर्पणाः । ते प्रान्तग्रामनगरपुरेशाः त्वय्येव कृताकृतस्य धनस्य चार्पणं निवेदनं येषा

कच्चिद्बलेनानुगताः समानि विषमाणि च ।
पुराणि चौरा निघ्नन्तश्चरन्ति विषये तव ॥ ८२
कच्चित्स्त्रियः सान्त्वयसि कच्चित्ताश्च सुरक्षिताः ।
कच्चिन्न श्रद्दधास्यासां कच्चिद्गुह्यं न भाषसे ॥ ८३
कच्चिदात्ययिकं श्रुत्वा तदर्थमनुचिन्त्य च ।
प्रियाण्यनुभवञ्छेषे न त्वमन्तःपुरे नृप ॥ ८४
कच्चिद्द्वौ प्रथमौ यामौ रात्रेः सुप्त्वा विशांपते ।
संचिन्तयसि धर्मार्थौ याम उत्थाय पश्चिमे ॥ ८५
कच्चिदर्थयसे नित्यं मनुष्यान्समलंकृतः ।
उत्थाय काले कालज्ञैः सह पाण्डव मन्त्रिभिः ॥ ८६
कच्चिद्रक्ताम्बरधराः खड्गहस्ताः स्वलंकृताः ।
उपासते त्वामभितो रक्षणार्थमरिंदम ॥ ८७
कच्चिद्दण्ड्येषु यमवत्पूज्येषु च विशांपते ।
परीक्ष्य वर्तसे सम्यगप्रियेषु प्रियेषु च ॥ ८८
कच्चिच्छारीरमाबाधमौषधैर्नियमेन वा ।
मानसं वृद्धसेवाभिः सदा पार्थापकर्षसि ॥ ८९
कच्चिद्वैद्याश्चिकित्सायामष्टाङ्गायां विशारदाः ।
सुहृदश्चानुरक्ताश्च शरीरे ते हिताः सदा ॥ ९०
कच्चिन्न लोभान्मोहाद्वा मानाद्वापि विशांपते ।
अर्थि प्रत्यर्थिनः प्राप्तान्न पश्यसि कथंचन ॥ ९१
कच्चिन्न लोभान्मोहाद्वा विश्रम्भात्प्रणयेन वा ।
आश्रितानां मनुष्याणां वृत्तिं त्वं संरुणत्सि वै ॥
कच्चित्पौरा न सहिता ये च ते राष्ट्रवासिनः ।
त्वया सह विरुध्यन्ते परैः क्रीताः कथंचन ॥ ९३

कच्चिन्न दुर्बलः शत्रुर्बलेन परिपीडितः ।
मन्त्रेण बलवान्कश्चिदुभाभ्यां च कथंचन ॥ ९४
कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां भूमिपालाः प्रधानतः ।
कच्चित्प्राणांस्त्वदर्थेषु संत्यजन्ति त्वया हृताः ॥ ९५
कच्चित्ते सर्वविद्यासु गुणतोऽर्चा प्रवर्तते ।
ब्राह्मणानां च साधूनां तव नैःश्रेयसी शुभा ।
दक्षिणास्त्वं ददास्येषां नित्यं स्वर्गापवर्गदाः ॥ ९६
कच्चिद्धर्मे त्रयीमूले पूर्वैराचरिते जनैः ।
यतमानस्तथा कर्तुं तस्मिन्कर्मणि वर्तसे ॥ ९७
कच्चित्तव गृहेऽन्नानि स्वादून्यश्नन्ति वै द्विजाः ।
गुणवन्ति गुणोपेतास्तवाध्यक्षं सदक्षिणम् ॥ ९८
कच्चित्क्रतूनेकचित्तो वाजपेयांश्च सर्वशः ।
पुण्डरीकांश्च कार्त्स्न्येन यतसे कर्तुमात्मवान् ॥ ९९
कच्चिज्ज्ञातीन्गुरून्वृद्धान्दैवतांस्तापसानपि ।
चैत्यांश्च वृक्षान्कल्याणान्ब्राह्मणांश्च नमस्यसि ॥ १००
कच्चिच्छोको न मन्युर्वा त्वया प्रोत्पाद्यतेऽनघ ।
अपि मङ्गलहस्तश्च जनः पार्श्वेऽनुतिष्ठति ॥ १०१
कच्चिदेषा च ते बुद्धिर्वृत्तिरेषा च तेऽनघ ।
आयुष्या च यशस्या च धर्मकामार्थदर्शिनी ॥ २
एतया वर्तमानस्य बुद्ध्या राष्ट्रं न सीदति ।
विजित्य च महीं राजा सोऽत्यन्तसुखमेधते ॥ ३
कच्चिदार्यो विशुद्धात्मा क्षारितश्चौरकर्मणि ।
अदृष्टशास्त्रकुशलैर्न लोभाद्वध्यते शुचिः ॥ ४

---

ते तथाभूताः । प्रान्ताधिपो ग्रामाधिपतौ । सोपि नगराधिपतौ । सोपि देशाधिपतौ । सोपि साक्षाद्राज्ञि सर्वं निवेदयतीत्यर्थः ॥ ८१ ॥ विषमाणि सदुर्गाणि निघ्नन्तो ये चरन्ति तान् बलेन सहितः पुराध्यक्षोऽनुद्रवेदित्यर्थः । समेषु विषमेष्वपीति पाठे विषमेषु ईतिकालेषु । अतिवृष्ट्यादय ईतयः ॥ ८२ ॥ आसां वचनं आसां पुरश्च गुह्यं न भाषसे ॥ ८३ ॥ आत्ययिकं अकल्याणम् ॥ ८४ ॥ पश्चिमे चतुर्थे तस्मादेव द्वौ प्रथमौ द्वितीयतृतीयावित्यर्थः ॥ ८५ यमवत् स हि दण्ड्येषु क्रूरः पूज्येषु विनयवान् तद्वत् ॥ ८८ ॥आबाधं दुःखम् । नियमेन पथ्याशनादिना । मानसमाबाधम्॥८९॥अष्टाङ्गायां विचिकित्सायाम् 'निदानं पूर्वलिङ्गानि रूपाण्युपशयस्तथा । संप्राप्तिरौषधी रोगी परिचारक एव च' इति । अष्टावङ्गानि । अथवा रोगो रोगहेतुः । आरोग्यमारोग्यहेतुः । तेषां लक्षणानि च ॥ ९० ॥ अर्थिनः याचकाः प्रत्यर्थिनः परंपरागतवृत्तिप्रतिबन्धात्क्षुब्धचित्ताः । प्रत्येत्य तदर्थिनःशत्रवो वा नशब्दद्वयेन पश्येदेवेति उच्यते

॥ ९१ ॥ कच्चिन्नेति । योरिर्बलेन पूर्वं परिपीडित एव न हतः स एव कालान्तरे मन्त्रेण उभाभ्यां च मन्त्रबलाभ्यां कच्चिद्बलवान्नेति योजना । कच्चित्ते इति पाठे ते तव बले सैन्ये योऽरिःपूर्वपीडित इत्यादि पूर्ववत् ॥ ९४ ॥ प्रधानतः प्राधान्येन हृता दानमानाभ्यां वशीकृताः । आहृता इति वा पाठः ॥ ९५ ॥ विद्यासु साधूनां ब्राह्मणानां गुणतो गुणं दृष्ट्वा ऽर्चा पूजा प्रवर्तते ॥९६॥ तथा कर्तुं पूर्वैराचरितवत्कर्तुम् । तस्मिंस्त्रयी मूले ॥ ९७ ॥ तवाध्यक्षं त्वत्समक्षम् । सदक्षिणं सदक्षिणालाभं यथास्यात्तथाऽश्नन्ति ॥९८॥ चैत्यान्स्थण्डिलवतो ग्रामसूचकान् वृक्षान् ॥१००॥ शोकःनीचानां मन्युः श्रेष्ठानां मङ्गलहस्तो मङ्गलप्रदो मन्त्रादिवित् पुरोहितादिः अनुतिष्ठति स्वस्त्ययनं करोति ॥ १०१ ॥ या एषा इदानीं वृत्तिरस्ति सैव सार्वदिकी कच्चिदस्तीत्यर्थः ॥१०२॥ कच्चिदार्य इति । आर्यो विशुद्धात्मा च सन्नपि कस्मिंश्चिन्निन्द्ये कर्मणि निमित्ते क्षारितो धनधान्यादिना रिक्तः कृतः । 'राजभिः कृतदण्डास्तु शुध्यन्ति मलिना जनाः' इत्यादिशास्त्रप्रामाण्यात् शुचिरपि सन् अदृष्टशास्त्रकुशलैरनुपासितपण्डितै-

दुष्टो गृहीतस्तत्कारी तज्ज्ञैर्दृष्टः सकारणः ।
कच्चिन्न मुच्यते स्तेनो द्रव्यलोभान्नरर्षभ ॥ ५
उत्पन्नान्कच्चिदाढ्यस्य दरिद्रस्य च भारत ।
अर्थान्न मिथ्या पश्यन्ति तवामात्या हृता जनैः ६
नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् ।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ।
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम् ॥ ७
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ।
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः ॥ ८
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान्राजदोषांश्चतुर्दश ।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूलापि पार्थिवाः ॥ ९
कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलं धनम् ।
कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम्॥१०

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं वै सफला वेदाः कथं वै सफलं धनम् ।
कथं वै सफला दाराः कथं वै सफलं श्रुतम्॥११

नारद उवाच ।

अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम् ।
रतिपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥ १२

वैशंपायन उवाच ।

एतदाख्याय स मुनिर्नारदो वै महातपाः ।
पप्रच्छानन्तरमिदं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ १३

नारद उवाच ।

कच्चिदभ्यागता दूराद्वणिजो लाभकारणात् ।
यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं शुल्कोपजीविभिः ॥ १४
कच्चित्ते पुरुषा राजन्पुरे राष्ट्रे च मानिताः ।
उपानयन्ति पण्यानि उपधाभिरवञ्चिताः ॥ १५
कच्चिच्छृणोषि वृद्धानां धर्मार्थसहिता गिरः ।
नित्यमर्थविदां तात यथाधर्मार्थदर्शिनाम् ॥ १६
कच्चित्ते कृषितन्त्रेषु गोषु पुष्पफलेषु च ।
धर्मार्थं च द्विजातिभ्यो दीयते मधुसर्पिषी ॥ १७
द्रव्योपकरणं किंचित्सर्वदा सर्वशिल्पिनाम् ।
चातुर्मास्यावरं सम्यङ्नियतं संप्रयच्छसि ॥ ॥१८
कच्चित्कृतं विजानीषे कर्तारं च प्रशंससि ।
सतां मध्ये महाराज सत्करोषि च पूजयन् ॥ १९
कच्चित्सूत्राणि सर्वाणि गृह्णासि भरतर्षभ ।
हस्तिसूत्राश्वसूत्राणि रथसूत्राणि वा विभो ॥१२०
कच्चिदभ्यस्यते सम्यग्गृहे ते भरतर्षभ ।
धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्रसूत्रं च नागरम् ॥ २१
कच्चिदस्त्राणि सर्वाणि ब्रह्मदण्डश्च तेनघ ।
विषयोगास्तथा सर्वे विदिताः शत्रुनाशनाः॥ २२
कच्चिदग्निभयाच्चैव सर्वं व्यालभयात्तथा ।
रोगरक्षोभयाच्चैव राष्ट्रं स्वं परिरक्षसि ॥ २३
कच्चिदन्धांश्च मूकांश्च पङ्गून्व्यङ्गानबान्धवान् ।
पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रव्रजितानपि ॥ २४
षडनर्था महाराज कच्चित्ते पृष्ठतः कृताः ।
निद्रालस्यं भयं क्रोधो मार्दवं दीर्घसूत्रता ॥ २५

ततः कुरूणामृषभो महात्मा
श्रुत्वा गिरो ब्राह्मणसत्तमस्य ।
प्रणम्य पादावभिवाद्य तुष्टो
राजाब्रवीन्नारदं देवरूपम् ॥ २६

---

मूर्खैरमात्यैः कच्चिन्न वध्यते हन्यतेऽधिकधनलोभात् । अदृष्ट इति सविसर्गपाठे तु शास्त्रकुशलैरमात्यैरज्ञात इत्यर्थः ॥ ४ ॥ दुष्टः स्वभावतः । तत्कारी दुष्टकर्मकारी । तज्ज्ञैः चोरान्वेषिभिः कोष्टपालैः दृष्टः सकारणः चोरितद्रव्यसहितो गृहीतो विसृतश्चेति योजना ॥५॥ उत्पन्नानिति चो वार्थे । आढ्यस्य दरिद्रस्य वार्थान् उत्पन्नान् बीजकणिशन्यायेन स्वल्पकालेनैव बहुगुणां वृद्धिं प्राप्तान् तव अमात्याः मिथ्या अनृतान् चौर्यादिनाऽन्यायेनार्जितानिति कच्चिन्न पश्यन्ति । जनैः पिशुनैः हृताः हतविवेकाः । पाठान्तरे धनैर्हृताः वशीकृताः । लुब्धो हि लिप्सुः परत्रासं तमपि दोषमारोप्य तद्वित्तं जिहीर्षतीति प्रसिद्धम् ॥६॥ नास्तिक्यमित्यादि सार्धश्लोकत्रयं व्याख्यातम् ॥ ७ ॥ कच्चिदभ्यागता इति । अवहार्यन्ते दाप्यन्ते शुल्कं राजग्राह्यं करम् ॥ १४ ॥ पण्यानि विक्रेयद्रव्याणि । उपधाभिः छलैः ॥ १५ ॥ कृषितन्त्रेषु कृष्युत्पाद्येषु पुष्पफलेषु आर्द्रशुष्कधान्येषु । तथा गोषु जातेषु पुष्पफलेषु दुग्धघृतरूपेषु उत्पन्नेषु सत्सु मधुसर्पिषी 'अन्नं वै मधु' इति श्रुतेर्धान्यादिकं अन्नं घृतं च यल्लोके ब्रह्मोत्तरं इत्युच्यते ॥१७॥ द्रव्यं शिल्पिनां वेतनं उपकरणं स्वकार्यसाधनसामग्री। यथा चित्रोत्पादने रञ्जकद्रव्यादि चातुर्मास्यावरं मासचतुष्टयपर्याप्तानधिकम् ॥१८॥ सूत्रं संक्षेपवाक्यं व्यवस्था वा। हस्त्यादीनां लक्षणपरीक्षाचिकित्सौषधोद्दीपनमादनादिप्रकारप्रतिपादकग्रन्थसिद्धान्तमात्रसंक्षेपयुक्तान् गृह्णासि तत्तदाचार्येभ्यः ॥ २० ॥ यन्त्राणि आग्नेयौषधबलेन सीसकास्यदपङ्गोलप्रक्षेपकाणि लोहमयानि भाषाया नालशब्दाभिधेयानि तेषां सूत्रं सूचकं शास्त्रम् । नागरं नगरहितम्॥२१॥ अस्त्राणि मन्त्रप्रयुक्तानि शस्त्राणि । ब्रह्मदण्ड आभिचारिकविद्या ॥ २२ ॥ व्यालः सर्पः व्याघ्रादेरप्येतदुपलक्षणम् ॥ २३ ॥ प्रव्रजितान् जातिबहिष्कृतान् अन्नमात्रार्थिनो दीनान् ॥२४॥

युधिष्ठिर उवाच ।
एवं करिष्यामि यथा त्वयोक्तं
प्रज्ञा हि मे भूय एवाभिवृद्धा ।
उक्त्वा तथा चैव चकार राजा
लेभे महीं सागरमेखलां च ॥ २७
नारद उवाच ।
एवं यो वर्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ।
स विहृत्येह सुसुखी शक्रस्यैति सलोकताम् १२८

इति श्रीमहा० सभापर्वणि लोकपालसभाख्यानपर्वणि नारदप्रश्नमुखेन राजधर्मानुशासने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## ६

वैशंपायन उवाच ।
संपूज्याथाभ्यनुज्ञातो महर्षेर्वचनात्परम् ।
प्रत्युवाचानुपूर्व्येण धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १
युधिष्ठिर उवाच ।
भगवन्न्याय्यमाहैतं यथावद्धर्मनिश्चयम् ।
यथाशक्ति यथान्यायं क्रियतेऽयं विधिर्मया ॥ २
राजभिर्यद्यथा कार्यं पुरा वैतन्न संशयः ।
यथान्यायोपनीतार्थं कृतं हेतुमदर्थवत् ॥ ३
वयं तु सत्पथं तेषां यातुमिच्छामहे प्रभो ।
न तु शक्यं तथा गन्तुं यथा तैर्नियतात्मभिः ॥ ४
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा वाक्यं तदभिपूज्य च ।
मुहूर्तात्प्राप्तकालं च दृष्ट्वा लोकचरं मुनिम् ॥ ५
नारदं सुस्थमासीनमुपासीनो युधिष्ठिरः ।
अपृच्छत्पाण्डवस्तत्र राजमध्ये महाद्युतिः ॥ ६
युधिष्ठिर उवाच ।
भवान्संचरते लोकान्सदा नानाविधान्बहून् ।
ब्रह्मणा निर्मितान्पूर्वं प्रेक्षमाणो मनोजवः ॥ ७
ईदृशी भविता काचिद्दृष्टपूर्वा सभा क्वचित् ।
इतो वा श्रेयसी ब्रह्मंस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८
वैशंपायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा नारदस्तस्य धर्मराजस्य भाषितम् ।
पाण्डवं प्रत्युवाचेदं स्मयन्मधुरया गिरा ॥ ९
नारद उवाच ।
मानुषेषु न मे तात दृष्टपूर्वा न च श्रुता ।
सभा मणिमयी राजन्यथेयं तव भारत ॥ १०
सभां तु पितृराजस्य वरुणस्य च धीमतः ।
कथयिष्ये तथेन्द्रस्य कैलासनिलयस्य च ॥ ११
ब्रह्मणश्च सभां दिव्यां कथयिष्ये गतक्लमाम् ।
दिव्यादिव्यैरभिप्रायैरुपेतां विश्वरूपिणीम् ॥ १२
देवैः पितृगणैः साध्यैर्यज्वभिर्नियतात्मभिः ।
जुष्टां मुनिगणैः शान्तैर्वेदयज्ञैः सदक्षिणैः ।
यदि ते श्रवणे बुद्धिर्वर्तते भरतर्षभ ॥ १३

---

उपसंहरति एवं यो वर्तत इति ॥ २८ ॥ इति० सभा० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

संपूज्याथाभ्यनुज्ञात इति ॥ १ ॥ दिव्यसभालाभाद्गर्वितो युधिष्ठिर उवाच भवानिति । संचरते समो गम्यृच्छीति सूत्रे गमेर्गत्यर्थमात्रोपलक्षणपरत्वात् चरेरपि तङ्कर्मव्यतिहारे वा तङ् त्वं हि लोकेषु संचरसि । लोकाश्च हार्दाकाशनिष्ठे त्वयि संचरन्तीति वार्थः तेन सर्वज्ञत्वमुक्तम् पूर्वं मनुष्यसृष्टेः प्राक् निर्मितान् देवलोकानित्यर्थः ॥ ७ ॥ क्वचिदिति । देवलोकापेक्षया मनुष्यलोके कस्मिंश्चित्काले वा भविता भावित्री अनागतदर्शित्वात्तव तदपि विदितमेवेत्यर्थः ॥८॥ स्मयन् युधिष्ठिरस्यापि गर्वोभूत् देवतामहाभाग्याज्ञानं चेति विस्मयं प्राप्नुवन् ॥ ९ ॥ मानुषेषु न दृष्टा न श्रुतेति अग्रेपि न द्रक्ष्यते न श्रोष्यते पूर्वकल्पसमानरूपत्वादुत्तरस्यापीत्यर्थः ॥ १० ॥ कैलासेति । कुबेरस्येत्यर्थः ॥ ११ ॥ गतक्लमां अविद्यादिक्लेशैर्वर्जितां तेन पूर्वासु तत्सत्त्वं ज्ञायते । दिव्यादिव्यैरिति । दिव्या दिविभवाः रम्भोर्वश्यादयः अदिव्यास्तदन्ये मानुषाः पित्रादयः ।'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठान्ति तेन स पितृलोकेन संपन्नो महीयत' इति ब्रह्मलोके तत्सत्त्वस्यापि श्रवणात् । अभिप्रेयन्ते संकल्प्यन्ते इत्यभिप्रायाः विषयाः तैः विश्वरूपिणीं भावकसंकल्पानुसारि नानारूपवतीं मानसीमित्यर्थः ॥ १२ ॥ जुष्टां सेवितां यदि श्रवणे बुद्धिर्वर्तते तर्हि कथयिष्ये इति पूर्वेण संबन्धः ॥ १३ ॥

नारदेनैवमुक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
प्राञ्जलिर्भ्रातृभिः सार्धं तैश्च सर्वैर्द्विजोत्तमैः ॥ १४
नारदं प्रत्युवाचेदं धर्मराजो महामनाः ।
सभाः कथय ताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥
किंद्रव्यास्ताः सभा ब्रह्मन्किंविस्ताराः किमायताः
पितामहं च के तस्यां सभायां पर्युपासते ॥ १६
वासवं देवराजं च यमं वैवस्वतं च के ।
वरुणं च कुबेरं च सभायां पर्युपासते ॥ १७
एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रह्मर्षे वदतस्तव ।
श्रोतुमिच्छाम सहिताः परं कौतूहलं हि नः ॥१८
एवमुक्तः पाण्डवेन नारदः प्रत्यभाषत ।
क्रमेण राजन्दिव्यास्ताः श्रूयन्तामिह नः सभाः

इति श्रीमहा० सभापर्वणि लोकपालसभाख्यानपर्वणि युधिष्ठिरसभाजिज्ञासायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

## ७

नारद उवाच ।
शक्रस्य तु सभा दिव्या भास्वरा कर्मनिर्मिता ।
स्वयं शक्रेण कौरव्य निर्जितार्कसमप्रभा ॥ १
विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्धमायता ।
वैहायसी कामगमा पञ्चयोजनमुच्छ्रिता ॥ २
जराशोकक्लमापेता निरातङ्का शिवा शुभा ।
वेश्मासनवती रम्या दिव्यपादपशोभिता ॥ ३
तस्यां देवेश्वरः पार्थ सभायां परमासने ।
आस्ते शच्या महेन्द्राण्या श्रिया लक्ष्म्या च भारत
बिभ्रद्वपुरनिर्देश्यं किरीटी लोहिताङ्गदः ।
विरजोम्बरश्चित्रमाल्यो ह्रीकीर्तिद्युतिभिः सह॥ ५
तस्यामुपासते नित्यं महात्मानं शतक्रतुम् ।
मरुतः सर्वशो राजन्सर्वे च गृहमेधिनः ॥ ६
सिद्धा देवर्षयश्चैव साध्या देवगणास्तथा ।
मरुत्वन्तश्च सहिता भास्वन्तो हेममालिनः ॥ ७
एते सानुचराः सर्वे दिव्यरूपाः स्वलंकृताः ।
उपासते महात्मानं देवराजमरिंदमम् ॥ ८
तथा देवर्षयः सर्वे पार्थ शक्रमुपासते ।
अमला धूतपाप्मानो दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ ९
तेजस्विनः सोमसुतो विशोका विगतज्वराः ।
पराशरः पर्वतश्च तथा सावर्णिगालवौ ॥ १०
शङ्खश्च लिखितश्चैव तथा गौरशिरा मुनिः ।
दुर्वासाः क्रोधनः श्येनस्तथा दीर्घतमा मुनिः ११
पवित्रपाणिः सावर्णिर्याज्ञवल्क्योथ भालुकिः ।
उद्दालकः श्वेतकेतुस्ताण्ड्यो भाण्डायनिस्तथा१२
हविष्मांश्च गरिष्ठश्च हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ।
हृद्यश्चोदरशाण्डिल्यः पाराशर्यः कृषीवलः ॥ १३
वातस्कन्धो विशाखश्च विधाता काल एव च ।
करालदन्तस्त्वष्टा च विश्वकर्मा च तुम्बुरुः ॥ १४
अयोनिजा योनिजाश्च वायुभक्षा हुताशिनः ।
ईशानं सर्वलोकस्य वज्रिणं समुपासते ॥ १५
सहदेवः सुनीथश्च वाल्मीकिश्च महातपाः ।
समीकः सत्यवांश्चैव प्रचेताः सत्यसंगरः ॥ १६
मेधातिथिर्वामदेवः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
मरुत्तश्च मरीचिश्च स्थाणुश्चात्र महातपाः ॥ १७
कक्षीवान्गौतमस्तार्क्ष्यस्तथा वैश्वानरो मुनिः ।
मुनिः कालकवृक्षीय आश्राव्योथ हिरण्मयः ॥१८
संवर्तो देवहव्यश्च विष्वक्सेनश्च वीर्यवान् ।
दिव्या आपस्तथौषध्यः श्रद्धा मेधा सरस्वती१९
अर्थो धर्मश्च कामश्च विद्युतश्चैव पाण्डव ।
जलवाहास्तथा मेघा वायवस्तनयित्नवः ॥ २०

---

इति सभा० नै० भा० भा० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

शक्रस्येति । कर्मभिर्विश्वकर्मणो यत्नैर्निर्मिता । शक्रेण निर्जिता चेति संबन्धः ॥ १ ॥ अध्यर्धं सार्धं आयता दीर्घा वैहायसी खेचरी ॥ २ ॥ निरातङ्का निर्भया शिवा शान्तजना शुभा कल्याणावहा ॥ ३ ॥ शच्या नामतः श्रिया शोभया ॥ ४ ॥ मरुतो गृहमेधिन इति सामानाधिकरण्यम् ॥६॥ सोमसुतः सोमाभिषवकर्तारः सोमयाजिन इति यावत् ॥ १० ॥ अर्थः अर्थाद्यभिमानिन्यो देवताः ॥२०॥

प्राची दिग्यज्ञवाहाश्च पावकाः सप्तविंशतिः ।
अग्नीषोमौ तथेन्द्राग्नी मित्रश्च सवितार्यमा ॥ २१
भगो विश्वे च साध्याश्च गुरुः शुक्रस्तथैव च ।
विश्वावसुश्चित्रसेनः सुमनस्तरुणस्तथा ॥ २२
यज्ञाश्च दक्षिणाश्चैवं ग्रहास्तोमाश्च भारत ।
यज्ञवाहाश्च ये मन्त्राःसर्वे तत्र समासते ॥ २३
तथैवाप्सरसो राजन्गन्धर्वाश्च मनोरमाः ।
नृत्यवादित्रगीतैश्च हास्यैश्च विविधैरपि ॥ २४
रमयन्ति स्म नृपते देवराजं शतक्रतुम् ।
स्तुतिभिर्मङ्गलैश्चैव स्तुवन्तः कर्मभिस्तथा ॥ २५
विक्रमैश्च महात्मानं बलवृत्रनिषूदनम् ।
ब्रह्मराजर्षयश्चैव सर्वे देवर्षयस्तथा ॥ २६
विमानैर्विविधैर्दिव्यैर्दीप्यमाना इवाग्नयः ।
स्रग्विणो भूषिताः सर्वे यान्ति चायान्ति चापरे ॥ २७
बृहस्पतिश्च शुक्रश्च नित्यमास्तां हि तत्र वै ।
एते चान्ये च बहवो महात्मानो यतव्रताः ॥ २८
विमानैश्चन्द्रसङ्काशैःसोमवत्प्रियदर्शनाः ।
ब्रह्मणः सदृशा राजन्भृगुः सप्तर्षयस्तथा ॥ २९
एषा सभा मया राजन्दृष्टा पुष्करमालिनी ।
शतक्रतोर्महाबाहो याम्यामपि सभां शृणु ॥ ३०

इति श्रीमहाभा० सभाप० लोकपालसभाख्यानपर्वणि इन्द्रसभावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

## ८

नारद उवाच ।

कथयिष्ये सभां याम्यां युधिष्ठिर निबोध ताम् ।
वैवस्वतस्य यां पार्थ विश्वकर्मा चकार ह ॥ १
तैजसी सा सभा राजन्बभूव शतयोजना ।
विस्तारायामसंपन्ना भूयसी चापि पाण्डव ॥ २
अर्कप्रकाशा भ्राजिष्णुः सर्वतः कामरूपिणी ।
नातिशीता न चात्युष्णा मनसश्च प्रहर्षिणी ॥ ३
न शोको न जरा तस्यां क्षुत्पिपासे न चाप्रियम् ।
न च दैन्यं क्लमो वापि प्रतिकूलं न चाप्युत ॥ ४
सर्वे कामाः स्थितास्तस्यां ये दिव्या ये च मानुषाः
सारवच्च प्रभूतं च भक्ष्यं भोज्यमरिंदम ॥ ५
लेह्यं चोष्यं च पेयं च हृद्यं स्वादु मनोहरम् ।
पुण्यगन्धाः स्रजस्तस्य नित्यं कामफला द्रुमाः॥६
रसवन्ति च तोयानि शीतान्युष्णानि चैव हि ।
तस्यां राजर्षयः पुण्यास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥७
यमं वैवस्वतं तात प्रहृष्टाः पर्युपासते ।
ययातिर्नहुषः पूरुर्मांधाता सोमको नृगः ॥ ८
त्रसदस्युश्च राजर्षिः कृतवीर्यः श्रुतश्रवाः ।
अरिष्टनेमिः सिद्धश्च कृतवेगः कृतिर्निमिः ॥ ९
प्रतर्दनः शिबिर्मत्स्यः पृथुलाक्षो बृहद्रथः ।
वार्तो मरुत्तः कुशिकः सांकाश्यः सांकृतिर्ध्रुवः ॥१०
चतुरश्वः सदस्योर्मिः कार्तवीर्यश्च पार्थिवः ।
भारतः सुरथश्चैव सुनीथो निशठो नलः ॥ ११
दिवोदासश्च सुमना अम्बरीषो भगीरथः ।
व्यश्वः सदश्वो वध्र्यश्वः पृथुवेगः पृथुश्रवाः ॥१२
पृषदश्वो वसुमनाः क्षुपश्च सुमहाबलः ।
रुषद्गुर्वृषसेनश्च पुरुकुत्सो ध्वजी रथी ॥ १३
आर्ष्टिषेणो दिलीपश्च महात्मा चाप्युशीनरः ।
औशीनरिः पुण्डरीकः शर्यातिः शरभः शुचिः॥१४
अङ्गोरिष्टश्च वेनश्च दुष्यन्तः सृंजयो जयः ।
भाङ्गासुरिः सुनीथश्च निषधोथ वहीनरः॥ १५
करंधमो बाह्लिकश्च सुद्युम्नो बलवान्मधुः ।
ऐलो मरुत्तश्च तथा बलवान्पृथिवीपतिः ॥ १६

---

'ब्रह्मणोङ्गात्प्रसूतोग्निरङ्गिरा इति विश्रुतः । दक्षिणाग्निर्गार्हपत्याहवनीयाविति त्रयी । निर्मन्थ्यो वैद्युतः शूरः संवर्तो लौकिकस्तथा । ·जाठरो विषगः क्रव्यात्क्षेमवान्वैष्णवस्तथा । दस्युमान्बलदश्चैव शान्तः पुष्टो विभावसुः । ज्योतिष्मान्भरतो भद्रः स्विष्टकृद्वसुमान्क्रतुः । सोमश्च पितृमांश्चैव पावकाः सप्तविंशतिः ' ॥ २१ ॥ एवं यज्ञदाक्षिणादयः ॥ २३ ॥ पुष्करमालिनी नामतः ॥ ३० ॥ इति सभा० नै० भा० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

कथयिष्ये इति ॥ १ ॥ तैजसी ज्योतिर्मयी सौवर्णी वा भूयसी महती पूर्वसभातः ॥ २ ॥ सर्वतः कामरूपिणी यस्यां सर्वं वस्तु संकल्पसमकालमेव सर्वात्मकं भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ कामाः काम्यमाना विषयाः । प्रभूतं बहुलम् । भक्ष्यं अपूपादि । भोज्यं ओदनादि ॥ ५ ॥ लेह्यं खण्डशर्करादि चोष्यं इक्षुकाण्डादि स्रजः परंपराः तस्य भक्ष्याद्यन्नस्य कामफलाः आम्रादेरपि पनसादिकं फलमुद्भवति कामानुसारादित्यर्थः ॥ ६ ॥

कपोतरोमा तृणकः सहदेवार्जुनौ तथा ।
त्र्यश्वः साश्वः कृशाश्वश्च शशबिन्दुश्च पार्थिवः॥
रामो दाशरथिश्चैव लक्ष्मणोथ प्रतर्दनः ।
अलर्कः कक्षसेनश्च गयो गौराश्व एव च ॥ १८
जामदग्न्यश्च रामश्च नाभागसगरौ तथा ।
भूरिद्युम्नो महाश्वश्च पृथाश्वो जनकस्तथा ॥ १९
राजा वैन्यो वारिसेनः पुरुजिज्जनमेजयः ।
ब्रह्मदत्तस्त्रिगर्तश्च राजोपरिचरस्तथा ॥ २०
इन्द्रद्युम्नो भीमजानुर्गौरपृष्ठो नघोलयः ।
पद्मोथ मुचुकुन्दश्च भूरिद्युम्नः प्रसेनजित् ॥ २१
अरिष्टनेमिः सुद्युम्नः पृथुलाश्वोऽष्टकस्तथा ।
शतं मत्स्या नृपतयः शतं नीपाः शतं हयाः ॥ २२
धृतराष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं च ब्रह्मदत्तानां वीरिणामीरिणां शतम् ॥ २३
भीष्माणां द्वे शतेप्यत्र भीमानां तु तथा शतम् ।
शतं च प्रतिविंध्यानां शतं नागाः शतं हयाः ॥
पलाशानां शतं ज्ञेयं शतं काशकुशादयः ।
शान्तनुश्चैव राजेन्द्र पाण्डुश्चैव पिता तव ॥ २५
उशङ्गवः शतरथो देवराजो जयद्रथः ।
वृषदर्भश्च राजर्षिर्बुद्धिमान्सह मन्त्रिभिः ॥ २६
अथापरे सहस्राणि ये गताः शशबिन्दवः ।
इष्ट्वाश्वमेधैर्बहुभिर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः ॥ २७
एते राजर्षयः पुण्याः कीर्तिमन्तो बहुश्रुताः ।
तस्यां सभायां राजेन्द्र वैवस्वतमुपासते ॥ २८
अगस्त्योथ मतङ्गश्च कालो मृत्युस्तथैव च ।
यज्वानश्चैव सिद्धाश्च ये च योगशरीरिणः ॥ २९
अग्निष्वात्ताश्च पितरः फेनपाश्चोष्मपाश्च ये ।
सुधावन्तो बर्हिषदो मूर्तिमन्तस्तथापरे ॥ ३०
कालचक्रं च साक्षाच्च भगवान्हव्यवाहनः ।
नरा दुष्कृतकर्माणो दक्षिणायनमृत्यवः ॥ ३१
कालस्य नयने युक्ता यमस्य पुरुषाश्च ये ।
तस्यां शिंशपपालाशास्तथा काशकुशादयः ३२
उपासते धर्मराजं मूर्तिमन्तो जनाधिप ।
एते चान्ये च बहवः पितृराजसभासदः ।
न शक्याः परिसंख्यातुं नामभिः कर्मभिस्तथा ॥
असंबाधा हि सा पार्थ रम्या कामगमा सभा ।
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा निर्मिता विश्वकर्मणा॥३४
ज्वलन्ती भासमाना च तेजसा स्वेन भारत ।
तामुग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः ॥३५
शान्ताः संन्यासिनः शुद्धाः पूताः पुण्येन कर्मणा
सर्वे भास्वरदेहाश्च सर्वे च विरजोम्बराः ॥ ३६
चित्राङ्गदाश्चित्रमाल्याः सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ।
सुकृतैः कर्मभिः पुण्यैः पारिबर्हैश्च भूषिताः ॥ ३७
गन्धर्वाश्च महात्मानः सहशश्चाप्सरोगणाः ।
वादित्रं नृत्यगीतं च हास्यं लास्यं च सर्वशः॥३८
पुण्याश्च गन्धाः शद्वाश्च तस्यां पार्थ समन्ततः ।
दिव्यानि चैव माल्यानि उपतिष्ठन्ति नित्यशः॥
शतं शतसहस्राणि धर्मिणां तं प्रजेश्वरम् ।
उपासते महात्मानं रूपयुक्ता मनस्विनः ॥ ४०
ईदृशी सा सभा राजन्पितृराज्ञो महात्मनः ।
वरुणस्यापि वक्ष्यामि सभां पुष्करमालिनीम् ४१

इति श्रीमहाभा० सभाप० लोकपालसभाख्यानप० यमसभावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

---

राम इति । रामलक्ष्मणयोर्विष्णुशेषरूपेण स्वस्थानस्थयोरपि प्रतिमारूपेण उपासकानुग्रहार्थमत्रावस्थानं बोध्यम् ॥ १८ ॥ धृतराष्ट्राश्चैकशतमिति । पुराणेषु प्रायेणाधिकारिणामेव कीर्तनात्तेषां च प्रतिकल्पं समाननामरूपकर्मत्वादनेककल्पधर्मसभावासिनां तेषां बहुत्वं युक्तम् सेनापत्यादिशब्दवदधिकारवाचित्वाद्धृतराष्ट्रादिशब्दानाम् ॥ २३ ॥ अयमेव न्यायः पलाशादियज्ञियद्रव्याद्यभिमानिदेवतासु ज्ञेय इत्याशयवानाह पलाशानामिति ॥ २५ ॥ कालचक्रं चेति । संवत्सराद्यभिमानिन्यो देवताः । दुष्कृतकर्माणः विद्याविहीनकर्ममात्रनिष्ठाः ॥ ३१ ॥ असंबाधा असंकीर्णा ॥ ३४ ॥ संन्यासिनः निष्कामकर्मकर्तारः काम्यानां कर्मणां त्यागिनो वा । पूर्वेषामपि आपस्तम्बेन 'तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छायागन्ध इत्यनूत्पद्येते। एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते' इति आनुषङ्गिकफलभागित्वदर्शनात् । निर्मिते रोपिते । अर्था दिव्यान्नपानादयः ॥ ३६ ॥ पुष्करैर्मूर्तिमद्भिस्तीर्थविशेषैः मालिनीं शोभिनीम् ॥ ४१ ॥ इति सभा० नै० भा० भावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

नारद उवाच ।

युधिष्ठिर सभा दिव्या वरुणस्यामितप्रभा ।
प्रमाणेन यथा याम्या शुभप्राकारतोरणा ॥ १
अन्तःसलिलमास्थाय विहिता विश्वकर्मणा ।
दिव्यै रत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताः ॥ २
नीलपीतैः सिताः श्यामैः सितैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीजालधारिभिः ॥ ३
तथा शकुनयस्तस्यां विचित्रा मधुरस्वराः ।
अनिर्देश्या वपुष्मन्तः शतशोथ सहस्रशः ॥ ४
सा सभा सुखसंस्पर्शा न शीता न च घर्मदा ।
वेश्मासनवती रम्या सिता वरुणपालिता ॥ ५
यस्यामास्ते स वरुणो वारुण्या च समन्वितः ।
दिव्यरत्नाम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥ ६
स्रग्विणो दिव्यगन्धाश्च दिव्यगन्धानुलेपनाः ।
आदित्यास्तत्र वरुणं जलेश्वरमुपासते ॥ ७
वासुकिस्तक्षकश्चैव नागश्चैरावतस्तथा ।
कृष्णश्च लोहितश्चैव पद्मश्चित्रश्च वीर्यवान् ॥ ८
कम्बलाश्वतरौ नागौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ।
मणिमान्कुण्डधारश्च कर्कोटकधनंजयौ ॥ ९
पाणिमान्कुण्डधारश्च बलवान्पृथिवीपते ।
प्रह्लादो मूषिकादश्च तथैव जनमेजयः ॥ १०
पताकिनो मण्डलिनः फणावन्तश्च सर्वशः ।
एते चान्ये च बहवः सर्पास्तस्यां युधिष्ठिर ।
उपासते महात्मानं वरुणं विगतक्लमाः ॥ ११
बलिर्वैरोचनो राजा नरकः पृथिवींजयः ।
संह्रादो विप्रचित्तिश्च कालखञ्जाश्च दानवाः ॥१२
सुहनुर्दुर्मुखः शङ्खः सुमनाः सुमतिस्ततः ।
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा ॥ १३
विश्वरूपः स्वरूपश्च विरूपोथ महाशिराः ।
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा दशावरः ॥ १४
टिट्टिभो विटभूतश्च संह्रादश्चेन्द्रतापनः ।
दैत्यदानवसङ्घाश्च सर्वे रुचिरकुण्डलाः ॥ १५
स्रग्विणो मौलिनश्चैव तथा दिव्यपरिच्छदाः ।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥ १६
ते तस्यां वरुणं देवं धर्मपाशधरं सदा ।
उपासते महात्मानं सर्वे सुचरितव्रताः ॥ १७
तथा समुद्राश्चत्वारो नदी भागीरथी च सा ।
कालिन्दी विदिशा वेणा नर्मदा वेगवाहिनी १८
विपाशा च शतद्रुश्च चन्द्रभागा सरस्वती ।
इरावती वितस्ता च सिन्धुर्देवनदी तथा ॥ १९
गोदावरी कृष्णवेणा कावेरी च सरिद्वरा ।
किंपुना च विशल्या च तथा वैतरणी नदी ॥२०
तृतीया ज्येष्ठिला चैव शोणश्चापि महानदः ।
चर्मण्वती तथा चैव पर्णाशा च महानदी ॥ २१
सरयूर्वारवत्याथ लाङ्गली च सरिद्वरा ।
करतोया तथात्रेयी लौहित्यश्च महानदः ॥ २२
लंघती गोमती चैव सन्ध्या त्रिःस्रोतसी तथा ।
एताश्चान्याश्च राजेन्द्र सुतीर्था लोकविश्रुताः २३
सरितः सर्वतश्चान्या तीर्थानि च सरांसि च ।
कूपाश्च सप्रस्रवणा देहवन्तो युधिष्ठिर ॥ २४
पल्वलानि तडागानि देहवन्त्यथ भारत ।
दिशस्तथा मही चैव तथा सर्वे महीधराः ॥ २५
उपासते महात्मानं सर्वे जलचरास्तथा ।
गीतवादित्रवन्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ २६
स्तुवन्तो वरुणं तस्यां सर्व एव समासते ।
महीधरा रत्नवन्तो रसा ये च प्रतिष्ठिताः ॥ २७
कथयन्तः सुमधुराः कथास्तत्र समासते ।
वारुणश्च तथा मन्त्री सुनाभः पर्युपासते ॥ २८
पुत्रपौत्रैः परिवृतो गोनाम्ना पुष्करेण च ।
सर्वे विग्रहवन्तस्ते तमीश्वरमुपासते ॥ २९
एषा मया संपतता वारुणी भरतर्षभ ।
दृष्टपूर्वा सभा रम्या कुबेरस्य सभां शृणु ॥ ३०

इति श्रीम० सभाप० लोकपालसभाख्यानपर्वणि वरुणसभावर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

९

युधिष्ठिरेति॥१॥दिव्यैरिति तस्यामित्युत्तरश्लोकादपकृष्यते ॥२॥अवतानैर्वितानवद्वृक्षस्वरूपाच्छादकैः लताप्रतानैः सिताः बद्धाः प्रदेशा इति शेषः ॥३॥ वपुष्मन्तः प्रशस्तदेहाः ॥४॥ वारुण्या वरुणान्या भार्यया वा ॥६॥ संपतता समागच्छता ॥ ३० ॥ इति सभा० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

नारद उवाच ।
सभा वैश्रवणी राजञ्छतयोजनमायता ।
विस्तीर्णा सप्ततिश्चैव योजनानि सितप्रभा ॥ १
तपसा निर्जिता राजन्स्वयं वैश्रवणेन सा ।
शशिप्रभा प्रावरणा कैलासशिखरोपमा ॥ २
गुह्यकैरुह्यमाना सा खे विषक्तेव शोभते ।
दिव्या हेममयैरुच्चैः प्रासादैरुपशोभिता ॥ ३
महारत्नवती चित्रा दिव्यगन्धा मनोरमा ।
सिताभ्रशिखराकारा प्लवमानेव दृश्यते ॥ ४
दिव्या हेममयैरङ्गैर्विद्युद्भिरिव चित्रिता ।
तस्यां वैश्रवणो राजा विचित्राभरणाम्बरः ॥ ५
स्त्रीसहस्रैर्वृतः श्रीमानास्ते ज्वलितकुण्डलः ।
दिवाकरनिभे पुण्ये दिव्यास्तरणसंवृते ।
दिव्यपादोपधाने च निषण्णः परमासने ॥ ६
मन्दाराणामुदाराणां वनानि परिलोडयन् ।
सौगन्धिकवनानां च गन्धं गन्धवहो वहन् ॥७
नलिन्याश्चालकाख्याया नन्दनस्य वनस्य च ।
शीतो हृदयसंह्लादी वायुस्तमुपसेवते ॥ ८
तत्र देवाः सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः ।
दिव्यतानैर्महाराज गायन्ति स्म सभागताः ॥९
मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता ।
चारुनेत्रा घृताची च मेनका पुञ्जिकस्थला॥१०
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचा उर्वशी इरा ॥
वर्गा च सौरभेयी च समीची बुद्बुदा लता ।
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः ॥१२
उपतिष्ठन्ति धनदं गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
अनिशं दिव्यवादित्रैर्नृत्यगीतैश्च सा सभा ॥ १३
अशून्या रुचिरा भाति गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
किंनरा नाम गन्धर्वा नरा नाम तथा परे ॥ १४
मणिभद्रोथ धनदः श्वेतभद्रश्च गुह्यकः ।
कशेरको गण्डकण्डूः प्रद्योतश्च महाबलः ॥ १५
कुस्तुम्बरुः पिशाचश्च गजकर्णो विशालकः ।
वराहकर्णस्ताम्रोष्ठः फलकक्षः फलोदकः ॥ १६
हंसचूडः शिखावर्तो हेमनेत्रो विभीषणः ।
पुष्पाननः पिङ्गलकः शोणितोदः प्रवालकः १७
वृक्षवास्यनिकेतश्च चीरवासाश्च भारत ।
एते चान्ये च बहवो यक्षाः शतसहस्रशः ॥ १८
सदा भगवती लक्ष्मीस्तत्रैव नलकूबरः ।
अहं च बहुशस्तस्यां भवन्त्यन्ये च मद्विधाः ॥१९
ब्रह्मर्षयो भवन्त्यत्र तथा देवर्षयो परे ।
क्रव्यादाश्च तथैवान्ये गन्धर्वाश्च महाबलाः ॥२०
उपासते महात्मानं तस्यां धनदमीश्वरम् ।
भगवान्भूतसंघैश्च वृतः शतसहस्रशः ॥ २१
उमापतिः पशुपतिः शूलभृद्भगनेत्रहा ।
त्र्यम्बको राजशार्दूल देवी च विगतक्लमा ॥ २२
वामनैर्विकटैः कुब्जैः क्षतजाक्षैर्महारवैः ।
मेदोमांसाशनैरुग्रैरुग्रधन्वा महाबलः ॥ २३
नानाप्रहरणैरुग्रैर्वातैरिव महाजवैः ।
वृतः सखायमन्वास्ते सदैव धनदं नृप ॥ २४
प्रहृष्टाः शतशश्चान्ये बहुशः सपरिच्छदाः ।
गन्धर्वाणां च पतयो विश्वावसुर्हाहाहुहूः ॥ २५
तुम्बुरुः पर्वतश्चैव शैलूषश्च तथापरः ।
चित्रसेनश्च गीतज्ञस्तथा चित्ररथोपि च ॥ २६
एते चान्ये च गन्धर्वा धनेश्वरमुपासते ।
विद्याधराधिपश्चैव चक्रधर्मा सहानुजैः ॥ २७
उपाचरति तत्र स्म धनानामीश्वरं प्रभुम् ।
किंनराः शतशस्तत्र धनानामीश्वरं प्रभुम् ॥ २८
आसते चापि राजानो भगदत्तपुरोगमाः ।
द्रुमः किंपुरुषेशश्च उपास्ते धनदेश्वरम् ॥ २९
राक्षसाधिपतिश्चैव महेन्द्रो गन्धमादनः ।
सह यक्षैः सगन्धर्वैः सह सर्वैर्निशाचरैः ॥ ३०
बिभीषणश्च धर्मिष्ठ उपास्ते भ्रातरं प्रभुम् ।
हिमवान्पारियात्रश्च विन्ध्यकैलासमन्दराः ३१
मलयो दर्दुरश्चैव महेन्द्रो गन्धमादनः ।
इन्द्रकीलः सुनाभश्च तथा दिव्यौ च पर्वतौ ३२
एते चान्ये च बहवः सर्वे मेरुपुरोगमाः ।
उपासते महात्मानं धनानामीश्वरं प्रभुम् ॥ ३३

---

१०

सभेति ॥ १ ॥ शशिप्रभाप्रावरणा शशिप्रभामपि धावल्येन तिरस्करोतीत्यर्थः ॥ २ ॥ विषक्ता लग्ना ॥ ३ ॥ रङ्गैरिति छेदः ॥ ५ ॥ मनोहृदयसंह्लादीति पाठे मनश्चित्तं हृदयं कदम्बगोलकाकृतिर्मांसखण्डः ॥८॥ दिव्यतानैः रम्यैस्तानैर्गीतशास्त्रप्रसिद्धैरेकोनपञ्चाशत्संख्यैः ॥ ९ ॥

नन्दीश्वरश्च भगवान्महाकालस्तथैव च ॥
शङ्कुकर्णमुखाः सर्वे दिव्याः पारिषदास्तथा ३४
काष्ठः कुटीमुखो दन्ती विजयश्च तपोधिकः ।
श्वेतश्च वृषभस्तत्र नर्दन्नास्ते महाबलः ॥ ३५
धनदं राक्षसाश्चान्ये पिशाचाश्च उपासते ।
पारिषदैः परिवृतमुपायान्तं महेश्वरम् ॥ ३६
सदा हि देवदेवेशं शिवं त्रैलोक्यभावनम् ।
प्रणम्य मूर्ध्ना पौलस्त्यो बहुरूपमुमापतिम् ॥ ३७
ततोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य महादेवाद्धनेश्वरः ।
आस्ते कदाचिद्भगवान्भवो धनपतेः सखा ३८
निधिप्रवरमुख्यौ च शङ्खपद्मौ धनेश्वरौ ।
सर्वान्निधीन्प्रगृह्याथ उपास्तां वै धनेश्वरम् ३९
सा सभा तादृशी रम्या मया दृष्टान्तरिक्षगा ।
पितामहसभां राजन्कीर्तयिष्ये निबोध ताम् ॥

इति श्रीमहाभा० सभाप० लोकपालसभाख्यानप० धनदसभावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

## ११

नारद उवाच ।

पितामहसभां तात कथ्यमानां निबोध मे ।
शक्यते या न निर्देष्टुमेवंरूपेति भारत ॥ १
पुरा देवयुगे राजन्नादित्यो भगवान्दिवः ।
आगच्छन्मानुषं लोकं दिदृक्षुर्विगतक्लमः ॥ २
चरन्मानुषरूपेण सभां दृष्ट्वा स्वयंभुवः ।
स तामकथयन्मह्यं दृष्ट्वा तत्त्वेन पाण्डव ॥ ३
अप्रमेयां सभां दिव्यां मानसीं भरतर्षभ ।
अनिर्देश्यां प्रभावेण सर्वभूतमनोरमाम् ॥ ४
श्रुत्वा गुणानहं तस्याः सभायाः पाण्डवर्षभ ।
दर्शनेप्सुस्तथा राजन्नादित्यमिदमब्रुवम् ॥ ५
भगवन्द्रष्टुमिच्छामि पितामहसभां शुभाम् ।
येन वा तपसा शक्या कर्मणा वापि गोपते ॥ ६
औषधैर्वा तथा युक्तैरुत्तमा पापनाशिनी ॥
तन्ममाचक्ष्व भगवन्पश्येयं तां सभां यथा ॥ ७
स तन्मम वचः श्रुत्वा सहस्रांशुर्दिवाकरः ।
प्रोवाच भरतश्रेष्ठ व्रतं वर्षसहस्रिकम् ॥ ८
ब्रह्मव्रतमुपास्स्व त्वं प्रयतेनान्तरात्मना ।
ततोऽहं हिमवत्पृष्ठे समारब्धो महाव्रतम् ॥ ९
ततः स भगवान्सूर्यो मामुपादाय वीर्यवान् ।
आगच्छत्तां सभां ब्राह्मीं विपाप्मा विगतक्लमः ॥
एवंरूपेति सा शक्या न निर्देष्टुं नराधिप ।
क्षणेन हि बिभर्त्यन्यदनिर्देश्यं वपुस्तथा ॥ ११
न वेद परिमाणं वा संस्थानं चापि भारत ।
न च रूपं मया तादृग्दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ १२
सुसुखा सा सदा राजन्न शीता न च घर्मदा ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्त्युत ॥

---

आस्ते इत्यावृत्त्या योजनीयम्। यदा भवः कदाचित्कुबेरसभामध्यास्ते तदा कुबेरोपि भवादनुज्ञां प्राप्य तन्निकटे आस्ते उपविशति ॥ ३८ ॥ इति सभा० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

११

पितामहेति ॥ १ ॥ देवयुगे कृतयुगे ॥ २ ॥ मानसीमित्यनेन भौतिकत्वव्यावृत्तिः तथाहि । 'आतिवाहिक एवायं त्वादृशौश्चित्तदेहकः । आधिभौतिकया बुद्ध्या गृहीतश्चिरभावनात्'इति वासिष्ठोक्तरीत्या प्रपञ्चस्य त्रैविध्यं दृश्यते । तत्रायं स्थूलभूतमय आधिभौतिकः । सूक्ष्मभूतमय आतिवाहिकः स एव अति अत्यन्तं कार्याकारं वोढुं समर्थोतिवाही सूक्ष्मभूतसंघस्तेन निर्वृत्त इति योगात् । अत एव तत्र इन्द्रादिलोकरूपे स्वर्गे । 'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरं । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम्'इति स्वर्गपदनिर्वचनं संगच्छते । संभिन्नं मिश्रं ग्रस्तं भोगोत्तरपापावहम् । अभिलाषः संकल्पः तत्राप्याधिभौतिकस्य तत्त्वं आतिवाहिकः रज्जुरिव भुजङ्गस्य । अस्यापि तत्त्वं चित्तमेव । तदिदमुक्तं चित्तदेहक इति । तादृशी च प्रजापतिसभाऽतो मानसत्वं तत्र युक्तम्॥४॥ औषधैः ज्योतिष्मत्यादिभिः कल्पोक्तप्रकारेण साधितैः ॥७॥ ब्रह्मव्रतं हार्दब्रह्मोपासनम् ॥ ९ ॥ ततः स इति । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्तीति ब्रह्मसभाप्रवेशेधिदैवं प्रत्यक्षसूर्यस्यैव द्वारत्वं अध्यात्मं तु इडाख्यसूर्यनाडीद्वारा ॥ १० ॥ एवमिति मानसत्वादेव रज्जूरगवत्सत्यसती वेति निर्वक्तुं न शक्या क्षणेनेति रज्जुर्यथा भावकबुद्ध्यनुरोधात् स्रक्सर्पदण्डधारादिरूपा तथेयमपि वैकुण्ठकैलासादिरूपेण भातीत्यर्थः ॥ ११ ॥

नानारूपैरिव कृता मणिभिः सा सुभास्वरैः ।
स्तम्भैर्न च धृता सा तु शाश्वती न च साक्षरा ॥
दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभैः ॥ १५
अतिचन्द्रं च सूर्यं च शिखिनं च स्वयंप्रभा ।
दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् १६
तस्यां स भगवानास्ते विदधद्देवमायया ।
स्वयमेकोनिशं राजन्सर्वलोकपितामहः ॥ १७
उपतिष्ठन्ति चाप्येनं प्रजानां पतयः प्रभुम् ।
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिः कश्यपः प्रभुः १८
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमोथ तथाङ्गिराः ।
पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादः कर्दमस्तथा ॥ १९
अथर्वाङ्गिरसश्चैव वालखिल्या मरीचिपाः ।
मनोन्तरिक्षं विद्याश्च वायुस्तेजो जलं मही ॥२०
शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसो गन्धश्च भारत ॥
प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत्कारणं भुवः ॥ २१
अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्यवान् ।
जमदग्निर्भरद्वाजः संवर्तश्च्यवनस्तथा ॥ २२
दुर्वासाश्च महाभाग ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः ।
सनत्कुमारो भगवान् योगाचार्यो महातपाः२३
असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित् ।
ऋषभो जितशत्रुश्च महावीर्यस्तथा मणिः ॥ २४
आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो देहवांस्तत्र भारत ।
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान् ॥२५
वायवः क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च ।
मूर्तिमन्तो महात्मानो महाव्रतपरायणाः ॥ २६
एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपस्थिताः ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च हर्षो द्वेषस्तपो दमः ॥ २७
आयान्ति तस्यां सहिता गन्धर्वाप्सरसां गणाः
विंशतिः सप्त चैवान्ये लोकपालाश्च सर्वशः ॥२८
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव बुधोङ्गारक एव च ।
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे तथैव च ॥ २९
मन्त्रो रथन्तरं चैव हरिमान्वसुमानपि ।
आदित्याः साधिराजानो नामद्वन्द्वैरुदाहृताः ॥
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्चैव भारत ।
तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ ॥ ३१
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव ।
अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह ॥ ३२
इतिहासोपवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
ग्रहा यज्ञाश्च सोमश्च देवताश्चापि सर्वशः ॥ ३३
सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा ।
मेधा धृतिः श्रुतिश्चैव प्रज्ञा बुद्धिर्यशः क्षमा ॥३४
सामानि स्तुतिशस्त्राणि गाथाश्च विविधास्तथा ।
भाष्याणि तर्कयुक्तानि देहवन्ति विशांपते ॥ ३५
नाटका विविधाः काव्याःकथाख्यायिककारिकाः
*तत्र तिष्ठन्ति ते पुण्या ये चान्ये गुरुपूजकाः॥* ३६
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च दिवारात्रिस्तथैव च ।
अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च भारत ॥३७

---

स्तम्भैरिति। यतो न क्षरा नापक्षयवती अतः शाश्वती नित्या। 'एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम्'इति श्रुतेः॥१४॥ अतिचन्द्रमिति। स्वयमित्यव्ययं स्वयमहं करोमि स्वयं त्वं करोषि स स्वयंकृतवानित्यादिप्रयोगादव्यक्तप्रत्यगात्मवाचकम्। स एव प्रभा प्रकाशकं ज्योतिर्यस्या सा स्वयंप्रभा। जागरे हि सूर्यादीना घटादिप्रकाशकत्वं दृष्टं तदात्मन एवेति साधयितुं सूर्याद्यभावकाले स्वप्ने प्रकृत्यात्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिरिति श्रुत्या साटोपमुक्तम्॥ १६ ॥ तस्यामिति। सः महत्तत्वाभिमानी सूक्ष्ममन आख्यः यं प्रकृत्य स्मर्यते'मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः। प्रज्ञा संवित् चितिश्चैव स्मृतिश्च परिपठ्यते'इति अत एव भगवान्सर्वैश्वर्यवान् देवमायया स्वाविद्यया विदधलोकानिति शेषः। विदधद्देवमानुषानिति पाठेपि स्वाविद्ययेत्यध्याहार्यम्। एकोनिशं सत्स्वपि स्वसृष्टेषु पदार्थेषु ऐन्द्रजालिकवदेक एवेत्यर्थः ॥ १७ ॥ एकस्यैव विधैकव्ययं सार्वात्म्य 'अहं मनुरभवं सूर्यश्च'इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं प्रपञ्चयति उपतिष्ठन्तीत्यादिनाऽध्यायशेषेण॥१८॥यच्चान्यत् कालादृष्टादि॥२१॥सप्त चैवान्ये इति सप्तविंशतिर्नक्षत्राणीत्येके अन्ये तु विंशतिर्गन्धर्वाप्सरसा गणाः सप्त चान्ये गन्धर्वा मुख्याः ते च। 'हंसो हाहाहुहूर्विश्वावसुर्वररुचिस्तथा। वृषणस्तुम्बुरुश्चैव गन्धर्वाः सप्त कीर्तिताः' इति ॥ २८ ॥ मन्त्रः सामगानाश्रयभूतोऽग्न आयाहीत्यादिः रथंतरं सामविशेषः हरिमान्वसुमानिति कर्मविशेषयोरिन्द्रनामनी साधिराजानः सेन्द्राः नामद्वन्द्वैः अग्नीषोमेन्द्राग्न्यादिभिः ॥ ३० ॥ हवींषि व्रीहिपश्वादिजीवाः ॥३१॥उपवेदाः 'आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चार्थशास्त्रम्'इति अङ्गानि शिक्षादीनि ॥ ३३ ॥ दुर्गतरणी वाणी प्रणवः सा च सप्तविधा अकार उकारो मकारः अर्धमात्रानादः बिन्दुः शक्तिरिति सप्तप्रकाराः शान्तरूपाधिष्ठानप्रापका इत्यर्थः। संस्कृतप्राकृतपैशाच्यपभ्रंशललितमागधगद्यरूपा इत्यन्ये॥३४॥

संवत्सराः पञ्चयुगमहोरात्रश्चतुर्विधः ।
कालचक्रं च तद्दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ ३८
धर्मचक्रं तथा चापि नित्यमास्ते युधिष्ठिर ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सुरसा विनता इरा ॥ ३९
कालिका सुरभी देवी सरमा चाथ गौतमी ।
प्रभा कद्रूश्च वै देव्यौ देवतानां च मातरः ।
रुद्राणी श्रीश्च लक्ष्मीश्च भद्रा षष्ठी तथापरा ४१
पृथिवी गां गता देवी ह्रीः स्वाहा कीर्तिरेव च ।
सुरा देवी शची चैव तथा पुष्टिररुन्धती ॥ ४२
संवृत्तिराशा नियतिः सृष्टिर्देवी रतिस्तथा ।
एताश्चान्याश्च वै देव्य उपतस्थुः प्रजापतिम् ४३
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनावपि ।
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पितरश्च मनोजवाः ॥ ४४
पितॄणां च गणान्विद्धि सप्तैव पुरुषर्षभ ।
मूर्तिमन्तो वै चत्वारस्त्रयश्चापि शरीरिणः ॥ ४५
वैराजाश्च महाभागा अग्निष्वात्ताश्च भारत ।
गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः ॥४६
सोमपा एकशृङ्गाश्च चतुर्वेदाः कलास्तथा ।
एते चतुर्षु वर्णेषु पूज्यन्ते पितरो नृप ॥ ४७
एतैराप्यायितैः पूर्वं सोमश्चाप्याय्यते पुनः ।
त एते पितरः सर्वे प्रजापतिमुपस्थिताः ॥ ४८
उपासते च संहृष्टा ब्रह्माणममितौजसम् ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च दानवा गुह्यकास्तथा ॥४९
नागाः सुपर्णाः पशवः पितामहमुपासते ।
स्थावरा जंगमाश्चैव महाभूतास्तथापरे ॥ ५०
पुरंदरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदो यमः ।
महादेवः सहोमोत्र सदा गच्छति सर्वशः ॥ ५१
महासेनश्च राजेन्द्र सदोपास्ते पितामहम् ।
देवो नारायणस्तस्यां तथा देवर्षयश्च ये ॥ ५२
ऋषयो वालखिल्याश्च योनिजाऽयोनिजास्तथा ।
यच्च किंचित्त्रिलोकेऽस्मिन्दृश्यते स्थाणु जंगमम् ।
सर्वं तस्यां मया दृष्टमिति विद्धि नराधिप ॥ ५३
अष्टाशीति सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
प्रजावतां च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव ॥ ५४
ते स्म तत्र यथाकामं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः ।
प्रणम्य शिरसा तस्मै सर्वे यान्ति यथागमम्॥५५
अतिथीनागतान्देवान्दैत्यान्नागांस्तथा द्विजान् ।
यक्षान्सुपर्णान्कालेयान्गन्धर्वाप्सरसस्तथा ५६
महाभागानमितधीर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
दयावान्सर्वभूतेषु यथार्हं प्रतिपद्यते ॥ ५७
प्रतिगृह्य तु विश्वात्मा स्वयंभूरमितद्युतिः ।
सान्त्वमानार्थसंभोगैर्युनक्ति मनुजाधिप ॥ ५८
तथा तैरुपयातैश्च प्रतियद्भिश्च भारत ।
आकुला सा सभा तात भवति स्म सुखप्रदा ५९
सर्वतेजोमयी दिव्या ब्रह्मर्षिगणसेविता ।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमाना शुशुभे विगतक्लमा ६०
सा सभा तादृशी दृष्टा मया लोकेषु दुर्लभा ।
सभेयं राजशार्दूल मनुष्येषु यथा तव ॥ ६१
एता मया दृष्टपूर्वाः सभा देवेषु भारत ।
सभेयं मानुषे लोके सर्वश्रेष्ठतमा तव ॥ ६२

इति श्रीम० सभाप० लोकपालसभाख्यानप० ब्रह्मसभावर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

---

संवत्सराः षष्टिः प्रभवादयः ते च पञ्च पञ्च एकैकं युगं। चतुर्विधः मानुषोऽहोरात्र षष्टिघटिकाभिः । पैत्रो मासेन दैवो वत्सरेण ब्राह्मः कल्पेनेति कालचक्रं द्वादशराश्यात्मकम्॥३८॥ वैराजाः विराट्प्रभवाः सप्तपितॄणा अग्निष्वात्तादयः ॥४६॥ महादेव ईश्वरोपि सहोमो ब्रह्मविद्यासहितस्तत्रैवान्तर्भूतः ॥५१॥ नारायणश्च विद्याप्राप्यः शुद्ध आत्मापि तत्रैव प्राप्यत इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ एकस्यापिसार्वात्म्यमुक्तं उपसंहरति यच्चेति ॥५३॥तत्प्राप्त्यधिकारिण आह अष्टाशीतीति ॥५४॥ ते स्म तत्रेत्यादिना यत्कौषीतकीये श्रुतं पर्यङ्कस्थं ब्रह्म तेन सह संवादादिक च तदुपबृंहयति ॥५५॥ ब्राह्म्या श्रिया शमो दमस्तपः शौचमित्यादिना प्रसिद्धया शमादिसंपत्त्या ॥ ६० ॥ इति सभा० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

# १२

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रायशो राजलोकस्ते कथितो वदतां वर।
वैवस्वतसभायां तु यथा वदसि मे प्रभो ॥ १
वरुणस्य सभायां तु नागास्ते कथिता विभो ।
दैत्येन्द्राश्चापि भूयिष्ठाः सरितः सागरास्तथा २
तथा धनपतेर्यक्षा गुह्यका राक्षसास्तथा ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव भगवांश्च वृषध्वजः ॥ ३
पितामहसभायां तु कथितास्ते महर्षयः ।
सर्वे देवनिकायाश्च सर्वशास्त्राणि चैव ह ॥ ४
शक्रस्य तु सभायां तु देवाः संकीर्तिता मुने ।
उद्देशतश्च गन्धर्वा विविधाश्च महर्षयः ॥ ५
एक एव तु राजर्षिर्हरिश्चन्द्रो महामुने ॥
कथितस्ते सभायां वै देवेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ६
किं कर्म तेनाचरितं तपो वा नियतव्रत ।
येनासौ सह शक्रेण स्पर्द्धते सुमहायशाः ॥ ७
पितृलोकगतश्चैव त्वया विप्र पिता मम ।
दृष्टः पाण्डुर्महाभागः कथं वापि समागतः ॥ ८
किमुक्तवांश्च भगवंस्तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।
त्वत्तः श्रोतुं सर्वमिदं परं कौतूहलं हि मे ॥ ९

नारद उवाच ।

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र हरिश्चन्द्रं प्रति प्रभो ।
तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तस्य धीमतः ॥१०
स राजा बलवानासीत्सम्राट् सर्वमहीक्षिताम् ।
तस्य सर्वे महीपालाः शासनावनताः स्थिताः११
तेनैकं रथमास्थाय जैत्रं हेमविभूषितम् ।
शस्त्रप्रतापेन जिता द्वीपाः सप्त जनेश्वर ॥ १२
स निर्जित्य महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ।
आजहार महाराज राजसूयं महाक्रतुम् ॥ १३
तस्य सर्वे महीपाला धनान्याजह्रुराज्ञया ।
द्विजानां परिवेष्टारस्तस्मिन्यज्ञे च तेऽभवन् ॥ १४
प्रादाच्च द्रविणं प्रीत्या याचकानां नरेश्वरः ।
यथोक्तवन्तस्ते तस्मिंस्ततः पञ्चगुणाधिकम् १५
अतर्पयच्च विविधैर्वसुभिर्ब्राम्हणांस्तदा ।
प्रसर्पकाले संप्राप्ते नानादिग्भ्यः समागतान् १६
भक्ष्यभोज्यैश्च विविधैर्यथाकामपुरस्कृतैः ।
रत्नौघतर्पितैस्तुष्टैर्द्विजैश्च समुदाहृतम् ।
तेजस्वी च यशस्वी च नृपेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत्
एतस्मात्कारणाद्राजन् हरिश्चन्द्रो विराजते ।
तेभ्यो राजसहस्रेभ्यस्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ १८
समाप्य च हरिश्चन्द्रो महायज्ञं प्रतापवान् ।
अभिषिक्तश्च शुशुभे साम्राज्येन नराधिप ॥ १९
ये चान्ये च महीपाला राजसूयं महाक्रतुम् ।
यजन्ते ते सहेन्द्रेण मोदन्ते भरतर्षभ ॥ २०
ये चापि निधनं प्राप्ताः संग्रामेष्वपलायिनः ।
ते तत्सदनमासाद्य मोदन्ते भरतर्षभ ॥ २१
तपसा ये च तीव्रेण त्यजन्तीह कलेवरम् ।
ते तत्स्थानं समासाद्य श्रीमन्तो भान्ति नित्यशः
पिता च त्वाह कौन्तेय पाण्डुः कौरवनन्दन ।
हरिश्चन्द्रे श्रियं दृष्ट्वा नृपतौ जातविस्मयः ॥ २३
विज्ञाय मानुषं लोकमायान्तं मां नराधिप ।
प्रोवाच प्रणतो भूत्वा वदेथास्त्वं युधिष्ठिरम् २४
समर्थोसि महीं जेतुं भ्रातरस्ते स्थिता वशे ।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठमाहरस्वेति भारत ॥ २५
त्वयीष्टवति पुत्रेहं हरिश्चन्द्रवदाशु वै ।
मोदिष्ये बहुलाः शश्वत्समाः शक्रस्य संसदि २६
एवं भवतु वक्ष्येहं तव पुत्र नराधिपम् ।
भूर्लोकं यदि गच्छेयमिति पाण्डुमथाब्रुवम् ॥ २७
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र संकल्पं कुरु पाण्डव ।
गन्तासि त्वं महेन्द्रस्य पूर्वैः सह सलोकताम् २८
बहुविघ्नश्च नृपते क्रतुरेष स्मृतो महान् ।
छिद्राण्यस्य तु वाञ्छन्ति यज्ञघ्ना ब्रह्मराक्षसाः २९

१२

राजसूयमुपोद्धातयति । प्रायश इत्यादिना ॥ १॥ सहस्रमर्त्यंतप्राप्यां ब्रह्मसभामुपेक्ष्य हरिश्चन्द्रप्राप्ता इन्द्रसमा शक्यप्रवेशां मत्वा तत्साधनं पृच्छति एक एवेति ॥ ६ ॥ यन्मां पृच्छसीत्यादेः दाशार्हनगरीं प्रतीत्यन्तस्य परमतात्पर्यं शक्रलोकप्रापको राजसूयः अतियत्नसाध्यः सिद्धश्च तीव्रानर्थहेतुरतो ब्रह्मसभाप्रापकमेव व्रतमनुष्ठेयमिति । अवान्तरतात्पर्यं तु भूभारहरणार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो नारदः सर्वसंहारहेतुं राजसूयं युधिष्ठिरद्वारा कारयितुं युधिष्ठिरं कृष्णं चोद्योजयतीति ॥ १० ॥ 'येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः । शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राडिति शब्द्यते'॥११॥ 'जम्बूद्वीपः कुशद्वीपः शाकः क्रौंचश्च शाल्मलिः । गोमेदः पुष्करश्चैव सप्त द्वीपाः प्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥ प्रसर्पोऽग्निविसर्जनमिति निघण्टुः ॥ १६ ॥ त्वाह त्वामाह ॥ २३ ॥ संकल्पं कामं गन्तासि गमिष्यसि ॥ २८ ॥

युद्धं च क्षत्रशमनं पृथिवीक्षयकारणम् ।
किंचिदेव निमित्तं च भवत्यत्र क्षयावहम् ॥ ३०
एतत्संचिन्त्य राजेन्द्र यत्क्षेमं तत्समाचर ।
अप्रमत्तोत्थितो नित्यं चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ॥ ३१
भव एधस्व मोदस्व धनैस्तर्पय च द्विजान् ।
एतत्ते विस्तरेणोक्तं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि दाशार्हनगरीं प्रति ३२

वैशंपायन उवाच ।

एवमाख्याय पार्थेभ्यो नारदो जनमेजय ।
जगाम तैर्वृतो राजन्नृषिभिर्यैः समागतः ॥ ३३
गते तु नारदे पार्थो भ्रातृभिः सह कौरवः ।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ ३४

इति श्रीम० सभाप० लोकपालसभा० पाण्डुसंदेशकथने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समाप्तं लोकपालसभाख्यानपर्व ।

## राजसूयारम्भपर्व ।

## १३

वैशंपायन उवाच ।

ऋषेस्तद्वचनं श्रुत्वा निशश्वास युधिष्ठिरः ।
चिन्तयन्राजसूयेष्टिं न लेभे शर्म भारत ॥ १
राजर्षीणां च तं श्रुत्वा महिमानं महात्मनाम् ।
यज्वनां कर्मभिः पुण्यैर्लोकप्राप्तिं समीक्ष्य च ॥ २
हरिश्चन्द्रं च राजर्षिं रोचमानं विशेषतः ।
यज्वानं यज्ञमाहर्तुं राजसूयमियेष सः ॥ ३
युधिष्ठिरस्ततः सर्वानर्चयित्वा सभासदः ।
प्रत्यर्चितश्च तैः सर्वैर्यज्ञायैव मनो दधे ॥ ४
स राजसूयं राजेन्द्र कुरूणामृषभस्तदा ।
आहर्तुं प्रवणं चक्रे मनः संचिन्त्य चासकृत् ॥ ५
भूयश्चाद्भुतवीर्यौजा धर्ममेवानुचिन्तयन् ।
किं हितं सर्वलोकानां भवेदिति मनो दधे ॥ ६
अनुगृह्णन्प्रजाः सर्वाः सर्वधर्मभृतां वरः ।
अविशेषेण सर्वेषां हितं चक्रे युधिष्ठिरः ॥ ७
सर्वेषां दीयतां देयं मुष्णन्कोपमदावुभौ ।
साधु धर्मेति धर्मेति नान्यच्छ्रूयेत भाषितम् ॥ ८
एवंगते ततस्तस्मिन्पितरीवाश्वसञ्जनाः ।
न तस्य विद्यते द्वेष्टा ततोऽस्याजातशत्रुता ॥ ९
परिग्रहान्नरेन्द्रस्य भीमस्य परिपालनात् ।
शत्रूणां क्षपणाच्चैव बीभत्सोः सव्यसाचिनः ॥ १०
धीमतः सहदेवस्य धर्माणामनुशासनात् ।
वैनत्यात्सर्वतश्चैव नकुलस्य स्वभावतः ।
अविग्रहा वीतभयाः स्वकर्मनिरताः सदा ॥ ११
निकामवर्षाः स्फीताश्च आसञ्जनपदास्तथा ।
वार्धुषी यज्ञसत्त्वानि गोरक्षं कर्षणं वणिक् ॥ १२
विशेषात्सर्वमेवैतत्संजज्ञे राजकर्मणा ।
अनुकर्षं च निष्कर्षं व्याधिपावकमूर्छनम् ॥ १३
सर्वमेव न तत्रासीद्धर्मनित्ये युधिष्ठिरे ।
दस्युभ्यो वञ्चकेभ्यश्च राज्ञः प्रति परस्परम् ॥ १४
राजवल्लभतश्चैव नाश्रूयत मृषाकृतम् ।
प्रियं कर्तुमुपस्थातुं बलिकर्म स्वकर्मजम् ॥ १५
अभिहर्तुं नृपाः षट्सु पृथग्जात्यैश्च नैगमैः ।
ववृधे विषयस्तत्र धर्मनित्ये युधिष्ठिरे ॥ १६
कामतोऽप्युपयुञ्जानै राजसैर्लोभजैर्जनैः ।
सर्वव्यापी सर्वगुणी सर्वसाहः स सर्वराट् ॥ १७

---

इति सभा० नैल० भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

१३

ऋषेरिति ॥ १ ॥ दीयतामित्युवाचेति शेषः पाठान्तरे तु स्पष्टम् ॥८॥ अविग्रहाः कलहशून्याः ॥ ११ ॥ वार्धुषी वृद्ध्युपजीविका यज्ञसत्त्वानि क्रतूनां सामर्थ्यानि सद्यः पुष्कलफलप्रदत्वादिविषयाणि ॥ १२ ॥ अनुकर्षं दारिद्र्यात् राजकीयद्रव्यस्यातीतवर्षस्य ऋणत्वेन धारणम् । निष्कर्षं करार्थं प्रजापीडनं मूर्छनं वृद्धिः ॥ १३ ॥ षट्सु संधिविग्रहादिषु यस्य प्रियादिकं कर्तुं नैगमैर्वणिग्भिः सह आसन्निति शेषः इतरे नृपाः वणिग्वत् येन करदीकृता इत्यर्थः तत्र तस्मिन् विषयो देशः ॥ १६ ॥ कामतो यथेष्टं उपयुञ्जानैः दिव्यान्नवस्त्रादिभोगं कुर्वद्भिः । यतो लोभजैः विमोहोत्थैः । राजसैर्वृत्तिविशेषैस्तृष्णादिभिस्तादृशैरपि ववृधे वृद्धिमान् अभूत्१७

यस्मिन्नधिकृतः सम्राड्भ्राजमानो महायशाः ।
यत्र राजन्दश दिशः पितृतो मातृतस्तथा ।
अनुरक्ताः प्रजा आसन्नागोपाला द्विजातयः १८

वैशंपायन उवाच ।

स मन्त्रिणः समानाय्य भ्रातृंश्च वदतां वरः ।
राजसूयं प्रति तदा पुनः पुनरपृच्छत ॥ १९
ते पृच्छमानाः सहिता वचोऽर्थ्यं मन्त्रिणस्तदा ।
युधिष्ठिरं महाप्राज्ञं यियक्षुमिदमब्रुवन् ॥ २०
येनाभिषिक्तो नृपतिर्वारुणं गुणमृच्छति ।
तेन राजाऽपि तं कृत्स्नं सम्राड्गुणमभीप्सति ॥२१
तस्य सम्राड्गुणार्हस्य भवतः कुरुनन्दन ।
राजसूयस्य समयं मन्यन्ते सुहृदस्तव ॥ २२
तस्य यज्ञस्य समयः स्वाधीनः क्षत्रसंपदा ।
साम्ना षडग्नयो यस्मिंश्चीयन्ते शंसितव्रतैः ॥ २३
दर्वीहोमानुपादाय सर्वान्यः प्राप्नुते क्रतून् ।
अभिषेकं च यस्यान्ते सर्वजित्तेन चोच्यते ॥ २४
समर्थोऽसि महाबाहो सर्वे ते वशगा वयम् ।
अचिरात्त्वं महाराज राजसूयमवाप्स्यसि ॥ २५
अविचार्य महाराज राजसूये मनः कुरु ।
इत्येवं सुहृदः सर्वे पृथक्च सह चाब्रुवन् ॥ २६
स धर्म्यं पाण्डवस्तेषां वचः श्रुत्वा विशांपते ।
धृष्टमिष्टं वरिष्ठं च जग्राह मनसारिहा ॥ २७
श्रुत्वा सुहृद्वचस्तच्च जानंश्चाप्यात्मनः क्षमम् ।
पुनः पुनर्मनो दध्रे राजसूयाय भारत ॥ २८
स भ्रातृभिः पुनर्धीमानृत्विग्भिश्च महात्मभिः ।
मन्त्रिभिश्चापि सहितो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
धौम्यद्वैपायनाद्यैश्च मन्त्रयामास मन्त्रवित् ॥ २९

युधिष्ठिर उवाच ।

इयं या राजसूयस्य सम्राडर्हस्य सुक्रतोः ।
श्रद्दधानस्य वदतः स्पृहा मे सा कथं भवेत् ॥३०

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तास्तु ते तेन राज्ञा राजीवलोचन ।
इदमूचुर्वचः काले धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ३१
अर्हस्त्वमसि धर्मज्ञ राजसूयं महाक्रतुम् ।
अथैवमुक्ते नृपतावृत्विग्भिर्ऋषिभिस्तथा ॥ ३२
मन्त्रिणो भ्रातरश्चान्ये तद्वचः प्रत्यपूजयन् ।
स तु राजा महाप्राज्ञः पुनरेवात्मनात्मवान् ॥ ३३
भूयो विममृशे पार्थो लोकानां हितकाम्यया ।
सामर्थ्ययोगं संप्रेक्ष्य देशकालौ व्ययागमौ ॥ ३४
विमृश्य सम्यक्च धिया कुर्वन्प्राज्ञो न सीदति
न हि यज्ञसमारम्भः केवलात्मविनिश्चयात् ॥३५
भवतीति समाज्ञाय यत्नतः कार्यमुद्वहन् ।
स निश्चयार्थं कार्यस्य कृष्णमेव जनार्दनम् ॥ ३६
सर्वलोकात्परं मत्वा जगाम मनसा हरिम् ।
अप्रमेयं महाबाहुं कामाज्जातमजं नृषु ॥ ३७
पाण्डवस्तर्कयामास कर्मभिर्देवसंमतैः ।
नास्य किंचिदविज्ञातं नास्य किंचिदकर्मजम् ३८
न स किंचिन्न विषहेदिति कृष्णममन्यत ।
स तु तां नैष्ठिकीं बुद्धिं कृत्वा पार्थो युधिष्ठिरः ॥
गुरुवद्भूतगुरवे प्राहिणोद्दूतमञ्जसा ।
शीघ्रगेन रथेनाशु स दूतः प्राप्य यादवान् ॥ ४०
द्वारकावासिनं कृष्णं द्वारवत्यां समासदत् ।
दर्शनाकांक्षिणं पार्थं दर्शनाकांक्षयाच्युतः ॥ ४१
इन्द्रसेनेन सहित इन्द्रप्रस्थमगात्तदा ।
व्यतीत्य विविधान्देशांस्त्वरावान्क्षिप्रवाहनः ४२
इन्द्रप्रस्थगतं पार्थमभ्यगच्छज्जनार्दनः ।
स गृहे पितृवद्भ्रात्रा धर्मराजेन पूजितः ॥ ४३

---

॥ १७ ॥ *यस्मिन्विषये राजनराजि पितृतः पितृगुणैः नीति-शिक्षणादिभिः, मातृतो मातृगुणैः वात्सल्यादिभिः* ॥ १८ ॥ वारुणं गुणं जलधातुजयम् सम्राड्गुणं भूधातुजयम् ॥ २१ ॥ अग्नयः अग्निस्थापनार्थानि स्थण्डिलानि । साम्ना सामवेद-विहितैः मन्त्रैश्चीयन्ते रच्यन्ते ॥ २३ ॥ दर्वीति । दर्वी-होमोऽग्निहोत्रादिस्तत्प्रभृतीन् सर्वान् क्रतून् इष्टिपशुसोम-यागान्प्राप्नुते व्याप्नोति । तत्समुदायात्मक इत्यर्थः । अभि-षेकफलं सर्वजित्त्वम् ।'आत्रेयोङ्गमभिषिषेच तस्माद्वङ्गः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्परीयाय'इति श्रुतम् ॥ २४ ॥ धृष्टं प्रगल्भम् । इष्टं आप्ततमं वरिष्ठं श्रेष्ठतमम् ॥ २७ ॥ कथं भवेत् फलवतीति शेषः ॥ ३० ॥ आत्मवान् जितचित्तः ॥ ३३ ॥ *विममृशे कथं यज्ञः सिद्ध्येत्कथं वा लोकनाशो न स्यादिति* विमर्शं कृतवान् । सामर्थ्यं पृथ्वीं जेतुम् । योगं धनसंपत्तिं व्ययागमौ धनस्यैव ॥ ३४ ॥ एतान्सम्यक् संख्या-दिना धिया च विमृश्य ॥ ३५ ॥ सर्वस्मात् लोक्यत इति लोको दृश्यं मूलाज्ञानं तस्मात्परं । 'तमसः परस्तात्'इति श्रुतेः अत एव अप्रमेयं वाङ्मनसातीतत्वात् । कामात् बहुस्यां प्रजा-येयेत्यादिश्रुतादीक्षणात् न तु कर्मवशत्वात् ॥ ३७ ॥ देवानां संमतैः कर्मभिः बालेनापि पूतनावधादिभिः संमितै-रिति पाठे देवकर्मतुल्यैरित्यर्थः । नास्येति सर्वज्ञः सर्वकृत् सर्वसह इति पादत्रयार्थः ॥ ३८ ॥ भूतगुरवेपि गुरुवत् आशीर्वादसंदेशादिना युक्तम् ॥४०॥ भ्रात्रा पितृष्वसृजेन।

भीमेन च ततोपश्यत्स्वसारं प्रीतिमान्पितुः ।
प्रीतः प्रीतेन सुहृदा रेमे स सहितस्तदा ॥ ४४
अर्जुनेन यमाभ्यां च गुरुवत्पर्युपासितः ।
तं विश्रान्तं शुभे देशे क्षणिनं कल्पमच्युतम् ।
धर्मराजः समागम्य ज्ञापयत्स्वप्रयोजनम् ॥ ४५

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रार्थितो राजसूयो मे न चासौ केवलेप्सया ।
प्राप्यते येन तत्ते हि विदितं कृष्ण सर्वशः ॥ ४६
यस्मिन्सर्वं संभवति यश्च सर्वत्र पूज्यते ।
यश्च सर्वेश्वरो राजा राजसूयं स विन्दति ॥ ४७
तं राजसूयं सुहृदः कार्यमाहुः समेत्य मे ।
तत्र मे निश्चिततमं तव कृष्ण गिरा भवेत् ॥ ४८
केचिद्धि सौहृदादेव न दोषं परिचक्षते ।
स्वार्थहेतोस्तथैवान्ये प्रियमेव वदन्त्युत ॥ ४९
प्रियमेव परीप्सन्ते केचिदात्मनि यद्धितम् ।
एवंप्रायाश्च दृश्यन्ते जनवादाः प्रयोजने ॥ ५०
त्वं तु हेतूनतीत्यैतान्कामक्रोधौ व्युदस्य च ।
परमं यत्क्षमं लोके यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ५१

इति श्रीमहा० सभाप०राजसूयारम्भप० वासुदेवागमने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

कृष्ण उवाच ।

सर्वैर्गुणैर्महाराज राजसूयं त्वमर्हसि ।
जानतस्त्वेव ते सर्वं किंचिद्वक्ष्यामि भारत ॥ १
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रं यदवशेषितम् ।
तस्मादवरजं लोके यदिदं क्षत्रसंज्ञितम् ॥ २
कृतोयं कुलसंकल्पः क्षत्रियैर्वसुधाधिप ।
निदेशवाग्भिस्तत्ते ह विदितं भरतर्षभ ॥ ३
ऐलस्यैक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते ।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि ॥ ४
ऐलवंश्याश्च ये राजंस्तथैवेक्ष्वाकवो नृपाः ।
तानि चैकशतं विद्धि कुलानि भरतर्षभ ॥ ५
ययातेस्त्वेव भोजानां विस्तरो गुणतो महान् ।
भजतेद्य महाराज विस्तरं स चतुर्दिशम् ॥ ६
तेषां तथैव तां लक्ष्मीं सर्वक्षत्रमुपासते ।
इदानीमेव वै राजञ्जरासंधो महीपतिः ॥ ७
अभिभूय श्रियं तेषां कुलानामभिषेचितः ।
स्थितो मूर्ध्नि नरेन्द्राणामोजसाक्रम्य सर्वशः ॥ ८
सोवनीं मध्यमां भुक्त्वा मिथो भेदममन्यत ।
प्रभुर्यस्तु परो राजा यस्मिन्नेकवशे जगत् ॥ ९
स साम्राज्यं महाराज प्राप्तो भवति योगतः ।
तं स राजा जरासंधं संश्रित्य किल सर्वशः ॥ १०

---

॥ ४३ ॥ क्षणिनं सावसरं कल्पं समर्थम् ॥ ४५ ॥ इति सभापर्वणि नै० भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

सर्वैरिति । सर्वराजजयाद्राजसूयेधिक्रियते राजजयश्च प्रधानमल्लनिबर्हणन्यायेन जरासंधवधेनैव जायत इत्याभिप्रेत्याह जानत इत्यादिना ॥ १ ॥ अवरजं अर्वाग्जातं यद्वा यत्पलायनपरं अवशेषितं क्षत्रं तस्मात् । अवरात् नीचात् जातं नीचजम् । अत एव क्षत्रसंज्ञितं न तु क्षत्रकर्मयोग्यम् ॥ २ ॥ तैश्चायं कुलसंकल्पः सर्वक्षत्रसमुदाये संकेतः कृतः यः सर्वक्षत्रजित्सः अस्माकं मध्ये सम्राट्राज्ञामपि राजा भविष्यतीति वक्ष्यमाणः । निदेशवाग्भिः पूर्वपूर्वोपदेशवाक्यैः ह प्रसिद्धम् । तत्ते विदितं । निदेशभाग्भिरिति पाठे अस्वतन्त्रैः क्षत्रियैरित्यर्थः ॥ ३ ॥ तत्र पूर्वं ऐलः सम्राट् जात इत्याह । ऐलस्येति । ऐलः पुरूरवाः इक्ष्वाकुर्वंशस्य च मनोः इला इक्ष्वाकुश्च तत्र इलायाः पुरूरवादयः इक्ष्वाकोर्नाभागादयश्चेति सोमसूर्यवंशीयराजसु द्वौ मुख्यौ तयोः प्रकृतिं प्रजामिव प्रजां करदत्वात् । कासौ प्रकृतिरित्यत आह राजान इति । श्रेणिबद्धाः तंतया दाम्ना बलीवर्दा इव आज्ञया बद्धाः ॥४॥ वंशद्वयेप्येवं क्रमतः शतं सम्राजां कुलानि जातानीत्याह । ऐलवंश्या इति ॥ ५ ॥ ययातेः वंशे । इति शेषः अद्य संप्रति ॥ ६ ॥ इदानीमेव अभिषेचितो नरेन्द्रैरिति शेषः ॥ ७ ॥ मध्यमां मथुरादेशरूपां अस्मदीयां अस्मासु द्वारवतीं गतेषु भुक्त्वा मिथः अस्माभिः सह भेदं वैरं अमन्यत । तेन सः अस्मान्सर्वश्रेष्ठान् जित्वा स एव साम्राज्यं प्राप्त इत्याह प्रभुरित्यादिना । चतुर्जस्तु परो राजेति पाठे चतुर्जो जरासंधः । द्वे मातरौ पिता जरा राक्षसी चेति चतुर्भ्यो जातत्वात् ॥ ९ ॥

राजन्सेनापतिर्जातः शिशुपालः प्रतापवान् ।
तमेव च महाराज शिष्यवत्समुपस्थितः ॥ ११
वक्रः करूषाधिपतिर्मायायोधी महाबलः ।
अपरौ च महावीर्यौ महात्मानौ समाश्रितौ ॥१२
जरासंधं महावीर्यं तौ हंसडिम्भकावुभौ ।
वक्रदन्तः करूपश्च करभो मेघवाहनः ।
मूर्ध्ना दिव्यमणिं बिभ्रद्यमद्भुतमणिं विदुः ॥ १३
मुरुं च नरकं चैव शास्ति यो यवनाधिपः ।
अपर्यन्तबलो राजा प्रतीच्यां वरुणो यथा ॥ १४
भगदत्तो महाराज वृद्धस्तव पितुः सखा ॥
स वाचा प्रणतस्तस्य कर्मणा च विशेषतः ॥ १५
स्नेहबद्धश्च मनसा पितृवद्भक्तिमांस्त्वयि ।
प्रतीच्यां दाक्षिणं चान्तं पृथिव्याः प्रति यो नृपः॥
मातुलो भवतः शूरः पुरुजित्कुन्तिवर्धनः ।
स ते सन्नतिमानेकः स्नेहतः शत्रुसूदनः ॥ १७
जरासंधं गतस्त्वेव पुरा यो न मया हतः ।
पुरुषोत्तमविज्ञातो योसौ चेदिषु दुर्मतिः ॥ १८
आत्मानं प्रतिजानाति लोकेस्मिन्पुरुषोत्तमम् ।
आदत्ते सततं मोहाद्यः स चिन्हं च मामकम् १९
वङ्गपुण्ड्रकिरातेषु राजा बलसमन्वितः ।
पौण्ड्रको वासुदेवेति योसौ लोकेभिविश्रुतः २०
चतुर्थभाङ्महाराज भोजं इन्द्रसखो बली ।
विद्याबलाद्यो व्यजयत्सपाण्ड्यक्रथकैशिकान् २१
भ्राता यस्याकृतिः शूरो जामदग्न्यसमोभवत् ।
स भक्तो मागधं राजा भीष्मकः परवीरहा ॥२२
प्रियाण्याचरतः प्रह्वान्सदा संबन्धिनस्ततः ।
भजतो न भजत्यस्मानप्रियेषु व्यवस्थितः ॥ २३
नकुलं सबलं राजन्नभ्यजानात्तथात्मनः ।
पद्यमानो यशोदीप्तं जरासंधमुपस्थितः ॥ २४
उदीच्याश्च तथा भोजाः कुलान्यष्टादश प्रभो ।
जरासंधभयादेव प्रतीचीं दिशमाश्रिताः॥ २५
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शाल्वाः पटच्चराः ।
सुस्थलाश्च सुकुट्टाश्च कुलिन्दाः कुन्तिभिः सह२६
शाल्वायनाश्च राजानः सोदर्यानुचरैः सह ।
दाक्षिणा ये च पाञ्चालाः पूर्वाः कुन्तिषु कोशलाः॥
तथोत्तरां दिशं चापि परित्यज्य भयार्दिताः ।
मत्स्याः संन्यस्तपादाश्च दक्षिणां दिशमाश्रिताः॥
तथैव सर्वपाञ्चाला जरासंधभयार्दिताः ।
स्वराज्यं संपरित्यज्य विद्रुताः सर्वतो दिशम् ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य कंसो निर्मथ्य यादवान् ।
बार्हद्रथसुते देव्यावुपागच्छद्वृथामतिः ॥ ३०
अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते सहदेवानुजेऽबले ।
बलेन तेन स्वज्ञातीनभिभूय वृथामतिः ॥ ३१
श्रैष्ठ्यं प्राप्तः स तस्यासीदतीवापनयो महान् ।
भोजराजन्यवृद्धैश्च पीड्यमानैर्दुरात्मना ॥ ३२
ज्ञातित्राणमभीप्सद्भिरस्मत्संभावना कृता ।
दत्त्वाऽक्रूराय सुतनुं तामाहुकसुतां तदा ॥ ३३
संकर्षणद्वितीयेन ज्ञातिकार्यं मया कृतम् ।
हतौ कंससुनामानौ मया रामेण चाप्युत ॥ ३४
भये तु समतिक्रान्ते जरासंधे समुद्यते ।
मन्त्रोयं मन्त्रितो राजन्कुलैरष्टादशावरैः ३५
अनारमन्तो निघ्नन्तो महास्त्रैः शत्रुघातिभिः ।
न हन्यामो वयं तस्य त्रिभिर्वर्षशतैर्बलम् ॥ ३६
तस्य ह्यमरसंकाशौ बलेन बलिनां वरौ ।
नामभ्यां हंसडिम्भकावशस्त्रनिधनावुभौ ॥ ३७
तावुभौ सहितौ वीरौ जरासंधश्च वीर्यवान् ।
त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः॥३८
न हि केवलमस्माकं यावन्तोऽन्ये च पार्थिवाः ।
तथैव तेषामासीच्च बुद्धिर्बुद्धिमतां वर ॥ ३९
अथ हंस इति ख्यातः कश्चिदासीन्महानृपः ।
रामेण स हतस्तत्र संग्रामेष्टादशावरे ॥ ४०
हतो हंस इति प्रोक्तमथ केनापि भारत ।
तच्छ्रुत्वा डिम्भको राजन्यमुनाम्भस्यमज्जत ४१
विना हंसेन लोकेस्मिन्नाहं जीवितुमुत्सहे ।
इत्येतां मतिमास्थाय डिम्भको निधनं गतः॥४२
तथा तु डिम्भकं श्रुत्वा हंसः परपुरंजयः ।
प्रपेदे यमुनामेव सोपि तस्यां न्यमज्जत ॥ ४३
तौ स राजा जरासंधः श्रुत्वा च निधनं गतौ ।
पुरं शून्येन मनसा प्रययौ भरतर्षभ ॥ ४४

---

भगदत्तो मध्यस्थ इत्याह भगेति ॥१५॥ स्वपक्षे तु कुन्तिभोज एक एवेत्याह । मातुल इति ॥ १७ ॥ पौण्ड्रकोपि परपक्षे एवास्तीत्याह जरेति ॥ १८ ॥ अस्मच्छ्वशुरो भीष्मकोपि परपक्षे एवास्तीत्याह चतुर्थेति । पृथिव्याश्चतुर्थांशभाक् ॥ २१ ॥ सः बलं कुलं च आत्मनो न ज्ञातवान् यतो मच्छत्रुपक्षे गत्वा मया जामात्रापि सह कलहमिच्छतीति भावः ॥२४॥ कुलैः मन्त्रीपुरोहितैश्चेत्यादिना प्राक् प्रदर्शितैः ॥ ३५ ॥ न हन्यामो न हतवन्तः वर्षशतैर्वर्षशततुल्यैस्त्रिभिर्वर्षैरित्यर्थः ॥ ३६ ॥ स हंसः हतः मरणतुल्यां मूर्छां प्रापितः ॥ ४० ॥

ततो वयममित्रघ्न तस्मिन्प्रतिगते नृपे ।
पुनरानन्दिनः सर्वे मथुरायां वसामहे ॥ ४५
यदा त्वभ्येत्य पितरं सा वै राजीवलोचना ।
कंसभार्या जरासंधं दुहिता मागधं नृपम् ।
चोदयत्येव राजेन्द्र पतिव्यसनदुःखिता ॥ ४६
पतिघ्नं मे जहीत्येवं पुनः पुनररिंदम ।
ततो वयं महाराज तं मन्त्रं पूर्वमन्त्रितम् ॥ ४७
संस्मरन्तो विमनसो व्यपयाता नराधिप ।
पृथक्त्वेन महाराज संक्षिप्य महतीं श्रियम् ॥ ४८
पलायामो भयात्तस्य ससुतज्ञातिबान्धवाः ।
इति संचिन्त्य सर्वे स्म प्रतीचीं दिशमाश्रिताः ॥
कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम् ।
ततो निवेशं तस्यां च कृतवन्तो वयं नृप ॥ ५०
तथैव दुर्गसंस्कारं देवैरपि दुरासदम् ।
स्त्रियोपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णिमहारथाः
तस्यां वयममित्रघ्न निवसामोऽकुतोभयाः ।
आलोच्य गिरिमुख्यं तं मागधं तीर्णमेव च ॥५२
माधवाः कुरुशार्दूल परां मुदमवाप्नुवन् ।
एवं वयं जरासंधादभितः कृतकिल्बिषाः ॥ ५३
सामर्थ्यवन्तः संबन्धाद्गोमन्तं समुपाश्रिताः ।
त्रियोजनायतं सद्म त्रिस्कन्धं योजनावधि ॥ ५४
योजनान्ते शतद्वारं वीरविक्रमतोरणम् ।
अष्टादशावरैर्नद्धं क्षत्रियैर्युद्धदुर्मदैः ॥ ५५
अष्टादशसहस्राणि भ्रातृणां सन्ति नः कुले ।
आहुकस्य शतं पुत्रा एकैकस्त्रिदशावरः ॥ ५६
चारुदेष्णः सह भ्रात्रा चक्रदेवोथ सात्यकिः ।
अहं च रौहिणेयश्च साम्बः प्रद्युम्न एव च ॥ ५७
एवमेते रथाः सप्त राजन्नन्यान्निबोध मे ।
कृतवर्मा ह्यनाधृष्टिः समीकः समितिंजयः ॥ ५८
कङ्कः शङ्कुश्च कुन्तिश्च सप्तैते वै महारथाः ।
पुत्रौ चान्धकभोजस्य वृद्धो राजा च ते दश ॥
वज्रसंहनना वीरा वीर्यवन्तो महारथाः ।
स्मरन्तो मध्यमं देशं वृष्णिमध्ये व्यवस्थिताः॥६०
स त्वं सम्राड्गुणैर्युक्तः सदा भरतसत्तम ।
क्षत्रे सम्राजमात्मानं कर्तुमर्हसि भारत ॥ ६१
न तु शक्यं जरासंधे जीवमाने महाबले ।
राजसूयस्त्वयावाप्तुमेषा राजन्मतिर्मम ॥ ६२
तेन रुद्धा हि राजानः सर्वे जित्वा गिरिव्रजे ।
कन्दरे पर्वतेन्द्रस्य सिंहेनेव महाद्विपाः ॥ ६३
स हि राजा जरासंधो यियक्षुर्वसुधाधिपः ।
महादेवं महात्मानमुमापतिमरिंदम ॥ ६४
आराध्य तपसोग्रेण निर्जितास्तेन पार्थिवाः ।
प्रतिज्ञायाश्च पारं स गतः पार्थिवसत्तम ॥ ६५
स हि निर्जित्य निर्जित्य पार्थिवान्पृतनागतान् ।
पुरमानीय बद्ध्वा च चकार पुरुषव्रजम् ॥ ६६
वयं चैव महाराज जरासंधभयात्तदा ।
मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम् ॥ ६७
यदि त्वेनं महाराज यज्ञं प्राप्तुमभीप्ससि ।
यतस्व तेषां मोक्षाय जरासंधवधाय च ॥ ६८
समारम्भो न शक्योयमन्यथा कुरुनन्दन ॥
राजसूयश्च कात्स्न्र्येन कर्तुं मतिमतां वर ॥ ६९
इत्येषा मे मती राजन्यथा वा मन्यसेनघ ।
एवंगते ममाचक्ष्व स्वयं निश्चित्य हेतुभिः ॥ ७०

इति श्रीमहाभा० सभाप० राजसूयारम्भप० कृष्णवाक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

युधिष्ठिर उवाच ।
उक्तं त्वया बुद्धिमता यन्नान्यो वक्तुमर्हति ।
संशयानां हि निर्मोक्ता त्वन्नान्यो विद्यते भुवि १
गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः ।
न च साम्राज्यमाप्तास्ते सम्राट्शब्दो हि कृच्छ्रभाक्
कथं परानुभावज्ञः स्वं प्रशंसितुमर्हति ।
परेण समवेतस्तु यः प्रशस्यः स पूज्यते ॥ ३
विशाला बहुला भूमिर्बहुरत्नसमाचिता ।
दूरं गत्वा विजानाति श्रेयो वृष्णिकुलोद्वह ॥ ४

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

राजसूयं दुष्प्रापं मत्वा शममेव परं मन्वान आह विशालेति । भूमिरिव स्थिरा निश्चयात्मिका चित्तवृत्तिः । सा बहुला विषयभेदाद्बहुप्रकारा । इदं साधयिष्ये इत्येवंरूपा । अत एव विशाला शालेव शाला आवरणं निरावरणा ब्रह्मलोकायापि स्पृहयति । बहुरत्नसमाचिता बहुभिरनन्तैस्तत्तज्जात्युत्कृष्टैर्विषयैर्व्याप्ताऽतःपुरुषः कार्येषु स्वस्य बलाबलं

शममेव परं मन्ये शमात्क्षेमं भवेन्मम ।
आरम्भे पारमेष्ठ्यं तु न प्राप्यमिति मे मतिः ॥ ५
एवमेते हि जानन्ति कुले जाता मनस्विनः ।
कश्चित्कदाचिदेतेषां भवेच्छ्रेष्ठो जनार्दन ॥ ६
वयं चैव महाभाग जरासंधभयात्तदा ।
शङ्किताः स्म महाभाग दौरात्म्यात्तस्य चानघ ७
अहं हि तव दुर्द्धर्ष भुजवीर्याश्रयः प्रभो ।
नात्मानं बलिनं मन्ये त्वयि तस्माद्विशङ्किते ॥ ८
त्वत्सकाशाच्च रामाच्च भीमसेनाच्च माधव ।
अर्जुनाद्वा महाबाहो हन्तुं शक्यो न वेति वै ।
एवं जानन्हि वार्ष्णेय विमृशामि पुनः पुनः ॥ ९
त्वं मे प्रमाणभूतोसि सर्वकार्येषु केशव ।
तच्छ्रुत्वा चाब्रवीद्भीमो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥

भीम उवाच ।

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति ।
दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योधि तिष्ठति ॥ ११
अतन्द्रितश्च प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम् ।
जयेत्सम्यक्प्रयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान् १२
कृष्णेन यो मयि बलं जयः पार्थे धनंजये ।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः ॥ १३

कृष्ण उवाच ।

अर्थानारभते बालो नानुबन्धमवेक्षते ॥
तस्मादरिं न मृष्यन्ति बालमर्थपरायणम् ॥ १४
जित्वा जय्यान्यौवनाश्विः पालनाच्च भगीरथः ।
कार्तवीर्यस्तपोवीर्याद्बलात्तु भरतो विभुः ॥ १५
ऋध्या मरुत्तस्तान्पञ्च सम्राजस्त्वनुशुश्रुम ।
साम्राज्यमिच्छतस्ते तु सर्वाकारं युधिष्ठिर ॥१६
निग्राह्यलक्षणं प्राप्तिर्धर्मार्थनयलक्षणैः ॥ १७
बार्हद्रथो जरासंधस्तद्विद्धि भरतर्षभ ।
न चैनमनुरुध्यन्ते कुलान्येकशतं नृपाः ॥ १८

---

न जानाति । स दूरं गत्वा बुद्धेः परां निष्ठां प्रत्यगात्मरूपां प्राप्य श्रेयो मोक्षाख्यं विजानाति नान्यथा । बहुषु दुष्प्रापेष्वर्थेषु व्यासक्तचित्तत्वात् । यथोक्तम् भगवता 'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयो व्यवसायिनाम्' इति व्यवसायस्तत्त्वनिश्चय इति । प्राश्चस्तु भूमिर्मन्त्रभूमिः मन्त्रस्य विषयः । विशाला विस्तीर्णा । बहुशाखा पुरुषभेदेन बुद्धिभेदात् । बहुला बहुपायविस्फुरणात् । अत एव बहुभिर्मन्त्रज्ञैः सह मन्त्र्यते । बहुभिर्भूहिरण्यहस्त्यश्वरथमित्रस्त्रीप्रमृतिभिरनेकै रत्नैः समन्विता । एतस्यां मन्त्रभूमौ विगाह्यमानायां दूरं गत्वा अङ्गपञ्चकषड्गुणशक्तित्रयसिद्धित्रयसप्तोपायादिसमस्तनीतिभूमिमवगाह्य अतस्त्वमेव सर्वज्ञोस्मद्धितैषी कार्याकार्यनिश्चयं वेत्सीति भावः ॥ ४ ॥ 'यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्' इत्युक्तेः शम एव श्रेयानित्याह शमामिति । शमस्वीकारे हेतुमाह । आरम्भे राजसूयारम्भे क्रतुफलं पारमेष्ठ्यं परमेष्ठितादात्म्यं दुष्प्रापम् । अशक्तत्वादस्माकमित्यर्थः ॥ ५ ॥ कृष्णमेवोद्दिश्याह एवमिति । एते अस्मदीयाः सभासदः मनस्विनो भीमादयः श्रेष्ठः सर्वान् जेतुं समर्थो भविष्यतीति जानन्ति ॥ ६ ॥ न त्वस्माकं मध्ये तादृशः कश्चिदस्तीत्याह वयं चेति ॥ ७ ॥ शङ्कायां हेतुमाह अहं हीति ॥ ८ ॥ तथापि त्वत्प्रभृतीनां चतुर्णां मध्ये कश्चिदेनं हन्तुं समर्थोस्ति न वेति विमृशामि युष्माकमप्यनन्तशक्तित्वं जानान्नित्याह त्वत्सकाशादिति ॥ ९ ॥ नीत्यार्थान् नीतिप्राप्यानर्थान् नीत्येति तृतीयान्तं वा ॥ १२ ॥ मागधम् जरासंघम् ॥१३॥ भीमं प्रकोपयन्कृष्ण उवाच अर्थानिति । बाल अव्युत्पन्नः अनुबन्धं विपाकं अर्थपरायणं स्वकार्यतत्परं न मृष्यन्ति न विचारयन्ति ॥ १४ ॥ यौवनाश्विर्मांधाता जय्यान् जेतव्यान् बाह्यान्तरशत्रून् जित्वा जयादयः पञ्च साम्राज्यहेतव इति भावः हित्वा करानिति पाठे करत्यागादयः पञ्च ॥ १५ ॥ सर्वाकारं जयादिपञ्चप्रकारम् । यौवनाश्विप्रभृतयः एकैकेन गुणेन साम्राज्यं प्राप्तास्त्वं तु तत्सर्वैरपि गुणैरिच्छसीति भावः ॥ १६ ॥ तानेव गुणानाह । निग्राह्याः निग्रहमर्हन्ति ते निग्राह्याः विजिताः शत्रव एव लक्षणं ध्वजो यस्य साम्राज्यस्य । एतेन जयपूर्वकं तत् मुख्यमित्युक्तम् । तच्च यौवनाश्वे दृष्टं प्राप्तिःपालनं भगीरथे प्राप्तिरिति साम्राज्यलक्षणं इत्येकदेशानुषङ्गेण योज्यम् । सा च धर्मादिलक्षणैः सहितेति योज्यम् । धर्मो योगः कार्तवीर्ये । अर्थो वृद्धिर्मरुत्ते । नयो नीतिबलं भरते ॥ १७ ॥ बार्हद्रथो जरासंध इत्यतः प्राक् 'मन्त्रान्वश्याननुमृशन्नेवमेव सतां युगे । निग्राह्यलक्षणं प्राप्तो धर्माप्तिनयलक्षणैः' इति पठन्ति । जरासंधस्तत्साम्राज्यं निग्राह्यलक्षणं प्राप्त इति सार्धेन संबन्धः । किंभूतः सः धर्माप्तिनयलक्षणैः । धर्मो लाभो नीतिश्च एतैर्लक्षणैः सतां युगे सद्वे एवमेव वयमिव मन्त्रान् विचारान् वश्यान्स्वकातिसाध्यान् अनुमृशन् अनुतिष्ठन् सर्वाकारं साम्राज्यमिच्छतस्तव जरासंधः प्रतिकूलोस्तीति विद्धि तर्हि स एव सम्राडस्त्विति चेत्तस्य राजपीडाकरत्वान्नेत्याह न चेति ॥ १८ ॥

तस्मादिह बलादेव साम्राज्यं कुरुते हि सः ॥१९
रत्नभाजो हि राजानो जरासंधमुपासते ।
न च तुष्यति तेनापि बाल्यादनयमास्थितः ॥२०
मूर्धाभिषिक्तं नृपतिं प्रधानपुरुषो बलात् ।
आदत्ते न च नो दृष्टो भागः पुरुषतः क्वचित् २१
एवं सर्वान्वशे चक्रे जरासंधः शतावरान् ।
तं दुर्बलतरो राजा कथं पार्थ उपैष्यति ॥ २२
प्रोक्षितानां प्रमृष्टानां राज्ञां पशुपतेर्गृहे ।
पशूनामिव का प्रीतिर्जीविते भरतर्षभ ॥ २३
क्षत्रियः शस्त्रमरणो यदा भवति सत्कृतः ।
ततः स्म मागधं संख्ये प्रतिबाधेम यद्वयम् ॥ २४
षडशीतिः समानीताः शेषा राजंश्चतुर्दश ।
जरासंधेन राजानस्ततः क्रूरं प्रवर्त्स्यते ॥ २५
प्राप्नुयात्स यशो दीप्तं तत्र यो विघ्नमाचरेत् ।
जयेद्यश्च जरासंधं स सम्राण्नियतं भवेत् ॥ २६

इति श्रीम० सभाप० राजसूयारम्भप० कृष्णवाक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

युधिष्ठिर उवाच ।

सम्राड्गुणमभीप्सन्वै युष्मान्स्वार्थपरायणः ।
कथं प्रहिणुयां कृष्ण सोऽहं केवलसाहसात् ॥ १
भीमार्जुनावुभौ नेत्रे मनो मन्ये जनार्दनम् ।
मनश्चक्षुर्विहीनस्य कीदृशं जीवितं भवेत् ॥ २
जरासंधबलं प्राप्य दुष्पारं भीमविक्रमम् ।
यमोऽपि न विजेताजौ तत्र वः किं विचेष्टितम् ॥३
अस्मिंस्त्वर्थान्तरे युक्तमनर्थः प्रतिपद्यते ।
तस्मान्न प्रतिपत्तिस्तु कार्या युक्ता मता मम ॥ ४
यथाहं विमृशाम्येकस्तत्तावच्छ्रूयतां मम ।
संन्यासं रोचये साधु कार्यस्यास्य जनार्दन ।
प्रतिहन्ति मनो मेऽद्य राजसूयो दुराहरः ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

पार्थः प्राप्य धनुःश्रेष्ठमक्षय्यौ च महेषुधी ।
रथं ध्वजं सभां चैव युधिष्ठिरमभाषत ॥ ६

अर्जुन उवाच ।

धनुः शस्त्रं शरा वीर्यं पक्षो भूमिर्यशो बलम् ।
प्राप्तमेतन्मया राजन्दुष्प्रापं यदभीप्सितम् ॥ ७
कुले जन्म प्रशंसन्ति वैद्याः साधु सुनिष्ठिताः ।
बलेन सदृशं नास्ति वीर्यं तु मम रोचते ॥ ८
कृतवीर्यकुले जातो निर्वीर्यः किं करिष्यति ।
निर्वीर्ये तु कुले जातो वीर्यवांस्तु विशिष्यते ॥ ९
क्षत्रियः सर्वशो राजन्यस्य वृत्तिर्द्विषज्जये ।
सर्वैर्गुणैर्विहीनोऽपि वीर्यवान्हि तरेद्रिपून् ॥ १०

---

नः अस्माभिर्न च दृष्टः जरासंधेन अभागः अस्वीकृतः पुरुषतः मूर्धाभिषिक्तेषु पुरुषेषु तेन सर्वे वशीकृता इत्यर्थः ॥ २१ ॥ शतावरान् शतन्यूनान् ॥ २२ ॥ प्रमृष्टानां रुद्रदेवत्योयमिति प्रत्येकमभिमृष्टानाम् ॥ २३ ॥ तदा सत्कृतो भवतीत्यध्याहृत्य योज्यम् । ततः राज्ञां निग्रहाद्धेतोः प्रतिबाधेम हंतुमाशास्महे । यत् मागधं प्रतिबाधेम तत्ततो हेतोरिति योज्यम् ॥ २४ ॥ क्रूरं राजवधाख्यं कर्म । पशुपतये बलिदानं प्रवर्त्स्यते कारयिष्यति ॥२५॥ तं दुर्बलतरो राजा कथं पार्थ उपैष्यतीति तस्य दुर्जयत्वमुक्त्वापि तज्जय एव साम्राज्यहेतुरित्याह प्राप्नुयादिति । स एवादौ जेतव्य इत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥ इति सभापर्वणि नै० भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

सम्राडिति । एवं जरासंधात् भीषितो राजा कृष्णेन य इत्यादिना श्लोकेन भीमेनोक्त उपायो दुष्कर इत्याह युष्मान् कृष्णभीमार्जुनान् प्रहिणुयां जरासंधवधार्थमिति शेषः ॥१॥ विजेता जेष्यति श्रमोपि विजयेताजाविति गौडपाठे तु श्रमः श्रमणो दुर्बलोपि जरासंधे सहाये सति विजयेत शत्रूनिति शेषः ॥ ३ ॥ अर्थान्तरे इष्टफलाद्विपरीतफले कार्ये युक्तं पुरुषं प्रति अनर्थः प्रतिपद्यते प्राप्नोति तस्मात्कार्या कर्तुमिष्टा प्रतिपत्तिः । राजसूयबुद्धिः न युक्ता ॥ ४ ॥ कार्यस्य संन्यासं कर्ममात्रस्य त्यागं न तु क्रतुमात्रस्य काषायं सुलभमित्यन्ते दर्शनात् पारिव्राज्यमेव रोचये इत्यर्थः॥ ५ ॥ वीर्यं उत्साहः । पक्षो वासुदेवः। भूमिः मन्त्रपूर्वकः कार्यनिश्चयः । बलं शारीरसेनादिरूपं सामर्थ्यम् ॥७॥ वैद्याः विद्यावन्तः बलेनेति उत्साह एव श्रेयानित्यर्थः ॥ ८ ॥

सर्वैरपि गुणैर्युक्तो निर्वीर्यः किं करिष्यति ।
गुणीभूता गुणाः सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे ॥ ११
जयस्य हेतुः सिद्धिर्हि कर्म दैवं च संश्रितम् ।
संयुक्तो हि बलैः कश्चित्प्रमादान्नोपयुज्यते ॥ १२
तेन द्वारेण शत्रुभ्यः क्षीयते सबलो रिपुः ॥ १३
दैन्यं यथा बलवति तथा मोहो बलान्विते ।
तावुभौ नाशकौ हेतू राज्ञा त्याज्यौ जयार्थिना ॥
जरासंधविनाशं च राज्ञां च परिरक्षणम् ।
यदि कुर्याम यज्ञार्थं किं ततः परमं भवेत् ॥ १५
अनारम्भे हि नियतो भवेदगुणनिश्चयः ।
गुणान्निःसंशयाद्राजन्नैर्गुण्यं मन्यसे कथम् ॥ १६
काषायं सुलभं पश्चान्मुनीनां शममिच्छताम् ।
साम्राज्यं तु भवेच्छक्यं वयं योत्स्यामहे परान् ॥

इति श्रीमहाभा० सभाप० राजसूयारम्भप० जरासंधवधमन्त्रणे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

वासुदेव उवाच ।

जातस्य भारते वंशे तथा कुन्त्याः सुतस्य च ।
या वै युक्ता मतिः सेयमर्जुनेन प्रदर्शिता ॥ १
न स्म मृत्युं वयं विद्म रात्रौ वा यदि वा दिवा ।
न चापि कंचिदमरमयुद्धेनानुशुश्रुम ॥ २
एतावदेव पुरुषैः कार्यं हृदयतोषणम् ।
नयेन विधिदृष्टेन यदुपक्रमते परान् ॥ ३
सुनयस्यानपायस्य संयोगे परमः क्रमः ।
संगत्या जायतेऽसाम्यं साम्यं च न भवेद्द्वयोः ४
अनयस्यानुपायस्य संयुगे परमः क्षयः ।
संशयो जायते साम्याज्जयश्च न भवेद्द्वयोः ॥ ५
ते वयं नयमास्थाय शत्रुदेहसमीपगाः ।
कथमन्तं न गच्छेम वृक्षस्येव नदीरयाः ।
पररन्ध्रे पराक्रान्ताः स्वरन्ध्रावरणे स्थिताः ॥ ६
व्यूढानीकैरतिबलैर्न युध्येदरिभिः सह ।
इति बुद्धिमतां नीतिस्तन्ममापीह रोचते ॥ ७
अनवद्या ह्यसंबुद्धाः प्रविष्टाः शत्रुसद्म तत् ।
शत्रुदेहमुपाक्रम्य तं कामं प्राप्नुयामहे ॥ ८
एको ह्येव श्रियं नित्यं बिभर्ति पुरुषर्षभः ।
अन्तरात्मेव भूतानां तत्क्षयं नैव लक्षये ॥ ९

---

सिद्धिर्योगः अत्यन्ताभिनिवेश इति यावत् 'सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः' इति विश्वः तच्च सिद्धिरूपं वीर्यं । कर्म पारिस्पन्दः दैवं भाग्यं तदुभयापेक्षं नोपयुज्यते न कार्यक्षमो भवति ।। १२ ॥ तेन प्रमादेन शत्रुभ्यः शत्रुतः ॥ १३ ॥ तस्मादुत्साहवता कर्मैव कर्तव्यं जयायेत्याह जरेति ॥ १५ ॥ अकरणे दोषमाह अनारम्भ इति । कर्मण इति शेष· आरब्धमपि प्रतिकूलं चेत्तत्राह गुणात्पूर्वोक्ताद्बलरादिसंपत्तिरूपात् । नैर्गुण्यं अशक्तत्वम् ।।१६।। पश्चात् अशक्तत्वनिश्चयादूर्ध्वं । काषायं गैरिकरक्तं वस्त्रम् ।। १७ ॥ इति सभापर्वणि नै० भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

---

१७

जातस्येति ॥ १ ॥ सुनयस्य शोभनस्य मन्त्रस्य । अनपायस्य दैवादिप्रातिकूल्यहीनस्य । संयोगे प्राप्तौ सत्या परमकृष्टः क्रमः उपक्रमः सिध्यति। तेन च संगत्या द्वयोर्मेलनेन असाम्यं अन्यतरोत्कर्षः जायते चकारो हेतौ यतः द्वयोर्युध्यतोः साम्यं न भवति तस्माद्विना युद्धं अशक्तत्वनिश्चयायोगादशक्तिशंकया तूष्णीमवस्थानं पराभवहेतुरिति भाव. ।। ४ ॥ विपक्षे दोषमाह । अनयस्यानुपायस्य संयुगे परमक्षय इति । ननु परस्यापि नयादिमत्त्वे कथं स्वस्य जयः स्यादित्याशंक्याह । संशयो जायते साम्याज्जयश्च न भवेद्द्वयोरिति । द्वयोरुपायादिसाम्ये तु द्वयोरपि परस्परभयाज्जये संशय एव भवति न तु जय· चात् पराजयो वा किं तु ताटस्थ्येन द्वावपि तिष्ठत इत्यर्थ· ॥ ५ ॥ साम्येप्यारम्भवैफल्यमित्याशंक्य स्वस्योत्कर्षमाह सार्धेन ते वयमिति॥६॥ नन्वेवं महतो राजस्योत्थापने क्रतुविघ्न एव भवेदित्याशंक्याह व्यूढेति ।। ७ ।। उत्कर्षे कामप्राप्तिः सिद्धा साम्यं तु नैव भवेदित्याह एक इति । श्रियं साम्राज्यलक्ष्मीं तत्तस्मादन्यतरजयनिश्चयाद्धेतोः अहं क्षयं स्वीयं नैवोपलक्षये किं तु परस्यैव क्षयो भविष्यतीत्यर्थः । तत्क्षयं चैवेति पाठे तस्य जरासंधस्य क्षयं लक्षये संभावये ॥ ९ ॥

अथवैनं निहत्याजौ शेषेणापि समाहताः ।
प्राप्नुयाम ततः स्वर्गं ज्ञातित्राणपरायणाः ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।

कृष्ण कोयं जरासंधः किंवीर्यः किंपराक्रमः ।
यस्त्वां स्पृष्ट्वाग्निसदृशं न दग्धः शलभो यथा॥११

कृष्ण उवाच ।

शृणु राजञ्जरासंधो यद्वीर्यो यत्पराक्रमः ।
यथा चोपेक्षितोस्माभिर्बहुशः कृतविप्रियः ॥ १२
अक्षौहिणीनां तिसृणां पतिः समरदर्पितः ॥
राजा बृहद्रथो नाम मगधाधिपतिर्बली ॥ १३
रूपवान्वीर्यसंपन्नः श्रीमानतुलविक्रमः ।
नित्यं दीक्षाङ्किततनुः शतक्रतुरिवापरः ॥ १४
तेजसा सूर्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
यमान्तकसमः क्रोधे श्रिया वैश्रवणोपमः ॥ १५
तस्याभिजनसंयुक्तैर्गुणैर्भरतसत्तम ।
व्याप्तेयं पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥१६
स काशिराजस्य सुते यमजे भरतर्षभ ।
उपयेमे महावीर्यो रूपद्रविणसंयुते ।
तयोश्चकार समयं मिथः स पुरुषर्षभः ॥ १७
नातिवर्तिष्य इत्येवं पत्नीभ्यां संनिधौ तदा ।
स ताभ्यां शुशुभे राजा पत्नीभ्यां वसुधाधिपः ॥
प्रियाभ्यामनुरूपाभ्यां करेणुभ्यामिव द्विपः ।
तयोर्मध्यगतश्चापि रराज वसुधाधिपः ॥ १९
गङ्गायमुनयोर्मध्ये मूर्तिमानिव सागरः ।
विषयेषु निमग्नस्य तस्य यौवनमभ्यगात् ॥ २०
न च वंशकरः पुत्रस्तस्याजायत कश्चन ।
मङ्गलैर्बहुभिर्होमैः पुत्रकामाभिरिष्टिभिः ।
नाससाद नृपश्रेष्ठः पुत्रं कुलविवर्धनम् ॥ २१
अथ काक्षीवतः पुत्रं गौतमस्य महात्मनः ।
शुश्राव तपसि श्रान्तमुदारं चण्डकौशिकम् ॥२२
यदृच्छयागतं तं तु वृक्षमूलमुपाश्रितम् ।
पत्नीभ्यां सहितो राजा सर्वरत्नैरतोषयत् ॥ २३
तमब्रवीत्सत्यधृतिः सत्यवागृषिसत्तमः ।
परितुष्टोस्मि राजेन्द्र वरं वरय सुव्रत ॥ २४
ततः सभार्यः प्रणतस्तमुवाच बृहद्रथः ।
पुत्रदर्शननैराश्याद्बाष्पसंदिग्धया गिरा ॥ २५

राजोवाच ।

भगवन्राज्यमुत्सृज्य प्रस्थितोहं तपोवनम् ।
किं वरेणाल्पभाग्यस्य किं राज्येनाप्रजस्य मे॥२६

कृष्ण उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा मुनिर्ध्यानमगमत्क्षुभितेन्द्रियः ।
तस्यैव चाम्रवृक्षस्य छायायां समुपाविशत् ॥२७
तस्योपविष्टस्य मुनेरुत्सङ्गे निपपात ह ।
अवानमशुकादष्टमेकमाम्रफलं किल ॥ २८
तत्प्रगृह्य मुनिश्रेष्ठो हृदयेनाभिमन्त्र्य च ।
राज्ञे ददावप्रतिमं पुत्रसंप्राप्तिकारणम् ॥ २९
उवाच च महाप्राज्ञस्तं राजानं महामुनिः ।
गच्छ राजन्कृतार्थोसि निवर्तस्व नराधिप ३०
एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं शिरसा प्रणिपत्य च ।
मुनेः पादौ महाप्राज्ञः स नृपः स्वगृहं गतः ३१
यथासमयमाज्ञाय तदा स नृपसत्तमः ।
द्वाभ्यामेकं फलं प्रादात्पत्नीभ्यां भरतर्षभ ॥ ३२
ते तदाम्रं द्विधा कृत्वा भक्षयामासतुः शुभे ।
भावित्वादपि चार्थस्य सत्यवाक्यतया मुनेः ३३
तयोः समभवद्गर्भः फलप्राशनसंभवः ।
ते च दृष्ट्वा स नृपतिः परां मुदमवाप ह ॥ ३४
अथ काले महाप्राज्ञ यथासमयमागते ।
प्रजायेतामुभे राजञ्छरीरशकले तदा ॥ ३५
एकाक्षिबाहुचरणे अर्धोदरमुखस्फिचे ।
दृष्ट्वा शरीरशकले प्रवेपतुरुभे भृशम् ॥ ३६
उद्विग्ने सह संमन्त्र्य ते भगिन्यौ तदाऽबले ।
सजीवे प्राणिशकले तत्यजाते सुदुःखिते ॥ ३७
तयोर्धात्र्यौ सुसंवीते कृत्वा ते गर्भसंप्लवे ।
निर्गम्यान्तःपुरद्वारात्समुत्सृज्याभिजग्मतुः ॥ ३८

निहत्य संप्राप्य शेषेण वधेन वधहेतुना शत्रुणा 'शेषः संकर्षणेनन्ते उपयुक्तेतरे वधे' इति विश्वः । ज्ञातयः जरासंधवद्धा राजानः ॥ १० ॥ पतिः पालकः ॥ १३ ॥ यमो वैवस्वतः अन्तकः कालः ॥ १५ ॥ नातिवर्तिष्ये वैषम्यं न करिष्ये ॥ १८ ॥ रत्नैः मुनियोग्यैः उत्कृष्टद्रव्यैः ॥ २३ ॥ अवानं अशुष्कं सरसमिति यावत् 'आमे फले शलाटुः स्याच्छुष्के वानमुभे त्रिषु' इत्यमरः । अवातमिति पाठे नास्ति पातयिता वातो यस्य तत् ॥ २८ ॥ यथासमयं यथाप्रतिज्ञं नातिवर्तिष्य इति दर्शितरीत्या ॥ ३२ ॥ प्रजायेतां सुषुवतुः ॥ ३५ ॥ स्फिक् कट्या अधोभागः ॥३६॥ ते शकले ॥३७॥ गर्भसंप्लवे गर्भपाते सति ॥ ३८ ॥

ते चतुष्पथनिक्षिप्ते जरा नामाथ राक्षसी ।
जग्राह मनुजव्याघ्र मांसशोणितभोजना ॥ ३९
कर्तुकामा सुखवहे शकले सा तु राक्षसी ।
संयोजयामास तदा विधानबलचोदिता ॥ ४०
ते समानीतमात्रे तु शकले पुरुषर्षभ ।
एकमूर्तिधरो वीरः कुमारः समपद्यत ॥ ४१
ततः सा राक्षसी राजन्विस्मयोत्फुल्ललोचना ।
न शशाक समुद्वोढुं वज्रसारमयं शिशुम् ॥ ४२
बालस्ताम्रतलं मुष्टिं कृत्वा चास्ये निधाय सः ।
प्राक्रोशदतिसंरब्धः सतोय इव तोयदः ॥ ४३
तेन शब्देन संभ्रान्तः सहसान्तःपुरे जनः ।
निर्जगाम नरव्याघ्र राज्ञा सह परंतप ॥ ४४
ते चाबले परिम्लाने पयःपूर्णपयोधरे ।
निराशे पुत्रलाभाय सहसैवाभ्यगच्छताम् ॥ ४५
तेथ दृष्ट्वा तथाभूते राजानं चेष्टसंततिम् ।
तं च बालं सुबलिनं चिन्तयामास राक्षसी ॥ ४६
नार्हामि विषये राज्ञो वसन्ती पुत्रगृद्धिनः ।
बालं पुत्रमिमं हन्तुं धार्मिकस्य महात्मनः ॥ ४७
सा तं बालमुपादाय मेघलेखेव भास्करम् ।
कृत्वा च मानुषं रूपमुवाच वसुधाधिपम् ॥ ४८

राक्षस्युवाच ।

बृहद्रथ सुतस्तेयं मया दत्तः प्रगृह्यताम् ।
तव पत्नीद्वये जातो द्विजातिवरशासनात् ।
धात्रीजनपरित्यक्तो मयायं परिरक्षितः ॥ ४९

कृष्ण उवाच ।

ततस्ते भरतश्रेष्ठ काशिराजसुते शुभे ।
तं बालमभिपद्याशु प्रस्रवैरभ्यषिञ्चताम् ॥ ५०
ततः स राजा संहृष्टः सर्वं तदुपलभ्य च ।
अपृच्छद्धेमगर्भाभां राक्षसीं तामराक्षसीम् ॥ ५१

राजोवाच ।

का त्वं कमलगर्भाभे मम पुत्रप्रदायिनी ।
कामया ब्रूहि कल्याणि देवता प्रतिभासि मे ॥ ५२

इति श्रीमहाभा० सभाप० राजसूयारम्भप० जरासंधोत्पत्तौ सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥

---

## १८

राक्षस्युवाच ।

जरा नामास्मि भद्रं ते राक्षसी कामरूपिणी ।
तव वेश्मनि राजेन्द्र पूजिता न्यवसं सुखम् ॥ १
गृहे गृहे मनुष्याणां नित्यं तिष्ठामि राक्षसी ।
गृहदेवीति नाम्ना वै पुरा सृष्टा स्वयंभुवा ॥ २
दानवानां विनाशाय स्थापिता दिव्यरूपिणी ।
यो मां भक्त्या लिखेत्कुड्ये सपुत्रां यौवनान्विताम्
गृहे तस्य भवेदृद्धिरन्यथा क्षयमाप्नुयात् ।
त्वद्गृहे तिष्ठमानाहं पूजिताहं सदा विभो ॥ ४
लिखिता चैव कुड्येषु पुत्रैर्बहुभिरावृता ।
गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्भक्ष्यभोज्यैः सुपूजिता ॥ ५
साहं प्रत्युपकारार्थं चिन्तयाम्यनिशं तव ।
तवेमे पुत्रशकले दृष्टवत्यस्मि धार्मिक ॥ ६
संश्लेषिते मया दैवात्कुमारः समपद्यत ।
तव भाग्यान्महाराज हेतुमात्रमहं त्विह ॥ ७
मेरुं वा खादितुं शक्ता किं पुनस्तव बालकम् ।
गृहसंपूजनात्तुष्टया मया प्रत्यर्पितस्तव ॥ ८

कृष्ण उवाच ।

एवमुक्त्वा तु सा राजंस्तत्रैवान्तरधीयत ।
स संगृह्य कुमारं तं प्रविवेश गृहं नृपः ॥ ९
तस्य बालस्य यत्कृत्यं तच्चकार नृपस्तदा ।
आज्ञापयच्च राक्षस्या मगधेषु महोत्सवम् ॥ १०
तस्य नामाकरोच्चैव पितामहसमः पिता ।
जरया संधितो यस्माज्जरासंधो भवत्वयम् ॥ ११
सोवर्धत महातेजा मागधाधिपतेः सुतः ।
प्रमाणबलसंपन्नो हुताहुतिरिवानलः ।
मातापित्रोर्नन्दिकरः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ १२

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि राजसूयारम्भपर्वणि जरासंधोत्पत्तौ अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

सुखवहे एकीकृतयोर्वहनं हि सुखेन भवतीति प्रसिद्धम् ॥४०॥ समानीतमात्रे संयोजितमात्रे ॥४१॥ अराक्षसीं वेपतः ॥५१॥ कामया कामेन यातीति इच्छाविहारिणि ॥५२॥ इति सभापर्वणि नैल० भा० भा० सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

१८

जरेति ॥ १ ॥ तिष्ठमाना सुस्थिरा ॥ ४ ॥ नन्दिकरः समृद्धिकृत् ॥ १२ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

कृष्ण उवाच ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य पुनरेव महातपाः ।
मगधेषूपचक्राम भगवांश्चण्डकौशिकः ॥ १
तस्यागमनसंहृष्टः सामात्यः स पुरःसरः ।
सभार्यः सह पुत्रेण निर्जगाम बृहद्रथः ॥ २
पाद्यार्घ्याचमनीयैस्तमर्चयामास भारत ।
स नृपो राज्यसहितं पुत्रं तस्मै न्यवेदत् ॥ ३
प्रतिगृह्य च तां पूजां पार्थिवाद्भगवानृषिः ।
उवाच मागधं राजन्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४
सर्वमेतन्मया ज्ञातं राजन्दिव्येन चक्षुषा ।
पुत्रस्तु शृणु राजेन्द्र यादृशोयं भविष्यति ॥ ५
अस्य रूपं च सत्त्वं च बलमूर्जितमेव च ।
एष श्रिया समुदितः पुत्रस्तव न संशयः ॥ ६
प्रापयिष्यति तत्सर्वं विक्रमेण समन्वितः ।
अस्य वीर्यवतो वीर्यं नानुयास्यन्ति पार्थिवाः ॥ ७
पततो वैनतेयस्य गतिमन्ये यथा खगाः ।
विनाशमुपयास्यन्ति ये चास्य परिपन्थिनः ॥ ८
देवैरपि विसृष्टानि शस्त्राण्यस्य महीपते ।
न रुजं जनयिष्यन्ति गिरेरिव नदीरयाः ॥ ९
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामेष मूर्ध्नि ज्वलिष्यति ।
प्रभाहरोयं सर्वेषां ज्योतिषामिव भास्करः ॥ १०
एनमासाद्य राजानः समृद्धबलवाहनाः ।
विनाशमुपयास्यन्ति शलभा इव पावकम् ॥ ११
एष श्रियः समुदिताः सर्वराज्ञां ग्रहीष्यति ।
वर्षास्विवोदीर्णजला नदीर्नदनदीपतिः ॥ १२
एष धारयिता सम्यक्चातुर्वर्ण्यं महाबलः ।
शुभाशुभमिव स्फीता सर्वसस्यधरा धरा ॥ १३
अस्याज्ञावशगाः सर्वे भविष्यन्ति नराधिपाः ।
सर्वभूतात्मभूतस्य वायोरिव शरीरिणः ॥ १४
एष रुद्रं महादेवं त्रिपुरान्तकरं हरम् ।
सर्वलोकेष्वतिबलः साक्षाद्द्रक्ष्यति मागधः ॥ १५
एवं ब्रुवन्नेव मुनिः स्वकार्यमिव चिन्तयन् ।
विसर्जयामास नृपं बृहद्रथमथारिहन् ॥ १६
प्रविश्य नगरीं चापि ज्ञातिसंबन्धिभिर्वृतः ।
अभिषिच्य जरासंधं मगधाधिपतिस्तदा ॥ १७
बृहद्रथो नरपतिः परां निर्वृतिमाययौ ।
अभिषिक्ते जरासन्धे तदा राजा बृहद्रथः ।
पत्नीद्वयेनानुगतस्तपोवनचरोभवत् ॥ १८
ततो वनस्थे पितरि मात्रोश्चैव विशांपते ।
जरासंधः स्ववीर्येण पार्थिवानकरोद्वशे ॥ १९

वैशंपायन उवाच ।

अथ दीर्घस्य कालस्य तपोवनचरो नृपः ।
सभार्यः स्वर्गमगमत्तपस्तप्त्वा बृहद्रथः ॥ २०
जरासंधोपि नृपतिर्यथोक्तं कौशिकेन तत् ।
वरप्रदानमखिलं प्राप्य राज्यमपालयत् ॥ २१
निहते वासुदेवेन तदा कंसे महीपतौ ।
जातो वै वैरनिर्बन्धः कृष्णेन सह तस्य वै ॥ २२
भ्रामयित्वा शतगुणमेकोनं येन भारत ।
गदा क्षिप्ता बलवता मागधेन गिरिव्रजात् ॥ २३
तिष्ठतो मथुरायां वै कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।
एकोनयोजनशते सा पपात गदा शुभा ॥ २४
दृष्ट्वा पौरैस्तदा सम्यग्गदा चैव निवेदिता ।
गदावसानं तत्ख्यातं मथुरायाः समीपतः ॥ २५
तस्यास्तां हंसडिम्भकावशस्त्रनिधनावुभौ ।
मन्त्रे मतिमतां श्रेष्ठौ नीतिशास्त्रे विशारदौ ॥ २६
यौ तौ मया ते कथितौ पूर्वमेव महाबलौ ।
त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ॥ २७
एवमेष तदा वीर बलिभिः कुकुरान्धकैः ।
वृष्णिभिश्च महाराज नीतिहेतोरुपेक्षितः ॥ २८

इति श्रीमहाभा० सभापर्वणि राजसूयारम्भपर्वणि जरासंधप्रशंसायां एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥
समाप्तं राजसूयारम्भपर्व ॥

१९

कस्येति ॥ १ ॥ सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वेषां भूतानां आत्मवत्प्रियतमस्येत्यर्थः ॥ १४ ॥ अशस्त्रनिधनौ न विद्यते शस्त्रेण निधनं ययोस्तौ ॥ २६ ॥ नीतिहेतोः बलीयसा स्पर्धा न कर्तव्येति नीतिस्तदर्थम् ॥ २८ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

# जरासंधवधपर्व ।

## २०

वासुदेव उवाच ।

पतितौ हंसडिम्भकौ कंसश्च सगणो हतः ।
जरासंधस्य निधने कालोयं समुपागतः ॥ १
न शक्योसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरैः ।
प्राणयुद्धेन जेतव्यः स इत्युपलभामहे ॥ २
मयि नीतिर्बलं भीमे रक्षिता चावयोर्जयः ।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः ॥ ३
त्रिभिरासादितोस्माभिर्विजने स नराधिपः ।
न संदेहो यथा युद्धमेकेनाप्युपयास्यति ॥ ४
अवमानाच्च लोभाच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः ।
भीमसेनेन युद्धाय ध्रुवमप्युपयास्यति ॥ ५
अलं तस्य महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः ।
लोकस्य समुदीर्णस्य निधनायान्तको यथा ॥ ६
यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मयि ।
भीमसेनार्जुनौ शीघ्रं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे ॥ ७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तो भगवता प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।
भीमार्जुनौ समालोक्य संप्रहृष्टमुखौ स्थितौ ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।

अच्युताच्युत मामैवं व्याहरामित्रकर्शन ।
पाण्डवानां भवान्नाथो भवन्तं चाश्रिता वयम् ९
यथा वदसि गोविन्द सर्वं तदुपपद्यते ।
न हि त्वमग्रतस्तेषां येषां लक्ष्मीः पराङ्मुखी॥ १०
निहतश्च जरासंधो मोक्षिताश्च महीक्षितः ।
राजसूयश्च मे लब्धो निदेशे तव तिष्ठतः ॥ ११
क्षिप्रमेव यथा त्वेतत्कार्यं समुपपद्यते ।
अप्रमत्तो जगन्नाथ तथा कुरु नरोत्तम ॥ १२
त्रिभिर्भवद्भिर्हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे ।
धर्मकामार्थरहितो रोगार्त इव दुःखितः ॥ १३
न शौरिणा विना पार्थो न शौरिः पाण्डवं विना ।
नाजेयोस्त्यनयोर्लोके कृष्णयोरिति मे मतिः १४
अयं च बलिनां श्रेष्ठः श्रीमानपि वृकोदरः ।
युवाभ्यां सहितो वीरः किं न कुर्यान्महायशाः॥
सुप्रणीतो बलौघो हि कुरुते कार्यमुत्तमम् ।
अन्धं बलं जडं प्राहुः प्रणेतव्यं विचक्षणैः ॥ १६
यतो हि निम्नं भवति नयन्ति हि ततो जलम् ।
यतश्छिद्रं ततश्चापि नयन्ते धीवरा जलम् ॥ १७
तस्मान्नयविधानज्ञं पुरुषं लोकविश्रुतम् ।
वयमाश्रित्य गोविन्दं यतामः कार्यसिद्धये ॥ १८
एवं प्रज्ञानयबलं क्रियोपायसमन्वितम् ।
पुरस्कुर्वीत कार्येषु कृष्णं कार्यार्थसिद्धये ॥ १९
एवमेव यदुश्रेष्ठ यावत्कार्यार्थसिद्धये ।
अर्जुनः कृष्णमन्वेतु भीमोन्वेतु धनंजयम् ।
नयो जयो बलं चैव विक्रमे सिद्धिमेष्यति ॥ २०

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तास्ततः सर्वे भ्रातरौ विपुलौजसः ।
वार्ष्णेयः पाण्डवेयौ च प्रतस्थुर्मागधं प्रति ॥ २१
वर्चस्विनां ब्राह्मणानां स्नातकानां परिच्छदम् ।
आच्छाद्य सुहृदां वाक्यैर्मनोज्ञैरभिनन्दिताः ॥२२
अमर्षादभितप्तानां ज्ञात्यर्थं मुख्यतेजसाम् ।
रविसोमाग्निवपुषां दीप्तमासीत्तदा वपुः ॥ २३
हतं मेने जरासंधं दृष्ट्वा भीमपुरोगमौ ।
एककार्यसमुद्यन्तौ कृष्णौ युद्धेऽपराजितौ ॥ २४
ईशौ हि तौ महात्मानौ सर्वकार्यप्रवर्तिनौ ।
धर्मकामार्थलोकानां कार्याणां च प्रवर्तकौ ॥ २५
कुरुभ्यः प्रस्थितास्ते तु मध्येन कुरुजांगलम् ।
रम्यं पद्मसरो गत्वा कालकूटमतीत्य च ॥ २६

---

२०

पतिताविति ।। १ ।। जयोर्जुनः ॥ ३ ॥ बलौघः सेनाप्रवाहः. विचक्षणैः प्रणेतव्यः अन्यथा अन्धजडवदकिंचित्करं बलमित्यर्थः ॥ १६॥ एतदेव सदृष्टान्तमाह यत इति । धीवराः वराधियः. यतो यस्मिन् देशे निम्नं अयत्नत आक्रमणीयं स्थानं भवति तं हि ततः द्वितीयार्थे तसिः इष्टं निरुपद्रवं देशं प्रति जडं सैन्यं नयन्ति न तु मृत्युमुखे महावीरस्याग्रे पातयन्ति अत्र दृष्टान्तः यथा धीवराः नदीजलजीविनः यतश्छिद्रं कुल्यारूपं ततः तेनैव मार्गेण जलं वारि इष्टं केदारादिप्रदेशं नयन्ति तद्वत् ॥१७॥ बलापेक्षया नीतिरेव श्रेष्ठेत्युपसंहरति तस्मादिति ॥ १८ ॥ परिच्छदं अजिनदण्डकमण्डलुकाषायादिरूपां सामग्रीं आच्छाद्य स्वीकृत्य तया स्वं वेषं तिरोधाय वा ॥ २२ ॥ ईशौ नरनारायणौ सर्वाणि कार्याणि निमेषोन्मेषादिमहाप्रलयान्तानि वर्तयितुं शीलं ययोस्तौ नियन्तारावित्यर्थः ॥ २५ ॥

गण्डकीं च महाशोणं सदानीरां तथैव च ।
एकपर्वतके नद्यः क्रमेणैत्याव्रजन्त ते ॥ २७
उत्तीर्य सरयूं रम्यां दृष्ट्वा पूर्वांश्च कोसलान् ।
अतीत्य जग्मुर्मिथिलां मालां चर्मण्वतीं नदीम् ॥
अतीत्य गङ्गां शोणं च त्रयस्ते प्राङ्मुखास्तदा ।
कुशचीरच्छदा जग्मुर्मागधं क्षेत्रमच्युताः ॥ २९
ते शश्वद्गोधनाकीर्णमम्बुमन्तं शुभद्रुमम ।
गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभा० सभाप० जरासंधवधप० कृष्णपाण्डवमागधयात्रायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

## २१

वासुदेव उवाच ।

एष पार्थ महान्भाति पशुमान्नित्यमम्बुमान् ।
निरामयः सुवेश्माढ्यो निवेशो मागधः शुभः १
वैहारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा ।
तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यकपञ्चमाः ॥ २
एते पञ्च महाशृङ्गाः पर्वताः शीतलद्रुमाः ।
रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहताङ्गा गिरिव्रजम् ॥ ३
पुष्पवेष्टितशाखाग्रैर्गन्धवद्भिर्मनोहरैः ।
निगूढा इव लोध्राणां वनैः कामिजनप्रियैः ॥ ४
शूद्रायां गौतमो यत्र महात्मा संशितव्रतः ।
औशीनर्यामजनयत्काक्षीवाद्यान्सुतान्मुनिः ॥ ५
गौतमस्य क्षयात्तस्मादथासौ तत्र सद्मनि ।
भजते मागधं वंशं स नृपाणामनुग्रहः ॥ ६
अङ्गवङ्गादयश्चैव राजानः सुमहाबलाः ।
गौतमक्षयमभ्येत्य रमन्ते स्म पुरार्जुन ॥ ७
वनराजीस्तु पश्येमाः पिप्पलानां मनोरमाः ।
लोध्राणां च शुभाः पार्थ गौतमौकःसमीपजाः ८
अर्बुदः शक्रवापी च पन्नगौ शत्रुतापनौ ।
स्वस्तिकस्यालयश्चात्र मणिनागस्य चोत्तमः ॥९
अपरिहार्या मेघानां मागधा मनुना कृताः ।
कौशिको मणिमांश्चैव चक्राते चाप्यनुग्रहम् १०
एवं प्राप्य पुरं रम्यं दुराधर्षं समन्ततः ।
अर्थसिद्धिं त्वनुपमां जरासंधोभिमन्यते ॥ ११
वयमासादने तस्य दर्पमद्य हरेमहि ।

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा ततः सर्वे भ्रातरो विपुलौजसः ॥ १२
वार्ष्णेयः पाण्डवौ चैव प्रतस्थुर्मागधं पुरम् ।
हृष्टपुष्टजनोपेतं चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥ १३
स्फीतोत्सवमनाधृष्यमासेदुश्च गिरिव्रजम् ।
ततो द्वारमनासाद्य पुरस्य गिरिमुच्छ्रितम् ॥ १४
बार्हद्रथैः पूज्यमानं तथा नगरवासिभिः ।
मागधानां तु रुचिरं चैत्यकान्तरमाद्रवन् ॥ १५
यत्र मांसादमृषभमाससाद बृहद्रथः ।
तं हत्वा मासतालाभिस्तिस्रो भेरीरकारयत् १६
स्वपुरे स्थापयामास तेन चानह्य चर्मणा ।
यत्र ताः प्राणदन्भेर्यो दिव्यपुष्पावचूर्णिताः ॥ १७

इति सभापर्वणि नै० भा० भा० विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

एष मागधः मगधदेशसंबन्धी निवेशः विन्यासः॥ १ ॥ गौतमस्य क्षयादिति क्षयात् ऐश्वर्यात् असौ शूद्रायां जातोपि काक्षीवदादीनां वंशः मानवं वंशं भजते । स गौतमस्य नृपाणामुपर्यनुग्रहः ॥ ६ ॥ गौतमक्षयं गृहम् ॥७॥ गौतमौकः गौतमस्य ओको गृहम् ॥ ८ ॥ पुरस्य गिरिं पुरप्राकारसंलग्नं गिरितुल्यं महास्तम्भं 'बुरुज'इति भाषायां प्रसिद्धम् ॥ १४॥ चैत्यकं नगरसूचकम् ॥ १५ ॥ यत्रेति । मांसादं मांसाहारं ऋषभं वृषभाकारं दैत्यमाससाद हतवान् । भेरीः दुन्दुभीन् मासतालाभिः मासेन तालो ध्वनिपरिच्छेदो यासां ताभिराकृतिभिः उपलक्षिता इति योज्यम् । महती हि कांस्यादिभाजनस्य सकृदाह तस्य चिरकालानुवर्ती ध्वनिरिति प्रसिद्धं। पूर्वे तु मासशब्देन द्वादशसंख्या तालशब्देन मध्यमाङ्गुष्ठप्रमाणं चोक्त्वा द्वादशतालप्रमाणाभिरिति व्याचक्षते । आकृतिभिः संमिता इत्यध्याहृत्य योजना उभयत्रसमाना।'तालःकरतलेङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च संमिते। गीतकालक्रियामाने तालःखड्गादिमुष्टिषु' इति विश्वः । मांसनालाभिरिति गौडपाठे तु मांसस्य नालवद्वेष्टनकर्त्रीभिःमांसनालाभिवर्ध्रीभिः ॥ १६ ॥ तेन चर्मणा च आनह्येति व्यवहितेन संबन्धः अवचूर्णिताः अवकीर्णा व्याप्ता इत्यर्थः यत्र पुरस्य गिरौ ॥ १७ ॥

भंक्त्वा भेरीत्रयं तेपि चैत्यप्राकारमाद्रवन् ॥
द्वारतोभिमुखाः सर्वे ययुर्नानायुधास्तदा ॥ १८
मागधानां सुरुचिरं चैत्यकं तं समाद्रवन् ।
शिरसीव समाघ्नन्तो जरासंधं जिघांसवः ॥ १९
स्थिरं सुविपुलं शृङ्गं सुमहत्तत्पुरातनम् ।
अर्चितं गन्धमाल्यैश्च सततं सुप्रतिष्ठितम् ॥ २०
विपुलैर्बाहुभिर्वीरास्तेभिहत्याभ्यपातयन् ।
ततस्ते मागधं दृष्ट्वा पुरं प्रविविशुस्तदा ॥ २१
एतस्मिन्नेव काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
दृष्ट्वा तु दुर्निमित्तानि जरासंधमदर्शयन् ॥ २२
पर्यग्न्यकुर्वंश्च नृपं द्विरदस्थं पुरोहिताः ।
ततस्तच्छान्तये राजा जरासंधः प्रतापवान् ।
दीक्षितो नियमस्थोसावुपवासपरोभवत् ॥ २३
स्नातकव्रतिनस्ते तु बाहुशस्त्रा निरायुधाः ।
युयुत्सवः प्रविविशुर्जरासंधेन भारत ॥ २४
भक्ष्यमाल्यापणानां च ददृशुः श्रियमुत्तमाम् ।
स्फीतां सर्वगुणोपेतां सर्वकामसमृद्धिनीम् ॥ २५
तां तु दृष्ट्वा समृद्धिं ते वीथ्यां तस्यां नरोत्तमाः ।
राजमार्गेण गच्छन्तः कृष्णभीमधनंजयाः ।
बलाद्गृहीत्वा माल्यानि मालाकारान्महाबलाः २६
विरागवसनाः सर्वे स्रग्विणो मृष्टकुण्डलाः ।
निवेशनमथाजग्मुर्जरासंधस्य धीमतः ॥ २७
गोवासमिव वीक्षन्तः सिंहा हैमवता यथा ।
शालस्तम्भनिभास्तेषां चन्दनागुरुरूषिताः ॥ २८
अशोभन्त महाराज बाहवो युद्धशालिनाम् ।
तान्दृष्ट्वा द्विरदप्रख्याञ्शालस्कन्धानिवोद्गतान् ।
व्यूढोरस्कान्मागधानां विस्मयः समपद्यत ॥ २९
ते त्वतीत्य जनाकीर्णाः कक्षास्तिस्रो नरर्षभाः ।
अहंकारेण राजानमुपतस्थुर्गतव्यथाः ॥ ३०
तान्पाद्यमधुपर्कार्हान्गवार्हान्सत्कृतिं गतान् ।
प्रत्युत्थाय जरासंध उपतस्थे यथाविधि ॥ ३१
उवाच चैतान्राजासौ स्वागतं वोस्त्विति प्रभुः ।
मौनमासीत्तदा पार्थभीमयोर्जनमेजय ॥ ३२

तेषां मध्ये महाबुद्धिः कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
वक्तुं नायाति राजेन्द्र एतयोर्नियमस्थयोः ॥ ३३
अर्वाङ्निशीथात्परतस्त्वया सार्धं वदिष्यतः ।
यज्ञागारे स्थापयित्वा राजा राजगृहं गतः ॥ ३४
ततोर्धरात्रे संप्राप्ते यातो यत्र स्थिता द्विजाः ।
तस्य ह्येतद्व्रतं राजन्बभूव भुवि विश्रुतम् ॥ ३५
स्नातकान्ब्राह्मणान्प्राप्ताञ्श्रुत्वा स समितिंजयः ।
अप्यर्धरात्रे नृपतिः प्रत्युद्गच्छति भारत ॥ ३६
तांस्त्वपूर्वेण वेषेण दृष्ट्वा स नृपसत्तमः ।
उपतस्थे जरासंधो विस्मितश्चाभवत्तदा ॥ ३७
ते तु दृष्ट्वैव राजानं जरासंध नरर्षभाः ।
इदमूचुरमित्रघ्नाः सर्वे भरतसत्तम ॥ ३८
स्वस्त्यस्तु कुशलं राजन्निति तत्र व्यवस्थिताः ।
तं नृपं नृपशार्दूल प्रेक्षमाणाः परस्परम् ॥ ३९
तामब्रवीज्जरासंधस्तथा पाण्डवयादवान् ।
आस्यतामिति राजेन्द्र ब्राह्मणछद्मसंवृतान् ॥ ४०
अथोपविविशुः सर्वे त्रयस्ते पुरुषर्षभाः ।
संप्रदीप्तास्त्रयो लक्ष्म्या महाध्वर इवाग्नयः ॥ ४१
तानुवाच जरासंधः सत्यसंधो नराधिपः ।
विगर्हमाणः कौरव्य वेषग्रहणवैकृतान् ।
न स्नातकव्रता विप्रा बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ ४२
भवन्तीति नृलोकेस्मिन्विदितं मम सर्वशः ।
के यूयं पुष्पवन्तश्च भुजैर्ज्याकृतलक्षणैः ॥ ४३
बिभ्रतः क्षात्रमोजश्च ब्राह्मण्यं प्रतिजानथ ।
एवं विरागवसना बहिर्माल्यानुलेपनाः ।
सत्यं वदत के यूयं सत्यं राजसु शोभते ॥ ४४
चैत्यकस्य गिरेः शृङ्गं भित्त्वा किमिह छद्मना ।
अद्वारेण प्रविष्टाः स्थ निर्भया राजकिल्बिषात् ४५
वदध्वं वाचि वीर्यं च ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
कर्म चैतद्विलिङ्गस्थं किं वोद्य प्रसमीक्षितम् ॥४६
एवं च मामुपास्थाय कस्माच्च विधिनार्हणाम् ।
प्रतीतां नानुगृह्णीत कार्यं किं वास्मदागमे ॥ ४७

चैत्यकं चित्या दृषदा चयनेन निर्वृत्तम् ॥ १९ ॥ शृङ्गं तं गिरिमिव शृङ्गवदुच्छ्रितं भाषाया ' मनुरा ' इति प्रसिद्धम् ॥ २० ॥ पर्यग्न्यकुर्वन् ज्वलता उल्मुकेन परितो भ्राम्यमाणेन यज्ञियं पशुमिव पर्यग्निकृतवन्तः ॥ २३ ॥ विरागवसनाः विचित्ररागवसनाः ॥ २७ ॥ गोवासं गोष्ठम् ॥ २८ ॥ कक्षाः द्वारदेशाः उत्तममध्यमाधमजनावस्थितियोग्याः ॥ ३० ॥ स्वस्त्यस्तु कुशलं राजन् । कुशलं निर्विघ्नं यथा स्यात्तथा स्वस्ति सुतरा यत् अस्ति अविनाशि मोक्षपदं तत्ते अस्तु । कृष्णममर्षं मरिष्यमाणस्य तत्प्राप्त्यवश्यंभावादिति भाव. । मा जीवेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ बहिर्माल्यानुलेपनाः बहिः समावर्तनादिनिमित्तं विना ॥ ४२ ॥ वाचि वीर्यं न तु क्रियाया विलिङ्गस्थं अन्यलिङ्गमन्यत्कर्मेत्यर्थः ॥ ४६ ॥ अर्हणां पूजा अस्मदागमे अस्मान् प्रति आगमने ॥ ४७ ॥

एवमुक्ते ततः कृष्णः प्रत्युवाच महामनाः ।
स्निग्धगम्भीरया वाचा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४८

कृष्ण उवाच ।

स्नातकान्ब्राह्मणान्राजन्विद्ध्यस्मांस्त्वं नराधिप ।
स्नातकव्रतिनो राजन्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥ ४९
विशेषनियमाश्चैषामविशेषाश्च सन्त्युत ।
विशेषवांश्च सततं क्षत्रियः श्रियमृच्छति ॥ ५०
पुष्पवत्सु ध्रुवा श्रीश्च पुष्पवन्तस्ततो वयम् ।
क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्यवीर्यवान् ।
अप्रगल्भं वचस्तस्य तस्माद्बार्हद्रथेरितम् ॥ ५१
स्ववीर्यं क्षत्रियाणां तु बाह्वोर्धाता न्यवेशयत् ।
तद्दिदृक्षसि चेद्राजन्द्रष्टास्यद्य न संशयः ॥ ५२
अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान् ।
प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः ॥ ५३
कार्यवन्तो गृहानेत्य शत्रुतो नार्हणां वयम् ।
प्रतिगृह्णीम तद्विद्धि एतन्नः शाश्वतं व्रतम् ॥ ५४

*इति श्रीमहाभारते सभा० जरासंधवधपर्वणि कृष्णजरासंधसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥*

## २२

जरासंध उवाच ।

न स्मरामि कदा वैरं कृतं युष्माभिरित्युत ।
चिन्तयंश्च न पश्यामि भवतां प्रति वैकृतम् ॥ १
वैकृते वासति कथं मन्यध्वं मामनागसम् ।
अरिं वै ब्रूत हे विप्राः सतां समय एष हि ॥ २
अथ धर्मोपघाताद्धि मनः समुपतप्यते ।
योऽनागसि प्रसजति क्षत्रियो हि न संशयः ॥ ३
अतोऽन्यथा चरँल्लोके धर्मज्ञः सन्महाव्रतः ।
वृजिनां गतिमाप्नोति श्रेयसोऽप्युपहन्ति च ॥ ४
त्रैलोक्ये क्षत्रधर्मो हि श्रेयान्वै साधुचारिणाम् ।
नान्यं धर्मं प्रशंसन्ति ये च धर्मविदो जनाः ॥ ५
तस्य मेऽद्य स्थितस्येह स्वधर्मे नियतात्मनः ।
अनागसं प्रजानां च प्रमादादिव जल्पथ ॥ ६

कृष्ण उवाच ।

कुलकार्यं महाबाहो कश्चिदेकः कुलोद्वहः ।
वहते यस्तन्नियोगाद्वयमभ्युद्यतास्त्वयि ॥ ७
त्वया चोपहृता राजन्क्षत्रिया लोकवासिनः ।
तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम् ॥ ८
राजा राज्ञः कथं साधून्हिंस्यान्नृपतिसत्तम ।
तद्राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि ॥ ९
अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथत्वया ।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः ॥ १०
मनुष्याणां समालम्भो न च दृष्टः कदाचन ।
स कथं मानुषैर्देवं यष्टुमिच्छसि शंकरम् ॥ ११
सवर्णो हि सवर्णानां पशुसंज्ञां करिष्यसि ।
कोऽन्य एवं यथा हि त्वं जरासंध वृथामतिः ॥ १२
यस्यां यस्यामवस्थायां यद्यत्कर्म करोति यः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समवाप्नुयात् ॥ १३
ते त्वां ज्ञातिक्षयकरं वयमार्तानुसारिणः ।
ज्ञातिवृद्धिनिमित्तार्थं विनिहन्तुमिहागताः ॥ १४
नास्ति लोके पुमानन्यः क्षत्रियेष्विति चैव तत् ।
मन्यसे स च ते राजन्सुमहान्बुद्धिविप्लवः ॥ १५

---

स्नातकत्वं समर्थ्य बहिर्माल्यत्वादिकमपि क्षत्रियत्वेन समर्थयते विशेषेत्यादिना ॥ ५० ॥ वचस्तस्य वाग्वीर्यत्वस्य ॥ ५१ ॥ अद्वारेणेत्यादिना वैरं प्रकाशयति ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

२२

वैकृतं अपकारः ॥ १ कथं अरिं मन्यध्वं तद्ब्रूत एषः सत्यवचनस्य समयः मर्यादा ॥ २ ॥ प्रसजति प्रसञ्जयति अर्थद्व्योपघातं आरोपयति । सः क्षत्रियः वृजिनां कष्टां गतिं आप्नोति न संशय इति योजना ॥ ३ ॥ उपहन्ति चात्मानम् ॥ ४ ॥ प्रजानां चानागसं जल्पथ विपरीतमर्थं वदथ ॥ ६ ॥ वैरमूलं प्रकाशयति कुलेति ॥ ७ ॥ एनोपगच्छेत् एनः पापं कर्तृ उपगच्छेत्प्राप्नुयात् संधिरार्षः ॥ १० ॥ ननु 'ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभेत' इत्यादिना सर्वजातीयानां सर्वकर्मणां मानुषाणामालम्भो देवतार्थं वधः श्रूयते इत्याशंक्याह सवर्णो हीति ॥ १२ ॥

को हि जानन्नभिजनमात्मवान्क्षत्रियो नृप।
नाविशेत्स्वर्गमतुलं रणानन्तरमव्ययम् ॥ १६
स्वर्गं ह्येव समास्थाय रणयज्ञेषु दीक्षिताः।
जयन्ति क्षत्रिया लोकांस्तद्विद्धि मनुजर्षभ ॥ १७
स्वर्गयोनिर्महद्ब्रह्म स्वर्गयोनिर्महद्यशः।
स्वर्गयोनिस्तपो युद्धे मृत्युः सोऽव्यभिचारवान्॥
एष ह्यैन्द्रो वैजयन्तो गुणैर्नित्यं समाहितः।
येनासुरान्पराजित्य जगत्पाति शतक्रतुः ॥ १९
स्वर्गमार्गाय कस्य स्याद्विग्रहो वै यथा तव।
मागधैर्विपुलैः सैन्यैर्बाहुल्यबलदर्पितः ॥ २०
मावमंस्थाः परान्राजन्नास्ति वीर्यं नरे नरे।
समं तेजस्त्वया चैव विशिष्टं वा नरेश्वर ॥ २१
यावदेतदसंबुद्धं तावदेव भवेत्तव।
विषह्यमेतदस्माकमतो राजन्ब्रवीमि ते ॥ २२
जहि त्वं सदृशेष्वेव मानं दर्पं च मागध।
मागमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम् ॥ २३
दम्भोद्भवः कार्तवीर्य उत्तरश्च बृहद्रथः।
श्रेयसो ह्यवमन्येह विनेशुः सबला नृपाः ॥ २४
युयुक्षमाणस्त्वत्तो हि न वयं ब्राह्मणा ध्रुवम्।
शौरिरस्मि हृषीकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ।
अनयोर्मातुलेयं च कृष्णं मां विद्धि ते रिपुम् २५
त्वामाह्वयामहे राजन्स्थिरो युध्यस्व मागध।
मुञ्च वा नृपतीन्सर्वान्गच्छ वा त्वं यमक्षयम् २६

जरासंध उवाच।

नाजितान्वै नरपतीनहमादद्मि कांश्चन।
अजितः पर्यवस्थाता कोऽत्र यो न मया जितः २७
क्षत्रियस्यैतदेवाहुर्धर्म्यं कृष्णोपजीवनम्।
विक्रम्य वशमानीय कामतो यत्समाचरेत् ॥ २८
देवतार्थमुपाहृत्य राज्ञः कृष्ण कथं भयात्।
अहमद्य विमुच्येयं क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ॥ २९
सैन्यं सैन्येन व्यूढेन एक एकेन वा पुनः।
द्वाभ्यां त्रिभिर्वा योत्स्येहं युगपत्पृथगेव वा ॥३०

वैशंपायन उवाच।

एवमुक्त्वा जरासंधः सहदेवाभिषेचनम्।
आज्ञापयत्तदा राजा युयुत्सुर्भीमकर्मभिः ॥ ३१
स तु सेनापतिं राजा सस्मार भरतर्षभ।
कौशिकं चित्रसेनं च तस्मिन्युद्ध उपस्थिते ॥ ३२
ययोस्ते नामनी राजन्हंसेति डिम्भकेति च।
पूर्वं संकथिते पुंभिर्नृलोके लोकसत्कृते ॥ ३३
तं तु राजन्विभुः शौरी राजानं बलिनां वरम्।
स्मृत्वा पुरुषशार्दूलः शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३४
सत्यसंधो जरासंधं भुवि भीमपराक्रमम्।
भागमन्यस्य निर्दिष्टमवध्यं मधुभिर्मृधे ॥ ३५
नात्मनात्मवतां मुख्य इयेष मधुसूदनः।
ब्राह्मीमाज्ञां पुरस्कृत्य हन्तुं हलधरानुजः ॥ ३६

इति श्रीमहाभा० सभाप० जरासंधवधप० जरासंधयुद्धोद्योगे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

अभिजनं मजातीयं पात्यतया जानन् ॥ १६ ॥ स्वर्गेति ब्रह्म वेदः यशः तपो वेदोक्तं कर्म च स्वर्गयोनिः सुखहेतुः। युद्धे मृत्युश्च अव्यभिचारवान् स्वर्गहेतुः वेदादीनां अव्रतादीन् प्रति स्वर्गहेतुत्वं नास्ति युद्धे मृत्युस्तु न तथेत्यर्थः ॥१८॥ एषः युद्धे मृत्युः ऐन्द्रः इन्द्रसंबन्धी। वैजयन्तः प्रासादः तत्प्राप्तिहेतुरित्यर्थः येन लब्धेन समाहितः पूर्ण ॥ १९ ॥ स्वर्गमार्गहेतोर्विग्रहो वैरं अस्माभिः सह यथा तव पुण्यातिशयात् न तथान्यस्यास्ति अत्र हेतुः क्षत्रियावमान इत्याह मागधैरिति सैन्यैरेव न बाहुबलेन ॥ २० ॥ विषह्यं असह्यं विगतः सह्यः सोढुं योग्यः सोढा यस्य तत् यद्वा तव एतावत् बलं अस्माकं विषह्यं सुसहम् ॥ २२ ॥ युयुक्षमाणास्त्वत्तो हि त्वत्तः त्वां युयुक्षमाणाः योगः कपटेन हननं तत्कर्तुमिच्छन्तः 'योगो विश्रब्धघातिनि' इति विश्वः। मुमुक्षमाणा इति पाठे नृपानिति शेषः। ब्राह्मणब्रुवा इति पाठे ब्राह्मणाधमाः ॥ २५ ॥ अजितः अन्यैरिति शेषः। पर्यवस्थाता शत्रुः ॥२७॥ व्यूढेन व्यूहरचनायास्थितेन ॥ ३० ॥ हंसडिम्भकाविव कौशिकचित्रसेनावित्याह ययोरिति ॥ ३३ ॥ मधुभिः यादवैः ॥ ३५ ॥ न हन्तुं इयेषेत्यन्वयः तत्र हेतुः ब्राह्मीमिति ॥ ३६ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

वैशंपायन उवाच ।
ततस्तं निश्चितात्मानं युद्धाय यदुनन्दनः ।
उवाच वाग्मी राजानं जरासंधमधोक्षजः ॥ १
कृष्ण उवाच ।
त्रयाणां केन ते राजन्योद्धुमुत्सहेत मनः ।
अस्मदन्यतमेनेह सज्जीभवतु को युधि ॥ २
एवमुक्तः स नृपतिर्युद्धं वव्रे महाद्युतिः ।
जरासंधस्ततो राजा भीमसेनेन मागधः ॥ ३
आदाय रोचनां माल्यं मङ्गल्यान्यपराणि च ।
धारयन्नगदान्मुख्यान्निर्वृतीर्वेदनानि च ।
उपतस्थे जरासंधं युयुत्सुं वै पुरोहितः ॥ ४
कृतस्वस्त्ययनो राजा ब्राह्मणेन यशस्विना ।
समनह्यज्जरासंधः क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ५
अवमुच्य किरीटं स केशान्समनुगृह्य च ।
उदतिष्ठज्जरासंधो वेलातिग इवार्णवः ॥ ६
उवाच मतिमान्राजा भीमं भीमपराक्रमः ।
भीम योत्स्ये त्वया सार्धं श्रेयसा निर्जितं वरम्॥
एवमुक्त्वा जरासंधो भीमसेनमरिंदमः ।
प्रत्युद्ययौ महातेजाः शक्रं बल इवासुरः ॥ ८
ततः संमन्त्र्य कृष्णेन कृतस्वस्त्ययनो बली ।
भीमसेनो जरासंधमाससाद युयुत्सया ॥ ९
ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुशस्त्रौ समीयतुः ।
वीरौ परमसंहृष्टावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ॥ १०
करग्रहणपूर्वं तु कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
कक्षैः कक्षां विधुन्वानावास्फोटं तत्र चक्रतुः ११
स्कन्धे दोर्भ्यां समाहत्य निहत्य च मुहुर्मुहुः ।
अङ्गमङ्गैः समाश्लिष्य पुनरास्फालनं विभो ॥१२
चित्रहस्तादिकं कृत्वा कक्षाबन्धं च चक्रतुः ।
गलगण्डाभिघातेन सस्फुलिङ्गेन चाशनिम् ॥१३
बाहुपाशादिकं कृत्वा पादाहतशिरावुभौ ।
उरोहस्तं ततश्चक्रे पूर्णकुम्भौ प्रयुज्य तौ ॥ १४
करसंपीडनं कृत्वा गर्जन्तौ वारणाविव ।
नर्दन्तौ मेघसंकाशौ बाहुप्रहरणावुभौ ॥ १५
तलेनाहन्यमानौ तु अन्योन्यं कृतवीक्षणौ ।
सिंहाविव सुसंक्रुद्धावाकृष्याकृष्य युध्यताम् ॥१६
अङ्गेनाङ्गं समापीड्य बाहुभ्यामुभयोरपि ।
आवृत्य बाहुभिश्चापि उदरं च प्रचक्रतुः ॥ १७
उभौ कट्यां सुपार्श्वे तु तक्षवन्तौ च शिक्षितौ ।
अधोहस्तं स्वकण्ठे तूदरस्योरसि चाक्षिपन् ॥१८
सर्वातिक्रान्तमर्यादं पृष्ठभङ्गं च चक्रतुः ।
संपूर्णमूर्च्छां बाहुभ्यां पूर्णकुम्भं प्रचक्रतुः ॥ १९
तृणपीडं यथाकामं पूर्णयोगं समुष्टिकम् ।
एवमादीनि युद्धानि प्रकुर्वन्तौ परस्परम् ॥ २०
तयोर्युद्धं ततो द्रष्टुं समेताः पुरवासिनः ।
ब्राह्मणा वणिजश्चैव क्षत्रियाश्च सहस्रशः ॥ २१

२३

तत इति ॥१॥ आदाय पुरोहित उपतस्थे इति सार्धसंबन्धः । अगदान् औषधानि । निर्वृतीर्वेदनानि च । दुःखमूर्च्छयोः काले सुखसंज्ञाकराणि ॥४॥ समनह्यत् संनद्धो बभूव ॥५॥ कक्षैः दोर्मूलैः कक्षां प्रकोष्ठगतां रज्जुं धुन्वानौ । यतः तत्र कक्षे आस्फोटं चक्रतुः । बाहुमूलास्फालनेन अङ्गदबन्धरज्जुशेषं कम्पयन्तावित्यर्थः ॥ ११ ॥ चित्रहस्तादिकं हस्तस्यातिवेगेन आकुञ्चनप्रसारणोपर्यधश्चालनमुष्टीकरणानि चित्रहस्ताः आदिपदात् पादस्याप्याकुञ्चनादि । कक्षाबन्धं परस्परकक्षायां हस्तौ कृत्वा बन्धनम् । गलेति गले गण्डेन भालदेशेनाभिघातस्तेन । पाषाणसदृशांगत्वात्तयोरभिघातेन विस्फुलिङ्गोत्पत्त्याऽशनिं वज्रामिव ससृजतुरित्यर्थः ॥ १३ ॥ बाहुपाशादिकं चरणपाश आदिशब्दार्थः पादाभ्यां आहताः शिराःस्नायवो याभ्यां तौ । दृढप्रहारेण नाडीपर्यन्तमपि वेदनावन्तावित्यर्थः । उरोहस्तं उरसि चपेटाप्रहारं । पूर्णकुम्भौ ग्रथिताङ्गुलिभ्यां हस्ताभ्यां परशिरसः पीडनं पूर्णकुम्भः । द्वित्वं परस्परं द्वावपि चक्रतुरिति वक्तुम् ॥ १४ ॥ तलेन चपेटया ॥ १६ ॥ आवृत्य जत्रुदेशे पृष्ठं कृत्वा बाहुभिः बहुत्वाद्वावपि मिथः उदरं आदाय प्रचक्रतुः प्रचिक्षिपतुः कृ विक्षेपेऽस्य रूपम् ॥१७॥ एवं कट्यां सुपार्श्वे च प्रचक्रतुः । तक्षवन्तौ तक्षस्तनूकरणं गात्रसंकोच इत्यर्थः तद्वन्तौ । अधोहस्तं उदरस्याधस्तात् हस्तं कृत्वा हस्ताभ्यामुदरमावेष्ट्य स्वकण्ठे स्वोरसि च कण्ठोरःसमीपे आनीय आक्षिपत् आस्फालितवान् ॥ १८ ॥ पृष्ठस्य भूसंबन्धेन जातं भङ्गं पराभवम् । बाहुभ्यां उदरादिनिपीडने संपूर्णमूर्च्छाम् ॥ १९ ॥ तृणपीडं रज्जूकरणे तृणमिव यत्र बाह्वादिकं व्यावर्त्यते तद्युद्धं तृणपीडम् । पूर्णयोगं योगो विश्रब्धघातनं तच्च पूर्णं अन्यत्र मुष्टेः पातं प्रदर्श्य अन्यत्रपातनमित्यर्थः । एवमादीनि पादाकर्षणशीर्षकक्षीकरणादीनि ॥ २० ॥

शूद्राश्च नरशार्दूल स्त्रियो वृद्धाश्च सर्वदाः ।
निरन्तरमभूत्तत्र जनौघैरभिसंवृतम् ॥ २२
तयोरथ भुजाघातान्निग्रहप्रग्रहात्तथा ।
आसीत्सुभीमसंपातो वज्रपर्वतयोरिव ॥ २३
उभौ परमसंहृष्टौ बलेन बलिनां वरौ ।
अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू परस्परजयैषिणौ ॥ २४
तद्भीममुत्सार्यजनं युद्धमासीदुपह्वरे ।
बलिनोः संयुगे राजन्वृत्रवासवयोरिव ॥ २५
प्रकर्षणाकर्षणाभ्यामनुकर्षविकर्षणैः ।
आचकर्षतुरन्योन्यं जानुभिश्चावजघ्नतुः ॥ २६
ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम् ।
पाषाणसंघातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः ॥ २७
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ २८
कार्तिकस्य तु मासस्य प्रवृत्तं प्रथमेऽहनि ॥
अनाहारं दिवारात्रमविश्रान्तमवर्तत ॥ २९
तद्वृत्तं तु त्रयोदश्यां समवेतं महात्मनोः ।
चतुर्दश्यां निशायां तु निवृत्तो मागधः क्लमात् ३०
तं राजानं तथा क्लान्तं दृष्ट्वा राजञ्जनार्दनः ।
उवाच भीमकर्माणं भीमं संबोधयन्निव ॥ ३१
क्लान्तः शत्रुर्न कौन्तेय लभ्यः पीडयितुं रणे ।
पीड्यमानो हि कार्त्स्न्येन जह्याज्जीवितमात्मनः॥
तस्मात्तेनैव कौन्तेय पीडनीयो जनाधिपः ।
सममेतेन युध्यस्व बाहुभ्यां भरतर्षभ ॥ ३३
एवमुक्तः स कृष्णेन पाण्डवः परवीरहा ।
जरासंधस्य तद्रूपं ज्ञात्वा चक्रे मतिं वधे ॥ ३४
ततस्तमजितं जेतुं जरासंधं वृकोदरः ।
संरम्भं बलिनां श्रेष्ठो जग्राह कुरुनन्दनः ॥ ३५

इति श्रीमहाभा० सभाप० जरासंधवधप० जरासंधक्लान्तौ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

वैशंपायन उवाच ।
भीमसेनस्ततः कृष्णमुवाच यदुनन्दनम् ।
बुद्धिमास्थाय विपुलां जरासंधवधेप्सया ॥ १
नायं पापो मया कृष्ण युक्तः स्यादनुरोधितुम् ।
प्राणेन यदुशार्दूल बद्धकक्षेण वाससा ॥ २
एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रत्युवाच वृकोदरम् ।
त्वरयन्पुरुषव्याघ्रो जरासंधवधेप्सया ॥ ३
यत्ते दैवं परं सत्त्वं यच्च ते मातरिश्वनः ।
बलं भीम जरासंधे दर्शयाशु तदद्य वै ॥ ४
एवमुक्तस्तदा भीमो जरासंधमरिंदमः ।
उत्क्षिप्य भ्रामयामास बलवन्तं महाबलः ॥ ५
भ्रामयित्वा शतगुणं जानुभ्यां भरतर्षभ ।
बभञ्ज पृष्ठं संक्षिप्य निष्पिष्य विननाद च ॥ ६
करे गृहीत्वा चरणं द्वेधा चक्रे महाबलः ॥ ७
तस्य निष्पिष्यमाणस्य पाण्डवस्य च गर्जतः ।
अभवत्तुमुलो नादः सर्वप्राणिभयंकरः ॥ ८
वित्रेसुर्मागधाः सर्वे स्त्रीणां गर्भाश्च सुस्रुवुः ॥
भीमसेनस्य नादेन जरासंधस्य चैव ह ॥ ९

---

निग्रहः हस्ताभ्यां बन्धरावर्षणेन शत्रोरधोमुखीकरणं । प्रग्रहः शत्रोरत्तानपातनार्थं पादाकर्षणम् ॥ २३॥ उत्सार्यजनं हस्तबाहुबन्धेन परस्परापसारणाद्दूरीकृतप्रेक्षकजनम्। उपह्वरे युद्धभूमौ उपव्हरे इति पाठे निकटदेशे ॥ २५ ॥ प्रकर्षणे पश्चादपसारणे इतरोऽनुकर्षति अवाङ्मुखं पातयितुम् । आकर्षणे अग्राकर्षणे इतरो विकर्षति तिर्यक् नयतीत्यर्थः। आचकर्षतुः देहौ विलिलिखतुः प्रहारैरिति शेषः ॥ २६ ॥ नियुद्धं निगृह्य युद्धम् ॥२८॥ अनाहारं नास्ति आहरणं आहार उपसंहारो यस्य तत्। अविश्रान्तं न विशेषेण श्रान्तोऽन्यतरो यस्मिंस्तत्तथा ॥२९॥ तद्वृत्तं तादृशप्रकारं युद्धं त्रयोदश्यां समवेतं त्रयोदशीपर्यन्तं जातमिति शेषः। क्लमात् क्लमं प्राप्य निवृत्तः निगृहीतप्रवृत्तो भूत् ॥ ३० ॥ संबोधयन्निव शिष्टाचारप्रदर्शनव्याजेन शत्रुवधकाले सूचयन्निव ॥ ३१ ॥ तस्मात्ते त्वया ॥ ३३ ॥ तद्रूपं क्लान्तरूपम् ॥ ३४ ॥ संरम्भं कोपम् ॥ ३५ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्याय ॥ २३ ॥

२४

भीमसेन इति॥१॥अनुरोधितुं निरोद्धुं प्राणेन बलेन ॥२॥ जानुभ्यां धनुर्यष्टिवत्पृष्ठं संक्षिप्य विनाम्य ॥ ६ ॥

किं नु स्याद्धिमवान्भिन्नः किं नु स्विद्दीर्यते मही ।
इति वै मागधा जज्ञुर्भीमसेनस्य निःस्वनात् ॥ १०
ततो राज्ञः कुलद्वारि प्रसुप्तमिव तं नृपम् ।
रात्रौ गतासुमुत्सृज्य निश्चक्रमुररिंदमाः ॥ ११
जरासंधरथं कृष्णो योजयित्वा पताकिनम् ।
आरोप्य भ्रातरौ चैव मोक्षयामास बान्धवान् ॥ १२
ते वै रत्नभुजं कृष्णं रत्नार्हाः पृथिवीश्वराः ।
राजानश्चक्रुरासाद्य मोक्षिता महतो भयात् ॥ १३
अक्षतः शस्त्रसंपन्नो जितारिः सह राजभिः ।
रथमास्थाय तं दिव्यं निर्जगाम गिरिव्रजात् ॥ १४
यः स सोदर्यवान्नाम द्वियोधी कृष्णसारथिः ।
अभ्यासघाती संदृश्यो दुर्जयः सर्वराजभिः ॥ १५
भीमार्जुनाभ्यां योधाभ्यामास्थितः कृष्णसारथिः ।
शुशुभे रथवर्योऽसौ दुर्जयः सर्वधन्विभिः ॥ १६
शक्रविष्णू हि संग्रामे चेरतुस्तारकामये ।
रथेन तेन वै कृष्ण उपारुह्य ययौ तदा ॥ १७
तप्तचामीकराभेण किङ्किणीजालमालिना ।
मेघनिर्घोषनादेन जैत्रेणामित्रघातिना ॥ १८
येन शक्रो दानवानां जघान नवतीर्नव ।
तं प्राप्य समहृष्यन्त रथं ते पुरुषर्षभाः ॥ १९
ततः कृष्णं महाबाहुं भ्रातृभ्यां सहितं तदा ।
रथस्थं मागधा दृष्ट्वा समपद्यन्त विस्मिताः ॥ २०
हयैर्दिव्यैः समायुक्तो रथो वायुसमो जवे ।
अधिष्ठितः स शुशुभे कृष्णेनातीव भारत ॥ २१
असंगो देवविहितस्तस्मिन्रथवरे ध्वजः ।
योजनाद्ददृशे श्रीमानिन्द्रायुधसमप्रभः ॥ २२
चिन्तयामास कृष्णोऽथ गरुत्मन्तं स चाभ्ययात् ।
क्षणे तस्मिन्स तेनासीच्चैत्यवृक्ष इवोत्थितः ॥ २३
व्यादितास्यैर्महानादैः सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
तस्मिन्रथवरे तस्थौ गरुत्मान्पन्नगाशनः ॥ २४
दुर्निरीक्ष्यो हि भूतानां तेजसाभ्यधिकं बभौ ।
आदित्य इव मध्याह्ने सहस्रकिरणावृतः ॥ २५
न स सज्जति वृक्षेषु शस्त्रैश्चापि न रिष्यते ।
दिव्यो ध्वजवरो राजन्दृश्यते चेह मानुषैः ॥ २६
तमास्थाय रथं दिव्यं पर्जन्यसमनिःस्वनम् ।
निर्ययौ पुरुषव्याघ्रः पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः ॥ २७
यं लेभे वासवाद्राजा वसुस्तस्माद्बृहद्रथः ।
बृहद्रथात्क्रमेणैव प्राप्तो बार्हद्रथं नृप ॥ २८
स निर्याय महाबाहुः पुण्डरीकेक्षणस्ततः ।
गिरिव्रजाद्बहिस्तस्थौ समदेशे महायशाः ॥ २९
तत्रैनं नागराः सर्वे सत्कारेणाभ्ययुस्तदा ।
ब्राह्मणप्रमुखा राजन्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३०
बन्धनाद्विप्रमुक्ताश्च राजानो मधुसूदनम् ।
पूजयामासुरूचुश्च स्तुतिपूर्वमिदं वचः ॥ ३१
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने ।
भीमार्जुनबलोपेते धर्मस्य प्रतिपालनम् ॥ ३२
जरासंधह्रदे घोरे दुःखपङ्के निमज्जताम् ।
राज्ञां समभ्युद्धरणं यदिदं कृतमद्य वै ॥ ३३
विष्णो समवसन्नानां गिरिदुर्गे सुदारुणे ।
दिष्ट्या मोक्षाद्यशो दीप्तमाप्तं ते यदुनन्दन ॥ ३४
किं कुर्मः पुरुषव्याघ्र शाधि नः प्रणतिस्थितान् ।
कृतमित्येव तद्विद्धि नृपैर्यद्यपि दुष्करम् ॥ ३५
तानुवाच हृषीकेशः समाश्वास्य महाजनाः ।
युधिष्ठिरो राजसूयं क्रतुमाहर्तुमिच्छति ॥ ३६
तस्य धर्मप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः ।
सर्वैर्भवद्भिर्विज्ञाय साहाय्यं क्रियतामिति ॥ ३७
ततः सुप्रीतमनसस्ते नृपा नृपसत्तम ।
तथेत्येवाब्रुवन्सर्वे प्रतिगृह्यास्य तां गिरम् ॥ ३८
रत्नभाजं च दाशार्हं चक्रुस्ते पृथिवीश्वराः ।
कृच्छ्राज्जग्राह गोविन्दस्तेषां तदनुकम्पया ॥ ३९
जरासंधात्मजश्चैव सहदेवो महामनाः ।
निर्ययौ सजनामात्यः पुरस्कृत्य पुरोहितम् ॥ ४०
स नीचैः प्रणतो भूत्वा बहुरत्नपुरोगमः ।
सहदेवो नृणां देवं वासुदेवमुपस्थितः ॥ ४१
भयार्ताय ततस्तस्मै कृष्णो दत्त्वाऽभयं तदा ।
आददेऽस्य महार्हाणि रत्नानि पुरुषोत्तमः ॥ ४२

---

कुलद्वारि गृहद्वारि ॥ ११ ॥ भ्रातरौ भीमार्जुनौ बान्धवान् जरासंधबद्धान् नृपान् ॥ १२ ॥ ते कृष्णं रत्नभुजं चक्रुरित्यन्वयः ॥ १३ ॥ सोदर्यवान् भीमयुक्तः द्वियोधी द्वाभ्यां हस्ताभ्यां शराणां प्रक्षेपात् अभ्यासघाती पुनःपुनरावृत्तिरभ्यासः तं परकीयं हन्तुं शीलमस्य धनुर्विद्यायां परोत्कर्षजेता । संदृश्यः रमणीयाङ्गः ॥ १५ ॥ शक्रविष्णू हिशब्द इवार्थे । तारकामये तारका तारा बृहस्पतिभार्या सैव आमयवत् विनाशहेतुर्यस्मिन् । आमयो रोगः ॥१७॥ असंगः रथस्पर्शहीनः॥२२॥चैत्यवृक्षः ग्रामादिचिह्नभूतो वृक्षः ॥ २३ ॥ रिष्यते हिंस्यते विध्यते इत्यपि पाठः ॥ २६ ॥ पार्थिवत्वं साम्राज्यम् ॥ ३७ ॥ कृच्छ्रान्मोचितेभ्यो धनग्रहणं यशोहानिकरमिति संकटात् ॥ ३९ ।

अभ्यषिञ्चत तत्रैव जरासंधात्मजं मुदा ।
गत्वैकत्वं च कृष्णेन पार्थाभ्यां चैव सत्कृतः ४३
विवेश राजा द्युतिमान्बार्हद्रथपुरं नृप ।
अभिषिक्तो महाबाहुर्जारासंधिर्महात्मभिः ॥ ४४
कृष्णस्तु सह पार्थाभ्यां श्रिया परमया युतः ।
रत्नान्यादाय भूरीणि प्रययौ पुरुषर्षभः ॥ ४५
इन्द्रप्रस्थमुपागम्य पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः ।
समेत्य धर्मराजानं प्रीयमाणोऽभ्यभाषत ॥ ४६
दिष्ट्या भीमेन बलवाञ्जरासंधो निपातितः ।
राजानो मोक्षिताश्चैव बन्धनान्नृपसत्तम ॥ ४७
दिष्ट्या कुशलिनौ चेमौ भीमसेनधनंजयौ ।
पुनः स्वनगरं प्राप्तावक्षताविति भारत ॥ ४८
ततो युधिष्ठिरः कृष्णं पूजयित्वा यथार्हतः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव प्रहृष्टः परिषस्वजे ॥ ४९
ततः क्षीणे जरासंधे भ्रातृभ्यां विहितं जयम् ।
अजातशत्रुरासाद्य मुमुदे भ्रातृभिः सह ॥ ५०
यथावयः समागम्य भ्रातृभिः सह पांडवः ।
सत्कृत्य पूजयित्वा च विससर्ज नराधिपान् ॥५१
युधिष्ठिराभ्यनुज्ञातास्ते नृपा हृष्टमानसाः ।
जग्मुः स्वदेशांस्त्वरिता यानैरुच्चावचैस्ततः ॥ ५२
एवं पुरुषशार्दूलो महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
पाण्डवैर्घातयामास जरासंधमरिं तदा ॥ ५३
घातयित्वा जरासंधं बुद्धिपूर्वमरिंदमः ।
धर्मराजमनुज्ञाप्य पृथां कृष्णां च भारत ॥ ५४
सुभद्रां भीमसेनं च फाल्गुनं यमजौ तथा ।
धौम्यमामन्त्रयित्वा च प्रययौ स्वां पुरीं प्रति॥५५
तेनैव रथमुख्येन मनसस्तुल्यगामिना ।
धर्मराजविसृष्टेन दिव्येनानादयन्दिशः ॥ ५६
ततो युधिष्ठिरमुखाः पाण्डवा भरतर्षभ ।
प्रदक्षिणमकुर्वन्त कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ ५७
ततो गते भगवति कृष्णे देवकिनन्दने ।
जयं लब्ध्वा सुविपुलं राज्ञां दत्वाऽभयं तदा ५८
संवर्धितं यशो भूयः कर्मणा तेन भारत ।
द्रौपद्याः पाण्डवा राजन्परां प्रीतिमवर्धयन् ॥५९
तस्मिन्काले तु यद्युक्तं धर्मकामार्थसंहितं ।
तद्राजा धर्मतश्चक्रे प्रजापालनकीर्तनम् ॥ ६०

इति श्रीमहा० सभापर्वणि जरासंधवधपर्वणि जरासंधवधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

समाप्तं जरासंधवधपर्व ।

## दिग्विजयपर्व ।

## २५

वैशंपायन उवाच ।
पार्थः प्राप्य धनुः श्रेष्ठमक्षय्यौ च महेषुधी ।
रथं ध्वजं सभां चैव युधिष्ठिरमभाषत ॥ १
अर्जुन उवाच ।
धनुरस्त्रं शरा वीर्यं पक्षो भूमिर्यशो बलम् ।
प्राप्तमेतन्मया राजन्दुष्प्रापं यदभीप्सितम् ॥ २
तत्र कृत्यमहं मन्ये कोशस्य परिवर्धनम् ।
करमाहारयिष्यामि राज्ञः सर्वान्नृपोत्तम ॥ ३
विजयाय प्रयास्यामि दिशं धनदपालिताम् ।
तिथावथ मुहूर्ते च नक्षत्रे चाभिपूजिते ॥ ४
वैशंपायन उवाच ।
धनंजयवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
स्निग्धगम्भीरनादिन्या तं गिरा प्रत्यभाषत ॥ ५
स्वस्तिवाच्यार्हतो विप्रान्प्रयाहि भरतर्षभ ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां नन्दनाय च ॥ ६

एकत्वं सख्यम् ॥४३॥ यथावय. ज्येष्ठानुक्रमेण प्रथमं भीमेन तत कृष्णेन ततोर्जुनेन ॥५१॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्याय. ॥ २४ ॥

२५

क्षत्रियस्य शत्रुजयेन धनार्जनं धर्म इति शिष्टाचारेण दर्शयितुं पाण्डवाना दिग्विजयमुपक्रामयति सप्तभिरध्यायैः पार्थ प्राप्य धनुःश्रेष्ठमित्यादिना ॥ १ ॥ पक्षो वासुदेवः भूमि. दुर्गम् ॥ २ ॥

विजयस्ते ध्रुवं पार्थ प्रियं काममवाप्स्यसि ।
इत्युक्तः प्रययौ पार्थः सैन्येन महता वृतः ॥ ७
अग्निदत्तेन दिव्येन रथेनाद्भुतकर्मणा ।
तथैव भीमसेनोपि यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ८
ससैन्याः प्रययुः सर्वे धर्मराजेन पूजिताः ।
दिशं धनपतेरिष्टामजयत्पाकशासनिः ॥ ९
भीमसेनस्तथा प्राचीं सहदेवस्तु दक्षिणाम् ।
प्रतीचीं नकुलो राजन्दिशं व्यजयतास्त्रवित् ॥१०
खाण्डवप्रस्थमध्यस्थो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
आसीत्परमया लक्ष्म्या सुहृद्गणवृतः प्रभुः ॥ ११

इति श्रीमहाभा० सभाप० दिग्विजयपर्वणि दिग्विजयसंक्षेपकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

जनमेजय उवाच ।

दिशामभिजयं ब्रह्मन्विस्तरेणानुकीर्तय ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

धनंजयस्य वक्ष्यामि विजयं पूर्वमेव ते ।
यौगपद्येन पार्थैर्हि निर्जितेयं वसुंधरा ॥ २
पूर्वं कुलिन्दविषये वशे चक्रे महीपतीन् ।
धनंजयो महाबाहुर्नातितीव्रेण कर्मणा ॥ ३
आनर्तान्कालकूटांश्च कुलिन्दांश्च विजित्य सः ।
सुमण्डलं च विजितं कृतवान्सह सैनिकम् ॥ ४
स तेन सहितो राजन्सव्यसाची परंतपः ।
विजिग्ये शाकलं द्वीपं प्रतिविन्ध्यं च पार्थिवम् ॥५
शाकलद्वीपवासाश्च सप्तद्वीपेषु ये नृपाः ॥
अर्जुनस्य च सैन्यैस्तैर्विग्रहस्तुमुलोभवत् ॥ ६
स तानपि महेष्वासान्विजिग्ये भरतर्षभ ।
तैरेव सहितः सर्वैः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥ ७
तत्र राजा महानासीद्भगदत्तो विशांपते ।
तेनासीत्सुमहद्युद्धं पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ८
स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोभवत् ।
अन्यैश्च बहुभिर्योधैः सागरानूपवासिभिः ॥ ९
ततः स दिवसानष्टौ योधयित्वा धनंजयम् ।
प्रहसन्नब्रवीद्राजा संग्रामविगतक्लमम् ॥ १०
उपपन्नं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ।
पाकशासनदायादे वीर्यमाहवशोभिनि ॥ ११
अहं सखा महेन्द्रस्य शक्रादनवरो रणे ।
न शक्ष्यामि च ते तात स्थातुं प्रमुखतो युधि १२
त्वमीप्सितं पाण्डवेय ब्रूहि किं करवाणि ते ।
यद्वक्ष्यसि महाबाहो तत्करिष्यामि पुत्रक ॥ १३

अर्जुन उवाच ।

कुरूणामृषभो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ १४
तस्य पार्थिवतामीप्से करस्तस्मै प्रदीयताम् ।
भवान्पितृसखा चैव प्रीयमाणो मयापि च ।
ततो नाज्ञापयामि त्वां प्रीतिपूर्वं प्रदीयताम् ॥१५

भगदत्त उवाच ।

कुन्तीमातर्यथा मे त्वं तथा राजा युधिष्ठिरः ।
सर्वमेतत्करिष्यामि किं चान्यत्करवाणि ते ॥ १६

इति श्रीमहाभा० सभा० दिग्विजयप० अर्जुनदिग्विजये भगदत्तजये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

खाण्डवप्रस्थं खाण्डवदाहेन स्थापितं स्थानम् ॥ ११ ॥ इति सभाप० नै० भा० भा० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

इति सभाप० नै० भा० भा० षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच भगदत्तं धनंजयः ।
अनेनैव कृतं सर्वं भविष्यत्यनुजानता ॥ १

ते विजित्य महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
प्रययावुत्तरां तस्माद्दिशं धनदपालिताम् ॥ २

अन्तर्गिरिं च कौन्तेयस्तथैव च बहिर्गिरिम् ।
तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ ३

विजित्य पर्वतान्सर्वान्ये च तत्र नराधिपाः ।
तान्वशे स्थापयित्वा स धनान्यादाय सर्वशः ॥४

तैरेव सहितः सर्वैरनुरज्य च तान्नृपान् ।
उलूकवासिनं राजन्बृहन्तमुपजग्मिवान् ॥ ५

मृदङ्गवरनादेन रथनेमिस्वनेन च ।
हस्तिनां च निनादेन कम्पयन्वसुधामिमाम् ॥ ६

ततो बृहन्तस्त्वरितो बलेन चतुरङ्गिणा ।
निष्क्रम्य नगरात्तस्माद्योधयामास फाल्गुनम् ॥७

सुमहान्संनिपातोभूद्धनंजयबृहन्तयोः ।
न शशाक बृहन्तस्तु सोढुं पाण्डवविक्रमम् ॥ ८

सोऽविषह्यतमं मत्वा कौन्तेयं पर्वतेश्वरः ।
उपावर्तत दुर्धर्षो रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ ९

स तद्राज्यमवस्थाप्य उलूकसहितो ययौ ।
सेनाबिन्दुमथो राजन्राज्यादाशु समाक्षिपत् १०

मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम् ।
उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत् ॥ ११

तत्रस्थः पुरुषैरेव धर्मराजस्य शासनात् ।
किरीटी जितवान्राजन्देशान्पञ्चगणांस्ततः ॥ १२

स देवप्रस्थमासाद्य सेनाबिन्दोः पुरं प्रति ।
बलेन चतुरङ्गेण निवेशमकरोत्प्रभुः ॥ १३

स तैः परिवृतः सर्वैर्विष्वगश्वं नराधिपम् ।
अभ्यगच्छन्महातेजाः पौरवं पुरुषर्षभ ॥ १४

विजित्य चाहवे शूरान्पार्वतीयान्महारथान् ।
जिगाय सेनया राजन्पुरं पौरवरक्षितम् ॥ १५

पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून्पर्वतवासिनः ।
गणानुत्सवसंकेतानजयत्सप्त पाण्डवः ॥ १६

ततः काश्मीरकान्वीरान्क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
व्यजयल्लोहितं चैव मण्डलैर्दशभिः सह । १७

ततस्त्रिगर्ताः कौन्तेयं दार्वाः कोकनदास्तथा ।
क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वशः ॥ १८

अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दनः ।
उरगावासिनं चैव रोचमानं रणेऽजयत् ॥ १९

ततः सिंहपुरं रम्यं चित्रायुधसुरक्षितम् ।
प्राधमद्बलमास्थाय पाकशासनिराहवे ॥ २०

ततः सुह्मांश्च चोलांश्च किरीटी पाण्डवर्षभः ।
सहितः सर्वसैन्येन प्रामथत्कुरुनन्दनः ॥ २१

ततः परमविक्रान्तो बाह्लीकान्पाकशासनिः ।
महता परिमर्देन वशे चक्रे दुरासदान् ॥ २२

गृहीत्वा तु बलं सारं फाल्गुनः पाण्डुनन्दनः ।
दरदान्सह काम्बोजैरजयत्पाकशासनिः ॥ २३

प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः ।
निवसन्ति वने ये च तान्सर्वानजयत्प्रभुः ॥ २४

लोहान्परमकाम्बोजानृषिकानुत्तरानपि ।
सहितांस्तान्महाराज व्यजयत्पाकशासनिः ॥२५

ऋषिकेष्वपि संग्रामो बभूवातिभयंकरः ।
तारकामयसंकाशः परस्त्वृषिकपार्थयोः ॥ २६

स विजित्य ततो राजन्नृषिकान्रणमूर्धनि ।
शुकोदरसमांस्तत्र हयानष्टौ समानयत् ॥ २७

मयूरसदृशानन्यानुत्तरानपरानपि ।
जवनानाशुगांश्चैव करार्थं समुपानयत् ॥ २८

स विनिर्जित्य संग्रामे हिमवन्तं सनिष्कुटम् ।
श्वेतपर्वतमासाद्य न्यविशत्पुरुषर्षभः ॥ २९

इति श्रीमहा० सभा० दिग्विजयपर्वणि फाल्गुनदिग्विजये नानादेशजये सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

---

२७

एवमिति अनेनैव करदानेनैव अनुजानता अनुज्ञां दत्तवता ॥ १ ॥ संनिपातः संघर्षः ॥ ८ ॥ उत्सवसंकेतान् स्त्रीपुंसयोः परस्परप्रीतिरेव रत्यर्थे संकेतः न तु दाम्पत्यव्यवस्था पशूनामिव यत्रास्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥ मण्डलैः क्षुद्रराज्यैः ॥ १७ ॥ अभिसारीं नगरीम् ॥ १९ ॥ प्रागुत्तरा ऐशानीम् ॥ २४ ॥ जवनान् धावने शीघ्रान् आशुगान् यदृच्छया चलनसमर्थान् ॥२८॥ निष्कुटं शैलविशेषम्॥२९॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

## २८

वैशंपायन उवाच ।
स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान् ।
देशं किंपुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम् ॥ १
महता संनिपातेन क्षत्रियान्तकरेण ह ।
अजयत्पाण्डवश्रेष्ठः करे चैनं न्यवेशयत् ॥ २
तं जित्वा हाटकं नाम देशं गुह्यकरक्षितम् ।
पाकशासनिरव्यग्रः सह सैन्यः समासदत् ॥ ३
तांस्तु सान्त्वेन निर्जित्य मानसं सर उत्तमम् ।
ऋषिकुल्यास्तथा सर्वा ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ४
सरोमानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः ।
गन्धर्वरक्षितं देशमजयत्पाण्डवस्ततः ॥ ५
तत्र तित्तिरिकल्माषान्मण्डूकाख्यान्हयोत्तमान् ।
लेभे स करमत्यन्तं गन्धर्वनगरात्तदा ॥ ६
उत्तरं हरिवर्षं तु स समासाद्य पाण्डवः ।
इयेष जेतुं तं देशं पाकशासननन्दनः ॥ ७
तत एनं महावीर्यं महाकाया महाबलाः ।
द्वारपालाः समासाद्य हृष्टा वचनमब्रुवन् ॥ ८
पार्थ नेदं त्वया शक्यं पुरं जेतुं कथंचन ।
उपावर्तस्व कल्याण पर्याप्तमिदमच्युत ॥ ९
इदं पुरं यः प्रविशेद्ध्रुवं न स भवेन्नरः ।
प्रीयामहे त्वया वीर पर्याप्तो विजयस्तव ॥ १०
न चात्र किंचिज्जेतव्यमर्जुनात्र प्रदृश्यते ।
उत्तराः कुरवो ह्येते नात्र युद्धं प्रवर्तते ॥ ११
प्रविष्टोऽपि हि कौन्तेय नेह द्रक्ष्यसि किंचन ।
न हि मानुषदेहेन शक्यमत्राभिवीक्षितुम् ॥ १२
अथेह पुरुषव्याघ्र किंचिदन्यच्चिकीर्षसि ।
तत्प्रब्रूहि करिष्यामो वचनात्तव भारत ॥ १३
ततस्तानब्रवीद्राजन्नर्जुनः प्रहसन्निव ।
पार्थिवत्वं चिकीर्षामि धर्मराजस्य धीमतः ॥ १४
न प्रवेक्ष्यामि वो देशं विरुद्धं यदि मानुषैः ।
युधिष्ठिराय यत्किंचित्करपण्यं प्रदीयताम् ॥ १५
ततो दिव्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।
क्षौमाजिनानि दिव्यानि तस्य ते प्रददुः करम् ॥ १६
एवं स पुरुषव्याघ्रो विजित्य दिशमुत्तराम् ।
संग्रामान्सुबहून्कृत्वा क्षत्रियैर्दस्युभिस्तथा ॥ १७
स विनिर्जित्य राज्ञस्तान्करे च विनिवेश्य तु ।
धनान्यादाय सर्वेभ्यो रत्नानि विविधानि च ॥ १८
हयांस्तित्तिरिकल्माषाञ्छुकपत्रनिभानपि ।
मयूरसदृशानन्यान्सर्वाननिलरंहसः ॥ १९
वृतः सुमहता राजन्बलेन चतुरङ्गिणा ।
आजगाम पुनर्वीरः शक्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ॥ २०
धर्मराजाय तत्पार्थो धनं सर्वं सवाहनम् ।
न्यवेदयदनुज्ञातस्तेन राज्ञा गृहान्ययौ ॥ २१

इति श्रीमहाभारते सभा० दि० प० अर्जुनोत्तरदिग्विजये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

वैशंपायन उवाच ।
एतस्मिन्नेव काले तु भीमसेनोऽपि वीर्यवान् ।
धर्मराजमनुप्राप्य ययौ प्राचीं दिशं प्रति ॥ १
महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना ।
हस्त्यश्वरथपूर्णेन दंशितेन प्रतापवान् ॥ २
वृतो भरतशार्दूलो द्विषच्छोकविवर्धनः ।
स गत्वा नरशार्दूलः पञ्चालानां पुरं महत् ॥ ३
पञ्चालान्विविधोपायैः सान्त्वयामास पाण्डवः ।
ततः स गण्डकाञ्छूरो विदेहान्भरतर्षभः ॥ ४
विजित्याल्पेन कालेन दशार्णानजयत्प्रभुः ।
तत्र दाशार्णको राजा सुधर्मा लोमहर्षणम् ।
कृतवान्भीमसेनेन महद्युद्धं निरायुधम् ॥ ५
भीमसेनस्तु तद्दृष्ट्वा तस्य कर्म महात्मनः ।
अधिसेनापतिं चक्रे सुधर्माणं महाबलम् ॥ ६

२८

स इति॥१॥न स भवेत् म्रियेतेत्यर्थः ॥१०॥क्षुमाऽतसीविशेषः'क्षुमाऽतसी नीलिकयोः'इति मेदिनी। तत्तन्तुनिर्मितानि क्षौमाणि अजिनानि च ॥ १६ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

एतस्मिन्निति ॥१॥ बलचक्रेण सेनासमूहेन दंशितेन संनद्धेन ॥ २ ॥ दशार्णान् देशान् निरायुधं बाहुयुद्धम् ॥ ५ ॥ अधिचक्रे इति संबन्धः। जित्वा तस्य बलं ज्ञात्वा सैनापत्यं तस्मै दत्तवानित्यर्थः। अधिसेनापतिं सेनापतिष्वधिकं मुख्यं चक्रे इति वाऽर्थः ॥ ६ ॥

ततः प्राचीं दिशं भीमो ययौ भीमपराक्रमः ।
सैन्येन महता राजन्कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ७
सोऽश्वमेधेश्वरं राजन्रोचमानं सहानुगम् ।
जिगाय समरे वीरो बलेन बलिनां वरः ॥ ८
स तं निर्जित्य कौन्तेयो नातितीव्रेण कर्मणा ।
पूर्वदेशं महावीर्यो विजिग्ये कुरुनन्दनः ॥ ९
ततो दक्षिणमागम्य पुलिन्दनगरं महत् ।
सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नराधिपम् ॥ १०
ततस्तु धर्मराजस्य शासनाद्भरतर्षभः ।
शिशुपालं महावीर्यमभ्यगाज्जनमेजय ॥ ११
चेदिराजोपि तच्छ्रुत्वा पाण्डवस्य चिकीर्षितम् ।
उपनिष्क्रम्य नगरात्प्रत्यगृह्णात्परंतप ॥ १२
तौ समेत्य महाराज कुरुचेदिवृषौ तदा ।
उभयोरात्मकुलयोः कौशल्यं पर्यपृच्छताम् ॥ १३
ततो निवेद्य तद्राष्ट्रं चेदिराजो विशांपते ।
उवाच भीमं प्रहसन्किमिदं कुरुषेऽनघ ॥ १४
तस्य भीमस्तदाचख्यौ धर्मराजचिकीर्षितम् ।
स च तं प्रतिगृह्यैव तथा चक्रे नराधिपः ॥ १५
ततो भीमस्तत्र राजन्नुषित्वा त्रिदशाः क्षपाः ।
सत्कृतः शिशुपालेन ययौ सबलवाहनः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि दिग्विजयपर्वणि भीमदिग्विजये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

## ३०

वैशंपायन उवाच ।
ततः कुमारविषये श्रेणिमन्तमथाजयत् ।
कोसलाधिपतिं चैव बृहद्बलमरिंदमः ॥ १
अयोध्यायां तु धर्मज्ञं दीर्घयज्ञं महाबलम् ।
अजयत्पाण्डवश्रेष्ठो नातितीव्रेण कर्मणा ॥ २
ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोसलान् ।
मल्लानामधिपं चैव पार्थिवं चाजयत्प्रभुः ॥ ३
ततो हिमवतः पार्श्वं समभ्येत्य जलोद्भवं ।
सर्वमल्पेन कालेन देशं चक्रे वशं बली ॥ ४
एवं बहुविधान्देशान्विजिग्ये भरतर्षभः ।
भल्लाटमभितो जिग्ये शक्तिमन्तं च पर्वतम् ॥ ५
पाण्डवः सुमहावीर्यो बलेन बलिनां वरः ।
स काशिराजं समरे सुबाहुमनिवर्तिनम् ॥ ६
वशे चक्रे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
ततः सुपार्श्वमभितस्तथा राजपतिं क्रथम् ॥ ७
युध्यमानं बलात्संख्ये विजिग्ये पाण्डवर्षभः ।
ततो मत्स्यान्महातेजा मलदांश्च महाबलान् ॥ ८
अनघानभयांश्चैव पशुभूमिं च सर्वशः ।
निवृत्य च महाबाहुर्मदधारं महीधरम् ॥ ९
सोमधेयांश्च निर्जित्य प्रययावुत्तरामुखः ।
वत्सभूमिं च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान्बलात् ॥
भर्गाणामधिपं चैव निषादाधिपतिं तथा ।
विजिग्ये भूमिपालांश्च मणिमत्प्रमुखान्बहून् ॥ ११
ततो दक्षिणमल्लांश्च भोगवन्तं च पर्वतम् ।
तरसैवाजयद्भीमो नातितीव्रेण कर्मणा ॥ १२
शर्मकान्वर्मकांश्चैव व्यजयत्सान्त्वपूर्वकम् ।
वैदेहकं च राजानं जनकं जगतीपतिम् । १३
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रो नातितीव्रेण कर्मणा ।
शकांश्च बर्बरांश्चैव अजयच्छद्मपूर्वकम् ॥ १४
वैदेहस्थस्तु कौन्तेय इन्द्रपर्वतमन्तिकात् ।
किरातानामधिपतीनजयत्सप्त पाण्डवः ॥ १५
ततः सुह्मान्प्रसुह्मांश्च सपक्षानतिवीर्यवान् ।
विजित्य युधि कौन्तेयो मागधानभ्यधाद्बली॥१६
दण्डं च दण्डधारं च विजित्य पृथिवीपतीन् ।
तैरेव सहितैः सर्वैर्गिरिव्रजमुपाद्रवत् ॥ १७
जारासंधिं सान्त्वयित्वा करे च विनिवेश्य ह ।
तैरेव सहितैः सर्वैः कर्णमभ्यद्रवद्बली ॥ १८
स कम्पयन्निव महीं बलेन चतुरङ्गिणा ।
युयुधे पाण्डवश्रेष्ठः कर्णेनामित्रघातिना ॥ १९

---

वृषौ श्रेष्ठौ॥१३॥ त्रिदशाः त्र्यधिका दश त्रयोदश ॥१६॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

तत इति ॥ १ ॥ सुह्मा राढाः मागधानभ्यधाद्बली करं-प्रयच्छतेत्युक्तवान्। पूर्वमेवपराक्रान्तत्वात् ॥ १६ ॥

स कर्णं युधि निर्जित्य वशे कृत्वा च भारत ।
ततो विजिग्ये बलवान्राज्ञः पर्वतवासिनः ॥ २०
अथ मोदागिरौ चैव राजानं बलवत्तरम् ।
पाण्डवो बाहुवीर्येण निजघान महामृधे ॥ २१
ततः पुण्ड्राधिपं वीरं वासुदेवं महाबलम् ।
कौशिकीकच्छनिलयं राजानं च महौजसम् २२
उभौ बलभृतौ वीरावुभौ तीव्रपराक्रमौ ।
निर्जित्याजौ महाराज वङ्गराजमुपाद्रवत् ॥ २३
समुद्रसेनं निर्जित्य चन्द्रसेनं च पार्थिवम् ।
ताम्रलिप्तं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा ॥ २४
सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः ।
सर्वान्म्लेच्छगणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभः ॥ २५
एवं बहुविधान्देशान्विजित्य पवनात्मजः ।
वसु तेभ्य उपादाय लौहित्यमगद्बली ॥ २६
स सर्वान्म्लेच्छनृपतीन्सागरानूपवासिनः ।
करमाहारयामास रत्नानि विविधानि च ॥ २७
चन्दनागुरुवस्त्राणि मणिमौक्तिककम्बलम् ।
काञ्चनं रजतं चैव विद्रुमं च महाधनम् ॥ २८
ते कोटीशतसंख्येन कौन्तेयं महता तदा ।
अभ्यवर्षन्महात्मानं धनवर्षेण पाण्डवम् ॥ २९
इन्द्रप्रस्थमुपागम्य भीमो भीमपराक्रमः ।
निवेदयामास तदा धर्मराजाय तद्धनम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते सभा० दिग्विजयपर्वणि भीमप्राचीदिग्विजये त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

वैशंपायन उवाच ।
तथैव सहदेवोपि धर्मराजेन पूजितः ।
महत्या सेनया राजन्प्रययौ दक्षिणां दिशम् ॥ १
स शूरसेनान्कार्त्स्न्येन पूर्वमेवाजयत्प्रभुः ।
मत्स्यराजं च कौरव्यो वशे चक्रे बलाद्बली ॥ २
अधिराजाधिपं चैव दन्तवक्रं महाबलम् ।
जिगाय करदं चैव कृत्वा राज्ये न्यवेशयत् ॥ ३
सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नराधिपम् ।
तथैवापरमत्स्यांश्च व्यजयत्स पटच्चरान् ॥ ४
निषादभूमिं गोशृङ्गं पर्वतप्रवरं तथा ।
तरसैवाजयद्धीमाञ्श्रेणिमन्तं च पार्थिवम् ॥ ५
नरराष्ट्रं च निर्जित्य कुन्तिभोजमुपाद्रवत् ।
प्रीतिपूर्वं च तस्यासौ प्रतिजग्राह शासनम् ॥ ६
ततश्चर्मण्वतीकूले जम्भकस्यात्मजं नृपम् ।
ददर्श वासुदेवेन शेषितं पूर्ववैरिणा ॥ ७
चक्रे तेन स संग्रामं सहदेवेन भारत ।
स तमाजौ विनिर्जित्य दक्षिणाभिमुखो ययौ ८
सेकानपरसेकांश्च व्यजयत्सुमहाबलः ।
करं तेभ्य उपादाय रत्नानि विविधानि च ॥ ९
ततस्तेनैव सहितो नर्मदामभितो ययौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महता वृतौ ॥
जिगाय समरे वीरावाश्विनेयः प्रतापवान् ॥ १०
ततो रत्नान्युपादाय पुरं भोजकटं ययौ ।
तत्र युद्धमभूद्राजन्दिवसद्वयमच्युत ॥ ११
स विजित्य दुराधर्षं भीष्मकं माद्रिनन्दनः ।
कोसलाधिपतिं चैव तथा वेणातटाधिपम् ॥ १२
कान्तारकांश्च समरे तथा प्राक्कोशलान्नृपान् ।
नाटकेयांश्च समरे तथा हेरम्बकान्युधि ॥ १३
मारुधं च विनिर्जित्य रम्यग्राममथो बलात् ।
नाचीनानर्बुकांश्चैव राज्ञश्चैव महाबलः ॥ १४
तांस्तानाटविकान्सर्वानजयत्पाण्डुनन्दनः ।
वाताधिपं च नृपतिं वशे चक्रे महाबलः ॥ १५
पुलिन्दांश्च रणे जित्वा ययौ दक्षिणतः पुरः ।
युयुधे पाण्ड्यराजेन दिवसं नकुलानुजः ॥ १६
तं जित्वा स महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम् ।
गुहामासादयामास किष्किन्ध्यां लोकविश्रुताम् ॥
तत्र वानरराजाभ्यां मैन्देन द्विविदेन च ।
युयुधे दिवसान्सप्त न च तौ विकृतिं गतौ ॥ १८
ततस्तुष्टौ महात्मानौ सहदेवाय वानरौ ।
ऊचतुश्चैव संहृष्टौ प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ १९

---

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

तथैवेति ॥ १ ॥ पटच्चरान् चोरदेशान् ॥ ४ ॥

गच्छ पाण्डवशार्दूल रत्नान्यादाय सर्वशः ।
अविघ्नमस्तु कार्याय धर्मराजाय धीमते ॥ २०
ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ ।
तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः ॥ २१
पाण्डवः परवीरघ्नः सहदेवः प्रतापवान् ।
ततोस्य सुमहद्युद्धमासीद्भीरु भयंकरम् ॥ २२
सैन्यक्षयकरं चैव प्राणानां संशयावहम् ।
चक्रे तस्य हि साहाय्यं भगवान्हव्यवाहनः ॥२३
ततो रथा हया नागाः पुरुषाः कवचानि च ।
प्रदीप्तानि व्यदृश्यन्त सहदेवबले तदा ॥ २४
ततः सुसंभ्रान्तमना बभूव कुरुनन्दनः ।
नोत्तरं प्रतिवक्तुं च शक्तोभूज्जनमेजय ॥ २५

जनमेजय उवाच ।

किमर्थं भगवान्वह्निः प्रत्यमित्रोभवद्युधि ।
सहदेवस्य यज्ञार्थं घटमानस्य वै द्विज ॥ २६

वैशंपायन उवाच ।

तत्र माहिष्मतीवासी भगवान्हव्यवाहनः ।
श्रूयते हि गृहीतो वै पुरस्तात्पारदारिकः ॥ २७
नीलस्य राज्ञो दुहिता बभूवातीवशोभना ।
साग्निहोत्रमुपातिष्ठद्बोधनाय पितुः सदा ॥ २८
व्यजनैर्धूयमानोपि तावत्प्रज्वलते न सः ।
यावच्चारुपुटोष्ठेन वायुना न विधूयते ॥ २९
ततः स भगवानग्निश्चकमे तां सुदर्शनाम् ।
नीलस्य राज्ञः सर्वेषामुपनीतश्च सोभवत् ॥ ३०
ततो ब्राह्मणरूपेण रममाणो यदृच्छया ।
चकमे तां वरारोहां कन्यामुत्पललोचनाम् ।
तं तु राजा यथाशास्त्रमशासद्धार्मिकस्तदा ॥ ३१
प्रजज्वाल ततः कोपाद्भगवान्हव्यवाहनः ।
तं दृष्ट्वा विस्मितो राजा जगाम शिरसाऽवनिम् ।
ततः कालेन तां कन्यां तथैव हि तदा नृपः ।
प्रददौ विप्ररूपाय वह्नये शिरसा नतः ॥ ३३
प्रतिगृह्य च तां सुभ्रूं नीलराज्ञः सुतां तदा ।
चक्रे प्रसादं भगवांस्तस्य राज्ञो विभावसुः ॥ ३४

वरेण छन्दयामास तं नृपं स्विष्टकृत्तमः ।
अभयं च स जग्राह स्वसैन्ये वै महीपतिः ॥ ३५
ततः प्रभृति ये केचिदज्ञानात्तां पुरीं नृपाः ।
जिगीषन्ति बलाद्राजंस्ते दह्यन्ते स्म वह्निना॥३६
तस्यां पुर्यां तदा चैव माहिष्मत्यां कुरूद्वह ।
बभूवुरनतिग्राह्या योषितश्छन्दतः किल ॥ ३७
एवमग्निर्वरं प्रादात्स्त्रीणामप्रतिवारणे ।
स्वैरिण्यस्तत्र नार्यो हि यथेष्टं विचरन्त्युत ॥ ३८
वर्जयन्ति च राजानस्तत्पुरं भरतर्षभ ।
भयादग्नेर्महाराज तदा प्रभृति सर्वदा ॥ ३९
सहदेवस्तु धर्मात्मा सैन्यं दृष्ट्वा भयार्दितम् ।
परीतमग्निना राजन्नाकम्पत यथाचलः ।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा सोब्रवीत्पावकं ततः ४०

सहदेव उवाच ।

त्वदर्थोयं समारम्भः कृष्णवर्त्मन्नमोस्तु ते ।
मुखं त्वमसि देवानां यज्ञस्त्वमसि पावक ॥ ४१
पावनात्पावकश्चासि वहनाद्धव्यवाहनः ।
वेदास्त्वदर्थं जाता वै जातवेदास्ततो ह्यसि ॥४२
चित्रभानुः सुरेशश्च अनलस्त्वं विभावसो ।
स्वर्गद्वारस्पृशश्चासि हुताशो ज्वलनः शिखी ॥४३
वैश्वानरस्त्वं पिङ्गेशः प्लवङ्गो भूरितेजसः ।
कुमारसूस्त्वं भगवान्रुद्रगर्भो हिरण्यकृत् ॥ ४४
अग्निर्ददातु मे तेजो वायुः प्राणं ददातु मे ।
पृथिवी बलमादध्याच्छिवं चापो दिशन्तु मे ॥४५
अपांगर्भ महासत्त्व जातवेदः सुरेश्वर ।
देवानां मुखमग्ने त्वं सत्येन विपुनीहि माम् । ४६
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव दैवतैरसुरैरपि ।
नित्यं सुहुत यज्ञेषु सत्येन विपुनीहि माम् ॥ ४७
धूमकेतुः शिखी च त्वं पापहाऽनिलसंभवः ।
सर्वप्राणिषु नित्यस्थः सत्येन विपुनीहि माम् ४८
एवं स्तुतोसि भगवन्प्रीतेन शुचिना मया ।
तुष्टिं पुष्टिं श्रुतं चैव प्रीतिं चाग्ने प्रयच्छ मे ॥ ४९

*प्रत्यमित्रः शत्रुः ॥ २६ ॥ पारदारिकः स्वेनानूढाया अपि* परकीयत्वात् परदारासक्तः गृहीतः विवशः ॥ २७ ॥ चकमे मानुषस्वरूपेण शब्दतः कामयामास । एवं सर्वेषामपि गृहे इत्युक्तं सर्वेषामिति । तया च सः उपनीतः स्वीकृतः । नीलस्य राज्ञः अविदित इति शेषः ॥ ३० ॥ शोभनः सुतरां वा इष्टकृत् प्रियकृत् अतिशयेन स्विष्टकृत्तमः छन्दया-*मास प्रीणितवान् ॥ ३५ ॥ छन्दतः इच्छातः अनतिग्राह्याः* अत्यन्तं सुग्रहाः न बभूवुः। सर्वासां अग्निना परिगृहीतत्वात् ॥ ३७ ॥ अप्रतिवारणे प्रातिकूल्येन स्त्रीणां वारणं कर्तुं न शक्तः कश्चिद्भविष्यतीति वरः तदेवाह स्वैरिण्य इति भर्तुरन्यस्य वा शरीरे प्रविश्याग्निरेवास्माकं भोगं करोतीति निश्चयादि-त्यर्थः ॥ ३८ ॥ तुष्टिं अलंबुद्धिं प्रीतिं सुखम् ॥ ४९ ॥

वैशंपायन उवाच ।

इत्येवं मन्त्रमाग्नेयं पठन्यो जुहुयाद्विभुम् ।
ऋद्धिमान्सततं दान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५०

सहदेव उवाच ।

यज्ञविघ्नमिमं कर्तुं नार्हस्त्वं हव्यवाहन ।
एवमुक्त्वा तु माद्रेयः कुशैरास्तीर्य मेदिनीम् ॥ ५१
विधिवत्पुरुषव्याघ्रः पावकं प्रत्युपाविशत् ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य भीतोद्विग्नस्य भारत ॥ ५२
न चैनमत्यगाद्वह्निर्वेलामिव महोदधिः ।
तमुपेत्य शनैर्वह्निरुवाच कुरुनन्दनम् ॥ ५३
सहदेवं नृणां देवं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कौरव्य जिज्ञासेयं कृता मया ॥ ५४
वेद्मि सर्वमभिप्रायं तव धर्मसुतस्य च ।
मया तु रक्षितव्यापूरियं भरतसत्तम ॥ ५५
यावद्राज्ञो हि नीलस्य कुले वंशधरा इति ।
ईप्सितं तु करिष्यामि मनसस्तव पाण्डव ॥ ५६
तत उत्थाय हृष्टात्मा प्राञ्जलिः शिरसा नतः ।
पूजयामास माद्रेयः पावकं भरतर्षभ ॥ ५७
पावके विनिवृत्ते तु नीलो राजाभ्यगात्तदा ।
पावकस्याज्ञया चैवमर्चयामास पार्थिवः ॥ ५८
सत्कारेण नरव्याघ्रं सहदेवं युधां पतिम् ।
प्रतिगृह्य च तां पूजां करे च विनिवेश्य च ॥ ५९
माद्रीसुतस्ततः प्रायाद्विजयी दक्षिणां दिशम् ।
त्रैपुरं स वशे कृत्वा राजानममितौजसम् ॥ ६०
निजग्राह महाबाहुस्तरसा पौरवेश्वरम् ।
आकृतिं कौशिकाचार्यं यत्नेन महता ततः ॥ ६१
वशे चक्रे महाबाहुः सुराष्ट्राधिपतिं तदा ।
सुराष्ट्रविषयस्थश्च प्रेषयामास रुक्मिणे ॥ ६२
राज्ञे भोजकटस्थाय महामात्राय धीमते ।
भीष्मकाय स धर्मात्मा साक्षादिन्द्रसखाय वै ॥ ६३
स चास्य प्रतिजग्राह ससुतः शासनं तदा ।
प्रीतिपूर्वं महाराज वासुदेवमवेक्ष्य च ॥ ६४
ततः स रत्नान्यादाय पुनः प्रायाद्युधां पतिः ।
ततः शूर्पारकं चैव तालाकटमथापि च ॥ ६५
वशे चक्रे महातेजा दण्डकांश्च महाबलः ।
सागरद्वीपवासांश्च नृपतीन्म्लेच्छयोनिजान् ॥ ६६
निषादान्पुरुषादांश्च कर्णप्रावरणानपि ।
ये च कालमुखा नाम नरराक्षसयोनयः ॥ ६७
कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपट्टनं तथा ।
द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा ॥ ६८
तिमिङ्गिलं च स नृपं वशे कृत्वा महामतिः ।
एकपादांश्च पुरुषान्केरलान्वनवासिनः ॥ ६९
नगरीं संजयन्तीं च पाषण्डं करहाटकम् ।
दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत् ॥ ७०
पाण्ड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोण्ड्रकेरलैः ।
अन्ध्रांस्तालवनांश्चैव कलिङ्गानुष्ट्रकर्णिकान् ॥ ७१
आटवीं च पुरीं रम्यां यवनानां पुरं तथा ।
दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत् ॥ ७२
ततः कच्छगतो धीमान्दूतान्माद्रवतीसुतः ।
प्रेषयामास राजेन्द्र पौलस्त्याय महात्मने ।
विभीषणाय धर्मात्मा प्रीतिपूर्वमरिंदमः ॥ ७३
स चास्य प्रतिजग्राह शासनं प्रीतिपूर्वकम् ।
तच्च कालकृतं धीमानभ्यमन्यत स प्रभुः ॥ ७४
ततः संप्रेषयामास रत्नानि विविधानि च ।
चन्दनागुरुकाष्ठानि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ७५
वासांसि च महार्हाणि मणींश्चैव महाधनान् ।
न्यवर्तत ततो धीमान्सहदेवः प्रतापवान् ॥ ७६
एवं निर्जित्य तरसा सान्त्वेन विजयेन च ।
करदान्पार्थिवान्कृत्वा प्रत्यागच्छदरिंदमः ॥ ७७
धर्मराजाय तत्सर्वं निवेद्य भरतर्षभ ।
कृतकर्मा सुखं राजन्नुवास जनमेजय ॥ ७८

इति श्रीमहा० सभा० दिग्विजयपर्वणि सहदेवदक्षिणदिग्विजये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

आग्नेयं मन्त्रं श्लोकरूपं मन्त्राष्टकं जुहुयात्पायसादिना स्वाहान्तैर्मन्त्रैर्होमं कुर्यात् ॥ ५० ॥ अत्यगात् एनं अतिक्रम्य सैन्यं न ददाहेत्यर्थः ॥ ५३ ॥ पूः पुरी ॥ ५५ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

वैशंपायन उवाच ।
नकुलस्य तु वक्ष्यामि कर्माणि विजयं तथा ।
वासुदेवजितामाशां यथासावजयत्प्रभुः ॥ १
निर्याय खाण्डवप्रस्थात्प्रतीचीमभितो दिशम् ।
उद्दिश्य मतिमान्प्रायान्महत्या सेनया सह॥ २
सिंहनादेन महता योधानां गर्जितेन च ।
रथनेमिनिनादैश्च कम्पयन्वसुधामिमाम् ॥ ३
ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतकमुपाद्रवत् ॥ ४
तत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्मत्तमयूरकैः ।
मरुभूमिं स कार्त्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम् ॥ ५
शैरीषकं महेत्थं च वशे चक्रे महाद्युतिः ।
आक्रोशं चैव राजर्षिं तेन युद्धमभून्महत् ॥ ६
तान्दशार्णान्स जित्वा च प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः ।
शिबींस्त्रिगर्तानम्बष्ठान्मालवान्पञ्चकर्पटान् ॥ ७
तथा मध्यमकेयांश्च वाटधानान्द्विजानथ ।
पुनश्च परिवृत्याथ पुष्करारण्यवासिनः ॥ ८
गणानुत्सवसंकेतान्व्यजयत्पुरुषर्षभः ।
सिन्धुकूलाश्रिता ये च ग्रामणीया महाबलाः ॥९
शूद्राभीरगणाश्चैव ये चाश्रित्य सरस्वतीम् ।
वर्तयन्ति च ये मत्स्यैर्ये च पर्वतवासिनः ॥ १०
कृत्स्नं पञ्चनदं चैव तथैवामरपर्वतम् ।
उत्तरज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरम् ॥ ११
द्वारपालं च तरसा वशे चक्रे महाद्युतिः ।
रामठान्हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चैव ये नृपाः ॥ १२
तान्सर्वान्स वशे चक्रे शासनादेव पाण्डवः ।
तत्रस्थः प्रेषयामास वासुदेवाय भारत ॥ १३
स चास्य गतभी राजन्प्रतिजग्राह शासनम् ।
ततः शाकलमभ्येत्य मद्राणां पुटभेदनम् ॥ १४
मातुलं प्रीतिपूर्वेण शल्यं चक्रे वशे बली ।
स तेन सत्कृतो राज्ञा सत्कारार्हो विशांपते ॥१५
रत्नानि भूरीण्यादाय संप्रतस्थे युधां पतिः ।
ततः सागरकुक्षिस्थान्म्लेच्छान्परमदारुणान् ॥१६
पह्लवान्बर्बरांश्चैव किरातान्यवनाञ्छकान् ।
ततो रत्नान्युपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान् ।
न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्रमार्गवित् ॥ १७
करभाणां सहस्राणि कोशं तस्य महात्मनः ।
ऊहुर्दश महाराज कृच्छ्रादिव महाधनम् ॥ १८
इन्द्रप्रस्थगतं वीरमभ्येत्य स युधिष्ठिरम् ।
ततो माद्रीसुतः श्रीमान्धनं तस्मै न्यवेदयत् ॥ १९
एवं विजित्य नकुलो दिशं वरुणपालिताम् ।
प्रतीचीं वासुदेवेन निर्जितां भरतर्षभ ॥ २०

इति श्रीमहाभा० सभाप० दिग्विजयपर्वणि नकुलप्रतीचीविजये द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२ ॥

समाप्तं दिग्विजयपर्व ।

## राजसूयपर्व ।

## ३३

वैशंपायन उवाच ।
रक्षणाद्धर्मराजस्य सत्यस्य परिपालनात् ।
शत्रूणां क्षपणाच्चैव स्वकर्मनिरताः प्रजाः ॥ १
बलीनां सम्यगादानाद्धर्मतश्चानुशासनात् ।
निकामवर्षी पर्जन्यः स्फीतो जनपदोऽभवत् ॥२
सर्वारम्भाः सुप्रवृत्ता गोरक्षा कर्षणं वणिक् ।
विशेषात्सर्वमेवैतत्संजज्ञे राजकर्मणः ॥ ३

---

३२
नकुलस्येति ॥ १ ॥ रोहीतकं गिरिम् ॥४॥ मत्तमयूरसंज्ञैः क्षत्रियैः ॥५॥ 'पत्तनं पुटभेदनम्' इत्यमरः ॥ १४ ॥ करभाणां उष्ट्राणाम् ॥ १८ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३
रक्षणादिति । शत्रूणां दस्यूनाम् ॥ १ ॥ बलीनां कराणां निकामं यथेष्टं वर्षतीति निकामवर्षी । स्फीतः समृद्धः ॥२॥ सुप्रवृत्ताः स्वस्य परेषां च हितावहा न तु क्रूराः । राजकर्मणः राज्ञः पुण्यात् ॥ ३ ॥

दस्युभ्यो वञ्चकेभ्यो वा राजन्प्रति परस्परम् ।
राजवल्लभतश्चैव नाश्रूयन्त मृषा गिरः ॥ ४
अवर्षं चातिवर्षं च व्याधिपावकमूर्छनम् ।
सर्वमेतत्तदा नासीद्धर्मनित्ये युधिष्ठिरे ॥ ५
प्रियं कर्तुमुपस्थातुं बलिकर्म स्वभावजम् ।
अभिहर्तुं नृपा जग्मुर्नान्यैः कार्यैः कथंचन ॥ ६
धर्म्यैर्धनागमैस्तस्य ववृधे निचयो महान् ।
कर्तुं यस्य न शक्येत क्षयो वर्षशतैरपि ॥ ७
स्वकोष्ठस्य परीमाणं कोशस्य च महीपतिः ।
विज्ञाय राजा कौन्तेयो यज्ञायैव मनो दधे ॥ ८
सुहृदश्चैव ये सर्वे पृथक्च सहिता ब्रुवन् ।
यज्ञकालस्तव विभो क्रियतामत्र सांप्रतम् ॥ ९
अथैवं ब्रुवतामेव तेषामभ्याययौ हरिः ।
ऋषिः पुराणो वेदात्माऽदृश्यश्चैव विजानताम् ॥
जगतस्तस्थुषां श्रेष्ठः प्रभवश्चाप्ययश्च ह ।
भूतभव्यभवन्नाथः केशवः केशिसूदनः ॥ ११
प्राकारः सर्ववृष्णीनामापत्स्वभयदोऽरिहा ।
बलाधिकारे निक्षिप्य सम्यगानकदुन्दुभिम् ॥ १२
उच्चावचमुपादाय धर्मराजाय माधवः ।
धनौघं पुरुषव्याघ्रो बलेन महता वृतः ॥ १३
तं धनौघमपर्यन्तं रत्नसागरमक्षयम् ।
नादयन्रथघोषेण प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ १४
पूर्णमापूरयंस्तेषां द्विषच्छोकावहोऽभवत् ।
असूर्यमिव सूर्येण निवातमिव वायुना ।
कृष्णेन समुपेतेन जहृषे भारतं पुरम् ॥ १५
तं मुदाभिसमागम्य सत्कृत्य च यथाविधि ।
स पृष्ट्वा कुशलं चैव सुखासीनं युधिष्ठिरः ॥ १६
धौम्यद्वैपायनमुखैर्ऋत्विग्भिः पुरुषर्षभ ।
भीमार्जुनयमैश्चैव सहितः कृष्णमब्रवीत् ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच ।

त्वत्कृते पृथिवी सर्वा मद्वशे कृष्ण वर्तते ।
धनं च बहु वार्ष्णेय त्वत्प्रसादादुपार्जितम् ॥ १८
सोऽहमिच्छामि तत्सर्वं विधिवद्देवकीसुत ।
उपयोक्तुं द्विजाग्र्येभ्यो हव्यवाहे च माधव ॥१९
तदहं यष्टुमिच्छामि दाशार्ह सहितस्त्वया ।
अनुजैश्च महाबाहो तन्मानुज्ञातुमर्हसि ॥ २०
तद्दीक्षापय गोविन्द त्वमात्मानं महाभुज ।
त्वयीष्टवति दाशार्ह विपाप्मा भविता ह्यहम्॥२१
मां वाप्यभ्यनुजानीहि सहैभिरनुजैर्विभो ।
अनुज्ञातस्त्वया कृष्ण प्राप्नुयां क्रतुमुत्तमम् ॥ २२

वैशंपायन उवाच ।

तं कृष्णः प्रत्युवाचेदं बहूक्त्वा गुणविस्तरम् ।
त्वमेव राजशार्दूल संम्राडर्हो महाक्रतुम् ।
संप्राप्नुहि त्वया प्राप्ते कृतकृत्यास्ततो वयम् ॥ २३
यजस्वाभीप्सितं यज्ञं मयि श्रेयस्यवस्थिते ।
नियुङ्क्ष्व त्वं च मां कृत्ये सर्वं कर्तास्मि ते वचः२४

युधिष्ठिर उवाच ।

सफलः कृष्ण संकल्पः सिद्धिश्च नियता मम ।
यस्य मे त्वं हृषीकेश यथेप्सितमुपस्थितः ॥ २५

वैशंपायन उवाच ।

अनुज्ञातस्तु कृष्णेन पाण्डवो भ्रातृभिः सह ।
ईजितुं राजसूयेन साधनान्युपचक्रमे ॥ २६
ततस्त्वाज्ञापयामास पाण्डवोऽरिनिबर्हणः ।
सहदेवं युधां श्रेष्ठं मन्त्रिणश्चैव सर्वशः ॥ २७
अस्मिन्क्रतौ यथोक्तानि यज्ञाङ्गानि द्विजातिभिः ।
तथोपकरणं सर्वं मङ्गलानि च सर्वशः ॥ २८
अधियज्ञांश्च संभारान्धौम्योक्तान्क्षिप्रमेव हि ।
समानयन्तु पुरुषा यथायोगं यथाक्रमम् ॥ २९
इन्द्रसेनो विशोकश्च पूरुश्चार्जुनसारथिः ।
अन्नाद्याहरणे युक्ताः सन्तु मत्प्रियकाम्यया ॥ ३०

---

दस्युभ्यः चोरेभ्यः वञ्चकेभ्यः धूर्तेभ्यः राज्ञो राजवल्लभतो वा मृषा गिरो नाश्रूयन्त । सर्वेपि सत्यवादिनो राजवदित्यर्थः । दस्यवोपि परस्परं न वञ्चयन्ति नाप्यन्यानेवं अन्यत्र एते जातितः खला अपि न तत्कर्म कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥ मूर्छनं प्रदीपनम् ॥ ५ ॥ जग्मुः राजानं प्रतीति शेषः नान्यैः जिगीषादिभिः ॥ ६ ॥निचयो भाण्डागारम् ॥ ७ ॥ कोशो धनं कोष्ठं वस्त्रधान्यादि तयोः परिमाणम् ॥ ८ ॥ ऋषिर्नारायणः अदृश्य इति छेदः विजानतां विदुषां अदृश्यः प्रत्यगात्मत्वात् अविजानतां तु कार्यकारणरूपेण दृश्यः तथा च श्रुतिः 'अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्' इति ॥ १० ॥ प्रभव उत्पत्तिस्थानं अप्ययो लयस्थानम् ॥ ११ ॥ प्राकारः प्राकार इव रक्षकः बलाधिकारं सेनाधिपत्यम् ॥१२॥ जहृषे हर्षं आप ॥१५॥ मा मां अनुज्ञातुं तदनुज्ञातुमर्हसीत्यपि पाठः ॥ २० ॥ त्वं दीक्षस्वेति वक्तव्ये आत्मानं दीक्षापयेत्युक्तिः अकर्तुरात्मनो दीक्षणायोगादौपाधिकमेव प्रतिबिम्बचलनन्यायेनैव तस्य दीक्षापनं ज्ञेयम् ॥ २१ ॥ श्रेयसि कल्याणकरे ॥२४॥ अधियज्ञान् यज्ञियान् संभारान् आज्यपश्वादीन् ॥ २९ ॥

सर्वकामाश्च कार्यन्तां रसगन्धसमन्विताः ।
मनोरथप्रीतिकरा द्विजानां कुरुसत्तम ॥ ३१
तद्वाक्यसमकालं च कृतं सर्वं न्यवेदयत् ।
सहदेवो युधां श्रेष्ठो धर्मराजे युधिष्ठिरे ॥ ३२
ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपानयत् ।
वेदानिव महाभागान्साक्षान्मूर्तिमतो द्विजान् ३३
स्वयं ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य सत्यवतीसुतः ।
धनंजयानामृषभः सुसामा सामगोभवत् ॥ ३४
याज्ञवल्क्यो बभूवाथ ब्रह्मिष्ठोऽध्वर्युसत्तमः ।
पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोभवत् ॥
एतेषां पुत्रवर्गाश्च शिष्याश्च भरतर्षभ ।
बभूवुर्होत्रगाः सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ३६
ते वाचयित्वा पुण्याहमूहयित्वा च तं विधिम्
शास्त्रोक्तं पूजयामासुस्तद्देवयजनं महत् ॥ ३७
तत्र चक्रुरनुज्ञाताः शरणान्युत शिल्पिनः ।
गन्धवन्ति विशालानि वेश्मानीव दिवौकसाम्३८
तत आज्ञापयामास स राजा राजसत्तमः ।
सहदेवं तदा सद्यो मन्त्रिणं पुरुषर्षभः ॥ ३९
आमन्त्रणार्थं दूतांस्त्वं प्रेषयस्वाशुगान्द्रुतम् ।
उपश्रुत्य वचो राज्ञः स दूतान्प्राहिणोत्तदा ॥ ४०
आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान्भूमिपानथ ।
विशश्च मान्याञ्शूद्रांश्च सर्वानानयतेति च ॥ ४१

वैशंपायन उवाच ।

समाज्ञप्तास्ततो दूताः पाण्डवेयस्य शासनात् ।
आमन्त्रयांबभूवुश्च आनयंश्चापरान्द्रुतम ।
तथा परानपि नरानात्मनः शीघ्रगामिनः ॥ ४२
ततस्ते तु यथाकालं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
दीक्षयांचक्रिरे विप्रा राजसूयाय भारत ॥ ४३
दीक्षितः स तु धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
जगाम यज्ञायतनं वृतो विप्रैः सहस्रशः ॥ ४४
भ्रातृभिर्ज्ञातिभिश्चैव सुहृद्भिः सचिवैः सह ।
क्षत्रियैश्च मनुष्येन्द्रैर्नानादेशसमागतैः ॥ ४५
अमात्यैश्च नरश्रेष्ठो धर्मो विग्रहवानिव ।
आजग्मुर्ब्राह्मणास्तत्र विषयेभ्यस्ततस्ततः ॥ ४६
सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
तेषामावसथांश्चक्रुर्धर्मराजस्य शासनात् ॥ ४७
बह्वन्नाच्छादनैर्युक्तान्सगणानां पृथक्पृथक् ।
सर्वर्तुगुणसंपन्नाञ्शिल्पिनोथ सहस्रशः ॥ ४८
तेषु ते न्यवसन्राजन्ब्राह्मणा नृपसत्कृताः ।
कथयन्तः कथा बह्वीः पश्यन्तो नटनर्तकान् ॥४९
भुञ्जतां चैव विप्राणां वदतां च महास्वनः ।
अनिशं श्रूयते तत्र मुदितानां महात्मनाम् ॥ ५०
दीयतां दीयतामेषां भुज्यतां भुज्यतामिति ।
एवंप्रकाराः संजल्पाः श्रूयन्ते स्मात्र नित्यशः ५१
गवां शतसहस्राणि शयनानां च भारत ।
रुक्मस्य योषितां चैव धर्मराजः पृथग्ददौ ॥ ५२
प्रावर्ततैवं यज्ञः स पाण्डवस्य महात्मनः ।
पृथिव्यामेकवीरस्य शक्रस्येव त्रिविष्टपे ॥ ५३
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम् ।
नकुलं हास्तिनपुरं भीष्माय पुरुषर्षभः ॥ ५४
द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च ।
भ्रातॄणां चैव सर्वेषां येनुरक्ता युधिष्ठिरे ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि राजसूयपर्वणि राजसूयदीक्षाया त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

## ३४

वैशंपायन उवाच ।

स गत्वा हास्तिनपुरं नकुलः समितिंजयः ।
भीष्ममामन्त्रयांचक्रे धृतराष्ट्रं च पाण्डवः ॥ १
सत्कृत्यामन्त्रितास्तेन आचार्यप्रमुखास्ततः ।
प्रययुः प्रीतमनसो यज्ञं ब्रह्मपुरःसराः ॥ २
संश्रुत्य धर्मराजस्य यज्ञं यज्ञविदस्तदा ।
अन्ये च शतशस्तुष्टैर्मनोभिर्भरतर्षभ । ३
द्रष्टुकामाः सभां चैव धर्मराजं च पाण्डवम् ।
दिग्भ्यः सर्वे समापेतुः क्षत्रियास्तत्र भारत ॥ ४

काम्यन्त इति कामाः मृष्टान्नादीनि ॥ ३१ ॥ धनंजयाना धनंजयगोत्राणां मध्ये श्रेष्ठ सुसामा नाम आङ्गिरसः ॥ ३४ ॥ होत्रगा सप्तसंख्या ॥३६॥ ऊहयित्वा च तं विधि राजसूयेन यक्ष्ये स्वाराज्यमवाप्नवानीति संकल्पादिरूपमहं कृत्वा देवयजनं यज्ञस्थानम् ॥ ३७॥ शरणानि पत्नीशालादीन्यग्न्यगाराणि ॥ ३८ ॥ रुक्मस्य काञ्चनस्य शयनानां तूलिकादिसहितानां तल्पानाम् ॥ ५२ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३

३४

स गत्वेति ॥ १ ॥

समुपादाय रत्नानि विविधानि महान्ति च ।
धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामतिः ॥ ५
दुर्योधनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते ।
गान्धारराजः सुबलः शकुनिश्च महाबलः ॥ ६
अचलो वृषकश्चैव कर्णश्च रथिनां वरः ।
तथा शल्यश्च बलवान्बाल्हिकश्च महाबलः ॥ ७
सोमदत्तोथ कौरव्यो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ८
यज्ञसेनः सपुत्रश्च शाल्वश्च वसुधाधिपः ।
प्राग्ज्योतिषश्च नृपतिर्भगदत्तो महारथः ॥ ९
स तु सर्वैः सह म्लेच्छैः सागरानूपवासिभिः ।
पार्वतीयाश्च राजानो राजा चैव बृहद्बलः ॥ १०
पौण्ड्रको वासुदेवश्च वङ्गः कालिङ्गकस्तथा ।
आकर्षाः कुन्तलाश्चैव मालवाश्चान्ध्रकास्तथा ११
द्राविडाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ।
कुन्तिभोजो महातेजाः पार्थिवो गौरवाहनः॥१२
बाल्हिकाश्चापरे शूरा राजानः सर्व एव ते ।
विराटः सह पुत्राभ्यां मावेल्लश्च महाबलः ॥ १३
राजानो राजपुत्राश्च नानाजनपदेश्वराः ।
शिशुपालो महावीर्यः सह पुत्रेण भारत ॥ १४
आगच्छत्पाण्डवेयस्य यज्ञं समरदुर्मदः ।
रामश्चैवानिरुद्धश्च कङ्कश्च सहसारणः ॥ १५
गदप्रद्युम्नसाम्बाश्च चारुदेष्णश्च वीर्यवान् ।
उल्मुको निशठश्चैव वीरश्चाङ्गावहस्तथा ॥ १६
वृष्णयो निखिलाश्चान्ये समाजग्मुर्महारथाः ।
एते चान्ये च बहवो राजानो मध्यदेशजाः ॥ १७
आजग्मुः पाण्डुपुत्रस्य राजसूयं महाक्रतुम् ।
ददुस्तेषामावसथान्धर्मराजस्य शासनात् ॥ १८
बहुभक्ष्यान्वितान्राजन्दीर्घिकावृक्षशोभितान् ।
तथा धर्मात्मजः पूजां चक्रे तेषां महात्मनाम्१९
सत्कृताश्च यथोद्दिष्टाञ्जग्मुरावसथान्नृपाः ।
कैलासशिखरप्रख्यान्मनोज्ञान्द्रव्यभूषितान् ॥ २०
सर्वतः संवृतानुच्चैः प्राकारैः सुकृतैः सितैः ।
सुवर्णजालसंवीतान्मणिकुट्टिमभूषितान् ॥ २१
सुखारोहणसोपानान्महासनपरिच्छदान् ।
स्रग्दामसमवच्छन्नानुत्तमागुरुगन्धिनः ॥ २२
हंसेन्दुवर्णसदृशानायोजनसुदर्शनान् ।
असंबाधान्समद्वारान्युतानुच्चावचैर्गुणैः ॥ २३
बहुधातुनिबद्धाङ्गान्हिमवच्छिखरानिव ।
विश्रान्तास्ते ततोऽपश्यन्भूमिपा भूरिदक्षिणम्२४
वृतं सदस्यैर्बहुभिर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
तत्सदः पार्थिवैः कीर्णं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
भ्राजते स्म तदा राजन्नाकपृष्ठं यथामरैः ॥ २५

इति श्रीमहाभा० सभाप० राजसूयपर्वणि निमन्त्रितराजागमने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

वैशंपायन उवाच ।
पितामहं गुरुं चैव प्रत्युद्गम्य युधिष्ठिरः ।
अभिवाद्य ततो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १
भीष्मं द्रोणं कृपं द्रौणिं दुर्योधनविविंशती ।
अस्मिन्यज्ञे भवन्तो मामनुगृह्णन्तु सर्वशः ॥ २
इदं वः सुमहच्चैव यदिहास्ति धनं मम ।
प्रणयन्तु भवन्तो मां यथेष्टमभिमन्त्रिताः ॥ ३
एवमुक्त्वा स तान्सर्वान्दीक्षितः पाण्डवाग्रजः
युयोज स यथायोगमधिकारेष्वनन्तरम् ॥ ४
भक्ष्यभोज्याधिकारेषु दुःशासनमयोजयत् ।
परिग्रहे ब्राह्मणानामश्वत्थामानमुक्तवान् ॥ ५
राज्ञां तु प्रतिपूजार्थं संजयं स न्ययोजयत् ।
कृताकृतपरिज्ञाने भीष्मद्रोणौ महामती॥ ६

---

यज्ञसेनो द्रुपदः ॥ ९ ॥ दीर्घिका गृहवापी ॥१९॥ मणिकुट्टिमं मणिबद्धा भूमिः ॥ २१ ॥ आवसथान् अपश्यन्निति अनुकृष्टेन संबन्धः व ... र्थं ॥२४॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

पितामहमिति ॥ १ ॥ प्रणयन्तु प्रकर्षेण श्रेयः प्रापयन्तु अभिमन्त्रिताः प्रार्थिताः सन्तः ॥ ३ ॥

हिरण्यस्य सुवर्णस्य रत्नानां चान्ववेक्षणे ।
दक्षिणानां च वै दाने कृपं राजा न्ययोजयत् ॥ ७
तथान्यान्पुरुषव्याघ्रांस्तांस्तांस्तस्मिन्न्ययोजयत् ।
बाह्लिको धृतराष्ट्रश्च सोमदत्तो जयद्रथः ।
नकुलेन समानीताः स्वामिवत्तत्र रेमिरे ॥ ८
क्षत्ता व्ययकरस्त्वासीद्विदुरः सर्वधर्मवित् ।
दुर्योधनस्त्वर्हणानि प्रतिजग्राह सर्वशः ॥ ९
चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं त्वभूत् ।
सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम् ॥ १०
द्रष्टुकामः सभां चैव धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
न कश्चिदाहरत्तत्र सहस्रावरमर्हणम् ॥ ११
रत्नैश्च बहुभिस्तत्र धर्मराजमवर्धयत् ।
कथं तु मम कौरव्यो रत्नदानैः समाप्नुयात् ॥ १२
यज्ञमित्येव राजानः स्पर्धमाना ददुर्धनम् ।
भवनैः सविमानाग्रैः सोदर्कैर्बलसंवृतैः ॥ १३
लोकराजविमानैश्च ब्राह्मणावसथैः सह ।
कृतैरावसथैर्दिव्यैर्विमानप्रतिमैस्तथा ॥ १४
विचित्रै रत्नवद्भिश्च ऋध्द्या परमया युतैः ।
राजभिश्च समावृत्तैरतीव श्रीसमृद्धिभिः ।
अशोभत सदो राजन्कौन्तेयस्य महात्मनः ॥ १५
ऋध्द्या तु वरुणं देवं स्पर्धमानो युधिष्ठिरः ।
षडग्निनाथ यज्ञेन सोयजद्दक्षिणावता ॥ १६
सर्वाञ्जनान्सर्वकामैः समृद्धैः समतर्पयत् ।
अन्नवान्बहुभक्ष्यश्च भुक्तवज्जनसंवृतः ।
रत्नोपहारसंपन्नो बभूव स समागमः ॥ १७
इडाज्यहोमाहुतिभिर्मन्त्रशिक्षाविशारदैः ।
तस्मिन्हि ततृपुर्देवास्तते यज्ञे महर्षिभिः ॥ १८
यथा देवास्तथा विप्रा दक्षिणान्नमहाधनैः ।
ततृपुः सर्ववर्णाश्च तस्मिन्यज्ञे मुदान्विताः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि राजसूयपर्वणि यज्ञकरणे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

समाप्तं राजसूयपर्व ।

## अर्घाभिहरणपर्व ।

## ३६

वैशंपायन उवाच ।

ततोभिषेचनीयेह्नि ब्राह्मणा राजभिः सह ।
अन्तर्वेदीं प्रविविशुः सत्कारार्हा महर्षयः ॥ १
नारदप्रमुखास्तस्यामन्तर्वेद्यां महात्मनः ।
समासीनाः शुशुभिरे सह राजर्षिभिस्तदा ॥ २

---

हिरण्यस्य काञ्चनस्य सुवर्णस्य शोभनवर्णस्य ॥ ७ ॥ स्वामिवत्स्वीयवदित्यर्थः ॥ ८ ॥ अर्हणानि उपायनानि ॥ ९ ॥ सर्वलोकसमावृत्तः सर्वैः उपायनप्रदैर्लोकैः समावृत्तः वेष्टितः पिप्रीषुः प्रीणयितुमिच्छुः ॥१०॥ सविमानाग्रैः द्रष्टुमागतानां देवानां विमानैः सहितानि सद्मानि अग्राणि उपरिभागा येषां तैः ॥ १३ ॥ लोकराजविमानैः इन्द्रादिलोकपालविमानैः लोकराजः स्वर्गो वा तत्रत्यैर्विमानैः स्वर्गिणामप्याश्चर्यकरोयं यज्ञ इत्यर्थः ॥ १४ ॥ कौन्तेयस्य यज्ञ इति शेषः॥ १५ ॥ ऋध्द्या तु वरुणं देवमित्यादेरध्यायशेषस्य तात्पर्यं सर्वाङ्गसंपूर्णोयं यज्ञ इत्यर्थः । षडग्निना षट् अग्नयः आरम्भणीयः क्षत्रः धृतिः व्युष्टिः द्विरात्रः दशपेयः इति ॥ १६ ॥ रत्नोपहारसंपन्नः इत्यत्र रक्षोपहारकर्मण्य इति पाठे रक्षसां नाशे साधुना कर्मणा युक्तः ॥ १७ ॥ इडाकर्म स्विष्टकृदूर्ध्वं शिष्टं हविः प्रतिपत्तिकर्म । मन्त्रशिक्षाविशारदैः मन्त्रेषु शिक्षायां हस्तक्रियायां च विशारदैः ऋत्विग्भिः ॥ १८ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

ततोभिषेचनीयेह्नि ब्राह्मणा राजभिः सहेत्यादिका शिशुपालवधान्ता दशाध्यायी नानाविधमतभेदोपन्यासपूर्वकं कृष्णशिशुपालरूपकेण ब्रह्मणि जीवस्य महाकाशमठाकाशन्यायेन लयं दर्शयति । तत्र कथापक्षे प्रत्यक्षवृत्त्यैव लभ्योर्थःस्पष्टः । अध्यात्मपक्षे तु परोक्षवृत्तिलभ्यतया तत्त्वं दुर्व्याख्येयमिति । तदेव प्रकाश्यते अभिषेचनीये राजसूयाङ्गभूते सोमयागविशेषे ॥ १ ॥

समेता ब्रह्मभवने देवा देवर्षयस्तथा ।
कर्मान्तरमुपासन्तो जजल्पुरमितौजसः ॥ ३
एवमेतन्न चाप्येवमेवं चैतन्न चान्यथा ।
इत्यूचुर्बहवस्तत्र वितण्डा वै परस्परम् ॥ ४
कृशानर्थांस्ततः केचिदकृशांस्तत्र कुर्वते ।
अकृशांश्च कृशांश्चक्रुर्हेतुभिः शास्त्रनिश्चयैः ॥ ५
तत्र मेधाविनः केचिदर्थमन्यैरुदीरितम् ।
विचिक्षिपुर्यथा श्येना नभोगतमिवामिषम् ॥ ६
केचिद्धर्मार्थकुशलाः केचित्तत्र महाव्रताः ।
रेमिरे कथयन्तश्च सर्वभाष्यविदां वराः ॥ ७
सा वेदिर्वेदसंपन्नैर्देवद्विजमहर्षिभिः ।
आबभासे समाकीर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिवायता ॥ ८
न तस्यां संनिधौ शूद्रः कश्चिदासीन्न चाव्रती ।
अन्तर्वेद्यां तदा राजन्युधिष्ठिरनिवेशने ॥ ९
तां तु लक्ष्मीवतो लक्ष्मीं तदा यज्ञविधानजाम् ।
तुतोष नारदः पश्यन्धर्मराजस्य धीमतः ॥ १०
अथ चिन्तां समापेदे स मुनिर्मनुजाधिप ।
नारदस्तु तदा पश्यन्सर्वक्षत्रसमागमम् ॥ ११
सस्मार च पुरावृत्तां कथां तां पुरुषर्षभ ।
अंशावतरणे यासौ ब्रह्मणो भवनेऽभवत् ॥ १२
देवानां संगमं तं तु विज्ञाय कुरुनन्दन ।
नारदः पुण्डरीकाक्षं सस्मार मनसा हरिम् ॥ १३
साक्षात्स विबुधारिघ्नः क्षत्रे नारायणो विभुः ।
प्रतिज्ञां पालयंश्चेमां जातः परपुरंजयः ॥ १४
संदिदेश पुरा योसौ विबुधान्भूतकृत्स्वयम् ।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्तः पुनर्लोकानवाप्स्यथ ॥ १५

इति नारायणः शम्भुर्भगवान्भूतभावनः ।
आदित्यविबुधान्सर्वानजायत यदुक्षये ॥ १६
क्षितावन्धकवृष्णीनां वंशे वंशभृतां वरः ।
परया शुशुभे लक्ष्म्या नक्षत्राणामिवोडुराट् ॥ १७
यस्य बाहुबलं सेन्द्राः सुराः सर्व उपासते ।
सोयं मानुषवन्नाम हरिरास्तेऽरिमर्दनः ॥ १८
अहो बत महद्भूतं स्वयंभूर्यदिदं स्वयम् ।
आदास्यति पुनः क्षत्रमेवं बलसमन्वितम् ॥ १९
इत्येतां नारदश्चिन्तां चिन्तयामास सर्ववित् ।
हरिं नारायणं ध्यात्वा यज्ञैरीज्यन्तमीश्वरम् ॥ २०
तस्मिन्धर्मविदां श्रेष्ठो धर्मराजस्य धीमतः ।
महाध्वरे महाबुद्धिस्तस्थौ स बहुमानतः ॥ २१
ततो भीष्मोऽब्रवीद्राजन्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
क्रियतामर्हणं राज्ञां यथार्हमिति भारत ॥ २२
आचार्यमृत्विजं चैव संयुजं च युधिष्ठिर ।
स्नातकं च प्रियं प्राहुः षडार्घ्यार्हान्नृपं तथा ॥ २३
एतानर्घ्यानभिगतानाहुः संवत्सरोषितान् ।
त इमे कालपूगस्य महतोऽस्मानुपागताः ॥ २४
एषामेकैकशो राजन्नर्घ आनीयतामिति ।
अथ चैषां वरिष्ठाय समर्थायोपनीयताम् ॥ २५

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मै भवान्मन्यतेऽर्घमेकस्मै कुरुनन्दन ।
उपनीयमानं युक्तं च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २६

वैशंपायन उवाच ।

ततो भीष्मः शान्तनवो बुध्या निश्चित्य वीर्यवान् ।
वार्ष्णेयं मन्यते कृष्णमर्हणीयतमं भुवि ॥ २७

---

कर्मान्तरं मध्ये मध्ये कर्म विरामकालं उपासन्तः उपगच्छन्तः प्राप्नुवन्तः । असगतावित्यस्य रूपं कर्मच्छिद्रं प्राप्य जल्पकथां चक्रुरित्यर्थः । अमितौजसः बहुप्रतिभावन्तः ॥ ३ ॥ एवमेतदिति स्वपक्षस्थापनं न चाप्येवमिति परपक्षदूषणं एवं प्रतिवादिपक्षेपि । बहवस्तु सामान्याः वितण्डां स्वपक्षपरपक्षस्थापनाहीनां कथाम् ॥४॥ कृशान् युक्तिदौर्बल्यात् । अकृशान् युक्तिप्राबल्यात् । तत्र विपरीतं कुर्वन्ति । हेतुभिर्नानाविधैस्तर्कैः ॥ ५ ॥ तत्रेति परोक्तस्य दूषणे एवादृताः न तु शास्त्रतत्त्वे इति भावः ॥ ६ ॥ अथ चिन्तां समापेदे इत्यादिस्तस्थौ सबहुमानत इत्यन्तो ग्रन्थो नारदस्य पूर्वापरानुसंधानात् । क्षत्रक्षयस्यातः परं उपक्रमो जात इति चिन्ता चित्तव्यथा स्मृतिर्वा अंशावतरणात्प्राक् ब्रह्मसभायां निश्चितस्य भूभारहरणस्याभूदित्यर्थः ॥११॥ क्षत्रे क्षत्रियजातौ जातः आविर्भूतः ॥ १४ ॥ नारायणस्य शम्भुत्वं चतुर्वक्त्रापरपर्यायं भूतभावनत्वं चेति युक्तं । एकस्यैव त्रिमूर्तिधारित्वात् यदुक्षये यदुगृहे ॥ १६ ॥ महद्भूतं महाविष्णुः स्वयंभूः अस्मदादिवच्छरीरव्यपाश्रयत्वेनापि भवनं न सहते इत्यर्थः । आदास्यति आच्छेत्तुमिच्छति पुनरिति असकृदेतदनेन कर्म कृतमस्तीति सूचितम् ॥ १९ ॥ धर्मविदां श्रेष्ठो नारदः धर्मराजस्य यज्ञैरीज्यम् ॥ २१ ॥ संयुजं संबन्धिनं श्वशुरादिं प्रियं मित्रम् ॥ २३ ॥ एकैकशः प्रत्येकं अथ अथापि एषां मध्ये वरिष्ठाय प्रथममिति शेषः ॥ २५ ॥ बुध्या बुध्यति जानाति वस्तुतत्त्वमनयेति बुद्धिः । श्रवणमननध्यानात्मिका चेतोवृत्तिः तया निश्चित्य साक्षात्कृत्य - अर्हणीयतमं अर्हणीयाः ब्राह्मणाः देवताप्रसादहेतुत्वात् । अर्हणीयतरा देवाः कामपूरकत्वात् । अर्हणियतम आत्मा सर्वस्य तत्प्रीत्यर्थत्वात् । तथा च श्रुतिः 'न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति' इति ।

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः ।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः ॥२८
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना ।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः ॥ २९
तस्मै भीष्माभ्यनुज्ञातः सहदेवः प्रतापवान् ।
उपजह्रेऽथ विधिवद्वार्ष्णेयायार्घमुत्तमम् ॥ ३०
प्रतिजग्राह तत्कृष्णः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
शिशुपालस्तु तां पूजां वासुदेवे न चक्षमे ॥ ३१
स उपालभ्य भीष्मं च धर्मराजं च संसदि ।
अपाक्षिपद्वासुदेवं चेदिराजो महाबलः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि अर्घाभिहरणपर्वणि कृष्णार्घदाने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

## ३७

शिशुपाल उवाच ।
नायमर्हति वार्ष्णेयस्तिष्ठत्स्विह महात्मसु ।
महीपतिषु कौरव्य राजवत्पार्थिवार्हणम् ॥ १
नायं युक्तः समाचारः पाण्डवेषु महात्मसु ।
यत्कामात्पुण्डरीकाक्षं पाण्डवार्चितवानसि ॥ २
बाला यूयं न जानीध्वं धर्मः सूक्ष्मो हि पाण्डवाः ।
अयं च स्मृत्यतिक्रान्तो ह्यापगेयोऽल्पदर्शनः ॥ ३
त्वादृशो धर्मयुक्तो हि कुर्वाणः प्रियकाम्यया ।
भवत्यभ्यधिकं भीष्मो लोकेष्ववमतः सताम् ॥४
कथं ह्यराजा दाशार्हो मध्ये सर्वमहीक्षिताम् ।
अर्हणामर्हति तथा यथा युष्माभिरर्चितः ॥ ५

तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात् प्रेयोन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरं यदयमात्मा'इति च । भुवीत्यनेनात्मैव कर्मभूमावर्हणीयः । 'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदवेदीर्महती विनष्टिः' इति श्रुतेरन्यत्र तदलाभात् ॥ २७ ॥ एवमात्मनो जिज्ञास्यत्वमुक्त्वा स्वरूपमाह एष हीति । एष पुरोवर्ती श्रीकृष्णः सूर्यश्च ज्योतिषां पदार्थप्रकाशकानां सूर्यचन्द्राग्निवागादीनां चन्द्राग्नितारादीनां च समस्तानां सम्यगस्तं गतानां स्वप्नावस्थायामह्नि च मध्येन्तस्तपन्नाभातीति योजना । अयं भावः न तावदग्निः स्वयंज्योतिः सूर्यकान्तादिद्वारा सूर्यस्यैव इन्धनादौ तद्रूपेणारूढत्वात् । नापि चन्द्रतारादि तस्य जलमयस्य सूर्यज्योतिषैव भास्यत्वात् । यथायं दृष्टान्त एवं चक्षुरादयोपि न स्वशक्त्या प्रकाशकाः । किं तु आत्मसत्तानुवेधादेव तथा यथाभ्याद्यभावेपि सूर्यः इतरनिरपेक्षः प्रकाशयति एवमात्मा चक्षुराद्युपरमेपि स्वप्ने स्वप्रकाशेनैव सर्वं वासनामयं पदार्थजातं प्रकाशयति । 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' 'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिः' इत्यादिश्रुतिभ्यः । तेजोबलपराक्रमैः तेजः प्रकाशः बलं तेजोन्तराभिभवसामर्थ्यं । पराक्रमः निरवशेषेण तमोनाशकत्वं च दृष्टान्ते तेज आदि दार्ष्टान्तिके तु तेजः चित्प्रकाशः बलं अबाध्यत्वं पराक्रमः सर्वोपादानत्वेन सर्वव्यापकत्वं च कथापक्षे तु तेजः कान्तिः बलं पराभिभवसामर्थ्यं पराक्रमः संग्रामोद्यमः ॥ २८ ॥ असूर्यमिवेति यथा गाढान्धकारस्थं घटादि असत्कल्पं अप्रकाशमानं च तस्य सत्तास्फूर्ती सूर्येणैव भवतः एवं अहंकारादेर्घटान्तस्यार्थजातस्य सत्ताप्रकाशौ चिदधीनावेवेति पूर्वोक्तस्यैव विवरणं । एवं तथा निवाते वातशून्येऽपवरके निदाघे विद्यमानान् जन्तून् वात एवाल्हादयति एवं अयं स्वरूपानन्देन जगदाल्हादयति । 'एष ह्येवानन्दयाति एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति'इति श्रुतेः । सोयं प्रत्यग्दृशिरूप एव सन् दर्पणेन मुखमिव स्वमायया पराग्दृश्यत्वमिवापादितः पूजनीयः । अत्र हि देहाद्युपाधिविस्मरणेन लब्धपदं चित्तं मोक्षाय कल्पते । तथोक्तं भगवता पतंजलिना 'बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततःप्रकाशावरणक्षयः' इति । बहिर्मूर्त्यादौ अकल्पिता देहादिप्रत्ययेनासंकीर्णा महाविदेहेति धारणाया नाम ॥ २९ ॥ अपाक्षिपत् दूषितवान् ॥ ३२ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

### ३७

कर्तृत्वादिकं कृष्णे वास्तवमेव न तु मायिकमाविद्यकं वा। शरीरमात्रस्य कर्मजन्यत्वनियमात् । मिथ्याभूतस्यापि वास्तवार्थक्रियाकारित्वे शुक्तिरजतादेरपि रजतोचितद्रवीभावापत्तेश्चेत्यभिसंदधानो जैमिनिमतानुसारी शिशुपालो वर्णाश्रमवयस्तपोविद्यादिभिरेव पुंसां श्रैष्ठ्याश्रैष्ठ्यविभागं बहुमन्यमानो नृपान्तरसाधारण्येन कृष्णमपूज्यं करोति । नायमिति वार्ष्णेयः वृष्णिकुलपन्न इति पूर्वोक्तं स्वयंभूत्वं निराकृतं तद्धि आत्मनः सर्वसाधारणं देहस्य तु अस्मदादिवद्देवक्यां जातत्वाद्दुर्वचमिति भावः ॥ १ ॥ आपगेयो भीष्मः ॥ ३ ॥

अथ वा मन्यसे कृष्णं स्थविरं कुरुपुङ्गव ।
वसुदेवे स्थिते वृद्धे कथमर्हति तत्सुतः ॥ ६
अथ वा वसुदेवोपि प्रियकामोनुवृत्तवान् ।
द्रुपदे तिष्ठति कथं माधवोर्हति पूजनम् ॥ ७
आचार्यं मन्यसे कृष्णमथ वा कुरुनन्दन ।
द्रोणे तिष्ठति वार्ष्णेयं कस्मादर्चितवानसि ॥ ८
ऋत्विजं मन्यसे कृष्णमथ वा कुरुनन्दन ।
द्वैपायने स्थिते वृद्धे कथं कृष्णोर्चितस्त्वया ॥ ९
भीष्मे शान्तनवे राजन्स्थिते पुरुषसत्तमे ।
स्वच्छन्दमृत्युके राजन्कथं कृष्णोर्चितस्त्वया १०
अश्वत्थाम्नि स्थिते वीरे सर्वशास्त्रविशारदे ।
कथं कृष्णस्त्वया राजन्नर्चितः कुरुनन्दन ॥ ११
दुर्योधने च राजेन्द्रे स्थिते पुरुषसत्तमे ।
कृपे च भारताचार्ये कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥ १२
द्रुमं किंपुरुषाचार्यमतिक्रम्य तथार्चितः ।
भीष्मके चैव दुर्धर्षे पाण्डुवत्कृतलक्षणे ॥ १३
नृपे च रुक्मिणिश्रेष्ठे एकलव्ये तथैव च ।
शल्ये मद्राधिपे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥१४
अयं च सर्वराज्ञां वै बलश्लाघी महाबलः ।
जामदग्न्यस्य दयितः शिष्यो विप्रस्य भारत ॥१५
येनात्मबलमाश्रित्य राजानो युधि निर्जिताः ।
तं च कर्णमतिक्रम्य कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥ १६
नैवर्त्विङ्नैव चाचार्यो न राजा मधुसूदनः ।
अर्चितश्च कुरुश्रेष्ठ किमन्यत्प्रियकाम्यया ॥ १७
अथ वाभ्यर्चनीयोयं युष्माकं मधुसूदनः ।
किं राजभिरिहानीतैरवमानाय भारत ॥ १८
वयं तु न भयादस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
प्रयच्छामःकरान्सर्वे न लोभान्न च सान्त्वनात् १९
अस्य धर्मप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः ।
करानस्मै प्रयच्छामः सोयमस्मान्न मन्यते ॥ २०
किमन्यदवमानाद्धि यदेनं राजसंसदि ।
अप्राप्तलक्षणं कृष्णमर्घेनार्चितवानसि ॥ २१
अकस्माद्धर्मपुत्रस्य धर्मात्मेति यशो गतम् ।
को हि धर्मच्युते पूजामेवं युक्तां नियोजयेत्॥२२
योयं वृष्णिकुले जातो राजानं हतवान्पुरा ।
जरासंधं महात्मानमन्यायेन दुरात्मवान्॥ २३
अद्य धर्मात्मता चैव व्यपकृष्टा युधिष्ठिरात् ।
दर्शितं कृपणत्वं च कृष्णेऽर्घस्य निवेदनात् ॥ २४
यदि भीताश्च कौन्तेयाः कृपणाश्च तपस्विनः ।
ननु त्वयापि बोद्धव्यं यां पूजां माधवार्हसि॥२५
अथ वा कृपणैरेतामुपनीतां जनार्दन ।
पूजामनर्हः कस्मात्त्वमभ्यनुज्ञातवानसि ॥ २६
अयुक्तामात्मनः पूजां त्वं पुनर्बहु मन्यसे ।
हविषः प्राप्य निष्यन्दं प्राशिता श्वेव निर्जने ॥२७
न त्वयं पार्थिवेन्द्राणामपमानः प्रयुज्यते ।
त्वामेव कुरवो व्यक्तं प्रलम्भन्ते जनार्दन ॥ २८
क्लीबे दारक्रिया यादृग्अन्धे वा रूपदर्शनम् ।
अराज्ञो राजवत्पूजा तथा ते मधुसूदन ॥ २९
दृष्टो युधिष्ठिरो राजा दृष्टो भीष्मश्च यादृशः ।
वासुदेवोप्ययं दृष्टः सर्वमेतद्यथातथम् ॥ ३०
इत्युक्त्वा शिशुपालस्तानुत्थाय परमासनात् ।
निर्ययौ सदसस्तस्मात्सहितो राजभिस्तदा ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि अर्घाभिह० शिशुपालक्रोधे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

ननु अस्मदादिवज्जातोप्यराजापि वृद्धत्वादिना हेतुना पूज्यः कृष्ण इत्याशंक्य निराचष्टे अथ वा मन्यसे इत्यादिना ॥ ६ ॥ आप्तो लक्षणं राजचिह्नं छत्रचामरादि स प्राप्तलक्षणः । प्राप्तापन्ने च द्वितीययेति समासः। तदन्योऽप्राप्तलक्षणस्तं । वस्तुवृत्त्यापि अतादृशं । असंगचिन्मात्रत्वात् । 'अलक्षणमचिन्त्यम्' इत्यादिश्रुतेरिति वाग्देवतायास्तात्पर्यम् ॥ २१ ॥ धर्मच्युतत्वमेवाह योयमिति । राजानं कंसम् ॥२३॥ अयुक्तामिति आत्मनः अयुक्तां पूजां अद्वैते पूज्यपूजकभावाभावेन भेदस्यायोगात् । अथापि हविषो निष्यन्दं लेशं प्राशितुं द्रौपदीशाकशेषवत्प्राशनाय प्राप्य द्विचन्द्रादिवन्मायया भेदमारूढो भक्तोपहृतत्वात्तावदेव बहु मन्यसे । निर्जने निर्मनुष्ये अन्तरिक्षे । श्वसितीति श्वा वायुः। 'मातरि श्वा सदागतिः' इति कोशः । मातर्यन्तरिक्षे श्वसितीति यास्कः । इति सरस्वत्याशयः कथापक्षे तु स्पष्ट एवार्थः ॥ २७ ॥ प्रलम्भन्ते अवलम्बन्ते ॥ २८ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

वैशंपायन उवाच ।

ततो युधिष्ठिरो राजा शिशुपालमुपाद्रवत् ।
उवाच चैनं मधुरं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ १
नेदं युक्तं महीपाल यादृशं वै त्वमुक्तवान् ।
अधर्मश्च परो राजन्पारुष्यं च निरर्थकम् ॥ २
न हि धर्मं परं जातु नावबुध्येत पार्थिवः ।
भीष्मः शान्तनवस्त्वेनं मावमंस्थास्त्वमन्यथा ॥ ३
पश्य चेतान्महीपालांस्त्वत्तो वृद्धतरान्बहून् ।
मृष्यन्ते चार्हणां कृष्णे तद्वत्त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ४
वेद तत्त्वेन कृष्णं हि भीष्मश्चेदिपते भृशम् ।
न त्वेन त्वं तथा वेत्थ यथैनं वेद कौरवः ॥ ५

भीष्म उवाच ।

नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम् ।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते ॥ ६
क्षत्रियः क्षत्रियं जित्वा रणे रणकृतां वरः ।
यो मुञ्चति वशे कृत्वा गुरुर्भवति तस्य सः ॥ ७
अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि ।
न पश्यामि महीपालं सात्वतीपुत्रतेजसा ॥ ८
न हि केवलमस्माकमयमर्च्यतमोऽच्युतः ।
त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः ॥ ९
*कृष्णेन हि जिता युद्धे बहवः क्षत्रियर्षभाः ।*
जगत्सर्वं च वार्ष्णेये निखिलेन प्रतिष्ठितम् ॥ १०
तस्मात्सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान् ।
एवं वक्तुं न चार्हस्त्वं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी ॥ ११
ज्ञानवृद्धा मया राजन्बहवः पर्युपासिताः ।
तेषां कथयतां शौरेरहं गुणवतो गुणान् ॥ १२
समागतानामश्रौषं बहून्बहुमतान्सताम् ।
कर्माण्यपि च यान्यस्य जन्मप्रभृति धीमतः ॥ १३
बहुशः कथ्यमानानि नरैर्भूयः श्रुतानि मे ।
न केवलं वयं कामाच्चेदिराज जनार्दनम् ॥ १४
न संबन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथंचन ।
अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भूतसुखावहम् ॥ १५
यशः शौर्यं जयं चास्य विज्ञायार्चां प्रयुञ्महे ।
न च कश्चिदिहास्माभिः सुबालोऽप्यपरीक्षितः ॥ १६
गुणैर्वृद्धानतिक्रम्य हरिरर्च्यतमो मतः ।
ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः ॥ १७
वैश्यानां धान्यधनवाञ्छूद्राणामेव जन्मतः ।
पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ ॥ १८
वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा ।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते ॥ १९
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा ।
संततिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताऽच्युते ॥ २०
तमिमं लोकसंपन्नमाचार्यं पितरं गुरुम् ।
*अर्घ्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे संक्षन्तुमर्हथ ॥* २१
ऋत्विग्गुरुर्विवाह्यश्च स्नातको नृपतिः प्रियः ।
सर्वमेतद्धृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः ॥ २२

३८

तत इति ॥ १ ॥ अधर्मश्चेति वेदैकगम्यापरदेवता कृष्णो न तर्कगम्या तर्कबलेन तु ता प्रयाचक्षाणस्य शाकन्यस्येव तवाधर्मो महान् भवतीत्यर्थः ।यत पारुष्यं च निरर्थकं परूंषि पर्वाणि खण्डाः भेद इति यावत् परूंष्येव पारुष्यं स्वार्थे ष्यञ् तन्निरर्थकं स्वप्नगजवदर्थशून्यमाभासमात्रं । पौरुषं चेति पाठे पुरुषधर्मं कर्तृत्वादि पौरुषं तदपि सुप्तिममाध्यादौ प्रत्यगात्मनि अदर्शनाद्रज्जूरगादिवदाभासमात्रं । तत्राधिष्ठानभूतं आत्मवस्तु कृष्ण एव निरधिष्ठानभ्रमायोगात कथापक्षे पारुष्यं दुर्वाक्यत्वम् ॥२॥ तच योगबलेनैव भीष्मो वेदेत्याह न हीति।परो धर्म 'अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्'इति याज्ञवल्क्योक्त ।यतस्त भीष्मो वेदातोऽस्य वचस्यविश्वासो न कर्तव्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥ अनुनय नयो युक्तिस्तामनु पश्चात् भवतीत्यनुनयो मननानन्तरभावि ध्यानं योग इति यावत्स नास्मै असंभावनाग्रस्ताय देयः पक्षे अनुनय कुपितप्रसादनं सगुणोपास्यभावादनधिकारिणे इत्यर्थः।सान्त्वनं शमं ॥ ६ ॥ तत्र मूढं मूढभाषयेव बोधयेदिति न्यायेन शिशुपालमतमनुसृत्यैव कृष्णस्याधिक्यमाह द्वाभ्यां क्षत्रिय इति ॥ ७ ॥ इतोऽप्यधिकमाह न हीति त्रैलोक्यान्तर्गतानां ब्रह्मादीनामित्यर्थः ॥ ९ ॥ इदानीतनक्षत्रियेभ्य. ऋषभाः श्रेष्ठाः हिरण्याक्षादय वार्ष्णेये सर्वं प्रतिष्ठितं विलीनं किं कनककुण्डलन्यायेन नेत्याह निखिलेनेति । सत्यामपि कनकबुद्धौ कुण्डलबुद्ध्यनपायात् । रज्जुसर्पन्यायेनैवेयं सप्रतिष्ठा ज्ञानादेवतु कैवल्यमिति श्रुतेश्च पक्षान्तरे तु ब्रह्मण कनकवत्परिणामित्वं कुण्डलस्येव प्रपञ्चस्य क्रियया प्रविलाप्यत्वं च स्यात् तथा चासंगो ह्ययं पुरुष इत्यसंगत्वश्रुतेर्ज्ञानादेवेत्यवधारणस्य च व्याकोप इति दिक् ॥ १० ॥ उक्तेऽर्थे प्रमाणमाह ज्ञानवृद्धा इत्यादिना ॥ १२ ॥ कर्माणि पूतनावधादीनि ॥१३॥ कृतार्थं कृतं अर्थं उपकारम् ॥ १५ ॥ वैश्यानामिति लक्ष्मीपतित्वात् पुराणपुरुषत्वाच्च ॥१८॥ नियताऽच्युतेऽकर्मजत्वात् अन्यत्र कर्मजत्वादेषामस्थैर्यम् भवतीत्यर्थः ॥ २० ॥ लोकसंपन्नं ज्ञानसंपन्नम् ॥ २१ ॥

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः ।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥ २३
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः ।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात्पूज्यतमोऽच्युतः ॥ २४
बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोम्भः खं मही च या ।
चतुर्विधं च यद्भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥ २५
आदित्यश्चन्द्रमाश्चैव नक्षत्राणि ग्रहाश्च ये ।
दिशश्च विदिशश्चैव सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥ २६
अग्निहोत्रमुखा वेदा गायत्री छन्दसां मुखम् ।
राजा मुखं मनुष्याणां नदीनां सागरो मुखम् २७
नक्षत्राणां मुखं चन्द्र आदित्यस्तेजसां मुखम् ।
पर्वतानां मुखं मेरुर्गरुडः पततां मुखम् ॥ २८
ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चैव यावती जगतो गतिः ।
सदेवकेषु लोकेषु भगवान्केशवो मुखम् ॥ २९
अयं तु पुरुषो बालः शिशुपालो न बुध्यते ।
सर्वत्र सर्वदा कृष्णं तस्मादेवं प्रभाषते ॥ ३०
यो हि धर्मं विचिनुयादुत्कृष्टं मतिमान्नरः ।
स वै पश्येद्यथा धर्मं न तथा चेदिराडयम् ॥ ३१
सवृद्धबालेष्वथवा पार्थिवेषु महात्मसु ।
को नार्हं मन्यते कृष्णं को वाप्येनं न पूजयेत्।
अथैनां दुष्कृतां पूजां शिशुपालो व्यवस्यति।
दुष्कृतायां यथान्यायं तथाऽयं कर्तुमर्हति ॥ ३[illegible]

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि अर्घाभिहरण० भीष्मवाक्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो भीष्मो विरराम महाबलः ।
व्याजहारोत्तरं तत्र सहदेवोर्थवद्वचः ॥ १
केशवं केशिहन्तारमप्रमेयपराक्रमम् ।
पूज्यमानं मया यो वः कृष्णं न सहते नृपाः ॥ २
सर्वेषां बलिनां मूर्ध्नि मयेदं निहितं पदम् ।
एवमुक्ते मया सम्यगुत्तरं प्रब्रवीतु सः ॥ ३
स एव हि मया वध्यो भविष्यति न संशयः ।
मतिमन्तश्च ये केचिदाचार्यं पितरं गुरुम् ॥ ४
अर्च्यमर्चितमर्घार्हमनुजानन्तु ते नृपाः ।
ततो न व्याजहारैषां कश्चिद्बुद्धिमतां सताम् ॥ ५

लोकदृष्ट्या कृष्णमाहात्म्यमुक्त्वा शास्त्रदृष्ट्यापि तदाह कृष्ण एवेति । उत्पत्तिरपि उपादानमपि । अव्ययः अविनाशी अपरिणामित्वात् रज्जुवत्परिणाम्युपादानस्य नाशावश्यंभावादिति भावः।अप्यय इति पाठे।लयस्थानं।कृष्णस्य कृते कृष्णार्थं सर्वशेषित्वात् । कृते इत्यव्ययं तादर्थ्ये निपात्यते भूतं उत्पन्नं तेन विनाश्यपि एतत् कृष्ण एव सत्य इत्यपि ज्ञेयम्।२३।नन्वपरिणामित्वे कृष्णस्य कथं परिणामिनमाकाशादिकं प्रत्युपादानत्वं कारणस्य कार्यसजातीयत्वनियमादित्याशङ्क्याह एष प्रकृतिः उपादानं जगतः। अव्यक्ता अप्रकटा रज्जुरिव स्पष्टदृष्टा सर्पस्य कर्ता महदहंकारादिरप्ययमेव । परिणामवद्विवर्तेपि कार्यस्य कारणानन्यत्वात् । महदादेश्च विवर्तरूपत्वात् नन्वन्योन्यत्रान्यत्कल्पयति महदादेस्तु कथं सदात्मनि स्वस्वकल्पकत्वमित्याशङ्क्याह सनातन इति। सुप्तिप्रलयादावपि तेषां संस्कारात्मना सत्त्वमस्ति अतः कदाचित्प्रतीयमानत्वान्मिथ्यात्वेपि क्रमतत्संस्कारपरंपराया बीजांकुरवदनादित्वान्महदादिरपि सनातनोनादिरेवेत्यर्थः । नन्वेवं घृतकाठिन्यवदात्मनि महदादेराविर्भावतिरोभावौ उक्तौ स्यातां । तथा चात्मसमसत्ताकत्वं तयोः स्यादित्यत आह पर इति सर्वभूतेभ्य उत्पन्नेभ्यो महदादिभ्योऽतिरिक्तः । महदाद्युपादानं त्वज्ञानमेव न तु चिदात्मा । तदपि रज्ज्वज्ञानवत्तदनाद्यपि बाधे सति वस्तुवृत्त्या कालत्रयेपि तत्कार्यं नासीदिति प्रत्ययात् । यादृशो यक्षस्तादृशो बलिरिति न्यायेन कार्यवत् अनिर्वचनीयमेव कल्प्यते अतः कृष्ण एव परो न त्वज्ञानं त्रैकालिकबाधविषयत्वात्तस्येति भावः । पूज्यतम इति निरुपाधिकप्रेमविषयत्वेन सर्वशेषित्वं प्रत्यगात्मत्वं चोक्तं । अच्युत इति भोक्तृत्वरूपविकारनिषेधः । अहंकारस्यैव भोक्तृत्वादात्मनि च जलचन्द्रचाञ्चल्यवत्तदुपधानात्कल्पितमिति भावः ॥२४॥ अत एव कृष्णानद्वैतं सिद्धमित्याह बुद्धिरित्यादिना । प्रतिष्ठितं रज्जूरगवत् कृष्णानन्यत्वादित्यर्थः बुद्धिरहंकारः मन इतीन्द्रियाण्येकादश महान् महत्तत्वं वायुरित्यादिपञ्चकेन पञ्चतन्मात्राणां स्थूलभूतानां च ग्रहणं चतुर्विधं जरायुजादिभौतिकम् ॥ २५ ॥ सर्वत्र सर्वदा सत्तास्फूर्तिप्रदत्वेन सन्तमिति शेषः ॥३०॥ उत्कृष्टं धर्मं आत्मदर्शनम् ॥३१॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

य एवंविधः कृष्णः स एव वसुदेवसूनुरिति सहदेवप्रतिज्ञा नारदवचनाभ्यां निश्चेतुमध्यायमारभते एवमुक्त्वेत्यादि ॥१॥ अप्रमेयो निर्गुणत्वात् परं पश्चाद्भावि कार्यं तत् आक्रामति व्याप्नोतीति पराक्रम उपादानं । अप्रमेयश्चासौ पराक्रमश्चेति समासः । शुद्धशबलब्रह्मरूपोयं केशिहन्तेत्यर्थः ॥ २ ॥

मानिनां बलिनां राज्ञां मध्ये वै दर्शिते पदे ।
ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिः सहदेवस्य मूर्धनि ॥ ६
अदृश्यरूपा वाचश्चाप्यब्रुवन्साधु साध्विति ।
अविध्यदजितं कृष्णं भविष्यद्भूतजल्पकः ॥ ७
सर्वसंशयनिर्मोक्ता नारदः सर्वलोकवित् ।
उवाचाखिलभूतानां मध्ये स्पष्टतरं वचः ॥ ८
कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चयिष्यन्ति ये नराः ।
जीवन्मृतास्तु ते ज्ञेया न संभाष्याः कदाचन ॥ ९
वैशंपायन उवाच ।
पूजयित्वा च पूजार्हान्ब्रह्मक्षत्रविशेषवित् ।
सहदेवो नृणां देवः समापयत कर्म तत् ॥ १०
तस्मिन्नभ्यर्चिते कृष्णे सुनीथः शत्रुकर्षणः ।
अतिताम्रेक्षणः कोपादुवाच मनुजाधिपान् ॥ ११
स्थितः सेनापतिर्योऽहं मन्यध्वं किं तु सांप्रतम् ।
युधि तिष्ठाम संनह्य समेतान्वृष्णिपाण्डवान् ॥ १२
इति सर्वान्समुत्साह्य राज्ञस्तांश्चेदिपुङ्गवः ।
यज्ञोपघाताय ततः सोमन्त्रयत राजभिः ॥ १३
तत्राहूता गताः सर्वे सुनीथप्रमुखा गणाः ।
समदृश्यन्त संक्रुद्धा विवर्णवदनास्तथा ॥ १४
युधिष्ठिराभिषेकं च वासुदेवस्य चार्हणम् ।
न स्याद्यथा तथा कार्यमेवं सर्वे तदाऽब्रुवन् ॥ १५
निष्कर्षान्निश्चयात्सर्वे राजानः क्रोधमूर्छिताः ।
अब्रुवंस्तत्र राजानो निर्वेदादात्मनिश्चयात् ॥ १६
सुहृद्भिर्वार्यमाणानां तेषां हि वपुराबभौ ।
आमिषादपकृष्टानां सिंहानामिव गर्जताम् ॥ १७
तं बलौघमपर्यन्तं राजसागरमक्षयम् ।
कुर्वाणं समयं कृष्णो युद्धाय बुबुधे तदा ॥ १८

इति श्रीमहा० सभा० अर्घाभिहरणपर्वणि राजमन्त्रणे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

समाप्तं अर्घाभिहरणपर्व ।

ननु उपाध्यविवक्षया ब्रह्मभावोस्मदादीनामप्यस्ति तद्विवक्षायां तु फलशालाद्धवरकृष्णस्यास्माकं च ज्ञानैश्वर्यतारतम्येपि तस्य व्यावृत्तत्त्वेनास्मदादिवदुभयविधब्रह्मभावो नास्त्येवेत्याशंक्याह कृष्णमिति । यथा परिमाणतारतम्यस्य विश्रान्तिराकाशादौ देशतः कालतश्च परिच्छेदाभावात् दृष्टा तथा ऐश्वर्यतारतम्यस्यापि द्रष्टव्या । ननु प्रलये कार्यमात्रनाशस्य वक्तव्यत्वात्कथं कृष्णविग्रहस्य कालापरिच्छेद्यत्वं युज्येतेति चेन्न । तस्याकार्यत्वात् । न हि पूर्वोदाहृतस्य हिरण्यश्मश्रुत्वादिविशिष्टस्य ब्रह्मणः कार्यत्वं वक्तुं शक्यं । 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'इति न्यायाविरोधात् । शास्त्रान्त्यन्यायविरोधाच्च । तत्र हि नित्यसिद्धेश्वरादर्वाचीनानां ज्ञानध्यानसिद्धानामीश्वराणामैश्वर्यं वियदादिजगत्सृष्टिसंहारादिव्यापारवर्जं तेन सह भोगसाम्यमात्रं । हेतुश्चात्रोक्तः असन्निहितत्वादिति । भौतिकपदार्थसृष्ट्यादिसमकाले हि तेषां सृष्टिप्रलयाविति न ते भूतोत्पत्तिलयकाले संनिहिताः । अयं तदानीमपि संनिहितोस्तीति नित्य एव । व्यावहारतः सर्गपरंपराया आद्यन्तशून्यत्वात्तद्धेतुहेतोरस्यापि तथात्वं दुर्वारं । नन्वस्य नित्यत्वे तल्लोकादेरपि नित्यत्वं वाच्यं। तथा चाद्वैतक्षतिरिति चेत् भ्रान्तोसि । यथा त्रैलोक्यनाशेपि ब्रह्मलोकाद्यस्ति तथा ब्रह्मलोकनाशेपि तल्लोकादिकमस्ति । यथा सत्स्वपि ब्रह्मलोकादिषु अस्मदादीनां शुद्धं कैवल्यमप्रतिहतं तथा तस्मिन्नपि सति भविष्यतीति का नो हानिः । ये तु तल्लोकप्राप्तिरेव कैवल्यमित्याहुस्तदश्रौतमिति व्युत्पादितमन्यत्र । 'केचिदाहुरिमं शाम्बं केचिद्विष्णुं परे रविम् ।केचिद्गणेशं केप्यम्बां मद्विधाः पार्थसारथिम्'।तस्माद्युक्तं कमलपत्राक्षस्य पूर्वोक्तरीत्य असंगस्य साक्षाद्ब्रह्मत्वं इतरेषांतूपाधितादात्म्यव्यवहितमिति महान्भेद इति युक्तं कृष्णस्यार्चनीयतमत्वं । प्रत्यग्दृशेरेव देहेन्द्रियाद्युपाधिसान्निध्यान्मुरसुखवत्कृष्णरूपेण चरमे जन्मनि पराग्दृश्यात्मनाभासमानत्वादिति दिक् ॥ ९ ॥ सुनीथः शिशुपालः ॥ १४ ॥ निर्वेदात् अपमानेन देहादौ वैराग्यात् आत्मनिश्चयात्स्वबल्यत्वानिश्चयात् ॥ १६ ॥ समयं संकेतम् ॥ १८ ॥ इति सभाप० नै० भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

# शिशुपालवधपर्व ।

## ४०

वैशंपायन उवाच ।

ततः सागरसंकाशं दृष्ट्वा नृपतिमण्डलम् ।
संवर्तवाताभिहतं भीमं क्षुब्धमिवार्णवम् ॥ १
रोषात्प्रचलितं सर्वमिदमाह युधिष्ठिरः ।
भीष्मं मतिमतां मुख्यं वृद्धं कुरुपितामहम् ।
बृहस्पतिं बृहत्तेजाः पुरुहूत इवारिहा ॥ २
असौ रोषात्प्रचलितो महान्नृपतिसागरः ।
अत्र यत्प्रतिपत्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३
यज्ञस्य च न विघ्नः स्यात्प्रजानां च हितं भवेत् ।
यथा सर्वत्र तत्सर्वं ब्रूहि मेऽद्य पितामह ॥ ४
इत्युक्तवति धर्मज्ञे धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
उवाचेदं वचो भीष्मस्ततः कुरुपितामहः ॥ ५
मा भैस्त्वं कुरुशार्दूल श्वा सिंहं हन्तुमर्हति ।
शिवः पन्थाः सुनीतोऽत्र मया पूर्वतरं वृतः ॥
प्रसुप्ते हि यथा सिंहे श्वानस्तस्मिन्समागताः ।
भषेयुः सहिताः सर्वे तथेमे वसुधाधिपाः ॥ ७
वृष्णिसिंहस्य सुप्तस्य तथामी प्रमुखे स्थिताः ।
भषन्ते तात संक्रुद्धाः श्वानः सिंहस्य संनिधौ ॥८
न हि संबुध्यते यावत्सुप्तः सिंह इवाच्युतः ।
तेन सिंहीकरोत्येतान्नृसिंहश्चेदिपुङ्गवः ॥ ९
पार्थिवान्पार्थिवश्रेष्ठः शिशुपालोऽप्यचेतनः ।
सर्वान्सर्वात्मना तात नेतुकामो यमक्षयम् ॥ १०
नूनमेतत्समादातुं पुनरिच्छत्यधोक्षजः ।
यदस्य शिशुपालस्य तेजस्तिष्ठति भारत ॥ ११
विप्लुता चास्य भद्रं ते बुद्धिर्बुद्धिमतां वर ।
चेदिराजस्य कौन्तेय सर्वेषां च महीक्षिताम् १२
आदातुं च नरव्याघ्रो यं यमिच्छत्ययं तदा ।
तस्य विप्लवते बुद्धिरेवं चेदिपतेर्यथा ॥ १३
चतुर्विधानां भूतानां त्रिषु लोकेषु माधवः ।
प्रभवश्चैव सर्वेषां निधनं च युधिष्ठिर ॥ १४

वैशंपायन उवाच ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा ततश्चेदिपतिर्नृपः ।
भीष्मं रूक्षाक्षरा वाचः श्रावयामास भारत ॥१५

इति श्रीमहा० सभाप० शिशुपालवधपर्वणि युधिष्ठिराश्वासने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

शिशुपाल उवाच ।

विभीषिकाभिर्बह्वीभिर्भीषयन्सर्वपार्थिवान् । न व्यपत्रपसे कस्माद्वृद्धः सन्कुलपांसनः ॥ १

---

४०

अत्र स्वन्तं भवेद्यन्न इतिपाठे नः अस्माकं स्वन्तं शुभोदर्कम् ॥ ३ ॥ शिवः पन्थाः कृष्णाश्रयरूपः सुनीतः सुनीतिसहितः ॥ ६ ॥ नूनमेतदिति । 'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्' इति भगवद्वचनात् शिशुपालेपि विभूतिमत्त्वात्पूर्वं भगवत्पार्षदत्वाच्च पारमेश्वरं ज्ञानैश्वर्यादिरूपं तेजोस्ति तस्यादानं तद्देहपातेनैवेति तं हन्तुमिच्छतीत्यर्थः पुनः शब्दो हिरण्याक्षाद्यपेक्षया ॥ ११ ॥ आदातुं संहर्तुं विप्लवते विपर्ययं प्राप्नोति ॥ १३ ॥ कुतः कृष्णोऽन्येषां तेजांस्यादत्ते न तु तानि पृथक् तिष्ठन्तीत्यत आह चतुर्विधानामिति । चेतनाचेतनप्रपञ्चस्य जले तरङ्गबुद्बुदन्यायेन तत्रैवोत्पत्तिप्रलययोः श्रवणात् । एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानामिति तदनन्यत्वाच्च सर्वस्येति भावः ॥ १४ ॥ इति सभाप० नै० भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

---

४१

ननु विभीषिकाभिर्बह्वीभिरित्यादिग्रन्थो भगवन्निन्दापरत्वान्न भूतार्थवादः । किं तु ध्यानमात्रं ध्येयसारूप्यप्रापकं तच्च द्वेषेणापि कर्तव्यमित्यतिशयोक्तिमात्रं ध्यानविधेस्तावकं । अन्यथा भगवन्निन्दाकृतां वेनादीनां 'भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः' इत्यादिदोषस्मरणमनुपपन्नं स्याद्बृहदारण्यकपञ्चमे च ब्रह्मविदं याज्ञवल्क्यं द्विषतः शाकल्यस्य सद्यो मृत्युरुक्तोऽस्थ्नां च संस्कारालाभेन दुर्गतिश्च सूचिता । साक्षाद्ब्रह्मद्विषस्तु ततोप्याधिकं दुःखं वक्तव्यं स्यात् । अत्र च द्विषतोपि शिशुपालस्यापराधशतं क्षान्त्वा तस्मै भगवत-

युक्तमेतत्तृतीयायां प्रकृतौ वर्तता त्वया ।
वक्तुं धर्मादपेतार्थं त्वं हि सर्वकुरूत्तमः ॥ २
नावि नौरिव संबद्धा यथान्धो वान्धमन्वियात् ।
तथाभूता हि कौरव्या येषां भीष्म त्वमग्रणीः ॥ ३
पूतनाघातपूर्वाणि कर्माण्यस्य विशेषतः ।
त्वया कीर्तयतास्माकं भूयः प्रव्यथितं मनः ॥ ४
अवलिप्तस्य मूर्खस्य केशवं स्तोतुमिच्छतः ।
कथं भीष्म न ते जिह्वा शतधेयं विदीर्यते ॥ ५

यत्र कुत्सा प्रयोक्तव्या भीष्म बालतरैर्नरैः ।
तमिमं ज्ञानवृद्धः सन्गोपं संस्तोतुमिच्छसि ॥ ६
यद्यनेन हता बाल्ये शकुनिश्चित्रमत्र किम् ।
तौ वाऽश्ववृषभौ भीष्म यौ न युद्धविशारदौ ॥ ७
चेतनारहितं काष्ठं यद्यनेन निपातितम् ।
पादेन शकटं भीष्म तत्र किं कृतमद्भुतम् ॥ ८
वल्मीकमात्रः सप्ताहं यद्यनेन धृतोऽचलः ।
तदा गोवर्धनो भीष्म न तच्चित्रं मतं मम ॥ ९

---

सायुज्यं दत्तमित्युच्यते तस्मान्निन्दाग्रन्थः प्रकरणासंगते-र्भगवत्यसमवेतत्वाच्चाभूतार्थवाद एव । तथा हि । त्रिविधोऽर्थवादः 'विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते । भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः' इत्युक्तलक्षणः। एतेषां क्रमादुदाहरणानि । प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिदत्' स्ववपोत्खनने देहस्यैव नाशो भवतीत्यभूतार्थवादोऽयं । 'अग्निर्वै हिमस्य भेषजं'।'मेधातिथिं ह काण्वायनं मेषो भूत्वेन्द्रो जहार'इत्यादीनि। तस्मादिह निन्दकस्य मुक्तिर्विरुद्धेत्यभूतार्थवाद एवेति चेन्न तद्वत्कुत्सस्यापि भारतस्य तथा त्वापत्तेः । अनन्यगतिप्रकरणबाधापत्तेश्चानर्थक्यप्रतिहतानां विपरीतं बलाबलमिति न्यायेनाकाशादिश्रुतिवन्निन्दाश्रुतिरपि गौण्या वृत्त्या ब्रह्मपरतया नेयेति युक्तस्तत्स्यागः । अत एव श्रीमद्भागवतेऽपि हरिनिन्दाग्रन्थः स्तुतिपरत्वेनैव व्याख्यातः श्रीधरस्वामिभिः । एवं भीष्मेण बोधितः शिशुपालः स्वबोधमाविश्चिकीर्षुर्भीष्मं तावन्महीकरोति विभीषिकाभिरिति । हे नव्यप सः त्वं कुल्यानां मध्ये वृद्धः सन्नः अस्मान् पार्थिवान् वन्हीभिर्विभीषिकाभिः भीषयन्कस्मात्त्रपसे इति योजना । नोतुं स्तोतुं योग्यं नव्यं पाति गोपायतीति हे नव्यप हे परमेश्वर तत्त्वगूहनपर । कुल्यानां कुलगतीनां कुलतारकाणां ब्रह्मविदां मध्ये वृद्धः सन् नः अस्मान्पार्थिवान् शरीराकारपरिणतपृथिवीमात्रनिष्ठान् पृथिव्यंशबाहुल्यात् शरीरस्य पृथिवीत्वं । 'यच्छरीरं सा पृथिवी'इति श्रुतेश्च देहाभिमानयुक्तान् वन्हीभिर्नानाविधभेदवतीभिर्विभीषिकाभिः संसारभीतिहेतुभिः प्रमातृत्वमुखाभिः कर्तृत्वभोक्तृत्वादिभिः भीषयन्भीषयितुं किमिति त्रपसे त्वया वृद्धेनास्माकं संसारभयं प्रदर्शनीयमेव न तु तत्रास्माकमनधिकारमाशंक्य भीतिहरं तत्त्वं गोपनीयमित्यर्थः ॥ १ ॥ ननु वस्तुतत्त्वमपि उक्तमेवेत्याशंक्य यथा ज्ञातं तथा नोक्तमित्याह युक्तमिति। तृतीयायां प्रकृतौ वर्तता त्वया एतदेव धर्मादपेतार्थं वक्तुं युक्तमित्यन्वयः । द्वे प्रकृती परिणामिन्यौ माया तस्यां चित्प्रतिबिम्बश्च । तृतीया प्रकृतिस्त्वेतदुभयाध्यासाधिष्ठानं निर्विशेषं वस्तु तत्र वर्तमानेन तन्मात्रनिष्ठेन त्वया । धर्मादपेतः मोक्षस्तस्याकर्मसाध्यत्वात्तदर्थम् । धर्मादित्यलुक्समासः । मोक्षार्थं एतदेव तृतीयप्रकृतिरूपं वक्तुं युक्तं न तु सगुणं । अस्माकं ब्रह्मलोकान्तसोपानफलस्यानपेक्षितत्वादित्यर्थः । एवं च यथा ज्ञातं तथा नोक्तमित्युक्तं भवति उक्तेऽर्थे हेतुमाह त्वं हि सर्वकुरूत्तम इति ॥ २ ॥ एतदेव सदृष्टान्तं विवृणोति नावीति । यथाऽरित्रकर्णधारादिमत्या महानावि संबद्धा क्षुद्रा नौः पारं प्राप्नोति । यथा वान्धं शरीरं जडत्वात् अन्धः अन्नं । भिःसा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नम्'इत्यमरः । अन्वियात् अनुलक्षीकृत्य चलेत् । 'अन्नं ह प्राणः' इति श्रुतेरनुभवाच्च । तथाभूताः त्वदधीनगतयस्त्वदधीनजविनाश्च कौरव्याः येषां चास्मदादीनां त्वं अग्रणीः पुरो भूत्वा पुरुषार्थप्रापकस्तेऽपि तथाभूता एवेत्यर्थः । तस्मादनन्यगतिकानामस्माकं अवश्यं त्वया उपदेशः कर्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ पूतनेति । अस्य सगुणब्रह्मणः प्रव्यथितं निर्गुणेऽपि गुणारोपेण वस्तुतत्त्वगोपनाद्दुःखितमित्यर्थः ॥ ४ ॥ अवेति । लिप्तस्य मूर्खस्य इच्छत इति कर्मणि षष्ठ्यः । लिप्तं विषयसंगिनं मूर्खं मूढं मां केशवं स्तोतुमिच्छन्तं अव तुच्छमपि भगवद्भक्तं मा पालय । हितोपदेशेनेति भावः । अत्याश्चर्यमेतदित्याह कथमिति । हे भीष्म हे वित् हे विद्वन्ते नम्रे मादृशेऽपि उपनते शिष्ये इयं जिह्वा त्वदीया त्वया शतधा कथं न ईर्यते प्रेर्यते अनेकैः प्रकारैस्तत्त्वं प्रतिपादयितुमिति शेषः ॥५॥ यत्रेति । यत्र सगुणे कुत्सा निन्दा बालतरैः आपातत उपनिषन्मात्राध्येतृभिर्बटुभिः । बालेतरैरिति पाठे वृद्धैरपि । 'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतं तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इत्यब्रह्मत्वे कुत्सा प्रयोक्तव्या । तमिमं गोपयतीति गोपः तं गोपं व्यधिकरणे द्वितीये । तस्य सबलस्य गूहनकर्तारं शुद्धं संस्तोतुं सम्यक् प्रस्तोतुमिच्छसि । प्रार्थनायां पञ्चमो लकारः । स्तोतुं इच्छां कुर्वित्यर्थः ॥ ६ ॥ अनन्तब्रह्माण्डाधिपे मायाविन्यपि पूतनाघातादिकमत्यन्तं तुच्छमित्याह यद्यनेनेत्यादिना । शकुनिः पूतना । पाठान्तरे शकुनिश्चत्खेचरस्तृणावर्तः ॥ ७ ॥

भुक्तमेतेन बह्वन्नं क्रीडता नगमूर्धनि ।
इति ते भीष्म शृण्वानाः परे विस्मयमागताः ॥ १०
यस्य चानेन धर्मज्ञ भुक्तमन्नं बलीयसः ।
स चानेन हतः कंस इत्येतन्न महाद्भुतम् ॥ ११
न ते श्रुतमिदं भीष्म नूनं कथयतां सताम् ।
वक्ष्ये त्वामधर्मज्ञं वाक्यं कुरुकुलाधम ॥ १२
स्त्रीषु गोषु न शस्त्राणि पातयेद्ब्राह्मणेषु च ।
यस्य चान्नानि भुञ्जीत यत्र च स्यात्प्रतिश्रयः ॥ १३
इति सन्तोऽनुशासन्ति सज्जनं धर्मिणः सदा ।
भीष्म लोके हि तत्सर्वं वितथं त्वयि दृश्यते ॥ १४
ज्ञानवृद्धं च वृद्धं च भूयांसं केशवं मम ।
अजानत इवाख्यासि संस्तुवन्कौरवाधम ॥ १५
गोघ्नः स्त्रीघ्नश्च सन्भीष्म त्वद्वाक्याद्यदि पूज्यते ।
एवंभूतश्च यो भीष्म कथं संस्तवमर्हति ॥ १६

असौ मतिमतां श्रेष्ठो य एष जगतः प्रभुः ।
संभावयति चाप्येवं त्वद्वाक्याच्च जनार्दनः ।
एवमेतत्सर्वमिति तत्सर्वं वितथं ध्रुवम् ॥ १७
न गाथा गाथिनं शास्ति बहु चेदपि गायति ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि भूलिङ्गशकुनिर्यथा ॥ १८
नूनं प्रकृतिरेषा ते जघन्या नात्र संशयः ।
अतः पापीयसी चैषा पाण्डवानामपीष्यते ॥ १९
येषामर्च्यतमः कृष्णस्त्वं च येषां प्रदर्शकः ।
धर्मवांस्त्वमधर्मज्ञ सतां मार्गादवप्लुतः ॥ २०
को हि धर्मिणमात्मानं जानञ्ज्ञानविदां वरः ।
कुर्याद्यथा त्वया भीष्म कृतं धर्ममवेक्षता ॥ २१
चेत्त्वं धर्मं विजानासि यदि प्राज्ञा मतिस्तव ।
अन्यकामा हि धर्मज्ञा कन्यका प्राज्ञमानिना ।
अम्बा नामेति भद्रं ते कथं सापहृता त्वया ॥ २२

इति ते त्वत्तः शृण्वानाः विस्मयमागताः नाहमित्यर्थः ॥ १० यस्य चेति । यस्य द्रौपद्यादेः अन्न अदनीयं शाकलेशादि भुक्तं स च कंसः कामयमानः दुर्वाससः तृप्त्यादिकं इच्छन् अनेन कृष्णेन हतः गतः अनुसृतः । हन्तेर्गत्यर्थत्वात् तदिष्टं संपादितामित्यर्थः । सर्वात्मनि कृष्णे शाकलेशेन तृप्ते विश्वतृप्तिर्जातेत्यपि नाद्भुतमित्यर्थः ॥ ११ ॥ नते नम्रे शिष्यसमीपे कथयतां सतां मुखात् इदं त्वदुक्तं पूतनावधादि मया श्रुतं । किं ज्ञातस्यार्थस्य निरूपणेनेति भावः । हे कुलाधम कुलं गृहं अधमं यस्य गृहातीतसंन्यासधर्मरत । यत्तु वाक्ये अहं वक्ष्ये बोद्धुं शक्ष्ये तत्कुरु । आमधर्मज्ञ अपक्वधर्मः क्षयिष्णुफलत्वात् कर्मोपास्ती तदभिज्ञं मां प्रति तदेव वाक्यं अपूर्वार्थप्रतिपादकं वचः निर्गुणब्रह्मविषयं कुरु । तच्चाहं ज्ञातुं शक्ष्ये इत्यर्थः ॥ १२ ॥ स्त्रीष्विति प्रतिश्रयोऽङ्गीकारः यश्च स्वीयत्वेनाङ्गीकृतस्तास्मिन्नित्यर्थः । 'प्रतिश्रयः सभायां चाश्रये' इति मेदिनी ॥ १३ ॥ हिंसाया अनिष्टसाधनत्वमुक्तं तत्त्वयि विज्ञानवति वितथं व्यर्थम् । 'हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' इत्युक्तेः ॥ १४ ॥ ज्ञानेति । ज्ञातज्ञापनं व्यर्थमित्यर्थः ॥१५॥ गोघ्न इति। गां वाचं हन्ति हिनस्ति'।'यतो वाचो निवर्तन्ते' इति श्रुतेः । स्वस्माद्व्यावर्तयति तथा स्त्रीव स्त्रीसृष्टौ सहायभूता माया तद्धन्ता । वाचा मायिकस्य गुणवतः स्तुतिः कर्तव्या- ऽसौ त्वमायः वागतीतः कथं संस्तवमर्हति न कथमपीति ॥ १६ ॥ मतिमतां मतिमद्भिः श्रेष्ठः प्रशस्यतमः । संभावयतीति । जनार्दनः संसारवर्धनेन जनपीडनकरः मायावी ईश्वरः त्वद्वाक्यात् तव वश्यवचसो वाक्यात् एतत्सर्वं पूतनाघातादि आत्मनि संभावयति सत्यत्वेन दर्शयति। श्रेष्ठेन त्वया यदेव वक्तव्यं तदेव लोकःसत्यमित्यध्यवस्यति । वस्तुतस्तु एतत्सर्वं कृष्णे क्रियारोपणं वितथं । 'निष्कलं निष्क्रियम्'इत्यादिश्रुतेः ॥ १७ ॥ तत्र 'सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे । नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्नोदरपरायणाः' इति शब्दमात्रं वदन्ति न शमादिपरा भवन्ति तादृशो भीष्मो न भवतीत्याह द्वाभ्यां । न गाथेति । भूलिङ्गो नाम भूशायी पक्षी मा साहसमित्यनिशं वदन्नपि सिंहदंष्ट्रान्तरस्थं मांसमादत्ते । स्वयं साहसमतिशयितं करोति । तथा न हिंसादिकं कर्तव्यमिति वदन्नन्यो हिंसामेव करोतीत्यर्थः ॥ १८ ॥ त्वं तु अस्मिन् चरमे जन्मनि यथा वदसि तथैव करोषीत्याह नूनमिति । प्रकृतिः शरीरं जघन्या चरमा तथा पाण्डवानामपि प्रकृतिर्जघन्याऽतो हेतोः पापीयसी वेदोक्तधर्मसंरक्षकतरा । पातीति पाः वेदोक्तो धर्म इति पाखण्डपदनिर्वचने व्यासेनैव व्याख्याततत्वात् तं पातीति पापा अतिशयेन पापा पापीयसीति योगात् ॥ १९ ॥ चरमदेहत्वे गमकमाह येषामिति । अतो हेतोः सर्वथा त्वं अवेति संबन्धः कं अवेत्युच्यते योऽधर्मज्ञः धर्मज्ञो न भवति यश्च सतां मार्गात् प्लुतः च्युतः तमिति यत्तच्छब्दाध्याहारेण योज्यम् ॥ २० ॥ यथा वदसि तथा करोषीत्येतद्दर्शयितुं भीष्मस्य ब्रह्मचर्यदार्ढ्यं स्तौति पञ्चभिः । को हीति । धर्मिणं धर्मेऽधिकारिणम् ॥ २१ ॥ अन्येति । हे प्राज्ञमानिना त्वया हृता या कन्यका सा त्वत्तः कथं भद्रं आप न कथंचन दृढत्वात्तव ब्रह्मचर्यस्य ॥ २२ ॥

तां त्वयाऽपि हृतां भीष्म कन्यां नैषितवान्यतः ।
भ्राता विचित्रवीर्यस्ते सतां मार्गमनुष्ठितः ॥ २३
दारयोर्यस्य चान्येन मिषतः प्राज्ञमानिनः ।
तव जातान्यपत्यानि सज्जनाचरिते पथि ॥ २४
को हि धर्मोऽस्ति ते भीष्म ब्रह्मचर्यमिदं वृथा ।
यद्धारयसि मोहाद्वा क्लीबत्वाद्वा न संशयः ॥ २५
न त्वहं तव धर्मज्ञ पश्याम्युपचयं क्वचित् ।
न हि ते सेविता वृद्धा य एवं धर्ममब्रवीः ॥ २६
इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ।
सर्वमेतदपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २७
व्रतोपवासैर्बहुभिः कृतं भवति भीष्म यत् ।
सर्वं तदनपत्यस्य मोघं भवति निश्चयात् ॥ २८
सोऽनपत्यश्च वृद्धश्च मिथ्याधर्मानुसारकः ।
हंसवत्त्वमपीदानीं ज्ञातिभ्यः प्राप्नुया वधम् ॥ २९
एवं हि कथयन्त्यन्ये नरा ज्ञानविदः पुरा ।
भीष्म यत्तदहं सम्यग्वक्ष्यामि तव शृण्वतः ॥ ३०
वृद्धः किल समुद्रान्ते कश्चिद्धंसोऽभवत्पुरा ।
धर्मवागन्यथावृत्तः पक्षिणः सोऽनुशास्ति च ॥ ३१
धर्मं चरत माधर्ममिति तस्य वचः किल ।
पक्षिणः शुश्रुवुर्भीष्म सततं सत्यवादिनः ॥ ३२
अथास्य भक्ष्यमाजह्रुः समुद्रजलचारिणः ।
अण्डजा भीष्म तस्यान्ये धर्मार्थमिति शुश्रुम ॥ ३३
ते च तस्य समभ्याशे निक्षिप्याण्डानि सर्वशः ।
समुद्राम्भस्यमज्जन्त चरन्तो भीष्म पक्षिणः ।
तेषामण्डानि सर्वेषां भक्षयामास पापकृत् ॥ ३४
स हंसः संप्रमत्तानामप्रमत्तः स्वकर्मणि ॥
ततः प्रक्षीयमाणेषु तेषु तेष्वण्डजोऽपरः ।
अशङ्कत महाप्राज्ञः स कदाचिद्ददर्श ह ॥ ३५
ततः स कथयामास दृष्ट्वा हंसस्य किल्बिषम् ।
तेषां परमदुःखार्तः स पक्षी सर्वपक्षिणाम् ॥ ३६
ततः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा पक्षिणस्ते समीपगाः ।
निजघ्नुस्तं तदा हंसं मिथ्यावृत्तं कुरूद्वह ॥ ३७
ते त्वां हंससधर्माणमपीमे वसुधाधिपाः ।
निहन्युर्भीष्म संक्रुद्धाः पक्षिणस्तं यथाण्डजम् ३८
गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
भीष्म यां तां च ते सम्यक्कथयिष्यामि भारत ३९

---

तव भ्रातापि तादृश इत्याह तामिति । यदर्थं त्वद्धृता स भ्रातापि तां नैषित्तवान् । अन्यकामा हीति पूर्वोक्तहेतोरेवेत्यर्थः ॥ २३ ॥ अम्बा नाम्न्या प्रार्थ्यमानेनापि त्वया ब्रह्मचर्यं न त्यक्तमित्युक्त्वा धर्मसंकटेपि त्वया तन्न त्यक्तमित्याह दारयोरिति । यस्य विचित्रवीर्यस्य हे प्राज्ञ तव मिषतः पश्यतः मानिनः मानवतः ॥ २४ ॥ को हि धर्म इति । हे भीष्म ते तव निकटे अहिर्वृत्रासुरस्तस्य धर्मो दम्भदर्पादिः कोस्ति न कोपीत्यर्थः । तव कोपि दम्भादिरासुरो धर्मो नास्ति अतः यदिदं धारयसि ब्रह्मचर्यं तद्वृथा । व्यासेनेव त्वयापि भ्रातृक्षेत्रेषु अपत्योत्पादनं कर्तुं युक्तमेवासीदित्यर्थः । वा शब्दौ इवार्थे । ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ । मोहं प्राप्येव क्लीबत्वं प्राप्येव मूर्च्छितवत् क्लीबवच्चासंभावितविलत्रं तव ब्रह्मचर्यमित्यर्थः ॥२५॥ न त्विति । हे धर्मज्ञ क्वचिदपि साधने शमदमादौ तव उपचयं वृद्धिं न पश्यामि इति न अपि तु पश्याम्येव । हिते हितानिमित्तं त्वया वृद्धाश्च सेविता इत्यपि पश्यामि । तत्र लिङ्गं य एवं धर्ममब्रवीरिति एवं कृष्णस्यैव पूज्यत्वरूपं धर्मं ॥ २६ ॥ इष्टं दत्तमिति सार्धश्लोकत्रयं वाक्यं । इष्टादिकं अपत्यस्य षोडशीमपि कलां नार्हति अनपत्यस्य च व्रतादिकं मोघमित्येवं अन्ये नराः कथयन्तीति योजना ॥ २७ ॥ स त्वं अनपत्यः सन्मिथ्याधर्मं आभ्यासिकधर्मोऽपत्योत्पादनादिः तस्य अनुसारकः तं अनुसर्तुं वृद्धो वयोतीतत्वादयोग्योसीत्यर्थः । अनुशासनादिति पाठे मिथ्याधर्मानुशासनं देहाभिमानयोग्यं शास्त्रं विहायानपत्यश्च वृद्धश्च जातोसीति संबन्धः । तस्माद्धंसवत्संन्यासिवत् ज्ञातिभ्यः ज्ञानेभ्यः तत्त्वज्ञानात् । श्रवणादिव्यापारभेदात् बहुत्वं वधं गतिमोक्षं । गत्यर्थस्य हन्तेरिदं रूपं । श्रवणमनननिदिध्यासनैः सम्यगनुष्ठितैरात्मानं प्राप्नुहीत्यर्थः ॥ २९ ॥ यस्त्वनृताभिसंधि. शब्देनैव ज्ञानं वदति न च ध्यानेन साक्षात्करोति संबध्यत इत्यस्मिन्नर्थे हंसाख्यायिकामाह एवं हीत्यादिना कुरूत्तमेत्यन्तेन ॥३०॥ ते त्वामिति । ते इमे वसुधाधिपा शरीररूपायाः पृथ्व्या अधिपाश्चालकाः प्राण एकादशेन्द्रियाणि च त्वां निहन्युरपि इतरानिव नानायोनिपातेन हिंस्युरपि न तु हिंसितवन्तः । तत्र हनने दृष्टान्तः । संक्रुद्धाः पक्षिणस्तमण्डजमिवेति । अपिः काक्वा हिंसाया अभावं द्योतयति । तत्र हेतुः हंससधर्माणं हंसाः ध्यानभिक्षवः तत्तुल्यं सदाध्यायिनं जितप्राणेन्द्रियगणमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

अन्तरात्मन्यभिहते रौषि पत्ररथाशुचि । अण्डभक्षणकर्मैतत्तव वाचमतीयते ॥ ४०

इति श्रीमहा० सभापर्वणि शिशुपालवधपर्वणि शिशुपालवाक्ये एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

शिशुपाल उवाच ।

स मे बहुमतो राजा जरासंधो महाबलः ।
योऽनेन युद्धं नेयेष दासोयमिति संयुगे ॥ १
केशवेन कृतं कर्म जरासंधवधे तदा ।
भीमसेनार्जुनाभ्यां च कस्तत्साध्विति मन्यते ॥ २
अद्वारेण प्रविष्टेन छद्मना ब्रह्मवादिना ।
दृष्टः प्रभावः कृष्णेन जरासंधस्य भूपतेः ॥ ३
येन धर्मात्मनात्मानं ब्रह्मण्यमविजानता ।
नेषितं पाद्यमस्मै तद्दातुमग्रे दुरात्मने ॥ ४
भुज्यतामिति तेनोक्ताः कृष्णभीमधनंजयाः ।
जरासंधेन कौरव्य कृष्णेन विकृतं कृतम् ॥ ५
यद्ययं जगतः कर्ता यथैनं मूर्ख मन्यसे ।
कस्मान्न ब्राह्मणं सम्यगात्मानमवगच्छति ॥ ६
इदं त्वाश्चर्यभूतं मे यदिमे पाण्डवास्त्वया ।
अपकृष्टाः सतां मार्गान्मन्यन्ते तच्च साध्विति ॥ ७
अथ वा नैतदाश्चर्यं येषां त्वमसि भारत ।
स्त्रीसधर्मा च वृद्धश्च सर्वार्थानां प्रदर्शकः ॥ ८

---

शाब्दपाण्डित्यमेव लोके बहुलं न त्वार्थिकमित्यर्थे पूर्वोक्तकथार्थसंग्राहिका गाथा अस्तीत्याह गाथामिति ॥ ३९ ॥ अभिहते कामादिभिः रौषि वदसि धर्मं एतत्तव अशुचि अण्डभक्षणकर्म वाचमतीयते उक्तिविरुद्धमित्यर्थः ॥ ४० ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

---

### ४२

एवं भीष्मप्रशंसामुखेन हरिं स्तुत्वा संप्रति जरासंधस्तुत्यापि तं स्तौति स मे इत्यादिना । 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' इति गीतोक्तेः समे ब्रह्मणि जरासंधोपि बहुमतः श्रेष्ठः यः अयं प्रत्यगात्मा दास इति मत्वाऽनेन स्वामिना कृष्णेन युद्धं न इयेष नेच्छितवान् ॥१॥ अनेनेत्यन्वादेशादयमर्थस्य प्रतीचः तदर्थेन कृष्णेनाभेदं दर्शयति केशवेनेति कः ब्रह्मा ॥ २ ॥ केशवादिभिर्यत्कृतं तदेवाह अद्वारेणेत्यादिना । कृष्णेन जरासंधानुग्रहार्थं गच्छता गजेन्द्रानुग्रह इव चतुर्भुजं गरुडारूढं स्वं रूपं प्रकाशितं किं तु प्रसिद्धमपि कृष्णरूपं ब्राह्मणवेषेणाच्छादितं । तत् ब्रह्मा साधु मन्यते । अन्यथा सर्वेषां तत्स्वरूपदर्शा ब्रह्मलोकोल्लङ्घनेन ब्रह्मणोऽपमानो भवतीति दुःसहं तत्तस्य । तथा च श्रुतिः 'तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विदुः' इति । एषां देवानां । एतद्ब्रह्म । अद्वारेण प्रवेशादिकं मानुषं नाट्यमनुकुर्वतः शत्रुत्वाभिनयार्थं युक्तमेतत् लौकिकमर्यादाप्रदर्शनार्थम् ॥ ३ ॥ स्तुतिपक्षे चतुर्थी षष्ठ्यर्थे । दुरात्मनो लोकस्याग्रे अस्मै कृष्णाय पाद्यं दातुं नेषितं तत्स्वरूपगूहनायेति भावः ॥४॥ विकृतं भोजनप्रत्याख्यानं वैराभिनयायेत्यर्थः ॥ ५ ॥ एवं कृष्णेन सह जीवतैवैकमत्यं प्राप्यान्ते कृष्णदर्शनेनैव प्राणांस्त्यजता तत्सायुज्यं प्राप्तमित्याह यद्ययमिति । अयं जरासंधाख्यो जीव एव जगतः कर्ता भवेत्तर्हि एनं मूर्खं प्रति यथातथा कस्मात् अन्यसे चेष्टसे मूर्खवदेनं कथं मन्यस इत्यर्थः । अत उत्तरग्रन्थात्कृष्णस्तुतौ भीष्मेण पूतनावधादि असकृज्जरासंधपराजयान्तं च वाक्यजातमुक्तमिति ज्ञेयम् । अयं च ब्राह्मणं ब्राह्मणवेषेणागतं कृष्णं मरणकालेपि कस्मात् आत्मानं प्रत्यगात्मभावेन सम्यक् नावगच्छति किं तु अवगच्छत्येव अयं भावः । जीवश्चेत्परस्तर्हि जीवेन कृतं परेणैव कृतमिति जीवो न स्तोतव्यः पर्यनुयोक्तव्यो वा । 'को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इति श्रुतेः । तस्यैव सर्वचेष्टाप्रवर्तकत्वात् । 'तथा अन्ते मतिः सा गतिः' इति स्मृतेरन्ते कृष्णं पश्यतः कृष्णभावः सिद्ध इति तस्य लोकदृष्ट्या कृष्णद्रोहित्वेपि न काचिद्धानिः । अन्ते कृष्णदर्शनहेतोरनेकजन्मान्तरानुष्ठितस्य पुण्यपुञ्जस्य सत्त्वात्पुण्यवानेवेति स मन्तव्य इति ॥६॥ एवं मूर्खाणां विरुद्धवदाभासमानैर्वाक्यैः कृष्णं तद्भक्तांश्च स्तुत्वा संप्रत्यनुपदोक्तरीत्या सद्यः कैवल्यप्राप्तये कृष्णसंनिधौ मृत्युसंपादनार्थं तानेव निन्दति स्पष्टार्थैर्वाक्यैः । इदं त्वित्यादिना । तु शब्द उक्तवैपरीत्यद्योतनार्थः ॥ ७ ॥

वैशंपायन उवाच।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रूक्षं रूक्षाक्षरं बहु।
चुकोप बलिनां श्रेष्ठो भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ९
तथा पद्मप्रतीकाशे स्वभावायतविस्तृते।
भूयः क्रोधाभिताम्राक्षे रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ १०
त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुः सर्वपार्थिवाः।
ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥ ११
दन्तान्संदशतस्तस्य कोपाद्ददृशुराननम्।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव जिघत्सतः ॥ १२
उत्पतन्तं तु वेगेन जग्राहैनं मनस्विनम्।
भीष्म एव महाबाहुर्महासेनमिवेश्वरः ॥ १३
तस्य भीमस्य भीष्मेण वार्यमाणस्य भारत।
गुरुणा विविधैर्वाक्यैः क्रोधः प्रशममागतः ॥ १४
नातिचक्राम भीष्मस्य स हि वाक्यमरिंदमः।
समुद्वृत्तो घनापाये वेलामिव महोदधिः ॥ १५
शिशुपालस्तु संक्रुद्धे भीमसेने जनाधिप।
नाकम्पत तदा वीरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ॥ १६
उत्पतन्तं तु वेगेन पुनः पुनररिंदमः।
न स तं चिन्तयामास सिंहः क्रुद्धो मृगं यथा १७
प्रहसंश्चाब्रवीद्वाक्यं चेदिराजः प्रतापवान्।
भीमसेनमभिक्रुद्धं दृष्ट्वा भीमपराक्रमम् ॥ १८
मुञ्चैनं भीष्म पश्यन्तु यावदेनं नराधिपाः।
मत्प्रभावविनिर्दग्धं पतङ्गमिव वह्निना ॥ १९
ततश्चेदिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा तत्कुरुसत्तमः।
भीमसेनमुवाचेदं भीष्मो मतिमतां वरः ॥ २०

इति श्रीमहा० सभापर्वणि शिशुपालवधपर्वणि भीमक्रोधे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

भीष्म उवाच।

चेदिराजकुले जातस्त्र्यक्ष एष चतुर्भुजः।
रासभारावसदृशं रुराव च ननाद च ॥ १
तेनास्य मातापितरौ त्रेसतुस्तौ सबान्धवौ।
वैकृतं तस्य तौ दृष्ट्वा त्यागाय कुरुतां मतिम् ॥२
ततः सभार्यं नृपतिं सामात्यं सपुरोहितम्।
चिन्तासंमूढहृदयं वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३
एष ते नृपते पुत्रः श्रीमाञ्जातो बलाधिकः।
तस्मादस्मान्न भेतव्यमव्यग्रः पाहि वै शिशुम् ॥४
न च वैतस्य मृत्युर्वै न कालः प्रत्युपस्थितः।
मृत्युर्हन्तास्य शस्त्रेण स चोत्पन्नो नराधिप ॥ ५
संश्रुत्योदाहृतं वाक्यं भूतमन्तर्हितं ततः।
पुत्रस्नेहाभिसंतप्ता जननी वाक्यमब्रवीत् ॥ ६
येनेदमीरितं वाक्यं ममैतं तनयं प्रति।
प्राञ्जलिस्तं नमस्यामि ब्रवीतु स पुनर्वचः ॥ ७
याथातथ्येन भगवान्देवो वा यदि वेतरः।
श्रोतुमिच्छामि पुत्रस्य कोऽस्य मृत्युर्भविष्यति ॥८
अन्तर्भूतं ततो भूतमुवाचेदं पुनर्वचः।
यस्योत्सङ्गे गृहीतस्य भुजावभ्यधिकावुभौ ॥ ९
पतिष्यतः क्षितितले पञ्चशीर्षाविवोरगौ।
तृतीयमेतद्बालस्य ललाटस्थं तु लोचनम् ॥ १०
निमज्जिष्यति तं दृष्ट्वा सोऽस्य मृत्युर्भविष्यति।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं श्रुत्वा तथा च समुदाहृतम् ॥ ११
पृथिव्यां पार्थिवाः सर्वे अभ्यागच्छन्दिदृक्षवः।
तान्पूजयित्वा संप्राप्तान्यथार्हं स महीपतिः ॥ १२
एकैकस्य नृपस्याङ्के पुत्रमारोपयत्तदा।
एवं राजसहस्राणां पृथक्त्वेन यथाक्रमम् ॥ १३
शिशुरङ्कसमारूढो न तत्प्राप निदर्शनम्।
एतदेव तु संश्रुत्य द्वारवत्यां महाबलौ ॥ १४
ततश्चेदिपुरं प्राप्तौ संकर्षणजनार्दनौ।
यादवौ यादवीं द्रष्टुं स्वसारं तौ पितुस्तदा ॥ १५
अभिवाद्य यथान्यायं यथाश्रेष्ठं नृपं च ताम्।
कुशलानामयं पृष्ट्वा निषण्णौ रामकेशवौ ॥ १६

---

रूक्षं अर्थतः रूक्षाक्षरं शब्दतश्च ॥ ९ ॥ महासेनं कार्तिकेयम् ॥ १३ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

रुराव शब्दं चकार ॥ १ ॥ मृत्युः स्थूलदेहवियोगः। कालः यमः मृत्युः हन्ता ॥ ५ ॥ तथा चेति। रासभारावसदृशं समुदाहृतं शब्दं॥ ११॥ निदर्शनं बाहुपातादिकं ज्ञापकं ॥ १५॥ कुशलं वल्कोशादिवृद्धिः अनामयं आरोग्यं ॥ १६॥

साभ्यर्च्य तौ तदा वीरौ प्रीत्या चाभ्यधिकं ततः ।
पुत्रं दामोदरोत्सङ्गे देवी संन्यदधात्स्वयम् ॥ १७
न्यस्तमात्रस्य तस्याङ्के भुजावभ्यधिकावुभौ ।
पेततुस्तच्च नयनं न्यमज्जत ललाटजम् ॥ १८
तद्दृष्ट्वा व्यथिता त्रस्ता वरं कृष्णमयाचत ।
ददस्व मे वरं कृष्ण भयार्ताया महाभुज ॥ १९
त्वं ह्यार्तानां समाश्वासो भीतानामभयप्रदः ।
एवमुक्तस्ततः कृष्णः सोऽब्रवीद्यदुनन्दनः २०
मा भैस्त्वं देवि धर्मज्ञे न मत्तोऽस्ति भयं तव ।
ददामि कं वरं किं च करवाणि पितृष्वसः ॥ २१
शक्यं वा यदि वाऽशक्यं करिष्यामि वचस्तव ।
एवमुक्ता ततः कृष्णमब्रवीद्यदुनन्दनम् ॥ २२
शिशुपालस्यापराधान्क्षमेथास्त्वं महाबल ।
मत्कृते यदुशार्दूल विद्ध्येनं मे वरं प्रभो ॥ २३

कृष्ण उवाच ।

अपराधशतं क्षाम्यं मया ह्यस्य पितृष्वसः ।
पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्वं शोके मनः कृथाः ॥२४

भीष्म उवाच ।

एवमेष नृपः पापः शिशुपालः सुमन्दधीः ।
त्वां समाह्वयते वीर गोविन्द वरदर्पितः ॥ २५

इति श्रीमहा० सभा० शिशु० शिशुपालवृत्तान्तकथने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

भीष्म उवाच ।

नैषा चेदिपतेर्बुद्धिर्यया त्वाह्वयतेऽच्युतम् ।
नूनमेष जगद्भर्तुः कृष्णस्यैव विनिश्चयः ॥ १
को हि मां भमिसेनाद्य क्षितावर्हति पार्थिवः ।
क्षेप्तुं कालपरीतात्मा यथैष कुलपांसनः ॥ २
एष ह्यस्य महाबाहुस्तेजोंशश्च हरेर्ध्रुवम् ।
तमेव पुनरादातुमिच्छत्युत तथा विभुः ॥ ३
येनैष कुरुशार्दूल शार्दूल इव चेदिराट् ।
गर्जत्यतीव दुर्बुद्धिः सर्वानस्मानचिन्तयन् ॥ ४

वैशंपायन उवाच ।

ततो न ममृषे चैद्यस्तद्भीष्मवचनं तदा ।
उवाच चैनं संक्रुद्धः पुनर्भीष्ममथोत्तरम् ॥ ५

शिशुपाल उवाच ।

द्विषतां नोऽस्तु भीष्मैष प्रभावः केशवस्य यः ।
यस्य संस्तववक्ता त्वं बन्दिवत्सततोत्थितः ॥ ६
संस्तवे च मनो भीष्म परेषां रमते यदि ।
तदा संस्तौषि राज्ञस्त्वमिमं हित्वा जनार्दनम् ॥७
दरदं स्तुहि बाल्हीकमिमं पार्थिवसत्तमम् ।
जायमानेन येनेयमभवद्दारिता मही ॥ ८
वङ्गाङ्गविषयाध्यक्षं सहस्राक्षसमं बले ।
स्तुहि कर्णमिमं भीष्म महाचापविकर्षणम् ॥ ९
यस्येमे कुण्डले दिव्ये सहजे देवनिर्मिते ।
कवचं च महाबाहो बालार्कसदृशप्रभम् ॥ १०

---

अपराधशतमिति । हि प्रसिद्धं । वधार्हाणामन्येषामपि मया अपराधशतं क्षाम्यं । हे पितृष्वसः ते पुत्रस्य तु संबन्धवशात्सर्वथा क्षाम्यमेवेत्यर्थः ॥ २४ ॥ यः आह्वयते युद्धायेति शेषः ॥ २५ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

४४

कृष्णस्यैव विनिश्चय इत्यनेन कृष्णप्रेरितोयं प्रलपतीत्युक्तम् ॥ १ ॥ कालपरीतात्मा कालेन ग्रस्तदेहः ॥ २ ॥ हरेस्तेजोंशस्यास्य शिशुपालस्य । एष हरिस्तं स्वांशं आदातुं संहर्तुं ऐच्छत् । पुनःशब्दो हिरण्यकशिप्वाद्यपेक्षया ॥३॥ समुमूर्षुःकृष्णं कोपयितुं मिथ्यैव संक्रुद्धोपि सन् उत्तरं उत्कृष्टतरं वचनं उवाच ॥ ५ ॥ पुनस्तदेवाह द्विषतां न इति । समानाधिकरणे षष्ठ्यौ । केशवस्य यः प्रभावः स द्विषतां तं द्विषतामप्यस्माकमस्तु ॥ ६ ॥ एवं ईश्वरप्रभावं प्रार्थ्य तन्मूलहेतुं द्वेषमाहेतरस्तवेन संस्तवे चेत्यादिना । हित्वेति दधातेः रूपं । जनार्दनं हृदि निधाय तद्रूपत्वेन इतरान् राज्ञः स्तुहीत्यर्थः । निन्दापक्षे त्वृजुरेवार्थः ॥ ७ ॥ जायमानेनेति पाठे दारिता भीमेन मातुरङ्कात्पतता शिलेव येन मही विदारिता । यजमानेनेति पाठे ऋत्विग्भ्यो दित्सता भयं प्रापिता । ब्राम्हणानामाधिपत्ये खलनिग्रहायोगादिति भावः ॥ ८ ॥

वासवप्रतिमो येन जरासंधोतिदुर्जयः ।
विजितो बाहुयुद्धेन देहभेदं च लम्भितः ॥ ११
द्रोणं द्रौणिं च साधु त्वं पितापुत्रौ महारथौ ।
स्तुहि स्तुत्यावुभौ भीष्म सततं द्विजसत्तमौ ॥१२
ययोरन्यतरो भीष्म संक्रुद्धः सचराचराम् ।
इमां वसुमतीं कुर्यान्निःशेषामिति मे मतिः १३
द्रोणस्य हि समं युद्धे न पश्यामि नराधिपम् ।
नाश्वत्थाम्नः समं भीष्म न च तौ स्तोतुमिच्छसि॥
पृथिव्यां सागरान्तायां यो वै प्रतिसमो भवेत् ।
दुर्योधनं त्वं राजेन्द्रमतिक्रम्य महाभुजम् ॥ १५
जयद्रथं च राजानं कृतास्त्रं दृढविक्रमम् ।
द्रुमं किं पुरुषाचार्यं लोके प्रथितविक्रमम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम् ॥ १६
वृद्धं च भारताचार्यं तथा शारद्वतं कृपम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम् ॥ १७
धनुर्धराणां प्रवरं रुक्मिणं पुरुषोत्तमम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम् ॥ १८
भीष्मकं च महावीर्यं दन्तवक्रं च भूमिपम् ।
भगदत्तं यूपकेतुं जयत्सेनं च मागधम् ॥ १९
विराटद्रुपदौ चोभौ शकुनिं च बृहद्बलम् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पाण्ड्यं श्वेतमथोत्तमम् ॥
शङ्खं च सुमहाभागं वृषसेनं च मानिनम् ।
एकलव्यं च विक्रान्तं कालिङ्गं च महारथम् २१
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम् ।
शल्यादीनपि कस्मात्त्वं न स्तौषि वसुधाधिपान् ।
स्तवाय यदि ते बुद्धिर्वर्तते भीष्म सर्वदा ॥ २२
किं हि शक्यं मया कर्तुं यद्वृद्धानां त्वया नृप ।
पुरा कथयतां नूनं न श्रुतं धर्मवादिनाम् ॥ २३
आत्मनिन्दात्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ २४
यदस्तव्यमिमं शश्वन्मोहात्संस्तौषि भक्तितः ।
केशवं तच्च ते भीष्म न कश्चिदनुमन्यते ॥ २५
कथं भोजस्य पुरुषे वर्गपाले दुरात्मनि ।
समावेशयसे सर्वं जगत्केवलकाम्यया ॥ २६
अथ चैषां न ते बुद्धिः प्रकृतिं याति भारत ।
मयैव कथितं पूर्वं भूलिङ्गशकुनिर्यथा ॥ २७
भूलिङ्गशकुनिर्नाम पार्श्वे हिमवतः परे ।
भीष्म तस्याः सदा वाचः श्रूयन्तेऽर्थविगर्हिताः ॥
मा साहसमितीदं सा सततं वाशते किल ।
साहसं चात्मनातीव चरन्ती नावबुध्यते ॥ २९

---

वैप्रतिसम. विगतः प्रतिसमो यस्य स तथा स्वार्थे तद्धितः अतुल इत्यर्थः ॥ १५ ॥ केशवं अतिक्रम्य जयद्रथं किं प्रशंससीति योज्यं । निन्दापक्षे तु स्पष्ट एवार्थः ॥ १६ ॥ शल्यादीनिति । स्तवाय स्तूयते इति व्युत्पत्त्या स्तवः परमेश्वरस्तस्मै तत्प्राप्तये किं न स्तौषि । अपि तु सर्वान्परमेश्वरत्वेनैव स्तुहीत्यर्थः ॥ २२ ॥ किं हीति । पितामाञ्जेतिवत्सहार्थयोगाभावेपि तृतीया । वृद्धतमेन त्वया सह कथयता उपदिशता वृद्धानां वचनं यतो मया न श्रुतं अतः किं कर्तुं शक्यं अज्ञत्वादकिंचित्करोहमित्यर्थः ॥ २३ ॥ एवं स्वगर्वं परिहृत्य यत् ज्ञानं तदाह आत्मेति । देहबुध्या आत्मपरयोः स्तवो वा ईश्वरबुध्या तयोर्द्वेषो वा न कर्तव्य इति ते त्वत्तः नः अस्माभिः श्रुतमिति योज्यं ॥ २४ ॥ अस्तव्यं वाचामगोचरत्वात् । मोहात् मोहं अज्ञानं आश्रित्येति ल्यब्लोपे पञ्चमी । मायिकैर्गुणैः सर्वैश्वर्यादिभिः । निर्विशेषचिन्मात्रस्य केशवस्य स्तवं कश्चित्तदभिज्ञो नानुमन्यते ॥ २५ ॥ एतदेवाह कथमिति । भो भीष्म अजस्याविद्योपाधेर्जीवस्य पुरुषे पुरि शये अन्तरात्मनि सच्चिदानन्दरूपे वर्गः देहेन्द्रियादिसंघातः तस्य पालयितरि को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् इति श्रुतेः । अदुरात्मनि उपाधिधर्मकालुष्याद्दुःस्थित आत्मा दुरात्मा विराट्सूत्रेश्वराख्यः तस्मिंस्ते जगत्कथं समावेशयसे । न हि मृद्घटन्यायेनात्र जगत्समावेश अपरिणामित्वादस्य । किं तर्हि रज्जुसर्पन्यायेन तथा चाज्ञानमेव जगदुपादानं अयं तु तदधिष्ठानमात्रं । यथोक्तं 'अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणं । अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ' इति । केवलस्य निर्गुणस्य काम्यया इच्छया । सगुणोपासकानां निर्गुणप्राप्तिः सद्यो न संभवतीत्यर्थः । पक्षे भोजस्य कंसस्य । वर्गपाले गोसंघपाले ॥ २६ ॥ अथ चेति । ते त्वत्संबन्धिनां एषां पुंसां बुद्धिः प्रकृतिं न याति स्वकारणे न लीयते तर्हि भूलिङ्गशकुनिर्यथान्यद्वदत्यन्यत्करोति तद्वत्ते शुद्धं कामयन्ते शबलं वदन्तीत्यर्थः । भुवं लिङ्गतीति भूलिङ्गो बिलशायी पक्षिविशेष । एषेति पाठे एषा अस्मदीया बुद्धिः ते त्वदीया त्वद्वृत्तेति योज्यं । तदा स्वस्यैव शकुन्युपमत्वं ॥ २७ ॥ अर्थविगर्हिताः उक्तिविपरीतक्रियया अर्थो विगर्हितो यासां ताः ॥२८॥वाशते शब्दं करोति॥२९॥

सा हि मां सार्गलं भीष्म मुखात्सिंहस्य खादतः
दन्तान्तरविलग्नं यत्तदा दत्तेऽल्पचेतना ॥ ३०
इच्छतः सा हि सिंहस्य भीष्म जीवत्यसंशयम् ।
तद्वत्त्वमप्यधर्मिष्ठ सदा वाचः प्रभाषसे ॥ ३१
इच्छतां भूमिपालानां भीष्म जीवस्य संशयम् ।
लोकविद्विष्टकर्मा हि नान्योस्ति भवता समः॥३२

वैशंपायन उवाच ।

ततश्चेदिपतेः श्रुत्वा भीष्मः स कटुकं वचः ।
उवाचेदं वचो राजंश्चेदिराजस्य शृण्वतः ॥ ३३
इच्छतां किल नामाहं जीवाम्येषां महीक्षिताम्।
सोहं न गणयाम्येतांस्तृणेनापि नराधिपान् ॥३४
एवमुक्ते तु भीष्मेण ततः संचुक्रुशुर्नृपाः ।
केचिज्जहृषिरे तत्र केचिद्भीष्मं जगर्हिरे ॥ ३५
केचिदूचुर्महेष्वासाः श्रुत्वा भीष्मस्य तद्वचः ।
पापोवलिप्तो वृद्धश्च नायं भीष्मोर्हति क्षमाम् ३६
हन्यतां दुर्मतिर्भीष्मः पशुवत्साध्वयं नृपाः ।
सर्वैः समेत्य संरब्धैर्दह्यतां वा कटाग्निना ॥ ३७
इति तेषां वचः श्रुत्वा ततः कुरुपितामहः ।
उवाच मतिमान्भीष्मस्तानेव वसुधाधिपान् ३८
उक्तस्योक्तस्य नेहान्तमहं समुपलक्षये ।
यत्तु वक्ष्यामि तत्सर्वं शृणुध्वं वसुधाधिपाः ॥३९
पशुवद्घातनं वा मे दहनं वा कटाग्निना ।
क्रियतां मूर्ध्नि वो न्यस्तं मयेदं सकलं पदम् ॥४०
एष तिष्ठति गोविन्दः पूजितोस्माभिरच्युतः ।
यस्य वस्त्वरते बुद्धिर्मरणाय स माधवम् ॥ ४१
कृष्णमाह्वयतामद्य युद्धे चक्रगदाधरम् ।
यादवस्यैव देवस्य देहं विशतु पातितः ॥ ४२

इति श्रीमहा० सभाप० शिशुपालवधपर्वणि भीष्मवाक्ये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

वैशंपायन उवाच ।

ततः श्रुत्वैव भीष्मस्य चेदिराडुरुविक्रमः ।
युयुत्सुर्वासुदेवेन वासुदेवमुवाच ह ॥ १
आह्वये त्वां रणं गच्छ मया सार्धं जनार्दन ।
यावदद्य निहन्मि त्वां सहितं सर्वपाण्डवैः ॥ २
सह त्वया हि मेऽवध्याः सर्वथा कृष्णपाण्डवाः।
नृपतीन्समतिक्रम्य यैरराजा त्वमर्चितः ॥ ३

मांसार्गलं दंष्ट्रान्तरलग्नस्य मांसस्य वहिर्निर्गतभागं उल्लोलम् ॥ ३० ॥ इच्छत इति । सा हि पक्षिणी मृत्युमुखे प्रविष्टापि तदुपेक्षया जीवन्ती यथा लोकानुपदिशति मा साहसमिति । तथा त्वमपि देहधारित्वान्मृत्युमुखे पतितोपि मृत्युना उपेक्षितो जीवसि अस्मांश्चोपदिशसि मृत्युमुखे न पतितव्यमिति तत्र हेतुः । अधर्मिष्ठेति सर्वधर्मशून्यं ब्रह्म अधर्मि तन्निष्ठ ब्रह्मनिष्ठो हि मृत्युमुखे न पततीति वेदशास्त्रप्रसिद्धम् ॥ ३१ ॥ अत्रैव हेत्वन्तरमाह इच्छतामिति पूजायां बहुवचनं शान्तनोः स्वपितुरिच्छया वरदानेनापि जीवसीत्यर्थः । लोकविदिति द्विष्टकर्मेति च च्छेदः लोक आत्मा 'आत्मानमेव लोकमुपासीत इति श्रुते तद्वित् द्विष्टं द्वेषयुक्तं हिंस्रं क्षात्र कर्म यस्येत्येवंविधोपि क्षत्रियोपि अत्यन्तं ब्रह्मविदित्यर्थ. पक्षान्तरे तु स्पष्टार्थः एव ग्रन्थः ॥ ३२ ॥ एवं गूढाभिसंधिना शिशुपालेन स्तुतोपि भीष्मस्तस्याभिलषितं कैवल्यं दातुं तदुक्तानां रूढ्या निन्दापरत्वमाश्रित्य वैरमुद्योतयन्नुवाच इच्छतां किलेत्यादिना ॥ ३४ ॥ कटाग्निना कक्षाग्निना ॥ ३७ ॥ कृष्णमिति देहं विशत्वित्यनेन स्वस्य शिशुपालीयं वैकुण्ठात्पतनादिकं पूर्ववृत्तं विदितमस्तीति दर्शितम् ॥ ४२ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

४५

उरुविक्रमः उरुर्महान् विश्वव्यापी विक्रमः पादविक्षेपो स शिशुपालो हरिणासहाभेदात्॥१॥ तावत् रणं गच्छ यावत्त्वां निहन्मि निश्चयेन प्राप्नोमि । हन्तेर्गत्यर्थत्वेन प्राप्त्यर्थत्वात् सद्यः कैवल्येप्सुं मां जरासंधमिव जितमात्रं मा मुञ्चेत्यर्थः । सहितं सर्वपाण्डवैरिति पाण्डवानामपि विध्वंशत्वं दर्शयति॥२ अवध्याः अवधौ मर्यादायां साधवः मर्यादापरिपालकाः मे मताः एष सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदायेति परमात्मनस्तावन्मर्यादाविधारकत्वं स्पष्टं । तदंशत्वात्पाण्डवानामपीत्यर्थः । अत्र हेतुमाह नृपतीनिति । अराजा नास्ति रञ्जकोऽस्मादन्य इति अराजा । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति एष ह्येवानन्दयाति'इत्यादिना परमात्मन एव मुख्यरञ्जकत्वश्रुतेः ॥ ३ ॥

ये त्वांदासमराजानं बाल्यादर्चन्ति दुर्मतिम् ।
अनर्हमर्हवत्कृष्ण वध्यास्त इति मे मतिः ॥ ४
इत्युक्त्वा राजशार्दूलस्तस्थौ गर्जन्नमर्षणः ।
एवमुक्तस्ततः कृष्णो मृदुपूर्वमिदं वचः ।
उवाच पार्थिवान्सर्वान्स समक्षं च वीर्यवान् ॥५
एष नः शत्रुरत्यन्तं पार्थिवाः सात्वतीसुतः ।
सात्वतानां नृशंसात्मा न हितोऽनपकारिणाम् ॥ ६
प्राग्ज्योतिषपुरं यातानस्माञ्ज्ञात्वा नृशंसकृत् ।
अदहद्द्वारकामेष स्वस्रीयः सन्नराधिपाः ॥ ७
क्रीडतो भोजराजस्य एष रैवतके गिरौ ।
हत्वा बध्वा च तान्सर्वानुपायात्स्वपुरं पुरा ॥ ८
अश्वमेधे हयं मेध्यमुत्सृष्टं रक्षिभिर्वृतम् ।
पितुर्मे यज्ञविघ्नार्थमहरत्पापनिश्चयः ॥ ९
सौवीरान्प्रतियातां च बभ्रोरेष तपस्विनः ।
भार्यामभ्यहरन्मोहादकामां तामितो गताम् ॥१०
एष मायाप्रतिच्छन्नः करूषार्थे तपस्विनीम् ।
जहार भद्रां वैशालीं मातुलस्य नृशंसकृत् ॥ ११
पितृष्वसुः कृते दुःखं सुमहन्मर्षयाम्यहम् ।
दिष्ट्या हीदं सर्वराज्ञां संनिधावद्य वर्तते ॥ १२
पश्यन्ति हि भवन्तोऽद्य मय्यतीव व्यतिक्रमम् ।
कृतानि तु परोक्षं मे यानि तानि निबोधत ॥१३
इमं त्वस्य न शक्ष्यामि क्षन्तुमद्य व्यतिक्रमम् ।
अवलेपाद्वधार्हस्य समग्रे राजमण्डले ॥ १४
रुक्मिण्यामस्य मूढस्य प्रार्थनासीन्मुमूर्षतः ।
न च तां प्राप्तवान्मूढः शूद्रो वेदश्रुतीमिव ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

एवमादि ततः सर्वे सहितास्ते नराधिपाः ।
वासुदेववचः श्रुत्वा चेदिराजं व्यगर्हयन् ॥ १६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिशुपालः प्रतापवान् ।
जहास स्वनवद्धासं वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १७
मत्पूर्वां रुक्मिणीं कृष्ण संसत्सु परिकीर्तयन् ।
विशेषतः पार्थिवेषु व्रीडां न कुरुषे कथम् ॥ १८
मन्यमानो हि कः सत्सु पुरुषः परिकीर्तयेत् ।
अन्यपूर्वां स्त्रियं जातु त्वदन्यो मधुसूदन ॥ १९
क्षम वा यदि ते श्रद्धा मा वा कृष्ण मम क्षम ।
क्रुद्धाद्वापि प्रसन्नाद्वा किं मे त्वत्तो भविष्यति २०
तथा ब्रुवत एवास्य भगवान्मधुसूदनः ।
मनसाऽचिन्तयच्चक्रं दैत्यवर्गनिषूदनम् ॥ २१
एतस्मिन्नेव काले तु चक्रे हस्तगते सति ।
उवाच भगवानुच्चैर्वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ २२
शृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत्क्षमितं मया ।
अपराधशतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचने ॥ २३
दत्तं मया याचितं च तानि पूर्णानि पार्थिवाः ।
अधुना वधयिष्यामि पश्यतां वो महीक्षिताम् ॥
एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात् ।
व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः ॥ २५
स पपात महाबाहुर्वज्राहत इवाचलः ।
ततश्चेदिपतेर्देहात्तेजोऽग्र्यं ददृशुर्नृपाः ॥ २६
उत्पतन्तं महाराज गगनादिव भास्करम् ।
ततः कमलपत्राक्षं कृष्णं लोकनमस्कृतम् ।
ववन्दे तत्तदा तेजो विवेश च नराधिप ॥ २७
तदद्भुतममन्यन्त दृष्ट्वा सर्वे महीक्षितः ।
यद्विवेश महाबाहुं तत्तेजः पुरुषोत्तमम् ॥ २८

---

त्वांदासं त्वा अंदासमिति छेदः । त्वा त्वां अन्दो बन्धः अदि बन्धने धातुः । तं अस्यति क्षिपतीति अदा संबन्धनाशकं बाल्यादारभ्येति शेषः । दुर्मतिं अनर्हं दु:स्थितां मतिं क्लेष्टुं अनर्हमित्यर्थः । अर्हवत्पूज्यवत् तेपि वध्याः । अवोपसर्गस्य भागुरिमतेन अकारलोपः पूर्ववदर्थः ॥ ४ ॥ एवं गूढाशयेन स्तुतोपि भगवान् स्लक्ष्यार्थाभिप्रायेण लोकदृष्ट्या तं हन्तुं वैरमाविष्करोति । एष नः शत्रुरित्यादिना । नहितः सुप्सुपेति समासः नेकधेत्यादिवत् द्वेषीत्यर्थः ॥६॥ सौवीरान् देशविशेषान् इतो हस्तिनापुरात् गतां प्रस्थितां । सौवीरात्प्रतिपत्तौ चेति पाठे प्रतिपत्तौ विवाहकाले बभ्रोर्यादवस्य ॥ १० ॥ दोषान्तरमाह एष इति करूषो देशभेदः तद्राजार्थेऽण् मायाप्रतिच्छन्नः कपटेन तद्वेषं कृत्वेत्यर्थः । वैशाली विशालपुरी तदधिपस्य कन्याम् ॥११॥ तानि पूर्वोक्तानि निबोधत ॥ १३ ॥ मत्पूर्वां पित्रादिभिः पूर्वं मह्यं प्रतिश्रुताम् ॥१८॥ मन्यमानः स्वीकुर्वाणः ॥१९॥ क्षम क्षमस्व श्रद्धापितृष्वसुर्वचसि अवश्यानुष्ठेयत्वबुद्धिः ॥ २० ॥ याचत इति पाठे याचनं याचः तस्मात्प्रथमार्थे तसिः ॥ २३ ॥ याचितं मया दत्तं प्रतिश्रुतं । तानि शतं अपराद्धानि । वधयिष्यामि वधं प्रापयिष्यामि । ण्यंताद्वधशब्दात् लट् ॥ २४ ॥ तेजो लिङ्गशरीरं अग्र्यं संसारानादितयाऽनादि ॥ २६ ॥ तच्च भगवता स्वमहिमानं प्रकाशयता सर्वेषां दृष्टिविषयीकृतं तेन अद्भुततमं एतद्दर्शनं । यद्विवेश महाबाहुं तत्तेजः पुरुषोत्तममित्यन्तस्य शिशुपालवधस्य तात्पर्यं द्वेषादिनाप्यन्ते भगवत्स्मरणं

अनभ्रे प्रववर्ष द्यौः पपात ज्वलिताशनिः ।
कृष्णेन निहते चैद्ये चचाल च वसुंधरा ॥ २९
ततः केचिन्महीपाला नाब्रुवंस्तत्र किंचन ।
अतीतवाक्पथे काले प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ॥ ३०
हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नमर्षिताः ।
अपरे दशनैरोष्ठानदशन्क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ३१
रहश्च केचिद्वार्ष्णेयं प्रशशंसुर्नराधिपाः ।
केचिदेव सुसंरब्धा मध्यस्थास्त्वपरेऽभवन् ॥ ३२
प्रहृष्टाः केशवं जग्मुः संस्तुवन्तो महर्षयः ।
ब्राह्मणाश्च महात्मानः पार्थिवाश्च महाबलाः ३३
शशंसुर्निर्वृताः सर्वे दृष्ट्वा कृष्णस्य विक्रमम् ।
पाण्डवस्त्वब्रवीद्भ्रातॄन्सत्कारेण महीपतिम् ॥ ३४
दमघोषात्मजं वीरं संस्कारयत मा चिरम् ।
तथा च कृतवन्तस्ते भ्रातुर्वै शासनं तदा ॥ ३५
चेदीनामाधिपत्ये च पुत्रमस्य महीपतेः ।
अभ्यषिञ्चत्तदा पार्थः सह तैर्वसुधाधिपैः ॥ ३६
ततः स कुरुराजस्य क्रतुः सर्वसमृद्धिमान् ।
यूनां प्रीतिकरो राजन्स बभौ विपुलौजसः ३७
शान्तविघ्नः सुखारम्भः प्रभूतधनधान्यवान् ।
अन्नवान्बहुभक्ष्यश्च केशवेन सुरक्षितः ॥ ३८
समापयामास च तं राजसूयं महाक्रतुम् ।
तं तु यज्ञं महाबाहुरासमाप्तेर्जनार्दनः ।
ररक्ष भगवाञ्शौरिः शार्ङ्गचक्रगदाधरः ॥ ३९
ततस्त्ववभृथस्नातं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
समस्तं पार्थिवं क्षत्रमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ४०
दिष्ट्या वर्धसि धर्मज्ञ साम्राज्यं प्राप्तवानसि ।
आजमीढाजमीढानां यशः संवर्धितं त्वया ॥ ४१
कर्मणैतेन राजेन्द्र धर्मश्च सुमहान्कृतः ।
आपृच्छामो नरव्याघ्र सर्वकामैः सुपूजिताः ॥४२
स्वराष्ट्राणि गमिष्यामस्तदनुज्ञातुमर्हसि ।
श्रुत्वा तु वचनं राज्ञां धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४३
यथार्हं पूज्य नृपतीन्भ्रातॄन्सर्वानुवाच ह ।
राजानः सर्व एवैते प्रीत्यास्मान्समुपागताः ॥ ४४
प्रस्थिताः स्वानि राष्ट्राणि मामापृच्छ्य परंतपाः ।
अनुव्रजत भद्रं वो विषयान्तं नृपोत्तमान् ॥ ४५
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय पाण्डवा धर्मचारिणः ।
यथार्हं नृपतीन्सर्वानेकैकं समनुव्रजन् ॥ ४६
विराटमन्वयात्तूर्णं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
धनंजयो यज्ञसेनं महात्मानं महारथम् ॥ ४७
भीष्मं च धृतराष्ट्रं च भीमसेनो महाबलः ।
द्रोणं तु ससुतं वीरं सहदेवो युधां पतिः ॥ ४८
नकुलः सुबलं राजन्सहपुत्रं समन्वयात् ।
द्रौपदेयाः ससौभद्राः पार्वतीयान्महारथान् ४९
अन्वगच्छंस्तथैवान्यान्क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभाः ।
एवं सुपूजिताः सर्वे जग्मुर्विप्राः सहस्रशः ॥ ५०
गतेषु पार्थिवेन्द्रेषु सर्वेषु ब्राह्मणेषु च ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ५१
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि द्वारकां कुरुनन्दन ।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं दिष्ट्या त्वं प्राप्तवानसि ॥ ५२
तमुवाचैवमुक्तस्तु धर्मराजो जनार्दनम् ।
तव प्रसादाद्गोविन्द प्राप्तः क्रतुवरो मया ॥ ५३
क्षत्रं समग्रमपि च त्वत्प्रसादाद्वशे स्थितम् ।
उपादाय बलिं मुख्यं मामेव समुपस्थितम् ॥ ५४
कथं त्वद्गमनार्थं मे वाणी वितरतेऽनघ ।
न ह्यहं त्वामृते वीर रतिं प्राप्नोमि कर्हिचित् ५५
अवश्यं चैव गन्तव्या भवता द्वारकापुरी ।
एवमुक्तः स धर्मात्मा युधिष्ठिरसहायवान् ॥ ५६
अभिगम्याब्रवीत्प्रीतः पृथां पृथुयशा हरिः ।
साम्राज्यं समनुप्राप्ताः पुत्रास्तेऽद्य पितृष्वसः ५७
सिद्धार्था वसुमन्तश्च सा त्वं प्रीतिमवाप्नुहि ।
अनुज्ञातस्त्वया चाहं द्वारकां गन्तुमुत्सहे ॥ ५८
सुभद्रां द्रौपदीं चैव सभाजयत केशवः ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्माद्युधिष्ठिरसहायवान् ॥ ५९
स्नातश्च कृतजप्यश्च ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
ततो मेघवपुः प्रख्यं स्यन्दनं च सुकल्पितम् ।
योजयित्वा महाबाहुर्दारुकः समुपस्थितः ॥ ६०
उपस्थितं रथं दृष्ट्वा तार्क्ष्यप्रवरकेतनम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य समारुह्य महामनाः ॥ ६१
प्रययौ पुण्डरीकाक्षस्ततो द्वारवतीं पुरीम् ॥ ६२
तं पद्भ्यामनुवव्राज धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान्वासुदेवं महाबलम् ॥६३
ततो मुहूर्तं संगृह्य स्यन्दनप्रवरं हरिः ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ६४

---

तत्प्राप्तिहेतुरिति यथोक्तं श्रीमद्भागवते । 'गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः । संबन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं प्रभो' इति कृष्णं प्राप्ताइति शेषः ॥ २८ ॥ सभाजयत प्रीणितवान् ॥ ५९ ॥ संगृह्य निरुध्य ॥ ६४ ॥

अप्रमत्तः स्थितो नित्यं प्रजाः पाहि विशांपते।
पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिव द्विजाः ॥ ६५
बान्धवास्त्वोपजीवन्तु सहस्राक्षमिवामराः।
कृत्वा परस्परेणैवं संविदं कृष्णपाण्डवौ ॥ ६६
अन्योन्यं समनुज्ञाप्य जग्मतुः स्वगृहान्प्रति।
गते द्वारवतीं कृष्णे सात्वतप्रवरे नृप ॥ ६७
एको दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः।
तस्यां सभायां दिव्यायामूषतुस्तौ नरर्षभौ ॥ ६८

इति श्रीमहा० सभाप० शिशुपालवधपर्वणि शिशुपालवधे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५

समाप्तं शिशुपालवधपर्व।

---

## द्यूतपर्व।

## ४६

वैशंपायन उवाच।

समाप्ते राजसूये तु क्रतुश्रेष्ठे सुदुर्लभे।
शिष्यैः परिवृतो व्यासः पुरस्तात्समपद्यत ॥ १
सोऽभ्ययादासनात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः।
पाद्येनासनदानेन पितामहपूजयत् ॥ २
अथोपविश्य भगवान्काञ्चने परमासने।
आस्यतामिति चोवाच धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ३
अथोपविष्टं राजानं भ्रातृभिः परिवारितम्।
उवाच भगवान्व्यासस्तत्तद्वाक्यविशारदः ॥ ४
दिष्ट्या वर्धसि कौन्तेय साम्राज्यं प्राप्य दुर्लभम्
वर्धिताः कुरवः सर्वे त्वया कुरुकुलोद्वह ॥ ५
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि पूजितोऽस्मि विशांपते।
एवमुक्तः स कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६
अभिवाद्योपसंगृह्य पितामहमथाब्रवीत्।

युधिष्ठिर उवाच।

संशयो द्विपदां श्रेष्ठ ममोत्पन्नः सुदुर्लभः ॥ ७
तस्य नान्योऽस्ति वक्ता वै त्वामृते द्विजपुङ्गव।
उत्पातांस्त्रिविधान्प्राह नारदो भगवानृषिः ॥ ८
दिव्यांश्चैवान्तरिक्षांश्च पार्थिवांश्च पितामह।
अपि चैद्यस्य पतनाच्छन्नमौत्पातिकं महत्।

वैशंपायन उवाच।

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा पराशरसुतः प्रभुः ॥ ९
कृष्णद्वैपायनो व्यास इदं वचनमब्रवीत् ॥ १०
त्रयोदश समा राजन्नुत्पातानां फलं महत्।
सर्वक्षत्रविनाशाय भविष्यति विशांपते ॥ ११
त्वामेकं कारणं कृत्वा कालेन भरतर्षभ।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं क्षयं यास्यति भारत।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १२
स्वप्ने द्रक्ष्यसि राजेन्द्र क्षपान्ते त्वं वृषध्वजम्।
नीलकण्ठं भवं स्थाणुं कपालिं त्रिपुरान्तकम् १३
उग्रं रुद्रं पशुपतिं महादेवमुमापतिम्।
हरं शर्वं वृषं शूलं पिनाकिं कृत्तिवाससम् ॥ १४
कैलासकूटप्रतिमं वृषभेवस्थितं शिवम्।
निरीक्षमाणं सततं पितृराजाश्रितां दिशम् ॥ १५
एवमीदृशकं स्वप्नं द्रक्ष्यसि त्वं विशांपते।
मा तत्कृते त्वनुध्याहि कालो हि दुरतिक्रमः १६

---

त्वा त्वा संविदं समयम् ॥ ६६ ॥ अनुगमनादिशिष्टाचारप्रदर्शकोऽध्यायशेषः स्पष्टार्थः ॥६७॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

४६

'समाप्ते राजसूये तु क्रतुश्रेष्ठे सुदुर्लभे' इत्यादेः 'सभायां रमणीयायां तस्यामास्ते नराधिप' इत्यन्तस्याध्यायस्य तात्पर्यं कुलक्षयनिमित्तभूतस्य कापुरुषस्य मरणमेव श्रेयः इति सर्वैः सह प्रीत्या जीवितव्यमिति ॥ १ ॥ दिव्याः अशनिपातादयः आन्तरिक्षाः धूमकेत्वादयः पार्थिवाः भूकम्पादयः ॥ ९ ॥ कपालिं कपालिनं । सुपां सुलुगिति आप द्वितीयालोपे सति परमे व्योमन्नित्यादिवत् प्रातिपदिकमात्रं शिष्यते । विभक्तेः स्थानिवत्त्वान्नलोपाभावः तस्य चापदा तस्यत्वादनुस्वारोपि भवतीति । मत्वर्थीयं प्रत्ययान्तरं वा कल्प्यं एवमन्यत्रापि ज्ञेयम् ॥ १३ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासं पर्वतं प्रति ।
अप्रमत्तः स्थितो दान्तः पृथिवीं परिपालय ॥१७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवान्कैलासं पर्वतं ययौ ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः सह शिष्यैः श्रुतानुगैः १८
गते पितामहे राजा चिन्ताशोकसमन्वितः ।
निश्वसन्नुष्णमसकृत्तमेवार्थं विचिन्तयन् ॥ १९
कथं तु दैवं शक्येत पौरुषेण प्रबाधितुम् ।
अवश्यमेव भविता यदुक्तं परमर्षिणा ॥ २०
ततोऽब्रवीन्महातेजाः सर्वान्भ्रातॄन्युधिष्ठिरः ।
श्रुतं वै पुरुषव्याघ्रा यन्मां द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ २१
तदा तद्वचनं श्रुत्वा मरणे निश्चिता मतिः ।
सर्वक्षत्रस्य निधने यद्यहं हेतुरीप्सितः ॥ २२
कालेन निर्मितस्तात को ममार्थोऽस्ति जीवतः ।
एवं ब्रुवन्तं राजानं फाल्गुनः प्रत्यभाषत ॥ २३
मा राजन्कश्मलं घोरं प्राविशो बुद्धिनाशनम् ।
संप्रधार्य महाराज यत्क्षमं तत्समाचर ॥ २४
ततोऽब्रवीत्सत्यधृतिर्भ्रातॄन्सर्वान्युधिष्ठिरः ।
द्वैपायनस्य वचनं तत्रैव समचिन्तयन् ॥ २५
अद्यप्रभृति भद्रं वः प्रतिज्ञां मे निबोधत ।
त्रयोदश समास्तात को ममार्थोऽस्ति जीवतः २६
न प्रवक्ष्यामि परुषं भ्रातॄनन्यांश्च पार्थिवान् ।
स्थितो निदेशे ज्ञातीनां योक्ष्ये तत्समुदाहरन् ॥२७
एवं मे वर्तमानस्य स्वसुतेष्वितरेषु च ।
भेदो न भविता लोके भेदमूलो हि विग्रहः ॥ २८
विग्रहं दूरतो रक्षन्प्रियाण्येव समाचरन् ।
वाच्यतां न गमिष्यामि लोकेषु मनुजर्षभाः ॥२९
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वचनं पाण्डवाः संनिशाम्य तत् ।
तमेव समवर्तन्त धर्मराजहिते रताः ॥ ३०
संसत्सु समयं कृत्वा धर्मराड् भ्रातृभिः सहः ।
पितॄंस्तर्प्य यथान्यायं देवताश्च विशांपते ॥ ३१
कृतमङ्गलकल्याणो भ्रातृभिः परिवारितः ।
गतेषु क्षत्रियेन्द्रेषु सर्वेषु भरतर्षभ ॥ ३२
युधिष्ठिरः सहामात्यः प्रविवेश पुरोत्तमम् ।
दुर्योधनो महाराज शकुनिश्चापि सौबलः ।
सभायां रमणीयायां तत्रैवास्ते नराधिप ॥ ३३

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० युधिष्ठिरसमये षट्चत्वारिंशोऽध्यायायः ॥४६॥

## ४७

वैशंपायन उवाच ।

वसन्दुर्योधनस्तस्यां सभायां पुरुषर्षभ ।
शनैर्ददर्श तां सर्वां सभां शकुनिना सह ॥ १
तस्यां दिव्यानभिप्रायान्ददर्श कुरुनन्दनः ।
न दृष्टपूर्वा ये तेन नगरे नागसाह्वये ॥ २
स कदाचित्सभामध्ये धार्तराष्ट्रो महीपतिः ।
स्फाटिकं स्थलमासाद्य जलमित्यभिशङ्कया ॥ ३
स्ववस्त्रोत्कर्षणं राजा कृतवान्बुद्धिमोहितः ।
दुर्मना विमुखश्चैव परिचक्राम तां सभाम् ।
ततः स्थले निपतितो दुर्मना व्रीडितो नृपः॥ ४
निःश्वसन्विमुखश्चापि परिचक्राम तां सभाम् ।
ततः स्फाटिकतोयां वै स्फाटिकाम्बुजशोभिताम्
वापीं मत्वा स्थलमिव सवासाः प्रापतज्जले ॥ ६
जले निपतितं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
जहास जहसुश्चैव किंकराश्च सुयोधनम् ॥ ७
वासांसि च शुभान्यस्मै प्रददू राजशासनात् ।
तथागतं तु तं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ॥ ८
अर्जुनश्च यमौ चोभौ सर्वे ते प्राहसंस्तदा ।
नामर्षयत्ततस्तेषामवहासममर्षणः ॥ ९
आकारं रक्षमाणस्तु न स तान्समुदैक्षत ।
पुनर्वसनमुत्क्षिप्य प्रतरिष्यन्निव स्थलम् ॥ १०

---

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

वसन् दुर्योधनस्तस्यामित्याद्यध्यायद्वयस्य तात्पर्यं । पापिष्ठः परकल्याणं दृष्ट्वा मरणमिच्छति । छलेन परलक्ष्मीं वाहर्तुमिच्छति निर्घृण इति ॥ १ ॥ अभिप्रायान्देवादीनां क्रीडातत्स्थानायाभिनयप्रदर्शकचित्रादिगतान् आशयविशेषान् । नागसाह्वये नागेन हस्तिना समाननाम्नि हस्तिनापुरे ॥२॥ द्यूतमूलमुपोद्घातयति स कदाचिदिति ॥३॥

आरुरोह ततः सर्वे जहसुश्च पुनर्जनाः ।
द्वारं तु पिहिताकारं स्फाटिकं प्रेक्ष्य भूमिपः ।
प्रविशन्नाहतो मूर्ध्नि व्याघूर्णित इव स्थितः ॥ ११
तादृशं च परं द्वारं स्फाटिकोरुकपाटकम् ।
विघट्टयन्कराभ्यां तु निष्क्रम्याग्रे पपात ह ॥ १२
द्वारं तु वितताकारं समापेदे पुनश्च सः ।
तद्वृत्तं चेति मन्वानो द्वारस्थानादुपारमत् ॥ १३
एवं प्रलम्भान्विविधान्प्राप्य तत्र विशांपते ।
पाण्डवेयाभ्यनुज्ञातस्ततो दुर्योधनो नृपः ॥ १४
अप्रहृष्टेन मनसा राजसूये महाक्रतौ ।
प्रेक्ष्य तामद्भुतामृद्धिं जगाम गजसाह्वयम् ॥ १५
पाण्डवश्रीप्रतप्तस्य ध्यायमानस्य गच्छतः ।
दुर्योधनस्य नृपतेः पापा मतिरजायत ॥ १६
पार्थान्सुमनसो दृष्ट्वा पार्थिवांश्च वशानुगान् ।
कृत्स्नं चापि हितं लोकमाकुमारं कुरूद्वह ॥ १७
महिमानं परं चापि पाण्डवानां महात्मनाम् ।
दुर्योधनो धार्तराष्ट्रो विवर्णः समपद्यत ॥ १८
स तु गच्छन्ननेकाग्रः सभामेकोन्वचिन्तयत् ।
श्रियं च तामनुपमां धर्मराजस्य धीमतः ॥ १९
प्रमत्तो धृतराष्ट्रस्य पुत्रो दुर्योधनस्तदा ।
नाभ्यभाषत्सुबलजं भाषमाणं पुनः पुनः ॥ २०
अनेकाग्रं तु तं दृष्ट्वा शकुनिः प्रत्यभाषत ।
दुर्योधन कुतोमूलं निःश्वसन्निव गच्छसि ॥ २१

दुर्योधन उवाच ।

दृष्ट्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां युधिष्ठिरवशानुगाम् ।
जितामस्त्रप्रतापेन श्वेताश्वस्य महात्मनः ॥ २२
तं च यज्ञं तथाभूतं दृष्ट्वा पार्थस्य मातुल ।
यथा शक्रस्य देवेषु तथाभूतं महाद्युते ॥ २३
अमर्षेण तु संपूर्णो दह्यमानो दिवानिशम् ।
शुचिशुक्रागमे काले शुष्येत्तोयमिवाल्पकम् २४
पश्य सात्वतमुख्येन शिशुपालो निपातितः ।
न च तत्र पुमानासीत्कश्चित्तस्य पदानुगः ॥ २५
दह्यमाना हि राजानः पाण्डवोत्थेन वह्निना ।
क्षान्तवन्तोपराधं ते को हि तत्क्षन्तु मर्हति ॥२६
वासुदेवेन तत्कर्म यथाऽयुक्तं महत्कृतम् ।
सिद्धं च पाण्डुपुत्राणां प्रतापेन महात्मनाम् ॥ २७
तथा हि रत्नान्यादाय विविधानि नृपा नृपम् ।
उपातिष्ठन्त कौन्तेयं वैश्या इव करप्रदाः ॥ २८
श्रियं तथागतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमिव पाण्डवे ।
अमर्षवशमापन्नो दह्यामि न तथोचितः ॥ २९
एवं स निश्चयं कृत्वा ततो वचनमब्रवीत् ।
पुनर्गान्धारनृपतिं दह्यमान इवाग्निना ॥ ३०
वह्निमेव प्रवेक्ष्यामि भक्षयिष्यामि वा विषं ।
अपो वापि प्रवेक्ष्यामि न हि शक्ष्यामि जीवितुम्
को हि नाम पुमाँल्लोके मर्षयिष्यति सत्त्ववान् ।
सपत्नानृध्यतो दृष्ट्वा हानिमात्मानमेव च ॥ ३२
*सोहं न स्त्री न चाप्यस्त्री न पुमान्नापुमानपि ।*
योहं तां मर्षयाम्यद्य तादृशीं श्रियमागताम् ॥३३
ईश्वरत्वं पृथिव्याश्च वसुमत्तां च तादृशीम् ।
यज्ञं च तादृशं दृष्ट्वा मादृशः को न संज्वरेत् ॥३४
अशक्तश्चैक एवाहं तामाहर्तुं नृपश्रियम् ।
सहायांश्च न पश्यामि तेन मृत्युं विचिन्तये ॥३५
दैवमेव परं मन्ये पौरुषं च निरर्थकम् ।
दृष्ट्वा कुन्तीसुते शुद्धां श्रियं तामहृतां तथा ॥ ३६
कृतो यत्नो मया पूर्वं विनाशे तस्य सौबल ॥
तच्च सर्वमतिक्रम्य संवृद्धोऽप्स्विव पङ्कजम् ॥ ३७
तेन दैवं परं मन्ये पौरुषं च निरर्थकम् ।
धार्तराष्ट्राश्च हीयन्ते पार्था वर्धन्ति नित्यशः ३८
सोहं श्रियं च तां दृष्ट्वा सभां तां च तथाविधाम् ।
रक्षिभिश्चावहासं तं परितप्ये यथाग्निना ॥ ३९

---

तद्वृत्तं तादृशम् ॥ १३ ॥ प्रलम्भान्वञ्चनानि ॥ १४ ॥ अनेकाग्रः विक्षिप्तचित्तः ॥ १९ ॥ कुतोमूलं कुत एतस्य दुःखस्य मूलमुत्पत्तिरित्यर्थः । कुतोहेतोः मूलं स्वस्थानं प्रतिनिःश्वसन् गच्छसीति वा ॥ २१ ॥ श्वेताश्वस्य अर्जुनस्य ॥ २२ ॥ शुचिशुक्रौ ज्येष्ठाषाढौ तयोरागमे ग्रीष्मर्तौ ॥ २४ ॥ पदानुगः प्रतीकारकर्ता ॥ २५ ॥ अयुक्तमिति छेदः ॥ २७ ॥ सोहं न स्त्री या विवशत्वात्सपत्न्या अपि श्रियं सहते । किं तु पुमानस्मीत्यर्थः । तर्हि युद्धेनैव पाण्डवान् जेतुमिच्छेत्यत आह । न चाप्यस्त्री अर्जुनादिवदस्त्रबलहीनः। तदपि संपादयेत्यत आह न पुमानिति परेषामिवात्युत्कृष्टमस्त्रबलं साधयितुमसमर्थः। तर्हि क्लीबोसीति चेत्तत्राह नापुमानिति । न स्त्रीति पूर्वमेवोक्तमतः अपुमानित्यनेन क्लीब एव ग्राह्यः । नाप्यत्यन्तमसमर्थोस्मीत्यर्थः । योहं शत्रुश्रियं सहिष्ये । तस्मात्तदपहरणे कश्चित्कपटोपायोन्वेषणीय इति भावः ॥ ३३ ॥ मृत्युं विचिन्तये इति शकुनेः सामर्थ्यं जानता तस्य स्वेष्टार्थसाधने उद्योगं जनयितुमुक्तम् ॥ ३५ ॥

समामभ्यनुजानाहि मातुलाय सुदुःखितम् । अमर्षं च समाविष्टं धृतराष्ट्रे निवेदय ॥ ४०

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि दुर्योधनसंतापे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

शकुनिरुवाच ।

दुर्योधन न तेमर्षः कार्यः प्रति युधिष्ठिरम् ।
भागधेयानि हि स्वानि पाण्डवा भुञ्जते सदा ॥ १
विधानं विविधाकारं परं तेषां विधानतः ।
अनेकैरभ्युपायैश्च त्वया न शकिताः पुरा ॥ २
आरब्धापि महाराज पुनः पुनररिंदम ।
विमुक्ताश्च नरव्याघ्रा भागधेयपुरस्कृताः ॥ ३
तैर्लब्धा द्रौपदीभार्या द्रुपदश्च सुतैः सह ।
सहायः पृथिवीलाभे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ ४
लब्धश्चानभिभूतार्थैः पित्र्योंशः पृथिवीपते ।
विवृद्धस्तेजसा तेषां तत्र का परिदेवना ॥ ५
धनंजयेन गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी ।
लब्धान्यस्त्राणि दिव्यानि तोषयित्वा हुताशनम् ६
तेन कार्मुकमुख्येन बाहुवीर्येण चात्मनः ।
कृता वशे महीपालास्तत्र का परिदेवना ॥ ७
अग्निदाहान्मयं चापि मोक्षयित्वा स दानवम् ।
सभां तां कारयामास सव्यसाची परंतपः ॥ ८
तेन चैव मयेनोक्ताः किंकरा नाम राक्षसाः ।
वहन्ति तां सभां भीमास्तत्र का परिदेवना ॥ ९
यच्चासहायतां राजन्नुक्तवानसि भारत ।
तन्मिथ्या भ्रातरो हीमे तव सर्वे वशानुगाः ॥ १०
द्रोणस्तव महेष्वासः सह पुत्रेण वीर्यवान् ।
सूतपुत्रश्च राधेयो गौतमश्च महारथः ॥ ११
अहं च सह सोदर्यैः सौमदत्तिश्च पार्थिवः ।
एतैस्त्वं सहितः सर्वैर्जय कृत्स्नां वसुंधराम् ॥ १२

दुर्योधन उवाच ।

त्वया च सहितो राजन्नेतैश्चान्यैर्महारथैः ।
एतानेव विजेष्यामि यदि त्वमनुमन्यसे ॥ १३
एतेषु विजितेष्वद्य भविष्यति मही मम ।
सर्वे च पृथिवीपालाः सभा सा च महाधना १४

शकुनिरुवाच ।

धनंजयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजैः ॥ १५
नैते युधि पराजेतुं शक्या देवगणैरपि ।
महारथा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १६
अहं तु तद्विजानामि विजेतुं येन शक्यते ।
युधिष्ठिरं स्वयं राजंस्तन्निबोध जुषस्व च ॥ १७

दुर्योधन उवाच ।

अप्रमादेन सुहृदामन्येषां च महात्मनाम् ।
यदि शक्या विजेतुं ते तन्ममाचक्ष्व मातुल ॥ १८

शकुनिरुवाच ।

द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न स जानाति देवितुम् ।
समाहूतश्च राजेन्द्रो न शक्ष्यति निवर्तितुम् ॥ १९
देवने कुशलश्चाहं न मेस्ति सदृशो भुवि ।
त्रिषु लोकेषु कौरव्य तं त्वं द्यूते समाह्वय ॥ २०
तस्याक्षकुशलो राजन्नादास्येहमसंशयम् ।
राज्यं श्रियं च तां दीप्तां त्वदर्थं पुरुषर्षभ ॥ २१
इदं तु सर्वं त्वं राज्ञे दुर्योधन निवेदय ।
अनुज्ञातस्तु ते पित्रा विजेष्ये तान्न संशयः ॥ २२

दुर्योधन उवाच ।

त्वमेव कुरुमुख्याय धृतराष्ट्राय सौबल ।
निवेदय यथान्यायं नाहं शक्ष्ये निवेदितुम् २३ ॥

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० दुर्योधनसंतापे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

अनुजानीहि मर्तुमिति शेषः ॥ ४० ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

दुर्योधनेति ॥ १ ॥ जुषस्व प्रीत्या सेवस्व ॥ १७ ॥ अप्रमादेन प्रमादकृतभ्रान्त्यादिनाशव्यतिरेकेण ॥ १८ ॥ देवने द्यूते ॥ २० ॥ दीप्तां वृद्धिमतीम् ॥ २१ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

कमण्डलूनुपादाय जातरूपमयाञ्छुभान् ।
एतद्धनं समादाय प्रवेशं लेभिरे न च ॥ २५
यथैव मधु शक्राय धारयन्त्यमरस्त्रियः ।
तदस्मै कांस्यमाहार्षीद्वारुणं कलशोदधिः ॥ २६
शङ्खप्रवरमादाय वासुदेवोभिषिक्तवान् ।
शैक्यं रुक्मसहस्रस्य बहुरत्नविभूषितम् ॥ २७
दृष्ट्वा च मम तत्सर्वं ज्वररूपमिवाभवत् ।
गृहीत्वा तत्तु गच्छन्ति समुद्रौ पूर्वदक्षिणौ ॥ २८
तथैव पश्चिमं यान्ति गृहीता भरतर्षभ ।
उत्तरं तु न गच्छन्ति विना तात पतत्रिणः ॥ २९
तत्र गत्वार्जुनो दण्डमाजहारामितं धनम् ।
इदं चाद्भुतमत्रासीत्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३०
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां परिविष्यताम् ।
स्थापिता तत्र संज्ञाभूच्छङ्खो ध्मायति नित्यशः ॥ ३१
मुहुर्मुहुः प्रणदतस्तस्य शङ्खस्य भारत ।
अनिशं शब्दमश्रौषं ततो रोमाणि मेऽहृषन् ॥ ३२
पार्थिवैर्बहुभिः कीर्णमुपस्थानं दिदृक्षुभिः ।
अशोभत महाराज नक्षत्रैर्द्यौरिवामला ॥ ३३
सर्वरत्नान्युपादाय पार्थिवा वै जनेश्वर ।
यज्ञे तस्य महाराज पाण्डुपुत्रस्य धीमतः ॥ ३४
वैश्या इव महीपाला द्विजातिपरिवेषकाः ।
न सा श्रीर्देवराजस्य यमस्य वरुणस्य च ।
गुह्यकाधिपतेर्वापि या श्री राजन्युधिष्ठिरे ॥ ३५
तां दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रस्य श्रियं परमिकामहम् ।
शान्तिं न परिगच्छामि दह्यमानेन चेतसा ॥ ३६

शकुनिरुवाच ।

यामेतामतुलां लक्ष्मीं दृष्टवानसि पाण्डवे ।
तस्याः प्राप्तावुपायं मे शृणु सत्यपराक्रम ॥ ३७
अहमक्षेष्वभिज्ञातः पृथिव्यामपि भारत ।
हृदयज्ञः पणज्ञश्च विशेषज्ञश्च देवने ॥ ३८
द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न च जानाति देवितुम् ।
आहूतश्चैष्यति व्यक्तं द्यूतादपि रणादपि ॥ ३९
नियतं तं विजेष्यामि कृत्वा तु कपटं विभो ।
आनयामि समृद्धिं तां दिव्यां चोपाह्वयस्व तम् ॥ ४०

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः शकुनिना राजा दुर्योधनस्ततः ।
धृतराष्ट्रमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ४१
अयमुत्सहते राजञ्छ्रियमाहर्तुमक्षवित् ।
द्यूतेन पाण्डुपुत्रस्य तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४२

धृतराष्ट्र उवाच ।

क्षत्ता मन्त्री महाप्राज्ञः स्थितो यस्यास्मि शासने
तेन संगम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥ ४३
स हि धर्मं पुरस्कृत्य दीर्घदर्शी परं हितम् ।
उभयोः पक्षयोर्युक्तं वक्ष्यत्यर्थविनिश्चयम् ॥ ४४

---

कमण्डलूनिति। 'इन्द्रियं वा एतदस्मिन्लोके यद्दधि' इति खण्डे बह्वृचब्राह्मणे दधिमधुघृतं आपश्चेत्यभिषेकद्रव्याणि विहितानि । तत्रेतरेषामग्रे दर्शनात् इह कमण्डलून् घृतपूर्णानिति द्रष्टव्यम् ॥२५॥ यथैवेति अमरः सोमः तस्य स्त्रिय ओषधयः । तद्दिव्यं मधु अस्मै कांस्यं कांस्यपात्रस्थं कृत्वा आहार्षीत् । अर्थात्सोम एव तथा वारुणं वरुणप्रेषितं दधि प्रसिद्धं । कलश इव कलशो जलपूर्णत्वात्समुद्रः आहार्षीत् । दधिरिति पुंस्त्वं आर्षं लेखकप्रमादो वा । अन्ये तु कलशोदधिः समुद्रः मधु अमृतं जलमित्यन्ये अमरस्त्रियो नद्यः वारुणं वरुणसंबन्धीति व्याचक्षते ॥ २६ ॥ शैक्यं वरत्रामयं पात्राधारभूतं शिक्यं 'कावडी' इति प्रसिद्धं । तत्र स्थितं पात्रं शैक्यं । एतेन सामुद्र आप उक्ताः अन्या अपि पुण्या आपोऽभिषेकार्थमुक्ताः प्रदेशान्तरे । 'वापीकूपतटाकेभ्यो ह्रदेभ्यः सरसस्तथा । चतुर्भ्यश्च समुद्रेभ्यः पल्वलादभिसंधितः ॥ प्रयागाद्देवयजनाज्जलान्यादाय सर्वतः । गङ्गा सरस्वती चैव नर्मदा च दृषद्वती ॥ एभ्यो जलं समादाय तत्राभिषिषिचुर्द्विजाः' इति ॥ २७ ॥ पतत्रिणः खेचरजातीयाः तैरेवोत्तरसमुद्रजलमानीतमित्यर्थः । अन्यथा चतुर्भ्यश्च समुद्रेभ्य इत्यनुपपन्नं स्यात् ॥ २९ ॥ परिविष्यतां परिवेष्यमाणानां संज्ञा संकेतः ॥ ३१ ॥ उपतिष्ठन्त्यस्मिन्नित्युपस्थानं सभाम् ॥ ३३ ॥ उपादाय स्थिता इति शेषः ॥ ३४ ॥ अक्षेषु पाशेषु अभिज्ञातः कुशलः । हृदयज्ञः पातयिष्यमाणानामक्षाणां जयपराजयावहत्वाभिज्ञः पणज्ञः तदनुसारेण द्रव्यप्रयोगवित् । विशेषज्ञः दिक्कालाद्यानुकूल्याभिज्ञः ॥ ३८ ॥ द्यूतात् द्यूतहेतोः रणात् रणहेतोः ॥ ३९ ॥ कपटं अक्षाधिष्ठात्र्या देवताया वशीकरणं । यद्वा सर्वतश्चतुष्कोणतया द्वादशधारेष्वक्षेषु षट् तलानि भवन्ति । येषु त्रिषु त्रिषु देवयित्रोर्नामनी लिख्येते । तत्र कपटं अन्तः सुषिरमक्षं कृत्वा परनामाङ्कितप्रदेशं गर्भे गुरुद्रव्यसंश्लिष्टं कृत्वा पातितस्याक्षस्य स्वनामैवोपरिभवति तदा स्वस्य जयः परस्य नामाधस्थं तस्य पराजय इति ॥ ४० ॥ अपदान्तरं अनुपदमेव ॥ ४२ ॥

दुर्योधन उवाच ।
निवर्तयिष्यति त्वासौ यदि क्षत्ता समेष्यति ।
निवृत्ते त्वयि राजेन्द्र मरिष्येऽहमसंशयम् ॥ ४५
स त्वं मयि मृते राजन्विदुरेण सुखी भव ।
भोक्ष्यसे पृथिवीं कृत्स्नां किं मया त्वं करिष्यसि ४६
वैशंपायन उवाच ।
आर्तवाक्यं तु तत्तस्य प्रणयोक्तं निशम्य सः ।
धृतराष्ट्रोऽब्रवीत्प्रेष्यान्दुर्योधनमते स्थितः ॥ ४७
स्थूणासहस्रैर्बृहतीं शतद्वारां सभां मम ।
मनोरमां दर्शनीयामाशु कुर्वन्तु शिल्पिनः ॥ ४८
ततः संस्तीर्य रत्नैस्तां तक्ष्ण आनाय्य सर्वशः ।
सुकृतां सुप्रवेशां च निवेदयत मे शनैः ॥ ४९
दुर्योधनस्य शान्त्यर्थमिति निश्चित्य भूमिपः ।
धृतराष्ट्रो महाराज प्राहिणोद्विदुराय वै ॥ ५०
अपृष्ट्वा विदुरं ह्यस्य नासीत्कश्चिद्विनिश्चयः ।
द्यूते दोषांश्च जानन्स पुत्रस्नेहादकृष्यत ॥ ५१
तच्छ्रुत्वा विदुरो धीमान्कलिद्वारमुपस्थितम् ।
विनाशमुखमुत्पन्नं धृतराष्ट्रमुपाद्रवत् ॥ ५२
सोऽभिगम्य महात्मानं भ्राता भ्रातरमग्रजम् ।
मूर्ध्ना प्रणम्य चरणाविदं वचनमब्रवीत् ॥ ५३
विदुर उवाच ।
नाभिनन्दामि ते राजन्व्यवसायमिमं प्रभो ।
पुत्रैर्भेदो यथा न स्याद्द्यूतहेतोस्तथा कुरु ॥ ५४
धृतराष्ट्र उवाच ।
क्षत्तः पुत्रेषु पुत्रैर्मे कलहो न भविष्यति ।
यदि देवाः प्रसादं नः करिष्यन्ति न संशयः ॥ ५५
अशुभं वा शुभं वापि हितं वा यदि वाऽहितम् ।
प्रवर्ततां सुहृद्द्यूतं दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ५६
मयि संनिहिते द्रोणे भीष्मे त्वयि च भारत ।
अनयो दैवविहितो न कथंचिद्भविष्यति ॥ ५७
गच्छ त्वं रथमास्थाय हयैर्वातसमैर्जवे ।
खाण्डवप्रस्थमद्यैव समानय युधिष्ठिरम् ॥ ५८
न वाच्यो व्यवसायो मे विदुरैतद्ब्रवीमि ते ।
दैवमेव परं मन्ये येनैतदुपपद्यते ॥ ५९
इत्युक्तो विदुरो धीमान्नेदमस्तीति चिन्तयन् ।
आपगेयं महाप्राज्ञमभ्यगच्छत्सुदुःखितः ॥ ६०

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० दुर्योधनसंतापे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९

## ५०

जनमेजय उवाच ।
कथं समभवद्द्यूतं भ्रातॄणां तन्महात्ययम् ।
यत्र तद्व्यसनं प्राप्तं पाण्डवैर्मे पितामहैः ॥ १
के च तत्र सभास्तारा राजानो ब्रह्मवित्तम ।
के चैनमन्वमोदन्त के चैनं प्रत्यषेधयन् ॥ २
विस्तरेणैतदिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज ।
मूलं ह्येतद्विनाशस्य पृथिव्या द्विजसत्तम ॥ ३
सौतिरुवाच ।
एवमुक्तस्ततो राज्ञा व्यासशिष्यः प्रतापवान् ।
आचचक्षेथ यद्वृत्तं तत्सर्वं वेदतत्त्ववित् ॥ ४
वैशंपायन उवाच ।
शृणु मे विस्तरेणेमां कथां भारतसत्तम ।
भूय एव महाराज यदि ते श्रवणे मतिः ॥ ५
विदुरस्य मतिं ज्ञात्वा धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमुवाच विजने पुनः ॥ ६
अलं द्यूतेन गान्धारे विदुरो न प्रशंसति ।
न ह्यसौ सुमहाबुद्धिरहितं नो वदिष्यति ॥ ७
राज्यं च कृत्स्नं पार्थेभ्यो यज्ञार्थं वै निवेदितम् ।
हितं हि परमं मन्ये विदुरो यत्प्रभाषते ।
क्रियतां पुत्र तत्सर्वमेतन्मन्ये हितं तव ॥ ८

---

त्वासौ त्वा त्वा असौ निवर्तयिष्यति । त्वासावित्यादेर्विवर्णता चैव सशोकता चेत्यन्तस्य दुर्योधनविलापस्य तात्पर्यं पुण्यवतामीश्वरप्रसादलभ्यां वृद्धिं दृष्ट्वा पापिनां परितापो भवतीति ॥४५॥ रत्नैः संस्तीर्य रत्नखचितां कृत्वा । तक्ष्णः वर्धकिनः । सर्वशः सर्वदेशीयान् ॥४९॥ व्यवसायं विनिश्चयम् ॥ ५४ ॥ दिष्टं दैवम् ॥ ५६ ॥ आपगेयं भीष्मम् ॥६०॥

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

कथमिति । व्यसनं आपत् ॥१॥ सभास्ताराः सभासदः ॥ २ ॥

द्वर्षिर्वासवगुरुर्देवराजाय धीमते ।
यत्प्राह शास्त्रं भगवान्बृहस्पतिरुदारधीः ।
तद्वेद विदुरः सर्वं सरहस्यं महाकविः ॥ ९
स्थितस्तु वचने तस्य सदाहमपि पुत्रक ।
विदुरो वापि मेधावी कुरूणां प्रवरो मतः ॥ १०
उद्धवो वा महाबुद्धिर्वृष्णीनामर्चितो नृप ।
तदलं पुत्र द्यूतेन द्यूते भेदो हि दृश्यते ॥ ११
भेदे विनाशो राज्यस्य तत्पुत्र परिवर्जय ।
पित्रा मात्रा च पुत्रस्य यद्वै कार्यं परं स्मृतम् १२
प्राप्तस्त्वमसि तन्नाम पितृपैतामहं पदम् ।
अधीतवान्कृती शास्त्रे लालितः सततं गृहे ॥ १३
भ्रातृज्येष्ठः स्थितो राज्ये विन्दसे किं न शोभनम्
पृथग्जनैरलभ्यं यद्भोजनाच्छादनं परम् ॥ १४
तत्प्राप्तोसि महाबाहो कस्माच्छोचसि पुत्रक ।
स्फीतं राष्ट्रं महाबाहो पितृपैतामहं महत् ॥ १५
नित्यमाज्ञापयन्भासि दिवि देवेश्वरो यथा ।
तस्य ते विदितप्रज्ञ शोकमूलमिदं कथम् ।
समुत्थितं दुःखकरं तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ १६

दुर्योधन उवाच ।

अश्नाम्याच्छादयामीति प्रपश्यन्पापपूरुषः ।
नामर्षं कुरुते यस्तु पुरुषः सोधमः स्मृतः ॥ १७
न मां प्रीणाति राजेन्द्र लक्ष्मीः साधारणी विभो
ज्वलितामेव कौन्तेये श्रियं दृष्ट्वा च विव्यथे ॥१८
सर्वां च पृथिवीं चैव युधिष्ठिरवशानुगाम् ।
स्थिरोस्मि योहं जीवामि दुःखादेतद्ब्रवीमि ते १९
आवर्जिता इवाभान्ति नीपाश्चित्रककौकुराः ।
कारस्करा लोहजंघा युधिष्ठिरनिवेशने ॥ २०
हिमवत्सागरानूपाः सर्वे रत्नाकरास्तथा ।
अन्त्याः सर्वे पर्युदस्ता युधिष्ठिरनिवेशने ॥ २१
ज्येष्ठोयमिति मां मत्वा श्रेष्ठश्चेति विशांपते ।
युधिष्ठिरेण सत्कृत्य युक्तो रत्नपरिग्रहे ॥ २२
उपस्थितानां रत्नानां श्रेष्ठानामर्घहारिणाम् ।
नादृश्यत परः पारो नापरस्तत्र भारत ॥ २३
न मे हस्तः समभवद्वसु तत्प्रतिगृह्णतः ।
अतिष्ठन्त मयि श्रान्ते गृह्य दूराहृतं वसु ॥ २४
कृतां बिन्दुसरोरत्नैर्मयेन स्फाटिकच्छदाम् ।
अपश्यं नलिनीं पूर्णामुदकस्येव भारत ॥ २५
वस्त्रमुत्कर्षति मयि प्राहसत्स वृकोदरः ।
शत्रोर्ऋद्धिविशेषेण विमूढं रत्नवर्जितम् ॥ २६
तत्र स्म यदि शक्तः स्यां पातयेहं वृकोदरम् ।
यदि कुर्यां समारम्भं भीमं हन्तुं नराधिप ॥ २७
शिशुपाल इवास्माकं गतिः स्यान्नात्र संशयः ।
सपत्नेनावहासो मे स मां दहति भारत ॥ २८
पुनश्च तादृशीमेव वापीं जलजशालिनीम् ।
मत्वा शिलासमां तोये पतितोस्मि नराधिप २९
तत्र मां प्राहसत्कृष्णः पार्थेन सह सुस्वरम् ।
द्रौपदी च सह स्त्रीभिर्व्यथयन्ती मनो मम ॥ ३०
क्लिन्नवस्त्रस्य तु जले किंकरा राजनोदिताः ।
ददुर्वासांसि मेऽन्यानि तच्च दुःखं परं मम ॥ ३१
प्रलम्भं च शृणुष्वान्यद्वदतो मे नराधिप ।
अद्वारेण विनिर्गच्छन्द्वारसंस्थानरूपिणा ।
अभिहत्य शिलां भूयो ललाटेनास्मि विक्षतः ३२
तत्र मां यमजौ दूरादालोक्याभिहतं तदा ।
बाहुभिः परिगृह्णीतां शोचन्तौ सहितावुभौ ३३
उवाच सहदेवस्तु तत्र मां विस्मयन्निव ।
इदं द्वारमितो गच्छ राजन्निति पुनः पुनः ॥ ३४
भीमसेनेन तत्रोक्तो धृतराष्ट्रात्मजेति च ।
संबोध्य प्रहसित्वा च इतो द्वारं नराधिप ॥ ३५
नामधेयानि रत्नानां पुरस्तान्न श्रुतानि मे ।
यानि दृष्टानि मे तस्यां मनस्तपति तच्च मे ॥ ३६

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि दुर्योधनसंतापे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

भेदो वैरम् ॥ ११ ॥ संमूर्च्छितमिति पाठे विवृद्धम् ॥ १६ ॥ अमर्षं असहिष्णुताम् ॥१७॥ साधारणी विशेषरहिता ॥ १८ ॥ स्थिरः स्थावरः पाषाणतुल्योस्मि यतो न विदीर्णो भवामि ॥१९॥ आवर्जिताः दासवद्वशगाः॥२०॥ पर्युदस्ताः दूरक्षिप्ताः ॥ २१ ॥ ज्येष्ठो वयोऽधिकः श्रेष्ठः प्रशस्यतमः युक्तो नियुक्तः ॥ २२ ॥ अर्घहारिणां बहुमूल्यवतां रत्नानां अश्वगजादितत्तज्जात्युत्कृष्टवस्तूनां पुरःस्थितानां प्रान्तापरान्तौ देशत इयत्तावधारणं चक्षुषा न कर्तुं शक्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥ समभवत्समर्थो नाभवत् । अतिष्ठन्त प्रतीक्षां कृतवन्तः । वसुन आहर्तारः वसु दातुम् ॥२४॥ स्फाटिकाः छदा इव छदाः उपकण्ठस्थसोपानादयो यस्यास्तां । बिन्दुसरसः सकाशात् आहृतैः रत्नैः ॥ २५ ॥ प्रलम्भं वञ्चनाम् ॥ ३२ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

# ५१

दुर्योधन उवाच ।
यन्मया पाण्डवेयानां दृष्टं तच्छृणु भारत ।
आहृतं भूमिपालैर्हि वसु मुख्यं ततस्ततः ॥ १
नाविदं मूढमात्मानं दृष्ट्वाहं तदरेर्धनम् ।
फलतो भूमितो वापि प्रतिपद्यस्व भारत ॥ २
और्णान्बैलान्वार्षदंशाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
प्रावाराजिनमुख्यांश्च काम्बोजः प्रददौ बहून् ॥ ३
अश्वांस्तित्तिरिकल्माषांस्त्रिशतं शुकनासिकान् ।
उष्ट्रवामीस्त्रिशतं च पुष्टाः पीलुशमीङ्गुदैः ॥ ४
गोवासना ब्राह्मणाश्च दासनीयाश्च सर्वशः ।
प्रीत्यर्थं ते महाराज धर्मराज्ञो महात्मनः ॥ ५
त्रिखर्वं बलिमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ।
ब्राह्मणा वाटधानाश्च गोमन्तः शतसंघशः ॥ ६
कमण्डलूनुपादाय जातरूपमयाञ्छुभान् ॥ ७
एवं बलिं समादाय प्रवेशं लेभिरे न च ।
शतं दासीसहस्राणां कार्पासिकनिवासिनाम् ८
श्यामास्तन्व्यो दीर्घकेश्यो हेमाभरणभूषिताः ।
शूद्रा विप्रोत्तमार्हाणि राङ्कवाण्यजिनानि च ॥९
बलिं च कृत्स्नमादाय भरुकच्छनिवासिनः ।
उपनिन्युर्महाराज हयान्गान्धारदेशजान् ॥ १०
इन्द्रकृष्टैर्वर्तयन्ति धान्यैर्ये च नदीमुखैः ।
समुद्रनिष्कुटे जाताः पारेसिन्धु च मानवाः ११
ते वै रामाः पारदाश्च आभीराः कितवैः सह ।
विविधं बलिमादाय रत्नानि विविधानि च १२
अजाविकं गोहिरण्यं खरोष्ट्रं फलजं मधु ।
कम्बलान्विविधांश्चैव द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः१३
प्राग्ज्योतिषाधिपः शूरो म्लेच्छानामधिपो बली ।
यवनैः सहितो राजा भगदत्तो महारथः ॥ १४
आजानेयान्हयाञ्छीघ्रानादायानिलरंहसः ।
बलिं च कृत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठति वारितः ॥१५
अश्मसारमयं भाण्डं शुद्धदन्तत्सरूनसीन् ।
प्राग्ज्योतिषाधिपो दत्वा भगदत्तोऽव्रजत्तदा १६
द्व्यक्षांस्त्र्यक्षाँल्ललाटाक्षान्नानादिग्भ्यः समागतान् ।
औष्णीकानन्तवासांश्च रोमकान्पुरुषादकान् १७
एकपादांश्च तत्राहमपश्यं द्वारि वारितान् ।
राजानो बलिमादाय नानावर्णाननेकशः ॥ १८
कृष्णग्रीवान्महाकायान्रासभान्दूरपातिनः ।
आजह्रुर्दशसाहस्रान्विनीतान्दिक्षु विश्रुतान् ॥ १९
प्रमाणरागसंपन्नान्वंक्षुतीरसमुद्भवान् ।
बल्यर्थं ददतस्तस्मै हिरण्यं रजतं बहु ॥ २०
दत्वा प्रवेशं प्राप्तास्ते युधिष्ठिरनिवेशने ।
इन्द्रगोपकवर्णाभाञ्शुकवर्णान्मनोजवान् ॥ २१ ॥
तथैवेन्द्रायुधनिभान्संध्याभ्रसदृशानपि ।
अनेकवर्णानारण्यान्गृहीत्वाश्वान्महाजवान् ॥२२॥
जातरूपमनर्घ्यं च ददुस्तस्यैकपादकाः ।
चीनाञ्छकांस्तथा ओड्रान्बर्बरान्वनवासिनः २३

---

५१

यन्मयेति ॥ १ ॥ फलतः संख्यापरिच्छेदतः भूमितः देशभेदतो वा नाविदमिति संबन्धः । अपि तथापि मुख्यतः वक्ष्यमाणं धनं प्रतिपद्यस्वेत्यर्थः । यद्वा फलतो जातं वस्त्रादि भूमितो जातं हीरादि ॥ २ ॥ और्णान्मेषरोमजान् । बैलान्बिलवासिमूषकादिरोमजान् । वार्षदंशान् बिडालरोमजान् । जातरूपपरिष्कृतान्सुवर्णतन्तुभिर्वा तद्बिन्दुभिर्वा चित्रितान् । और्णाः प्रावाराः अन्यान्यजिनानीति वा विभागः ॥ ३ ॥ तित्तिरिकल्माषान् तित्तिरिपक्षिवच्चित्रान् उष्ट्राः वाम्यः गर्दभाश्वसंकरजाः उभयेऽपि पील्वादिना पुष्टिं गताः ॥ ४ ॥ गोवासना बलीवर्दपोषकाः क्षेत्रादिवृत्तिमन्तो ब्राह्मणाः तथा दासनीया दास्ययोग्या शूद्रादयः ब्राह्मणा एव वा तादृशा यथोक्तमूर्खान् ब्राह्मणान्प्रकृत्य पुष्करप्रादुर्भावे 'यस्य नैव श्रुतं राजन्न गृहीतं विशांपते । कामं तं धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्' इति । अस्मिन्पक्षे त्रिखर्वं त्रीणि याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः खर्वाणि न्युब्जानि वनलाभरूपफलहीनानि येषां ते त्रिखर्वाः विद्याध्ययनसत्कर्मशून्यत्वात् याजनादिहीना इत्यर्थः । तैस्त्रिपर्वसंज्ञे प्रदेयो बलिस्त्रिखर्वबलिस्तमित्यर्थः । वारिता इत्यनेन तेषां अत्यन्तहीनता दर्शिता ॥५॥ कार्पासिको देशविशेषः ॥ ८ ॥ भरुकच्छः देशः काञ्चनमयः सजलप्रदेशो यस्मिन्स तथा । 'भरुर्भर्तरि काञ्चने । अथ कच्छः स्यादनूपे' इति विश्वः ॥ १० ॥ समुद्रसमीपस्थनिष्कुटे गृहोद्याने समुद्रनिकुष्टे । इन्द्रकृष्टे इन्द्रेणैवाकृष्टे न तु कर्षणादिक्लेशनियतयत्नापेक्षे वनधान्यैः तदभावे तु नदीमुखैः नदीप्रभवैः ॥ ११ ॥ फलजं मधूकादिजातीयम् ॥ १३ ॥ अश्मसाराः हारपद्मरागादिमणयः तन्मयं भाण्डं भूषणं । 'भाण्डं भूषणमात्रेऽपि' इति विश्वः । त्सरुः खड्गमुष्टिः ॥ १६ ॥ द्व्यक्षादयः प्राच्यदेशभेदाः ॥ १७ ॥ नानावर्णान् रासभान् ॥ १८ ॥ प्रमाणेन दैर्घ्यपुष्ट्यादिना रागेण रम्यवर्णेन च संपन्नान् अधिकान् ॥ २० ॥

वार्ष्णेयान्हारहूणांश्च कृष्णान्हैमवतांस्तथा ।
नीपानूपानधिगतान्विविधान्द्वारवारितान् २४॥
बल्यर्थं ददतस्तस्य नानारूपाननेकशः ।
कृष्णग्रीवान्महाकायान्रासभाञ्छतपातिनः ।
अहार्षुर्दशसाहस्रान्विनीतान्दिक्षु विश्रुतान् ॥२५॥
प्रमाणरागस्पर्शाढ्यं बाल्हीचीनसमुद्भवम् ॥
और्णं च राङ्कवं चैव कीटजं पट्टजं तथा ॥ २६ ॥
कुटीकृतं तथैवात्र कमलाभं सहस्रशः ।
श्लक्ष्णं वस्त्रमकार्पासमाविकं मृदु चाजिनम् २७
निशितांश्चैव दीर्घासीनृष्टिशक्तिपरश्वधान् ।
अपरान्तसमुद्भूतांस्तथैव परशूञ्छितान् ॥ २८ ॥
रसान्गन्धांश्च विविधान्रत्नानि च सहस्रशः ।
बलिं च कृत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः २९
शकास्तुषाराः कङ्काश्च रोमशाः शृङ्गिणो नराः ।
महागजान्दूरगमान्गणितानर्बुदान्हयान् ॥ ३० ॥
शतशश्चैव बहुशः सुवर्णं पद्मसंमितम् ।
बलिमादाय विविधं द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः३१
आसनानि महार्हाणि यानानि शयनानि च ।
मणिकाञ्चनचित्राणि गजदन्तमयानि च ॥ ३२ ॥
कवचानि विचित्राणि शस्त्राणि विविधानि च ।
रथांश्च विविधाकाराञ्जातरूपपरिष्कृतान् ॥ ३३॥
हयैर्विनीतैःसंपन्नान्वैयाघ्रपरिवारितान् ।
विचित्रांश्च परिस्तोमान्रत्नानि विविधानि च ३४
नाराचानर्धनाराचाञ्छस्त्राणि विविधानि च ।
एतद्दत्त्वा महद्द्रव्यं पूर्वदेशाधिपा नृपाः ॥
प्रविष्टा यज्ञसदनं पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि द्यूतपर्वणि दुर्योधनसंतापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

दुर्योधन उवाच ।
दायं तु विविधं तस्मै शृणु मे गदतोऽनघ ।
यज्ञार्थं राजभिर्दत्तं महान्तं धनसंचयम् ॥ १ ॥
मेरुमन्दरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम् ।
ये ते कीचकवेणूनां छायां रम्यामुपासते ॥ २ ॥
खसा एकासनात्यर्हाः प्रदरा दीर्घवेणवः ॥
पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ३ ॥
तद्वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत्पिपीलकैः ।
जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पुञ्जशो नृपाः ॥ ४ ॥
कृष्णाँल्ललामांश्चमराञ्छुक्लांश्चान्याञ्छशिप्रभान् ।
हिमवत्पुष्पजं चैव स्वादु क्षौद्रं तथा बहु ॥ ५ ॥
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्चाप्यपोढं माल्यमम्बुभिः ।
उत्तरादपि कैलासादोषधीः सुमहाबलाः ॥ ६ ॥
पार्वतीया बलिं चान्यमाहृत्य प्रणताः स्थिताः ।
अजातशत्रोर्नृपतेर्द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ॥ ७ ॥
ये परार्धे हिमवतः सूर्योदयगिरौ नृपाः ॥
कारूषे च समुद्रान्ते लौहित्यमभितश्च ये ॥ ८ ॥
फलमूलाशना ये च किराताश्चर्मवाससः ।
क्रूरशस्त्राः क्रूरकृतस्तांश्च पश्याम्यहं प्रभो ॥ ९ ॥
चन्दनागुरुकाष्ठानां भारान्कालीयकस्य च ।
चर्मरत्नसुवर्णानां गन्धानां चैव राशयः ॥ १० ॥
कैरातकीनामयुतं दासीनां च विशांपते ।
आहृत्य रमणीयार्थान्दूरजान्मृगपक्षिणः ॥ ११ ॥
निचितं पर्वतेभ्यश्च हिरण्यं भूरिवर्चसम् ।
बलिं च कृत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः१२
कैराता दरदा दर्वाः शूरा वै यमकास्तथा ।
औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा बाल्हिकैः सह१३

---

कुटीकृतं चित्रगुच्छाकारं कृतं । 'स्यात्कुटी कुम्भदास्यां च मुरायां चित्रगुच्छके' इति विश्वः ॥ २७ ॥ अपरान्तात्पश्चिमदेशात् समुद्भूतान् ॥ २८ ॥ रसान् रसवन्ति तर्बुजादीनि गन्धान् गन्धवन्ति मृगमदादीनि ॥२९॥ वैयाघ्रपरिवारितान् व्याघ्रचर्मणा परिवृतान् । परिस्तोमान् गजकम्बलान् । 'परिस्तोमः कुथो द्वयोः'इत्यमरः ॥ ३४ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

दायं करार्थं देयं धनं 'दायो दाने यौतकादिधने' इति विश्वः ॥ १ ॥ कृष्णानित्यादयो मणिभेदाः पाठान्तरे हिमजं हिमालयजम् ॥ ५ ॥ लौहित्यं पर्वतम् ॥८॥ कालीयकस्य कृष्णागुरोः ॥ १० ॥ निचितं राशीकृतं पर्वतेभ्योपि भूरि वर्चसं तेजस्वि अर्शआद्यच् ॥ १२ ॥

काश्मरिाश्च कुमाराश्च घोरका हंसकायनाः ।
शिबित्रिगर्तयौधेया राजन्या भद्रकेकयाः १४ ॥
अम्बष्ठाः कौकुरास्तार्क्ष्या वस्त्रपाः पल्हवैः सह ।
वशातलाश्च मौलेयाः सह क्षुद्रकमालवैः ॥ १५॥
पौंड्रिकाः कुकुराश्चैव शकाश्चैव विशांपते ।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च शाणवत्या गयास्तथा ॥१६
सुजातयः श्रेणिमन्तः श्रेयांसः शस्त्रधारिणः ।
अहार्षुः क्षत्रिया वित्तं शतशोऽजातशत्रवे ॥१७॥
वङ्गाः कलिङ्गा मगधास्ताम्रलिप्ताः सुपुण्ड्रकाः ।
दौवालिकाः सागरकाः पत्रोर्णाः शैशवास्तथा१८
कर्णप्रावरणाश्चैव बहवस्तत्र भारत ।
तत्रस्था द्वारपालैस्ते प्रोच्यन्ते राजशासनात् ।
कृतकालाः सुबलयस्ततो द्वारमवाप्स्यथ ॥ १९ ॥
ईषादन्तान्हेमकक्षान्पद्मवर्णान्कुथावृतान् ।
शैलाभान्नित्यमत्तांश्चाप्यभितः काम्यकं सरः२०
दत्त्वैकैको दशशतान्कुञ्जरान्कवचावृतान् ।
क्षमावन्तः कुलीनाश्च द्वारेण प्राविशंस्तथा ॥ २१
एते चान्ये च बहवो गणा दिग्भ्यः समागताः ।
अन्यैश्चोपाहृतान्यत्र रत्नानीह महात्मभिः ॥२२॥
राजा चित्ररथो नाम गन्धर्वो वासवानुगः ।
शतानि चत्वार्यददद्धयानां वातरंहसाम् ॥ २३ ॥
तुम्बुरुस्तु प्रमुदितो गन्धर्वो वाजिनां शतम् ।
आम्रपत्रसवर्णानामददद्धेममालिनाम् ॥ २४ ॥
कृती राजा च कौरव्य शूकराणां विशांपते ।
अददद्गजरत्नानां शतानि सुबहून्यथ ॥ २५ ॥
विराटेन तु मत्स्येन बल्यर्थं हेममालिनाम् ।
कुञ्जराणां सहस्रे द्वे मत्तानां समुपाहृते ॥ २६
पांशुराष्ट्राद्वसुदानो राजा षड्विंशतिं गजान् ।
अश्वानां च सहस्रे द्वे राजन्काञ्चनमालिनाम् ॥२७
जवसत्त्वोपपन्नानां वयस्थानां नराधिप ।
बलिं च कृत्स्नमादाय पाण्डवेभ्यो न्यवेदयत् ॥२८
यज्ञसेनेन दासीनां सहस्राणि चतुर्दश ।
दासानामयुतं चैव सदाराणां विशांपते ।
गजयुक्ता महाराज रथाः षड्विंशतिस्तथा ॥ २९
राज्यं च कृत्स्नं पार्थेभ्यो यज्ञार्थं वै निवेदितम् ।
वासुदेवोपि वार्ष्णेयो मानं कुर्वन्किरीटिनः ॥ ३०
अददद्गजमुख्यानां सहस्राणि चतुर्दश
आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनंजयः ॥
यद्ब्रूयादर्जुनः कृष्णं सर्वं कुर्यादसंशयम् ।
कृष्णो धनंजयस्यार्थे स्वर्गलोकमपि त्यजेत् ॥ ३२
तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत् ।
सुरभींश्चन्दनरसान्हेमकुम्भसमास्थितान् ॥ ३३
मलयाद्दर्दुराच्चैव चन्दनागुरुसंचयान्
मणिरत्नानि भास्वन्ति काञ्चनं सूक्ष्मवस्त्रकम् ॥ ३४
चोलपाण्ड्यावपि द्वारं न लेभाते ह्युपस्थितौ ।
समुद्रसारं वैदूर्यं मुक्तासंघांस्तथैव च ॥ ३५
शतशश्च कुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन् ।
संवृता मणिचीरैस्तु श्यामास्ताम्रान्तलोचनाः ॥३६
ता गृहीत्वा नरास्तत्र द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ।
प्रीत्यर्थं ब्राह्मणाश्चैव क्षत्रियाश्च विनिर्जिताः ॥ ३७
उपाजह्रुर्विशश्चैव शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ।
प्रीत्या च बहुमानाच्चाप्युपागच्छन्युधिष्ठिरम् ३८
सर्वे म्लेच्छाः सर्ववर्णा आदिमध्यान्तजास्तथा ।
नानादेशसमुत्थैश्च नानाजातिभिरेव च ॥ ३९
पर्यस्त इव लोकोयं युधिष्ठिरनिवेशने ।
उच्चावचानुपग्राहान्राजभिः प्रापितान्बहून् ॥ ४०
शत्रूणां पश्यतो दुःखान्मुमूर्षा मे ह्यजायत ।
भृत्यास्तु ये पाण्डवानां तांस्ते वक्ष्यामि पार्थिव ४१
येषामामं च पक्वं च संविधत्ते युधिष्ठिरः ।
अयुतं त्रीणि पद्मानि गजारोहाः ससादिनः ॥४२
रथानामर्बुदं चापि पादाता बहवस्तथा ।
प्रमीयमाणमामं च पच्यमानं तथैव च ॥ ४३
विसृज्यमानं चान्यत्र पुण्याहस्वन एव च ।
नाभुक्तवन्तं नापीतं नालंकृतमसत्कृतम् ॥ ४४
अपश्यं सर्ववर्णानां युधिष्ठिरनिवेशने ।
अष्टाशीति सहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः ॥ ४५
त्रिंशद्दासीक एकैको यान्बिभर्ति युधिष्ठिरः ।
सुप्रीताः परितुष्टाश्च ते ह्याशंसन्त्यरिक्षयम् ॥ ४६
दशान्यानि सहस्राणि यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
भुञ्जते रुक्मपात्रीभिर्युधिष्ठिरनिवेशने ॥ ४७
अभुक्तं भुक्तवद्वापि सर्वमाकुब्जवामनम् ।
अभुञ्जाना याज्ञसेनी प्रत्यवैक्षद्विशांपते ॥ ४८

कृतकालाः कृतप्रस्तावाः कृतद्वारा इति पाठे द्वारं प्रतीहारेण सत्यम् ॥१९॥ ईषादन्तान् लाङ्गलदण्डतुल्यदन्तान् हेकमक्षाः सुवर्णवरत्राः ॥२०॥ शूकराः देशभेदास्तेषाम् ॥२५॥ यज्ञसेनेन दत्तानीति शेषः ॥ २९ ॥ समुद्रसारं मुक्ताफलादि ॥ ३५ ॥ कुथान् करिकम्बलान् ॥ ३६ ॥ पर्यस्त इव भूदेशोपि स्वर्गीभूत इव उपग्राहानुपहारान् ॥ ४० ॥ प्रमीयमाणं खार्यादिना मानेन गण्यमानं अपक्वम् ॥ ४३ ॥

द्वौ करौ न प्रयच्छेतां कुन्तीपुत्राय भारत। | सांबान्धिकेन पाञ्चालाः सख्येनान्धकवृष्णयः

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि द्यूतपर्वणि दुर्योधनसंतापे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

---

## ५३

दुर्योधन उवाच ।

आर्यास्तु ये वै राजानः सत्यसंधा महाव्रताः ।
पर्याप्तविद्या वक्तारो वेदान्तावभृथप्लुताः ॥ १

धृतिमन्तो ह्रीनिषेवा धर्मात्मानो यशस्विनः ।
मूर्धाभिषिक्तास्ते चैनं राजानः पर्युपासते ॥ २

दक्षिणार्थं समानीता राजभिः कांस्यदोहनाः ।
आरण्या बहुसाहस्रा अपश्यंस्तत्र तत्रगाः ॥ ३

आजह्रुस्तत्र सत्कृत्य स्वयमुद्यम्य भारत ।
अभिषेकार्थमव्यग्रा भाण्डमुच्चावचं नृपाः ॥ ४

बाल्हीको रथमाहार्षीज्जाम्बूनदविभूषितम् ।
सुदाक्षिणस्तु युयुजे श्वेतैः काम्बोजजैर्हयैः ॥ ५

सुनीथः प्रीतिमांश्चैव ह्यनुकर्षं महाबलः ।
ध्वजं चेदिपतिश्चैवमहार्षीत्स्वयमुद्यतम् ॥ ६

दाक्षिणात्यः संनहनं स्रगुष्णीषे च मागधः ।
वसुदानो महेष्वासो गजेन्द्रं षष्टिहायनम् ॥ ७

मत्स्यस्त्वक्षान्हेमनद्धानेकलव्य उपानहौ ।
आवन्त्यस्त्वभिषेकार्थमापो बहुविधास्तथा ॥ ८

चेकितान उपासंगं धनुः काश्य उपाहरत् ।
असिं च सुत्सरुं शल्यः शैक्यं काञ्चनभूषणम् ॥९

अभ्यषिञ्चत्ततो धौम्यो व्यासश्च सुमहातपाः ।
नारदं च पुरस्कृत्य देवलं चासितं मुनिम् ॥ १०

प्रीतिमन्त उपातिष्ठन्नभिषेकं महर्षयः ।
जामदग्न्येन सहितास्तथान्ये वेदपारगाः ॥ ११

अभिजग्मुर्महात्मानो मन्त्रवद्भूरिदक्षिणम् ।
महेन्द्रमिव देवेन्द्रं दिवि सप्तर्षयो यथा ॥ १२

अधारयच्छत्रमस्य सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
धनंजयश्च व्यजने भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ १३

चामरे चापि शुद्धे द्वे यमौ जगृहतुस्तथा ।
उपागृह्णाद्यमिन्द्राय पुराकल्पे प्रजापतिः ॥ १४

तमस्मै शङ्खमाहार्षीद्वारुणं कलशोदधिः ।
शैक्यं निष्कसहस्रेण सुकृतं विश्वकर्मणा ॥ १५

तेनाभिषिक्तः कृष्णेन तत्र मे कश्मलोऽभवत् ।
गच्छन्ति पूर्वादपरं समुद्रं चापि दक्षिणम् ॥ १६

उत्तरं तु न गच्छन्ति विना तात पतत्रिभिः ।
तत्र स्म दध्मुः शतशः शङ्खान्मङ्गलकारकान् १७

प्राणदन्त समाध्मातास्ततो रोमाणि मेऽहृषन् ।
प्रापतन्भूमिपालाश्च ये तु हीनाः स्वतेजसा ॥ १८

धृष्टद्युम्नः पाण्डवाश्च सात्यकिः केशवोऽष्टमः ।
सत्त्वस्था वीर्यसंपन्ना ह्यन्योन्यप्रियदर्शनाः ॥ १९

विसंज्ञान्भूमिपान्दृष्ट्वा मां च ते प्राहसंस्तदा ।
ततः प्रहृष्टो बीभत्सुः प्रादाद्धेमविषाणिनाम् ॥२०

शतान्यनडुहां पञ्च द्विजमुख्येषु भारत ।
न रन्तिदेवो नाभागो यौवनाश्वो मनुर्न च ॥ २१

न च राजा पृथुर्वैन्यो न चाप्यासीद्भगीरथः ।
ययातिर्नहुषो वापि यथा राजा युधिष्ठिरः ॥ २२

यथातिमात्रं कौन्तेयः श्रिया परमया युतः ।
राजसूयमवाप्यैवं हरिश्चन्द्र इव प्रभुः ॥ २३

एतान्दृष्ट्वा श्रियं पार्थे हरिश्चन्द्रे यथा विभो ।
कथं तु जीवितं श्रेयो मम पश्यसि भारत ॥ २४

अन्धेनेव युगं नद्धं विपर्यस्तं नराधिप ।
कनीयांसो विवर्धन्ते ज्येष्ठा हीयन्त एव च ॥२५

---

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३

आर्यास्त्विति ॥ १ ॥ ह्रीनिषेवाः लज्जावन्तः ह्रीनिषेधा इति पाठे ह्रीरेवाकार्यान्निषेधिका येषां ते ॥ २ ॥ अनुकर्षं रथाधःस्थितदारु ॥६॥ अक्षान् शकटान् हेमनद्धान् धनपूर्णान् 'अक्षः कर्षे तुषे चक्रे शकटव्यवहारयोः' इति विश्वः ॥ ८ ॥ उपासंगं निषंगं । सुत्सरुं शोभनमुष्टिं असिं खड्गं शैक्यं शिक्यवृतं पात्रम् ॥ ९ ॥ वारुणं शङ्खं कलशोदधिः समुद्रः निष्कसहस्रेण सुवर्णेन सुकृतं आलिप्तं शङ्खम् ॥ १५ ॥ कश्मलो मूर्च्छा ॥ १६ ॥ मां च विसंज्ञं दृष्ट्वा ॥ २० ॥ युगं द्वापराख्यं अन्धेनेव विधात्रा नद्धं संबद्धं अत एव विपर्यस्तं ॥ २५ ॥

एवं दृष्ट्वा नाभिविन्दामि शर्म ।
समीक्षमाणोपि कुरुप्रवीर ॥
तेनाहमेवं कृशतां गतश्च
विवर्णतां चैव सशोकतां च॥ २६

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० दुर्योधनसंतापे त्रिपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

धृतराष्ट्र उवाच ।
त्वं वै ज्येष्ठो ज्यैष्ठिनेयः पुत्र मा पाण्डवान्द्विषः
द्वेष्टा ह्यसुखमादत्ते यथैव निधनं तथा ॥ १
अव्युत्पन्नं समानार्थं तुल्यमित्रं युधिष्ठिरम् ।
अद्विषन्तं कथं द्विष्यात्त्वादृशो भरतर्षभ ॥ २
तुल्याभिजनवीर्यश्च कथं भ्रातुः श्रियं नृप ।
पुत्र कामयसे मोहान्मैवं भूः शाम्य मा शुचः ३
अथ यज्ञविभूतिं तां काङ्क्षसे भरतर्षभ ।
ऋत्विजस्तव तन्वन्तु सप्ततन्तुं महाध्वरम् ॥ ४
आहरिष्यन्ति राजानस्तवापि विपुलं धनम् ।
प्रीत्या च बहुमानाच्च रत्नान्याभरणानि च ॥ ५
अनार्याचरितं तात परस्वस्पृहणं भृशम् ।
स्वसंतुष्टः स्वधर्मस्थो यः स वै सुखमेधते ॥ ६
अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्मसु ।
रक्षणं समुपात्तानामेतद्वैभवलक्षणम् ॥ ७
विपत्तिष्वव्यथो दक्षो नित्यमुत्थानवान्नरः ।
अप्रमत्तो विनीतात्मा नित्यं भद्राणि पश्यति ॥८
बाहूनिवैतान्मा छेत्सीः पाण्डुपुत्रास्तथैव ते ।
भ्रातृणां तद्धनार्थं वै मित्रद्रोहं च मा कुरु ॥ ९
पाण्डोः पुत्रान्मा द्विषस्वेह राजं-
स्तथैव ते भ्रातृधनं समग्रम् ।
मित्रद्रोहे तात महानधर्मः
पितामहा ये तव तेपि तेषाम् ॥ १०
अन्तर्वेद्यां ददद्वित्तं कामाननुभवन्प्रियान् ।
क्रीडन्स्त्रीभिर्निरातङ्कः प्रशाम्य भरतर्षभ ॥ ११

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० दुर्योधनसंतापे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

दुर्योधन उवाच ।
यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः ।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी सूपरसानिव ॥ १
जानन्वै मोहयसि मां नावि नौरिव संयता ।
स्वार्थे किं नावधानं ते उताहो द्वेष्टि मां भवान् २
न सन्तीमे धार्तराष्ट्रा येषां त्वमनुशासिता ।
भविष्यमर्थमाख्यासि सर्वदा कृत्यमात्मनः ॥ ३॥
परनेयोऽग्रणीर्यस्य स मार्गान्प्रति मुह्यति ।
पन्थानमनुगच्छेयुः कथं तस्य पदानुगाः ॥ ४ ॥

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

त्वं वै इति । ज्येष्ठाया अपत्यं ज्यैष्ठिनेयः । कल्याण्यादीनामिनङ् ढक्च ॥ १ ॥ अव्युत्पन्नं परकपटानभिज्ञं । समानार्थं तुल्यधनं । तुल्यमित्रं त्वन्मित्राद्रोहिणं अद्विषन्तं च त्वामपीति शेषः ॥ २ ॥ सप्तगायत्र्यादीनि छन्दांसि तन्तव इव यस्य यज्ञपटस्य तम् ॥ ४ ॥ अन्तर्वेद्यां यज्ञे ॥ ११ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

यस्येति । कार्योदर्कनिर्णायकमूहापोहकौशलं प्रज्ञा ॥१॥ नावि नौरिवेत्यस्वातन्त्र्यं द्वितीयो विकल्पः ॥ २ ॥ आहरिष्यन्ति राजानस्तवापि विपुलं धनमित्युक्तं तत्राह भविष्यमिति । कार्यं इदानीमेवानुष्ठेयमर्थं द्यूतेन शत्रुश्रीहरणरूपं प्रयोजनं । तत् भविष्यं यज्ञकालिकं वदसि ॥३॥ ननु विदुरो द्यूतं न मन्यते इत्याशंक्याह परनेय इति । अस्माकमग्रणीस्त्वं विदुरशिक्षणीयो मा भूरित्यर्थः ॥ ४ ॥

राजन्परिणतप्रज्ञो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
प्रतिपन्नान्स्वकार्येषु संमोहयसि नो भृशम् ॥ ५॥
लोकवृत्ताद्राजवृत्तमन्यदाह बृहस्पतिः ।
तस्माद्राज्ञाऽप्रमत्तेन स्वार्थश्चिन्त्यः सदैव हि॥६॥
क्षत्रियस्य महाराज जये वृत्तिः समाहिता ।
स वै धर्मस्त्वधर्मो वा स्ववृत्तौ का परीक्षणा ॥७
प्रकालयेद्दिशः सर्वाः प्रतोदेनेव सारथिः ।
प्रत्यमित्रश्रियं दीप्तां जिघृक्षुर्भरतर्षभ ॥ ८ ॥
प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा योगो योऽरिं प्रबाधते ।
तद्वै शस्त्रं शस्त्रविदां न शस्त्रं छेदनं स्मृतम् ॥९ ॥
शत्रुश्चैव हि मित्रं च न लेख्यं न च मातृका ।
यो वै संतापयति यं स शत्रुः प्रोच्यते नृप ॥१०॥
असंतोषः श्रियो मूलं तस्मात्तं कामयाम्यहम् ।
समुच्छ्रये यो यतते स राजन्परमो नयः ॥ ११॥
मम त्वं हि न कर्तव्यमैश्वर्ये वा धनेपि वा ।
पूर्वावाप्तं हरन्त्यन्ये राजधर्मं हि तं विदुः ॥१२ ॥
अद्रोहसमयं कृत्वा चिच्छेद नमुचेः शिरः ।
शक्रः साभिमता तस्य रिपौ वृत्तिः सनातनी १३
द्वावेतौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥१४
नास्ति वै जातितः शत्रुः पुरुषस्य विशांपते ।
येन साधारणी वृत्तिः स शत्रुर्नेतरो जनः ॥ १५॥
शत्रुपक्षं समृध्यन्तं यो मोहात्समुपेक्षते ।
व्याधिराप्यायित इव तस्य मूलं छिनत्ति सः १६
अल्पोपि त्वरिरत्यर्थं वर्धमानः पराक्रमैः ।
वल्मीको मूलज इव ग्रसते वृक्षमन्तिकात् ॥१७॥
आजमीढरिपोर्लक्ष्मीर्मा ते रोचिष्ट भारत ।
एष भारः सत्त्ववतां नयः शिरसि धिष्ठितः १८॥
जन्मवृद्धिमिवार्थानां यो वृद्धिमभिकाङ्क्षते ।
एधते ज्ञातिषु स वै सद्यो वृद्धिर्हि विक्रमः॥१९॥
नाप्राप्य पाण्डवैश्वर्यं संशयो मे भविष्यति ।
अवाप्स्ये वा श्रियं तां हि शिष्ये वा निहतो युधि
एतादृशस्य किं मेद्य जीवितेन विशांपते ।
वर्धन्ते पाण्डवा नित्यं वयं त्वस्थिरवृद्धयः ॥ २१

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि दुर्योधनसंतापे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

---

## ५६

शकुनिरुवाच ।
यां त्वमेतां श्रियं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रे युधिष्ठिरे ।
तप्यसे तां हरिष्यामि द्यूतेन जयतां वर ॥ १
आहूयतां परं राजन्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अगत्वा संशयमहमयुध्वा च चमूमुखे ॥ २
अक्षान्क्षिपन्नक्षतः सन्विद्वानविदुषो जये ।
ग्लहान्धनूंषि मे विद्धि शरानक्षांश्च भारत ॥ ३
अक्षाणां हृदयं मे ज्यां रथं विद्धि ममास्फुरम् ४
दुर्योधन उवाच ।
अयमुत्सहते राजञ्श्रियमाहर्तुमक्षवित् ।
द्यूतेन पाण्डुपुत्रेभ्यस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ५

---

जानन्नेवाहं तव हितं वदामीति चेत्तत्राह राजन्निति । मोहमेव ददासि न तु हितं वदसीत्यर्थः ॥ ५ ॥ प्रशाम्य भरतर्षभेति त्वदुक्तो निवृत्तिरूपो धर्मो बुभूषूणामस्माकं नेष्ट इत्याह लोकेत्यादिना ॥ ६ ॥ ननु विप्रियकर्ता शत्रुर्न च पाण्डवास्तथा सन्तीत्याशंक्याह शत्रुरिति ॥१०॥ ब्राह्मणं संन्यासिनम् ॥ १४ ॥ साधारणी तुल्या वृत्तिर्जीविका एकामिषत्वमित्यर्थः ॥ १५ ॥ मा ते रोचिष्ट रुचिकरी मा भूत् सत्त्ववतां बुद्धिमतां नयो नीतिः धिष्ठितः स्थितः अयं सद्यो धीमद्भिः शिरसा वोढव्य इत्यर्थः ॥१८॥ जन्मवृद्धिमिव जन्मप्रभृति जीवद्देहादेर्या वृद्धिः स्वाभाविकी तामिव एधते वर्धते सद्यः अर्थानां वृद्धिर्येन सः सद्यो- वृद्धिः विक्रमः पराक्रमः ॥ १९ ॥ नाप्राप्येति पाण्डवैश्वर्यं अप्राप्य अनवाप्य अदृष्ट्वेति यावत् । संशयो वितर्को न भविष्यति नाभविष्यत् । वितर्कमेवाह अवाप्स्ये इति । पाण्डवैश्वर्यं दृष्ट्वा इदं हर्तव्यं वा मया मर्तव्यं वेत्येव वितर्को जात इत्यर्थः ॥ २० ॥ अस्थिरावृद्धि रहिता- वृद्धिः संपत् येषां ॥ २१ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

यां त्वमिति ॥ १ ॥ ग्लहान् पणान् ॥ ३ ॥ आस्फुरं अक्षविन्यासपातनादिस्थानम् ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।
स्थितोऽस्मि शासने भ्रातुर्विदुरस्य महात्मनः ।
तेन संगम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥ ६
दुर्योधन उवाच ।
व्यपनेष्यति ते बुद्धिं विदुरो मुक्तसंशयः ।
पाण्डवानां हिते युक्तो न तथा मम कौरव ॥ ७
नारभेतान्यसामर्थ्यात्पुरुषः कार्यमात्मनः ।
मतिसाम्यं द्वयोर्नास्ति कार्येषु कुरुनन्दन ॥ ८
भयं परिहरन्मन्द आत्मानं परिपालयन् ।
वर्षासु क्लिन्नकटवत्तिष्ठन्नेवावसीदति ॥ ९
न व्याधयो नापि यमः प्राप्तुं श्रेयः प्रतीक्षते ।
यावदेव भवेत्कल्पस्तावच्छ्रेयः समाचरेत् ॥ १०
धृतराष्ट्र उवाच ।
सर्वथा पुत्र बलिभिर्विग्रहो मे न रोचते ।
वैरं विकारं सृजति तद्वै शस्त्रमनायसम् ॥ ११
अनर्थमर्थं मन्यसे राजपुत्र
संग्रन्थनं कलहस्याति याति ।
तद्वै प्रवृत्तं तु यथा कथंचित्
सृजेदसीन्निशितान्सायकांश्च ॥ १२
दुर्योधन उवाच ।
द्यूते पुराणैर्व्यवहारः प्रणीत-
स्तत्रात्ययो नास्ति न संप्रहारः ।
तद्रोचतां शकुनेर्वाक्यमद्य
सभां क्षिप्रं त्वमिहाज्ञापयस्व ॥ १३
स्वर्गद्वारं दीव्यतां नो विशिष्टं
तद्वर्तिनां चापि तथैव युक्तम् ।
भवेदेवं ह्यात्मना तुल्यमेव
दुरोदरं पाण्डवैस्त्वं कुरुष्व ॥ १४
धृतराष्ट्र उवाच ।
वाक्यं न मे रोचते यत्त्वयोक्तं
यत्ते प्रियं तत्क्रियतां नरेन्द्र ।
पश्चात्तप्स्यसे तदुपाक्रम्य वाक्यं
न हीदृशं भावि वचो हि धर्म्यम् ॥ १५
दृष्टं ह्येतद्विदुरेणैव सर्वं
विपश्चिता बुद्धिविद्यानुगेन ।
तदेवैतदवशस्याभ्युपैति
महद्भयं क्षत्रियजीवघाति ॥ १६
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा धृतराष्ट्रो मनीषी
दैवं मत्वा परमं दुस्तरं च ।
शशासोच्चैः पुरुषान्पुत्रवाक्ये
स्थितो राजा दैवसंमूढचेताः ॥ १७
सहस्रस्तम्भां हेमवैदूर्यचित्रां
शतद्वारां तोरणस्फाटिकाख्याम् ।
सभामग्र्यां क्रोशमात्रायतां मे
तद्विस्तारामाशु कुर्वन्तु युक्ताः ॥ १८
श्रुत्वा तस्य त्वरिता निर्विशङ्काः
प्राज्ञा दक्षास्तां तदा चक्रुराशु ।
सर्वद्रव्याण्युपजह्रुः सभायां
सहस्रशः शिल्पिनश्चैव युक्ताः ॥ १९
कालेनाल्पेनाथ निष्ठां गतां तां
सभां रम्यां बहुरत्नां विचित्राम् ।
चित्रैर्हैमैरासनैरभ्युपेता-
माचख्युस्ते तस्य राज्ञः प्रतीताः ॥ २०
ततो विद्वान्विदुरं मन्त्रिमुख्य-
मुवाचेदं धृतराष्ट्रो नरेन्द्रः ।
युधिष्ठिरं राजपुत्रं च गत्वा
मद्वाक्येन क्षिप्रमिहानयस्व ॥ २१
सभेयं मे बहुरत्ना विचित्रा
शय्यासनैरुपपन्ना महार्हैः ।
सा दृश्यतां भ्रातृभिः सार्धमेत्य
सुहृद्द्यूतं वर्ततामत्र चेति ॥ २२

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० युधिष्ठिरानयेन षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

---

नारभेतेति । परबुद्धिर्विनाशायेति भावः ॥ ८ ॥ भयं भयशङ्काहेतुं द्यूतादिकं परिहरन् ॥ ९ ॥ कल्पः समर्थः ॥ १० ॥ विकारं पूर्वावस्थाच्युतिं अनायसं अलोहजम् ॥ ११ ॥ अनर्थं द्यूताख्यमनर्थहेतुं संग्रन्थनं गुम्फनम् ॥ १२ ॥ पुराणैर्नलादिभिः व्यवहारः प्रवृत्तिः प्रणीतः अनुष्ठितः अत्ययो नाशः संप्रहारो युद्धम् ॥ १३ ॥ स्वर्गद्वारं सुखद्वारं । शत्रूणामभिभवो धनलाभश्च सुखं तच्च न केवलेन धनेन यज्ञादिद्वारा वा । अत एव विशिष्टं श्रेष्ठं । दुरोदरं द्यूतम् ॥ १४ ॥ उपाक्रम्य संस्मृत्य । भावि भवितुं ऐश्वर्यं कर्तुं शीलमस्येयस्ति भावि । न श्रेयस्करमित्यर्थः ॥ १५ ॥ दृष्टं ज्ञातं । बुद्धिविद्यानुगेन । बुद्धिः ऊहापोहकौशलं । विद्या शास्त्राध्ययनं दिव्यं ज्ञानं वा ॥ १६ ॥ परमं प्रयत्नादाधिकं । दुस्तरं यत्नशतेनाप्यपरिहार्यम् ॥ १७ ॥ क्रोशमात्रं आयतां दीर्घां तद्विस्तारा क्रोशमात्रविस्तारां । युक्ताः संनद्धाः ॥ १८ ॥ निष्ठां निष्पन्नत्वं हैमैरास्तरैरिति पाठे सुवर्णतन्तुनिर्मितैः कशिपुभिः ॥ २० ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

वैशंपायन उवाच ।
मतमाज्ञाय पुत्रस्य धृतराष्ट्रो नराधिपः ।
मत्वा च दुस्तरं दैवमेतद्राजंश्चकार ह ॥ १
अन्यायेन तथोक्तस्तु विदुरो विदुषां वरः ।
नाभ्यनन्दद्वचो भ्रातुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २
विदुर उवाच ।
नाभिनन्दे नृपते प्रैषमेतं
मैवं कृथाः कुलनाशाद्बिभेमि ।
पुत्रैर्भिन्नैः कलहस्ते ध्रुवं स्या-
देतच्छङ्के द्यूतकृते नरेन्द्र ॥ ३
धृतराष्ट्र उवाच ।
नेह क्षत्तः कलहस्तप्स्यते मां
न चेद्दैवं प्रतिलोमं भविष्यत् ।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे किलेदं
सर्वं जगच्चेष्टति न स्वतन्त्रम् ॥ ४
तदद्य विदुर प्राप्य राजानं मम शासनात् ।
क्षिप्रमानय दुर्धर्षं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि युधिष्ठिरानयने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

वैशंपायन उवाच ।
ततः प्रायाद्विदुरोऽश्वैरुदारै-
र्महाजवैर्बलिभिः साधु दान्तैः ।
बलान्नियुक्तो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
मनीषिणां पाण्डवानां सकाशे ॥ १
सोऽभिपत्य तदध्वानमासाद्य नृपतेः पुरम् ।
प्रविवेश महाबुद्धिः पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ २
स राजगृहमासाद्य कुबेरभवनोपमम् ।
अभ्यागच्छत धर्मात्मा धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ३
तं वै राजा सत्यधृतिर्महात्मा
अजातशत्रुर्विदुरं यथावत् ।
पूजापूर्वं प्रतिगृह्याजमीढ-
स्ततोऽपृच्छद्धृतराष्ट्रं सपुत्रम् ॥ ४
युधिष्ठिर उवाच ।
विज्ञायते ते मनसोऽप्रहर्षः
कच्चित्क्षत्तः कुशलेनागतोसि ।
कच्चित्पुत्राः स्थविरस्यानुलोमा
वशानुगाश्चापि विशोथ कच्चित् ॥ ५
विदुर उवाच ।
राजा महात्मा कुशली सपुत्र
आस्ते वृतो ज्ञातिभिरिन्द्रकल्पः ।
प्रीतो राजन्पुत्रगुणैर्विनीतो
विशोक एवात्मरतिर्महात्मा ॥ ६
इदं तु त्वां कुरुराजोऽभ्युवाच
पूर्वं पृष्ट्वा कुशलं चाव्ययं च ।
इयं सभा त्वत्सभातुल्यरूपा
भ्रातॄणां ते दृश्यतामेत्य पुत्र ॥ ७
समागम्य भ्रातृभिः पार्थ तस्यां
सुहृद्द्यूतं क्रियतां रम्यतां च ।
प्रीयामहे भवतां संगमेन
समागताः कुरवश्चापि सर्वे ॥ ८

---

५७

प्रैषं आज्ञावचनं । द्यूतकृते द्यूतनिमित्तं ॥ ३ ॥ दिष्टस्य दैवस्य वशे धात्रा स्थापयित्रा अन्तर्यामिणा प्रयोजकेन इदं जगच्चेष्टति । तथा च श्रुतिः 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते' इति । पूर्वकर्मापेक्ष ईश एव सत्यसति वा मार्गे प्रवर्तयतीति श्रुतेरर्थः । तिष्ठतीति पाठे कोपि अनुतिष्ठतीत्यर्थः ॥ ४ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

५८

तत इति ॥ १ ॥ तत् पुरमिति संबन्धः । द्विजातिभिस्त्रैवर्णिकैः ॥ २ ॥ तं प्रति धृतराष्ट्रं अपृच्छत् ॥ ४ ॥ कुशलेन अस्मत्कुशलहेतोः ॥ ५ ॥ आत्मरतिः आत्मनः स्वस्योत्कर्ष एव रतिर्यस्य । न तु धर्ममन्वीक्षते इति भावः दृढात्मेति पाठे कठिनचित्तः ॥ ६ ॥ अव्ययं धनादेरविनाशम् ॥ ७ ॥ रम्यतां क्रीडा क्रियतां ॥ ८ ॥

दुरोदरा विहिता ये तु तत्र
महात्मना धृतराष्ट्रेण राज्ञा ।
तान्द्रक्ष्यसे कितवान्संनिविष्टा-
न्नित्यागतोऽहं नृपते तज्जुषस्व ॥ ९

युधिष्ठिर उवाच ।

द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यते नः
को वै द्यूतं रोचते बुध्यमानः ।
किं वा भवान्मन्यते युक्तरूपं
भवद्वाक्ये सर्व एव स्थिताः स्म ॥ १०

विदुर उवाच ।

जानाम्यहं द्यूतमनर्थमूलं
कृतश्च यत्नोऽस्य मया निवारणे ।
राजा च मां प्राहिणोत्त्वत्सकाशं
श्रुत्वा विद्वञ्छ्रेय इहाचरस्व ॥ ११

युधिष्ठिर उवाच ।

के तत्रान्ये कितवा दीव्यमाना
विना राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः ।
पृच्छामि त्वां विदुर ब्रूहि नस्तान्
यैर्दीव्यामः शतशः संनिपत्य ॥ १२

विदुर उवाच ।

गान्धारराजः शकुनिर्विशांपते
राजाऽतिदेवी कृतहस्तो मताक्षः ।
विविंशतिश्चित्रसेनश्च राजा
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयश्च ॥ १३

युधिष्ठिर उवाच ।

महाभयाः कितवाः संनिविष्टा
मायोपधा देवितारोऽत्र सन्ति ।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे किलेदं
सर्वं जगत्तिष्ठति न स्वतन्त्रम् ॥ १४

नाहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शासना-
न्न गन्तुमिच्छामि कवे दुरोदरम् ।
इष्टो हि पुत्रस्य पिता सदैव
तदस्मि कर्ता विदुरात्थ मां यथा ॥ १५

न चाकामः शकुनिना देविताहं
न चेन्मां जिष्णुराह्वयिता सभायाम् ।
आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचि-
त्तदाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे ॥ १६

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा विदुरं धर्मराजः
प्रायात्रिकं सर्वमाज्ञाप्य तूर्णम् ।
प्रायाच्छ्वोभूते सगणः सानुयात्रः
सह स्त्रीभिर्द्रौपदीमादि कृत्वा ॥ १७

दैवं हि प्रज्ञां मुष्णाति चक्षुस्तेज इवापतत् ।
धातुश्च वशमन्वेति पाशैरिव नरः सितः ॥ १८

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सह क्षत्त्रा युधिष्ठिरः ।
अमृष्यमाणस्तस्याथ समाह्वानमरिंदमः ॥ १९

---

दुरोदरा द्यूतकाराः कितवान् धूर्तान् कपटिन इति यावत् । इत्यागतः इति हेतोः जुषस्व रोचय॥९॥बुध्यमानः 'अन्ये जायां परिमृशंत्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः । पिता माता भ्रातर एनमाहुरजानीमो नयताबद्धमेतं' इति श्रुत्युक्तान् द्यूतदोषान् जानन् । अक्षः पाशो यस्य वेदने बुद्धौ । अगृधत् गर्धं कृतवान् वाजी वेगवान् अक्षैर्दीव्ये इति यस्य बुद्धिरुत्पन्ना स सद्य एव पराभूयत इत्यर्थः। तथापि 'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया 'इति न्यायेन तत्त्वदुक्तमवश्यमनुतिष्ठेयमित्याह किं वेति । सर्वे वयं पाण्डवाः ॥ १० ॥ द्यूते कृते इहलोकहानिर्गुर्वाज्ञोल्लङ्घने परलोकहानिरतः श्रेय आमुष्मिकं हितं गुर्वाज्ञापालनं प्रशस्तं । तदेवआचरेत्यर्थः ॥ ११ ॥ शतशः शतेन धनेन असंख्यातेनेत्यर्थः । संनिपत्य संगम्य ॥ १२ ॥ अति अतिक्रम्य मर्यादां देवितुं शीलमस्य सः अतिदेवी । युष्मद्देहदारादिकमपि पणीकरिष्यतीत्यर्थः । कृतहस्तः यथेष्टमक्षपातने कुशलः यतो मताक्षः ज्ञाताक्षतत्त्वः यद्वाऽतिदेवीकृतहस्त इत्येकं पदं । देवी राज्ञी द्रौपदी तस्या कृतो व्यापारितो हस्तो यैस्ते तदभिलापवन्तो दुर्योधनाद्यास्तानप्यतिक्रान्तः अतिदेवीकृतहस्तः ते द्रौपदीं हर्तुमेवेच्छन्ति अयं तु द्यूतेन हरिष्यतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ महाभयाः महत् भयं येभ्यस्ते । मायोपधाः कपटपुरस्कारशीलाः ॥ १४ ॥ दुरोदरं द्यूतं । 'दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम्'इति विश्वः ॥ १५ ॥ न निवर्ते निवृत्तं मां परे कृपणोयमिति वक्ष्यन्तीति भावः ॥ १६ ॥ प्रायात्रिकं प्रकृष्टा धनदारादिसहिता यात्रा प्रयात्रा तस्यामुपयुक्तं सर्वं प्रायात्रिकं शकटवाम्यादि । सगणो भ्रात्रादिगणयुक्तः । सानुयात्रः सर्वसेवकयुक्तः । आदि अत्तुं शीलमस्य तत् आदिकृतान्तमुखं । कृत्वा विधाय ॥ १७ ॥ ननु जानन्तोपि कुलक्षयावहाय द्यूताय कुतो निर्गता इत्यत आह दैवमिति दैवं प्राक्तनं कर्म धातुस्तदनुरोधेन प्रवर्तयितुः सितः बद्धः ॥ १८ ॥ क्षत्त्रा विदुरेण॥१९॥

बाल्हिकेन रथं यत्तमास्थाय परवीरहा ।
परिच्छन्नो ययौ पार्थो भ्रातृभिः सह पाण्डवः २०
राजश्रिया दीप्यमानो ययौ ब्रह्मपुरःसरः ।
धृतराष्ट्रेण चाहूतः कालस्य समयेन च ॥ २१
स हास्तिनपुरं गत्वा धृतराष्ट्रगृहं ययौ ।
समियाय च धर्मात्मा धृतराष्ट्रेण पाण्डवः ॥२२॥
तथा भीष्मेण द्रोणेन कर्णेन च कृपेण च ।
समियाय यथान्यायं द्रौणिना च विभुः सह २३
समेत्य च महाबाहुः सोमदत्तेन चैव ह ।
दुर्योधनेन शल्येन सौबलेन च वीर्यवान् ॥२४॥
ये चान्ये तत्र राजानः पूर्वमेव समागताः ।
दुःशासनेन वीरेण सर्वैर्भ्रातृभिरेव च ॥ २५ ॥
जयद्रथेन च तथा कुरुभिश्चापि सर्वशः ।
ततः सर्वैर्महाबाहुर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ २६ ॥
प्रविवेश गृहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
ददर्श तत्र गान्धारीं देवीं पतिमनुव्रताम् ॥ २७॥
स्नुषाभिः संवृतां शश्वत्ताराभिरिव रोहिणीम् ।
अभिवाद्य स गान्धारीं तया च प्रतिनन्दितः २८
ददर्श पितरं वृद्धं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ॥ २९

राज्ञा मूर्धन्युपाघ्रातास्ते च कौरवनन्दनाः ।
चत्वारः पाण्डवा राजन्भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३०
ततो हर्षः समभवत्कौरवाणां विशांपते ।
तान्दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रान्पाण्डवान्प्रियदर्शनान् ॥ ३१
विविशुस्तेऽभ्यनुज्ञाता रत्नवन्ति गृहाणि च ।
ददृशुश्चोपयातांस्तान्द्रौपदीप्रमुखाः स्त्रियः ॥ ३२
याज्ञसेन्याः परामृद्धिं दृष्ट्वा प्रज्वलितामिव ।
स्नुषास्ता धृतराष्ट्रस्य नातिप्रमनसोभवन् ॥ ३३
ततस्ते पुरुषव्याघ्रा गत्वा स्त्रीभिस्तु संविदम् ।
कृत्वा व्यायामपूर्वाणि कृत्यानि प्रतिकर्म च ॥३४
ततः कृताह्निकाः सर्वे दिव्यचन्दनभूषिताः ।
कल्याणमनसश्चैव ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ॥
मनोज्ञमशनं भुक्त्वा विविशुः शरणान्यथ ॥३५
उपगीयमाना नारीभिरस्वपन्कुरुपुङ्गवाः ।
अनन्तरं च तत्प्राप्य प्रीताः परपुरंजयाः ॥ ३६
जगाम तेषां सा रात्रिः पुण्या रतिविहारिणाम् ।
स्तूयमानाश्च विश्रान्ताः काले निद्रामथात्यजन् ॥
सुखोषितास्ते रजनीं प्रातः सर्वे कृताह्निकाः ।
सभां रम्यां प्रविविशुः कितवैरभिनन्दिताः ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि द्यूतपर्वणि युधिष्ठिरसभागमनेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८

## ५९

वैशंपायन उवाच ।
प्रविश्य तां सभां पार्था युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
समेत्य पार्थिवान्सर्वान्पूजार्हानभिपूज्य च ॥ १
यथावयः समेयाना उपविष्टा यथार्हतः ।
आसनेषु विचित्रेषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ॥ २

---

बाल्हिकदेशजेनाश्वेन जातावेकवचनं। अथ 'बाल्हीकं बाल्हिकं धीरहिंगुनोः। द्वावेतौ पुंसि देशस्य प्रभेदे तुरगान्तरे' इति मेदिनी। परिच्छन्नः परिवृतो भ्रातृभिः तैश्च सह परिच्छिन्न इति पाठे अल्पपरिवारः॥२०॥ ब्रह्मपुरःसरो ब्राह्मणपुरःसरः कालस्य समयेन संकेतेन अमुकस्मिन्दिने आगन्तव्यमित्येवंरूपेण ॥ २१ ॥ समियाय धृतराष्ट्रेण सह संगतः तेन परिष्वक्त इत्यर्थः॥ २२ ॥ ददर्श पितरं धृतराष्ट्रं प्रति पुनरागत इत्यर्थः ॥ २९ ॥ एवमन्येपि चक्रुरित्याह राज्ञेति । राज्ञा धृतराष्ट्रेण ॥ ३० ॥ प्रमनसः संतुष्टचित्ताः ॥ ३३ ॥ संविदं मिथः कथां व्यायामः श्रमः पूर्वो येषां तानि प्रतिकर्म केशप्रसाधनादिपरिष्कारम् ॥ ३४ ॥ रतिविहारिणां स्त्रीसंगेन क्रीडताम् ॥ ३७ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

५९

प्रविश्येति ॥ १ ॥ समेयानाः यथार्हमाशीर्नत्यादिनां संगतिं कुर्वाणाः स्पर्ध्यानि स्पर्धाकराणि पश्यतां स्पृहणीयानीति यावत् ॥ २ ॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु सर्वेष्वथ नृपेषु च।
शकुनिः सौबलस्तत्र युधिष्ठिरमभाषत ॥ ३

शकुनिरुवाच ।

उपस्तीर्णा सभा राजन्सर्वे त्वयि कृतक्षणाः ।
अक्षानुप्त्वा देवनस्य समयोस्तु युधिष्ठिर ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोत्र पराक्रमः ।
न च नीतिर्ध्रुवा राजन्किं त्वं द्यूतं प्रशंससि ॥ ५
न हि मानं प्रशंसन्ति निकृतौ कितवस्य हि ।
शकुने मैवं नो जैषीरमार्गेण नृशंसवत् ॥ ६

शकुनिरुवाच ।

यो वेत्ति संख्यां निकृतौ विधिज्ञ-
श्चेष्टास्वखिन्नः कितवोक्षजासु ।
महामतिर्यश्च जानाति द्यूतं
स वै सर्वं सहते प्रक्रियासु ॥ ७
अक्षग्लहःसोऽभिभिवेत्परं न
स्ते नैव दोषो भवतीह पार्थ ।
दीव्यामहे पार्थिव मा विशङ्कां
कुरुष्व पाणं च चिरं च मा कृथाः ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।

एवमाहायमसितो देवलो मुनिसत्तमः ।
इमानि लोकद्वाराणि यो वै भ्राम्यति सर्वदा॥ ९
इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह ।
धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परं न तु देवनम् ॥ १०
नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिर्मायया न चरन्त्युत ।
अजिह्ममशठं युद्धमेतत्सत्पुरुषव्रतम् ॥ ११
शक्तितो ब्राह्मणार्थाय शिक्षितुं प्रयतामहे ।
तद्वै वित्तं मातिदेवीर्मा जैषीः शकुने परान् ॥१२
निकृत्या कामये नाहं सुखान्युत धनानि वा ।
कितवस्येह कृतिनो वृत्तमेतन्न पूज्यते ॥ १३

शकुनिरुवाच ।

श्रोत्रियः श्रोत्रियानेति निकृत्यैव युधिष्ठिर ।
विद्वानविदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः॥१४
अक्षैर्हि शिक्षितोभ्येति निकृत्यवं युधिष्ठिर ।
विद्वानविदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः॥१५
अकृतास्त्रं कृतास्त्रश्च दुर्बलं बलवत्तरः ।
एवं कर्मसु सर्वेषु निकृत्यैव युधिष्ठिर ।
विद्वानविदुषोभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः १६
एवं त्वं मामिहाभ्येत्य निकृतिं यदि मन्यसे ।
देवनाद्विनिवर्त्तस्व यदि ते विद्यते भयम् ॥ १७

---

उपस्तीर्णा आस्फुराख्येनाक्षपातनवाससा उपरिस्तीर्णा । कृतक्षणा कृतसंकेता । उप्त्वा पातयित्वा ॥ ४ ॥ निकृतिर्वञ्चनम् । देवनं द्यूतम् । पापं पापहेतु यतो न च नीति द्यूते सत्यं नास्तीत्यर्थ ॥ ५ ॥ निकृतौ शाठ्ये एवं शाठ्येन ॥ ६ ॥ संख्या सम्यक् ख्यानं जयपरा जयद्वारविवेकम् । निकृतौ छले परेण क्रियमाणे । विधिज्ञो द्यूतेतिकर्तव्यताभिज्ञ । यश्च महामतिर्जयावहं पणं कृत्वा पराजयावहं विकित्सति । स द्यूतं जानाति स च प्रक्रियासु द्यूतक्रियासु सर्वं कर्तुं सहते उत्सहते ॥ ७ ॥ यत्तु देवन पापमित्युक्त तत्राह अक्षग्लह इति । पाशाधीनो ग्लहः पणो जयपराजयरूपो व्यवहार स प्रतिकूलश्चेत् न युष्माकं अस्माकं च दीव्यतां मध्ये पर अभिभवेत् । तेनैव अक्षग्लहेनैव दोष पराभवाख्यो भवति नत्वत्र स्वेच्छया कपटं कर्तु शक्य दैवाधीनत्वादक्षपातस्येत्यर्थः । पाणं पणनीयं द्रव्य च कुरुष्व । वचनेन प्रत्यक्षेण वा पुरः कुरुष्वेत्यर्थः ॥ ८ ॥ अयं असित यो लोकद्वाराणि स्वर्गापवर्गप्रापकाणि कर्म ज्ञानादीनि भ्राम्यति । तेषु सचरति सोऽय एवमाहेति सबन्ध ॥ ९ ॥ द्विविध देवनं अक्षै शास्त्रैश्च । तत्राद्य निन्दित्वा परं प्रशंसति इदं वा इति ॥ १० ॥ म्लेच्छन्ति अपशब्द कुर्वन्ति । भाषाभिर्गीर्भिः । मायया कपटेन । न चरन्ति न कर्म कुर्वन्ति । वाचा देहेन च कौटिल्यं न कुर्वन्तीति भाव । अत एवाजिह्ममकुटिल । अशठ कुटिलपुरुषहीनम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणार्थाय ब्राह्मणप्रयोजनाय । शिक्षितु विद्यामुपादातुं यतामहे येन वित्तेन । तद्वै वित्तं अपहर्तुं मातिदेवीं सर्वस्वस्य पणीकरणेन अतिद्यूत मा कृथाः ॥१२॥ नन्वक्षपाताधीनो जयस्तत्रापि समान इत्याशंक्याह निकृत्येति निकृत्या नीचकर्मणा । इह कितवस्य एतद्वृत्तं । कृतिन न पूज्यते सता न प्रशस्यमित्यर्थ ॥ १३ ॥ निकृत्या जिगीषाख्येन नीचकर्मणा।'बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यैत्वेन सन्त्वेन पृच्छै ' इति मन्त्रवर्णात् युद्धेन वादेन वा जिगीषा नीचमेव कर्म । तथापि जना. व्यावहारिका लोकास्तां जिगीषया शत्रु प्रति गतिं निकृतिं नीचकर्मत्वेन नाहु । श्रुतेर्विरक्तविषयत्वादित्यर्थ । अकृता कर्तुमयोग्यानि कर्त्वानि कर्तव्यानि भविष्यन्ति । तान्येवाह त्वेन एकेन युध्यै त्वेन सपृच्छै इति श्रुत्यर्थ ॥ १४ ॥ दार्ष्टान्तिकमाह अक्षैरिति ॥ १५ ॥ एवं त्व निकृतिं छल मन्यसे तर्हि श्रोत्रियादश्रोत्रिय इव विद्यावतो मत्त पराभवभीतस्त्व द्यूता द्विनिवर्तस्वेत्यर्थ ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
विधिश्च बलवान्राजन्दिष्टस्यास्मि वशे स्थितः १८
अस्मिन्समागमे केन देवनं मे भविष्यति ।
प्रतिपाणश्च कोन्योस्ति ततो द्यूतं प्रवर्तताम् ॥ १९

दुर्योधन उवाच ।

अहं दातास्मि रत्नानां धनानां च विशांपते ॥
मदर्थे देविता चायं शकुनिर्मातुलो मम ॥ २०

युधिष्ठिर उवाच ।

अन्येनान्यस्य वै द्यूतं विषमं प्रतिभाति मे ।
एतद्विद्वन्नुपादत्स्व काममेवं प्रवर्तताम् ॥ २१

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतप० युधिष्ठिरशकुनिसंवादे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

---

## ६०

वैशंपायन उवाच ।

उपोह्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां ततः ॥ १
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विदुरश्च महामतिः ।
नातिप्रीतेन मनसा तेन्ववर्तन्त भारत ॥ २
ते द्वंद्वशः पृथक्चैव सिंहग्रीवा महौजसः ।
सिंहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे ३
शुशुभे सा सभा राजन्राजभिस्तैः समागतैः ।
देवैरिव महाभागैः समवेतैस्त्रिविष्टपम् ॥ ४
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे भास्वरमूर्तयः ।
प्रावर्तत महाराज सुहृद्द्यूमनन्तरम् ॥ ५

युधिष्ठिर उवाच ।

अयं बहुधनो राजन्सागरावर्तसंभवः ।
मणिर्हारोत्तरः श्रीमान्कनकोत्तमभूषणः ॥ ६
एतद्राजन्मम धनं प्रतिपाणोस्ति कस्तव ।
येन मां त्वं महाराज धनेन प्रतिदीव्यसे ८ ७

दुर्योधन उवाच ।

सन्ति मे मणयश्चैव धनानि सुबहूनि च ।
मत्सरश्च न मेऽर्थेषु जयस्वैनं दुरोदरम् ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।

ततो जग्राह शकुनिस्तानक्षानक्षतत्त्ववित् ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ९

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि द्यूतारम्भे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

---

विधिःकारयितान्तर्यामी दिष्टं दैवम् ॥ १८ ॥ प्रतिपाणश्च कोन्योस्ति प्रतिपाणः पणप्रतिभूः तवाल्पधनत्वान्मत्तुल्यो धनिकः कोन्यो देवितास्तीति भावः। पणश्चैव हि कोन्यस्त इति पाठे तु पणः पणनकर्ता को न्यस्तस्त्वया मृत्युमुखे इति शेषः। तव मया सह देवितुमनर्हत्वादितिभावः ॥ १९ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

उपोह्यमाने उपस्थाप्यमाने ॥ १ ॥ प्रतिपाणः एतत्तुल्यमौल्यं द्यूतार्थे स्थापितं वस्तु ॥ ७ ॥ दुरोदरं पणं। अर्थेषु त्वया स्थापितेषु मत्सरः हीनमौल्यत्वादिदोषबुद्धिः ॥८॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

# ६१

युधिष्ठिर उवाच ।
मत्त कैतवकेनैव यज्जितोऽस्मि दुरोदरे ।
शकुने हन्त दीव्यामो ग्लहमानाः परस्परम् ॥ १
सन्ति निष्कसहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिताः शुभाः
कोशो हिरण्यमक्षय्यं जातरूपमनेकशः ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ २
वैशंपायन उवाच ।
कौरवाणां कुलकरं ज्येष्ठं पाण्डवमच्युतम् ।
इत्युक्तः शकुनिः प्राह जितमित्येव तं नृपम् ॥ ३
युधिष्ठिर उवाच ।
अयं सहस्रसमितो वैयाघ्रः सुप्रतिष्ठितः ।
सुचक्रोपस्करः श्रीमान्किङ्किणीजालमण्डितः ॥४
संह्रादनो राजरथो य इहास्मानुपावहत् ।
जैत्रो रथवरः पुण्यो मेघसागरनिःस्वनः ॥ ५
अष्टौ यं कुररच्छायाः सदश्वा राष्ट्रसंमताः ।
वहन्ति नैषां मुच्येत पदाद्भूमिमुपस्पृशन् ।
एतद्राजन्धनं मह्यं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ ६
वैशंपायन उवाच ।
एवं श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ७
युधिष्ठिर उवाच ।
शतं दासीसहस्राणि तरुण्यो हेमभद्रिकाः ।
कम्बुकेयूरधारिण्यो निष्ककण्ठ्यः स्वलंकृताः ॥८
महार्हमाल्याभरणाः सुवस्त्राश्चन्दनोक्षिताः ।
मणीन्हेम च बिभ्रत्यश्चतुःषष्टिविशारदाः ॥ ९
अनुसेवां चरन्तीमाः कुशला नृत्यसामसु ।
स्नातकानाममात्यानां राज्ञां च मम शासनात् ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १०
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ११
युधिष्ठिर उवाच ।
एतावन्ति च दासानां सहस्राण्युत सन्ति मे ।
प्रदक्षिणानुलोमाश्च प्रावारवसनाः सदा ॥ १२
प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता युवानो मृष्टकुण्डलाः ।
पात्रीहस्ता दिवारात्रमतिथीन्भोजयन्त्युत ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १३
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १४
युधिष्ठिर उवाच ।
सहस्रसंख्या नागा मे मत्तास्तिष्ठन्ति सौबल ।
हेमकक्षाः कृतापीडाः पद्मिनो हेममालिनः ॥१५
सुदान्ता राजवहनाः सर्वशब्दक्षमा युधि ।
ईषादन्ता महाकायाः सर्वे चाष्टकरेणवः ॥ १६
सर्वे च पुरभेत्तारो नवमेघनिभा गजाः ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १७
वैशंपायन उवाच ।
इत्येवंवादिनं पार्थं प्रहसन्निव सौबलः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १८
युधिष्ठिर उवाच ।
रथास्तावन्त एवेमे हेमदण्डाः पताकिनः ।
हयैर्विनीतैः संपन्ना रथिभिश्चित्रयोधिभिः ॥ १९

---

६१

मत्तेति । कैतवकेन कितवैर्निर्वृत्तेन कपटेन अरोहणादित्वाहुत् मत्त गर्वित ॥ १ ॥ साष्टपलशतं सुवर्णानां निष्कः भाण्डिन्यो मञ्जूषाः कुण्डिन्य इति पाठे कुण्डिन्यः पात्रविशेषाः । भरिताःपूरिताः । हिरण्यं धनम् । जातरूपं अक्षय्यं स्वर्णरौप्यात्मकम् ॥ २ ॥ सहस्रसमितः सहस्रतुल्यः । वैयाघ्रः व्याघ्रचर्मावनद्धः । स्वचक्रोपस्कर इति पाठे स्वस्य चक्रं समुदायः तत्र उपस्कर उल्लामादिना शत्रुप्रतिकारे यत्नो येन सः । किङ्किणीनां क्षुद्रघण्टिकानां जालेन संवृतः ॥४॥ उपावहत् आनीतवान् ॥५॥ कुररः पक्षिविशेषस्तेनतुल्यप्रभाः कुररच्छायाः । कुमुदछाया इतिपाठान्तरम् । एषां पदात् भूमौ न्यस्तात् भूमिमुपस्पृशन् भूचरः न मुच्येत अतिदूरस्थोपि भूचर एषां पादाक्रान्त एव भवतीत्यर्थः । येन मुच्यन्ते पदाभूमिमुपस्पृशन्निति पाठे उपस्पृशन्नित्येकत्वमार्षं भूचराः येन मुच्यन्ते अतिक्रम्यन्ते इत्यर्थः ॥६॥ हेमभद्रिकाः हेममयाः भद्रिकाःमाङ्गल्यिकालंकाराः मङ्गलसूत्रादयो यासां ताः कम्बवः शङ्खवल्यानि निष्को वक्षोभूषणम् ॥८॥ चतुःषष्टिषु कलासु विशारदाः कलानामानि तु श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धटीकायां श्रीधरस्वामिभिर्दर्शितानि ॥९॥ स्नातकादीनां अनुसेवां पादप्रक्षालनादिरूपां सेवामनुपश्चात् चरन्ति परिचरन्ति साम गीतिः प्रीत्युत्पादनं वा ॥१०॥ प्रावारवसनाः पट्टाम्बराच्छादनाः ॥ १२ ॥ नागा गजाः हेमकक्षाः सुवर्णगजरज्जवः कृतापीडाः कृतभूषणाः पद्मिनः गलगण्डस्थलादिषु पद्मचिन्हिताः हेममालिनः स्वर्णमालावन्तः ॥ १५ ॥ ईषा लाङ्गलदण्डः अष्टकरेणवः अष्टहस्तिनीकाः ॥ १६ ॥ दण्डःध्वजदण्डः ॥ १९ ॥

एकैको ह्यत्र लभते सहस्रपरमां भृतिम् ।
युध्यतोऽयुध्यतो वापि वेतनं मासकालिकम् ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ २०

वैशंपायन उवाच ।

इत्येवमुक्ते वचने कृतवैरो दुरात्मवान् ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २१

युधिष्ठिर उवाच ।

अश्वांस्तित्तिरिकल्माषान्गान्धर्वान्हेममालिनः
ददौ चित्ररथस्तुष्टो यांस्तान्गाण्डीवधन्वने ॥ २२
युद्धे जितः पराभूतः प्रीतिपूर्वमरिंदमः ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ २३

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २४

युधिष्ठिर उवाच ।

रथानां शकटानां च श्रेष्ठानां चायुतानि मे ।
युक्तान्येव हि तिष्ठन्ति वाहैरुच्चावचैस्तथा ॥ २५
एवं वर्णस्य वर्णस्य समुच्चीय सहस्रशः ।
यथा समुदिता वीराः सर्वे वीरपराक्रमाः ॥ २६
क्षीरं पिबन्तस्तिष्ठन्ति भुञ्जानाः शालितण्डुलान् ।
षष्टिस्तानि सहस्राणि सर्वे विपुलवक्षसः ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ २७

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २८

युधिष्ठिर उवाच ।

ताम्रलोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः ।
पञ्चद्रौणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै ॥ २९
जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ ३०

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ३१

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि देवने एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

वैशंपायन उवाच ।

एवं प्रवर्तिते द्यूते घोरे सर्वापहारिणि ।
सर्वसंशयनिर्मोक्ता विदुरो वाक्यमब्रवीत् ॥ १

विदुर उवाच ।

महाराज विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि भारत ।
मुमूर्षोरौषधमिव न रोचेतापि ते श्रुतम् ॥ २
यद्वै पुरा जातमात्रो रुराव
गोमायुवद्विस्वरं पापचेताः ।
दुर्योधनो भारतानां कुलघ्नः
सोयं युक्तो भवतां कालहेतुः ॥ ३
गृहे वसन्तं गोमायुं त्वं वै मोहान्न बुध्यसे ।
दुर्योधनस्य रूपेण शृणु काव्यां गिरं मम ॥ ४
मधु वै माध्विको लब्ध्वा प्रपातं नैव बुध्यते ।
आरुह्य तं मज्जति वा पतनं चाधिगच्छति ॥ ५
सोयं मत्तोक्षद्यूतेन मधुवन्न परीक्षते ।
प्रपातं बुध्यते नैव वैरं कृत्वा महारथैः ॥ ६
विदितं मे महाप्राज्ञ भोजेष्वेवासमञ्जसम् ।
पुत्रं संत्यक्तवान्पूर्वं पौराणां हितकाम्यया ॥ ७
अन्धका यादवा भोजाः समेताः कंसमत्यजन् ।
नियोगात्तु हते तस्मिन्कृष्णेनामित्रघातिना ॥ ८
एवं ते ज्ञातयः सर्वे मोदमानाः शतं समाः ।
त्वन्नियुक्तः सव्यसाची निगृह्णातु सुयोधनम् ॥ ९

---

भृतिं वेतनं । तच्च मासकालिकं न त्वाह्निकम् वार्षिकं चेति वक्तुं पुनर्वेतनग्रहणम् ॥ २० ॥ दुरात्मवान् दुष्टचित्तः ॥ २१ ॥ ताम्रलोहैः परिवृताः ताम्रभाजनेषु लोहभाजनेषु च मुद्रितमुखेषु निहिता इत्यर्थः निधिर्निक्षेपद्रव्यं अहतस्य केवलस्य ॥ २९ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

एवमिति ॥ १ ॥ रुराव शब्दं कृतवान् ॥ ३ ॥ काव्यां कविना शुक्रेणोक्तां नीतिं गिरम् ॥ ४ ॥ माध्विकः मधुपण्यवान् प्रपातं भृगुं प्रपतन्त्यस्मादिति व्युत्पत्तेः मज्जति तत्रैव मधुनि निमग्नो भवति । ततः प्रपतनं चाधिगच्छति ॥ ५ ॥ मधुवत् मधुनेव मत्तो विवशः ॥ ६ ॥ नियोगात् दैवयोगात् ॥ ८ ॥

निग्रहादस्य पापस्य मोदन्तां कुरवः सुखम् ।
काकेनेमांश्चित्रबर्हान् शार्दूलान्क्रोष्टुकेन च ।
क्रीणीष्व पाण्डवान्राजन्मा मज्जीः शोकसागरे ॥
त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ११
सर्वज्ञः सर्वभावज्ञः सर्वशत्रुभयंकरः ।
इति स्म भाषते काव्यो जम्भत्यागे महासुरान् ॥
हिरण्यष्ठीविनः कांश्चित्पक्षिणो वनगोचरान् ।
गृहे किल कृतावासाँल्लोभाद्राजा न्यपीडयत् ।
स चोपभोगलोभान्धो हिरण्यार्थी परंतप ॥ १३
आयतिं च तदात्वं च उभे सद्यो व्यनाशयत् ।
तदर्थकामस्तद्वत्त्वं मा द्रुहः पाण्डवान्नृप ॥ १४
मोहात्मा तप्स्यसे पश्चात्पक्षिहा पुरुषो यथा ।
जातं जातं पाण्डवेभ्यः पुष्पमादत्स्व भारत ॥१५
मालाकार इवारामे स्नेहं कुर्वन् पुनः पुनः ।
वृक्षानङ्गारकारीव मैनान्धाक्षीः समूलकान् ।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम् ॥ १६
समवेतान्हि कः पार्थान्प्रतियुध्येत भारत ।
मरुद्भिः सहितो राजन्नपि साक्षान्मरुत्पतिः १७

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि विदुरहितवाक्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

विदुर उवाच ।
द्यूतं मूलं कलहस्याभ्युपैति
मिथो भेदं महते दारुणाय ।
तदास्थितोयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
दुर्योधनः सृजते वैरमुग्रम् ॥ १
प्रातिपेयाः शान्तनवा भीमसेनाः सबाह्लिकाः
दुर्योधनापराधेन कृच्छ्रं प्राप्स्यन्ति सर्वशः ॥ २
दुर्योधनो मदेनैव क्षेमं राष्ट्रं व्यपोहति ।
विषाणं गौरिव मदात्स्वयमारुजतेत्मनः ॥ ३
यश्चित्तमन्वेति परस्य राजन्
धीरः कविः स्वामवमन्य दृष्टिम् ।
नावं समुद्रे इव बालनेत्रा-
मारुह्य घोरे व्यसने निमज्जेत् ॥ ४
दुर्योधनो ग्लहते पाण्डवेन
प्रीयायसे त्वं जयतीति तच्च ।
अतिनर्मा जायते संप्रहारो
यतो विनाशः समुपैति पुंसाम् ॥ ५

चित्रबर्हान् मयूरान् ॥ १० ॥ जम्भत्याग-निमित्तं सर्वज्ञः सर्वेषां प्राणिनां भावं चित्ताशयं जानातीति तथाभूतः काव्यः शुक्रः अयं सर्वशत्रुभयंकर इति भाषते स्म । सर्वेषां स्वपरपक्षीयाणां शत्रुश्च भयंकरश्चेति स तथा । त्यजेत् कुलार्थे पुरुषमिति भाषत इति वा योज्यम् ॥१२॥ न्यपीडयत् हतवान् लोभात् मांसलोभात् ॥ १३ ॥ आयतिं उत्तरकालं परलोकं उपकारिणां वधात् व्यनाशयत् । तदात्वं सांप्रतम् । इहापि सुखप्राप्यं धनं व्यनाशयत् । तत्तस्मादर्थकामः धनकामः ॥ १४ ॥ पक्षिहा पक्षिहा । पुष्पमिव पुष्पं उपहार्यं धनम् ॥ १५ ॥ अङ्गारकारी वृक्ष-शाखान्तनिघर्षणेन वन्हयुत्पादको वायुरिव त्वं एतेषां परस्पर-संघर्षणेन कुलक्षयं मा कुरु इत्यर्थः ॥ १६ ॥ इति सभा-पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

६३

द्यूतमिति । द्यूतं दारुणाय भयाय अभ्युपैतीति संबन्धः ॥ १ ॥ प्रातिपेयाः प्रतीपान्वयजाः कृच्छ्रं संकटम् ॥ २ ॥ क्षेमं व्यपोहति राष्ट्रमुपद्रुतं करोतीत्यर्थः । आरुजते भङ्गं नयति । आत्मनः पूर्वरूपमार्षम् ॥ ३ ॥ अन्वेति अनुसरति कविः क्रान्तदर्शी । स्वां दृष्टिं क्रान्तदर्शित्वम् । बालनेत्रां अव्युत्पन्ननेतृकाम् ॥ ४ ॥ ग्लहते पणं करोति । प्रीयायसे अतिशयेन प्रीयसे यङ्लोपे अप्रथमस्यापि यकारस्य द्वित्व-मार्षम् । प्रियायस इति ह्रस्वपाठे तु प्रियमिव आचरसे । अतिनर्मातिविनोद एवान्ते संप्रहारो युद्धं आजायते । युद्ध-रूपेण परिणमते । अतः समुन्मज्जति संप्रहार इति पाठः ॥ ५ ॥

आकर्षस्तेऽवाक्फलः सुप्रणीतो
हृदि प्रौढो मन्त्रपदः समाधिः ।
युधिष्ठिरेण कलहस्तवाय-
मचिन्तितोऽभिमतः स्वबन्धुना ॥ ६
प्रातिपेयाः शान्तनवा शृणुध्वं
काव्यां वाचं संसदि कौरवाणाम् ।
वैश्वानरं प्रज्वलितं सुघोरं
मा यास्यध्वं मन्दमनुप्रपन्नाः ॥ ७
यदा मन्युं पाण्डवोऽजातशत्रु-
र्न संयच्छेदक्षमदाभिभूतः ।
वृकोदरः सव्यसाची यमौ च
कोऽत्र द्वीपः स्यात्तुमुले वस्तदानीम् ॥ ८
महाराज प्रभवस्त्वं धनानां
पुरा द्यूतान्मनसा यावदिच्छेः ।
बहुवित्तान्पाण्डवांश्चेज्जयस्त्वं
किं ते तत्स्याद्वसु विन्देह पार्थान् ॥ ९
जानीमहे देवितं सौबलस्य
वेद द्यूते निकृतिं पार्वतीयः ।
यतः प्राप्तः शकुनिस्तत्र यातु
मा यूयुधो भारत पाण्डवेयान् ॥ १०

इति श्रीमहा० सभाप० द्यूतपर्वणि विदुरवाक्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

दुर्योधन उवाच ।
परेषामेव यशसा श्लाघसे त्वं
सदा क्षत्तः कुत्सयन्धार्तराष्ट्रान् ।
जानीमहे विदुर यत्प्रियस्त्वं
बालानिवास्मानवमन्यसे नित्यमेव ॥ १
स विज्ञेयः पुरुषोऽन्यत्रकामो
निन्दाप्रशंसे हि तथा युनक्ति ।
जिह्वा कथं ते हृदयं व्यनक्ति यो
न ज्यायसः कृथा मनसः प्रातिकूल्यम् २

---

आकर्षस्तेऽवाक्फलःसुप्रणीतः । आकर्षो द्यूतं अवाक् नीचगामिफलं यस्य सोवाक्फलः हानिमृत्युनरकप्रद इत्यर्थः । सुप्रणीतः सम्यक्प्रणीत उपस्थापितः शकुनिनेत्युपहासः । 'आकर्षःशारिफलके पाशके द्यूत इन्द्रिये' इति विश्वः । आकर्षस्ते स्वे धने कुप्रणीत इति पाठे स्वं धनं राज्यपुत्रादि तत्र आकर्षः धनाद्याकर्षणसाधनं काष्ठादिमयो हस्तः । कुत्सितेन शकुनिना प्रणीतः यतोऽयं द्यूतरूपः समाधिर्नियमः मन्त्रपदो मन्त्रपूर्वको भवतां हृदि प्ररूढः । किं तावतेत्यत आह युधिष्ठिरेणेति । अयमेव आकर्षः कलहः कलहरूपेण परिणंस्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥ तत्फलमाह प्रातिपेया इति । काव्यां कविना दीर्घदर्शिना मया ईरिताम् । मन्दं दुर्योधनं मात्यगाद्व इति पाठे वः युष्माकं मध्ये कश्चिदिमं कलहवैश्वानरं मात्यगात् अतिक्रम्य मागात् । किंतु अर्वागेव शाम्यध्वमित्याहोत्तरार्धेन ॥ ७ ॥ अयुद्धेन प्रशामयस्वेति राजानं प्रति उक्तं युद्धे को दोष इत्यत आह यदेति द्वीप इव द्वीपः आपत्समुद्रे मज्जतामाश्रयः ॥ ८ ॥ प्रभव उत्पत्तिः यावदिच्छेस्तावत्ते धनमस्तीत्यर्थः अत्यन्ततृष्णाप्यफलेत्याह बहिति । जयः अजयः जितवान् । किं ते तत् ततः स्यान्न किमपि । अतो हेतोर्वसु विन्देह पार्थान् पार्थानेव धनरूपेण विन्द लभस्व । वसु जित्वेह पार्थानिति पाठे वसु जित्वा वसुजयशीलः । अन्येभ्योपि दृश्यन्त इति जयतेः क्वनिप् । तादृशस्त्वं पार्थानेव ईह ईहस्व इच्छाविषयान् कुरु । तेनैव तव महाँल्लाभ इत्यर्थः ॥ ९ ॥ वेद जानीते । निकृतिं छलम् । मा यूयुधः मा योधयः ॥१०॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

---

६४

परेषामिति । यत्प्रियः ये प्रिया यस्य । बालान्मूर्खान् । अस्मिन्पादेऽक्षराधिक्यमार्षम् ॥ १ ॥ स इति अन्यत्र इष्टजयेऽनिष्टपराजये च कामोभिलाषो यस्य सःअन्यत्रकामः विज्ञेयः तत्र लिङ्गं इष्टप्रशंसा अनिष्टनिन्दा चेत्याह निन्देति । ते तव जिह्वा कथं हृदयं त्वदिस्थं अस्मासु द्वेषं व्यनक्ति अवाच्यमपि प्रकटयतीत्यर्थः।'जिह्वा मनस्ते हृदयं व्यनक्ति । ज्यायोऽन्तरान्मनसः प्रातिकूल्यम्'इति पाठे जिह्वा वागिन्द्रियं तत्सहितं मनः तत्प्रवर्तकमन्तःकरणं तत् ते तव हृदयं

उत्सङ्गे च व्याल इवाहितोसि
मार्जारवत्पोषकं चोपहंसि ।
भर्तृघ्नं त्वां न हि पापीय आहु-
स्तस्मात्क्षत्तः किं न बिभेषि पापात् ॥३
जित्वा शत्रून्फलमाप्तं महद्वै
मास्मान्क्षत्तः परुषाणीह वोचः ।
द्विषद्भिस्त्वं संप्रयोगाभिनन्दी
मुहुर्द्वेषं यासि नः संप्रयोगात् ॥ ४
अमित्रतां याति नरोक्षमं ब्रुव-
न्निगूहते गुह्यममित्रसंस्तवे ।
तदाश्रितोऽपत्रप किंनु बाधसे
यदिच्छसि त्वं तदिहाभिभाषसे ॥ ५
मा नोऽवमंस्था विद्म मनस्तवेदं
शिक्षस्व बुद्धिं स्थविराणां सकाशात् ।
यशो रक्षस्व विदुर संप्रणीतं
मा व्यापृतः परकार्येषु भूस्त्वम् ॥ ६
अहं कर्तेति विदुर मा च मंस्था
मा नो नित्यं परुषाणीह वोचः ।
न त्वां पृच्छामि विदुर यद्धितं मे
स्वस्ति क्षत्तर्मा तितिक्षून्क्षिणु त्वम् ॥७
एकः शास्ता न द्वितीयोस्ति शास्ता
गर्भे शयानं पुरुषं शास्ति शास्ता ।
तेनानुशिष्टः प्रवणादिवाम्भो
यथा नियुक्तोस्मि तथा भवामि ॥ ८
भिनत्ति शिरसा शैलमहिं भोजयते च यः ।
धीरेव कुरुते तस्य कार्याणामनुशासनम् ।
यो बलादनुशास्तीह सोऽमित्रं तेन विन्दन्ति ॥ ९
मित्रतामनुवृत्तं तु समुपेक्षेत पण्डितः ।
प्रदीप्य यः प्रदीप्ताग्निं प्राक्त्विरं नाभिधावति ।
भस्मापि न स विन्देत शिष्टं क्व च न भारत· १०
न वासयेत्पारवर्ग्यं द्विषन्तं
विशेषतः क्षत्तरहितं मनुष्यम् ।
स यत्रेच्छसि विदुर तत्र गच्छ
सुसान्त्विता ह्यसती स्त्री जहाति ॥११
विदुर उवाच ।
एतावता पुरुषं ये त्यजन्ति
तेषां सख्यमन्तवद्ब्रूहि राजन् ।
राज्ञां हि चित्तानि परिप्लुतानि
सान्त्वं दत्वा मुसलैर्घातयन्ति ॥ १२
अबालत्वं मन्यसे राजपुत्र
बालोहमित्येव सुमन्दबुद्धे ।
यः सौहृदे पुरुषं स्थापयित्वा
पश्चादेनं दूषयते स बालः ॥ १३

---

बुद्धिं आशयं व्यनक्ति यतः अन्तरात्मनसः अपेक्षया बाह्यं वाचः प्रातिकूल्यं ज्यायः । विद्यमानोप्यस्मासु द्वेषो लोकलज्जाभयात् त्वया वाचा न वक्तव्य इत्यर्थः ॥ २ ॥ एतदेवाह उत्संगे चेति । पापीयः पापतरम् । भर्तृघ्नत्वात्स्वामिद्रोहात् । पापीयमाहुरिति पाठे पापाय हितं तस्मै हितमिति छः ॥ ३ ॥ संप्रयोग ऐक्यं सख्यमित्यर्थः । संप्रयोगात् अस्माभिः सह सख्यं कृत्वा तान् प्रशंसन् मुहुः वारंवारं द्वेषं यासि अस्मद्द्वेष्यो भवसीत्यर्थः । संप्रमोहादित्यपि पाठः । तेषां सखा भूत्वा मौर्ख्यादस्माभिः सह द्वेषं करोषि संबन्धस्य साम्ये सत्येतदयुक्तमित्यर्थः ॥४॥ अक्षमं क्षन्तुमयोग्यम्। निगूहते गुह्यं सर्वोपि । त्वं तु तत्प्रकाशयसीति भावः । तदाश्रितः पार्थिवाश्रिताः । पार्थिवं धृतराष्ट्रं । यतो यथेष्टं भाषसे ॥५॥ अहं दुर्योधनः कर्तेति च मा मंस्था मा मन्यस्व । मावमंस्था इति पाठे मामिति शेषः । तितिक्षून् क्षमावतः । क्षिणु क्षपय नात्रास्माकमपराध इत्यर्थः ॥ ७ ॥ कस्तर्हि कर्तेत्यत आह एक इति । प्रवणात् निम्नात् ॥ ८ ॥ भिनत्ति येन नियुक्तः स्वीयमपि शिरस्ताडयतीत्यर्थः । भोजयते णिचश्चेति तङ् । साक्षान्मृत्युमपि अहिं सर्पं यो रक्षयते इत्यर्थः । एवमनिष्टेपि कर्मणि स एव मां प्रेरयतीत्यर्थः । तेन शासनेन । शास्यमेवामित्रं विन्दति प्राप्नोति ॥ ९ ॥ समुपेक्षेत शासनमिति शेषः । त्वत्पालकत्वेन त्वन्मित्रं मां त्वमेवं मा शाधीत्यर्थः । यदुक्तं वैराग्निं प्रशमयस्वेति तत्राह प्रदीप्येति । प्रकर्षेण दीप्तो दीपनीयोग्निर्यस्य सः प्रदीप्ताग्निः कर्पूरः तं प्राक् पूर्वं प्रदीप्य यः शमयितुं चिरं नाभिधावति स तस्य कर्पूरस्य भस्मापि न विन्दति । तथा च एवं पाण्डवान्प्रकोप्य यदि समूलान्नाशयामि तर्हि एते मां निर्मूलमुन्मूलयिष्यन्तीति भावः । अत्र प्रदीप्य प्राक्प्रदीप्ताद्धि प्राप्तुं रत्नानि धावतीति पाठान्तरं निर्मूलम् ॥१०॥ पारवर्ग्यं परवर्गे शत्रुसंघे जातम् ॥ ११ ॥ एतावता नीतिशिक्षणेन । साक्षिवत् पुत्रे मयि वा पक्षपातमकुर्वन् ब्रूहि । राजन् हे धृतराष्ट्र राज्ञां हीति । परिप्लुतानि द्वेषेणेति शेषः । तर्हि ते सान्त्वं दत्वा घातयन्ति कोपं प्रच्छादयन्त्येव । अयं तु कोपप्रकाशनान्न राजनीतिविदिति भावः ॥ १२ ॥ अबालत्वं पण्डितत्वं आत्मन इति शेषः । बालोहं विदुर इति च मन्यसे । तद्विपरीतमित्याह य इति । सुहृत्तु अविश्वासकृदेव बाल इत्यर्थः । अबालस्त्वमिति पाठे त्वं बाल इति दुर्योधने काक्वा योज्यम्॥१३॥

न श्रेयसे नीयते मन्दबुद्धिः
स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा ।
ध्रुवं न रोचेद्भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः ॥ १४

अतः प्रियं चेदनुकाङ्क्षसे त्वं
सर्वेषु कार्येषु हिताहितेषु ।
स्त्रियश्च राजञ्जडपङ्गुकांश्च
पृच्छ त्वं वै तादृशांश्चैव सर्वान् ॥ १५

लभ्यते खलु पापीयान्नरो नु प्रियवागिह ।
अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥१६

यस्तु धर्मपरश्च स्याद्धित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् १७

अव्याधिजं कटुकं तीक्ष्णमुष्णं
यशोमुषं परुषं पूतिगन्धिम् ।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ १८

वैचित्रवीर्यस्य यशोधनं च
वाञ्छाम्यहं सह पुत्रस्य शश्वत् ।
यथा तथा तेऽस्तु नमश्च तेऽस्तु
ममापि च स्वस्ति दिशन्तु विप्राः ॥ १९

आशीविषान्नेत्रविषान्कोपयेन्न च पण्डितः ।
एवं तेऽहं वदामीदं प्रयतः कुरुनन्दन ॥ २०

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि विदुरहितवाक्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

---

## ६५

शकुनिरुवाच ।
बहुवित्तं पराजैषीः पाण्डवानां युधिष्ठिर ।
आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्यपराजितम् ॥१

युधिष्ठिर उवाच ।
मम वित्तमसंख्येयं यदहं वेद सौबल ।
अथ त्वं शकुने कस्माद्वित्तं समनुपृच्छसि ॥ २

अयुतं प्रयुतं चैव शङ्कुं पद्मं तथार्बुदम् ।
खर्वं शङ्खनिखर्वं च महापद्मं च कोटयः ॥ ३

मध्यं चैव परार्धं च सपरं चात्र पण्यताम् ।
एतन्मम धनं राजंस्तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ ४

वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ५

युधिष्ठिर उवाच ।
गवाश्वं बहुधेनूकमसंख्येयमजाविकम् ।
यत्किंचिदनुपर्णाशां प्राक्सिन्धोरपि सौबल ।
एतन्मम धनं सर्वं तेन दीव्याम्यहं त्वया ६

वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ७

---

ध्रुवं स्थिरं राज्यादिकं न रोचेन्न रोचते । यद्वा ध्रुवं निश्चितं हितोपदेशेति शेषः । भरतर्षभस्येत्युपहासः ॥१४॥ यत्तु परुषाणि मा वोच इत्युक्तं तत्राह लभ्यत इति । पथ्यं परिणामे हितम् ॥ १६ ॥ हे महाराज यं असन्तो न पिबन्ति तं सतां पेयं मन्युं दैन्यं पिब । मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधीत्युक्तम् । तच्च अव्याधिजम् । किं तु कटुजं दूषणजम् । 'दूषणे कटुः 'इति विश्वः । तीक्ष्णं मर्मच्छित् । उष्णं तापजनकम् । यशोमुषं कीर्तिघ्नम् । परुषं रूक्षं निःस्नेहं पूतिगन्धिम् । पूतिदुष्टं तद्गन्धि दुष्टवदाभासमानम् । औषधमप्येतादृशम् । अव्याधये जायते तत् अव्याधिजम् । कटुजं कटुक्यादिकटुद्रव्यजम् । तीक्ष्णं वेदनाकरम् । उष्णं जाड्यनाशकम् । यशोमुषं कामोद्दीपनेन । परुषं घृतादिसाधनहीनम् । पूतिगन्धि लशुनादिवद्दुर्गन्धि । पिब मन्युं औषधं वा गिल । प्रशाम्य प्रशमं आरोग्यं च प्राप्नुहि ॥ १८ ॥ शश्वत् निरन्तरम् ॥ १९ ॥ आशीविषान् दंष्ट्राविषान् । नेत्रविषान् दृष्टिविषान् । शस्त्रेण क्रोधदृष्ट्या च पाण्डवास्त्वां धक्ष्यन्तीति भावः ॥ २० ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

---

६५

बह्विति । पराजैषीः हारितवान् ॥ १ ॥ सपरं साधिकं परार्धादप्यधिकम् ॥ ४ ॥ पर्णाशा नदी ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
पुरं जनपदो भूमिरब्राह्मणधनैः सह ।
अब्राह्मणाश्च पुरुषा राजञ्छिष्टं धनं मम ।
एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ ८
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ९
युधिष्ठिर उवाच ।
राजपुत्रा इमे राजञ्छोभन्ते यैर्विभूषिताः ।
कुण्डलानि च निष्काश्च सर्वं राजविभूषणम् ।
एतन्मम धनं राजंस्तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ १०
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ११
युधिष्ठिर उवाच ।
श्यामो युवा लोहिताक्षः सिंहस्कन्धो महाभुजः
नकुलो ग्लह एवैको विद्ध्येतन्मम तद्धनम् ॥ १२
शकुनिरुवाच ।
प्रियस्ते नकुलो राजन्राजपुत्रो युधिष्ठिर ।
अस्माकं वशतां प्राप्तो भूयः केनेह दीव्यसे ॥ १३
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा तु तानक्षाञ्छकुनिः प्रत्यदीव्यत ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १४
युधिष्ठिर उवाच ।
अयं धर्मान्सहदेवोऽनुशास्ति
लोके ह्यस्मिन्पण्डिताख्यां गतश्च ।
अनर्हता राजपुत्रेण तेन
दीव्याम्यहं चाप्रियवत्प्रियेण ॥ १५
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १६
शकुनिरुवाच ।
माद्रीपुत्रौ प्रियौ राजंस्तवेमौ विजितौ मया ।
गरीयांसौ तु ते मन्ये भीमसेनधनंजयौ ॥ १७
युधिष्ठिर उवाच ।
अधर्मं चरसे नूनं यो नावेक्षसि वै नयम् ।
यो नः सुमनसां मूढ विभेदं कर्तुमिच्छसि ॥ १८
शकुनिरुवाच ।
गर्ते मत्तः प्रपतते प्रमत्तः स्थाणुमृच्छति ।
ज्येष्ठो राजन्वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ ॥ १९
स्वप्ने तानि न दृश्यन्ते जाग्रतो वा युधिष्ठिर ।
कितवा यानि दीव्यन्तः प्रलपन्त्युत्कटा इव ॥२०
युधिष्ठिर उवाच ।
यो नः संख्ये नौरिव पारनेता
जेता रिपूणां राजपुत्रस्तरस्वी ।
अनर्हता लोकवीरेण तेन
दीव्याम्यहं शकुने फाल्गुनेन ॥ २१
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २२
शकुनिरुवाच ।
अयं मया पाण्डवानां धनुर्धरः
पराजितः पाण्डवः सव्यसाची ।
भीमेन राजन्दयितेन दीव्य
यत्कैतवं पाण्डव तेऽवशिष्टम् ॥ २३
युधिष्ठिर उवाच ।
यो नो नेता युधि नः प्रणेता
यथा वज्री दानवशत्रुरेकः ।
तिर्यक्प्रेक्षी संनतभ्रूर्महात्मा
सिंहस्कन्धो यश्च सदात्यमर्षी ॥ २४
बलेन तुल्यो यस्य पुमान्न विद्यते
गदाभृतामग्र्य इहारिमर्दनः ।
अनर्हता राजपुत्रेण तेन
दीव्याम्यहं भीमसेनेन राजन् ॥ २५
वैशंपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २६
शकुनिरुवाच ।
बहुवित्तं पराजैषीर्भ्रातॄंश्च सहयद्विपान् ।
आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्यपराजितम् २७

अप्रियवत् प्रियमपि द्यूते त्यजामीत्यर्थः ॥१५॥ सुमनसां परस्परमैकमत्यवतां भेदं वैमत्यम् ॥१८॥ मत्तः वित्तविचशचित्तत्वेनाधर्मकर्ता। स गर्ते नरके स्थाणुं स्थाणुत्वं ऋच्छति प्राप्नोति । आर्छतीति पाठे आङ् पूर्वस्य रूपम् । ज्येष्ठो वयसाधिकः । वरिष्ठो गुणैरधिकः ॥ १९ ॥ मत्तत्वमेवाह स्वप्न इति । मत्तस्य मम वचः क्षन्तव्यमिति भाव. ॥२०॥ संख्ये संग्रामे तरस्वी वेगवान् ॥ २१ ॥ कैतवं कितवेभ्य आहर्तव्यं धनम् ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

अहं विशिष्टः सर्वेषां भ्रातॄणां दयितस्तथा ।
कुर्यामहं जितः कर्म स्वयमात्मन्युपप्लुते ॥ २८

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २९

शकुनिरुवाच ।

एतत्पापिष्ठमकरोर्यदात्मानं पराजये ।
शिष्टे सति धने राजन्पाप आत्मपराजयः ॥ ३०

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा मताक्षस्तान्ग्लहे सर्वानवस्थितान् ।
पराजयं लोकवीरानुक्त्वा राज्ञां पृथक्पृथक् ॥३१

शकुनिरुवाच ।

अस्ति ते वै प्रिया राजन्ग्लह एकोऽपराजितः ।
पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयात्मानं पुनर्जय ॥ ३२

युधिष्ठिर उवाच ।

नैव ह्रस्वा न महती न कृशा नातिरोहिणी ।
नीलकुञ्चितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया ३३
शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया ।
शारदोत्पलसेविन्या रूपेण श्रीसमानया ॥ ३४
तथैव स्यादानृशंस्यात्तथा स्याद्रूपसंपदा ।
तथा स्याच्छीलसंपत्या यामिच्छेत्पुरुषः स्त्रियम्॥
सर्वैर्गुणैर्हि संपन्नामनुकूलां प्रियंवदाम् ।
यादृशीं धर्मकामार्थसिद्धिमिच्छेन्नरः स्त्रियम् ३६
चरमं संविशति या प्रथमं प्रतिबुध्यते ।
आगोपालाविपालेभ्यः सर्वं वेद कृताकृतम् ॥३७
आभाति पद्मवद्वक्त्रं सस्वेदं मल्लिकेव च ।
वेदीमध्या दीर्घकेशी ताम्रास्या नातिलोमशा ३८
तयैवंविधया राजन्पाञ्चाल्याहं सुमध्यया ।
ग्लहं दीव्यामि चार्वङ्ग्या द्रौपद्या हन्त सौबल३९

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता ।
धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृता गिरः॥
चुक्षुभे सा सभा राजन्राज्ञां संजज्ञिरे शुचः ।
भीष्मद्रोणकृपादीनां स्वेदश्च समजायत ॥ ४१
शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवाभवत् ।
आस्ते ध्यायन्नधोवक्त्रो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥४२
धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत्पुनः पुनः ।
किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत ४३
जहर्ष कर्णोतिभृशं सह दुःशासनादिभिः ।
इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ ४४
सौबलस्त्वभिधायैवं जितकाशी मदोत्कटः ।
जितमित्येव तानक्षान्पुनरेवान्वपद्यत ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते सभाप० द्यूतप० द्रौपदीपराजये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

उपप्लुते जिते ॥ २८ ॥ पापिष्ठं अत्यधमं पापः पापहेतुः ॥ ३० ॥ ग्लहे पणविषये राजानं प्रति एवमुक्त्वा राज्ञां पाण्डवानां पराजयं च लोकवीरान्प्रति उक्त्वा शकुनिरुवाचेत्युत्तरेण संबन्धः ॥ ३१ ॥ आत्मानं प्रति पणं पुनर्जय दास्यान्मोचय । नो चेत् द्रौपदी वाऽस्मद्दासी भविष्यतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ नातिरोहिणी नातिरक्ता ॥ ३३ ॥ शारदोत्पलसेविन्याः लक्ष्म्याः रूपेण समानया । श्रिया लावण्यसौभाग्यादिरूपया च समानया । श्रीति भिन्नं पदं छान्दसस्तृतीयाया लुक्पूर्वसवर्णो वा ॥ ३४ ॥ तथैवेति लक्ष्मीसाम्यमुच्यते ॥ ३५ ॥ धर्मकामार्थसिद्धिं धर्मकामयोरर्थयोः सिद्धिर्यया सा तथा ताम् । अर्थामिति पाठे सिद्धिमिव सिद्धिम् ॥ ३६ ॥ मल्लिकेव सुरभिरिति शेषः । संमोदो मल्लिकेव चेति गौडपाठे संमोदः परिमलः वेदीव कृशमध्या ॥ ३८ ॥ सुमध्यया सुन्दरमध्यया ॥ ३९ ॥ आकारं हर्षकृतं स्वाभिप्रायम् ॥ ४३ ॥ एवं अभिधाय अस्ति ते वै प्रियाराजन्नित्यादिकमुक्त्वा जितकाशी जयशोभी ॥४५॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

## ६६

दुर्योधन उवाच ।
एहि क्षत्तर्द्रौपदीमानयस्व
प्रियां भार्यां संमतां पाण्डवानाम् ।
संमार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रं
तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला ॥ १

विदुर उवाच ।
दुर्विभाष्यं भाषितं त्वादृशेन
न मन्द संबुध्यसि पाशबद्धः ।
प्रपाते त्वं लम्बमानो न वेत्सि
व्याघ्रान्मृगः कोपयसेतिबेलम् ॥ २
आशीविषास्ते शिरसि पूर्णकोपा महाविषाः ।
मा कोपिष्ठाः सुमन्दात्मन्मा गमस्त्वं यमक्षयम् ३
न हि दासीत्वमापन्ना कृष्णा भवितुमर्हति ।
अनीशेन हि राज्ञैषा पणे न्यस्तेति मे मतिः ॥ ४
अयं धत्ते वेणुरिवात्मघाती
फलं राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
द्यूतं हि वैराय महाभयाय
मत्तो न बुध्यत्ययमन्तकालम् ॥ ५
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥ ६
समुच्चरन्त्यतिवादाश्च वक्त्रा-
द्यैराहतः शोचति राज्यहानि ।
परस्य ना मर्मसु ते पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ७
अजो हि शस्त्रमगिलत्किलैकः
शस्त्रे विपन्ने शिरसास्य भूमौ ।
निकृन्तनं स्वस्य कण्ठस्य घोरं
तद्वद्वैरं मा कृथाः पाण्डुपुत्रैः ॥ ८
न किंचिदित्थं प्रवदन्ति पार्था
वनेचरं वा गृहमेधिनं वा ।
तपस्विनं वा परिपूर्णविद्यं
भषन्ति हैवं श्वनराः सदैव ॥ ९
द्वारं सुघोरं नरकस्य जिह्मं
न बुध्यते धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
तमन्वेतारो बहवः कुरूणां
द्यूतोदये सह दुःशासनेन ॥ १०
मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते
मुह्यन्ति नावोम्भसि शश्वदेव ।
मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति ॥ ११

---

६६

एहीति । वेश्म संमार्जतां परैतु पराकृता धिकृता सती एतु आयातु ॥ १ ॥ दुर्विभाषं दुर्विकल्पम् ॥ २ ॥ वेणुः वेनापरनामा राजा स हि ऐश्वर्यं प्राप्य मान्यान् अमानयन् सद्यो नष्टः एवमयमपीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अरुन्तुदःमर्मभेदी । नृशंसवादी परुषवादी। हीनतः नीचेन कर्मणा द्यूतादिना। परं शत्रुं अभ्याददीत वशे कुर्वीत। उषतीं दाहिकां । रुशतीमिति पाठे अकल्याणीम् । पापलोक्या नरकावहाम् ॥ ६ ॥ अजो हि शस्त्रमगिलत्किलैक इति । इयं कथा वनैकचरप्रसिद्धा । एकोऽजः शस्त्रमगिलत् गिलितुमारब्धस्ततस्तदशक्नुवन् भूमौ आस्यं निपात्य पद्भ्यामुच्चाल्य भोक्तुमारब्धः ततस्तस्मिन्नु-च्चलिते सति शिरसा सह स्वस्य कण्ठस्य निकृन्तनं प्राप्य ममार । तद्वत्त्वमपि पाण्डवैर्वैरशस्त्रेण स्वहननं मा कृथा इति प्राचः । कश्चित्किल मत्स्यघाती बडिशं धान्यपिष्टेनोपलिप्य यावज्जलाशये पातयति तावद्गृहच्छागेन चापलात्तत्सपिष्टमेव गिलितम् । तन्निष्कासने विदीर्णकण्ठश्छागो ममारेत्याख्यायिकात्र दृष्टान्तार्थमुक्ता । पदयोजना तु एकः अजः घोरं शस्त्रं बडिशं अगिलत् गिलितवान् । कुतोस्य घोरत्वं तत्राह । अस्य अजस्य शिरसा सह भूमौ शस्त्रे विपन्ने विशेषेण प्राप्ते सति स्वस्य कण्ठस्य निकृन्तनं कर्तनं छेदहेतुः यतोऽभवदित्यन्वयः । अजकण्ठस्थं शस्त्रं सूत्रेणाकृष्यमाणं तच्छिरसा सहैव तद्देहाद्विभक्तमभूदित्यर्थः । पद्भिरपास्य भूमिमिति पाठे तु शस्त्रे विपन्ने पद्भिर्भूमिमपास्य कण्ठस्य कृन्तनं छेदनं आपेत्याध्याहृत्य योज्यम् । अयं भावः । पशुकण्ठान्निष्कास्यमाणे बडिशे पशुरेव अन्तरिक्षस्थोऽभवन्न तु ततो बडिशं वियुज्यते ततश्च पशोर्मरणनिश्चयाद्बाडिशार्थी तस्य कण्ठच्छेदं कृतवानिति । एवं बडिशस्थानीया द्रौपदीं स्पृशन् छाग इव त्वमपि नंक्ष्यसीति भावः ॥ ८ ॥ पार्थाः न किंचिद्वदन्ति । श्वनरास्तु न किंचिद्वदन्ति । अन्यद्दुर्वाक्यादिति शेषः । वनेचरं वानप्रस्थम् । भषन्ति हैवं श्वनराः शुनकतुल्याः नराः आप्तसु धीरानुद्दिश्य भषन्ति । धीरास्तु धीरत्वादेव तन्न गणयन्तीत्यपि पाण्डवान्प्रत्यापयतीति ध्वनिः ॥ ९ ॥ द्यूतोदये द्यूतकृते उत्कर्षे ॥ १० ॥ अलाबुमज्जनादिवत् हितमप्यहितवद्दुष्टानां भातीत्याश्चर्यम् ॥ ११ ॥

अन्तो नूनं भावितायं कुरूणां
सुदारुणः सर्वहरो विनाशः ।
वाचः काव्याः सुहृदां पथ्यरूपा
न श्रूयन्ते वर्धते लोभ एव ॥ १९

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि विदुरवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

वैशंपायन उवाच ।
धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो
दर्पेण मत्तो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
अवैक्षत प्रातिकामीं सभाया-
मुवाच चैनं परमार्यमध्ये ॥ १

दुर्योधन उवाच ।
प्रातिकामिन्द्रौपदीमानयस्व
न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।
क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो
न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव ॥ २

वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तः प्रातिकामी स सूतः
प्रायाच्छीघ्रं राजवचो निशम्य ।
प्रविश्य च श्वेव हि सिंहगोष्ठं
समासदन्महिषीं पाण्डवानाम् ॥ ३

प्रातिकाम्युवाच ।
युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो
दुर्योधनो द्रौपदि त्वामजैषीत् ।
सा त्वं प्रपद्यस्व धृतराष्ट्रस्य वेश्म
नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि ॥ ४

द्रौपद्युवाच ।
कथं त्वेवं वदसि प्रातिकामि-
न्को हि दीव्येद्भार्यया राजपुत्रः ।
मूढो राजा द्यूतमदेन मत्तो
ह्यभून्नान्यत्कैतवमस्य किंचित् ॥ ५

प्रातिकाम्युवाच ।
यदा नाभूत्कैतवमन्यदस्य
तदादेवीत्पाण्डवोजातशत्रुः ।
न्यस्ताः पूर्वं भ्रातरस्तेन राज्ञा
स्वयं चात्मा त्वमथो राजपुत्रि ॥ ६

द्रौपद्युवाच ।
गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज ।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम् ॥ ७
एतज्ज्ञात्वा समागच्छ ततो मां नय सूतज ।
ज्ञात्वा चिकीर्षितमहं राज्ञो यास्यामि दुःखिता ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।
सभां गत्वा स चोवाच द्रौपद्यास्तद्वचस्तदा ।
युधिष्ठिरं नरेन्द्राणां मध्ये स्थितमिदं वचः ॥ ९
कस्येशो नः पराजैषीरिति त्वामाह द्रौपदी ।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवापि माम् ॥ १०
युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्त्व इवाभवत् ।
न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाधु वा ॥ ११

दुर्योधन उवाच ।
इहैवागत्य पाञ्चाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम् ।
इहैव सर्वे शृण्वन्तु तस्याश्चैतस्य यद्वचः ॥ १२

वैशंपायन उवाच ।
स गत्वा राजभवनं दुर्योधनवशानुगः ।
उवाच द्रौपदीं सूतः प्रातिकामी व्यथन्निव ॥ १३

प्रातिकाम्युवाच ।
सभ्यास्त्वमी राजपुत्र्याह्वयन्ति
मन्ये प्राप्तः संशयः कौरवाणाम् ।
न वै समृद्धिं पालयते लघीयान्
यस्त्वां सभां नेष्यति राजपुत्रि ॥ १४

---

अन्तो नाशकरः ॥ १९ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

धिगस्त्विति । अधिब्रुवाण इति पाठे इति शब्दाध्याहारः। अधिकं निर्मर्यादं ब्रुवाण इत्यर्थः । प्रातिकामीशब्द ईकारान्त इन्नन्तश्च ॥ १ ॥ विवदति विपरीतं वदति ॥ २ ॥ सिंहगोष्ठं सिंहस्थानम् ॥ ३ ॥ कैतवं कितवेभ्यो देयं धनम् ॥ ५ ॥ लघीयान् नीचतरः ॥ १४ ॥

ततो जवेनाभिससार रोषा-
द्दुःशासनस्तामभिगर्जमानः ।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु
जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् ॥

सभा० ६७.२१

द्रौपद्युवाच ।
एवं नूनं व्यदधात्संविधाता
स्पर्शावुभौ स्पृशतो वृद्धबालौ ।
धर्मं त्वेकं परमं प्राह लोके
स नः शमं धास्यति गोप्यमानः ॥ १५
सोयं धर्मो मात्यगात्कौरवान्वै
सभ्यान्गत्वा पृच्छ धर्म्यं वचो मे ।
ते मां ब्रूयुर्निश्चितं तत्करिष्ये
धर्मात्मानो नीतिमन्तो वरिष्ठाः ॥ १६
श्रुत्वा सूतस्तद्वचो याज्ञसेन्याः
सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम् ।
अधोमुखास्ते न च किंचिदूचु-
र्निर्बन्धं तं धार्तराष्ट्रस्य बुद्ध्वा ॥ १७
वैशंपायन उवाच ।
युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनचिकीर्षितम् ।
द्रौपद्याः संमतं दूतं प्राहिणोद्भरतर्षभ ॥ १८
एकवस्त्रा त्वधोनीवी रोदमाना रजस्वला ।
सभामागम्य पाञ्चालि श्वशुरस्याग्रतो भव ॥ १९
अथ त्वामागतां दृष्ट्वा राजपुत्रीं सभां तदा ।
सभ्याः सर्वे विनिन्देरन्मनोभिर्धृतराष्ट्रजम् ॥ २०
स गत्वा त्वरितं दूतः कृष्णाया भवनं नृप ।
न्यवेदयन्मतं धीमान्धर्मराजस्य निश्चितम् ॥ २१
पाण्डवाश्च महात्मानो दीना दुःखसमन्विताः ।
सत्येनातिपरीताङ्गा नोदीक्षन्ते स्म किंचन ॥ २२
ततस्त्वेषां मुखमालोक्य राजा
दुर्योधनः सूतमुवाच हृष्टः ।
इहैवैतामानय प्रातिकामिन्
प्रत्यक्षमस्याः कुरवो ब्रुवन्तु ॥ २३
ततः सूतस्तस्य वशानुगामी
भीतश्च कोपाद्द्रुपदात्मजायाः ।
विहाय मानं पुनरेव सभ्या-
नुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि ॥ २४
दुर्योधन उवाच ।
दुःशासनैष मम सूतपुत्रो
वृकोदरादुद्विजतेल्पचेताः ।
स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं
किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः ॥ २५
ततः समुत्थाय स राजपुत्रः
श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्तदृष्टिः ।
प्रविश्य तद्वेश्म महारथाना-
मित्यब्रवीद्द्रौपदीं राजपुत्रीम् ॥ २६
एह्येहि पाञ्चालि जितासि कृष्णे
दुर्योधनं पश्य विमुक्तलज्जा ।
कुरून्भजस्वायतपत्रनेत्रे
धर्मेण लब्धासि सभां परैहि ॥ २७
ततः समुत्थाय सुदुर्मना सा
विवर्णमामृज्य मुखं करेण ।
आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता
वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुंगवस्य ॥ २८
ततो जवेनाभिससार रोषा-
द्दुःशासनस्तामभिगर्जमानः ।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु
जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् ॥ २९
ये राजसूयावभृथे जलेन
महाक्रतौ मन्त्रपूतेन सिक्ताः ।
ते पाण्डवानां परिभूय वीर्यं
बलात्प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन ॥ ३०
स तां पराकृष्य सभासमीप-
मानीय कृष्णामतिदीर्घकेशीम् ।
दुःशासनो नाथवतीमनाथव-
च्चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम् ॥ ३१
सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः
शनैरुवाचाथ रजस्वलाऽस्मि ।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे
सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य ॥ ३२
ततोऽब्रवीत्तां प्रसभं निगृह्य
केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम् ।
कृष्णं च जिष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी ॥ ३३

---

संविधाता ईश्वरः। स्पर्शौ सुखदुःखे वृद्धबालौ पाण्डितमूर्खौ स्पृशतः प्राप्नुतः शमं स्वास्थ्यम् । धास्यति करिष्यति गोप्यमानः रक्ष्यमाणः ॥ १५ ॥ मानं दुर्योधनस्याज्ञाभङ्गेन तस्य श्रेष्ठत्वं विहाय तिरस्कृत्य ॥२४॥ उद्विजते बिभेति । अवशाः अस्मद्दासत्वात् ॥ २५ ॥ परैहि धिकृता सती एहि ॥ २७ ॥ ऊर्मिमत्सु ... संनिवेशिततया च प्रवहन्नदीजलवन्निम्नोन्नतेषु । ऊर्मयः वेण्यलंकारास्तद्वत्सु वा ॥ २९ ॥ कृष्णजिष्णू हरिनरौ नारायणनरावित्यर्थः ॥ ३३ ॥

दुःशासन उवाच ।

रजस्वला वा भव याज्ञसेनि
एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा ।
द्यूते जिता चासि कृतासि दासी
दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ॥ ३४

वैशंपायन उवाच ।

प्रकीर्णकेशी पतितार्धवस्त्रा
दुःशासनेन व्यवधूयमाना ।
ह्रीमत्यमर्षेण च दह्यमाना
शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा ॥ ३५

द्रौपद्युवाच ।

इमे सभायामुपनीतशास्त्राः
क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।
गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे
तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ॥ ३६
नृशंसकर्मंस्त्वमनार्यवृत्त
मा मा विवस्त्रां कुरु मा विकार्षीः ।
न मर्षयेयुस्तव राजपुत्राः
सेन्द्रापि देवा यदि ते सहायाः ॥ ३७
धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा
धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः ।
वाचापि भर्तुः परमाणुमात्र-
मिच्छामि दोषं न गुणान्विसृज्य ॥ ३८
इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये
रजस्वलां यत्परिकर्षसे माम् ।
न चापि कश्चित्कुरुतेत्र कुत्सां
ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेतः ॥ ३९
धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां
धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम् ।
यत्र ह्यतीतां कुरु धर्मवेलां
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥ ४०
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोपि ।
राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं
न लक्षयन्ते कुरुवृद्धमुख्याः ॥ ४१

वैशंपायन उवाच ।

तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा
भर्तॄन्कटाक्षैः कुपितानपश्यत् ।
सा पाण्डवान्कोपपरीतदेहान्
संदीपयामास कटाक्षपातैः ॥ ४२
हृतेन राज्येन तथा धनेन
रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा बभूव ।
यथा त्रपाकोपसमीरितेन
कृष्णाकटाक्षेण बभूव दुःखम् ॥ ४३
दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णा-
मवेक्षमाणां कृपणान्पतींस्तान् ।
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पा-
मुवाच दासीति हसन्सशब्दम् ॥ ४४
कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः
संपूजयामास हसन्सशब्दम् ।
गान्धारराजः सुबलस्य पुत्र-
स्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत् ॥ ४५
सभ्यास्तु ये तत्र बभूवुरन्ये
ताभ्यामृते धार्तराष्ट्रेण चैव ।
तेषामभूद्दुःखमतीव कृष्णां
दृष्ट्वा सभायां परिकृष्यमाणाम् ॥ ४६

भीष्म उवाच ।

न धर्मसौक्ष्म्यात्सुभगे विवेक्तुं
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत् ।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं
स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥ ४७
त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां
युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात् ।
उक्तं जितोस्मीति च पाण्डवेन
तस्मान्न शक्नोमि विवेक्तुमेतत् ॥ ४८

---

यथोपजोषं यथारुचि ॥ ३४ ॥ उपनीतशास्त्राः अध्यापितशास्त्राः । गुरुस्थानाः गुरुतुल्यस्थानाः पित्रादितुल्याः । एवं एकवस्त्रत्वेन ॥ ३६ ॥ निपुणोपलक्ष्यः सूक्ष्मबुद्धिमद्भिरेव ज्ञेयः । वाचेति । नाहमपराधिनां भार्यास्मीति भावः ॥ ३८ ॥ कश्चिदपि तव कुत्सां न कुरुते किं तु सर्वोपि जनस्त्वदीयं मतमभ्युपेतः ॥ ३९ ॥ अस्य राज्ञो धृतराष्ट्रस्य ॥ ४१ ॥ आधूय आकम्प्य ॥ ४४ ॥ भर्तुर्वशतां दासभार्यापि दास्येवेति भावः ॥ ४७ ॥ जितोस्मीति वदतात्मैव पराजितो न तु स्त्री ॥ ४८ ॥

द्यूतेऽक्षितयिः शकुनिर्नरेषु
कुन्तीसुतस्तेन निसृष्टकामः ।
न मन्यते तां निकृतिं युधिष्ठिर-
स्तस्मान्न ते प्रश्नमिमं ब्रवीमि ॥ ४९

द्रौपद्युवाच ।

आहूय राजा कुशलैरनार्यै-
र्दुष्टात्मभिर्नैकृतिकैः सभायां ।
द्यूतप्रियैर्नातिकृतप्रयत्नः
कस्मादयं नाम निसृष्टकामः ॥ ५०

अशुद्धभावैर्निकृतिप्रवृत्तै-
रबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्र्यः ।
संभूय सर्वैश्च जितोपि यस्मात्
पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः ॥ ५१

तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभाया-
मीशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम् ।
समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं
विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत् ॥ ५२

वैशंपायन उवाच ।

तथा ब्रुवन्तीं करुणं रुदन्ती-
मवेक्षमाणां कृपणान्पतींस्तान् ।
दुःशासनः परुषाण्यप्रियाणि
वाक्यान्युवाचामधुराणि चैव ॥ ५३

तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च
स्रस्तोत्तरीयामतदर्हमाणाम् ।
वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च
चकार कोपं परमार्तरूपः ॥ ५४

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि द्रौपदीप्रश्ने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

भीम उवाच ।

भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर ।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ॥ १
काश्यो यद्धनमाहार्षीद्द्रव्यं यच्चान्यदुत्तमम् ।
तथान्ये पृथिवीपाला यानि रत्नान्युपाहरन् ॥ २
वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च ।
राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः ॥ ३
न च मे तत्र कोपोभूत्सर्वस्येशो हि नो भवान् ।
इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥ ४
एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान्प्राप्य कौरवैः ।
त्वत्कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ ५
अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन्निपात्यते ।
बाहू ते संप्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय ॥ ६

अर्जुन उवाच ।

न पुरा भीमसेन त्वमीदृशीर्वदिता गिरः ।
परैस्ते नाशितं नूनं नृशंसैर्धर्मगौरवम् ॥ ७
न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम् ।
भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोतिवर्तितुमर्हति ॥ ८
आहूतो हि परै राजा क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ।
दीव्यते परकामेन तन्नः कीर्तिकरं महत् ॥ ९

---

न च राजजयेनैव त्वज्जयः सिध्यति द्यूतमर्यादाविदा शकुनिनैव तव पृथक् पणीकरणादित्याह द्यूते इति । राजा तु पराशया त्वां पणीकृतवान् न स्वेच्छयाऽतोऽस्वामी कथं पणितवानिति राज्ञोपि दोषो नास्ति । तथा च शकुनिबुध्यैव त्वमाजिता तच्च शकुनिर्न मन्यते इत्याह नेति यतः पणीकृता अतः प्रागजिता । यतश्चापरदासेन पणीकृता ततोप्यजितैवेति भावः ॥ ४९ ॥ नातिकृतप्रयत्नोऽनभ्यस्तद्यूतः । राजा मां सभायामाहूय कथं निसृष्टकामः अनीशोपि सन् मदाह्वानेन शत्रून्सकामान्कथं कृतवानित्यर्थः ॥ ५० ॥ जितोपीति । आत्मपराजयावसानत्वात् द्यूतस्य । कथं ततोप्युपरिदेवितवानित्यर्थः ॥ ५१ ॥ विब्रूत विस्पष्टं ब्रूत न तु भीष्मवत्संदिग्धमिति भावः ॥ ५२ ॥ तथेति भीष्मेण द्रौपदीमाहात्म्यख्यापनाय प्रश्नस्योत्तरं नोक्तम् । दुःशासनस्तु पाण्डवपक्षपातिनापि भीष्मेण संशयोपन्यासादस्माकमेव जय इति मन्वानो यत्किंचित्प्रललापेत्यर्थः ॥ ५३ ॥ परं अत्यन्तम् ॥ ५४ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

भवन्तीति ॥ १ ॥ ते तव पुर इतिशेषः संप्रधक्ष्यामि ॥ ६ ॥ परकामेन परेच्छया ॥ ९ ॥

भीमसेन उवाच ।

एवमस्मिन्कृतं विद्यां यदि नाहं धनंजय ।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ बाहू निर्दहेयं बलादिव ॥ १०

वैशंपायन उवाच ।

तथा तान्दुःखितान्दृष्ट्वा पाण्डवान्धृतराष्ट्रजः ।
क्लिश्यमानां च पाञ्चालीं विकर्ण इदमब्रवीत् ॥ ११
याज्ञसेन्या यदुक्तं तद्वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः ।
अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः ॥ १२
भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ ।
समेत्य नाहतुः किंचिद्विदुरश्च महामतिः ॥ १३
भारद्वाजश्च सर्वेषामाचार्यः कृप एव च ।
कुत एतावपि प्रश्नं नाहतुर्द्विजसत्तमौ ॥ १४
ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेताः सर्वतोदिशम् ।
कामक्रोधौ समुत्सृज्य ते ब्रुवन्तु यथामति ॥ १५
यदिदं द्रौपदीवाक्यमुक्तवत्यसकृच्छुभा ।
विमृश्य कस्य कः पक्षः पार्थिवा वदतोत्तरम् १६
एवं स बहुशः सर्वानुक्तवांस्तान्सभासदः ।
न च ते पृथिवीपालास्तमूचुः साध्वसाधु वा १७
उक्त्वा सकृत्तथा सर्वान्विकर्णः पृथिवीपतीन् ।
पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत् ॥
विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथंचन ।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः ॥
चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम् ।
मृगयां पानमक्षांश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम् ॥ २०
एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते ।
यथाऽयुक्तेन च कृतां क्रियां लोको न मन्यते॥ २१
तदयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम् ।
समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः ॥ २२
साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता ।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः ॥ २३
इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना ।
एतत्सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम् २४
एतच्छ्रुत्वा महान्नादः सभ्यानामुदतिष्ठत ।
विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम् २५
तस्मिन्नुपरते शब्दे राधेयः क्रोधमूर्छितः ।
प्रगृह्य रुचिरं बाहुमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६

कर्ण उवाच ।

दृश्यन्ते वै विकर्णेह वैकृतानि बहून्यपि ।
तज्जातस्तद्विनाशाय यथाग्निररणिप्रजः ॥ २७
एते न किंचिदप्याहुश्चोदिता ह्यपि कृष्णया ।
धर्मेण विजितामेतां मन्यन्ते द्रुपदात्मजाम् ॥ २८
त्वं तु केवलबाल्येन धार्तराष्ट्र विदीर्यसे ।
यद्ब्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम् ॥ २९
न च धर्मं यथावत्त्वं वेत्सि दुर्योधनावर ।
यद्ब्रवीषि जितां कृष्णां न जितेति सुमन्दधीः ३०
कथं ह्यविजितां कृष्णां मन्यसे धृतराष्ट्रज ।
यदा सभायां सर्वस्वं न्यस्तवान्पाण्डवाग्रजः ॥३१
अभ्यन्तरा च सर्वस्वे द्रौपदी भरतर्षभ ।
एवं धर्मजितां कृष्णां मन्यसे न जितां कथम् ३२
कीर्तिता द्रौपदी वाचा अनुज्ञाता च पाण्डवैः ।
भवत्यविजिता केन हेतुनैषा मता तव ॥ ३३
मन्यसे वा सभामेतामानीतामेकवाससम् ।
अधर्मेणेति तत्रापि शृणु मे वाक्यमुत्तमम् ॥ ३४
एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन ।
इयं त्वनेकवशगा बन्धकीति विनिश्चिता ॥ ३५
अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः ।
एकाम्बरधरत्वं वाप्यथवापि विवस्त्रता ॥ ३६
यच्चैषां द्रविणं किंचिद्या चैषा ये च पाण्डवाः ।
सौबलेनेह तत्सर्वं धर्मेण विजितं वसु ॥ ३७
दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः ।
पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥३८
तच्छ्रुत्वा पाण्डवाः सर्वे स्वानि वासांसि भारत ।
अवकीर्योत्तरीयाणि सभायां समुपाविशन् ॥ ३९
ततो दुःशासनो राजन्द्रौपद्या वसनं बलात् ।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ४०

---

एवमिति । एवं त्वदुक्तप्रकारेण अस्मिन् प्रस्तुते विषये कृतं कुशलं धर्मपालनाख्यं यदि न विद्यां न जानीयां तर्हि बाहू दहेयमेव । यतो जानाम्यतो न दहामीत्यर्थः ॥ १० ॥ सर्वतोदिशं सर्वदेशीयाः ॥१५॥ महीक्षितां राज्ञां ग्राम्ये स्त्रीभोगे ॥ २० ॥ तथेति । कृताप्यकृतैव सा क्रियेत्यर्थः ॥ २१ ॥ समाहूतेन प्रेरितेन ॥ २२ ॥ सर्वेषां भार्या कथमेकेन पणीकर्तुं शक्येत्याह साधारणीति ॥ २३ ॥ एतत्सर्वं राज्ञो व्यसनित्वं जितत्वं परप्रवर्तितत्वं द्रौपद्याः साधारणत्वं चेति हेतुचतुष्कम् ॥२४॥ वैकृतानि विपरीतानि ॥ २७ ॥ तान्येवाह यदिति ॥२९॥ प्राज्ञवादिकःप्राज्ञमानी ॥ ३८ ॥ अवकीर्य समन्ततस्त्यक्त्वा ॥ ३९ ॥

ततो दुःशासनो राजन्द्रौपद्या वसनं बलात् ।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥

सभा० ६८ ४०

वैशंपायन उवाच ।

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः ।
गोविन्द द्वारकावासिन्कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥ ४१
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥ ४२
कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येवसीदतीम् ॥ ४३
इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रारुदद्दुःखिता राजन्मुखमाच्छाद्य भामिनी ॥४४
याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितोभवत् ।
त्यक्त्वा शय्यासनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात्॥
कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी ।
ततस्तु धर्मोन्तरितो महात्मा
समावृणोद्वै विविधैः सुवस्त्रैः ॥ ४६
आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्यास्तु विशांपते ।
तद्रूपमपरं वस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः ॥ ४७
नानारागविरागाणि वसनान्यथ वै प्रभो ।
प्रादुर्भवन्ति शतशो धर्मस्य परिपालनात् ॥ ४८
ततो हलहलाशब्दस्तत्रासीद्घोरदर्शनः ।
तदद्भुततमं लोको वीक्ष्य सर्वे महीभृतः ।
शशंसुर्द्रौपदीं तत्र कुत्सन्तो धृतराष्ट्रजम् ॥ ४९
शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्स्वनः ।
क्रोधाद्विस्फुरमाणौष्ठो विनिष्पिष्य करे करम् ५०

भीम उवाच ।

इदं मे वाक्यमादध्वं क्षत्रिया लोकवासिनः ।
नोक्तपूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद्वदिष्यति ॥ ५१
यद्येतदेवमुक्त्वाहं न कुर्यां पृथिवीश्वराः ।
पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम् ॥ ५२
अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च ।
न पिबेयं बलाद्वक्षो भित्त्वा चेद्रुधिरं युधि ॥ ५३

वैशंपायन उवाच ।

तस्य ते तद्वचः श्रुत्वा रौद्रं लोमप्रहर्षणम् ।
प्रचक्रुर्बहुलां पूजां कुत्सन्तो धृतराष्ट्रजम् ॥ ५४
यदा तु वाससां राशिः सभामध्ये समाचितः ।
ततो दुःशासनः श्रान्तो व्रीडितः समुपाविशत्॥
धिक्शब्दस्तु ततस्तत्र समभूल्लोमहर्षणः ।
सभ्यानां नरदेवानां दृष्ट्वा कुन्तीसुतांस्तथा ॥ ५६
न विब्रुवन्ति कौरव्याः प्रश्नमेतमिति स्म ह ।
सुजनः क्रोशति स्मात्र धृतराष्ट्रं विगर्हयन् ॥ ५७
ततो बाहू समुत्क्षिप्य निवार्य च सभासदः ।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५८

विदुर उवाच ।

द्रौपदीप्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति त्वनाथवत् ।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते ॥ ५९

---

आकृष्यमाण इति । हरिः सर्वदुःखसंहर्ता खलसंहर्ता वा । गोविन्दो गवां इन्द्रियाणां विन्दतीति विन्दो लब्धा। सर्वेन्द्रियचालकत्वात्सन्निहितो मां कथं न जानासि । संनिहितोप्यशक्तः किं कुर्यादत आह । द्वारकावासिन्निति । एकरात्रेणैव स्वीयान् आपदः सकाशादुद्धर्तुं समुद्रमध्ये पुरीनिर्माणं तां पुरीं प्रति सर्वनगरस्य युगपत्प्रापणं च कुर्वतस्तव मम त्राणमीषत्करमित्यर्थः । ननु संनिहितः शक्तश्च किमिति दुष्टाननुगृह्णीयादत आह । कृष्ण स्मृतमात्र एव सर्वदोषकर्षण ननु तथापि 'अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता । अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ' इत्युक्तेः स्वाभाविकस्त्रीदोषो नापनेतुं शक्यः । न ह्याशीविषदंष्ट्राऽमृतस्रवा कर्तुं शक्येत्यत आह गोपीजनप्रिय नरेषु तावदत्यन्तं नीचा गोपाः तत्स्त्रियस्तु ततोपि नीचतरास्तास्वपि तवानुग्रहो दृश्यते किमुत मादृश्यां त्वदेकशरणाया त्वयैव राजसूयाभिषेकेणानुगृहीतायामिति भावः ॥ ४१ ॥ केशव कश्च अश्च ईशश्च ब्रह्माविष्णुरुद्राः तैः सह वाति गच्छतीति केशव ब्रह्मादीनामपि प्रवर्तक तदात्मकेति । अतः सर्वथा त्वं मामनुगृह्णीष्वेति भावः । आर्तिनाशनेति गोवर्द्धनोद्धरणदावाग्निपानादिना व्रजवासिनामार्तिस्त्वयैव यथा नाशिता तथा ममाप्यार्तिं नाशयेति भावः ॥ ४२ ॥ विश्वात्मन् विश्वान्तर्यामिन्नित्यर्थः । विश्वभावन विश्वकर्तः। अन्तर्यामित्वेन शत्रुं वाऽस्मिन्नर्थे उदासीनं कुरु अथवा विश्वकर्तृत्वेन वस्त्राणि बहूनि समर्पयेति भावः ॥ ४३ ॥ भामिनी दीप्तिमती स्वस्मिन् भगवदनुग्रहनिश्चयात् शत्रून गणयन्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ गह्वरितः करुणातिशयाद्गद्गदकण्ठः ॥ ४५ ॥ धर्मोन्तरितः धर्म एव अन्तरं वस्त्रं तद्भावं गतवान् गत्वा च तां वस्त्रौघैः समावृणोच्च ॥ ४६ ॥ नानारागाणि च विरागाणि केवलश्वेतानि च । नास्त्यकार्यं कदर्याणां नास्त्यसाम्यं महात्मनाम् । नास्त्युपेक्ष्यो हरेर्भक्त इति द्यूते प्रदर्शितम् ॥४८॥ शशाप शपथं कृतवान् ॥५०॥

सभां प्रपद्यते ह्यार्तः प्रज्वलन्निव हव्यवाट् ।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रशमयन्त्युत ॥ ६०
धर्मप्रश्नमतो ब्रूयादार्यः सत्येन मानवः ।
विब्रूयुस्तत्र तं प्रश्नं कामक्रोधबलातिगाः ॥ ६१
विकर्णेन यथाप्रज्ञमुक्तः प्रश्नो नराधिपाः ।
भवन्तोपि हितं प्रश्नं विब्रुवन्तु यथामति ॥ ६२
यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद्धर्मदर्शी सभां गतः ।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते ६३
यः पुनर्वितथं ब्रूयाद्धर्मदर्शी सभां गतः ।
अनृतस्य फलं कृत्स्नं संप्राप्नोतीति निश्चयः ॥ ६४
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं ।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराङ्गिरसस्य च ॥ ६५
प्रह्लादो नाम दैत्येन्द्रस्तस्य पुत्रो विरोचनः ।
कन्याहेतोराङ्गिरसं सुधन्वानमुपाद्रवत् ॥ ६६
अहं ज्यायानहं ज्यायानिति कन्येप्सया तदा ।
तयोर्देवनमत्रासीत्प्राणयोरिति नः श्रुतम् ॥ ६७
तयोः प्रश्नविवादोभूत्प्रह्लादं तावपृच्छताम् ।
ज्यायान्क आवयोरेकः प्रश्नं प्रब्रूहि मा मृषा ६८
स वै विवदनाद्भीतः सुधन्वानं विलोकयन् ।
तं सुधन्वाब्रवीत्क्रुद्धो ब्रह्मदण्ड इव ज्वलन् ॥ ६९
यदि वै वक्ष्यसि मृषा प्रह्लादाथ न वक्ष्यसि ।
शतधा ते शिरो वज्री वज्रेण प्रहरिष्यति ॥ ७०
सुधन्वना तथोक्तः सन्व्यथितोऽश्वत्थपर्णवत् ।
जगाम कश्यपं दैत्यः परिप्रष्टुं महौजसम् ॥ ७१

प्रह्लाद उवाच ।

त्वं वै धर्मस्य विज्ञाता दैवस्येहासुरस्य च ।
ब्राह्मणस्य महाभाग धर्मकृच्छ्रमिदं शृणु ॥ ७२
यो वै प्रश्नं न विब्रूयाद्वितथं चैव निर्दिशेत् ।
के वै तस्य परे लोकास्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ७३

कश्यप उवाच ।

जानन्नविब्रुवन्प्रश्नान्कामात्क्रोधाद्भयात्तथा ।
सहस्रं वारुणान्पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥ ७४
साक्षी वा विब्रुवन्साक्ष्यं गोकर्णशिथिलश्चरन् ।
सहस्रं वारुणान्पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥ ७५
तस्य संवत्सरे पूर्णे पाश एकः प्रमुच्यते ।
तस्मात्सत्यं तु वक्तव्यं जानता सत्यमञ्जसा ॥७६
विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्रोपपद्यते ।
न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ७७
अर्धं हरति वै श्रेष्ठः पादो भवति कर्तृषु ।
पादश्चैव सभासत्सु ये न निन्दन्ति निन्दितम् ॥
अनेना भवति श्रेष्ठो मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ७९
वितथं तु वदेयुर्ये धर्मं प्रल्हाद पृच्छते ।
इष्टापूर्ते च ते घ्नन्ति सप्त सप्त परावरान् ॥ ८०
हृतस्वस्य हि यद्दुःखं हतपुत्रस्य चैव यत् ।
ऋणिनः प्रति यच्चैव स्वार्थाद्भ्रष्टस्य चैव यत् ॥८१
स्त्रियाः पत्या विहीनाया राज्ञा ग्रस्तस्य चैव यत्
अपुत्रायाश्च यद्दुःखं व्याघ्राघ्रातस्य चैव यत् ॥८२
अध्यूढायाश्च यद्दुःखं साक्षिभिर्विहतस्य च ।
एतानि वै समान्याहुर्दुःखानि त्रिदिवेश्वराः ॥८३
तानि सर्वाणि दुःखानि प्राप्नोति वितथं ब्रुवन् ।
समक्षदर्शनात्साक्षी श्रवणाच्चेति धारणात् ॥ ८४
तस्मात्सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कश्यपस्य वचः श्रुत्वा प्रल्हादः पुत्रमब्रवीत् ॥८५

---

धर्मपीडामेवाह सभामिति । आर्तस्यात्राणेन सभ्यानां धर्मनाशोस्त्येव यथोक्तं 'न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् । अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्बिषी ' इति ॥ ६० ॥ एतदेवाह यो हि प्रश्नमित्यादिना ॥ ६३ ॥ आङ्गिरसस्य सुधन्वनः ६५ ॥ केशिन्या कन्यया विरोचनसुधन्वानौ पृष्टौ युवयोः को ज्यायान् कुलशीलादिना श्रेष्ठ इति तौ च स्वं स्वं ज्यायस्त्वं प्रतिजानानौ प्राणेनैव पण्येन देवनं पणं चक्रतुः । प्राणयोरिति विषसप्तमी पराजितेन यावज्जीवं जेतुर्दास्यं कर्तव्यमित्यर्थः । प्राणानामीश्वरस्तवेत्युपसंहारात् ॥ ६७ ॥ विवदनात् मृषावादात् ब्रह्मदण्डः ब्रह्मणा निर्मितः कालदण्डः ब्रह्मशाप इत्यपि केचित् ॥ ६९ ॥ व्यथितः कम्पयुक्तः ॥ ७१ ॥ अविब्रुवन् विस्पष्टमब्रुवन् ॥७४॥ गोकर्णशिथिलः उभयपक्षस्पर्शी प्रतिमुञ्चति क्षिपति ॥ ७५ ॥ अञ्जसा तत्त्वतः ॥७६॥ धर्मोऽधर्मेण विद्धः । द्वयोर्विवदतोरेकः । स्वयं मिथ्यावादी सन्नितरं धर्मिष्ठं मिथ्यावादीति वदति सोयमधर्मेण धर्मस्य वेधः । तत्र अवचनात् मिथ्यावचनात्संदिग्धवचनाद्वा ये धर्मशल्यं न निकृन्तन्ति न छिन्दन्ति त एव तेनाधर्मेण विद्धा भवन्ति ॥७७॥ तदेव विवृणोति अर्धमिति । अर्धं अधर्मस्येति शेषः श्रेष्ठः । सभापतिः ॥ ७८ ॥ इष्टं यागादि आपूर्तं वाप्यादि परावरान् भूतान् भाविनश्च ॥ ८० ॥ अध्यूढायाः कृतसपत्नीकायाः ॥ ८३ ॥ समक्षेति साक्षाद्दर्शनाद्वा आप्तवाक्याद्वाऽधिगतस्यार्थस्य धारणात्साक्षीत्यर्थः ॥ ८४ ॥ तस्मादिति लोभादिदोषात्तस्य विप्लावने तु धर्माद्धीयत एवेत्यभिप्रायः ॥ ८५ ॥

श्रेयान्सुधन्वा त्वत्तो वै मत्तः श्रेयांस्तथाङ्गिराः ।
माता सुधन्वनश्चापि मातृतः श्रेयसी तव ।
विरोचन सुधन्वाऽयं प्राणानामीश्वरस्तव ॥ ८६

सुधन्वोवाच ।

पुत्रस्नेहं परित्यज्य यस्त्वं धर्मे व्यवस्थितः ।
अनुजानामि ते पुत्रं जीवत्वेष शतं समाः ॥ ८७

विदुर उवाच ।

एवं वै परमं धर्मं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ।
यथा प्रश्नं तु कृष्णाया मन्यध्वं तत्र किं परम् ८८

वैशंपायन उवाच ।

विदुरस्य वचः श्रुत्वा नोचुः किंचन पार्थिवाः ।
कर्णो दुःशासनं त्वाह कृष्णां दासीं गृहान्नय ८९
तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान् ।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम् ९०

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि द्यूतपर्वणि द्रौपद्याकर्षणेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

द्रौपद्युवाच ।

पुरस्तात्करणीयं मे न कृतं कार्यमुत्तरम् ।
विह्वलास्मि कृतानेन कर्षता बलिना बलात् ॥ १
अभिवादं करोम्येषां कुरूणां कुरुसंसदि ।
न मे स्यादपराधोयं यदिदं न कृतं मया ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

सा तेन च समाधूता दुःखेन च तपस्विनी ।
पतिता विललापेदं सभायामतथोचिता ॥ ३

द्रौपद्युवाच ।

स्वयंवरे यास्मि नृपैर्दृष्टा रङ्गे समागतैः ।
न दृष्टपूर्वा चान्यत्र साहमद्य सभां गता ॥ ४
यां न वायुर्न चादित्यो दृष्टवन्तौ पुरा गृहे ।
साहमद्य सभामध्ये दृश्यामि जनसंसदि ॥ ५
यां न मृष्यन्ति वातेन स्पृश्यमानां गृहे पुरा ।
स्पृश्यमानां सहन्तेऽद्य पाण्डवास्तां दुरात्मना ६
मृष्यन्ति कुरवश्चेमे मन्ये कालस्य पर्ययम् ।
स्नुषां दुहितरं चैव क्लिश्यमानामनर्हतीम् ॥ ७
किं न्वतः कृपणं भूयो यदहं स्त्री सती शुभा ।
सभामध्यं विगाहेऽद्य क्व नु धर्मो महीक्षिताम् ८
धर्म्यां स्त्रियं सभां पूर्वे न नयन्तीति नः श्रुतम् ।
स नष्टः कौरवे येषु पूर्वो धर्मः सनातनः ॥ ९
कथं हि भार्या पाण्डूनां पार्षतस्य स्वसा सती ।
वासुदेवस्य च सखी पार्थिवानां सभामियाम् ॥
तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम् ।
ब्रूत दासीमदासीं वा तत्करिष्यामि कौरवाः॥ ११
अयं मां सुदृढं क्षुद्रः कौरवाणां यशोहरः ।
क्लिश्नाति नाहं तत्सोढुं चिरं शक्ष्यामि कौरवाः॥
जितां वाप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः।
तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत्करिष्यामि कौरवाः१३

भीष्म उवाच ।

उक्तवानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमा गतिः ।
लोके न शक्यते ज्ञातुमपि विप्रैर्महात्मभिः ॥ १४
बलवांश्च यथा धर्मं लोके पश्यति पूरुषः ।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः ॥ १५

---

इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

पुरस्तादिति । तावत्प्रतीक्ष दुःप्रज्ञ दुःशासननराधमेत्यतःपरं पुरस्तादिति पठन्ति केचित्। प्रतीक्ष प्रतीक्षस्व ॥१॥ दृश्यामि पृथग्जनस्त्रीवत् दृश्यमिवात्मानं करोमि ॥ ५ ॥ विगाहे पर्यालोचयामि ॥ ८ ॥ पाण्डूनां पाण्डवानाम् । आर्षस्तद्धितलुक् । पार्षतस्य धृष्टद्युम्नस्य । कथं इयां प्राप्नुयाम् ॥१०॥ किमहमत्र विवेकुमर्हामि नेत्याह बलवानिति । बलवान् कर्णदुर्योधनादिर्यदृते स एव धर्मः । परस्तु दुर्बलेनोक्तः अभिहितः धर्मोप्यधर्मो भवतीति भावः । अभिहितःपरैरिति पाठे तु अधर्मवेलायामपि परैर्बलवद्भिरुक्त एव धर्मो भवति न दुर्बलोक्त इति आकारं प्रश्लिष्य योज्यम् ॥ १५ ॥

न विवेक्तुं च ते प्रश्नमिमं शक्नोमि निश्चयात् ।
सूक्ष्मत्वाद्गहनत्वाच्च कार्यस्यास्य च गौरवात् १६
नूनमन्तः कुलस्यायं भविता न चिरादिव ।
तथा हि कुरवः सर्वे लोभमोहपरायणाः ॥ १७
कुलेषु जाताः कल्याणि व्यसनैराहता भृशम् ।
धर्म्यान्मार्गान्न च्यवन्ते येषां नस्त्वं वधूः स्थिता॥
उपपन्नं च पाञ्चाली तवेदं वृत्तमीदृशम् ।
यत्कृच्छ्रमपि संप्राप्ता धर्ममेवान्ववेक्षसे ॥ १९
एते द्रोणादयश्चैव वृद्धा धर्मविदो जनाः ।
शून्यैः शरीरैस्तिष्ठन्ति गतासव इवानताः ॥ २०
युधिष्ठिरस्तु प्रश्नेऽस्मिन्प्रमाणमिति मे मतिः ।
अजितां वा जितां वेति स्वयं व्याहर्तुमर्हति ॥२१

इति श्रीमहाभारते सभाप० द्यूतपर्वणि भीष्मवाक्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

---

## ७०

वैशंपायन उवाच ।
तथा तु दृष्ट्वा बहु तत्र देवीं
रोरूयमाणां कुररीमिवार्ताम् ।
नोचुर्वचः साध्वथ वाप्यसाधु
महीक्षितो धार्तराष्ट्रस्य भीताः ॥ १
दृष्ट्वा तथा पार्थिवपुत्रपौत्रां-
स्तूष्णीं भूतान्धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ।
स्मयन्निदं वचनं बभाषे
पाञ्चालराजस्य सुतां तदानीम् ॥ २
दुर्योधन उवाच ।
तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्त्वे
भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव ।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि
वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम् ॥ ३
अनीश्वरं विब्रुवन्त्वार्यमध्ये
युधिष्ठिरं तव पाञ्चालि हेतोः ।
कुर्वन्तु सर्वे चानृतं धर्मराजं
पाञ्चालि त्वं मोक्ष्यसे दासभावात् ॥ ४
धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा
स्वयं चेदं कथयत्विन्द्रकल्पः ।
ईशो वा ते ह्यनीशोऽथ वैष
वाक्यादस्य क्षिप्रमेकं भजस्व ॥ ५
सर्वे हीमे कौरवेयाः सभायां
दुःखान्तरे वर्तमानास्तवैव ।
न विब्रुवन्त्यार्यसत्त्वा यथावत्
पतींश्च ते समवेक्ष्याल्पभाग्यान् ॥ ६
वैशंपायन उवाच ।
ततः सभ्याः कुरुराजस्य तस्य
वाक्यं सर्वे प्रशशंसुस्तथोच्चैः ।
चेलावेधांश्चापि चक्रुर्नदन्तो
हाहेत्यासीदपि चैवार्तनादः ॥ ७

---

वक्तरस्त्वमेव सत्यं ब्रूहीत्यत आह नेति । विवेक्तुं वक्तुं । अयमस्याशयः यद्येतामजितासीति वक्ष्ये तदा न्यायं विना पीडितैषा सद्यः कोपेन कौरवान्नाशयेत् । तथा च द्रौपद्यपमानजो वा कुरुनाशजो वा दोषो महानिति संशये धर्मतत्त्वस्य सूक्ष्मत्वाद्दुर्विवेकत्वम् । देवकार्यमेव कौरवनाशेन भवतीत्यशक्यम् । सर्वेषां वध्यानामिह संप्रयोगाभावात् गहनमिदम् । पाण्डवानांमशक्तत्वात् परदासत्वाच्च । तत्स्वामिनां कौरवाणां नाशनं द्रौपद्या अपि दोषाय स्वामिस्वामिनाशस्य सुतरामकार्यत्वादिति हेतुत्रयं विविच्याकथने इति ॥ १६ ॥ ननु बलवत्कृतिरेव धर्मश्चेत् स्वधर्मेण बलवत्तरादमेनान् शापाग्निना धक्ष्ये इत्याशंक्याह नूनमिति । अवश्यभाविनि कार्ये न त्वया तपोव्ययः कर्तव्य इति भावः ॥ १७ ॥ इदमेव वृत्तं त्वद्भर्तारोप्यास्थिता अतस्त्वमपि तथैवातिष्ठस्वेति द्वाभ्यामाह कुलेष्विति ॥ १८ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

---

## ७०

तथात्विति ॥ १ ॥ सभ्याः प्रशशंसुः तेषां चेलाः चेटाः प्रेष्यास्तु वेधानिव वेधान् । तत्र तत्र समाचारप्रापणं परस्परेण चक्षुःसंकेतं वा चक्रुः । सभायां दुर्योधनेन उक्तमात्रा वार्ता सद्यः सर्वत्र प्रकीर्णेत्यर्थः चेलावेधान् [illegible] मणानीति प्राञ्चः । तत्रैव हाहेति कौरवपक्षपातिष्वेव । पाण्डवानां न्यायपक्षपातिनां प्रमाणीकरणे द्रौपदी दास्यान्मुक्ता भविष्यति । तेन च सर्वेषामस्माकं दुःखं भविष्यतीत्यभिप्रायः ॥ ७ ॥

श्रुत्वा तु तद्वाक्यमनोहरं त-
द्धर्षश्चासीत्कौरवाणां सभायाम् ।
सर्वे चासन्पार्थिवाः प्रीतिमन्तः
कुरुश्रेष्ठं धार्मिकं पूजयन्तः ॥ ८
युधिष्ठिरं च ते सर्वे समुदैक्षन्त पार्थिवाः ।
किं नु वक्ष्यति धर्मज्ञ इति साचीकृताननाः ॥ ९
किं नु वक्ष्यति बीभत्सुरजितो युधि पाण्डवः ।
भीमसेनो यमौ चोभौ भृशं कौतूहलान्विताः ॥
तस्मिन्नुपरते शब्दे भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ।
प्रगृह्य रुचिरं दिव्यं भुजं चन्दनचर्चितम् ॥ ११

भीमसेन उवाच ।

यद्येष गुरुरस्माकं धर्मराजो महामनाः ।
न प्रभुः स्यात्कुलस्यास्य न वयं मर्षयेमहि ॥ १२
ईशो नः पुण्यतपसां प्राणानामपि चेश्वरः ।
मन्यतेऽजितमात्मानं यद्येष विजिता वयम् ॥ १३
न हि मुच्येत मे जीवन्पदा भूमिमुपस्पृशन् ।
मर्त्यधर्मा परामृश्य पाञ्चाल्या मूर्धजानिमान् १४
पश्यध्वं ह्यायतौ वृत्तौ भुजौ मे परिघाविव ।
नैतयोरन्तरं प्राप्य मुच्येतापि शतक्रतुः ॥ १५
धर्मपाशसितस्त्वेवं नाधिगच्छामि संकटम् ।
गौरवेण विरुद्धश्च निग्रहादर्जुनस्य च ॥ १६
धर्मराजनिसृष्टस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव ।
धार्तराष्ट्रानिमान्पापान्निष्पिषेयं तलासिभिः १७

वैशंपायन उवाच ।

तमुवाच तदा भीष्मो द्रोणो विदुर एव च ।
क्षम्यतामिदमित्येवं सर्वं संभाव्यते त्वयि ॥ १८

इति श्रीमहाभा० सभाप० द्यूतपर्वणि भमिवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

कर्ण उवाच ।

त्रयः किलेमे ह्यधना भवन्ति
दासः पुत्रश्चास्वतन्त्रा च नारी ।
दासस्य पत्नी त्वधनस्य भद्रे
हीनेश्वरा दासधनं च सर्वम् ॥ १
प्रविश्य राज्ञः परिवारं भजस्व
तत्ते कार्यं शिष्टमादिश्यतेत्र ।
ईशास्तु सर्वे तव राजपुत्रि
भवन्ति वै धार्तराष्ट्रा न पार्थाः ॥ २
अन्यं वृणीष्व पतिमाशु भाविनि
यस्माद्दास्यं न लभसि देवनेन ।
अवाच्या वै पतिषु कामवृत्ति-
र्नित्यं दास्ये विदितं तत्तवास्तु ॥ ३

---

साचि तिर्यक् ॥ ९ ॥ यद्ययं नः कुलस्य प्रभुर्न स्यात्तर्हि न मर्षयेमहि यतोयं प्रभुस्ततो मर्षयामहे इत्यर्थः ॥१२॥ ईश इति अजितमिति छेदः । द्रौपदीपणनात् प्रागिति शेष यद्ययमात्मानमजितं मन्यते तर्हि वयं पूर्वमेव भवद्भिर्जिताः सन्तः इदानीं विजिताः द्रौपद्यर्थे मिथ्यावादेन सुतरां जिताः स्म इत्यर्थः । अतो द्रौपदी न दासभावमापन्नेति भावः ॥ १३ ॥ नन्वजितेनापि त्वया किं स्यात्तत्राह न हीत्यादि ॥ १४ ॥ पाशसितः पाशबद्धः ॥ १६ ॥ तलासिभिः चपेटाखङ्गैः ॥ १७ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

---

७१

क्वचित् 'त्रयः फिलेमे सधनाः सभायां भीष्मः क्षत्ता कौरवाणां गुरुश्च । ये स्वामिनं दुष्टतमं वदन्ति वाञ्छति वृद्धिं न च विक्षिपन्ति' इति श्लोकः प्रथमः । 'त्रयः किलेमे अधना' इति द्वितीयः । सधनाः समर्थाः धर्मोल्लङ्घने इत्यर्थः । वृद्धिं स्वामिनो मूलच्छेदनम् । न च विक्षिपन्ति पापकरणे व्याकुलाश्च न भवन्ति । दासस्य पत्नी हीनेश्वरा दासधनं च सर्वं हीनेश्वरं सत् भद्रे कल्याणमाजि तयोरीश्वरे द्वयमपि तत् न्यसनीयमित्यर्थः । तथा च स्मृतिः 'त्रय एवाधना लोके भार्या दासस्तथा सुतः । यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम्' इति। तथा च राजजयेनैव तत्पत्न्यपि जितैव न तु तत्र अजितेन जितेन वा पराजितेति विमर्शःसंभवतीति भावः ॥ १ ॥ परिवारं दारान् भजस्व पादसंवाहनादिना सेवस्व ॥ २ ॥ अन्यमिति । पतिजयेनात्मजयं न मन्यसे चेदपतिका त्वं रत्यर्थमन्यं पतिं वृणीष्व । पतिषु कामवृत्तिर्यथेष्टं वर्तनं लोके स्त्रीणामवाच्यं दास्ये तु तत् विदितं प्रसिद्धं । अतः परिमितपतिकाद्दारभावादनन्तपातिकं दास्यमेव तवास्त्विति भावः ॥ ३ ॥

पराजितो नकुलो भीमसेनो
युधिष्ठिरः सहदेवार्जुनौ च ।
दासीभूता त्वं हि वै याज्ञसेनि
पराजितास्ते पतयो नैव सन्ति ॥ ४
प्रयोजनं जन्मनि किं न मन्यते
पराक्रमं पौरुषं चैव पार्थः ।
पाञ्चाल्यस्य द्रुपदस्यात्मजामिमां
सभामध्ये यो व्यदेवीद्ग्लहेषु ॥ ५
वैशंपायन उवाच ।
तद्वै श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षी
भृशं निशश्वास तदार्तरूपः ।
राजानुगो धर्मपाशानुबद्धो
दहन्निवैनं क्रोधसंरक्तदृष्टिः ॥ ६
भीम उवाच ।
नाहं कुप्ये सूतपुत्रस्य राजन्
नैष सत्यं दासधर्मः प्रदिष्टः ।
किं विद्विषो वै मामेवं व्याहरेयु-
र्नादेवीस्त्वं यद्यनया नरेन्द्र ॥ ७
वैशंपायन उवाच ।
भीमसेनवचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं तूष्णीं भूतमचेतनम् ॥ ८
भीमार्जुनौ यमौ चैव स्थितौ ते नृप शासने ।
प्रश्नं ब्रूहि च कृष्णां त्वमजितां यदि मन्यसे ॥ ९
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोत्थ वसनं स्वकम् ।
स्मयन्निवेक्ष्य पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः ॥ १०
कदलीदण्डसदृशं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
गजहस्तप्रतीकाशं वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ ११
अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव ।
द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ १२
भीमसेनस्तमालोक्य नेत्रे उत्फाल्य लोहिते ।
प्रोवाच राजमध्ये तं सभां विश्रावयन्निव ॥ १३
पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद्वृकोदरः ।
यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे ॥ १४
क्रुद्धस्य तस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यः पावकार्चिषः ।
वृक्षस्येव विनिश्चेरुः कोटरेभ्यः प्रदह्यतः ॥ १५
विदुर उवाच ।
परं भयं पश्यत भीमसेना-
त्तद्बुध्यध्वं पार्थिवाः प्रातिपेयाः ।
दैवेरितो नूनमयं पुरस्तात्
परो नयो भरतेषूदपादि ॥ १६
अतिद्यूतं कृतमिदं धार्तराष्ट्रा
यस्मात्स्त्रियं विवदध्वं सभायाम् ।
योगक्षेमौ नश्यतो वः समग्रौ
पापान्मन्त्रान्कुरवो मन्त्रयन्ति ॥ १७
इमं धर्मं कुरवो जानताशु
ध्वस्ते धर्मे परिषत्संप्रदुष्येत् ।
इमां चेत्पूर्वं कितवोऽग्लहिष्य-
दीशोऽभविष्यदपराजितात्मा ॥ १८
स्वप्ने यथैतद्धि जितं धनं स्या-
देवं मन्ये यस्य दीव्यत्यनीशः ।
गान्धारराजस्य वचो निशम्य
धर्मादस्मात्कुरवो मापयात ॥ १९
दुर्योधन उवाच ।
भीमस्य वाक्ये तद्वदेवार्जुनस्य
स्थितोऽहं वै यमयोश्चैवमेव ।
युधिष्ठिरं ते प्रवदन्त्वनीश-
मथो दास्यान्मोक्ष्यसे याज्ञसेनि ॥ २०
अर्जुन उवाच ।
ईशो राजा पूर्वमासीद्ग्लहे नः
कुन्तीसुतो धर्मराजो महात्मा ।
ईशस्त्वयं कस्य पराजितात्मा
तज्जानीध्वं कुरवः सर्व एव ॥ २१

---

नैव सन्ति अस्मद्दासाः पाण्डवा अस्माभिः श्चेत् त्वां नैव भोक्तुं समर्था भवेयुरिति भावः ॥ ४ ॥ प्रयोजनमिति । य इमां व्यदेवीत् स जन्मनि प्रयोजनं जन्मसाफल्यं किं न मन्यतेऽपि तु मन्यत एव । एवं पराक्रमादावपि योज्यम् ॥ ५ ॥ एष दासधर्मः भर्तुरुत्कर्षवर्णनम् ॥ ७ ॥ अपोत्थ अपकृष्य ॥ १० ॥ अभ्युत्स्मयित्वा प्रोत्साह्य ॥ १२ ॥ उदपादि उत्पन्नः ॥ १६ ॥ अतिद्यूतं पणितद्रव्यमर्यादामतिक्रान्तम् । योगक्षेमौ योगो लब्धेन राज्यादिना संबन्धस्तस्य क्षेमः कल्याणं 'कुशलं क्षेममस्त्रियाम्'इत्यमरः ॥ १७ ॥ परिषत् सभा संप्रदुष्येत् धर्मातिक्रमादिति शेषः । कितवो युधिष्ठिरः अपराजितात्मा सन् पूर्वं चेत् अग्लहिष्यत् पणीकृतवान-भविष्यत् तर्हि सा भवद्दासी स्यादेवेति भावः ॥ १८ ॥ यस्य येन धनेनानीशो दीव्यति तत् स्वप्ने यथा धनं आभा-साजितं तद्वदित्यर्थः । 'यस्यैते तस्य तद्धनम्'इति स्मृतिस्तु दासभावेऽर्जितं धनं स्वामिगामीत्याह न तु ततःप्राक्तन-मपीति मापयात मागच्छत ॥ १९ ॥

वैशंपायन उवाच ।
ततो राज्ञो धृतराष्ट्रस्य गेहे
गोमायुरुच्चैर्व्याहरदग्निहोत्रे ।
तं रासभाः प्रत्यभाषन्त राज-
न्समन्ततः पक्षिणश्चैव रौद्राः ॥ २२
तं वै शब्दं विदुरस्तत्त्ववेदी
शुश्राव घोरं सुबलात्मजा च ।
भीष्मो द्रोणो गौतमश्चापि विद्वा-
न्स्वस्तीत्यपि चैवाहुरुच्चैः ॥ २३
ततो गान्धारी विदुरश्चापि विद्वां-
स्तमुत्पातं घोरमालक्ष्य राज्ञे ।
निवेदयामासतुरार्तवत्तदा
ततो राजा वाक्यमिदं बभाषे ॥ २४
धृतराष्ट्र उवाच ।
हतोसि दुर्योधन मन्दबुद्धे
यस्त्वं सभायां कुरुपुङ्गवानाम् ।
स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत
विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम् ॥ २५
एवमुक्त्वा धृतराष्ट्रो मनीषी
हितान्वेषी बान्धवानामपायात् ।
कृष्णां पाञ्चालीमब्रवीत्सान्त्वपूर्वं
विमृश्यैतत्प्रज्ञया तत्त्वबुद्धिः ॥ २६
धृतराष्ट्र उवाच ।
वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि ।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती ॥ २७

द्रौपद्युवाच ।
ददासि चेद्वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ ।
सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोस्तु युधिष्ठिरः ॥ २८
मनस्विनमजानन्तो मैवं ब्रूयुः कुमारकाः ।
एष वै दासपुत्रो हि प्रतिविन्ध्यं ममात्मजम् २९
राजपुत्रः पुरा भूत्वा यथा नान्यः पुमान्क्वचित् ।
राजभिर्लालितस्यास्य न युक्ता दासपुत्रता ॥३०
धृतराष्ट्र उवाच ।
एवं भवतु कल्याणि यथा त्वमभिभाषसे ।
द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वरयस्व हं ।
मनो हि मे वितरति नैकं त्वं वरमर्हसि ॥ ३१
द्रौपद्युवाच ।
सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेनधनंजयौ ।
यमौ च वरये राजन्नदासान्स्ववशानहम् ॥ ३२
धृतराष्ट्र उवाच ।
तथास्तु ते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि ।
तृतीयं वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसंस्कृता ।
त्वं हि सर्वस्नुषाणां मे श्रेयसी धर्मचारिणी ३३
द्रौपद्युवाच ।
लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन्नाहमुत्सहे ।
अनर्हा वरमादातुं तृतीयं राजसत्तम ॥ ३४
एकमाहुर्वैश्यवरं द्वौ तु क्षत्रस्त्रियो वरौ ।
त्रयस्तु राज्ञो राजेन्द्र ब्राह्मणस्य शतं वराः ॥ ३५
पापीयांस इमे भूत्वा संतीर्णाः पतयो मम ।
वेत्स्यन्ति चैव भद्राणि राजन्पुण्येन कर्मणा ३६

इति श्रीमहाभारते सभाप० द्यूतपर्वणि द्रौपदीवरलाभे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

---

## ७२

कर्ण उवाच ।
या नः श्रुता मनुष्येषु स्त्रियो रूपेण संमताः ।
तासामेतादृशं कर्म न कस्याश्च न शुश्रुम ॥ १
क्रोधाविष्टेषु पार्थेषु धार्तराष्ट्रेषु चाप्यति ।
द्रौपदी पाण्डुपुत्राणां कृष्णा शान्तिरिहाभवत् २
अप्लवेऽम्भसि मग्नानामप्रतिष्ठे निमज्जताम् ।
पाञ्चाली पाण्डुपुत्राणां नौरेषा पारगाभवत् ॥ ३
वैशंपायन उवाच ।
तद्वै श्रुत्वा भीमसेनः कुरुमध्येत्यमर्षणः ।
स्त्रीगतिः पाण्डुपुत्राणामित्युवाच सुदुर्मनाः ॥ ४

---

अग्निहोत्रे गृह्याग्निसमीपे ॥ २२ ॥ सुबलात्मजा गान्धारी ॥ २३ ॥ प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरसुतम् ॥२९॥ स्ववशान् अपराधीनान् ॥३२॥ वरं आदातुं नोत्सहे यतोऽनर्हा ॥ ३४ ॥ अनर्हत्वमेवाह एकमिति ॥ ३५ ॥ पापीयांसः दासभावेन नीचाः वेत्स्यन्ति लप्स्यन्ति विद्लृ लाभे इत्यस्य रूपम् ॥ ३६ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७१ ॥

७२

या न इति ॥ १ ॥ अप्लवे नौकाहीने । अप्रतिष्ठे अगाधे । अम्भसीवाम्भसि विपत्समुद्रे ॥ ३ ॥

भीम उवाच ।

त्रीणि ज्योतींषि पुरुष इति वै देवलोऽब्रवीत् ।
अपत्यं कर्म विद्या च यतः सृष्टाः प्रजास्ततः ॥ ५
अमेध्ये वै गतप्राणे शून्ये ज्ञातिभिरुज्झिते ।
देहे त्रितयमेवैतत्पुरुषस्योपयुज्यते ॥ ६
तन्नो ज्योतिरभिहतं दाराणामभिमर्शनात् ।
धनंजय कथंस्वित्स्यादपत्यमभिमृष्टजम् ॥ ७

अर्जुन उवाच ।

न चैवोक्ता न चानुक्ता हीनतः परुषा गिरः ।
भारत प्रतिजल्पन्ति सदा तूत्तमपूरुषाः ॥ ८
स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि ।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्धसंभावनाः स्वयम् ९

भीम उवाच ।

इहैवैतांस्तूरा सर्वान्हन्मि शत्रून्समागतान् ।
अथ निष्क्रम्य राजेन्द्र समूलान्हन्मि भारत ॥१०
किं नो विवदितेनेह किमुक्तेन च भारत ।
अद्यैवैतान्निहन्मीह प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ॥ ११
इत्युक्त्वा भीमसेनस्तु कनिष्ठैर्भ्रातृभिः सह ।
मृगमध्ये यथा सिंहो मुहुर्मुहुरुदैक्षत ॥ १२
सान्त्व्यमानो वीक्ष्यमाणः पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
खिद्यत्येव महाबाहुरन्तर्दाहेन वीर्यवान् ॥ १३
क्रुद्धस्य तस्य स्रोतोभ्यः कर्णादिभ्यो नराधिप ।
सधूमः सस्फुलिङ्गार्चिः पावकः समजायत १४
भ्रुकुटीकृतदुष्प्रेक्ष्यमभवत्तस्य तन्मुखम् ।
युगान्तकाले संप्राप्ते कृतान्तस्येव रूपिणः ॥ १५
युधिष्ठिरस्तमावार्य बाहुना बाहुशालिनम् ।
मैवमित्यब्रवीच्चैनं जोषमास्स्वेति भारत ॥ १६
निवार्य च महाबाहुं कोपसंरक्तलोचनम् ।
पितरं समुपातिष्ठद्धृतराष्ट्रं कृताञ्जलिः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि द्यूतप० भीमक्रोधे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

---

## ७३

युधिष्ठिर उवाच ।

राजन्किं करवामस्ते प्रशाध्यस्मांस्त्वमीश्वरः ।
नित्यं हि स्थातुमिच्छामस्तव भारत शासने ॥ १

धृतराष्ट्र उवाच ।

अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत ।
अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुशासत ॥ २
इदं चैवाववोद्धव्यं वृद्धस्य मम शासनम् ।
मया निगदितं सर्वं पथ्यं निःश्रेयसं परम् ॥ ३
वेत्थ त्वं तात धर्माणां गतिं सूक्ष्मां युधिष्ठिर ।
विनीतोसि महाप्राज्ञ वृद्धानां पर्युपासिता ॥ ४

---

ज्योतींषि लोकप्रकाशकानि । अपत्यं कर्म विद्या चेति यतः यस्माद्धेतोस्ततः ज्योतिस्त्रयात् । प्रजाः स्थावरजङ्गमाः सृष्टाः। अयं भावः । कर्मोपास्ति प्राप्यं लोकद्वयं अपत्यप्राप्यश्चायं लोकः । तथा च श्रुतिः 'सोयं लोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः' इति। विद्या उपासना। पितृलोकः स्वर्गः देवलोको ब्रह्मलोकः॥५॥ मरणानन्तरमेतान्येव ज्योतींष्युपकुर्वन्तीत्याह अमेध्ये इति । अमेध्ये अशुचौ ॥ ६ ॥ तन्न इति । नः दाराणामिति संबन्धः । तत्पारलौकीयं अपत्यादिकं ज्योतिः अस्मदीयानां दाराणामभिमर्शनादभिहतं अभितः सर्वतः हतं गतं ज्ञातमस्माभिरित्यर्थः । अभिहितमिति पाठे ओहाङ्गतावित्यस्य रूपं । यः संसदि परदारान् स्प्रष्टुं न त्रपते स विविक्तेऽवश्यं पारदारिकः स्यादेवेति भावः । एवं सर्वान् निन्दित्वा कर्णं समुद्दिश्याह धनंजयेति । तथा च अभिमृष्टजं परैःअभिमृष्टेभ्यो दारेभ्यो जातमपत्यं कथंस्वित्स्यात् संकरजत्वान्नीचकर्मकृदेव स्यात् । सूतबीजाद्वीरोत्पत्तेरसंभवात् कंसवत्कर्णोपि असुरबीजोद्भवः । क्रूरकर्मकरत्वादिति भावः ॥७॥ हीनतः हीनैः प्रतिजल्पन्ति प्रत्युत्तरयन्ति॥८॥ प्रतिविजानन्तः कृतस्य प्रतीकारं जानन्तः। लब्धसंभावनाः प्राप्तपूजाः ॥९॥ इहैवैतांस्तूरा सर्वान् तूरा त्वरया त्वरतेः क्विपिज्वरत्वरेत्युपधावकारयोरूठ् । एतान् स्तुतानित्यपपाठः निष्क्रम्य इतःस्थानादिति शेषः समूलान् कोशदेशदुर्गादिसहितान् ॥ १० ॥ विवदितेन विवादेन ॥ ११ ॥ स्रोतोभ्यः निर्गममार्गेभ्यः ॥ १४ ॥ जोषं तूष्णीं आस्स्व उपविश ॥ १६ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

---

७३

राजन्निति ॥१॥ अरिष्टं निर्विघ्नम् ॥ २ ॥

यतो बुद्धिस्ततः शान्तिः प्रशमं गच्छ भारत ।
नादारुणि पतेच्छस्त्रं दारुण्येतन्निपात्यते ॥ ५
न वैराण्यभिजानन्ति गुणान्पश्यन्ति नागुणान् ।
विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपूरुषाः ॥ ६
स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि ।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् ॥७
संवादे परुषाण्याहुर्युधिष्ठिर नराधमाः ।
प्रत्याहुर्मध्यमास्त्वेतेऽनुक्ताः परुषमुत्तरम् ॥ ८
न चोक्ता नैव चानुक्तास्त्वहिताः परुषा गिरः ।
प्रतिजल्पन्ति वै धीराः सदा तूत्तमपूरुषाः ॥ ९
स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि ।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः १०
असंभिन्नार्थमर्यादाः साधवः प्रियदर्शनाः ।
तथा चरितमार्येण त्वयास्मिन्सत्समागमे ॥ ११
दुर्योधनस्य पारुष्यं तत्तात हृदि मा कृथाः ।
मातरं चैव गान्धारीं मां च त्वं गुणकाङ्क्षया १२
उपस्थितं वृद्धमन्धं पितरं पश्य भारत ।
प्रेक्षापूर्वं मया द्यूतमिदमासीदुपेक्षितम् ॥ १३
मित्राणि द्रष्टुकामेन पुत्राणां च बलाबलम् ।
अशोच्याः कुरवो राजन्येषां त्वमनुशासिता ॥१४
मन्त्री च विदुरो धीमान्सर्वशास्त्रविशारदः ।
त्वयि धर्मोऽर्जुने धैर्यं भीमसेने पराक्रमः ॥ १५
श्रद्धा च गुरुशुश्रूषा यमयोः पुरुषाग्र्ययोः ।
अजातशत्रो भद्रं ते खाण्डवप्रस्थमाविश ।
भ्रातृभिस्तेऽस्तु सौभ्रात्रं धर्मे ते धीयतां मनः १६

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तो भरतश्रेष्ठ धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
कृत्वार्यसमयं सर्वं प्रतस्थे भ्रातृभिः सह ॥ १७
ते रथान्मेघसंकाशानास्थाय सह कृष्णया ।
प्रययुर्हृष्टमनस इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते सभाप० द्यूतपर्वणि धृतराष्ट्रवरप्रदानपूर्वकमिन्द्रप्रस्थंप्रति युधिष्ठिरगमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

समाप्तं द्यूतपर्व ।

---

## अनुद्यूतपर्व ।

### ७४

जनमेजय उवाच ।

अनुज्ञातांस्तान्विदित्वा सरत्नधनसंचयान् ।
पाण्डवान्धार्तराष्ट्राणां कथमासीन्मनस्तदा ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

अनुज्ञातांस्तान्विदित्वा धृतराष्ट्रेण धीमता ।
राजन्दुःशासनः क्षिप्रं जगाम भ्रातरं प्रति ॥ २
दुर्योधनं समासाद्य सामात्यं भरतर्षभ ।
दुःखार्तो भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३

दुःशासन उवाच ।

दुःखेनैतत्समानीतं स्थविरो नाशयत्यसौ ।
शत्रुसाद्गमयद्द्रव्यं तद्बुध्यध्वं महारथाः ॥ ४

---

यत इति । शान्तिरेव बुद्धेः फलमित्यर्थः । अदारुणि काष्ठभिन्ने पाषाणादौ । मृदुरेव बाध्यत इत्यर्थः ॥५॥ बाधनेपि सतां वृत्तमाह नेति॥६॥सन्त इति प्रत्युपकाराशया उपकारं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥७॥ अधममध्यमोत्तमानां कलहप्रसंगे वृत्तमाह संवादे इति ॥८॥ दुर्वचोभिरुक्ता अनुक्ता वा सन्तः अहिताः दुःखकर्त्रीः यतः परुषाः मर्मच्छिदस्तादृशीर्गिरः ॥ ९ ॥ सन्त इति । आत्मौपम्येन परस्यापि दुःखं माभूदिति जानन्त इत्यर्थः ॥ १० ॥ भ्रातृभिर्दुर्योधनादिभिः ॥ १६ ॥ सर्वं समयं कृत्वा मदुक्तं यत्तत्तथैवास्त्विति प्रतिज्ञाय ॥ १७ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

अनुज्ञातानिति ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रेण यथाप्रतिज्ञं सुहृद्द्यूते कृतेपि पुरुषकाराद्बलवत्तरं दैवं कौरवान् सर्वभूक्षयहेतौ अनुद्यूते प्रावर्तयदित्याह अनुज्ञातानिति ॥ २ ॥ भरतश्रेष्ठः भरतस्य दुर्योधनस्य दृष्ट्या श्रेष्ठः प्रशस्यतमो दुःशासनः॥३॥ स्थविरो वृद्ध इति साधिक्षेपमुक्तं शत्रुसात् शत्रुवशं गमयदगमयत्प्रापितवान् ॥ ४ ॥

अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
मिथः संगम्य सहिताः पाण्डवान्प्रतिमानिनः ॥ ५
वैचित्र्यवीर्यं राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
अभिगम्य त्वरायुक्ताः श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥ ६

दुर्योधन उवाच ।

न त्वयेदं श्रुतं राजन्यज्जगाद बृहस्पतिः ।
शक्रस्य नीतिं प्रवदन्विद्वान्देवपुरोहितः ॥ ७
सर्वोपायैर्निहन्तव्याः शत्रवः शत्रुसूदन ।
पुरा युद्धाद्बलाद्वापि प्रकुर्वन्ति तवाहितम् ॥ ८
ते वयं पाण्डवधनैः सर्वान्संपूज्य पार्थिवान् ।
यदि तान्योधयिष्यामः किं वै नः परिहास्यति ९
अहीनाशीविषान्क्रुद्धान्नाशाय समुपस्थितान् ।
कृत्वा कण्ठे च पृष्ठे च कः समुत्स्रष्टुमर्हति ॥ १०
आत्तशस्त्रा रथगताः कुपितास्तात पाण्डवाः ।
निःशेषं वः करिष्यन्ति क्रुद्धा ह्याशीविषा इव ११
संनद्धो ह्यर्जुनो याति विधृत्य परमेषुधी ।
गाण्डीवं मुहुरादत्ते निःश्वसंश्च निरीक्षते ॥ १२
गदां गुर्वीं समुद्यम्य त्वरितश्च वृकोदरः ।
स्वरथं योजयित्वाशु निर्यात इति नः श्रुतम् १३
नकुलः खड्गमादाय चर्म चाप्यर्धचन्द्रवत् ।
सहदेवश्च राजा च चक्रुराकारमिङ्गितैः ॥ १४
ते त्वास्थाय रथान्सर्वे बहुशस्त्रपरिच्छदान् ।
अभिघ्नन्तो रथव्रातान्सेनायोगाय निर्ययुः ॥ १५
न क्षंस्यन्ते तथास्माभिर्जातु विप्रकृता हि ते ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं कस्तेषां क्षन्तुमर्हति ॥ १६
पुनर्दीव्याम भद्रं ते वनवासाय पाण्डवैः ।
एवमेतान्वशे कर्तुं शक्ष्यामः पुरुषर्षभ ॥ १७
ते वा द्वादश वर्षाणि वयं वा द्यूतनिर्जिताः ।
प्रविशेम महारण्यमजिनैः प्रतिवासिताः ॥ १८
त्रयोदशं सजनेन अज्ञाताः प्रतिवत्सरम् ।
ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥ १९
निवसेम वयं ते वा तथा द्यूतं प्रवर्तताम् ।
अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥ २०
एतत्कृत्यतमं राजन्नस्माकं भरतर्षभ ।
अयं हि शकुनिर्वेद सविद्यामक्षसंपदम् ॥ २१
दृढमूला वयं राज्ये मित्राणि परिगृह्य च ।
सारवद्विपुलं सैन्यं सत्कृत्य च दुरासदम् ॥ २२
ते च त्रयोदशं वर्षं पारयिष्यन्ति चेद्व्रतम् ।
जेष्यामस्तान्वयं राजन्रोचतां ते परंतप ॥ २३

धृतराष्ट्र उवाच ।

तूर्णं प्रत्यानयस्वैतान्कामं व्यध्वगतानपि ।
आगच्छन्तु पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥ २४

वैशंपायन उवाच ।

ततो द्रोणः सोमदत्तो बाल्हीकश्चैव गौतमः ।
विदुरो द्रोणपुत्रश्च वैश्यापुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २५
भूरिश्रवाः शान्तनवो विकर्णश्च महारथः ।
मा द्यूतमित्यभाषन्त शमोऽस्त्विति च सर्वशः २६
अकामानां च सर्वेषां सुहृदामर्थदर्शिनां ।
अकरोत्पाण्डवाह्वानं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ॥ २७

इति श्रीमहाभा० सभाप० अनुद्यूतप० युधिष्ठिरप्रत्यानयने चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

---

पाण्डवान्प्रति प्रतिकर्तुम् ॥ ५ ॥ त्वया इदं किं न श्रुतमिति काका नञो योजना अपि तु श्रुतमेव ॥ ७ ॥ पुरा युद्धात् युद्धमकृत्वेत्यर्थः बलाद्युद्धेन वा ये अहितं कुर्वन्ति ते निहन्तव्या इति योजना ॥ ८ ॥ तान् पाण्डवान् । परिहास्यति नंक्ष्यति ॥ ९ ॥ परमेषुधी श्रेष्ठौ निषङ्गौ ॥ १२ ॥ आकारं अभिप्रायं इङ्गितैश्चेष्टितैः चक्रुः आविश्चक्रुः कृ विक्षेपे इत्यस्य रूपम् ॥ १४ ॥ सेनायोगाय सैन्यमेलनाय ॥ १५ ॥ न क्षंस्यन्ते न क्षमां करिष्यन्ते । जातु कदाचित् । विप्रकृताः विकारं प्रापिताः तेषां मध्ये ॥ १६ ॥ सजनेन समानजनेन अज्ञाताः ॥१९॥ सविद्य अक्षवशीकरणविद्यासहिताम् ॥२१॥ सारवत् बलवत्॥२२॥ व्यध्वगतान् दूरगतान् ॥ २४ ॥ वैश्यापुत्रो युयुत्सुः॥२५॥ अकामानां द्यूतमनिच्छतां सताम् ॥ २७ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## ७५

वैशंपायन उवाच ।
अथाब्रवीन्महाराज धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
पुत्रहार्दाद्धर्मयुक्ता गान्धारी शोककर्षिता ॥ १
जाते दुर्योधने क्षत्ता महामतिरभाषत ।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥ २
व्यनदज्जातमात्रो हि गोमायुरिव भारत ।
अन्तो नूनं कुलस्यास्य कुरवस्तन्निबोधत ॥ ३
मा निमज्जीः स्वदोषेण महाप्सु त्वं हि भारत ।
मा बालानामशिष्टानामभिमंस्था मतिं प्रभो ॥ ४
मा कुलस्य क्षये घोरे कारणं त्वं भविष्यसि ।
बद्धं सेतुं को नु भिन्द्याद्धमेच्छान्तं च पावकम् ॥५
शमे स्थितान्को नु पार्थान्कोपयेद्भरतर्षभ ।
स्मरन्तं त्वामाजमीढ स्मारयिष्याम्यहं पुनः ॥ ६
शास्त्रं न शास्ति दुर्बुद्धिं श्रेयसे चेतराय च ।
न वै वृद्धो बालमतिर्भवेद्राजन्कथंचन ॥ ७
त्वन्नेत्राः सन्तु ते पुत्रा मा त्वां दीर्णाः प्रहासिषुः
तस्मादयं मद्वचनात्त्यज्यतां कुलपांसनः ॥ ८
तथा तेन कृतं राजन्पुत्रस्नेहान्नराधिप ।
तस्य प्राप्तं फलं विद्धि कुलान्तकरणाय यत् ॥ ९
शमेन धर्मेण नयेन युक्ता
या ते बुद्धिः सास्तु ते मा प्रमादीः ।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-
र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ १०
अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारीं धर्मदर्शिनीम् ।
अन्तः कामं कुलस्यास्तु न शक्नोमि निवारितुम् ॥ ११
यथेच्छन्ति तथैवास्तु प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः ।
पुनर्द्यूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैः सह ॥ १२

इति श्रीमहाभा० सभाप० अनुद्यूतप० गान्धारीवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

वैशंपायन उवाच ।
ततो व्यध्वगतं पार्थं प्रातिकामी युधिष्ठिरम् ।
उवाच वचनाद्राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १
उपास्तीर्णा सभा राजन्नक्षानुप्त्वा युधिष्ठिर ।
एहि पाण्डव दीव्येति पिता त्वाहेति भारत ॥ २
युधिष्ठिर उवाच ।
धातुर्नियोगाद्भूतानि प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम् ।
न निवृत्तिस्तयोरस्ति देवितव्यं पुनर्यदि ॥ ३
अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात्स्थविरस्य च ।
जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे ॥ ४
वैशंपायन उवाच ।
असंभवे हेममयस्य जन्तो-
स्तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समासन्नपराभवाणां
धियो विपर्यस्ततरा भवन्ति ॥ ५
इति ब्रुवन्निववृते भ्रातृभिः सह पाण्डवः ।
जानंश्च शकुनेर्मायां पार्थो द्यूतमियात्पुनः ॥ ६
विविशुस्ते सभां तां तु पुनरेव महारथाः ।
व्यथयन्ति स्म चेतांसि सुहृदां भरतर्षभाः ॥ ७
यथोपजोषमासीनाः पुनर्द्यूतप्रवृत्तये ।
सर्वलोकविनाशाय दैवेनोपनिपीडिताः ॥ ८
शकुनिरुवाच ।
अमुञ्चत्स्थविरो यद्वो धनं पूजितमेव तत् ।
महाधनं ग्लहं त्वेकं शृणु भो भरतर्षभ ॥ ९

---

७५

अथेति ॥ १ ॥ मतिं माभिमंस्थाः आभिमता मा कुरु ॥ ४ ॥ धमेत् उद्दीपयेत् ॥ ५ ॥ त्वन्नेत्राः त्वमेव नेता येषां ते त्वन्नेत्राः । दीर्णाः त्वत्तो भिन्नमर्यादाः सन्तः प्रहासिषुः जीवितत्यागेनेति शेषः ॥८॥ मा प्रमादीः अनवहितो मा भूः मृदुप्रौढा मृदुषु समाहिता सती प्रौढा भूत्वा ॥ १० ॥ अन्तो नाशः कामं यथेष्टम् ॥ ११ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

तत इति ॥ १ ॥ असंभवे इति धृतराष्ट्रमुद्दिश्य उक्तम् ॥ ५ ॥ यथोपजोषं यथासुखम् ॥८॥ पूजितं इष्टम् ॥ ९ ॥

वयं वा द्वादशाब्दानि युष्माभिर्द्यूतनिर्जिताः ।
प्रविशेम महारण्यं रौरवाजिनवाससः ॥ १०

त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् ।
ाश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥ ११

भिर्निर्जिता यूयं वने द्वादशवत्सरान् ।
वसध्वं कृष्णया सार्धमजिनैः प्रतिवासिताः ॥१२

त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् ।
ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥ १३

त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम् ।
स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः ॥ १४

अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्युधिष्ठिर ।
अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमेहि दीव्यस्व भारत ॥ १५

अथ सभ्याः सभामध्ये समुच्छ्रितकरास्तदा ।
ऊचुरुद्विग्नमनसः संवेगात्सर्व एव हि ॥ १६

सभ्या ऊचुः ।

अहो धिग्बान्धवा नैनं बोधयन्ति महद्भयम् ।
बुध्या बुध्येन्न वा बुध्येदयं वै भरतर्षभ ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

जनप्रवादान्सुबहूञ्शृण्वन्नपि नराधिपः ।
ह्रिया च धर्मसंयोगात्पार्थो द्यूतमियात्पुनः १८

जानन्नपि महाबुद्धिः पुनर्द्यूतमवर्तयत् ।
अप्यासन्नो विनाशः स्यात्कुरूणामिति चिन्तयन्॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं वै मद्विधो राजा स्वधर्ममनुपालयन् ।
आहूतो विनिवर्तेत दीव्यामि शकुने त्वया ॥ २०

शकुनिरुवाच ।

गवाश्वं बहुधेनूकमपर्यन्तमजाविकम् ।
गजाः कोशो हिरण्यं च दासीदासाश्च सर्वशः ॥

एष नो ग्लह एवैको वनवासाय पाण्डवाः ।
यूयं वयं वा विजिता वसेम वनमाश्रिताः ॥ २२

त्रयोदशं च वै वर्षमज्ञाताः सजने तथा ।
अनेन व्यवसायेन दीव्याम पुरुषर्षभाः ॥ २३

समुत्क्षेपेण चैकेन वनवासाय भारत ।
प्रतिजग्राह तं पार्थो ग्लहं जग्राह सौबलः ।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ २४

इति श्रीमहाभा० सभाप० अनुद्यूतप० पुनर्युधिष्ठिरपराभवे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

वैशंपायन उवाच ।

ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः ।
अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम् ॥ १

अजिनैः संवृतान्दृष्ट्वा हृतराज्यानरिंदमान् ।
प्रस्थितान्वनवासाय ततो दुःशासनोऽब्रवीत् ॥ २

प्रवृत्तं धार्तराष्ट्रस्य चक्रं राज्ञो महात्मनः ।
पराजिताः पाण्डवेया विपत्तिं परमां गताः ॥ ३

अद्य देवाः संप्रयाताः समैर्वर्त्मभिरस्थलैः ।
गुणज्येष्ठास्तथा श्रेष्ठाः श्रेयांसो यद्वयं परैः ॥ ४

नरकं पातिताः पार्था दीर्घकालमनन्तकम् ।
सुखाच्च हीना राज्याच्च विनष्टाः शाश्वतीः समाः

धनेन मत्ता ये ते स्म धार्तराष्ट्रान्प्रहासिषुः ।
ते निर्जिता हृतधना वनमेष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ६

---

व्यवसायेन निश्चयेन ॥ १५ ॥ संवेगात् अतिशयात् ॥१६॥ एनं दुर्योधनं हे भरतर्षभ हे धृतराष्ट्र ॥ १७ ॥ ह्रिया कार्पण्यदोषान्निवृत्त इति लज्जया । धर्मसंयोगात् तीर्थाटनजात् ॥ १८ ॥ गजाश्वादिकं बहुधेनूकं बहुदोग्ध्रीकं । पणीकृतमिति शेषः ॥ २१ ॥ संप्रति एक एव पण इत्याह एष इति ॥ २२ ॥ समुत्क्षेपेण एकेनैव वचनोपक्षेपेण । सकृद्याहृतमात्रेणेत्यर्थः । प्रतिजग्राह तं ग्लहं अङ्गीचकार । ततः सौबलो ग्लहं जग्राह पाशं पातितवान् ॥ २४ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

तत इति । दीक्षा व्रतग्रहणं तत्संजातं येषां ते दीक्षिताः ॥ १ ॥ पाण्डोः स्त्रियौ पाण्ड्वौ ऊङुत इत्यूङन्तात् स्त्रीभ्यो ढगिति ढकि तयोरपत्यानि पाण्डवेयाः ॥ ३ ॥ समैः सर्वैः वर्त्मभिः मार्गैः अस्थलैः आगन्तृभिरतिसंकीर्णत्वात् स्थलहीनैः । संप्रयाता अस्मान्प्रतीति शेषः। सर्वेऽद्य देवा अनुकूला इत्यर्थः। गुणैः श्रीमत्त्वादिभिः ज्येष्ठाः तथा श्रेष्ठाः वयसा अत एव श्रेयांसः प्रशस्यतराः ॥ ४ ॥ प्रहासिषुः सभायां दुर्योधनं जले पतितं दृष्ट्वा हासं कृतवन्तः ॥ ६ ॥

चित्रान्सन्नाहानवमुञ्चन्तु चैषां
वासांसि दिव्यानि च भानुमन्ति ।
विवास्यन्तां रुरुचर्माणि सर्वे
यथा ग्लहं सौबलस्याभ्युपेताः ॥ ७

न सन्ति लोकेषु पुमांस ईदृशा
इत्येव ये भावितबुद्धयः सदा ।
ज्ञास्यन्ति तेऽऽत्मानमिमेऽद्य पाण्डवा
विपर्यये षण्ढतिला इवाफलाः ॥ ८

इदं हि वासो यदि वेदृशानां
मनस्विनां रौरवमाहवेषु ।
अदीक्षितानामजिनानि यद्व-
द्बलीयसां पश्यत पाण्डवानाम् ॥ ९

महाप्राज्ञः सौमकिर्यज्ञसेनः
कन्यां पाञ्चालीं पाण्डवेभ्यः प्रदाय ।
अकार्षीद्वै सुकृतं नेह किंचित्
क्लीबाः पार्थाः पतयो याज्ञसेन्याः ॥ १०

सूक्ष्मप्रावारानजिनोत्तरीयान्
दृष्ट्वारण्ये निर्धनानप्रतिष्ठान् ।
कां त्वं प्रीतिं लप्स्यसे याज्ञसेनि
पतिं वृणीष्वेह यमन्यमिच्छसि ॥ ११

एते हि सर्वे कुरवः समेताः
क्षान्ता दान्ताः सुद्रविणोपपन्नाः ।
एषां वृणीष्वैकतमं पतित्वे
न त्वां नयेत्कालविपर्ययोऽयम् ॥ १२

यथाऽफलाः षण्ढतिला यथा चर्ममया मृगाः ।
तथैव पाण्डवाः सर्वे यथा काकयवा अपि ॥ १३

किं पाण्डवांस्ते पतितानुपास्य
मोघः श्रमः षण्ढतिलानुपास्य ।
एवं नृशंसः परुषाणि पार्था-
नश्रावयद्धृतराष्ट्रस्य पुत्रः ॥ १४

तद्वै श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षी
निर्भर्त्स्योच्चैः संनिगृह्यैव रोषात् ।
उवाच चैनं सहसैवोपगम्य
सिंहो यथा हैमवतः शृगालम् ॥ १५

भीमसेन उवाच ।

क्रूरं पापजनैर्जुष्टमकृतार्थं प्रभाषसे ।
गान्धारविद्यया हि त्वं राजमध्ये विकत्थसे ॥ १६

यथा तुदसि मर्माणि वाक्शरैरिह नो भृशम् ।
तथा स्मारयिता तेऽहं कृन्तन्मर्माणि संयुगे ॥ १७

ये च त्वामनुवर्तन्ते क्रोधलोभवशानुगाः ।
गोप्तारः सानुबन्धांस्तान्नेतास्मि यमसादनम् ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

एवं ब्रुवाणमजिनैर्विवासितं
दुःशासनस्तं परिनृत्यति स्म ।
मध्ये कुरूणां धर्मनिबद्धमार्गं
गौर्गौरिति स्माह्वयन्मुक्तलज्जः ॥ १९

भीमसेन उवाच ।

नृशंस परुषं वक्तुं शक्यं दुःशासन त्वया ।
निकृत्या हि धनं लब्ध्वा को विकत्थितुमर्हति ॥ २०

मैव स्म सुकृताँल्लोकान्गच्छेत्पार्थो वृकोदरः ।
यदि वक्षो हि ते भित्त्वा न पिबेच्छोणितं रणे ॥

---

सन्नाहान् उष्णीषकवचकटिबन्धादीन् । भानुमन्ति सुवर्णतन्तुमयत्वाद्दीप्तिमन्ति । विवास्यन्तां परिधाप्यन्तां । रुरुः कृष्णमृगः ईदृशा अस्मत्सदृशाः । अफलाःनिर्वीर्याः ॥ ८ ॥ इदं चेति । यत् इवेति छेदः यदिदं रौरवं वासः। आहवेषु यज्ञेषु यान्येव संग्रामनामानि तानि यज्ञनामानीति यास्कः । ईदृशानां दीक्षितानामिव पाण्डवानां दृश्यते । तच्च तद्वत् पश्यत । यद्वत् अदीक्षितानां कैवर्तादीनामजिनानीति योजना । अदीक्षायामपि दीक्षितवासांसि वसानाः कैवर्तकवद्दृश्यन्त इत्यर्थः ॥ ९ ॥ यज्ञसेनो द्रुपदः ॥ १० ॥ सूक्ष्मप्रावारान् तुच्छपरिधानीयवस्त्रान् । अप्रतिष्ठान् त्यक्तस्थानान् ॥ ११ ॥ कालविपर्ययः क्लेशकालः त्वां न नयेत् न कर्षेत् । न त्वां तपेदित्यपि पाठः ॥ १२ ॥ काकयवा निस्तन्दुलं तृणधान्यं ॥ १३ ॥ गान्धारस्य शकुनेर्विद्यया न तु बाहुबलेनेति भावः ॥ १६ ॥ स्मारयिता स्मारयिष्यामि ॥ १७ ॥ सानुबन्धान्सपुत्रबान्धवान् ॥ १८ ॥ अजिनैर्विवासितं आच्छादितं तावन्मात्रया संपत्त्या सह राज्यात् बहिष्कृतमित्यर्थः । धर्मेण निबद्धो निरुद्धो मार्गो रिपुमर्दनारम्भो यस्य तं । मधुपर्के गौर्गौरिति त्रिर्निवेदितायां गोर्वध उत्सर्गश्च दृष्टः । तत्सामान्यात् अन्तकरूपायातिथये निवेदिताः । पाण्डवपशव उत्सृष्टाः । ते पुनर्वयं मृत्युमुखात् प्रमुक्ता इति उत्सृष्टमात्रा एव वेगेन पलायन्ते पुनरस्मानयं माबाधिष्टेति । तेषां परिहासेन व्याकुलीकरणाय पुनराह्वानं क्रियते गौर्गौरिति । मृत्युभयात् पशुवत् प्राणभयात् पलायन्त इति पाण्डवानां कातरत्वसूचकोऽयमुपहासः । अस्योत्तरं द्रोणपर्वणि भीमसेनो वक्ष्यति । 'येऽस्मान्पूर्वं प्रनृत्यन्ति मुहुर्गौरिति गौरिति । तान्वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति' इति । उत्सृष्टान्पशूनिव भीषयितुमाह्वयन्तो येऽस्मान् पूर्वं प्रनृत्यन्ति तानेव युद्धे विदारितान् दृष्ट्वा नृत्याम इति तदर्थः ॥ १९ ॥

धार्तराष्ट्रान्रणे हत्वा मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
शर्म गन्तास्मि न चिरात्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २२

वैशंपायन उवाच ।

तस्य राजा सिंहगतेः सखेलं
दुर्योधनो भीमसेनस्य हर्षात् ।
गतिं स्वगत्यानुचकार मन्दो
निर्गच्छतां पाण्डवानां सभायाः ॥ २३
नैतावता कृतमित्यब्रवीत्तं
वृकोदरः संनिवृत्तार्धकायः ।
शीघ्रं हि त्वां निहतं सानुबन्धं
संस्मार्याहं प्रतिवक्ष्यामि मूढ ॥ २४
एवं समीक्ष्यात्मनि चावमानं
नियम्य मन्युं बलवान्स मानी
राजानुगः संसदि कौरवाणां
विनिष्क्रामन्वाक्यमुवाच भीमः ॥ २५

भीमसेन उवाच ।

अहं दुर्योधनं हन्ता कर्णं हन्ता धनंजयः ।
शकुनिं चाक्षकितवं सहदेवो हनिष्यति ॥ २६
इदं च भूयो वक्ष्यामि सभामध्ये बृहद्वचः ।
सत्यं देवाः करिष्यन्ति यन्नो युद्धं भविष्यति २७
सुयोधनमिमं पापं हन्तास्मि गदया युधि ।
शिरः पादेन चास्याहमधिष्ठास्यामि भूतले ॥ २८
वाक्यशूरस्य चैवास्य परुषस्य दुरात्मनः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पातास्मि मृगराडिव ॥ २९

अर्जुन उवाच ।

नैवं वाचा व्यवसितं भीम विज्ञायते सताम् ।
इतश्चतुर्दशे वर्षे द्रष्टारो यद्भविष्यति ॥ ३०

भीमसेन उवाच ।

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः ।
दुःशासनचतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम् ३१

अर्जुन उवाच ।

असूयितारं द्रष्टारं प्रवक्तारं विकत्थनम् ।
भीमसेन नियोगात्ते हन्ताहं कर्णमाहवे ॥ ३२
अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रियकाम्यया ।
कर्णं कर्णानुगांश्चैव रणे हन्तास्मि पत्रिभिः ॥ ३३
ये चान्ये प्रतियोत्स्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ।
तांश्च सर्वानहं बाणैर्नेतास्मि यमसादनम् ॥ ३४
चलेद्धि हिमवान्स्थानान्निष्प्रभः स्याद्दिवाकरः ।
शैत्यं सोमात्प्रणश्येत मत्सत्यं विचलेद्यदि ॥ ३५
न प्रदास्यति चेद्राज्यमितो वर्षे चतुर्दशे ।
दुर्योधनोऽभिसत्कृत्य सत्यमेतद्भविष्यति ॥ ३६

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तवति पार्थे तु श्रीमान्माद्रवतीसुतः ।
प्रगृह्य विपुलं बाहुं सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३७
सौबलस्य वधं प्रेप्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।
क्रोधसंरक्तनयनो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ ३८

सहदेव उवाच ।

अक्षान्यान्मन्यसे मूढ गान्धाराणां यशोहर ।
नैतेऽक्षा निशिता बाणास्त्वयैते समरे वृताः ॥ ३९
यथा चैवोक्तवान्भीमस्त्वामुद्दिश्य स बान्धवम् ।
कर्ताहं कर्मणस्तस्य कुरु कार्याणि सर्वशः ॥ ४०
हन्तास्मि तरसा युद्धे त्वामेवेह सबान्धवम् ।
यदि स्थास्यसि संग्रामे क्षत्रधर्मेण सौबल ॥ ४१
सहदेववचः श्रुत्वा नकुलोपि विशांपते ।
दर्शनीयतमो नृणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४२

नकुल उवाच ।

सुतेयं यज्ञसेनस्य द्यूतेस्मिन्धृतराष्ट्रजैः ।
यैर्वाचः श्राविता रूक्षाः स्थितैर्दुर्योधनप्रिये ४३
तान्धार्तराष्ट्रान्दुर्वृत्तान्मुमूर्षून्कालनोदितान् ।
गमयिष्यामि भूयिष्ठानहं वैवस्वतक्षयम् ॥ ४४
निदेशाद्धर्मराजस्य द्रौपद्याः पदवीं चरन् ।
निर्धार्तराष्ट्रां पृथिवीं कर्तास्मि न चिरादिव ४५

वैशंपायन उवाच ।

एवं ते पुरुषव्याघ्राः सर्वे व्यायतबाहवः ।
प्रतिज्ञा बहुलाः कृत्वा धृतराष्ट्रमुपागमन् ॥ ४६

इति श्रीमहाभा० सभाप० अनुद्यूतप० पाण्डवप्रतिज्ञाकरणे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

---

मिषतां पश्यताम् ॥ २२ ॥ प्रतिवक्ष्यामि अस्य परिहासस्योत्तरमिति शेषः ॥ २४ ॥ आत्मनि चित्ते ॥ २५ ॥ परुषस्य कर्कशस्य ॥ २९ ॥ व्यवसितं चिकीर्षितं द्रष्टारः द्रक्ष्यामः ॥ ३० ॥ द्रष्टारं उत्तेजकं प्रवक्तारं कुबुद्धेः ॥ ३२ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

युधिष्ठिर उवाच ।
आमन्त्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम् ।
राजानं सोमदत्तं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ १
द्रोणं कृपं नृपांश्चान्यानश्वत्थामानमेव च ।
विदुरं धृतराष्ट्रं च धार्तराष्ट्रांश्च सर्वशः ॥ २
युयुत्सुं संजयं चैव तथैवान्यान्सभासदः ।
सर्वानामन्त्र्य गच्छामि द्रष्टास्मि पुनरेत्य वः ॥ ३
वैशंपायन उवाच।
न च किंचिदथोचुस्तं ह्रियासन्ना युधिष्ठिरम् ।
मनोभिरेव कल्याणं दध्युस्ते तस्य धीमतः ॥ ४
विदुर उवाच ।
आर्या पृथा राजपुत्री नारण्यं गन्तुमर्हति ।
सुकुमारी च वृद्धा च नित्यं चैव सुखोचिता ॥५
इह वत्स्यति कल्याणि सत्कृता मम वेश्मनि ।
इति पार्था विजानीध्वमगदं वोस्तु सर्वशः ॥ ६
पाण्डवा ऊचुः ।
तथेत्युक्त्वा ब्रुवन्सर्वे यथा नो वदसेनघ ।
त्वं पितृव्यः पितृसमो वयं च त्वत्परायणाः ॥ ७
यथा शापयसे विद्वंस्त्वं हि नः परमो गुरुः ।
यच्चान्यदपि कर्तव्यं तद्विधत्स्व महामते ॥ ८
विदुर उवाच ।
युधिष्ठिर विजानीहि ममेदं भरतर्षभ ।
नाधर्मेण जितः कश्चिद्व्यथते वै पराजये ॥ ९
त्वं वै धर्मं विजानीषे युद्धे जेता धनंजयः ।
हन्तारीणां भीमसेनो नकुलस्त्वर्थसंग्रही ॥ १०
संयन्ता सहदेवस्तु धौम्यो ब्रह्मविदुत्तमः ।
धर्मार्थकुशला चैव द्रौपदी धर्मचारिणी ॥ ११
अन्योन्यस्य प्रिया सर्वे तथैव प्रियदर्शनाः ।
परैरभेद्याः संतुष्टाः को वो न स्पृहयेदिह ॥ १२
एष वै सर्वकल्याणः समाधिस्तव भारत ।
नैनं शत्रुर्विषहते शक्रेणापि समोच्युत ॥ १३
हिमवत्यनुशिष्टोसि मेरुसावर्णिना पुरा ।
द्वैपायनेन कृष्णेन नगरे वारणावते ॥ १४
भृगुतुङ्गे च रामेण दृषद्वत्यां च शम्भुना ।
अश्रौषीरसितस्यापि महर्षेरञ्जनं प्रति ॥ १५
कल्माषीतीरसंस्थस्य गतस्त्वं शिष्यतां भृगोः ।
द्रष्टा सदा नारदस्ते धौम्यस्तेयं पुरोहितः ॥ १६
मा हासीः सांपराये त्वं बुद्धिं तामृषिपूजिताम् ।
पुरूरवसमैलं त्वं बुद्ध्या जयसि पाण्डव ॥ १७
शक्त्या जयसि राज्ञोन्यानृषीन्धर्मोपसेवया ।
ऐन्द्रे जये धृतमना याम्ये कोपविधारणे ॥ १८
तथा विसर्गे कौबेरे वारुणे चैव संयमे ।
आत्मप्रदानं सौम्यत्वमद्भ्यश्चैवोपजीवनम् ॥ १९
भूमेः क्षमा च तेजश्च समग्रं सूर्यमण्डलात् ।
वायोर्बलं प्राप्नुहि त्वं भूतेभ्यश्चात्मसंपदम् ॥ २०
अगदं वोस्तु भद्रं वो द्रक्ष्यामि पुनरागतान् ।
आपद्धर्मार्थकृच्छ्रेषु सर्वकार्येषु वा पुनः ॥ २१
यथावत्प्रतिपद्येथाः काले काले युधिष्ठिर ।
आपृष्टोसीह कौन्तेय स्वस्ति प्राप्नुहि भारत २२
कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामः पुनरागतम् ।
न हि वो वृजिनं किंचिद्वेद कश्चित्पुरा कृतम् २३
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पाण्डवः सत्यविक्रमः ।
भीष्मद्रोणौ नमस्कृत्य प्रातिष्ठत युधिष्ठिरः ॥२४

इति श्रीमहाभा० सभाप० अनुद्यूतप० युधिष्ठिरवनप्रस्थानेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

---

७८

आमन्त्रयामीति ॥ १ ॥ द्रष्टास्मि द्रक्ष्यामि ॥ ३ ॥ आसन्नाः नम्राः ॥ ४ ॥ अगदं आरोग्यम् ॥ ६ ॥ मम मतमिति शेषः ॥ ९ ॥ समाधिः मन स्वास्थ्यकरो नियमः ॥ १३ ॥ मा हासीर्मा त्यज । सांपराये परलोकविषये ॥ १७ ॥ विधारणे नियमने ॥ १८ ॥ विसर्गो दाने । संयमे वशीकरणे । पूर्वश्लोकाद्धृतमना इत्यनुकृष्य योज्यं । आत्मप्रदानं सर्वहितार्थं शरीरादेर्व्यापारणं । उपजीवनं जीवनहेतुत्वं । ऐन्द्रे इति लोकपालगुणान् पञ्चभूतगुणांश्च सर्वसंपत्तिहेतून् जयादीन्प्राप्नुहीत्यर्थः ॥ १९ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७८ ॥

## ७९

वैशंपायन उवाच ।

तस्मिन्संप्रस्थिते कृष्णां पृथां प्राप्य यशस्विनीम् ।
अपृच्छद्भृशदुःखार्ता याश्चान्यास्तत्र योषितः ॥१
यथार्हं वन्दनाश्लेषान्कृत्वा गन्तुमियेष सा ।
ततो निनादः सुमहान्पाण्डवान्तःपुरेऽभवत् ॥ २
कुन्ती च भृशसंतप्ता द्रौपदीं प्रेक्ष्य गच्छतीम् ।
शोकविह्वलया वाचा कृच्छ्राद्वचनमब्रवीत् ॥ ३
वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
स्त्रीधर्माणामभिज्ञासि शीलाचारवती तथा ॥ ४
न त्वां संदेष्टुमर्हामि भर्तॄन्प्रति शुचिस्मिते ।
साध्वी गुणसमापन्ना भूषितं ते कुलद्वयम् ॥ ५
सभाग्याः कुरवश्चेमे येन दग्धास्त्वयानघे ।
अरिष्टं व्रज पन्थानं मदनुध्यानबृंहिता ॥ ६
भाविन्यर्थे हि सत्स्त्रीणां वैक्लव्यं नोपजायते ।
गुरुधर्माभिगुप्ता च श्रेयः क्षिप्रमवाप्स्यसि ॥ ७
सहदेवश्च मे पुत्रः सदावेक्ष्यो वने वसन् ।
यथेदं व्यसनं प्राप्य नायं सीदेन्महामतिः ॥ ८
तथेत्युक्त्वा तु सा देवी स्रवन्नेत्रजलाविला ।
शोणिताक्तैकवसना मुक्तकेशी विनिर्ययौ ॥ ९
तां क्रोशन्तीं पृथा दुःखादनुवव्राज गच्छतीम् ।
अथापश्यत्सुतान्सर्वान्हृताभरणवाससः ॥ १०
रुरुचर्मावृततनून्ह्रिया किंचिदवाङ्मुखान् ।
परैः परीतान्संहृष्टैः सुहृद्भिश्चानुशोचितान् ॥ ११
तदवस्थान्सुतान्सर्वानुपसृत्यातिवत्सला ।
स्वजमानावदच्छोकात्तत्तद्विलपती बहु ॥ १२

कुन्त्युवाच ।

कथं सद्धर्मचारित्रान्वृत्तस्थितिविभूषितान् ।
अक्षुद्रान्दृढभक्तांश्च दैवतेज्यापरान्सदा ॥ १३
व्यसनं वः समभ्यागात्कोऽयं विधिविपर्ययः ।
कस्यापध्यानजं चेदमागः पश्यामि वो धिया १४
स्यात्तु मद्भाग्यदोषोऽयं याहं युष्मानजीजनम् ।
दुःखायासभुजोऽत्यर्थं युक्तानप्युत्तमैर्गुणैः ॥ १५
कथं वत्स्यथ दुर्गेषु वने ऋद्धिविनाकृताः ।
वीर्यसत्त्वबलोत्साहतेजोभिरकृशाः कृशाः ॥ १६
यद्येतदेवमज्ञास्यं वने वासो हि वो ध्रुवम् ।
शतशृङ्गान्मृते पाण्डौ नागमिष्यं गजाह्वयम् १७
धन्यं वः पितरं मन्ये तपोमेधान्वितं तथा ।
यः पुत्राधिमसंप्राप्य स्वर्गेच्छामकरोत्प्रियाम् १८
धन्यां चातीन्द्रियज्ञानामिमां प्राप्तां परां गतिम्
मन्ये तु माद्रीं धर्मज्ञां कल्याणीं सर्वथैव तु १९
रत्या मत्या च गत्या च ययाहमभिसन्धिता ।
जीवितप्रियतां मह्यं धिङ्मां संक्लेशभागिनीम् २०
पुत्रका न विहास्ये वः कृच्छ्रलब्धान्प्रियान्सतः ।
साहं यास्यामि हि वनं हा कृष्णे किं जहासि माम्
अन्तवन्त्यसुधर्मेऽस्मिन्धात्रा किं नु प्रमादतः ।
ममान्तो नैव विहितस्तेनायुर्न जहाति माम् २२
हा कृष्ण द्वारकावासिन्क्वासि संकर्षणानुज ।
कस्मान्न त्रायसे दुःखान्मां चेमांश्च नरोत्तमान् ॥
अनादिनिधनं ये त्वामनुध्यायन्ति वै नराः ।
तास्त्वं पासीत्ययं वादः स गतो व्यर्थतां कथम् ॥
इमे सद्धर्ममाहात्म्ययशोवीर्यानुवर्तिनः ।
नार्हन्ति व्यसनं भोक्तुं नन्वेषां क्रियतां दया ॥२५
सेयं नीत्यर्थविज्ञेषु भीष्मद्रोणकृपादिषु ।
स्थितेषु कुलनाथेषु कथमापदुपागता ॥ २६
हा पाण्डो हा महाराज क्वासि किं समुपेक्षसे ।
पुत्रान्विवास्यतः साधूनरिभिर्द्यूतनिर्जितान् २७
सहदेव निवर्तस्व ननु त्वमासि मे प्रियः ।
शरीरादपि माद्रेय मां मा त्याक्षीः कुपुत्रवत् २८

---

७९

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ अरिष्टं निर्विघ्नं । मदनुध्यानबृंहिता । स्त्रीगुणेन पातिव्रत्येन युक्तापि मातृगुणेन वात्सल्येनापि वर्धिता । भर्तृषु भक्तिस्नेहवती भवेति भावः ॥ ६ ॥ शोणिताक्तैकवसना रजस्वला ॥ ९ ॥ स्वजमाना आलिङ्गमाना ॥१२॥ अपध्यानजं क्रोधजम् ॥ १४ ॥ ऋद्धिविनाकृताः संपद्विहीनाः वृद्धीति पाठेपि स एवार्थः ॥१६॥ शतशृङ्गात् पर्वतात् ॥ १७ ॥ पुत्राधिं पुत्रविषयां मनःपीडाम् ॥ १८ ॥ अभिसन्धिता वृता मह्यं मम ॥ २० ॥ भो पुत्रकाः वः युष्मान् न विहास्ये॥२१॥असुधर्मे प्राणधारणे । अन्तवति विनाशवति । प्रमादतः पाण्डोरिव ममान्तः किं नु नैव विहितः ॥ २२ ॥ अनादिनिधनमिति । द्वारकावासिनि उपाधिमति उत्पत्तिनाशयोर्निराकरणं । अनुपाधौ कारणोपाधौ वा तयोरप्रसक्तेः । अत एव उत्पत्तौ चतुर्भुजं रूपमेव वसुदेवेन दृष्टं । यत्तु 'शरीरं वासुदेवस्य रामस्य च महात्मनः । अर्जुनो दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः' इति शरीरदाहवचनं । तदनुत्पत्तिवचनविरोधात्तिरोभावमात्राभिप्रायम्॥२४॥

व्रजन्तु भ्रातरस्तेमी यदि सत्याभिसन्धिनः ।
मत्परित्राणजं धर्ममिहैव त्वमवाप्नुहि ॥ २९
वैशंपायन उवाच ।
एवं विलपतीं कुन्तीमभिवाद्य प्रणम्य च ।
पाण्डवा विगतानन्दा वनायैव प्रवव्रजुः ॥ ३०
विदुरश्चापि तामार्तां कुन्तीमाश्वास्य हेतुभिः ।
प्रावेशयद्गृहं क्षत्ता स्वयमार्ततरः शनैः ॥ ३१
धार्तराष्ट्रस्त्रियस्ताश्च निखिलेनोपलभ्य तत् ।
गमनं परिकर्षं च कृष्णाया द्यूतमण्डले ॥ ३२
रुरुदुः सुस्वनं सर्वा विनिन्दन्त्यः कुरून्भृशम् ।
दध्युश्च सुचिरं कालं करासक्तमुखाम्बुजाः ॥३३
राजा च धृतराष्ट्रस्तु पुत्राणामनयं तदा ।
ध्यायन्नुद्विग्नहृदयो न शान्तिमधिजग्मिवान् ॥ ३४
स चिन्तयन्ननेकाग्रः शोकव्याकुलचेतनः ।
क्षत्तुः संप्रेषयामास शीघ्रमागम्यतामिति ॥ ३५
ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
तं पर्यपृच्छत्संविग्नो धृतराष्ट्रो जनाधिपः ॥ ३६

इति श्रीमहाभा० सभाप० अनुद्यूतप० द्रौपदीकुन्तीसंवादे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

वैशंपायन उवाच ।
तमागतमथो राजा विदुरं दीर्घदर्शिनम् ।
साशङ्क इव पप्रच्छ धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः ॥ १
धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं गच्छति कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनः सव्यसाची माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥२
धौम्यश्चैव कथं क्षत्तर्द्रौपदी च यशस्विनी ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं तेषां शंस विचेष्टितम् ॥ ३
विदुर उवाच ।
वस्त्रेण संवृत्य मुखं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
बाहू विशालौ संपश्यन्भीमो गच्छति पाण्डवः ४
सिकता वपन्सव्यसाची राजानमनुगच्छति ।
माद्रीपुत्रः सहदेवो मुखमालिप्य गच्छति ॥ ५
पांसूपलिप्तसर्वाङ्गो नकुलश्चित्तविह्वलः ।
दर्शनीयतमो लोके राजानमनुगच्छति ॥ ६
कृष्णा तु केशैः प्रच्छाद्य मुखमायतलोचना ।
दर्शनीया प्ररुदती राजानमनुगच्छति ॥ ७
धौम्यो रौद्राणि सामानि याम्यानि च विशांपते ।
गायन्गच्छति मार्गेषु कुशानादाय पाणिना ॥ ८
धृतराष्ट्र उवाच ।
विविधानीह रूपाणि कृत्वा गच्छन्ति पाण्डवाः ।
तन्ममाचक्ष्व विदुर कस्मादेवं व्रजन्ति ते ॥ ९
विदुर उवाच ।
निकृतस्यापि ते पुत्रैर्हृते राज्ये धनेषु च ।
न धर्माच्चलते बुद्धिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ १०
योसौ राजा घृणी नित्यं धार्तराष्ट्रेषु भारत ।
निकृत्या भ्रंशितः क्रोधान्नोन्मीलयति लोचने ११
नाहं जनं निर्दहेयं दृष्ट्वा घोरेण चक्षुषा ।
स पिधाय मुखं राजा तस्माद्गच्छति पाण्डवः १२
यथा च भीमो व्रजति तन्मे निगदतः शृणु ।
बाह्वोर्बलेन नास्ति समो ममेति भरतर्षभ ॥ १३
बाहू विशालौ कृत्वासौ तेन भीमोपि गच्छति ।
बाहू विदर्शयन्राजन्बाहुद्रविणदर्पितः ॥ १४
चिकीर्षन्कर्म शत्रुभ्यो बाहुद्रव्यानुरूपतः ।
प्रदिशञ्छरसंपातान्कुन्तीपुत्रोर्जुनस्तदा ॥ १५
सिकता वपन्सव्यसाची राजानमनुगच्छति ।
असक्ताः सिकतास्तस्य यथा संप्रति भारत ।
असक्तं शरवर्षाणि तथा मोक्ष्यति शत्रुषु ॥ १६
न मे कश्चिद्विजानीयान्मुखमद्येति भारत ।
मुखमालिप्यते नासौ सहदेवोपि गच्छति ॥ १

हेतुभिः दैवप्राबल्यादिप्रतिपादकैर्वचनैः ॥ ३१ ॥ अनेकाग्रः व्याकुलचित्तः ॥ ३५ ॥ इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

तमागतमिति ॥ १ ॥ शंस कथय ॥ ३ ॥ याम्य यमदैवत्यानि ॥ ८ ॥ घृणी दयावान् ॥ ११ ॥ परस्परमलग्नाः ॥ १६ ॥

नाहं मनांस्यादद्देयं मार्गे स्त्रीणामिति प्रभो ।
पांसूपलिप्तसर्वाङ्गो नकुलस्तेन गच्छति ॥ १८
एकवस्त्रा प्ररुदती मुक्तकेशी रजस्वला ।
शोणितेनाक्तवसना द्रौपदी वाक्यमब्रवीत् ॥ १९
यत्कृतेहमिदं प्राप्ता तेषां वर्षे चतुर्दशे ।
पत्यो हतसुता हतबन्धुजनप्रियाः ॥ २०
बहुशोणितदिग्धाङ्ग्यो मुक्तकेश्यो रजस्वलाः ।
एवं कृतोदका भार्याः प्रवेक्ष्यन्ति गजाह्वयम् २१
कृत्वा तु नैर्ऋतान्दर्भान्धीरो धौम्यः पुरोहितः ।
सामानि गायन्याम्यानि पुरतो याति भारत २२
हतेषु भारतेष्वाजौ कुरूणां गुरवस्तदा ।
एवं सामानि गास्यन्तीत्युक्त्वा धौम्योपि गच्छति
हा हा गच्छन्ति नो नाथाः समवेक्ष्यध्वमीदृशम् ।
अहो धिक्कुरुवृद्धानां बालानामिव चेष्टितम् ॥ २४
राष्ट्रेभ्यः पाण्डुदायादाँल्लोभान्निर्वासयन्ति ये ।
अनाथाः स्म वयं सर्वे वियुक्ताः पाण्डुनन्दनैः २५
दुर्विनीतेषु लुब्धेषु का प्रीतिः कौरवेषु नः ।
इति पौराः सुदुःखार्ताः क्रोशन्ति स्म पुनः पुनः॥
एवमाकारलिङ्गैस्ते व्यवसायं मनोगतम् ।
कथयन्तश्च कौन्तेया वनं जग्मुर्मनस्विनः ॥ २७
एवं तेषु नराग्र्येषु निर्यत्सु गजसाह्वयात् ।
अनभ्रे विद्युतश्चासन्भूमिश्च समकम्पत ॥ २८
राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते ।
उल्का चाप्यपसव्येन पुरं कृत्वा व्यशीर्यत ॥ २९
प्रत्याहरन्ति क्रव्यादा गृध्रगोमायुवायसाः ।
देवायतनचैत्येषु प्राकाराट्टालकेषु च ॥ ३०
एवमेते महोत्पाताः प्रादुरासन्दुरासदाः ।
भरतानामभावाय राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३१

वैशंपायन उवाच ।

एवं प्रवदतोरेव तयोस्तत्र विशांपते ।
धृतराष्ट्रस्य राज्ञश्च विदुरस्य च धीमतः ॥ ३२
नारदश्च सभामध्ये कुरूणामग्रतः स्थितः ।
महर्षिभिः परिवृतो रौद्रं वाक्यमुवाच ह ॥ ३३
इतश्चतुर्दशे वर्षे विनक्ष्यन्तीह कौरवाः ।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ ३४
इत्युक्त्वा दिवमाक्रम्य क्षिप्रमन्तरधीयत ।
ब्राह्मीं श्रियं सुविपुलां बिभ्रद्देवर्षिसत्तमः ॥ ३५
ततो दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
द्रोणं द्वीपममन्यन्त राज्यं चास्मै न्यवेदयन्॥ ३६
अथाब्रवीत्ततो द्रोणो दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःशासनं च कर्णं च सर्वानेव च भारतान्॥ ३७
अवध्यान्पाण्डवान्प्राहुर्देवपुत्रान्द्विजातयः ।
अहं वै शरणं प्राप्तान्वर्तमानो यथाबलम् ॥ ३८
गन्ता सर्वात्मना भक्त्या धार्तराष्ट्रान्सराजकान्।
नोत्सहेयं परित्यक्तुं दैवं हि बलवत्तरम् ॥ ३९
धर्मतः पाण्डुपुत्रा वै वनं गच्छन्ति निर्जिताः ।
ते च द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः॥४०
चरितब्रह्मचर्याश्च क्रोधामर्षवशानुगाः ।
वैरं निर्यातयिष्यन्ति महद्दुःखाय पाण्डवाः ॥ ४१
मया च भ्रंशितो राजन्द्रुपदः सखिविग्रहे ।
पुत्रार्थमयजद्राजा वधाय मम भारत ॥ ४२
याजोपयाजतपसा पुत्रं लेभे स पावकात् ।
धृष्टद्युम्नं द्रौपदीं च वेदीमध्यात्सुमध्यमाम् ॥ ४३
धृष्टद्युम्नस्तु पार्थानां स्यालः संबन्धतो मतः ।
पाण्डवानां प्रियरतस्तस्मान्मां भयमाविशत् ॥४४
ज्वालावर्णो देवदत्तो धनुष्मान्कवची शरी ।
मर्त्यधर्मतया तस्माद्द्य मे साध्वसो महान् ॥ ४५
गतो हि पक्षतां तेषां पार्षतः परवीरहा ।
रथातिरथसंख्यायां योग्रणीरर्जुनो युवा ॥ ४६
सृष्टप्राणो भृशतरं तेन चेत्संगमो मम ।
किमन्यद्दुःखमधिकं परमं भुवि कौरवाः ॥ ४७
धृष्टद्युम्नो द्रोणमृत्युरिति विप्रथितं वचः ।
मद्वधाय श्रुतोप्येष लोके चाप्यतिविश्रुतः ॥ ४८
सोयं नूनमनुप्राप्तस्त्वत्कृते काल उत्तमः ।
त्वरितं कुरुत श्रेयो नैतदेतावता कृतम् ॥ ४९
मुहूर्तं सुखमेवैतत्तालच्छायेव हैमनी ।
यजध्वं च महायज्ञैर्भोगानश्नीत दत्त च ॥ ५०

---

हतपत्यो हतभर्तृकाः ॥ २० ॥ नैर्ऋतान् निर्ऋतिकोणगान् ॥२२॥ व्यवसायं निश्चयम् ॥२७॥ निर्यत्सु गच्छत्सु ॥ २८ ॥ प्रत्याहरन्ति नगरसमीपे प्रेतमांसास्थ्यादीनि आनयन्ति । प्रतिकूलं भषन्ति वा ॥३०॥ ब्राह्मीं श्रियं अणिमाद्यैश्वर्यं सर्वेषु लोकेषु कामचरम् ॥३५॥ द्वीपं आश्रयम् ॥ ३६ ॥ सराजकान् राजसमूहसहितान् ॥ ३९ ॥ देवदत्तः देवैर्दत्तः साध्वसो भयं मूर्तिमत् ॥४५॥ संगमः संग्रामः । सृष्टप्राणः प्राणत्यागेनापीत्यर्थः । परमं अनन्तम् ॥ ४७ ॥ नैतदेतावता कृतं एतत् श्रेयः कल्याणं न एतावता पाण्डवनिर्वासनमात्रेण कृतं भवति ॥ ४९ ॥ हैमनी हेमन्तसंबन्धिनी ॥ ५० ॥

इतश्चतुर्दशे वर्षे महत्प्राप्स्यथ वैशसम् ।
द्रोणस्य वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ५१
सम्यगाह गुरुः क्षत्तरुपावर्तय पाण्डवान् ।
यदि ते न निवर्तन्ते सत्कृता यान्तु पाण्डवाः ।
सशस्त्ररथपादाता भोगवन्तश्च पुत्रकाः ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि अनुद्यूतपर्वणि विदुरधृतराष्ट्रद्रोणवाक्ये अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

वैशंपायन उवाच ।
वनं गतेषु पार्थेषु निर्जितेषु दुरोदरे ।
धृतराष्ट्रं महाराज तदा चिन्ता समाविशत् ॥ १
तं चिन्तयानमासीनं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
निःश्वसन्तमनेकाग्रमिति होवाच संजयः ॥ २
संजय उवाच ।
अवाप्य वसुसंपूर्णां वसुधां वसुधाधिप ।
प्रव्राज्य पाण्डवान्राज्याद्राजन्किमनुशोचसि ॥३
धृतराष्ट्र उवाच ।
अशोच्यत्वं कुतस्तेषां येषां वैरं भविष्यति ।
पाण्डवैर्युद्धशौण्डैर्हि बलवद्भिर्महारथैः ॥ ४
संजय उवाच ।
तवेदं सुकृतं राजन्महद्वैरमुपस्थितम् ।
विनाशो येन लोकस्य सानुबन्धो भविष्यति॥ ५
वार्यमाणो हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
पाण्डवानां प्रियां भार्यां द्रौपदीं धर्मचारिणीम्६
प्राहिणोदानयेहेति पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
सूतपुत्रं सुमन्दात्मा निर्लज्जः प्रातिकामिनम् ॥ ७
यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥ ८
बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे समुपस्थिते ।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ९
अनर्थाश्चार्थरूपेण अर्थाश्चानर्थरूपिणः ।
उत्तिष्ठन्ति विनाशाय नूनं तच्चास्य रोचते ॥ १०
न कालो दण्डमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् ।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम् ॥ ११
आसादितमिदं घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाञ्चालीमपकर्षद्भिः सभामध्ये तपस्विनीम्॥ १२
अयोनिजां रूपवतीं कुले जातां विभावसोः ।
को नु तां सर्वधर्मज्ञां परिभूय यशस्विनीम्॥ १३
पर्यानयेत्सभामध्ये विना दुर्द्यूतदेविनम् ।
स्त्रीधर्मिणी वरारोहा शोणितेन परिप्लुता ॥ १४
एकवस्त्राथ पाञ्चाली पाण्डवानभ्यवैक्षत ।
हृतस्वान्हृतराज्यांश्च हृतवस्त्रान्हृतश्रियः ॥ १५
विहीनान्सर्वकामेभ्यो दासभावमुपागतान् ।
धर्मपाशपरिक्षिप्तानशक्तानिव विक्रमे ॥ १६
क्रुद्धां चानर्हतीं कृष्णां दुःखितां कुरुसंसदि ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च कटुकान्यभ्यभाषताम् ॥ १७
इति सर्वमिदं राजन्नाकुलं प्रतिभाति मे ।
धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्याः कृपणचक्षुर्भ्यां प्रदह्येतापि मेदिनी ॥ १८
अपि शेषं भवेदद्य पुत्राणां मम संजय ।
भरतानां स्त्रियः सर्वा गान्धार्या सह संगताः॥ १९
प्राक्रोशन्भैरवं तत्र दृष्ट्वा कृष्णां समागताम् ।
धर्मिष्ठां धर्मपत्नीं च रूपयौवनशालिनीम् ॥ २०
प्रजाभिः सह संगम्य तत्यनुशोचन्ति नित्यशः ।
अग्निहोत्राणि सायाह्ने न चाहूयन्त सर्वशः ॥ २१
ब्राह्मणाः कुपिताश्चासन्द्रौपद्याः परिकर्षणे ।
आसीन्निष्टानको घोरो निर्घातश्च महानभूत्॥ २२
दिव उल्काश्चापतन्त राहुश्चार्कमुपाग्रसत् ।
अपर्वणि महाघोरं प्रजानां जनयन्भयम् ॥ २३

---

वैशसं नाशम्॥५१॥इति सभापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

वनं गतेष्विति ॥ १ ॥ युद्धशौण्डैः युद्धे दक्षैः ॥ ४ ॥ अवाचीनानि विपरीतानि ॥ ८ ॥ शेषं हतावशेषं कतिपयानामेकस्य वा जीवनं भविष्यतीत्यर्थः ॥ १९ ॥ निष्टानकः प्रलयदुन्दुभिश्चण्डवात इत्यर्थः । निष्टानक इति पाठेपि स एवार्थः। निर्घातः वज्रशब्दः ॥ २२ ॥

तथैव रथशालासु प्रादुरासीद्धुताशनः ।
ध्वजाश्चापि व्यशीर्यन्त भरतानामभूतये ॥ २४
दुर्योधनस्याग्निहोत्रे प्राक्रोशन्भैरवं शिवाः ।
तास्तदा प्रत्यभाषन्त रासभाः सर्वतो दिशः २५
प्रातिष्ठत ततो भीष्मो द्रोणेन सह संजय ।
कृपश्च सोमदत्तश्च बाल्हीकश्च महामनाः ॥ २६
ततोहमब्रुवं तत्र विदुरेण प्रचोदितः ।
वरं ददानि कृष्णायै काङ्क्षितं यद्यदिच्छति ॥ २७
अवृणोत्तत्र पाञ्चाली पाण्डवानामदासताम् ।
सरथान्सधनुष्कांश्चाप्यनुज्ञासिषमप्यहम् ॥ २८
अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो विदुरः सर्वधर्मवित् ।
एतदन्तास्तु भरता यद्वः कृष्णा सभां गता ॥ २९
यैषा पाञ्चालराजस्य सुता सा श्रीरनुत्तमा ।
पाञ्चाली पाण्डवानेतान्दैवसृष्टोपसर्पति ॥ ३०
तस्याः पार्थाः परिक्लेशं न क्षंस्यन्ते त्यमर्षणाः ।
वृष्णयो वा महेष्वासाः पाञ्चाला वा महारथाः
तेन सत्याभिसन्धेन वासुदेवेन रक्षिताः ।
आगमिष्यति बीभत्सुः पाञ्चालैः परिवारितः ३२
तेषां मध्ये महेष्वासो भीमसेनो महाबलः ।
आगमिष्यति धुन्वानो गदां दण्डमिवान्तकः ३३
ततो गाण्डीवनिर्घोषं श्रुत्वा पार्थस्य धीमतः ।
गदावेगं च भीमस्य नालं सोढुं नराधिपाः ३४
तत्र मे रोचते नित्यं पार्थैः साम न विग्रहः ।
कुरुभ्यो हि सदा मन्ये पाण्डवान्बलवत्तरान् ३५
तथा हि बलवान्राजा जरासन्धो महाद्युतिः ।
बाहुप्रहरणेनैव भीमेन निहतो युधि ॥ ३६
तस्य ते शम एवास्तु पाण्डवैर्भरतर्षभ ।
उभयोः पक्षयोर्युक्तं क्रियतामविशङ्कया ॥ ३[illegible]
एवं कृते महाराज परं श्रेयस्त्वमाप्स्यसि ।
एवं गावल्गणे क्षत्ता धर्मार्थसहितं वचः ॥ [illegible]
उक्तवान्न गृहीतं वै मया पुत्रहितैषिणा ॥ [illegible]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां सभापर्वणि अनुद्यूतपर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अनुद्यूतपर्व समाप्तम् ।

---

एतत्सर्वं सभापर्व मयाख्यातं महर्षयः । अध्यायाः सप्ततिर्ज्ञेयास्तथा द्वौ चात्र संख्यया ॥ १ ॥
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु सप्तश्लोकशतानि च । श्लोकाश्चैकादश तथा पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥
सभापर्व समाप्तम् ।

अस्यानन्तरं आरण्यकं पर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः ।
जनमेजय उवाच ।
एवं द्यूतजिताः पार्थाः कोपिताश्च दुरात्मभिः । धार्तराष्ट्रैः सहामात्यैर्निकृत्या द्विजसत्तम ॥

---

शिवाः शृगालाः ॥ २५ ॥ अनुज्ञासिषं अनुज्ञातवान् । अडभाव आर्षः पाठान्तरे तु सुगमम् ॥ २८ ॥
श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनुश्रीनीलकण्ठविरचिते भारतभावदीपे सभापर्वार्थप्र[illegible]
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सभापर्व समाप्तम् ॥

# Shriman

# MAHABHARATAM.

## Part II

## III Vanaparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nialkantha.

***Edited by***

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar



PRINTED & PUBLISHED

BY

SHANKAR NARHAR JOSHI

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City

*Shake 185[illegible].* *First Edition.* [illegible] *1930.*

# श्रीमन्महाभारतम् ।

## वनपर्वात्मको द्वितीयो भागः ।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-भारतभावदीपाख्यटीकया समेतः ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतः ।


तच्च
पुण्यपत्तने

१०३६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्य मुद्रणालये ' शंकर नरहर जोशी '
इत्येतैः संमुद्र्य प्रकाशितः ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५२ ] प्रथमं संस्करणम । [ ख्रिस्ताब्दाः १९३०

भारती जयतु ।

# प्रास्ताविकम् ।

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम् ।
आर्याणामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥

इह खलु निखिलेऽपि भूमण्डले लब्धजन्मानः सर्वेऽपि प्राणिन इष्टं मे भूयादनिष्टं च नैवेत्याध-कलय्य दिवानिशं प्रयतन्ते । तत्र ये किल संस्कृतशेमुर्षीकास्त एवामुं संसारसागर-मनायासेन तीर्त्वा सफलयन्ति जीवितमात्मनः । गंगाजलविमलेन ज्ञानेन च स्वयं पूताः सन्त अन्यानपि पावयन्ति । कियती तावद्वर्णनीया ज्ञानस्य महती ? यां किल वर्णयति भगवाञ्जगद्गुरुर्धीमान् वासुदेवो गीतासु—

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इति ।

धन्याः खलु ज्ञानिनः । ये तु शरीरानुबंधिसुखदुःखसंबन्धे संसारे वर्तमाना अपि दुःखस्य परमार्थतो वार्तामपि नैव जानन्ति । तस्माज्ज्ञानिन एव जगति नितान्तं सुखिन इति दरीदृश्यते । ये तु शेमुषीजडाः कार्याकार्यविवेकरहितास्ते किल विचेष्टमाना अपि दुःखव्युदासाय पदेपद अनर्थशतान्युत्पादयन्ति । ईदृशानामज्ञानां संसारः खलवसिधारावलेहनसदृशो भवति । तस्मा-दिहामुत्र च सुखार्थिभिः पुरुषैर्ज्ञानोपलब्धये प्रयत्न अवश्यं विधेयः । स च प्रयत्नोऽध्ययनरूपेण प्रथमं भवितुमर्हति । साहित्याध्ययनं हि कल्पते यूनां संवर्धनाय, वृद्धानां रञ्जनाय, समृ-द्धानां मण्डनाय, विपद्गतानां समाश्वासनाय । तथैवाध्ययनमिदं विद्यायां गृहोषितानानन्दयति, प्रोषितान् प्रत्यूहान्निवारयति तथा च न दिवानिशं विजहाति गुरुसेवापरिक्लिष्टान् विदेशेष्वपि । यथा यथा च कालतो विविदिषुर्भवति तथा सर्वैः सोऽधिकतरं समाद्रियते च । उक्तं च—

'विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽऽद्रियते सदा' इति ।

अत एव विद्याध्ययनं सर्वदैव पुंसां सुखास्पदमिति सिद्धान्तः शक्यते कर्तुं बालेनापि । तत्र हि किन्नाम साहित्यम् ? यत्किञ्चिल्लिखितं पठितं वाचानुदितमाहोस्विन्नवनवोन्मेषशालिन्या प्रतिभया वदनसरोजान्निर्गतः शब्दसमूह इत्यादयः प्रश्ना एकैकश एव मनस्याकस्मा भवन्त्यतस्तत्र एवं निर्णयः प्रेक्षावताम्—यन्नाम किञ्चिल्लिखितादिप्रकारकं तन्न केवलं साहित्यकोटिमारोढुमर्हति । लेखैरुपन्यासैर्वा पाठकानां श्रोतॄणां च प्रीतिरवश्यमुत्पादनीया । अनया तु प्रीत्या न केवलं लिख्यमानस्य पठ्यमानस्य वा विषयमाहात्म्यजन्यया लेखनपरिपाटीवैदग्ध्यजनितया वक्तृत्वानुत्तम शैलीसमुत्पन्नया वा भवितव्यम् । किंतु तेषु तेषु वाक्येषु प्रतिपद्यमानोत्कटरसाविर्भावेषु प्रयुक्तानां पदानां सौष्ठवं वैचित्र्यं लालित्यमकान्तत हितानुबन्धित्वं चेत्यादयो गुणा यत्र समुज्जृम्भन्ते तत्साहित्यमिति । एतेषां गुणानां जन्मभूमिः खलु भारतवर्षीयाणां वैदिकत्वेन संपद्यमानमजस्र-मनन्तं च साहित्यम् । अस्मिन् साहित्ये राजनीतिः, अर्थनीतिः, समाजनीतिः, गृहनीतिः इत्यादयो नीतयः समुल्लसंति । तथैव पाटीगणितम्, बीजगणितम्, इत्यादयो नेके गणितशास्त्रस्य प्रकारास्तत्त-द्ग्रन्थरूपेण विलसंति । तथाऽप्यस्मिन् संस्कृतसाहित्ये प्रधानतमाश्चत्वारो वेदास्तदंगतया च शिक्षादयः षडङ्गग्रंथाः उपांगतया च षड्दर्शनानि वैशेषिक-न्याय—कापिल—पातञ्जल—मीमांसा—

वेदान्ताभिधानानि वेदोपबृंहकं महाभारतं पुराणानि, स्मृतयश्च मन्वादिभिः ऋषिप्रणीताः । प्रवीणैः अपि सत्काव्यनाटकालङ्कारादिविषयाः परःसहस्रा निबंधाः ।

तथाभूतस्यास्य साहित्यस्य " ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च " " तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ " "भारतं पंचमो वेदः " "इतिहासपुराणानि पंचमो वेद उच्यते " इत्यादि प्रामाणिकवचनजातैरध्ययनकर्तव्यता सिध्यति । किञ्चास्य वैदिकत्वेन संपद्यमानस्य साहित्यस्य महाभारते शान्तिपर्वणि द्वादशोत्तरद्विशततमेऽध्याये विद्यानिरूपणप्रस्तावे---

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥
नियोगाद्ब्रह्मणो विप्रा लोकतन्त्रप्रवर्तकाः ॥
वेदविद्भगवान् ब्रह्मा वेदाङ्गानि बृहस्पतिः ॥
भार्गवो नीतिशास्त्रं तु जगाद जगतो हितम् ॥
गान्धर्वं नारदो वेद भरद्वाजो धनुर्ग्रहम् ॥
देवर्षिचरितं गर्गो कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम् ॥
न्यायतन्त्रं हि कार्त्स्न्येन गौतमो वेद तत्त्वतः ॥
वेदान्तं कर्मयोगं च वेदविद् ब्रह्मविद्विभुः ॥
द्वैपायनो निजग्राह शिल्पशास्त्रं भृगुः पुनः ॥
न्यायतन्त्राण्यनेकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभिः ॥
हेत्वागमसदाचारैर्यदुक्तं तदुपास्यते ॥ "

इति समस्तवैदिकसाहित्यप्रादुर्भावप्रकारः वर्णितः ।

अयि मान्याः ! पारकमहाभागाः ! आर्याणां शिक्षापद्धतेर्निर्दुष्टत्वे बहुगुणदातृत्वे च मनाग्दृष्टिप्रक्षेपः क्रियताम । या च प्राग्वास्मत्पूर्वजैः परःसहस्रवत्सरात् प्रचलिता साऽद्यापि मात्रयाऽप्यल्पीयस्या न्यूना नैव दृश्यते । यथा यथा च विचार्यते तथा वह्निपरिशुद्धं काञ्चनमिव प्रकृष्टगुणा च लक्ष्यते । परं हंत समुपस्थितोऽयं कठिनतरः कालः । यदस्मदीया धिषणा सर्वथाऽस्मत्प्राचीनैः सुधीभिरनुशासितं नियमजातं व्युत्क्रम्याभिनवां परिणामविषमां कामपि शिक्षापरिपाटीमवलम्बते इत्यहो दौर्भाग्यं भारतवर्षस्य । किं च भारतीयानां शिक्षापद्धतेर्निर्दुष्टतां बहुगुणदायित्वं चाकलय्य दिवानिशं तामात्मसात्कर्तुं प्रयतन्ते वैदेशिकाः चेखिद्यतेऽस्मदीयं नितरां चेतो यद्वेदार्थजिज्ञासुभिश्छात्रैर्वेदार्थनिर्णायकानि कयाऽप्यभिनवपरिपाट्या निर्मितानि यथार्थार्थरहितानि पुस्तकान्यभ्यस्यन्ते । ईदृशैर्विद्यार्थिभिः क्रियमाणो वेदार्थः कियत्स्वारस्यमासादयेदिति सुधय एव विदांकुर्वन्तु । वस्तुतस्तु वेदादिग्रंथानामर्थनिर्णये ऽविच्छिन्नगुरुशिष्यपरंपरया कृतपरिश्रमाणामेवाधिकारः । सर्वजगदादरास्पदमार्याणां प्राचीनं वैदिकसाहित्यमद्यापि यदबाधितमस्खलितं च दृश्यते, तत्स्वजन्मना भारतभुवमलंकुर्वाणानां विदुषामेवाहर्निशाभ्यासस्य जीवितमप्यविगणय्य तदर्थं कृतस्य फलमिति वैदिकसाहित्याभिज्ञानां नैतदविदितम् । वैदिकमार्गं रक्षयितुं महामीमांसकेन भगवता कुमारिलभट्टेन नास्तिकमतनिराकरणाय दर्शयितुं चास्तिकेभ्यो भगवतो वेदपुरुषस्य माहात्म्यमप्रतिहतं स्वकीयो देहः पर्वतशिखरादधःपातेन इति सुप्रतीतमिदं पुरावृत्तविदाम् । चतुर्णामपि वेदानां भाष्याणि वाचस्पतिप्रतिमूर्तिभिः

पद्वाक्यप्रमाणपारावारीणधुरीणैर्विविधविद्याग्रन्थप्रणयनचणैर्विद्यारण्यचरणैः प्रणीतानि । तथैव किल सर्वज्ञकल्पैः श्रीमद्वेदव्यासैरिमामेवोपरिवर्णितां दुरवस्थामाकलय्यैव महाभारताख्यः पंचमो वेदः खलु सकलवैदिकपाठाधिकारमुन्मथ्य कुरुकुलमेव निमित्तीकृत्य शतसहस्रश्लोकसंख्यया संमितोऽमृत इव समुद्धृतः । न केवलमयं ग्रंथो भारतस्य दुरवस्थायामेवोपयोग्यपि तु सर्वास्ववस्थास्वत्यंतोपयोग्ययं ग्रन्थराजो न केवलं भारतवर्षे किं तु सकलमहीमण्डलेऽप्यद्वितीयतयैव सकलैराद्रियतेऽभ्यस्यते च । अस्मिन्महाग्रन्थे भगवता व्यासेन धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारः पुरुषार्थाः साकल्येन वर्णिताः । तथा च षड्दर्शनानि षडङ्गा वेदाश्च परस्परं सङ्गतिं प्रदर्श्यातिसुलभया पद्धत्या सारतो विवृताः । अस्य महाभारतस्य पर्वाणि यथा —

> आदिपर्व सभापर्व वनपर्व विराटकम् ।
> उद्योगं भीष्मकं द्रौणं कर्णं शल्यं च सौप्तिकम् ।
> स्त्रीशांतिपर्वणी द्वे च ततश्चैवानुशासनम् ।
> ततोऽश्वमेधकं पर्व पश्चादाश्रमवासिकम् ।
> मौसलाख्यं ततः पर्व महाप्रस्थानपर्व च ।
> सर्वेषु चरमं पर्व स्वर्गारोहणनामकम् ॥

तत्रास्य महाभारतस्यादि सभापर्वात्मकः प्रथमभागः पाठकमहाभागेभ्यः प्रागेवोपायनीकृतोऽथ खल्वयमारण्यपर्वात्मकं द्वितीयभागं पुरस्कुर्मः ।

अयि पण्डितप्रकाण्डाः प्रियपाठकमहाभागाः ! अद्य स्वल्पानंदस्य परां काष्ठामधिरोहामस्तत्रभवत्करकमलं महाभारतस्य द्वितीयभागमिमं प्रापयमाणा वयम् । परमाशास्महे यद्भवन्तोऽप्यमुं द्वितीयभागं चक्षुर्गोचरतां नीत्वाऽऽनन्दकल्लोलपूर्णा भवितार इति । अमुं भागमामूलाग्रं पर्यवेक्षमाणानां भवतां बहवः सुविधा दृष्टिपथं गच्छेयुः । आदौ तावत् सुविस्तृता विषयानुक्रमणिका, यस्याः संपूर्णस्यारण्यपर्वणोऽध्यायशोऽविकलतया प्रधानभागः सुतरां वर्णितः । येनावसराभावादन्येन केनचित्कारणेन वा ये महाभागाः समग्रं ग्रन्थमिमं पठितुं न पारयेयुस्तेषामप्यैच्छिको विषयः क्षणात्पुरत उपस्थितो भवेदनायासेन । किं पुनः समग्रतया ग्रंथं पिपठिषूणाम् । अथ च विषयानुक्रमणिकायामस्या ग्रन्थपठनात्पूर्वं स्तोक् दृष्टिक्षेप एकवारं कृतश्चेन्मुख्यग्रन्थपठनसमयेऽल्पप्रज्ञानामतीवोपकारः स्यात् । इत्यादिबहून् गुणान् मनसि निधाय ग्रंथार्धं अविगणय्य च विस्तरभयं प्रथमभागापेक्षयाऽपि विस्तृता विषयानुक्रमणी मुद्रापिता ।

अहो प्रेक्षावन्तः! विज्ञातमेव भवतां यदेतन्मुद्रणं खलु बहुतिथात्कालात्प्राङ्मोहमय्यां स्थितैर्गणपत-कृष्णाजी इत्येतैः श्रेष्ठिभिर्मुद्रितस्यैव महाभारतस्य पुनर्मुद्रणमिति । अयं द्वितीयभागोऽपि तामेव पद्धतिमनुसृत्य मुद्रापितः । किन्त्वस्मिन्भागे कुत्रचित्स्थले पाठान्तरादिविषये संशोधितम् । तस्याप्यतीवोपकारः स्यात्पाठकमहाभागानामित्याशास्महे । पाठान्तरादिसंशोधनार्थमस्माभिरवलोकितान्येतान्यादर्शपुस्तकानि—

१ (क.) कलकत्तानगरे मुद्रितं मूलमात्रम् ।

२ (ख) कुम्भघोणनगरे मध्वविलासनाम्नि पुस्तकालये प्रकाशितं दाक्षिणात्यपाठानुसारि मुद्रितं सटिप्पणम् ।

३ (ग) मोहमय्यां गोपाळ नारायण इत्येतैर्मुद्रितं सटीकम् ।

४ (घ) पुण्यपत्तनस्थमीमांसा-विद्यालयस्थं लिखितं सटीकम् ।

सुपरिशुद्धमहाभारतप्रकाशनबद्धपरिकरैः श्रीमद्भिर्विद्वित्पक्षपातिभिः ' **शंकर नरहर जोशी** ' इति सुप्रथितनामधेयैः प्रेरितैरस्माभिः प्राय एतेषामादर्शपुस्तकानां सहायेनास्य पुस्तकस्य यथामति संशोधनं व्यधायि । संशोधनावसरे यद्यदुचितं पाठान्तरं दृष्टं तत्तद्यथास्थलं टिप्पणीरूपेण प्रदर्शितम् । किंच क्वचित् स्थलेऽर्थबोधनार्थं विवरणमपि दर्शितम् ।

सोऽयं यथामति संशोधनकृतोऽल्पीयान्प्रयत्न इतोऽप्याधिकतरं पाठकमहाभागैर्भूयान् कर्त इति विज्ञाप्य विरमति—

विद्वद्विधेयः

**किञ्जवडेकरोपाह्वो रामचन्द्रशास्त्री**

पुण्यपत्तनस्थ 'भारतीभुवन' निवासी ।

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## वनपर्व ।

--३--

### विषयानुक्रमणिका ।


| अध्याय | श्लोक | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | **( १ ) अरण्यपर्व** | १-२० |
| १ | ५६ | कपटद्यूतजितानां पाण्डवानां द्रौपद्या सहारण्यं प्रतिप्रस्थानम्—तेन दुर्योधननिरस्कारपूर्वकं पौराणां पाण्डवैः सह वनं प्रतिगन्तुं प्रस्थानम्—युधिष्ठिरेणानुनयपूर्वकं तेषां पुनः पुरं प्रतिनिवर्तनम्—जाह्नवीतटगतवटमेत्य तत्रागतब्राह्मणकदम्बेन सह रात्रियापनम्— | ३ |
| २ | ८४ | पाण्डवैः सह मुनिगणस्य वनं गन्तुमिच्छा—स्वस्य हृतसर्वस्वत्वमाकलयता युधिष्ठिरेण भवतां पोषणमशक्यमिति निवेद्य प्रतिनिवर्तनप्रार्थना-ब्राह्मणानां वयं स्वयमेवात्मभरणं कृत्वा केवलं युष्मत्सहवासवाञ्छयैव भवतां सार्धमागच्छाम इति वाक्यं श्रुत्वा स्वस्याकिंचनत्वं विचिन्त्य युधिष्ठिरस्य परिखेदः-विषीदन्तं युधिष्ठिरं प्रति तच्छोकनिवर्तनाय शौनककृतो ज्ञानोपदेशः—युधिष्ठिरशौनकसंवादः-अन्ततः शममास्थाय तपसा द्विजानां भरणाय सिद्धिमन्विच्छ इति शौनकेन द्विजपोषणोपायनिदर्शनं च | ८ |
| ३ | २८ | युधिष्ठिरप्रार्थितेन पाण्डवपुरोहितेन धौम्येन सूर्याष्टोत्तरशतनामकथनम् धौम्यप्रेरणया ब्राह्मणभरणाय युधिष्ठिरेण सूर्योपासना—युधिष्ठिरकृता सूर्यस्तुतिः—स्तुतिप्रसन्नेन विवस्वता युधिष्ठिरायाक्षय्यस्थालिप्रदानम् सूर्यदत्ताक्षय्यस्थाल्याऽगणितद्विजपोषणे युधिष्ठिरशक्तिः—धौम्यपादवन्दनम् द्विजैः सह पाण्डवानां काम्यकवनगमनम्— | १२ |
| ४ | २२ | पाण्डववनवासतः पौरसन्तापमालक्ष्य कार्यव्याकुलस्य धृतराष्ट्रस्य नीतिकुशलं विदुरं प्रति पौरानुरञ्जनं केनोपायेन कार्यमिति प्रश्नः-पाण्डवानां पुना राज्यस्थापनमेव मुख्यः प्रजारञ्जनोपाय इति विदुरेण कथनम्—तच्छ्रुत्वोऽयं पाण्डवपक्षपातीति सञ्चिन्त्य धृतराष्ट्रेण विदुरनिर्भर्त्सनम्—धृतराष्ट्रकृतापमानस्य विदुरस्याश्रमार्थं पाण्डवान् प्रति प्रस्थानम्— | १३ |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ५ | २२ | विदुरस्य काम्यके पाण्डवसमागमः—तत्र धृतराष्ट्रकृतापमानादिकथनपूर्वकं युधिष्ठिरं प्रति हितोपदेशः— | १५ |
| | २५ | विदुरवियोगविषण्णेन धृतराष्ट्रेण कृतं विदुरानयनाय संजयप्रेषणम्-संजयमुखात् धृतराष्ट्रसंदेशं श्रुत्वा विदुरस्य पुनर्धृतराष्ट्रं प्रत्यागमनम्-धृतराष्ट्रविदुरसंवादः— | १६ |
| ७ | २४ | विदुरस्य पुनरागमनेन खिन्नेन दुर्योधनेन कर्ण-शकुनि-दुःशासनैः सह पाण्डवविषय आलोचनम् वनस्थान् पाण्डवान् हन्तुं कर्णानुमतिः—पाण्डववधार्थं दुर्योधनादीनां वनगमनाय प्रस्थानम्—तत्समालोच्य दिव्यचक्षुषा व्यासेन तेषां प्रतिषेधः— | १७ |
| ८ | १२ | व्यासेन धृतराष्ट्रं प्रति पाण्डवैः सह विरोधस्यानर्थमूलकत्वं प्रदर्श्य शमविधानकथनम्— | १८ |
| ९ | २३ | धृतराष्ट्रवचनात् तस्य पुत्रस्नेहं दुस्त्यजं ज्ञात्वा दृष्टांततया सुरभ्युपाख्यानकथनपूर्वकं कौरवाणां जीवितरक्षणाय पाण्डवैः सह शम एव विधेय इति भगवद्व्यासस्य धृतराष्ट्रं प्रत्युपदेशः— | १९ |
| १० | ३९ | धृतराष्ट्रेण दुर्योधनानुशासनं प्रार्थितेन व्यासेन तत्रागमिष्यन्तं महामुनिं मैत्रेयं प्रति तत्प्रार्थनाविधानपूर्वकं स्वावासं प्रति गमनम्—मैत्रेयागमनम्—तं प्रति धृतराष्ट्रप्रश्नः-दुर्योधनाय हितमुपदिशति मैत्रेये तदुपदेशं स्वोरुताडनपूर्वकं हास्यं कृत्वा अशृण्वति दुर्योधने भीमगदया तवोरुभङ्गो भवेदिति तं प्रति मैत्रेयशापः—पाण्डवपराक्रमकथनप्रसङ्गेन मैत्रेयेण भीमकृते किर्मीरवधे कथिते मैत्रेयं प्रति विस्तरेण किर्मीरवधविषये धृतराष्ट्रप्रश्नः-किर्मीरवधो विदुराच्छ्रोतव्य इत्युक्त्वा मैत्रेयस्य गमनम्— | २० |
| | | **( २ ) किर्मीरवधपर्व** | २१—२३ |
| ११ | ७५ | मैत्रेयप्रेरितेन विदुरेण धृतराष्ट्राय भीमकृतकिर्मीरवधप्रकारनिरूपणम्— रात्रौ वनं गच्छत्सु पाण्डवेषु मार्गं निरुध्य स्थितस्य किर्मीरस्य युधिष्ठिरेण संवादः। किर्मीरवधोद्यतमर्जुनं निवार्य वृकोदरस्य किर्मीरेण सह युद्धारंभः। द्वयोर्बाहुयुद्धप्रसङ्गे भ्रामणपूर्वकं भीमेन कृतः किर्मीरवधः— | २३ |
| | | **( ३ ) अर्जुनाभिगमनपर्व** | २३—७० |
| १२ | १३६ | पाण्डवदर्शनार्थं भोजादिष्वागतेषु दुर्योधनादिमारणोद्यतस्य श्रीकृष्णस्यार्जुनेन कृतं तत्पूर्ववृत्तांतकथनपूर्वकं निवारणम्—कृष्णस्वरूपं वर्णयित्वा कृष्णाग्रे द्रौपद्या विलपनम्—द्रौपदीकृतं हिडिंबवधादिभीमपराक्रमवर्णनम्—स्वदुःखनिवेदनपूर्वकं विलपन्त्या द्रौपद्याः श्रीकृष्णेन सान्त्वनम्— | २९ |
| १३ | १७ | युधिष्ठिरं प्रति त्वद्व्यसनस्य द्यूतकाले स्वकीयमानर्तेष्वसांनिध्यमेव कारणमित्यादिकथनपूर्वकं सान्त्वनं श्रीकृष्णेन— | ३० |
| १४ | २२ | कपटद्यूतसभाकाले स्वस्यासन्निधानस्य हेतुतया सौभवधार्थं गमनरूपकार्यकथनं श्रीकृष्णेन— | ३१ |
| १५ | २३ | सविस्तरं सौभवधवृत्तं श्रोतुं | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | युधिष्ठिरस्योत्कण्ठया श्रीकृष्णस्य सविस्तरं कथनारंभः-शाल्वसमागमसमये उग्रसेनकृतद्वारकारक्षणादिप्रकारस्य वर्णनम्- | ३२ |
| १६ | ३३ | शाल्वसैन्यं दृष्ट्वा वृष्णिषु युद्धार्थं निर्गतेषु शाल्वसचिवसाम्बयोर्युद्ध्यतोः साम्बाच्छाल्वसचिवपराजयः—साम्बेन वेगवति दैतेये चारुदेष्णेन विविन्ध्ये च हते पुनः शाल्वस्य युद्धोद्योगः— | ३३ |
| १७ | २५ | शाल्वप्रद्युम्नयोर्युद्धम्— तदा शाल्वशरप्रहारेण प्रद्युम्नस्य मोहः | ३४ |
| १८ | ३३ | सारथिना रणादपवाहितस्य लब्धसंज्ञस्य प्रद्युम्नस्य पुनारथनिवर्तने सारथिं प्रत्युपदेशः— | ३५ |
| १९ | २७ | रणाजिरप्राप्ते प्रद्युम्ने पुनः शाल्वप्रद्युम्नयोर्युद्धप्रसंगे प्रद्युम्नबाणेन शाल्वपतनम्—शाल्वप्राणहरणाय प्रद्युम्नेन गृहीते बाणे नारदवाय्वोरुपदेशात् प्रद्युम्नेन बाणे उपसंहृते शाल्वस्य रणादपयानम्— | ३६ |
| २० | ४१ | एतस्मिन्नेव काले राजसूयं समाप्य द्वारकामागतस्य श्रीकृष्णस्याहुकादीनामाश्वासनपूर्वकं युद्धार्थं निर्गमनम्-शाल्वेन सह युध्यता श्रीकृष्णेन हतेषु दानवेषु शाल्वस्य मायायुद्धम् — | ३८ |
| २१ | ३० | मायामयाहुकपरिचारकवाक्याद्वसुदेवं हतं श्रुत्वाऽपि मायेयमिति कृष्णस्य निश्चयः— | ३९ |
| २२ | ५४ | श्रीकृष्णे पुनर्युध्यति सौभस्य मायया शिलावर्षणादि-दारुकवचनं श्रुत्वा आग्नेयास्त्रेण सौभपातनपूर्वकं कृष्णकृतचक्रेण शाल्ववधः—इत्यादि प्रकारेण शाल्ववधवृत्तान्तकथनानंतरं श्रीकृष्णस्य युधिष्ठिरानुज्ञया सुभद्राभिमन्युभ्यां द्वारकागमनम्— धृष्टद्युम्नधृष्टकेत्वोर्यथाक्रमं द्रौपदेयान्कुलभार्यां चादाय स्वस्वपुरगमनम्-युधिष्ठिरस्य द्वैतवनगमनोपक्रमः | ४१ |
| २३ | १६ | दुर्योधनादीन्निन्दतां पाण्डवासमीपमागतानां कुरुजांगलस्थपौराणां पाण्डवैराश्वासनपूर्वकं नगरं प्रति निवर्तनम्— | ४२ |
| २४ | २६ | पाण्डवानां चिरावस्थाननिर्धारणपूर्वकं द्वैतवनप्रवेशः— | ४३ |
| २५ | १९ | द्वैतवनवासिनः पाण्डवान्प्रति मार्कण्डेयागमनं युधिष्ठिरसंवादानंतरं तस्योत्तरदिग्गमनं च | ४५ |
| २६ | २५ | सायाह्ने युधिष्ठिरं प्रति बकदाल्भ्येन ब्राह्मणस्य क्षत्रवृद्धिकारणत्वकथनम्— द्वैपायनादिमहर्षीणां युधिष्ठिराभिगमनम्— | ४६ |
| २७ | ४० | भीमादिसंनिधाने परितप्ताया द्रौपद्याः कौरवापराधस्मरणपूर्वकं युधिष्ठिरमुद्दिश्य सविषादवचनम्— | ४७ |
| २८ | ३६ | द्रौपद्या युधिष्ठिरं प्रति कालभेदेन क्षमाकोपयोरवश्याश्रयणीयत्वे प्रमाणतया बलिप्रह्लादसंवादानुवादपूर्वकं प्रकृते कोपस्यावश्यादरणीयत्वोक्तिः— | ४९ |
| २९ | ५२ | युधिष्ठिरस्य क्रोधे दोषकथनपूर्वकं द्रौपद्युपदेशः काश्यपगीतगाथाकथनं च। | ५१ |
| ३० | ४३ | भर्तृव्यसनदर्शनदूनया द्रौपद्या धर्माक्षेपेण युधिष्ठिरोपहासपूर्वकं विधातृचरितेतिहासकथनम्— | ५३ |
| ३१ | ४२ | युधिष्ठिरेण द्रौपदीं प्रति धर्मस्य साफल्योपपादनम्। | ५६ |
| ३२ | ६२ | युधिष्ठिरं प्रति प्रत्युक्तिरूपेण कर्मप्रशंसनपूर्वं द्रौपद्या ब्राह्मणोक्तबृहस्पतिनीतिः कथनं द्रौपद्याः। | ५९ |
| ३३ | ९० | भीमेन युधिष्ठिरं प्रति नीति- | |

अध्यायः श्लोकः विषयः पृष्ठम्

द्यूतपादनपूर्वकं युद्धेन राज्याहरणकर्तव्योक्तिः । ६३

३४ २२ भीमं प्रति युधिष्ठिरेण स्वप्रतिज्ञाया दुस्त्यजत्वात्तत्कालावसानप्रतिपालनविधानम्:— ६५

३५ ३५ युधिष्ठिरक्रोधसंदीपनार्थं भीमवाक्यम् । ६६

३६ ४५ भीमं प्रति युधिष्ठिरस्य दुर्योधनपक्षीयाणामुद्दिश्य प्रशंसोक्तिः पाण्डवान्प्रत्यागतस्य व्यासस्य धर्मराजाय प्रतिस्मृतिनामकविद्यां दत्वाऽन्तर्धानम्- युधिष्ठिरेण व्यासवचनात् परिजनैः सह द्वैतवनात् काम्यकवनगमनम्:— ६८

३७ ५९ एकान्ते युधिष्ठिरात् प्रतिस्मृतिविद्यां प्राप्य तदाज्ञयाऽस्त्रसंपादनार्थं प्रस्थितस्यार्जुनस्य ब्राह्मणाद्याशीर्ग्रहणपूर्वकमिन्द्रकीलपर्वतगमनम्--तत्र तपस्विरूपेणेन्द्रं दृष्टवतोऽर्जुनस्येन्द्राद्वरलाभानंतरं तदाज्ञया तपश्चरणम् ७०

(४) कैरातपर्व ७१--७६

३८ ३५ सविस्तरामस्त्रप्राप्तिकथां शुश्रूषोर्जनमेजयस्य प्रश्नानंतरं वैशम्पायनस्य विस्तरेण कथनम्--अर्जुनस्येन्द्रकीलगमनानन्तरं स्वर्गात् पुष्पवृष्ट्यादि--हिमवद्वनश्रीवर्णनम्--अर्जुनेन हिमवच्छिखरे तपश्चरणम्--पार्थतपोभीरुभिर्महर्षिभिः प्रार्थितेन महादेवेनाश्वासनपूर्वकमृषीणां प्रतिनिवर्तनम्— ७१

३९ ८४ वराहवधायोद्यतस्यार्जुनस्य किरातकृत आक्षेपः उभाभ्यां समकालमेव बाणत्यागे कृते तद्बाणप्रहारेण वराहरूपिणो राक्षसस्य वधः-उभयोः संवादानन्तरमर्जुनेनकृतः किराते प्रति शरप्रहारः युध्यतोस्तयोः किरातकृतोऽर्जुनबाणग्रासः---धनुष्कोट्या आकृष्य मुष्ट्या प्रहरत्यर्जुने किरातकृतो गाण्डीवग्रासः--ततः खड्गेन प्रहरतोऽर्जुनस्य खड्गे भग्ने वृक्षादिना युद्धम्--बाहुयुद्धोद्यतस्यार्जुनस्य किरातेन पराजितस्य भूमौ पतनम्-ततो महादेवं पूजयताऽर्जुनेन स्वार्पितमाल्यानां किरातशिरसि दर्शनेन शंकरबुध्या कृतं तच्चरणवन्दनम्--साक्षादुमामहेश्वरयोः प्रादुर्भावः-अर्जुनकृतः शिवस्तवः---पार्थपूजाभिसंतुष्टेन महादेवेन तदाश्वासनम्:— ७४

४० २८ शंकरेण पार्थाय स्वग्रस्तगाण्डीवादि प्रत्यर्पितेऽर्जुनस्य पाशुपतास्त्रयाचनम्---अर्जुनाय पाशुपतास्त्रं दत्वा तद्गात्रस्पर्शनपूर्वकं शंकरस्य प्रस्थानम्:— ७५

४१ ४९ अर्जुनदर्शनार्थमागतेषु शचीपतिवरुणकुबेरेषु तेभ्य इन्द्रसहितेभ्योऽर्जुनस्य दिव्यास्त्रप्राप्तिः अर्जुनं प्रति शक्रेण स्वर्गगमनचोदना--देवेषु स्वर्गं गतेषु लोकपालदर्शनेन पार्थस्य संतोषः ७७

(५) इन्द्रलोकाभिगमनपर्व ७७-८०

४२ ४२ इन्द्रप्रेषितेन मातलिनाऽऽनीतेन रथेन पार्थस्येन्द्रपुरीदर्शनम्— ७८

४३ ३२ इन्द्रेणालिङ्गनपूर्वकमर्जुने स्वासनार्धे उपवेशिते उभयोरग्रे महोत्सवादिः— ८०

४४ ११ पञ्चसंवत्सरात्मकं कालं स्वर्गे सुखेन न्युष्य नानास्त्रशिक्षाप्राप्त्यनन्तरं शक्राज्ञयाऽर्जुनस्य चित्रसेनान्नृत्यगीतादिशिक्षणम्:— ८०

४५ १६ उर्वश्यामर्जुनस्य दृष्टिविक्षेपेण तस्य तस्यामनुरागमाक्षिणा

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | शक्रेण चित्रसेनद्वारा तस्यास्तं प्रति यापनम्. | ८१ |
| ४६ | ६३ | वेषभूषादिकरणपूर्वकमर्जुनस मीपगतया तया स्वप्रार्थनां व्यर्थीकृतवतेऽर्जुनाय कुपितया क्लीबो भवेति शापदानम्.-चित्र सेनादर्जुनस्योर्वशीशापवृत्तांत श्रवणात्तरमयं शापो भाव्यज्ञात समयमात्रोपयोगितया भव त्वितीन्द्रेण शापावसाने कथि तेऽर्जुनस्य हर्षः. | ८३ |
| ४७ | ३५ | शक्रेण स्वर्गमागतं लोमशं प्रति पार्थमहिमानुवर्णनपूर्वकं युधि ष्ठिराय तद्वृत्तांतकथनप्रार्थना- पाण्डवान्प्रतीन्द्रसंदेशकथनार्थं लोमशस्य काम्यकवनगमनम्- | ८५ |
| ४८ | ३८ | अर्जुनस्य पाशुपताद्यस्त्रलाभस्व र्लोकगमनादिवृत्तांतश्रवणेन परिखिद्यता धृतराष्ट्रेण सञ्ज याग्रे स्वपुत्रान्प्रति परिशोच नम. | ८५ |
| ४९ | २३ | सञ्जयधृतराष्ट्रसंवादः— | ८६ |
| ५० | १२ | वैशम्पायनेन जनमेजयं प्रति पा ण्डवानामरण्ये भोज्यवस्तुकथ नम् । | ८७ |
| ५१ | ४६ | सञ्जयेन धृतराष्ट्रं प्रति चारद्वा रा श्रुतस्य पाण्डवदिदृक्षया वन गतानां कृष्णादीनां दुर्यो धनादिवधप्रतिज्ञादिप्रकारस्य वृत्तान्तस्य कथनम्. | ८९ |

( ६ ) **नलोपाख्यानपर्व** ८९–११६

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| ५२ | ५९ | वैशम्पायनकथितोऽर्जुनरहित- तानां पाण्डवानां वृत्तान्तः—भी मयुधिष्ठिरयोरर्जुनमधिकृत्य संवा दे प्रवृत्ते पाण्डवान् प्रत्यागतस्य बृहदश्वस्य युधिष्ठिरेण संवादः- युधिष्ठिरं प्रति बृहदश्वेन नलो पाख्यानकथनोपक्रमः— | ९१ |
| ५३ | ३२ | नलोपाख्यानारंभः—नलवर्णन म्—भीमराजाद्दमयन्त्युत्पत्त्यादि वर्णनम् । दमयन्त्यां समुत्कण्ठि तेन नलेन वने विहरत्सु हंसेष्वे कतमस्य ग्रहणम्-प्रतिक्रियाप्र तिज्ञानेनात्मानं मोचितवता हंसेन नलगुणानुवर्णनेन दमय न्त्या नले रागोत्पादनम्. | ९२ |
| ५४ | ३१ | सखीद्वारा दमयन्तीविरहकार णं ज्ञात्वा भीमराजेन कृतः स्व यंवरोद्योगः स्वर्गं गतेन नार देनेन्द्रादीन् प्रति दमयन्तीगुणानु वर्णनपूर्वकं तत्स्वयंवरप्रवृत्ति कथनम्-दमयन्तीस्वयंवरार्थमा गच्छद्भिरिन्द्रादिभिः पथिदृष्ट स्य नलस्य दमयन्तीदौत्येन व रणम्— | ९३ |
| ५५ | २५ | देवानां दौत्यमङ्गीकृत्य दमय न्त्यग्रे गतस्य नलस्य दमयन्त्या सह संवादः. | ९४ |
| ५६ | ३१ | नलदमयन्तीसंवादः-दमयन्ती कथितमुपायं श्रुत्वा प्रत्याग तस्य नलस्य देवसमीपे दमयन्ती वाक्यकथनम्— | ९५ |
| ५७ | ४७ | स्वयंवरमण्डपे नृपादीनामा गमनोत्तरमिन्द्राग्नियमवरुणैर्नल सारूप्येण प्रवेशः—पञ्चनलदर्श नेन मोहितया दमयन्त्या कृतां प्रार्थनां श्रुत्वा देवानां स्वस्वरूप धारणम्-इन्द्रादिदेवानां प्रसा देन दमयन्त्या नले वृते नलाय वरान् दत्वा देवेषु स्वर्गं गतेषु नृपादीनामपि स्वस्वनगरगम नम्—विवाहानन्तरं स्वनगरं गत्वा दमयन्त्या सह विहरतो नलाद्दमयन्त्यां पुत्रकन्ययोरु त्पत्तिः— | ९७ |
| ५८ | १४ | दमयन्तीस्वयंवरानन्तरं दिवं गच्छतामिन्द्रादीनां मध्येमार्गं कलिद्वापरयोर्दर्शनम्.-देवैः | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | स्वयंवरे दमयन्त्या नलवरणं निवेदिते द्वापरद्वितीयेन कलिना नलपराभवप्रतिज्ञानम्:- | ९७ |
| ५९ | १८ | कलिना कृतसंकेतेन पुष्करेणाहूतस्य पणपूर्वकं क्रीडतो नलस्य पराजयः--नलनिवारणार्थमागतानां पौरादीनां यत्नवैफल्येन निवृत्तिः- | ९८ |
| ६० | २५ | स्वयत्नवैफल्येन चिन्ताक्रान्तया दमयन्त्या कृतं वार्ष्णेयाख्यसूतद्वारा विदर्भान्प्रति स्वपुत्रकन्ययोः प्रेषणम्- वार्ष्णेयस्य विदर्भगृहे नलपुत्रकन्ययोः स्थापनपूर्वकमयोध्यायामृतुपर्णगृहे वासः- | ९९ |
| ६१ | २६ | द्यूते सर्वस्वापहारानन्तरं पुष्करवाक्येन कुपितस्यैकवस्त्रस्य दमयन्तीसहितस्य नलस्य पुरान्निर्गमनम्--दमयन्त्या सह वने वसता नलेन हिरण्यशकुनग्रहणार्थं तदुपर्याच्छादितं वस्त्रं गृहीत्वोत्पतितानां शकुनानां नलं प्रत्युक्तिः--नलदमयन्तीसंवादः-- | १०० |
| ६२ | २९ | एकवस्त्रावृतयोर्नलदमयन्त्यो रात्रौ सभाप्रवेशानन्तरं दमयन्त्यां निद्रितायामर्धवस्त्रखण्डनपूर्वकं वने दमयन्तीं त्यक्त्वा कलिप्रविष्टस्य नलस्य गमनम्-- | १०१ |
| ६३ | ३९ | निद्रातो व्युत्थाय विलापपूर्वकं वने चरन्त्या दमयन्त्या अजगरेण ग्रहणम्--अजगरग्रस्ताया दमयन्त्या विलापं श्रुत्वाऽऽगतेन वनचरेणाजगरस्य वधः--दमयन्त्या आत्मत्रातुकस्य तद्वाक्यस्य स्वपातिव्रत्यमहिम्ना शापेन हननम्:- | १०३ |
| ६४ | १४ | वने विलापपूर्वकं भ्रमन्त्या दमयन्त्यास्तापसाश्रमप्रवेशः -अभिवादनपूर्वकं स्ववृत्तान्तं कथयित्वा विलपन्तीं दमयन्तीमाश्वासयतामृषीणामाश्रमसहितानामन्तर्धानम्--तेन विस्मिताया अनेकपर्वतादिदर्शनपूर्वकं भ्रमन्त्या दमयन्त्या कदाचिद्वणिक्समूहमध्ये प्रवेशः--वणिक्समीपे स्ववृत्तान्तं कथयित्वा दमयन्त्याः सार्थवाहेन संवादः- | १०७ |
| ६५ | ७६ | दमयन्त्याः सार्थेन सह चेदिराजपुरं प्रति प्रस्थानम्--वनमध्ये सरस्तीरशायिनि सार्थे निशीथे पानीयपानागतयूथनिहतभूयिष्ठे दिष्ट्या दमयन्त्याः शेषीकारः--हतावशिष्टेन जनेन सह चेदिराजपुरं गताया दमयन्त्या राजमात्रा स्वान्तःपुराधिवासनम्-- | १०९ |
| ६६ | २६ | दमयन्तीं त्यक्त्वाऽटव्यामटन्तं दावानलाक्रान्तवनगतार्तनादश्रवणेन वह्निं प्रविशन्तं नलं प्रति वनवह्निवेष्टितेन कर्कोटकेनात्मपरिरक्षणप्रार्थना--कर्कोटकनागेन सह वह्नेर्निर्गत्य गच्छतो नलस्य दशमे पदे कर्कोटकेन दंशनेन वैरूप्यसंपादनम्--कर्कोटकेन सान्त्वनपूर्वकं निजस्वरूपाविष्करणेच्छायां स्वस्मरणेन पुनः पूर्वरूपप्राप्तिमुक्त्वा नलाय वासोयुगदानम्-- | ११० |
| ६७ | १९ | कर्कोटकनागवचनान्नलेनायोध्यायां बाहुक इति नाम्ना प्रविश्य ऋतुपर्णनृपसमीपमुपसर्पणम्--ऋतुपर्णेन तस्य सारथ्यकर्मणि योजना- दमयन्तीं स्मृत्वा विलपता नलस्य जीवलेन संवादः-- | १११ |
| ६८ | ३९ | भीमराजेन नलदमयन्त्योर्वेषणार्थं नानादिक्षु प्रेषितानां ब्रा- | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ह्मणानां मध्यात् सुदेवनाम्ना विप्रेण चेदिराजगृहे दमयन्तीदर्शनम् -विप्रेण सह सबाष्पं भाषमाणां दमयन्तीं दृष्ट्वा राजमात्रा विप्रं प्रति दमयन्तीकुलशीलादिप्रश्नः- | ११२ |
| ६९ | ५० | राजमातृप्रेरितेन सुदेवेन दमयन्तीवृत्तं कथिते भ्रूमध्यस्थपिप्लुचिह्नदर्शनेन राजमातुर्दमयन्तीप्रत्यभिज्ञानम्—प्रणामपूर्वकं दमयन्तीप्रार्थनया राजमात्रा प्रस्थापितायाः दमयन्त्याः सुदेवेन सह विदर्भनगरप्रवेशः दमयन्तीप्रेरितया तन्मात्रा प्रेरितेन भीमेन कृतं नलान्वेषणाय ब्राह्मणनियोजनम्—नियुक्तानां ब्राह्मणानां दमयन्तीतो नलं प्रति वक्तव्यान् सप्त श्लोकान् श्रुत्वा नलान्वेषणाय गमनं-तत्र तत्र नलान्वेषणं च— | ११४ |
| ७० | २७ | नलान्वेषिणा पर्णादनाम्ना विप्रेण ऋतुपर्णनृपगृहे बाहुकनामनिगूढे नले शृण्वति दमयन्तीकथितश्लोकपठनम्— बाहुकेन विजने पर्णादं प्रति दमयन्तीवचनस्योत्तरतया पञ्चश्लोकीकथनम्—पर्णादेन पुनर्विदर्भानेत्य दमयन्त्या बाहुकवाक्यनिवेदनम्—बाहुके नलशङ्किन्या दमयन्त्या मात्रनुज्ञया प्रेषितेन सुदेवेनायोध्यां गत्वा ऋतुपर्णं श्वोभूते दमयन्त्याः पुनः स्वयंवरो भवितेति कथनम्— | ११५ |
| ७१ | ३६ | ऋतुपर्णेन दमयन्तीस्वयंवराय बाहुकं सारथ्ये नियोज्य वार्ष्णेयेन सह विदर्भान्प्रति प्रस्थानम्—वार्ष्णेयेन बाहुके रूपवयोविद्यादिभिर्विशेषतः सारथ्यकौशलेन नलत्वसम्भावना— | ११६ |
| ७२ | ४३ | वेगेन गच्छतो रथात् पतितोत्तरीयदर्शनानंतरं तद्ग्रहणविषये नलर्तुपर्णसंवादः—बाहुकस्य सारथ्यसामर्थ्यविस्मितेन ऋतुपर्णेन तं प्रति पुरोभूतवस्तुपरिसंख्याने स्वीयसामर्थ्यनिवेदनम्—मध्येमार्गं दृष्टस्य बिभीतकवृक्षस्य फलपत्रादिगणने ऋतुपर्णेन कथिते सति रथस्थापनपूर्वकं वृक्षच्छेदनेन फलपत्रादि गणयतो बाहुकस्य विस्मयः—तेन ऋतुपर्णं प्रति अश्वहृदयविद्यादानप्रतिज्ञानम्—बाहुकेन ऋतुपर्णादक्षहृदयादिविद्यास्वीकरणम्—लब्धाक्षविद्यस्य नलस्य शरीरान्निर्गतस्य कलेर्नलशापभयात्तस्मै वरं दत्वा बिभीतकवृक्षप्रवेशः—नलरथारोहणानंतरं कलेः स्वगृहगमनम्— | ११८ |
| ७३ | ३६ | सायाह्ने विदर्भनगरं प्रविशतो ऋतुपर्णस्य रथध्वनिश्रवणेन नलबुध्या तद्दर्शनार्थं दमयन्त्या हर्म्यारोहणम्—ऋतुपर्णादिषु रथादवरूढेषु रथस्थापनादि कुर्वन्तं बाहुकं दृष्टवत्या दमयन्त्याश्चिन्तोत्पत्तिः—तत्त्वजिज्ञासया बाहुकं प्रति दूत्याः प्रस्थापनम्— | ११९ |
| ७४ | ३१ | दमयन्त्याज्ञया गतवत्या केशिन्या बाहुकेन संवादः—बाहुकाग्रे कथितायाः दमयन्तीगाथायाः शोकपूर्वकं बाहुकेन दत्तमुत्तरं श्रुत्वा आगतया केशिन्या दमयन्त्यै संभाषणकालिकबाहुकविकारादिनिवेदनम्— | १२० |
| ७५ | २८ | रिक्तघटादिदानरूपनलपरीक्षोपायकथनपूर्वकं पुनर्बाहुकाग्रे केशिनीप्रेषणम्—पुनः केशिन्या नलस्याद्भुतवृत्तान्ते कथिते | |

अध्यायः श्लोक, विषयः पृष्ठम् ।

नलपक्वं मांसमानाय्य तद्भक्षणेन दमयन्त्या कृतं परीक्षणम्, पुनर्नलपरीक्षणाय तं प्रति दमयन्त्या कन्यापुत्रयोः प्रेषणम्, तौ कन्यापुत्रौ दृष्ट्वा रुदता नलेन केशिनीं प्रति स्वकर्मणः कारणान्तरकथनेनापह्नवः— १२२

७६ ५३ केशिन्या कथितं कन्यापुत्रदर्शनोत्तरं जायमानं नलविकारं श्रुत्वा दमयन्त्या मातृद्वारा प्रार्थितस्य भीमस्याज्ञया नलस्य स्वसमीपानयनम्—परस्परदर्शनोत्तरमुभयोः परस्पराक्षेपवाक्यानि दमयन्त्यां नलानुनयं कुर्वन्त्यामाकाशगतवायुवाक्यश्रवणेन पुष्पवृष्टिदर्शनेन च नलस्य दमयन्तीदोषशङ्कानिरासः—बाहुकेन स्वस्य नलत्वोत्कीर्तनपूर्वकं कर्कोटकानुस्मरणेन तद्दत्तवस्त्रद्वयपरिधाने तस्य स्वरूपलाभः—नलं प्रत्यभिजानत्या दमयन्त्या तत्परिरम्भणादि दमयन्तीमात्रा नलदमयन्तीवृत्तान्ते कथिते भीमाज्ञया नलस्य तद्गृहवासः १२३

७७ २० परेद्युः प्रभाते भीमराजसमीपं गत्वाभिवादयतोर्नलदमयन्त्योर्भीमकृतमाश्वासनपुरःसरं स्वपुरं महोत्सवादि—नलवृत्तान्तं श्रुत्वा ऋतुपर्णेन नलं क्षमापयित्वा ततोऽश्वविद्यापरिग्रहणपूर्वकं स्वपुरं प्रति गमनम् १२४

७८ ३३ भीमानुज्ञया नलेन पुनः स्वपुरं प्रत्यागमनम्—नलेन पुष्करेण सह पुनर्द्यूतक्रीडा—पुनर्द्यूते पुष्करं पराजित्य तस्य तत्पुरं प्रति यापनम्—नलेन कृतं पौरसान्त्वनम्— १२५

७९ २७ दमयन्त्यानयनपूर्वकं नलस्य स्वप्रजापालनम्—युधिष्ठिराय अक्षविद्यामश्वविद्यां च दत्त्वा बृहदश्वे गतेऽर्जुनतपःश्रवणेन युधिष्ठिरस्य शोकादि— १२६

( ७ ) तीर्थयात्रापर्व १२६–२४३

८० ३० द्रौपदी-भीमनकुलसहदेवैः कृतमर्जुनानुशोचनम्-तेन पाण्डवैः काम्यकवनान्निर्गमननिर्धारणम्:— १२७

८१ २२ चिन्ताक्रान्तस्य युधिष्ठिरस्य नारददर्शनम्—अभ्युत्थानादिना सत्कृतं नारदं प्रति तीर्थयात्राप्रश्नः—नारदेन तत्कथनाय पुलस्त्यभीष्मसंवादानुवादारम्भः— १२८

८२ १२८ पुलस्त्येन भीष्मं प्रति पुष्करप्रभृतिस्थाणुतीर्थान्ततानातीर्थगमनफलकथनम्—नर्मदाप्रभृतिसरस्वतीसंगमान्ततीर्थगमनादिफलकथनम्:— १२९

८३ २०८ कुरुक्षेत्रगमनादिफलकथनम्—रामह्रदगमनफलम्—तत्प्रसङ्गेन रुधिरेण पितृतर्पणादिपरशुरामवृत्तकथनम्—वंशमूलादिसप्तसारस्वतान्ततीर्थगमनादिफलम्—तत्प्रसङ्गेन कुशाक्षनकरान् शाकरसस्रवणादिमङ्कणकर्षिवृत्तान्तकथनम्-औशनसप्रभृतिकन्याश्रमान्तगमनादिफलकथनम्-संनिहिततीर्थगमनादिफलकथनम्—तत्प्रसङ्गेन कुरुक्षेत्रप्रशंसा च— १३९

८४ १६३ धर्मतीर्थप्रभृतिस्थावर्तान्तारोहणान्ततीर्थफलकथनं गङ्गाद्वारादिवैतस्तिकान्ततीर्थगमनादिफलकथनम्—नैमिषक्षेत्रगमनप्रभृति वाराणस्यादिगमनान्तफलकथनम्-गयातीर्थादिपश्चाद्वर्ततीर्थगमनादिफलकथनम् १४३

८५ १३२ संवेद्यादितीर्थपर्वतान्तगमनादिफलकथनम्-ऋषभपर्वतादिप्रभृ

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | त्रिवेणानद्यन्तगमनादिफलकथनम्---गोदावर्यादिनदीप्रभृति प्रयागान्ततीर्थगमनादिफलकथनम्--युगभेदेन पुण्यतीर्थकथनं भीष्मं प्रत्युपदिशतः पुलस्त्यस्यान्तर्धानं युधिष्ठिरं प्रति कथयतो नारदस्य चान्तर्धानम्-- | १४८ |
| ८६ | २१ | युधिष्ठिरेण धर्मं प्रति अर्जुनं विना स्वस्य काम्यकवनेऽनभिरुचिकथनपूर्वकं निवासाय स्थानान्तरकथनप्रार्थना: | १४९ |
| ८७ | २८ | पाण्डवाश्वासनपूर्वकं धौम्यकृतं प्राचीस्थनानातीर्थकथनम्:- | १५० |
| ८८ | २९ | धौम्येन युधिष्ठिरं प्रति दक्षिणदिगवस्थितनानातीर्थकथनम्:- | १५१ |
| ८९ | १८ | पश्चिमदिग्गततीर्थकथनम् | १५२ |
| ९० | ३४ | उदीचीस्थतीर्थकथनम्- | १५३ |
| ९१ | २५ | धौम्ये भाषमाणेऽकस्मादागतस्य युधिष्ठिरसत्कृतस्य लोमशस्य युधिष्ठिरं प्रति स्वागमनकारणकथनम्---लोमशकृतं पार्थस्य पाशुपतास्त्रादिप्राप्तिकथनपूर्वकमिन्द्रसंदेशादिनिरूपणम्:- | १५४ |
| ९२ | २७ | लोमशेन युधिष्ठिरं प्रति स्वसान्निध्येन तीर्थयात्राविधायकपार्थवचननिवेदनम् युधिष्ठिरेण लोमशाज्ञयाऽधिकपरिजनविसर्जनम्-- | १५५ |
| ९३ | २९ | वनवासिब्राह्मणैः सहगमने प्रार्थिते युधिष्ठिरेण तस्मिन्नङ्गीकृते व्यासादीनामागमनम्---ऋष्युपदिष्टवचनाचरणपूर्वकमृषिसहितानां पाण्डवानां तीर्थयात्रार्थं पूर्वदिग्गमनम्-- | १५६ |
| ९४ | २२ | लोमशेन युधिष्ठिरं प्रति धर्माधर्मयोः समृद्ध्यसमृद्धिलक्षणोदर्ककारणत्वाभिधानम्--- | १५७ |
| ९५ | २९ | पाण्डवानां नैमिषारण्यगमनानन्तरं गयाशिरःपर्वतगमनम्---तत्राक्षय्यवटे वसतां चातुर्मास्येन यजमानानां पाण्डवानामग्रे शमठकृतं गययज्ञकथनम् | १५८ |
| ९६ | २० | अगस्त्याश्रमगमनानन्तरं युधिष्ठिरं प्रत्यगस्त्यचरितकथनारम्भः---ब्राह्मणहननादिवातापील्वलवृत्तकथनम् स्वपितृप्रेरितेनागस्त्येन स्वार्थनिर्मितायाः कन्याया विदर्भराजाय कृतं दानम् अगस्त्यदत्तायाः स्वगृहे उत्पन्नाया लोपामुद्रानाम्न्याः कन्याया यौवनं दृष्टवतो विदर्भस्य चिन्ता | १५९ |
| ९७ | २५ | विदर्भराजेन सन्तानार्थं कन्यां कामयमानायागस्त्याय लोपामुद्राया यथाविधिप्रदानम्-अगस्त्येन लोपामुद्राया महार्हवसनाभरणत्याजनेन वल्कलादिग्राहणपूर्वकं स्वाश्रमं प्रत्यानयनम्---ऋतुकाले समाहूतया तया महार्हवसनाभरणानि याचितेनागस्त्येन तत्संपादनाय प्रस्थानम्-- | १६० |
| ९८ | २० | भिक्षार्थं श्रुतर्वराजसमीपं गतस्यागस्त्यस्य तत्पूर्णायव्ययदर्शनेन याचनयोग्योऽयं न भवतीति निश्चयपूर्वकं श्रुतर्वणा सह ब्रध्नश्वसमीपगमनम्---तस्याप्यायव्ययशोधनानन्तरं तेन श्रुतर्वणा च सह त्रसदस्युं प्रत्यगस्त्यगमनम् तस्यापि तथैवायव्ययदर्शनेन चिन्ताक्रान्तस्यागस्त्यस्य नृपाणां वाक्येन तैः सहेल्वलसमीपगमनम् | १६१ |
| ९९ | ३१ | इल्वलेनागस्त्याय भर्जीकृतवातापिमांसपरिवेषणम्---इल्वलेन वातापेराह्वानेऽगस्त्येन स्वेन तस्य जीर्णीकरणोक्तिः---भीतेनेल्वलेनागस्त्याय धनदानपूर्वकं तज्जिघांसया तद्- | |

| अध्यायः | श्लोक. | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | नुगमनम् अगस्त्येन हुङ्कारेणेल्वलस्य भस्मीकरणपूर्वकं लोपामुद्रार्थं बहुधनदानेन तस्यां गुणवदेकापत्योत्पादनम्— एवमगस्त्यचरितं कथयित्वा तदाश्रमवर्णनपूर्वकं भागीरथीमहिमवर्णनम्—पाण्डवानां भृगुतीर्थगमनम्—लोमशेन युधिष्ठिरं प्रति परशुरामस्य दाशरथिरामेण तेजोहरणप्रकारकथनम्—तथा परशुरामस्य पितृनिदेशाद्भृगुतीर्थनिमज्जनेन पुनस्तेजोलाभकथनम्— | १६४ |
| १०० | २५ | पुनरगस्त्यचरितशुश्रूषोर्युधिष्ठिरस्य प्रश्नानुरोधेन तत्कथनप्रसङ्गेन लोमशकथितः कालकेयगणवृत्तान्तः—कालकेयसहितवृत्रोपद्रुतानां देवानां ब्रह्मलोकगतानां ब्रह्माज्ञया दधीचाश्रमगमनम्-देवैः प्रणामपूर्वकं दधीचाग्रे तदस्थियाचने कृते तदङ्गीकृत्य दधीचेन कृतः स्वप्राणत्यागः—देवसमर्पितैर्दधीचास्थिभिर्विश्वकर्मणा निर्मितस्य वज्रस्येन्द्रेण कृतं ग्रहणम्- | १६५ |
| १०१ | २३ | वृत्रेण युध्यता नारायणकृतबलाधानेनेन्द्रकृतो वज्रेण वृत्रवधः-असुरान्मारयत्सु देवेषु भयात् समुद्रप्रविष्टानां कालकेयानां जगद्विनाशविचारः | १६६ |
| १०२ | २६ | समुद्रान्तर्हितैर्दैत्यैः प्रतिरात्रं बहिर्निर्गत्याश्रमेषु ऋषिगणेषु निहतेषु देवगणैर्नारायणस्य शरणीकरणम्- | १६७ |
| १०३ | १८ | विष्णुना समुद्रान्तर्हितदैत्यनिधने समुद्रशोषणोपायत्वं ज्ञापितैर्देवैरगस्त्याश्रममागत्य कृतोऽगस्त्यस्तवः- | १६८ |
| १०४ | २४ | अगस्त्यस्तवप्रसङ्गागतविन्ध्याद्रिवृत्तान्तविषये युधिष्ठिरप्रश्ने लोमशकथितोऽगस्त्यवृत्तान्तः—कालेयवधार्थं देवैः समुद्रशोषणप्रार्थनायां कृतायां तदङ्गीकरणपूर्वकं देवैः सहागस्त्यस्य समुद्रतीरगमनम्- | १६९ |
| १०५ | २० | अगस्त्येन समुद्रसलिले निपीते देवैर्दैत्यहननम्-देवैः पुनः समुद्रपूरणाय पीतोदकोत्सर्जनं प्रार्थितेनागस्त्येन तस्य स्वेन जीर्णीकरणोक्तौ तदर्थं ब्रह्माणं प्रति प्रार्थनम्- | १७० |
| १०६ | २३ | भगीरथात्समुद्रपूरणं कालान्तरे भविष्यतीति पितामहवाक्यश्रवणोत्तरं देवानां स्वस्थानगमनम्—युधिष्ठिरप्रश्नानुरोधेन लोमशकथितं सगराख्यानम्- पत्नीद्वयसहितस्य कैलासे तपस्यतः सगरस्य महादेवादेकपत्न्यां षष्टिसहस्रपुत्रोत्पत्तिवरलाभोऽपरपत्न्यामेकपुत्रोत्पत्तिवरलाभश्च-वैदर्भीनामकमेकपत्न्यामलाबुप्रसवे शैब्यायामेकपुत्रप्रसवेऽलाबुं त्यक्तुमुद्यतं सगरं प्रत्यशरीरा वाणी - | १७१ |
| १०७ | ७० | आकाशवाणीश्रवणोत्तरमलाबुबीजेभ्यः पृथक्कृतघृतकुंभनिहितेभ्यः षष्टिसहस्रपुत्रोत्पत्तिः-सगरपुत्रोपद्रुतानां लोकानां देवसहितानां ब्रह्माणं प्रति शरणगमनं ब्रह्मवाक्यश्रवणोत्तरं यथास्थानगमनं च-अश्वमेधदीक्षानन्तरं सगरेण मोचिताश्वस्य निस्तोयसमुद्रेऽन्तर्धानम्-अश्वान्वेषणं कुर्वतां समुद्रबिलखननेन पातालप्रविष्टानां सगरपुत्राणां कपिलक्रोधदृष्ट्या दहनम्-नारदाद्भस्मीभूतपुत्रश्रवणानन्तरं सगरस्यांशुमन्तं पौत्रं प्रति वाक्यम्-सगर | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | निदेशान्निर्गतेनांशुमता कपिलप्रसादनेन हयानयनपूर्वकं पितामहयज्ञसमापनम्–सगर इवांशुमत्यपि स्वर्गते तत्सुतेन दिलीपेन गङ्गावतरणाय यतमानेनापि तदपारयतैव स्वपुत्रं भगीरथं राज्येऽभिषिच्य त्रिदिवगमनम् | १७३ |
| १०८ | २७ | गङ्गावतरणार्थं हिमालये तपस्यतो दिलीपसुतस्य भगीरथस्य सहस्रवर्षानन्तरं गङ्गावाक्याद्धरणीतलमवतरन्त्या गङ्गाया वेगधारणाय तपसा शङ्करतोषणम्–सन्तुष्टस्य महादेवस्याग्रे भगीरथकृतं गङ्गावतरणवेगसहनरूपवरप्रार्थना– | १७४ |
| १०९ | २१ | भगीरथप्रार्थनया शङ्करे हिमालयमागते भगीरथाभ्यर्थनया गङ्गाया महादेवशिरस्यवतीर्णाया भगीरथेन सह समुद्रगमनम् भगीरथेन गङ्गया पितृभ्य उदकदानपूर्वकं सागरपूरणम्– | १७४ |
| ११० | ५८ | युधिष्ठिरेण ऋषभकूटगिरौ नन्दापरनन्दानदीगमनम्–लोमशेन युधिष्ठिरं प्रति ऋषभमुनेर्नन्दायाश्च महिमकथनम्–युधिष्ठिरेण कौशिकीतीरे ऋष्यशृङ्गाश्रमगमनम्–लोमशेन युधिष्ठिरं प्रति विभाण्डकान्मृग्यामृष्यशृङ्गोत्पत्तिकथनम् लोमपादेनानावृष्टिनिवृत्तये ऋष्यशृङ्गानयनं चोदिताभिर्वेश्याभिस्तद्वनगमनम्– | १७७ |
| १११ | २३ | नौकाश्रमादिरचनानंतरं विभाण्डकस्यासंनिधाने तदाश्रमं प्रविष्टया वेश्यायुवत्या विलासैरृष्यशृङ्गं प्रलोभ्य पुनः स्वाश्रमगमनम्–तत आगतेन विभाण्डकेन वेश्याविलासमुग्धचेतसं सुतं प्रति मोहकारणप्रश्नः– | १७८ |
| ११२ | १९ | ऋष्यशृङ्गेण विभाण्डकं प्रति प्रमादवेश्याकुमार्यां मुनिकुमारत्वव्यपदेशेन तदागमनोक्तिपूर्वकं तदङ्गचेष्टाविलासैस्तस्यामेव स्वचित्तासक्त्युक्तिः– | १७९ |
| ११३ | २५ | ऋष्यशृङ्गमुपदिश्य वेश्यां मृगयतोऽपि तामनुपलभ्य परावृत्तस्य विभाण्डकस्य फलानयनार्थं वनगमनम्–एतदन्तरे पुनर्विभाण्डकस्यासंनिधानमालक्ष्य तदाश्रमं गतया वेश्यया नौकारोपणेन ऋष्यशृङ्गेऽङ्गदेशमानीते महावृष्टेराविर्भावः–अन्तःपुरं प्रविष्टाय ऋष्यशृङ्गाय लोमपादेन कृतं स्वकन्यायाः शान्ताया दानम्–फलान्यादायाश्रमागतस्य क्रुद्धस्य विभाण्डकस्याङ्गानागच्छतश्चम्पापरिसरवर्तिघोषेषु निवसतो घोषवासिभिः संवादः–अङ्गराजपुरं प्रविश्य पुत्रं स्नुषां च दृष्ट्वा शान्तकोपस्य विभाण्डकस्य पुत्रं प्रत्यादेशः–पित्राज्ञाकरणपूर्वकमृष्यशृङ्गस्य शान्तया सह स्वाश्रमगमनम्– | १८१ |
| ११४ | ३० | युधिष्ठिरेण गङ्गासागरसङ्गमादितीर्थगमनम्–युधिष्ठिरेण वैतरणीस्नानानन्तरं लोमशकृतस्वस्त्ययनस्य युधिष्ठिरस्य महेन्द्राचलवासः | १८२ |
| ११५ | ४५ | महेन्द्राचले परशुरामानुचरेणाकृतव्रणेन मुनिना युधिष्ठिरस्य संवादः–अकृतव्रणकृतः परशुरामचरित्रकथनारम्भः "कार्तवीर्यार्जुनवृत्तान्तः– कार्तवीर्योपद्रुतैः स्वरादीपागतैर्देवैः सह कार्तवीर्यवधविचारं कृतवतो" | |

| अध्याय | श्लोक | विषय | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | विष्णोर्बदरीगमनम्—गाधिराजकन्यां वरीतुमागतस्यर्चीकस्य गाधिकथितकन्याशुल्कदानस्वीकारः—कन्याशुल्कदानार्थं याचिताद्वरुणात् सहस्रसंख्यान् श्यामकर्णानानीय कन्याशुल्कार्थं दत्तवतो ऋचीकस्य गाधिकन्यया सह विवाहः—विवाहानन्तरमागतस्य भृगोर्वरदानेनर्चीकभार्यायां जमदग्न्युत्पत्तिः— | १८४ |
| ११६ | २९ | जमदग्निनोढायां प्रसेनजिद्राजकन्यायां रेणुकायां तस्मात्पञ्चपुत्रोत्पत्तिः-सरसि स्नानार्थं गतायास्तत्र चित्ररथगन्धर्वदर्शनात्म्भसि क्लिन्नाया आश्रमागताया रेणुकाया जमदग्निकृतं निर्भर्त्सनम्—मातृहननार्थं जमदग्निकृतामाज्ञामनङ्गीकुर्वतश्चतुरः पुत्रान्प्रति जमदग्निशापः-परशुरामेण रेणुकायां मानसिकव्यभिचारदर्शिनः पितुर्जमदग्नेर्नियोगात्कुठारेण तस्याः स्वमातुः कण्ठच्छेदनम्—जमदग्निना पुत्रप्रार्थनया रेणुकाया पुनरुज्जीवनम् परशुरामासंनिधाने जमदग्न्याश्रममुपागतेन कार्तवीर्यार्जुनेन तदीयहोमधेनुवत्साहरणपूर्वकं तदाश्रमपीडनम्—तत आगतेन परशुरामेण बाहुच्छेदनपूर्वकं कार्तवीर्यवधः-परशुरामरहितमाश्रममागत्य कार्तवीर्यपुत्रैर्जमदग्निवधः-पश्चादागतस्य परशुरामस्य मृतपितृदर्शनेन विलापः— | १८५ |
| ११७ | १८ | पितृवधामर्षात् त्रिःसप्तकृत्वः पृथिव्या निःक्षत्रीकरणानन्तरं यज्ञे परशुरामेण कृतं कश्यपाय पृथ्वीदानम्— इत्यकृतव्रणमुखात्परशुरामचरितं श्रुत्वा युधिष्ठिरस्य चतुर्दश्यां परशुरामपूजनोत्तरं महेन्द्रशैलाद्दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थानम्— | १८६ |
| ११८ | २३ | युधिष्ठिरस्य प्रशस्तां नदीमारभ्य शूर्पारकपर्यन्तं गच्छतः क्रमेण प्रभासतीर्थगमनम्—तत्र युधिष्ठिरदिदृक्षया कृष्णबलभद्रादीनामागमनम् | १८७ |
| ११९ | २२ | बलभद्रेण वृष्णिपाण्डवसभायां भीष्मधृतराष्ट्रादिगर्हणपूर्वकं पाण्डवान्प्रति शोचनम्— | १८९ |
| १२० | २२ | सात्यकिना पाण्डवानपेक्ष्यैव स्वैरेव धार्तराष्ट्रादिहननपूर्वकं पाण्डवानामावनवाससमापनमभिमन्यो राज्येऽभिषेचनोक्तिः-कृष्णेन सात्यकिं प्रति पाण्डवानां परबाहुबलानुपजीवित्वादिगुणकथनपूर्वकं तन्निषेधनम्—वृष्णिगमनानन्तरं युधिष्ठिरस्य पयोष्णीगमनम्— | १९१ |
| १२१ | २४ | लोमशेन युधिष्ठिरं प्रति गयकृतयागवर्णनं पाण्डवानां पयोष्णीस्नानानंतरं लोमशकथितवैदूर्यपर्वतादिदर्शनफलकथनप्रसङ्गेन च्यवनकथाप्रस्तावः-युधिष्ठिरेण लोमशं प्रति सविस्तरं च्यवनचरितकथनप्रार्थना— | १९२ |
| १२२ | २७ | च्यवनकथारंभः-च्यवनस्य भृगुमहर्षिपुत्रस्य तपस्याकथनम्-कदाचन शर्यातिराजेन सैन्यादिभिः सह च्यवनाश्रमाभिगमनम्-तत्र शर्यातिकन्यया सुकन्याख्यया चिरन्तरतपस्यानिरतस्य च्यवनशरीरं पर्यावृत्य विवर्धमानमहावल्मीकावलोकनम्-तया कुतूहलाद्वल्मीकोपरिदृश्यमानच्यवननयनयुगमस्याज्ञानात्कण्टकेन भे- | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दनम्-ततः च्यवनस्य क्रोधात्सर्वेषां मूत्रपुरीषरोधे जाते सुकन्यावाक्याच्छर्यातेर्वल्मीकसमीपगमनम्-च्यवनवाक्यात्तत्प्रसादनाय शर्यातिना दत्तया सुकन्यया सह च्यवनस्य विवाहः-सुकन्यायाः पतिशुश्रूषा | १९३ |
| १२३ | २४ | कस्मिंश्चित्काले च्यवनाश्रममुपागताभ्यामश्विनीकुमाराभ्यां भार्यात्वाय सुकन्यां प्रति प्रार्थनम्-तदकामयमानां तामाश्विनीकुमाराभ्यां स्वप्रसादाच्च्यवने रूपयौवनसम्पन्ने सति तुल्यरूपेषु त्रिषु कस्यचिद्वरणचोदना-भर्त्राज्ञया तदङ्गीकारे च्यवनेन सहाश्विभ्यां सरसोऽन्तर्जले निमज्जनम्—निमज्ज्योत्थितेषु तेषु सरूपेषु त्रिषु सुकन्यया स्वपातिव्रत्यमहिम्ना च्यवनस्यैव वरणम्—ततस्तारुण्यप्राप्त्या परितुष्टेन च्यवनेनाश्विनीकुमारयोः सोमरसदापनप्रतिज्ञानम्—ततोऽश्विनीकुमारयोश्च्यवनवाक्यश्रवणानन्तरं स्वर्गगमनम्- | १९४ |
| १२४ | २५ | च्यवनस्य यौवनलाभश्रवणहृष्टस्य तरुणं स्वजामातरमवेक्षितुमागतस्य शर्यातेश्च्यवनवाक्याद्यज्ञकरणम्—तस्मिन्यज्ञे अश्विनीकुमाराभ्यां स्वप्रतिश्रुतसोमरसदानाय सोमग्रहं गृहीतवति च्यवने कोपाद्वज्रप्रहारं कर्तुमुद्यतस्येन्द्रस्य च्यवनकृतं बाहुस्तम्भनम्—इन्द्रमारणार्थं च्यवनेन होमे कृते यज्ञकुण्डान्मदनामकासुरोत्पत्तिः—तेनासुरेण शक्रं प्रत्यभिसरणम्— | १९५ |
| १२५ | २६ | मदासुरभीतेन्द्रप्रार्थनया तं ततो निवर्त्य सुरापान स्त्री द्यूत मृगयाव्यसनेषु तस्य विभजनम्-"च्यवनकथासमाप्तिः"—लोमशकृतं नानातीर्थमाहिमावर्णनम्— | १९६ |
| १२६ | ४७ | युधिष्ठिरप्रश्नानंतरं लोमशकथितं मान्धातृचरितम्-"भृग्वाश्रमगतेन युवनाश्वेन कृतमृषिभिः पुत्रेष्टिं कृत्वा स्थापितजलकुम्भस्थजलपानम्—जलपानेन सगर्भस्य युवनाश्वस्य वामपार्श्वभेदनपुरःसरं पुत्रनिर्गमनम्-इन्द्रादिभिरागत्य कृतं मान्धातेति तत्पुत्रनामकरणं मान्धातृवृत्तांतश्च"— | १९७ |
| १२७ | २१ | युधिष्ठिरप्रश्नानन्तरं जन्तूपाख्यानप्रसङ्गेन सोमकवृत्तान्तकथनम्—"सोमकनामकेन राज्ञा भार्याशतोद्वाहेऽपि ज्येष्ठायामेव जन्तुनामकैकापत्यजननम् पिपीलिकादष्टसुतदुःखदर्शननिर्विण्णेन तेन राज्ञा ऋत्विजं प्रति बहुपुत्रोत्पादनोपायप्रश्नः-ऋत्विजा राजानं प्रति जन्तोः पशूकरणेन होमे तद्वपाघ्राणेन भार्याशते पुत्रजननोक्तिः- | १९८ |
| १२८ | २१ | ऋत्विक्प्रेरणया सोमकेन राज्ञा जन्तुनामकपुत्रवपाया होमे तद्गन्धाघ्राणेन तद्भार्याशते पुत्रशतोत्पत्तिः— लोकान्तरं गतेन सोमकेन ऋत्विजा सह तद्भोग्यस्वपुत्रहननजनारकीयदुःखानुभवपूर्वकं तेन सहैव स्वीयसुकृतफलोपभोगः" | १९९ |
| १२९ | २२ | प्राजापत्यादियज्ञस्थानादिवृत्तांतकथनानन्तरं पाण्डवानां प्लक्षतीर्थे गमनं युधिष्ठिरं प्रति लोमशवाक्यं च— | २०० |
| १३० | २४ | सरस्वतीनद्यादिमाहात्म्यकथनानन्तरं श्येनकपोतोपाख्यानप्रारम्भः—"शिबिपरीक्षणार्थं | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | श्येनीभूतेनेन्द्रेणानुद्रुतस्य कपोतरूपधारिणोऽग्नेः शिबिं प्रति शरणागतिः— | २०३ |
| १३१ | ३४ | कपोतरिरक्षिषया राज्ञा श्येनवाक्यात्स्वशरीरोत्कृत्तमांसस्य कपोतेन सह तुलारोपणम्—मांसापेक्षया कपोतस्य गौरवातिरेके राज्ञा स्वयमेव तुलारोहणम्—ततस्तुष्टाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां तत्प्रशंसनपूर्वकं स्वलोकगमनम्—" | २०४ |
| १३२ | २३ | श्वेतकेत्वाश्रमगमनानन्तरं युधिष्ठिरं प्रति कथाप्रसङ्गेनाष्टावक्रवृत्तान्तः—उद्दालकस्य स्वशिष्याय कहोडाय स्वकन्यादानम्—शिष्यसमीपे पत्नीगर्भस्थेन बालकेनाक्षिप्तस्य कहोडस्य गर्भस्थबालकाय शापदानम्—वित्तार्जनार्थं कहोडे जनकपुरं गतेऽष्टावक्रस्योत्पत्तिः—जनकसमीपं गतस्य कहोडस्य बन्दिना वादे विजित्य जले निमज्जनम्-मातुः सकाशात्पितृवृत्तांतं श्रुतवतोऽष्टावक्रस्य मातुलेन श्वेतकेतुना सह जनकनगरगमनम्— | २०५ |
| १३३ | ३० | मार्गविषयेऽष्टावक्रजनकसंवादः श्वेतकेतुना मातुलेन सह जनकयज्ञशालां विविक्षोरष्टावक्रस्य द्वारपालेन रोधः—द्वारपालाष्टावक्रयोः संवादः-राज्ञेऽष्टावक्रस्य वाचिकस्य द्वारपालेन निवेदनम्—स्वप्रश्नस्योत्तरदानतुष्टेन राज्ञा सभाप्रवेशानुमतिः— | २०८ |
| १३४ | ४१ | बन्द्यष्टावक्रयोर्विवदमानयोरष्टावक्राद्बन्दिपराजयः-जनकसमीपे वरुणेन सत्कृतानां ब्राह्मणानामुत्थानम्—जलमज्जितेषु विप्रेषूत्थितेषु कहोडकृतपुत्रप्रशंसा-बन्दिनः सागरप्रवेशः-अष्टावक्रेण स्वपित्रा कहोडेन मातुलेन च सार्धं स्वाश्रमगमनम्—पितुराज्ञया समङ्गाप्रवेशादष्टावक्रदेहस्य समीभवनम्— | २१५ |
| १३५ | ६० | लोमशकृतं समङ्गावृत्तान्तकथनम्—प्रसङ्गेन युधिष्ठिरस्य यवक्रीतवृत्तान्ते प्रश्नः-यवक्रीतोपाख्यानप्रारम्भः—"भरद्वाजपुत्रेण यवक्रीतेन स्वपितृमित्रे रैभ्ये तत्पुत्रयोरर्वावसुपरावस्वोश्चासूयया विनैवोपदेशं वेदाधिगमायेन्द्रं प्रति तपश्चरणम्—वृद्धब्राह्मणरूपेण वालुकामुष्टिभिर्गङ्गायां सेतुकरणव्यापारं कुर्वतेन्द्रेण सह यवक्रीतस्य संवादः-इन्द्रनिवारितेनापि यवक्रीतेन बलात्कारेण तस्माद्वरग्रहणम्—भरद्वाजेन लब्धवरं यवक्रीतं प्रति गर्वेण रैभ्यपीडाप्रतिषेधाय बालध्युपाख्यानकथनम्—यवक्रीतकृतः पितृवाक्याङ्गीकारः— | २१७ |
| १३६ | २० | रैभ्याश्रमे तत्स्नुषायाः परावसुभार्याया दर्शनाज्जातकामेन यवक्रीतेन एकान्ते बलात्कारेण तदुपभोगः-रुदत्या तया निवेदितवृत्तान्तेन रैभ्येण क्रुद्धेन यवक्रीतहननाय जटाभ्यां कृत्याराक्षसो निर्माणम्-कृत्यया रूपसंपदा संमोह्य कमण्डलुहरणे राक्षसाभिद्राविनेन यवक्रीतेन स्वपितुरग्निहोत्रगृहप्रवेशः-तदाऽन्धेन द्वाररक्षकशूद्रेण निवारितस्य यवक्रीतस्य राक्षसेन वधः- | २१८ |
| १३७ | १९ | रैभ्यनिर्मितेन राक्षसेन यवं- | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | क्रीते हते सत्याश्रमागतेन भरद्वाजेन गृहपालात्तद्वृत्तान्तश्रवणोत्तरं विलापपूर्वकं कृतौ पुत्रदाहन-वह्निप्रवेशौ- | २१८ |
| १३८ | २८ | रैभ्ययाज्येन बृहद्युम्नेन सत्रे सहायत्वेन वृतयोरर्वावसुपरावस्वोर्यज्ञार्थं गमनम्-एकस्मिन् दिने भार्यादर्शनार्थं रात्रौ पुनराश्रमं गतेन परावसुना मृगभ्रमेण कृष्णाजिनसंवीतस्य रैभ्यस्य हननम्-परावसुचोदनयाऽर्वावसुना कृतं ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम्-परावसुवाक्यात्तद्युम्नेन यज्ञदर्शनान्निवारितस्यार्वावसोर्वने तपश्चरणम्-तपसा तुष्टान्देवान् प्रत्यर्वावसो रैभ्यभरद्वाजयवक्रीतप्रत्युज्जीवनप्रार्थना-देवैर्यवक्रीतदुःखस्य विनोपदेशं वेदाभ्यासफलत्वकथनपूर्वकं रैभ्यादीनामुज्जीवनम्-देवानां स्वर्गमनम्— | २२० |
| १३९ | २० | लोमशकृततीर्थवृत्तान्तकथनानन्तरं युधिष्ठिरोक्तिः | २२० |
| १४० | २९ | भीमेन दुर्गमे गमनाक्षमतया युधिष्ठिरनिवारितानां द्रौपद्यादीनां वहनाङ्गीकारः-पथि कुलिन्दाधिपतिना सुबाहुना पूजितैर्युधिष्ठिरादिभिस्तस्मिन्भृत्यवर्गस्थापनपूर्वकमर्जुनदिदृक्षया गन्धमादनं प्रति प्रस्थानम्- | २२१ |
| १४१ | २८ | अर्जुनादर्शनदुःखितेन युधिष्ठिरेण भीमं प्रति धनञ्जयप्रशंसापूर्वकं तद्दर्शनाय गन्धमादनप्रवेशनिश्चयः- | २२२ |
| १४२ | ६३ | पाण्डवानां मन्दराचलगमनम्-आकाशगङ्गासेवनम्—नरकासुरास्थिदर्शनम्-लोमशेन पाण्डवान्प्रति विष्णुना नरकासुरवधप्रकारकथनम्-वराहरूपिणा हरिणा भारावमग्नभूम्युद्धारकथनम्— | २२५ |
| १४३ | २३ | पाण्डवानां गन्धमादनप्रवेशसमये मध्येमार्गं महावृष्टेः प्रादुर्भावः—ततो वृक्षाद्यन्तरितानां पाण्डवानां वृष्ट्युपरमे पुनः प्रस्थानम्— | २२५ |
| १४४ | २८ | गन्धमादनप्रवेशसमये गमनाक्षमतयाऽधःपतनेन मूर्च्छिताया द्रौपद्या नकुलेन धारणे कृते युधिष्ठिरकृतं द्रौपदीसमाश्वासनम्-द्रौपदीक्लेशानालोच्य युधिष्ठिरे परिशोचति धौम्यप्रभृतीनामागमनोत्तरं युधिष्ठिराज्ञया भीमेन स्मृतस्य घटोत्कचस्य भीमसमीपागमनसंभाषणे | २२६ |
| १४५ | ५४ | युधिष्ठिरवाक्याद्भीमेनादिष्टेन घटोत्कचेन दुर्गमे पथि द्रौपद्यावहनम्—घटोत्कचानुचरै राक्षसैः पाण्डवानां विप्राणां च वहनम्-पाण्डवानां नानाविधप्रदेशदर्शनपूर्वकं गन्धमादनस्थनरनारायणाश्रममेत्य तत्र सुखेन वासः— | २२८ |
| १४६ | ९८ | कस्मिंश्चित्काले भीमसंनिधाने वाय्वानीतं दिव्याद्भुतपद्मं दृष्ट्वा द्रौपद्या प्रार्थितस्य भीमस्य तादृशबहुपुष्पानयनार्थं गमनम्-पथि गजादिमर्दनपूर्वकं गच्छतो भीमस्य स्वर्गमार्गं रुद्ध्वा स्थितस्य हनूमतो दर्शनम्—सिंहनादं कुर्वतं भीमं प्रति हनूमदुक्तिः— | २३२ |
| १४७ | ३४ | भीमहनुमत्संवादमध्ये भीमं प्रति को हनुमानित्यादि हनुमत्प्रश्ने भीमस्योत्तरम्-मत्पुच्छमुत्सार्य गन्तव्यमिति हनूमतोक्ते पुच्छमुत्सारयितुमशक्नुवतो भीमस्य प्रणामपूर्वकं हनूमन्तं प्रति प्रत्युक्तिः—हनूमता | |

| अध्यायः | श्लोकः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | भीमं प्रति स्वप्रभावादिकथनं तत्रैव रामवृत्तान्तकथनारंभः— | २३३ |
| १४८ | २२ | रामचरितकथनपूर्वकं वरप्राप्त्यादि वृत्तमुक्त्वा भीमं प्रति हनूमत उपदेशः— | २३४ |
| १४९ | ४० | भीमेन समुद्रोल्लङ्घनकालिकविशालरूपदर्शनं प्रार्थितेन हनुमता एतत्कालिकैस्तत्कालिकरूपस्य दुर्निरीक्षताकथनपूर्वकं कृतयुगादिधर्मकथनम्— | २३६ |
| १५० | ५२ | पूर्वरूपदर्शनार्थं पुनर्भीमप्रार्थना-हनूमता दर्शितं समुद्रतरणकालिकपृथुतररूपं दृष्ट्वा विस्मिताय भीमाय चतुर्वर्णधर्मनिरूपणम्-सौगन्धिकवनमार्गं प्रदर्श्य हनूमता कृतो भीमं प्रत्युपदेशः— | २३८ |
| १५१ | १९ | पूर्वरूपोपसंहारानन्तरं हनूमतो भीमं प्रति वरयाचनाज्ञा भीमानुनयेन भीमसिंहनादबृंहणप्रतिज्ञामर्जुनध्वजस्थितिसमये शत्रुप्राणहरध्वनिकरणप्रतिज्ञां च कृतवतो हनूमतोऽन्तर्धानम्— | २३९ |
| १५२ | १४ | गन्धमादने नानाविधाश्चर्यदर्शनपूर्वकमटतो भीमस्यापराह्णे सौगन्धिकवनदर्शनम्— | २३९ |
| १५३ | १६ | सौगन्धिकसरोरक्षकैः क्रोधवशनामकै राक्षसैः सौगन्धिकसरो विविक्षुं भीमं प्रति तच्चिकीर्षितप्रश्नः— | २४० |
| १५४ | २७ | भीमस्योत्तरं श्रुतवद्भी राक्षसैः सौगन्धिकार्थं कुबेरं याचस्वेत्युपदिष्टे सति तदनादरकरणपूर्वकं भीमस्य सौगन्धिकाहरणे प्रवर्तनम्—निवारयतो राक्षसान् गदाप्रहारेण हत्वा आनपानपूर्वकं भीमेन कृतं पुष्करिणीतः पद्माहरणम्—हतराक्षसैः कुबेरसमीपं गत्वा भीमवृत्ते निवेदिते कुबेरात्पद्माहरणानुज्ञामुपलब्धवतां राक्षसानां भीमसमीपागमनम्— | २४१ |
| १५५ | ३४ | एतदवसरे प्रचण्डवात्याद्युत्पातदर्शनेन चिन्तयतो युधिष्ठिरस्य भीममपश्यतो द्रौपदीं प्रति प्रश्नः—द्रौपद्याः सकाशात्सौगन्धिकाहरणाय प्रस्थितं भीमं श्रुत्वा सर्वैः सह युधिष्ठिरस्य सौगन्धिकसरोगमनं भीमदर्शनं च—भीमं प्रति युधिष्ठिरस्यैतादृशसाहसकरणनिषेधोपदेशः—कुबेरबहुमानितस्तैरर्जुनादिदृक्षया तत्रैव सुखेन विहरणम्— | २४२ |
| १५६ | २१ | गन्धमादनादुत्तरं देशं जिगमिषुणा युधिष्ठिरेणाकाशवाणीश्रवणात्ततः प्रतिनिवृत्यानुचरैः सह नरनारायणाश्रमं प्रति गमनम्— | २४३ |
| | | **( ८ ) जटासुरवधपर्व** | २४३—२४६ |
| १५७ | ७२ | कपटब्राह्मणवेषेण जटासुरस्य युधिष्ठिरं प्रत्यागमनम्—कपटेन शस्त्राण्याहृत्य द्रौपद्यादीन् हरतो जटासुरस्य युधिष्ठिरकृतं भर्त्सनम्—जटासुरं प्रति सहदेवे वदति सति आगतस्य भीमस्य जटासुरेण युद्धम्—भीमजटासुरयोर्बाहुयुद्धानन्तरं भीमेन कृतो जटासुरवधः— | २४६ |
| | | **( ९ ) यक्षयुद्धपर्व** | २४६—२५० |
| १५८ | १०३ | जटासुरवधानन्तरं सपरिवारेण नरनारायणाश्रमोषितस्य युधिष्ठिरस्य भ्रातृभिः सह विचारानन्तरं ब्राह्मणानुज्ञया तैः सहोत्तरस्यां दिशि गच्छतः कैलासादिदर्शनम्—सप्तभिर्दिवसैर्हिमवत्पृष्ठगतस्य युधिष्ठिरस्य वृषपर्वदर्शनम्—वृषपर्वनिकटे सप्तरात्रोषितस्य युधिष्ठिरस्य तदुपदिष्टमार्गेण गन्धमादने- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | गमनम् तत्रार्ष्टिषेणाश्रमदर्शनं च— | २४९ |
| १५९ | ३२ | आर्ष्टिषेणराजर्षिणा युधिष्ठिरं प्रति कैलासवर्णनपूर्वकमर्जुनागमनपर्यन्तं स्वाश्रम एव निवासचोदना— | २५० |
| १६० | ७७ | आर्ष्टिषेणाज्ञयार्जुनागमनपर्यंतं तत्र वसतां पाण्डवानां वृत्तान्तकथनम्—कदाचन गरुडपक्षवातानीताम्बुजदर्शिन्या द्रौपद्या तादृशबहुपुष्पानयनं दुष्टराक्षसक्षपणं च प्रार्थितेन भीमेन तदर्थं गन्धमादनशिखरारोहणम्—तत्र गत्वा सिंहनादं कुर्वतो भीमस्य नादश्रवणेनागतैर्यक्षराक्षसगन्धर्वैः सह युद्धम्–राक्षसादींश्छिन्नभिन्नान्कुर्वंतं भीमं प्रति कुबेरसखस्य मणिमन्नामकस्य राक्षसस्यागमनम्–युद्धे भीमेन गदया मणिमति हते शेषाणां राक्षसानां प्राग्दिग्गमनम्— | २५३ |
| १६१ | ६३ | संग्रामशब्दश्रवणानन्तरमार्ष्टिषेणाश्रमे द्रौपदीस्थापनपूर्वकं युधिष्ठिरादीनां संग्रामदेशगमनम्—संग्रामे भीमं दृष्ट्वा पाण्डवेष्वालिङ्गनपुरःसरमुपविष्टेषु सत्सु युधिष्ठिरकृतो भीमाधिक्षेपः—हतशेषेभ्यो राक्षसेभ्यो भीमवृत्तं श्रुतवतः कुबेरस्यानुचरैः सह पाण्डवसमीपगमनम्–कुबेरं प्रणम्य परिवार्य स्थितेषु पाण्डवेषु कुबेरेण स्वस्यागस्त्यशापादिवृत्तांतकथनपूर्वकं कृतं पाण्डवसान्त्वनम्—युधिष्ठिरप्रश्नानन्तरं कुबेरेण कृतमगस्त्यशापवृत्तान्तकथनम्— | २५५ |
| १६२ | ३८ | कुबेरेण युधिष्ठिरानुशासनपूर्वकं स्वभवनगमनम्—कुबेराज्ञया राक्षसपूजितैर्युधिष्ठिरादिभिस्तस्यां रात्रौ तद्गृहे सुखवासः- | २५७ |
| १६३ | ४२ | धौम्येन युधिष्ठिरं प्रति मेरुमन्दारवृत्तान्तकथनपूर्वकं चंद्रसूर्यादिगतिप्रकारनिरूपणम्— | २५८ |
| १६४ | २० | गन्धमादनपर्वते वसत्सु पांडवेष्वर्जुनं चिन्तयत्सु सत्सु स्वर्गादधिगतास्त्रेणार्जुनेन युधिष्ठिरादीन् प्रत्यागमनम्— | २६० |
| (१०) | | निवातकवचयुद्धपर्व | २६०–२७५ |
| १६५ | १४ | इन्द्ररथदर्शनेन हृष्यत्सु पाण्डवेषु रथादवरूढेनार्जुनेन कृतं धौम्यादिपादवन्दनम्—युधिष्ठिरादिपूजितस्य मातलेः स्वर्गगमनानन्तरमर्जुनेन युधिष्ठिरादीन्प्रति संक्षेपेण स्वकीयस्वर्गनिवासप्रकारकथनम्— | २६१ |
| १६६ | १७ | इन्द्रागमनम्–सभ्रातृकं युधिष्ठिरमत्याशीर्वादपूर्वकं पुनः काम्यकवनगमनमुपदिशत इन्द्रस्य पुनः स्वर्गगमनम्— | २६२ |
| १६७ | ५७ | युधिष्ठिरेण पृष्टस्यार्जुनस्य स्ववृत्तान्तकथनम्–अर्जुनकृतं किरातरूपधारिमहादेवेन सह युद्धकथनं पाशुपतास्त्रप्राप्तिकथनं च— | २६३ |
| १६८ | ८६ | अर्जुनकृतं ब्राह्मणरूपेणागतेन्द्रसमागमादिवृत्तकथनम्–अर्जुनकृतं स्वर्गगमनानन्तरमिन्द्रसमीपगमनास्त्रप्राप्त्यादिकथनम्—अर्जुनकृतमिन्द्रकथितनिवातकवचवृत्तान्तकथनं तद्वधार्थं निर्गतस्य स्वस्य देवाशीर्वादादिकथनं च— | २६६ |
| १६९ | २४ | पार्थेन निवातकवचैः सह युयुत्सया मातलिसनाथेनेन्द्ररथेन तत्पुरं प्रति गमनम्–अर्जुनस्य शङ्खशब्दं श्रुतवतां निवातकवचानां युद्धार्थं निर्गमनम्–निवातकवचैर्युद्धार्थं प्रवृत्तस्यार्जुनस्य ब्रह्मर्षिप्रभृतीनामाशिषः— | २६७ |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| १७० | २९ | अर्जुनस्य निवातकवचैः सह युद्धम् — | २६८ |
| १७१ | ३० | निवातकवचेषु मायया युध्यमानेषु मायासृष्टतमोदर्शनेन भीतयोर्मातल्यर्जुनयोरुक्तिप्रत्युक्ती | २६९ |
| १७२ | ३५ | पुनर्निवातकवचानां मायायुद्धप्रवृत्तौ भीतमर्जुनं प्रति वज्रास्त्रप्रेरणाविधायिण्या मातलिप्रेरणयाऽर्जुनेन वज्रास्त्रेण कृतो निवातकवचवधः मातलिकृतप्रशंसनानन्तरमर्जुनस्य मातलिसहितस्य निवातकवचनगरगमनं मातलिकथितस्तन्नगरवृत्तान्तश्च: | २७० |
| १७३ | ७५ | स्वर्गं गन्तुं निर्गतस्यार्जुनस्य मध्ये हिरण्यपुरदर्शनं मातलिकृतं तत्पुरवृत्तान्तकथनं च-कालकञ्जवधार्थं मातलिप्रेरणानन्तरं तं प्रत्युक्तवतोऽर्जुनस्य कालकञ्जवधार्थं गमनम्-युद्ध्यमानानां कालकञ्जानां रौद्रास्त्रप्रयोगेणार्जुनेन कृतो वधः मातलिना स्तुतस्यार्जुनस्यामरावतीं प्रति प्रत्यागमनम्—इन्द्रसमीपे मातलिनाऽर्जुनपराक्रमे वर्णिते इन्द्रेण कृतमभिनंदनपूर्वकमाशीर्दानम्— | २७३ |
| १७४ | १७ | पूर्वोक्तार्जुनकथितवृत्तान्तश्रवणानन्तरमस्त्रदर्शनार्थमर्जुनं प्रति युधिष्ठिरवाक्यम्- | २७४ |
| १७५ | २५ | युधिष्ठिराज्ञया दिव्यास्त्राणि योजयित्वा प्रदर्शनम्-अस्त्रतेजसा जगत्क्षोभे सति इन्द्रचोदनया नारदेनार्जुनं प्रत्यस्त्रप्रदर्शननिषेधः— | २७५ |
| | | **(११) आजगरपर्व २७५-२८७** | |
| १७६ | २३ | युधिष्ठिरं प्रति भीमाद्युक्त्यनन्तरं द्वैतवनगमनार्थं युधिष्ठिरेण पर्वतामन्त्रणे कृते घटोत्कचादिषु सर्वेषु तदामन्त्रणपुरःसरं लोमशस्य स्वर्गगमनम्— | २७६ |
| १७७ | २४ | गन्धमादनादवतीर्णैः पाण्डवैः क्रमेण कैलासपर्वतदर्शनादि विधाय यथागतेन पथाऽऽगच्छतां क्रमेण सुबाहुदेशगमनम्-सुबाहुनिकटे स्थापितं सूतादिपरिकरं गृहीत्वा घटोत्कचं च विसृज्य गच्छतां विशाखयूपं प्रत्यागमनादि-पाण्डवानां सरस्वतीतीरे सुखेन विहरणम्- | २७८ |
| १७८ | ३३ | प्रसङ्गागते अजगरवृत्तान्ते जनमेजयेन पृष्टे वैशम्पायनस्योत्तरम्—धनुष्पाणेर्भीमस्य वने मृगयादि कुर्वतः केनचिदजगरेण गृहीतस्य तन्मोचनासामर्थ्यम्- | २७९ |
| १७९ | ५४ | अजगरं प्रति भीमस्य 'कस्त्वम्?' इत्यादिप्रश्नेऽजगरेण भीमं प्रति स्वस्याजगरत्वप्रापककारणकथनम्--दुर्निमित्तदर्शनादुर्मनायमानस्य युधिष्ठिरस्य धौम्येन सहितस्य भीमान्वेषणार्थं निर्गमनम्---शून्यारण्ये भुजगेन्द्रगृहीतस्य भीमस्य दर्शनम्— | २८१ |
| १८० | ३८ | युधिष्ठिरभीमयोः संवादानन्तरं भीममोचनार्थमजगरे युधिष्ठिरेण प्रार्थिते तस्योत्तरम्—युधिष्ठिरप्रश्नानन्तरं स्ववृत्तान्तेऽजगरेण कथिते तं प्रति युधिष्ठिरस्य प्रश्नोत्तरकरणार्थं प्रार्थना--सर्पकृतस्य प्रश्नत्रयस्य युधिष्ठिरदत्तमुत्तरत्रयम्- | २८४ |
| १८१ | ४१ | स्वप्रश्नस्योत्तरदानतुष्टेनाजगररूपिणा नहुषेण युधिष्ठिरं प्रति स्वपूर्ववृत्तान्तकथनानन्तरं नहुषेऽजगरदेहमोचनपूर्वकं स्वर्गं गते भीमधौम्याभ्यां सह युधिष्ठिरस्य स्वाश्रमगमनम्- | २८७ |
| | | **(१२) मार्कण्डेय-समास्यापर्व २८७-३८२** | |
| १८२ | १८ | वर्षाकालसमाप्तिपर्यन्तं द्वैत- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | वने निवासानन्तरं शरदि धौम्यादिसहितानां पाण्डवानां काम्यकवनप्रवेशः— | २८८ |
| १८३ | ९५ | पाण्डवानां पुनः काम्यकवनागमनं श्रुतवता कृष्णेन सत्यभामया सह पाण्डवदर्शनार्थं तत्रागमनम्—युधिष्ठिराभिवादनाद्यनंतरं युधिष्ठिरादीन् प्रति कृष्णवाक्यम्—कृष्णं प्रति युधिष्ठिरं वदति मार्कण्डेयागमनानन्तरं पूजादिपूर्वकं मार्कण्डेयं प्रति कृष्णोक्तिः—कृष्णादिसमीपागतस्य नारदस्य पाण्डवकृतपूजनानन्तरं मार्कण्डेयं प्रति नारदोक्तिः—मार्कण्डेयेन कृष्णचोदनया पुराणकथाकथनारम्भः | २९३ |
| १८४ | २३ | युधिष्ठिरस्य ब्राह्मणमाहात्म्यविषयकप्रश्ने मार्कण्डेयकथितो हैहयानां वृत्तान्तः— | २९४ |
| १८५ | ३७ | पुनर्मार्कण्डेयस्य ब्राह्मणमाहात्म्यकथनप्रस्तावे वैन्ययज्ञेऽत्रिगौतमसंवादानुवादेन ब्राह्मणमाहात्म्यकथनम्— | २९६ |
| १८६ | ३० | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरादीन्प्रति दानाग्निहोत्रमोक्षादिनिरूपकतार्क्ष्यसरस्वतीसंवादानुवादः— | २९९ |
| १८७ | ५८ | मार्कण्डेयकथितं वैवस्वतमनुचरितम्—तपस्यन्तं मनुं प्रति क्षुद्रमत्स्यवाक्यम्—अलिंजरादिषु वर्धमानस्य मत्स्यस्य मनुकृतः समुद्रे क्षेपः—समुद्रक्षेपसमये भाविप्रलयकथनपूर्वकं मनुं प्रति मत्स्योक्तिः—मत्स्योपदिष्टायां नाव्यारूढेन मनुना कृतं नौकासमीपवर्तिमत्स्यशृंगे नौकाबन्धनम्—समुद्रे नौकाकर्षणं कुर्वतो मत्स्यस्याज्ञया मनुना हिमालयशृंगे नौकाबन्धने कृते स्वपरिचयकथनपूर्वकं मत्स्यस्यान्तर्धानम्—मनोस्तपसा प्रजासर्जनम्—मत्स्योपाख्यानश्रवणमाहात्म्यम्— | ३०१ |
| १८८ | १४३ | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरादीन्प्रति कृतादियुगचतुष्टयधर्मकथनपूर्वकं प्रलयवर्णनम्—तथा मार्कण्डेयस्य प्रलयवृत्तान्तकथनपूर्वकं प्रलयकालिकस्ववृत्तांतकथनम्—प्रलयजले परिप्लवता मार्कण्डेयेन वटशाखाशायिनः शिशुरूपस्य हरेरुदरान्तः प्रविश्य ब्रह्माण्डदर्शनपूर्वकं पुनर्बहिर्निर्गमनम्—मार्कण्डेयस्य बालकं प्रति वाक्यम्— | ३०५ |
| १८९ | ५९ | स्वस्वरूपकथनपूर्वकं नारायणकृतो मार्कण्डेयं प्रत्युपदेशः—मार्कण्डेयकृतं श्रीकृष्णमाहात्म्यकथनम्—युधिष्ठिरादिकृताः श्रीकृष्णस्य प्रणामाः—श्रीकृष्णेन पाण्डवानां समाश्वासनम्— | ३०९ |
| १९० | ९७ | युधिष्ठिरप्रश्नानुरोधेन मार्कण्डेयेन कलौ भविष्यल्लोकवृत्तान्तकथनम्—कलियुगान्ते कल्किरूपेणावतरिष्यता हरिणा दुष्टजनसंहारादिकथनम्— | ३१० |
| १९१ | ३० | स कल्किरश्वमेधयज्ञे द्विजेभ्यः पृथिवीं दास्यति ततोऽधर्मक्षयाद्धर्मवृद्ध्या च सत्ययुगधर्मप्रवृत्तिरित्यादिकथनम्—मार्कण्डेयेनादिष्टे धर्माचरणे युधिष्ठिरेण स्वीकृते सर्वेषां सन्तोषः | ३१३ |
| १९२ | ७२ | पुनर्ब्राह्मणमाहात्म्यं कथयता मार्कण्डेयेन कथयितुमारब्धं मण्डूकोपाख्यानम्—तत्प्रसङ्गादैक्ष्वाकस्य परीक्षितश्चरितम्—मृगयाश्रान्तस्य सरस्तीरे उपविष्टस्य परीक्षितो गीतश्रवणम्—गीतमन्विष्यतः परीक्षितः कन्यादर्शनं ततः कन्यां प्रति परीक्षितप्रार्थनं च—उदकादर्शनरूपकन्योक्तसमयाङ्गीकरे | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | णेन मण्डूककन्या परिणयः—तया सह परीक्षितः स्वनगरगमनम्—मण्डूककन्यया सह सर्वदा रहसि स्थितस्य प्रधानादिभिर्दर्शिते सुगूढवापीसहिते वने विहरतो राज्ञो वापीदर्शनम्—वापीसलिलेऽवतरेति राजवाक्यश्रवणोत्तरं गतायां मण्डूककन्यायां तामन्विष्यता राज्ञा गर्तमुखे मण्डूकं दृष्टवता कृतं मण्डूकानां वधार्थं स्वीयानां दूतानां प्रेरणम्—मण्डूकराजे नायुर्नाम्ना मण्डूकावधे प्रार्थितेऽप्यशृण्वति परीक्षिति मण्डूकराजेन कृतं राज्ञे स्वकन्यायाः सुशोभनाख्याया दानम्—कन्यायै दौशील्याद्द्विजद्वेपिपुत्रप्राप्तिरूपशापदानपुरःसरं मण्डूकराजस्य स्वगृहगमनम्—तस्यां शलदलबलाख्यं पुत्रत्रयमभूत्तेषां ज्येष्ठं शलं राज्येऽभिषिच्य परीक्षिद्वनं जगाम—मृगयायै गतः शलो धावन्तं मृगमन्वेतुं सूतप्रेरणया वामदेवनिकटे वाम्यौ ययाचे—प्रतिदानसमयेन वामदेवदत्तवाम्यौ गृहीत्वा मृगमन्वगच्छच्छलः—मासानन्तरं वामदेवेन वाम्यर्थं शिष्ये प्रेषितेऽप्यददानः शलो वामदेवशापाद्राक्षसैर्हतः—शलभ्राता दलोऽपि वाम्यौ नादात्तदा तत्सुतो नाशमवाप—दलपत्नीप्रार्थनया तुष्टाय वामदेवाय दलो वाम्यौ प्रादात्— | ३१७ |
| १९३ | ३७ | युधिष्ठिरस्य बकवृत्तप्रश्ने मार्कण्डेयकथितः सुखदुःखविषये इन्द्रबकसंवादः— | ३१९ |
| १९४ | ८ | क्षात्रधर्मविषये युधिष्ठिरप्रश्ने मार्कण्डेयकथितं सुहोत्रशैशिनरयोर्वृत्तम्— | ३१९ |
| १९५ | ६ | मार्कण्डेयेन पाण्डवान्प्रति ययातिचरितकथनम्— | ३२० |
| १९६ | १३ | मार्कण्डेयेन सेदुकवृषदर्भचरितकथनम्— | ३२१ |
| १९७ | २८ | मार्कण्डेयेन श्येनात्कपोतरक्षणरूपशिबिचरितकथनम्— | ३२१ |
| १९८ | २७ | मार्कण्डेयेनाष्टकप्रतर्दनवसुमनःशिबीनां रथस्थानां नारदेन कथाप्रसङ्गे नारदकथितं शिबिचरितम् | ३२४ |
| १९९ | १८ | त्वत्तोऽपि कश्चिच्चिरजीवी अप्यस्तीति मार्कण्डेय प्रति युधिष्ठिरप्रश्ने मार्कण्डेय इन्द्रद्युम्नाख्यानोपक्रमेणोत्तरोत्तरचिरजीविन उलूकादीनाचष्ट— | ३२५ |
| २०० | १२९ | निन्दितदानानां निन्दितजन्मादीनां च कथनम्—कीदृशाः प्रतिग्राहका दातारं तारयन्तीति प्रश्ने तदनुरूपं मार्कण्डेयोत्तरम्—श्राद्धे ग्राह्याग्राह्यब्राह्मणविचारः—प्रतिगृहीतृलक्षणमतिथिभोजनप्रशंसा च—गोदानमाहात्म्यं स्वर्णदानफलं च—अनडुद्दानफलमन्नदानामकथनान्नदानफलं तत्प्रसंगाज्जलाशयदानफलं च—युधिष्ठिरस्य यमलोकपथप्रश्ने तदनुरूपमुत्तरं मार्कण्डेयस्य—विप्रपादधावनफलमर्धप्रसूतधेनुदानफलं च—विप्रशौचविषयके युधिष्ठिरप्रश्ने वाक्शौचादिरूपं मार्कण्डेयस्योत्तरम्—सायंप्रातर्गायत्रीजपफलं ब्राह्मणावमाननं न कर्तव्यमित्यादिकथनं च—चित्तशुद्धीन्द्रियनिग्रहप्रशंसा दयावत्प्रशंसा च—तप आदिना स्वर्गादिलाभकथनम्—अयनादिषु दा- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | नस्य फलाधिक्यम्—स्वर्णगोभूमिदानफलकथनम्— | ३३१ |
| २०१ | ३४ | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रति धुन्धुमारोपाख्यानकथनारम्भः—उदङ्कनामकमुनेस्तपसा परितुष्टेन विष्णुना तस्मै वरप्रदानम्—तथा विष्णुना उदङ्कं प्रति कुवलाश्वेन धुन्धुनामकासुरघातनविधानपूर्वकमन्तर्धानम्— | ३३२ |
| २०२ | ३१ | उदङ्केन स्वपुत्राभिषेचनपूर्वकं वनं प्रस्थितं बृहदश्वं प्रति तन्निवारणपूर्वकं धुन्धुनामकासुरहननचोदना— | ३३३ |
| २०३ | ३५ | बृहदश्वेनोदङ्कं प्रति स्वपुत्रेण कुवलाश्वेन धुन्धुवधस्य भावित्वकथनपूर्वकं वनं प्रति गमनम्—धुन्धूत्पत्तिं पृष्टेन मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रति तदुपोद्घाततया मधुकैटभवृत्तान्तकथनम्— | ३३४ |
| २०४ | ४१ | मधुकैटभपुत्रेण धुन्धुना तपस्तोषिताद्ब्रह्मणोऽवध्यत्वादिवरग्रहणेन देवानां पीडनम्—उदङ्कचोदितेन कुवलाश्वेन समुद्रमध्यमधिवसतस्तस्य ब्रह्मास्त्रेण हननम्—तदा देवादिभिः कुवलाश्वस्य धुन्धुमार इति नामकरणेन तस्मै वरदानपूर्वकं स्वस्वस्थानं प्रति गमनम्—मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रति तत्पुत्राणां नामकथनपूर्वकं धुन्धुमारोपाख्यानस्तवनम्— | ३३६ |
| २०५ | २४ | युधिष्ठिरस्य मार्कण्डेयं प्रति पतिव्रतामाहात्म्यादिप्रश्ने मार्कण्डेयस्योत्तरम्—मातापित्रोरति दुःखेन पुत्रं प्रसूय तद्विषयिणीं चिन्तां वहतोरिच्छानुरूपश्चेत्पुत्रः स साधुरित्यादिकथनम्— | ३३६ |
| २०६ | ४८ | कौशिकनामा कोऽपि तपस्वी विप्र आसीत्—वृक्षमूले वेदं पठतस्तस्य शिरसि कयाचिद्बलाकया पुरीषमुत्सृष्टम्—क्रुद्धस्य कौशिकस्य दृष्ट्या बलाका मृता, तेन तस्यानुतापः—अथ कदाचित्कस्यचिद्गृहे भिक्षार्थं गतं कौशिकं प्रति तद्गृहस्था पतिव्रता तिष्ठेत्युक्त्वा पतिभोजनानन्तरं भिक्षामादायाजगाम—ततश्चिरीकरणेन क्रुद्धेन कौशिकेन किमिति विलम्बः कृत इति पृष्टया साध्व्या पतिशुश्रूषानुरोधेनेत्युत्तरितम्—पुनः क्रोधेनोक्तवन्तं कौशिकं प्रति 'नाहं बलाका विप्रर्षे त्यज क्रोधं तपोधन' इत्याद्युक्तया स्वशक्तिप्रकाशनपूर्वकं धर्मावगतये धर्मव्याधसमीपं गच्छेत्युक्तवत्याः साध्व्या अनुज्ञां गृहीत्वा स्वात्मानं विनिन्दतः कौशिकस्य स्वाश्रमं प्रति गमनम्— | ३३८ |
| २०७ | ९९ | अनुतापपूर्वकं मिथिलायां कौशिकस्य धर्मव्याधसमीपं गमनम्—व्याधे ब्राह्मणं दृष्ट्वाऽभिवादनपूर्वकं पतिव्रतया त्वं प्रेषित इत्यहं जानामीत्युक्तवति कौतुकाविष्टेन कौशिकेन व्याधकृतसत्काराङ्गीकरणम्—स्वधर्माचरणप्रशंसोपक्रमेण व्याधकृतं वर्णधर्मकथनं जनकराजधर्मकथनं च—'कुलधर्मानुरोधेन परहतपशुमांसविक्रयं करोमि न स्वयं पशून्हन्मि' इति व्याधवचनम्—शिष्टाचारज्ञानविषये कौशिकप्रश्ने व्याधकथितानि शिष्टलक्षणानि— | ३४२ |
| २०८ | ३९ | व्याधस्य स्वधर्माचरणानुतापप्रसङ्गे शिबिरन्तिदेवयोः प्रशंसादि— | ३४४ |
| २०९ | ५६ | धर्मगतेः सूक्ष्मत्वनिरूपणम्—वि- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | धर्मां च दशां प्राप्य इत्यादिना दृष्टान्तपुरःसरमदृष्टप्राबल्यप्रतिपादनम्—यथाश्रुतिरित्यादिना जीवनित्यत्वप्रतिपादनम्—शुभाशुभकर्मभिः शुभाशुभयोनिप्राप्त्यादिकथनम्—इन्द्रियनिग्रहो ब्रह्मपदप्राप्तिहेतुरिति व्याधेनोक्ते इन्द्रियस्वरूपतन्निग्रहविषये कौशिकजिज्ञासा— | ३४६ |
| २१० | २१ | इन्द्रियनिग्रहाभावे दोषकथनम्—व्याधकृतं ब्राह्म्या विद्यायाः कथनम्— | ३४८ |
| २११ | २७ | कौशिकं प्रति धर्मव्याधेन भूतपञ्चकगुणनिरूपणपूर्वकमिन्द्रियजयाजययोः सुखदुःखासाधारणकारणताकथनम्— | ३५० |
| २१२ | १२ | इन्द्रियनिग्रहवत एव तपो भवति तद्रहितस्य दोष एवेत्यादि | ३५१ |
| २१३ | ४० | पार्थिवधातावाश्रितत्रिस्थितिविषये ब्राह्मणप्रश्ने व्याधस्योत्तरं मूर्धानमाश्रित इत्यादिना | ३५४ |
| २१४ | २९ | स्वाचरितधर्मप्रदर्शनार्थं गृहान्तःप्रवेशिते ब्राह्मणे पश्यति व्याधकृतं स्वपित्रोश्चरणवन्दनादि | ३५५ |
| २१५ | ३१ | पितृशुश्रूषात्मकतपोबलाद्देहस्थस्य मम पतिव्रताकृतस्य त्वत्प्रेषणस्य ज्ञानमिति ब्राह्मणं प्रति व्याधेन कथनम्—मातापितृसेवां विना तपश्चरणे दोषं कथयन्तं व्याधं प्रति प्रशंसापूर्वकं तस्य शूद्रयोनिजन्मकारणप्रश्नः ब्राह्मणशापपर्यन्तं स्वपूर्वजन्मवृत्तान्तकथनं व्याधेन | ३५७ |
| २१६ | ३७ | ब्राह्मणस्तुत्यनन्तरं सांसारिकदुःखादिविषये शोकाद्यकरणसाधने व्याधेनोपदिष्टे व्याधप्रशंसापूर्वकं ब्राह्मणकृतं स्वगृहगमनं स्वपित्रोः शुश्रूषणं च—मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रति पतिव्रतामाहात्म्यादिकथनोपसंहारः—युधिष्ठिरकृता धर्माख्यानप्रशंसा— | ३५८ |
| २१७ | २१ | मार्कण्डेयं प्रत्यग्नेर्वनगमनादिविषये युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरकथनार्थमाङ्गिरसोपाख्यानकथनारंभः—तपस्यन्तमाङ्गिरसं दृष्ट्वा चिन्तयन्तमग्निं प्रत्याङ्गिरसा कृतं पुत्रत्ववरणम्—देवान्प्रति बृहस्पतिकथितमङ्गिरसोऽग्निपुत्रत्वकारणम्— | ३५९ |
| २१८ | ८ | अङ्गिरसः पुत्राणां कन्यानां च नामादिकथनम्— | ३६० |
| २१९ | २१ | बृहस्पतिवंशादिकथनं नानाविधाग्नीनां स्थानभेदेन नामभेदाश्च— | ३६२ |
| २२० | २० | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रति काश्यपादीनां पञ्चाग्नीनां पाञ्चजन्यः पुत्रः पितॄणां पञ्चसुतानजनयत् इति कथनम्—अन्येषामपि बहूनामग्नीनामुत्पत्त्यादिकथनम्— | ३६४ |
| २२१ | ३१ | प्रजाभरणाद्भरतनामाऽग्निः पुष्टिदः पुष्टिमतिर्नामाग्निर्दुःखिनां शिवकृच्छिवनामाग्निरित्यादयोऽग्नयः— | ३६५ |
| २२२ | ३२ | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रत्यग्निवंशादिकथनम्— | ३६७ |
| २२३ | २१ | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरं प्रति कुमारोत्पत्तिप्रकारकथनारंभः—दैत्यजित इन्द्रो मानसं शैलं गत्वा कस्याश्चित् स्त्रिया 'अभिधावतु माम्' इत्यादिकमार्तनादं शुश्राव—'मा भैषीः' इत्युक्त्वा कन्यां हरन्तं केशिनं दानवं न्यषेधयत्—मयावृतेयमित्युक्त्वा युद्धोद्यते केशिनीन्द्रताडनात्पलायिते कन्यां प्रतीन्द्रप्रश्नः— | ३६८ |
| २२४ | ४२ | प्रजापतिकन्या देवसेनाऽहमिति कन्ययोक्ते तामुवाचेन्द्रो— | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | 'मम मातृष्वसेयी त्वं स्वबलं कथय' इति—पितुर्वरदानात्त्वहितानां सर्वेषां जेता मे बलवान्पतिर्भावितेति कन्येन्द्रमब्रवीत् अमावास्यायां रौद्रे मुहूर्ते ऋषिषु जुह्वत्सु सोमश्चाग्निश्च यं पुत्रं जनयिष्यतः सोऽस्या पतिर्भावीतीन्द्रचिन्तनम्—ऋषिपत्नीः कामयमानेऽग्नौ तासामलाभाद्विरहेण वनं गते तत्पत्न्याः स्वाहाया ऋषिपत्नीस्वरूपेण तत्तोषणं कर्तुं मन्त्रणम्— | ३६९ |
| २२५ | ३९ | स्वाहयाऽङ्गिरसः पत्न्याः शिवाया रूपं धृत्वाग्निसमीपं गत्वा तं सन्तोष्य तस्य रेतो गृहीत्वा गरुडीरूपेण निर्गत्य श्वेतपर्वते काञ्चनकुण्डे तत्क्षेपणम्—एवं षण्णामृषिपत्नीनामरुन्धतीवर्जं रूपं धृत्वाग्निसंतोषादिकरणानन्तरं प्रतिपदि कुण्डस्थं तद्रेतः पुत्रं जनयामास—स द्वितीयायामभिव्यक्तस्तृतीयायां शिशुश्चतुर्थ्यामङ्गप्रत्यङ्गयुक्तो बभूव—ततः कुक्कुटवाहनेन तेन बाणैः क्रौञ्चागिरिविदारणपूर्वकं शक्त्या श्वेतागिरिशिखरविभेदनम्—ततः श्वेतादिपर्वतास्तं नत्वा पृथिवीं जग्मुः— | ३७१ |
| २२६ | २९ | स्कन्दोत्पत्त्यनन्तरमुत्पातदर्शनेन भीता ऋषयः शान्तिं चक्रुः—केचिदग्निना षड्ऋषिपत्नीसङ्गतेनायमनर्थः कृत इत्यूचुः—केचित्त्वयायमनर्थः कृत इति गरुडीमूचुः—सुपर्णीस्कंदमाहाहं तव जननीति स्वाहाऽपि तं तथैवाह—लोकापवादभयात् षड्षिभिः स्वपत्नीनां परित्यागः—विश्वामित्रेण कुमारस्य जातकर्मादिना संस्करणम्—विश्वामित्रेण परमार्थतः स्वाहाचेष्टितं ज्ञात्वा षड्षीन् प्रति तत्कथनेन ऋषिपत्नीकलङ्कदूरीकरणम्—स्कन्दं जहीति देवैरिन्द्रं प्रत्युक्ते तद्भयादिन्द्रेण तस्मिन्ननङ्गीकृते स्कन्दं हन्तुं लोकमातरो ययुः भीताभिर्मातृभिस्त्वमस्मत्पुत्रो भवेति प्रार्थितेन स्कन्देन तथाङ्गीकृते लोकमात्रादयोऽग्निसहिताः स्कन्दं ररक्षुः— | ३७२ |
| २२७ | १८ | ग्रहादिषु स्कंदं परिवार्य स्थितेषु ऐरावतारूढस्येन्द्रस्य स्कन्दजिघांसयाऽऽगमनम्—इन्द्रादीन् दृष्ट्वा स्कन्दो विनदन्नग्निज्वालाः ससर्ज—ताभिरग्निज्वालाभिर्दह्यमाना देवास्तं शरणं ययुः—इन्द्रत्यक्तवज्राहतात् स्कन्ददक्षिणपार्श्वाद्विशाखः संबभूव—स्कन्दाद्भीतस्तमिन्द्रः शरणं गतः— | ३७२ |
| २२८ | १५ | इन्द्रवज्रप्रहारादुत्पन्नाः स्कन्दपारिषदाः कुमाराः कुमार्यश्चापि गर्भस्थानुत्पन्नांश्च बालकान् घ्नन्ति—काकयादि सप्तमातृगणस्तद्वीर्यसम्भव एकः शिशुश्छागवक्त्रश्चेत्येवं नवकोगणः— | ३७३ |
| २२९ | ५२ | श्रिया जुष्टं स्कन्दं भवानिन्द्रोऽस्तु इति ऋषय ऊचुस्तैः सह इन्द्रेण च संवादः कार्तिकेयस्य—इन्द्रवाक्यात्स्कन्देन सेनापतित्वेऽङ्गीकृते स्कन्दस्य देवसहितेन्द्रकृतः सेनापतित्वाभिषेकः—स्कन्दस्य रुद्रसूनुत्वाद्युत्पत्तिकथनम्—केतुस्थानेऽग्निदत्तकुक्कुटाद्यलंकृतं स्कन्दं सह स्त्रियो देवसेनाः समाजग्मुः—इन्द्रेण पूर्वं केशितो मोचिताया देवसेनायास्तत्प्रेरणया स्कन्देन कृतं पाणिग्रहणम्— | ३७५ |
| २३० | ५९ | पूर्वमृषिभिस्त्यक्तानामागतानां षण्णामृषिपत्नीनां तत्प्रार्थनया | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | मातृत्वेन स्कन्दकृतस्तत्परिग्रहः-रोहिणीज्येष्ठतास्पर्धया अभिजिति स्वाधिकारं त्यक्त्वा गते नक्षत्रसंख्यापूर्त्यर्थमिन्द्रप्रार्थनया परकृत्तिकानामुपरिगमनम्—ब्राह्म्यादिस्पर्धया आगतानां विनतादिमातॄणां तत्प्रार्थनया स्कंदकृतो मातृत्वेनाङ्गीकारः-ताभिः स्कन्दस्य संवादः—विनतादीनां विशेषसंज्ञा गर्भहरणादि तत्कर्म, स्कन्दग्रहविशेषाणां विनतादीनां शान्तयश्च मनुष्याणां षोडशवर्षादूर्ध्वं ये ग्रहास्तेषां संज्ञाकर्मादिकथनम्—शिवभक्तानां ग्रहपीडाभावकथनम्— | ३७७ |
| २३१ | ११३ | आगतया स्वाहया प्रार्थितस्य स्कन्दस्य तस्यै वरप्रदानादि—पितरं शिवं प्रति गन्तुं ब्रह्मणा प्रेरितस्य कुमारस्य महेश्वरं प्रति गमनम्—धनार्थिभिः स्कन्दगणाः सेव्या नमस्याश्चेति कथनम्—अभिषेकसमय आगतस्य शिवस्याज्ञया सप्तममारुतस्कन्धरक्षणाङ्गीकरणं स्कंदेन-कार्येषु मया त्वं द्रष्टव्य इत्युक्त्वा शिवेन स्कंदविसर्जनम्—स्कन्दगमनोत्तरं देवदानवयोर्युद्धप्रसङ्गे देवेषु महिषासुरेण विमुखीकृतेषु तत्रागत्य स्कंदेन शक्त्या कृतो महिषवधस्तत्पारिषदैश्च कृतो दानववधः— | ३८० |
| २३२ | २१ | स्कन्दनामधेयशुश्रूषया युधिष्ठिरप्रश्ने मार्कण्डेयकथितानि स्कन्दनामानि तत्पाठफलं च—मार्कण्डेयकथितः स्कन्दस्तवस्तत्पाठफलश्रुतिश्च— | ३८२ |
| | | **(१३) द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व** | **३८२—३८६** |
| २३३ | ६१ | एकत्र मिलिते द्रौपदीसत्यभामे कुरुयदुकथा अकथयताम्—केन चरित्रेण पाण्डवेषु त्वं वर्तसे, केन मंत्रादिना पाण्डवास्त्वद्वशगा इत्यादि सत्यभामा द्रौपदीं पप्रच्छ—मन्त्रादिना पतिवशीकरणादिकमसत्स्त्रीसमाचरणमनु पृच्छसि, नाहमसती, येन पाण्डवा मद्वशवर्तिनस्तत्कथयामि शृण्विति द्रौपदीवाक्यम्— | ३८४ |
| २३४ | १२ | मदुक्तमाचरन्त्यास्ते कृष्णो वशगो भविष्यतीति स्त्रीणां सर्वसुखावाप्तिः पत्युः सकाशाद्भवतीत्यादिश्च सत्यभामां प्रति द्रौपद्या उक्तिः— | ३८५ |
| २३५ | १८ | प्रियोक्तिभिर्द्रौपदीं परिसान्त्वितवत्या सत्यभामया सह श्रीकृष्णेन स्वपुरं प्रति गमनम्— | ३८६ |
| | | **(१४) घोषयात्रापर्व** | **३८६—४११** |
| २३६ | ३१ | द्वैतवने गृहादि कृत्वा शैलादिषु विचरन्तः पाण्डवा वने समेतान्वेदविदस्तपोधनान्पूजयामासुः—कस्माच्चिद्ब्राह्मणात्पाण्डववृत्तान्तं श्रुतवता धृतराष्ट्रेण पाण्डवान्प्रति परिशोचनम्—तथा पाण्डवपराक्रमानुस्मरणेन स्वपुत्राणां भाविवधनिर्धारणपूर्वकं तान्प्रति परिशोचनम्— | ३८८ |
| २३७ | २३ | धृतराष्ट्रविलापं श्रुत्वा कर्णशकुनिभ्यां दुर्योधनं प्रति स्ववैभवप्रदर्शनेन पाण्डवानां दुःखजननाय द्वैतवनगमनचोदना— | ३८९ |
| २३८ | २४ | शकुनिकर्णाविह दुर्योधनः पितुराज्ञां विनैतद्दुर्घटमित्युभाभ्यां युवाभ्यां तथोपायो विधेयो यथा द्वैतवनगमने धृतराष्ट्रानुज्ञा भवेदिति—रात्रावागत्य कर्णो दुर्योधनं प्रति द्वैतवनेऽस्मद्घोषा निवसंति ते चास्मदागमनं- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | प्रतीक्षन्तेऽतस्तत्र गमनानुज्ञा देयेति प्रार्थितो धृतराष्ट्रः सुखमनुज्ञां दास्यतीत्युवाच— | ३९० |
| २३९ | २९ | धृतराष्ट्रसमीपं गतेषु सर्वेषु मध्ये शकुनिर्दुर्योधनो घोषयात्रादि कर्तुं द्वैतवनं जिगमिषतीत्युवाच—दोषदर्शनपूर्वकं निवारयन्नपि धृतराष्ट्रः शकुनिवाक्यादनुजज्ञे—ततो दुर्योधनस्य घोषयात्राव्याजेनानुजैः सह द्वैतवनं प्रति प्रस्थानम्— | ३९१ |
| २४० | ३१ | द्वैतवनसमीपे घोषानभितो दुर्योधनस्तत्परिजनाः कर्णादयश्चावसथांश्चक्रुः—तत्र दुर्योधनो गा दृष्ट्वा वत्सांश्चाङ्कयित्वा गोपादिभ्यो गायद्भ्यो धनादि दत्त्वा मृगयां चकार—द्वैतवने सरोऽभितः क्रीडास्थाननिर्माणायाज्ञप्तानां दुर्योधनभृत्यानां पूर्वमेव तत्रागतैर्गन्धर्वैः प्रतिवारणम्—भृत्यैर्गन्धर्वकृतनिवारणे निवेदिते दुर्योधनेन तेषामुत्सारणाय सेनाप्रेषणम्—गन्धर्वैः परुषभाषणैर्भीषितैर्भटैर्दुर्योधनं प्रति तन्निवेदनम्— | ३९२ |
| २४१ | २२ | भटैः कथितां गन्धर्वोक्तिं श्रुत्वा दुर्योधनेनाज्ञप्तास्तत्सैनिका वारितवतोऽपि गन्धर्वान्प्रमथ्य वनं विविशुः—गन्धर्वेभ्यस्तच्छ्रुत्वा चित्रसेनेनाज्ञप्ता गन्धर्वा दुर्योधनादीन् प्रत्यभ्यधावन्—अभिधावतो गन्धर्वान् दृष्ट्वा सैनिकेषु पलायितेषु सत्सु कर्णो दुर्योधनादयश्च नानास्त्रैस्तान्प्रति योधयामासुः—युद्धे कौरवैस्त्रासितान्गन्धर्वान् दृष्ट्वा मायायुद्धेन युध्यमानस्य चित्रसेनस्य मायया मोहिताः कौरवाः पलायनं चक्रुः—पराङ्मुखान्कौरवान् दृष्ट्वा कर्णादिषु युद्ध्यमानेषु गन्धर्वैर्विरथीकृतः कर्णोऽप्यपलायत— | ३९४ |
| २४२ | २२ | चित्ररथेन रणे पराजितस्य दुर्योधनस्य बन्धनपूर्वकं स्वरथारोपणम्—इतरैर्गन्धर्वैर्दुर्योधनभ्रातॄणां तद्दाराणां च बन्धनम्—दुर्योधनामात्यादिभिर्युधिष्ठिराय तन्निवेदिते भीमेन तदनुमोदनम्— | ३९४ |
| २४३ | २२ | शरणागतं विपक्षमपि नैवं वदेदिति भीममुक्त्वा युधिष्ठिरो दुर्योधनादिमोचनमनुजज्ञे—भवन्तो दुर्योधनादिरथानारुह्य तान्मोचयन्त्विति युधिष्ठिराज्ञानंतरं तन्मोचनेऽर्जुनप्रतिज्ञा— | ३९५ |
| २४४ | २२ | युधिष्ठिरादिष्टांश्चतुरः पाण्डवान् सज्जीभूयागतान्दृष्ट्वा युद्धार्थं परावृत्यागतान्गन्धर्वान्प्रत्यर्जुनस्य दुर्योधनादिमोचनाज्ञातामनङ्गीकुर्वत्सु गन्धर्वेषु दुर्योधनादिमोचनं प्रतिज्ञातवत्यर्जुने च चतुर्भिः पाण्डवैः सह गन्धर्वाणां तुमुलं युद्धम्— | ३९६ |
| २४५ | ३० | अर्जुनेनेन्द्रजालाद्यस्त्रप्रहारेण त्रासितान् गन्धर्वान्दृष्ट्वा गदाहस्तश्चित्रसेनोऽर्जुनमधावत्—अर्जुनेन गदायां छिन्नायां चित्रसेनेन मुक्तानि दिव्यास्त्राण्यर्जुने दिव्यास्त्रैर्निवारयति चित्रसेनान्तर्धानम्—अन्तर्हितं चित्रसेनं शब्दवेधिभिर्दिव्यास्त्रैस्ताडितवत्यर्जुने प्रियसखित्वेनाऽऽत्मानं चित्रसेनो दर्शयामास—अर्जुनोऽपि सखायं दृष्ट्वाऽस्त्राणि सञ्जहार—ततोऽर्जुनेनास्त्रोपसंहारे कृते भीमादीनां युद्धोपरमपूर्वकं चित्रसेनेन सह संलापः— | ३९७ |
| २४६ | २७ | कौरवनिग्रहे त्वं कथं प्रवृत्त इत्यर्जुनेन पृष्टे पाण्डवान्प्रति स्वैश्वर्यप्रदर्शनार्थमागतं दुर्योधनं ज्ञात्वाऽऽ | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

नयेतान्द्राज्ञया आगतोऽहमेनं बद्ध्वा नेष्यामीत्याह स्म चित्रसेनः मम भ्राताऽयं मुच्यतामित्यर्जुने वदति पापोऽयं न मोचनार्ह इति चित्रसेनवाक्यम् ततो युधिष्ठिरसमीपागतेषु सर्वेषु युधिष्ठिरो दुर्योधनादीन मोचयित्वा गन्धर्वान्प्रशशंस— युधिष्ठिरानुज्ञया गन्धर्वेषु गतेषु 'साहसमेवं न कार्यम् । गृहं गच्छ' इति युधिष्ठिरादिष्टस्य दुर्योधनस्य स्वपुरं प्रति प्रस्थानम् ३९८

२४७ १६ मानी दुर्योधनस्तथावमानितः कथं स्वपुरं जगामेति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्— मध्यमार्गे क्वचन रमणीये देशे विश्राम्यन्तं दुर्योधनं प्रत्यागतेन गन्धर्वकृतं दुर्योधनबन्धनमोचनमजानता कर्णेन भ्रमात्तस्य गन्धर्वजेतृत्वेन रूपेण प्रशंसनम्— ३९९

२४८ १६ दुर्योधनेन कर्णं प्रति दुःखं सानुजस्य स्वस्य गन्धर्वैर्बन्धनस्य युधिष्ठिरचोदनया भीमादिभिर्गन्धर्वाणां रणे पराजयस्य च कथनम्— ३९९

२४९ ४१ दुर्योधनेन कर्णं प्रति स्वबन्धनविषये चित्रसेनार्जुनसंवादप्रकारकथनपूर्वकं युधिष्ठिरात्स्वस्य बन्धमोचनकथनम् तथा प्रायोपवेशने निजाध्यवसायकथनपूर्वकं दुःशासनं प्रति राज्यपालनविधानम्— कर्णेन दुर्योधनं प्रति प्रायोपवेशनान्निवर्तनाय सान्त्वोक्तिः— ४०१

२५० १३ त्वद्विषयवासिभिस्त्वत्प्रजारूपैः पाण्डवैः कृतं मोचनं न खेदावहमित्याद्युक्त्या कर्णकृतो दुर्योधनानुरञ्जनप्रयत्नः— बहुधा कर्णेन सान्त्वितेनापि दुर्योधनेन प्रायोपवेशाध्यवसायादपरावर्तनम्— ४०२

२५१ ३० शकुनिना भ्रात्रादिभिश्च बोधितोऽपि दुर्योधनस्तान्सर्वाननादृत्य यथाविधि प्रायोपवेशं चकार— दुर्योधने प्रायोपविष्टे स्वपक्षक्षयं दृष्ट्वा दानवा अथर्ववेदप्रोक्तक्रियया कृत्यां निर्माय पाताले दुर्योधनानयनाय तामादिदिशुः— दानवैरादिष्टायाः कृत्याया निमेषार्धेन दुर्योधनं गृहीत्वा पातालगमनम्— ४०३

२५२ ५२ पातालवासिभिर्दैत्यदानवैर्दुर्योधनं प्रति हेतून्यासपूर्वकं प्रायोपवेशानिश्चयान्निवर्तनम्— पुनः कृत्यया दुर्योधनस्य पूर्वस्थानं प्रत्यानयनम्— परेद्युः कर्णादिप्रार्थनया दुर्योधनेन सर्वैः सह स्वपुरं प्रत्यागमनम्— ४०४

२५३ २९ पाण्डवेषु वने वसत्सु धार्तराष्ट्राः किमकुर्वतेति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्— भीष्मे दुर्योधनभर्त्सनपूर्वकं संधिर्भवत्वित्युपदिशति दुर्योधनो विहस्य शकुनिना सह प्रतस्थे— तमनु कर्णादयो निर्जग्मुः— भीष्मोऽपि स्वगृहं विवेश— भीष्मगमनानन्तरं मन्त्रिभिर्मन्त्रयति दुर्योधनेऽहं पृथ्वीं जेष्यामीति प्रतिज्ञातवन्तं कर्णं दुर्योधनो दिग्विजयार्थं प्रस्थापयामास— ४०६

२५४ ३६ दिग्विजयार्थं निर्गतः कर्णोऽखिला दिशो जित्वा हास्तिनापुरमाययौ— दुर्योधनेन कृतप्रशंसः कर्णो दिग्विजयसंपादितं धनं गृहीत्वा धृतराष्ट्रं प्रति जगाम स चालिंगनपूर्वकं तं व्यसर्जयत्— ४०७

२५५ २५ स्वस्य राजसूयकरणेच्छां प्रदर्शयन्तं दुर्योधनं प्रति कर्ण आह स्म योग्यस्त्वमाह्वयस्व द्विजवरानिति— राजसूयकरणे प्रा-

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | र्थितो दुर्योधनपुरोधास्तमब्रवीत् कृतराजसूये युधिष्ठिरे जीवति त्वत्कुलेऽन्यो राजसूयो न भविताऽतस्तत्तुल्यं विष्णुयागं कुरु इति- ततो यज्ञभूमिसंस्कारार्थं लांगलादिकरणे शिल्पिन आज्ञापयामास दुर्योधनः- | ४०८ |
| २५६ | २७ | विदुरादिषु विष्णुयागप्रवृत्तं दुर्योधनं धृतराष्ट्राय निवेदयत्सु धृतराष्ट्रादीनां संतोषः- दुर्योधने निमन्त्रणाय दूतान् प्रेषयति सति दुःशासनः पाण्डवान्प्रति दूतं प्रेषयति स्म---दुःशासनप्रेषितो दूतो युधिष्ठिरवाक्यं भीमसेनवाक्यं च दुर्योधनाय न्यवेदयत्- धृतराष्ट्राज्ञया विदुरेण सत्कृतेषु ब्राह्मणादिषु दुर्योधनोऽपि ब्राह्मणादिसत्कारपूर्वकं पुरं गन्तुमियेष- | ४०९ |
| २५७ | २८ | बन्दिभिर्जनैश्च स्तूयमानो दुर्योधनः पितरौ भीष्मादींश्चाभिवन्द्य हास्तिनपुरं प्रविवेश--- त्वामहं राजसूयेन योजयिष्यामीति दुर्योधनं प्रति कर्णे वदति सति कदेदं भविष्यतीत्युक्तवान्दुर्योधनः---अर्जुनवधविषये नियमपूर्वकं प्रतिज्ञां कुर्वति कर्णे धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्जितान् मन्यमानाः स्वस्ववेश्मनि प्रविविशुः- पाण्डवा दूतमुखात्कर्णप्रतिज्ञां श्रुत्वोद्विग्नाः सन्तो द्वैतवनं त्यक्तुमीषुः | ४१० |
| | | **( १६ ) मृगस्वप्नोद्भवपर्व ४१०–४११** | |
| २५८ | १७ | द्वैतवनस्थैर्मृगैः स्वप्ने युधिष्ठिरमागत्यास्माकं वंशक्षयस्तव भ्रातृभिः कृतोऽतस्त्वं स्थानांतरं गच्छेत्युक्ते दयया युधिष्ठिरः काम्यकं वनं जगाम— | ४११ |
| | | **( १७ ) व्रीहिद्रौणिकपर्व ४११–४१५** | |
| २५९ | ३५ | दुःखितं युधिष्ठिरं द्रष्टुमागतो व्यासो दुःखिनः पौत्रान् दृष्ट्वा विमनाः सन्नुवाच–दुःखादेरचिरस्थायित्वं तपोमाहात्म्यं च कथयति व्यासे तपोदानयोः किं महदिति युधिष्ठिरप्रश्नः- दानान्न दुष्करं नास्तीत्याद्युक्त्वा व्रीहिद्रोणदानेन मुद्गलो महत्फलमापेति व्यास आह- | ४१२ |
| २६० | ३६ | विस्तरेण मुद्गलचरितं श्रोतुं युधिष्ठिरप्रश्ने व्यासकथितं मुद्गलचरितम्- मुद्गल उञ्छवृत्त्यैकेन पक्षेण व्रीहिद्रोणं सम्पाद्य तेन दर्शपौर्णमासौ विधाय शेषमतिथिभ्यो दत्वा स्वयं भुञ्जानः कालमतिवाहयामास–मुद्गलचित्तपरीक्षणाय दुर्वाससा षट्कृत्वो याचनेऽप्यविकृतमनसा तेन तदा तदाऽन्नदानेन तत्तोषणम्- तन्महिम्ना सविमानेन देवदूतेन सशरीरस्यैव मुद्गलस्य स्वर्गं प्रत्याह्वानम्- मुद्गलेन तं प्रति स्वर्गस्वरूपनिरूपणप्रार्थना--- | ४१३ |
| २६१ | ४९ | देवदूतात्स्वर्गसुखस्यास्थिरतां परिजानता मुद्गलेन स्वर्गानभिरोचनपूर्वकं देवदूतस्य स्वर्गं प्रति प्रेषणम्- व्यासेन युधिष्ठिरं प्रति मुद्गलोपाख्यानकथनपूर्वकं स्वाश्रमं प्रति गमनम् | ४१५ |
| | | **( १८ ) द्रौपदीहरणपर्व ४१५–४२९** | |
| २६२ | २८ | कदाचन शिष्यायुतसहितेन दुर्वाससो दुर्योधनगृहं प्रति गमनम्- दुर्योधनेन स्वपरिचर्यासन्तुष्टं तं प्रति ब्राह्मणादीनां द्रौपद्याश्च भोजनावसाने भोजनाय पाण्डवान्प्रति गमनप्रार्थना- दुर्वाससस्तस्मै वरप्रदानपूर्वकं पाण्डवान्प्रति प्रस्थानम् | ४१६ |
| २६३ | ४० | दुर्वाससो दुर्योधनप्रार्थनासफलीकरणे द्रौपदीभोजनानन्तर | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मागत्य पाण्डवान्प्रत्यन्नयाचनम्--ततो युधिष्ठिरानुमत्या शिष्यायुतेन सह दुर्वाससः स्नानाय नदीं प्रति गमनम्--अत्रान्तरे द्रौपदीप्रार्थनया श्रीकृष्णेन समीपागमनम्--द्रौपद्या निवेदितदुर्वासोवृत्तान्तेन कृष्णेन स्वीयक्षुन्निवृत्तये द्रौपदीं प्रत्यन्नयाचनम्--तयाऽन्नस्य शेषाभावे निवेदितेऽन्नस्थालीमानाय्य तत्कण्ठलग्नशाकपुलाकभक्षणेन सशिष्यस्य दुर्वाससस्तृप्तिजननम्--ततो भोजनाय कृष्णनिदेशात्सहदेवेनाह्वाने 'वयं सर्वे तृप्ताः' इति शिष्यैर्निवेदितेऽम्बरीषोदन्तं स्मृत्वा शिष्यैः सह लज्जितस्य दुर्वाससः पलायनम्--दुर्वासश्छलाद्भीतान् पाण्डवान् पूर्ववृत्तकथनपूर्वकमाश्वास्य श्रीकृष्णस्य स्वस्थानगमनम् | ४१८ |
| २६४ | १७ | एकदा पञ्चस्वपि पाण्डवेषु मृगयार्थं गतेषु सपरिजनेन सैन्धवेन मार्गवशात्तदाश्रमगमनम्--तत्र विजने द्रौपदीदर्शनक्षुभितहृदा जयद्रथेन तत्सन्निधिं प्रति कोटिकास्याख्यस्य स्वानुचरस्य प्रेषणम् | ४१९ |
| २६५ | १४ | जयद्रथप्रेरणया द्रौपदीमेत्य कोटिकास्येन तत्पितृभर्तृकुलादिप्रश्नः | ४२० |
| २६६ | ९ | कोटिकास्यं प्रति द्रौपद्या स्ववृत्तकथनम्-- | ४२१ |
| २६७ | २३ | जयद्रथं प्रति कोटिकास्येन द्रौपदीवाक्ये कथिते स्वयमेव द्रौपदीमेत्य पाण्डवानां कुशलप्रश्नः-द्रौपद्याऽपि कुशलप्रश्नपूर्वकं पाण्डवकुशलं कथयित्वा जयद्रथातिथ्यकरणम्--द्रौपदीं कामयमानं प्रलोभनवाक्यानि वदन्तं जयद्रथं प्रति मैवं, लज्जस्व, इत्यादि द्रौपदीवाक्यम्-- | ४२२ |
| २६८ | २८ | द्रौपद्या स्वाभिलाषिणो जयद्रथस्य भर्त्सनम्--उभयोरुत्तरप्रत्युत्तरानन्तरं बलाद्द्रौपदीं हृत्वा गच्छन्तं जयद्रथं प्रति दुर्भाषणपूर्वकं द्रौपद्यनुगमनम्-- | ४२४ |
| २६९ | २८ | मृगयातः परावृत्तानां मध्ये मार्गे दुश्चिह्नदर्शनेन खिद्यमानानां पाण्डवानामाश्रमाभिगमनम्--आश्रममागत्य धात्रेयिकां रुदतीं दृष्टवत्सु पाण्डवेष्विन्द्रसेनेन पृष्टया धात्रेयिकया द्रौपदीवृत्तान्तकथनम्--तच्छ्रुत्वा जयद्रथमनुधावतां पाण्डवानां पदातिष्वाक्रोशन्तं धौम्यं सान्त्वयित्वा तं प्रत्याह्वानम्-- | ४२६ |
| २७० | २१ | पाण्डवानागतान्दृष्टवतो जयद्रथस्य द्रौपद्या सह संवादः-- | ४२७ |
| २७१ | ६० | युद्धप्रसङ्गे भीमादिभिः सैन्योच्छेदपूर्वकं कोटिकास्यादिषु हतेषु भयेन द्रौपदीत्यागपूर्वकं जयद्रथस्य पलायनम्--द्रौपद्या नकुलरथारोहणानन्तरमर्जुनयुधिष्ठिरभीमद्रौपदीनामुक्तिप्रत्युक्तयः--जयद्रथवधार्थं भीमार्जुनयोर्गतयोः सतोः द्रौपदीसहितस्य युधिष्ठिरस्याश्रमगमनम्-पलायमानं जयद्रथं प्रत्यर्जुनवाक्यादि-- | ४२९ |
| | | **(१४) जयद्रथविमोक्षणपर्व ४२९-४३३** | |
| २७२ | ८१ | जयद्रथं गृहीत्वा पादप्रहारादि कुर्वन्तं भीमस्यार्जुनेन निवारणम्--दासोऽस्मीत्युक्तिमन्तरा त्वन्मुक्तिर्न भविष्यतीति भीमोक्तिः तदङ्गीकुर्वन्तं जयद्रथं गृहीत्वा भीमार्जुनयोः स्वाश्रमगमनम्--युधिष्ठिरस्याज्ञात- | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम् ।

शत्रोरनुमत्या मोचितस्य जयद्रथस्य तपस्तोषिताच्छङ्करात्पाण्डवपराभववरप्रार्थनम्—'एकस्मिन् दिनेऽर्जुनरहितान् पाण्डवांस्त्वं जेष्यसि' इति वरं दत्वा कृष्णार्जुनयोः प्रशंसादि कृत्वा शिवस्यान्तर्धानम्— ४३३

( १० ) **रामोपाख्यानपर्व ४३३–४७०**

२७३ १३ जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्—युधिष्ठिरेण मार्कण्डेयं प्रति स्वसदृशान्यदुःखि पुरुष सत्ताप्रश्नः— ४३३

२७४ १७ मार्कण्डेयेन रामवृत्तकथने उपक्रान्ते युधिष्ठिरप्रश्नानुरोधेन मार्कण्डेयकृतं रामादिजन्मकथनम्—रावणजन्मकथनमुपक्रम्य तत्प्रसङ्गेन कुबेरजन्मादिकथनम्— ४३४

२७५ ४० पुष्पोत्कटायां रावणकुम्भकर्णयोर्मालिन्यां विभीषणस्य राकायां खरशूर्पणखयोर्जन्मकथनम्—तपश्चरतो रावणादीन् प्रति वरदित्सया ब्रह्मण आगमनम्—रावणस्य मनुष्यातिरिक्तेभ्योऽभयदानं कुम्भकर्णस्य निद्रादानं विभीषणस्यामरत्वादिदानं ब्रह्मणा पुष्पकहर्त्तं रावणं प्रति कुबेरस्य शापादि— ४३४

२७६ १६ रावणोपद्रुतदेवगणप्रार्थितेन ब्रह्मणा श्रीहरे रामत्वेन प्रादुर्भावनिवेदनपूर्वकं देवान् प्रति तत्साहाय्यार्थं वानरादिभावेन जननचोदना— ४३६

२७७ ३६ रामादिवनवासविषये युधिष्ठिरप्रश्ने मार्कण्डेयस्योत्तरम्—रामस्य राज्याभिषेकार्थं दशरथे मन्त्रयति तच्छ्रुत्वा मंथरया बोधितायाः कैकेय्या दशरथस्य चोक्तिप्रत्युक्ती—कैकेयीकृतरामवनवासप्रार्थनया सीतालक्ष्मणसहितस्य रामस्य वनगमनम्—कैकेयीभरतयोः संवादानन्तरं रामानयनार्थं चित्रकूटं गत्वा रामपादुकं गृहीत्वा आगतस्य भरतस्य नन्दिग्रामे राज्यकरणम् शरभङ्गाश्रमाद्दण्डकारण्यं गतेन रामेण कृतः खरादिराक्षसवधः शूर्पणखाविरूपकरणं च—रावणस्य स्वसमीपागतायाः शूर्पणखायाः सान्त्वनपूर्वकं मारीचाश्रमगमनम्— ४३८

२७८ ४३ रावणस्य भिक्षुवेषधारिणो मारीचेन मृगरूपधारिणा सह रामाश्रमं प्रत्यागमनम्—मृगग्रहणाय सीताचोदनया तदनुधाविना रामेण राक्षसबुद्ध्या मृगहननम्—म्रियमाणस्य मारीचस्य 'हा! सीते!' 'हा! लक्ष्मण!' इति रामस्वरसमानस्वरश्रवणेन विषण्णायाः सीतायाः परुषभाषणश्रवणाल्लक्ष्मणेन राममार्गानुसरणम्—अत्रान्तरे रावणेन संन्यासिवेषेणागत्य सीतापहरणम्— ४४०

२७९ ४८ सीतामादाय गच्छता रावणस्य मध्येमार्गं निरोधकस्य जटायुषः पक्षच्छेदपूर्वकं लङ्काप्रवेशः—मृगहननपूर्वकं प्रतिनिवृत्तेन रामेण मध्येमार्गं संगतस्य लक्ष्मणस्य विजने सीतात्यजनेन हेतुना गर्हणपूर्वकं स्वावासगमनम्—सीतान्वेषिणा सलक्ष्मणेन रामेण मार्गे स्वग्राहिणः कबन्धस्य वधः—कबन्धदेहान्निर्गतेन गन्धर्वेण रामं प्रति पम्पातटे सुग्रीवं प्रति गमनचोदना— ४४२

२८० ७४ रामलक्ष्मणयोः पम्पासरोगमनपूर्वकं ऋष्यमूकं गतयोः सतोस्तत्र सुग्रीवेण रामस्य सख्या-

अध्यायः　श्लोकाः　विषयः　पृष्ठम्।

दि रामप्रेरणया सुग्रीवे वालिना सह युद्ध्यमाने रामेण कृतो वालिवधः लंकां गतेन रावणेनाशोकवनिकासमीपे सीतां निवेश्य तद्रक्षणार्थं योजितासु राक्षसीषु तां निर्भर्त्स्य तद्वाक्यं कथयितुं रावणं प्रति गतासु त्रिजटाकृतं सीताश्वासनम्　४४३

२८१　३१　रावणेन सीतासमीपमेत्य बहुधा प्रलोभनेऽप्यविकृतमानसया सीतया प्रत्याख्याने स्वमंदिरं प्रति गमनम्　४४४

२८२　७१　माल्यवत्पर्वते वसता रामेण शरदागमेऽपि क्रिययासक्त्या स्वानुपसर्पिणं सुग्रीवं प्रति तत्समयस्मारणाय लक्ष्मणप्रेषणम् सुग्रीवेण सह रामान्तिकमागतेन लक्ष्मणेन तं प्रति सीतान्वेषणाय सुग्रीवकृतवानरप्रेषणनिरूपणम् ततो लङ्कायाः प्रतिनिवृत्तेन हनूमताऽङ्गदादिभिः सह मधुवनभङ्गपूर्वकं रामाय सीतावृत्तान्तादिनिवेदनपूर्वकं सीतादत्तचूडामणिदानम्　४४७

२८३　५४　वानरसेनापतिभिः स्वसैन्यैः सह रामसुग्रीवोपासनम् वानरसेनादिभिः सह सागरतीरमुपागतेन रामेण सेनायाः सागरतरणाय समुद्राराधनार्थं नियमेन दर्भसंस्तरे शयनम् सागरेण रामं प्रति स्वप्ने स्वात्मदर्शनपूर्वकं नलनामकवानरेण सेतुनिर्माणप्रेरणा रामेण शरणार्थिनो विभीषणस्य लङ्काराज्येऽभिषेचनपूर्वकं सेतुमार्गेण सैन्यैः सह लङ्कागमनम् अङ्गदस्य दौत्येनाङ्गदं प्रति रावणसमीपे प्रेषणम्　४४८

२८४　४१　अङ्गदेन रावणाय रामसंदेशनिवेदनं पुना रामसमीपागमनं च वानरै रामाज्ञया लङ्काप्राकारभेदनपूर्वकं राक्षसानां वानराणां च मिथो युद्धम्　४५०

२८५　१५　युद्धार्थमागतैः रावणादिभिः सह रामादीनां युद्धम्　४५०

२८६　२९　विभीषणेन प्रहस्ते हते हनुमदादीनां राक्षसैः सह युद्धप्रसङ्गे हनुमता कृतो धूम्राक्षवधः रावणः कुम्भकर्णमुत्थाप्य युद्धार्थं गन्तुं तमादिदेश　४५१

२८७　२९　युद्धं कुर्वतः कुम्भकर्णस्य लक्ष्मणकृतो वधः　४५२

२८८　२६　युद्धार्थं रावणेनाज्ञप्तस्येन्द्रजितो लक्ष्मणेन सह युद्ध्यमानस्य मायायुद्धम्　४५३

२८९　३३　इन्द्रजिच्छरजालबन्धेन मोहाधिगमपूर्वकं भूमौ पतितयो रामलक्ष्मणयोर्विभीषणेन प्रज्ञास्त्रेण मोहापनोदनम् तथा सुग्रीवेण महौषध्या तयोर्विशल्यकरणम् ततो रामादीनां नेत्रेषु कुबेरदूतानीतजलमार्जनेनातीन्द्रियवस्तुदर्शनशक्त्युदयः ततः पुनरुपागतस्येन्द्रजितो लक्ष्मणेन वधः ततः पुत्रवधामर्षेण सीतावधोद्यतस्य रावणस्याविन्ध्याख्येन वृद्धामात्येन सान्त्वतो विनिवर्तनम्　४५५

२९०　३३　इन्द्रजिद्वधक्रोधाद्रावणेन स्वयमेव युद्धाय रामं प्रत्यभियानम् युद्धार्थमागतेन रावणेन प्रवर्तितां मायां लक्ष्मणवाक्याद्रामो निराचकार तदा इन्द्रेण रामाय मातलिसनाथस्य निजरथस्य प्रेषणम् श्रीरामेण मायायोधिनो रावणस्य ब्रह्मास्त्रेण वधः　४५६

२९१　७०　रावणवधानन्तरं सहदेवैः पूजितेन रामेण विभीषणाय

अध्यायः श्लोकाः विषय पृष्ठम् ।

लङ्कादानम्—अविन्ध्यनाम्ना राक्षसवृद्धेन रामसमीपं प्रति सीताया आनयनम्—सीतां दृष्ट्वा तच्छीलशङ्कया प्रत्याख्यातवति रामे सीताया भूमिपतनपूर्वकं मूर्च्छा—मूर्च्छितायां सीतायां विषीदत्सु वानरेष्वंतरिक्षगतैर्ब्रह्मादिदेवैः सीतायाः सौशील्यख्यापनपूर्वकं रामं प्रति तद्ग्रहणप्रेरणा—रामदशरथयोः संवादानन्तरं रामेण सीताङ्गीकारः रामं प्रति ब्रह्मादीनां वरदानानंतरं सीतया हनूमंतं प्रति वरं दत्त्वे देवानामन्तर्धानम्—ससैन्यः सलक्ष्मणो रामः पुष्पकमारुह्य निर्गतो मध्येमार्गे सीतां प्रति वनानि दर्शयन् किष्किन्धामागत्यांगदं यौवराज्येऽभिषिच्य—रामेण सीतालक्ष्मणादिभिः सहायोध्यां प्रति प्रस्थानम्—दौत्येन भरतं प्रति हनूमत्प्रेषणपूर्वकं नन्दिग्राममागतेन रामेण भरतादिभिः सहायोध्यां प्रत्यागमनम्—वसिष्ठादिभिः सीतया सह राज्येऽभिषिक्तेन रामेण सुग्रीवविभीषणादीनां सबहुमानं स्वस्वपुरप्रेषणपूर्वकं सुखेन प्रजापालनम्—रामस्य दशाश्वमेधकरणम्— ४५८

२९२ १४ मार्कण्डेयेन युधिष्ठिराश्वासनम् ४५९

(७०) पतिव्रतामाहात्म्यपर्व ४५९–४७२

२९३ ४१ पतिव्रताविषये युधिष्ठिरप्रश्ने मार्कण्डेयकृतः सावित्र्युपाख्यानोपक्रमः—पुत्रार्थं तपस्यतोऽश्वपतेः सावित्र्याः सकाशात् कन्याप्राप्तिरूपवरलाभः—सावित्रीवरदानेन लब्धायाः कन्याया अश्वपतिना कृतं सावित्रीति नामकरणम्—स्वयमेव पतिवरणार्थमश्वपतिप्रेषितायाः सावित्र्या वरान्वेषणार्थं तपोवनगमनम्— ४६०

२९४ ३३ मनसा स्वानुगुणवरनिर्धारणपूर्वकं वनादागतया सावित्र्या नारदेन सह सम्भाषमाणस्य पितुरन्तिकमेत्य तयोः पादाभिवादनम्—नारदसंनिधौ पितुः पृष्टया तया सत्यवतः पतित्वेन मनसा वरणकथनम्—पित्रा नारदवचनात्तस्याल्पायुष्ट्वनिवेदनपूर्वकं वरान्तरवरणं प्रचोदितयाऽपि तया स्वाध्यवसायादनिवर्तनम्—राज्ञाऽपि तस्या निर्बन्धान्नारदवचनाच्च तस्मा एव तस्या दानाध्यवसायः— ४६२

२९५ २३ वैवाहिकं सज्जीकृत्याश्वपतेर्द्युमत्सेनाश्रमगमनानंतरमुभयोः संवादः—सत्यवता सह सावित्र्या विवाहं कृत्वाश्वपतौ गते सावित्री वल्कलपरिधानादिपुरःसरमाश्रमे न्यवसत्— ४६३

२९६ ३३ कदाचन नारदनिर्दिष्टे सत्यवतो मृतिदिवसे सावित्र्या परशुहस्तस्य वनं गच्छतो भर्तुरनुगमनम् ४६४

२९७ १२१ सावित्र्या सह वनं प्रविष्टेन सत्यवता फलाहरणपूर्वकं काष्ठविपाटनम्—तथा शिरोवेदनादूनतया काष्ठपाटनादुपरमपूर्वकं भार्योत्सङ्गे शिरो निधानेन भूतले शयनम्—ततः सत्यवतोऽसुहरणाय समागतं यमं दृष्टवत्या सावित्र्या साञ्जलिबन्धं तदागमनप्रयोजनप्रश्नः—यमेन तां प्रति तत्कथनपूर्वकं पाशबन्धनेन सत्यवतस्तदीयशरीरादपकर्षणपूर्वकं स्वलोकं प्रति प्रस्थानम्—तमनुगच्छन्त्याः सावित्र्याः स्तुतिवचनसंतुष्टेन यमेन तस्यै वरदानपूर्वकं बन्धविमोचनेन स

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | त्यवतो विसर्जनम्—ततः पुनरुज्जीवितेन सत्यवता सावित्र्या सह पितुराश्रमं प्रति प्रस्थानम्— | ४६९ |
| २९८ | ४४ | पुत्रमन्वेष्यन्तं भार्यासहितं द्युमत्सेनं गौतमादिष्वाश्वासयत्सु सत्सु सावित्रीसहितस्य सत्यवत आश्रमागमनम्—गौतमाख्येन ऋषिणा विलंबकारणं पृष्टा सावित्री वनस्थं यमदर्शनादिकं सर्वं वृत्तान्तमाचख्यौ— | ४७१ |
| २९९ | १७ | साल्वदशीयैर्द्युमत्सेनं प्रति तन्मन्त्रिणा तच्छत्रुनिबर्हणनिवेदनपूर्वकं निजनगरं प्रत्यागमनप्रार्थना—सभार्येण द्युमत्सेनेन सावित्रीसत्यवद्भ्यां सह मुनिगणाभिवादनादिपूर्वकं स्वपुरं प्रत्यागमनम्— | ४७२ |


## (२१) कुण्डलाहरणपर्व ४७२-४८४


| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३०० | ३९ | जनमेजयप्रश्नानुरोधेन वैशम्पायनस्योत्तरम्—पाण्डवहितार्थं कर्णं प्रति कुण्डले याचितुमुद्युक्ते शक्रे कुण्डलदाननिषेधार्थं ब्राह्मणरूपेणागतस्य सूर्यस्य कर्णं प्रत्युक्तिः—कर्णेन कस्त्वमित्युक्ते सूर्योऽहमिति ब्राह्मणेनोक्ते उभयोः संवदतोः कर्णकृता कीर्तिप्रशंसा— | ४७३ |
| ३०१ | १८ | शरीराविरोधेन कीर्तिसंपादनविषये सूर्यस्योक्तिः | ४७४ |
| ३०२ | २१ | कर्णसूर्ययोः संवदतोः कर्णं प्रति सूर्यस्य शक्तिविनिमयेन कुण्डलदानाभ्यनुज्ञा— | ४७५ |
| ३०३ | २९ | किं तद्गुह्यमित्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम् कुन्तिभोजं प्रत्यागतस्य ब्राह्मणस्य सेवार्थं पृथां प्रति कुंतिभोजाज्ञा— | ४७६ |
| ३०४ | २० | स्वाज्ञामंगीकुर्वतीं कुंतीं कुंतिभोजो ब्राह्मणाय सेवार्थमर्पयति स्म—पृथयाप्येकाग्रेण मनसा ब्राह्मणाराधनम्— | ४७७ |
| ३०५ | २३ | आराधनसंतुष्टाद्दुर्वाससः पृथाया देवाकर्षणमंत्रप्राप्तिः—ततो दुर्वाससः कुन्तिभोजामन्त्रणपूर्वकमन्तर्धानम्— | ४७८ |
| ३०६ | २८ | ब्राह्मणेऽन्तर्हिते कुन्त्या मन्त्रणाहूतस्य सूर्यस्य तया सह संवादः—सूर्यदत्तेन दिव्यचक्षुषा देवादीन् दृष्ट्वा सूर्यमनुनयंतीं कुन्तीं प्रति तस्यानुनयः— | ४७० |
| ३०७ | २८ | चिन्ताक्रान्तया कुन्त्या सह सूर्यस्य संवादः—सूर्येण पुनः कन्यात्वलाभरूपवरदानपूर्वकं तस्यां गर्भाधानम्— | |
| ३०८ | २७ | कतिपयकालातिपाते कर्णस्य सहजकवचकुण्डलधारेणन कुन्त्यां जननम्—कुन्त्या धात्र्या सह मन्त्रपूर्वकं जातमात्रस्य गर्भस्य मञ्जूषायां निक्षेपपूर्वकमश्वनद्यां विसर्जनम्— | ४८१ |
| ३०९ | २५ | स्नानाय भार्यया सह गङ्गां गते नाधिरथनाम्ना सूतेन तत्रोत्प्लवमानायाः सगर्भमञ्जूषाया ग्रहणम्—मञ्जूषोद्घाटने दृष्टस्य गर्भस्य स्वपुत्रत्वेन परिकल्पनेन ताभ्यां वसुषेणेति नामकरणादिपूर्वकं प्रीत्या पोषणम्—ततः कर्णापरनाम्ना वसुषेणेन दुर्योधनेन सख्यकरणम्—द्रोणादिभ्योऽस्त्रविद्यासम्पन्नं कर्णं प्रति ब्राह्मणरूपेणेन्द्रस्यागमनम्— | ४८२ |
| ३१० | ४२ | कर्णशक्रयोः संवादः—शक्रात्तैकमात्रपुरुषघातिनीं शक्तिं गृहीत्वा तस्मै कवचकुण्डलदानम्—शक्रे गते कर्णं दृष्ट्वा दुर्योधनादीनां खेदः— | ४८४ |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

( २२ ) आरणेयपर्व ४८४-४९९

३११ २१ युधिष्ठिरादीनां काम्यकवनात्पुनर्द्वैतवनं प्रत्यागमनम्—तत्र कस्यचिन्मृगस्य तरुसङ्घर्षवशात्स्वविषाणलग्नेन ब्राह्मणस्यारणिना सह पलायनम्-ब्राह्मणप्रार्थनयाऽरण्यानयनाय पाण्डवैस्तदनुधावनम्—ततस्तैः सुदूरं स्वापकर्षणपूर्वकमन्तर्हिते तस्मिन् श्रान्त्या वटमूले समुपवेशनम्— ४८५

३१२ ४५ पिपासितेषु पाण्डवेषु युधिष्ठिरनियोगाद्वृक्षाग्रमाधिरूढेन नकुलेन नातिदूरे सरोविलोकनम्—पानीयानयनाय सरोगतेषु नकुलादिषु यक्षवचनावमत्या पानीयपानेन दीर्घनिद्राश्रवणादनागतेषु युधिष्ठिरेणापि तत्सरःसमीपेगमनम् ४८६

३१३ १३३ तत्र भूमिपतितान्भ्रातॄन् दृष्ट्वा युधिष्ठिरस्य विलापपूर्वकं तत्पतनकारणचिन्तनम्—यक्षयुधिष्ठिरयोः संवादस्तयोः प्रश्नोत्तरं च—प्रश्नोत्तरदानतुष्टेन यक्षेण चतुर्णां मध्ये कस्यचिदेकस्य जीवनं वृणीष्वेत्युक्तो युधिष्ठिरो नकुलजीवनं वव्रे-नकुलजीवनवरणेन तुष्टो यक्षः सर्वजीवनरूपं वरं प्रादात्— ४९६

३१४ २९ भीमादीनां जीवनानंतरं को भवानिति युधिष्ठिरेण पृष्टो यक्षो धर्मोऽहमित्याह-वरं वृणीष्वेति यक्षनियुक्तेन युधिष्ठिरेण प्रार्थितान्वरान् तस्मै दत्वा यक्षस्यान्तर्धानम्—पाण्डवैः स्वाश्रममागत्य धर्मदत्तमरणीसंपुटं ब्राह्मणाय वितरणम्— ४९७

३१५ ३१ स्वकर्तव्यमज्ञातवासं तपस्विनः प्रति कथयित्वा चिन्तां कुर्वन्तं युधिष्ठिरं प्रति धौम्योक्तिः-भीमेनाश्वासिते युधिष्ठिरे ब्राह्मणानां पाण्डवेभ्य आशिषो दत्वा स्वान् स्वान् गृहान् प्रति गमनम्—अथ केनचिन्निमिषेण द्वैतवनात्क्रोशपरिमितं देशं गतानां पाण्डवानामेकान्तेऽज्ञातवासार्थं मन्त्रणम्— ४९९

श्रवणमहिमा— ४९९

भविष्यत्पर्वसूचनपूर्वकं वनपर्वसमाप्तिः— ५००


॥ समाप्तेयं वनपर्वानुक्रमणिका ॥

शुभं भवतु

ॐ

# चित्राणां सूचीपत्रम् ।

[१] पिनाकपाणिर्भगवान्सर्वपापहरो हरः ।
कैरातं वेषमास्थाय काञ्चनद्रुमसन्निभम् ॥
निष्पपात महावेगो दहनो देहवानिव ।
देव्या सहोमया श्रीमान्समानव्रतवेषया ॥ —वनपर्व अ० ३९ पृ. ७१.

[२] अर्जुन उवाच ।
एष चापि मया जन्तुर्मृगरूपं समाश्रितः ।
राक्षसो निहतो घोरो हन्तुं मामिह चागतः ॥

किरात उवाच ।
मयैष धन्वनिर्मुक्तैस्ताडितः पूर्वमेव हि ।
बाणैरभिहतः शेते नीतश्च यमसादनम् ॥ —वनपर्व अ० ३९ पृ. ७२.

[३] उर्वश्युवाच ।
तव पित्राऽभ्यनुज्ञातां स्वयं च गृहमागताम् ।
यस्मान्मां नाभिनन्देथाः कामबाणवशानुगाम् ॥
तस्मात्त्वं नर्तनः पार्थ स्त्रीमध्ये मानवर्जितः ॥
अपुमानिति विख्यातः षण्ढवद्विचरिष्यसि । —वनपर्व अ० ४६ पृ. ८३.

[४] दमयन्ती तु यं हंसं समुपाधावदन्तिके ।
स मानुषीं गिरं कृत्वा दमयन्तीमथाब्रवीत् ॥ —वनपर्व अ. ५३ पृ. ९२.

[५] तामस्वस्थां तदाकारां सख्यस्ता जज्ञुरिङ्गितैः । —वनपर्व अ. ५४ पृ. ९२.

[६] तेनार्धं वाससश्छित्वा निवास्य च परंतपः ।
सुप्तामुत्सृज्य वैदर्भी प्राद्रवद्गतचेतनाम् ॥ —वनपर्व अ० ६२ पृ. १०१.

[७] स वध्यमानो गृध्रेण रामप्रियहितैषिणा ।
खड्गमादाय चिच्छेद भुजौ तस्य पतत्रिणः ॥ —वनपर्व अ. २७९ पृ. ४५०.

[८] कृतचिन्हं तु सुग्रीवं रामो दृष्ट्वा महाधनुः ॥
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठं वालिमुद्दिश्य लक्ष्यवित् ॥ —वनपर्व अ० २८० पृ. ४४२.

[९] प्रासासिशूलपरशुमुद्गरालातधारिणीः ।
परिवार्यासते सीतां दिवारात्रमतन्द्रिताः ॥
तर्जयन्ति सदा रौद्राः परुषव्यञ्जनाक्षराः । —वनपर्व अ. २८० पृ. ४४३.

[१०] रावणोऽपि पुरीं गत्वा लङ्कां कामबलात्कृतः ।
सीतां निवेशयामास भवने नन्दनोपमे ॥
अशोकवनिकाभ्याशे तापसाश्रमसन्निभे ।
उपवासतपःशीला तत्रास पृथुलेक्षणा ॥ —वनपर्व अ. २८० पृ. ४४३.

[११] हनूमानुवाच
तात ! रामस्य दूतोऽहं वानरो मारुतात्मजः ।
त्वद्दर्शनमभिप्रेप्सुरिह प्राप्तो विहायसा ॥ —वनपर्व अ० २८२. पृ. ४४६.

[ १२ ] **सागर उवाच ।**

ब्रूहि किं ते करोम्यत्र साहाय्यं पुरुषर्षभ ।

**राम उवाच ।**

मार्गमिच्छामि सैन्यस्य दत्तं नदनदीपते ! ॥ —वनपर्व अ.२८३ पृ. ४४८.

[ १३ ] रावणः शोकमोहार्तो वैदेहीं हन्तुमुद्यतः ॥

खड्गमादाय दुष्टात्मा जवेनाभिपपात ह ॥ —वनपर्व अ० २८९ पृ. ४५४.

[ १४ ] अग्रतः पादुके कृत्वा ददर्शासीनमासने ।

सङ्गतो भरतेनाथ शत्रुघ्नेन च वीर्यवान् ॥ —वनपर्व अ. २९१ पृ. ४५७

[ १५ ] **सावित्र्युवाच ।**

ब्रह्मचर्येण शुद्धेन दमेन नियमेन च ।

सर्वात्मना च भक्त्या च तुष्टाऽस्मि तव पार्थिव॥ —वनपर्व अ. २९३ पृ.४५९

[ १६ ] **राजोवाच ।**

पुत्रि ! प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोति माम् ।

स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ —वनपर्व अ. २९३ पृ. ४६०.

[ १७ ] **सावित्र्युवाच ।**

दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।

सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥ —वनपर्व अ० २९४ पृ. ४६१.

[ १८ ] **सावित्र्युवाच ।**

न तेऽपवर्गः सुकृताद्विनाकृतस्तथा यथाऽन्येषु वरेषु मानद ।

वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना ॥

—वनपर्व अ० २९७ पृ. ४६७.

[ १९ ] **सावित्र्युवाच ।**

दैवतं त्वाऽभिजानामि वपुरेतद्ध्यमानुषम् ।

कामया ब्रूहि देवेश कस्त्वं किं च चिकीर्षसि॥—वनपर्व अ० २९७ पृ. ४६४.

[ २० ] स तामुद्धृत्य मञ्जूषामुत्सार्य जलमन्तिकात् ।

यन्त्रेणोद्घाटयामास सोऽपश्यत् तत्र बालकम् ॥ —वनपर्व अ० ३०९ पृ. ४८१.

# वनपर्व

३

# महाभारतम् ।

## वनपर्व ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच ।

एवं द्यूतजिताः पार्थाः कोपिताश्च दुरात्मभिः ।
धार्तराष्ट्रैः सहामात्यैर्निकृत्या द्विजसत्तम ॥
श्राविताः परुषा वाचः सृजद्भिर्वैरमुत्तमम् ।
किमकुर्वत कौरव्या मम पूर्वपितामहाः ॥
कथं चैश्वर्यविभ्रष्टाः सहसा दुःखमेयुषः ।
वने विजह्रिरे पार्थाः शक्रप्रतिमतेजसः ॥
के वै तानन्ववर्तन्त प्राप्तान्व्यसनमुत्तमम्
किमाचाराः किमाहाराः क्व च वासो महात्मनाम्
कथं च द्वादश समा वने तेषां महामुने ।
व्यतीयुर्ब्राह्मणश्रेष्ठ शूराणामरिघातिनाम् ॥ ५

कथं च राजपुत्री सा प्रवरा सर्वयोषिताम् ।
पतिव्रता महाभागा सततं सत्यवादिनी ॥ ६
वनवासमदुःखार्हा दारुणं प्रत्यपद्यत ।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं विस्तरेण तपोधन ॥ ७
श्रोतुमिच्छामि चरितं भूरिद्रविणतेजसाम् ।
कथ्यमानं त्वया विप्र परं कौतूहलं हि मे ॥

वैशंपायन उवाच ।

एवं द्यूतजिताः पार्थाः कोपिताश्च दुरात्मभिः ।
धार्तराष्ट्रैः सहामात्यैर्निर्ययुर्गजसाह्वयात् ॥ ९
वर्धमानपुरद्वारादभिनिष्क्रम्य पाण्डवाः ।
उदङ्मुखाः शस्त्रभृतः प्रययुः सह कृष्णया ॥ १०

श्रीगणेशाय नमः । यो देवो मुनिनिचयहृदां कुण्डवासी यत्कृत्या मुनिनिवहोऽपि तृप्तिमाप । तस्यैवं निजजगदन्तरात्मभावं व्याकर्तुः पदमुपयाम गोपसूनोः ॥ १ ॥ योऽजस्त्रं ज्ञानलभ्योऽयं यज्ञमुख्यैर्यत्रैकाम्यं प्रार्थ्यते संयमाद्यैः । तं सेवेऽहं मद्गुरुं लक्ष्मणार्यं ब्रह्मब्रह्मज्ञानिवंशावतंसम् ॥ २ ॥ प्रणम्य नारायणतीर्थवर्यान् धीरेशमिश्रांश्च हमीरपुर्यान् । कुर्मो गुरूणां हृदयानुरूपमारण्यके पर्वणि भावदीपम् ॥ ३ ॥ तत्र पूर्वस्मिन् पर्वणि द्रौपदीत्राणेन भक्तिमाहात्म्यं दर्शितं । सा च प्रतिज्ञापालनसत्समागमतीर्थाटनस्वधर्माचरणादिना लभ्यत इति तत्तदाख्यायिकामुखेनेह प्रतिपाद्य द्रौपदीदौःशासनिकक्लेशाशनेन कृष्णे तृप्ते सति दौर्वाससोपाख्यानेन भगवतो जगदन्तरात्मत्वं दर्शितं । धर्मयुधिष्ठिरसंवादेन भगवत्तत्त्वं अधिगमोपायसहितं च संक्षेपेणोक्तं । एवं द्यूतजिताः पार्था इत्यादिना-मन्त्राय समुपाविशन्नित्यन्तेन ग्रन्थेन । तत्र प्रथमेऽध्याये सदसत्संगयोर्गुणदोषौ द्वितीये शौनकयुधिष्ठिरसंवादेन काम्यधर्मनिन्दा योगप्रशंसा च दर्शिता एवमिति । पार्था इति क्षत्रिन्यायेन माद्रीसुतयोरपि उपलक्षणं । दुरात्मभिर्दुष्टचित्तैः । सहामात्यैः [illegible] । निकृत्या छलेन ॥ १ ॥ पूर्वःपिता परीक्षित् तस्य पितामहाः ॥ २ ॥ [illegible] प्राप्तवन्तः ॥ ३ ॥ उत्तमं तीव्रम् ॥ ४ ॥ द्रविणं पराक्रमः तेजः देहकान्तिश्च ते उभे पुष्कले येषां ते भूरिद्रविणतेजसः 'द्रविणं च पराक्रमे' इति विश्वः ॥ ८ ॥ गजसाह्वयात् हस्तिनापुरात् ॥ ९ ॥ वर्धमानपुरं नाम ग्रामविशेषः तदभिमुखं द्वारं तस्मात् यत्र हिंसायां वर्धमानाः हिंसकाः तेषां पुरं कुत्सितमार्गेण निःसृता इत्यन्ये

इन्द्रसेनादयश्चैव भृत्याः परिचतुर्दश ।
रथैरनुययुः शीघ्रैः स्त्रिय आदाय सर्वशः ॥ ११
गतानेतान्विदित्वा तु पौराः शोकाभिपीडिताः ।
गर्हयन्तोऽसकृद्भीष्मविदुरद्रोणगौतमान् ॥ १२
ऊचुर्विगतसंत्रासाः समागम्य परस्परम् ।

पौरा ऊचुः ।

नेदमस्ति कुलं सर्वं न वयं न च नो गृहाः ॥ १३
यत्र दुर्योधनः पापः सौबलेयेन पालितः ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च राज्यमेतच्चिकीर्षति ॥ १४
न तत्कुलं न चाचारो न धर्मोऽर्थः कुतः सुखं ।
यत्र पापसहायोऽयं पापो राज्यं चिकीर्षति ॥ १५
दुर्योधनो गुरुद्वेषी त्यक्ताचारसुहृज्जनः ।
अर्थलुब्धोऽभिमानी च नीचः प्रकृतिनिर्घृणः ॥ १६
नेयमस्ति मही कृत्स्ना यत्र दुर्योधनो नृपः ।
साधु गच्छामहे सर्वे यत्र गच्छन्ति पाण्डवाः ॥ १७
सानुक्रोशा महात्मानो विजितेन्द्रियशत्रवः ।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च धर्माचारपरायणाः ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वानुजग्मुस्ते पाण्डवांस्तान्समेत्य च ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे कौन्तेयान्माद्रिनन्दनान् ॥ १९
क्व गमिष्यथ भद्रं वस्त्यक्त्वास्मान्दुःखभागिनः ।
वयमप्यनुयास्यामो यत्र यूयं गमिष्यथ ॥ २०
अधर्मेण जिताञ्छ्रुत्वा युष्मांस्त्यक्तघृणैः परैः ।
उद्विग्नाः स्मो भृशं सर्वे नास्मान्हातुमिहार्हथ ॥ २१
भक्तानुरक्तान्सुहृदः सदा प्रियहिते रतान् ।
कुराजाधिष्ठिते राज्ये न विनश्येम सर्वशः ॥ २२
श्रूयतां चाभिधास्यामो गुणदोषान्नरर्षभाः ।
शुभाशुभाधिवासेन संसर्गः कुरुते यथा ॥ २३
वस्त्रमापस्तिलान्भूमिं गन्धो वासयते यथा ।
पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः ॥ २४
मोहजालस्य योनिर्हि मूढैरेव समागमः ।
अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः ॥ २५
तस्मात्प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च सुस्वभावैस्तपस्विभिः ।
सद्भिश्च सह संसर्गः कार्यः शमपरायणैः ॥ २६
येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च ।
तान्सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ॥ २७
निरारम्भा ह्यपि वयं पुण्यशीलेषु साधुषु ।
पुण्यमेवाप्नुयामेह पापं पापोपसेवनात् ॥ २८
असतां दर्शनात्स्पर्शात्संजल्पाच्च सहासनात् ।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः ॥ २९
बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात् ।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः ॥ ३०
अनीचैर्नाप्यविषयैर्नाधर्मिष्ठैर्विशेषतः ।
ये गुणाः कीर्तिता लोके धर्मकामार्थसंभवाः ।
लोकाचारेषु संभूता वेदोक्ताः शिष्टसंमताः ॥ ३१
ते युष्मासु समस्ताश्च व्यस्ताश्चैवेह सद्गुणाः ।
इच्छामो गुणवन्मध्ये वस्तुं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणः ॥ ३२

परिचतुर्दश अधिकचतुर्दश पञ्चदशेत्यर्थः । संख्ययाव्ययासन्नेति समासः समासान्तविधेरनित्यत्वाड्डजभावः । संख्येये इति प्राप्तस्य [illegible] ॥ ११ ॥ प्रकृतिनिर्घृणः स्वभावनिर्दयः ॥ १६ ॥ सानुक्रोशाः सदयाः महात्मानः उदारचित्ताः । विजिता इन्द्रियाणि च शत्रवश्च यैस्ते विजितेन्द्रियशत्रवः । अकार्यान्निवर्तिका चित्तवृत्तिः ह्रीः । धर्मो यमनियमादिस्तस्य आचार आचरणं धर्माचारः ॥ १८ ॥ कौन्तेयत्वं माद्रेयत्वं च [illegible] प्रत्येकं पञ्चस्वपि पर्याप्तं माद्रीनन्दनानिति ह्रस्वत्वमार्षम् ॥ १९ ॥ भक्तान् आराधनापरान् अनुरक्तान् प्रीतिमतः सुहृदः [illegible] उपकारकान् प्रियान् प्रीतिविषयान् हितेरतान् [illegible] प्रियाश्च ते हितेरताश्चेति विग्रहः । न विनश्येम विनाशं न प्राप्नुयाम । प्रार्थनायां लिङ् [illegible] इति प्राप्त ॥ २२ ॥ आप्तः [illegible] ॥ २४ ॥ अवदातानि शुद्धानि विद्या वैदिकी न तु लौकिक्यादि कर्म वेदार्थानुष्ठानं योनिः पूर्वप्रज्ञा [illegible]
यागादिहिंसासाधनस्य वेदार्थत्वेपि नावदातत्वमस्ति । अतो जन्मान्तरधर्मसंस्कारोपि शुद्ध एवापेक्षितः । तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा चेति श्रुतेश्च योनिशब्देन मुख्यं प्रज्ञाकारणं पूर्वप्रज्ञैव ग्राह्यं । अन्ये तु योनिशब्देन पितृमातृशुद्धिमाहुः । समास्या संगतिः [illegible] शास्त्राध्ययनमपि [illegible] गरीयान् । न गाथा गाथिनं शास्तीति केवलशास्त्रस्य प्रायेण अकिंचित्करत्वोक्तेः ॥ २७ ॥ निरारम्भाः अग्निहोत्राद्यकुर्वाणा अपि । हिशब्दः [illegible] विद्वांसः परोऽग्निहोत्रं न [illegible] इति श्रुतिं प्रसिद्धिं द्योतयति । सत्संगात्पुण्यार्जनं किमग्निहोत्रादिनेति भावः ॥ २८ ॥ न सिध्यन्ति सिद्धिं चित्तशुद्धिमन्ता न प्राप्नुवन्ति । धर्माचारहीनत्वात् ॥ २९ ॥ अविषयैः अगोचरैरपरिचितैरित्यर्थः । धर्मकामार्थसंभवाः धर्मादीनां संभव उत्पत्तिर्येभ्यस्ते । शिष्टानां वेदप्रामाण्यवादिनां संमताः ॥ ३१ ॥ समस्ताः एकीभूताः व्यस्ताः पृथक् पृथग्भूताः । श्रेयः स्वर्गादपि प्रशस्ततरमात्मसुखम् ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
धन्या वयं यदस्माकं स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः ।
असतोपि गुणानाहुर्ब्राह्मणप्रमुखाः प्रजाः ॥ ३३
तदहं भ्रातृसहितः सर्वान्विज्ञापयामि वः ।
नान्यथा तद्धि कर्तव्यमस्मत्स्नेहानुकम्पया ॥ ३४
भीष्मः पितामहो राजा विदुरो जननी च मे ।
सुहृज्जनश्च प्रायो मे नगरे नागसाह्वये ॥ ३५
ते त्वस्मद्धितकामार्थं पालनीयाः प्रयत्नतः ।
युष्माभिः सहिताः सर्वे शोकसंतापविह्वलाः ३६
निवर्तता गता दूरं समागमनशापिताः ।
स्वजने न्यासभूते मे कार्या स्नेहान्विता मतिः
एतद्धि मम कार्याणां परमं हृदि संस्थितम् ।
कृता तेन तु तुष्टिर्मे सत्कारश्च भविष्यति ॥ ३८
वैशंपायन उवाच ।
तथानुमन्त्रितास्तेन धर्मराजेन ताः प्रजाः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं हा राजन्निति संहताः ॥ ३९
गुणान्पार्थस्य संस्मृत्य दुःखार्ताः परमातुराः ।
अकामाः संन्यवर्तन्त समागम्याथ पाण्डवान् ४०
निवृत्तेषु तु पौरेषु रथानास्थाय पाण्डवाः ।
आजग्मुर्जाह्नवीतीरे प्रमाणाख्यं महावटम् ॥ ४१
ते तं दिवसशेषेण वटं गत्वा तु पाण्डवाः ।
ऊषुस्तां रजनीं वीराः संस्पृश्य सलिलं शुचि ४२
उदकेनैव तां रात्रिमूषुस्ते दुःखकर्शिताः ।
अनुजग्मुश्च तत्रैतान्स्नेहात्केचिद्द्विजातयः ॥ ४३
साग्नयोऽनग्नयश्चैव सशिष्यगणबान्धवाः ।
स तैः परिवृतो राजा शुशुभे ब्रह्मवादिभिः ४४
तेषां प्रादुष्कृताग्नीनां मुहूर्ते रम्यदारुणे ।
ब्रह्मघोषपुरस्कारः संजल्पः समजायत ॥ ४५
राजानं तु कुरुश्रेष्ठं ते हंसा मधुरस्वराः ।
आश्वासयन्तो विप्राग्र्याः क्षपां सर्वां व्यनोदयन्

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि० अरण्यपर्वणि पौरप्रत्यागमने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

## २

वैशंपायन उवाच ।
प्रभातायां तु शर्वर्यां तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
वनं यियासतां विप्रास्तस्थुर्भिक्षाभुजोऽग्रतः ॥ १
तानुवाच ततो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
वयं हि हृतसर्वस्वा हृतराज्या हृतश्रियः ॥ २
फलमूलामिषाहारा वनं गच्छाम दुःखिताः ।
वनं च दोषबहुलं बहुव्यालसरीसृपम् ॥ ३
परिक्लेशश्च वो मन्ये ध्रुवं तत्र भविष्यति ।
ब्राह्मणानां परिक्लेशो दैवतान्यपि सादयेत् ।
किं पुनर्मामितो विप्रा निवर्तध्वं यथेष्टतः ॥ ४

एवं पौरवचनैः सत्संगगुणाः असत्संगदोषाश्च उपादानाय हानाय च उक्ताः धन्या इत्यादिना । शत्रोरपि सुखं देयमिति दर्शयति पौरनिवर्तनप्रसङ्गेन ॥ ३३ ॥ स्नेहो वात्सल्यं तत्सहिता अनुकम्पा दया स्नेहानुकम्पा तया ॥ ३४ शोकसंतापविह्वलाः शोकः इष्टवियोगजं दुःखं तेन संतापः देहेन्द्रियादेरवसादः तेन विह्वलाः व्याकुलाः ॥ ३६ ॥ आगमनेत्यविभक्तिकं अस्माभिः सह आगमने शापिताः मम शपथं कारिता इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ समागम्य संपृच्छ्य ॥ ४० निवृत्तेषु पौरेष्वित्यादिना धिक्पापान् धृतराष्ट्रजानित्यन्तेन ग्रन्थेन धर्मात्मानमनिच्छन्तमपि बलात्सक्तोऽनुगृह्णन्तीत्युच्यते ॥ ४१ ॥ ऊषुः वासं चक्रुः ॥ ४२ ॥ उदकेनैव न त्वन्नेन ऊषुर्निन्युः ॥ ४३ ॥ साग्नयः दारैः सहिताः अनग्नयस्तदन्ये स्नातकब्रह्मचार्यादयः ॥ ४४ ॥ प्रादुष्कृताः प्रकटीकृताः अग्नयो यैस्ते रम्यत्वं तापविरहात्संध्यारागादिशोभातश्च । दारुणो रक्षःपिशाचादिसंचारकालत्वात् । ब्रह्मघोषपुरस्कार उच्चैः श्रुत्युपन्यासपूर्वकः संजल्पः परस्परसंवादः ॥ ४५ ॥ आश्वासयन्तः वनवासस्यापि श्रेयस्करत्वोपपादनेनेति शेषः ॥ ४६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

२

प्रभातायां अरुणोदयेन उद्दीपितायां । स्वन्याश्रममार्गे इति यावत् । यियासतां यातुं गन्तुमिच्छतां । भिक्षाभुजः ब्राह्मणाः ॥ १ ॥ धनं राज्यं तदुभयकृता श्रीः ब्राह्मणतर्पणादिरूपा शोभा अस्माकं नष्टेत्याह वयं हीति ॥ २ ॥ व्यालाः श्वापदाः वृकव्याघ्रादयः 'व्यालो भुजङ्गमे क्रूरे श्वापदे दुष्टदन्तिनि' इति विश्वः ॥ ३ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः ।
गतिर्या भवतां राजंस्तां वयं गन्तुमुद्यताः ।
नार्हस्यस्मान्परित्यक्तुं भक्तान्सद्धर्मदर्शिनः ॥ ५
अनुकम्पां हि भक्तेषु देवता ह्यपि कुर्वते ।
विशेषतो ब्राह्मणेषु सदाचारावलम्बिषु ॥ ६
युधिष्ठिर उवाच ।
ममापि परमा भक्तिर्ब्राह्मणेषु सदा द्विजाः ।
सहायविपरिभ्रंशस्त्वयं सादयतीव माम् ॥ ७
आहरेयुरिमे येऽपि फलमूलमृगांस्तथा ।
त इमे शोकजैर्दुःखैर्भ्रातरो मे विमोहिताः ॥ ८
द्रौपद्या विप्रकर्षेण राज्यापहरणेन च ।
दुःखार्दितानिमान्क्लेशैर्नाहं योक्तुमिहोत्सहे ॥ ९
ब्राह्मणा ऊचुः ।
अस्मत्पोषणजा चिन्ता माभूत्ते हृदि पार्थिव ।
स्वयमाहृत्य चान्नानि त्वानुयास्यामहे वयम् ॥ १०
अनुध्यानेन जप्येन विधास्यामः शिवं तव ।
कथाभिश्चाभिरम्याभिः सह रंस्यामहे वयम् ॥ ११
युधिष्ठिर उवाच ।
एवमेतन्न संदेहो रमेऽहं सततं द्विजैः ।
न्यूनभावात्तु पश्यामि प्रत्यादेशमिवात्मनः ॥ १२
कथं द्रक्ष्यामि वः सर्वान्स्वयमाहृत्य भोजिनः ।
मद्भक्त्या क्लिश्यतोऽनर्हान्धिक्पापान्धृतराष्ट्रजान् ॥ १३
वैशंपायन उवाच ।
इत्युक्त्वा स नृपः शोचन्निषसाद महीतले ।
तमध्यात्मरतो विद्वाञ्छौनको नाम वै द्विजः ॥ १४
योगे सांख्ये च कुशलो राजानमिदमब्रवीत् ॥ १५
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ १६
न हि ज्ञानविरुद्धेषु बहुदोषेषु कर्मसु ।
श्रेयोघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ १७
अष्टाङ्गां बुद्धिमाहुर्यां सर्वाश्रेयोभिघातिनीम् ।
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तां राजन्सा त्वय्यवस्थिता ॥ १८
अर्थकृच्छ्रेषु दुर्गेषु व्यापत्सु स्वजनस्य च ।
शारीरमानसैर्दुःखैर्न सीदन्ति भवद्विधाः ॥ १९
श्रूयतां चाभिधास्यामि जनकेन यथा पुरा ।
आत्मव्यवस्थानकरा गीताः श्लोका महात्मना ॥
मनोदेहसमुत्थाभ्यां दुःखाभ्यामर्दितं जगत् ।
तयोर्व्याससमासाभ्यां शमोपायमिमं शृणु ॥ २१
व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविवर्जनात् ।
दुःखं चतुर्भिः शारीरं कारणैः संप्रवर्तते ॥ २२
तदा तत्प्रतिकाराच्च सततं चाविचिन्तनात् ।
आधिव्याधिप्रशमनं क्रियायोगद्वयेन तु ॥ २३

भक्ता अपि भवन्त्वस्तु किं तर्हि तारित्यत आह— सद्धर्मदर्शिन इति। सतो ब्रह्मणो ये धर्माः सत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वादयस्तद्दनुभाविनः ॥ ५ ॥ अनुध्यानेन इष्टचिन्तनेन । जप्येन स्वस्त्ययनेनेत्यनेनद्वारा उपकारमुक्त्वा दृष्टद्वारापि तमाह— कथाभिरिति ॥ ११ ॥ प्रत्यादेशं धिक्कारम् ॥ १२ ॥ एवं ब्राह्मणभरणसामर्थ्याभावान्खिन्नं राजानं प्रति शोकमोहनिवर्तकं वचनं शौनक आहेत्याह । इत्युक्त्वेति । अध्यात्मं आत्मानं शरीरं अधिकृत्य प्रवृत्तं शास्त्रं अध्यात्मं वेदान्तस्तत्र रतः ॥ १४ ॥ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः सांख्यं प्रकृतिपुरुषविवेकस्तयोर्निष्णातः ॥ १५ ॥ शोके स्थीयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या स्थानशब्दो हेतुवचनः । शोको मनस्तापः भयं मरणात् त्रासः तयोर्हेतवः इष्टवियोगानिष्टसंयोगादयः तेषां सहस्राणि ॥ १६ ॥ ननु धर्मे सामर्थ्याभावादेव मम शोकमेव न तु राज्याच्च्युतिवनवासकृत इत्याशंक्याह न हीति । प्रवृत्तिरूपा यज्ञदानादिधर्मा ज्ञानविरोधी ज्ञाने हि 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति द्वैतोपमर्दः श्रूयते । कर्माणि तु द्वैतोपजीवनानि अतस्तयोर्विरोधः प्रसिद्ध इति हिशब्दो द्योतयति । पशुबीजवधादिनाऽत्यन्तदोषबहुलश्चाति एव श्रेयोघाती मोक्षविरोधी । तत्र न सज्जन्ते नात्यन्तमाभिनिवेशिनो भवन्ति ॥ १७ ॥ एवं कर्मनिष्ठां निन्दित्वा योगनिष्ठां प्राशस्त्यं अष्टाङ्गामिति 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि' इति योगसूत्रोक्तानि संकल्पसंवादादीनि वा वक्ष्यमाणानि अष्टौ अङ्गानि यस्याः सा बुद्धिस्तत्त्वमस्यादिवाक्यजा प्रज्ञा । या सर्वं कृत्स्नं अश्रेयो बन्धाज्ञानं तदभिघातिनी श्रुतिस्मृतिभ्यां समायुक्ता सम्यक् दृढीकृता । सा त्वयि अवस्थिताऽस्मत्संनिधानादिति भावः ॥ १८ ॥ अर्थकृच्छ्रेषु धननाशेषु । अशनवसनाद्यभावात् दुर्गेषु दुस्तरेषु शारीरदुःखेषु विपरीतास्वापत्सु स्त्रीकर्षणादिषु मनोदुःखेषु च उपस्थितेषु तः सन्तो नावसीदन्ति । शारीरं दुःखं तितिक्षया मानसं विवेकेन च नाशयितुं समर्था इत्यर्थः ॥ १९ ॥ आत्मव्यवस्थानकराः मनःस्थैर्यहेतवः ॥ २० ॥ व्याससमासाभ्यां विस्तरसंक्षेपाभ्याम् ॥ २१ ॥ व्याधिः प्रसिद्धः अनिष्टं कण्टकादि श्रमो व्यायामः इष्टं स्त्र्यादि ॥ २२ ॥ प्रतिकारात् औषधोपानत्स्वास्थ्याद्यादिभिस्तत्प्रशमनात् । आधिव्याधिप्रशमनं अविचिन्तनाच्च । क्वचिद्विषयेऽत्यन्तनिमग्नचित्तस्य न मनोव्यथा व्याधिप्रभवा वेदना च भवतीति प्रसिद्धं इदमेव क्रियायोगद्वयम् ॥ २३ ॥

मतिमन्तो ह्यतो वैद्याः शमं प्रागेव कुर्वते ।
मानसस्य प्रियाख्यानैः संभोगोपनयैर्नृणाम् ॥ २४
मानसेन हि दुःखेन शरीरमुपतप्यते ।
अयःपिण्डेन तप्तेन कुम्भसंस्थमिवोदकम् ॥ २५
मानसं शमयेत्तस्माज्ज्ञानेनाग्निमिवाम्बुना ।
प्रशान्ते मानसे ह्यस्य शारीरमुपशाम्यति ॥ २६
मनसो दुःखमूलं तु स्नेह इत्युपलभ्यते ।
स्नेहात्तु सज्जते जन्तुर्दुःखयोगमुपैति च ॥ २७
स्नेहमूलानि दुःखानि स्नेहजानि भयानि च ।
शोकहर्षौ तथायासः सर्वं स्नेहात्प्रवर्तते ॥ २८
स्नेहाद्भावोऽनुरागश्च प्रजज्ञे विषये तथा ।
अश्रेयस्कावुभावेतौ पूर्वस्तत्र गुरुः स्मृतः ॥ २९
कोटराग्निर्यथाऽशेषं समूलं पादपं दहेत् ।
धर्मार्थौ तु तथाल्पोऽपि रागदोषो विनाशयेत् ३०
विप्रयोगेन तु त्यागी दोषदर्शी समागमे ।
विरागं भजते जन्तुर्निर्वैरो निरवग्रहः ॥ ३१
तस्मात्स्नेहं न लिप्सेत मित्रेभ्यो धनसंचयात् ।
स्वशरीरसमुत्थं च ज्ञानेन विनिवर्तयेत् ॥ ३२
ज्ञानान्वितेषु युक्तेषु शास्त्रज्ञेषु कृतात्मसु ।
न तेषु सज्जते स्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम् ॥ ३३
रागाभिभूतः पुरुषः कामेन परिकृष्यते ।
इच्छा संजायते तस्य ततस्तृष्णा विवर्धते ॥ ३४
तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता ।
अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी ॥ ३५
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्
अनाद्यन्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृणाम् ।
विनाशयति भूतानि अयोनिज इवानलः ॥ ३७
यथैधः स्वसमुत्थेन वह्निना नाशमृच्छति ।
तथाऽकृतात्मा लोभेन सहजेन विनश्यति ॥ ३८
राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि ।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ॥ ३९
तथा ह्यामिषमाकाशे पक्षिभिः श्वापदैर्भुवि ।
भक्ष्यते सलिले मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ४०
अर्थ एव हि केषांचिदनर्थं भजते नृणाम् ।
अर्थश्रेयसि चासक्तो न श्रेयो विन्दते नरः ॥ ४१
तस्मादर्थागमाः सर्वे मनोमोहविवर्धनाः ।
कार्पण्यं दर्पमानौ च भयमुद्वेग एव च ॥ ४२

मतीति । अतः वक्ष्यमाणाद्धेतोः वैद्याः विद्यावन्तः प्रागेव मानसस्य शमं कुर्वते । प्रियाख्यानैः अनुकूलवचनैः । बहुलाभदर्शनैर्धनधान्यादिजं । संभोगोपनयैः स्त्र्यादिसमर्पणैः कामादिजम् ॥ २४ ॥ मानसस्य प्राक् प्रशमने हेतुमाह मानसेनेति ॥ २५ ॥ स्नेहो रागः सज्जते प्रवर्तते । प्रवृत्त्या च दुःखयोगमुपैति ॥ २७ ॥ आयासः क्लेशः स्नेहात् रागात् ॥ २८ ॥ भावः भावना संकल्पसंज्ञा अनुरागः पश्चाद्भाविनी प्रीतिः । अयं भावः । दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः इति न्यायसूत्राभ्यां अज्ञानात्संकल्पस्ततो विषयस्तनस्तत्र प्रीतिस्ततस्तल्लाभाय प्रवृत्तिस्ततो जन्म ततः सुखदुःखे ततो रागद्वेषवासना ततः पुनः संकल्प इति क्रमः तत्र मूलभूतो रागः स्नेहशब्देनोक्तः स भावस्य हेतुः । ततो विषयासिद्ध्युत्तरं जायमानो रागोऽनुराग इति । तत्र भावानुरागयोर्मध्ये पूर्वो भावः अत्यन्तमश्रेयस्करः तस्मात्संकल्पत्याग एव मुख्यं साधनं तथा च वक्ष्यति । 'यत्किंचिदपि संकल्प्य नरो दुःखे निमज्जति । न किंचिदपि संकल्प्य सुखमक्षय्यमश्नुते' इति ॥ २९ ॥ कोटरेति । राग एव दोषः ॥ ३० ॥ विप्रयोगे विषयेण सह वियोगे त्यागी न किं तु सत्यपि समागमे यो विषयदोषदर्शी स एव त्यागी । स एव च विरागं भजते । निर्वैरश्च द्वेषाभावान्निरवग्रहः प्रतिबन्धशून्यः ॥ ३१ ॥ मित्राणि धनानि च प्राप्य तेषु स्नेहं न लिप्सेत न कामयेत । मित्रेभ्य इत्यादिके ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ । किं च स्वशरीरादिभ्यः समुत्थं उत्पन्नमपि स्नेहं ज्ञानेन भोग्यानामवस्तुत्वानित्यत्वज्ञानेन नाशयेत् ॥ ३२ ॥ ज्ञानान्वितेषु नित्यानित्यविवेकवत्सु । युक्तेषु नित्यवस्तुप्राप्त्यै उद्युक्तेषु तत एव शास्त्रज्ञेषु कृतात्मसु ध्यानेन संस्कृतचित्तेषु तेषु प्रसिद्धेषु स्नेहो रागो न सज्जते न संगं प्राप्नोति ॥ ३३ ॥ रागः रम्यवस्तुदर्शने चित्तस्योत्फुल्लता कामस्तल्लिप्सा । इच्छालब्धे तस्मिन् रुच्यतिशयात्पुनस्तदभिलाषः पुनःपुनस्तल्लाभेऽप्यतृप्तिस्तृष्णा ॥ ३४ ॥ जीर्यतः जरामृत्युग्रस्तस्य ॥ ३६ ॥ अनाद्यन्ता तन्मूलवासनानामनादित्वात् अन्तर्देहः बाह्यतरो देहोऽन्नमयः बाह्यो लिङ्गशरीरं अंतर्देहो मनस्तद्गता अयः तप्तायःपिण्डे निजः स्वरूपस्थः अनलो वह्निः अयोनिजमिवानलमिति पाठे तु नास्ति अलं पर्याप्तिर्यस्य तत् इन्धनसहस्रेणापि तेजोऽन्याल्पमिति विशेषणमध्याहृत्य योज्यम् ॥ ३७ ॥ अकृतात्मा अनिर्जितचेताः ॥ ३८ ॥ केषांचित् मूढानां धर्मार्थतामप्यर्थो न आत्यन्तिकश्रेयस्कर इत्याह अर्थश्रेयसि अर्थसाध्ये श्रेयसि ज्योतिष्टोमादौ ॥ ४१ ॥ कार्पण्यं अर्थव्ययोपस्थितौ दैन्यं दर्पः परपरिभवेच्छा । मानः अहमेव श्रेष्ठः इति मतिः भयं स्वोच्छेदशङ्का उद्वेगः शङ्काकृतं चित्तस्यानवस्थितत्वम् ॥ ४२ ॥

अर्थजानि विदुः प्राज्ञा दुःखान्येतानि देहिनाम् ।
अर्थस्योत्पादने चैव पालने च तथा क्षये ॥ ४३
सहन्ति च महद्दुःखं घ्नन्ति चैवार्थकारणात् ।
अर्था दुःखं परित्यक्तुं पालिताश्चैव शत्रवः ॥ ४४
दुःखेन चाधिगम्यन्ते तस्मान्नाशं न चिन्तयेत् ।
असंतोषपरा मूढाः संतोषं यान्ति पण्डिताः ॥४५
अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम् ।
तस्मात्संतोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः ॥ ४६
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं रत्नसंचयः ।
ऐश्वर्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥ ४७
त्यजेत संचयांस्तस्मात्तज्जान्क्लेशान्सहेत च ।
न हि संचयवान्कश्चिद्दृश्यते निरुपद्रवः ।
अतश्च धार्मिकैः पुंभिरनीहार्थः प्रशस्यते ॥ ४८
धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम् ॥४९
युधिष्ठिरैवं सर्वेषु न स्पृहां कर्तुमर्हसि ।
धर्मेण यदि ते कार्यं विमुक्तेच्छो भवार्थतः ॥५०

युधिष्ठिर उवाच ।

नार्थोपभोगलिप्सार्थमियमर्थेप्सुता मम ।
भरणार्थं तु विप्राणां ब्रह्मन्काङ्क्षे न लोभतः ॥ ५१
कथं ह्यस्मद्विधो ब्रह्मन्वर्तमानो गृहाश्रमे ।
भरणं पालनं चापि न कुर्यादनुयायिनाम् ॥ ५२
संविभागो हि भूतानां सर्वेषामेव दृश्यते ।
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिना ॥ ५३
तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ५४
देयमार्तस्य शयनं स्थितश्रान्तस्य चासनम् ।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम् ॥५५
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्यात्सुभाषिताम् ।
उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः ।
प्रत्युत्थायाभिगमनं कुर्यान्न्यायेन चार्चनम् ५६
अग्निहोत्रमनड्वांश्च ज्ञातयोतिथिबान्धवाः ।
पुत्रा दाराश्च भृत्याश्च निर्दहेयुरपूजिताः ॥ ५७
आत्मार्थं पाचयेन्नान्नं न वृथा घातयेत्पशून् ।
न च तत्स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्न निर्वपेत् ॥ ५८
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातश्च दीयते ॥ ५९
विघसाशी भवेत्तस्मान्नित्यं चामृतभोजनः ।
विघसं भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथाऽमृतम् ॥ ६०
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम् ।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ ६१
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ६२
एवं यो वर्तते वृत्तिं वर्तमानो गृहाश्रमे ।
तस्य धर्मं परं प्राहुः कथं वा विप्र मन्यसे ॥ ६३

शौनक उवाच ।

अहो बत महत्कष्टं विपरीतमिदं जगत् ।
येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यति ॥ ६४
शिश्नोदरकृतेऽप्राज्ञः करोति विघसं बहु ।
मोहरागवशाक्रान्त इन्द्रियार्थवशानुगः ॥ ६५

सहन्ति सहन्ते ॥ ४४ ॥ अर्थाः दुःखं प्रयच्छन्ति यदि परित्यक्तुमिष्यन्ते तस्मात् नाशं अर्थार्जनादिजं दुःखं न चिन्तयेत् ॥ ४५ ॥ पिपासायाः तृष्णायाः ॥ ४६ ॥ न गृध्येत् इच्छां न कुर्यात् तत्र यौवनादौ ॥ ४७ ॥ संचयान् अर्थान् तज्जान् अर्थत्यागजान् अनीहार्थः अप्रार्थितार्थः ॥ ४८ ॥ न स्पर्शनं अस्पर्शनं सुप्सुपेति नशब्देन नकेनचिदित्यादिवत्समासः ॥ ४९ ॥ एवं सर्वेषु अर्थवत् यौवनादिषु अर्थतः धनात् ॥ ५० ॥ अर्थोपभोगः विषयोपभोगः अर्थेप्सुता धनेप्सुता । 'अर्थः प्रकारे विषये वित्तकारणवस्तुषु' इति विश्वः । आत्मोपभोगेति पाठो निर्मूलः ॥ ५१ ॥ भूतानामिति । देवपितृमनुष्याणामुपलक्षणं एते पञ्च महायज्ञाः । अपचमानेभ्यः 'यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ' इति स्मृतेर्यतिब्रह्मचारिभ्यः ॥ ५३ ॥ तृणान्यासनार्थानि ॥ ५४ ॥ स्थितश्रान्तस्य स्थितः ऊर्ध्वं स्थितः तत्सहितस्य श्रान्तस्य च आसनं तृणमयं दद्यादतिथये इति शेषः ॥ ५५ ॥

न्यायेन वर्णाश्रमानुरूप्येण ॥ ५६ ॥ वृथा श्राद्धयज्ञादिनिमित्तं विना । 'देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक्' इति स्मृतेः यत् अन्नं न निर्वपेत् न दद्यात् देवपितृभूतमनुष्येभ्य इति शेषः ॥ ५८ ॥ विश्वं सर्वजातीयं प्राणिजातं देवो देवता यस्मिन् तत् विश्वदेवं स्वार्थे तद्धितः वैश्वदेवं नाम कर्म ॥ ५९ ॥ अपरिक्लिष्टं कार्पण्यं विना अध्वनि वर्तते मार्गस्थाय ॥ ६२ ॥ धर्मं परं गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्तीति भावः ॥ ६३ ॥ अपत्रपते निर्लज्ज इति अपवादं लभते ॥ ६४ ॥ अप्राज्ञ इति छेदः प्रकर्षेण अज्ञः प्राज्ञ इति वा शिश्नोदरकृते इति दिव्याङ्गनाभोगलिप्सया दिव्यरूपादिभोगलिप्सया च विघसं देवताद्युपयुक्तशेषं कामुको बहु करोति मोहः आत्माज्ञानं रागस्तज्जे प्रपञ्चे प्रीतिः वशा इच्छा ऐश्वर्यं वा तैः आक्रान्तः 'वशमिच्छाप्रभुत्वयोः' इति विश्वः । इन्द्रियार्थाः शब्दादयस्तेषां वशः अयत्तता तदनुगः तदर्थी ॥ ६५ ॥

ह्रियते बुध्यमानोपि नरो हारिभिरिन्द्रियैः ।
विमूढसंज्ञो दुष्टाश्वैरुद्भ्रान्तैरिव सारथिः ॥ ६६
षडिन्द्रियाणि विषयं समागच्छन्ति वै यदा ।
तदा प्रादुर्भवत्येषां पूर्वसंकल्पजं मनः ॥ ६७
मनो यस्येन्द्रियस्येह विषयान्याति सेवितुम् ।
तस्यौत्सुक्यं संभवति प्रवृत्तिश्चोपजायते ॥ ६८
ततः संकल्पबीजेन कामेन विषयेषुभिः ।
विद्धः पतति लोभाग्नौ ज्योतिर्लोभात्पतङ्गवत् ६९
ततो विहारैराहारैर्मोहितश्च यथेप्सया ।
महामोहे सुखे मग्नो नात्मानमवबुध्यते ॥ ७०
एवं पतति संसारे तासु तास्विह योनिषु ।
अविद्याकर्मतृष्णाभिर्भ्राम्यमाणोथ चक्रवत् ॥ ७१
ब्रह्मादिषु तृणान्तेषु भूतेषु परिवर्तते ।
जले भुवि तथाकाशे जायमानः पुनः पुनः ॥ ७२
अबुधानां गतिस्त्वेषा बुधानामपि मे शृणु ।
ये धर्मे श्रेयसि रता विमोक्षरतयो जनाः ॥ ७३
तदिदं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च ।
तस्माद्धर्मानिमान्सर्वान्नाभिमानात्समाचरेत् ७४
इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः ।
अलोभ इति मार्गोयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ७५
अत्र पूर्वश्चतुर्वर्गः पितृयाणपथे स्थितः ।
कर्तव्यमिति यत्कार्यं नाभिमानात्समाचरेत्॥७६
उत्तरो देवयानस्तु सद्भिराचरितः सदा ।
अष्टाङ्गेनैव मार्गेण विशुद्धात्मा समाचरेत् ॥ ७७
सम्यक्संकल्पसंबन्धात्सम्यक्चेन्द्रियनिग्रहात् ।
सम्यग्व्रतविशेषाच्च सम्यक् गुरुसेवनात् ॥ ७८
सम्यगाहारयोगाच्च सम्यक्चाध्ययनागमात् ।
सम्यक्कर्मोपसंन्यासात्सम्यक्चित्तनिरोधनात् ७९
एवं कर्माणि कुर्वन्ति संसारविजिगीषवः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता ऐश्वर्यं देवता गताः ॥ ८०
रुद्राः साध्यास्तथादित्या वसवोथ तथाश्विनौ ।
योगैश्वर्येण संयुक्ता धारयन्ति प्रजा इमाः ॥ ८१
तथा त्वमपि कौन्तेय शममास्थाय पुष्कलम् ।
तपसा सिद्धिमन्विच्छ योगसिद्धिं च भारत॥८२

हारिभिः हरणशीलैः एवं वर्णाश्रमाभिमानपूर्वकं यज्ञादानुतिष्ठतामात्मस्वरूपाज्ञानात्तत्कर्मफलतया उपस्थितेषु विषयेषु रागवतामिन्द्रियैर्विषयान्प्रतिनीतानां तत्र निमग्नचित्ताना परमार्थस्यात्यन्तास्फुरणलक्षणं विमूढसंज्ञत्वं भवतीत्युक्तम् ॥६६॥ तदुपपादयति षडिति । दीपप्रभावत् तैजसं मनः नेत्रादिद्वारा तत्तद्विषयं प्रति गत्वा तदावरकमज्ञानमभिभाव्य तं विषयं प्रकाशयति यदा तदैषां विषयविदां मनः तत्तद्विषयहानोपादानापेक्षा लोचनाख्यमननात्मकमन्तःकरणं प्रादुर्भवति विशेषेण व्यक्तं भवति । तत्र पूर्वसंकल्पजं यथापूर्वसंस्कारं । हानियुपादेयबुद्धिरुत्तमज्ञानबुद्धिर्विपरीता वा बुद्धिर्भवति सोयं मनःप्रादुर्भावः ॥ ६७ ॥ एस्मिंश्च जाते किं स्यात्तदाह मनो यस्येति यस्य पुंसः मनः इन्द्रियस्य इन्द्रियाणां विषयान् शब्दादीन् सेवितुं याति उच्चलति तस्य तद्विषयभोगार्थं औत्सुक्यं विलम्बासहत्वं भवति च ततः प्रवृत्तिर्जायते ॥६८॥ प्रवृत्तश्च लोभाग्नौ मोहाग्नौ पतति यतः कामेन विषयबाणैर्निहतः अतिरागान्मुह्यतीत्यर्थः ॥ ६९ ॥ महामोहे अन्धे तमसि ॥ ७० ॥ अविद्या आत्माज्ञानं ततः परमानन्दतिरोधानात्क्षुद्रानन्दप्राप्तये कर्म । ततस्तत्फलभोगेष्ववितृप्तिस्तृष्णा ॥ ७१ ॥ अबुधानां गृहस्थानां विघसाशनमेव परमो धर्म इति मन्वानानां गतिः कर्मनिष्ठाफलं उक्तं । बुधानां तेभ्योऽन्येषां संन्यासिनामपि गतिं मे मत्तः शृणु । धर्मे श्रेयसि प्रवृत्तिधर्मोपि प्रशस्यः निवृत्तिधर्मः प्रशस्यतरः तस्मिन् रताः अत एव विमोक्षरतयः ॥७३॥ तदिदमिति । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः' इति । 'त्यजतैव हि तज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्परं पदम्' इति च द्विविधा अपि श्रुतयः सन्ति तत्र येऽभिमानात्कर्म कुर्वते ते पूर्वोक्तरीत्यान्धं तमो विशन्ति । ये च शुद्धाः संन्यासिनस्ते कृतकृत्या एव भवन्ति तत्र तु मध्यमस्य गतिरियमित्याह तस्मादिति । तथा च वक्ष्यति । 'एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्' इति ॥७४॥ पितृयाणपथे धूमादिमार्गे आवृत्तिफले कर्तव्यं अवश्यानुष्ठेयं नित्याग्निहोत्रसंध्योपासनादि अभिमानात्संगात् ॥ ७६ ॥ उत्तरश्चतुर्वर्गः सत्यं दमः क्षमा अलोभश्च देवयानोऽर्चिरादिमार्गोऽनावृत्तिफलः अष्टाङ्गेन वक्ष्यमाणसंकल्पसंबन्धाद्यष्टाङ्गवता मार्गेण प्रकारेण यत्कर्तव्यं तदाचरेदिति पूर्वेण संबन्धः । शुद्धात्मा शुद्धचित्तः ॥ ७७ ॥ संकल्पो मानसं कर्म तस्य संबन्धो निरोधः तेन अन्तरिन्द्रियनिग्रहाख्यः शम उक्तः । इन्द्रियनिग्रहो दमः । व्रतविशेषः अहिंसादीनि व्रतानि तेषां विशेषः सार्वभौमत्वं । सर्वदेशे कालेषु च सर्वप्रकारेण हिंसात्याग इत्यर्थः ॥ ७८ ॥ आहारो हितमितमेध्याशनं तस्य योगात् कर्मणां विधिवत् त्यागः ततश्चित्तनिरोधनात् ॥७९॥ कर्म-

पितृमात्रमयी सिद्धिः प्राप्ता कर्ममयी च ते ।
तपसा सिद्धिमन्विच्छ द्विजानां भरणाय वै ॥ ८३

सिद्धा हि यद्यदिच्छन्ति कुर्वते तदनुग्रहात् ।
तस्मात्तपः समास्थाय कुरुष्वात्ममनोरथम् ॥ ८४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अरण्यप० पाण्डवानां प्रव्रजने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

वैशंपायन उवाच ।

शौनकेनैवमुक्तस्तु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पुरोहितमुपागम्य भ्रातृमध्येऽब्रवीदिदं ॥ १

प्रस्थितं मानुयान्तीमे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
न चास्मि पोषणे शक्तो बहुदुःखसमन्वितः ॥ २

परित्यक्तुं न शक्तोस्मि दानशक्तिश्च नास्ति मे ।
कथमत्र मया कार्यं तद्ब्रूहि भगवन्मम ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

मुहूर्तमिव स ध्यात्वा धर्मेणान्विष्य तां गतिं ।
युधिष्ठिरमुवाचेदं धौम्यो धर्मभृतां वरः ॥ ४

धौम्य उवाच ।

पुरा सृष्टानि भूतानि पीड्यन्ते क्षुधया भृशम् ।
ततोनुकम्पया तेषां सविता स्वपिता यथा ॥ ५

गत्वोत्तरायणं तेजो रसानुद्धृत्य रश्मिभिः ।
दक्षिणायनमावृत्तो महीं निविशते रविः ॥ ६

क्षेत्रभूते तत स्तस्मिन्नोषधीरोषधीपतिः ।
दिवस्तेजः समुद्धृत्य जनयामास वारिणा ॥ ७

निषिक्तश्चन्द्रतेजोभिः स्वयोनौ निर्गते रविः
ओषध्यः षड्रसा मेध्यास्तदन्नं प्राणिनां भुवि ॥ ८

एवं भानुमयं ह्यन्नं भूतानां प्राणधारणम् ।
पितैष सर्वभूतानां तस्मात्तं शरणं व्रज ॥ ९

राजानो हि महात्मानो योनिकर्मविशोधिताः ।
उद्धरन्ति प्रजाः सर्वास्तप आस्थाय पुष्कलम् ॥ १०

भीमेन कार्तवीर्येण वैन्येन नहुषेण च ।
तपोयोगसमाधिस्थैरुद्धृता ह्यापदः प्रजाः ॥ ११

तथा त्वमपि धर्मात्मन्कर्मणा च विशोधितः ।
तप आस्थाय धर्मेण द्विजातीन्भर भारत ॥ १२

जनमेजय उवाच ।

कथं कुरूणामृषभः स तु राजा युधिष्ठिरः ।
विप्रार्थमाराधितवान्सूर्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १३

वैशंपायन उवाच ।

शृणुष्वावहितो राजञ्शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
क्षणं च कुरु राजेन्द्र संप्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १४

धौम्येन तु यथापूर्वं पार्थाय सुमहात्मने ।
नामाष्टशतमाख्यानं तच्छृणुष्व महामते ॥ १५

मयी यज्ञयुद्धादिकर्मरूपराभनप्रधानासिद्धिः । पितृमातृमयी 'द्यौः पिता पृथिवी माता' इति श्रुतेः। परलोकइहलोकफलप्रधाना सा त्वया प्राप्तैव । चकार एवशब्दार्थः। तपसा देवताभ्यानजपादिना या सिद्धिस्ताम् ॥८३॥ अनुग्रहात्तपस इति शेषः ॥ ८४ ॥ इत्यारण्यके प० नै० भा० द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

३

शौनकेनेति ॥ १ ॥ धर्मेण योगमयेन न तु कर्मणा ॥ ४ ॥ सूर्याराधनं विवक्षुः सूर्यस्य सार्वात्म्यं तावदाह प्ररोचनार्थं । सविता प्रसविता उत्पादकः परमात्मेत्यर्थः ॥५॥ तेजोरसान् जलानि उद्धृत्य आदाय महीं निविशते स्वोष्मणा महीं वासयति ॥ ६ ॥ ओषधीपतिश्चन्द्रः दिवस्तेजः अन्तरिक्षगतं मेघाकारेण परिणतं तेजः उद्धृत्य मेघानुद्भाव्येत्यर्थः जनयामास तदुत्थेन वारिणा ओषधीः ॥ ७ ॥ स्वयोनौ बीजे निर्गते अङ्कुरादिरूपेण निष्पन्ने सति रविरेव ओषधीरूपो भवति । तदन्नं ताभ्य ओषधीभ्योऽन्नं अदनीयं धान्यं तच्च पुनरग्निसोमयोगादङ्कुरादिक्रमेण धान्ययोनिरिति रविरेवान्नं अन्नयोनित्वात् । अन्ये तु यदा दर्शे चन्द्रः स्वयोनौ सूर्ये एकतां गच्छति तदा चन्द्रतेजोभिरमृतमयैर्निषिक्तो भवति ततश्चन्द्ररूपेण बहिर्निर्गत्य ओषधीराप्याययति तेनान्नं भवतीत्याहुः ॥ ८ ॥ तपोयोगः व्रतस्वीकारः तत्पूर्वकः समाधिर्ध्यानं तत्स्थैः तन्निष्ठैः धर्मेण ध्यानेन ॥ १२ ॥

धौम्य उवाच ।

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः ।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥ १६
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् ।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥ १७
इन्द्रो विवस्वान्दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वै वरुणो यमः ॥ १८
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः ।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥ १९
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाश्रयः ।
कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥ २०
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ २१
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥ २२
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥ २३
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता ॥ २४
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः ।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥ २५
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥ २६
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः २७
एतद्वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ।
नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत्स्वयंभुवा ॥ २८

सुरगणपितृयक्षसेवितं
ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् ।
वरकनकहुताशनप्रभं
प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥ २९
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठे-
त्स पुत्रदारान्धनरत्नसंचयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा
धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥ ३०
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
प्रकीर्तयेच्छुचि सुमनाः समाहितः ।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
ल्लभेत कामान्मनसा यथेप्सितान् ॥ ३१

सूर्योऽर्यमेति । अत्र सूर्योपाधिकं ब्रह्म सर्वकर्तृत्वसर्वज्ञत्वसर्वात्मत्वादिभिर्धर्मैः स्तूयते तद्यथा सूर्यः सूते आलोकमिति सूर्यः १ अर्यमा गतिमत्त्वात् २ भगः सर्वैश्वर्यसंपन्नत्वात् ३ त्वष्टा विश्वशिल्पकरत्वात् ४ पूषा पोषकः ५ अर्कः अर्चनीयः ६ सविता जगत्प्रसवनात् ७ रविः वेदत्रयीशब्दमयः ८ गभस्तिमान् सहस्रकिरणः ९ अजोऽनादिः १० कालः मुहूर्तादिः तत्प्रवर्तकत्वात् ११ मृत्युः प्राणहर्ता १२ धाता जगत्कर्ता १३ प्रभाकरः दीप्तिकरः १४।१६ पृथिव्यादिनामभिः सार्वात्म्यमस्यैव प्रपञ्च्यते । परायणं मूलकारणम् २० ॥१७॥२८ शुचिरग्निः २९ शौरिः कृष्णः ३० ॥१८॥ ४० तेजसां पतिः सूर्यः ४१ धर्मध्वजो धर्मप्रधानः ४२ । ४३ वेदाङ्गः वेदशरीरः त्रयीमयत्वात् ४४ । ४५ ॥ १९ ॥ ४८ कलिः सर्वमलाश्रय इत्येकं नाम ४९ ॥ २० ॥ अश्वत्थः संसारवृक्षः स एव संवत्सरकरः न तु पृथक् पदार्थः कालो नाम कश्चिदस्ति कालोपाधिभूतं द्रव्यमेव स्वस्य अतीतानागतादिव्यवहारहेतुर्भवतीति भावः ५६ कालचक्रः कालप्रवर्तको यो विभावसुः स इत्येकं नाम ५७ पुरुषः पूर्षु कर्मेन्द्रियपञ्चकज्ञानेन्द्रियपञ्चकमनआदिचतुष्टयप्राणादिपञ्चकभूतपञ्चककामकर्माविद्याख्यासु वसतीति पुरुषः जीवरूपः ५८ स एव शाश्वतः आद्यन्तशून्यः ५९ योगी कर्मज्ञानाधिकारी ६० व्यक्ताव्यक्तः कार्यकारणात्मा ६१ सनातनो निरुपाधिः ६२ ॥ २१ ॥ ६७ तमोनुदः अज्ञानहन्ता मोक्षद इत्यर्थः ६८ अंशः अंशयति विभाजयति कर्मफलानीत्यंशः ६९ । ७० जीवनः जलवज्जीवनहेतुः ७१।७२॥२२॥ संवर्तकः प्रलयकालिको वह्निरित्येकम् ७७॥२३॥ सर्वेषां धातूनां त्वगादीनां देहगतानां निषेचिता सेचक आप्यायकः ८८ ॥२४॥ मनोरूपः सुपर्ण इत्येकं ८९ भूतादिरहंकारः ९० आदिदेवोऽदितेः सुत इत्येकं नाम विष्णुरित्यर्थः ९५ ॥ २५ ॥ पितामाता पितामहः द्यावापृथिव्योः पिता हिरण्यगर्भस्तस्यापि पितेत्यर्थः ९८ स्वर्गद्वारं ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारं 'सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति' इति श्रुतेः तदेव प्रजाद्वारं 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः' इति क्रमेण इहपरलोकप्रापक इत्यर्थः ९९ मोक्षद्वारं क्रममुक्तिस्थानभूतं त्रिविष्टपं स्वर्गभूमिरित्येकम् १०० ॥ २६ ॥ मैत्रेयः मित्रेषु सर्वभूताभयप्रदेषु साधुर्मैत्रेयः १०७ करुणान्वित इति पतितव्रात्यादीनामपि त्रातेत्यर्थः १०८ ॥ २७ ॥ शुचिश्चासौ सुमनाश्चेति कर्मधारयः । शोक एव दवाग्निर्यस्मिंस्तस्मात्सागरात् सागरवदपारात्संसारात् ॥ ३१ ॥

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु धौम्येन तत्कालसदृशं वचः ।
विप्रत्यागसमाधिस्थः संयतात्मा दृढव्रतः ॥ ३२
धर्मराजो विशुद्धात्मा तप आतिष्ठदुत्तमम् ।
पुष्पोपहारैर्बलिभिरर्चयित्वा दिवाकरम् ॥ ३३
सोऽवगाह्य जलं राजा देवस्याभिमुखोऽभवत् ।
योगमास्थाय धर्मात्मा वायुभक्षो जितेन्द्रियः ३४
गाङ्गेयं वार्युपस्पृश्य प्राणायामेन तस्थिवान् ।
शुचिः प्रयतवाग्भूत्वा स्तोत्रमारब्धवांस्ततः ॥३५

युधिष्ठिर उवाच ।

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् ।
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम् ३६
त्वं गतिः सर्वसाङ्ख्यानां योगिनां त्वं परायणम् ।
अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम् ॥ ३७
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते ।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया ३८
त्वामुपस्थाय काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
स्वशाखाविहितैर्मन्त्रैरर्चन्त्यृषिगणार्चितम् ॥ ३९
तव दिव्यं रथं यान्तमनुयान्ति वरार्थिनः ।
सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षगुह्यकपन्नगाः ॥ ४०
त्रयस्त्रिंशच्च वै देवास्तथा वैमानिका गणाः ।
सोपेन्द्राः समहेन्द्राश्च त्वामिष्ट्वा सिद्धिमागताः
उपयान्त्यर्चयित्वा तु त्वां वै प्राप्तमनोरथाः ।
दिव्यमन्दारमालाभिस्तूर्णं विद्याधरोत्तमाः ॥ ४२
गुह्याः पितृगणाः सप्त ये दिव्या ये च मानुषाः ।
ते पूजयित्वा त्वामेव गच्छन्त्याशु प्रधानताम् ४३

वसवो मरुतो रुद्रा ये च साध्या मरीचिपाः ।
वालखिल्यादयः सिद्धाः श्रेष्ठत्वं प्राणिनां गताः
सब्रह्मकेषु लोकेषु सप्तस्वप्यखिलेषु च ।
न तद्भूतमहं मन्ये यदर्कादतिरिच्यते ॥ ४५
सन्ति चान्यानि सत्त्वानि वीर्यवन्ति महान्ति च ।
न तु तेषां तथा दीप्तिः प्रभावो वा यथा तव ॥४६
ज्योतींषि त्वयि सर्वाणि त्वं सर्वज्योतिषां पतिः ।
त्वयि सत्यं च सत्त्वं च सर्वे भावाश्च सात्त्विकाः
त्वत्तेजसा कृतं चक्रं सुनाभं विश्वकर्मणा ।
देवारीणां मदो येन नाशितः शार्ङ्गधन्वना ॥ ४८
त्वमादायांशुभिस्तेजो निदाघे सर्वदेहिनाम् ।
सर्वौषधिरसानां च पुनर्वर्षासु मुञ्चसि ॥ ४९
तपन्त्यन्ये दहन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये तथा घनाः ।
विद्योतन्ते प्रवर्षन्ति तव प्रावृषि रश्मयः ॥ ५०
न तथा सुखयत्यग्निर्न प्रावारा न कम्बलाः ।
शीतवातार्दितं लोकं यथा तव मरीचयः ॥ ५१
त्रयोदशद्वीपवतीं गोभिर्भासयसे महीम् ।
त्रयाणामपि लोकानां हितायैकः प्रवर्तसे ॥ ५२
तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत् ।
न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन्मनीषिणः ॥ ५३
आधानपशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः ।
त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः ५४
यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं सहस्रयुगसंमितम् ।
तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः परिकीर्तितः ॥ ५५
मनूनां मनुपुत्राणां जगतोऽमानवस्य च ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामीश्वराणां त्वमीश्वरः ॥ ५६

विप्रत्यागसमाधिस्थः विप्रैस्त्यागः त्यज्यमानमन्नं तदर्थं समाधिस्थः नियमस्थः । यूपदार्वादिवत् प्रकृतिविकाराभावेपि चतुर्थीसमासः । अश्वघासादिवत्षष्ठीसमासो वा । संयतात्मा नियमितचित्तः ॥ ३२ ॥ तपः सूर्याष्टशतनामजपाख्यम् ॥ ३३ ॥ योगं चित्तैकाग्र्यं आस्थाय कृत्वा ॥ ३४ ॥ प्राणानां आसमन्तात् यमनं निग्रहस्तेन प्राणायामेन । आरब्धवान् ततः जपानन्तरम् ॥ ३५ ॥ चक्षुः चक्षुरादिप्रवर्तकत्वात् बाह्यरूपेण च चक्षुरनुग्राहकत्वात् । अत एव सर्वदेहिनामात्मा योनिः उत्पत्तिलयस्थानं भूतानां वियदादीनां आचारः आसमन्ताच्चारयतीत्याचारोऽन्तर्यामी ॥ ३६ ॥ सांख्यानां ज्ञाननिष्ठानां योगिनां चित्तनिरोधकानां अनावृतार्गलद्वारं त्वं आवृणोतीत्यावृत् कपाटं कर्तरि क्विप् अर्गलं कपाटविष्टम्भकं तिर्यक्काष्ठं तदुभयरहितं मुक्तिद्वारं त्वं मुमुक्षतां गतिश्च त्वमेव प्राप्यं पदमपि त्वमेवेत्यर्थः ॥ ३७ ॥ निर्व्याजं राजवत्प्रत्युपकाराशारूपं मिषं विना केवलं कृपयैवेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ त्रयस्त्रिंशत् अष्टौ वसव एकादशरुद्रा द्वादशादित्या प्रजापतिश्च वषट्कारश्च इति श्रुतिप्रसिद्धाः गणास्तदन्यानि विश्वेदेवादीनि समुदायदैवतानि सिद्धिं ज्ञानम् ॥ ४१ ॥ उपयान्ति त्वामेव त्वां अर्चयित्वा तु प्राप्तमनोरथा भवन्ति ॥ ४२ ॥ समार्यमाभिष्वात्तादयः प्रधानतां जगत्कारणताम् ॥ ४३ ॥ अस्य सार्वात्म्यमाह सब्रह्मकेष्विति । न मन्ये नास्तीति मन्ये सर्वस्यैकात्म्यात् ॥ ४५ ॥ सत्यं सत् पृथिव्यप्तेजांसि । त्यत् वाय्वाकाशौ तदात्मकं सत्यं । सत्त्वं बुद्धिसत्त्वं सात्त्विका भावाः धर्मो ज्ञान विराग ऐश्वर्यमित्याद्याः ॥ ४७ ॥ सुनाभं सुदर्शनम् ॥ ४८ ॥ प्रावाराः वस्त्रविशेषाः ॥ ५१ ॥ त्रयोदशद्वीपवती सुदर्शनाद्यवान्तरद्वीपयोगात् गोभिः रश्मिभिः ॥ ५२ ॥ अमानवस्येति छेदः अमानवोऽर्चिरादिमार्गेण गतस्य ब्रह्मलोकप्रापकः पुरुषः ॥ ५६ ॥

संहारकाले संप्राप्ते तव क्रोधविनिःसृतः ।
संवर्तकाग्निस्त्रैलोक्यं भस्मीकृत्यावतिष्ठते ॥ ५७
त्वद्दीधितिसमुत्पन्ना नानावर्णा महाघनाः ।
सैरावताः साशनयः कुर्वन्त्याभूतसंप्लवम् ॥ ५८
कृत्वा द्वादशधात्मानं द्वादशादित्यतां गतः ।
संहृत्यैकार्णवं सर्वं त्वं शोषयसि रश्मिभिः ॥ ५९
त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम् ६०
त्वं हंसः सविता भानुरंशुमाली वृषाकपिः ।
विवस्वान्मिहिरः पूषा मित्रो धर्मस्तथैव च ॥६१
सहस्ररश्मिरादित्यस्तपनस्त्वं गवां पतिः ।
मार्तण्डोऽर्को रविः सूर्यः शरण्यो दिनकृत्तथा॥६२
दिवाकरः सप्तसप्तिर्धामकेशी विरोचनः ।
आशुगामी तमोघ्नश्च हरिताश्वश्च कीर्त्यसे ॥ ६३
सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां भक्त्या पूजां करोति यः ।
अनिर्विण्णोऽनहंकारी तं लक्ष्मीर्भजते नरम् ॥ ६४
न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा ।
ये तवानन्यमनसः कुर्वन्त्यर्चनवन्दनम् ॥ ६५
सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपापविवर्जिताः ।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः ६६
त्वं ममापन्नकामस्य सर्वातिथ्यं चिकीर्षतः ।
अन्नमन्नपते दातुमभितः श्रद्धयार्हसि ॥ ६७
ये च तेऽनुचराः सर्वे पादोपान्तं समाश्रिताः ।
माठरारुणदण्डाद्यास्तांस्तान्वन्देऽशनिक्षुभान् ।
क्षुभया सहिता मैत्री याश्चान्या भूतमातरः ।
ताश्च सर्वा नमस्यामि पान्तु मां शरणागतम् ६९

वैशंपायन उवाच ।

एवं स्तुतो महाराज भास्करो लोकभावनः ।
ततो दिवाकरः प्रीतो दर्शयामास पाण्डवम् ।
दीप्यमानः स्ववपुषा ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ७०

विवस्वानुवाच ।

यत्तेऽभिलषितं किंचित्तत्त्वं सर्वमवाप्स्यसि ।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः ॥ ७१
गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ।
यावद्वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत ॥ ७२
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति ॥ ७३
इतश्चतुर्दशे वर्षे भूयो राज्यमवाप्स्यसि ।

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७४
इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन् ।
तत्तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद्यद्यपि तत्सुदुर्लभम् ॥ ७५
यश्चेदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां पुरुषोऽप्यथवा स्त्रियः ॥७६
उभे संध्ये पठेन्नित्यं नारी वा पुरुषो यदि ।
आपदं प्राप्य मुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥७७
एतद्ब्रह्मा ददौ पूर्वं शक्राय सुमहात्मने ।
शक्राच्च नारदः प्राप्तो धौम्यस्तु तदनन्तरम् ।
धौम्याद्युधिष्ठिरः प्राप्य सर्वान्कामानवाप्तवान्७८
संग्रामे च जयेन्नित्यं विपुलं चाप्नुयाद्वसु ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं स गच्छति ॥ ७९

वैशंपायन उवाच ।

लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो जलादुत्तीर्य धर्मवित् ।
जग्राह पादौ धौम्यस्य भ्रातॄंश्च परिषस्वजे ॥ ८०
द्रौपद्या सह संगम्य वन्द्यमानस्तया प्रभुः ।
महानसे तदानीं तु साधयामास पाण्डवः ॥ ८१
संस्कृतं प्रसवं याति स्वल्पमन्नं चतुर्विधम् ।
अक्षय्यं वर्धते चान्नं तेन भोजयते द्विजान् ॥ ८२

त्वद्दीधितयस्त्वत्किरणाः सैरावताः मेघस्योपरि यो मेघः स ऐरावतस्तत्सहिताः । आभूतं यावच्चतुर्विधभूतग्रामं तस्य संप्लवः जलेनाभिप्लावनम् ॥ ५८ ॥ द्वादशधा 'अरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा' इत्यादिस्मृत्युक्तारुणादिरूपेण ॥ ५९ ॥ हन्ति गच्छति विश्वं संहरतीति वा हंसः । वृषाकपिः हरो हरिर्वा ॥ ६१ ॥ गवां रश्मीनाम् ॥ ६२ ॥ सप्तसप्तिः सप्ताश्वः धामकेशी ज्योतिर्मयकिरणवान् आशुगामीत्यत्राशावह इति पाठे दिग्व्यवहारनिर्वाहकः आशायाः प्रसिद्धाया इष्टार्थसमर्पणेन पूरको वा ॥ ६३ ॥ अनिर्विण्णः पूजने आसक्तः ॥ ६४ ॥ त्वद्भावभक्ताः सूर्य एव सर्वत्रास्तीति भावो भावना तत्र भक्ता आदृताः ॥ ६६ ॥ श्रद्धया आतिथ्यं चिकीर्षत इति संबन्धः ॥ ६७ ॥ अशनिक्षुभान् विद्युदशन्यादिप्रवर्तकान् ॥ ६८ ॥ क्षुभामैत्र्यौ निग्रहानुग्रहकर्त्र्यौ देव्यौ भूतमातरः गौरीपद्मादयः ब्राह्मीमाहेश्वर्यादयश्च ॥ ६९ ॥ गृह्णीष्व गृहाण पिठरं परिवेषणपात्रं ताम्रं ताम्रमयं वर्त्स्यति अन्नं जनेभ्यो विभज्य दास्यति पात्रेण पात्रमनेनानेन ॥ ७२ ॥ यावद्वर्त्स्यति तावदन्नाद्यं ओदनादिकं अक्षय्यं भविष्यतीति संबन्धः । चतुर्विधं लेह्यं चोष्यं भक्ष्यं पेयं च ॥ ७३ ॥ महानसे पाकशालायां साधयामास कारयामास अन्नमिति शेषः ॥ ८१ ॥ संस्कृतं पक्वम् ॥ ८२ ॥

भुक्तवत्सु च विप्रेषु भोजयित्वानुजानपि ।
शेषं विघससंज्ञं तु पश्चाद्भुङ्क्ते युधिष्ठिरः ॥ ८३
युधिष्ठिरं भोजयित्वा शेषमश्नाति पार्षती ।
द्रौपद्यां भुज्यमानायां तदन्नं क्षयमेति च ।
एवं दिवाकरात्प्राप्य दिवाकरसमप्रभः ॥ ८४
कामान्मनोभिलषितान्ब्राह्मणेभ्योऽददात्प्रभुः ।
पुरोहितपुरोगाश्च तिथिनक्षत्रपर्वसु ।
यज्ञियार्थाः प्रवर्तन्ते विधिमन्त्रप्रमाणतः ॥ ८५
ततः कृतस्वस्त्ययना धौम्येन सह पाण्डवाः ।
द्विजसङ्घैः परिवृताः प्रययुः काम्यकं वनम् ॥ ८६

इति श्रीमहाभा० अरण्यकेप० अरण्यपर्वणि काम्यकवनप्रवेशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

वैशंपायन उवाच ।
वनं प्रविष्टेष्वथ पाण्डवेषु
प्रज्ञाचक्षुस्तप्यमानोऽम्बिकेयः ।
धर्मात्मानं विदुरमगाधबुद्धिं
सुखासीनो वाक्यमुवाच राजा ॥ १

धृतराष्ट्र उवाच ।
प्रज्ञा च ते भार्गवस्येव शुद्धा
धर्मं च त्वं परमं वेत्थ सूक्ष्मम् ।
समश्च त्वं संमतः कौरवाणां
पथ्यं चैषां मम चैव ब्रवीहि ॥ २
एवं गते विदुर यदद्य कार्यं
पौराश्च मे कथमस्मान्भजेरन् ।
ते चाप्यस्मान्नोद्धरेयुः समूलां-
स्तत्त्वं ब्रूयाः साधु कार्याणि वेत्सि ॥ ३

विदुर उवाच ।
त्रिवर्गोऽयं धर्ममूलो नरेन्द्र
राज्यं चेदं धर्ममूलं वदन्ति ।
धर्मे राजन्वर्तमानः स्वशक्त्या
पुत्रान्सर्वान्पाहि पाण्डोः सुतांश्च ॥ ४
स वै धर्मो विप्रलब्धः सभायां
पापात्मभिः सौबलेयप्रधानैः ।
आहूय कुन्तीसुतमक्षवत्यां
पराजैषीत्सत्यसन्धं सुतस्ते ॥ ५
एतस्य ते दुष्प्रणीतस्य राज-
ञ्छेषस्याहं परिपश्याम्युपायम् ।
यथा पुत्रस्तव कौरव्य पापा-
न्मुक्तो लोके प्रतितिष्ठेत साधु ॥ ६
तद्वै सर्वं पाण्डुपुत्रा लभन्तां
यत्तद्राजन्नभिसृष्टं त्वयासीत् ।
एष धर्मः परमो यत्स्वकेन
राजा तुष्येन्न परस्वेषु गृध्येत् ॥ ७
यशो न नश्येज्ज्ञातिभेदश्च न स्या-
द्धर्मो न स्यान्नैव चैवं कृते त्वाम् ।
एतत्कार्यं तव सर्वप्रधानं
तेषां तुष्टिः शकुनेश्चावमानः ॥ ८

पार्षती द्रुपद द्रुपदपितुः गोत्रापत्यम् ॥ ८४ ॥ यज्ञियार्थाः यज्ञार्हाणि वस्तूनि आज्यपञ्चपुरोडाशादीनि । प्रवर्तन्ते निःसरन्ति । विधिमन्त्रप्रमाणतः विधिर्वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेतेत्यादिरज्ञातज्ञापनरूपः मन्त्रः अनुष्ठेयार्थस्मारकः ऊर्जे त्वेत्यादिः तावेव प्रमाणं ताभ्यामित्यर्थः ॥ ८५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे काम्यकप्रवेशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

ननु एवं धर्मजस्य ऐश्वर्यापेक्षया योगजासिद्धेः प्राबल्यं चेत् किमिति सर्वेऽपि ता नाद्रियन्ते इत्याशंक्य मूढाः दृष्टदारकफलार्थेषु हितोपदेष्टारं द्विषन्ति किमुतादृष्टदारकेऽपि- स्याह वनं प्रविष्टेष्वित्यध्यायेन । आम्बिकेय इति पूर्वरूपमार्षम् ॥ १ ॥ सूक्ष्मो धर्मो ज्ञानं तद्वत्त्वादेव त्वं कौरवाणां पाण्डवधार्तराष्ट्राणां समः पक्षपातशून्यः । एषां पाण्डवानां मम च सपुत्रस्येति शेषः ॥ २ ॥ एवं गते एवं पाण्डवप्रव्राजनारूपे संकटे गते प्राप्ते सति । उद्धरेयुः उन्मूलयेयुः ॥ ३ ॥ स इति । य उक्तविधः स एव धर्मो युधिष्ठिररूपो विप्रलब्धः वञ्चितः अक्षवत्यां द्यूतक्रीडायां सत्या संधा प्रतिज्ञा यस्य तम् ॥ ५ ॥ दुष्प्रणीतस्य दुरात्मभिः कृतस्य शेषस्य पाण्डवमानहानिलक्षणस्य वधस्य उपायं दोषप्रशान्तिप्रकारम् ॥ ६ ॥ अभिसृष्टं दत्तं स्वकेन धनेनेति शेषः ॥ ७ ॥ एवं कृते सति त्वां धर्मो न स्यादिति नैव किं तु स्यादेव । स्यादित्यव्ययं सजेदित्यर्थः ॥ ८ ॥

एवं शेषं यदि पुत्रेषु ते स्या
 देतद्राजंस्त्वरमाणः कुरुष्व ।
तथैतदेवं न करोषि राजन्
 ध्रुवं कुरूणां भविता विनाशः ॥ ९

न हि क्रुद्धो भीमसेनोऽर्जुनो वा
 शेषं कुर्याच्छात्रवाणामनीके ।
येषां योद्धा सव्यसाची कृतास्त्रो
 धनुर्येषां गाण्डिवं लोकसारम् ॥ १०

येषां भीमो बाहुशाली च योद्धा
 तेषां लोके किं नु नाप्राप्यमस्ति ।
उक्तं पूर्वं जातमात्रे सुते ते
 मया यत्ते हितमासीत्तदानीम् ॥ ११

पुत्रं त्यजेममहितं कुलस्य
 हितं परं न च तत्त्वं चकर्थ ।
इदं च राजन्हितमुक्तं न चेत्त्व-
 मेवं कर्ता परितप्तासि पश्चात् ॥ १२

यद्येतदेवमनुमन्ता सुतस्ते
 संप्रीयमाणः पाण्डवैरेकराज्यम् ।
तापो न ते भविता प्रीतियोगा
 न्न चेन्निगृह्णीष्व सुतं सुखाय॥ १३

दुर्योधनं त्वहितं वै निगृह्य
 पाण्डोः पुत्रं तकुरुष्वाधिपत्ये ।
अजातशत्रुर्हि विमुक्तरागो
 धर्मेणेमां पृथिवीं शास्तु राजन् ॥ १४

ततो राजन्पार्थिवाः सर्व एव
 वैश्या इवास्माननुपतिष्ठन्तु सद्यः ।
दुर्योधनः शकुनिः सूतपुत्रः
 प्रीत्या राजन्पाण्डुपुत्रा भजन्तु ॥ १५

दुःशासनो याचतु भीमसेनं
 सभामध्ये द्रुपदस्यात्मजां च ।
युधिष्ठिरं त्वं परिसान्त्वयस्व
 राज्ये चैनं स्थापयस्वाभिपूज्य ॥ १६

त्वया पृष्टः किमहमन्यद्वदेय-
 मेतत्कृत्वा कृतकृत्योऽसि राजन् ॥ १७

धृतराष्ट्र उवाच ।

एतद्वाक्यं विदुर यत्ते सभाया-
 मिह प्रोक्तं पाण्डवान्प्राप्य मां च ।
हितं तेषामहितं मामकाना-
 मेतत्सर्वं मम नावैति चेतः ॥ १८

इदं त्विदानीं गत एव निश्चितं
 तेषामर्थे पाण्डवानां यदात्थ ।
तेनाद्य मन्ये नासि हितो ममेति
 कथं हि पुत्रं पाण्डवार्थे त्यजेयम् ॥ १९

असंशयं तेऽपि ममैव पुत्रा
 दुर्योधनस्तु मम देहात्प्रसूतः ।
स्वं वै देहं परहेतोस्त्यजेति
 को नु ब्रूयात्समतामन्ववेक्ष्य ॥ २०

स मां जिह्मं विदुर सर्वं ब्रवीषि
 मानं च तेऽहमधिकं धारयामि ।
यथेच्छकं गच्छ वा तिष्ठ वा त्वं
 सुसान्त्व्यमानाप्यसती स्त्री जहाति॥ २१

वैशंपायन उवाच ।

एतावदुक्त्वा धृतराष्ट्रोऽन्वपद्य-
 दन्तर्वेश्म सहसोत्थाय राजन् ।
नेदमस्तीत्यथ विदुरो भाषमाणः
 संप्राद्रवद्यत्र पार्था बभूवुः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्य० पर्वणि० अरण्यप० विदुरवाक्यप्रत्याख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

एवं कृत्वा शेषं नष्टावशिष्टं भाग्यम् ॥ ९ ॥ चकर्थ कृतवान् इदं च वक्ष्यमाणम् कर्ता करिष्यसि ॥ १२ ॥ एकराज्यं यदि अनुमन्ता तर्हि तापो न भविता॥ न चेत् यदि वानुमन्ता तर्हि सुतं निगृह्णीष्व ॥ १३ ॥ पक्षान्तरमाह दुर्योधनमिति ॥ १४ ॥ याचतु मदपराधं क्षमस्वेति प्रार्थयतु ॥ १६ ॥ नावैति नाङ्गीकरोति ॥ १८ ॥ तत्र हेतुमाह इदमिति । तथा दुर्योधनबन्धनं युधिष्ठिराय राज्यप्रदानमित्येवं प्रकारकं सुखोपायं यत् आत्थ तत इदं कुल एव निश्चितं न कुतश्चित् । गत इति पाठे पाण्डवानामर्थं गतः प्राप्त इत्यर्थः लब्धपदाः पाण्डवा मदीयान् न हिंस्युरित्यत्र नियामकं नास्तीति भावः ॥ १९ ॥ जिह्मं कुटिलम् ॥ २१ ॥ नेदमस्ति इदं कुलम् ॥ २२ ॥ इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

वैशंपायन उवाच ।

पाण्डवास्तु वने वासमुद्दिश्य भरतर्षभाः ।
प्रययुर्जाह्नवीकूलात्कुरुक्षेत्रं सहानुगाः ॥ १

सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां च निषेव्य ते ।
ययुर्वनेनैव वनं सततं पश्चिमां दिशम् ॥ २

ततः सरस्वतीकूले समेषु मरुधन्वसु ।
काम्यकं नाम ददृशुर्वनं मुनिजनप्रियम् ॥ ३

तत्र ते न्यवसन्वीरा वने बहुमृगद्विजे ।
अन्वास्यमाना मुनिभिः सान्त्व्यमानाश्च भारत ॥ ४

विदुरस्त्वथ पाण्डूनां सदा दर्शनलालसः ।
जगामैकरथेनैव काम्यकं वनमृद्धिमत् ॥ ५

ततो गत्वा विदुरः काम्यकं त
च्छीघ्रैरश्वैर्वाहिना स्यन्दनेन ।
ददर्शासीनं धर्मात्मानं विविक्ते
सार्धं द्रौपद्या भ्रातृभिर्ब्राह्मणैश्च ॥ ६

ततोऽपश्यद्विदुरं तूर्णमारा
दभ्यायान्तं सत्यसन्धः स राजा ।
अथाब्रवीद्भ्रातरं भीमसेनं
किं नु क्षत्ता वक्ष्यति नः समेत्य ॥ ७

कच्चिन्नायं वचनात्सौबलस्य
समाह्वाता देवनायोपयातः ।
कच्चित्क्षुद्रः शकुनिर्नायुधानि
जेष्यत्यस्मान्पुनरेवाक्षवत्याम् ॥ ८

समाहूतः केनचिदाद्रवेति
नाहं शक्तो भीमसेनापयातुम् ।
गाण्डीवे च संशयिते कथं नु
राज्यप्राप्तिः संशयिता भवेन्नः ॥ ९

वैशंपायन उवाच ।

तत उत्थाय विदुरं पाण्डवेयाः
प्रत्यगृह्णन्नृपते सर्व एव ।
तैः सत्कृतः स च तानाजमीढो
यथोचितं पाण्डुपुत्रान्समेयात् ॥ १०

समाश्वस्तं विदुरं ते नरर्षभा-
स्ततोऽपृच्छन्नागमनाय हेतुम् ।
स चापि तेभ्यो विस्तरतः शशंस
यथावृत्तो धृतराष्ट्रोऽम्बिकेयः ॥ ११

विदुर उवाच ।

अवोचन्मां धृतराष्ट्रोऽनुगुप्त-
मजातशत्रो परिगृह्याभिपूज्य ।
एवं गते समतामभ्युपेत्य
पथ्यं तेषां मम चैव ब्रवीहि ॥ १२

मयाप्युक्तं यत्क्षमं कौरवाणां
हितं पथ्यं धृतराष्ट्रस्य चैव ।
तद्वै तस्मै न रुचामभ्युपैति
ततश्चाहं क्षममन्यन्न मन्ये ॥ १३

परं श्रेयः पाण्डवेया मयोक्तं
न मे तच्च श्रुतवानाम्बिकेयः ।
यथातुरस्येव हि पथ्यमन्नं
न रोचतेस्मास्य तदुच्यमानम् ॥ १४

न श्रेयसे नीयतेऽजातशत्रो
स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा ।
ध्रुवं नरो चन्द्र भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः ॥ १५

ध्रुवं विनाशो नृप कौरवाणां
न वै श्रेयो धृतराष्ट्रः परैति ।
यथा च पर्णे पुष्करस्यावसिक्तं
जलं न तिष्ठेत्पथ्यमुक्तं तथास्मिन् ॥ १६

ततः क्रुद्धो धृतराष्ट्रोऽब्रवीन्मां
यस्मिन्श्रद्धा भारत तत्र याहि ।
नाहं भूयः कामये त्वां सहायं
महीमिमां पालयितुं पुरं वा ॥ १७

५

हितोपदेशेऽपि कृष्णः कुर्वन्तीत्युक्त्वा सन्तर्पयंश्चैव तुष्यन्तीत्याह पाण्डवा इत्यध्यायेन ॥ १ ॥ मरुधन्वसु मरुषु निर्जलदेशेषु । धन्वसु जाङ्गलदेशेषु । 'धन्वा जाङ्गलदेशे स्यात्' इति विश्वः ॥ ३ ॥ आरात् दूरतः ॥ ७ ॥ आद्रव आगच्छ अपयातुं निवर्तितुं संशयिते पणीकृते सति कथं नः राज्यप्राप्तिः यतः संशयिता गाण्डीवनाशादित्यर्थः ॥ ९ ॥ यथावृत्तः यादृशाचारः ॥ ११ ॥ अनुगुप्तं अनुरक्षितारं हितोपदेशेनेति शेषः कर्तरि क्तः अवोचदित्यवोचदिति संबन्धः ॥ १२ ॥ रुच्यं प्रीतिं अन्यत सौम्योऽन्यत् वैरम् ॥ १३ ॥ परैति पराभृशति पुष्करस्य कमलस्य ॥ १६ ॥ श्रद्धा इष्टोऽयमिति भावः ॥ १७ ॥

सोऽहं त्यक्तो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
　प्रशासितुं त्वामुपयातो नरेन्द्र ।
तद्वै सर्वं यन्मयोक्तं सभायां
　तद्धार्यतां यत्प्रवक्ष्यामि भूयः ॥ १८

क्लेशैस्तीव्रैर्युज्यमानः सपत्नैः
　क्षमां कुर्वन्कालमुपासते यः ।
संवर्धयन्स्तोकमिवाग्निमात्मवान्
　स वै भुङ्क्ते पृथिवीमेक एव ॥ १९

यस्याविभक्तं वसु राजन्सहायै-
　स्तस्य दुःखेऽप्यंशभाजः सहायाः ।
सहायानामेष संग्रहणेऽभ्युपायः
　सहायाप्तौ पृथिवीप्राप्तिमाहुः ॥ २०

सत्यं श्रेष्ठं पाण्डव विप्रलापं
　तुल्यं चान्नं सह भोज्यं सहायैः ।
आत्मा चैषामग्रतो न स्म पूज्य
　एवंवृत्तिर्वर्धते भूमिपालः ॥ २१

युधिष्ठिर उवाच ।

एवं करिष्यामि यथा ब्रवीषि
　परां बुद्धिमुपगम्याप्रमत्तः ।
यच्चाप्यन्यद्देशकालोपपन्नम्
　तद्वै वाच्यं तत्करिष्यामि कृत्स्नम् ॥ २२

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० अरण्यप० विदुरनिर्वासे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

वैशंपायन उवाच ।

गते तु विदुरे राजन्नाश्रमं पाण्डवान्प्रति ।
धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः पर्यतप्यत भारत ॥ १
विदुरस्य प्रभावं च सन्धिविग्रहकारितम् ।
विवृद्धिं च परां मत्वा पाण्डवानां भविष्यति ॥ २
स सभाद्वारमागम्य विदुरस्मारमोहितः ।
समक्षं पार्थिवेन्द्राणां पपाताविष्टचेतनः ॥ ३
स तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां समुत्थाय महीतलात् ।
समीपोपस्थितं राजा संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४
भ्राता मम सुहृच्चैव साक्षाद्धर्म इवापरः ।
तस्य स्मृत्वाद्य सुभृशं हृदयं दीर्यतीव मे ॥ ५
तमानयस्व धर्मज्ञं मम भ्रातरमाशु वै ।
इति ब्रुवन्स नृपतिः कृपणं पर्यदेवयत् ॥ ६
पश्चात्तापाभिसंतप्तो विदुरस्मारमोहितः ।
भ्रातृस्नेहादिदं राजा संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७
गच्छ संजय जानीहि भ्रातरं विदुरं मम ।
यदि जीवति रोषेण मया पापेन निर्धुतः ॥ ८
न हि तेन मम भ्रात्रा सुसूक्ष्ममपि किंचन ।
व्यलीकं कृतपूर्वं वै प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥ ९
स व्यलीकं परं प्राप्तो मत्तः परमबुद्धिमान् ।
त्यक्ष्यामि जीवितं प्राज्ञ तं गच्छानय संजय ॥ १०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञस्तमनुमान्य च ।
संजयो बाढमित्युक्त्वा प्राद्रवत्काम्यकं प्रति ॥ ११
सोऽचिरेण समासाद्य तद्वनं यत्र पाण्डवाः ।
रौरवाजिनसंवीतं ददर्शाथ युधिष्ठिरम् ॥ १२

---

धार्यतां न विस्मर्तव्यम् ॥ १८ ॥ उपासते उपास्ते प्रतीक्षते । तृणैः स्तोकं अग्निमिव आत्मानं सहायसंपत्त्या संवर्धयन् एक एव शत्रूणां कार्त्स्न्येनोच्छेदात् ॥ १९ ॥ सहायार्जनोपायमाह यस्येति । अविभक्तं साधारणं । वसु वित्तम् ॥ २० ॥ विप्रलापं विगतः प्रलापोऽनर्थकं वचो यस्मात्तत्तथा पूज्यः स्तव्यः वनवासान्ते बहुना धनेन बहून्सहायान्प्राप्य त्वमेव शत्रूंश्छेद कृत्वा राज्यं प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके प० नै० भा० पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

गते इति । महाप्राज्ञ० विदुरोपदेशे स्थितानां जयो भाविष्यतीति जानन् ॥ १ ॥ सन्धिविग्रहकारितं सन्धिविग्रहादिना तज्ज्ञत्वकृतं । भविष्यति आगामिनि काले ॥ २ ॥ विदुरस्मारमोहितःस्मरःकामः तस्मात्केनचित्प्रतिबद्धादुत्पन्नो द्वेषः स्मार उच्यते । विदुरद्वेषेण मम नाशो भविष्यतीति चिन्तया मोहं प्राप्त इत्यर्थः स्नेहेत्यपपाठः ॥ ३ ॥ द्वेषमेव स्नेहरूपेण नाटयितुं सभाद्वारे राज्ञां समक्षं पतित्वोत्थाय आह भ्रातेत्यादि ॥ ५ ॥ निर्धुतः निःसारितः ॥ ८ ॥ व्यलीकं अप्रियम् ॥ ९ ॥ सान्त्वितैः सान्त्वितान्सान्त्वयित्वेत्यनुमान्येत्यस्यार्थः ॥ ११ ॥

विदुरेण सहामीनं ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ।
भ्रातृभिश्चाभिसंगुप्तं देवैरिव पुरंदरम् ॥ १३
युधिष्ठिरमुपागम्य पूजयामास संजयः ।
भीमार्जुनयमांश्चापि तद्युक्तं प्रतिपेदिरे ॥ १४
राज्ञा पृष्टः स कुशलं सुखासीनश्च संजयः ।
शशंसागमने हेतुमिदं चैवाब्रवीद्वचः ॥ १५
संजय उवाच ।
राजा स्मरति ते क्षत्तर्धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
तं पश्य गत्वा त्वं क्षिप्रं संजीवय च पार्थिवम् १६
सोऽनुमान्य नरश्रेष्ठान्पाण्डवान्कुरुनन्दनान् ।
नियोगाद्राजसिंहस्य गन्तुमर्हसि सत्तम ॥ १७
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु विदुरो धीमान्स्वजनवत्सलः ।
युधिष्ठिरस्यानुमते पुनरायाद्गजाह्वयम् ॥ १८
तमब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
दिष्ट्या प्राप्तोसि धर्मज्ञ दिष्ट्या स्मरसि मेनघ
अद्य चाहं दिवारात्रौ त्वत्कृते भरतर्षभ ।
प्रजागरे प्रपश्यामि विचित्रं देहमात्मनः ॥ २०
सोङ्कमानीय विदुरं मूर्धन्याघ्राय चैव ह ।
क्षम्यतामिति चोवाच यदुक्तोसि मयानघ ॥ २१
विदुर उवाच ।
क्षान्तमेव मया राजन्गुरुर्मे परमो भवान् ।
एषोहमागतः शीघ्रं त्वद्दर्शनपरायणः ॥ २२
भवन्ति हि नरव्याघ्र पुरुषा धर्मचेतसः ।
दीनाभिपातिनो राजन्नात्र कार्या विचारणा॥ २३
पाण्डोः सुता यादृशा मे तादृशास्तव भारत ।
दीना इति हि मे बुद्धिरभिपन्नाद्य तान्प्रति ॥ २४
वैशंपायन उवाच ।
अन्योन्यमनुनीयैवं भ्रातरौ द्वौ महाद्युती ।
विदुरो धृतराष्ट्रश्च लेभाते परमां मुदम् ॥ २५

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० अरण्यप० विदुरप्रत्यागमने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

वैशंपायन उवाच ।
श्रुत्वा च विदुरं प्राप्तं राज्ञा च परिसान्त्वितम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥ १
स सौबलं समानाय्य कर्णदुःशासनौ तथा ।
अब्रवीद्वचनं राजा प्रविश्याबुद्धिजं तमः ॥ २
एष प्रत्यागतो मन्त्री धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
विदुरः पाण्डुपुत्राणां सुहृद्विद्वान्हितेरतः ॥ ३
यावदस्य पुनर्बुद्धिं विदुरो नापकर्षति ।
पाण्डवानयने तावन्मन्त्रयध्वं हितं मम ॥ ४
अथ पश्याम्यहं पार्थान्प्राप्तानिह कथंचन ।
पुनः शोषं गमिष्यामि निरम्बुर्निरवग्रहः ॥ ५
विषमुद्बन्धनं चैव शस्त्रमग्निप्रवेशनम् ।
करिष्ये न हि तान्वृद्धान्पुनर्द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ ६
शकुनिरुवाच ।
किं बालिशमतिं राजन्नास्थितोसि विशांपते ।
गतास्ते समयं कृत्वा नैतदेवं भविष्यति ॥ ७
सत्यवाक्ये स्थिताः सर्वे पाण्डवा भरतर्षभ ।
पितुस्ते वचनं तात न ग्रहीष्यन्ति कर्हिचित् ॥ ८
अथवा ते ग्रहीष्यन्ति पुनरेष्यन्ति वा पुरम् ।
निरस्य समयं सर्वे पणोस्माकं भविष्यति ॥ ९

मदराष्ट्रः प्रतीपवानिति पाठे मोहेन प्रकृष्टं तापं प्राप्त इत्यर्थः ॥ १९ ॥ प्रजागरे आविर्भवास्यामुन्निद्रतायां विचित्रं विगताद्रव्यवस्तुकं अपेतलक्ष्मीकमित्यर्थः ॥ २० ॥ भवन्तीति । अनन्वात पाण्डवेषु मम पक्षपातो न तु त्वत्पुत्रद्वेषादिति भावः ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके प० नै० भार० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रुत्वा चेति ॥ १ ॥ अबुद्धिरज्ञानं तज्जं तमः राग-द्वेषात्मकं मोहम् ॥ २ ॥ सुहृत् शुभचिन्तकः हितेरतः शुभकर्ता ॥ ३ ॥ वारणो वा नवग्रह इति पाठे वा शब्द इवार्थे नवगृहीतो गज इवेत्यर्थः निरम्बुर्निरवग्रह इति पाठे निरवग्रहः प्रतिबन्धाभावेपि निरम्बुर्निराहारो भूत्वा शोषं गमिष्यामीत्यर्थः । 'प्रतिबन्धेप्यवग्रहः' इति विश्वः । निरसुरिति निरसुरिति च पाठौ चिन्त्यौ ॥ ५ ॥ मरणार्थं विषादिकं करिष्ये स्वीकरिष्ये वृद्धान् वृद्धिमतः ॥ ६ ॥ पणः कार्याकार्यविवेकलक्षणो व्यवहारः अस्माकमिति पाण्डवानपि गृहीत्वोक्तम् ॥ ९ ॥

सर्वे भवामो मध्यस्था राज्ञश्छन्दानुवर्तिनः ।
छिद्रं बहु प्रपश्यन्तः पाण्डवानां सुसंवृताः ॥ १०

दुःशासन उवाच ।

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि मातुल ।
नित्यं हि मे कथयतस्तव बुद्धिर्विरोचते ॥ ११

कर्ण उवाच ।

काममीक्षामहे सर्वे दुर्योधन तवेप्सितम् ।
ऐकमत्यं हि नो राजन्सर्वेषामेव लक्षये ॥ १२
नागमिष्यन्ति ते धीरा अकृत्वा कालसंविदम् ।
आगमिष्यन्ति चेन्मोहात्पुनर्द्यूतेन ताञ्जय ॥ १३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा ।
नातिहृष्टमनाः क्षिप्रमभवत्स पराङ्मुखः ॥ १४
उपलभ्य ततः कर्णो विवृत्य नयने शुभे ।
रोषाद्दुःशासनं चैव सौबलं च तमेव च ॥ १५
उवाच परमक्रुद्ध उद्यम्यात्मानमात्मना ।
अथो मम मतं यत्तु तन्निबोधत भूमिपाः ॥ १६
प्रियं सर्वे करिष्यामो राज्ञः किंकरपाणयः ।
न चास्य शक्नुमः स्थातुं प्रिये सर्वे ह्यतन्द्रिताः ॥ १७
वयं तु शस्त्राण्यादाय रथानास्थाय दंशिताः ।
गच्छामः सहिता हन्तुं पाण्डवान्वनगोचरान् ॥ १८
तेषु सर्वेषु शान्तेषु गतेष्वविदितां गतिम् ।
निर्विवादा भविष्यन्ति धार्तराष्ट्रास्तथा वयम् ॥ १९
यावदेव परिद्यूना यावच्छोकपरायणाः ।
यावन्मित्रविहीनाश्च तावच्छक्या मतं मम ॥ २०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पूजयन्तः पुनःपुनः ।
बाढमित्येव ते सर्वे प्रत्यूचुः सूतजं तदा ॥ २१
एवमुक्त्वा सुसंरब्धा रथैः सर्वे पृथक्पृथक् ।
निर्ययुः पाण्डवान्हन्तुं सहिताः कृतनिश्चयाः ॥ २२
तान्प्रस्थितान्परिज्ञाय कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
आजगाम विशुद्धात्मा दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ २३
प्रतिषिध्याथ तान्सर्वान्भगवाँल्लोकपूजितः ।
प्रज्ञाचक्षुषमासीनमुवाचाभ्येत्य सत्वरम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अरण्यपर्वणि व्यासागमने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७

## ८

व्यास उवाच ।

धृतराष्ट्र महाप्राज्ञ निबोध वचनं मम ।
वक्ष्यामि त्वां कौरवाणां सर्वेषां हितमुत्तमम् ॥ १
न मे प्रियं महाबाहो यद्गताः पाण्डवा वनम् ।
निकृत्या निकृताश्चैव दुर्योधनपुरोगमैः ॥ २
ते स्मरन्तः परिक्लेशान्वर्षे पूर्णे त्रयोदशे ।
विमोक्ष्यन्ति विषं क्रुद्धाः कौरवेयेषु भारत ॥ ३
तदयं किं नु पापात्मा तव पुत्रः सुमन्दधीः ।
पाण्डवान्नित्यसंक्रुद्धो राज्यहेतोर्जिघांसति ॥ ४
वार्यतां साध्वयं मूढः शमं गच्छतु ते सुतः ।
वनस्थांस्तानयं हन्तुमिच्छन्प्राणान्विमोक्ष्यति ॥ ५
यथा हि विदुरः प्राज्ञो यथा भीष्मो यथा वयम् ।
यथा कृपश्च द्रोणश्च तथा साधुर्भवानपि ॥ ६
विग्रहो हि महाप्राज्ञ स्वजनेन विगर्हितः ।
अधर्म्यमयशस्यं च मा राजन्प्रतिपद्यताम् ॥ ७

छिद्रं समयातिक्रमदोषं बहु बहुलं प्रपश्यन्तोऽपि सुसंवृताः । पाण्डवेभ्योऽधर्मवद्भ्यो भीताः सन्तो निर्लीनाः स्थास्यन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥ नातिहृष्टमनाः पाण्डवानां निन्दायां सत्यामपि आगमनासहिष्णुत्वात् । कर्णेन स्वपराक्रमयोग्यस्य वचनस्यानुक्तेश्च ॥ १४ ॥ उपलभ्य दुर्योधनाशयमिति शेषः ॥ १५ ॥ उद्यम्य उत्क्षिप्य आत्मानं देहम् ॥ १६ ॥ वयं किंकराः पाणय इव किंकरपाणयः । पश्यन्तश्चारचक्षुपेतिवत् । किं कुर्म इति कृत्वा कृताञ्जलिपाणय इति प्राञ्चः । प्रियं चिकीर्षामो न तु शक्नुमः । प्रिये स्थातुमिति संबन्धः । धृतराष्ट्रेण निरुद्धत्वात् ॥ १७ ॥ दंशिताः संनद्धाः १८ ॥ परिद्यूनाः खिन्नाः वर्जितविजिगीषा वा शक्याः जेतुमिति शेषः ॥ २० ॥ इति आरण्यके पर्वणि नै० भार० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

[illegible]श्रुतेति ॥ १ ॥ निकृताः निर्जिताः ॥ २ ॥ विषमिव विषं शस्त्रम् ॥ ३ ॥ भवानपि अस्तीति शेषः ॥ ६ ॥ स्वजनेन सार्धं विग्रहं मा प्रतिपद्यतां भवान् मागादित्यर्थः ७

समीक्षा यादृशी ह्यस्य पाण्डवान्प्रति भारत ।
उपेक्ष्यमाणा सा राजन्महान्तमनयं स्पृशेत् ॥ ८
अथवायं सुमन्दात्मा वनं गच्छतु ते सुतः ।
पाण्डवैः सहितो राजन्नेक एवासहायवान् ॥ ९
ततः संसर्गजः स्नेहः पुत्रस्य तव पाण्डवैः ।
यदि स्यात्कृतकार्योऽद्य भवेस्त्वं मनुजेश्वर ॥ १०
अथवा जायमानस्य यच्छीलमनुजायते ।
श्रूयते तन्महाराज नामृतस्यापसर्पति ॥ ११
कथं वा मन्यते भीष्मो द्रोणोथ विदुरोपि वा
भवान्वात्र क्षमं कार्यं पुरा वोर्थोभिवर्धते ॥ १२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अरण्यपर्वणि व्यासवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

धृतराष्ट्र उवाच ।
भगवन्नाहमप्येतद्रोचये द्यूतसंभवम् ।
मन्ये तद्विधिनाकृष्य कारितोस्मीति वै मुने ॥ १
नैतद्रोचयते भीष्मो न द्रोणो विदुरो न च ।
गान्धारी नेच्छति द्यूतं तच्च मोहात्प्रवर्तितम् ॥ २
परित्यक्तुं न शक्नोमि दुर्योधनमचेतनम् ।
पुत्रस्नेहेन भगवञ्जानन्नपि प्रियव्रत ॥ ३
व्यास उवाच ।
वैचित्रवीर्य नृपते सत्यमाह यथा भवान् ।
दृढं विद्मः परं पुत्रं परं पुत्रान्न विद्यते ॥ ४
इन्द्रोप्यश्रुनिपातेन सुरभ्या प्रतिबोधितः ।
अन्यैः समृद्धैरप्यर्थैर्न सुतान्मन्यते परम् ॥ ५
अत्र ते वर्तयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् ।
सुरभ्याश्चैव संवादमिन्द्रस्य च विशांपते ॥ ६
त्रिविष्टपगता राजन्सुरभी प्रारुदत्किल ।
गवां माता पुरा तात तामिन्द्रोन्वकृपायत ॥ ७
इन्द्र उवाच ।
किमिदं रोदिषि शुभे कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम्
मनुष्येष्वथ गोष्वु नैतदल्पं भविष्यति ॥ ८
सुरभिरुवाच ।
विनिपातो न वः कश्चिद्दृश्यते त्रिदशाधिप ।
अहं तु पुत्रं शोचामि तेन रोदिमि कौशिक ॥ ९
पश्यैनं कर्षकं क्षुद्रं दुर्बलं मम पुत्रकम् ।
प्रतोदेनाभिनिघ्नन्तं लाङ्गलेन च पीडितम् ॥ १०
निषीदमानं सोत्कण्ठं वध्यमानं सुराधिप ।
कृपाविष्टास्मि देवेन्द्र मनश्चोद्विजते मम ।
एकस्तत्र बलोपेतो धुरमुद्वहतेधिकाम् ॥ ११
अपरोप्यबलप्राणः कृशो धमनिसंततः ।
कृच्छ्रादुद्वहते भारं तं वै शोचामि वासव ॥ १२
वध्यमानः प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः ।
नैव शक्नोति तं भारमुद्वोढुं पश्य वासव ॥ १३
ततोहं तस्य शोकार्ता विरौमि भृशदुःखिता ।
अश्रूण्यावर्तयन्ती च नेत्राभ्यां करुणायती ॥ १४

समीक्षा विचारपूर्विका बुद्धिः ॥ ८ ॥ अथवेति । भीमादिवद्वने सहवासात् तव पुत्रस्य युधिष्ठिरेण स्नेहश्चेत् त्वं कृतकृत्यो भविष्यसीत्यर्थः ॥ ९ ॥ एतदपि दुर्घटमित्याह अथवेति । न मृतस्यापि सर्पतीति पाठे सहजो दोषो जन्मान्तरेप्यनुवर्तत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ अत्र यत् क्षमं उचितं तत्पुरा कार्यं अन्यथा वः युष्माकं अर्थः प्रयोजनं अभिवर्धते नश्यति । निवर्तते इति पाठेपि स एवार्थः । अतिवर्तते इति पाठे वः युष्मान् अर्थः अतिक्रामति अतीत्य गच्छतीत्यर्थः ॥ १२ ॥ इति आरण्यके पर्वणि नै० भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

भगवन्निति ॥ १ ॥ परं शत्रुं शोकहेतुत्वात् परं श्रेष्ठं प्रीतिहेतुत्वात् 'न कुपुत्रात्परः शत्रुर्न सत्पुत्रात्परः सखा' इत्युक्तेः॥४॥ सुरभ्या देवधेन्वा अन्यैरन्नवस्त्रादिभिर्हेतुभिःपरं श्रेष्ठं स्थानेन विद्यते अपि तु पुत्रादेव । तथा च श्रुतिः 'अन्नं ह प्राणं शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः । सखा ह जायाकृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्' इति ॥ ५ ॥ अत्र पुत्रस्य शोकहेतुत्वेर्थे ॥ ६ ॥ अन्वकृपायत अनुकम्पितवान् ॥ ७ ॥ कौशिक हे इन्द्र ॥ ९ ॥ प्रतोदेन तीक्ष्णाग्रलोहवता दण्डेन ॥ १० ॥ धुरं भारम् ॥ ११ ॥ धमनिसंततः शिराभिर्व्याप्तः निर्मांस इत्यर्थः ॥ १२ ॥ वधो दण्डाघातेन नोदः प्रतोदेन ॥ १३ ॥

शक्र उवाच ।
तव पुत्रसहस्रेषु पीड्यमानेषु शोभने ।
किं कृपायितवत्यत्र पुत्र एकत्र हन्यति ॥ १५
सुरभिरुवाच ।
यदि पुत्रसहस्राणि सर्वत्र समतैव मे ।
दीनस्य तु सतः शक्र पुत्रस्याभ्यधिका कृपा ॥ १६
व्यास उवाच ।
तदिन्द्रः सुरभीवाक्यं निशम्य भृशविस्मितः ।
जीवितेनापि कौरव्य मेनेऽभ्यधिकमात्मजम् ॥ १७
प्रववर्ष च तत्रैव सहसा तोयमुल्बणम् ।
कर्षकस्याचरन्विघ्नं भगवान्पाकशासनः ॥ १८
तद्यथा सुरभिः प्राह समवेतास्तु ते तथा ।
सुतेषु राजन्सर्वेषु हीनेष्वभ्यधिका कृपा ॥ १९
यादृशो मे सुतः पाण्डुस्तादृशो मेऽसि पुत्रक ।
विदुरश्च महाप्राज्ञः स्नेहादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २०
चिराय तव पुत्राणां शतमेकश्च भारत ।
पाण्डोः पञ्चैव लक्ष्यन्ते तेऽपि मन्दाः सुदुःखिताः ॥
कथं जीवेयुरत्यन्तं कथं वर्धेयुरित्यपि ।
इति दीनेषु पार्थेषु मनो मे परितप्यते ॥ २२
यदि पार्थिव कौरव्याञ्जीवमानानिहेच्छसि ।
दुर्योधनस्तव सुतः शमं गच्छतु पाण्डवैः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अरण्यपर्वणि सुरभ्युपाख्याने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

धृतराष्ट्र उवाच ।
एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि नो मुने ।
अहं चैव विजानामि सर्वे चेमे नराधिपाः ॥ १
भवांश्च मन्यते साधु यत्कुरूणां महोदयम् ।
तदेव विदुरोऽप्याह भीष्मो द्रोणश्च मां मुने ॥ २
यदि त्वहमनुग्राह्यः कौरव्येषु दया यदि ।
अन्वशाधि दुरात्मानं पुत्रं दुर्योधनं मम ॥ ३
व्यास उवाच ।
अयमायाति वै राजन्मैत्रेयो भगवानृषिः ।
अन्विष्य पाण्डवान्भ्रातॄनिहैत्यस्मद्दिदृक्षया ॥ ४
एष दुर्योधनं पुत्रं तव राजन्महानृषिः ।
अनुशास्ता यथान्यायं शमायास्य कुलस्य च ॥ ५
ब्रूयाद्यदेष कौरव्य तत्कार्यमविशङ्कया ।
अक्रियायां तु कार्यस्य पुत्रं ते शप्स्यते रुषा ॥ ६
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा ययौ व्यासो मैत्रेयः प्रत्यदृश्यत ।
पूजया प्रतिजग्राह सपुत्रस्तं नराधिपः ॥ ७
अर्घ्याद्याभिः क्रियाभिर्वै विश्रान्तं मुनिसत्तमम् ।
प्रश्रयेणाब्रवीद्राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ८
सुखेनागमनं कच्चिद्भगवन्कुरुजाङ्गलान् ।
कच्चित्कुशलिनो वीरा भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ॥९
समये स्थातुमिच्छन्ति कच्चिच्च भरतर्षभाः ।
कच्चित्कुरूणां सौभ्रात्रमव्युच्छिन्नं भविष्यति ॥१०
मैत्रेय उवाच ।
तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोऽस्मि कुरुजाङ्गलान् ।
यदृच्छया धर्मराजं दृष्टवान्काम्यके वने ॥ ११
तं जटाजिनसंवीतं तपोवननिवासिनम् ।
समाजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुं मुनिगणाः प्रभो ॥ १२
तत्राश्रौषं महाराज पुत्राणां तव विभ्रमम् ।
अनयं द्यूतरूपेण महाभयमुपस्थितम् ॥ १३
ततोऽहं त्वामनुप्राप्तः कौरवाणामवेक्षया ।
सदा ह्यभ्यधिकः स्नेहः प्रीतिश्च त्वयि मे प्रभो ॥

कृपायितवती कृपां कृतवती पाठान्तरे कृपायितं कृपैव हन्यति हन्यमाने पुत्र एको हि हन्यते इति पाठे बहुपुत्रेषु हि प्रसिद्धं एकः कश्चिद्धन्यत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ उल्बणं उत्कटम् ॥१८ ॥ मन्दाः तत्पुत्रवत्कोशानभिज्ञाः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

एवमेतत् । विनाशकाले सामुनपि मृदा अवुजानन्तीत्यायतात्पर्यम् ॥ १ ॥ अन्विष्य अवेक्ष्य भातनपश्चात्ति शेषः ॥ ४ ॥ अनुशास्ता अनुशासिष्यति ॥ ५ ॥ अक्रियायां अकरणे कार्यस्य अस्य कर्तव्यस्य ॥ ६ ॥ क्रियाभिः सत्कारैः ॥ ८ ॥ यदृच्छया दैवात् ॥ ११ ॥ विभ्रमं द्यूतानर्थप्रवृत्तबुद्धिम् ॥ १३ ॥

नैतदौपयिकं राजंस्त्वयि भीष्मे च जीवति ।
यदन्योन्येन ते पुत्रा विरोध्यन्ते कथंचन ॥ १५
मेढीभूतः स्वयं राजन्निग्रहे प्रग्रहे भवान् ।
किमर्थमनयं घोरमुत्पद्यन्तमुपेक्षसे ॥ १६
दस्यूनामिव यद्वृत्तं सभायां कुरुनन्दन ।
तेन न भ्राजसे राजंस्तापसानां समागमे ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

ततो व्यावृत्य राजानं दुर्योधनममर्षणम् ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा मैत्रेयो भगवानृषिः ॥ १८

मैत्रेय उवाच ।

दुर्योधन महाबाहो निबोध वदतां वर ।
वचनं मे महाभाग ब्रुवतो यद्धितं तव ॥ १९
मा द्रुहः पाण्डवान्राजन्कुरुष्व प्रियमात्मनः ।
पाण्डवानां कुरूणां च लोकस्य च नरर्षभ ॥ २०
ते हि सर्वे नरव्याघ्राः शूरा विक्रान्तयोधिनः ।
सर्वे नागायुतप्राणा वज्रसंहनना दृढाः ॥
सत्यव्रतधराः सर्वे सर्वे पुरुषमानिनः ।
हन्तारो देवशत्रूणां रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ २२
हिडिम्बबकमुख्यानां किर्मीरस्य च रक्षसः ।
इतः प्रद्रवतां रात्रौ यः स तेषां महात्मनाम् ॥ २३
आवृत्य मार्गं रौद्रात्मा तस्थौ गिरिरिवाचलः ।
तं भीमः समरश्लाघी बलेन बलिनां वरः ॥ २४
जघान पशुमारेण व्याघ्रः क्षुद्रमृगं यथा ।
पश्य दिग्विजये राजन्यथा भीमेन पातितः ॥ २५
जरासन्धो महेष्वासो नागायुतबलो युधि ।
संबन्धी वासुदेवश्च श्यालाः सर्वे च पार्षताः २६
कस्तान्युधि समासीत जरामरणवान्नरः ।
तस्य ते शम एवास्तु पाण्डवैर्भरतर्षभ ॥ २७
कुरु मे वचनं राजन्मा मन्युवशमन्वगाः ।

वैशंपायन उवाच ।

एवं तु ब्रुवतस्तस्य मैत्रेयस्य विशांपते ॥ २८
ऊरुं गजकराकारं करेणाभिजघान सः ।
दुर्योधनः स्मितं कृत्वा चरणेनोल्लिखन्महीम् २९
न किंचिदुक्त्वा दुर्मेधास्तस्थौ किंचिदवाङ्मुखः
तमशुश्रूषमाणं तु विलिखन्तं वसुंधराम् ॥ ३०
दृष्ट्वा दुर्योधनं राजन्मैत्रेयं कोप आविशत् ।
स कोपवशमापन्नो मैत्रेयो मुनिसत्तमः ॥ ३१
विधिना संप्रणुदितः शापायास्य मनो दधे ।
ततः स वार्युपस्पृश्य कोपसंरक्तलोचनः ॥
मैत्रेयो धार्तराष्ट्रं तमशपद्दुष्टचेतसम् ॥ ३२
यस्मात्त्वं मामनादृत्य नैमां वाचं चिकीर्षसि ।
तस्मादस्याभिमानस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ३३
त्वदभिद्रोहसंयुक्तं युद्धमुत्पत्स्यते महत् ।
तत्र भीमो गदाघातैस्तवोरुं भेत्स्यते बली ॥ ३४
इत्येवमुक्ते वचने धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
प्रसादयामास मुनिं नैतदेवं भवेदिति ॥ ३५

मैत्रेय उवाच ।

शमं यास्यति चेत्पुत्रस्तव राजन्यदा तदा ।
शापो न भविता तात विपरीते भविष्यति ॥ ३६

वैशंपायन उवाच ।

विलक्षयंस्तु राजेन्द्रो दुर्योधनपिता तदा ।
मैत्रेयं प्राह किर्मीरः कथं भीमेन पातितः ॥ ३७

मैत्रेय उवाच ।

नाहं वक्ष्यामि ते भूयो न ते शुश्रूषते सुतः ।
एष ते विदुरः सर्वमाख्यास्यति गते मयि ॥ ३८
इत्येवमुक्त्वा मैत्रेयः प्रातिष्ठत यथागतम् ।
किर्मीरवधसंविग्नो बहिर्दुर्योधनो ययौ ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अरण्यपर्वणि मैत्रेयशापे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

औपयिकं योग्यम् ॥ १५ ॥ मेढीभूतः खलदाम-स्तम्भीभूतः प्रग्रहे अनुग्रहे ॥ १७ ॥ व्यावृत्य अभिमुखीभूयेत्यर्थः ॥ १८ ॥ विक्रान्तयोधिनःविक्रान्ताश्च युद्धशालाश्च वज्रसंहननाः वज्रकायाः अत एव दृढाः ॥ २१ ॥ प्रद्रवतां गच्छताम् ॥ २३ ॥ समरे जेतुमिति पाठे क्षम इत्यध्याहारः ॥ २४ ॥ पशुमारेण पशुमारणप्रकारेण ॥ २५ ॥ मन्युवशं क्रोधवशं मेति निषेधार्थो निपातः नतु माङ् ॥ २८ ॥

प्रणुदित प्रेरित. प्रचुदित इति पाठेपि स एवार्थः ॥ ३२ ॥ विलक्षयन् भीमस्य बलं विशेषेण अयमस्मज्जय्यो नवेति राक्षसबलद्वारा लक्षयन् हेतौ शतृप्रत्ययः विलक्षण इति पाठे दुर्योधनस्य दुराग्रहेण शापभयाद्विच्छायः वलक्षस्तत्रेति पाठे वलक्षो धवलोऽर्जुनः इति कोशात् स एवार्थः ॥ ३७ ॥ किर्मीरवधसंविग्नः किर्मीरस्य वधो यस्मात्तस्माद्भीमसेनात्संविग्नः शत्रुयशो दुःखश्रवणमित्यर्थः ॥ ३९ ॥ इति आरण्यके पर्वणि नै० भार० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## किर्मीरवधपर्व ।

## ११

धृतराष्ट्र उवाच ।
किर्मीरस्य वधं क्षत्तः श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ।
रक्षसा भीमसेनस्य कथमासीत्समागमः ॥ १
विदुर उवाच ।
शृणु भीमस्य कर्मेदमतिमानुषकर्मणः ।
श्रुतपूर्वं मया तेषां कथान्तेषु पुनःपुनः ॥ २
इतः प्रयाता राजेन्द्र पाण्डवा द्यूतनिर्जिताः ।
जग्मुस्त्रिभिरहोरात्रैः काम्यकं नाम तद्वनम् ॥ ३
रात्रौ निशीथे स्वाभीले गतेऽर्धसमये नृप ।
प्रचारे पुरुषादानां रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥ ४
तद्वनं तापसा नित्यं गोपाश्च वनचारिणः ।
दूरात्परिहरन्ति स्म पुरुषादभयात्किल ॥ ५
तेषां प्रविशतां तत्र मार्गमावृत्य भारत ।
दीप्ताक्षं भीषणं रक्षः सोल्मुकं प्रत्यपद्यत ॥ ६
बाहू महान्तौ कृत्वा च तथास्यं च भयानकम् ।
स्थितमावृत्य पन्थानं येन यान्ति कुरूद्वहाः ॥ ७
स्पष्टाष्टदंष्ट्रं ताम्राक्षं प्रदीप्तोर्ध्वशिरोरुहम् ।
सार्करश्मितडिच्चक्रं सबलाकमिवाम्बुदम् ॥ ८
सृजन्तं राक्षसीं मायां महानादनिनादितम् ।
मुञ्चन्तं विपुलान्नादान्सतोयमिव तोयदम् ॥ ९
तस्य नादेन संत्रस्ताः पक्षिणः सर्वतो दिशम् ।
विमुक्तनादाः संपेतुः स्थलजा जलजैः सह ॥ १०
संप्रद्रुतमृगद्वीपिमहिषर्क्षसमाकुलम् ।
तद्वनं तस्य नादेन संप्रस्थितमिवाभवत् ॥ ११
तस्योरुवाताभिहतास्ताम्रपल्लवबाहवः ॥
विदूरजाताश्च लताः समाश्लिष्यन्ति पादपान् ॥ १२
तस्मिन्क्षणेऽथ प्रववौ मारुतो भृशदारुणः ।
रजसा संवृतं तेन नष्टज्योतिरभून्नभः ॥ १३
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणामविज्ञातो महारिपुः ।
पञ्चानामिन्द्रियार्थानां शोकावेश इवातुलः ॥ १४
स दृष्ट्वा पाण्डवान्दूरात्कृष्णाजिनसमावृतान् ।
आवृणोत्तद्वनद्वारं मैनाक इव पर्वतः ॥ १५
तं समासाद्य वित्रस्ता कृष्णा कमललोचना ।
अदृष्टपूर्वं संत्रासान्न्यमीलयत लोचने ॥ १६
दुःशासनकरोत्सृष्टविप्रकीर्णशिरोरुहा ।
पञ्चपर्वतमध्यस्था नदीवाकुलतां गता ॥ १७
मोमुह्यमानां तां तत्र जगृहुः पञ्च पाण्डवाः ।
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि विषयेषु यथा रतिम् ॥ १८
अथ तां राक्षसीं मायामुत्थितां घोरदर्शनाम् ।
रक्षोघ्नैर्विविधैर्मन्त्रैर्धौम्यः सम्यक्प्रयोजितैः ॥ १९
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां नाशयामास वीर्यवान् ।
स नष्टमायोऽतिबलः क्रोधविस्फारितेक्षणः ॥
काममूर्तिधरः क्रूरः कालकल्पो व्यदृश्यत ।
तमुवाच ततो राजा दीर्घप्रज्ञो युधिष्ठिरः ॥ २१
को भवान्कस्य वा किं ते क्रियतां कार्यमुच्यताम् ।
प्रत्युवाचाथ तद्रक्षो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ २२
अहं बकस्य वै भ्राता किर्मीर इति विश्रुतः ।
वनेऽस्मिन्काम्यके शून्ये निवसामि गतज्वरः ॥ २३
युधि निर्जित्य पुरुषानाहारं नित्यमाचरन् ।
के यूयमभिसंप्राप्ता भक्ष्यभूता ममान्तिकम् ।
युधि निर्जित्य वः सर्वान्भक्षयिष्ये गतज्वरः ॥ २४
वैशंपायन उवाच ।
युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दुरात्मनः ।
आचचक्षे ततः सर्वं गोत्रनामादि भारत ॥ २५
युधिष्ठिर उवाच ।
पाण्डवो धर्मराजोऽहं यदि ते श्रोत्रमागतः ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैर्भीमसेनार्जुनादिभिः ॥ २६
हृतराज्यो वने वासं वस्तुं कृतमतिस्ततः ।
वनमभ्यागतो घोरमिदं तव परिग्रहम् ॥ २७
विदुर उवाच ।
किर्मीरस्त्वब्रवीदेनं दिष्ट्या देवैरिदं मम ।
उपपादितमद्येह चिरकालान्मनोगतम् ॥ २८

किर्मीरस्येति ॥ १ ॥ आभीले भयंकरे स्वाभीले इत्यपि पाठः 'आभीलं भीषणे कृच्छ्रे' इति विश्वः । अर्धसमयेऽर्धज्ञाने गते सति लोके तंद्रावति सतीत्यर्थः 'समयः शपथाचारकाले सिद्धान्तसंविदोः' इति विश्वः । संप्राप्ते इत्यपपाठः ॥ ४ ॥ स्पष्टेति । अर्कबलाकयोः केशार्करश्म्योर्दन्ततडितो-र्श्चोपमोपमेयभावः तडिच्चक्रमित्यपपाठः ॥ ८ ॥ 'महानादः कुञ्जरे स्याद्गोपिकाब्दे भयानके' इति विश्वः ॥ ९ ॥ संपेतु एकीबभूवुः ॥ १० ॥ पञ्चानां शब्दादीनामिन्द्रियार्थानां इन्द्रियैरर्थ्यमानानां कृते शोकावेशः शोकागमः ॥ १४ ॥

भीमसेनवधार्थं हि नित्यमभ्युद्यतायुधः ।
चरामि पृथिवीं कृत्स्नां नैनं चासादयाम्यहम् २९
सोयमासादितो दिष्ट्या भ्रातृहा काङ्क्षितश्चिरम् ।
अनेन हि मम भ्राता बको विनिहतः प्रियः ॥३०
वैत्रकीयवने राजन्ब्राह्मणच्छद्मरूपिणा ।
विद्याबलमुपाश्रित्य न ह्यस्त्यस्यौरसं बलम् ॥३१
हिडिम्बश्च सखा मह्यं दयितो वनगोचरः ।
हतो दुरात्मनानेन स्वसा चास्य हृता पुरा ॥ ३२
सोयमभ्यागतो मूढो ममेदं गहनं वनम् ।
प्रचारसमयेस्माकमर्धरात्रे स्थिते समे ॥ ३३
अद्यास्य पातयिष्यामि तद्वैरं चिरसंभृतम् ।
तर्पयिष्यामि च बकं रुधिरेणास्य भूरिणा ॥ ३४
अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुः सख्युस्तथैव च ।
शान्तिं लब्धास्मि परमां हत्वा राक्षसकण्टकम् ३५
यदि तेन पुरा मुक्तो भीमसेनो बकेन वै ।
अद्यैनं भक्षयिष्यामि पश्यतस्ते युधिष्ठिर ॥ ३६
एनं हि विपुलप्राणमद्य हत्वा वृकोदरम् ।
सभक्ष्य जरयिष्यामि यथागस्त्यो महासुरम् ॥३७
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सत्यसन्धो युधिष्ठिरः ।
नैतदस्तीति सक्रोधो भर्त्सयामास राक्षसम् ॥३८
ततो भीमो महाबाहुरारुज्य तरसा द्रुमम् ।
दशव्याममथोद्विद्धं निष्पत्रमकरोत्तदा ॥ ३९
चकार सज्यं गाण्डीवं वज्रनिष्पेषगौरवम् ।
निमेषान्तरमात्रेण तथैव विजयोऽर्जुनः ॥ ४०
निवार्य भीमो जिष्णुं तं तद्रक्षो मेघनिःस्वनम् ।
अभिद्रुत्याब्रवीद्वाक्यं तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥ ४१
इत्युक्त्वैनमतिक्रुद्धः कक्ष्यामुत्पीड्य पाण्डवः ।
निष्पिष्य पाणिना पाणिं संदष्टौष्ठपुटो बली ४२
तमभ्यधावद्वेगेन भीमो वृक्षायुधस्तदा ।
यमदण्डप्रतीकाशं ततस्तं तस्य मूर्धनि ॥ ४३
पातयामास वेगेन कुलिशं मघवानिव ।
असंभ्रान्तं तु तद्रक्षः समरे प्रत्यदृश्यत ॥ ४४
चिक्षेप चोल्मुकं दीप्तमशनिं ज्वलितामिव ।
तदुदस्तमलातं तु भीमः प्रहरतां वरः ॥ ४५
पदा सव्येन चिक्षेप तद्रक्षः पुनराव्रजत् ।
किर्मीरश्चापि सहसा वृक्षमुत्पाट्य पाण्डवम् ४६
दण्डपाणिरिव क्रुद्धः समरे प्रत्यधावत ।
तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् ॥ ४७
वालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोर्यथा स्त्रीकाङ्क्षिणोः पुरा ।
शीर्षयोः पतिता वृक्षा बिभिदुर्नैकधा तयोः ॥ ४८
यथैवोत्पलमालानि मत्तयोर्द्विपयोस्तथा ।
मुञ्जवज्जर्जरीभूता बहवस्तत्र पादपाः ॥ ४९
चीराणीव व्युदस्तानि रेजुस्तत्र महावने ।
तद्वृक्षयुद्धमभवन्मुहूर्तं भरतर्षभ ।
राक्षसानां च मुख्यस्य नराणामुत्तमस्य च ॥ ५०
ततः शिलां समुत्क्षिप्य भीमस्य युधि तिष्ठतः ।
प्राहिणोद्राक्षसः क्रुद्धो भीमश्च न चचाल ह ॥५१
तं शिलाताडनजडं पर्यधावत राक्षसः ।
बाहुविक्षिप्तकिरणः स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ५२
तावन्योन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम् ।
उभावपि चकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव ॥ ५३
तयोरासीत्सुतुमुलः संप्रहारः सुदारुणः ॥
नखदंष्ट्रायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः ॥ ५४
दुर्योधननिकाराच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः ।
कृष्णानयनदृष्टश्च व्यवर्धत वृकोदरः ॥ ५५
अभिपद्य च बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णादमर्षितः
मातङ्गमिव मातङ्गः प्रभिन्नकरटामुखम् ॥ ५६
स चाप्येनं ततो रक्षः प्रतिजग्राह वीर्यवान् ।
तमाक्षिपद्भीमसेनो बलेन बलिनां वरः ॥ ५७
तयोर्भुजविनिष्पेषादुभयोर्बलिनोस्तदा ।
शब्दः समभवद्घोरो वेणुस्फोटसमो युधि ॥ ५८
अथैनमाक्षिप्य बलाद्गृह्य मध्ये वृकोदरः ।
धुनयामास वेगेन वायुश्चण्ड इव द्रुमम् ॥ ५९
स भीमेन परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे ।
व्यस्पन्दत यथाप्राणं विचकर्ष च पाण्डवम् ॥ ६०

वैत्रकीयवने एकचक्रायाम् ॥ ३१ ॥ मह्यं मम ॥ ३२ ॥ लब्धास्मि लप्स्यामि । ३५ ॥ महासुरं वातापिम् ॥ ३७ ॥ आरुज्य भङ्क्त्वा दशव्यामं विस्तारितयोः करयोरन्तिर्यगन्तरं उद्विद्धं उत्सारितम् ॥ ३९ ॥ वज्रेण निष्पेषश्चूर्णीभावो यस्य पर्वतस्य तद्वत् गौरवं गुरुत्वं यस्य तत्तथा ॥४०॥ कक्ष्यामुत्पीड्य परिधानवस्त्रं दृढीकृत्य ॥४२॥उदस्तं उत्क्षिप्तं अलातं उल्मुकम्॥४५॥ रक्षः राक्षसं आव्रजत आगच्छत् ॥ ४६ ॥ स्त्री तारा ॥ ४८ ॥ उत्पलमालानि पद्मक्षेत्राणि 'मालं क्षेत्रे जने माले' इति विश्वः। पद्मसमूह इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ चीराणि वृक्षवल्कलानि ॥ ५० ॥ निकारात् परिभवात । कृष्णानयनं दृष्टं येन स तथा द्रौपदीकर्षणेन कुपित इत्यर्थः ॥ ५५ ॥ प्रभिन्नकरटामुखं प्रभिन्ने व्यक्तीभूते करटयोर्गण्डयोर्मुखे मदनिर्गममार्गौ यस्य तम् ॥ ५६ ॥ व्यस्पन्दत किंचिच्चलनं कृतवान् ॥ ६० ॥

तत एनं परिश्रान्तमुपलक्ष्य वृकोदरः ।
योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा ॥ ६१
विनदन्तं महानादं भिन्नभेरीस्वनं बली ।
भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम् ॥ ६२
तं विषीदन्तमाज्ञाय राक्षसं पाण्डुनन्दनः ।
प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां पशुमारममारयत् ॥ ६३
आक्रम्य च कटीदेशे जानुना राक्षसाधमम् ।
पीडयामास पाणिभ्यां तस्य कण्ठं वृकोदरः ६४
अथ जर्जरसर्वाङ्गं व्याविद्धनयनाम्बरम्
भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ६५
हिडिम्बबकयोः पाप न त्वमश्रुप्रमार्जनम् ।
करिष्यसि गतश्चापि यमस्य सदनं प्रति ॥ ६६

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीर-
स्तं राक्षसं क्रोधपरीतचेताः
विस्रस्तवस्त्राभरणं स्फुरन्त-
मुद्भ्रान्तचित्तं व्यसुमुत्ससर्ज ॥ ६७
तस्मिन्हते तोयदतुल्यरूपे
कृष्णां पुरस्कृत्य नरेन्द्रपुत्राः ।
भीमं प्रशस्याथ गुणैरनेकै-
र्हृष्टास्ततो द्वैतवनाय जग्मुः ॥ ६८

विदुर उवाच ।

एवं विनिहतः संख्ये किर्मीरो मनुजाधिप ।
भीमेन वचनात्तस्य धर्मराजस्य कौरव ॥ ६९
ततो निष्कण्टकं कृत्वा वनं तदपराजितः ।
द्रौपद्या सह धर्मज्ञो वसतिं तामुवास ह ॥ ७०
समाश्वास्य च ते सर्वे द्रौपदीं भरतर्षभाः ।
प्रहृष्टमनसः प्रीत्या प्रशशंसुर्वृकोदरम् ॥ ७१
भीमबाहुबलोत्पिष्टे विनष्टे राक्षसे ततः ।
विविशुस्ते वनं वीराः क्षेमं निहतकण्टकम् ॥ ७२
स मया गच्छता मार्गे विनिकीर्णो भयावहः ।
वने महति दुष्टात्मा दृष्टो भीमबलाद्धतः ॥ ७३
तत्राश्रौषमहं चैतत्कर्म भीमस्य भारत ।
ब्राह्मणानां कथयतां ये तत्रासन्समागताः ॥ ७४

वैशंपायन उवाच ।

एवं विनिहतं संख्ये किर्मीरं रक्षसां वरम् ।
श्रुत्वा ध्यानपरो राजा निशश्वासार्तवत्तदा ॥ ७५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि किर्मीरवधपर्वणि विदुरवाक्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

समाप्तं किर्मीरवधपर्व ।

## अर्जुनाभिगमनपर्व ।

## १२

वैशंपायन उवाच ।

भोजाः प्रव्रजिताञ्छ्रुत्वा वृष्णयश्चान्धकैः सह ।
पाण्डवान्दुःखसंतप्तान्समाजग्मुर्महावने ॥ १
पाञ्चालस्य च दायादो धृष्टकेतुश्च चेदिपः ।
केकयाश्च महावीर्या भ्रातरो लोकविश्रुताः ॥ २
वने द्रष्टुं ययुः पार्थान्क्रोधामर्षसमन्विताः ।
गर्हयन्तो धार्तराष्ट्रान्किं कुर्म इति चाब्रुवन् ॥ ३
वासुदेवं पुरस्कृत्य सर्वे ते क्षत्रियर्षभाः ।
परिवार्योपविविशुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥
अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठं विषण्णः केशवोऽब्रवीत् ॥

वासुदेव उवाच ।

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः
दुःशासनचतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ५

योक्त्रयामास बबन्ध रशनया पशुमिव ॥ ६१ ॥ पशुमारं पशुमिव मारयित्वा कषादित्वादनुप्रयोगः समूलघातं न्यवधीदितीवोक्तिवत् ॥ ६३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१२

एवमधर्मरुचीनां दुर्योधनादीनां व्यासादिभिरोपरूप-देशे कृतेऽपि मैत्रेयशापेऽपि किर्मीरवधेन महाभयेऽपि प्रत्युपस्थिते सति न धर्मे रुचिरुत्पन्नेत्युक्तं । संप्रति धर्मरुचीनां पाण्डवानामुपरि परमेश्वरस्येतरेषां चानुग्रहं पाण्डवानां कृष्णतत्त्वविज्ञानं च वर्णयति । भोजाः प्रव्रजितानित्यादिना ध्यायेन ॥ १ ॥ दुःशासनश्चतुर्थो येषाम्

एतान्निहत्य समरे ये च तस्य पदानुगाः ।
तांश्च सर्वान्विनिर्जित्य सहितान्सनराधिपान् ॥ ६
ततः सर्वेऽभिविश्रामो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
निकृत्योपचरन्वध्य एष धर्मः सनातनः ॥ ७

वैशंपायन उवाच ।

पार्थानामभिषङ्गेण तथा क्रुद्धं जनार्दनम् ।
अर्जुनः शमयामास दिधक्षन्तमिव प्रजाः ॥ ८
संक्रुद्धं केशवं दृष्ट्वा पूर्वदेहेषु फाल्गुनः ।
कीर्तयामास कर्माणि सत्यकीर्तेर्महात्मनः ॥ ९
पुरुषस्याप्रमेयस्य सत्यस्यामिततेजसः ।
प्रजापतिपतेर्विष्णोर्लोकनाथस्य धीमतः ॥ १०

अर्जुन उवाच ।

दश वर्षसहस्राणि यत्र सायंगृहो मुनिः ।
व्यचरस्त्वं पुरा कृष्ण पर्वते गन्धमादने ॥ ११
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
पुष्करेष्ववसः कृष्ण त्वमपो भक्षयन्पुरा ॥ १२
ऊर्ध्वबाहुर्विशालायां बदर्यां मधुसूदन ।
अतिष्ठ एकपादेन वायुभक्षः शतं समाः ॥ १३
अवकृष्टोत्तरासङ्गः कृशो धमनिसंततः ।
आसीः कृष्ण सरस्वत्यां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ १४
प्रभासमप्यथासाद्य तीर्थं पुण्यजनोचितम् ।
तथा कृष्ण महातेजा दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ १५
आतिष्ठस्त्वमथैकेन पादेन नियमस्थितः ।
लोकप्रवृत्तिहेतोस्त्वमिति व्यासो ममाब्रवीत् १६
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामादिरन्तश्च केशव ।
निधानं तपसां कृष्ण यज्ञस्त्वं च सनातनः ॥ १७
निहत्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले ।
प्रथमोत्पादितं कृष्ण मेध्यमश्वमवासृजः ॥ १८
कृत्वा तत्कर्म लोकानामृषभः सर्वलोकजित् ।
अवधीस्त्वं रणे सर्वान्समेतान्दैत्यदानवान् ॥ १९
ततः सर्वेश्वरत्वं च संप्रदाय शचीपतेः ।
मानुषेषु महाबाहो प्रादुर्भूतोसि केशव ॥ २०
स त्वं नारायणो भूत्वा हरिरासीः परंतप ।
ब्रह्मा सोमश्च सूर्यश्च धर्मो धाता यमोऽनलः २१
वायुर्वैश्रवणो रुद्रः कालः खं पृथिवी दिशः ।
अजश्चराचरगुरुः स्रष्टा त्वं पुरुषोत्तम ॥ २२
परायणं देवमूर्धा क्रतुभिर्मधुसूदन ।
अयजो भूरितेजा वै कृष्ण चैत्ररथे वने ॥ २३
शतं शतसहस्राणि सुवर्णस्य जनार्दन ।
एकैकस्मिंस्तदा यज्ञे परिपूर्णानि भागशः ॥ २४
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन ।
त्वं विष्णुरिति विख्यात इन्द्रादवरजो विभुः २५
शिशुर्भूत्वा दिवं खं च पृथिवीं च परंतप ।
त्रिभिर्विक्रमणैः कृष्ण क्रान्तवानसि तेजसा ॥२६

तस्य दुर्योधनस्य पदानुगाः सहायाः ॥ ६ ॥ निकृत्या छलेन उपचरन् वर्तमानः ॥ ७ ॥ अभिषङ्गेण दुःखेन पराभवेन वा ॥ ८ ॥ पुरुषस्य पुरि शरीरे शयानस्य अप्रमेयस्य अहंकारादिवत् प्रमातुमयोग्यस्य विषयित्वात् । अत एव सत्यस्य कालत्रयेऽपि बाधशून्यस्य विषयस्य हि बाधः स्वप्नादौ दृष्टः अमिततेजसः त्रिविधपरिच्छेदशून्यचिन्मात्रस्य । प्रजापतिपतेः सूत्रविराजोरपि स्वामिनः । विष्णोर्व्यापकस्य लोकनाथस्यान्तर्यामिणः । एवं तत्पदार्थमुक्त्वा त्वं पदार्थमाह धीमत इति । बुद्ध्युपाधेः अनयोः सामानाधिकरण्यादभेदः । अस्यैव सूत्रभूतस्य श्लोकस्य विवरणमुत्तरो ग्रन्थः ॥ १० ॥ तत्र तपस्विना क्षमैवोचितेति दर्शयितुं भगवतः क्रोधोपशमनाय तदीयं जन्मान्तरीयं तप एव तावदुदाहरति दशेत्यादिना । यत्र सायंकालस्तत्रैव गृहं यस्य स यत्र सायंगृह इत्येकं पदम् ॥ ११ ॥ अवकृष्टोत्तरासङ्गः त्यक्तोत्तरीयवस्त्रः ॥ १४ ॥ तपसः प्रयोजनमाह लोकेति ॥ १६ ॥ 'क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामादिरन्तश्च केशव' इत्यस्यार्थः क्षेत्रं 'महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥' एतत् क्षेत्रमिति भगवता व्याख्यातं कोशपञ्चकात्मकं तज्ज्ञः तत्प्रकाशकः अन्तरात्मेत्यर्थः । सर्वभूतानां सर्वेषां वियदादीनां जरायुजादीनां च जीवानामादिः परमकारणं अन्तःलयस्थानं रजतस्येव शुक्तिः । अवान्तरकारणानामविद्याकामकर्मादीनां क्षेत्रमध्ये अव्यक्तेच्छादिपदैरुपात्तत्वात् । एतेन प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वात् जीवपरयोरैक्याच्चाद्वैतं कृष्णतत्त्वमुक्तम् ॥ १७ ॥ भौमं भूमिपुत्रं प्रथमोत्पादितं सर्वभूतानां प्रथमेन अहंकारेण उत्पादितं भूतादिरहंकार इति प्रसिद्धं । मेध्यं याज्ञियम् ॥ १८ ॥ तत्कर्म अश्वोत्सर्गाख्यम् ॥ १९ ॥ सः त्वं क्षेत्रज्ञः शुद्धचिन्मात्रः भूस्थानीयः सन् नारायणः नरेण परमात्मना सृष्टं नारं स्थूलसूक्ष्मकारणरूपं उपाधित्रयं तदेव अयनं वासस्थानं यस्य स यथा । वृक्षाङ्कुरबीजस्थानीयविराट्सूत्रान्तर्यामिरूपो भूत्वा हरिः परिणतबीजसदृशगर्भफलस्थानीयः साम्बमूर्तिः आसीः ईषत्पक्वफलोपमाश्च ब्रह्मादयस्त्वमेव ॥ २१ ॥ हे पुरुषोत्तम उक्तेभ्यो बीजादिस्थानीयेभ्य उत्तमभूस्थानीयनिर्विशेषचिन्मात्ररूप अजो विष्णुः चराचरगुरुः रुद्रः स्रष्टा दक्षप्रजापत्यादिः ॥ २२ ॥ परायणं सर्वोत्कृष्टं प्राप्यं देवमूर्धा देवश्रेष्ठः क्रतुभिरयज इत्यन्वयः । अभ्यय इति पाठे त्वं यज इत्यध्याहारः ॥ २३ ॥

संप्राप्य दिवमाकाशमादित्यस्यन्दने स्थितः ।
अत्यरोचश्च भूतात्मन्भास्करं स्वेन तेजसा ॥ २७
प्रादुर्भावसहस्रेषु तेषु तेषु त्वया विभो ।
अधर्मरुचयः कृष्ण निहताः शतशोऽसुराः ॥ २८
सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ ।
कृतः क्षेमः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति॥२९
जारूथ्यामाहुतिः क्राथः शिशुपालो जनैः सह ।
जरासन्धश्च शैब्यश्च शतधन्वा च निर्जितः ॥ ३०
तथा पर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ।
अवाप्सीर्महिषीं भोज्यां रणे निर्जित्य रुक्मिणम्॥
इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद्यवनश्च कसेरुमान् ।
हतः सौभपतिः शाल्वस्त्वया सौभं च पातितम्
एवमेते युधि हता भूयश्चान्याञ्शृणुष्व ह ।
इरावत्यां हतो भोजः कार्तवीर्यसमो युधि ॥ ३३
गोपतिस्तालकेतुश्च त्वया विनिहतावुभौ ।
तां च भोगवतीं पुण्यामृषिकान्तां जनार्दन ॥ ३४
द्वारकामात्मसात्कृत्वा समुद्रं गमयिष्यसि ।
न क्रोधो न च मात्सर्यं नानृतं मधुसूदन ।
त्वयि तिष्ठति दाशार्ह न नृशंस्यं कुतोऽनृजु॥ ३५
आसीनं चैत्यमध्ये त्वां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
आगम्य ऋषयः सर्वेऽयाचन्ताभयमच्युत ॥ ३६
युगान्ते सर्वभूतानि संक्षिप्य मधुसूदन ।
आत्मनैवात्मसात्कृत्वा जगदासीः परंतप ॥ ३७
युगादौ तव वार्ष्णेय नाभिपद्मादजायत ।
ब्रह्मा चराचरगुरुर्यस्येदं सकलं जगत् ॥ ३८
तं हन्तुमुद्यतौ घोरौ दानवौ मधुकैटभौ ।
तयोर्व्यतिक्रमं दृष्ट्वा क्रुद्धस्य भवतो हरेः ॥ ३९
ललाटाज्जातवाञ्शम्भुः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
इत्थं तावपि देवेशौ त्वच्छरीरसमुद्भवौ ॥ ४०
त्वन्नियोगकरावेताविति मे नारदोऽब्रवीत् ।
तथा नारायण पुरा क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ ४१
इष्टवांस्त्वं महासत्रं कृष्ण चैत्ररथे वने ।
नैवं परे नापरे वा करिष्यन्ति कृतानि वा ॥ ४२
यानि कर्माणि देव त्वं बाल एव महाबलः ।
कृतवान्पुण्डरीकाक्ष बलदेवसहायवान् ॥
कैलासभवने चापि ब्राह्मणैर्न्यवसः सह ॥ ४३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा महात्मानमात्मा कृष्णस्य पाण्डवः ।
तूष्णीमासीत्ततः पार्थमित्युवाच जनार्दनः ॥ ४४
ममैव त्वं तवैवाहं ये मदीयास्तवैव ते ।
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु ४५
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष हरिर्नारायणो ह्यहम् ।
काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषी ॥ ४६
अनन्यः पार्थ मत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च ।
नावयोरन्तरं शक्यं वेदितुं भरतर्षभ ॥ ४७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्ते तु वचने केशवेन महात्मना ।
तस्मिन्वीरसमावाये संरब्धेष्वथ राजसु ॥ ४८

संप्राप्य सम्यक् प्राप्य । आदित्यस्यन्दने सूर्यदेहे भास्करं मण्डलाभिमानिनं जीवम् ॥ २७ ॥ सादिताः छिन्नाः मौरवाः आन्त्रतान्तमया मुरवेष्टने अस्मादौणादिके उक् प्रत्यये ताद्धिते मौवां शब्दोऽयत एव मध्यमस्वर-लोपेन निष्पन्नः ॥ २९ ॥ जारूथ्यां नगर्याम् ॥ ३० ॥ अवाप्सीः अवाप्तवानसि भोज्या भोजवंशजाम् ॥ ३१ ॥ सौभं खेचरं पुरम् ॥ ३२ ॥ नृशंस्यं निर्दयत्वं दीर्घपाठे त्वाद्-पूर्वोयं शब्दो ज्ञेयः ॥ ३५ ॥ आसीनं चैत्यमध्ये त्वां चैत्यं आयतनं आध्यात्मिकं हृदयपुण्डरीकं बाह्यं देवालयादि । चित्तमध्यस्थमित्यपि पाठः । नित्यमध्यस्थमिति पाठेऽपि मध्यं हृदयान्तमेव ॥ ३६ ॥ आत्मनैव निमित्तान्तरं विना । आत्म-सात् आत्ममात्रम् ॥ ३७ ॥ युगादौ तव वार्ष्णेयेत्यादि सार्धश्लोकत्रयं क्वचिन्न दृष्टम् । यस्य कृतिरिदं सकलं असौ देवोऽपि त्वन्नियोगकर इति विपरिणामेन योज्यम् ॥ ३८ ॥ कर्माणि पूतनावधादीनि ॥ ४३ ॥ एवं तत्पदार्थस्वरूपं प्रपंच्य तस्य त्वंपदार्थाभेदमाह एवमिति ॥ ४४ ॥ ममैव त्वं ब्रह्मण एव स्वरूपं जीवः तवैवाहं जीवस्यैव शुद्धं रूपं ब्रह्म न ततोऽन्यत् । ये मदीयास्तवैव ते ब्रह्मगता औपाधिक-सर्वज्ञत्वादयस्तेऽपि जीवस्यैव तस्माद्यो जीवं द्वेष्टि स ब्रह्म द्वेष्टि यो जीवं याति स ब्रह्म याति अद्रोहो सन्सर्वभूतेषु भगवद्भावं पश्येदित्यर्थः ॥ ४५ ॥ ननु मित्रयोरिवात्मा त्वं तवात्माहमि-त्यभेदोपचारो दृष्टः न त्वभेद इत्याशंक्याह अनन्य इति । मित्रयोर्हि अन्यत्वं प्रत्यक्षदृष्टं नत्विह निरूप्यते । अपृथक् ज्ञापकत्वाद्वाक्यस्य अनन्यत्वमप्यौपचारिकमस्त्वित्याशंक्याह नावयोरिति । अन्तरं भेदः । वेदितुं विचारयितुं जीवेशयो-र्भेदो दुर्निरूप इत्यर्थः । तथा हि किं देहभेदादात्मभेद उत आत्मभेदात् । नाद्यः कायव्यूहकृतयोगिन्यव्याप्तेः नान्त्यः उपाधिपरामर्शं विना भेदस्याविभाव्यमानत्वात् । मुक्तात्मानौ जीवेशौ वा न स्वभावाभिन्नौ उक्तहेतोः घटमठाकाशवदिति ॥ ४७ ॥ समावाये समूहे संरब्धेषु कुपितेषु ॥ ४८ ॥

धृष्टद्युम्नमुखैर्वीरैर्भ्रातृभिः परिवारिता ।
पाञ्चाली पुण्डरीकाक्षमासीनं भ्रातृभिः सह ।
अभिगम्याब्रवीत्क्रुद्धा शरण्यं शरणैषिणी ॥ ४९

द्रौपद्युवाच ।

पूर्वे प्रजाभिसर्गे त्वामाहुरेकं प्रजापतिम् ।
स्रष्टारं सर्वलोकानामसितो देवलोऽब्रवीत् ॥ ५०
विष्णुस्त्वमसि दुर्धर्ष त्वं यज्ञो मधुसूदन ।
यष्टा त्वमसि यष्टव्यो जामदग्न्यो यथाब्रवीत् ५१
ऋषयस्त्वां क्षमामाहुः सत्यं च पुरुषोत्तम ।
सत्याद्यज्ञोऽसि संभूतः कश्यपस्त्वां यथाब्रवीत् ५२
साध्यानामपि देवानां शिवानामीश्वरेश्वर ।
भूतभावन भूतेश यथा त्वां नारदोऽब्रवीत् ॥ ५३
ब्रह्मशंकरशक्राद्यैर्देववृन्दैः पुनः पुनः ।
क्रीडसे त्वं नरव्याघ्र बालः क्रीडनकैरिव ॥ ५४
द्यौश्च ते शिरसा व्याप्ता पद्भ्यां च पृथिवी प्रभो
जठरं ते इमे लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ५५
विद्यातपोऽभितप्तानां तपसा भावितात्मनाम् ।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणामसि सत्तमः ॥ ५६
राजर्षीणां पुण्यकृतामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मोपपन्नानां त्वं गतिः पुरुषर्षभ ॥
त्वं प्रभुस्त्वं विभुश्च त्वं भूतात्मा त्वं विचेष्टसे ॥
लोकपालाश्च लोकाश्च नक्षत्राणि दिशो दश ।
नभश्चन्द्रश्च सूर्यश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ५८
मर्त्यता चैव भूतानाममरत्वं दिवौकसाम् ।
त्वयि सर्वं महाबाहो लोककार्यं प्रतिष्ठितम् ॥ ५९
सा तेऽहं दुःखमाख्यास्ये प्रणयान्मधुसूदन ।
ईशस्त्वं सर्वभूतानां ये दिव्या ये च मानुषाः ६०
कथं नु भार्या पार्थानां तव कृष्ण सखी विभो ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी सभां कृष्येत मादृशी ६१
स्त्रीधर्मिणी वेपमाना शोणितेन समुक्षिता ।
एकवस्त्रा विकृष्टास्मि दुःखिता कुरुसंसदि ॥ ६२
राज्ञां मध्ये सभायां तु रजसातिपरिप्लुता ।
दृष्ट्वा च मां धार्तराष्ट्राः प्राहसन्पापचेतसः ॥ ६३
दासीभावेन मां भोक्तुमीषुस्ते मधुसूदन ।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पाञ्चालेषु च वृष्णिषु ॥ ६४
नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात् ६५

एवंविधस्यात्मतत्त्वस्याधिगमाय ध्यानस्तवनसेवादिना कृष्ण एव शरणीकरणीय इत्याह द्रौपदी वाक्येन पूर्वे इत्यादिना । पूर्वे सृष्टेः प्राक्काले त्वा एकं आहुः 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्याद्याः श्रुतयः प्रजाभिसर्गे च प्रजापतिं त्वामाहुः 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः' इत्याद्याः श्रुतयः । ईशत्वमपि न राजवत् किं तूपादानत्वेनेत्याह स्रष्टारमिति ॥ ५० ॥ विष्णुः विशतीति विष्णुः 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्' इति श्रुतेः । कारयिता क्रियाकर्ता कर्म च त्वमेवासीति पादचतुष्टयार्थः ॥ ५१ ॥ क्षमा दुःखसहता सत्यं सत्पृथिव्यप्तेजांसि त्यत् वाय्वाकाशौ तदात्मकं तस्मात् संभूतो यज्ञोऽपि त्वमसि ॥ ५२ ॥ भूतभावन-वियदादिस्रष्टः भूतेश भूतनियन्तः 'य आकाशमन्तरो यमयति' इत्यादिश्रुतेराकाशादेरपि नियम्यत्वादस्मदादिवच्चेतनत्वं द्रष्टव्यं । तत्र चेतनानुपलम्भस्त्वावरणस्थाग्नेरिवानभिव्यक्तत्वात् स्वभावादिति भावः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मादिनियन्तृत्वं नैष्ठुर्यं चाह द्वाभ्यां ब्रह्मेति ॥ ५४ ॥ विद्या वेदाधिगमो ब्रह्मचारिधर्मः । तपस्तदर्थानुष्ठानं गृहस्थधर्मः । तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिना वानप्रस्थधर्मेण च भावितात्मनां शोधितचित्तानां अत एवात्मदर्शनतृप्तानां यतीनां सत्तमः सत्यतमः सत्यं स्वप्नेन्द्रजालादि प्रातिभासिकं । सत्यतरो व्यवहारः सत्यतमं ब्रह्म इतरयोर्बाधावधिभूतत्वात् ॥ ५६ ॥ सर्वे धर्माः पापपुण्यादयस्तैरुपपन्नानामपि त्वमेव गतिः । दीनदयालुत्वात् पापिष्ठानामपि उद्धर्तेति भावः । प्रभुर्नियन्ता विभुर्व्यापकः भूतात्मा जीवः बुद्ध्याद्याकारपरिणतानि भूतान्येवात्मत्वेन मन्यमानः । 'अस्ति खल्वन्योऽपरो भूतात्मा यो यं सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः सदसद्योनिमापद्यते' इति मैत्रायणीये भूतात्मपदस्य जीवे रूढिदर्शनात् विचेष्टसे । कर्माणि कुरुषे ॥ ५७ ॥ त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितं लोकपालादिपदस्य त्वमेव प्रापक इत्यर्थः ॥ ५८ ॥ अस्यैव व्याख्या मर्त्यता चेति । मर्त्यता संसारः भूतानां साधारणजीवानां अमृतत्वं मुक्तिः दिवौकसां दिव्यदृष्टिमतां सात्त्विकानाम् ॥ ५९ ॥ एवं स्वर्गापवर्गार्थिभिः कृष्ण एव शरणीकरणीय इति कृष्णस्तुतिप्रसङ्गादुक्तं । संप्रति दृष्टफलार्थमपि स एवानुसर्तव्य इत्याह सा तेऽहं दुःखमाख्यास्ये इत्यादिना । अत्रात्मनि कृष्णस्य करुणोत्पादनार्थं दुःखनिवेदनं तत्प्रसङ्गेन महामहिम्नामपि संसारिणां दुर्गतिः प्रपञ्चिता वैराग्योत्पादनाय प्रणयाद्विस्रम्भात् आख्याने हेतुमाह ईशस्त्वमिति ॥ ६० ॥ स्त्रीधर्मिणी रजस्वला ॥ ६२ ॥ ईषुः ऐच्छन् ॥ ६४ ॥ स्नुषा वधूः ॥ ६५ ॥

गर्हये पाण्डवांस्त्वेव युधि श्रेष्ठान्महाबलान् ।
यत्क्लिश्यमानां प्रेक्षन्ते धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ६६
धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य च गाण्डिवम् ।
यौ मां विप्रकृतां क्षुद्रैर्मर्षयेतां जनार्दन ॥ ६७
शाश्वतोऽयं धर्मपथः सद्भिराचरितः सदा ।
यद्भार्यां परिरक्षन्ति भर्तारोऽल्पबला अपि ॥ ६८
भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ।
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥ ६९
आत्मा हि जायते तस्यां तस्माज्जाया भवत्युत ।
भर्ता च भार्यया रक्ष्यः कथं जायान्ममोदरे ॥ ७०
नन्विमे शरणं प्राप्तं न त्यजन्ति कदाचन ।
ते मां शरणमापन्नां नान्वपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ७१
पञ्चभिः पतिभिर्जाताः कुमारा मे महौजसः ।
एतेषामप्यवेक्षार्थं त्रातव्यास्मि जनार्दन ॥ ७२
प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात्सुतसोमो वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिश्च शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ ७३
कनिष्ठाच्छ्रुतकर्मा च सर्वे सत्यपराक्रमाः ।
प्रद्युम्नो यादृशः कृष्ण तादृशास्ते महारथाः ॥ ७४
नन्विमे धनुषि श्रेष्ठा अजेया युधि शात्रवैः ।
किमर्थं धार्तराष्ट्राणां सहन्ते दुर्बलीयसाम् ॥ ७५
अधर्मेण हृतं राज्यं सर्वे दासाः कृतास्तथा ।
सभायां परिकृष्टाहमेकवस्त्रा रजस्वला ॥ ७६
नाधिज्यमपि यच्छक्यं कर्तुमन्येन गाण्डिवम् ।
अन्यत्रार्जुनभीमाभ्यां त्वया वा मधुसूदन ॥ ७७
धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य च पौरुषम् ।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ॥ ७८
य एतानाक्षिपद्राष्ट्रात्सह मात्राऽविहिंसकान् ।
अधीयानान्पुरा बालान्व्रतस्थान्मधुसूदन ॥ ७९
भोजने भीमसेनस्य पापः प्राक्षेपयद्विषम् ।
कालकूटं नवं तीक्ष्णं संभृतं लोमहर्षणम् ॥ ८०
तज्जीर्णमविकारेण सहान्नेन जनार्दन ।
सशेषत्वान्महाबाहो भीमस्य पुरुषोत्तम ॥ ८१
प्रमाणकोट्यां विश्वस्तं तथा सुप्तं वृकोदरम् ।
बद्ध्वैनं कृष्ण गङ्गायां प्रक्षिप्य पुरमाव्रजत् ॥ ८२
यदा विबुद्धः कौन्तेयस्तदा संछिद्य बन्धनम् ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः ॥ ८३
आशीविषैः कृष्णसर्पैर्भीमसेनमदंशयत् ।
सर्वेष्वेवाङ्गदेशेषु न ममार च शत्रुहा ॥ ८४
प्रतिबुद्धस्तु कौन्तेयः सर्वान्सर्पानपोथयत् ।
सारथिं चास्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान् ॥ ८५
पुनः सुप्तानुपाधाक्षीद्बालकान्वारणावते ।
शयानानार्यया सार्धं को नु तत्कर्तुमर्हति ॥ ८६
यत्रार्या रुदती भीता पाण्डवानिदमब्रवीत् ।
महद्व्यसनमापन्ना शिखिना परिवारिता ॥ ८७
हा हतास्मि कुतो न्वद्य भवेच्छान्तिरिहानलात् ।
अनाथा विनशिष्यामि बालकैः पुत्रकैः सह ॥ ८८
तत्र भीमो महाबाहुर्वायुवेगपराक्रमः ।
आर्यामाश्वासयामास भ्रातॄंश्चापि वृकोदरः ॥ ८९
वैनतेयो यथा पक्षी गरुत्मान्पततां वरः ।
तथैवाभिपतिष्यामि भयं वो नेह विद्यते ॥ ९०
आर्यामङ्केन वामेन राजानं दक्षिणेन च ।
अंसयोश्च यमौ कृत्वा पृष्ठे बीभत्सुमेव च ॥ ९१
सहसोत्पत्य वेगेन सर्वानादाय वीर्यवान् ।
भ्रातॄनार्यां च बलवान्मोक्षयामास पावकात् ॥ ९२
ते रात्रौ प्रस्थिताः सर्वे सह मात्रा यशस्विनः ।
अभ्यगच्छन्महारण्यं हिडिम्बवनमन्तिकात् ॥ ९३
श्रान्ताः प्रसुप्तास्तत्रेमे मात्रा सह सुदुःखिताः ।
सुप्तांश्चैनानभ्यगच्छद्धिडिम्बा नाम राक्षसी ॥ ९४
सा दृष्ट्वा पाण्डवांस्तत्र सुप्तान्मात्रा सह क्षितौ ।
हृच्छयेनाभिभूतात्मा भीमसेनमकामयत् ॥ ९५
भीमस्य पादौ कृत्वा तु स्व उत्सङ्गे ततोऽबला ।
पर्यमर्दत संहृष्टा कल्याणी मृदुपाणिना ॥ ९६
तामबुध्यदमेयात्मा बलवान्सत्यविक्रमः ।
पर्यपृच्छत तां भीमः किमिहेच्छस्यनिन्दिते ॥ ९७
एवमुक्ता तु भीमेन राक्षसी कामरूपिणी ।
भीमसेनं महात्मानमाह चैवमनिन्दिता ॥ ९८
पलायध्वमितः क्षिप्रं मम भ्राताऽपवीर्यवान् ।
आगमिष्यति वो हन्तुं तस्माद्गच्छत माचिरम् ॥ ९९

धर्मपत्नीं यज्ञसंयोगिनीम् ॥ ६६ ॥ विप्रकृता दुःखं प्रापिता मर्षयेताम् क्षमेताम् ॥ ६७ ॥ जायात् उत्पद्येत ॥ ७० ॥ नान्वपद्यन्त नानुगृहीतवन्तः ॥ ७१ ॥ धार्तराष्ट्राणां अपराधं दुर्बलीयसां दुर्बलतराणाम् ॥ ७५ ॥ अधिज्यं आरोपितगुणम् ॥ ७७ ॥ आक्षिपत् दूरे कृतवान् । अविहिंसकान् अदुःखदान् ॥ ७९ ॥ संभृतं सहितं संभृतमिति पाठे बहुलम् ॥ ८० ॥ सशेषत्वात् आयुष इति शेषः ॥ ८१ ॥ प्रमाणकोट्यां प्रमाणाख्यो गङ्गातीरस्थो वटविशेषस्तत्प्रदेशे ॥ ८२ ॥ अपोथयत् प्रहृतवान् अपहस्तेन हस्तपृष्ठेन ॥ ८५ ॥ उपाधाक्षीत् दाहार्थं उपहृतवान् । आर्या श्वश्रू ॥ ८६ ॥ वैनतेयः विनतापुत्रः ॥ ९० ॥

अथ भीमोऽभ्युवाचेनां साभिमानमिदं वचः ॥
नोद्विजेयमहं तस्मान्निहनिष्येहमागतम् ॥ १००
तयोः श्रुत्वा तु संजल्पमागच्छद्राक्षसाधमः ।
भीमरूपो महानादान्विसृजन्भीमदर्शनः ॥ १ ॥

राक्षस उवाच ।

केन सार्धं कथयसि आनयैनं ममान्तिकम् ॥
हिडिम्बे भक्षयिष्यामो न चिरं कर्तुमर्हसि ॥ २
सा कृपासंगृहीतेन हृदयेन मनस्विनी ॥
नैनमैच्छत्तदाख्यातुमनुक्रोशादनिन्दिता ॥ ३ ॥
स नादान्विनदन्घोरान्राक्षसः पुरुषादकः ।
अभ्यद्रवत वेगेन भीमसेनं तदा किल ॥ ४
तमभिद्रुत्य संक्रुद्धो वेगेन महता बली ॥
अगृह्णत्पाणिना पाणिं भीमसेनस्य राक्षसः ॥ ५
इन्द्राशनिसमस्पर्शं वज्रसंहननं दृढम् ॥
संहत्य भीमसेनाय व्याक्षिपत्सहसा करम् ॥ ६
गृहीतं पाणिना पाणिं भीमसेनस्य रक्षसा ॥
नामृष्यत महाबाहुस्तत्राक्रुध्यद्वृकोदरः ॥ ७
तदासीत्तुमुलं युद्धं भीमसेनहिडिम्बयोः ।
सर्वास्त्रविदुषोर्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥ ८
विक्रीड्य सुचिरं भीमो राक्षसेन सहानघ ।
निजघान महावीर्यस्तं तदा निर्बलं बली ॥ ९
हत्वा हिडिम्बं भीमोथ प्रस्थितो भ्रातृभिः सह ।
हिडिम्बामग्रतः कृत्वा यस्यां जातो घटोत्कचः ॥
ततः संप्राद्रवन्सर्वे सह मात्रा परंतपाः ।
एकचक्रामभिमुखाः संवृता ब्राह्मणव्रजैः ॥ ११
प्रस्थाने व्यास एषां च मन्त्री प्रियहिते रतः ।
ततोऽगच्छन्नेकचक्रां पाण्डवाः संशितव्रताः ॥१२
तत्राप्यासादयामासुर्बकं नाम महाबलम् ।
पुरुषादं प्रतिभयं हिडिम्बेनैव संमितम् ॥ १३
तं चापि विनिहत्योग्रं भीमः प्रहरतां वरः ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैर्द्रुपदस्य पुरं ययौ ॥ १४
लब्धाहमपि तत्रैव वसता सव्यसाचिना ।
यथा त्वया जिता कृष्ण रुक्मिणी भीष्मकात्मजा॥
एवं सुयुद्धे पार्थेन जिताहं मधुसूदन ।
स्वयंवरे महत्कर्म कृत्वा न सुकरं परैः ॥ १६
एवं क्लेशैः सुबहुभिः क्लिश्यमाना सुदुःखिता ।
निवसाम्यार्यया हीना कृष्ण धौम्यपुरःसरा ॥१७
त इमे सिंहविक्रान्ता वीर्येणाभ्यधिकाः परैः ।
विहीनैः परिक्लिश्यन्तीं समुपेक्षन्ति मां कथम् १८
एतादृशानि दुःखानि सहन्ती दुर्बलीयसाम् ।
दीर्घकालं प्रदीप्तास्मि पापानां पापकर्मणाम् ॥१९
कुले महति जातास्मि दिव्येन विधिना किल ।
पाण्डवानां प्रिया भार्या स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ॥
कचग्रहमनुप्राप्ता सास्मि कृष्ण वरा सती ।
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां प्रेक्षतां मधुसूदन ॥ २१
इत्युक्त्वा प्रारुदत्कृष्णा मुखं प्रच्छाद्य पाणिना ।
पद्मकोशप्रकाशेन मृदुना मृदुभाषिणी ॥ २२
स्तनावपतितौ पीनौ सुजातौ शुभलक्षणौ ।
अभ्यवर्षत पाञ्चाली दुःखजैरश्रुबिन्दुभिः ॥ २३
चक्षुषी परिमार्जन्ती निःश्वसन्ती पुनः पुनः ।
बाष्पपूर्णेन कण्ठेन क्रुद्धा वचनमब्रवीत् ॥ २४
नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा न च बान्धवाः ।
न भ्रातरो न च पिता नैव त्वं मधुसूदन ॥ २५
ये मां विप्रकृतां क्षुद्रैरुपेक्षध्वं विशोकवत् ।
न च मे शाम्यते दुःखं कर्णो यत्प्राहसत्तदा ॥ २६
चतुर्भिः कारणैः कृष्ण त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः
संबन्धाद्गौरवात्सख्यात्प्रभुत्वेनैव केशव ॥ २७

वैशंपायन उवाच ।

अथ तामब्रवीत्कृष्णस्तस्मिन्वीरसमागमे ।

वासुदेव उवाच ।

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धासि भाविनि
बीभत्सुशरसंछन्नाञ्छोणितौघपरिप्लुतान् ॥ २८
निहतान्वल्लभान्वीक्ष्य शयानान्वसुधातले ।
यत्समर्थं पाण्डवानां तत्करिष्यामि मा शुचः २९
सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ।
पतेद्द्यौर्हिमवाञ्छीर्येत्पृथिवी शकलीभवेत् ॥ ३०
शुष्येत्तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत् ।
तच्छ्रुत्वा द्रौपदी वाक्यं प्रतिवाक्यमथाच्युतात् ॥
साचीकृतमवैक्षत्सा पाञ्चाली मध्यमं पतिम् ।
आबभाषे महाराज द्रौपदीमर्जुनस्तदा ॥ ३२

कृपासंगृहीतेन स्नेहवशेन ॥ ३ ॥ संहत्य मुष्टीकृत्य ॥ ६ ॥ दिव्येन अमानुषेण अग्निकुण्डोद्भवत्वात् ॥ २० ॥ सुजातौ संलग्नौ ॥ २३ ॥ विशोकवत् विशोका इव ॥ २६ ॥ संबन्धात् पितृष्वस्रीय-भार्यात्वात् गौरवादग्निकुण्डोद्भवत्वात् सख्यात् भक्तिमत्त्वात् प्रभुत्वेन सामर्थ्यवत्वेन त्वदीयेन ॥ २७ ॥ द्रौपदीवाक्यं प्रतिवाक्यं च श्रुत्वाऽर्जुन आबभाषे इति व्यवहितेन संबन्धः ॥ ३१ ॥ अत्र हेतुः यतः पाञ्चाली साचीकृतं वक्रीभूतं यथा स्यात्तथा मध्यमं पतिं तमेवावैक्षदिति अत इत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ३२ ॥

मा रोदीः शुभताम्राक्षि यदाह मधुसूदनः ।
तथा तद्भविता देवि नान्यथा वरवर्णिनि ॥ ३३
धृष्टद्युम्न उवाच ।
अहं द्रोणं हनिष्यामि शिखण्डी तु पितामहम् ।
दुर्योधनं भीमसेनः कर्णं हन्ता धनंजयः ॥ ३४
रामकृष्णौ व्यपाश्रित्य अजेयाः स्म रणे स्वसः
अपि वृत्रहणा युद्धे किं पुनर्धृतराष्ट्रजैः ॥ ३५
वैशंपायन उवाच ।
इत्युक्तेभिमुखा वीरा वासुदेवमुपास्थिताः ।
तेषां मध्ये महाबाहुः केशवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्रौपद्याश्वासने द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

## १३.

वासुदेव उवाच ।
नैतत्कृच्छ्रमनुप्राप्तो भवान्स्याद्वसुधाधिप ।
यद्यहं द्वारकायां स्यां राजन्संनिहितः पुरा ॥ १
आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोपि कौरवैः ।
आम्बिकेयेन दुर्धर्ष राज्ञा दुर्योधनेन च ।
वारयेयमहं द्यूतं बहून्दोषान्प्रदर्शयन् ॥ २
भीष्मद्रोणौ समानाय्य कृपं बाह्लीकमेव च ।
वैचित्रवीर्यं राजानमलं द्यूतेन कौरव ॥ ३
पुत्राणां तव राजेन्द्र त्वन्निमित्तमिति प्रभो ।
तत्राचक्षमहं दोषान्यैर्भवान्व्यतिरोपितः ॥ ४
वीरसेनसुतो यैस्तु राज्यात्प्रभ्रंशितः पुरा ।
अतर्कितविनाशश्च देवनेन विशांपते ॥ ५
सातत्यं च प्रसङ्गस्य वर्णयेयं यथातथम् ॥ ६
स्त्रियोक्षा मृगया पानमेतत्कामसमुत्थितम् ।
दुःखं चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः ॥ ७
तत्र सर्वत्र वक्तव्यं मन्यन्ते शास्त्रकोविदाः ।
विशेषतश्च वक्तव्यं द्यूते पश्यन्ति तद्विदः ॥ ८
एकाहाद्द्रव्यनाशोत्र ध्रुवं व्यसनमेव च ।
अभुक्तनाशश्चार्थानां वाक्पारुष्यं च केवलम् ॥९
एतच्चान्यच्च कौरव्य प्रासङ्गिकटुकोदयम् ।
द्यूते ब्रूयां महाबाहो समासाद्याम्बिकासुतम् १०
एवमुक्तो यदि मया गृह्णीयाद्वचनं मम ।
अनामयं स्याद्धर्मश्च कुरूणां कुरुवर्धन ॥ ११
न चेत्स मम राजेन्द्र गृह्णीयान्मधुरं वचः ।
पथ्यं च भरतश्रेष्ठ निगृह्णीयां बलेन तम् ॥ १२
अथैनमपनीतेन सुहृदो नाम दुर्हृदः ।
सभासदोनुवर्तंस्तांश्च हन्यां दुरोदरान् ॥ १३
असान्निध्यं तु कौरव्य ममानर्तेष्वभूत्तदा ।
येनेदं व्यसनं प्राप्ता भवन्तो द्यूतकारितम् ॥ १४

स्वसः हे भगिनि ॥ ३५ ॥ इति आरण्यकेपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्रौपदीसान्त्वने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

निरूपिता ससाधना ब्रह्मविद्या संप्रति भगवत्स्मरणमेव तत्सान्निध्यहेतुः सान्निध्यं च सर्वापत्तरणकृदिति भंग्यंतरेण प्रतिपाद्यते । नैतदित्यादिनाऽध्यायेन । यदहं द्वारकायां नवद्वारवत्यां देहनगर्यां तव मां चिन्तयतः संनिहितः स्यां तर्हि एतत् कृच्छ्रं वनवाससंकटं भवान्नानुप्राप्तः स्यात् यथा द्रौपदी कृच्छ्रकाले मां स्मृतवती वस्त्रराशिप्रदानेन मया सभायां कृच्छ्रान्मोचिता तथा त्वमपि अक्षपातनकाले मां यदि स्मरेस्तर्हि नैतत्कृच्छ्रं प्राप्नुयाः प्रत्युत तवैव जयः स्यादिति भावः ॥ १ ॥ अनाहूतोपि स्वक्षेमार्थं अप्रार्थितोपि वारयेयं द्यूतं अन्तर्यामित्वेन कथापक्षे त्वृजुरेवार्थः ॥२॥ बहिर्यामित्वेनापि द्यूतवारणोपायमाह भीष्मेति द्वाभ्याम ॥३॥ राजेन्द्र धृतराष्ट्र तव पुत्राणां द्यूतेन अलं इति वैचित्रवीर्यादीन्प्रति त्वन्निमित्तं हे प्रभो युधिष्ठिर अहं तत्र द्यूते दोषान् अचक्षं व्यक्तं कथितवान् स्यामिति संबन्धः ॥ ४ ॥ वीरसेनसुतः नलः यैः अक्षैरिति शेषः ॥ ५ ॥ सातत्यं अविच्छेदं प्रसङ्गस्य द्यूतक्रीडायाः हीयमानोपि जयाशया पुनः पुनर्दीव्यत्येवेत्यर्थः ॥ ६ ॥ कामः रागः ॥ ७ ॥ वक्तव्यं अधिगन्तव्यं ज्ञातव्यं गत्यर्थस्य वजेरिदं रूपं वचेरेव वार्थान्तरम ॥८॥ तदेवाह एकाहादिति । व्यसनं राज्यभ्रंशादि अर्थानां धर्मार्थकामानां पुमर्थानाम् ॥ ९ ॥ अपनीतेन अन्यायेन दुरोदरान् द्यूतकारान् ॥१३॥ आनर्तेषु आसमन्तान्नर्तयन्ति तेषु धीविलासेषु पक्षे देशविशेषेषु ॥ १४ ॥

सोहमेत्य कुरुश्रेष्ठ द्वारकां पाण्डुनन्दन ।
अश्रौषं त्वां व्यसनिनं युयुधानाद्यथातथम् ॥ १५
श्रुत्वैव चाहं राजेन्द्र परमोद्विग्नमानसः ।
तूर्णमभ्यागतोस्मि त्वां द्रष्टुकामो विशांपते ॥ १६
अहो कृच्छ्रमनुप्राप्ताः सर्वे स्म भरतर्षभ ।
सोहं त्वां व्यसने मग्नं पश्यामि सह सोदरैः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि वासुदेववाक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

युधिष्ठिर उवाच ।
असान्निध्यं कथं कृष्ण तवासीद्वृष्णिनन्दन ।
क्व चासीद्विप्रवासस्ते किं चाकार्षीः प्रवासतः ॥ १
कृष्ण उवाच ।
शाल्वस्य नगरं सौभं गतोहं भरतर्षभ ।
निहन्तुं कौरवश्रेष्ठ तत्र मे शृणु कारणम् ॥ २
महातेजा महाबाहुर्यः स राजा महायशाः ।
दमघोषात्मजो वीरः शिशुपालो मया हतः ॥ ३
यज्ञे ते भरतश्रेष्ठ राजसूयेर्हणां प्रति ।
सरोषवशमापन्नो नामृष्यत दुरात्मवान् ॥ ४
श्रुत्वा तं निहतं शाल्वस्तीव्ररोषसमन्वितः ।
उपायाद्द्वारकां शून्यामिहस्थे मयि भारत ॥ ५
स तत्र योधितो राजन्कुमारैर्वृष्णिपुङ्गवैः
आगतः कामगं सौभमारुह्यैव नृशंसवत् ॥ ६
ततो वृष्णिप्रवीरांस्तान्बालान्हत्वा बहूंस्तदा ।
पुरोद्यानानि सर्वाणि भेदयामास दुर्मतिः ॥ ७
उक्तवांश्च महाबाहो क्वासौ वृष्णिकुलाधमः ।
वासुदेवः स मन्दात्मा वसुदेवसुतो गतः ॥ ८
तस्य युद्धार्थिनो दर्पं युद्धे नाशयितास्म्यहम् ।
आनर्ताः सत्यमाख्यात तत्र गन्तास्मि यत्र सः ९
तं हत्वा विनिवर्तिष्ये कंसकेशिनिषूदनम् ।
अहत्वा न निवर्तिष्ये सत्येनायुधमालभे ॥ १०
कासौ कासाविति पुनस्तत्र तत्र प्रधावति ।
मया किल रणे योद्धुं काङ्क्षमाणः स सौभराट् ११
अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं विश्वासघातिनम् ।
शिशुपालवधामर्षाद्गमयिष्ये यमक्षयम् ॥ १२
मम पापस्वभावेन भ्राता येन निपातितः ।
शिशुपालो महीपालस्तं वधिष्ये महीपते ॥ १३
भ्राता बालश्च राजा च न च सङ्ग्राममूर्धनि ।
प्रमत्तश्च हतो वीरस्तं हनिष्ये जनार्दनम् ॥ १४
एवमादि महाराज विलप्य दिवमास्थितः ।
कामगेन स सौभेन क्षिप्त्वा मां कुरुनन्दन ॥ १५
तमश्रौषमहं गत्वा यथावृत्तः स दुर्मतिः ।
मयि कौरव्य दुष्टात्मा मार्तिकावतको नृपः ॥ १६
ततोहमपि कौरव्य रोषव्याकुलमानसः ।
निश्चित्य मनसा राजन्वधायास्य मनो दधे ॥ १७

---

कथान्तरमवतारयितुं कथापक्षमेवानुसरति सोहमित्यादिना । एत्य आगत्य युयुधानात्सात्यकेः ॥ १५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

असान्निध्यमिति । अत्र संक्षेपविस्तराभ्यां सौभवध उपाख्यायते । तस्य तात्पर्यं संसारसागरमध्ये द्वारकाख्ये स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयरूपे क्षेत्रे विस्मरणरूपाद्भगवदसंनिधानात् कामगमं मनोरथाख्यं सौभमारुह्यागतेन शाल्वाख्येन महामोहेन शोकाग्निरूपद्रुते सति प्रद्युम्नादिस्वरूपा यज्ञादयो धर्मास्तं वारयितुमक्षमा अभूवन् । ततोहं स्वचित्तद्वारकामेत्य चिदात्मानं मामधिक्षिपन्तं शाल्वमोहमहं ब्रह्मविद्यास्त्रेण हतवान् तत्पुरं च मनोरथमयं सौभं पातितवानिति । एवमेव युद्धादिरूपकेण सर्वत्राख्यायिकातात्पर्यमुन्नेयं तथा च श्रुतिः 'द्वयाह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च' इत्यादिना देवासुरशब्दैः शमकामादीन् विवक्षित्वा तद्युद्धरूपकेणाध्यात्मिकमर्थं निरूपयति तद्वदिहापि ज्ञेयं श्रुत्यनुसारित्वाद्भारतस्मृतेः ॥ १ ॥ सरोषवशं रोषेण पाहितं सामर्थ्यं 'वशमिच्छाप्रभुत्वयोः' इति विश्वः । दुरात्मवान् दुष्टचित्तः यद्वा दुःस्थितः रोषवत्त्वात् आत्मवान् युद्धादौ प्रतिमानसामर्थ्यवत्त्वात् दुःस्थितश्चासावात्मवांश्चेति समासः ॥ ४ ॥ इहस्थे त्वत्समीपस्थे ॥ ५ ॥ सौभं सुष्ठु भान्ति ते सुभाः काञ्चनादयस्तेषां धातवस्तज्जम् ॥ ६ ॥ आनर्ताः भो आनर्तदेश्याः आख्यात कथयत ॥ ९ ॥ क्षिप्त्वा कुत्सयित्वा ॥ १५ ॥ मार्तिकावतकः एतन्नामकदेशवासी ॥ १६ ॥

आनर्तेषु विमर्दं च क्षेपं चात्मनि कौरव ।
प्रवृद्धमवलेपं च तस्य दुष्कृतकर्मणः ॥ १८
ततः सौभवधायाहं प्रतस्थे पृथिवीपते ।
स मया सागरावर्ते दृष्ट आसीत्परीप्सता ॥ १९
ततः प्रध्माप्य जलजं पाञ्चजन्यमहं नृप ।
आहूय शाल्वं समरे युद्धाय समवस्थितः ॥ २०
तन्मुहूर्तमभूद्युद्धं तत्र मे दानवैः सह ।
वशीभूताश्च मे सर्वे भूतले च निपातिताः ॥ २१
एतत्कार्यं महाबाहो येनाहं नागमं तदा ।
श्रुत्वैव हास्तिनपुरं द्यूतं चाविनयोत्थितम् ।
द्रुतमागतवान्युष्मान्द्रष्टुकामः सुदुःखितान् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

## १५

युधिष्ठिर उवाच ।
वासुदेव महाबाहो विस्तरेण महामते ।
सौभस्य वधमाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यतः ॥ १
वासुदेव उवाच ।
हतं श्रुत्वा महाबाहो मया श्रौतश्रवं नृप ।
उपायाद्भरतश्रेष्ठ शाल्वो द्वारवतीं पुरीम् ॥ २
अरुन्धत्तां सुदुष्टात्मा सर्वतः पाण्डुनन्दन ।
शाल्वो वैहायसं चापि तत्पुरं व्यूह्य धिष्ठितः ॥ ३
तत्रस्थोऽथ महीपालो योधयामास तां पुरीम् ।
अभिसारेण सर्वेण तत्र युद्धमवर्तत ॥
पुरी समन्ताद्विहिता सपताका सतोरणा ।
सचक्रा सहुडा चैव सयन्त्रखनकास्तथा ॥
सोपशल्यप्रतोलीका साट्टाट्टालकगोपुरा ।
सचक्रग्रहणी चैव सोल्कालातावपोथिका ॥
सोष्ट्रिका भरतश्रेष्ठ सभेरीपणवानका ।
सतोमराङ्कुशा राजन्सशतघ्नीकलाङ्गला ॥ ७
सभुशुण्ड्यश्मगुडका सायुधा सपरश्वधा ।
लोहचर्मवती चापि साग्निः सगुडशृङ्गिका ॥ ८

अवलेपं गर्वं ज्ञात्वेति शेषः ॥ १८ ॥ सागरस्य आसमन्ताद्वर्तो वर्तनं यस्मिन्सागरद्वीपे इत्यर्थः ॥ १९ ॥ जलजं शङ्खम् ॥२०॥ द्यूतं श्रुत्वैव हास्तिनपुरं आगतवान् ॥२२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अर्थप्रधानौ धर्मकामौ अर्थस्तु स्वराज्यरक्षापरराज्यावमर्दाभ्यां राज्ञा प्राप्यते इति तावेव शाल्वप्रमथनात् सम्यक् श्रोतुकामः पृच्छति वासुदेवेति । कथ्यतः कथयतः कृष्णादितः श्रोतस्य रूपम् ॥ १ ॥ श्रुतश्रवा शिशुपालमाता तज्जं श्रौतश्रवं उपायात् उपगतः ॥ २ ॥ अरुन्धत् सैन्येन वैहायसं खेचरं व्यूह्य स्वरक्षापरोपमर्दयोग्यरचनाविशेषेण स्थापयित्वा धिष्ठितः सम्यक् स्थितः ॥ ३ ॥ अभितः परित उपरितश्चायुधानां सरणं निःसारणमभिसारस्तेन सर्वेण अच्छिद्रेण सर्वाभ्यो दिग्भ्यो युगपदविरलायुधसमूहागमनमित्यर्थः ॥४॥ पताका ध्वजाञ्चलः । तोरणानि बहिर्द्वाराणि । चक्राणि योधगणाः हुडास्तदाश्रयस्थानानि भाषायां 'बुरुज' संज्ञानि अन्ये तु । विण्मूत्रोत्सर्जनस्थानानि हुडा इत्याहुः उदाहरन्ति च अन्ये कल्प्यन्ते हुडस्थानानि रथस्योपरि सूरिभिः विण्मूत्रस्पर्शशुद्ध्यर्थं करादिस्पर्श उद्यत' इति । यन्त्राणि आग्नेयौषधबलेन दृषत्पिण्डोत्क्षेपणानि महान्ति 'कमान' संज्ञानि क्षुद्राणि सीसगुलिकोत्क्षेपणानि 'बंदुक' संज्ञानि । खनकाः सुरङ्गद्वारा गुप्तमार्गकर्तारः ॥ ५ ॥ उपशल्याः लोहमुखाः कीलास्तद्युक्ताः प्रतोल्यो रथ्यामार्गा यस्यां सा । अट्टालकाः उपरिगृहाः । गोपुराणि पुरद्वाराणि साट्टानि अट्टेन अट्टेन सहितानि अट्टालकादीनि यस्या सा । साट्टेति विशेषणं उपशल्यस्य ग्रामान्तस्य रथ्यायाश्चान्यस्य संबध्यते । चक्रग्रहणी सैन्यनिग्राहिका 'मोर्चा' इति म्लेच्छप्रसिद्धा सोल्कालातावपोथिका सोल्कमलातं ज्वालासहितमुल्मुकं यस्यां सा सोल्कालाता अवबद्धाः पोथिकाः यन्त्रबद्धा काष्ठपाषाणादयो रिपूणामुपरि पातनाय यस्यामिति प्राचः । उल्केवोल्का प्राणहरत्वाद्यन्त्रोत्क्षिप्तो गोलः । अलातं सकाष्ठदण्डं लोहमयमाग्नेयं प्रहरणं 'बाण' इति भाषायां प्रसिद्धं तयोरप्रत्याक्षेयगत्योरपि पोथिकाः पातयित्र्यः मन्त्रमय्यः शक्तयः कर्णायेन्द्रदत्तशक्तिसदृशास्तद्युक्ताः सोल्कालातावपोथिका ॥ ६ ॥ उष्ट्रिका मृच्चर्ममयानि भाण्डानि । सर्पिकेति पाठे अस्य आयुधविशेषाः ॥ ७ ॥ अश्मगुडकाः वर्तुलीकृताः पाषाणाः लोहमयानि चर्माणि कमठपृष्ठाकाराणि प्रहारवारकाणि । साग्निः आग्नेयौषधसहिता गुडा गोलकाः शृङ्गिकास्तदुत्क्षेपकयन्त्राणि शत्रूणामुपरि पातनाय तप्तो गुडो द्रवीभूतो यत्र शिखरे स्थाप्यते तत्सहितेत्यन्ये ॥ ८ ॥

शास्त्रदृष्टेन विधिना सुयुक्ता भरतर्षभ ।
रथैरनेकैर्विविधैर्गदसाम्बोद्धवादिभिः ॥ ९
पुरुषैः कुरुशार्दूल समर्थैः प्रतिवारणे ।
अनिख्यातकुलैर्वीरैर्दृष्टवीर्यैश्च संयुगे ॥ १०
मध्यमेन च गुल्मेन रक्षिभिः सा सुरक्षिता ।
उत्क्षिप्तगुल्मैश्च तथा हयैश्च सपताकिभिः ॥ ११
आघोषितं च नगरे न पातव्या सुरेति वै ।
प्रमादं परिरक्षद्भिरुग्रसेनोद्धवादिभिः ॥ १२
प्रमत्तेष्वभिघातं हि कुर्याच्छाल्वो नराधिपः ।
इति कृत्वाऽप्रमत्तास्ते सर्वे वृष्ण्यन्धकाः स्थिताः
आनर्ताश्च तथा सर्वे नटा नर्तकगायनाः ।
बहिर्निवासिताः क्षिप्रं रक्षद्भिर्वित्तसंचयम् ॥ १४
संक्रमा भेदिताः सर्वे नावश्च प्रतिषेधिताः ।
परिखाश्चापि कौरव्य कालैः सुनिचिताः कृताः
उदपानाः कुरुश्रेष्ठ तथैवाप्यम्बरीषकाः ।
समन्तात्क्रोशमात्रं च कारिता विषमा च भूः १६
प्रकृत्या विषमं दुर्गं प्रकृत्या च सुरक्षितम् ।
प्रकृत्या चायुधोपेतं विशेषेण तदानघ ॥ १७
सुरक्षितं सुगुप्तं च सर्वायुधसमन्वितम् ।
तत्पुरं भरतश्रेष्ठ यथेन्द्रभवनं तथा १८
न चामुद्रोऽभिनिर्याति न चामुद्रः प्रवेश्यते ।
वृष्ण्यन्धकपुरे राजंस्तदा सौभसमागमे ॥ १९
अनुरथ्यासु सर्वासु चत्वरेषु च कौरव ।
बलं बभूव राजेन्द्र प्रभूतगजवाजिमत् ॥ २०
दत्तवेतनभक्तं च दत्तायुधपरिच्छदम् ।
कृतोपधानं च तदा बलमासीन्महाभुज ॥ २१
न कुप्यवेतनी कश्चिन्न चातिक्रान्तवेतनी ।
नानुग्रहभृतः कश्चिन्न चादृष्टपराक्रमः ॥ २२
एवं सुविहिता राजन्द्वारका भूरिदक्षिणा ।
आहुकेन सुगुप्ता च राज्ञा राजीवलोचन ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

## १६

वासुदेव उवाच ।

तां तूपयातो राजेन्द्र शाल्वः सौभपतिस्तदा ।
प्रभूतनरनागेन बलेनोपविवेश ह ॥ १
समे निविष्टा सा सेना प्रभूतसलिलाशये ।
चतुरङ्गबलोपेता शाल्वराजाभिपालिता ॥ २
वर्जयित्वा श्मशानानि देवतायतनानि च ।
वल्मीकांश्चैत्यवृक्षांश्च तन्निविष्टमभूद्बलम् ॥ ३
अनीकानां विभागेन पन्थानः संवृता भवन् ।
प्रवणाय च नैवासञ्छाल्वस्य शिबिरे नृप ४
सर्वायुधसमोपेतं सर्वशस्त्रविशारदम् ।
रथनागाश्वकलिलं पदातिध्वजसंकुलम् ॥
तुष्टपुष्टबलोपेतं वीरलक्षणलक्षितम् ।
विचित्रध्वजसन्नाहं विचित्ररथकार्मुकम् ॥
संनिवेश्य च कौरव्य द्वारकायां नरर्षभ ।
अभिसारयामास तदा वेगेन पतगेन्द्रवत् ॥ ७
तदापतन्तं संदृश्य बलं शाल्वपतेस्तदा ।
निर्याय योधयामासुः कुमारा वृष्णिनन्दनाः ॥ ८

मध्यमो गुल्मः यत्र स्थितेन योधसङ्घेन चतुर्दिगवस्थिता रिपवो द्रष्टुं बाणादिना प्रहर्तुं च शक्यन्ते तादृशमुच्चस्थानं । उत्क्षिप्तगुल्मैःपरकीयगुल्मोच्चाटनकरैः ॥११॥ अप्रमत्ता इति छेदः ॥ १३ ॥ संक्रमाः नदीसेतवः कालैः शूलैः सुनिचिताः व्याप्ताः ॥ १५॥ उदपानाः कूपाः 'अम्बरीषो भवेद्भ्राष्ट्र' इति विश्वः गुप्ताग्निरित्यन्ये विषमा लोहकण्टकाद्याकीर्णा ॥ १६ ॥ अनुरथ्यासु प्रतिरथ्यम् ॥ २० ॥ वेतनं धनं भक्तं नित्यभोजनं कृतोपधानं कृतविशेषम् ॥२१॥ कुप्यं स्वर्णरूप्येतरद्धनं ताम्रादि अहो रणोद्यमस्तमनुलक्षीकृत्य भृतोऽनुग्रहतस्तत्कालस्वीकृतो न कश्चित् किं तु चिरसंभृता एव । कृपाभृतो न किं तु शौर्यभृत एवेति वा॥२२॥ भूरिदक्षिणा बहवो दाक्षिण्ययुक्ता यस्यां आहुकेन उग्रसेनेन ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

न्यविशत ॥१ ॥ समे देशे चतुरङ्गं चत्वारि रथनागाश्वपादातान्यङ्गानि यस्य ॥ २ ॥ पन्थानः पुरे धान्याद्यागमनमार्गाः प्रवणाय गूढभावेन निम्नगमनाय ॥ ४ ॥ कलिलं संकटम् ॥ ५ ॥ अभिसारयामास नगरसमीपं गमयामास सैन्यं पतगेन्द्रवत् सौभं चोपरितः अभिसारयामास ॥७॥ आपतन्तं आपतत् । निर्याय निर्गत्य पुराद्बहिः ॥८॥

असहन्तोऽभियानं तच्छाल्वराजस्य कौरव ।
चारुदेष्णश्च साम्बश्च प्रद्युम्नश्च महारथः ॥ ९
ते रथैर्दंशिताः सर्वे विचित्राभरणध्वजाः ।
संसक्ताः शाल्वराजस्य बहुभिर्योधपुङ्गवैः ॥ १०
गृहीत्वा कार्मुकं साम्बः शाल्वस्य सचिवं रणे ।
योधयामास संहृष्टः क्षेमवृद्धिं चमूपतिम् ॥ ११
तस्य बाणमयं वर्षं जाम्बवत्याः सुतो महत् ।
मुमोच भरतश्रेष्ठ यथा वर्षं सहस्रदृक् ॥ १२
तद्बाणवर्षं तुमुलं विषेहे स चमूपतिः ।
क्षेमवृद्धिर्महाराज हिमवानिव निश्चलः ॥ १३
ततः साम्बाय राजेन्द्र क्षेमवृद्धिरपि स्वयम् ।
मुमोच मायाविहितं शरजालं महत्तरम् ॥ १४
ततो मायामयं जालं माययैव विदार्य सः ।
साम्बः शरसहस्रेण रथमस्याभ्यवर्षत ॥ १५
ततः स विद्धः साम्बेन क्षेमवृद्धिश्चमूपतिः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः साम्बबाणप्रपीडितः ॥ १६
तस्मिन्विप्रद्रुते क्रूरे शाल्वस्याथ चमूपतौ ।
वेगवान्नाम दैतेयः सुतं मेऽभ्यद्रवद्बली ॥ १७
अभिपन्नस्तु राजेन्द्र साम्बो वृष्णिकुलोद्वहः ।
वेगं वेगवतो राजंस्तस्थौ वीरो विधारयन् ॥ १८
स वेगवति कौन्तेय साम्बो वेगवतीं गदाम् ।
चिक्षेप तरसा वीरो व्याविध्य सत्यविक्रमः ॥ १९
तया त्वभिहतो राजन्वेगवान्यपतद्भुवि ।
वातरुग्ण इव क्षुण्णो जीर्णमूलो वनस्पतिः ॥ २०
तस्मिन्विनिहते वीरे गदानुन्ने महासुरे ।
प्रविश्य महतीं सेनां योधयामास मे सुतः ॥ २१
चारुदेष्णेन संसक्तो विविन्ध्यो नाम दानवः ।
महारथः समाज्ञातो महाराज महाधनुः ॥ २२
ततः सुतुमुलं युद्धं चारुदेष्णविविन्ध्ययोः ।
वृत्रवासवयो राजन्यथा पूर्वं तथाभवत् ॥ २३
अन्योन्यस्याभिसंक्रुद्धावन्योन्यं जघ्नतुः शरैः ।
विनदन्तौ महारावान्सिंहाविव महाबलौ ॥ २४
रौक्मिणेयस्ततो बाणमग्न्यर्कोपमवर्चसम् ।
अभिमन्त्र्य महास्त्रेण संदधे शत्रुनाशनम् ॥ २५
स विविन्ध्याय सक्रोधः समाहूय महारथः ।
चिक्षेप मे सुतो राजन्स गतासुरथापतत् ॥ २६
विविन्ध्यं निहतं दृष्ट्वा तां च विक्षोभितां चमूम् ।
कामगेन ससौभेन शाल्वः पुनरुपागमत् ॥ २७
ततो व्याकुलितं सर्वं द्वारकावासि तद्बलम् ।
दृष्ट्वा शाल्वं महाबाहो सौभस्थं नृपते तदा ॥ २८
ततो निर्याय कौरव्य अवस्थाप्य च तद्बलम् ।
आनर्तानां महाराज प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत् ॥ २९
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु सर्वे पश्यन्तु मां युधि ।
निवारयन्तं संग्रामे बलात्सौभं सराजकम् ॥ ३०
अहं सौभपतेः सेनामायसैर्भुजगैरिव
धनुर्भुजविनिर्मुक्तैर्नाशयाम्यद्य यादवाः ॥ ३१
आश्वसध्वं न भीः कार्या सौभराडद्य नश्यति ।
मयाभिपन्नो दुष्टात्मा स सौभो विनशिष्यति ॥ ३२
एवं ब्रुवति संहृष्टे प्रद्युम्ने पाण्डुनन्दन ।
विष्ठितं तद्बलं वीर युयुधे च यथासुखम् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

वासुदेव उवाच ।
एवमुक्त्वा रौक्मिणेयो यादवान्भरतर्षभ ।
दंशितैर्हरिभिर्युक्तं रथमास्थाय काञ्चनम् ॥ १
उच्छ्रित्य मकरं केतुं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
उत्पतद्भिरिवाकाशं तैर्हयैरन्वयात्परान् ॥ २
विक्षिपन्नादयंश्चापि धनुःश्रेष्ठं महाबलः ।
तूणखड्गधरः शूरो बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ ३

दंशिताः संनद्धाः ॥१०॥ अपायात् पलायितः । जवनैः शीघ्रैः ॥१६॥ अभिपन्नः आभिमुख्येनासादितः ॥१८॥ व्याविध्य भ्रामयित्वा ॥ १९ ॥ रुग्णः क्षुण्णश्च गजादिपदाघातैः ॥ २० ॥ सौभेन खेचरेण पुरेण ॥ २७ ॥ निर्याय निर्गत्य अवस्थाप्य आश्वास्य आनर्तानां द्वारकावासिनाम् ॥२९॥ धनुर्भुजविनिर्मुक्तैः धनुषः भुजेन कौटिल्येन अत्याकर्षणजेन विर्मुक्तैः । भुज कौटिल्ये तुदादिः ॥ ३१ ॥ नश्यति आशु मरिष्यति । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वेति लट् ॥ ३२ ॥ धिष्ठितमधिष्ठितम् । धिषा वचनप्रागल्भ्येन स्थितमिति वा ॥ ३३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

एवमुक्त्वेति । हरिभिरश्वैः ॥ १ ॥ अन्वयादनुगतः ॥ २ ॥ विक्षिपन् परान् धिक्कुर्वन् महाबलैर्दैत्यैः ॥ ३ ॥

स विद्युच्चलितं चापं विहरन्वै तलात्तलम्।
मोहयामास दैतेयान्सर्वान्सौभनिवासिनः॥ ४

तस्य विक्षिपतश्चापं संदधानस्य चासकृत्।
नान्तरं ददृशे कश्चिन्निघ्नतः शात्रवान्रणे॥ ५

मुखस्य वर्णो न विकल्पतेऽस्य
चेलुश्च गात्राणि न चापि तस्य।
सिंहोन्नतं चाप्यभिगर्जतोऽस्य
शुश्राव लोकोऽद्भुतवीर्यमग्र्यम्॥ ६

जलेचरः काञ्चनयष्टिसंस्थो
व्यात्ताननः सर्वतिमिप्रमाथी।
वित्रासयन्राजति वाहमुख्ये
शाल्वस्य सेनाप्रमुखे ध्वजाग्र्यः॥ ७

ततस्तूर्णं विनिष्पत्य प्रद्युम्नः शत्रुकर्शनः।
शाल्वमेवाभिदुद्राव विधित्सुः कलहं नृप॥ ८

अभियानं तु वीरेण प्रद्युम्नेन महारणे।
नामर्षयत संक्रुद्धः शाल्वः कुरुकुलोद्वह॥ ९

स रोषमदमत्तो वै कामगादवरुह्य च।
प्रद्युम्नं योधयामास शाल्वः परपुरंजयः॥ १०

तयोः सुतुमुलं युद्धं शाल्ववृष्णिप्रवीरयोः।
समेता ददृशुर्लोका बलिवासवयोरिव॥ ११

तस्य मायामयो वीर रथो हेमपरिष्कृतः।
सपताकः सध्वजश्च सानुकर्षः सतूणवान्॥ १२

स तं रथवरं श्रीमान्समारुह्य किल प्रभो।
मुमोच बाणान्कौरव्य प्रद्युम्नाय महाबलः॥ १३

ततो बाणमयं वर्षं व्यसृजत्तरसा रणे।
प्रद्युम्नो भुजवेगेन शाल्वं संमोहयन्निव॥ १४

स तैरभिहतः संख्ये नामर्षयत सौभराट्।
शरान्दीप्ताग्निसंकाशान्मुमोच तनये मम॥ १५

तानापतत बाणौघान्स चिच्छेद महाबलः।
ततश्चान्याञ्छरान्दीप्तान्प्रचिक्षेप सुते मम॥ १६

स शाल्वबाणै राजेन्द्र विद्धो रुक्मिणिनन्दनः।
मुमोच बाणं त्वरितो मर्मभेदिनमाहवे॥ १७

तस्य वर्म विभिद्याशु स बाणो मत्सुतेरितः।
बिभेद हृदयं पत्री स मुमोह पपात च॥ १८

तस्मिन्निपतिते वीरे शाल्वराजे विचेतसि।
संप्राद्रवन्दानवेन्द्रा दारयन्तो वसुंधराम्॥ १९

हाहाकृतमभूत्सैन्यं शाल्वस्य पृथिवीपते।
नष्टसंज्ञे निपतिते तदा सौभपतौ नृप॥ २०

तत उत्थाय कौरव्य प्रतिलभ्य च चेतनाम्।
मुमोच बाणांस्तरसा प्रद्युम्नाय महाबलः॥ २१

तैः स विद्धो महाबाहुः प्रद्युम्नः समरे स्थितः।
जत्रुदेशे भृशं वीरो व्यवासीदद्रथे तदा॥ २२

तं स विद्ध्वा महाराज शाल्वो रुक्मिणिनन्दनम्।
ननाद सिंहनादं वै नादेनापूरयन्महीम्॥ २३

ततो मोहं समापन्ने तनये मम भारत।
मुमोच बाणांस्त्वरितः पुनरन्यान्दुरासदान्॥ २४

स तैरभिहतो बाणैर्बहुभिस्तेन मोहितः।
निश्चेष्टः कौरवश्रेष्ठ प्रद्युम्नोऽभूद्रणाजिरे॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने सप्तदशोऽध्यायः॥

## १८

वासुदेव उवाच।

शाल्वबाणार्दिते तस्मिन्प्रद्युम्ने बलिनां वरे।
वृष्णयो भग्नसंकल्पा विव्यथुः पृतनागताः॥ १

हाहाकृतमभूत्सर्वं वृष्ण्यन्धकबलं ततः।
प्रद्युम्ने मोहिते राजन्परे च मुदिता भृशम्॥ २

तं तथा मोहितं दृष्ट्वा सारथिर्जवनैर्हयैः।
रणादपाहरत्तूर्णं शिक्षितो दारुकिस्तदा॥ ३

नातिदूरापयाते तु रथे रथवरप्रणुत्।
धनुर्गृहीत्वा यन्तारं लब्धसंज्ञोऽब्रवीदिदम्॥ ४

विद्युच्चलितेन [illegible] विद्युत्कल्पेनेति [illegible] तलात्तलम् [illegible] हस्ततलपरिवर्तनेन [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] कश्चित् ॥ ५ ॥ विकल्पते भिद्यते ॥ ६ ॥ [illegible] तिमिमीनः [illegible] ॥ ७ ॥ सानुकर्षः [illegible] रथकाष्ठमनुकर्ष [illegible] ॥ १२ ॥ [illegible]

[illegible] ॥ १८ ॥ जत्रुदेशे कण्ठमूले व्यवासीद [illegible] ॥ २२ ॥ इत्यारण्यके [illegible] सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

[illegible] ॥

सूत किं ते व्यवसितं कस्माद्यासि पराङ्मुखः ।
नैष वृष्णिप्रवीराणामाहवे धर्म उच्यते ॥ ५

कच्चित्सूत न ते मोहः शाल्वं दृष्ट्वा महाहवे ।
विषादो वा रणं दृष्ट्वा ब्रूहि मे त्वं यथातथम् ॥ ६

सूत उवाच ।

जनार्दने न मे मोहो नापि मां भयमाविशत् ।
अतिभारं तु ते मन्ये शाल्वं केशवनन्दन ॥ ७

सोऽपयामि शनैर्वीर बलवानेष पापकृत् ।
मोहितश्च रणे शूरो रक्ष्यः सारथिना रथी ॥ ८

आयुष्मंस्त्वं मया नित्यं रक्षितव्यस्त्वयाप्यहम् ।
रक्षितव्यो रथी नित्यमिति कृत्वाऽपयाम्यहम् ॥ ९

एकश्चासि महाबाहो बहवश्चापि दानवाः ।
न समं रौक्मिणेयाहं रणं मत्वाऽपयामि वै ॥ १०

एवं ब्रुवति सूते तु तदा मकरकेतुमान् ।
उवाच सूतं कौरव्य निवर्तय रथं पुनः ॥ ११

दारुकात्मज मैवं त्वं पुनः कार्षीः कथंचन ।
व्यपयानं रणात्सूत जीवतो मम कर्हिचित् ॥ १२

न स वृष्णिकुले जातो यो वै त्यजति संगरम् ।
यो वा निपतितं हन्ति तवास्मीति च वादिनम् ॥ १३

तथा स्त्रियं च यो हन्ति बालं वृद्धं तथैव च ।
विरथं विप्रकीर्णं च भग्नशस्त्रायुधं तथा ॥ १४

त्वं च सूतकुले जातो विनीतः सूतकर्मणि ।
धर्मज्ञश्चासि वृष्णीनामाहवेष्वपि दारुके ॥ १५

स जानंश्चरितं कृत्स्नं वृष्णीनां पृतनामुखे ।
अपयानं पुनः सूत मैवं कार्षीः कथंचन ॥ १६

अपयातं हतं पृष्ठे भीतं रणपलायिनम् ।
गदाग्रजो दुराधर्षः किं मां वक्ष्यति माधवः ॥ १७

केशवस्याग्रजो वापि नीलवासा मदोत्कटः ।
किं वक्ष्यति महाबाहुर्बलदेवः समागतः ॥ १८

किं वक्ष्यति शिनेर्नप्ता नरसिंहो महाधनुः ।
अपयातं रणात्सूत साम्बश्च समितिंजयः ॥ १९

चारुदेष्णश्च दुर्धर्षस्तथैव गदसारणौ ।
अक्रूरश्च महाबाहुः किं मां वक्ष्यति सारथे ॥ २०

शूरं संभावितं शान्तं नित्यं पुरुषमानिनम् ।
स्त्रियश्च वृष्णिवीराणां किं मां वक्ष्यन्ति संहताः ॥

प्रद्युम्नोऽयमुपायाति भीतस्त्यक्त्वा महाहवम् ।
धिगेनमिति वक्ष्यन्ति न तु वक्ष्यन्ति साध्विति ॥

धिग्वाचा परिहासोऽपि मम वा मद्विधस्य वा ।
मृत्युनाभ्यधिकः सूत स त्वं मा व्यपयाः पुनः ॥

भारं हि मयि संन्यस्य यातो मधुनिहा हरिः ।
यज्ञं भारतसिंहस्य न हि शक्योऽस्ति मर्षितुम् ॥ २४

कृतवर्मा मया वीरो निर्यास्यन्नेव वारितः ।
शाल्वं निवारयिष्येऽहं तिष्ठ त्वमिति सूतज ॥ २५

स च संभावयन्मां वै निवृत्तो हृदिकात्मजः ।
तं समेत्य रणं त्यक्त्वा किं वक्ष्यामि महारथम् ॥

उपयान्तं दुराधर्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
पुरुषं पुण्डरीकाक्षं किं वक्ष्यामि महाभुजम् ॥ २७

सात्यकिं बलदेवं च ये चान्येऽन्धकवृष्णयः ।
मया स्पर्धन्ति सततं किं नु वक्ष्यामि तानहम् ॥ २८

त्यक्त्वा रणमिमं सूत पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ।
त्वयापनीतो विवशो न जीवेयं कथंचन ॥ २९

स निवर्त रथेनाशु पुनर्दारुकनन्दन ।
न चैतदेवं कर्तव्यमथापत्सु कथंचन ॥ ३०

न जीवितमहं सूत बहु मन्ये कथंचन ।
अपयातो रणाद्भीतः पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ॥ ३१

कदापि सूतपुत्र त्वं जानीषे मां भयार्दितम् ।
अपयातं रणं हित्वा यथा कापुरुषं तथा ॥ ३२

न युक्तं भवता त्यक्तुं संग्रामं दारुकात्मज ।
मयि युद्धार्थिनि भृशं स त्वं याहि यतो रणम् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

शिनेर्नप्ता सात्यकिः ॥ १९ ॥ ... अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

वासुदेव उवाच ।
एवमुक्तस्तु कौन्तेय सूतपुत्रस्ततोऽब्रवीत् ।
प्रद्युम्नं बलिनां श्रेष्ठं मधुरं श्लक्ष्णमञ्जसा ॥ १
न मे भयं रौक्मिणेय संग्रामे यच्छतो हयान् ।
युद्धज्ञोऽस्मि च वृष्णीनां नात्र किंचिदतोऽन्यथा ॥ २
आयुष्मन्नुपदेशस्तु सारथ्ये वर्ततां स्मृतः ।
सर्वार्थेषु रथी रक्ष्यस्त्वं चापि भृशपीडितः ॥ ३
त्वं हि शाल्वप्रयुक्तेन शरेणाभिहतो भृशम् ।
कश्मलाभिहतो वीर ततोऽहमपयातवान् ॥ ४
स त्वं सात्वतमुख्याद्य लब्धसंज्ञो यदृच्छया ।
पश्य मे हयसंयाने शिक्षां केशवनन्दन ॥ ५
दारुकेणाहमुत्पन्नो यथावच्चैव शिक्षितः ।
वीतभीः प्रविशाम्येतां शाल्वस्य प्रथितां चमूम् ॥ ६
वासुदेव उवाच ।
एवमुक्त्वा ततो वीर हयान्संचोद्य संगरे ।
रश्मिभिस्तु समुद्यम्य जवेनाभ्यपतत्तदा ॥ ७
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
सव्यानि च विचित्राणि दक्षिणानि च सर्वशः ॥ ८
प्रतोदेनाहता राजन्रश्मिभिश्च समुद्यताः ।
उत्पतन्त इवाकाशे व्यचरंस्ते हयोत्तमाः ॥ ९
ते हस्तलाघवोपेतं विज्ञाय नृपदारुकिम् ।
दह्यमाना इव तदा नास्पृशंश्चरणैर्महीम् ॥ १०
सोऽपसव्यां चमूं तस्य शाल्वस्य भरतर्षभ ।
चकार नातियत्नेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११
अमृष्यमाणोऽपसव्यं प्रद्युम्नेन स सौभराट् ।
यन्तारमस्य सहसा त्रिभिर्बाणैः समार्दयत् ॥ १२
दारुकस्य सुतस्तत्र बाणवेगमचिन्तयन् ।
भूय एव महाबाहो प्रययावपसव्यतः ॥ १३
ततो बाणान्बहुविधान्पुनरेव स सौभराट् ।
मुमोच तनये वीर मम रुक्मिणिनन्दने ॥ १४
तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद परवीरहा ।
रौक्मिणेयः स्मितं कृत्वा दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ १५
छिन्नान्दृष्ट्वा तु तान्बाणान्प्रद्युम्नेन च सौभराट् ।
आसुरीं दारुणीं मायामास्थाय व्यसृजच्छरान् ॥ १६
प्रयुज्यमानमाज्ञाय दैतेयास्त्रं महाबलम् ।
ब्रह्मास्त्रेणान्तरा छित्त्वा मुमोचान्यान्पतत्रिणः ॥ १७
ते तदस्त्रं विधूयाशु विव्यधू रुधिराशनाः ।
शिरस्युरसि वक्त्रे च स मुमोह पपात च ॥ १८
तस्मिन्निपतिते क्षुद्रे शाल्वे बाणप्रपीडिते ।
रौक्मिणेयोऽपरं बाणं संदधे शत्रुनाशनम् ॥ १९
तमर्चितं सर्वदाशार्हपूगै-
राशीविषाग्निज्वलनप्रकाशम् ।
दृष्ट्वा शरं ज्यामभिनीयमानं
बभूव हाहाकृतमन्तरिक्षम् ॥ २०
ततो देवगणाः सर्वे सेन्द्राः सह धनेश्वराः ।
नारदं प्रेषयामासुः श्वसनं च मनोजवम् ॥ २१
तौ रौक्मिणेयमागम्य वचोऽब्रूतां दिवौकसाम् ।
नैष वध्यस्त्वया वीर शाल्वराजः कथंचन ॥ २२
संहरस्व पुनर्बाणमवध्योऽयं त्वया रणे ।
एतस्य च शरस्याजौ नावध्योऽस्ति पुमान्क्वचित् ॥ २३
मृत्युरस्य महाबाहो रणे देवकिनन्दनः ।
कृष्णः संकल्पितो धात्रा तन्मिथ्या न भवेदिति ॥ २४
ततः परमसंहृष्टः प्रद्युम्नः शरमुत्तमम् ।
संजहार धनुःश्रेष्ठात्तूणे चैव न्यवेशयत् ॥ २५
तत उत्थाय राजेन्द्र शाल्वः परमदुर्मनाः ।
व्यपायात्सबलस्तूर्णं प्रद्युम्नशरपीडितः ॥ २६
स द्वारकां परित्यज्य क्रूरो वृष्णिभिरार्दितः ।
सौभमास्थाय राजेन्द्र दिवमाचक्रमे तदा ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

१९.

एवमुक्त इति ॥ १ ॥ यमकानि सदृशानि इतराणि विसदृशानि ॥ ८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

वासुदेव उवाच ।
आनर्तनगरं मुक्तं ततोहमगमं तदा ।
महाक्रतौ राजसूये निवृत्ते नृपते तव ॥ १
अपश्यं द्वारकां चाहं महाराज हतत्विषम् ।
निःस्वाध्यायवषट्कारां निर्भूषणवरस्त्रियम् ॥ २
अनभिज्ञेयरूपाणि द्वारकोपवनानि च ।
दृष्ट्वा शङ्कोपपन्नोहमपृच्छं हृदिकात्मजम् ॥ ३
अस्वस्थनरनारीकमिदं वृष्णिकुलं भृशम् ।
किमिदं नरशार्दूल श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४
एवमुक्तः स तु मया विस्तरेणेदमब्रवीत् ।
रोधं मोक्षं च शाल्वेन हार्दिक्यो राजसत्तम ॥ ५
ततोहं भरतश्रेष्ठ श्रुत्वा सर्वमशेषतः ।
विनाशे शाल्वराजस्य तदैवाकरवं मतिम् ॥ ६
ततोहं भरतश्रेष्ठ समाश्वास्य पुरे जनम् ।
राजानमाहुकं चैव तथैवानकदुन्दुभिम् ॥ ७
सर्वान्वृष्णिप्रवीरांश्च हर्षयन्नब्रवं तदा ।
अप्रमादः सदा कार्यो नगरे यादवर्षभाः ॥ ८
शाल्वराजविनाशाय प्रयातं मां निबोधत ।
नाहत्वा तं निवर्तिष्ये पुरीं द्वारवतीं प्रति ॥ ९
सशाल्वं सौभनगरं हत्वा द्रष्टास्मि वः पुनः ।
त्रिःसामा हन्यतामेषा दुन्दुभिः शत्रुभीषणा ॥ १०
ते मयाश्वासिता वीरा यथावद्भरतर्षभ ।
सर्वे मामब्रुवन्हृष्टाः प्रयाहि जहि शात्रवान् ॥ ११
तैः प्रहृष्टात्मभिर्वीरैराशीर्भिरभिनन्दितः ।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान्प्रणम्य शिरसा भवम् ॥ १२
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन रथेनानादयन्दिशः ।
प्रध्माय शङ्खप्रवरं पाञ्चजन्यमहं नृप ॥ १३
प्रयातोस्मि नरव्याघ्र बलेन महता वृतः ।
क्लृप्तेन चतुरङ्गेण यत्तेन जितकाशिना ॥ १४
समतीत्य बहून्देशान्गिरींश्च बहुपादपान् ।
सरांसि सरितश्चैव मार्तिकावतमासदम् ॥ १५
तत्राश्रौषं नरव्याघ्र शाल्वं सागरमन्तिकात् ।
प्रयान्तं सौभमास्थाय तमहं पृष्ठतोन्वयाम् ॥ १६
ततः सागरमासाद्य कुक्षौ तस्य महोर्मिणः ।
समुद्रनाभ्यां शाल्वोभूत्सौभमास्थाय शत्रुहन् ॥ १७
स समालोक्य दूरान्मां स्मयन्निव युधिष्ठिर ।
आह्वयामास दुष्टात्मा युद्धायैव मुहुर्मुहुः ॥ १८
तस्य शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः ।
पुरं नासाद्यत शरैस्ततो मां रोष आविशत् ॥ १९
स चापि पापप्रकृतिर्दैतेयापसदो नृप ।
मय्यवर्षत दुर्धर्षः शरधाराः सहस्रशः ॥ २०
सैनिकान्मम सूतं च हयांश्च स समाकिरत् ।
अचिन्तयन्तस्तु शरान्वयं युध्याम भारत ॥ २१
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
चिक्षिपुः समरे वीरा मयि शाल्वपदानुगाः ॥ २२
ते हयांश्च रथं चैव तदा दारुकमेव च ।
छादयामासुरसुरास्तैर्बाणैर्मर्मभेदिभिः ॥ २३
न हया न रथो वीर न यन्ता मम दारुकः ।
अदृश्यन्त शरैश्छन्नास्तथाहं सैनिकाश्च मे ॥ २४
ततोहमपि कौन्तेय शराणामयुतान्बहून् ।
आमन्त्रितानां धनुषा दिव्येन विधिनाऽक्षिपम् ॥ २५
न तत्र विषयस्त्वासीन्मम सैन्यस्य भारत ।
खे विषक्तं हि तत्सौभं क्रोशमात्र इवाभवत् ॥ २६
ततस्ते प्रेक्षकाः सर्वे रङ्गवाट इव स्थिताः ।
हर्षयामासुरुच्चैर्मां सिंहनादतलस्वनैः ॥ २७
मत्कराग्रविनिर्मुक्ता दानवानां शरास्तथा ।
अङ्गेषु रुचिरापाङ्गा विविशुः शलभा इव ॥ २८
ततो हलहलाशब्दः सौभमध्ये व्यवर्धत ।
वध्यतां विशिखैस्तीक्ष्णैः पततां च महार्णवे ॥ २९
ते निकृत्तभुजस्कन्धाः कबन्धाकृतिदर्शनाः ।
नदन्तो भैरवान्नादान्निपतन्ति स्म दानवाः ॥ ३०

२०

आनर्तेति ॥ १ ॥ हृदिकात्मजं कृतवर्माणम् ॥ ३ ॥ त्रिःसामा त्रिस्वरा नीचमन्द्रतारभावेन त्रिःसमा हन्यतामित्यपि पठन्ति ॥ १० ॥ वाचयित्वा स्वस्तिवादानिति शेषः ॥ १२ ॥ जितकाशिना जयशोभिना । जिताः काशयो देशविशेषा येनेति वा तर्हि गुरुत्वेनातिप्रसिद्धाः काश्यो वा वैदेहो वा इति श्रुतिलिङ्गात् ॥ १४ ॥ मार्तिकावतं देशविशेषं आसदं प्राप्तः ॥ १५ ॥ सागरमन्तिकात् सागरसमीपे अन्वयां अनुगतवानस्मि ॥ १६ ॥ महोर्मिणः महोर्मिमतः आत्मादित्वादिनिः नाभ्या गर्भे गुप्त इत्यर्थः ॥ १७ ॥ तस्य पुरं मदीयैः शरैर्नासाद्यतेति संबन्धः ॥ १९ ॥ नतानि निम्नीकृतानि पर्वाणि ग्रन्थयो येषां श्लक्ष्णानामित्यर्थः ॥ २२ ॥ आमन्त्रितानां अभिमन्त्रितानां दिव्येन विधिना अलौकिकया अस्त्रविद्यया ॥ २५ ॥ विषयः गोचरः तत्र हेतुः खे विषक्तं लग्नम् ॥ २६ ॥ तलस्वनैः हस्ततलशब्दैः ॥ २७ ॥ दानवानां अङ्गेष्विति संबन्धः रुचिरापाङ्गाश्चित्रपुङ्खाः ॥ २८ ॥ वध्यतां वध्यमानानाम् ॥ २९ ॥

पतितास्तेऽपि दृश्यन्ते समुद्राम्भोनिवासिभिः ।
ततो गोक्षीरकुन्देन्दुमृणालरजतप्रभम् ॥ ३१
जलजं पाञ्चजन्यं वै प्राणेनाहमपूरयम् ।
तान्दृष्ट्वा पतितांस्तत्र शाल्वः सौभपतिस्ततः ॥ ३२
मायायुद्धेन महता योधयामास मां युधि ।
ततो गदा हलाः प्रासाः शूलशक्तिपरश्वधाः ॥ ३३
असयः शक्तिकुलिशपाशर्ष्टिकणपाः शराः ।
पट्टिशाश्च भुशुण्ड्यश्च प्रापतन्ननिशं मयि ॥ ३४
तामहं माययैवाशु प्रतिगृह्य व्यनाशयम् ।
तस्यां हतायां मायायां गिरिशृङ्गैरयोधयत् ॥ ३५
ततोऽभवत्तम इव प्रकाश इव चाभवत् ।
दुर्दिनं सुदिनं चैव शीतमुष्णं च भारत ॥ ३६
अङ्गारपांसुवर्षं च शस्त्रवर्षं च भारत ।
एवं मायां प्रकुर्वाणो योधयामास मां रिपुः ॥ ३७
विज्ञाय तदहं सर्वं माययैव व्यनाशयम् ।
यथाकालं तु युद्धेन व्यधमं सर्वतः शरैः ॥ ३८
ततो व्योम महाराज शतसूर्यमिवाभवत् ।
शतचन्द्रं च कौन्तेय सहस्रायुततारकम् ॥ ३९
ततो नाज्ञायत तदा दिवारात्रं तथा दिशः ।
ततोऽहं मोहमापन्नः प्रज्ञास्त्रं समयोजयम् ॥ ४०
ततस्तदस्त्रं कौन्तेय धूतं तूलमिवानिलैः ।
तथा तदभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
लब्धालोकस्तु राजेन्द्र पुनः शत्रुमयोधयम् ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

वासुदेव उवाच ।
एवं स पुरुषव्याघ्रः शाल्वराजो महारिपुः ।
युध्यमानो मया संख्ये वियदभ्यगमत्पुनः ॥ १
ततः शतघ्नीश्च महागदाश्च
दीप्तांश्च शूलान्मुसलानसींश्च ।
चिक्षेप रोषान्मयि मन्दबुद्धिः
शाल्वो महाराज जयाभिकाङ्क्षी ॥ २
तानाशुगैरापततोऽहमाशु
निवार्य हन्तुं खगमान्ख एव ।
द्विधा त्रिधा चाच्छिनमाशु मुक्तै-
स्ततोऽन्तरिक्षे निनदो बभूव ॥ ३
ततः शतसहस्रेण शराणां नतपर्वणाम् ।
दारुकं वाजिनश्चैव रथं च समवाकिरत् ॥ ४
ततो मामब्रवीद्वीर दारुको विह्वलन्निव
स्थातव्यमिति तिष्ठामि शाल्वबाणप्रपीडितः ।
अवस्थातुं न शक्नोमि अङ्गं मे व्यवसीदति ॥ ५
इति तस्य निशम्याहं सारथेः करुणं वचः ।
अवेक्षमाणो यन्तारमपश्यं शरपीडितम् ॥ ६
न तस्योरसि नो मूर्ध्नि न काये न भुजद्वये ।
अन्तरं पाण्डवश्रेष्ठ पश्याम्यनिचितं शरैः ॥ ७
स तु बाणवरोत्पीडाद्विस्रवत्यसृगुल्बणम् ।
अभिवृष्टे यथा मेघे गिरिर्गैरिकधातुमान् ॥ ८
अभीषुहस्तं तं दृष्ट्वा सीदन्तं सारथिं रणे ।
अस्तं भयं महाबाहो शाल्वबाणप्रपीडितम् ॥ ९
अथ मां पुरुषः कश्चिद्द्वारकानिलयोऽब्रवीत् ।
त्वरितो रथमारोप्य सौहृदादिव भारत ॥ १०
आहुकस्य वचो वीर तस्यैव परिचारकः ।
विषण्णः सन्नकण्ठेन तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ११
द्वारकाधिपतिर्वीर आह त्वामाहुको वचः ।
केशवेह विजानीष्व यत्त्वां पितृसखोऽब्रवीत् ॥ १२

प्राणेन बलेन ॥ ३१ ॥ असयः [illegible] शक्तिः कौमारी कुलिशानि वज्राणि पाशा वारुणाः ऋष्टयो दण्डाः शक्त्यादयः [illegible] दीर्घाः [illegible] शक्तिकुलिशपाशर्ष्टिकणपाः कार्तिकेयेन्द्रवरुणयमायुधतुल्या इत्यर्थः । [illegible] धृतानीति बोपदेवः ॥ ३४ ॥ तदस्त्रं माया [illegible] ॥ ४१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एव स दीन ॥ १ ॥ बाणवरोत्पीडात् अतस्थानात् उल्बणं उत्कटम् ॥ ८ ॥ अस्तं भयं आश्वासितवान् ॥ ९ ॥ अथ मां पुरुष कश्चिदित्यादेरध्यायशेषस्य तात्पर्यं भगवानपि क्षुद्रजनमायया मोहितः किमुत क्षुद्रजनो भगवन्माययेति शुद्धचैतन्याश्रितमेवाज्ञानमिति वा ॥ १० ॥ पितृसखः आहुकः ॥ १२ ॥

उपायायाद्य शाल्वेन द्वारकां वृष्णिनन्दन ।
विपक्ते त्वयि दुर्धर्ष हतः शूरसुतो बलात् ॥ १३

तदलं साधु युद्धेन निवर्तस्व जनार्दन ।
द्वारकामेव रक्षस्व कार्यमेतन्महत्तव ॥ १४

इत्यहं तस्य वचनं श्रुत्वा परमदुर्मनाः ।
निश्चयं नाधिगच्छामि कर्तव्यस्येतरस्य च ॥ १५

सात्यकिं बलदेवं च प्रद्युम्नं च महारथम् ।
जगर्हे मनसा वीर तच्छ्रुत्वा महदप्रियम् ॥ १६

अहं हि द्वारकायाश्च पितुश्च कुरुनन्दन ।
तेषु रक्षां समाधाय प्रयातः सौभपातने ॥ १७

बलदेवो महाबाहुः कच्चिज्जीवति शत्रुहा ।
सात्यकी रौक्मिणेयश्च चारुदेष्णश्च वीर्यवान् १८

साम्बप्रभृतयश्चैवेत्यहमासं सुदुर्मनाः ।
एतेषु हि नरव्याघ्र जीवत्सु न कथंचन ॥ १९

शक्यः शूरसुतो हन्तुमपि वज्रभृता स्वयम् ।
हतः शूरसुतो व्यक्तं व्यक्तं चैते परासवः ॥ २०

बलदेवमुखाः सर्वे इति मे निश्चिता मतिः ।
सोऽहं सर्वविनाशं तं चिन्तयानो मुहुर्मुहुः ।
सुविह्वलो महाराज पुनः शाल्वमयोधयम् ॥ २१

ततोऽपश्यं महाराज प्रपतन्तमहं तदा ।
सौभाच्छूरसुतं वीर ततो मां मोह आविशत् २२

तस्य रूपं प्रपततः पितुर्मम नराधिप ।
ययातेः क्षीणपुण्यस्य स्वर्गादिव महीतलम् ॥ २३

विशीर्णगलितोष्णीषप्रकीर्णाम्बरमूर्धजः ।
प्रपतन्दृश्यते ह स्म क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ २४

ततः शार्ङ्गधनुः श्रेष्ठं करात्प्रपतितं मम ।
मोहापन्नश्च कौन्तेय रथोपस्थ उपाविशम् ॥ २५

ततो हाहाकृतं सर्वं सैन्यं मे गतचेतनम् ।
मां दृष्ट्वा रथनीडस्थं गतासुमिव भारत ॥ २६

प्रसार्य बाहू पततः प्रसार्य चरणावपि ।
रूपं पितुर्मे विबभौ शकुनेः पततो यथा ॥ २७

तं पतन्तं महाबाहो शूलपट्टिशपाणयः ।
अभिघ्नन्तो भृशं वीर मम चेतो ह्यकम्पयन्॥ २८

ततो मुहूर्तात्प्रतिलभ्य संज्ञा-
महं तदा वीर महाविमर्दे ।
न तत्र सौभं न रिपुं च शाल्वं
पश्यामि वृद्धं पितरं न चापि ॥ २९

ततो ममासीन्मनसि मायेयमिति निश्चितम् ।
प्रबुद्धोऽस्मि ततो भूयः शतशोऽवाकिरञ्शरान् ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

वासुदेव उवाच ।

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
शरैरपातयं सौभाच्छिरांसि विबुधद्विषाम् ॥ १

शरांश्चाशीविषाकारानूर्ध्वगांस्तिग्मतेजसः ।
प्रैषयं शाल्वराजाय शार्ङ्गमुक्तान्सुवाससः ॥ २

ततो नादृश्यत तदा सौभं कुरुकुलोद्वह ।
अन्तर्हितं माययाभूत्ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥ ३

अथ दानवसङ्घास्ते विकृताननमूर्धजाः ।
उदक्रोशन्महाराज धिष्ठिते मयि भारत ॥ ४

ततोऽस्त्रं शब्दसाहं वै त्वरमाणो महारणे ।
अयोजयं तद्वधाय ततः शब्द उपारमत् ॥ ५

हतास्ते दानवाः सर्वे यैः स शब्द उदीरितः ।
शरैरादित्यसंकाशैर्ज्वलितैः शब्दसाधनैः ॥ ६

तस्मिन्नुपरते शब्दे पुनरेवान्यतोऽभवत् ।
शब्दोऽपरो महाराज तत्रापि प्राहरं शरैः ॥ ७

एवं दश दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च भारत ।
नादयामासुरसुरास्ते चापि निहता मया ॥ ८

उपायाय उपगम्य विपक्ते कस्मिन्नपि व्यसने शूरसुतो वसुदेवः ॥ १३ ॥ अहं जगर्हे । कौन्तेयास्मात्पराङ्मुखे लिङ्गे निन्दितवान् ॥ १६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

ततोऽहमिति ॥ १ ॥ सुवाससः सपुङ्खान् ॥ २ ॥

विकृताननमूर्धजा इति तेषां स्वरूपकथनं न तु तद्दर्शनं धिष्ठिते प्रयत्नेन स्थिते । धर्षिते इति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ ४ ॥ शब्द एव साह्यो लक्ष्यं यत्र तत्तथा । शब्दवेधि ... अस्त्रं उपारमत् व्यपतदित्यर्थः । शब्दसाहं शब्दबाधानि ... वा ॥ ५ ॥ शब्दसाधनैः शब्द एव साधनं ... कारणं येषां तैः पुरस्यादृश्यत्वात् ॥ ६ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनरेव व्यदृश्यत ।
सौभं कामगमं वीर मोहयन्मम चक्षुषी ॥ ९
ततो लोकान्तकरणो दानवो दारुणाकृतिः ।
शिलावर्षेण महता सहसा मां समावृणोत ॥ १०
सोऽहं पर्वतवर्षेण वध्यमानः पुनः पुनः ।
वल्मीक इव राजेन्द्र पर्वतोपचितोऽभवम् ॥ ११
ततोऽहं पर्वतचितः सहयः सहसारथिः ।
अप्रख्यातिमियां राजन्सर्वतः पर्वतैश्चितः ॥ १२
ततो वृष्णिप्रवीरा ये ममासन्सैनिकास्तदा ।
ते भयार्ता दिशः सर्वे सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १३
ततो हाहाकृतमभूत्सर्वं किल विशांपते ।
द्यौश्च भूमिश्च खं चैवादृश्यमाने तथा मयि ॥ १४
ततो विषण्णमनसो मम राजन्सुहृज्जनाः ।
रुरुदुश्चुक्रुशुश्चैव दुःखशोकसमन्विताः ॥ १५
द्विषतां च प्रहर्षोऽभूदार्तिश्चाद्विषतामपि ।
एवं विजितवान्वीर पश्चादश्रौषमच्युत ॥ १६
ततोऽहमिन्द्रदयितं सर्वपाषाणभेदनम् ।
वज्रमुद्यम्य तान्सर्वान्पर्वतान्समशातयम् ॥ १७
ततः पर्वतभारार्ता मन्दप्राणविचेष्टिताः ।
हया मम महाराज वेपमाना इवाभवन् ॥ १८
मेघजाल इवाकाशे विदार्याभ्युदितं रविम् ।
दृष्ट्वा मां बान्धवाः सर्वे हर्षमाहारयन्पुनः ॥ १९
ततः पर्वतभारार्तान्मन्दप्राणविचेष्टितान् ।
हयान्संदृश्य मां सूतः प्राह तात्कालिकं वचः ॥ २०
साधु संपश्य वार्ष्णेय शाल्वं सौभपतिं स्थितम् ।
अलं कृष्णावमन्यैनं साधु यत्नं समाचर ॥ २१
मार्दवं सखितां चैव शाल्वादस्य व्यपाहर ।
जहि शाल्वं महाबाहो मैनं जीवय केशव ॥ २२
सर्वैः पराक्रमैर्वीर वध्यः शत्रुरमित्रहन् ।
न शत्रुरवमन्तव्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा ॥ २३
योऽपि स्यात्पीठगः कश्चित्किं पुनः समरे स्थितः ।
स त्वं पुरुषशार्दूल सर्वयत्नैरिमं प्रभो ॥ २४
जहि वृष्णिकुलश्रेष्ठ मा त्वां कालोऽत्यगात्पुनः ।
नैष मार्दवसाध्यो वै मतो नापि सखा तव ॥ २५
येन त्वं योधितो वीर द्वारका चावमर्दिता ।
एवमादि तु कौन्तेय श्रुत्वाहं सारथेर्वचः ॥ २६
तत्त्वमेतदिति ज्ञात्वा युद्धे मतिमधारयम् ।
वधाय शाल्वराजस्य सौभस्य च निपातने ॥२७
दारुकं चाब्रुवं वीर मुहूर्तं स्थीयतामिति ।
ततो प्रतिहतं दिव्यमभेद्यमतिवीर्यवान् ॥ २८
आग्नेयमस्त्रं दयितं सर्वसाहं महाप्रभम् ।
योजयं तत्र धनुषा दानवान्तकरं रणे ॥ २९
यक्षाणां राक्षसानां च दानवानां च संयुगे ।
राज्ञां च प्रतिलोमानां भस्मान्तकरणं महत् ॥३०
क्षुरान्तममलं चक्रं कालान्तकयमोपमम् ।
अनुमन्त्र्याहमतुलं द्विषतां विनिबर्हणम् ॥ ३१
जहि सौभं स्ववीर्येण ये चात्र रिपवो मम ।
इत्युक्त्वा भुजवीर्येण तस्मै प्राहिणवं रुषा ॥ ३२
रूपं सुदर्शनस्यासीदाकाशे पततस्तदा ।
द्वितीयस्येव सूर्यस्य युगान्ते प्रपतिष्यतः ॥ ३३
तत्समासाद्य नगरं सौभं व्यपगतत्विषम् ।
मध्येन पाटयामास क्रकचो दार्विवोच्छ्रितम्॥३४
द्विधा कृतं ततः सौभं सुदर्शनबलाद्धतम् ।
महेश्वरशरोद्धूतं पपात त्रिपुरं यथा ॥ ३५
तस्मिन्निपतिते सौभे चक्रमागात्करं मम ।
पुनश्चादाय वेगेन शाल्वायेत्यहमब्रुवम् ॥ ३६
ततः शाल्वं गदां गुर्वीमाविध्यन्तं महाहवे ।
द्विधा चकार सहसा प्रजज्वाल च तेजसा ॥३७
तस्मिन्विनिहते वीरे दानवास्त्रस्तचेतसः ।
हाहाभूता दिशो जग्मुरर्दिता मम सायकैः ॥३८
ततोऽहं समवस्थाप्य रथं सौभसमीपतः ।
शङ्खं प्रध्माप्य हर्षेण सुहृदः पर्यहर्षयम् ॥ ३९
तन्मेरुशिखराकारं विध्वस्ताट्टालगोपुरम् ।
दह्यमानमभिप्रेक्ष्य स्त्रियस्ताः संप्रदुद्रुवुः ॥ ४०

प्राग्ज्योतिषं पूर्वसमुद्रतीरस्थं नगरविशेषं यत् कामगमं अत्र प्राग्ज्योतिषं गत्वा व्यदृश्यत ॥ ९ ॥ अप्रख्यातिं अदर्शनं इयां प्राप्तवान् ॥ १२ ॥ एवमिति । हे वीर हे अच्युत एवं मां सौभराजो विजितवान् इत-दृष्यहं पश्चादश्रौषं पूर्वं मोहमापन्नः सन् संज्ञालाभान-न्तरं श्रुतवान्सारथिमुखेनेति शेषः ॥ १६ ॥ इन्द्रदयितं इन्द्रदैवत्यं वज्रं वज्रास्त्रं । तदा इन्द्रोऽहमेवेति विभूतिः अतस्तदस्त्रमप्येतदीयमेवेति ध्येयं समशातयं नाशि-तवान् ॥ १७ ॥ आहारयन्प्राप्तवन्तः ॥ १९ ॥ तात्का-लिकं तत्कालयोग्यम् ॥ २० ॥ पीठगः स्वासनस्थः अयुध्य मानोऽपीत्यर्थः ॥ २४ ॥ प्रतिलोमानां विपरीताचाराणां म्लेच्छानाम् ॥ ३० ॥ क्षुरान्तं तीक्ष्णधारम् ॥ ३१ ॥ तस्मै सौभाय प्राहिणवं प्रहितवान् ॥ ३२ ॥ क्रकचः दन्तुरखड्गः ॥ ३४ ॥

एवं निहत्य समरे सौभं शाल्वं निपात्य च ।
आनर्तात्पुनरागम्य सुहृदां प्रीतिमावहम् ॥ ४१
तदेतत्कारणं राजन्यदहं नागसाह्वयम् ।
नागमं परवीरघ्न न हि जीवेत्सुयोधनः ॥ ४२
मय्यागतेऽथवा वीर द्यूतं न भविता तथा ।
अद्याहं किं करिष्यामि भिन्नसेतुरिवोदकम् ॥ ४३
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा महाबाहुः कौरवं पुरुषोत्तमः ।
आमन्त्र्य प्रययौ श्रीमान्पाण्डवान्मधुसूदनः ॥ ४४
अभिवाद्य महाबाहुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
राज्ञा मूर्धन्युपाघ्रातो भीमेन च महाभुजः ॥ ४५
परिष्वक्तश्चार्जुनेन यमाभ्यां चाभिवादितः ।
संमानितश्च धौम्येन द्रौपद्या चार्चितोऽश्रुभिः ॥ ४६
सुभद्रामभिमन्युं च रथमारोप्य काञ्चनम् ।
आरुरोह रथं कृष्णः पाण्डवैरभिपूजितः ॥ ४७
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा ।
द्वारकां प्रययौ कृष्णः समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥ ४८
ततः प्रयाते दाशार्हे धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः ।
द्रौपदेयानुपादाय प्रययौ स्वपुरं तदा ॥ ४९
धृष्टकेतुः स्वसारं च समादायाथ चेदिराट् ।
जगाम पाण्डवान्दृष्ट्वा रम्यां शुक्तिमतीं पुरीम् ॥ ५०
केकयाश्चाप्यनुज्ञाताः कौन्तेयेनामितौजसा ।
आमन्त्र्य पाण्डवान्सर्वान्प्रययुस्तेऽपि भारत ॥ ५१
ब्राह्मणाश्च विशश्चैव तथा विषयवासिनः ।
विसृज्यमानाः सुभृशं न त्यजन्ति स्म पाण्डवान् ॥
समवायः स राजेन्द्र सुमहाद्भुतदर्शनः
आसीन्महात्मनां तेषां काम्यके भरतर्षभ ॥ ५३
युधिष्ठिरस्तु विप्रांस्ताननुमान्य महामनाः ।
शशास पुरुषान्काले रथान्योजयतेति वै ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि सौभवधोपाख्याने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

वैशंपायन उवाच ।
तस्मिन्दशार्हाधिपतौ प्रयाते
युधिष्ठिरो भीमसेनार्जुनौ च ।
यमौ च कृष्णा च पुरोहितश्च
रथान्महार्हान्परमाश्वयुक्तान् ॥ १
आस्थाय वीराः सहिता वनाय
प्रतस्थिरे भूतपतिप्रकाशाः ।
हिरण्यनिष्कान्वसनानि गाश्च
प्रदाय शिक्षाक्षरमन्त्रविद्भ्यः ॥ २
प्रेष्याः पुरो विंशतिरात्तशस्त्रा
धनूंषि शस्त्राणि शरांश्च दीप्तान् ।
मौर्वीश्च यन्त्राणि च सायकांश्च
सर्वे समादाय जघन्यमीयुः ॥ ३
ततस्तु वासांसि च राजपुत्र्या
धात्र्यश्च दास्यश्च विभूषणं च ।
तदिन्द्रसेनस्त्वरितः प्रगृह्य
जघन्यमेवोपययौ रथेन ॥ ४

मय्यागतेऽयं तर्हि न हि जीवेत् ॥ ४२ ॥ किं करिष्यामि अथाहमकिंचित्कर इत्यर्थः । उदकं धारयितुमिति शेषः ॥ ४३ ॥ धृष्टकेतुः शिशुपालसुतः स्वसारं करेणुमतीं नकुलभार्याम् ॥ ५० ॥ केकयाः सहदेवश्यालाः ॥ ५१ ॥ समवायः मेलकः ॥ ५३ ॥ शशास आज्ञापयामास । एवमुक्त्वा महाबाहुरित्याद्यध्यायशेषस्याग्रिमाध्यायसाहित्यस्य तात्पर्यं पाण्डवेष्विव साधुषु सर्वे निसर्गात् रज्यन्ते धार्तराष्ट्रेष्विवासाधुषु द्वेषवन्तो भवन्तीति ॥ ५४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सौभवधोपाख्याने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तान्संमानितान् ॥ १ ॥ भूतपतिः शिवः । निष्काः अष्टोत्तरशतं सुवर्णानि वक्षोऽलङ्कारो वा । शिक्षेति व्याकरणादीनामुपलक्षणम् । अक्षराणि वेदः । नित्यत्वात्क्षरणशून्य । 'वाचा विरूपनित्यया' इति श्रुतेः । मन्त्रः प्रणवः तान्यात्मतोऽर्थतश्च जानद्भ्यः शिक्षाक्षरमन्त्रविद्भ्यः ॥ २ ॥ प्रेष्याः कर्मकराः पुरः प्रागेव जघन्यं पाश्चात्यं द्वारकादेशम् ॥ ३ ॥ राजपुत्र्या सुभद्रया सह ॥ ४ ॥

ततः कुरुश्रेष्ठमुपेत्य पौराः
प्रदक्षिणं चक्रुरदीनसत्त्वाः ।
तं ब्राह्मणाश्चाभ्यवदन्प्रसन्ना
मुख्याश्च सर्वे कुरुजाङ्गलानाम् ॥ ५

स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्नः
सहैव तैर्भ्रातृभिर्धर्मराजः ।
तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा
दृष्ट्वा जनौघं कुरुजाङ्गलानाम् ॥ ६

पितेव पुत्रेषु स तेषु भावं
चक्रे कुरूणामृषभो महात्मा ।
ते चापि तस्मिन्भरतप्रबर्हे
तदा बभूवुः पितरीव पुत्राः ॥ ७

ततस्तमासाद्य महाजनौघाः
कुरुप्रवीरं परिवार्य तस्थुः ।
हा नाथ हा धर्म इति ब्रुवाणा
ह्रीताश्च सर्वेऽश्रुमुखाश्च राजन् ॥ ८

वरः कुरूणामधिपः प्रजानां
पितेव पुत्रानपहाय चास्मान् ।
पौरानिमाञ्जानपदांश्च सर्वा
न्हित्वा प्रयातः क्व नु धर्मराजः ॥ ९

धिग्धार्तराष्ट्रं सुनृशंसबुद्धिं
धिक्सौबलं पापमतिं च कर्णम् ।
अनर्थमिच्छन्ति नरेन्द्र पापा
ये धर्मनित्यस्य सतस्तवैवम् ॥ १०

स्वयं निवेश्याप्रतिमं महात्मा
पुरं महादेवपुरप्रकाशम् ।
शतक्रतुप्रस्थममेयकर्मा
हित्वा प्रयातः क्व नु धर्मराजः ॥ ११

चकार यामप्रतिमां महात्मा
सभां मयो देवसभाप्रकाशाम् ।
तां देवगुप्तामिव देवमायां
हित्वा प्रयातः क्व नु धर्मराजः ॥ १२

तान्धर्मकामार्थविदुत्तमौजा
बीभत्सुरुच्चैः सहितानुवाच ।
आदास्यते वासमिमं निरुष्य
वनेषु राजा द्विषतां यशांसि ॥ १३

द्विजातिमुख्याः सहिताः पृथक्च
भवद्भिरासाद्य तपस्विनश्च ।
प्रसाद्य धर्मार्थविदश्च वाच्या
यथार्थसिद्धिः परमा भवेन्नः ॥ १४

इत्येवमुक्ते वचनेऽर्जुनेन
ते ब्राह्मणाः सर्ववर्णाश्च राजन् ।
मुदाभ्यनन्दन्सहिताश्च चक्रुः
प्रदक्षिणं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ १५

आमन्त्र्य पार्थं च वृकोदरं च
धनंजयं याज्ञसेनीं यमौ च ।
प्रतस्थिरे राष्ट्रमपेतहर्षा
युधिष्ठिरेणानुमता यथा स्वम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आरण्यकपर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्वैतवनप्रवेशे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

वैशंपायन उवाच ।
ततस्तेषु प्रयातेषु कौन्तेयः सत्यसंगरः ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भ्रातॄन्सर्वान्युधिष्ठिरः ॥ १
द्वादशेमाः समास्माभिर्वस्तव्यं निर्जने वने ।
समीक्षध्वं महारण्ये देशं बहुमृगद्विजम् ॥ २
बहुपुष्पफलं रम्यं शिवं पुण्यजनावृतम् ।
यत्रेमाः शरदः सर्वाः सुखं प्रतिवसेमहि ॥ ३
एवमुक्ते प्रत्युवाच धर्मराजं धनंजयः ।
गुरुवन्मानवगुरुं मानयित्वा मनस्विनम् ॥ ४
अर्जुन उवाच ।
भवानेव महर्षीणां वृद्धानां पर्युपासिता ।
अज्ञातं मानुषे लोके भवतो नास्ति किंचन ॥ ५

[illegible] ॥ ५ ॥ [illegible] इति [illegible] इति पाठान्तरम् ॥ ८ ॥ [illegible] प्रकारम् ॥ १२ ॥ बीभत्सुरर्जुनः । आदास्यते आच्छिद्य ग्रहीष्यति । यशांसि यशस्कराणि [illegible] ॥ १३ ॥ भवद्भिः पौरैः । वाच्याः प्रार्थ्याः ॥ १४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

[illegible] इति । सत्यसंगरः सत्यप्रतिज्ञः ॥ १ ॥ समाः वर्षाणि [illegible] ॥ २ ॥ शरदो वत्सरान् ॥ ३ ॥

त्वया ह्युपासिता नित्यं ब्राह्मणा भरतर्षभ ।
द्वैपायनप्रभृतयो नारदश्च महातपाः ॥ ६
यः सर्वलोकद्वाराणि नित्यं संचरते वशी ।
देवलोकाद्ब्रह्मलोकं गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ ७
अनुभावांश्च जानासि ब्राह्मणानां न संशयः ।
प्रभावांश्चैव वेत्थ त्वं सर्वेषामेव पार्थिव ॥ ८
त्वमेव राजञ्जानासि श्रेयःकारणमेव च ।
यत्रेच्छसि महाराज निवासं तत्र कुर्महे ॥ ९
इदं द्वैतवनं नाम सरः पुण्यजलोचितम् ।
बहुपुष्पफलं रम्यं नानाद्विजनिषेवितम् ॥ १०
अत्रेमा द्वादश समा विहरेमेति रोचये ।
यदि तेऽनुमतं राजन्किमन्यन्मन्यते भवान् ॥ ११
युधिष्ठिर उवाच ।
ममाप्येतन्मतं पार्थ त्वया यत्समुदाहृतम् ।
गच्छामः पुण्यविख्यातं महद्द्वैतवनं सरः ॥ १२
वैशंपायन उवाच ।
ततस्ते प्रययुः सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः ।
ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं पुण्यं द्वैतवनं सरः ॥ १३
ब्राह्मणाः साग्निहोत्राश्च तथैव च निरग्नयः ।
स्वाध्यायिनो भिक्षवश्च तथैव वनवासिनः ॥ १४
बहवो ब्राह्मणास्तत्र परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ।
तपःसिद्धा महात्मानः शतशः संशितव्रताः ॥ १५
ते यात्वा पाण्डवास्तत्र ब्राह्मणैर्बहुभिः सह ।
पुण्यं द्वैतवनं रम्यं विविशुर्भरतर्षभाः ॥ १६

तमालतालाम्रमधूकनीप-
कदम्बसर्जार्जुनकर्णिकारैः ।
तपात्यये पुष्पधरैरुपेतं
महावनं राष्ट्रपतिर्ददर्श ॥ १७
महाद्रुमाणां शिखरेषु तस्थु-
र्मनोरमां वाचमुदीरयन्तः ।
मयूरदात्यूहचकोरसङ्घा-
स्तस्मिन्वने बर्हिणकोकिलाश्च ॥ १८

करेणुयूथैः सह यूथपानां
मदोत्कटानामचलप्रभाणाम् ।
महान्ति यूथानि महाद्विपानां
तस्मिन्वने राष्ट्रपतिर्ददर्श ॥ १९
मनोरमां भोगवतीमुपेत्य
पूतात्मनां चीरजटाधराणाम् ।
तस्मिन्वने धर्मभृतां निवासे
ददर्श सिद्धर्षिगणाननेकान् ॥ २०
ततः स यानादवरुह्य राजा
सभ्रातृकः सजनः काननं तत् ।
विवेश धर्मात्मवतां वरिष्ठ-
स्त्रिविष्टपं शक्र इवामितौजाः ॥ २१
तं सत्यसन्धं सहिताभिपेतु-
र्दिदृक्षवश्चारणसिद्धसङ्घाः ।
वनौकसश्चापि नरेन्द्रसिंहं
मनस्विनं तं परिवार्य तस्थुः ॥ २२
स तत्र सिद्धानभिवाद्य सर्वान्
प्रत्यर्चितो राजवद्देववच्च ।
विवेश सर्वैः सहितो द्विजाग्र्यैः
कृताञ्जलिर्धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ २३
स पुण्यशीलः पितृवन्महात्मा
तपस्विभिर्धर्मपरैरुपेत्य ।
प्रत्यर्चितः पुष्पधरस्य मूले
महाद्रुमस्योपविवेश राजा ॥ २४
भीमश्च कृष्णा च धनंजयश्च
यमौ च ते चानुचरा नरेन्द्रम् ।
विमुच्य वाहानवशाश्च सर्वे
तत्रोपतस्थुर्भरतप्रबर्हाः ॥ २५
लतावतानावनतः स पाण्डवै-
र्महाद्रुमः पञ्चभिरुग्रधन्विभिः ।
बभौ निवासोपगतैर्महात्मभि-
र्महागिरिर्वारणयूथपैरिव ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्वैतवनप्रवेशे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अनुभावान् कर्तव्याकर्तव्यविषयान् निश्चयान् । प्रभावो निग्रहानुग्रहशक्तिः 'अनुभावो निश्चये प्रभावे शक्ति तेजसोः' इति विश्वः ॥८॥ श्रेयो मोक्षस्तत्कारणं तत्साधनम् ॥ ९ ॥ द्वैतं द्वौ शोकमोहौ इतौ गतौ यस्मात्तद्द्वीतं द्वीतमेव द्वैतं । स्वार्थे तद्धितः । वनं जलं यस्मिन् द्वैतवनं पुण्येन पावनेन जलेन उचितेन समवेतं एतेन द्वैतवनशब्दार्थः सूचितः । उत्तमसवार्यादिवादिः ॥ १० ॥ विहरेम प्राप्त्या नयेम ॥ ११ ॥ यात्वा गत्वा ॥ १३ ॥ तपात्यये वर्षासु । महावनं महावनं । इत्यादिरयं शब्दः । देवा वै वनेरपि पर्यपश्यन् इति वने वनशब्दप्रयोगदर्शनात् ॥ १७ ॥ करेणुः हस्तिनी ॥ १९ ॥ भोगवती सरस्वतीं नदीम् ॥ २० ॥ चारणा देवगायनाः सिद्धा महर्षयः ॥ २२ ॥ महाद्रुमः कदम्बः ॥ २४ ॥ लतावातानावनतः वितानेनाभिवृततया नम्रः ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

# २५

वैशंपायन उवाच ।

तत्काननं प्राप्य नरेन्द्रपुत्राः
सुखोचिता वासमुपेत्य कृच्छ्रम् ।
विजह्रुरिन्द्रप्रतिमाः शिवेषु
सरस्वतीशालवनेषु तेषु ॥ १

यतींश्च राजा स मुनींश्च सर्वां-
स्तस्मिन्वने मूलफलैरुदग्रैः ।
द्विजातिमुख्यानृषभः कुरूणां
संतर्पयामास महानुभावः ॥ २

इष्टीश्च पित्र्याणि तथा क्रियाश्च
महावने वसतां पाण्डवानाम् ।
पुरोहितस्तत्र समृद्धतेजा-
श्चकार धौम्यः पितृवन्नृपाणाम् ॥ ३

अपेत्य राष्ट्राद्वसतां तु तेषा-
मृषिः पुराणोऽतिथिराजगाम ।
तमाश्रमं तीव्रसमृद्धतेजा
मार्कण्डेयः श्रीमतां पाण्डवानाम् ॥ ४

तमागतं ज्वलितहुताशनप्रभं
महामनाः कुरुवृषभो युधिष्ठिरः ।
अपूजयत्सुरऋषिमानवार्चितं
महामुनिं ह्यनुपमसत्त्ववीर्यवान् ॥ ५

स सर्वविद्द्रौपदीं वीक्ष्य कृष्णां
युधिष्ठिरं भीमसेनार्जुनौ च ।
संस्मृत्य रामं मनसा महात्मा
तपस्विमध्येऽस्मयतामितौजाः ॥ ६

तं धर्मराजो विमना इवाब्रवी-
त्सर्वे ह्रिया सन्ति तपस्विनोऽमी ।
भवानिदं किं स्मयतीव हृष्ट-
स्तपस्विनां पश्यतां मामुदीक्ष्य ॥ ७

मार्कण्डेय उवाच ।

न तात हृष्यामि न च स्मयामि
प्रहर्षजो मां भजते न दर्पः ।
तवापदं त्वद्य समीक्ष्य रामं
सत्यव्रतं दाशरथिं स्मरामि ॥ ८

स चापि राजा सह लक्ष्मणेन
वने निवासं पितुरेव शासनात् ।
धन्वी चरन्पार्थ मयैव दृष्टो
गिरेः पुरा ऋष्यमूकस्य सानौ ॥ ९

सहस्रनेत्रप्रतिमो महात्मा
यमस्य नेता नमुचेश्च हन्ता ।
पितुर्निदेशादनघः स्वधर्मं
वासं वने दाशरथिश्चकार ॥ १०

स चापि शक्रस्य समप्रभावो
महानुभावः समरेष्वजेयः ।
विहाय भोगानचरद्वनेषु
नेशे बलस्येति चरेदधर्मम् ॥ ११

भूपाश्च नाभागभगीरथादयो
महीमिमां सागरान्तां विजित्य ।
सत्येन तेऽप्यजयंस्तात लोका-
न्नेशे बलस्येति चरेदधर्मम् ॥ १२

अलर्कमाहुर्नरवर्य सन्तं
सत्यव्रतं काशिकरूषराजम् ।
विहाय राज्यानि वसूनि चैव
नेशे बलस्येति चरेदधर्मम् ॥ १३

धात्रा विधिर्यो विहितः पुराणै-
स्तं पूजयन्तो नरवर्य सन्तः ।
सप्तर्षयः पार्थ दिवि प्रभान्ति
नेशे बलस्येति चरेदधर्मम् ॥ १४

२५

तत्काननमित्याद्यध्यायद्वयेन वृद्धतमाभ्यां मार्कण्डेयद-ल्भ्याभ्यां धर्मस्यात्यागो ब्राह्मणभक्तिश्च कर्तव्येत्युच्यते । तत्काननमिति पाठे तत् वनं कारणं चिरवासस्य हेतुः कृच्छ्रं वनवासमसुखम् ॥ १ ॥ इष्टीः दर्शपौर्णमासाद्याः पित्र्याणि पिण्डपितृयज्ञदर्शश्राद्धादीनि ॥ ३ ॥ राष्ट्रात् अपेत्य निर्गत्य वने वसतां तीव्रं दुःसहं समृद्धं पुष्कलं च तेजो यस्य ॥ ४ ॥ अस्मयत विस्मितवान् ॥ ६ ॥ ह्रिया प्रागल्भ्यसंकोचेन ॥ ७ ॥ सहस्रनेत्रैः प्रतिमा रूपान्तरं यस्य । 'देवानामस्मि वासवः' इत्युक्तत्वात् । अत एव यमस्य नियन्तुरपि नेता निर्वाहकः नमुचेश्च हन्ता इति एवमिन्द्रकर्म तस्यैव कर्मेत्यर्थः ॥ १० ॥ तदेवाह स चेति । शक्रस्य समप्रभावः कृत्स्नप्रभावः समशब्दः सर्वपर्यायः सर्वनाम । प्रभावः शक्तिः । अनुभावो भावसूचनं विद्याबलमित्यर्थः । शक्रस्य प्रभावादिकमयमेवातोऽसौ समरे-ष्वजेयः । तस्मादिति सर्वत्राध्याहारः । बलस्य बहुसाम-र्थ्यस्य ईशो भवामीति हेतोरधर्मं न चरेत् । शक्तौ सत्यां धर्ममेवाचरेन्न त्वधर्ममित्यर्थः ॥ ११ ॥ धात्रा ईशेन पुराणैर्वेदवाक्यैर्विहितो विधिरग्निहोत्रादिः ॥ १४ ॥

महाबलान्पर्वतकूटमात्रा-
न्विषाणिनः पश्य गजान्नरेन्द्र ।
स्थितान्निदेशे नरवर्य धातु-
र्नेशे बलस्येति चरेदधर्मम् ॥ १५

सर्वाणि भूतानि नरेन्द्र पश्य
तथा यथावद्विहितं विधात्रा ।
स्वयोनितः कर्म सदाचरन्ति
नेशे बलस्येति चरेदधर्मम् ॥ १६

सत्येन धर्मेण यथार्हवृत्त्या
ह्रिया तथा सर्वभूतान्यतीत्य ।
यशश्च तेजश्च तवापि दीप्तं
विभावसोर्भास्करस्येव पार्थ ॥ १७

यथाप्रतिज्ञं च महानुभाव
कृच्छ्रं वने वासमिमं निरुष्य ।
ततः श्रियं तेजसा तेन दीप्ता-
मादास्यसे पार्थिव कौरवेभ्यः ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

तमेवमुक्त्वा वचनं महर्षि-
स्तपस्विमध्ये सहितं सुहृद्भिः ।
आमन्त्र्य धौम्यं सहितांश्च पार्था-
स्ततः प्रतस्थे दिशमुत्तरां सः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्वैतवनप्रवेशे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

वैशंपायन उवाच ।

वसत्सु वै द्वैतवने पाण्डवेषु महात्मसु ।
अनुकीर्णं महारण्यं ब्राह्मणैः समपद्यत ॥ १

ईर्यमाणेन सततं ब्रह्मघोषेण सर्वशः ।
ब्रह्मलोकसमं पुण्यमासीद्द्वैतवनं सरः ॥ २

यजुषामृचां साम्नां च गद्यानां चैव सर्वशः ।
आसीदुच्चार्यमाणानां निःस्वनो हृदयंगमः ॥ ३

ज्याघोषश्चैव पार्थानां ब्रह्मघोषश्च धीमताम् ।
संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं भूय एव व्यरोचत ॥ ४

अथाब्रवीद्बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
संध्यां कौन्तेयमासीनमृषिभिः परिवारितम् ॥ ५

पश्य द्वैतवने पार्थ ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ।
होमवेलां कुरुश्रेष्ठ संप्रज्वलितपावकाम् ॥ ६

चरन्ति धर्मं पुण्येऽस्मिंस्त्वया गुप्ता धृतव्रताः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव वासिष्ठाः काश्यपैः सह ॥ ७

आगस्त्याश्च महाभागा आत्रेयाश्चोत्तमव्रताः ।
सर्वस्य जगतः श्रेष्ठा ब्राह्मणाः संगतास्त्वया ॥ ८

इदं तु वचनं पार्थ शृणुष्व गदतो मम ।
भ्रातृभिः सह कौन्तेय यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव ॥ ९

ब्रह्म क्षत्रेण संसृष्टं क्षत्रं च ब्रह्मणा सह ।
उदीर्णौ दहतः शत्रून्वनानीवाग्निमारुतौ ॥ १०

नाब्राह्मणस्तात चिरं बुभूषे-
दिच्छन्निमं लोकममुं च जेतुम् ।
विनीतधर्मार्थमपेतमोहं
लब्ध्वा द्विजं नुदति नृपः सपत्नान् ॥ ११

चरन्नैःश्रेयसं धर्मं प्रजापालनकारितम् ।
नाध्यगच्छद्बलिर्लोके तीर्थमन्यत्र वै द्विजात् ॥ १२

अनूनमासीदसुरस्य कामै-
र्वैरोचनेः श्रीरपि चाक्षयासीत् ।
लब्ध्वा महीं ब्राह्मणसंप्रयोगा-
त्तेष्वाचरन्दुष्टमथो व्यनश्यत् ॥ १३

नाब्राह्मणं भूमिरियं सभूति-
र्वर्णं द्वितीयं भजते चिराय ।
समुद्रनेमिर्नमते तु तस्मै
यं ब्राह्मणः शास्ति नयैर्विनीतम् ॥ १४

पशवोऽपि बलवानस्मीति दर्पेणाधर्मं न चरन्तीत्याह महाबलानिति । 'विषाणं दन्तशृङ्गयोः' इति कोशः ॥ १५ ॥ एवं सर्पादिष्वपि ज्ञेयमित्याह सर्वाणीति । स्वयोनितः जन्मानुरूपम् ॥ १६ ॥ विभा प्रभा सैव वसु वित्तं यस्य ॥ १७ ॥ आदास्यसे ग्रहीष्यसि ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वसत्स्विति । अनुकीर्णं व्याप्तम् ॥ १ ॥ गद्यानां ब्राह्मणवाक्यानां पादाक्षरादिनियमहीनानाम् ॥ ३ ॥ संध्यामुपास्येति शेषः ॥ ५ ॥ अब्राह्मणो ब्राह्मणहीनो नृपः । बुभूषेत् ऐश्वर्यमिच्छेत् तस्येच्छतोऽपि जयो दुर्लभ इत्यर्थः । विनीतौ सम्यक् शिक्षितौ धर्मार्थौ येन ॥ ११ ॥ तीर्थं उपायं ॥ १२ ॥ वैरोचनेः बलेः ॥ १३ ॥

कुञ्जरस्येव संग्रामे परिगृह्याङ्कुशग्रहम् ।
ब्राह्मणैर्विप्रहीणस्य क्षत्रस्य क्षीयते बलम् ॥ १५
ब्राह्मण्यनुपमा दृष्टिः क्षात्रमप्रतिमं बलम् ।
तौ यदा चरतः सार्धं तदा लोकः प्रसीदति ॥ १६
यथा हि सुमहानग्निः कक्षं दहति सानिलः ।
तथा दहति राजन्यो ब्राह्मणेन समं रिपुम् ॥ १७
ब्राह्मणेष्वेव मेधावी बुद्धिपर्येषणं चरेत् ।
अलब्धस्य च लाभाय लब्धस्य परिवृद्धये ॥ १८
अलब्धलाभाय च लब्धवृद्धये
यथार्हतीर्थप्रतिपादनाय
यशस्विनं वेदविदं विपश्चितं
बहुश्रुतं ब्राह्मणमेव वासय ॥ १९
ब्राह्मणेषूत्तमा वृत्तिस्तव नित्यं युधिष्ठिर
तेन ते सर्वलोकेषु दीप्यते प्रथितं यशः ॥ २०

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे बकं दाल्भ्यमपूजयन् ।
युधिष्ठिरे स्तूयमाने भूयः सुमनसोऽभवन् ॥
द्वैपायनो नारदश्च जामदग्न्यः पृथुश्रवाः ।
इन्द्रद्युम्नो भालुकिश्च कृतचेताः सहस्रपात् ॥
कर्णश्रवाश्च मुञ्जश्च लवणाश्वश्च काश्यपः ।
हारीतः स्थूणकर्णश्च अग्निवेश्योऽथ शौनकः ॥
कृतवाक्च सुवाक्चैव बृहदश्वो विभावसुः ।
ऊर्ध्वरेता वृषामित्रः सुहोत्रो होत्रवाहनः ॥ २३
एते चान्ये च बहवो ब्राह्मणाः संशितव्रताः ।
अजातशत्रुमानर्चुः पुरंदरमिवर्षयः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्वैतवनप्रवेशो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६

## २७

वैशंपायन उवाच ।

ततो वनगताः पार्थाः सायाह्ने सह कृष्णया ।
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्दुःखशोकपरायणाः ॥ १
प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता ।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २

द्रौपद्युवाच

न नूनं तस्य पापस्य दुःखमस्मासु किंचन ।
विद्यते धार्तराष्ट्रस्य नृशंसस्य दुरात्मनः ॥ ३
यस्त्वां राजन्मया सार्धमजिनैः प्रतिवासितम् ।
वनं प्रस्थाप्य दुष्टात्मा नान्वतप्यत दुर्मतिः ॥ ४
आयसं हृदयं नूनं तस्य दुष्कृतकर्मणः ।
यस्त्वां धर्मपरं श्रेष्ठं रूक्षाण्यश्रावयत्तदा ॥ ५
सुखोचितमदुःखार्हं दुरात्मा ससुहृद्गणः ।
ईदृशं दुःखमानीय मोदते पापपूरुषः ॥ ६
चतुर्णामेव पापानामस्रं वै पतितं तदा ।
त्वयि भारत निष्क्रान्ते वनायाजिनवाससि ॥ ७
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः ।
दुर्भ्रातुस्तस्य चोग्रस्य राजन्दुःशासनस्य च ॥ ८
इतरेषां तु सर्वेषां कुरूणां कुरुसत्तम ।
दुःखेनाभिपरीतानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ ९
इदं च शयनं दृष्ट्वा यच्चासीत्ते पुरातनम् ।
शोचामि त्वां महाराज दुःखानर्हं सुखोचितम् ॥ १०
दान्तं यच्च सभामध्ये आसनं रत्नभूषितम् ।
दृष्ट्वा कुशबृसीं चेमां शोको मां रुन्धयत्ययम् ॥ ११
यदपश्यं सभायां त्वां राजभिः परिवारितम् ।
तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १२
या त्वाहं चन्दनादिग्धमपश्यं सूर्यवर्चसम् ।
सा त्वा पङ्कमलादिग्धं दृष्ट्वा मुह्यामि भारत ॥ १३

---

अलब्धस्य अलब्धेन निष्कृतिं [illegible] परिवृद्धये [illegible] बुद्धिपर्येषणं बुद्धेः मार्गेण [illegible] ॥ १८ ॥ यथार्हतीर्थे यथायोग्यपात्रे प्रतिपादनाय दानाय ॥ १९ ॥ अनिवर्तनम् [illegible] इत्यारण्यके पर्वणि [illegible] भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

तत इति ॥ १ ॥ [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] ॥ १३ ॥

*या त्वाहं कौशिकैर्वस्त्रैः शुभ्रैराच्छादितं पुरा ।
दृष्टवत्यस्मि राजेन्द्र सा त्वां पश्यामि चीरिणम् ॥
यच्च तद्रुक्मपात्रीभिर्ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ।
ह्रियते ते गृहादन्नं संस्कृतं सार्वकामिकम् ॥ १५
यतीनामगृहाणां ते तथैव गृहमेधिनाम् ।
दीयते भोजनं राजन्नतीवगुणवत्प्रभो ॥ १६
सत्कृतानि सहस्राणि सर्वकामैः पुरा गृहे ।
सर्वकामैः सुविहितैर्यदपूजयथा द्विजान् ॥ १७
तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
यत्ते भ्रातॄन्महाराज युवानो मृष्टकुण्डलाः ॥ १८
अभोजयन्त मृष्टान्नैः सूदाः परमसंस्कृतैः ।
सर्वांस्तानद्य पश्यामि वने वन्येन जीवितः ॥ १९
अदुःखार्हान्मनुष्येन्द्र नोपशाम्यति मे मनः
भीमसेनमिमं चापि दुःखितं वनवासिनम् ॥ २०
ध्यायतः किं न मन्युस्ते प्राप्ते काले विवर्धते ।
भीमसेनं हि कर्माणि स्वयं कुर्वाणमच्युतम् ॥ २१
सुखार्हं दुःखितं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।
सत्कृतं विविधैर्यानैर्वस्त्रैरुच्चावचैस्तथा ॥ २२
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।
अयं कुरून्रणे सर्वान्हन्तुमुत्सहते प्रभुः ॥ २३
त्वत्प्रतिज्ञां प्रतीक्षंस्तु सहतेऽयं वृकोदरः
योऽर्जुनेनार्जुनस्तुल्यो द्विबाहुर्बहुबाहुना ॥ २४
शरावमर्दे शीघ्रत्वात्कालान्तकयमोपमः ।
यस्य शस्त्रप्रतापेन प्रणताः सर्वपार्थिवाः ॥ २५
यज्ञे तव महाराज ब्राह्मणानुपतस्थिरे
तमिमं पुरुषव्याघ्रं पूजितं देवदानवैः ॥ २६
ध्यायन्तमर्जुनं दृष्ट्वा कस्माद्राजन्न कुप्यसि ।
दृष्ट्वा वनगतं पार्थमदुःखार्हं सुखोचितम् ॥ २७
न च ते वर्धते मन्युस्तेन मुह्यामि भारत ।
यो देवांश्च मनुष्यांश्च सर्पांश्चैकरथोऽजयत् ॥ २८
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।
यो यानैरद्भुताकारैर्हयैर्नागैश्च संवृतः ॥ २९
प्रसह्य वित्तान्यादत्त पार्थिवेभ्यः परंतप ।
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्चबाणशतानि यः ॥ ३०
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।
श्यामं बृहन्तं तरुणं चर्मिणामुत्तमं रणे ॥
नकुलं ते वने दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।
दर्शनीयं च शूरं च माद्रीपुत्रं युधिष्ठिर ॥
सहदेवं वने दृष्ट्वा कस्मात्क्षमसि पार्थिव ।
नकुलं सहदेवं च दृष्ट्वा ते दुःखितावुभौ ॥ ३२
अदुःखार्हौ मनुष्येन्द्र कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।
द्रुपदस्य कुले जातां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ३४
धृष्टद्युम्नस्य भगिनीं वीरपत्नीमनुव्रताम् ।
मां वै वनगतां दृष्ट्वा कस्मात्क्षमसि पार्थिव ॥ ३५
नूनं च तव वै नास्ति मन्युर्भरतसत्तम
यत्ते भ्रातॄंश्च मां चैव दृष्ट्वा न व्यथते मनः ॥ ३६
न निर्मन्युः क्षत्रियोऽस्ति लोके निर्वचनं स्मृतम् ।
तदद्य त्वयि पश्यामि क्षत्रिये विपरीतवत् ॥ ३७
यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते ।
सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत ॥ ३८
तत्त्वया न क्षमा कार्या शत्रून्प्रति कथंचन
तेजसैव हि ते शक्या निहन्तुं नात्र संशयः
तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति
अप्रियः सर्वभूतानां सोऽमुत्रेह च नश्यति ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्रौपदीपरितापवाक्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

कौशिकैः कोशजैः ॥ १४ ... चीरिणाम् ॥ १५ ॥ सत्कृतानि सहस्राणि ... पात्राणि । तेषां ... इति बहवृचब्राह्मणे दर्शनात् ... संभावितानि । सर्वकामैः ... कामैर्मनोरथैर्द्विजान् अपूजयथाः ... वेषणपात्रमित्यर्थः ॥ १७ ॥ मन्युः ... ॥ २३ ॥ अर्जुनेन ...

... ॥ २४ ॥ ... ॥ ३५ ॥ ... निर्वचनं ... ॥ ३७ ॥ ... ॥ ३८ ॥ ... ॥ ३९ ॥ ...

## २८

द्रौपद्युवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादं बलेर्वैरोचनस्य च ॥ १
असुरेन्द्रं महाप्राज्ञं धर्माणामागतागमम् ।
बलिः पप्रच्छ दैत्येन्द्रं प्रह्लादं पितरं पितुः ॥ २
बलिरुवाच ।
क्षमा स्विच्छ्रेयसी तात उताहो तेज इत्युत ।
एतन्मे संशयं तात यथावद्ब्रूहि पृच्छते ॥ ३
श्रेयो यदत्र धर्मज्ञ ब्रूहि मे तदसंशयम् ।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ ४
तस्मै प्रोवाच तत्सर्वमेवं पृष्टः पितामहः ।
सर्वनिश्चयवित्प्राज्ञः संशयं परिपृच्छते ॥ ५
प्रह्लाद उवाच ।
न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा ।
इति तात विजानीहि द्वयमेतदसंशयम् ॥ ६
यो नित्यं क्षमते तात बहून्दोषान्स विन्दति ।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः ॥ ७
सर्वभूतानि चाप्यस्य न नमन्ते कदाचन ।
तस्मान्नित्यं क्षमा तात पण्डितैरपि वर्जिता ॥ ८
अवज्ञाय हि तं भृत्या भजन्ते बहुदोषताम् ।
आदातुं चास्य वित्तानि प्रार्थयन्तेऽल्पचेतसः ॥ ९
यानं वस्त्राण्यलंकाराञ्छयनान्यासनानि च ।
भोजनान्यथ पानानि सर्वोपकरणानि च ॥ १०
आददीरन्नधिकृता यथाकाममचेतसः ।
प्रदिष्टानि च देयानि न दद्युर्भर्तृशासनात् ॥ ११
न चैनं भर्तृपूजाभिः पूजयन्ति कथंचन ।
अवज्ञानं हि लोकेऽस्मिन्मरणादपि गर्हितम् ॥ १२
क्षमिणं तादृशं तात ब्रुवन्ति कटुकान्यपि ।
प्रेष्याः पुत्राश्च भृत्याश्च तथोदासीनवृत्तयः ॥ १३
अथास्य दारानिच्छन्ति परिभूय क्षमावतः ।
दाराश्चास्य प्रवर्तन्ते यथाकाममचेतसः ॥ १४
तथा च नित्यमुदिता यदि नाल्पमपीश्वरात् ।
दण्डमर्हन्ति दुष्यन्ति दुष्टाश्चाप्यपकुर्वते ॥ १५
एते चान्ये च बहवो नित्यं दोषाः क्षमावताम् ।
अथ वैरोचने दोषानिमान्विद्ध्यक्षमावताम् ॥ १६
अस्थाने यदि वा स्थाने सततं रजसा वृतः ।
क्रुद्धो दण्डान्प्रणयति विविधान्स्वेन तेजसा ॥ १७
मित्रैः सह विरोधं च प्राप्नुते तेजसा वृतः ।
आप्नोति द्वेष्यतां चैव लोकात्स्वजनतस्तथा ॥ १८
सोऽवमानादर्थहानिमुपालम्भमनादरम् ।
संतापद्वेषमोहांश्च शत्रूंश्च लभते नरः ॥ १९
क्रोधाद्दण्डान्मनुष्येषु विविधान्पुरुषोऽनयात् ।
भ्रश्यते शीघ्रमैश्वर्यात्प्राणेभ्यः स्वजनादपि ॥ २०
योऽपकर्तॄंश्च हर्तॄंश्च तेजसैवोपगच्छति ।
तस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ २१
यस्मादुद्विजते लोकः कथं तस्य भवो भवेत् ।
अन्तरं तस्य दृष्ट्वैव लोको विकुरुते ध्रुवम् ॥ २२
तस्मान्नात्युत्सृजेत्तेजो न च नित्यं मृदुर्भवेत् ।
काले काले तु संप्राप्ते मृदुस्तीक्ष्णोऽपि वा भवेत् ॥
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ।
स वै सुखमवाप्नोति लोकेऽमुष्मिन्निहैव च ॥ २४
क्षमाकालांस्तु वक्ष्यामि शृणु मे विस्तरेण तान् ।
ये ते नित्यमसंत्याज्या यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥ २५
पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपराधे गरीयसि ।
उपकारेण तत्तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ॥ २६
अबुद्धिमाश्रितानां तु क्षन्तव्यमपराधिनाम् ।
न हि सर्वत्र पाण्डित्यं सुलभं पुरुषेण वै ॥ २७
अथ चेद्बुद्धिजं कृत्वा ब्रूयुस्ते तदबुद्धिजम् ।
पापान्स्वल्पेऽपि तान्हन्यादपराधे तथाऽनृजून् ॥ २८
सर्वस्यैकोऽपराधस्ते क्षन्तव्यः प्राणिनो भवेत् ।
द्वितीये सति वध्यस्तु स्वल्पेऽप्यपकृते भवेत् ॥ २९

२८

अत्रापीति ॥ १ ॥ आगतागमं प्राप्तरहस्यम् ॥ २ ॥ श्रेयः प्रशस्ततरं अत्र क्षमा तेजसोर्मध्ये ॥ ४ ॥ अस्य एनम् ॥ ८ ॥ अधिकृताः अन्नपानादिसंरक्षणे नियुक्ताः प्रदिष्टानि इदमस्मै देयमित्याज्ञापितानि ॥ ११ एवं क्षमिणं भर्तृपूजाभिः स्वाम्युचितमानैः ॥ १२ ॥ नित्यमुदिताः नित्यं हीलकाः उत्सवपराः ॥ १५ ॥ तेजसा क्रोधेन ॥ १७ ॥ उपालम्भं धिक्कारम् ॥ १९ ॥ उपकर्तॄनिति छेदः संधिरार्षः । उपकर्तॄन् कोशादिग्राहकान्, हर्तॄन् चोरान् ॥ २१ ॥ भवः ऐश्वर्यं । अन्तरं छिद्रं । विकुरुते प्रथयति ॥ २२ ॥ असंत्याज्याः क्रोधेनानतिक्रमणीयाः ॥ २५ ॥ पूर्वेषां पूर्वकाले वा उपकारी उपकर्ता ॥ २६ ॥ अबुद्धिं मौढ्यम् ॥ २७ ॥ अपकृते अपकारे ॥ २९ ॥

अजानता भवेत्कश्चिदपराधः कृतो यदि ।
क्षन्तव्यमेव तस्याहुः सुपरीक्ष्य परीक्षया ॥ ३०
मृदुना दारुणं हन्ति मृदुना हन्त्यदारुणम् ।
नासाध्यं मृदुना किंचित्तस्मात्तीव्रतरं मृदु ॥ ३१
देशकालौ तु संप्रेक्ष्य बलाबलमथात्मनः ।
नादेशकाले किंचित्स्याद्देशकालौ प्रतीक्षताम् ।
तथा लोकभयाच्चैव क्षन्तव्यमपराधिनः ॥ ३२
एत एवंविधाः कालाः क्षमायाः परिकीर्तिताः ।
अतोऽन्यथानुवर्तत्सु तेजसः काल उच्यते ॥ ३३
तदहं तेजसः कालं तव मन्ये नराधिप ।
धार्तराष्ट्रेषु लुब्धेषु सततं चापकारिषु ॥ ३४
न हि कश्चित्क्षमाकालो विद्यतेऽद्य कुरून्प्रति ।
तेजसश्चागते काले तेज उत्स्रष्टुमर्हसि ॥ ३५
मृदुर्भवत्यवज्ञातस्तीक्ष्णादुद्विजते जनः ।
काले प्राप्ते द्वयं चैतद्यो वेद स महीपतिः ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्रौपदीवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

युधिष्ठिर उवाच ।
क्रोधो हन्ता मनुष्याणां क्रोधो भावयिता पुनः ।
इति विद्धि महाप्राज्ञे क्रोधमूलौ भवाभवौ ॥ १
यो हि संहरते क्रोधं भवस्तस्य सुशोभने ।
यः पुनः पुरुषः क्रोधं नित्यं न सहते शुभे ।
तस्याभावाय भवति क्रोधः परमदारुणः ॥ २
क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते ।
तत्कथं मादृशः क्रोधमुत्सृजेल्लोकनाशनम् ॥ ३
क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात्क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते ॥ ४
वाच्यावाच्ये हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा ॥ ५
हिंस्यात्क्रोधादवध्यांस्तु वध्यान्संपूजयीत च ।
आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद्यमसादनम् ॥ ६
एतान्दोषान्प्रपश्यद्भिर्जितः क्रोधो मनीषिभिः ।
इच्छद्भिः परमं श्रेय इह चामुत्र चोत्तमम् ॥ ७
तं क्रोधं वर्जितं धीरैः कथमस्मद्विधश्चरेत् ।
एतद्द्रौपदि संधाय न मे मन्युः प्रवर्धते ॥ ८
आत्मानं च परांश्चैव त्रायते महतो भयात् ।
क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन्द्वयोरेष चिकित्सकः ॥ ९
मूढो यदि क्लिश्यमानः क्रुध्यतेऽशक्तिमान्नरः ।
बलीयसां मनुष्याणां त्यजत्यात्मानमात्मना ॥ १०
तस्यात्मानं संत्यजतो लोका नश्यन्त्यनात्मनः ।
तस्माद्द्रौपद्यशक्तस्य मन्योर्नियमनं स्मृतम् ॥ ११
विद्वांस्तथैव यः शक्तः क्लिश्यमानो न कुप्यति ।
अनाशयित्वा क्लेष्टारं परलोके च नन्दति ॥ १२
तस्माद्बलवता चैव दुर्बलेन च नित्यदा ।
क्षन्तव्यं पुरुषेणाहुरापत्स्वपि विजानता ॥ १३
मन्योर्हि विजयं कृष्णे प्रशंसन्तीह साधवः ।
क्षमावतो जयो नित्यं साधोरिह सतां मतम् ॥ १४
सत्यं चानृततः श्रेयो नृशंसाच्चानृशंसता ।
तमेवं बहुदोषं तु क्रोधं साधुविवर्जितम् ॥ १५

---

मृदुना साम्ना ॥ ३१ ॥ सामापि देशकालापेक्षयैव कर्तव्यमित्याह देशेति ॥ ३२ ॥ उत्स्रष्टुं प्रयोक्तुम् ॥ ३५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

क्रोध इति । परैरपकृताः अपि बोधिताः सामर्थ्यवन्तोऽपि सन्तः क्षमामेव श्रयन्तः इत्यध्यायतात्पर्यं । भावयिता वर्धयिता जितः सन्निति शेषः ॥ १ ॥ तदेवाह योहीति ॥ २ ॥ लोक आत्मा स्वर्गो वा तन्नाशनम् ॥ ३ ॥ तदेवाह क्रुद्ध इति । श्रेयसः श्रेष्ठान् श्रेयोपि प्राप्येति वा ल्यब्लोपे पञ्चमीमाश्रित्य व्याख्येयम् ॥ ४ ॥ तं क्रोधं विक्रमं । धीरैरिति पाठे विपरीतःक्रमो येन तामित्यर्थः । चरेत् आचरेत् ॥ ८ ॥ अप्रतिकुध्यन् त्रायते द्वयोरात्मपरयोः चिकित्सकः दोषापहर्ता ॥ ९ ॥ एतदेवाह मूढ इति । बलीयसामुपरि यदि अशक्तिमान् क्लिश्यति कुध्यते । तर्हि आत्मानं देहं त्यजति ॥ १० ॥ अनात्मनः अजितचित्तस्य । नियमनं कर्तव्यमिति स्मृतं । अशक्तः क्रोधं जित्वा आत्मानमात्महत्यादोषात् । परं च परहत्यादोषात्त्रायत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ शक्तस्यापि क्रोधजये आत्मपरत्रातृत्वमाह विद्वानिति ॥ १२ ॥

मादृशः प्रसृजेत्कस्मात्सुयोधनवधादपि ।
तेजस्वीति यमाहुर्वै पण्डिता दीर्घदर्शिनः ॥ १६
न क्रोधोऽभ्यन्तरस्तस्य भवतीति विनिश्चितम् ।
यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते ॥ १७
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः ।
क्रुद्धो हि कार्यं सुश्रोणि न यथावत्प्रपश्यति ।
नाकार्यं न च मर्यादां नरः क्रुद्धोऽनुपश्यति ॥ १८
हन्त्यवध्यानपि क्रुद्धो गुरून्क्रुद्धस्तुदत्यपि ।
तस्मात्तेजसि कर्तव्यः क्रोधो दूरे प्रतिष्ठितः ॥१९
दाक्ष्यं ह्यमर्षः शौर्यं च शीघ्रत्वमिति तेजसः ।
गुणाः क्रोधाभिभूतेन न शक्याः प्राप्तुमञ्जसा॥ २०
क्रोधं त्यक्त्वा तु पुरुषः सम्यक्तेजोऽभिपद्यते ।
कालयुक्तं महाप्राज्ञे क्रुद्धैस्तेजः सुदुःसहम् ॥ २१
क्रोधस्तु पण्डितैः शश्वत्तेज इत्यभिनिश्चितम् ।
रजस्तु लोकनाशाय विहितं मानुषं प्रति ॥ २२
तस्माच्छश्वत्त्यजेत्क्रोधं पुरुषः सम्यगाचरन् ।
श्रेयान्स्वधर्मानपगो न क्रुद्ध इति निश्चितम् ॥ २३
यदि सर्वमबुद्धीनामतिक्रान्तमचेतसाम् ।
अतिक्रमो मद्विधस्य कथं स्वित्स्यादनिन्दिते ॥२४
यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवीसमाः ।
न स्यात्संधिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः॥२५
अभिषक्तो ह्यभिषजेदाहन्याद्गुरुणा हतः ।
एवं विनाशो भूतानामधर्मः प्रथितो भवेत् ॥ २६

आक्रुष्टः पुरुषः सर्वं प्रत्याक्रोशेदनन्तरम् ।
प्रतिहन्याद्धतश्चैव तथा हिंस्याच्च हिंसितः ॥ २७
हन्युर्हि पितरः पुत्रान्पुत्राश्चापि तथा पितॄन् ।
हन्युश्च पतयो भार्याः पतीन्भार्यास्तथैव च ॥ २८
एवं संकुपिते लोके जन्म कृष्णे न विद्यते ।
प्रजानां संधिमूलं हि जन्म विद्धि शुभानने ॥२९
ताः क्षिपेरन्प्रजाः सर्वाः क्षिप्रं द्रौपदि तादृशे ।
तस्मान्मन्युर्विनाशाय प्रजानामभवाय च ॥ ३०
यस्मात्तु लोके दृश्यन्ते क्षमिणः पृथिवीसमाः ।
तस्माज्जन्म च भूतानां भवश्च प्रतिपद्यते ॥ ३१
क्षन्तव्यं पुरुषेणेह सर्वापत्सु सुशोभने ।
क्षमावतो हि भूतानां जन्म चैव प्रकीर्तितम् ३२
आक्रुष्टस्ताडितः क्रुद्धः क्षमते यो बलीयसा ।
यश्च नित्यं जितक्रोधो विद्वानुत्तमपूरुषः ॥ ३३
प्रभाववानपि नरस्तस्य लोकाः सनातनाः ।
क्रोधनस्त्वल्पविज्ञानः प्रेत्य चेह च नश्यति ॥३४
अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा नित्यं क्षमावताम् ।
गीताः क्षमावतां कृष्णे काश्यपेन महात्मना॥३५
क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम् ।
य एतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति ॥ ३६
क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च ।
क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत् ॥ ३७
अतियज्ञविदां लोकान्क्षमिणः प्राप्नुवन्ति च ।
अतिब्रह्मविदां लोकानति चापि तपस्विनाम्॥ ३८

प्रसृजेत्प्रकर्षेण प्रयुञ्जीत । सुयोधनवधादपि सुयोधनाद्वधं प्राप्यापीत्यर्थः । यदुक्तं 'तेजसश्चागते काले तेज उत्स्रष्टुमर्हसि ' इति तत्राह तेजस्वीति । क्रोधजिदेव तेजस्वी न तु क्रोधीत्यर्थः ॥ १६ ॥ प्रत्युत क्रोधाजये दोषमाह क्रुद्धो हीति ॥ १८ ॥ तुदति व्यथयति परुषोक्त्यादिना तेजसि सति क्रोधजयित्वमेव तेजो नान्यदित्यर्थः ॥ १९ ॥ एतदेव तेजोलक्षणप्रदर्शनेन प्रतिपादयति दाक्ष्यमिति । दाक्ष्यं कर्मसु कौशलं । अमर्षः शत्रोरपकारोपायचिन्तनं । शौर्यं पराभिभवशक्तिः । शीघ्रत्वं आशुकारिता । अञ्जसा आर्जवेन ॥२०॥ क्रुद्धैः कालयुक्तं देशकालोपपन्नं तेजः सुदुःसहम् ॥२१॥ पण्डितैरित्युपहासो मूर्खैरित्यर्थः । अपण्डितैरिति गौडपाठः स्वच्छः । रजः रजोगुणपरिणामः ॥ २२ ॥ स्वधर्मान् अपगः अपहाय गच्छतीति तथा द्वितीयाया अलुगार्षः । जातिभ्रष्टात् पतितादपि क्रोधी हीन इत्यर्थः ॥ २३ ॥ सर्वं क्षमार्जवादिकं अबुद्धीनां मूढैः अतिक्रान्तं लङ्घितं अनिन्दिते प्रशस्ते विषये क्षमादौ ॥ २४ ॥ अभिषक्तः तापितः अभिषजेत्तापयेत् गुरुणापि हतस्तं आहन्यात् ताडयेत् किमुतान्यमिति भावः

एवं विनाशः अधर्मश्च प्रथितो भवेत् ॥ २६ ॥ आक्रुष्टो वाचा ताडितः हतोऽन्येनाभिगतः हिंसितस्ताडितः ॥२७॥ जन्म उत्पत्तिः तत्र हेतुः प्रजानां संधिः दंपत्योः प्रीतिः । शम इति पाठे क्षमा ॥ २९ ॥ तादृशे क्रोधपरे राज्ञि सति क्षिपेरन् नश्येयुः । अभवाय अनैश्वर्याय ॥ ३० ॥ जन्म प्रतिपद्यते अन्यथा क्रोधप्राबल्ये पूर्ववयस्येव दंपत्योर्नाशाज्जन्मासंभव इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ बलीयसा बलवत्तरेण स्वाम्यादिना यथा आक्रुष्टस्ताडितो वाऽशक्तः क्षमते तथा यः प्रभाववानपि क्षमते तस्य लोका इति सार्धश्लोको वाक्यम् ॥ ३३ ॥ अन्यथा दोषमाहार्धेन क्रोधनस्त्विति ॥ ३४ ॥ अत्रेति । क्षमावतां गाथाः प्रशंसाः क्षमावतां मध्ये महात्मना ॥३५॥ क्षमा धर्म इति । क्षमाहीनस्य धर्मादिरनर्थकर इत्यर्थः । यः धर्मादिफलार्थी ॥ ३६ ॥ ब्रह्म ब्राह्मणजातिः सत्यं परं ब्रह्मापि क्षमाप्राप्यं भूतं संचितं तपः भावि च क्षमैव रक्षति ॥ ३७ ॥ अति अतिक्रम्य प्राप्नुवन्ति तदूर्ध्वं पदमिति शेषः ब्रह्मविदां वेदविदाम् ॥ ३८ ॥

अन्ये वै यजुषां लोकाः कर्मिणामपरे तथा ।
क्षमावतां ब्रह्मलोके लोकाः परमपूजिताः ॥ ३९
क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा शमः ॥ ४०
तां क्षमां तादृशीं कृष्णे कथमस्मद्विधस्त्यजेत् ।
यस्यां ब्रह्म च सत्यं च यज्ञा लोकाश्च धिष्ठिताः ॥
क्षन्तव्यमेव सततं पुरुषेण विजानता ।
यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ४२
क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ।
इह सन्मानमृच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४३
येषां मन्युर्मनुष्याणां क्षमयाभिहतः सदा ।
तेषां परतरे लोकास्तस्मात्क्षान्तिः परा मता॥ ४४
इति गीताः काश्यपेन गाथा नित्यं क्षमावताम्।
श्रुत्वा गाथाः क्षमायास्त्वं तुष्य द्रौपदि मा क्रुधः॥
पितामहः शान्तनवः शमं संपूजयिष्यति ।
कृष्णश्च देवकीपुत्रः शमं संपूजयिष्यति ॥ ४६
आचार्यो विदुरः क्षत्ता क्षममेव वदिष्यतः ।
कृपश्च संजयश्चैव शममेव वदिष्यतः ॥ ४७
सोमदत्तो युयुत्सुश्च द्रोणपुत्रस्तथैव च ।
पितामहश्च नो व्यासः शमं वदति नित्यशः । ४८
एतैर्हि राजा नियतं चोद्यमानः शमं प्रति ।
राज्यं दातेति मे बुद्धिर्न चेल्लोभान्नशिष्यति ॥४९
कालोयं दारुणः प्राप्तो भरतानामभूतये ।
निश्चितं मे सदैवैतत्पुरस्तादपि भाविनि ॥ ५०
सुयोधनो नार्हतीति क्षमामेवं न विन्दति ।
अर्हस्तत्राहमित्येवं तस्मान्मां विन्दते क्षमा ॥ ५१
एतदात्मवतां वृत्तमेष धर्मः सनातनः ।
क्षमा चैवानृशंस्यं च तत्कर्तास्म्यहमञ्जसा ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते आर० पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्रौपदीयुधिष्ठिरसंवादे ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

## ३०

द्रौपद्युवाच ।
नमो धात्रे विधात्रे च यौ मोहं चक्रतुस्तव ।
पितृपैतामहे वृत्ते वोढव्ये तेन्यथा मतिः ॥ १
कर्मभिश्चिन्तितो लोको गत्यां गत्यां पृथग्विधः ।
तस्मात्कर्माणि नित्यानि लोभान्मोक्षं यियासति
नेह धर्मानृशंस्याभ्यां न क्षान्त्या नार्जवेन च ।
पुरुषः श्रियमाप्नोति न घृणित्वेन कर्हिचित् ॥ ३
त्वां च व्यसनमभ्यागादिदं भारत दुःसहम् ।
यत्त्वं नार्हसि नापीमे भ्रातरस्ते महौजसः ॥ ४
न हि तेऽध्यगमज्जातु तदानीं नाद्य भारत ।
धर्मात्प्रियतरं किंचिदपि चेज्जीवितादिह ॥ ५
धर्मार्थमेव ते राज्यं धर्मार्थं जीवितं च ते ।
ब्राह्मणा गुरवश्चैव जानन्त्यपि च देवताः ॥ ६
भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रेयौ च मया सह ।
त्यजेस्त्वमिति मे बुद्धिर्न तु धर्मं परित्यजेः ॥ ७
राजानं धर्मगोप्तारं धर्मो रक्षति रक्षितः ।
इति मे श्रुतमार्याणां त्वां तु मन्ये न रक्षति ॥ ८
अनन्या हि नरव्याघ्र नित्यदा धर्ममेव ते ।
बुद्धिः सततमन्वेति च्छायेव पुरुषं निजा ॥ ९

यजुषां त्रेताग्निसाध्यकर्मवतां कर्मिणां वापीकूपादिधर्मवताम् ॥ ३९ ॥ सर्वं मनः प्राणेन्द्रियाणां वेगं क्षमते सोढुं शक्नोति ॥ ४२ ॥ परतरे सत्यलोके लोकाः भोग्यपदार्थाः ॥ ४४ ॥ तुष्य तुष्टा भव ॥४५॥ राजा धृतराष्ट्रः तत्पुत्रो वा दाता दास्यति ॥ ४९ ॥ अभूतये नाशाय ॥ ५० ॥ नार्हति राज्यमिति शेषः तत्र हेतु इतीति । एवं उक्तरीत्या ॥५१॥ अञ्जसा तत्त्वतः ॥ ५२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

नमो धात्रे इति । धात्रे ईश्वराय विधात्रे पूर्वकर्मणे वृत्ते नलेन राज्याकरणरूपे ॥ १ ॥ ईश्वरस्यापि कर्मापेक्षत्वात्प्रथमं कर्मप्राबल्यमेवाह कर्मभिरिति । चिन्तितः कल्पितो लोकः भोगसाधनं गत्यां गत्यां ऊर्ध्वाधो मध्यमोत्तमाधमयोनिषु । नित्यानि अपरिहार्यफलानि । लोभात् मोहात् मोक्षं कर्मफलेभ्यो दुःखेभ्यो मुक्तिं यियासति प्राप्तुमिच्छति ॥ २ ॥ कर्मनित्यत्वमेवाह नेहेति । इह जन्मनि पुरुषः पूर्वकर्माभिर्वाध्यमानो धर्मादिना न श्रियमाप्नोति । आनृशंस्यं दया । घृणा लोकापवादभयम् ॥ ३ ॥ तत्र त्वमेव दृष्टान्त इत्याह त्वामित्यादिना ॥ ४ ॥ तदानीं राज्यकाले अद्य राज्यच्युतौ जातु कदाचित् धर्मात्प्रियतरं न हि ते अध्यगमन् ज्ञातवन्तः किं तु जीवितादपि प्रियतरं धर्ममेवाध्यगमन् ॥ ५ ॥

नावमस्था हि सदृशान्नावराञ्छ्रेयसः कुतः ।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां न ते शृङ्गमवर्धत ॥ १०

स्वाहाकारैः स्वधाभिश्च पूजाभिरपि च द्विजान् ।
दैवतानि पितॄंश्चैव सततं पार्थ सेवसे ॥ ११

ब्राह्मणाः सर्वकामैस्ते सततं पार्थ तर्पिताः ।
यतयो मोक्षिणश्चैव गृहस्थाश्चैव भारत ॥ १२

भुञ्जते रुक्मपात्रीभिर्यत्राहं परिचारिका ।
आरण्यकेभ्यो लौहानि भाजनानि प्रयच्छसि ।
नादेयं ब्राह्मणेभ्यस्ते गृहे किंचन विद्यते ॥ १३

यदिदं वैश्वदेवं ते शान्तये क्रियते गृहे ।
तद्दत्वातिथिभूतेभ्यो राजञ्शिष्टेन जीवसि ॥ १४

इष्टयः पशुबन्धाश्च काम्यनैमित्तिकाश्च ये ।
वर्तन्ते पाकयज्ञाश्च यज्ञकर्म च नित्यदा ॥ १५

अस्मिन्नपि महारण्ये विजने दस्युसेविते ।
राष्ट्रादपेत्य वसतो धर्मस्ते नावसीदति ॥ १६

अश्वमेधो राजसूयः पुण्डरीकोथ गोसवः ।
एतैरपि महायज्ञैरिष्टं ते भूरिदक्षिणैः ॥ १७

राजन्परीतया बुध्या विषमेऽक्षपराजये ।
राज्यं वसून्यायुधानि भ्रातॄन्मां चासि निर्जितः ॥

ऋजोर्मृदोर्वदान्यस्य ह्रीमतः सत्यवादिनः ।
कथमक्षव्यसनजा बुद्धिरापतिता तव ॥ १९

अतीव मोहमायाति मनश्च परिभूयते ।
निशाम्य ते दुःखमिदमिमां चापदमीदृशीम् ॥ २०

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ईश्वरस्य वशे लोकास्तिष्ठन्ते नात्मनो यथा ॥ २१

धातैव खलु भूतानां सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।
दधाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २२

यथा दारुमयी योषा नरवीर समाहिता ।
ईरयत्यङ्गमङ्गानि तथा राजन्निमाः प्रजाः ॥ २३

आकाश इव भूतानि व्याप्य सर्वाणि भारत ।
ईश्वरो विदधातीह कल्याणं यच्च पापकम् ॥ २४

शकुनिस्तन्तुबद्धो वा नियतोऽयमनीश्वरः ।
ईश्वरस्य वशे तिष्ठेन्नान्येषां नात्मनः प्रभुः ॥ २५

मणिः सूत्र इव प्रोतो नस्योत इव गोवृषः ।
स्रोतसो मध्यमापन्नः कूलाद्वृक्ष इव च्युतः ॥ २६

धातुरादेशमन्वेति तन्मयो हि तदर्पणः ।
नात्माधीनो मनुष्योयं कालं भजति कंचन ॥ २७

अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २८

यथा वायोस्तृणाग्राणि वशं यान्ति बलीयसः ।
धातुरेवं वशं यान्ति सर्वभूतानि भारत ॥ २९

आर्ये कर्मणि युञ्जानः पापे वा पुनरीश्वरः ।
व्याप्य भूतानि चरते न चायमिति लक्ष्यते ॥ ३०

---

शृङ्गं प्रभुत्वाभिमानः ॥ १० ॥ ते त्वया मोक्षिणः संन्यासिनःमोक्षाश्रमस्थाः ॥ १२ ॥ आरण्यकेभ्यो वानप्रस्थेभ्यः । लौहानि सौवर्णादीनि । लोहानां काञ्चनं वरमिति लिङ्गात् ॥ १३ ॥ पाकयज्ञाः गृह्याभिसाध्या इष्टयः ॥ १५ ॥ परीतया विपरीतया ॥ १८ ॥ ऋजोः अवक्रस्य मृदोःदयालोः ॥ १९ ॥ निशाम्य आलोच्य मम मनः मोहं मौढ्यं आयाति परिभूयते चेत्यन्वयः । परिभव आर्तिः॥२०॥ लोकाः लोग्यानि तिष्ठन्ते प्रकाशन्ते । प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्चेति तङ् ॥ २१ ॥ धाता ईश्वरः । शुक्रं प्राक्कर्मबीजं । उच्चरन् उत्कर्षेणानुसरन ॥ २२ ॥ यथेति । हे नरवीर सूत्रधारेण समाहिता सम्यक् नियुक्ता भर्ता अङ्गं ईरयति तथा इमाः प्रजाः अङ्गानि हस्तादीनि ईश्वरेण समाहिताः सत्य ईरयन्ति । चेष्टयन्त्यङ्गकर्माणीति पाठे हे अङ्ग कर्माणि कर्तॄणि कर्मानुरोधी ईश्वर इत्यर्थः । इमाः प्रजाश्चेष्टयन्तीति संबन्धः ॥ २३॥ अन्तर्बहिर्व्योमेव आकाशदृष्टान्तः । भूतानि जरायुजादीनि ॥ २४ ॥ बद्धो वा बद्ध इव अन्येषा उपाध्यायादीनाम् ॥ २५ ॥ नसि नासिकायां नस्यं नासासूत्रं तेन वा ओतः प्रोतः । अत्र द्वौ आकाशशकुनिसूत्रदृष्टान्तौ ईश्वरस्य व्यापकत्वप्रेरकत्वयोः त्रयो मणिवृषवृक्षदृष्टान्ता जीवस्यास्वातन्त्र्ये ॥ २६ ॥ आदेशं आज्ञां अन्वेति अनुसरति तत्र हेतुः तन्मयो हि तदर्पण इति । यथा मृन्मयो घटो मृद्येव लीयतेऽतो मध्येपि मृदधीनोनन्य एवं जीवोपीश्वरस्यैव रूपभेदस्तन्मयस्तदर्पणश्चातो मध्येपि तत्प्रेर्य एवेत्यर्थः यथोक्तं । 'अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृभवेत्' इति यद्यन्मयं तत्तन्नियम्यमिति तस्यार्थः । अयं आत्माधीनो न किं तु कंचन अदृश्यरूपं कालं कालयितारं ईशं भजत्यनुसराति ॥ २७ ॥ चरते भुङ्क्ते कर्म व्यतिहारे तङ् । फलप्रदत्वेनोपकारकं ईशं जीवो भुङ्क्ते । कर्मकर्तृत्वेनोपकारकं जीवमीशो भुङ्क्ते इत्यर्थः । अयमिति । राजवत्तटस्थतया न च लक्ष्यते अन्तर्यामित्वात् ॥ ३० ॥

हेतुमात्रमिदं धातुः शरीरं क्षेत्रसंज्ञितम् ।
येन कारयते कर्म शुभाशुभफलं विभुः ॥ ३१
पश्य मायाप्रभावोयमीश्वरेण यथा कृतः ।
यो हन्ति भूतैर्भूतानि मोहयित्वात्ममायया ॥ ३२
अन्यथा परिदृष्टानि मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः ॥ ३३
अन्यथैव हि मन्यन्ते पुरुषास्तानि तानि च ।
अन्यथैव प्रभुस्तानि करोति विकरोति च ॥ ३४
यथा काष्ठेन वा काष्ठमश्मानं चाश्मना पुनः ।
अयसा चाप्ययश्छिन्द्यान्निर्विचेष्टमचेतनम् ॥ ३५
एवं स भगवान्देवः स्वयंभूः प्रपितामहः ।
हिनस्ति भूतैर्भूतानि छद्म कृत्वा युधिष्ठिर ॥ ३६
संप्रयोज्य वियोज्यायं कामकारकरः प्रभुः ।
क्रीडते भगवान्भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ ३७
न मातृपितृवद्राजन्धाता भूतेषु वर्तते ।
रोषादिव प्रवृत्तोयं यथायमितरो जनः ॥ ३८
आर्याञ्छीलवतो दृष्ट्वा ह्रीमतो वृत्तिकर्षितान् ।
अनार्यान्सुखिनश्चैव विह्वलामीव चिन्तया ॥ ३९
तवेमामापदं दृष्ट्वा समृद्धिं च सुयोधने ।
धातारं गर्हये पार्थ विषमं योनुपश्यति ॥ ४०
आर्यशास्त्रातिगे क्रूरे लुब्धे धर्मापचायिनि ।
धार्तराष्ट्रे श्रियं दत्त्वा धाता किं फलमश्नुते ॥ ४१
कर्म चेत्कृतमन्वेति कर्तारं नान्यमृच्छति ।
कर्मणा तेन पापेन लिप्यते नूनमीश्वरः ४२
अथ कर्मकृतं पापं न चेत्कर्तारमृच्छति ।
कारणं बलमेवेह जनाञ्छोचामि दुर्बलान् ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्रौपदीवाक्ये त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

नन्वीश्वरो जीवादन्योऽनन्यो वा । आद्ये न चायमिति लक्ष्यत इत्यनुपपन्नं । द्वितीये तयोः शास्तृशास्यभावानुपपत्तिरित्याशंक्याह हेतुमात्रमिति । विभुश्चिदात्मा येन प्रयोज्येन कर्म कारयते तत इदं शरीरं महाभूतान्यहंकार इत्यादिना उक्तरूपं स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयं तदेव कर्तृ इत्यर्थः । ननु जडे कर्तृत्वासंभव इत्याशंक्याह धातुः क्षेत्रसंज्ञितं क्षेत्रमिव क्षेत्रं चिदात्मनः आभासरूपबीजनिवापस्थानं चिदाभासयुक्तं क्षेत्रं कर्तृ इत्यर्थः । तच्च हेतुमात्रं इच्छाद्यात्मकत्वात् हेतुरपि न मुख्यहेतुभूतं बिम्बप्रतिबिम्बदृष्टान्तेन चिदाभासस्य चिदात्मतन्त्रत्वात् । तथा चाभासस्यान्यत्वमादाय शास्तृशास्यभावो व्यावहारिकः । परमार्थतस्तु क्षेत्रस्य सुप्तिसमाध्योरभावान्न चायमिति लक्ष्यत इत्युक्तमिति भावः ॥ ३१ ॥ अयं पूर्वोक्तो मायया अघटितघटनापटी यस्या अनिर्वचनीयाज्ञानाख्यायाः प्रभावः । य ईश्वरो भूतैः पृथक् पृथक् क्षेत्राभिमानिभिर्मोहयित्वा अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिं जनयित्वा ॥ ३२ ॥ मोहमेव विवृणोति द्वाभ्यां अन्यथेति । तत्त्वदर्शिभिः स्वप्नमायेन्द्रजालवद्दृष्टान्यपि मूढानां सत्यवत्परिवर्तन्ते भासन्ते वेगाः प्रसराः नभस्वतः आकाशगामिनः सूर्यस्य तेजोमयाः सन्तो जलहृदवदवभासन्ते ॥ ३३ ॥ अनित्याशुचिदुःखरूपाण्यपि तानि नित्यशुचिसुखस्वरूपाणि मन्यन्ते अन्यथा करोति गगनवदजातमपि अङ्कुरादिक्रमेण जनयति । विकरोति च जीर्णत्वादिभावं च नयति ॥ ३४ ॥ अयोवत्तद्वच्च केवलं निश्चेष्टं किं त्वचेतनमपि ॥ ३५ ॥ छद्म मायाम् ॥ ३६ ॥ संप्रयोज्य संयोगं कृत्वा कामकार इच्छा तयैव करोतीति कामकारकरः । बालः प्राकृतः क्रीडनकैः सारीप्रभृतिभिः ॥ ३७ ॥ न मात्रिति । ईशो न दयालुः प्रत्युत नृशंस इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ किं च ईशस्य दुष्टेषु पक्षपातः साधुषु च द्वेषो दृश्यतेऽतः स निन्द्य एवेत्याह आर्यानित्यादि त्रिभिः । चिन्तया धनादिध्यानेन ॥ ३९ ॥ धर्माभिशङ्किनीति पाठे धर्मश्रद्धाशून्ये । फलं यज्ञादिना तृप्तिं किं अश्नुते अपि तु नैवेत्यर्थः ॥ ४१ ॥ कर्मेति । कृतं कर्म यदि कर्तारमेव गच्छति न त्वन्यं तर्हि कारयितृत्वादीश्वरोपि पापेन लिप्येतैवेत्यर्थः ॥ ४२ ॥ अथेति । कर्तारं कारयितारमीश्वरं ऐश्वर्यादेव कर्म न स्पृशति तर्हि तत्प्रयोज्या जीवा एव कर्मभिर्हताः तथा च ईश्वरो बलाद्दीनान् नरके पातयतीत्यत्यन्तं निन्द्य एव स इति भावः ॥ ४३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

# ३१

युधिष्ठिर उवाच ।
वल्गु चित्रपदं श्लक्ष्णं याज्ञसेनि त्वया वचः ।
उक्तं तच्छ्रुतमस्माभिर्नास्तिक्यं तु प्रभाषसे ॥ १
नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत ।
ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्यमित्युत ॥ २
अस्तु वात्र फलं मा वा कर्तव्यं पुरुषेण यत् ।
गृहे वा वसता कृष्णे यथाशक्ति करोमि तत् ॥ ३
धर्मं चरामि सुश्रोणि न धर्मफलकारणात् ।
आगमाननतिक्रम्य सतां वृत्तमवेक्ष्य च ॥ ४
धर्म एव मनः कृष्णे स्वभावाच्चैव मे धृतम् ।
धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम् ॥ ५
न धर्मफलमाप्नोति यो धर्मं दोग्धुमिच्छति ।
यश्चैनं शङ्कते कृत्वा नास्तिक्यात्पापचेतनः ॥ ६
अतिवादाद्वदाम्येष मा धर्ममभिशङ्किथाः ।
धर्माभिशङ्की पुरुषस्तिर्यग्गतिपरायणः ॥ ७
धर्मो यस्याभिशङ्क्यः स्यादार्षं वा दुर्बलात्मनः ।
वेदाच्छूद्र इवापेयात्स लोकादजरामरात् ॥ ८
वेदाध्यायी धर्मपरः कुले जातो मनस्विनि ।
स्थविरेषु स योक्तव्यो राजर्षिर्धर्मचारिभिः ॥ ९
पापीयान्स हि शूद्रेभ्यस्तस्करेभ्यो विशिष्यते ।
शास्त्रातिगो मन्दबुद्धिर्यो धर्ममभिशङ्कते ॥ १०
प्रत्यक्षं हि त्वया दृष्ट ऋषिर्गच्छन्महातपाः ।
मार्कण्डेयोऽप्रमेयात्मा धर्मेण चिरजीविता ॥ ११
व्यासो वसिष्ठो मैत्रेयो नारदो लोमशः शुकः ।
अन्ये च ऋषयः सर्वे धर्मेणैव सुचेतसः ॥ १२
प्रत्यक्षं पश्यसि ह्येतान्दिव्ययोगसमन्वितान् ।
शापानुग्रहणे शक्तान्देवेभ्योपि गरीयसः ॥ १३
एते हि धर्ममेवादौ वर्णयन्ति सदानघे ।
कर्तव्यममरप्रख्याः प्रत्यक्षागमबुद्धयः ॥ १४
अतो नार्हसि कल्याणि धातारं धर्ममेव च ।
राज्ञि मूढेन मनसा क्षेप्तुं शङ्कितुमेव च ॥ १५
उन्मत्तान्मन्यते बालः सर्वानागतनिश्चयान् ।
धर्माभिशङ्की नान्यस्मात्प्रमाणमधिगच्छति ॥ १६
आत्मप्रमाण उन्नद्धः श्रेयसो ह्यवमन्यकः ।
इन्द्रियप्रीतिसंबद्धं यदिदं लोकसाक्षिकम् ।
एतावन्मन्यते बालो मोहमन्यत्र गच्छति ॥ १७

---

३१

एवं धर्मेश्वरयोराक्षेपे प्राप्ते प्रत्यक्षानुमानागमैस्तौ समर्थयितुमध्याय आरभ्यते वल्गु चित्रेति । वल्गु शोभनं। श्लक्ष्णं सुकुमारं । नास्तिक्यं वेदविद्विष्टम् ॥१॥ यदुक्तं त्वां चेद्व्यसनिनामित्यादिना धर्मस्य नैष्फल्ये त्वदभिभव एव दृष्टान्त इति तत्राह नाहमिति । कर्म धर्मं फलार्थिना कृतो धर्मो यदि निष्फलः स्यात्तर्हि भवेदयमाक्षेपः न त्वहं तथा चरामीत्यर्थः । ननु फलेच्छाया अभावे किमर्थं धर्मः कर्तव्य इत्यत आह ददामीत्यादिना देयं ऋणं इत्येव ददामि । 'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः' इति श्रुतेः । ऋणवा ऋणवान् ॥ २ ॥ यथाशक्ति यत्कर्तव्यं तत्करोमीत्यन्वयः ॥ ३ ॥ धर्ममिति । वेदवाक्यात् शिष्टाचाराच्च निष्काममेव धर्मं चरामि । 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः' इति स्वर्गादिफलश्रुतिस्तु धर्मे प्ररोचनार्थेति भावः ॥ ४ ॥ स्वभावात् 'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनं । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्' ॥ इति गीतावचनोक्तधर्माचरणशील एव क्षत्रियो नान्य इति नियमात् :मे । मया धर्मे मनो धृतं यतः धर्मवाणिज्यको धर्मात्स्वर्गादिफलमिच्छन् । हीनः मुख्यफलात् च्युतः अत एव जघन्यः नीचः ॥ ५ ॥ धर्मफलं । 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' इति श्रुतेर्विद्या विविदिषा वा धर्मफलं मुख्यं तन्नाप्नोति । यश्चैनं धर्मं शङ्कते विश्वासं न कुरुते सोपि धर्मफलं नाप्नोति । पापचेतनः पापबुद्धिः ॥ ६ ॥ अतिवादात् मानान्तरमतिक्रान्तो वादो वचनं तस्मात् वेदैकप्रामाण्यात् ॥ ७ ॥ आर्षं ऋषयो मन्त्रास्तद्द्रष्टारो मन्वादयो वा धर्ममूलभूतं मन्त्रजातं वा मन्वादिवाक्यं वेत्यर्थः । अर्थं वेति पाठे फले विषये इत्यर्थः। दुर्बलात्मनः विवेकाक्षमचित्तस्य अपेयात् अपगच्छेत्। लोकात् आत्मलोकात् । स्वर्लोकादिति पाठेपि आनन्दरूपादात्मलोकादित्यर्थः। अनात्मलोकेषु अजरामरत्वयोरसंभवात् अजरामरात् मोक्षरूपात् ॥८॥ बालोपि स्थविरेषु योक्तव्यो नियोक्तव्यो गणनीयः॥९॥ एवं धर्मस्य वेदैकगम्यत्वादनतिशंक्यत्वं वेदस्य च श्रेष्ठप्रमाणत्वमुक्त्वा प्रत्यक्षत्वादपि धर्मफलस्यानतिशंक्यत्वमाह प्रत्यक्षं हीत्यादिना । चिरजीविता चिरजीवी ॥ ११ ॥ धर्मं कर्तव्यं वर्णयन्ति प्रत्यक्षागमबुद्धयः । अस्माकं वेदैकगम्यमप्यर्थं प्रत्यक्षेण पश्यन्त इत्यर्थः॥ १४॥ क्षेपो निन्दा शङ्का फले संशयः ॥१५॥ एतच्च मूढकार्यमित्याह उन्मत्तानित्यादिना । आगतनिश्चयान् प्राप्ततत्त्वनिश्चयान् ॥ १६ ॥ उन्नद्धः दृप्तः। श्रेयसो धर्मस्य। अन्यत्रातीन्द्रिये धर्मादावर्थे॥१७

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यो धर्ममभिशङ्कते ।
ध्यायन्स कृपणः पापो न लोकान्प्रतिपद्यते ॥ १८
प्रमाणाद्धि निवृत्तो हि वेदशास्त्रार्थनिन्दकः ।
कामलोभातिगो मूढो नरकं प्रतिपद्यते ॥ १९
यस्तु नित्यं कृतमतिर्धर्ममेवाभिपद्यते ।
अशङ्कमानः कल्याणि सोऽमुत्रानन्त्यमश्नुते ॥ २०
आर्षं प्रमाणमुत्क्रम्य धर्मं न प्रतिपालयन् ।
सर्वशास्त्रातिगो मूढः शं जन्मसु न विन्दति॥ २१
यस्य नार्षं प्रमाणं स्याच्छिष्टाचारश्च भाविनि ।
न वै तस्य परो लोको नायमस्तीति निश्चयः ॥२२
शिष्टैराचरितं धर्मं कृष्णे माऽस्माभिशङ्किथाः ।
पुराणमृषिभिः प्रोक्तं सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः ॥ २३
धर्म एव प्लवो नान्यः स्वर्गं द्रौपदि गच्छताम् ।
सैव नौः सागरस्येव वणिजः पारमिच्छतः॥ २४
अफलो यदि धर्मः स्याच्चरितो धर्मचारिभिः ।
अप्रतिष्ठे तमस्येतज्जगन्मज्जेदनिन्दिते ॥ २५
निर्वाणं नाधिगच्छेयुर्जीवेयुः पशुर्जीविकाम् ।
विद्यां ते नैव युज्येयुर्न चार्थं केचिदाप्नुयुः॥ २६
तपश्च ब्रह्मचर्यं च यज्ञः स्वाध्याय एव च ।
दानमार्जवमेतानि यदि स्युरफलानि वै ॥ २७
नाचरिष्यन्परे धर्मं परे परतरे च ये ।
विप्रलम्भोऽयमत्यन्तं यदि स्युरफलाः क्रियाः २८
ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वासुरराक्षसाः ।
ईश्वराः कस्य हेतोस्ते चरेयुर्धर्ममादृताः ॥ २९
फलदं त्विह विज्ञाय धातारं श्रेयसि ध्रुवम् ।
धर्मं ते ह्याचरन्कृष्णे तद्धि श्रेयः सनातनम् ॥३०
स नायमफलो धर्मो नाधर्मोऽफलवानपि ।
दृश्यन्तेपि हि विद्यानां फलानि तपसां तथा॥३१
त्वमात्मनो विजानीहि जन्म कृष्णे यथा श्रुतम् ।
वेत्थ चापि यथा जातो धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्॥३२
एतावदेव पर्याप्तमुपमानं शुचिस्मिते ।
कर्मणां फलमाप्नोति धीरोऽल्पेनापि तुष्यति ॥ ३३
बहुना ह्यपि विद्वांसो नैव तुष्यन्त्यबुद्धयः ।
तेषां न धर्मजं किंचित्प्रेत्य शर्मास्ति वा पुनः॥३४
कर्मणां श्रुतपुण्यानां पापानां च फलोदयः ।
प्रभवश्चात्ययश्चैव देव गुह्यानि भाविनि ॥ ३५

ध्यायन् अर्थात् चिन्तयन्नपि लोकान् धर्मप्राप्यान् ॥ १८ ॥ कामलोभौ अति अत्यन्तं गच्छति प्राप्नोतीति कामलोभातिगः १९॥ आनन्त्यं ब्रह्मभावम् ॥२०॥ शं कल्याणम्॥२१॥ अनुमानमपि धर्मे प्रमाणमित्याह अफल इति । अयं भावः। यदि धर्मो न स्यात्तर्हि ऊर्ध्वगतिं कश्चिदपि नाप्नुयात् । जायस्व म्रियस्वेति मशकादीनां पूर्वसंस्कारात्पुनः पुनस्तत्तज्जातीयदेहस्यैव प्राप्तिश्रुतेरन्धं तमः प्राप्तिरेव सर्वेषां स्यात् । ततश्च शास्त्रानर्थक्यं । यदि तु धर्मोस्ति तर्हि तेषामपि विशिष्टदेशनिवासादिजनितस्य पुण्यस्यापरिहार्यत्वात् ऊर्ध्वगतिः संभवति॥ २५॥ ननु यथा तृणात् क्षीरं क्षीराद्दधीत्येवं परिणामक्रमादेव तत्तद्विशिष्टदेहलाभादूर्ध्वगतिर्भविष्यति किं धर्मेणेत्याशंक्याह निर्वाणमिति। दध्नोपि गवोपभुक्तात् क्षीरमूत्रादिनी च परिणामदृष्टेर्नैतद्युक्तं ।तथा च मोक्षासिद्धिः तस्यां च सत्यां बोधशून्याः पशुजीविकां जीवेयुरन्धतमः प्रविशेयुरेवेत्यर्थः। ततश्च ते पशुतुल्याः विद्यां विद्यया नैव युज्येरन् । ननु तर्हि स्वभावेनैव सर्वेपि प्राणिनः । किं विद्यया किं वा मोक्षेणेत्याशंक्याह न चार्थं केचिदाप्नुयुरिति । अयं भावः । घटशरावोदंचनादिकार्यवैचित्र्यं क्रियावैचित्र्यायत्तं यथा दृष्टं तथा ऐहिकयत्नाभावेपि नृषु पश्वादिषु ज्ञानैश्वर्यतारतम्यं दृश्यमानं जन्मान्तरीयक्रियानुमापकं । तदभावे जगद्वैचित्र्यस्याकस्मिंकनिधिलाभादेश्चासंभवः स्यादिति ॥ २६ ॥ अनादिपरंपरागतः शिष्टाचारोपि धर्मास्तित्वे प्रमाणमित्याह । तपश्चेत्यादिना ॥२७॥ विप्रलम्भो वञ्चनं । अयं यज्ञादिधर्मः ॥२८॥ श्रेयसि श्रेयोनिमित्तं धर्मं ह्याचरन् । तद्धि धर्मो हि श्रेयः श्रेयःसाधनं सनातनं अनाद्यनन्तम् ॥ ३० ॥ अनुभवोपि धर्मे प्रमाणमित्याह त्वमिति। अयं भावः 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततःप्रजाः' इति स्मृतेः । पञ्चाग्निविद्यायां च द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषासु अग्निषु श्रद्धासोमवर्षान्नरेतआहुतयो हूयन्ते ततः शरीरमिति क्रमेण 'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति'इति श्रुतेश्च सर्वेषां प्राणिनामुत्पत्तिरगवता । तत्र गर्भवासादया रेतोद्रव्यकपरम्पराहुत्यवस्थाऽत्यन्तदुःखमयी पुण्यवशात् द्रोणस्य नासीत् द्रौपदीधृष्टद्युम्नयोस्त्वतिपुण्यवशात् रेतोरूपमलपरिणामहेतुरन्नाहुतिरपि नास्ति । साक्षादग्निकुण्डोद्भवत्वात् । तदिदं धर्मफलं तवानुभवसिद्धमतो धर्मं मावमंस्था इति ॥ ३२॥ उपमानं निदर्शनं । कर्मस्वादरवशात् अल्पेन अन्नाच्छादनमात्रेण तुष्टो भवति न तु कर्माण्युपेक्ष्य बहुलाभार्थं यतते इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ श्रुतं वेदोदितं पुण्यं येषां पापानामनिष्टसाधनानां च फलोदयः स्वर्गनरकहेतुत्वं प्रभव उत्पत्तिः अविद्येति यावत् । अत्ययो नाशः विद्येति यावत् । देवगुह्यानि वेदैकवेद्यत्वात् ।'तस्माद्देषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विदुः'इति श्रुतेर्देवगोप्यानि' एतानि । स्वपशुभूतपुरुषविनाशकत्वात् ॥ ३५ ॥

एतानि वेद यः कश्चिन्मुह्यन्त्यत्र प्रजा इमाः ।
अपि कल्पसहस्रेण न स श्रेयोऽधिगच्छति ॥ ३६
रक्ष्याण्येतानि देवानां गूढमाया हि देवताः ।
कृताशाश्च व्रताशाश्च तपसा दग्धकिल्बिषाः ।
प्रसादैर्मानसैर्युक्ताः पश्यन्त्येतानि वै द्विजाः ॥ ३७
न फलादर्शनाद्धर्मः शङ्कितव्यो न देवताः ।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयता ॥ ३८
कर्मणां फलमस्तीह तथैतद्धर्मशाश्वतम् ।
ब्रह्मा प्रोवाच पुत्राणां यदृषिर्वेद कश्यपः ॥ ३९
तस्मात्ते संशयः कृष्णे नीहार इव नश्यतु ।
व्यवस्य सर्वमस्तीति नास्तिक्यं भावमुत्सृज ॥ ४०
ईश्वरं चापि भूतानां धातारं मा च वै क्षिप ।
शिक्षस्वैनं नमस्वैनं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी ॥ ४१
यस्य प्रसादात्तद्भक्तो मर्त्यो गच्छत्यमर्त्यताम् ।
उत्तमां देवतां कृष्णे मावमंस्थाः कथंचन ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

द्रौपद्युवाच ।
नावमन्ये न गर्हे च धर्मं पार्थ कथंचन ।
ईश्वरं कुत एवाहमवमंस्ये प्रजापतिम् ॥ १
आर्ताहं प्रलपामीदमिति मां विद्धि भारत ।
भूयश्च विलपिष्यामि सुमनास्त्वं निबोध मे ॥ २
कर्म खल्विह कर्तव्यं जानता मित्रकर्शन ।
अकर्माणो हि जीवन्ति स्थावरा नेतरे जनाः ॥ ३
यावद्गोस्तनपानाच्च यावच्छायोपसेवनात् ।
जन्तवः कर्मणा वृत्तिमाप्नुवन्ति युधिष्ठिर ॥ ४
जङ्गमेषु विशेषेण मनुष्या भरतर्षभ ।
इच्छन्ति कर्मणा वृत्तिमवाप्तुं प्रेत्य चेह च ॥ ५
उत्थानमभिजानन्ति सर्वभूतानि भारत ।
प्रत्यक्षं फलमश्नन्ति कर्मणां लोकसाक्षिकम् ॥ ६

---

एतानीति । अत्र एतेषु देवगुह्येषु विषयेषु इमाः प्राकृताः प्रजाः मुह्यन्ते । अविद्यामपि विद्यात्वेन विद्यां चाविद्यात्वेन गृह्णन्ति । एवं पुण्यपापविपर्ययोऽपि ज्ञेयः । अत एतानि यस्तत्त्वतो वेद सः श्रेयः देवानां हिततरं कर्म नाधिगच्छति नानुसरति । कर्तृत्वादिमदन्तःकरणस्य विविक्तत्वादिति भावः ॥ ३६ ॥ कृता नाशिता आशा यैस्ते । कृहिंसायां स्वादिः । व्रतं हितं मितं मेध्यं चाश्नन्ति ते कृताशाश्च व्रताशाश्च । शान्ता दान्ता इत्यर्थः । तपसा श्रवणमननात्मकेन आलोचनेन मनःप्रसादैर्ध्यानफलैर्युक्ताः द्विजाः योगिनः एतानि देवगुह्यानि ॥ ३७ ॥ धर्मशाश्वतं धर्मस्य शश्वद्भवोऽयं स्वभावः ॥ ३९ ॥ व्यवस्य निश्चित्य । भावं अभिप्रायम् ॥ ४० ॥ एवं धर्मश्रैष्ठ्यं निश्चित्य ईश्वरश्रैष्ठ्यमप्याह ईश्वरमिति । धातारं दधाति कर्मफलानि यथा स्वं विभजतीति तं कर्मणामाशुतराविनाशित्वात् नष्टानां च कालान्तरीयफलहेतुत्वायोगात् । अपूर्वकल्पनायाश्च 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः' इति सर्वस्येश्वराधीनत्वप्रतिपादकश्रुत्या बाधात् । लौकिकराजभृत्यदृष्टान्ताच्च कर्मभिस्तुष्टो रुष्टो वा ईश्वर एव सदसत्फलविभाजक इति भावः । मा क्षिप मा निन्दां कुरु । शिक्षस्व शास्त्राचार्योपदेशाद्बोधस्व ॥ ४१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

३२

नावमन्य इति ॥ १ ॥ स्थावरा इतरे जना वा हि यस्मात् अकर्माणो न जीवन्ति अतः कर्म कर्तव्यमिति योजना । तथा चायं प्रयोगः । स्थावरजीविका प्राक्कर्मपूर्विका जीविकात्वात्पाकादिक्रियापूर्वकास्मदादिजीविकावदिति ॥ ३ ॥ स्थावरेषूक्तं न्यायं तिर्यक्षु योजयति यावदिति । सद्यो जातस्य गोवत्सस्य स्तनपानादिप्रवृत्तिरपि स्वजनकसंस्कारहेतुप्राक्तनकर्मसत्त्वे प्रमाणमित्यर्थः । यावद्गोस्तनपानात् गोस्तनपानादेरित्यर्थः । यावच्छायोपसेवनात् प्रतिमाद्वारकभोगादित्यर्थः । अयं भावः कौलिकशास्त्रप्रसिद्ध्या शत्रुनिर्मितायां चैत्रप्रतिमायां शत्रुणा कण्टकादिनानुन्नायां चैत्रो व्यथते । तत्र व्यथानिमित्तं आन्तरं धातुवैषम्यं बाह्यं वा कण्टकवेधादि न किंचिद्दृष्टमस्ति किं तु केवलादृष्टमेव । अनेनैव न्यायेन जन्तवः कर्मणा प्राचीनेनैव वृत्तिं जीवनं आप्नुवन्ति ॥ ४ ॥ जङ्गमेष्विति प्रेत्य मृत्वा ॥ ५ ॥ उत्थानं उत्तिष्ठति प्रवर्ततेऽस्मादित्युत्थानं प्राक्कर्मसंस्कारः तं सर्वेऽपि प्राणिनः अभिजानन्ति अनुभवन्ति । ततः कर्मसु प्रवर्तन्ते तत्फलं चाप्नुवन्ति । तस्मात्कर्म तत्संस्कारपरंपरेयमनादिरित्यर्थः ॥ ६ ॥

सर्वे हि स्वं समुत्थानमुपजीवन्ति जन्तवः ।
अपि धाता विधाता च यथायमुदके बकः ॥ ७
अकर्मणां वै भूतानां वृत्तिः स्यान्न हि काचन ।
तदेवाभिप्रपद्येत न विहन्यात्कदाचन ॥ ८
स कर्म कुरु मा ग्लासीः कर्मणा भव दंशितः ।
कृतं हि योभिजानाति सहस्रे सोस्ति नास्ति च॥
तस्य चापि भवेत्कार्यं विवृद्धौ रक्षणे तथा ।
भक्ष्यमाणो ह्यनादानात्क्षीयेत हिमवानपि ॥ १०
उत्सीदेरन्प्रजाः सर्वा न कुर्युः कर्म चेद्भुवि ।
तथा ह्येता न वर्धेरन्कर्म चेदफलं भवेत् ॥ ११
अपि चाप्यफलं कर्म पश्यामः कुर्वतो जनान् ।
नान्यथा ह्यपि गच्छन्ति वृत्तिं लोकाः कथंचन ॥
यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादिकः ।
उभावपि शठावेतौ कर्मबुद्धिः प्रशस्यते ॥ १३
यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयेत् ।
अवसीदेत्स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके ॥ १४
तथैव हठदुर्बुद्धिः शक्तः कर्मण्यकर्मकृत् ।
आसीत न चिरं जीवेदनाथ इव दुर्बलः ॥ १५
अकस्मादिह यः कश्चिदर्थं प्राप्नोति पूरुषः ।
तं हठेनेति मन्यन्ते स हि यत्नो न कस्यचित्॥१६
यच्चापि किंचित्पुरुषो दिष्टं नाम भजत्युत ।
दैवेन विधिना पार्थ तद्दैवमिति निश्चितम् ॥ १७
यत्स्वयं कर्मणा किंचित्फलमाप्नोति पूरुषः ।
प्रत्यक्षमेतल्लोकेषु तत्पौरुषमिति श्रुतम् ॥ १८
स्वभावतः प्रवृत्तो यः प्राप्नोत्यर्थं न कारणात् ।
तत्स्वभावात्मकं विद्धि फलं पुरुषसत्तम ॥ १९
एवं हठाच्च दैवाच्च स्वभावात्कर्मणस्तथा ।
यानि प्राप्नोति पुरुषस्तत्फलं पूर्वकर्मणाम् ॥ २०
धातापि हि स्वकर्मैव तैस्तैर्हेतुभिरीश्वरः ।
विदधाति विभज्येह फलं पूर्वकृतं नृणाम् ॥ २१
यद्ध्ययं पुरुषः किंचित्कुरुते वै शुभाशुभम् ।
तद्धातृविहितं विद्धि पूर्वकर्मफलोदयम् ॥ २२
कारणं तस्य देहोयं धातुः कर्मणि वर्तते ।
स यथा प्रेरयत्येनं तथायं कुरुते वशः ॥ २३
तेषु तेषु हि कृत्येषु विनियोक्ता महेश्वरः ।
सर्वभूतानि कौन्तेय कारयत्यवशान्यपि ॥ २४
मनसार्थान्विनिश्चित्य पश्चात्प्राप्नोति कर्मणा ।
बुद्धिपूर्वं स्वयं वीर पुरुषस्तत्र कारणम् ॥ २५
संख्यातुं नैव शक्यानि कर्माणि पुरुषर्षभ ।
अगारनगराणां हि सिद्धिः पुरुषहैतुकी ॥ २६
तिले तैलं गवि क्षीरं काष्ठे पावकमन्ततः ।
धिया धीरो विजानीयादुपायं चास्य सिद्धये ॥

सर्वे हीति । यथायं बकः पूर्वसंस्कारात् वृत्त्यर्थी ध्यायति एवं धाता ईश्वरोपि अनादिसंस्कारवशात् पूर्वपूर्वकल्पस्वरूपामेव सृष्टिं करोति । 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' इति श्रुतेः । तथा विधाता धर्मोपि पूर्वसंस्कारानुरोधेनैव कर्मणि प्रवर्तयति । अन्यथा संसारानादित्वानभ्युपगमे कृतहानाकृताभ्यागमादिदोषः स्यादिति भावः ॥ ७ ॥ एवं प्राक्तनकर्मप्राबल्यमुपपाद्य ऐहिकानामपि तेषां प्राबल्यमाह अकर्मणामिति । यासां मुखचालनादिदृष्टयत्नशून्या न जीविकास्ति । अतस्तदेव दृष्टफलं कर्मैव न विहन्यात् । दैवपरो भूत्वा न त्यजेदित्यर्थः ॥ ८ ॥ दंशितः संनद्धः कृतं कर्म कर्तुमिति शेषः ॥ ९ ॥ तस्य कर्मणः कार्यं प्रयोजनं रक्षणेऽर्थानामिति शेषः । अनादानात् असंग्रहात् । लब्धेनार्थेन न संतोष्टव्यं किं तु तद्विवृद्ध्यर्थं कर्म कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ अपि चेति कर्मणां क्वचिदफलत्वेपि आवश्यकत्वं नित्यमित्यर्थः ॥ १२ ॥ यश्चेति । दिष्टपरो मन्त्रौषधाग्न्यदृष्टद्वारैवार्थसाधनपरः कौलिकः । हठवादिकः प्राग्जन्माभावात् अकृतमेवोपस्थास्यतीति वदन् चार्वाकः । एतौ शठौ प्राक्कर्मानङ्गीकारात् । पाठान्तरे अपसदौ अधमौ । कर्मबुद्धिःप्राक्तनं तात्कालिकं च कर्मसहितं सत् इष्टसाधनमिति बुद्धिमान् ॥ १३ ॥ निर्विचेष्टः दृष्टयत्नहीनः । शयेत् शेयात् आमः अपक्वः ॥ १४ ॥ हठादीन् व्याचष्टे अकस्मादिति । अचिन्तितस्यातर्कितस्य च लाभो हठः ॥ १६ ॥ दैवं देवताराधनम् ॥ १७ ॥ पौरुषं यथोक्तप्रतिग्रहादिवृत्तिः ॥ १८ ॥ स्वभावो यः प्राक्कर्मानुग्रहः यथा नष्टकपर्दिकान्वेषणप्रवृत्तस्य रत्नलाभः ॥ १९ ॥ एतच्चतुष्टयजोपि लाभः पूर्वकर्मफलमेव ॥ २० ॥ स्वकर्मैव कर्माधीन एव । विदधाति अर्पयति । पूर्वकृतं पूर्वकर्मजम् ॥ २१ ॥ एतदेव स्पष्टयति यद्धीति ॥ २२ ॥ कारणमिति । यः कर्मणि वर्तते सोयं मानुषदेहः प्राग्भवीयस्तस्य प्रवर्तकस्य धातुरपि कारणं प्रवर्तकः सः धाता एनं वर्तमानदेहं बीजाङ्कुरवत् धातृप्रेर्यो देहः देहप्रेर्यश्च धातेत्यर्थः । देहो देहसाध्यं कर्म ॥ २३ ॥ ननु पूर्वकर्मैव प्रवर्तकं चेत्किं पुरुषकारेणेत्याशंक्याह मनसेति ॥ २५ ॥ एतदपि प्राक्कर्मजमेवेत्याशंक्याह संख्यातुमिति । संख्यातुं प्राक्कर्मैव कारणं न पुरुषकार इति निश्चेतुं तत्र हेतुः अगारेति ॥ २६ ॥ तिले इति । पङ्ग्वन्धन्यायेन प्राक्कर्मासिद्धमेव पुरुषकारोभिव्यनक्तीत्यर्थः अस्य तैलादेः सिद्धये प्राप्तये ॥ २७ ॥

ततः प्रवर्तते पश्चात्कारणैस्तस्य सिद्धये ।
तां सिद्धिमुपजीवन्ति कर्मजामिह जन्तवः ॥ २८
कुशलेन कृतं कर्म कर्त्रा साधु स्वनुष्ठितम् ।
इदं त्वकुशलेनेति विशेषादुपलभ्यते ॥ २९
इष्टापूर्तफलं न स्यान्न शिष्यो न गुरुर्भवेत् ।
पुरुषः कर्मसाध्येषु स्याच्चेदयमकारणम् ॥ ३०
कर्तृत्वादेव पुरुषः कर्मसिद्धौ प्रशस्यते ।
असिद्धौ निन्द्यते चापि कर्मनाशात्कथं त्विह ३१
सर्वमेव हठेनैके दैवेनैके वदन्त्युत ।
पुंसः प्रयत्नजं केचित्त्रैधमेतन्निरूच्यते ॥ ३२
न चैवैतावता कार्यं मन्यन्त इति चापरे ।
अस्ति सर्वमदृश्यं तु दिष्टं चैव तथा हठः ॥ ३३
दृश्यते हि हठाच्चैव दिष्टाच्चार्थस्य संततिः ।
किंचिद्दैवाद्धठात्किंचित्किंचिदेव स्वभावतः ॥३४
पुरुषः फलमाप्नोति चतुर्थं नात्र कारणम् ।
कुशलाः प्रतिजानन्ति ये वै तत्त्वविदो जनाः॥३५
तथैव धाता भूतानामिष्टानिष्टफलप्रदः ।
यदि न स्यान्न भूतानां कृपणो नाम कश्चन ॥ ३६
यं यमर्थमभिप्रेप्सुः कुरुते कर्म पूरुषः ।
तत्तत्सफलमेव स्याद्यदि न स्यात्पुरा कृतम्॥ ३७
त्रिद्वारामर्थसिद्धिं तु नानुपश्यन्ति ये नराः ।
तथैवानर्थसिद्धिं च यथैवात्मा तथैव ते ॥ ३८
कर्तव्यमेव कर्मेति मनोरेष विनिश्चयः ।
एकान्तेन ह्यनीहोऽयं पराभवति पूरुषः ॥ ३९
कुर्वतो हि भवत्येव प्रायेणेह युधिष्ठिर ।
एकान्तफलसिद्धिं तु न विन्दत्यलसः क्वचित् ४०
असंभवे त्वस्य हेतुः प्रायश्चित्तं तु लक्षयेत् ।
कृते कर्मणि राजेन्द्र तथानृण्यमवाप्नुते ॥ ४१
अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम् ।
निःसंशयं फलं लब्ध्वा दक्षो भूतिमुपाश्नुते ॥ ४२
अनर्थाः संशयावस्थाः सिध्यन्ते मुक्तसंशयाः ।
धीरा नराः कर्मरता ननु निःसंशयाः क्वचित्॥४३
एकान्तेन ह्यनर्थोऽयं वर्ततेऽस्मासु सांप्रतम् ।
स तु निःसंशयं न स्यात्त्वयि कर्मण्यवस्थिते ॥४४
अथवाऽसिद्धिरेव स्यादभिमानं तदेव ते ।
वृकोदरस्य बीभत्सोर्भ्रात्रोश्च यमयोरपि ॥ ४५
अन्येषां कर्मसफलमस्माकमपि वा पुनः ।
विप्रकर्षेण बुध्येत कृतकर्मा यथा फलम् ॥ ४६
पृथिवीं लाङ्गलेनेह भित्त्वा बीजं वपत्युत ।
आस्तेऽथ कर्षकस्तूष्णीं पर्जन्यस्तत्र कारणम् ॥ ४७
वृष्टिश्चेन्नानुगृह्णीयादनेनास्तत्र कर्षकः ।
यदन्यः पुरुषः कुर्यात्तत्कृतं सफलं मया ॥ ४८
तच्चेदं फलमस्माकमपराधो न मे क्वचित् ।
इति धीरोऽन्ववेक्ष्यैव नात्मानं तत्र गर्हयेत् ॥ ४९
कुर्वतो नार्थसिद्धिर्मे भवतीति ह भारत ।
निर्वेदो नात्र कर्तव्यो द्वावन्यौ ह्यत्र कारणम् ५०

कारणैः यन्त्रनिपीडनादिभिः । तां सिद्धिं तैलादिप्राप्तिं । कर्मणामिति पाठे सिद्धिं फलं । तां तैलप्राप्तिम् ॥ २८ ॥ कुशलेनेति । विशेषात् फलभेदात् ऐहिककर्मणोऽपि प्राबल्यमस्तीत्यर्थः ॥ २९ ॥ विधिप्रतिषेधशास्त्रवैयर्थ्यान्यथानुपपत्त्यापि पुरुषकारस्य श्रैष्ठ्यमाह इष्टेति द्वाभ्यां । इष्टं यागादि आपूर्तं तडागारामादि ॥३०॥ सर्वमिति । हठादयःअकस्मादिह यः कश्चिदित्यादिश्लोकत्रयेण व्याख्याताः । स्वभावस्यापि हठे एवान्तर्भावः हठेनैके चार्वाकाः दैवेनैके कौलिकाः प्रयत्नजं प्राकृताः ॥ ३२ ॥ एतैरेव नार्थसिद्धिरिति वैदिका इत्याह न चेति । अदृश्यं धर्माधर्मरूपं प्राक्कर्म तदेव दिष्टहठादिकं सर्वमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ अत्र पूर्वपक्षः दृश्यते हीति । स्वभावतः यत्नतः ॥ ३४ ॥ चतुर्थं प्राक्कर्मकुशला इत्युपहासः इति प्रतिजानन्तीत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ३५ ॥ सिद्धान्तमाह तथेति ॥ ३६ ॥ त्रिद्वारामिति । दृष्टादित्रयं द्वारमेव अर्थसिद्धेर्मुख्यं कारणं कर्मैवेत्यर्थः। आत्मा देहः देहवत्ते जडा इत्यर्थः। यथा लोका इति पाठे लोकाः लोकायतिकाः ॥ ३८ ॥ कर्तव्यमेवेति । यथा ग्रामकामस्य सांग्रहणीष्टिः राजसेवा चेति द्वयमनुष्ठेयं तद्वदिह दिष्टपौरुषात्मकं कर्म कर्तव्यमेव हठपक्षस्त्याज्य एवेत्यर्थः।एकान्तेन अतिशयेन अनीहो निश्चेष्टः हठवादीत्यर्थः ॥ ३९ ॥ भवत्येव फलसिद्धिः अलसः असम्यक्कारी ॥४०॥ असंभवेत्विति । अङ्गवैकल्यात्कर्मफलानुत्पादे तु अस्य फलस्य हेतुः। प्रायश्चित्तं दोषप्रतिसमाधानं लक्षयेत् कर्मतःफलाभावेऽङ्गवैकल्यं कल्प्यं न तु कर्मवैयर्थ्यमिति भावः।कर्मणि साङ्गे कृते। आनृण्यं फलानुत्पादेपि निर्दोषत्वम् ॥४१॥ अनर्थाःअर्थहीनाः ननु निश्चितं धीरा निःसंशया दुर्लभा इत्यर्थः ४३ ॥ अनर्थो राज्यच्युति कर्मणि पौरुषे ॥ ४४ ॥ असिद्धिरिति छेदः कृतेपि पौरुषे यदि फलासिद्धिरेव स्यात्तर्हि तदेव ते तव वृकोदरादीनां अभिमानं साकल्येन प्रमाणं राज्यानर्हत्वे स्यात् तदा राज्याशाविच्छेदान्न मम राज्यार्थमुद्वेग स्यादिति भावः ॥४५॥ अन्येषामस्माकं वा कर्म सफलं यथा तथा कृतकर्मैव विप्रकर्षेण कर्मकरणान्ते बुध्येत। त्वं त्वकृतकर्मा तत्कथं बुध्येरिति भावः ॥ ४६ ॥ निर्वेदो वैराग्यं द्वावन्यौ पौरुषानिर्वेदौ अत्र फलसिद्धौ ॥ ५० ॥

सिद्धिर्वाप्यथवाऽसिद्धिरप्रवृत्तिरतोन्यथा ।
बहूनां समवाये हि भावानां कर्मसिद्धयः ॥ ५१
गुणाभावे फलं न्यूनं भवत्यफलमेव च ।
अनारम्भे हि न फलं न गुणो दृश्यते क्वचित्॥ ५२
देशकालावुपायांश्च मङ्गलं स्वस्तिवृद्धये ।
युनक्ति मेधया धीरो यथाशक्ति यथाबलम् ॥५३
अप्रमत्तेन तत्कार्यमुपदेष्टा पराक्रमः ।
भूयिष्ठं कर्मयोगेषु दृश्यमेव पराक्रमः ॥ ५४
यत्र धीमानवेक्षेत श्रेयांसं बहुभिर्गुणैः ।
साम्नैवार्थं ततो लिप्सेत्कर्म चास्मै प्रयोजयेत् ५५
व्यसनं वास्य काङ्क्षेत विवासं वा युधिष्ठिर ।
अपि सिन्धोर्गिरेर्वापि किं पुनर्मर्त्यधर्मिणः ॥ ५६
उत्थानयुक्तः सततं परेषामन्तरैषणे ।
आनृण्यमाप्नोति नरः परस्यात्मन एव च ॥ ५७
न त्वेवात्मावमन्तव्यः पुरुषेण कदाचन ।
न ह्यात्मपरिभूतस्य भूतिर्भवति शोभना ॥ ५८
एवं संस्थितिका सिद्धिरियं लोकस्य भारत ।
तत्र सिद्धिर्गतिः प्रोक्ता कालावस्थाविभागतः ॥
ब्राह्मणं मे पिता पूर्वं वासयामास पण्डितम् ।
सोपि सर्वामिमां प्राह पित्रे मे भरतर्षभ ॥ ६०
नीतिं बृहस्पतिप्रोक्तां भ्रातॄन्मेऽग्राहयत्पुरा ।
तेषां सकाशादश्रौषमहमेता तदा गृहे ॥ ६१
स मां राजन्कर्मवतीमागतामाह सान्त्वयन् ।
शुश्रूषमाणामासीनां पितुरङ्के युधिष्ठिर ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि द्रौपदीवाक्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## ३३

वैशंपायन उवाच ।
याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा भीमसेनो ह्यमर्पणः ।
निश्वसन्नुपसंगम्य क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥ १
राज्यस्य पदवीं धर्म्यां व्रज सत्पुरुषोचिताम् ।
धर्मकामार्थहीनानां किं नो वस्तुं तपोवने ॥ २
नैव धर्मेण तद्राज्यं नार्जवेन न चौजसा ।
अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै ॥ ३
गोमायुनेव सिंहानां दुर्बलेन बलीयसाम् ।
आमिषं विघसाशेन तद्वद्राज्यं हि नो हृतम् ॥ ४

सिद्धिरसिद्धिर्वास्तु किं स्वप्रवृत्तिरेवमास्त्वित्यर्थः । बहूनां सर्वेषां समवाये समुदाये । भावानां कारणानाम् ॥ ५१ ॥ गुणः अप्रधानमङ्गं तदभावे गुणःशौर्यादिः ॥५२॥ उपायाः सामादयः स्वस्तिवृद्धये कल्याणवृद्धये ॥ ५३ ॥ अप्रमत्तेनेति । तत् देशकालादियोगाख्यं कार्यं आदरणीयं तत्र पराक्रमः पुरुषकारस्तु उपदेष्टा कार्यकर्ता मुख्य इत्यर्थः । भूयिष्ठं श्रेष्ठं । कर्मयोगेषु कार्यघटनासु पराक्रमः । दृश्यमेव प्रसिद्ध एव श्रेष्ठत्वेन । तस्मात्पराक्रमे यतितव्यामीति भावः ॥५४॥ ननु भ्रातृषु धार्तराष्ट्रेषु कथं पराक्रान्तुं शक्यमित्याशंक्य सामासंभवमाह यत्रेति । अवेक्षेत आदरं कुर्यात् श्रेयांसं प्रशस्ततरं कर्म च भेदं दानाख्यं वा ॥५५॥ दुर्मेधसि दुर्योधने तु न सामभेददानानामुपायानां संभवोस्ति । अतस्तत्र दण्ड एव श्रेयानित्याह । व्यसनमिति । व्यसनं राष्ट्रोपप्लवादि । विवासनं देशान्निःसारणम् ॥ ५६ ॥ उत्थानयुक्तः, यत्नवान् । अन्तरैषणे छिद्रान्वेषणे। आनृण्यं निर्दोषत्वं । परस्यामात्यादेः ॥ ५७ ॥ नन्वशक्तः कथमुत्थानं कुर्यामित्याशंक्याह न त्वेवेति ॥ ५८ ॥ एवं संस्थितिका ईदृग्व्यवस्थावती । सांसिद्धिकेति पाठे स्वाभाविकीत्यर्थः । सिद्धि फलसिद्धिः । तत्रेति कालावस्थयोरानुकूल्येन गतिरन्वेषणे यत्नः सैव सिद्धिःसिद्धिमूलम् ॥ ५९ ॥ कर्मवतीमागतां किंचित्कार्योद्देशेन पितुरन्तिके आगताम् ॥ ६२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

याज्ञसेन्या इति ॥१॥ एवं द्रौपद्या प्राक्कर्माधीनां फलसिद्धिमङ्गीकृत्यापि तद्द्वारभूतस्य पुरुषकारस्य प्राबल्ये प्रतिपादिते राजानमुद्योजयन् भीम आह राज्यस्य पदवीमित्यादि । पदवीं प्राप्तिमार्गं धर्म्यां वनवासकालपालनरूपाद्धर्मादनपेतां किं प्रयोजनमिति शेषः ॥ २ ॥ कूटं कपटम् ॥ ३ ॥ विघसो भूतबलिशेषः श्वकाकादियोग्यस्तद्भक्षकेन शुनकेनेत्यर्थः ॥४ ॥

धर्मलेशप्रतिच्छन्नः प्रभवं धर्मकामयोः ।
अर्थमुत्सृज्य किं राजन्दुःखेषु परितप्यसे ॥ ५
भवतोऽनवधानेन राज्यं नः पश्यतां हृतम् ।
अहार्यमपि शक्रेण गुप्तं गाण्डीवधन्वना ॥ ६
कुणीनामिव बिल्वानि पङ्गूनामिव धेनवः ।
हृतमैश्वर्यमस्माकं जीवतां भवतः कृते ॥ ७
भवतः प्रियमित्येवं महद्व्यसनमीदृशम् ।
धर्मकामे प्रतीतस्य प्रतिपन्नाः स्म भारत ॥ ८
कर्षयामः स्वमित्राणि नन्दयामश्च शात्रवान् ।
आत्मानं भवतां शास्त्रैर्नियम्य भरतर्षभ ॥ ९
यद्वयं न तदैवैतान्धार्तराष्ट्रान्निहन्महि ।
भवतः शास्त्रमादाय तन्नस्तपति दुष्कृतम् ॥ १०
अथैनामन्ववेक्षस्व मृगचर्यामिवात्मनः ।
दुर्बलाचरितां राजन्नबलस्थैर्निषेविताम् ॥ ११
यां न कृष्णो न बीभत्सुर्नाभिमन्युर्न संजयाः ।
न चाहमभिनन्दामि न च माद्रीसुतावुभौ ॥ १२
भवान्धर्मो धर्म इति सततं व्रतकर्शितः ।
कच्चिद्राजन्न निर्वेदादापन्नः क्लीबजीविकाम् ॥ १३
दुर्मनुष्या हि निर्वेदमफलं स्वार्थघातकम् ।
अशक्ताः श्रियमाहर्तुमात्मनः कुर्वते प्रियम् ॥ १४
स भवान्दृष्टिमाञ्शक्तः पश्यन्नस्मासु पौरुषम् ।
आनृशंस्यपरो राजन्नानर्थमवबुध्यसे ॥ १५
अस्मानमी धार्तराष्ट्राः क्षममाणानलं सतः ।
अशक्तानिव मन्यन्ते तद्दुःखं नाहवे वधः ॥ १६
तत्र चेद्युध्यमानानामजिह्ममनिवर्तिनाम् ।
सर्वशो हि वधः श्रेयान्प्रेत्य लोकाल्लँभेमहि ॥ १७
अथवा वयमेवैतान्निहत्य भरतर्षभ ।
आददीमहि गां सर्वां तथापि श्रेय एव नः ॥ १८
सर्वथा कार्यमेतन्नः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
काङ्क्षतां विपुलां कीर्तिं वैरं प्रतिचिकीर्षताम् ॥
आत्मार्थं युध्यमानानां विदिते कृत्यलक्षणे ।
अन्यैरपि हृते राज्ये प्रशंसैव न गर्हणा ॥ २०
कर्षणार्थो हि यो धर्मो मित्राणामात्मनस्तथा ।
व्यसनं नाम तद्राजन्न धर्मः स कुधर्मतत् ॥ २१
सर्वथा धर्मनित्यं तु पुरुषं धर्मदुर्बलम् ।
त्यजतस्तात धर्मार्थौ प्रेतं दुःखसुखे यथा ॥ २२
यस्य धर्मो हि धर्मार्थं क्लेशभाङ्न स पण्डितः ।
न स धर्मस्य वेदार्थं सूर्यस्यान्धः प्रभामिव ॥ २३
यस्य चात्मार्थमेवार्थः स च नार्थस्य कोविदः ।
रक्षेत भृतकोऽरण्ये यथा गास्तादृगेव सः ॥ २४
अतिवेलं हि योऽर्थार्थी नेतरावनुतिष्ठति ।
स वध्यः सर्वभूतानां ब्रह्महेव जुगुप्सितः ॥ २५
सततं यश्च कामार्थी नेतरावनुतिष्ठति ।
मित्राणि तस्य नश्यन्ति धर्मार्थाभ्यां च हीयते २६
तस्य धर्मार्थहीनस्य कामान्ते निधनं ध्रुवम् ।
कामतो रममाणस्य मीनस्येवाम्भसः क्षये ॥ २७
तस्माद्धर्मार्थयोर्नित्यं न प्रमाद्यन्ति पण्डिताः ।
प्रकृतिः सा हि कामस्य पावकस्यारणिर्यथा ॥ २८
सर्वथा धर्ममूलोऽर्थो धर्मश्चार्थपरिग्रहः ।
इतरेतरयोर्नीतौ विद्धि मेघोदधी यथा ॥ २९
द्रव्यार्थस्पर्शसंयोगे या प्रीतिरुपजायते ।
स कामश्चित्तसंकल्पः शरीरं नास्य दृश्यते ॥ ३०
अर्थार्थी पुरुषो राजन्बृहन्तं धर्ममिच्छति ।
अर्थमिच्छति कामार्थी न कामादन्यमिच्छति ॥ ३१
न हि कामेन कामोन्यः साध्यते फलमेव तत् ।
उपयोगात्फलस्यैव काष्ठाद्भस्मेव पण्डितैः ॥ ३२

धर्मलेशः प्रतिज्ञापालनजस्तेन प्रतिच्छन्न आवृतः अर्थं राज्याख्यम् ॥ ५ ॥ अनवधानेन प्रमादेन पश्यतामित्यनादरे षष्ठी ॥ ६ ॥ कुणीनां हस्तविकलानां । पङ्गूनां पादविकलानां षष्ठी पूर्ववत् । भवतः कृते भवन्निमित्तम् ॥७॥ धर्मकामे धर्मेच्छायां । प्रतीतस्य विश्वस्तस्य । धर्मकाम्या प्रतीतस्येति पाठे धर्मेच्छायां विश्वस्तस्य ॥ ८ ॥ शास्त्रैः शमवचनैः भवतां भीसमानानां योगिनाम् ॥ ९ ॥ मृगचर्यामिव एनां वनचर्यां । अबलस्थैर्निषेवितामित्येकं पदं । बलवद्भिरसेवितामित्यर्थः ॥ ११ ॥ न आपन्न इति संबन्धः ॥ १३ ॥ अलं समर्थान्सतः ॥१६॥ गां पृथिवीम् ॥१८॥ कृत्यलक्षणे करणीयस्वरूपे ॥२०॥ कुधर्मं तनोतीति कुधर्मतत् कुधर्मबीजमित्यर्थः ॥ २१ ॥ धर्मार्थौ बलसाध्यहेमन्तप्रातःस्नानशत्रुजयसंभवौ ॥ २२ ॥ धर्मार्थं न त्वर्थकामार्थं अर्थे प्रयोजनम् ॥२३ ॥ अतिवेलं अत्यन्तम्॥ २५ ॥ इतरौ अर्थकामौ ॥ २६ ॥ कामतो रममाणस्य तस्य कामान्ते निधनमिति संबन्धः ॥ २७ ॥ सा हि धर्मार्थरूपा हि ॥ २८ ॥ अर्थपरिग्रहः अर्थार्थमेवालम्बनीयः इतरेतरयोर्नीतौ धर्मादर्थः प्रणीयतेऽर्थाच्च धर्म इत्यर्थः। मेघादुदधिपुष्टिरुदधेर्मेघपूर्तिरिव ॥ २९ ॥ द्रव्यस्य स्रक्चन्दनादेः । स्पर्शः अर्थस्य स्वर्णादेः। संयोगो लाभः ॥ ३० ॥ उपयोगः साक्षात्प्रीत्युत्पादनेन कृतार्थत्वं । काष्ठाद्भस्मसाध्यं न तु भस्मतोपि भस्मान्तरं साध्यमस्ति तद्वत् ॥३२॥

इमाञ्छकुनकान्राजन्हन्ति वैतंसिको यथा ।
एतद्रूपमधर्मस्य भूतेषु हि विहिंसता ॥ ३३
कामाल्लोभाच्च धर्मस्य प्रवृत्तिं यो न पश्यति ।
स वध्यः सर्वभूतानां प्रेत्य चेह च दुर्मतिः ॥ ३४
व्यक्तं ते विदितो राजन्नार्थो द्रव्यपरिग्रहः ।
प्रकृतिं चापि वेत्थास्य विकृतिं चापि भूयसीम् ॥
तस्य नाशो विनाशो वा जरया मरणेन वा ।
अनर्थ इति मन्यन्ते सोयमस्मासु वर्तते ॥ ३६
इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च ।
विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते ॥ ३७
स काम इति मे बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम् ।
एवमेव पृथग्दृष्ट्वा धर्मार्थौ काममेव च ॥ ३८
न धर्मपर एव स्यान्न चार्थपरमो नरः ।
न कामपरमो वा स्यात्सर्वान्सेवेत सर्वदा ॥ ३९
धर्मं पूर्वं धनं मध्ये जघन्ये काममाचरेत् ।
अहन्यनुचरेदेवमेष शास्त्रकृतो विधिः ॥ ४०
कामं पूर्वं धनं मध्ये जघन्ये धर्ममाचरेत् ।
वयस्यनुचरेदेवमेष शास्त्रकृतो विधिः ॥ ४१
धर्मं चार्थं च कामं च यथावद्वदतां वर ।
विभज्य काले कालज्ञः सर्वान्सेवेत पण्डितः ॥ ४२
मोक्षो वा परमं श्रेय एष राजन्सुखार्थिनाम् ।
प्राप्तिं वा बुद्धिमास्थाय सोपायां कुरुनन्दन ॥ ४३
तद्वाशु क्रियतां राजन्प्राप्तिं वाप्यधिगम्यताम् ।
जीवितं ह्यातुरस्येव दुःखमन्तरवर्तिनः ॥ ४४
विदितश्चैव मे धर्मः सततं चरितश्च ते ।
जानन्तस्त्वयि शंसन्ति सुहृदः कर्मचोदनाम् ॥ ४५
दानं यज्ञाः सतां पूजा वेदधारणमार्जवम् ।
एष धर्मः परो राजन्बलवान्प्रेत्य चेह च ॥ ४६
एष नार्थविहीनेन शक्यो राजन्निषेवितुम् ।
अखिलाः पुरुषव्याघ्र गुणाः स्युर्यद्यपीतरे ॥ ४७
धर्ममूलं जगद्राजन्नान्यद्धर्माद्विशिष्यते ।
धर्मश्चार्थेन महता शक्यो राजन्निषेवितुम् ॥ ४८
न चार्थो भैक्ष्यचर्येण नापि क्लैब्येन कर्हिचित् ।
वेत्तुं शक्यः सदा राजन्केवलं धर्मबुद्धिना ॥ ४९
प्रतिषिद्धा हि ते याञ्चा यया सिध्यति वै द्विजः ।
तेजसैवार्थलिप्सायां यतस्व पुरुषर्षभ ॥ ५०
भैक्ष्यचर्या न विहिता न च विट्शूद्रजीविका ।
क्षत्रियस्य विशेषेण धर्मस्तु बलमौरसम् ॥ ५१
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून्समागतान् ।
धार्तराष्ट्रवनं पार्थ मया पार्थेन नाशय ॥ ५२
उदारमेव विद्वांसो धर्मं प्राहुर्मनीषिणः ।
उदारं प्रतिपद्यस्व नावरे स्थातुमर्हसि ॥ ५३
अनुबुध्यस्व राजेन्द्र वेत्थ धर्मान्सनातनान् ।
क्रूरकर्माभिजातोसि यस्मादुद्विजते जनः ॥ ५४
प्रजापालनसंभूतं फलं तव न गर्हितम् ।
एष ते विहितो राजन्धात्रा धर्मः सनातनः ॥ ५५
तस्मादपचितः पार्थ लोके हास्यं गमिष्यसि ।
स्वधर्माद्धि मनुष्याणां चलनं न प्रशस्यते ॥ ५६
स क्षात्रं हृदयं कृत्वा त्यक्त्वेदं शिथिलं मनः ।
वीर्यमास्थाय कौरव्य धुरमुद्वह धुर्यवत् ॥ ५७
न हि केवलधर्मात्मा पृथिवीं जातु कश्चन ।
पार्थिवो व्यजयद्राजन्न भूतिं न पुनः श्रियम् ॥ ५८

वैतंसिकः वीतंसेन जीवतीति पक्षिहन्ता । 'वीतं संबन्धनोपाये मृगाणां पक्षिणामपि' इति विश्वः । विहिंसता विशिष्टहिंसावत्त्वम् ॥ ३३ ॥ प्रवृत्तिं स्वरूपम् ॥ ३४ ॥ व्यक्तमिति । अर्थः प्रयोजनं कामाख्यं 'सद्रव्येण स्त्रीधनगोहस्त्यश्वात्मना परिगृह्यत इति द्रव्यपरिग्रहः । अस्य द्रव्यस्य प्रकृतिं तृष्णादिरूपां । विकृतिं त्यागभोगादिरूपाम् ॥ ३५ ॥ तस्य स्त्रीधनादिरूपद्रव्यस्य नाशो अदर्शने अभावे । विनाशो लब्धस्य वियोगे । जरामरणे स्त्रीगोऽश्वादीनां सोयमनर्थः स्त्रीपरामर्शराज्यनाशादिरूपः । अनर्थपरिहाराय धर्मोपि लङ्घनीय इति भावः ॥ ३६ ॥ पञ्चानां श्रोत्रादीनां विषये शब्दादौ । मनसो विषयः संकल्पः हृदयस्य निश्चयः ॥ ३७ ॥ पृथक् भिन्नान्दृष्ट्वा ॥ ३८ ॥ धर्मं पूर्वे अहनि चरेत् ॥ ४० ॥ कामं पूर्वे वयसि चरेत् ॥ ४१ ॥ प्राप्तिं महोदयं वा राज्यलाभजं । 'प्राप्तिर्लाभे महोदये' इति विश्वः । तत् मोक्षाख्यं श्रेयः दुःखं दुःखदम् ॥ ४४ ॥ कर्मचोदनां प्रवृत्तिजनकं वेदवाक्यं । शंसन्ति कथयन्ति ॥ ४५ ॥ अखिलाः खिलं शल्यं तद्रहिताः ॥ ४७ ॥ क्लैब्येन कातर्येण वेत्तुं लब्धुम् ॥ ४९ ॥ द्विजः ब्राह्मणः तेजसा पराभिभवशक्त्या ॥ ५० ॥ औरसं उत्साहः ॥ ५१ ॥ उदारं ईश्वरभावं अवरे अनैश्वर्ये ॥ ५३ ॥ क्रूरं हिंसात्मकं क्षात्रं कर्म यस्य ॥ ५४ ॥ अपचितःहीनः ॥ ५६ ॥ शिथिलं दुर्बलम् ॥ ५७ ॥ न भूतिं अनैश्वर्यं न पुनःश्रियं नास्ति पुनः श्रीर्ययेति न भूतेरेव विशेषणं । उभयत्र नैकधेतिवत्न शब्देन समासः । व्यजयत् पराभूतवान् ॥ ५८ ॥

जिह्वां दत्त्वा बहूनां हि क्षुद्राणां लुब्धचेतसाम् ।
निकृत्या लभते राज्यमाहारमिव शल्यकः ॥ ५९
भ्रातरः पूर्वजाताश्च सुसमृद्धाश्च सर्वशः ।
निकृत्या निर्जिता देवैरसुराः पार्थिवर्षभ ॥ ६०
एवं बलवतः सर्वमिति बुद्ध्वा महीपते ।
जहि शत्रून्महाबाहो परां निकृतिमास्थितः ॥ ६१
न ह्यर्जुनसमः कश्चिद्युधि योद्धा धनुर्धरः ।
भविता वा पुमान्कश्चिन्मत्समो वा गदाधरः ॥६२
सत्त्वेन कुरुते युद्धं राजन्सुबलवानपि ।
न प्रमाणेन नोत्साहात्सत्त्वस्थो भव पाण्डव ॥ ६३
सत्त्वं हि मूलमर्थस्य वितथं यदतोऽन्यथा ।
न तु प्रसक्तं भवति वृक्षच्छायेव हैमनी ॥ ६४
अर्थत्यागोऽपि कार्यः स्यादर्थं श्रेयांसमिच्छता ।
बीजौपम्येन कौन्तेय मा ते भूदत्र संशयः । ६५
अर्थेन तु समोऽनर्थो यत्र लभ्येत नोदयः ।
न तत्र विपणः कार्यः खरकण्डूयनं हि तत् ॥ ६६
एवमेव मनुष्येन्द्र धर्मं त्यक्त्वाल्पकं नरः ।
बृहन्तं धर्ममाप्नोति स बुद्ध इति निश्चितम् ॥ ६७
अमित्रं मित्रसंपन्नं मित्रैर्भिन्दन्ति पण्डिताः ।
भिन्नैर्मित्रैः परित्यक्तं दुर्बलं कुरुते वशम् ॥ ६८
सत्त्वेन कुरुते युद्धं राजन्सुबलवानपि ।
नोद्यमेन न होत्राभिः सर्वाः स्वीकुरुते प्रजाः ६९

सर्वथा संहतैरेव दुर्बलैर्बलवानपि ।
अमित्रः शक्यते हन्तुं मधुहा भ्रमरैरिव ॥ ७०
यथा राजन्प्रजाः सर्वाः सूर्यः पाति गभस्तिभिः ।
अत्ति चैव तथैव त्वं सदृशः सवितुर्भव ॥ ७१
एतच्चापि तपो राजन्पुराणमिति नः श्रुतम् ।
विधिना पालनं भूमेर्यत्कृतं नः पितामहैः ॥ ७२
न तथा तपसा राजँल्लोकान्प्राप्नोति क्षत्रियः ।
यथा सृष्टेन युद्धेन विजयेनेतरेण वा ॥ ७३
अपेयात्किल भा सूर्याल्लक्ष्मीश्चन्द्रमसस्तथा ।
इति लोको व्यवसितो दृष्ट्वेमां भवतो व्यथाम् ७४
भवतश्च प्रशंसाभिर्निन्दाभिरितरस्य च ।
कथा युक्ताः परिषदः पृथग्राजन्समागताः ॥ ७५
इदमभ्यधिकं राजन्ब्राह्मणाः कुरवश्च ते ।
समेताः कथयन्तीह मुदिताः सत्यसंधताम् ॥ ७६
यन्न मोहान्न कार्पण्यान्न लोभान्न भयादपि ।
अनृतं किंचिदुक्तं ते न कामान्नार्थकारणात् ॥७७
यदेनः कुरुते किंचिद्राजा भूमिमवाप्नुवन् ।
सर्वं तन्नुदते पश्चाद्यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ ७८
ब्राह्मणेभ्यो ददद्ग्रामान्गाश्च राजन्सहस्रशः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तमोभ्य इव चन्द्रमाः ॥ ७९
पौरजानपदाः सर्वे प्रायशः कुरुनन्दन ।
सवृद्धबालसहिताः शंसन्ति त्वां युधिष्ठिर ॥ ८०

जिह्वां जिह्वायाः प्रियं माधुर्यं उत्कोचमित्यर्थः । क्षुद्राणां शत्रुपक्षीयाणां निकृत्या भेदरूपेण छलेन । शल्यकः व्याधः । स हि मृगेभ्यो भक्ष्यं दत्वा विश्वास्य हत्वा आहारं लभते तद्वत् । शल्यकः श्वावित् क्षुद्रान्मधुमाक्षिकाविशेषान् जिह्वां दत्वा बहिर्निःसार्य भक्षयति तद्वा जिह्वां वाचं दत्त्वा शत्रून् जहीति प्राञ्चः ॥ ५९ ॥ बलवतः शत्रून् परां निकृतिं संवत्सरशब्दं मीमांसकन्यायेन दिनपरं कुर्विति भावः ॥ ६१ ॥ सत्त्वेन बलेन प्रमाणेन सद्मेन । उत्साहेन शत्रुपक्षीयैःमहसंधानलक्षणेनसूत्रेण । प्रमाणं नित्यमर्यादासंधवादिप्रमादिषु । उत्साहस्तूद्यमे सूत्रे इति विश्वः । अप्रमादी महोत्साहात्यपि पाठः ॥ ६३ ॥ सत्त्वादन्यस्य वितथत्वे हेतुः न त्विति । प्रसक्तं उपकारकत्वेन प्रत्यासन्नं दृष्टमित्यर्थः ॥ ६४ ॥ अर्थत्यागोऽपीति । दुर्योधने राज्यार्पणं न श्रेयसेऽपि तु खरकण्डूयनवदपकारायैव । यथा खरकण्डूयनं स्पर्शदोषात्मको दुःखदस्नाननिमित्तं गोकण्डूयनवच्च परत्र न हितं एवमेतदपीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ६५ ॥ विपणः प्रतिज्ञा न कार्यः न निर्वाह्यः ॥ ६६ ॥ एवमेव बीजौपम्येन प्रतिज्ञानिर्वाहजमल्पं धर्मं त्यक्त्वा राज्यलाभजे दानयागादिर्महान्धर्म आदर्तव्य इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ युवानं अल्पबुद्धिं । 'यदेकः स्थविरो वेत्ति न तत्तरुणकोटयः' इत्युक्तेः । दुर्बलमित्यपि पाठः ॥ ६८ ॥ पक्वबुद्धेः सर्वत्र सावधानस्य मित्राणि दुर्भेद्यानि अतस्तादृशे दुर्योधने बलमेव श्रेय इत्याह सत्त्वेनेति । युद्धेनैव शत्रुजये कृते प्रजाः स्वाधीना भवन्ति न तूद्यमेन निग्रहेण न होत्राभिः सान्त्वेन आह्वानैः ॥ ६९ ॥ संहतैर्मिलितैः मधुहा मध्वर्थं गतः । ओहाङ् गतौ इत्यस्य रूपं । भ्रमरैर्मधुपटलस्थैः सविषदंशैः युगपद्दष्टो म्रियत इति प्रसिद्धं । कालप्रतीक्षायां हि शत्रुर्बलवान् भूत्वाऽस्मान् जेष्यतीति भावः ॥ ७० ॥ यथेति । अत्ति रसशोषणेन पाति वर्षेण तथा त्वं दुर्योधनादीन्वशमानीय पालयेत्यर्थः ॥ ७१ ॥ एतत् भूमेः पालनं वक्ष्यमाणं तपः स्वधर्मः पुराणं अनादि । एतच्चावितथमिति पाठान्तरे पुराणं वेदविहितमित्यर्थः ॥ ७२ ॥ सृष्टेन विहितेन धर्मेणेत्यर्थः इतरेण मरणेन ॥ ७३ ॥ अपेयात् अपगच्छेत् व्यवसितः निश्चितः ॥ ७४ ॥ ननु कथं तर्हि मया राज्यार्थमनृतं कर्तव्यमत आह यदेन इति । एनः पापमवाप्नुवन् अवाप्तिहेतोः ॥ ७८ ॥

श्वदृतौ क्षीरमासक्तं ब्रह्म वा वृषले यथा ।
सत्यं स्तेने बलं नार्यां राज्यं दुर्योधने तथा ॥८१
इति लोके निर्वचनं पुरश्चरति भारत ।
अपि चैताः स्त्रियो बालाः स्वाध्यायमधिकुर्वते ८२
इमामवस्थां च गते सहास्माभिररिंदम ।
हन्त नष्टाः स्म सर्वे वै भवतोपद्रवे सति ॥ ८३
स भवान्रथमास्थाय सर्वोपकरणान्वितम् ।
त्वरमाणोभिनिर्यातु विप्रेभ्योर्थविभावकः ॥ ८४
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठानद्यैव गजसाह्वयम् ।
अस्त्रविद्भिः परिवृतो भ्रातृभिर्दृढधन्विभिः ॥ ८५
आशीविषसमैर्वीरैर्मरुद्भिरिव वृत्रहा ।
अमित्रांस्तेजसा मृद्नन्नसुरानिव वृत्रहा ।
श्रियमादत्स्व कौन्तेय धार्तराष्ट्रान्महाबल ॥ ८६
न हि गाण्डीवमुक्तानां शराणां गार्ध्रवाससाम् ।
स्पर्शमाशीविषाभानां मर्त्यः कश्चन संसहेत् ८७
न स वीरो न मातङ्गो न च सोऽश्वोस्ति भारत
यः सहेत गदावेगं मम क्रुद्धस्य संयुगे ॥ ८८
सृंजयैः सह कैकेयैर्वृष्णीनां वृषभेण च ।
कथं स्विद्युधि कौन्तेय न राज्यं प्राप्नुयामहे ॥ ८९
शत्रुहस्तगतां राजन्कथंस्विन्नाहरेर्महीम् ।
इह यत्नमुपाहृत्य बलेन महतान्वितः ॥ ९०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि भीमवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

वैशंपायन उवाच ।
स एवमुक्तस्तु महानुभावः
सत्यव्रतो भीमसेनेन राजा ।
अजातशत्रुस्तदनन्तरं वै
धैर्यान्वितो वाक्यमिदं बभाषे ॥ १
युधिष्ठिर उवाच ।
असंशयं भारत सत्यमेत-
द्यन्मां तुदन्वाक्यशल्यैः क्षिणोषि ।
न त्वां विगर्हे प्रतिकूलमेव
ममानयाद्धि व्यसनं व आगात् ॥ २
अहं ह्यक्षानन्वपद्यं जिहीर्ष-
न्राज्यं सराष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पुत्रात् ।
तन्मां शठः कितवः प्रत्यदेवीत्
सुयोधनार्थे सुबलस्य पुत्रः ॥ ३
महामायः शकुनिः पार्वतीयः
सभामध्ये प्रवपन्नक्षपूगान् ।
अमायिनं मायया प्रत्यजैषी-
त्ततोपश्यं वृजिनं भीमसेन ॥ ४
अक्षांश्च दृष्ट्वा शकुनेर्यथाव
त्कामानुकूलानयुजो युजश्च ।
शक्यं नियन्तुमभविष्यदात्मा
मन्युस्तु हन्यात्पुरुषस्य धैर्यम् ॥ ५
यन्तुं नात्मा शक्यते पौरुषेण
मानेन वीर्येण च तात नद्धः ।

परस्यापि राज्यानर्हत्वादत्रोपणमुचितमित्याह श्वदृताविति । श्वदृतौ सारमेयचर्मकोशे ब्रह्म वेदः वृषले शूद्रे ॥ ८१ ॥ स्वाध्यायमधिकुर्वते श्वदृताविति श्लोकं वेदवत् स्त्र्यादयो नित्यं पठन्तीत्यर्थः ॥ ८२ ॥ भवता हेतुना उपद्रवे राज्यभ्रंशे ॥ ८३ ॥ अर्थविभावकः जयार्जितमर्थं प्रदातुं । तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायामिति ण्वुल् ॥ ८४ ॥ वाचयित्वा आशीर्वादान् ॥ ८५ ॥ धार्तराष्ट्रादिति छेदः ॥ ८६ ॥ गार्ध्रवाससां गृध्रपक्षमयपुङ्खवतां संसहेत सम्यक् सहेत ॥ ८७ ॥ संजयादिभिः सहायैः स्विदिति विस्मयेन शिरश्चालने ॥ ८९ ॥ उपाहृत्य आलम्ब्य ॥ ९० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

स एवमिति ॥ १ ॥ एव मम ममैव वः युष्मान् ॥ २ ॥ अन्वपद्यं अनुसृतवान् । जिहीर्षन्हर्तुमिच्छन् शठः कूटपाशकर्तृत्वात् कितवो द्यूतकारः ॥ ३ ॥ प्रवपन् पातयन् अक्षपूगान् पाशसमूहान् वृजिनं दुःखदं व्यसनम् ॥ ४ ॥ कामानुकूलान् इच्छानुकूलान । अयुजः विषमान् । युजः समान् । शक्यमिति । यः पुरुषस्य धैर्यं हन्यात् स मन्युर्यदि नाभविष्यत्तर्हि आत्मा मनः नियन्तुं शक्यमभविष्यदित्यध्याहृत्य योज्यं । परस्यानुकूलानक्षान् दृष्ट्वा मन्युवशान्मम द्यूतोपरमे बुद्धिर्नासीदित्यर्थः ॥ ५ ॥

न ते वाचो भीमसेनाभ्यसूये
मन्ये तथा तद्भवितव्यमासीत् ॥ ६
स नो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
न्यपातयद्व्यसने राज्यमिच्छन् ।
दास्यं च नोऽगमयद्भीमसेन
यत्राभवच्छरणं द्रौपदी नः ॥ ७
त्वं चापि तद्वेत्थ धनंजयश्च
पुनर्द्यूतायागतांस्तां सभां नः ।
यन्मां ब्रवीद्धृतराष्ट्रस्य पुत्र
एकग्लहार्थं भरतानां समक्षम् ॥ ८
वने समा द्वादश राजपुत्र
यथाकामं विदितमजातशत्रो ।
अथापरं चाविदितश्चरेथाः
सर्वैः सह भ्रातृभिश्छद्मगूढः ॥ ९
त्वां चेच्छ्रुत्वा तात तथा चरन्त-
मवभोत्स्यन्ते भारतानां चराश्च ।
अन्यांश्चरेथास्तावतोऽब्दांस्तथा त्वं
निश्चित्य तत्प्रतिजानीहि पार्थ ॥ १०
चरैश्चेन्नो विदितः कालमेतं
युक्तो राजन्मोहयित्वा मदीयान् ।
ब्रवीमि सत्यं कुरुसंसदीह
तवैव ता भारत पञ्च नद्यः ॥ ११
वयं चैतद्भारत सर्व एव
त्वया जिताः कालमपास्य भोगान् ।
वसेम इत्याह पुरा स राजा
मध्ये कुरूणां स मयोक्तस्तथेति ॥ १२
तत्र द्यूतमभवन्नो जघन्यं
तस्मिञ्जिताः प्रव्रजिताश्च सर्वे ।
इत्थं तु देशाननुसंचरामो
वनानि कृच्छ्राणि च कृच्छ्ररूपाः ॥ १३
सुयोधनश्चापि न शान्तिमिच्छन्
भूयः स मन्योर्वशमन्वगच्छत् ।
उद्योजयामास कुरूंश्च सर्वा-
न्ये चास्य केचिद्वशमन्वगच्छन् ॥ १४
तं संधिमास्थाय सतां सकाशे
को नाम जह्यादिह राज्यहेतोः ।
आर्यस्य मन्ये मरणाद्गरीयो
यद्धर्ममुत्क्रम्य महीं प्रशासेत् ॥ १५
तदैव चेद्वीरकर्माकरिष्यो
यदा द्यूते परिघं पर्यमृक्षः ।
बाहू दिधक्षन्वारितः फाल्गुनेन
किं दुष्कृतं भीम तदाऽभविष्यत् ॥ १६
प्रागेव चैवं समयक्रियायाः
किं नाब्रवीः पौरुषमाविदानः ।
प्राप्तं तु कालं त्वभिपद्य पश्चात्
किं मामिदानीमतिवेलमात्थ ॥ १७
भूयोपि दुःखं मम भीमसेन
दूये विषस्येव रसं हि पीत्वा ।
यद्याज्ञसेनीं परिक्लिश्यमानां
संदृश्य तत्क्षान्तमिति स्म भीम ॥ १८
न त्वद्य शक्यं भरतप्रवीर
कृत्वा यदुक्तं कुरुवीरमध्ये ।
कालं प्रतीक्षस्व सुखोदयस्य
पक्तिं फलानामिव बीजवापः ॥ १९
यदा हि पूर्वं निकृतो निकृन्ते-
द्वैरं सपुष्पं सफलं विदित्वा ।
महागुणं हरति हि पौरुषेण
तदा वीरो जीवति जीवलोके ॥ २०

समा वर्षाणि अथापरं वर्षम् ॥ ९ ॥ अवभोत्स्यन्ते ज्ञास्यन्ति ॥ १० ॥ नो इति निपातः वितस्तादिपञ्चनद्युपलक्षितो देशः ॥ ११ ॥ सर्वे शतमपि भ्रातरः स राजा दुर्योधनः ॥ १२ ॥ नः अस्माकं जघन्यं नीचं । कृच्छ्ररूपाःक्लिष्टरूपाः ॥ १३ ॥ शान्ति न इच्छन् अनिच्छन् । उद्योजयामास उत्कर्षेण स्वेच्छया तेषु तेषु दुर्गदेशादिपालनकार्येषु इष्टान् योजितवान् ॥ १४ ॥ पर्यमृक्षः परामृष्टवानसि दिधक्षन् दग्धुमिच्छन् ॥ १६ ॥ समयक्रियातःप्रागेव चेदिदमब्रवीस्तर्हि किं दुष्कृतं अभविष्यत् न किमपीत्यर्थः । आविदानः जानन् । प्राप्तं कालं कालतुल्यां विपदं । अभिपद्य स्वीकृत्य अतिवेलं अतिशयेन ॥ १७ ॥ भूयोपि बह्वपि दूये उपतप्ये ॥ १८ ॥ यदुक्तं तां प्रतिज्ञां कृत्वा । बीजवापःकृषीवलः ॥ १९ ॥ पूर्वं निकृतो वञ्चितः वैरं वैरिसमूहं । सपुष्पं सफलं विदित्वा पुष्टतरं ज्ञात्वा । यदा यदि । निकृन्तेत् छिन्द्यात् तदा हि प्रसिद्धं महागुणं महान्तं गुणं हरति आहरति ॥ २० ॥

श्रियं च लोके लभते समग्रां
मन्ये चास्मै शत्रवः संनमन्ते ।
मित्राणि चैनमचिराद्भजन्ते
देवा इवेन्द्रमुपजीवन्ति चैनम् ॥ २१

मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां
वृणे धर्मममृताज्जीविताच्च ।
राज्यं च पुत्राश्च यशो धनं च
सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

## ३५

भीमसेन उवाच ।

संधिं कृत्वैव कालेन ह्यन्तकेन पतत्रिणा ।
अनन्तेनाप्रमेयेण स्रोतसा सर्वहारिणा ॥ १
प्रत्यक्षं मन्यसे कालं मर्त्यः सन्कालबन्धनः ।
फेनधर्मा महाराज फलधर्मा तथैव च ॥ २
निमेषादपि कौन्तेय यस्यायुरपचीयते ।
सूच्येवाञ्जनचूर्णस्य किमिति प्रतिपालयेत् ॥ ३
यो नूनममितायुः स्यादथवापि प्रमाणवित् ।
स कालं वै प्रतीक्षेत सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ ४
प्रतीक्ष्यमाणः कालो नः समा राजंस्त्रयोदश ।
आयुषोऽपचयं कृत्वा मरणायोपनेष्यति ॥ ५
शरीरिणां हि मरणं शरीरे नित्यमाश्रितम् ।
प्रागेव मरणात्तस्माद्राज्यायैव घटामहे ॥ ६
यो न याति प्रसंख्यानमस्पष्टो भूमिवर्धनः ।
अयातयित्वा वैराणि सोऽवसीदति गौरिव ॥ ७
यो न यातयते वैरमल्पसत्त्वोद्यमः पुमान् ।
अफलं जन्म तस्याहं मन्ये दुर्जातजायिनः ॥ ८
हैरण्यौ भवतो बाहू श्रुतिर्भवति पार्थिवी ।
हत्वा द्विषन्तं संग्रामे भुङ्क्ष्व बाहुजितं वसु ॥ ९
हत्वा वै पुरुषो राजन्निकर्तारमरिंदम ।
अह्नाय नरकं गच्छेत्स्वर्गेणास्य स संमितः ॥ १०
अमर्षजो हि संतापः पावकाद्दीप्तिमत्तरः ।
येनाहमभिसंतप्तो न नक्तं न दिवा शये ॥ ११
अयं च पार्थो बीभत्सुर्वरिष्ठो ज्याविकर्षणे ।
आस्ते परमसंतप्तो नूनं सिंह इवाशये ॥ १२
योऽयमेकोऽभिमनुते सर्वाँल्लोके धनुर्भृतः ।
सोऽयमात्मजमूष्माणं महाहस्तीव यच्छति ॥ १३
नकुलः सहदेवश्च वृद्धा माता च वीरसूः ।
तवैव प्रियमिच्छन्त आसते जडमूकवत् ॥ १४
सर्वे ते प्रियमिच्छन्ति बान्धवाः सह सृञ्जयैः ।
अहमेकश्च संतप्तो माता च प्रतिविन्ध्यतः ॥ १५

अमृतात् देवभावात् । कलां षोडशं भागम् ॥२२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

३५

संधिमिति । पतत्रिणा बाणवत् शीघ्रगामिना प्राणहरेण वा । स्रोतसा नित्यवाहिना॥१॥ प्रत्यक्षं प्रत्यक्षेण ज्ञातं। कालबन्धनः कालवश्यः फेनधर्मा निःसारः फलधर्मा पतनशीलः॥२॥ सूच्येवाञ्जनचूर्णस्य यथा कज्जलक्षोदस्यातिश्लक्ष्णस्य सूक्ष्माग्रया सूच्यापि किंचिदपचीयते । एवं निमेषादपि यस्यायुरपचीयते स किमिति अवधिं प्रतिपालयेन्न कथमपीत्यध्याहृत्य योज्यं । 'चूर्णः क्षोदे क्षारभेदे' इति विश्वः । शून्येवेति पाठेपि स एवार्थः । श्वयते प्रविशतीति शूनः स्थूलसूची 'सूवा' इति प्रसिद्धः । अल्पः शूनः शूनी तयेति योगात् । पूर्णस्येत्यपपाठः ॥ ३ ॥ प्रमाणवित् आयुःप्रमाणज्ञः ॥४॥ याति प्राप्नोति । प्रसंख्यानं प्रकृष्टां साधुकीर्तिं । यतः अस्पष्टः शौर्याद्यभावादितरैरविदितः भूमिवर्धनः भूमिहिंसकः । भूमेर्भारभूत इत्यर्थः अयातयित्वा अनिस्तीर्य । गौर्बलीवर्द इव । सोप्यशक्तश्चेत् गोषु संख्यानं स्पष्टतां वाप्नुयात्पुरुषस्तु भूमेर्भारभूतो भवति ॥७॥ दुर्जातजायिनः कुजन्मभाजः ॥ ८ ॥ हैरण्यौ हिरण्यस्वामिनौ । श्रुतिः कीर्तिः । पार्थिवी पृथोः राज्ञ इवेत्यर्थः ॥ ९ ॥ निकर्तारं वञ्चकं । अह्नाय सद्यः । स नरकं आपदम् ॥ १० ॥ आशये स्वस्थाने ॥ १२ ॥ अभिमनुते हिनस्ति । 'यदि वेममभिमंस्ये कनीयोऽन्नं करिष्ये' इति बृहदारण्यकादावभिपूर्वस्य मन्यतेर्हिंसार्थत्वदर्शनात् । इमं प्रथमजं सूक्ष्मं बीजभूतमिति श्रुतिपदस्यार्थः। आत्मजं चित्तजमूष्माणं तापम् ॥ १३ ॥ प्रतिविन्ध्यतः प्रतिविन्ध्यस्य माता द्रौपदी ॥ १५ ॥

प्रियमेव तु सर्वेषां यद्ब्रवीम्युत किंचन ।
सर्वे हि व्यसनं प्राप्ताः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः॥ १६
नातः पापीयसी काचिदापद्राजन्भविष्यति ।
यन्नो नीचैरल्पबलै राज्यमाच्छिद्य भुज्यते ॥ १७
शीलदोषाद्घृणाविष्ट आनृशंस्यात्परंतप ।
क्लेशांस्तितिक्षसे राजन्नान्यः कश्चित्प्रशंसति॥ १८
श्रोत्रियस्येव ते राजन्मन्दकस्याविपश्चितः ।
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी ॥ १९
घृणी ब्राह्मणरूपोसि कथं क्षत्रेषु जायथाः ।
अस्यां हि योनौ जायन्ते प्रायशः क्रूरबुद्धयः॥ २०
अश्रौषीस्त्वं राजधर्मान्यथा वै मनुरब्रवीत् ।
क्रूरान्निकृतिसंपन्नान्विहितानशमात्मकान् ॥ २१
धार्तराष्ट्रान्महाराज क्षमसे किं दुरात्मनः ।
कर्तव्ये पुरुषव्याघ्र किमास्से पीठसर्पवत् ॥ २२
बुद्ध्या वीर्येण संयुक्तः श्रुतेनाभिजनेन च ।
तृणानां मुष्टिनैकेन हिमवन्तं च पर्वतम् ॥ २३
छन्नमिच्छसि कौन्तेय योस्मान्संवर्तुमिच्छसि ।
अज्ञातचर्या गूढेन पृथिव्यां विश्रुतेन च ॥ २४
दिवीव पार्थ सूर्येण न शक्याचरितुं त्वया ।
बृहच्छाल इवानूपे शाखापुष्पपलाशवान् ॥ २५
हस्ती श्वेत इवाज्ञातः कथं जिष्णुश्चरिष्यति ।
इमौ च सिंहसंकाशौ भ्रातरौ सहितौ शिशू ॥२६
नकुलः सहदेवश्च कथं पार्थ चरिष्यतः ।
पुण्यकीर्ती राजपुत्री द्रौपदी वीरसूरियम् ॥ २७
विश्रुता कथमज्ञाता कृष्णा पार्थ चरिष्यति ।
मां चापि राजञ्जानन्ति ह्याकुमारमिमाः प्रजाः २८
नाज्ञातचर्यां पश्यामि मेरोरिव निगूहनम् ।
तथैव बहवोस्माभी राष्ट्रेभ्यो विप्रवासिताः ॥२९
राजानो राजपुत्राश्च धृतराष्ट्रमनुव्रताः ।
न हि तेप्युपशाम्यन्ति निकृता वा निराकृताः ३०
अवश्यं तैर्निकर्तव्यमस्माकं तत्प्रियैषिभिः ।
तेप्यस्मासु प्रयुञ्जीरन्प्रच्छन्नान्सुबहूंश्चरान् ।
आचक्षीरंश्च नो ज्ञात्वा ततः स्यात्सुमहद्भयम् ३१
अस्माभिरुषिताः सम्यग्वने मासास्त्रयोदश ।
परिमाणेन तान्पश्य तावतः परिवत्सरान् ॥ ३२
अस्ति मासः प्रतिनिधिर्यथा प्राहुर्मनीषिणः ।
पूतिकानिव सोमस्य तथेदं क्रियतामिति ॥ ३३
अथवाऽनडुहे राजन्साधवे साधुवाहिने ।
सौहित्यदानादेतस्मादेनसः प्रतिमुच्यते ॥ ३४
तस्माच्छत्रुवधे राजन्क्रियतां निश्चयस्त्वया ।
क्षत्रियस्य हि सर्वस्य नान्यो धर्मोस्ति संयुगात् ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि भीमवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

वैशंपायन उवाच ।

भीमसेनवचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
निःश्वस्य पुरुषव्याघ्रः संप्रदध्यौ परंतपः ॥ १
श्रुता मे राजधर्माश्च वर्णानां च विनिश्चयाः ।
आयत्यां च तदात्वे च यः पश्यति स पश्यति २
धर्मस्य जानमानोहं गतिमग्र्यां सुदुर्विदाम् ।
कथं बलात्करिष्यामि मेरोरिव विमर्दनम् ॥ ३

घृणाविष्टः कथं सत्यं त्यजेयमिति लज्जया व्याप्तः आनृशंस्यात् दयालुत्वात् ॥ १८ ॥ मन्दकस्य कुत्सितमन्दस्य अनुवाकः गुरूक्तिमनुवचनं तेन हता । अर्थज्ञानशून्यस्य वेदाक्षरमात्राभ्यासिनः ॥ १९ ॥ घृणी दयालुः जायथाः जातोसि ॥२०॥ आस्से तूष्णीं भूतोसि । पीठसर्पवत् अजगरवत् ॥ २२ ॥ अज्ञातवासस्य दुष्करत्वमाह तृणानामिति ॥ २३ ॥ संवर्तुं संवरीतुं छादितुम् ॥२४॥ अनूपे बहुजले देशे ॥ २५ ॥ 'निकर्तव्यं नीचं सूचनादि कर्म कर्तव्यं॥३१॥ 'यो मासः स संवत्सरः' इति श्रुतेर्मासः प्रतिनिधिः संवत्सरस्यास्ति ।'सोमाभावे पूतिकानभिषुणुयात्'इति श्रुतेः पूतिकाः सोमस्य प्रतिनिधयः ॥ ३३ ॥ 'अनडुहे पूर्णं घासमुपाहृत्यानृतान्मुच्यते'इति धर्मशास्त्रोक्तं प्रायश्चित्तं वा कर्तव्यमित्याहाथवेति । सौहित्यं आतृप्तिभोजनं तस्य दानात् एतस्मात् मिथ्यावादकृतात् एनसः पापात् ॥ ३४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नै० भारत० पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

भीमसेनेति ॥ १ ॥ आयत्यामुत्तरकाले तदात्वे वर्तमानकाले यस्तान्पश्यति ॥ २ ॥ जानमानः जानन । अग्निकरणत्वमार्षम् ॥ ३॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा विनिश्चित्येतिकृत्यताम् ।
भीमसेनमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
इदमन्यत्समादत्स्व वाच्यं मे वाच्यकोविद ॥ ५
महापापानि कर्माणि यानि केवलसाहसात् ।
आरभ्यन्ते भीमसेन व्यथन्ते तानि भारत ॥ ६
सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते ।
सिध्यन्त्यर्था महाबाहो दैवं चात्र प्रदक्षिणम् ॥ ७
यत्तु केवलचापल्याद्बलदर्पोत्थितः स्वयम् ।
आरब्धव्यमिदं कार्यं मन्यसे शृणु तत्र मे ॥ ८
भूरिश्रवाः शलश्चैव जलसंधश्च वीर्यवान् ।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ९
धार्तराष्ट्रा दुराधर्षा दुर्योधनपुरोगमाः ।
सर्व एव कृतास्त्राश्च सततं चाततायिनः ॥ १०
राजानः पार्थिवाश्चैव येऽस्माभिरुपतापिताः ।
संश्रिताः कौरवं पक्षं जातस्नेहाश्च तं प्रति ॥ ११
दुर्योधनहिते युक्ता न तथास्मासु भारत ।
पूर्णकोशा बलोपेताः प्रयतिष्यन्ति संगरे ॥ १२
सर्वे कौरवसैन्यस्य सपुत्रामात्यसैनिकाः ।
संविभक्ता हि मात्राभिर्भोगैरपि च सर्वशः ॥ १३
दुर्योधनेन ते वीरा मानिताश्च विशेषतः ।
प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति संग्रामे इति मे निश्चिता मतिः ॥ १४
समा यद्यपि भीष्मस्य वृत्तिरस्मासु तेषु च ।
द्रोणस्य च महाबाहो कृपस्य च महात्मनः ॥ १५
अवश्यं राजपिण्डस्तैर्निर्वेश्य इति मे मतिः ।
तस्मात्त्यक्ष्यन्ति संग्रामे प्राणानपि सुदुस्त्यजान् ॥
सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे धर्मपरायणाः ।
अजेयाश्चेति मे बुद्धिरपि देवैः सवासवैः ॥ १७
अमर्षी नित्यसंरब्धस्तत्र कर्णो महारथः ।
सर्वास्त्रविदनाधृष्यो ह्यभेद्यकवचावृतः ॥ १८
अनिर्जित्य रणे सर्वानेतान्पुरुषसत्तमान् ।
अशक्यो ह्यसहायेन हन्तुं दुर्योधनस्त्वया ॥ १९
न निद्रामधिगच्छामि चिन्तयानो वृकोदर ।
अतिसर्वान्धनुर्ग्राहान्सूतपुत्रस्य लाघवम् ॥ २०

वैशंपायन उवाच ।

एतद्वचनमाज्ञाय भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
बभूव विमनास्त्रस्तो न चैवोवाच किंचन ॥ २१
तयोः संवदतोरेवं तदा पाण्डवयोर्द्वयोः ।
आजगाम महायोगी व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ २२
सोऽभिगम्य यथान्यायं पाण्डवैः प्रतिपूजितः ।
युधिष्ठिरमिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ २३

व्यास उवाच ।

युधिष्ठिर महाबाहो वेद्मि ते हृदयस्थितम् ।
मनीषया ततः क्षिप्रमागतोऽस्मि नरर्षभ ॥ २४
भीष्माद्द्रोणात्कृपात्कर्णाद्द्रोणपुत्राच्च भारत ।
दुर्योधनान्नृपसुतात्तथा दुःशासनादपि ॥ २५
यत्ते भयममित्रघ्न हृदि संपरिवर्तते ।
तत्तेऽहं नाशयिष्यामि विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ २६
तच्छ्रुत्वा धृतिमास्थाय कर्मणा प्रतिपादय ।
प्रतिपाद्य तु राजेन्द्र ततः क्षिप्रं ज्वरं जहि ॥ २७
तत एकान्तमुन्नीय पाराशर्यो युधिष्ठिरम् ।
अब्रवीदुपपन्नार्थमिदं वाक्यविशारदः ॥ २८
श्रेयसस्ते परः कालः प्राप्तो भरतसत्तम ।
येनाभिभविता शत्रून्रणे पार्थो धनुर्धरः ॥ २९
गृहाणेमां मया प्रोक्तां सिद्धिं मूर्तिमतीमिव ।
विद्यां प्रतिस्मृतिं नाम प्रपन्नाय ब्रवीमि ते ॥ ३०
यामवाप्य महाबाहुरर्जुनः साधयिष्यति ।
अस्त्रहेतोर्महेन्द्रं च रुद्रं चैवाभिगच्छतु ॥ ३१
वरुणं च कुबेरं च धर्मराजं च पाण्डव ।
शक्तो ह्येष सुरान्द्रष्टुं तपसा विक्रमेण च ॥ ३२
ऋषिरेष महातेजा नारायणसहायवान् ।
पुराणः शाश्वतो देवस्त्वजेयो जिष्णुरच्युतः ॥ ३३
अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च लोकपालेभ्य एव च ।
समादाय महाबाहुर्महत्कर्म करिष्यति ॥ ३४
वनादस्माच्च कौन्तेय वनमन्यद्विचिन्त्यताम् ।
निवासार्थाय यद्युक्तं भवेद्वः पृथिवीपते ॥ ३५
एकत्र चिरवासो हि न प्रीतिजननो भवेत् ।
तापसानां च सर्वेषां भवेदुद्वेगकारकः ॥ ३६

इतिकृत्यतां इतिकर्तव्यतां अपदान्तरं अविलम्बितम् ॥ ४ ॥ समादत्स्व अङ्गीकुरु ॥ ५ ॥ व्यथन्ते व्यथयन्ति ॥ ६ ॥ सुमन्त्रिते शोभनमन्त्रे क्रियमाणे सति सुविक्रान्ते उत्कर्षेणोपस्थिते सुकृते पुण्यकर्मणि सुविचारिते निश्चिते सति । चकारो यथर्थे ॥ ७ ॥ बलं शारीरं सामर्थ्यं दर्पो गर्वः ताभ्यां उत्थितः प्रवृत्तः ॥ ८ ॥ सैन्यस्य सैन्यसंबन्धिनः सर्वे । मात्राभिः अंशपरिच्छेदैः ॥ १३ ॥ राजपिण्डः राजदत्तो ग्रासः । निर्वेश्यः आनृण्यार्थं शोधनीयः ॥ १६ ॥ लाघवं शीघ्रताम् ॥ २० ॥ साधयिष्यति राज्यम् ॥ ३१ ॥

मृगाणामुपयोगश्च वीरुदौषधिसंक्षयः ।
बिभर्षि च बहून्विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ ३७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा प्रपन्नाय शुचये भगवान्प्रभुः ।
प्रोवाच लोकतत्त्वज्ञो योगी विद्यामनुत्तमाम् ॥३८

धर्मराजाय धीमान्स व्यासः सत्यवतीसुतः ।
अनुज्ञाय च कौन्तेयं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९

युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा तद्ब्रह्म मनसा यतः ।
धारयामास मेधावी काले काले सदाऽभ्यसन् ॥

स व्यासवाक्यमुदितो वनाद्द्वैतवनात्ततः ।
ययौ सरस्वतीकूले काम्यकं नाम काननम् ॥ ४१

तमन्वयुर्महाराज शिक्षाक्षरविशारदाः ।
ब्राह्मणास्तपसा युक्ता देवेन्द्रमृषयो यथा ॥ ४२

ततः काम्यकमासाद्य पुनस्ते भरतर्षभ ।
न्यविशन्त महात्मानः सामात्याः सपरिच्छदाः ॥

तत्र ते न्यवसन्राजन्किंचित्कालं मनस्विनः ।
धनुर्वेदपरा वीराः शृण्वन्तो वेदमुत्तमम् ॥ ४४

चरन्तो मृगयां नित्यं शुद्धैर्बाणैर्मृगार्थिनः ।
पितृदैवतविप्रेभ्यो निर्वपन्तो यथाविधि ॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि काम्यकवनगमने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

## ३७

वैशंपायन उवाच ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
संस्मृत्य मुनिसंदेशमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १

विविक्ते विदितप्रज्ञमर्जुनं पुरुषर्षभम् ।
सान्त्वपूर्वं स्मितं कृत्वा पाणिना परिसंस्पृशन् २

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा वनवासमरिंदमः ।
धनंजयं धर्मराजो रहसीदमुवाच ह ॥ ३

युधिष्ठिर उवाच ।

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे च भारत ।
धनुर्वेदश्चतुष्पाद एतेष्वद्य प्रतिष्ठितः ॥ ४

दैवं ब्राह्मं मानुषं च सयत्नं सचिकित्सितम् ।
सर्वास्त्राणां प्रयोगं च अभिजानन्ति कृत्स्नशः ॥५

ते सर्वे धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण परिसान्त्विताः ।
संविभक्ताश्च तुष्टाश्च गुरुवत्तेषु वर्तते ॥ ६

सर्वयोधेषु चैवास्य सदा प्रीतिरनुत्तमा ।
आचार्या मानितास्तुष्टाः शान्तिं व्यवहरन्त्युत ॥७

शक्तिं न हापयिष्यन्ति ते काले प्रतिपूजिताः ।
अद्य चेयं मही कृत्स्ना दुर्योधनवशानुगा ॥ ८

सग्रामनगरा पार्थ ससागरवनाकरा ।
भवानेव प्रियोऽस्माकं त्वयि भारः समाहितः॥९

अत्र कृत्यं प्रपश्यामि प्राप्तकालमरिंदम ।
कृष्णद्वैपायनात्तात गृहीतोपनिषन्मया ॥ १०

तया प्रयुक्तया सम्यग्जगत्सर्वं प्रकाशते ।
तेन त्वं ब्रह्मणा तात संयुक्तः सुसमाहितः ॥ ११

देवतानां यथाकालं प्रसादं प्रतिपालय ।
तपसा योजयात्मानमुग्रेण भरतर्षभ ॥ १२

धनुष्मान्कवची खड्गी मुनिः साधुव्रते स्थितः ।
न कस्यचिद्ददन्मार्गं गच्छ तातोत्तरां दिशम्॥१३

इन्द्रे ह्यस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि धनंजय ।
वृत्राद्भीतैर्बलं देवैस्तदा शक्रे समर्पितम् ॥ १४

तान्येकस्थानि सर्वाणि ततस्त्वं प्रतिपत्स्यसे ।
शक्रमेव प्रपद्यस्व स तेऽस्त्राणि प्रदास्यति ॥ १५

---

उपयोगः व्ययः वीरुधः प्रतानवत्यः औषध्यः फलपाकान्ताः ॥ ३७ ॥ अनुज्ञाय पृष्ट्वा ॥ ३९ ॥ ब्रह्म मन्त्रम् ॥ ४० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नै० भारत० षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

कस्यचित् कस्मिंश्चित् ॥ १ ॥ वनवासं द्रौपदीवियोगं । 'गृहिणी गृहमुच्यते' इति स्मृतेः ॥३॥ चतुष्पादः आदानसंधानविसर्गसंहाराश्चत्वारः पादा यस्य ॥ ४ ॥ दैवं इन्द्रवरुणादीनां ब्राह्मं ब्रह्मास्त्रं मानुषं धनुर्बाणादि यत्नः ग्रहणधारणप्रयोगरूपः चिकित्सा परप्रयुक्तानामेषां प्रतीकारः एवं ते सर्वास्त्राणां प्रयोगं अभितःसाकल्येन जानन्ति॥५॥ गुरुवत् गुरुष्विव॥६॥ शान्तिं दोषपरिहारं कर्तुं व्यवहरन्ति यतन्ते॥७॥ शक्तिं सामर्थ्यं न हापयिष्यन्ति त्याजयिष्यन्ति अपि तु उद्दीपयिष्यन्ति॥८॥ उपनिषत् रहस्यविद्या ॥१० ॥ प्रतिपालय प्राप्नुहि ॥१२॥ मार्गं न ददत् अददत् ॥१३॥ बलं सर्वास्त्ररूपम् ॥ १४ ॥ ततः शक्रात् ॥१५॥

दीक्षितोऽद्यैव गच्छ त्वं द्रष्टुं देवं पुरंदरम् ।
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा धर्मराजस्तमध्यापयत प्रभुः ॥ १६
दीक्षितं विधिनानेन धृतवाक्कायमानसम् ।
अनुजज्ञे तदा वीरं भ्राता भ्रातरमग्रजः ॥ १७
निदेशाद्धर्मराजस्य द्रष्टुकामः पुरंदरम् ।
धनुर्गाण्डीवमादाय तथाक्षय्ये महेषुधी ॥ १८
कवची सतलत्राणो बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
हुत्वाग्निं ब्राह्मणान्निष्कैः स्वस्ति वाच्य महाभुजः॥
प्रातिष्ठत महाबाहुः प्रगृहीतशरासनः ।
वधाय धार्तराष्ट्राणां निःश्वस्योर्ध्वमुदीक्ष्य च ॥२०
तं दृष्ट्वा तत्र कौन्तेयं प्रगृहीतशरासनम् ।
अब्रुवन्ब्राह्मणाः सिद्धा भूतान्यन्तर्हितानि च २१
क्षिप्रमाप्नुहि कौन्तेय मनसा यद्यदिच्छसि ।
अब्रुवन्ब्राह्मणाः पार्थमिति कृत्वा जयाशिषः ॥२२
संसाधयस्व कौन्तेय ध्रुवोस्तु विजयस्तव ।
तं तथा प्रस्थितं वीरं शालस्कन्धोरुमर्जुनम् ॥ २३
मनांस्यादाय सर्वेषां कृष्णा वचनमब्रवीत् ।
कृष्णोवाच ।
यत्ते कुन्ती महाबाहो जातस्यैच्छद्धनंजय ॥ २४
तत्तेऽस्तु सर्वं कौन्तेय यथा च स्वयमिच्छसि ।
मास्माकं क्षत्रियकुले जन्म कश्चिदवाप्नुयात् ॥२५
ब्राह्मणेभ्यो नमो नित्यं येषां भैक्ष्येण जीविका ।
इदं मे परमं दुःखं यः स पापः सुयोधनः ॥ २६
दृष्ट्वा मां गौरिति प्राह प्रहसन्राजसंसदि ।
तस्माद्दुःखादिदं दुःखं गरीय इति मे मतिः ॥२७
यत्तत्परिषदो मध्ये बह्वयुक्तमभाषत ।
नूनं ते भ्रातरः सर्वे त्वत्कथाभिः प्रजागरे ॥ २८
रंस्यन्ते वीरकर्माणि कथयन्तः पुनः पुनः ।
नैव नः पार्थ भोगेषु न धने नोत जीविते ॥ २९
तुष्टिर्बुद्धिर्भवित्री वा त्वयि दीर्घप्रवासिनि ।
त्वयि नः पार्थ सर्वेषां सुखदुःखे समाहिते ॥३०
जीवितं मरणं चैव राज्यमैश्वर्यमेव च ।
आपृष्टो मेऽसि कौन्तेय स्वस्ति प्राप्नुहि भारत ३१
बलवद्भिर्विरुद्धं न कार्यमेतत्त्वयानघ ।
प्रयाह्यविघ्नेनैवाशु विजयाय महाबल ।
नमो धात्रे विधात्रे च स्वस्ति गच्छ ह्यनामयम् ॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिर्द्युतिः पुष्टिरुमा लक्ष्मीः सरस्वती
इमा वै तव पान्थस्य पालयन्तु धनंजय ॥ ३३
ज्येष्ठापचायी ज्येष्ठस्य भ्रातुर्वचनकारकः ।
प्रपद्येहं वसून्रुद्रानादित्यान्समरुद्गणान् ॥ ३४
विश्वेदेवांस्तथा साध्यांश्शान्त्यर्थं भरतर्षभ ।
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भारत ॥
दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्यो ये चान्ये परिपन्थिनः ।
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वाशिषः कृष्णा विरराम यशस्विनी ॥३६
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भ्रातॄन्धौम्यं च पाण्डवः ।
प्रातिष्ठत महाबाहुः प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥ ३७
तस्य मार्गादपाक्रामन्सर्वभूतानि गच्छतः ।
युक्तस्यैन्द्रेण योगेन पराक्रान्तस्य शुष्मिणः ॥ ३८
सोऽगच्छत्पर्वतांस्तात तपोधननिषेवितान् ।
दिव्यं हैमवतं पुण्यं देवजुष्टं परंतपः ॥ ३९
अगच्छत्पर्वतं पुण्यमेकाह्नैव महामनाः ।
मनोजवगतिर्भूत्वा योगयुक्तो यथानिलः ॥ ४०
हिमवन्तमतिक्रम्य गन्धमादनमेव च ।
अत्यक्रामत्स दुर्गाणि दिवारात्रमतन्द्रितः ४१
इन्द्रकीलं समासाद्य ततोऽतिष्ठद्धनंजयः ।
अन्तरिक्षे हि शुश्राव तिष्ठेति स वचस्तदा ॥ ४२
तच्छ्रुत्वा सर्वतो दृष्टिं चारयामास पाण्डवः ।
अथापश्यत्सव्यसाची वृक्षमूले तपस्विनम् ॥ ४३
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं पिङ्गलं जटिलं कृशम् ।
सोऽब्रवीदर्जुनं तत्र स्थितं दृष्ट्वा महातपाः ॥ ४४
कस्त्वं तातेह संप्राप्तो धनुष्मान्कवची शरी ।
निबद्धासितलत्राणः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ४५
नेह शस्त्रेण कर्तव्यं शान्तानामेष आलयः ।
विनीतक्रोधहर्षाणां ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ॥ ४६
नेहास्ति धनुषा कार्यं न संग्रामोऽत्र कर्हिचित् ।
निक्षिपैतद्धनुस्तात प्राप्तोसि परमां गतिम् ॥ ४७

---

दीक्षितः स्वीकृतव्रतः अध्यापयत विद्यया योजितवान् ॥ १६ ॥ अनुजज्ञे गमनाय अनुज्ञातवान् ॥ १७ ॥ इति वक्ष्यमाणं अब्रुवन् ॥ २२ ॥ यत् मङ्गलं ते तव ॥ २४ ॥ गौरिति बहुपुरुषभोग्येत्युपहासः ॥ २७ ॥ अभाषत शत्रुः यत्तस्मात् दुःखात् इदं त्वद्वियोगज-मिति पूर्वेण संबन्धः ॥ २८ ॥ तव त्वाम् ॥ ३३ ॥ ज्येष्ठापचायी ज्येष्ठपूजनशीलः । ज्येष्ठोपचायीति पाठे ज्येष्ठ-वृद्धिकरणशीलः ॥ ३४ ॥ शुष्मिणः बलिनः । शुष्ममिति बलनामेति यास्कः ॥ ३८ ॥ विनीतौ जितौ क्रोधहर्षौ यैः ॥ ४६ ॥

ओजसा तेजसा वीर यथा नान्यः पुमान्क्वचित् ।
तथा हसन्निवाभीक्ष्णं ब्राह्मणोर्जुनमब्रवीत् ।
न चैनं चालयामास धैर्यात्सुधृतनिश्चयम् ॥ ४८
तमुवाच ततः प्रीतः स द्विजः प्रहसन्निव ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते शक्रोहमरिसूदन ॥ ४९
एवमुक्तः सहस्राक्षं प्रत्युवाच धनंजयः ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा शूरः कुरुकुलोद्वहः ॥ ५०
ईप्सितो ह्येष वै कामो वरं चैनं प्रयच्छ मे ।
त्वत्तोद्य भगवन्नस्त्रं कृत्स्नमिच्छामि वेदितुम् ॥५१
प्रत्युवाच महेन्द्रस्तं प्रीतात्मा प्रहसन्निव ।
इह प्राप्तस्य किं कार्यमस्त्रैस्तव धनंजय ॥ ५२
कामान्वृणीष्व लोकांस्त्वं प्राप्तोसि परमां गतिम्
एवमुक्तः प्रत्युवाच सहस्राक्षं धनंजयः ॥ ५३
न लोभान्न पुनः कामान्न देवत्वं पुनः सुखम् ।
न च सर्वामरैश्वर्यं कामये त्रिदशाधिप ॥ ५४
भ्रातॄंस्तान्विपिने त्यक्त्वा वैरमप्रतियात्य च ।
अकीर्तिं सर्वलोकेषु गच्छेयं शाश्वतीः समाः॥५५
एवमुक्तः प्रत्युवाच वृत्रहा पाण्डुनन्दनम् ।
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा सर्वलोकनमस्कृतः ५६
यदा द्रक्ष्यसि भूतेशं त्र्यक्षं शूलधरं शिवम् ।
तदा दातास्मि ते तात दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ॥
क्रियतां दर्शने यत्नो देवस्य परमेष्ठिनः ।
दर्शनात्तस्य कौन्तेय संसिद्धः स्वर्गमेष्यसि ॥५८
इत्युक्त्वा फाल्गुनं शक्रो जगामादर्शनं पुनः ।
अर्जुनोप्यथ तत्रैव तस्थौ योगसमन्वितः ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि अर्जुनाभिगमनपर्वणि इन्द्रदर्शने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

समाप्तं अर्जुनाभिगमनपर्व ।

# कैरातपर्व ।

## ३८

जनमेजय उवाच ।
भगवञ्श्रोतुमिच्छामि पार्थस्याक्लिष्टकर्मणः ।
विस्तरेण कथामेतां यथास्त्राण्युपलब्धवान् ॥ १
यथा च पुरुषव्याघ्रो दीर्घबाहुर्धनंजयः ।
वनं प्रविष्टस्तेजस्वी निर्मनुष्यमभीतवत् ॥ २
किं च तेन कृतं तत्र वसता ब्रह्मवित्तम ।
कथं च भगवान्स्थाणुर्देवराजश्च तोषितः ॥ ३
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ।
त्वं हि सर्वज्ञ दिव्यं च मानुषं चैव वेत्थह ॥ ४
अत्यद्भुततमं ब्रह्मन्रोमहर्षणमर्जुनः ।
भवेन सह संग्रामं चकाराप्रतिमं किल ॥ ५
पुरा प्रहरतां श्रेष्ठः संग्रामेष्वपराजितः ।
यच्छ्रुत्वा नरसिंहानां दैन्यहर्षातिविस्मयात् ॥ ६
शूराणामपि पार्थानां हृदयानि चकम्पिरे ।
यद्यच्च कृतवानन्यत्पार्थस्तदखिलं वद ॥ ७
न ह्यस्य निन्दितं जिष्णोः सुसूक्ष्ममपि लक्षये ।
चरितं तस्य शूरस्य तन्मे सर्वं प्रकीर्तय ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।
कथयिष्यामि ते तात कथामेतां महात्मनः ।
दिव्यां पौरवशार्दूल महतीमद्भुतोपमाम् ॥ ९
गात्रसंस्पर्शसंबद्धां त्र्यम्बकेण सहानघ ।
पार्थस्य देवदेवन शृणु सम्यक्समागमम् ॥ १०
युधिष्ठिरनियोगात्स जगामामितविक्रमः ।
शक्रं सुरेश्वरं द्रष्टुं देवदेवं च शंकरम् ॥ ११
दिव्यं तद्धनुरादाय खड्गं च कनकत्सरुम् ।
महाबलो महाबाहुरर्जुनः कार्यसिद्धये ॥ १२

कामान् कारयन्त इति व्युत्पत्त्या इष्टान् लोकान् भोगान् ॥ ५३ ॥ न लोभान्न पुनः कामादिति न शब्दो वा शब्दार्थौ । लोभाद्वा कामाद्वेत्यर्थः ॥ ५४ ॥ अप्रतियात्य अनिस्तीर्य । एतेन ज्येष्ठभ्रात्रादिसेवनं ऐन्द्रपदप्राप्तावपि नोपेक्षणीयमित्युक्तम् ॥५५॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

भगवन्निति ॥ १ ॥ दैन्यहर्षातिविस्मयात् दैन्यं नाशभयात् । हर्षो महादेवप्रतिभटत्वात् । विस्मयः तत्प्रसादेनालौकिकसामर्थ्यलाभात् ॥६॥ कनकत्सरुं स्वर्णमुष्टिम् ॥१२॥

पिनाकपाणिर्भगवान्सर्वपापहरो हरः ।
कैरातं वेषमास्थाय काञ्चनद्रुमसंनिभम् ॥
निष्पपात महावेगो दहनो देहवानिव ।
देव्या सहोमया श्रीमान्समानव्रतवेषया ॥

—वनपर्व अ० ३९ पृ. ७१.

दिशं ह्युदीचीं कौरव्यो हिमवच्छिखरं प्रति ।
ऐन्द्रिः स्थिरमना राजन्सर्वलोकमहारथः ॥ १३
त्वरया परया युक्तस्तपसे धृतनिश्चयः ।
वनं कण्टकितं घोरमेक एवान्वपद्यत ॥ १४
नानापुष्पफलोपेतं नानापक्षिनिषेवितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ १५
ततः प्रयाते कौन्तेये वनं मानुषवर्जितम् ।
शङ्खानां पटहानां च शब्दः समभवद्दिवि ॥ १६
पुष्पवर्षं चानुमहन्निपपात महीतले ।
मेघजालं च विततं छादयामास सर्वतः ॥ १७
सोतीत्य वनदुर्गाणि संनिकर्षे महागिरेः ।
शुशुभे हिमवत्पृष्ठे वसमानोर्जुनस्तदा ॥ १८
तत्रापश्यद्द्रुमान्फुल्लान्विहगैर्वल्गुनादितान् ।
नदीश्च विपुलावर्ता वैडूर्यविमलप्रभाः ॥ १९
हंसकारण्डवोद्गीताः सारसाभिरुतास्तथा ।
पुंस्कोकिलरुताश्चैव क्रौञ्चबर्हिणनादिताः ॥ २०
मनोहरवनोपेतास्तस्मिन्नतिरथोर्जुनः ।
पुण्यशीतामलजलाः पश्यन्प्रीतमनाभवत् ॥ २१
रमणीये वनोद्देशे रममाणोर्जुनस्तदा ।
तपस्युग्रे वर्तमान उग्रतेजा महामनाः ॥ २२
दर्भचीरं निवस्याथ दण्डाजिनविभूषितः ।
शीर्णं च पतितं भूमौ पर्णं समुपयुक्तवान् ॥ २३
पूर्णे पूर्णे त्रिरात्रे तु मासमेकं फलाशनः ।
द्विगुणेन हि कालेन द्वितीयं मासमत्ययात् ॥ २४
तृतीयमपि मासं स पक्षेणाहारमाचरन् ।
चतुर्थे त्वथ संप्राप्ते मासे भरतसत्तमः ॥ २५
वायुभक्षो महाबाहुरभवत्पाण्डुनन्दनः ।
ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बः पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठितः ॥ २६
सदोपस्पर्शनाच्चास्य बभूवुरमितौजसः ।
विद्युदम्भोरुहनिभा जटास्तस्य महात्मनः ॥ २७
ततो महर्षयः सर्वे जग्मुर्देवं पिनाकिनम् ।
निवेदयिषवः पार्थं तपस्युग्रे समास्थितम् ॥ २८
तं प्रणम्य महादेवं शशंसुः पार्थकर्म तत् ।
एष पार्थो महातेजा हिमवत्पृष्ठमास्थितः ॥ २९
उग्रे तपसि दुष्पारे स्थितो धूमाययन्दिशः ।
तस्य देवेश न वयं विद्मः सर्वे चिकीर्षितम् ॥ ३०
संतापयति नः सर्वानसौ साधु निवार्यताम् ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ३१
उमापतिर्भूतपतिर्वाक्यमेतदुवाच ह ।

महादेव उवाच ।

न वो विषादः कर्तव्यः फाल्गुनं प्रति सर्वशः ३२
शीघ्रं गच्छत संहृष्टा यथागतमतन्द्रिताः ।
अहमस्य विजानामि संकल्पं मनसि स्थितम् ॥ ३३
नास्य स्वर्गस्पृहा काचिन्नैश्वर्यस्य तथायुषः ।
यत्तस्य काङ्क्षितं सर्वं तत्करिष्येऽहमद्य वै ॥ ३४

वैशंपायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा शर्ववचनमृषयः सत्यवादिनः ।
प्रहृष्टमनसो जग्मुर्यथा स्वान्पुनरालयान् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कैरातपर्वणि मुनिशंकरसंवादे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

वैशंपायन उवाच ।

गतेषु तेषु सर्वेषु तपस्विषु महात्मसु ।
पिनाकपाणिर्भगवान्सर्वपापहरो हरः ॥ १
कैरातं वेषमास्थाय काञ्चनद्रुमसंनिभम् ।
विभ्राजमानो विपुलो गिरिर्मेरुरिवापरः ॥ २
श्रीमद्धनुरुपादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ।
निष्पपात महावेगो दहनो देहवानिव ॥ ३
देव्या सहोमया श्रीमान्समानव्रतवेषया ।
नानावेषधरैर्हृष्टैर्भूतैरनुगतस्तदा ॥ ४
किरातवेषसंच्छन्नः स्त्रीभिश्चापि सहस्रशः ।
अशोभत तदा राजन्स देशोतीव भारत ॥ ५
क्षणेन तद्वनं सर्वं निःशब्दमभवत्तदा ।
नादः प्रस्रवणानां च पक्षिणां चाप्युपारमत् ॥ ६

ऐन्द्रिः अर्जुनः ॥ १३ ॥ कण्टकितं कण्टकाक्रान्तम् ॥१४॥ वल्गु मधुरम् ॥१९॥ दर्भचीरं तृणमयं वासः । निवस्य परिधाय । समुपयुक्तवान् भुक्तवान् ॥ २३ ॥ द्विगुणेन षड्रात्रेण अत्ययात् अतिवाहितवान् ॥ २४ ॥ निरालम्बो निराश्रयः ॥ २६ ॥ धूमाययन् धूमवतीरिव कुर्वन् ॥ ३० ॥ संकल्पं मनोरथम् ॥ ३३ ॥ इत्यां० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

गतेष्विति ॥ १ ॥ भूतैः प्रमथाख्यैः स्वपार्षदैः ॥ ४ ॥

स संनिकर्षमागम्य पार्थस्याक्लिष्टकर्मणः ।
मूकं नाम दनोः पुत्रं ददर्शाद्भुतदर्शनम् ॥ ७
वाराहं रूपमास्थाय तर्कयन्तमिवार्जुनम् ।
हन्तुं परं दीप्यमानं तमुवाचाथ फाल्गुनः ॥ ८
गाण्डीवं धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ।
सज्यं धनुर्वरं कृत्वा ज्याघोषेण निनादयन् ॥ ९
यन्मां प्रार्थयसे हन्तुमनागसमिहागतम् ।
तस्मात्त्वां पूर्वमेवाहं नेताऽद्य यमसादनम् ॥ १०
दृष्ट्वा तं प्रहरिष्यन्तं फाल्गुनं दृढधन्विनम् ।
किरातरूपी सहसा वारयामास शंकरः ॥ ११
मयैष प्रार्थितः पूर्वमिन्द्रकीलसमप्रभः
अनादृत्य च तद्वाक्यं प्रजहाराथ फाल्गुनः ॥ १२
किरातश्च समं तस्मिन्नेकलक्ष्ये महाद्युतिः ।
प्रमुमोचाशनिप्रख्यं शरमग्निशिखोपमम् ॥ १३
तौ मुक्तौ सायकौ ताभ्यां समं तत्र निपेततुः ।
मूकस्य गात्रे विस्तीर्णे शैलसंहनने तदा ॥ १४
यथाशनेर्विनिर्घोषो वज्रस्येव च पर्वते ।
तथा तयोः संनिपातः शरयोरभवत्तदा ॥ १५
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्दीप्तास्यैः पन्नगैरिव ।
ममार राक्षसं रूपं भूयः कृत्वा विभीषणम् ॥ १६
स ददर्श ततो जिष्णुः पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
किरातवेशसंछन्नं स्त्रीसहायममित्रहा ॥ १७
तमब्रवीत्प्रीतमनाः कौन्तेयः प्रहसन्निव ।
को भवानटते शून्ये वने स्त्रीगणसंवृतः ॥ १८
न त्वमस्मिन्वने घोरे बिभेषि कनकप्रभ ।
किमर्थं च त्वया विद्धो वराहो मत्परिग्रहः॥ १९
मयाभिपन्नः पूर्वं हि राक्षसोऽयमिहागतः ।
कामात्परिभवाद्वापि न मे जीवन्विमोक्ष्यसे॥२०
न ह्येष मृगयाधर्मो यस्त्वयाद्य कृतो मयि ।
तेन त्वां भ्रंशयिष्यामि जीवितात्पर्वताश्रयम्॥२१
इत्युक्तः पाण्डवेयेन किरातः प्रहसन्निव ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा पाण्डवं सव्यसाचिनम्॥२२
न मत्कृते त्वया वीर भीः कार्या वनमन्तिकात् ।
इयं भूमिः सदास्माकमुचिता वसतां वने ॥ २३
त्वया तु दुष्करः कस्मादिह वासः प्ररोचितः ।
वयं तु बहुसत्त्वेऽस्मिन्निवसामस्तपोधन ॥ २४
भवांस्तु कृष्णवर्त्माभः सुकुमारः सुखोचितः ।
कथं शून्यमिमं देशमेकाकी विचरिष्यति ॥ २५

अर्जुन उवाच ।

गाण्डीवमाश्रयं कृत्वा नाराचांश्चाग्निसंनिभान् ।
निवसामि महारण्ये द्वितीय इव पावकिः ॥ २६
एष चापि मया जन्तुर्मृगरूपं समाश्रितः ।
राक्षसो निहतो घोरो हन्तुं मामिह चागतः ॥२७

किरात उवाच ।

मयैष धन्वनिर्मुक्तैस्ताडितः पूर्वमेव हि ।
बाणैरभिहतः शेते नीतश्च यमसादनम् ॥ २८
ममैष लक्ष्यभूतो हि मम पूर्वपरिग्रहः ।
ममैव च प्रहारेण जीविताद्व्यपरोपितः ॥ २९
दोषान्स्वान्नार्हसेऽन्यस्मै वक्तुं स्वबलदर्पितः ।
अवलिप्तोऽसि मन्दात्मन्न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥ ३०
स्थिरो भवस्व मोक्ष्यामि सायकानशनीनिव ।
घटस्व परया शक्त्या मुञ्च त्वमपि सायकान् ३१
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा किरातस्यार्जुनस्तदा ।
रोषमाहारयामास ताडयामास चेषुभिः ॥ ३२
ततो हृष्टेन मनसा प्रतिजग्राह सायकान् ।
भूयो भूय इति प्राह मन्दमन्देत्युवाच ह ॥ ३३
प्रहरस्व शरानेतान्नाराचान्मर्मभेदिनः ।
इत्युक्तो बाणवर्षं स मुमोच सहसार्जुनः ॥ ३४
ततस्तौ तत्र संरब्धौ राजमानौ मुहुर्मुहुः ।
शरैराशीविषाकारैस्ततक्षाते परस्परम् ॥ ३५
ततोऽर्जुनः शरवर्षं किराते समवासृजत् ।
तत्प्रसन्नेन मनसा प्रतिजग्राह शंकरः ॥ ३६
मुहूर्तं शरवर्षं तत्प्रतिगृह्य पिनाकधृक् ।
अक्षतेन शरीरेण तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ३७
स दृष्ट्वा बाणवर्षं तु मोघीभूतं धनंजयः ।
परमं विस्मयं चक्रे साधु साध्विति चाब्रवीत्॥३८

---

अर्जुनं हन्तुं तर्कयन्तं इच्छन्तं । क्रोधेन दीप्यमानमिव ॥ ८ ॥ नेता नेष्यामि ॥ १० ॥ इन्द्रकीलः माहेन्द्रमाणमयः पर्वतः ॥ १२ ॥ समं एककालम् ॥१३॥ शैलसंहनने शैलवद्दृढे ॥ १४ ॥ अशनिर्मेघजं वज्रं । वज्रं इन्द्रप्रहरणं । संनिपातो योगः ॥ १५ ॥ स दानवः राक्षसमिव ॥ १६ ॥ अभिपन्नः परिगृहीतः । कामात् यदृच्छातः । परिभवात् ममाभिभवाय ॥ २० ॥ मत्कृते मन्निमित्तं । वनमन्तिकात् वनस्य समीपे ॥ २३ ॥ प्ररोचितः स्वीकृतः ॥ २४ ॥ पावकिः स्वामी कार्तिकेयः ॥ २६ ॥ दोषान्मृगयाधर्मातिक्रमरूपान् ॥ ३० ॥ स्थिरः सन् भवस्व प्राप्नुहि ॥ ३१ ॥ नाराचान् शरजातिभेदान् ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच—

एष चापि मया जंतुर्मृगरूपं समाश्रितः ।
राक्षसो निहतो घोरो हन्तुं मामिह चागतः ॥

किरात उवाच—

मयैष धन्वनिर्मुक्तैस्ताडितः पूर्वमेव हि ।
बाणैरभिहतः शेते नीतश्च यमसादनम् ॥

—वनपर्व अ० ३९ पृ. ७२

अहोयं सुकुमाराङ्गो हिमवच्छिखराश्रयः ।
गाण्डीवमुक्तान्नाराचान्प्रतिगृह्णात्यविह्वलः ॥ ३९
कोयं देवो भवेत्साक्षाद्रुद्रो यक्षः सुरोऽसुरः ।
विद्यते हि गिरिश्रेष्ठे त्रिदशानां समागमः ॥ ४०
न हि मद्बाणजालानामुत्सृष्टानां सहस्रशः ।
शक्तोन्यः सहितुं वेगमृते देवं पिनाकिनम् ॥ ४१
देवो वा यदि वा यक्षो रुद्रादन्यो व्यवस्थितः ।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ ४२
ततो हृष्टमना जिष्णुर्नाराचान्मर्मभेदिनः ।
व्यसृजच्छतधा राजन्मयूखानिव भास्करः ॥ ४३
तान्प्रसन्नेन मनसा भगवाँल्लोकभावनः ।
शूलपाणिः प्रत्यगृह्णाच्छिलावर्षमिवाचलः ॥ ४४
क्षणेन क्षीणबाणोथ संवृत्तः फाल्गुनस्तदा ।
भीश्चैनमाविशत्तीव्रा तं दृष्ट्वा शरसंक्षयम् ॥ ४५
चिन्तयामास जिष्णुस्तु भगवन्तं हुताशनम् ।
पुरस्तादक्षयौ दत्तौ तूणौ येनास्य खाण्डवे ॥ ४६
किं नु मोक्ष्यामि धनुषा यन्मे बाणाः क्षयं गताः ।
अयं च पुरुषः कोपि बाणान्ग्रसति सर्वशः ॥ ४७
हत्वा चैनं धनुष्कोट्या शूलाग्रेणेव कुञ्जरम् ।
नयामि दण्डधारस्य यमस्य सदनं प्रति ॥ ४८
प्रगृह्याथ धनुष्कोट्या ज्यापाशेनावकृष्य च ।
मुष्टिभिश्चापि हतवान्वज्रकल्पैर्महाद्युतिः ॥ ४९
संप्रयुद्धो धनुष्कोट्या कौन्तेयः परवीरहा ।
तदप्यस्य धनुर्दिव्यं जग्राह गिरिगोचरः ॥ ५०
ततोर्जुनो ग्रस्तधनुः खड्गपाणिरतिष्ठत ।
युद्धस्यान्तमभीप्सन्वै वेगेनाभिजगाम तम् ॥ ५१
तस्य मूर्ध्नि शितं खड्गमसक्तं पर्वतेष्वपि ।
मुमोच भुजवीर्येण विक्रम्य कुरुनन्दनः ॥ ५२
तस्य मूर्धानमासाद्य पफालासिवरो हि सः ।
ततो वृक्षैः शिलाभिश्च योधयामास फाल्गुनः ॥ ५३
तदा वृक्षान्महाकायः प्रत्यगृह्णादथो शिलाः ।
किरातरूपी भगवांस्ततः पार्थो महाबलः ॥ ५४
मुष्टिभिर्वज्रसंकाशैर्धूममुत्पादयन्मुखे ।
प्रजहार दुराधर्षे किरातसमरूपिणि ॥ ५५

ततः शक्राशनिसमैर्मुष्टिभिर्भृशदारुणैः ।
किरातरूपी भगवानर्दयामास फाल्गुनम् ॥ ५६
ततश्चटचटाशब्दः सुघोरः समपद्यत ।
पाण्डवस्य च मुष्टीनां किरातस्य च युध्यतः ॥ ५७
सुमुहूर्तं तु तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
भुजप्रहारसंयुक्तं वृत्रवासवयोरिव ॥ ५८
जघानाथ ततो जिष्णुः किरातमुरसा बली ।
पाण्डवं च विचेष्टं तं किरातोप्यहनद्बली ॥ ५९
तयोर्भुजविनिष्पेषात्संघर्षेणोरसोस्तथा ।
समजायत गात्रेषु पावकोङ्गारधूमवान् ॥ ६०
तत एनं महादेवः पीड्य गात्रैः सुपीडितम् ।
तेजसा व्याक्रमद्रोषाच्चेतस्तस्य विमोहयन् ॥ ६१
ततोभिपीडितैर्गात्रैः पिण्डीकृत इवाबभौ ।
फाल्गुनो गात्रसंरुद्धो देवदेवेन भारत ॥ ६२
निरुच्छ्वासोभवच्चैव संनिरुद्धो महात्मना ।
पपात भूम्यां निश्चेष्टो गतसत्त्व इवाभवत ॥ ६३
स मुहूर्तं तथा भूत्वा सचेताः पुनरुत्थितः ।
रुधिरेणाप्लुताङ्गस्तु पाण्डवो भृशदुःखितः ॥ ६४
शरण्यं शरणं गत्वा भगवन्तं पिनाकिनम् ।
मृन्मयं स्थण्डिलं कृत्वा माल्येनापूजयद्भवम् ॥ ६५
तच्च माल्यं तदा पार्थः किरातशिरसि स्थितम् ।
अपश्यत्पाण्डवश्रेष्ठो हर्षेण प्रकृतिं गतः ॥ ६६
पपात पादयोस्तस्य ततः प्रीतोभवद्भवः ।
उवाच चैनं वचसा मेघगम्भीरगीर्हरः ।
जातविस्मयमालोक्य ततः क्षीणाङ्गसंहितम् ॥ ६७

भव उवाच ।

भो भो फाल्गुन तुष्टोस्मि कर्मणाऽप्रतिमेन ते ।
शौर्येणानेन धृत्या च क्षत्रियो नास्ति ते समः ॥ ६८
समं तेजश्च वीर्यं च ममाद्य तव चानघ ।
प्रीतस्तेहं महाबाहो पश्य मां भरतर्षभ ॥ ६९
ददामि ते विशालाक्ष चक्षुः पूर्वऋषिर्भवान् ।
विजेष्यसि रणे शत्रूनपि सर्वान्दिवौकसः ॥ ७०
प्रीत्या च तेहं दास्यामि यदस्त्रमनिवारितम् ।
त्वं हि शक्तो मदीयं तदस्त्रं धारयितुं क्षणात् ॥ ७१

---

अहोयमिति संधिरार्षः ॥ ३९ ॥ सहितुं सोढुं ऋते विना ॥ ४१ ॥ संप्रयुद्धः सम्यक् प्रयुद्धं प्रहृतं प्रहारो यस्य सः ॥ ५० ॥ असक्तं अकुण्ठितम् ॥ ५२ ॥ पफाल विशीर्णः ॥ ५३ ॥ धूमं क्रोधावेशेन ॥ ५५ ॥ पीड्य निपीड्य ॥ ६१ ॥ गात्रेषु संरुद्धश्चलनहीनः ॥ ६२ ॥ प्रकृतिं स्वास्थ्यम् ॥ ६६ ॥ चक्षुः दिव्यज्ञानम् ॥ ७० ॥

वैशंपायन उवाच ।
ततो देवं महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम् ।
ददर्श फाल्गुनस्तत्र सह देव्या महाद्युतिम् ॥ ७२
स जानुभ्यां महीं गत्वा शिरसा प्रणिपत्य च ।
प्रसादयामास हरं पार्थः परपुरंजयः ॥ ७३
अर्जुन उवाच ।
कपर्दिन्सर्वदेवेश भगनेत्रनिपातन ।
देवदेव महादेव नीलग्रीव जटाधर ॥ ७४
कारणानां च परमं जाने त्वां त्र्यम्बकं विभुम् ।
देवानां च गतिं देवं त्वत्प्रसूतमिदं जगत् ॥ ७५
अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः सदेवासुरमानुषैः ।
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ॥ ७६
दक्षयज्ञविनाशाय हरिरुद्राय वै नमः ।
ललाटाक्षाय शर्वाय मीढुषे शूलपाणये ॥ ७७
पिनाकगोप्त्रे सूर्याय मार्जालीयाय वेधसे ।
प्रसादये त्वां भगवन्सर्वभूतमहेश्वर ॥ ७८
गणेशं जगतः शंभुं लोककारणकारणम् ।
प्रधानपुरुषातीतं परं सूक्ष्मतरं हरम् ॥ ७९
व्यतिक्रमं मे भगवन्क्षन्तुमर्हसि शंकर ।
भगवन्दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तोस्मीमं महागिरिम् ॥ ८०
दयितं तव देवेश तापसालयमुत्तमम् ।
प्रसादये त्वां भगवन्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ८१
न मे स्यादपराधोयं महादेवातिसाहसात् ।
कृतो मयायमज्ञानाद्विमर्दो यस्त्वया सह ।
शरणं प्रतिपन्नाय तत्क्षमस्वाद्य शंकर ॥ ८२
वैशंपायन उवाच ।
तमुवाच महातेजाः प्रहस्य वृषभध्वजः ।
प्रगृह्य रुचिरं बाहुं क्षान्तमित्येव फाल्गुनम् ॥ ८३
परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रीतात्मा भगवान्हरः ।
पुनः पार्थं सान्त्वपूर्वमुवाच वृषभध्वजः ॥ ८४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कैरातपर्वणि महादेवस्तवे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

देवदेव उवाच ।
नरस्त्वं पूर्वदेहे वै नारायणसहायवान् ।
बदर्यां तप्तवानुग्रं तपो वर्षायुतान्बहून् ॥ १
त्वयि वा परमं तेजो विष्णौ वा पुरुषोत्तम ।
युवाभ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां तेजसा धार्यते जगत् ॥ २
शक्राभिषेके सुमहद्धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
प्रगृह्य दानवाः शस्तास्त्वया कृष्णेन च प्रभो ॥ ३
तदेतदेव गाण्डीवं तव पार्थ करोचितम् ।
मायामास्थाय यद्ग्रस्तं मया पुरुषसत्तम ॥ ४
तूणौ चाप्यक्षयौ भूयस्तव पार्थ यथोचितौ ।
भविष्यति शरीरं च नीरुजं कुरुनन्दन ॥ ५
प्रीतिमानस्मि ते पार्थ भवान्सत्यपराक्रमः ।
गृहाण वरमस्मत्तः काङ्क्षितं पुरुषोत्तम ॥ ६
न त्वया पुरुषः कश्चित्पुमान्मर्त्येषु मानद ।
दिवि वा वर्तते क्षत्रं त्वत्प्रधानमरिंदम ॥ ७
अर्जुन उवाच ।
भगवन्ददासि चेन्मह्यं कामं प्रीत्या वृषध्वज ।
कामये दिव्यमस्त्रं तद्घोरं पाशुपतं प्रभो ॥ ८
यत्तद्ब्रह्मशिरो नाम रौद्रं भीमपराक्रमम् ।
युगान्ते दारुणे प्राप्ते कृत्स्नं संहरते जगत् ॥ ९
कर्णभीष्मकृपद्रोणैर्भविता तु महाहवः ।
त्वत्प्रसादान्महादेव जयेयं तान्यथा युधि ॥ १०
दहेयं येन संग्रामे दानवान्राक्षसांस्तथा ।
भूतानि च पिशाचांश्च गन्धर्वानथ पन्नगान् ॥ ११
यस्मिञ्शूलसहस्राणि गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ।
शराश्चाशीविषाकाराः संभवन्त्यनुमन्त्रिते ॥ १२
युध्येयं येन भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च ।
सूतपुत्रेण च रणे नित्यं कटुकभाषिणा ॥ १३

---

कपर्दिन्नित्यादि नामानि शिवसहस्रनामव्याख्यायां व्याख्यास्यन्ते ॥ ७४ ॥ मीढुषे वर्षकाय ॥ ७७ ॥ मार्जालीयाय किराताय शुद्धदेहाय वा । 'मार्जालीयः स्मृतः शूद्रे बिडाले कायशोधने ' इति विश्वः ॥७८ ॥ इत्या० नै० भारतभा० एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

४०

नरस्त्वमिति ॥ १ ॥ शस्ताः मारिताः ॥ ३ ॥ त्वया पुरुष इति पाठे समं इत्यध्याहारः ॥ ४ ॥ त्वत्प्रधानं त्वमेव श्रेष्ठो यस्मिन् क्षत्रे ॥ ७ ॥ कामं वरम् ॥ ८ ॥

एष मे प्रथमः कामो भगवन्भगनेत्रहन्।
त्वत्प्रसादाद्विनिर्वृत्तः समर्थः स्यामहं यथा ॥ १४

भव उवाच।

ददामि तेऽस्त्रं दयितमहं पाशुपतं विभो।
समर्थो धारणे मोक्षे संहारे चासि पाण्डव ॥ १५
नैतद्वेद महेन्द्रोऽपि न यमो न च यक्षराट्।
वरुणोऽप्यथवा वायुः कुतो वेत्स्यन्ति मानवाः॥१६
न त्वेतत्सहसा पार्थ मोक्तव्यं पुरुषे क्वचित्।
जगद्विनाशयेत्सर्वमल्पतेजसि पातितम् ॥ १७
अवध्यो नाम नास्त्यत्र त्रैलोक्ये सचराचरे
मनसा चक्षुषा वाचा धनुषा च निपातयेत् ॥ १८

वैशंपायन उवाच।

तच्छ्रुत्वा त्वरितः पार्थः शुचिर्भूत्वा समाहितः।
उपसंगम्य विश्वेशमधीष्वेत्यथ सोऽब्रवीत् ॥ १९
ततस्त्वध्यापयामास सरहस्यनिवर्तनम्।
तदस्त्रं पाण्डवश्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवान्तकम् ॥ २०
उपतस्थे च तत्पार्थं यथा त्र्यक्षमुमापतिम्।
प्रतिजग्राह तच्चापि प्रीतिमानर्जुनस्तदा ॥ २१
ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा।
ससागरवनोद्देशा सग्रामनगराकरा ॥ २२
शङ्खदुन्दुभिघोषाश्च भेरीणां च सहस्रशः।
तस्मिन्मुहूर्ते संप्राप्ते निर्घाताश्चापतन्मुहुः ॥ २३
अथास्त्रं जाज्वलद्धोरं पाण्डवस्यामितौजसः।
मूर्तिमद्वै स्थितं पार्श्वे ददृशुर्देवदानवाः ॥ २४
स्पृष्टस्य त्र्यम्बकेणाथ फाल्गुनस्यामितौजसः।
यत्किंचिदशुभं देहे तत्सर्वं नाशमीयिवत् ॥ २५
स्वर्गं गच्छेत्यनुज्ञातस्त्र्यम्बकेण तदार्जुनः।
प्रणम्य शिरसा राजन्प्राञ्जलिर्देवमैक्षत ॥ २६

ततः प्रभुस्त्रिदिवनिवासिनां वशी
महामतिर्गिरिश उमापतिः शिवः।
धनुर्महद्दितिजपिशाचसूदनं
ददौ भवः पुरुषवराय गाण्डिवम् ॥ २७
ततः शुभं गिरिवरमीश्वरस्तदा
सहोमया सिततटसानुकन्दरम्।
विहाय तं पतगमहर्षिसेवितं
जगाम खं पुरुषवरस्य पश्यतः ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कैरातपर्वणि शिवप्रस्थाने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

वैशंपायन उवाच।

तस्य संपश्यतस्त्वेव पिनाकी वृषभध्वजः।
जगामादर्शनं भानुर्लोकस्येवास्तमीयिवान् ॥
ततोऽर्जुनः परं चक्रे विस्मयं परवीरहा।
मया साक्षान्महादेवो दृष्ट इत्येव भारत ॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मया त्र्यम्बको हरः
पिनाकी वरदो रूपी दृष्टः स्पृष्टश्च पाणिना ॥
कृतार्थं चावगच्छामि परमात्मानमाहवे।
शत्रूंश्च विजितान्सर्वान्निर्वृत्तं च प्रयोजनम् ॥
इत्येवं चिन्तयानस्य पार्थस्यामिततेजसः।
ततो वैदूर्यवर्णाभो भासयन्सर्वतो दिशः।
यादोगणवृतः श्रीमानाजगाम जलेश्वरः ॥
नागैर्नदैर्नदीभिश्च दैत्यैः साध्यैश्च दैवतैः।
वरुणो यादसां भर्ता वशी तं देशमागमत्।
अथ जाम्बूनदवपुर्विमानेन महार्चिषा।
कुबेरः समनुप्राप्तो यक्षैरनुगतः प्रभुः ॥ ७
विद्योतयन्निवाकाशमद्भुतोपमदर्शनः।
धनानामीश्वरः श्रीमानर्जुनं द्रष्टुमागतः ॥ ८
तथा लोकान्तकृच्छ्रीमान्यमः साक्षात्प्रतापवान्।
मर्त्यमूर्तिधरैः सार्धं पितृभिर्लोकभावनैः ॥ ९

विनिर्वृत्तः विशेषेण कृतकृत्यः ॥ १४ ॥ संहारे निवर्तने ॥ १५ ॥ मनसा संकल्पमात्रेण निपातयेत् शत्रुं धनुषेति बाणप्रयोगेण ॥ १८ ॥ अधीष्व अध्यापय ॥१९॥ उपतस्थे कर्मव्यतिहारे तङ्। पार्थः अस्त्रं प्रत्युपनत एवमस्त्रं पार्थं प्रतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ निर्घाता उत्पाताः ॥ २३ ॥ वशी वश इच्छा तद्वान् तज्जयीत्यर्थः ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नै० भारतभा० चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

तस्येति। अस्तं स्वस्थानं अदर्शनं च ॥१॥ परं अत्यन्तं कृतार्थं कृतकृत्यं निर्वृत्तं निष्पन्नम् ॥ ४ ॥ वैदूर्यं रत्नविशेषः यादांसि जलजन्तवस्तेषां गणः ॥ ५ ॥ नागैः सर्पैः ॥ ६ ॥

दण्डपाणिरचिन्त्यात्मा सर्वभूतविनाशकृत् ।
वैवस्वतो धर्मराजो विमानेनावभासयन् ॥ १०
त्रीँल्लोकान्गुह्यकांश्चैव गन्धर्वांश्च सपन्नगान् ।
द्वितीय इव मार्तण्डो युगान्ते समुपस्थिते ॥ ११
ते भानुमन्ति चित्राणि शिखराणि महागिरेः ।
समास्थायार्जुनं तत्र ददृशुस्तपसान्वितम् ॥ १२
ततो मुहूर्ताद्भगवानैरावतशिरोगतः ।
आजगाम सहेन्द्राण्या शक्रः सुरगणैर्वृतः ॥ १३
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
शुशुभे तारकाराजः सितमभ्रमिव स्थितः ॥ १४
संस्तूयमानो गन्धर्वैरृषिभिश्च तपोधनैः ।
शृङ्गं गिरेः समासाद्य तस्थौ सूर्य इवोदितः ॥१५
अथ मेघस्वनो धीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ।
यमः परमधर्मज्ञो दक्षिणां दिशमास्थितः ॥ १६
अर्जुनार्जुन पश्यास्माँल्लोकपालान्समागतान् ।
दृष्टिं ते वितरामोद्य भवानर्हति दर्शनम् ॥ १७
पूर्वर्षिरमितात्मा त्वं नरो नाम महाबलः ।
नियोगाद्ब्रह्मणस्तात मर्त्यतां समुपागतः ॥ १८
त्वया च वसुसंभूतो महावीर्यः पितामहः ।
भीष्मः परमधर्मात्मा संसाध्यश्च रणेऽनघ ॥ १९
क्षत्रं चाग्निसमस्पर्शं भारद्वाजेन रक्षितम् ।
दानवाश्च महावीर्या ये मनुष्यत्वमागताः ॥ २०
निवातकवचाश्चैव दानवाः कुरुनन्दन ।
पितुर्ममांशो देवस्य सर्वलोकप्रतापिनः ॥ २१
कर्णश्च सुमहावीर्यस्त्वया वध्यो धनंजय ।
अंशाश्च क्षितिसंप्राप्ता देवदानवरक्षसाम् ॥ २२
त्वया निपातिता युद्धे स्वकर्मफलनिर्जिताम् ।
गतिं प्राप्स्यन्ति कौन्तेय यथास्वमरिकर्षण॥२३
अक्षया तव कीर्तिश्च लोके स्थास्यति फाल्गुन ।
त्वया साक्षान्महादेवस्तोषितो हि महामृधे ॥२४
लघ्वी वसुमती चापि कर्तव्या विष्णुना सह ।
गृहाणास्त्रं महाबाहो दण्डमप्रतिवारणम् ।
अनेनास्त्रेण सुमहत्त्वं हि कर्म करिष्यसि ॥ २५

वैशंपायन उवाच ।

प्रतिजग्राह तत्पार्थो विधिवत्कुरुनन्दनः ।
समन्त्रं सोपचारं च समोक्षविनिवर्तनम् ॥ २६
ततो जलधरश्यामो वरुणो यादसां पतिः ।
पश्चिमां दिशमास्थाय गिरमुच्चारयन्प्रभुः ॥ २७
पार्थ क्षत्रियमुख्यस्त्वं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ।
पश्य मां पृथुताम्राक्ष वरुणोस्मि जलेश्वर ॥ २८
मया समुद्यतान्पाशान्वारुणाननिवारितान् ।
प्रतिगृह्णीष्व कौन्तेय सरहस्यनिवर्तनम् ॥ २९
एभिस्तदा मया वीर संग्रामे तारकामये ।
दैतेयानां सहस्राणि संयतानि महात्मनाम् ॥ ३०
तस्मादिमान्महासत्त्व मत्प्रसादसमुत्थितान् ।
गृहाण न हि ते मुच्येदन्तकोप्याततायिनः ॥ ३१
अनेन त्वं यदास्त्रेण संग्रामे विचरिष्यसि ।
तदा निःक्षत्रिया भूमिर्भविष्यति न संशयः ॥ ३२

वैशंपायन उवाच ।

ततः कैलासनिलयो धनाध्यक्षोऽभ्यभाषत ।
दत्तेष्वस्त्रेषु दिव्येषु वरुणेन यमेन च ॥ ३३
प्रीतोहमपि ते प्राज्ञ पाण्डवेय महाबल ।
त्वया सह समागम्य अजितेन तथैव च ॥ ३४
सव्यसाचिन्महाबाहो पूर्वदेव सनातन ।
सहास्माभिर्भवाञ्श्रान्तः पुराकल्पेषु नित्यशः॥३५
दर्शनात्ते त्विदं दिव्यं प्रदिशामि नरर्षभ ।
अमनुष्यान्महाबाहो दुर्जयानपि जेष्यसि ॥ ३६
मत्तश्चैव भवानाशु गृह्णात्वस्त्रमनुत्तमम् ।
अनेन त्वमनीकानि धार्तराष्ट्रस्य धक्ष्यसि ॥ ३७
तदिदं प्रतिगृह्णीष्व अन्तर्धानं प्रियं मम ।
ओजस्तेजोद्युतिकरं प्रस्वापनमरातिनुत् ॥ ३८
महात्मना शंकरेण त्रिपुरं निहतं यदा ।
तदैतदस्त्रं निर्मुक्तं येन दग्धा महासुराः ॥ ३९
त्वदर्थमुद्यतं चेदं मया सत्यपराक्रम ।
त्वमर्हो धारणे चास्य मेरुप्रतिमगौरव ॥ ४०
ततोर्जुनो महाबाहुर्विधिवत्कुरुनन्दनः ।
कौबेरमधिजग्राह दिव्यमस्त्रं महाबलः ॥ ४१
ततोब्रवीद्देवराजः पार्थमक्लिष्टकारिणम् ।
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा मेघदुन्दुभिनिःस्वनः॥४२

---

भानुमन्ति दीप्तिमन्ति ॥ १२ ॥ वितरामः यच्छामः ॥१७॥ संसाध्यः जेतव्यः ॥१९॥ मम पितुः सूर्यस्य ॥२१॥ मृधे संग्रामे ॥२४॥ लघ्वी भारशून्या॥२५॥ सोपचारं सेतिकर्तव्यताकम् ॥ २६ ॥ संयतानि बद्धानि ॥ ३० ॥ अजितेन कृष्णेन अथा तथैव प्रीतोस्मि ॥ ३४ ॥ पूर्वदेव नरनारायणसख ॥ ३५ ॥ उद्यतं उपस्थितम् ॥ ४० ॥

कुन्तीमातर्महाबाहो त्वमीशानः पुरातनः ।
परां सिद्धिमनुप्राप्तः साक्षाद्देवगतिं गतः ॥ ४३
देवकार्यं तु सुमहत्त्वया कार्यमरिंदम ।
आरोढव्यस्त्वया स्वर्गः सज्जीभव महाद्युते ॥ ४४
रथो मातलिसंयुक्त आगन्ता त्वत्कृते महीम् ।
तत्र तेहं प्रदास्यामि दिव्यान्यस्त्राणि कौरव ॥४५
तान्दृष्ट्वा लोकपालांस्तु समेतान्गिरिमूर्धनि ।
जगाम विस्मयं धीमान्कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ४६
ततोर्जुनो महातेजा लोकपालान्समागतान् ।
पूजयामास विधिवद्वाग्भिरद्भिः फलैरपि ॥ ४७
ततः प्रतिययुर्देवाः प्रतिमान्य धनंजयम् ।
यथागतेन विबुधाः सर्वे काममनोजवाः ॥ ४८
ततोर्जुनो मुदं लेभे लब्धास्त्रः पुरुषर्षभः ।
कृतार्थमथ चात्मानं स मेने पूर्णमानसम् ॥ ४९

इति श्रीमहाभा० आरण्य० कैरातप० देवप्रस्थाने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

कैरातपर्व समाप्तम् ।

## इन्द्रलोकाभिगमनपर्व ।

## ४२

वैशंपायन उवाच ।
गतेषु लोकपालेषु पार्थः शत्रुनिबर्हणः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र देवराजरथं प्रति ॥ १
ततश्चिन्तयमानस्य गुडाकेशस्य धीमतः ।
रथो मातलिसंयुक्त आजगाम महाप्रभः ॥ २
नभो वितिमिरं कुर्वञ्जलदान्पाटयन्निव ।
दिशः संपूरयन्नादैर्महामेघरवोपमैः ॥ ३
असयः शक्तयो भीमा गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ।
दिव्यप्रभावाः प्रासाश्च विद्युतश्च महाप्रभाः ॥ ४
तथैवाशनयश्चैव चक्रयुक्तास्तुलागुडाः ।
वायुस्फोटाः सनिर्घाता महामेघस्वनास्तथा ॥ ५
तत्र नागा महाकाया ज्वलितास्याः सुदारुणाः ।
सिताभ्रकूटप्रतिमाः संहताश्च तथोपलाः ॥ ६
दशवाजिसहस्राणि हरीणां वातरंहसाम् ।
वहन्ति यं नेत्रमुषं दिव्यं मायामयं रथम् ॥ ७
तत्रापश्यन्महानीलं वैजयन्तं महाप्रभम् ।
ध्वजमिन्दीवरश्यामं वंशं कनकभूषणम् ॥ ८
तस्मिन्रथे स्थितं सूतं तप्तहेमविभूषितम् ।
दृष्ट्वा पार्थो महाबाहुर्देवमेवान्वतर्कयत् ॥ ९
तथा तर्कयतस्तस्य फाल्गुनस्याथ मातलिः ।
संनतःप्रस्थितो भूत्वा वाक्यमर्जुनमब्रवीत् ॥ १०
मातलिरुवाच ।
भो भो शक्रात्मज श्रीमाञ्छक्रस्त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
आरोहतु भवाञ्छीघ्रं रथमिन्द्रस्य संमतम् ॥ ११
आह माममरश्रेष्ठः पिता तव शतक्रतुः ।
कुन्तीसुतमिह प्राप्तं पश्यन्तु त्रिदशालयाः ॥ १२
एष शक्रः परिवृतो देवैर्ऋषिगणैस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च त्वां दिदृक्षुः प्रतीक्षते ॥ १३
अस्माल्लोकाद्देवलोकं पाकशासनशासनात् ।
आरोह त्वं मया सार्धं लब्धास्त्रः पुनरेष्यसि ॥१४
अर्जुन उवाच ।
मातले गच्छ शीघ्रं त्वमारोहस्व रथोत्तमम् ।
राजसूयाश्वमेधानां शतैरपि सुदुर्लभम् ॥ १५
पार्थिवैः सुमहाभागैर्यज्वाभिर्भूरिदक्षिणैः ।
दैवतैर्वा समारोढुं दानवैर्वा रथोत्तमम् ॥ १६

देवगतिं देवानां परायणत्वम् ॥ ४३ ॥ आगन्ता आयास्यति ॥ ४५ ॥ इत्यारण्यके प० नै० भा० एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१ ॥

---

४२

गतेष्विति ॥ १ ॥ पाटयन् द्विधाकुर्वन् ॥ ३ ॥ तुलागुडाः भाण्डगोलकाः, भाण्डानि तु 'नालबन्दूक' इत्यादि म्लेच्छभाषया प्रसिद्धानि आग्नेयौषधबलेन पाषाणगोलकादिनिक्षेपपात्राणि । वायुस्फोटाः वेगवशाद्वायुं जनयन्तः सनिर्घाता अशनिध्वनियुक्ताश्च महामेघस्वनाः ॥ ५ ॥ 'त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णाभानि यस्य तु । हरिः स वर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेयसंनिभः' । वातरंहसां हरीणां वाजिनां सहस्राणीत्येकदेशान्वयः । नेत्रमुषं दृष्टिचोरम् ॥ ७ ॥ वैजयन्तं नाम्ना देवेन्द्रध्वजम् ॥ ८ ॥

नातप्ततपसा शक्य एष दिव्यो महारथः ।
द्रष्टुं वाप्यथवा स्प्रष्टुमारोढुं कुत एव च ॥ १७
त्वयि प्रतिष्ठिते साधो रथस्थे स्थिरवाजिनि ।
पश्चादहमथारोक्ष्ये सुकृती सत्पथं यथा ॥ १८
वैशंपायन उवाच ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मातलिः शक्रसारथिः ।
आरुरोह रथं शीघ्रं हयान्येमे च रश्मिभिः ॥ १९
ततोऽर्जुनो हृष्टमना गङ्गायामाप्लुतः शुचिः ।
जजाप जप्यं कौन्तेयो विधिवत्कुरुनन्दनः ॥ २०
ततः पितॄन्यथान्यायं तर्पयित्वा यथाविधि ।
मन्दरं शैलराजं तमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २१
साधूनां पुण्यशीलानां मुनीनां पुण्यकर्मणाम् ।
त्वं सदा संश्रयः शैल स्वर्गमार्गाभिकाङ्क्षिणाम् २२
त्वत्प्रसादात्सदा शैल ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
स्वर्गं प्राप्ताश्चरन्ति स्म देवैः सह गतव्यथाः ॥२३
अद्रिराज महाशैल मुनिसंश्रय तीर्थवन् ।
गच्छाम्यामन्त्रयित्वा त्वां सुखमस्म्युषितस्त्वयि
तव सानूनि कुञ्जाश्च नद्यः प्रस्रवणानि च ।
तीर्थानि च सुपुण्यानि मया दृष्टान्यनेकशः ॥ २५
फलानि च सुगन्धीनि भक्षितानि ततस्ततः ।
सुसुगन्धाश्च वार्योघास्त्वच्छरीरविनिःसृताः ॥२६
अमृतास्वादनीया मे पीताः प्रस्रवणोदकाः ।
शिशुर्यथा पितुरङ्के सुसुखं वर्तते नग ॥ २७
तथा तवाङ्के ललितं शैलराज मया प्रभो ।
अप्सरोगणसंकीर्णे ब्रह्मघोषानुनादिते ॥ २८
सुखमस्म्युषितः शैल तव सानुषु नित्यदा ।
एवमुक्त्वार्जुनः शैलमामन्त्र्य परवीरहा ॥ २९
आरुरोह रथं दिव्यं द्योतयन्निव भास्करः ।
स तेनादित्यरूपेण दिव्येनाद्भुतकर्मणा ॥ ३०
ऊर्ध्वमाचक्रमे धीमान्प्रहृष्टः कुरुनन्दनः ।
सोऽदर्शनपथं यातो मर्त्यानां धर्मचारिणाम् ॥ ३१
ददर्शाद्भुतरूपाणि विमानानि सहस्रशः ।
न तत्र सूर्यः सोमो वा द्योतते न च पावकः ॥३२
स्वयैव प्रभया तत्र द्योतन्ते पुण्यलब्धया ।
तारारूपाणि यानीह दृश्यन्ते द्युतिमन्ति वै ॥ ३३
दीपवद्विप्रकृष्टत्वात्तनूनि सुमहान्त्यपि ।
तानि तत्र प्रभास्वन्ति रूपवन्ति च पाण्डवः ॥३४
ददर्श स्वेषु धिष्ण्येषु दीप्तिमन्तः स्वयार्चिषा ।
तत्र राजर्षयः सिद्धा वीराश्च निहता युधि ॥ ३५
तपसा च जितं स्वर्गं संपेतुः शतसङ्घशः ।
गन्धर्वाणां सहस्राणि सूर्यज्वलिततेजसाम् ॥ ३६
गुह्यकानामृषीणां च तथैवाप्सरसां गणान् ।
लोकानात्मप्रभान्पश्यन्फाल्गुनो विस्मयान्वितः ॥
पप्रच्छ मातलिं प्रीत्या स चाप्येनमुवाच ह ।
एते सुकृतिनः पार्थ स्वेषु धिष्ण्येष्ववस्थिताः ॥ ३८
तान्दृष्टवानसि विभो तारारूपाणि भूतले ।
ततोऽपश्यत्स्थितं द्वारि शुभं वैजयिनं गजम् ॥३९
ऐरावतं चतुर्दन्तं कैलासमिव शृङ्गिणम्
स सिद्धमार्गमाक्रम्य कुरुपाण्डवसत्तमः ॥ ४०
व्यरोचत यथापूर्वं मांधाता पार्थिवोत्तमः ।
अभिचक्राम लोकान्स राज्ञां राजीवलोचनः ४१
एवं स संक्रमंस्तत्र स्वर्गलोके महायशाः ।
ततो ददर्श शक्रस्य पुरींताममरावतीम् ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि इन्द्रलोकाभिगमनपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२

## ४३

वैशंपायन उवाच ।
ददर्श स पुरीं रम्यां सिद्धचारणसेविताम् ।
सर्वर्तुकुसुमैः पुण्यैः पादपैरुपशोभिताम् ॥ १
तत्र सौगन्धिकानां च पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम् ।
उद्वीज्यमानो मिश्रेण वायुना पुण्यगन्धिना ॥ २

---

येमे नियमितवान् ॥ १९ ॥ आप्लुतः स्नातः ॥ २० ॥ ललितं क्रीडितम् ॥ २८ ॥ विप्रकृष्टत्वात् दूरत्वात् । सुमहान्त्यपि तनूनि सूक्ष्माणि दृश्यन्ते ॥३४॥ धिष्ण्येषु स्थानेषु ॥ ३५ ॥ आत्मनैव सूर्यादिवत्प्रभान्ति तान् आत्मप्रभान् ॥ ३७ ॥ वैजयिनं विजयिनमेव वैजयिनं । स्वार्थे तद्धितः ॥ ३९ ॥ संक्रमन् गच्छन् । अमरावतीं नाम्ना ॥ ४२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

ददर्शेति ॥ १ ॥ सौगन्धिकानां कल्हाराणां पुष्पाणां च मिश्रेण वायुनेति संबन्धः ॥ २ ॥

नन्दनं च वनं दिव्यमप्सरोगणसेवितम् ।
ददर्श दिव्यकुसुमैराह्वयद्भिरिव द्रुमैः ॥ ३
नातप्ततपसा शक्यो द्रष्टुं नानाहिताग्निना ।
स लोकः पुण्यकर्तृणां नापि युद्धे पराङ्मुखैः ॥ ४
नायज्वभिर्नाव्रतिकैर्न वेदश्रुतिवर्जितैः ।
नानाप्लुताङ्गैस्तीर्थेषु यज्ञदानबहिष्कृतैः ॥ ५
नापि यज्ञहनैः क्षुद्रैर्द्रष्टुं शक्यः कथंचन ।
पानपैर्गुरुतल्पैश्च मांसादैर्वा दुरात्मभिः ॥ ६
स तद्दिव्यं वनं पश्यन्दिव्यगीतनिनादितम् ।
प्रविवेश महाबाहुः शक्रस्य दयितां पुरीम् ॥ ७
तत्र देवविमानानि कामगानि सहस्रशः ।
संस्थितान्यभियातानि ददर्शायुतशस्तदा ॥ ८
संस्तूयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिश्च पाण्डवः ।
पुष्पगन्धवहैः पुण्यैर्वायुभिश्चानुवीजितः ॥ ९
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
हृष्टाः संपूजयामासुः पार्थमक्लिष्टकारिणम् ॥ १०
आशीर्वादैः स्तूयमानो दिव्यवादित्रनिःस्वनैः ।
प्रतिपेदे महाबाहुः शङ्खदुन्दुभिनादितम् ॥ ११
नक्षत्रमार्गं विपुलं सुरवीथीति विश्रुतम् ।
इन्द्राज्ञया ययौ पार्थः स्तूयमानः समन्ततः ॥ १२
तत्र साध्यास्तथा विश्वे मरुतोथाश्विनौ तथा ।
आदित्या वसवो रुद्रास्तथा ब्रह्मर्षयोमलाः ॥ १३
राजर्षयश्च बहवो दिलीपप्रमुखा नृपाः ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ च हाहाहुहूः ॥ १४
तान्स सर्वान्समागम्य विधिवत्कुरुनन्दनः ।
ततोपश्यद्देवराजं शतक्रतुमरिन्दमः ॥ १५
ततः पार्थो महाबाहुरवतीर्य रथोत्तमात् ।
ददर्श साक्षाद्देवेशं पितरं पाकशासनम् ॥ १६
पाण्डुरेणातपत्रेण हेमदण्डेन चारुणा ।
दिव्यगन्धाधिवासेन व्यजनेन विधूयता ॥ १७
विश्वावसुप्रभृतिभिर्गन्धर्वैस्तुतिवन्दिभिः ।
स्तूयमानं द्विजाग्र्यैश्च ऋग्यजुःसामसंभवैः ॥ १८
ततोभिगम्य कौन्तेयः शिरसाभ्यगमद्बली ।
स चैनं वृत्तपीनाभ्यां बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥ १९
ततः शक्रासने पुण्ये देवर्षिगणसेविते ।
शक्रः पाणौ गृहीत्वैनमुपावेशयदन्तिके ॥ २०
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय देवेन्द्रः परवीरहा ।
अङ्कमारोपयामास प्रश्रयावनतं तदा ॥ २१
सहस्राक्षनियोगात्स पार्थः शक्रासनं गतः ।
अध्यक्रामदमेयात्मा द्वितीय इव वासवः ॥ २२
ततः प्रेम्णा वृत्रशत्रुरर्जुनस्य शुभं मुखम् ।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन करेण परिसान्त्वयन् ॥ २३
प्रमार्जमानः शनकैर्बाहू चास्यायतौ शुभौ ।
ज्याशरक्षेपकठिनौ स्तम्भाविव हिरण्मयौ ॥ २४
वज्रग्रहणचिह्नेन करेण परिसान्त्वयन् ।
मुहुर्मुहुर्वज्रधरो बाहू चास्फोटयच्छनैः ॥ २५
स्मयन्निव गुडाकेशं प्रेक्षमाणः सहस्रदृक् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनो न चातृप्यत वृत्रहा ॥ २६
एकासनोपविष्टौ तौ शोभयांचक्रतुः सभाम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ व्योम चतुर्दश्यामिवोदितौ ॥ २७

---

नन्दनं नामतः ॥ ३ ॥ नातप्ततपस इति । तप आदीनां निषेधमुखेन स्वर्गसाधनत्वं विधीयते ॥ ४ ॥ यज्ञहनैः द्रव्यं देवतां च यज्ञस्वरूपं तत्र यो दाक्षिण्यहीनं देवतास्वरूपज्ञानहीनं च यज्ञं करोति स वृथापशुबीजघाती यज्ञहन इत्युच्यते । तथा च श्रूयते शतपथे 'घ्नन्ति वा एतद्यज्ञं यदेनं तन्वते यत्त्वेव राजानमभिषुण्वन्ति तत्तं घ्नन्ति यत्पशुं संज्ञपयन्ति विशासति तत्तं घ्नन्त्युलूखलमुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्यां हविर्यज्ञं घ्नन्ति स एष यज्ञो हतो न ददक्षे तं देवा दक्षिणाभिरदक्षयंस्तद्येनं दक्षिणाभिरदक्षयंस्तद्दक्षिणा नामेति'। राजानं सोमवल्लीं अभिषुण्वन्ति कण्डयन्ति । संज्ञपयन्ति घ्नन्ति । विशासति विशसनं करोति । न ददक्षे दक्षो न बभूव । अदक्षयन दक्षमकुर्वन् । असंज्ञाप्यमपि हन्तेर्वधः । यज्ञहरैरित्यपपाठः । अत एव क्षुद्रैः लुब्धैः । पानशब्दो निरुपपदो मद्यवाची । गुरुतल्पसमभिव्याहाराद्वा पानपैः मद्यपैः मांसादैः वृथामांसभक्षकैः । अन्यत्र तु 'देवान्पितॄन् समभ्यर्च्य खादन् मांसं न दोषभाक्' इति स्मृतेर्न दोषः । अत एव दुरात्मभिः हिंस्रैः ॥ ६ ॥ अभितः यान्ति एतान् देशानित्यभियातानि आपानभूमयः ॥ ८ ॥ पाकशासनं पाकशब्दः प्रशस्ते नीचे च वर्तते । 'योमापाकेन मनसा चरन्तं । योऽस्मात्पाकतर' इत्यादि प्रयोगात् तेन देवादीनामधिपतिरिति वा दुष्टानां दण्डयितेति वा पाकशासनपदस्यावयवार्थः पाकनामा दैत्य इत्यन्ये ॥ १६ ॥ स्तुतिवन्दिभिः स्तुत्या वन्दमानैः ॥ १८ ॥ प्रश्रयावनतं विनयेन प्रह्वीभूतम् ॥ २१ ॥ वज्रग्रहणस्य चिह्नं किणो यस्मिन् ॥ २५ ॥ चतुर्दश्यामिति । यद्यपि दर्शे एव सूर्येन्दोरेकासनगतत्वं एकनक्षत्रस्थत्वादस्ति न चतुर्दश्यां तथापि सामीप्यलक्षणया एकराशिस्थत्वमत्र ग्राह्यं । अन्यथाश्विनीस्थे सूर्ये चतुर्दश्यां रेवतीयोगे एकराशिस्थितत्वस्याप्यलाभात् ॥ २७ ॥

तत्र स्म गाथा गायन्ति साम्ना परमवल्गुना ।
गन्धर्वास्तुम्बुरुश्रेष्ठाः कुशला गीतसामसु ॥ २८
घृताची मेनका रम्भा पूर्वचित्तिः स्वयंप्रभा ।
उर्वशी मिश्रकेशी च दण्डगौरी वरूथिनी ॥ २९
गोपाली सहजन्या च कुम्भयोनिः प्रजागरा ।
चित्रसेना चित्रलेखा सहा च मधुरस्वरा ॥ ३०
एताश्चान्याश्च ननृतुस्तत्र तत्र सहस्रशः ।
चित्तप्रसादने युक्ताः सिद्धानां पद्मलोचनाः ॥३१
महाकटितटश्रोण्यः कम्पमानैः पयोधरैः ।
कटाक्षहावमाधुर्यैश्चेतोबुद्धिमनोहरैः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनपर्वणि इन्द्रसभादर्शने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

४४

वैशंपायन उवाच ।
ततो देवाः सगन्धर्वाः समादायार्घ्यमुत्तमम् ।
शक्रस्य मतमाज्ञाय पार्थमानर्चुरञ्जसा ॥ १
पाद्यमाचमनीयं च प्रतिग्राह्य नृपात्मजम् ।
प्रवेशयामासुरथो पुरंदरनिवेशनम् ॥ २
एवं संपूजितो जिष्णुरुवास भवने पितुः ।
उपशिक्षन्महास्त्राणि ससंहाराणि पाण्डवः ॥ ३
शक्रस्य हस्तादयितं वज्रमस्त्रं च दुःसहम् ।
अशनीश्च महानादा मेघबर्हिणलक्षणाः ॥ ४
गृहीतास्त्रस्तु कौन्तेयो भ्रातॄन्सस्मार पाण्डवः ।
पुरंदरनियोगाच्च पञ्चाब्दानवसत्सुखी ॥ ५
ततः शक्रोऽब्रवीत्पार्थं कृतास्त्रं काल आगते ।
नृत्यं गीतं च कौन्तेय चित्रसेनादवाप्नुहि ॥ ६
वादित्रं देवविहितं नृलोके यन्न विद्यते ।
तदर्जयस्व कौन्तेय श्रेयो वै ते भविष्यति ॥ ७
सखायं प्रददौ चास्य चित्रसेनं पुरंदरः ।
स तेन सह संगम्य रेमे पार्थो निरामयः ॥ ८
गीतवादित्रनृत्यानि भूय एवादिदेश ह ।
तथापि नालभच्छर्म तपस्वी द्यूतकारितम् ॥ ९
दुःशासनवधामर्षी शकुनेः सौबलस्य च ।
ततस्तेनातुलां प्रीतिमुपागम्य क्वचित् क्वचित् ।
गान्धर्वमतुलं नृत्यं वादित्रं चोपलब्धवान् ॥ १०
स शिक्षितो नृत्यगुणाननेकान्
वादित्रगीतार्थगुणांश्च सर्वान् ।
न शर्म लेभे परवीरहन्ता
भ्रातॄन्स्मरन्मातरं चैव कुन्तीम् ॥ ११

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि इन्द्रलोकाभिगमनपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

साम्ना प्रीत्या । वल्गुना रम्येण । गीतानि अमन्त्रोपरिगानं साममन्त्रोपरिगानम् ॥२८॥ चेतः आलोचनात्मिका चित्तवृत्तिः । बुद्धिरध्यवसायरूपा । मनः संकल्पविकल्पात्मकं । कटाक्षादिभिः चित्तस्य वृत्त्यन्तरं हरन्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

तत इति ॥ १ ॥ मेघबर्हिणलक्षणाः अकालेपि उद्यतैर्मेघैर्नृत्यमानैश्च मयूरैर्यत् अशन्यस्त्रं देशान्तरे प्रयुक्तमिति लक्ष्यते। देशान्तरीयैः ता अशनार्बह्वीरित्यर्थः ॥ ४ ॥ भ्रातॄन्सस्मार स्वर्गेपि दुःखितभ्रातृस्मरणेन दुःखवानेवाभूदित्यर्थः ॥ ५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

वैशंपायन उवाच ।
आदावेवाथ तं शक्रश्चित्रसेनं रहोऽब्रवीत् ।
पार्थस्य चक्षुरुर्वश्यां सक्तं विज्ञाय वासवः ॥ १
गन्धर्वराज गच्छाद्य प्रहितोऽप्सरसां वराम् ।
उर्वशीं पुरुषव्याघ्र सोपातिष्ठतु फाल्गुनम् ॥ २
यथार्चितो गृहीतास्त्रो विद्यया मन्नियोगतः ।
तथा त्वया विधातव्यं स्त्रीषु संगविशारदः ॥ ३
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुज्ञां प्राप्य वासवात् ।
गन्धर्वराजोऽप्सरसमभ्यगादुर्वशीं वराम् ॥ ४
तां दृष्ट्वा विदितो हृष्टः स्वागतेनार्चितस्तया ।
सुखासीनः सुखासीनां स्मितपूर्वं वचोऽब्रवीत् ५
विदितं तेऽस्तु सुश्रोणि प्रहितोऽहमिहागतः ।
त्रिदिवस्यैकराजेन त्वत्प्रसादाभिनन्दिना ॥ ६
यस्तु देवमनुष्येषु प्रख्यातः सहजैर्गुणैः ।
श्रिया शीलेन रूपेण व्रतेन च दमेन च ।
प्रख्यातो बलवीर्येण संमतः प्रतिभानवान् ॥ ७
वर्चस्वी तेजसा युक्तः क्षमावान्वीतमत्सरः ।
साङ्गोपनिषदान्वेदांश्चतुराख्यानपञ्चमान् ॥ ८
योऽधीते गुरुशुश्रूषां मेधां चाष्टगुणाश्रयाम् ।
ब्रह्मचर्येण दाक्ष्येण प्रसवैर्वयसापि च ॥
एको वै रक्षिता चैव त्रिदिवं मघवानिव ।
अकत्थनो मानयिता स्थूललक्ष्यः प्रियंवदः ॥ १०
सुहृदश्चान्नपानेन विविधेनाभिवर्षति ।
सत्यवाक्पूजितो वक्ता रूपवाननहंकृतः ॥ ११
भक्तानुकम्पी कान्तश्च प्रियश्च स्थिरसंगरः ।
प्रार्थनीयैर्गुणगणैर्महेन्द्रवरुणोपमः ॥ १२
विदितस्तेऽर्जुनो वीरः स स्वर्गफलमाप्नुयात् ।
तव शक्राभ्यनुज्ञातः पादावद्य प्रपद्यताम् ।
तदेवं कुरु कल्याणि प्रपन्नस्त्वां धनंजयः ॥ १३
एवमुक्ता स्मितं कृत्वा संमानं बहुमन्य च ।
प्रत्युवाचोर्वशी प्रीता चित्रसेनमनिन्दिता ॥ १४
यस्त्वस्य कथितः सत्यो गुणोद्देशस्त्वया मम ।
तं श्रुत्वाऽव्यथयं पुंसो वृणुयां किमतोऽर्जुनम् ॥ १५
महेन्द्रस्य नियोगेन त्वत्तः संप्रणयेन च ।
तस्य चाहं गुणौघेन फाल्गुने जातमन्मथा ।
गच्छ त्वं हि यथाकाममागमिष्याम्यहं सुखम् १६

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनप० चित्रसेनोर्वशीसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५

४५

आदाविति ॥ १ ॥ उर्वशी गच्छ सा च फाल्गुनं उपातिष्ठतु ॥ २ ॥ प्रतिभानं समये स्फूर्तिः ॥ ७ ॥ वर्चः शरीरे विद्यैश्वर्यादिजं तेजः तद्वान् वर्चस्वी । तेजः शौर्यं तेन युक्तः । चतुराख्यानपञ्चमान् चतुः चतुःसंख्यान विभक्तिलोप आर्षः । आख्यानं भारतादि । चतुरप्रियं आख्यानं चतुराख्यानमिति मध्यमपदलोपेन वा शाकपार्थिवादिवत्समासः ॥ ८ ॥ गुरुशुश्रूषां मेधां च प्रत्येकमष्टगुणां अधीते प्राप्नोति । गुणाश्च वाक्यशेषादेव यथायथमूह्याः । ब्रह्मचर्यं उपस्थनिग्रहः । दाक्ष्यं अनालस्यं प्रसवैर्द्वैमातुःकुले द्वे पितुस्तैः चतुर्भिः । वयसा तारुण्येन ॥ ९ ॥ रक्षिता पालकः । अकत्थन इति पालकश्चेति श्लाघाराहित्यं । स्थूलमिव सुज्ञेयं लक्ष्यं लक्षयितुं योग्यं सूक्ष्मं यस्य । सूक्ष्मानप्यर्थान् स्थूलवज्झटित्येवावगच्छतीत्यर्थः दाता वा ॥ १० ॥ रूपवान् सुन्दरः ॥ ११ ॥ कान्तः सुखदः । अत एव प्रियः प्रेमास्पदं । प्रसववयो व्यतिरिक्त ब्रह्मचर्यादयोऽष्टौ शुश्रूषागुणाः सत्यवाक्त्वादयः पूजितत्वान्त्या अष्टौ मेधागुणा इति विभागः । यद्वा 'शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा । ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः' इति धीगुणाष्टकं ग्राह्यम् ॥ १२ ॥ स्वर्गफलं त्वत्संगं । तव पादाविति प्रपन्न इति च रतार्थिनो दीनता दर्शिता ॥ १३ ॥ बहुमन्य मत्वा ॥ १४ ॥ गुणोद्देशः गुणलेशः । तं अर्जुनं । पुंसः यतः कुतश्चित् सकाशाच्छ्रुत्वा अव्यथयं स्वार्थे णिच् । प्रागेव कामव्यथां प्राप्तवत्यस्मि अतो हेतोरर्जुनं किं वृणुयामिति काक्वा प्रागेव व्रतत्वं दर्शयति ॥ १५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

# ४६

वैशंपायन उवाच ।

ततो विसृज्य गन्धर्वं कृतकृत्यं शुचिस्मिता ।
उर्वशी चाकरोत्स्नानं पार्थदर्शनलालसा ॥ १
स्नानालंकरणैर्हृद्यैर्गन्धमाल्यैश्च सुप्रभैः ।
धनंजयस्य रूपेण शरैर्मन्मथचोदितैः ॥ २
अतिविद्धेन मनसा मन्मथेन प्रदीपिता ।
दिव्यास्तरणसंस्तीर्णे विस्तीर्णे शयनोत्तमे ॥ ३
चित्तसंकल्पभावेन सुचित्तानन्यमानसा ।
मनोरथेन संप्राप्तं रमन्त्येनं हि फाल्गुनम् ॥ ४
निर्गम्य चन्द्रोदयने विगाढे रजनीमुखे ।
प्रस्थिता सा पृथुश्रोणी पार्थस्य भवनं प्रति ॥ ५
मृदुकुञ्चितदीर्घेण कुमुदोत्करधारिणा ।
केशहस्तेन ललना जगामाथ विराजती ॥ ६
भ्रूक्षेपालापमाधुर्यैः कान्त्या सौम्यतयापि च ।
शशिनं वक्त्रचन्द्रेण साह्वयन्तीव गच्छती ॥ ७
दिव्याङ्गरागौ सुमुखौ दिव्यचन्दनरूषितौ ।
गच्छन्त्या हाररुचिरौ स्तनौ तस्या ववल्गतुः ॥८
स्तनोद्वहनसंक्षोभान्नम्यमाना पदे पदे ।
त्रिवलीदामचित्रेण मध्येनातीवशोभिना ॥ ९
अधो भूधरविस्तीर्णं नितम्बोन्नतपीवरम् ।
मन्मथायतनं शुभ्रं रसनादामभूषितम् ॥ १०
ऋषीणामपि दिव्यानां मनोव्याघातकारणम् ।
सूक्ष्मवस्त्रधरं रेजे जघनं निरवद्यवत् ॥ ११
गूढगुल्फधरौ पादौ ताम्रायततलाङ्गुली ।
कूर्मपृष्ठोन्नतौ चापि शोभेते किङ्किणीकिणौ ॥ १२
सीधुपानेन चाल्पेन तुष्ट्याथ मदनेन च ।
विलासनैश्च विविधैः प्रेक्षणीयतराभवत् ॥ १३
सिद्धचारणगन्धर्वैः सा प्रयाता विलासिनी ।
बह्वाश्चर्येऽपि वै स्वर्गे दर्शनीयतमाकृतिः ॥ १४
सुसूक्ष्मेणोत्तरीयेण मेघवर्णेन राजता ।
तनुरभ्रावृता व्योम्नि चन्द्रलेखेव गच्छती ॥ १५
ततः प्राप्ता क्षणेनैव मनःपवनगामिनी ।
भवनं पाण्डुपुत्रस्य फाल्गुनस्य शुचिस्मिता ॥१६
तत्र द्वारमनुप्राप्ता द्वारस्थैश्च निवेदिता ।
अर्जुनस्य नरश्रेष्ठ उर्वशी शुभलोचना ॥ १७
उपातिष्ठत तद्वेश्म निर्मलं सुमनोहरम् ।
स शङ्कितमना राजन्प्रत्युद्गच्छत तां निशि ॥ १८
दृष्ट्वैव चोर्वशीं पार्थो लज्जासंवृतलोचनः ।
तदाभिवादनं कृत्वा गुरुपूजां प्रयुक्तवान् ॥ १९

अर्जुन उवाच ।

अभिवादये त्वां शिरसा प्रवराप्सरसां वरे ।
किमाज्ञापयसे देवि प्रेष्यस्तेऽहमुपस्थितः ॥ २०
फाल्गुनस्य वचः श्रुत्वा गतसंज्ञा तदोर्वशी ।
गन्धर्ववचनं सर्वं श्रावयामास तं तदा ॥ २१

उर्वश्युवाच ।

यथा मे चित्रसेनेन कथितं मनुजोत्तम ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथा चाहमिहागता ॥ २२
उपस्थाने महेन्द्रस्य वर्तमाने मनोरमे ।
तवागमनतो वृत्ते स्वर्गस्य परमोत्सवे ॥ २३
रुद्राणां चैव सांनिध्यमादित्यानां च सर्वशः ।
समागमेऽश्विनोश्चैव वसूनां च नरोत्तम ॥ २४
महर्षीणां च संघेषु राजर्षिप्रवरेषु च ।
सिद्धचारणयक्षेषु महोरगगणेषु च ॥ २५
उपविष्टेषु सर्वेषु स्थानमानप्रभावतः ।
ऋद्ध्या प्रज्वलमानेषु अग्निसोमार्कवर्ष्मसु ॥ २६
वीणासु वाद्यमानासु गन्धर्वैः शक्रनन्दन ।
दिव्ये मनोरमे गेये प्रवृत्ते पृथुलोचन ॥ २७
सर्वाप्सरःसु मुख्यासु प्रनृत्तासु कुरूद्वह ।
त्वं किलानिमिषः पार्थ मामेकां तत्र दृष्टवान् ॥२८
तत्र चावभृथे तस्मिन्नुपस्थाने दिवौकसाम् ।
तव पित्राभ्यनुज्ञाता गताः स्वं स्वं गृहं सुराः २९
तथैवाप्सरसः सर्वा विशिष्टाः स्वगृहं गताः ।
अपि चान्याश्च शत्रुघ्न तव पित्रा विसर्जिताः ॥३०
ततः शक्रेण संदिष्टश्चित्रसेनो ममान्तिकम् ।
प्राप्तः कमलपत्राक्ष स च मामब्रवीदथ ॥ ३१
त्वत्कृतेऽहं सुरेशेन प्रेषितो वरवर्णिनि ।
प्रियं कुरु महेन्द्रस्य मम चैवात्मनश्च ह ॥ ३२

४६

तत इति ॥ १ ॥ रूपेण सौन्दर्येण ॥ २ ॥ रमन्ती रमयन्ती ॥ ४ ॥ केशहस्तेन हस्तः शुण्डादण्डः तेनेव वेण्येत्यर्थः ॥ ६ ॥ आह्वयन्ती स्पर्धया एहि युध्यावहे इति वदन्तीव ॥ ७ ॥ उन्नतः पीवरश्च नितम्ब एवेति विशेषणं विशेष्येण बहुलमिति बाहुलकात्समासः ॥ १० ॥ अवयववत् दोषवत् तदभावो निरवद्यवत् ॥ ११ ॥ अवभृथो यज्ञान्तस्नानं तत्प्राप्ये ॥ २९ ॥

उर्वश्युवाच—

तव पित्राऽभ्यनुज्ञातां स्वयं च गृहमागताम् ।
यस्मान्मां नाभिनन्देथाः कामबाणवशानुगाम् ॥
तस्मात्त्वं नर्तनः पार्थ स्त्रीमध्ये मानवर्जितः ॥
अपुमानिति विख्यातः षण्ढवद्विचरिष्यसि ।

—वनपर्व अ० ४६ पृ. ८३

शक्रतुल्यं रणे शूरं सदौदार्यगुणान्वितम् ।
पार्थं प्रार्थय सुश्रोणि त्वामित्येवं तदाब्रवीत् ॥३३
ततोहं समनुज्ञाता तेन पित्रा च तेऽनघ ।
तवान्तिकमनुप्राप्ता शुश्रूषितुमरिंदम ॥ ३४
त्वद्गुणाकृष्टचित्ताहमनङ्गवशमागता ।
चिराभिलषितो वीर ममाप्येष मनोरथः ॥ ३५
वैशंपायन उवाच ॥
तां तथा ब्रुवतीं श्रुत्वा भृशं लज्जावृतोऽर्जुनः ।
उवाच कर्णौ हस्ताभ्यां पिधाय त्रिदशालये ॥ ३६
दुःश्रुतं मेस्तु सुभगे यन्मां वदसि भाविनि ।
गुरुदारैः समाना मे निश्चयेन वरानने ॥ ३७
यथा कुन्ती महाभागा यथेन्द्राणी शची मम ।
तथा त्वमपि कल्याणी नात्र कार्या विचारणा ॥३८
यच्चेक्षितासि विस्पष्टं विशेषेण मया शुभे ।
तच्च कारणपूर्वं हि शृणु सत्यं शुचिस्मिते ॥ ३९
इयं पौरववंशस्य जननी मुदितेति ह ।
त्वामहं दृष्टवांस्तत्र विज्ञायोत्फुल्ललोचनः ॥ ४०
न मामर्हसि कल्याणि अन्यथा ध्यातुमप्सरः ।
गुरोर्गुरुतरा मे त्वं मम त्वं वंशवर्धिनी ॥ ४१
उर्वश्युवाच ।
अनावृताश्च सर्वाः स्म देवराजाभिनन्दन ।
गुरुस्थाने न मां वीर नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ४२
पुरोर्वंशे हि ये पुत्रा नप्तारो वा त्विहागताः ।
तपसा रमयन्त्यस्मान्न च तेषां व्यतिक्रमः ॥ ४३
तत्प्रसीद न मामार्तां विसर्जयितुमर्हसि ।
हृच्छयेन च संतप्तां भक्तां च भज मानद ॥ ४४
अर्जुन उवाच ।
शृणु सत्यं वरारोहे यत्त्वां वक्ष्याम्यनिन्दिते ।
शृण्वन्तु मे दिशश्चैव विदिशश्च सदेवताः ४५
यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे ।
तथा च वंशजननी त्वं हि मेद्य गरीयसी ॥ ४६
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोस्मि पादौ ते वरवर्णिनि ।
त्वं हि मे मातृवत्पूज्या रक्ष्योहं पुत्रवत्त्वया ॥ ४७
वैशंपायन उवाच
एवमुक्ता तु पार्थेन उर्वशी क्रोधमूर्च्छिता ।
वेपन्ती भ्रुकुटीवक्त्रा शशापाथ धनंजयम् ॥ ४८
उर्वश्युवाच ।
तव पित्राभ्यनुज्ञातां स्वयं च गृहमागताम् ।
यस्मान्मां नाभिनन्देथाः कामबाणवशंगताम् ॥४९
तस्मात्त्वं नर्तनः पार्थ स्त्रीमध्ये मानवर्जितः ।
अपुमानिति विख्यातः षण्ढवद्विचरिष्यसि ॥ ५०
एवं दत्त्वार्जुने शापं स्फुरदोष्ठी श्वसन्त्यथ ।
पुनः प्रत्यागता क्षिप्रमुर्वशी गृहमात्मनः ॥ ५१
ततोर्जुनस्त्वरमाणश्चित्रसेनमरिंदमः ।
संप्राप्य रजनीवृत्तं तदुर्वश्या यथातथा ॥ ५२
निवेदयामास तदा चित्रसेनाय पाण्डवः ।
तत्र चैवं यथावृत्तं शापं चैव पुनःपुनः ॥ ५३
अवेदयच्च शक्रस्य चित्रसेनोपि सर्वशः ।
तत आनाय्य तनयं विविक्ते हरिवाहनः ॥ ५४
सान्त्वयित्वा शुभैर्वाक्यैः स्मयमानोभ्यभाषत ।
सुपुत्राद्य पृथा तात त्वया पुत्रेण सत्तम ॥ ५५
ऋषयोपि हि धैर्येण जिता वै ते महाभुज ।
यत्तु दत्तवती शापमुर्वशी तव मानद ॥ ५६
स चापि तेर्थकृत्तात साधकश्च भविष्यति ॥ ५७
अज्ञातवासो वस्तव्यो भवद्भिर्भूतलेनघ ।
वर्षे त्रयोदशे वीर तं तत्र क्षपयिष्यसि ॥ ५८
तेन नर्तनवेषेण अपुंस्त्वेन तथैव च ।
वर्षमेकं विहृत्यैव ततः पुंस्त्वमवाप्स्यसि ५९
एवमुक्तस्तु शक्रेण फाल्गुनः परवीरहा ।
मुदं परमिकां लेभे न च शापं व्यचिन्तयत् ॥६०
चित्रसेनेन सहितो गन्धर्वेण यशस्विना ।
रेमे स स्वर्गभवने पाण्डुपुत्रो धनंजयः ॥ ६१
इदं यः शृणुयाद्वृत्तं नित्यं पाण्डुसुतस्य वै ।
न तस्य कामः कामेषु पापकेषु प्रवर्तते ॥ ६२
इदममरवरात्मजस्य घोरं
शुचि चरितं विनिशम्य फाल्गुनस्य ।
व्यपगतमददम्भरागदोषा-
स्त्रिदिवगता विरमन्ति मानवेन्द्राः ॥६३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनप० उर्वशीशापो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

तेन चित्रसेनेन तव पित्रा च इन्द्रेण च शुश्रूषितुं सेवितुम् ॥ ३४ ॥ दुःश्रुतं मेस्तु मम श्रवणं व्यर्थमस्तु यत्त्वं एवंविधदुष्कर्मयोग्यतां मयि संभावयसीत्यर्थः ॥३७॥ अप्सर स्त्येकत्वमार्षं । यद्वास्त्वादेकत्वेऽप्सरा अपीति शब्दार्णवादे- कत्वं साधु ॥ ४१ ॥ भ्रुकुट्या वक्त्रा न तु मनसा हितार्थत्वाच्छापस्येति भावः ॥ ४८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## ४७

वैशंपायन उवाच ।

कदाचिदटमानस्तु महर्षिरुत लोमशः ।
जगाम शक्रभवनं पुरंदरदिदृक्षया ॥ १
स समेत्य नमस्कृत्य देवराजं महामुनिः ।
ददर्शार्धासनगतं पाण्डवं वासवस्य हि ॥ २
ततः शक्राभ्यनुज्ञात आसने विष्टरोत्तरे ।
निषसाद द्विजश्रेष्ठः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ ३
तस्य दृष्ट्वाऽभवद्बुद्धिः पार्थमिन्द्रासने स्थितम् ।
कथं नु क्षत्रियः पार्थः शक्रासनमवाप्तवान् ॥ ४
किं त्वस्य सुकृतं कर्म के लोका वै विनिर्जिताः ।
स एवमनुसंप्राप्तः स्थानं देवनमस्कृतम् ॥ ५
तस्य विज्ञाय संकल्पं शक्रो वृत्रनिषूदनः ।
लोमशं प्रहसन्वाक्यमिदमाह शचीपतिः ॥ ६
ब्रह्मर्षे श्रूयतां यत्ते मनसैतद्विवक्षितम् ।
नायं केवलमर्त्यो वै मानुषत्वमुपागतः ॥ ७
महर्षे मम पुत्रोयं कुन्त्यां जातो महाभुजः ।
अस्त्रहेतोरिह प्राप्तः कस्माच्चित्कारणान्तरात् ॥ ८
अहो नैनं भवान्वेत्ति पुराणमृषिसत्तमम् ।
शृणु मे वदतो ब्रह्मन्योयं यश्चास्य कारणम् ॥ ९
नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
ताविमावनुजानीहि हृषीकेशधनंजयौ ॥ १०
विख्यातौ त्रिषु लोकेषु नरनारायणावृषी ।
कार्यार्थमवतीर्णौ तौ पृथ्वीं पुण्यप्रतिश्रयाम् ॥ ११
यन्न शक्यं सुरैर्द्रष्टुमृषिभिर्वा महात्मभिः ।
तदाश्रमपदं पुण्यं बदरी नाम विश्रुतम् ॥ १२
स निवासोऽभवद्विप्र विष्णोर्जिष्णोस्तथैव च ।
यतः प्रववृते गङ्गा सिद्धचारणसेविता ॥ १३
तौ मन्नियोगाद्ब्रह्मर्षे क्षितौ जातौ महाद्युती ।
भूमेर्भारावतरणं महावीर्यौ करिष्यतः ॥ १४
उद्वृत्ता ह्यसुराः केचिन्निवातकवचा इति ।
विप्रियेषु स्थितास्माकं वरदानेन मोहिताः ॥ १५
तर्कयन्ते सुरान्हन्तुं बलदर्पसमन्विताः ।
देवान्न गणयन्त्येते तथा दत्तवरा हि ते ॥ १६
पातालवासिनो रौद्रा दनोः पुत्रा महाबलाः ।
सर्वे देवनिकाया हि नालं योधयितुं हि तान् ॥ १७
योसौ भूमिगतः श्रीमान्विष्णुर्मधुनिषूदनः ।
कपिलो नाम देवोसौ भगवानजितो हरिः ॥ १८
येन पूर्वं महात्मानः खनमाना रसातलम् ।
दर्शनादेव निहताः सगरस्यात्मजा विभो ॥ १९
तेन कार्यं महत्कार्यमस्माकं द्विजसत्तम ।
पार्थेन च महायुद्धे समेताभ्यां न संशयः ॥ २०
सोऽसुरान्दर्शनादेव शक्तो हन्तुं सहानुगान् ।
निवातकवचान्सर्वान्नागानिव महाह्रदे ॥ २१
किं तु नाल्पेन कार्येण प्रबोध्यो मधुसूदनः ।
तेजसः सुमहाराशिः प्रबुद्धः प्रदहेज्जगत् ॥ २२
अयं तेषां समस्तानां शक्तः प्रतिसमासने ।
तान्निहत्य रणे शूरः पुनर्यास्यति मानुषान् ॥ २३
भवानस्मन्नियोगेन यातु तावन्महीतलम् ।
काम्यके द्रक्ष्यसे वीरं निवसन्तं युधिष्ठिरम् ॥२४
स वाच्यो मम संदेशाद्धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
नोत्कण्ठा फाल्गुने कार्या कृतास्त्रः शीघ्रमेष्यति ॥
नाशुद्धबाहुवीर्येण नाकृतास्त्रेण वा रणे ।
भीष्मद्रोणादयो युद्धे शक्याः प्रतिसमासितुम् २६
गृहीतास्त्रो गुडाकेशो महाबाहुर्महामनाः ।
नृत्यवादित्रगीतानां दिव्यानां पारमीयिवान् ॥२७
भवानपि विविक्तानि तीर्थानि मनुजेश्वर ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्द्रष्टुमर्हत्यरिंदम ॥ २८
तीर्थेष्वाप्लुत्य पुण्येषु विपाप्मा विगतज्वरः ।
राज्यं भोक्ष्यसि राजेन्द्र सुखी विगतकल्मषः २९
भवांश्चैनं द्विजश्रेष्ठ पर्यटन्तं महीतलम् ।
त्रातुमर्हति विप्राग्र्य तपोबलसमन्वितः ॥ ३०
गिरिदुर्गेषु च सदा देशेषु विषमेषु च ।
वसन्ति राक्षसा रौद्रास्तेभ्यो रक्षां विधास्यति
एवमुक्ते महेन्द्रेण बीभत्सुरपि लोमशम् ।
उवाच प्रयतो वाक्यं रक्षेथाः पाण्डुनन्दनम् ॥ ३२
यथा गुप्तस्त्वया राजा चरेत्तीर्थानि सत्तम ।
दानं दद्याद्यथा चैव तथा कुरु महामुने ॥ ३३

---

४७

कदाचिदिति ॥ १ ॥ देवनिकायाः देवसमूहाः । नालं न समर्थाः ॥ १७ ॥ कपिलः। 'ऋषिं पुराणं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्'इति श्रुतिप्रसिद्धः । अग्रे जायमानं पाञ्चरात्रागमेऽनिरुद्धत्वेन वेदे सूत्रात्मत्वेन च व्यवहृतं नारायणम् ॥ १८ ॥ प्रबोध्यो विज्ञाप्यः ॥ २२ ॥ तेषां निवातकवचानां । प्रतिसमासने संक्षेपणे ॥ २३ ॥ गुडाकेशोऽर्जुनः ॥ २७ ॥

वैशंपायन उवाच ।

तथेति संप्रतिज्ञाय लोमशः सुमहातपाः ।
काम्यकं वनमुद्दिश्य समुपायान्महीतलम् ॥ ३४
ददर्श तत्र कौन्तेयं धर्मराजमरिंदमम् ।
तापसैर्भ्रातृभिश्चैव सर्वतः परिवारितम् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनप० लोमशगमने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

# ४८

जनमेजय उवाच ।

अत्यद्भुतमिदं कर्म पार्थस्यामिततेजसः ।
धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः श्रुत्वा विप्र किमब्रवीत् ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

शक्रलोकगतं पार्थं श्रुत्वा राजाम्बिकासुतः ।
द्वैपायनादृषिश्रेष्ठात्संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २

धृतराष्ट्र उवाच ।

श्रुतं मे सूत कार्त्स्न्येन कर्म पार्थस्य धीमतः ।
कच्चित्तवापि विदितं याथातथ्येन सारथे ॥ ३
प्रमत्तो ग्राम्यधर्मेषु मन्दात्मा पापनिश्चयः ।
मम पुत्रः सुदुर्बुद्धिः पृथिवीं घातयिष्यति ॥ ४
यस्य नित्यमृता वाचः स्वैरेष्वपि महात्मनः ।
त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद्योद्धा यस्य धनंजयः ॥५
अस्यतः कर्णिनाराचांस्तीक्ष्णाग्रांश्च शिलाशितान् ।
कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्ठेदपि मृत्युर्जरातिगः ॥ ६
मम पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मृत्युवशानुगाः ।
येषां युद्धं दुराधर्षैः पाण्डवैः प्रत्युपस्थितम् ॥ ७
तथैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अनिशं चिन्तयानोपि य एनमुदियाद्रथी ॥ ८
द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि भीष्मोपि वा रणे ।
महान्स्यात्संशयो लोके तत्र पश्यामि नो जयम् ॥ ९
घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः ।
अमर्षी बलवान्पार्थः संरम्भी दृढविक्रमः ॥ १०
संभवेत्तुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजितम् ।
सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे प्राप्ता महद्यशः ॥ ११
अपि सर्वेश्वरत्वं हि ते वाञ्छन्त्यपराजिताः ।
वधे नूनं भवेच्छान्तिरेतेषां फाल्गुनस्य वा ॥ १२
न तु हन्तार्जुनस्यास्ति जेता वास्य न विद्यते ।
मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मां चैव प्रतिसंहितः ॥१३
त्रिदशेशसमो वीरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।
जिगाय पार्थिवान्सर्वान्राजसूये महाक्रतौ ॥ १४
शेषं कुर्याद्गिरेर्वज्रो निपतन्मूर्ध्नि संजय ।
न तु कुर्युः शराः शेषं क्षिप्तास्तात किरीटिना १५
यथा हि किरणा भानोस्तपन्तीह चराचरम् ।
तथा पार्थभुजोत्सृष्टाः शरास्तप्स्यन्ति मत्सुतान् ॥
अपि तद्रथघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः ।
प्रतिभाति विदीर्णेव सर्वतो भारती चमूः ॥ १७

यदुद्वमन्प्रवपंश्चैव बाणान्
स्थाताततायी समरे किरीटी ।
सृष्टोन्तकः सर्वहरो विधात्रा
भवेद्यथा तद्वदपारणीयः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनप० धृतराष्ट्रविलापे [illegible]चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

---

संप्रतिज्ञाय अङ्गीकृत्य ॥ ३४ ॥ इत्यारण्यके प० नैल० मा० सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

अत्यद्भुतमिदं कर्मेत्यादेरध्यायद्वयस्य तात्पर्यं परोत्कर्षे श्रुते स्वनाशशङ्कया मूढस्तप्यत इति ॥ १ ॥ ऋताः सत्याः ॥ ५ ॥ प्रतीयातां प्रतिगच्छेताम् ॥ ९ ॥ घृणी दयालुः । प्रमादी अनवहितः, संरम्भी उद्यमी ॥ १० ॥ अपीति । सव्यसाचिनः रथघोषेणापि तत् तत्र रणे ॥ १७ ॥ यत् यद्वा उद्वमन् निषङ्गादुद्धरन् । प्रवपन् प्रेरयन् । स्थाता स्थास्यति । आततायी शस्त्रपाणिः । यथोक्तं ' अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः ॥' अपारणीयः अनुल्लङ्घनीयः जेतुमशक्यः ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत०, इन्द्रलोकाभिगमनपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

संजय उवाच ।

यदेतत्कथितं राजंस्त्वया दुर्योधनं प्रति ।
सर्वमेतद्यथातत्त्वं नैतन्मिथ्या महीपते ॥ १
मन्युना हि समाविष्टाः पाण्डवास्ते महौजसः ।
दृष्ट्वा कृष्णां सभां नीतां धर्मपत्नीं यशस्विनीम् ॥ २
दुःशासनस्य ता वाचः श्रुत्वा ते दारुणोदयाः ।
कर्णस्य च महाराज जुगुप्सन्तीति मे मतिः ॥ ३
श्रुतं हि मे महाराज यथा पार्थेन संयुगे ।
एकादशतनुः स्थाणुर्धनुषा परितोषितः ॥ ४
कैरातं वेषमास्थाय योधयामास फाल्गुनम् ।
जिज्ञासुः सर्वदेवेशः कपर्दी भगवान्स्वयम् ॥ ५
तत्रैनं लोकपालास्ते दर्शयामासुरच्युतम् ।
अस्त्रहेतोः पराक्रान्तं तपसा कौरवर्षभम् ॥ ६
नैतदुत्सहते चान्यो लब्धुमन्यत्र फाल्गुनात् ।
साक्षाद्दर्शनमेतेषामीश्वराणां नरो भुवि ॥ ७
महेश्वरेण यो राजन्न जीर्णो ह्यष्टमूर्तिना ।
कस्तमुत्सहते वीरो युद्धे जरयितुं पुमान् ॥ ८
आसादितमिदं घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
द्रौपदीं परिकर्षद्भिः कोपयद्भिश्च पाण्डवान् ॥ ९
यत्तु प्रस्फुरमाणौष्ठो भीमः प्राह वचोर्थवत् ।
दृष्ट्वा दुर्योधनेनोरू द्रौपद्या दर्शिताबुभौ ॥ १०
उरू भेत्स्यामि ते पाप गदया भीमवेगया ।
त्रयोदशानां वर्षाणामन्ते दुर्द्यूतदेविनः ॥ ११
सर्वे प्रहरतां श्रेष्ठाः सर्वे चामिततेजसः ।
सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ १२
मन्ये मन्युसमुद्धूताः पुत्राणां तव संयुगे ।
अन्तं पार्थाः करिष्यन्ति भार्यामर्षसमन्विताः १३

धृतराष्ट्र उवाच ।

किं कृतं सूत कर्णेन वदता परुषं वचः ।
पर्याप्तवैरमेतावद्यत्कृष्णा सा सभां गता ॥ १४
अपीदानीं मम सुतास्तिष्ठेरन्मन्दचेतसः ।
येषां भ्राता गुरुर्ज्येष्ठो विनयेनावतिष्ठते ॥ १५
ममापि वचनं सूत न शुश्रूषति मन्दभाक् ।
दृष्ट्वा मां चक्षुषा हीनं निर्विचेष्टमचेतसम् ॥ १६
येचास्य सचिवा मन्दाः कर्णसौबलकादयः ।
ते तस्य भूयसो दोषान्वर्धयन्ति विचेतसः ॥ १७
स्वैरमुक्ता ह्यपि शराः पार्थेनामिततेजसा ।
निर्दहेयुर्मम सुतान्किं पुनर्मन्युनेरिताः ॥ १८
पार्थबाहुबलोत्सृष्टा महाचापविनिःसृताः ।
दिव्यास्त्रमन्त्रमुदिताः सादयेयुः सुरानपि ॥ १९
यस्य मन्त्री च गोप्ता च सुहृच्चैव जनार्दनः ।
हरिस्त्रैलोक्यनाथः स किं नु तस्य न निर्जितम् ॥
इदं हि सुमहच्चित्रमर्जुनस्येह संजय ।
महादेवेन बाहुभ्यां यत्समेत इति श्रुतिः ॥ २१
प्रत्यक्षं सर्वलोकस्य खाण्डवे यत्कृतं पुरा ।
फाल्गुनेन सहायार्थे वह्नेर्दामोदरेण च ॥ २२
सर्वथा न हि मे पुत्राः सहामात्याः ससौबलाः ।
क्रुद्धे पार्थे च भीमे च वासुदेवे च सात्वते ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनप० धृतराष्ट्रखेदे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

## ५०

जनमेजय उवाच ।

यदिदं शोचितं राज्ञा धृतराष्ट्रेण वै मुने ।
प्रव्राज्य पाण्डवान्वीरान्सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ १
कथं च राजपुत्रं तमुपेक्षेताल्पचेतसम् ।
दुर्योधनं पाण्डुपुत्रान्कोपयानं महारथान् ॥ २
किमासीत्पाण्डुपुत्राणां वने भोजनमुच्यताम् ।
वानेयमथवा कृष्टमेतदाख्यातु नो भवान् ॥ ३

---

४९

यदेतदिति ॥ १ ॥ न जीर्णो न क्षीणः । अष्टौ पञ्च भूतानि सूर्यचन्द्रपुरुषाश्च मूर्तयो यस्य ॥ ८ ॥ दुर्द्यूतदेविनः छद्मद्यूतेन जेतुकामस्य ॥ ११ ॥ अन्तं नाशम् ॥ १३ ॥ विनये नीतौ ॥ १५ ॥ न हि सन्तीति शेषः ॥ २३ ॥

इत्या० प० नै० भा० एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

यदिदं शोचितमित्यादेरध्यायद्वयस्य तात्पर्यं सत्यसंरक्षणे कृते देवा मानुषाश्चानुगृह्णन्तीति ॥ १ ॥ वानेयं वनमर्वं नीवारादि कृष्टं कर्षणजं ग्राम्यधान्यम् ॥ ३ ॥

वैशंपायन उवाच ।

वानेयं च मृगांश्चैव शुद्धैर्बाणैर्निपातितान् ।
ब्राह्मणानां निवेद्याग्रमभुञ्जन्पुरुषर्षभाः ॥ ४
तांस्तु शूरान्महेष्वासांस्तदा निवसतो वने ।
अन्वयुर्ब्राह्मणा राजन्साग्नयोऽनग्नयस्तथा ॥ ५
ब्राह्मणानां सहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम् ।
दशमोक्षविदां तत्र यान्बिभर्ति युधिष्ठिरः ॥ ६
रुरून्कृष्णमृगांश्चैव मेध्यांश्चान्यान्वनेचरान् ।
बाणैरुन्मथ्य विविधैर्ब्राह्मणेभ्यो न्यवेदयन् ॥ ७
न तत्र कश्चिद्दुर्वर्णो व्याधितो वापि दृश्यते ।
कृशो वा दुर्बलो वापि दीनो भीतोपि वा पुनः॥
पुत्रानिव प्रियान्भ्रातृञ्ज्ञातीनिव सहोदरान् ।
पुपोष कौरवश्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ९
पतींश्च द्रौपदी सर्वान्द्विजातींश्च यशस्विनी ।
मातृवद्भोजयित्वाग्रे शिष्टमाहारयत्तदा ॥ १०
प्राचीं राजा दक्षिणां भीमसेनो
यमौ प्रतीचीमथवाप्युदीचीम् ।
धनुर्धरा मांसहेतोर्मृगाणां
क्षयं चक्रुर्नित्यमेवोपगम्य ॥ ११
तथा तेषां वसतां काम्यके वै
विहीनानामर्जुनेनोत्सुकानाम् ।
पञ्चैव वर्षाणि तथा व्यतीयु-
रधीयतां जपतां जुह्वतां च ॥ १२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनपर्वणि पार्थाहारकथने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

## ५१

वैशंपायन उवाच ।

तेषां तच्चरितं श्रुत्वा मनुष्यातीतमद्भुतम् ।
चिन्ताशोकपरीतात्मा मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ १
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः ।
अब्रवीत्संजयं सूतमामन्त्र्य पुरुषर्षभ ॥ २
न रात्रौ न दिवा सूत शान्तिं प्राप्नोमि वै क्षणम् ।
संचिन्त्य दुर्नयं घोरमतीतं द्यूतजं हि तत् ॥ ३
तेषामसह्यवीर्याणां शौर्यं धैर्यं धृतिं पराम् ।
अन्योन्यमनुरागं च भ्रातृणामतिमानुषम् ॥ ४
देवपुत्रौ महाभागौ देवराजसमद्युती ।
नकुलः सहदेवश्च पाण्डवौ युद्धदुर्मदौ ॥ ५
दृढायुधौ दूरपातौ युद्धे च कृतनिश्चयौ ।
शीघ्रहस्तौ दृढक्रोधौ नित्ययुक्तौ तरस्विनौ ॥ ६
भीमार्जुनौ पुरोधाय यदा तौ रणमूर्धनि ।
स्थास्येते सिंहविक्रान्तावश्विनाविव दुःसहौ ॥ ७
निःशेषमिह पश्यामि मम सैन्यस्य संजय ।
तौ ह्यप्रतिरथौ युद्धे देवपुत्रौ महारथौ ॥ ८
द्रौपद्यास्तं परिक्लेशं न क्षंस्येते त्वमर्षिणौ ।
वृष्णयोथ महेष्वासाः पञ्चाला वा महौजसः ॥ ९
युधि सत्याभिसंधेन वासुदेवेन रक्षिताः ।
प्रधक्ष्यन्ति रणे पार्थाः पुत्राणां मम वाहिनीम् १०
रामकृष्णप्रणीतानां वृष्णीनां सूतनन्दन ।
न शक्यः सहितुं वेगः सर्वैस्तैरपि संयुगे ॥ ११
तेषां मध्ये महेष्वासो भीमो भीमपराक्रमः ।
शैक्यया वीरघातिन्या गदया विचरिष्यति॥ १२
तथा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
गदावेगं च भीमस्य नालं सोढुं नराधिपाः॥ १३
ततोहं सुहृदां वाचो दुर्योधनवशानुगः ।
स्मरणीयाः स्मरिष्यामि मया या न कृताः पुरा॥

संजय उवाच ।

व्यतिक्रमोयं सुमहांस्त्वया राजन्नुपेक्षितः ।
समर्थेनापि यन्मोहात्पुत्रस्ते न निवारितः ॥ १५
श्रुत्वा हि निर्जितान्द्यूते पाण्डवान्मधुसूदनः ।
त्वरितः काम्यके पार्थान्समभावयदच्युतः ॥ १६

---

शुद्धैर्विषालिप्तैः ' विषलिप्तेन बाणेन यौ हतौ मृगपक्षिणौ । तयोर्मांसं कलञ्जं तद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ' इति स्मृतेः । 'अग्रं हन्तकारप्रदेयम् ॥ ४॥ अनग्नयः परिव्राजकाः ॥ ५ ॥ आहारयत् आहारं कृतवती ॥ १०॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

५१

तेषामिति । मन्युना दैन्येन ॥ १ ॥ न क्षंस्येते क्षमां न करिष्यतः ॥ ९ ॥ सहितुं सोढुम् ॥ ११ ॥ शैक्यया शिक्यस्थया । भूमिं भित्त्वा पातालं प्रवेक्ष्यतीति भयादन्तरिक्षे एव धृतयेत्यर्थः ॥ १२ ॥ पुत्रस्ते त्वया ॥ १५ ॥

द्रुपदस्य तथा पुत्रा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
विराटो धृष्टकेतुश्च केकयाश्च महारथाः ॥ १७
तैश्च यत्कथितं राजन्दृष्ट्वा पार्थान्पराजितान् ।
चारेण विदितं सर्वं तन्मयावेदितं च ते ॥ १८
समागम्य वृतस्तत्र पाण्डवैर्मधुसूदनः ।
सारथ्ये फाल्गुनस्याजौ तथेत्याह च तान्हरिः॥१९
अमर्षितो हि कृष्णोपि दृष्ट्वा पार्थांस्तदागतान् ।
कृष्णाजिनोत्तरासंगानब्रवीच्च युधिष्ठिरम् ॥ २०
या सा समृद्धिः पार्थानामिन्द्रप्रस्थे बभूव ह ।
राजसूये मया दृष्टा नृपैरन्यैः सुदुर्लभा ॥ २१
यत्र सर्वान्महीपालाञ्छस्त्रतेजोभयार्दितान् ।
सवङ्गाङ्गान्सपौण्ड्रोड्रान्सचोलद्राविडान्धकान् २२
सागरानूपकांश्चैव ये च प्रान्ताभिवासिनः ।
सिंहलान्बर्बरान्म्लेच्छान्ये च लङ्कानिवासिनः ॥
पश्चिमानि च राष्ट्राणि शतशः सागरान्तिकान् ।
पह्लवान्दरदान्सर्वान्किरातान्यवनाञ्छकान् ॥ २४
हारहूणांश्च चीनांश्च तुषारान्सैन्धवांस्तथा ।
जागुडान्रामठान्मुण्डान्स्त्रीराज्यमथ तङ्गणान् २५
केकयान्मालवांश्चैव तथा काश्मीरकानपि ।
अद्राक्षमहमाहूतान्यज्ञे ते परिवेषकान् ॥ २६
सा ते समृद्धिर्यैरात्ता चपला प्रतिसारिणी ।
आदाय जीवितं तेषामाहरिष्यामि तामहम् ॥२७
रामेण सह कौरव्य भीमार्जुनयमैस्तथा ।
अक्रूरगदसाम्बैश्च प्रद्युम्नेनाहुकेन च ॥ २८
धृष्टद्युम्नेन वीरेण शिशुपालात्मजेन च ।
दुर्योधनं रणे हत्वा सद्यः कर्णं च भारत ॥ २९
दुःशासनं सौबलेयं यश्चान्यः प्रतियोत्स्यते ।
ततस्त्वं हास्तिनपुरे भ्रातृभिः सहितो वसन्॥३०
धार्तराष्ट्रीं श्रियं प्राप्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्
अथैनमब्रवीद्राजा तस्मिन्वीरसमागमे ॥ ३१
शृण्वत्स्वेतेषु वीरेषु धृष्टद्युम्नमुखेषु च ।

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रतिगृह्णामि ते वाचमिमां सत्यां जनार्दन ॥ ३२
अमित्रान्मे महाबाहो सानुबन्धान्हनिष्यसि ।
वर्षात्त्रयोदशादूर्ध्वं सत्यं मां कुरु केशव ॥ ३३
प्रतिज्ञातो वने वासो राजमध्ये मया ह्ययम् ।
तद्धर्मराजवचनं प्रतिश्रुत्य सभासदः ॥ ३४
धृष्टद्युम्नपुरोगास्ते शमयामासुरञ्जसा ।
केशवं मधुरैर्वाक्यैः कालयुक्तैरमर्षितम् ॥ ३५
पाञ्चाली पाहुरक्लिष्टां वासुदेवस्य शृण्वतः ।
दुर्योधनस्तव क्रोधाद्देवि त्यक्ष्यति जीवितम् ॥३६
प्रतिजानीमहे सत्यं मा शुचो वरवर्णिनि ।
ये स्म तेऽक्षजितां कृष्णे दृष्ट्वा त्वां प्राहसंस्तदा ।
मांसानि तेषां खादन्तो हरिष्यन्ति वृकद्विजाः ३७
पास्यन्ति रुधिरं तेषां गृध्रा गोमायवस्तथा ।
उत्तमाङ्गानि कर्षन्तो यैः कृष्टासि सभातले ॥३८
तेषां द्रक्ष्यसि पाञ्चालि गात्राणि पृथिवीतले ।
क्रव्यादैः कृष्यमाणानि भक्ष्यमाणानि चासकृत् ॥
परिक्लिष्टासि यैस्तत्र यैश्चासि समुपेक्षिता ।
तेषामुत्कृत्तशिरसां भूमिः पास्यति शोणितम् ४०
एवं बहुविधा वाचस्त ऊचुर्भरतर्षभाः ।
सर्वे तेजस्विनः शूराः सर्वे चाहतलक्षणाः ॥ ४१
ते धर्मराजेन वृता वर्षादूर्ध्वं त्रयोदशात् ।
पुरस्कृत्योपयास्यन्ति वासुदेवं महारथाः ॥ ४२

रामश्च कृष्णश्च धनंजयश्च
प्रद्युम्नसाम्बौ युयुधानभीमौ ।
माद्रीसुतौ केकयराजपुत्राः
पञ्चालपुत्राः सह मत्स्यराज्ञा ॥ ४३
एतान्सर्वाँल्लोकवीरानजेया-
न्महात्मनः सानुबन्धान्ससैन्यान् ।
को जीवितार्थी समरेऽभ्युदीया-
त्क्रुद्धान्सिंहान्केसरिणो यथैव ॥ ४४

धृतराष्ट्र उवाच ।

यन्माऽब्रवीद्विदुरो द्यूतकाले
त्वं पाण्डवाञ्जेष्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ध्रुवं कुरूणामयमन्तकालो
महाभयो भविता शोणितौघः ॥ ४५

---

प्रतिसारिणी प्रतीपं सरतीति नीचानुगामिनीत्यर्थः । आहरिष्यामि इदानीमेवेति शेषः । अत एव प्रार्थना सत्यं मां कुर्विति ॥ २७ ॥ शमयामासुः समं युक्तमित्याचख्युः । शमशब्दात्तदाचष्ट इति णिच् लिटि आम् । शमयामासुरिति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ ३५ ॥ अहतलक्षणाः अखण्डितध्वजाः । आहवलक्षणा इति पाठे आहवयोग्यानि शौर्यद्योतकानि लक्षणानि सामुद्रिकचिह्नानि येषामित्यर्थः ॥ ४१ ॥ युयुधानः सात्यकिः ॥ ४३ ॥ केसरिणः क्रोधेन नच्छूतसटान् ॥ ४४ ॥

मन्ये तथा तद्भवितेति सूत
यथा क्षत्ता प्राह वचः पुरा माम् ।
असंशयं भविता युद्धमेत-
द्गते काले पाण्डवानां यथोक्तम् ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० इन्द्रलोकाभिगमनप० धृतराष्ट्रविलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

समाप्तमिन्द्रलोकाभिगमनपर्व ।

## नलोपाख्यानपर्व ।

### ५२

जनमेजय उवाच ।
अस्त्रहेतोर्गते पार्थे शक्रलोकं महात्मनि ।
युधिष्ठिरप्रभृतयः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १
वैशंपायन उवाच ।
अस्त्रहेतोर्गते पार्थे शक्रलोकं महात्मनि ।
आवसन्कृष्णया सार्धं काम्यके भरतर्षभाः ॥ २
ततः कदाचिदेकान्ते विविक्त इव शाद्वले ।
दुःखार्ता भरतश्रेष्ठा निषेदुः सह कृष्णया ॥ ३
धनंजयं शोचमानाः साश्रुकण्ठाः सुदुःखिताः ।
तद्वियोगार्दितान्सर्वाञ्छोकः समभिपुप्लुवे ॥ ४
धनंजयवियोगाच्च राज्यभ्रंशाच्च दुःखिताः ।
अथ भीमो महाबाहुर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ ५
निदेशात्ते महाराज गतोसौ भरतर्षभः ।
अर्जुनः पाण्डुपुत्राणां यस्मिन्प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥ ६
यस्मिन्विनष्टे पाञ्चालाः सह पुत्रैस्तथा वयम् ।
सात्यकिर्वासुदेवश्च विनश्येयुर्न संशयः ॥ ७
योसौ गच्छति धर्मात्मा बहून्क्लेशान्विचिन्तयन् ।
भवन्नियोगाद्बीभत्सुस्ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ८
यस्य बाहू समाश्रित्य वयं सर्वे महात्मनः ।
मन्यामहे जितानाजौ परान्प्राप्तां च मेदिनीम् ॥९
यस्य प्रभावान्न मया सभामध्ये धनुष्मतः ।
नीता लोकामिमं सर्वे धार्तराष्ट्राः ससौबलाः १०
ते वयं बाहुबलिनः क्रोधमुत्थितमात्मनः ।
सहामहे भवन्मूलं वासुदेवेन पालिताः ॥ ११
वयं हि सह कृष्णेन हत्वा कर्णमुखान्परान् ।
स्वबाहुविजितां कृत्स्नां प्रशासेम वसुंधराम् ॥१२
भवतो द्यूतदोषेण सर्वे वयमुपप्लुताः ।
अहीनपौरुषा बाला बलिभिर्बलवत्तराः ॥ १३
क्षात्रं धर्मं महाराज त्वमवेक्षितुमर्हसि ।
न हि धर्मो महाराज क्षत्रियस्य वनाश्रयः ॥ १४
राज्यमेव परं धर्मं क्षत्रियस्य विदुर्बुधाः ।
स क्षत्रधर्मविद्राजा मा धर्म्यान्नीनशः पथः ॥ १५
प्राग्द्वादशसमा राजन्धार्तराष्ट्रान्निहन्महि ।
निवर्त्य च वनात्पार्थमानाय्य च जनार्दनम् ॥ १६
व्यूढानीकान्महाराज जवेनैव महामते ।
धार्तराष्ट्रानमुं लोकं गमयामि विशांपते ॥ १७
सर्वानहं हनिष्यामि धार्तराष्ट्रान्ससौबलान् ।
दुर्योधनं च कर्णं च यो वान्यः प्रतियोत्स्यते॥१८
मया प्रशमिते पश्चात्त्वमेष्यसि वनं पुनः ।
एवं कृते न ते दोषा भविष्यन्ति विशांपते ॥ १९
यज्ञैश्च विविधैस्तात कृतं पापमरिंदम ।
अवधूय महाराज गच्छेम स्वर्गमुत्तमम् ॥ २०
एवमेतद्भवेद्राजन्यदि राजा न बालिशः ।
अस्माकं दीर्घसूत्रः स्याद्भवान्धर्मपरायणः ॥ २१

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

अस्त्रेति ॥ १ ॥ आवसन् आवासं कृतवन्तः ॥ २ ॥ पुप्लुवे प्लावितवान् ॥ ४ ॥ निदेशात् आज्ञातः ॥ ६ ॥ अमुं लोकं परलोकम् ॥ १० ॥ अहीनपौरुषा अपि वयं उपप्लुताः कृताः । ये बाला मूर्खाः दुर्योधनादयस्ते बलिभिः सामन्तदत्तैर्धनैर्बलवत्तराः कृताः ॥ १३ ॥ मा नीनशः मा नाशय ॥ १५ ॥ बालिशः बालवद्वृथाहठी दीर्घसूत्रः चिरकारी ॥ २१ ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञा हन्तव्या इति निश्चयः ।
न हि नैकृतिकं हत्वा निकृत्या पापमुच्यते ॥ २२
तथा भारतधर्मेषु धर्मज्ञैरिह दृश्यते ।
अहोरात्रं महाराज तुल्यं संवत्सरेण ह ॥ २३
तथैव वेदवचनं श्रूयते नित्यदा विभो ।
संवत्सरो महाराज पूर्णो भवति कृच्छ्रतः ॥ २४
यदि वेदाः प्रमाणास्ते दिवसादूर्ध्वमच्युत ।
त्रयोदशसमाःकालो ज्ञायतां परिनिष्ठितः ॥ २५
कालो दुर्योधनं हन्तुं सानुबन्धमरिंदम ।
एकाग्रं पृथिवीं सर्वां पुरा राजन्करोति सः ॥२६
द्यूतप्रियेण राजेन्द्र तथा तद्भवता कृतम् ।
प्रायेणाज्ञातचर्यायां वयं सर्वे निपातिताः ॥ २७
न तं देशं प्रपश्यामि यत्र सोस्मान्सुदुर्जनः ।
न विज्ञास्यति दुष्टात्मा चारैरिति सुयोधनः॥२८
अधिगम्य च सर्वाञ्शो वनवासमिमं ततः ।
प्रव्राजयिष्यति पुनर्निकृत्याधमपूरुषः ॥ २९
यद्यस्मानभिगच्छेत पापः स हि कथंचन ।
अज्ञातचर्यामुत्तीर्णान्दृष्ट्वा च पुनराह्वयेत् ॥ ३०
द्यूतेन ते महाराज पुनर्द्यूतमवर्तत ।
भवांश्च पुनराहूतो द्यूतेनैवापनेष्यति ॥ ३१
स तथाक्षेषु कुशलो निश्चितो गतचेतनः ।
चरिष्यसि महाराज वनेषु वसतीः पुनः ॥ ३२
यद्यस्मान्सुमहाराज कृपणान्कर्तुमर्हसि ।
यावज्जीवमवेक्षस्व वेदधर्मांश्च कृत्स्नशः ॥ ३३
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो हन्तव्य इति निश्चयः ।
अनुज्ञातस्त्वया गत्वा यावच्छक्ति सुयोधनम्॥३४
यथैव कक्षमुत्सृष्टो दहेदनिलसारथिः ।
हनिष्यामि तथा मन्दमनुजानातु मे भवान् ॥३५
वैशंपायन उवाच ।
एवं ब्रुवाणं भीमं तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
उवाच सान्त्वयन्राजा मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डवम् ३६
असंशयं महाबाहो हनिष्यसि सुयोधनम् ।
वर्षात्त्रयोदशादूर्ध्वं सह गाण्डीवधन्वना ॥ ३७
यत्त्वमाभाषसे पार्थ प्राप्तः काल इति प्रभो ।
अनृतं नोत्सहे वक्तुं न ह्येतन्मम विद्यते ॥ ३८
अन्तरेणापि कौन्तेय निकृतिं पापनिश्चयम् ।
हन्ता त्वमसि दुर्धर्ष सानुबन्धं सुयोधनम् ॥ ३९
एवं ब्रुवति भीमं तु धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
आजगाम महाभागो बृहदश्वो महानृषिः ॥ ४०
तमभिप्रेक्ष्य धर्मात्मा संप्राप्तं धर्मचारिणम् ।
शास्त्रवन्मधुपर्केण पूजयामास धर्मराट् ॥ ४१
आश्वस्तं चैनमासीनमुपासीनो युधिष्ठिरः ।
अभिप्रेक्ष्य महाबाहुः कृपणं बह्वभाषत ॥ ४२
अक्षद्यूते च भगवन्धनं राज्यं च मे हृतम् ।
आहूय निकृतिप्रज्ञैः कितवैरक्षकोविदैः ॥ ४३
अनक्षज्ञस्य हि सतो निकृत्या पापनिश्चयैः ।
भार्या च मे सभां नीता प्राणेभ्योपि गरीयसी॥
पुनर्द्यूतेन मां जित्वा वनवासं सुदारुणम् ।
प्राव्राजयन्महारण्यमजिनैः परिवारितम् ॥ ४५
अहं वने दुर्वसतीर्वसन्परमदुःखितः ।
अक्षद्यूताधिकारे च गिरः शृण्वन्सुदारुणाः ॥४६
आर्तानां सुहृदां वाचो द्यूतप्रभृति शंसताम् ।
अहं हृदि श्रिताः स्मृत्वा सर्वरात्रीर्विचिन्तयन् ॥
यस्मिंश्चैव समस्तानां प्राणा गाण्डीवधन्वनि ।
विना महात्मना तेन गतसत्त्व इवाभवम् ॥ ४८
कदा द्रक्ष्यामि बीभत्सुं कृतास्त्रं पुनरागतम् ।
प्रियवादिनमक्षुद्रं दयायुक्तमतन्द्रितः ॥ ४९

वेदे श्रूयते । 'विश्वसृजा सहस्रसंवत्सरम्' इति । अत्र हि संवत्सरशब्दो दिनपरः कृतः । अन्यथा शतायुर्वै पुरुष इति श्रुतेरनधिकारिकं शास्त्रमप्रमाणं स्यात् ।तावदायुषो लोकेऽदर्शनाच्च । कृच्छ्रत इति । द्वादशवार्षिकं प्रायश्चित्तं प्रतिज्ञातं तत् कृच्छ्रतः कृच्छ्रैरपि सद्यो भवति । तथा हि । 'त्रिंशताप्राजापत्यकृच्छ्रैरेकोऽब्दो भवति । एवं मित्रविन्देष्टि-पवित्रेष्टिमृगारेष्टिप्रभृतिभिर्द्वादश प्राजापत्यस्थाने धर्मशास्त्रे विहिताभिर्द्वादशवार्षिकं व्रतं समापितुं शक्यमित्यर्थः ॥ २४ ॥ पुरा अग्रे ॥ २६ ॥ द्यूते द्यूतार्थे पुनराह्वयेत् । नन्वाहूतोप्यहं न गमिष्यामीत्याशंक्याह पुनर्द्यूतमवर्तत । पूर्वमप्यनुद्यूतस्य कृतत्वात्पुनरपि द्यूतं करिष्यस्येवेत्यर्थः अपनेष्यति दूरीकरिष्यति । श्रियमिति शेषः ॥ ३१ ॥ कक्षं तृणं । अभिलक्ष्येति शेषः ॥ ३५ ॥ अनृतमिति । विश्वसृजां सत्रे संवत्सरशब्दो न कालपरः । किं तु 'पञ्चपञ्चाशतस्त्रिवृतः संवत्सराः पञ्चपञ्चाशतः पञ्चदशा इत्यादि श्रुतौ संवत्सरपदस्य त्रिवृदादिशब्दसामानाधिकरण्यादहः-शब्दवाच्यक्रतुपरत्वं दृष्टं । अतः संवत्सरशब्दो दिनपर इति प्रवादमात्रं '। पञ्चपञ्चाशतं इति पञ्चाशदधिकं शतद्वय-मुच्यते। न हि कालेन कर्तव्यंव्रतं कर्मणा समापयितुं शक्य-मिति भावः ॥ ३८ ॥

अस्ति राजा मया कश्चिदल्पभाग्यतरो भुवि ।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा क्वचित् ।
न मत्तो दुःखिततरः पुमानस्तीति मे मतिः॥५०
बृहदश्व उवाच ।
यद्ब्रवीषि महाराज न मत्तो विद्यते क्वचित् ।
अल्पभाग्यतरः कश्चित्पुमानस्तीति पाण्डव ॥ ५१
अत्र ते वर्णयिष्यामि यदि शुश्रूषसेऽनघ ।
यस्त्वत्तो दुःखिततरो राजासीत्पृथिवीपते ॥ ५२
वैशंपायन उवाच ।
अथैनमब्रवीद्राजा ब्रवीतु भगवानिति ।
इमामवस्थां संप्राप्तं श्रोतुमिच्छामि पार्थिवम् ॥५३
बृहदश्व उवाच ।
शृणु राजन्नवहितः सह भ्रातृभिरच्युत ।
यस्त्वत्तो दुःखिततरो राजासीत्पृथिवीपते ॥ ५४
निषधेषु महीपालो वीरसेन इति श्रुतः ।
तस्य पुत्रोऽभवन्नाम्ना नलो धर्मार्थकोविदः ॥५५
स निकृत्या जितो राजा पुष्करेणेति नः श्रुतम् ।
वनवासं सुदुःखार्तो भार्यया न्यवसत्सह ॥ ५६
न तस्य दासा न रथो न भ्राता न च बान्धवाः ।
वने निवसतो राजञ्शिष्यन्ते स्म कदाचन॥ ५७
भवान्हि संवृतो वीरैर्भ्रातृभिर्देवसंमितैः ।
ब्रह्मकल्पैर्द्विजाग्र्यैश्च तस्मान्नार्हसि शोचितुम्॥५८
युधिष्ठिर उवाच ।
विस्तरेणाहमिच्छामि नलस्य सुमहात्मनः ।
चरितं वदतां श्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

बृहदश्व उवाच ।
आसीद्राजा नलो नाम वीरसेनसुतो बली ।
उपपन्नो गुणैरिष्टै रूपवानश्वकोविदः ॥ १
अतिष्ठन्मनुजेन्द्राणां मूर्ध्नि देवपतिर्यथा ।
उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा ॥ २
ब्रह्मण्यो वेदविच्छूरो निषधेषु महीपतिः ।
अक्षप्रियः सत्यवादी महानक्षौहिणीपतिः ॥ ३
ईप्सितो वरनारीणामुदारः संयतेन्द्रियः ।
रक्षिता धन्विनां श्रेष्ठः साक्षादिव मनुः स्वयम्
तथैवासीद्विदर्भेषु भीमो भीमपराक्रमः ।
शूरः सर्वगुणैर्युक्तः प्रजाकामः स चाप्रजः ॥ ५
स प्रजार्थे परं यत्नमकरोत्सुसमाहितः ।
तमभ्यगच्छद्ब्रह्मर्षिर्दमनो नाम भारत ॥ ६
तं स भीमः प्रजाकामस्तोषयामास धर्मवित् ।
महिष्या सह राजेन्द्र सत्कारेण सुवर्चसम् ॥ ७
तस्मै प्रसन्नो दमनः सभार्याय वरं ददौ ।
कन्यारत्नं कुमारांश्च त्रीनुदारान्महायशाः ॥ ८
दमयन्तीं दमं दान्तं दमनं च सुवर्चसम् ।
उपपन्नान्गुणैः सर्वैर्भीमान्भीमपराक्रमान् ॥ ९
दमयन्ती तु रूपेण तेजसा यशसा श्रिया ।
सौभाग्येन च लोकेषु यशः प्राप सुमध्यमा ॥ १०
अथ तां वयसि प्राप्ते दासीनां समलंकृतम् ।
शतं शतं सखीनां च पर्युपासच्छचीमिव ॥ ११
तत्र स्म राजते भैमी सर्वाभरणभूषिता ।
सखीमध्येऽनवद्याङ्गी विद्युत्सौदामनी यथा ॥ १२
अतीव रूपसंपन्ना श्रीरिवायतलोचना ।
न देवेषु न यक्षेषु तादृग्रूपवती क्वचित् ॥ १३
मानुषेष्वपि चान्येषु दृष्टपूर्वाथवा श्रुता ।
चित्तप्रसादनी बाला देवानामपि सुन्दरी ॥ १४
नलश्च नरशार्दूलो लोकेष्वप्रतिमो भुवि ।
कंदर्प इव रूपेण मूर्तिमानभवत्स्वयम् ॥ १५

---

अत्रैवार्थे सत्यं सर्वथा न त्याज्यमिति आख्यायिकाद्वारा भीमसेनं बोधयितुं राज्ञा बृहदश्वः प्रवर्त्यते । अस्ति राजा मया कश्चिदित्यादिना ॥ ५० ॥ पुष्करेण राज्ञा ॥ ५६ ॥ शिष्यन्ते अवशिष्टाः । कालस्त्वाविवक्षितः ॥ ५७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३

आसीदिति । उपपन्नः आतियुक्तः ॥ १ ॥ सौदामनी प्रावृषेण्यमेघसंबन्धिनी. सुष्ठु जगतो जीवनं ददाति ते सुदामानो मेघास्तेषां समूहः सौदामनः प्रावृट्कालस्तत्संबन्धिनी । सा हि अत्यन्तं द्योतमाना भवतीति प्रसिद्धम् ॥ १२ ॥ मूर्तिमान् शरीरी ॥ १५ ॥

तस्याः समीपे तु नलं प्रशशंसुः कुतूहलात् ।
नैषधस्य समीपे तु दमयन्तीं पुनः पुनः ॥ १६
तयोरदृष्टः कामोभूच्छृण्वतोः सततं गुणान् ।
अन्योन्यं प्रति कौन्तेय स व्यवर्धत हृच्छयः ॥१७
अशक्नुवन्नलः कामं तदा धारयितुं हृदा ।
अन्तःपुरसमीपस्थे वन आस्ते रहोगतः ॥ १८
स ददर्श ततो हंसाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
वने विचरतां तेषामेकं जग्राह पक्षिणम् ॥ १९
ततोन्तरिक्षगो वाचं व्याजहार नलं तदा ।
हन्तव्योस्मि न ते राजन्करिष्यामि तव प्रियम्,
दमयन्तीसकाशे त्वां कथयिष्यामि नैषध ।
यथा त्वदन्यं पुरुषं न सा मंस्यति कर्हिचित् २१
एवमुक्तस्ततो हंसमुत्ससर्ज महीपतिः ।
ते तु हंसाः समुत्पत्य विदर्भानगमंस्ततः ॥ २२
विदर्भनगरीं गत्वा दमयन्त्यास्तदान्तिके ।
निपेतुस्ते गरुत्मन्तः सा ददर्श च तान्खगान् २३
सा तानद्भुतरूपान्वै दृष्ट्वा सखिगणावृता ।
हृष्टा ग्रहीतुं खगमांस्त्वरमाणोपचक्रमे ॥ २४

अथ हंसा विससृपुः सर्वतः प्रमदावने ।
एकैकशस्तदा कन्यास्तान्हंसान्समुपाद्रवन् ॥२५
दमयन्ती तु यं हंसं समुपाधावदन्तिके ।
स मानुषीं गिरं कृत्वा दमयन्तीमथाब्रवीत् ॥ २६
दमयन्ति नलो नाम निषधेषु महीपतिः ।
अश्विनोः सदृशो रूपे न समास्तस्य मानुषाः२७
कंदर्प इव रूपेण मूर्तिमानभवत्स्वयम् ।
तस्य वै यदि भार्या त्वं भवेथा वरवर्णिनि ॥ २८
सफलं ते भवेज्जन्म रूपं चेदं सुमध्यमे ।
वयं हि देवगन्धर्वमनुष्योरगराक्षसान् ॥ २९
दृष्टवन्तो न चास्माभिर्दृष्टपूर्वस्तथाविधः ।
त्वं चापि रत्नं नारीणां नरेषु च नलो वरः ॥ ३०
विशिष्टया विशिष्टेन संगमो गुणवान्भवेत् ।
एवमुक्ता तु हंसेन दमयन्ती विशांपते ॥ ३१
अब्रवीत्तत्र तं हंसं त्वमप्येवं नले वद ।
तथेत्युक्त्वाण्डजः कन्यां विदर्भस्य विशांपते ।
पुनरागम्य निषधान्नले सर्वं न्यवेदयत् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानपर्वणि हंसदमयन्तीसंवादे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

## ५४

बृहदश्व उवाच ।
दमयन्ती तु तच्छ्रुत्वा वचो हंसस्य भारत ।
ततः प्रभृति न स्वस्था नलं प्रति बभूव सा ॥ १
ततश्चिन्तापरा दीना विवर्णवदना कृशा ।
बभूव दमयन्ती तु निःश्वासपरमा तदा ॥ २
ऊर्ध्वदृष्टिर्ध्यानपरा बभूवोन्मत्तदर्शना ।
पाण्डुवर्णा क्षणेनाथ हृच्छयाविष्टचेतना ॥ ३
न शय्यासनभोगेषु रतिं विन्दति कर्हिचित् ।
न नक्तं न दिवा शेते हाहेति रुदती पुनः ॥
तामस्वस्थां तदाकारां सख्यस्ता जज्ञुरिङ्गितैः ।

ततो विदर्भपतये दमयन्त्याः सखीजनः ॥ ५
न्यवेदयत्तामस्वस्थां दमयन्तीं नरेश्वरे ।
तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भीमो दमयन्तीं सखीगणात् ॥ ६
चिन्तयामास तत्कार्यं सुमहत्स्वां सुतां प्रति ।
किमर्थं दुहिता मेद्य नातिस्वस्थेव लक्ष्यते ॥ ७
स समीक्ष्य महीपालः स्वां सुतां प्राप्तयौवनाम् ।
अपश्यदात्मना कार्यं दमयन्त्याः स्वयंवरम् ॥ ८
स संनिमन्त्रयामास महीपालान्विशांपतिः ।
अनुभूयतामयं वीराः स्वयंवर इति प्रभो ॥ ९

प्रशशंसुः वार्ताहरा इति शेषः ॥१६॥ हृच्छयः कामः ॥ १७ ॥ जातरूपपरिष्कृतान् सुवर्णपक्षान् ॥१९॥ अन्तरिक्षगः खगः ॥ २० ॥ गरुत्मन्तः पक्षवन्तः ॥ २३ ॥ संग्रामः कामयुद्धं सुरतमित्यर्थः । संगम इति पाठेपि स एवार्थः ॥ ३१ ॥ इत्या० पं० नै० भारत० त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

दमयन्तीति ॥१॥ जज्ञुः ज्ञातवत्यः । इङ्गितैः अभिप्रायसूचकैश्चेष्टितैः ॥ ५ ॥ नरेश्वरे नलनिमित्तम् ॥ ६ ॥ संनिमन्त्रयामास आमन्त्रितवान् अनुभूयतां प्रेक्ष्यतां भवद्भिः ॥ ९ ॥

दमयन्ती तु यं हंसं समुपाधावदन्तिके ।
स मानुषीं गिरं कृत्वा दमयन्तीमथाब्रवीत् ॥

—वनपर्व अ. ५३ पृ. ९.२

तामस्वस्थां तदाकारां सख्यस्तां जज्ञुरिङ्गितैः ।

—वनपर्व अ. ५४ पृ. ९२

श्रुत्वा तु पार्थिवाः सर्वे दमयन्त्याः स्वयंवरम् ।
अभिजग्मुस्ततो भीमं राजानो भीमशासनात् १०
हस्त्यश्वरथघोषेण पूरयन्तो वसुंधराम् ।
विचित्रमाल्याभरणैर्बलैर्दृश्यैः स्वलंकृतैः ॥ ११
तेषां भीमो महाबाहुः पार्थिवानां महात्मनाम् ।
यथार्हमकरोत्पूजां तेऽवसंस्तत्र पूजिताः ॥ १२
एतस्मिन्नेव काले तु सुराणामृषिसत्तमौ ।
अटमानौ महात्मानाविन्द्रलोकमितो गतौ ॥ १३
नारदः पर्वतश्चैव महाप्राज्ञौ महाव्रतौ ।
देवराजस्य भवनं विविशाते सुपूजितौ ॥ १४
तावर्चयित्वा मघवा ततः कुशलमव्ययम् ।
पप्रच्छानामयं चापि तयोःसर्वगतं विभुः ॥ १५

नारद उवाच ।

आवयोः कुशलं देव सर्वत्र गतमीश्वर ।
लोके च मघवन्कृत्स्ने नृपाः कुशलिनो विभो १६

बृहदश्व उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा पप्रच्छ बलवृत्रहा ।
धर्मज्ञाः पृथिवीपालास्त्यक्तजीवितयोधिनः॥ १७
शस्त्रेण निधनं काले ये गच्छन्त्यपराङ्मुखाः ।
अयं लोकोऽक्षयस्तेषां यथैव मम कामधुक् ॥ १८
क नु ते क्षत्रियाः शूरा न हि पश्यामि तानहम् ।
आगच्छतो महीपालान्दयितानतिथीन्मम ॥ १९
एवमुक्तस्तु शक्रेण नारदः प्रत्यभाषत ।

नारद उवाच ।

शृणु मे मघवन्येन न दृश्यन्ते महीक्षितः २०
विदर्भराज्ञो दुहिता दमयन्तीति विश्रुता ।
रूपेण समतिक्रान्ता पृथिव्यां सर्वयोषितः ॥ २१
तस्याः स्वयंवरः शक्र भविता न चिरादिव ।
तत्र गच्छन्ति राजानो राजपुत्राश्च सर्वशः ॥२२
तां रत्नभूतां लोकस्य प्रार्थयन्तो महीक्षितः ।
काङ्क्षन्ति स्म विशेषेण बलवृत्रनिषूदन ॥ २३
एतस्मिन्कथ्यमाने तु लोकपालाश्च साग्निकाः ।
आजग्मुर्देवराजस्य समीपममरोत्तमाः । २४
ततस्ते शुश्रुवुः सर्वे नारदस्य वचो महत् ।
श्रुत्वैव चाब्रुवन्हृष्टा गच्छामो वयमप्युत ॥ २५
ततः सर्वे महाराज सगणाः सहवाहनाः ।
विदर्भानभिजग्मुस्ते यतः सर्वे महीक्षितः ॥ २६
नलोपि राजा कौन्तेय श्रुत्वा राज्ञां समागमम् ।
अभ्यगच्छददीनात्मा दमयन्तीमनुव्रतः ॥ २७
अथ देवाः पथि नलं ददृशुर्भूतले स्थितम् ।
साक्षादिव स्थितं मूर्त्या मन्मथं रूपसंपदा ॥ २८
तं दृष्ट्वा लोकपालास्ते भ्राजमानं यथा रविम् ।
तस्थुर्विगतसंकल्पा विस्मिता रूपसंपदा ॥ २९
ततोन्तरिक्षे विष्टभ्य विमानानि दिवौकसः ।
अब्रुवन्नैषधं राजन्नवतीर्य नभस्तलात् ॥ ३०
भो भो निषधराजेन्द्र नल सत्यव्रतो भवान् ।
अस्माकं कुरु साहाय्यं दूतो भव नरोत्तम ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानपर्वणि इन्द्रनारदसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४

## ५५

बृहदश्व उवाच ।

तेभ्यः प्रतिज्ञाय नलः करिष्य इति भारत ।
अथैतान्परिपप्रच्छ कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥ १
के वै भवन्तः कश्चासौ यस्याहं दूत ईप्सितः ।
किं च तद्वो मया कार्यं कथयध्वं यथातथम् ॥ २
एवमुक्ते नैषधेन मघवानभ्यभाषत ।
अमरान्वै निबोधास्मान्दमयन्त्यर्थमागतान् ॥ ३
अहमिन्द्रोऽयमग्निश्च तथैवायमपां पतिः ।
शरीरान्तकरो नृणां यमोऽयमपि पार्थिव ॥ ४
त्वं वै समागतानस्मान्दमयन्त्यै निवेदय ।
लोकपाला महेन्द्राद्याः समायान्ति दिदृक्षवः ॥ ५
प्राप्तुमिच्छन्ति देवास्त्वां शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः ।
तेषामन्यतमं देवं पतित्वे वरयस्व ह ॥ ६
एवमुक्तः स शक्रेण नलः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
एकार्थं समुपेतं मां न प्रेषयितुमर्हथ ॥ ७

---

महीक्षितः पृथ्वीश्वराः ॥ २० ॥ 'विगतो' विनष्टः दमयन्तीं प्राप्स्याम इति संकल्पो येषाम् ॥२९॥ इत्या० प० नै० भारत० चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

तेभ्य इति ॥ १ ॥ एकार्थे एकप्रयोजनं । यूयमिवाहमपि दमयन्तीं प्रार्थयामीत्यर्थः ॥ ७ ॥

कथं तु जातसंकल्पः स्त्रियमुत्सृजते पुमान् ।
परार्थमीदृशं वक्तुं तत्क्षमन्तु महेश्वराः ॥ ८

देवा ऊचुः ।

करिष्य इति संश्रुत्य पूर्वमस्मासु नैषध ।
न करिष्यसि कस्मात्त्वं व्रज नैषध मा चिरम् ॥ ९

बृहदश्व उवाच ।

एवमुक्तः स देवैस्तैर्नैषधः पुनरब्रवीत् ।
सुरक्षितानि वेश्मानि प्रवेष्टुं कथमुत्सहे ॥ १०
प्रवेक्ष्यसीति तं शक्रः पुनरेवाभ्यभाषत ।
जगाम स तथेत्युक्त्वा दमयन्त्या निवेशनम् ॥ ११
ददर्श तत्र वैदर्भीं सखीगणसमावृताम् ।
देदीप्यमानां वपुषा श्रिया च वरवर्णिनीम् ॥ १२
अतीवसुकुमाराङ्गीं तनुमध्यां सुलोचनाम् ।
आक्षिपन्तीमिव प्रभां शशिनः स्वेन तेजसा ॥ १३
तस्य दृष्ट्वैव ववृधे कामस्तां चारुहासिनीम् ।
सत्यं चिकीर्षमाणस्तु धारयामास हृच्छयम् ॥ १४
ततस्ता नैषधं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः परमाङ्गनाः ।
आसनेभ्यः समुत्पेतुस्तेजसा तस्य धर्षिताः ॥ १५
प्रशशंसुश्च सुप्रीता नलं ता विस्मयान्विताः ।
न चैनमभ्यभाषन्त मनोभिस्त्वभ्यपूजयन् ॥ १६
अहोरूपमहोकान्तिरहो धैर्यं महात्मनः ।
कोऽयं देवोऽथवा यक्षो गन्धर्वो वा भविष्यति ॥ १७
न तास्तं शक्नुवन्ति स्म व्याहर्तुमपि किंचन ।
तेजसा धर्षितास्तस्य लज्जावत्यो वराङ्गनाः ॥ १८
अथैनं स्मयमानं तु स्मितपूर्वाभिभाषिणी ।
दमयन्ती नलं वीरमभ्यभाषत विस्मिता ॥ १९
कस्त्वं सर्वानवद्याङ्ग मम हृच्छयवर्धन ।
प्राप्तोऽस्यमरवद्वीर ज्ञातुमिच्छामि तेऽनघ ॥ २०
कथमागमनं चेह कथं चासि न लक्षितः ।
सुरक्षितं हि मे वेश्म राजा चैवोग्रशासनः ॥ २१
एवमुक्तस्तु वैदर्भ्या नलस्तां प्रत्युवाच ह ।

नल उवाच ।

नलं मां विद्धि कल्याणि देवदूतमिहागतम् ॥ २२
देवास्त्वां प्राप्तुमिच्छन्ति शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः ।
तेषामन्यतमं देवं पतिं वरय शोभने ॥ २३
तेषामेव प्रभावेण प्रविष्टोऽहमलक्षितः ।
प्रविशन्तं न मां कश्चिदपश्यन्नाप्यवारयत् ॥ २४
एतदर्थमहं भद्रे प्रेषितः सुरसत्तमैः ।
एतच्छ्रुत्वा शुभे बुद्धिं प्रकुरुष्व यथेच्छसि ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानपर्वणि नलस्य देवदौत्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

## ५६

बृहदश्व उवाच ।

सा नमस्कृत्य देवेभ्यः प्रहस्य नलमब्रवीत् ।
प्रणयस्व यथाश्रद्धं राजन्किं करवाणि ते ॥ १
अहं चैव हि यच्चान्यन्ममास्ति वसु किंचन ।
तत्सर्वं तव विश्रब्धं कुरु प्रणयमीश्वर ॥ २
हंसानां वचनं यत्तु तन्मां दहति पार्थिव ।
त्वत्कृते हि मया वीर राजानः संनिपातिताः ॥ ३
यदि त्वं भजमानां मां प्रत्याख्यास्यसि मानद ।
विषमग्निं जलं रज्जुमास्थास्ये तव कारणात् ॥ ४
एवमुक्तस्तु वैदर्भ्या नलस्तां प्रत्युवाच ह ।
तिष्ठत्सु लोकपालेषु कथं मानुषमिच्छसि ॥ ५
येषामहं लोककृतामीश्वराणां महात्मनाम् ।
न पादरजसा तुल्यो मनस्ते तेषु वर्तताम् ॥ ६
विप्रियं ह्याचरन्मर्त्यो देवानां मृत्युमृच्छति ।
त्राहि मामनवद्याङ्गि वरयस्व सुरोत्तमान् ॥ ७
विरजांसि च वासांसि दिव्याश्चित्राः स्रजस्तथा ।
भूषणानि तु मुख्यानि देवान्प्राप्य तु भुङ्क्ष्व वै ॥ ८
य इमां पृथिवीं कृत्स्नां संक्षिप्य ग्रसते पुनः ।
हुताशमीशं देवानां का तं न वरयेत्पतिम् ॥ ९

---

प्रवेक्ष्यसीति । अदर्शनशक्तिस्तुभ्यं दत्तेति भावः ॥११॥ धर्षिता अभिभूताः ॥१५॥ इत्या० प० नै० भा० पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

सेति । यथाश्रद्धं देवेभ्यो नमस्कृत्य प्रणयस्वेति संबन्धः । प्रणयस्व परिणयस्व । मामिति शेषः ॥ १ ॥ विश्रब्धं सविश्वासं यथा स्यात्तथा प्रणयं परिणयनं विवाहम् ॥ २ ॥ संनिपातिता मेलिताः ॥ ३ ॥

यस्य दण्डभयात्सर्वे भूतग्रामाः समागताः ।
धर्ममेवानुरुध्यन्ति का तं न वरयेत्पतिम् ॥ १०
धर्मात्मानं महात्मानं दैत्यदानवमर्दनम् ।
महेन्द्रं सर्वदेवानां का तं न वरयेत्पतिम् ॥ ११
क्रियतामविशङ्केन मनसा यदि मन्यसे ।
वरुणं लोकपालानां सुहृद्वाक्यमिदं शृणु ॥ १२
नैषधेनैवमुक्ता सा दमयन्ती वचोऽब्रवीत् ।
समाप्लुताभ्यां नेत्राभ्यां शोकजेनाथ वारिणा १३
देवेभ्योऽहं नमस्कृत्य सर्वेभ्यः पृथिवीपते ।
वृणे त्वामेव भर्तारं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १४
तामुवाच ततो राजा वेपमानां कृताञ्जलिम् ।
दौत्येनागत्य कल्याणि तथा भद्रे विधीयताम् ॥
कथं ह्यहं प्रतिश्रुत्य देवतानां विशेषतः ।
परार्थे यत्नमारभ्य कथं स्वार्थमिहोत्सहे ॥ १६
एष धर्मो यदि स्वार्थो ममापि भविता ततः ।
एवं स्वार्थं करिष्यामि तथा भद्रे विधीयताम्१७
ततो बाष्पाकुलां वाचं दमयन्ती शुचिस्मिता ।
प्रत्याहरन्ती शनकैर्नलं राजानमब्रवीत् ॥ १८
उपायोऽयं मया दृष्टो निरपायो नरेश्वरः ।
येन दोषो न भविता तव राजन्कथंचन ॥ १९
त्वं चैव हि नरश्रेष्ठ देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ।
आयान्तु सहिताः सर्वे मम यत्र स्वयंवरः ॥ २०
ततोऽहं लोकपालानां संनिधौ त्वां नरेश्वर ।
वरयिष्ये नरव्याघ्र नैवं दोषो भविष्यति ॥ २१
एवमुक्तस्तु वैदर्भ्या नलो राजा विशांपते ।
आजगाम पुनस्तत्र यत्र देवाः समागताः ॥ २२
तमपश्यंस्तथा यान्तं लोकपाला महेश्वराः ।
दृष्ट्वा चैनं ततोऽपृच्छन्वृत्तान्तं सर्वमेव तम् ॥ २३
कच्चिद्दृष्टा त्वया राजन्दमयन्ती शुचिस्मिता ।
किमब्रवीच्च नः सर्वान्वद भूमिप तेऽनघ ॥ २४

नल उवाच ।

भवद्भिरहमादिष्टो दमयन्त्या निवेशनम् ।
प्रविष्टः सुमहाकक्षं दण्डिभिः स्थविरैर्वृतम् ॥ २५
प्रविशन्तं च मां तत्र न कश्चिद्दृष्टवान्नरः ।
ऋते तां पार्थिवसुतां भवतामेव तेजसा ॥ २६
सख्यश्चास्या मया दृष्टास्ताभिश्चाप्युपलक्षितः ।
विस्मिताश्चाभवन्सर्वा दृष्ट्वा मां विबुधेश्वराः॥२७
वर्ण्यमानेषु च मया भवत्सु रुचिरानना ।
मामेव गतसंकल्पा वृणीते सा सुरोत्तमाः ॥ २८
अब्रवीच्चैव मां बाला आयान्तु सहिताः सुराः ।
त्वया सह नरव्याघ्र मम यत्र स्वयंवरः ॥ २९
तेषामहं संनिधौ त्वां वरयिष्यामि नैषध ।
एवं तव महाबाहो दोषो न भवितेति ह ॥ ३०
एतावदेव विबुधा यथावृत्तमुपाहृतम् ।
मयाऽशेषे प्रमाणं तु भवन्तस्त्रिदशेश्वराः ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानपर्वणि नलकर्तृकदेवदूत्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

## ५७

बृहदश्व उवाच ।

अथ काले शुभे प्राप्ते तिथौ पुण्ये क्षणे तथा ।
आजुहाव महीपालान्भीमो राजा स्वयंवरे ॥ १
तच्छ्रुत्वा पृथिवीपालाः सर्वे हृच्छयपीडिताः ।
त्वरिताः समुपाजग्मुर्दमयन्तीमभीप्सवः ॥ २
कनकस्तम्भरुचिरं तोरणेन विराजितम् ।
विविशुस्ते नृपा रङ्गं महासिंहा इवाचलम् ॥ ३
तत्रासनेषु विविधेष्वासीनाः पृथिवीक्षितः ।
सुरभिस्रग्धराः सर्वे प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ ४
तां राजसमितिं पुण्यां नागैर्भोगवतीमिव ।
संपूर्णां पुरुषव्याघ्रैर्व्याघ्रैर्गिरिगुहामिव ॥ ५
तत्र स्म पीना दृश्यन्ते बाहवः परिघोपमाः ।
आकारवर्णसुश्लक्ष्णाः पञ्चशीर्षा इवोरगाः ॥ ६
सुकेशान्तानि चारूणि सुनासाक्षिभ्रुवाणि च ।
मुखानि राज्ञां शोभन्ते नक्षत्राणि यथा दिवि॥७

महाकक्षं महान्तं राजद्वारप्रदेशम् ॥ ९५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

अथेति ॥ १

दमयन्ती ततो रङ्गं प्रविवेश शुभानना ।
मुष्णन्ती प्रभया राज्ञां चक्षूंषि च मनांसि च ॥८
तस्या गात्रेषु पतिता तेषां दृष्टिर्महात्मनाम् ।
तत्र तत्रैव सक्ताऽभून्न चचाल च पश्यताम् ॥ ९
ततः संकीर्त्यमानेषु राज्ञां नामसु भारत ।
ददर्श भैमी पुरुषान्पञ्चतुल्याकृतीनि ह ॥ १०
तान्समीक्ष्य ततः सर्वान्निर्विशेषाकृतीन्स्थितान् ।
संदेहादथ वैदर्भी नाभ्यजानान्नलं नृपम् ॥ ११
यं यं हि ददृशे तेषां तं तं मेने नलं नृपम् ।
सा चिन्तयन्ती बुद्ध्याऽथ तर्कयामास भाविनी ॥
कथं हि देवाञ्जानीयां कथं विद्यां नलं नृपम् ।
एवं संचिन्तयन्ती सा वैदर्भी भृशदुःखिता ॥ १३
श्रुतानि देवलिङ्गानि तर्कयामास भारत ।
देवानां यानि लिङ्गानि स्थविरेभ्यः श्रुतानि मे१४
तानीह तिष्ठतां भूमावेकस्यापि न लक्षये ।
सा विनिश्चित्य बहुधा विचार्य च पुनः पुनः १५
शरणं प्रति देवानां प्राप्तकालममन्यत ।
वाचा च मनसा चैव नमस्कारं प्रयुज्य सा॥ १६
देवेभ्यः प्राञ्जलिर्भूत्वा वेपमानेदमब्रवीत् ।
हंसानां वचनं श्रुत्वा यथा मे नैषधो वृतः ।
पतित्वे तेन सत्येन देवास्तं प्रदिशन्तु मे ॥ १७
मनसा वचसा चैव यथा नाभिचराम्यहम् ।
तेन सत्येन विबुधास्तमेव प्रदिशन्तु मे ॥ १८
यथा देवैः समे भर्ता विहितो निषधाधिपः ।
तेन सत्येन मे देवास्तमेव प्रदिशन्तु मे ॥ १९
यथेदं व्रतमारब्धं नलस्याराधने मया ।
तेन सत्येन मे देवास्तमेव प्रदिशन्तु मे ॥ २०
स्वं चैव रूपं कुर्वन्तु लोकपाला महेश्वराः ।
यथाऽहमभिजानीयां पुण्यश्लोकं नराधिपम् ॥ २१
निशम्य दमयन्त्यास्तत्करुणं प्रतिदेवितम् ।
निश्चयं परमं तथ्यमनुरागं च नैषधे ॥ २२
मनोविशुद्धिं बुद्धिं च भक्तिं रागं च नैषधे ।
यथोक्तं चक्रिरे देवाः सामर्थ्यं लिङ्गधारणे ॥ २३
साऽपश्यद्विबुधान्सर्वानस्वेदान्स्तब्धलोचनान् ।
हृषितस्रग्रजोहीनान्स्थितानस्पृशतः क्षितिम् ॥
छायाद्वितीयो म्लानस्रग्रजः स्वेदसमन्वितः ।
भूमिष्ठो नैषधश्चैव निमेषेण च सूचितः ॥ २५
सा समीक्ष्य तु तान्देवान्पुण्यश्लोकं च भारत ।
नैषधं वरयामास भैमी धर्मेण पाण्डव ॥ २६
विलज्जमाना वस्त्रान्तं जग्राहायतलोचना ।
स्कन्धदेशेऽसृजत्तस्य स्रजं परमशोभनाम् ॥ २७
वरयामास चैवैनं पतित्वे वरवर्णिनी ।
ततो हाहेति सहसा मुक्तः शब्दो नराधिपैः ॥२८
देवैर्महर्षिभिस्तत्र साधु साध्विति भारत ।
विस्मितैरीरितः शब्दः प्रशंसद्भिर्नलं नृपम् ॥ २९
दमयन्तीं तु कौरव्य वीरसेनसुतो नृपः ।
आश्वासयद्वरारोहां प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३०
यत्त्वं भजसि कल्याणि पुमांसं देवसंनिधौ ।
तस्मान्मां विद्धि भर्तारमेतत्ते वचने रतम् ॥ ३१
यावच्च मे धरिष्यन्ति प्राणा देहे शुचिस्मिते ।
तावत्त्वयि भविष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३२
दमयन्ती तथा वाग्भिरभिनन्द्य कृताञ्जलिः ।
तौ परस्परतः प्रीतौ दृष्ट्वा त्वग्निपुरोगमान् ॥ ३३
तानेव शरणं देवाञ्जग्मतुर्मनसा तदा ।
वृते तु नैषधे भैम्या लोकपाला महौजसः ॥ ३४
प्रहृष्टमनसः सर्वे नलायाष्टौ वरान्ददुः ।
प्रत्यक्षदर्शनं यज्ञे गतिं चानुत्तमां शुभाम् ॥ ३५
नैषधाय ददौ शक्रः प्रीयमाणः शचीपतिः ।
अग्निरात्मभवं प्रादाद्यत्र वाञ्छति नैषधः ॥ ३६
लोकानात्मप्रभांश्चैव ददौ तस्मै हुताशनः ।
यमस्त्वन्नरसं प्रादाद्धर्मे च परमां स्थितिम् ॥ ३७
अपां पतिरपां भावं यत्र वाञ्छति नैषधः ।
स्रजश्चोत्तमगन्धाढ्याः सर्वे च मिथुनं ददुः॥ ३८
वरानेवं प्रदायास्य देवास्ते त्रिदिवं गताः ।
पार्थिवाश्चानुभूयास्य विवाहं विस्मयान्विताः ३९
दमयन्त्याश्च मुदिताः प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
गतेषु पार्थिवेन्द्रेषु भीमः प्रीतो महामनाः ॥ ४०
विवाहं कारयामास दमयन्त्या नलस्य च ।
उष्य तत्र यथाकामं नैषधो द्विपदां वरः ॥ ४१
भीमेन समनुज्ञातो जगाम नगरं स्वकम् ।
अवाप्य नारीरत्नं तु पुण्यश्लोकोऽपि पार्थिवः ४२

मुष्णन्ती हरन्ती ॥ ८ ॥ मनुष्याः सस्वेदाः सनिमेषाम्लायमानस्रजः सरजस्का भूमिस्पृशः देवास्तद्विपरीताः । हृषितस्रजश्चते रजोहीनाश्चेति समासः ॥२४॥ यद्यस्मान्मां भजसि तस्मात्ते तव वचने रतं इत्येतत् विद्धि ॥ ३१ ॥ आत्मभवं आत्मन आविर्भावम् ॥ ३६ ॥ अन्नरसं यादृशे तादृशेऽप्यन्ने विशिष्टरसवत्ताम् ॥ ३७॥ भावं सत्तां मिथुनं एकैकेन द्वयं द्वयमपीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ अनुभूय दृष्ट्वा ॥ ३९ ॥ उष्य वासं कृत्वा ॥ ४१ ॥

रेमे सह तया राजञ्छच्येव बलवृत्रहा ।
अतीव मुदितो राजा भ्राजमानोऽंशुमानिव ॥४३
अरञ्जयत्प्रजा वीरो धर्मेण परिपालयन् ।
ईजे चाप्यश्वमेधेन ययातिरिव नाहुषः ॥ ४४
अन्यैश्च बहुभिर्धीमान्क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः
पुनश्च रमणीयेषु वनेषूपवनेषु च ॥ ४५
दमयन्त्या सह नलो विजहारामरोपमः ।
जनयामास च ततो दमयन्त्यां महामनाः ।
इन्द्रसेनं सुतं चापि इन्द्रसेनां च कन्यकाम् ॥ ४६
एवं स यजमानश्च विहरंश्च नराधिपः ।
ररक्ष वसुसंपूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानप० दमयन्तीस्वयंवरे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

## ५८

बृहदश्व उवाच ।
वृते तु नैषधे भैम्या लोकपाला महौजसः ।
यान्तो ददृशुरायान्तं द्वापरं कलिना सह ॥ १
अथाब्रवीत्कलिं शक्रः संप्रेक्ष्य बलवृत्रहा ।
द्वापरेण सहायेन कले ब्रूहि क्व यास्यसि ॥ २
ततोऽब्रवीत्कलिः शक्रं दमयन्त्याः स्वयंवरम् ।
गत्वा हि वरयिष्ये तां मनो हि मम तां गतम् ॥३
तमब्रवीत्प्रहस्येन्द्रो निर्वृत्तः स स्वयंवरः ।
वृतस्तया नलो राजा पतिरस्मत्समीपतः ॥ ४
एवमुक्तस्तु शक्रेण कलिः कोपसमन्वितः
देवानामन्त्र्य तान्सर्वानुवाचेदं वचस्तदा ॥
देवानां मानुषं मध्ये यत्सा पतिमविन्दत ।
तत्र तस्या भवेन्न्याय्यं विपुलं दण्डधारणम् ॥
एवमुक्ते तु कलिना प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ।
अस्माभिः समनुज्ञाते दमयन्त्या नलो वृतः ॥ ७
का च सर्वगुणोपेतं नाश्रयेत नलं नृपम् ।
यो वेद धर्मानखिलान्यथावच्चरितव्रतः ॥
योऽधीते चतुरो वेदान्सर्वानाख्यानपञ्चमान् ।
नित्यं तृप्ता गृहे यस्य देवा यज्ञेषु धर्मतः
अहिंसानिरतो यश्च सत्यवादी दृढव्रतः ॥ ९
यस्मिन्दाक्ष्यं धृतिर्ज्ञानं तपः शौचं दमः शमः ।
ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे ॥ १०
एवंरूपं नलं यो वै कामयेच्छपितुं कले ।
आत्मानं स शपन्मूढो हन्यादात्मानमात्मना ॥११
एवंगुणं नलं यो वै कामयेच्छपितुं कले ।
कृच्छ्रे स नरके मज्जेदगाधे विपुले ह्रदे ।
एवमुक्त्वा कलिं देवा द्वापरं च दिवं ययुः ॥ १२
ततो गतेषु देवेषु कलिर्द्वापरमब्रवीत् ।
संहर्तुं नोत्सहे कोपं नले वत्स्यामि द्वापर ॥ १३
भ्रंशयिष्यामि तं राज्यान्न भैम्या सह रंस्यते ।
त्वमप्यक्षान्समाविश्य साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानप० कलिदेवसंवादे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः । ५७ ॥

५८

एवं देवेभ्यो लब्धवरस्य रूपाद्यैर्यादिमतो दमयन्तीलाभजं सुखमुक्त्वा तस्यैव संप्रति दुर्व्यसनजामापदं वक्तुमुपक्रमते । वृते तु नैषधे इत्यादिना ॥ १ ॥ निर्वृत्तः समाप्तः ॥ ४ ॥ यस्मिन्निति । दाक्ष्यं नित्योत्साहः । सत्यमिति पाठे यथार्थभाषणं । धृतिर्वाङ्मनःकायानामवसादप्राप्तौ तदुत्तम्भनार्थं यत्नविशेषो मनोधर्मः । ज्ञानं शब्दतोऽर्थतश्च तपः स्वधर्मनिष्ठा शौचं बाह्यं मृज्जलादिजं आभ्यन्तरं भावशुद्धिः । दमो बाह्येन्द्रियनिग्रहः शमो मनोनिग्रहः ध्रुवाणि विनाशरहितान्यबाध्यानि ॥ १० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

## ५९

बृहदश्व उवाच ।

एवं स समयं कृत्वा द्वापरेण कलिः सह ।
आजगाम ततस्तत्र यत्र राजा स नैषधः ॥ १
स नित्यमन्तरप्रेप्सुर्निषधेष्ववसच्चिरम् ।
अथास्य द्वादशे वर्षे ददर्श कलिरन्तरम् ॥ २
कृत्वा मूत्रमुपस्पृश्य संध्यामन्वास्त नैषधः
अकृत्वा पादयोः शौचं तत्रैनं कलिराविशत् ॥ ३
स समाविश्य च नलं समीपं पुष्करस्य च ।
गत्वा पुष्करमाहेदमेहि दीव्य नलेन वै ॥ ४
अक्षद्यूते नलं जेता भवान्हि सहितो मया ।
निषधान्प्रतिपद्यस्व जित्वा राज्यं नलं नृपम् ॥ ५
एवमुक्तस्तु कलिना पुष्करो नलमभ्ययात् ।
कलिश्चैव वृषो भूत्वा गवां पुष्करमभ्ययात् ॥ ६
आसाद्य तु नलं वीरं पुष्करः परवीरहा ।
दीव्यावेत्यब्रवीद्भ्राता वृषेणेति मुहुर्मुहुः ॥ ७
न चक्षमे ततो राजा समाह्वानं महामनाः ।
वैदर्भ्याः प्रेक्षमाणायाः पणकालममन्यत ॥ ८
हिरण्यस्य सुवर्णस्य यानयुग्यस्य वाससाम् ।
आविष्टः कलिना द्यूते जीयते स्म नलस्तदा ॥ ९
तमक्षमदसंमत्तं सुहृदां न तु कश्चन ।
निवारणेऽभवच्छक्तो दीव्यमानमरिंदमम् ॥ १०
ततः पौरजनाः सर्वे मन्त्रिभिः सह भारत ।
राजानं द्रष्टुमागच्छन्निवारयितुमातुरम् ॥ ११
ततः सूत उपागम्य दमयन्त्यै न्यवेदयत् ।
एष पौरजनो देवि द्वारि तिष्ठति कार्यवान् ॥ १२
निवेद्यतां नैषधाय सर्वाः प्रकृतयः स्थिताः ।
अमृष्यमाणा व्यसनं राज्ञो धर्मार्थदर्शिनः ॥ १३
ततः सा बाष्पकलया वाचा दुःखेन कर्शिता ।
उवाच नैषधं भैमी शोकोपहतचेतना ॥ १४
राजन्पौरजनो द्वारि त्वां दिदृक्षुरवस्थितः ।
मन्त्रिभिः सहितः सर्वै राजभक्तिपुरस्कृतः ॥ १५
तं द्रष्टुमर्हसीत्येवं पुनःपुनरभाषत ।
तां तथा रुचिरापाङ्गीं विलपन्तीं तथाविधाम् १६
आविष्टः कलिना राजा नाभ्यभाषत किंचन ।
ततस्ते मन्त्रिणः सर्वे ते चैव पुरवासिनः ॥ १७
नायमस्तीति दुःखार्ता व्रीडिता जग्मुरालयान् ।
तथा तदभवद्द्यूतं पुष्करस्य नलस्य च ।
युधिष्ठिरबहून्मासान्पुण्यश्लोकस्त्वजीयत ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि नलद्यूते एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९

## ६०

बृहदश्व उवाच ।

दमयन्ती ततो दृष्ट्वा पुण्यश्लोकं नराधिपम् ।
उन्मत्तवदनुन्मत्ता देवने गतचेतसम् ॥ १
भयशोकसमाविष्टा राजन्भीमसुता ततः ।
चिन्तयामास तत्कार्यं सुमहत्पार्थिवं प्रति ॥ २
सा शङ्कमाना तत्पापं चिकीर्षन्ती च तत्प्रियम् ।
नलं च हृतसर्वस्वमुपलभ्येदमब्रवीत् ॥ ३
बृहत्सेनामतियशां तां धात्रीं परिचारिकाम् ।
हितां सर्वार्थकुशलामनुरक्तां सुभाषिताम् ॥ ४
बृहत्सेने व्रजामात्यानानाय्य नलशासनात् ।
आचक्ष्व यद्धृतं द्रव्यमवशिष्टं च यद्वसु ॥ ५

५९

एवमिति । समयं संकेतम् ॥ १ ॥ अन्वास्त उपासितवान् । नोऽस्ते स्मेति पाठे स उपास्ते स्मेत्यर्थः आर्षः संधिः ॥ ३ ॥ सः कलिः नलं समाविश्य रूपान्तरेण पुष्करं चाब्रवीत् । दीव्य द्यूतं कुरु ॥ ४ ॥ साहाय्यमेवाह कलिश्चेति । गवां वृषः अत्र गोशब्दो लक्षितलक्षणयाऽक्षशब्दवाच्येषु पाशेषु वर्तते । वृषः श्रेष्ठः पाशश्रेष्ठो भूत्वा ॥ ६ ॥ वृषेण अक्षमुख्येन ॥ ७ ॥ पणकालं द्यूतकालम् ॥ ८ ॥ यानेषु युग्यं युगवहं रथादि तस्य ॥ ९ ॥ नायमस्ति नष्टोऽयमित्यर्थः । पुण्यः पावनः श्लोको यशो यस्य । अजीयत जितः ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

दमयन्तीति ॥ १ ॥

ततस्ते मन्त्रिणः सर्वे विज्ञाय नलशासनम् ।
अपि नो भागधेयं स्यादित्युक्त्वा नलमाव्रजन् ॥ ६
तास्तु सर्वाः प्रकृतयो द्वितीयं समुपस्थिताः ।
न्यवेदयद्भीमसुता न च तत्प्रत्यनन्दत ॥ ७
वाक्यमप्रतिनन्दन्तं भर्तारमभिवीक्ष्य सा ।
दमयन्ती पुनर्वेश्म व्रीडिता प्रविवेश ह ॥ ८
निशम्य सततं चाक्षान्पुण्यश्लोकपराङ्मुखान् ।
नलं च हृतसर्वस्वं धात्रीं पुनरुवाच ह ॥ ९
बृहत्सेने पुनर्गच्छ वार्ष्णेयं नलशासनात् ।
सूतमानय कल्याणि महत्कार्यमुपस्थितम् ॥ १०
बृहत्सेना तु सा श्रुत्वा दमयन्त्याः प्रभाषितम् ।
वार्ष्णेयमानयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ११
वार्ष्णेयं तु ततो भैमी सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ।
उवाच देशकालज्ञा प्राप्तकालमनिन्दिता ॥ १२
जानासि त्वं यथा राजा सम्यग्वृत्तः सदा त्वयि ।
तस्य त्वं विषमस्थस्य साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ १३
यथायथा हि नृपतिः पुष्करेणेव जीयते ।
तथातथाऽस्य वै द्यूते रागो भूयोऽभिवर्धते ॥ १४
तथा च पुष्करस्याक्षाः पतन्ति वशवर्तिनः ।
तथा विपर्ययश्चापि नलस्याक्षेषु दृश्यते ॥ १५
सुहृत्स्वजनवाक्यानि यथावन्न शृणोति च ।
ममापि च तथा वाक्यं नाभिनन्दति मोहितः ॥ १६
नूनं मन्ये न दोषोऽस्ति नैषधस्य महात्मनः ।
यत्तु मे वचनं राजा नाभिनन्दति मोहितः ॥ १७
शरणं त्वां प्रपन्नास्मि सारथे कुरु मद्वचः ।
न हि मे शुध्यते भावः कदाचिद्विनशेदपि ॥ १८
नलस्य दयितानश्वान्योजयित्वा मनोजवान् ।
इदमारोप्य मिथुनं कुण्डिनं यातुमर्हसि ॥ १९
मम ज्ञातिषु निक्षिप्य दारकौ स्यन्दनं तथा ।
अश्वांश्चेमान्यथाकामं वस वाऽन्यत्र गच्छ वा ॥ २०
दमयन्त्यास्तु तद्वाक्यं वार्ष्णेयो नलसारथिः ।
न्यवेदयदशेषेण नलामात्येषु मुख्यशः ॥ २१
तैः समेत्य विनिश्चित्य सोनुज्ञातो महीपते ।
ययौ मिथुनमारोप्य विदर्भांस्तेन वाहिना ॥ २२
हयांस्तत्र विनिक्षिप्य सूतो रथवरं च तम् ।
इन्द्रसेनां च तां कन्यामिन्द्रसेनं च बालकम् ॥ २३
आमन्त्र्य भीमं राजानमार्तः शोचन्नलं नृपम् ।
अटमानस्ततोऽयोध्यां जगाम नगरीं तदा ॥ २४
ऋतुपर्णं स राजानमुपतस्थे सुदुःखितः ।
भृतिं चोपययौ तस्य सारथ्येन महीपते ॥ २५

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० नलोपाख्यानप० कुण्डिनं प्रति कुमारकुमारीप्रस्थापने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

बृहदश्व उवाच ।

ततस्तु याते वार्ष्णेये पुण्यश्लोकस्य दीव्यतः ।
पुष्करेण हृतं राज्यं यच्चान्यद्वसु किंचन ॥ १
हृतराज्यं नलं राजन्प्रहसन्पुष्करोऽब्रवीत् ।
द्यूतं प्रवर्ततां भूयः प्रतिपाणोस्ति कस्तव ॥ २
शिष्टा ते दमयन्त्येका सर्वमन्याज्जितं मया ।
दमयन्त्याः पणः साधु वर्ततां यदि मन्यसे ॥ ३
पुष्करेणैवमुक्तस्य पुण्यश्लोकस्य मन्युना ।
व्यदीर्यतेव हृदयं न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ ४
ततः पुष्करमालोक्य नलः परममन्युमान् ।
उत्सृज्य सर्वगात्रेभ्यो भूषणानि महायशाः ॥ ५
एकवासा ह्यसंवीतः सुहृच्छोकविवर्धनः ।
निश्चक्राम ततो राजा त्यक्त्वा सुविपुलां श्रियम् ।
दमयन्त्येकवस्त्राथ गच्छन्तं पृष्ठतोन्वगात् ।
स तया बाह्यतः सार्धं त्रिरात्रं नैषधोवसत् ॥ ७

द्वितीयं द्वितीयवारम् ॥ ७ ॥ विनशेत् विनश्येत् नल इति शेषः ॥ १८ ॥ मिथुनं कुमारीं कुमारं च । कुण्डिनं भीमस्य नगरम् ॥ १९ ॥ मुख्यशः मुख्येषु मुख्येषु ॥ २१ ॥ वाहिना अश्वरथेन ॥ २२ ॥ अटमानः वेतनार्थी पर्यटन् ॥ २४ ॥ भृतिं वेतनम् ॥ २५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

तत इति ॥ १ ॥ प्रतिपाणः पणनीयं द्रव्यम् तया सार्धं बाह्यतः बहिः ॥ ७ ॥

पुष्करस्तु महाराज घोषयामास वै पुरे ।
नले यःसम्यगातिष्ठेत्स गच्छेद्बध्यतां मम ॥
पुष्करस्य तु वाक्येन तस्य विद्वेषणेन च ।
पौरा न तस्य सत्कारं कृतवन्तो युधिष्ठिर ॥
स तथा नगराभ्यासे सत्कारार्हो न सत्कृतः
त्रिरात्रमुषितो राजा जलमात्रेण वर्तयन् १०
पीड्यमानः क्षुधा तत्र फलमूलानि कर्षयन् ।
प्रातिष्ठत ततो राजा दमयन्ती तमन्वगात् ॥ ११
क्षुधया पीड्यमानस्तु नलो बहुतिथेहनि ।
अपश्यच्छकुनान्कांश्चिद्धिरण्यसदृशच्छदान् ॥ १२
स चिन्तयामास तदा निषधाधिपतिर्बली ।
अस्ति भक्ष्यो ममाद्यायं वसु चेदं भविष्यति॥१३
ततस्तान्परिधानेन वाससा स समावृणोत् ।
तस्य तद्वस्त्रमादाय सर्वे जग्मुर्विहायसा ॥ १४
उत्पतन्तः खगा वाक्यमेतदाहुस्ततो नलम् ।
दृष्ट्वा दिग्वाससं भूमौ स्थितं दीनमधोमुखम्१५
वयमक्षाः सुदुर्बुद्धे तव वासो जिहीर्षवः ।
आगता न हि नः प्रीतिः सवाससि गते त्वयि॥
तान्समीपगतानक्षानात्मानं च विवाससम् ।
पुण्यश्लोकस्तदा राजन्दमयन्तीमथाब्रवीत् ॥ १७
येषां प्रकोपादैश्वर्यात्प्रच्युतोहमनिन्दिते ।
प्राणयात्रां न विन्देयं दुःखितः क्षुधयान्वितः १८
येषां कृते न सत्कारमकुर्वन्मयि नैषधाः ।
इमे ते शकुना भूत्वा वासो भीरु हरन्ति मे ॥१९
वैषम्यं परमं प्राप्तो दुःखितो गतचेतनः ।
भर्ता तेहं निबोधेदं वचनं हितमात्मनः ॥ २०
एते गच्छन्ति बहवः पन्थानो दक्षिणापथम् ।
अवन्तीमृक्षवन्तं च समतिक्रम्य पर्वतम् ॥ २१
एष विन्ध्यो महाशैलः पयोष्णी च समुद्रगा ।
आश्रमाश्च महर्षीणां बहुमूलफलान्विताः ॥ २२
एष पन्था विदर्भाणामसौ गच्छति कोसलान् ।
अतः परं च देशोयं दक्षिणे दक्षिणापथः ॥ २३
एतद्वाक्यं नलो राजा दमयन्तीं समाहितः ।
उवाचासकृदार्तो हि भैमीमुद्दिश्य भारत ॥ २४
ततः सा बाष्पकलया वाचा दुःखेन कर्षिता ।
उवाच दमयन्ती तं नैषधं करुणं वचः ॥ २५
उद्वेजते मे हृदयं सीदन्त्यङ्गानि सर्वशः ।
तव पार्थिव संकल्पं चिन्तयन्त्याः पुनः पुनः २६
हृतराज्यं हृतद्रव्यं विवस्त्रं क्षुच्छ्रमान्वितम् ।
कथमुत्सृज्य गच्छेयमहं त्वां निर्जने वने ॥ २७
श्रान्तस्य ते क्षुधार्तस्य चिन्तयानस्य तत्सुखम् ।
वने घोरे महाराज नाशयिष्याम्यहं क्लमम् ॥ २८
न च भार्यासमं किंचिद्विद्यते भिषजां मतम्
औषधं सर्वदुःखेषु सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २९

नल उवाच ।

एवमेतद्यथात्थ त्वं दमयन्ति सुमध्यमे ।
नास्ति भार्यासमं मित्रं नरस्यार्तस्य भेषजम् ३०
न चाहं त्यक्तुकामस्त्वां किमलं भीरु शङ्कसे
त्यजेयमहमात्मानं न चैव त्वामनिन्दिते ॥ ३१

दमयन्त्युवाच ।

यदि मां त्वं महाराज न विहातुमिहेच्छसि ।
तत्किमर्थं विदर्भाणां पन्थाः समुपदिश्यते ॥ ३२
अवैमि चाहं नृपते न तु मां त्यक्तुमर्हसि
चेतसा त्वपकृष्टेन मां त्यजेथा महीपते ॥ ३३
पन्थानं हि ममाभीक्ष्णमाख्यासि च नरोत्तम ।
अतो निमित्तं शोकं मे वर्धयस्यमरोपम ॥ ३४
यदि चायमभिप्रायस्तव ज्ञातीन्व्रजेदिति ।
सहितावेव गच्छावो विदर्भान्यदि मन्यसे ॥ ३५
विदर्भराजस्तत्र त्वां पूजयिष्यति मानद
तेन त्वं पूजितो राजन्सुखं वत्स्यसि नो गृहे॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि नलवनयात्रायामेकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

तस्य नलस्य ॥ ९ ॥ नगराभ्यासे नगरसमीपे ॥ १० ॥ अलं अत्यर्थम् ॥ ३१ ॥ अपकृष्टेन कलिकर्षितेन ॥ ३३ ॥ यद्यपि पूजयिष्यति तथापि त्वं सुखं नो वत्स्यसि न वासं करिष्यसि । श्वशुरगृहवासस्य नीचतावहत्वात् ॥ ३६ ॥ इत्यारण्य० नै० भा० एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

तेनार्धं वाससश्छित्वा निवास्य च परंतपः ।
सुप्तामुत्सृज्य वैदर्भीं प्राद्रवद्गतचेतनाम् ॥
—धनपर्व अ० ६२ पृ. १०१

# ६२

नल उवाच ।
यथा राज्यं तव पितुस्तथा मम न संशयः ।
न तु तत्र गमिष्यामि विषमस्थः कथंचन ॥ १
कथं समृद्धो गत्वाहं तव हर्षविवर्धनः ।
परिच्युतो गमिष्यामि तव शोकविवर्धनः ॥ २
बृहदश्व उवाच ।
इति ब्रुवन्नलो राजा दमयन्तीं पुनः पुनः ।
सान्त्वयामास कल्याणीं वाससोऽर्धेन संवृताम् ॥ ३
तावेकवस्त्रसंवीतावटमानावितस्ततः ।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ सभां कांचिदुपेयतुः ॥ ४
तां सभामुपसंप्राप्य तदा स निषधाधिपः ।
वैदर्भ्या सहितो राजा निषसाद महीतले ॥ ५
स वै विवस्त्रो विकटो मलिनः पांसुगुण्ठितः ।
दमयन्त्या सह श्रान्तः सुष्वाप धरणीतले ॥ ६
दमयन्त्यपि कल्याणी निद्रयापहृता ततः ।
सहसा दुःखमासाद्य सुकुमारी तपस्विनी ॥ ७
सुप्तायां दमयन्त्यां तु नलो राजा विशांपते ।
शोकोन्मथितचित्तात्मा न स्म शेते यथा पुरा ८
स तद्राज्यापहरणं सुहृत्त्यागं च सर्वशः ।
वने च तं परिध्वंसं प्रेक्ष्य चिन्तामुपेयिवान् ॥ ९
किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।
किं नु मे मरणं श्रेयः परित्यागो जनस्य वा ॥ १०
मामियं ह्यनुरक्तैवं दुःखमाप्नोति मत्कृते ।
मद्विहीना त्वियं गच्छेत्कदाचित्स्वजनं प्रति ॥ ११
मयि निःसंशयं दुःखमियं प्राप्स्यत्यनुव्रता ।
उत्सर्गे संशयः स्यात्तु विन्देतापि सुखं क्वचित् ॥
स विनिश्चित्य बहुधा विचार्य च पुनः पुनः ।
उत्सर्गं मन्यते श्रेयो दमयन्त्या नराधिप ॥ १३
न चैषा तेजसा शक्या कैश्चिद्धर्षयितुं पथि ।
यशस्विनी महाभागा मद्भक्तेयं पतिव्रता ॥ १४
एवं तस्य तदा बुद्धिर्दमयन्त्यां न्यवर्तत ।
कलिना दुष्टभावेन दमयन्त्या विसर्जने ॥ १५
सोऽवस्त्रतामात्मनश्च तस्याश्चाप्येकवस्त्रताम् ।
चिन्तयित्वाध्यगाद्राजा वस्त्रार्धस्यावकर्तनम् १६
कथं वासो विकर्तेयं न च बुध्येत मे प्रिया ।
विचिन्त्यैवं नलो राजा सभां पर्यचरत्तदा ॥ १७
परिधावन्नथ नल इतश्चेतश्च भारत ।
आससाद सभोद्देशे विकोशं खड्गमुत्तमम् ॥ १८
तेनार्धं वाससश्छित्वा निवस्य च परंतपः ।
सुप्तामुत्सृज्य वैदर्भीं प्राद्रवद्गतचेतनाम् ॥ १९
ततो निवृत्तहृदयः पुनरागम्य तां सभाम् ।
दमयन्तीं तदा दृष्ट्वा रुरोद निषधाधिपः ॥ २०
यां न वायुर्न चादित्यः पुरा पश्यति मे प्रियाम् ।
सेयमद्य सभामध्ये शेते भूमावनाथवत् ॥ २१
इयं वस्त्रावकर्तेन संवीता चारुहासिनी ।
उन्मत्तेव वरारोहा कथं बुद्ध्वा भविष्यति ॥ २२
कथमेका सती भैमी मया विरहिता शुभा ।
चरिष्यति वने घोरे मृगव्यालनिषेविते ॥ २३
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ समरुद्गणौ ।
रक्षन्तु त्वां महाभागे धर्मेणासि समावृता ॥ २४
एवमुक्त्वा प्रियां भार्यां रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
कलिनापहृतज्ञानो नलः प्रातिष्ठदुद्यतः ॥ २५
गत्वा गत्वा नलो राजा पुनरेति सभां मुहुः ।
आकृष्यमाणः कलिना सौहृदेनावकृष्यते ॥ २६
द्विधेव हृदयं तस्य दुःखितस्याभवत्तदा ।
दोलेव मुहुरायाति याति चैव सभां प्रति ॥ २७
अवकृष्टस्तु कलिना मोहितः प्राद्रवन्नलः ।
सुप्तामुत्सृज्य तां भार्यां विलप्य करुणं बहु ॥ २८
नष्टात्मा कलिना स्पृष्टस्तत्तद्विगणयन्नृपः ।
जगामैकां वने शून्ये भार्यामुत्सृज्य दुःखितः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि दमयन्तीपरित्यागे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६२

एतदेव समर्थयन्नल उवाच यथेति ॥ १ ॥, पाठान्तरे उपोषतुः उपेत्य वासं चक्रतुः ॥ ४ ॥ विकटः कटस्तृणासनं, तद्रहितः अत एव पांसुगुण्ठितः ॥ ६ ॥ परिध्वंसं कलिना वस्त्रापहरणादिक्लेशम् ॥ ९ ॥ जनस्य परिशेषाद्भार्याया एव ॥ १० ॥ दमयन्त्या विषये न्यवर्तत निवृत्ता सती विसर्जनेऽभूदिति शेषः ॥ १५ ॥ निवस्य परिधाय ॥ १९ ॥ इत्यारण्यके० नै० भा० द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

बृहदश्व उवाच ।
अपक्रान्ते नले राजन्दमयन्ती गतक्लमा ।
अबुध्यत वरारोहा संत्रस्ता विजने वने ॥ १
अपश्यमाना भर्तारं शोकदुःखसमन्विता ।
प्राक्रोशदुच्चैः संत्रस्ता महाराजेति नैषधम् ॥ २
हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन्किं जहासि माम् ।
हा हतास्मि विनष्टास्मि भीतास्मि विजने वने ३
ननु नाम महाराज धर्मज्ञः सत्यवागसि ।
कथमुक्त्वा तथा सत्यं सुप्तामुत्सृज्य कानने ॥४
कथमुत्सृज्य गन्तासि दक्षां भार्यामनुव्रताम् ।
विशेषतोऽनपकृते परेणापकृते सति ॥ ५
शक्यसे ता गिरः सम्यक्कर्तुं मयि नरेश्वर ।
यास्तेषां लोकपालानां संनिधौ कथिताः पुरा ६
नाकाले विहितो मृत्युर्मर्त्यानां पुरुषर्षभ ।
तत्र कान्ता त्वयोत्सृष्टा मुहूर्तमपि जीवति ॥ ७
पर्याप्तः परिहासोऽयमेतावान्पुरुषर्षभ ।
भीताहमतिदुर्धर्ष दर्शयात्मानमीश्वर ॥ ८
दृश्यसे दृश्यसे राजन्नेष दृष्टोऽसि नैषध ।
आवार्य गुल्मैरात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥ ९
नृशंसं बत राजेन्द्र यन्मामेवंगतामिह ।
विलपन्तीं समागम्य नाश्वासयसि पार्थिव ॥ १०
न शोचाम्यहमात्मानं न चान्यदपि किंचन ।
कथं नु भवितास्येक इति त्वां नृप शोचिमि ॥११
कथं नु राजंस्तृषितः क्षुधितः श्रमकर्शितः ।
सायाह्ने वृक्षमूलेषु मामपश्यन्भविष्यसि ॥ १२
ततः सा तीव्रशोकार्ता प्रदीप्तेव च मन्युना ।
इतश्चेतश्च रुदती पर्यधावत दुःखिता ॥ १३
मुहुरुत्पतते बाला मुहुः पतति विह्वला ।
मुहुरालीयते भीता मुहुः क्रोशति रोदिति ॥ १४
अतीव शोकसंतप्ता मुहुर्निःश्वस्य विह्वला ।
उवाच भैमी निःश्वस्य रुदत्यथ पतिव्रता ॥ १५
यस्याभिशापाद्दुःखार्तो दुःखं विन्दति नैषधः ।
तस्य भूतस्य नो दुःखाद्दुःखमप्यधिकं भवेत् ॥१६
अपापचेतसं पापो य एवं कृतवान्नलम् ।
तस्माद्दुःखतरं प्राप्य जीवत्वसुखजीविकाम् ॥ १७
एवं तु विलपन्ती सा राज्ञो भार्या महात्मनः ।
अन्वेषमाणा भर्तारं वने श्वापदसेविते ॥ १८
उन्मत्तवद्भीमसुता विलपन्ती इतस्ततः ।
हा हा राजन्निति मुहुरितश्चेतश्च धावति ॥ १९
तां क्रन्दमानामत्यर्थं कुररीमिव वाशतीम् ।
करुणं बहु शोचन्तीं विलपन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ २०
सहसाभ्यागतां भैमीमभ्यासपरिवर्तिनीम् ।
जग्राहाजगरो ग्राहो महाकायः क्षुधान्वितः ॥ २१
सा ग्रस्यमाना ग्राहेण शोकेन च परिप्लुता ।
नात्मानं शोचति तथा यथा शोचति नैषधम् २२
हा नाथ मामिह वने ग्रस्यमानामनाथवत् ।
ग्राहेणानेन विजने किमर्थं नानुधावसि ॥ २३
कथं भविष्यसि पुनर्मामनुस्मृत्य नैषध ।
कथं भवाञ्जगामाद्य मामुत्सृज्य वने प्रभो ॥ २४
पापान्मुक्तः पुनर्लब्ध्वा बुद्धिं चेतो धनानि च ।
श्रान्तस्य ते क्षुधार्तस्य परिग्लानस्य नैषध ।
कः श्रमं राजशार्दूल नाशयिष्यति तेऽनघ ॥ २५
ततः कश्चिन्मृगव्याधो विचरन्गहने वने ।
आक्रन्दमानां संश्रुत्य जवेनाभिससार ह ॥ २६
तां तु दृष्ट्वा तथा ग्रस्तामुरगेणायतेक्षणाम् ।
त्वरमाणो मृगव्याधः समभिक्रम्य वेगतः ॥ २७
मुखतः पाटयामास शस्त्रेण निशितेन च ।
निर्विचेष्टं भुजङ्गं तं विशस्य मृगजीवनः ॥ २८
मोक्षयित्वा स तां व्याधः प्रक्षाल्य सलिलेन ह ।
समाश्वास्य कृताहारामथ पप्रच्छ भारत ॥ २९
कस्य त्वं मृगशावाक्षि कथं चाभ्यागता वनम् ।
कथं चेदं महत्कृच्छ्रं प्राप्तवत्यसि भाविनि ॥ ३०
दमयन्ती तथा तेन पृच्छ्यमाना विशांपते ।
सर्वमेतद्यथावृत्तमाचचक्षेऽस्य भारत ॥ ३१
तामर्धवस्त्रसंवीतां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुकुमारानवद्याङ्गीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ ३२

---

६३

अपेति ॥ १ ॥ तथा सत्यं यत्स्वयंवरे उक्तं त्वां न त्यक्ष्यामीति ॥ ४ ॥ अनपकृते अपकाराभावे ॥ ५ ॥ शोचिमि शोचामि ॥ ११ ॥ मन्युना शोकेन ॥ १३ ॥ कलिं शपति यस्येति । अभिशापात् वृथाद्वेषात् नो दुःखात् अस्मत्संबन्धिदुःखात् ॥ १६ ॥ वाशतीं क्रोशन्तीम् ॥२०॥ ग्राहः सर्पः अजगरः तद्वस्त्स्थूलः ॥ २१ ॥ बुद्धिलाभादूर्ध्वं मां विना कथं भविष्यसि जीविष्यसि कथं ॥२४॥ विशस्य विदार्य ॥ २८ ॥

अरालपक्ष्मनयनां तथा मधुरभाषिणीम् ।
लक्षयित्वा मृगव्याधः कामस्य वशमीयिवान् ॥
तामेवं श्लक्ष्णया वाचा लुब्धको मृदुपूर्वया ।
सान्त्वयामास कामार्तस्तदबुध्यत भाविनी ॥ ३४
दमयन्त्यपि तं दुष्टमुपलभ्य पतिव्रता ।
तीव्ररोषसमाविष्टा प्रजज्वालेव मन्युना ॥ ३५
स तु पापमतिः क्षुद्रः प्रधर्षयितुमातुरः ।
दुर्धर्षां तर्कयामास दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ३६
दमयन्ती तु दुःखार्ता पतिराज्यविनाकृता ।
अतीतवाक्पथे काले शशापैनं रुषान्विता ॥ ३७
यद्यहं नैषधादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथायं पततां क्षुद्रो परासुर्मृगजीवनः ॥ ३८
उक्तमात्रे तु वचने तथा स मृगजीवनः ।
व्यसुः पपात मेदिन्यामग्निदग्ध इव द्रुमः ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानप० अजगरग्रस्तदमयन्तीमोचने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

## ६४

बृहदश्व उवाच ।

सा निहत्य मृगव्याधं प्रतस्थे कमलेक्षणा ।
वनं प्रतिभयं शून्यं झिल्लिकागणनादितम् ॥ १
सिंहद्वीपिरुरुव्याघ्रमहिषर्क्षगणैर्युतम् ।
नानापक्षिगणाकीर्णं म्लेच्छतस्करसेवितम् ॥ २
शालवेणुधवाश्वत्थतिन्दुकेङ्गुदकिंशुकैः ।
अर्जुनारिष्टसंछन्नं स्यन्दनैश्च सशाल्मलैः ॥ ३
जम्ब्वाम्रलोध्रखदिरसालवेत्रसमाकुलम् ।
पद्मकामलकप्लक्षकदम्बोदुम्बरावृतम् ॥ ४
बदरीबिल्वसंछन्नं न्यग्रोधैश्च समाकुलम् ।
प्रियालतालखर्जूरहरीतकिबिभीतकैः ॥ ५
नानाधातुशतैर्नद्धान्विविधानपि चाचलान् ।
निकुञ्जान्पक्षिसंघुष्टान्दरीश्चाद्भुतदर्शनाः ॥ ६
नदीः सरांसि वापीश्च विविधांश्च मृगद्विजान् ।
सा बहून्भीमरूपांश्च पिशाचोरगराक्षसान् ॥ ७
पल्वलानि तडागानि गिरिकूटानि सर्वशः ।
सरितो निर्झरांश्चैव ददर्शाद्भुतदर्शनान् ॥ ८
यूथशो ददृशे चात्र विदर्भाधिपनन्दिनी ।
महिषांश्च वराहांश्च ऋक्षांश्च वनपन्नगान् ॥ ९
तेजसा यशसा लक्ष्म्या स्थित्या च परया युता ।
वैदर्भी विचरत्येका नलमन्वेषती तदा ॥ १०
नाबिभ्यत्सा नृपसुता भैमी तत्राथ कस्यचित् ।
दारुणामटवीं प्राप्य भर्तृव्यसनपीडिता ॥ ११
विदर्भतनया राजन्विललाप सुदुःखिता ।
भर्तृशोकपरीताङ्गी शिलातलमथाश्रिता ॥ १२

दमयन्त्युवाच ।

व्यूढोरस्क महाबाहो नैषधानां जनाधिप ।
क्व नु राजन्गतोऽस्यद्य विसृज्य विजने वने ॥ १३
अश्वमेधादिभिर्वीर क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
कथमिष्ट्वा नरव्याघ्र मयि मिथ्या प्रवर्तसे ॥ १४
यत्त्वयोक्तं नरश्रेष्ठ मत्समक्षं महाद्युते ।
स्मर्तुमर्हसि कल्याण वचनं पार्थिवर्षभ ॥ १५
यच्चोक्तं विहगैर्हंसैः समीपे तव भूमिप ।
मत्समक्षं यदुक्तं च तदवेक्षितुमर्हसि ॥ १६
चत्वार एकतो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः सविस्तराः ।
स्वधीता मनुजव्याघ्र सत्यमेकं किलैकतः ॥ १७
तस्मादर्हसि शत्रुघ्न सत्यं कर्तुं नरेश्वर ।
उक्तवानसि यद्वीर मत्सकाशे पुरा वचः ॥ १८
हा वीर नल नामाहं नष्टा किल तवानघ ।
अस्यामटव्यां घोरायां किं मां न प्रतिभाषसे ॥ १९
कर्शयत्येष मां रौद्रो व्यात्तास्यो दारुणाकृतिः ।
अरण्यराट् क्षुधाविष्टः किं मां न त्रातुमर्हसि ॥ २०
न मे त्वदन्या काचिद्धि प्रियास्तीत्यब्रवीः सदा ।
तामृतां कुरु कल्याण पुरोक्तां भारतीं नृप ॥ २१

आरालानि कुटिलानि शोभमानानि वा पक्ष्माणि नयनप्रान्तकेशाः ययोस्तादृशे नयने यस्या इति तथा ॥ ३३ ॥ मन्युना क्रोधेन ॥ ३५ ॥ पतिराज्यविनाकृता पत्या राज्येन च रहिता अतीतवाक्पथे वाचाप्यनिर्वाच्ये सति काले धूम्रवर्णे व्याधे ॥ ३७ ॥ परासुः गतप्राणः ॥ ३८ ॥ व्यसुर्विगतप्राणः ॥ ३९ ॥ इत्यारण्यके० नै० भा० त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

प्रतिभयं भीषणं झिल्लिका तीक्ष्णशब्दः पतङ्गविशेषः ॥ १ ॥ अरण्यराट् शार्दूलः मां मम चित्तं कर्षयति व्यथयति ॥ २० ॥

उन्मत्तां विलपन्तीं मां भार्यामिष्टां नराधिप ।
ईप्सितामीप्सितोसि त्वं किं मां न प्रतिभाषसे ॥
कृशां दीनां विवर्णां च मलिनां वसुधाधिप ।
वस्त्रार्धप्रावृतामेकां विलपन्तीमनाथवत् ॥ २३
यूथभ्रष्टामिवैकां मां हरिणीं पृथुलोचन ।
न मानयसि मामार्य रुदन्तीमरिकर्शन ॥ २४
महाराज महारण्ये अहमेकाकिनी सती ।
दमयन्त्यभिभाषे त्वां किं मां न प्रतिभाषसे ॥ २५
कुलशीलोपसंपन्न चारुसर्वाङ्ग शोभन ।
नाद्य त्वां प्रतिपश्यामि गिरावस्मिन्नरोत्तम ॥२६
वने चास्मिन्महाघोरे सिंहव्याघ्रनिषेविते ।
शयानमुपविष्टं वा स्थितं वा निषधाधिप ॥ २७
प्रस्थितं वा नरश्रेष्ठ मम शोकविवर्धन ।
कं नु पृच्छामि दुःखार्ता त्वदर्थे शोककर्शिता॥२८
कच्चिद्दृष्टस्त्वयारण्ये संगत्येह नलो नृपः ।
कोनु मे वाथ प्रष्टव्यो वनेस्मिन्प्रस्थितं नलम् ॥२९
अभिरूपं महात्मानं परव्यूहविनाशनम् ।
यमन्वेषसि राजानं नलं पद्मनिभेक्षणम् ॥ ३०
अयं स इति कस्याद्य श्रोष्यामि मधुरां गिरम् ।
अरण्यराडयं श्रीमांश्चतुर्दंष्ट्रो महाहनुः ॥ ३१
शार्दूलोभिमुखोभ्येति व्रजाम्येनमशङ्किता ।
भवान्मृगाणामधिपस्त्वमस्मिन्कानने प्रभुः ॥ ३२
विदर्भराजतनयां दमयन्तीति विद्धि माम् ।
निषधाधिपतेर्भार्यां नलस्यामित्रघातिनः ॥ ३३
पतिमन्वेषतीमेकां कृपणां शोककर्शिताम् ।
आश्वासय मृगेन्द्रेह यदि दृष्टस्त्वया नलः ॥ ३४
अथवा त्वं वनपते नलं यदि न शंससि ।
मां खादय मृगश्रेष्ठ दुःखादस्माद्विमोचय ॥ ३५
श्रुत्वारण्ये विलपितं न मामाश्वासयत्ययम् ।
यामिमां स्वादुसलिलामापगां सागरंगमाम्॥३६
इमं शिलोच्चयं पुण्यं शृङ्गैर्बहुभिरुच्छ्रितैः ।
विराजद्भिर्दिवानेकैर्नैकवर्णैर्मनोरमैः ॥ ३७
नानाधातुसमाकीर्णं विविधोपलभूषितम् ।
अस्यारण्यस्य महतः केतुभूतमिवोत्थितम् ॥ ३८
सिंहशार्दूलमातङ्गवराहर्क्षमृगायुतम् ।
पतत्रिभिर्बहुविधैः समन्तादनुनादितम् ॥ ३९
किंशुकाशोकबकुलपुंनागैरुपशोभितम् ।
कर्णिकारधवप्लक्षैः सुपुष्पैरुपशोभितम् ॥ ४०
सरिद्भिः सविहङ्गाभिः शिखरैश्च समाकुलम् ।
गिरिराजमिमं तावत्पृच्छामि नृपतिं प्रति ॥ ४१
भगवन्नचलश्रेष्ठ दिव्यदर्शन विश्रुत ।
शरण्य बहुकल्याण नमस्तेस्तु महीधर ॥ ४२
प्रणमे त्वाभिगम्याहं राजपुत्रीं निबोध माम् ।
राज्ञः स्नुषा राजभार्या दमयन्तीति विश्रुताम् ॥
राजा विदर्भाधिपतिः पिता मम महारथः ।
भीमो नाम क्षितिपतिश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥ ४४
राजसूयाश्वमेधानां क्रतूनां दक्षिणावताम् ।
आहर्ता पार्थिवश्रेष्ठः पृथु चार्वञ्चितेक्षणः ॥ ४५
ब्रह्मण्यः साधुवृत्तश्च सत्यवागनसूयकः ।
शीलवान्वीर्यसंपन्नः पृथुश्रीर्धर्मविच्छुचिः ॥ ४६
सम्यग्गोप्ता विदर्भाणां निर्जितारिगणः प्रभुः ।
तस्य मां विद्धि तनयां भगवंस्त्वामुपस्थिताम् ॥
निषधेषु महाराजः श्वशुरो मे नरोत्तमः ।
गृहीतनामा विख्यातो वीरसेन इति स्म ह ॥ ४८
तस्य राज्ञः सुतो वीरः श्रीमान्सत्यपराक्रमः ।
क्रमप्राप्तं पितुः स्वं यो राज्यं समनुशास्ति ह॥ ४९
नलो नामारिहा श्यामः पुण्यश्लोक इति श्रुतः ।
ब्रह्मण्यो वेदविद्वाग्मी पुण्यकृत्सोमपोग्निमान्॥ ५०
यष्टा दाता च योद्धा च सम्यक्चैव प्रशासिता ।
तस्य मामबलां श्रेष्ठां विद्धि भार्यामिहागताम् ॥
त्यक्तश्रियं भर्तृहीनामनाथां व्यसनान्विताम् ।
अन्वेषमाणां भर्तारं त्वं मां पर्वतसत्तम ॥ ५२
समुल्लिखद्भिरेतैर्हि त्वया शृङ्गशतैर्नृपः ।
कच्चिद्दृष्टोऽचलश्रेष्ठ वनेस्मिन्वा नलो नृपः ॥ ५३
गजेन्द्रविक्रमो धीमान्दीर्घबाहुरमर्षणः ।
विक्रान्तः सत्त्ववान्वीरो भर्ता मम महायशाः ५४
निषधानामधिपतिः कच्चिद्दृष्टस्त्वया नलः ।
किं मां विलपतीमेकां पर्वतश्रेष्ठ विह्वलाम् ॥ ५५
गिरा नाश्वासयस्यद्य स्वां सुतामिव दुःखिताम्।
वीर विक्रान्तधर्मज्ञ सत्यसंध महीपते ॥ ५६
यद्यस्यस्मिन्वने राजन्दर्शयात्मानमात्मना ।
कदा सुस्निग्धगम्भीरां जीमूतस्वनसंनिभाम्॥५७
श्रोष्यामि नैषधस्याहं वाचंताममृतोपमाम् ।
वैदर्भीत्येव विस्पष्टां शुभां राज्ञो महात्मनः ॥५८

परव्यूहा. शत्रुसैन्यानि परव्यजनेति पाठे परेषां दुःखस्य नाशनम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मण्यः ब्रह्मणि ब्राह्मणजातौ वेदे वैदिककर्मणि परमात्मनि वा साधुः ॥ ४६ ॥ अग्निमान्। नित्ययोगे मतुप्। सर्वदैवाग्निविच्छेदशून्य इत्यर्थः॥५०॥

आम्नायसारिणीमृद्धां मम शोकविनाशिनीम् ।
भीतामाश्वासयत मां नृपते धर्मवत्सल ॥ ५९
इति सा तं गिरिश्रेष्ठमुक्त्वा पार्थिवनन्दिनी ।
दमयन्ती ततो भूयो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ ६०
सा गत्वा त्रीनहोरात्रान्ददर्श परमाङ्गना ।
तापसारण्यमतुलं दिव्यकाननशोभितम् ॥ ६१
वसिष्ठभृग्वत्रिसमैस्तापसैरुपशोभितम् ।
नियतैः संयताहारैर्दमशौचसमन्वितैः ॥ ६२
अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च पत्राहारैस्तथैव च ।
जितेन्द्रियैर्महाभागैः स्वर्गमार्गदिदृक्षुभिः ॥ ६३
वल्कलाजिनसंवीतैर्मुनिभिः संयतेन्द्रियैः ।
तापसाध्युषितं रम्यं ददर्शाश्रममण्डलम् ॥ ६४
नानामृगगणैर्जुष्टं शाखामृगगणायुतम् ।
तापसैः समुपेतं च सा दृष्ट्वैव समाश्वसत् ॥ ६५
सुभ्रूः सुकेशी सुश्रोणी सुकुचा सुद्विजानना ।
वर्चस्विनी सुप्रतिष्ठा स्वसितायतलोचना ॥ ६६
सा विवेशाश्रमपदं वीरसेनसुतप्रिया ।
योषिद्रत्नं महाभागा दमयन्ती तपस्विनी ॥ ६७
साभिवाद्य तपोवृद्धान्विनयावनता स्थिता ।
स्वागतं त इति प्रोक्ता तैः सर्वैस्तापसोत्तमैः॥६८
पूजां चास्या यथान्यायं कृत्वा तत्र तपोधनाः ।
आस्यतामित्यथोचुस्ते ब्रूहि किं करवामहे ॥ ६९
तानुवाच वरारोहा कच्चिद्भगवतामिह ।
तपःस्वग्निषु धर्मेषु मृगपक्षिषु चानघाः ॥ ७०
कुशलं वो महाभागाः स्वधर्माचरणेषु च ।
तैरुक्ता कुशलं भद्रे सर्वत्रेति यशस्विनी ॥ ७१
ब्रूहि सर्वानवद्याङ्गि का त्वं किं च चिकीर्षसि ।
दृष्ट्वैव ते परं रूपं द्युतिं च परमामिह ॥ ७२
विस्मयो नः समुत्पन्नः समाश्वसिहि मा शुचः ।
अस्यारण्यस्य देवी त्वमुताहोस्य महीभृतः ॥७३
अस्याश्च नद्याः कल्याणि वद सत्यमनिन्दिते ।
साब्रवीत्तानृषीन्नाहमरण्यस्यास्य देवता ॥ ७४
न चाप्यस्य गिरेर्विप्रा नैव नद्याश्च देवता ।
मानुषीं मां विजानीत यूयं सर्वे तपोधनाः ॥ ७५
विस्तरेणाभिधास्यामि तन्मे शृणुत सर्वशः ।
विदर्भेषु महीपालो भीमो नाम महीपतिः ॥ ७६
तस्य मां तनयां सर्वे जानीत द्विजसत्तमाः ।
निषधाधिपतिर्धीमान्नलो नाम महायशाः ॥ ७७
वीरः संग्रामजिद्विद्वान्मम भर्ता विशांपतिः ।
देवताभ्यर्चनपरो द्विजातिजनवत्सलः ॥ ७८
गोप्ता निषधवंशस्य महातेजा महाबलः ।
सत्यवान्धर्मवित्प्राज्ञः सत्यसंधोरिमर्दनः ॥ ७९
ब्रह्मण्यो दैवतपरः श्रीमान्परपुरंजयः ।
नलो नाम नृपश्रेष्ठो देवराजसमद्युतिः ॥ ८०
मम भर्ता विशालाक्षः पूर्णेन्दुवदनोऽरिहा ।
आहर्ता क्रतुमुख्यानां वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ८१
सपत्नानां मृधे हन्ता रविसोमसमप्रभः ।
स कैश्चिन्निकृतिप्रज्ञैरनार्यैरकृतात्मभिः ॥ ८२
आहूय पृथिवीपालः सत्यधर्मपरायणः ।
देवने कुशलैर्जिह्मैर्हृतं राज्यं वसूनि च ॥ ८३
तस्य मामवगच्छध्वं भार्यां राजर्षभस्य वै ।
दमयन्तीति विख्यातां भर्तुर्दर्शनलालसाम् ॥ ८४
सा वनानि गिरींश्चैव सरांसि सरितस्तथा ।
पल्वलानि च सर्वाणि तथारण्यानि सर्वशः ॥८५
अन्वेषमाणा भर्तारं नलं रणविशारदम् ।
महात्मानं कृतास्त्रं च विचरामीह दुःखिता॥ ८६
कच्चिद्भगवतां रम्यं तपोवनमिदं नृपः ।
भवेत्प्राप्तो नलो नाम निषधानां जनाधिपः ॥ ८७
यत्कृतेऽहमिदं ब्रह्मन्प्रपन्ना भृशदारुणम् ।
वनं प्रतिभयं घोरं शार्दूलमृगसेवितम् ॥ ८८
यदि कैश्चिदहोरात्रैर्न द्रक्ष्यामि नलं नृपम् ।
आत्मानं श्रेयसा योक्ष्ये देहस्यास्य विमोचनात्॥
को नु मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम् ।
कथं भविष्याम्यद्याहं भर्तृशोकाभिपीडिता ॥ ९०
तथा विलपतीमेकामरण्ये भीमनन्दिनीम् ।
दमयन्तीमथोचुस्ते तापसाः सत्यदर्शिनः ॥ ९१
उदर्कस्तव कल्याणि कल्याणो भविता शुभे ।
वयं पश्याम तपसा क्षिप्रं द्रक्ष्यसि नैषधम् ॥ ९२

आम्नायसारिणीं वेदानुगां सत्यामित्यर्थः । ऋद्धां दीनां आश्वासयतेति बहुत्वं वक्तुर्वैक्लव्यान्न दोषावहम् ॥५९॥ अब्भक्षैरिति सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायेन अम्बुमात्रभक्षैरित्यर्थः ॥ ६३ ॥ सुद्विजानना शोभनदन्तयुक्तमुखी वर्चस्विनी धर्मजेन तेजसा युक्ता । सुप्रतिष्ठा सुजघना । प्रतिष्ठत्यस्मिन्निति प्रतिष्ठशब्दो जघनवाची ॥ ६६॥ वीरसेनसुतस्य नलस्य प्रिया ॥ ६७ ॥ श्रेयसा मोक्षेण योक्ष्ये योजयिष्ये । योगबलेन देहं त्यक्त्वा मोक्षं प्राप्स्ये इत्यर्थः। अन्यथा आत्महत्यादोषात् श्रेयोयोगो न संभवेत् ॥ ८९ ॥ उदर्कः उत्तरकालः ॥९२॥

निषधानामधिपतिं नलं रिपुनिपातिनम् ।
भैमि धर्मभृतां श्रेष्ठं द्रक्ष्यसे विगतज्वरम् ॥ ९३
विमुक्तं सर्वपापेभ्यः सर्वरत्नसमन्वितम् ।
तदेव नगरं श्रेष्ठं प्रशासतमरिंदमम् ॥ ९४
द्विषतां भयकर्तारं सुहृदां शोकनाशनम् ।
पतिं द्रक्ष्यसि कल्याणि कल्याणाभिजनं नृपम् ॥
एवमुक्त्वा नलस्येष्टां महिषीं पार्थिवात्मजाम् ।
तापसान्तर्हिताः सर्वे साग्निहोत्राश्रमास्तथा ॥९६
सा दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मिता ह्यभवत्तदा ।
दमयन्त्यनवद्याङ्गी वीरसेननृपस्नुषा ॥ ९७
किं नु स्वप्नो मया दृष्टः कोऽयं विधिरिहाभवत् ।
क्व नु ते तापसाः सर्वे क्व तदाश्रममण्डलम् ॥ ९८
क्व सा पुण्यजला रम्या नदी द्विजनिषेविता ।
क्व नु ते ह नगा हृद्याः फलपुष्पोपशोभिताः॥९९
ध्यात्वा चिरं भीमसुता दमयन्ती शुचिस्मिता ।
भर्तृशोकपरा दीना विवर्णवदनाभवत् ॥ १००
सा गत्वाथापरां भूमिं बाष्पसंदिग्धया गिरा ।
विललापाश्रुपूर्णाक्षी दृष्ट्वाऽशोकतरुं ततः ॥ १
उपगम्य तरुश्रेष्ठमशोकं पुष्पितं वने ।
पल्लवापीडितं हृद्यं विहङ्गैरनुनादितम् ॥ २
अहो बतायमगमः श्रीमानस्मिन्वनान्तरे ।
आपीडैर्बहुभिर्भाति श्रीमान्पर्वतराडिव ॥ ३
विशोकां कुरु मां क्षिप्रमशोक प्रियदर्शन ।
वीतशोकभयाबाधं कच्चित्त्वं दृष्टवान्नृपम् ॥ ४
नलं नामारिदमनं दमयन्त्याः प्रियं पतिम् ।
निषधानामधिपतिं दृष्टवानसि मे प्रियम् ॥ ५
एकवस्त्रार्धसंवीतं सुकुमारतनुत्वचम् ।
व्यसनेनार्दितं वीरमरण्यमिदमागतम् ॥ ६
यथा विशोका गच्छेयमशोकनग तत्कुरु ।
सत्यनामा भवाशोक अशोकः शोकनाशनः ॥ ७
एवं साऽशोकवृक्षं तमार्ता वै परिगम्य ह ।
जगाम दारुणतरं देशं भैमी वराङ्गना ॥ ८
सा ददर्श नगान्नैकान्नैकाश्च सरितस्तथा ।
नैकांश्च पर्वतान्रम्यान्नैकांश्च मृगपक्षिणः ॥ ९
कंदरांश्च नितम्बांश्च नदीश्चाद्भुतदर्शनाः ।
ददर्श तान्भीमसुता पतिमन्वेषती तदा ॥ १०
गत्वा प्रकृष्टमध्वानं दमयन्ती शुचिस्मिता ।
ददर्शाथ महासार्थं हस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥ ११
उत्तरन्तं नदीं रम्यां प्रसन्नसलिलां शुभाम् ।
सुशीततोयां विस्तीर्णां ह्रादिनीं वेतसैर्वृताम् ॥१२
प्रोद्घुष्टां क्रौञ्चकुररैश्चक्रवाकोपकूजिताम् ।
कूर्मग्राहझषाकीर्णां विपुलद्वीपशोभिताम् ॥ १३
सा दृष्ट्वैव महासार्थं नलपत्नी यशस्विनी ।
उपसर्प वरारोहा जनमध्यं विवेश ह ॥ १४
उन्मत्तरूपा शोकार्ता तथा वस्त्रार्धसंवृता ।
कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥ १५
तां दृष्ट्वा तत्र मनुजाः केचिद्भीताः प्रदुद्रुवुः ।
केचिच्चिन्तापरा जग्मुः केचित्तत्र विचुक्रुशुः ॥१६
प्रहसन्ति स्म तां केचिदभ्यसूयन्ति चापरे ।
अकुर्वत दयां केचित्पप्रच्छुश्चापि भारत ॥ १७
कासि कस्यासि कल्याणि किं वा मृगयसे वने
त्वां दृष्ट्वा व्यथिताः स्मेह कच्चित्त्वमसि मानुषी१८
वद सत्यं वनस्यास्य पर्वतस्याथवा दिशः ।
देवता त्वं हि कल्याणि त्वां वयं शरणं गताः १९
यक्षी वा राक्षसी वा त्वमुताहोसि वराङ्गना ।
सर्वथा कुरु नः स्वस्ति रक्ष वास्माननिन्दिते २०
यथायं सर्वथा सार्थः क्षेमी शीघ्रमितो व्रजेत् ।
तथा विधत्स्व कल्याणि यथा श्रेयो हि नो भवेत्
तथोक्ता तेन सार्थेन दमयन्ती नृपात्मजा ।
प्रत्युवाच ततः साध्वी भर्तृव्यसनपीडिता ॥ २२
सार्थवाहं च सार्थं च जना ये चात्र केचन ।
युवस्थविरबालाश्च सार्थस्य च पुरोगमाः २३
मानुषीं मां विजानीत मनुजाधिपतेः सुताम् ।
नृपस्नुषां राजभार्यां भर्तृदर्शनलालसाम् ॥ २४
विदर्भराण्मम पिता भर्ता राजा च नैषधः ।
नलो नाम महाभागस्तं मार्गाम्यपराजितम् ॥ २५
यदि जानीत नृपतिं क्षिप्रं शंसत मे प्रियम् ।
नलं पुरुषशार्दूलममित्रगणसूदनम् ॥ २६

प्रशासतं अरिन्यादयःषडिति नुमभावः ॥ ९४ ॥ तापसा इति छेदः संधिरार्षः ॥ ९६ ॥ बाष्पो बाष्पवदुष्ण उच्छ्वासवायुस्तेन संदिग्धया अस्फुटाक्षरया ॥ १०१ ॥ पल्लवैः आपीडितं भूषितम् ॥ २ ॥ अगमः वृक्षः आपीडैः पुष्पफलादिरूपैरलंकारैः ॥३॥ सुकुमारा दुःखासहा यतस्तनुर्मृद्वी त्वक् यस्य तम् ॥ ६ ॥ अशोकनग हे वीतशोकवृक्ष ॥ ७ ॥ महासार्थं महान्तं जनसमूहम् ॥११॥ उपसर्प उपसर्प अभ्यासलोप आर्षः वरारोहा विस्तीर्णजघना॥ १४ ॥ पांसुयुक्ताःध्वस्ताःमुक्तबन्धाश्च शिरोरुहाः केशाः यस्याः ॥ १५ ॥ मार्गामि अन्वेषयामि ॥ २५ ॥

तामुवाचानवद्याङ्गीं सार्थस्य महतः प्रभुः
सार्थवाहः शुचिर्नाम शृणु कल्याणि मद्वचः॥ २७
अहं सार्थस्य नेता वै सार्थवाहः शुचिस्मिते ।
मनुष्यं नलनामानं न पश्यामि यशस्विनि ॥ २८
कुञ्जरद्वीपिमहिषशार्दूलर्क्षमृगानपि ।
पश्याम्यस्मिन्वने कृत्स्ने ह्यमनुष्यनिषेविते ॥ २९
ऋते त्वां मानुषीं मर्त्ये न पश्यामि महावने ।
तथा नो यक्षराडद्य मणिभद्रः प्रसीदतु ॥ ३०
साब्रवीद्वणिजः सर्वान्सार्थवाहं च तं ततः ।
क नु यास्यति सार्थोयमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३१

सार्थवाह उवाच ।

सार्थोयं चेदिराजस्य सुबाहोः सत्यदर्शिनः ।
क्षिप्रं जनपदं गन्ता लाभाय मनुजात्मजे ॥ १३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानप० दमयन्तीसार्थवाहसंगमे चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४

## ६५

बृहदश्व उवाच ।

सा तच्छ्रुत्वानवद्याङ्गी सार्थवाहवचस्तदा ।
जगाम सह तेनैव सार्थेन पतिलालसा ॥ १
अथ काले बहुतिथे वने महति दारुणे ।
तडागं सर्वतो भद्रं पद्मसौगन्धिकं महत् ॥ २
ददृशुर्वणिजो रम्यं प्रभूतयवसेन्धनम् ।
बहुपुष्पफलोपेतं नानापक्षिनिषेवितम् ॥ ३
निर्मलस्वादुसलिलं मनोहारि सुशीतलम् ।
सुपरिश्रान्तवाहास्ते निवेशाय मनो दधुः ॥ ४
संमते सार्थवाहस्य विविशुर्वनमुत्तमम् ।
उवास सार्थः सुमहान्वेलामासाद्य पश्चिमाम् ॥५
अथार्धरात्रसमये निःशब्दस्तिमिते तदा ।
सुप्ते सार्थे परिश्रान्ते हस्तियूथमुपागमत् ॥ ६
पानीयार्थं गिरिनदीं मदप्रस्रवणाविलाम् ।
अथापश्यत सार्थं तं सार्थजान्सुबहून्गजान् ॥ ७
ते तान्ग्राम्यगजान्दृष्ट्वा सर्वे वनगजास्तदा ।
समाद्रवन्त वेगेन जिघांसन्तो मदोत्कटाः ॥ ८
तेषामापततां वेगः करिणां दुःसहोभवत् ।
नगाग्रादिव शीर्णानां शृङ्गाणां पतता क्षितौ ॥ ९
स्पन्दतामपि नागानां मार्गा नष्टा वनोद्भवाः ।
मार्गं संरुध्य संसुप्तं पद्मिन्याः सार्थमुत्तमम् ॥१०
ते तं ममर्दुः सहसा चेष्टमानं महीतले ।
हाहाकारं प्रमुञ्चन्तः सार्थिकाः शरणार्थिनः॥११
वनगुल्मांश्च धावन्तो निद्रान्धा बहवोभवन् ।
केचिद्दन्तैः करैः केचित्केचित्पद्भ्यां हता गजैः ॥
निहतोष्ट्राश्वबहुलाः पदातिजनसंकुलाः ।
भयादाधावमानाश्च परस्परहतास्तदा ॥ १३
घोरान्नादान्विमुञ्चन्तो निपेतुर्धरणीतले ।
वृक्षेष्वारुह्य संरब्धाः पतिता विषमेषु च ॥ १४
एवं प्रकारैर्बहुभिर्दैवेनाक्रम्य हस्तिभिः ।
राजन्विनिहतं सर्वं समृद्धं सार्थमण्डलम् ॥ १५
आरावः सुमहांश्चासीत्त्रैलोक्यभयकारकः ।
एषोग्निरुत्थितः कष्टस्त्रायध्वं धावताधुना ॥ १६
रत्नराशिर्विशीर्णोयं गृह्णीध्वं किं प्रधावत ।
सामान्यमेतद्द्रविणं न मिथ्यावचनं मम ॥ १७
एवमेवाभिभाषन्तो विद्रवन्ति भयात्तदा ।
पुनरेवाभिधास्यामि चिन्तयध्व सकातराः ॥ १८
तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे जनसंक्षये ।
दमयन्ती च बुबुधे भयसंत्रस्तमानसा ॥ १९
अपश्यद्वैशसं तत्र सर्वलोकभयंकरम् ।
अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा बाला पद्मनिभेक्षणा ॥ २०
संसक्तवदनाश्वासा उत्तस्थौ भयविह्वला ।
ये तु तत्र विनिर्मुक्ताः सार्थात्केचिदविक्षताः ॥
तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे कस्येदं कर्मणः फलम् ।
नूनं न पूजितोस्माभिर्मणिभद्रो महायशाः ॥ २२
तथा यक्षाधिपः श्रीमान्न वै वैश्रवणः प्रभुः ।
न पूजा विघ्नकर्तॄणामथवा प्रथमं कृता ॥ २३

इत्यारण्य० नै० भा० चतु षष्टितमो ध्याय ॥ ६४ ॥

६५

सेति॥१॥पद्मैः सौगन्धिकैश्च पद्मविशेषैर्युक्तत्वात् पद्मसौगन्धिक नाम सर ॥२॥ यवस धास ॥ ३ ॥ सुपरिश्रान्तवाहाः श्रान्तवाहनाः निवेशाय विरामाय॥४॥पश्चिमा वेलां संध्या सरस्तार भुवं वा ॥ ५ ॥ पद्मिन्याः पद्मवत्याः सरस्याः ॥ १० ॥

शकुनानां फलं वाथ विपरीतमिदं ध्रुवम् ।
ग्रहा न विपरीतास्तु किमन्यदिदमागतम् ॥ २४
अपरे त्वब्रुवन्दीना ज्ञातिद्रव्यविनाकृताः ।
यासावद्य महासार्थे नारी ह्युन्मत्तदर्शना ॥ २५
प्रविष्टा विकृताकारा कृत्वा रूपममानुषम् ।
तयेयं विहिता पूर्वं माया परमदारुणा ॥ २६
राक्षसी वा ध्रुवं यक्षी पिशाची वा भयंकरी ।
तस्याः सर्वमिदं पापं नात्र कार्या विचारणा ॥
यदि पश्याम तां पापां सार्थघ्नीं नैकदुःखदाम् ।
लोष्टभिः पांसुभिश्चैव तृणैः काष्ठैश्च मुष्टिभिः ॥२८
अवश्यमेव हन्यामः सार्थस्य किल कृत्यकाम् ।
दमयन्ती तु तच्छ्रुत्वा वाक्यं तेषां सुदारुणम् ॥
ह्रीता भीता च संविग्ना प्राद्रवद्यत्र काननम् ।
आशङ्कमाना तत्पापमात्मानं पर्यदेवयत् ॥ ३०
अहो ममोपरि विधेः संरम्भो दारुणो महान् ।
नानुबध्नाति कुशलं कस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ३१
न स्मराम्यशुभं किंचित्कृतं कस्यचिदण्वपि ।
कर्मणा मनसा वाचा कस्येदं कर्मणः फलम् ॥३२
नूनं जन्मान्तरकृतं पापमापतितं महत् ।
अपश्चिमामिमां कष्टामापदं प्राप्तवत्यहम् ॥ ३३
भर्तृराज्यापहरणं स्वजनाच्च पराजयः ।
भर्त्रा सह वियोगश्च तनयाभ्यां च विच्युतिः॥३४
निर्नाथता वने वासो बहुव्यालनिषेविते ।
अथापरेद्युः संप्राप्ते हतशिष्टा जनास्तदा ॥ ३५
देशात्तस्माद्विनिष्क्रम्य शोचन्ते वैशसं कृतम् ।
भ्रातरं पितरं पुत्रं सखायं च नराधिप ॥ ३६
अशोचत्तत्र वैदर्भी किं नु मे दुष्कृतं कृतम् ।
योऽपि मे निर्जनेऽरण्ये संप्राप्तोऽयं जनार्णवः ॥ ३७
स हतो हस्तियूथेन मन्दभाग्यान्ममैव तत् ।
प्राप्तव्यं सुचिरं दुःखं नूनमद्यापि वै मया ॥ ३८
नाप्राप्तकालो म्रियते श्रुतं वृद्धानुशासनम् ।
या नाहमद्य मृदिता हस्तियूथेन दुःखिता ॥ ३९
न ह्यदैवकृतं किंचिन्नराणामिह विद्यते ।
न च मे बालभावेऽपि किंचित्पापकृतं कृतम् ॥ ४०
कर्मणा मनसा वाचा यदिदं दुःखमागतम् ।
मन्ये स्वयंवरकृते लोकपालाः समागताः ॥ ४१
प्रत्याख्याता मया तत्र नलस्यार्थाय देवताः ।
नूनं तेषां प्रभावेन वियोगं प्राप्तवत्यहम् ॥ ४२
एवमादीनि दुःखार्ता सा विलप्य वराङ्गना ।
प्रलापानि तदा तानि दमयन्ती पतिव्रता ॥ ४३
हतशेषैः सह तदा ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
अगच्छद्राजशार्दूल चन्द्रलेखेव शारदी ॥ ४४
गच्छन्ती साचिराद्बाला पुरमासादयन्महत् ।
सायाह्ने चेदिराजस्य सुबाहोः सत्यदर्शिनः ॥ ४५
अथ वस्त्रार्धसंवीता प्रविवेश पुरोत्तमम् ।
तां विह्वलां कृशां दीनां मुक्तकेशीममार्जिताम् ॥
उन्मत्तामिव गच्छन्तीं ददृशुः पुरवासिनः ।
प्रविशन्तीं तु तां दृष्ट्वा चेदिराजपुरीं तदा ॥ ४७
अनुजग्मुस्तत्र बाला ग्रामिपुत्राः कुतूहलात् ।
सा तैः परिवृतागच्छत्समीपं राजवेश्मनः ॥ ४८
तां प्रासादगतापश्यद्राजमाता जनैर्वृताम् ।
धात्रीमुवाच गच्छैनामानयेह ममान्तिकम् ॥ ४९
जनेन क्लिश्यते बाला दुःखिता शरणार्थिनी ।
तादृग्रूपं च पश्यामि विद्योतयति मे गृहम् ॥ ५०
उन्मत्तवेषा कल्याणी श्रीरिवायतलोचना ।
सा जनं वारयित्वा तं प्रासादतलमुत्तमम् ॥ ५१
आरोप्य विस्मिता राजन्दमयन्तीमपृच्छत ।
एवमप्यसुखाविष्टा बिभर्षि परमं वपुः ॥ ५२
भासि विद्युदिवाभ्रेषु शंस मे कासि कस्य वा ।
न हि ते मानुषं रूपं भूषणैरपि वर्जितम् ॥ ५३
असहाया नरेभ्यश्च नोद्विजस्यमरप्रभे ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भैमी वचनमब्रवीत् ॥ ५४
मानुषीं मां विजानीहि भर्तारं समनुव्रताम् ।
सैरन्ध्रीं जातिसंपन्नां भुजिष्यां कामवासिनीम् ॥
फलमूलाशनामेकां यत्रसायंप्रतिश्रयाम् ।
असंख्येयगुणो भर्ता मां च नित्यमनुव्रतः ५६
भक्ताहमपि तं वीरं छायेवानुगता पथि ।
तस्य दैवात्प्रसङ्गोऽभूदतिमात्रं सुदेवने ॥ ५७
द्यूते स निर्जितश्चैव वनमेक उपेयिवान् ।
तमेकवसनं वीरमुन्मत्तमिव विह्वलम् ॥ ५८

लोष्टभिरिति प्रयोगादेव लोष्टशब्दो नकारान्तोऽप्यस्तीति ज्ञायते ॥ २८ कृत्येव कृत्यका कुत्सिता कृत्या कृत्यकेति वा ताम् ॥२९॥ अपश्चिमां अपरावर्तिनीम् ॥३३॥ पापकृतं पापं कर्म ॥ ४० ॥ अमार्जितां धूसराङ्गीम् ॥ ४६ ॥ प्रासादतलं प्रासादोपरि ॥ ५१ ॥ सैरन्ध्रीं सीराः प्रतिसीरास्तासां समूहं सैरं धारयित्रीं नेपथ्यधारिणी अन्तःपुरचरामित्यर्थः । भुजिष्यां दासीं । कामवासिनीं यत्र काम इच्छा तत्रैव वसन्तीम् ॥ ५५ ॥ यत्र सायंकालस्तत्रैव प्रतिश्रयो गृहं यस्यास्ताम् ॥ ५६ ॥

आश्वासयन्ती भर्तारमहमन्यगमं वनम् ।
स कदाचिद्वने वीरः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ५९
क्षुत्परीतस्तु विमनास्तदप्येकं व्यसर्जयत् ।
तमेकवसना नग्नमुन्मत्तवदचेतसम् ॥ ६०
अनुव्रजन्ती बहुला न स्वपामि निशास्तदा ।
ततो बहुतिथे काले सुप्तामुत्सृज्य मा क्वचित् ॥ ६१
वाससोर्धं परिच्छिद्य त्यक्तवान्मामनागसम् ।
तं मार्गमाणा भर्तारं दह्यमाना दिवानिशम् ॥ ६२
साहं कमलगर्भाभमपश्यन्ती हृदि प्रियम् ।
न विन्दाम्यमरप्रख्यं प्रियं प्राणेश्वरं प्रभुम् ॥ ६३
तामश्रुपरिपूर्णाक्षीं विलपन्तीं तथा बहु ।
राजमाताब्रवीदार्तां भैमीमार्तस्वरां स्वयम् ॥ ६४
वसस्व मयि कल्याणि प्रीतिर्मे परमा त्वयि ।
मृगयिष्यन्ति ते भद्रे भर्तारं पुरुषा मम ॥ ६५
अपि वा स्वयमागच्छेत्परिधावन्नितस्ततः ।
इहैव वसती भद्रे भर्तारमुपलप्स्यसे ॥ ६६
राजमातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती वचोऽब्रवीत् ।
समयेनोत्सहे वस्तुं त्वयि वीरप्रजायिनि ॥ ६७
उच्छिष्टं नैव भुञ्जीयां न कुर्यां पादधावनम् ।
न चाहं पुरुषानन्यान्प्रभाषेयं कथंचन ॥ ६८
प्रार्थयेद्यदि मां कश्चिद्दण्ड्यस्ते स पुमान्भवेत् ।
वध्यश्च तेऽसकृन्मन्द इति मे व्रतमाहितम् ॥ ६९
भर्तुरन्वेषणार्थं तु पश्येयं ब्राह्मणानहम् ।
यद्येवमिह वत्स्यामि त्वत्सकाशे न संशयः ॥ ७०
अतोऽन्यथा न मे वासो वर्तते हृदये क्वचित् ।
तां प्रहृष्टेन मनसा राजमातेदमब्रवीत् ॥ ७१
सर्वमेतत्करिष्यामि दिष्ट्या ते व्रतमीदृशम् ।
एवमुक्त्वा ततो भैमीं राजमाता विशांपते ॥ ७२
उवाचेदं दुहितरं सुनन्दां नाम भारत ।
सैरन्ध्रीमभिजानीष्व सुनन्दे देवरूपिणीम् ॥ ७३
वयसा तुल्यतां प्राप्ता सखी तव भवत्वियम् ।
एतया सह मोदस्व निरुद्विग्नमनाः सदा ॥ ७४
ततः परमसंहृष्टा सुनन्दा गृहमागमत् ।
दमयन्तीमुपादाय सखीभिः परिवारिता ॥ ७५
सा तत्र पूज्यमाना वै दमयन्ती व्यनन्दत ।
सर्वकामैः सुविहितैर्निरुद्वेगावसत्तदा ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते आरण्यकप० नलोपाख्यानप० दमयन्तीचेदिराजगृहवासे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५

## ६६

बृहदश्व उवाच ।
उत्सृज्य दमयन्तीं तु नलो राजा विशांपते ।
ददर्श दावं दह्यन्तं महान्तं गहने वने ॥ १
तत्र शुश्राव शब्दं वै मध्ये भूतस्य कस्यचित् ।
अभिधाव नलेत्युच्चैः पुण्यश्लोकेति चासकृत् ॥ २
मा भैरिति नलश्चोक्त्वा मध्यमग्नेः प्रविश्य तम् ।
ददर्श नागराजानं शयानं कुण्डलीकृतम् ॥ ३
स नागः प्राञ्जलिर्भूत्वा वेपमानो नलं तदा ।
उवाच मां विद्धि राजन्नागं कर्कोटकं नृप ॥ ४
मया प्रलब्धो महर्षिर्नारदः सुमहातपाः ।
तेन मन्युपरीतेन शप्तोऽस्मि मनुजाधिप ॥ ५
तिष्ठ त्वं स्थावर इव यावदेव नलः क्वचित् ।
इतो नेता हि तत्र त्वं शापान्मोक्ष्यसि मत्कृतात् ॥
तस्य शापान्न शक्तोऽस्मि पदाद्विचलितुं पदम् ।
उपदेक्ष्यामि ते श्रेयस्त्रातुमर्हति मां भवान् ॥ ७
सखा च ते भविष्यामि मत्समो नास्ति पन्नगः ।
लघुश्च ते भविष्यामि शीघ्रमादाय गच्छ माम् ८
एवमुक्त्वा स नागेन्द्रो बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ।
तं गृहीत्वा नलः प्रायाद्देशं दावविवर्जितम् ॥ ९
आकाशदेशमासाद्य विमुक्तं कृष्णवर्त्मना ।
उत्स्रष्टुकामं तं नागः पुनः कर्कोटकोऽब्रवीत् ॥ १०
पदानि गणयन्गच्छ स्वानि नैषध कानिचित् ।
तत्र तेऽहं महाबाहो श्रेयो धास्यामि यत्परम् ॥ ११

---

हे वीरप्रजायिनि वीरानेव प्रजायते सूते सा वीरप्रजायिनी ॥ ६७ ॥ पश्येयं दृष्ट्वा च तान् पृच्छेयमपि ॥ ७० ॥ इत्यारण्यके० नै० मा० पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

उत्सृज्येति ॥ १ ॥ मया प्रलब्धो ब्रह्मर्षिर्नारद इति पाठान्तरम् ॥ ५ ॥ तत्र काले ॥ ६ ॥ लघुः गुरुत्वरहितः ॥ ८ ॥ दावविवर्जितं वह्निहीनम् ॥ ९ ॥

ततः संख्यातुमारब्धमदशद्दशमे पदे ।
तस्य दष्टस्य तद्रूपं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १२
स दृष्ट्वा विस्मितस्तस्थावात्मानं विकृतं नलः ।
स्वरूपधारिणं नागं ददर्श स महीपतिः ॥ १३
ततः कर्कोटको नागः सान्त्वयन्नलमब्रवीत् ।
मया तेऽन्तर्हितं रूपं न त्वां विद्युर्जना इति ॥ १४
यत्कृते चासि निकृतो दुःखेन महता नल ।
विषेण स मदीयेन त्वयि दुःखं निवत्स्यति ॥ १५
विषेण संवृतैर्गात्रैर्यावत्त्वां न विमोक्ष्यति ।
तावत्त्वयि महाराज दुःखं वै स निवत्स्यति ॥ १६
अनागा येन निकृतस्त्वमनर्हो जनाधिप ।
क्रोधादसूययित्वा तं रक्षा मे भवतः कृता ॥ १७
न ते भयं नरव्याघ्र दंष्ट्रिभ्यः शत्रुतोऽपि वा ।
ब्रह्मविद्भ्यश्च भविता मत्प्रसादान्नराधिप ॥ १८
राजन्विषनिमित्ता च न ते पीडा भविष्यति ।
संग्रामेषु च राजेन्द्र शश्वज्जयमवाप्स्यसि ॥ १९
गच्छ राजन्नितः सूतो बाहुकोऽहमिति ब्रुवन् ।
समीपमृतुपर्णस्य स हि चैवाक्षनैपुणः ॥ २०
अयोध्यां नगरीं रम्यामद्य वै निषधेश्वर ।
स तेऽक्षहृदयं दाता राजाश्वहृदयेन वै ॥ २१
इक्ष्वाकुकुलजः श्रीमान्मित्रं चैव भविष्यति ।
भविष्यसि यदाऽक्षज्ञः श्रेयसा योक्ष्यसे तदा २२
समेष्यसि दारैस्त्वं मास्म शोके मनः कृथाः ।
राज्येन तनयाभ्यां च सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २३
स्वं रूपं च यदा द्रष्टुमिच्छेथास्त्वं नराधिप ।
संस्मर्तव्यस्तदा तेऽहं वासश्चेदं निवासयेः ॥ २४
अनेन वाससा च्छन्नः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यसे ।
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यं वासोयुगं तदा॥ २५
एवं नलं च संदिश्य वासो दत्वा च कौरव ।
नागराजस्ततो राजंस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानपर्वणि नलकर्कोटकसंवादे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

## ६७.

बृहदश्व उवाच ।
तस्मिन्नन्तर्हिते नागे प्रययौ नैषधो नलः ।
ऋतुपर्णस्य नगरं प्राविशद्दशमेऽहनि ॥ १
स राजानमुपातिष्ठद्बाहुकोऽहमिति ब्रुवन् ।
अश्वानां वाहने युक्तः पृथिव्यां नास्ति मत्समः २
अर्थकृच्छ्रेषु चैवाहं प्रष्टव्यो नैपुणेषु च ।
अन्नसंस्कारमपि च जानाम्यन्यैर्विशेषतः ॥ ३
यानि शिल्पानि लोकेऽस्मिन्यच्चैवान्यत्सुदुष्करम्
सर्वं यतिष्ये तत्कर्तुमृतुपर्ण भरस्व माम् ॥ ४
ऋतुपर्ण उवाच ।
वस बाहुक भद्रं ते सर्वमेतत्करिष्यसि ।
शीघ्रयाने सदा बुद्धिर्ध्रियते मे विशेषतः । ५
स त्वमातिष्ठ योगं तं येन शीघ्रा हया मम ।
भवेयुरश्वाध्यक्षोऽसि वेतनं ते शतंशताः ॥ ६
त्वामुपस्थास्यतश्चेव नित्यं वार्ष्णेयजीवलौ ।
एताभ्यां रंस्यसे सार्धं वस वै मयि बाहुक ॥ ७
बृहदश्व उवाच ।
एवमुक्तो नलस्तेन न्यवसत्तत्र पूजितः ।
ऋतुपर्णस्य नगरे सह वार्ष्णेयजीवलः ॥ ८
स वै तत्रावसद्राजा वैदर्भीमनुचिन्तयन् ।
सायं सायं सदा चेमं श्लोकमेकं जगाद ह ॥ ९
क्व नु सा क्षुत्पिपासार्ता श्रान्ता शेते तपस्विनी ।
स्मरन्ती तस्य मन्दस्य कं वासाद्योपतिष्ठति ॥ १०
एवं ब्रुवन्तं राजानं निशायां जीवलोऽब्रवीत् ।
कामेनां शोचसे नित्यं श्रोतुमिच्छामि बाहुक ॥

दशेत्युक्तेऽदशत् आज्ञां विना नागो न दशतीति भावः ॥ १२ ॥ यत्कृते इति । सः कलिः । एतेन यो यच्छरीरे प्रविशति स तेन शरीरेण सुखं दुःखं चाश्नातीति सूचितं । एतं चैतद्बहुविशादो । इदं दमयन्त्या दत्तस्य शापस्य फलं कलिर्भुङ्क्ते इति भावः ॥१५॥ अनागाः निरपराधः निकृतः वञ्चितः मे मया ॥ १७ ॥ अक्षहृदयं द्यूते जयावहं अश्वहृदयेन विद्यया विद्यां परिवर्तयेदित्यर्थः ॥ २१ ॥ निवासयेः परिधेहि ॥ २४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभा० षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ शतंशता शतानि मासिकं वेतनं दशसहस्रं सुवर्णा इत्यर्थः ॥ ६ ॥ तस्य मन्दस्य तं मन्दं उपतिष्ठति जीवनार्थमिति शेषः ॥ १० ॥

आयुष्मन्कस्य वा नारी यामेवमनुशोचसि ।
तमुवाच नलो राजा मन्दप्रज्ञस्य कस्यचित् ॥१२
आसीद्बहुमता नारी तस्याद्दृढतरं वचः ।
स वै केनचिदर्थेन तया मन्दो व्ययुज्यत ॥ १३
विप्रयुक्तः स मन्दात्मा भ्रमत्यसुखपीडितः ।
दह्यमानः स शोकेन दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ १४
निशाकाले स्मरंस्तस्याः श्लोकमेकं स्म गायति ।
स विभ्रमन्महीं सर्वां क्वचिदासाद्य किंचन ॥ १५
वसत्यनर्हस्तद्दुःखं भूय एवानुसंस्मरन् ।
सा तु तं पुरुषं नारी कृच्छ्रेऽप्यनुगता वने ॥ १६
त्यक्ता तेनाल्पपुण्येन दुष्करं यदि जीवति ।
एका बालानभिज्ञा च मार्गाणामतथोचिता ॥१७
क्षुत्पिपासापरीताङ्गी दुष्करं यदि जीवति ।
श्वापदाचरिते नित्यं वने महति दारुणे ॥ १८
त्यक्ता तेनाल्पभाग्येन मन्दप्रज्ञेन मारिष ।
इत्येवं नैषधो राजा दमयन्तीमनुस्मरन् ।
अज्ञातवासं न्यवसद्राज्ञस्तस्य निवेशने ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि नलविलापे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

बृहदश्व उवाच ।
हृतराज्ये नले भीमः सभार्ये प्रेष्यतां गते ।
द्विजान्प्रस्थापयामास नलदर्शनकाङ्क्षया ॥ १
संदिदेश च तान्भीमो वसु दत्वा च पुष्कलम् ।
मृगयध्वं नलं चैव दमयन्तीं च मे सुताम् ॥ २
अस्मिन्कर्मणि संपन्ने विज्ञाते निषधाधिपे ।
गवां सहस्रं दास्यामि यो वस्तावानयिष्यति ॥३
अग्रहारांश्च दास्यामि ग्रामं नगरसंमितम् ।
न चेच्छक्याविहानेतुं दमयन्ती नलोपि वा ॥ ४
ज्ञातमात्रेपि दास्यामि गवां दशशतं धनम् ।
इत्युक्तास्ते ययुर्हृष्टा ब्राह्मणाः सर्वतो दिशम् ॥ ५
पुरराष्ट्राणि चिन्वन्तो नैषधं सह भार्यया ।
नैव क्वापि प्रपश्यन्ति नलं वा भीमपुत्रिकाम् ॥ ६
ततश्चेदिपुरीं रम्यां सुदेवो नाम वै द्विजः ।
विचिन्वानोथ वैदर्भीमपश्यद्राजवेश्मनि ॥ ७
पुण्याहवाचने राज्ञः सुनन्दासहितां स्थिताम् ।
मन्दं प्रख्यायमानेन रूपेणाप्रतिमेन ताम् ॥ ८
निबद्धां धूमजालेन प्रभामिव विभावसोः ।
तां समीक्ष्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ।
तर्कयामास भैमीति कारणैरुपपादयन् ॥ ९
सुदेव उवाच ।
यथेयं मे पुरा दृष्टा तथारूपेयमङ्गना ।
कृतार्थोस्म्यद्य दृष्ट्वेमां लोककान्तामिव श्रियम् ॥
पूर्णचन्द्रनिभां श्यामां चारुवृत्तपयोधराम् ।
कुर्वन्तीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ॥११
चारुपद्मविशालाक्षीं मन्मथस्य रतीमिव ।
इष्टां समस्तलोकस्य पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥ १२
विदर्भसरसस्तस्माद्दैवदोषादिवोद्धृताम् ।
मलपङ्कानुलिप्ताङ्गीं मृणालीमिव चोद्धृताम् ॥१३
पौर्णमासीमिव निशां राहुग्रस्तनिशाकराम् ।
पतिशोकाकुलां दीनां शुष्कस्रोतां नदीमिव ॥१४
विध्वस्तपर्णकमलां वित्रासितविहंगमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टां व्याकुलामिव पद्मिनीम् ॥ १५

अदृढतरं दमयन्त्यां मिथ्याप्रतिज्ञात्वं स्वस्यानुसंधायेय- मुक्तिः व्ययुज्यत वियुक्तः ॥ १३ ॥ मारिष आर्य ॥१९॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभा० सप्तषष्टितमो- ऽध्यायः ॥ ६७ ॥

---

६८

हृतेति । प्रेष्यतां दासताम् ॥ १ ॥ अग्रं ब्राह्मणभोजनं तदर्थं ह्रियन्ते राजधनात्पृथक् क्रियन्ते तेऽग्रहाराःक्षेत्रा- दयः ॥ ४ ॥ कारणैर्लिङ्गैः उपपादयन् इयमेव दमयन्तीति निश्चिन्वन् ॥ ९ ॥ श्यामां सदा षोडशवार्षिकीं । 'शीते चैवोष्मला नित्यं ग्रीष्मे चातीव शीतला । मध्यः क्षीणस्तु यस्यास्तु सा श्यामेत्यभिधीयते' । इत्यन्ये ॥ ११ ॥ शुष्क- स्रोतां शुष्कप्रवाहां । छांदसं टाबंतत्वम् ॥१४॥ पद्मिनी सरसीम् ॥ १५ ॥

सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।
दह्यमानामिवार्केण मृणालीमिव चोद्धृताम् ॥ १६
रूपौदार्यगुणोपेतां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
चन्द्रलेखामिव नवां व्योम्नि नीलाभ्रसंवृताम् ॥१७
कामभोगैः प्रियैर्हीनां हीनां बन्धुजनेन च ।
देहं धारयतीं दीनं भर्तृदर्शनकाङ्क्षया ॥ १८
भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणैर्विना ।
एषा हि रहिता तेन शोभमाना न शोभते ॥ १९
दुष्करं कुरुतेऽत्यन्तं हीनो यदनया नलः ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनापि सीदति ॥ २०
श्यामामसितकेशान्तां शतपत्रायतेक्षणाम् ।
सुखार्हां दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथते मनः॥ २१
कदा नु खलु दुःखस्य पारं यास्यति वै शुभा ।
भर्तुः समागमात्साध्वी रोहिणी शशिनो यथा ॥
अस्या नूनं पुनर्लाभान्नैषधः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनर्लब्ध्वा च मेदिनीम्॥२३
तुल्यशीलवयोयुक्तां तुल्याभिजनसंवृताम् ।
नैषधोऽर्हति वैदर्भीं तं चेयमसितेक्षणा ॥ २४
युक्तं तस्याप्रमेयस्य वीर्यसत्त्ववतो मया ।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनलालसाम् ॥ २५
अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अदृष्टपूर्वां दुःखस्य दुःखार्तां ध्यानतत्पराम् ॥ २६

बृहदश्व उवाच ।

एवं विमृश्य विविधैः कारणैर्लक्षणैश्च ताम् ।
उपागम्य ततो भैमीं सुदेवो ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ २७
अहं सुदेवो वैदर्भि भ्रातुस्ते दयितः सखा ।
भीमस्य वचनाद्राज्ञस्त्वामन्वेष्टुमिहागतः ॥ २८
कुशली ते पिता राज्ञि जननी भ्रातरश्च ते ।
आयुष्मन्तौ कुशलिनौ तत्रस्थौ दारकौ च तौ॥२९
त्वत्कृते बन्धुवर्गाश्च गतसत्त्वा इवासते ।
अन्वेष्टारो ब्राह्मणाश्च भ्रमन्ति शतशो महीम् ॥३०

बृहदश्व उवाच ।

अभिज्ञाय सुदेवं तं दमयन्ती युधिष्ठिर ।
पर्यपृच्छत तान्सर्वान्क्रमेण सुहृदः स्वकान् ॥ ३१
रुरोद च भृशं राजन्वैदर्भी शोककर्शिता ।
दृष्ट्वा सुदेवं सहसा भ्रातुरिष्टं द्विजोत्तमम् ॥ ३२
ततो रुदन्तीं तां दृष्ट्वा सुनन्दा शोककर्शिता ।
सुदेवेन सहैकान्ते कथयन्तीं च भारत ॥ ३३
जनित्र्याः कथयामास सैरन्ध्री रुदते भृशम् ।
ब्राह्मणेन सहागम्य तां वेद यदि मन्यसे ॥ ३४
अथ चेदिपतेर्माता राज्ञश्चान्तःपुरात्तदा ।
जगाम यत्र सा बाला ब्राह्मणेन सहाभवत् ॥ ३५
ततः सुदेवमानाय्य राजमाता विशांपते ।
पप्रच्छ भार्या कस्येयं सुता वा कस्य भाविनी३६
कथं च नष्टा ज्ञातिभ्यो भर्तुर्वा वामलोचना ।
त्वया च विदिता विप्र कथमेवंगता सती ॥ ३७
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तः सर्वमशेषतः ।
तत्त्वेन हि ममाचक्ष्व पृच्छन्त्या देवरूपिणीम्॥ ३८
एवमुक्तस्तया राजन्सुदेवो द्विजसत्तमः ।
सुखोपविष्ट आचष्ट दमयन्त्या यथातथम् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानप० दमयन्तीसुदेवसंवादे अष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

## ६९

सुदेव उवाच ।

विदर्भराजो धर्मात्मा भीमो नाम महाद्युतिः ।
सुतेयं तस्य कल्याणी दमयन्तीति विश्रुता ॥ १
राजा तु नैषधो नाम वीरसेनसुतो नलः ।
भार्येयं तस्य कल्याणी पुण्यश्लोकस्य धीमतः॥ २
स द्यूतेन जितो भ्रात्रा हृतराज्यो महीपतिः ।
दमयन्त्या गतः सार्धं न प्राज्ञायत कस्यचित् ॥३
ते वयं दमयन्त्यर्थे चरामः पृथिवीमिमाम् ।
सेयमासादिता बाला तव पुत्रनिवेशने ॥ ४
अस्या रूपेण सदृशी मानुषी न हि विद्यते ।
अस्या ह्येष भ्रुवोर्मध्ये सहजः पिप्लुरुत्तमः ॥ ५

सुजाताङ्गीं अन्यूनानाधिकाङ्गीम् ॥ १६ ॥ लब्ध्वा च लब्ध्वेव ॥ २३ ॥ सुनन्दा कथयामासेति संबन्धः ॥ ३३ ॥ वेद विचार्य वेदानिरिदं रूपं णिजभाव आर्षः ॥ ३४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

विदर्भराज इति ॥ १ ॥ पिप्लुः रक्ततिलकाकृति लांछनं महाराष्ट्राणां 'मस' इति प्रसिद्धम् ॥ ५ ॥

श्यामायाः पद्मसंकाशो लक्षितोऽन्तर्हितो मया ।
मलेन संवृतो ह्यस्याश्छन्नोऽभ्रेणेव चन्द्रमाः ॥ ६
चिह्नभूतो विभूत्यर्थमयं धात्रा विनिर्मितः ।
प्रतिपत्कलुषस्येन्दोर्लेखा नातिविराजते ॥ ७
न चास्या नश्यते रूपं वपुर्मलसमाचितम् ।
असंस्कृतमभिव्यक्तं भाति काञ्चनसंनिभम् ॥ ८
अनेन वपुषा बाला पिप्लुनानेन सूचिता ।
लक्षितेयं मया देवी निभृतोऽग्निरिवोष्मणा ॥ ९
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सुदेवस्य विशांपते ।
सुनन्दा शोधयामास पिप्लुप्रच्छादनं मलम् ॥ १०
स मलेनापकृष्टेन पिप्लुस्तस्या व्यरोचत ।
दमयन्त्या यथा व्यभ्रे नभसीव निशाकरः ॥ ११
पिप्लुं दृष्ट्वा सुनन्दा च राजमाता च भारत ।
रुदत्यौ तां परिष्वज्य मुहूर्तमिव तस्थतुः ॥ १२
उत्सृज्य बाष्पं शनकै राजमातेदमब्रवीत् ।
भगिन्या दुहिता मेऽसि पिप्लुनानेन सूचिता॥ १३
अहं च तव माता च राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
सुते दशार्णाधिपतेः सुदाम्नश्चारुदर्शने ॥ १४
भीमस्य राज्ञः सा दत्ता वीरबाहोरहं पुनः ।
त्वं तु जाता मया दृष्टा दशार्णेषु पितुर्गृहे ॥ १५
यथैव ते पितुर्गेहं तथैव मम भाविनि ।
यथैव च ममैश्वर्यं दमयन्ति तथा तव ॥ १६
तां प्रहृष्टेन मनसा दमयन्ती विशांपते ।
प्रणम्य मातुर्भगिनीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १७
अज्ञायमानापि सती सुखमस्म्युषिता त्वयि ।
सर्वकामैः सुविहिता रक्ष्यमाणा सदा त्वया॥ १८
सुखात्सुखतरो वासो भविष्यति न संशयः ।
चिरविप्रोषितां मातर्मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ १९
दारकौ च हि मे नीतौ वसतस्तत्र बालकौ ।
पित्रा विहीनौ शोकार्तौ मया चैव कथं नु तौ ॥
यदि चापि प्रियं किंचिन्मयि कर्तुमिहेच्छसि ।
विदर्भान्यातुमिच्छामि शीघ्रं मे यानमादिश॥ २१
बाढमित्येव तामुक्त्वा हृष्टा मातृष्वसा नृप ।
गुप्तां बलेन महता पुत्रस्यानुमते ततः ॥ २२
प्रास्थापयद्राजमाता श्रीमतीं नरवाहिना ।
यानेन भरतश्रेष्ठ स्वन्नपानपरिच्छदाम् ॥ २३
ततः सा न चिरादेव विदर्भानगमत्पुनः ।
तां तु बन्धुजनः सर्वः प्रहृष्टः समपूजयत् ॥ २४
सर्वान्कुशलिनो दृष्ट्वा बान्धवान्दारकौ च तौ ।
मातरं पितरं चोभौ सर्वं चैव सखीजनम् ॥ २५
देवताः पूजयामास ब्राह्मणांश्च यशस्विनी ।
परेण विधिना देवी दमयन्ती विशांपते ॥ २६
अतर्पयत्सुदेवं च गोसहस्रेण पार्थिवः ।
प्रीतो दृष्ट्वैव तनयां ग्रामेण द्रविणेन च ॥ २७
सा व्युष्टा रजनीं तत्र पितुर्वेश्मनि भाविनी ।
विश्रान्ता मातरं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ २८

दमयन्त्युवाच ।

मां चेदिच्छसि जीवन्तीं मातः सत्यं ब्रवीमि ते ।
नरवीरस्य चैतस्य नलस्यानयने यत ॥ २९
दमयन्त्या तथोक्ता तु सा देवी भृशदुःखिता ।
बाष्पेणापिहिता राज्ञी नोत्तरं किंचिदब्रवीत् ॥
तदवस्थां तु तां दृष्ट्वा सर्वमन्तःपुरं तदा ।
हाहाभूतमतीवासीद्भृशं च प्ररुरोद ह ॥ ३१
ततो भीमं महाराजं भार्या वचनमब्रवीत् ।
दमयन्ती तव सुता भर्तारमनुशोचति ॥ ३२
अपकृष्य च लज्जां सा स्वयमुक्तवती नृप ।
प्रयतन्तु तव प्रेष्याः पुण्यश्लोकस्य मार्गणे ॥ ३३
तया प्रदेशितो राजा ब्राह्मणान्वशवर्तिनः ।
प्रास्थापयद्दिशः सर्वा यतध्वं नलमार्गणे ॥ ३४
ततो विदर्भाधिपतेर्नियोगाद्ब्राह्मणास्तदा ।
दमयन्तीमथो सृत्वा प्रस्थितास्ते तथाब्रुवन् ॥ ३५
अथ तानब्रवीद्भैमी सर्वराष्ट्रेष्विदं वचः ।
ब्रूयास्त जनसंसत्सु तत्र तत्र पुनः पुनः ॥ ३६
क्व नु त्वं कितव च्छित्त्वा वस्त्रार्धं प्रस्थितो मम ।
उत्सृज्य विपिने सुप्तामनुरक्तां प्रियां प्रिय ॥ ३७
सा वै यथा त्वया दृष्टा तथास्ते त्वत्प्रतीक्षिणी ।
दह्यमाना भृशं बाला वस्त्रार्धेनाभिसंवृता ॥ ३८
तस्या रुदत्याः सततं तेन शोकेन पार्थिव ।
प्रसादं कुरु वै वीर प्रतिवाक्यं वदस्व च ॥ ३९

अपकृष्टेन दूरीकृतेन ॥ ११ ॥ दारकौ सुतः सुता च । बालकौ अल्पवयस्कौ ॥ २० ॥ व्युष्टा वासं कृतवती ॥ २८ ॥ यत यत्नं कुरु । अनुदात्तत्वलक्षणस्यात्मनेपदस्य चक्षिङो ङित्करणेनानित्यत्वज्ञापनात् ॥ २९ ॥ प्रदेशितः प्रकर्षेण प्रेरितः ॥ ३४ ॥ सृत्वा गत्वा ते तथा प्रस्थिताः सन्तः अब्रुवन्नलान्वेषणाय प्रस्थिताः स्म इति शेषः ॥ ३५ ॥ ब्रूयास्त वदत । ब्रुवध्वमिति पाठे स्वार्थस्तर्ह ॥ ३६ ॥ वदस्व । भासनोपसंभाषेत्यादिनात्मनेपदं ॥ ३९ ॥

एवमन्यच्च वक्तव्यं कृपां कुर्याद्यथा मयि ।
वायुना धूयमानो हि वनं दहति पावकः ॥ ४०
भर्तव्या रक्षणीया च पत्नी हि पतिना सदा ।
तन्नष्टमुभयं कस्माद्धर्मज्ञस्य सतस्तव ॥ ४१
ख्यातः प्राज्ञः कुलीनश्च सानुक्रोशो भवान्सदा ।
संवृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ॥ ४२
तत्कुरुष्व नरव्याघ्र दयां मयि नरर्षभ ।
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव हि मे श्रुतः ॥ ४३
एवं ब्रुवाणान्यदि वः प्रतिब्रूयात्कथंचन ।
स नरः सर्वथा ज्ञेयः कश्चासौ क नु वर्तते ॥ ४४
यश्चैवं वचनं श्रुत्वा ब्रूयात्प्रतिवचो नरः ।
तदादाय वचस्तस्य ममावेद्यं द्विजोत्तमाः ॥ ४५
यथा च वो न जानीयाद्ब्रुवतो मम शासनात् ।
पुनरागमनं चैव तथा कार्यमतन्द्रितैः ॥ ४६
यदि वासौ समृद्धः स्याद्यदि वाप्यधनो भवेत् ।
यदि वाप्यसमर्थः स्याज्ज्ञेयमस्य चिकीर्षितम् ॥
एवमुक्तास्त्वगच्छंस्ते ब्राह्मणाः सर्वतो दिशम् ।
नलं मृगयितुं राजंस्तदा व्यसनिनं तथा ॥ ४८
ते पुराणि सराष्ट्राणि ग्रामान्घोषांस्तथाश्रमान् ।
अन्वेषन्तो नलं राजन्नाधिजग्मुर्द्विजातयः ॥ ४९
तच्च वाक्यं तथा सर्वे तत्र तत्र विशांपते ।
श्रावयांचक्रिरे विप्रा दमयन्त्या यथेरितम् ॥ ५०

इति श्रीम० आरण्यके० प० नलोपाख्यानपर्वणि नलान्वेषणे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## ७०

बृहदश्व उवाच ।
अथ दीर्घस्य कालस्य पर्णादो नाम वै द्विजः ।
प्रत्येत्य नगरं भैमीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १
नैषधं मृगयाणेन दमयन्ति मया नलम् ।
अयोध्यां नगरीं गत्वा भाङ्गासुरिमुपस्थितः ॥ २
श्रावितश्च मया वाक्यं त्वदीयं स महाजने ।
ऋतुपर्णो महाभागो यथोक्तं वरवर्णिनि ॥ ३
तच्छ्रुत्वा नाब्रवीत्किंचिदृतुपर्णो नराधिपः ।
न च पारिषदः कश्चिद्भाष्यमाणो मयाऽसकृत् ॥ ४
अनुज्ञातं तु मां राज्ञा विजने कश्चिदब्रवीत् ।
ऋतुपर्णस्य पुरुषो बाहुको नाम नामतः ॥ ५
सूतस्तस्य नरेन्द्रस्य विरूपो ह्रस्वबाहुकः ।
शीघ्रयानेषु कुशलो मृष्टकर्ता च भोजने ॥ ६
स विनिःश्वस्य बहुशो रुदित्वा च पुनःपुन ।
कुशलं चैव मां पृष्ट्वा पश्चादिदमभाषत ॥ ७
वैषम्यमपि संप्राप्ता गोपायन्ति कुलस्त्रियः ।
आत्मानमात्मना सत्यो जितः स्वर्गो न संशयः ॥
रहिता भर्तृभिश्चैव न कुप्यन्ति कदाचन ।
प्राणांश्चारित्रकवचान्धारयन्ति वरस्त्रियः ॥ ९
विषमस्थेन मूढेन परिभ्रष्टसुखेन च ।
यत्सा तेन परित्यक्ता तत्र न क्रोद्धुमर्हति ॥ १०
प्राणयात्रां परिप्रेप्सोः शकुनैर्हृतवाससः ।
आधिभिर्दह्यमानस्य श्यामा न क्रोद्धुमर्हति ॥ ११
सत्कृताऽसत्कृता वापि पतिं दृष्ट्वा तथागतम् ।
भ्रष्टराज्यं श्रियाहीनं क्षुधितं व्यसनाप्लुतम् ॥ १२
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा त्वरितोहमिहागतः ।
श्रुत्वा प्रमाणं भवती राज्ञश्चैव निवेदय ॥ १३
एतच्छ्रुत्वाश्रुपूर्णाक्षी पर्णादस्य विशांपते ।
दमयन्ती रहोभ्येत्य मातरं प्रत्यभाषत ॥ १४
अयमर्थो न संवेद्यो भीमे मातः कदाचन ।
त्वत्संनिधौ नियोक्ष्येहं सुदेवं द्विजसत्तमम् ॥ १५
यथा न नृपतिर्भीमः प्रतिपद्येत मे मतम् ।
तथा त्वया प्रकर्तव्यं मम चेत्प्रियमिच्छसि ॥ १६

वायुनेति । शोकाग्निः कालवायुना दिने दिने वर्धमानः दमयन्तीशरीरवनं धक्ष्यतीति रूपकेणोक्तं । दहतीति लट्प्रयोगस्तु वर्तमानसामीप्ये ॥ ४० ॥ भर्तव्याऽन्नादिना । रक्षणीया दस्युप्रभृतिभ्यः । पतिनेति पत्या। असमासेपि घिसंज्ञाकार्यमार्षं । उभयं रक्षणभरणात्मकम् ॥४१॥ सानुक्रोशः सदयः ॥ ४२ ॥ मम शासनात् ब्रुवतो वः युष्मान् । यथा वच इति पाठे ब्रुवतो भवत्समुदायस्य वचो न जानीयादिति योज्यम् ॥ ४६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैल० भारतभाव० एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

अथेति ॥ १ ॥ भाङ्गासुरिं ऋतुपर्णम् ॥ २ ॥ गोपायन्ति पालयन्ति । जितः स्वर्गस्ताभिरिति शेषः ॥ ८ ॥

यथा चाहं समानीता सुदेवेनाशु बान्धवान् ।
तेनैव मङ्गलेनाशु सुदेवो यातु माचिरम् ॥ १७
समानेतुं नलं मातरयोध्यां नगरीमितः ।
विश्रान्तं तु ततः पश्चात्पर्णादं द्विजसत्तमम् ॥ १८
अर्चयामास वैदर्भी धनेनातीव भाविनी ।
नले चेहागते तत्र भूयो दास्यामि ते वसु ॥ १९
त्वया हि मे बहुकृतं यदन्यो न करिष्यति ।
यद्भर्त्राहं समेष्यामि शीघ्रमेव द्विजोत्तम ॥ २०
स एवमुक्तोथाश्वास्य आशीर्वादैः सुमङ्गलैः ।
गृहानुपययौ चापि कृतार्थः सुमहामनाः ॥ २१
ततः सुदेवमाभाष्य दमयन्ती युधिष्ठिर ।
अब्रवीत्संनिधौ मातुर्दुःखशोकसमन्विता ॥ २२
गत्वा सुदेव नगरीमयोध्यावासिनं नृपम् ।
ऋतुपर्णं वचो ब्रूहि संपतन्निव कामगः ॥ २३
आस्थास्यति पुनर्भैमी दमयन्ती स्वयंवरम् ।
तत्र गच्छन्ति राजानो राजपुत्राश्च सर्वशः ॥ २४
तथा च गणितः कालः श्वोभूते स भविष्यति ।
यदि संभाविनीयं ते गच्छ शीघ्रमरिंदम ॥ २५
सूर्योदये द्वितीयं सा भर्तारं वरयिष्यति ।
न हि स ज्ञायते वीरो नलो जीवति वा न वा ॥
एवं तया यथोक्तो वै गत्वा राजानमब्रवीत् ।
ऋतुपर्णं महाराज सुदेवो ब्राह्मणस्तदा ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानप० दमयन्तीपुनःस्वयंवरकथने
सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

## ७१

बृहदश्व उवाच ।
श्रुत्वा वचः सुदेवस्य ऋतुपर्णो नराधिपः ।
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा बाहुकं प्रत्यभाषत ॥ १
विदर्भान्यातुमिच्छामि दमयन्त्याः स्वयंवरम् ।
एकाह्ना हयतत्त्वज्ञ मन्यसे यदि बाहुक ॥ २
एवमुक्तस्य कौन्तेय तेन राज्ञा नलस्य ह ।
व्यदीर्यत मनो दुःखात्प्रदध्यौ च महामनाः ॥ ३
दमयन्ती वदेदेतत्कुर्याद्दुःखेन मोहिता ।
अस्मदर्थे भवेद्वायमुपायश्चिन्तितो महान् ॥ ४
नृशंसं बत वैदर्भी भर्तृकामा तपस्विनी ।
मया क्षुद्रेण निकृता कृपणा पापबुद्धिना ॥ ५
स्त्रीस्वभावश्चलो लोके मम दोषश्च दारुणः ।
स्यादेवमपि कुर्यात्सा विवासाद्गतसौहृदा ॥ ६
मम शोकेन संविग्ना नैराश्यात्तनुमध्यमा ।
नैवं सा कर्हिचित्कुर्यात्सापत्या च विशेषतः ॥ ७
यदत्र सत्यं वाऽसत्यं गत्वा वेत्स्यामि निश्चयम् ।
ऋतुपर्णस्य वै काममात्मार्थं च करोम्यहम् ॥ ८
इति निश्चित्य मनसा बाहुको दीनमानसः ।
कृताञ्जलिरुवाचेदमृतुपर्णं जनाधिपम् ॥ ९
प्रतिजानामि ते वाक्यं गमिष्यामि नराधिप ।
एकाह्ना पुरुषव्याघ्र विदर्भनगरीं नृप ॥ १०
ततः परीक्षामश्वानां चक्रे राजन्स बाहुकः ।
अश्वशालामुपागम्य भाङ्गासुरिनृपाज्ञया ॥ ११
स त्वर्यमाणो बहुश ऋतुपर्णेन बाहुकः ।
अश्वाञ्जिज्ञासमानो वै विचार्य च पुनःपुनः ।
अध्यगच्छत्कृशानश्वान्समर्थानध्वनि क्षमान् ॥१२
तेजोबलसमायुक्तान्कुलशीलसमन्वितान् ।
वर्जितांल्लक्षणैर्हीनैः पृथुप्रोथान्महाहनून् ॥ १३
शुद्धान्दशभिरावर्तैः सिन्धुजान्वातरंहसः ।
दृष्ट्वा तानब्रवीद्राजा किंचित्कोपसमन्वितः ॥ १४

---

संभाविनी संभाविता इयं गतिरिति शेषः ॥ २५ ॥
इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१
श्रुत्वेति ॥ १ ॥ सापत्या अपत्यसहिता ॥ ७ ॥ तेजः कान्तिविशेषः बलं शक्तिः कुलं जातिविशेषः । शीलं सादिचित्तानुसारिता हीनैर्लक्षणैः शतपदीप्रभृतिभिर्वर्जितान् । प्रोथं नासिका । हनुः अधरं मुखफलकम् ॥ १३ ॥ शुद्धान् हृदावर्तादि दुष्टावर्तहीनान् सिन्धुजान् सिन्धुदेशजान् ॥ १४ ॥

किमिदं प्रार्थितं कर्तुं प्रलब्धव्या न ते वयम् ।
कथमल्पबलप्राणा वक्ष्यन्तीमे हया मम ।
महदध्वानमपि च गन्तव्यं कथमीदृशैः ॥ १५

बाहुक उवाच ।

एको ललाटे द्वे मूर्ध्नि द्वौ द्वौ पार्श्वोपपार्श्वयोः ।
द्वौ द्वौ वक्षसि विज्ञेयौ प्रयाणे चैक एव तु ॥ १६
एते हया गमिष्यन्ति विदर्भान्नात्र संशयः ।
यानन्यान्मन्यसे राजन्ब्रूहि तान्योजयामि ते ॥१७

ऋतुपर्ण उवाच ।

त्वमेव हयतत्त्वज्ञः कुशलो ह्यसि बाहुक ।
यान्मन्यसे समर्थांस्त्वं क्षिप्रं तानेव योजय ॥ १८
ततः सदश्वांश्चतुरः कुलशीलसमन्वितान् ।
योजयामास कुशलो जवयुक्तान्रथे नलः ॥ १९
ततो युक्तं रथं राजा समारोहत्त्वरान्वितः ।
अथ पर्यपतन्भूमौ जानुभिस्ते हयोत्तमाः ॥ २०
ततो नरवरः श्रीमान्नलो राजा विशांपते ।
सान्त्वयामास तानश्वांस्तेजोबलसमन्वितान् ॥
रश्मिभिश्च समुद्यम्य नलो यातुमियेष सः ।
सूतमारोप्य वार्ष्णेयं जवमास्थाय वै परम् ॥ २२
ते चोद्यमाना विधिवद्बाहुकेन हयोत्तमाः ।
समुत्पेतुरथाकाशं रथिनं मोहयन्निव ॥ २३
तथा तु दृष्ट्वा तानश्वान्वहतो वातरंहसः ।
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्विस्मयं परमं ययौ ॥२४
रथघोषं तु तं श्रुत्वा हयसंग्रहणं च तत् ।
वार्ष्णेयश्चिन्तयामास बाहुकस्य हयज्ञताम् ॥ २५
किं नु स्यान्मातलिरयं देवराजस्य सारथिः ।
तथा तल्लक्षणं वीरे बाहुके दृश्यते महत् ॥ २६
शालिहोत्रोथ किं नु स्याद्धयानां कुलतत्त्ववित् ।
मानुषं समनुप्राप्तो वपुः परमशोभनम् ॥ २७
उताहोस्विद्भवेद्राजा नलः परपुरंजयः ।
सोयं नृपतिरायात इत्येवं समचिन्तयत् ॥ २८
अथ चेह नलो विद्यां वेत्ति तामेव बाहुकः ।
तुल्यं हि लक्षये ज्ञानं बाहुकस्य नलस्य च ॥ २९
अपि चेदं वयस्तुल्यं बाहुकस्य नलस्य च ।
नायं नलो महावीर्यस्तद्विद्यश्च भविष्यति ॥ ३०
प्रच्छन्ना हि महात्मानश्चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।
दैवेन विधिना युक्ताः शास्त्रोक्तैश्च निरूपणैः॥३१
भवेत्तु मतिभेदो मे गात्रवैरूप्यता प्रति ।
प्रमाणात्परिहीनस्तु भवेदिति मतिर्मम ॥ ३२
वयःप्रमाणं तत्तुल्यं रूपेण तु विपर्ययः ।
नलं सर्वगुणैर्युक्तं मन्ये बाहुकमन्ततः ॥ ३३
एवं विचार्य बहुशो वार्ष्णेयः पर्यचिन्तयत् ।
हृदयेन महाराज पुण्यश्लोकस्य सारथिः ॥ ३४
ऋतुपर्णश्च राजेन्द्रो बाहुकस्य हयज्ञताम् ।
चिन्तयन्मुमुदे राजा सहवार्ष्णेयसारथिः ॥ ३५
ऐकाग्र्यं च तथोत्साहं हयसंग्रहणं च तत् ।
परं यत्नं च संप्रेक्ष्य परां मुदमवाप ह ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानप० ऋतुपर्णविदर्भगमने एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

---

ते त्वया न विप्रलब्धव्याः न वञ्चनीयाः । बलं भारसहिष्णुता । प्राणो वेगवत्ता । वक्ष्यन्ति वहनं करिष्यन्ति । अध्वानं निःशब्दं महत् अनिदूरे दमयन्त्याः पुनर्भूत्वात्तद्वरणे महती लज्जा' तथा च अन्नते महत्तरा लज्जेति प्रच्छन्नतयैव तत्र गतमपि वेगवशादगतमिव यथा भवति तथा गन्तव्यमिति भावः ॥१५॥ 'एको ललाटे द्वौ मूर्ध्नि द्वौ द्वौ पार्श्वोपपार्श्वयोः । द्वौ द्वौ वक्षसि विज्ञेयौ प्रयाणे चैक एव तु ' इति श्लोकः क्वचिन्न दृश्यते। तदर्थस्तु वक्षसि द्वौ पुरस्ताद्द्वौ पश्चादिति प्रयाणे पृष्ठभागे एवं द्वादश आवर्तपदं अनुषज्य योज्यम् ॥ १६ ॥ एते इति । एतेषु स्थलेषु आवर्तवन्त इति शेषः ॥ १७ ॥ सूतमिति । आरोप्य सूतस्थानादुपर्युपवेश्य स्वयमेव सूतत्वं चकारेत्यर्थः ।। २२ ।। शालिहोत्रः अश्वशास्त्रप्रणेता आचार्यः ॥ २७ ॥ अन्ततःनिर्णयेन ॥ ३३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

# ७२

बृहदश्व उवाच ।
स नदीः पर्वतांश्चैव वनानि च सरांसि च ।
अचिरेणातिचक्राम खेचरः खे चरन्निव ॥ १
तथा प्रयाते तु रथे तदा भाङ्गासुरिर्नृपः ।
उत्तरीयमथोपश्यद्भ्रष्टं परपुरंजयः ॥ २
ततः स त्वरमाणस्तु पटे निपतिते तदा ।
ग्रहीष्यामीति तं राजा नलमाह महामनाः ॥ ३
निगृह्णीष्व महाबुद्धे हयानेतान्महाजवान् ।
वार्ष्णेयो यावदेनं मे पटमानयतामिह ॥ ४
नलस्तं प्रत्युवाचाथ दूरे भ्रष्टः पटस्तव ।
योजनं समतिक्रान्तो नाहर्तुं शक्यते पुनः ॥ ५
एवमुक्ते नलेनाथ तदा भाङ्गासुरिर्नृपः ।
आससाद वने राजन्फलवन्तं बिभीतकम् ॥ ६
तं दृष्ट्वा बाहुकं राजा त्वरमाणोऽभ्यभाषत ।
ममापि सूत पश्य त्वं संख्याने परमं बलम् ॥ ७
सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कश्चन ।
नैकत्र परिनिष्ठास्ति ज्ञानस्य पुरुषे क्वचित् ॥ ८
वृक्षेऽस्मिन्यानि पर्णानि फलान्यपि च बाहुक ।
पतितान्यपि यान्यत्र तत्रैकमधिकं शतम् ॥ ९
एकपत्राधिकं चात्र फलमेकं च बाहुक ।
पञ्चकोट्योऽथ पत्राणां द्वयोरपि च शाखयोः ॥१०
प्रचिनुह्यस्य शाखे द्वे याश्चाप्यन्याः प्रशाखिकाः ।
आभ्यां फलसहस्रे द्वे पञ्चोनं शतमेव च ॥ ११
ततो रथमवस्थाप्य राजानं बाहुकोऽब्रवीत् ।
परोक्षमिव मे राजन्कत्थसे शत्रुकर्शन ॥ १२
प्रत्यक्षमेतत्कर्तास्मि शातयित्वा बिभीतकम् ।
अथात्र गणिते राजन्विद्यते न परोक्षता ॥ १३
प्रत्यक्षं ते महाराज शातयिष्ये बिभीतकम् ।
अहं हि नाभिजानामि भवेदेवं न वेति वा ॥ १४
संख्यास्यामि फलान्यस्य पश्यतस्ते जनाधिप ।
मुहूर्तमपि वार्ष्णेयो रश्मीन्यच्छतु वाजिनाम् ॥१५
तमब्रवीन्नृपः सूतं नायं कालो विलम्बितुम् ।
बाहुकस्त्वब्रवीदेनं परं यत्नं समास्थितः ॥ १६
प्रतीक्षस्व मुहूर्तं त्वमथवा त्वरते भवान् ।
एष याति शिवः पन्था याहि वार्ष्णेयसारथिः ॥
अब्रवीदृतुपर्णस्तु सान्त्वयन्कुरुनन्दन ।
त्वमेव यन्ता नान्योऽस्ति पृथिव्यामपि बाहुक १८
त्वत्कृते यातुमिच्छामि विदर्भान्हयकोविद ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि न विघ्नं कर्तुमर्हसि ॥ १९
कामं च ते करिष्यामि यन्मां वक्ष्यसि बाहुक ।
विदर्भान्यदि यात्वाद्य सूर्यं दर्शयितासि मे ॥ २०
अथाब्रवीद्बाहुकस्तं संख्याय च बिभीतकम् ।
ततो विदर्भान्यास्यामि कुरुष्वैवं वचो मम ॥ २१
अकाम इव तं राजा गणयस्वेत्युवाच ह ।
एकदेशं च शाखायाः समादिष्टं मयानघ ॥ २२
गणयस्वाश्वतत्त्वज्ञ ततस्त्वं प्रीतिमावह ।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं शातयामास तं द्रुमम् ॥ २३
ततः स विस्मयाविष्टो राजानमिदमब्रवीत् ।
गणयित्वा यथोक्तानि तावन्त्येव फलानि तु २४
अत्यद्भुतमिदं राजन्दृष्टवानस्मि ते बलम् ।
श्रोतुमिच्छामि तां विद्यां ययैतज्ज्ञायते नृप ॥ २५
तमुवाच ततो राजा त्वरितो गमने नृप ।
विद्ध्यक्षहृदयज्ञं मां संख्याने च विशारदम् २६
बाहुकस्तमुवाचाथ देहि विद्यामिमां मम ।
मत्तोऽपि चाश्वहृदयं गृहाण पुरुषर्षभ ॥ २७
ऋतुपर्णस्ततो राजा बाहुकं कार्यगौरवात् ।
हयज्ञानस्य लोभाच्च तं तथेत्यब्रवीद्वचः २८
यथोक्तं त्वं गृहाणेदमक्षाणां हृदयं परम् ।
निक्षेपो मेऽश्वहृदयं त्वयि तिष्ठतु बाहुक ।
एवमुक्त्वा ददौ विद्यामृतुपर्णो नलाय वै ॥ २९
तस्याक्षहृदयज्ञस्य शरीरान्निःसृतः कलिः ।
कर्कोटकविषं तीक्ष्णं मुखात्सततमुद्वमन् ॥ ३०

---

७२

स इति ॥ १ ॥ अक्षहृदयज्ञं अक्षाणां अक्षाभिमानिदेवताया हृदयवद्वशीकरणार्थो मन्त्रः अक्षहृदयं येन ज्ञातेन द्यूतेऽक्षा अनुकूला भवन्ति । संख्याने राशीकृतानां पत्रपुष्पफलधान्यादीनां राश्यायामविस्तारोच्छ्रायाद्यालोचनेन पाटीगणितरीत्या झटिति तत्संख्याकथने ॥ २६ ॥ अनयोर्मध्येऽक्षाणां हृदयं परं श्रेष्ठं इतरत्तु त्वयापि ज्ञायत इति भावः । ऋतुः कालः तद्वच्छीघ्रगामि पर्णं प्रियते व्याप्रियते व्यायच्छते देशान्तरमनेनेति पर्णं वाहनं यस्येति ऋतुपर्णनामनिरुक्तिः । अन्ये तु ऋतानि सत्यानि गणितानि पर्णानि यस्येति पाठान्तरं विप्रकल्प्य व्याकुर्वते ॥ २९ ॥ तस्याक्षहृदयज्ञस्येति सर्वेषां मन्त्राणां तत्त्वं मनोमयकोशाख्यः सूत्रात्माऽत एव तं प्रकृत्य श्रूयते । 'तस्य यजुरेव शिरः ऋग्दक्षिणः पक्षः सामोत्तरः पक्षः ' इत्यादि तमजानन्तं हि अत्यन्तं धर्मिष्ठमपि कलिर्बाधते । न तु मन्त्रज्ञमिति भावः ॥ ३० ॥

कलेस्तस्य तदार्तस्य शापाग्निः स विनिःसृतः ।
स तेन कर्शितो राजा दीर्घकालमनात्मवान् ३१
ततो विषविमुक्तात्मा स्वं रूपमकरोत्कलिः ।
तं शप्तुमैच्छत्कुपितो निषधाधिपतिर्नलः ॥ ३२
तमुवाच कलिर्भीतो वेपमानः कृताञ्जलिः ।
कोपं संयच्छ नृपते कीर्तिं दास्यामि ते पराम्३३
इन्द्रसेनस्य जननी कुपिता माऽशपत्पुरा ।
यदा त्वया परित्यक्ता ततोहं भृशपीडितः ॥ ३४
अवसं त्वयि राजेन्द्र सुदुःखमपराजित ।
विषेण नागराजस्य दह्यमानो दिवानिशम् ॥ ३५
शरणं त्वां प्रपन्नोस्मि शृणु चेदं वचो मम ।
ये च त्वां मनुजा लोके कीर्तयिष्यन्त्यतन्द्रिताः ।
मत्प्रसूतं भयं तेषां न कदाचिद्भविष्यति ॥ ३६
भयार्तं शरणं यातं यदि मां त्वं न शप्स्यसे ।
एवमुक्तो नलो राजा न्ययच्छत्कोपमात्मनः ॥३७
ततो भीतः कलिः क्षिप्रं प्रविवेश बिभीतकम् ।
कलिस्त्वन्यैस्तदाऽदृश्यः कथयन्नैषधेन वै ॥ ३८
ततो गतज्वरो राजा नैषधः परवीरहा ।
संप्रनष्टे कलौ राजा संख्यायास्य फलान्युत ॥३९
मुदा परमया युक्तस्तेजसाथ परेण वै ।
रथमारुह्य तेजस्वी प्रययौ जवनैर्हयैः ॥ ४०
बिभीतकश्चाप्रशस्तः संवृत्तः कलिसंश्रयात् ।
हयोत्तमानुत्पततो द्विजानिव पुनःपुनः ॥ ४१
नलः संनोदयामास प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
विदर्भाभिमुखो राजा प्रययौ स महायशाः॥ ४२
नले तु समतिक्रान्ते कलिरप्यगमद्गृहम् ।
ततो गतज्वरो राजा नलोभूत्पृथिवीपतिः ।
विमुक्तः कलिना राजन्रूपमात्रवियोजितः ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि कलिनिर्गमे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

बृहदश्व उवाच ।
ततो विदर्भान्संप्राप्तं सायाह्ने सत्यविक्रमम् ।
ऋतुपर्णं जना राज्ञे भीमाय प्रत्यवेदयन् ॥ १
स भीमवचनाद्राजा कुण्डिनं प्राविशत्पुरम् ।
नादयन्रथघोषेण सर्वाः स विदिशो दिशः ॥ २
ततस्तं रथनिर्घोषं नलाश्वास्तत्र शुश्रुवुः ।
श्रुत्वा तु समहृष्यन्त पुरेव नलसंनिधौ ॥ ३
दमयन्ती तु शुश्राव रथघोषं नलस्य तम् ।
यथा मेघस्य नदतो गम्भीरं जलदागमे ॥ ४
परं विस्मयमापन्ना श्रुत्वा नादं महास्वनम् ।
नलेन संगृहीतेषु पुरेव नलवाजिषु ।
सदृशं रथनिर्घोषं मेने भैमी तथा हयाः ॥ ५
प्रासादस्थाश्च शिखिनः शालास्थाश्चैव वारणाः ।
हयाश्च शुश्रुवुस्तस्य रथघोषं महीपतेः ॥ ६
तच्छ्रुत्वा रथनिर्घोषं वारणाः शिखिनस्तथा ।
प्रणेदुरुन्मुखा राजन्मेघनाद इवोत्सुकाः ॥ ७

दमयन्त्युवाच ।
यथासौ रथनिर्घोषः पूरयन्निव मेदिनीम् ।
ममाह्लादयते चेतो नल एष महीपतिः ॥ ८
अद्य चन्द्राभवक्त्रं तं न पश्यामि नलं यदि ।
असंख्येयगुणं वीरं विनङ्क्ष्यामि न संशयः ॥ ९
यदि वै तस्य वीरस्य बाह्वोर्नाद्याहमन्तरम् ।
प्रविशामि सुखस्पर्शं न भविष्याम्यसंशयम् ॥१०
यदि मा मेघनिर्घोषो नोपगच्छति नैषधः ।
अद्य चामीकरप्रख्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ११
यदि मां सिंहविक्रान्तो मत्तवारणविक्रमः ।
नाभिगच्छति राजेन्द्रो विनङ्क्ष्यामि न संशयः
न स्मराम्यनृतं किंचिन्न स्मराम्यपकारताम् ।
न च पर्युषितं वाक्यं स्वैरेष्वपि कदाचन ॥ १२

---

शापाग्निर्दमयन्त्याभिसृष्टः स विषरूपः । अनात्मवान् हृदयशून्यो मूढ इत्यर्थः ॥३१॥ अदृश्य इति छेदः । कथयन् कथां कुर्वन् ॥ ३८ ॥ फलानि संख्याय अक्षविद्यासामर्थ्यात् राशेरायामादिकमनालोच्यैवेति भावः ॥ ३९ ॥ द्विजानिव पक्षिण इव ॥ ४१ ॥ इत्या० प० नै० भा० द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

७३

तत इति ॥ १ ॥ नलाश्वाः विदर्भनगरे ये दमयन्त्या पत्याभ्यां सह प्रेषिताः ॥३॥ शिखिनो मयूराः मेघध्वनितभ्रमात् चुक्रुशुः ॥७॥ पर्युषितं प्रतिज्ञातकालातिलङ्घि ॥१२॥

प्रभुः क्षमावान्वीरश्च दाता चाप्यधिको नृपैः ।
रहोऽनीचानुवर्ती च क्लीबवन्मम नैषधः ॥ १४
गुणांस्तस्य स्मरन्त्या मे तत्पराया दिवानिशम् ।
हृदयं दीर्यत इदं शोकात्प्रियविनाकृतम् ॥ १५
एवं विलपमाना सा नष्टसंज्ञेव भारत ।
आरुरोह महद्वेश्म पुण्यश्लोकदिदृक्षया ॥ १६
ततो मध्यमकक्षायां ददर्श रथमास्थितम् ।
ऋतुपर्णं महीपालं सहवार्ष्णेयबाहुकम् ॥ १७
ततोवतीर्य वार्ष्णेयो बाहुकश्च रथोत्तमात् ।
हयास्तानवमुच्याथ स्थापयामास वै रथम् ॥ १८
सोवतीर्य रथोपस्थादृतुपर्णो नराधिपः ।
उपतस्थे महाराजं भीमं भीमपराक्रमम् ॥ १९
तं भीमः प्रतिजग्राह पूजया परया ततः ।
स तेन पूजितो राज्ञा ऋतुपर्णो नराधिपः ॥ २०
स तत्र कुण्डिने रम्ये वसमानो महीपतिः ।
न च किंचित्तदाऽपश्यत्प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ।
स तु राज्ञा समागम्य विदर्भपतिना तदा ॥ २१
अकस्मात्सहसा प्राप्तं स्त्रीमन्त्रं न स्म विन्दति ।
किं कार्यं स्वागतं तेस्तु राज्ञा पृष्टः स भारत॥२२
नाभिजज्ञे स नृपतिर्दुहित्रर्थे समागतम् ।
ऋतुपर्णोपि राजा स धीमान्सत्यपराक्रमः ॥ २३
राजानं राजपुत्रं वा न स्म पश्यति कंचन ।
नैव स्वयंवरकथां न च विप्रसमागमम् ॥ २४
ततो विगणयद्राजा मनसा कोसलाधिपः ।
आगतोस्मीत्युवाचैनं भवन्तमभिवादकः ॥ २५
राजापि च स्मयन्भीमो मनसा समचिन्तयत् ।
अधिकं योजनशतं तस्यागमनकारणम् ॥ २६
ग्रामान्बहूनतिक्रम्य नाध्यगच्छद्यथातथम् ।
अल्पकार्यं विनिर्दिष्टं तस्यागमनकारणम् ॥ २७
पश्चादुदर्के ज्ञास्यामि कारणं यद्भविष्यति ।
नैतदेवं स नृपतिस्तं सत्कृत्य व्यसर्जयत् ॥ २८
विश्राम्यतामित्युवाच क्लान्तोसीति पुनःपुनः ।
स सत्कृतः प्रहृष्टात्मा प्रीतः प्रीतेन पार्थिवः॥ २९
राजप्रेष्यैरनुगतो दिष्टं वेश्म समाविशत् ।
ऋतुपर्णे गते राजन्वार्ष्णेयसहिते नृपे ॥ ३०
बाहुको रथमादाय रथशालामुपागमत् ।
स मोचयित्वा तानश्वाननुपचर्य च शास्त्रतः ॥ ३१
स्वयं चैतान्समाश्वास्य रथोपस्थ उपाविशत् ।
दमयन्त्यपि शोकार्ता दृष्ट्वा भाङ्गासुरिं नृपम्॥३२
सूतपुत्रं च वार्ष्णेयं बाहुकं च तथाविधम् ।
चिन्तयामास वैदर्भी कस्यैष रथनिःस्वनः ॥ ३३
नलस्येव महानासीन्न च पश्यामि नैषधम् ।
वार्ष्णेयेन भवेन्नूनं विद्या सैवोपशिक्षिता ॥ ३४
तेनाद्य रथनिर्घोषो नलस्येव महानभूत् ।
आहोस्विदृतुपर्णोपि यथा राजा नलस्तथा ।
यथायं रथनिर्घोषो नैषधस्येव लक्ष्यते ॥ ३५
एवं सा तर्कयित्वा तु दमयन्ती विशांपते ।
दूतीं प्रस्थापयामास नैषधान्वेषणे शुभा ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि भीमपुरप्रवेशो त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

## ७४

दमयन्त्युवाच ।
गच्छ केशिनि जानीहि क एष रथवाहकः ।
उपविष्टो रथोपस्थे विकृतो ह्रस्वबाहुकः ॥ १
अभ्येत्य कुशलं भद्रे मृदुपूर्वं समाहिता ।
पृच्छेथाः पुरुषं ह्येनं यथातत्त्वमनिन्दिते ॥ २
अत्र मे महती शङ्का भवेदेष नलो नृपः ।
यथा च मनसस्तुष्टिर्हृदयस्य च निर्वृतिः ॥ ३
ब्रूयाश्चैनं कथान्ते त्वं पर्णादवचनं यथा ।
प्रतिवाक्यं च सुश्रोणि बुध्येथास्त्वमनिन्दिते ॥ ४

जितेन्द्रियत्वमेवाह रह इति । रहसि कर्तव्ये सुरतविषये नीचकर्म पारदार्यादि तदनुवर्तत इति तदन्यःअनीचानुवर्ती परस्त्रीषु क्लीब इत्यर्थः ॥ १४ ॥ नैतदेवं एतन् एतस्मिन् काले एवं विचार्य न व्यसर्जयत् किं तु विश्राम्यतामित्येवोवाचेत्युत्तरेणान्वयः ॥२८॥ दिष्टं निर्दिष्टम्॥३०॥ आहोस्विदित्याश्चर्यार्थे अत एव समानार्थकं वाक्यमावर्तितम् ॥ ३५ ॥ इत्या० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

गच्छेति ॥ १ ॥ पर्णादवचनं क नु त्वं कितवाच्छित्वा वस्त्रार्धं प्रस्थितो ममेत्यादि श्रुत्वा । विरूपो ह्रस्वबाहुकः कश्चित्प्रत्युत्तरं दत्तवान् तल्लक्षण एवायमिति भावः ॥ ४ ॥

ततः समाहिता गत्वा दूती बाहुकमब्रवीत् ।
दमयन्त्यपि कल्याणी प्रासादस्था ह्युपैक्षत ॥ ५
केशिन्युवाच ।
स्वागतं ते मनुष्येन्द्र कुशलं ते ब्रवीम्यहम् ।
दमयन्त्या वचः साधु निबोध पुरुषर्षभ ॥ ६
कदा वै प्रस्थिता यूयं किमर्थमिह चागताः ।
तत्त्वं ब्रूहि यथान्यायं वैदर्भी श्रोतुमिच्छति ॥ ७
बाहुक उवाच ।
श्रुतः स्वयंवरो राज्ञा कोसलेन महात्मना ।
द्वितीयो दमयन्त्या वै भविता श्व इति द्विजात्॥८
श्रुत्वैतत्प्रस्थितो राजा शतयोजनयायिभिः
हयैर्वातजवैर्मुख्यैरहमस्य च सारथिः ॥ ९
केशिन्युवाच ।
अथ योसौ तृतीयो वः स कुतः कस्य वा पुनः ।
त्वं च कस्य कथं चेदं त्वयि कर्म समाहितम् १०
बाहुक उवाच ।
पुण्यश्लोकस्य वै सूतो वार्ष्णेय इति विश्रुतः ।
स नले विद्रुते भद्रे भाङ्गासुरिमुपस्थितः ॥ ११
अहमप्यश्वकुशलः सूतत्वे च प्रतिष्ठितः ।
ऋतुपर्णेन सारथ्ये भोजने च वृतः स्वयम् ॥ १२
केशिन्युवाच ।
अथ जानाति वार्ष्णेयः क्व नु राजा नलो गतः।
कथं च त्वयि वा तेन कथितं स्यात्तु बाहुक॥ १३
बाहुक उवाच ।
इहैव पुत्रौ निक्षिप्य नलस्य शुभकर्मणः ।
गतस्ततो यथाकामं नैष जानाति नैषधम् ॥ १४
न चान्यः पुरुषः कश्चिन्नलं वेत्ति यशस्विनि ।
गूढश्चरति लोकेस्मिन्नष्टरूपो महीपतिः ॥ १५
आत्मैव तु नलं वेद या चास्य तदनन्तरा ।
न हि वै स्वानि लिङ्गानि नलः शंसति कर्हिचित्
केशिन्युवाच ।
योसावयोध्यां प्रथमं गतोसौ ब्राह्मणस्तदा ।
इमानि नारीवाक्यानि कथयानः पुनःपुनः ॥ १७
क्व नु त्वं कितव छित्त्वा वस्त्रार्धं प्रस्थितो मम ।
उत्सृज्य विपिने सुप्तामनुरक्तां प्रियां प्रिय ॥ १८
सा वै यथा समादिष्टा तथास्ते त्वत्प्रतीक्षिणी ।
दह्यमाना दिवारात्रौ वस्त्रार्धेनाभिसंवृता ॥ १९
तस्या रुदन्त्याः सततं तेन दुःखेन पार्थिव ।
प्रसादं कुरु मे वीर प्रतिवाक्यं वदस्व च ॥ २०
तस्यास्तत्प्रियमाख्यानं प्रवदस्व महामते ।
तदेव वाक्यं वैदर्भी श्रोतुमिच्छत्यनिन्दिता ॥ २१
एतच्छ्रुत्वा प्रतिवचस्तस्य दत्तं त्वया किल ।
यत्पुरा तत्पुनस्त्वत्तो वैदर्भी श्रोतुमिच्छति ॥ २२
बृहदश्व उवाच ।
एवमुक्तस्य केशिन्या नलस्य कुरुनन्दन ।
हृदयं व्यथितं चासीदश्रुपूर्णे च लोचने ॥ २३
स निगृह्यात्मनो दुःखं दह्यमानो महीपतिः ।
बाष्पसंदिग्धया वाचा पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ २४
बाहुक उवाच ।
वैषम्यमपि संप्राप्ता गोपायन्ति कुलस्त्रियः ।
आत्मानमात्मना सत्यो जितः स्वर्गो न संशयः॥
रहिता भर्तृभिश्चापि न कुध्यन्ति कदाचन ।
प्राणांश्चारित्रकवचान्धारयन्ति वरस्त्रियः ॥ २६
विषमस्थेन मूढेन परिभ्रष्टसुखेन च ।
यत्सा तेन परित्यक्ता तत्र न क्रोद्धुमर्हति ॥ २७
प्राणयात्रां परिप्रेप्सोः शकुनैर्हृतवाससः ।
आधिभिर्दह्यमानस्य श्यामा न क्रोद्धुमर्हति ॥ २८
सत्कृताऽसत्कृता वापि पतिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
राज्यभ्रष्टं श्रिया हीनं क्षुधितं व्यसनाप्लुतम् ॥ २९
एवं ब्रुवाणस्तद्वाक्यं नलः परमदुर्मनाः ।
न बाष्पमशकत्सोढुं प्ररुरोद च भारत ॥ ३०
ततः सा केशिनी गत्वा दमयन्त्यै न्यवेदयत् ।
तत्सर्वं कथितं चैव विकारं तस्य चैव तम् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि नलकेशिनीसंवादे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

विकारं हृदयव्यथाऽश्रुनेत्रत्वादिकम् ॥ ३१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## ७५

बृहदश्व उवाच ।

दमयन्ती तु तच्छ्रुत्वा भृशं शोकपरायणा ।
शङ्कमाना नलं तं वै केशिनीमिदमब्रवीत् ॥ १
गच्छ केशिनि भूयस्त्वं परीक्षां कुरु बाहुके ।
अब्रुवाणा समीपस्था चरितान्यस्य लक्षय ॥ २
यदा च किंचित्कुर्यात्स कारणं तत्र भामिनि ।
तत्र संचेष्टमानस्य लक्षयन्ती विचेष्टितम् ॥ ३
न चास्य प्रतिबन्धेन देयोऽग्निरपि केशिनि ।
याचते न जलं देयं सर्वथा त्वरमाणया ॥ ४
एतत्सर्वं समीक्ष्य त्वं चरितं मे निवेदय ।
निमित्तं यत्त्वया दृष्टं बाहुके दैवमानुषम् ॥ ५
यच्चान्यदपि पश्येथास्तच्चाख्येयं त्वया मम ।
दमयन्त्यैवमुक्ता सा जगामाथ च केशिनी ॥ ६
निशाम्याथ हयज्ञस्य लिङ्गानि पुनरागमत् ।
सा तत्सर्वं यथावृत्तं दमयन्त्यै न्यवेदयत् ।
निमित्तं यत्तया दृष्टं बाहुके दैवमानुषम् ॥ ७

केशिन्युवाच ।

दृढं शुच्युपचारोऽसौ न मया मानुषः क्वचित् ।
दृष्टपूर्वः श्रुतो वापि दमयन्ति तथाविधः ॥ ८
ह्रस्वमासाद्य संचारं नासौ विनमते क्वचित् ।
तं तु दृष्ट्वा यथा संगमुत्सर्पति यथासुखम् ॥ ९
संकटेऽप्यस्य सुमहान्विवरो जायतेऽधिकः ।
ऋतुपर्णस्य चार्थाय भोजनीयमनेकशः ॥ १०
प्रेषितं तत्र राज्ञा तु मांसं बहु च पाशवम् ।
तस्य प्रक्षालनार्थाय कुम्भास्तत्रोपकल्पिताः ॥ ११
ते तेनावेक्षिताः कुम्भाः पूर्णा एवाभवंस्ततः ।
ततः प्रक्षालनं कृत्वा समधिश्रित्य बाहुकः ॥ १२
तृणमुष्टिं समादाय सवितुस्तं समादधत् ।
अथ प्रज्वलितस्तत्र सहसा हव्यवाहनः ॥ १३
तदद्भुततमं दृष्ट्वा विस्मिताहमिहागता ।
अन्यच्च तस्मिन्सुमहदाश्चर्यं लक्षितं मया ॥ १४
यदग्निमपि संस्पृश्य नैवासौ दह्यते शुभे ।
छन्देन चोदकं तस्य वहत्यावर्जितं द्रुतम् ॥ १५
अतीव चान्यत्सुमहदाश्चर्यं दृष्टवत्यहम् ।
यत्स पुष्पाण्युपादाय हस्ताभ्यां ममृदे शनैः ॥ १६
मृद्यमानानि पाणिभ्यां तेन पुष्पाणि नान्यथा ।
भूय एव सुगन्धीनि हृषितानि भवन्ति हि ।
एतान्यद्भुतलिङ्गानि दृष्ट्वाहं द्रुतमागता ॥ १७

बृहदश्व उवाच ।

दमयन्ती तु तच्छ्रुत्वा पुण्यश्लोकस्य चेष्टितम् ।
अमन्यत नलं प्राप्तं कर्मचेष्टाभिसूचितम् ॥ १८
सा शङ्कमाना भर्तारं बाहुकं पुनरिङ्गितैः ।
केशिनीं श्लक्ष्णया वाचा रुदती पुनरब्रवीत् ॥ १९
पुनर्गच्छ प्रमत्तस्य बाहुकस्योपसंस्कृतम् ।
महानसाच्छ्रितं मांसमानयस्वेह भाविनि ॥ २०
सा गत्वा बाहुकस्याग्रे तन्मांसमपकृष्य च ।
अत्युष्णमेव त्वरिता तत्क्षणात्प्रियकारिणी ॥ २१
दमयन्त्यै ततः प्रादात्केशिनी कुरुनन्दन ।
सा चिताऽनलसिद्धस्य मांसस्य बहुशः पुरा ॥ २२
प्राश्य मत्वा नलं सूतं प्राक्रोशद्भृशदुःखिता ।
वैक्लव्यं परमं गत्वा प्रक्षाल्य च मुखं ततः ॥ २३
मिथुनं प्रेषयामास केशिन्या सह भारत ।
इन्द्रसेनां सह भ्रात्रा समभिज्ञाय बाहुकः ॥ २४
अभिद्रुत्य ततो राजा परिष्वज्याङ्कमानयत् ।
बाहुकस्तु समासाद्य सुतौ सुरसुतोपमौ ॥ २५
भृशं दुःखपरीतात्मा सुस्वरं प्ररुरोद ह ।
नैषधो दर्शयित्वा तु विकारमसकृत्तदा ।
उत्सृज्य सहसा पुत्रौ केशिनीमिदमब्रवीत् ॥ २६
इदं च सदृशं भद्रे मिथुनं मम पुत्रयोः ।
अतो दृष्ट्वैव सहसा बाष्पमुत्सृष्टवानहम् ॥ २७

### ७५

दमयन्तीति ॥ १ ॥ पाठान्तरे संलक्ष्यं लक्षणीयं ते त्वया ॥ ३ ॥ शुच्युपचारःजलस्थलशुद्ध्यादिपरः ॥ ८ ॥ संचारं द्वारं ह्रस्वमपि उत्सर्पति दीर्घं भवति ॥ ९ ॥ संकटे संकुचिते एतेन भूमिजयो दर्शितः ॥ १० ॥ पाशवं पशुसंबन्धि ॥ ११ ॥ कुम्भाः पूर्णा एवेति जलधातुजय उक्तः ॥ १२ ॥ वह्निजयमाह तृणेति त्रिभिः । सवितुःसकाशात् समादधत् उद्दीपितवान् ॥ १३ ॥ वायुजयमाह अतीवेति द्वाभ्यां । पुष्पेषु क्षीणांशो आटीति वायुना अपूर्यत इत्यर्थः ॥ १६ ॥ कर्म पाकादि चेष्टा मृतजयादि ॥ १८ ॥ बाहुकं बाहुकरूपिणामिति रूपभेदात्संशयोऽस्ति न तु क्रियात- इत्यर्थः ॥ १९ ॥ मांसस्य मांसं बहुशः बहुवारम् ॥ २२ ॥

बहुशः संपतन्तीं त्वां जनःसंकेतदोषतः । | वयं च देशातिथयो गच्छ भद्रे यथासुखम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि कन्यापुत्रदर्शने पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

बृहदश्व उवाच ।

सर्वं विकारं दृष्ट्वा तु पुण्यश्लोकस्य धीमतः ।
आगत्य केशिनी सर्वं दमयन्त्यै न्यवेदयत् ॥ १
दमयन्ती ततो भूयः प्रेषयामास केशिनीम् ।
मातुः सकाशं दुःखार्ता नलदर्शनकाङ्क्षया ॥ २
परीक्षितो मे बहुशो बाहुको नलशङ्कया ।
रूपे मे संशयस्त्वेकः स्वयमिच्छामि वेदितुम् ॥ ३
स वा प्रवेश्यतां मातर्मां वानुज्ञातुमर्हसि ।
विदितं वाथवा ज्ञातं पितुर्मे संविधीयताम् ॥ ४
एवमुक्ता तु वैदर्भ्या सा देवी भीममब्रवीत् ।
दुहितुस्तमभिप्रायमन्वजानात्स पार्थिवः ॥ ५
सा वै पित्राभ्यनुज्ञाता मात्रा च भरतर्षभ ।
नलं प्रवेशयामास यत्र तस्याः प्रतिश्रयः ॥ ६
तां स्म दृष्ट्वैव सहसा दमयन्तीं नलो नृपः ।
आविष्टः शोकदुःखाभ्यां बभूवाश्रुपरिप्लुतः ॥ ७
तं तु दृष्ट्वा तथायुक्तं दमयन्ती नलं तदा ।
तीव्रशोकसमाविष्टा बभूव वरवर्णिनी ॥ ८
ततः काषायवसना जटिला मलपङ्किनी ।
दमयन्ती महाराज बाहुकं वाक्यमब्रवीत् ॥ ९
पूर्वं दृष्टस्त्वया कश्चिद्धर्मज्ञो नाम बाहुक ।
सुप्तामुत्सृज्य विपिने गतो यः पुरुषः स्त्रियम् ॥ १०
अनागसं प्रियां भार्यां विजने श्रममोहिताम् ।
अपहाय तु को गच्छेत्पुण्यश्लोकमृते नलम् ॥ ११
किमु तस्य मया बाल्यादपराद्धं महीपतेः ।
यो मामुत्सृज्य विपिने गतवान्निद्रयार्दिताम् ॥ १२
साक्षाद्देवानपाहाय वृतो यः स पुरा मया ।
अनुव्रतां साभिकामां पुत्रिणीं त्यक्तवान्कथम् ॥ १३
अग्नौ पाणिं गृहीत्वा तु देवानामग्रतस्तथा ।
भविष्यामीति सत्यं तु प्रतिश्रुत्य क तद्व्रतम् ॥ १४
दमयन्त्या ब्रुवन्त्यास्तु सर्वमेतदरिंदम ।
शोकजं वारि नेत्राभ्यामसुखं प्रास्रवद्बहु ॥ १५
अतीव कृष्णताराभ्यां रक्तान्ताभ्यां जलं तु तत् ।
परिस्रवन्नलो दृष्ट्वा शोकार्तामिदमब्रवीत् ॥ १६
मम राज्यं प्रनष्टं यन्नाहं तत्कृतवान्स्वयम् ।
कलिना तत्कृतं भीरु यच्च त्वामहमत्यजम् ॥ १७
यत्त्वया धर्मकृच्छ्रे तु शापेनाभिहतः पुरा ।
वनस्थया दुःखितया शोचन्त्या मां दिवानिशम् ॥ १८
स मच्छरीरे त्वच्छापाद्दह्यमानोऽवसत्कलिः ।
त्वच्छापदग्धः सततं सोऽग्नावग्निरिवाहितः ॥ १९
मम च व्यवसायेन तपसा चैव निर्जितः ।
दुःखस्यान्तेन चानेन भवितव्यं हि नौ शुभे ॥ २०
विमुच्य मां गतः पापस्ततोहमिह चागतः ।
त्वदर्थं विपुलश्रोणि न हि मेऽन्यत्प्रयोजनम् ॥ २१
कथं नु नारी भर्तारमनुरक्तमनुव्रतम् ।
उत्सृज्य वरयेदन्यं यथा त्वं भीरु कर्हिचित् ॥ २२
दूताश्चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां नृपतिशासनात् ।
भैमी किल स्म भर्तारं द्वितीयं वरयिष्यति ॥ २३
स्वैरवृत्ता यथाकाममनुरूपमिवात्मनः ।
श्रुत्वैव चैवं त्वरितो भाङ्गासुरिरुपस्थितः ॥ २४
दमयन्ती तु तच्छ्रुत्वा नलस्य परिदेवितम् ।
प्राञ्जलिर्वेपमाना च भीता वचनमब्रवीत् ॥ २५

दमयन्त्युवाच ।

न मामर्हसि कल्याण दोषेण परिशङ्कितुम् ।
मया हि देवानुत्सृज्य वृतस्त्वं निषधाधिप ॥ २६
तवाभिगमनार्थं तु सर्वतो ब्राह्मणा गताः ।
वाक्यानि मम गाथाभिर्गायमाना दिशो दश ॥ २७
ततस्त्वां ब्राह्मणो विद्वान्पर्णादो नाम पार्थिव ।
अभ्यगच्छत्कोसलायामृतुपर्णनिवेशने ॥ २८
तेन वाक्ये कृते सम्यक्प्रतिवाक्ये तथाहृते ।
उपायोयं मया दृष्टो नैषधानयने तव ॥ २९
त्वामृते न हि लोकेऽन्य एकाह्ना पृथिवीपते ।
समर्थो योजनशतं गन्तुमश्वैर्नराधिप ॥ ३०

---

संपतन्तीं आयान्तीं दोषतः कालदोषेण ॥ २८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

सर्वमिति ॥ १ ॥ प्रतिश्रयः गृहम् ॥ ६ ॥

स्पृशेयं तेन सत्येन पादावेतौ महीपते ।
यथा नासत्कृतं किंचिन्मनसापि चराम्यहम् ॥३१
अयं चरति लोकेस्मिन्भूतसाक्षी सदागतिः ।
एष मे मुञ्चतु प्राणान्यदि पापं चराम्यहम् ॥ ३२
यथा चरति तिग्मांशुः परेण भुवनं सदा ।
स मुञ्चतु मम प्राणान्यदि पापं चराम्यहम् ॥ ३३
चन्द्रमाः सर्वभूतानामन्तश्चरति साक्षिवत् ।
स मुञ्चतु मम प्राणन्यदि पापं चराम्यहम् ॥ ३४
एते देवास्त्रयः कृत्स्नं त्रैलोक्यं धारयन्ति वै ।
विब्रुवन्तु यथा सत्यमेतद्देवास्त्यजन्तु माम् ॥ ३५
एवमुक्तस्तथा वायुरन्तरिक्षादभाषत ।
नैषा कृतवती पापं नल सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३६
राजञ्छीलनिधिः स्फीतो दमयन्त्या सुरक्षितः ।
साक्षिणो रक्षिणश्चास्या वयं त्रीन्परिवत्सरान् ॥
उपायो विहितश्चायं त्वदर्थमतुलोऽनया ।
न ह्येकाह्ना शतं गन्ता त्वामृतेन्यः पुमानिह ॥ ३८
उपपन्ना त्वया भैमी त्वं च भैम्या महीपते ।
नात्र शङ्का त्वया कार्या संगच्छ सह भार्यया ॥
तथा ब्रुवति वायौ तु पुष्पवृष्टिः पपात ह ।
देवदुंदुभयो नेदुर्ववौ च पवनः शिवः ॥ ४०
तदद्भुतमयं दृष्ट्वा नलो राजाथ भारत ।
दमयन्त्यां विशङ्कां तामुपाकर्षदरिंदमः ॥ ४१
ततस्तद्वस्त्रमजरं प्रावृणोद्वसुधाधिपः ।
संस्मृत्य नागराजं तं ततो लेभे स्वकं वपुः ॥४२

स्वरूपिणं तु भर्तारं दृष्ट्वा भीमसुता तदा ।
प्राक्रोशदुच्चैरालिङ्ग्य पुण्यश्लोकमनिन्दिता ॥ ४३
भैमीमपि नलो राजा भ्राजमानो यथा पुरा ।
सस्वजे स्वसुतौ चापि यथावत्प्रत्यनन्दत ॥ ४४
ततः स्वोरसि विन्यस्य वक्त्रं तस्य शुभानना ।
परीता तेन दुःखेन निशश्वासायतेक्षणा ॥ ४५
तथैव मलदिग्धाङ्गीं परिष्वज्य शुचिस्मिताम् ।
सुचिरं पुरुषव्याघ्रस्तस्थौ शोकपरिप्लुतः ॥ ४६
ततः सर्वं यथावृत्तं दमयन्त्या नलस्य च ।
भीमायाकथयत्प्रीत्या वैदर्भ्या जननी नृप ॥ ४७
ततोब्रवीन्महाराजः कृतशौचमहं नलम् ।
दमयन्त्या सहोपेतं कल्ये द्रष्टा सुखोषितम् ॥ ४८
ततस्तौ सहितौ रात्रिं कथयन्तौ पुरातनम् ।
वने विचरितं सर्वमूषतुर्मुदितौ नृप ॥ ४९
गृहे भीमस्य नृपतेः परस्परसुखैषिणौ ।
वसेतां हृष्टसंकल्पौ वैदर्भी च नलश्च ह ॥ ५०
स चतुर्थे ततो वर्षे संगम्य सह भार्यया ।
सर्वकामैः सुसिद्धार्थो लब्धवान्परमां मुदम् ॥५१
दमयन्त्यपि भर्तारमासाद्याप्यायिता भृशम् ।
अर्धसंजातसस्येव तोयं प्राप्य वसुंधरा ॥ ५२
सैवं समेत्य व्यपनीय तन्द्रीं
शान्तज्वरा हर्षविवृद्धसत्त्वा ।
रराज भैमी समवाप्तकामा
शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानप० नलदमयन्तीसमागमे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

बृहदश्व उवाच ।
अथ तां व्युषितो रात्रिं नलो राजा स्वलंकृतः ।
वैदर्भ्या सहितः काले ददर्श वसुधाधिपम् ॥ १
ततोभिवादयामास प्रयतः श्वशुरं नलः ।
ततोनु दमयन्ती च ववन्दे पितरं शुभा ॥ २
तं भीमः प्रतिजग्राह पुत्रवत्परया मुदा ।
यथार्हं पूजयित्वा च समाश्वासयत प्रभुः ॥ ३
नलेन सहितां तत्र दमयन्तीं पतिव्रताम् ।
तामर्हणां नलो राजा प्रतिगृह्य यथाविधि ॥ ४
परिचर्यां स्वकां तस्मै यथावत्प्रत्यवेदयत् ।
ततो बभूव नगरे सुमहान्हर्षजः स्वनः ॥ ५

सदागतिः वायुः ॥ ३२ ॥ चन्द्रमाः चित्ताभिमानिनी देवता' ॥ ३४ ॥ कल्ये प्रभाते ॥ ४८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

अथेति ॥ १ ॥

जनस्य संप्रहृष्टस्य नलं दृष्ट्वा तथागतम् ।
अशोभयच्च नगरं पताकाध्वजमालिनम् ॥ ६
सिक्ताः सुमृष्टपुष्पाढ्या राजमार्गाः स्वलंकृताः ।
द्वारि द्वारि च पौराणां पुष्पभङ्गोपकल्पिताः ॥ ७
अर्चितानि च सर्वाणि देवतायतनानि च ।
ऋतुपर्णोपि शुश्राव बाहुकच्छद्मिनं नलम् ॥ ८
दमयन्त्या समायुक्तं जहृषे च नराधिपः ।
तमानाय्य नलं राजा क्षमयामास पार्थिवम् ॥ ९
स च तं क्षमयामास हेतुभिर्बुद्धिसंमितः ।
स सत्कृतो महीपालो नैषधं विस्मिताननः ॥ १०
उवाच वाक्यं तत्त्वज्ञो नैषधं वदतां वरः ।
दिष्ट्या समेतो दारैः स्वैर्भवानित्यभ्यनन्दत ॥ ११
किंचित्तु नापराधं ते कृतवानस्मि नैषध ।
अज्ञातवासे वसतो मद्गृहे वसुधाधिप ॥ १२
यदि वाऽबुद्धिपूर्वाणि यदि बुध्यापि कानिचित् ।
मया कृतान्यकार्याणि तानि त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ १३

नल उवाच ।

न मेपराधं कृतवांस्त्वं स्वल्पमपि पार्थिव ।
कृतेपि च न मे कोपः क्षन्तव्यं हि मया तव ॥ १४
पूर्वं ह्यपि सखा मेसि संबन्धी च जनाधिप ।
अत ऊर्ध्वं तु भूयस्त्वं प्रीतिमाहर्तुमर्हसि ॥ १५
सर्वकामैः सुविहितैः सुखमस्म्युषितस्त्वयि ।
न तथा स्वगृहे राजन्यथा तव गृहे सदा ॥ १६
इदं चैव हयज्ञानं त्वदीयं मयि तिष्ठति ।
तदुपाकर्तुमिच्छामि मन्यसे यदि पार्थिव ।
एवमुक्त्वा ददौ विद्यामृतपर्णाय नैषधः ॥ १७
स च तां प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ।
गृहीत्वा चाश्वहृदयं राजन्भाङ्गासुरिर्नृपः ॥ १८
निषधाधिपतेश्चापि दत्वाक्षहृदयं नृपः ।
सूतमन्यमुपादाय ययौ स्वपुरमेव ह ॥ १९
ऋतुपर्णे गते राजन्नलो राजा विशांपते ।
नगरे कुण्डिने कालं नातिदीर्घमिवावसत् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० नलोपाख्यानपर्वणि ऋतुपर्णस्वदेशगमने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

## ७८

बृहदश्व उवाच ।

स मासमुष्य कौन्तेय भीममामन्त्र्य नैषधः ।
पुरादल्पपरीवारो जगाम निषधान्प्रति ॥ १
रथेनैकेन शुभ्रेण दन्तिभिः परिषोडशैः ।
पञ्चाशद्भिर्हयैश्चैव षट्शतैश्च पदातिभिः ॥ २
स कम्पयन्निव महीं त्वरमाणो महीपतिः ।
प्रविवेशाथ संरब्धस्तरसैव महामनाः ॥ ३
ततः पुष्करमासाद्य वीरसेनसुतो नलः ।
उवाच दीव्याव पुनर्बहुवित्तं मयार्जितम् ॥ ४
दमयन्ती च यच्चान्यन्मम किंचन विद्यते ।
एष वै मम संन्यासस्तव राज्यं तु पुष्कर ॥ ५
पुनः प्रवर्ततां द्यूतमिति मे निश्चिता मतिः ।
एकपाणेन भद्रं ते प्राणयोश्च पणावहे ॥ ६
जित्वा परस्वमाहृत्य राज्यं वा यदि वा वसु ।
प्रतिपाणः प्रदातव्यः परमो धर्म उच्यते ॥ ७
न चेद्वाञ्छसि त्वं द्यूतं युद्धद्यूतं प्रवर्तताम् ।
द्वैरथेनास्तु वै शान्तिस्तव वा मम वा नृप ॥ ८
वंशभोज्यमिदं राज्यमर्थितव्यं यथातथा ।
येन केनाप्युपायेन वृद्धानामिति शासनम् ॥ ९
द्वयोरेकतरे बुद्धिः क्रियतामद्य पुष्कर ।
कैतवेनाक्षवत्यां तु युद्धे वा नाम्यतां धनुः ॥ १०
नैषधेनैवमुक्तस्तु पुष्करः प्रहसन्निव ।
ध्रुवमात्मजयं मत्वा प्रत्याह पृथिवीपतिम् ॥ ११
दिष्ट्या त्वयार्जितं वित्तं प्रतिपाणाय नैषध ।
दिष्ट्या च दुष्कृतं कर्म दमयन्त्याः क्षयं गतम् ॥
दिष्ट्या च ध्रियसे राजन्सदारोद्य महाभुज ।
धनेनानेन वै भैमी जितेन समलंकृता ॥ १३

---

पुष्पभङ्गः पुष्पसंमर्दः ॥ ७ ॥ उपाकर्तुं दातुम् ॥ १७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८

उष्य वासं कृत्वा ॥ १ ॥ राज्यं एकपाणेनैवं मम तु दमयन्त्यादि च ॥ ५ ॥ प्राणयोश्च पणावहे युद्धमपि वर्ततामित्यर्थः ॥ ६ ॥

मामुपस्थास्यति व्यक्तं दिवि शक्रमिवाप्सराः ।
नित्यशो हि स्मरामि त्वां प्रतीक्षेपि च नैषध१४
देवनेन मम प्रीतिर्न भवत्यसुहृद्गणैः ।
जित्वा त्वद्य वरारोहां दमयन्तीमनिन्दिताम्॥१५
कृतकृत्यो भविष्यामि सा हि मे नित्यशो हृदि ।
श्रुत्वा तु तस्य ता वाचो बह्वबद्धप्रलापिनः॥ १६
इयेष स शिरश्छेत्तुं खड्गेन कुपितो नलः ।
स्मयंस्तु रोषताम्राक्षस्तमुवाच नलो नृपः ॥ १७
पणावः किं व्याहरसे जितो न व्याहरिष्यसि ।
ततः प्रावर्तत द्यूतं पुष्करस्य नलस्य च ॥ १८
एकपाणेन भद्रं ते नलेन स पराजितः ।
स रत्नकोशनिचयैःप्राणेन पणितोपि च ॥ १९
जित्वा च पुष्करं राजा प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
मम सर्वमिदं राज्यमव्यग्रं हतकण्टकम् ॥ २०
वैदर्भी न त्वया शक्या राजापसद वीक्षितुम् ।
तस्यास्त्वं सपरीवारो मूढ दासत्वमागतः ॥ २१
न त्वया तत्कृतं कर्म येनाहं विजितः पुरा ।
कलिना तत्कृतं कर्म त्वं च मूढ न बुध्यसे ॥ २२
नाहं परकृतं दोषं त्वय्याधास्ये कथंचन ।
यथासुखं वै जीव त्वं प्राणानवसृजामि ते ॥ २३
तथैव सर्वसंभारं स्वमंशं वितरामि ते ।
तथैव च मम प्रीतिस्त्वयि वीर न संशयः॥ २४
सौहार्दं चापि मे त्वत्तो न कदाचित्प्रहास्यति ।
पुष्कर त्वं हि मे भ्राता संजीव शरदः शतम्२५
एवं नलः सान्त्वयित्वा भ्रातरं सत्यविक्रमः ।
स्वपुरं प्रेषयामास परिष्वज्य पुनः पुनः ॥ २६
सान्त्वितो नैषधेनैवं पुष्करः प्रत्युवाच तम् ।
पुण्यश्लोकं तदा राजन्नभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ २७
कीर्तिरस्तु तवाक्षय्या जीव वर्षायुतं सुखी ।
यो मे वितरसि प्राणानधिष्ठानं च पार्थिव ॥ २८
स तथा सत्कृतो राज्ञा मासमुष्य तदा नृपः ।
प्रययौ पुष्करो हृष्टः स्वपुरं स्वजनावृतः ॥ २९
महत्या सेनया सार्धं विनीतैः परिचारकैः ।
भ्राजमान इवादित्यो वपुषा पुरुषर्षभ ॥ ३०
प्रस्थाप्य पुष्करं राजा वित्तवन्तमनामयम् ।
प्रविवेश पुरं श्रीमानत्यर्थमुपशोभिताम् ॥ ३१
प्रविश्य सान्त्वयामास पौरांश्च निषधाधिपः ।
पौरा जानपदाश्चापि संप्रहृष्टतनूरुहाः ॥ ३२
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे सामात्यप्रमुखा जनाः ।
अद्य स्म निर्वृता राजन्पुरे जनपदेपि च ।
उपासितुं पुनः प्राप्ता देवा इव शतक्रतुम् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि पुष्करपराभवपूर्वकं राज्यप्रत्यानयने अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

बृहदश्व उवाच ।
प्रशान्ते तु पुरे हृष्टे संप्रवृत्ते महोत्सवे ।
महत्या सेनया राजा दमयन्तीमुपानयत् ॥ १
दमयन्तीमपि पिता सत्कृत्य परवीरहा ।
प्रास्थापयदमेयात्मा भीमो भीमपराक्रमः ॥ २
आगतायां तु वैदर्भ्यां सपुत्रायां नलो नृपः ।
वर्तयामास मुदितो देवराडिव नन्दने ॥ ३
तथा प्रकाशतां यातो जम्बुद्वीपे स राजसु ।
पुनः शशास तद्राज्यं प्रत्याहृत्य महायशाः ॥ ४
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्विधिवत्स्वाप्तदक्षिणैः ।
तथा त्वमपि राजेन्द्र ससुहृद्वक्ष्यसेऽचिरात् ॥ ५
दुःखमेतादृशं प्राप्तो नलः परपुरंजयः ।
देवनेन नरश्रेष्ठ सभार्यो भरतर्षभ ॥ ६
एकाकिनैव सुमहन्नलेन पृथिवीपते ।
दुःखमासादितं घोरं प्राप्तश्चाभ्युदयः पुनः ॥ ७
त्वं पुनर्भ्रातृसहितः कृष्णया चैव पाण्डव ।
रमसेऽस्मिन्महारण्ये धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥ ८

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९

प्रशान्ते वीतशोके ॥ १ ॥ वक्ष्यसे दीप्यसे वशकान्तौ इत्यस्य रूपम् ॥ ५ ॥

ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
नित्यमन्वास्यसे राजंस्तत्र का परिदेवना ॥ ९
कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च ।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् ॥ १०
इतिहासमिमं चापि कलिनाशनमच्युत ।
शक्यमाश्वासितुं श्रुत्वा त्वद्विधेन विशांपते ॥ ११
अस्थिरत्वं च संचिन्त्य पुरुषार्थस्य नित्यदा ।
तस्योदये व्यये चापि न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १२
श्रुत्वेतिहासं नृपते समाश्वसिहि मा शुचः ।
व्यसने त्वं महाराज न विषादितुमर्हसि ॥ १३
विषमावस्थिते दैवे पौरुषेऽफलतां गते ।
विषादयन्ति नात्मानं सत्त्वोपाश्रयिणो नराः॥१४
ये चेदं कथयिष्यन्ति नलस्य चरितं महत् ।
श्रोष्यन्ति चाप्यभीक्ष्णं वै नालक्ष्मीस्तान्भजिष्यति
अर्थास्तस्योपपत्स्यन्ते धन्यतां च गमिष्यति ।
इतिहासमिमं श्रुत्वा पुराणं शश्वदुत्तमम् ॥ १६ ॥
पुत्रान्पौत्रान्पशूंश्चापि लभते नृषु चाग्र्यताम् ।
आरोग्यप्रीतिमांश्चैव भविष्यति न संशयः ॥१७॥
भयात्त्रास्यसि यच्च त्वमाह्वयिष्यति मां पुनः ।
अक्षज्ञ इति तत्तेहं नाशयिष्यामि पार्थिव ॥ १८
वेदाक्षहृदयं कृत्स्नमहं सत्यपराक्रम ।
उपपद्यस्व कौन्तेय प्रसन्नोहं ब्रवीमि ते ॥ १९

वैशंपायन उवाच ।

ततो हृष्टमना राजा बृहदश्वमुवाच ह ।
भगवन्नक्षहृदयं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २० ॥
ततोक्षहृदयं प्रादात्पाण्डवाय महात्मने ।
दत्त्वा चाश्वशिरोऽगच्छदुपस्प्रष्टुं महातपाः ॥ २१
बृहदश्वे गते पार्थमश्रौषीत्सव्यसाचिनम् ।
वर्तमानं तपस्युग्रे वायुभक्षं मनीषिणम् ॥ २२
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यः संपतद्भ्यस्ततस्ततः ।
तीर्थशैलवनेभ्यश्च समेतेभ्यो दृढव्रतः ॥ २३
इति पार्थो महाबाहुर्दुरापं तप आस्थितः ।
न तथा दृष्टपूर्वोन्यः कश्चिदुग्रतपा इति ॥ २४
यथा धनंजयः पार्थस्तपस्वी नियतव्रतः ।
मुनिरेकचरः श्रीमान्धर्मो विग्रहवानिव ॥ २५
तं श्रुत्वा पाण्डवो राजंस्तप्यमानं महावने ।
अन्वशोचत कौन्तेयः प्रियं वै भ्रातरं जयम् ॥ २६
दह्यमानेन तु हृदा शरणार्थी महावने ।
ब्राह्मणान्विविधज्ञानान्पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि नलोपाख्यानपर्वणि बृहदश्वगमने ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

॥ समाप्तं नलोपाख्यानपर्व ॥

## तीर्थयात्रापर्व ।

### ८०

जनमेजय उवाच ।

भगवन्काम्यकात्पार्थे गते मे प्रपितामहे ।
पाण्डवाः किमकुर्वंस्ते तमृते सव्यसाचिनम् ॥ १
स हि तेषां महेष्वासो गतिरासीदनीकजित् ।
आदित्यानां यथा विष्णुस्तथैव प्रतिभाति मे ॥ २
तेनेन्द्रसमवीर्येण संग्रामेष्वनिवर्तिना ।
विनाभूता वने वीराः कथमासन्पितामहाः ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

गते तु पाण्डवे तात काम्यकात्सत्यविक्रमे ।
बभूवुः पाण्डवेयास्ते दुःखशोकपरायणाः ॥ ४

---

तद्भयम् ॥१८॥ पुनर्द्यूतं करिष्यसीति राजानं प्रति पूर्वं भीमसेनेनोक्तं तत्र परिहारमाह वेदेति । वेद वेद्मि । उपपद्यस्व गृहाण ॥ १९ ॥ अश्वशिरोऽश्वविद्यां यया बृहदश्व इति मुनेर्नाम । उपस्प्रष्टुं स्नानादिकं कर्तुम् ॥२१॥ जयं जयभाजं अर्जुनम् ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

भगवन्काम्यकात्पार्थे गते मे प्रपितामहे इत्यादिरध्यायस्तीर्थयात्राप्रस्तावार्थः। यज्ञदानाद्यसमर्थस्य हि तीर्थयात्रैवावश्यकी यथोक्तं । 'द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव । राजानं चाविरोद्धारं दरिद्रं चाप्रवासिनम् 'इति तत्रापि बन्धुवियोगः सर्वेषां दुःखदः तेन च चित्तस्यानवस्थितत्वं भवतीत्यवान्तरतात्पर्यम् ॥ १ ॥

आक्षिप्तसूत्रा मणयश्छिन्नपक्षा इव द्विजाः ।
अप्रीतमनसः सर्वे बभूवुरथ पाण्डवाः ॥ ५
वनं तु तदभूत्तेन हीनमक्लिष्टकर्मणा ।
कुबेरेण यथा हीनं वनं चैत्ररथं तथा ॥ ६
तमृते ते नरव्याघ्राः पाण्डवा जनमेजय ।
मुदमप्राप्नुवन्तो वै काम्यके न्यवसंस्तदा ॥ ७
ब्राह्मणार्थे पराक्रान्ताः शुद्धैर्बाणैर्महारथाः ।
निघ्नन्तो भरतश्रेष्ठ मेध्यान्बहुविधान्मृगान् ॥ ८
नित्यं हि पुरुषव्याघ्रा वन्याहारमरिंदमाः ।
उपाकृत्य उपाहृत्य ब्राह्मणेभ्यो न्यवेदयन् ॥ ९
सर्वे संन्यवसंस्तत्र सोत्कण्ठाः पुरुषर्षभाः ।
अहृष्टमनसः सर्वे गते राजन्धनंजये ॥ १०
विशेषतस्तु पाञ्चाली स्मरन्ती मध्यमं पतिम् ।
उद्विग्नं पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११
योऽर्जुनेनार्जुनस्तुल्यो द्विबाहुर्बहुबाहुना ।
तमृते पाण्डवश्रेष्ठ वनं न प्रतिभाति मे ॥ १२
शून्यामिव प्रपश्यामि तत्र तत्र महीमिमाम् ।
बह्वाश्चर्यमिदं चापि वनं कुसुमितद्रुमम् ॥ १३
न तथा रमणीयं वै तमृते सव्यसाचिनम् ।
नीलाम्बुदसमप्रख्यं मत्तमातङ्गगामिनम् ॥ १४
तमृते पुण्डरीकाक्षं काम्यकं नातिभाति मे ।
यस्य वा धनुषो घोषः श्रूयते चाशनिस्वनः ।
न लभे शर्म वै राजन्स्मरन्ती सव्यसाचिनम् ॥ १५
तथा लालप्यमानां तां निशम्य परवीरहा ।
भीमसेनो महाराज द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥ १६

भीम उवाच ।

मनःप्रीतिकरं भद्रे यद्ब्रवीषि सुमध्यमे ।
तन्मे प्रीणाति हृदयममृतप्राशनोपमम् ॥ १७
यस्य दीर्घौ समौ पीनौ भुजौ परिघसंनिभौ ।
मौर्वीकृतकिणौ वृत्तौ खड्गायुधधनुर्धरौ ॥ १८
निष्काङ्गदकृतापीडौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
तमृते पुरुषव्याघ्रं नष्टसूर्यमिवाम्बरम् ॥ १९
यमाश्रित्य महाबाहुं पाञ्चालाः कुरवस्तथा ।
सुराणामपि मत्तानां पृतनासु न बिभ्यति ॥ २०
यस्य बाहू समाश्रित्य वयं सर्वे महात्मनः ।
मन्यामहे जितानाजौ परान्प्राप्तां च मेदिनीम् ॥
तमृते फाल्गुनं वीरं न लभे काम्यके धृतिम् ।
पश्यामि च दिशः सर्वास्तिमिरेणावृता इव ।
ततोऽब्रवीत्साश्रुकण्ठो नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥ २२

नकुल उवाच ।

यस्मिन्दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति रणाजिरे ।
देवा अपि युधां श्रेष्ठं तमृते का रतिर्वने ॥ २३
उदीचीं यो दिशं गत्वा जित्वा युधि महाबलान् ।
गन्धर्वमुख्याञ्छतशो हयाँल्लेभे महाद्युतिः ॥ २४
राज्ञे तित्तिरिकल्माषाञ्श्रीमतोऽनिलरंहसः ।
प्रादाद्भ्रात्रे प्रियः प्रेम्णा राजसूये महाक्रतौ ॥ २५
तमृते भीमधन्वानं भीमादवरजं वने ।
कामये काम्यके वासं नेदानीममरोपमम् ॥ २६

सहदेव उवाच ।

यो धनानि च कन्याश्च युधि जित्वा महारथः ।
आजहार पुरा राज्ञे राजसूये महाक्रतौ ॥ २७
यः समेतान्मृधे जित्वा यादवानमितद्युतिः ।
सुभद्रामाजहारैको वासुदेवस्य संमते ॥ २८
तस्य जिष्णोर्बृसीं दृष्ट्वा शून्यामिव निवेशने ।
हृदयं मे महाराज न शाम्यति कदाचन ॥ २९
वनादस्माद्विवासं तु रोचयेऽहमरिंदम ।
न हि नस्तमृते वीरं रमणीयमिदं वनम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि अर्जुनानुशोचने
अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

आक्षिप्तसूत्राः छिन्नसूत्राः द्विजाः पक्षिणः ॥ ५ ॥ मेध्यान् यज्ञार्हान् ॥ ८ ॥ उपाकृत्य हिंसित्वा उपाहृत्य यज्ञार्थं समाहृत्य ॥ ९ ॥ मौर्वीकृतकिणौ किणं आघातचिह्नम् ॥१८॥ निष्काङ्गदकृतापीडौ साष्टशतं सुवर्णाः निष्कः तत्कृतेनाङ्गदेन कृतभूषणौ ॥ १९ ॥ बृसीं आसनम् ॥ २९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भा० भा० अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

वैशंपायन उवाच ।
धनंजयोत्सुकानां तु भ्रातॄणां कृष्णया सह ।
श्रुत्वा वाक्यानि विमना धर्मराजोऽप्यजायत ॥ १
अथापश्यन्महात्मानं देवर्षिं तत्र नारदम् ।
दीप्यमानं श्रिया ब्राह्म्या हुतार्चिषमिवानलम् ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य भ्रातृभिः सह धर्मराट् ।
प्रत्युत्थाय यथान्यायं पूजां चक्रे महात्मने ॥ ३
स तैः परिवृतः श्रीमान्भ्रातृभिः कुरुसत्तमः ।
विबभावतिदीप्तौजा देवैरिव शतक्रतुः ॥ ४
यथा च वेदान्सावित्री याज्ञसेनी तथा पतीन् ।
न जहौ धर्मतः पार्थान्मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ५
प्रतिगृह्य च तां पूजां नारदो भगवानृषिः ।
आश्वासयद्धर्मसुतं युक्तरूपमिवानघ ॥ ६
उवाच च महात्मानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ केनार्थः किं ददानि ते ॥ ७
अथ धर्मसुतो राजा प्रणम्य भ्रातृभिः सह ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा नारदं देवसंमितम् ॥ ८
त्वयि तुष्टे महाभाग सर्वलोकाभिपूजिते ।
कृतमित्येव मन्येऽहं प्रसादात्तव सुव्रत ॥ ९
यदि त्वहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।
संदेहं मे मुनिश्रेष्ठ तत्त्वतश्छेत्तुमर्हसि ॥ १०
प्रदक्षिणां यः कुरुते पृथिवीं तीर्थतत्परः ।
किं फलं तस्य कार्त्स्न्येन तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ११

नारद उवाच ।
शृणु राजन्नवहितो यथा भीष्मेण धीमता ।
पुलस्त्यस्य सकाशाद्धि सर्वमेतदुपश्रुतम् ॥ १२
पुरा भागीरथीतीरे भीष्मो धर्मभृतां वरः ।
पित्र्यं व्रतं समास्थाय न्यवसन्मुनिभिः सह ॥ १३
शुभे देशे तथा राजन्पुण्ये देवर्षिसेविते ।
गङ्गाद्वारे महाभाग देवगन्धर्वसेविते ॥ १४
स पितॄंस्तर्पयामास देवांश्च परमद्युतिः ।
ऋषींश्च तर्पयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १५
कस्यचित्त्वथ कालस्य जपन्नेव महायशाः ।
ददर्शाद्भुतसंकाशं पुलस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १६
स तं दृष्ट्वोग्रतपसं दीप्यमानमिव श्रिया ।
प्रहर्षमतुलं लेभे विस्मयं परमं ययौ ॥ १७
उपस्थितं महाभागं पूजयामास भारत ।
भीष्मो धर्मभृतां श्रेष्ठो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १८
शिरसा चार्घमादाय शुचिः प्रयतमानसः ।
नाम संकीर्तयामास तस्मिन्ब्रह्मर्षिसत्तमे ॥ १९
भीष्मोऽहमस्मि भद्रं ते दासोऽस्मि तव सुव्रत ।
तव संदर्शनादेव मुक्तोऽहं सर्वकिल्बिषैः ॥ २०
एवमुक्त्वा महाराज भीष्मो धर्मभृतां वरः
वाग्यतः प्राञ्जलिर्भूत्वा तूष्णीमासीद्युधिष्ठिर ॥ २१
तं दृष्ट्वा नियमेनाथ स्वाध्यायाम्नायकर्शितम् ।
भीष्मं कुरुकुलश्रेष्ठं मुनिः प्रीतमनाभवत् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि पार्थनारदसंवादे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

पुलस्त्य उवाच ।
अनेन तव धर्मज्ञ प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन च महाभाग तुष्टोऽस्मि तव सुव्रत ॥ १
यस्येदृशस्ते धर्मोऽयं पितृभक्त्याश्रितोऽनघ ।
तेन पश्यसि मां पुत्र प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥ २
अमोघदर्शी भीष्माहं ब्रूहि किं करवाणि ते ।
यद्वक्ष्यसि कुरुश्रेष्ठ तस्य दाताऽस्मि तेऽनघ ॥ ३

भीष्म उवाच ।
प्रीते त्वयि महाभाग सर्वलोकाभिपूजिते ।
कृतमेतावता मन्ये यदहं दृष्टवान्प्रभुम् ॥ ४
यदि त्वहमनुग्राह्यस्तव धर्मभृतां वर ।
संदेहं ते प्रवक्ष्यामि तन्मे त्वं छेत्तुमर्हसि ॥ ५
अस्ति मे हृदये कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः ।
तमहं श्रोतुमिच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ६

---

८१

धनंजयेति ॥ १ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

अनेनेति ॥ १ ॥

प्रदक्षिणां यः पृथिवीं करोत्यमरसंनिभ ।
किं फलं तस्य विप्रर्षे तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥७

पुलस्त्य उवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि यदृषीणां परायणम् ।
तदेकाग्रमनाः पुत्र शृणु तीर्थेषु यत्फलम् ॥ ८
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ ९
प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित् ।
अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १०
अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ १२
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवेष्विह यथाक्रमम् ।
फलं चैव यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥ १३
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ।
बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः ॥ १४
प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ।
नार्थन्यूनैर्नावगणैरेकात्मभिरसाधनैः ॥ १५
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर ।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध युधां वर ॥ १६
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम ।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥ १७
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च ।
अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ॥ १८
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥ १९
नृलोके देवदेवस्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
पुष्करं नाम विख्यातं महाभागः समाविशेत्॥२०
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महामते ।
सांनिध्यं पुष्करे येषां त्रिसंध्यं कुरुनन्दन ॥ २१
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नित्यं संनिहिता विभो ॥ २२
यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दैत्या ब्रह्मर्षयस्तथा ।
दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महतान्विताः ॥ २३
मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः ।
पूयन्ते सर्व पापानि नाकपृष्ठे च पूज्यते ॥ २४
तस्मिंस्तीर्थे महाराज नित्यमेव पितामहः ।
उवास परमप्रीतो भगवान्कमलासनः ॥ २५
पुष्करेषु महाभाग देवाः सर्षिगणाः पुरा ।
सिद्धिं समभिसंप्राप्ताः पुण्येन महतान्विताः॥ २६
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधाद्दशगुणं फलं प्राहुर्मनीषिणः ॥ २७
अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः ।
तेनासौ कर्मणा भीष्म प्रेत्य चेह च मोदते ॥२८
शाकैर्मूलैः फलैर्वापि येन वर्तयते स्वयम् ।
तद्वै दद्याद्ब्राह्मणाय श्रद्धावाननसूयकः ॥ २९
तेनैव प्राप्नुयात्प्राज्ञो हयमेधफलं नरः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वा राजसत्तम ॥
न वै योनौ प्रजायन्ते स्नातास्तीर्थे महात्मनः ।
कार्तिकीं तु विशेषेण योऽभिगच्छति पुष्करम्॥३१
प्राप्नुयात्स नरो लोकान्ब्रह्मणः सदनेऽक्षयान् ।
सायंप्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः ॥ ३२
उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु भारत ।
जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥ ३३
पुष्करे स्नातमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्यति ।
यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः ॥ ३४
तथैव पुष्करं राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते ।
उष्य द्वादशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ॥ ३५
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं स गच्छति ।
यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते ॥ ३६
कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव तत्॥ ३७

---

यस्य हस्तौ चेति । दुष्प्रतिग्रहपरपीडादिभ्यो निवृत्तिर्हस्तसंयमः । दृष्टिपूते देशे पादन्यासः पादसंयमः । परानिष्टचिन्तनाभावो मनःसंयमः । विद्यासंयमः अभिचाररहित्यं । तपःसंयमः दम्भराहित्यं । कीर्तिसंयमः पापकीर्तिराहित्यम् ॥ ९ ॥ अस्यैव श्लोकस्य व्याख्यानं प्रतिग्रहादित्यादि त्रितयं अपावृत्तो निवृत्तः संतोषोऽलंबुद्धिः ॥ १० ॥ अकल्ककः दम्भादिहीनः । 'कल्कः शाठ्ये च दम्भे च' इति विश्वः ॥ ११ ॥ आत्मोपमः दयावान् ॥ १२ ॥ अवगणैः असहायैर्नीचसहायैर्वा एकात्मभिः असहायैः असाधनैः पत्न्यादिरहितैः ॥ १५ ॥ उपस्पृष्टं स्नातं भवेत् ॥ ३३ ॥ उष्य वासं कृत्वा ॥ ३५ ॥ क्रतून्सर्वान्प्राप्नोति संवत्सरात्मकप्रजापतिसायुज्यं प्राप्नोतीत्यर्थः । 'ऋतुर्भूत्वा संवत्सरमप्येति संवत्सरः प्रजापतिः प्रजापतिर्वा वैषः' इति श्रुतेः ऋतूनित्यपि पाठः ॥ ३६ ॥

त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराण्यादिसिद्धानि न विद्मस्तत्र कारणम् ३८
दुष्करं पुष्करे गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः ।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम् ॥ ३९
उष्य द्वादशरात्रं तु नियतो नियताशनः ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य जम्बूमार्गं समाविशेत् ॥ ४०
जम्बूमार्गं समाविश्य देवर्षिपितृसेवितम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति सर्वकामसमन्वितः ॥ ४१
तत्रोष्य रजनीः पञ्च पूतात्मा जायते नरः ।
न दुर्गतिमवाप्नोति सिद्धिं प्राप्नोति चोत्तमाम् ॥
जम्बूमार्गादुपावृत्य गच्छेत्तन्दुलिकाश्रमम् ।
न दुर्गतिमवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ ४३
आगस्त्यं सर आसाद्य पितृदेवार्चने रतः ।
त्रिरात्रोपोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ४४
शाकवृत्तिः फलैर्वापि कौमारं विन्दते परम् ।
कण्वाश्रमं ततो गच्छेच्छ्रीजुष्टं लोकपूजितम्॥ ४५
धर्मारण्यं हि तत्पुण्यमाद्यं च भरतर्षभ ।
यत्र प्रविष्टमात्रो वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४६
अर्चयित्वा पितॄन्देवान्नियतो नियताशनः ।
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥ ४७
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा ययातिपतनं व्रजेत् ।
हयमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति तत्र वै ॥ ४८
महाकालं ततो गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत् ॥ ४९
ततो गच्छेत धर्मज्ञः स्थाणोस्तीर्थमुमापतेः ।
नाम्ना भद्रवटं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ५०
तत्राभिगम्य चेशानं गोसहस्रफलं लभेत् ।
महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यं च विन्दति ॥ ५१
समृद्धमसपत्नं च श्रिया युक्तं नरोत्तमः ।
नर्मदां स समासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम्॥ ५२
तर्पयित्वा पितॄन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ।
दक्षिणं सिन्धुमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥ ५३
अग्निष्टोममवाप्नोति विमानं चाधिरोहति ।
चर्मण्वतीं समासाद्य नियतो नियताशनः ।
रन्तिदेवाभ्यनुज्ञातमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ५४
ततो गच्छेत धर्मज्ञ हिमवत्सुतमर्बुदम् ।
पृथिव्यां यत्र वै छिद्रं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर ॥ ५५
तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५६
पिङ्गतीर्थमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
कपिलानां नरश्रेष्ठ शतस्य फलमश्नुते ॥ ५७
ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रभासं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र संनिहितो नित्यं स्वयमेव हुताशनः ॥ ५८
देवतानां मुखं वीर ज्वलनोऽनिलसारथिः ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः॥५९
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ।
ततो गत्वा सरस्वत्याः सागरस्य च संगमे ॥ ६०
गोसहस्रफलं तस्य स्वर्गलोकं च विन्दति ।
प्रभया दीप्यते नित्यमग्निवद्भरतर्षभ ॥ ६१
तीर्थे सलिलराजस्य स्नात्वा प्रयतमानसः ।
त्रिरात्रमुषितः स्नातस्तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ६२
प्रभासते यथा सोमः सोऽश्वमेधं च विन्दति ।
वरदानं ततो गच्छेत्तीर्थं भरतसत्तम ॥ ६३
विष्णोर्दुर्वाससा यत्र वरो दत्तो युधिष्ठिर ।
वरदाने नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ६४

अत्र पुष्करस्तुतिप्रस्तावे विषमश्लोकव्याख्यायां 'त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च । पुष्कराण्यादिसिद्धानि न विद्मस्तत्र कारणम्' इति श्लोकः पठितो व्याख्यातश्च । इदानीं मन्दबुद्धिभिर्दुर्व्याख्येयतया परित्यक्त इति न पुस्तकान्तरेषु दृश्यते । अत्र प्राचां व्याख्या । श्रयतेः शृणातेर्वा शृङ्गाणि मुमुक्षुभिराश्रयणीयानि पापहिंसकानि वा । शुभ्राणि भ्राजिष्णूनि त्रीणि पुष्कराणि तेषां मध्ये सरस्वती प्रस्रवतीति तान्येव त्रीणि प्रस्रवणानि आदिसिद्धानि तीर्थान्तरवदुत्पत्तिरहितानि । अत एव तत्र तीर्थत्वापादकं कारणं न विद्म इति । वस्तुतस्तु 'वेदारण्यं पञ्चनदं गौरीमायूरमार्जुनम् । श्रीवाञ्छं कुम्भकोणं च काशीक्षेत्रसमानि षट्' इत्यादिवदिह काशीसाम्येन पुष्करं स्तूयते । तथा चायमर्थः पुराणान्तरेषु वाराणस्यास्त्रिकोणत्वस्मरणात् त्रयः कोणा एव त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि रजस्तमो मलहीनत्वेन शुद्धसत्त्वमयानि ज्ञानप्रदत्वात् । तथा च श्रुतिरविमुक्तं प्रकृत्याह । अत्र हि जन्तोःप्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवतीति।त्रीणि प्रस्रवणानि त्रयः प्रवाहाः असीवरणयोर्गङ्गायाश्च । अथवानेन त्रिवेण्येव प्राप्ता तथा त्रीणि पुष्कराणि एतानि त्रीणि काशीप्रयागपुष्कराणि आदिसिद्धानीत्यादि प्राग्वत् तेन । काश्या काशीप्रयागाभ्यां वा समानमिदं पुष्करं त्रित्वसाम्यादिति पुरस्तु र्तिः कृता भवति ॥ ३८ ॥

ततो द्वारवतीं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
पिण्डारके नरः स्नात्वा लभेद्बहु सुवर्णकम् ॥ ६५
तस्मिंस्तीर्थे महाभाग पद्मलक्षणलक्षिताः ।
अद्यापि मुद्रा दृश्यन्ते तदद्भुतमरिंदम ॥ ६६
त्रिशूलाङ्कानि पद्मानि दृश्यन्ते कुरुनन्दन ।
महादेवस्य सांनिध्यं तत्र वै पुरुषर्षभ ॥ ६७
सागरस्य च सिन्धोश्च संगमं प्राप्य भारत ।
तीर्थे सलिलराजस्य स्नात्वा प्रयतमानसः ॥ ६८
तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषींश्च भरतर्षभ ।
प्राप्नोति वारुणं लोकं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ६९
शङ्कुकर्णेश्वरं देवमर्चयित्वा युधिष्ठिर ।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७०
प्रदक्षिणमुपावृत्य गच्छेत भरतर्षभ ।
तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ७१
दमीति नाम्ना विख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र ब्रह्मादयो देवा उपासन्ते महेश्वरम् ॥ ७२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च रुद्रं देवगणैर्वृतम् ।
जन्मप्रभृति यत्पापं तत्स्नातस्य प्रणश्यति ॥ ७३
दमी चात्र नरश्रेष्ठ सर्वैर्देवैरभिष्टुतः ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र हयमेधमवाप्नुयात् ॥ ७४
गत्वा यत्र महाप्राज्ञ विष्णुना प्रभविष्णुना ।
पुरा शौचं कृतं राजन्हत्वा दैतेयदानवान् ॥ ७५
ततो गच्छेत धर्मज्ञ वसोर्धारामभिष्टुताम् ।
गमनादेव तस्यां हि हयमेधफलं लभेत् ॥ ७६
स्नात्वा कुरुवरश्रेष्ठ प्रयतात्मा समाहितः ।
तर्प्य देवान्पितॄंश्चैव विष्णुलोके महीयते ॥ ७७
तीर्थं चात्र सरः पुण्यं वसूनां भरतर्षभ ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वसूनां संमतो भवेत् ॥ ७८
सिन्धूत्तममिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ लभेद्बहु सुवर्णकम् ॥ ७९
भद्रतुङ्गं समासाद्य शुचिः शीलसमन्वितः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् ॥ ८०
कुमारिकाणां शक्रस्य तीर्थं सिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा नरः क्षिप्रं स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ ८१
रेणुकायाश्च तत्रैव तीर्थं सिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा भवेद्विप्रो निर्मलश्चन्द्रमा यथा ॥ ८२
अथ पञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः ।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति क्रमशो येऽनुकीर्तिताः ॥ ८३
ततो गच्छेत राजेन्द्र भीमायाः स्थानमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु योन्यां वै नरो भरतसत्तम ॥ ८४
देव्याः पुत्रो भवेद्राजंस्तप्तकुण्डलविग्रहः ।
गवां शतसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८५
श्रीकुण्डं तु समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
पितामहं नमस्कृत्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ८६
ततो गच्छेत धर्मज्ञ विमलं तीर्थमुत्तमम् ।
अद्यापि यत्र दृश्यन्ते मत्स्याः सौवर्णराजताः ८७
तत्र स्नात्वा नरः क्षिप्रं वासवं लोकमाप्नुयात् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम् ॥ ८८
वितस्तां च समासाद्य संतर्प्य पितृदेवताः ।
नरः फलमवाप्नोति वाजपेयस्य भारत ॥ ८९
काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च ।
वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ९०
तत्र स्नात्वा नरो नूनं वाजपेयमवाप्नुयात् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेच्च परमां गतिम् ॥ ९१
ततो गच्छेत वडवां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ।
पश्चिमायां तु संध्यायामुपस्पृश्य यथाविधि ॥ ९२
चरुं सप्तार्चिषे राजन्यथाशक्ति निवेदयेत् ।
पितॄणामक्षयं दानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ९३
ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
गुह्यकाः किंनरा यक्षाः सिद्धा विद्याधरा नराः
राक्षसा दितिजा रुद्रा ब्रह्मा च मनुजाधिप ।
नियतः परमां दीक्षामास्थायाब्दसहस्रिकीम् ॥ ९५
विष्णोः प्रसादनं कुर्वंश्चरुं च श्रपयंस्तथा ।
सप्तभिः सप्तभिश्चैव ऋग्भिस्तुष्टाव केशवम् ॥ ९६
ददावष्टगुणैश्वर्यं तेषां तुष्टस्तु केशवः ।
यथाभिलषितानन्यान्कामान्दत्त्वा महीपते ॥ ९७
तत्रैवान्तर्दधे देवो विद्युदभ्रेषु वै यथा ।
नाम्ना सप्तचरुं तेन ख्यातं लोकेषु भारत ॥ ९८
गवां शतसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
अश्वमेधसहस्रेण श्रेयान्सप्तार्चिषे चरुः ॥ ९९
ततो निवृत्तो राजेन्द्र रुद्रं पदमथाविशेत् ।
अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ॥ १००
मणिमन्तं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
एकरात्रोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ १०१
अथ गच्छेत राजेन्द्र देविकां लोकविश्रुताम् ।
प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभ ॥ २
त्रिशूलपाणेः स्थानं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
देविकायां नरः स्नात्वा समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ ३
यथाशक्ति चरुं तत्र निवेद्य भरतर्षभ ।
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥ ४
कामाख्यं तत्र रुद्रस्य तीर्थं देवनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा नरः क्षिप्रं सिद्धिं प्राप्नोति भारत ॥

यजनं याजनं चैव तथैव ब्रह्मवालुकम् ।
पुष्पाम्भश्च उपस्पृश्य न शोचेन्मरणं गतः ॥ ६
अर्धयोजनविस्तारा पञ्चयोजनमायता ।
एतावती वेदिका तु पुण्या देवर्षिसेविता ॥ ७
ततो गच्छेत धर्मज्ञ दीर्घसत्रं यथाक्रमम् ।
तत्र ब्रह्मादयो देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ८
दीर्घसत्रमुपासन्ते दीक्षिता नियतव्रताः ॥ ९
गमनादेव राजेन्द्र दीर्घसत्रमरिंदम ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति भारत ॥ ११०
ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती ॥ ११
चमसेथ शिवोद्भेदे नागोद्भेदे च दृश्यते ।
स्नात्वा तु चमसोद्भेदे अग्निष्टोमफलं लभेत्॥ १२
शिवोद्भेदे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
नागोद्भेदे नरः स्नात्वा नागलोकमवाप्नुयात्॥ १३
शशयानं च राजेन्द्र तीर्थमासाद्य दुर्लभम् ।
शशरूपप्रतिच्छन्नाः पुष्करा यत्र भारत ॥ १४
सरस्वत्यां महाराज अनुसंवत्सरं च ते ।
दृश्यन्ते भरतश्रेष्ठ वृत्तां वै कार्तिकीं सदा ॥ १५
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र द्योतते शशिवत्सदा ।
गोसहस्रफलं चैव प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ॥ १६
कुमारकोटीमासाद्य नियतः कुरुनन्दन ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ॥ १७
गवामयुतमाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ रुद्रकोटिं समाहितः ॥ १८
पुरा यत्र महाराज मुनिकोटिः समागता ।
हर्षेण महताविष्टा रुद्रदर्शनकाङ्क्षया ॥ १९
अहं पूर्वमहं पूर्वं द्रक्ष्यामि वृषभध्वजम् ।
एवं संप्रस्थिता राजनृषयः किल भारत ॥ १२०
ततो योगीश्वरेणापि योगमास्थाय भूपते ।
तेषां मन्युप्रणाशार्थमृषीणां भावितात्मनाम् ॥२१
सृष्टा कोटीति रुद्राणामृषीणामग्रतः स्थिता ।
मया पूर्वतरं दृष्ट इति ते मेनिरे पृथक् ॥ २२
तेषां तुष्टो महादेवो मुनीनां भावितात्मनाम् ।
भक्त्या परमया राजन्वरं तेषां प्रदिष्टवान् ॥ २३
अद्य प्रभृति युष्माकं धर्मवृद्धिर्भविष्यति ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र रुद्रकोट्यां नरःशुचिः॥२४
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र संगमं लोकविश्रुतम् ॥ २५
सरस्वत्या महापुण्यं केशवं समुपासते ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ २६
अभिगच्छन्ति राजेन्द्र चैत्रशुक्लचतुर्दशीम् ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र विन्देद्बहु सुवर्णकम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ २७
ऋषीणां यत्र सत्राणि समाप्तानि नराधिप ।
तत्रावसानमासाद्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १२८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि पुलस्त्यतीर्थयात्रायां द्व्यशीतितमोध्यायः ॥ ८२ ॥

## ८३

पुलस्त्य उवाच ।

ततो गच्छेत राजेन्द्र कुरुक्षेत्रमभिष्टुतम् ।
पापेभ्यो यत्र मुच्यन्ते दर्शनात्सर्वजन्तवः ॥ १
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
य एवं सततं ब्रूयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २
पांसवोपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः ।
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ३
दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च ।
ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ॥ ४
तत्र मासं वसेद्धीरः सरस्वत्यां युधिष्ठिर ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ ५

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

८३

तत इति ॥ १ ॥

गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः पन्नगाश्च महीपते ।
ब्रह्मक्षेत्रं महापुण्यमभिगच्छन्ति भारत ॥ ६
मनसाप्यभिकामस्य कुरुक्षेत्रं युधिष्ठिर ।
पापानि विप्रणश्यन्ति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ ७
गत्वा हि श्रद्धया युक्तः कुरुक्षेत्रं कुरूद्वह ।
फलं प्राप्नोति च तदा राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ८
ततो मचक्रुकं नाम द्वारपालं महाबलम् ।
यक्षं समभिवाद्यैव गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ९
ततो गच्छेत धर्मज्ञ विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।
सततं नाम राजेन्द्र यत्र संनिहितो हरिः ॥१०
तत्र स्नात्वा च नत्वा च त्रिलोकप्रभवं हरिम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥११
ततः पारिप्लवं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति भारत ॥ १२
पृथिवीतीर्थमासाद्य गोसहस्रफलं लभेत् ।
ततः शालूकिनीं गत्वा तीर्थसेवी नराधिप ॥ १३
दशाश्वमेधे स्नात्वा च तदेव फलमाप्नुयात् ।
सर्पदेवीं समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम् ॥ १४
अग्निष्टोममवाप्नोति नागलोकं च विन्दति ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ द्वारपालं तरन्तुकम् ॥ १५
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ।
ततः पञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः ॥ १६
कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत् ।
अश्विनोस्तीर्थमासाद्य रूपवानभिजायते ॥ १७
ततो गच्छेत धर्मज्ञ वाराहं तीर्थमुत्तमम् ।
विष्णुर्वाराहरूपेण पूर्वं यत्र स्थितोऽभवत् ॥ १८
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
ततो जयन्त्यां राजेन्द्र सोमतीर्थं समाविशेत् ॥ १९
स्नात्वा फलमवाप्नोति राजसूयस्य मानवः ।
एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ २०
कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी नराधिप ।
पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेच्च सः ॥ २१
ततो मुञ्जवटं नाम स्थाणोः स्थानं महात्मनः ।
उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ २२
तत्रैव च महाराज यक्षिणीं लोकविश्रुताम् ।
स्नात्वाभिगम्य राजेन्द्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् २३
कुरुक्षेत्रस्य तद्द्वारं विश्रुतं भरतर्षभ ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य तीर्थसेवी समाहितः ॥ २४
संमितं पुष्कराणां च स्नात्वार्च्य पितृदेवताः ।
जामदग्न्येन रामेण कृतं तत्सुमहात्मना ॥ २५
कृतकृत्यो भवेद्राजन्नश्वमेधं च विन्दति ।
ततो रामह्रदान्गच्छेत्तीर्थसेवी समाहितः ॥ २६
तत्र रामेण राजेन्द्र तरसा दीप्ततेजसा ।
क्षत्रमुत्साद्य वीरेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः ॥ २७
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति विश्रुतम् ।
पितरस्तर्पिताः सर्वे तथैव प्रपितामहाः ॥ २८
ततस्ते पितरः प्रीता राममूचुर्नराधिप ।

पितर ऊचुः ।

राम राम महाभाग प्रीताः स्म तव भार्गव ॥२९
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते किमिच्छसि महाद्युते ॥ ३०
एवमुक्तः स राजेन्द्र रामः प्रहरतां वरः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पितॄन्स गगने स्थितान् ॥३१
भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि ।
पितृप्रसादमिच्छेयं तप आप्यायनं पुनः ॥ ३२
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ।
ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसाप्यहम् ॥ ३३
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः ।
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा ॥३४
प्रत्यूचुः परमप्रीता रामं हर्षसमन्विताः ।
तपस्ते वर्धतां भूयः पितृभक्त्या विशेषतः ॥ ३५
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया ।
ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पतितास्ते स्वकर्मभिः ॥३६

ततो गच्छेत राजेन्द्र कुरुक्षेत्रमिति कुरुक्षेत्रप्रस्तावे बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं 'यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्' इति जाबालोपनिषत्सु प्रसिद्धमनुकुरुक्षेत्रं स्तौति ब्रह्मक्षेत्रमिति ॥ ६ ॥ 'कुत्सितं रौतीति कुरु पापं तस्य क्षेपणात्त्रायत' इति कुरुक्षेत्रं पापनिवर्तकं '। ब्रह्मोपलब्धिस्थानत्वाद्ब्रह्मसदनमिति श्रौतपदद्वयार्थं संगृह्णाति अर्धेन। 'पापानि च प्रणश्यन्ति ब्रह्मलोकं च गच्छति' ब्रह्मैव लोकस्तं ब्रह्मविद्भूत्वा ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ श्रौतस्य देवयजनपदस्यार्थं संगृह्णाति राजसूयेति ॥ ८ ॥ कुरुक्षेत्रस्यं प्रस्तुतस्य तत् यक्षाभिवन्दनादिकं द्वारं प्रापकं तच्चेदं कुरुक्षेत्रमविमुक्ताख्यं 'अविमुक्तं वै 'कुरुक्षेत्रम्' इति श्रुतेः। स्मृतिश्च 'इमानि तु पवित्राणि काशीप्राप्तिकराणि च' इति। अत एवानुकुरुक्षेत्रमिति श्रुत्या निर्दिष्टं कुरुक्षेत्रादि सेवनप्राप्यत्वात् ॥ २४ ॥

ह्रदाश्च तव तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः ।
ह्रदेषु तेषु यः स्नात्वा पितॄन्संतर्पयिष्यति ॥ ३७
पितरस्तस्य वै प्रीता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ।
ईप्सितं च मनः कामं स्वर्गलोकं च शाश्वतम् ३८
एवं दत्त्वा वरान्राजन्रामस्य पितरस्तदा ।
आमन्त्र्य भार्गवं प्रीत्या तत्रैवान्तर्हितास्ततः ॥३९
एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः ।
स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुभव्रतः ॥ ४०
राममभ्यर्च्य राजेन्द्र लभेद्बहु सुवर्णकम् ।
वंशमूलकमासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह ॥ ४१
स्ववंशमुद्धरेद्राजन्स्नात्वा वै वंशमूलके ।
कायशोधनमासाद्य तीर्थं भरतसत्तम ॥ ४२
शरीरशुद्धिः स्नातस्य तस्मिंस्तीर्थे न संशयः ।
शुद्धदेहश्च संयाति शुभाँल्लोकाननुत्तमान् ॥ ४३
ततो गच्छेत धर्मज्ञ तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
लोका यत्रोद्धृताः पूर्वं विष्णुना प्रभविष्णुना ४४
लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यपूजितम् ।
स्नात्वा तीर्थवरे राजँल्लोकानुद्धरते स्वकान् ॥४५
श्रीतीर्थं च समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः ।
अर्चयित्वा पितॄन्देवान्विन्दते श्रियमुत्तमाम् ॥ ४६
कपिलातीर्थमासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च पितॄन्स्वान्दैवतान्यपि ॥
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः ।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः ॥ ४८
अर्चयित्वा पितॄन्देवानुपवासपरायणः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥ ४९
गवां भवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५०
शङ्खिनीतीर्थमासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह ।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम् ॥ ५१
ततो गच्छेत राजेन्द्र द्वारपालमरन्तुकम् ।
यच्च तीर्थं सरस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ५२
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मावर्तं नरोत्तमः ॥ ५३
ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र सुतीर्थकमनुत्तमम् ॥ ५४
तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ॥ ५५
अश्वमेधमवाप्नोति पितृलोकं च गच्छति ।
ततोऽम्बुमत्यां धर्मज्ञ सुतीर्थकमनुत्तमम् ॥ ५६
काशीश्वरस्य तीर्थेषु स्नात्वा भरतसत्तम ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५७
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भारत ।
प्रजा विवर्धते राजन्नतन्वीं श्रियमश्नुते ॥ ५८
ततः सीतवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
तीर्थं तत्र महाराज महदन्यत्र दुर्लभम् ॥ ५९
पुनाति गमनादेव दृष्टमेकं नराधिप ।
केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन्पूतो भवति भारत ॥ ६०
तीर्थं तत्र महाराज श्वाविल्लोमापहं स्मृतम् ।
यत्र विप्रा नरव्याघ्र विद्वांसस्तीर्थतत्पराः ॥ ६१
प्रीतिं गच्छन्ति परमां स्नात्वा भरतसत्तम ।
श्वाविल्लोमापनयने तीर्थे भरतसत्तम ॥ ६२
प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः ।
पूतात्मानश्च राजेन्द्र प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ६३
दशाश्वमेधिकं चैव तस्मिंस्तीर्थे महीपते ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र गच्छेत परमां गतिम् ॥६४
ततो गच्छेत राजेन्द्र मानुषं लोकविश्रुतम् ।
यत्र कृष्णमृगा राजन्व्याधेन शरपीडिताः ॥ ६५
विगाह्य तस्मिन्सरसि मानुषत्वमुपागताः ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।
मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रे महीपते ॥ ६७
आपगा नाम विख्याता नदी सिद्धनिषेविता ।
श्यामाकं भोजने तत्र यः प्रयच्छति मानवः ॥६८
देवान्पितॄन्समुद्दिश्य तस्य धर्मफलं महत् ।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ६९
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च पितॄन्वै दैवतानि च ।
उषित्वा रजनीमेकामग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ७०
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
ब्रह्मोदुम्बरमित्येव प्रकाशं भुवि भारत ॥ ७१
तत्र सप्तर्षिकुण्डेषु स्नातस्य नरपुंगव ।
केदारे चैव राजेन्द्र कपिलस्य महात्मनः ॥ ७२
ब्रह्माणमधिगत्वा च शुचिः प्रयतमानसः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥ ७३
कपिष्ठलस्य केदारं समासाद्य सुदुर्लभम् ।
अन्तर्धानमवाप्नोति तपसा दग्धकिल्बिषः ॥ ७४

काशीश्वरस्य तीर्थेषु मणिकर्णिकादिषु स्नानमात्राद्ब्रह्मलोके क्रममुक्तिस्थाने महीयते ॥५७॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र सरकं लोकविश्रुतम् ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामभिगम्य वृषध्वजम् । ७५
लभेत सर्वकामान्हि स्वर्गलोकं च गच्छति ।
तिस्रः कोट्यस्तु तीर्थानां सरके कुरुनन्दन ॥७६
रुद्रकोट्यां तथा कूपे ह्रदेषु च महीपते ।
इलास्पदं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ॥ ७७
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च दैवतानि पितॄनथ ।
न दुर्गतिमवाप्नोति वाजपेयं च विन्दति ॥ ७८
किंदाने च नरः स्नात्वा किंजप्ये च महीपते ।
अप्रमेयमवाप्नोति दानं जप्यं च भारत ॥ ७९
कलश्यां वार्युपस्पृश्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८०
सरकस्य तु पूर्वेण नारदस्य महात्मनः ।
तीर्थं कुरुकुलश्रेष्ठ अम्बाजन्मेति विश्रुतम् ॥ ८१
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा प्राणानुत्सृज्य भारत ।
नारदेनाभ्यनुज्ञातो लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् ॥८२
शुक्लपक्षे दशम्यां च पुण्डरीकं समाविशेत् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्पुण्डरीकफलं लभेत् ॥८३
ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रणाशिनी ॥ ८४
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम् ॥ ८५
ततो गच्छेत राजेन्द्र फलकीवनमुत्तमम् ।
तत्र देवाः सदा राजन्फलकीवनमाश्रिताः ॥ ८६
तपश्चरन्ति विपुलं बहुवर्षसहस्रकम् ।
दृषद्वत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ॥ ८७
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति भारत ।
तीर्थे च सर्वदेवानां स्नात्वा भरतसत्तम ॥ ८८
गोसहस्रस्य राजेन्द्र फलं विन्दति मानवः ।
पाणिखाते नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ८९
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति भारत ।
राजसूयमवाप्नोति ऋषिलोकं च विन्दति ॥ ९०
ततो गच्छेत राजेन्द्र मिश्रकं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थानि राजेन्द्र मिश्रितानि महात्मना ९१
व्यासेन नृपशार्दूल द्विजार्थमिति नः श्रुतम् ।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः॥ ९२
ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
मनोजवे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ९३
गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थे नरः शुचिः ।
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च पितॄन्देवांश्च पूरुषः ॥ ९४
स देव्या समनुज्ञातो गोसहस्रफलं लभेत् ।
कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत ॥९५
स्नाति वै नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता ९६
पुत्रशोकाभितप्तेन देहत्यागे कृता मतिः ।
ततो देवैस्तु राजेन्द्र पुनरुत्थापितस्तदा ॥ ९७
अभिगत्वा स्थलीं तस्य गोसहस्रफलं लभेत् ।
किंदत्तं कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च ॥ ९८
गच्छेत परमां सिद्धिमृणैर्मुक्तः कुरूद्वह ।
वेदीतीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ९९
अहश्च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे लोकविश्रुते ।
तयोः स्नात्वा नरव्याघ्र सूर्यलोकमवाप्नुयात् १००
मृगधूमं ततो गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां नृपसत्तम ॥ १
अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥ २
ततो वामनकं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम् ॥ ३
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ।
कुलंपुने नरः स्नात्वा पुनाति स्वकुलं ततः ॥ ४
पवनस्य ह्रदे स्नात्वा मरुतां तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र विष्णुलोके महीयते ॥ ५
अमराणां ह्रदे स्नात्वा समभ्यर्च्यामराधिपम् ।
अमराणां प्रभावेन स्वर्गलोके महीयते ॥ ६
शालिहोत्रस्य तीर्थे च शालिसूर्ये यथाविधि ।
स्नात्वा नरवरश्रेष्ठ गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ७
श्रीकुञ्जं च सरस्वत्यास्तीर्थं भरतसत्तम ।
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ८
ततो नैमिषकुञ्जं च समासाद्य कुरूद्वह ।
ऋषयः किल राजेन्द्र नैमिषेयास्तपस्विनः ॥ ९
तीर्थयात्रां पुरस्कृत्य कुरुक्षेत्रं गताः पुरा ।
ततः कुञ्जः सरस्वत्याः कृतो भरतसत्तम ॥ ११०
ऋषीणामवकाशः स्याद्यथा तुष्टिकरो महान् ।
तस्मिन्कुञ्जे नरः स्नात्वा अग्निष्टोमफलं लभेत्११
ततो गच्छेत धर्मज्ञ कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।
कन्यातीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥१२
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मणस्तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र वर्णावरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः ॥ १३
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम् ।
ततो गच्छेन्नरश्रेष्ठ सोमतीर्थमनुत्तमम् ॥ १४

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सोमलोकमवाप्नुयात् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततो गच्छेन्नराधिप ॥ ११५
यत्र मङ्कणकः सिद्धो महर्षिर्लोकविश्रुतः ।
पुरा मङ्कणको राजन्कुशाग्रेणेति नः श्रुतम्॥ १६
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ॥ १७
ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते तु स्थावरं जंगमं च यत् ।
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम् ॥ १८
ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ।
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप ॥ १९
नायं नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
तं प्रनृत्तं समासाद्य हर्षाविष्टेन चेतसा ।
सुराणां हितकामार्थमृषिं देवोऽभ्यभाषत ॥ १२०
भो भो महर्षे धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् ।
हर्षस्थानं किमर्थं वा तवाद्य मुनिपुंगव ॥ २१

ऋषिरुवाच ।

तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ।
किं न पश्यसि मे ब्रह्मन्कराच्छाकरसं स्रुतम्॥२२
यं दृष्ट्वा संप्रनृत्तोऽहं हर्षेण महतान्वितः ।
तं प्रहस्याब्रवीद्देव ऋषिं रागेण मोहितम् ॥ २३
अहं तु विस्मयं विप्र न गच्छामीति पश्य माम् ।
एवमुक्त्वा नरश्रेष्ठ महादेवेन धीमता ॥ २४
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वाङ्गुष्ठस्ताडितोऽनघ ।
ततो भस्मक्षताद्राजन्निर्गतं हिमसंनिभम् ॥ १२५
तद्दृष्ट्वा व्रीडितो राजन्स मुनिः पादयोर्गतः ।
नान्यद्देवात्परं मेने रुद्रात्परतरं महत् ॥ २६
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृक् ।
त्वया सर्वमिदं सृष्टं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २७
त्वमेव सर्वान्ग्रससि पुनरेव युगक्षये ।
देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया ॥ २८
त्वयि सर्वे प्रदृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ ।
सर्वस्त्वमसि लोकानां कर्ता कारयिता च ह ॥२९
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः ।
एवं स्तुत्वा महादेवमृषिर्वचनमब्रवीत् ॥ १३०
त्वत्प्रसादान्महादेव तपो मे न क्षरेत वै ।
ततो देवः प्रहृष्टात्मा ब्रह्मर्षिमिदमब्रवीत् ॥ ३१
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सह महामुने ॥ ३२
सप्तसारस्वते स्नात्वा अर्चयिष्यन्ति ये तु माम् ।
न तेषां दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ॥ ३३
सारस्वतं च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः ।
एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३४
ततस्त्वौशनसं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ १३५
कार्तिकेयश्च भगवांस्त्रिसंध्यं किल भारत ।
सांनिध्यमकरोन्नित्यं भार्गवप्रियकाम्यया ॥ ३६
कपालमोचनं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३७
अग्नितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नात्वा नरर्षभ ।
अग्निलोकमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ३८
विश्वामित्रस्य तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ।
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ ब्राह्मण्यमधिगच्छति ॥ ३९
ब्रह्मयोनिं समासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥ १४०
पुनात्यासप्तमं चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ४१
पृथूदकमिति ख्यातं कार्तिकेयस्य वै नृप ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ॥ ४२
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा ।
यत्किंचिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना ॥ ४३
तत्सर्वं नश्यते तत्र स्नातमात्रस्य भारत ।
अश्वमेधफलं चास्य स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ४४
पुण्यमाहुः कुरुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रात्सरस्वती ।
सरस्वत्याश्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथूदकम् ॥१४५
उत्तमं सर्वतीर्थानां यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ।
पृथूदके जप्यपरो नैव श्वो मरणं तपेत् ॥ ४६
गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महात्मना ।
एवं स नियतं राजन्नभिगच्छेत्पृथूदकम् ॥ ४७
पृथूदकात्तीर्थतमं नान्यत्तीर्थं कुरूद्वह ।
तन्मेध्यं तत्पवित्रं च पावनं च न संशयः ॥ ४८
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति येऽपि पापकृतो नराः ।
पृथूदके नरश्रेष्ठ एवमाहुर्मनीषिणः ॥ १४९

हिमसंनिभं अतिश्वेतमिक्षुविकारं खण्डशर्कराख्यम् ॥ २५ ॥ पृथूदके जप्यपरो यस्तनुं त्यजेत् तं श्वो मरणं पुनर्मरणं न तपेत्। यद्वा पूर्वेद्युरेव कृतजपं श्वोऽपि जीवितान्तं मरणं न तपेत्। एकरात्रेणैव सर्वपापविमोक्षो भवतीत्यर्थ ॥ ४६ ॥

मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् १५०
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं मेध्यं यथाक्रमम् ।
सरस्वत्यारुणायाश्च संगमं लोकविश्रुतम् ॥ ५१
त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः ५२
आसप्तमं कुलं चैव पुनाति भरतर्षभ ।
अर्धकीलं च तत्रैव तीर्थं कुरुकुलोद्वह ॥ ५३
विप्राणामनुकम्पार्थं दर्भिणा निर्मितं पुरा ।
व्रतोपनयनाभ्यां चाप्युपवासेन वाप्युत ॥ ५४
क्रियामन्त्रैश्च संयुक्तो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः ।
क्रियामन्त्रविहीनोऽपि तत्र स्नात्वा नरर्षभ ।
चीर्णव्रतो भवेद्विद्वान्दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥ ५५
समुद्राश्चापि चत्वारः समानीताश्च दर्भिणा ।
तेषु स्नातो नरश्रेष्ठ न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ ५६
फलानि गोसहस्राणां चतुर्णां विन्दते च सः ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ तीर्थं शतसहस्रकम् ॥ ५७
साहस्रकं च तत्रैव द्वे तीर्थे लोकविश्रुते ।
उभयोर्हि नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥५८
दानं वाप्युपवासो वा सहस्रगुणितं भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र रेणुकातीर्थमुत्तमम् ॥ ५९
तीर्थाभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ १६०
विमोचनमुपस्पृश्य जितमन्युर्जितेन्द्रियः ।
प्रतिग्रहकृतैर्दोषैः सर्वैः स परिमुच्यते ॥ ६१
ततः पञ्चवटीं गत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पुण्येन महता युक्तः सतां लोके महीयते ॥ ६२
यत्र योगेश्वरः स्थाणुः स्वयमेव वृषध्वजः ।
तमर्चयित्वा देवेशं गमनादेव सिध्यति ॥ ६३
तैजसं वारुणं तीर्थं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
यत्र ब्रह्मादिभिर्देवैरृषिभिश्च तपोधनैः ॥ ६४
सैनापत्येन देवानामभिषिक्तो गुहस्तदा ।
तैजसस्य तु पूर्वेण कुरुतीर्थं करूद्वह ॥ ६५
कुरुतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥ ६६
स्वर्गद्वारं ततो गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
स्वर्गलोकमवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ ६७
ततो गच्छेदनरकं तीर्थसेवी नराधिप ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ ६८
तत्र ब्रह्मा स्वयं नित्यं देवैः सह महीपते ।
अन्वास्ते पुरुषव्याघ्र नारायणपुरोगमैः ॥ ६९
सांनिध्यं तत्र राजेन्द्र रुद्रपत्न्याः कुरूद्वह ।
अभिगम्य च तां देवीं न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ ७०
तत्रैव च महाराज विश्वेश्वरमुमापतिम् ।
अभिगम्य महादेवं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ७१
नारायणं चाभिगम्य पद्मनाभमरिंदम ।
राजमानो महाराज विष्णुलोकं च गच्छति ॥७२
तीर्थेषु सर्वदेवानां स्नातः स पुरुषर्षभ ।
सर्वदुःखैः परित्यक्तो द्योतते शशिवन्नरः ॥ ७३
ततः स्वस्तिपुरं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ७४
पावनं तीर्थमासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति भारत ॥ ७५
गङ्गाह्रदश्च तत्रैव कूपश्च भरतर्षभ ।
तिस्रः कोट्यस्तु तीर्थानां तस्मिन्कूपे महीपते ७६
तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोकं प्रपद्यते ।
आपगायां नरः स्नात्वा अर्चयित्वा महेश्वरम् ७७
गाणपत्यमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।
ततः स्थाणुवटं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ७८
तत्र स्नात्वा स्थितो रात्रिं रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।
बदरीपाचनं गच्छेद्वसिष्ठस्याश्रमं गतः ॥ ७९
बदरीं भक्षयेत्तत्र त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
सम्यग्द्वादशवर्षाणि बदरीं भक्षयेत्तु यः ॥ १८०
त्रिरात्रोपोषितस्तेन भवेत्तुल्यो नराधिप ।
रुद्रमार्गं समासाद्य तीर्थसेवी नराधिप ॥ ८१
अहोरात्रोपवासेन शक्रलोके महीयते ।
एकरात्रं समासाद्य एकरात्रोषितो नरः ॥ ८२
नियतः सत्यवादी च ब्रह्मलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ८३
आदित्यस्याश्रमो यत्र तेजोराशेर्महात्मनः ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयित्वा विभावसुम्
आदित्यलोकं व्रजति कुलं चैव समुद्धरेत् ।
सोमतीर्थे नरः स्नात्वा तीर्थसेवी नराधिप ॥ ८५
सोमलोकमवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ दधीचस्य महात्मनः ॥ ८६
तीर्थं पुण्यतमं राजन्पावनं लोकविश्रुतम् ।
यत्र सारस्वतो यातः सोऽङ्गिरास्तपसो निधिः ८७
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत् ।
सारस्वतीं गतिं चैव लभते नात्र संशयः ॥ ८८
ततः कन्याश्रमं गच्छेन्नियतो ब्रह्मचर्यवान् ।
त्रिरात्रोपोषितो राजन्नियतो नियताशनः ॥ ८९

लभेत्कन्याशतं दिव्यं स्वर्गलोकं च गच्छति ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ तीर्थं संनिहतीमपि ॥ ९०
तत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
मासि मासि समायान्ति पुण्येन महतान्विताः ॥
संनिहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
अश्वमेधशतं तेन तत्रेष्टं शाश्वतं भवेत् ॥ ९२
पृथिव्यां यानि तीर्थानि अन्तरिक्षचराणि च ।
नद्यो ह्रदास्तडागाश्च सर्वप्रस्रवणानि च ॥ ९३
उदपानानि वाप्यश्च तीर्थान्यायतनानि च ।
निःसंशयममावास्यां समेष्यन्ति नराधिप ॥ ९४
मासि मासि नरव्याघ्र संनिहत्यां न संशयः ।
तीर्थसंनिहनादेव संनिहत्येति विश्रुता ॥ ९५
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोके महीयते ।
अमावास्यां तु तत्रैव राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ९६
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
अश्वमेधसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ॥ ९७
स्नात एव समाप्नोति कृत्वा श्राद्धं च मानवः ।
यत्किंचिद्दुष्कृतं कर्म स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥ ९८
स्नातमात्रस्य तत्सर्वं नश्यते नात्र संशयः ।
पद्मवर्णेन यानेन ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥ ९९
अभिवाद्य ततो यक्षं द्वारपालं मचक्रुकम् ।
कोटितीर्थमुपस्पृश्य लभेद्बहु सुवर्णकम् ॥ २००
गङ्गाह्रदश्च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ।
तत्र स्नायीत धर्मज्ञ ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दति मानवः ।
पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ॥ २
त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ।
पांसवोपि कुरुक्षेत्राद्वायुना समुदीरिताः ॥ ३

---

संनिहत्यां कुरुक्षेत्रे अस्यैव नामान्तरं संनिहतीति ॥ ९२ ॥ तन्निर्वक्ति पृथिव्यामित्यादिना । अत्र उपक्रमोपसंहारयोः कुरुक्षेत्रमात्रपरत्वात्तदेव अङ्गितीर्थान्तराणि तु फलवत्संनिधावफलं तदङ्गमिति न्यायेन तत्प्राप्तौ अङ्गभूतानि । तेषामपि पृथक् फलश्रवणं तु गुणफलन्यायेन ज्ञेयं । यथायोगाङ्गानामपि यमनियमादीनां अहिंसाप्रतिष्ठादीनां तत्संनिधौ वैरत्याग इत्यादिना पृथक् फलं स्मर्यते तद्वदिति भावः ॥ ९३॥ पृथिव्यामिति । नैमिषं नैमिषारण्ये कृतं पुण्यं पृथिव्यामेव संततिसंपत्तिसार्वभौमादिपदप्राप्तिहेतुरित्यर्थः । अन्तरिक्षे सूर्यचन्द्रादिमार्गे नक्षत्रादिचक्रे पुष्करं प्रापयतीत्यर्थः ॥ २०२ ॥ त्रयाणां इन्द्रादिलोकेन सह त्रयाणामुपरि ब्रह्मलोके । कुरुक्षेत्रसेवी क्रममुक्तिस्थानं प्राप्नोतीत्यर्थः । नयन्ति परमां गतिमिति मुक्तिफलदर्शकवाक्यशेषात् । अत्र कुरुक्षेत्रपदेन ' काश्येव । 'काशीश्वरस्य तीर्थेषु स्नात्वा भरतसत्तम । सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते' इत्यनेन समानार्थत्वात् । तथा च पाठक्रमादर्थक्रमस्य बलवत्त्वात् ' पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्'इत्यतः परं 'ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे' इत्ययं ग्रन्थो द्रष्टव्यः । अन्यथा तृतीयलोकस्यानुक्तेस्त्रयाणामित्यसंगतं स्यात् । त्रिविष्टपे इत्यध्याहारेण वा वाक्यपूरणं स्यात् । तच्चायुक्तं । श्रौतार्थसंभवे दर्शिता चाविमुक्तेपि कुरुक्षेत्रपदस्य श्रौतीरूढिरविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रमिति जाबालोपनिषदि न चोपक्रमोपसंहारैकरूप्येण प्रसिद्धकुरुक्षेत्रस्य प्राकरणिकत्वेन तीर्थान्तरवद्वाराणस्यास्तत्प्रकरणपठितत्वात्तदङ्गत्वं स्यादिति वाच्यं । प्रकरणाल्लिङ्गस्य बलीयस्त्वात् । तथा हि । 'ते वसन्ति त्रिविष्टपे स्वर्गे लोके महीयते' इत्यादिवाक्यशेषात्स्वर्गप्राप्तिरेव कुरुक्षेत्रफलमवगम्यते । न चात्रत्यं त्रिविष्टपादिपदं ब्रह्मलोकपरं कर्तुं शक्यं । ब्रह्मवेदी कुरुक्षेत्रमिति वाक्यशेषविरोधात् । तत्र च वेदीशब्देन तस्य कर्मभूमित्वावगमात्'तेषां कुरुक्षेत्रं वेदिरासीत्' इति तैत्तिरीयकब्राह्मणात् । 'तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास' इति शतपथश्रुतेश्च न च कर्मभूमेर्विद्याफलप्रदत्वं युज्यते । 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः'इति तयोः फलभेदश्रवणात् । पितृलोकः स्वर्गलोकः देवलोको ब्रह्मलोकः । वाराणस्यास्तु ज्ञानभूमित्वं सर्वश्रुतिप्रसिद्धं । एतदेवात्र । 'पांसवोपि कुरुक्षेत्राद्वायुना समुदीरिताः । अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ' इति प्रदर्श्य ' दक्षिणेन सरस्वत्या उत्तरेण दृषद्वतीम् । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे'इत्यनन्तरश्लोकेन प्रसिद्धकुरुक्षेत्रफलं प्रदर्श्यते । न चैतदेव पूर्वश्लोकेन स्तूयत इति वाच्यं। श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धिबलात्तस्य भूतार्थवादत्वे संभवत्यभूतार्थवादत्वोपगमस्यायोगात् वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु । 'छायासूची तापसूची मुख्यसूचीति च त्रिकं । त्रिकोणं तपसा पूतं वाराणस्याः समं कृतं। गतास्तेन त्रिकोणेन ये केचिदिह जंतवः। वायवः पांसवो वापि तेपि मुक्तिं परंगताः ' इति भंग्यंतरेण पूर्वश्लोकार्थस्य प्रत्यभिज्ञानात् तथा च यद्यपि काश्याः कुरुक्षेत्राङ्गत्वं प्रकरणात्प्रसक्तं तथापि योग्यतया फलतारतम्यलिङ्गान्न तत्संभवति । सांनिध्यात्तु परस्पराकांक्षादिकमुत्थाप्य तीर्थान्तरशेषीभूतस्यापि कुरुक्षेत्रस्य काशीशेषत्वं ज्ञेयं । तथा च वाक्यात् दुर्बलोपि संनिधिः 'आनर्थक्यप्रतिहतानां विपरीतं बलाबलम्' इति न्यायेन बलवत्तया स्वर्गलोके महीयत इति वाक्यावगतमपि कुरुक्षेत्रफलं तिरोधाय 'प्रतितिष्ठन्ति वै य एता रात्रीरुपयन्ति' इत्यादौ रात्रिसत्रस्य प्रति-

अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ।
दक्षिणेन सरस्वत्या उत्तरेण दृषद्वतीम् ॥ ४
ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ।
कुरुक्षेत्रे गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ॥ ५
अप्येकां वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ब्रह्मवेदी कुरुक्षेत्रं पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम् ॥ ६
तस्मिन्वसन्ति ये मर्त्या न ते शोच्याः कथंचन ७
तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ २०८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि पुलस्त्यतीर्थयात्रायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

पुलस्त्य उवाच ।
ततो गच्छेन्महाराज धर्मतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र धर्मो महाभागस्तप्तवानुत्तमं तपः ॥ १
तेन तीर्थं कृतं पुण्यं स्वेन नाम्ना च विश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्धर्मशीलः समाहितः ॥ २
आसप्तमं कुलं चैव पुनीते नात्र संशयः ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ज्ञानपावनमुत्तमम् ॥ ३
अग्निष्टोममवाप्नोति मुनिलोकं च गच्छति ।
सौगन्धिकवनं राजंस्ततो गच्छेत मानवः ॥ ४
तत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
सिद्धचारणगन्धर्वाः किंनराश्च महोरगाः ॥ ५
तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ततश्चापि सरिच्छ्रेष्ठा नदीनामुत्तमा नदी ॥ ६
प्लक्षादेवी स्मृता राजन्पुण्यादेवी सरस्वती ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निःसृते जले ॥ ७
अर्चयित्वा पितॄन्देवानश्वमेधफलं लभेत् ।
ईशानाध्युषितं नाम तत्र तीर्थं सुदुर्लभम् ॥ ८
षट्सु शम्यानिपातेषु वल्मीकादिति निश्चयः ।
कपिलानां सहस्रं च वाजिमेधं च विन्दति ॥ ९
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र दृष्टमेतत्पुरातने ।
सुगन्धां शतकुम्भां च पञ्चयक्षां च भारत ॥ १०
अभिगम्य नरश्रेष्ठ स्वर्गलोके महीयते ।
त्रिशूलखातं तत्रैव तीर्थमासाद्य भारत ॥ ११
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ।
गाणपत्यं च लभते देहं त्यक्त्वा न संशयः ॥ १२
ततो गच्छेत राजेन्द्र देव्याः स्थानं सुदुर्लभम् ।
शाकंभरीति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥ १३
दिव्यं वर्षसहस्रं हि शाकेन किल सुव्रता ।
आहारं सा कृतवती मासि मासि नराधिप॥ १४
ऋषयोऽभ्यागतास्तत्र देव्या भक्त्या तपोधनाः ।
आतिथ्यं च कृतं तेषां शाकेन किल भारत॥ १५
ततः शाकंभरीत्येव नाम तस्याः प्रतिष्ठितम् ।
शाकंभरीं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १६
त्रिरात्रमुषितः शाकं भक्षयित्वा नरः शुचिः ।
शाकाहारस्य यत्किंचिद्वर्षैर्द्वादशभिः कृतम् ॥ १७
तत्फलं तस्य भवति देव्याश्छन्देन भारत ।
ततो गच्छेत्सुवर्णाख्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १८

छाशेषितामिव पांसवोपि कुरुक्षेत्र इत्यर्थवादेन मुक्तिफलशेषितां अविमुक्तसंज्ञस्य कुरुक्षेत्रस्य व्यवस्थापयन् सहैकवाक्यतां गत्वा प्रसिद्धकुरुक्षेत्रस्याविमुक्तशेषतां गमयति । तथा चायं पांसवोपीत्यादिश्लोकद्वयार्थः । ये परमगतिप्रदां काशीं गन्तुमिच्छन्ति ते कुरुक्षेत्रे वसेयुरिति । ते वसन्ति त्रिविष्टपे इति तु योगाङ्गफलवद्गुणवफलमिति प्रागुक्तं न विस्मर्तव्यं । तत्सिद्धं सर्वेषां तीर्थानां कुरुक्षेत्रप्रापकत्वं कुरुक्षेत्रस्य तु काशीप्रापकत्वमिति ॥ २०३ ॥ इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

८४

तत इति ॥ १ ॥ शम्या मुद्गराकृतिर्यज्ञोपकरणविशेषः स बलवता क्षिप्तो यावद्दूरं पतेत् तावान्देशः शम्यानिपातः तेषु षट्सु । संपेति पाठे संपतत्यनयेति व्युत्पत्तिः संपा ॥ ९ ॥ पुरातने भविष्यपुराणादौ ॥ १० ॥ छन्देन इच्छया ॥ १८ ॥

तत्र विष्णुः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा ।
वरांश्च सुबहूँल्लेभे दैवतेषु सुदुर्लभान् ॥ १९
उक्तश्च त्रिपुरघ्नेन परितुष्टेन भारत ।
अपि च त्वं प्रियतरो लोके कृष्ण भविष्यसि २०
त्वन्मुखं च जगत्सर्वं भविष्यति न संशयः ।
तत्राभिगम्य राजेन्द्र पूजयित्वा वृषध्वजम् ॥ २१
अश्वमेधमवाप्नोति गाणपत्यं च विन्दति ।
धूमावतीं ततो गच्छेत्त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ २२
मनसा प्रार्थितान्कामाँल्लभते नात्र संशयः ।
देव्यास्तु दक्षिणार्धेन रथावर्तो नराधिप ॥ २३
तत्रारोहेत धर्मज्ञ श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
महादेवप्रसादाद्धि गच्छेत परमां गतिम् ॥ २४
प्रदक्षिणमुपावृत्य गच्छेत भरतर्षभ ।
धारां नाम महाप्राज्ञः सर्वपापप्रमोचनीम् ॥ २५
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र न शोचति नराधिप ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ नमस्कृत्य महागिरिम् ॥ २६
स्वर्गद्वारेण यत्तुल्यं गङ्गाद्वारं न संशयः ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत कोटितीर्थे समाहितः ॥ २७
पुण्डरीकमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।
उष्यैकां रजनीं तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥ २८
सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च शक्रावर्ते च तर्पयन् ।
देवान्पितॄंश्च विधिवत्पुण्ये लोके महीयते ॥ २९
ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ३०
कपिलावटं ततो गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ।
उपोष्य रजनीं तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३१
नागराजस्य राजेन्द्र कपिलस्य महात्मनः ।
तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ ३२
तत्राभिषेकं कुर्वीत नागतीर्थे नराधिप ।
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः ॥ ३३
ततो ललितकं गच्छेच्छान्तनोस्तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ ३४
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नाति यः संगमे नरः ।
दशाश्वमेधानाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ३५
ततो गच्छेत राजेन्द्र सुगन्धं लोकविश्रुतम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३६
रुद्रावर्तं ततो गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोके च गच्छति॥३७
गङ्गायाश्च नरश्रेष्ठ सरस्वत्याश्च संगमे ।
स्नात्वाश्वमेधं प्राप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ३८
भद्रकर्णेश्वरं गत्वा देवमर्च्य यथाविधि ।
न दुर्गतिमवाप्नोति नाकपृष्ठे च पूज्यते ॥ ३९
ततः कुब्जाम्रके गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ।
गोसहस्रमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥४०
अरुंधतीवटं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ।
सामुद्रकमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ४१
अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
गोसहस्रफलं विद्यात्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ४२
ब्रह्मावर्तं ततो गच्छेद्ब्रह्मचारी समाहितः ।
अश्वमेधमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ ४३
यमुनाप्रभवं गत्वा समुपस्पृश्य यामुनम् ।
अश्वमेधफलं लब्ध्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ ४४
दर्वीसंक्रमणं प्राप्य तीर्थं त्रैलोक्यपूजितम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ४५
सिन्धोश्च प्रभवं गत्वा सिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
तत्रोष्य रजनीः पञ्च विन्देद्बहु सुवर्णकम् ॥ ४६
अथ वेदीं समासाद्य नरः परमदुर्गमाम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ४७
ऋषिकुल्यां समासाद्य वासिष्ठं चैव भारत ।
वासिष्ठीं समतिक्रम्य सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ ४८
ऋषिकुल्यां समासाद्य नरः स्नात्वा विकल्मषः ।
देवान्पितॄंश्चार्चयित्वा ऋषिलोकं प्रपद्यते ॥ ४९
यदि तत्र वसेन्मासं शाकाहारो नराधिप ।
भृगुतुङ्गं समासाद्य वाजिमेधफलं लभेत् ॥ ५०
गत्वा वीरप्रमोक्षं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
कृत्तिकामघयोश्चैव तीर्थमासाद्य भारत ॥ ५१
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलमाप्नोति मानवः ।
तत्र संध्यां समासाद्य विद्यातीर्थमनुत्तमम् ॥ ५२
उपस्पृश्य च वै विद्यां यत्र तत्रोपपद्यते ।
महाश्रमे वसेद्रात्रिं सर्वपापप्रमोचने ॥ ५३
एककालं निराहारो लोकानावसते शुभान् ।
षष्ठकालोपवासेन मासमुष्य महालये ॥ ५४
सर्वपापविशुद्धात्मा विन्देद्बहुसुवर्णकम् ।
दशापरान्दशपूर्वान्नरानुद्धरते कुलम् ॥ ५५
अथ वेतसिकां गत्वा पितामहनिषेविताम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति गच्छेदौशनसीं गतिम् ॥ ५६
अथ सुंदरिकातीर्थं प्राप्य सिद्धनिषेवितम् ।
रूपस्य भागी भवति दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥ ५७

त्वन्मुखं त्वत्प्रधानम् ॥ २१ ॥

औशनसीं गतिं शुक्रत्वम् ॥ ५६ ॥

ततो वै ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पद्मवर्णेन यानेन ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥ ५८
ततस्तु नैमिषं गच्छेत्पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ।
तत्र नित्यं निवसति ब्रह्मा देवगणैः सह ॥ ५९
नैमिषं मृगयानस्य पापस्यार्धं प्रणश्यति ।
प्रविष्टमात्रस्तु नरः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६०
तत्र मासं वसेद्धीरो नैमिषे तीर्थतत्परः ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि नैमिषे ६१
कृताभिषेकस्तत्रैव नियतो नियताशनः ।
गवां मेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति भारत ॥ ६२
पुनात्यासप्तमं चैव कुलं भरतसत्तम ।
यस्त्यजेन्नैमिषे प्राणानुपवासपरायणः ॥ ६३
स मोदेत्सर्वलोकेषु एवमाहुर्मनीषिणः ।
नित्यं मेध्यं च पुण्यं च नैमिषं नृपसत्तम ॥ ६४
गङ्गोद्भेदं समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत्सदा ॥ ६५
सरस्वतीं समासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥ ६६
ततश्च बाहुदां गच्छेद्ब्रह्मचारी समाहितः ।
तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते ॥ ६७
देवसत्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति कौरव ।
ततः क्षीरवतीं गच्छेत्पुण्यां पुण्यतरैर्वृताम् ॥ ६८
पितृदेवार्चनपरो वाजपेयमवाप्नुयात् ।
विमलाशोकमासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ६९
तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते ।
गोप्रतारं ततो गच्छेत्सरय्वातीर्थमुत्तमम् ॥ ७०
यत्र रामो गतः स्वर्गं सभृत्यबलवाहनः ।
देहं त्यक्त्वा महाराज तस्य तीर्थस्य तेजसा ७१
रामस्य च प्रसादेन व्यवसायाच्च भारत[1] ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गोप्रतारे नराधिप ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।
रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोमत्यां कुरुनन्दन ॥ ७३
अश्वमेधमवाप्नोति पुनाति च कुलं नरः ।
शतसाहस्रकं तीर्थं तत्रैव भरतर्षभ ॥ ७४
तत्रोपस्पर्शनं कृत्वा नियतो नियताशनः ।
गोसहस्रफलं पुण्यं प्राप्नोति भरतर्षभ ॥ ७५
ततो गच्छेत राजेन्द्र भर्तृस्थानमनुत्तमम् ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७६
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा अर्चयित्वा गुहं नृप ।
गोसहस्रफलं विद्यात्तेजस्वी च भवेन्नरः ॥ ७७
ततो वाराणसीं गत्वा अर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
कपिलाह्रदे नरः स्नात्वा राजसूयमवाप्नुयात् ॥ ७८
अविमुक्तं समासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह ।
दर्शनाद्देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ७९
प्राणानुत्सृज्य तत्रैव मोक्षं प्राप्नोति मानवः ।
मार्कण्डेयस्य राजेन्द्र तीर्थमासाद्य दुर्लभम् ॥ ८०
गोमतीगङ्गयोश्चैव संगमे लोकविश्रुते ।
अग्निष्टोममवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ८१
ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ८२
तत्राक्षयवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
तत्र दत्तं पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमुच्यते ॥ ८३
महानद्यामुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ८४
ततो ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोभितम् ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति प्रभातामेव शर्वरीम् ॥ ८५
ब्रह्मणा तत्र सरसि यूपश्रेष्ठः समुच्छ्रितः ।
यूपं प्रदक्षिणं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ ८६
ततो गच्छेत राजेन्द्र धेनुकं लोकविश्रुतम् ।
एकरात्रोषितो राजन्प्रयच्छेत्तिलधेनुकाम् ॥ ८७
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं व्रजेद्ध्रुवम् ।
तत्र चिह्नं महद्राजन्नद्यापि सुमहद्भृशम् ॥ ८८
कपिलायाः सवत्सायाश्चरन्त्याः पर्वते कृतम् ।
सवत्सायाः पदानि स्म दृश्यन्तेऽद्यापि भारत ८९
तेषूपस्पृश्य राजेन्द्र पदेषु नृपसत्तम ।
यत्किंचिदशुभं कर्म तत्प्रणश्यति भारत ॥ ९०
ततो गृध्रवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य धीमतः ।
स्नायीत भस्मना तत्र अभिगम्य वृषध्वजम् ॥ ९१
ब्राह्मणेन भवेच्चीर्णं व्रतं द्वादशवार्षिकम् ।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वपापं प्रणश्यति ॥ ९२
उद्यन्तं च ततो गच्छेत्पर्वतं गीतनादितम् ।
सावित्र्यास्तु पदं तत्र दृश्यते भरतर्षभ ॥ ९३
तत्र संध्यामुपासीत ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
तेन ह्युपास्ता भवति संध्या द्वादशवार्षिकी ॥ ९४
योनिद्वारं च तत्रैव विश्रुतं भरतर्षभ ।
तत्राभिगम्य मुच्येत पुरुषो योनिसंकटात् ॥ ९५
कृष्णशुक्लावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः ।
पुनात्यासप्तमं राजन्कुलं नास्त्यत्र संशयः ॥ ९६

[1] व्यवसायात् निश्चयात् ॥ ७२ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ९७
ततः फल्गुं व्रजेद्राजंस्तीर्थसेवी नराधिप ।
अश्वमेधमवाप्नोति सिद्धिं च महतीं व्रजेत् ॥ ९८
ततो गच्छेत राजेन्द्र धर्मप्रस्थं समाहितः ।
तत्र धर्मो महाराज नित्यमास्ते युधिष्ठिर ॥ ९९
तत्र कूपोदकं कृत्वा तेन स्नातः शुचिस्तथा ।
पितॄन्देवांस्तु संतर्प्य मुक्तपापो दिवं व्रजेत् ॥ १००
मतङ्गस्याश्रमस्तत्र महर्षेर्भावितात्मनः ।
तं प्रविश्याश्रमं श्रीमच्छ्रमशोकविनाशनम् ॥ १
गवामयनयज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
धर्मं तत्राभिसंस्पृश्य वाजिमेधमवाप्नुयात् ॥ २
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मस्थानमनुत्तमम् ।
तत्राभिगम्य राजेन्द्र ब्रह्माणं पुरुषर्षभ ॥ ३
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दति मानवः ।
ततो राजगृहं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ॥ ४
उपस्पृश्य ततस्तत्र कक्षीवानिव मोदते ।
यक्षिण्या नैत्यकं तत्र प्राश्नीत पुरुषः शुचिः ॥ ५
यक्षिण्यास्तु प्रसादेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
मणिनागं ततो गत्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ६
तैर्थिकं भुञ्जते यस्तु मणिनागस्य भारत ।
दष्टस्याशीविषेणापि न तस्य क्रमते विषम् ॥ ७
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ।
ततो गच्छेत ब्रह्मर्षेर्गौतमस्य वनं प्रियम् ॥ ८
अहल्याया ह्रदे स्नात्वा व्रजेत परमां गतिम् ।
अभिगत्वाश्रमं राजन्विन्दते श्रियमात्मनः ॥ ९
तत्रोदपानं धर्मज्ञ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिषेकं कृत्वा तु वाजिमेधमवाप्नुयात् ॥ ११०
जनकस्य तु राजर्षेः कूपस्त्रिदशपूजितः ।
तत्राभिषेकं कृत्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ११
ततो विनशनं गच्छेत्सर्वपापप्रमोचनम् ।
वाजपेयमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ १२
गण्डकीं तु समासाद्य सर्वतीर्थजलोद्भवाम् ।
वाजपेयमवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥ १३
ततो विशल्यामासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम् ।
अग्निष्टोममवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ १४
ततोऽधिवङ्गं धर्मज्ञ समाविश्य ततो वनम् ।
गुह्यकेषु महाराज मोदते नात्र संशयः ॥ १५
कम्पनां तु समासाद्य नदीं सिद्धनिषेविताम् ।
पुण्डरीकमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ १६
अथ माहेश्वरा धारां समासाद्य धराधिप ।
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ १७
दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नराधिप ।
न दुर्गतिमवाप्नोति वाजिमेधं च विन्दति ॥ १८
अथ सोमपदं गच्छेद्ब्रह्मचारी समाहितः ।
माहेश्वरपदे स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥ १९
तत्र कोटी तु तीर्थानां विश्रुता भरतर्षभ ।
कूर्मरूपेण राजेन्द्र ह्यसुरेण दुरात्मना ॥ १२०
ह्रियमाणा हृता राजन्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत तीर्थकोट्यां युधिष्ठिर ॥ २१
पुण्डरीकमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र स्थानं नारायणस्य च ॥ २२
सदा संनिहितो यत्र विष्णुर्वसति भारत ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ २३
आदित्या वसवो रुद्रा जनार्दनमुपासते ।
शालग्राम इति ख्यातो विष्णुरद्भुतकर्मकः ॥ २४
अभिगम्य त्रिलोकेशं वरदं विष्णुमव्ययम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥ २५
तत्रोदपानं धर्मज्ञ सर्वपापप्रमोचनम् ।
समुद्रास्तत्र चत्वारः कूपे संनिहिताः सदा ॥ २६
तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र न दुर्गतिमवाप्नुयात् ।
अभिगम्य महादेवं वरदं रुद्रमव्ययम् ॥ २७
विराजति यथा सोमो मेघमुक्तो नराधिप ।
जातिस्मरमुपस्पृश्य शुचिः प्रयतमानसः ॥ २८
जातिस्मरत्वमाप्नोति स्नात्वा तत्र न संशयः ।
माहेश्वरपुरं गत्वा अर्चयित्वा वृषध्वजम् ॥ २९
ईप्सितांल्लभते कामानुपवासान्न संशयः ।
ततस्तु वामनं गत्वा सर्वपापप्रमोचनम् ॥ १३०
अभिगम्य हरिं देवं न दुर्गतिमवाप्नुयात् ।
कुशिकस्याश्रमं गच्छेत्सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ३१
कौशिकीं तत्र गच्छेत महापापप्रणाशिनीम् ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३२
ततो गच्छेत राजेन्द्र चम्पकारण्यमुत्तमम् ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३३
अथ जेष्ठिलमासाद्य तीर्थं परमदुर्लभम् ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३४
तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह महाद्युतिम् ।
मित्रावरुणयोर्लोकानाप्नोति पुरुषर्षभ ॥ ३५

नित्यकं नैवेद्यं नैत्यकं च तदेव ॥ ५ ॥

त्रिरात्रोपोषितस्तत्र अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
कन्यासंवेद्यमासाद्य नियतो नियताशनः ॥ ३६
मनोः प्रजापतेर्लोकानाप्नोति पुरुषर्षभ ।
कन्यायां ये प्रयच्छन्ति दानमण्वपि भारत ॥ ३७
तदक्षय्यमिति प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः ।
ततो निर्वीरमासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ३८
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ।
ये तु दानं प्रयच्छन्ति निर्वीरासंगमे नराः ॥ ३९
ते यान्ति नरशार्दूल शक्रलोकमनामयम् ।
तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१४०
तत्राभिषेकं कुर्वाणो वाजपेयमवाप्नुयात् ।
देवकूटं समासाद्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ ४१
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र कौशिकस्य मुनेर्ह्रदम् ॥ ४२
यत्र सिद्धिं परां प्राप्तो विश्वामित्रोथ कौशिकः ।
तत्र मासं वसेद्वीर कौशिक्यां भरतर्षभ ॥ ४३
अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तन्मासेनाधिगच्छति ।
सर्वतीर्थवरे चैव यो वसेत महाह्रदे ॥ ४४
न दुर्गतिमवाप्नोति विन्द्याद्बहु सुवर्णकम् ।
कुमारमभिगम्याथ वीराश्रमनिवासिनम् ॥ ४५
अश्वमेधमवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ।
अग्निधारां समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ४६
तत्राभिषेकं कुर्वाणो ह्यग्निष्टोममवाप्नुयात् ।
अधिगम्य महादेवं वरदं विष्णुमव्ययम् ॥ ४७
पितामहसरो गत्वा शैलराजसमीपतः ।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो ह्यग्निष्टोममवाप्नुयात् ॥ ४८
पितामहस्य सरसः प्रस्रुता लोकपावनी ।
कुमारधारा तत्रैव त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ४९
यत्र स्नात्वा कृतार्थोस्मीत्यात्मानमवगच्छति ।
षष्ठकालोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १५०
ततो गच्छेत धर्मज्ञ तीर्थसेवनतत्परः ।
शिखरं वै महादेव्या गौर्यास्त्रैलोक्यविश्रुतम् ५१
समारुह्य नरश्रेष्ठ स्तनकुण्डेषु संविशेत् ।
स्तनकुण्डमुपस्पृश्य वाजपेयफलं लभेत् ॥ ५२
तत्राभिषेकं कुर्वाणः पितृदेवार्चने रतः ।
हयमेधमवाप्नोति शक्रलोकं च गच्छति ॥ ५३
ताम्रारुणं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ।
अश्वमेधमवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ५४
नन्दिन्यां च समासाद्य कूपं देवनिषेवितम् ।
नरमेधस्य यत्पुण्यं तदाप्नोति नराधिप ॥ ५५
कालिकासंगमे स्नात्वा कौशिक्यरुणयोर्गतः ।
त्रिरात्रोपोषितो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५६
उर्वशीतीर्थमासाद्य ततः सोमाश्रमं बुधः ।
कुम्भकर्णाश्रमं गत्वा पूज्यते भुवि मानवः ॥ ५७
कोकामुखमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी यतव्रतः ।
जातिस्मरत्वमाप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥ ५८
प्राङ्नदीं च समासाद्य कृतात्मा भवति द्विजः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा शक्रलोकं च गच्छति ॥ ५९
ऋषभद्वीपमासाद्य मेध्यं क्रौञ्चनिषूदनम् ।
सरस्वत्यामुपस्पृश्य विमानस्थो विराजते ॥ १६०
औद्दालकं महाराज तीर्थं मुनिनिषेवितम् ।
तत्राभिषेकं कृत्वा वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६१
धर्मतीर्थं समासाद्य पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम् ।
वाजपेयमवाप्नोति विमानस्थश्च पूज्यते ॥ ६२
अथ चम्पां समासाद्य भागीरथ्यां कृतोदकः ।
दण्डार्तमभिगत्वा तु गोसहस्रफलं लभेत् ॥१६३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थ० पुलस्त्यतीर्थयात्रायां
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

पुलस्त्य उवाच ।
अथ संध्यां समासाद्य संवेद्यं तीर्थमुत्तमम् ।
उपस्पृश्य नरो विद्यां लभते नात्र संशयः ॥ १
रामस्य च प्रभावेण तीर्थं राजन्कृतं पुरा ।
तल्लौहित्यं समासाद्य विन्द्याद्बहु सुवर्णकम् ॥ २
करतोयां समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
अश्वमेधमवाप्नोति प्रजापतिकृतो विधिः ॥ ३
गङ्गायास्तत्र राजेन्द्र सागरस्य च संगमे ।
अश्वमेधं दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ४
गङ्गायास्त्वपरं पारं प्राप्य यःस्नाति मानवः ।
त्रिरात्रमुषितो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५
ततो वैतरणीं गच्छेत्सर्वपापप्रमोचनीम् ।
विरजं तीर्थमासाद्य विराजति यथा शशी ॥ ६
प्रतरेच्च कुलं पुण्यं सर्वपापं व्यपोहति ।
गोसहस्रफलं लब्ध्वा पुनाति स्वकुलं नरः ॥ ७
शोणस्य ज्योतिरथ्यायाः संगमे नियतः शुचिः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ८
शोणस्य नर्मदायाश्च प्रभेदे कुरुनन्दन ।
वंशगुल्म उपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत् ॥ ९
ऋषभं तीर्थमासाद्य कोशलायां नराधिप ।
वाजपेयमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ १०
गोसहस्रफलं विन्द्यात्कुलं चैव समुद्धरेत् ।
कोशलां तु समासाद्य कालतीर्थमुपस्पृशेत् ॥ ११
वृषभैकादशफलं लभते नात्र संशयः ।
पुष्पवत्यामुपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ १२
गोसहस्रफलं लब्ध्वा पुनाति स्वकुलं नृप ।
ततो बदरिकातीर्थे स्नात्वा भरतसत्तम ॥ १३
दीर्घमायुरवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ।
तथा चम्पां समासाद्य भागीरथ्यां कृतोदकः १४
दण्डाख्यमभिगम्यैव गोसहस्रफलं लभेत् ।
लपेटिकां ततो गच्छेत्पुण्यां पुण्योपशोभिताम् १५
वाजपेयमवाप्नोति देवैः सर्वैश्च पूज्यते ।
ततो महेन्द्रमासाद्य जामदग्न्यनिषेवितम् ॥ १६
रामतीर्थे नरः स्नात्वा अश्वमेधफलं लभेत् ।
मतङ्गस्य तु केदारस्तत्रैव कुरुनन्दन । १७
तत्र स्नात्वा कुरुश्रेष्ठ गोसहस्रफलं लभेत् ।
श्रीपर्वतं समासाद्य नदीतीरमुपस्पृशेत् ॥ १८
अश्वमेधमवाप्नोति पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युतिः ॥ १९
न्यवसत्परमप्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैः सह ।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः ॥ २०
अश्वमेधमवाप्नोति परां सिद्धिं च गच्छति ।
ऋषभं पर्वतं गत्वा पाण्ड्ये दैवतपूजितम् ।
वाजपेयमवाप्नोति नाकपृष्ठे च मोदते ॥ २१
ततो गच्छेत कावेरीं वृतामप्सरसां गणैः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥२२
ततस्तीरे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशेत् ।
तत्तोयं स्पृश्य राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३
अथ गोकर्णमासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
समुद्रमध्ये राजेन्द्र सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ २४
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
भूतयक्षपिशाचाश्च किंनराः समहोरगाः ॥ २५
सिद्धचारणगन्धर्वमानुषाः पन्नगास्तथा ।
सरितः सागराः शैला उपासन्त उमापतिम् २६
तत्रेशानं समभ्यर्च्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
अश्वमेधमवाप्नोति गाणपत्यं च विन्दति ॥ २७
उष्य द्वादशरात्रं तु पूतात्मा च भवेन्नरः ।
तत एव च गायत्र्याः स्थानं त्रैलोक्यपूजितम् ॥
त्रिरात्रमुषितस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ।
निदर्शनं च प्रत्यक्षं ब्राह्मणानां नराधिप ॥ २९
गायत्रीं पठते यस्तु योनिसंकरजस्तथा ।
गाथा च गाथिका चापि तस्य संपद्यते नृप ३०
अब्राह्मणस्य सावित्रीं पठतस्तु प्रणश्यति ।
संवर्तस्य तु विप्रर्षेर्वापीमासाद्य दुर्लभाम् ॥ ३१
रूपस्य भागी भवति सुभगश्च प्रजायते ।
ततो वेणां समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥३२
मयूरहंससंयुक्तं विमानं लभते नरः ।
ततो गोदावरीं प्राप्य नित्यं सिद्धनिषेविताम् ३३
गवां मेधमवाप्नोति वासुकेर्लोकमुत्तमम् ।
वेणायाः संगमे स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत् ३४

८५

अथेति ॥ १ ॥ निदर्शनमुदाहरणम् ॥ २९ ॥ तदेवाह गायत्रीमिति । यो योनिसंकरजः स चेत्तत्र गायत्रीं पठति तस्य सम्यक् पठतोपि तीर्थमहात्म्यात्सा गायत्री गाथास्वरनियमहीना गद्यवन्मुखान्निःसरति । गाथिका ग्राम्यगीतवत् स्वरवर्णविकृता गीतिकेति पाठेपि स एवार्थः ॥ ३० ॥ अब्राह्मणस्य तु प्राक् सिद्धापि तत्र न स्फुरतीति भावः ॥ ३१ ॥

वरदासंगमे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत ।
ब्रह्मस्थानं समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ३५
गोसहस्रफलं विन्द्यात्स्वर्गलोकं च गच्छति ।
कुशप्लवनमासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ३६
त्रिरात्रमुषितः स्नात्वा अश्वमेधफलं लभेत् ।
ततो देवह्रदेऽरण्ये कृष्णवेणाजलोद्भवे ॥ ३७
जातिस्मरह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः ।
यत्र क्रतुशतैरिष्ट्वा देवराजो दिवं गतः ॥ ३८
अग्निष्टोमफलं विन्द्याद्गमनादेव भारत ।
ततः सर्वह्रदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३९
ततो वापीं महापुण्यां पयोष्णीं सरितां वराम् ।
पितृदेवार्चनरतो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ४०
दण्डकारण्यमासाद्य पुण्यं राजन्नुपस्पृशेत् ।
गोसहस्रफलं तस्य स्नातमात्रस्य भारत ॥ ४१
शरभङ्गाश्रमं गत्वा शुकस्य च महात्मनः ।
न दुर्गतिमवाप्नोति पुनाति च कुलं नरः ॥ ४२
ततः शूर्पारकं गच्छेज्जामदग्न्यनिषेवितम् ।
रामतीर्थे नरः स्नात्वा विन्द्याद्बहुसुवर्णकम् ॥ ४३
सप्तगोदावरे स्नात्वा नियतो नियताशनः ।
महत्पुण्यमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥ ४४
ततो देवपथं गत्वा नियतो नियताशनः ।
देवसत्रस्य यत्पुण्यं तदेवाप्नोति मानवः ॥ ४५
तुङ्गकारण्यमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
वेदानध्यापयत्तत्र ऋषिः सारस्वतः पुरा ॥ ४६
तत्र वेदेषु नष्टेषु मुनेराङ्गिरसः सुतः ।
ऋषीणामुत्तरीयेषु सूपविष्टो यथासुखम् ॥ ४७
ओङ्कारेण यथान्यायं सम्यगुच्चारितेन ह ।
येन यत्पूर्वमभ्यस्तं तत्सर्वं समुपस्थितम् ॥ ४८
ऋषयस्तत्र देवाश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः ।
हरिर्नारायणस्तत्र महादेवस्तथैव च ॥ ४९
पितामहश्च भगवान्देवैः सह महाद्युतिः ।
भृगुं नियोजयामास याजनार्थे महाद्युतिम् ॥ ५०
ततः स चक्रे भगवानृषीणां विधिवत्तदा ।
सर्वेषां पुनराधानं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५१
आज्यभागेन तत्राग्निं तर्पयित्वा यथाविधि ।
देवाः स्वभवनं याता ऋषयश्च यथाक्रमम् ॥ ५२
तदरण्यं प्रविष्टस्य तुङ्गकं राजसत्तम ।
पापं प्रणश्यत्यखिलं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ॥ ५३
तत्र मासं वसेद्धीरो नियतो नियताशनः ।
ब्रह्मलोकं व्रजेद्राजन्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५४
मेधाविकं समासाद्य पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् ।
अग्निष्टोममवाप्नोति स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥ ५५
अत्र कालंजरं नाम पर्वतं लोकविश्रुतम् ।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५६
यो स्नातः स्नापयेत्तत्र गिरौ कालंजरे नृप ।
स्वर्गलोके महीयेत नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ५७
ततो गिरिवरश्रेष्ठे चित्रकूटे विशांपते ।
मन्दाकिनीं समासाद्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ५८
तत्राभिषेकं कुर्वाणः पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् ॥ ५९
ततो गच्छेत धर्मज्ञ भर्तृस्थानमनुत्तमम् ।
यत्र नित्यं महासेनो गुहः संनिहितो नृप ॥ ६०
तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठ गमनादेव सिध्यति ।
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ६१
प्रदक्षिणमुपावृत्य ज्येष्ठस्थानं व्रजेन्नरः ।
अभिगम्य महादेवं विराजति यथा शशी ॥ ६२
तत्र कूपे महाराज विश्रुता भरतर्षभ ।
समुद्रास्तत्र चत्वारो निवसन्ति युधिष्ठिर ॥ ६३
तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र पितृदेवार्चने रतः ।
नियतात्मा नरः पूतो गच्छेत परमां गतिम् ॥ ६४
ततो गच्छेत राजेन्द्र शृङ्गवेरपुरं महत् ।
यत्र तीर्णो महाराज रामो दाशरथिः पुरा ॥ ६५
तस्मिंस्तीर्थे महाबाहो स्नात्वा पापैः प्रमुच्यते ।
गङ्गायां तु नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः ६६
विधूतपाप्मा भवति वाजपेयं च विन्दति ।
ततो मुञ्जवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य धीमतः ॥ ६७
अभिगम्य महादेवमभिवाद्य च भारत ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ६८
तस्मिंस्तीर्थे तु जाह्नव्यां स्नात्वा पापैः प्रमुच्यते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रयागमृषिसंस्तुतम् ॥ ६९
यत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः ।
लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसंमताः ॥७०
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ।
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ७१
तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्चक्रचरास्तथा ।
सरितः सागराश्चैव गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ ७२
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः ।
तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये न जाह्नवी ७३

चक्रचराः सूर्योदयः ॥ ७२ ॥

वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता ।
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ७४
यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकपावनी ।
गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् ॥ ७५
प्रयागं जघनस्थानमुपस्थमृषयो विदुः ।
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरौ तथा ॥ ७६
तीर्थं भोगवती चैव वेदिरेषा प्रजापतेः ।
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर ॥ ७७
प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः ।
यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः ॥ ७८
ततः पुण्यतमं नाम त्रिषु लोकेषु भारत ।
प्रयागं सर्वतीर्थेभ्यः प्रवदन्त्यधिकं विभो ॥ ७९
गमनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ।
मृत्युकालभयाच्चापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ ८०
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्संगमे लोकविश्रुते ।
पुण्यं स फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ८१
एषा यजनभूमिर्हि देवानामभिसंस्कृता ।
तत्र दत्तं सूक्ष्ममपि महद्भवति भारत ॥ ८२
न वेदवचनात्तात न लोकवचनादपि ।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥ ८३
दश तीर्थसहस्राणि षष्टिः कोट्यस्तथापराः ।
येषां सांनिध्यमत्रैव कीर्तितं कुरुनन्दन ॥ ८४

चतुर्विधे च यत्पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत् ।
स्नात एव तदाप्नोति गङ्गायमुनसंगमे ॥ ८५
तत्र भोगवती नाम वासुकेस्तीर्थमुत्तमम् ।
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८६
तत्र हंसप्रपतनं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
दशाश्वमेधिकं चैव गङ्गायां कुरुनन्दन ॥ ८७
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता ।
विशेषो वै कनखले प्रयागे परमं महत् ॥ ८८
यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गङ्गावसेचनम् ।
सर्वं तत्तस्य गङ्गापो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ ८९
सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।
द्वापरेपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता ॥ ९०
पुष्करे तु तपस्तप्येद्दानं दद्यान्महालये ।
मलये त्वग्निमारोहेद्भृगुतुङ्गे त्वनाशनम् ॥ ९१
पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे गङ्गायां मगधेषु च ।
स्नात्वा तारयते जन्तुः सप्तसप्तावरांस्तथा ॥ ९२
पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ ९३
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम् ।
तावत्स पुरुषो राजन्स्वर्गलोके महीयते ॥ ९४
यथा पुण्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
उपास्य पुण्यं लब्ध्वा च भवत्यमरलोकभाक् ९५

गङ्गायमुनयोरिति स्त्रीरूपायाः पृथिव्या मेरुपृष्ठशीर्षायाः । हरिद्वारादारभ्य जघनं नाभेरधोभागः ॥ ७५ ॥ जघनस्य स्थानमवस्थानं समाप्तिरन्त इति यावत् तदेवोपस्थम् । तथा च पृथिव्या अपत्यभूतानि तीर्थानि तत्फलभूताः स्वर्गाश्च तानि सर्वाणि प्रयागादुत्पन्नानीति प्रयागस्य तीर्थराजत्वमुक्तम् ॥७६॥ न वेदवचनादिति । लोकवेदविरुद्धस्य हठमरणस्यापवादोऽयम् अहिंसाविधेरिव पश्वालम्भविधिरिति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु वाराणसीमरणवद्याद्दच्छिकमरणविषय एवायं ग्रन्थो न हठमरणप्रतिपादकः ' सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति । ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्तेजनासो अमृतत्वं भजन्ते । ब्रह्मज्ञानेन मुच्यन्ते प्रयागमरणेन च' इत्यादि श्रुतयः स्मृतयश्च तादृशा एव। हठमरणे ' जले वापि स्थले वापि शस्त्रेणोद्बध्य वा पुनः। नरकं ते प्रयान्त्याशु आत्मानं घातयन्ति ये ' इति दोषस्मरणात् । न चास्यैवापवादःप्रयागमरणविधिरिति वाच्यम्। तस्य हठमरणपरत्वासिद्धेः । सिद्धौ वा अचिकित्स्यरोगादिदोषवतां भृगुपतनादिनापि मरणे प्राप्तेपि प्रयागमरणनियमविधिरयं भविष्यति न च काम्योऽयं मरणविधिर्नित्यस्य मरणनिषेधविधेर्बाधकः। काम्यत्वाच्च नायमुल्लङ्घने प्रत्यवायावह इति वाच्यम्। उक्तेर्थे बाधकाभावेपि वाक्यस्य हठमरणपरत्वमपूर्वविध्यर्थत्वं च कल्पयतो गौरवापत्तेः । अभ्युपगमे वा ब्राह्मणव्यतिरिक्तविषय एवायं विधिः। भृग्वादिपतनेन मरणमन्यत्र ब्राह्मणादिति स्मृतेः। युक्तं तु शुद्धशबलब्रह्मज्ञानयोरिव काशीप्रयागमरणयोः सद्योमुक्तिक्रममुक्तिपरत्वम् तथा हि तीर्थमाहात्म्योपसंहारे ' यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत्तपोवनम् । सिद्धिक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ' इति गङ्गायास्तदाश्रितस्य सिद्धिक्षेत्रस्य च विज्ञेयत्वोक्त्या तयोरेव महत्तरत्वं दर्शितं तत्र यमुनया संगताया एव गङ्गाया अत्र ग्रहणं प्रयागप्रशंसाधिकारात् । प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता तीर्थयात्रेत्युपसंहाराच्च। प्रतिष्ठाने प्रयागे सिद्धिक्षेत्रपदेन वाराणस्येव सिद्धिशब्दस्य निरुपपदस्य मुक्तिवाचित्वात् काश्याश्च मुक्तिक्षेत्रत्वप्रसिद्धेः । तदेवमध्यायचतुष्टयेपि भंग्यंतरेण साक्षाद्वा काशीकीर्तनादुक्तविध्योपसंहाराच्च पुष्करगङ्गाप्रयागादीनां सेवनं काशीप्राप्तिकरमिति । 'अन्यानि तु पवित्राणि काशीप्राप्तिकराणि हि। काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा कल्पकोटिभिः' इत्यादिपूर्वोदाहृतपुराणान्तरसंवादेन सिद्धम् ॥ ८३ ॥ चतुर्विधे चतस्रो विद्याः वेदत्रयं आत्मविद्या चेति विद्यन्तेऽस्मिन्स चतुर्विधस्तस्मिन् ॥ ८५ ॥

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः ॥ ९६
यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत्तपोवनम् ।
सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ॥ ९७
इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च ।
सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ॥ ९८
इदं धन्यमिदं मेध्यमिदं स्वर्ग्यमनुत्तमम् ।
इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम् ॥ ९९
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम् ।
अधीत्य द्विजमध्ये च निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्१००
श्रीमत्स्वर्ग्यं तथा पुण्यं सपत्नशमनं शिवम् ।
मेधाजननमग्र्यं वै तीर्थवंशानुकीर्तनम् ॥ १
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।
महीं विजयते राजा वैश्यो धनमवाप्नुयात् ॥ २
शूद्रो यथेप्सितान्कामान्ब्राह्मणः पारगः पठन् ।
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः ॥ ३
जातीः स स्मरते बह्वीर्नाकपृष्ठे च मोदते ।
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमानि च ४
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया ।
एतानि वसुभिः साध्यैरादित्यैर्मरुदश्विभिः ॥ ५
ऋषिभिर्देवकल्पैश्च स्नातानि सुकृतैषिभिः ।
एवं त्वमपि कौरव्य विधिनानेन सुव्रत ॥ ६
व्रज तीर्थानि नियतः पुण्यं पुण्येन वर्धयन् ।
भावितैः करणैः पूर्वमास्तिक्याच्छ्रुतिदर्शनात्॥ ७
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शास्त्रानुदर्शिभिः
नाव्रती नाकृतात्मा च नाशुचिर्न च तस्करः॥ ८
स्नाति तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्नरः ।
त्वया तु सम्यग्वृत्तेन नित्यं धर्मार्थदर्शिना ॥ ९
पिता पितामहश्चैव सर्वे च प्रपितामहाः ।
पितामहपुरोगाश्च देवाः सर्षिगणा नृप ॥ ११०
तव धर्मेण धर्मज्ञ नित्यमेवाभितोषिताः ।
अवाप्स्यसि त्वं लोकान्वै वसूनां वासवोपम ।
कीर्तिं च महतीं भीष्म प्राप्स्यसे भुवि शाश्वतीम्॥

नारद उवाच ।

एवमुक्त्वाभ्यनुज्ञाय पुलस्त्यो भगवानृषिः ।
प्रीतः प्रीतेन मनसा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १२
भीष्मश्च कुरुशार्दूल शास्त्रतत्त्वार्थदर्शिवान् ।
पुलस्त्यवचनाच्चैव पृथिवीं परिचक्रमे ॥ १३
एवमेषा महाभागा प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता ।
तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी ॥ १४
अनेन विधिना यस्तु पृथिवीं संचरिष्यति ।
अश्वमेधशतं साग्रं फलं प्रेत्य स भोक्ष्यति ॥ १५
ततश्चाष्टगुणं पार्थ प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ।
भीष्मः कुरूणां प्रवरो यथापूर्वमवाप्तवान् ॥ १६
नेता च त्वमृषीन्यस्मात्तेन तेऽष्टगुणं फलम् ।
रक्षोगणविकीर्णानि तीर्थान्येतानि भारत ।
न गतानि मनुष्येन्द्रैस्त्वामृते कुरुनन्दन ॥ १७
इदं देवर्षिचरितं सर्वतीर्थाभिसंवृतम् ।
यः पठेत्कल्यमुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८
ऋषिमुख्याः सदा यत्र वाल्मीकिस्त्वथ कश्यपः ।
आत्रेयः कुण्डजठरो विश्वामित्रोथ गौतमः ॥ १९
असितो देवलश्चैव मार्कण्डेयोथ गालवः ।
भरद्वाजो वसिष्ठश्च मुनिरुद्दालकस्तथा ॥ १२०
शौनकः सह पुत्रेण व्यासश्च तपतां वरः ।
दुर्वासाश्च मुनिश्रेष्ठो जाबालिश्च महातपाः ॥२१
एते ऋषिवराः सर्वे त्वत्प्रतीक्षास्तपोधनाः ।
एभिः सह महाराज तीर्थान्येतान्यनुव्रज ॥ २२
एष ते लोमशो नाम महर्षिरमितद्युतिः ।
समेष्यति महाराज तेन सार्धमनुव्रज ॥ २३
मयापि सह धर्मज्ञ तीर्थान्येतान्यनुक्रमात् ।
प्राप्स्यसे महतीं कीर्तिं यथा राजा महाभिषः २४
यथा ययातिर्धर्मात्मा यथा राजा पुरूरवाः ।
तथा त्वं राजशार्दूल स्वेन धर्मेण शोभसे ॥ २५
यथा भगीरथो राजा यथा रामश्च विश्रुतः ।
तथा त्वं सर्वराजभ्यो भ्राजसे रश्मिवानिव २६
यथा मनुर्यथेक्ष्वाकुर्यथा पूरुर्महायशाः ।
यथा वैन्यो महाराज तथा त्वमपि विश्रुतः ॥२७
यथा च वृत्रहा सर्वान्सपत्नान्निर्दहन्पुरा ।
त्रैलोक्यं पालयामास देवराड्विगतज्वरः ॥ २८

---

अगमानि अगम्यानि ॥४॥ समीक्षया दर्शनेच्छया ॥५॥ भावितैः शुद्धैः करणैः इन्द्रियैः ॥७॥ अकृतात्मा अवशीकृतचित्तः ॥ ८ ॥ प्रतिष्ठाने प्रयागे प्रतिष्ठिता समाप्ता ॥१४॥ अश्वमेधेति अग्र्यम् । फलं क्रममुक्तिस्थानं 'उषा वा अश्वस्य शिरः' इत्यादिश्रुतेः सोपानस्याश्वमेधस्य तत्प्रापकत्वावगमात् । सामान्यफलं तु ऐन्द्रपदप्राप्तिरिति प्रसिद्धम् ॥ १५ ॥ अष्टगुणं अणिमाद्यष्टगुणयुक्तं धर्मं धर्मफलम् ॥ १६ ॥ हेतुमाह नेता चेति । गणफलेन तुल्यफलत्वान्नेतुरनन्तं फलमित्यर्थः ॥१७ ॥ महाभिषः शान्तनुरूपेणावतीर्णः ॥ २४ ॥ रश्मिवान् सूर्यः ॥ २६ ॥

तथा शत्रुक्षयं कृत्वा त्वं प्रजाः पालयिष्यसि ।
स्वधर्मविजितामुर्वीं प्राप्य राजीवलोचन ॥ २९
ख्यातिं यास्यसि धर्मेण कार्तवीर्यार्जुनो यथा ३०

वैशंपायन उवाच ।
एवमाश्वास्य राजानं नारदो भगवानृषिः ।
अनुज्ञाप्य महाराज तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३१
युधिष्ठिरोपि धर्मात्मा तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
तीर्थयात्राश्रितं पुण्यमृषीणां प्रत्यवेदयत् ॥ ३२

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० पुलस्त्यतीर्थयात्रायां नारदवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## ८६

वैशंपायन उवाच ।
भ्रातॄणां मतमाज्ञाय नारदस्य च धीमतः ।
पितामहसमं धौम्यं प्राह राजा युधिष्ठिरः ॥ १
मया स पुरुषव्याघ्रो जिष्णुः सत्यपराक्रमः ।
अस्त्रहेतोर्महाबाहुरमितात्मा विवासितः ॥ २
स हि वीरोनुरक्तश्च समर्थश्च तपोधनः ।
कृती च भृशमप्यस्त्रे वासुदेव इव प्रभुः ॥ ३
अहं ह्येतावुभौ ब्रह्मन्कृष्णावरिविघातिनौ ।
अभिजानामि विक्रान्तौ तथा व्यासः प्रतापवान्॥
त्रियुगौ पुण्डरीकाक्षौ वासुदेवधनंजयौ ।
नारदोपि तथा वेद योप्यशंसत्सदा मम ॥ ५
तथाहमपि जानामि नरनारायणावृषी ।
शक्तोयमित्यतो मत्वा मया स प्रेषितोर्जुनः ॥ ६
इन्द्रादनवरः शक्रं सुरसूनुः सुराधिपम् ।
द्रष्टुमस्त्राणि चादातुमिन्द्रादिति विवासितः ॥ ७
भीष्मद्रोणावतिरथौ कृपो द्रौणिश्च दुर्जयः ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण वृता युधि महारथाः ॥ ८
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वास्त्रविदुषस्तथा ।
योद्धुकामाश्च पार्थेन सततं ये महाबलाः ।
स च दिव्यास्त्रवित्कर्णः सूतपुत्रो महारथः ॥ ९
योस्त्रवेगानिलबलः शरार्चिस्तलनिःस्वनः ।
रजोधूमोस्त्रसंपातो धार्तराष्ट्रानिलोद्धतः ॥ १०
निसृष्ट इव कालेन युगान्ते ज्वलनो महान् ।
मम सैन्यमयं कक्षं प्रधक्ष्यति न संशयः ॥ ११
तं स कृष्णानिलोद्धूतो दिव्यास्त्रज्वलनो महान् ।
श्वेतवाजिबलाकाभृद्गाण्डीवेन्द्रायुधोल्बणः ॥ १२
संरब्धः शरधाराभिः सुदीप्तं कर्णपावकम् ।
अर्जुनोदीरितो मेघः शमयिष्यति संयुगे ॥ १३
स साक्षादेव सर्वाणि शक्रात्परपुरंजयः ।
दिव्यान्यस्त्राणि बीभत्सुस्ततश्च प्रतिपत्स्यते ॥ १४
अलं स तेषां सर्वेषामिति मे धीयते मतिः ।
नास्ति त्वनिकृतार्थानां रणेऽरीणां प्रतिक्रिया १५

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भरतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

भ्रातॄणामिति ॥ १ ॥ अमितात्मा अमितधैर्यः । 'आत्मा बुद्धौ धृतौ देहे 'इति कोशात् ॥ २ ॥ त्रियुगौ धर्मस्य भार्यायां मूर्तिसंज्ञायां कृतयुगेऽवतीर्णौ नरनारायणौ। तावेव द्वापरान्तेपि केशवार्जुनाविति पुराणपुरुषावेतौ नास्मदादिवन्मानुषाविति भावः । पुण्डरीकाक्षौ साक्षाद्विष्णू । यद्वा त्रीणि युगानि युगलानि षडैश्वर्याणि भगसंज्ञानि वा षडङ्गानि वा ययोस्तौ त्रियुगौ तानि च पुराणान्तरे स्मर्यन्ते। 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः। वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीङ्गना '। इङ्गना संज्ञा। 'सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः । अनन्तशक्तिश्च विभोर्विभुज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य' इति । अन्ये तु ज्ञानैश्वर्ये वीर्यबले तेजःपराक्रमौ चेति त्रीणि युगलानीत्याहुः तत्र ज्ञानं अनपरोधं त्रैकालिकार्थस्फुरणम् । ऐश्वर्यं इच्छानभिघातः । बलमुपक्रान्तनिर्वाहः । वीर्यं काममन्त्रशक्तिः । तेजः पराभिधातः । पराक्रमो यथाकालमुत्थानमिति तद्व्याचक्षते च तन्निर्मूलं पुनरुक्तिदोषाद्युक्तं च ॥ ५ ॥ अनवरः अन्यूनः ॥ ७ ॥ अस्त्रविदुषः अस्त्रविद्वांसः ॥ ९ ॥ रज इति । रजः कार्यं क्रोधःस एव धूमो यस्य । धार्तराष्ट्रैरनिलैरिव उद्धत उद्दीपितः ॥ १० ॥ कक्षं तृणवनम् ॥ ११ ॥ उल्बणः दुःसहः ॥ १२ ॥ अर्जुनोदीरितोऽर्जुननामा ॥ १३ ॥ अलं जेतुं पर्याप्तः तुशब्दः पक्षान्तरे प्रतिक्रिया जयोपायः अर्जुनं विनाऽरयो दुर्जया इत्यर्थः ॥ १५ ॥

ते वयं पाण्डवं सर्वे गृहीतास्त्रमरिंदमम् ।
द्रष्टारो न हि बीभत्सुर्भारमुद्यम्य सीदति ॥ १६
वयं तु तमृते वीरं वनेऽस्मिन्द्विपदां वर ।
अवधानं न गच्छामः काम्यके सह कृष्णया १७
भवानन्यद्वनं साधु बह्वन्नं फलवच्छुचि ।
आख्यातु रमणीयं च सेवितं पुण्यकर्मभिः ॥ १८
यत्र कंचिद्वयं कालं वसन्तः सत्यविक्रमम् ।
प्रतीक्षामोऽर्जुनं वीरं वृष्टिकामा इवाम्बुदम् ॥ १९
विविधानाश्रमान्कांश्चिद्द्विजातिभ्यः प्रतिश्रुतान् ।
सरांसि सरितश्चैव रमणीयांश्च पर्वतान् ॥ २०
आचक्ष्व न हि मे ब्रह्मन्रोचते तमृतेऽर्जुनम् ।
वनेऽस्मिन्काम्यके वासो गच्छामोऽन्यां दिशं प्रति॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि धौम्यतीर्थयात्रायां
षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

वैशंपायन उवाच ।
तान्सर्वानुत्सुकान्दृष्ट्वा पाण्डवान्दीनचेतसः ।
आश्वासयंस्तथा धौम्यो बृहस्पतिसमोऽब्रवीत् ॥१
ब्राह्मणानुमतान्पुण्यानाश्रमान्भरतर्षभ ।
दिशस्तीर्थानि शैलांश्च शृणु मे वदतोऽनघ ॥ २
याञ्श्रुत्वा गदतो राजन्विशोको भवितासि ह ।
द्रौपद्या चानया सार्धं भ्रातृभिश्च नरेश्वर ॥ ३
श्रवणाच्चैव तेषां त्वं पुण्यमाप्स्यसि पाण्डव ।
गत्वा शतगुणं चैव तेभ्य एव नरोत्तम ॥ ४
पूर्वं प्राचीं दिशं राजन्राजर्षिगणसेविताम् ।
रम्यां ते कथयिष्यामि युधिष्ठिर यथास्मृति ॥ ५
तस्यां देवर्षिजुष्टायां नैमिषं नाम भारत ।
यत्र तीर्थानि देवानां पुण्यानि च पृथक्पृथक् ॥६
यत्र सा गोमती पुण्या रम्या देवर्षिसेविता ।
यज्ञभूमिश्च देवानां शामित्रं च विवस्वतः ॥ ७
तस्यां गिरिवरः पुण्यो गयो राजर्षिसत्कृतः ।
शिवं ब्रह्मसरो यत्र सेवितं त्रिदशर्षिभिः ॥ ८
यदर्थे पुरुषव्याघ्र कीर्तयन्ति पुरातनाः ।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥ ९
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
उत्तारयति संतत्या दशपूर्वान्दशावरान् ॥ १०
महानदी च तत्रैव तथा गयशिरो नृप ।
यत्रासौ कीर्त्यते विप्रैरक्षय्यकरणो वटः ॥ ११
यत्र दत्तं पितृभ्योऽन्नमक्षय्यं भवति प्रभो ।
सा च पुण्यजला तत्र फल्गु नाम महानदी १२
बहुमूलफला चापि कौशिकी भरतर्षभ ।
विश्वामित्रोऽभ्यगाद्यत्र ब्राह्मणत्वं तपोधनः ॥ १३
गङ्गा यत्र नदी पुण्या यस्यास्तीरे भगीरथः ।
अयजत्तत्र बहुभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ १४
पाञ्चालेषु च कौरव्य कथयन्त्युत्पलावनम् ।
विश्वामित्रोऽयजद्यत्र पुत्रेण सह कौशिकः ॥ १५
यत्रानुवंशं भगवाञ्जामदग्न्यस्तथा जगौ ।
विश्वामित्रस्य तां दृष्ट्वा विभूतिमतिमानुषीम् १६
कान्यकुब्जेऽपिबत्सोममिन्द्रेण सह कौशिकः ।
ततः क्षत्रादपाक्रामद्ब्राह्मणोऽस्मीति चाब्रवीत् १७
पवित्रमृषिभिर्जुष्टं पुण्यं पावनमुत्तमम् ।
गङ्गायमुनयोर्वीर संगमं लोकविश्रुतम् ॥ १८
यत्रायजत भूतात्मा पूर्वमेव पितामहः ।
प्रयागमिति विख्यातं तस्माद्भरतसत्तम ॥ १९
अगस्त्यस्य तु राजेन्द्र तत्राश्रमवरो नृप ।
तत्तथा तापसारण्यं तापसैरुपशोभितम् ॥ २०
हिरण्यबिन्दुः कथितो गिरौ कालंजरे महान् ।
आगस्त्यपर्वतो रम्यः पुण्यो गिरिवरः शिवः २१

---

द्रष्टारः द्रक्ष्यामः ॥ १६ ॥ अवधानं स्वास्थ्यम् ॥१७॥ इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७

तानिति॥१॥ शामित्रं शमितुः कर्म यज्ञे पशुमारणं विवस्वतः पुत्रस्य यमस्येति शेषः ॥७॥ तीर्थान्तरमाह तस्यामिति। तस्यां प्राच्यां दिशि राजर्षिरपि गयसंज्ञः॥८॥ पवित्रमिति। पविः वज्रं तत्तुल्यं जन्ममरणादिदुःखं तस्मात् त्रायत इति पवित्रम् अत एव ऋषिभिर्जुष्टं सेवितं पुण्यं धर्मवृद्धिहेतुः पावनं पापनाशनम् ॥ १८ ॥

महेन्द्रो नाम कौरव्य भार्गवस्य महात्मनः ।
अयजत्तत्र कौन्तेय पूर्वमेव पितामहः ॥ २२
यत्र भागीरथी पुण्या सरस्यासीद्युधिष्ठिर ।
यत्र सा ब्रह्मशालेति पुण्या ख्याता विशांपते ॥
धूतपाप्मभिराकीर्णा पुण्यं तस्याश्च दर्शनम् ।
पवित्रो मङ्गलीयश्च ख्यातो लोके महात्मनः २४
केदारश्च मतङ्गस्य महानाश्रम उत्तमः ।
कुण्डोदः पर्वतो रम्यो बहुमूलफलोदकः ॥ २५
नैषधस्तृषितो यत्र जलं शर्म च लब्धवान् ।
यत्र देववनं पुण्यं तापसैरुपशोभितम् ॥ २६
बाहुदा च नदी यत्र नन्दा च गिरिमूर्धनि ।
तीर्थानि सरितः शैलाः पुण्यान्यायतनानि च ॥
प्राच्यां दिशि महाराज कीर्तितानि मया तव ।
तिसृष्वन्यानि पुण्यानि दिक्षु तीर्थानि मे शृणु ।
सरितः पर्वतांश्चैव पुण्यान्यायतनानि च ॥ २८

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रा प० धौम्यतीर्थयात्रायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

धौम्य उवाच ।
दक्षिणस्यां तु पुण्यानि शृणु तीर्थानि भारत ।
विस्तरेण यथाबुद्धि कीर्त्यमानानि तानि वै ॥ १
यस्यामाख्यायते पुण्या दिशि गोदावरी नदी ।
बह्वारामा बहुजला तापसाचरिता शिवा ॥ २
वेणा भीमरथी चैव नद्यौ पापभयापहे ।
मृगद्विजसमाकीर्णे तापसालयभूषिते ॥ ३
राजर्षेस्तस्य च सरिन्नृगस्य भरतर्षभ ।
रम्यतीर्था बहुजला पयोष्णी द्विजसेविता ॥ ४
अपि चात्र महायोगी मार्कण्डेयो महायशाः ।
अनुवंश्यां जगौ गाथां नृपस्य धरणीपतेः ॥ ५
नृगस्य यजमानस्य प्रत्यक्षमिति नः श्रुतम् ।
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ ६
पयोष्ण्यां यजमानस्य वाराहे तीर्थ उत्तमे ।
उद्धृतं भूतलस्थं वा वायुना समुदीरितम् ।
पयोष्ण्या हरते तोयं पापमामरणान्तिकम् ॥ ७
स्वर्गादुत्तुङ्गममलं विषाणं यत्र शूलिनः ।
स्वमात्मविहितं दृष्ट्वा मर्त्यः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ८
एकतः सरितः सर्वा गङ्गाद्याः सलिलोच्चयाः ।
पयोष्णी चैकतः पुण्या तीर्थेभ्यो हि मता मम ९
माठरस्य वनं पुण्यं बहुमूलफलं शिवम् ।
यूपश्च भरतश्रेष्ठ वरुणस्रोतसे गिरौ ॥ १०
प्रवेण्युत्तरमार्गे तु पुण्ये कण्वाश्रमे तथा ।
तापसानामरण्यानि कीर्तितानि यथाश्रुति ॥११
वेदी शूर्पारके तात जमदग्नेर्महात्मनः ।
रम्या पाषाणतीर्था च पुनश्चन्द्रा च भारत ॥१२
अशोकतीर्थं तत्रैव कौन्तेय बहुलाश्रमम् ।
अगस्त्यतीर्थं पाण्ड्येषु वारुणं च युधिष्ठिर ॥ १३
कुमार्यः कथिताः पुण्याः पाण्ड्येष्वेव नरर्षभ ।
ताम्रपर्णीं तु कौन्तेय कीर्तयिष्यामि तां शृणु १४
यत्र देवैस्तपस्तप्तं महदिच्छद्भिराश्रमे ।
गोकर्ण इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १५
शीततोयो बहुजलः पुण्यस्तात शिवः शुभः ।
ह्रदः परमदुष्प्रापो मानुषैरकृतात्मभिः ॥ १६
तत्र वृक्षतृणाद्यैश्च संपन्नः फलमूलवान् ।
आश्रमोगस्त्यशिष्यस्य पुण्यो देवसमो गिरिः ॥
वैदूर्यपर्वतस्तत्र श्रीमान्मणिमयः शिवः ।
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव बहुमूलफलोदकः ॥ १८

---

यत्र भागीरथीति । सरसि मणिकर्णिकाख्ये प्रविष्टा आसीत् । ब्रह्मशाला ब्रह्मोपलब्धिस्थानं वाराणस्याख्यं 'अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्'इति श्रुतिप्रसिद्धम् ॥ २३ ॥ आकीर्णा व्याप्ता मङ्गलीयः मङ्गलावहः ॥२४॥ केदारोपि काश्यामेव ॥२५॥ नैषधो नलः तत्रैव लोलार्कदक्षिणे नलग्रामस्य दर्शनात् । तीर्थान्तरमाह यत्र देववनमिति ॥ २६ ॥ इत्या० नै० भा० सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

दक्षिणस्यामिति ॥ १ ॥ अनुवंश्यां वंशानुरूपां न तु मृगमात्रानुरूपाम्॥५॥कुमार्यः कुमारीव आचरन्तः बाल्याद्रागादिहीना अपि परमेव पतिं प्रार्थयन्तो भगवद्भक्ता इत्यर्थः । अत एव श्रीभागवते द्रविडेष्वेव भगवद्भक्तभूयस्त्वं स्मर्यते । पाण्ड्येषु द्रविडविशेषेषु ॥ १४ ॥ महत् मोक्षफलम्॥१५॥

सुराष्ट्रेष्वपि वक्ष्यामि पुण्यान्यायतनानि च ।
आश्रमान्सरितश्चैव सरांसि च नराधिप ॥ १९
चमसोद्भेदनं विप्रास्तत्रापि कथयन्त्युत ।
प्रभासं चोदधौ तीर्थं त्रिदशानां युधिष्ठिर ॥ २०
तत्र पिण्डारकं नाम तापसाचरितं शिवम् ।
उज्जयन्तश्च शिखरी क्षिप्रं सिद्धिकरो महान् २१
तत्र देवर्षिवर्येण नारदेनानुकीर्तितः ।
पुराणः श्रूयते श्लोकस्तं निबोध युधिष्ठिर ॥ २२
पुण्ये गिरौ सुराष्ट्रेषु मृगपक्षिनिषेविते ।
उज्जयन्ते स्म तप्ताङ्गो नाकपृष्ठे महीयते ॥ २३

पुण्या द्वारवती तत्र यत्रासौ मधुसूदनः ।
साक्षाद्देवः पुराणोसौ स हि धर्मः सनातनः २४
ये च वेदविदो विप्रा ये चाध्यात्मविदो जनाः ।
ते वदन्ति महात्मानं कृष्णं धर्मं सनातनम् ॥२५
पवित्राणां हि गोविन्दः पवित्रं परमुच्यते ।
पुण्यानामपि पुण्योसौ मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
त्रैलोक्ये पुण्डरीकाक्षो देवदेवः सनातनः ॥ २६
अव्ययात्मा व्ययात्मा च क्षेत्रज्ञः परमेश्वरः ।
आस्ते हरिरचिन्त्यात्मा तत्रैव मधुसूदनः ॥ २७

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि धौम्यतीर्थयात्रायां अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८ ॥

## ८९

धौम्य उवाच ।

आनर्तेषु प्रतीच्यां वै कीर्तयिष्यामि ते दिशि ।
यानि तत्र पवित्राणि पुण्यान्यायतनानि च ॥ १
प्रियङ्ग्वाम्रवणोपेता वानीरफलमालिनी ।
प्रत्यक्स्रोता नदी पुण्या नर्मदा तत्र भारत ॥ २
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
सरिद्वनानि शैलेन्द्रा देवाश्च सपितामहाः ॥ ३
नर्मदायां कुरुश्रेष्ठ सह सिद्धर्षिचारणैः ।
स्नातुमायान्ति पुण्यौघैः सदा वारिषु भारत ॥ ४
निकेतः श्रूयते पुण्यो यत्र विश्रवसो मुनेः ।
जज्ञे धनपतिर्यत्र कुबेरो नरवाहनः ॥ ५
वैदूर्यशिखरो नाम पुण्यो गिरिवरः शिवः ।
नित्यपुष्पफलास्तत्र पादपा हरितच्छदाः ॥ ६
तस्य शैलस्य शिखरे सरः पुण्यं महीपते ।
फुल्लपद्मं महाराज देवगन्धर्वसेवितम् ॥ ७
बह्वाश्चर्यं महाराज दृश्यते तत्र पर्वते ।
पुण्ये स्वर्गोपमे चैव देवर्षिगणसेविते ॥ ८
ह्रदिनी पुण्यतीर्था च राजर्षेस्तत्र वै सरित् ।
विश्वामित्रनदी राजन्पुण्या परपुरंजय ॥ ९
यस्यास्तीरे सतां मध्ये ययातिर्नहुषात्मजः ।
पपात स पुनर्लोकाँल्लेभे धर्मान्सनातनान् ॥ १०
तत्र पुण्यो ह्रदः ख्यातो मैनाकश्चैव पर्वतः ।
बहुमूलफलोपेतस्त्वसितो नाम पर्वतः ॥ ११
आश्रमः कक्षसेनस्य पुण्यस्तत्र युधिष्ठिर ।
च्यवनस्याश्रमश्चैव विख्यातस्तत्र पाण्डव ॥ १२
तत्राल्पेनैव सिध्यन्ति मानवास्तपसा विभो ।
जम्बूमार्गो महाराज ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥

---

तप्ताङ्गः कृततपस्कः ॥ २३ ॥ सनातनो धर्मः । 'इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्' इति याज्ञवल्क्योक्तः । तत्रात्मदर्शनाख्यस्य धर्मस्यात्मनोनन्यत्वात्स हि धर्म इति सामानाधिकरण्यम् ॥ २४ ॥ एतदेव स्पष्टयति ये चेत्यादिना ॥ २५ ॥ अव्ययात्मा अक्षरस्वरूपी व्ययात्मा क्षरस्वरूपी क्षेत्रज्ञः जीवः स एव परमेश्वरः। 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' इति भगवद्वचनात्। क्षेत्रं जीवः ईशश्च त्रयमप्यव्ययाख्यं ब्रह्मैवेत्यर्थः । 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म वैतत्' इति श्रुतेः ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

आनर्तेषु पश्चिमाश्रितेषु । अवन्तिष्विति पाठे अवन्तिषु प्रतीच्यां चेति वै शब्दश्चार्थः ॥ १ ॥ प्रत्यक्स्रोता पश्चिमवाहिनी ॥ २ ॥ बह्वाश्चर्यं वेदध्वनिश्रवणादि ॥ ८ ॥

आश्रमः शाम्यतां श्रेष्ठ मृगद्विजनिषेवितः ।
ततः पुण्यतमा राजन्सततं तापसैर्युता ॥ १४
केतुमाला च मेध्या च गङ्गाद्वारं च भूमिप ।
ख्यातं च सैन्धवारण्यं पुण्यं द्विजनिषेवितम् ॥१५
पितामहसरः पुण्यं पुष्करं नाम नामतः ।
वैखानसानां सिद्धानामृषीणामाश्रमः प्रियः १६
अप्यत्र संश्रयार्थाय प्रजापतिरथो जगौ ।
पुष्करेषु कुरुश्रेष्ठ गाथां सुकृतिनां वर ॥ १७
मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः ।
विप्रणश्यन्ति पापानि नाकपृष्ठे च मोदते ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० तीर्थयात्राप० धौम्यतीर्थयात्रायां ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## ९०

धौम्य उवाच ।
उदीच्यां राजशार्दूल दिशि पुण्यानि यानि वै ।
तानि ते कीर्तयिष्यामि पुण्यान्यायतनानि च १
शृणुष्वावहितो भूत्वा मम मन्त्रयतः प्रभो ।
कथाप्रतिग्रहो वीर श्रद्धां जनयते शुभाम् ॥ २
सरस्वती महापुण्या ह्रदिनी तीर्थमालिनी ।
समुद्रगा महावेगा यमुना यत्र पाण्डव ॥ ३
यत्र पुण्यतरं तीर्थं प्लक्षावतरणं शुभम् ।
यत्र सारस्वतैरिष्ट्वा गच्छन्त्यवभृथैर्द्विजाः ॥ ४
पुण्यं चाख्यायते दिव्यं शिवमग्निशिरोऽनघ ।
सहदेवोऽयजद्यत्र शम्याक्षेपेण भारत ॥ ५
एतस्मिन्नेव चार्थेऽसौ इन्द्रगीता युधिष्ठिर ।
गाथा चरति लोकेऽस्मिन्गीयमाना द्विजातिभिः ६
अग्नयः सह देवेन सेविता यमुनामनु ।
ते तस्य कुरुशार्दूल सहस्रशतदक्षिणाः ॥ ७
तत्रैव भरतो राजा चक्रवर्ती महायशाः ।
विंशतिः सप्त चाष्टौ च हयमेधानुपाहरत् ॥ ८
कामकृद्यो द्विजातीनां श्रुतस्तात यथा पुरा ।
अत्यन्तमाश्रमः पुण्यः शरभङ्गस्य विश्रुतः ॥ ९
सरस्वती नदी सद्भिः सततं पार्थ पूजिता ।
वालखिल्यैर्महाराज यत्रेष्टमृषिभिः पुरा ॥ १०
दृषद्वती महापुण्या यत्र ख्याता युधिष्ठिर ।
न्यग्रोधाख्यस्तु पाञ्चाल्यः पाञ्चाल्यो द्विपदां वर
दाल्भ्यघोषश्च दाल्भ्यश्च धरण्यां महात्मनः ।
कौन्तेयानन्तयशसः सुव्रतस्यामितौजसः ॥ १२
आश्रमः ख्यायते पुण्यस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
एतावर्णावर्णौ च विश्रुतौ मनुजाधिप ॥ १३
वेदज्ञौ वेदविद्वांसौ वेदविद्याविदावुभौ ।
ईजाते क्रतुभिर्मुख्यैः पुण्यैर्भरतसत्तम ॥ १४
समेत्य बहुशो देवाः सेन्द्राः सवरुणाः पुरा ।
विशाखयूपेऽतप्यन्त तेन पुण्यतमश्च सः ॥ १५
ऋषिर्महान्महाभागो जमदग्निर्महायशाः ।
पलाशकेषु पुण्येषु रम्येष्वयजत प्रभुः ॥ १६
यत्र सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः साक्षात्तमृषिसत्तमम् ।
स्वं स्वं तोयमुपादाय परिवार्योपतस्थिरे ॥ १७
अपि चात्र महाराज स्वयं विश्वावसुर्जगौ ।
इमं श्लोकं तदा वीर प्रेक्ष्य दीक्षां महात्मनः १८
यजमानस्य वै देवाञ्जमदग्नेर्महात्मनः ।
आगम्य सरितो विप्रान्मधुना समतर्पयन् ॥ १९

शाम्यतां शमवताम् ॥ १४ ॥ वैखानसानां हैरण्यगर्भाणां कर्ममार्गं त्यक्त्वा ध्यानपराणामित्यर्थः ॥ १६ ॥ संश्रयार्थाय वासार्थम् ॥ १७ ॥ अभिकामस्य गन्तुमिच्छोः ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

उदीच्यामिति ॥ १ ॥ मन्त्रयतः कथयतः कथाप्रतिग्रहः कथाया मनसि धारणम् ॥ २ ॥ सारस्वतैः सरस्वत्यां प्राप्तैः ॥ ४ ॥ सहदेवः सृंजयपुत्रः शम्याक्षेपेण बलवता क्षिप्ता शम्या लगुडविशेषो यावद्दूरं पतेत्तावान् यज्ञमण्डपो यस्मिन्यज्ञे स शम्याक्षेपस्तेन ॥ ५ ॥ विंशतिः विंशतिवारमावर्तिताः सप्त अष्टौ चेति अष्टाचत्वारिंशदधिकं शतम्। त्रयस्त्रिंशच्छतं राजेति तु श्रुतिः । विंशतिमिति पाठेत्यन्तहीनसंख्यत्वात् पञ्चत्रिंशत् ॥ ८ ॥ एता कृष्णमृगी तद्वर्णौ कृष्णौ नरनारायणावित्यर्थः । वस्तुतस्त्ववर्णौ वर्णा लोहितशुक्लकृष्णाः रजःसत्त्वतमांसि तद्रहितौ ॥ १३ ॥

गन्धर्वयक्षरक्षोभिरप्सरोभिश्च सेवितम् ।
किरातकिन्नरावासं शैलं शिखरिणां वरम् ॥ २०
बिभेद तरसा गङ्गा गङ्गाद्वारं युधिष्ठिर ।
पुण्यं तत्ख्यायते राजन्ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ २१
सनत्कुमारः कौरव्य पुण्यं कनखलं तथा ।
पर्वतश्च पुरुर्नाम यत्र यातः पुरूरवाः ॥ २२
भृगुर्यत्र तपस्तेपे महर्षिगणसेविते ।
राजन्स आश्रमः ख्यातो भृगुतुङ्गो महागिरिः २३
यः स भूतं भविष्यच्च भवच्च भरतर्षभ ।
नारायणः प्रभुर्विष्णुः शाश्वतः पुरुषोत्तमः ॥ २४
तस्यातियशसः पुण्यां विशालां बदरीमनु ।
आश्रमः ख्यायते पुण्यस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२५
उष्णतोयवहा गङ्गा शीततोयवहा पुरा ।
सुवर्णसिकता राजन्विशालां बदरीमनु ॥ २६
ऋषयो यत्र देवाश्च महाभागा महौजसः ।
प्राप्य नित्यं नमस्यन्ति देवं नारायणं प्रभुम् ॥ २७
यत्र नारायणो देवः परमात्मा सनातनः ।
तत्र कृत्स्नं जगत्सर्वं तीर्थान्यायतनानि च ॥ २८
तत्पुण्यं परमं ब्रह्म तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ।
तत्परं परमं देवं भूतानां परमेश्वरम् ॥ २९
शाश्वतं परमं चैव धातारं परमं पदम् ।
यं विदित्वा न शोचन्ति विद्वांसः शास्त्रदृष्टयः ॥
तत्र देवर्षयः सिद्धाः सर्वे चैव तपोधनाः ।
आदिदेवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ ३१
पुण्यानामपि तत्पुण्यमत्र ते संशयोऽस्तु मा ।
एतानि राजन्पुण्यानि पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ ३२
कीर्तितानि नरश्रेष्ठ तीर्थान्यायतनानि च ।
एतानि वसुभिः साध्यैरादित्यैर्मरुद्भिरश्विभिः ३३
ऋषिभिर्देवकल्पैश्च सेवितानि महात्मभिः ।
चरन्नेतानि कौन्तेय सहितो ब्राह्मणर्षभैः ।
भ्रातृभिश्च महाभागैरुत्कण्ठां विहरिष्यसि ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० धौम्यतीर्थयात्रायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

वैशंपायन उवाच ।
एवं संभाषमाणे तु धौम्ये कौरवनन्दन ।
लोमशः स महातेजा ऋषिस्तत्राजगाम ह ॥ १
तं पाण्डवाग्रजो राजा सगणो ब्राह्मणाश्च ते ।
उपातिष्ठन्महाभागं दिवि शक्रमिवामराः ॥ २
समभ्यर्च्य यथान्यायं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पप्रच्छागमने हेतुमटने च प्रयोजनम् ॥ ३
स पृष्टः पाण्डुपुत्रेण प्रीयमाणो महामनाः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा हर्षयन्निव पाण्डवान् ॥ ४
संचरन्नस्मि कौन्तेय सर्वाँल्लोकान्यदृच्छया ।
गतः शक्रस्य भवनं तत्रापश्यं सुरेश्वरम् ॥ ५
तव च भ्रातरं वीरमपश्यं सव्यसाचिनम् ।
शक्रस्यार्धासनगतं तत्र मे विस्मयो महान् ॥ ६
आसीत्पुरुषशार्दूल दृष्ट्वा पार्थं तथागतम् ।
आह मां तत्र देवेशो गच्छ पाण्डुसुतान्प्रति ॥७
सोहमभ्यागतः क्षिप्रं दिदृक्षुस्त्वां सहानुजम् ।
वचनात्पुरुहूतस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ८
आख्यास्ये ते प्रियं तात महत्पाण्डवनन्दन ।
ऋषिभिः सहितो राजन्कृष्णया चैव तच्छृणु ॥ ९
त्वयोक्तो महाबाहुरस्त्रार्थं भरतर्षभ ।
तदस्त्रमाप्तं पार्थेन रुद्रादप्रतिमं विभो ॥ १०
यत्तद्ब्रह्मशिरो नाम तपसा रुद्रमागमत् ।
अमृतादुत्थितं रौद्रं तल्लब्धं सव्यसाचिना ॥ ११
तत्समन्त्रं ससंहारं सप्रायश्चित्तमङ्गलम् ।
वज्रमस्त्राणि चान्यानि दण्डादीनि युधिष्ठिर १२

विशालां नामतः बदरीमनु बदरीसमीपे ॥२५॥ विहरिष्यासि परिहरिष्यासि ॥३४॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

एवमिति ॥१॥ समन्त्रं प्रयोगादौ मन्त्रसहितम् । संहारस्त्यक्तस्याकर्षणम् । प्रायश्चित्तं अस्त्राग्निना निरपराधानां दाहे यो दोषस्तस्य शोधनम् । मङ्गलं दग्धानामेवारामादीनां पुनर्विकसनम् । वज्रं वज्रवंदप्रतीकार्यं रौद्रमेव ॥ १२ ॥

यमात्कुबेराद्वरुणादिन्द्राच्च कुरुनन्दन ।
अस्त्राण्यधीतवान्पार्थो दिव्यान्यमितविक्रमः ॥
विश्वावसोस्तु तनयाद्गीतं नृत्यं च साम च ।
वादित्रं च यथान्यायं प्रत्यविन्दद्यथाविधि ॥ १४
एवं कृतास्त्रः कौन्तेयो गान्धर्वं वेदमाप्तवान् ।
सुखं वसति बीभत्सुरनुजस्यानुजस्तव ॥ १५
यदर्थं मां सुरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ।
तच्च ते कथयिष्यामि युधिष्ठिर निबोध मे ॥ १६
भवान्मनुष्यलोकेपि गमिष्यति न संशयः ।
ब्रूयाद्युधिष्ठिरं तत्र वचनान्मे द्विजोत्तम ॥ १७
आगमिष्यति ते भ्राता कृतास्त्रः क्षिप्रमर्जुनः ।
सुरकार्यं महत्कृत्वा यदशक्यं दिवौकसैः ॥ १८
तपसापि त्वमात्मानं योजय भ्रातृभिः सह ॥
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ १९
अहं च कर्णं जानामि यथावद्भरतर्षभ ।
सत्यसंधं महोत्साहं महावीर्यं महाबलम् २०
महाहवेष्वप्रतिमं महायुद्धविशारदम् ।
महाधनुर्धरं वीरं महास्त्रं वरवर्णिनम् ॥ २१
महेश्वरसुतप्रख्यमादित्यतनयं
तथार्जुनमतिस्कन्धं सहजोल्बणपौरुषम् २२
न स पार्थस्य संग्रामे कलामर्हति षोडशीम् ।
यच्चापि ते भयं कर्णान्मनसिस्थमरिंदम ॥ २३
तच्चाप्यपहरिष्यामि सव्यसाचिन्युपागते ।
यच्च ते मानसं वीर तीर्थयात्रामिमां प्रति ।
स महर्षिर्लोमशस्ते कथयिष्यत्यसंशयम् ॥ २४
यच्च किंचित्तपोयुक्तं फलं तीर्थेषु भारत ।
ब्रह्मर्षिरेष ब्रूयात्ते न तच्छ्रद्धेयमन्यथा ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशसंवादे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

## ९२

लोमश उवाच ।
धनंजयेन चाप्युक्तं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ।
युधिष्ठिरं भ्रातरं मे योजयेर्धर्म्यया श्रिया ॥ १
त्वं हि धर्मान्परान्वेत्थ तपांसि च तपोधन ।
श्रीमतां चापि जानासि धर्मं राज्ञां सनातनम् ॥२
स भवान्परमं वेद पावनं पुरुषं प्रति ।
तेन संयोजयेथास्त्वं तीर्थपुण्येन पाण्डवान् ॥ ३
यथा तीर्थानि गच्छेत गाश्च दद्यात्स पार्थिवः ।
तथा सर्वात्मना कार्यमिति मामर्जुनोऽब्रवीत् ॥ ४
भवता चानुगुप्तोसौ चरेत्तीर्थानि सर्वशः ।
रक्षोभ्यो रक्षितव्यश्च दुर्गेषु विषमेषु च ॥ ५
दधीच इव देवेन्द्रं यथा चाप्यङ्गिरा रविम् ।
तथा रक्षस्व कौन्तेयान्राक्षसेभ्यो द्विजोत्तम ॥ ६
यातुधाना हि बहवो राक्षसाः पर्वतोपमाः ।
त्वयाभिगुप्तं कौन्तेयं न विवर्तेयुरन्तिकम् ॥ ७
सोहमिन्द्रस्य वचनान्नियोगादर्जुनस्य च ।
रक्षमाणो भयेभ्यस्त्वां चरिष्यामि त्वया सह॥ ८
द्विस्तीर्थानि मया पूर्वं दृष्टानि कुरुनन्दन ।
इदं तृतीयं द्रक्ष्यामि तान्येव भवता सह ॥ ९
इयं राजर्षिभिर्याता पुण्यकृद्भिर्युधिष्ठिर ।
मन्वादिभिर्महाराज तीर्थयात्रा भयापहा ॥ १०
नानृजुर्नाकृतात्मा च नाविद्यो न च पापकृत् ।
स्नाति तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्नरः ॥ ११

गीतं लौकिकं गानं साम ऋक्षु गानम् ॥ १४ ॥ अनुजस्य भीमस्यानुजः ॥ १५ ॥ सुरकार्यं निवातकवचादीनां वधः । दिवौकसैरिति बहुलं छन्दसीत्यस् ॥ १८ ॥ सत्यसंधं सत्यप्रतिज्ञम् ॥ २० ॥ वरवर्णिनम् अतिसुंदरम् ॥ २१ ॥ महेश्वरसुतप्रख्यं स्कन्दतुल्यं अतिस्कन्धम् उन्नतांसम् । ज्ञानंगतिस्कन्धमिति पाठे योगिश्रेष्ठम् ॥ २२ ॥ अपहरिष्यामि कवचकुण्डलापहरणे इन्द्रेण कृते सति तदपि इन्द्रस्यान्तः प्रविश्य संपादयिष्यामि आर्षेण अभेददर्शनेन अहं मनुरभवमित्यादिवदहमेवेन्द्ररूपी करिष्यामीति ॥ २४ ॥ तत् श्रद्धेयं न त्वन्यथा गृहीतव्यमित्यर्थः ॥ २५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

९२

धनंजयेनेति । योजयेः योजय धर्म्यया धर्मादनपेतया ॥ १ ॥ पुरुषं प्रति पुरुषस्येत्यर्थः ॥ ३ ॥ द्विः द्विवारं तृतीयं तृतीयवारम् ॥ ९ ॥

त्वं तु धर्ममतिर्नित्यं धर्मज्ञः सत्यसंगरः ।
विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो भूय एव भविष्यसि ॥ १२
यथा भगीरथो राजा राजानश्च गयादयः ।
यथा ययातिः कौन्तेय तथा त्वमपि पाण्डव॥१३
युधिष्ठिर उवाच ।
न हर्षात्संप्रपश्यामि वाक्यस्यास्योत्तरं क्वचित् ।
स्मरेद्धि देवराजोयं को नामाभ्यधिकस्ततः॥ १४
भवता संगमो यस्य भ्राता चैव धनंजयः ।
वासवः स्मरते यस्य को नामाभ्यधिकस्ततः॥१५
यच्च मां भगवानाह तीर्थानां दर्शनं प्रति ।
धौम्यस्य वचनादेषा बुद्धिः पूर्वं कृतैव मे ॥ १६
तद्यदा मन्यसे ब्रह्मन्गमनं तीर्थदर्शने ।
तदैव गन्तास्मि तीर्थान्येष मे निश्चयः परः ॥१७
वैशंपायन उवाच ।
गमने कृतबुद्धिं तु पाण्डवं लोमशोब्रवीत् ।
लघुर्भव महाराज लघुः स्वैरं गमिष्यसि ॥ १८
युधिष्ठिर उवाच ।
भिक्षाभुजो निवर्तन्तां ब्राह्मणा यतयश्च ये ।
क्षुत्तृडध्वश्रमायासशीतार्तिमसहिष्णवः ॥ १९
ते सर्वे विनिवर्तन्तां ये च मिष्टभुजो द्विजाः ।
पक्वान्नलेह्यपानानां मांसानां च विकल्पकाः ॥२०
तेपि सर्वे निवर्तन्तां ये च सूदानुयायिनः ।
मया यथोचिताजीव्यैः संविभक्ताश्च वृत्तिभिः ॥
ये चाप्यनुरताः पौरा राजभक्तिपुरःसराः ।
धृतराष्ट्रं महाराजमभिगच्छन्तु ते च वै ॥ २२
स दास्यति यथाकालमुचिता यस्य या भृतिः ।
स चेद्यथोचितां वृत्तिं न दद्यान्मनुजेश्वरः ॥ २३
अस्मत्प्रियहितार्थाय पाञ्चाल्यो वः प्रदास्यति २४
वैशंपायन उवाच ।
ततो भूयिष्ठशः पौरा गुरुभारप्रपीडिताः ।
विप्राश्च यतयो मुख्या जग्मुर्नागपुरं प्रति ॥ २५
तान्सर्वान्धर्मराजस्य प्रेम्णा राजाम्बिकासुतः ।
प्रतिजग्राह विधिवद्धनैश्च समतर्पयत् ॥ ६
ततः कुन्तीसुतो राजा लघुभिर्ब्राह्मणैः सह ।
लोमशेन च सुप्रीतस्त्रिरात्रं काम्यकेऽवसत् ॥२७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

वैशंपायन उवाच ।
ततः प्रयान्तं कौन्तेयं ब्राह्मणा वनवासिनः ।
अभिगम्य तदा राजन्निदं वचनमब्रुवन् ॥ १
राजंस्तीर्थानि गन्तासि पुण्यानि भ्रातृभिः सह।
ऋषिणा चैव सहितो लोमशेन महात्मना ॥ २
अस्मानपि महाराज नेतुमर्हसि पाण्डव ।
अस्माभिर्हि न शक्यानि त्वदृते तानि कौरव ॥३
श्वापदैरुपसृष्टानि दुर्गाणि विषमाणि च ।
अगम्यानि नरैरल्पैस्तीर्थानि मनुजेश्वर ॥ ४
भवतो भ्रातरः शूरा धनुर्धरवराः सदा ।
भवद्भिः पालिताः शूरैर्गच्छामो वयमच्युत ॥ ५
भवत्प्रसादाद्धि वयं प्राप्नुयाम सुखं फलम् ।
तीर्थानां पृथिवीपाल वनानां च विशांपते ॥ ६
तव वीर्यपरित्राताः शुद्धास्तीर्थपरिप्लुताः ।
भवेम धूतपाप्मानस्तीर्थसंदर्शनान्नृप ॥ ७
भवानपि नरेन्द्रस्य कार्तवीर्यस्य भारत ।
अष्टकस्य च राजर्षेर्लोमपादस्य चैव ह ॥
भरतस्य च वीरस्य सार्वभौमस्य पार्थिव
ध्रुवं प्राप्स्यसि दुष्प्रापाँल्लोकांस्तीर्थपरिप्लुतः

सत्यसंगरः सत्यप्रतिज्ञः । यान्येव संग्रामनामानि तानि यज्ञनामानीति यास्कवचनात ।। १२ ।। लघुः अल्पपरिवारः ।।१८।। विकल्पकाः मृष्टामृष्टविभाजकाः ।। २० ।। आजीव्यैः भृत्यादिभिः वृत्तिभिर्जीवनहेतुभिरन्नादिभिः ।। २१ ।। पाञ्चाल्यो द्रुपदः वः युष्मभ्यम् ।।२४।। इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवतितमोऽध्यायः।। ९२ ।।

९३

तत इति ॥ १ ॥ दुर्गाणि कण्टकाद्याक्रान्तत्वात् विषमाणि हिंस्रव्याघ्राद्याश्रितत्वात् ॥ ४ ॥

प्रभासादीनि तीर्थानि महेन्द्रादींश्च पर्वतान् ।
गङ्गाद्याः सरितश्चैव प्लक्षादींश्च वनस्पतीन् ॥ १०
त्वया सह महीपाल द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ।
यदि ते ब्राह्मणेष्वस्ति काचित्प्रीतिर्जनाधिप ११
कुरु क्षिप्रं वचोऽस्माकं ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ।
तीर्थानि हि महाबाहो तपोविघ्नकरैः सदा ॥ १२
अनुकीर्णानि रक्षोभिस्तेभ्यो नस्त्रातुमर्हसि ।
तीर्थान्युक्तानि धौम्येन नारदेन च धीमता ॥१३
यान्युवाच च देवर्षिर्लोमशः सुमहातपाः ।
विधिवत्तानि सर्वाणि पर्यटस्व नराधिप ॥ १४
धूतपाप्मा सहास्माभिर्लोमशेनाभिपालितः
स राजा पूज्यमानस्तैर्हर्षादश्रुपरिप्लुतः ॥ १५
भीमसेनादिभिर्वीरैर्भ्रातृभिः परिवारितः ।
बाढमित्यब्रवीत्सर्वांस्तानृषीन्पाण्डवर्षभः ॥ १६
लोमशं समनुज्ञाप्य धौम्यं चैव पुरोहितम् ।
ततः स पाण्डवश्रेष्ठो भ्रातृभिः सहितो वशी १७
द्रौपद्या चानवद्याङ्ग्या गमनाय मनो दधे ।
अथ व्यासो महाभागस्तथा पर्वतनारदौ ॥ १८
काम्यके पाण्डवं द्रष्टुं समाजग्मुर्मनीषिणः ।
तेषां युधिष्ठिरो राजा पूजां चक्रे यथाविधि ।
सत्कृतास्ते महाभागा युधिष्ठिरमथाब्रुवन् ॥ १९

ऋषय ऊचुः ।
युधिष्ठिर यमौ भीम मनसा कुरुतार्जवम् ।
मनसा कृतशौचा वै शुद्धास्तीर्थानि यास्यथ २०
शरीरनियमं प्राहुर्ब्राह्मणा मानुषं व्रतम् ।
मनो विशुद्धां बुद्धिं च दैवमाहुर्व्रतं द्विजाः ॥ २१
मनो ह्यदुष्टं शौचाय पर्याप्तं वै नराधिप ।
मैत्रीं बुद्धिं समास्थाय शुद्धास्तीर्थानि द्रक्ष्यथ ॥
ते यूयं मानसैः शुद्धाः शरीरनियमव्रतैः ।
दैवं व्रतं समास्थाय यथोक्तं फलमाप्स्यथ ॥ २३
ते तथेति प्रतिज्ञाय कृष्णया सह पाण्डवाः ।
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे मुनिभिर्दिव्यमानुषैः ॥ २४
लोमशस्योपसंगृह्य पादौ द्वैपायनस्य च ।
नारदस्य च राजेन्द्र देवर्षेः पर्वतस्य च ॥ २५
धौम्येन सहिता वीरास्तथा तैर्वनवासिभिः ।
मार्गशीर्ष्यामतीतायां पुष्येण प्रययुस्ततः ॥ २६
कठिनानि समादाय चीराजिनजटाधराः ।
अभेद्यैः कवचैर्युक्तास्तीर्थान्यन्वचरंस्ततः ॥ २७
इन्द्रसेनादिभिर्भृत्यै रथैः परिचतुर्दशैः ।
महानसव्यापृतैश्च तथान्यैः परिचारिकैः ॥ २८
सायुधा बद्धनिस्त्रिंशास्तूणवन्तः समार्गणाः ।
प्राङ्मुखाः प्रययुर्वीराः पाण्डवा जनमेजय ॥ २९

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थ० लोमशतीर्थयात्रायां
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

## ९४

युधिष्ठिर उवाच ।
न वै निर्गुणमात्मानं मन्ये देवर्षिसत्तम ।
तथास्मि दुःखसंतप्तो यथा नान्यो महीपतिः १
परांश्च निर्गुणान्मन्ये न च धर्मगतानपि ।
ते च लोमश लोकेऽस्मिन्नृध्यन्ते केन हेतुना ॥ २

लोमश उवाच ।
नात्र दुःखं त्वया राजन्कार्यं पार्थ कथंचन ।
यदधर्मेण वर्धेरन्नधर्मरुचयो जनाः ॥ ३
वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ ४

अनुकीर्णानि व्याप्तानि । नः अस्मान् ॥ १३ ॥ आर्जवं ऋजुबुद्धिं श्रद्धामित्यर्थः ॥ २० ॥ कठिनानि यष्टीः 'काठी' इति महाराष्ट्रप्रसिद्धेः । अन्ये तु शिक्यानि करण्डानि वेति व्याचख्युः ॥ २७ ॥ परिचतुर्दशैः पञ्चदशभिः । चतुर्दशभ्यः परि उपरीति व्युत्पत्तेः । संख्ययाव्ययासन्नेति समासः । बहुव्रीहौ संख्येये डजिति डच् ॥२८॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४

न वा इति । निर्गुणम् उत्तमगुणहीनम् ॥ १ ॥ परान् शत्रून् ॥ २ ॥ समूलः पुत्रपौत्रादिवंशवृद्धिमूलं तत्सहितः ॥ ४ ॥

मया हि दृष्टा दैतेया दानवाश्च महीपते ।
वर्धमाना ह्यधर्मेण क्षयं चोपगताः पुनः ॥ ५
पुरा देवयुगे चैव दृष्टं सर्वं मया विभो ।
अरोचयन्सुरा धर्मं धर्मं तत्यजिरेऽसुराः ॥ ६
तीर्थानि देवा विविशुर्नाविशन्भारतासुराः ।
तानधर्मकृतो दर्पः पूर्वमेव समाविशत् ॥ ७
दर्पान्मानः समभवन्मानात्क्रोधो व्यजायत ।
क्रोधादह्रीस्ततोऽलज्जा वृत्तं तेषां ततोऽनशत् ८
तानलज्जान्गतह्रीकान्हीनवृत्तान्वृथाव्रतान् ।
क्षमा लक्ष्मीः स्वधर्मश्च न चिरात्प्रजहुस्ततः ॥ ९
लक्ष्मीस्तु देवानगमदलक्ष्मीरसुरान्नृप ।
तानलक्ष्मीसमाविष्टान्दर्पोपहतचेतसः ॥ १०
दैतेयान्दानवांश्चैव कलिरप्याविशत्ततः ।
तानलक्ष्मीसमाविष्टान्दानवान्कलिना हतान् ॥११
दर्पाभिभूतान्कौन्तेय क्रियाहीनानचेतसः ।
मानाभिभूतानचिराद्विनाशः समपद्यत ॥ १२
निर्यशस्कास्तथा दैत्याः कृत्स्नशो विलयं गताः ।
देवास्तु सागरांश्चैव सरितश्च सरांसि च ॥ १३
अभ्यगच्छन्धर्मशीलाः पुण्यान्यायतनानि च ।
तपोभिः क्रतुभिर्दानैराशीर्वादैश्च पाण्डव ॥ १४
प्रजहुः सर्वपापानि श्रेयश्च प्रतिपेदिरे ।
एवमादानवन्तश्च निरादानाश्च सर्वशः ॥ १५
तीर्थान्यगच्छन्विबुधास्तेनापुर्भूतिमुत्तमाम् ।
तथा त्वमपि राजेन्द्र स्नात्वा तीर्थेषु सानुजः १६
पुनर्वेत्स्यासि तां लक्ष्मीमेष पन्थाः सनातनः ।
यथैव हि नृगो राजा शिबिरौशीनरो यथा ॥१७
भगीरथो वसुमना गयः पूरुः पुरूरवाः ।
चरमाणास्तपो नित्यं स्पर्शनादम्भसश्च ते ॥ १८
तीर्थाभिगमनात्पूता दर्शनाच्च महात्मनाम् ।
अलभन्त यशः पुण्यं धनानि च विशांपते ॥ १९
तथा त्वमपि राजेन्द्र लब्धा सुविपुलां श्रियम् ।
यथा चेक्ष्वाकुरभवत्सपुत्रजनबान्धवः ॥ २०
मुचुकुन्दोथ मांधाता मरुत्तश्च महीपतिः ।
कीर्तिं पुण्यामविन्दन्त यथा देवास्तपोबलात्॥२१
देवर्षयश्च कार्त्स्न्येन तथा त्वमपि वेत्स्यसि ।
धार्तराष्ट्रास्त्वधर्मेण मोहेन च वशीकृताः ।
न चिराद्वै विनङ्क्ष्यन्ति दैत्या इव न संशयः॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## ९५

वैशंपायन उवाच ।
ते तथा सहिता वीरा वसन्तस्तत्र तत्र ह ।
क्रमेण पृथिवीपाल नैमिषारण्यमागताः ॥ १
ततस्तीर्थेषु पुण्येषु गोमत्याः पाण्डवा नृप ।
कृताभिषेकाः प्रददुर्गाश्च वित्तं च भारत ॥ २
तत्र देवान्पितॄन्विप्रांस्तर्पयित्वा पुनः पुनः ।
कन्यातीर्थेऽश्वतीर्थे च गवां तीर्थे च भारत ।
कालकोट्यां विषप्रस्थे गिरावुष्य च कौरवाः ॥ ३
बाहुदायां महीपाल चक्रुः सर्वेऽभिषेचनम् ।
प्रयागे देवयजने देवानां पृथिवीपते ॥ ४
ऊषुराप्लुत्य गात्राणि तपश्चातस्थुरुत्तमम् ।
गङ्गायमुनयोश्चैव संगमे सत्यसंगराः ॥ ५
विपाप्मानो महात्मानो विप्रेभ्यः प्रददुर्वसु ।
तपस्विजनजुष्टां च ततो वेदीं प्रजापतेः ॥ ६
जग्मुः पाण्डुसुता राजन्ब्राह्मणैः सह भारत ।
तत्र ते न्यवसन्वीरास्तपश्चातस्थुरुत्तमम् ॥ ७
संतर्पयन्तः सततं वन्येन हविषा द्विजान् ।
ततो महीधरं जग्मुर्धर्मज्ञेनाभिसंस्कृतम् ॥

विविशुः स्नानार्थमिति शेषः । अधर्मस्तीर्थयात्राऽप्रवेशजस्तत्कर्तॄन् अधर्मकृतः । अधर्मेण कृत उत्पादितो वा दर्पः गर्वः ततो मानः पूज्योऽस्मीति बुद्धिः ॥ ७ ॥ ततः पूजाया अलाभे प्रतिघाते वा क्रोधः ततः अह्रीः अकार्ये प्रवृत्तिः ततः अलज्जा लज्जानिन्यतादोषाद्वयं तस्य नाशः ॥ ८ ॥ न चिरात् शीघ्रमेव ॥ ९ ॥ आदानवन्तः आर्जवादिनियमग्रहणवन्तः निरादानाःअप्रतिबद्धाः सर्वशःदेशादिभिरपि ॥१५॥ वेत्स्यसि लप्स्यसे ॥१७॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥ ९४ ॥

९५

ते तथेति ॥१॥

राजर्षिणा पुण्यकृता गयेनानुपमद्युते ।
नगो गयशिरो यत्र पुण्या चैव महानदी ॥ ९
वानीरमालिनी रम्या नदी पुलिनशोभिता ।
दिव्यं पवित्रकूटं च पवित्रं धरणीधरम् ॥ १०
ऋषिजुष्टं सुपुण्यं तत्तीर्थं ब्रह्मसरोत्तमम् ।
अगस्त्यो भगवान्यत्र गतो वैवस्वतं प्रति ॥ ११
उवास च स्वयं तत्र धर्मराजः सनातनः ।
सर्वासां सरितां चैव समुद्भेदो विशांपते ॥ १२
यत्र संनिहितो नित्यं महादेवः पिनाकधृक् ।
तत्र ते पाण्डवा वीराश्चातुर्मास्यैस्तदेजिरे ॥ १३
ऋषियज्ञेन महता यत्राक्षयवटो महान् ।
अक्षये देवयजने अक्षयं यत्र वै फलम् ॥ १४
ये तु तत्रोपवासांस्तु चक्रुर्निश्चितमानसाः ।
ब्राह्मणास्तत्र शतशः समाजग्मुस्तपोधनाः ॥ १५
चातुर्मास्येनायजन्त आर्षेण विधिना तदा ।
तत्र विद्यातपोवृद्धा ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
कथां प्रचक्रिरे पुण्यां सदसिस्था महात्मनाम् १६
तत्र विद्याव्रतस्नातः कौमारं व्रतमास्थितः ।
शमठोऽकथयद्राजन्नामूर्तरयसं गयम् ॥ १७

शमठ उवाच ।

अमूर्तरयसः पुत्रो गयो राजर्षिसत्तमः ।
पुण्यानि यस्य कर्माणि तानि मे शृणु भारत ॥१८
यस्य यज्ञो बभूवेह बह्वन्नो बहुदक्षिणः ।
यत्रान्नपर्वता राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९
घृतकुल्याश्च दध्नश्च नद्यो बहुशतास्तथा ।
व्यंजनानां प्रवाहाश्च महार्हाणां सहस्रशः ॥ २०
अहन्यहनि चाप्येवं याचतां संप्रदीयते ।
अन्ये च ब्राह्मणा राजन्भुञ्जतेऽन्नं सुसंस्कृतम् ॥ २१
तत्र वै दक्षिणाकाले ब्रह्मघोषो दिवं गतः ।
न च प्रज्ञायते किंचिद्ब्रह्मशब्देन भारत ॥ २२
पुण्येन चरता राजन्भूर्दिशः खं नभस्तथा ।
आपूर्णमासीच्छब्देन तदप्यासीन्महाद्भुतम् ॥ २३
यत्र स्म गाथा गायन्ति मनुष्या भरतर्षभ ।
अन्नपानैः शुभैस्तृप्ता देशे देशे सुवर्चसः ॥ २४
गयस्य यज्ञे के त्वद्य प्राणिनो भोक्तुमीप्सवः ।
तत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ २५
न तत्पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ।
गयो यदकरोद्यज्ञे राजर्षिरमितद्युतिः ॥ २६
कथं तु देवा हविषा गयेन परितर्पिताः ।
पुनः शक्ष्यन्त्युपादातुमन्यैर्दत्तानि कानिचित् २७
सिकता वा यथा लोके यथा वा दिवि तारकाः
यथा वा वर्षतो धारा असंख्येयाः स्म केनचित् ।
तथा गणयितुं शक्या गययज्ञे न दक्षिणाः ॥ २८
एवंविधाः सुबहवस्तस्य यज्ञा महीपतेः ।
बभूवुरस्य सरसः समीपे कुरुनन्दन ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां गययज्ञकथने पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

## ९६

वैशंपायन उवाच ।

ततः संप्रस्थितो राजा कौन्तेयो भूरिदक्षिणः ।
अगस्त्याश्रममासाद्य दुर्जयायामुवास ह ॥ १
तत्रैव लोमशं राजा पप्रच्छ वदतां वरः ।
अगस्त्येनेह वातापिः किमर्थमुपशामितः ॥ २
आसीद्वा किं प्रभावश्च स दैत्यो मानवान्तकः ।
किमर्थं चोदितो मन्युरगस्त्यस्य महात्मनः ॥ ३

लोमश उवाच ।

इल्वलो नाम दैतेय आसीत्कौरवनन्दन ।
मणिमत्यां पुरि पुरा वातापिस्तस्य चानुजः ।
स ब्राह्मणं तपोयुक्तमुवाच दितिनन्दनः ।
पुत्रं मे भगवानेकमिन्द्रतुल्यं प्रयच्छतु ॥
तस्मै स ब्राह्मणो नादात्पुत्रं वासवसंमितम् ।
चुक्रोध सोऽसुरस्तस्य ब्राह्मणस्य ततो भृशम् ।

---

वानीरमालिनी वेत्रपङ्क्तियुक्ता ॥१०॥ ब्रह्मशब्देन वेदध्वनिना ॥ २२ ॥ सिकतादिवद्यज्ञे दक्षिणाः न गणयितुं शक्या इत्यन्वयः ॥ २८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

९६

तत इति । दुर्जयायां वातापिपुर्यां मणिमतीसंज्ञायाम् ॥ १ ॥ नादात् न दत्तवान् ॥ ६ ॥

तदाप्रभृति राजेन्द्र इल्वलो ब्रह्महाऽसुरः ।
मन्युमान्भ्रातरं छागं मायावी ह्यकरोत्ततः ॥ ७
मेषरूपी च वातापिः कामरूप्यभवत्क्षणात् ।
संस्कृत्य च भोजयति ततो विप्रं जिघांसति ॥ ८
स चाह्वयति यं वाचा गतं वैवस्वतक्षयम् ।
स पुनर्देहमास्थाय जीवन्स्म प्रत्यदृश्यत ॥ ९
ततो वातापिमसुरं छागं कृत्वा सुसंस्कृतम् ।
तं ब्राह्मणं भोजयित्वा पुनरेव समाह्वयत् ॥ १०
तामिल्वलेन महता स्वरेण वाचमीरिताम् ।
श्रुत्वातिमायो बलवान्क्षिप्रं ब्राह्मणकण्टकः ॥ ११
तस्य पार्श्वं विनिर्भिद्य ब्राह्मणस्य महासुरः ।
वातापिः प्रहसन्राजन्निश्चक्राम विशांपते ॥ १२
एवं स ब्राह्मणान्राजन्भोजयित्वा पुनः पुनः ।
हिंसयामास दैतेय इल्वलो दुष्टचेतनः ॥ १३
अगस्त्यश्चापि भगवानेतस्मिन्काल एव तु ।
पितॄन्ददर्श गर्ते वै लम्बमानानधोमुखान् ॥ १४
सोऽपृच्छल्लम्बमानांस्तान्भवन्त इव कम्पिताः ।
संतानहेतोरिति ते प्रत्यूचुर्ब्रह्मवादिनः ॥ १५
ते तस्मै कथयामासुर्वयं ते पितरः स्वकाः ।
गर्तमेतमनुप्राप्ता लम्बामः प्रसवार्थिनः ॥ १६
यदि नो जनयेथास्त्वमगस्त्यापत्यमुत्तमम् ।
स्यान्नोऽस्मान्निरयान्मोक्षस्त्वं च पुत्राप्नुया गतिम्
स तानुवाच तेजस्वी सत्यधर्मपरायणः ।
करिष्ये पितरः कामं व्येतु वो मानसो ज्वरः ॥ १८
ततः प्रसवसंतानं चिन्तयन्भगवानृषिः ।
आत्मनः प्रसवस्यार्थे नापश्यत्सदृशीं स्त्रियम् १९
स तस्य तस्य सत्त्वस्य तत्तदङ्गमनुत्तमम् ।
संगृह्य तत्समैरङ्गैर्निर्ममे स्त्रियमुत्तमाम् ॥ २०
स तां विदर्भराजस्य पुत्रार्थे तप्यतस्तपः ।
निर्मितामात्मनोऽर्थाय मुनिः प्रादान्महातपाः २१
सा तत्र जज्ञे सुभगा विद्युत्सौदामनी यथा ।
विभ्राजमाना वपुषा व्यवर्धत शुभानना ॥ २२
जातमात्रां च तां दृष्ट्वा वैदर्भः पृथिवीपतिः ।
प्रहर्षेण द्विजातिभ्यो न्यवेदयत भारत ॥ २३
अभ्यनन्दन्त तां सर्वे ब्राह्मणा वसुधाधिप ।
लोपामुद्रेति तस्याश्च चक्रिरे नाम ते द्विजाः २४
ववृधे सा महाराज बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
अप्स्विवोत्पलिनी शीघ्रमग्नेरिव शिखा शुभा २५
तां यौवनस्थां राजेन्द्र शतं कन्याः स्वलंकृताः
दास्यः शतं च कल्याणीमुपतस्थुर्वशानुगाः २६
सा स्म दासीशतवृता मध्ये कन्याशतस्य च ।
आस्ते तेजस्विनी कन्या रोहिणीव दिवि प्रभा ॥
यौवनस्थामपि च तां शीलाचारसमन्विताम् ।
न वव्रे पुरुषः कश्चिद्भयात्तस्य महात्मनः ॥ २८
सा तु सत्यवती कन्या रूपेणाप्सरसोऽप्यति ।
तोषयामास पितरं शीलेन स्वजनं तथा ॥ २९
वैदर्भीं तु तथायुक्तां युवतीं प्रेक्ष्य वै पिता ।
मनसा चिन्तयामास कस्मै दद्यामिमां सुताम् ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्योपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

कामरूपी यथाकामं रूपाणि कर्तुं समर्थः संस्कृत्य पक्त्वा ॥ ८ ॥ स च इल्वलश्च ॥ ९ ॥ सोऽपृच्छदिति । तान् भवं लम्बमानेन रूपेण तेषामुद्भवम् अपृच्छत् । पृच्छतिर्द्विकर्मा । किमर्थं यूयं लम्बध्वमित्यपृच्छदित्यर्थः । ते ऋषयःकम्पिता इव सन्तस्ते तव संतानहेतोरयमस्माकं भव इति प्रत्यूचुरिति संबन्धः ॥ १५ ॥ एतस्यैव विवरणं ते तस्मा इति ॥ १६ ॥ वः युष्माकं कामं ईप्सितं करिष्ये ॥ १८ ॥ प्रसवसंतानं संततेरविच्छेदम् ॥ १९ ॥ तस्य तस्य सिंहमृगादेः अङ्गं कटिदृष्ट्यादि । सर्वगुणवतीमित्यर्थः ॥ २० ॥ जज्ञे जाता । सौदामनीति विशेष्यम् । विद्युदिति विशेषणं द्युतिविशेषोपपादनार्थम् । 'कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये' इत्यादौ पिनाकपाणिपदम् ऊर्जितचापवत्त्वद्योतनार्थमुपक्षीणं सत् विशेष्यसमर्पणायालमिति हरस्येति पृथक्प्रयुक्तं तद्वदिहापि ध्येयम् ॥ २२ ॥ मुद्राणां तत्तन्मृगादिजातिगतानामसाधारणानां चिह्नानां कमनीयचक्षुरादीनां लोप इव लोपस्तिरस्कारो यया सा लोपामुद्रा । आहिताग्न्यादिवत्पूर्वनिपातः । अन्येष्वपि दृश्यत इति दीर्घः । प्रकारान्तरेण योगे तु वेदे पदपाठलोप आमुद्रेत्यवग्रहःस्यात्स च न दृश्यते त उक्तविधैव व्युत्पत्तिर्युक्ता ॥ २४ ॥ वशानुगाः इच्छानुरूपाः ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

## ९७

लोमश उवाच।

यदा त्वमन्यतागस्त्यो गार्हस्थ्ये तां क्षमामिति।
तदाभिगम्य प्रोवाच वैदर्भं पृथिवीपतिम् ॥ १
राजन्निवेशो बुद्धिर्मे वर्तते पुत्रकारणात्।
वरये त्वां महीपाल लोपामुद्रां प्रयच्छ मे ॥ २
एवमुक्तः स मुनिना महीपालो विचेतनः।
प्रत्याख्यानाय चाशक्तः प्रदातुं चैव नैच्छत ॥ ३
ततः स भार्यामभ्येत्य प्रोवाच पृथिवीपतिः।
महर्षिर्वीर्यवानेष क्रुद्धः शापाग्निना दहेत् ॥ ४
तं तथा दुःखितं दृष्ट्वा सभार्यं पृथिवीपतिम्।
लोपामुद्राभिगम्येदं काले वचनमब्रवीत् ॥ ५
न मत्कृते महीपाल पीडामभ्येतुमर्हसि।
प्रयच्छ मामगस्त्याय त्राह्यात्मानं मया पितः ॥६
दुहितुर्वचनाद्राजा सोगस्त्याय महात्मने।
लोपामुद्रां ततः प्रादाद्विधिपूर्वं विशांपते ॥ ७
प्राप्य भार्यामगस्त्यस्तु लोपामुद्रामभाषत।
महार्हाण्युत्सृजैतानि वासांस्याभरणानि च ॥ ८
ततः सा दर्शनीयानि महार्हाणि तनूनि च।
समुत्ससर्ज रम्भोरूर्वसनान्यायतेक्षणा ॥ ९
ततश्चीराणि जग्राह वल्कलान्यजिनानि च।
समानव्रतचर्या च बभूवायतलोचना ॥ १०
गङ्गाद्वारमथागम्य भगवानृषिसत्तमः।
उग्रमातिष्ठत तपः सह पत्न्यानुकूलया ॥ ११
सा प्रीता बहुमानाच्च पतिं पर्यचरत्तदा।
अगस्त्यश्च परां प्रीतिं भार्यायामचरत्प्रभुः ॥ १२
ततो बहुतिथे काले लोपामुद्रां विशांपते।
तपसा द्योतितां स्नातां ददर्श भगवानृषिः ॥ १३
स तस्याः परिचारेण शौचेन च दमेन च।
श्रिया रूपेण च प्रीतो मैथुनायाजुहाव ताम् ॥१४
ततः सा प्राञ्जलिर्भूत्वा लज्जमानेव भाविनी।
तदा सप्रणयं वाक्यं भगवन्तमथाब्रवीत् ॥ १५
असंशयं प्रजाहेतोर्भार्यां पतिरविन्दत।
यातु त्वयि मम प्रीतिस्तामृषे कर्तुमर्हसि १६
यथा पितुर्गृहे विप्र प्रासादे शयनं मम।
तथाविधे त्वं शयने मामुपैतुमिहार्हसि ॥ १७
इच्छामि त्वां स्रग्विणं च भूषणैश्च विभूषितम्।
उपसर्तुं यथाकामं दिव्याभरणभूषिता ॥ १८
अन्यथा नोपतिष्ठेयं चीरकाषायवासिनी।
नैवापवित्रो विप्रर्षे भूषणोयं कथंचन ॥ १९

अगस्त्य उवाच।

न ते धनानि विद्यन्ते लोपामुद्रे तथा मम।
यथाविधानि कल्याणि पितुस्तव सुमध्यमे २०

लोपामुद्रोवाच।

ईशोसि तपसा सर्वं समाहर्तुं तपोधन
क्षणेन जीवलोके यद्वसु किंचन विद्यते ॥ २१

अगस्त्य उवाच।

एवमेतद्यथात्थ त्वं तपोव्ययकरं तु तत्।
यथा तु मे न नश्येत तपस्तन्मां प्रचोदय ॥ २२

लोपामुद्रोवाच।

अल्पावशिष्टः कालोयमृतोर्मम तपोधन।
न चान्यथाहमिच्छामि त्वामुपैतुं कथंचन ॥ २३
न चापि धर्ममिच्छामि विलोप्तुं ते कथंचन।
एवं तु मे यथाकामं संपादयितुमर्हसि ॥ २४

अगस्त्य उवाच।

यद्येष कामः सुभगे तव बुद्ध्या विनिश्चितः।
हर्तुं गच्छाम्यहं भद्रे चर काममिह स्थिता ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्योपाख्याने सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

---

९७

यदेति ॥ १ ॥ निवेशो विवाहे ॥ २ ॥ स्नाताम् ऋताविति शेषः ॥ १३ ॥ परिचारेण सेवया ॥ १४ ॥ भूषणोयं चीरकाषायादिस्तपस्विनाम्। श्लाघ्योयं सामग्रीकलापो भोगसंपर्केणापवित्रो नैव भवत्विति शेषः ॥ १९ ॥ ऋतोः कालः षोडशदिनानि तेषु अल्पोऽवशिष्टः ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

## ९८

लोमश उवाच ।

ततो जगाम कौरव्य सोऽगस्त्यो भिक्षितुं वसु ।
श्रुतर्वाणं महीपालं यं वेदाभ्यधिकं नृपैः ॥ १
स विदित्वा तु नृपतिः कुम्भयोनिमुपागतम् ।
विषयान्ते सहामात्यः प्रत्यगृह्णात्सुसत्कृतम् ॥ २
तस्मै चार्घ्यं यथान्यायमानीय पृथिवीपतिः ।
प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा पप्रच्छागमनेऽर्थिताम् ॥३

अगस्त्य उवाच ।

वित्तार्थिनमनुप्राप्तं विद्धि मां पृथिवीपते ।
यथाशक्त्यविहिंस्यान्यान्संविभागं प्रयच्छ मे ४

लोमश उवाच ।

तत आयव्ययौ पूर्णौ तस्मै राजा न्यवेदयत् ।
अतो विद्वन्नुपादत्स्व यदत्र वसु मन्यसे ॥ ५
तत आयव्ययौ दृष्ट्वा समौ सममतिर्द्विजः ।
सर्वथा प्राणिनां पीडामुपादानादमन्यत ॥ ६
स श्रुतर्वाणमादाय व्रध्नश्वमगमत्ततः ।
स च तौ विषयस्यान्ते प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ ७
तयोरर्घ्यं च पाद्यं च व्रध्नश्वः प्रत्यवेदयत् ।
अनुज्ञाप्य च पप्रच्छ प्रयोजनमुपक्रमे ॥ ८

अगस्त्य उवाच ।

वित्तकामाविह प्राप्तौ विद्ध्यावां पृथिवीपते ।
यथाशक्त्यविहिंस्यान्यान्संविभागं प्रयच्छ नौ ९

लोमश उवाच ।

तत आयव्ययौ पूर्णौ ताभ्यां राजा न्यवेदयत् ।
अतो ज्ञात्वा तु गृह्णीतं यदत्र व्यतिरिच्यते ॥ १०
तत आयव्ययौ दृष्ट्वा समौ सममतिर्द्विजः ।
सर्वथा प्राणिनां पीडामुपादानादमन्यत ॥ ११
पौरुकुत्सं ततो जग्मुस्त्रसदस्युं महाधनम् ।
अगस्त्यश्च श्रुतर्वा च व्रध्नश्वश्च महीपतिः ॥ १२
त्रसदस्युस्तु तान्दृष्ट्वा प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ।
अभिगम्य महाराज विषयान्ते महामनाः ॥ १३
अर्चयित्वा यथान्यायमिक्ष्वाकू राजसत्तमः ।
समस्तांश्च ततोऽपृच्छत्प्रयोजनमुपक्रमे ॥ १४

अगस्त्य उवाच ।

वित्तकामानिह प्राप्तान्विद्धि नः पृथिवीपते ।
यथाशक्त्यविहिंस्यान्यान्संविभागं प्रयच्छ नः१५

लोमश उवाच ।

तत आयव्ययौ पूर्णौ तेषां राजा न्यवेदयत् ।
एतज्ज्ञात्वा ह्युपादध्वं यदत्र व्यतिरिच्यते ॥ १६
तत आयव्ययौ दृष्ट्वा समौ सममतिर्द्विजः ।
सर्वथा प्राणिनां पीडामुपादानादमन्यत ॥ १७
ततः सर्वे समेत्याथ ते नृपास्तं महामुनिम् ।
इदमूचुर्महाराज समवेक्ष्य परस्परम् ॥ १८
अयं वै दानवो ब्रह्मन्निल्वलो वसुमान्भुवि ।
तमतिक्रम्य सर्वेऽद्य वयं चार्थामहे वसु ॥ १९

लोमश उवाच ।

तेषां तदासीदुचितमिल्वलस्यैव भिक्षणम् ।
ततस्ते सहिता राजन्निल्वलं समुपाद्रवन् ॥ २०

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्योपाख्याने अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

---

९८

तत इति । यं वेद वेत्ति ॥ १ ॥ विषयान्ते देशसीमान्ते ॥२॥ आगमने निमित्तभूताम् अर्थिताम् । किमिच्छन्नागतोऽसीति पप्रच्छेत्यर्थः ॥ ३ ॥ उपादानात् धनग्रहणात् ॥ ६ ॥ उपक्रमे आगमने ॥ ८ ॥ नौ आवाभ्याम् ॥ ९ ॥ वसुमान् धनवान् ॥ १९ ॥ अध्यायतात्पर्यं ब्राह्मणेनापि हिंसापूर्वकं भिक्षा न कर्तव्येति ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

## ९९

लोमश उवाच ।

इल्वलस्तान्विदित्वा तु महर्षिसहितान्नृपान् ।
उपस्थितान्सहामात्यो विषयान्ते ह्यपूजयत् ॥ १
तेषां ततोऽसुरश्रेष्ठस्त्वातिथ्यमकरोत्तदा ।
सुसंस्कृतेन कौरव्य भ्रात्रा वातापिना यदा ॥ २
ततो राजर्षयः सर्वे विषण्णा गतचेतसः ।
वातापिं संस्कृतं दृष्ट्वा मेषभूतं महासुरम् ॥ ३
अथाब्रवीदगस्त्यस्तान्राजर्षीनृषिसत्तमः ।
विषादो वो न कर्तव्यो ह्यहं भोक्ष्ये महासुरम् ४
धुर्यासनमथासाद्य निषसाद महानृषिः ।
तं पर्यवेषद्दैत्येन्द्र इल्वलः प्रहसन्निव ॥ ५
अगस्त्य एव कृत्स्नं तु वातापिं बुभुजे ततः ।
भुक्तवत्यसुरोऽह्वानमकरोत्तस्य चेल्वलः ॥ ६
ततो वायुः प्रादुरभूदधस्तस्य महात्मनः ।
शब्देन महता तात गर्जन्निव यथा घनः ॥ ७
वातापे निष्क्रमस्वेति पुनः पुनरुवाच ह ।
तं प्रहस्याब्रवीद्राजन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ ८
कुतो निष्क्रमितुं शक्तो मया जीर्णस्तु सोऽसुरः ।
इल्वलस्तु विषण्णोऽभूद्दृष्ट्वा जीर्णं महासुरम् ॥ ९
प्राञ्जलिश्च सहामात्यैरिदं वचनमब्रवीत् ।
किमर्थमुपयाताः स्थ ब्रूत किं करवाणि वः ॥ १०
प्रत्युवाच ततोऽगस्त्यः प्रहसन्निल्वलं तदा ।
ईशं ह्यसुर विद्मस्त्वां वयं सर्वे धनेश्वरम् ॥ ११
एते च नातिधनिनो धनार्थश्च महान्मम ।
यथाशक्त्यविहिंस्यान्यान्संविभागं प्रयच्छ नः ॥
ततोऽभिवाद्य तमृषिमिल्वलो वाक्यमब्रवीत् ।
दित्सितं यदि वेत्सि त्वं ततो दास्यामि ते वसु ॥
अगस्त्य उवाच ।
गवां दशसहस्राणि राज्ञामेकैकशोऽसुर ।
तावदेव सुवर्णस्य दित्सितं ते महासुर ॥ १४
मह्यं ततो वै द्विगुणं रथश्चैव हिरण्मयः ।
मनोजवौ वाजिनौ च दित्सितं ते महासुर ॥ १५
जिज्ञास्यतां रथः सद्यो व्यक्त एष हिरण्मयः ।
ततः प्रव्यथितो दैत्यो ददावभ्यधिकं वसु ॥ १६
विरावश्च सुरावश्च तस्मिन्युक्तौ रथे हयौ ।
ऊहतुः सवसूनाशु तावगस्त्याश्रमं प्रति ॥ १७
सर्वान्राज्ञः सहागस्त्यान्निमेषादिव भारत ।
अगस्त्येनाभ्यनुज्ञाता जग्मू राजर्षयस्तदा ।
कृतवांश्च मुनिः सर्वं लोपामुद्राचिकीर्षितम् ॥ १८
लोपामुद्रोवाच ।
कृतवानसि तत्सर्वं भगवन्मम काङ्क्षितम् ।
उत्पादय सकृन्मह्यमपत्यं वीर्यवत्तरम् ॥ १९
अगस्त्य उवाच ।
तुष्टोऽहमस्मि कल्याणि तव वृत्तेन शोभने ।
विचारणामपत्ये तु तव वक्ष्यामि तां शृणु ॥ २०
सहस्रं तेऽस्तु पुत्राणां शतं वा दशसंमितम् ।
दश वा शततुल्याः स्युरेको वापि सहस्रजित् २१
लोपामुद्रोवाच ।
सहस्रसंमितः पुत्र एकोऽप्यस्तु तपोधन ।
एको हि बहुभिः श्रेयान्विद्वान्साधुरसाधुभिः २२
लोमश उवाच ।
स तथेति प्रतिज्ञाय तया समभवन्मुनिः ।
समये समशीलिन्या श्रद्धावाञ्श्रद्दधानया ॥ २३
तत आधाय गर्भं तमगमद्वनमेव सः ।
तस्मिन्वनगते गर्भो ववृधे सप्तशारदान् ॥ २४
सप्तमेऽब्दे गते चापि प्राच्यवत्स महाकविः ।
ज्वलन्निव प्रभावेण दृढस्युर्नाम भारत ॥ २५
साङ्गोपनिषदान्वेदाञ्जपन्निव महातपाः ।
तस्य पुत्रोऽभवदृषेः स तेजस्वी महाद्विजः ॥ २६
स बाल एव तेजस्वी पितुस्तस्य निवेशने ।
इध्मानां भारमाजह्रे इध्मवाहस्ततोऽभवत् २७
तथायुक्तं तु तं दृष्ट्वा मुमुदे स मुनिस्तदा ।
एवं स जनयामास भारतापत्यमुत्तमम् ॥ २८
लेभिरे पितरश्चास्य लोकान्राजन्यथेप्सितान् ।
तत ऊर्ध्वमगं ख्यातस्त्वगस्त्यस्याश्रमो भुवि ॥ २९
प्राह्रादिरेवं वातापिरगस्त्येनोपशामितः ।
तस्यायमाश्रमो राजन्रमणीयैर्गुणैर्युतः ॥ ३०

९९

इल्वल इति ॥ १ ॥ दित्सितं मया युष्मभ्यं दातुमिष्टम् । एतेन पराचित्ताभिज्ञत्वमगस्त्यस्य परीक्षितम् ॥ १३ ॥ दशसंमितं दशशतसंमितम् ॥ २१ ॥ समभवत्संगमं चकार ॥ २३ ॥ शारदान् शरदा ऋतुना युक्तान् संवत्सरानित्यर्थः ॥ २४ ॥ प्राच्यवत् उदरान्निर्गतोऽभवदित्यर्थः ॥ २५ ॥ युक्तं अध्ययनेध्मवाहनादौ ॥ २८ ॥ प्राह्रादिः प्रह्रादगोत्रोद्भवः ॥ ३० ॥

एषा भागीरथी पुण्या देवगन्धर्वसेविता ।
वातेरिता पताकेव विराजति नभस्तले ॥ ३१
प्रतार्यमाणा कूटेषु यथा निम्नेषु नित्यशः ।
शिलातलेषु संत्रस्ता पन्नगेन्द्रवधूरिव ॥ ३२
दक्षिणां वै दिशं सर्वां प्लावयन्ती च मातृवत् ।
पूर्वं शंभोर्जटाभ्रष्टा समुद्रमहिषी प्रिया ।
अस्यां नद्यां सुपुण्यायां यथेष्टमवगाह्यताम् ॥ ३३
युधिष्ठिर निबोधेदं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
भृगोस्तीर्थं महाराज महर्षिगणसेवितम् ॥ ३४
यत्रोपस्पृष्टवान्रामो हृतं तेजस्तदाप्तवान् ।
अत्र त्वं भ्रातृभिः सार्धं कृष्णया चैव पाण्डव ३५
दुर्योधनहृतं तेजः पुनरादातुमर्हसि ।
कृतवैरेण रामेण यथा चोपहृतं पुनः ॥ ३६
वैशंपायन उवाच ।
स तत्र भ्रातृभिश्चैव कृष्णया चैव पाण्डवः ।
स्नात्वा देवान्पितॄंश्चैव तर्पयामास भारत ॥ ३७
तस्य तीर्थस्य रूपं वै दीप्ताद्दीप्ततरं बभौ ।
अप्रधृष्यतरश्चासीच्छात्रवाणां नरर्षभ ॥ ३८
अपृच्छच्चैव राजेन्द्र लोमशं पाण्डुनन्दनः ।
भगवन्किमर्थं रामस्य हृतमासीद्वपुः प्रभो ।
कथं प्रत्याहृतं चैव एतदाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ३९
लोमश उवाच ।
शृणु रामस्य राजेन्द्र भार्गवस्य च धीमतः ।
जातो दशरथस्यासीत्पुत्रो रामो महात्मनः ॥४०
विष्णुः स्वेन शरीरेण रावणस्य वधाय वै ।
पश्यामस्तमयोध्यायां जातं दाशरथिं ततः ॥ ४१
ऋचीकनन्दनो रामो भार्गवो रेणुकासुतः ।
तस्य दाशरथेः श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२
कौतूहलान्वितो रामस्त्वयोध्यामगमत्पुनः ।
धनुरादाय तद्दिव्यं क्षत्रियाणां निबर्हणम् ॥ ४३
जिज्ञासमानो रामस्य वीर्यं दाशरथेस्तदा ।
तं वै दशरथः श्रुत्वा विषयान्तमुपागतम् ॥ ४४
प्रेषयामास रामस्य रामं पुत्रं पुरस्कृतम् ।
स तमभ्यागतं दृष्ट्वा उद्यतास्त्रमवस्थितम् ॥ ४५
प्रहसन्निव कौन्तेय रामो वचनमब्रवीत् ।
कृतकालं हि राजेन्द्र धनुरेतन्मया विभो ॥ ४६
समारोपय यत्नेन यदि शक्नोषि पार्थिव ।
इत्युक्तस्त्वाह भगवंस्त्वं नाधिक्षेप्तुमर्हसि ॥ ४७
नाहमप्यधमो धर्मे क्षत्रियाणां द्विजातिषु ।
इक्ष्वाकूणां विशेषेण बाहुवीर्ये न कत्थनम् ॥ ४८
तमेवंवादिनं तत्र रामो वचनमब्रवीत् ।
अलं वै व्यपदेशेन धनुरायच्छ राघव ॥ ४९
ततो जग्राह रोषेण क्षत्रियर्षभसूदनम् ।
रामो दाशरथिर्दिव्यं हस्ताद्रामस्य कार्मुकम् ५०
धनुरारोपयामास सलील इव भारत ।
ज्याशब्दमकरोच्चैव स्मयमानः स वीर्यवान् ॥५१
तस्य शब्दस्य भूतानि वित्रसन्त्यशनेरिव ।
अथाब्रवीत्तदा रामो रामं दाशरथिस्तदा ॥ ५२
इदमारोपितं ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ।
तस्य रामो ददौ दिव्यं जामदग्न्यो महात्मनः ।
शरमाकर्णदेशान्तमयमाकृष्यतामिति ॥ ५३
लोमश उवाच ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्रामः प्रदीप्त इव मन्युना ।
श्रूयते क्षम्यते चैव दर्पपूर्णोऽसि भार्गव ॥ ५४
त्वया ह्यधिगतं तेजः क्षत्रियेभ्यो विशेषतः ।
पितामहप्रसादेन तेन मां क्षिपसि ध्रुवम् ॥ ५५
पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम् ।
ततो रामशरीरे वै रामः पश्यति भार्गवः ॥ ५६
आदित्यान्सवसून्रुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान् ।
पितरो हुताशनश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ ५७
गन्धर्वा राक्षसा यक्षा नद्यस्तीर्थानि यानि च ।
ऋषयो वालखिल्याश्च ब्रह्मभूताः सनातनाः ॥५८
देवर्षयश्च कार्त्स्न्येन समुद्राः पर्वतास्तथा ।
वेदाश्च सोपनिषदो वषट्कारैः सहाध्वरैः ॥ ५९
चेतोमन्ति च सामानि धनुर्वेदश्च भारत ।
मेघवृन्दानि वर्षाणि विद्युतश्च युधिष्ठिर ॥ ६०
ततः स भगवान्विष्णुस्तं वै बाणं मुमोच ह ।
शुष्काशनिसमाकीर्णं महोल्काभिश्च भारत ॥६१

---

शिलानां तलेषु अधोभागेषु संत्रस्ता लीना । तेन पातालगामित्वमुक्तम् । शेषेण स्वर्गभूगतत्वमिति त्रिपथगात्वमुक्तं गङ्गायाः ॥३२॥ रामः जामदग्न्यः हृतं दाशरथिरामेण ॥ ३५ ॥ तस्य युधिष्ठिरस्य । तीर्थस्य तीर्थे स्नातस्य ॥ ३८ ॥ वपुः तेजः ॥ ३९ ॥ दाशरथेः श्रुत्वा धनुर्भञ्जनादिपराक्रममिति शेषः कर्मणि वा षष्ठी ॥ ४२ ॥ कृतकालं कृताः हिंसिताः कालतुल्याः क्षत्रिया येन तद्धनुः । कृ हिंसायां स्वादेरिदं रूपम् ॥ ४६ ॥ बाहुवीर्ये विषये न कत्थनं श्लाघनं नास्ति ॥ ४८ ॥ व्यपदेशेन उक्त्या ॥४९॥ श्रूयते चकाराद्दृश्यते च । तव दर्पयुक्तत्वमिति शेषः। अथापि क्षम्यते ॥ ५४ ॥ क्षत्रियेभ्यः क्षत्रियान् जित्वा ॥ ५५ ॥ चेतोमन्ति चेतनावन्ति । आर्षं पदत्वप्रयुक्तं रुत्वम् । चेतस्वन्तीत्यपेक्षितम् ॥६०॥

पांसुवर्षेण महता मेघवर्षैश्च भूतलम् ।
भूमिकम्पैश्च निर्घातैर्नादैश्च विपुलैरपि ॥ ६२

स रामं विह्वलं कृत्वा तेजश्चाक्षिप्य केवलम् ।
आगच्छज्ज्वलितो बाणो रामबाहुप्रचोदितः॥६३

स तु विह्वलतां गत्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् ।
रामः प्रत्यागतप्राणः प्राणमद्विष्णुतेजसम् ॥ ६४

विष्णुना सोऽभ्यनुज्ञातो महेन्द्रमगमत्पुनः ।
भीतस्तु तत्र न्यवसद्व्रीडितस्तु महातपाः ॥ ६५

ततः संवत्सरेऽतीते हृतौजसमवस्थितम् ।
निर्मदं दुःखितं दृष्ट्वा पितरो राममब्रुवन् ॥ ६६

पितर ऊचुः

न वै सम्यगिदं पुत्र विष्णुमासाद्य वै कृतम् ।
स हि पूज्यश्च मान्यश्च त्रिषु लोकेषु सर्वदा ६७

गच्छ पुत्र नदीं पुण्यां वधूसरकृताह्वयाम् ।
तत्रोपस्पृश्य तीर्थेषु पुनर्वपुरवाप्स्यसि ॥ ६८

दीप्तोदं नाम तत्तीर्थं यत्र ते प्रपितामहः ।
भृगुर्देवयुगे राम तप्तवानुत्तमं तपः ॥ ६९

तत्तथा कृतवान्रामः कौन्तेयवचनात्पितुः ।
प्राप्तवांश्च पुनस्तेजस्तीर्थेऽस्मिन्पाण्डुनन्दन ॥ ७०

एतदीदृशकं तात रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
प्राप्तमासीन्महाराज विष्णुमासाद्य वै पुरा ॥ ७१

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां जामदग्न्यतेजोहानिकथने एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

## १००

युधिष्ठिर उवाच ।

भूय एवाहमिच्छामि महर्षेस्तस्य धीमतः ।
कर्मणां विस्तरं श्रोतुमगस्त्यस्य द्विजोत्तम ॥ १

लोमश उवाच ।

शृणु राजन्कथां दिव्यामद्भुतामतिमानुषीम् ।
अगस्त्यस्य महाराज प्रभावममितौजसः ॥ २

आसन्कृतयुगे घोरा दानवा युद्धदुर्मदाः ।
कालकेया इति ख्याता गणाः परमदारुणाः ॥ ३

ते तु वृत्रं समाश्रित्य नानाप्रहरणोद्यताः ।
समन्तात्पर्यधावन्त महेन्द्रप्रमुखान्सुरान् ॥ ४

ततो वृत्रवधे यत्नमकुर्वंस्त्रिदशाः पुरा ।
पुरंदरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणमुपतस्थिरे ॥ ५

कृताञ्जलींस्तु तान्सर्वान्परमेष्ठीत्युवाच ह ।
विदितं मे सुराः सर्वं यद्वः कार्यं चिकीर्षितम्॥६

तमुपायं प्रवक्ष्यामि यथा वृत्रं वधिष्यथ ।
दधीच इति विख्यातो महानृषिरुदारधीः ॥ ७

तं गत्वा सहिताः सर्वे वरं वै संप्रयाचत ।
स वो दास्यति धर्मात्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना ८

स वाच्यः सहितैः सर्वैर्भवद्भिर्जयकाङ्क्षिभिः ।
स्वान्यस्थीनि प्रयच्छेति त्रैलोक्यस्य हिताय वै ९

स शरीरं समुत्सृज्य स्वान्यस्थीनि प्रदास्यति ।
तस्यास्थिभिर्महाघोरं वज्रं संस्क्रियतां दृढम् १०

महच्छत्रुहणं घोरं षडस्रि भीमनिःस्वनम् ।
तेन वज्रेण वै वृत्रं वधिष्यति शतक्रतुः ॥ ११

एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्माच्छीघ्रं विधीयताम् ।
एवमुक्तास्ततो देवा अनुज्ञाप्य पितामहम् ॥ १२

नारायणं पुरस्कृत्य दधीचस्याश्रमं ययुः ।
सरस्वत्याः परे पारे नानाद्रुमलतावृतम् ॥ १३

षट्पदोद्गीतनिनदैर्विघुष्टं सामगैरिव ।
पुंस्कोकिलरवोन्मिश्रं जीवं जीवकनादितम् १४

महिषैश्च वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ।
तत्र तत्रानुचरितं शार्दूलभयवर्जितैः ॥ १५

करेणुभिर्वारणैश्च प्रभिन्नकरटामुखैः ।
सरोवगाढैः क्रीडद्भिः समन्तादनुनादितम् ॥ १६

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

१००

भूय इति ॥ १ ॥ स वो दास्यति ईप्सितमिति शेषः ॥ ८ ॥ षडस्रि षट्कोणम् ॥ ११ ॥ जीवं जीववदिवेति लुप्तोपमा । यतो जीवकैः क्षुद्रजीवैः पश्वादिभिर्नादितमतश्चेतनमिवेत्यर्थः ॥ १४ ॥ करेणुभिर्हस्तिनीभिः । प्रभिन्नं मदस्राविकरटो मदोद्भेदस्थानं गण्डस्थलैकदेशस्तस्य मुखं उपरिभागो येषां तैः ॥ १६ ॥

सिंहव्याघ्रैर्महानादान्नदद्भिरनुनादितम् ।
अपरैश्चापि संलीनैर्गुहाकन्दरशायिभिः ॥ १७
तेषु तेष्ववकाशेषु शोभितं सुमनोरमम् ।
त्रिविष्टपसमप्रख्यं दधीचाश्रममागमन् ॥ १८
तत्रापश्यन्दधीचं ते दिवाकरसमद्युतिम् ।
जाज्वल्यमानं वपुषा यथा लक्ष्म्या पितामहम् १९
तस्य पादौ सुरा राजन्नभिवाद्य प्रणम्य च ।
अयाचन्त वरं सर्वे यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ २०
ततो दधीचः परमप्रतीतः
सुरोत्तमांस्तानिदमभ्युवाच ।
करोमि यद्वो हितमद्य देवाः
स्वं चापि देहं स्वयमुत्सृजामि ॥ २१
स एवमुक्त्वा द्विपदां वरिष्ठः
प्राणान्वशी स्वान्सहसोत्ससर्ज ।
ततः सुरास्ते जगृहुः परासो-
रस्थीनि तस्याथ यथोपदेशम् ॥ २२
प्रहृष्टरूपाश्च जयाय देवा-
स्त्वष्टारमागम्य तमर्थमूचुः ।
त्वष्टा तु तेषां वचनं निशम्य
प्रहृष्टरूपः प्रयतः प्रयत्नात् ॥ २३
चकार वज्रं भृशमुग्ररूपं
कृत्वा च शक्रं स उवाच हृष्टः ।
अनेन वज्रप्रवरेण देव
भस्मीकुरुष्वाद्य सुरारिमुग्रम् ॥ २४
ततो हतारिः सगणः सुखं वै
प्रशाधि कृत्स्नं त्रिदिवं दिविष्ठः ।
त्वष्ट्रा तथोक्तस्तु पुरंदरस्त-
द्वज्रं प्रहृष्टः प्रयतो ह्यगृह्णात् ॥ २५

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां वज्रनिर्माणकथने शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## १०१

लोमश उवाच ।
ततः स वज्री बलिभिर्दैवतैरभिरक्षितः ।
आससाद ततो वृत्रं स्थितमावृत्य रोदसी ॥ १
कालकेयैर्महाकायैः समन्तादभिरक्षितम् ।
समुद्यतप्रहरणैः सशृङ्गैरिव पर्वतैः ॥ २
ततो युद्धं समभवद्देवानां दानवैः सह ।
मुहूर्तं भरतश्रेष्ठ लोकत्रासकरं महत् ॥ ३
उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
आसीत्सुतुमुलः शब्दः शरीरेष्वभिपात्यताम् ॥४
शिरोभिः प्रपतद्भिश्चाप्यन्तरिक्षान्महीतलम् ।
तालैरिव महाराज वृन्ताद्भ्रष्टैरदृश्यत ॥ ५
ते हेमकवचा भूत्वा कालेयाः परिघायुधाः ।
त्रिदशानभ्यवर्तन्त दावदग्धा इवाद्रयः ॥ ६
तेषां वेगवतां वेगं साभिमानं प्रधावताम् ।
न शेकुस्त्रिदशाः सोढुं ते भग्नाः प्राद्रवन्भयात् ॥७
तान्दृष्ट्वा द्रवतो भीतान्सहस्राक्षः पुरंदरः ।
वृत्रे विवर्धमाने च कश्मलं महदाविशत् ॥ ८
कालेयभयसंत्रस्तो देवः साक्षात्पुरंदरः ।
जगाम शरणं शीघ्रं तं तु नारायणं प्रभुम् ॥ ९
तं शक्रं कश्मलाविष्टं दृष्ट्वा विष्णुः सनातनः ।
स्वतेजो व्यदधच्छक्रे बलमस्य विवर्धयन् ॥ १०
विष्णुना गोपितं शक्रं दृष्ट्वा देवगणास्ततः ।
सर्वे तेजः समादध्युस्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ११
स समाप्यायितः शक्रो विष्णुना दैवतैः सह ।
ऋषिभिश्च महाभागैर्बलवान्समपद्यत ॥ १२

त्रिविष्टपसमप्रख्यं स्वर्गतुल्यप्रकाशम् ॥ १८ ॥ परासोः गतप्राणस्य ॥ २२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

तत इति । रोदसी द्यावापृथिव्यौ ॥ १ ॥ वीरबाहुभिः सौर्धम् । आदौ उद्यताः पश्चादन्यैः प्रतिपिष्टाः तेषाम् ॥४॥ तालैस्तालफलैः ॥ ५ ॥ व्यदधत् निहितवान् ॥ १० ॥

ज्ञात्वा बलस्थं त्रिदशाधिपं तु
ननाद वृत्रो महतो निनादान् ।
तस्य प्रणादेन धरा दिशश्च
खं द्यौर्नगाश्चापि चचाल सर्वम् ॥ १३
ततो महेन्द्रः परमाभितप्तः
श्रुत्वा रवं घोररूपं महान्तम् ।
भये निमग्नस्त्वरितो मुमोच
वज्रं महत्तस्य वधाय राजन् ॥ १४
स शक्रवज्राभिहतः पपात
महासुरः काञ्चनमाल्यधारी ।
यथा महाशैलवरः पुरस्ता-
त्स मन्दरो विष्णुकराद्विमुक्तः ॥ १५
तस्मिन्हते दैत्यवरे भयार्तः
शक्रः प्रदुद्राव सरः प्रवेष्टुम् ।
वज्रं स मेने न कराद्विमुक्तं
वृत्रं भयाच्चापि हतं न मेने ॥ १६
सर्वे च देवा मुदिताः प्रहृष्टा
महर्षयश्चेन्द्रमभिष्टुवन्तः ।
सर्वांश्च दैत्यांस्त्वरिताः समेत्य
जघ्नुः सुरा वृत्रवधाभितप्तान् ॥ १७
तैस्त्रास्यमानास्त्रिदशैः समेतैः
समुद्रमेवाविविशुर्भयार्ताः ।
प्रविश्य चैवोदधिमप्रमेयं
झषाकुलं नक्रसमाकुलं च ॥ १८
तदा स्म मन्त्रं सहिताः प्रचक्रु-
स्त्रैलोक्यनाशार्थमभिस्मयन्तः ।
तत्र स्म केचिन्मतिनिश्चयज्ञा-
स्तांस्तानुपायानुपवर्णयन्ति ॥ १९
तेषां तु तत्र क्रमकालयोगा-
द्घोरा मतिश्चिन्तयतां बभूव ।
ये सन्ति विद्यातपसोपपन्ना-
स्तेषां विनाशः प्रथमं तु कार्यः ॥ २०
लोका हि सर्वे तपसा ध्रियन्ते
तस्मात्त्वरध्वं तपसः क्षयाय ।
ये सन्ति केचिद्धि वसुंधरायां
तपस्विनो धर्मविदश्च तज्ज्ञाः ॥ २१
तेषां वधः क्रियतां क्षिप्रमेव
तेषु प्रनष्टेषु जगत्प्रनष्टम् ।
एवं हि सर्वे गतबुद्धिभावा
जगद्विनाशे परमप्रहृष्टाः ॥ २२
दुर्गं समाश्रित्य महोर्मिमन्तं
रत्नाकरं वरुणस्यालयं स्म ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां वृत्रवधोपाख्याने एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## १०२

लोमश उवाच ।
समुद्रं ते समाश्रित्य वरुणं निधिमम्भसः ।
कालेयाः संप्रवर्तन्त त्रैलोक्यस्य विनाशने ॥ १
ते रात्रौ समभिक्रुद्धा भक्षयन्ति सदा मुनीन् ।
आश्रमेषु च ये सन्ति पुण्येष्वायतनेषु च ॥ २
वसिष्ठस्याश्रमे विप्रा भक्षितास्तैर्दुरात्मभिः ।
अशीतिः शतमष्टौ च नव चान्ये तपस्विनः ॥ ३
च्यवनस्याश्रमे गत्वा पुण्यं द्विजनिषेवितम् ।
फलमूलाशनानां हि मुनीनां भक्षितं शतम् ॥ ४
एवं रात्रौ स्म कुर्वन्ति विविशुश्चार्णवं दिवा ।
भरद्वाजाश्रमे चैव नियता ब्रह्मचारिणः ॥ ५
वाय्वाहाराम्बुभक्षाश्च विंशतिः संनिषूदिताः ।
एवं क्रमेण सर्वांस्तानाश्रमान्दानवास्तदा ॥ ६

बलस्थं बलवन्तम् ॥ १३ ॥ माल्यधारी मालाधारी ॥ १५ ॥ हतमपि वृत्रं भयात् न हतमिव मेने ॥ १६ ॥ ध्रियन्त जीवन्ति ॥ २१ ॥ गतबुद्धिभावाः प्राप्तधीनिश्चयाः ॥ २२ ॥ वरुणस्यालयं समुद्रम् ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१०२.

समुद्रमिति । कालेयाः कालायाः कश्यपभार्यायाः पुत्राः ॥१॥

निशायां परिबाधन्ते मत्ता भुजबलाश्रयात् ।
कालोपसृष्टाः कालेया घ्नन्तो द्विजगणान्बहून् ७
न चैनानन्वबुध्यन्त मनुजा मनुजोत्तम ।
एवं प्रवृत्तान्दैत्यांस्तांस्तापसेषु तपस्विषु ॥ ८
प्रभाते समदृश्यन्त नियताहारकर्शिताः ।
महीतलस्था मुनयः शरीरैर्गतजीवितैः ॥ ९
क्षीणमांसैर्विरुधिरैर्विमज्जान्त्रैर्विसंधिभिः ।
आकीर्णैराबभौ भूमिः शङ्खानामिव राशिभिः १०
कलशैर्विप्रविद्धैश्च स्रुवैर्भग्नैस्तथैव च ।
विकीर्णैरग्निहोत्रैश्च भूर्बभूव समावृता ॥ ११
निःस्वाध्यायवषट्कारं नष्टयज्ञोत्सवक्रियम् ।
जगदासीन्निरुत्साहं कालेयभयपीडितम् ॥ १२
एवं संक्षीयमाणाश्च मानवा मनुजेश्वर ।
आत्मत्राणपराभीताः प्राद्रवन्त दिशो भयात् ॥ १३
केचिद्गुहाः प्रविविशुर्निर्झरांश्चापरे तथा ।
अपरे मरणोद्विग्ना भयात्प्राणान्समुत्सृजन् ॥ १४
केचिदत्र महेष्वासाः शूराः परमहर्षिताः ।
मार्गमाणाः परं यत्नं दानवानां प्रचक्रिरे ॥ १५
न चैतानधिजग्मुस्ते समुद्रं समुपाश्रितान् ।
श्रमं जग्मुश्च परममाजग्मुः क्षयमेव च ॥ १६
जगत्युपशमं याते नष्टयज्ञोत्सवक्रिये ।
आजग्मुः परमामार्तिं त्रिदशा मनुजेश्वर ॥ १७
समेत्य समहेन्द्राश्च भयान्मन्त्रं प्रचक्रिरे ।
शरण्यं शरणं देवं नारायणमजं विभुम् ॥ १८
तेऽभिगम्य नमस्कृत्य वैकुण्ठमपराजितम् ।
ततो देवाः समस्तास्ते तदोचुर्मधुसूदनम् ॥ १९
त्वं नः स्रष्टा च भर्ता च हर्ता च जगतः प्रभो
त्वया सृष्टमिदं विश्वं यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति ॥ २०
त्वया भूमिः पुरा नष्टा समुद्रात्पुष्करेक्षण ।
वाराहं वपुराश्रित्य जगदर्थे समुद्धृता ॥ २१
आदिदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
नारसिंहं वपुः कृत्वा सूदितः पुरुषोत्तम ॥ २२
अवध्यः सर्वभूतानां बलिश्चापि महासुरः ।
वामनं वपुराश्रित्य त्रैलोक्याद्भ्रंशितस्त्वया । २३
असुरश्च महेष्वासो जम्भ इत्यभिविश्रुतः ।
यज्ञक्षोभकरः क्रूरस्त्वयैव विनिपातितः ॥ २४
एवमादीनि कर्माणि येषां संख्या न विद्यते ।
अस्माकं भयभीतानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥ २५
तस्मात्त्वां देवदेवेश लोकार्थं ज्ञापयामहे ।
रक्ष लोकांश्च देवांश्च शक्रं च महतो भयात् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां विष्णुस्तवे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## १०३

देवा ऊचुः ।
तव प्रसादाद्वर्धन्ते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।
ता भाविता भावयन्ति हव्यकव्यैर्दिवौकसः ॥ १
लोका ह्येवं विवर्धन्ते ह्यन्योन्यं समुपाश्रिताः ।
त्वत्प्रसादान्निरुद्विग्नास्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ २
इदं च समनुप्राप्तं लोकानां भयमुत्तमम् ।
न च जानीम केनेमे रात्रौ वध्यन्ति ब्राह्मणाः ॥ ३
क्षीणेषु च ब्राह्मणेषु पृथिवी क्षयमेष्यति ।
ततः पृथिव्यां क्षीणायां त्रिदिवं क्षयमेष्यति ॥ ४
त्वत्प्रसादान्महाबाहो लोकाः सर्वे जगत्पते ।
विनाशं नाधिगच्छेयुस्त्वया वै परिरक्षिताः ॥ ५
विष्णुरुवाच ।
विदितं मे सुराः सर्वं प्रजानां क्षयकारणम् ।
भवतां चापि वक्ष्यामि शृणुध्वं विगतज्वराः ॥ ६

---

कालोपसृष्टाः मृत्युना ग्रस्ताः ॥ ७ ॥ तापसेषु प्रवृत्तान् दैत्यांस्तापसा एव तपसा कुतो न वारयन्ति इत्याशंक्याह । तपस्विषु इति । तपसैव धनवत्सु । देहनाशेऽपि तपोनाशो माभूदिति भावः ॥ ८ ॥ शरीरैर्मांसादिरहितत्वादस्थिमात्रैरित्यर्थः ॥ ९ ॥ अत एव शङ्खराशितुल्यैः ॥ १० ॥ कलशैः शिरोघटैः ॥ ११ ॥ दानवानां वधायेति शेषः ॥ १५ ॥ क्षयं गृहं नाशं वा ॥ १६ ॥ इङ्गति चलतीति इङ्गं पचाद्यच् जंगमं नेङ्गति स्थावरम् ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

१०३

तवेति । चतुर्विधाः सुरनरतिर्यक्स्थावराः दिवौकसः देवान् ॥ १ ॥

कालेय इति विख्यातो गणः परमदारुणः ।
तैश्च वृत्रं समाश्रित्य जगत्सर्वं प्रमाथितम् ॥ ७
ते वृत्रं निहतं दृष्ट्वा सहस्राक्षेण धीमता ।
जीवितं परिरक्षन्तः प्रविष्टा वरुणालयम् ॥ ८
ते प्रविश्योदधिं घोरं नक्रग्राहसमाकुलम् ।
उत्सादनार्थं लोकानां रात्रौ घ्नन्ति ऋषीनिह॥ ९
न तु शक्याः क्षयं नेतुं समुद्राश्रयगा हि ते ।
समुद्रस्य क्षये बुद्धिर्भवद्भिः संप्रधार्यताम् ॥ १०
अगस्त्येन विना को हि शक्तोऽन्योर्णवशोषणे ।
अन्यथा हि न शक्यास्ते विना सागरशोषणम्११
एतच्छ्रुत्वा तदा देवा विष्णुना समुदाहृतम् ।
परमेष्ठिनमाज्ञाप्य अगस्त्यस्याश्रमं ययुः ॥ १२
तत्रापश्यन्महात्मानं वारुणिं दीप्ततेजसम् ।
उपास्यमानमृषिभिर्देवैरिव पितामहम् ॥ १३
तेऽभिगम्य महात्मानं मैत्रावरुणिमच्युतम् ।
आश्रमस्थं तपोराशिं कर्मभिः स्वैरभिष्टुवन् ॥ १४

देवा ऊचुः ।

नाहुषेणाभितप्तानां त्वं लोकानां गतिः पुरा ।
भ्रंशितश्च सुरैश्वर्यात्स्वर्लोकाल्लोककण्टकः ॥ १५
क्रोधात्प्रवृद्धः सहसा भास्करस्य नगोत्तमः ।
वचस्तवानतिक्रामन्विन्ध्यः शैलो न वर्धते ॥ १६
तमसा चावृते लोके मृत्युनाभ्यर्दिताः प्रजाः ।
त्वामेव नाथमासाद्य निर्वृतिं परमां गताः ॥ १७
अस्माकं भयभीतानां नित्यशो भगवान्गतिः ।
ततस्त्वार्ताः प्रयाचामो वरं त्वां वरदो ह्यसि १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्यमाहात्म्यकथने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

## १०४

युधिष्ठिर उवाच ।

किमर्थं सहसा विन्ध्यः प्रवृद्धः क्रोधमूर्छितः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामुने ॥ १

लोमश उवाच ।

अद्रिराजं महाशैलं मेरुं कनकपर्वतम् ।
उदयास्तमने भानुः प्रदक्षिणमवर्तत ॥ २
तं तु दृष्ट्वा तथा विन्ध्यः शैलः सूर्यमथाब्रवीत् ।
यथा हि मेरुर्भवता नित्यशः परिगम्यते ॥ ३
प्रदक्षिणश्च क्रियते मामेवं कुरु भास्कर ।
एवमुक्तस्ततः सूर्यः शैलेन्द्रं प्रत्यभाषत ॥ ४
नाहमात्मेच्छया शैलं करोम्येनं प्रदक्षिणम् ।
एष मार्गः प्रदिष्टो मे यैरिदं निर्मितं जगत् ॥ ५
एवमुक्तस्ततः क्रोधात्प्रवृद्धः सहसाचलः ।
सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गं रोद्धुमिच्छन्परंतप ॥ ६
ततो देवाः सहिताः सर्व एव
विन्ध्यं समागम्य महाद्रिराजम् ।
निवारयामासुरुपायतस्तं
न च स्म तेषां वचनं चकार ७
अथाभिजग्मुर्मुनिमाश्रमस्थं
तपस्विनं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
अगस्त्यमत्यद्भुतवीर्यवन्तं
तं चार्थमूचुः सहिताः सुरास्ते ॥ ८

देवा ऊचुः ।

सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गं नक्षत्राणां गतिं तथा ।
शैलराजो वृणोत्येष विन्ध्यः क्रोधवशानुगः ॥ ९
तं निवारयितुं शक्तो नान्यः कश्चिद्द्विजोत्तम ।
ऋते त्वां हि महाभाग तस्मादेनं निवारय ॥ १०
तच्छ्रुत्वा वचनं विप्रः सुराणां शैलमभ्यगात् ।
सोऽभिगम्याब्रवीद्विन्ध्यं सदारः समुपस्थितम् ११
मार्गमिच्छाम्यहं दत्तं भवता पर्वतोत्तम ।
दक्षिणामभिगन्तास्मि दिशं कार्येण केनचित् १२

---

वारुणिं मैत्रावरुणपुत्रम् ॥ १३ ॥ अभिष्टुवन् अस्तुवन् । अडभाव आर्षः ॥ १४ ॥ नगोत्तमः पर्वतेषु श्रेष्ठः विन्ध्यो नाम्ना ॥ १६ ॥ तमसा विन्ध्यवृध्या आवृते ग्रस्तालोके लोके जगति सति ॥ १७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

१०४

किमर्थमिति ॥ १ ॥

यावदागमनं मह्यं तावत्त्वं प्रतिपालय ।
निवृत्ते मयि शैलेन्द्र ततो वर्धस्व कामतः ॥ १३
एवं स समयं कृत्वा विन्ध्येनामित्रकर्शन ।
अद्यापि दक्षिणाद्देशाद्वारुणिर्न निवर्तते ॥ १४
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा विन्ध्यो न वर्धते ।
अगस्त्यस्य प्रभावेण यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १५
कालेयास्तु यथा राजन्सुरैः सर्वैर्निषूदिताः ।
अगस्त्याद्वरमासाद्य तन्मे निगदतः शृणु ॥ १६
त्रिदशानां वचः श्रुत्वा मैत्रावरुणिरब्रवीत् ।
किमर्थमभियाताः स्थ वरं मत्तः किमिच्छथ ।
एवमुक्तास्ततस्तेन देवता मुनिमब्रुवन् ॥ १७
एवं त्वयेच्छाम कृतं हि कार्यं
महार्णवं पीयमानं महात्मन् ।
ततो वधिष्याम सहानुबन्धान्
कालेयसंज्ञान्सुरविद्विषस्तान् ॥ १८
त्रिदशानां वचः श्रुत्वा तथेति मुनिरब्रवीत् ।
करिष्ये भवतां कामं लोकानां च महत्सुखम् १९
एवमुक्त्वा ततोऽगच्छत्समुद्रं सरितां पतिम् ।
ऋषिभिश्च तपःसिद्धैः सार्धं देवैश्च सुव्रत ॥ २०
मनुष्योरगगन्धर्वयक्षकिंपुरुषास्तथा ।
अनुजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ २१
ततोऽभ्यगच्छन्सहिताः समुद्रं भीमनिःस्वनम् ।
नृत्यन्तमिव चोर्मीभिर्वल्गन्तमिव वायुना ॥ २२
हसन्तमिव फेनौघैः स्खलन्तं कन्दरेषु च ।
नानाग्राहसमाकीर्णं नानाद्विजगणान्वितम् ॥ २३
अगस्त्यसहिता देवाः सगन्धर्वमहोरगाः ।
ऋषयश्च महाभागाः समासेदुर्महोदधिम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्योदधिगमने चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

## १०५

लोमश उवाच ।
समुद्रं स समासाद्य वारुणिर्भगवानृषिः ।
उवाच सहितान्देवानृषींश्चैव समागतान् ॥ १
अहं लोकहितार्थं वै पिबामि वरुणालयम् ।
भवद्भिर्यदनुष्ठेयं तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥ २
एतावदुक्त्वा वचनं मैत्रावरुणिरच्युतः ।
समुद्रमपिबत्क्रुद्धः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ३
पीयमानं समुद्रं तं दृष्ट्वा सेन्द्रास्तदामराः ।
विस्मयं परमं जग्मुः स्तुतिभिश्चाप्यपूजयन् ॥ ४
त्वं नस्त्राता विधाता च लोकानां लोकभावन ।
त्वत्प्रसादात्समुच्छेदं न गच्छेत्सामरं जगत् ॥ ५
स पूज्यमानस्त्रिदशैर्महात्मा
गन्धर्वतूर्येषु नदत्सु सर्वशः ।
दिव्यैश्च पुष्पैरवकीर्यमाणो
महार्णवं निःसलिलं चकार ॥ ६
दृष्ट्वा कृतं निःसलिलं महार्णवं
सुराः समस्ताः परमप्रहृष्टाः ।
प्रगृह्य दिव्यानि वरायुधानि
तान्दानवाञ्जघ्नुरदीनसत्त्वाः ॥ ७
ते वध्यमानास्त्रिदशैर्महात्मभि-
र्महाबलैर्वेगिभिरुन्नदद्भिः ।
न सेहिरे वेगवतां महात्मनां
वेगं तदा धारयितुं दिवौकसाम् ॥ ८
ते वध्यमानास्त्रिदशैर्दानवा भीमनिःस्वनाः ।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं मुहूर्तमिव भारत ॥ ९
ते पूर्वं तपसा दग्धा मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
यतमानाः परं शक्त्या त्रिदशैर्विनिषूदिताः ॥१०
ते हेमनिष्काभरणाः कुण्डलाङ्गदधारिणः ।
निहता बह्वशोभन्त पुष्पिता इव किंशुकाः ११
हतशेषास्ततः केचित्कालेया मनुजोत्तम ।
विदार्य वसुधां देवीं पातालतलमास्थिताः ॥१२
निहतान्दानवान्दृष्ट्वा त्रिदशा मुनिपुङ्गवम् ।
तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरिदं वचनमब्रुवन् ॥ १३

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

१०५

समुद्रमिति ॥ १ ॥

त्वत्प्रसादान्महाबाहो लोकैः प्राप्तं महत्सुखम् ।
त्वत्तेजसा च निहताः कालेयाः क्रूरविक्रमाः १४
पूरयस्व महाबाहो समुद्रं लोकभावन ।
यत्त्वया सलिलं पीतं तदस्मिन्पुनरुत्सृज ॥ १५
एवमुक्तः प्रत्युवाच भगवान्मुनिपुङ्गवः ।
जीर्णं तद्धि मया तोयमुपायोऽन्यः प्रचिन्त्यताम्॥
पूरणार्थं समुद्रस्य भवद्भिर्यत्नमास्थितैः ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं महर्षेर्भावितात्मनः ॥ १७
विस्मिताश्च विषण्णाश्च बभूवुः सहिताः सुराः ।
परस्परमनुज्ञाप्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥ १८
प्रजाः सर्वा महाराज विप्रजग्मुर्यथागतम् ।
त्रिदशा विष्णुना सार्धमुपजग्मुः पितामहम् १९
पूरणार्थं समुद्रस्य मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे सागरस्याभिपूरणम् ॥ २॥

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्योपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

## १०६

लोमश उवाच ।
तानुवाच समेतांस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
गच्छध्वं विबुधाः सर्वे यथाकामं यथेप्सितम् ॥१
महता कालयोगेन प्रकृतिं यास्यतेऽर्णवः ।
ज्ञातींश्च कारणं कृत्वा महाराज्ञो भगीरथात् ॥ २
पितामहवचः श्रुत्वा सर्वे विबुधसत्तमाः ।
कालयोगं प्रतीक्षन्तो जग्मुश्चापि यथागतम् ॥ ३
युधिष्ठिर उवाच ।
कथं वै ज्ञातयो ब्रह्मन्कारणं चात्र किं मुने ।
कथं समुद्रः पूर्णश्च भगीरथप्रतिश्रयात् ॥ ४
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
कथ्यमानं त्वया विप्र राज्ञां चरितमुत्तमम् ॥ ५
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु विप्रेन्द्रो धर्मराज्ञा महात्मना ॥
कथयामास माहात्म्यं सगरस्य महात्मनः ॥ ६
लोमश उवाच ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातः सगरो नाम पार्थिवः ।
रूपसत्त्वबलोपेतः स चापुत्रः प्रतापवान् ॥ ७
स हैहयान्समुत्साद्य तालजङ्घांश्च भारत ।
वशे च कृत्वा राजन्यान्स्वराज्यमन्वशासत ॥ ८
तस्य भार्ये त्वभवतां रूपयौवनदर्पिते ।
वैदर्भी भरतश्रेष्ठ शैब्या च भरतर्षभ ॥ ९
स पुत्रकामो नृपतिस्तप्यते स्म महत्तपः ।
पत्नीभ्यां सह राजेन्द्र कैलासं गिरिमाश्रितः १०
स तप्यमानः सुमहत्तपो योगसमन्वितः ।
आससाद महात्मानं त्र्यक्षं त्रिपुरमर्दनम् ॥ ११
शंकरं भवमीशानं पिनाकिं शूलपाणिनम् ।
त्र्यम्बकं शिवमुग्रेशं बहुरूपमुमापतिम् ॥ १२
स तं दृष्ट्वैव वरदं पत्नीभ्यां सहितो नृपः ।
प्रणिपत्य महाबाहुः पुत्रार्थं समयाचत ॥ १३
तं प्रीतिमान्हरः प्राह सभार्यं नृपसत्तमम् ।
यस्मिन्वृतो मुहूर्तेऽहं त्वयेह नृपते वरम् ॥ १४
षष्टिः पुत्रसहस्राणि शूराः परमदर्पिताः ।
एकस्यां संभविष्यन्ति पत्न्यां नरवरोत्तम ॥ १५
ते चैव सर्वे सहिताः क्षयं यास्यन्ति पार्थिव ।
एको वंशधरः शूर एकस्यां संभविष्यति ॥ १६
एवमुक्त्वा तु तं रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ।
स चापि सगरो राजा जगाम स्वं निवेशनम् १७
पत्नीभ्यां सहितस्तत्र सोऽतिहृष्टमनास्तदा ।
तस्य ते मनुजश्रेष्ठ भार्ये कमललोचने ॥ १८
वैदर्भी चैव शैब्या च गर्भिण्यौ संबभूवतुः ।
ततः कालेन वैदर्भी गर्भालाबुं व्यजायत ॥ १९
शैब्या च सुषुवे पुत्रं कुमारं देवरूपिणम् ।
तदालाबुं समुत्स्रष्टुं मनश्चक्रे स पार्थिवः ॥ २०
अथान्तरिक्षाच्छुश्राव वाचं गम्भीरनिःस्वनाम् ।
राजन्मा साहसं कार्षीः पुत्रान्न त्यक्तुमर्हसि॥ २१

इत्यारण्यके नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

१०६

तानिति ॥ १ ॥

अलाबुमध्यान्निष्कृष्य बीजं यत्नेन गोप्यताम् ।
सोपस्वेदेषु पात्रेषु घृतपूर्णेषु भागशः ॥ २२
ततः पुत्रसहस्राणि षष्टिं प्राप्स्यसि भारत ।
महादेवेन दिष्टं ते पुत्रजन्म नराधिप ।
अनेन क्रमयोगेन मा ते बुद्धिरतोऽन्यथा ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां सगरसंततिकथने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## १०७

लोमश उवाच ।
एतच्छ्रुत्वान्तरिक्षाच्च स राजा राजसत्तमः ।
यथोक्तं तच्चकाराथ श्रद्दधद्भरतर्षभ ॥ १
एकैकशस्ततः कृत्वा बीजं बीजं नराधिपः ।
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्भागान्विदधे ततः ॥ २
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्पुत्ररक्षणतत्परः ।
ततः कालेन महता समुत्तस्थुर्महाबलाः ॥ ३
षष्टिः पुत्रसहस्राणि तस्याप्रतिमतेजसः ।
रुद्रप्रसादाद्राजर्षेः समजायन्त पार्थिव ॥ ४
ते घोराः क्रूरकर्माण आकाशपरिसर्पिणः ।
बहुत्वाच्चावजानन्तः सर्वाँल्लोकान्सहामरान् ॥ ५
त्रिदशांश्चाप्यबाधन्त तथा गन्धर्वराक्षसान् ।
सर्वाणि चैव भूतानि शूराः समरशालिनः ॥ ६
वध्यमानास्ततो लोकाः सागरैर्मन्दबुद्धिभिः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहिताः सर्वदैवतैः ॥ ७
तानुवाच महाभागः सर्वलोकपितामहः ।
गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे लोकैः सार्धं यथागतम् ८
नातिदीर्घेण कालेन सागराणां क्षयो महान् ।
भविष्यति महाघोरः स्वकृतैः कर्मभिः सुराः ॥ ९
एवमुक्तास्तु ते देवा लोकाश्च मनुजेश्वर ।
पितामहमनुज्ञाप्य विप्रजग्मुर्यथागतम् ॥ १०
ततः काले बहुतिथे व्यतीते भरतर्षभ ।
दीक्षितः सगरो राजा हयमेधेन वीर्यवान् ॥ ११
तस्याश्वो व्यचरद्भूमिं पुत्रैः स परिरक्षितः ।
समुद्रं स समासाद्य निस्तोयं भीमदर्शनम् ॥ १२
रक्ष्यमाणः प्रयत्नेन तत्रैवान्तरधीयत ।
ततस्ते सागरास्तात हृतं मत्वा हयोत्तमम् ॥ १३
आगम्य पितुराचख्युरदृश्यं तुरगं हृतम् ।
तेनोक्ता दिक्षु सर्वासु सर्वे मार्गत वाजिनम् १४
ततस्ते पितुराज्ञाय दिक्षु सर्वासु तं हयम् ।
अमार्गन्त महाराज सर्वं च पृथिवीतलम् ॥ १५
ततस्ते सागराः सर्वे समुपेत्य परस्परम् ।
नाध्यगच्छन्त तुरगमश्वहर्तारमेव च ॥ १६
आगम्य पितरं चोचुस्ततः प्राञ्जलयोऽग्रतः ।
ससमुद्रवनद्वीपा सनदीनदकन्दरा ॥ १७
सपर्वतवनोद्देशा निखिलेन मही नृप ।
अस्माभिर्विचिता राजञ्शासनात्तव पार्थिव १८
न चाश्वमधिगच्छामो नाश्वहर्तारमेव च ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां स राजा क्रोधमूर्छितः १९
उवाच वचनं सर्वांस्तदा दैववशान्नृप ।
अनागमाय गच्छध्वं भूयो मार्गत वाजिनम् ॥२०
यज्ञियं तं विना ह्यश्वं नागन्तव्यं हि पुत्रकाः ।
प्रतिगृह्य तु संदेशं पितुस्ते सगरात्मजाः ॥ २१
भूय एव महीं कृत्स्नां विचेतुमुपचक्रमुः ।
अथापश्यन्त ते वीराः पृथिवीमवदारिताम् ॥ २२
समासाद्य बिलं तच्चाप्यखनन्सगरात्मजाः ।
कुद्दालैर्हेषुकैश्चैव समुद्रं यत्नमास्थिताः ॥ २३
स खन्यमानः सहितैः सागरैर्वरुणालयः ।
अगच्छत्परमामार्तिं दीर्यमाणः समन्ततः ॥ २४
असुरोरगरक्षांसि सत्त्वानि विविधानि च ।
आर्तनादमकुर्वन्त वध्यमानानि सागरैः ॥ २५
छिन्नशीर्षा विदेहाश्च भिन्नत्वगस्थिसंधयः ।
प्राणिनः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

एतच्छ्रुत्वेति ॥ १ ॥ हेषुकैः हेषयति सर्पयत्येभिरिति मृत्तिकोत्क्षेपणैः सदण्डैर्लोहपत्रैः। हेषृ प्रसर्पणेऽस्य रूपम्॥२३॥ सागरैः सगरसमूहैः ॥ २४ ॥

एवं हि खनतां तेषां समुद्रं वरुणालयम् ।
व्यतीतः सुमहान्कालो न चाश्वः समदृश्यत २७
ततः पूर्वोत्तरे देशे समुद्रस्य महीपते ।
विदार्य पातालमथ संक्रुद्धाः सगरात्मजाः ॥ २८
अपश्यन्त हयं तत्र विचरन्तं महीतले ।
कपिलं च महात्मानं तेजोराशिमनुत्तमम् ।
तेजसा दीप्यमानं तु ज्वालाभिरिव पावकम् ॥२९
ते तं दृष्ट्वा हयं राजन्संप्रहृष्टतनूरुहाः ।
अनादृत्य महात्मानं कपिलं कालचोदिताः ॥ ३०
संक्रुद्धाः संप्रधावन्त अश्वग्रहणकाङ्क्षिणः ।
ततः क्रुद्धो महाराज कपिलो मुनिसत्तमः ॥ ३१
वासुदेवेति यं प्राहुः कपिलं मुनिपुङ्गवम् ।
स चक्षुर्विकृतं कृत्वा तेजस्तेषु समुत्सृजन् ॥ ३२
ददाह सुमहातेजा मन्दबुद्धीन्स सागरान् ।
तान्दृष्ट्वा भस्मसाद्भूतान्नारदः सुमहातपाः ॥ ३३
सगरान्तिकमागच्छत्तच्च तस्मै न्यवेदयत् ।
स तच्छ्रुत्वा वचो घोरं राजा मुनिमुखोद्गतम् ३४
मुहूर्तं विमना भूत्वा स्थाणोर्वाक्यमचिन्तयत् ।
अंशुमन्तं समाहूय असमञ्जःसुतं तदा ॥ ३५
पौत्रं भरतशार्दूल इदं वचनमब्रवीत् ।
षष्टिस्तानि सहस्राणि पुत्राणाममितौजसाम् ३६
कापिलं तेज आसाद्य मत्कृते निधनं गताः ।
तव चापि पिता तात परित्यक्तो मयानघ ।
धर्मं संरक्षमाणेन पौराणां हितमिच्छता ॥ ३७

युधिष्ठिर उवाच ।

किमर्थं राजशार्दूलः सगरः पुत्रमात्मजम् ।
त्यक्तवान्दुस्त्यजं वीरं तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३८

लोमश उवाच ।

असमञ्जा इति ख्यातः सगरस्य सुतो ह्यभूत् ।
यं शैब्या जनयामास पौराणां स हि दारकान् ॥
गलेषु क्रोशतो गृह्य नद्यां चिक्षेप दुर्बलान् ।
ततः पौराः समाजग्मुर्भयशोकपरिप्लुताः ॥ ४०
सगरं चाभ्यभाषन्त सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ।
त्वं नस्त्राता महाराज परचक्रादिभिर्भयात् ॥४१
असमञ्जो भयाद्घोरात्ततो नस्त्रातुमर्हसि ।
पौराणां वचनं श्रुत्वा घोरं नृपतिसत्तमः ॥ ४२
मुहूर्तं विमना भूत्वा सचिवानिदमब्रवीत् ।
असमञ्जाः पुरादद्य सुतो मे विप्रवास्यताम् ॥ ४३
यदि वो मत्प्रियं कार्यमेतच्छीघ्रं विधीयताम् ।
एवमुक्ता नरेन्द्रेण सचिवास्ते नराधिप ॥ ४४
यथोक्तं त्वरिताश्चक्रुर्यथाज्ञापितवान्नृपः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा पुत्रो महात्मना ॥ ४५
पौराणां हितकामेन सगरेण विवासितः ।
अंशुमांस्तु महेष्वासो यदुक्तः सगरेण हि
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ४६

सगर उवाच ।

पितुश्च तेऽहं त्यागेन पुत्राणां निधनेन च ।
अलाभेन तथाश्वस्य परितप्यामि पुत्रक ॥ ४७
तस्माद्दुःखाभिसंतप्तं यज्ञविघ्नाच्च मोहितम् ।
हयस्यानयनात्पौत्र नरकान्मां समुद्धर ॥ ४८
अंशुमानेवमुक्तस्तु सगरेण महात्मना ।
जगाम दुःखात्तं देशं यत्र वै दारिता मही ॥ ४९
स तु तेनैव मार्गेण समुद्रं प्रविवेश ह ।
अपश्यच्च महात्मानं कपिलं तुरगं च तम् ॥ ५०
स दृष्ट्वा तेजसो राशिं पुराणमृषिसत्तमम् ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ कार्यमस्मै न्यवेदयत् ॥ ५१
ततः प्रीतो महाराज कपिलोंऽशुमतोऽभवत् ।
उवाच चैनं धर्मात्मा वरदोऽस्मीति भारत ॥ ५२
स वव्रे तुरगं तत्र प्रथमं यज्ञकारणात् ।
द्वितीयं वरकं वव्रे पितॄणां पावनेच्छया ॥ ५३
तमुवाच महातेजाः कपिलो मुनिपुङ्गवः ।
ददानि तव भद्रं ते यद्यत्प्रार्थयसेऽनघ ॥ ५४
त्वयि क्षमा च धर्मश्च सत्यं चापि प्रतिष्ठितम् ।
त्वया कृतार्थः सगरः पुत्रवांश्च त्वया पिता ॥ ५५
तव चैव प्रभावेण स्वर्गं यास्यन्ति सागराः ।
पौत्रश्च ते त्रिपथगां त्रिदिवादानयिष्यति ॥ ५६
पावनार्थं सागराणां तोषयित्वा महेश्वरम् ।
हयं नयस्व भद्रं ते यज्ञियं नरपुङ्गव ॥ ५७
यज्ञः समाप्यतां तात सगरस्य महात्मनः ।
अंशुमानेवमुक्तस्तु कपिलेन महात्मना ॥ ५८
आजगाम हयं गृह्य यज्ञवाटं महात्मनः ।
सोऽभिवाद्य ततः पादौ सगरस्य महात्मनः ॥५९
मूर्ध्नि तेनाप्युपाघ्रातस्तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ।
यथा दृष्टं श्रुतं चापि सागराणां क्षयं तथा ॥ ६०
तं चास्मै हयमाचष्ट यज्ञवाटमुपागतम् ।
तच्छ्रुत्वा सगरो राजा पुत्रजं दुःखमत्यजत् ॥ ६१

पूर्वोत्तरे ऐशान्याम् ॥ २८ ॥

अंशुमन्तं च संपूज्य समापयत तं क्रतुम् ।
समाप्तयज्ञः सगरो देवैः सर्वैः सभाजितः ॥ ६२
पुत्रत्वे कल्पयामास समुद्रं वरुणालयम् ।
प्रशास्य सुचिरं कालं राज्यं राजीवलोचनः॥६३
पौत्रे भारं समावेश्य जगाम त्रिदिवं तदा ।
अंशुमानपि धर्मात्मा महीं सागरमेखलाम् ॥ ६४
प्रशशास महाराज यथैवास्य पितामहः ।
तस्य पुत्रः समभवद्दिलीपो नाम धर्मवित् ॥ ६५
तस्मै राज्यं समाधाय अंशुमानपि संस्थितः ।
दिलीपस्तु ततः श्रुत्वा पितॄणां निधनं महत् ॥६६
पर्यतप्यत दुःखेन तेषां गतिमचिन्तयत् ।
गङ्गावतरणे यत्नं सुमहच्चाकरोन्नृपः ॥ ६७
न चावतारयामास चेष्टमानो यथाबलम् ।
तस्य पुत्रः समभवच्छ्रीमान्धर्मपरायणः ॥ ६८
भगीरथ इति ख्यातः सत्यवागनसूयकः ।
अभिषिच्य तु तं राज्ये दिलीपो वनमाश्रितः॥६९
तपःसिद्धिसमायोगात्स राजा भरतर्षभ ।
वनाज्जगाम त्रिदिवं कालयोगेन भारत ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्यमाहात्म्यकथने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## १०८

लोमश उवाच ।
स तु राजा महेष्वासश्चक्रवर्ती महारथः ।
बभूव सर्वलोकस्य मनोनयननन्दनः ॥ १
स शुश्राव महाबाहुः कपिलेन महात्मना ।
पितॄणां निधनं घोरमप्राप्तिं त्रिदिवस्य च ॥ २
स राज्यं सचिवे न्यस्य हृदयेन विदूयता ।
जगाम हिमवत्पार्श्वं तपस्तप्तुं नरेश्वर ॥ ३
आरिराधयिषुर्गङ्गां तपसा दग्धकिल्बिषः ।
सोऽपश्यत नरश्रेष्ठ हिमवन्तं नगोत्तमम् ॥ ४
शृङ्गैर्बहुविधाकारैर्धातुमद्भिरलंकृतम् ।
पवनालम्बिभिर्मेघैः परिषिक्तं समन्ततः ॥ ५
नदीकुञ्जनितम्बैश्च प्रासादैरुपशोभितम् ।
गुहाकन्दरसंलीनैः सिंहव्याघ्रनिषेवितम् ॥ ६
शकुनैश्च विचित्राङ्गैः कूजद्भिर्विविधा गिरः ।
भृङ्गराजैस्तथा हंसैर्दात्यूहैर्जलकुक्कुटैः ॥ ७
मयूरैः शतपत्रैश्च जीवंजीवककोकिलैः ।
चकोरैरसितापाङ्गैस्तथा पुत्रप्रियैरपि ॥ ८
जलस्थानेषु रम्येषु पद्मिनीभिश्च संकुलम् ।
सारसानां च मधुरैर्व्याहृतैः समलंकृतम् ॥ ९
किंनरैरप्सरोभिश्च निषेवितशिलातलम् ।
दिग्वारणविषाणाग्रैः समन्ताद्धृष्टपादपम् ॥ १०
विद्याधरानुचरितं नानारत्नसमाकुलम् ।
विषोल्बणभुजंगैश्च दीप्तजिह्वैर्निषेवितम् ॥ ११
क्वचित्कनकसंकाशं क्वचिद्रजतसंनिभम् ।
क्वचिदञ्जनपुञ्जाभं हिमवन्तमुपागमत् ॥ १२
स तु तत्र नरश्रेष्ठस्तपो घोरं समाश्रितः ।
फलमूलाम्बुसंभक्षः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ १३
संवत्सरसहस्रे तु गते दिव्ये महानदी ।
दर्शयामास तं गङ्गा तदा मूर्तिमती स्वयम् ॥ १४
गङ्गोवाच ।
किमिच्छसि महाराज मत्तः किं च ददानि ते ।
तद्ब्रवीहि नरश्रेष्ठ करिष्यामि वचस्तव ॥ १५
एवमुक्तः प्रत्युवाच राजा हैमवतीं तदा ।
पितामहा मे वरदे कपिलेन महानदि ॥ १६
अन्वेषमाणास्तुरगं नीता वैवस्वतक्षयम् ।
षष्टिस्तानि सहस्राणि सागराणां महात्मनाम् ॥ १७
कपिलं देवमासाद्य क्षणेन निधनं गताः ।
तेषामेवं विनष्टानां स्वर्गे वासो न विद्यते ॥ १८
यावत्तानि शरीराणि त्वं जलैर्नाभिषिञ्चसि ।
तावत्तेषां गतिर्नास्ति सागराणां महानदि ॥ १९
स्वर्गं नय महाभागे मत्पितॄन्सगरात्मजान् ।
तेषामर्थेन याचामि त्वामहं वै महानदि ॥ २०

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

१०८
स त्विति ॥ १ ॥

लोमश उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो गङ्गा लोकनमस्कृता ।
भगीरथमिदं वाक्यं सुप्रीता समभाषत ॥ २१
करिष्यामि महाराज वचस्ते नात्र संशयः ।
वेगं तु मम दुर्धार्यं पतन्त्या गगनाद्भुवम् ॥ २२
न शक्तस्त्रिषु लोकेषु कश्चिद्धारयितुं नृप ।
अन्यत्र विबुधश्रेष्ठान्नीलकण्ठान्महेश्वरात् ॥ २३
तं तोषय महाबाहो तपसा वरदं हरम् ।
स तु मां प्रच्युतां देवः शिरसा धारयिष्यति २४
स करिष्यति ते कामं पितॄणां हितकाम्यया ।
एतच्छ्रुत्वा ततो राजन्महाराजो भगीरथः ॥ २५
कैलासं पर्वतं गत्वा तोषयामास शंकरम् ।
तपस्तीव्रमुपागम्य कालयोगेन केनचित् ॥ २६
अगृह्णाच्च वरं तस्माद्गङ्गाया धारणे नृप ।
स्वर्गे वासं समुद्दिश्य पितॄणां स नरोत्तमः ॥२७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्योपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

## १०९

लोमश उवाच ।
भगीरथवचः श्रुत्वा प्रियार्थं च दिवौकसाम् ।
एवमस्त्विति राजानं भगवान्प्रत्यभाषत ॥ १
धारयिष्ये महाभाग गगनात्प्रच्युतां शिवाम् ।
दिव्यां देवनदीं पुण्यां त्वत्कृते नृपसत्तम ॥ २
एवमुक्त्वा महाबाहो हिमवन्तमुपागमत् ।
वृतः पारिषदैर्घोरैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ३
तत्र स्थित्वा नरश्रेष्ठं भगीरथमुवाच ह ।
प्रयाचस्व महाबाहो शैलराजसुतां नदीम् ॥ ४
पतमानां सरिच्छ्रेष्ठां धारयिष्ये त्रिविष्टपात् ।
एतच्छ्रुत्वा वचो राजा शर्वेण समुदाहृतम् ॥ ५
प्रयतः प्रणतो भूत्वा गङ्गां समनुचिन्तयत् ।
ततः पुण्यजला रम्या राज्ञा समनुचिन्तिता ॥ ६
ईशानं च स्थितं दृष्ट्वा गगनात्सहसा च्युता ।
तां प्रच्युतामथो दृष्ट्वा देवाः सार्धं महर्षिभिः ॥ ७
गन्धर्वोरगयक्षाश्च समाजग्मुर्दिदृक्षवः ।
ततः पपात गगनाद्गङ्गा हिमवतः सुता ॥ ८
समुद्धृतमहावर्ता मीनग्राहसमाकुला ।
तां दधार हरो राजन्गङ्गां गगनमेखलाम् ॥ ९
ललाटदेशे पतितां मालां मुक्तामयीमिव ।
सा बभूव विसर्पन्ती त्रिधा राजन्समुद्रगा ॥ १०
फेनपुञ्जाकुलजला हंसानामिव पङ्क्तयः ।
क्वचिदाभोगकुटिला प्रस्खलन्ती क्वचित् क्वचित्
सा फेनपटसंवीता मत्तेव प्रमदाव्रजत् ।
क्वचित्सा तोयनिनदैर्नदन्ती नादमुत्तमम् ॥ १२
एवंप्रकारान्सुबहून्कुर्वती गगनाच्च्युता ।
पृथिवीतलमासाद्य भगीरथमथाब्रवीत् ॥ १३
दर्शयस्व महाराज मार्गं केन व्रजाम्यहम् ।
त्वदर्थमवतीर्णास्मि पृथिवीं पृथिवीपते ॥ १४
एतच्छ्रुत्वा वचो राजा प्रातिष्ठत भगीरथः ।
यत्र तानि शरीराणि सागराणां महात्मनाम्॥१५
प्लावनार्थं नरश्रेष्ठ पुण्येन सलिलेन च ।
गङ्गाया धारणं कृत्वा हरो लोकनमस्कृतः ॥ १६
कैलासं पर्वतश्रेष्ठं जगाम त्रिदशैः सह ।
समासाद्य समुद्रं च गङ्गया सहितो नृपः ॥ १७
पूरयामास वेगेन समुद्रं वरुणालयम् ।
दुहितृत्वे च नृपतिर्गङ्गां समनुकल्पयत् ॥ १८
पितॄणां चोदकं तत्र ददौ पूर्णमनोरथः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं गङ्गा त्रिपथगा यथा ॥ १९
पूरणार्थं समुद्रस्य पृथिवीमवतारिता ।
समुद्रश्च यथा पीतः कारणार्थे महात्मना ॥ २०
वातापिश्च यथा नीतः क्षयं स ब्रह्महा प्रभो ।
अगस्त्येन महाराज यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २१

इति श्रीम० आर० तीर्थ० लोमशतीर्थयात्रायां अगस्त्यमाहात्म्यकथने नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

भगीरथवच इति ॥ १ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

# ११०

वैशंपायन उवाच ।

ततः प्रयातः कौन्तेयः क्रमेण भरतर्षभ ।
नन्दामपरनन्दां च नद्यौ पापभयापहे ॥ १
पर्वतं स समासाद्य हेमकूटमनामयम् ।
अचिन्त्यानद्भुतान्भावान्ददर्श सुबहून्नृपः ॥ २
वाताबद्धा भवन्मेघा उपलाश्च सहस्रशः ।
नाशक्नुवंस्तमारोढुं विषण्णमनसो जनाः ॥ ३
वायुर्नित्यं ववौ तत्र नित्यं देवश्च वर्षति ।
स्वाध्यायघोषश्च तथा श्रूयते न च दृश्यते ॥ ४
सायं प्रातश्च भगवान्दृश्यते हव्यवाहनः ।
मक्षिकाश्चादशंस्तत्र तपसः प्रतिघातिकाः ॥ ५
निर्वेदो जायते तत्र गृहाणि स्मरते जनः ।
एवं बहुविधान्भावानद्भुतान्वीक्ष्य पाण्डवः ।
लोमशं पुनरेवाथ पर्यपृच्छत्तदद्भुतम् ॥ ६

लोमश उवाच ।

यथाश्रुतमिदं पूर्वमस्माभिररिकर्शन ।
तदेकाग्रमना राजन्निबोध गदतो मम ॥ ७
अस्मिन्नृषभकूटेऽभूदृषभो नाम तापसः ।
अनेकशतवर्षायुस्तपस्वी कोपनो भृशम् ॥ ८
स वै संभाष्यमाणोऽन्यैः कोपाद्गिरिमुवाच ह ।
य इह व्याहरेत्कश्चिदुपलानुत्सृजेस्तथा ॥ ९
वातं चाहूय मा शब्दमित्युवाच स तापसः ।
व्याहरंश्चेह पुरुषो मेघशब्देन वार्यते ॥ १०
एवमेतानि कर्माणि राजंस्तेन महर्षिणा ।
कृतानि कानिचित्क्रोधात्प्रतिषिद्धानि कानिचित् ।
नन्दां त्वभिगता देवाः पुरा राजन्निति श्रुतिः ।
अन्वपद्यन्त सहसा पुरुषा देवदर्शिनः ॥ १२
ते दर्शनं त्वनिच्छन्तो देवाः शक्रपुरोगमाः ।
दुर्गं चक्रुरिमं देशं गिरिं प्रत्यूहरूपकम् ॥ १३
तदाप्रभृति कौन्तेय नरा गिरिमिमं सदा ।
नाशक्नुवन्नभिद्रष्टुं कुत एवाधिरोहितुम् ॥ १४
नातप्ततपसा शक्यो द्रष्टुमेष महागिरिः ।
आरोढुं वापि कौन्तेय तस्मान्नियतवाग्भव ॥ १५
इह देवास्तदा सर्वे यज्ञानाजह्रुरुत्तमान् ।
तेषामेतानि लिङ्गानि दृश्यन्तेऽद्यापि भारत ॥ १६
कुशाकारेव दूर्वेयं संस्तीर्णेव च भूरियम् ।
यूपप्रकारा बहवो वृक्षाश्चेमे विशांपते ॥ १७
देवाश्च ऋषयश्चैव वसन्त्यद्यापि भारत ।
तेषां सायं तथा प्रातर्दृश्यते हव्यवाहनः ॥ १८
इहाप्लुतानां कौन्तेय सद्यः पाप्माभिहन्यते ।
कुरुश्रेष्ठाभिषेकं वै तस्मात्कुरु सहानुजः ॥ १९
ततो नन्दाप्लुताङ्गस्त्वं कौशिकीमभियास्यसि ।
विश्वामित्रेण यत्रोग्रं तपस्तप्तमनुत्तमम् ॥ २०

वैशंपायन उवाच ।

ततस्तत्र समाप्लुत्य गात्राणि सगणो नृपः ।
जगाम कौशिकीं पुण्यां रम्यां शीतजलां शुभाम् ॥

लोमश उवाच ।

एषा देवनदी पुण्या कौशिकी भरतर्षभ ।
विश्वामित्राश्रमो रम्य एष चात्र प्रकाशते ॥ २२
आश्रमश्चैव पुण्याख्यः काश्यपस्य महात्मनः ।
ऋश्यशृङ्गः सुतो यस्य तपस्वी संयतेन्द्रियः ॥ २३
तपसो यः प्रभावेण वर्षयामास वासवम् ।
अनावृष्ट्यां भयाद्यस्य ववर्ष बलवृत्रहा ॥ २४
मृग्यां जातः स तेजस्वी काश्यपस्य सुतः प्रभुः ।
विषये लोमपादस्य यश्चकाराद्भुतं महत् ॥ २५
निर्वर्तितेषु सस्येषु यस्मै शान्तां ददौ नृपः ।
लोमपादो दुहितरं सावित्रीं सविता यथा ॥ २६

---

११०

तत इति ॥ १ ॥ भावान्पदार्थान् ॥ २ ॥ वाताबद्धा वातेनाबद्धाः मेघाः उपलाश्च भवन् । वातं विनैव सहसा मेघाः शिलाश्च प्रयुज्यन्ते इत्यर्थः। भवन्नित्यडभाव आर्षः । वाचा यत्र भवन्निति पाठे शब्दोच्चारणेनैव यत्र मेघा उपलाश्च हे भवन् भासमान आविर्भवन्तीति शेषः ॥ ३ ॥ न च दृश्यतेऽध्येता ॥ ४ ॥ निर्वेदो गिरिदर्शने वैराग्यम् । गृहाणि स्त्र्यादीनि ॥ ६ ॥ पृष्टश्च लोमश उवाच यथाश्रुतमिति ॥ ७ ॥ ऋषभकूटे ऋषभाश्रिते शैलशृङ्गे ॥ ८ ॥ मा शब्दं कुरु इति शेषः ॥ १० ॥ अन्वपद्यन्त अनुगतवन्तः । देवदर्शिनः देवदर्शनार्थिनः ॥ १२ ॥ प्रत्यूहरूपकं दर्शने विघ्नरूपम् ॥ १३ ॥ नियतवाक् मौनवान् ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ॥ १९ ॥ काश्यपस्य विभाण्डकस्य । ऋश्येति तालव्यादिः । मूर्धन्यादिपाठः प्रामादिकः । ऋश्यो मृगस्तस्येव शृङ्गमस्यास्तीति ऋश्यशृङ्गः । ऋश्यो न तृप्यन्निति मन्त्रवर्णात् ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

ऋश्यशृङ्गः कथं मृग्यामुत्पन्नः काश्यपात्मजः ।
विरुद्धे योनिसंसर्गे कथं च तपसा युतः ॥ २७
किमर्थं च भयाच्छक्रस्तस्य बालस्य धीमतः ।
अनावृष्ट्यां प्रवृत्तायां ववर्ष बलवृत्रहा ॥ २८
कथंरूपा च सा शान्ता राजपुत्री यतव्रता ।
लोभयामास या चेतो मृगभूतस्य तस्य वै ॥ २९
लोमपादश्च राजर्षिर्यदाश्रूयत धार्मिकः ।
कथं वै विषये तस्य नावर्षत्पाकशासनः ॥ ३०
एतन्मे भगवन्सर्वं विस्तरेण यथातथम् ।
वक्तुमर्हसि शुश्रूषोर्ऋश्यशृङ्गस्य चेष्टितम् ॥ ३१

लोमश उवाच ।

विभाण्डकस्य विप्रर्षेस्तपसा भावितात्मनः ।
अमोघवीर्यस्य सतः प्रजापतिसमद्युतेः ॥ ३२
शृणु पुत्रो यथा जात ऋश्यशृङ्गः प्रतापवान् ।
महाह्रदस्य महातेजा बालः स्थविरसंमतः ॥ ३३
महाह्रदं समासाद्य काश्यपस्तपसि स्थितः ।
दीर्घकालं परिश्रान्त ऋषिः स देवसम्मितः ॥ ३४
तस्य रेतः प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ।
अप्सूपस्पृशतो राजन्मृगी तच्चापिबत्तदा ॥ ३५
सह तोयेन तृषिता गर्भिणी चाभवत्ततः ।
सा पुरोक्ता भगवता ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ ३६
देवकन्या मृगी भूत्वा मुनिं सूय विमोक्ष्यसे ।
अमोघत्वाद्विधेश्चैव भावित्वाद्दैवनिर्मितात् ॥ ३७
तस्यां मृग्यां समभवत्तस्य पुत्रो महानृषिः ।
ऋश्यशृङ्गस्तपोनित्यो वन एवाभ्यवर्तत ॥ ३८
तस्यर्षेः शृङ्गं शिरसि राजन्नासीन्महात्मनः ।
तेनर्श्यशृङ्ग इत्येवं तदा स प्रथितोऽभवत् ॥ ३९
न तेन दृष्टपूर्वोऽन्यः पितुरन्यत्र मानुषः ।
तस्मात्तस्य मनो नित्यं ब्रह्मचर्येऽभवन्नृप ॥ ४०
एतस्मिन्नेव काले तु सखा दशरथस्य वै ।
लोमपाद इति ख्यातो ह्यङ्गानामीश्वरोऽभवत् ४१
तेन कामात्कृतं मिथ्या ब्राह्मणस्येति नः श्रुतिः ।
स ब्राह्मणैः परित्यक्तस्ततो वै जगतः पतिः ॥ ४२
पुरोहितापचाराच्च तस्य राज्ञो यदृच्छया ।
न ववर्ष सहस्राक्षस्ततोऽपीड्यन्त वै प्रजाः ॥ ४३
स ब्राह्मणान्पर्यपृच्छत्तपोयुक्तान्मनीषिणः ।
प्रवर्षणे सुरेन्द्रस्य समर्थान्पृथिवीपते ॥ ४४
कथं प्रवर्षेत्पर्जन्य उपायः परिदृश्यताम् ।
तमूचुश्चोदितास्ते तु स्वमतानि मनीषिणः ॥ ४५
तत्र त्वेको मुनिवरस्तं राजानमुवाच ह ।
कुपितास्तव राजेन्द्र ब्राह्मणा निष्कृतिं चर ॥ ४६
ऋश्यशृङ्गं मुनिसुतमानयस्व च पार्थिव ।
वानेयमनभिज्ञं च नारीणामार्जवे रतम् ॥ ४७
स चेदवतरेद्राजन्विषयं ते महातपाः ।
सद्यः प्रवर्षेत्पर्जन्य इति मे नात्र संशयः ॥ ४८
एतच्छ्रुत्वा वचो राजन्कृत्वा निष्कृतिमात्मनः ।
स गत्वा पुनरागच्छत्प्रसन्नेषु द्विजातिषु ॥ ४९
राजानमागतं श्रुत्वा प्रतिसंजहृषुः प्रजाः ।
ततोऽङ्गपतिराहूय सचिवान्मन्त्रकोविदान् ॥ ५०
ऋश्यशृङ्गागमे यत्नमकरोन्मन्त्रनिश्चये ।
सोऽध्यगच्छदुपायं तु तैरमात्यैः सहाच्युतः ॥५१
शास्त्रज्ञैरलमर्थज्ञैर्नीत्यां च परिनिष्ठितैः ।
ततश्चानाययामास वारमुख्या महीपतिः ॥ ५२
वेश्याः सर्वत्र निष्णातास्ता उवाच स पार्थिवः ।
ऋश्यशृङ्गमृषेः पुत्रमानयध्वमुपायतः ॥ ५३
लोभयित्वाभिविश्वास्य विषयं मम शोभनाः ।
ता राजभयभीताश्च शापभीताश्च योषितः ॥५४
अशक्यमूचुस्तत्कार्यं विवर्णा गतचेतसः ।
तत्र त्वेका जरद्योषा राजानमिदमब्रवीत् ॥ ५५
प्रयतिष्ये महाराज तमानेतुं तपोधनम् ।
अभिप्रेतांस्तु मे कामांस्त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ ५६

---

शुश्रूषोर्मे इति संबन्धः ॥ ३१ ॥ महाह्रदस्य अतिपूज्यस्य ॥ ३३ ॥ तोयेन सहापिबदित्यन्वयः ॥ ३६ ॥ सूय प्रसूय । विधेः विधिवाक्यस्य दैवनिर्मितात्धेतोः भावित्वात् अपरिहार्यत्वाच्च ॥ ३७ ॥ अङ्गानां देशानाम् ॥ ४१ ॥ तेन कामात् बुद्धिपूर्वम् । ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्येति शेषः। मिथ्या कृतम् मया तुभ्यं दातुं किमपि न प्रतिश्रुतमित्यपलापं कृतवानित्यर्थः ॥ ४२ ॥ तत्र हेतुः पुरोहितस्य अपचारो दोषः सोऽपि यदृच्छया ब्राह्मणापराधाभावेऽपि स्वेच्छया कृतः ॥ ४३ ॥ निष्कृतिं प्रायश्चित्तम् ॥ ४६ ॥ वानेयं वनभवम् ॥ ४७ ॥ सर्वत्र परवञ्चनादौ। निष्णाताः कुशलाः ॥ ५३ ॥ जरद्योषा वृद्धा स्त्री ॥ ५५ ॥

ततः शक्ष्याम्यानयितुमृष्यशृङ्गमृषेः सुतम् ।
तस्याः सर्वमभिप्रेतमन्वजानात्स पार्थिवः ॥ ५७
धनं च प्रददौ भूरि रत्नानि विविधानि च ।
ततो रूपेण संपन्ना वयसा च महीपते ।
स्त्रिय आदाय काश्चित्सा जगाम वनमञ्जसा ॥५८

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां ऋश्यशृङ्गोपाख्याने दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## १११

लोमश उवाच ।
सा तु नाव्याश्रमं चक्रे राजकार्यार्थसिद्धये ।
संदेशाच्चैव नृपतेः स्वबुद्ध्या चैव भारत ॥ १
नानापुष्पफलैर्वृक्षैः कृत्रिमैरुपशोभितैः ।
नानागुल्मलतोपेतैः स्वादुकामफलप्रदैः ॥ २
अतीव रमणीयं तदतीव च मनोहरम् ।
चक्रे नाव्याश्रमं रम्यमद्भुतोपमदर्शनम् ॥ ३
ततो निबध्य तां नावमदूरे काश्यपाश्रमात् ।
चारयामास पुरुषैर्विहारं तस्य वै मुनेः ॥ ४
ततो दुहितरं वेश्यां समाधायेतिकार्यताम् ।
दृष्ट्वान्तरं काश्यपस्य प्राहिणोद्बुद्धिसंमताम् ॥ ५
सा तत्र गत्वा कुशला तपोनित्यस्य संनिधौ ।
आश्रमं तं समासाद्य ददर्श तमृषेः सुतम् ॥
वेश्योवाच ।
कच्चिन्मुने कुशलं तापसानां
कच्चिच्च वो मूलफलं प्रभूतम् ।
कच्चिद्भवान्रमते चाश्रमेऽस्मिं-
स्त्वां वै द्रष्टुं सांप्रतमागतोऽस्मि ॥ ७
कच्चित्तपो वर्धते तापसानां
पिता च ते कच्चिदहीनतेजाः ।
कच्चित्त्वया प्रीयते चैव विप्र
कच्चित्स्वाध्यायः क्रियते चर्श्यशृङ्ग ॥
ऋश्यशृङ्ग उवाच ।
ऋद्ध्या भवाञ्ज्योतिरिव प्रकाशते
मन्ये चाहं त्वामभिवादनीयम् ।
पाद्यं वै ते संप्रदास्यामि कामा-
द्यथाधर्मं फलमूलानि चैव ॥ ९
कौश्यां बृस्यामास्व यथापजोषं
कृष्णाजिनेनावृतायां सुखायाम् ।
क्व चाश्रमस्तव किं नाम चेदं
व्रतं ब्रह्मंश्चरसि हि देववत्त्वम् ॥ १०
वेश्योवाच ।
ममाश्रमः काश्यपपुत्र रम्य-
स्त्रियोजनं शैलमिमं परेण ।
तत्र स्वधर्मो नाभिवादनं मे
न चोदकं पाद्यमुपस्पृशामि ॥ ११
भवता नाभिवाद्योऽहमभिवाद्यो भवान्मया ।
व्रतमेतदृशं ब्रह्मन्परिष्वज्यो भवान्मया ॥ १२
ऋश्यशृङ्ग उवाच ।
फलानि पक्वानि ददानि तेऽहं
भल्लातकान्यामलकानि चैव ।
करूषकानीङ्गुदधन्वनानि
पिप्पलानां कामकारं कुरुष्व ॥ १३
लोमश उवाच ।
सा तानि सर्वाणि विवर्जयित्वा
भक्ष्याण्यनर्हाणि ददौ ततोऽस्य ।
तान्यृश्यशृङ्गस्य महारसानि
भृशं सुरूपाणि रुचिं ददुर्हि ॥ १४
ददौ च माल्यानि सुगन्धवन्ति
चित्राणि वासांसि च भानुमन्ति ।
पेयानि चाग्र्याणि ततो मुमोद
चिक्रीड चैव प्रजहास चैव ॥ १५

अन्वजानात् अनुज्ञातवान् ॥ ५७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि, नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

१११

सा त्विति । नाव्याश्रमं नावा तार्यमाश्रमम् ॥१॥ मुनेर्विभाण्डकस्य विहारं बहिर्गमनम् । चारयामास चारैरधिगतवतीं ॥ ४ ॥ समाधाय बोधयित्वा । इतिकार्यताम् इतिकर्तव्यताम् । अन्तरम् असांनिध्यम्॥५॥ कौश्यां बृस्यामास्व कुशासने उपविश । यथोपजोषं यथासुखम् । सुखायां सुखकर्याम् ॥ १० ॥ अनर्हाणि अत्युत्तमत्वादमूल्यानि ॥ १४॥

सा कन्दुकेनारमतास्य मूले
विभज्यमाना फलिता लतेव ।
गात्रैश्च गात्राणि निषेवमाणा
समाश्लिषच्चासकृदृश्यशृङ्गम् ॥ १६

सर्जानशोकांस्तिलकांश्च वृक्षा
न्सुपुष्पितानवनाम्यावभज्य ।
विलज्जमानेव मदाभिभूता
प्रलोभयामास सुतं महर्षेः ॥ १७

अथर्श्यशृङ्गं विकृतं समीक्ष्य
पुनः पुनः पीड्य च कायमस्य ।
अवेक्ष्यमाणा शनकैर्जगाम
कृत्वाग्निहोत्रस्य तदापदेशम् ॥ १८

तस्यां गतायां मदनेन मत्तो
विचेतनश्चाभवदृश्यशृङ्गः ।
तामेव भावेन गतेन शून्ये
विनिःश्वसन्नार्तरूपो बभूव ॥ १९

ततो मुहूर्ताद्धरिपिङ्गलाक्षः
प्रवेष्टितो रोमभिरानखाग्रात् ।
स्वाध्यायवान्वृत्तसमाधियुक्तो
विभाण्डकः काश्यपः प्रादुरासीत् ॥२०

सोऽपश्यदासीनमुपेत्य पुत्रं
ध्यायन्तमेकं विपरीतचित्तम् ।
विनिःश्वसन्तं मुहुरूर्ध्वदृष्टिं
विभाण्डकः पुत्रमुवाच दीनम् ॥ २१

न कल्प्यन्ते समिधः किं नु तात
कच्चिद्धुतं चाग्निहोत्रं त्वयाद्य ।
सुनिर्णिक्तं स्रुक्स्रुवं होमधेनुः
कच्चित्सवत्साद्य कृता त्वया च ॥ २२

न वै यथापूर्वमिवासि पुत्र
चिन्तापरश्चासि विचेतनश्च ।
दीनोऽतिमात्रं त्वमिहाद्य किं तु
पृच्छामि त्वां क इहाद्यागतोऽभूत् ॥२३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां ऋश्यशृङ्गोपाख्याने एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## ११२

ऋश्यशृङ्ग उवाच ।

इहागतो जटिलो ब्रह्मचारी
न वै ह्रस्वो नातिदीर्घो मनस्वी ।
सुवर्णवर्णः कमलायताक्षः
स्वतः सुराणामिव शोभमानः ॥ १

समृद्धरूपः सवितेव दीप्तः
सुशुक्लकृष्णाक्षिरतीव गौरः ।
नीलाः प्रसन्नाश्च जटाः सुगन्धा
हिरण्यरज्जुग्रथिताः सुदीर्घाः ॥ २

आधाररूपा पुनरस्य कण्ठे
विभ्राजते विद्युदिवान्तरिक्षे ।
द्वौ चास्य पिण्डावधरेण कण्ठा-
दजातरोमौ सुमनोहरौ च ॥ ३

विलग्नमध्यश्च स नाभिदेशे
कटिश्च तस्यातिकृतप्रमाणा ।
तथास्य चीरान्तरतः प्रभाति
हिरण्मयी मेखला मे यथेयम् ॥ ४

अन्यच्च तस्याद्भुतदर्शनीयं
विकूजितं पादयोः संप्रभाति ।
पाण्योश्च तद्वत्स्वनवन्निबद्धौ
कलापकावक्षमाला यथेयम् ॥ ५

मूले समीपे । विभज्यमाना अङ्गमोटनादीनि कुर्वाणा । निषेवमाणा सूचीवदभ्यन्तरं प्रविशन्ती । ' षिवु तंतुसंताने ' इति धातुः ॥१६॥ कायं देहं पीडय आलिङ्गनेन निपीड्य । अपदेशं छलम् ॥ १८ ॥ भावेन अभिप्रायेण ॥ १९ ॥ प्रवेष्टितः व्याप्तः ॥२०॥ कल्प्यन्ते सिद्धाः क्रियन्ते । निर्णिक्तं प्रक्षालितम् । सवत्सा कृता दोहनायेति शेषः ॥२२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

इहागत इति । स्वत एव नालंकारादिना ॥१॥ आधारूपा आलवालसदृशी कण्ठाभरणविशेषः । ' आधारश्चाधिकरणेऽप्यालवालेऽम्बुधारणे ' इति विश्वः ॥३॥ विलग्न इवेति कृशत्वं लक्ष्यते । अतिकृतप्रमाणा अतिकृशा ॥ ४ ॥ कलापकौ भूषणविशेषौ । स्वार्थे 'कः' 'कलापः संहते बर्हे तूणीरे भूषणे हरे ' इति विश्वः । कङ्कणावित्यर्थः ॥ ५ ॥

विचेष्टमानस्य च तस्य तानि
कूजन्ति हंसाः सरसीव मत्ताः ।
चीराणि तस्याद्भुतदर्शनानि
नेमानि तद्वन्मम रूपवन्ति ॥ ६
वक्त्रं च तस्याद्भुतदर्शनीयं
प्रव्याहृतं ह्लादयतीव चेतः ।
पुंस्कोकिलस्येव च तस्य वाणी
तां शृण्वतो मे व्यथितोऽन्तरात्मा ॥ ७
यथा वनं माधवमासि मध्ये
समीरितं श्वसनेनेव भाति ।
तथा स भात्युत्तमपुण्यगन्धी
निषेव्यमाणः पवनेन तात ॥ ८
सुसंयताश्चापि जटा विषक्ता
द्वैधीकृता नातिसमा ललाटे ।
कर्णौ च चित्रैरिव चक्रवाकैः
समावृतौ तस्य सुरूपवद्भिः ॥ ९
तथा फलं वृत्तमथो विचित्रं
समाहरत्पाणिना दक्षिणेन ।
तद्भूमिमासाद्य पुनः पुनश्च
समुत्पतत्यद्भुतरूपमुच्चैः ॥ १०
तच्चाभिहत्वा परिवर्ततेऽसौ
वातेरितो वृक्ष इवावघूर्णन् ।
तं प्रेक्षतः पुत्रमिवामराणां
प्रीतिः परा तात रतिश्च जाता ॥ ११
स मे समाश्लिष्य पुनः शरीरं
जटासु गृह्याभ्यवनाम्य वक्त्रम् ।
वक्त्रेण वक्त्रं प्रणिधाय शब्दं
चकार तन्मेऽजनयत्प्रहर्षम् ॥ १२
न चापि पाद्यं बहु मन्यतेऽसौ
फलानि चेमानि मयाऽऽहृतानि ।
एवंव्रतोऽस्मीति च मामवोचत्
फलानि चान्यानि समाददन्मे ॥* १३
मयोपयुक्तानि फलानि यानि
नेमानि तुल्यानि रसेन तेषाम् ।
न चापि तेषां त्वगियं यथैषां
साराणि नैषामिव सन्ति तेषाम् ॥ १४
तोयानि चैवातिरसानि मह्यं
प्रादात्स वै पातुमुदाररूपः ।
पीत्वैव यान्यभ्यधिकः प्रहर्षो
ममाभवद्भूश्चलितेव चासीत् ॥ १५
इमानि चित्राणि च गन्धवन्ति
माल्यानि तस्योद्ग्रथितानि पट्टैः ।
यानि प्रकीर्येह गतः स्वमेव
स आश्रमं तपसा द्योतमानः ॥ १६
गतेन तेनाऽस्मि कृतो विचेता
गात्रं च मे संपरिदह्यतीव ।
इच्छामि तस्यान्तिकमाशु गन्तुं
तं चेह नित्यं परिवर्तमानम् ॥ १७
गच्छामि तस्यान्तिकमेव तात
का नाम सा ब्रह्मचर्या च तस्य ।
इच्छाम्यहं चरितुं तेन सार्धं
यथा तपः स चरत्यार्यधर्मा ॥ १८
चर्तुं तथेच्छा हृदये ममास्ति
दुनोति चित्तं यदि तं न पश्ये ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां ऋश्यशृङ्गोपाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## ११३

विभाण्डक उवाच ।
रक्षांसि चैतानि चरन्ति पुत्र
रूपेण तेनाद्भुतदर्शनेन ।
अतुल्यवीर्याण्यभिरूपवन्ति
विघ्नं सदा तपसश्चिन्तयन्ति ॥ १

तथा फलं फलसदृशं कन्दुकम् ॥१०॥ प्रीतिराह्लादः । रतिरासक्तिः ॥११॥ भूश्चलितेवेति मधुपानजा भ्रान्तिः सूचिता ॥ १५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

रक्षांसीति ॥ १ ॥

सुरूपरूपाणि च तानि तात
प्रलोभयन्ते विविधैरुपायैः ।
सुखाश्च लोकाश्च निपातयन्ति
तान्युग्ररूपाणि मुनीन्वनेषु ॥ २

न तानि सेवेत मुनिर्यतात्मा
सतां लोकान्प्रार्थयानः कथंचित् ।
कृत्वा विघ्नं तापसानां रमन्ते
पापाचारास्तापसस्तान्न पश्येत् ॥ ३

असज्जनेनाचरितानि पुत्र
पापान्यपेयानि मधूनि तानि ।
माल्यानि चैतानि न वै मुनीनां
स्मृतानि चित्रोज्ज्वलगन्धवन्ति ॥ ४

रक्षांसि तानीति निवार्य पुत्रं
विभाण्डकस्तां मृगयांबभूव ।
नासादयामास यदा त्र्यहेण
तदा स पर्याववृते श्रमाय ॥ ५

यदा पुनः काश्यपो वै जगाम
फलान्याहर्तुं विधिनाश्रावणेन ।
तदा पुनर्लोभयितुं जगाम
सा वेशयोषा मुनिमृश्यशृङ्गम् ॥ ६

दृष्ट्वैव तामृश्यशृङ्गः प्रहृष्टः
संभ्रान्तरूपोऽभ्यपतत्तदानीम् ।
प्रोवाच चैनां भवतः श्रमाय
गच्छाव यावन्न पिता ममेति ॥ ७

ततो राजन्काश्यपस्यैकपुत्रं
प्रवेश्य योगेन विमुच्य नावम् ।
प्रमोदयन्त्यो विविधैरुपायै-
राजग्मुरङ्गाधिपतेः समीपम् ॥ ८

संस्थाप्य तामाश्रमदर्शने तु
संतारितां नावमथातिशुभ्राम् ।
तीरादुपादाय तथैव चक्रे
नाव्याश्रमं नाम वनं विचित्रम् ॥ ९

अन्तःपुरे तं तु निवेश्य राजा
विभाण्डकस्यात्मजमेकपुत्रम् ।
ददर्श देवं सहसा प्रविष्ट-
मापूर्यमाणं च जगज्जलेन ॥ १०

स लोमपादः परिपूर्णकामः
सुतां ददावृश्यशृङ्गाय शान्ताम् ।
क्रोधप्रतीकारकरं च चक्रे
गाश्चैव मार्गेषु च कर्षणानि ॥ ११

विभाण्डकस्याव्रजतः स राजा
पशून्प्रभूतान्पशुपांश्च वीरान् ।
समादिशत्पुत्रगृद्धी महर्षि-
र्विभाण्डकः परिपृच्छेद्यदा वः ॥ १२

स वक्तव्यः प्राञ्जलिभिर्भवद्भिः
पुत्रस्य ते पशवः कर्षणं च ।
किं ते प्रियं वै क्रियतां महर्षे
दासाः स्म सर्वे तव वाचि बद्धाः ॥ १३

अथोपायात्स मुनिश्चण्डकोपः
स्वमाश्रमं मूलफलं गृहीत्वा ।
अन्वेषमाणश्च न तत्र पुत्रं
ददर्श चुक्रोध ततो भृशं सः ॥ १४

ततः स कोपेन विदीर्यमाण
आशङ्कमानो नृपतेर्विधानम् ।
जगाम चम्पां प्रति धक्ष्यमाण-
स्तमङ्गराजं सपुरं सराष्ट्रम् ॥ १५

स वै श्रान्तः क्षुधितः काश्यपस्ता-
न्घोषान्समासादितवान्समृद्धान् ।
गोपैश्च तैर्विधिवत्पूज्यमानो
राजेव तां रात्रिमुवास तत्र ॥ १६

अवाप्य सत्कारमतीव तेभ्यः
प्रोवाच कस्य प्रथिताः स्थ गोपाः ।
ऊचुस्ततस्तेऽभ्युपगम्य सर्वे
धनं तवेदं विहितं सुतस्य ॥ १७

देशेषु देशेषु स पूज्यमान-
स्तांश्चैव शृण्वन्मधुरान्प्रलापान् ।
प्रशान्तभूयिष्ठरजाः प्रहृष्टः
समाससादाङ्गपतिं पुरस्थम् ॥ १८

स पूजितस्तेन नरर्षभेण
ददर्श पुत्रं दिवि देवं यथेन्द्रम् ।
शान्तां स्नुषां चैव ददर्श तत्र
सौदामनीमुच्चरन्तीं यथैव ॥ १९

श्रमाय आश्रमाय ॥ ५ ॥ अश्रावणेन अपाखण्डेन वैदिकेन । 'श्रावणो भार्से पाखण्डे' इति विश्वः । आश्रावणेनेति प्रश्लेषे तु दृष्टयादृष्टम् तत्राश्रयावयेत्यादिशब्दप्रयोगात् । वेशयोषा वेश्या ॥ ६ ॥ आश्रमो यत्रस्थैर्दृश्यते तावति देशे आश्रमदर्शने ॥ ९ ॥

ग्रामांश्च घोषांश्च सुतस्य दृष्ट्वा
शान्तां च शान्तोऽस्य परः स कोपः ।
चकार तस्यैव परं प्रसादं
विभाण्डको भूमिपतेर्नरेन्द्र ॥ २०
स तत्र निक्षिप्य सुतं महर्षि-
रुवाच सूर्याग्निसमप्रभावः ।
जाते च पुत्रे वनमेवाव्रजेथा
राज्ञः प्रियाण्यस्य सर्वाणि कृत्वा ॥ २१
स तद्वचः कृतवानृश्यशृङ्गो
ययौ च यत्रास्य पिता बभूव ।
शान्ता चैनं पर्यचरन्नरेन्द्र
खे रोहिणी सोममिवानुकूला ॥ २२
अरुंधती वा सुभगा वसिष्ठं
लोपामुद्रा वा यथा ह्यगस्त्यम् ।
नलस्य वै दमयन्ती यथाभू-
द्यथा शची वज्रधरस्य चैव ॥ २३
नारायणी चेन्द्रसेना बभूव
वश्या नित्यं मुद्गलस्याजमीढ ।
तथा शान्ता ऋश्यशृङ्गं वनस्थं
प्रीत्या युक्ता पर्यचरन्नरेन्द्र ॥ २४
तस्याश्रमः पुण्य एषोऽवभाति
महाह्रदं शोभयन्पुण्यकीर्तिः ।
अत्र स्नातः कृतकृत्यो विशुद्ध-
स्तीर्थान्यन्यान्यनुसंयाहि राजन् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां ऋश्यशृङ्गो० त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

## ११४

वैशंपायन उवाच ।
ततः प्रयातः कौशिक्याः पाण्डवो जनमेजय ।
आनुपूर्व्येण सर्वाणि जगामायतनान्यथ ॥ १
स सागरं समासाद्य गङ्गायाः संगमे नृप ।
नदीशतानां पञ्चानां मध्ये चक्रे समाप्लवम् ॥ २
ततः समुद्रतीरेण जगाम वसुधाधिपः ।
भ्रातृभिः सहितो वीरः कलिङ्गान्प्रति भारत ॥ ३
लोमश उवाच ।
एते कलिङ्गाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी ।
यत्रायजत धर्मोऽपि देवाञ्छरणमेत्य वै ॥ ४
ऋषिभिः समुपायुक्तं यज्ञियं गिरिशोभितम् ।
उत्तरं तीरमेतद्धि सततं द्विजसेवितम् ॥ ५
समानं देवयानेन पथा स्वर्गमुपेयुषः ।
अत्र वै ऋषयोऽन्येऽपि पुरा क्रतुभिरीजिरे ॥ ६
अत्रैव रुद्रो राजेन्द्र पशुमादत्तवान्मखे ।
पशुमादाय राजेन्द्र भागोऽयमिति चाब्रवीत् ॥ ७
हृते पशौ तदा देवास्तमूचुर्भरतर्षभ ।
मा परस्वमभिद्रोग्धा मा धर्मान्सकलान्वशीः ॥ ८
ततः कल्याणरूपाभिर्वाग्भिस्ते रुद्रमस्तुवन् ।
इष्ट्या चैनं तर्पयित्वा मानयांचक्रिरे तदा ॥ ९
ततः स पशुमुत्सृज्य देवयानेन जग्मिवान् ।
तत्रानुवंशो रुद्रस्य तं निबोध युधिष्ठिर ॥ १०
अयातयामं सर्वेभ्यो भागेभ्यो भागमुत्तमम् ।
देवाः संकल्पयामासुर्भयाद्रुद्रस्य शाश्वतम् ॥ ११
इमां गाथामत्र गायन्नपः स्पृशति यो नरः ।
देवयानोऽस्य पन्थाश्च चक्षुषाभिप्रकाशते ॥ १२
वैशंपायन उवाच ।
ततो वैतरणीं सर्वे पाण्डवा द्रौपदी तथा ।
अवतीर्य महाभागास्तर्पयांचक्रिरे पितॄन् ॥ १३
युधिष्ठिर उवाच ।
उपस्पृश्येह विधिवदस्यां नद्यां तपोबलात् ।
मानुषादस्मि विषयादपेतः पश्य लोमश ॥ १४
सर्वाँल्लोकान्प्रपश्यामि प्रसादात्तव सुव्रत ।
वैखानसानां जपतामेष शब्दो महात्मनाम् ॥ १५

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

११४

तत इति ॥ १ ॥ उत्तरं तीरं वैतरण्याः ॥ ५ ॥ मा परस्वमभिद्रोग्धा परभागस्य नाशं मा कुर्वित्यर्थः । धर्मान्मा वशीः धर्मसाधनान्यज्ञभागान्सर्वान्कामयेथाः । 'वश कान्तौ' अस्य लुङि रूपम् ॥ ८ ॥ अयातयामं तात्कालिकम् ॥ ११ ॥

लोमश उवाच ।

त्रिशतं वै सहस्राणि योजनानां युधिष्ठिर ।
यत्र ध्वनिं शृणोष्येनं तूष्णीमास्व विशांपते ॥ १६
एतत्स्वयंभुवो राजन्वनं दिव्यं प्रकाशते ।
यत्रायजत राजेन्द्र विश्वकर्मा प्रतापवान् ॥ १७
यस्मिन्यज्ञे हि भूर्दत्ता कश्यपाय महात्मने ।
सपर्वतवनोद्देशा दक्षिणार्थे स्वयंभुवा ॥ १८
अवासीदच्च कौन्तेय दत्तमात्रा मही तदा ।
उवाच चापि कुपिता लोकेश्वरमिदं प्रभुम् ॥ १९
न मां मर्त्याय भगवन्कस्मैचिद्दातुमर्हसि ।
प्रदानं मोघमेतत्ते यास्याम्येषा रसातलम् ॥ २०
विषीदन्तीं तु तां दृष्ट्वा कश्यपो भगवानृषिः ।
प्रसादयांबभूवाथ ततो भूमिं विशांपते ॥ २१
ततः प्रसन्ना पृथिवी तपसा तस्य पाण्डव ।
पुनरुन्मज्य सलिलाद्वेदीरूपा स्थिता बभौ ॥ २२
सैषा प्रकाशते राजन्वेदीसंस्थानलक्षणा ।
आरुह्यात्र महाराज वीर्यवान्वै भविष्यसि ॥ २३
सैषा सागरमासाद्य राजन्वेदी समाश्रिता ।
एतामारुह्य भद्रं ते त्वमेकस्तर सागरम् ॥ २४
अहं च ते स्वस्त्ययनं प्रयोक्ष्ये
यथा त्वमेनामधिरोहसेऽद्य ।
स्पृष्टा हि मर्त्येन ततः समुद्र-
मेषा वेदी प्रविशत्याजमीढ ॥ २५
ॐ नमो विश्वगुप्ताय नमो विश्वपराय ते ।
सांनिध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥ २६
अग्निर्मित्रो योनिरापोऽथ देव्यो
विष्णोरेतस्त्वममृतस्य नाभिः ।
एवं ब्रुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं
वेदीमिमां त्वं तरसाधिरोह ॥ २७
अग्निश्च ते योनिरिडा च देहो
रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः ।
एवं जपन्पाण्डव सत्यवाक्यं
ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम् ॥ २८
अन्यथा हि कुरुश्रेष्ठ देवयोनिरपां पतिः ।
कुशाग्रेणापि कौन्तेय न स्प्रष्टव्यो महोदधिः ॥ २९

वैशंपायन उवाच ।

ततः कृतस्वस्त्ययनो महात्मा
युधिष्ठिरः सागरमभ्यगच्छत् ।
कृत्वा च तच्छासनमस्य सर्वं
महेन्द्रमासाद्य निशामुवास ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां महेन्द्राचलगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

## ११५

वैशंपायन उवाच ।

स तत्र तामुषित्वैकां रजनीं पृथिवीपतिः ।
तापसानां परं चक्रे सत्कारं भ्रातृभिः सह ॥ १
लोमशस्तस्य तान्सर्वानाचख्यौ तत्र तापसान् ।
भृगूनङ्गिरसश्चैव वसिष्ठानथ काश्यपान् ॥ २
तान्समेत्य स राजर्षिरभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
रामस्यानुचरं वीरमपृच्छदकृतव्रणम् ॥ ३
कदा तु रामो भगवांस्तापसान्दर्शयिष्यति ।
तेनैवाहं प्रसंगेन द्रष्टुमिच्छामि भार्गवम् ॥ ४

अकृतव्रण उवाच ।

आयानेवासि विदितो रामस्य विदितात्मनः ।
प्रीतिस्त्वयि च रामस्य क्षिप्रं त्वां दर्शयिष्यति ॥ ५

'भूमिर्ह जगावित्युदाहरन्ति न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति' विश्वकर्मन् भौवनमांदिदासिथ निमंक्ष्येहं सलिलस्य मध्ये मोघस्त एष कश्यपायाससंगरः' इति श्रुतेरर्थं संगृह्णाति । यत्रायजत राजेन्द्रेत्यादिना ॥ १७ ॥ स्नानार्थं समुद्रप्रार्थनामन्त्रमाह ॐ नम इति । 'विश्वं गुप्तं लीनमस्मिन् प्रलये' इति विश्वगुप्तः । विश्वस्मात्पराय श्रेष्ठाय विष्णवे इत्यर्थः । लवणाम्भसि क्षारोदके ॥ २६ ॥ अग्निर्मित्रश्च तेजस्त्वादग्निवत्सूर्योऽपि अपां योनिः अपामिति शेषः । विष्णोर्व्यापकस्यात्मनो रेतः शरीराकारपरिणतं अभिव्यक्तिस्थानं त्वं हे समुद्र अमृतस्य नाभिः सुधाया गर्भस्थानम् ॥ २७ ॥ इडा यज्ञः विष्णोः रेतोधाः विष्णो रेतः जीवः स धीयतेऽस्मिन् देहे । अमृतस्य नाभिः मोक्षस्य साधनम् ॥ २८ ॥ देवयोनिः देवस्थानम् ॥ २९ ॥ इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

११५

स इति ॥ १ ॥ आयान् आगच्छन् ॥ ५ ॥

चतुर्दशीमष्टमीं च रामं पश्यन्ति तापसाः ।
अस्यां रात्र्यां व्यतीतायां भवित्री श्वश्चतुर्दशी॥६

युधिष्ठिर उवाच ।

भवाननुगतो रामं जामदग्न्यं महाबलम् ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पूर्ववृत्तस्य कर्मणः ॥ ७
स भवान्कथयत्वद्य यथा रामेण निर्जिताः ।
आहवे क्षत्रियाः सर्वे कथं केन च हेतुना ॥ ८

अकृतव्रण उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् ।
भृगूणां राजशार्दूल वंशे जातस्य भारत ॥ ९
रामस्य जामदग्न्यस्य चरितं देवसंमितम् ।
हैहयाधिपतेश्चैव कार्तवीर्यस्य भारत ॥ १०
रामेण चार्जुनो नाम हैहयाधिपतिर्हतः ।
तस्य बाहुशतान्यासंस्त्रीणि सप्त च पाण्डव ॥११
दत्तात्रेयप्रसादेन विमानं काञ्चनं तथा ।
ऐश्वर्यं सर्वभूतेषु पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ १२
अव्याहतगतिश्चैव रथस्तस्य महात्मनः ।
रथेन तेन तु सदा वरदानेन वीर्यवान् ॥ १३
ममर्द देवान्यक्षांश्च ऋषींश्चैव समन्ततः ।
भूतांश्चैव स सर्वांस्तु पीडयामास सर्वतः ॥ १४
ततो देवाः समेत्याहुर्ऋषयश्च महाव्रताः ।
देवदेवं सुरारिघ्नं विष्णुं सत्यपराक्रमम् ॥ १५
भगवन्भूतरक्षार्थमर्जुनं जहि वै प्रभो ।
विमानेन च दिव्येन हैहयाधिपतिः प्रभुः ॥ १६
शचीसहायं क्रीडन्तं धर्षयामास वासवम् ।
ततस्तु भगवान्देवः शक्रेण सहितस्तदा ।
कार्तवीर्यविनाशार्थं मन्त्रयामास भारत ॥ १७
यत्तद्भूतहितं कार्यं सुरेन्द्रेण निवेदितम् ।
संप्रतिश्रुत्य तत्सर्वं भगवाँल्लोकपूजितः ॥ १८
जगाम बदरीं रम्यां स्वमेवाश्रममण्डलम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥ १९
कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवः सुमहाबलः ।
गाधीति विश्रुतो लोके वनवासं जगाम ह ॥ २०
वने तु तस्य वसतः कन्या जज्ञेऽप्सरःसमा ।
ऋचीको भार्गवस्तां च वरयामास भारत ॥ २१
तमुवाच ततो गाधिर्ब्राह्मणं संशितव्रतम् ।
उचितं नः कुले किंचित्पूर्वैर्यत्संप्रवर्तितम् ॥ २२
एकतः श्यामकर्णानां पाण्डुराणां तरस्विनाम् ।
सहस्रं वाजिनां शुल्कमिति विद्धि द्विजोत्तम २३
न चापि भगवान्वाच्यो दीयतामिति भार्गव ।
देया मे दुहिता चैव त्वद्विधाय महात्मने ॥ २४

ऋचीक उवाच ।

एकतः श्यामकर्णानां पाण्डुराणां तरस्विनाम् ।
दास्याम्यश्वसहस्रं ते मम भार्या सुतास्तु ते॥ २५

अकृतव्रण उवाच ।

स तथेति प्रतिज्ञाय राजन्वरुणमब्रवीत् ।
एकतः श्यामकर्णानां पाण्डुराणां तरस्विनाम्॥ २६
सहस्रं वाजिनामेकं शुल्कार्थं प्रतिदीयताम् ।
तस्मै प्रादात्सहस्रं वै वाजिनां वरुणस्तदा ॥ २७
तदश्वतीर्थं विख्यातमुत्थिता यत्र ते हयाः ।
गङ्गायां कान्यकुब्जे वै ददौ सत्यवतीं तदा ॥ २८
ततो गाधिः सुतां चास्मै जन्याश्चासन्सुरास्तदा ।
लब्ध्वा हयसहस्रं तु तांश्च दृष्ट्वा दिवौकसः ॥ २९
धर्मेण लब्ध्वा तां भार्यामृचीको द्विजसत्तमः ।
यथाकामं यथाजोषं तया रेमे सुमध्यया ॥ ३०
तं विवाहे कृते राजन्सभार्यमवलोककः ।
आजगाम भृगुश्रेष्ठः पुत्रं दृष्ट्वा ननन्द ह ॥ ३१
भार्यापती तमासीनं गुरुं सुरगणार्चितम् ।
अर्चित्वा पर्युपासीनौ प्राञ्जली तस्थतुस्तदा ॥ ३२
ततः स्नुषां स भगवान्प्रहृष्टो भृगुरब्रवीत् ।
वरं वृणीष्व सुभगे दाता ह्यस्मि तवेप्सितम्॥ ३३
सा वै प्रसादयामास तं गुरुं पुत्रकारणात् ।
आत्मनश्चैव मातुश्च प्रसादं च चकार सः ॥ ३४

भृगुरुवाच ।

ऋतौ त्वं चैव माता च स्नाते पुंसवनाय वै ।
आलिङ्गेतां पृथग्वृक्षौ साश्वत्थं त्वमुदुम्बरम् ॥३५
चरुद्वयमिदं भद्रे जनन्याश्च तवैव च ।
विश्वमावर्तयित्वा तु मया यत्नेन साधितम् ॥३६
प्राशितव्यं प्रयत्नेन तेत्युक्त्वादर्शनं गतः ।
आलिङ्गने चरौ चैव चक्रतुस्ते विपर्ययम् ॥ ३७
ततः पुनः स भगवान्काले बहुतिथे गते ।
दिव्यज्ञानाद्विदित्वा तु भगवानागतः पुनः ॥ ३८

---

एकत इति। बहिः श्यामाः अन्तरा रक्ताःकर्णा येषां ते एकतः श्यामकर्णास्तेषाम् ॥२५॥ जन्याः वरपक्षीयाः ॥२९॥ अवलोककः अवलोकनार्थी ॥३१॥ विश्वं विराट्पुरुषं आवर्तयित्वा मुहुर्मुहुरनुसंधाय एतयोश्चर्वोर्भक्षणेन विश्वस्रष्टृतुल्यौ पुत्रौ भविष्यत इति भावः ॥३६॥ ते उमे प्रति इत्युक्त्वेतोकारलोपः संधिर्वा आर्षः । आलिङ्गने अश्वत्थोदुम्बरयोः ॥ ३७ ॥

अथोवाच महातेजा भृगुः सत्यवतीं स्नुषाम् ।
उपयुक्तश्चरुर्भद्रे वृक्षे चालिङ्गनं कृतम् ॥ ३९
विपरीतेन ते सुभ्रूर्मात्रा चैवासि वञ्चिता ।
ब्राह्मणः क्षत्रवृत्तिर्वै तव पुत्रो भविष्यति ॥ ४०
क्षत्रियो ब्राह्मणाचारो मातुस्तव सुतो महान् ।
भविष्यति महावीर्यः साधूनां मार्गमास्थितः ४१
ततः प्रसादयामास श्वशुरं सा पुनः पुनः ।
न मे पुत्रो भवेदीदृक्कामं पौत्रो भवेदिति ॥ ४२
एवमस्त्विति सा तेन पाण्डव प्रतिनन्दिता ।
जमदग्निं ततः पुत्रं जज्ञे सा काल आगते ॥ ४३
तेजसा वर्चसा चैव युक्तं भार्गवनन्दनम् ।
स वर्धमानस्तेजस्वी वेदस्याध्ययनेन च ॥ ४४
बहूनृषीन्महातेजाः पाण्डवेयात्यवर्तत ।
तं तु कृत्स्नो धनुर्वेदः प्रत्यभाद्भरतर्षभ ।
चतुर्विधानि चास्त्राणि भास्करोपमवर्चसम् ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां कार्तवीर्योपाख्याने पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## ११६

अकृतव्रण उवाच ।
स वेदाध्ययने युक्तो जमदग्निर्महातपाः ।
तपस्तेपे ततो वेदान्नियमाद्वशमानयत् ॥ १
स प्रसेनजितं राजन्नधिगम्य नराधिपम् ।
रेणुकां वरयामास स च तस्मै ददौ नृपः ॥ २
रेणुकां त्वथ संप्राप्य भार्यां भार्गवनन्दनः ।
आश्रमस्थस्तया सार्धं तपस्तेपेऽनुकूलया ॥ ३
तस्याः कुमाराश्चत्वारो जज्ञिरे रामपञ्चमाः ।
सर्वेषामजघन्यस्तु राम आसीज्जघन्यजः ॥ ४
फलाहारेषु सर्वेषु गतेष्वथ सुतेषु वै ।
रेणुका स्नातुमगमत्कदाचिन्नियतव्रता ॥ ५
सा तु चित्ररथं नाम मार्तिकावतकं नृपम् ।
ददर्श रेणुका राजन्नागच्छन्ती यदृच्छया ॥ ६
क्रीडन्तं सलिले दृष्ट्वा सभार्यं पद्ममालिनम् ।
ऋद्धिमन्तं ततस्तस्य स्पृहयामास रेणुका ॥ ७
व्यभिचाराच्च तस्मात्सा क्लिन्नाम्भसि विचेतना
प्रविवेशाश्रमं त्रस्ता तां वै भर्तान्वबुध्यत ॥ ८
स तां दृष्ट्वा च्युतां धैर्याद्ब्राह्म्या लक्ष्म्या विवर्जिताम्
धिक्शब्देन महातेजा गर्हयामास वीर्यवान् ॥ ९
ततो ज्येष्ठो जामदग्न्यो रुमण्वान्नाम नामतः ।
आजगाम सुषेणश्च वसुर्विश्वावसुस्तथा ॥ १०
तानानुपूर्व्याद्भगवान्वधे मातुरचोदयत् ।
न च ते जातसंमोहाः किंचिदूचुर्विचेतसः ॥ ११
ततः शशाप तान्क्रोधात्ते शप्ताश्चेतनां जहुः ।
मृगपक्षिसधर्माणः क्षिप्रमासञ्जडोपमाः ॥ १२
ततो रामोऽभ्ययात्पश्चादाश्रमं परवीरहा ।
तमुवाच महाबाहुर्जमदग्निर्महातपाः ॥ १३
जहीमां मातरं पापां मा च पुत्र व्यथां कृथाः ।
तत आदाय परशुं रामो मातुः शिरोऽहरत् ॥ १४
ततस्तस्य महाराज जमदग्नेर्महात्मनः ।
कोपोऽभ्यगच्छत्सहसा प्रसन्नश्चाब्रवीदिदम् ॥ १५
ममेदं वचनात्तात कृतं ते कर्म दुष्करम् ।
वृणीष्व कामान्धर्मज्ञ यावतो वाञ्छसे हृदा १६
स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै ।
पापेन तेन चास्पर्शं भ्रातॄणां प्रकृतिं तथा ॥ १७
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे दीर्घमायुश्च भारत ।
ददौ च सर्वान्कामांस्ताञ्जमदग्निर्महातपाः ॥ १८
कदाचित्तु तथैवास्य विनिष्क्रान्ताः सुताः प्रभो ।
अथानूपपतिर्वीरः कार्तवीर्योऽभ्यवर्तत ॥ १९
तमाश्रमपदं प्राप्तमृषेर्भार्या समार्चयत् ।
स युद्धमदसंमत्तो नाभ्यनन्दत्तथार्चनम् ॥ २०

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६

स वेदेति ॥ १ ॥ ततस्तस्य स्पृहयामास तमैच्छत् ॥ ७ ॥ अम्भसि सरस्येव क्लिन्ना द्रुता । तथा चोक्तम् । 'सुन्दरं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम् । योनिर्द्रवति नारीणां सत्यं सत्यं जनार्दन'इति ॥ ८ ॥

प्रमथ्य चाश्रमात्तस्माद्धोमधेनोस्तथा बलात् ।
जहार वत्सं क्रोशन्त्या बभञ्ज च महाद्रुमान् ॥२१
आगताय च रामाय तदाचष्ट पिता स्वयम् ।
गां च रोरुदतीं दृष्ट्वा कोपो रामं समाविशत् २२
स मृत्युवशमापन्नं कार्तवीर्यमुपाद्रवत् ।
तस्याथ युधि विक्रम्य भार्गवः परवीरहा ॥ २३
चिच्छेद निशितैर्भल्लैर्बाहून्परिघसंनिभान् ।
सहस्रसंमितान्राजन्प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥ २४
अभिभूतः स रामेण संयुक्तः कालधर्मणा ।
अर्जुनस्याथ दायादा रामेण कृतमन्यवः ॥ २५
आश्रमस्थं विना रामं जमदग्निमुपाद्रवन् ।
ते तं जघ्नुर्महावीर्यमयुध्यन्तं तपस्विनम् ॥ २६
असकृद्रामरामेति विक्रोशन्तमनाथवत् ।
कार्तवीर्यस्य पुत्रास्तु जमदग्निं युधिष्ठिर ॥ २७
पीडयित्वा शरैर्जग्मुर्यथागतमरिंदमाः ।
अपक्रान्तेषु वै तेषु जमदग्नौ तथा गते ॥ २८
समित्पाणिरुपागच्छदाश्रमं भृगुनन्दनः ।
स दृष्ट्वा पितरं वीरस्तथा मृत्युवशं गतम् ।
अनर्हन्तं तथाभूतं विललाप सुदुःखितः ॥ २९

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां कार्तवीर्योपाख्याने जमदग्निवधे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

## ११७

राम उवाच ।
ममापराधात्तैः क्षुद्रैर्हतस्त्वं तात बालिशैः ।
कार्तवीर्यस्य दायादैर्वने मृग इवेषुभिः ॥ १
धर्मज्ञस्य कथं तात वर्तमानस्य सत्पथे ।
मृत्युरेवंविधो युक्तः सर्वभूतेष्वनागसः ॥ २
किं नु तैर्न कृतं पापं यैर्भवांस्तपसि स्थितः ।
अयुध्यमानो वृद्धः सन्हतः शरशतैः शितैः ॥ ३
किं नु ते तत्र वक्ष्यन्ति सचिवेषु सुहृत्सु च ।
अयुध्यमानं धर्मज्ञमेकं हत्वाऽनपत्रपाः ॥ ४
लालप्यैवं सकरुणं बहु नानाविधं नृप ।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि पितुश्चक्रे महातपाः ॥ ५
ददाह पितरं चाग्नौ रामः परपुरंजयः ।
प्रतिजज्ञे वधं चापि सर्वक्षत्रस्य भारत ॥ ६
संक्रुद्धोऽतिबलः संख्ये शस्त्रमादाय वीर्यवान् ।
जघ्निवान्कार्तवीर्यस्य सुतानेकोऽन्तकोपमः ॥ ७
तेषां चानुगता ये च क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।
तांश्च सर्वानवामृद्नाद्रामः प्रहरतां वरः ॥ ८
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान् ॥ ९
स तेषु तर्पयामास भृगून्भृगुकुलोद्वहः ।
साक्षाद्ददर्श चर्चीकं स च रामं न्यवारयत् ॥ १०
ततो यज्ञेन महता जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
तर्पयामास देवेन्द्रमृत्विग्भ्यः प्रददौ महीम् ॥ ११
वेदीं चाप्यददद्धैमीं कश्यपाय महात्मने ।
दशव्यामायतां कृत्वा नवोत्सेधां विशांपते ॥ १२
तां कश्यपस्यानुमते ब्राह्मणाः खण्डशस्तदा ।
व्यभजंस्ते तदा राजन्प्रख्याताः खाण्डवायनाः १३
स प्रदाय महीं तस्मै कश्यपाय महात्मने ।
अस्मिन्महेन्द्रे शैलेन्द्रे वसत्यमितविक्रमः ॥ १४
एवं वैरमभूत्तस्य क्षत्रियैर्लोकवासिभिः ।
पृथिवी चापि विजिता रामेणामिततेजसा ॥ १५
वैशंपायन उवाच ।
ततश्चतुर्दशीं रामः समयेन महामनाः ।
दर्शयामास तान्विप्रान्धर्मराजं च सानुजम् ॥ १६

कालधर्मणा मृत्युना ॥ २५ ॥ भार्यावधदोषात्स्वयमपि तादृशमेव मरणं प्राप्येत्याशयः ॥ २५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७

ममेति ॥ १ ॥ दशव्यामायतां व्यामो हस्तचतुष्टयम् । चत्वारिंशद्धस्तायामविस्ताराम् । नवोत्सेधां षट्त्रिंशद्धस्तोच्छ्रायां चेत्यर्थः । व्यायामेति प्रमादपाठः ॥ १२ ॥ खण्डशः खण्डानि खण्डानि कृत्वा व्यभजन् ॥ १३ ॥

स तमानर्च राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितः प्रभुः ।
द्विजानां च परां पूजां चक्रे नृपतिसत्तमः ॥ १७
आर्चित्वा जामदग्न्यं स पूजितस्तेन चोदितः ।
महेन्द्र उष्य तां रात्रिं प्रययौ दक्षिणामुखः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां कार्तवीर्योपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

## ११८

वैशंपायन उवाच ।
गच्छन्स तीर्थानि महानुभावः
पुण्यानि रम्याणि ददर्श राजा ।
सर्वाणि विप्रैरुपशोभितानि
क्वचित्क्वचिद्भारत सागरस्य ॥ १
स वृत्तवांस्तेषु कृताभिषेकः
सहानुजः पार्थिवपुत्रपौत्रः ।
समुद्रगां पुण्यतमां प्रशस्तां
जगाम पारिक्षित पाण्डुपुत्रः ॥ २
तत्रापि चाप्लुत्य महानुभावः
संतर्पयामास पितॄन्सुरांश्च ।
द्विजातिमुख्येषु धनं विसृज्य
गोदावरीं सागरगामगच्छत् ॥ ३
ततो विपाप्मा द्रविडेषु राज-
न्समुद्रमासाद्य च लोकपुण्यम् ।
अगस्त्यतीर्थं च महापवित्रं
नारीतीर्थान्यथ वीरो ददर्श ॥ ४
तत्रार्जुनस्याग्र्यधनुर्धरस्य
निशम्य तत्कर्म नरैरशक्यम् ।
संपूज्यमानः परमर्षिसङ्घैः
परां मुदं पाण्डुसुतः स लेभे । ५
स तेषु तीर्थेष्वभिषिक्तगात्रः
कृष्णासहायः सहितोऽनुजैश्च ।
संपूजयन्विक्रममर्जुनस्य
रेमे महीपाल पतिः पृथिव्याः ॥ ६
ततः सहस्राणि गवां प्रदाय
तीर्थेषु तेष्वम्बुधरोत्तमस्य ।
हृष्टः सह भ्रातृभिरर्जुनस्य
संकीर्तयामास गवां प्रदानम् ॥ ७
स तानि तीर्थानि च सागरस्य
पुण्यानि चान्यानि बहूनि राजन् ।
क्रमेण गच्छन्परिपूर्णकामः
शूर्पारकं पुण्यतमं ददर्श ॥ ८
तत्रोदधेः कंचिदतीत्य देशं
ख्यातं पृथिव्यां वनमाससाद ।
तप्तं सुरैरत्र तपः पुरस्ता-
दिष्टं तथा पुण्यपरैर्नरेन्द्रैः ॥ ९
स तत्र तामग्र्यधनुर्धरस्य
वेदीं ददर्शायतपीनबाहुः ।
ऋचीकपुत्रस्य तपस्विसङ्घैः
समावृतां पुण्यकृदर्चनीयाम् ॥ १०
ततो वसूनां वसुधाधिपः स
मरुद्गणानां च तथाश्विनोश्च ।
वैवस्वतादित्यधनेश्वराणा-
मिन्द्रस्य विष्णोः सवितुर्विभोश्च ॥
भवस्य चन्द्रस्य दिवाकरस्य
पतेरपां साध्यगणस्य चैव ।
धातुः पितॄणां च तथा महात्मा
रुद्रस्य राजन्सगणस्य चैव ॥ १२
सरस्वत्याः सिद्धगणस्य चैव
पुण्याश्च ये चाप्यमरास्तथान्ये ।
पुण्यानि चाप्यायतनानि तेषां
ददर्श राजा सुमनोहराणि ॥ १३

आनर्च अर्चितवान् ॥१७॥ तेन च उदित इति च्छेदः । उष्य उषित्वा ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

११८

गच्छन्निति ॥ १ ॥ वृत्तवान् सद्वृत्तः । पार्थिवः पृथ्वीपतिः कश्यपस्तस्य पुत्रः सूर्यस्तस्य पौत्रो युधिष्ठिरः तत्पितुर्धर्मस्य सूर्यपुत्रत्वात् । प्रशस्तां नाम नदीम् ॥ २ ॥ नारीतीर्थानि प्राहुरूपाः पञ्चाप्सरसो मुनिशापवशात् यत्र स्थिता अर्जुनेन च शापान्मोचितास्तानि नारीतीर्थानि ॥ ४ ॥ अम्बुधरोत्तमस्य समुद्रस्य ॥ ७ ॥

तेषूपवासान्विबुधानुपोष्य
दत्त्वा च रत्नानि महान्ति राजा
तीर्थेषु सर्वेषु परिप्लुताङ्गः
पुनः स शूर्पारकमाजगाम ॥ १४
स तेन तीर्थेन तु सागरस्य
पुनः प्रयातः सह सोदरीयैः।
द्विजैः पृथिव्यां प्रथितं महद्भि-
स्तीर्थं प्रभासं समुपाजगाम ॥ १५
तत्राभिषिक्तः पृथुलोहिताक्षः
सहानुजैर्देवगणान्पितॄंश्च ।
संतर्पयामास तथैव कृष्णा
ते चापि विप्राः सह लोमशेन ॥ १६
स द्वादशाहं जलवायुभक्षः
कुर्वन्क्षपाहःसु तदाभिषेकम् ।
समन्ततोऽग्नीनुपदीपयित्वा
तेपे तपो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ १७
तमुग्रमास्थाय तपश्चरन्तं
शुश्राव रामश्च जनार्दनश्च ।
तौ सर्ववृष्णिप्रवरौ ससैन्यौ
युधिष्ठिरं जग्मतुराजमीढम् ॥ १८

ते वृष्णयः पाण्डुसुतान्समीक्ष्य
भूमौ शयानान्मलदिग्धगात्रान् ।
अनर्हतीं द्रौपदीं चापि दृष्ट्वा
सुदुःखिताश्चुक्रुशुरार्तनादम् ॥ १९
ततः स रामं च जनार्दनं च
कार्ष्णिं च साम्बं च शिनेश्च पौत्रम् ।
अन्यांश्च वृष्णीनुपगम्य पूजां
चक्रे यथाधर्ममहीनसत्त्वः ॥ २०
ते चापि सर्वान्प्रतिपूज्य पार्था-
स्तैः सत्कृताः पाण्डुसुतैस्तथैव ।
युधिष्ठिरं संपरिवार्य राज-
न्नुपाविशन्देवगणा यथेन्द्रम् ॥ २१
तेषां स सर्वं चरितं परेषां
वने च वासं परमप्रतीतः ।
अस्त्रार्थमिन्द्रस्य गतं च पार्थं
निवेशनं हृष्टमनाः शशंस ॥ २२
श्रुत्वा तु ते तस्य वचः प्रतीता-
स्तांश्चापि दृष्ट्वा सुकृशानतीव ।
नेत्रोद्भवं संमुमुचुर्महार्हा
दुःखार्तिजं वारि महानुभावाः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां प्रभासे यादवपाण्डवसमागमे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

## ११९

जनमेजय उवाच ।
प्रभासतीर्थमासाद्य पाण्डवा वृष्णयस्तथा ।
किमकुर्वन्कथाश्चैषां कास्तत्रासंस्तपोधन ॥ १
ते हि सर्वे महात्मानः सर्वशास्त्रविशारदाः ।
वृष्णयः पाण्डवाश्चैव सुहृदश्च परस्परम् ॥ २
वैशंपायन उवाच ।
प्रभासतीर्थं संप्राप्य पुण्यं तीर्थं महोदधेः ।
वृष्णयः पाण्डवान्वीराः परिवार्योपतस्थिरे ॥ ३

ततो गोक्षीरकुन्देन्दुमृणालरजतप्रभः ।
वनमाली हली रामो बभाषे पुष्करेक्षणम् ॥ ४
बलदेव उवाच ।
न कृष्ण धर्मश्चरितो भवाय
जन्तोरधर्मश्च पराभवाय ।
युधिष्ठिरो यत्र जटी महात्मा
वनाश्रयः क्लिश्यति चीरवासाः ॥ ५

तेषु तीर्थेषु । उपवासान् समीपवासिनः । विबुधान पण्डितान् उपोष्य वस्त्रैरावास्य रत्नानि च तेभ्य एव दत्त्वा ॥ १४ ॥ तेन तीर्थेन सिन्धुतीरमार्गेण ॥१५॥ कार्ष्णिम् प्रद्युम्नम् । पौत्रं सात्यकिम् ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

प्रभासेति ॥ १ ॥ हलीति । हलधरत्वाद्धर्मस्यापि निन्दां करिष्यतीति ध्वनितम् ॥ ४ ॥ भवाय अभ्युदयाय ॥ ५ ॥

दुर्योधनश्चापि महीं प्रशास्ति
न चास्य भूमिर्विवरं ददाति ।
धर्माद्धर्मश्चरितो वरीया-
निर्तीव मन्येत नरोऽल्पबुद्धिः ॥ ६

दुर्योधने चापि विवर्धमाने
युधिष्ठिरे चासुखमात्तराज्ये ।
किं त्वत्र कर्तव्यमिति प्रजाभिः
शङ्का मिथः संजनिता नराणाम् ॥ ७

अयं स धर्मप्रभवो नरेन्द्रो
धर्मे धृतः सत्यधृतिः प्रदाता ।
चलेद्धि राज्याच्च सुखाच्च पार्थो
धर्मादपेतस्तु कथं विवर्धेत् ॥ ८

कथं नु भीष्मश्च कृपश्च विप्रो
द्रोणश्च राजा च कुलस्य वृद्धः ।
प्रव्राज्य पार्थान्सुखमाप्नुवन्ति
धिक्पापबुद्धीन्भरतप्रधानान् ॥ ९

किं नाम वक्ष्यत्यवनिप्रधानः
पितॄन्समागम्य परत्र पापः ।
पुत्रेषु सम्यक्चरितं मयेति
पुत्रानपापान्व्यपरोप्य राज्यात् ॥ १०

नासौ धिया संप्रति पश्यति स्म
किं नाम कृत्वाहमचक्षुरेवम् ।
जातः पृथिव्यामिति पार्थिवेषु
प्रव्राज्य कौन्तेयमिति स्म राज्यात् ॥११

नूनं समृद्धान्पितृलोकभूमौ
चामीकराभान्क्षितिजान्प्रफुल्लान् ।
विचित्रवीर्यस्य सुतः सपुत्रः
कृत्वा नृशंसं बत पश्यति स्म ॥ १२

व्यूढोत्तरांसान्पृथुलोहिताक्षा-
निमान्स्म पृच्छन्स शृणाति नूनम् ।

प्रास्थापयद्यत्स वनं सशङ्को
युधिष्ठिरं सानुजमात्तशस्त्रम् ॥ १३

योऽयं परेषां पृतनां समृद्धां
निरायुधो दीर्घभुजो निहन्यात् ।
श्रुत्वैव शब्दं हि वृकोदरस्य
मुञ्चन्ति सैन्यानि शकृत्समूत्रम् ॥ १४

स क्षुत्पिपासाध्वकृशस्तरस्वी
समेत्य नानायुधबाणपाणिः ।
वने स्मरन्वासमिमं सुघोरं
शेषं न कुर्यादिति निश्चितं मे ॥ १५

न ह्यस्य वीर्येण बलेन कश्चि-
त्समः पृथिव्यामपि विद्यतेऽन्यः ।
स शीतवातातपकर्शिताङ्गो
न शेषमाजावसुहृत्सु कुर्यात् ॥ १६

प्राच्यां नृपानेकरथेन जित्वा
वृकोदरः सानुचरान्रणेषु ।
स्वस्त्यागमद्योऽतिरथस्तरस्वी
सोऽयं वने क्लिश्यति चीरवासाः ॥ १७

यः सिन्धुकूले व्यजयन्नृदेवा-
न्समागतान्दाक्षिणात्यान्महीपान् ।
तं पश्यतेमं सहदेवमद्य
तरस्विनं तापसवेषरूपम् ॥ १८

यः पार्थिवानेकरथेन जिग्ये
दिशं प्रतीचीं प्रति युद्धशौण्डः ।
सोऽयं वने मूलफलेन जीव-
ञ्जटी चरत्यद्य मलाचिताङ्गः ॥ १९

सत्रे समृद्धेऽतिरथस्य राज्ञो
वेदीतलादुत्पतिता सुता या ।
सेयं वने वासमिमं सुदुःखं
कथं सहत्यद्य सती सुखार्हा ॥ २०

विवरं शरीरगूहनाय न ददातीत्यर्थः ॥६॥ मिथः शङ्का धर्माधर्मयोः किं बलीय इति शास्त्रानुभवयोर्विरोधात्संशयः ॥ ७ ॥ राज्याच्च सुखाच्च चलेत् न तु धर्मादिति शेषः । तत्र हेतुः धर्मादिति । कथमित्युपहासार्थम् ॥ ८ ॥ अवनिप्रधानो धृतराष्ट्रः ॥ १० ॥ नासाविति । किं नाम पापं कृत्वाऽहमचक्षुर्जातः कौन्तेयं प्रव्राज्य कीदृशो भविष्यामीति धिया नासौ पश्यतीत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ११ ॥ चामीकराभान् कनकप्रभान् । एतन्मरणचिह्नम् । नृशंसम् निन्द्यं कर्म ॥ १२ ॥ इमान्भीष्मादीन् शृणाति हिनस्ति शृणोतीति लेखकप्रमादः । न शृणोतीति गौडपाठे तु 'अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति । यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैनं घोषं शृणोति' इति श्रुत्यर्थोऽनुसंधेयः ॥ १३ ॥ शेषं न कुर्यात् निःशेषमेव नाशयेदित्यर्थः ॥ १५ ॥ स्वस्ति क्षेमेण आगमत् आगतः ॥१७॥ सोऽयं नकुलः ॥ १९ ॥ राज्ञः द्रुपदस्य ॥ २०॥

त्रिवर्गमुख्यस्य समीरणस्य
देवेश्वरस्याप्यथवाश्विनोश्च ।
एषां सुराणां तनयाः कथं नु
वनेऽचरन्नस्तसुखाः सुखार्हाः ॥ २१

जिते हि धर्मस्य सुते सभार्ये
सभ्रातृके सानुचरे निरस्ते ।
दुर्योधने चापि विवर्धमाने
कथं न सीदत्यवनिः सशैला ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां बलरामवाक्ये ऊनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## १२०

सात्यकिरुवाच ।
न राम कालः परिदेवनाय
यदुत्तरं त्वत्र तदेव सर्वे ।
समाचरामो ह्यनतीतकालं
युधिष्ठिरो यद्यपि नाह किंचित् ॥ १

ये नाथवन्तोऽद्य भवन्ति लोके
ते नात्मना कर्म समारभन्ते ।
तेषां तु कार्येषु भवन्ति नाथाः
शिब्यादयो राम यथा ययातेः ॥ २

येषां तथा राम समारभन्ते
कार्याणि नाथाः स्वमतेन लोके ।
ते नाथवन्तः पुरुषप्रवीरा
नानाथवत्कृच्छ्रमवाप्नुवन्ति ॥ ३

तस्मादिमौ रामजनार्दनौ च
प्रद्युम्नसाम्बौ च मया समेतौ ।
वसन्त्यरण्ये सहसोदरीयै-
स्त्रैलोक्यनाथानभिगम्य पार्थाः ॥ ४

निर्यातु साध्वद्य दशार्हसेना
प्रभूतनानायुधचित्रवर्मा ।
यमक्षयं गच्छतु धार्तराष्ट्रः
सबान्धवो वृष्णिबलाभिभूतः ॥ ५

त्वं ह्येव कोपात्पृथिवीमपीमां
संवेष्टयेस्तिष्ठतु शार्ङ्गधन्वा ।
सधार्तराष्ट्रं जहि सानुबन्धं
वृत्रं यथा देवपतिर्महेन्द्रः ॥ ६

भ्राता च मे यः स सखा गुरुश्च
जनार्दनस्यात्मसमश्च पार्थः ।
यदर्थमैच्छन्मनुजाः सुपुत्रं
शिष्यं गुरुं चाप्रतिकूलवादम् ॥ ७

यदर्थमभ्युद्यतमुत्तमं त-
त्करोति कर्माग्र्यमपारणीयम् ।
तस्यास्त्रवर्षाण्यहमुत्तमास्त्रै-
र्विहत्य सर्वाणि रणेऽभिभूय ॥ ८

कायाच्छिरः सर्पविषाग्निकल्पैः
शरोत्तमैरुन्मथितास्मि राम ।
खड्गेन चाहं निशितेन संख्ये
कायाच्छिरस्तस्य बलात्प्रमथ्य ॥ ९

ततोऽस्य सर्वाननुगान्हनिष्ये
दुर्योधनं चापि कुरूंश्च सर्वान् ।
आत्तायुधं मामिह रौहिणेय
पश्यन्तु भौमा युधि जातहर्षाः ॥ १०

निघ्नन्तमेकं कुरुयोधमुख्या-
नग्निं महाकक्षमिवान्तकाले ।
प्रद्युम्नमुक्तान्निशितान्न शक्ताः
सोढुं कृपद्रोणविकर्णकर्णाः ॥ ११

---

त्रिवर्गमुख्यस्य धर्मस्य। 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैः' इत्यमरः। वने अचरन् हि अस्तमुखा इति च्छेदः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

न रामेति ॥१॥ नाथवन्तः ऐश्वर्यवन्तः । 'भावे घञ्' । नात्मना न स्वयम् । नाथाः कार्यसाधकाः । शिब्यादय इत्येव पाठः । शैब्यादय इति पाठे तु स्वार्थे ष्यञ् ॥ २ ॥ सं पार्थोऽपि तिष्ठत्विति पूर्वेणान्वयः । यदर्थं शत्रुवधार्थम् ॥७॥ तत् सुपुत्रादिकम् । अस्माकमस्तीति शेषः ॥ ८ ॥ भौमाः भीमकर्मकर्तारः भीमवंशजा वा ॥ १० ॥

जानामि वीर्यं च जयात्मजस्य
कार्ष्णिर्भवत्येव यथा रणस्थः ।
साम्बः ससूतं सरथं भुजाभ्यां
दुःशासनं शास्तु बलात्प्रमथ्य ॥ १२
न विद्यते जाम्बवतीसुतस्य
रणे विषह्यं हि रणोत्कटस्य ।
एतेन बालेन हि शंबरस्य
दैत्यस्य सैन्यं सहसा प्रणुन्नम् ॥ १३
वृत्तोरुरत्यायतपीनबाहु-
रेतेन संख्ये निहतोऽश्वचक्रः ।
को नाम साम्बस्य महारथस्य
रणे समक्षं रथमभ्युदीयात् ॥ १४
यथा प्रविश्यान्तरमन्तकस्य
काले मनुष्यो न विनिष्क्रमेत ।
तथा प्रविश्यान्तरमस्य संख्ये
को नाम जीवन्पुनराव्रजेच्च ॥ १५
द्रोणं च भीष्मं च महारथौ तौ
सुतैर्वृतं चाप्यथ सोमदत्तम् ।
सर्वाणि सैन्यानि च वासुदेवः
प्रधक्ष्यते सायकवह्निजालैः ॥ १६
किं नाम लोकेषु विषह्यमस्ति
कृष्णस्य सर्वेषु सदेवकेषु ।
आत्तायुधस्योत्तमबाणपाणे-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य युद्धे ॥ १७
ततो निरुद्धोऽप्यसिचर्मपाणि-
र्महीमिमां धार्तराष्ट्रैर्विसंज्ञैः ।
हृतोत्तमाङ्गैर्निहतैः करोतु
कीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरेषु ॥ १८
गदोल्मुकौ बाहुकभानुनीथाः
शूरश्च संख्ये निशठः कुमारः ।
रणोत्कटौ सारणचारुदेष्णौ
कुलोचितं विप्रथयन्तु कर्म ॥ १९
सवृष्णिभोजान्धकयोधमुख्या
समागता सात्वतशूरसेना ।
हत्वा रणे तान्धृतराष्ट्रपुत्रां-
ल्लोके यशः स्फीतमुपाकरोतु ॥ २०
ततोऽभिमन्युः पृथिवीं प्रशास्तु
यावद्व्रतं धर्मभृतां वरिष्ठः ।
युधिष्ठिरः पारयते महात्मा
द्यूते यथोक्तं कुरुसत्तमेन ॥ २१
अस्मत्प्रमुक्तैर्विशिखैर्जितारि-
स्ततो महीं भोक्ष्यति धर्मराजः ।
निर्धार्तराष्ट्रां हतसूतपुत्रा-
मेतद्धि नः कृत्यतमं यशस्यम् ॥ २२

वासुदेव उवाच ।

असंशयं माधव सत्यमेत-
द्गृह्णीम ते वाक्यमदीनसत्त्व ।
स्वाभ्यां भुजाभ्यामजितां तु भूमिं
नेच्छेत्कुरूणामृषभः कथंचित् ॥ २३
न ह्येष कामान्न भयान्न लोभा-
द्युधिष्ठिरो जातु जह्यात्स्वधर्मम् ।
भीमार्जुनौ चातिरथौ यमौ च
तथैव कृष्णा द्रुपदात्मजेयम् ॥ २४
उभौ हि युद्धेऽप्रतिमौ पृथिव्यां
वृकोदरश्चैव धनंजयश्च ।
कस्माच्च कृत्स्नां पृथिवीं प्रशासे-
न्माद्रीसुताभ्यां च पुरस्कृतोऽयम् ॥ २५
यदा तु पञ्चालपतिर्महात्मा
सकेकयश्चेदिपतिर्वयं च ।
युध्येम विक्रम्य रणे समेता-
स्तदैव सर्वे रिपवो हि न स्युः ॥ २६

युधिष्ठिर उवाच ।

नेदं चित्रं माधव यद्ब्रवीषि
सत्यं तु मे रक्ष्यतमं न राज्यम् ।
कृष्णस्तु मां वेद यथावदेकः
कृष्णं च वेदाहमथो यथावत् ॥ २७
यदैव कालं पुरुषप्रवीरो
वेत्स्यत्ययं माधव विक्रमस्य ।
तदा रणे त्वं च शिनिप्रवीर
सुयोधनं जेष्यसि केशवश्च ॥ २८
प्रतिप्रयान्त्वद्य दशार्हवीरा
दृष्टोऽस्मि नाथैर्नरलोकनाथैः ।
धर्मेऽप्रमादं कुरुताप्रमेया
द्रष्टास्मि भूयः सुखिनः समेतान् ॥ २९
तेऽन्योन्यमामन्त्र्य तथाभिवाद्य
वृद्धान्परिष्वज्य शिशूंश्च सर्वान् ।
यदुप्रवीराः स्वगृहाणि जग्मु-
स्ते चापि तीर्थान्यनुसंविचेरुः ॥ ३०

जयात्मजस्याभिमन्योः ॥ १२ ॥ माधव मधुदेशो मथुराप्रदेशस्तत्र जात ॥२३॥

विसृज्य कृष्णं त्वथ धर्मराजो
विदर्भराजोपचितां सुतीर्थाम् ।
जगाम पुण्यां सरितं पयोष्णीं
सभ्रातृभृत्यः सह लोमशेन ॥ ३१

सुतेन सोमेन विमिश्रतोयां
पयः पयोष्णीं प्रति सोऽध्युवास ।
द्विजातिमुख्यैर्मुदितैर्महात्मा
संस्तूयमानः स्तुतिभिर्वराभिः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां यादवगमने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

## १२१

लोमश उवाच ।

नृगेण यजमानेन सोमेनेह पुरंदरः ।
तर्पितः श्रूयते राजन्स तृप्तो मुदमभ्यगात् ॥ १
इह देवैः सहेन्द्रैश्च प्रजापतिभिरेव च ।
इष्टं बहुविधैर्यज्ञैर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः ॥ २
आमूर्तरयसश्चेह राजा वज्रधरं प्रभुः ।
तर्पयामास सोमेन हयमेधेषु सप्तसु ॥ ३
तस्य सप्तसु यज्ञेषु सर्वमासीद्धिरण्मयम् ।
वानस्पत्यं च भौमं च यद्द्रव्यं नियतं मखे ॥ ४
चषालयूपचमसाः स्थाल्यः पात्र्यः स्रुचः स्रुवाः ।
तेष्वेव चास्य यज्ञेषु प्रयोगाः सप्त विश्रुताः ॥ ५
सप्तैकैकस्य यूपस्य चषालाश्चोपरि स्थिताः ।
तस्य स्म यूपान्यज्ञेषु भ्राजमानान्हिरण्मयान् ॥ ६
स्वयमुत्थापयामासुर्देवाः सेन्द्रा युधिष्ठिर ।
तेषु तस्य मखाग्र्येषु गयस्य पृथिवीपतेः ॥ ७
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
प्रसंख्यानानसंख्येयान्प्रत्यगृह्णन्द्विजातयः ॥ ८
सिकता वा यथा लोके यथा वा दिवि तारकाः ।
यथा वा वर्षतो धारा असंख्येयाः स्म केनचित् ९
तथैव तदसंख्येयं धनं यत्प्रददौ गयः ।
सदस्येभ्यो महाराज तेषु यज्ञेषु सप्तसु ॥ १०
भवेत्संख्येयमेतद्धि यदेतत्परिकीर्तितम् ।
न तस्य शक्याः संख्यातुं दक्षिणा दक्षिणावतः ११
हिरण्मयीभिर्गोभिश्च कृताभिर्विश्वकर्मणा ।
ब्राह्मणांस्तर्पयामास नानादिग्भ्यः समागतान् १२
अल्पावशेषा पृथिवी चैत्यैरासीन्महात्मनः ।
गयस्य यजमानस्य तत्र तत्र विशांपते ॥ १३
स लोकान्प्राप्तवानैन्द्रान्कर्मणा तेन भारत ।
सलोकतां तस्य गच्छेत्पयोष्ण्यां य उपस्पृशेत्१४
तस्मात्त्वमत्र राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितोऽच्युत ।
उपस्पृश्य महीपाल धूतपाप्मा भविष्यसि ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

स पयोष्ण्यां नरश्रेष्ठः स्नात्वा वै भ्रातृभिः सह ।
वैदूर्यपर्वतं चैव नर्मदां च महानदीम् ॥ १६
समागमत तेजस्वी भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।
तत्रास्य सर्वाण्याचख्यौ लोमशो भगवानृषिः१७
तीर्थानि रमणीयानि पुण्यान्यायतनानि च ।
यथायोगं यथाप्रीति प्रययौ भ्रातृभिः सह ।
तत्र तत्राददद्वित्तं ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ॥ १८

लोमश उवाच ।

देवानामेति कौन्तेय तथा राज्ञां सलोकताम् ।
वैदूर्यपर्वतं दृष्ट्वा नर्मदामवतीर्य च ॥ १९
संधिरेष नरश्रेष्ठ त्रेताया द्वापरस्य च ।
एनमासाद्य कौन्तेय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०

सुतेन अभिषुतेन । यज्ञे सोमपानतुल्यं तज्जलपानमित्यर्थः । पयोष्णी प्रति पयोष्ण्यां पयोमात्रं अध्युवास भक्षितवान् ॥ ३२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

१२१

नृगेणेति ॥ १ ॥ आमूर्तरयसः गयनामा ॥ ३ ॥ वानस्पत्यं वृक्षजं चषालादि । भौमं मृन्मयं स्थाल्यादि ॥ ४ ॥ चषालो यूपकटकः । यूपः यज्ञस्तम्भः । चमसाः सोमपानपात्राणि । पात्र्यः हविःस्थापनार्थानि मृन्मयानि स्रुचः हविःप्रदानार्थाः । स्रुवाः हविरवदानार्थाः ॥ ५ ॥ प्रसंख्यानान् एकयत्नेन भूयःस्वर्णमुद्रादेर्मापकान् खारीद्रोणादीन्

एष शर्यातियज्ञस्य देशस्तात प्रकाशते ।
साक्षाद्यत्रापिबत्सोममश्विभ्यां सह कौशिकः २१
चुकोप भार्गवश्चापि महेन्द्रस्य महातपाः ।
संस्तम्भयामास च तं वासवं च्यवनः प्रभुः ।
सुकन्यां चापि भार्यां स राजपुत्रीमवाप्तवान् २२

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं विष्टम्भितस्तेन भगवान्पाकशासनः ।
किमर्थं भार्गवश्चापि कोपं चक्रे महातपाः ॥ २३
नासत्यौ च कथं ब्रह्मन्कृतवान्सोमपीथिनौ ।
एतत्सर्वं यथावृत्तमाख्यातु भगवान्मम ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां सौकन्ये एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

## १२२

लोमश उवाच ।

भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनो नाम भारत ।
समीपे सरसस्तस्य तपस्तेपे महाद्युतिः ॥ १
स्थाणुभूतो महातेजा वीरस्थानेन पाण्डव ।
अतिष्ठत चिरं कालमेकदेशे विशांपते ॥ २
सवल्मीकोऽभवदृषिर्लताभिरिव संवृतः ।
कालेन महता राजन्समाकीर्णः पिपीलिकैः ॥ ३
तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिण्ड इव सर्वशः ।
तप्यते स्म तपो घोरं वल्मीकेन समावृतः ॥ ४
अथ दीर्घस्य कालस्य शर्यातिर्नाम पार्थिवः ।
आजगाम सरो रम्यं विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥ ५
तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहः ।
एकैव च सुता सुभ्रूः सुकन्या नाम भारत ॥ ६
सा सखीभिः परिवृता दिव्याभरणभूषिता ।
चंक्रम्यमाणा वल्मीकं भार्गवस्य समासदत् ॥ ७
सा वै वसुमतीं तत्र पश्यन्ती सुमनोरमाम् ।
वनस्पतीन्विचिन्वन्ती विजहार सखीवृता ॥ ८
रूपेण वयसा चैव मदनेन मदेन च ।
बभञ्ज वनवृक्षाणां शाखाः परमपुष्पिताः ॥ ९
तां सखीरहितामेकामेकवस्त्रामलंकृताम् ।
ददर्श भार्गवो धीमांश्चरन्तीमिव विद्युतम् ॥ १०
तां पश्यमानो विजने स रेमे परमद्युतिः ।
क्षामकण्ठश्च विप्रर्षिस्तपोबलसमन्वितः ॥ ११
तामाबभाषे कल्याणीं सा चास्य न शृणोति वै ।
ततः सुकन्या वल्मीके दृष्ट्वा भार्गवचक्षुषी ॥ १२
कौतूहलात्कण्टकेन बुद्धिमोहबलात्कृता ।
किं नु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने ॥
अक्रुध्यत्स तया विद्धे नेत्रे परममन्युमान् ।
ततः शर्यातिसैन्यस्य शकृन्मूत्रे समावृणोत् १४
ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे सैन्यमानाहदुःखितम् ।
तथागतमभिप्रेक्ष्य पर्यपृच्छत्स पार्थिवः ॥ १५
तपोनित्यस्य वृद्धस्य रोषणस्य विशेषतः ।
केनापकृतमद्येह भार्गवस्य महात्मनः ॥ १६
ज्ञातं वा यदि वाज्ञातं तद्द्रुतं ब्रूत माचिरम् ।
तमूचुः सैनिकाः सर्वे न विद्मोऽपकृतं वयम् १७
सर्वोपायैर्यथाकामं भवांस्तदधिगच्छतु ।
ततः स पृथिवीपालः साम्ना चोग्रेण च स्वयम् ॥
पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं पर्यजानन्न चैव ते ।
आनाहार्तं ततो दृष्ट्वा तत्सैन्यमसुखार्दितम् ॥ १९
पितरं दुःखितं दृष्ट्वा सुकन्येदमथाब्रवीत् ।
मयाटन्त्येह वल्मीके दृष्टं सत्त्वमभिज्वलत् ॥ २०
खद्योतवदभिज्ञातं तन्मया विद्धमन्तिकात् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वल्मीकं शर्यातिस्तूर्णमभ्ययात् २१
तत्रापश्यत्तपोवृद्धं वयोवृद्धं च भार्गवम् ।
अयाचदथ सैन्यार्थं प्राञ्जलिः पृथिवीपतिः ॥ २२

---

॥ ८ ॥ सोमस्य पीथः पानं तद्वन्तौ सोमपीथिनौ ॥ २४ ॥
इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

१२२

भृगोरिति ॥ १ ॥ वीरस्थानेन वीरासनेन ॥ २ ॥ क्षामकण्ठः क्षीणध्वनिः ॥ ११ ॥ अत एव सा तद्वचनं न शृणोति ॥ १२ ॥ आनाहो मलविष्टम्भः ॥ १५ ॥

अज्ञानाद्बालया यत्ते कृतं तत्क्षन्तुमर्हसि ।
ततोऽब्रवीन्महीपालं च्यवनो भार्गवस्तदा ॥ २३
अपमानादहं विद्धो ह्यनया दर्पपूर्णया ।
रूपौदार्यसमायुक्तां लोभमोहबलात्कृताम् ॥ २४
तामेव प्रतिगृह्याहं राजन्दुहितरं तव ।
क्षंस्यामीति महीपाल सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २५
लोमश उवाच ।
ऋषेर्वचनमाज्ञाय शर्यातिरविचारयन् ।
ददौ दुहितरं तस्मै च्यवनाय महात्मने ॥ २६
प्रतिगृह्य च तां कन्यां भगवान्प्रससाद ह ।
प्राप्तप्रसादो राजा वै ससैन्यः पुरमाव्रजत् ॥२७
सुकन्यापि पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिन्दिता ।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥ २८
अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषुरनसूयिका ।
समाराधयत क्षिप्रं च्यवनं सा शुभानना ॥ २९

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां सौकन्ये द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## १२३

लोमश उवाच ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य त्रिदशावश्विनौ नृप ।
कृताभिषेकां विवृतां सुकन्यां तामपश्यताम् ॥ १
तां दृष्ट्वा दर्शनीयाङ्गीं देवराजसुतामिव ।
ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावश्विनाविदम् ॥ २
कस्य त्वमसि वामोरु वनेऽस्मिन्किं करोषि च ।
इच्छाव भद्रे ज्ञातुं त्वां तत्त्वमाख्याहि शोभने ॥३
ततः सुकन्या सव्रीडा तावुवाच सुरोत्तमौ ।
शर्यातितनयां वित्तं भार्यां मां च्यवनस्य च ॥ ४
अथाश्विनौ प्रहस्यैतामब्रूतां पुनरेव तु ।
कथं त्वमसि कल्याणि पित्रा दत्ता गताध्वने ॥५
भ्राजसेऽस्मिन्वने भीरु विद्युत्सौदामनी यथा ।
न देवेष्वपि तुल्यां हि त्वया पश्याव भाविनि ॥६
अनाभरणसंपन्ना परमाम्बरवर्जिता ।
शोभयस्यधिकं भद्रे वनमप्यनलंकृता ॥ ७
सर्वाभरणसंपन्ना परमाम्बरधारिणी ।
शोभसे त्वनवद्याङ्गि न त्वेवं मलपङ्किनी ॥ ८
कस्मादेवंविधा भूत्वा जराजर्जरितं पतिम् ।
त्वमुपास्से ह कल्याणि कामभोगबहिष्कृतम् ॥ ९
असमर्थं परित्राणे पोषणे तु शुचिस्मिते ।
सा त्वं च्यवनमुत्सृज्य वरयस्वैकमावयोः ॥ १०
पत्यर्थं देवगर्भाभे मा वृथा यौवनं कृथाः ।
एवमुक्ता सुकन्यापि सुरौ ताविदमब्रवीत् ॥ ११
रताहं च्यवने पत्यौ मैवं मां पर्यशङ्कतम् ।
तावब्रूतां पुनस्त्वेनामावां देवभिषग्वरौ ॥ १२
युवानं रूपसंपन्नं करिष्यावः पतिं तव ।
ततस्तस्यावयोश्चैव वृणीष्वान्यतमं पतिम् ॥ १३
एतेन समयेनैनमामन्त्रय पतिं शुभे ।
सा तयोर्वचनाद्राजन्नुपसंगम्य भार्गवम् ॥ १४
उवाच वाक्यं यत्ताभ्यामुक्तं भृगुसुतं प्रति ।
तच्छ्रुत्वा च्यवनो भार्यामुवाच क्रियतामिति १५
ऊचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ।
ततोम्भश्च्यवनः शीघ्रं रूपार्थी प्रविवेश ह ॥ १६
अश्विनावपि तद्राजन्सरः प्राविशतां तदा ।
ततो मुहूर्तादुत्तीर्णाः सर्वे ते सरसस्तदा ॥ १७
दिव्यरूपधराः सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः ।
तुल्यवेषधराश्चैव मनसः प्रीतिवर्धनाः ॥ १८
तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे वृणीष्वान्यतमं शुभे ।
अस्माकमीप्सितं भद्रे पतित्वे वरवर्णिनि ॥ १९
यत्र वाप्यभिकामासि तं वृणीष्व सुशोभने ।
सा समीक्ष्य तु तान्सर्वांस्तुल्यरूपधरान्स्थितान् ॥
निश्चित्य मनसा बुद्ध्या देवी वव्रे स्वकं पतिम् ।
लब्ध्वा तु च्यवनो भार्यां वयो रूपं च वाञ्छितम् ॥

इत्यारण्यके प० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

१२३

कस्यचिदिति । विवृताम् अनाच्छादिताम् ॥१॥ गताध्वने अतीतवयसे इत्यर्थः ॥ ५ ॥

हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः ।
यथाहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः ॥ २२
कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिमाम् ।
तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याहं सोमपीथिनौ ।
मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम् ॥ २३
तच्छ्रुत्वा हृष्टमनसौ दिवं तौ प्रतिजग्मतुः ।
च्यवनश्च सुकन्या च सुराविव विजह्रतुः ॥ २४

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां सौकन्ये त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

## १२४

लोमश उवाच ।

ततः शुश्राव शर्यातिर्वयस्थं च्यवनं कृतम् ।
सुहृष्टः सेनया सार्धमुपायाद्भार्गवाश्रमम् ॥ १
च्यवनं च सुकन्यां च दृष्ट्वा देवसुताविव ।
रेमे सभार्यः शर्यातिः कृत्स्नां प्राप्य महीमिव ॥२
ऋषिणा सत्कृतस्तेन सभार्यः पृथिवीपतिः ।
उपोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे मनोरमाः ॥ ३
अथैनं भार्गवो राजन्नुवाच परिसान्त्वयन् ।
याजयिष्यामि राजंस्त्वां संभारानवकल्पय ॥ ४
ततः परमसंहृष्टः शर्यातिरवनीपतिः ।
च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ५
प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमत् ।
कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ ६
तत्रैनं च्यवनो राजन्याजयामास भार्गवः ।
अद्भुतानि च तत्रासन्यानि तानि निबोध मे ॥७
अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ।
तमिन्द्रो वारयामास गृह्णानं स तयोर्ग्रहम् ॥ ८

इन्द्र उवाच ।

उभावेतौ न सोमार्हौ नासत्याविति मे मतिः ।
भिषजौ दिवि देवानां कर्मणा तेन नार्हतः ॥ ९

च्यवन उवाच ।

महोत्साहौ महात्मानौ रूपद्रविणवत्तरौ ।
यौ चक्रतुर्मां मघवन्वृन्दारकमिवाजरम् ॥ १०
ऋते त्वां विबुधांश्चान्यान्कथं वै नार्हतः सवम् ।
अश्विनावपि देवेन्द्र देवौ विद्धि पुरंदर ॥ ११

इन्द्र उवाच ।

चिकित्सकौ कर्मकरौ कामरूपसमन्वितौ ।
लोके चरन्तौ मर्त्यानां कथं सोममिहार्हतः ॥१२

लोमश उवाच ।

एतदेव यदा वाक्यमाम्रेडयति देवराट् ।
अनादृत्य ततः शक्रं ग्रहं जग्राह भार्गवः ॥ १३
ग्रहीष्यन्तं तु तं सोममश्विनोरुत्तमं तदा ।
समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनमब्रवीत् ॥ १४
आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्रहीष्यसि यदि स्वयम् ।
वज्रं ते प्रहरिष्यामि घोररूपमनुत्तमम् ॥ १५
एवमुक्तः स्मयन्निन्द्रमभिवीक्ष्य स भार्गवः ।
जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामुत्तमं ग्रहम् ॥ १६
ततोऽस्मै प्राहरद्वज्रं घोररूपं शचीपतिः ।
तस्य प्रहरतो बाहुं स्तम्भयामास भार्गवः ॥ १७
तं स्तम्भयित्वा च्यवनो जुहुवे मन्त्रतोऽनलम् ।
कृत्यार्थी सुमहातेजा देवं हिंसितुमुद्यतः ॥ १८
ततः कृत्याथ संजज्ञे मुनेस्तस्य तपोबलात् ।
मदो नाम महावीर्यो बृहत्कायो महासुरः ॥ १९
शरीरं यस्य निर्देष्टुमशक्यं तु सुरासुरैः ।
तस्यास्यमभवद्घोरं तीक्ष्णाग्रदशनं महत् ॥ २०

'अश्विनौ वै देवानामसोमपावास्ताम्' इति श्रुतं तस्यैतदुपबृंहणम् । तस्माद्युवामिति । युवयोरसोमपत्वं मिषतः पश्यतः दूरीकरिष्यामीत्यर्थः ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

१२४

तत इति । वयस्थं युवानम् । 'युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चरथाय चक्रथुः' इति मन्त्रलिङ्गात् । च्यवानं च्यवनम् । चरथाय धर्माचरणार्थम् ॥१॥ संभारान् यज्ञोपकरणानि ॥ ४ ॥ ग्रहं सोमस्य गृह्णानं तयोरर्थे ॥ ८ ॥ सवं सोमम् ॥ ११ ॥ आम्रेडयति पुनःपुनरावर्तयति॥१३

हनुरेका स्थिता त्वस्य भूमावेका दिवं गता ।
चतस्रश्चायता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम् ॥ २१
इतरे तस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः ।
प्रासादशिखराकाराः शूलाग्रसमदर्शनाः ॥ २२
बाहू पर्वतसंकाशावायतावयुतं समौ ।
नेत्रे रविशशिप्रख्ये वक्त्रं कालाग्निसंनिभम् ॥ २३
लेलिहञ्जिह्वया वक्त्रं विद्युच्चपललोलया ।
व्यात्ताननो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगद्बलात् ॥ २४
स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत् ।
महता घोररूपेण लोकाञ्छब्देन नादयन् ॥ २५

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां सौकन्ये चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

## १२५

लोमश उवाच ।
तं दृष्ट्वा घोरवदनं मदं देवः शतक्रतुः ।
आयान्तं भक्षयिष्यन्तं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥१
भयात्संस्तम्भितभुजः सृक्किणी लेलिहन्मुहुः ।
ततोऽब्रवीद्देवराजश्च्यवनं भयपीडितः ॥ २
सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव ।
भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे ॥ ३
न ते मिथ्या समारम्भो भवत्वेष परो विधिः ।
जानामि चाहं विप्रर्षे न मिथ्या त्वं करिष्यसि॥
सोमार्हावश्विनावेतौ यथा वाद्य कृतौ त्वया ।
भूय एव तु ते वीर्यं प्रकाशेदिति भार्गव ॥ ५
सुकन्यायाः पितुश्चास्य लोके कीर्तिः प्रथेदिति ।
अतो मयैतद्विहितं तव वीर्यप्रकाशनम् ॥ ६
तस्मात्प्रसादं कुरु मे भवत्वेवं यथेच्छसि ।
एवमुक्तस्य शक्रेण भार्गवस्य महात्मनः ॥ ७
स मन्युर्व्यगमच्छीघ्रं मुमोच च पुरंदरम् ।
मदं च व्यभजद्राजन्पाने स्त्रीषु च वीर्यवान् ॥ ८
अक्षेषु मृगयायां च पूर्वसृष्टं पुनः पुनः ।
तदा मदं विनिक्षिप्य शक्रं संतर्प्य चेन्दुना ॥ ९
अश्विभ्यां सहितान्देवान्याजयित्वा च तं नृपम् ।
विख्याप्य वीर्यं लोकेषु सर्वेषु वदतां वरः ॥ १०
सुकन्यया सहारण्ये विजहारानुकूलया ।
तस्यैतद्द्विजसंघुष्टं सरो राजन्प्रकाशते ॥ ११
अत्र त्वं सह सोदर्यैः पितॄन्देवांश्च तर्पय ।
एतद्दृष्ट्वा महीपाल सिकताक्षं च भारत ॥ १२
सैन्धवारण्यमासाद्य कुल्यानां कुरु दर्शनम् ।
पुष्करेषु महाराज सर्वेषु च जलं स्पृश ॥ १३
स्थाणोर्मन्त्राणि च जपन्सिद्धिं प्राप्स्यसि भारत ।
संधिर्द्वयोर्नरश्रेष्ठ त्रेताया द्वापरस्य च ॥ १४
अयं हि दृश्यते पार्थ सर्वपापप्रणाशनः ।
अत्रोपस्पृश्य चैव त्वं सर्वपापप्रणाशने ॥ १५
आर्चीकपर्वतश्चैव निवासो वै मनीषिणाम् ।
सदाफलः सदास्रोतो मरुतां स्थानमुत्तमम् ॥१६
चैत्याश्चैते बहुविधास्त्रिदशानां युधिष्ठिर ।
एतच्चन्द्रमसस्तीर्थमृषयः पर्युपासते ।
वैखानसा वालखिल्याः पावका वायुभोजनाः ॥
शृङ्गाणि त्रीणि पुण्यानि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
सर्वाण्यनुपरिक्रम्य यथाकाममुपस्पृश ॥ १८

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

१२५

तं दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ सृक्किणी गल्लभौ ॥ २ ॥ मदं चेति । सुरापानस्त्रीद्यूतमृगयाव्यसनानि मदकरत्वात्त्याज्यानीति भावः ॥ ८ ॥ संधिर्द्वयोरिति । संप्रति कलिद्वापरसंधावपि अत्र तीर्थे त्रेताद्वापारसंधितुल्यः कालोऽस्ति अत्र स्नातानां कलिस्पर्शो नास्तीति भावः ॥ १४ ॥ सदास्रोतः सदाप्रवाहयुक्तम् ॥१६॥ पावका इव दीप्यमानाः पावकाः ॥१७॥ त्रीणि शृङ्गाणीति । प्राग्व्याख्यातरीत्या त्रिकोणं वाराणसीक्षेत्रम् । त्रीणि प्रस्रवणानीति च प्रयागम् । एतानि सर्वाणि अनुपरिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य यथाकाममिह स्नाहि । यथाकाममित्यस्य काशीप्रयागसेविनां चन्द्रतीर्थसेवनमैच्छिकम् इतरेषामत्यावश्यकमिति भावः । गौडास्तु 'त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च । पुष्कराण्यादिसिद्धानि न विद्मस्तत्र कारणम् 'इति श्लोकमत्रापि पठन्ति स च प्रागेव व्याख्यातः । अत्र पाठस्तु काश्यादिस्तुत्या पूर्वोक्तार्थस्य दृढीकारार्थः ॥ १८ ॥

शान्तनुश्चात्र राजेन्द्र शुनकश्च नराधिपः ।
नरनारायणौ चोभौ स्थानं प्राप्ताः सनातनम् १९
इह नित्यशया देवाः पितरश्च महर्षिभिः ।
आर्चीकपर्वते तेपुस्तान्यजस्व युधिष्ठिर ॥ २०
इह ते वै चरून्प्राश्नन्नृषयश्च विशांपते ।
यमुना चाक्षयस्रोता कृष्णश्चेह तपोरतः ॥ २१
यमौ च भीमसेनश्च कृष्णा चामित्रकर्शन ।
सर्वे चात्र गमिष्यामस्त्वयैव सह पाण्डव ॥ २२
एतत्प्रस्रवणं पुण्यमिन्द्रस्य मनुजेश्वर ।
यत्र धाता विधाता च वरुणश्चोर्ध्वमागताः ॥२३
इह तेऽप्यवसन्राजन्क्षान्ताः परमधर्मिणः ।
मैत्राणामृजुबुद्धीनामयं गिरिवरः शुभः ॥ २४
एषा सा यमुना राजन्महर्षिगणसेविता ।
नानायज्ञचिता राजन्पुण्या पापभयापहा ॥ २५
अत्र राजा महेष्वासो मांधातायजत स्वयम् ।
साहदेविश्च कौन्तेय सोमको ददतां वरः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां सौकन्ये पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## १२६

युधिष्ठिर उवाच ।
मांधाता राजशार्दूलस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
कथं जातो महाब्रह्मन्यौवनाश्वो नृपोत्तमः ॥ १
कथं चैनां परां काष्ठां प्राप्तवानमितद्युतिः ।
यस्य लोकास्त्रयो वश्या विष्णोरिव महात्मनः २
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं चरितं तस्य धीमतः ।
यथा मांधातृशब्दश्च तस्य शक्रसमद्युतेः ।
जन्म चाप्रतिवीर्यस्य कुशलो ह्यसि भाषितुम् ॥ ३
लोमश उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजन्राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
यथा मांधातृशब्दो वै लोकेषु परिगीयते ॥ ४
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो युवनाश्वो महीपतिः ।
सोऽयजत्पृथिवीपालः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ ५
अश्वमेधसहस्रं च प्राप्य धर्मभृतां वरः ।
अन्यैश्च क्रतुभिर्मुख्यैरयजत्साप्तदक्षिणैः ॥ ६
अनपत्यस्तु राजर्षिः स महात्मा महाव्रतः ।
मन्त्रिष्वाधाय तद्राज्यं वननित्यो बभूव ह ॥ ७
शास्त्रदृष्टेन विधिना संयोज्यात्मानमात्मवान् ।
स कदाचिन्नृपो राजन्नुपवासेन दुःखितः ॥ ८
पिपासाशुष्कहृदयः प्रविवेशाश्रमं भृगोः ।
तामेव रात्रिं राजेन्द्र महात्मा भृगुनन्दनः ॥ ९
इष्टिं चकार सौद्युम्नेर्महर्षिः पुत्रकारणात् ।
संभृतो मन्त्रपूतेन वारिणा कलशो महान् ॥ १०
तत्रातिष्ठत राजेन्द्र पूर्वमेव समाहितः ।
यत्प्राश्य प्रसवेत्तस्य पत्नी शक्रसमं सुतम् ॥ ११
तं न्यस्य वेद्यां कलशं सुषुपुस्ते महर्षयः ।
रात्रिजागरणाच्छ्रान्तान्सौद्युम्निः समतीत्य तान् ॥
शुष्ककण्ठः पिपासार्तः पानीयार्थी भृशं नृपः ।
तं प्रविश्याश्रमं शान्तः पानीयं सोऽभ्ययाचत १३
तस्य श्रान्तस्य शुष्केण कण्ठेन क्रोशतस्तदा ।
नाश्रौषीत्कश्चन तदा शकुनेरिव वाशतः ॥ १४
ततस्तं कलशं दृष्ट्वा जलपूर्णं स पार्थिवः ।
अभ्यद्रवत वेगेन पीत्वा चाम्भो व्यवासृजत् १५
स पीत्वा शीतलं तोयं पिपासार्तो महीपतिः ।
निर्वाणमगमद्धीमान्सुसुखी चाभवत्तदा ॥ १६
ततस्ते प्रत्यबुध्यन्त मुनयः सतपोधनाः ।
निस्तोयं तं च कलशं ददृशुः सर्व एव ते ॥ १७

नित्यशयाः नित्यं शयानाः संनिहिता इत्यर्थः । तेपुस्तपश्चक्रुः ॥ २० ॥ साहदेविः संजयपुत्रस्य पुत्रः ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

१२६

यौवनाश्वः युवनाश्वपुत्रः ॥ १ ॥ परां काष्ठां स्वर्गिष्वेव श्रेष्ठं स्थानम् ॥ २ ॥ आत्मानं चित्तम् । आत्मवान् जितचित्तः । संयोज्य इष्टदेवतया ऐक्यं नीत्वा ॥ ८ ॥ सौद्युम्नेः युवनाश्वस्य ॥ १० ॥ वाशतः शब्दं कुर्वतः ॥ १४ ॥ निर्वाणं तपःफलम् ॥ १६ ॥

कस्य कर्मेदमिति ते पर्यपृच्छन्समागताः ।
युवनाश्वो ममेत्येवं सत्यं समभिपद्यत ॥ १८
न युक्तमिति तं प्राह भगवान्भार्गवस्तदा ।
सुतार्थं स्थापिता ह्यापस्तपसा चैव संभृताः १९
मया ह्यत्राहितं ब्रह्म तप आस्थाय दारुणम् ।
पुत्रार्थं तव राजर्षे महाबलपराक्रम ॥ २०
महाबलो महावीर्यस्तपोबलसमन्वितः ।
यः शक्रमपि वीर्येण गमयेद्यमसादनम् ॥ २१
अनेन विधिना राजन्मयैतदुपपादितम् ।
अब्भक्षणं त्वया राजन्न युक्तं कृतमद्य वै ॥ २२
न त्वद्य शक्यमस्माभिरेतत्कर्तुमतोऽन्यथा ।
नूनं दैवकृतं ह्येतद्यदेवं कृतवानसि ॥ २३
पिपासितेन याः पीता विधिमन्त्रपुरस्कृताः ।
आपस्त्वया महाराज मत्तपोवीर्यसंभृताः ॥ २४
ताभ्यस्त्वमात्मना पुत्रमीदृशं जनयिष्यसि ।
विधास्यामो वयं तत्र तवेष्टिं परमाद्भुताम् ॥ २५
यथा शक्रसमं पुत्रं जनयिष्यसि वीर्यवान् ।
गर्भधारणजं वापि न खेदं समवाप्स्यसि ॥ २६
ततो वर्षशते पूर्णे तस्य राज्ञो महात्मनः ।
वामं पार्श्वं विनिर्भिद्य सुतः सूर्य इव स्थितः २७
निश्चक्राम महातेजा न च तं मृत्युराविशत् ।
युवनाश्वं नरपतिं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २८
ततः शक्रो महातेजास्तं दिदृक्षुरुपागमत् ।
ततो देवा महेन्द्रं तमपृच्छन्धास्यतीति किम् २९
प्रदेशिनीं ततोऽस्यास्ये शक्रः समभिसंदधे ।
मामयं धास्यतीत्येवं भाषिते चैव वज्रिणा ॥ ३०
मांधातेति च नामास्य चक्रुः सेन्द्रा दिवौकसः॥
प्रदेशिनीं शक्रदत्तामास्वाद्य स शिशुस्तदा ।
अवर्धत महातेजाः किष्कून्राजंस्त्रयोदश ॥ ३२
वेदास्तं स धनुर्वेदा दिव्यान्यस्त्राणि चेश्वरम् ।
उपतस्थुर्महाराज ध्यातमात्रस्य सर्वशः ॥ ३३
आजगवं नाम धनुः शराः शृङ्गोद्भवाश्च ये ।
अभेद्यं कवचं चैव सद्यस्तमुपशिश्रियुः ॥ ३४
सोऽभिषिक्तो मघवता स्वयं शक्रेण भारत ।
धर्मेण व्यजयल्लोकांस्त्रीन्विष्णुरिव विक्रमैः ॥ ३५
तस्याप्रतिहतं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः ।
रत्नानि चैव राजर्षिं स्वयमेवोपतस्थिरे ॥ ३६
तस्येयं वसुसंपूर्णा वसुधा वसुधाधिप ।
तेनेष्टं विविधैर्यज्ञैर्बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः ॥ ३७
चितचैत्यो महातेजा धर्मान्प्राप्य च पुष्कलान् ।
शक्रस्यार्धासनं राजँल्लब्धवानमितद्युतिः ॥ ३८
एकाहात्पृथिवी तेन धर्मनित्येन धीमता ।
विजिता शासनादेव सरत्नाकरपत्तना ॥ ३९
तस्य चैत्यैर्महाराज क्रतूनां दक्षिणावताम् ।
चतुरन्ता मही व्याप्ता नासीत्किंचिदनावृतम् ४०
तेन पद्मसहस्राणि गवां दश महात्मना ।
ब्राह्मणानां महाराज दत्तानीति प्रचक्षते ॥ ४१
तेन द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां महात्मना ।
वृष्टं सस्यविवृद्ध्यर्थं मिषतो वज्रपाणिनः ॥ ४२
तेन सोमकुलोत्पन्नो गान्धाराधिपतिर्महान् ।
गर्जन्निव महामेघः प्रमथ्य निहतः शरैः ॥ ४३
प्रजाश्चतुर्विधास्तेन त्राता राजन्कृतात्मना ।
तेनात्मतपसा लोकास्तापिताश्चातितेजसा ॥ ४४
तस्यैतद्देवयजनं स्थानमादित्यवर्चसः ।
पश्य पुण्यतमे देशे कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः ॥ ४५
एतत्ते सर्वमाख्यातं मांधातुश्चरितं महत् ।
जन्म चाग्र्यं महीपाल यन्मां त्वं परिपृच्छसि ४६

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः स कौन्तेयो लोमशेन महर्षिणा ।
पप्रच्छानन्तरं भूयः सोमकं प्रति भारत ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां मांधातोपाख्याने षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

---

इष्टिम् इच्छितम्॥२५॥ किं धास्यति पास्यति स्तन्याभावात्॥२९॥ मां धास्यति मांधाता। धातेति लुडन्तस्य व्याख्यानं धास्यतीति । प्रदेशिनीं तर्जनीम् ॥३०॥ किष्कून् हस्तान् वितस्तीन्वा । 'किष्कुर्हस्ते वितस्तौ च' इत्यमरः॥३२॥ ध्यातमात्रस्य इन्द्रेण अयमेवंविधो भवत्विति संकल्पितस्य ॥३३॥ शृङ्गोद्भवाः स्वर्गजाः। 'शृङ्गप्रभुत्वे शिखरे' इत्यादि। 'स्वर्गमीनविशेषयोः' इति विश्वः । दिव्या इत्यर्थः ॥३४॥ चक्रम् आज्ञा ॥ ३६ ॥ चितचैत्यः कृतचयनक्रतुः ॥ ३८ ॥ पद्मं शतकोटयः तेषामपि सहस्राणि दश ॥ ४१ ॥ चतुर्विधाः सुरनरतिर्यक्स्थावराः ॥ ४४ ॥ इत्यारण्यके प० नै० भा० षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## १२७

युधिष्ठिर उवाच ।
कथंवीर्यः स राजाभूत्सोमको वदतां वर ।
कर्माण्यस्य प्रभावं च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१
लोमश उवाच ।
युधिष्ठिरासीन्नृपतिः सोमको नाम धार्मिकः ।
तस्य भार्याशतं राजन्सदृशीनामभूत्तदा ॥ २
स वै यत्नेन महता तासु पुत्रं महीपतिः।
कंचिन्नासादयामास कालेन महता ह्यपि ॥ ३
कदाचित्तस्य वृद्धस्य घटमानस्य यत्नतः ।
जन्तुर्नाम सुतस्तस्मिन्स्त्रीशते समजायत ॥ ४
तं जातं मातरः सर्वाः परिवार्य समासते ।
सततं पृष्ठतः कृत्वा कामभोगान्विशांपते ॥ ५
ततः पिपीलिका जन्तुं कदाचिददशत्स्फिचि ।
स दष्टो व्यनदन्नादं तेन दुःखेन बालकः ॥ ६
ततस्ता मातरः सर्वाः प्राक्रोशन्भृशदुःखिताः ।
प्रवार्य जन्तुं सहसा स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७
तमार्तनादं सहसा शुश्राव स महीपतिः ।
अमात्यपर्षदो मध्ये उपविष्टः सहर्त्विजा ॥ ८
ततः प्रस्थापयामास किमेतदिति पार्थिवः ।
तस्मै क्षत्ता यथावृत्तमाचचक्षे सुतं प्रति ॥ ९
त्वरमाणः स चोत्थाय सोमकः सह मन्त्रिभिः ।
प्रविश्यान्तःपुरं पुत्रमाश्वासयदरिंदमः ॥ १०
सान्त्वयित्वा तु तं पुत्रं निष्क्रम्यान्तःपुरान्नृपः ।
ऋत्विजा सहितो राजन्सहामात्य उपाविशत् ११

सोमक उवाच ।
धिगस्त्विहैकपुत्रत्वमपुत्रत्वं वरं भवेत् ।
नित्यातुरत्वाद्भूतानां शोक एवैकपुत्रता ॥ १२
इदं भार्याशतं ब्रह्मन्परीक्ष्य सदृशं प्रभो ।
पुत्रार्थिना मया वोढं न तासां विद्यते प्रजा ॥१३
एकः कथंचिदुत्पन्नः पुत्रो जन्तुरयं मम ।
यतमानासु सर्वासु किं नु दुःखमतः परम् ॥ १४
वयश्च समतीतं मे सभार्यस्य द्विजोत्तम ।
आसां प्राणाः समायत्ता मम चात्रैकपुत्रके ॥ १५
स्यात्तु कर्म तथा युक्तं येन पुत्रशतं भवेत् ।
महता लघुना वापि कर्मणा दुष्करेण वा ॥ १६
ऋत्विगुवाच ।
अस्ति चैतादृशं कर्म येन पुत्रशतं भवेत् ।
यदि शक्नोषि तत्कर्तुमथ वक्ष्यामि सोमक ॥ १७
सोमक उवाच ।
कार्यं वा यदि वाकार्यं येन पुत्रशतं भवेत् ।
कृतमेवेति तद्विद्धि भगवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १८
ऋत्विगुवाच ।
यजस्व जन्तुना राजंस्त्वं मया वितते क्रतौ ।
ततः पुत्रशतं श्रीमद्भविष्यत्यचिरेण ते ॥ १९
वपायां हूयमानायां धूममाघ्राय मातरः ।
ततस्ताः सुमहावीर्याञ्जनयिष्यन्ति ते सुतान् ॥२०
तस्यामेव तु ते जन्तुर्भविता पुनरात्मजः ।
उत्तरे चास्य सौवर्णं लक्ष्म पार्श्वे भविष्यति ॥२१

इति श्रीमहाभारते आर० तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां जन्तूपाख्याने सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

---

१२७

कथमिति ॥ १ ॥ स्फिचि कट्याम् ॥ ६ ॥ अमात्यपर्षदो मध्ये मन्त्रिसभान्तः ॥ ८ ॥ क्षत्ता दौवारिकः ॥९॥ जन्तुना पशुभूतेन । 'स वरुणं राजानमुपससार पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यजा' इति । इति पुत्रस्यापि पशूकरणं बह्वृचब्राह्मणे परामृष्टं ततो न शास्त्रविरोधः ॥ १९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

# १२८

सोमक उवाच ।

ब्रह्मन्यद्यद्यथा कार्यं तत्कुरुष्व तथा तथा ।
पुत्रकामतया सर्वं करिष्यामि वचस्तव ॥ १

लोमश उवाच ।

ततः स याजयामास सोमकं तेन जन्तुना ।
मातरस्तु बलात्पुत्रमपाकर्षुः कृपान्विताः ॥ २

हा हताः स्मेति वाशन्त्यस्तीव्रशोकसमाहताः ।
रुदन्त्यः करुणं चापि गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ ३

सव्ये पाणौ गृहीत्वा तु याजकोऽपि स्म कर्षति ।
कुररीणामिवार्तानां समाकृष्य तु तं सुतम् ॥ ४

विशस्य चैनं विधिवद्वपामस्य जुहाव सः ।
वपायां हूयमानायां गन्धमाघ्राय मातरः ॥ ५

आर्ता निपेतुः सहसा पृथिव्यां कुरुनन्दन ।
सर्वाश्च गर्भानलभंस्ततस्ताः परमाङ्गनाः ॥ ६

ततो दशसु मासेषु सोमकस्य विशांपते ।
जज्ञे पुत्रशतं पूर्णं तासु सर्वासु भारत ॥ ७

जन्तुर्ज्येष्ठः समभवज्जनित्र्यामेव पार्थिव ।
स तासामिष्ट एवासीन्न तथा ते निजाः सुताः ८

तच्च लक्षणमस्यासीत्सौवर्णं पार्श्व उत्तरे ।
तस्मिन्पुत्रशते चाग्र्यः स बभूव गुणैरपि ॥ ९

ततः स लोकमगमत्सोमकस्य गुरुः परम् ।
अथ काले व्यतीते तु सोमकोऽप्यगमत्परम्॥१०

अथ तं नरके घोरे पच्यमानं ददर्श सः ।
तमपृच्छत्किमर्थं त्वं नरके पच्यसे द्विज ॥ ११

तमब्रवीद्गुरुः सोऽथ पच्यमानोऽग्निना भृशम् ।
त्वं मया याजितो राजंस्तस्येदं कर्मणः फलम्१२

एतच्छ्रुत्वा स राजर्षिर्धर्मराजानमब्रवीत् ।
अहमत्र प्रवेक्ष्यामि मुच्यतां मम याजकः ॥ १३

मत्कृते हि महाभागः पच्यते नरकाग्निना ।

धर्म उवाच ।

नान्यः कर्तुः फलं राजन्नुपभुङ्क्ते कदाचन ।
इमानि तव दृश्यन्ते फलानि वदतां वर ॥ १४

सोमक उवाच ।

पुण्यान्न कामये लोकानृतेऽहं ब्रह्मवादिनम् ।
इच्छाम्यहमनेनैव सह वस्तुं सुरालये ॥ १५

नरके वा धर्मराज कर्मणास्य समो ह्यहम् ।
पुण्यापुण्यफलं देव सममस्त्वावयोरिदम् ॥ १६

धर्मराज उवाच ।

यद्येवमीप्सितं राजन्भुङ्क्ष्वास्य सहितः फलम् ।
तुल्यकालं सहानेन पश्चात्प्राप्स्यसि सद्गतिम् १७

लोमश उवाच ।

स चकार तथा सर्वं राजा राजीवलोचनः ।
क्षीणपापश्च तस्मात्स विमुक्तो गुरुणा सह ॥१८

लेभे कामाञ्शुभान्राजन्कर्मणा निर्जितान्स्वयम् ।
सह तेनैव विप्रेण गुरुणा स गुरुप्रियः ॥ १९

एष तस्याश्रमः पुण्यो य एषोऽग्रे विराजते ।
क्षान्त उष्यात्र षड्रात्रं प्राप्नोति सुगतिं नरः ॥२०

एतस्मिन्नपि राजेन्द्र वत्स्यामो विगतज्वराः ।
षड्रात्रं नियतात्मानः सज्जीभव कुरूद्वह ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां जन्तूपाख्याने अष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

---

१२८

ब्रह्मन्निति ॥ १ ॥ वाशन्त्यः क्रोशन्त्यः ॥ ३ ॥ वपां देहान्तर्गतमपूपाकारं मांसम् ॥ ५ ॥ लक्षणं चिह्नम् ॥ ९ ॥ सोमकस्य ऋत्विगिति शेषः ॥ १० ॥ क्षान्तः क्षमावान् । उष्य उषित्वा ॥ २० ॥ अभिचारपापं कुमार्गोपदेष्टृषु याजकेष्वेव । याज्यस्य निपातस्तु गुरौ करुणा प्रयुक्तः स्वयं कृतो न तु न्याय्य इति अध्यायतात्पर्यम् ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

## १२९

लोमश उवाच ।

अस्मिन्किल स्वयं राजन्निष्टवान्वै प्रजापतिः ।
सत्रमिष्टीकृतं नाम पुरा वर्षसहस्रिकम् ॥ १
अम्बरीषश्च नाभाग इष्टवान्यमुनामनु ।
यत्रेष्ट्वा दश पद्मानि सदस्येभ्योऽभिसृष्टवान् ॥ २
यज्ञैश्च तपसा चैव परां सिद्धिमवाप सः ।
देशश्च नाहुषस्यायं यज्वनः पुण्यकर्मणः ॥ ३
सार्वभौमस्य कौन्तेय ययातेरमितौजसः ।
स्पर्धमानस्य शक्रेण तस्येदं यज्ञवास्त्विह ॥ ४
पश्य नानाविधाकारैरग्निभिर्निचितां महीम् ।
मज्जन्तीमिव चाक्रान्तां ययातेर्यज्ञकर्मभिः ॥ ५
एषा शम्येकपत्रा या सरकं चैतदुत्तमम् ।
पश्य रामह्रदानेतान्पश्य नारायणाश्रमम् ॥ ६
एतच्चर्चीकपुत्रस्य योगैर्विचरतो महीम् ।
प्रसर्पणं महीपाल रौप्यायाममितौजसः ॥ ७
अत्रानुवंशं पठतः शृणु मे कुरुनन्दन ।
उलूखलैराभरणैः पिशाची यदभाषत ॥ ८
युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले ।
तद्वद्भूतलये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमर्हसि ॥ ९

### १२९

अस्मिन्निति ॥ १ ॥ दश पद्मानि । गवामिति शेषः । तस्य द्वादशशतं दक्षिणा इति यागीयदक्षिणादौ सर्वत्र गोपदस्यैवाध्याहारदर्शनात् । अभिसृष्टवान् दत्तवान् ॥ २ ॥ यज्ञवास्तु यज्ञभूमिः । इह अस्मिन् वास्तुनि । इदमुत्तरान्वयि ॥ ४ ॥ अग्निभिः अग्निस्थापनार्थैरिष्टकारचितैः स्थण्डिलैः ॥ ५ ॥ शमी आमिक्षार्थे दध्युत्पादनार्थमानीता शमीशाखा । एकपत्रा शातितपत्रा । अन्तर्वेदिशाखायाःपलाशान्यसर्वाणि प्रशात्य मूलतः शाखां परिवास्योपवेषं करोतीति सूत्रात् । या पूर्वं एकपत्रशाखाभूत्सैषा उपवेषरूपेणावशिष्टा दृश्यते अग्रभागस्य वह्नौ प्रहृतत्वात् । परिवास्य छित्त्वा । सरकं सुराग्रहपात्रम् । 'सरकोऽस्त्री सीधुपात्रे' इति मेदिनी ॥ ६ ॥ प्रसर्पणं संचारभूमिः रौप्यायां रूप्यवत् श्वेतवर्णायां स्थल्यां नद्यां वा । सामीप्ये सप्तमी । प्रसर्पणं तीर्थमित्यन्ये ॥ ७ ॥ अनुवंशं परंपरागतमाख्यानश्लोकम् । उलूखलैरिति । उलूखलसदृशानि स्त्रीणां कर्णाभरणानि भवन्तीति स्वयमुलूखलैरेवाभरणैर्युक्ता सतीति शेषः । एतेन विकृतवेषत्वं पिशाच्याः ॥८॥ उक्तं भाषणमेवाह द्वाभ्यां युगन्धर इति । अत्र प्राञ्चः । अस्मिंस्तीर्थे सपुत्रा ब्राह्मणी स्नातुमागता तां प्रति पिशाची वदति । त्वया युगन्धरे पर्वते देशे वा दधिप्राशनं कृतम् । तत्र उष्ट्रीक्षीरं गर्दभ्यादिक्षीरं च दधीक्रियते । तथा अच्युतस्थलाख्ये संकरजानां ग्रामे वासश्च कृतः । तथा भूतिलयाख्ये दस्युग्रामेऽग्निदग्धानां मृतानां क्षेपणं यस्यां नद्यां क्रियते तस्यां स्नातासि । अतो दोषत्रयवती त्वम् । एतत्करणे हि प्रायश्चित्तं धर्मशास्त्रे प्रसिद्धम् । 'औष्ट्रमेकशफं क्षीरं सुरातुल्यम् 'इति ।' संसृज्य संकरैः सार्धं प्राजापत्यं व्रतं चरेत्'इति । 'प्रोष्य भूतिलये विप्रः प्राजापत्यं व्रतं चरेत्'इति च । तच्च त्वया न कृतम् अतः कथमत्र वस्तुमिच्छसि । दोषवतामिह तीर्थे वासो दुर्लभ इत्यर्थः । एवं पिशाचीवाक्यं श्रुत्वापि सा ब्राह्मणी तत्र स्नानादिकं कृतवती । ततस्तया राक्षस्या तस्याः घटपिठरादिकं नाशितम् । उक्तं च । ' एतत्तव दिवावृत्तं रात्रौ वृत्तं तु द्रक्ष्यसि' इति वृत्तं जातम् । रात्रौ तु तव पुत्रमपि नाशयिष्यामीति भावः । अथापि द्वितीयां रात्रिं वस्तुमिच्छसि चेत्तव भूयांसमपकारं करिष्यामीति युन्गधरादिदेशत्रयनिन्दापरत्वेन व्याचख्युः । अर्वाञ्चस्तु युन्गधरादौ दधिप्राशनादिकं त्रयं अधिकारकारणं कृत्वा एकरात्रं इह यदि वस्तुमिच्छसि चेद्वस । अत्र पिशाचीवचनव्याजेनैकरात्रवासो नियम्यते । यदि तु द्वितीयं दिवारात्रं वत्स्यासि तर्हि एतत्तव दिवाकाले वृत्तं भविष्यति । एतदिति वस्त्रपात्राहारताडनादिकमभिनीय दर्शयति । रात्रौ तु इतोऽन्यथा प्राणापहारान्तमित्यर्थ इति । ब्रह्मज्ञानिवंशावतंसलक्ष्मणानुचरास्तु । द्वारमेतत्कुरुक्षेत्रस्येत्युपसंहारात् अस्य क्षेत्रस्य द्विविधकुरुक्षेत्रप्रापकत्वमवगतम् । कुरुक्षेत्रद्वयं च । एकं शतपथे प्रवर्ग्यकाण्डे तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनमिति कर्माङ्गं कुरुदेशान्तर्गतं प्रसिद्धम् । अपरं च अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रमित्यादिना ज्ञानाङ्गमविमुक्ताख्यं जाबालरामतापनीयोपनिषदोः प्रसिद्धम् । ततश्चास्य क्षेत्रस्य क्रममुक्तौ सद्यो मुक्तौ परंपरया हेतुत्वादत्र वासे देवा विघ्नमाचरन्ति । मुक्तो हि देवपशुत्वान्निवर्तत इति । तथा बृहदारण्यके 'आत्मेत्येवोपासीतेत्यैकात्म्यं ज्ञेयम्' इत्युक्त्वाथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योसावन्योऽहमिति न स वेद यथा पशुरेव स देवानामिति भेददर्शिनो देवपशुत्वमुक्त्वा तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युरित्यैकात्म्यज्ञानं देवानामप्रियं पशुनाश इव पशुपतेरित्युक्तम् । ज्ञातैकात्म्यस्य तु देवा अप्रियं कर्तुमसमर्थास्तथा च तत्रैव श्रूयते । 'तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति' इति । देवाश्च न देवा अपि अभूत्यै अनैश्वर्याय । एवं सति यदि ब्रह्मिष्ठासि तर्ह्यत्र चिरकालं वस्तुमर्हसीति पिशाची कांचित्सपुत्रां

एकरात्रमुषित्वेह द्वितीयं यदि वत्स्यसि ।
एतद्वै ते दिवावृत्तं रात्रौ वृत्तमितोऽन्यथा ॥ १०
अद्य चात्र निवत्स्यामः क्षपां भरतसत्तम ।
द्वारमेतत्तु कौन्तेय कुरुक्षेत्रस्य भारत ॥ ११
अत्रैव नाहुषो राजा राजन्क्रतुभिरिष्टवान् ।
ययातिर्बहुरत्नौघैर्यत्रेन्द्रो मुदमभ्यगात् ॥ १२
एतत्प्लक्षावतरणं यमुनातीर्थमुत्तमम् ।
एतद्वै नाकपृष्ठस्य द्वारमाहुर्मनीषिणः ॥ १३
अत्र सारस्वतैर्यज्ञैरीजानाः परमर्षयः ।
यूपोलूखलिकास्तात गच्छन्त्यवभृथप्लवम् ॥ १४
अत्र वै भरतो राजा राजन्क्रतुभिरिष्टवान् ।
हयमेधेन यज्ञेन मेध्यमश्वमवासृजत् ॥ १५
असकृत्कृष्णसारङ्गं धर्मेणाप्य च मेदिनीम् ।
अत्रैव पुरुषव्याघ्र मरुत्तः सत्रमुत्तमम् ॥ १६
प्राप चैवर्षिमुख्येन संवर्तेनाभिपालितः ।
अत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र सर्वाँल्लोकान्प्रपश्यति ।
पूयते दुष्कृताच्चैव अत्रापि समुपस्पृश ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

तत्र सभ्रातृकः स्नात्वा स्तूयमानो महर्षिभिः ।
लोमशं पाण्डवश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १८
सर्वाँल्लोकान्प्रपश्यामि तपसा सत्यविक्रम ।
इहस्थः पाण्डवश्रेष्ठं पश्यामि श्वेतवाहनम् ॥ १९

लोमश उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो पश्यन्ति परमर्षयः ।
सरस्वतीमिमां पुण्यां पुण्यैकशरणावृताम् ॥ २०
यत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ धूतपाप्मा भविष्यसि ।
इह सारस्वतैर्यज्ञैरिष्टवन्तः सुरर्षयः ।
ऋषयश्चैव कौन्तेय तथा राजर्षयोऽपि च ॥ २१

---

स्त्रियं इह वस्तुमिच्छन्तीं प्रति प्रब्रवीति युगन्धर इति । युगानि कृतत्रेताद्वापरकलिसंज्ञानि धारयतीति युगन्धरः स्थूलशरीराभिमानी जीवः। तथा हि श्रुतिः । 'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्' इति। शयानो धर्ममाचार्यादिमुखादजानन्पुरुषः कलिः। स एव संजिहानस्तं जानन् द्वापरो भवति । उत्तिष्ठन् धर्मानुष्ठानार्थं यतमानस्त्रेता भवति । धर्मं चरन् अनुतिष्ठंस्तु कृतं भवतीति पुंस एव युगन्धरत्वमाह । दधिप्राशनशब्देन धर्मप्रजासंपत्त्यर्थो दारसंयोग उच्यते । तथा हि गृह्यसूत्रे । 'समंजन्तु विश्वेदेवा इति दध्नः प्राश्य प्रतिप्रयच्छेत्' इति विवाहान्ते दंपत्योर्हृदयसंधानार्थं दधिप्राशनं विधीयते । तत्र 'समापो हृदयानि नौ सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ' इति मन्त्रशेषः । मन्त्रार्थस्तु विश्वेदेवाः नौ आवयोर्हृदयानि । वृत्तिबहुत्वात् बहुवचनं समंजन्तु स्निग्धानि कुर्वन्तु । संशब्दावृत्त्या समंजन्त्वित्यस्याप्यावृत्तिर्ज्ञेया । आपो नौ हृदयानि समंजन्त्वित्यर्थः । स्निग्धयोर्हि द्वयोः संधानं भवतीति । मातरिश्वा प्राणवायुः नौ हृदयानि संदधातु । एवं धाता संदधातु । उ निश्चितं देष्ट्री अन्तर्यामिणी देवता च संदधातु । व्यवहिताश्चेति छन्दसि व्यवहितोपसर्गेणापि क्रियायाः संबन्धः। पूर्ववदुपसर्गावृत्त्या क्रियापदस्यावृत्तिरिति। तथा च 'क्षौमे वसानौ जायापती सहोभौ चरतां धर्मं प्रजां प्रजनयावहा' इति श्रुतिलिङ्गाभ्यां धर्मप्रजोत्पादने सहाधिकारात् । 'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः' इति च श्रुतानामृणानामपाकरणं दारसंयोगं विना न भवतीति दधिप्राशनशब्देन लक्षितलक्षणया आनृण्यं प्राप्यम् । तेन स्वधर्मनिष्ठः प्रजावान् एतत्तीर्थं सेवितुमर्हतीति पूर्वपादार्थः । अच्युतस्थले च्युतियोग्यस्थूलशरीरापेक्षया अच्युतं स्थलं लिङ्गशरीरं तत्र उषित्वा सूत्रात्मानं उपास्येत्यर्थः । भूतानि वियदादीनि लीयन्तेऽस्मिन्निति कारणं ब्रह्मभूतलयः । भूतिलय इति पाठे भूतिरैश्वर्यम् । तस्यापि च लयोऽस्मिन्निति शुद्धं ब्रह्म । तयोरन्यतरत्र स्नात्वा मलं त्यक्त्वा 'यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति तज्ज्ञानफलश्रवणात् । तद्वदिति तच्छब्देन पूर्वार्धोक्ते कर्मोपास्ती उच्येते । ताभ्यां युक्तं यथास्यात्तथा भूतलये स्नानम् । तेन दैनंदिनसुषुप्तेर्निवृत्तिः । तत्रापि प्रत्यहं ब्रह्मप्राप्तिः श्रूयते । 'यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा संपन्नो भवति' इति। सता ब्रह्मणा तथा च कर्मोपास्तिपूर्वकं यो ब्रह्म जानाति सोऽत्र वस्तुमर्हति इति । तस्य पिशाचादिबाधा नास्तीत्यर्थः ॥९॥ त्वं तु अब्रह्मवित् एकरात्रमेवात्र वस्तुं योग्या । यदि द्वितीयां वस्तुमिच्छसि तर्हि ते तव एतत् मदीयं वृत्तं भविष्यति । मद्वत् पिशाची भूत्वात्र स्नानं न लप्स्यसे। एतदिति स्ववृत्तस्याभिनीय प्रदर्शनम् । द्वितीयदिनवासस्यैवैतत्फलं द्वितीयरात्रिवासे तु इतोऽन्यथा अहल्यादिवन्मोहप्राप्त्या शिलाभावो भविष्यति तेन तीर्थदर्शनमपि न लप्स्यसे इति ॥ १० ॥ अतोऽत्र क्षपां रात्रिमेव एकां वत्स्यामः प्रातरेव प्रस्थास्याम इति भावः । द्वारमित्यर्धं तु उक्तार्थमस्ति ॥ ११ ॥ अत्रैव कुरुक्षेत्रद्वारे ॥१२॥ सारस्वतैर्ब्राह्मणैः ऋत्विग्भिर्यज्ञैरीजानाः यूपोलूखलिकाः यूपान् उलूखलानि च यज्ञसाधनान्याददते यूपोलूखलिकाः । पशुभिः पुरोडाशैश्च इष्टवन्त इत्यर्थः ॥ १४ ॥ कृष्णसारङ्गं कृष्णहरिणसदृशं एकदेशे कृष्णवर्णं श्यामकर्णमित्यर्थः ॥ १६ ॥ इहस्थः यमुनान्तर्गतप्लक्षावतरणस्थः ॥ १९ ॥ तीर्थान्तरमाह सरस्वतीमिति ॥ २० ॥

वेदी प्रजापतेरेषा समन्तात्पञ्चयोजना । | कुरोर्वै यज्ञशीलस्य क्षेत्रमेतन्महात्मनः ॥ २२

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां एकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

## १३०

लोमश उवाच ।

इह मर्त्यास्तनूस्त्यक्त्वा स्वर्गं गच्छन्ति भारत ।
मर्तुकामा नरा राजन्निहायान्ति सहस्रशः ॥ १
एवमाशीः प्रयुक्ता हि दक्षेण यजता पुरा ।
इह ये वै मरिष्यन्ति ते वै स्वर्गजितो नराः ॥ २
एषा सरस्वती रम्या दिव्या चौघवती नदी ।
एतद्विनशनं नाम सरस्वत्या विशांपते ॥ ३
द्वारं निषादराष्ट्रस्य येषां दोषात्सरस्वती ।
प्रविष्टा पृथिवीं वीर मा निषादा हि मां विदुः ॥४
एष वै चमसोद्भेदो यत्र दृश्या सरस्वती ।
यत्रैनामभ्यवर्तन्त सर्वाः पुण्याः समुद्रगाः ॥ ५
एतत्सिन्धोर्महत्तीर्थं यत्रागस्त्यमरिंदम ।
लोपामुद्रा समागम्य भर्तारमवृणीत वै ॥ ६
एतत्प्रकाशते तीर्थं प्रभासं भास्करद्युते ।
इन्द्रस्य दयितं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ७
एतद्विष्णुपदं नाम दृश्यते तीर्थमुत्तमम् ।
एषा रम्या विपाशा च नदी परमपावनी ॥ ८
अत्र वै पुत्रशोकेन वसिष्ठो भगवानृषिः ।
बद्ध्वात्मानं निपतितो विपाशः पुनरुत्थितः ॥ ९
काश्मीरमण्डलं चैतत्सर्वपुण्यमरिंदम ।
महर्षिभिश्चाध्युषितं पश्येदं भ्रातृभिः सह ॥ १०
यत्रौत्तराणां सर्वेषामृषीणां नाहुषस्य च ।
अग्नेश्चैवात्र संवादः काश्यपस्य च भारत ॥ ११
एतद्द्वारं महाराज मानसस्य प्रकाशते ।
वर्षमस्य गिरेर्मध्ये रामेण श्रीमता कृतम् ॥ १२
एष वातिकषण्डो वै प्रख्यातः सत्यविक्रमः ।
नात्यवर्तत यद्द्वारं विदेहादुत्तरं च यः ॥ १३
इदमाश्चर्यमपरं देशेऽस्मिन्पुरुषर्षभ ।
क्षीणे युगे तु कौन्तेय शर्वस्य सह पार्षदैः ॥ १४
सहोमया च भवति दर्शनं कामरूपिणः ।
अस्मिन्सरसि सत्रैर्वै चैत्रे मासि पिनाकिनम् १५
यजन्ते याजकाः सम्यक्परिवारं शुभार्थिनः ।
अत्रोपस्पृश्य सरसि श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ १६
क्षीणपापः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुते नात्र संशयः ।
एष उज्जानको नाम पावकिर्यत्र शान्तवान् ।
अरुंधतीसहायश्च वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १७
ह्रदश्च कुशवानेष यत्र पद्मं कुशेशयम् ।
आश्रमश्चैव रुक्मिण्या यत्राशाम्यदकोपना ॥ १८
समाधीनां समासस्तु पाण्डवेय श्रुतस्त्वया ।
तं द्रक्ष्यसि महाराज भृगुतुङ्गं महागिरिम् ॥ १९
वितस्तां पश्य राजेन्द्र सर्वपापप्रमोचनीम् ।
महर्षिभिश्चाध्युषितां शीततोयां सुनिर्मलाम् २०

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

१३०

इहेति ॥ १ ॥ बद्ध्वा पाशैरिति शेषः । विपाशःपाशहीनः । अत एव विपाशा नाम ॥९॥ औत्तराणाम् औदीच्यानाम् ॥११॥ वर्षं वसतिस्थानम् ॥१२॥ एष इति । यो रामः प्रख्यातः सत्यविक्रमश्च विदेहादुत्तरं च यद्द्वारं यद्वर्षस्य द्वारं एषोऽनुभूयमानो वातिकषण्डो वातानीतः पद्मादिसमूहो नात्यवर्तत तेन रामेण कृतमिति पूर्वेणान्वयः । अनेन वायोरप्यस्मिन्वर्षे प्रवेशो नास्ति किमुतेतरस्येति पद्मादेर्वातानीतस्यात्राप्रवेशाद्रामसामर्थ्यं प्रत्यक्षमाश्चर्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥ युगं पञ्चसंवत्सरात्मकं तस्मिन्क्षीणे समाप्ते सति यदा सौरसावनबार्हस्पत्यनाक्षत्रचान्द्राःसंवत्सरा एककालं समाप्यन्ते स युगक्षयकालस्तस्मिन्नित्यर्थः । युगे क्षीणे इत्यस्य संवत्सरान्त इति वार्थः । चैत्रप्रतिपत् युगादिरिति व्यवहारात् ॥ १४ ॥ अत एव पूर्वदिने शिवं दृष्ट्वा प्रतिपदमारभ्य मासमात्रं पिनाकिनं यजन्त इति संगच्छते ॥१५॥ पावकिः स्कन्दः शान्तवान् शमं प्राप । वसिष्ठोऽपि शान्तवान् ॥१७॥ कुशवान् जलवान् । 'शरं वनं कुशं नीरम्' इति धनंजयः । अकोपना जितक्रोधा ॥१८॥ समासः संक्षेपः । यस्मिन्दृष्टे समाधिफलं भवतीत्यर्थः ॥१९ ॥

जलां चोपजलां चैव यमुनामभितो नदीम् ।
उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादत्यरिच्यत ॥ २१
तां देवसमितिं तस्य वासवश्च विशांपते ।
अभ्यागच्छन्नृपवरं ज्ञातुमग्निश्च भारत ॥ २२
जिज्ञासमानौ वरदौ महात्मानमुशीनरम् ।
इन्द्रः श्येनः कपोतोऽग्निर्भूत्वा यज्ञेऽभिजग्मतुः ॥
ऊरू राज्ञः समासाद्य कपोतः श्येनजाद्भयात् ।
शरणार्थी तदा राजन्निलिल्ये भयपीडितः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां श्येनकपोतीये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

## १३१.

श्येन उवाच ।
धर्मात्मानं त्वाहुरेकं सर्वे राजन्महीक्षितः ।
सर्वधर्मविरुद्धं त्वं कस्मात्कर्म चिकीर्षसि ॥ १
विहितं भक्षणं राजन्पीड्यमानस्य मे क्षुधा ।
मा रक्षीर्धर्मलोभेन धर्ममुत्सृष्टवानसि ॥ २
राजोवाच ।
संत्रस्तरूपस्त्राणार्थी त्वत्तो भीतो महाद्विज ।
मत्सकाशमनुप्राप्तः प्राणगृध्नुरयं द्विजः ॥ ३
एवमभ्यागतस्येह कपोतस्याभयार्थिनः ।
अप्रदाने परं धर्मं कथं श्येन न पश्यसि ॥ ४
प्रस्पन्दमानः संभ्रान्तः कपोतः श्येन लक्ष्यते ।
मत्सकाशं जीवितार्थी तस्य त्यागो विगर्हितः ५
यो हि कश्चिद्द्विजान्हन्याद्गां वा लोकस्य मातरम्
शरणागतं च त्यजते तुल्यं तेषां हि पातकम् ॥ ६
श्येन उवाच ।
आहारात्सर्वभूतानि संभवन्ति महीपते ।
आहारेण विवर्धन्ते तेन जीवन्ति जन्तवः ॥ ७
शक्यते दुस्त्यजेऽप्यर्थे चिररात्राय जीवितुम् ।
न तु भोजनमुत्सृज्य शक्यं वर्तयितुं चिरम् ॥ ८
भक्ष्याद्वियोजितस्याद्य मम प्राणा विशांपते ।
विसृज्य कायमेष्यन्ति पन्थानमकुतोभयम् ॥ ९
प्रमृते मयि धर्मात्मन्पुत्रदारादि नङ्क्ष्यति ।
रक्षमाणः कपोतं त्वं बहून्प्राणान्न रक्षसि ॥ १०
धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत् ।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम ॥ ११
विरोधिषु महीपाल निश्चित्य गुरुलाघवम् ।
न बाधा विद्यते यत्र तं धर्मं समुपाचरेत् ॥ १२
गुरुलाघवमादाय धर्माधर्मविनिश्चये ।
यतो भूयांस्ततो राजन्कुरुष्व धर्मनिश्चयम् ॥१३
राजोवाच ।
बहुकल्याणसंयुक्तं भाषसे विहगोत्तम ।
सुपर्णः पक्षिराट् किं त्वं धर्मज्ञश्चास्य संशयम् ॥
तथा हि धर्मसंयुक्तं बहु चित्रं च भाषसे ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचिदिति त्वां लक्षयाम्यहम्
शरणैषिपरित्यागं कथं साध्विति मन्यसे ।
आहारार्थं समारम्भस्तव चायं विहंगम ॥ १६
शक्यश्चाप्यन्यथा कर्तुमाहारोऽप्यधिकस्त्वया ।
गोवृषो वा वराहो वा मृगो वा महिषोऽपि वा ।
त्वदर्थमद्य क्रियतां यच्चान्यदिह काङ्क्षसि ॥ १७
श्येन उवाच ।
न वराहं न चोक्षाणं न मृगान्विविधांस्तथा ।
भक्षयामि महाराज किं ममान्येन केनचित् ॥ १८
यस्तु मे देवविहितो भक्षः क्षत्रियपुङ्गव ।
तमुत्सृज महीपाल कपोतमिममेव मे ॥ १९
श्येनः कपोतानत्तीति स्थितिरेषा सनातनी ।
मा राजन्सारमज्ञात्वा कदलीस्कन्धमासज ॥ २०
राजोवाच ।
राष्ट्रं शिबीनामृद्धं वै ददानि तव खेचर ।
यं वा कामयसे कामं श्येन सर्वं ददानि ते ॥ २१
विनेमं पक्षिणं श्येन शरणार्थिनमागतम् ।
येनेमं वर्जयेथास्त्वं कर्मणा पक्षिसत्तम ।
तदाचक्ष्व करिष्यामि न हि दास्ये कपोतकम् २२

---

देवसमितिं राजसभाम् ॥ २२ ॥ निलिल्ये लीनः ॥ २४ ॥
इ० नै० भा० त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

१३१
धर्मात्मानमिति ॥ १ ॥ कदलीस्कन्धमासजेति कदलीस्कन्धतुल्ये निःसारेऽस्मिन् धर्मे मा सक्तो भवेत्यर्थः ॥२०॥

श्येन उवाच ।

उशीनर कपोते ते यदि स्नेहो नराधिप ।
आत्मनो मांसमुत्कृत्य कपोततुलया धृतम् ॥ २३
यदा समं कपोतेन तव मांसं नृपोत्तम ।
तदा देयं तु तन्मह्यं सा मे तुष्टिर्भविष्यति ॥ २४

राजोवाच ।

अनुग्रहमिमं मन्ये श्येन यन्माभियाचसे ।
तस्मात्तेऽद्य प्रदास्यामि स्वमांसं तुलया धृतम्॥

लोमश उवाच ।

उत्कृत्य स स्वयं मांसं राजा परमधर्मवित् ।
तुलयामास कौन्तेय कपोतेन समं विभो ॥ २६
ध्रियमाणः कपोतस्तु मांसेनात्यतिरिच्यते ।
पुनश्चोत्कृत्य मांसानि राजा प्रादादुशीनरः २७
न विद्यते यदा मांसं कपोतेन समं धृतम् ।
तत उत्कृत्तमांसोऽसावारुरोह स्वयं तुलाम् ॥ २८

श्येन उवाच ।

इन्द्रोऽहमस्मि धर्मज्ञ कपोतो हव्यवाडयम् ।
जिज्ञासमानौ धर्मे त्वां यज्ञवाटमुपागतौ ॥ २९
यत्ते मांसानि गात्रेभ्य उत्कृत्तानि विशांपते ।
एषा ते भास्वती कीर्तिर्लोकानभिभविष्यति ३०
यावल्लोके मनुष्यास्त्वां कथयिष्यन्ति पार्थिव ।
तावत्कीर्तिश्च लोकाश्च स्थास्यन्ति तव शाश्वताः
इत्येवमुक्त्वा राजानमारुरोह दिवं पुनः ।
उशीनरोऽपि धर्मात्मा धर्मेणावृत्य रोदसी ॥३२
विभ्राजमानो वपुषाप्यारुरोह त्रिविष्टपम् ।
तदेतत्सदनं राजन्राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ३३
पश्यस्वैतन्मया सार्धं पुण्यं पापप्रमोचनम् ।
तत्र वै सततं देवा मुनयश्च सनातनाः ।
दृश्यन्ते ब्राह्मणै राजन्पुण्यवद्भिर्महात्मभिः ॥ ३४

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां श्येनकपोतीये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

## १३२

लोमश उवाच ।

यः कथ्यते मन्त्रविदग्र्यबुद्धि-
रौद्दालकिः श्वेतकेतुः पृथिव्याम् ।
तस्याश्रमं पश्य नरेन्द्र पुण्यं
सदाफलैरुपपन्नं महीजैः ॥ १
साक्षादत्र श्वेतकेतुर्ददर्श
सरस्वतीं मानुषदेहरूपाम् ।
वेत्स्यामि वाणीमिति संप्रवृत्तां
सरस्वतीं श्वेतकेतुर्बभाषे ॥ २
अस्मिन्युगे ब्रह्मकृतां वरिष्ठा-
वास्तां मुनी मातुलभागिनेयौ ।
अष्टावक्रश्चैव कहोडसूनु-
रौद्दालकिः श्वेतकेतुः पृथिव्याम् ॥ ३
विदेहराजस्य महीपतेस्तौ
विप्रावुभौ मातुलभागिनेयौ ।
प्रविश्य यज्ञायतनं विवादे
बन्दिं निजग्राहतुरप्रमेयौ ॥ ४
उपास्व कौन्तेय सहानुजस्त्वं
तस्याश्रमं पुण्यतमं प्रविश्य ।
अष्टावक्रं यस्य दौहित्रमाहु-
र्योऽसौ बन्दिं जनकस्याथ यज्ञे ॥ ५
वादी विप्राग्र्यो बाल एवाभिगम्य
वादे भङ्क्त्वा मज्जयामास नद्याम् ॥ ६

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं प्रभावः स बभूव विप्र-
स्तथाभूतं यो निजग्राह बन्दिम् ।
अष्टावक्रः केन चासौ बभूव
तत्सर्वं मे लोमश शंस तत्त्वम् ॥ ७

---

स्वदेहत्यागेनापि शरणागतो रक्षणीय इति अध्यायतात्पर्यम् ॥ ३४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

१३२

यः कथ्यते इति ॥ १ ॥ बन्दिं बन्दिनम् । निजग्राहतुः निजगृहतुः । संप्रसारणाभावश्छान्दसः । नितरां ग्राहवत् आचरतुरिति वा ॥ ४ ॥

लोमश उवाच ।
उद्दालकस्य नियतः शिष्य एको
नाम्ना कहोड इति विश्रुतोऽभूत् ।
शुश्रूषुराचार्यवशानुवर्ती
दीर्घं कालं सोऽध्ययनं चकार ॥ ८
तं वै विप्रः पर्यचरत्सशिष्य-
स्तां च ज्ञात्वा परिचर्यां गुरुः सः ।
तस्मै प्रादात्सद्य एव श्रुतं च
भार्यां च वै दुहितरं स्वां सुजाताम् ॥९
तस्या गर्भः समभवदग्निकल्पः
सोऽधीयानं पितरं चाप्युवाच ।
सर्वां रात्रिमध्ययनं करोषि
नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते ॥ १०
उपालब्धः शिष्यमध्ये महर्षिः
स तं कोपादुदरस्थं शशाप ।
यस्मात्कुक्षौ वर्तमानो ब्रवीषि
तस्माद्वक्रो भवितास्यष्टकृत्वः ॥ ११
स वै तथा वक्र एवाभ्यजाय-
दष्टावक्रः प्रथितो वै महर्षिः ।
अस्यासीद्वै मातुलः श्वेतकेतुः
स तेन तुल्यो वयसा बभूव ॥ १२
संपीड्यमाना तु तदा सुजाता
सा वर्धमानेन सुतेन कुक्षौ ।
उवाच भर्तारमिदं रहोगता
प्रसाद्य हीनं वसुना धनार्थिनी ॥ १३
कथं करिष्याम्यधुना महर्षे
मासश्चायं दशमो वर्तते मे ।
नैवास्ति ते वसु किंचित्प्रजाता
येनाहमेतामापदं निस्तरेयम् ॥ १४
उक्तस्त्वेवं भार्यया वै कहोडो
वित्तस्यार्थे जनकमथाभ्यगच्छत् ।
स वै तदा वादविदा निगृह्य
निमज्जितो बन्दिनेहाप्सु विप्रः ॥ १५
उद्दालकस्तं तु तदा निशम्य
सूतेन वादेऽप्सु निमज्जितं तथा ।
उवाच तां तत्र ततः सुजाता-
मष्टावक्रे गूहितव्योऽयमर्थः ॥ १६
ररक्ष सा चापि तमस्य मन्त्रं
जातोऽप्यसौ नैव शुश्राव विप्रः ।
उद्दालकं पितृवच्चापि मेने
तथाष्टावक्रो भ्रातृवच्छ्वेतकेतुम् ॥ १७
ततो वर्षे द्वादशे श्वेतकेतु-
रष्टावक्रं पितुरङ्के निषण्णम् ।
अपाकर्षद्गृह्य पाणौ रुदन्तं
नायं तवाङ्कः पितुरित्युक्तवांश्च ॥ १८
यत्तेनोक्तं दुरुक्तं तत्तदानीं
हृदि स्थितं तस्य सुदुःखमासीत् ।
गृहं गत्वा मातरं सोऽभिगम्य
पप्रच्छेदं क्व नु तातो ममेति ॥ १९
ततः सुजाता परमार्तरूपा
शापाद्भीता सर्वमेवाचचक्षे ।
तद्वै तत्त्वं सर्वमाज्ञाय रात्रा-
वित्यब्रवीच्छ्वेतकेतुं स विप्रः ॥ २०
गच्छाव यज्ञं जनकस्य राज्ञो
बह्वाश्चर्यः श्रूयते तस्य यज्ञः ।
श्रोष्यावोऽत्र ब्राह्मणानां विवाद-
मन्नं चाग्र्यं तत्र भोक्ष्यावहे च ॥ २१
विचक्षणत्वं च भविष्यते नौ
शिवश्च सौम्यश्च हि ब्रह्मघोषः ॥ २२
तौ जग्मतुर्मातुलभागिनेयौ
यज्ञं समृद्धं जनकस्य राज्ञः ।
अष्टावक्रः पथि राज्ञा समेत्य
प्रोत्सार्यमाणो वाक्यमिदं जगाद ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां अष्टावक्रीये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

अष्टकृत्वः अष्टवारं अष्टसु स्थानेष्वित्यर्थः ॥ ११ ॥ प्रजाता प्रसूता ॥ १४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

## १३३

अष्टावक्र उवाच ।
अन्धस्य पन्था बधिरस्य पन्थाः
स्त्रियः पन्था भारवाहस्य पन्थाः ।
राज्ञः पन्था ब्राह्मणेनासमेत्य
समेत्य तु ब्राह्मणस्यैव पन्थाः ॥ १

राजोवाच ।
पन्था अयं तेऽद्य मयातिदिष्टो
येनेच्छसि तेन कामं व्रजस्व ।
न पावको विद्यते वै लघीया-
निन्द्रोऽपि नित्यं नमते ब्राह्मणानाम् ॥ २

अष्टावक्र उवाच ।
प्राप्तौ स्वयज्ञं नृप संदिदृक्षू
कौतूहलं नौ बलवन्नरेन्द्र ।
प्राप्ताविहावामतिथी प्रवेशं
काङ्क्षावहे द्वारपतेस्तवाज्ञाम् ॥ ३

ऐन्द्रद्युम्ने यज्ञदृशाविहावां
विवक्षू वै जनकेन्द्रं दिदृक्षू ।
तौ वै क्रोधव्याधिना दह्यमाना-
वयं च नौ द्वारपालो रुणद्धि ॥ ४

द्वारपाल उवाच ।
वन्दे समादेशकरा वयं स्म
निबोध वाक्यं च मयेर्यमाणम् ।
न वै बालाः प्रविशन्त्यत्र विप्रा
वृद्धा विदग्धाः प्रविशन्त्यत्र विप्राः ॥५

अष्टावक्र उवाच ।
यद्यत्र वृद्धेषु कृतः प्रवेशो
युक्तं प्रवेष्टुं मम द्वारपाल ।
वयं हि वृद्धाश्चरितव्रताश्च
वेदप्रभावेन समन्विताश्च ६
शुश्रूषवश्चापि जितेन्द्रियाश्च
ज्ञानागमे चापि गताः स्म निष्ठाम् ।
न बाल इत्येव मन्तव्यमाहु-
र्बालोऽप्यग्निर्दहति स्पृश्यमानः ॥ ७

द्वारपाल उवाच ।
सरस्वतीमीरय वेदजुष्टा-
मेकाक्षरां बहुरूपां विराजम् ।
अङ्गात्मानं समवेक्षस्व बालं
किं श्लाघसे दुर्लभो वै मनीषी ॥ ८

अष्टावक्र उवाच ।
न ज्ञायते कायवृद्ध्या विवृद्धि-
र्यथाष्ठीला शाल्मलेः संप्रवृद्धा ।
ह्रस्वोऽल्पकायः फलितो विवृद्धो
यश्चाफलस्तस्य न वृद्धभावः ॥ ९

द्वारपाल उवाच ।
वृद्धेभ्य एवेह मतिं स्म बाला
गृह्णन्ति कालेन भवन्ति वृद्धाः ।
न हि ज्ञानमल्पकालेन शक्यं
कस्माद्बालः स्थविर इव प्रभाषसे ॥ १०

अष्टावक्र उवाच ।
न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
बालोऽपि यः प्रजानाति तं देवाः स्थविरं विदुः ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥१२
दिदृक्षुरस्मि संप्राप्तो बन्दिनं राजसंसदि ।
निवेदयस्व मां द्वाःस्थ राज्ञे पुष्करमालिने ॥ १३
द्रष्टास्यद्य वदतोऽस्मान्द्वारपाल मनीषिभिः ।
सह वादे विवृद्धे तु बन्दिनं चापि निर्जितम् १४
पश्यन्तु विप्राः परिपूर्णविद्याः
सहैव राज्ञा सपुरोधमुख्याः ।
उताहो वाप्युच्चतां नीचतां वा
तूष्णीं भूतेष्वेव सर्वेष्वथाद्य ॥ १५

१३३

अन्धस्येति । अन्धादीनामक्षमत्वान्मार्गो देय इत्यर्थः । असमेत्य समीपं अप्राप्य ॥ १ ॥ ऐन्द्रद्युम्ने हे जनक ॥४॥ ज्ञानागमे ज्ञानशास्त्रे वेदान्तेष्वित्यर्थः । निष्ठां निश्चयम्॥७॥ वेद जानीते यदि तर्हि ईरय । जुष्टां मुनिसेविताम् । एकमेव अक्षरं ब्रह्म प्रतिपाद्यं यस्यां तां एकाक्षराम् बहुरूपां मन्त्रार्थ-वादादिरूपाम् । विराजं विशेषेण कर्मकाण्डादाधिक्येन राजमानाम । अङ्गेति संबोधने ॥ ८ ॥ शाल्मलेरष्ठीला शाल्मलिफलान्तर्गतग्रन्थिः । स हि केवलतूलमयत्वान्निःसारः। अतो देहवृद्धिर्व्यर्था । अल्पकायः कृशः ॥ ९ ॥ अनूचानः साङ्गवेदाध्यायी ॥ १२ ॥ पुष्करमालिने स्वर्णमालाधारिणे ॥ १३ ॥

द्वारपाल उवाच ।

कथं यज्ञं दशवर्षो विशेस्त्वं
विनीतानां विदुषां संप्रवेशम् ।
उपायतः प्रयतिष्ये तवाहं
प्रवेशने कुरु यत्नं यथावत् ॥ १६

अष्टावक्र उवाच ।

भो भो राजञ्जनकानां वरिष्ठ
त्वं वै सम्राट् त्वयि सर्वं समृद्धम् ।
त्वं वा कर्ता कर्मणां यज्ञियानां
ययातिरेको नृपतिर्वा पुरस्तात् ॥ १७
वृद्धान्बन्दी वादविदो निगृह्य
वादे भग्नानप्रतिशङ्कमानः ।
त्वयाभिसृष्टैः पुरुषैराप्तकृद्भि-
र्जले सर्वान्मज्जयतीति नः श्रुतम् ॥ १८
सोऽहं श्रुत्वा ब्राह्मणानां सकाशे
ब्रह्माद्वैतं कथयितुमागतोऽस्मि ।
क्वासौ बन्दी यावदेनं समेत्य
नक्षत्राणीव सविता नाशयामि ॥ १९

राजोवाच ।

आशंससे बन्दिनं वै विजेतु-
मविज्ञाय त्वं वाक्यबलं परस्य
विज्ञातवीर्यैः शक्यमेवं प्रवक्तुं
दृष्टश्चासौ ब्राह्मणैर्वेदशीलैः ॥ २०
आशंससे त्वं बन्दिनं वै विजेतु-
मविज्ञात्वा तु बलं बन्दिनोऽस्य ।
समागता ब्राह्मणास्तेन पूर्वं
न शोभन्ते भास्करेणेव ताराः ॥ २१
आशंसन्तो बन्दिनं जेतुकामा-
स्तस्यान्तिकं प्राप्य विलुप्तशोभाः ।
विज्ञानमत्ता निःसृताश्चैव तात
कथं सदस्यैर्वचनं विस्तरेयुः ॥ २२

अष्टावक्र उवाच ।

विवादितोऽसौ न हि मादृशैर्हि
सिंहीकृतस्तेन वदत्यभीतः ।
समेत्य मां निहतः शेष्यतेऽद्य
मार्गे भग्नं शकटमिवाबलाक्षम् ॥ २३

राजोवाच ।

त्रिंशकद्वादशांशस्य चतुर्विंशतिपर्वणः ।
यस्त्रिषष्टिशतारस्य वेदार्थं स परः कविः ॥ २४

अष्टावक्र उवाच ।

चतुर्विंशतिपर्व त्वां षण्नाभि द्वादशप्रधि ।
तत्त्रिषष्टिशतारं वै चक्रं पातु सदागति ॥ २५

---

उपायतः प्रयतिष्ये इत्युक्त्वा यज्ञवाटादन्यत्र तस्य राजदर्शनं कारयित्वा आह प्रवेशने कुरु यत्नमिति । राज्ञः पुरस्तात्किंचित् ज्ञानं प्रकाशयेत्यर्थः ॥ १६ ॥ सम्राट् सार्वभौमः॥१७॥सः अहं अद्वैतं ब्रह्म कथयितुं आगतोऽस्मि। एतेन कृत्स्नस्यास्य प्रबन्धस्य तात्पर्यमुपन्यस्तम् ॥ १९ ॥ विज्ञानमत्ता अपि पराजयं प्राप्य सभातः निःसृताः ॥२२॥ निहतः निर्जितः शेष्यते प्रसुप्तपुरुषवज्जडो भविष्यति ॥२३॥ ब्रह्माद्वैतं कथयितुमागतोऽस्मीति प्रतिजानानमष्टावक्रं प्रति पृच्छति राजा त्रिंशकेति । उभयतस्तीक्ष्णाग्राभिः षड्भिः शलाकाभिरेकस्मिन् शङ्कौ प्रोतमध्याभिः पृथगन्ताभिर्द्वादशारं षण्नाभिचक्रं जायते । तत्र द्वादशराशयः अराः राशिद्वयात्मानः षड्ऋतवो नाभयः एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशत्त्रिंशदंशाः तदेतद्भचक्रं षष्ट्या नाडीभिः परिवर्तते । अस्य षष्ट्यधिकशतत्रयपरिवर्तैः सावनः संवत्सरो भवति । अस्मिंश्चक्रे कुलालचक्रवत् प्रदक्षिणमावर्तमाने पिपीलिकापङ्क्तिवत् प्रतीपं सूर्यादयः परिभ्रमन्ति । तत्र चन्द्रस्य सप्तविंशत्यहोरात्रैर्भगणभोगः । सूर्यस्य सपादपञ्चषष्ट्यधिकेनाह्नां शतत्रयेण स एव सौरः संवत्सरः । अस्मिन् चक्रे स्वस्वगत्या गच्छतोः सूर्यचन्द्रयोर्यदात्यन्तं विप्रकर्षस्तदा पौर्णमासी । यदात्यन्तं संनिकर्षस्तदा दर्शः ते द्वे पर्वणी । एवं चतुर्विंशत्या पर्वभिः चतुःपञ्चाशदधिकेनाह्नां शतत्रयेण चान्द्रः संवत्सरः तत्रायं पृच्छति त्रयाणामपि पृथक्कर्मसु विनियोगात् । तथा चोक्तं माधवे 'अब्दः पञ्चविधश्चान्द्रो व्रतादौ तिलकादिके । स्वजन्मादिव्रते सौरो गोसत्रादिषु सावनः ' इति । त्रिंशकद्वादशांशस्य त्रिंशतो गणस्त्रिंशकः ते एव द्वादशसंख्याका अंशा यस्येति सौरसंवत्सरप्रश्नः । चतुर्विंशतिपर्वण इति चान्द्रस्य । त्रीणि षष्ट्या सहितानि शतान्यरा यस्येति सावनस्य । त्रिविधस्यास्य कालचक्रस्य योऽर्थं प्रयोजनं वेद स परः कविः उत्कृष्टः क्रान्तदर्शी ॥ २४ ॥ इति पृष्टोऽपर आह उत्तरं षण्नाभीति । विशेषार्थोक्त्या विद्वत्ताप्रकाशः शेषोऽनुवादः। प्रधयो मासाः राशयो वा । तेषु हि त्रिंशदहोरात्रा अंशा वा प्रत्येकं प्रत्येकं प्रधीयन्ते । चक्रं पातु अस्मिन् काले यथाकालं विहितो धर्मस्त्वां पात्वित्यर्थः । एतेन धर्मस्य श्रेयःसाधनत्वं विधीयते। केवलकालज्ञानस्यापुरुषार्थत्वात् । मानान्तरानवगतं प्रयोजनवदर्थं प्रतिपादयद्धि शास्त्रं भवति । अन्यथा शास्त्रत्वव्याघातः । एवमन्यत्रापि विधानं द्रष्टव्यम् । 'राशिस्त्रिंशल्लवस्तान् द्विषडनुपततार्केण सौरोऽब्द इष्टः सोमेष्विष्टो तु चान्द्री शरदपि च चतुर्विंशकात्पर्वणां स्यात् । गोसत्रे सावनोऽब्दो गगनरसगुणै रात्र्यहै राशियुग्मात्त्वाख्यश्चर्तुयाजां स्वसमयविहिताःश्रेयसे स्युर्मखाख्याः' ।२५

राजोवाच ।

वडवे इव संयुक्ते श्येनपाते दिवौकसाम् ।
कस्तयोर्गर्भमाधत्ते गर्भं सुषुवतुश्च कम् ॥ २६

अष्टावक्र उवाच ।

मा स्म ते ते गृहे राजञ्छात्रवाणामपि ध्रुवम् ।
वातसारथिरागन्ता गर्भं सुषुवतुश्च तम् ॥ २७

राजोवाच ।

किं स्वित्सुप्तं न निमिषति किं स्विज्जातं न चोपति
कस्य स्विद्धृदयं नास्ति किं स्विद्वेगेन वर्धते ॥ २८

अष्टावक्र उवाच ।

मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति ।
अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते ॥ २९

राजोवाच ।

न त्वां मन्ये मानुषं देवसत्वं
न त्वं बालः स्थविरः संमतो मे ।
न ते तुल्यो विद्यते वाक्प्रलापे
तस्माद्द्वारं वितराम्येष बन्दी ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अष्टावक्रीये त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

रथसंयुक्ते अश्वे इव सहचारिण्यौ श्येनपाते श्येनवदकस्मात् पतनशीले ये उभे वर्तेते । दिवौकसां देवानां मध्ये तयोः संबन्धिनं गर्भं को धत्ते । कस्य गर्भं ते उत्पद्येते कं च जनयत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ उत्तरं तयोर्नामाप्यमङ्गलमिति मत्वा परोक्षेण निर्दिशति । ते उभे अधिदैवं विद्युदशनी । अध्यात्मं दुःखमृत्यू । विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा इति पञ्चाग्निविद्यायां तयोर्भेदेन व्यपदेशात् । क्रमादाकाशेन देहेन च रथेन वडवे इव नित्यसंयुक्ते श्येनपाते च ते तव गृहे मा स्म स्यातां राजन् तव शात्रवाणामपि गृहे मा स्म स्यातामित्यत्यन्तामङ्गलत्वं तयोर्दर्शितम् । वातसारथिर्मेघो मनश्च आगन्ता आकाशाद्वृष्ट्यर्थं सुषुप्त्याख्यात्कारणात् कर्मफलभोगार्थं उदेष्यन् ते उभे पूर्वोक्ते विद्युदशनी दुःखमृत्यू च गर्भं धत्त इत्येकमुत्तरम् । ते च तमेव वातसारथिं वैद्युतमग्निं मनश्च सुषुवतुरित्यपरम् । यथा धूमज्योतिरादिसंनिपातरूपत्वादग्निरूपो मेघोऽग्निमेव विद्युदादिद्वारा सूते । एवं मनःप्रभवौ दुःखमृत्यू स्ववासनारूपेण मनसः कारणे भवतः । तथा च बीजाङ्कुरवन्मनसः दुःखादेश्च हेतुहेतुमद्भावान्मनसो लयो दुःखाभावार्थमभ्यसनीय इत्यर्थः । एतेन 'अश्ना पिनद्धं मधुपर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनिक्षियन्तम्'इति मन्त्रवर्ण उपबृंहितः । अश्ना अशनवता जलं शोषयता मेघेन विषयान् भुञ्जानेन मनसा वा मधुसलिलं तद्वदेकरसं ब्रह्म वा पिनद्धमाच्छादितम् । मनसो दुःखहेतुत्वं दृष्टान्तमुखेनाह मत्स्यमिति । नेत्युपमार्थो निपातः । दीनेऽल्पे उदनि उदके क्षियन्तं निवसन्तं मत्स्यं न मीनमिवाकुलमित्यर्थः । क्षियन्तमित्यस्यैव वा क्लिश्यमानमित्यर्थः। 'हृन्मेघो दुःखमृत्यू तडिदशनिसमे श्येनवच्छीघ्रपाते नित्योद्बद्धे रथेऽश्वे इव करणसुराधीश्वरः प्राज्ञ खोत्थः । स्वे गर्भं धत्त एनं सुषुवतुरितरे वासनातंतुजन्यां चेतःशाटीं निरुन्ध्यादसुपवनवशां विश्वचित्रां मुमुक्षुः' ॥ २७ ॥

स्वप्नङिति स्वपितृषोर्नजिङिति । जकारान्तस्य स्वप्नज्शब्दस्य स्वप्नावस्थावद्वाचित्वम् । सुषुप्त्यवस्थां प्राप्तं किं न निमिषति लुप्तदृङ् न भवतीति प्रश्नार्थः ॥ २८ ॥ तद्यथा महान्मत्स्य उभे कूले अनुसंचरतीत्यादिश्रुत्या मत्स्योपमितश्चिद्रूपः पुरुषो जाग्रत्स्वप्नयोरिह परलोकयोश्च संचरणेन श्रान्तः मत्स्य इव कूलद्वयसंचारेण सुप्तिप्रलययोः कार्यकारणसंघातस्य निखिलप्राणनादिशक्त्युपरमेऽनुपरतदृक्शक्तिरेक एवास्ते । न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते विनाशित्वादिति श्रुतेः । तदुपरमाभ्युपगमे कृतहानादिदोषप्राप्तिः सुखमहमेतावन्तं कालमस्वाप्समिति परामर्शानुपपत्तिश्च अस्य अविनाशित्वादजातत्वम् । यत्तु जातमण्डं ब्रह्माण्डं भूतभौतिकात्मकं तत् न चोपति चुपमन्दायां गतौ । न चेष्टते किं त्वयमेव तच्चेष्टयते इत्यर्थः । अश्मनोऽशरीरस्य हृदयं शोकायतनं नास्ति । श्मशरीरमिति यास्कः अशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः। 'तीर्णो हि तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति'इति श्रुत्योस्तद्दृष्टेर्देहाद्यसंगे योगी निर्मनस्को जीवन्मुक्तो भवतीत्यर्थः । नदी चित्तनदी योगिनो व्युत्थितस्य वेगेन सद्यः कृत्स्नप्रपञ्चरूपेण वर्धते । योगिदृष्ट्या स्वाप्नव्यावहारिकोऽपि प्रपञ्चो दृष्टिसमसमयोत्पत्तिक इत्यर्थः । एवं दृगलोपो दृश्यस्य जाड्यं देहासंगिनो मुक्तिः संसारस्य मनोमात्रत्वं चात्र दर्शितम् । 'पुंमीनो निर्निमेषः स्वपिति भवनदीचारखिन्नः स्वरूपे । जातं ब्रह्माण्डपिण्डं जडमपि जवते येन लोहाश्मनीत्या । यस्याकायस्य नास्ति क्वचिदपि हृदयं शोकनीडं समाधौ। यत्स्था मायानदीयं द्रुतमहमिदमाद्यात्मनोदेति सोऽस्मि ॥२९॥ वाक्प्रलापे वाचां प्रकृष्टे संलापे एष बन्दी दृश्यतामिति शेषः ॥ ३० ॥
इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३३ ॥

## १३४

अष्टावक्र उवाच ।

अत्रोग्रसेनसमितेषु राज-
न्समागतेष्वप्रतिमेषु राजसु ।
नावैमि बन्दिं वरमत्र वादिनां
महाजले हंसमिवाददामि ॥ १

न मेऽद्य वक्ष्यस्यतिवादिमानिन्
ग्लहं प्रपन्नः सरितामिवागमः ।
हुताशनस्येव समिद्धतेजसः
स्थिरो भवस्वेह ममाद्य बन्दिन् ॥ २

व्याघ्रं शयानं प्रति मा प्रबोध
आशीविषं सृक्किणी संलिहानम् ।
पदाहतस्येह शिरोऽभिहत्य
नादष्टो वै मोक्ष्यसे तन्निबोध ॥ ३

यो वै दर्पात्संहननोपपन्नः
सुदुर्बलः पर्वतमाविहन्ति ।
तस्यैव पाणिः सनखो विदीर्यते
न चैव शैलस्य हि दृश्यते व्रणः ॥ ४

सर्वे राज्ञो मैथिलस्य मैनाकस्येव पर्वताः ।
निकृष्टभूता राजानो वत्सा ह्यनडुहो यथा ॥ ५

यथा महेन्द्रः प्रवरः सुराणां
नदीषु गङ्गा प्रवरा यथैव ।
तथा नृपाणां प्रवरस्त्वमेको
बन्दिं समभ्यानय मत्सकाशम् ॥ ६

लोमश उवाच ।

एवमष्टावक्रः समितौ हि गर्जे-
ञ्जातक्रोधो बन्दिनमाह राजन् ।
उक्ते वाक्ये चोत्तरं मे ब्रवीहि
वाक्यस्य चाप्युत्तरं ते ब्रवीमि ॥ ७

बन्द्युवाच ।

एक एवाग्निर्बहुधा समिध्यते
एकः सूर्यः सर्वमिदं विभाति ।
एको वीरो देवराजोऽरिहन्ता
यमः पितॄणामीश्वरश्चैक एव ॥ ८

अष्टावक्र उवाच ।

द्वाविन्द्राग्नी चरतो वै सखायौ
द्वौ देवर्षी नारदपर्वतौ च ।
द्वावश्विनौ द्वे रथस्यापि चक्रे
भार्यापती द्वौ विहितौ विधात्रा ॥ ९

बन्द्युवाच ।

त्रिः सूयते कर्मणा वै प्रजेयं
त्रयो युक्ता वाजपेयं वहन्ति ।
अध्वर्यवस्त्रिसवनानि तन्वते
त्रयो लोकास्त्रीणि ज्योतींषि चाहुः॥१०

---

अत्रेति ॥ १ ॥ ग्लहं पराजितस्य जले निपातनरूपं पणम् । प्रपन्नः स्वीकृतवान् । मे मम पुरतः न वक्ष्यसि प्रत्युत्तरमिति शेषः । समिद्धतेजसः प्रलयकालेऽत्यन्तं प्रदीप्तस्याग्नेः पुरो यथा नदीवेगः शुष्यति तथा शुष्को भविष्यसीत्यर्थः ॥ २ ॥ मा मां प्रबोध जानीहि । भौवादिकस्य बुधेर्लोटि रूपम् । असंधिरार्षः । पदाहतस्य मत्पितुर्निग्रहणादहं पूर्वमेव त्वया पदाहतस्तस्य मे शिरोऽभिहत्य त्वं न मुच्यसे अदष्टः सन् ॥ ३ ॥ संहननेन देहेन दृढकायत्वेन उपपन्नः ॥ ४ ॥ बन्दिं बन्दिनम् । विभक्त्यलोपे नकारलोप आर्षः ॥ ६ ॥ पूर्वं प्रतिज्ञातं ब्रह्माद्वैतमेव वादकथामुखेन प्रपञ्चयन् बन्दिमुखेन बौद्धपक्षमुत्थापयति एक एवेति । यथा एकोऽग्निः सूर्यो वा इतराप्रकाश्योऽन्यप्रकाशकश्च ; एवं देवानां इन्द्रियाणां राजा प्रधानभूतो धीधातुरहमिदमाद्याकारेण प्रकाशमानो वीरोऽरिहन्तेऽतिपराभिमततत्त्वान्तराभिभावको यमः सर्वेन्द्रियाणां नियन्ता पितॄणां विषयोपहारद्वारा पालयितॄणामिन्द्रियाणां ईश्वरो भोक्ता कर्ता च प्रधानभूतः एक एव नान्यत्तत्त्वं पृथगस्ति । स्वप्ने सर्वेषां क्रियाकारकादीनां बुद्धिमात्रत्वोपलम्भादित्यर्थः । 'धीर्देवेन्द्राग्निवत्सा तदिदमहमिति व्यक्तनानास्वरूपा स्वं चान्यं च स्वयं सा प्रथयति रधिवत्सा रिपुः सा च मृत्युः ॥ सा श्रोत्रादेः प्रयोक्त्री सकलमिदामिह स्वप्नवद्धीमयं स्यात् ।' इत्येवं तार्किकेण प्रथममुपगतो बन्दिना बौद्धपक्षः॥१॥'८॥अष्टावक्रो द्वासुपर्णेति मन्त्रे तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्त्वमनश्नन्नन्योऽभिपश्यति ज्ञ इति पैङ्गिरहस्यव्याख्यातेन प्रकारेण बुद्धिचैतन्ययोः सखायावित्युक्तेरिन्द्राग्न्यादिवत्तौ सहैव चरतः । न हि दृश्याया बुद्धेर्द्रष्टृत्वं संभवति प्रकाश्यस्यैव प्रकाशकत्वामिति परिहरति । द्वाविन्द्राग्नी इति । स्वप्नेऽपि बाधिताद्बोद्धव्यादबाधितो बोद्धान्योऽस्तीति भावः । 'स्वातन्त्र्यादिन्द्र आत्मा नलवदिह पराधीनसिद्धिश्च बुद्धिर्दृग्दृश्येते जसत्त्वे इति खलु विवृते पैङ्गिना द्वेति मन्त्रे । भिन्ने देवर्षिदस्रप्रभृतिवदपि ते सूर्यचित्रांशुकाभे । अन्योऽन्यापेक्षया च व्यवहृतिपक्षगो चक्रवद्दंपतीवत् ॥२॥' ९ ॥ बन्दी बोद्धुः कर्माधीनत्वमिति. मीमांसकमतमाह त्रिरिति ।

अष्टावक्र उवाच ।
चतुष्टयं ब्राह्मणानां निकेतं
चत्वारो वर्णा यज्ञमिमं वहन्ति ।
दिशश्चतस्रो वर्णचतुष्टयं च
चतुष्पदा गौरपि शश्वदुक्ता ॥ ११

बन्द्युवाच ।
पञ्चाग्नयः पञ्चपदा च पङ्क्ति-
र्यज्ञाः पञ्चैवाप्यथ पञ्चेन्द्रियाणि ।
दृष्टा वेदे पञ्चचूडाप्सराश्च
लोके ख्यातं पञ्चनदं च पुण्यम् ॥ १२

अष्टावक्र उवाच ।
षडाधाने दक्षिणामाहुरेके
षट् चैवेमे ऋतवः कालचक्रम् ।
षडिन्द्रियाण्युत षट् कृत्तिकाश्च
षट् साद्यस्काः सर्ववेदेषु दृष्टाः ॥ १३

बन्द्युवाच ।
सप्त ग्राम्याः पशवः सप्त वन्याः
सप्त च्छन्दांसि क्रतुमेकं वहन्ति ।
सप्तर्षयः सप्त चाप्यर्हणानि
सप्ततन्त्री प्रथिता चैव वीणा ॥ १४

पुण्येन देवस्थावरमानुषरूपं जन्मत्रयं सुकृतेनैव लभते । पापेन नारकस्थावरतिर्यग्रूपं स्वर्गान्नरकाद्वा च्युतस्यौपधिभावपूर्वकमेव रेतोद्वारा नृपशुतिर्यग्योनिसंभवस्य श्रौतप्रसिद्धेः । अत एव त्रयो वेदाः युक्तास्तात्पर्येण संनद्धा इव वाजपेयोपलक्षितमाश्रमत्रयोचितं कृत्स्नं कर्मजातं वहन्ति । वेदस्यापि कर्ममात्रपरत्वमित्यर्थः । अध्वर्यवो यज्ञस्य योक्तारस्त्रैवर्णिकास्त्रीण्येव प्रातः सवनादीनि तन्वते । तेन यथाकालं कृतस्य कर्मणः फलं कालानुरोध्येव अनुभवन्तीत्यर्थः । त्रयो लोकाः स्वर्गो नरको भूश्चेति भोगभूमयः । त्रीण्येव वेदे ज्योतिष्मतां ज्योतींषि सुखमार्गप्रकाशकानि जाग्रदादीनि । ' तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना ' इति श्रुतेः । नास्ति ततोऽन्यत्तत्त्वमित्यर्थः । 'देवः स्थाणुर्नरः स्यात्सुकृतकृदितरो नारकस्थाणुतिर्यग्जन्मा त्रैवर्णिकः स्याच्छ्रुतियुगधिकृतो वाजपेयादियज्ञे । काले काले यजन्ते फलमपि च तथा भुञ्जते यज्ञभाजः सत्त्वाद्यैर्यान्ति लोकान् स्वरवनिनरकान्स्वप्नजाग्रत्सुषुप्तीः ॥ ३ ॥' ॥ १० ॥ अष्टावक्र एतद्दूषयति चतुष्टयमिति । ब्राह्मणाना ब्रह्मविदां निकेतं ज्ञानोपलब्धिस्थानं चतुष्टयं चतुःसंख्यावयवोपेतम् । आश्रमत्रयादन्योऽस्ति मोक्षाश्रमो यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेदिति श्रुतिसिद्ध इत्यर्थः । यज्ञं ज्ञानयज्ञं शूद्रस्याप्यस्त्यत्राधिकारोऽकर्मरूपत्वादित्यर्थः । दिशः दिश्यन्तः इति दिशः उपदिष्टाः सन्ति चतस्रोऽवस्थाः विराट्सूत्रान्तर्यामितुर्यसाक्षात्काररूपाः विश्वतैजसप्राज्ञेभ्यः सर्वप्राणिप्रसिद्धेभ्योऽन्या इत्यर्थः । अत एव तासां वाचकं चतुष्टयमकारउकारमकारार्धमात्रारूपमुपनिषत्प्रसिद्धम । न चार्धमात्राया अप्रसिद्धत्वं वाच्यम् । यस्मात् चतुष्पदा परापश्यन्तीमध्यमावैखरीति पादचतुष्टयवती गीर्वाणी शश्वत् सदैव उक्ता । चत्वारिवाक्परिमितापदानीति मन्त्रे इति शेषः । 'जिज्ञास्यं ब्रह्म सम्यग्व्रतिवनियतिभिर्ज्ञानयज्ञेऽधिकारि चातुर्वर्ण्यं चतुष्पात्तदुपदिशति वागण्डसूत्रेशशुद्धम् । चत्वारो वाचि वर्णा अउमदलकला वैखरीमध्यमाख्यौ पश्यन्त्याख्यः पराख्यः स चतुरवयवः प्रत्ययोऽस्याः प्रसिद्धः ॥ ४ ॥' ११ ॥ तुरीयमपलपन् बन्दी उवाच । पञ्चाग्नयः गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयसभ्यावसथ्याः । पञ्चपदाऽष्टाक्षरैः पादैः पंक्तिश्छन्दः । यज्ञाः पञ्च अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोम इति श्रुताः । एते त्रयः पञ्चका यथा एवं पञ्चैवेन्द्रियाणि शब्दादिपञ्चकग्राहकाणि । न षष्ठो विषय इन्द्रियं वास्तीत्यर्थः । दृष्टा वेदे । अप्सरा 'आपः पुरुषवचसो भवन्तीति श्रुतेः ।' शरीराकारपरिणतेषु जलप्रधानेषु भूतेषु सरति अनुगच्छतीत्यप्सराः चितिः पञ्चचूडा पञ्चैव तत्तद्विषयाकारतया प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतिरूपवृत्तिपञ्चकसारूप्येण शिखा पञ्चकवत्येव दृष्टा । वृत्तिनिरोधस्य समाधेरपि निद्रायामेवान्तर्भाव इति भावः । लोकेऽपि पञ्चानां विषयस्रोतसां समाहारः पञ्चनदमुपेयं एवमेव चितिशक्तेरेव कर्तृत्वभोक्तृत्वे इत्युत्तरार्धार्थः । 'अग्निश्छन्दः क्रतूनामिव खलु मनसः खानि पञ्चैव भागा भ्रान्तिर्निद्राविकल्पः स्मृतिरमलमतिर्वृत्तयः पञ्च तस्य । ताभिः शाखावतीवस्वरिह जलपरीणामकायानुकर्त्री शुद्धाशुद्धप्रवाहा भवति चितिनदी तज्जसौख्यादिभोक्त्री ॥ ५ ॥' १२ ॥ कर्तृत्वादिधर्मकमस्ति षष्ठमिन्द्रियं मनः । सुषुप्तावितरवत्तल्लयस्याप्यनुभूयमानत्वात् । कर्तृत्वादेस्तत्सहभावानियतत्वदर्शनाच्च । चित्ताभावसाक्षी त्वात्मा ततः पृथक्कर्त्रादिरूपः सप्तमोऽस्तीत्याहाष्टावक्रः । षडाधाने इति षट् गाः इति शेषः । दक्षिणादयो मनसश्चक्षुरादिसाजात्ये दृष्टान्ताः । साद्यस्काः यज्ञविशेषाः । ' गोनक्षत्रर्तुयज्ञा इव समवपुषः षट् षडेवं सचित्ताः श्रोत्राद्या दुःखशब्दाद्यनुभाविन इतोऽन्यानुभूतिः स साक्षी । धीयोगात्सप्तभिस्तैरनुभवकरणैरत्र सप्तर्षिसंज्ञैर्भुङ्क्ते छन्दोभिधानानपरिमितवपुश्छादकानष्टमोऽर्थान् ॥ ६ ॥' १३ ॥ अथ तर्कमतेन बन्दी प्रत्यवतिष्ठते । सप्त ग्राम्याः मनः षष्ठैरिन्द्रियैर्बुद्ध्यां चात्मगुणभूतया समर्पिताः मन्तव्यबोद्धव्यशब्दादयो विषयास्तेष्वेकैकस्मिन्नासक्त एकैकः पुरुषपशुः ते च ग्राम्या ऐहिकाः

अष्टावक्र उवाच ।

अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति
तथाष्टपादः शरभः सिंहघाती ।
अष्टौ वसूञ्शुश्रुम देवतासु
यूपश्चाष्टाश्रिर्विहितः सर्वयज्ञे ॥ १५

बन्द्युवाच ।

नवैवोक्ताः सामिधेन्यः पितृणां
तथा प्राहुर्नवयोगं विसर्गम् ।
नवाक्षरा बृहती संप्रदिष्टा
नवैव योगो गणनामेति शश्वत् ॥ १६

अष्टावक्र उवाच ।

दिशो दशोक्ताः पुरुषस्य लोके
सहस्रमाहुर्दशपूर्णं शतानि ।
दशैव मासान्बिभ्रति गर्भवत्यो
दशेरका दश दाशा दशार्हाः ॥ १७

---

न्या आमुष्मिका विषयास्तेष्वासक्ततया प्रत्येकं सप्त सप्त पुरुषपशवः सप्त छन्दांसि छादयन्ति स्वस्वरूपार्पणजातसुखलेशेन परमात्मानं गूहयन्तीति तान्सप्तविषयान् । एकं क्रतुं कर्तारमात्मानं वहन्ति प्रापयन्ति । के सप्तर्षयः । प्राणा वा ऋषय इति श्रुतेः । सप्तैवोक्ता मन आदयस्तदुपनीतानि सप्त चैवार्हणानि अर्हणीयानि सुखानि । यथा सप्तभिस्तन्त्रीभिर्वाद्यमाना एका वीणा शब्दं निर्वर्तयति । एवं एतैः सप्तभिरात्मा सुखमनुभवति । अन्यथाऽकरणात्वात्सुप्तो जड एव न्यस्तवास्यतक्षवत् अवादितवीणावच्च तिष्ठति । न तावतास्य कर्तृत्वापगम इत्यर्थः ॥ ' भौमिष्वर्थेषु दिव्येष्वपि नरपशवः सप्त सप्तैवबद्धा भोक्तारं प्रापयन्ति क्रतुपदविदितं सप्त तान्सप्त खानि । सप्तैवैषां सुखानि प्रतिविषयभवान्येकवीणेव देही भोगं तन्त्रीन्द्रियाढ्यो स्वमिव कुरुते योऽत्र कर्ता स भोक्ता ॥७॥'१४॥ उक्तानेव सप्त कर्तृत्वादिधर्मवताहंकारेण सार्धं अष्टौ विवक्षन्नष्टावक्रोऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहा इति श्रुतेन्द्रियविषयरूपग्रहातिग्रहरूपं बन्धनमुपन्यस्य तदन्यमात्मानं पृथक्करोति अष्टौ शाणा इति । शाणाः शणसूत्रेण निर्वृत्ताः गोण्य आवपनविशेषाः ता इव इन्द्रियप्रवेशयोग्याः विषयाः अष्टौ ते शतमानम् अनन्तं प्रमाणं धारयन्ति । संक्षेपेणाष्टावप्यनन्ता विषया इत्यर्थः । अष्टौ पादाः विषयदेशं प्रति गतिसाधनानि इन्द्रियाणि यस्य सः शरभः शं लभन्तेऽस्मात् । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः परमानन्दरूपः परमात्मा सोऽयं ज्ञातः सन् सिंहघाती हिनस्ति दुःखं ददातीति सिंहो द्वैतम् । द्वितीयाद्वै भयं भवतीति श्रुतेः। तस्य द्वैतस्य घातकः । सुषुप्तौ जडत्वे सुखमहमस्वाप्समिति व्युत्थितस्य स्वरूपसुखपरामर्शानुपपत्तिः । न च दुःखाभावस्यैव परामर्शः । तत्प्रकाशकस्य साक्षिणः सत्त्वे तस्य तदानीं जडत्वोक्त्ययोगात् । अत एवाष्टौ वसून्वासनाः । देवतास्वेव तत्तदिन्द्रियाधिष्ठात्रीषु लिङ्गात्मनीति यावत् । शुश्रुम वेदं न त्वात्मनीत्यर्थः । यूपश्च योपयति मोहयतीति यूपो नृपशोर्बन्धनस्थानमज्ञानं तदेव अष्टाश्रिरष्टकोणं अष्टधारं सत् सर्वयज्ञेषु ग्रहातिग्रहसंज्ञकविषयेन्द्रियसंयोगेषु वर्तत इति शेषः॥ 'शाणा गोण्योऽष्ट तेऽर्थाः शतमथ शरभः प्रत्यगानन्द एतैः पूर्वोक्तैः साहमर्थैर्व्रजति स विषयान्खानितान्यंघ्रयोऽस्य। सिंहघ्नो हिंस्रभेदद्विडिति वसुपदं भेदसंस्कारजातं लिङ्गस्थे देवतौघे वसति स नृपशोर्बन्धने मोहयूपे ॥ ८ ॥' १५ ॥ तत्र द्वैतघातित्वं शरभस्यानुपपन्नं सर्वेषां युगपत्संसारोच्छेदापत्तेरित्याशङ्कते बन्दी नवैवेति । यथा पितृणामिष्टौ एकैव उशंतस्त्वानिधीमहीति ऋक् त्रिरभ्यस्ता प्रत्येकं त्रिसमित्का नवसामिधेन्योऽग्निसमिन्धनार्था ऋचः संपद्यन्ते तथा एका प्रकृतिरेव त्रयो गुणाः स्वस्वेतरप्रधानगुणभावेन प्रत्येकं त्रिविधाः सन्तो नवैव संयुज्यमाना अंशानां बहुत्वाल्पत्वतारतम्येन विविधं सर्गं कुर्वन्ति । यथा नवाक्षरैश्चतुर्भिः पादैर्बृहतीसंज्ञकं छन्दो भवति । यथा वा नवैवाङ्काः क्रमभेदेन स्थिता यथेष्टं संख्यावाचिनो भवन्त्येवं गुणा नवैवोक्तविधया सन्तोऽनेकधाभावं भजन्ते तस्मात् प्रधाननित्यताया अवश्याभ्युपगन्तव्यत्वाद्द्वैतं सत्यमेवेति भावः । 'त्रिः पाठेनानुपाठं त्रिसमिदिति यथा सामिधेन्यृक् नवत्वं प्राप्नोत्येवं प्रधानं त्रिगुणमनुगुणं त्रिप्रवेशान्नवत्वम्। गत्वानन्तं नवाङ्कीगणितमिव महन्मुख्यमेतत्प्रसूते तस्मान्नित्यप्रधानाधिकमिह बृहती वाक्षरेभ्यो नवभ्यः ॥९॥' ॥ १६ ॥ तदेतदिन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति श्रुत्यनुसाराद्द्वैतस्यानिर्वचनीयमायासहाये ब्रह्मण्येव भानोपपत्तेर्न सत्या प्रकृतिरभ्युपेयेत्याशयवानष्टावक्रः परिहरन्नाह दिश इति । ता वा एता दशैव भूतमात्रा अधिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा अधिभूतमिति तस्य वाचा सृष्टौ पृथिवी चाग्निश्चेति च कौषीतकऐतरेयकयोर्दर्शनाद्दशैव वागाद्याः प्रज्ञामात्रा अग्न्यादीनां भूतमात्राणां स्रष्टारः । दिशन्ति विषयस्वरूपमतिसृजन्ति ताः दिशः वागाद्या दशैव पुरुषस्य देहाख्ये पुरे वसतो जीवस्य पूर्णं परं ब्रह्मैव दश शतानि सहस्रं च विभूतिभेदेन मायया बहुरूपं भूत्वास्तीत्याहुर्वेदाः । एतेनायं वै हरयोयं वै दश च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानीति युक्ता ह्यस्य हरयः शतादशेत्येवमन्त्यपादस्य श्रौती व्याख्या दर्शिता । तथा च रज्जूरगवन्मायाबुद्बुदस्य बाधितार्पातरस्यार्तीति वक्तुं शक्यम् । परमेन तु

बन्दुवाच ।
एकादशैकादशिनः पशूना-
मेकादशैवात्र भवन्ति यूपाः ।
एकादश प्राणभृतां विकारा
एकादशोक्ता दिवि देवेषु रुद्राः ॥ १८

अष्टावक्र उवाच ।
संवत्सरं द्वादशमासमाहु-
र्जगत्याः पादो द्वादशैवाक्षराणि ।
द्वादशाहः प्राकृतो यज्ञ उक्तो
द्वादशादित्यान्कथयन्तीह धीराः ॥ १९

विभोरलुप्तदृशः पुरुषस्य मुक्तौ तदद्दर्शनोक्तिरनुपपन्ना दृष्टान्ताभावादिति भावः । परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति । अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति । रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश इति दाशतय्याम् । ४ । ७ ॥ अष्टकाध्यायवर्गे ऋचौ ऐन्द्रयौ आम्नायेते । अनयोरर्थः । द्वयाह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च तत्र कानीयसा एव देवा ज्यायांसो असुरा इति श्रुतिप्रसिद्धाः पूर्वदेवाः स्वाभाविकासंगपाप्मरूपाः कामक्रोधादयः तेषां सख्यासख्यानि परावृणक्ति दूराद्वर्जयति । वितर्तुराणःततारेति तर्तुराणःतर्णिवान् । तरतेर्लिङ्डादेशःकानच् द्वित्वं बहुलं छन्दसीत्युकारोन्तादेशोरपरः । तीव्रवैराग्याभ्यासादिमान् । अपरेभिः अपरैः दैवैः शास्त्रीयैः शमदमादिभिः एति प्राप्नोति । सख्येत्यनुषज्यते । कामादीन् जित्वाऽत्यादरेण शमादिपरो भवतीत्यर्थः । एवंभूतःअनानुभूतीः अननुभवान् भ्रान्तिज्ञानानि शुक्तिरजतज्ञानतुल्यानि देहाद्यात्मज्ञानानि अवधून्वानोऽपनुदन् आत्मनस्तत्तदुपाध्याकारतां निषेधन् इन्द्रः परमेश्वरोऽप्यविद्यया जीवभावमापन्नः सन् लब्धात्मतत्त्वो विद्वान्पूर्वीः शरदः अनादिकालप्रवृत्तकर्मवासनास्तर्तरीति अतिशयेन तरति । वीतबन्धो भवतीत्यर्थः । अत्र अननुभूतिपदेन शुक्तौ रजतं पश्यन् रजतं वा शुक्तिं वा नानुभवतीति लौकिकप्रयत्नेन देहाद्यात्मज्ञानस्याननुभूतित्वं वदन्ती श्रुतिर्देहादिमिथ्यात्वं सूचयति । तदुपपादनाय मन्त्रो रूपं रूपमित्यादिस्तत्र माययेति अनृतेनाज्ञानेनेत्यर्थः । सत्यत्वे तत्कार्यपदार्थदर्शनस्याननुभूतित्वायोगादिति । शेषं स्पष्टार्थम् । अनानुभूतीरित्यत्र श्रावयादीन् प्रकृत्य आद्याक्षरं प्लुतं तेषामनन्वित्यस्य मध्यमित्यनेनाननु इति वर्णत्रयस्य मध्यं प्लुतं दीर्घं भवतीति प्रातिशाख्ये दीर्घत्वविधानादननुभूतीरित्यर्थः । पदपाठश्चैवमेवेति दिक् । दशैव मासानिति । यथा स्त्रियो गर्भेणान्तरालिकः संबन्धो बीजकुसूलन्यायेनैवमसंगस्य चिदात्मनोहंकारेणेत्यर्थः । दशेरकाः । आसमन्तादीरयन्ति उपदिशन्ति तत्त्वमित्येरकास्तत्त्वदर्शिन उपदेष्टारः । दशमासाः तत्त्वस्य क्षेपकाः । दश अर्हास्तत्त्वविद्याधिकारिणः । एवमुक्तविधं ब्रह्माद्वैतं बुधानामनुभवसिद्धं मूढानां विद्वेष्यं चित्तशुद्धिमतां श्रद्धेयमित्यर्थः । 'खोऽथप्रज्ञादिशोऽस्मिन्दशपुरि वसतः पूरविद्याष्टकात्मा ताः पूर्णं वस्त्वनन्ताः स्वगहिसमपुरां व्यापनात्पूर्णतास्य । पुंपुर्योर्गर्भमात्रोरिव पृथगपृथक्त्वेन सत्यानृते स्तः केप्यारूढाः पदं तत्कातिचन विमुखाः केऽपि तत्प्राप्तियोग्याः ॥१०॥'१७॥ एकादशेति । प्राणभृतां पशूनां जीवपशूनाम् । एकादशिनः एकादशेन्द्रियाणि प्रकाशकानि येषु ते विषयाः शब्दादयस्ते एकादशैव संख्याताः । त एव सर्वेऽपि प्रत्येकं यूपाः बन्धकाः रागादयः । नैषां कश्चिदप्यबन्धकोऽस्तीति वक्तुं पुनरेकादशग्रहणम् । अतोऽत्र अविमृष्टविधेयांशता दोषो नास्तीति ज्ञेयम् । विकाराः शब्दादिग्रहजाः हर्षविषादाः । त एते दिवि स्वर्गेऽपि रुद्राः रोदयितारो देवानामपि सन्ति किमुत मनुष्याणाम् । तथा च सत्यात्मनोऽसंगत्वं कथं स्यात् प्रत्यक्षेण दुःखानुभवादित्याक्षेपः । 'रुद्रा एकादशोक्ताः स्वरपिमुरपशून् रोदयन्तीन्द्रियाणि तेषामेकादशार्था नृपशुनिगडने यूपभूता भवन्ति । रागद्वेषद्वयानि प्रतिविषयममी तद्युजांस्युर्विकारास्तद्वन्तस्तेऽपि चैकादश यदिह सिनोत्येक एकैकमेषाम् ॥ ११ ॥' १८ ॥ दृष्टान्तमुखेनैव दार्ष्टान्तिकं निर्दिशन्परिहरत्यष्टावक्रः । यद्यपि अत्र संवत्सरजगत्यौ मासाक्षरेभ्योऽनतिरिक्ते एवं संघातादन्यः शुद्धश्चेतनो मूढानामप्रसिद्धस्तथापि आनन्दाध्द्येव खल्विमानि भूतानि जायन्त इति श्रुतेर्यथा अहर्गणानां द्वादशाह एवं संघातस्य कृत्स्नस्य शुद्धं ब्रह्मैव प्रकृतिः । एतदेव कुत इत्यपेक्षायां चित्तशुध्द्यैकगम्योऽयमर्थो न शुष्कतर्कगम्य इत्याह द्वादशादित्यानिति । धीराः ध्यानवन्तो योगिनः । आदित्यान् आददते इन्द्रियाणि स्वस्वविषयेभ्यो व्यावर्तयन्ति तद्द्वारा प्रत्यक् तत्त्वमधिगमयन्ति तान् द्वादशसंख्याकान् आहुः सनत्सुजातायाः उद्योगादौ । 'धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया । यज्ञश्च दानं च धृतिर्यमो महान्व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य' इति । 'बन्धप्रत्यक्षमेतद्दृढमथ जगती वर्षवद्वर्णमासात्संघातात्प्रत्यगात्मप्लाधिक इति यदप्यस्ति लोके तथापि । वागारभ्यो विकारः प्रकृतिरविकृतिर्द्वादशाहादिवत्कोऽप्यस्त्येषां मान आत्मा शमिभिरधिगतो वैकृतानैनमीयुः ॥१२॥'१९॥

बन्दुवाच ।
त्रयोदशी तिथिरुक्ता प्रशस्ता
त्रयोदशद्वीपवती मही च ।
लोमश उवाच ।
एतावदुक्त्वा विरराम बन्दी
श्लोकस्यार्धं व्याजहाराष्टवक्रः ।
अष्टावक्र उवाच ।
त्रयोदशाहानि ससार केशी
त्रयोदशादीन्यतिच्छन्दांसि चाहुः ॥२०
ततो महानुदतिष्ठन्निनाद-
स्तूष्णींभूतं सूतपुत्रं निशम्य ।
अधोमुखं ध्यानपरं तदानी-
मष्टावक्रं चाप्युदीर्यन्तमेव ॥ २१
तस्मिंस्तथा संकुले वर्तमाने
स्फीते यज्ञे जनकस्योत राज्ञः ।
अष्टावक्रं पूजयन्तोऽभ्युपेयु-
र्विप्राः सर्वे प्राञ्जलयः प्रतीताः ॥ २२
अष्टावक्र उवाच ।
अनेनैव ब्राह्मणाः शुश्रुवांसो
वादे जित्वा सलिले मज्जिताः प्राक् ।
तानेव धर्मानयमद्य बन्दी
प्राप्नोतु गृह्याशु निमज्जयैनम् ॥ २३
बन्दुवाच ।
अहं पुत्रो वरुणस्योत राज्ञ-
स्तत्रास सत्रं द्वादशवार्षिकं वै ।
सत्रेण ते जनक तुल्यकालं
तदर्थं ते प्रहिता मे द्विजाग्र्याः ॥ २४
ते तु सर्वे वरुणस्योत यज्ञं
द्रष्टुं गता इम आयान्ति भूयः ।
अष्टावक्रं पूजये पूजनीयं
यस्य हेतोर्जनितारं समेष्ये ॥ २५
अष्टावक्र उवाच ।
विप्राः समुद्राम्भसि मज्जिता ये
वाचा जिता मेधया वा विदानाः ।
तां मेधया वाचमथोज्जहार
यथा वाचमवचिन्वन्ति सन्तः ॥ २६

ब्रह्मलोकं गतानामेव ज्ञानं भवतीति केषांचिन्निर्बन्धः कृतयुगादावेव ज्ञानं भवति न कलावित्यपि केचित्तान्निराचष्टे त्रयोदशीति । देशकालापेक्षा चित्तशुद्धिर्न पुरुषयत्नसाध्येत्याक्षेपो बन्दिप्रोक्तपूर्वार्धेन ॥ न त्रेतादौ सधर्मः सकलुषसमयेनापि भूरादिषट्के नो पातालेषु सप्तस्वपि तु कृतयुगे सत्यलोके च सोऽस्ति । तस्माद्या सर्वखिन्ना तिथिरियमपि न स्वात्मयेतांव शस्ता नो वा लोकास्तपोन्ता इति मखतपसौ श्रेयसे नात्मचर्चा उत्तरार्धे तु केशी अग्निर्वायुः सूर्यश्च केशिन इति वैदिकप्रसिद्धेरग्न्यादिवदसंग आत्मा । त्रयोदशसंख्यानि दशेन्द्रियाणि बुद्धिमनोऽहंकाराख्यानि । अहःशब्दोऽत्र क्रतुवाच्यपि लक्षणया विषयेन्द्रियसंबन्धरूपभोगाख्ये यज्ञे वर्तते । असंगस्याप्यात्मनो बुद्ध्यादिसंगात् ध्यायतीव लेलायतीवेत्यादिश्रुतेः संगित्वमिव भाति । अतो बुद्ध्यादयः शोधनीया एव न तूदासीत । न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति श्रुत्यवष्टम्भेन इहैव देशे काले च मुक्तिरस्तीति भावः । यतः अतिच्छन्दांसि छादकमज्ञानमतिक्रान्तानि धर्मादीनि द्वादश । त्रयोदशादीनि त्रयोदशानां बुद्ध्यादीनां आदीनि, अदनशीलानि । धर्मादिबलादुत्पन्ने ज्ञाने बुद्ध्यादयो निवर्तन्त इत्यर्थः । तेषु बुद्ध्यादिषु निवृत्तेषु ब्रह्माद्वैतं कथयितुमागतोऽस्मीति प्राक्प्रतिज्ञातं तदिह स्वयमेव प्रकाशत इत्युक्तमिति भावः । एतदर्थत्रैव देवा इव मुनिमनुजा यान्ति सार्वात्म्यमित्याद्युक्तेः साहं मनोर्धाखदशकमनुयन्नाग्निवाय्वर्कतुल्यः । संगी वासंग्यपि स्यात्त्रिदशगणमदन्नेव धर्मादयस्ते । येतिच्छन्दोऽभिधानास्तिमिरमतिगता एवमद्वैतसिद्धिः । तदयं संग्रहः ॥ 'तत्त्वन्धीः साक्षिसाक्ष्ये श्रुतिषु कृतिपरोऽस्त्यत्र कर्तापि सोत्ता पञ्चानां षष्ठमेतत्त्वमथ समतिक्रैस्तैः करोत्यष्टमोऽन्यः । सोऽहं साक्षी ततोऽन्ये गुणमयमखिलं चिन्मयास्ते सदुःखा चित्स्यात् दुःखीतरा सा शमयुगिह चिदद्वैतभागष्टवक्रः ॥१५॥' ग्रन्थविस्तरभयादुदाहृतोपक्रमाननुगुण्यात् क्लिष्टत्वात् प्रयोजनवदर्थापर्यवसायित्वाच्च टीकान्तरोक्ता• अर्था नेह प्रदर्शिताः ॥ २० ॥ सूतपुत्रं शोभनः ऊतः पटस्तद्वत्प्रकृतिविकृत्यात्मकैस्तन्तुभिरोतुभिश्च प्रोतत्वात् ऊतः क्रतुरपि सूतः शोभनयज्ञो वरुणस्तस्य पुत्रम् । स इत्तन्तु स विजानात्योमिति मन्त्रवर्णात्तन्त्वाद्यात्मकस्य क्रतोरूतशब्दवाच्यत्वम् । उदीर्यन्तं उदीर्यमाणं स्तूयमानमित्यर्थः ॥ २१ ॥ शुश्रुवांसः पण्डिताः ॥ २३ ॥ जनितारं वरुणम् ॥ २५ ॥ विप्रा इति । वाचा उच्चैः पाठेनैव । उत मेधया ऊहापोहकौशलेन । विप्राः विदानाः पण्डिता अपि जिताः मज्जिताश्च तां प्रसिद्धां वाचं वेदमयीं मेधयासहितां बन्दिना कुतर्कार्णवे मज्जितां अहं यथा उज्जहार उद्धृतवानस्मि तथा सन्तः सदसद्वचनविवेककुशलाः अवचिन्वन्ति परीक्षयन्ति । लोडर्थे लट् । परीक्षयन्त्वित्यर्थः ॥ २६ ॥

अग्निर्दहञ्जातवेदाः सतां गृहान्-
विसर्जयंस्तेजसा न स्म धाक्षीत् ।
बालेषु पुत्रेषु कृपणं वदत्सु
तथा वाचमवचिन्वन्ति सन्तः ॥ २७

श्लेष्मातकी क्षीणवर्चाः शृणोषि
उताहो त्वां स्तुतयो मादयन्ति ।
हस्तीव त्वं जनक वितुद्यमानो
न मामिकां वाचमिमां शृणोषि ॥ २८

जनक उवाच ।

शृणोमि वाचं तव दिव्यरूपा-
ममानुषीं दिव्यरूपोऽसि साक्षात् ।
अजैषीर्यद्बन्दिनं त्वं विवादे
निसृष्ट एष तव कामोऽद्य बन्दी ॥ २९

अष्टावक्र उवाच ।

नानेन जीवता कश्चिदर्थो मे बन्दिना नृप ।
पिता यद्यस्य वरुणो मज्जयैनं जलाशये ॥ ३०

बन्द्युवाच ।

अहं पुत्रो वरुणस्योत राज्ञो
न मे भयं विद्यते मज्जितस्य ।
इमं मुहूर्तं पितरं द्रक्ष्यतेऽय-
मष्टावक्रश्चिरनष्टं कहोडम् ॥ ३१

लोमश उवाच ।

ततस्ते पूजिता विप्रा वरुणेन महात्मना ।
उदतिष्ठंस्ततः सर्वे जनकस्य समीपतः ॥ ३२

कहोड उवाच ।

इत्यर्थमिच्छन्ति सुताञ्जना जननकर्मणा ।
यदहं नाशकं कर्तुं तत्पुत्रः कृतवान्मम ॥ ३३

उताबलस्य बलवानुत बालस्य पण्डितः ।
उत वाविदुषो विद्वान्पुत्रो जनक जायते ॥ ३४

शितेन ते परशुना स्वयमेवान्तको नृप ।
शिरांस्यपाहरन्नाजौ रिपूणां भद्रमस्तु ते ॥ ३५

महदौक्थ्यं गीयते साम चाग्र्यं
सम्यक्सोमः पीयते चात्र सत्रे ।
शुचीन्मार्गान्प्रतिजगृहुश्च हृष्टाः
साक्षाद्देवा जनकस्योत राज्ञः ॥ ३६

लोमश उवाच ।

समुत्थितेष्वथ सर्वेषु राज-
न्विप्रेषु तेष्वधिकं सुप्रभेषु ।
अनुज्ञातो जनकेनाथ राज्ञा
विवेश तोयं सागरस्योत बन्दी ॥ ३७

अष्टावक्रः पितरं पूजयित्वा
संपूजितो ब्राह्मणैस्तैर्यथावत् ।
प्रत्याजगामाश्रममेव चाग्र्यं
जित्वा सौतिं सहितो मातुलेन ॥ ३८

ततोऽष्टावक्रं मातुरथान्तिके पिता
नदीं समङ्गां शीघ्रमिमां विशस्व ।
प्रोवाच चैनं स तथा विवेश
समैरङ्गैश्चापि बभूव सद्यः ॥ ३९

नदी समङ्गा च बभूव पुण्या
यस्यां स्नातो मुच्यते किल्बिषाद्धि ।
त्वमप्येनां स्नानपानावगाहैः
सभ्रातृकः सहभार्यो विशस्व ॥ ४०

ननु बन्दिनोद्धृतां वार्तां त्वमेव कुतर्कार्णवे मज्जितवानसि तत्र किं सद्भिः परीक्षणीयमित्याशङ्क्याह अग्निर्दहन्निति । अग्निः दहन् स्वभावेन दाहकोऽपि जातवेदाः जातानि सतामसतां च वृत्तानि वेद जानातीति जातवेदाः । सतां सत्याभिसंधीनां गृहान् शरीराणि विसर्जयन् वर्जयन् तेजसा यथा अधाक्षीत्स्म अर्थादनृताभिसंधिगृहान् । नशब्द उपमार्थे । अपो न नावादुरितातरेमेत्यादिवत् । यथा तप्तपरशुग्रहणे वह्निः सत्याभिसंधिं न दहति सत्यपक्षपाती न तु जातिवयोविद्यादिपक्षपाती एवं सन्तोऽपि बालादिषु । अतो बालवचनमिति मद्वाक्यं नावमन्तव्यमिति भावः ॥ २७ ॥ श्लेष्मातकीशब्दितस्तरुविशेषस्तस्य पत्रेषु भोजनं तत्फलभक्षणं च बुद्धिघ्नं दोषकरं चेति प्रसिद्धम् ॥ २८ ॥ अद्य तव कामो निसृष्टः एष बन्दी दृश्यतामिति शेषः ॥ २९ ॥ इत्यर्थं एतदर्थम् ॥ ३३ ॥ शितेन तीक्ष्णेन ते तव रिपूणामित्यन्वयः । यमादपि तव शत्रुसंहरणशक्तिरधिकेति भावः ॥ ३५ ॥ औक्थ्यं उक्थ्याख्यक्रतुविशेषे गेयम् । साक्षादित्यपरोक्षं देवतासांनिध्यमुच्यते ॥ ३६ ॥ सौतिं सूतस्य वरुणस्य पुत्रम् ॥ ३८ ॥ समानि अङ्गानि करोतीति समङ्गेति योगो दर्शितः शकन्ध्वादित्वात् पररूपम् ॥ ३९ ॥

अत्र कौन्तेय सहितो भ्रातृभिस्त्वं
सुखोषितः सह विप्रैः प्रतीतः ।
पुण्यान्यन्यानि शुचिकर्मैकभक्ति-
र्मया सार्धं चरितास्याजमीढ ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां अष्टावक्रीये चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

## १३५

लोमश उवाच ।
एषा मधुविला राजन्समङ्गा संप्रकाशते ।
एतत्कर्दमिलं नाम भरतस्याभिषेचनम् ॥ १
अलक्ष्म्या किल संयुक्तो वृत्रं हत्वा शचीपतिः ।
आप्लुतः सर्वपापेभ्यः समङ्गायां व्यमुच्यत ॥ २
एतद्विनशनं कुक्षौ मैनाकस्य नरर्षभ ।
अदितिर्यत्र पुत्रार्थं तदन्नमपचत्पुरा ॥ ३
एनं पर्वतराजानमारुह्य भरतर्षभाः ।
अयशस्यामसंशब्द्यामलक्ष्मीं व्यपनोत्स्यथ ॥ ४
एते कनखला राजन्नृषीणां दयिता नगाः ।
एषा प्रकाशते गङ्गा युधिष्ठिर महानदी ॥ ५
सनत्कुमारो भगवानत्र सिद्धिमगात्पुरा ।
आजमीढावगाह्यैनां सर्वपापैः प्रमोक्ष्यसे ॥ ६
अपां ह्रदं च पुण्याख्यं भृगुतुङ्गं च पर्वतम् ।
उष्णीगङ्गे च कौन्तेय सामात्यः समुपस्पृश ॥ ७
आश्रमः स्थूलशिरसो रमणीयः प्रकाशते ।
अत्र मानं च कौन्तेय क्रोधं चैव विवर्जय ॥ ८
एष रैभ्याश्रमः श्रीमान्पाण्डवेय प्रकाशते ।
भारद्वाजो यत्र कविर्यवक्रीतो व्यनश्यत ॥ ९
युधिष्ठिर उवाच ।
कथं युक्तोऽभवदृषिर्भरद्वाजः प्रतापवान् ।
किमर्थं च यवक्रीतः पुत्रोऽनश्यत वै मुनेः ॥ १०
एतत्सर्वं यथावृत्तं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कर्मभिर्देवकल्पानां कीर्त्यमानैर्भृशं रमे ॥ ११
लोमश उवाच ।
भरद्वाजश्च रैभ्यश्च सखायौ संबभूवतुः ।
तावूषतुरिहात्यन्तं प्रीयमाणावनन्तरम् ॥ १२
रैभ्यस्य तु सुतावास्तामर्वावसुपरावसू ।
आसीद्यवक्रीः पुत्रस्तु भरद्वाजस्य भारत ॥ १३
रैभ्यो विद्वान्सहापत्यस्तपस्वी चेतरोऽभवत् ।
तयोश्चाप्यतुला कीर्तिर्बाल्यात्प्रभृति भारत॥ १४
यवक्रीः पितरं दृष्ट्वा तपस्विनमसत्कृतम् ।
दृष्ट्वा च सत्कृतं विप्रै रैभ्यं पुत्रैः सहानघः ॥ १५
पर्यतप्यत तेजस्वी मन्युनाभिपरिप्लुतः ।
तपस्तेपे ततो घोरं वेदज्ञानाय पाण्डव ॥ १६
स समिद्धे महत्यग्नौ शरीरमुपतापयन् ।
जनयामास संतापमिन्द्रस्य सुमहातपाः ॥ १७
तत इन्द्रो यवक्रीतमुपगम्य युधिष्ठिर ।
अब्रवीत्कस्य हेतोस्त्वमास्थितस्तप उत्तमम् ॥ १८
यवक्रीत उवाच ।
द्विजानामनधीता वै वेदाः सुरगणार्चित ।
प्रतिभान्त्विति तप्येऽहमिदं परमकं तपः ॥ १९
स्वाध्यायार्थं समारम्भो ममायं पाकशासन ।
तपसा ज्ञातुमिच्छामि सर्वज्ञानानि कौशिक॥२०
कालेन महता वेदाः शक्या गुरुमुखाद्विभो ।
प्राप्तुं तस्मादयं यत्नः परमो मे समास्थितः ॥ २१
इन्द्र उवाच ।
अमार्ग एष विप्रर्षे येन त्वं यातुमिच्छसि ।
किं विघातेन ते विप्र गच्छाधीहि गुरोर्मुखात्२२

---

प्रतीतो विश्रब्धः ॥ ४१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

१३५

एषेति । मधुविलेति अष्टावक्राङ्गसमीकरणात्पूर्वं समङ्गाया एव नाम ॥ १ ॥ अन्नं ब्रह्मौदनम् । आदतिः पुत्रकामा । साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचदिति श्रुतेः ॥ ३ ॥ अयशस्यां अयशस्करीम् असंशब्द्यां अकीर्तनीयाम् ॥४॥ इतरो भरद्वाजस्तपस्व्येव न तु शिष्यादिसंपन्नः ॥१४॥ सर्वज्ञानानि सर्वशास्त्राणि ॥ २० ॥ विघातेन आत्मनाशनेन ॥ २२ ॥

लोमश उवाच ।

एवमुक्त्वा गतः शक्रो यवक्रीरपि भारत ।
भूय एवाकरोद्यत्नं तपस्यमितविक्रमः ॥ २३
घोरेण तपसा राजंस्तप्यमानो महत्तपः ।
संतापयामास भृशं देवेन्द्रमिति नः श्रुतम् ॥ २४
तं तथा तप्यमानं तु तपस्तीव्रं महामुनिम् ।
उपेत्य बलभिद्देवो वारयामास वै पुनः ॥ २५
अशक्योऽर्थः समारब्धो नैतद्बुद्धिकृतं तव ।
प्रतिभास्यन्ति वै वेदास्तव चैव पितुश्च ते ॥ २६

यवक्रीत उवाच ।

न चैतदेवं क्रियते देवराज ममेप्सितम् ।
महता नियमेनाहं तप्स्ये घोरतरं तपः ॥ २७
समिद्धेऽग्नावुपकृत्याङ्गमङ्गं
होष्यामि वा मघवंस्तन्निबोध ।
यद्येतदेवं न करोषि कामं
ममेप्सितं देवराजेह सर्वम् ॥ २८

लोमश उवाच ।

निश्चयं तमभिज्ञाय मुनेस्तस्य महात्मनः ।
प्रतिवारणहेत्वर्थं बुद्ध्या संचिन्त्य बुद्धिमान् ॥ २९
तत इन्द्रोऽकरोद्रूपं ब्राह्मणस्य तपस्विनः
अनेकशतवर्षस्य दुर्बलस्य सयक्ष्मणः ॥ ३०
यवक्रीतस्य यत्तीर्थमुचितं शौचकर्मणि ।
भागीरथ्यां तत्र सेतुं वालुकाभिश्चकार सः ॥ ३१
यदास्य वदतो वाक्यं न स चक्रे द्विजोत्तमः ।
वालुकाभिस्ततः शक्रो गङ्गां समभिपूरयन् ॥ ३२
वालुकामुष्टिमनिशं भागीरथ्यां व्यसर्जयत् ।
सेतुमभ्यारभच्छक्रो यवक्रीतं निदर्शयन् ॥ ३३
तं ददर्श यवक्रीतो यत्नवन्तं निबन्धने ।
प्रहसंश्चाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ॥ ३४
किमिदं वर्तते ब्रह्मन्किं च ते ह चिकीर्षितम् ।
अतीव हि महान्यत्नः क्रियतेऽयं निरर्थकः ॥ ३५

इन्द्र उवाच ।

बन्धिष्ये सेतुना गङ्गां सुखः पन्था भविष्यति ।
क्लिश्यते हि जनस्तात तरमाणः पुनः पुनः ॥ ३६

यवक्रीत उवाच ।

नायं शक्यस्त्वया बद्धुं महानोघस्तपोधन ।
अशक्याद्विनिवर्तस्व शक्यमर्थं समारभ ॥ ३७

इन्द्र उवाच ।

यथैव भवता चेदं तपो वेदार्थमुद्यतम् ।
अशक्यं तद्वदस्माभिरयं भारः समाहितः ॥ ३८

यवक्रीत उवाच ।

यथा तव निरर्थोऽयमारम्भस्त्रिदशेश्वर ।
तथा यदि ममापीदं मन्यसे पाकशासन ॥ ३९
क्रियतां यद्भवेच्छक्यं त्वया सुरगणेश्वर ।
वरांश्च मे प्रयच्छान्यान्यैरन्यान्भवितास्म्यति ४०

लोमश उवाच ।

तस्मै प्रादाद्वरानिन्द्र उक्तवान्यान्महातपाः ।
प्रतिभास्यन्ति ते वेदाः पित्रा सह यथेप्सिताः ४१
यच्चान्यत्काङ्क्षसे कामं यवक्रीर्गम्यतामिति ।
स लब्धकामः पितरं समेत्याथेदमब्रवीत् ॥ ४२

यवक्रीत उवाच ।

प्रतिभास्यन्ति वै वेदा मम तातस्य चोभयोः ।
अति चान्यान्भविष्यावो वरा लब्धास्तथा मया ॥

भरद्वाज उवाच ।

दर्पस्ते भविता तात वराँल्लब्ध्वा यथेप्सितान् ।
स दर्पपूर्णः कृपणः क्षिप्रमेव विनङ्क्ष्यसि ॥ ४४
अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा देवैरुदाहृताः ।
मुनिरासीत्पुरा पुत्र बालधिर्नाम वीर्यवान् ॥ ४५
स पुत्रशोकादुद्विग्नस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ।
भवेन्मम सुतोऽमर्त्य इति तं लब्धवांश्च सः ॥ ४६
तस्य प्रसादो वै देवैः कृतो न त्वमरैः समः ।
नामर्त्यो विद्यते मर्त्यो निमित्तायुर्भविष्यति ॥ ४७

बालधिरुवाच ।

यथेमे पर्वताः शश्वत्तिष्ठन्ति सुरसत्तमाः ।
अक्षयास्तन्निमित्तं मे सुतस्यायुर्भविष्यति ॥ ४८

भरद्वाज उवाच ।

तस्य पुत्रस्तदा जज्ञे मेधावी क्रोधनस्तदा ।
स तच्छ्रुत्वाकरोद्दर्पमृषींश्चैवावमन्यत ॥ ४९
विकुर्वाणो मुनीनां च व्यचरत्स महीमिमाम् ।
आससाद महावीर्यं धनुषाक्षं मनीषिणम् ॥ ५०
तस्यापचक्रे मेधावी तं शशाप स वीर्यवान् ।
भव भस्मेति चोक्तः स न भस्म समपद्यत ॥ ५१
धनुषाक्षस्तु तं दृष्ट्वा मेधाविनमनामयम् ।
निमित्तमस्य महिषैर्भेदयामास वीर्यवान् ॥ ५२

न प्रतिभास्यन्तीति नकारावृत्त्या योज्यम् ॥ २६ ॥ अमर्त्य इति च्छेदः अमर इत्यर्थः ॥ ४६ ॥ निमित्तं पर्वतान् भेदयामास खण्डयामास ॥ ५२ ॥

स निमित्ते विनष्टे तु ममार सहसा शिशुः ।
तं मृतं पुत्रमादाय विललाप ततः पिता ॥ ५३
लालप्यमानं तं दृष्ट्वा मुनयः परमार्तवत् ।
ऊचुर्वेदविदः सर्वे गाथां यां तां निबोध मे ॥ ५४
न दिष्टमर्थमत्येतुमीशो मर्त्यः कथंचन ।
महिषैर्भेदयामास धनुषाक्षो महीधरान् ॥ ५५
एवं लब्ध्वा वरान्बाला दर्पपूर्णास्तपस्विनः ।
क्षिप्रमेव विनश्यन्ति यथा न स्यात्तथा भवान् ॥
एष रैभ्यो महावीर्यः पुत्रौ चास्य तथाविधौ ।
तं यथा पुत्र नाभ्येषि तथा कुर्यास्त्वतन्द्रितः ५७
स हि क्रुद्धः समर्थश्च पुत्रं पीडयितुं रुषा ।
रैभ्यश्चापि तपस्वी च कोपनश्च महानृषिः ॥ ५८
यवक्रीत उवाच ।
एवं करिष्ये मा तापं तात कार्षीः कथंचन ।
यथा हि मे भवान्मान्यस्तथा रैभ्यः पिता मम ॥
लोमश उवाच ।
उक्त्वा स पितरं श्लक्ष्णं यवक्रीरकुतोभयः ।
विप्रकुर्वन्नृषीनन्यानतुष्यत्परया मुदा ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां यवक्रीतोपाख्याने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

## १३६

लोमश उवाच ।
चंक्रम्यमाणः स तदा यवक्रीरकुतोभयः ।
जगाम माधवे मासि रैभ्याश्रमपदं प्रति ॥ १
स ददर्शाश्रमे रम्ये पुष्पितद्रुमभूषिते ।
विचरन्तीं स्नुषां तस्य किन्नरीमिव भारत ॥ २
यवक्रीस्तामुवाचेदमुपातिष्ठस्व मामिति ।
निर्लज्जो लज्जया युक्तां कामेन हृतचेतनः ॥ ३
सा तस्य शीलमाज्ञाय तस्माच्छापाच्च बिभ्यती ।
तेजस्वितां च रैभ्यस्य तथेत्युक्त्वा जगाम ह ॥ ४
तत एकान्तमुन्नीय मज्जयामास भारत ।
आजगाम तदा रैभ्यः स्वमाश्रममरिंदम ॥ ५
रुदतीं च स्नुषां दृष्ट्वा भार्यामार्तां परावसोः ।
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा पर्यपृच्छद्युधिष्ठिर ॥ ६
सा तस्मै सर्वमाचष्ट यवक्रीभाषितं शुभा ।
प्रत्युक्तं च यवक्रीतं प्रेक्षापूर्वं तथात्मना ॥ ७
शृण्वानस्यैव रैभ्यस्य यवक्रेस्तद्विचेष्टनम् ।
दहन्निव तदा चेतः क्रोधः समभवन्महान् ॥ ८
स तदा मन्युनाविष्टस्तपस्वी कोपनो भृशम् ।
अवलुच्य जटामेकां जुहावाग्नौ सुसंस्कृतैः ॥ ९
ततः समभवन्नारी तस्या रूपेण संमिता ।
[illegible] परां चापि जुहावाग्नौ जटां पुनः ॥ १०
ततः समभवद्रक्षो घोराक्षं भीमदर्शनम् ।
अब्रूतां तौ तदा रैभ्यं किं कार्यं करवामहे ॥ ११
तावब्रवीदृषिः क्रुद्धो यवक्रीर्वध्यतामिति ।
जग्मतुस्तौ तथेत्युक्त्वा यवक्रीतजिघांसया ॥ १२
ततस्तं समुपास्थाय कृत्या सृष्टा महात्मना ।
कमण्डलुं जहारास्य मोहयित्वेव भारत ॥ १३
उच्छिष्टं तु यवक्रीतमपकृष्टकमण्डलुम् ।
तत उद्यतशूलः स राक्षसः समुपाद्रवत् ॥ १४
तमाद्रवन्तं संप्रेक्ष्य शूलहस्तं जिघांसया ।
यवक्रीः सहसोत्थाय प्राद्रवद्येन वै सरः ॥ १५
जलहीनं सरो दृष्ट्वा यवक्रीस्त्वरितः पुनः ।
जगाम सरितः सर्वास्ताश्चाप्यासन्विशोषिताः १६
स काल्यमानो घोरेण शूलहस्तेन रक्षसा ।
अग्निहोत्रे पितुर्भीतः सहसा प्रविवेश ह ॥ १७

दिष्टं दैवविहितम् ॥५५॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

१३६

चंक्रम्यमाणः भृशं पर्यटन् । माधवे वैशाखे ॥ १ ॥ हृतचेतनः वशीकृतचित्तः ॥३॥ एकान्तं उन्नीय एकान्ते कार्यं रतं समाप्य । मज्जयामास शोकसमुद्रे इति शेषः । सज्जयामासेति पाठे स्वशत्रुमपकर्तुं रैभ्यं संनद्धं चकार । तदेवाह आजगामेत्यादिना ॥ ५ ॥ प्रत्युक्तं प्रत्याख्यातम् । मदुपरि बलात्कारं कृतवानित्युक्तवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ सुसंस्कृतैः स्वरवर्णादिसंस्कारयुक्तैर्मन्त्रैः ॥ ९ ॥ नारी कृत्या ॥ १० ॥ काल्यमानः सर्वतो निषिध्यमानः । अग्निहोत्रे अग्निहोत्रशालायाम् ॥ १७ ॥

स वै प्रविशमानस्तु शूद्रेणान्धेन रक्षिणा ।
निगृहीतो बलाद्वारि सोऽवातिष्ठत पार्थिव ॥ १८
निगृहीतं तु शूद्रेण यवक्रीतं स राक्षसः ।
ताडयामास शूलेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ १९
यवक्रीतं स हत्वा तु राक्षसो रैभ्यमागमत् ।
अनुज्ञातस्तु रैभ्येण तया नार्या सहावसत् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां यवक्रीतोपाख्याने षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

## १३७

लोमश उवाच ।

भरद्वाजस्तु कौन्तेय कृत्वा स्वाध्यायमाह्निकम् ।
समित्कलापमादाय प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥ १
तं स्म दृष्ट्वा पुरा सर्वे प्रत्युत्तिष्ठन्ति पावकाः ।
न त्वेतमुपतिष्ठन्ति हतपुत्रं तदाग्नयः ॥ २
वैकृतं त्वग्निहोत्रे स लक्षयित्वा महातपाः ।
तमन्धं शूद्रमासीनं गृहपालमथाब्रवीत् ॥ ३
किं नु मे नाग्नयः शूद्र प्रतिनन्दन्ति दर्शनम् ।
त्वं चापि न यथापूर्वं कच्चित्क्षेममिहाश्रमे ॥ ४
कच्चिन्न रैभ्यं पुत्रो मे गतवानल्पचेतनः ।
एतदाचक्ष्व मे शीघ्रं न हि शुद्ध्यति मे मनः ॥ ५

शूद्र उवाच ।

रैभ्यं यातो नूनमयं पुत्रस्ते मन्दचेतनः ।
तथा हि निहतः शेते राक्षसेन बलीयसा ॥ ६
प्रकाल्यमानस्तेनायं शूलहस्तेन रक्षसा ।
अग्न्यगारं प्रति द्वारि मया दोर्भ्यां निवारितः ॥ ७
ततः स विहताशोऽत्र जलकामोऽशुचिर्ध्रुवम् ।
निहतः सोऽतिवेगेन शूलहस्तेन रक्षसा ॥ ८
भरद्वाजस्तु तच्छ्रुत्वा शूद्रस्य विप्रियं महत् ।
गतासुं पुत्रमादाय विललाप सुदुःखितः ॥ ९

भरद्वाज उवाच ।

ब्राह्मणानां किलार्थाय ननु त्वं तप्तवांस्तपः ।
द्विजानामनधीता वै वेदाः संप्रति भान्त्विति १०
तथा कल्याणशीलस्त्वं ब्राह्मणेषु महात्मसु ।
अनागाः सर्वभूतेषु कर्कशत्वमुपेयिवान् ॥ ११
प्रतिषिद्धो मया तात रैभ्यावसथदर्शनात् ।
गतवानेव तं द्रष्टुं कालान्तकयमोपमम् ॥ १२
यः स जानन्महातेजा वृद्धस्यैकं ममात्मजम् ।
गतवानेव कोपस्य वशं परमदुर्मतिः ॥ १३
पुत्रशोकमनुप्राप्य एष रैभ्यस्य कर्मणा ।
त्यक्ष्यामि त्वामृते पुत्र प्राणानिष्टतमान्भुवि ॥ १४
यथाहं पुत्रशोकेन देहं त्यक्ष्यामि किल्बिषी ।
तथा ज्येष्ठः सुतो रैभ्यं हिंस्याच्छीघ्रमनागसम् १५
सुखिनो वै नरा येषां जात्या पुत्रो न विद्यते ।
ये पुत्रशोकमप्राप्य विचरन्ति यथासुखम् ॥ १६
ये तु पुत्रकृताच्छोकाद्भृशं व्याकुलचेतसः ।
शपन्तीष्टान्सखीनार्तास्तेभ्यः पापतरो नु कः ॥१७
परासुश्च सुतो दृष्टः शप्तश्चेष्टः सखा मया ।
ईदृशीमापदं कोऽत्र द्वितीयोऽनुभविष्यति ॥ १८

लोमश उवाच ।

विलप्यैवं बहुविधं भरद्वाजोऽदहत्सुतम् ।
सुसमिद्धं ततः पश्चात्प्रविवेश हुताशनम् ॥ १९

इति श्रीम० आरण्यके प० तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां यवक्रीतोपाख्याने सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

---

अवातिष्ठत बहिरेव ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके प० नै० भा० षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

१३७

भरद्वाज इति । आह्निकं स्वाध्यायं प्रत्यहं कर्तव्यं ब्रह्मयज्ञम् ॥१॥ हतपुत्रत्वेन आशौचयुक्तत्वात्॥२॥ शुद्ध्यति निःसंदेहं भवति ॥ ५ ॥ अग्न्यगारं प्रविष्टस्य रक्षोभयं न भवेदिति भावः ॥ ७ ॥ शूद्रस्य शूद्रकृतं विप्रियं पुत्रनिरोधेन कृतम् ॥ ९ ॥ किल्बिषी शोकाक्रान्तः ॥ १५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

## १३८

लोमश उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु बृहद्द्युम्नो महीपतिः ।
सत्रं तेने महाभागो रैभ्ययाज्यः प्रतापवान् ॥ १
तेन रैभ्यस्य वै पुत्राववार्वावसुपरावसू ।
वृतौ सहायौ सत्रार्थं बृहद्द्युम्नेन धीमता ॥ २
तत्र तौ समनुज्ञातौ पित्रा कौन्तेय जग्मतुः ।
आश्रमे त्वभवद्रैभ्यो भार्या चैव परावसोः ॥ ३
अथावलोककोऽगच्छद्गृहानेकः परावसुः ।
कृष्णाजिनेन संवीतं ददर्श पितरं वने ॥ ४
जघन्यरात्रे निद्रान्धः सावशेषे तमस्यपि ।
चरन्तं गहनेऽरण्ये मेने स पितरं मृगम् ॥ ५
मृगं तु मन्यमानेन पिता वै तेन हिंसितः ।
अकामयानेन तदा शरीरत्राणमिच्छता ॥ ६
तस्य स प्रेतकार्याणि कृत्वा सर्वाणि भारत ।
पुनरागम्य तत्सत्रमब्रवीद्भ्रातरं वचः ॥ ७
इदं कर्म न शक्तस्त्वं वोढुमेकः कथंचन ।
मया च हिंसितस्तातो मन्यमानेन तं मृगम् ॥ ८
सोऽस्मदर्थे व्रतं तात चर त्वं ब्रह्महिंसनम् ।
समर्थोऽप्यहमेकाकी कर्म कर्तुमिदं मुने ॥ ९

अर्वावसुरुवाच ।

करोतु वै भवान्सत्रं बृहद्द्युम्नस्य धीमतः ।
ब्रह्मवध्यां चरिष्येऽहं त्वदर्थे नियतेन्द्रियः ॥ १०

लोमश उवाच ।

स तस्य ब्रह्मवध्यायाः पारं गत्वा युधिष्ठिर ।
अर्वावसुस्तदा सत्रमाजगाम पुनर्मुनिः ॥ ११
ततः परावसुर्दृष्ट्वा भ्रातरं समुपस्थितम् ।
बृहद्द्युम्नमुवाचेदं वचनं हर्षगद्गदम् ॥ १२
एष ते ब्रह्महा यज्ञं मा द्रष्टुं प्रविशेदिति ।
ब्रह्महा प्रेक्षितेनापि पीडयेत्त्वामसंशयम् ॥ १३

लोमश उवाच ।

तच्छ्रुत्वैव तदा राजा प्रेष्यानाह स विट्पते ।
प्रेष्यैरुत्सार्यमाणस्तु राजन्नर्वावसुस्तदा ॥ १४
न मया ब्रह्महत्येयं कृतेत्याह पुनःपुनः ।
उच्यमानोऽसकृत्प्रेष्यैर्ब्रह्मन्निति भारत ॥ १५
नैव स्म प्रतिजानाति ब्रह्मवध्यां स्वयंकृताम् ।
मम भ्रात्रा कृतमिदं मया स परिमोक्षितः ॥ १६
स तथा प्रवदन्क्रोधात्तैश्च प्रेष्यैः प्रभाषितः ।
तूष्णीं जगाम ब्रह्मर्षिर्वनमेव महातपाः ॥ १७
उग्रं तपः समास्थाय दिवाकरमथाश्रितः ।
रहस्यवेदं कृतवान्सूर्यस्य द्विजसत्तमः ॥ १८
मूर्तिमांस्तं ददर्शाथ स्वयमग्रभुगव्ययः

लोमश उवाच ।

प्रीतास्तस्याभवन्देवाः कर्मणार्वावसोर्नृप ॥ १९
तं ते प्रवरयामासुर्निरासुश्च परावसुम् ।
ततो देवा वरं तस्मै ददुरग्निपुरोगमाः ॥ २०
स चापि वरयामास पितुरुत्थानमात्मनः ।
अनागस्त्वं ततो भ्रातुः पितुश्चास्मरणं वधे ॥ २१
भरद्वाजस्य चोत्थानं यवक्रीतस्य चोभयोः ।
प्रतिष्ठां चापि वेदस्य सौरस्य द्विजसत्तमः
एवमस्त्विति तं देवाः प्रोचुश्चापि वरान्ददुः ॥२२
ततः प्रादुर्बभूवुस्ते सर्व एव युधिष्ठिर ।
अथाब्रवीद्यवक्रीतो देवानग्निपुरोगमान् ॥ २३
समधीतं मया ब्रह्म व्रतानि चरितानि च ।
कथं च रैभ्यः शक्तो मामधीयानं तपस्विनम् २४
तथायुक्तेन विधिना निहन्तुममरोत्तमाः ।

देवा ऊचुः ।

मैवं कृथा यवक्रीत तथा वदसि वै मुने ।
ऋते गुरुमधीता हि सुखं वेदास्त्वया पुरा ॥ २५
अनेन तु गुरून्दुःखात्तोषयित्वात्मकर्मणा ।
कालेन महता क्लेशाद्ब्रह्माधिगतमुत्तमम् ॥ २६

लोमश उवाच ।

यवक्रीतमथोक्त्वैवं देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ।
संजीवयित्वा तान्सर्वान्पुनर्जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥२७

---

१३८

एतस्मिन्निति ॥ १ ॥ अवलोककः अवलोकनार्थी । गृहान्भार्याम् ॥ ४ ॥ विट्पते हे प्रजाधीश ॥१४॥ प्रभाषितः मिथ्यावाद्यसीति अधिक्षिप्तः ॥ १७ ॥ रहस्यवेदं सूर्यमन्त्रप्रकाशकं वेदम् । घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इति त्रीणि । आदित्य इति त्रीणि । ' एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाभिषिक्तम् ' इति काठकब्राह्मणम् कृतवान् ददर्श ॥ १८ ॥ मूर्तिमान्सूर्यस्तं द्विजं ददर्श आत्मानं दर्शयामास ॥ १९ ॥ तं देवाः प्रकर्षेण वरयामासुः । निरासुर्निराचक्रुर्यज्ञादिति शेषः ॥ २० ॥ प्रतिष्ठां संप्रदायप्रवृत्तिम् । सौरो वेदः पूर्वमुक्तः ॥ २२ ॥ समधीतं सम्यक्प्राप्तम् । ब्रह्म वेद ॥ २४ ॥

आश्रमस्तस्य पुण्योऽयं सदा पुष्पफलद्रुमः । अत्रोष्य राजशार्दूल सर्वं पापं प्रमोक्ष्यसि ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां यवक्रीतोपाख्याने अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

## १३९

लोमश उवाच ।
उशीरबीजं मैनाकं गिरिं श्वेतं च भारत ।
समतीतोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पार्थिव ॥ १
एषा गङ्गा सप्तविधा राजते भरतर्षभ ।
स्थानं विरजसं पुण्यं यत्राग्निर्नित्यमिध्यते ॥ २
एतद्वै मानुषेणाद्य न शक्यं द्रष्टुमद्भुतम् ।
समाधिं कुरुताव्यग्रास्तीर्थान्येतानि द्रक्ष्यथ ॥ ३
एतद्द्रक्ष्यसि देवानामाक्रीडं चरणाङ्कितम् ।
अतिक्रान्तोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पर्वतम् ॥ ४
श्वेतं गिरिं प्रवेक्ष्यामो मन्दरं चैव पर्वतम् ।
यत्र माणिवरो यक्षः कुबेरश्चैव यक्षराट् ॥ ५
अष्टाशीतिसहस्राणि गन्धर्वाः शीघ्रगामिनः ।
तथा किंपुरुषा राजन्यक्षाश्चैव चतुर्गुणाः ॥ ६
अनेकरूपसंस्थाना नानाप्रहरणाश्च ते ।
यक्षेन्द्रं मनुजश्रेष्ठ माणिभद्रमुपासते ॥
तेषामृद्धिरतीवात्र गतौ वायुसमाश्च ते ।
स्थानात्प्रच्यावयेयुर्ये देवराजमपि ध्रुवम् ॥ ८
तैस्तात बलिभिर्गुप्ता यातुधानैश्च रक्षिताः ।
दुर्गमाः पर्वताः पार्थ समाधिं परमं कुरु ॥ ९
कुबेरसचिवाश्चान्ये रौद्रा मैत्राश्च राक्षसाः ।
तैः समेष्याम कौन्तेय संयतो विक्रमेण च ॥ १०
कैलासः पर्वतो राजन्षड्योजनसमुच्छ्रितः ।
यत्र देवाः समायान्ति विशाला यत्र भारत ॥ ११
असंख्येयास्तु कौन्तेय यक्षराक्षसकिंनराः ।
नागाः सुपर्णा गन्धर्वाः कुबेरसदनं प्रति ॥ १२
तान्विगाहस्व पार्थाद्य तपसा च दमेन च ।
रक्ष्यमाणो मया राजन्भीमसेनबलेन च ॥ १३
स्वस्ति ते वरुणो राजा यमश्च समितिंजयः ।
गङ्गा च यमुना चैव पर्वतश्च दधातु ते ॥ १४
मरुतश्च सहाश्विभ्यां सरितश्च सरांसि च ।
स्वस्ति देवासुरेभ्यश्च वसुभ्यश्च महाद्युते ॥ १५
इन्द्रस्य जाम्बूनदपर्वताद्वै
शृणोमि घोषं तव देवि गङ्गे ।
गोपाययेमं सुभगे गिरिभ्यः
सर्वाजमीढोपचितं नरेन्द्रम् ॥ १६
ददस्व शर्म प्रविविक्षतोऽस्य
शैलानिमाञ्शैलसुते नृपस्य ।
उक्त्वा तथा सागरगां स विप्रो
यत्तो भवस्वेति शशास पार्थम् ॥ १७
युधिष्ठिर उवाच ।
अपूर्वोऽयं संभ्रमो लोमशस्य
कृष्णां च सर्वे रक्षत मा प्रमादम् ।
देशो ह्ययं दुर्गतमो मतोऽस्य
तस्मात्परं शौचमिहाचरध्वम् ॥ १८
वैशंपायन उवाच ।
ततोऽब्रवीद्भीममुदारवीर्यं
कृष्णां यत्तः पालय भीमसेन ।
शून्येऽर्जुनेऽसंनिहिते च तात
त्वामेव कृष्णा भजते भयेषु ॥ १९
ततो महात्मा स यमौ समेत्य
मूर्धन्युपाघ्राय विमृज्य गात्रे ।
उवाच तौ बाष्पकलं स राजा
मा भैष्ट मा गच्छतमप्रमत्तौ ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां कैलासादिगिरिप्रवेशे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

१३९

उशीरेति ॥ १ ॥ यत्राग्निर्नित्यमिध्यत इति । त्रियोगिनारायणाख्यं हरिद्वारात् परतः स्थानमस्ति ॥ २ ॥ विशाला बदरी ॥ ११ ॥ इन्द्रस्य इन्द्रसंबन्धिनः जाम्बूनदं सुवर्णं तन्मयात्पर्वतान्मेरोः । गोपाययेति णिजन्तस्य रूपम्, देवैरिति शेषः । स्वार्थे वा णिच् । आजमीढवंशे अपचितं पूजितं श्रेष्ठमित्यर्थः ॥ १६ ॥ ददस्व देहि ॥ १७ ॥ शौचं वाङ्मनःकायशुद्धिम् ॥ १८ ॥ भैष्टमिति च्छेदः ॥ २० ॥

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

## १४०

युधिष्ठिर उवाच ।
अन्तर्हितानि भूतानि बलवन्ति महान्ति च ।
अग्निना तपसा चैव शक्यं गन्तुं वृकोदर ॥ १
संनिवर्तय कौन्तेय क्षुत्पिपासे बलाश्रयात् ।
ततो बलं च दाक्ष्यं च संश्रयस्व वृकोदर ॥ २
ऋषेस्त्वया श्रुतं वाक्यं कैलासं पर्वतं प्रति ।
बुद्ध्या प्रपश्य कौन्तेय कथं कृष्णा गमिष्यति ॥ ३
अथवा सहदेवेन धौम्येन च समं विभो ।
सूतैः पौरोगवैश्चैव सर्वैश्च परिचारकैः ॥ ४
रथैरश्वैश्च ये चान्ये विप्राः क्लेशासहाः पथि ।
सर्वैस्त्वं सहितो भीम निवर्तस्वायतेक्षण ॥ ५
त्रयो वयं गमिष्यामो लघ्वाहारा यतव्रताः ।
अहं च नकुलश्चैव लोमशश्च महातपाः ॥ ६
ममागमनमाकाङ्क्षन्गङ्गाद्वारे समाहितः ।
वसेह द्रौपदीं रक्षन्यावदागमनं मम ॥ ७
भीम उवाच ।
राजपुत्री श्रमेणार्ता दुःखार्ता चैव भारत ।
व्रजत्येव हि कल्याणी श्वेतवाहदिदृक्षया ॥ ८
तव चाप्यरतिस्तीव्रा वर्तते तमपश्यतः ।
गुडाकेशं महात्मानं संग्रामेष्वपलायिनम् ॥ ९
किं पुनः सहदेवं च मां च कृष्णां च भारत ।
द्विजाः कामं निवर्तन्तां सर्वे च परिचारकाः ॥
सूताः पौरोगवाश्चैव यं च मन्येत नो भवान् ।
न ह्यहं हातुमिच्छामि भवन्तमिह कर्हिचित् ॥ ११
शैलेऽस्मिन्राक्षसाकीर्णे दुर्गेषु विषमेषु च ।
इयं चापि महाभागा राजपुत्री पतिव्रता ॥ १२
त्वामृते पुरुषव्याघ्र नोत्सहेद्विनिवर्तितुम् ।
तथैव सहदेवोऽयं सततं त्वामनुव्रतः ॥ १३
न जातु विनिवर्तेत मनोज्ञो ह्यहमस्य वै ।
अपि चात्र महाराज सव्यसाचिदिदृक्षया ॥ १४
सर्वे लालसभूताः स्म तस्माद्यास्यामहे सह ।
यद्यशक्यो रथैर्गन्तुं शैलोऽयं बहुकंदरः ॥ १५
पद्भिरेव गमिष्यामो मा राजन्विमना भव ।
अहं वहिष्ये पाञ्चालीं यत्र यत्र न शक्ष्यति ॥ १६
इति मे वर्तते बुद्धिर्मा राजन्विमना भव ।
सुकुमारौ तथा वीरौ माद्रीनन्दिकरावुभौ ।
दुर्गे संतारयिष्यामि यत्राशक्तौ भविष्यतः ॥ १७
युधिष्ठिर उवाच ।
एवं ते भाषमाणस्य बलं भीमाभिवर्धताम् ।
यत्त्वमुत्सहसे वोढुं पाञ्चालीं च यशस्विनीम् ॥ १८
यमजौ चापि भद्रं ते नैतदन्यत्र विद्यते ।
बलं तव यशश्चैव धर्मः कीर्तिश्च वर्धताम् ॥ १९
यस्त्वमुत्सहसे नेतुं भ्रातरौ सह कृष्णया ।
मा ते ग्लानिर्महाबाहो मा च तेऽस्तु पराभवः ॥
वैशंपायन उवाच ।
ततः कृष्णाब्रवीद्वाक्यं प्रहसन्ती मनोरमा ।
गमिष्यामि न संतापः कार्यो मां प्रति भारत ॥ २१
लोमश उवाच ।
तपसा शक्यते गन्तुं पर्वतं गन्धमादनम् ।
तपसा चैव कौन्तेय सर्वे योक्ष्यामहे वयम् ॥ २२
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पार्थिव ।
अहं च त्वं च कौन्तेय द्रक्ष्यामः श्वेतवाहनम् ॥ २३
वैशंपायन उवाच ।
एवं संभाषमाणास्ते सुबाहुविषयं महत् ।
ददृशुर्मुदिता राजन्प्रभूतगजवाजिमत् ॥ २४
किराततङ्गणाकीर्णं पुलिन्दशतसंकुलम् ।
हिमवत्यमरैर्जुष्टं बह्वाश्चर्यसमाकुलम् ।
सुबाहुश्चापि तान्दृष्ट्वा पूजया प्रत्यगृह्णत ॥ २५
विषयान्ते कुलिन्दानामीश्वरः प्रीतिपूर्वकम् ।
ततस्ते पूजितास्तेन सर्व एव सुखोषिताः ॥ २६
प्रतस्थुर्विमले सूर्ये हिमवन्तं गिरिं प्रति ।
इन्द्रसेनमुखांश्चापि भृत्यान्पौरोगवांस्तथा ॥ २७
सूदांश्च पारिबर्हांश्च द्रौपद्याः सर्वशो नृप ।
राज्ञः कुलिन्दाधिपतेः परिदाय महारथाः ॥ २८
पद्भिरेव महावीर्या ययुः कौरवनन्दनाः ।
ते शनैः प्राद्रवन्सर्वे कृष्णया सह पाण्डवाः ।
तस्माद्देशात्सुसंहृष्टा द्रष्टुकामा धनंजयम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां गन्धमादनप्रवेशे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

१४०

अन्तर्हितानीति ॥ १ ॥ परिदाय रक्षार्थं समर्प्य ॥२८॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

शिवा देवी महाभागा सर्वसस्यप्ररोहिणी ।
कस्य चैव प्रभावाद्धि योजनानां शतं गता॥ ३२
केन तद्वीर्यसर्वस्वं दर्शितं परमात्मनः ।
एतत्सर्वं यथातत्त्वमिच्छामि द्विजसत्तम ।
श्रोतुं विस्तरशः सर्वं त्वं हि तस्य प्रतिश्रयः॥३३

लोमश उवाच ।

यत्तेऽहं परिपृष्टोऽस्मि कथामेतां युधिष्ठिर ।
तत्सर्वमखिलेनेह श्रूयतां मम भाषतः ॥ ३४
पुरा कृतयुगे तात वर्तमाने भयंकरे ।
यमत्वं कारयामास आदिदेवः पुरातनः ॥ ३५
यमत्वं कुर्वतस्तस्य देवदेवस्य धीमतः ।
न तत्र म्रियते कश्चिज्जायते वा तथाच्युत ॥ ३६
वर्धन्ते पक्षिसंघाश्च तथा पशुगवेडकम् ।
गवाश्वं च मृगाश्चैव सर्वे ते पिशिताशनाः ॥ ३७
तथा पुरुषशार्दूल मानुषाश्च परंतप ।
सहस्रशो ह्ययुतशो वर्धन्ते सलिलं यथा ॥ ३८
एतस्मिन्संकुले तात वर्तमाने भयंकरे ।
अतिभाराद्वसुमती योजनानां शतं गता ॥ ३९
सा वै व्यथितसर्वाङ्गी भारेणाक्रान्तचेतना ।
नारायणं वरं देवं प्रपन्ना शरणं गता ॥ ४०

पृथिव्युवाच ।

भगवंस्त्वत्प्रसादाद्धि तिष्ठेयं सुचिरं त्विह ।
भारेणास्मि समाक्रान्ता न शक्नोमि स्म वर्तितुम्
ममेमं भगवन्भारं व्यपनेतुं त्वमर्हसि ।
शरणागतास्मि ते देव प्रसादं कुरु मे विभो॥४२
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भगवानक्षरः प्रभुः ।
प्रोवाच वचनं हृष्टः श्रव्याक्षरसमीरितम् ॥ ४३

विष्णुरुवाच ।

न ते महि भयं कार्यं भारार्ते वसुधारिणि ।
अयमेवं तथा कुर्मि यथा लघ्वी भविष्यसि ॥ ४४

लोमश उवाच ।

स तां विसर्जयित्वा तु वसुधां शैलकुण्डलाम् ।
ततो वराहः संवृत्त एकशृङ्गो महाद्युतिः ॥ ४५
रक्ताभ्यां नयनाभ्यां तु भयमुत्पादयन्निव ।
धूमं च ज्वलयँल्लक्ष्म्या तत्र देशे व्यवर्धत ॥ ४६
स गृहीत्वा वसुमतीं शृङ्गेणैकेन भास्वता ।
योजनानां शतं वीर समुद्धरति सोऽक्षरः ॥ ४७
तस्यां चोद्धार्यमाणायां संक्षोभः समजायत ।
देवाः संक्षुभिताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ४८
हाहाभूतमभूत्सर्वं त्रिदिवं व्योम भूस्तथा ।
न पर्यवस्थितः कश्चिद्देवो वा मानुषोऽपि वा ४९
ततो ब्रह्माणमासीनं ज्वलमानमिव श्रिया ।
देवाः सर्षिगणाश्चैव उपतस्थुरनेकशः ॥ ५०
उपसर्प्य च देवेशं ब्रह्माणं लोकसाक्षिकम् ।
भूत्वा प्राञ्जलयः सर्वे वाक्यमुच्चारयंस्तदा ॥ ५१
लोकाः संक्षुभिताः सर्वे व्याकुलं च चराचरम् ।
समुद्राणां च संक्षोभस्त्रिदशेश प्रकाशते ॥ ५२
सैषा वसुमती कृत्स्ना योजनानां शतं गता ।
किमेतत्किं प्रभावेण येनेदं व्याकुलं जगत् ।
आख्यातु नो भवाञ्शीघ्रं विसंज्ञाः स्मेह सर्वशः ५३

ब्रह्मोवाच ।

असुरेभ्यो भयं नास्ति युष्माकं कुत्रचित्क्वचित् ।
श्रूयतां यत्कृतेष्वेष संक्षोभो जायतेऽमराः ॥ ५४
योऽसौ सर्वत्रगः श्रीमानक्षरात्मा व्यवस्थितः ।
तस्य प्रभावात्संक्षोभस्त्रिदिवस्य प्रकाशते ॥ ५५
यैषा वसुमती कृत्स्ना योजनानां शतं गता ।
समुद्धृता पुनस्तेन विष्णुना परमात्मना ॥ ५६
तस्यामुद्धार्यमाणायां संक्षोभः समजायत ।
एवं भवन्तो जानन्तु छिद्यतां संशयश्च वः ५७

देवा ऊचुः ।

क्व तद्भूतं वसुमतीं समुद्धरति हृष्टवत् ।
तं देशं भगवन्ब्रूहि तत्र यास्यामहे वयम् ॥ ५८

ब्रह्मोवाच ।

हन्त गच्छत भद्रं वो नन्दने पश्यत स्थितम् ।
एषोऽत्र भगवाञ्श्रीमान्सुपर्णः संप्रकाशते ॥ ५९
वाराहेणैव रूपेण भगवाँल्लोकभावनः ।
कालानल इवाभाति पृथिवीतलमुद्धरन्॥ ६०
एतस्योरसि सुव्यक्तं श्रीवत्समभिराजते ।
पश्यध्वं विबुधाः सर्वे भूतमेतदनामयम् ॥ ६१

---

गता अधस्तादिति शेषः ॥३२॥ पशवश्च गावश्च एडका मेषाश्च पशुगवेडकम् ॥३७ ॥ न ते त्वया । हे महि । कुर्मि करोमि ॥ ४४ ॥ धूमम् धूपम् । ज्वलयन्निति हेतौ शतृप्रत्ययः । यथायथा धूमो ज्वलति तथातथा अवर्धत इत्यर्थः ॥ ४६ ॥ अक्षरः वेदात्मा ॥ ४७ वाक्यं उच्चारयन् उच्चारितवन्तः ॥५१॥ नन्दने इन्द्रवने । अत्र एतत्समीपे ॥५९॥

लोमश उवाच ।

ततो दृष्ट्वा महात्मानं श्रुत्वा चामन्त्र्य चामराः ।
पितामहं पुरस्कृत्य जग्मुर्देवा यथागतम् ॥ ६२

वैशंपायन उवाच ।

श्रुत्वा तु तां कथां सर्वे पाण्डवा जनमेजय ।
लोमशादेशितेनाशु पथा जग्मुः प्रहृष्टवत् ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां गन्धमादनप्रवेशो द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

## १४३

वैशंपायन उवाच ।

ते शूरास्ततधन्वानस्तूणवन्तः समार्गणाः ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः खड्गवन्तोऽमितौजसः ॥ १
परिगृह्य द्विजश्रेष्ठाञ्श्रेष्ठाः सर्वधनुष्मताम् ।
पाञ्चालीसहिता राजन्प्रययुर्गन्धमादनम् ॥ २
सरांसि सरितश्चैव पर्वतांश्च वनानि च ।
वृक्षांश्च बहुलच्छायान्ददृशुर्गिरिमूर्धनि ॥ ३
नित्यपुष्पफलान्देशान्देवर्षिगणसेवितान् ।
आत्मन्यात्मानमाधाय वीरा मूलफलाशिनः ॥ ४
चेरुरुच्चावचाकारान्देशान्विषमसंकटान् ।
पश्यन्तो मृगजातानि बहूनि विविधानि च ॥ ५
ऋषिसिद्धामरयुतं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् ।
विविशुस्ते महात्मानः किंनराचरितं गिरिम् ॥ ६
प्रविशत्स्वथ वीरेषु पर्वतं गन्धमादनम् ।
चण्डवातं महद्वर्षं प्रादुरासीद्विशांपते ॥ ७
ततो रेणुः समुद्भूतः सपत्रबहुलो महान् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव सहसावृणोत् ॥ ८
न स्म प्रज्ञायते किंचिदावृते व्योम्नि रेणुना ।
न चापि शेकुस्तत्कर्तुमन्योन्यस्याभिभाषणम् ॥ ९
न चापश्यंस्ततोऽन्योन्यं तमसावृतचक्षुषः ।
आकृष्यमाणा वातेन साश्मचूर्णेन भारत ॥ १०
द्रुमाणां वातभग्नानां पततां भूतलेऽनिशम् ।
अन्येषां च महीजानां शब्दः समभवन्महान् ॥ ११
द्यौः स्वित्पतति किं भूमिर्दीर्यते पर्वतो नु किम् ।
इति ते मेनिरे सर्वे पवनेनापि मोहिताः ॥ १२
ते यथानन्तरान्वृक्षान्वल्मीकान्विषमाणि च ।
पाणिभिः परिमार्गन्तो भीता वायोर्निलिल्यिरे ॥ १३
ततः कार्मुकमादाय भीमसेनो महाबलः ।
कृष्णामादाय संगम्य तस्थावाश्रित्य पादपम् ॥ १४
धर्मराजश्च धौम्यश्च निलिल्याते महावने ।
अग्निहोत्राण्युपादाय सहदेवस्तु पर्वते ॥ १५
नकुलो ब्राह्मणाश्चान्ये लोमशश्च महातपाः ।
वृक्षानासाद्य संत्रस्तास्तत्र तत्र निलिल्यिरे ॥ १६
मन्दीभूते तु पवने तस्मिन्रजसि शाम्यति ।
महद्भिर्जलधारौघैर्वर्षमभ्याजगाम ह ॥ १७
भृशं चटचटाशब्दो वज्राणां क्षिप्यतामिव ।
ततस्ताश्चञ्चलाभासश्चेरुरभ्रेषु विद्युतः ॥ १८
ततोऽश्मसहिता धाराः संवृण्वन्त्यः समन्ततः ।
प्रपेतुरनिशं तत्र शीघ्रवातसमीरिताः ॥ १९
तत्र सागरगा ह्यापः कीर्यमाणाः समन्ततः ।
प्रादुरासन्सकलुषाः फेनवन्त्यो विशांपते ॥ २०
वहन्त्यो वारि बहुलं फेनोडुपपरिप्लुतम् ।
परिसस्रुर्महाशब्दाः प्रकर्षन्त्यो महीरुहान् ॥ २१
तस्मिन्नुपरते शब्दे वाते च समतां गते ।
गते ह्यम्भसि निम्नानि प्रादुर्भूते दिवाकरे ॥ २२
निर्जग्मुस्ते शनैः सर्वे समाजग्मुश्च भारत ।
प्रतस्थिरे पुनर्वीराः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां गन्धमादनप्रवेशो त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

१४३

ते शूरा इति ॥ १ ॥ पथा मार्गेण । अनन्तरान् संनिहितान् । निलिल्यिरे निलीनाः ॥ १३ ॥ संगम्यादायेत्यन्वयः । गत्वा गृहीत्वेत्यर्थः ॥१४॥ अश्मसहिताः करकासहिताः ॥ १९ ॥ वारि वहन्त्यो नद्यः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

## १४४

वैशंपायन उवाच ।

क्रोशमात्रं प्रयातेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
पद्भ्यामनुचिता गन्तुं द्रौपदी समुपाविशत् ॥ १
श्रान्ता दुःखपरीता च वातवर्षेण तेन च ।
सौकुमार्याच्च पाञ्चाली संमुमोह तपस्विनी ॥ २
सा कम्पमाना मोहेन बाहुभ्यामसितेक्षणा ।
वृत्ताभ्यामनुरूपाभ्यामूरू समवलम्बत ॥ ३
आलम्बमाना सहितावूरू गजकरोपमौ ।
पपात सहसा भूमौ वेपन्ती कदली यथा ॥ ४
तां पतन्तीं वरारोहां भज्यमानां लतामिव ।
नकुलः समभिद्रुत्य परिजग्राह वीर्यवान् ॥ ५

नकुल उवाच ।

राजन्पञ्चालराजस्य सुतेयमसितेक्षणा
श्रान्ता निपतिता भूमौ तामवेक्षस्व भारत ॥ ६
अदुःखार्हा परं दुःखं प्राप्तेयं मृदुगामिनी ।
आश्वासय महाराज तामिमां श्रमकर्शिताम् ७

वैशंपायन उवाच ।

राजा तु वचनात्तस्य भृशं दुःखसमन्वितः ।
भीमश्च सहदेवश्च सहसा समुपाद्रवन् ॥ ८
तामवेक्ष्य तु कौन्तेयो विवर्णवदनां कृशाम् ।
अङ्कमानीय धर्मात्मा पर्यदेवयदातुरः ॥ ९

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं वेश्मसु गुप्तेषु स्वास्तीर्णशयनोचिता ।
भूमौ निपतिता शेते सुखार्हा वरवर्णिनी ॥ १०
सुकुमारौ कथं पादौ मुखं च कमलप्रभम् ।
मत्कृतेऽद्य वरार्हायाः श्यामतां समुपागतम् ॥११
किमिदं द्यूतकामेन मया कृतमबुद्धिना ।
आदाय कृष्णां चरता वने मृगगणायुते ॥ १२
सुखं प्राप्स्यसि कल्याणि पाण्डवान्प्राप्य वै पतीन् ।
इति द्रुपदराजेन पित्रा दत्तायतेक्षणा ॥ १३
तत्सर्वमनवाप्येयं श्रमशोकाध्वकर्शिता ।
शेते निपतिता भूमौ पापस्य मम कर्मभिः ॥ १४

वैशंपायन उवाच ।

तथा लालप्यमाने तु धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
धौम्यप्रभृतयः सर्वे तत्राजग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ १५
ते समाश्वासयामासुराशीर्भिश्चाप्यपूजयन् ।
रक्षोघ्नांश्च तथा मन्त्राञ्जेपुश्चक्रुश्च ते क्रियाः ॥ १६
पठ्यमानेषु मन्त्रेषु शान्त्यर्थं परमर्षिभिः ।
स्पृश्यमाना करैः शीतैः पाण्डवैश्च मुहुर्मुहुः १७
सेव्यमाना च शीतेन जलमिश्रेण वायुना ।
पाञ्चाली सुखमासाद्य लेभे चेतः शनैः शनैः॥ १८
परिगृह्य च तां दीनां कृष्णामजिनसंस्तरे ।
पार्था विश्रामयामासुर्लब्धसंज्ञां तपस्विनीम् ॥१९
तस्या यमौ रक्ततलौ पादौ पूजितलक्षणौ ।
कराभ्यां किणजाताभ्यां शनकैः संववाहतुः ॥२०
पर्याश्वासयदप्येनां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
उवाच च कुरुश्रेष्ठो भीमसेनमिदं वचः ॥ २१
बहवः पर्वता भीम विषमा हिमदुर्गमाः ।
तेषु कृष्णा महाबाहो कथं नु विचरिष्यति ॥ २२

भीमसेन उवाच ।

त्वां राजन्राजपुत्रीं च यमौ च पुरुषर्षभ ।
स्वयं नेष्यामि राजेन्द्र मा विषादे मनः कृथाः२३
हैडिम्बश्च महावीर्यो विहगो मद्बलोपमः ।
वहेदनघ सर्वान्नो वचनात्ते घटोत्कचः ॥ २४

वैशंपायन उवाच ।

अनुज्ञातो धर्मराज्ञा पुत्रं सस्मार राक्षसम् ।
घटोत्कचस्तु धर्मात्मा स्मृतमात्रः पितुस्तदा ॥२५
कृताञ्जलिरुपातिष्ठदभिवाद्याथ पाण्डवान् ।
ब्राह्मणांश्च महाबाहुः स च तैरभिनन्दितः ॥ २६
उवाच भीमसेनं स पितरं भीमविक्रमम् ।
स्मृतोऽस्मि भवता शीघ्रं शुश्रूषुरहमागतः ॥ २७
आज्ञापय महाबाहो सर्वं कर्तास्म्यसंशयम् ।
तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्तु राक्षसं परिषस्वजे ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां गन्धमादनप्रवेशे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

---

१४४

क्रोशमात्रमिति ॥१॥ विहग इव विहगः खेचरः॥२४॥ इत्या० नैलक० भार० चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४४॥

## १४५

युधिष्ठिर उवाच।

धर्मज्ञो बलवाञ्शूरः सत्यो राक्षसपुङ्गवः ।
भक्तोऽस्मानौरसः पुत्रो भीम गृह्णातु माचिरम् १
तव बाहुबलेनाहमतिभीमपराक्रम ।
अक्षतः सह पाञ्चाल्या गच्छेयं गन्धमादनम् ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय भीमसेनो घटोत्कचम् ।
आदिदेश नरव्याघ्रस्तनयं शत्रुकर्शनम् ॥ ३

भीमसेन उवाच ।

हैडिम्बेय परिश्रान्ता तव मातापराजिता ।
त्वं च कामगमस्तात बलवान्वह तां खग ॥ ४
स्कन्धमारोप्य भद्रं ते मध्येऽस्माकं विहायसा ।
गच्छ नीचिकया गत्या यथा चैनां न पीडयेः ५

घटोत्कच उवाच ।

धर्मराजं च धौम्यं च कृष्णां च यमजौ तथा ।
एकोऽप्यहमलं वोढुं किमुताद्य सहायवान् ॥ ६
अन्ये च शतशः शूरा विहङ्गाः कामरूपिणः ।
सर्वान्वो ब्राह्मणैः सार्धं वक्ष्यन्ति सहितानघ ॥७
एवमुक्त्वा ततः कृष्णामुवाह स घटोत्कचः ।
पाण्डूनां मध्यगो वीरः पाण्डवानपि चापरे ॥ ८
लोमशः सिद्धमार्गेण जगामानुपमद्युतिः ।
स्वेनैव स प्रभावेण द्वितीय इव भास्करः ॥ ९
ब्राह्मणांश्चापि तान्सर्वान्समुपादाय राक्षसाः ।
नियोगाद्राक्षसेन्द्रस्य जग्मुर्भीमपराक्रमाः ॥ १०
एवं सुरमणीयानि वनान्युपवनानि च ।
आलोकयन्तस्ते जग्मुर्विशालां बदरीं प्रति ॥ ११
ते त्वाशुगतिभिर्वीरा राक्षसैस्तैर्महाजवैः ।
उह्यमाना ययुः शीघ्रं महदध्वानमल्पवत् ॥ १२
देशान्म्लेच्छजनाकीर्णान्नानारत्नाकरायुतान् ।
ददृशुर्गिरिपादांश्च नानाधातुसमाचितान् ॥ १३
विद्याधरसमाकीर्णान्युतान्वानरकिन्नरैः ।
तथा किंपुरुषैश्चैव गन्धर्वैश्च समन्ततः ॥ १४
मयूरैश्चमरैश्चैव वानरै रुरुभिस्तथा ।
वराहैर्गवयैश्चैव महिषैश्च समावृतान् ॥ १५
नदीजालसमाकीर्णान्नानापक्षियुतान्बहून् ।
नानाविधमृगैर्जुष्टान्वानरैश्चोपशोभितान् ॥ १६
समदैश्चापि विहगैः पादपैरन्वितास्तथा ।
तेऽवतीर्य बहून्देशानुत्तरांश्च कुरूनपि ॥ १७
ददृशुर्विविधाश्चर्यं कैलासं पर्वतोत्तमम् ।
तस्याभ्याशे तु ददृशुर्नरनारायणाश्रमम् ॥ १८
उपेतं पादपैर्दिव्यैः सदापुष्पफलोपगैः ।
ददृशुस्तां च बदरीं वृत्तस्कन्धां मनोरमाम् १९
स्निग्धामविरलच्छायां श्रिया परमया युताम् ।
पत्रैः स्निग्धैरविरलैरुपेतां मृदुभिः शुभाम् ॥ २०
विशालशाखां विस्तीर्णामतिद्युतिसमन्विताम् ।
फलैरुपचितैर्दिव्यैराचितां स्वादुभिर्भृशम् ॥ २१
मधुस्रवैः सदा दिव्यां महर्षिगणसेविताम् ।
मदप्रमुदितैर्नित्यं नानाद्विजगणैर्युताम् ॥ २२
अदंशमशके देशे बहुमूलफलोदके ।
नीलशाद्वलसंछन्ने देवगन्धर्वसेविते ॥ २३
सुसमीकृतभूभागे स्वभावविहिते शुभे ।
जातां हिममृदुस्पर्शे देशेऽपहतकण्टके ॥ २४
तामुपेत्य महात्मानः सह तैर्ब्राह्मणर्षभैः ।
अवतेरुस्ततः सर्वे राक्षसस्कन्धतः शनैः ॥ २५
ततस्तमाश्रमं रम्यं नरनारायणाश्रितम् ।
ददृशुः पाण्डवा राजन्सहिता द्विजपुंगवैः ॥ २६
तमसा रहितं पुण्यमनामृष्टं रवेः करैः ।
क्षुत्तृट्शीतोष्णदोषैश्च वर्जितं शोकनाशनम् ॥२७
महर्षिगणसंबाधं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समन्वितम् ।
दुष्प्रवेशं महाराज नरैर्धर्मबहिष्कृतैः ॥ २८
बलिहोमार्चितं दिव्यं सुसंमृष्टानुलेपनम् ।
दिव्यपुष्पोपहारैश्च सर्वतोऽभिविराजितम् ॥ २९
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैराचितं शुभैः ।
महद्भिस्तोयकलशैः कठिनैश्चोपशोभितम् ॥ ३०
शरण्यं सर्वभूतानां ब्रह्मघोषनिनादितम् ।
दिव्यमाश्रयणीयं तमाश्रमं श्रमनाशनम् ॥ ३१

---

१४५

धर्मज्ञ इति ॥ १ ॥ वक्ष्यन्ति वहनं करिष्यन्ति ॥ ७ ॥ रत्नाकरैः आसमन्तात् युतान् ॥ १३ ॥ अभ्याशे समीपे ॥ १८ ॥ स्वभावतै एव विशेषेण हिते स्वभावविहिते। जातां बदरीम् ॥ २४ ॥ महर्षिगणसंबाधम् ऋषिगणव्याप्तम् ब्राह्म्या लक्ष्म्या ऋग्यजुः सामात्मिकया । 'ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेः ॥ २८ ॥ सुष्ठु संमृष्टं संमार्जनं अनुलेपनं च यत्र तत् ॥ २९ ॥ अग्निशरणैः अग्न्यगारैः आचितम् व्याप्तम् । कठिनैः शिक्यैः करण्डैर्वा ॥ ३० ॥

श्रिया युतमनिर्देश्यं देवचर्योपशोभितम् ।
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चारुकृष्णाजिनाम्बरैः ॥ ३२
सूर्यवैश्वानरसमैस्तपसा भावितात्मभिः ।
महर्षिभिर्मोक्षपरैर्यतिभिर्नियतेन्द्रियैः ॥ ३३
ब्रह्मभूतैर्महाभागैरुपेतं ब्रह्मवादिभिः ।
सोऽभ्यगच्छन्महातेजास्तानृषीन्प्रयतः शुचिः ३४
भ्रातृभिः सहितो धीमान्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते दृष्ट्वा प्राप्तं युधिष्ठिरम् ॥ ३५
अभ्यगच्छन्त सुप्रीताः सर्व एव महर्षयः ।
आशीर्वादान्प्रयुञ्जानाः स्वाध्यायनिरता भृशम्३६
प्रीतास्ते तस्य सत्कारं विधिना पावकोपमाः ।
उपाजह्रुश्च सलिलं पुष्पमूलफलं शुचि ॥ ३७
स तैः प्रीत्याथ सत्कारमुपनीतं महर्षिभिः ।
प्रयतः प्रतिगृह्याथ धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३८
तं शक्रसदनप्रख्यं दिव्यगन्धं मनोरमम् ।
प्रीतः स्वर्गोपमं पुण्यं पाण्डवः सह कृष्णया ॥३९
विवेश शोभया युक्तं भ्रातृभिश्च सहानघ ।
ब्राह्मणैर्वेदवेदाङ्गपारगैश्च सहस्रशः ॥ ४०
तत्रापश्यत धर्मात्मा देवदेवर्षिपूजितम् ।
नरनारायणस्थानं भागीरथ्योपशोभितम् ॥ ४१
पश्यन्तस्ते नरव्याघ्रा रेमिरे तत्र पाण्डवाः ।
मधुस्रवफलं दिव्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ ४२
तदुपेत्य महात्मानस्तेऽवसन्ब्राह्मणैः सह ।
मुदा युक्ता महात्मानो रेमिरे तत्र ते तदा ॥ ४३
आलोकयन्तो मैनाकं नानाद्विजगणायुतम् ॥
हिरण्यशिखरं चैव तच्च बिन्दुसरः शिवम् ॥ ४४
तस्मिन्विहरमाणाश्च पाण्डवाः सह कृष्णया ।
मनोज्ञे काननवरे सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वले ॥ ४५
पादपैः पुष्पविकचैः फलभारावनामिभिः ।
शोभिते सर्वतो रम्यैः पुंस्कोकिलगणायुतैः ॥ ४६
स्निग्धपत्रैरविरलैः शीतच्छायैर्मनोरमैः ।
सरांसि च विचित्राणि प्रसन्नसलिलानि च ४७
कमलैः सोत्पलैश्चैव भ्राजमानानि सर्वशः ।
पश्यन्तश्चारुरूपाणि रेमिरे तत्र पाण्डवाः ॥ ४८
पुण्यगन्धसुखस्पर्शो ववौ तत्र समीरणः ॥
ह्लादयन्पाण्डवान्सर्वान्द्रौपद्या सहितान्प्रभो ॥ ४९
भागीरथीं सुतीर्थां च सीतां विमलपङ्कजाम् ।
मणिप्रवालप्रस्तारां पादपैरुपशोभिताम् ॥ ५०
दिव्यपुष्पसमाकीर्णां मनःप्रीतिविवर्धनीम् ।
वीक्षमाणा महात्मानो विशालां बदरीमनु ॥ ५१
तस्मिन्देवर्षिचरिते देशे परमदुर्गमे ।
भागीरथीपुण्यजले तर्पयांचक्रिरे तदा ॥ ५२
देवानृषींश्च कौन्तेयाः परमं शौचमास्थिताः ।
तत्र ते तर्पयन्तश्च जपन्तश्च कुरूद्वहाः ॥ ५३
ब्राह्मणैः सहिता वीरा ह्यवसन्पुरुषर्षभाः ।
कृष्णायास्तत्र पश्यन्तः क्रीडितान्यमरप्रभाः ।
विचित्राणि नरव्याघ्रा रेमिरे तत्र पाण्डवाः ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां गन्धमादनप्रवेशे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

## १४६

वैशंपायन उवाच ।
तत्र ते पुरुषव्याघ्राः परमं शौचमास्थिताः ।
षड्रात्रमवसन्वीरा धनंजयदिदृक्षवः ॥ १
ततः पूर्वोत्तरे वायुः प्लवमानो यदृच्छया ।
सहस्रपत्रमर्काभं दिव्यं पद्ममुपाहरत् ॥ २

---

देवचर्या सत्यसंकल्पत्वादिका तया उपशोभितम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मभूतैः ब्रह्मवित्त्वेन ब्रह्मभावंगतैः । तथा च श्रुतिः । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति ॥ ३४ ॥ सत्कारं चक्रुरिति शेषः ॥ ३७ ॥ तदुपेत्य स्थानं प्राप्य ॥ ४३ ॥ पुष्पविकचैः विकसितकुसुमैः ॥ ४६ ॥ सीतां नामतः । प्रस्तारः सोपानपादगणादिरूपः घट्ट इत्यर्थः ॥ ५० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

१४६

तत्रेति ॥ १ ॥ पूर्वोत्तरे ऐशानकोणे ॥ २ ॥

तदवैक्षत पाञ्चाली दिव्यगन्धं मनोरमम् ।
अनिलेनाहृतं भूमौ पतितं जलजं शुचि ॥ ३
तच्छुभा शुभमासाद्य सौगन्धिकमनुत्तमम् ।
अतीव मुदिता राजन्भीमसेनमथाब्रवीत् ॥ ४
पश्य दिव्यं सुरुचिरं भीम पुष्पमनुत्तमम् ।
गन्धसंस्थानसंपन्नं मनसो मम नन्दनम् ॥ ५
इदं च धर्मराजाय प्रदास्यामि परंतप ।
हरेदं मम कामाय काम्यके पुनराश्रमे ॥ ६
यदि तेऽहं प्रिया पार्थ बहूनीमान्युपाहर ।
तान्यहं नेतुमिच्छामि काम्यकं पुनराश्रमम् ॥ ७
एवमुक्त्वा शुभापाङ्गी भीमसेनमनिन्दिता ।
जगाम पुष्पमादाय धर्मराजाय तत्तदा ॥ ८
अभिप्रायं तु विज्ञाय महिष्याः पुरुषर्षभः ।
प्रियायाः प्रियकामः स प्रायाद्भीमो महाबलः ॥९
वातं तमेवाभिमुखो यतस्तत्पुष्पमागतम् ।
आजिहीर्षुर्जगामाशु स पुष्पाण्यपराण्यपि ॥ १०
रुक्मपृष्ठं धनुर्गृह्य शरांश्चाशीविषोपमान् ।
मृगराडिव संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ११
ददृशुः सर्वभूतानि महाबाणधनुर्धरम् ।
न ग्लानिर्न च वैक्लव्यं न भयं न च संभ्रमः ।
कदाचिज्जुषते पार्थमात्मजं मातरिश्वनः ॥ १२
द्रौपद्याः प्रियमन्विच्छन्स बाहुबलमाश्रितः ॥ १३
व्यपेतभयसंमोहः शैलमभ्यपतद्बली ।
स तं द्रुमलतागुल्मच्छन्नं नीलाशिलातलम् ॥ १४
गिरिं चचारारिहरः किन्नराचरितं शुभम् ।
नानावर्णधरैश्चित्रं धातुद्रुममृगाण्डजैः ॥ १५
सर्वभूषणसंपूर्णं भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम् ।
सर्वत्र रमणीयेषु गन्धमादनसानुषु ॥ १६
सक्तचक्षुरभिप्रायान्हृदयेनानुचिन्तयन् ।
पुंस्कोकिलनिनादेषु षट्पदाचरितेषु च ॥ १७
बद्धश्रोत्रमनश्चक्षुर्जगामामितविक्रमः ।
आजिघ्रन्स महातेजाः सर्वर्तुकुसुमोद्भवम् ॥ १८
गन्धमुद्धतमुद्दामो वने मत्त इव द्विपः ।
वीज्यमानः सुपुण्येन नानाकुसुमगन्धिना ॥ १९
पितुः संस्पर्शशीतेन गन्धमादनवायुना ।
क्रियमाणश्रमः पित्रा संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ २०
स यक्षगन्धर्वसुरब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।
विलोकयामास तदा पुष्पहेतोररिंदमः ॥ २१
विषमच्छदैरचितैरनुलिप्तं इवाङ्गुलैः ।
वलिभिर्धातुविच्छेदैः काञ्चनाञ्जनराजतैः ।
सपक्षमिव नृत्यन्तं पार्श्वलग्नैः पयोधरैः ॥ २२
मुक्ताहारैरिव चितं च्युतैः प्रस्रवणोदकैः ।
अभिरामदरीकुञ्जनिर्झरोदककन्दरम् ॥ २३
अप्सरो नूपुररवैः प्रनृत्तवरबर्हिणम् ।
दिग्वारणविषाणाग्रैर्घृष्टोपलशिलातलम् ॥ २४
स्रस्तांशुकमिवाक्षोभ्यैर्निम्नगानिःसृतैर्जलैः ।
सशष्पकवलैः स्वस्थैरदूरपरिवर्तिभिः ॥ २५
भयानभिज्ञैर्हरिणैः कौतूहलनिरीक्षितः ।
चालयानः स्ववेगेन लताजालान्यनेकशः ॥ २६
आक्रीडमानो हृष्टात्मा श्रीमान्वायुसुतो ययौ ।
प्रियामनोरथं कर्तुमुद्यतश्चारुलोचनः ॥ २७
प्रांशुः कनकवर्णाभः सिंहसंहननो युवा ।
मत्तवारणविक्रान्तो मत्तवारणवेगवान् ॥ २८
मत्तवारणताम्राक्षो मत्तवारणवारणः ।
प्रियपार्श्वोपविष्टाभिर्व्यावृत्ताभिर्विचेष्टितैः ॥ २९
यक्षगन्धर्वयोषाभिरदृश्याभिर्निरीक्षितः ।
नवावतारं रूपस्य विक्रीडन्निव पाण्डवः ॥ ३०

---

शुभा कल्याणी । शुभं शोभायुतम् । सौगन्धिकं पद्मजातिभेदः ॥ ४ ॥ गन्धेति । संस्थानं आकारः ॥ ५ ॥ हर आहर । इदं एतज्जातीयम् ॥ ६ ॥ प्रभिन्नः मत्तः ॥ ११ ॥ ग्लानिवैक्लव्ये देहचित्तयोरवसादौ । भयं तत्कारणं स्वोच्छेदबुद्धिः । भयाभावादेव मया यत्नेन गन्तव्यमित्यादरः संभ्रमः सोऽपि तं न जुषते सेवते तत्र हेतुः आत्मजमिति । मातरिश्वनः वायोः सार्धः ॥ १२ ॥ अभिप्रायान् देवऋषिगन्धर्वादिलीलोन्नयनहेतून् पुष्पकुशादिसंस्तरान् ॥ १७ ॥ पितुर्यथा पुत्रस्पर्शः शीतस्तादृक्स्पर्शवता वायुनेत्यर्थः । पित्रा वायुना ॥ २० ॥ धातुविच्छेदैः धातुभेदैः। अङ्गुलैरिव विषमच्छदैः सप्तपर्णादिभिर्नानाधातुरञ्जितपत्रैः रचितैः । वलिभिः त्रिपुण्ड्राकारैरनुलिप्त इवेत्यर्थः । आञ्जनेति कृष्णधातुग्रहणम् । पीतकृष्णश्वेतधातुभिरित्यर्थः । पयोधरैर्मेघैः ॥ २२ ॥ दरी बिलगृहम् कन्दरं महाप्रपातः अभिरामाः दरीप्रभृतयो यस्मिन् ॥ २३ ॥ विषाणाग्रैर्दन्ताग्रैः । 'विषाणं कुष्ठके क्लीबं त्रिषु शृङ्गेभदन्तयोः' इति मेदिनी । शिलाः समपाषाणाः शयनासनयोग्याः । उपलास्तदन्ये ॥ २४ ॥ शष्पं बालतृणम् । कवलो ग्रासः तद्युक्तैः ॥ २५ ॥ कनकवर्णाभः पीतदीप्तिः । सिंहसंहननः सिंहवत् दृढाङ्गः ॥२८॥ वारणानामपि वारणः निवारकः संग्रामादौ । विचेष्टितैर्व्यावृत्ताभिः निश्चेष्टाभिरेकाग्राभिरित्यर्थः ॥ २९ ॥ रूपस्य सौन्दर्यस्य । 'रूपं स्वभावे सौंदर्ये' इति मेदिनी॥३०॥

चचार रमणीयेषु गन्धमादनसानुषु ।
संस्मरन्विविधान्क्लेशान्दुर्योधनकृतान्बहून् ॥ ३१
द्रौपद्या वनवासिन्याः प्रियं कर्तुं समुद्यतः ।
सोऽचिन्तयद्गते स्वर्गमर्जुने मयि चागते ॥ ३२
पुष्पहेतोः कथं त्वार्यः करिष्यति युधिष्ठिरः ।
स्नेहान्नरवरो नूनमविश्वासाद्बलस्य च ॥ ३३
नकुलं सहदेवं च न मोक्ष्यति युधिष्ठिरः ॥
कथं तु कुसुमावाप्तिः स्याच्छीघ्रमिति चिन्तयन्॥
प्रतस्थे नरशार्दूलः पक्षिराडिव वेगितः ।
सज्जमानमनोदृष्टिः फुल्लेषु गिरिसानुषु ॥ ३५
द्रौपदीवाक्यपाथेयो भीमः शीघ्रतरं ययौ ।
कम्पयन्मेदिनीं पद्भ्यां निर्घात इव पर्वसु ॥ ३६
त्रासयन्गजयूथानि वातरंहा वृकोदरः ।
सिंहव्याघ्रमृगांश्चैव मर्दयानो महाबलः ॥ ३७
उन्मूलयन्महावृक्षान्पोथयंस्तरसा बली ।
लतावल्लीश्च वेगेन विकर्षन्पाण्डुनन्दनः ।
उपर्युपरि शैलाग्रमारुरुक्षुरिव द्विपः ॥ ३८
विनर्दमानोऽतिभृशं सविद्युदिव तोयदः ।
तेन शब्देन महता भीमस्य प्रतिबोधिताः ॥ ३९
गुहां सन्तत्यजुर्व्याघ्रा निलिल्युर्वनवासिनः ।
समुत्पेतुः खगास्त्रस्ता मृगयूथानि दुद्रुवुः ॥ ४०
ऋक्षाश्चोत्ससृजुर्वृक्षांस्तत्यजुर्हरयो गुहाम् ।
व्यजृम्भन्त महासिंहा महिषाश्चावलोकयन् ॥ ४१
तेन वित्रासिता नागाः करेणुपरिवारिताः ।
तद्वनं संपरित्यज्य जग्मुरन्यन्महावनम् ॥ ४२
वराहमृगसंघाश्च महिषाश्च वनेचराः ।
व्याघ्रगोमायुसंघाश्च प्रणेदुर्गवयैः सह ॥ ४३
रथाङ्गसाह्वदात्यूहा हंसकारण्डवप्लवाः ।
शुकाः पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञा भेजिरे दिशः ॥
तथान्ये दर्पिता नागाः करेणुशरपीडिताः ।
सिंहव्याघ्राश्च संक्रुद्धा भीमसेनमथाद्रवन् ॥ ४५
शकृन्मूत्रं च मुञ्चाना भयविभ्रान्तमानसाः ।
व्यादितास्या महारौद्रा व्यनदन्भीषणान्रवान् ४६
ततो वायुसुतः क्रोधात्स्वबाहुबलमाश्रितः ।
गजेनान्यान्गजाञ्छ्रीमान्सिंहं सिंहेन वा विभुः ४७
तलप्रहारैरन्यांश्च व्यहनत्पाण्डवो बली ।
ते वध्यमाना भीमेन सिंहव्याघ्रतरक्षवः ॥ ४८
भयाद्विससृजुर्भीमं शकृन्मूत्रं च सुस्रुवुः ।
प्रविवेश ततः क्षिप्रं तानपास्य महाबलः ॥ ४९
वनं पाण्डुसुतः श्रीमाञ्छब्देनापूरयन्दिशः ।
अथापश्यन्महाबाहुर्गन्धमादनसानुषु ॥ ५०
सुरम्यं कदलीषण्डं बहुयोजनविस्तृतम् ।
तमभ्यगच्छद्वेगेन क्षोभयिष्यन्महाबलः ॥ ५१
महागज इवास्रावी प्रभञ्जन्विविधान्द्रुमान् ।
उत्पाट्य कदलीस्तम्भान्बहुतालसमुच्छ्रयान् ॥५२
चिक्षेप तरसा भीमः समन्ताद्बलिनां वरः ।
विनदन्सुमहातेजा नृसिंह इव दर्पितः ॥ ५३
ततः सत्त्वान्युपाक्रामद्बहूनि सुमहान्ति च ।
रुरुवानरसिंहांश्च महिषांश्च जलाशयान् ॥ ५४
तेन शब्देन चैवाथ भीमसेनरवेण च ।
वनान्तरगताश्चापि वित्रेसुर्मृगपक्षिणः ॥ ५५
तं शब्दं सहसा श्रुत्वा मृगपक्षिसमीरितम् ।
जलार्द्रपक्षा विहगाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥ ५६
तानौदकान्पक्षिगणान्निरीक्ष्य भरतर्षभः ।
तानेवानुसरन्रम्यं ददर्श सुमहत्सरः ॥ ५७
काञ्चनैः कदलीषण्डैर्मन्दमारुतकम्पितैः ।
वीज्यमानमिवाक्षोभ्यं तीरात्तीरविसर्पिभिः ॥५८
तत्सरोऽथावतीर्याशु प्रभूतनलिनोत्पलम् ।
महागज इवोद्दामश्चिक्रीड बलवद्बली ॥ ५९
विक्रीड्य तस्मिन्सुचिरमुत्ततारामितद्युतिः ।
ततोऽभ्यगन्तुं वेगेन तद्वनं बहुपादपम् ॥ ६०
दध्मौ च शङ्खं स्वनवत्सर्वप्राणेन पाण्डवः ।
आस्फोटयच्च बलवान्भीमः संनादयन्दिशः ॥६१
तस्य शङ्खस्य शब्देन भीमसेनरवेण च ।
बाहुशब्देन चोग्रेण नदन्तीव गिरेर्गुहाः ॥ ६२
तं वज्रनिष्पेषसममास्फोटितमहारवम् ।
श्रुत्वा शैलगुहासुप्तैः सिंहैर्मुक्तो महास्वनः ॥ ६३

---

निर्घात उत्पातः । पर्वसु उत्सवेषु ॥ ३६ ॥ पोथयन् मर्दयन् । लता भूचरा । वल्ली वृक्षचरेति भेदः ॥ ३८ ॥ अवलोकयन् व्यलोकयन् ॥ ४१ ॥ रथाङ्गसाह्वाः चक्रसमाननामानश्चक्रवाका इति यावत् । दात्यूहः मयूरश्चातको वा 'दात्यूहः कालकण्ठके चातकेऽपि'इति मेदिनी ॥ ४४ ॥ करेणुशरेण हस्तिनीकृतेनोत्तेजनेन पीडिताः । ' शरस्तूत्तेजने बाणे ' इति मेदिनी ॥४५॥ आस्रावी मत्तगज इवेत्यर्थः । कदलीस्तम्भान् मृगविशेषपादान् । ' रम्भावृक्षेऽथ कदली पताका मृगभेदयोः'इति मेदिनी । उत्तरश्लोकाद्बलिनामित्यपकृष्य बालिनां यक्षादीनां पताका स्तम्भान् वा ॥ ५२ ॥ नलिनोत्पलं पद्मपुष्पम् । ' उत्पली तुपपर्पट्यां क्लीबं कुष्ठप्रसूनयोः 'इति मेदिनी । उद्दामः बन्धनशून्यः ॥ ५९ ॥ अभ्यगन्तुं पर्वतोपरि वनं गन्तुमुद्यतः सन्निति शेषः॥६०॥ आस्फोटित उद्घाटितः बाहुघातो वा ॥ ६३ ॥

सिंहनादभयत्रस्तैः कुञ्जरैरपि भारत ।
मुक्तो विरावः सुमहान्पर्वतो येन पूरितः ॥ ६४
तं तु नादं ततः श्रुत्वा मुक्तं वारणपुङ्गवैः ।
भ्रातरं भीमसेनं तु विज्ञाय हनुमान्कपिः ॥ ६५
दिवंगमं रुरोधाथ मार्गं भीमस्य कारणात् ।
अनेन हि पथा मा वै गच्छेदिति विचार्य सः ॥ ६६
आस्त एकायने मार्गे कदलीषण्डमण्डिते ।
भ्रातुर्भीमस्य रक्षार्थं तं मार्गमवरुध्य वै ॥ ६७
माऽत्र प्राप्स्यति शापं वा धर्षणां वेति पाण्डवः ।
कदलीषण्डमध्यस्थो ह्येवं संचिन्त्य वानरः ॥ ६८
प्राजृम्भत महाकायो हनूमान्नाम वानरः ।
कदलीषण्डमध्यस्थो निद्रावशगतस्तदा ॥ ६९
जृम्भमाणः सुविपुलं शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ।
आस्फोटयच्च लाङ्गूलमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥७०
तस्य लाङ्गूलनिनदं पर्वतः सुगुहामुखैः ।
उद्गारमिव गौर्नर्दन्नुत्ससर्ज समन्ततः ॥ ७१
लाङ्गूलास्फोटशब्दाच्च चलितः स महागिरिः ।
विघूर्णमानशिखरः समन्तात्पर्यशीर्यत ॥ ७२
स लाङ्गूलरवस्तस्य मत्तवारणनिःस्वनम् ।
अन्तर्धाय विचित्रेषु चचार गिरिसानुषु ॥ ७३
स भीमसेनस्तच्छ्रुत्वा संप्रहृष्टतनूरुहः ।
शब्दप्रभवमन्विच्छंश्चचार कदलीवनम् ॥ ७४
कदलीवनमध्यस्थमथ पीने शिलातले ।
ददर्श सुमहाबाहुर्वानराधिपतिं तदा ॥ ७५
विद्युत्संपातदुष्प्रेक्षं विद्युत्संपातपिङ्गलम् ।
विद्युत्संपातनिनदं विद्युत्संपातचञ्चलम् ॥ ७६
बाहुस्वस्तिकविन्यस्तपीनह्रस्वशिरोधरम् ।
स्कन्धभूयिष्ठकायत्वात्तनुमध्यकटीतटम् ॥ ७७
किंचिच्चाभुग्नशीर्षेण दीर्घरोमाञ्चितेन च ।
लाङ्गूलेनोर्ध्वगतिना ध्वजेनेव विराजितम् ॥ ७८
ह्रस्वौष्ठं ताम्रजिह्वास्यं रक्तवर्णं चलद्भ्रुवम् ।
विवृत्तदंष्ट्रादशनं शुक्लतीक्ष्णाग्रशोभितम् ७९
अपश्यद्वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम् ।
वदनाभ्यन्तरगतैः शुक्लैर्दन्तैरलंकृतम् ॥ ८०
केसरोत्करसंमिश्रमशोकानामिवोत्करम्
हिरण्मयीनां मध्यस्थं कदलीनां महाद्युतिम् ॥८१
दीप्यमानेन वपुषा स्वर्चिष्मन्तमिवानलम् ।
निरीक्षन्तममित्रघ्नं लोचनैर्मधुपिङ्गलैः ॥ ८२
तं वानरवरं धीमानतिकायं महाबलम् ।
स्वर्गपन्थानमावृत्य हिमवन्तमिव स्थितम् ॥ ८३
दृष्ट्वा चैनं महाबाहुरेकं तस्मिन्महावने ।
अथोपसृत्य तरसा विभीर्भीमस्ततो बली ॥ ८४
सिंहनादं चकारोग्रं वज्राशनिसमं बली ।
तेन शब्देन भीमस्य वित्रेसुर्मृगपक्षिणः ॥ ८५
हनूमांश्च महासत्त्व ईषदुन्मील्य लोचने ।
दृष्ट्वा तमथ सावज्ञं लोचनैर्मधुपिङ्गलैः ।
स्मितेन चैनमासाद्य हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ८६

हनूमानुवाच ।

किमर्थं सरुजस्तेऽहं सुखसुप्तः प्रबोधितः ।
ननु नाम त्वया कार्या दया भूतेषु जानता ॥ ८७
वयं धर्मं न जानीमस्तिर्यग्योनिमुपाश्रिताः ।
नरास्तु बुद्धिसंपन्ना दयां कुर्वन्ति जन्तुषु ॥ ८८
क्रूरेषु कर्मसु कथं देहवाक्चित्तदूषिषु ।
धर्मघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ ८९
न त्वं धर्मं विजानासि वृद्धा नोपासितास्त्वया ।
अल्पबुद्धितया बाल्यादुत्सादयसि यन्मृगान् ९०
ब्रूहि कस्त्वं किमर्थं वा किमिदं वनमागतः ।
वर्जितं मानुषैर्भावैस्तथैव पुरुषैरपि ॥ ९१
क्व च त्वयाद्य गन्तव्यं प्रब्रूहि पुरुषर्षभ ।
अतः परमगम्योऽयं पर्वतः सुदुरारुहः ॥ ९२
विना सिद्धगतिं वीर गतिरत्र न विद्यते ।
देवलोकस्य मार्गोऽयमगम्यो मानुषैः सदा ९३
कारुण्यात्त्वामहं वीर वारयामि निबोध मे ।
नातःपरं त्वया शक्यं गन्तुमाश्वसिहि प्रभो ॥ ९४
स्वागतं सर्वथैवेह तवाद्य मनुजर्षभ ।
इमान्यमृतकल्पानि मूलानि च फलानि च ॥९५

दिवंगमं मार्गं स्वर्गमार्गम् ॥ ६६ ॥ एकायने अतिसंकुचिते ॥ ६७ ॥ वानरः कपिः वानानि शुष्कफलानि राति आदत्ते इति वानरः । अहिंस्र इत्यर्थः ॥ ६८ ॥ उद्गारं प्रतिशब्दं गौरिव उत्ससर्ज ॥ ७१ ॥ बाह्वोः स्वस्तिकं चतुरस्रं मूलं अंस इति यावत् । तत्र न्यस्तकन्धरमित्यर्थः । तत्र हेतुः स्कन्धेति विपुलांसत्वादित्यर्थः ॥ ७७ ॥ आभुग्नं द्विगुणीकृतम् ॥ ७८ ॥ उडुपं चन्द्रम् ॥ ८० ॥ अशोकानां अशोकपुष्पाणाम् ॥ ८१ ॥ सरुजः सपीडः ते त्वया ॥ ८७ ॥ आश्वसिहि विश्वासं कुरु ॥ ९४ ॥

भक्षयित्वा निवर्तस्व मा वृथा प्राप्स्यसे वधम् । ग्राह्यं यदि वचो मह्यं हितं मनुजपुङ्गव ॥ ९६

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां भीमकदलीखण्डप्रवेशो षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

## १४७

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वानरेन्द्रस्य धीमतः ।
भीमसेनस्तदा वीरः प्रोवाचामित्रकर्षणः ॥ १

भीम उवाच ।

को भवान्किं निमित्तं वा वानरं वपुरास्थितः ।
ब्राह्मणानन्तरो वर्णः क्षत्रियस्त्वां तु पृच्छति ॥ २
कौरवः सोमवंशीयः कुन्त्या गर्भेण धारितः ।
पाण्डवो वायुतनयो भीमसेन इति श्रुतः ॥ ३
स वाक्यं कुरुवीरस्य स्मितेन प्रतिगृह्य तत् ।
हनूमान्वायुतनयो वायुपुत्रमभाषत ॥ ४

हनूमानुवाच ।

वानरोऽहं न ते मार्गं प्रदास्यामि यथेप्सितम् ।
साधु गच्छ निवर्तस्व मा त्वं प्राप्स्यासि वैशसम् ५

भीमसेन उवाच ।

वैशसं वास्तु यद्वान्यन्न त्वां पृच्छामि वानर ।
प्रयच्छ मार्गमुत्तिष्ठ मा मत्तः प्राप्स्यसे व्यथाम् ६

हनूमानुवाच ।

नास्ति शक्तिर्ममोत्थातुं व्याधिना क्लेशितो ह्यहम्
यद्यवश्यं प्रयातव्यं लङ्घयित्वा प्रयाहि माम् ॥ ७

भीम उवाच ।

निर्गुणः परमात्मा तु देहं व्याप्यावतिष्ठते ।
तमहं ज्ञानविज्ञेयं नावमन्ये न लङ्घये ॥ ८
यद्यागमैर्न विद्यां च तमहं भूतभावनम् ।
क्रमेयं त्वां गिरिं चैव हनूमानिव सागरम् ॥ ९

हनूमानुवाच ।

क एष हनुमान्नाम सागरो येन लङ्घितः ।
पृच्छामि त्वां नरश्रेष्ठ कथ्यतां यदि शक्यते १०

भीम उवाच ।

भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्त्वबलान्वितः ।
रामायणेऽतिविख्यातः श्रीमान्वानरपुङ्गवः ॥ ११
रामपत्नीकृते येन शतयोजनविस्तृतः ।
सागरः प्लवगेन्द्रेण क्रमेणैकेन लङ्घितः ॥ १२
स मे भ्राता महावीर्यस्तुल्योऽहं तस्य तेजसा ।
बले पराक्रमे युद्धे शक्तोऽहं तव निग्रहे ॥ १३
उत्तिष्ठ देहि मे मार्गं पश्य मे चाद्य पौरुषम् ।
मच्छासनमकुर्वाणं त्वां वा नेष्ये यमक्षयम् ॥ १४

वैशंपायन उवाच ।

विज्ञाय तं बलोन्मत्तं बाहुवीर्येण दर्पितम् ।
हृदयेनावहस्यैनं हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ १५

हनूमानुवाच ।

प्रसीद नास्ति मे शक्तिरुत्थातुं जरयानघ ।
ममानुकम्पया त्वेतत्पुच्छमुत्सार्य गम्यताम् १६

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्ते हनुमता हीनवीर्यपराक्रमम् ।
मनसाचिन्तयद्भीमः स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १७

---

मह्यं मम ॥ ९६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

१४७

एतदिति ॥ १ ॥ वैशसं विरोधम् ॥५॥ निर्गुण इति । गुणाः सत्त्वादयो रूपादयश्च तैर्वर्जितः । अत एव परमः । कोशपञ्चके हि अनात्मन्यात्मत्वं अमुख्यं आध्यासिकत्वात्तस्य । ततोऽन्यस्तु निरुपाधिचिन्मात्रो मुख्य आत्मा प्रत्यग्भूतः आकाशो घटमिव देहं व्याप्य स्थितः । एतेन शुद्धस्त्वं पदार्थ उक्तः । अस्य निर्गुणत्वेऽनुभवं प्रमाणयति । ज्ञानविज्ञेयमिति । ज्ञानं शास्त्रार्थध्यानजप्रमा तेन ज्ञेयम् । ज्ञातविज्ञेयमिति पाठे सर्वप्रकाशकं अहंकारादि साक्षिणमित्यर्थः । तस्यावमानना शालग्रामादिवत्तदुपाधिभूतस्य शरीरस्य लङ्घनेन भवति अतस्तद्द्वयं न कुर्वे इत्यर्थः ॥ ८ ॥ भूतभावनं भूतानां वियदादीनां जरायुजादीनां च भावनं रचनं यस्मात्तम् । 'आत्मन आकाशः संभूतः । आत्मनः सर्व एव आत्मानो व्युच्चरन्ति'इत्यादिश्रुतिभ्यः । एतेन तत्पदार्थ उक्तः । तयोः सामानाधिकरण्यादभेदे ब्रह्माद्वैतं च दर्शितम् ॥ ९ ॥ क्रमेण पादविक्षेपेण ॥ १२ ॥ एवमुक्ते सति । तमित्यध्याहारः । तं हीनवीर्यपराक्रमम् मनसाचिन्तयन्मेने ॥ १७ ॥

पुच्छे प्रगृह्य तरसा हीनवीर्यपराक्रमम् ।
सालोक्यमन्तकस्यैनं नयाम्यद्येह वानरम् ॥ १८
सावज्ञमथ वामेन स्मयञ्जग्राह पाणिना ।
न चाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः ॥ १९
उच्चिक्षेप पुनर्दोर्भ्यामिन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ।
नोद्धर्तुमशकद्भीमो दोर्भ्यामपि महाबलः ॥ २०
उत्क्षिप्तभ्रूर्विवृत्ताक्षः संहतभ्रुकुटीमुखः ।
स्विन्नगात्रोऽभवद्भीमो न चोद्धर्तुं शशाक तम् २१
यत्नवानपि तु श्रीमाल्लाङ्गूलोद्धरणोद्धुरः ।
कपेः पार्श्वगतो भीमस्तस्थौ व्रीडानताननः ॥ २२
प्रणिपत्य च कौन्तेयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
प्रसीद कपिशार्दूल दुरुक्तं क्षम्यतां मम ॥ २३
सिद्धो वा यदि वा देवो गन्धर्वो वाथ गुह्यकः ।
पृष्टः सन्कामया ब्रूहि कस्त्वं वानररूपधृक् ॥ २४
न चेद्गुह्यं महाबाहो श्रोतव्यं चेद्भवेन्मम ।
शिष्यवत्त्वां तु पृच्छामि उपपन्नोऽस्मि तेऽनघ २५
हनूमानुवाच ।
यत्ते मम परिज्ञाने कौतूहलमरिंदम ।
तत्सर्वमखिलेन त्वं शृणु पाण्डवनन्दन ॥ २६
अहं केसरिणः क्षेत्रे वायुना जगदायुना ।
जातः कमलपत्राक्ष हनूमान्नाम वानरः ॥ २७
सूर्यपुत्रं च सुग्रीवं शक्रपुत्रं च वालिनम् ।
सेव वानरराजानस्तथा वानरयूथपाः ॥ २८
उपतस्थुर्महावीर्या मम चामित्रकर्षण ।
सुग्रीवेणाभवत्प्रीतिरनिलस्याग्निना यथा ॥ २९
निकृतः स ततो भ्रात्रा कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
ऋष्यमूके मया सार्धं सुग्रीवो न्यवसच्चिरम् ॥ ३०
अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः ।
विष्णुर्मानुषरूपेण चचार वसुधातलम् ॥ ३१
स पितुः प्रियमन्विच्छन्सहभार्यः सहानुजः ।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो दण्डकारण्यमाश्रितः ॥ ३२
तस्य भार्या जनस्थानाच्छलेनापहृता बलात् ।
राक्षसेन्द्रेण बलिना रावणेन दुरात्मना ॥ ३३
सुवर्णरत्नचित्रेण मृगरूपेण रक्षसा ।
वञ्चयित्वा नरव्याघ्रं मारीचेन तदानघ ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां हनुमद्भीमसंवादे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

## १४८

हनूमानुवाच ।
हृतदारः सह भ्रात्रा पत्नीं मार्गन्स राघवः ।
दृष्टवाञ्शैलशिखरे सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥ १
तेन तस्याभवत्सख्यं राघवस्य महात्मनः ।
स हत्वा वालिनं राज्ये सुग्रीवमभिषिक्तवान् ॥२
स राज्यं प्राप्य सुग्रीवः सीतायाः परिमार्गणे ।
वानरान्प्रेषयामास शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३
ततो वानरकोटीभिः सहितोऽहं नरर्षभ ।
सीतां मार्गन्महाबाहो प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥ ४
ततः प्रवृत्तिः सीताया गृध्रेण सुमहात्मना ।
संपातिना समाख्याता रावणस्य निवेशने ॥ ५
ततोऽहं कार्यसिद्ध्यर्थं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
शतयोजनविस्तारमर्णवं सहसाप्लुतः ॥ ६
अहं स्ववीर्यादुत्तीर्य सागरं मकरालयम् ।
सुतां जनकराजस्य सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ ७ ॥
दृष्टवान्भरतश्रेष्ठ रावणस्य निवेशने ।
समेत्य तामहं देवीं वैदेहीं राघवप्रियाम् ॥ ८
दग्ध्वा लङ्कामशेषेण साट्टप्राकारतोरणाम् ।
प्रत्यागतश्चास्य पुनर्नाम तत्र प्रकाश्य वै ॥ ९

---

उपतस्थुर्वालिनम् । मम च सुग्रीवेण प्रीतिरभवत् ॥ २९ ॥ निकृतः निरस्तः ॥ ३० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

१४८

हृतदार इति ॥ १० ॥ समेत्य विदित्वा संभाषणादिना निश्चित्येत्यर्थः ॥ ८ ॥ अस्य रामस्य । तत्र लङ्कायाम् ॥ ९ ॥

मद्वाक्यं चावधार्याशु रामो राजीवलोचनः।
स बुद्धिपूर्वं सैन्यस्य बध्वा सेतुं महोदधौ ॥ १०
वृतो वानरकोटीभिः समुत्तीर्णो महार्णवम्।
ततो रामेण वीर्येण हत्वा तान्सर्वराक्षसान् ॥११
रणे तु राक्षसगणं रावणं लोकरावणम्।
निशाचरेन्द्रं हत्वा तु सभ्रातृसुतबान्धवम् ॥ १२
राज्येऽभिषिच्य लङ्कायां राक्षसेन्द्रं बिभीषणम्।
धार्मिकं भक्तिमन्तं च भक्तानुगतवत्सलम् ॥ १३
ततः प्रत्याहृता भार्या नष्टा वेदश्रुतिर्यथा।
तयैव सहितः साध्व्या पत्न्या रामो महायशाः॥
गत्वा ततोऽतित्वरितः स्वां पुरीं रघुनन्दनः।
अध्यावसत्ततोऽयोध्यामयोध्यां द्विषतां प्रभुः १५
ततः प्रतिष्ठितो राज्ये रामो नृपतिसत्तमः।
वरं मया याचितोऽसौ रामो राजीवलोचनः १६
यावद्रामकथेयं ते भवेल्लोकेषु शत्रुहन्।
तावज्जीवेयमित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत् ॥
सीताप्रसादाच्च सदा मामिहस्थमरिंदम।
उपतिष्ठन्ति दिव्या हि भोगा भीम यथेप्सिताः१८
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
राज्यं कारितवान्रामस्ततः स्वभवनं गतः ॥ १९
तदिहाप्सरसस्तात गन्धर्वाश्च सदानघ।
तस्य वीरस्य चरितं गायन्तो रमयन्ति माम् २०
अयं च मार्गो मर्त्यानामगम्यः कुरुनन्दन।
ततोऽहं रुद्धवान्मार्गं तवेमं देवसेवितम् ॥ २१
धर्षयेद्वा शपेद्वापि मा कश्चिदिति भारत।
दिव्यो देवपथो ह्येष नात्र गच्छन्ति मानुषाः।
यदर्थमागतश्चासि अत एव सरश्च तत् ॥ २२

इति श्रीमहाभा० आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां हनुमद्भीमसंवादे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

## १४९

वैशंपायन उवाच।
एवमुक्तो महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान्।
प्रणिपत्य ततः प्रीत्या भ्रातरं हृष्टमानसः ॥ १
उवाच श्लक्ष्णया वाचा हनूमन्तं कपीश्वरम्।
मया धन्यतरो नास्ति यदार्यं दृष्टवानहम् ॥ २
अनुग्रहो मे सुमहांस्तृप्तिश्च तव दर्शनात्।
एवं तु कृतमिच्छामि त्वयाद्य प्रियमात्मनः ॥ ३
यत्त्वेतदासीत्प्लवतः सागरं मकरालयम्।
रूपमप्रतिमं वीर तदिच्छामि निरीक्षितुम् ॥ ४
एवं तुष्टो भविष्यामि श्रद्धास्यामि च ते वचः।
एवमुक्तः स तेजस्वी प्रहस्य हरिरब्रवीत् ॥ ५
न तच्छक्यं त्वया द्रष्टुं रूपं नान्येन केनचित्।
कालावस्था तदा ह्यन्या न सा वर्तति सांप्रतम्६
अन्यः कृतयुगे कालस्त्रेतायां द्वापरे परः।
अयं प्रध्वंसनः कालो नाद्य तद्रूपमस्ति मे ॥ ७
भूमिर्नद्यो नगाः शैलाः सिद्धा देवा महर्षयः।
कालं समनुवर्तन्ते यथा भावा युगे युगे ॥ ८
बलवर्ष्मप्रभावा हि प्रहीयन्त्युद्भवन्ति च।
तदलं बत तद्रूपं द्रष्टुं कुरुकुलोद्वह।
युगं समनुवर्तामि कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ९
भीम उवाच।
युगसंख्यां समाचक्ष्व आचारं च युगे युगे।
धर्मकामार्थभावांश्च कर्मवीर्ये भवाभवौ ॥ १०
हनूमानुवाच।
कृतं नाम युगं तात यत्र धर्मः सनातनः।
कृतमेव न कर्तव्यं तस्मिन्काले युगोत्तमे ॥ ११

अवधार्य निश्चित्य ॥ १० ॥ लोकरावणं लोकपीडाकरम् ॥ १२ ॥ अयोध्यां योद्धुमशक्याम् ॥ १५ ॥ कारितवान् कृतवान्। स्वार्थे णिच्। स्वभवनं वैकुण्ठम् ॥ १९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

१४९

एवमिति ॥ १ ॥ हरिर्वानरः ॥ ५ ॥ वर्ष्म शरीरम् ॥ ९ ॥ भावान् तत्त्वानि। कर्म शुभाशुभम्। वीर्यं फलोदयपर्यन्तं शक्तिः। भवाभवौ उत्पत्तिविनाशौ ऐश्वर्यानैश्वर्ये वा ॥ १० ॥ कृतमेव सर्वं कृतकृत्या एवेत्यर्थः। तत एव हेतोः कृतयुगं नाम ॥ ११ ॥

न तत्र धर्माः सीदन्ति क्षीयन्ते न च वै प्रजाः ।
ततः कृतयुगं नाम कालेन गुणतां गतम् ॥ १२
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ।
नासन्कृतयुगे तात तदा न क्रयविक्रयः ॥ १३
न सामऋग्यजुर्वर्णाः क्रिया नासीच्च मानवी ।
अभिध्याय फलं तत्र धर्मः संन्यास एव च ॥ १४
न तस्मिन्युगसंसर्गे व्याधयो नेन्द्रियक्षयः ।
नासूया नापि रुदितं न दर्पो नापि वैकृतम् १५
न विग्रहः कुतस्तन्द्री न द्वेषो न च पैशुनम् ।
न भयं नापि संतापो न चेर्ष्या न च मत्सरः ॥
ततः परमकं ब्रह्म सा गतिर्योगिनां परा ।
आत्मा च सर्वभूतानां शुक्लो नारायणस्तदा ॥१७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च कृतलक्षणाः ।
कृते युगे समभवन्स्वकर्मनिरताः प्रजाः ॥ १८
समाश्रयं समाचारं समज्ञानं च केवलम् ।
तदा हि समकर्माणो वर्णा धर्मानवाप्नुवन् ॥ १९
एकदेवसदायुक्ता एकमन्त्रविधिक्रियाः ।
पृथग्धर्मास्त्वेकवेदा धर्ममेकमनुव्रताः ॥ २०
चातुराश्रम्ययुक्तेन कर्मणा कालयोगिना ।
अकामफलसंयोगात्प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥ २१
आत्मयोगसमायुक्तो धर्मोऽयं कृतलक्षणः ।
कृते युगे चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्यस्य शाश्वतः ॥ २२
एतत्कृतयुगं नाम त्रैगुण्यपरिवर्जितम् ।
त्रेतामपि निबोध त्वं यस्मिन्सत्रं प्रवर्तते ॥ २३
पादेन ह्रसते धर्मो रक्ततां याति चाच्युतः ।
सत्यप्रवृत्ताश्च नराः क्रियाधर्मपरायणाः ॥ २४
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते धर्माश्च विविधाः क्रियाः ।
त्रेतायां भावसंकल्पाः क्रियादानफलोपगाः २५
प्रचलन्ति न वै धर्मात्तपोदानपरायणाः ।
स्वधर्मस्थाः क्रियावन्तो नरास्त्रेतायुगेऽभवन्२६
द्वापरे च युगे धर्मो द्विभागोनः प्रवर्तते ।
विष्णुर्वै पीततां याति चतुर्धा वेद एव च ॥ २७
ततोऽन्ये च चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथापरे ।
द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाप्यनृचश्च तथापरे ॥ २८
एवं शास्त्रेषु भिन्नेषु बहुधा नीयते क्रिया ।
तपोदानप्रवृत्ता च राजसी भवति प्रजा ॥ २९
एकदेवस्य चाज्ञानाद्वेदास्ते बहवः कृताः ।
सत्त्वस्य चेह विभ्रंशात्सत्ये कश्चिदवस्थितः ३०

---

गुणतां मुख्यमपि अमुख्यतां गतम् ॥१२॥ न सामेति । त्रयीधर्मस्य चित्तशुद्ध्यर्थत्वात्तस्याश्च तदानीं स्वभावसिद्धत्वान्न सामादीन्यासन् । मानवी क्रिया कृष्याद्यारम्भरूपा । किं तु अभिध्याय फलं संकल्पादेव सर्वं संपद्यत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ वैकृतं कपटम् ॥ १५ ॥ विग्रहो वैरम् । तन्द्री आलस्यम् । द्वेषः परानिष्टचिन्तनम् । पैशुनं तद्भाषणम् । ईर्ष्या अक्षमा । मत्सरः परोत्कर्षासहिष्णुत्वम् ॥ १६ ॥ ततः असूयादित्यागात् परमकं परमानन्दात्मकं ब्रह्म प्राप्यत इति शेषः । गतिः प्राप्यम् । आत्मेति श्वेतरक्तपीतकृष्णरूपाणि क्रमेण कृतादिषु भवन्तीति कृते नारायणः शुक्ल इत्युक्तम् ॥ १७ ॥ कृतलक्षणाः कृतानि स्वतःसिद्धानि लक्षणानि शमो दमस्तप इत्यादीनि येषां ते ॥ १८ ॥ समं ब्रह्म तदेव आश्रयादिर्यस्य तत्तथा । ब्रह्मैव फलप्राप्तये श्रयेत् । तत्प्राप्त्यर्थ एव आचारो यस्य । तस्यैव च ज्ञानं केवलं निरुपाधिविषयम् । ब्रह्मैव कर्माणि गत्यागत्यादीनि येषां ते । 'अहमग्निरहं हुतम्'इत्यादिवचनात् ॥ १९ ॥ एको देवः प्रत्यगात्मा तत्रैव सदा युक्ता योगवन्तः । एको मन्त्रः प्रणवः । एको विधिर्वेदान्तश्रवणादिः । एका क्रिया ध्यानादिः । एक एव तत्त्वप्रतिपादको वेदो येषाम् । सर्वेऽपि ज्ञाननिष्ठा एव न तु केवलकर्मठा व्यसनिनो वा ॥ २० ॥ कालो दर्शादिः तद्युक्तेन कर्मणा कामफलेन इच्छितफलेन स्त्र्यादिना स्वर्गादिना वा संयोगस्तदभावात् ॥ २१ ॥ आत्मनि ब्रह्मणि योग ऐक्यं तेन समायुक्तोऽयं धर्मो योगाख्यः कृतलक्षणः कृतयुगसूचकः । यदैव यत्रैव पुंसि ईदृग्धर्मो वर्धते तदैव कृतयुगमित्यर्थः । चतुष्पादः अविकलः ॥ २२ ॥ त्रैगुण्यं प्रवृत्तिप्रकाशमोहात्मकरजःसत्त्वतमसां समाहारस्तेन वर्जितम् । सत्रं यज्ञक्रिया रजोमिश्रत्वात् ॥ २३ ॥ सत्येनैव प्रवृत्ताः ॥ २४ ॥ भावसंकल्पाः भावो भावना क्रिया अहमनेन कर्मणा इदं फलं अनेन प्रकारेण करिष्यामीत्येवंरूपा तद्विषय एव संकल्पो येषाम् । अत एव क्रियादिभिः फलोपगाः फलभुजो न तु कृतवत्संकल्पसिद्धाः ॥ २५ ॥ द्विभागोनः पादद्वयहीनः । चतुर्धा वेदः कृतः । कृत्स्नस्यैकेन धारयितुमशक्यत्वात् ॥ २७ ॥ अनृचः ऋङ्मात्रेणापि हीना अतिमान्द्यात् । यद्वा चतुर्वेदा इति वेदत्रयोक्तं कर्म ज्योतिष्टोमादिकम् । अथर्वणोपनिषदुक्तं ध्यानं च सहैव वानुतिष्ठन्तीति कर्मोपास्तिसमुच्चय उक्तः । त्रिवेदा इति केवलकर्मठाः । द्विवेदा इति स्वशाखोक्तं संध्यावन्दनादिकर्म ध्यानं चानुतिष्ठन्ति । एकवेदा ध्यानैकनिष्ठाः । अनृचः कृतकृत्याः । 'विपर्यस्तो निदिध्यासेत्किं ध्यानमविपर्यये' इत्युक्तेर्ध्यानादपि विरक्ताः ॥ २८ ॥ सत्त्वस्य बुद्धेः । विभ्रंशात् क्षयात् ॥ ३० ॥

सत्यात्प्रच्यवमानानां व्याधयो बहवोऽभवन् ।
कामाश्चोपद्रवाश्चैव तदा वै दैवकारिताः ॥ ३१
यैरर्द्यमानाः सुभृशं तपस्तप्यन्ति मानवाः ।
कामकामाः स्वर्गकामा यज्ञांस्तन्वन्ति चापरे ॥
एवं द्वापरमासाद्य प्रजाः क्षीयन्त्यधर्मतः ।
पादेनैकेन कौन्तेय धर्मः कलियुगे स्थितः ॥ ३३
तामसं युगमासाद्य कृष्णो भवति केशवः ।
वेदाचाराः प्रशाम्यन्ति धर्मयज्ञक्रियास्तथा ॥ ३४
ईतयो व्याधयस्तन्द्री दोषाः क्रोधादयस्तथा ।
उपद्रवाः प्रवर्तन्ते आधयः क्षुद्भयं तथा ॥ ३५
युगेष्वावर्तमानेषु धर्मो व्यावर्तते पुनः ।
धर्मे व्यावर्तमाने तु लोको व्यावर्तते पुनः ॥ ३६
लोके क्षीणे क्षयं यान्ति भावा लोकप्रवर्तकाः ।
युगक्षयकृता धर्माः प्रार्थनानि विकुर्वते ॥ ३७
एतत्कलियुगं नाम अचिराद्यत्प्रवर्तते ।
युगानुवर्तनं त्वेतत्कुर्वन्ति चिरजीविनः ॥ ३८
यच्च ते मत्परिज्ञाने कौतूहलमरिंदम ।
अनर्थकेषु को भावः पुरुषस्य विजानतः ॥ ३९
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
युगसंख्यां महाबाहो स्वस्ति प्राप्नुहि गम्यताम् ॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां कदलीषण्डे हनुमद्भीमसंवादे ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

## १५०

भीमसेन उवाच ।
पूर्वरूपमदृष्ट्वा ते न यास्यामि कथंचन ।
यदि तेऽहमनुग्राह्यो दर्शयात्मानमात्मना ॥ १
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु भीमेन स्मितं कृत्वा प्लवंगमः ।
तद्रूपं दर्शयामास यद्वै सागरलङ्घने ॥ २
भ्रातुः प्रियमभीप्सन्वै चकार सुमहद्वपुः ।
देहस्तस्य ततोऽतीव वर्धत्यायामविस्तरैः ॥ ३
सद्रुमं कदलीषण्डं छादयन्नमितद्युतिः ।
गिरिश्चोच्छ्रयमाक्रम्य तस्थौ तत्र च वानरः ॥ ४
समुच्छ्रितमहाकायो द्वितीय इव पर्वतः ।
ताम्रेक्षणस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भृकुटीकुटिलाननः ॥ ५
दीर्घलाङ्गूलमाविध्य दिशो व्याप्य स्थितः कपिः ।
तद्रूपं महदालक्ष्य भ्रातुः कौरवनन्दनः ॥ ६
विसिस्मिये तदा भीमो जहृषे च पुनः पुनः ।
तमर्कमिव तेजोभिः सौवर्णमिव पर्वतम् ॥ ७
प्रदीप्तमिव चाकाशं दृष्ट्वा भीमो न्यमीलयत् ।
आबभाषे च हनुमान्भीमसेनं स्मयन्निव ॥ ८
एतावदिह शक्तस्त्वं द्रष्टुं रूपं ममानघ ।
वर्धेऽहं चाप्यतो भूयो यावन्मे मनसि स्थितम् ।
भीमशत्रुषु चात्यर्थं वर्धते मूर्तिरोजसा ॥ ९
वैशंपायन उवाच ।
तदद्भुतं महारौद्रं विन्ध्यपर्वतसंनिभम् ।
दृष्ट्वा हनूमतो वर्ष्म संभ्रान्तः पवनात्मजः ॥ १०
प्रत्युवाच ततो भीमः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कृताञ्जलिरदीनात्मा हनूमन्तमवस्थितम् ॥ ११
दृष्टं प्रमाणं विपुलं शरीरस्यास्य ते विभो ।
संहरस्व महावीर्य स्वयमात्मानमात्मना ॥ १२
न हि शक्नोमि त्वां द्रष्टुं दिवाकरमिवोदितम् ।
अप्रमेयमनाधृष्यं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १३
विस्मयश्चैव मे वीर सुमहान्मनसोऽद्य वै ।
यद्रामस्त्वयि पार्श्वस्थे स्वयं रावणमभ्यगात् ॥ १४
त्वमेव शक्तस्तां लङ्कां सयोधां सहवाहनाम् ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य विनाशयितुमञ्जसा ॥ १५

---

यैः व्याधिभिः कामैश्च ॥ ३२ ॥ तामसं तमोगुणप्रधानं कलिम् ॥ ३४ ॥ ईतयः अतिवृष्ट्याद्यः ॥ ३५ ॥ व्यावर्तते नश्यति ॥ ३६ ॥ भावाः धर्मज्ञानादयः । प्रार्थनानि विकुर्वते । अन्यत्प्रार्थ्यतेऽन्यत् जायते । पौष्टिकमपि कर्मविधिलोपान्नाशकं भवतीति भावः ॥ ३७ ॥ चिरजीविनो मादृशा अपि युगानुवर्तिनः कालानुसारिणो भवन्ति ॥ ३८ ॥ अनर्थकेषु निष्प्रयोजनेषु । भावोऽभिनिवेशः ॥ ३९ ॥ स्वस्ति कल्याणम् ॥ ४० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

१५०

पूर्वरूपमिति ॥ १ ॥ गिरिश्च विन्ध्यगिरिरिव । इवार्थे चः ॥ ४ ॥

न हि ते किंचिदप्राप्यं मारुतात्मज विद्यते ।
तव नैकस्य पर्याप्तो रावणः सगणो युधि ॥ १६
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु भीमेन हनूमान्प्लवगोत्तमः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं स्निग्धगम्भीरया गिरा १७
हनूमानुवाच ।
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
भीमसेन न पर्याप्तो ममासौ राक्षसाधमः ॥ १८
मया तु निहते तस्मिन्रावणे लोककण्टके ।
कीर्तिर्नश्येद्राघवस्य तत एतदुपेक्षितम् ॥ १९
तेन वीरेण तं हत्वा सगणं राक्षसाधमम् ।
आनीता स्वपुरं सीता कीर्तिश्चाख्यापिता नृषु २०
तद्गच्छ विपुलप्रज्ञ भ्रातुः प्रियहिते रतः ।
अरिष्टं क्षेममध्वानं वायुना परिरक्षितः ॥ २१
एष पन्थाः कुरुश्रेष्ठ सौगन्धिकवनाय ते ।
द्रक्ष्यसे धनदोद्यानं रक्षितं यक्षराक्षसैः ॥ २२
न च ते तरसा कार्यः कुसुमावचयः स्वयम् ।
दैवतानि हि मान्यानि पुरुषेण विशेषतः ॥ २३
बलिहोमनमस्कारैर्मन्त्रैश्च भरतर्षभ ।
दैवतानि प्रसादं हि भक्त्या कुर्वन्ति भारत ॥२४
मा तात साहसं कार्षीः स्वधर्मं परिपालय ।
स्वधर्मस्थः परं धर्मं बुध्यस्व गमयस्व च ॥ २५
न हि धर्ममविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य च ।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥ २६
अधर्मो यत्र धर्माख्यो धर्मश्चाधर्मसंज्ञितः ।
स विज्ञेयो विभागेन यत्र मुह्यन्त्यबुद्धयः ॥ २७
आचारसंभवो धर्मो धर्मे वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
वेदैर्यज्ञाः समुत्पन्ना यज्ञैर्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥ २८
वेदाचारविधानोक्तैर्यज्ञैर्धार्यन्ति देवताः ।
बृहस्पत्युशनःप्रोक्तैर्नयैर्धार्यन्ति मानवाः ॥ २९

पण्याकरवणिज्याभिः कृष्यागोजाविपोषणैः ।
वार्तया धार्यते सर्वं धर्मैरेतैर्द्विजातिभिः ॥ ३०
त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तिस्रो विद्या विजानताम् ।
ताभिः सम्यक्प्रयुक्ताभिर्लोकयात्रा विधीयते ॥ ३१
सा चेद्धर्मकृता न स्यात्त्रयीधर्ममृते भुवि ।
दण्डनीतिमृते चापि निर्मर्यादमिदं भवेत् ॥ ३२
वार्ताधर्मे ह्यवर्तिन्यो विनश्येयुरिमाः प्रजाः ।
सुप्रवृत्तैस्त्रिभिर्ह्येतैर्धर्मैः सूयन्ति वै प्रजाः ॥ ३३
द्विजातीनामृतं धर्मो ह्येकश्चैवैकवर्णिकः ।
यज्ञाध्ययनदानानि त्रयः साधारणाः स्मृताः ॥३४
याजनाध्यापनं विप्रे धर्मश्चैव प्रतिग्रहः ।
पालनं क्षत्रियाणां वै वैश्यधर्मश्च पोषणम् ॥ ३५
शुश्रूषा च द्विजातीनां शूद्राणां धर्म उच्यते ।
भैक्ष्यहोमव्रतैर्हीनास्तथैव गुरुवासिताः ॥ ३६
क्षत्रधर्मोऽत्र कौन्तेय तव धर्मोऽत्र रक्षणम् ।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व विनीतो नियतेन्द्रियः ॥ ३७
वृद्धैः संमन्त्र्य सद्भिश्च बुद्धिमद्भिः श्रुतान्वितैः ।
आस्थितः शास्ति दण्डेन व्यसनी परिभूयते ॥ ३८
निग्रहानुग्रहैः सम्यग्यदा राजा प्रवर्तते ।
तदा भवन्ति लोकस्य मर्यादाः सुव्यवस्थिताः ३९
तस्माद्देशे च दुर्गे च शत्रुमित्रबलेषु च ।
नित्यं चारेण बोद्धव्यं स्थानं वृद्धिः क्षयस्तथा ४०
राज्ञामुपायश्चारश्च बुद्धिमन्त्रपराक्रमाः ।
निग्रहप्रग्रहौ चैव दाक्ष्यं वै कार्यसाधकम् ॥ ४१
साम्ना दानेन भेदेन दण्डेनोपेक्षणेन च ।
साधनीयानि कर्माणि समासव्यासयोगतः ॥ ४२
मन्त्रमूला नयाः सर्वे चाराश्च भरतर्षभ ।
सुमन्त्रितेन या सिद्धिस्तां द्विजैः सह मन्त्रयेत् ॥
स्त्रिया मूढेन बालेन लुब्धेन लघुनापि वा ।
न मन्त्रयीत गुह्यानि येषु चोन्मादलक्षणम् ॥ ४४

---

पर्याप्तः समर्थः ॥ १६ ॥ अरिष्टं निर्विघ्नम् ॥ २१ ॥ पुरुषेण मर्त्येन ॥ २३ ॥ गमयस्व बोधपूर्वकमनुतिष्ठ । स्वार्थे णिच् ॥ २५ ॥ दुर्जनवधोऽधर्मोऽपि धर्म एव । परोपघातकं सत्यं धर्मोऽपि अधर्म एव ॥ २७ ॥ आचारः शौचादिस्तेन धर्मः प्राप्यते ततो वेदाधिगमस्ततो यज्ञानुष्ठानं ततो देवताप्रसाद इत्यर्थः ॥ २८ ॥ वेदेति । यज्ञै- र्देवानां नीत्या मनुष्याणां च स्थितिरित्यर्थः ॥ २९ ॥ पणो भृतिस्तामर्हतीति पण्या सेवा । 'पणो वराटमाने स्यात्' इत्युपक्रम्य 'व्यवहारे भृतौ धने' इति मेदिनी । वार्ता जीवि- कार्थावृत्तिः ॥ ३० ॥ सा च क्रमेण ब्राह्मणस्य त्रयी याजनाध्यापनादिः । वैश्यस्य वार्तापण्यादिः । क्षत्रियस्य दण्डादिः ॥ ३१ ॥ सा लोकयात्रा ॥ ३२ ॥ ऋतं सत्यं आत्मज्ञानाख्यम् । एको वर्णः शुक्लः केवलसात्त्विकः धर्मो योगाख्यः ॥ ३४ ॥ भैक्ष्येति । गुरौ त्रिवर्णे वासितं वासो येषां ते शूद्राः । भैक्ष्यादिभिर्हीना भवन्ति ॥ ३६ ॥ क्षत्रधर्मोऽत्र प्रकरणे उच्यते । स च तव धर्मोऽत्र लोके ॥ ३७ ॥ आस्थितः अनुगृहीतः ॥ ३८ ॥ स्थानं सिद्धसंरक्षणम् ॥ ४० ॥ समासः क्षमादिपञ्चके एकेन द्वित्रैर्वा कार्यसाधनं व्यासः सर्वैस्तत्सिद्धिः ॥ ४२ ॥

मन्त्रयेत्सह विद्वद्भिः शक्तैः कर्माणि कारयेत् ।
स्निग्धैश्च नीतिविन्यासान्मूर्खान्सर्वत्र वर्जयेत् ४५
धार्मिकान्धर्मकार्येषु अर्थकार्येषु पण्डितान् ।
स्त्रीषु क्लीबान्नियुञ्जीत क्रूरान्क्रूरेषु कर्मसु ॥ ४६
स्वेभ्यश्चैव परेभ्यश्च कार्याकार्यसमुद्भवा ।
बुद्धिः कर्मसु विज्ञेया रिपूणां च बलाबलम् ४७
बुद्ध्या स्वप्रतिपन्नेषु कुर्यात्साध्वनुग्रहम् ।
निग्रहं चाप्यशिष्टेषु निर्मर्यादेषु कारयेत् ॥ ४८
निग्रहे प्रग्रहे सम्यग्यदा राजा प्रवर्तते ।
तदा भवति लोकस्य मर्यादा सुव्यवस्थिता ॥४९
एष तेऽभिहितः पार्थ घोरो धर्मो दुरन्वयः ।
तं स्वधर्मविभागेन विनयस्थोऽनुपालय ॥ ५०
तपोधर्मदमेज्याभिर्विप्रा यान्ति यथा दिवम् ।
दानातिथ्यक्रियाधर्मैर्यान्ति वैश्याश्च सद्गतिम् ५१
क्षत्रं याति तथा स्वर्गं भुवि निग्रहपालनैः ।
सम्यक्प्रणीतदण्डा हि कामद्वेषविवर्जिताः ।
अलुब्धा विगतक्रोधाः सतां यान्ति सलोकताम्॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां हनूमद्भीमसेनसंवादे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

## १५१

वैशंपायन उवाच ।
ततः संहृत्य विपुलं तद्वपुः कामतः कृतम् ।
भीमसेनं पुनर्दोर्भ्यां पर्यष्वजत वानरः ॥ १
परिष्वक्तस्य तस्याशु भ्रात्रा भीमस्य भारत ।
श्रमो नाशमुपागच्छत्सर्वं चासीत्प्रदक्षिणम् ॥ २
बलं चातिबलो मेने न मेऽस्ति सदृशो महान् ।
ततः पुनरथोवाच पर्यश्रुनयनो हरिः ॥ ३
भीममाभाष्य सौहार्दाद्बाष्पगद्गदया गिरा ।
गच्छ वीर स्वमावासं स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे ४
इहस्थश्च कुरुश्रेष्ठ न निवेद्योऽस्मि कर्हिचित् ।
धनदस्यालयाच्चापि विसृष्टानां महाबल ॥ ५
देशकाल इहायातुं देवगन्धर्वयोषिताम् ।
ममापि सफलं चक्षुः स्मारितश्चास्मि राघवम् ६
रामाभिधानं विष्णुं हि जगद्धृदयनन्दनम् ।
सीतावक्त्रारविन्दार्कं दशास्यध्वान्तभास्करम्॥७
मानुषं गात्रसंस्पर्शं गत्वा भीम त्वया सह ।
तदस्मद्दर्शनं वीर कौन्तेयामोघमस्तु ते ॥ ८
भ्रातृत्वं त्वं पुरस्कृत्य वरं वरय भारत ।
यदि तावन्मया क्षुद्रा गत्वा वारणसाह्वयम् ॥ ९
धार्तराष्ट्रा निहन्तव्या यावदेतत्करोम्यहम् ।
शिलया नगरं वापि मर्दितव्यं मया यदि ॥ १०
बद्ध्वा दुर्योधनं चाद्य आनयामि तवान्तिकम् ।
यावदेतत्करोम्यद्य कामं तव महाबल ॥ ११
वैशंपायन उवाच ।
भीमसेनस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा तस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच हनूमन्तं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १२
कृतमेव त्वया सर्वं मम वानरपुङ्गव ।
स्वस्ति तेऽस्तु महाबाहो कामये त्वां प्रसीद मे ॥
सनाथाः पाण्डवाः सर्वे त्वया नाथेन वीर्यवन् ।
तवैव तेजसा सर्वान्विजेष्यामो वयं परान् ॥१४
एवमुक्तस्तु हनुमान्भीमसेनमभाषत ।
भ्रातृत्वात्सौहृदाच्चैव करिष्यामि प्रियं तव ॥ १५
चमूं विगाह्य शत्रूणां परशक्तिसमाकुलाम् ।
यदा सिंहरवं वीर करिष्यसि महाबल ॥ १६
तदाहं बृंहयिष्यामि स्वरवेण रवं तव ।
विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान्मोक्ष्यामि दारुणान्॥
शत्रूणां ये प्राणहराः सुखं येन हनिष्यथ ।
एवमाभाष्य हनुमांस्तदा पाण्डवनन्दनम् ॥ १८

---

स्निग्धैः हितेप्सुभिः नीतेः प्रजादारापत्यादेर्विन्यासाः स्थापनानि ॥४५॥ स्वेभ्यश्चारेभ्यः उत्कोचादिना लोभितेभ्यः ॥ ४७ ॥ बुद्ध्या जीवनाशया प्रतिपन्नेषु शरणागतेषु ॥ ४८ ॥ घोरो धर्मो राजधर्मः ॥ ५० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१

तत इति ॥ १ ॥

मार्गमाख्याय भीमाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके प० तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां गन्धमा० हनूमद्भीमसंवादे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

## १५२

वैशंपायन उवाच ।
गते तस्मिन्हरिवरे भीमोऽपि बलिनां वरः ।
तेन मार्गेण विपुलं व्यचरद्गन्धमादनम् ॥ १
अनुस्मरन्वपुस्तस्य श्रियं चाप्रतिमां भुवि ।
माहात्म्यमनुभावं च स्मरन्दाशरथेर्ययौ ॥ २
स तानि रमणीयानि वनान्युपवनानि च ।
विलोकयामास तदा सौगन्धिकवनेप्सया ॥ ३
फुल्लद्रुमविचित्राणि सरांसि सरितस्तथा ।
नानाकुसुमचित्राणि पुष्पितानि वनानि च ॥ ४
मत्तवारणयूथानि पङ्कक्लिन्नानि भारत ।
वर्षतामिव मेघानां वृन्दानि ददृशे तदा ॥ ५
हरिणैश्चपलापाङ्गैर्हरिणीसहितैर्वनम् ।
सशष्पकवलैः श्रीमान्पथि दृष्ट्वा द्रुतं ययौ ॥ ६
महिषैश्च वराहैश्च शार्दूलैश्च निषेवितम् ।
व्यपेतभीर्गिरिं शौर्याद्भीमसेनो व्यगाहत ॥ ७
कुसुमानन्तगन्धैश्च ताम्रपल्लवकोमलैः ।
याच्यमान इवारण्ये द्रुमैर्मारुतकम्पितैः ॥ ८
कृतपद्माञ्जलिपुटा मत्तषट्पदसेविताः ।
प्रियतीर्थवना मार्गे पद्मिनीः समतिक्रमन् ॥ ९
मज्जमानमनोदृष्टिः फुल्लेषु गिरिसानुषु ।
द्रौपदीवाक्यपाथेयो भीमः शीघ्रतरं ययौ ॥ १०
परिवृत्तेऽहनि ततः प्रकीर्णहरिणे वने ।
काञ्चनैर्विमलैः पद्मैर्ददर्श विपुलां नदीम् ॥ ११
हंसकारण्डवयुतां चक्रवाकोपशोभिताम् ।
रचितामिव तस्याद्रेर्मालां विमलपङ्कजाम् ॥ १२
तस्यां नद्यां महासत्त्वः सौगन्धिकवनं महत् ।
अपश्यत्प्रीतिजननं बालार्कसदृशद्युति ॥ १३
तद्दृष्ट्वा लब्धकामः स मनसा पाण्डुनन्दनः ।
वनवासपरिक्लिष्टां जगाम मनसा प्रियाम् ॥ १४

इति श्रीमहाभा० आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां सौगन्धिकाहरणे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

## १५३

वैशंपायन उवाच ।
स गत्वा नलिनीं रम्यां राक्षसैरभिरक्षिताम् ।
कैलासशिखराभ्याशे ददर्श शुभकाननाम् ॥ १
कुबेरभुवनाभ्याशे जातां पर्वतनिर्झरैः ।
सुरम्यां विपुलच्छायां नानाद्रुमलताकुलाम् ॥ २
हरिताम्बुजसंच्छन्नां दिव्यां कनकपुष्कराम् ।
नानापक्षिजनाकीर्णां सूपतीर्थामकर्दमाम् ॥ ३
अतीव रम्यां सुजलां जातां पर्वतसानुषु ।
विचित्रभूतां लोकस्य शुभामद्भुतदर्शनाम् ॥ ४
तत्रामृतरसं शीतं लघु कुन्तीसुतः शुभम् ।
ददर्श विमलं तोयं पिबंश्च बहु पाण्डवः ॥ ५

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

१५२

गते इति ॥ १ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

१५३

स गत्वेति ॥ १ ॥ सूपतीर्थां शोभनानि उपतीर्थानि तीराणि यस्यां सा ॥ ३ ॥ लघु आरोग्यकरम् ॥ ५ ॥

तां तु पुष्करिणीं रम्यां दिव्यसौगन्धिकावृताम्॥
जातरूपमयैः पद्मैश्छन्नां परमगन्धिभिः ॥ ६
वैदूर्यवरनालैश्च बहुचित्रैर्मनोरमैः ।
हंसकारण्डवोद्धूतैः सृजद्भिरमलं रजः ॥ ७
आक्रीडं राजराजस्य कुबेरस्य महात्मनः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च देवैश्च परमार्चिताम् ॥ ८
सेवितामृषिभिर्दिव्यैर्यक्षैः किंपुरुषैस्तथा ।
राक्षसैः किन्नरैश्चापि गुप्तां वैश्रवणेन च ॥ ९
तां च दृष्ट्वैव कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः ।
बभूव परमप्रीतो दिव्यं संप्रेक्ष्य तत्सरः ॥ १०
तच्च क्रोधवशा नाम राक्षसा राजशासनात् ।
रक्षन्ति शतसाहस्राश्चित्रायुधपरिच्छदाः ॥ ११
ते तु दृष्ट्वैव कौन्तेयमजिनैः प्रतिवासितम् ।
रुक्माङ्गदधरं वीरं भीमं भीमपराक्रमम् ॥ १२
सायुधं बद्धनिस्त्रिंशमशङ्कितमरिंदमम् ।
पुष्करेप्सुमुपायान्तमन्योन्यमभिचुक्रुशुः ॥ १३
अयं पुरुषशार्दूलः सायुधोऽजिनसंवृतः ।
यच्चिकीर्षुरिह प्राप्तस्तत्संप्रष्टुमिहार्हथ ॥ १४
ततः सर्वे महाबाहुं समासाद्य वृकोदरम् ।
तेजोयुक्तमपृच्छन्त कस्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १५
मुनिवेषधरश्चैव सायुधश्चैव लक्ष्यसे ।
यदर्थमभिसंप्राप्तस्तदाचक्ष्व महामते ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां सौगन्धिकाहरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

## १५४

भीम उवाच ।

पाण्डवो भीमसेनोऽहं धर्मराजादनन्तरः ।
विशालां बदरीं प्राप्तो भ्रातृभिः सह राक्षसाः॥१
अपश्यत्तत्र पाञ्चाली सौगन्धिकमनुत्तमम् ।
अनिलोढमितो नूनं सा बहूनि परीप्सति ॥ २
तस्या मामनवद्याङ्ग्या धर्मपत्न्याः प्रिये स्थितम् ।
पुष्पाहारमिह प्राप्तं निबोधत निशाचराः ॥ ३

राक्षसा ऊचुः ।

आक्रीडोऽयं कुबेरस्य दयितः पुरुषर्षभ ।
नेह शक्यं मनुष्येण विहर्तुं मर्त्यधर्मणा ॥ ४
देवर्षयस्तथा यक्षा देवाश्चात्र वृकोदर ।
आमन्त्र्य यक्षप्रवरं पिबन्ति रमयन्ति च ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव विहरन्त्यत्र पाण्डव ॥ ५
अन्यायेनेह यः कश्चिदवमन्य धनेश्वरम् ।
विहर्तुमिच्छेद्दुर्वृत्तः स विनश्येन्न संशयः ॥ ६
तमनादृत्य पद्मानि जिहीर्षसि बलादितः ।
धर्मराजस्य चात्मानं ब्रवीषि भ्रातरं कथम् ॥ ७
आमन्त्र्य यक्षराजं वै ततः पिब हरस्व च ।
नातोऽन्यथा त्वया शक्यं किंचित्पुष्करमीक्षितुम्

भीमसेन उवाच ।

राक्षसास्तं न पश्यामि धनेश्वरमिहान्तिके ।
दृष्ट्वापि च महाराजं नाहं याचितुमुत्सहे ॥ ९
न हि याचन्ति राजान एष धर्मः सनातनः ।
न चाहं हातुमिच्छामि क्षात्रधर्मं कथंचन ॥ १०
इयं च नलिनी रम्या जाता पर्वतनिर्झरे ।
नेयं भवनमासाद्य कुबेरस्य महात्मनः ॥ ११
तुल्या हि सर्वभूतानामियं वैश्रवणस्य च ।
एवं गतेषु द्रव्येषु कः कं याचितुमर्हति ॥ १२

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा राक्षसान्सर्वान्भीमसेनो ह्यमर्षणः ।
व्यगाहत महाबाहुर्नलिनीं तां महाबलः ॥ १३
ततः स राक्षसैर्वाचा प्रतिषिद्धः प्रतापवान् ।
मा मैवमिति सक्रोधैर्भर्त्सयद्भिः समन्ततः ॥ १४
कदर्थीकृत्य तु स तान्राक्षसान्भीमविक्रमः ।
व्यगाहत महातेजास्ते तं सर्वे न्यवारयन् ॥ १५
गृह्णीत बध्नीत निकृन्ततेमं
पचाम खादाम च भीमसेनम् ।
क्रुद्धा ब्रुवन्तोऽभिययुर्द्रुतं ते
शस्त्राणि चोद्यम्य विवृत्तनेत्राः ॥ १६

---

जातरूपं स्वर्णम् ॥ ६ ॥ हंसादिपोतैः हंसाद्युद्धूतैर्वा ॥७॥ आक्रीडं क्रीडास्थानम् ॥८॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

१५४

पाण्डव इति ॥ १ ॥ अनिलोढं वायुना आनीतम् ॥ २ ॥

ततः स गुर्वीं यमदण्डकल्पां
महागदां काञ्चनपट्टनद्धाम् ।
प्रगृह्य तानभ्यपतत्तरस्वी
ततोऽब्रवीत्तिष्ठत तिष्ठतेति ॥ १७

ते तं तदा तोमरपट्टिशाद्यै-
र्व्याविद्धशस्त्रैः सहसा निपेतुः ।
जिघांसवः क्रोधवशाः सुभीमा
भीमं समन्तात् परिवव्रुरुग्राः ॥ १८

वातेन कुन्त्यां बलवान् सुजातः
शूरस्तरस्वी द्विषतां निहन्ता ।
सत्ये च धर्मे च रतः सदैव
पराक्रमे शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ १९

तेषां स मार्गान् विविधान् महात्मा
विहन्य शस्त्राणि च शात्रवाणाम् ।
यथा प्रवीरान्निजघान भीमः
परं शतं पुष्करिणीसमीपे ॥ २०

ते तस्य वीर्यं च बलं च दृष्ट्वा
विद्याबलं बाहुबलं तथैव ।
अशक्नुवन्तः सहितं समन्ता-
द्धतं प्रवीराः सहसा निवृत्ताः ॥ २१

विदीर्यमाणास्तत एव हन्तु-
माकाशमास्थाय विमूढसंज्ञाः ।
कैलासशृङ्गाण्यभिदुद्रुवुस्ते
भीमार्दिताः क्रोधवशाः प्रभग्नाः ॥ २२

स शक्रवद्दानवदैत्यसङ्घान्
विक्रम्य जित्वा च रणेऽरिसङ्घान् ।
विगाह्य तां पुष्करिणीं जितारिः
कामाय जग्राह ततोऽम्बुजानि ॥ २३

ततः स पीत्वाऽमृतकल्पमम्भो
भूयो बभूवोत्तमवीर्यतेजाः ।
उत्पाट्य जग्राह च सोऽम्बुजानि
सौगन्धिकान्युत्तमगन्धवन्ति ॥ २४

ततस्तु ते क्रोधवशाः समेत्य
धनेश्वरं भीमबलप्रणुन्नाः ।
भीमस्य वीर्यं च बलं च सङ्ख्ये
यथावदाचख्युरतीव भीताः ॥ २५

तेषां वचस्तत्तु निशम्य देवः
प्रहस्य रक्षांसि ततोऽभ्युवाच ।
गृह्णातु भीमो जलजानि कामात्
कृष्णानिमित्तं विदितं ममैतत् ॥ २६

ततोऽभ्यनुज्ञाप्य धनेश्वरं ते
जग्मुः कुरूणां प्रवरं विरोषाः ।
भीमं च तस्यां ददृशुर्नलिन्यां
यथोपजोषं विहरन्तमेकम् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां सौगन्धिकाहरणे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

## १५५

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तानि महार्हाणि दिव्यानि भरतर्षभ ।
बहूनि बहुरूपाणि विरजांसि समाददे ॥ १
ततो वायुर्महाञ् शीघ्रो नीचैः शर्करकर्षणः ।
प्रादुरासीत् खरस्पर्शः संग्राममभिचोदयन् ॥ २
पपात महती चोल्का सनिर्घाता महाभया ।
निष्प्रभश्चाभवत् सूर्यश्छन्नरश्मिस्तमोवृतः ॥ ३
निर्घातश्चाभवद्भीमो भीमे विक्रममास्थिते ।
चचाल पृथिवी चापि पांसुवर्षं पपात च ॥ ४
सलोहिता दिशश्चासन् खरवाचो मृगद्विजाः ।
तमोवृतमभूत् सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ५

विहन्य विनाश्य । 'वा ल्यपि' इत्यनुनासिकलोपपक्ष इदं रूपम् ॥ २० ॥ सहितमेकीभूयाप्यशक्नुवन्तः ॥ २१ ॥ विक्रम्य जित्वा च अभिभूय वशीकृत्य चेत्यर्थः ॥२३॥ कामात् कामाय स्वेष्टसिद्ध्यर्थम् ॥२६॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

१५५

तत इति ॥ १ ॥

अन्ये च बहवो भीमा उत्पातास्तत्र जज्ञिरे ।
तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ६
उवाच वदतां श्रेष्ठः कोऽस्मानभिभविष्यति ।
सज्जीभवत भद्रं वः पाण्डवा युद्धदुर्मदाः ॥ ७
यथारूपाणि पश्यामि स्वभ्यग्रो नः पराक्रमः ।
एवमुक्त्वा ततो राजा वीक्षांचक्रे समन्ततः ८
अपश्यमानो भीमं तु धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ततः कृष्णां यमौ चापि समीपस्थावरिंदमः ॥ ९
पप्रच्छ भ्रातरं भीमं भीमकर्माणमाहवे ।
कच्चित्क भीमः पाञ्चालि किंचित्कृत्यं चिकीर्षति
कृतवानपि वा वीरः साहसं साहसप्रियः ।
इमे ह्यकस्मादुत्पाता महासमरदर्शनाः ॥ ११
दर्शयन्तो भयं तीव्रं प्रादुर्भूताः समन्ततः ।
तं तथावादिनं कृष्णा प्रत्युवाच मनस्विनी ।
प्रिया प्रियं चिकीर्षन्ती महिषी चारुहासिनी १२

द्रौपद्युवाच ।

यत्तत् सौगन्धिकं राजन्नाहृतं मातरिश्वना ।
तन्मया भीमसेनस्य प्रीतयाद्योपपादितम् ॥ १३
अपि चोक्तो मया वीरो यदि पश्येर्बहून्यपि ।
तानि सर्वाण्युपादाय शीघ्रमागम्यतामिति ॥१४
स तु नूनं महाबाहुः प्रियार्थं मम पाण्डवः ।
प्रागुदीचीं दिशं राजंस्तान्याहर्तुमितो गतः १५
उक्तस्त्वेवं तया राजा यमाविदमथाब्रवीत् ।
गच्छाम सहितास्तूर्णं येन यातो वृकोदरः ॥ १६
वहन्तु राक्षसा विप्रान् यथाश्रान्तान् यथाकृशान्
त्वमप्यमरसंकाश वह कृष्णां घटोत्कच ॥ १७
व्यक्तं दूरमितो भीमः प्रविष्ट इति मे मतिः ।
चिरं च तस्य कालोऽयं स च वायुसमो जवे ॥
तरस्वी वैनतेयस्य सदृशो भुवि लङ्घने ।
उत्पतेदपि चाकाशं निपतेच्च यथेच्छकम् ॥ १९
तमन्वियाम भवतां प्रभावाद्रजनीचराः ।
पुरा स नापराध्नोति सिद्धानां ब्रह्मवादिनाम् २०
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे हैडिम्बप्रमुखास्तदा ।
उद्देशज्ञाः कुबेरस्य नलिन्या भरतर्षभ ॥ २१
आदाय पाण्डवांश्चैव तांश्च विप्राननेकशः ।
लोमशेनैव सहिताः प्रययुः प्रीतमानसाः ॥ २२
ते सर्वे त्वरिता गत्वा ददृशुः शुभकाननाम् ।
पद्मसौगन्धिकवतीं नलिनीं सुमनोरमाम् ॥ २३
तं च भीमं महात्मानं तस्यास्तीरे मनस्विनम् ।
ददृशुर्निहतांश्चैव यक्षांश्च विपुलेक्षणान् ॥ २४
भिन्नकायाक्षिबाहूरून् संचूर्णितशिरोधरान् ।
तं च भीमं महात्मानं तस्यास्तीरेव्यवस्थितम् २५
सक्रोधं स्तब्धनयनं संदष्टदशनच्छदम् ।
उद्यम्य च गदां दोर्भ्यां नदीतीरेष्ववस्थितम् २६
प्रजासंक्षेपसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
तं दृष्ट्वा धर्मराजस्तु परिष्वज्य पुनः पुनः ॥ २७
उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेय किमिदं कृतम् ।
साहसं बत भद्रं ते देवानामथ चाप्रियम् ॥ २८
पुनरेवं न कर्तव्यं मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
अनुशिष्य तु कौन्तेयं पद्मानि परिगृह्य च ॥ २९
तस्यामेव नलिन्यां तु विजह्रुरमरोपमाः ।
एतस्मिन्नेव काले तु प्रगृहीतशिलायुधाः ॥ ३०
प्रादुरासन् महाकायास्तस्योद्यानस्य रक्षिणः ।
ते दृष्ट्वा धर्मराजानं महर्षिं चापि लोमशम् ॥ ३१
नकुलं सहदेवं च तथान्यान् ब्राह्मणर्षभान् ।
विनयेन नताः सर्वे प्रणिपत्य च भारत ॥ ३२
सान्त्विता धर्मराजेन प्रसेदुः क्षणदाचराः ।
विदिताश्च कुबेरस्य तत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ ३३
ऊषुर्नातिचिरं कालं रममाणाः कुरूद्वहाः ।
प्रतीक्षमाणा बीभत्सुं गन्धमादनसानुषु ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्राप० लोमशतीर्थयात्रायां सौगन्धिकाहरणे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

स्वभ्यग्रः सुतरामासन्नः । पराक्रमः पराक्रमकालः ॥ ८ ॥ उद्देशज्ञाः स्थलज्ञाः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

## १५६

वैशम्पायन उवाच ।
तस्मिन्निवसमानोऽथ धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
कृष्णया सहितान् भ्रातॄनित्युवाच सहद्विजान् ॥ १
दृष्टानि तीर्थान्यस्माभिः पुण्यानि च शिवानि च
मनसो ह्लादनीयानि वनानि च पृथक्पृथक् ॥ २
देवैः पूर्वं विचीर्णानि मुनिभिश्च महात्मभिः ।
यथाक्रमविशेषेण द्विजैः संपूजितानि च ॥ ३
ऋषीणां पूर्वचरितं तथा कर्म विचेष्टितम् ।
राजर्षीणां च चरितं कथाश्च विविधाः शुभाः ४
शृण्वानास्तत्र तत्र स्म आश्रमेषु शिवेषु च ।
अभिषेकं द्विजैः सार्धं कृतवन्तो विशेषतः ॥ ५
अर्चिताः सततं देवाः पुष्पैरद्भिः सदा च वः ।
यथालब्धैर्मूलफलैः पितरश्चापि तर्पिताः ॥ ६
पर्वतेषु च रम्येषु सर्वेषु च सरस्सु च ।
उदधौ च महापुण्ये सूपस्पृष्टं महात्मभिः ॥ ७
इला सरस्वती सिन्धुर्यमुना नर्मदा तथा ।
नानातीर्थेषु रम्येषु सूपस्पृष्टं सह द्विजैः ॥ ८
गङ्गाद्वारमतिक्रम्य बहवः पर्वताः शुभाः ।
हिमवान् पर्वतश्चैव नानाद्विजगणायुतः ॥ ९
विशाला बदरी दृष्टा नरनारायणाश्रमः ।
दिव्या पुष्करिणी दृष्टा सिद्धदेवर्षिपूजिता ॥ १०
यथाक्रमविशेषेण सर्वाण्यायतनानि च ।
दर्शितानि द्विजश्रेष्ठा लोमशेन महात्मना ॥ ११
इमं वैश्रवणावासं पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ।
कथं भीम गमिष्यामो गतिरन्तरधीयताम् ॥ १२

वैशम्पायन उवाच ।
एवं ब्रुवति राजेन्द्रे वागुवाचाशरीरिणी ।
न शक्यो दुर्गमो गन्तुमितो वैश्रवणाश्रमात् १३
अनेनैव पथा राजन् प्रतिगच्छ यथागतम् ।
नरनारायणस्थानं बदरीत्यभिविश्रुतम् ॥ १४
तस्माद्यास्यसि कौन्तेय सिद्धचारणसेवितम् ।
बहुपुष्पफलं रम्यमाश्रमं वृषपर्वणः ॥ १५
अतिक्रम्य च तं पार्थ त्वार्ष्टिषेणाश्रमे वसेः ।
ततो द्रक्ष्यसि कौन्तेय निवेशं धनदस्य च ॥ १६
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्दिव्यगन्धवहः शुचिः ।
सुखप्रह्लादनः शीतः पुष्पवर्षं ववर्ष च ॥ १७
श्रुत्वा तु दिव्यामाकाशाद्वाचं सर्वे विसिस्मियुः ।
ऋषीणां ब्राह्मणानां च पार्थिवानां विशेषतः॥१८
श्रुत्वा तन्महदाश्चर्यं द्विजो धौम्योऽब्रवीत्तदा ।
न शक्यमुत्तरं वक्तुमेवं भवतु भारत ॥ १९
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिजग्राह तद्वचः ।
प्रत्यागम्य पुनस्तं तु नरनारायणाश्रमम् ॥ २०
भीमसेनादिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः परिवारितः ।
पाञ्चाल्या ब्राह्मणाश्चैव न्यवसन्त सुखं तदा ॥२१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि लोमशतीर्थयात्रायां पुनर्नारायणाश्रमागमने षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

॥ समाप्तं तीर्थयात्रापर्व ॥

## ॥ जटासुरवधपर्व ॥

## १५७

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्तान् परिविश्वस्तान् वसतस्तत्र पाण्डवान् ।
पर्वतेन्द्रे द्विजैः सार्धं पार्थाऽऽगमनकाङ्क्षया ॥ १
गतेषु तेषु रक्षःसु भीमसेनात्मजेऽपि च ।
रहितान् भीमसेनेन कदाचित्तान् यदृच्छया ॥ २

---

१५६

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ गतिरन्तरधीयताम्--अन्तर्गतिः कुबेरभवने प्रवेशः कथं भवेदित्यधीयतां विचार्यताम् ॥ १२ ॥ इतो हेतोर्वैश्रवणाश्रमात् । प्रतिगच्छ परावर्तस्व ॥ १३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

१५७

ततस्तानिति ॥ १ ॥

जहार धर्मराजानं यमौ कृष्णां च राक्षसः ।
ब्राह्मणो मन्त्रकुशलः सर्वशास्त्रविदुत्तमः ॥ ३
इति ब्रुवन्पाण्डवेयान् पर्युपास्ते स्म नित्यदा ।
परीप्समानः पार्थानां कलापानि धनूंषि च ॥ ४
अन्तरं संपरिप्रेप्सुर्द्रौपद्या हरणं प्रति ।
दुष्टात्मा पापबुद्धिः स नाम्ना ख्यातो जटासुरः ५
पोषणं तस्य राजेन्द्र चक्रे पाण्डवनन्दनः ।
बुबुधे न च तं पापं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ ६
स भीमसेने निष्क्रान्ते मृगयार्थमरिन्दम ।
घटोत्कचं सानुचरं दृष्ट्वा विप्रद्रुतं दिशः ॥ ७
लोमशप्रभृतींस्तांस्तु महर्षींश्च समाहितान् ।
स्नातुं विनिर्गतान् दृष्ट्वा पुष्पार्थं च तपोधनान् ८
रूपमन्यत् समास्थाय विकृतं भैरवं महत् ।
गृहीत्वा सर्वशस्त्राणि द्रौपदीं परिगृह्य च ॥ ९
प्रातिष्ठत स दुष्टात्मा त्रीन् गृहीत्वा च पाण्डवान्
सहदेवस्तु यत्नेन ततोऽपक्रम्य पाण्डवः ॥ १०
विक्रम्य कौशिकं खड्गं मोक्षयित्वा ग्रहं रिपोः ।
आक्रन्दद्भीमसेनं वै येन यातो महाबलः ॥ ११
तमब्रवीद्धर्मराजो ह्रियमाणो युधिष्ठिरः ।
धर्मस्ते हीयते मूढ न तत्त्वं समवेक्षसे ॥ १२
येऽन्ये क्वचिन्मनुष्येषु तिर्यग्योनिगताश्च ये ।
धर्मं ते समवेक्षन्ते रक्षांसि च विशेषतः ॥ १३
धर्मस्य राक्षसा मूलं धर्मं ते विदुरुत्तमम् ।
एतत् परीक्ष्य सर्वं त्वं समीपे स्थातुमर्हसि ॥ १४
देवाश्च ऋषयः सिद्धाः पितरश्चापि राक्षस ।
गन्धर्वोरगरक्षांसि वयांसि पशवस्तथा ॥ १५
तिर्यग्योनिगताश्चैव अपि कीटपिपीलिकाः ।
मनुष्यानुपजीवन्ति ततस्त्वमपि जीवसि ॥ १६
समृद्ध्या यस्य लोकस्य लोको युष्माकमृध्यति ।
इमं च लोकं शोचन्तमनुशोचन्ति देवताः ॥ १७
पूज्यमानाश्च वर्धन्ते हव्यकव्यैर्यथाविधि ।
वयं राष्ट्रस्य गोप्तारो रक्षितारश्च राक्षस ॥ १८
राष्ट्रस्यारक्ष्यमाणस्य कुतो भूतिः कुतः सुखम् ।
न च राजाऽवमन्तव्यो रक्षसा जात्वनागसि १९
अणुरप्यपचारश्च नास्त्यस्माकं नराशन ।
विघसाशान् यथाशक्त्या कुर्महे देवतादिषु ॥ २०
गुरूंश्च ब्राह्मणांश्चैव प्रमाणप्रवणाः सदा ।
द्रोग्धव्यं न च मित्रेषु न विश्वस्तेषु कर्हिचित् २१
येषां चान्नानि भुञ्जीत यत्र च स्यात् प्रतिश्रयः ।
स त्वं प्रतिश्रयेऽस्माकं पूज्यमानः सुखोषितः २२
भुक्त्वा चान्नानि दुष्प्रज्ञ कथमस्मान् जिहीर्षसि ।
एवमेव वृथाचारो वृथावृद्धो वृथामतिः ॥ २३
वृथामरणमर्हश्च वृथाऽद्य न भविष्यसि ।
अथ चेद्दुष्टबुद्धिस्त्वं सर्वैर्धर्मैर्विवर्जितः ॥ २४
प्रदाय शस्त्राण्यस्माकं युद्धेन द्रौपदीं हर ।
अथ चेत्त्वमविज्ञानादिदं कर्म करिष्यसि ॥ २५
अधर्मं चाप्यकीर्तिं च लोके प्राप्स्यसि केवलम् ।
एतामद्य परामृश्य स्त्रियं राक्षस मानुषीम् ॥ २६
विषमेतत् समालोड्य कुम्भेन प्राशितं त्वया ।
ततो युधिष्ठिरस्तस्य गुरुकः समपद्यत ॥ २७
स तु भाराभिभूतात्मा न तथा शीघ्रगोऽभवत् ।
अथाब्रवीद्द्रौपदीं च नकुलं च युधिष्ठिरः ॥ २८
मा भैष्ट राक्षसान्मूढाद्गतिरस्य मया हृता ।
नातिदूरे महाबाहुर्भविता पवनात्मजः ॥ २९
अस्मिन् मुहूर्ते संप्राप्ते न भविष्यति राक्षसः ।
सहदेवस्तु तं दृष्ट्वा राक्षसं मूढचेतनम् ॥ ३०
उवाच वचनं राजन् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
राजन्किं नाम सत्कृत्यं क्षत्रियस्यास्त्यतोऽधिकम्
यद्युद्धेऽभिमुखः प्राणांस्त्यजेच्छत्रुं जयेत वा ।
एष चास्मान् वयं चैनं युद्ध्यमानाः परन्तप ॥३२
सूदयेम महाबाहो देशकालो ह्ययं नृप ।
क्षत्रधर्मस्य संप्राप्तः कालः सत्यपराक्रमः ॥ ३३
जयन्तो हन्यमाना वा प्राप्तुमर्हाम सद्गतिम् ।
राक्षसे जीवमानेऽद्य रविरस्तमियाद्यदि ॥ ३४
नाहं ब्रूयां पुनर्जातु क्षत्रियोऽस्मीति भारत ।
भो भो राक्षस तिष्ठस्व सहदेवोऽस्मि पाण्डवः ॥
हत्वा वा मां नयस्वैनां हतो वाद्येह स्वप्स्यसि ।
तदा ब्रुवति माद्रेये भीमसेनो यदृच्छया ॥ ३६
प्रत्यदृश्यद्गदाहस्तः सवज्र इव वासवः ।
सोऽपश्यद्भ्रातरौ तत्र द्रौपदीं च यशस्विनीम् ३७
क्षितिस्थं सहदेवं च क्षिपन्तं राक्षसं तदा ।
मार्गाच्च राक्षसं मूढं कालोपहतचेतसम् ॥ ३८

जहार धर्मादीनां मनो हृतवान् । उरामोऽस्मीति ब्रुवन् ॥ ३ ॥ कलापानि निषङ्गादीनि ॥४॥ कौशिकं कोशादागतम् । ग्रहं ग्रहणम् ॥ १० ॥ युष्माकं देवासुरादीनाम् । ऋध्यति। 'ऋच्छति' इति पाठे वृद्धिं गच्छति॥१७॥विघसाशान् देवासुरब्राह्मणादिशेषान्नं विघसं तस्य आशो भोजनं येषां तान् ॥२०॥ प्रतिश्रयो गृहम् ॥२२॥ न भविष्यसि मरिष्यसि ॥२४॥ सत्कृत्यं साधुकार्यम् ॥३१॥ राक्षसे इति सूर्यास्तात्प्राक् अयं मरिष्यतीत्यर्थः ॥३४॥ तिष्ठस्व स्थिरो भव॥३५॥

भ्रमन्तं तत्र तत्रैव दैवेन विनिवारितम् ।
भ्रातॄंस्तान् ह्रियतो दृष्ट्वा द्रौपदीं च महाबलः ३९
क्रोधमाहारयद्भीमो राक्षसं चेदमब्रवीत् ।
विज्ञातोऽसि मया पूर्वं पापः शस्त्रपरीक्षणे ॥ ४०
आस्था तु त्वयि मे नास्ति यतोऽसि न हतस्तदा ।
ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नो न नो वदसि चाप्रियम् ॥ ४१
प्रियेषु रममाणं त्वां न चैवाप्रियकारिणम् ।
अतिथिं ब्रह्मरूपं च कथं हन्यामनागसम् ॥ ४२
राक्षसं जानमानोऽपि यो हन्यान्नरकं व्रजेत् ।
अपक्वस्य च कालेन वधस्तव न विद्यते ॥ ४३
नूनमद्यासि संपक्वो यथा ते मतिरीदृशी ।
दत्ता कृष्णापहरणे कालेनाद्भुतकर्मणा ॥ ४४
बडिशोऽयं त्वया ग्रस्तः कालसूत्रेण लम्बितः ।
मत्स्योऽम्भसीव स्यूतास्यः कथमद्य भविष्यसि॥
यं चासि प्रस्थितो देशं मनः पूर्वं गतं च ते ।
न तं गन्तासि गन्तासि मार्गं बकहिडिम्बयोः ॥
एवमुक्तस्तु भीमेन राक्षसः कालचोदितः ।
भीत उत्सृज्य तान् सर्वान् युद्धाय समुपास्थितः॥
अब्रवीच्च पुनर्भीमं रोषात् प्रस्फुरिताधरः ।
न मे मूढा दिशः पाप त्वदर्थं मे विलम्बितम् ॥
श्रुता मे राक्षसा ये ये त्वया विनिहता रणे ।
तेषामद्य करिष्यामि तवास्रेणोदकक्रियाम् ॥ ४९
एवमुक्तस्ततो भीमः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
स्मयमान इव क्रोधात् साक्षात् कालान्तकोपमः
बाहुसंरम्भमेवेक्षन्नभिदुद्राव राक्षसम् ।
राक्षसोऽपि तदा भीमं युद्धार्थिनमवस्थितम् ५१
मुहुर्मुहुर्व्याददानः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
अभिदुद्राव संरब्धो बलिर्वज्रधरं यथा ॥ ५२
वर्तमाने तदा ताभ्यां बाहुयुद्धे सुदारुणे ।
माद्रीपुत्रावतिक्रुद्धावुभावप्यभ्यधावताम् ॥ ५३
न्यवारयत्तौ प्रहसन् कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ।
शक्तोऽहं राक्षसस्येति प्रेक्षध्वमिति चाब्रवीत्५४

आत्मना भ्रातृभिश्चैव धर्मेण सुकृतेन च ।
इष्टेन च शपे राजन् सूदयिष्यामि राक्षसम् ॥ ५५
इत्येवमुक्त्वा तौ वीरौ स्पर्धमानौ परस्परम् ।
बाहुभ्यां समसज्जेतामुभौ रक्षोवृकोदरौ ॥ ५६
तयोरासीत् संप्रहारः क्रुद्धयोर्भीमरक्षसोः ।
अमृष्यमाणयोः सङ्ख्ये देवदानवयोरिव ॥ ५७
आरुज्यारुज्य तौ वृक्षानन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
जीमूताविव गर्जन्तौ निनदन्तौ महाबलौ ॥५८
बभञ्जतुर्महावृक्षानूरुभिर्बलिनां वरौ ।
अन्योन्येनाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥ ५९
तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् ।
वालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोः पुरा स्त्रीकाङ्क्षिणोर्यथा ६०
आविध्याविध्य तौ वृक्षान्मुहूर्तमितरेतरम् ।
ताडयामासतुरुभौ विनदन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ६१
तस्मिन् देशे यदा वृक्षाः सर्वे एव निपातिताः ।
पुञ्जीकृताश्च शतशः परस्परवधेप्सया ॥ ६२
ततः शिलाः समादाय मुहूर्तमिव भारत ।
महाभ्रैरिव शैलेन्द्रौ युयुधाते महाबलौ ॥ ६३
शिलाभिरुग्ररूपाभिर्बृहतीभिः परस्परम् ।
वज्रैरिव महावेगैराजघ्नतुरमर्षणौ ॥ ६४
अभिद्रुत्य च भूयस्तावन्योन्यबलदर्पितौ ।
भुजाभ्यां परिगृह्याथ चकर्षाते गजाविव ॥ ६५
मुष्टिभिश्च महाघोरैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
ततः कटकटाशब्दो बभूव सुमहात्मनोः ॥ ६६
ततः संहत्य मुष्टिं तु पञ्चशीर्षमिवोरगम् ।
वेगेनाभ्यहनद्भीमो राक्षसस्य शिरोधराम् ॥ ६७
ततः श्रान्तं तु तद्रक्षो भीमसेनभुजाहतम् ।
सुपरिश्रान्तमालक्ष्य भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ ६८
तत एनं महाबाहुर्बाहुभ्याममरोपमः ।
समुत्क्षिप्य बलाद्भीमो विनिष्पिष्य महीतले ६९
तस्य गात्राणि सर्वाणि चूर्णयामास पाण्डवः ।
अरत्निना चाभिहत्य शिरः कायादपाहरत् ॥७०

ह्रियतः ह्रियमाणान् ॥ ३९ ॥ आस्था त्वन्मारणे आदरः ॥४१॥ बडिशो मत्स्यवेधनम् । भविष्यसि जीविष्यसि॥४५॥ अस्रेण लोहितेन ॥ ४९ ॥ बाहू संरभ्येते आस्फोट्येते यस्यां क्रियायां यथा स्यात् तथा बाहुसंरम्भम् ॥ ५१ ॥ आविध्य भ्रामयित्वा ॥ ६१ ॥ पुञ्जीकृताः रज्ज्वर्थं मुञ्जवज्जर्जरीकृताः ॥ ६२ ॥ महाभ्रैरिवेत्यभूतोपमा ॥ ६३ ॥ शिरोधरां ग्रीवाम् ॥ ६७ ॥ अभ्यवर्तत अधिकोत्साहवानभूत् ॥ ६८ ॥ अरत्निना तलप्रहारेणेत्यर्थः ॥७०॥

संदष्टौष्ठं विवृत्ताक्षं फलं वृक्षादिव च्युतम् ।
जटासुरस्य तु शिरो भीमसेनबलाद्धृतम् ॥ ७१
पपात रुधिरादिग्धं संदष्टदशनच्छदम् ।
तं निहत्य महेष्वासोयुधिष्ठिरमुपागमत् ।
स्तूयमानो द्विजाग्र्यैस्तु मरुद्भिरिव वासवः ॥७२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि जटासुरवधपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

॥ समाप्तं जटासुरवधपर्व ॥

## यक्षयुद्धपर्व ।

### १५८

वैशम्पायन उवाच ।
निहते राक्षसे तस्मिन् पुनर्नारायणाश्रमम् ।
अभ्येत्य राजा कौन्तेयो निवासमकरोत् प्रभुः॥१
स समानीय तान् सर्वान् भ्रातॄनित्यब्रवीद्वचः ।
द्रौपद्या सहितान् काले संस्मरन् भ्रातरं जयम्॥२
समाश्चतस्रोऽभिगताः शिवेन चरतां वने ।
कृतोद्देशः स बीभत्सुः पञ्चमीमभितः समाम् ॥३
प्राप्य पर्वतराजानं श्वेतं शिखरिणां वरम् ।
पुष्पितैर्द्रुमषण्डैश्च मत्तकोकिलषट्पदैः ॥ ४
मयूरैश्चातकैश्चापि नित्योत्सवविभूषितम् ।
व्याघ्रैर्वराहैर्महिषैर्गवयैर्हरिणैस्तथा ॥ ५
श्वापदैर्व्यालरूपैश्च रुरुभिश्च निषेवितम् ।
फुल्लैः सहस्रपत्रैश्च शतपत्रैस्तथोत्पलैः ॥ ६
प्रफुल्लैः कमलैश्चैव तथा नीलोत्पलैरपि ।
महापुण्यं पवित्रं च सुरासुरनिषेवितम् ॥ ७
तत्रापि च कृतोद्देशः समागमदिदृक्षुभिः ।
कृतश्च समयस्तेन पार्थेनामिततेजसा ॥ ८
पञ्चवर्षाणि वत्स्यामि विद्यार्थीति पुरा मयि ।
अत्र गाण्डीवधन्वानमवाप्तास्त्रमरिन्दमम् ॥ ९
देवलोकादिमं लोकं द्रक्ष्यामः पुनरागतम् ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणान् सर्वानामन्त्रयत पाण्डवः १०
कारणं चैव तत्तेषामाचचक्षे तपस्विनाम् ।
तानुग्रतपसः प्रीतान् कृत्वा पार्थाः प्रदक्षिणाम्॥
ब्राह्मणास्तेऽन्वमोदन्त शिवेन कुशलेन च ।
सुखोदर्कमिमं क्लेशमचिराद्भरतर्षभ ॥ १२
क्षत्रधर्मेण धर्मज्ञ तीर्त्वा गां पालयिष्यसि ।
तत्तु राजा वचस्तेषां प्रतिगृह्य तपस्विनाम् ॥ १३
प्रतस्थे सह विप्रैस्तैर्भ्रातृभिश्च परन्तपः ।
राक्षसैरनुयातो वै लोमशेनाभिरक्षितः ॥ १४
क्वचित्पद्भ्यां ततोऽगच्छद्राक्षसैरुह्यते क्वचित् ।
तत्र तत्र महातेजा भ्रातृभिः सह सुव्रतः ॥ १५
ततो युधिष्ठिरो राजा बहून् क्लेशान् विचिन्तयन् ।
सिंहव्याघ्रगजाकीर्णामुदीचीं प्रययौ दिशम् ॥१६
अवेक्षमाणः कैलासं मैनाकं चैव पर्वतम् ।
गन्धमादनपादांश्च श्वेतं चापि शिलोच्चयम् ॥१७
उपर्युपरि शैलस्य बह्वीश्च सरितः शिवाः ।
पृष्ठं हिमवतः पुण्यं ययौ सप्तदशेऽहनि ॥ १८
ददृशुः पाण्डवा राजन् गन्धमादनमन्तिकात् ।
पृष्ठे हिमवतः पुण्ये नानाद्रुमलतावृते ॥ १९
सलिलावर्तसंजातैः पुष्पितैश्च महीरुहैः ।
समावृतं पुण्यतममाश्रमं वृषपर्वणः ॥ २०
तमुपागम्य राजर्षिं धर्मात्मानमरिन्दमाः ।
पाण्डवा वृषपर्वाणमवदन्त गतक्लमाः ॥ २१
अभ्यनन्दत् स राजर्षिः पुत्रवद्भरतर्षभान् ।
पूजिताश्चावसंस्तत्र सप्तरात्रमरिन्दमाः ॥ २२
अष्टमेऽहनि संप्राप्ते तमृषिं लोकविश्रुतम् ।
आमन्त्र्य वृषपर्वाणं प्रस्थानं प्रत्यरोचयन् ॥ २३
एकैकशश्च तान्विप्रान्निवेद्य वृषपर्वणि ।
न्यासभूतान् यथाकालं बन्धूनिव सुसत्कृतान् २४

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

१५८

निहते इति ॥ १ ॥ जयमर्जुनम् ॥ २ ॥ कृतोद्देशः पञ्चमे वर्षे मयाऽवश्यमागन्तव्यमिति कृतसंकेतः ॥ ३ ॥ श्वेतं कैलासम् ॥ ४ ॥ तत्रापि देशे अस्माभिरिति शेषः । उद्देशः कृतः संधिरार्षः ॥८॥ सुखोदर्कं सुखोदयम् ॥१२॥ श्वेतं हिमाचलम् ॥ १७ ॥

पारिबर्हं च तं शेषं परिदाय महात्मने।
ततस्ते यज्ञपात्राणि रत्नान्याभरणानि च ॥ २५
न्यदधुः पाण्डवा राजन्नाश्रमे वृषपर्वणः।
अतीतानागते विद्वान् कुशलः सर्वधर्मवित् ॥ २६
अन्वशासत् स धर्मज्ञः पुत्रवद्भरतर्षभान्।
तेऽनुज्ञाता महात्मानः प्रययुर्दिशमुत्तराम् ॥ २७
तान् प्रस्थितानभ्यगच्छद्वृषपर्वा महीपतिः।
उपन्यस्य महातेजा विप्रेभ्यः पाण्डवांस्तदा ॥ २८
अनुसंसार्य कौन्तेयानाशीर्भिरभिनन्द्य च।
वृषपर्वा निववृते पन्थानमुपदिश्य च ॥ २९
नानामृगगणैर्जुष्टं कौन्तेयः सत्यविक्रमः।
पदातिर्भ्रातृभिः सार्धं प्रातिष्ठत युधिष्ठिरः ॥ ३०
नानाद्रुमनिरोधेषु वसन्तः शैलसानुषु।
पर्वतं विविशुस्ते तं चतुर्थेऽहनि पाण्डवाः ॥ ३१
महाभ्रघनसंकाशं सलिलोपहितं शुभम्।
मणिकाञ्चनरूपस्य शिलानां च समुच्चयान्॥३२
ते समासाद्य पन्थानं यथोक्तं वृषपर्वणा।
अनुसस्रुर्यथोद्देशं पश्यन्तो विविधान्नगान् ॥ ३३
उपर्युपरि शैलस्य गुहाः परमदुर्गमाः।
सुदुर्गमांस्ते सुबहून् सुखेनैवाभिचक्रमुः ॥ ३४
धौम्यः कृष्णा च पार्थाश्च लोमशश्च महानृषिः।
अगच्छन् सहितास्तत्र न कश्चिदवहीयते ॥ ३५
ते मृगद्विजसंघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम्।
शाखामृगगणैश्चैव सेवितं सुमनोरमम् ॥ ३६
पुण्यं पद्मसरोयुक्तं सपल्वलमहावनम्।
उपतस्थुर्महाभागा माल्यवन्तं महागिरिम् ॥ ३७
ततः किंपुरुषावासं सिद्धचारणसेवितम्।
ददृशुर्हृष्टरोमाणः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ३८
विद्याधरानुचरितं किंनरीभिस्तथैव च।
गजसहस्रसमावासं सिंहव्याघ्रगणायुतम् ॥ ३९
शरभोन्नादसंघुष्टं नानामृगनिषेवितम्।
ते गन्धमादनवनं तन्नन्दनवनो[पमम्] ॥ ४०
मुदिताः पाण्डुतनया मनोहृदयनन्दनम्।
विविशुः क्रमशो वीराः शरण्यं शुभकाननम्॥४१
द्रौपदीसहिता वीरास्तैश्च विप्रैर्महात्मभिः।
शृण्वन्तः प्रीतिजननान् वल्गून् मदकलाञ्छुभान्॥
श्रोत्ररम्यान् सुमधुराञ्छब्दान् खगमुखेरितान्।

सर्वर्तुफलभाराढ्यान् सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ॥ ४३
पश्यन्तः पादपांश्चापि फलभारावनामितान्।
आम्रानाम्रातकान् भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान्
मुञ्जातकांस्तथाजीरान् दाडिमान् बीजपूरकान्।
पनसाँल्लकुचान् मोचान् खर्जूरानम्लवेतसान्॥४५
पारावतांस्तथा क्षौद्रान्नीपांश्चापि मनोरमान्।
बिल्वान् कपित्थाञ्जम्बूंश्च काश्मरीर्बदरीस्तथा॥ ॥
प्लक्षानुदुम्बरवटानश्वत्थान् क्षीरिकांस्तथा।
भल्लातकानामलकीर्हरीतकबिभीतकान् ॥ ४७
इङ्गुदान् करमर्दांश्च तिन्दुकांश्च महाबलान्।
एतानन्यांश्च विविधान् गन्धमादनसानुषु ॥ ४८
फलैरमृतकल्पैस्तानाचितान् स्वादुभिस्तरून्।
तथैव चम्पकाशोकान् केतकान् बकुलांस्तथा ॥
पुन्नागान् सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान् सकेतकान्।
पाटलान् कुटजान् रम्यान् मन्दारेन्दीवरांस्तथा ॥
पारिजातान् कोविदारान् देवदारुद्रुमांस्तथा।
शालांस्तालांस्तमालांश्च पिप्पलान्हिङ्गुकांस्तथा॥
शाल्मलीः किंशुकाशोकाञ्छिंशपाः सरलांस्तथा
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः ॥ ५२
कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारितैर्जीवजीवकैः।
प्रियकैश्चातकैश्चैव तथान्यैर्विविधैः खगैः ॥ ५३
श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितान्।
सरांसि च मनोज्ञानि समन्ताज्जलचारिभिः॥५४
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा कोकनदोत्पलैः।
कह्लारैः कमलैश्चैव आचितानि समन्ततः ॥ ५५
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च कुररैर्जलकुक्कुटैः।
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैर्बकैर्मद्गुभिरेव च ॥ ५६
एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः।
हृष्टैस्तथा तामरसरसासवमदालसैः ॥ ५७
पद्मोदरच्युतरजःकिंजल्कारुणरञ्जितैः।
मञ्जुस्वरैर्मधुकरैर्विरुतान् कमलाकरान् ॥ ५८
अपश्यंस्ते नरव्याघ्रा गन्धमादनसानुषु।
तथैव पद्मषण्डैश्च मण्डितांश्च समन्ततः ॥ ५९
शिखण्डिनीभिः सहिताँल्लतामण्डलकेषु च।
मेघतूर्यरवोद्दाममदनाकुलितान् भृशम् ॥ ६०
कृत्वैव केकामधुरं संगीतं मधुरस्वरम्।
चित्रान्कलापान्विस्तीर्य सविलासान्मदालसान्॥

उपन्यस्य निवेद्य ॥ २८ ॥ अनुसंसार्य-अनुगम्य ॥ २९ ॥
काश्मरी गम्भारी ॥ ४६ ॥ क्षीरिका राजादना ॥ ४७ ॥
तामरसानां रक्तोत्पलानां रस एव आसवो मद्यं तज्जेन मदेन अलसाः ॥ ५७ ॥ विरुतान् विशिष्टशब्दयुतान् ॥ ५९ ॥

मयूरान् ददृशुर्हृष्टाः नृत्यतो वनलालसान् ।
कांश्चित्प्रियाभिः सहितान् रममाणान्कलापिनः
वल्लीलतासंकटेषु कुटजेषु स्थितांस्तथा ।
कांश्चिच्च कुटजानां तु विटपेषूत्कटानिव ॥ ६३
कलापरुचिराटोपनिचितान् मुकुटानिव ।
विवरेषु तरूणां च रुचिरान् ददृशुश्च ते ॥ ६४
सिन्धुवारांस्तथोदारान् मन्मथस्येव तोमरान् ।
सुवर्णवर्णकुसुमान् गिरीणां शिखरेषु च ॥ ६५
कर्णिकारान् विकसितान् कर्णपूरानिवोत्तमान् ।
तथापश्यन् कुरबकान् वनराजिषु पुष्पितान् ॥६६
कामवश्यौत्सुक्यकरान् कामस्येव शरोत्करान् ।
तथैव वनराजीनामुदारान् रचितानिव ॥ ६७
विराजमानांस्तेऽपश्यंस्तिलकांस्तिलकानिव ।
तथानङ्गशराकारान् सहकारान् मनोरमान् ॥ ६८
अपश्यन् भ्रमरारावान् मञ्जरीभिर्विराजितान् ।
हिरण्यसदृशैः पुष्पैर्दावाग्निसदृशैरपि ॥ ६९
लोहितैरञ्जनाभैश्च वैदूर्यसदृशैरपि ।
अतीव वृक्षा राजन्ते पुष्पिताः शैलसानुषु ॥ ७०
तथा शालांस्तमालांश्च पाटलान् बकुलानपि ।
माला इव समासक्ताः शैलानां शिखरेषु च ७१
विमलस्फाटिकाभानि पाण्डुरच्छदनैर्द्विजैः ।
कलहंसैरुपेतानि सारसाभिरुतानि च ॥ ७२
सरांसि बहुशः पार्थाः पश्यन्तः शैलसानुषु ।
पद्मोत्पलविमिश्राणि सुखशीतजलानि च ॥ ७३
एवं क्रमेण ते वीरा वीक्षमाणाः समन्ततः ।
गन्धवन्त्यथ माल्यानि रसवन्ति फलानि च ॥७४
सरांसि च मनोज्ञानि वृक्षांश्चातिमनोरमान् ।
विविशुः पाण्डवाः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥
कमलोत्पलकह्लारपुण्डरीकसुगन्धिना ।
सेव्यमाना वने तस्मिन् सुखस्पर्शेन वायुना ॥७६
ततो युधिष्ठिरो भीममाहेदं प्रीतिमद्वचः ।
अहो श्रीमदिदं भीम गन्धमादनकाननम् ॥ ७७
वने ह्यस्मिन् मनोरम्ये दिव्याः काननजा द्रुमाः ।
लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः ॥ ७८
भान्त्येते पुष्पविकचाः पुंस्कोकिलकुलाकुलाः ।
नात्र कण्टकिनः केचिन्न च विद्यन्त्यपुष्पिताः ॥
स्निग्धपत्रफला वृक्षा गन्धमादनसानुषु ।
भ्रमरारावमधुरा नलिनीः फुल्लपङ्कजाः ॥ ८०
विलोड्यमानाः पश्येमाः करिभिः सकरेणुभिः ।
पश्येमां नलिनीं चान्यां कमलोत्पलमालिनीम् ॥
स्रग्धरां विग्रहवतीं साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ।
नानाकुसुमगन्धाढ्यास्तस्येमाः काननोत्तमे ॥ ८२
उपगीयमाना भ्रमरै राजन्ते वनराजयः ।
पश्य भीम शुभान्देशान्देवाक्रीडान्समन्ततः॥८३
अमानुषगतिं प्राप्ताः संसिद्धाः स्म वृकोदर ।
लताभिः पुष्पिताग्राभिः पुष्पिताः पादपोत्तमाः॥
संश्लिष्टाः पार्थ शोभन्ते गन्धमादनसानुषु ।
शिखण्डिनीभिश्चरतां सहितानां शिखण्डिनाम्॥
नदतां शृणु निर्घोषं भीम पर्वतसानुषु ।
चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः ॥ ८६
पत्रिणः पुष्पितानेतान् संपतन्ति महाद्रुमान् ।
रक्तपीतारुणाः पार्थ पादपाग्रगताः खगाः ॥ ८७
परस्परमुदीक्षन्ते बहवो जीवजीवकाः ।
हरितारुणवर्णानां शाद्वलानां समीपतः ॥ ८८
सारसाः प्रतिदृश्यन्ते शैलप्रस्रवणेष्वपि ।
वदन्ति मधुरा वाचः सर्वभूतमनोरमाः ॥ ८९
भृङ्गराजोपचक्राश्च लोहपृष्ठाः पतत्रिणः ।
चतुर्विषाणाः पद्माभाः कुञ्जराः सकरेणवः ॥ ९०
एते वैदूर्यवर्णाभं क्षोभयन्ति महत्सरः ।
बहुतालसमुत्सेधाः शैलशृङ्गपरिच्युताः ॥ ९१
नानाप्रस्रवणेभ्यश्च वारिधाराः पतन्ति च ।
भास्कराभप्रभा भीमाः शारदाभ्रघनोपमाः ॥९२
शोभयन्ति महाशैलं नानारजतधातवः ।
क्वचिदञ्जनवर्णाभाः क्वचित्काञ्चनसंनिभाः ॥ ९३
धातवो हरितालस्य क्वचिद्धिङ्गुलकस्य च ।
मनःशिलागुहाश्चैव संध्याभ्रनिकरोपमाः ॥ ९४
शशलोहितवर्णाभाः क्वचिद्गैरिकधातवः ।
सितासिताभ्रप्रतिमा बालसूर्यसमप्रभाः ॥ ९५

कुटजेषु वृक्षविशेषेषु । वल्लीनां लताप्रतानानि तैः संकटेषु कुब्जीकृतेषु ॥ ६३ ॥ सिन्धुवारान् पद्मविशेषान् ॥ ६५ ॥ कामवश्यानां नराणामौत्सुक्यकरान् ॥ ६७ ॥ स्फाटिकाभानि निर्मलानि । सारसानामभिरुतं च येषु तानि सरांसि इत्युत्तरेणान्वयः ॥ ७२ ॥ हे भीम ॥ ७७ ॥ नलिनीं सरसीम् कमलोत्पलयोरवान्तरजातिभेदः ॥ ८१ ॥ विग्रहवतीं शरीरवतीम् । तस्य शैलस्य ॥ ८२ ॥ भृङ्गराजादयः पक्षिविशेषाः । चतुर्विषाणाश्चतुर्दन्ताः । पद्माभाः श्वेताः ॥ ९० ॥

एते बहुविधाः शैलं शोभयन्ति महाप्रभाः ।
गन्धर्वाः सह कान्ताभिर्यथोक्तं वृषपर्वणा ॥९६
दृश्यन्ते शैलशृङ्गेषु पार्थ किंपुरुषैः सह ।
गीतानां समतालानां तथा साम्नां च निःस्वनः
श्रूयते बहुधा भीम सर्वभूतमनोहरः ।
महागङ्गामुदीक्षस्व पुण्यां देवनदीं शुभाम् ॥ ९८
कलहंसगणैर्जुष्टामृषिकिंनरसेविताम् ।
धातुभिश्च सरिद्भिश्च किंनरैर्मृगपक्षिभिः ॥ ९९
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च काननैश्च मनोरमैः ।
व्यालैश्च विविधाकारैः शतशीर्षैः समन्ततः॥१००
उपेतं पश्य कौन्तेय शैलराजमरिंदम ।

वैशंपायन उवाच ।

ते प्रीतमनसः शूराः प्राप्ता गतिमनुत्तमाम्॥ १०१
नातृप्यन् पर्वतेन्द्रस्य दर्शनेन परंतपाः ।
उपेतमथ माल्यैश्च फलवद्भिश्च पादपैः १०२
आर्ष्टिषेणस्य राजर्षेराश्रमं ददृशुस्तदा ।
ततस्ते तिग्मतपसं कृशं धमनिसंततम् ।
पारगं सर्वधर्माणामार्ष्टिषेणमुपागमन् ॥ १०३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वणि गन्धमादनप्रवेशे अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

## १५९

वैशम्पायन उवाच ।

युधिष्ठिरस्तमासाद्य तपसा दग्धकिल्बिषम् ।
अभ्यवादयत प्रीतः शिरसा नाम कीर्तयन् ॥ १
ततः कृष्णा च भीमश्च यमौ च सुतपस्विनौ ।
शिरोभिः प्राप्य राजर्षिं परिवार्योपतस्थिरे ॥ २
तथैव धौम्यो धर्मज्ञः पाण्डवानां पुरोहितः ।
यथान्यायमुपाक्रान्तस्तमृषिं संशितव्रतम् ॥ ३
अन्वजानात् स धर्मज्ञो मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ।
पाण्डोः पुत्रान् कुरुश्रेष्ठानास्यतामिति चाब्रवीत्
कुरूणामृषभं पार्थं पूजयित्वा महातपाः ।
सह भ्रातृभिरासीनं पर्यपृच्छदनामयम् ॥ ५
नानृते कुरुषे भावं कच्चिद्धर्मे प्रवर्तसे ।
माता पित्रोश्च ते वृत्तिः कच्चित्पार्थ न सीदति ६
कच्चित्ते गुरवः सर्वे वृद्धा वैद्याश्च पूजिताः ।
कच्चिन्न कुरुषे भावं पार्थ पापेषु कर्मसु ॥ ७
सुकृतं प्रतिकर्तुं च कच्चिन्नात्मं च दुष्कृतम् ।
यथान्यायं कुरुश्रेष्ठ जानासि न च विकत्थसे ॥ ८
यथार्हं मानिताः कच्चित्त्वया नन्दन्ति साधवः ।
वनेष्वपि वसन्कच्चिद्धर्ममेवानुवर्तसे ॥ ९
कच्चिद्धौम्यस्त्वदाचारैर्न पार्थ परितप्यते ।
दानधर्मतपःशौचैरार्जवेन तितिक्षया ॥ १०
पितृपैतामहं वृत्तं कच्चित्पार्थानुवर्तसे ।
कच्चिद्राजर्षियातेन पथा गच्छसि पाण्डव ॥ ११
स्वे स्वे किल कुले जाते पुत्रे नप्तरि वा पुनः ।
पितरः पितृलोकस्थाः शोचन्ति च हसन्ति च ॥
किं तस्य दुष्कृतेऽस्माभिः संप्राप्तव्यं भविष्यति ।
किं चास्य सुकृतेऽस्माभिः प्राप्तव्यमिति शोभनम् ।
पिता माता तथैवाग्निर्गुरुरात्मा च पञ्चमः ।
यस्यैते पूजिताः पार्थ तस्य लोकावुभौ जितौ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवानार्य माहैतद्यथावद्धर्मनिश्चयम् ।
यथाशक्ति यथान्यायं क्रियते विधिवन्मया ॥१५

यथोक्तं वृषपर्वणा निमित्तभूतेनोक्तं मयासुरेण । तथाहि सभापर्वणि मयेन वृषपर्वकथा युधिष्ठिरं प्रति सभाकरणप्रसंगादुक्तेत्युक्तम् । 'स पूर्वदेवचरितं तदा तत्र विशांपते । कथयामास दैतेयः पाण्डुपुत्रेषु भारत' इति समयः । पूर्वदेवोऽसुरः वृषपर्वा ॥९६॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

१५९

युधिष्ठिर इति । नाम कीर्तयन् 'युधिष्ठिरोऽहं त्वामभिवादये' इति वदन् ॥ १ ॥ मुनिः आर्ष्टिषेणः ॥ ४ ॥ वृत्तिः यथायोग्यमाज्ञापालनश्राद्धकरणादिरूपा ॥ ६ ॥ वैद्याः विद्यया विदिताः ॥ ७ ॥ सुष्ठु कृतमस्य तं उपकारिणम् । दुष्कृतं अपकारिणं हातुं त्यक्तुं न विकत्थसे 'ज्ञातास्मि' इति न श्लाघसे ॥ ८ ॥ यथावत् माह यथा मामाह ॥ १५ ॥

आर्ष्टिषेण उवाच ।
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च प्लवमाना विहायसा ।
जुषन्ते पर्वतश्रेष्ठमृषयः पर्वसंधिषु ॥ १६
कामिनः सह कान्ताभिः परस्परमनुव्रताः ।
दृश्यन्ते शैलशृङ्गस्था यथा किंपुरुषा नृप ॥ १७
अरजांसि च वासांसि वसानाः कौशिकानि च ।
दृश्यन्ते बहवः पार्थ गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ १८
विद्याधरगणाश्चैव स्रग्विणः प्रियदर्शनाः ।
महोरगगणाश्चैव सुपर्णाश्चोरगादयः ॥ १९
अस्य चोपरि शैलस्य श्रूयते पर्वसंधिषु ।
भेरीपणवशङ्खानां मृदङ्गानां च निःस्वनः ॥ २०
इहस्थैरेव तत्सर्वं श्रोतव्यं भरतर्षभाः ।
न कार्या वः कथंचित्स्यात्तत्राभिगमने मतिः २१
न चाप्यतः परं शक्यं गन्तुं भरतसत्तमाः ।
विहारो ह्यत्र देवानाममानुषगतिस्तु सा ॥ २२
ईषच्चपलकर्माणां मनुष्यमिह भारत ।
द्विषन्ति सर्वभूतानि ताडयन्ति च राक्षसाः २३
अस्यातिक्रम्य शिखरं कैलासस्य युधिष्ठिर ।
गतिः परमसिद्धानां देवर्षीणां प्रकाशते ॥ २४
चापलादिह गच्छन्तं पार्थ यानमितः परम् ।
अयःशूलादिभिर्घ्नन्ति राक्षसाः शत्रुसूदन ॥ २५
अप्सरोभिः परिवृतः समृद्ध्या नरवाहनः ।
इह वैश्रवणस्तात पर्वसंधिषु दृश्यते ॥ २६
शिखरस्थं समासीनमधिपं यक्षरक्षसाम् ।
प्रेक्षन्ते सर्वभूतानि भानुमन्तमिवोदितम् ॥ २७
देवदानवसिद्धानां तथा वैश्रवणस्य च ।
गिरेः शिखरमुद्यानमिदं भरतसत्तम ॥ २८
उपासीनस्य धनदं तुम्बुरोः पर्वसंधिषु ॥
गीतसामस्वनस्तात श्रूयते गन्धमादने ॥ २९
एतदेवंविधं चित्रमिह तात युधिष्ठिर ।
प्रेक्षन्ते सर्वभूतानि बहुशः पर्वसंधिषु ॥ ३०
भुञ्जाना मुनिभोज्यानि रसवन्ति फलानि च ।
वसध्वं पाण्डवश्रेष्ठा यावदर्जुनदर्शनात् ॥ ३१
न तात चपलैर्भाव्यमिह प्राप्तैः कथंचन ।
उषित्वेह यथाकामं यथाश्रद्धं विहृत्य च ।
ततः शस्त्रजितां तात पृथिवीं पालयिष्यसि ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वणि आर्ष्टिषेणयुधिष्ठिरसंवादे ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

## १६०

जनमेजय उवाच ।
आर्ष्टिषेणाश्रमे तस्मिन् मम पूर्वपितामहाः ।
पाण्डोः पुत्रा महात्मानः सर्वे दिव्यपराक्रमाः ॥ १
कियन्तं कालमवसन् पर्वते गन्धमादने ।
किं च चक्रुर्महावीर्याः सर्वेऽतिबलपौरुषाः ॥ २
कानि चाभ्यवहार्याणि तत्र तेषां महात्मनाम् ।
वसतां लोकवीराणामासंस्तद्ब्रूहि सत्तम ॥ ३
विस्तरेण च मे शंस भीमसेनपराक्रमम् ।
यद्यच्चक्रे महाबाहुस्तस्मिन् हैमवते गिरौ ॥ ४
न खल्वासीत् पुनर्युद्धं तस्य यक्षैर्द्विजोत्तम ।
कच्चित् समागमस्तेषामासीद्वैश्रवणस्य च ॥ ५
तत्र ह्यायाति धनद आर्ष्टिषेणो यथाब्रवीत् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
न हि मे शृण्वतस्तृप्तिरस्ति तेषां विचेष्टितम् ॥ ६
वैशम्पायन उवाच ।
एतदात्महितं श्रुत्वा तस्याप्रतिमतेजसः ।
शासनं सततं चक्रुस्तथैव भरतर्षभाः ॥ ७
भुञ्जाना मुनिभोज्यानि रसवन्ति फलानि च ।
शुद्धबाणहतानां च मृगाणां पिशितान्यपि ॥ ८
मेध्यानि हिमवत्पृष्ठे मधूनि विविधानि च ।
एवं ते न्यवसंस्तत्र पाण्डवा भरतर्षभाः ॥ ९

पर्वसंधिषु प्रतिपत्पञ्चदश्योरन्तराले ॥ १६ ॥ यानं मार्गम् ॥ २५ ॥ उद्यानं क्रीडावनयुगम् ॥ २८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

१६०

आर्ष्टिषेणेति ॥ १ ॥

तथा निवसतां तेषां पञ्चमं वर्षमभ्यगात् ।
शृण्वतां लोमशोक्तानि वाक्यानि विविधान्युत
कृत्यकाल उपस्थास्य इति चोक्त्वा घटोत्कचः ।
राक्षसैः सह सर्वैश्च पूर्वमेव गतः प्रभो ॥ ११
आर्ष्टिषेणाश्रमे तेषां वसतां वै महात्मनाम् ।
अगच्छन् बहवो मासाः पश्यतां महदद्भुतम् ॥१२
तैस्तत्र विहरद्भिश्च रममाणैश्च पाण्डवैः ।
प्रीतिमन्तो महाभागा मुनयश्चारणास्तथा ॥ १३
आजग्मुः पाण्डवान् द्रष्टुं शुद्धात्मानो यतव्रताः ।
ते तैः सह कथां चक्रुर्दिव्यां भरतसत्तमाः ॥ १४
ततः कतिपयाहस्य महाह्रदनिवासिनम्
ऋद्धिमन्तं महानागं सुपर्णः सहसाऽऽहरत् ॥ १५
प्राकम्पत महाशैलः प्रामृद्यन्त महाद्रुमाः ।
ददृशुः सर्वभूतानि पाण्डवाश्च तदद्भुतम् ॥ १६
ततः शैलोत्तमस्याग्रात् पाण्डवान् प्रति मारुतः ।
अवहत् सर्वमाल्यानि गन्धवन्ति शुभानि च ॥१७
तत्र पुष्पाणि दिव्यानि सुहृद्भिः सह पाण्डवाः ।
ददृशुः पञ्चवर्णानि द्रौपदी च यशस्विनी ॥ १८
भीमसेनं ततः कृष्णा काले वचनमब्रवीत् ।
विविक्ते पर्वतोद्देशे सुखासीनं महाभुजम् ॥ १९
सुपर्णानिलवेगेन श्वसनेन महाबलात् ।
पञ्चवर्णा निपात्यन्ते पुष्पाणि भरतर्षभ ॥ २०
प्रत्यक्षं सर्वभूतानां नदीमश्वरथां प्रति ।
खाण्डवे सत्यसंधेन भ्रात्रा तव महात्मना ॥ २१
गन्धर्वोरगरक्षांसि वासवश्च निवारितः ।
हता मायाविनश्चोग्रा धनुः प्राप्तं च गाण्डिवम् ॥
तवापि सुमहत्तेजो महद्बाहुबलं च ते ।
अविषह्यमनाधृष्यं शक्रतुल्यपराक्रम ॥ २३
त्वद्बाहुबलवेगेन त्रासिताः सर्वराक्षसाः ।
हित्वा शैलं प्रपद्यन्तां भीमसेन दिशो दश ॥ २४
ततः शैलोत्तमस्याग्रं चित्रमाल्यधरं शिवम् ।
व्यपेतभयसंमोहाः पश्यन्तु सुहृदस्तव ॥ २५
एवं प्रणिहितं भीम चिरात्प्रभृति मे मनः ।
द्रष्टुमिच्छामि शैलाग्रं त्वद्बाहुबलपालिता ॥ २६
ततः क्षिप्तमिवात्मानं द्रौपद्या स परंतपः ।
नामृष्यत महाबाहुः प्रहारमिव सद्गवः ॥ २७
सिंहर्षभगतिः श्रीमानुदारः कनकप्रभः ।
मनस्वी बलवान् दृप्तो मानी शूरश्च पाण्डवः॥२८
लोहिताक्षः पृथुव्यंसो मत्तवारणविक्रमः ।
सिंहदंष्ट्रो बृहत्स्कन्धः शालपोत इवोद्गतः ॥ २९
महात्मा चारुसर्वाङ्गः कम्बुग्रीवो महाभुजः ।
रुक्मपृष्ठं धनुः खड्गं तूणांश्चापि परामृशत् ॥ ३०
स केसरीव चोत्सिक्तः प्रभिन्न इव वारणः ।
व्यपेतभयसंमोहः शैलमभ्यपतद्बली ॥ ३१
तं मृगेन्द्रमिवायान्तं प्रभिन्नमिव वारणम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि बाणकार्मुकधारिणम् ॥ ३२
द्रौपद्या वर्धयन् हर्षं गदामादाय पाण्डवः ।
व्यपेतभयसंमोहः शैलराजं समाश्रितः ॥ ३३
न ग्लानिर्न च कातर्यं न वैक्लव्यं न मत्सरः ।
कदाचिज्जुषते पार्थमात्मजं मातरिश्वनः ॥ ३४
तदेकायनमासाद्य विषमं भीमदर्शनम् ।
बहुतालोच्छ्रयं शृङ्गमारुरोह महाबलः ॥ ३५
सकिंनरमहानागमुनिगन्धर्वराक्षसान् ।
हर्षयन् पर्वतस्याग्रमारुह्य स महाबलः ॥ ३६
ततो वैश्रवणावासं ददर्श भरतर्षभः ।
काञ्चनैः स्फाटिकैश्चैव वेश्मभिः समलंकृतम्॥३७
प्राकारेण परिक्षिप्तं सौवर्णेन समन्ततः ।
सर्वरत्नद्युतिमता सर्वोद्यानवता तथा ॥ ३८
शैलादभ्युच्छ्रयवता चयाट्टालकशोभिना ।
द्वारतोरणनिर्यूहध्वजसंवाहशोभिना ॥ ३९
विलासिनीभिरत्यर्थं नृत्यन्तीभिः समन्ततः ।
वायुना धूयमानाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ ४०
धनुष्कोटिमवष्टभ्य वक्रभावेन बाहुना ।
पश्यमानः स खेदेन द्रविणाधिपतेः पुरम् ॥ ४१
मोदयन् सर्वभूतानि गन्धमादनसंभवः ।
सर्वगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥ ४२
चित्रा विविधवर्णाभाश्चित्रमञ्जरिधारिणः ।
अचिन्त्या विविधास्तत्र द्रुमाः परमशोभिनः ४३

पृथू विशिष्टौ अंसौ यस्य स पृथुव्यंसः ॥२९॥ ग्लानिः श्रमः । कातर्यं भयम् । वैक्लव्यमनुत्साहः । मत्सरः परोत्कर्षासहिष्णुत्वम् ॥ ३४ ॥ एकायनं वामदक्षिणसंचारशून्यम् ॥ ३५ ॥ परिक्षिप्तं परित आवृतम् ॥ ३८ ॥ चयाट्टालकशोभिना । चयः-प्राकारस्य मूलबन्धः, अट्टालकः-उपरिगृहम् । 'चयः समूहे प्राकारमूलबन्धे समाहिते' इति मेदिनी । तोरणं बहिर्द्वारं निर्यूहो नागदन्ताख्यं गृहान्निर्गतं दारु । 'निर्यूहो नागदन्ते स्यात्' इति विश्वः ॥ ३९॥ वक्रभावेन वक्रेण बाहुना उपलक्षितः । एतेऽस्मान्न प्रत्युद्गच्छन्तीति वा वक्रबुद्ध्या खेदेन तद्दर्शनात्स्वसंपत्स्मरण तेन । द्रविणाधिपतेः-धनाधिपतेः ॥ ४१ ॥

रत्नजालपरिक्षिप्तं चित्रमाल्यविभूषितम् ।
राक्षसाधिपतेः स्थानं ददर्श भरतर्षभः ॥ ४४

गदाखड्गधनुष्पाणिः समभित्यक्तजीवितः ।
भीमसेनो महाबाहुस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४५

ततः शङ्खमुपाध्मासीद्द्विषतां लोमहर्षणम् ।
ज्याघोषतलशब्दं च कृत्वा भूतान्यमोहयत् ॥४६

ततः प्रहृष्टरोमाणस्तं शब्दमभिदुद्रुवुः ।
यक्षराक्षसगन्धर्वाः पाण्डवस्य समीपतः ॥ ४७

गदापरिघनिस्त्रिंशशूलशक्तिपरश्वधाः ।
प्रगृहीता व्यरोचन्त यक्षराक्षसबाहुभिः ॥ ४८

ततः प्रववृते युद्धं तेषां तस्य च भारत ।
तैः प्रयुक्तान् महामायैः शूलशक्तिपरश्वधान् ४९

भल्लैर्भीमः प्रचिच्छेद भीमवेगतरैस्ततः ।
अन्तरिक्षगतानां च भूमिष्ठानां च गर्जताम् ५०

शरैर्विव्याध गात्राणि राक्षसानां महाबलः ।
सा लोहितमहावृष्टिरभ्यवर्षन्महाबलम् ॥ ५१

गदापरिघपाणीनां रक्षसां कायसंभवाः ।
कायेभ्यः प्रच्युता धारा राक्षसानां समन्ततः ५२

भीमबाहुबलोत्सृष्टैरायुधैर्यक्षरक्षसाम् ।
विनिकृत्तानि दृश्यन्ते शरीराणि शिरांसि च ५३

प्रच्छाद्यमानं रक्षोभिः पाण्डवं प्रियदर्शनम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि सूर्यमभ्रगणैरिव ॥ ५४

स रश्मिभिरिवादित्यः शरैररिनिघातिभिः ।
सर्वानार्छन्महाबाहुर्बलवान् सत्यविक्रमः ॥ ५५

अभितर्जयमानाश्च रुवन्तश्च महारवान् ।
न मोहं भीमसेनस्य ददृशुः सर्वराक्षसाः ॥ ५६

यक्षा विकृतसर्वाङ्गा भीमसेनभयार्दिताः ।
भीममार्तस्वरं चक्रुर्विप्रकीर्णमहायुधाः ॥ ५७

उत्सृज्य ते गदाशूलानसिशक्तिपरश्वधान् ।
दक्षिणां दिशमाजग्मुस्त्रासिता दृढधन्वना ॥ ५८

तत्र शूलगदापाणिर्व्यूढोरस्को महाभुजः ।
सखा वैश्रवणस्यासीन्मणिमान्नाम राक्षसः ॥ ५९

अदर्शयदधीकारं पौरुषं च महाबलः ।
स तान् दृष्ट्वा परावृत्तान्स्मयमान इवाब्रवीत् ६०

एकेन बहवः सङ्ख्ये मानुषेण पराजिताः ।
प्राप्य वैश्रवणावासं किं वक्ष्यथ धनेश्वरम् ॥ ६१

एवमाभाष्य तान् सर्वानभ्यवर्तत राक्षसः ।
शक्तिशूलगदापाणिरभ्यधावत्स पाण्डवम् ॥ ६२

तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ।
वत्सदन्तैस्त्रिभिः पार्श्वे भीमसेनः समार्दयत् ॥६३

मणिमानपि संक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय परिगृह्य महाबलः ॥ ६४

विद्युद्रूपां महाघोरामाकाशे महतीं गदाम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्भीमसेनः शिलाशितैः ॥ ६५

प्रत्यहन्यन्त ते सर्वे गदामासाद्य सायकाः ।
न वेगं धारयामासुर्गदावेगस्य वेगिताः ॥ ६६

गदायुद्धसमाचारं बुध्यमानः स वीर्यवान् ।
व्यंसयामास तं तस्य प्रहारं भीमविक्रमः ॥ ६७

ततः शक्तिं महाघोरां रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
तस्मिन्नेवान्तरे धीमान् प्रजहाराथ राक्षसः ॥ ६८

सा भुजं भीमनिर्ह्रादा भित्त्वा भीमस्य दक्षिणम् ।
साग्निज्वाला महारौद्रा पपात सहसा भुवि॥ ६९

सोऽतिविद्धो महेष्वासः शक्त्यामितपराक्रमः ।
गदां जग्राह कौन्तेयः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ७०

रुक्मपट्टपिनद्धां तां शत्रूणां भयवर्धिनीम् ।
प्रगृह्याथ नदन् भीमः शैक्यां सर्वायसीं गदाम् ॥

तरसा चाभिदुद्राव मणिमन्तं महाबलम् ।
दीप्यमानं महाशूलं प्रगृह्य मणिमानपि ॥ ७२

प्राहिणोद्भीमसेनाय वेगेन महता नदन् ।
भङ्क्त्वा शूलं गदाग्रेण गदायुद्धविशारदः ॥ ७३

अभिदुद्राव तं हर्तुं गरुत्मानिव पन्नगम् ।
सोऽन्तरिक्षमवप्लुत्य विधूय सहसा गदाम् ॥ ७४

प्रचिक्षेप महाबाहुर्विनद्य रणमूर्धनि ।
सेन्द्राशनिरिवेन्द्रेण विसृष्टा वातरंहसा ॥ ७५

---

ददृशे ददर्श ॥ ४४ ॥ अदर्शयत् अधीकारं स्वाम्यं प्रागदर्शितवान् यः स मणिमानिति यत्तदोरध्याहारेण योज्यम् ॥ ६० ॥ संख्ये संग्रामे ॥ ६१ ॥ प्रत्यहन्यन्त प्रतिहताः । वेगिताः वेगवन्तोऽपि । गदावेगस्य गदायां वेगोऽत्यभ्यासो यस्य तस्य ॥ ६६ ॥ सः भीमः व्यंसयामास व्यर्थीचकार ॥ ६७ ॥ अयस्मयीं छांदसं 'भत्वम्' अयोमयीम् ॥ ६८ ॥ शैक्यां शीकयति शत्रून् पराभवतीति शैक्या । शीकयतेः 'ऋहलोर्ण्यत्' इति 'ण्यत्' । ततः स्वार्थिकोऽण् ॥ ७१ ॥

हत्वा रक्षः क्षितिं प्राप्य कृत्येव निपपात ह ।
तं राक्षसं भीमबलं भीमसेनेन पातितम् ॥ ७६
ददृशुः सर्वभूतानि सिंहेनेव गवां पतिम् ।
तं प्रेक्ष्य निहतं भूमौ हतशेषा निशाचराः ।
भीममार्तस्वरं कृत्वा जग्मुः प्राचीं दिशं प्रति॥७७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वणि मणिमद्वधे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

## १६१

वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा बहुविधैः शब्दैर्नाद्यमानां गिरेर्गुहाम् ।
अजातशत्रुः कौन्तेयो माद्रीपुत्रावुभावपि ॥ १
धौम्यः कृष्णा च विप्राश्च सर्वे च सुहृदस्तथा ।
भीमसेनमपश्यन्तः सर्वे विमनसोऽभवन् ॥ २
द्रौपदीमार्ष्टिषेणाय संप्रधार्य महारथाः ।
सहिताः सायुधाः शूराः शैलमारुरुहुस्तदा ॥ ३
ततः संप्राप्य शैलाग्रं वीक्षमाणा महारथाः ।
ददृशुस्ते महेष्वासा भीमसेनमरिंदमाः ॥ ४
स्फुरतश्च महाकायान् गतसत्त्वांश्च राक्षसान् ।
महाबलान् महासत्त्वान् भीमसेनेन पातितान् ॥ ५
शुशुभे स महाबाहुर्गदाखड्गधनुर्धरः ।
निहत्य समरे सर्वान् दानवान् मघवानिव ॥ ६
ततस्ते भ्रातरं दृष्ट्वा परिष्वज्य महारथाः ।
तत्रोपविविशुः पार्थाः प्राप्ता गतिमनुत्तमाम् ॥ ७
तैश्चतुर्भिर्महेष्वासैर्गिरिश्शृङ्गमशोभत ।
लोकपालैर्महाभागैर्दिवं देववरैरिव ॥ ८
कुबेरसदनं दृष्ट्वा राक्षसांश्च निपातितान् ।
भ्राता भ्रातरमासीनमब्रवीत् पृथिवीपतिः ॥ ९
युधिष्ठिर उवाच ।
साहसाद्यदि वा मोहाद्भीम पापमिदं कृतम् ।
नैतत्ते सदृशं वीर मुनेरिव मृषा वधः ॥ १०
राजद्विष्टं न कर्तव्यमिति धर्मविदो विदुः ।
त्रिदशानामिदं द्विष्टं भीमसेन त्वया कृतम् ॥ ११
अर्थधर्मावनादृत्य यः पापे कुरुते मनः ।
कर्मणां पार्थ पापानां स फलं विन्दते ध्रुवम् ।
पुनरेवं न कर्तव्यं मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १२
वैशंपायन उवाच ।
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा भ्राता भ्रातरमच्युतम् ।
अर्थतत्त्वविभागज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३
विरराम महातेजास्तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
ततस्ते हतशिष्टा ये भीमसेनेन राक्षसाः ॥ १४
सहिताः प्रत्यपद्यन्त कुबेरसदनं प्रति ।
ते जवेन महावेगाः प्राप्य वैश्रवणालयम् ॥ १५
भीममार्तस्वरं चक्रुर्भीमसेनभयार्दिताः ।
न्यस्तशस्त्रायुधाः क्लान्ताः शोणिताक्ततनुच्छदाः॥
प्रकीर्णमूर्धजा राजन् यक्षाधिपतिमब्रुवन् ।
गदापरिघनिस्त्रिंशतोमरप्रासयोधिनः ॥ १७
राक्षसा निहताः सर्वे तव देव पुरःसराः ।
प्रमृद्य तरसा शैलं मानुषेण धनेश्वर ॥ १८
एकेन सहिताः सङ्ख्ये रणे क्रोधवशा गणाः ।
प्रवरा राक्षसेन्द्राणां यक्षाणां च नराधिप ॥ १९
शेरते निहता देव गतसत्त्वाः परासवः ।
लब्धशेषा वयं मुक्ता मणिमांस्ते सखा हतः॥ २०
मानुषेण कृतं कर्म विधत्स्व यदनन्तरम् ।
स तच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धः सर्वयक्षगणाधिपः ॥ २१
कोपसंरक्तनयनः कथमित्यब्रवीद्वचः ।
द्वितीयमपराध्यन्तं भीमं श्रुत्वा धनेश्वरः ॥ २२

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

१६१

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ संप्रधार्य रक्षार्थं समर्प्य ॥ ३ ॥ मुनेरिव वनवासिनस्ते तवैतत् न सदृशं नोचितम् । यत् मृषा निर्निमित्तं वधो रक्षसां हिंसा ॥ १० ॥ सहिताः मिलिताः ॥ १५ ॥ तनुच्छदः कवचादिः ॥ १६ ॥ लब्धशेषाः लब्धप्रमादाः । 'शेषः संकर्षणे वधे । अनन्ते ना प्रमादे च ' इति मेदिनी । ' लब्धशैलः ' इति गौडपाठे तु लब्धो भीमेन जितः शैलः शैलस्थराक्षसगणः ॥ २० ॥ द्वितीयमिव द्वितीयं भयहेतुम् । 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति श्रुतेः ॥ २२ ॥

चुक्रोध यक्षाधिपतिर्युज्यतामिति चाब्रवीत् ।
अथाभ्रघनसंकाशं गिरिशृङ्गमिवोच्छ्रितम् ॥ २३
रथं संयोजयामासुर्गन्धर्वैर्हेममालिभिः ।
तस्य सर्वगुणोपेता विमलाक्षा हयोत्तमाः ॥ २४
तेजोबलगुणोपेता नानारत्नविभूषिताः ।
शोभमाना रथे युक्तास्तरिष्यन्त इवाशुगाः ॥ २५
ह्रेषयामासुरन्योन्यं ह्रेषितैर्विजयावहैः ।
स तमास्थाय भगवान् राजराजो महारथम् ॥ २६
प्रययौ देवगन्धर्वैः स्तूयमानो महाद्युतिः ।
तं प्रयान्तं महात्मानं सर्वे यक्षा धनाधिपम् ॥२७
रक्ताक्षा हेमसंकाशा महाकाया महाबलाः ।
सायुधा बद्धनिस्त्रिंशा यक्षा दशशतावराः॥ २८
ते जवेन महावेगाः प्लवमाना विहायसा ।
गन्धमादनमाजग्मुः प्रकर्षन्त इवाम्बरम् ॥ २९
तत् केसरिमहाजालं धनाधिपतिपालितम् ।
कुबेरं च महात्मानं यक्षरक्षोगणावृतम् ॥ ३०
ददृशुर्हृष्टरोमाणः पाण्डवाः प्रियदर्शनम् ।
कुबेरस्तु महासत्त्वान् पाण्डोः पुत्रान्महारथान् ॥
आत्तकार्मुकनिस्त्रिंशान् दृष्ट्वा प्रीतोऽभवत्तदा ।
देवकार्यं चिकीर्षन् स हृदयेन तुतोष ह ॥ ३२
ते पक्षिण इवापेतुर्गिरिशृङ्गं महाजवाः ।
तस्थुस्तेषां समभ्याशे धनेश्वरपुरःसराः ॥ ३३
ततस्तं हृष्टमनसं पाण्डवान् प्रति भारत ।
समीक्ष्य यक्षगन्धर्वा निर्विकारमवस्थिताः ॥ ३४
पाण्डवाश्च महात्मानः प्रणम्य धनदं प्रभुम् ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मपुत्रश्च धर्मवित् ॥ ३५
अपराद्धमिवात्मानं मन्यमाना महारथाः ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे परिवार्य धनेश्वरम् ॥ ३६
स ह्यासनवरं श्रीमत्पुष्पकं विश्वकर्मणा ।
विहितं चित्रपर्यन्तमातिष्ठत धनाधिपः ॥ ३७
तमासीनं महाकायाः शङ्कुकर्णा महाजवाः ।
उपोपविविशुर्यक्षा राक्षसाश्च सहस्रशः ॥ ३८
शतशश्चापि गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ।
परिवार्योपतिष्ठन्त यथा देवाः शतक्रतुम् ॥ ३९
काञ्चनीं शिरसा बिभ्रद्भीमसेनः स्रजं शुभाम् ।
पाशखड्गधनुष्पाणिरुदैक्षत धनाधिपम् ॥ ४०
भीमसेनस्य न ग्लानिर्विक्षतस्यापि राक्षसैः ।
आसीत्तस्यामवस्थायां कुबेरमपि पश्यतः ॥ ४१
आददानं शितान्बाणान् योद्धुकाममवस्थितम् ।
दृष्ट्वा भीमं धर्मसुतमब्रवीन्नरवाहनः ॥ ४२
विदुस्त्वां सर्वभूतानि पार्थ भूतहिते रतम् ।
निर्भयश्चापि शैलाग्रे वस त्वं भ्रातृभिः सह ॥ ४३
न च मन्युस्त्वया कार्यो भीमसेनस्य पाण्डव ।
कालेनैते हताः पूर्वं निमित्तमनुजस्तव ॥ ४४
व्रीडा चात्र न कर्तव्या साहसं यदिदं कृतम् ।
दृष्टश्चापि सुरैः पूर्वं विनाशो यक्षरक्षसाम् ॥ ४५
न भीमसेने कोपो मे प्रीतोऽस्मि भरतर्षभ ।
कर्मणा भीमसेनस्य मम तुष्टिरभूत्पुरा ॥ ४६

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु राजानं भीमसेनमभाषत ।
नैतन्मनसि मे तात वर्तते कुरुसत्तम ॥ ४७
यदिदं साहसं भीम कृष्णार्थे कृतवानसि ।
मामनादृत्य देवांश्च विनाशं यक्षरक्षसाम् ॥ ४८
स्वबाहुबलमाश्रित्य तेनाहं प्रीतिमांस्त्वयि ।
शापादद्य विनिर्मुक्तो घोरादस्मि वृकोदर ॥ ४९
अहं पूर्वमगस्त्येन क्रुद्धेन परमर्षिणा ।
शप्तोऽपराधे कस्मिंश्चित्तस्यैषा निष्कृतिः कृता ॥
दृष्टो हि मम संक्लेशः पुरा पाण्डवनन्दन ।
न तवात्रापराधोऽस्ति कथंचिदपि पाण्डव ॥ ५१

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं शप्तोऽसि भगवन्नगस्त्येन महात्मना ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं देव तवैतच्छापकारणम् ॥ ५२
इदं चाश्चर्यभूतं मे यत्क्रोधात्तस्य धीमतः ।
तदैव त्वं न निर्दग्धः सबलः सपदानुगः ॥ ५३

धनेश्वर उवाच ।

देवतानामभून्मन्त्रः कुशवत्या नरेश्वर ।
वृतस्तत्राहमगमं महापद्मशतैस्त्रिभिः ॥ ५४
यक्षाणां घोररूपाणां विविधायुधधारिणाम् ।
अध्वन्यहमथापश्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ५५

---

युज्यतां रथ इति शेषः । अभ्रघनः सजलमेघः । 'अभ्रं मेघे च गगने धातुभेदे च काञ्चने' इति मेदिनीकोशात् काञ्चनमेघसंकाशमिति वा ॥ २३ ॥ गन्धर्वैर्हयैर्योजयामासुः । यक्षा इति शेषः। विमलाक्षाः दशावर्तशुद्धाः ॥ २४ ॥ केसरिमहाजालम्श्वानां महत् वृन्दम् ॥ ३० ॥ दृष्टो ज्ञातः ॥ ४५ ॥ मम मया । संक्लेशो भावि दुःखम् ॥५१॥ कुशवत्यां 'कुशस्थली'संज्ञे देशविशेषे ॥ ५४ ॥

उग्रं तपस्तप्यमानं यमुनातीरमाश्रितम् ।
नानापक्षिगणाकीर्णे पुष्पितद्रुमशोभितम् ॥ ५६
तमूर्ध्वबाहुं दृष्ट्वैव सूर्यस्याभिमुखे स्थितम् ।
तेजोराशिं दीप्यमानं हुताशनमिवैधितम् ॥ ५७
राक्षसाधिपतिः श्रीमान् मणिमान्नाम मे सखा ।
मौर्ख्यादज्ञानभावाच्च दर्पान्मोहाच्च पार्थिव ॥ ५८
न्यष्ठीवदाकाशगतो महर्षेस्तस्य मूर्धनि ।
स कोपान्मामुवाचेदं दिशः सर्वा दहन्निव ॥ ५९
मामवज्ञाय दुष्टात्मा यस्मादेष सखा तव ।
धर्षणां कृतवानेतां पश्यतस्ते धनेश्वर ॥ ६०
तस्मात्सहैभिः सैन्यैस्ते वधं प्राप्स्यति मानुषात्
त्वं चाप्येभिर्हतैः सैन्यैः क्लेशं प्राप्येह दुर्मतिः ।
तमेव मानुषं दृष्ट्वा किल्बिषाद्विप्रमोक्ष्यसे ॥ ६१
सैन्यानां तु तवैतेषां पुत्रपौत्रबलान्वितम् ।
न शापं प्राप्स्यते घोरं तत्तवाज्ञां करिष्यति ॥ ६२
एष शापो मया प्राप्तः प्राक्तस्मादृषिसत्तमात् ।
स भीमेन महाराज भ्रात्रा तव विमोक्षितः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वणि कुबेरदर्शने
एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

## १६२

धनद उवाच ।

युधिष्ठिर धृतिर्दाक्ष्यं देशकालपराक्रमाः ।
लोकतन्त्रविधानानामेष पञ्चविधो विधिः ॥ १
धृतिमन्तश्च दक्षाश्च स्वे स्वे कर्मणि भारत ।
पराक्रमविधानज्ञा नरा कृतयुगेऽभवन् ॥ २
धृतिमान् देशकालज्ञः सर्वधर्मविधानवित् ।
क्षत्रियः क्षत्रियश्रेष्ठ प्रशास्ति पृथिवीं चिरम् ॥ ३
य एवं वर्तते पार्थ पुरुषः सर्वकर्मसु ।
स लोके लभते वीर यशः प्रेत्य च सद्गतिम् ॥ ४
देशकालान्तरप्रेप्सुः कृत्वा शक्रः पराक्रमम् ।
संप्राप्तस्त्रिदिवे राज्यं वृत्रहा वसुभिः सह ॥ ५
यस्तु केवलसंरम्भात्प्रपातं न निरीक्षते ।
पापात्मा पापबुद्धिर्यः पापमेवानुवर्तते ॥ ६
कर्मणामविभागज्ञः प्रेत्य चेह विनश्यति ।
अकालज्ञः सुदुर्मेधाः कार्याणामविशेषवित् ॥ ७
वृथाचारसमारम्भः प्रेत्य चेह विनश्यति ।
साहसे वर्तमानानां निकृतीनां दुरात्मनाम् ॥ ८
सर्वसामर्थ्यलिप्सूनां पापो भवति निश्चयः ।
अधर्मज्ञोऽवलिप्तश्च बालबुद्धिरमर्षणः ॥ ९
निर्भयो भीमसेनोऽयं तं शाधि पुरुषर्षभ ।
आर्ष्टिषेणस्य राजर्षेः प्राप्य भूयस्त्वमाश्रमम् ॥ १०

---

एधितं सामिद्धम् ॥ ५७ ॥ मौर्ख्यात् विचाराक्षमत्वात् । अत एव अगस्त्योऽयमित्यज्ञानभावात् । मौर्ख्यमपि दर्पात् संपत्तिगर्वात् सोऽपि मोहात् संपत्तेर्नश्वरत्वाज्ञानात् ॥ ५८ ॥ न्यष्ठीवत् थूत्कृतवान् ॥ ५९ ॥ सैन्यानामिति । तव सैन्यानां मध्ये यस्तु आज्ञां करिष्यति तत् घोरं शापं मानुषात् मरणरूपं न प्राप्स्यते । घोरत्वे हेतुः । पुत्रेति । पुत्रपौत्राः, बलानि-सैन्यानि च तेषु अन्वितम् । 'राक्षसाः सर्वे पुत्रादियुक्ता मानुषवध्या भवन्तु' इत्येकस्यापराधे बहूनां दण्डरूप इति घोरत्वं शापस्येत्यर्थः ॥ ६२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

१६२

एवं शापकीर्तनव्याजेन महतामवज्ञा न कर्तव्येति सूचितमर्थं कण्ठतोऽपि वक्तुं प्राह युधिष्ठिरेत्यादिना । धृतिः संकटेष्वविक्लवता । दाक्ष्यं यत्नशीलता । पराक्रमः शत्रूणामभिभवनहेतुः क्रिया । देशकालयोरानुकूल्यं चेति विधानानां कार्याणां विधिरभ्युदयहेतुः । अदेशेऽकाले च कृतं धृत्यादिकमभिभवहेतुरित्यर्थः ॥ १ ॥ धृतिमन्त इति । कृतयुगे हि ज्ञानप्राधान्यात् ज्ञानस्य च सर्वस्मिन् देशे काले चाभ्युदयहेतुत्वाच्च तत्र देशकालप्रतीक्षासीदित्यर्थः ॥ २ ॥ क्षत्रियाणां तु सर्वदैवैतत्पञ्चकमावश्यकमित्याह धृतिमानिति ॥ ३ ॥ वृत्रहेति पराक्रमं निर्दिशति ॥ ५ ॥ संरम्भात् कोपात् ॥ ६ ॥ निकृतीनां वञ्चनापराणाम् ॥ ८ ॥ इममुपदेशं प्रकृते योजयति अधर्मज्ञ इति । अवलिप्तो गर्वितः ॥ ९ ॥

तामिस्त्रं प्रथमं पक्ष वीतशोकभयो वस ।
अलकाः सह गन्धर्वैर्यक्षाश्च सह किन्नरैः ॥ ११
मन्नियुक्ता मनुष्येन्द्र सर्वे च गिरिवासिनः ।
रक्षिष्यन्ति महाबाहो सहितं द्विजसत्तमैः ॥ १२
साहसादनुसंप्राप्तः प्रतिबुध्य वृकोदरः ।
वार्यतां साध्वयं राजंस्त्वया धर्मभृतां वर ॥ १३
अतः परं च वो राजन् द्रक्ष्यन्ति वनगोचराः ।
उपस्थास्यन्ति वो राजन् रक्षिष्यन्ते च वः सदा॥
तथैव चान्नपानानि स्वादूनि च बहूनि च ।
आहरिष्यन्ति मत्प्रेष्याः सदा वः पुरुषर्षभाः॥१५
यथा जिष्णुर्महेन्द्रस्य यथा वायोर्वृकोदरः ।
धर्मस्य त्वं यथा तात योगोत्पन्नो निजः सुतः १६
आत्मजावात्मसंपन्नौ यमौ चोभौ यथाश्विनोः ।
रक्ष्यास्तद्वन्ममापीह यूयं सर्वे युधिष्ठिर ॥ १७
अर्थतत्त्वविधानज्ञः सर्वधर्मविधानवित् ।
भीमसेनादवरजः फाल्गुनः कुशली दिवि ॥ १८
याः काश्चन मता लोके स्वर्ग्याः परमसंपदः ।
जन्मप्रभृति ताः सर्वाः स्थितास्तात धनंजये॥१९
दमो दानं बलं बुद्धिर्ह्रीर्धृतिस्तेज उत्तमम् ।
एतान्यपि महासत्त्वे स्थितान्यमिततेजसि ॥ २०
न मोहात् कुरुते जिष्णुः कर्म पाण्डव गर्हितम् ।
न पार्थस्य मृषोक्तानि कथयन्ति नरा नृप ॥ २१
स देवपितृगन्धर्वैः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ।
मानितः कुरुतेऽस्त्राणि शक्रसद्मनि भारत ॥ २२
योऽसौ सर्वान्महीपालान्धर्मेण वशमानयत् ।
स शान्तनुर्महातेजाः पितुस्तव पितामहः ॥ २३
प्रीयते पार्थ पार्थेन दिवि गाण्डीवधन्वना ।
सम्यक्चासौ महावीर्यः कुलधुर्येण पार्थिवः ॥ २४
पितॄन् देवानृषीन्विप्रान् पूजयित्वा महातपाः ।
सप्त मुख्यान् महामेधानाहरद्यमुनां प्रति ॥ २५
अधिराजः स राजंस्त्वां शान्तनुः प्रपितामहः ।
स्वर्गजिच्छक्रलोकस्थः कुशलं परिपृच्छति ॥ २६

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं धनदेन प्रभाषितम् ।
पाण्डवाश्च ततस्तेन बभूवुः संप्रहर्षिताः ॥ २७
ततः शक्तिं गदां खड्गं धनुश्च भरतर्षभः ।
प्राध्वं कृत्वा नमश्चक्रे कुबेराय वृकोदरः ॥ २८
ततोऽब्रवीद्धनाध्यक्षः शरण्यः शरणागतम् ।
मानहा भव शत्रूणां सुहृदां नन्दिवर्धनः ॥ २९
स्वेषु वेश्मसु रम्येषु वसतामित्रतापनाः ।
कामान्न परिहास्यन्ति यक्षा वो भरतर्षभाः ॥३०
शीघ्रमेव गुडाकेशः कृतास्त्रः पुनरेष्यति ।
साक्षान्मघवता सृष्टः संप्राप्स्यति धनंजयः ॥ ३१
एवमुत्तमकर्माणमनुशिष्य युधिष्ठिरम् ।
अस्तं गिरिवरश्रेष्ठं प्रययौ गुह्यकाधिपः ॥ ३२
तं परिस्तोमसंकीर्णैर्नानारत्नविभूषितैः ।
यानैरनुययुर्यक्षा राक्षसाश्च सहस्रशः ॥ ३३
पक्षिणामिव निर्घोषः कुबेरसदनं प्रति ।
बभूव परमाश्वानामैरावतपथे यथा ॥ ३४

---

प्रथमं प्रथमोत्पन्नानि रक्षांसि तत्संबन्धित्वात्पक्षोऽपि प्रथमः । रक्षोभयहेतावपि तामिस्रपक्षे त्वं तत्र निर्भयो वसेत्यर्थः । केचित्तु इत एव प्रथमशब्दान्मासारम्भे कृष्णपक्षस्य प्राथम्यमिच्छन्ति तदसत् । पूर्वपक्षापरपक्षशब्दयोः क्रमेण शुक्लकृष्णयोरेव रूढत्वात् । श्रौतेऽपि पौर्णमासत एवेष्ट्यारम्भात् । न च ' पूर्णो मासोऽस्यामिति योगात् पौर्णमास्यन्तो मास ' इति वाच्यम् । तत्र मासशब्दस्य चन्द्रवाचित्वात् । ' सूर्यामासा विचरन्ता दिवि ' इति मन्त्रवर्णात् । सूर्यामासा सूर्याचन्द्रमसावित्यर्थः । निपुणतरमुपपादितमेतदस्माभिः ' काण्वशतपथभाष्ये ' एकपादीकाण्डे । अलकाः अलकावासिनः ॥ ११ ॥ मन्नियुक्ताः रक्षिष्यन्ति सहितं त्वामिति शेषः ॥ १२ ॥ साहसादनुसंप्राप्त इति प्रतिबुध्य वार्यताम् ॥ १३ ॥ यथेति । इन्द्रादीनामौरसपुत्रत्वाद्यथा यूयं रक्ष्यास्तथा ममापीति श्लोकद्वयार्थः ॥ १६ ॥ अर्थेति । तत्त्वं याथात्म्यम् । विधानं प्राप्त्युपायम् ॥ १८ ॥ स्वर्ग्याः स्वर्गाय हिताः संपदः ॥ १९ ॥ ता एवाह । दम इति । तेजः शौर्यं पराभिभवसामर्थ्यम् ॥ २० ॥ कुरुते अभ्यस्यति ॥ २२ ॥ महामेधान् अश्वमेधान् ॥ २५ ॥ प्राध्वं कृत्वा बध्वा उपसंहृत्येत्यर्थः । 'प्राध्वं बन्धने' इति गतिसंज्ञायां 'कुगतिप्रादयः' इति प्राप्तोऽपि समासो महाविभाषयाऽनादृतः । नमश्चक्रे स्वदोषानर्जुनगुणांश्च श्रुत्वा लज्जितः स्वापराधं क्षमापयितुमित्यर्थः । 'प्राज्यं कृत्वा' इत्यपि पाठः । प्रकर्षेण अज्यं प्राज्यं ज्यारहितमित्यर्थः ॥२८॥ नन्दिः समृद्धिः ॥ २९ ॥ स्वेषु वेश्मसु अस्मदीयेषु वः युष्मत्संबन्धिनः कामान् काम्यमानान् अर्थान् न परिहास्यन्ति किं तु साधयिष्यन्त्येवेत्यर्थः ॥ ३० ॥ सृष्टः विसर्जितः संप्राप्स्यति युष्मान् ॥ ३१ ॥ अस्तं गृहम् । 'अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि' इति मन्त्रवर्णात् ॥ ३२ ॥ परिस्तोमाश्चित्रकम्बला हस्त्यादीनां पल्याणभूताः ॥ ३३ ॥ ऐरावतपथे इन्द्रपुरीप्रदेशे ॥ ३४ ॥

ते जग्मुस्तूर्णमाकाशं धनाधिपतिवाजिनः ।
प्रकर्षन्त इवाभ्राणि पिबन्त इव मारुतम् ॥ ३५
ततस्तानि शरीराणि गतसत्वानि रक्षसाम् ।
अपाकृष्यन्त शैलाग्राद्धनाधिपतिशासनात् ॥ ३६
तेषां हि शापकालः स कृतोऽगस्त्येन धीमता ।
समरे निहतास्तस्माच्छापस्यान्तोऽभवत्तदा ॥ ३७
पाण्डवाश्च महात्मानस्तेषु वेश्मसु ताः क्षपाः ।
सुखमूषुर्गतोद्वेगाः पूजिताः सर्वराक्षसैः ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वणि कुबेरवाक्ये द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

## १६३

वैशम्पायन उवाच ।
ततः सूर्योदये धौम्यः कृत्वाऽऽह्निकमरिन्दम ।
आर्ष्टिषेणेन सहितः पाण्डवानभ्यवर्तत ॥ १
तेऽभिवाद्यार्ष्टिषेणस्य पादौ धौम्यस्य चैव ह ।
ततः प्राञ्जलयः सर्वे ब्राह्मणांस्तानपूजयन् ॥ २
ततो युधिष्ठिरं धौम्यो गृहीत्वा दक्षिणे करे ।
प्राचीं दिशमभिप्रेक्ष्य महर्षिरिदमब्रवीत् ॥ ३
असौ सागरपर्यन्तां भूमिमावृत्य तिष्ठति ।
शैलराजो महाराज मन्दरोऽतिविराजते ॥ ४
इन्द्रवैश्रवणावेतां दिशं पाण्डव रक्षतः ।
पर्वतैश्च वनान्तैश्च काननैश्चैव शोभिताम् ॥ ५
एतदाहुर्महेन्द्रस्य राज्ञो वैश्रवणस्य च ।
ऋषयः सर्वधर्मज्ञाः सद्म तात मनीषिणः ॥ ६
अतश्चोद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठन्ति वै प्रजाः ।
ऋषयश्चापि धर्मज्ञाः सिद्धाः साध्याश्च देवताः ॥ ७
यमस्तु राजा धर्मज्ञः सर्वप्राणभृतां प्रभुः ।
प्रेतसत्त्वगतिं ह्येनां दक्षिणामाश्रितो दिशम् ॥ ८
एतत् संयमनं पुण्यमतीवाद्भुतदर्शनम् ।
प्रेतराजस्य भवनमृद्ध्या परमया युतम् ॥ ९
तं प्राप्य सविता राजन् सत्येन प्रतितिष्ठति ।
अस्तं पर्वतराजानमेतमाहुर्मनीषिणः ॥ १०
एतं पर्वतराजानं समुद्रं च महोदधिम् ।
आवसन् वरुणो राजा भूतानि परिरक्षति ॥ ११
उदीचीं दीपयन्नेष दिशं तिष्ठति वीर्यवान् ।
महामेरुर्महाभाग शिवो ब्रह्मविदां गतिः ॥ १२
यस्मिन् ब्रह्मसदश्चैव भूतात्मा चावतिष्ठते ।
प्रजापतिः सृजन् सर्वं यत्किञ्चिज्जङ्गमागमम् ॥ १३
यानाहुर्ब्रह्मणः पुत्रान् मानसान् दक्षसप्तमान् ।
तेषामपि महामेरुः शिवं स्थानमनामयम् ॥ १४
अत्रैव प्रतितिष्ठन्ति पुनरेवोदयन्ति च ।
सप्त देवर्षयस्तात वसिष्ठप्रमुखास्तदा ॥ १५
देशं विरजसं पश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।
यत्रात्मतृप्तैरध्यास्ते देवैः सह पितामहः ॥ १६
यमाहुः सर्वभूतानां प्रकृतेः प्रकृतिं ध्रुवम् ।
अनादिनिधनं देवं प्रभुं नारायणं परम् ॥ १७
ब्रह्मणः सदनात्तस्य परं स्थानं प्रकाशते ।
देवाऽपि यं न पश्यन्ति सर्वतेजोमयं शुभम् ॥ १८
अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।
स्वयैव प्रभया राजन् दुष्प्रेक्ष्यं देवदानवैः ॥ १९
प्राच्यां नारायणस्थानं मेरावतिविराजते ।
यत्र भूतेश्वरस्तात सर्वप्रकृतिरात्मभूः ॥ २०

---

अपाकृष्यन्त अपाकृतानि ॥ ३६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

१६३

अर्जुनेन तपोबलाद्देवेभ्योऽस्त्राणि लब्धानीति विस्मयो न कर्तव्य एतदर्थं कर्मफलोर्जितिं विष्णुलोकप्राप्त्यन्तां वर्णयत्यध्यायेन धौम्यो युधिष्ठिरगर्वपरिहारार्थं तत इत्यादिना ॥ १ ॥ प्रेतसत्त्वगतिं मृतानां प्राणिनां गम्याम् ॥ ८ ॥ संयमनं नामतः ॥ ९ ॥ आवसन् अधितिष्ठन् ॥ ११ ॥ भूतात्मा सर्वेषां भूतानामात्मा । सम्पूर्णब्रह्माण्डपिण्डाभिमानित्वात् ॥ १३ ॥ अत्रैव प्रजापतौ ॥ १५ ॥ यमिति प्रकृतेः पञ्चभूतात्मिकायाः प्रकृतिमुपादानम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मणः—चतुर्मुखस्य ॥ १८ ॥ ननु सर्वं सोपाधिककार्यं ब्रह्माण्डान्तःपातीति वैदिकसिद्धान्तस्तत्कथं विष्णोः स्थानं ततः परमित्युच्यते अत आह प्राच्यामिति । मेरावेवायं

भासयन् सर्वभूतानि स्वश्रिया ऽभिविराजते ।
नात्र ब्रह्मर्षयस्तात कुत एव महर्षयः ॥ २१
प्राप्नुवन्ति गतिं ह्येतां यतीनां कुरुसत्तम ।
न तं ज्योतींषि सर्वाणि प्राप्य भासन्ति पाण्डव॥
स्वयं प्रभुरचिन्त्यात्मा तत्र ह्यतिविराजते ।
यतयस्तत्र गच्छन्ति भक्त्या नारायणं हरिम् ॥२३
परेण तपसा युक्ता भाविताः कर्मभिः शुभैः ।
योगसिद्धा महात्मानस्तमोमोहविवर्जिताः ॥ २४
तत्र गत्वा पुनर्नेमं लोकमायान्ति भारत ।
स्वयम्भुवं महात्मानं देवदेवं सनातनम् ॥ २५
स्थानमेतन्महाभाग ध्रुवमक्षयमव्ययम् ।
ईश्वरस्य सदा ह्येतत् प्रणमात्र युधिष्ठिर ॥ २६
एनं× त्वहरहर्मेरुं सूर्याचन्द्रमसौ ध्रुवम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य कुरुतः कुरुनन्दन ॥ २७
ज्योतींषि चाप्यशेषेण सर्वाण्यनघ सर्वतः ।
परियान्ति महाराज गिरिराजं प्रदक्षिणम् ॥ २८
एतं ज्योतींषि सर्वाणि प्रकर्षन् भगवानपि ।
कुरुते वितमस्कर्मा आदित्योऽभिप्रदक्षिणम् ॥२९
अस्तं प्राप्य ततः सन्ध्यामतिक्रम्य दिवाकरः ।
उदीचीं भजते काष्ठां दिशमेष विभावसुः ॥ ३०
स मेरुमनुवृत्तः स पुनर्गच्छति पाण्डव ।
प्राङ्मुखः सविता देवः सर्वभूतहिते रतः ॥ ३१
स मासान् विभजन् काले बहुधा पर्वसन्धिषु ।
तथैव भगवान् सोमो नक्षत्रैः सह गच्छति ॥ ३२
एवमेतं त्वतिक्रम्य महामेरुमतन्द्रितः ।
भावयन् सर्वभूतानि पुनर्गच्छति मन्दरम् ॥ ३३
तथा तमिस्रहा देवो मयूखैर्भावयञ्जगत् ।
मार्गमेतदसम्बाधमादित्यः परिवर्तते ॥ ३४
सिसृक्षुः शिशिराण्येव दक्षिणां भजते दिशम् ।
ततः सर्वाणि भूतानि कालोऽभ्यर्च्छति शैशिरः
स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च तेजसा ।
तेजांसि समुपादत्ते निवृत्तः स विभावसुः ॥ ३६
ततः स्वेदक्लमौ तन्द्री ग्लानिश्च भजते नरान् ।
प्राणिभिः सततं स्वप्नो ह्यभीक्ष्णं च निषेव्यते ३७
एवमेतदनिर्देश्यं मार्गमावृत्य भानुमान् ।
पुनः सृजति वर्षाणि भगवान् भावयन् प्रजाः ३८
वृष्टिमारुतसन्तापैः सुखैः स्थावरजङ्गमान् ।
वर्धयन् सुमहातेजाः पुनः प्रतिनिवर्तते ॥ ३९
एवमेष चरन् पार्थ कालचक्रमतन्द्रितः ।
प्रकर्षन् सर्वभूतानि सविता परिवर्तते ॥ ४०
सन्तता गतिरेतस्य नैव तिष्ठति पाण्डव ।
आदायैव तु भूतानां तेजो विसृजते पुनः ॥ ४१
विभजन् सर्वभूतानामायुः कर्म च भारत ।
अहोरात्रं कलाः काष्ठाः सृजत्येष सदा विभुः ४२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वणि मेरुदर्शने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

तारतम्येन देशविशेषविभागो न तु सोपाधिकमपि किञ्चिदजातमस्ति । इममेव स्थानमेकमाश्रित्य 'ब्रह्मलोकादावर्तन्ते न तु विष्णुलोकात्' इति पौराणिकी व्यवस्था ज्ञेया ॥२०॥ **ध्रुवमक्षयमव्ययमिति** । उत्पत्तिह्रासनाशशून्यमित्यर्थः । एतच्च यथा घटाकाशयोर्मिथ्यात्वाविशेषेऽपि व्यवहारमाश्रित्य घटोऽनित्यः, आकाशोऽनित्य इति विभागः । एवं ब्रह्मलोकान्तमनित्यं वैकुण्ठं नित्यमिति । परमार्थतस्तु क्रममुक्तिस्थानत्वादौपचारिकं ध्रुवत्वादि ज्ञेयम् । प्रणम नमस्कुरु ॥२६॥ उपावृत्य-अप्रदक्षिणं गत्वैव । भचक्रवेगात् कुलालचक्रे प्रतीपं क्रमन्ती पिपालिकेव प्रदक्षिणं कुरुत इत्यर्थः ॥ २७ ॥ प्रकर्षन् अभिभवन् । प्रदक्षिणं कुरुत इत्यनुवादः उत्तरार्धार्थः ॥ २९ ॥ अस्तमदर्शनम् । अयमर्थः-मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन्नादित्यो यत्रस्थो न दृश्यते तदेवास्तस्थानम् । तत उदीचीं काष्ठां-दिशा मध्येऽतिश्रेष्ठां दिशं-भजते । अत्र गत्वोत्तरमुदङ्मुखः ॥ ३० ॥ तत उदीच्याः परा काष्ठा प्राप्य प्राङ्मुख इति वदता मेरोश्चतुष्कोणत्वं सूचितं भवति । एतदेव तत्त्वमित्याश्रिताः पाखण्डिनो 'द्वौ सूर्यौ' इति कल्पयन्ति । वस्तुतोऽत्र परभ्रान्तिरनूद्यते । आकारे तात्पर्याभावादिति ज्ञेयम् ॥३१॥ स सोमो मासान् विभजन्निति सम्बन्धः । तत्र मार्गविभागप्रकारोऽध्यावर्काय उक्तः ॥ ३२ ॥ शिशिराणि शीतानि ॥ ३५ ॥ तेजांसि समुपादत्ते ग्रीष्मे ॥३६॥ अनिर्देश्यं मार्गमन्तरिक्षम् ॥ ३८ ॥ वह्निवायू परस्परं वर्धयन्तौ जलमुत्क्षिपत इति प्रसिद्धम् । सजलस्थाल्यां वायूद्दीपितोऽग्निर्बाष्पवायुं वर्धयति । वायुश्च स्थालीजलमुत्क्षिपतीति वृष्टिमारुतसन्तापान् प्रतिसूर्यस्यैव हेतुत्वं युक्तमिति भावः ॥ ३९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

× एवम् इति पाठः ।

## १६४

वैशम्पायन उवाच ।

तस्मिन्नगेन्द्रे वसतां तु तेषां
महात्मनां सद्व्रतमास्थितानाम् ।
रतिः प्रमोदश्च बभूव तेषा-
माकाङ्क्षतां दर्शनमर्जुनस्य ॥ १

तान् वीर्ययुक्तान् सुविशुद्धकामां-
स्तेजस्विनः सत्यधृतिप्रधानान् ।
सम्प्रीयमाणा बहवोऽभिजग्मु-
र्गन्धर्वसङ्घाश्च महर्षयश्च ॥ २

तं पादपैः पुष्पधरैरुपेतं
नगोत्तमं प्राप्य महारथानाम् ।
मनःप्रसादः परमो बभूव
यथा दिवं प्राप्य मरुद्गणानाम् ॥ ३

मयूरहंसस्वननादितानि
पुष्पोपकीर्णानि महाचलस्य ।
शृङ्गाणि सानूनि च पश्यमाना
गिरेः परं हर्षमवाप्य तस्थुः ॥ ४

साक्षात् कुबेरेण कृताश्च तस्मिन्
नगोत्तमे संवृतकूलरोधसः ।
कादम्बकारण्डवहंसजुष्टाः
पद्माकुलाः पुष्करिणीरपश्यन् ॥ ५

क्रीडाप्रदेशांश्च समृद्धरूपान्
सुचित्रमाल्यावृतजातशोभान् ।
मणिप्रकीर्णांश्च मनोरमांश्च
यथा भवेयुर्धनदस्य राज्ञः ॥ ६

अनेकवर्णैश्च सुगन्धिभिश्च
महाद्रुमैः सन्ततमभ्रजालैः ।
तपःप्रधानाः सततं चरन्तः
शृङ्गं गिरेश्चिन्तयितुं न शेकुः ॥ ७

स्वतेजसा तस्य नगोत्तमस्य
महौषधीनां च तथा प्रभावात् ।
विभक्तभावो न बभूव कश्चि-
दहोनिशानां पुरुषप्रवीर ॥ ८

यमास्थितः स्थावरजङ्गमानि
विभावसुर्भावयतेऽमितौजाः ।
तस्योदयं चास्तमनं च वीरा-
स्तत्र स्थितास्ते ददृशुर्नृसिंहाः ॥ ९

रवेस्तमिस्रागमनिर्गमांस्ते
तथोदयं चास्तमनं च वीराः ।
समावृताः प्रेक्ष्य तमोनुदस्य
गभस्तिजालैः प्रदिशो दिशश्च ॥ १०

स्वाध्यायवन्तः सततक्रियाश्च
धर्मप्रधानाश्च शुचिव्रताश्च ।
सत्ये स्थितास्तस्य महारथस्य
सत्यव्रतस्यागमनप्रतीक्षाः ॥ ११

इहैव हर्षोऽस्तु समागतानां
क्षिप्रं कृतास्त्रेण धनञ्जयेन ।
इति ब्रुवन्तः परमाशिषस्ते
पार्थास्तपोयोगपरा बभूवुः ॥ १२

दृष्ट्वा विचित्राणि गिरौ वनानि
किरीटिनं चिन्तयतामभीक्ष्णम् ।
बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां
संवत्सरेणैव समानरूपः ॥ १३

यदैव धौम्यानुमते महात्मा
कृत्वा जटां प्रव्रजितः स जिष्णुः ।
तदैव तेषां न बभूव हर्षः
कुतो रतिस्तद्गतमानसानाम् ॥ १४

१६४

**तस्मिन्निति** ॥ १ ॥ महती चला लक्ष्मीः शोभा यस्य महाचलस्य । 'चला लक्ष्म्यां पुमान् कम्पे' इति मेदिनी । सानून्येव तीक्ष्णाग्राणि पुंसंचारायोग्यानि शृङ्गाणीत्युच्यन्ते ॥ ४ ॥ रोधसः—रोधस्वत्यः । नवशैवालादिनाऽऽच्छादितनीरा इत्यर्थः ॥ ५ ॥ विभक्तभावो न बभूव-अहोरात्रविभागो नासीत् । नित्यमौषधिप्रभोपेतत्वात् । अहो इति त्वमार्षम् ॥ ८ ॥ यं सूर्यम् । विभावसुर्वह्निरास्थितः । 'आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशति' इति श्रुतेः । यस्य सूर्यस्याश्रयेणैव रात्रौ वह्निर्जगद्दीपयति तस्योदयमित्यन्वयः ॥ ९ ॥ तमिस्रागमनिर्गमा अस्तोदयस्थानानि । बहुत्वं लोकान्तराभिप्रायम् । तथा हि । यत् दाक्षिणात्यानामुदयस्थानं तदुदीच्यानामस्तस्थानम् । पाश्चात्त्यानां निशीथस्थानं प्राच्यानां मध्याह्नस्थानमिति क्रमेणोदयादिस्थानानां बहुत्वं गम्यते । उदयमुदयाचलम् । अस्तमिति मान्तमव्ययमदर्शनवाचि । तदर्थमनिति चेष्टतेऽस्मिन्नित्यस्तमनमस्तमयस्थानम् । अस्ताचलमित्यादौ त्वस्तपदं गृहीत्वा चि । प्रदिशो दिशामन्तरालानि ॥ १० ॥ सततक्रिया अविच्छिन्नधर्माचरणाः ॥ ११ ॥

भ्रातुर्नियोगात्तु युधिष्ठिरस्य
वनादसौ वारणमत्तगामी ॥
यत्काम्यकात् प्रव्रजितः स जिष्णु-
स्तदैव ते शोकहता बभूवुः ॥ १५
तथैव तं चिन्तयतां सिताश्व-
मस्त्रार्थिनं वासवमभ्युपेतम् ॥
मासोऽथ कृच्छ्रेण तदा व्यतीत-
स्तस्मिन्नगे भारत भारतानाम् ॥ १६

उषित्वा पञ्चवर्षाणि सहस्राक्षनिवेशने ।
अवाप्य दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि विबुधेश्वरात् ॥
आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ।
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ॥ १८
यमस्य धातुः सवितुस्त्वष्टुर्वैश्रवणस्य च ।
तानि प्राप्य सहस्राक्षादभिवाद्य शतक्रतुम् ॥ १९
अनुज्ञातस्तदा तेन कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
आगच्छदर्जुनः प्रीतः प्रहृष्टो गन्धमादनम् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि यक्षयुद्धपर्वण्यर्जुनाभिगमने
चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

॥ समाप्तं यक्षयुद्धपर्व ॥

## निवातकवचयुद्धपर्व ।

### १६५

वैशम्पायन उवाच ।
ततः कदाचिद्धरिसम्प्रयुक्तं
महेन्द्रवाहं सहसोपयातम् ।
विद्युत्प्रभं प्रेक्ष्य महारथानां
हर्षोऽर्जुनं चिन्तयतां बभूव ॥ १
स दीप्यमानः सहसाऽन्तरिक्षं
प्रकाशयन् मातलिसङ्गृहीतः ।
बभौ महोल्केव घनान्तरस्था
शिखेव चाग्नेर्ज्वलिता विधूमा ॥ २
तमास्थितः सन्ददृशे किरीटी
स्रग्वी नवान्याभरणानि बिभ्रत् ।
धनञ्जयो वज्रधरप्रभावः
श्रिया ज्वलन् पर्वतमाजगाम ॥ ३
स शैलमासाद्य किरीटमाली
महेन्द्रवाहादवरुह्य तस्मात् ।
धौम्यस्य पादावभिवाद्य धीमा-
नजातशत्रोस्तदनन्तरं च ॥ ४

वृकोदरस्यापि च वन्द्य पादौ
माद्रीसुताभ्यामभिवादितश्च ।
समेत्य कृष्णां परिसान्त्व्य चैनां
प्रह्वोऽभवद्भ्रातुरुपह्वरे सः ॥ ५
बभूव तेषां परमः प्रहर्ष-
स्तेनाप्रमेयेण समागतानाम् ।
स चापि तान् प्रेक्ष्य किरीटमाली
ननन्द राजानमभिप्रशंसन् ॥ ६
यमास्थितः सप्त जघान पूगान्
दितेः सुतानां नमुचेर्निहन्ता ।
तमिन्द्रवाहं समुपेत्य पार्थाः
प्रदक्षिणं [illegible]दीनसत्त्वाः ॥ ७
ते मातलेश्चक्रुरतीव हृष्टाः
सत्कारमग्र्यं सुरराजतुल्यम् ।
सर्वान् यथावच्च दिवौकसस्ते
पप्रच्छुरेनं कुरुराजपुत्राः ॥ ८

यत्काम्यकात् यदा काम्यकाख्यवनात् ॥ १५ ॥
इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

१६५

तत इति । हरिभिरश्वैः सम्प्रयुक्तम् । महेन्द्रस्य वाहं रथम् ॥ १ ॥ प्रह्वो नम्रः । उपह्वरे समीपे ॥ ५ ॥ पूगान्यूथानि ॥ ७ ॥ एनं मातलिम् ॥ ८ ॥

तानप्यसौ मातलिरभ्यनन्दत्
पितेव पुत्राननुशिष्य पार्थान् ।
ययौ रथेनाप्रतिमप्रभेण
पुनः सकाशं त्रिदिवेश्वरस्य ॥ ९
गते तु तस्मिन् वरदेववर्यः
शक्रात्मजः शक्ररिपुप्रमाथी ।
शक्रेण दत्तानि ददौ महात्मा
महाधनान्युत्तमरूपवन्ति ॥ १०
दिवाकराभाणि विभूषणानि
प्रियः प्रियायै सुतसोममात्रे ।
ततः स तेषां कुरुपुङ्गवानां
तेषां च सूर्याग्निसमप्रभाणाम् ॥ ११
विप्रर्षभाणामुपविश्य मध्ये
सर्वं यथावत् कथयांबभूव ।
एवं मयास्त्राण्युपशिक्षितानि
शक्राच्च वाताच्च शिवाच्च साक्षात् ॥ १२
तथैव शीलेन समाधिनाऽथ
प्रीताः सुरा मे सहिताः सहेन्द्राः ।
सङ्क्षेपतो वै स विशुद्धकर्मा
तेभ्यः समाख्याय दिवि प्रवासम् ॥ १३
माद्रीसुताभ्यां सहितः किरीटी
सुष्वाप तामावसतिं प्रतीतः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वण्यर्जुनसमागमे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

## १६६

वैशम्पायन उवाच ।
ततो रजन्यां व्युष्टायां धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरवन्दत धनञ्जयः ॥ १
एतस्मिन्नेव काले तु सर्ववादित्रनिःस्वनः ।
बभूव तुमुलः शब्दस्त्वन्तरिक्षे दिवौकसाम् ॥ २
रथनेमिस्वनश्चैव घण्टाशब्दश्च भारत ।
पृथग्व्यालमृगाणां च पक्षिणामिव सर्वशः ॥ ३
ते समन्तादनुययुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
विमानैः सूर्यसङ्काशैर्देवराजमरिन्दमम् ॥ ४
ततः स हरिभिर्युक्तं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
मेघनादिनमारुह्य श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ५
पार्थानभ्याजगामाथ देवराजः पुरन्दरः ।
आगत्य च सहस्राक्षो रथादवरुरोह वै ॥ ६
तं दृष्ट्वैव महात्मानं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् देवराजमुपागमत् ॥ ७
पूजयामास चैवाऽथ विधिवद्भूरिदक्षिणः ।
यथार्हममितात्मानं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ८
धनञ्जयश्च तेजस्वी प्रणिपत्य पुरन्दरम् ।
भृत्यवत् प्रणतस्तस्थौ देवराजसमीपतः ॥ ९
आघ्राय तं महातेजाः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य विनीतं स्थितमन्तिके ॥ १०
जटिलं देवराजस्य तपोयुक्तमकल्मषम् ।
हर्षेण महताऽऽविष्टः फाल्गुनस्याथ दर्शनात् ११
बभूव परमप्रीतो देवराजं च पूजयन् ।
तं तथाऽदीनमनसं राजानं हर्षसम्प्लुतम् ॥ १२
उवाच वचनं धीमान् देवराजः पुरन्दरः ।
त्वमिमां पृथिवीं राजन् प्रशासिष्यसि पाण्डव ।
स्वस्ति प्राप्नुहि कौन्तेय काम्यकं पुनराश्रमम् ॥ १३
अस्त्राणि लब्धानि च पाण्डवेन
सर्वाणि मत्तः प्रयतेन राजन् ।
कृतप्रियश्चास्मि धनञ्जयेन
जेतुं न शक्यस्त्रिभिरेष लोकैः ॥ १४

---

सुतसोमो भीमात् द्रौपद्यां जातः ॥ ११ ॥ आवसतिं रात्रिम् । प्रतीतो हृष्टः ॥ १४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

१६६

तत इति ॥ १ ॥ हरिभिर्युक्तं रथम् ॥ ५ ॥ अमितात्मा–अमितबुद्धिः ॥ ८ ॥ अदीनेति च्छेदः ॥ १२ ॥ कृतप्रियः शत्रुवधेन ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा सहस्राक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ १५
धनेश्वरगृहस्थानां पाण्डवानां समागमम् ।
शक्रेण य इदं विद्वानधीयीत समाहितः ॥ १६
संवत्सरं ब्रह्मचारी नियतः संशितव्रतः ।
स जीवेद्धि निराबाधः स सुखी शरदां शतम्॥१७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि इन्द्रागमने
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

## १६७

वैशम्पायन उवाच ।
यथागतं गते शक्रे भ्रातृभिः सह सङ्गतः ।
कृष्णया चैव बीभत्सुर्धर्मपुत्रमपूजयत् ॥ १
अभिवादयमानं तं मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डवम् ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रहृष्टोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २
कथमर्जुन कालोऽयं स्वर्गे व्यतिगतस्तव ।
कथं चास्त्राण्यवाप्तानि देवराजश्च तोषितः ॥ ३
सम्यग्वा ते गृहीतानि कच्चिदस्त्राणि पाण्डव ।
कच्चित् सुराधिपः प्रीतो रुद्रो वाऽस्त्राण्यदात्तव४
यथा दृष्टश्च ते शक्रो भगवान् वा पिनाकधृक् ।
यथैवास्त्राण्यवाप्तानि यथैवाराधितश्च ते ॥ ५
यथोक्तवांस्त्वां भगवान् शतक्रतुररिन्दम ।
कृतप्रियस्त्वयाऽस्मीति तस्य ते किं प्रियं कृतम् ६
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ।
यथा तुष्टो महादेवो देवराजस्तथाऽनघ ॥ ७
यच्चापि वज्रपाणेस्तु प्रियं कृतमरिन्दम ।
एतदाख्याहि मे सर्वमखिलेन धनञ्जय ॥ ८
अर्जुन उवाच ।
शृणु हन्त महाराज विधिना येन दृष्टवान् ।
शतक्रतुमहं देवं भगवन्तं च शङ्करम् ॥ ९
विद्यामधीत्य तां राजंस्त्वयोक्तामरिमर्दन ।
भवता च समादिष्टस्तपसे प्रस्थितो वनम् ॥ १०
भृगुतुङ्गमथो गत्वा काम्यकादास्थितस्तपः ।
एकरात्रोषितः कश्चिदपश्यं ब्राह्मणं पथि ॥ ११
स मामपृच्छत् कौन्तेय क्वासि गन्ता ब्रवीहि मे ।
तस्मा अवितथं सर्वमब्रुवं कुरुनन्दन ॥ १२
स तथ्यं मम तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो राजसत्तम ।
अपूजयत मां राजन् प्रीतिमांश्चाऽभवन्मयि ॥१३
ततो मामब्रवीत् प्रीतस्तप आतिष्ठ भारत ।
तपस्वी न चिरेण त्वं द्रक्ष्यसे विबुधाधिपम् ॥ १४
ततोऽहं वचनात्तस्य गिरिमारुह्य शैशिरम् ।
तपोऽतप्यं महाराज मासं मूलफलाशनः ॥ १५
द्वितीयश्चापि मे मासो जलं भक्षयतो गतः ।
निराहारस्तृतीयेऽथ मासे पाण्डवनन्दन ॥ १६
ऊर्ध्वबाहुश्चतुर्थं तु मासमस्मि स्थितस्तदा ।
न च मे हीयते प्राणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १७
पञ्चमे त्वथ सम्प्राप्ते प्रथमे दिवसे गते ।
वराहसंस्थितं भूतं मत्समीपं समागमत् ॥ १८
निघ्नन् प्रोथेन पृथिवीं विलिखंश्चरणैरपि ।
सम्मार्जञ्जठरेणोर्वीं विवर्तंश्च मुहुर्मुहुः ॥ १९
अनु तस्यापरं भूतं महत् कैरातसंस्थितम् ।
धनुर्बाणासिमत् प्राप्तं स्त्रीगणानुगतं तदा ॥ २०
ततोऽहं धनुरादाय तथाऽक्षय्ये महेषुधी ।
अताडयं शरेणाथ तद्भूतं लोमहर्षणम् ॥ २१
युगपत्तं किरातस्तु विकृष्य बलवद्धनुः ।
अभ्याजघ्ने दृढतरं कम्पयन्निव मे मनः ॥ २२
स तु मामब्रवीद्राजन् मम पूर्वपरिग्रहः ।
मृगयाधर्ममुत्सृज्य किमर्थं ताडितस्त्वया ॥ २३

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

---

१६७

**यथेति** ॥ १ ॥ प्रहृष्टो धर्मपुत्रः ॥ २ ॥ हन्तेत्यव्ययं वाक्यारम्भे हर्षे वा । 'हन्तवाक्यारम्भहर्षविषादे खेदसम्भ्रमे' इति मेदिनी ॥ ९ ॥ शैशिरं हिममयम् ॥ १५ ॥ प्राणो बलम् ॥ १७ ॥ वराहवत् संस्थिलमाकारो यस्य ॥ १८ ॥ प्रोथेन मुखाग्रेण पोत्राख्येन । विवर्तन् विषमेण भावेन वर्तमानः । इतस्ततः पर्यटन् वा ॥ १९॥

एष ते निशितैर्बाणैर्दर्पं हन्मि स्थिरो भव ।
स धनुष्मान् महाकायस्ततो मामभ्यभाषत ॥ २४
ततो गिरिमिवात्यर्थमावृणोन्मां महाशरैः ।
तं चाहं शरवर्षेण महता समवाकिरम् ॥ २५
ततः शरैर्दीप्तमुखैर्यन्त्रितैरनुमन्त्रितैः ।
प्रत्यविध्यमहं तं तु वज्रैरिव शिलोच्चयम् ॥ २६
तस्य तच्छतधा रूपमभवच्च सहस्रधा ।
तानि चास्य शरीराणि शरैरहमताडयम् ॥ २७
पुनस्तानि शरीराणि एकीभूतानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज तान्यहं व्यधमं पुनः ॥ २८
अणुर्बृहच्छिरा भूत्वा बृहच्चाणुशिराः पुनः ।
एकीभूतस्तदा राजन् सोऽभ्यवर्तत मां युधि २९
यदाऽभिभवितुं बाणैर्न च शक्नोमि तं रणे ।
ततो महास्त्रमातिष्ठं वायव्यं भरतर्षभ ॥ ३०
न चैनमशकं हन्तुं तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
तस्मिन् प्रतिहते चास्त्रे विस्मयो मे महानभूत् ३१
भूय एव महाराज सविशेषमहं ततः ।
अस्त्रपूगेन महता रणे भूतमवाकिरम् ॥ ३२
स्थूणाकर्णमथो जालं शरवर्षमथोल्बणम् ।
शलभास्त्रमश्मवर्षं समास्थायाहमभ्ययाम् ॥ ३३
जग्रास प्रसभं तानि सर्वाण्यस्त्राणि मे नृप ।
तेषु सर्वेषु जग्धेषु ब्रह्मास्त्रं महदादिशम् ॥ ३४
ततः प्रज्वलितैर्बाणैः सर्वतः सोपचीयते ।
उपचीयमानश्च मया महास्त्रेण व्यवर्धत ॥ ३५
ततः सन्तापिता लोका मत्प्रसूतेन तेजसा ।
क्षणेन हि दिशः खं च सर्वतो हि विदीपितम् ३६
तदप्यस्त्रं महातेजाः क्षणेनैव व्यशातयत् ।
ब्रह्मास्त्रे तु हते राजन् भयं मां महदाविशत् ॥ ३७
ततोऽहं धनुरादाय तथाऽक्षय्ये महेषुधी ।
सहसाऽभ्यहनं भूतं तान्यप्यस्त्राण्यभक्षयत् ॥ ३८
हतेष्वस्त्रेषु सर्वेषु भक्षितेष्वायुधेषु च ।
मम तस्य च भूतस्य बाहुयुद्धमवर्तत ॥ ३९
व्यायामं मुष्टिभिः कृत्वा तलैरपि समागतैः ।
अपारयंश्च तद्भूतं निश्चेष्टमगमं महीम् ॥ ४०
ततः प्रहस्य तद्भूतं तत्रैवान्तरधीयत ।
सह स्त्रीभिर्महाराज पश्यतो मेऽद्भुतोपमम् ॥ ४१
एवं कृत्वा स भगवांस्ततोऽन्यद्रूपमास्थितः ।
दिव्यमेव महाराज वसानोऽद्भुतमम्बरम् ॥ ४२
हित्वा किरातरूपं च भगवांस्त्रिदशेश्वरः ।
स्वरूपं दिव्यमास्थाय तस्थौ तत्र महेश्वरः ॥ ४३
अदृश्यत ततः साक्षाद्भगवान् गोवृषध्वजः ।
उमासहायो व्यालधृग्बहुरूपः पिनाकधृक् ॥ ४४
स मामभ्येत्य समरे तथैवाभिमुखं स्थितम् ।
शूलपाणिरथोवाच तुष्टोऽस्मीति परन्तप ॥ ४५
ततस्तद्धनुरादाय तूणौ चाक्षय्यसायकौ ।
प्रादान्ममैव भगवान् वरयस्वेति चाब्रवीत् ॥ ४६
तुष्टोऽस्मि तव कौन्तेय ब्रूहि किं करवाणि ते ।
मनोगतं वीर यत्ते तद्ब्रूहि वितराम्यहम् ॥ ४७
अमरत्वमपाहाय ब्रूहि यत्ते मनोगतम् ।
ततः प्राञ्जलिरेवाहमस्त्रेषु गतमानसः ॥ ४८
प्रणम्य मनसा शर्वं ततो वचनमाददे ।
भगवान् मे प्रसन्नश्चेदीप्सितोऽयं वरो मम ॥ ४९
अस्त्राणीच्छाम्यहं ज्ञातुं यानि देवेषु कानिचित् ।
ददानीत्येव भगवानब्रवीत् त्र्यम्बकश्च माम् ॥ ५०
रौद्रमस्त्रं मदीयं त्वामुपस्थास्यति पाण्डव ।
प्रददौ च मम प्रीतः सोऽस्त्रं पाशुपतं महत् ॥५१
उवाच च महादेवो दत्वा मेऽस्त्रं सनातनम् ।
न प्रयोज्यं भवेदेतन्मानुषेषु कथञ्चन ॥ ५२
जगद्विनिर्दहेदेवमल्पतेजसि पातितम् ।
पीड्यमानेन बलवत् प्रयोज्यं स्याद्धनञ्जय ॥ ५३
अस्त्राणां प्रतिघाते च सर्वथैव प्रयोजयेत् ।
तदप्रतिहतं दिव्यं सर्वास्त्रप्रतिषेधनम् ॥ ५४
मूर्तिमन्मे स्थितं पार्श्वे प्रसन्ने गोवृषध्वजे ।
उत्सादनममित्राणां परसेनानिकर्तनम् ॥ ५५
दुरासदं दुष्प्रसहं सुरदानवराक्षसैः ।
अनुज्ञातस्त्वहं तेन तत्रैव समुपाविशम् ॥ ५६
प्रेक्षतश्चैव मे देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचगन्धमादनवासे युधिष्ठिरार्जुनसंवादे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

अनु. पश्चात् । यन्त्रितैः दृढाकृष्टैः ॥ २६ ॥ स्थूणाकर्ण इति शङ्कुकर्णाख्यो रुद्रावतारभेदस्तद्दैवत्यमस्त्रम् । जालं जलमयं वारुणम् ॥ ३३ ॥ व्यायामं सङ्घट्टनम् । अपारयन् अशक्नुवन् ॥४०॥ गोवृषो बलीवर्दश्रेष्ठः ॥४४॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

# १६८

अर्जुन उवाच ।

ततस्तामवसं प्रीतो रजनीं तत्र भारत ।
प्रसादाद्देवदेवस्य त्र्यम्बकस्य महात्मनः ॥ १
व्युषितो रजनीं चाहं कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः
अपश्यं तं द्विजश्रेष्ठं दृष्टवानस्मि यं पुरा ॥ २
तस्मै चाऽहं यथावृत्तं सर्वमेव न्यवेदयम् ।
भगवन्तं महादेवं समेतोऽस्मीति भारत ॥ ३
स मामुवाच राजेन्द्र प्रीयमाणो द्विजोत्तमः ।
दृष्टस्त्वया महादेवो यथा नान्येन केनचित् ॥ ४
समेत्य लोकपालैस्तु सर्वैर्वैवस्वतादिभिः ।
द्रष्टास्यनघ देवेन्द्रं स च तेऽस्त्राणि दास्यति ॥ ५
एवमुक्त्वा स मां राजन्नाश्लिष्य च पुनः पुनः ।
अगच्छत् स यथाकामं ब्राह्मणः सूर्यसन्निभः ॥ ६
अथापराह्णे तस्याह्नः प्रावात् पुण्यः समीरणः ।
पुनर्नवमिमं लोकं कुर्वन्निव सपत्नहन् ॥ ७
दिव्यानि चैव माल्यानि सुगन्धीनि नवानि च ।
शैशिरस्य गिरेः पादे प्रादुरासन् समीपतः ॥ ८
वादित्राणि च दिव्यानि सुघोराणि समन्ततः ।
स्तुतयश्चेन्द्रसंयुक्ता अश्रूयन्त मनोहराः ॥ ९
गणाश्चाप्सरसां तत्र गन्धर्वाणां तथैव च ।
पुरस्ताद्देवदेवस्य जगुर्गीतानि सर्वशः ॥ १०
मरुतां च गणास्तत्र देवयानैरुपागमन् ।
महेन्द्रानुचरा ये च ये च सद्मनिवासिनः ॥ ११
ततो मरुत्वान् हरिभिर्युक्तैर्वाहैः स्वलङ्कृतैः ।
शचीसहायस्तत्राऽऽयात् सह सर्वैस्तदामरैः॥१२
एतस्मिन्नेव काले तु कुबेरो नरवाहनः ।
दर्शयामास मां राजँल्लक्ष्म्या परमया युतः ॥ १३
दक्षिणस्यां दिशि यमं प्रत्यपश्यं व्यवस्थितम् ।
वरुणं देवराजं च यथास्थानमवस्थितम् ॥ १४
ते मामूचुर्महाराज सान्त्वयित्वा नरर्षभ ।
सव्यसाचिन्निरीक्षास्मॉंल्लोकपालानवस्थितान् ॥
सुरकार्यार्थसिद्ध्यर्थं दृष्टवानसि शङ्करम् ।
अस्मत्तोऽपि गृहाण त्वमस्त्राणीति समन्ततः १६
ततोऽहं प्रयतो भूत्वा प्रणिपत्य सुरर्षभान् ।
प्रत्यगृह्णं तदाऽस्त्राणि महान्ति विधिवद्विभो १७
गृहीतास्त्रस्ततो देवैरनुज्ञातोऽस्मि भारत ।
अथ देवा ययुः सर्वे यथागतमरिन्दम ॥ १८
मघवानपि देवेशो रथमारुह्य सुप्रभम् ।
उवाच भगवान् स्वर्गे गन्तव्यं फाल्गुन त्वया १९
पुरैवागमनादस्माद्वेदाहं त्वां धनञ्जय ।
अतः परं त्वहं वै त्वां दर्शये भरतर्षभ ॥ २०
त्वया हि तीर्थेषु पुरा समाप्लावः कृतोऽसकृत् ।
तपश्चेदं महत्तप्तं स्वर्गं गन्तासि पाण्डव ॥ २१
भूयश्चैव च तप्तव्यं तपश्चरणमुत्तमम् ।
स्वर्गं त्ववश्यं गन्तव्यं त्वया शत्रुनिषूदन ॥ २२
मातलिर्मन्नियोगात्त्वां त्रिदिवं प्रापयिष्यति ।
विदितस्त्वं हि देवानां मुनीनां च महात्मनाम्२३
ततोऽहमब्रुवं शक्रं प्रसीद भगवन् मम ।
आचार्यं वरयेयं त्वामस्त्रार्थं त्रिदशेश्वर ॥ २४

इन्द्र उवाच ।

क्रूरकर्मास्त्रवित्तात भविष्यसि परन्तप ।
यदर्थमस्त्राण्यीप्सुस्त्वं तं कामं पाण्डवाऽऽप्नुहि२५
ततोऽहमब्रुवं नाऽहं दिव्यान्यस्त्राणि शत्रुहन् ।
मानुषेषु प्रयोक्ष्यामि विनास्त्रप्रतिघातनात् ॥ २६
तानि दिव्यानि मेऽस्त्राणि प्रयच्छ विबुधाधिप ।
लोकांश्चास्त्रजितान् पश्चाल्लभेयं सुरपुङ्गव ॥ २७

इन्द्र उवाच ।

परीक्षार्थं मयैतत्ते वाक्यमुक्तं धनञ्जय ।
ममात्मजस्य वचनं सूपपन्नमिदं तव ॥ २८
शिक्ष मे भवनं गत्वा सर्वाण्यस्त्राणि भारत ।
वायोरग्नेर्वसुभ्योऽपि वरुणात् समरुद्गणात् ॥ २९
साध्यं पैतामहं चैव गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
वैष्णवानि च सर्वाणि नैर्ऋतानि तथैव च ॥ ३०
मद्गतानि च जानीहि सर्वास्त्राणि कुरूद्वह ।
एवमुक्त्वा तु मां शक्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३१
अथाऽपश्यं हरियुजं रथमैन्द्रमुपस्थितम् ।
दिव्यं मायामयं पुण्यं यत्तं मातलिना नृप ॥ ३२
लोकपालेषु यातेषु मामुवाचाथ मातलिः ।
द्रष्टुमिच्छति शक्रस्त्वां देवराजो महाद्युते ॥ ३३

१६८

तत इति ॥ १ ॥ देवयानैर्विमानैः । सद्मनिवासिनः स्त्रीबालादयः शचीजयन्तादय इत्यर्थः ॥ ११ ॥ यथास्थानं प्राच्यामिन्द्रं, प्रतीच्यां वरुणमित्यादि ॥१४॥ त्वं क्रूरकर्मा भविष्यसीति संबन्धः ॥ २५ ॥ अस्त्रस्यैव प्रतिघातार्थमस्त्रं मोक्ष्ये न त्वन्यत्र मानुषे॥२६॥ मायामयमिवात्यद्भुतम् ३२

संसिद्धयस्व महाबाहो कुरु कार्यमनन्तरम् ।
पश्य पुण्यकृतांल्लोकान् सशरीरो दिवं व्रज ॥ ३४
देवराजः सहस्राक्षस्त्वां दिदृक्षति भारत ।
इत्युक्तोऽहं मातलिना गिरिमामन्त्र्य शैशिरम् ३५
प्रदक्षिणमुपावृत्य समारोहं रथोत्तमम् ।
चोदयामास स हयान् मनोमारुतरंहसः ॥ ३६
मातलिर्हयतत्त्वज्ञो यथावद्भूरिदक्षिणः ।
अवैक्षत च मे वक्त्रं स्थितस्याऽथ स सारथिः ३७
तथा भ्रान्ते रथे राजन् विस्मितश्चेदमब्रवीत् ।
अत्यद्भुतमिदं त्वद्य विचित्रं प्रतिभाति मे ॥ ३८
यदास्थितो रथं दिव्यं पदान्न चलितः पदम् ।
देवराजोऽपि हि मया नित्यमत्रोपलक्षितः ॥ ३९
विचलन् प्रथमोत्पाते हयानां भरतर्षभ ।
त्वं पुनः स्थित एवात्र रथे भ्रान्ते कुरूद्वह ॥ ४०
अतिशक्रमिदं सर्वं तवेति प्रतिभाति मे ।
इत्युक्त्वाऽऽकाशमाविश्य मातलिर्विबुधालयान्
दर्शयामास मे राजन् विमानानि च भारत ।
स रथो हरिभिर्युक्तो ह्यूर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥ ४२
ऋषयो देवताश्चैव पूजयन्ति नरोत्तम ।
ततः कामगमांल्लोकानपश्यं वै सुरर्षिणाम् ॥ ४३
गन्धर्वाप्सरसां चैव प्रभावममितौजसाम् ।
नन्दनादीनि देवानां वनान्युपवनानि च ॥ ४४
दर्शयामास मे शीघ्रं मातलिः शक्रसारथिः ।
ततः शक्रस्य भवनमपश्यममरावतीम् ॥ ४५
दिव्यैः कामफलैर्वृक्षै रत्नैश्च समलङ्कृताम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न शीतोष्णे न च क्लमः ॥ ४६
न बाधते तत्र रजस्तत्रास्ति न जरा नृप ।
न तत्र शोको दैन्यं वा दौर्बल्यं चोपलक्ष्यते ४७
दिवौकसां महाराज न ग्लानिररिमर्दन ।
न क्रोधलोभौ तत्रास्तां सुरादीनां विशाम्पते ४८
नित्यतुष्टाश्च ते राजन् प्राणिनः सुरवेश्मनि ।
नित्यपुष्पफलास्तत्र पादपा हरितच्छदाः ॥ ४९
पुष्करिण्यश्च विविधाः पद्मसौगन्धिकायुताः ।
शीतस्तत्र ववौ वायुः सुगन्धी जीवनः शुचिः ५०
सर्वरत्नविचित्रा च भूमिः पुष्पविभूषिता ।
मृगद्विजाश्च बहवो रुचिरा मधुरस्वराः ॥ ५१
विमानगामिनश्चात्र दृश्यन्ते बहवोऽम्बरे ।
ततोऽपश्यं वसून् रुद्रान् साध्यांश्च समरुद्गणान् ॥
आदित्यानश्विनौ चैव तान् सर्वान् प्रत्यपूजयम् ।
ते मां वीर्येण यशसा तेजसा च बलेन च ॥ ५३
अस्त्रैश्चाप्यन्वजानन्त सङ्ग्रामे विजयेन च ।
प्रविश्य तां पुरीं दिव्यां देवगन्धर्वपूजिताम् ५४
देवराजं सहस्राक्षमुपातिष्ठं कृताञ्जलिः ।
ददावर्धासनं प्रीतः शक्रो मे ददतां वरः ॥ ५५
बहुमानाच्च गात्राणि पस्पर्श मम वासवः ।
तत्राहं देवगन्धर्वैः सहितो भूरिदक्षिणैः ॥ ५६
अस्त्रार्थमवसं स्वर्गे शिक्षाणोऽस्त्राणि भारत ।
विश्वावसोश्च वै पुत्रश्चित्रसेनोऽभवत् सखा ५७
स च गान्धर्वमखिलं ग्राहयामास मां नृप ।
तत्राहमवसं राजन् गृहीतास्त्रः सुपूजितः ॥ ५८
सुखं शक्रस्य भवने सर्वकामसमन्वितः ।
शृण्वन् वै गीतशब्दं च तूर्यशब्दं च पुष्कलम् ।
पश्यंश्चाप्सरसः श्रेष्ठा नृत्यन्तीर्भरतर्षभ ॥ ५९
तत् सर्वमनवज्ञाय तथ्यं विज्ञाय भारत ।
अत्यर्थं प्रतिगृह्याहमस्त्रेष्वेव व्यवस्थितः ॥ ६०
ततोऽतुष्यत् सहस्राक्षस्तेन कामेन मे विभुः ।
एवं मे वसतो राजन्नेष कालोऽत्यगाद्दिवि ॥ ६१
कृतास्त्रमतिविश्वस्तमथ मां हरिवाहनः ।
संस्पृश्य मूर्ध्नि पाणिभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६२
न त्वमद्य युधा जेतुं शक्यः सुरगणैरपि ।
किं पुनर्मानुषे लोके मानुषैरकृतात्मभिः ॥ ६३
अप्रमेयोऽप्रधृष्यश्च युद्धेष्वप्रतिमस्तथा ।
अथाऽब्रवीत् पुनर्देवः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ६४
अस्त्रयुद्धे समो वीर न ते कश्चिद्भविष्यति ।
अप्रमत्तः सदा दक्षः सत्यवादी जितेन्द्रियः ६५
ब्रह्मण्यश्चास्त्रविच्चासि शूरश्चासि कुरूद्वह ।
अस्त्राणि समवाप्तानि त्वया दश च पञ्च च ६६
पञ्चभिर्विधिभिः पार्थ विद्यते न त्वया समः ।
प्रयोगमुपसंहारमावृत्तिं च धनञ्जय ॥ ६७

---

पदात् स्थानात् न चालितः । रथस्य भ्रमणेऽपि दृढासन इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ सुरर्षिणामिति दैर्घ्याभाव आर्षः । समाहारबहुत्वं वा बहुसमुदायाभिप्रायेण ॥ ४३ ॥ अन्वजानन्त 'वीर्यादिमान् भव' इत्याशीर्वादान् ददुरित्यर्थः॥५४॥ तत्सर्वमिति । अनवज्ञाय आदृत्य आदरपूर्वकं तथ्यं यथावदन्यर्थं पुरुषार्थ इति विज्ञाय प्रतिगृह्य रागशून्येन मनसा अङ्गीकृत्याप्यहमस्त्रेष्वेव व्यवस्थितोऽभूवं न गीतादिषु ॥ ६० ॥ तेन कामेन अस्त्रेच्छया न तु भोगेच्छया ॥ ६१ ॥ पञ्चभिः प्रयोगादिभिः । आवृत्तिः-पुनः पुनः प्रयोगोपसंहारौ ॥ ६७ ॥ प्रायश्चित्त-

प्रायश्चित्तं च वेत्थ त्वं प्रतीघातं च सर्वशः ।
ततो गुर्वर्थकालोऽयं समुत्पन्नः परन्तप ॥ ६८
प्रतिजानीष्व तं कर्तुं ततो वेत्स्याम्यहं परम् ।
ततोऽहमब्रुवं राजन् देवराजमिदं वचः ॥ ६९
विषह्यं यन्मया कर्तुं कृतमेव निबोध तत् ।
ततो मामब्रवीद्राजन् प्रहसन् बलवृत्रहा ॥ ७०
नाविषह्यं तवाद्यास्ति त्रिषु लोकेषु किंचन ।
निवातकवचा नाम दानवा मम शत्रवः ॥ ७१
समुद्रकुक्षिमाश्रित्य दुर्गे प्रतिवसन्त्युत ।
तिस्रः कोट्यः समाख्यातास्तुल्यरूपबलप्रभाः ७२
तांस्तत्र जहि कौन्तेय गुर्वर्थस्ते भविष्यति ।
ततो मातलिसंयुक्तं मयूरसमरोमभिः ॥ ७३
हयैरुपेतं प्रादान्मे रथं दिव्यं महाप्रभम् ।
बबन्ध चैव मे मूर्ध्नि किरीटमिदमुत्तमम् ॥ ७४
स्वरूपसदृशं चैव प्रादादङ्गविभूषणम् ।
अभेद्यं कवचं चेदं स्पर्शरूपवदुत्तमम् ॥ ७५
अजरां ज्यामिमां चापि गाण्डीवे समयोजयत् ।
ततः प्रायामहं तेन स्यन्दनेन विराजता ॥ ७६
येनाऽजयद्देवपतिर्बलिं वैरोचनिं पुरा ।
ततो देवाः सर्व एव तेन घोषेण बोधिताः ॥ ७७
मन्वाना देवराजं मां समाजग्मुर्विशाम्पते ।
दृष्ट्वा च मामपृच्छन्त किं करिष्यसि फाल्गुन ७८
तानब्रुवं यथाभूतमिदं कर्ताऽस्मि संयुगे ।
निवातकवचानां तु प्रस्थितं मां वधैषिणम् ॥ ७९
निबोधत महाभागाः शिवं चाशास्त मेऽनघाः ।
तुष्टुवुर्मां प्रसन्नास्ते यथा देवं पुरन्दरम् ॥ ८०
रथेनानेन मघवा जितवान् शम्बरं युधि ।
नमुचिं बलवृत्रौ च प्रह्लादनरकावपि ॥ ८१
बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदान्यपि ।
रथेनानेन दैत्यानां जितवान् मघवा युधि ॥ ८२
त्वमप्यनेन कौन्तेय निवातकवचान् रणे ।
विजेता युधि विक्रम्य पुरेव मघवा वशी ॥ ८३
अयं च शङ्खप्रवरो येन जेताऽसि दानवान् ।
अनेन विजिता लोकाः शक्रेणापि महात्मना ८४
प्रदीयमानं देवैस्तं देवदत्तं जलोद्भवम् ।
प्रत्यगृह्णं जयायैनं स्तूयमानस्तदामरैः ॥ ८५
स शङ्खी कवची बाणी प्रगृहीतशरासनः ।
दानवालयमत्युग्रं प्रयातोऽस्मि युयुत्सया ॥ ८६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वण्यर्जुनवाक्ये अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

## १६९

अर्जुन उवाच ।

ततोऽहं स्तूयमानस्तु तत्र तत्र महर्षिभिः ।
अपश्यमुदधिं भीममपां पतिमथाव्ययम् ॥ १
फेनवत्यः प्रकीर्णाश्च संहताश्च समुत्थिताः ।
ऊर्मयश्चात्र दृश्यन्ते वल्गन्त इव पर्वताः ॥ २
नावः सहस्रशस्तत्र रत्नपूर्णाः समन्ततः ।
तिमिङ्गिलाः कच्छपाश्च तथा तिमितिमिङ्गिलाः
मकराश्चात्र दृश्यन्ते जले मग्ना इवाऽद्रयः ।
शङ्खानां च सहस्राणि मग्नान्यप्सु समन्ततः ॥ ४
दृश्यन्ते स्म यथा रात्रौ तारास्तन्वभ्रसंवृताः ।
तथा सहस्रशस्तत्र रत्नसङ्घाः प्लवन्त्युत ॥ ५
वायुश्च घूर्णते भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
तमुदीक्ष्य महावेगं सर्वाम्भोनिधिमुत्तमम् ॥ ६
अपश्यं दानवाकीर्णं तद्दैत्यपुरमन्तिकात् ।
तत्रैव मातलिस्तूर्णं निपत्य पृथिवीतले ॥ ७

मन्त्राग्निना दग्धानामनागसां पुनरुज्जीवनम् । प्रतीघातं परास्त्रेणाभिभूतस्य स्वास्त्रस्योद्दीपनम् । गुर्वर्थो दक्षिणा ॥ ६८ ॥ वेत्स्यामि वेदयिष्यामि परं कार्यमिति शेषः ॥ ६९ ॥ विषह्यं शक्यम् ॥ ७० ॥ प्रायां प्रयाणं कृतवान् ॥ ७६ ॥ आशास्त आशाध्वम् ॥ ८० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

१६९

ततोऽहमिति ॥ १ ॥ तिमिर्मत्स्यस्तं गिलति महामत्स्यास्तिमिङ्गिलः । तमपि गिलतीति तिमितिमिङ्गिलः । तिमिरिव गिलनीयस्तिमिङ्गिलो यस्येति विग्रहः ॥ ३ ॥ घूर्णते भ्रमति ॥ ६ ॥ निपत्य गत्वा पृथिवीतले पाताले ॥ ७ ॥

रथं तं तु समालक्ष्य प्राद्रवद्रथयोगवित् ।
त्रासयन् रथघोषेण तत् पुरं समुपाद्रवत् ॥ ८
रथघोषं तु तं श्रुत्वा स्तनयित्नोरिवाम्बरे ।
मन्वाना देवराजं मामाविग्ना दानवाऽभवन् ॥ ९
सर्वे संभ्रान्तमनसः शरचापधराः स्थिताः ।
तथाऽसि-शूल-परशु-गदा-मुसल-पाणयः ॥ १०
ततो द्वाराणि पिदधुर्दानवास्त्रस्तचेतसः ।
संविधाय पुरे रक्षां न स्म कश्चन दृश्यते ॥ ११
ततः शङ्खमुपादाय देवदत्तं महास्वनम् ।
परमां मुदमाश्रित्य प्राधमं तं शनैरहम् ॥ १२
स तु शब्दो दिवं स्तब्ध्वा प्रतिशब्दमजीजनत् ।
वित्रेसुश्च निलिल्युश्च भूतानि सुमहान्त्यपि ॥ १३
ततो निवातकवचाः सर्व एव स्वलंकृताः ।
दंशिता विविधैस्त्राणैर्विचित्रायुधपाणयः ॥ १४
आयसैश्च महाशूलैर्गदाभिर्मुसलैरपि ।
पट्टिशैः करवालैश्च रथचक्रैश्च भारत ॥ १५
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैश्चित्रैः स्वलंकृतैः ।
प्रगृहीतैर्दितेः पुत्राः प्रादुरासन् सहस्रशः ॥ १६
ततो विचार्य बहुशो रथमार्गेषु तान् हयान् ।
प्राचोदयन् समे देशे मातलिर्भरतर्षभ ॥ १७
तेन तेषां प्रणुन्नानामाशुत्वाच्छीघ्रगामिनाम् ।
नान्वपश्यं तदा किंचित्तन्मेऽद्भुतमिवाऽभवत् १८
ततस्ते दानवास्तत्र वादित्राणि सहस्रशः ।
विकृतस्वररूपाणि भृशं सर्वाण्यनादयन् ॥ १९
तेन शब्देन सहसा समुद्रे पर्वतोपमाः ।
आप्लवन्त गतैः सत्त्वैर्मत्स्याः शतसहस्रशः ॥ २०
ततो वेगेन महता दानवा मामुपाद्रवन् ।
विमुञ्चन्तः शितान् बाणान् शतशोऽथ सहस्रशः
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तेषां च मम भारत ।
अवर्तत महाघोरो निवातकवचान्तकः ॥ २२
ततो देवर्षयश्चैव दानवर्षिगणाश्च ये ।
ब्रह्मर्षयश्च सिद्धाश्च समाजग्मुर्महामृधे ॥ २३
ते वै मामनुरूपाभिर्मधुराभिर्जयैषिणः ।
अस्तुवन् मुनयो वाग्भिर्यथेन्द्रं तारकामये ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि युद्धारम्भे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

## १७०

अर्जुन उवाच ।
ततो निवातकवचाः सर्वे वेगेन भारत ।
अभ्यद्रवन् मां सहिताः प्रगृहीतायुधा रणे ॥ १
आच्छाद्य रथपन्थानमुत्क्रोशन्तो महारथाः ।
आवृत्य सर्वतस्ते मां शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २
ततोऽपरे महावीर्याः शूलपट्टिशपाणयः ।
शूलानि च भुशुण्डीश्च मुमुचुर्दानवा मयि ॥ ३
तच्छूलवर्षं सुमहद्गदाशक्तिसमाकुलम् ।
अनिशं सृज्यमानं तैरपतन्मद्रथोपरि ॥ ४
अन्ये मामभ्यधावन्त निवातकवचा युधि ।
जितशस्त्रायुधा रौद्राः कालरूपाः प्रहारिणः ॥ ५
तानहं विविधैर्बाणैर्वेगवद्भिरजिह्मगैः ।
गाण्डीवमुक्तैरभ्यघ्नमेकैकं दशभिर्मृधे ॥ ६
ते कृता विमुखाः सर्वे मत्प्रयुक्तैः शिलाशितैः ।
ततो मातलिना तूर्णं हयास्ते सम्प्रचोदिताः ॥ ७
मार्गान् बहुविधांस्तत्र विचेरुर्वातरंहसः ।
सुसंयता मातलिना प्रामथ्नन्त दितेः सुतान् ॥ ८
शतं शतास्ते हरयस्तस्मिन् युक्ता महारथे ।
शान्ता मातलिना यत्ता व्यचरन्नल्पका इव ॥ ९

---

आलक्ष्य सर्वसम्पदुपेतामिति शेषः । आश्लिष्येति पाठे भूमावतीर्य निम्नस्थं रथचक्रं दृढमाश्लिष्य उन्नीतवानित्यर्थः । प्राद्रवत् प्रकर्षेण वेगवानभूत् ॥ ८ ॥ दिवं स्तब्ध्वा आकाशं व्याप्य ॥ १३ ॥ दंशिताः सन्नद्धाः । त्राणैः कवचैः ॥१४॥ आप्लवन्त पलायनं कृतवन्तः । गतैः सत्त्वैः विगताभिर्बुद्धिभिरुपलक्षिता भ्रान्ता इत्यर्थः ॥२०॥ तारकामय तारार्थे सङ्ग्रामे ॥२४॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

१७०

तत इति ॥१॥ शताः शतानि अयुतामित्यर्थः । हरयोऽश्वाः । शान्ताः परीक्षिताः । शमेरालोचनार्थमिष्टा ॥९॥

तेषां चरणपातेन रथनेमिस्वनेन च ।
मम बाणनिपातैश्च हतास्ते शतशोऽसुराः ॥ १०
गतासवस्तथैवाऽन्ये प्रगृहीतशरासनाः ।
हतसारथयस्तत्र व्यकृष्यन्त तुरंगमैः ॥ ११
ते दिशो विदिशः सर्वे प्रतिरुध्य प्रहारिणः ।
अभ्यघ्नन् विविधैः शस्त्रैस्ततो मे व्यथितं मनः १२
ततोऽहं मातलेर्वीर्यमपश्यं परमाद्भुतम् ।
अश्वांस्तथा वेगवतो यदयत्नादधारयत् ॥ १३
ततोऽहं लघुभिश्चित्रैरस्त्रैस्तानसुरान् रणे ।
चिच्छेद सायुधान् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ॥
एवं मे चरतस्तत्र सर्वयत्नेन शत्रुहन् ।
प्रीतिमानभवद्वीरो मातलिः शक्रसारथिः ॥ १५
वध्यमानास्ततस्तैस्तु हयैस्तेन रथेन च ।
अगमन् प्रक्षयं केचिन्न्यवर्तन्त तथा परे ॥ १६
स्पर्धमाना इवास्माभिर्निवातकवचा रणे ।
शरवर्षैः शरार्तं मां महद्भिः प्रत्यवारयन् ॥ १७
ततोऽहं लघुभिश्चित्रैर्ब्रह्मास्त्रपरिमन्त्रितैः ।
व्यधमं सायकैराशु शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८
ततः सम्पीड्यमानास्ते क्रोधाविष्टा महारथाः ।
अपीडयन् मां सहिताः शक्तिशूलासिवृष्टिभिः १९.

ततोऽहमस्त्रमातिष्ठं परमं तिग्मतेजसम् ।
दयितं देवराजस्य माधवं नाम भारत ॥ २०
ततः खड्गत्रिशूलेन तोमरांश्च सहस्रशः ।
अस्त्रवीर्येण शतधा तैर्मुक्तानहमच्छिदम् ॥ २१
छित्त्वा प्रहरणान्येषां ततस्तानपि सर्वशः ।
प्रत्यविध्यमहं रोषाद्दशभिर्दशभिः शरैः ॥ २२
गाण्डीवाद्धि तदा संख्ये यथा भ्रमरपङ्क्तयः ।
निष्पतन्ति महाबाणास्तन्मातलिरपूजयत् ॥ २३
तेषामपि तु बाणास्ते तन्मातलिरपूजयत् ।
अवाकिरन् मां बलवत्तानहं व्यधमं शरैः ॥ २४
वध्यमानास्ततस्ते तु निवातकवचाः पुनः ।
शरवर्षैर्महद्भिर्मां समन्तात् पर्यवारयन् ॥ २५
शरवेगान्निहत्याहमस्त्रैरस्त्रविघातिभिः ।
ज्वलद्भिः परमैः शीघ्रैस्तानाविध्यं सहस्रशः ॥ २६
तेषां छिन्नानि गात्राणि विसृजन्ति स्म शोणितम् ।
प्रावृषीवातिवृष्टानि शृङ्गाण्यथ धराभृताम् ॥ २७
इन्द्राशनिसमस्पर्शैर्वेगवद्भिरजिह्मगैः ।
मद्बाणैर्वध्यमानास्ते समुद्विग्नाः स्म दानवाः॥२८
शतधा भिन्नदेहास्ते क्षीणप्रहरणाजसः ।
ततो निवातकवचा मामयुध्यन्त मायया ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि
सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

## १७१

अर्जुन उवाच ।

ततोऽश्मवर्षं सुमहत् प्रादुरासीत् समन्ततः ।
नगमात्रैः शिलाखण्डैस्तन्मां दृढमपीडयत् ॥ १
तदहं वज्रसङ्काशैर्महेन्द्रास्त्रप्रचोदितैः ।
अचूर्णयं वेगवद्भिः शरजालैर्महाहवे ॥ २

चूर्ण्यमानेऽश्मवर्षे तु पावकः समजायत ।
तत्राश्मचूर्णान्यपतन् पावकप्रकरा इव ॥ ३
ततोऽश्मवर्षे निहते जलवर्षं महत्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीन्ममान्तिके ॥ ४
नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवीर्याः सहस्रशः ।
आवृण्वन् सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा ॥ ५

---

चिच्छेद अहमिति शेषः । परोक्षार्थलिट्प्रयोगेण अजानतैव मया एतत् कृतमिति शत्रूणामत्यन्तापकर्षः सूचितः ॥ १४ ॥ अस्माभिः पूजायां बहुत्वम् । अश्वाद्यपेक्षया वा ॥ १७ ॥ लघुभिः शीघ्रगैः ॥ १८ ॥ तिग्मतेजसं तीक्ष्णदाहकम् । माधवं नाम मधोर्दैत्यस्य वधार्थं निर्मितत्वात् ॥ २० ॥ ततो माधवास्त्रात् उत्पन्नेन खड्गसहितेन त्रिशूलेन । खड्गांश्च शूलांश्चेति पाठे शरैरित्युत्तरश्लोकादपकर्षणीयम् ॥ २१ ॥ तेषां ते बाणाः माम् अवाकिरन्निति संबन्धः । तदपि मातलिरपूजयत् ॥ २४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

१७१

ततोऽश्मेति । नगमात्रैः वृक्षप्रमाणैः॥१॥पावकप्रकराः वह्निराशयः ॥ ३ ॥

धाराणां च निपातेन वायोर्विस्फूर्जितेन च ।
गर्जितेन च दैत्यानां न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ६
धारा दिवि च संबद्धा वसुधायां च सर्वशः ।
व्यामोहयन्त मां तत्र निपतन्त्योऽनिशं भुवि ॥७
तत्रोपदिष्टमिन्द्रेण दिव्यमस्त्रं विशोषणम् ।
दीप्तं प्राहिणवं घोरमशुष्यत्तेन तज्जलम् ॥ ८
हतेऽश्मवर्षे च मया जलवर्षे च शोषिते ।
मुमुचुर्दानवा मायामग्निं वायुं च भारत ॥ ९
ततोऽहमग्निं व्यधमं सलिलास्त्रेण सर्वशः ।
शैलेन च महास्त्रेण वायोर्वेगमधारयम् ॥ १०
तस्यां प्रतिहतायां ते दानवा युद्धदुर्मदाः ।
प्राकुर्वन् विविधां मायां यौगपद्येन भारत ॥ ११
ततो वर्षं प्रादुरभूत् सुमहल्लोमहर्षणम् ।
अस्त्राणां घोररूपाणामग्नेर्वायोस्तथाऽश्मनाम् १२
सा तु मायामयी वृष्टिः पीडयामास मां युधि ।
अथ घोरं तमस्तीव्रं प्रादुरासीत् समन्ततः ॥ १३
तमसा संवृते लोके घोरेण परुषेण च ।
हरयो विमुखाश्चासन् प्रास्खलच्चापि मातलिः१४
हस्ताद्धि रश्मयश्चास्य प्रतोदः प्रापतद्भुवि ।
असकृच्चाह मां भीतः क्वासीति भरतर्षभ ॥ १५
मां च भीराविशत्तीव्रा तस्मिन् विगतचेतसि ।
स च मां विगतज्ञानः सन्त्रस्तमिदमब्रवीत् ॥ १६
सुराणामसुराणां च सङ्ग्रामः सुमहानभूत् ।
अमृतार्थे पुरा पार्थ स च दृष्टो मयाऽनघ ॥ १७
शम्बरस्य वधे घोरः सङ्ग्रामः सुमहानभूत् ।
सारथ्यं देवराजस्य तत्रापि कृतवानहम् ॥ १८
तथैव वृत्रस्य वधे सङ्गृहीता हया मया ।
वैरोचनेर्महायुद्धं दृष्टं चापि सुदारुणम् ॥ १९
एते मया महाघोराः सङ्ग्रामाः पर्युपासिताः ।
न चापि विगतज्ञानो भूतपूर्वोऽस्मि पाण्डव २०
पितामहेन संहारः प्रजानां विहितो ध्रुवम् ।
न हि युद्धमिदं युक्तमन्यत्र जगतः क्षयात् ॥ २१
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
मोहयिष्यन् दानवानामहं मायाबलं महत् ॥ २२
अब्रुवं मातलिं भीतं पश्य मे भुजयोर्बलम् ।
अस्त्राणां च प्रभावं वै धनुषो गाण्डिवस्य च २३
अद्यास्त्रमायया तेषां मायामेनां सुदारुणाम् ।
विनिहन्मि तमश्चोग्रं मा भैः सूत स्थिरो भव॥२४
एवमुक्त्वाऽहमसृजमस्त्रमायां नराधिप ।
मोहनीं सर्वभूतानां हिताय त्रिदिवौकसाम् ॥२५
पीड्यमानासु मायासु तासु तास्वसुरोत्तमाः ।
पुनर्बहुविधा मायाः प्राकुर्वन्नमितौजसः ॥ २६
पुनः प्रकाशमभवत्तमसा ग्रस्यते पुनः ।
भवत्यदर्शनो लोकः पुनरप्सु निमज्जति ॥ २७
सुसङ्गृहीतैर्हरिभिः प्रकाशे सति मातलिः ।
व्यचरत् स्यन्दनाग्र्येण सङ्ग्रामे लोमहर्षणे ॥ २८
ततः पर्यपतन्नुग्रा निवातकवचा मयि ।
तानहं विवरं दृष्ट्वा प्राहिण्वं यमसादनम् ॥ २९
वर्तमाने तथा युद्धे निवातकवचान्तके ।
नापश्यं सहसा सर्वान् दानवान् माययाऽऽवृतान्

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि मायायुद्धे
एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

## १७२

अर्जुन उवाच ।
अदृश्यमानास्ते दैत्या योधयन्ति स्म मायया ।
अदृश्येनास्त्रवीर्येण तानप्यहमयोधयम् ॥ १
गाण्डीवमुक्ता विशिखाः सम्यगस्त्रप्रचोदिताः ।
अच्छिन्दन्नुत्तमाङ्गानि यत्र यत्र स्म तेऽभवन् ॥२
ततो निवातकवचा वध्यमाना मया युधि ।
संहृत्य मायां सहसा प्राविशन् पुरमात्मनः ॥ ३

वैरोचनेः बलेः ॥ १९ ॥ मोहनास्त्रेण पीड्यमानासु नश्यमानासु ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

१७२

अदृश्यमाना इति ॥ १ ॥

व्यपयातेषु दैत्येषु प्रादुर्भूते च दर्शने ।
अपश्यं दानवांस्तत्र हतान् शतसहस्रशः ॥ ४
विनिष्पिष्टानि तत्रैषां शस्त्राण्याभरणानि च ।
शतशः स्म प्रदृश्यन्ते गात्राणि कवचानि च ॥ ५
हयानां नान्तरं ह्यासीत् पदाद्विचलितुं पदम् ।
उत्पत्य सहसा तस्थुरन्तरिक्षगमास्ततः ॥ ६
ततो निवातकवचा व्योम सञ्छाद्य केवलम् ।
अदृश्या ह्यभ्यवर्तन्त विसृजन्तः शिलोच्चयान् ७
अन्तर्भूमिगताश्चान्ये हयानां चरणान्यथ ।
व्यगृह्णन् दानवा घोरा रथचक्रे च भारत ॥ ८
विनिगृह्य हरीनश्वान् रथं च मम युध्यतः ।
सर्वतो मामविध्यन्त सरथं धरणीधरैः ॥ ९
पर्वतैरुपचीयद्भिः पतमानैस्तथाऽपरैः ।
स देशो यत्र वर्ताम गुहेव समपद्यत ॥ १०
पर्वतैश्छाद्यमानोऽहं निगृहीतश्च वाजिभिः ।
अगच्छं परमामार्तिं मातलिस्तदलक्षयत् ॥ ११
लक्षयित्वा च मां भीतमिदं वचनमब्रवीत् ।
अर्जुनार्जुन मा भैस्त्वं वज्रमस्त्रमुदीरय ॥ १२
ततोऽहं तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा वज्रमुदीरयम्[१] ।
देवराजस्य दयितं भीममस्त्रं नराधिप ॥ १३
अचलं स्थानमासाद्य गाण्डीवमनुमन्त्र्य च ।
अमुञ्चं वज्रसंस्पर्शानायसान्निशितान् शरान् ॥ १४
ततो मायाश्च ताः सर्वा निवातकवचांश्च तान् ।
ते वज्रचोदिता बाणा वज्रभूताः समाविशन् १५
ते वज्रवेगविहता दानवाः पर्वतोपमाः ।
इतरेतरमाश्लिष्य न्यपतन् पृथिवीतले ॥ १६
अन्तर्भूमौ च येऽगृह्णन् दानवा रथवाजिनः ।
अनुप्रविश्य तान् बाणाः प्राहिण्वन् यमसादनम् ॥
हतैर्निवातकवचैर्निरस्तैः पर्वतोपमैः ।
समाच्छाद्यत देशः स विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ १८
न हयानां क्षतिः काचिन्न रथस्य न मातलेः ।
मम चादृश्यत तदा तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १९
ततो मां प्रहसन् राजन् मातलिः प्रत्यभाषत ।
नैतदर्जुन देवेषु त्वयि वीर्यं यदीक्ष्यते ॥ २०
हतेष्वसुरसङ्घेषु दारास्तेषां तु सर्वशः ।
प्राक्रोशन्नगरे तस्मिन् यथा शरदि सारसाः २१
ततो मातलिना सार्धमहं तत् पुरमभ्ययाम् ।
त्रासयन् रथघोषेण निवातकवचस्त्रियः ॥ २२
तान् दृष्ट्वा दशसाहस्रान् मयूरसदृशान् हयान् ।
रथं च रविसङ्काशं प्राद्रवन् गणशः स्त्रियः ॥ २३
ताभिराभरणैः शब्दस्त्रासिताभिः समीरितः ।
शिलानामिव शैलेषु पतन्तीनामभूत्तदा ॥ २४
वित्रस्ता दैत्यनार्यस्ताः स्वानि वेश्मान्यथाविशन् ।
बहुरत्नविचित्राणि शातकुम्भमयानि च ॥ २५
तदद्भुताकारमहं दृष्ट्वा नगरमुत्तमम् ।
विशिष्टं देवनगरादपृच्छं मातलिं ततः ॥ २६
इदमेवंविधं कस्माद्देवा नावासयन्त्युत ।
पुरन्दरपुराद्धीदं विशिष्टमिति लक्षये ॥ २७

मातलिरुवाच ।

आसीदिदं पुरा पार्थ देवराजस्य नः पुरम् ।
ततो निवातकवचैरितः प्रच्याविताः सुराः ॥ २८
तपस्तप्त्वा महत्तीव्रं प्रसाद्य च पितामहम् ।
इदं वृतं निवासाय देवेभ्यश्चाभयं युधि ॥ २९
ततः शक्रेण भगवान् स्वयम्भूरिति चोदितः ।
विधत्तां भगवानन्तमात्मनो हितकाम्यया ॥ ३०
तत उक्तो भगवता दिष्टमत्रेति भारत ।
भविताऽन्तस्त्वमप्येषां देहेनान्येन शत्रुहन् ॥ ३१
तत एषां वधार्थाय शक्रोऽस्त्राणि ददौ तव ।
न हि शक्याः सुरैर्हन्तुं य एते निहतास्त्वया ३२
कालस्य परिणामेन ततस्त्वमिह भारत ।
एषामन्तकरः प्राप्तस्त्वया च कृतं तथा ॥ ३३
दानवानां विनाशाय अस्त्राणां परमं बलम् ।
ग्राहितस्त्वं महेन्द्रेण पुरुषेन्द्र तदुत्तमम् ॥ ३४

अर्जुन उवाच ।

ततः प्रशाम्य नगरं दानवांश्च निहत्य तान् ।
पुनर्मातलिना सार्धमगच्छं देवसद्म तत् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्ध-पर्वणि निवातकवचयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

हरीन् अश्वान् हरणशीलान् । अविध्यन्त व्याप्तवन्तः । अविन्वन्तेति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ ९ ॥ सारसाः हंसाः । लक्ष्मणा इति पाठे सारस्यः ॥ २१ ॥ न आवासयन्ति नाध्यासन्ते ॥ २७ ॥ अन्तं नाशं निवातकवचानामिति शेषः ॥ ३० ॥ प्रशाम्य प्रकर्षेण आलोच्य ॥ ३५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

१ उदैरयम् इति पाठः ।

## १७३

अर्जुन उवाच ।

निवर्तमानेन मया महद्दृष्टं ततोऽपरम् ।
पुरं कामचरं दिव्यं पावकार्कसमप्रभम् ॥ १
रत्नद्रुममयैश्चित्रैः सुस्वरैश्च पतत्रिभिः ।
पौलोमैः कालकञ्जैश्च नित्यहृष्टैरधिष्ठितम् ॥ २
गोपुराट्टालकोपेतं चतुर्द्वारं दुरासदम् ।
सर्वरत्नमयं दिव्यमद्भुतोपमदर्शनम् ॥ ३
द्रुमैः पुष्पफलोपेतैः सर्वरत्नमयैर्वृतम् ।
तथा पतत्रिभिर्दिव्यैरुपेतं सुमनोहरैः ॥ ४
असुरैर्नित्यमुदितैः शूलर्ष्टिमुसलायुधैः ।
चापमुद्गरहस्तैश्च स्रग्विभिः सर्वतो वृतम् ॥ ५
तदहं प्रेक्ष्य दैत्यानां पुरमद्भुतदर्शनम् ।
अपृच्छं मातलिं राजन् किमिदं वर्ततेऽद्भुतम् ॥ ६

मातलिरुवाच ।

पुलोमा नाम दैतेयी कालका च महासुरी ।
दिव्यं वर्षसहस्रं ते चेरतुः परमं तपः ॥ ७
तपसोऽन्ते ततस्ताभ्यां स्वयम्भूरददद्वरम् ।
अगृह्णीतां वरं ते तु सुतानामल्पदुःखताम् ॥ ८
अवध्यतां च राजेन्द्र सुरराक्षसपन्नगैः ।
पुरं सुरमणीयं च खचरं सुमहाप्रभम् ॥ ९
सर्वरत्नैः समुदितं दुर्धर्षममरैरपि ।
महर्षि-यक्ष-गन्धर्व-पन्नगासुरराक्षसैः ॥ १०
सर्वकामगुणोपेतं वीतशोकमनामयम् ।
ब्रह्मणा भरतश्रेष्ठ कालकेयकृते कृतम् ॥ ११
तदेतत् खपुरं दिव्यं चरत्यमरवर्जितम् ।
पौलोमाध्युषितं वीर कालकञ्जैश्च दानवैः ॥ १२
हिरण्यपुरमित्येवं ख्यायते नगरं महत् ।
रक्षितं कालकेयैश्च पौलोमैश्च महासुरैः । १३
त एते मुदिता राजन्नवध्याः सर्वदैवतैः ।
निवसन्त्यत्र राजेन्द्र गतोद्वेगा निरुत्सुकाः ॥ १४
मानुषान्मृत्युरेतेषां निर्दिष्टो ब्रह्मणा पुरा ।
एतानपि रणे पार्थ कालकञ्जान् दुरासदान् ।
वज्रास्त्रेण नयस्वाशु विनाशं सुमहाबलान् ॥ १५

अर्जुन उवाच ।

सुरासुरैरवध्यं तदहं ज्ञात्वा विशाम्पते ।
अब्रुवं मातलिं हृष्टो याह्येतत् पुरमञ्जसा ॥ १६
त्रिदशेशद्विषो यावत् क्षयमस्त्रैर्नयाम्यहम् ।
न कथञ्चिद्धि मे पापा न वध्या ये सुरद्विषः ॥ १७
उवाह मां ततः शीघ्रं हिरण्यपुरमन्तिकात् ।
रथेन तेन दिव्येन हरियुक्तेन मातलिः ॥ १८
ते मामालक्ष्य दैतेया विचित्राभरणाम्बराः ।
समुत्पेतुर्महावेगा रथानास्थाय दंशिताः ॥ १९
ततो नालीकनाराचैर्भल्लैः शक्त्यृष्टितोमरैः ।
प्रत्यघ्नन् दानवेन्द्रा मां क्रुद्धास्तीव्रपराक्रमाः ॥ २०
तदहं शरवर्षेण महता प्रत्यवारयम् ।
शस्त्रवर्षं महद्राजन् विद्याबलमुपाश्रितः ॥ २१
व्यामोहयं च तान् सर्वान् रथमार्गैश्चरन् रणे ।
तेऽन्योन्यमभिसम्मूढाः पातयन्ति स्म दानवान् ॥
तेषामेवं विमूढानामन्योन्यमभिधावताम् ।
शिरांसि विशिखैर्दीप्तैर्व्यहनं शतसङ्घशः ॥ २३
ते वध्यमाना दैतेयाः पुरमास्थाय तत्पुनः ।
खमुत्पेतुः सनगरा मायामास्थाय दानवीम् ॥ २४
ततोऽहं शरवर्षेण महता कुरुनन्दन ।
मार्गमावृत्य दैत्यानां गतिं चैषामवारयम् ॥ २५
तत्पुरं खचरं दिव्यं कामगं सूर्यसप्रभम् ।
दैतेयैर्वरदानेन धार्यते स्म यथासुखम् ॥ २६
अन्तर्भूमौ निपतति पुनरूर्ध्वं प्रतिष्ठते ।
पुनस्तिर्यक् प्रयात्याशु पुनरप्सु निमज्जति ॥ २७
अमरावतिसङ्काशं तत् पुरं कामगं महत् ।
अहमस्त्रैर्बहुविधैः प्रत्यगृह्णं परन्तप ॥ २८
ततोऽहं शरजालेन दिव्यास्त्रमुदितेन च ।
व्यगृह्णं सह दैतेयैस्तत्पुरं पुरुषर्षभ ॥ २९
विक्षतं चायसैर्बाणैर्मत्प्रयुक्तैरजिह्मगैः ।
महीमभ्यपतद्राजन् प्रभग्नं पुरमासुरम् ॥ ३०
ते वध्यमाना मद्बाणैर्वज्रवेगैरयस्मयैः ।
पर्यभ्रमन्त वै राजन्नसुराः कालचोदिताः ॥ ३१
ततो मातलिरारुह्य पुरस्तान्निपतन्निव ।
महीमवातरत् क्षिप्रं रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥ ३२

---

१७३

**निवर्तमानेनेति** ॥१॥ खपुरं खचरत्वात् ॥ १२ ॥ न वध्या इति न अपि तु वध्या एव ॥ १७ ॥ व्यगृह्णं विशेषेण गृहीतवान् । बाणवृष्ट्या रुद्धवानित्यर्थः ॥ २९ ॥ आरुह्य गगनमुत्पत्य । अवातरत्-अवतीर्णः । पाठान्तरे मातलिमारुह्य-आलम्ब्य । महीमवातरमवतीर्णोऽभवमिति शेषः ॥ ३२ ॥

ततो रथसहस्राणि षष्टिस्तेषाममर्षिणाम् ।
युयुत्सूनां मया सार्धं पर्यवर्तन्त भारत ।
तान्यहं निशितैर्बाणैर्व्यधमं गार्ध्रराजितैः ॥ ३३
ते युद्धे सन्न्यवर्तन्त समुद्रस्य यथोर्मयः ।
नेमे शक्या मानुषेण युद्धेनेति प्रचिन्त्य तत् ॥३४
ततोऽहमानुपूर्व्येण दिव्यान्यस्त्राण्ययोजयम् ।
ततस्तानि सहस्राणि रथिनां चित्रयोधिनाम् ३५
अस्त्राणि मम दिव्यानि प्रत्यघ्नन् शनकैरिव ।
रथमार्गान् विचित्रांस्ते विचरन्तो महाबलाः३६
प्रत्यदृश्यन्त सङ्ग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः ।
विचित्रमुकुटापीडा विचित्रकवचध्वजाः ॥ ३७
विचित्राभरणाश्चैव नन्दयन्तीव मे मनः ।
अहं तु शरवर्षैस्तानस्त्रप्रचुदितै रणे ॥ ३८
नाशक्नुवं पीडयितुं ते तु मां प्रत्यपीडयन् ।
तैः पीड्यमानो बहुभिः कृतास्त्रैः कुशलैर्युधि ३९
व्यथितोऽस्मि महायुद्धे भयं चागान्महन्मम ।
ततोऽहं देवदेवाय रुद्राय प्रयतो रणे ॥ ४०
स्वस्ति भूतेभ्य इत्युक्त्वा महास्त्रं समचोदयम् ।
यत्तद्रौद्रमिति ख्यातं सर्वामित्रविनाशनम् ॥ ४१
ततोऽपश्यं त्रिशिरसं पुरुषं नवलोचनम् ।
त्रिमुखं षड्भुजं दीप्तमर्कज्वलनमूर्धजम् ॥ ४२
लेलिहानैर्महानागैः कृतचीरममित्रहन् ।
विभीस्ततस्तदस्त्रं तु घोरं रौद्रं सनातनम् ॥ ४३
दृष्ट्वा गाण्डीवसंयोगमानीय भरतर्षभ ।
नमस्कृत्वा त्रिनेत्राय शर्वायामिततेजसे ॥ ४४
मुक्तवान् दानवेन्द्राणां पराभावाय भारत ।
मुक्तमात्रे ततस्तस्मिन् रूपाण्यासन् सहस्रशः ४५
मृगाणामथ सिंहानां व्याघ्राणां च विशाम्पते ।
ऋक्षाणां महिषाणां च पन्नगानां तथा गवाम् ४६
शरभाणां गजानां च वानराणां च सङ्घशः ।
ऋषभाणां वराहाणां मार्जाराणां तथैव च ॥ ४७
शालावृकाणां प्रेतानां भुरुण्डानां च सर्वशः ।
गृध्राणां गरुडानां च चमराणां तथैव च ॥ ४८
देवानां च ऋषीणां च गन्धर्वाणां च सर्वशः ।
पिशाचानां सयक्षाणां तथैव च सुरद्विषाम् ४९
गुह्यकानां च सङ्ग्रामे नैर्ऋतानां तथैव च ।
झषाणां गजवक्त्राणामुलूकानां तथैव च ॥ ५०
मीनवाजिसरूपाणां नानाशस्त्रासिपाणिनाम् ।
तथैव यातुधानानां गदामुद्गरधारिणाम् ॥ ५१
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्नानारूपधरैस्तथा ।
सर्वमासीज्जगद्व्याप्तं तस्मिन्नस्त्रे विसर्जिते ॥ ५२
त्रिशिरोभिश्चतुर्दंष्ट्रैश्चतुरास्यैश्चतुर्भुजैः ।
अनेकरूपसंयुक्तैर्मांसमेदोवसास्थिभिः ॥ ५३
अभीक्ष्णं वध्यमानास्ते दानवा नाशमागताः ।
अर्कज्वलनतेजोभिर्वज्राशनिसमप्रभैः ॥ ५४
अद्रिसारमयैश्चान्यैर्बाणैररिनिबर्हणैः ।
न्यहनं दानवान् सर्वान् मुहूर्तेनैव भारत ॥ ५५
गाण्डीवास्त्रप्रणुन्नांस्तान् गतासून्नभसश्च्युतान् ।
दृष्ट्वाऽहं प्राणमं भूयस्त्रिपुरघ्नाय वेधसे ॥ ५६
तथा रौद्रास्त्रनिष्पिष्टान् दिव्याभरणभूषितान् ।
निशाम्य परमं हर्षमगमद्देवसारथिः ॥ ५७
तदसह्यं कृतं कर्म देवैरपि दुरासदम् ।
दृष्ट्वा मां पूजयामास मातलिः शक्रसारथिः ॥५८
उवाच वचनं चेदं प्रीयमाणः कृताञ्जलिः ।
सुरासुरैरसह्यं हि कर्म यत् साधितं त्वया ॥ ५९
न ह्येतत् संयुगे कर्तुमपि शक्तः सुरेश्वरः ।
सुरासुरैरवध्यं हि पुरमेतत् खगं महत् ॥ ६०
त्वया विमथितं वीर स्ववीर्यतपसो बलात् ।
विध्वस्ते खपुरे तस्मिन् दानवेषु हतेषु च ॥ ६१
विनदन्त्यः स्त्रियः सर्वा निष्पेतुर्नगराद्बहिः ।
प्रकीर्णकेश्यो व्यथिताः कुरर्य इव दुःखिताः ६२
पेतुः पुत्रान् पितॄन् भ्रातॄन् शोचमाना महीतले ।
रुदत्यो दीनकण्ठ्यस्तु निनदन्त्यो हतेश्वराः ६३
उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो विस्रस्तस्रग्विभूषणाः ।
तच्छोकयुक्तमश्रीकं दुःखदैन्यसमाहतम् ॥ ६४
न बभौ दानवपुरं हतत्विट्कं हतेश्वरम् ।
गन्धर्वनगराकारं हतनागमिव ह्रदम् ॥ ६५
शुष्कवृक्षमिवारण्यमदृश्यमभवत् पुरम् ।
मां तु संहृष्टमनसं क्षिप्रं मातलिरानयत् ॥ ६६

पर्यवर्तन्त परिवार्य अवर्तन्त । गार्ध्रराजितैः गृध्रपत्रशोभितैः ॥ ३३ ॥ युद्धे निमित्ते सति सन्न्यवर्तन्त इमे वयमिति शेषः । युद्धेन जेतुमिति शेषः ॥ ३४ ॥ अस्त्रप्रचुदितैः । अस्त्राणां प्रचुदितं प्रेरणं यदर्थं तैः । 'उदुपधाद्भावादिकर्मणोः-' इति भावे निष्ठायाः कित्त्वम् ॥ ३८ ॥ कृतं पीडितं निगृहीतं चीरं वस्त्रं येन ॥ ४३ ॥ पराभावाय अत्यन्ताभावाय ॥ ४५ ॥ मांसमेदोवसास्थिभिः संयुक्तैरिति शेषः ॥ ५३ ॥ निबर्हणैः नाशकैः ॥ ५५ ॥ निशाम्य दृष्ट्वा ॥ ५७ ॥

देवराजस्य भवनं कृतकर्माणमाहवात्।
हिरण्यपुरमुत्सृज्य निहत्य च महासुरान्॥ ६७
निवातकवचांश्चैव ततोऽहं शक्रमागमम्।
मम कर्म च देवेन्द्रं मातलिर्विस्तरेण तत्॥ ६८
सर्वं विश्रावयामास यथाभूतं महाद्युते।
हिरण्यपुरघातं च मायानां च निवारणम्॥ ६९
निवातकवचानां च वधं संख्ये महौजसाम्।
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्रीतः सहस्राक्षः पुरन्दरः ७०
मरुद्भिः सहितः श्रीमान्साधु साध्वित्यथाब्रवीत्।
ततो मां देवराजो वै समाश्वास्य पुनः पुनः ७१
अब्रवीद्विबुधैः सार्धमिदं स मधुरं वचः।
अतिदेवासुरं कर्म कृतमेव त्वया रणे॥ ७२
गुर्वर्थश्च कृतः पार्थ महाशत्रून्घ्नता मम।
एवमेव सदा भाव्यं स्थिरेणाजौ धनञ्जय॥ ७३
असम्मूढेन चास्त्राणां कर्तव्यं प्रतिपादनम्।
अविषह्यो रणे हि त्वं देवदानवराक्षसैः॥ ७४
सयक्षासुरगन्धर्वैः सपक्षिगणपन्नगैः।
वसुधां चापि कौन्तेय त्वद्बाहुबलनिर्जिताम्।
पालयिष्यति धर्मात्मा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ७५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि हिरण्यपुरदैत्यवधे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७३॥

## १७४

अर्जुन उवाच।

ततो मामतिविश्वस्तं संरूढशरविक्षतम्।
देवराजो विगृह्येदं काले वचनमब्रवीत्॥ १
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि त्वयि तिष्ठन्ति भारत।
न त्वाऽभिभवितुं शक्तो मानुषो भुवि कश्चन॥२
भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णः शकुनिः सह राजभिः।
सङ्ग्रामस्थस्य ते पुत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३
इदं च मे तनुत्राणं प्रायच्छन्मघवान् प्रभुः।
अभेद्यं कवचं दिव्यं स्रजं चैव हिरण्मयीम्॥ ४
देवदत्तं च मे शङ्खं पुनः प्रादान्महारवम्।
दिव्यं चेदं किरीटं मे स्वयमिन्द्रो युयोज ह॥ ५
ततो दिव्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च।
प्रादाच्छक्रो ममैतानि रुचिराणि बृहन्ति च॥ ६
एवं सम्पूजितस्तत्र सुखमस्म्युषितो नृप।
इन्द्रस्य भवने पुण्ये गन्धर्वशिशुभिः सह॥ ७
ततो मामब्रवीच्छक्रः प्रीतिमानमरैः सह।
समयोऽर्जुन गन्तुं ते भ्रातरो हि स्मरन्ति ते॥ ८
एवमिन्द्रस्य भवने पञ्च वर्षाणि भारत।
उषितानि मया राजन् स्मरता द्यूतजं कलिम्॥९
ततो भवन्तमद्राक्षं भ्रातृभिः परिवारितम्
गन्धमादनपादस्य पर्वतस्यास्य मूर्धनि॥ १०

युधिष्ठिर उवाच।

दिष्ट्या धनञ्जयास्त्राणि त्वया प्राप्तानि भारत।
दिष्ट्या चाराधितो राजा देवानामीश्वरः प्रभुः
दिष्ट्या च भगवान् स्थाणुर्देव्या सह परन्तप।
साक्षाद्दृष्टः स्वयुद्धेन तोषितश्च त्वयाऽनघ॥ १२
दिष्ट्या च लोकपालैस्त्वं समेतो भरतर्षभ।
दिष्ट्या वर्धामहे पार्थ दिष्ट्याऽसि पुनरागतः १३
अद्य कृत्स्नां महीं देवीं विजितां पुरमालिनीम्।
मन्ये च धृतराष्ट्रस्य पुत्रानपि वशीकृतान्॥ १४
इच्छामि तानि चास्त्राणि द्रष्टुं दिव्यानि भारत।
यैस्तथा वीर्यवन्तस्ते निवातकवचा हताः॥ १५

अर्जुन उवाच।

श्वः प्रभाते भवान् द्रष्टा दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः।
निवातकवचा घोरा यैर्मया विनिपातिताः॥ १६

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७३॥

१७४

तत इति। अतिविश्वस्तमति-अत्यन्तं विश्वस्तं शत्रून् जेष्यतीति विश्वासो यस्मिंस्तम्। संरूढाः देहे निमग्नाः शरास्तैर्विक्षतम्। विगृह्य विशेषेण गृहीत्वा स्वीयत्वेन अङ्गीकृत्येर्थः॥१॥ त्वा त्वाम्॥२॥ रुचिराणि दीप्तिमन्ति। अत एव बृहन्ति बहुमूल्यानि॥६॥ देवानां राजा इन्द्रः॥ ११॥ ते त्वया हताः॥ १५॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवमागमनं तत्र कथयित्वा धनञ्जयः । भ्रातृभिः सहितः सर्वैं रजनीं तामुवास ह ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि अस्त्रदर्शनसङ्केते चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

## १७५

वैशम्पायन उवाच ।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
उत्थायावश्यकार्याणि कृतवान् भ्रातृभिः सह
ततः सञ्चोदयामास सोऽर्जुनं मातृनन्दनम् ।
दर्शयास्त्राणि कौन्तेय यैर्जिता दानवास्त्वया २
ततो धनञ्जयो राजन् देवैर्दत्तानि पाण्डवः ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि दर्शयामास भारत ॥ ३
यथान्यायं महातेजाः शौचं परममास्थितः ।
गिरिकूबरपादाक्षं शुभवेणु त्रिवेणुमत् ॥ ४
पार्थिवं रथमास्थाय शोभमानो धनञ्जयः ।
दिव्येन संवृतस्तेन कवचेन सुवर्चसा ॥ ५
धनुरादाय गाण्डीवं देवदत्तं स वारिजम् ।
शोशुभ्यमानः कौन्तेय आनुपूर्व्यान्महाभुजः ॥ ६
अस्त्राणि तानि दिव्यानि दर्शनायोपचक्रमे ।
अथ प्रयोक्ष्यमाणेषु दिव्येष्वस्त्रेषु तेषु वै ॥ ७
समाक्रान्ता मही पद्भ्यां समकम्पत सद्रुमा ।
क्षुभिताः सरितश्चैव तथैव च महोदधिः ॥ ८
शैलाश्चापि व्यदीर्यन्त न ववौ च समीरणः ।
न बभासे सहस्रांशुर्न जज्वाल च पावकः ॥ ९
न वेदाः प्रतिभान्ति स्म द्विजातीनां कथञ्चन ।
अन्तर्भूमिगता ये च प्राणिनो जनमेजय ॥ १०
पीड्यमानाः समुत्थाय पाण्डवं पर्यवारयन् ।
वेपमानाः प्राञ्जलयस्ते सर्वे विकृताननाः ॥ ११
दह्यमानास्तदाऽस्त्रैस्ते याचन्ति स्म धनञ्जयम् ।
ततो ब्रह्मर्षयश्चैव सिद्धा ये च महर्षयः ॥ १२
जङ्गमानि च भूतानि सर्वाण्येवावतस्थिरे ।
देवर्षयश्च प्रवरास्तथैव च दिवौकसः ॥ १३
यक्षराक्षसगन्धर्वास्तथैव च पतत्रिणः ।
खेचराणि च भूतानि सर्वाण्येवावतस्थिरे ॥ १४
ततः पितामहश्चैव लोकपालाश्च सर्वशः ।
भगवांश्च महादेवः सगणोऽभ्याययौ तदा ॥ १५
ततो वायुर्महाराज दिव्यैर्माल्यैः समन्वितः ।
अभितः पाण्डवं चित्रैरवचक्रे समन्ततः ॥ १६
जगुश्च गाथा विविधा गन्धर्वाः सुरचोदिताः ।
ननृतुः सङ्घशश्चैव राजन्नप्सरसां गणाः ॥ १७
तस्मिंश्च तादृशे काले नारदश्चोदितः सुरैः ।
आगम्याह वचः पार्थं श्रवणीयमिदं नृप ॥ १८
अर्जुनार्जुन मा युङ्क्ष्व दिव्यान्यस्त्राणि भारत ।
नैतानि निरधिष्ठाने प्रयुज्यन्ते कथञ्चन ॥ १९
अधिष्ठाने न वाऽनार्तः प्रयुञ्जीत कदाचन ।
प्रयोगेषु महान् दोषो ह्यस्त्राणां कुरुनन्दन ॥ २०
एतानि रक्ष्यमाणानि धनञ्जय यथागमम् ।
बलवन्ति सुखार्हाणि भविष्यन्ति न संशयः॥ २१

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

१७५

तस्यामिति ॥ १ ॥ मातृनन्दनं मातुः सुखकरम् ॥ २ ॥ अस्त्राणि दर्शयितुमिच्छोरर्जुनस्य भावनामाह गिरीति । गिरय एव कूबरादयस्तद्वन्तम् । कूबरो यस्मिन् युगं ध्रियते तद्दारु । पादौ चक्रे । अक्षः तयोः सन्धानदारु । शुभाः वेणव इव वेणवो यस्मिन् तत् शुभवेणु । त्रिवेणु-अक्षकूबरयोः सन्धानार्थं त्रिशिखं दारु तद्वन्तम् । 'सुपां सुलुक्-' इति द्वितीयाया आर्षो लुक् । रथपदे वा क्लीबत्वं ध्येयम् ॥ ४ ॥ पृथिवीमिव पार्थिवं मानसं भूमिरूपं रथम् । राक्षसवायसादिवत् स्वार्थे तद्धितः । आस्थाय ध्यानबलेन आरुह्य । दिव्येन इन्द्रदत्तेन ॥ ५ ॥ वारिजं शङ्खं देवदत्तं नामतः ॥ ६ ॥ दर्शनाय दर्शयितुम् ॥ ७ ॥ अर्जुनेन अनेकब्रह्माण्डगर्भस्य महादेवस्य साम्यं भावनाबलाद्गतेन समाक्रान्ता पृथिवी समकम्पत ॥ ८ ॥ निरधिष्ठाने लक्ष्याभावे सति ॥ १९ ॥ अधिष्ठानेऽपि वा अनार्तो न प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥

अरक्ष्यमाणान्येतानि त्रैलोक्यस्यापि पाण्डव ।
भवन्ति स्म विनाशाय मैवं भूयः कृथाः क्वचित् ॥
अजातशत्रो त्वं चैव द्रक्ष्यसे तानि संयुगे ।
योज्यमानानि पार्थेन द्विषतामवमर्दने ॥ २३

वैशम्पायन उवाच ।
निवार्याथ ततः पार्थं सर्वे देवा यथागतम् ।
जग्मुरन्ये च ये तत्र समाजग्मुर्नरर्षभ ॥ २४
तेषु सर्वेषु कौरव्य प्रतियातेषु पाण्डवाः ।
तस्मिन्नेव वने हृष्टास्त ऊषुः सह कृष्णया ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि निवातकवचयुद्धपर्वणि अस्त्रदर्शने पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

॥ समाप्तं निवातकवचयुद्धपर्व ॥

## आजगरपर्व ।

### १७६

जनमेजय उवाच ।
तस्मिन् कृतास्त्रे रथिनां प्रवीरे
प्रत्यागते भवनाद्वृत्रहन्तुः ।
अतः परं किमकुर्वन्त पार्थाः
समेत्य शूरेण धनञ्जयेन ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
वनेषु तेष्वेव तु ते नरेन्द्राः
सहार्जुनेनेन्द्रसमेन वीराः ।
तस्मिंश्च शैलप्रवरे सुरम्ये
धनेश्वराक्रीडगता विजह्रुः ॥ २
वेश्मानि तान्यप्रतिमानि पश्यन्
क्रीडाश्च नानाद्रुमसन्निबद्धाः ।
चचार धन्वी बहुधा नरेन्द्रः
सोऽस्त्रेषु यत्तः सततं किरीटी ॥ ३
अवाप्य वासं नरदेवपुत्राः
प्रसादजं वैश्रवणस्य राज्ञः ।
न प्राणिनां ते स्पृहयन्ति राजन्
शिवश्च कालः स बभूव तेषाम् ॥ ४
समेत्य पार्थेन यथैकरात्र-
मूषुः समास्तत्र तदा चतस्रः ।
पूर्वाश्च षट् ता दश पाण्डवानां
शिवा बभूवुर्वसतां वनेषु ॥ ५
ततोऽब्रवीद्वायुसुतस्तरस्वी
जिष्णुश्च राजानमुपोपविश्य ।
यमौ च वीरौ सुरराजकल्पा-
वेकान्तमास्थाय हितं प्रियं च ॥ ६
तव प्रतिज्ञां कुरुराज सत्यां
चिकीर्षमाणास्तदनु प्रियं च ।
ततो न गच्छाम वनान्यपास्य
सुयोधनं सानुचरं निहन्तुम् ॥ ७
एकादशं वर्षमिदं वसामः
सुयोधनेनात्तसुखाः सुखार्हाः ।
तं वञ्चयित्वाऽधमबुद्धिशील-
मज्ञातवासं सुखमाप्नुयाम ॥ ८
तवाज्ञया पार्थिव निर्विशङ्का
विहाय मानं विचरन् वनानि ।
समीपवासेन विलोभितास्ते
ज्ञास्यन्ति नास्मानपकृष्टदेशान् ॥ ९

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

१७६

तस्मिन्निति । वृत्रहन्तुरिन्द्रस्य ॥ १ ॥ आक्रीडमुद्यानम् ॥ २ ॥ वासं स्थानम् । प्राणिनां भूमिस्थानामैश्वर्यमिति शेषः ॥ ४ ॥ पूर्वाश्च षट् समाः ॥ ५ ॥ विचरन् विचरन्तः । अपकृष्टदेशान् दूरस्थान् न ज्ञास्यन्ति अपि तु समीपस्थानेव एत इति ज्ञास्यन्तीत्यर्थः। ज्ञास्यन्त्यनाथानिति पाठे अनाथानिति देशविशेषणम् । अप्रसिद्धान् देशान् तेषु संवत्सरं गूढं विहरेमेति सम्बन्धः ॥ ९ ॥

संवत्सरं तत्र विहृत्य गूढं
नराधमं तं सुखमुद्धरेम ।
निर्यात्य वैरं सफलं सपुष्पं
तस्मै नरेन्द्राधमपूरुषाय ॥ १०

सुयोधनायानुचरैर्वृताय
ततो महीमावस धर्मराज
स्वर्गोपमं देशमिमं चरद्भिः
शक्यो विहन्तुं नरदेव शोकः ॥ ११

कीर्तिस्तु ते भारत पुण्यगन्धा
नश्येद्धि लोकेषु चराचरेषु ।
तत् प्राप्य राज्यं कुरुपुङ्गवानां
शक्यं महत् प्राप्तुमथ क्रियाश्च ॥ १२

इदं तु शक्यं सततं नरेन्द्र
प्राप्तुं त्वया यल्लभसे कुबेरात् ।
कुरुष्व बुद्धिं द्विषतां वधाय
कृतागसां भारत निग्रहे च ॥ १३

तेजस्तवोग्रं न सहेत राजन्
समेत्य साक्षादपि वज्रपाणिः ।
न हि व्यथां जातु करिष्यतस्तौ
समेत्य देवैरपि धर्मराज ॥ १४

तवार्थसिद्ध्यर्थमपि प्रवृत्तौ
सुपर्णकेतुश्च शिनेश्च नप्ता ।
तथैव कृष्णोऽप्रतिमो बलेन
तथैव चाहं नरदेववर्य ॥ १५

तवार्थसिद्ध्यर्थमभिप्रपन्नो
यथैव कृष्णः सह यादवैस्तैः ।
तथैव चाहं नरदेववर्य
यमौ च वीरौ कृतिनौ प्रयोगे ॥ १६

त्वदर्थयोगप्रभवप्रधानाः
शमं करिष्याम परान् समेत्य ।

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तदाज्ञाय मतं महात्मा
तेषां च धर्मस्य सुतो वरिष्ठः ॥ १७

प्रदक्षिणं वैश्रवणाधिवासं
चकार धर्मार्थविदुत्तमौजाः ।
आमन्त्र्य वेश्मानि नदीः सरांसि
सर्वाणि रक्षांसि च धर्मराजः ॥ १८

यथागतं मार्गमवेक्षमाणः
पुनर्गिरिं चैव निरीक्षमाणः ।
ततो महात्मा स विशुद्धबुद्धिः
सम्प्रार्थयामास नगेन्द्रवर्यम् ॥ १९

समाप्तकर्मा सहितः सुहृद्भि-
र्जित्वा सपत्नान् प्रतिलभ्य राज्यम् ।
शैलेन्द्र भूयस्तपसे जितात्मा
द्रष्टा तवास्मीति मतिं चकार ॥ २०

वृतश्च सर्वैरनुजैर्द्विजैश्च
तेनैव मार्गेण पतिः कुरूणाम् ।
उवाह चैतान् गणशस्तथैव
घटोत्कचः पर्वतनिर्झरेषु ॥ २१

तान् प्रस्थितान् प्रीतमना महर्षिः
पितेव पुत्राननुशिष्य सर्वान् ।
स लोमशः प्रीतमना जगाम
दिवौकसां पुण्यतमं निवासम् ॥ २२

तेनार्ष्टिषेणेन तथानुशिष्टा-
स्तीर्थानि रम्याणि तपोवनानि ।
महान्ति चान्यानि सरांसि पार्थाः
सम्पश्यमानाः प्रययुर्नराग्र्याः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आजगरपर्वणि गन्धमादनप्रस्थाने
षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

---

तत्र युद्धे। उद्धरेम कण्टकवत् दूरीकरवाम। निर्यात्य प्रत्यर्प्य। अपकारिणेऽपकारं कृत्वेत्यर्थः। फलं राज्यप्राप्तिः। पुष्पं शत्रुवधः। निर्यात्य उद्धरेमेत्यन्वयः ॥ १० ॥ ततो हेतोर्महीमावस अधितिष्ठ। ननु इहैव सुखं महदस्ति किं महीवासेनेत्याशङ्क्याह स्वर्गेति ॥ ११ ॥ निग्रहे च बन्धने धा। भ्रातृत्वाद्वधेऽप्रवृत्तिश्चेदिति भावः ॥ १३ ॥ समेत्य युद्धं प्राप्य ॥ १४ ॥ सुपर्णकेतुः कृष्णः। शिनेर्नप्ता सात्यकिः। एतयोर्वीर्यं हितकारित्वं चाह तथैवेति। कृष्णोऽर्जुनः। अहं भीमसेनः ॥ १५ ॥ प्रयोगेऽस्त्रप्रयोगे। कृतिनौ कुशलौ ॥ १६ ॥ त्वदर्थयोगप्रभवप्रधानाः तव अर्थयोगो धनलाभः। प्रभव ऐश्वर्योत्कर्षः। तत् द्वयं प्रधानं येषां ते तथा। शमं साम शत्रुनाशेन क्षेमं वा समेत्य साम्ना युद्धेन वा ॥ १७ ॥ इति प्रार्थयामासेति पूर्वेण सम्बन्धः। मतिं चकार। गमने इति शेषः ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

## १७७

वैशम्पायन उवाच ।
नगोत्तमं प्रस्रवणैरुपेतं
दिशां गजैः किन्नरपक्षिभिश्च ।
सुखं निवासं जहतां हि तेषां
न प्रीतिरासीद्भरतर्षभाणाम् ॥ १

ततस्तु तेषां पुनरेव हर्षः
कैलासमालोक्य महान् बभूव ।
कुबेरकान्तं भरतर्षभाणां
महीधरं वारिधरप्रकाशम् ॥ २

समुच्छ्रयान् पर्वतसन्निरोधान्
गोष्ठान् हरीणां गिरिसेतुमालाः ।
बहून् प्रपातांश्च समीक्ष्य वीराः
स्थलानि निम्नानि च तत्र तत्र ॥ ३

तथैव चान्यानि महावनानि
मृगद्विजानेकपसेवितानि ।
आलोकयन्तोऽभिययुः प्रतीता-
स्ते धन्विनः खड्गधरा नराग्र्याः ॥ ४

वनानि रम्याणि नदीः सरांसि
गुहा गिरीणां गिरिगह्वराणि ।
एते निवासाः सततं बभूवु-
र्निशानिशं प्राप्य नरर्षभाणाम् ॥ ५

ते दुर्गवासं बहुधा निरुष्य
व्यतीत्य कैलासमचिन्त्यरूपम् ।
आसेदुरत्यर्थमनोरमं ते
तमाश्रमाग्र्यं वृषपर्वणस्तु ॥ ६

समेत्य राज्ञा वृषपर्वणा ते
प्रत्यर्चितास्तेन च वीतमोहाः ।
शशंसिरे विस्तरशः प्रवासं
गिरौ यथावद्वृषपर्वणस्ते ॥ ७

सुखोषितास्तस्य त एकरात्रं
पुण्याश्रमे देवमहर्षिजुष्टे ।
अभ्याययुस्ते बदरीं विशालां
सुखेन वीराः पुनरेव वासम् ॥ ८

ऊषुस्ततस्तत्र महानुभावा
नारायणस्थानगताः समग्राः ।
कुबेरकान्तां नलिनीं विशोकाः
सम्पश्यमानाः सुरसिद्धजुष्टाम् ॥ ९

तां चाथ दृष्ट्वा नलिनीं विशोकाः
पाण्डोः सुताः सर्वनरप्रधानाः ।
ते रेमिरे नन्दनवासमेत्य
द्विजर्षयो वीतमला यथैव ॥ १०

ततः क्रमेणोपययुर्नृवीरा
यथागतेनैव पथा समग्राः ।
विहृत्य मासं सुखिनो बदर्यां
किरातराज्ञो विषयं सुबाहोः ॥ ११

चीनांस्तुषारान् दरदांश्च सर्वान्
देशान् कुलिन्दस्य च भूमिरत्नान् ।
अतीत्य दुर्गं हिमवत्प्रदेशं
पुरं सुबाहोर्ददृशुर्नृवीराः ॥ १२

श्रुत्वा च तान् पार्थिव पुत्रपौत्रान्
प्राप्तान् सुबाहुर्विषये समग्रान् ।
प्रत्युद्ययौ प्रीतियुतः स राजा
तं चाभ्यनन्दन् वृषभाः कुरूणाम् ॥ १३

समेत्य राज्ञा तु सुबाहुना ते
सूतैर्विशोकप्रमुखैश्च सर्वे ।
सहेन्द्रसेनैः परिचारकैश्च
पौरोगवैर्ये च महानसस्थाः ॥ १४

---

१७७

एवं तीर्थयात्रादिप्रभवेन देवताप्रसादादुत्तमलोकप्राप्ति-रद्भुतसामर्थ्यप्राप्तिश्चेति दर्शितम । प्राप्तमपि चैतद्दर्पवतामनर्थकरं भवतीति दर्पजयार्थं नहुषभीमसेनयोर्दुरवस्थां वर्णयति नगोत्तमं प्रस्रवणैरुपेतमित्यादिना । नगोत्तमं गन्धमादनं जहतां त्यजताम् ॥ १ ॥ कुबेरस्य कान्तं प्रियम् ॥ २ ॥ समुच्छ्रयान् उच्चस्त्वानि । सन्निरोधान् संकीर्णस्थानि । गोष्ठान् स्थानानि हरीणां सिंहानाम्। गिरिषु नद्युत्तारणार्थाः सेतवो मालाश्च । महत्सु प्रवाहेषु तत्रैव देवप्रयागादौ साङ्गा इति प्रसिद्धाः । प्रपातान् भृगून् ॥३॥ अनेकपाः द्विपाः ॥ ४ ॥ गुहा अल्पप्रमाणा दरी । गह्वरं महती दरी । निशानिशं रात्रिंदिनम् ॥ ५ ॥ नलिनीं सरसीम् ॥ ९ ॥ नन्दनामैन्द्रवनम् ॥ १० ॥ पौरोगवैः पुरोगामिभिः पटगृहादिसामग्रीवाहैः ॥ १४ ॥

सुखोषितास्तत्र त एकरात्रं
सूतान् समादाय रथांश्च सर्वान् ।
घटोत्कचं सानुचरं विसृज्य
ततोऽभ्ययुर्यामुनमद्रिराजम् ॥ १५

तस्मिन् गिरौ प्रस्रवणोपपन्न-
हिमोत्तरीयारुणपाण्डुसानौ ।
विशाखयूपं समुपेत्य चक्रु-
स्तदा निवासं पुरुषप्रवीराः ॥ १६

वराहनानामृगपक्षिजुष्टं
महावनं चैत्ररथप्रकाशम् ।
शिवेन पार्था मृगयाप्रधानाः
संवत्सरं तत्र वने विजह्रुः ॥ १७

तत्राससादातिबलं भुजङ्गं
क्षुधार्दितं मृत्युमिवोग्ररूपम् ।
वृकोदरः पर्वतकन्दरायां
विषादमोहव्यथितान्तरात्मा ॥ १८

द्वीपोऽभवद्यत्र वृकोदरस्य
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
अमोक्षयद्यस्तमनन्ततेजा
ग्राहेण संवेष्टितसर्वगात्रम् ॥ १९

ते द्वादशं वर्षमुपोपयातं
वने विहर्तुं कुरवः प्रतीताः ।
तस्माद्वनाच्चैत्ररथप्रकाशात्
श्रिया ज्वलन्तस्तपसा च युक्ताः ॥ २०

ततश्च यात्वा मरुधन्वपार्श्वे
सदा धनुर्वेदरतिप्रधानाः ।
सरस्वतीमेत्य निवासकामाः
सरस्ततो द्वैतवनं प्रतीयुः ॥ २१

समीक्ष्य तान् द्वैतवने निविष्टान्
निवासिनस्तत्र ततोऽभिजग्मुः ।
तपोदमाचारसमाधियुक्ता-
स्तृणोदपात्रावरणाश्मकुट्टाः ॥ २२

प्लक्षाक्षरौहीतकवेतसाश्च
तथा बदर्यः खदिराः शिरीषाः ।
बिल्वेङ्गुदाः पीलुशमीकरीराः
सरस्वतीतीररुहा बभूवुः ॥ २३

तां यक्षगन्धर्वमहर्षिकान्ता-
मागारभूतामिव देवतानाम् ।
सरस्वतीं प्रीतियुताश्चरन्तः
सुखं विजह्रुर्नरदेवपुत्राः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आजगरपर्वणि पुनर्द्वैतवनप्रवेशे
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

## १७८

जनमेजय उवाच ।

कथं नागायुतप्राणो भीमो भीमपराक्रमः ।
भयमाहारयत्तीव्रं तस्मादजगरान्मुने ॥ १
पौलस्त्यं धनदं युद्धे य आह्वयति दर्पितः ।
नलिन्यां कदनं कृत्वा निहन्ता यक्षरक्षसाम् ॥ २
तं शंससि भयाविष्टमापन्नमरिसूदनम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ॥ ३

वैशम्पायन उवाच ।

बह्वाश्चर्ये वने तेषां वसतामुग्रधन्विनाम् ।
प्राप्तानामाश्रमाद्राजन् राजर्षेर्वृषपर्वणः ॥ ४
यदृच्छया धनुष्पाणिर्बद्धखड्गो वृकोदरः ।
ददर्श तद्वनं रम्यं देवगन्धर्वसेवितम् ॥ ५

---

यामुनं यमुनोद्गमम् ॥ १५ ॥ पुंसि यथा श्वेतमुत्तरीयं श्वेतारुण-मुष्णीषं च तद्वत् गिरौ प्रस्रवणानि अरुणपाण्डुसानूनि च भान्तीत्युत्प्रेक्षा । विशाखयूपं स्थानविशेषः ॥ १६ ॥ विषादस्तेजःप्रतिघातजः क्षोभः । मोहो वैचित्यम् ॥ १८ ॥ द्वीपो द्वीपवदाश्रयो ग्राहेण सर्पेण ॥ १९ ॥ तृणोदपात्रा-वरणाः-आसनार्थं तृणेन पाद्यार्थमुदकपात्रेण च आवृण्वन्ति । पाठान्तरे आहरन्ति । प्रत्येकमानीतेन वरयन्ति ते तथा-भूताः । अश्मकुट्टा वानप्रस्थाः । दन्तोलूखलिका एव सन्तो जरया नष्टदन्ता अश्मकुट्टा भवन्ति ॥ २२ ॥ बभूवुः शोभावन्त इति शेषः ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

१७८

कथमिति ॥ १ ॥

स ददर्श शुभान् देशान् गिरेर्हिमवतस्तदा ।
देवर्षिसिद्धचरितानप्सरोगणसेवितान् ॥ ६
चकोरैरुपचक्रैश्च पक्षिभिर्जीवजीवकैः ।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च तत्र तत्र निनादितान् ॥ ७
नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैर्हिमसंस्पर्शकोमलैः ।
उपेतान् बहुलच्छायैर्मनोनयननन्दनैः ॥ ८
स सम्पश्यन् गिरिनदीर्वैदूर्यमणिसन्निभैः ।
सलिलैर्हिमसङ्काशैर्हंसकारण्डवायुतैः ॥ ९
वनानि देवदारूणां मेघानामिव वागुराः ।
हरिचन्दनमिश्राणि तुङ्गकालीयकान्यपि ॥ १०
मृगयां परिधावन् स समेषु मरुधन्वसु ।
विध्यन् मृगान् शरैः शुद्धैश्चचार स महाबलः ११
भीमसेनस्तु विख्यातो महान्तं दंष्ट्रिणं बलात् ।
निघ्नन् नागशतप्राणो वने तस्मिन् महाबलः॥१२
मृगाणां स वराहाणां महिषाणां महाभुजः ।
विनिघ्नंस्तत्र तत्रैव भीमो भीमपराक्रमः ॥ १३
स मातङ्गशतप्राणो मनुष्यशतवारणः ।
सिंहशार्दूलविक्रान्तो वने तस्मिन् महाबलः॥ १४
वृक्षानुत्पाटयामास तरसा वै बभञ्ज च ।
पृथिव्याश्च प्रदेशान् वै नादयंस्तु वनानि च॥१५
पर्वताग्राणि वै मृद्नन् नादयानश्च विज्वरः ।
प्रक्षिपन् पादपांश्चापि नादेनापूरयन् महीम् १६
वेगेन न्यपतद्भीमो निर्भयश्च पुनः पुनः ।
आस्फोटयन् क्ष्वेडयंश्च तलतालांश्च वादयन् १७
चिरसम्बद्धदर्पस्तु भीमसेनो वने तदा ।
गजेन्द्राश्च महासत्त्वा मृगेन्द्राश्च महाबलाः ॥ १८
भीमसेनस्य नादेन व्यमुञ्चन्त गुहा भयात् ।
क्वचित् प्रधावंस्तिष्ठंश्च क्वचिच्चोपविशंस्तथा ॥१९
मृगप्रेप्सुर्महारौद्रे वने चरति निर्भयः ।
स तत्र मनुजव्याघ्रो वने वनचरोपमः ॥ २०
पद्भ्यामभिसमापेदे भीमसेनो महाबलः ।
स प्रविष्टो महारण्ये नादान् नदति चाद्भुतान् २१
त्रासयन् सर्वभूतानि महासत्त्वपराक्रमः ।
ततो भीमस्य शब्देन भीताः सर्पा गुहाशयाः२२
अतिक्रान्तास्तु वेगेन जगामानुसृतः शनैः ।
ततोऽमरवरप्रख्यो भीमसेनो महाबलः ॥ २३
स ददर्श महाकायं भुजङ्गं लोमहर्षणम् ।
गिरिदुर्गे समापन्नं कायेनावृत्य कन्दरम् ॥ २४
पर्वताभोगवर्ष्माणमतिकायं महाबलम् ।
चित्राङ्गमङ्गजैश्चित्रैर्हरिद्रासदृशच्छविम् ॥ २५
गुहाकारेण वक्त्रेण चतुर्दंष्ट्रेण राजता ।
दीप्ताक्षेणातिताम्रेण लिहानं सृक्किणी मुहुः २६
त्रासनं सर्वभूतानां कालान्तकयमोपमम् ।
निःश्वासक्ष्वेडनादेन भर्त्सयन्तमिव स्थितम् ॥२७
स भीमं सहसाऽभ्येत्य पृदाकुः कुपितो भृशम् ।
जग्राहाजगरो ग्राहो भुजयोरुभयोर्बलात् ॥ २८
तेन संस्पृष्टगात्रस्य भीमसेनस्य वै तदा ।
संज्ञा मुमोह सहसा वरदानेन तस्य हि ॥ २९
दशनागसहस्राणि धारयन्ति हि यद्बलम् ।
तद्बलं भीमसेनस्य भुजयोरसमं परैः ॥ ३०
स तेजस्वी तथा तेन भुजगेन वशीकृतः ।
विस्फुरन् शनकैर्भीमो न शशाक विचेष्टितुम् ३१
नागायुतसमप्राणः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।
गृहीतो व्यजहात् सत्त्वं वरदानविमोहितः ॥ ३२
स हि प्रयत्नमकरोत्तीव्रमात्मविमोक्षणे ।
न चैनमशकद्वीरः कथञ्चित् प्रतिबाधितुम् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आजगरपर्वणि अजगरग्रहणे
अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

## १७९

वैशम्पायन उवाच ।
स भीमसेनस्तेजस्वी तथा सर्पवशं गतः ।
चिन्तयामास सर्पस्य वीर्यमत्यद्भुतं महत् ॥ १
उवाच च महासर्पं कामया ब्रूहि पन्नग ।
कस्त्वं भो भुजगश्रेष्ठ किं मया च करिष्यसि ॥२

तुङ्गं कालीयकं च काष्ठविशेषौ ॥ १० ॥ मरुधन्वसु गिरेर्निर्जलप्रदेशेषु । 'मरुर्ना गिरिधन्वनोः' इति मेदिनी ॥ ११ ॥ पर्वतस्याभोगो विस्तीर्णता तत् परिमाणं वर्ष्म शरीरं यस्य तम् ॥ २५ ॥ पृदाकुः सर्पः ॥ २८ ॥ सत्त्वं बुद्धिम् ॥ ३२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७८ ॥

१७९

स भीमसेन इति॥ १ ॥ कामया इच्छातः ॥ २ ॥

पाण्डवो भीमसेनोऽहं धर्मराजादनन्तरः ।
नागायुतसमप्राणस्त्वया नीतः कथं वशम् ॥ ३
सिंहाः केसरिणो व्याघ्रा महिषा वारणास्तथा ।
समागताश्च शतशो निहताश्च मया युधि ॥ ४
राक्षसाश्च पिशाचाश्च पन्नगाश्च महाबलाः ।
भुजवेगमशक्ता मे सोढुं पन्नगसत्तम ॥ ५
किं नु विद्याबलं किं नु वरदानमथो तव ।
उद्योगमपि कुर्वाणो वशगोऽस्मि कृतस्त्वया ॥ ६
असत्यो विक्रमो नृणामिति मे धीयते मतिः ।
यथेदं मे त्वया नाग बलं प्रतिहतं महत् ॥ ७
वैशम्पायन उवाच ।
इत्येवंवादिनं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् ।
भोगेन महता गृह्य समन्तात् पर्यवेष्टयत् ॥ ८
निगृह्यैनं महाबाहुं ततः स भुजगस्तदा ।
विमुच्यास्य भुजौ पीनाविदं वचनमब्रवीत् ९
दिष्ट्या त्वं क्षुधितस्याद्य देवैर्भक्षो महाभुज ।
दिष्ट्या कालस्य महतः प्रियाः प्राणा हि देहिनाम्
यथा त्विदं मया प्राप्तं सर्परूपमरिन्दम ।
तथाऽवश्यं मया ख्याप्यं तवाद्य शृणु सत्तम ११
इमामवस्थां सम्प्राप्तो ह्यहं कोपान्महार्षिणाम् ।
शापस्यान्तं परिप्रेप्सुः सर्वं तत् कथयामि ते १२
नहुषो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः ।
तवैव पूर्वः पूर्वेषामायोर्वंशधरः सुतः ॥ १३
सोऽहं शापादगस्त्यस्य ब्राह्मणानवमन्य च ।
इमामवस्थामापन्नः पश्य दैवमिदं मम ॥ १४
त्वां चेदवध्यं दायादमतीव प्रियदर्शनम् ।
अहमद्योपयोक्ष्यामि विधानं पश्य यादृशम् ॥ १५
न हि मे मुच्यते कश्चित् कथञ्चित् प्रग्रहं गतः ।
गजो वा महिषो वाऽपि षष्ठे काले नरोत्तम ॥१६
नासि केवलसर्पेण तिर्यग्योनिषु वर्तता ।
गृहीतः कौरवश्रेष्ठ वरदानमिदं मम ॥ १७
पतता हि विमानाग्रान्मया शक्रासनाद्रुतम् ।
कुरु शापान्तमित्युक्तो भगवान् मुनिसत्तमः ॥ १८
स मामुवाच तेजस्वी कृपयाऽभिपरिप्लुतः ।
मोक्षस्ते भविता राजन् कस्माच्चित् कालपर्ययात्
ततोऽस्मि पतितो भूमौ न च मामजहात् स्मृतिः।
स्मार्तमस्ति पुराणं मे यथैवाधिगतं तथा ॥ २०
यस्तु ते व्याहृतान् प्रश्नान् प्रतिब्रूयाद्विभागवित् ।
स त्वां मोक्षयिता शापादिति मामब्रवीदृषिः २१
गृहीतस्य त्वया राजन् प्राणिनोऽपि बलीयसः ।
सत्वभ्रंशोऽधिकस्यापि सर्वस्याशु भविष्यति
इति चाप्यहमश्रौषं वचस्तेषां दयावताम् ।
मयि सञ्जातहार्दानामथ तेऽन्तर्हिता द्विजाः ॥२३
सोऽहं परमदुष्कर्मा वसामि निरयेऽशुचौ ।
सर्पयोनिमिमां प्राप्य कालाकाङ्क्षी महाद्युते ॥२४
तमुवाच महाबाहुर्भीमसेनो भुजङ्गमम् ।
न च कुप्ये महासर्प न चात्मानं विगर्हये ॥ २५
यस्मादभावी भावी वा मनुष्यः सुखदुःखयोः ।
आगमे यदि वाऽपाये न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ २६
दैवं पुरुषकारेण को वञ्चयितुमर्हति ।
दैवमेव परं मन्ये पुरुषार्थो निरर्थकः ॥ २७
पश्य दैवोपघाताद्धि भुजवीर्यव्यपाश्रयम् ।
इमामवस्थां सम्प्राप्तमनिमित्तमिहाद्य माम् २८
किं तु नाद्यानुशोचामि तथात्मानं विनाशितम्
यथा तु विपिने न्यस्तान् भ्रातॄन् राज्यपरिच्युतान्
हिमवांश्च सुदुर्गोऽयं यक्षराक्षससङ्कुलः ।
मां समुद्वीक्षमाणास्ते प्रपतिष्यन्ति विह्वलाः॥३०
विनष्टमथ मां श्रुत्वा भविष्यन्ति निरुद्यमाः ।
धर्मशीला मया ते हि बाध्यन्ते राज्यगृद्धिना ॥
अथवा नार्जुनो धीमान् विषादमुपयास्यति ।
सर्वास्त्रविदनाधृष्यो देवगन्धर्वराक्षसैः ॥ ३२
समर्थः स महाबाहुरेकोऽपि सुमहाबलः ।
देवराजमपि स्थानात् प्रच्यावयितुमञ्जसा ॥ ३३
किं पुनर्धृतराष्ट्रस्य पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम् ।
विद्विष्टं सर्वलोकस्य दम्भमोहपरायणम् ॥ ३४

भोगेन देहेन ॥ ८ ॥ विमुच्य तस्य बाहुबलं जिज्ञासितुमित्याशयः॥९॥ दायादं स्ववंश्यं पुत्रम् । अत एवावध्यम् । अमेध्यामिति पाठे वैश्वदेवाद्यनर्हत्वादभक्ष्यं नरमांसमित्यर्थः । उपयोक्ष्यामि भक्षितुमिच्छामि । विधानं दैवम् ॥ १५ ॥ षष्ठे कालेऽष्टधाविभक्तस्याह्नो भागे ॥ १६ ॥ स्मार्तं स्मृतिविषयम् । पुराणं चिरकालीनमपि स्मरामीत्यर्थः ॥ २० ॥ विभागवित्-आत्मानात्मविवेकवित् ॥ २१ ॥ यस्मान्मनुष्यः पुण्यपापसाम्येनोपात्तजन्मा सुखस्यागमे कदाचिदभावी सामर्थ्यहीनः कदाचित् भावी सामर्थ्यवान् अवश्यं भवति । एवं सुखस्यापाये दुःखस्याप्यागमेऽपाये च । तस्मादवश्यं भावित्वादन्यतरस्य सुखापाये दुःखागमे वा मनो न ग्लपयेन्न ग्लानिं नयेत् ॥ २६ ॥ मया राज्यगृद्धिना राज्यकामेन धर्मशीलाः सत्यप्रतिज्ञाः बाध्यन्ते । परुषोक्तिभिरिति शेषः ॥ ३१ ॥

मातरं चैव शोचामि कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।
याऽस्माकं नित्यमाशास्ते महत्त्वमधिकं परैः ३५
तस्याः कथं त्वनाथाया मद्विनाशाद्भुजङ्गम ।
अफलास्ते भविष्यन्ति मयि सर्वे मनोरथाः ॥ ३६
नकुलः सहदेवश्च यमौ च गुरुवर्तिनौ ।
मद्बाहुबलसङ्गुप्तौ नित्यं पुरुषमानिनौ ॥ ३७
भविष्यतो निरुत्साहौ भ्रष्टवीर्यपराक्रमौ ।
मद्विनाशात् परिद्यूनाविति मे वर्तते मतिः ॥ ३८
एवंविधं बहु तदा विललाप वृकोदरः ।
भुजङ्गभोगसंरुद्धो नाशकच्च विचेष्टितुम् ॥ ३९
युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो बभूवास्वस्थचेतनः ।
अनिष्टदर्शनान् घोरानुत्पातान् परिचिन्तयन्॥४०
दारुणं ह्यशिवं नादं शिवा दक्षिणतः स्थिता ।
दीप्तायां दिशि वित्रस्ता रौति तस्याश्रमस्य ह ॥
एकपक्षाक्षिचरणा वर्तिका घोरदर्शना ।
रक्तं वमन्ती ददृशे प्रत्यादित्यमभासुरा ॥ ४२
प्रववौ चानिलो रूक्षश्चण्डः शर्करकर्षणः ।
अपसव्यानि सर्वाणि मृगपक्षिरुतानि च ॥ ४३
पृष्ठतो वायसः कृष्णो याहि याहीति शंसति ।
मुहुर्मुहुः स्फुरति च दक्षिणोऽस्य भुजस्तथा ४४
हृदयं चरणश्चापि वामोऽस्य परितप्यति ।
सव्यस्याक्ष्णो विकारश्चाप्यनिष्टः समपद्यत ॥ ४५
धर्मराजोऽपि मेधावी मन्यमानो महद्भयम् ।
द्रौपदीं परिपप्रच्छ क्व भीम इति भारत ॥ ४६
शशंस तस्मै पाञ्चाली चिरयातं वृकोदरम् ।
स प्रतस्थे महाबाहुर्धौम्येन सहितो नृपः ॥ ४७
द्रौपद्या रक्षणं कार्यमित्युवाच धनंजयम् ।
नकुलं सहदेवं च व्यादिदेश द्विजान् प्रति ॥ ४८
स तस्य पदमुन्नीय तस्मादेवाश्रमात् प्रभुः ।
मृगयामास कौन्तेयो भीमसेनं महावने ॥ ४९
स प्राचीं दिशमास्थाय महतो गजयूथपान् ।
ददर्श पृथिवीं चिह्नैर्भीमस्य परिचिह्निताम् ॥ ५०
ततो मृगसहस्राणि मृगेन्द्राणां शतानि च ।
पतितानि वने दृष्ट्वा मार्गं तस्याविशन्नृपः ॥ ५१
धावतस्तस्य वीरस्य मृगार्थे वातरंहसः ।
ऊरुवातविनिर्भग्ना द्रुमा व्यावर्जिताः पथि ॥ ५२
स गत्वा तैस्तदा चिह्नैर्ददर्श गिरिगह्वरे ।
रूक्षमारुतभूयिष्ठे निष्पत्रद्रुमसङ्कुले ॥ ५३
ईरिणे निर्जले देशे कण्टकिद्रुमसंकुले ।
अश्मस्थाणुक्षुपाकीर्णे सुदुर्गे विषमोत्कटे
गृहीतं भुजगेन्द्रेण निश्चेष्टमनुजं तदा ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आजगरपर्वणि युधिष्ठिरभीमदर्शने
ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

## १८०

वैशम्पायन उवाच ।

युधिष्ठिरस्तमासाद्य सर्पभोगेन वेष्टितम् ।
दयितं भ्रातरं धीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ १
कुन्तीमातः कथमिमामापदं त्वमवाप्तवान् ।
कश्चायं पर्वताभोगप्रतिमः पन्नगोत्तमः ॥ २
स धर्मराजमालक्ष्य भ्राता भ्रातरमग्रजम् ।
कथयामास तत् सर्वं ग्रहणादि विचेष्टितम् ॥ ३

भीम उवाच ।

अयमार्य महासत्त्वो भक्षार्थं मां गृहीतवान् ।
नहुषो नाम राजर्षिः प्राणवानिव संस्थितः ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

मुच्यतामयमायुष्मन् भ्राता मेऽमितविक्रमः ।
वयमाहारमन्यं ते दास्यामः क्षुन्निवारणम् ॥ ५

---

वर्तिका पक्षिविशेषः॥४२॥ दक्षिणो भुजः स्फुरतीति भविष्यतोऽनिष्टस्यागमनस्य लिङ्गम्॥४४॥ विकारः स्फुरणम् ॥४५॥ यूथपान् पतितान् ददर्शेत्यन्वयः ॥५०॥ ईरिणे ऊषरे । क्षुपा ह्रस्ववृक्षाः । 'ह्रस्वशाखा शिफः क्षुपः' इत्यमरः ॥ ५४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

१८०

युधिष्ठिर इति ॥ १ ॥ प्राणवान् वायुभक्षः सर्प इव न तु सर्पः ॥ ४ ॥

सर्प उवाच ।
आहारो राजपुत्रोऽयं मया प्राप्तो मुखागतः ।
गम्यतां नेह स्थातव्यं श्वो भवानपि मे भवेत् ६
व्रतमेतन्महाबाहो विषयं मम यो व्रजेत् ।
स मे भक्ष्यो भवेत् तात त्वं चापि विषये मम॥७
चिरेणाद्य मयाऽऽहारः प्राप्तोऽयमनुजस्तव ।
नाहमेनं विमोक्ष्यामि न चान्यमभिकाङ्क्षये ॥ ८
युधिष्ठिर उवाच ।
देवो वा यदि वा दैत्य उरगो वा भवान् यदि ।
सत्यं सर्प वचो ब्रूहि पृच्छति त्वां युधिष्ठिरः ।
किमर्थं च त्वया ग्रस्तो भीमसेनो भुजङ्गम ॥ ९
किमाहृत्य विदित्वा वा प्रीतिस्ते स्याद्भुजङ्गम ।
किमाहारं प्रयच्छामि कथं मुञ्चेद्भवानिमम् ॥ १०
सर्प उवाच ।
नहुषो नाम राजाऽहमासं पूर्वस्तवानघ ॥
प्रथितः पञ्चमः सोमादायोः पुत्रो नराधिप ॥११
क्रतुभिस्तपसा चैव स्वाध्यायेन दमेन च ।
त्रैलोक्यैश्वर्यमव्यग्रं प्राप्तोऽहं विक्रमेण च ॥ १२
तदैश्वर्यं समासाद्य दर्पो मामगमत्तदा ।
सहस्रं हि द्विजातीनामुवाह शिबिकां मम ॥ १३
ऐश्वर्यमदमत्तोऽहमवमन्य ततो द्विजान् ।
इमामगस्त्येन दशामानीतः पृथिवीपते ॥ १४
न तु मामजहात् प्रज्ञा यावदद्येति पाण्डव ।
तस्यैवानुग्रहाद्राजन्नगस्त्यस्य महात्मनः ॥ १५
षष्ठे काले मयाऽऽहारः प्राप्तोऽयमनुजस्तव ।
नाहमेनं विमोक्ष्यामि न चान्यदपि कामये १६
प्रश्नानुच्चारितानद्य व्याहरिष्यसि चेन्मम ।
अथ पश्चाद्विमोक्ष्यामि भ्रातरं ते वृकोदरम् ॥ १७
युधिष्ठिर उवाच ।
ब्रूहि सर्प यथाकामं प्रतिवक्ष्यामि ते वचः ।
अपि चेच्छक्नुयां प्रीतिमाहर्तुं ते भुजङ्गम ॥ १८
वेद्यं च ब्राह्मणेनेह तद्भवान् वेत्ति केवलम् ।
सर्पराज ततः श्रुत्वा प्रतिवक्ष्यामि ते वचः ॥१९
सर्प उवाच ।
ब्राह्मणः को भवेद्राजन् वेद्यं किं च युधिष्ठिर ।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वाक्यैरनुमिमीमहे ॥ २०
युधिष्ठिर उवाच ।
सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ २१
वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत् ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति भवतः किं विवक्षितम्२२
सर्प उवाच ।
चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ।
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ॥ २३

किमाहृत्य विदित्वा वेति स्वस्य सर्वशक्तिमत्त्वं सर्वज्ञत्वं च सूचयति ॥ १० ॥ नहुषस्तु ज्ञानमेव पुरुषार्थ इति मत्वा 'न चान्यदपि कामये' इति स्वस्य ज्ञानादन्यत्र वैराग्यप्रदर्शनकामः प्रश्नमेव वृणोति प्रश्नानिति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणेनेति घटं करोतीतिवद्राविनीं वृत्तिमाश्रित्य अब्राह्मणेऽपि मुमुक्षौ ब्रह्मविद्यार्थिब्राह्मणशब्दप्रयोगः । श्रुतौ 'अमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः' इति श्रवणमननात्मकममौनं निदिध्यासनात्मकं मौनं च निर्विद्य निष्पाद्य ब्राह्मणो ब्रह्मविद्भवतीति दर्शनात् । केवलं निर्विशेषं वेत्ति पुरुषार्थत्वेन जानाति चेत्तर्हि तद्वक्ष्यामि मतिसंवादाय ॥ १९ ॥ तत्र यान्येव ब्रह्मविल्लक्षणानि तानि ब्रह्मविद्यासाधकानीति मन्वानो ब्रह्मविदो लक्षणं ब्रह्मस्वरूपं च पृच्छति । ब्राह्मण इति ॥ २० ॥ सत्यं यथार्थमहिंस्रं च वचनम् । आनृशंस्यमनैष्ठुर्यम् । तपः स्वधर्माचरणम् । घृणा कृपा ॥ २१ ॥ परं निर्विशेषम् । सविशेषस्य वाङ्मनसगोचरस्य श्रुत्यैवाब्रह्मत्वोक्तेः । 'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इत्यादिना । ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यं वस्तु । तत्र परमते परमाणोर्नित्यत्वात् कालतः परिच्छेदाभावेऽपि देशतो वस्तुतश्च परिच्छेदोऽस्ति । तथाऽऽकाशस्य नित्यत्वाद्विभुत्वाच्च कालतो देशतश्च तदभावेऽपि वस्तुतः परिच्छेदोऽस्त्येव । अयमपि त्रिविधः । 'वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादितः । वृक्षान्तरात् सजातीयो विजातीयः शिलादितः ' इत्युक्तलक्षणः । स एव परमते ईश्वरस्य नित्यज्ञानादिभ्य आत्मान्तराकाशादिभ्यश्चास्तीति तस्याप्यभावोऽत्राभिप्रेतः । अत एव सुखादिधर्मवन्न भवति । यत्र अखण्डैकरसे गत्वा न शोचति शोकायतनस्य हृदयस्यैवाभावात् । पुनः संसारं न प्राप्नोतीत्यर्थः । एवं स्वमतमुक्त्वा परमतं जिज्ञासते भवतः किं विवक्षितमिति ॥ २२ ॥ सर्पस्तु ब्राह्मणपदेन जातिमात्रं विवक्षित्वा शूद्रे तल्लक्षणं व्यभिचारयति । चातुर्वर्ण्यमिति सार्धेन । चतुर्णां वर्णानां हितम् । सत्यं प्रमाणं च धर्मव्यवस्थापकं ब्रह्म शब्दवेदः । शब्दाचारस्मृतेरपि वेदमूलत्वात् सर्वोऽप्याचारादिः श्रुतिमूलक इत्यर्थः । एवं च सत्यादिकं यदि शूद्रेऽप्यस्ति तर्हि सोऽपि ब्राह्मण एव स्यादित्याह । शूद्रेष्वपीति ॥ २३ ॥

वेद्यं यत्रात्र निर्दुःखमसुखं च नराधिप ।
ताभ्यां हीनं पदं चान्यन्न तदस्तीति लक्षये ॥ २४

युधिष्ठिर उवाच ।

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः २५
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २६
यत् पुनर्भवता प्रोक्तं न वेद्यं विद्यतीति च ।
ताभ्यां हीनमतोऽन्यत्र पदं नास्तीति चेदपि॥२७
एवमेतन्मतं सर्प ताभ्यां हीनं न विद्यते ।
यथा शीतोष्णयोर्मध्ये भवेन्नोष्णं न शीतता ॥२८
एवं वै सुखदुःखाभ्यां हीनं नास्ति पदं क्वचित् ।
एषा मम मतिः सर्प यथा वा मन्यते भवान् २९

सर्प उवाच ।

यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः ।
वृथा जातिस्तदाऽऽयुष्मन् कृतिर्यावन्न विद्यते॥३०

युधिष्ठिर उवाच ।

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
सङ्करात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥३१
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम् ॥ ३२
इदमार्षं प्रमाणं च ये यजामह इत्यपि ।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः ॥ ३३
प्राङ्नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते
तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद्वेदे न जायते ।
तस्मिन्नेवं मतिद्वैधे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥३५
कृतकृत्याः पुनर्वर्णा यदि वृत्तं न विद्यते ।
सङ्करस्त्वत्र नागेन्द्र बलवान् प्रसमीक्षितः ॥ ३६

---

सुखदुःखातीतं पदमेव नास्तीत्युक्तरूपं ब्रह्माप्याक्षिपति । वेद्यमिति । पदं पदनीयं प्राप्यस्थानम् ॥ २४ ॥ इतरस्तु ब्राह्मणपदेन ब्रह्मविदं विवक्षित्वा शूद्रादेरपि ब्राह्मणत्वमभ्युपगम्य परिहरति शूद्रेत्विति । शूद्रलक्ष्म कामादिकं न ब्राह्मणेऽस्ति, नापि ब्राह्मणलक्ष्म शमादिकं शूद्रेऽस्तीत्यर्थः । शूद्रोऽपि शमाद्युपेतो ब्राह्मण एव । ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एवेत्यर्थः ॥ २५ ॥ यदप्युक्तं सुखदुःखातीतं पदं नास्ति तदपि अनुवादपूर्वकमभ्युपगमेनैव परिहरति सार्धेन यत्पुनरिति । पदं पदनीयं प्रागप्राप्तं सत्कर्मणा प्राप्यं स्थानं तत् सुखदुःखाभ्यां हीनं नास्ति। ब्रह्मलोकस्थानामप्यैश्वर्यतारतम्यकृतं दुःखमस्त्येव किं पुनर्लोकान्तरस्थानाम् ॥२७॥ एतदेव दृष्टान्तेनापवदति । यथेति । यथा शीतलस्य जलस्य मध्येऽभ्यन्तरे उष्णमग्निर्नास्ति । नाप्युष्णेऽग्नौ शीततायुक्तं जलं तयोः परस्परविरोधेन संयोगायोगात् ॥ २८ ॥ एवं पदं पदनीयं ज्ञेयं वस्तु क्वचिद्देशे काले वा सुखदुःखाभ्यां हीनं प्राप्तं नास्ति । आध्यासिकयोः सुखदुःखयोरधिष्ठानेन ज्ञेयवस्तुना सह सर्पस्य रज्ज्वेव कालत्रयेऽपि संबन्धो नास्तीत्यर्थः । 'ओहाङ् गतौ ' अस्य 'ओदितश्च'इति निष्ठातस्य नः । 'घुमास्था–' इति सूत्रेण आत ईत्वम् । हाङः पदयतेश्च गत्यर्थत्वात् ज्ञानार्थत्वाच्च हीनं प्राप्तमिति पदं ज्ञेयमिति च व्याख्यातम् । अन्यथा तु प्रश्नोत्तरयोरेकरूपत्वादेषा मम मतिरिति वाक्यशेषे स्वमतेः पृथक्करणं नोपपद्यते । अन्ये तु सिद्धान्ते ताभ्यां हीनं पदं किं नास्ति? अपि तु अस्त्येवेति काका व्याचक्षते । अयं भावः–यत् कर्मप्राप्यं स्थानं तत् सुखदुःखवर्जितं कदाचिदपि नास्ति । यत्तु ज्ञेयं वस्तु नित्यप्राप्तं प्रमाणसामर्थ्यात् कण्ठगतविस्मृतचामीकरवत् तत्र कण्ठे चामीकरं त्वमेव ब्रह्मेति च वाक्यैकसिद्धमज्ञानापनयनमात्रमपेक्षते । न तत्र सुखदुःखसम्बन्धोऽस्ति । अकर्मजत्वात्तत्प्राप्तेः । अत एव च तस्यानित्यत्वमपि न अजन्यत्वादिति ॥ २९ ॥ प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाक्षिपति यदीति ॥ ३० ॥ उत्तरमाह । जातिरिति ॥ ३१ ॥ वागादीनामिव मैथुनस्यापि साधारण्याज्जातिर्दुर्ज्ञेया । तथा च श्रुतिः–'न चैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मो वयमब्राह्मणा वा' इति ब्राह्मण्ये संशयमुपन्यस्यति ॥ ३२ ॥ ननु जात्यनिश्चये कथं ब्राह्मणोऽहमित्याद्यभिमानपुरःसरं यागादौ प्रवर्ततेत्याशङ्क्याह । इदमार्षमिति । अत्र ' ये यजामहे ' इत्यनेन च ये वयं स्मो ब्राह्मणा अन्ये वा ते वयं यजामहे इति ब्राह्मण्येऽनवधारणं दर्शितम् । मन्त्रलिङ्गमपि – ' य एवास्मि स सन्यजे' इति । नन्वेवं स्वस्याब्राह्मणत्वपक्षे यज्ञस्यानिष्फलत्वमापततीत्याशङ्क्य तत्परिहाराय यागे यजमानस्य प्रवरवरणं क्रियते याज्ञिकैः । तच्चाग्निर्होतेतिमन्त्रे गौतमवदयास्यवदङ्गिरोवद्ब्राह्मणवदिति कुर्वन्ति । तस्य च प्रयोजनमब्राह्मणस्यापि यजमानस्य ब्राह्मणत्वसम्पादनं तस्मादाचार एव ब्राह्मण्यनिश्चये हेतुर्वेदप्रामाण्यादित्युपसंहरति । तस्मादिति । प्रधानं च तदिष्टं चेति कर्मधारयः–॥ ३३ ॥ कर्मैव ब्राह्मण्यहेतुरित्याह प्रागिति । नाभिवर्धनात् नालच्छेदनात् ॥ ३४ ॥ जायते संयुज्यते । वेदसंयोगानन्तरमेव ब्राह्मण्यमुदेति । तद्वत्प्रवरणेनापीति भावः । द्वैधे जातौ संशये सति ॥ ३५ ॥ वृत्तं वैदिकसंस्कारो यदि न विद्यते तर्हि सर्वाः प्रजाः कृतकृत्याः शूद्रतुल्याः। तथा च स्मृतिः–

१ तथोपनयनं प्रोक्तं द्विजातीनां यथाक्रमम्। इत्यधिकः पाठः ।

यत्रेदानीं महासर्प संस्कृतं वृत्तमिष्यते ।
तं ब्राह्मणमहं पूर्वमुक्तवान् भुजगोत्तम ॥ ३७

सर्प उवाच ।
श्रुतं विदितवेद्यस्य तव वाक्यं युधिष्ठिर ।
भक्षयेयमहं कस्माद्भ्रातरं ते वृकोदरम् ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आजगरपर्वणि युधिष्ठिरसंवादे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

## १८१

युधिष्ठिर उवाच ।
भवानेतादृशो लोके वेदवेदाङ्गपारगः ।
ब्रूहि किं कुर्वतः कर्म भवेद्गतिरनुत्तमा ॥ १

सर्प उवाच ।
पात्रे दत्वा प्रियाण्युक्त्वा सत्यमुक्त्वा च भारत ।
अहिंसानिरतः स्वर्गं गच्छेदिति मतिर्मम ॥ २

युधिष्ठिर उवाच ।
दानाद्वा सर्प सत्याद्वा किमतो गुरु दृश्यते ।
अहिंसाप्रिययोश्चैव गुरुलाघवमुच्यताम् ॥ ३

सर्प उवाच ।
दानं च सत्यं तत्त्वं वा अहिंसा प्रियमेव च ।
एषां कार्यगरीयस्त्वाद्दृश्यते गुरुलाघवम् ॥ ४
कस्माच्चिद्दानयोगाद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।
सत्यवाक्याच्च राजेन्द्र किंचिद्दानं विशिष्यते ॥ ५
एवमेव महेष्वास प्रियवाक्यान्महीपते ।
अहिंसा दृश्यते गुर्वी ततश्च प्रियमिष्यते ॥ ६
एवमेतद्भवेद्राजन् कार्यापेक्षमनन्तरम् ।
यदभिप्रेतमन्यत्ते ब्रूहि यावद्ब्रवीम्यहम् ॥ ७

युधिष्ठिर उवाच ।
कथं स्वर्गे गतिः सर्प कर्मणां च फलं ध्रुवम् ।
अशरीरस्य दृश्येत प्रब्रूहि विषयांश्च मे ॥ ८

सर्प उवाच ।
तिस्रो वै गतयो राजन् परिदिष्टाः स्वकर्मभिः ।
मानुष्यं स्वर्गवासश्च तिर्यग्योनिश्च तत्त्रिधा ॥ ९
तत्र वै मानुषाल्लोकाद्दानादिभिरतन्द्रितः ।
अहिंसार्थसमायुक्तः कारणैः स्वर्गमश्नुते ॥ १०

'न शूद्रेपातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति' इति तेषां संस्कारानर्हत्वनिष्पापत्वाभिधानात् कृतकृत्यत्वं दर्शयति । तद्वत् त्रैवर्णिका अपि स्युरित्यर्थः । अत्र वृत्ताभावे ॥ ३६ ॥ उपसंहरति यत्रेति ॥ ३७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

---

### १८१

एवं युधिष्ठिरमुखेन ब्रह्मविलक्षणानि ब्रह्म च निरूप्य सर्पमुखेन चित्तशुद्धिद्वारा आत्मविविदिषोत्पादनद्वारा वा ब्रह्मप्राप्त्युपायान् दानादीन् विधातुमयमध्याय आरभ्यते । भवानेतादृश इति । अनुत्तमा गतिः स्वर्गावाप्तिः ॥१॥ गुरुलाघवं गौरवं लाघवं चेत्यर्थः ॥ ४ ॥ कार्यगरीयस्त्वमेव सामान्यतो विवृणोति कस्माच्चिदिति । अयमत्र निर्णयः 'पिशुनायाभयं दातुं न सत्यं मतिमांस्त्यजेत् ।साधूनामभयायेह त्यजेत् सत्यमपि ध्रुवम् । स्तेनेषु च प्रियाख्यानादहिंसा श्रेयसी मता । अहिंसातः परात्माख्यप्रियाख्यानं विशिष्यते' । एतच्च पुत्रांस्तत्त्वोपदेशेन प्रव्राज्य पितरं दुःखयता नारदेन मदालसया च कृतम् ॥ ५ ॥ तदेतदाह । ततश्च प्रियमिष्यते । अहिंसातोऽपि प्रियं गुरुतरमित्यर्थः ॥ ६ ॥ देहातिरिक्तमात्मानं साधयितुं प्राक्कर्मसद्भावं दर्शयिष्यन् कर्मणां निष्फलत्वं तावदाशङ्कते कथमिति । अशरीरस्य नष्टदेहस्य कथं स्वर्गतिः कथं वा तत्र विषयोपभोगः कथं वा कर्मफलस्य ध्रुवत्वमप्रत्याख्येयत्वमित्यर्थः । सदेहस्य ह्येतत्त्रयं युज्यते न तु देहहीनस्येति भावः ॥ ८ ॥ अत्रोत्तरमाह । तिस्र इति । यथा मृद्विकारेष्वपि घटशरावोदञ्चनादिषु कुलालगतौ संकल्पक्रियाभेदौ वैषम्यहेतू भवतः । एवं भौतिकेष्वपि सुरनरतिर्यक्शरीरेषु तदन्यकर्त्रात्मगतसङ्कल्पक्रियाभेदौ वैषम्यहेतू भवतु इति भावः । तथा च श्रुतयः । 'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च' । 'योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्' इत्याद्याः । तं त्यक्तदेहम् । विद्या उपासना, कर्म यज्ञादि, पूर्वप्रज्ञा प्राग्भवीयसंस्कारः, समन्वारभेते अनुगच्छत इति श्रुतिपदानामर्थः । स्थाणुं स्थाणुत्वम् । योनिं सुरनरतिर्यग्रूपाम् । तद्गतित्रयं त्रिधा प्रत्येकमुत्तममध्यमाधमभावेन त्रिप्रकारम् ॥ ९ ॥ एतदेव विवृणोति तत्रेत्यादिना । कारणैः कर्मभिः ॥१०॥

विपरीतैश्च राजेन्द्र कारणैर्मानुषो भवेत् ।
तिर्यग्योनिस्तथा तात विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ ११
कामक्रोधसमायुक्तो हिंसालोभसमन्वितः ।
मनुष्यत्वात् परिभ्रष्टस्तिर्यग्योनौ प्रसूयते ॥ १२
तिर्यग्योन्याः पृथग्भावो मनुष्यार्थे विधीयते ।
गवादिभ्यस्तथाऽश्वेभ्यो देवत्वमपि दृश्यते ॥ १३
सोऽयमेता गतीस्तात जन्तुश्चरति कार्यवान् ।
नित्ये महति चात्मानमवस्थापयते द्विजः ॥ १४
जातो जातश्च बलवान् भुङ्क्ते चात्मा स देहवान् ।
फलार्थस्तात निष्पृक्तः प्रजालक्षणभावनः ॥ १५

युधिष्ठिर उवाच ।

शब्दे स्पर्शे च रूपे च तथैव रसगन्धयोः ।
तस्याधिष्ठानमव्यग्रो ब्रूहि सर्प यथातथम् ॥ १६
किं न गृह्णासि विषयान् युगपत् त्वं महामते ।
एतावदुच्यतां चोक्तं सर्वं पन्नगसत्तम ॥ १७

सर्प उवाच ।

यदात्मद्रव्यमायुष्मन् देहसंश्रयणान्वितम् ।
करणाधिष्ठितं भोगानुपभुङ्क्ते यथाविधि ॥ १८
ज्ञानं चैवात्र बुद्धिश्च मनश्च भरतर्षभ ।
तस्य भोगाधिकरणे करणानि निबोध मे ॥ १९
मनसा तात पर्येति क्रमशो विषयानिमान् ।
विषयायतनस्थेन भूतात्मा क्षेत्रनिःसृतः ॥ २०

विपरीतैरिति । अयमर्थः- पुण्यपापयोः साम्येन मानुषत्वं प्राप्य पुण्याधिक्ये स्वर्गं गच्छति पापाधिक्ये नरकम् । तत्र च तदधिकांशयोर्भोगेन क्षये जाते सति पुण्यपापयोः साम्ये स्वर्गादधस्तनं तिर्यग्योनेरुपरितनं च पुनर्मानुषत्वं गच्छतीति ॥ ११ ॥ तत्रापि तिर्यग्योनौ विशेषमाह । तिर्यग्योन्या इति । पृथग्भावस्ततो मुक्तिर्मनुष्यार्थे मनुष्यजन्मलाभाय विधीयते वेदेन बोध्यते । यतो गवादिभ्यो गोजातित एव यज्ञे उपयुक्ताद्देवत्वमपि दृश्यते । प्रत्यक्षमुपलभ्यते बह्वृचब्राह्मणे- 'पशुर्वै नीयमानः स मृत्युं प्रापश्यत् । स देवान्नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमयिष्याम' इति॥ १३ ॥ सोऽयमिति । यथा लोके कार्यवांश्चरति इतस्ततः पर्यटनं करोति । तद्रहितस्तु स्वस्थाने सुखमास्ते । एवमिहापि संसारमोक्षाविति भावः । महति ब्रह्मणि आत्मानं जीवमवस्थापयते उपाधित्यागेन महाकाशे घटाकाशमिव प्रलीनं करोति ॥ १४ ॥ एतदकरणे दोषमाह । जात इति । स च देहवान् देहाभिमानी । आत्मा जीवः । बलवान् अदृष्टोपगृहीतः । जातो जातः पुनःपुनर्लब्धजन्मा । फलार्थः सुखकामः । भुङ्क्ते देहयोगजं फलमिति शेषः । एतेन फलार्थिनः प्रवृत्तिस्ततः कर्म । ततो जन्म । ततः फलभोगस्ततो रागः। अभुक्ते रागानुदयात् ततः फलार्थितेति संसाराविच्छेदो दर्शितः । यस्तु निष्पृक्तो निर्गतं पृक्तं फलसंयोगो यस्मात् स फलासङ्गीत्यर्थः । स प्रजानां लक्षणं ज्ञापकं जन्ममरणादिकमसाधारणं धर्मं भावयतीति तथा। निष्कामकर्मकर्ता चित्तशुध्यतिशयाज्जन्ममरणादीन् दोषान् पश्यतीत्यर्थः । यद्वा । प्रजानां कार्यमात्रस्य लक्षणमनिर्वचनीयत्वं भावयतीति तथा । असङ्गः पुमान् अधिष्ठानज्ञानेन तत्राध्यस्तस्य संसारस्य मिथ्यात्वं शुक्तिरजतस्येव पश्यतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ इदमाक्षिपति । शब्दे इति । तस्य प्रजालक्षणलक्ष्यस्यानिर्वचनीयस्य अहमर्थप्रसिद्धप्रजारूपकार्यस्य किमधिष्ठानम् । तद् इदमर्थप्रसिद्धे शब्दादौ विषये ग्राह्ये सति किं तस्याधिष्ठानम् । यथा प्रकाश्यप्रकाशकयोर्घटसूर्ययोराधिष्ठाने भूनभसी भिन्ने दृष्टे तद्वदहमिदमर्थयोरप्यधिष्ठाने पृथक् वाच्ये इति भावः ॥१६॥ यदि तु तर्कमते इव प्रकाश्यप्रकाशकयोः सुखज्ञानयोरेकात्माधिष्ठानत्वमिष्टं तर्हि तद्वदेव युगपज्ज्ञानानुपलब्धिलिङ्गेन सिद्धं मनोनामकमात्मातिरिक्तं द्रव्यान्तरमभ्युपेयम् । तेन विना आत्मनि तत्संयोगवैजात्यासिद्धस्य कार्यवैजात्यस्योदयासम्भवादिति शङ्कते । किं नेति ॥ १७ ॥ उत्तरमाह । यदिति । यत् परमतप्रसिद्धमात्मरूपं द्रव्यं सुखदुःखादिगुणानामाश्रयभूतम । तत् देहसंश्रयणेन स्थूलसूक्ष्मशरीररूपोपाध्यालम्बनेन हेतुना अन्वितं बुध्यादियुक्तं भवति । आत्मनि सुखादिभानमवस्थात्रयोपाधिकम् । न स्वाभाविकमवस्थान्तरगतस्य सुखादेरवस्थान्तरे दर्शनाभावात् । तत उपाधिविशिष्टमात्मद्रव्यं करणैर्वक्ष्यमाणैरधिष्ठितं सत् भोगान् भुङ्क्ते । तथा च श्रुतिः–' आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति । यथाविधि कर्मानुरूपम ॥१८॥ ज्ञानं रूपाद्याकारा धीवृत्तिस्तेन । तत्साधनानीन्द्रियाणि गृह्यन्ते । बुद्धिः कर्त्रादिधर्मकं विज्ञानम । ' विज्ञानं यज्ञं तनुते ' इति श्रुतेः । मनः सर्वबाह्यकरणानुग्राहकमन्तःकरणम् । भोगाधिकरणे देहे । एतेन विकारभाजां कर्त्रादीनां करणत्ववचनेन तदितरस्कर्त्रात्मकमधिष्ठानं विवेचितम् ॥१९॥ द्वितीयप्रश्नोत्तरमाह । मनसेति । विषयस्य ग्राहकत्वेनायतनं स्थानमिन्द्रियं तत्स्थेन मनसा करणेन भूतात्मा जीवः क्षेत्रात् तेन तेन द्वारेण निःसृतः क्रमश इमान् रूपादीन् पर्येति । अनेन अन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमन्यत्रमना अभूवं नापश्यमित्याद्यनुभवस्य श्रुत्यैव प्रदर्शितत्वान्मनो नाम व्यापकं करणं सिद्धम् ॥ २० ॥

**तत्र चापि नरव्याघ्र मनो जन्तोर्विधीयते ।**
**तस्माद्युगपदत्रास्य ग्रहणं नोपपद्यते ॥ २१**
**स आत्मा पुरुषव्याघ्र भ्रुवोरन्तरमाश्रितः ।**
**बुद्धिं द्रव्येषु सृजति विविधेषु परावराम् ॥ २२**
**बुद्धेरुत्तरकाला च वेदना दृश्यते बुधैः ।**
**एष वै राजशार्दूल विधिः क्षेत्रज्ञभावनः ॥ २३**

**युधिष्ठिर उवाच ।**

**मनसश्चापि बुद्धेश्च ब्रूहि मे लक्षणं परम् ।**
**एतदध्यात्मविदुषां परं कार्यं विधीयते ॥ २४**

**सर्प उवाच ।**

**बुद्धिरात्मानुगातीव उत्पातेन विधीयते ।**
**तदाश्रिता हि सा ज्ञेया बुद्धिस्तस्यैषिणी भवेत् ॥ २५**
**बुद्धिरुत्पद्यते कार्यान्मनस्तूत्पन्नमेव हि ।**
**बुद्धेर्गुणविधानेन मनस्तद्गुणवद्भवेत् ॥ २६**
**एतद्विशेषणं तात मनोबुद्ध्योर्यदन्तरम् ।**
**त्वमप्यत्राभिसम्बुद्धः कथं वा मन्यते भवान् ॥२७**

तत्रेति । तच्च मनस्तत्र विषयग्रहणे कर्तव्ये सति विधीयते । बुध्या कर्त्र्या व्यापाराविष्टं क्रियतेऽतो व्यापारकालभेदान्मनो युगपद्विषयान्न गृह्णातीत्यर्थः ॥ २१ ॥ बुद्धेरपि परप्रेर्यत्वमाह स इति । यो बुद्धिमनइन्द्रियैः करणरूपेतः सन् भोक्ता स्वतस्त्वभोक्तेत्युक्तः स आत्मा भ्रुवोरन्तरमाश्रित इति गुरूक्त्युक्त्या तदुपासकस्य तदुपलब्धिस्थानमुक्तम् । बुद्धिं द्रव्येषु रूपादिमत्सु ग्राह्येषु सृजति प्रेरयति । अयस्कान्त इव लोहम् । परावरामात्मानात्मविषयत्वेनोत्तमाधमाम् । कुलालश्चक्रमिव बुद्धिर्व्यापाराविष्टेव मनो व्यापारयति आत्मा तु न तथेत्यर्थः ॥ २२ ॥ ननु बुद्धेरेव कर्तृत्वेन सर्व व्यवहारनिर्वाहे सति किं क्लीबसदृशेनात्मान्तरेणेत्याशंक्याह । बुद्धेरिति । बुद्धितदभावयोर्या वेदना ज्ञानं साक्षिरूपं बुधैर्योगिभिर्बुद्धेः सकाशाद्विविक्ततया दृश्यते युक्त्याऽनुभवेन च गृह्यते । एष तदेव ज्ञानं क्षेत्रज्ञभावन आत्मप्रकाशको विधिरज्ञातज्ञापनं स्वप्रकाशमित्यर्थः । न हि लयोदयवत्या बुद्धेरात्मत्वं सम्भवति । कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ २३ ॥ मनस इति । बुद्धिमनसोरन्यतरस्य कर्तृत्वं करणत्वं वाऽस्तु किमुभयकल्पनयेत्याशयः ॥ २४ ॥ कार्यभेदात् द्वयं कल्प्यत इत्याह । बुद्धिरिति । बुद्धिरतीवात्मानुगा अत्यन्तमात्मना सह तादात्म्यं प्राप्ता लोहपिण्ड इवाग्निना । अतः सा आत्मचैतन्यानुविद्धा । उत्पातेन उत्क्रान्त्यादिना । विधीयते वशीक्रियते । तथा चोत्पातवत्या अनुगत आत्माऽपि उत्पातवान् जलचन्द्रचाञ्चल्यन्यायेन भवति । एतेन बुद्ध्यात्मनोरन्योन्याध्यासो दर्शितः । इममेवाश्रित्य तार्किकास्तयोर्धर्मधर्मिभावमुपयन्ति । ननु अध्यस्यन्तामुपाहितेऽप्युपाधिधर्माः घटाकाशे इव घटगतिर्न तु विपरीतमपि घटे आकाशगतस्यास्पर्शत्वादेरदर्शनादित्याशङ्क्याह । तदाश्रिता हि सा ज्ञेयेति । प्रसिद्धं हि आत्मचैतन्यं बुध्याश्रितमत एव बौद्धा बुद्धिरेव चेतनेति वदन्ति । घटशब्दोऽयमिति दृष्टान्तेऽपि शब्दवत्त्वस्याकाशधर्मस्य घटेऽध्यासदर्शनात् । ननु अत्रान्योऽन्यस्मिन्नन्योऽन्यधर्मयोरेवाध्यास उत धर्मिणोरपि । आद्ये धर्मिणोः समसत्त्वेन द्वैतापत्तिः । अन्त्ये द्वयोरपि मिथ्यात्वापत्त्या शून्यशेषतापत्तिरित्याशङ्क्याह बुद्धिस्तस्यैषिणी भवेदिति । बुद्धिः स्वरूपासिद्ध्यर्थमात्मानमधिष्ठानमिच्छति । रज्जूरग इव रज्जुम् । तथा च धर्माणामेवान्योन्याध्यासो न तु धर्मिणोः शुक्तौ रजतस्येव रजते शुक्तेरध्यासाभावात् । अतो नोक्तदोषाद्वयप्रसङ्गः ॥ २५ ॥ ननु आपद्यतां द्वैतं न तु सर्वप्रमाणसिद्धाया बुद्धेर्मिथ्यात्वं वक्तुं शक्यमित्याशङ्क्याह बुद्धिरुत्पद्यते कार्यादिति । विषयेन्द्रियसंयोगादेः कार्यात् बुद्धिरुत्पद्यते तन्निवृत्तौ निवर्तत इति बुद्धेरनित्यत्वं प्रसिद्धम् । नित्यानित्ययोश्चात्मबुद्ध्योर्न धर्मधर्मिभावः सिध्यति । घटे यावद्रूपाभावस्यादर्शनेनात्मनि यावद्दुःखाभावलक्षणस्य मोक्षस्यासिद्धेः। नापि संयोगः। स हि उभयकर्मजो वाऽन्यतरकर्मजो वा मल्लयोः पक्षिवृक्षयोर्वा दृष्टो न च विभुनाऽऽत्मना तादृशः संयोगो बुद्धेरस्ति । आकाशेनेव घटस्य । यत्तु तयोरपि संयोगमभ्युपगच्छन्ति तद्युक्तिशून्यं परिभाषामात्रम् । तस्माद्रज्जूरगयोरिवानिर्वचनीयस्तयोः संबन्ध इति रज्जुवदात्मा नित्यो रज्जूरगवदाविर्भावतिरोभाववती बुद्धिर्मिथ्येति युक्तमुत्पश्यामः। नन्वेवं बुद्धेराकस्मिकत्वे तद्धर्माणां दुःखादीनामप्याकस्मिकत्वापातात् कृतनाशाकृताभ्यागमस्तदवस्थ एवेत्याशङ्क्याह मनस्तूत्पन्नमेव हीति । बुद्धेर्नाशेऽपि तज्जन्यवासनातन्तुसन्तानात्मकं मनोऽस्त्येव । ततश्च पूर्ववासनया बुद्धिरुत्पद्यते बुद्ध्या च वासना विवर्धत इति अनादिरनन्ता चैषा बुद्धिवासनयोर्बीजाङ्कुरवत् सन्ततिः। तदेतदाह बुद्धेरिति । गुणविधानेन सुखाद्याकारपरिणामधारणेन । गुणविधिर्नास्तीति पाठे गुणविधिरुपादानत्वे नास्ति किंतूपादेयत्वमेव । मनस्तूपादानम् । पटतन्तुवदनयोर्भेद इत्यर्थः । तद्गुणवत् तद्वासनायुक्तम् ॥ २६ ॥ विशेषणं व्यावर्तकम् । तस्मात् कार्यभेदान्मनोबुद्ध्योर्भेदस्तेन च वासनाबीजनाशात् संसाराङ्कुरो न जायत इति सिद्धम् ॥२७॥

युधिष्ठिर उवाच ।
अहो बुद्धिमतां श्रेष्ठ शुभा बुद्धिरियं तव ।
विदितं वेदितव्यं ते कस्मात् समनुपृच्छसि॥२८
सर्वज्ञं त्वां कथं मोह आविशत् स्वर्गवासिनम् ।
एवमद्भुतकर्माणमिति मे संशयो महान् ॥　२९
सर्प उवाच ।
सुप्रज्ञमपि चेच्छूरमृद्धिर्मोहयते नरम् ।
वर्तमानः सुखे सर्वो मुह्यतीति मतिर्मम ॥　३०
सोऽहमैश्वर्यमोहेन मदाविष्टो युधिष्ठिर ।
पतितः प्रतिसम्बुद्धस्त्वां तु सम्बोधयाम्यहम्॥३१
कृतं कार्यं महाराज त्वया मम परन्तप ।
क्षीणः शापः सुकृच्छ्रो मे त्वया सम्भाष्य साधुना
अहं हि दिवि दिव्येन विमानेन चरन् पुरा ।
अभिमानेन मत्तः सन् कञ्चिन्नान्यमचिन्तयम् ॥३३
ब्रह्मर्षि-देव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ।
करान् मम प्रयच्छन्ति सर्वे त्रैलोक्यवासिनः ॥
चक्षुषा यं प्रपश्यामि प्राणिनं पृथिवीपते ।
तस्य तेजो हराम्याशु तद्धि दृष्टेर्बलं मम ॥　३५
ब्रह्मर्षीणां सहस्रं हि उवाह शिबिकां मम ।
स मामपनयो राजन् भ्रंशयामास वै श्रियः ॥३६
तत्र ह्यगस्त्यः पादेन वहन् स्पृष्टो मया मुनिः ।
अगस्त्येन ततोऽस्म्युक्तो ध्वंस सर्पेति वै रुषा ३७
ततस्तस्माद्विमानाग्र्यात् प्रच्युतश्च्युतलक्षणः ।
प्रपतन् बुबुधेऽऽत्मानं व्यालीभूतमधोमुखम् ।
आयाचन्तमहं विप्रं शापस्यान्तो भवेदिति ॥ ३८

सर्प उवाच ।
प्रमादात् सम्प्रमूढस्य भगवन् क्षन्तुमर्हसि ।
ततः स मामुवाचेदं प्रपतन्तं कृपान्वितः ॥　३९
युधिष्ठिरो धर्मराजः शापात्त्वां मोक्षयिष्यति ।
अभिमानस्य घोरस्य पापस्य च नराधिप ॥ ४०
फले क्षीणे महाराज फलं पुण्यमवाप्स्यसि ।
ततो मे विस्मयो जातस्तद्दृष्ट्वा तपसो बलम् ४१
ब्रह्म च ब्राह्मणत्वं च येन त्वाहमचूचुदम् ।
सत्यं दमस्तपो दानमहिंसा धर्मनित्यता ॥　४२
साधकानि सदा पुंसां न जातिर्न कुलं नृप ।
अरिष्ट एव ते भ्राता भीमसेनो महाबलः ।
स्वस्ति तेऽस्तु महाराज गमिष्यामि दिवं पुनः ॥
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वाऽऽजगरं देहं मुक्त्वा स नहुषो नृपः ।
दिव्यं वपुः समास्थाय गतस्त्रिदिवमेव ह ॥　४४
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रात्रा भीमेन सङ्गतः ।
धौम्येन सहितः श्रीमानाश्रमं पुनरागमत् ॥　४५
ततो द्विजेभ्यः सर्वेभ्यः समेतेभ्यो यथातथम् ।
कथयामास तत् सर्वं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४६
तच्छ्रुत्वा ते द्विजाः सर्वे भ्रातरश्चास्य ते त्रयः ।
आसन् सुव्रीडिता राजन् द्रौपदी च यशस्विनी
ते तु सर्वे द्विजश्रेष्ठाः पाण्डवानां हितेप्सया ।
मैवमित्यब्रुवन् भीमं गर्हयन्तोऽस्य साहसम्॥४८
पाण्डवास्तु भयान्मुक्तं प्रेक्ष्य भीमं महाबलम् ।
हर्षमाहारयांचक्रुर्विजहुश्च मुदा युताः ॥　४९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आजगरपर्वणि भीममोचने
एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

॥ आजगरपर्व समाप्तम् ॥

## मार्कण्डेय–समास्यापर्व ।

### १८२

वैशम्पायन उवाच ।
निदाघान्तकरः कालः सर्वभूतसुखावहः । | तत्रैव वसतां तेषां प्रावृट् समभिपद्यत ॥　१

जातमपि ज्ञानमैश्वर्यजाद्दर्पान्नश्यतीति ज्ञाततत्त्वोऽपि शमादीनाश्रयेदिति शेषग्रन्थतात्पर्यम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणत्वं ब्रह्मविलक्षणम् । स्पष्टार्थमन्यत् ॥४२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

१८२

उक्तामेव ब्रह्मविद्यां मार्कण्डेयमुखेन नानाऽऽख्यानपूर्वकं प्रपञ्चयिष्यन् तदुपोद्घातत्वेन काम्यकप्रवेशं तावदाह निदाघान्तकरः काल इत्यादिना ॥१॥ 'मुक्तं' इत्यध्याहारः ।

छादयन्तो महाघोषाः खं दिशश्च बलाहकाः ।
प्रववर्षुर्दिवारात्रमसिताः सततं तदा ॥ २
तपात्ययनिकेताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
अपेतार्कप्रभाजालाः सविद्युद्विमलप्रभाः ॥ ३
विरूढशष्पा धरणी मत्तदंशसरीसृपा ।
बभूव पयसा सिक्ता शान्ता सर्वमनोरमा ॥ ४
न स्म प्रज्ञायते किञ्चिदम्भसा समवस्तृते ।
समं वा विषमं वाऽपि नद्यो वा स्थावराणि च ५
क्षुब्धतोया महावेगाः श्वसमाना इवाशुगाः ।
सिन्धवः शोभयांचक्रुः काननानि तपात्यये ॥ ६
नदतां काननान्तेषु श्रूयन्ते विविधाः स्वनाः ।
वृष्टिभिश्छाद्यमानानां वराहमृगपक्षिणाम् ॥ ७
स्तोककाः शिखिनश्चैव पुंस्कोकिलगणैः सह ।
मत्ताः परिपतन्ति स्म दर्दुराश्चैव दर्पिताः ॥ ८
तथा बहुविधाकारा प्रावृण्मेघानुनादिता ।
अभ्यतीता शिवा तेषां चरतां मरुधन्वसु ॥ ९
क्रौञ्चहंससमाकीर्णा शरत् प्रमुदिताऽभवत् ।
रूढकक्षवनप्रस्था प्रसन्नजलनिम्नगा ॥ १०
विमलाकाशनक्षत्रा शरत्तेषां शिवाऽभवत् ।
मृगद्विजसमाकीर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११
दृश्यन्ते शान्तरजसः क्षपा जलदशीतलाः ।
ग्रहनक्षत्रसङ्घैश्च सोमेन च विराजिताः ॥ १२
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च शीतवारिधराः शिवाः ।
नदीः पुष्करिणीश्चैव ददृशुः समलङ्कृताः ॥ १३
आकाशनीकाशतटां तीरवानीरसङ्कुलाम् ।
बभूव चरतां हर्षः पुण्यतीर्थां सरस्वतीम् ॥ १४
ते वै मुमुदिरे वीराः प्रसन्नसलिलां शिवाम् ।
पश्यन्तो दृढधन्वानः परिपूर्णां सरस्वतीम् ॥ १५
तेषां पुण्यतमा रात्रिः पर्वसन्धौ स्म शारदी ।
तत्रैव वसतामासीत् कार्तिकी जनमेजय ॥ १६
पुण्यकृद्भिर्महासत्त्वैस्तापसैः सह पाण्डवाः ।
तत् सर्वं भरतश्रेष्ठाः समूहुर्योगमुत्तमम् ॥ १७
तमिस्राभ्युदये तस्मिन् धौम्येन सह पाण्डवाः ।
सूतैः पौरोगवैश्चैव काम्यकं प्रययुर्वनम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेय-समास्यापर्वणि काम्यकवनप्रवेशे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

## १८३

वैशम्पायन उवाच ।
काम्यकं प्राप्य कौरव्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
कृतातिथ्या मुनिगणैर्निषेदुः सह कृष्णया ॥ १
ततस्तान् परिविश्वस्तान् वसतः पाण्डुनन्दनान् ।
ब्राह्मणा बहवस्तत्र समन्तात् पर्यवारयन् ॥ २
अथाऽब्रवीद्द्विजः कश्चिदर्जुनस्य प्रियः सखा ।
स एष्यति महाबाहुर्वशी शौरिरुदारधीः ॥ ३
विदिता हि हरेर्यूयमिहायाताः कुरूद्वहाः ।
सदा हि दर्शनाकाङ्क्षी श्रेयोऽन्वेषी च वो हरिः ४
बहुवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः ।
स्वाध्यायतपसा युक्तः क्षिप्रं युष्मान् समेष्यति ५
तथैव ब्रुवतस्तस्य प्रत्यदृश्यत केशवः ।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन रथेन रथिनां वरः ॥ ६

---

असिताः कृष्णवर्णाः ॥ २ ॥ तपात्यये वर्षासु निकेता इव मण्डपीभूता इत्यर्थः ॥३॥ समवस्तृते आच्छादिते । स्थावराणि भूतलादीनि॥५॥ आशुगाः बाणवत्तीव्रवेगाः। सिन्धवो नद्यः शोणघर्घराद्याः ॥६॥ स्तोका एव स्तोककाश्चातकाः । 'स्तोकश्चातकेऽल्पे चातके पुमान्' इति मेदिनी । दर्दुरा मण्डूकाः ॥ ८ ॥ मरुधन्वसु गिरेः शुष्कस्थानेषु ॥ ९ ॥ रूढकक्षाणि बहुतृणानि वनानि प्रस्थशब्दोदितानि सानूनि च यस्यां सा तथा । 'प्रस्थो स्त्रियां मानभेदे सानावस्त्युच्चवस्तुनि' इति मेदिनी ॥ १० ॥ नीकाशः सदृशः ॥ १४ ॥ कार्तिकी कृत्तिकायुक्ता पौर्णमासी ॥ १६ ॥ योगं युज्यते रथादाविति व्युत्पत्त्या वाहनादिकं समूहुरारोपितभारं कृतवन्तः ॥ १७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

१८३

काम्यकमिति ॥ १ ॥ शौरिः कृष्णः ॥ ३ ॥ आयाता विदिता इत्यन्वयः । वः युष्माकं श्रेयोऽन्वेषी ॥ ४ ॥

मघवानिव पौलोम्या सहितः सत्यभामया ।
उपायाद्देवकीपुत्रो दिदृक्षुः कुरुसत्तमान् ॥ ७
अवतीर्य रथात् कृष्णो धर्मराजं यथाविधि ।
ववन्दे मुदितो धीमान् भीमं च बलिनां वरम् ॥ ८
पूजयामास धौम्यं च यमाभ्यामभिवादितः ।
परिष्वज्य गुडाकेशं द्रौपदीं पर्यसान्त्वयत् ॥ ९
स दृष्ट्वा फाल्गुनं वीरं चिरस्य प्रियमागतम् ।
पर्यष्वजत दाशार्हः पुनः पुनररिन्दमः ॥ १०
तथैव सत्यभामाऽपि द्रौपदीं परिषस्वजे ।
पाण्डवानां प्रियां भार्यां कृष्णस्य महिषी प्रिया ॥ ११
ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सभार्याः सपुरोहिताः ।
आनर्चुः पुण्डरीकाक्षं परिवव्रुश्च सर्वशः ॥ १२

कृष्णस्तु पार्थेन समेत्य विद्वान्
धनञ्जयेनासुरतर्जनेन ।
बभौ यथा भूतपतिर्महात्मा
समेत्य साक्षात् भगवान् गुहेन ॥ १३
ततः समस्तानि किरीटमाली
वनेषु वृत्तानि गदाग्रजाय ।
उक्त्वा यथावत् पुनरन्वपृच्छत्
कथं सुभद्रा च स चाभिमन्युः ॥ १४
स पूजयित्वा मधुहा यथावत्
पार्थं च कृष्णां च पुरोहितं च ।
उवाच राजानमभिप्रशंसन्
युधिष्ठिरं तत्र सहोपविश्य ॥ १५
धर्मः परः पाण्डवराज्यलाभात्
तस्यार्थमाहुस्तप एव राजन् ।
सत्यार्जवाभ्यां चरता स्वधर्मं
जितस्त्वयाऽयं च परश्च लोकः ॥ १६
अधीतमग्रे चरता व्रतानि
सम्यग्धनुर्वेदमवाप्य कृत्स्नम् ।
क्षात्रेण धर्मेण वसूनि लब्ध्वा
सर्वे ह्यवाप्ताः क्रतवः पुराणाः ॥ १७
न ग्राम्यधर्मेषु रतिस्तवास्ति
कामान्न किञ्चित् कुरुषे नरेन्द्र ।
न चार्थलोभात् प्रजहासि धर्मं
तस्मात् प्रभावादसि धर्मराजः ॥ १८

दानं च सत्यं च तपश्च राजन्
श्रद्धा च बुद्धिश्च क्षमा धृतिश्च ।
अवाप्य राष्ट्राणि वसूनि भोगा-
नेषा परा पार्थ सदा रतिस्ते ॥ १९
यदा जनौघः कुरुजाङ्गलानां
कृष्णां सभायामवशामपश्यत् ।
अपेतधर्मव्यवहारवृत्तं
सहेत तत् पाण्डव कस्त्वदन्यः ॥ २०
असंशयं सर्वसमृद्धकामः
क्षिप्रं प्रजाः पालयिताऽसि सम्यक् ।
इमे वयं निग्रहणे कुरूणां
यदि प्रतिज्ञा भवतः समाप्ता ॥ २१
धौम्यं च भीमं च युधिष्ठिरं च
यमौ च कृष्णां च दशार्हसिंहः ।
उवाच दिष्ट्या भवतां शिवेन
प्राप्तः किरीटी मुदितः कृतास्त्रः ॥ २२
प्रोवाच कृष्णामपि याज्ञसेनीं
दशार्हभर्ता सहितः सुहृद्भिः ।
दिष्ट्या समग्राऽसि धनंजयेन
समागतेत्येवमुवाच कृष्णः ॥ २३
कृष्णे धनुर्वेदरतिप्रधाना-
स्तवात्मजास्ते शिशवः सुशीलाः ।
सद्भिः सदैवाचरितं सुहृद्भि-
श्चरन्ति पुत्रास्तव याज्ञसेनि ॥ २४
राज्येन राष्ट्रैश्च निमन्त्र्यमाणाः
पित्रा च कृष्णे तव सोदरैश्च ।
न यज्ञसेनस्य न मातुलानां
गृहेषु बाला रतिमाप्नुवन्ति ॥ २५
आनर्तमेवाभिमुखाः शिवेन
गत्वा धनुर्वेदरतिप्रधानाः ।
तवात्मजा वृष्णिपुरं प्रविश्य
न दैवतेभ्यः स्पृहयन्ति कृष्णे ॥ २६
यथा त्वमेवार्हसि तेषु वृत्तं
प्रयोक्तुमार्या च यथैव कुन्ती ।
तेष्वप्रमादेन तथा करोति
तथैव भूयश्च तथा सुभद्रा ॥ २७

भूतपती रुद्रः । गुहेन कार्तिकेयेन ॥ १३ ॥ मधुहा मधुसूदनः ॥ १५ ॥ तस्यार्थं धर्मस्य वृद्ध्यर्थम् ॥ १६ ॥ एषा दानादिरूपा सदा रतिः नित्यं प्रीतिविषयः ॥ १९ ॥ निग्रहणे यत्ताः स्म इति शेषः ॥ २१ ॥ तवात्मजाः प्रतिविन्ध्यादयः ॥ २४ ॥ आनर्तं द्वारकादेशम् ॥ २६ ॥ यथा त्वमर्हसि तथा सुभद्राऽर्हति । यथा कुन्ती प्रयोक्तुमर्हति तथा सुभद्राऽप्यर्हति । यथा चार्हति तथैव करोति चेति सम्बन्धः ॥ २७ ॥

यथाऽनिरुद्धस्य यथाऽभिमन्यो-
र्यथा सुनीथस्य यथैव भानोः ।
तथा विनेता च गतिश्च कृष्णे
तवात्मजानामपि रौक्मिणेयः ॥ २८

गदासिचर्मग्रहणेषु शूरा-
नस्त्रेषु शिक्षासु रथाश्वयाने ।
सम्यग्विनेता विनयेदतन्द्री-
स्तांश्चाभिमन्युः सततं कुमारः ॥ २९

स चापि सम्यक् प्रणिधाय शिक्षां
शस्त्राणि चैषां विधिवत् प्रदाय ।
तवात्मजानां च तथाऽभिमन्योः
पराक्रमैस्तुष्यति रौक्मिणेयः ॥ ३०

यथा विहारं प्रसमीक्षमाणाः
प्रयान्ति पुत्रास्तव याज्ञसेनि ।
एकैकमेषामनुयान्ति तत्र
रथाश्च यानानि च दन्तिनश्च ॥ ३१

अथाब्रवीद्धर्मराजं तु कृष्णो
दशार्हयोधाः कुकुरान्धकाश्च ।
एते निदेशं तव पालयन्त-
स्तिष्ठन्तु यत्रेच्छसि तत्र राजन् ॥ ३२

आवर्ततां कार्मुकवेगवाता
हलायुधप्रग्रहणा मधूनाम् ।
सेना तवार्थेषु नरेन्द्र यत्ता
ससादिपत्त्यश्वरथा सनागा ॥ ३३

प्रस्थाप्यतां पाण्डव धार्तराष्ट्रः
सुयोधनः पापकृतां वरिष्ठः ।
स सानुबन्धः स सुहृद्गणश्च
भौमस्य सौभाधिपतेश्च मार्गम् ॥ ३४

कामं तथा तिष्ठ नरेन्द्र तस्मिन्
यथा कृतस्ते समयः सभायाम् ।
दाशार्हयोधैस्तु हतारियोधं
प्रतीक्षतां नागपुरं भवन्तम् ॥ ३५

व्यपेतमन्युर्व्यपनीतपाप्मा
विहृत्य यत्रेच्छसि तत्र कामम् ।
ततः प्रसिद्धं प्रथमं विशोकः
प्रपत्स्यसे नागपुरं सराष्ट्रम् ॥ ३६

ततस्तदाज्ञाय मतं महात्मा
यथावदुक्तं पुरुषोत्तमेन ।
प्रशस्य विप्रेक्ष्य च धर्मराजः
कृताञ्जलिः केशवमित्युवाच ॥ ३७

असंशयं केशव पाण्डवानां
भवान् गतिस्त्वच्छरणा हि पार्थाः ।
कालोदये तच्च ततश्च भूयः
कर्ता भवान् कर्म न संशयोऽस्ति ॥ ३८

यथाप्रतिज्ञं विहृतश्च कालः
सर्वाः समा द्वादश निर्जनेषु ।
अज्ञातचर्यां विधिवत् समाप्य
भवद्गताः केशव पाण्डवेमाः ॥ ३९

एषैव बुद्धिर्जुषतां सदा त्वां
सत्ये स्थिताः केशव पाण्डवेयाः ।
सदानधर्माः सजनाः सदाराः
सबान्धवास्त्वच्छरणा हि पार्थाः ॥ ४०

वैशम्पायन उवाच ।

तथा वदति वार्ष्णेये धर्मराजे च भारत ।
अथ पश्चात् तपोवृद्धो बहुवर्षसहस्रधृक् ॥ ४१
प्रत्यदृश्यत धर्मात्मा मार्कण्डेयो महातपाः ।
अजरश्चामरश्चैव रूपौदार्यगुणान्वितः ॥ ४२
व्यदृश्यत तथा युक्तो यथा स्यात् पञ्चविंशकः ।
तमागतमृषिं वृद्धं बहुवर्षसहस्रिणम् ॥ ४३
आनर्चुर्ब्राह्मणाः सर्वे कृष्णश्च सह पाण्डवैः ।
तमार्चितं सुविश्वस्तमासीनमृषिसत्तमम् ।
ब्राह्मणानां मतेनाह पाण्डवानां च केशवः ॥ ४४

कृष्ण उवाच ।

शुश्रूषवः पाण्डवास्ते ब्राह्मणाश्च समागताः ।
द्रौपदी सत्यभामा च तथाऽहं परमं वचः ॥ ४५
पुरावृत्ताः कथाः पुण्याः सदाचारान् सनातनान् ।
राज्ञां स्त्रीणामृषीणां च मार्कण्डेय विचक्ष्व नः ॥ ४६

वैशम्पायन उवाच ।

तेषु तत्रोपविष्टेषु देवर्षिरपि नारदः ।
आजगाम विशुद्धात्मा पाण्डवानवलोककः ॥ ४७
तमप्यथ महात्मानं सर्वे ते पुरुषर्षभाः ।
पाद्यार्घ्याभ्यां यथान्यायमुपतस्थुर्मनीषिणः ॥ ४८

विनेता शिक्षयिता । रौक्मिणेयः प्रद्युम्नः ॥ २८ ॥ मधूनां माथुराणाम् । हलायुधः प्रग्रहणो नियन्ता यस्याः सा सेना । यत्ता सन्नद्धा ॥ ३३ ॥ भौमस्य नरकासुरस्य सौभाधिपतेः शाल्वस्य पञ्चविंशकः वर्षैरिति शेषः ॥ ४३ ॥ सुविश्वस्तं भगवन्मायादौ दृढनिश्चयम् ॥ ४४ ॥ अवलोककः अवलोकनार्थी ॥ ४७ ॥

नारदस्त्वथ देवर्षिर्ज्ञात्वा तांस्तु कृतक्षणान् ।
मार्कण्डेयस्य वदतस्तां कथामन्वमोदत ॥ ४९
उवाच चैनं कालज्ञः स्मयन्निव सनातनः ।
ब्रह्मर्षे कथ्यतां यत् ते पाण्डवेषु विवक्षितम् ॥५०
एवमुक्तः प्रत्युवाच मार्कण्डेयो महातपाः ।
क्षणं कुरुध्वं विपुलमाख्यातव्यं भविष्यति ॥ ५१
एवमुक्ताः क्षणं चक्रुः पाण्डवाः सह तैर्द्विजैः ।
मध्यन्दिने यथाऽऽदित्यं प्रेक्षन्तस्ते महामुनिम् ॥५२

वैशम्पायन उवाच ।

तं विवक्षन्तमालक्ष्य कुरुराजो महामुनिम् ।
कथासञ्जननार्थाय चोदयामास पाण्डवः ॥ ५३
भवान् दैवतदैत्यानामृषीणां च महात्मनाम् ।
राजर्षीणां च सर्वेषां चरितज्ञः पुरातनः ॥ ५४
सेव्यश्चोपासितव्यश्च मतो नः काङ्क्षितश्चिरम् ।
अयं च देवकीपुत्रः प्राप्तोऽस्मानवलोककः ॥ ५५
भवत्येव हि मे बुद्धिर्दृष्ट्वाऽऽत्मानं सुखाच्च्युतम् ।
धार्तराष्ट्रांश्च दुर्वृत्तानृध्यतः प्रेक्ष्य सर्वशः ॥ ५६
कर्मणः पुरुषः कर्ता शुभस्याप्यशुभस्य वा ।
स फलं तदुपाश्नाति कथं कर्ता स्विदीश्वरः ॥५७
कुतो वा सुखदुःखेषु नृणां ब्रह्मविदां वर ।
इह वा कृतमन्वेति परदेहेऽथ वा पुनः ॥ ५८
देही च देहं सन्त्यज्य मृग्यमाणः शुभाशुभैः ।
कथं संयुज्यते प्रेत्य इह वा द्विजसत्तम ॥ ५९
ऐहलौकिकमेवेह उताहो पारलौकिकम् ।
क च कर्माणि तिष्ठन्ति जन्तोः प्रेतस्य भार्गव ६०

मार्कण्डेय उवाच ।

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो यथावद्वदतां वर ।
विदितं वेदितव्यं ते स्थित्यर्थं त्व
अत्र ते कथयिष्यामि तदि

यथेहामुत्र च नरः सुखदुःखमुपाश्नुते ॥ ६२
निर्मलानि शरीराणि विशुद्धानि शरीरिणाम् ।
ससर्ज धर्मतन्त्राणि पूर्वोत्पन्नः प्रजापतिः ॥ ६३
अमोघफलसङ्कल्पाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
ब्रह्मभूता नराः पुण्याः पुराणाः कुरुसत्तम ॥ ६४
सर्वे देवैः समायान्ति स्वच्छन्देन नभस्तलम् ।
ततश्च पुनरायान्ति सर्वे स्वच्छन्दचारिणः ॥६५
स्वच्छन्दमरणाश्चासन् नराः स्वच्छन्दचारिणः ।
अल्पबाधा निरातङ्काः सिद्धार्था निरुपद्रवाः ॥६६
द्रष्टारो देवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम् ।
प्रत्यक्षाः सर्वधर्माणां दान्ता विगतमत्सराः ॥६७
आसन् वर्षसहस्रीयास्तथा पुत्रसहस्रिणः ।
ततः कालान्तरेऽन्यस्मिन् पृथिवीतलचारिणः ६८
कामक्रोधाभिभूतास्ते मायाव्याजोपजीविनः ।
लोभमोहाभिभूताश्च त्यक्ता देहैस्ततो नराः ॥६९
अशुभैः कर्मभिः पापास्तिर्यङ्निरयगामिनः ।
संसारेषु विचित्रेषु पच्यमानाः पुनः पुनः ॥ ७०
मोघेष्टा मोघसङ्कल्पा मोघज्ञाना विचेतसः ।
सर्वाभिशङ्किनश्चैव संवृत्ताः क्लेशदायिनः ॥ ७१
अशुभैः कर्मभिश्चापि प्रायशः परिचिह्निताः ।
दौष्कुल्या व्याधिबहुला दुरात्मानोऽप्र
भवन्त्यल्पायुषः पापा रौद्रकर्म
नाथन्तः सर्वकामानां
जन्तोः प्रेतस्
प्राज्ञ

सनातनः कृष्णः ॥ ५० ॥ 
फलयोर्विपर्ययं दृष्ट्वा पुरुषः कर्मणः
ईश्वरो वा कथंस्वित् कर्ताऽस्तीति धर्मेश्च
समृद्धियुतान् ॥ ५६ ॥ कथंस्विदित्यस्
॥ ५७ ॥ कुतो वेति । स्वभावात् कर्मणो व
परत्रापि वा । कृतं कर्मणा साधिनं सु
॥ ५८ ॥ शुभाशुभैः कर्मभिः सदो वि
वा कारीर्यादिभिर्वृष्ट्याद्यर्थं विहितैः । परत्र व
सति कथं संयुज्यते किमाश्रित्य च कर्माणि तिष्ठन्ति
व्यभिचारादाशुविनाशिलादाश्रयाभावाच्चेति त्रेधा
शङ्काक्षेपः ॥ ५९ ॥ स्थित्यर्थं लोकरक्षार्थम् ॥

आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्रायं कलेवरम् ।
सम्भवत्येव युगपद्योनौ नास्त्यन्तराऽभवः ॥ ७७
तत्रास्य स्वकृतं कर्म छायेवानुगतं सदा ।
फलत्यथ सुखार्हो वा दुःखार्हो वाऽथ जायते ७८
कृतान्तविधिसंयुक्तः स जन्तुर्लक्षणैः शुभैः ।
अशुभैर्वा निरादानो लक्ष्यते ज्ञानदृष्टिभिः ॥ ७९
एषा तावदबुद्धीनां गतिरुक्ता युधिष्ठिर ।
अतः परं ज्ञानवतां निबोध गतिमुत्तमाम् ॥ ८०
मनुष्यास्तप्ततपसः सर्वागमपरायणाः ।
स्थिरव्रताः सत्यपरा गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ ८१
सुशीलाः शुक्लजातीया क्षान्ता दान्ताः सुतेजसः ।
शुचियोन्यन्तरगताः प्रायशः शुभलक्षणाः ॥ ८२
जितेन्द्रियत्वाद्वशिनः शुक्लत्वान्मन्दरोगिणः ।
अल्पाबाधपरित्रासाद्भवन्ति निरुपद्रवाः ॥ ८३
च्यवन्तं जायमानं च गर्भस्थं चैव सर्वशः ।
स्वमात्मानं परं चैव बुध्यन्ते ज्ञानचक्षुषा ॥ ८४
ऋषयस्ते महात्मानः प्रत्यक्षागमबुद्धयः ।
कर्मभूमिमिमां प्राप्य पुनर्यान्ति सुरालयम् ॥ ८५
किञ्चिद्दैवाद्धठात् किञ्चित् किञ्चिदेव स्वकर्मभिः
प्राप्नुवन्ति नरा राजन् मा तेऽस्त्वन्या विचारणा ॥
इमामत्रोपमां चापि निबोध वदतां वर ।
मनुष्यलोके यच्छ्रेयः परं मन्ये युधिष्ठिर ॥ ८७
इह वैकस्य नामुत्र अमुत्रैकस्य नो इह ।
इह वाऽमुत्र चैकस्य नामुत्रैकस्य नो इह ॥ ८८
धनानि येषां विपुलानि सन्ति
नित्यं रमन्ते सुविभूषिताङ्गाः ।
तेषामयं शत्रुवरघ्न लोको
नासौ सदा देहसुखे रतानाम् ॥ ८९
ये योगयुक्तास्तपसि प्रसक्ताः
स्वाध्यायशीला जरयन्ति देहान् ।
जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ता-
स्तेषामसौ नायमरिघ्न लोकः ॥ ९०
ये धर्ममेव प्रथमं चरन्ति
धर्मेण लब्ध्वा च धनानि काले ।
दारानवाप्य क्रतुभिर्यजन्ते
तेषामयं चैव परश्च लोकः ॥ ९१

कलेवरं स्थूलदेहम् । युगपत् देहद्वयेन । सम्भवति संयुज्यते पूर्वत्यागात् प्रागेव तृणजलौकान्यायेनापरमादत्ते न तु तदनन्तरम् । अत एव अन्तरा मध्ये क्षणमात्रमपि अभवोऽसंसारो नास्ति ॥ ७७ ॥ तत्र स्थूलदेहान्तरे । यत्तु मरणानन्तरं ये यावद्गर्भवासमातिवाहिकशरीरारूढो दिवि भुज्यन्तरिक्षे वा भवतीति तत् स्थूलदृष्ट्यैव ज्ञेयम् । उभयत्र भोग- स्थूलातिवाहिकयोर्भेदाभावात् । यथोक्तं वसिष्ठेन- 'क एवायं त्वादृशैश्चित्तदेहकः । आधिभौतिकता ...चिरभावनात्' इति ॥ ७८ ॥ कृतान्तो यमस्त- ...: पुण्यपापफलभोगे नियोगस्तेन संयुक्तस्त- ...: प्राप्तं सुखं दुःखं वा दूरीकर्तुमशक्तः । ...यस्य रूपम् ॥ ७९ ॥ अबुद्धीनां ...स्वर्गनरकरूपा । उत्तमां पुनरावृत्ति- ...जातीयाः शुक्लो योगजो धर्मस्त- ...प्रवचने जातीयर्' । योन्यन्तर- ...भौतिकीं योनिम् ॥८२॥ ...ः ' न तत्र शोको न ...रीरम् ' इति श्रुतेः । ... चापकयोगिनां ...दर्शनम् ' अथ ... । तस्मात् आबाधो दुःखं तत्त्रासात् निरुपद्रवा उप समीपे स्थित्वा द्रवति स्वीयं धर्ममास्रवतीत्युपद्रवोऽन्तःकरणम् । तद्रहिताः एतेन प्रारब्धस्यापि प्रतिघाताय निर्बीजः समाधिः प्रभवतीति दर्शितम् ॥ ८३ ॥ ननु तादृशोऽप्यपान्तरतमा नाम वेदाचार्यः कलिद्वापरयोः सन्धौ सत्यवत्यां व्यासतया समजनि इति मोक्षधर्मेषु । अतः शुक्लजातीयानामपि उत्क्रान्तिगत्या गतयोऽपरिहार्या इत्याशङ्क्याह च्यवन्तमिति । अधिकारिणां तेषां लोकानुग्रहार्थं स्वेच्छया गृहाद्गृहान्तरप्रवेशवदिह परत्र च सञ्चारो न कर्माधीनतयाऽस्माकमिव दुःखाय भवतीत्याशयः । तथा निर्णीतं यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणामित्यत्र ॥ ८४ ॥ दैवात् मूढोन्मत्तजडभरतादिभिर्यल्लभ्यते तद्दैवादेव । हठात् योगसिद्धैर्विश्वामित्रादिभिरितरैः स्वकर्मभिः । अन्या तेषामन्यतमा एकैव काचित् स्थितिरस्तीति विचारणा ते तव माऽस्तु ॥ ८६ ॥ एवमात्मविदां स्वातन्त्र्यमुक्त्वा इतरेषां स्थितिचातुर्विध्यमाह इमामिति ॥ ८७ ॥ इह वेति । परं श्रेय इत्यनुकृष्यते । वाशब्द एवार्थे द्विरावर्तते । एकस्य इहैव परं श्रेयोऽस्ति नामुत्र परलोके । एकस्याऽमुत्रैवास्ति नत्विह । इह चामुत्र च एकस्य श्रेयोऽस्ति । एकस्य तूभयत्रापि नास्तीति ॥ ८८ ॥ इममेव श्लोकं व्याचष्टे धनानीत्यादिना ॥ ८९ ॥ ये इति । तेषामसौ लोक एव नत्वयम् ॥ ९० ॥

ये नैव विद्यां न तपो न दानं
न चापि मूढाः प्रजने यतन्ति ।
न चानुगच्छन्ति सुखान्नभोगां-
स्तेषामयं चैव परश्च लोकः ॥ ९२

सर्वे भवन्तस्त्वतिवीर्यसत्त्वा
दिव्यौजसः संहननोपपन्नाः ।
लोकादमुष्मादवनिं प्रपन्नाः
स्वधीतविद्याः सुरकार्यहेतोः ॥ ९३

कृत्वैव कर्माणि महान्ति शूरा-
स्तपोदमाचारविहारशीलाः ।
देवानृषीन् प्रेतगणांश्च सर्वान्
सन्तर्पयित्वा विधिना परेण ॥ ९४

स्वर्गं परं पुण्यकृतो निवासं
क्रमेण सम्प्राप्स्यथ कर्मभिः स्वैः ।
माभूद्विशङ्का तव कौरवेन्द्र
दृष्ट्वाऽऽत्मनः क्लेशमिमं सुखार्हम् ॥ ९५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि
त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

## १८४

वैशम्पायन उवाच ।
मार्कण्डेयं महात्मानमूचुः पाण्डुसुतास्तदा ।
माहात्म्यं द्विजमुख्यानां श्रोतुमिच्छाम कथ्यताम् ॥ १
एवमुक्तः स भगवान् मार्कण्डेयो महातपाः ।
उवाच सुमहातेजाः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २

मार्कण्डेय उवाच ।
हैहयानां कुलकरो राजा परपुरञ्जयः ।
कुमारो रूपसम्पन्नो मृगयां व्यचरद्बली ॥ ३
चरमाणस्तु सोऽरण्ये तृणवीरुत्समावृते ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं ददर्श मुनिमन्तिके ॥ ४
स तेन निहतोऽरण्ये मन्यमानेन वै मृगम् ।
व्यथितः कर्म तत् कृत्वा शोकोपहतचेतनः ॥ ५
जगाम हैहयानां वै सकाशं प्रथितात्मनाम् ।
राज्ञां राजीवनेत्रोऽसौ कुमारः पृथिवीपतिः ।
तेषां च तद्यथावृत्तं कथयामास वै तदा ॥ ६
तं चापि हिंसितं तात मुनिं मूलफलाशिनम् ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा च ते तत्र बभूवुर्दीनमानसाः ॥ ७
कस्यायमिति ते सर्वे मार्गमाणास्ततस्ततः ।
जग्मुश्चारिष्टनेमेोऽथ तार्क्ष्यस्याश्रममञ्जसा ॥ ८
तेऽभिवाद्य महात्मानं तं मुनिं नियतव्रतम् ।
तस्थुः सर्वे स तु मुनिस्तेषां पूजामथाहरत् ॥ ९
ते तमूचुर्महात्मानं न वयं सत्क्रियां मुने ।
त्वत्तोऽर्हाः कर्मदोषेण ब्राह्मणो हिंसितो हि नः ॥ १०
तानब्रवीत् स विप्रर्षिः कथं वो ब्राह्मणो हतः ।
क्व चासौ ब्रूत सहिताः पश्यध्वं मे तपोबलम् ॥ ११
ते तु तत् सर्वमखिलमाख्यायास्मै यथातथम् ।
नापश्यंस्तमृषिं तत्र गतासुं ते समागताः ॥ १२
अन्वेषमाणाः सव्रीडाः स्वप्नवद्गतचेतनाः ।
तानब्रवीत्तत्र मुनिस्तार्क्ष्यः परपुरञ्जयः ॥ १३
स्यादयं ब्राह्मणः सोऽथ युष्माभिर्यो विनाशितः ।
पुत्रो ह्ययं मम नृपास्तपोबलसमन्वितः ॥ १४
ते तु दृष्ट्वैव तमृषिं विस्मयं परमं गताः ।
महदाश्चर्यमिति वै ते ब्रुवाणा महीपते ॥ १५

---

प्रजने पुत्रोत्पादने ॥ ९२ ॥ भवन्तस्तु लोकद्वयेऽपि श्रेयांस इत्याह सर्वे भवन्त इति ॥ ९३ ॥ तस्मात् धर्माधर्मफलयोर्वैपरीत्यं यत्त्वया प्रागुक्तं तत्तथा न मन्तव्यमित्युपसंहरति माभूदिति ॥ ९५ ॥ मार्कण्डेयसमास्यायां सहासने इत्यर्थः 'आस उपवेशने'ऽस्मात् 'ण्यत्' । इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

१८४

ब्रह्मविदा शुक्रजातायानां स्वच्छन्दमरणं तेषामित्यादिना प्रोक्तं महाभाग्यं प्रश्नपूर्वकं विवरीतुमयमध्याय आरभ्यते मार्कण्डेयमिति । कथ्यतां त्वया ॥१॥ कुमारत्वादविवेकित्वं सूचितम् ॥ ३ ॥ उत्तरासङ्गः प्रावरणम् ॥४॥ अरिष्टनेमिशब्द इकारान्तोऽप्यत्र मकारान्तोऽपि ज्ञेयः ॥ ८ ॥ तार्क्ष्यः तृक्षस्य कश्यपस्यापत्यम् ॥ १३ ॥ स्यादयमित्युक्त्या निर्दिशति ॥ १४ ॥

मृतो ह्ययमुपानीतः कथं जीवितमाप्तवान् ।
किमेतत्तपसो वीर्यं येनायं जीवितः पुनः ॥ १६
श्रोतुमिच्छामहे विप्र यदि श्रोतव्यमित्युत ।
स तानुवाच नास्माकं मृत्युः प्रभवते नृपाः ॥१७
कारणं वः प्रवक्ष्यामि हेतुयोगसमासतः ।
सत्यमेवाभिजानीमो नानृते कुर्महे मनः ।
स्वधर्ममनुतिष्ठामस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ १८
यद्ब्राह्मणानां कुशलं तदेषां कथयामहे ।
नैषां दुश्चरितं ब्रूमस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ १९

अतिथीनन्नपानेन भृत्यानत्यशनेन च ।
सम्भोज्य शेषमश्नीमस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥२०
क्षान्ता दान्ताः क्षमाशीलास्तीर्थदानपरायणाः ।
पुण्यदेशनिवासाच्च तस्मान्मृत्युभयं न नः ।
तेजस्विदेशवासाच्च तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ २१
एतद्वै लेशमात्रं वः समाख्यातं विमत्सराः ।
गच्छध्वं सहिताः सर्वे न पाप्माद्भयमस्ति वः॥२२
एवमस्त्विति ते सर्वे प्रतिपूज्य महामुनिम् ।
स्वदेशमगमन् हृष्टा राजानो भरतर्षभ ॥ २३

इति श्रीमहाभारत आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणमाहात्म्यकथने चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

## १८५

मार्कण्डेय उवाच ।

भूय एव महाभाग्यं ब्राह्मणानां निबोध मे ।
वैन्यो नामेह राजर्षिरश्वमेधाय दीक्षितः ॥ १
तमत्रिर्गन्तुमारेभे वित्तार्थमिति नः श्रुतम् ।
भूयोऽर्थं नानुरुध्यत् स धर्मव्यक्तिनिदर्शनात् ॥२
स विचिन्त्य महातेजा वनमेवान्वरोचयत् ।
धर्मपत्नीं समाहूय पुत्रांश्चेदमुवाच ह ॥ ३
प्राप्स्यामः फलमत्यन्तं बहुलं निरुपद्रवम् ।
अरण्यगमनं क्षिप्रं रोचतां वो गुणाधिकम् ॥ ४

तं भार्या प्रत्युवाचाथ धर्ममेवानुतन्वती ।
वैन्यं गत्वा महात्मानमर्थयस्व धनं बहु ॥ ५
स ते दास्यति राजर्षिर्यजमानोऽर्थिने धनम् ।
तत आदाय विप्रर्षे प्रतिगृह्य धनं बहु ॥ ६
भृत्यान् सुतान् संविभज्य ततो व्रज यथेप्सितम् ।
एष वै परमो धर्मो धर्मविद्भिरुदाहृतः ॥ ७

अत्रिरुवाच ।

कथितो मे महाभागे गौतमेन महात्मना ।
वैन्यो धर्मार्थसंयुक्तः सत्यव्रतसमन्वितः ॥ ८

---

हेतुयोगो युक्तिसम्बन्धः। समासः सङ्क्षेपः। ताभ्यामिति पंचम्यर्थे तसिः। सत्यमेवाभिजानीम इत्यादिना सत्यादीनि मृत्युजयसाधनान्युच्यन्ते॥१८॥यदिति ब्राह्मणनिन्दाशन्याः स्तुतिपराश्च स्म इत्यर्थः॥१९॥ भृत्यान् भार्यादीन् अत्यशनेन अशनादधिकेन दानमानादिना ॥२०॥ पुण्यदेशो गङ्गातीरादिः। तेजस्विनां योगसिद्धानां देशः सामीप्यम् । तत्सङ्गादित्यर्थः ॥ २१ ॥ एतद्वै इति । यौष्माकीणं हत्यादोषमपि संलापमात्राद्वयं हन्तुं समर्थाः स्म इत्यर्थः ॥ २२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

१८५

मृत्युञ्जयहेतुः पूर्वोक्तः सत्यादिधर्मो वनस्थानामेव युज्यते न तु गृहस्थानाम् : तेषां दुष्प्रतिग्रहब्रह्मविद्वेषादिना दोषप्रसक्त्या तादृशधर्मसम्भवादित्याशयवानध्यायमारभते-भूय इति॥१॥ सोऽत्रिरर्थं भूयो नानुरुध्यत् अत्यन्तमर्थार्थी न बभूव । कुतः धर्मव्यक्तिर्धर्मस्य फलद्वाराऽभिव्यक्तिः फलव्यतया हि धर्मो नश्यति अतस्तद्रक्षणार्थं नैच्छदित्यर्थः ॥ २ ॥ वनं गन्तुमिति शेषः ॥ ३ ॥ निरुपद्रवमक्षयं मोक्षाख्यम् ॥ ४॥ धर्मं यज्ञादिकमनुतन्वती विस्तारयन्ती हेतौ शतृप्रत्ययः । धर्मार्थं धनमेवार्जयस्वेत्युवाचेत्यर्थः ॥५॥ भृत्यानित्यतिथिदेवतादीनां सुतानिति भार्यादीनां चोपलक्षणम् । धर्मविद्भिर्मन्वादिभिः । 'अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य सुतानपि । अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैर्मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ' इति वदद्भिः ॥ ७ ॥ ' दश सूनासहस्राणि नित्यं वहति सौनिकः। तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः' इति मनुवाक्यादेव राजप्रतिग्रहे दोषं जानन्नत्रिस्तत्र विरक्तिमुपन्यस्यति कथित इत्यादिना ॥ ८ ॥

किन्त्वस्ति तत्र द्वेष्टारो विवसन्ति हि मे द्विजाः।
यथा मे गौतमः प्राह ततो न व्यवसाम्यहम् ॥ ९
तत्र स्म वाचं कल्याणीं धर्मकामार्थसंहिताम् ।
मयोक्तामन्यथा ब्रूयुस्ततस्ते वै निरर्थिकाम् ॥ १०
गमिष्यामि महाप्राज्ञ रोचते मे वचस्तव ।
गाश्च मे दास्यते वैन्यः प्रभूतं चार्थसञ्चयम् ॥ ११
एवमुक्त्वा जगामाशु वैन्ययज्ञं महातपाः ।
गत्वा च यज्ञायतनमत्रिस्तुष्टाव तं नृपम् ॥ १२
वाक्यैर्मङ्गलसंयुक्तैः पूजयानोऽब्रवीद्वचः ।

अत्रिरुवाच ।

राजन् धन्यस्त्वमीशश्च भुवि त्वं प्रथमो नृपः॥१३
स्तुवन्ति त्वां मुनिगणास्त्वदन्यो नास्ति धर्मवित्
तमब्रवीदृषिः क्रुद्धो वचनं वै महातपाः ॥ १४

गौतम उवाच ।

मैवमत्रे पुनर्ब्रूया न ते प्रज्ञा समाहिता ।
अत्र नः प्रथमं स्थाता महेन्द्रो वै प्रजापतिः॥ १५
अथात्रिरपि राजेन्द्र गौतमं प्रत्यभाषत ।
अयमेव विधाता हि यथैवेन्द्रः प्रजापतिः ।
त्वमेव मुह्यसे मोहात् प्रज्ञानं तवास्ति ह ॥ १६

गौतम उवाच ।

जानामि नाहं मुह्यामि त्वमेवात्र विमुह्यसे ।
स्तौषि त्वं दर्शनप्रेप्सू राजानं जनसंसदि ॥ १७
न वेत्थ परमं धर्मं न चावैषि प्रयोजनम् ।
बालस्त्वमसि मूढश्च वृद्धः केनापि हेतुना ॥ १८
विवदन्तौ तथा तौ तु मुनीनां दर्शने स्थितौ ।
ये तस्य यज्ञे संवृत्तास्तेऽपृच्छन्त कथं त्विमौ १९
प्रवेशः केन दत्तोऽयमुभयोर्वैन्यसंसदि ।
उच्चैः समभिभाषन्तौ केन कार्येण धिष्ठितौ ॥ २०

ततः परमधर्मात्मा काश्यपः सर्वधर्मवित् ।
विवादिनावनुप्राप्तौ तावुभौ प्रत्यवेदयत् ॥ २१
अथाब्रवीत् सदस्यांस्तु गौतमो मुनिसत्तमान् ।
आवयोर्व्याहृतं प्रश्नं शृणुत द्विजसत्तमाः ॥ २२
वैन्यं विधातेत्याहात्रिरत्र नौ संशयो महान् ।
श्रुत्वैव तु महात्मानो मुनयोऽभ्यद्रवन् द्रुतम् २३
सनत्कुमारं धर्मज्ञं संशयच्छेदनाय वै ।
स च तेषां वचः श्रुत्वा यथातत्त्वं महातपाः ।
प्रत्युवाचाथ तानेवं धर्मार्थसहितं वचः ॥ २४

सनत्कुमार उवाच ।

ब्रह्म क्षत्रेण सहितं क्षत्रं च ब्रह्मणा सह ।
संयुक्तौ दहतः शत्रून् वनानीवाग्निमारुतौ ॥ २५
राजा वै प्रथितो धर्मः प्रजानां पतिरेव च ।
स एव शक्रः शुक्रश्च स धाता च बृहस्पतिः ॥२६
प्रजापतिर्विराट् सम्राट् क्षत्रियो भूपतिर्नृपः ।
य एभिः स्तूयते शब्दैः कस्तं नार्चितुमर्हति ॥२७
पुरायोनिर्युधाजिच्च अभिया मुदितो भवः ।
स्वर्णेता सहजिद्बभ्रुरिति राजाऽभिधीयते ॥ २८
सत्ययोनिः पुराविच्च सत्यधर्मप्रवर्तकः ।
अधर्मादृषयो भीता बलं क्षत्रे समादधन् ॥ २९
आदित्यो दिवि देवेषु तमो नुदति तेजसा ।
तथैव नृपतिर्भूमावधर्मान्नुदते भृशम् ॥ ३०
ततो राज्ञः प्रधानत्वं शास्त्रप्रामाण्यदर्शनात् ।
उत्तरः सिध्यते पक्षो येन राजेति भाषितम् ॥ ३१

मार्कण्डेय उवाच ।

ततः स राजा संहृष्टः सिद्धे पक्षे महामनाः ।
तमत्रिमब्रवीत् प्रीतः पूर्वं येनाभिसंस्तुतः ॥ ३२

---

व्यवसामि उद्यमं करोमि॥९॥ निरर्थिकामपि वाचं वदतां पराजयोऽपि पापावह इति भावः। तथा च स्मृतिः–'गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः । अरण्ये निर्जले देशे भवति ब्रह्मराक्षसः ' इति ॥१०॥ एवं जानन्नपि स्नेहदोषात्तत् कर्तुं प्रतिजानीते- गमिष्यामीति॥११॥ पूजयान इति । 'तङ्' कर्तृगामित्वात् स्तुतिफलस्य युक्तः । धन्यो धनार्हः। ईश ईशिता नियन्ता प्रथमः हिरण्यगर्भ इव अग्रजो नृपो मनुष्याणां रक्षकः ॥ १३ ॥ अत्र परलोकमेव बहु मन्वानो गौतम आह- मैवमिति ॥१५॥ तत्रेन्द्र इवात्र राजेव महेन्द्र इति विवक्षायां अत्रिः परपक्षं दूषयति–अथेति ॥ १६॥ दर्शने दृष्टिपथे ॥ १९ ॥ नौ आवयोः ॥ २३ ॥ ब्राह्मेण बलेन राज्ञो बलं न तु स्वकीयमिति. समाधानग्रन्थार्थस्तेन गौतमोक्ता

निन्दाऽपि व्यर्था । नाप्यत्रिप्रोक्ता स्तुतिरपि निर्मूलेति ज्ञेयम् । यद्यपि लोभमूलकत्वं स्तुतिपक्षे स्याप्रमाण्यकारणं तथाऽप्यविद्यमानैरपि विशेषणैर्धनार्थिना राजा स्तोतव्य इति सनत्कुमाराशयः ॥ २५ ॥ प्रथितः प्रथां गतः । धर्मो धर्मस्थापकः । शक्रो रक्षिता । शुक्रो नीतिवित् । धाता अत एव जनकः । बृहस्पतिः हितोपदेष्टा ॥ २६ ॥ पुरायोनिः- धर्मप्रवर्तकत्वेन प्रथमं कारणम् । युधाजित्-सङ्ग्रामे जयकर्तृत्वेनोपद्रवनाशकः । अभियाः–अभितो याति यामिकवद्रक्षणार्थमित्यभियाः। मुदितो भवः–ईश्वरः । स्वर्णेता–स्वर्गं प्रति गमयिता । सहजित् सद्यो जयशीलः। बभ्रुर्विष्णुः।'बभ्रुर्ना नकुले विष्णौ त्रिपुले पिङ्गले त्रिषु'इति वलशर्मा॥२८॥अधर्मादिति । सर्वं ब्राह्मं बलं क्षत्रेऽस्तीत्यर्थः ॥ २९ ॥

यस्मात् पूर्वं मनुष्येषु ज्यायांसं मामिहाब्रवीः ।
सर्वदेवैश्च विप्रर्षे सम्मितं श्रेष्ठमेव च ॥ ३३
तस्मात्तेऽहं प्रदास्यामि विविधं वसु भूरि च ।
दासीसहस्रं श्यामानां सुवस्त्राणामलङ्कृतम् ॥ ३४
दशकोटीर्हिरण्यस्य रुक्मभारांस्तथा दश ।
एतद्ददामि विप्रर्षे सर्वज्ञस्त्वं मतो हि मे ॥ ३५
तदत्रिर्न्यायतः सर्वं प्रतिगृह्याभिसत्कृतः ।
प्रत्युज्जगाम तेजस्वी गृहानेव महातपाः ॥ ३६
प्रदाय च धनं प्रीतः पुत्रेभ्यः प्रयतात्मवान् ।
तपः समभिसन्धाय वनमेवान्वपद्यत ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणमाहात्म्ये पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

## १८६

मार्कण्डेय उवाच ।
अत्रैव च सरस्वत्या गीतं परपुरञ्जय ।
पृष्टया मुनिना वीर श्रृणु तार्क्ष्येण धीमता ॥ १
तार्क्ष्य उवाच ।
किं नु श्रेयः पुरुषस्येह भद्रे
कथं कुर्वन्न च्यवते स्वधर्मात् ।
आचक्ष्व मे चारुसर्वाङ्गि कुर्यात्
त्वया शिष्टो न च्यवेयं स्वधर्मात् ॥ २
कथं वाऽग्निं जुहुयां पूजये वा
कस्मिन् काले केन धर्मो न नश्येत् ।
एतत् सर्वं सुभगे प्रब्रवीहि
यथा लोकान् विरजाः सञ्चरेयम् ॥ ३
मार्कण्डेय उवाच ।
एवं पृष्टा प्रीतियुक्तेन तेन
शुश्रूषुमीक्ष्योत्तमबुद्धियुक्तम् ।
तार्क्ष्यं विप्रं धर्मयुक्तं हितं च
सरस्वती वाक्यमिदं बभाषे ॥ ४
सरस्वत्युवाच ।
यो ब्रह्म जानाति यथा प्रदेशं
स्वाध्यायनित्यः शुचिरप्रमत्तः ।
स वै पारं देवलोकस्य गन्ता
सहामरैः प्राप्नुयात् प्रीतियोगम् ॥ ५
तत्र स्म रम्या विपुला विशोकाः
सुपुष्पिताः पुष्करिण्यः सुपुण्याः ।
अकर्दमा मीनवत्यः सुतीर्था
हिरण्मयैरावृताः पुण्डरीकैः ॥ ६
तासां तीरेष्वासते पुण्यभाजो
न हीयमानाः पृथगप्सरोभिः ।
सुपुण्यगन्धाभिरलङ्कृताभि-
र्हिरण्यवर्णाभिरतीव हृष्टाः ॥ ७
परं लोकं गोप्रदास्त्वाप्नुवन्ति
दत्वाऽनडुहं सूर्यलोकं व्रजन्ति ।
वासो दत्वा चान्द्रमसं तु लोकं
दत्वा हिरण्यममरत्वमेति ॥ ८
धेनुं दत्वा सुप्रभां सुप्रदोहां
कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या-
स्तावद्वर्षाण्यासते देवलोके ॥ ९

सत्यादिधर्मफलं वने एव निष्पद्यतेत्याख्यायिकावसानमुखेनोपसंहरति-प्रदाय चेति ॥ ३७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

१८६

वने सत्यादिधर्मवता यत् कर्तव्यं यत् प्राप्यं यच्च ज्ञेयं तदाहाध्यायेन-**अत्रैव च सरस्वत्येत्यादिना** । सरस्वती यज्ञभोक्त्री यज्ञफलदात्री च देवता । अग्निहोत्रादहमभ्यागताऽस्मीति वाक्यशेषात् ॥ १ ॥ कथं कुर्यात् श्रेय इत्यावर्तते ॥ । लोकान् कामान् । विरजा आसक्तिहीनः । चरेयमुपलभेयम्'। तेषां सर्वेषु कामचारो भवतीति श्रुतिप्रसिद्धसर्वकामभाक्त्वरूपं फलं केनोपायेन प्राप्नुयादित्यर्थः ॥ ३ ॥ ब्रह्म सगुणं हार्दाकाशाख्यम् । यथाप्रदेशं देशभेदमनतिक्रान्तमर्चिरादिमार्गेण लभ्यमित्यर्थः । निर्गुणविदो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति इति गतिनिषेधात् । स्वाध्यायः प्रणवजपः । देवलोकस्य पारं कार्यब्रह्मलोकम् ॥ ५ ॥ एनमेव स्तौति द्वाभ्यां तत्रेति ॥ ६ ॥ देवलोकस्य पारस्तावत् दूरेऽस्तु । स एव नु कथं प्राप्यत इत्यत आह-परमित्यादिना । अनडुहमनड्वाहं शकटवहनसमर्थं बलीवर्दम् ॥ ८ ॥ धेनुं दोग्ध्रीं गाम् ॥ ९ ॥

अनड्वाहं सुव्रतं यो ददाति
हलस्य वोढारमनन्तवीर्यम् ।
धुरन्धरं बलवन्तं युवानं
प्राप्नोति लोकान् दश धेनुदस्य ॥ १०
ददाति यो वै कपिलां सचैलां
कांस्योपदोहां द्रविणैरुत्तरीयैः ।
तैस्तैर्गुणैः कामदुहाऽथ भूत्वा
नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ॥ ११
यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा-
स्तावत् फलं भवति गोप्रदाने ।
पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्व-
मासप्तमं तारयते परत्र ॥ १२
सदक्षिणां काञ्चनचारुशृङ्गीं
कांस्योपदोहां द्रविणैरुत्तरीयैः ।
धेनुं तिलानां ददतो द्विजाय
लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥ १३
स्वकर्मभिर्दानवसन्निरुद्धं
तीव्रान्धकारे नरके सम्पतन्तम् ।
महार्णवे नौरिव वातयुक्ता-
दानं गवां तारयते परत्र ॥ १४
यो ब्राह्मदेयां तु ददाति कन्यां
भूमिप्रदानं च करोति विप्रे ।
ददाति दानं विधिना च यश्च
स लोकमाप्नोति पुरन्दरस्य ॥ १५
यः सप्तवर्षाणि जुहोति तार्क्ष्य
हव्यं त्वग्नौ नियतः साधुशीलः ।
सप्तावरान् सप्त पूर्वान् पुनाति
पितामहानात्मना कर्मभिः स्वैः ॥ १६

तार्क्ष्य उवाच ।

किमग्निहोत्रस्य व्रतं पुराण-
माचक्ष्व मे पृच्छतश्चानुरूपे ।
त्वयाऽनुशिष्टोऽह मिहाद्य विद्यां
यदग्निहोत्रस्य व्रतं पुराणम् ॥ १७

सरस्वत्युवाच ।

न वा शुचिर्नाप्यनिर्णिक्तपाणि-
र्नाब्रह्मविज्जुहुयान्नाविपश्चित् ।
बुभुत्सवः शुचिकामा हि देवा
नाश्रद्दधानाद्धि हविर्जुषन्ति ॥ १८
नाश्रोत्रियं देवहव्ये नियुञ्ज्या-
न्मोघं पुरा सिञ्चति तादृशो हि ।
अपूर्वमश्रोत्रियमाह तार्क्ष्य
न वै तादृक् जुहुयादग्निहोत्रम् ॥ १९
कृशाश्च ये जुह्वति श्रद्दधानाः
सत्यव्रता हुतशिष्टाशिनश्च ।
गवां लोकं प्राप्य ते पुण्यगन्धं
पश्यन्ति देवं परमं चापि सत्यम् ॥ २०

तार्क्ष्य उवाच ।

क्षेत्रज्ञभूतां परलोकभावे
कर्मोदये बुद्धिमतिप्रविष्टाम् ।
प्रज्ञां च देवीं सुभगे विमृश्य
पृच्छामि त्वां का ह्यसि चारुरूपे ॥ २१

उत्तरीयैः पश्चाद्भवैर्दक्षिणादिभिर्द्रव्यैः सहिताम् ॥ ११ ॥ तिलधेनुर्दानकाण्डे प्रसिद्धा ॥ १३ ॥ दानवैः कामक्रोधादिभिः सन्निरुद्धे व्याप्ते तीव्रान्धकारेऽन्धे तमसि देहाभिनिवेशाख्ये तारयते योगविघ्नान्नाशयति ॥ १४ ॥ ब्राह्मदेयां ब्राह्मेण अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यादेष ब्राह्मो विवाहः इति गृह्योक्तेन विधिना देयाम् ॥ १५ ॥ यः सप्तेति । श्रौतं धर्ममनुतिष्ठन्नात्मना सह पूर्वानपरांश्च तारयतीत्यर्थः ॥ १६ ॥ अग्निहोत्रं जुह्वानो लोभजालं भिनत्त्यतः सम्मोहं छित्त्वेत्यादिना मैत्रायणीयोपनिषद्यग्निहोत्रस्य ज्ञानान्तरङ्गत्वमुक्तमतस्तदाश्रितमेव विशेषं व्रतादिकं पृच्छति—किमिति । पुराणं वेदोदितम्॥१७॥ अनिर्णिक्तपादोऽप्रक्षालितपाणिपादोऽनाचांतश्च । अब्रह्मवित् वेदं पाठतोऽर्थतश्चाविद्वान् । अविपश्चित्—वेदादधिगतस्यार्थस्यानुभवहीनः । बुभुत्सवः परचित्तं ज्ञातुमिच्छवः यस्मात् शुचिकामाः जुषन्ति सेवन्ते ॥ १८ ॥ ऋत्विगप्येवंविध एव कर्तव्य इत्याह-नाश्रोत्रियमिति । देवहव्ये देवानां हव्यदानादौ मोघं निष्फलम् । पुरेति शीलगोत्रादिज्ञानात् प्राक् । अपूर्वमज्ञातकुलशीलमाह वेद इति शेषः ॥ १९ ॥ कृशाः धनादिप्रसवेण दर्पेण हीनाः ऋत्विजो यजमाना वा गवां लोकं कार्यब्रह्मलोकसमीपस्थं परमं च देवं ब्रह्माणं ततः क्रमेण सत्यं च परमं ब्रह्माख्यं पश्यन्ति । एतेन सर्वगुणयुक्तस्याग्निहोत्रस्य परम्परया कैवल्यजनकत्वमुक्तम् ॥ २० ॥ क्षेत्रज्ञभूता परमात्मरूपां त्वां प्रज्ञां पृच्छामि । त्वं च काऽसीति पृच्छामि । प्रज्ञां विशिनष्टि परो लोक आत्मा तस्य भावे स्वरूपे विषये कर्मोदये कर्मफले ब्रह्मलोकान्ते च विषये बुद्धिम् अति—उत्कृष्टतरां बुद्धिं प्रविष्टां कर्मब्रह्मतत्त्वयोर्निविष्टामित्यर्थः । किं कृत्वा त्वां देवीं उभयतत्त्वं द्योतयन्तीम् विमृश्य ज्ञात्वा ॥ २१ ॥

सरस्वत्युवाच ।

अग्निहोत्रादहमभ्यागताऽस्मि
विप्रर्षभाणां संशयच्छेदनाय ।
त्वत्संयोगादहमेतमब्रुवं
भावे स्थिता तथ्यमर्थं यथावत् ॥ २२

तार्क्ष्य उवाच ।

न हि त्वया सदृशी काचिदस्ति
विभ्राजसे ह्यतिमात्रं यथा श्रीः ।
रूपं च ते दिव्यमनन्तकान्ति
प्रज्ञां च देवीं सुभगे बिभर्षि ॥ २३

सरस्वत्युवाच ।

श्रेष्ठानि यानि द्विपदां वरिष्ठ
यज्ञेषु विद्वन्नुपपादयन्ति ।
तैरेव चाहं सम्प्रवृद्धा भवामि
चाप्यायिता रूपवती च विप्र ॥ २४
यच्चापि द्रव्यमुपयुज्यते ह
वानस्पत्यमायसं पार्थिवं वा ।
दिव्येन रूपेण च प्रज्ञया च
तवैव सिद्धिरिति विद्धि विद्वन् ॥ २५

तार्क्ष्य उवाच ।

इदं श्रेयः परमं मन्यमाना
व्यायच्छन्ते मुनयः सम्प्रतीताः ।
आचक्ष्व मे तं परमं विशोकं
मोक्षं परं यं प्रविशन्ति धीराः ॥
साङ्ख्या योगाः परमं यं विदन्ति
परं पुराणं तमहं न वेद्मि ॥ २६

सरस्वत्युवाच ।

तं वै परं वेदविदः प्रपन्नाः
परं परेभ्यः प्रथितं पुराणम् ।
स्वाध्यायवन्तो व्रतपुण्ययोगै-
स्तपोधना वीतशोका विमुक्ताः ॥ २७
तस्याथ मध्ये वेतसः पुण्यगन्धः
सहस्रशाखो विपुलो विभाति ।
तस्य मूलात् सरितः प्रस्रवन्ति
मधूदकप्रस्रवणाः सुपुण्याः ॥ २८
शाखां शाखां महानद्यः संयान्ति सिकताशयाः।
धानापूपा मांसशाकाः सदा पायसकर्दमाः २९

---

अग्निहोत्रात् सत्कर्मणः सकाशादहं परापरविद्यारूपा सरस्वत्यभ्यागता आविर्भूताऽस्मि । त्वत्संयोगात् त्वत्सान्निध्यं प्राप्य एतमर्थं कर्मणां पारम्पर्येण कैवल्यहेतुत्वं सगुणब्रह्मविद्यां चाब्रुवम् । यतोऽहं भावे स्थिता श्रद्धावानग्निहोत्रादिना देवताप्रसादं प्राप्य कर्मोपास्तिज्ञानफलानि विन्दतीत्यर्थः॥२२॥ न हि त्वयेतिश्लोकत्रयतात्पर्यं सोपासनेन कर्मणा विद्या समुल्लसतीति ॥ २३ ॥ यज्ञेषु श्रेष्ठानि कर्माङ्गावबद्धोपासनानि । उपासनास्वरूपं च 'अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्। मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्' इति भगवदुपदिष्टं सर्वेषु यज्ञाङ्गेषु ब्रह्मदृष्टिकरणम् ॥ २४ ॥ वानस्पत्यं सामिज्जुह्वादि । आयसं सौवर्णादि । पार्थिवं व्रीह्यादि । दिव्येन दिवे स्वार्गाय हितेन रूपेण। प्रज्ञया 'अहं क्रतुः—' इत्यादिना उक्तविधप्रज्ञात्मकेन तवैव प्रत्यगात्मनः सिद्धिः प्राप्तिर्मुक्तिर्वा न त्वनात्मभूतस्थानान्तरसिद्धिरिति विद्धि ॥ २५ ॥ इदं तवैव सिद्धिरित्यनेनोपाक्षिप्तं प्रत्यग्रूपं व्यायच्छन्ते निगृह्णन्ति । इन्द्रियादीनीति शेषः। सम्प्रतीताः साम्यविश्वासयुक्ताः ॥ २६ ॥ वेदविद एव प्रपन्ना न त्ववैदिकाः। 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इति श्रुतेः । परं ब्रह्म परेभ्यो विराट्सूत्रान्तर्यामिभ्यः सोपाधिकेभ्यः परं निरुपाधिकत्वात् श्रेष्ठं प्रथितं सच्चिदानन्दरूपेण सर्वत्र प्रथां गतम् । यथोक्तम्—'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यर्थपञ्चकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततोऽद्वयम्' इति । पुराणं पुराऽपि नवम् । तेन सोपाधिकानामुत्पत्तिः सूचिता । व्रतमहिंसादि । पुण्यं जपादि । योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधस्तैः । तपः स्वधर्माचरणमेव धनं येषां ते प्राप्नुवन्तीति शेषः ॥ २७ ॥ अस्य प्रत्यग्वस्तुनोऽद्वयत्वासिद्ध्यर्थमित एवान्तर्याम्यादिना समुत्थानमाह तस्येति । तस्य चिदात्मनः । मध्ये वेतसो वञ्जुलतरुरिव सबीजाङ्कुरो ब्रह्माण्डवृक्षाश्रिता परिच्छेद्यत्वात् तन्मध्यस्थः । पुण्यो रमणीयो गन्ध इव गन्धादिविषयो धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यवानिति यस्मिन्नस्तीति पुण्यगन्धः । सहस्रमनन्तं शाखा इव भोगस्थानानि यस्मिन् विपुलोऽपरिच्छिन्नो विभाति। तस्य मूलादविद्यारूपात् सरित इव सन्ततप्रवाहवत्यो भोगवासनाः प्रस्रवन्ति उत्तिष्ठन्ति । मधुवन्मृष्टमुदकवदाप्यायनकरं भोगजं सुखं प्रस्रवन्ति ताः मधूदकप्रस्रवणाः । 'भोगवासना हि उत्तरकालीनं भोगसुखं प्रवृत्तिजननादिद्वारा प्रस्रवति' इति प्रसिद्धम् ॥ २८ ॥ शाखामिति । महानद्यो वासनाः । पुरा शाखां शाखां तत्तद्भोगस्थानं संयान्ति । स्वप्रवाहपतितं पुरुषं नयन्तीत्यर्थः । पुण्यवासनया पुण्यमाचरन् स्वर्गं गच्छति । एवमन्यत्रापि । सिकता इव परस्परसंश्लिष्टाः पुत्रपश्वादयस्तासु शेरते । ताः सिकताशयाः पुत्रादिविषया इत्यर्थः । धानाः भृष्टयवा अपूपाः सच्छिद्रं भक्ष्यम् । शेषं प्रसिद्धम् । धानादिकं मधूदक-

यस्मिन्नग्निमुखा देवाः सेन्द्राः सहमरुद्गणाः । इज्यन्ते क्रतुभिः श्रेष्ठैस्तत्पदं परमं मम ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि सरस्वतीतार्क्ष्यसंवादे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

## १८७

वैशम्पायन उवाच ।
ततः स पाण्डवो विप्रं मार्कण्डेयमुवाच ह ।
कथयस्वेति चरितं मनोर्वैवस्वतस्य च ॥
मार्कण्डेय उवाच ।
विवस्वतः सुतो राजन् महर्षिः सुप्रतापवान्
बभूव नरशार्दूल प्रजापतिसमद्युतिः ॥
ओजसा तेजसा लक्ष्म्या तपसा च विशेषतः
अतिचक्राम पितरं मनुः स्वं च पितामहम् ॥
ऊर्ध्वबाहुर्विशालायां बदर्यां स नराधिप ।
एकपादस्थितस्तीव्रं चकार सुमहत्तपः ॥
अवाक्शिरास्तथा चापि नेत्रैरनिमिषैर्दृढम् ।
सोऽतप्यत तपो घोरं वर्षाणामयुतं तदा ॥
तं कदाचित्तपस्यन्तमार्द्रचीरजटाधरम् ।
चीरिणीतीरमागम्य मत्स्यो वचनमब्रवीत् ॥ ६
भगवन् क्षुद्रमत्स्योऽस्मि बलवद्भ्यो भयं मम ।
मत्स्येभ्यो हि ततो मां त्वं त्रातुमर्हसि सुव्रत ॥ ७
दुर्बलं बलवन्तो हि मत्स्या मत्स्यं विशेषतः ।
आस्वदन्ति सदा वृत्तिर्विहिता नः सनातनी ॥ ८
तस्माद्भयौघान्महतो मज्जन्तं मां विशेषतः ।
त्रातुमर्हसि कर्तास्मि कृते प्रतिकृतं तव ॥ ९
स मत्स्यवचनं श्रुत्वा कृपयाऽभिपरिप्लुतः ।
मनुर्वैवस्वतो गृह्णात्तं मत्स्यं पाणिना स्वयम् ॥ १०
उदकान्तमुपानीय मत्स्यं वैवस्वतो मनुः ।
अलिञ्जरे प्राक्षिपत्तं चन्द्रांशुसदृशप्रभे ॥ ११

स्थानीयस्य सुखस्य विशेषणम् । विषयसुखं हि धानावत् स्वसजातीयं प्रसूते। अपूपवदनेकच्छिद्रयुक्तम् मांसवत् हिंसालभ्यम्। 'नानुपहत्य भूतानि भोगः सम्भवति' इति प्रसिद्धेः । शाकवदल्पसारं पायसवन्मुखमधुरं पाके गुरुतरं च । कर्दमवत् चित्तपटस्य मलिनीकरणं चेति परचैतन्यभूमौ अनाद्यविद्यामूलादुत्थितोऽयं संसारवृक्षोऽतिविरसफलो विद्ययाऽविद्यानाशात् समूलमुन्मूलनीय इत्यर्थः। तथाच चिदद्वैतमभ्याहतम् ॥ २९॥ यस्मिन् यत्प्राप्तिनिमित्तं श्रेष्ठैः क्रतुभिर्योगयज्ञैरभ्यादयो यत् गच्छन्ति तत् मम विद्यारूपायाः सरस्वत्याः पदं पदनीयं प्रापणीयं स्थानं परमं सर्वोत्कृष्टं ज्ञातृज्ञानज्ञेयभानशून्यं ब्रह्माद्वैतम् ३० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

१८७

पूर्वत्र चिद्भूमौ अविद्यामूलो जगद्वृक्ष उत्थितः । सोऽविद्याक्षये भूमावेव लीयत इति दर्शितम्। तत्र सकृदविद्याक्षये संसारभानं न स्यात्। दृश्यते च क्षीणाविद्यानामपि मार्कण्डेयादीनां संसारभानमस्मदादिवदितिजीवन्मुक्तौ सन्दिहानो राजा मार्कण्डेयमुवाचेत्याह ततःस इति। मनोः मनुते इति अभिमानात्मकोऽहंकारो मनुः । विशेषेण वस्ते आच्छादयति चित्प्रकाशमिति विवोऽज्ञानं तद्वान् विवस्वान् मायावी ईश्वरः । ' मायिनं तु महेश्वरम् ' इतिश्रुतेः । स एव वैवस्वतः । तस्य वैवस्वतस्य चरितं सञ्चरणमविद्यानाशे सत्याविद्यकोऽहङ्कारः कथं सञ्चरति न हि तन्तुदाहे पटस्थितिप्रतीत्याक्षेपः ॥ १ ॥ अपरस्त्वाख्यायिकामनुसृत्यैव उत्तरमाह- विवस्वत इत्यादिना । अत्र परब्रह्मण एव रूपान्तरं मत्स्याख्यो जीवः सोऽहङ्कारेण मनुना उत्तरोत्तरश्रेष्ठेषु अलिञ्जरादिरूपेषु स्थूलदेहेषु तपोबलाभिपात्यते । स च समुद्राख्ये वैराजे देहे निपतितश्च कल्पान्तेऽविद्यानाशरूपे सत्यपि दग्धपटन्यायेनानुवर्तमानमहङ्कारं सप्तर्षिसंज्ञकैः प्राणादिभिर्बीजसंज्ञैः प्रारब्धकर्मभिश्च सहितं चरमदेहनाव्यारूढं वासनावरत्रया जीवमत्स्येन प्रलयकालेऽप्यूह्यमानं मेरुशृङ्गसमेऽचले भगवतो रूपे सद्वासनया लब्धास्पदं विलीनमनुलक्ष्य जीवमत्स्योऽदर्शनं प्राप्नोति। विलीने ह्यहङ्कारे जीवत्वं नश्यति । स पुनर्निरस्तजीवभावोऽहङ्कारो ब्रह्मरूपतामापन्नो यथापूर्वं वासनया जगत् सृजति । नष्टेऽप्यविद्याख्ये कारणे संसारभानलक्षणं कार्यं चक्रभ्रमिवत् कञ्चित्कालमनुवर्तत इत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ २ ॥ अक्षरार्थस्तु पितरमीश्वरं 'पितामहं शुद्धं ब्रह्मातिचक्राम देहादावावेशबलात् न मनुत इत्यर्थः ॥ ३ ॥ एवमहङ्कारस्य ईशाद्यज्ञानात् बन्धे प्रसक्ते तपस्तन्निवृत्त्युपायत्वमाह ऊर्ध्वबाहुरित्यादिना ॥ ४ ॥ चीरिणी नदीविशेषः ॥ ६ ॥ अलिञ्जरे मणिकाख्यपात्रे ॥ ११ ॥

स तत्र ववृधे राजन् मत्स्यः परमसत्कृतः ।
पुत्रवत् स्वीकरोत् तस्मै मनुर्भावं विशेषतः॥ १२
अथ कालेन महता स मत्स्यः सुमहानभूत् ।
अलिञ्जरे यथा चैव नासौ समभवत् किल १३
अथ मत्स्यो मनुं दृष्ट्वा पुनरेवाऽभ्यभाषत ।
भगवन् साधु मेऽद्यान्यत् स्थानं सम्प्रतिपादय १४
उद्धृत्यालिञ्जरात्तस्मात् ततः स भगवान् मनुः ।
तं मत्स्यमनयद्वापीं महतीं स मनुस्तदा ॥ १५
तत्र तं प्राक्षिपच्चापि मनुः परपुरञ्जय ।
अथावर्धत मत्स्यः स पुनर्वर्षगणान् बहून् ॥ १६
द्वियोजनायता वापी विस्तृता चापि योजनम् ।
तस्यां नासौ समभवन्मत्स्यो राजीवलोचन॥१७
विचेष्टितुं च कौन्तेय मत्स्यो वाप्यां विशाम्पते ।
मनुं मत्स्यस्ततो दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १८
नय मां भगवन् साधो समुद्रमहिषीं प्रियाम् ।
गङ्गां तत्र निवत्स्यामि यथा वा तात मन्यसे १९
निदेशे हि मया तुभ्यं स्थातव्यमनसूयता ।
वृद्धिर्हि परमा प्राप्ता त्वत्कृते हि मयाऽनघ ॥ २०
एवमुक्तो मनुर्मत्स्यमनयद्भगवान् वशी ।
नदीं गङ्गां तत्र चैनं स्वयं प्राक्षिपदच्युतः ॥ २१
स तत्र ववृधे मत्स्यः किञ्चित्कालमरिन्दम ।
ततः पुनर्मनुं दृष्ट्वा मत्स्यो वचनमब्रवीत् ॥ २२
गङ्गायां हि न शक्नोमि बृहत्त्वाच्चेष्टितुं प्रभो ।
समुद्रं नय मामाशु प्रसीद भगवन्निति ॥ २३
उद्धृत्य गङ्गासलिलात् ततो मत्स्यं मनुः स्वयम् ।
समुद्रमनयत् पार्थ तत्र चैनमवासृजत् ॥ २४
सुमहानपि मत्स्यस्तु स मनोर्नयतस्तदा ।
आसीद्यथेष्टहार्यश्च स्पर्शगन्धसुखश्च वै ॥ २५
यदा समुद्रे प्रक्षिप्तः स मत्स्यो मनुना तदा ।
तत एनमिदं वाक्यं स्मयमान इवाब्रवीत् ॥ २६
भगवन् हि कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषतः ।
प्राप्तकालं तु यत् कार्यं त्वया तच्छ्रूयतां मम ॥२७
अचिराद्भगवन् भौममिदं स्थावरजङ्गमम् ।
सर्वमेव महाभाग प्रलयं वै गमिष्यति ॥ २८
सम्प्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थितः ।
तस्मात् त्वां बोधयाम्यद्य यत्ते हितमनुत्तमम् २९
त्रसानां स्थावराणां च यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति ।
तस्य सर्वस्य सम्प्राप्तः कालः परमदारुणः ॥ ३०
नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवटारका ।
तत्र सप्तर्षिभिः सार्धमारुहेथा महामुने ॥ ३१
बीजानि चैव सर्वाणि यथोक्तानि द्विजैः पुरा ।
तस्यामारोहयेर्नावि सुसङ्गुप्तानि भागशः ॥ ३२
नौस्थश्च मां प्रतीक्षेथास्ततो मुनिजनप्रिय ।
आगमिष्याम्यहं शृङ्गी विज्ञेयस्तेन तापस ॥ ३३
एवमेतत् त्वया कार्यमापृष्टोऽसि व्रजाम्यहम् ।
ता न शक्या महत्यो वै आपस्तर्तुं मया विना ॥३४
नाभिशङ्क्यमिदं चापि वचनं मे त्वया विभो ।
एवं करिष्य इति तं स मत्स्यं प्रत्यभाषत ॥ ३५
जग्मतुश्च यथाकाममनुज्ञाप्य परस्परम् ।
ततो मनुर्महाराज यथोक्तं मत्स्यकेन ह ॥ ३६
बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लुवे तदा ।
नौकया शुभया वीर महोर्मिणमरिन्दम ॥ ३७
चिन्तयामास च मनुस्तं मत्स्यं पृथिवीपते ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा मत्स्यः परपुरञ्जय ॥ ३८
शृङ्गी तत्राजगामाशु तदा भरतसत्तम ।
तं दृष्ट्वा मनुजव्याघ्र मनुर्मत्स्यं जलार्णवे ॥ ३९
शृङ्गिणं तं यथोक्तेन रूपेणाद्रिमिवोच्छ्रितम् ।
वटारकमयं पाशमथ मत्स्यस्य मूर्धनि ॥ ४०
मनुर्मनुजशार्दूल तस्मिन् शृङ्गे न्यवेशयत् ।
संयतस्तेन पाशेन मत्स्यः परपुरञ्जय ॥ ४१
वेगेन महता नावं प्राकर्षल्लवणाम्भसि ।
स च तांस्तारयन्नावा समुद्रं मनुजेश्वर ॥ ४२
नृत्यमानमिवोर्मीभिर्गर्जमानमिवाम्भसा ।
क्षोभ्यमाणा महावातैः सा नौस्तस्मिन् महोदधौ॥

न समभवत् स्थूलत्वेन न ममावित्ययः ॥ १३ ॥ स मत्स्योऽच्युत इति सम्बन्धः ॥ २१ ॥ मत्स्यस्पर्शगन्धजं चिदाभाससम्पर्कजं सुखं यस्यास्तीति तस्य मनोः ॥ २५ ॥ सम्प्रक्षालनमेकीभावेन शुक्तिरजतस्येव प्रपञ्चमलस्य दूरीकरणम् ॥ २९ ॥ त्रसानां जङ्गमानामङ्ग चलनशीलं वृक्षादि। नेङ्गति पाषाणादि। कालोऽन्तः ॥ ३० ॥ वटारका रज्जुः । 'वट वेष्टने' स्यरूपम् । सप्तर्षिभिः प्राणेन्द्रियैः ॥ ३१ ॥ बीजानि कर्माणि सुसङ्गुप्तानि दर्शनायोग्यान्यदृष्टानीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ मामन्तरात्मानं प्रतीक्षेथाः प्रतीपं जडानृतादिप्रातिकूल्येन ईक्षेथाः आलोचय। आगमिष्याम्याविर्भविष्यामि। शृङ्गी शृणाति हिनस्ति जीवोपाधीन् बाधते इति शृङ्गं मूर्तिस्तद्वान् । कथापक्षे सुगममेव ॥ ३३ ॥ आपः संसारः मया विना मदीयं ज्ञानं विना ॥ ३४ ॥

घूर्णते चपलेव स्त्री मत्ता परपुरञ्जय ।
नैव भूमिर्न च दिशः प्रदिशो वा चकाशिरे ॥४४
सर्वमाम्भसमेवासीत् खं द्यौश्च नरपुङ्गव ।
एवंभूते तदा लोके सङ्कुले भरतर्षभ ॥ ४५
अदृश्यन्त सप्तर्षयो मनुर्मत्स्यस्तथैव च ।
एवं बहून् वर्षगणांस्तां नावं सोऽथ मत्स्यकः॥४६
चकर्षातन्द्रितो राजंस्तस्मिन् सलिलसञ्चये ।
ततो हिमवतः श्रृङ्गं यत्परं भरतर्षभ ॥ ४७
तत्राकर्षत्ततो नावं स मत्स्यः कुरुनन्दन ।
अथाब्रवीत्तदा मत्स्यस्तानृषीन् प्रहसन् शनैः॥४८
अस्मिन् हिमवतः श्रृङ्गे नावं बध्नीत मा चिरम्
सा बद्धा तत्र तैस्तूर्णमृषिभिर्भरतर्षभ ॥ ४९
नौर्मत्स्यस्य वचः श्रुत्वा श्रृङ्गे हिमवतस्तदा ।
तच्च नौबन्धनं नाम श्रृङ्गं हिमवतः परम् ॥ ५०
ख्यातमद्यापि कौन्तेय तद्विद्धि भरतर्षभ ।
अथाब्रवीदनिमिषस्तानृषीन् सहितस्तदा ॥ ५१
अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते ।
मत्स्यरूपेण यूयं च मयाऽस्मान्मोक्षिता भयात्५२
मनुना च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
स्रष्टव्याः सर्वलोकाश्च यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति ॥ ५३
तपसा चापि तीव्रेण प्रतिभाऽस्य भविष्यति ।
मत्प्रसादात् प्रजासर्गे न च मोहं गमिष्यति ॥५४
इत्युक्त्वा वचनं मत्स्यः क्षणेनादर्शनं गतः ।
स्रष्टुकामः प्रजाश्चापि मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ॥ ५५
प्रमूढोऽभूत् प्रजासर्गे तपस्तेपे महत् ततः ।
तपसा महता युक्तः सोऽथ स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ ५६
सर्वाः प्रजा मनुः साक्षाद्यथावद्भरतर्षभ ।
इत्येतन्मात्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम् ॥ ५७
आख्यानमिदमाख्यातं सर्वपापहरं मया ।
य इदं श्रृणुयान्नित्यं मनोश्चरितमादितः ।
स सुखी सर्वपूर्णार्थः सर्वलोकमियान्नरः ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि मत्स्योपाख्याने समाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

## १८८

वैशम्पायन उवाच ।
ततः स पुनरेवाथ मार्कण्डेयं यशस्विनम्
पप्रच्छ विनयोपेतो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥
नैके युगसहस्रान्तास्त्वया दृष्टा महामुने
न चापीह समः कश्चिदायुष्मान् दृश्यते तव ॥ २
वर्जयित्वा महात्मानं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
न तेऽस्ति सदृशः कश्चिदायुषा ब्रह्मवित्तम
अनन्तरिक्षे लोकेऽस्मिन् देवदानववर्जिते ।
त्वमेव प्रलये विप्र ब्रह्माणमुपतिष्ठसे ॥
प्रलये चापि निर्वृत्ते प्रबुद्धे च पितामहे
त्वमेकः सृज्यमानानि भूतानीह प्रपश्यसि ॥ ५

अहमिति । अवच्छिन्मूर्ते कारणात्मनि 'श्रृङ्गे बन्धनस्य फलमीश्वरानुग्रहादहं ब्रह्माऽस्मीति ज्ञानमित्यर्थः । तथा चान्यत्र पूर्वं मूर्तौ धृतं चित्तं मूर्तेरेकैकावयवत्यागेनैकदेशे स्थितमात्रे च धारयेदित्युक्त्वा । ' तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् । तच्च त्यक्त्वा मदारोहे न किंचिदपि चिन्तयेत् ' इति व्योमाख्यामूर्तद्वारा मूर्तामूर्तेतरे शुद्धे आरोह उक्तः । अत्र हिमवतः श्रृङ्गे नावं बध्नीतेत्यहं प्रजापतिर्ब्रह्मेति च श्लोकाभ्यां मूर्त्याराधनादेव कारणं ब्रह्म निर्विशेषं च ब्रह्म क्रमेण प्राप्यत इति दर्शितम् । मत्स्यरूपेण ज्ञानेन यूयं भयान्मोक्षिता इति । भयमहङ्कारादेरेव धर्म इत्युक्तम् । शेषं स्पष्टम् ॥ ५२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे समाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

१८८

एवं जीवन्मुक्तिं प्रसाध्य तस्याश्रमध्ये वेतसः पुष्पगन्धा इत्यादिना निर्गुणे ब्रह्मण्येव सगुणस्य मायिकौ भावाभाववृत्ती। तत्प्रपञ्चार्थं ततः स पुनरेवाथेत्यादिना मन्यमानां यथाविधीत्यन्तमध्यायद्वयमारभ्यतेऽद्वैतसिध्यर्थं ॥१॥ अनन्तरिक्षे स्थूलवियदाद्यभाववत्यस्मिन् लोके प्रत्यगात्मनि । प्रलये स्थूलप्रपञ्चस्य लयं सति । ब्रह्माणं सूत्रात्मानं सूक्ष्मभूतमयहिरण्यगर्भम् ॥ ४ ॥ इह हृदयपुण्डरीके ॥ ५ ॥ चतु-

चतुर्विधानि विप्रर्षे यथावत् परमेष्ठिना ।
वायुभूता दिशः कृत्वा विक्षिप्यापस्ततस्ततः ॥ ६
त्वया लोकगुरुः साक्षात् सर्वलोकपितामहः ।
आराधितो द्विजश्रेष्ठ तत्परेण समाधिना ॥ ७
स्वप्रमाणमथो विप्र त्वया कृतमनेकशः ।
घोरेणाविश्य तपसा वेधसो निर्जितास्त्वया ॥ ८
नारायणाङ्कप्रख्यस्त्वं साम्पराये ऽतिपठ्यसे ।
भगवाननेकशः कृत्वा त्वया विष्णोश्च विश्वकृत्
कार्णिकोद्धरणं दिव्यं ब्रह्मणः कामरूपिणः ।
रत्नालङ्कारयोगाभ्यां दृग्भ्यां दृष्टस्त्वया पुरा ॥ १०
तस्मात् त्वान्तको मृत्युर्जरा वा देहनाशिनी ।
न त्वां विशति विप्रर्षे प्रसादात् परमेष्ठिनः ॥ ११
यदा नैव रविर्नाग्निर्न वायुर्न च चन्द्रमाः ।
नैवान्तरिक्षं नैवोर्वी शेषं भवति किञ्चन ॥ १२
तस्मिन्नेकार्णवे लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टे देवासुरगणे समुत्सन्नमहोरगे ॥ १३
शयानममितात्मानं पद्मोत्पलनिकेतनम् ।
त्वमेकः सर्वभूतेशं ब्रह्माणमुपतिष्ठसि ॥ १४
एतत् प्रत्यक्षतः सर्वं पूर्वं वृत्तं द्विजोत्तम ।
तस्मादिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वहेत्वात्मिकां कथाम् १५
अनुभूतं हि बहुशस्त्वयैकेन द्विजोत्तम ।
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चित् सर्वलोकेषु नित्यदा १६

मार्कण्डेय उवाच ।

हन्त ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयम्भुवे ।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥ १७
अव्यक्ताय सुसूक्ष्माय निर्गुणाय गुणात्मने ।
स एष पुरुषव्याघ्र पीतवासा जनार्दनः ॥ १८
एष कर्ता विकर्ता च भूतात्मा भूतकृत् प्रभुः ।
अचिन्त्यं महदाश्चर्यं पवित्रमिति चोच्यते ॥ १९
अनादिनिधनं भूतं विश्वमव्ययमक्षरम् ।
एष कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे ॥ २०
यद्येष पुरुषो वेद वेदा अपि न तं विदुः ।
सर्वमाश्चर्यमेवैतन्निर्वृत्तं राजसत्तम ॥ २१

विधानि वासनामयानि जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जानि अस्य प्रलयस्य पुरुषयत्नसाध्यतामाह वायुभूता इति । दिशः स्थूलं जगत् प्राणनिरोधेन वायुमात्रतामापाद्य ततस्ततस्तेन-तेनोपायेनापो देहाकारपरिणता विक्षिप्य परित्यज्य ब्रह्माण्डं स्थूलदेहे तं च लिङ्गे प्रविलाप्येत्यर्थः ॥ ६ ॥ लोकगुरुः सूत्रात्मा । समाधिना मनःप्रणिधानेन ॥ ७ ॥ अनेकशोऽनेकैरुपायैः कृतं कार्यं सर्वं ब्रह्माण्डं स्वप्रमाणमात्मसम्मितं कृत्वा सार्वात्म्यं प्राप्येत्यर्थः। यद्वा। स्वं प्रत्यक्चितिरेव प्रमाणं यस्मिन् स्वसंवेद्यं कृत्वा सार्वज्ञ्यं प्राप्येत्यर्थः । घोरेण तीव्रेण तपसा ऐकाग्र्येण । 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः' इतिस्मृतेः । वेधसो विराजो मरीच्यादयो वा निर्जिताः स्वात्मसात्कृताः ॥ ८ ॥ नारायणस्याङ्कः स्थानं समीपं वा । 'अङ्कः स्थानेऽन्तिके' इति विश्वः । तत्र प्रख्यः प्रख्यातो भगवद्भक्तेषूत्तमः साम्पराये परलोके स्थूलदेहत्यागे वा कर्तव्ये सत्यतिपठ्यसेऽत्यन्तं स्तूयसे लोकैरितिशेषः । भगवानित्यादिसार्धः । अक्षराधिक्यमार्षम् । विष्णोर्ब्रह्मण उपलब्धिस्थानत्वेन तत्सम्बन्धिकार्णिकोद्धरणं कृत्वा योगकल्प्या हृदयपुण्डरीकमुद्राप्येत्यर्थः । त्वया दृग्भ्यां भगवाननेकशोऽनेकवारं दृष्ट इत्यन्वयः। रत्नानि तत्तज्जात्युत्कृष्टवस्तूनि। तेषामलङ्कारो निवारणक्रिया । परं वैराग्यमिति यावत् । योगोऽभियोगोऽभ्यासः वैराग्याभ्यासाभ्यामित्यर्थः । दृग्भ्यामिति द्वित्वमन्तर्दृष्टया हार्दाकाशे दृष्टो बहिर्दृष्टयाऽपि योगजधर्मसंस्कृतया व्यवहितादिदर्शिन्या कृत्स्नब्रह्माण्डरूपी करतलामलकवद्दृष्ट इत्यभिप्रायेण ॥ १० ॥ तव त्वां न विशतीत्यपकृष्यते ॥ ११ ॥ शेषमवशिष्टं पञ्चमहाभूतप्रलये सतीत्यर्थः ॥ १२ ॥ एकार्णवसदृशे एकरसे लोके आत्मनि 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' 'आत्मानमेव लोकमुपासीत' इत्यादौ निर्विशेषे आत्मनि सलिललोकशब्दयोः प्रयोगदर्शनात् । स्थावरादौ नष्टे बाधिते सति ॥ १३ ॥ स्वयमपि तत्र शयानं समुद्रे वीचिवल्लीनं पद्मोत्पलनिकेतनं हृत्पद्मवल्लीपुष्पस्थमात्मानं मायाविनं ब्रह्माणं ब्रह्म । अनुवाद्यापेक्षया पुंस्त्वम् ॥ १४ ॥ एतत् सर्वं त्वया दृष्टमिति शेषः ॥ १५ ॥ स्वयम्भुवे अजन्मने । अस्यापि जन्यत्वे तस्य तस्यापीत्यनवस्थापातः । पुरुषाय पूर्णाय । पुराणाय नित्यैकरूपाय । शाश्वतायानाद्येऽव्ययाय नित्याय ॥ १७ ॥ अव्यक्ताय रूपादिहीनाय । सुसूक्ष्माय दुर्लक्ष्याय । गुणात्मने मायोपाधये । स एष इत्यङ्गुल्या निर्दिशति ॥१८॥ विकर्ता विविधरूपत्वकर्ता । महत् ब्रह्म ॥१९॥ विश्वं विश्वात्मकमप्यव्ययमपरिणामि। अत एवाक्षरमविनाशि। एष पीतवासाः कर्तैव न तु क्रियते । एतेन कृष्णमूर्तेर्व्यवहारापेक्षया नित्यत्वमनादित्वं च दर्शितम् । तच्च व्युत्पादितमादिसभापर्वटीकयोः । पौरुषे कारणं चायमेव । तस्मात् प्रार्थनीय इति भावः ॥ २० ॥ य एनमिति वक्तव्ये यद्येष इत्युक्तिर्वेद्यवेदित्रोरत्यन्ताभेदप्रदर्शनार्था तथा च श्रुतिः-' ब्रह्म वा

आदितो मनुजव्याघ्र कृत्स्नस्य जगतः क्षये ।
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् २२
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ॥ २३
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च ततः परम् ।
तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिमाणतः ॥ २४
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः
सहस्रमेकं वर्षाणां ततः कलियुगं स्मृतम् ॥ २५
तस्य वर्षशतं सन्धिः सन्ध्यांशश्च ततः परम ।
सन्धिसन्ध्यांशयोस्तुल्यं प्रमाणमुपधारय ॥ २६
क्षीणे कलियुगे चैव प्रवर्त्तति कृतं युगम् ।
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता॥ २७
एतत् सहस्रपर्यन्तमहो ब्राह्ममुदाहृतम् ।
विश्वं हि ब्रह्म भवने सर्वतः परिवर्त्तते ॥ २८
लोकानां मुनजव्याघ्र प्रलयं तं विदुर्बुधाः ।
अल्पावशिष्टे तु तदा युगान्ते भरतर्षभ ॥ २९
सहस्रान्ते नराः सर्वे प्रायशोऽनृतवादिनः ।
यज्ञप्रतिनिधिः पार्थ दानप्रतिनिधिस्तथा ॥ ३०
व्रतप्रतिनिधिश्चैव तस्मिन् काले प्रवर्त्तते ।
ब्राह्मणाः शूद्रकर्माणस्तथा शूद्रा धनार्जकाः॥ ३१
क्षत्रधर्मेण वाप्यत्र वर्तयन्ति गते युगे ।
निवृत्तयज्ञस्वाध्याया दण्डाजिनविवर्जिताः ॥ ३२
ब्राह्मणाः सर्वभक्षाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ।
अजपा ब्राह्मणास्तात शूद्रा जपपरायणाः ॥ ३३
विपरीते तदा लोके पूर्वरूपं क्षयस्य तत् ।
बहवो म्लेच्छराजानः पृथिव्यां मनुजाधिप ॥३४
मृषानुशासिनः पापा मृषावादपरायणाः ।
अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च यवनाश्च नराधिपाः३५
काम्बोजा बाह्लिकाः शूरास्तथाऽऽभीरा नरोत्तम ।
न तदा ब्राह्मणः कश्चित् स्वधर्ममुपजीवति ॥ ३६
क्षत्रियाश्चापि वैश्याश्च विकर्मस्था नराधिप ।
अल्पायुषः स्वल्पबलाः स्वल्पवीर्यपराक्रमाः ॥ ३७
अल्पसाराल्पदेहाश्च तथा सत्याल्पभाषिणः ।
बहुशून्या जनपदा मृगव्यालावृता दिशः ॥ ३८
युगान्ते समनुप्राप्ते वृथा च ब्रह्मवादिनः ।
भोवादिनस्तथा शूद्रा ब्राह्मणाश्चार्यवादिनः ॥३९
युगान्ते मनुजव्याघ्र भवन्ति बहुजन्तवः ।
न तथा घ्राणयुक्ताश्च सर्वगन्धा विशाम्पते ॥ ४०
रसाश्च मनुजव्याघ्र न तथा स्वादुयोगिनः ।
बहुप्रजा ह्रस्वदेहाः शीलाचारविवर्जिताः ।
मुखेभगाः स्त्रियो राजन् भविष्यन्ति युगक्षये ४१
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
केशशूलाः स्त्रियो राजन् भविष्यन्ति युगक्षये४२

---

इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति तदिदं सर्वमभवत्' इति । 'ब्रह्मैव पश्यति ब्रह्म नाब्रह्म पश्यति' इतिस्मृतिश्च । वेदा अपि न तं विदुरवाङ्मनसगोचरत्वात् । सर्वमिति । आदितः परमात्मनो निर्वृत्तं निष्पन्नमेतत्प्रत्यक्षादिगम्यं सर्वं जगदाश्चर्यमेव । स्वप्रमायेन्द्रजालवदसम्भावनीयोत्पत्तिस्थितिकमेव । कदा । जगतः क्षये दृष्टे सति । अधिष्ठानसाक्षात्कारात् प्रागेव वादिभिः प्रधानपरमाण्वादिकं जगत्कारणमनुमीयते । तस्मिन् सति तु प्रधानादेरभावावधारणात् कथमकस्मादपरिणामिनोऽसहायाद्विचित्ररचनात्मकं जगज्जातं रज्ज्वः सर्प इवेत्यत्यन्ताश्चर्यमिति भावः । तथा च ब्रह्मैव संसरति तदेव च जगदात्मना निर्वर्तत इति श्लोकद्वयतात्पर्यम् ॥ २१ ॥ अयमेव पुरुषः स्वाज्ञानोत्थमाश्चर्यरूपं जगत् पश्यंस्तत्र रागादिमान् भूत्वा युगचतुष्टयात्मा भवति । तथाच श्रुतिः–' कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्' इति धर्मात् पराङ्मुखः पुरुष एव कलिः । धर्मं शास्त्राचार्याद्विजानन् द्वापरः । तमनुष्ठातुमिच्छंस्त्रेता । अनुतिष्ठन् कृतं भवति । एतेषां व्युत्क्रमेण कालप्रमाणमाह

कलेर्बीभत्सत्वप्रदर्शनार्थं–चत्वार्याहुरित्यादिना ॥ २२ ॥ तावच्छती चतुःशती । सन्ध्या–पूर्वस्मिन् युगे उत्तरयुगधर्माणामुपसर्जनतया संक्रमः । सन्ध्यांशस्तूत्तरस्मिन् पूर्वयुगधर्माणाम् । तथाविध उत्तरप्रकारस्त्रिशतीमितोऽयमेव पूर्वयुगापेक्षया सन्ध्यांश उत्तरयुगापेक्षया सन्ध्येतिचोच्यते । तथा च कृतत्रेतयोः सन्ध्यासन्ध्यांशौ सप्तशती । त्रेताद्वापरयोः पञ्चशती । द्वापरकल्योस्त्रिशती । कलिकृतयोस्तु पञ्चशतीति विज्ञेयम् । एवं च कृतस्यादौ चतुःशती कल्यपेक्षया सन्ध्यांशोऽपि कृतापेक्षया सन्ध्या । एवं सर्वत्र । तेन सन्ध्यासन्ध्यांशयोस्तुल्यं प्रमाणं भवति ॥ २३ ॥ कलेर्दोषान् वर्णयति प्रहाणाय यत्नासेन मोक्षमार्गे प्रीतिजननाय च सहस्रान्त इति । सहस्रस्य चतुर्धाकृतस्यान्तेऽन्तिमपादे ॥ ३० ॥ स्वधर्मम् याजनप्रतिग्रहादि ॥ ३६ ॥ सत्येऽल्पं सत्याल्पम् । सत्यवादोऽत्यन्तमल्प इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ वृथा अनुभवाभावात् ॥ ३९ ॥ मुखेभगाः स्त्रियो वङ्गेषु प्रसिद्धाः । प्रथमम् मुखेनैव भगकार्यम् कृत्वा पुरुषस्य काममुद्दीपयन्त्यः । अत्यन्तं रतातत्वात् ॥ ४१ ॥ अट्टशूला इति । 'अट्टमन्नं शिवो वेदो ब्राह्मणाश्च चतुष्पथाः । केशो भगं समाख्यातं शूलं

अल्पक्षीरास्तथा गावो भविष्यन्ति जनाधिप ।
अल्पपुष्पफलाश्चापि पादपा बहुवायसाः ॥ ४३
ब्रह्मवध्यानुलिप्तानां तथा मिथ्याऽभिशंसिनाम् ।
नृपाणां पृथिवीपाल प्रतिगृह्णन्ति वै द्विजाः ॥ ४४
लोभमोहपरीताश्च मिथ्याधर्मध्वजाऽऽवृताः ।
भिक्षार्थं पृथिवीपाल चञ्चूर्यन्ते द्विजैर्दिशः ॥ ४५
करभारभयाद्भीता गृहस्थाः परिमोषकाः ।
मुनिच्छद्माकृतिच्छन्ना वाणिज्यमुपजीवनः ॥ ४६
मिथ्या च नखरोमाणि धारयन्ति तदा द्विजाः ।
अर्थलोभान्नरव्याघ्र तथा च ब्रह्मचारिणः ॥ ४७
आश्रमेषु वृथाचाराः पानपा गुरुतल्पगाः ।
इह लौकिकमीहन्ते मांसशोणितवर्धनम् ॥ ४८
बहुपाषण्डसङ्कीर्णाः परान्नगुणवादिनः ।
आश्रमा मनुजव्याघ्र भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ४९
यथर्तुवर्षी भगवान्न तथा पाकशासनः ।
न चापि सर्वबीजानि सम्यग्रोहन्ति भारत ॥ ५०
हिंसाभिरामश्च जनस्तथा सम्पद्यतेऽशुचिः ।
अधर्मफलमत्यर्थं तदा भवति चानघ ॥ ५१
तदा च पृथिवीपाल यो भवेद्धर्मसंयुतः ।
अल्पायुः स हि मन्तव्यो न हि धर्मोऽस्ति कश्चन
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीडते जनः ।
वणिजश्च नरव्याघ्र बहुमाया भवन्त्युत ॥ ५३
धर्मिष्ठाः परिहीयन्ते पापीयान् वर्धते जनः ।
धर्मस्य बलहानिः स्यादधर्मश्च बली तथा ॥ ५४
अल्पायुषो दरिद्राश्च धर्मिष्ठा मानवास्तथा ।
दीर्घायुषः समृद्धाश्च विधर्माणो युगक्षये ॥ ५५
नगराणां विहारेषु विधर्माणो युगक्षये ।
अधर्मिष्ठैरुपायैश्च प्रजाव्यवहरन्त्युत ॥ ५६
सञ्चयेन तथाऽल्पेन भवन्त्याढ्यमदान्विताः ।
धनं विश्वासतो न्यस्तं मिथो भूयिष्ठशो नराः ॥
हर्तुं व्यवसिता राजन् पापाचारसमन्विताः ।
नैतदस्तीति मनुजा वर्तन्ते निरपत्रपाः ॥ ५८
पुरुषादानि सत्त्वानि पक्षिणोऽथ मृगास्तथा ।
नगराणां विहारेषु चैत्येष्वपि च शेरते ॥ ५९
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च स्त्रियो गर्भधरा नृप ।
दशद्वादशवर्षाणां पुंसां पुत्रः प्रजायते ॥ ६०
भवन्ति षोडशे वर्षे नराः पलितिनस्तथा ।
आयुःक्षयो मनुष्याणां क्षिप्रमेव प्रपद्यते ॥ ६१
क्षीणायुषो महाराज तरुणा वृद्धशीलिनः ।
तरुणानां च यच्छीलं तद्वृद्धेषु प्रजायते ॥ ६२
विपरीतास्तदा नार्यो वञ्चयित्वाऽर्हतः पतीन् ।
व्युच्चरन्त्यपि दुःशीला दासैः पशुभिरेव च ॥ ६३
वीरपत्न्यस्तथा नार्यः संश्रयन्ति नरान् नृप ।
भर्तारमपि जीवन्तमन्यान् व्यभिचरन्त्युत ॥ ६४
तस्मिन् युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते चायुषः क्षये ।
अनावृष्टिर्महाराज जायते बहुवार्षिकी ॥ ६५
ततस्तान्यल्पसाराणि सत्त्वानि क्षुधितानि वै ।
प्रलयं यान्ति भूयिष्ठं पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ ६६
ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप ।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च ॥ ६७

---

नाद्रियन्ते विदुः' इति पूर्वेषां व्याख्यासङ्क्षेपः । अन्नमन्नं तदेव शूलं दुःखदं येषां ते क्षुद्व्याधिग्रस्ता इत्यर्थः । शिवाः सर्वपुरुषप्रार्थनीयतया कल्याणवत्यः । शूलाः पण्यस्त्रियो येषु ते शिवशूलाः । विटवाराङ्गनापूर्णाश्चतुष्पथा इत्यर्थः । स्त्रियः पाणिग्रहणवत्योऽपि केशोपलक्षितं सौभाग्यं लज्जामूलं शीलं शूलमिव दुःखदं त्याज्यं च यासाम् ताः केशशूलाः । भर्तृद्वेषिण्यस्त्यक्तलज्जाश्च इत्यर्थः । 'अन्नं भक्ते च शुक्रे च शूलं स्याद्रोग आयुधे । योगे शूला तु पण्यस्त्री शिवं क्षेमे जले सुखे । चतुष्पथश्चतुर्मार्गे सङ्गमे ब्राह्मणेऽपि च । केशः स्यात् पुंसि वरुणे ह्रीबेरे कुन्तलेऽपि च' इति मेदिनी । ह्रीबेरं लज्जामूलं शीलमित्यर्थः । वेरशब्दः कर्णाटेषु मूले प्रसिद्धः ॥ ४२ ॥ मिथ्याधर्मः कपटधर्मः स एव ध्वज इव ख्यात्यर्थं ज्ञाप्यो येषां ते तथा । चञ्चूर्यन्ते पीड्यन्ते । दिशः दिक्स्थाः जनाः ॥ ४५ ॥ पानपा मद्यपाः ॥ ४८ ॥ शुचिर्ब्राह्मणपरिव्राजकादिः । अशुचिरिति वा छेदः ॥ ५१ ॥ विधर्माणस्त्यक्तधर्माः ॥ ५५ ॥ नगराणां नगरस्थानाम् । विहारेषु क्रिडासु । विधर्माणो व्यभिचारिणः ॥ ५६ ॥ आढ्योऽहमिति मदः आढ्यमदः ॥ ५७ ॥ पुरुषादानि वृकव्याघ्रादीनि । चैत्येषु देवतास्थानेषु ॥ ५९ ॥ गर्भधरा अतिकामातुरा इत्यर्थः ॥ ६० ॥ अर्हतो योग्यान् ॥ ६३ ॥ ततो दिनकरैर्दीप्तैरित्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन कलिरूपः संपुंभवो दुराचारबाहुल्यादनन्तं नरकं प्राप्नोतीति दर्शितम् । तत्परिहारार्थं योगमनुतिष्ठेदिति विधीयते स्वानुभवकथनप्रकारेण - ततो दिनकरैरित्यादिना । सोऽयं ग्रन्थो बहिर्दृष्टीनां कल्पान्तप्रतिपादनपरतया भासमानोऽपि योगपर एवास्ति । अनन्तरिक्षे लोकेऽस्मिन्निति वाक्यशेषे आकाशाभावस्याप्युक्तत्वेन निराश्रयस्य जलधातुमात्रस्य सत्त्वायोगात् समान प्रकारे पुष्करप्रादुर्भावे च । 'नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले' इति स्पष्टं भूतपञ्चकनाशस्य प्रतिपादनात् । तथापि कथापक्षे स्पष्टोऽर्थ इति योगपक्ष एव व्याख्यायते । कथापक्षे दिन-

यच्च काष्ठं तृणं चापि शुष्कं चार्द्रं च भारत।
सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं दृश्यते भरतर्षभ ॥ ६८
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भारत।
लोकमाविशते पूर्वमादित्यैरुपशोषितम् ॥ ६९
ततः स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम्।
देव-दानव-यक्षाणां भयं जनयते महत् ॥ ७०
निर्दहन्नागलोकं च यच्च किञ्चित् क्षिताविह।
अधस्तात् पृथिवीपाल सर्वं नाशयते क्षणात् ७१
ततो योजनविंशानां सहस्राणि शतानि च।
निर्दहत्यशिवो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥७२
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्।
ततो दहति दीप्तः स सर्वमेव जगद्विभुः ॥ ७३
ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्मालाविभूषिताः।
उत्तिष्ठन्ति महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥ ७४
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित् कुमुदसन्निभाः।
केचित्किञ्जल्कसङ्काशाः केचित् पीताः पयोधराः
केचिद्धारिद्रसङ्काशाः काकाण्डकनिभास्तथा।
केचित् कमलपत्राभाः केचिद्धिङ्गुलसप्रभाः ॥७६
केचित् पुरवराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः।
केचिदञ्जनसङ्काशाः केचिन्मकरसन्निभाः ॥ ७७
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तिष्ठन्ति वै घनाः।
घोररूपा महाराज घोरस्वननिनादिताः।
ततो जलधराः सर्वे व्याप्नुवन्ति नभस्तलम् ॥ ७८
तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा।
आपूर्यते महाराज सलिलौघपरिप्लुता ॥ ७९
ततस्ते जलदा घोरा राविणः पुरुषर्षभ।
सर्वतः प्लावयन्त्याशु चोदिताः परमेष्ठिना ॥ ८०
वर्षमाणा महत् तोयं पूरयन्तो वसुन्धराम्।
सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति च पावकम् ॥ ८१
ततो द्वादशवर्षाणि पयोदास्त उपप्लवे।
धाराभिः पूरयन्तो वै चोद्यमाना महात्मना ॥८२
ततः समुद्रः स्वां वेलामतिक्रामति भारत।
पर्वताश्च विदीर्यन्ते मही चाप्सु निमज्जति ॥ ८३
सर्वतः सहसा भ्रान्तास्ते पयोदा नभस्तलम्।
संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगपराहताः ॥ ८४
ततस्तं मारुतं घोरं स्वयम्भूर्मनुजाधिप।
आदिः पद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भारत ॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
नष्टे देवासुरगणे यक्षराक्षसवर्जिते ॥ ८६
निर्मनुष्ये महीपाल निःश्वापदमहीरुहे।
अनन्तरिक्षे लोकेऽस्मिन् भ्रमाम्येकोऽहमाहतः ॥
एकार्णवे जले घोरे विचरन् पार्थिवोत्तम।
अपश्यन् सर्वभूतानि वैक्लव्यमगमं ततः ॥ ८८

करैर्द्वादशादित्यैः पीयते सप्तभिर्दीप्तैः सप्तज्वालाभिः कल्पान्ताग्निना च भस्मसात् दृश्यत इति द्वयोः सम्बन्धः ॥ ६७ ॥ तस्यैव विवरणं ततः संवर्तक इति ॥ ६९ ॥ ततः स वह्निः ॥ ७० ॥ गजकुलप्रख्या गजसमुदाया इव कृष्णाः ॥ ७४ ॥ राविणः शब्दवन्तः ॥ ८० ॥ योगपक्षे तु दिनकरैः सूर्यनाडी इडा तया। बहुवचनं तदीयावयवाभिप्रायेण। सलिलं चैतन्यगर्भिता चित्तवृत्तिः। समुद्रेषु कामेषु। 'कामं समुद्रमाविश' इति मन्त्रवर्णात् सरित्सु-नाडीषु प्रसृता पीयते संन्हीयते। सप्तभिः प्राणैरुद्दीपितया नाड्या वायुमाकृष्य चित्तवृत्तिर्निरुध्यत इत्यर्थः। तदा काष्ठादितुल्यं शरीरं भस्मसाद्भूतमदर्शनं गतं दृश्यते-अनुभूयते। तदानीं जाठरोऽग्निरपि लोकदृष्ट्या स्थितं देहं न बाधते। वायुना तस्यापि लोकमिश्रं स्थानं भ्रूघ्राणसन्धिरूपं प्रति नीतत्वादित्याह तत इति। पूर्वमादित्यैरिडानाडीरूपैरुपशोषितामित्येतदेव प्रपञ्चयति चतुर्भिस्ततः स इत्यादिभिः। वायुरनलश्च नाड्यन्तर्गतो दहति। तत्तदवयवमभिमानत्यागादसत्कल्पं करोतीत्यर्थः। अत्र उपाध्यन्तराश्रयं विना पूर्वोपाधिनिर्मोको न भवतीत्याशङ्क्य तदानीमेव रेचकाभ्यासाज्जलधातुमालम्ब्य भूधातुं सर्वात्मना त्यजतीत्याह 'ततो गजकुलप्रख्याः' इत्यादिना 'मही चाप्सु निमज्जति' इत्यन्तेन। ततः समुद्र इति। समुद्रो देहविषयः कामः। स्वां वेलाम् देहानुबन्धनमतिक्रामति। स कामः सर्वथा निवर्तत इत्यर्थः ॥ ८३॥ वाग्न्यग्न्योः साहचर्यात् अग्निसहितं वायुमालम्ब्य जलधातुमपि त्यजतीत्याह सर्वत इति। पयोदा इति तन्नाशेन तद्‌गतस्य जलस्यापि नाशो लक्ष्यते। तत्र वायुवेगपराहताः पयोदा नश्यन्ति स्वयंभूर्नभस्तलं संवेष्टयित्वाऽऽकाशं संहृत्य मारुतं पीत्वाऽऽकाशनाशेनैव तत्कार्यस्य मारुतस्य नाशं कृत्वा स्वपिति स्वं प्रत्यगात्मानमपिति गच्छति। तथा च स्वपिति शब्दनिर्वचनं श्रूयते-'यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते'। स्वं ह्यपीतो भवतीति स्वयम्भूः सूत्रात्मा सता शुद्धेन ब्रह्मणा सम्पन्न ऐक्यं गतः स्वप्रत्यगात्मना ॥ ८४ ॥ भौतिकप्रपञ्चप्रलयमाह तस्मिन्निति ॥ ८६ ॥ अनन्तरिक्षे इति पञ्चमहाभूतलय उक्तः। एकोऽहं स्थूलप्रपञ्चातीतस्तैजसं सूक्ष्मं प्रपञ्चं प्राप्तः सन् भ्रमामीति ॥ ८७ ॥ भ्रमहेतुमाह एकेति। एकार्णवे निर्विशेषे ब्रह्मणि तमश्छन्नतया घोरे जले

ततः सुदीर्घं गत्वाऽहं प्लवमानो नराधिप ।
श्रान्तः क्वचिन्न शरणं लभाम्यहमतन्द्रितः ॥ ८९
ततः कदाचित् पश्यामि तस्मिन् सलिलसञ्चये ।
न्यग्रोधं सुमहान्तं वै विशालं पृथिवीपते ॥ ९०
शाखायां तस्य वृक्षस्य विस्तीर्णायां नराधिप ।
पर्यङ्के पृथिवीपाल दिव्यास्तरणसंस्तृते ॥ ९१
उपविष्टं महाराज पद्मेन्दुसदृशाननम् ।
फुल्लपद्मविशालाक्षं बालं पश्यामि भारत ॥ ९२
ततो मे पृथिवीपाल विस्मयः सुमहानभूत् ।
कथं त्वयं शिशुः शेते लोके नाशमुपागते ॥ ९३
तपसा चिन्तयंश्चापि तं शिशुं नोपलक्षये ।
भूतं भव्यं भविष्यं च जानन्नपि नराधिप ॥ ९४
अतसीपुष्पवर्णाभः श्रीवत्सकृतभूषणः ।
साक्षाल्लक्ष्म्या इवावासः स तदा प्रतिभाति मे ॥
ततो मामब्रवीद्बालः स पद्मनिभलोचनः ।
श्रीवत्सधारी द्युतिमान् वाक्यं श्रुतिसुखावहम् ॥
जानामि त्वां परिश्रान्तं ततो विश्रामकाङ्क्षिणम् ।
मार्कण्डेय इहास्व त्वं यावदिच्छसि भार्गव ॥९७
अभ्यन्तरं शरीरे मे प्रविश्य मुनिसत्तम ।
आस्व भो विहितो वासः प्रसादस्ते कृतो मया ॥
ततो बालेन तेनैवमुक्तस्यासीत् तदा मम ।
निर्वेदो जीविते दीर्घे मनुष्यत्वे च भारत ॥ ९९
ततो बालेन तेनास्यं सहसा विवृतं कृतम् ।
तस्याहमवशो वक्त्रे दैवयोगात् प्रवेशितः ॥१००
ततः प्रविष्टस्तत्कुक्षिं सहसा मनुजाधिप ।
सराष्ट्रनगराकीर्णां कृत्स्नां पश्यामि मेदिनीम् ॥
गङ्गां शतद्रुं सीतां च यमुनामथ कौशिकीम् ।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं चन्द्रभागां सरस्वतीम् ॥ २
सिन्धुं चैव विपाशां च नदीं गोदावरीमपि ।
वस्वोकसारां नलिनीं नर्मदां चैव भारत ॥ ३
नदीं ताम्रां च वेणां च पुण्यतोयां शुभावहाम् ।
सुवेणां कृष्णवेणां च इरामां च महानदीम् ॥ ४
वितस्तां च महाराज कावेरीं च महानदीम् ।
शोणं च पुरुषव्याघ्र विशल्यां किम्पुनामपि ॥ ५
एताश्चान्याश्च नद्योऽहं पृथिव्यां या नरोत्तम ।
परिक्रामन् प्रपश्यामि तस्य कुक्षौ महात्मनः ॥ ६
ततः समुद्रं पश्यामि यादोगणनिषेवितम् ।
रत्नाकरममित्रघ्न पयसो निधिमुत्तमम् ॥ ७
तत्र पश्यामि गगनं चन्द्रसूर्यविराजितम् ।
जाज्वल्यमानं तेजोभिः पावकार्कसमप्रभम् ॥ ८
पश्यामि च महीं राजन् काननैरुपशोभिताम् ।
यजन्ते हि तदा राजन् ब्राह्मणा बहुभिर्मखैः ॥ ९
क्षत्रियाश्च प्रवर्तन्ते सर्ववर्णानुरञ्जनैः ।
वैश्याः कृषिं यथान्यायं कारयन्ति नराधिप ॥१०
शुश्रूषायां च निरता द्विजानां वृषलास्तदा ।
ततः परिपतन् राजंस्तस्य कुक्षौ महात्मनः ॥ ११
हिमवन्तं च पश्यामि हेमकूटं च पर्वतम् ।
निषधं चापि पश्यामि श्वेतं च रजतान्वितम् ॥१२
पश्यामि च महीपाल पर्वतं गन्धमादनम् ।
मन्दरं मनुजव्याघ्र नीलं चापि महागिरिम् ॥१३
पश्यामि च महाराज मेरुं कनकपर्वतम् ।
महेन्द्रं चैव पश्यामि विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम् १४
मलयं चापि पश्यामि पारियात्रं च पर्वतम् ।
एते चान्ये च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः ॥ १५
तस्योदरे मया दृष्टाः सर्वे रत्नविभूषिताः ।
सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च पश्यामि मनुजाधिप
पृथिव्यां यानि चान्यानि सत्त्वानि जगतीपते ।
तानि सर्वाण्यहं तत्र पश्यन् पर्यचरं तदा ॥ १७
कुक्षौ तस्य नरव्याघ्र प्रविष्टः सञ्चरन् दिशः ।
शक्रादींश्चापि पश्यामि कृत्स्नान् देवगणानहम् ॥
साध्यान्रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान् गुह्यकान्पितरस्तथा
सर्पान् नागान् सुपर्णांश्च वसूनप्यश्विनावपि ॥१९
गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृषींश्चैव महीपते ।
दैत्यदानवसङ्घांश्च नागांश्च मनुजाधिप ॥ २०
सिंहिकातनयांश्चापि ये चान्ये सुरशत्रवः ।
यच्च किञ्चिन्मया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥२१
सर्वं पश्याम्यहं राजंस्तस्य कुक्षौ महात्मनः ।
त्वरमाणः फलाहारः कृत्स्नं जगदिदं विभो ॥ २२
अन्तःशरीरे तस्याहं वर्षाणामधिकं शतम् ।
न च पश्यामि तस्याहं देहस्यान्तं कदाचन ॥२३

सति पारावारशून्यजलात्मना विवर्तमाने सति शुक्ताविव रूप्यात्मना तस्माच्च जलभ्रमाद्वैक्लव्यं मूर्च्छामगमं प्राप्तवानस्मि ॥ ८८ ॥ 'ततः सुदीर्घं गत्वाऽहम्' इत्यादिना 'स एष पुरुषव्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दनः' इत्यन्तेन ग्रन्थेन कृष्णमूर्तेरेव सार्वात्म्यं सर्वकर्तृत्वं चोक्तम् । तदेतदुपपादितमादिसभयोः । अनेकबीजगर्भफलतुल्यस्यानेकब्रह्माण्डवृक्षकारणत्वं कृष्णस्य युज्यते इति ॥ ८९ ॥ ततो बालेनेति । निर्वेदो वैराग्यम् । धिङ्मम दीर्घजीवित्वं मानुषत्वं च । यन्मां बालोऽपि 'प्रसादस्ते कृतो मया' इति वदतीति स्वाज्ञानप्रकाशनं भगवन्मायायाः प्राबल्यख्यापनार्थम् ॥ ९९ ॥

सततं धावमानश्च चिन्तयानो विशाम्पते ।
आसादयामि नैवान्तं तस्य राजन् महात्मनः॥२४
ततस्तमेव शरणं गतोऽस्मि विधिवत् तदा ।
वरेण्यं वरदं देवं मनसा कर्मणैव च ॥ २५
ततोऽहं सहसा राजन् वायुवेगेन निःसृतः ।
महात्मनो मुखात् तस्य विवृतात् पुरुषोत्तम॥२६
ततस्तस्यैव शाखायां न्यग्रोधस्य विशाम्पते ।
आस्ते मनुजशार्दुल कृत्स्नमादाय वै जगत् ॥ २७
तेनैव बालवेषेण श्रीवत्सकृतलक्षणम् ।
आसीनं तं नरव्याघ्र पश्याम्यमिततेजसम् ॥ २८
ततो मामब्रवीद्बालः स प्रीतः प्रहसन्निव ।
श्रीवत्सधारी द्युतिमान् पीतवासा महाद्युतिः॥२९
अपीदानीं शरीरेऽस्मिन् मामके मुनिसत्तम ।
उषितस्त्वं परिश्रान्तो मार्कण्डेय ब्रवीमि ते ॥३०
मुहूर्तादथ मे दृष्टिः प्रादुर्भूता पुनर्नवा ।
यया निर्मुक्तमात्मानमपश्यं लब्धचेतसम् ॥ ३१
तस्य ताम्रतलौ तात चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।
सुजातौ मृदुरक्ताभिरङ्गुलीभिर्विराजितौ ॥ ३२
प्रयत्नेन मया मूर्ध्ना गृहीत्वा ह्यभिवन्दितौ ।
दृष्ट्वाऽपरिमितं तस्य प्रभावममितौजसः ॥ ३३
विनयेनाञ्जलिं कृत्वा प्रयत्नेनोपगम्य ह ।
दृष्टो मया स भूतात्मा देवः कमललोचनः ॥ ३४
तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्येदमब्रुवम् ।
ज्ञातुमिच्छामि देव त्वां मायां चैतां तवोत्तमाम्
आस्येनानुप्रविष्टोऽहं शरीरे भगवंस्तव ।
दृष्टवानखिलान् सर्वान् समस्तान् जठरे हि ते॥३६
तव देव शरीरस्था देव-दानव-राक्षसाः ।
यक्ष-गन्धर्व-नागाश्च जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ ३७
त्वत्प्रसादाच्च मे देव स्मृतिर्न परिहीयते ।
द्रुतमन्तःशरीरे ते सततं परिवर्तिनः ॥ ३८
निर्गतोऽहमकामस्तु इच्छया ते महाप्रभो ।
इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वाऽहमनिन्दितम् ॥
इह भूत्वा शिशुः साक्षात् किं भवानवतिष्ठते ।
पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ४०
किमर्थं च जगत् सर्वं शरीरस्थं तवानघ ।
कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिन्दम । ४१
एतदिच्छामि देवेश श्रोतुं ब्राह्मणकाम्यया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥ ४२
महद्ध्येतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान् प्रभो ।
इत्युक्तः स मया श्रीमान् देवदेवो महाद्युतिः ।
सान्त्वयन् मामिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः १४३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि
अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

## १८९

देव उवाच ।
कामं देवाऽपि मां विप्र न हि जानन्ति तत्त्वतः ।
त्वत्प्रीत्या तु प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम्॥ १
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मां चैव शरणं गतः ।
ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥ २
अपां नारा इति पुरा संज्ञाकर्म कृतं मया ।
तेन नारायणोऽप्युक्तो मम तत् त्वयनं सदा ॥ ३
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः ।
विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चाहं सुराधिपः ।
अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

१८९

**काममिति**॥१॥ अपां नारा इति । अपामथुपलक्षितस्य पाञ्चभौतिकस्य सङ्घातस्य नारा इति यौगिकं नाम । 'आपो वै नरसूनवः' इति प्रदेशान्तरे विवरणात् । नरेण अविद्यावच्छिन्नरूपेणानादिना जीवेनानुपाधौ ब्रह्मणि शुक्तौ रजतमिव कल्पितत्वात् । मम तत्त्वयनमिति 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इति श्रुतेरहमेव सङ्घातस्य स्रष्टा तदभिमानी चेति जीवेश्वरयोरभेदो दर्शितः ॥३॥ अहं विष्णुरहं ब्रह्मेत्यादिना तत्पदार्थमनूद्य तस्य ब्रह्मादिजीवाभिन्नत्वं शुप्रभृतिजडवर्गाभिन्नत्वं चेतनाचेतनास्थितिकर्तृत्वं च प्रतिपाद्यते ॥ ५ ॥

अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपोऽथ प्रजापतिः ।
अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥ ६
अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने ।
द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसम्भवाः
सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः ।
मया क्रतुशतैरिष्टं बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः ॥ ८
यजन्ते वेदविदुषो मां देवयजने स्थितम् ।
पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥९
यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषया ।
चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् १०
शेषो भूत्वाऽहमेवैतां धारयामि वसुन्धराम् ।
वाराहं रूपमास्थाय मयेयं जगती पुरा ॥ ११
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणासीत् समुद्धृता ।
अग्निश्च वडवावक्त्रो भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥ १२
पिबाम्यपः सदा विद्वंस्ताश्चैव विसृजाम्यहम् ।
ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः ॥ १३
पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदोऽप्यथर्वणः ॥ १४
मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च ।
यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः ॥ १५
काम-क्रोध-द्वेषमुक्ता निःसङ्गा वीतकल्मषाः ।
सत्त्वस्था निरहङ्कारा नित्यमध्यात्मकोविदाः १६
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते ।
अहं संवर्तको वह्निरहं संवर्तकोऽनलः ॥ १७
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः ।
तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले ॥ १८
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम ।
रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशम् ॥ १९
वसनं शयनं चैव विलयं चैव विद्धि मे ।
विभक्तास्ते देवकार्यार्थसिद्धये ॥ २०
कामं क्रोधं च हर्षं च भयं मोहं तथैव च ।
ममैव विद्धि रोमाणि सर्वाण्येतानि सत्तम ॥२१
प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत् कृत्वा कर्म शोभनम् ।
सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसा चैव जन्तुषु ॥ २२
मद्विधानेन विहिता मम देहविहारिणः ।
मयाऽभिभूतविज्ञाना विचेष्टन्ते न कामतः ॥ २३
सम्यग्वेदमधीयाना यजन्ते विविधैर्मखैः ।
शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः
प्राप्तुं न शक्यो यो विद्वन्नरैर्दुष्कृतकर्मभिः ।
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यैरकृतात्मभिः ॥ २५
तस्मान्महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ।
सुदुष्प्रापं विमूढानां मार्गं योगैर्निषेवितम् ॥ २६
यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् २७
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ।
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः
तदाऽहं सम्प्रसूयामि गृहेषु शुभकर्मणाम् ।
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् ॥ २९
सृष्ट्वा देवमनुष्यांस्तु गन्धर्वोरगराक्षसान् ।
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया ॥ ३०
कर्मकाले पुनर्देहमविचिन्त्य सृजाम्यहम् ।
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् ॥ ३१
श्वेतः कृतयुगे वर्णः पीतस्त्रेतायुगे मम ।
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा ॥ ३२
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन् काले भवन्ति च
अन्तकाले च सम्प्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः३३
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ।
अहं त्रिवर्त्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः ॥३४
आविर्भूः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः ।
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मन्नहमरूपकम् ॥ ३५
शमनं सर्वभूतानां सर्वलोककृतोद्यमम् ।
एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममात्मा मुनिसत्तम ।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥ ३६
सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः ।
यच्च किञ्चित् त्वया प्राप्तं मयि क्लेशात्मकं द्विज३७
सुखोदयाय तत् सर्वं श्रेयसे च तवानघ ।
यच्च किञ्चित् त्वया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ३८
विहितः सर्वथैवासौ ममात्मा भूतभावनः ।
अर्धं मम शरीरस्य सर्वलोकपितामहः ॥ ३९
अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ।
यावद्युगानां विप्रर्षे सहस्रपरिवर्तनात् ॥ ४०
तावत् स्वपिमि विश्वात्मा सर्वभूतानि मोहयन् ।
एवं सर्वमहं कालमिहासे मुनिसत्तम ॥ ४१
अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ।
मया च दत्तो विप्राग्र्य वरस्ते ब्रह्मरूपिणा ॥ ४२

---

तदाऽऽत्मानं कृष्णादिविग्रहं सृजामि सूर्यवदाविर्भावयामि । यथा सूर्य आविर्भवंस्तिरोभवंश्चास्तोदयाभ्यां न स्पृश्यते किं तु अस्माभिरेव तत्र तौ कल्पितौ । एवं नन्दनन्दनेऽपि जन्मनाशौ मूढदृष्ट्यैव कल्पितावित्यर्थः॥२७॥ अर्धं ममेति । पितामहो ब्रह्माण्डात्मा । अर्धं ममेति स्वस्वरूपं विकारान्तर्वर्ति तदवर्ति चेति दर्शितम् । यथा मृत् घटादिकार्यमध्यवर्तिनी तद्बहिर्भूता च तद्वत् । अत एव सूत्रं ' विकारावर्ति च तथा स्थितिमाह ' इति । ' जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ' । 'भोगमा-

असकृत् परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित ।
सर्वमेकार्णवं दृष्ट्वा नष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४३
विक्लवोऽसि मया ज्ञातस्ततस्ते दर्शितं जगत् ।
अभ्यन्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम ॥ ४४
दृष्ट्वा लोकं समस्तं च विस्मितो नावबुध्यसे ।
ततोऽसि वक्त्राद्विप्रर्षे द्रुतं निःसारितो मया ४५
आख्यातस्ते मया चात्मा दुर्ज्ञेयो हि सुरासुरैः ॥
यावत् स भगवान् ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः ।
तावत् त्वमिह विप्रर्षे विश्रब्धश्चर वै सुखम् ४७
ततो विबुद्धे तस्मिंस्तु सर्वलोकपितामहे ।
एकीभूतो हि स्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम॥४८
आकाशं पृथिवीं ज्योतिर्वायुं सलिलमेव च ।
लोके यच्च भवेच्छेषमिह स्थावरजङ्गमम् ॥ ४९

मार्कण्डेय उवाच ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्हितस्तात स देवः परमाद्भुतः ।
प्रजाश्चेमाः प्रपश्यामि विचित्रा विविधाः कृताः॥५०
एवं दृष्टं मया राजंस्तस्मिन् प्राप्ते युगक्षये ।
आश्चर्यं भरतश्रेष्ठ सर्वधर्मभृतां वर ॥ ५१
यः स देवो मया दृष्टः पुरा पद्मायतेक्षणः ।
स एष पुरुषव्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दनः ॥ ५२
अस्यैव वरदानाद्धि स्मृतिर्न प्रजहाति माम् ।
दीर्घमायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं मम ॥ ५३
स एष कृष्णो वार्ष्णेयः पुराणपुरुषो विभुः ।
आस्ते हरिरचिन्त्यात्मा क्रीडन्निव महाभुजः॥५४
एष धाता विधाता च संहर्ता चैव शाश्वतः ।
श्रीवत्सवक्षा गोविन्दः प्रजापतिपतिः प्रभुः ॥५५
दृष्ट्वेमं वृष्णिप्रवरं स्मृतिर्मामियमागता ।
आदिदेवमयं जिष्णुं पुरुषं पीतवाससम् ॥ ५६
सर्वेषामेव भूतानां पिता माता च माधवः ।
गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यं कौरवर्षभाः ॥ ५७

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्ताश्च ते पार्था यमौ च पुरुषर्षभौ ।
द्रौपद्या सहिताः सर्वे नमश्चक्रुर्जनार्दनम् ॥ ५८
स चैतान् पुरुषव्याघ्र साम्ना परमवल्गुना ।
सान्त्वयामास मानार्हो मन्यमानो यथाविधि ५९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि भविष्यकथने एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

## १९०

वैशम्पायन उवाच ।

युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
पुनः पप्रच्छ साम्राज्ये भविष्यां जगतो गतिम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

आश्चर्यभूतं भवतः श्रुतं नो वदतां वर ।
मुने भार्गव यद्वृत्तं युगादौ प्रभवात्ययम् ॥ २
अस्मिन् कलियुगे त्वस्ति पुनः कौतूहलं मम ।
समाकुलेषु धर्मेषु किं तु शेषं भविष्यति ॥ ३
किंवीर्या मानवास्तत्र किमाहारविहारिणः ।
किमायुषः किंवसना भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ४
काञ्च काष्ठां समासाद्य पुनः सम्पत्स्यते कृतम् ।
विस्तरेण मुने ब्रूहि विचित्राणीह भाषसे ॥ ५
इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठः पुनरेवाभ्यभाषत ।
रमयन् वृष्णिशार्दूलं पाण्डवांश्च महानृषिः ॥ ६

त्रसाम्यलिङ्गाच्च ' इति सूत्राभ्यां नित्यसिद्धेश्वरस्य उपासनासिद्धानामीश्वराणां चाद्यस्य जगत्सृष्टौ स्वातन्त्र्यम् । इतरेषां भूतसृष्टिकाले सन्निधानादसामर्थ्यं च । उभयेषां गीतवादित्रादिभोगे साम्यं चास्तीति प्रदर्श्य आद्यस्य स्वरूपं महदादिविकाराद्बहिर्भूतं चकारात्तदन्तर्वर्ति च । ' स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ' इति वेद एवाविकारस्य रूपस्य स्थितिमाह । तस्मात् कृष्णमूर्तिर्व्यवहारतो वियदादिवन्नित्येति युक्तमुत्पश्यामः। श्रुतिविरोधस्त्वत्र प्रागेव निरस्तः॥३९॥ यावदिति। ब्रह्मा विराट्। इह लिंगात्मनि स्थूलाध्यासोदयाद्वाक् सूक्ष्मे एव स्थातव्यमित्यर्थः। स्पष्टार्थमन्यत् ॥४७॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

१९०.

एवं कृष्णाद्वैतं प्रसाध्य तत्र प्रीतिहेतोर्विषयवैराग्यस्योत्पादनाय पुनर्भविष्यमेवाध्यायद्वयेन प्रश्नपूर्वकमाह **युधिष्ठिरस्त्वित्यादिना** । साम्राज्ये कर्तव्ये सति ॥ १ ॥ किं तु कथं तु शेषं जगद्भविष्यति उत्कर्षं प्राप्स्यति ॥ ३ ॥ काष्ठामवधिम् । कृतं कृतयुगम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् मया दृष्टं यत् पुरा श्रुतमेव च ।
अनुभूतं च राजेन्द्र देवदेवप्रसादजम् ॥ ७
भविष्यं सर्वलोकस्य वृत्तान्तं भरतर्षभ ।
कलुषं कालमासाद्य कथ्यमानं निबोध मे ॥ ८
कृते चतुष्पात् सकलो निर्व्याजोपाधिवर्जितः ।
वृषः प्रतिष्ठितो धर्मो मनुष्ये भरतर्षभ ॥ ९
अधर्मपादविद्धस्तु त्रिभिरंशैः प्रतिष्ठितः ।
त्रेतायां द्वापरेऽर्धेन व्यामिश्रो धर्म उच्यते ॥ १०
त्रिभिरंशैरधर्मस्तु लोकानाक्रम्य तिष्ठति ।
तामसं युगमासाद्य तदा भरतसत्तम ॥ ११
चतुर्थांशेन धर्मस्तु मनुष्यानुपतिष्ठति ।
आयुर्वीर्यमथो बुद्धिर्बलं तेजश्च पाण्डव ॥ १२
मनुष्याणामनुयुगं ह्रसतीति निबोध मे ।
राजानो ब्राह्मणा वैश्याः शूद्राश्चैव युधिष्ठिर १३
व्याजैर्धर्मं चरिष्यन्ति धर्मवैतंसिका नराः ।
सत्यं सङ्क्षेप्स्यते लोके नरैः पण्डितमानिभिः ॥
सत्यहान्या ततस्तेषामायुरल्पं भविष्यति ।
आयुषः प्रक्षयाद्विद्यां न शक्ष्यन्त्युपजीवितुम् ॥ १५
विद्याहीनानविज्ञानाल्लोभोऽप्यभिभविष्यति ।
लोभक्रोधपरा मूढाः कामासक्ताश्च मानवाः १६
वैरबद्धा भविष्यन्ति परस्परवधैषिणः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सङ्कीर्यन्तः परस्परम् १७
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः ।
अन्त्या मध्या भविष्यन्ति मध्याश्चान्त्या न संशयः
ईदृशो भविता लोको युगान्ते पर्युपस्थिते ।
वस्त्राणां प्रवरा शाणी धान्यानां कोरदूषकाः १९
भार्यामित्राश्च पुरुषा भविष्यन्ति युगक्षये ।
मत्स्यामिषेण जीवन्तो दुहन्तश्चाप्यजैडकम् ॥ २०
गोषु नष्टासु पुरुषा येऽपि नित्यं धृतव्रताः ।
तेऽपि लोभसमायुक्ता भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २१
अन्योन्यं परिमुष्णन्तो हिंसयन्तश्च मानवाः ।
अजपा नास्तिकाः स्तेना भविष्यन्ति युगक्षये २२
सरित्तीरेषु कुद्दालैर्वापयिष्यन्ति चौषधीः ।
ताश्चाप्यल्पफलास्तेषां भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २३
श्राद्धे दैवे च पुरुषा येऽपि नित्यं धृतव्रताः ।
तेऽपि लोभसमायुक्ता भोक्ष्यन्तीह परस्परम् ॥ २४
पिता पुत्रस्य भोक्ता च पितुः पुत्रस्तथैव च ।
अतिक्रान्तानि भोज्यानि भविष्यन्ति युगक्षये २५
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः ।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः ।
निम्नेऽर्घाहां करिष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः ॥ २६
निम्ने कृषिं करिष्यन्ति योक्ष्यन्ति धुरि धेनुकाः ।
एकहायनवत्सांश्च योजयिष्यन्ति मानवाः ॥ २७
पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा ।
निरुद्वेगो बृहद्वादी न निन्दामुपलप्स्यते ॥ २८
म्लेच्छभूतं जगत् सर्वं निष्क्रियं यज्ञवर्जितम् ।
भविष्यति निरानन्दमनुत्सवमथो तथा ॥ २९
प्रायशः कृपणानां हि तथा बन्धुमतामपि ।
विधवानां च वित्तानि हरिष्यन्तीह मानवाः ३०
स्वल्पवीर्यबलाः स्तब्धा लोभमोहपरायणाः ।
तत्कथादानसन्तुष्टा दुष्टानामपि मानवाः ॥ ३१
परिग्रहं करिष्यन्ति मायाचारपरिग्रहाः ।
समाह्वयन्तः कौन्तेय राजानः पापबुद्धयः ॥ ३२
परस्परवधोद्युक्ता मूर्खाः पण्डितमानिनः ।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते क्षत्रिया लोककण्टकाः ॥
अरक्षितारो लुब्धाश्च मानाहङ्कारदर्पिताः ।
केवलं दण्डरुचयो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ३४
आक्रम्याक्रम्य साधूनां दारांश्चापि धनानि च ।
भोक्ष्यन्ते निरनुक्रोशा रुदतामपि भारत ॥ ३५
न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते ।
स्वयंग्राहा भविष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥ ३६
राजानश्चाप्यसन्तुष्टाः परार्थान् मूढचेतसः ।
सर्वोपायैर्हरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ३७
म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः ।
हस्तो हस्तं परिमुषेद्युगान्ते समुपस्थिते ॥ ३८
सत्यं सङ्क्षिप्यते लोके नरैः पण्डितमानिभिः ।
स्थविरा बालमतयो बालाः स्थविरबुद्धयः ॥ ३९
भीरुस्तथा शूरमानी शूरा भीरुविषादिनः ।
न विश्वसन्ति चान्योन्यं युगान्ते पर्युपस्थिते ४०

कलुषं कलिम् ॥ ८ ॥ निर्व्याजश्छद्महीनः । उपाधिवर्जितो लोभादिहीनः । वृष इव चतुष्पात् ।९॥ अर्धेनाधर्मेण॥१०॥ धर्मवैतंसिकाः धर्मजालिकाः । 'वीतंसो बंधनोपाये पशूनां पक्षिणामपि' इति मेदिनी । धर्मजालं विस्तार्य लोकान् वञ्चयन्तीत्यर्थः॥१४॥ अन्त्या इति । चाण्डालाः क्षत्रियादिकर्म क्षत्रियादयश्चाण्डालकर्म करिष्यन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ शाणी शणसूत्रजा ॥ १९ ॥ निम्नेषु हीनेषु कर्मसु ॥ २६ ॥ बृहद्वादी अकर्ता ब्रह्माऽहमिति वदनशीलः ॥ २८ ॥ परार्थान् परधनानि ॥३७॥ हस्तो हस्तं परिमुषेद्धस्तवदेकोदरजोऽपि भ्राता भ्रातरं वञ्चयेदेव ॥ ३८ ॥

एकाहार्यं युगं सर्वं लोभमोहव्यवस्थितम् ।
अधर्मो वर्द्धते तत्र न तु धर्मः प्रवर्त्तते ॥ ४१
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या न शिष्यन्ति जनाधिप।
एकवर्णस्तदा लोको भविष्यति युगक्षये ॥ ४२
न क्षंस्यति पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा।
भार्याश्च पतिशुश्रूषां न करिष्यन्ति सङ्क्षये ॥ ४३
ये यवान्ना जनपदा गोधूमान्नास्तथैव च ।
तान् देशान् संश्रयिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते
स्वैराचाराश्च पुरुषा योषितश्च विशाम्पते ।
अन्योन्यं न सहिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥४५
म्लेच्छभूतं जगत् सर्वं भविष्यति युधिष्ठिर ।
न श्राद्धैस्तर्पयिष्यन्ति दैवतानीह मानवाः ॥ ४६
न कश्चित् कस्यचिच्छ्रोता न कश्चित् कस्यचिद्गुरुः
तमोग्रस्तस्तदा लोको भविष्यति जनाधिप ॥४७
परमायुश्च भविता तदा वर्षाणि षोडश ।
ततः प्राणान् विमोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते४८
पञ्चमे वाऽथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते ।
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा ॥ ४९
पत्यौ स्त्री तु तदा राजन् पुरुषो वा स्त्रियं प्रति ।
युगान्ते राजशार्दुल न तोषमुपयास्यति ॥ ५०
अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा हिंसा च प्रभविष्यति ।
न कश्चित् कस्यचिद्दाता भविष्यति युगक्षये ॥५१
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
केशशूलाः स्त्रियश्चापि भविष्यन्ति युगक्षये ॥५२
म्लेच्छाचाराः सर्वभक्षा दारुणाः सर्वकर्मसु ।
भाविनः पश्चिमे काले मनुष्या नात्र संशयः॥
क्रयविक्रयकाले च सर्वः सर्वस्य वञ्चनम् ।
युगान्ते भरतश्रेष्ठ वित्तलोभात् करिष्यति ॥ ५४
ज्ञानानि चाप्यविज्ञाय करिष्यन्ति क्रियास्तथा।
आत्मच्छन्देन वर्तन्ते युगान्ते समुपस्थिते ॥ ५५
स्वभावात् क्रूरकर्माणश्चान्योन्यमभिशंसिनः ।
भवितारो जनाः सर्वे सम्प्राप्ते तु युगक्षये ॥ ५६
आरामांश्चैव वृक्षांश्च नाशयिष्यन्ति निर्व्यथाः ।
भविता संशयो लोके जीवितस्य हि देहिनाम् ॥
तथा लोभाभिभूताश्च भविष्यन्ति नरा नृप ।
ब्राह्मणांश्च हनिष्यन्ति ब्राह्मणस्वोपभोगिनः ॥५८
हाहाकृता द्विजाश्चैव भयार्ता वृषलार्दिताः ।
त्रातारमलभन्तो वै भ्रमिष्यन्ति महीमिमाम्॥ ५९
जीवितान्तकराः क्रूरा रौद्राः प्राणिविहिंसकाः ।
यदा भविष्यन्ति नरास्तदा सङ्क्षेप्स्यते युगम्॥६०
आश्रयिष्यन्ति च नदीः पर्वतान् विषमाणि च ।
प्रधावमाना वित्रस्ता द्विजाः कुरुकुलोद्वह ॥ ६१
दस्युभिः पीडिता राजन् काका इव द्विजोत्तमाः
कुराजभिश्च सततं करभारप्रपीडिताः ॥ ६२
धैर्यं त्यक्त्वा महीपाल दारुणे युगसङ्क्षये ।
विकर्माणि करिष्यन्ति शूद्राणां परिचारकाः॥६३
शूद्रा धर्मं प्रवक्ष्यन्ति ब्राह्मणाः पर्युपासकाः ।
श्रोतारश्च भविष्यन्ति प्रामाण्येन व्यवस्थिताः ६४
विपरीतश्च लोकोऽयं भविष्यत्यधरोत्तरः ।
एडूकान् पूजयिष्यन्ति वर्जयिष्यन्ति देवताः ॥६५
शूद्राः परिचरिष्यन्ति न द्विजान् युगसङ्क्षये ।
आश्रमेषु महर्षीणां ब्राह्मणावसथेषु च ॥ ६६
देवस्थानेषु चैत्येषु नागानामालयेषु च ।
एडूकचिह्ना पृथिवी न देवगृहभूषिता ॥ ६७
भविष्यति युगे क्षीणे तद्युगान्तस्य लक्षणम् ।
यदा रौद्रा धर्महीना मांसादाः पानपास्तथा॥६८
भविष्यन्ति नरा नित्यं तदा सङ्क्षेप्स्यते युगम् ।
पुष्पं पुष्पे यदा राजन् फले वा फलमाश्रितम् ॥
प्रजास्यति महाराज तदा सङ्क्षेप्स्यते युगम् ।
अकालवर्षी पर्जन्यो भविष्यति गते युगे ॥ ७०
अक्रमेण मनुष्याणां भविष्यन्ति तदा क्रियाः ।
विरोधमथ यास्यन्ति वृषला ब्राह्मणैः सह ॥७१
मही म्लेच्छजनाकीर्णा भविष्यति ततोऽचिरात्
करभारभयाद्विप्रा भजिष्यन्ति दिशो दश ॥ ७२
निर्विशेषा जनपदास्तथा विष्टिकरार्दिताः ।
आश्रमानुपलप्स्यन्ति फलमूलोपजीविनः ॥ ७३
एवं पर्याकुले लोके मर्यादा न भविष्यति ।
न स्थास्यन्त्युपदेशे च शिष्या विप्रियकारिणः७४
आचार्योपनिधिश्चैव भर्त्स्यते तदनन्तरम् ।
अर्थयुक्त्या प्रवर्त्स्यन्ति मित्रसम्बन्धिबान्धवाः७५

---

एकाहार्यमेकविधमेव मांसशाकादिकमाहारमर्हतीति तथा । भक्ष्याभक्ष्यविभागो नास्तीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ एकवर्णः वर्णविभागनाशनात् ॥ ४२ ॥ प्रजास्यन्ति प्रजाः जनयिष्यन्ति ॥ ४९ ॥ ज्ञानानि ज्ञेयस्वरूपाणि ॥ ५५ ॥ वृषलार्दिताः शूद्रपीडिताः॥ ५९ ॥ सङ्क्षेप्स्यते नाशं गमिष्यति ॥ ६० ॥ काका इव सर्वतः शङ्किनः नीचवृत्त्युपजीविनो वा ॥ ६२ ॥ एडूकान्-अस्थ्यङ्कितानि कुड्यानि। 'भित्तिः स्त्री कुड्यमेडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसम्' इत्यमरः॥६५॥ निर्विशेषाः तुल्याचारवेषाः। विष्टिकराः भृतिमदत्त्वा कार्यं कारयन्ति ते ॥ ७३ ॥ आचार्योऽपि अपनिधिः निधनः भर्त्स्यते । धिक्क्रियते अर्थयुक्त्या धनयोगेन न तु स्नेहेन धर्मेण वा ॥ ७५ ॥

अभावः सर्वभूतानां युगान्ते सम्भविष्यति ।
दिशः प्रज्वलिताः सर्वा नक्षत्राण्यप्रभाणि च ७६
ज्योतींषि प्रतिकूलानि वाताः पर्याकुलास्तथा ।
उल्कापाताश्च बहवो महाभयनिदर्शकाः ॥ ७७
षड्भिरन्यैश्च सहितो भास्करः प्रतपिष्यति ।
तुमुलाश्चापि निर्ह्रादा दिग्दाहाश्चापि सर्वशः ॥
कबन्धान्तर्हितो भानुरुदयास्तमने तदा ।
अकालवर्षी भगवान् भविष्यति सहस्रदृक् ॥ ७९
सस्यानि च न रोक्ष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ।
अभीक्ष्णं क्रूरवादिन्यः परुषा रुदितप्रियाः ॥ ८०
भर्तॄणां वचने चैव न स्थास्यन्ति ततः स्त्रियः ।
पुत्राश्च मातापितरौ हनिष्यन्ति युगक्षये ॥ ८१
सूदयिष्यन्ति च पतीन् स्त्रियः पुत्रानपाश्रिताः ।
अपर्वणि महाराज सूर्यं राहुरुपैष्यति ॥ ८२
युगान्ते हुतभुक्चापि सर्वतः प्रज्वलिष्यति ।
पानीयं भोजनं चापि याचमानास्तदाऽध्वगाः ८३
न लप्स्यन्ते निवासं च निरस्ताः पथिशेरते ।
निर्घातवायसा नागाः शकुनाः समृगद्विजाः ८४
रूक्षा वाचो विमोक्ष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ।
मित्रसम्बन्धिनश्चापि सन्त्यक्ष्यन्ति नरास्तदा ८५
जनं परिजनं चापि युगान्ते पर्युपस्थिते ।
अथ देशान् दिशश्चापि पत्तनानि पुराणि[1] च ८६
क्रमशः संश्रयिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ।
हा तात हा सुतेत्येवं तदा वाचः सुदारुणाः ८७
विक्रोशमानश्चान्योन्यं जनो गां पर्यटिष्यति ।
ततस्तुमुलसङ्घाते वर्तमाने युगक्षये ॥ ८८
द्विजातिपूर्वको लोकः क्रमेण प्रभविष्यति ।
ततः कालान्तरेऽन्यस्मिन् पुनर्लोकविवृद्धये ॥ ८९
भविष्यति पुनर्दैवमनुकूलं यदृच्छया ।
यदा सूर्यश्च चन्द्रश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ ९०
एकराशौ समेष्यन्ति प्रपत्स्यति तदा कृतम् ।
कालवर्षी च पर्जन्यो नक्षत्राणि शुभानि च ॥ ९१
प्रदक्षिणा ग्रहाश्चापि भविष्यन्त्यनुलोमगाः ।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्यति निरामयम् ॥ ९२
कल्की विष्णुयशा नाम द्विजः कालप्रचोदितः ।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ ९३
सम्भूतः सम्भलग्रामे ब्राह्मणावसथे शुभे ।
मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च ॥ ९४
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च ।
स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ॥ ९५
स चेमं सङ्कुलं लोकं प्रसादमुपनेष्यति ।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः ॥ ९६
सङ्क्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तकः ।
स सर्वत्र गतान् क्षुद्रान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।
उत्सादयिष्यति तदा सर्वम्लेच्छगणान् द्विजः ९७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेय-समास्यापर्वणि भविष्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

## १९१

मार्कण्डेय उवाच ।

ततश्चोरक्षयं कृत्वा द्विजेभ्यः पृथिवीमिमाम् ।
वाजिमेधे महायज्ञे विधिवत् कल्पयिष्यति ॥ १
स्थापयित्वा च मर्यादाः स्वयम्भुविहिताः शुभाः ।
वनं पुण्ययशःकर्मा रमणीयं प्रवेक्ष्यति ॥ २
तच्छीलमनुवर्त्स्यन्ति मनुष्या लोकवासिनः ।
विप्रैश्चोरक्षयश्चैव[2] कृते क्षेमं भविष्यति ॥ ३
कृष्णाजिनानि शक्तीश्च त्रिशूलान्यायुधानि च ।
स्थापयन् द्विजशार्दूलो देशेषु विजितेषु च ॥ ४
संस्तूयमानो विप्रेन्द्रैर्मानयानो द्विजोत्तमान् ।
कल्की चरिष्यति महीं सदा दस्युवधे रतः ॥ ५

कबन्धान्तर्हितः राह्वन्तर्हितः ॥ ७९ ॥ यदेति । गुरुसूर्यचन्द्राः यदा युगपत् पुष्यनक्षत्रमेष्यन्ति तदा कृतयुगप्रवृत्तिरित्यर्थः ॥ ९० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

१९१

तत इति । कल्पयिष्यति दास्यति ॥ १ ॥ 'विप्रैर्हेतुभिः कृते युगे ॥ ३ ॥

१ 'आपणानि' इति ख पाठः । २ 'चोरक्षये चैव' क, ख.

हा मातस्तात पुत्रेति तास्ता वाचः सुदारुणाः ।
विक्रोशमानान् सुभृशं दस्यूञ्ज्ञेष्यति सङ्क्षयम् ॥ ६
ततोऽधर्मविनाशो वै धर्मवृद्धिश्च भारत ।
भविष्यति कृते प्राप्ते क्रियावांश्च जनस्तथा ॥ ७
आरामाश्चैव चैत्याश्च तटाकावसथास्तथा ।
पुष्करिण्यश्च विविधा देवतायतनानि च ॥ ८
यज्ञक्रियाश्च विविधा भविष्यन्ति कृते युगे ।
ब्राह्मणाः साधवश्चैव मुनयश्च तपस्विनः ॥ ९
आश्रमाः सहपाषण्डाः स्थिताः सत्यजनाः प्रजाः
प्रयन्ति सर्वबीजानि रोप्यमाणानि चैव ह ॥ १०
सर्वेष्वृतुषु राजेन्द्र सर्वं सस्यं भविष्यति ।
नरा दानेषु निरता व्रतेषु नियमेषु च ॥ ११
जप्ययज्ञपरा विप्रा धर्मकामा मुदा युताः ।
पालयिष्यन्ति राजानो धर्मेणेमां वसुन्धराम् ॥१२
व्यवहाररता वैश्या भविष्यन्ति कृते युगे ।
षट्कर्मनिरता विप्राः क्षत्रिया विक्रमे रताः ॥१३
शुश्रूषायां रताः शूद्रास्तथा वर्णत्रयस्य च ।
एष धर्मः कृतयुगे त्रेतायां द्वापरे तथा ॥ १४
पश्चिमे युगकाले च यः स ते सम्प्रकीर्तितः ।
सर्वलोकस्य विदिता युगसङ्ख्या च पाण्डव १५
एतत् ते सर्वमाख्यातमतीतानागतं तथा ।
वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥ १६
एवं संसारमार्गा मे बहुशश्चिरजीविना ।
दृष्टाश्चैवानुभूताश्च तांस्ते कथितवानहम् ॥ १७
इदं चैवापरं भूयः सह भ्रातृभिरच्युत ।
धर्मसंशयमोक्षार्थं निबोध वचनं मम ॥ १८
धर्मे त्वयाऽऽत्मा संयोज्यो नित्यं धर्मभृतां वर ।
धर्मात्मा हि सुखं राजन् प्रेत्य चेह च नन्दति ॥
निबोध च शुभां वाणीं यां प्रवक्ष्यामि तेऽनघ ।
न ब्राह्मणे परिभवः कर्तव्यस्ते कदाचन ॥ २०
ब्राह्मणः कुपितो हन्यादपि लोकान् प्रतिज्ञया ।

वैशम्पायन उवाच ।

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा कुरूणां प्रवरो नृपः ॥ २१
उवाच वचनं धीमान् परमं परमद्युतिः ।
कस्मिन् धर्मे मया स्थेयं प्रजाः संरक्षता मुने ॥
कथं च वर्तमानो वै न च्यवेयं स्वधर्मतः ।

मार्कण्डेय उवाच ।

दयावान् सर्वभूतेषु हितो रक्तोऽनसूयकः ॥ २३
सत्यवादी मृदुर्दान्तः प्रजानां रक्षणे रतः ।
चर धर्मं त्यजाधर्मं पितॄन् देवांश्च पूजय ॥ २४
प्रमादाद्यत् कृतं तेऽभूत् सम्यग्दानेन तज्जय ।
अलं ते मानमाश्रित्य सततं परवान् भव ॥ २५
विजित्य पृथिवीं सर्वां मोदमानः सुखी भव ।
एष भूतो भविष्यश्च धर्मस्ते समुदीरितः ॥ २६
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदतीतानागतं भुवि ।
तस्मादिमं परिक्लेशं त्वं तात हृदि मा कृथाः ॥ २७
प्राज्ञास्तात न मुह्यन्ति कालेनापि प्रपीडिताः ।
एष कालो महाबाहो अपि सर्वदिवौकसाम् ॥ २८
मुह्यन्ति हि प्रजास्तात कालेनापि प्रचोदिताः ।
मा च तत्र विशङ्काऽभूद्यन्मयोक्तं तवानघ ॥ २९
[1]अशङ्क्यं मद्वचो ह्येतद्धर्मलोपो भवेत् तव ।
जातोऽसि प्रथिते वंशे कुरूणां भरतर्षभ ॥ ३०
कर्मणा मनसा वाचा सर्वमेतत् समाचर ।

युधिष्ठिर उवाच ।

यत् त्वयोक्तं द्विजश्रेष्ठ वाक्यं श्रुतिमनोहरम् ॥ ३१
तथा करिष्ये यत्नेन भवतः शासनं विभो ।
न मे लोभोऽस्ति विप्रेन्द्र न भयं न च मत्सरः ३२
करिष्यामि हि तत् सर्वमुक्तं यत् ते मयि प्रभो ।

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वा तु वचनं तस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ॥ ३३
संहृष्टाः पाण्डवा राजन् सहिताः शार्ङ्गधन्वना ।
विप्रर्षभाश्च ते सर्वे ये तत्रासन् समागताः ॥ ३४
तथा कथां शुभां श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
विस्मिताः समपद्यन्त पुराणस्य निवेदनात् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि युधिष्ठिरानुशासने एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

---

कृष्णाजिनानि ब्रह्मचारिपरिधेयानि । तेन सर्वाणि ब्राह्मणकर्माणि लक्ष्यन्ते । शक्तीरित्यादिना राजधर्माः स्थापयन् ब्रह्मक्षत्रयोर्धर्मव्यवस्थां चक्रे इति भावः॥४॥ अधर्माविनाश इति छेदः ॥७॥ ये आश्रमाः सहपाषण्डाः प्राक् स्थितास्ते प्रजाश्च सत्यजना भविष्यन्तीति सम्बन्धः। प्रयन्ति नश्यन्ति । बीजानि संस्काराः रोप्यमाणानि क्रियमाणैः कर्मभिर्दृढं सम्पाद्यमानान्यपि ज्ञानबलान्नश्यन्तीत्यर्थः ॥१०॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१

[1] 'अतिशङ्क्य वचः' इति ख पाठः ।

# १९२

वैशम्पायन उवाच ।

भूय एव ब्राह्मणमहाभाग्यं वक्तुमर्हसीत्यब्रवीत् पाण्डवेयो मार्कण्डेयम् ॥ १

अथाचष्ट मार्कण्डेयोऽपूर्वमिदं श्रूयतां ब्राह्मणानां चरितम् ॥ २

अयोध्यायामिक्ष्वाकुकुलोद्वहः पार्थिवः परिक्षिन्नाम मृगयामगमत् ॥ ३

तमेकाश्वेनमृगमनुसरन्तं मृगो दूरमपाहरत् ४

अध्वनि जातश्रमः क्षुत्तृष्णाभिभूतश्चैकस्मिन् देशे नीलं गहनं वनखण्डमपश्यत् ॥ ५

तच्च विवेश ततस्तस्य वनखण्डस्य मध्येऽतीव रमणीयं सरो दृष्ट्वा साश्व एव व्यगाहत ॥ ६

अथाश्वस्थः स बिसमृणालमश्वायाग्रतो निक्षिप्य पुष्करिणीतीरे संविवेश । ततः शयानो मधुरं गीतमशृणोत् ॥ ७

स श्रुत्वाऽचिन्तयन्नेह मनुष्यगतिं पश्यामि कस्य खल्वयं गीतशब्द इति ॥ ८

अथापश्यत् कन्यां परमरूपदर्शनीयां पुष्पाण्यवचिन्वतीं गायन्तीं च । अथ सा राज्ञः समीपे पर्यक्रामत् ॥ ९

तामब्रवीद्राजा कस्यासि भद्रे का वा त्वमिति । सा प्रत्युवाच कन्याऽस्मीति तां राजोवाचार्थी त्वयाऽहमिति ॥ १०

अथोवाच कन्या समयेनाहं शक्या त्वया लब्धुं नान्यथेति राजा तां समयमपृच्छत् । कन्योवाच नोदकं मे दर्शयितव्यमिति ॥ ११

स राजा तां बाढमित्युक्त्वा तामुपयेमे कृतोद्वाहश्च राजा परीक्षित् क्रीडमानो मुदा परमया युक्तस्तूष्णीं सङ्गम्य तया सहास्ते ॥ १२

ततस्तत्रैवासीने राजनि सेनाऽन्वगच्छत् ॥ १३

सा सेनोपविष्टं राजानं परिवार्यातिष्ठत् । पर्याश्वस्तश्च राजा तयैव सह शिबिकया प्रायादवघाटितया स स्वं नगरमनुप्राप्य रहसि तया सहास्ते ॥ १४

तत्राभ्याशस्थोऽपि कश्चिन्नापश्यदथ प्रधानामात्योऽभ्याशचरास्तस्य स्त्रियोऽपृच्छत् ॥ १५

किमत्र प्रयोजनं वर्तते इत्यथाब्रुवंस्ताः स्त्रियः॥१६

अपूर्वमिव पश्याम उदकं नात्र नीयत इत्यथामात्योऽनुदकं वनं कारयित्वोदारवृक्षं बहुपुष्पफलमूलं तस्य मध्ये मुक्ताजालमयीं पार्श्वे वापीं गूढां सुधासलिललिप्तां स रहस्युपगम्य राजानमब्रवीत् ॥ १७

वनमिदमुदारकं साध्वत्र रम्यतामिति ॥ १८

स तस्य वचनात् तयैव सह देव्या तद्वनं प्रविशत् । स कदाचित् तस्मिन् कानने रम्ये तयैव सह व्यवाहरदथ क्षुत्तृष्णार्दितः श्रान्ताऽतमुक्तकागारमपश्यत् ॥ १९

तत् प्रविश्य राजा सह प्रियया सुधाकृतां विमलां सलिलपूर्णां वापीमपश्यत् ॥ २०

दृष्ट्वैव च तां तस्याश्च तीरे सहैव तया देव्याऽवातिष्ठत् ॥ २१

अथ तां देवीं स राजाऽब्रवीत् साध्ववतर वापीसलिलमिति । सा तद्वचः श्रुत्वाऽवतीर्य वापीं न्यमज्जन्न पुनरुदमज्जत् ॥ २२

तां स मृगयमाणो राजा नापश्यद्वापीमथ निःस्राव्य मण्डूकं श्वभ्रमुखे दृष्ट्वा क्रुद्ध आज्ञापयामास स राजा ॥ २३

सर्वत्र मण्डूकवधः क्रियतामिति यो मयाऽर्थी स मां मृतमण्डूकोपायनमादायोपतिष्ठेदिति॥२४

अथ मण्डूकवधे घोरे क्रियमाणे दिक्षु सर्वासु मण्डूकान् भयमाविवेश । ते भीता मण्डूकराज्ञे यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥ २५

ततो मण्डूकराट् तापसवेषधारी राजानमभ्यगच्छदुपेत्य चैनमुवाच ॥ २६

„मा राजन् क्रोधवशं गमः प्रसादं कुरु नार्हसि मण्डूकानामनपराधिनां वधं कर्तुमिति । श्लोकौ चात्र भवतः-॥ २७

१९२

मारणस्तम्भनाद्यान्यपि कर्माणि कृष्णाद्वैतविद्याबलेनैव सिध्यन्तीति मण्डूकाख्यायिकयैवाह भूय इति ॥ १ ॥ अवघोटितया श्लक्ष्णीकृतया ॥ १४ ॥ अभ्याशस्थोऽपि निकटस्थोऽपि । नापश्यत् क्रीडासक्तं राजानमिति शेषः॥१५॥ प्रयोजनं कर्तव्यम्॥१६॥ अतिमुक्तकागारं वासन्तीगृहम्॥१९

मा मण्डूकान् जिघांस त्वं
कोपं सन्धारयाच्युत।
प्रक्षीयते धनोद्रेको
जनानामविजानताम् ॥ २८
प्रतिजानीहि नैतांस्त्वं
प्राप्य क्रोधं विमोक्ष्यसि।
अलं कृत्वा तवाधर्मं
मण्डूकैः किं हतैर्हि ते ॥ २९

तमेवंवादिनमिष्टजनशोकपरीतात्मा राजाऽथोवाच ॥ ३०

न हि क्षम्यते तन्मया हनिष्याम्येतानेतैर्दुरात्मभिः प्रिया मे भक्षिता सर्वथैव मे वध्या मण्डूका नार्हसि विद्वन् मामुपरोद्धुमिति ॥ ३१

स तद्वाक्यमुपलभ्य व्यथितेन्द्रियमनाः प्रोवाच प्रसीद राजन्नहमायुर्नाम मण्डूकराजो मम सा दुहिता सुशोभना नाम। तस्या हि दौःशील्यमेतद्बहवस्तया राजानो विप्रलब्धाः पूर्वा इति॥३२

तमब्रवीद्राजा तया समर्थी सा मे दियतामिति ॥ ३३

अथैनां राज्ञे पिताऽदादब्रवीच्चैनामेनं राजानं शुश्रूषस्वेति ॥ ३४

स एवमुक्त्वा दुहितरं क्रुद्धः शशाप यस्मात् त्वया राजानो विप्रलब्धा बहवस्तस्मादब्रह्मण्यानि तवापत्यानि भविष्यन्त्यानृतिकत्वात् तवेति॥३५

स च राजा तामुपलभ्य तस्यां सुरतगुणनिबद्धहृदयो लोकत्रयैश्वर्यमिवोपलभ्य हर्षेण बाष्पकलया वाचा प्रणिपत्याभिपूज्य मण्डूकराजमब्रवीदनुगृहीतोऽस्मीति ॥ ३६

स च मण्डूकराजो दुहितरमनुज्ञाप्य यथागतमगच्छत् ॥ ३७

अथ कस्यचित् कालस्य तस्यां कुमारास्त्रयस्तस्य राज्ञः सम्बभूवुः शलो दलो बलश्चेति। ततस्तेषां ज्येष्ठं शलं समये पिता राज्येऽभिषिच्य तपसि धृतात्मा वनं जगाम ॥ ३८

अथ कदाचिच्छलो मृगयामनुचरन् मृगमासाद्य रथेनान्वधावत् ॥ ३९

सूतं चोवाच शीघ्रं मां वहस्वेति स तथोक्तः सूतो राजानमब्रवीत् ॥ ४०

न क्रियतामनुबन्धो नैष शक्यस्त्वया मृगोऽयं ग्रहीतुं यद्यपि ते रथे युक्तौ वाम्यौ स्यातामिति। ततोऽब्रवीद्राजा सूतमाचक्ष्व मे वाम्यौ हन्मि च त्वामिति। स एवमुक्तो राजभयभीतः सूतो वामदेवशापभीतश्च सन्नाचख्यौ राज्ञे। ततः पुनः स राजा खड्गमुद्यम्य शीघ्रं कथयस्वेति तमाह हनिष्ये त्वामिति। स तदाऽऽह राजभयभीतः सूतो वामदेवस्याश्वौ वाम्यौ मनोजवाविति ॥ ४१

अथैनमेवं ब्रुवाणमब्रवीद्राजा वामदेवाश्रमं प्रयाहीति स गत्वा वामदेवाश्रमं तमृषिमब्रवीत्॥४२

भगवन् मृगो मे विद्धः पलायते सम्भावयितुमर्हसि वाम्यौ दातुमिति। तमब्रवीदृषिर्ददानि ते वाम्यौ कृतकार्येण भवता ममैव वाम्यौ निर्यात्यौ क्षिप्रमिति। स च तावश्वौ प्रतिगृह्यानुज्ञाप्य ऋषिं प्रायाद्वामीप्रयुक्तेन रथेन मृगं प्रतिगच्छंश्चाब्रवीत् सूतमश्वरत्नाविमावयोग्यौ ब्राह्मणानां नैतौ प्रतिदेयौ वामदेवायेत्युक्त्वा मृगमवाप्य स्वनगरमेत्याश्वावन्तःपुरेऽस्थापयत्॥४३

अथर्षिश्चिन्तयामास तरुणो राजपुत्रः कल्याणं पत्रमासाद्य रमते न प्रतिनिर्यातयत्यहो कष्टमिति ॥ ४४

स मनसा विचिन्त्य मासि पूर्णे शिष्यमब्रवीत्॥४५

गच्छात्रेय राजानं ब्रूहि यदि पर्याप्तं निर्यातयोपाध्यायवाम्याविति। स गत्वैवं तं राजानमब्रवीत् तं राजा प्रत्युवाच राज्ञामेतद्वाहनमनर्हा ब्राह्मणा रत्नानामेवंविधानां किं ब्राह्मणानामश्वैः कार्यं साधु गम्यताम् ॥ ४६

स गत्वैतदुपाध्यायायाचष्ट तच्छ्रुत्वा वचनमप्रियं वामदेवः क्रोधपरीतात्मा स्वयमेव राजानमभिगम्याश्वार्थमचोदयन्न चाददद्राजा ॥ ४७

वामदेव उवाच।

प्रयच्छ वाम्यौ मम पार्थिव त्वं
कृतं हि ते कार्यमाभ्यामशक्यम्।
मा त्वा वधीद्वरुणो घोरपाशै-
र्ब्रह्मक्षत्रस्यान्तरे वर्तमानम् ॥ ४८

धनोद्रेकः श्रीतपसोरुत्कर्षः ॥ २८ ॥ प्रतिजानीहि निश्चयं कुरु। प्राप्य प्राप्स्यं मृत्युं क्रोधं स्त्रीशोकजम् अलं कृत्वा मा कुरु ॥ २९ ॥ विप्रलब्धाः वञ्चिताः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मण्यं ब्राह्मणहितं तेन रहितानि अब्रह्मण्यानि ॥ ३५ ॥ वाम्यौ वामदेवीयौ रथे युक्तौ अश्वौ अश्वतरौ। वामीप्रयुक्तेनेति वाक्यशेषात्॥४१॥ पत्रं वाहनम्॥४४॥ अन्तरे भेदे॥४८॥

राजोवाच ।

अनड्वाहौ सुव्रतौ साधु दान्ता-
वेतद्विप्राणां वाहनं वामदेव ।
ताभ्यां याहि त्वं यत्र कामो महर्षे
छन्दांसि वै त्वादृशं संवहन्ति ॥ ४९

वामदेव उवाच ।

छन्दांसि वै मादृशं संवहन्ति
लोकेऽमुष्मिन् पार्थिव यानि सन्ति ।
अस्मिंस्तु लोके मम यानमेत-
दस्मद्विधानामपरेषां च राजन् ॥ ५०

राजोवाच ।

चत्वारस्त्वां वा गर्दभाः संवहन्तु
श्रेष्ठाश्वतर्यो हरयो वातरंहाः ।
तैस्त्वं याहि क्षत्रियस्यैष वाहो
ममैव वाम्यौ न तवैतौ हि विद्धि ॥ ५१

वामदेव उवाच ।

घोरं व्रतं ब्राह्मणस्यैतदाहु-
रेतद्राजन् यदिहाजीवमानः ।
अयस्मया घोररूपा महान्त-
श्चत्वारो वा यातुधानाः सुरौद्राः ।
मया प्रयुक्तास्त्वद्वधमीप्समाना
वहन्तु त्वां शितशूलाश्चतुर्धा ॥ ५२

राजोवाच ।

ये त्वां विदुर्ब्राह्मणं वामदव
वाचा हन्तुं मनसा कर्मणा वा ।
ते त्वां सशिष्यमिह पातयन्तु
मद्वाक्यनुन्नाः शितशूलासिहस्ताः ॥५३

वामदेव उवाच ।

ममैतौ वाम्यौ प्रतिगृह्य राजन्
पुनर्ददानीति प्रपद्य मे त्वम् ।
प्रयच्छ शीघ्रं मम वाम्यौ त्वमश्वौ
यद्यात्मानं जीवितुं ते क्षमं स्यात् ॥ ५४

राजोवाच ।

न ब्राह्मणेभ्यो मृगया प्रसूता
न त्वाऽनुशास्म्यद्यप्रभृति ह्यसत्यम् ।
तवैवाज्ञां सम्प्रणिधाय सर्वां
तथा ब्रह्मन् पुण्यलोकं लभेयम् ॥ ५५

वामदेव उवाच ।

नानुयोगा ब्राह्मणानां भवन्ति
वाचा राजन् मनसा कर्मणा वा ।
यस्त्वेवं ब्रह्म तपसाऽन्वेति विद्वां-
स्तेन श्रेष्ठो भवति हि जीवमानः ॥ ५६

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमुक्ते वामदेवेन राजन्
समुत्तस्थू राक्षसा घोररूपाः ।
तैः शूलहस्तैर्वध्यमानः स राजा
प्रोवाचेदं वाक्यमुच्चैस्तदानीम् ॥ ५७

इक्ष्वाकवो यदि ब्रह्मन दलो वा
विधेया मे यदि चेमे विशोऽपि ।
नोत्स्रक्ष्येऽहं वामदेवस्य वाम्यौ
नैवंविधाः कर्मशीला भवन्ति ॥ ५८

एव ब्रुवन्नेव स यातुधानै-
र्हतो जगामाशु महीं क्षितीशः ।
ततो विदित्वा नृपतिं निपातित-
मिक्ष्वाकवो वै दलमभ्यषिञ्चन् ॥ ५९

राज्ये तदा तत्र गत्वा स विप्रः
प्रोवाचेदं वचनं वामदेवः ।
दलं राजानं ब्राह्मणानां हि देय-
मेवं राजन् सर्वधर्मेषु दृष्टम् ॥ ६०

बिभेषि चेत् त्वमधर्मान्नरेन्द्र
प्रयच्छ मे शीघ्रमेवाद्य वाम्यौ ।
एतच्छ्रुत्वा वामदेवस्य वाक्यं
स पार्थिवः सूतमुवाच रोषात् ॥ ६१

एकं हि मे सायकं चित्ररूपं
दिग्धं विषेणाहर सङ्गृहीतम् ।
येन विद्धो वामदेवः शयीत
सन्दश्यमानः श्वभिरार्तरूपः ॥ ६२

---

वाहो वाहनम् ॥ ५१ ॥ यदेतत् ब्राह्मणस्य स्वमार्जीवमानोऽस्येतदिह घोरमनिष्पाकं व्रतं कर्माहुरित्यन्वयः । वहन्तु चतुर्दिक्षु प्रापयन्तु चतुर्धा कृत्वेति शेषः ॥५२॥ ये त्वां मां हन्तुमुद्युक्तं ते मदीयास्त्वामेव पातयन्त्वित्यर्थः ॥ ५३ ॥ असत्यं मिथ्यावादिनमपि त्वा त्वां नानुशास्मि न दण्डयामि। अद्यप्रभृति तवाज्ञामिति सम्बन्धः । तवापराधान् क्षमिष्ये आज्ञया च वर्तिष्ये इति वरद्वयं ज्ञेयम् ॥ ५५ ॥ एतत् प्रत्याचष्टे नेति। अनुयोगः शासनम् । अदण्ड्या ब्राह्मणा इत्यर्थः । ब्रह्म ब्राह्मणजातिं यो, ब्राह्मणसेवी स जीवत्यन्यो नश्यतीत्यर्थः। वरद्वयमपि निरर्थकमिति भावः ॥५६॥ दलः कनिष्ठो भ्राता। विधेया आज्ञाकारिणः ॥५८॥ निपातितं मृतम् ॥ ५९ ॥

वामदेव उवाच ।
जानामि पुत्रं दशवर्षं तवाहं
जातं महिष्यां श्येनाजितं नरेन्द्र ।
तं जहि त्वं मद्वचनात् प्रणुन्न-
स्तूर्णं प्रियं सायकैर्घोररूपैः ॥ ६३

मार्कण्डेय उवाच ।
एवमुक्तो वामदेवेन राज-
न्नन्तःपुरे राजपुत्रं जघान ।
स सायकस्तिग्मतेजा विसृष्टः
श्रुत्वा दलस्तत्र वाक्यं बभाषे ॥ ६४

राजोवाच ।
इक्ष्वाकवो हन्त चरामि वः प्रियं
निहन्मीमं विप्रमद्य प्रमथ्य ।
आनीयतामपरस्तिग्मतेजाः
पश्यध्व मे वीर्यमद्य क्षितीशाः ॥ ६५

वामदेव उवाच ।
यत् त्वमेनं सायकं घोररूपं
विषेण दिग्धं मम सन्दधासि ।
न त्वेतं त्वं शरवर्यं विमोक्तुं
सन्धातुं वा शक्यसे मानवेन्द्र ॥ ६६

राजोवाच ।
इक्ष्वाकवः पश्यत मां गृहीतं
न वै शक्नोम्येष शरं विमोक्तुम् ।
न चास्य कर्तुं नाशमभ्युत्सहामि
आयुष्मान् वै जीवतु वामदेवः ॥ ६७

वामदेव उवाच ।
संस्पृश्यैनां महिषीं सायकेन
ततस्तस्मादेनसो मोक्ष्यसे त्वम् ।
ततस्तथा कृतवान् पार्थिवस्तु
ततो मुनिं राजपुत्री बभाषे ॥ ६८

राजपुत्र्युवाच ।
यथा युक्ता वामदेवाहमेनं
दिने दिने सन्दिशन्ती नृशंसम् ।
ब्राह्मणेभ्यो मृगयती सूनृतानि
तथा ब्रह्मन् पुण्यलोकं लभेयम् ॥ ६९

वामदेव उवाच ।
त्वया त्रातं राजकुलं शुभेक्षणे
वरं वृणीष्वाप्रतिमं ददानि ते ।
प्रशाधीमं स्वजनं राजपुत्रि
इक्ष्वाकुराज्यं सुमहच्चाप्यनिन्द्ये ॥ ७०

राजपुत्र्युवाच ।
वरं वृणे भगवंस्त्वेवमेष
विमुच्यतां किल्बिषादद्य भर्ता ।
शिवेन चाध्याहि सपुत्रबान्धवं
वरो वृतो ह्येष मया द्विजाग्र्य ॥ ७१

मार्कण्डेय उवाच ।
श्रुत्वा वचः स मुनी राजपुत्र्या-
स्तथाऽस्त्विति प्राह कुरुप्रवीर ।
ततः स राजा मुदितो बभूव
वाम्यौ चास्मै प्रददौ सम्प्रणम्य ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि मण्डूकोपाख्याने
द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

## १९३

वैशम्पायन उवाच ।
मार्कण्डेयमृषयो ब्राह्मणा युधिष्ठिरश्च पर्यपृच्छ-न्नृषिः केन दीर्घायुरासीद्बको मार्कण्डेयस्तु तान् सर्वानुवाच ॥ १
महातपा दीर्घायुश्च बको राजर्षिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ २

तं जहि तव सायकस्त्वत्पुत्रमेव हिंसिष्यति न तु मामित्यर्थः ॥ ६३ ॥ एवमुक्त्वा वामदेवेन स्तम्भितहस्तपादो राजोवाच इक्ष्वाकव इति ॥ ६७ ॥ संस्पृश्य हत्वा एनसो ब्रह्महत्याध्यवसायजात् पापात् ॥६८॥ एनं नृशंसं भर्तारं दिने दिने सूनृतानि कल्याणकराणि वाक्यानि सन्दिशन्तीति सम्बन्धः। ब्राह्मणेभ्यो मृगयती ब्राह्मणान् सेवितुमिच्छन्ती ॥ ६९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

१९३

मार्कण्डेयमृषय इत्यादेरध्यायस्य तात्पर्यं ब्रह्मविद्यालब्धं चिरजीवित्वमपि दुःखमिश्रमतो विदेहकैवल्यमेव श्रेष्ठमिति ॥ १ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सह भारत ।
मार्कण्डेयं पर्यपृच्छद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३
बकदाल्भ्यौ महात्मानौ श्रूयेते चिरजीविनौ ।
सखायौ देवराजस्य तावृषी लोकसम्मतौ ॥ ४

एतदिच्छामि भगवन् बकशक्रसमागमम् ।
सुखदुःखसमायुक्तं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच ।

वृत्ते देवासुरे राजन् सङ्ग्रामे लोमहर्षणे ।
त्रयाणामपि लोकानामिन्द्रो लोकाधिपोऽभवत्

सम्यग्वर्षति पर्जन्ये सस्यसम्पद उत्तमाः ।
निरामयाः सुधर्मिष्ठाः प्रजा धर्मपरायणाः ॥ ७

मुदितश्च जनः सर्वः स्वधर्मेषु व्यवस्थितः ।
ताः प्रजा मुदिताः सर्वा दृष्ट्वा बलनिषूदनः ॥ ८

ततस्तु मुदितो राजन् देवराजः शतक्रतुः ।
ऐरावतं समास्थाय ताः पश्यन् मुदिताः प्रजाः॥९

आश्रमांश्च विचित्रांश्च नदीश्च विविधाः शुभाः ।
नगराणि समृद्धानि खेटान् जनपदांस्तथा ॥ १०

प्रजापालनदक्षांश्च नरेन्द्रान् धर्मचारिणः ।
उदपानं प्रपा वापी तडागानि सरांसि च ॥ ११

नानाब्रह्मसमाचारैः सेवितानि द्विजोत्तमैः ।
ततोऽवतीर्य रम्यायां पृथ्व्यां राजञ्छतक्रतुः॥ १२

तत्र रम्ये शिवे देशे बहुवृक्षसमाकुले ।
पूर्वस्यां दिशि रम्यायां समुद्राभ्याशतो नृप १३
तत्राश्रमपदं रम्यं मृगद्विजनिषेवितम् ।
तत्राश्रमपदे रम्ये बकं पश्यति देवराट् ॥ १४

बकस्तु दृष्ट्वा देवेन्द्रं दृढं प्रीतमनाऽभवत् ।
पाद्यासनार्घदानेन फलमूलैरथार्चयत् ॥ १५

सुखोपविष्टो वरदस्ततस्तु बलसूदनः ।
ततः प्रश्नं बकं देव उवाच त्रिदशेश्वरः ॥ १६

शतं वर्षसहस्राणि मुने जातस्य तेऽनघ ।
समाख्याहि मम ब्रह्मन् किं दुःखं चिरजीविनाम्

बक उवाच ।

अप्रियैः सह संवासः प्रियैश्चापि विनाभवः ।
असद्भिः सम्प्रयोगश्च तद्दुःखं चिरजीविनाम् १८

पुत्रदारविनाशोऽत्र ज्ञातीनां सुहृदामपि ।
परेष्वायत्तता कृच्छ्रं किं नु दुःखतरं ततः ॥ १९

नान्यद्दुःखतरं किञ्चिल्लोकेषु प्रतिभाति मे ।
अर्थैर्विहीनः पुरुषः परैः सम्परिभूयते ॥ २०

अकुलानां कुले भावं कुलीनानां कुलक्षयम् ।
संयोगं विप्रयोगं च पश्यन्ति चिरजीविनः ॥ २१

अपि प्रत्यक्षमेवैतत् तव देव शतक्रतो ।
अकुलानां समृद्धानां कथं कुलविपर्ययः ॥ २२

देव-दानव-गन्धर्व-मनुष्योरग-राक्षसाः ।
प्राप्नुवन्ति विपर्यासं किं नु दुःखतरं ततः ॥ २३

कुले जाताश्च क्लिश्यन्ते दौष्कुलेयवशानुगाः ।
आढ्यैर्दरिद्राऽवमताः किं नु दुःखतरं ततः ॥ २४

लोके वैधर्म्यमेतत् तु दृश्यते बहुविस्तरम् ।
हीनज्ञानाश्च दृश्यन्ते क्लिश्यन्ते प्राज्ञकोविदाः २५

बहुदुःखपरिक्लेशं मानुष्यमिह दृश्यते ।

इन्द्र उवाच ।

पुनरेव महाभाग देवर्षिगणसेवित ॥ २६
समाख्याहि मम ब्रह्मन् किं सुखं चिरजीविनाम्

बक उवाच ।

अष्टमे द्वादशे वाऽपि शाकं यः पचते गृहे ॥ २७
कुमित्राण्यनपाश्रित्य किं वै सुखतरं ततः ।
यत्राहानि न गण्यन्ते नैनमाहुर्महाशनम् ॥ २८
अपि शाकं पचानस्य सुखं वै मघवन् गृहे ।
अर्जितं स्वेन वीर्येण नाप्यपाश्रित्य कञ्चन ॥ २९

फलशाकमपि श्रेयो भोक्तुं ह्यकृपणं गृहे ।
परस्य तु गृहे भोक्तुः परिभूतस्य नित्यशः ॥ ३०

सुमृष्टमपि न श्रेयो विकल्पोऽयमतः सताम् ।
श्ववत् कीलालपो यस्तु परान्नं भोक्तुमिच्छति३१
धिगस्तु तस्य तद्भुक्तं कृपणस्य दुरात्मनः ।
यो दत्वाऽतिथिभूतेभ्यः पितृभ्यश्च द्विजोत्तमः३२

शिष्टान्यन्नानि यो भुङ्क्ते किं वै सुखतरं ततः ।
अतो मृष्टतरं नान्यत् पूतं किञ्चिच्छतक्रतो ॥ ३३
दत्वा यस्त्वतिथिभ्यो वै भुङ्क्ते तेनैव नित्यशः ।
यावतो ह्यन्धसः पिण्डानश्नाति सततं द्विजः ३४

तावतां गोसहस्राणां फलं प्राप्नोति दायकः ।
यदेनो यौवनकृतं तत् सर्वं नश्यते ध्रुवम् ॥ ३५

सदक्षिणस्य भुक्तस्य द्विजस्य तु करे गतम् ।
यद्वारि वारिणा सिञ्चेत् तध्येनस्तरते क्षणात् ३६

एताश्चान्याश्च वै बह्वीः कथयित्वा कथाः शुभाः। | बकेन सह देवेन्द्र आपृच्छ्य त्रिदिवं गतः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणमहाभाग्ये बकशक्रसंवादे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

## १९४

वैशम्पायन उवाच।

ततः पाण्डवाः पुनर्मार्कण्डेयमूचुः ॥ १

कथितं ब्राह्मणमहाभाग्यं राजन्यमहाभाग्यमिदानीं शुश्रूषामह इति तानुवाच मार्कण्डेयो महर्षिः श्रूयतामिति इदानीं राजन्यानां महाभाग्यमिति [ कुरूणामन्यतमः सुहोत्रो नाम राजा महर्षीनभिगम्य निवृत्य रथस्थमेव राजानमौशीनरं शिबिं ददर्शाभिमुखं तौ समेत्य परस्परेण यथावयः पूजां प्रयुज्य गुणसाम्येन परस्परेण तुल्यात्मानौ विदित्वाऽन्योन्यस्य पन्थानं न ददतुस्तत्र नारदः प्रादुरासीत् किमिदं भवन्तौ परस्परस्य पन्थानमावृत्य तिष्ठत इति॥ २

तावूचतुर्नारदं नैतद्भगवन् पूर्वकर्मकर्त्रादिभिर्विशिष्टस्य पन्था उपदिश्यते समर्थाय वा आवां च सख्यं परस्परेणोपगतौ तच्चावधानतोऽत्युत्कृष्टमधरोत्तरं परिश्रिष्टं नारदस्त्वेवमुक्तः श्लोकत्रयमपठत्-॥ ३

क्रूरः कौरव्य मृदवे
मृदुः क्रूरे च कौरव।
साधुश्चासाधवे साधुः
साधवे नाप्नुयात् कथम् ॥ ४
कृतं शतगुणं कुर्या-
न्नास्ति देवेषु निर्णयः।
औशीनरः साधुशीलो
भवतो वै महीपतिः ॥ ५
जयेत् कदर्यं दानेन
सत्येनानृतवादिनम्।
क्षमया क्रूरकर्माण-
मसाधुं साधुना जयेत् ॥ ६

तदुभावेव भवन्तावुदारौ य इदानीं भवतोरन्यतमः सोपसर्पतु एतद्वै निदर्शनमित्युक्त्वा तूष्णीं नारदो बभूव। एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यः शिबिं प्रदक्षिणं कृत्वा पन्थानं दत्वा बहुकर्मभिः प्रशस्य प्रययौ ॥ ७

तदेतद्राज्ञो महाभाग्यमप्युक्तवान्नारदः ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि शिबिचरिते चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

## १९५

मार्कण्डेय उवाच।

इदमन्यच्छ्रूयतां ययातिर्नाहुषो राजा राज्यस्थः पौरजनावृत आसां चक्रे गुर्वर्थी ब्राह्मण उपेत्याब्रवीत् भो राजन् गुर्वर्थं भिक्षेयं समयादिति॥ १

राजोवाच।

ब्रवीतु भगवान् समयमिति ॥ २

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

१९४

विद्यावलं युद्धप्रजापालनादिष्वप्यपि राजस्वस्तीति दर्शयितुमाह तत इति ॥ १ ॥ नैतत् यत् पन्थास्त्याज्य इत्येतन्नेत्यर्थः। तत्र हेतुः पूर्वेति। पूर्वे च ते कर्मकर्त्रादयश्चेति विग्रहः।° अनुमन्तृवकृप्रभृतय आदिशब्दार्थः। अवधानतो विचारतः। अधरेति। आवयोस्तारतम्यं नास्तीत्यर्थः ॥३॥ क्रूर इति। पूर्वार्द्धे खलवृत्तं नाप्नुयात् साधुत्वं वै कथं न कुर्यादित्यर्थः ॥ ४ ॥ राज्ञः शिबेः ॥ ८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

१९५

इदमिति ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच ।
विद्वेषणं परमं जीवलोके
कुर्यान्नरः पार्थिव याच्यमानः ।
तं त्वां पृच्छामि कथं नु राजन्
दद्याद्भवान् दयितं च मेऽद्य ॥ ३

राजोवाच ।
न चानुकीर्तयेदद्य दत्वा
अयाच्यमर्थं न च संशृणोमि ।
प्राप्यमर्थं च संश्रुत्य
तं चापि दत्वा सुसुखी भवामि ॥ ४
ददामि ते रोहिणीनां सहस्रं
प्रियो हि मे ब्राह्मणो याचमानः ।
न मे मनः कुप्यति याचमाने
दत्तं न शोचामि कदाचिदर्थम् ॥ ५
इत्युक्त्वा ब्राह्मणाय राजा गोसहस्रं ददौ ।
प्राप्तवांश्च गवां सहस्रं ब्राह्मण इति ॥ ६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि नाहुषचरिते पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

## १९६

वैशम्पायन उवाच ।
भूय एव महाभाग्यं कथ्यतामित्यब्रवीत् पाण्डवः ॥ १

अथाचष्ट मार्कण्डेयो महाराज वृषदर्भसेदुकनामानौ राजानौ नीतिमार्गरतावस्त्रोपास्त्रकृतिनौ ॥ २

सेदुको वृषदर्भस्य बालस्यैव उपांशुव्रतमभ्यजानात् कुप्यमदेयं ब्राह्मणस्य ॥ ३

अथ तं सेदुकं ब्राह्मणः कश्चिद्वेदाध्ययनसम्पन्न आशिषं दत्वा गुर्वर्थी भिक्षितवान् ॥ ४

अश्वसहस्रं मे भवान् ददात्विति । तं सेदुको ब्राह्मणमब्रवीत् ॥ ५

नास्ति सम्भवो गुर्वर्थं दातुमिति ॥ ६

स त्वं गच्छ वृषदर्भसकाशम् । राजा परमधर्मज्ञो ब्राह्मण तं भिक्षस्व । स ते दास्यति तस्यैतदुपांशुव्रतमिति ॥ ७

अथ ब्राह्मणो वृषदर्भसकाशं गत्वा अश्वसहस्रमयाचत् । स राजा तं कशेनाताडयत् ॥ ८

तं ब्राह्मणोऽब्रवीत् । किं हिंस्यनागसं मामिति ॥ ९

एवमुक्त्वा तं शपन्तं राजाऽऽह । विप्र किं यो न ददाति तुभ्यमुताहोस्विद्ब्राह्मण्यमेतत् ॥ १०

ब्राह्मण उवाच ।
राजाधिराज तव समीपं सेदुकेन प्रेषितो भिक्षितुमागतः । तेनानुशिष्टेन मया त्वं भिक्षितोऽसि ॥ ११

राजोवाच ।
पूर्वाह्णे ते दास्यामि यो मेऽद्य बलिरागमिष्यति । यो हन्यते कशया कथं मोघं क्षेपणं तस्य स्यात् ॥ १२

---

विद्वेषणं याचकस्य द्वेषं प्रीत्यैव ददासि चेत् ग्रहीष्यामीत्यर्थः ॥३॥ हे दद्य ददो दानं तदर्ह । दत्वा न कीर्तये दुःखे सत्येव कीर्तनं स्यान्नान्यथेति भावः। दुःखं च प्रियवियोगेऽतो ममादेयाभावात् त्वयाऽप्ययाच्योऽर्थो नास्तीत्यतः सर्वं प्राप्यं स्त्रीपुत्रदेहान्तं देयमेव न त्वप्राप्यं दातुं शक्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ रोहिणीनां गवां 'रोहिणीकण्ठरुग्भिदि-' इत्युपक्रम्य 'लोहिता गवोः' इतिमेदिनी ॥ ५ ॥ असाधावपि साधुत्वं प्रीत्या इष्टार्थदानं च महाभाग्यमित्यध्यायद्वयतात्पर्यम् ॥६॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

१९६

भूय इति ॥ १ ॥ उपांशु बहिरनुद्घाटितं कुप्यं स्वर्णरूप्यादन्यत् ॥ ३ ॥ कशेन पुंस्त्वमार्षम् ॥ ८ ॥ हिंसि हिनस्सि ताडयसि ॥ ९ ॥ शपन्तं शापं दित्सन्तम् । हे विप्र यो न ददाति स्वीयं धनं तुभ्यं तस्मै वा एतत् शापदानमचितम् । उताहोस्वित् एतद्ब्राह्मण्यं ब्राह्मणयोग्यं स्वीयमपि दित्सन् न शापयोग्यः। नापि शान्तिधर्मा ब्राह्मणः शापं दातुमर्हतीत्यर्थः ॥१०॥ क्षेपणं दूरीकरणम् । अवश्यं स प्रसादनीय इत्यर्थः ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणाय दैवसिकामुत्पत्तिं प्रादात् । | अधिकस्याश्वसहस्रस्य मूल्यमेवाददादिति ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि सेदुकवृषदर्भचरिते षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

## १९७

मार्कण्डेय उवाच ।

देवानां कथा सञ्जाता, महीतलं गत्वा महीपतिं शिबिमौशीनरं साध्वेनं शिबिं जिज्ञास्याम इति । एवं भो इत्युक्त्वा अग्नीन्द्रावुपतिष्ठेताम् ॥ १

अग्निः कपोतरूपेण तमभ्यधावदामिषार्थमिन्द्रः श्येनरूपेण ॥ २

अथ कपोतो राज्ञो दिव्यासनासीनस्योत्सङ्गं न्यपतत् ॥ ३

अथ पुरोहितो राजानमब्रवीत् । प्राणरक्षार्थं श्येनाद्भीतो भवन्तं प्राणार्थी प्रपद्यते ॥ ४

वसु ददातु अन्तवान् पार्थिवोऽस्य निष्कृतिं कुर्यात् घोरं कपोतस्य निपातमाहुः ॥ ५

अथ कपोतो राजानमब्रवीत् । प्राणरक्षार्थं श्येनाद्भीतो भवन्तं प्राणार्थी प्रपद्ये अङ्गैरङ्गानि प्राप्यार्थी मुनिर्भूत्वा प्राणांस्त्वां प्रपद्ये ॥ ६

स्वाध्यायेन कर्शितं ब्रह्मचारिणं मां विद्धि । तपसा दमेन युक्तमाचार्यस्याप्रतिकूलभाषिणम् । एवं युक्तमपापं मां विद्धि ॥ ७

गदामि वेदान् विचिनोमि छन्दः
सर्वे वेदा अक्षरशो मे अधीताः ।
न साधु दानं श्रोत्रियस्य प्रदानं
मा प्रादाः श्येनाय न कपोतोऽस्मि ॥८

अथ श्येनो राजानमब्रवीत् ॥ ९

पर्यायेण वसतिर्वा भवेषु
सर्गे जातः पूर्वमस्मात् कपोतात् ।
त्वमाददानोऽथ कपोतमेनं
मा त्वं राजन् विघ्नकर्ता भवेथाः ॥ १०

राजोवाच ।

केनेदृशी जातु परा हि दृष्टा
वागुच्यमाना शकुनेन संस्कृता ।
यां वै कपोतो वदते यां च श्येन
उभौ विदित्वा कथमस्तु साधु ॥ ११

नास्य वर्षं वर्षति वर्षकाले
नास्य बीजं रोहति काल उप्तम् ।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे
न त्राणं लभेत् त्राणमिच्छन् स काले ॥१२

जाता ह्रस्वा प्रजा प्रमीयते
सदा न वासं पितरोऽस्य कुर्वते ।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे
नास्य देवाः प्रतिगृह्णन्ति हव्यम् ॥ १३

मोघमन्नं विन्दति चाप्रचेताः
स्वर्गाल्लोकाद्भ्रश्यति शीघ्रमेव ।
भीतं प्रपन्नं यो हि ददाति शत्रवे
सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥ १४

---

दैवसिकामेकदिवजातामुत्पत्तिं धनस्य स्वनियमभङ्गाय प्रवृत्तं ब्राह्मणं दण्डयितुमपि प्रार्थितमदधिकं दत्वा प्रसादयितुमपि समर्था राजान इति तात्पर्यम् ॥ १३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

१९७

देवानामिति॥१॥ घोरं निन्दितमनिष्टसूचकमित्यर्थः। मृत्युदूतत्वात् कपोतस्य । अन्तवान् 'दिगन्तानामीश्वरः ॥ ५ ॥ अङ्गैरिति ।' मुनिरहं स्वशरीरेण कपोतशरीरं प्रविष्टोऽस्मीत्यर्थः ।॥६॥ प्राणान् प्राणरक्षकत्वेन त्वमेव मम प्राणा इत्यर्थः ॥६॥ श्रोत्रियस्य मे श्येनाय त्वत्कर्तृकं प्रदानं न साधुदानम् ॥८ ॥ पर्यायेणेति । पितृपुत्रभार्यामातृप्रभृतीनामाधरोत्तर्येण या जाया सैव भवान्तरे माता । यः पुत्रः स एव पिता। एवं शत्रुर्मित्रं भवति। मित्रं वा शत्रुरिति भवेषु जन्मसु पर्यायेण वसतिः स्थितिर्भवति । अतस्त्वं सर्गे सृष्टौ अस्मात् कपोतात् जातोऽसि । अतस्त्वं तव जन्मान्तरीयं पितरं कपोतं आददानो रक्षन् मम आहारे विघ्नं मा कुर्वित्यर्थः ॥ १० ॥ शकुनेनेत्यकारान्तोऽपि । एतयोः स्वरूपं ज्ञात्वा साधु कर्म कथं कुर्यामिति विमृशतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ ह्रस्वा शैशवे एव प्रजा प्रमीयते म्रियते ॥१३॥ मोघं निष्फलं सोऽन्नं विन्दति लभते । अप्रचेताः अनुदारः ॥ १४ ॥

उक्षाणं पक्त्वा सह ओदनेन
अस्मात् कपोतात् प्रति ते नयन्तु ।
यस्मिन् देशे रमसेऽतीव श्येन
तत्र मांसं शिबयस्ते वहन्तु ॥ १५

श्येन उवाच ।

नोक्षाणो राजन् प्रार्थयेयं न चान्य-
दस्मान्मांसमधिकं वा कपोतात् ।
देवैर्दत्तः सोऽद्य ममैष भक्ष-
स्तन्मे ददस्व शकुनानामभावात् ॥ १६

राजोवाच ।

उक्षाणं वेहतमनूनं नयन्तु
ते पश्यन्तु पुरुषा ममैव ।
भयाहितस्य दायं ममान्तिकात् त्वां
प्रत्याम्नायं तु त्वं श्येनं मा हिंसीः ॥ १७
त्यजे प्राणान्नैव दद्यां कपोतं
सौम्यो ह्ययं किं न जानासि श्येन ।
यथा क्लेशं मा कुरुष्वेह सौम्य
नाहं कपोतमर्पयिष्ये कथञ्चित् ॥ १८
यथा मां वै साधुवादैः प्रसन्नाः
प्रशंसेयुः शिबयः कर्मणा तु ।
यथा श्येन प्रियमेव कुर्यां
प्रशाधि मां यद्वदेस्तत् करोमि ॥ १९

श्येन उवाच ।

ऊरोर्दक्षिणादुत्कृत्य स्वपिशितं तावद्राजन् यावन्मांसं कपोतेन समम् । तथा तस्मात् साधु त्रातः कपोतः प्रशंसेयुश्च शिबयः कृतं च प्रियं स्यान्ममेति ॥ २०

अथ स दक्षिणादूरोरुत्कृत्य स्वमांसपेशीं तुलयाऽऽधारयत् । गुरुतर एव कपोत आसीत् ॥ २१

पुनरन्यमुच्चकर्त गुरुतर एव कपोतः । एवं सर्वं समधिकृत्य शरीरं तुलायामारोपयामास । तत् तथापि गुरुतर एव कपोत आसीत् ॥ २२

अथ राजा स्वयमेव तुलामारुरोह । न च व्यलीकमासीद्राज्ञ एतद्वृत्तान्तं दृष्ट्वा त्रात इत्युक्त्वा प्रालीयत श्येनोऽथ राजा अब्रवीत् ॥ २३

कपोतं विद्युः शिबयस्त्वां कपोत
पृच्छामि ते शकुने को नु श्येनः ।
नानीश्वर ईदृशं जातु कुया-
देतं प्रश्नं भगवन् मे विचक्ष्व ॥ २४

कपोत उवाच ।

वैश्वानरोऽहं ज्वलनो धूमकेतु-
रथैव श्येनो वज्रहस्तः शचीपतिः ।
साधु ज्ञातुं त्वामृषभं सौरथेय
नौ जिज्ञासया त्वत्सकाशं प्रपन्नौ ॥ २५
यामेतां पेशीं मम निष्क्रयाय
प्रादाद्भवानसिनोत्कृत्य राजन् ।
एतद्वो लक्ष्म शिवं करोमि
हिरण्यवर्णं रुचिरं पुण्यगन्धम् ॥ २६
एतासां प्रजानां पालयिता यशस्वी
सुरर्षीणामथ संमतो भृशम् ।
एतस्मात् पार्श्वात् पुरुषो जनिष्यति
कपोतरोमेति च तस्य नाम ॥ २७

कपोतरोमाणं शिबिनौद्भिदं पुत्रं प्राप्स्यसि नृपवृषसंहननं यशोदीप्यमानं द्रष्टासि शूरमृषभं सौरथानाम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि शिबिचरिते सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

---

अस्मात् कपोतात् एनं कपोतं मोचयित्वा ते तुभ्यं प्रतिनयन्तु प्रतिनिधित्वेन समर्पयन्तु ॥१५॥ ददस्व 'दद दाने' इत्यस्य रूपम् । शकुनानामेकस्मिन्नेव बहुत्वमभावात् नाशेन ॥१६॥ उक्षाणं बलीवर्दं वेहतं वन्ध्यां गां वा अनूनं सर्वाङ्गसम्पूर्णं यथा स्यात् तथा । भयाहितस्य भीग्रस्तस्य कपोतस्य दायं प्रतिधनं प्रत्याम्नायं नयन्तु प्रापयन्तु पश्यन्तु आलोचयन्तु च । सन्तः एनं कपोतं मा हिंसीरिति॥१७॥सौम्यो ह्ययं सोमसंयुक्तक्रतुवन्नित्यं परिपाल्यो ह्ययं हे सौम्य सोमवत् प्रियदर्शन ॥१८॥ अधिकृत्य छित्वा ॥ २२ ॥ अरुरोह स्वयमेव तुलामाविवेश व्यलीकमप्रियं त्रातस्त्वया कपोत इत्युक्त्वा ॥२३॥ हे सौरथेय सुरथायाः पुत्र नौ आवां विद्धीति शेषः॥ २५ ॥ असिना खड्गेन एतन्मांसं वः नृपाणां लक्ष्म चिह्नं करोमि ॥ २६ ॥ शिबिना शिथिलशरीरेण जातमौद्भिदमुद्भेदेन जातं यशसा दीप्यमानम् ॥ २८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

# १९८

वैशम्पायन उवाच ।

भूय एव महाभाग्यं कथ्यतामित्यब्रवीत् पाण्डवो मार्कण्डेयम् । अथाचष्ट मार्कण्डेयः । अष्टकस्य वैश्वामित्रेरश्वमेधे सर्वे राजानः प्रागच्छन् ॥ १

भ्रातरश्चास्य प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशीनर इति । स च समाप्तयज्ञो भ्रातृभिः सह रथेन प्रायात् ते च नारदमागच्छन्तमभिवाद्यारोहतु भवान् रथमित्यब्रुवन् ॥ २

तांस्तथेत्युक्त्वा रथमारुरोह । अथ तेषामेकः सुरर्षिं नारदमब्रवीत् । प्रसाद्य भगवन्तं किञ्चिदिच्छेयं प्रष्टुमिति ॥ ३

पृच्छेत्यब्रवीदृषिः । सोऽब्रवीदायुष्मन्तः सर्वगुणप्रमुदिताः । अथायुष्मन्तं स्वर्गस्थानं चतुर्भिर्यातव्यं स्यात् कोऽवतरेत् । अयमष्टकोऽवतरेदित्यब्रवीदृषिः ॥ ४

किं कारणमित्यपृच्छत् । अथाचष्टाष्टकस्य गृहे मया उषितं स मां रथेनानुप्रावहद्‌थापश्यमनेकानि गोसहस्राणि वर्णशो विविक्तानि तमहमपृच्छं कस्येमा गाव इति सोऽब्रवीत् । मया निसृष्टा इत्येतास्तेनैव स्वयं श्लाघति कथितेन । एषोऽवतरेदथ त्रिभिर्यातव्यं साम्प्रतं कोऽवतरेत् ॥ ५

प्रतर्दन इत्यब्रवीदृषिः । तत्र किं कारणं प्रतर्दनस्यापि गृहे मयोषितं स मां रथेनानुप्रावहत्६

अथैनं ब्राह्मणोऽभिक्षेताश्वं मे ददातु भवान्निवृत्तो दास्यामीत्यब्रवीद्ब्राह्मणं त्वरितमेव दीयतामित्यब्रवीद्ब्राह्मणस्त्वरितमेव स ब्राह्मणस्यैवमुक्त्वा दक्षिणं पार्श्वमददत् ॥ ७

अथान्योऽप्यश्वार्थी ब्राह्मण आगच्छत् । तथैव चैनमुक्त्वा वामपार्ष्णिमभ्यदादथ प्रायात् पुनरपि चान्योऽप्यश्वार्थी ब्राह्मण आगच्छत् त्वरितोऽथ तस्मै अपनह्य वामं धुर्यमददत् ॥ ८

अथ प्रायात् पुनरन्य आगच्छदश्वार्थी ब्राह्मणस्तमब्रवीदितियातो दास्यामि त्वरितमेव मे दीयतामित्यब्रवीद्ब्राह्मणस्तस्मै दत्वाऽश्वं रथधुरं गृह्णता व्याहृतं ब्राह्मणानां साम्प्रतं नास्ति किञ्चिदिति ॥ ९

य एष ददाति चासूयति च तेन व्याहृतेन तथाऽवतरेत् । अथ द्वाभ्यां यातव्यमिति कोऽवतरेत् ॥ १०

वसुमना अवतरेदित्यब्रवीदृषिः ॥ ११

किं कारणमित्यपृच्छदथाचष्ट नारदः । अहं परिभ्रमन् वसुमनसो गृहमुपस्थितः ॥ १२

स्वस्तिवचनमासीत् पुष्परथस्य प्रयोजनेन तमहमन्वगच्छं स्वस्तिवाचितेषु ब्राह्मणेषु रथो ब्राह्मणानां दर्शितः ॥ १३

तमहं रथं प्राशंसमथ राजाऽब्रवीद्भगवता रथः प्रशस्तः । एष भगवतो भगवतो रथ इति ॥ १४

अथ कदाचित् पुनरप्यहमुपस्थितः पुनरेव च रथप्रयोजनमासीत् । सम्यगयमेष भगवत इत्येवं राजाऽब्रवीदिति पुनरेव तृतीयं स्वस्तिवाचनं समभावयमथ राजा ब्राह्मणानां दर्शयन् मामभिप्रेक्ष्याब्रवीत् । अथो भगवता पुष्परथस्य स्वस्तिवाचनानि सुष्ठु सम्भावितानि एतेन द्रोहवचनेनावतरेत् ॥ १५

अथैकेन यातव्यं स्यात् कोऽवतरेत् पुनर्नारद आह । शिबिर्यायादहमवतरेयमत्र किं कारणमित्यब्रवीत् । असावहं शिबिना समो नास्मि यतो ब्राह्मणः कश्चिदेनमब्रवीत् ॥ १६

शिबे अन्नार्थ्यस्मीति तमब्रवीच्छिबिः किं क्रियतामाज्ञापयतु भवानिति ॥ १७

अथैनं ब्राह्मणोऽब्रवीत् य एष ते पुत्रो बृहद्गर्भो नाम एष प्रमातव्य इति तमेनं संस्कुरु अन्नं चोपपादय ततोऽहं प्रतीक्ष्य इति । ततः पुत्रं प्रमाथ्य संस्कृत्य विधिना साधयित्वा पात्र्यामर्पयित्वा शिरसा प्रतिगृह्य ब्राह्मणममृगयत् ॥ १८

१९८ ·

भूय इति॥१॥ आयुष्मन्तं चिरकालभोग्यं स्वर्गस्थानम् पुंस्त्वमार्षम् । अवतरेत् स्वर्गात् भूमौ प्रथममिति शेषः ॥ ४॥ पार्श्वरथचक्रप्रदेशस्थमश्वम् ॥ ७ ॥ अतियातोऽतिवेगवान् । अश्वचतुष्टयस्यापि दानात् धुरं स्वहस्तेनैव गृह्णता साम्प्रतं युक्तायुक्तविचारः ॥ ९ ॥ पुष्परथस्य गिरिगगनसागरेष्वप्रतिषिद्धमार्गस्य प्रयोजनेन तदर्थमित्यर्थः ॥ १३ ॥ रथः स्तुत एव न तु याचितः । राजाऽपि ममाशयं बुद्ध्वापि रथं न दत्तवान् रथस्तुतिं चानुमोदितवानिति प्रघट्टकार्थः ॥ १४ ॥ द्रोहवचनेन अदत्वा वृथास्तवेन ॥ १५ ॥

अथास्य मृगयमाणस्य कश्चिदाचष्ट एष ते ब्राह्मणो नगरं प्रविश्य दहति ते गृहं कोशागारमायुधागारं स्त्र्यगारमश्वशालां हस्तिशालां च क्रुद्ध इति ॥ १९

अथ शिबिस्तथैवाविकृतमुखवर्णो नगरं प्रविश्य ब्राह्मणं तमब्रवीत् सिद्धं भगवन्नन्नमिति ब्राह्मणो न किञ्चिद्व्याजहार विस्मयादधोमुख आसीत् ॥ २०

ततः प्रासादयद्ब्राह्मणं भगवन् भुज्यतामिति । मुहूर्तादुद्वीक्ष्य शिबिमब्रवीत् ॥ २१

त्वमेवैतदशानेति तत्राह तथेति शिबिस्तथैवाविमना महित्वा कपालमभ्युद्धार्य भोक्तुमैच्छत्॥२२

अथास्य ब्राह्मणो हस्तमगृह्णात् । अब्रवीच्चैनं जितक्रोधोऽसि न ते किञ्चिदपरित्याज्यं ब्राह्मणार्थे ब्राह्मणोऽपि तं महाभागं सभाजयत् ॥ २३

स पुनरुद्वीक्षमाणः पुत्रमपश्यदग्रे तिष्ठन्तं देवकुमारमिव पुण्यगन्धान्वितमलङ्कृतं सर्वं च तमर्थं विधाय ब्राह्मणोऽन्तरधीयत ॥ २४

तस्य राजर्षेर्विधाता तेनैव वेषेण परीक्षार्थमागत इति तस्मिन्नन्तर्हिते अमात्या राजानमूचुः । किं प्रेप्सुना भवता इदमेवं जानता कृतमिति॥२५

शिबिरुवाच ।

नैवाहमेतद्यशसे ददानि<br>न चार्थहेतोर्न च भोगतृष्णया ।<br>पापैरनासेवित एष मार्ग<br>इत्येवमेतत् सकलं करोमि ॥ २६

सद्भिः सदाऽध्यासितं तु प्रशस्तं<br>तस्मात् प्रशस्तं श्रयते मतिर्मे ।<br>एतन्महाभाग्यवरं शिबेस्तु<br>तस्मादहं वेद यथावदेतत् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि राजन्यमहाभाग्ये शिबिचरिते अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९८॥

## १९९

वैशम्पायन उवाच ।

मार्कण्डेयमृषयः पाण्डवाः पर्यपृच्छन्नस्ति कश्चिद्भवतश्चिरजाततर इति ॥ १

स तानुवाचास्ति खलु राजर्षिरिन्द्रद्युम्नो नाम क्षीणपुण्यस्त्रिदिवात् प्रच्युतः कीर्तिर्मे व्युच्छिन्नेति स मामुपातिष्ठदथप्रत्यभिजानाति मां भवानिति ॥ २

तमहमब्रुवं कार्यचेष्टाकुलत्वान्न वयं वासायनिका ग्रामैकरात्रवासिनो न प्रत्यभिजानीमोऽप्यात्मनोऽर्थानामनुष्ठानं न शरीरोपतापेनात्मनः समारभामोऽर्थानामनुष्ठानम् ॥ ३

अस्ति खलु हिमवति प्रावारकर्णो नामोऽलूकः प्रतिवसति । स मत्तश्चिरजातो भवन्तं यदि जानीयादितः प्रकृष्टे चाध्वनि हिमवांस्तत्रासौ प्रतिवसतीति ॥ ४

ततः स मामश्वो भूत्वा तत्रावहद्यत्र बभूवोऽलूकः । अथैनं स राजा पप्रच्छ प्रतिजानाति मां भवानिति ॥ ५

---

महित्वा पूजयित्वा । कपालं शीर्षास्थिपात्रम् ॥ २२ ॥ यो दत्वा श्लाघते यश्चासूयेत् यश्चार्थिनो लिप्सितमिङ्गितेनाज्ञात्वाऽपि तं स्तुतिमात्रेणैव सम्भावयति न त्वर्थेन । यश्च ब्राह्मणेनार्थितः श्रद्धाक्षमापूर्वकमदेयमपि ददाति अकर्तव्यमपि करोति ते उत्तरोत्तरं श्रेष्ठाः । तत्राऽप्यन्त्यो नारदादपि श्रेष्ठ इति दातृगुणदोषविधानपरोऽयमध्यायः ॥२७॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

१९९

मार्कण्डेयमृषय इति । यावत्कीर्तिस्तावत्स्वर्गे तिष्ठति तुल्यन्यायत्वाद्यावदकीर्तिस्तावन्नरकेऽप्यत. कीर्त्यकीर्त्योर्नाशे कर्मानुरूपं ब्राह्मणादिशरीरं नीचयोनिं वा उभावपि भूमौ प्राप्नुत इत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ १ ॥ प्रत्यभिजानाति परिचिनोति ॥ २ ॥ कार्यं पुण्यं तदर्थाश्चेष्टा जपादयस्ताभिराकुलत्वात् । वासायनिकाः वासो विटागारं तदेव अयनं वासायनं तत्र भवाः ग्रामैकरात्रवासिनस्तीर्थाटनशीलाः शरीरोपतापेन कृच्छ्रोपवासादिजन्मना देहतापेन । अतो न वयमतीतानागतविदः स्म इति भावः ॥ ३ ॥ खलु प्रसिद्धम् ॥ ४ ॥ स इन्द्रद्युम्नोऽश्वो भूत्वा मामवहत् ॥ ५ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वाऽब्रवीदेनं नाभिजानामि भवन्तमिति स एवमुक्त इन्द्रद्युम्नः पुनस्तमुलूकमब्रवीद्राजर्षिः ॥ ६

अथास्ति कश्चिद्भवतः सकाशाच्चिरजात इति स एवमुक्तोऽब्रवीदस्ति खल्विन्द्रद्युम्नं नाम सरस्तस्मिन्नाडीजङ्घो नाम बकः प्रतिवसति सोऽस्मत्तश्चिरजाततरस्तं पृच्छेति तत इन्द्रद्युम्नो मां चोलूकमादाय तत्सरोऽगच्छद्यत्रासौ नाडीजङ्घोनाम बको बभूव ॥ ७

सोऽस्माभिः पृष्टो भवानिममिन्द्रद्युम्नं राजानमभिजानातीति स एवं मुहूर्तं ध्यात्वाऽब्रवीन्नाभिजानाम्यहमिन्द्रद्युम्नं राजानमिति । ततः सोऽस्माभिः पृष्टः कश्चिद्भवतोऽन्यश्चिरजाततरोऽस्तीति स नोऽब्रवीदस्ति खल्वस्मिन्नेव सरस्यकूपारो नाम कच्छपः प्रतिवसति । स मत्तश्चिरजाततरः स यदि कथञ्चिदभिजानीयादिमं राजानं तमकूपारं पृच्छध्वमिति ॥ ८

ततः स बकस्तमकूपारं कच्छपं विज्ञापयामास । अस्माकमभिप्रेतं भवन्तं किञ्चिद*र्थमभिप्रष्टुं साध्वागम्यतां तावदिति तच्छ्रुत्वा कच्छपस्तस्मात् सरस उत्थायाभ्यगच्छद्यत्र तिष्ठामो वयं तस्य सरसस्तीरे आगतं चैनं वयमपृच्छाम भवानिन्द्रद्युम्नं राजानमभिजानातीति ॥ ९

स मुहूर्तं ध्यात्वा बाष्पसम्पूर्णनयन उद्विग्नहृदयो वेपमानो विसंज्ञकल्पः प्राञ्जलिरब्रवीत् । किमहमेनं न प्रत्यभिज्ञास्यामीह ह्यनेन सहस्रकृत्वश्चितिषु यूपा आहिताः ॥ १०

सरश्चेदमस्य दक्षिणाभिर्दत्ताभिर्गोभिरतिक्रममाणाभिः कृतम् । अत्र चाहं प्रतिवसामीति ॥ ११

अथैतत् सकलं कच्छपेनोदाहृतं श्रुत्वा तदनन्तरं देवलोकाद्देवरथः प्रादुरासीद्वाचश्चाश्रूयन्तेन्द्रद्युम्नं प्रति प्रस्तुतस्ते स्वर्गो यथोचितं स्थानं प्रतिपद्यस्व कीर्तिमानस्यव्यग्रो याहीति ॥ १२

भवन्ति चात्र श्लोकाः-

दिवं स्पृशति भूमिं च
शब्दः पुण्यस्य कर्मणः ।
यावत् स शब्दो भवति
तावत् पुरुष उच्यते ॥ १३

अकीर्तिः कीर्त्यते लोके
यस्य भूतस्य कस्यचित् ।
स पतत्यधमाँल्लोकान्
यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ १४

तस्मात् कल्याणवृत्तः स्या-
दनन्ताय नरः सदा ।
विहाय चित्तं पापिष्ठं
धर्ममेव समाश्रयेत् ॥ १५

इत्येतच्छ्रुत्वा स राजाऽब्रवीत् तिष्ठ तावद्यावदिमौ वृद्धौ यथास्थानं प्रतिपादयामीति ॥ १६

स मां प्रावारकर्णं चोलूकं यथोचिते स्थाने प्रतिपाद्य तेनैव यानेन संस्थितो यथोचितं स्थानं प्रतिपेदे । तन्मयाऽनुभूतं चिरजीविनेदृशमिति पाण्डवानुवाच मार्कण्डेयः ॥ १७

पाण्डवाश्चोचुः साधु शोभनं भवता कृतं राजानमिन्द्रद्युम्नं स्वर्गलोकाच्च्युतं स्वे स्थाने प्रतिपादयतेत्यथैतानब्रवीदसौ ननु देवकीपुत्रेणापि कृष्णेन नरके मज्जमानो राजर्षिर्नृगस्तस्मात् कृच्छ्रात् पुनः समुद्धृत्य स्वर्गं प्रापित इति ॥ १८

इति श्रीमहाभारते अरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि इन्द्रद्युम्नोपाख्याने ऊनशताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

चितिषु अग्निचयनेषु कर्तव्येषु सत्सु ॥१०॥ पुरुषः स्वर्गस्थ इति शेषः ॥ १३ ॥ असौ मार्कण्डेयः ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनशताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

* कश्चिदर्थमिति 'स' पाठः ।

## २००

वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा स राजा राजर्षिरिन्द्रद्युम्नस्य तत् तदा ।
मार्कण्डेयान्महाभागात् स्वर्गस्य प्रतिपादनम् ॥१
युधिष्ठिरो महाराज पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ।
कीदृशीषु ह्यवस्थासु दत्वा दानं महामुने ॥ २
इन्द्रलोकं त्वनुभवेत् पुरुषस्तद्ब्रवीहि मे ।
गार्हस्थ्येऽप्यथवा बाल्ये यौवने स्थाविरेऽपि वा
यथा फलं समश्नाति तथा त्वं कथयस्व मे ॥ ३
मार्कण्डेय उवाच ।
वृथा जन्मानि चत्वारि वृथा दानानि षोडश ।
वृथा जन्म ह्यपुत्रस्य ये च धर्मबहिष्कृताः ॥ ४
परपाकेषु येऽश्नन्ति आत्मार्थं च पचेत् तु यः ।
पर्यश्नन्ति वृथा यत्र तदसत्यं प्रकीर्त्यते ॥ ५
आरूढपतिते दत्तमन्यायोपहृतं च यत् ।
व्यर्थं तु पतिते दानं ब्राह्मणे तस्करे तथा ॥ ६
गुरौ चानृतिके पापे कृतघ्ने ग्रामयाजके ।
वेदविक्रयिणे दत्तं तथा वृषलयाजके ॥ ७
ब्रह्मबन्धुषु यद्दत्तं यद्दत्तं वृषलीपतौ ।
स्त्रीजनेषु च यद्दत्तं व्यालग्राहे तथैव च ॥ ८
परिचारकेषु यद्दत्तं वृथादानानि षोडश ।
तमोवृतस्तु यो दद्याद्भयात् क्रोधात् तथैव च ॥ ९
भुङ्क्ते च दानं तत् सर्वं गर्भस्थस्तु नरः सदा ।
ददद्दानं द्विजातिभ्यो वृद्धभावेन मानवः ॥ १०
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु सर्वदानानि पार्थिव ।
दातव्यानि द्विजातिभ्यः स्वर्गमार्गजिगीषया॥११
युधिष्ठिर उवाच ।
चातुर्वर्ण्यस्य सर्वस्य वर्तमानाः प्रतिग्रहे ।
केन विप्रा विशेषेण तारयन्ति तरन्ति च ॥ १२
मार्कण्डेय उवाच ।
जपैर्मन्त्रैश्च होमैश्च स्वाध्यायाध्ययनेन च ।
नावं वेदमयीं कृत्वा तारयन्ति तरन्ति च ॥ १३
ब्राह्मणांस्तोषयेद्यस्तु तुष्यन्ते तस्य देवताः ।
वचनाच्चापि विप्राणां स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ १४
पितृदैवतपूजाभिर्ब्राह्मणाभ्यर्चनेन च ।
अनन्तं पुण्यलोकं तु गन्तासि त्वं न संशयः ॥
श्लेष्मादिभिर्व्याप्ततनुर्म्रियमाणोऽविचेतनः ।
ब्राह्मणा एव सम्पूज्याः पुण्यं स्वर्गमभीप्सता १६
श्राद्धकाले तु यत्नेन भोक्तव्या ह्यजुगुप्सिताः ।
दुर्वर्णः कुनखी कुष्ठी मायावी कुण्डगोलकौ॥ १७
वर्जनीयाः प्रयत्नेन काण्डपृष्ठाश्च देहिनः ।
जुगुप्सितं हि यच्छ्राद्धं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ १८
ये ये श्राद्धे न युज्यन्ते मूकान्धबधिरादयः ।
तेऽपि सर्वे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः॥१९
प्रतिग्रहश्च वै देयः शृणु यस्य युधिष्ठिर ।
प्रदातारं तथाऽऽत्मानं यस्तारयति शक्तिमान्२०
तस्मिन् देयं द्विजे दानं सर्वागमविजानता ।
प्रदातारं तथाऽऽत्मानं तारयेद्यः स शक्तिमान्२१
न तथा हविषो होमैर्न पुष्पैर्नानुलेपनैः ।
अग्नयः पार्थ तुष्यन्ति यथा ह्यतिथिभोजने ॥ २२
तस्मात् त्वं सर्वयत्नेन यतस्वातिथिभोजने ।
पादोदकं पादघृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ २३
प्रयच्छन्ति ये राजन्नोपसर्पन्ति ते यमम् ।
देवमाल्यापनयनं द्विजोच्छिष्टापमार्जनम् ॥ २४
आकल्पपरिचर्या च गात्रसंवाहनानि च ।
अत्रैकैकं नृपश्रेष्ठ गोदानाद्व्यतिरिच्यते ॥ २५
कपिलायाः प्रदानात्तु मुच्यते नात्र संशयः ।
तस्मादलङ्कृतां दद्यात् कपिलां तु द्विजातये॥२६
श्रोत्रियाय दरिद्राय गृहस्थायाग्निहोत्रिणे ।
पुत्रदाराभिभूताय तथा ह्यनुपकारिणे ॥ २७

२००

अतः परं स्वर्गप्रदान् साधारणान् धर्मानाहाध्यायेन श्रुत्वा **स राजा राजर्षिरित्यादिना** वदन्ति लोकेषु विशिष्टमुदय इत्यन्तेन ॥१॥ पर्यश्नन्ति बालवृद्धातिथिभ्यः पूर्वमश्नन्ति । यत्र जन्मनि असत्यं वृथा गोब्राह्मणादित्राणं विना कीर्त्यते तदपि वृथेत्यर्थः॥५॥आरूढश्चासौ पतितः॥८॥'आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति येन शुध्येत् स आत्महा' इति श्लोकोक्तः । नैष्ठिकं यावज्जीवब्रह्मचर्यं चतुर्थाश्रमं वानप्रस्थत्वं वा प्रच्यवते गार्हस्थ्येच्छादिना तां निष्ठां त्यजति ॥ ६ ॥ गुरावप्यानृतिकेऽनृतप्रिये । वृषलः शूद्रः ॥ ७ ॥ ब्रह्मबन्धवो जातिमात्रब्राह्मणा वृत्ताध्ययनशून्याः ॥ ८ ॥ दानं दानफलम् । अन्यत्तु दानं वृद्धभावेन जरया भुङ्क्ते ॥ १० ॥ अजुगुप्सिताः अभिशस्तपतितवर्जिताः दुर्वर्णः अतिगौरोऽतिकृष्णो बीभत्सवर्णः ॥१७॥ काण्डपृष्ठाः बाणनिषङ्गधराः क्षात्रवृत्तय इत्यर्थः ॥ १८ ॥ माल्यं निर्माल्यम् ॥ २४ ॥ आकल्पः गन्धादिनाऽलङ्करणम् ॥ २५ ॥ अभिभूताय दारिद्र्यादेव ॥ २७ ॥

एवंविधेषु दातव्या न समृद्धेषु भारत ।
को गुणो भरतश्रेष्ठ समृद्धेष्वभिवर्जितम् ॥ २८
एकस्यैका प्रदातव्या न बहूनां कदाचन ।
सा गौर्विक्रयमापन्ना हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम् २९
न तारयति दातारं ब्राह्मणं नैव नैव तु ।
सुवर्णस्य विशुद्धस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति ॥ ३०
सुवर्णानां शतं तेन दत्तं भवति शाश्वतम् ।
अनड्वाहं तु यो दद्याद्बलवन्तं धुरन्धरम् ॥ ३१
स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गलोकं च गच्छति ।
वसुन्धरां तु यो दद्याद्द्विजाय विदुषात्मने ॥ ३२
दातारं ह्यनुगच्छन्ति सर्वे कामाभिवाञ्छिताः ।
पृच्छन्ति चात्र दातारं वदन्ति पुरुषा भुवि ॥३३
अध्वनि क्षीणगात्राश्च पांसुपादावगुण्ठिताः ।
तेषामेव श्रमार्तानां यो ह्यन्नं कथयेद्बुधः ॥ ३४
अन्नदातृसमः सोऽपि कीर्त्यते नात्र संशयः ।
तस्मात् त्वं सर्वदानानि हित्वाऽन्नं सम्प्रयच्छ ह
न हीदृशं पुण्यफलं विचित्रमिह विद्यते ।
यथाशक्ति च यो दद्यादन्नं विप्रेषु संस्कृतम् ॥३६
स तेन कर्मणाऽऽप्नोति प्रजापतिसलोकताम् ।
अन्नमेव विशिष्टं हि तस्मात् परतरं न च ॥ ३७
अन्नं प्रजापतिश्चोक्तः स च संवत्सरो मतः ।
संवत्सरस्तु यज्ञोऽसौ सर्वं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ ३८
तस्मात् सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
तस्मादन्नं विशिष्टं हि सर्वेभ्य इति विश्रुतम् ॥ ३९
येषां तटाकानि महोदकानि
वाप्यश्च कूपाश्च प्रतिश्रयाश्च ।
अन्नस्य दानं मधुरा च वाणी
यमस्य ते निर्वचना भवन्ति ॥ ४०
धान्यं श्रमेणार्जितवित्तसञ्चितं
विप्रे सुशीले च प्रयच्छते यः ।
वसुन्धरा तस्य भवेत् सुतुष्टा
धारां वसूनां प्रतिमुञ्चतीव ॥ ४१
अन्नदाः प्रथमं यान्ति सत्यवाक्तदनन्तरम् ।
अयाचितप्रदाता च समं यान्ति त्रयो जनाः ४२
वैशम्पायन उवाच ।
कौतूहलसमुत्पन्नः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ।
मार्कण्डेयं महात्मानं पुनरेव सहानुजः ॥ ४३

यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ।
कीदृशं किंप्रमाणं वा कथं वा तन्महामुने ।
तरन्ति पुरुषाश्चैव येनोपायेन शंस मे ॥ ४४
मार्कण्डेय उवाच ।
सर्वगुह्यतमं प्रश्नं पवित्रमृषिसंस्तुतम् ।
कथयिष्यामि ते राजन् धर्मं धर्मभृतां वर ॥ ४५
षडशीतिसहस्राणि योजनानां नराधिप ।
यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥ ४६
आकाशं तदपानीयं घोरं कान्तारदर्शनम् ।
न तत्र वृक्षच्छाया वा पानीयं केतनानि च॥४७
विश्रमेद्यत्र वै श्रान्तः पुरुषोऽध्वनि कर्शितः ।
नीयते यमदूतैस्तु यमस्याज्ञाकरैर्बलात् ॥ ४८
नरास्त्रियस्तथैवाऽन्ये पृथिव्यां जीवसंज्ञिताः ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदानानि नानारूपाणि पार्थिव॥ ४९
हयादीनां प्रकृष्टानि तेऽध्वानं यान्ति वै नराः ।
सन्निवार्यातपं यान्ति छत्रेणैव हि छत्रदाः ॥ ५०
तृप्ताश्चैवान्नदातारो ह्यतृप्ताश्चाप्यनन्नदाः ।
वस्त्रिणो वस्त्रदा यान्ति अवस्त्रा यान्त्यवस्त्रदाः ५१
हिरण्यदाः सुखं यान्ति पुरुषास्त्वभ्यलङ्कृताः ।
भूमिदास्तु सुखं यान्ति सर्वैः कामैः सुतर्पिताः॥
यान्ति चैवापरिक्लिष्टा नराः सस्यप्रदायकाः ।
नराः सुखतरं यान्ति विमानेषु गृहप्रदाः ॥ ५३
पानीयदा ह्यतृषिताः प्रहृष्टमनसो नराः ।
पन्थानं द्योतयन्तश्च यान्ति दीपप्रदाः सुखम्॥५४
गोप्रदास्तु सुखं यान्ति निर्मुक्ताः सर्वपातकैः ।
विमानैर्हंससंयुक्तैर्यान्ति मासोपवासिनः ॥ ५५
तथा बर्हिप्रयुक्तैश्च षष्ठरात्रोपवासिनः ।
त्रिरात्रं क्षपते यस्तु एकभक्तेन पाण्डव ॥ ५६
अन्तरा चैव नाश्नाति तस्य लोका ह्यनामयाः ।
पानीयस्य गुणा दिव्याः प्रेतलोकसुखावहाः॥५७
तत्र पुष्पोदका नाम नदी तेषां विधीयते ।
शीतलं सलिलं तत्र पिबन्ति ह्यमृतोपमम् ॥ ५८
ये च दुष्कृतकर्माणः पूयं तेषां विधीयते ।
एवं नदी महाराज सर्वकामप्रदा हि सा ॥ ५९
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र पूजयैनान् यथाविधि ।
अध्वनि क्षीणगात्रश्च पथि पांसुसमन्वितः ॥ ६०

अभिवर्जितं दत्तम् ॥ २८ ॥ सा बहुभ्यो दत्ता ॥ २९ ॥ प्रजापतिः विराट् 'अन्नं विराट्' इति श्रुतेः॥३८॥ प्रतिश्रयाः कूहाः येषाम् । यः उत्सृष्टा इति शेषः । निर्वचनाः यमवार्तामपि न शृण्वन्तीत्यर्थः ॥ ४० ॥ वसूनां धनानाम् ॥४१॥

पृच्छते ह्यन्नदातारं गृहमायाति चाशया ।
तं पूजयाथ यत्नेन सोऽतिथिर्ब्राह्मणश्च सः ॥ ६१
तं यान्तमनुगच्छन्ति देवाः सर्वे सवासवाः ।
तस्मिन् सम्पूजिते प्रीता निराशा यान्त्यपूजिते ॥
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र पूजयैनं यथाविधि ।
एतत् ते शतशः प्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

पुनः पुनरहं श्रोतुं कथां धर्मसमाश्रयाम् ।
पुण्यामिच्छामि धर्मज्ञ कथ्यमानां त्वया विभो ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

धर्मान्तरं प्रति कथां कथ्यमानां मया नृप ।
सर्वपापहरां नित्यं शृणुष्वावहितो मम ॥ ६५
कपिलायां तु दत्तायां यत् फलं ज्येष्ठपुष्करे ।
तत् फलं भरतश्रेष्ठ विप्राणां पादधावने ॥ ६६
द्विजपादोदकक्लिन्ना यावत् तिष्ठति मेदिनी ।
तावत् पुष्करपर्णेन पिबन्ति पितरो जलम् ॥ ६७
स्वागतेनाग्नयस्तृप्ता आसनेन शतक्रतुः ।
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ ६८
यावद्वत्सस्य वै पादौ शिरश्चैव प्रदृश्यते ।
तस्मिन् काले प्रदातव्या प्रयत्नेनान्तरात्मना॥ ६९
अन्तरिक्षगतो वत्सो यावद्योन्यां प्रदृश्यते ।
तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ ७०
यावन्ति तस्या रोमाणि वत्सस्य च युधिष्ठिर ।
तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७१
सुवर्णनासां यः कृत्वा सखुरां कृष्णधेनुकाम् ।
तिलैः प्रच्छादितां दद्यात् सर्वरत्नैरलङ्कृताम्७२
प्रतिग्रहं गृहीत्वा यः पुनर्ददाति साधवे ।
फलानां फलमश्नाति तदा दत्वा च भारत ॥ ७३
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ।
चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥ ७४
अन्तर्जानुशयो यस्तु भुङ्क्ते सक्तभाजनः ।
यो द्विजः शब्दरहितं स क्षमस्तारणाय वै ॥ ७५
अपानपानगदितास्तथाऽन्ये ये द्विजातयः ।
जपन्ति संहितां सम्यक् ते नित्यं तारणक्षमाः७६
हव्यं कव्यं च यत् किञ्चित् सर्वं तच्छ्रोत्रियोऽर्हति
दत्तं हि श्रोत्रिये साधौ ज्वलितेऽग्नौ यथा हुतम्
मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्राः शस्त्रयोधिनः ।
निहन्युर्मन्युना विप्रा वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ७८
धर्माश्रितेयं तु कथा कथितेयं तवानघ ।
यां श्रुत्वा मुनयः प्रीता नैमिषारण्यवासिनः ७९
वीतशोकभयक्रोधा विपाप्मानस्तथैव च ।
श्रुत्वेमां तु कथां राजन् न भवन्तीह मानवाः८०

युधिष्ठिर उवाच ।

किं तच्छौचं भवेद्येन विप्रः शुद्धः सदा भवेत् ।
तदिच्छामि महाप्राज्ञ श्रोतुं धर्मभृतां वर ॥ ८१

मार्कण्डेय उवाच ।

वाक्शौचं कर्मशौचं च यच्च शौचं जलात्मकम् ।
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्गी नात्र संशयः ॥
सायं प्रातश्च सन्ध्यां यो ब्राह्मणोऽभ्युपसेवते ।
प्रजपन् पावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ८३
स तया पावितो देव्या ब्राह्मणो नष्टकिल्बिषः ।
न सीदेत् प्रतिगृह्णानो महीमपि ससागराम्॥ ८४
ये चास्य दारुणाः केचिद्ग्रहाः सूर्यादयो दिवि ।
ते चास्य सौम्या जायन्ते शिवाः शिवतराः सदा
सर्वे नानुगतं चैनं दारुणाः पिशिताशनाः ।
घोररूपा महाकाया धर्षयन्ति द्विजोत्तमम्॥ ८६
नाध्यापनाद्याजनाद्वा अन्यस्माद्वा प्रतिग्रहात् ।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलिताग्निसमा द्विजाः ॥
दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृताः संस्कृतास्तथा ।
ब्राह्मणा नावमन्तव्या भस्मच्छन्ना इवाग्नयः॥ ८८
यथा श्मशाने दीप्तौजाः पावको नैव दुष्यति ।
एवं विद्वानविद्वान् वा ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥८९
प्राकारैश्च पुरद्वारैः प्रासादैश्च पृथग्विधैः ।
नगराणि न शोभन्ते हीनानि ब्राह्मणोत्तमैः॥ ९०
वेदाढ्या वृत्तसम्पन्ना ज्ञानवन्तस्तपस्विनः ।
यत्र तिष्ठन्ति वै विप्रास्तन्नाम नगरं नृप ॥ ९१
व्रजे वाऽप्यथ वाऽरण्ये यत्र सन्ति बहुश्रुताः ।
तत् तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत् ॥ ९२
रक्षितारं च राजानं ब्राह्मणं च तपस्विनम् ।
अभिगम्याभिपूज्याथ सद्यः पापात् प्रमुच्यते॥९३
पुण्यतीर्थाभिषेकं च पवित्राणां च कीर्तनम् ।
सद्भिः सम्भाषणं चैव प्रशस्तं कीर्त्यते बुधैः ॥
साधुसङ्गमपूतेन वाक्सुभाषितवारिणा ।
पवित्रीकृतमात्मानं सन्तो मन्यन्ति नित्यशः ॥

अपानपाः अमद्यपाः न गदिताः न केनाचिद्दोषवत्तया कीर्तिताः ॥ ७६ ॥ न भवन्तीह मानवाः स्वर्गं प्राप्यो- पर्युपरिगच्छन्तो मुक्तिमेव प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ८० ॥ पवित्राणां त्रिसुपर्णादिमन्त्राणाम् ॥ ९४ ॥

त्रिदण्डधारणं मौनं जटाभारोऽथ मुण्डनम् ।
वल्कलाजिनसंवेष्टं व्रतचर्याऽभिषेचनम् ॥ ९६
अग्निहोत्रं वने वासः शरीरपरिशोषणम् ।
सर्वाण्येतानि मिथ्या स्युर्यदि भावो न निर्मलः ॥
न दुष्करमनाशित्वं सुकरं ह्यशनं विना ।
विशुद्धिं चक्षुरादीनां षण्णामिन्द्रियगामिनाम् ॥
विकारि तेषां राजेन्द्र सुदुष्करतरं मनः ॥ ९८
ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कर्मबुद्धिभिः ।
ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम् ९९
न ज्ञातिभ्यो दया यस्य शुक्लदेहोऽविकल्मषः ।
हिंसा सा तपसस्तस्य नानाशित्वं तपः स्मृतम्
तिष्ठन् गृहे चैव मुनिर्नित्यं शुचिरलङ्कृतः ।
यावज्जीवं दयावांश्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १०१
न हि पापानि कर्माणि शुध्यन्त्यनशनादिभिः ।
सीदत्यनशनादेव मांसशोणितलेपनः ॥ २
अज्ञातं कर्म कृत्वा च क्लेशो नान्यत् प्रहीयते ।
नाग्निर्दहति कर्माणि भावशून्यस्य देहिनः ॥ ३
पुण्यादेव प्रव्रजन्ति शुध्यन्त्यनशनानि च ।
न मूलफलभक्षित्वान्न मौनान्नानिलाशनात् ॥ ४
शिरसो मुण्डनाद्वापि न स्थानकुटिकासनात् ।
न जटाधारणाद्वापि न तु स्थण्डिलशाय्यया ॥ ५
नित्यं ह्यनशनाद्वापि नाग्निशुश्रूषणादपि ।
न चोदकप्रवेशेन न च क्ष्माशयनादपि ॥ ६
ज्ञानेन कर्मणा वाऽपि जरामरणमेव च ।
व्याधयश्च प्रहीयन्ते प्राप्यते चोत्तमं पदम् ॥ ७
बीजानि ह्यग्निदग्धानि न रोहन्ति पुनर्यथा ।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संयुज्यते पुनः ॥ ८
आत्मना विप्रहीणानि काष्ठकुड्योपमानि च ।
विनश्यन्ति न सन्देहः फेनानीव महार्णवे ॥ ९
आत्मानं विन्दते येन सर्वभूतगुहाशयम् ।
श्लोकेन यदि वाऽर्धेन क्षीणं तस्य प्रयोजनम् १०
द्व्यक्षरादभिसन्धाय केचिच्छ्लोकपदाङ्कितैः ।
शतैरन्यैः सहस्रैश्च प्रत्ययो मोक्षलक्षणम् ॥ ११
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।
ऊचुर्ज्ञानविदो वृद्धाः प्रत्ययो मोक्षलक्षणम् ॥१२
विदितार्थस्तु वेदानां परिवेद प्रयोजनम् ।
उद्विजेत् स तु वेदेभ्यो दावाग्नेरिव मानवः ॥१३
शुष्कं तर्कं परित्यज्य आश्रयस्व श्रुतिं स्मृतिम् ।
एकाक्षराभिसम्बद्धं तत्त्वं हेतुभिरिच्छसि ।
बुद्धिर्न तस्य सिद्ध्येत साधनस्य विपर्ययात् ॥१४

अभिषेचनं तीर्थेषु यज्ञान्तेऽवभृथे वा स्नानम् ॥९६॥ भावश्चित्तम् ॥ ९७ ॥ न दुष्करमिति । इन्द्रियगामिनां विषयाणां विशुद्धिं विना अशनं भोगः सुकरं भोगो विषयशुद्धिं नापेक्षते पण्याङ्गनासङ्गादिनापि तत्सिद्धेः । किं तु अनाशित्वं अमृतत्वं भोगवर्जनं वा तां विना न सुकरम् । यतो दुष्करं स्वभावतो दुःसम्पादमिति योजना । दुष्करत्वे हेतुमाहार्धेन विकारीति । सुदुष्करतरं दुर्जयम् ॥ ९८ ॥ ज्ञातिभ्यः पुत्राद्यर्थं शुक्लदेहः शुक्लवृत्त्युपजीवी अविकल्मषः शुक्लवृत्त्या यः कुटुम्बं पीडयति स निष्कल्मषो न भवतीत्यर्थः । तस्योपपादनमुत्तरार्धेन हिंसेति । अनाशित्वमशनत्यागः ॥१००॥ मांसशोणितलेपनः देहः ॥ २ ॥ अज्ञातं शास्त्रात् किं तु स्वयमेव कल्पितं नग्नशिलारोहणादि तेन क्लेश एव न तु अन्यत् पापं प्रहीयते । भावशून्यस्येति । तदपि भावश्चेत् शुद्धिहेतुरिति भावः ॥३॥ पुण्या देवदयारूपात् वाङ्मनःकायशुद्धिरूपाच्च वैराग्यशुद्धिमोक्षाः स्युर्न तु फलाद्यशनादिनेत्यर्थः ॥ ४॥ स्थानकुटिकासनात् स्थावरगृहत्यागात् ॥ ५ ॥ विधित्सितमाह ज्ञानेनेति ॥ ७ ॥ क्लेशैः अविद्यादिभिः ॥ ८ ॥ आत्मनेति शरीराणीति शेषः । आत्मना विप्रहीणानि निरात्मकानि रज्जूरगादिवत् । यतः काष्ठादिसमानि जडानि दृश्यानीत्यर्थः एतेन यद्दृश्यं तन्मिथ्येति नियमो दर्शितः । मूढदृष्ट्याऽपि नियमान्तरमाह विनश्यन्तीति । यद्दृश्यं तद्विनाशि अतो वियदादिकमहङ्कारश्च साक्षिभास्यत्वात् घटवद्विनाश्येवेत्यर्थः ॥ ९ ॥ नास्मि देहादिदृश्यरूप इति वा । नाहमहङ्काराख्यदृग्रूपो वा । न मे मत्सम्बन्धिदेहाहङ्कारादिकमिति वाऽऽत्मानं विन्दते ॥ १० ॥ द्व्यक्षरात् तत्त्वमिति वाक्यात् । अभिसन्धाय शास्त्राशयं प्रत्यगात्मनः केवलीभावं ज्ञात्वा श्लोकपदैः 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' इत्यादिभिर्मन्त्रपदैः आङ्कितानि चिह्नितानि ब्राह्मणानि 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादीनि तैः उपनिषदा शतैः सहस्रैश्चेत्यर्थः । प्रत्ययोऽहं ब्रह्मास्मीत्यनुभवः स्वसाक्षिकः अद्वैतत्वादिश्च लोकसाक्षिकः । मोक्षस्य लक्षणं ज्ञापकम् ॥११॥ परिवेद साकल्येन वेद विदितार्थो ज्ञातात्मतत्त्वः वेदेभ्यः वेदोक्तकर्मभ्यः ॥ १३ ॥ शुष्कतर्कं प्रपञ्चः सत्योऽबाध्यत्वात् आत्मवत् व्यतिरेकेण शुक्तिरजतवद्वेत्यादिरूपम् । श्रुतिम्–' नेह नानास्ति किञ्चन ' इति । स्मृतिम्–'अज्ञानप्रभवा लोका वेदाश्चाज्ञानसम्भवाः । विदितात्मसतत्त्वस्य नेह नानास्ति किञ्चन ' इत्यादिकां जगद्बाधप्रदर्शिनीं। आश्रयस्व ' नैषा तर्केण मतिरापनेया । नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम् ' इति श्रुतिभ्यामेकं च तत् अक्षरं व्यापकं त्रिविधभेदशून्यं वस्तु तत्सम्बद्धं श्रुतिस्मृतितत्त्वं हेतुभिः श्रौतयुक्तिभिः ' अन्नेन सोम्य शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिः सोम्य शु-

वेदपूर्वं वेदितव्यं प्रयत्नात्
तद्वै वेदस्तस्य वेदः शरीरम् ।
वेदस्तत्त्वं तत् समासोपलब्धौ-
क्लीबस्त्वात्मा तत् स वेद्यस्य वेद्यम्॥ १५
वेदोक्तमायुर्देवानामाशिषश्चैव कर्मणाम् ।
फलत्यनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥ १६
इन्द्रियाणां प्रसादेन तदेतत् परिवर्जयेत् ।
तस्मादनशनं दिव्यं निरुद्धेन्द्रियगोचरम् ॥ १७
तपसा स्वर्गगमनं भोगो दानेन जायते ।
ज्ञानेन मोक्षो विज्ञेयस्तीर्थस्नानादघक्षयः ॥ १८

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु राजेन्द्र प्रत्युवाच महायशाः ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रधानविधिमुत्तमम्॥ १९

मार्कण्डेय उवाच ।

यत् त्वमिच्छसि राजेन्द्र दानधर्मं युधिष्ठिर ।
इष्टं चेदं सदा मह्यं राजन् गौरवतस्तथा ॥ २०
शृणु दानरहस्यानि श्रुतिस्मृत्युदितानि च ।
छायायां करिणः श्राद्धं तत् कर्णपरिवीजिते ।
दश कल्पायुतानीह न क्षीयेत युधिष्ठिर ॥ २१
जीवनाय समाक्लिन्नं वसु दत्वा महीयते ।
वैश्यं तु वासयेद्यस्तु सर्वयज्ञैः स इष्टवान् ॥ २२
प्रतिस्रोऽतश्चित्रवाहाः पर्जन्योऽन्नानुसञ्चरन् ।
महाधुरि यथा नावा महापापैः प्रमुच्यते ॥ २३
विप्लवे विप्रदत्तानि दधिमस्त्वक्षयाणि च ।
पर्वसु द्विगुणं दानमृतौ दशगुणं भवेत् ॥ २४
अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखेषु च ।
चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते ॥ २५
ऋतुषु दशगुणं वदन्ति दत्तं
शतगुणमृत्वयनादिषु ध्रुवम् ।
भवति सहस्रगुणं दिनस्य राहो-
र्विषुवति चाक्षयमश्नुते फलम् ॥ २६

---

न्नेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः 'इत्यादिभिः कार्यलिङ्गकेनानुमानेन परमकारणं दर्शयन्तीभिः शुङ्गेन कार्येण मूलं कारणं इच्छसि यदीति शेषः । बुद्धिस्तत्त्वज्ञानं साधनस्य शमादेः श्राद्धादेर्विपर्ययात् अभावात् अवैदिकत्वाद्वा ॥ १४ ॥ वेदेति । तत् अक्षरं तत्त्वं वेदः प्रणवः वाच्यवाचकयोरभेदात् शरीरं प्रति प्रमाप्रणवद्वारैव तदधिगमस्य सर्वत्र दर्शनात् । तथा च श्रुतिः--' एतद्वै सत्यकाम परं चापरं ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति' इत्यादिका वेदस्तत्त्वं तत्त्वाधिगमहेतुः तत्समासोपलब्धौ तस्य वेदस्य समासः सङ्क्षेपः प्रलयो यत्र स तत्समास आत्मा । 'यत्र वेदा अवेदा ' इति श्रुतेः । तस्योपलब्धौ आत्मा क्लीबः स्वप्रकाश आत्मा न घटवत् स्वात्मानं प्रकाशयति स्वात्मनिवृत्तिविरोधात् । कथं तर्हि तज्ज्ञानस्य साध्यत्वमुच्यत इत्याशङ्क्याह तत्सवेद्यस्य वेद्यमिति । तत्तस्मात् सः आत्मा वेद्यस्य बुद्धिसत्त्वस्य 'वेद्यं ज्ञेयम् 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या-''मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इत्यादिश्रुतिभ्यः । कथं तर्हि 'यन्मनसा न मनुत' इत्यादिश्रवणम् । उच्यते । ' चक्षुः सन्निहितं कुम्भं यथा सूर्योऽवभासयेत् । चित्तवृत्त्या तथा व्याप्तं चिदात्मैव प्रकाशयेत् । स्वप्रकाशं चिदात्मानं वृत्तिरात्मान्तरं विना । भासयेद्भास्करमिव चक्षुः सूर्यान्तरं विना । वृत्तिव्याप्तिमपेक्ष्यैव वेद्यत्वं प्राहुरात्मनः । चिदन्तरानपेक्षत्वादवेद्यत्वं तथागमाः ' आगमाः-' यन्मनसा न मनुते मनसैवानुद्रष्टव्यम् ' इत्याद्याः । 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' इति श्रुतिः । 'निराकरोति वेद्यत्वमनवस्थाभयादिति ॥ १५ ॥ प्रसादेन नैर्मल्येन अनशनं नाम चित्तेन्द्रियनिरोधो न त्वाहारत्याग इत्याह तस्मादिति ॥ १७ ॥ उक्तमर्थं पिण्डीकृत्याह तपसेति । तपसा स्वधर्माचरणेन ॥ १८ ॥ छायायां करिणः गुर्वमायोगेऽश्वत्थच्छायागजच्छायाख्यं पर्व देशकालयोगजं कर्णा इव कर्णा अश्वत्थपत्रवातैर्वीजिते देशे जलोपान्ते ॥ २१ ॥ समाक्लिन्नं आर्द्रं वसु अन्नादिद्रव्यं वैश्यं विशन्त्यास्मिन्निति वेशो धर्मगृहं तदधिकारिणं वैश्यम ' वृद्ध्यौषधारब्यान्नधने त्रिषु रत्ने वसु स्मृतम्' इति । ' वेशो वेश्यागृहे प्रोक्तो नेपथ्ये गृहमात्रके ' इति च विश्वः ॥ २२ ॥ प्रतितोश्चित्रवाहा इति सार्धः श्लोकः । प्रति प्रतीपं पूर्ववाहिन्या नद्याः पश्चिमाभिमुखं स्रोतः प्रवाहो यत्र तत् तीर्थं प्रतिस्रोतः । तत्र पात्रेऽर्पिताश्चित्रवाहा उत्तमाश्वाः। विपरिणम्य अक्षया इत्यपकृष्यते अक्षयफला इत्यर्थः । पर्जन्योऽन्नानुसञ्चरन्-अन्नार्थमनुसञ्चरन् पर्जन्य इन्द्रोऽप्यक्षयः । अतिथिरूपेण तृप्त इन्द्रोप्यक्षय्यस्वर्गप्रद इत्यर्थः। 'पर्जन्यो मघवा वृषा' इति हलायुधः। महाधुरि महति धूः सदृशे प्रवाहे विप्लवे राहूपरागे विप्रदत्तानि विप्रेभ्यो दत्तानि । दधि मस्तु दध्नो मण्डम् 'मण्डं दधिभवं मस्तु ' इत्यमरः। चकारात् पूर्वोक्तानि नापुरुषो वा यथा महाधुरि योगभारे यथा सर्वपापैः प्रमुच्यते तथैव गजच्छायाश्राद्धादिकर्तारोऽपि मुच्यन्त इत्यर्थः ॥ २३ ॥ पर्वसु दर्शादिषु ॥ २४ ॥ विषुवे तुलामेषसङ्क्रान्त्योः । षडशीतिमुखे मिथुनकन्यामीनसङ्क्रान्तिषु ॥ २५ ॥

नाभूमिदो भूमिमश्नाति राजन्
नायानदो यानमारुह्य याति ।
यान् यान् कामान् ब्राह्मणेभ्यो ददाति
तांस्तान् कामान् जायमानः स भुङ्क्ते॥२७
अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता
यः काञ्चनं गाश्च महीं च दद्यात् ॥ २८
परं हि दानान्न बभूव शाश्वतं
भव्यं त्रिलोके भवते कुतः पुनः ।
तस्मात् प्रधानं परमं हि दानं
वदन्ति लोकेषु विशिष्टबुद्धयः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि दानमाहात्म्ये
द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

## २०१

वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा तु राजा राजर्षेरिन्द्रद्युम्नस्य तत् तथा ।
मार्कण्डेयान्महाभागात् स्वर्गस्य प्रतिपादनम् ॥१
युधिष्ठिरो महाराज पप्रच्छ भरतर्षभ ।
मार्कण्डेयं तपोवृद्धं दीर्घायुषमकल्मषम् ॥ २
विदितास्तव धर्मज्ञ देवदानवराक्षसाः ।
राजवंशाश्च विविधा ऋषिवंशाश्च शाश्वताः ॥ ३
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदस्मिँल्लोके द्विजोत्तम ।
कथां वेत्सि मुने दिव्यां मनुष्योरगरक्षसाम्॥ ४
देवगन्धर्वयक्षाणां किन्नराप्सरसां तथा ।
इदमिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन द्विजसत्तम ॥ ५
कुवलाश्व इति ख्यात इक्ष्वाकुरपराजितः ।
कथं नाम विपर्यासाद्धुन्धुमारत्वमागतः ॥ ६
एतदिच्छामि तत्त्वेन ज्ञातुं भार्गवसत्तम ।
विपर्यस्तं यथा नाम कुवलाश्वस्य धीमतः ॥ ७
वैशम्पायन उवाच ।
युधिष्ठिरेणैवमुक्तो मार्कण्डेयो महामुनिः ।
धौन्धुमारमुपाख्यानं कथयामास भारत ॥ ८
मार्कण्डेय उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि शृणु राजन् युधिष्ठिर ।
धर्मिष्ठमिदमाख्यानं धुन्धुमारस्य तच्छृणु ॥ ९
यथा स राजा इक्ष्वाकुः कुवलाश्वो महीपतिः ।
धुन्धुमारत्वमगमत् तच्छृणुष्व महीपते ॥ १०
महर्षिर्विश्रुतस्तात उत्तङ्क इति भारत ।
मरुधन्वसु रम्येषु आश्रमस्तस्य कौरव ॥ ११
उत्तङ्कस्तु महाराज तपोऽतप्यत् सुदुश्चरम् ।
आरिराधयिषुर्विष्णुं बहून् वर्षगणान् विभुः ॥१२
तस्य प्रीतः स भगवान् साक्षाद्दर्शनमेयिवान् ।
दृष्ट्वैव चर्षिः प्रह्वस्तं तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥ १३
उत्तङ्क उवाच ।
त्वया देव प्रजाः सर्वाः ससुरासुरमानवाः ।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥ १४
ब्रह्म वेदाश्च वेद्यं च त्वया सृष्टं महाद्युते ।
शिरस्ते गगनं देव नेत्रे शशिदिवाकरौ ॥ १५
निःश्वासः पवनश्चापि तेजोऽग्निश्च तवाच्युत ।
बाहवस्ते दिशः सर्वाः कुक्षिश्चापि महार्णवः॥ १६
ऊरू ते पर्वता देव खं जङ्घे मधुसूदन ।
पादौ ते पृथिवी देवी रोमाण्योषधयस्तथा ॥ १७
इन्द्रसोमाग्निवरुणा देवासुरमहोरगाः ।
प्रह्वास्त्वामुपतिष्ठन्ति स्तुवन्तो विविधैस्तवैः॥ १८
त्वया व्याप्तानि सर्वाणि भूतानि भुवनेश्वर ।
योगिनः सुमहावीर्याः स्तुवन्ति त्वां महर्षयः ॥
त्वयि तुष्टे जगत्स्वास्थ्यं त्वयि क्रुद्धे महद्भयम् ।
भयानामपनेताऽसि त्वमेकः पुरुषोत्तम ॥ २०
देवानां मानुषाणां च सर्वभूतसुखावहः ।
त्रिभिर्विक्रमणैर्देव त्रयो लोकास्त्वया हृताः ॥२१
असुराणां समृद्धानां विनाशश्च त्वया कृतः ।
तव विक्रमणैर्देवा निर्वाणमगमन् परम् ॥ २२

---

कामान् काम्यमानान् विषयान् ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

२०१

श्रुत्वेति । ऋषीणां राज्ञां च लोककष्टकोद्धरणं परमेश्वरप्रीतिकरमिति धुन्धुमारोपाख्यानतात्पर्यम् । पदार्थः स्पष्टः ॥ १ ॥

पराभूताश्च दैत्येन्द्रास्त्वयि क्रुद्धे महाद्युते ।
त्वं हि कर्ता विकर्ता च भूतानामिह सर्वशः॥२३
आराधयित्वा त्वां देवाः सुखमेधन्ति सर्वशः ।
एवं स्तुतो हृषीकेश उत्तङ्केन महात्मना ॥ २४
उत्तङ्कमब्रवीद्विष्णुः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु ।

उत्तङ्क उवाच ।

पर्याप्तो मे वरो ह्येष यदहं दृष्टवान् हरिम् ॥ २५
पुरुषं शाश्वतं दिव्यं स्रष्टारं जगतः प्रभुम् ।

विष्णुरुवाच ।

प्रीतस्तेऽहमलौल्येन भक्त्या तव च सत्तम ॥२६
अवश्यं हि त्वया ब्रह्मन् मत्तो ग्राह्यो वरो द्विज ।
एवं स छन्द्यमानस्तु वरेण हरिणा तदा ॥ २७
उत्तङ्कः प्राञ्जलिर्वव्रे वरं भरतसत्तम ।
यदि मे भगवन् प्रीतः पुण्डरीकनिभेक्षण ॥ २८
धर्मे सत्ये दमे चैव बुद्धिर्भवतु मे सदा ।
अभ्यासश्च भवेद्भक्त्या त्वयि नित्यं ममेश्वर ॥२९

भगवानुवाच ।

सर्वमेतद्धि भविता मत्प्रसादात् तव द्विज ।
प्रतिभास्यति योगश्च येन युक्तो दिवौकसाम्३०
त्रयाणामपि लोकानां महत् कार्यं करिष्यसि ।
उत्सादनार्थं लोकानां धुन्धुर्नाम महासुरः ॥ ३१
तपस्यति तपो घोरं शृणु यस्तं हनिष्यति ।
राजा हि वीर्यवांस्तात इक्ष्वाकुरपराजितः ॥ ३२
बृहदश्व इति ख्यातो भविष्यति महीपतिः।
तस्य पुत्रः शुचिर्दान्तः कुवलाश्व इति श्रुतः॥३३
स योगबलमास्थाय मामकं पार्थिवोत्तमः ।
शासनात् तव विप्रर्षे धुन्धुमारो भविष्यति ।
एवमुक्त्वा तु तं विप्रं विष्णुरन्तरधीयत ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि धुन्धुमारोपाख्याने एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

## २०२

मार्कण्डेय उवाच ।

इक्ष्वाकौ संस्थिते राजन् शशादः पृथिवीमिमाम्
प्राप्तः परमधर्मात्मा सोऽयोध्यायां नृपोऽभवत् १
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्।
अनेनाश्चापि काकुत्स्थः पृथुश्चानेनसः सुतः ॥ २
विष्वगश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादद्रिश्च जज्ञिवान् ।
अद्रेश्च युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३
तस्य श्रावस्तको ज्ञेयः श्रावस्ती येन निर्मिता।
श्रावस्तकस्य दायादो बृहदश्वो महाबलः ॥ ४
बृहदश्वस्य दायादः कुवलाश्व इति स्मृतः ।
कुवलाश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ५
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ।
कुवलाश्वश्च पितृतो गुणैरभ्यधिकोऽभवत् ॥ ६
समये तं पिता राज्ये बृहदश्वोऽभ्यषेचयत् ।
कुवलाश्वं महाराज शूरमुत्तमधार्मिकम् ॥ ७
पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु बृहदश्वो महीपतिः ।
जगाम तपसे धीमांस्तपोवनममित्रहा ॥ ८

मार्कण्डेय उवाच ।

अथ शुश्राव राजर्षिं तमुत्तङ्को नराधिप ।
वनं सम्प्रस्थितं राजन् बृहदश्वं द्विजोत्तमः ॥ ९
तमुत्तङ्को महातेजाः सर्वास्त्रविदुषां वरम् ।
न्यवारयदमेयात्मा समासाद्य नरोत्तमम् ॥ १०

उत्तङ्क उवाच ।

भवता रक्षणं कार्यं तत् तावत् कर्तुमर्हसि ।
निरुद्विग्ना वयं राजंस्त्वत्प्रसादाद्भवेमहि ॥ ११
त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना ।
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि ॥ १२
पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते ।
न तथा दृश्यतेऽरण्ये माभूत् ते बुद्धिरीदृशी॥१३
ईदृशो न हि राजेन्द्र धर्मः क्व च न दृश्यते ।
प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः ॥१४
रक्षितव्याः प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥ १५
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जालक इति स्मृतः ॥ १६

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

२०२

इक्ष्वाकाविति ॥ १ ॥

बहुयोजनविस्तिर्णो बहुयोजनमायतः ।
तत्र रौद्रो दानवेन्द्रो महावीर्यपराक्रमः ॥ १७
मधुकैटभयोः पुत्रो धुन्धुर्नाम सुदारुणः ।
अन्तर्भूमिगतो राजन् वसत्यमितविक्रमः ॥ १८
तं निहत्य महाराज वनं त्वं गन्तुमर्हसि ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ १९
त्रिदशानां विनाशाय लोकानां चापि पार्थिव ।
अवध्यो दैवतानां हि दैत्यानामथ रक्षसाम् ॥ २०
नागानामथ यक्षाणां गन्धर्वाणां च सर्वशः ।
अवाप्य स वरं राजन् सर्वलोकपितामहात् ॥ २१
तं विनाशय भद्रं ते मा ते बुद्धिरतोऽन्यथा ।
प्राप्स्यसे महतीं कीर्तिं शाश्वतीमव्ययां ध्रुवाम्॥
क्रूरस्य तस्य स्वपतो वालुकान्तर्हितस्य च ।
संवत्सरस्य पर्यन्ते निःश्वासः सम्प्रवर्तते ॥ २३
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना ।
तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ॥ २४
आदित्यपथमाश्रित्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं धूममिश्रं सुदारुणम् ॥२५
तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ।
तं विनाशय राजेन्द्र लोकानां हितकाम्यया॥२६
लोकाः स्वस्था भविष्यन्ति तस्मिन् विनिहतेऽसुरे
त्वं हि तस्य विनाशाय पर्याप्त इति मे मतिः २७
तेजसा तव तेजश्च विष्णुराप्याययिष्यति ।
विष्णुना च वरो दत्तः पूर्वं मम महीपते ॥ २८
यस्तं महासुरं रौद्रं वधिष्यति महीपतिः ।
तेजस्त्वं वैष्णवमिति प्रवेक्ष्यति दुरासदम् ॥ २९
तत् तेजस्त्वं समाधाय राजेन्द्र भुवि दुःसहम् ।
तं निषूदय राजेन्द्र दैत्यं रौद्रपराक्रमम् ॥ ३०
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाऽल्पेन शक्यते ।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल स हि वर्षशतैरपि ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि धुन्धुमारोपाख्याने द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

## २०३

मार्कण्डेय उवाच ।
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केनापराजितः ।
उत्तङ्कं कौरवश्रेष्ठ कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ॥ १
न तेऽभिगमनं ब्रह्मन् मोघमेतद्भविष्यति ।
पुत्रो ममायं भगवन् कुवलाश्व इति स्मृतः ॥ २
धृतिमान् क्षिप्रकारी च वीर्येणाप्रतिमो भुवि ।
प्रियं च ते सर्वमेतत् करिष्यति न संशयः ॥ ३
पुत्रैः परिवृतः सर्वैः शूरैः परिघबाहुभिः ।
विसर्जयस्व मां ब्रह्मन् न्यस्तशस्त्रोऽस्मि साम्प्रतम्
तथाऽस्त्विति च तेनोक्तो मुनिनाऽमिततेजसा ।
स तमादिश्य तनयमुत्तङ्काय महात्मने ॥ ५
क्रियतामिति राजर्षिर्जगाम वनमुत्तमम् ।
युधिष्ठिर उवाच ।
क एष भगवन् दैत्यो महावीर्यस्तपोधन ॥ ६
तस्य पुत्रोऽथ नप्ता वा एतदिच्छामि वेदितुम् ।
एवं महाबलो दैत्यो न श्रुतो मे तपोधन ॥ ७
एतदिच्छामि भगवन् याथातथ्येन वेदितुम् ।
सर्वमेव महाप्राज्ञ विस्तरेण तपोधन ॥ ८
मार्कण्डेय उवाच ।
शृणु राजन्निदं सर्वं यथावृत्तं नराधिप ।
कथ्यमानं महाप्राज्ञ विस्तरेण यथातथम् ॥ ९
एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
प्रनष्टेषु च भूतेषु सर्वेषु भरतर्षभ ॥ १०
प्रभवं लोककर्तारं विष्णुं शाश्वतमव्ययम् ।
यमाहुर्मुनयः सिद्धाः सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ ११
सुष्वाप भगवान् विष्णुरप्सु योगत एव सः ।
नागस्य भोगे महति शेषस्यामिततेजसः ॥ १२
लोककर्ता महाभाग भगवानच्युतो हरिः ।
नागभोगेन महता परिरभ्य महीमिमाम् ॥ १३
स्वपतस्तस्य देवस्य पद्मं सूर्यसमप्रभम् ।
नाभ्यां विनिःसृतं दिव्यं तत्रोत्पन्नः पितामहः ॥
साक्षाल्लोकगुरुर्ब्रह्मा पद्मे सूर्यसमप्रभः ।
चतुर्वेदश्चतुर्मूर्तिस्तथैव च चतुर्मुखः ॥ १५

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

२०३
स एवमिति ॥ ४ ॥

स्वप्रभावाद्दुराधर्षौ महाबलपराक्रमः ।
कस्यचित् त्वथ कालस्य दानवौ वीर्यवत्तमौ॥१६
मधुश्च कैटभश्चैव दृष्टवन्तौ हरिं प्रभुम् ।
शयानं शयने दिव्ये नागभोगे महाद्युतिम् ॥ १७
बहुयोजनविस्तीर्णे बहुयोजनमायते ।
किरीटकौस्तुभधरं पीतकौशेयवाससम् ॥ १८
दीप्यमानं श्रिया राजंस्तेजसा वपुषा तथा ।
सहस्रसूर्यप्रतिममद्भुतोपमदर्शनम् ॥ १९
विस्मयः सुमहानासीन्मधुकैटभयोस्तथा ।
दृष्ट्वा पितामहं चापि पद्मे पद्मनिभेक्षणम् ॥ २०
वित्रासयेतामथ तौ ब्रह्माणममितौजसम् ।
वित्रस्यमानो बहुशो ब्रह्मा ताभ्यां महायशाः२१
अकम्पयत् पद्मनालं ततोऽबुध्यत केशवः ।
अथापश्यत गोविन्दो दानवौ वीर्यवत्तरौ ॥ २२
दृष्ट्वा तावब्रवीद्देवः स्वागतं वां महाबलौ ।
ददामि वां वरं श्रेष्ठं प्रीतिर्हि मम जायते ॥ २३
तौ प्रहस्य हृषीकेशं महादर्पौ महाबलौ ।
प्रत्यब्रूतां महाराज सहितौ मधुसूदनम् ॥ २४
आवां वरय देव त्वं वरदौ स्वः सुरोत्तम ।
दातारौ स्वो वरं तुभ्यं तद्ब्रवीह्यविचारयन्॥ २५

भगवानुवाच ।

प्रतिगृह्णे वरं वीरावीप्सितश्च वरो मम ।
युवां हि वीर्यसम्पन्नौ न वामस्ति समः पुमान् ॥
वध्यत्वमुपगच्छेतां मम सत्यपराक्रमौ ।
एतदिच्छाम्यहं कामं प्राप्तुं लोकहिताय वै ॥ २७

मधुकैटभावूचतुः ।

अनृतं नोक्तपूर्वं नौ स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ।
सत्ये धर्मे च निरतौ विद्ध्यावां पुरुषोत्तम ॥ २८
बले रूपे च शौर्ये च शमे न च समोऽस्ति नौ ।
धर्मे तपसि दाने च शीलसत्त्वदमेषु च ॥ २९
उपप्लवो महानस्मानुपावर्तत केशव ।
उक्तं प्रतिकुरुष्व त्वं कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ३०
आवामिच्छावहे देव कृतमेकं त्वया विभो ।
अनावृतेऽस्मिन्नाकाशे वधं सुरवरोत्तम ॥ ३१
पुत्रत्वमधिगच्छाव तव चापि सुलोचन ।
वर एष वृतो देव तद्विद्धि सुरसत्तम ॥ ३२
अनृतं मा भवेद्देव यद्धि नौ संश्रुतं तदा ।

भगवानुवाच।

बाढमेवं करिष्यामि सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ३३
स विचिन्त्याथ गोविन्दो नापश्यद्यदनावृतम् ।
अवकाशं पृथिव्यां वा दिवि वा मधुसूदनः ॥ ३४
स्वकावनावृतावूरू दृष्ट्वा देववरस्तदा ।
मधुकैटभयो राजन् शिरसी मधुसूदनः ।
चक्रेण शितधारेण न्यकृन्तत महायशाः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि धुन्धुमारोपाख्याने त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

## २०४

मार्कण्डेय उवाच ।

धुन्धुर्नाम महाराज तयोः पुत्रो महाद्युतिः ।
स तपोऽतप्यत महन्महावीर्यपराक्रमः ॥ १
अतिष्ठदेकपादेन कृशो धमनिसन्ततः ।
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो वरं वव्रे स च प्रभुम् ॥ २
देवदानवयक्षाणां सर्पगन्धर्वरक्षसाम् ।
अवध्योऽहं भवेयं वै वर एष वृतो मया ॥ ३
एवं भवतु गच्छेति तमुवाच पितामहः ।
स एवमुक्तस्तत्पादौ मूर्ध्ना स्पृश्य जगाम ह ॥ ४
स तु धुन्धुर्वरं लब्ध्वा महावीर्यपराक्रमः ।
अनुस्मरन् पितृवधं द्रुतं विष्णुमुपागमत् ॥ ५
स तु देवान् सगन्धर्वान् जित्वा धुन्धुरमर्षणः ।
बबाध सर्वानसकृद्विष्णुं देवांश्च वै भृशम् ॥ ६
समुद्रे वालुकापूर्णे उज्जालक इति स्मृते ।
आगम्य च स दुष्टात्मा तं देशं भरतर्षभ ॥ ७
बाधते स्म परं शक्त्या तमुत्तङ्काश्रमं विभो ।
अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितस्तथा ॥ ८
मधुकैटभयोः पुत्रो धुन्धुर्भीमपराक्रमः ।
शेते लोकविनाशाय तपोबलमुपाश्रितः ॥ ९

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

२०४

धुन्धुरिति ॥१॥

उत्तङ्कस्याश्रमाभ्याशे निःश्वसन् पावकार्चिषः ।
एतस्मिन्नेव काले तु राजा सबलवाहनः ॥ १०
उत्तङ्कविप्रसहितः कुवलाश्वो महीपतिः ।
पुत्रैः सह महीपालः प्रययौ भरतर्षभ ॥ ११
सहस्रैरेकविंशत्या पुत्राणामरिमर्दनः ।
कुवलाश्वो नरपतिरन्वितो बलशालिनाम् ॥ १२
तमाविशत् ततो विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः ।
उत्तङ्कस्य नियोगेन लोकानां हितकाम्यया ॥ १३
तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति॥ १४
दिव्यैश्च पुष्पैस्तं देवा समन्तात् पर्यवारयन् ।
देवदुन्दुभयश्चापि नेदुः स्वयमनीरिताः ॥ १५
शीतश्च वायुः प्रववौ प्रयाणे तस्य धीमतः ।
विपांसुलां महीं कुर्वन् ववर्ष च सुरेश्वरः ॥ १६
अन्तरिक्षे विमानानि देवतानां युधिष्ठिर ।
तत्रैव समदृश्यन्त धुन्धुर्यत्र महासुरः ॥ १७
कुवलाश्वस्य धुन्धोश्च युद्धकौतूहलान्विताः ।
देवगन्धर्वसहिताः समवैक्षन् महर्षयः ॥ १८
नारायणेन कौरव्य तेजसाऽऽप्यायितस्तदा ।
स गतो नृपतिः क्षिप्रं पुत्रैस्तैः सर्वतो दिशम् १९
अर्णवं खानयामास कुवलाश्वो महीपतिः ।
कुवलाश्वस्य पुत्रैश्च तस्मिन् वै वालुकार्णवे ॥ २०
सप्तभिर्दिवसैः खात्वा दृष्टो धुन्धुर्महाबलः ।
आसीद्घोरं वपुस्तस्य वालुकान्तर्हितं महत् ॥२१
दीप्यमानं यथा सूर्यस्तेजसा भरतर्षभ ।
ततो धुन्धुर्महाराज दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥ २२
सुप्तोऽभूद्राजशार्दूल कालानलसमद्युतिः ।
कुवलाश्वस्य पुत्रैस्तु सर्वतः परिवारितः ॥ २३
अभिद्रुतः शरैस्तीक्ष्णैर्गदाभिर्मुसलैरपि ।
पट्टिशैः परिघैः प्रासैः खड्गैश्च विमलैः शितैः॥ २४
स वध्यमानः संक्रुद्धः समुत्तस्थौ महाबलः ।
क्रुद्धश्चाभक्षयत् तेषां शस्त्राणि विविधानि च २५
आस्याद्वमन् पावकं स संवर्तकसमं तदा ।
तान् सर्वान् नृपतेः पुत्रानदहत् स्वेन तेजसा २६
मुखजेनाग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वर्तयन्निव ।
क्षणेन राजशार्दूल पुरेव कपिलः प्रभुः ॥ २७
सगरस्यात्मजान् क्रुद्धस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
तेषु क्रोधाग्निदग्धेषु तदा भरतसत्तम ॥ २८
तं प्रबुद्धं महात्मानं कुम्भकर्णमिवापरम् ।
आससाद महातेजाः कुवलाश्वो महीपतिः ॥ २९
तस्य वारि महाराज सुस्राव बहु देहतः ।
तदापीय ततस्तेजो राजा वारिमयं नृप ॥ ३०
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ।
ब्रह्मास्त्रेण च राजेन्द्र दैत्यं क्रूरपराक्रमम् ॥ ३१
ददाह भरतश्रेष्ठ सर्वलोकभयाय वै ।
सोऽस्त्रेण दग्ध्वा राजर्षिः कुवलाश्वो महासुरम्३२
सुरशत्रुममित्रघ्नं त्रैलोक्येश इवापरः ।
धुन्धोर्वधात् तदा राजा कुवलाश्वो महामनाः३३
धुन्धुमार इति ख्यातो नाम्नाऽप्रतिरथोऽभवत् ।
प्रीतैश्च त्रिदशैः सर्वैर्महर्षिसहितैस्तदा ॥ ३४
वरं वृणीष्वेत्युक्तः स प्राञ्जलिः प्रणतस्तदा ।
अतीव मुदितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५
दद्यां वित्तं द्विजाग्र्येभ्यः शत्रूणां चापि दुर्जयः ।
सख्यं च विष्णुना मे स्याद्भूतेष्वद्रोह एव च॥३६
धर्मे रतिश्च सततं स्वर्गे वासस्तथाऽक्षयः ।
तथाऽस्त्विति ततो देवैः प्रीतैरुक्तः स पार्थिवः३७
ऋषिभिश्च सगन्धर्वैरुत्तङ्केन च धीमता ।
सम्भाष्य चैनं विविधैराशीर्वादैस्ततो नृप ॥ ३८
देवा महर्षयश्चापि स्वानि स्थानानि भेजिरे ।
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा युधिष्ठिर तदाऽभवन् ३९
दृढाश्वः कपिलाश्वश्च चन्द्राश्वश्चैव भारत ।
तेभ्यः परम्परा राजन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्॥४०
वंशस्य सुमहाभाग राज्ञाममिततेजसाम् ।
एवं स निहतस्तेन कुवलाश्वेन सत्तम ॥ ४१
धुन्धुर्नाम महादैत्यो मधुकैटभयोः सुतः ।
कुवलाश्वश्च नृपतिर्धुन्धुमार इति स्मृतः ॥ ४२
नाम्ना च गुणसंयुक्तस्तदाप्रभृति सोऽभवत् ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥४३
धौन्धुमारमुपाख्यानं प्रथितं यस्य कर्मणा ।
इदं तु पुण्यमाख्यानं विष्णोः समनुकीर्तनम् ॥ ४४

शृणुयाद्यः स धर्मात्मा पुत्रवांश्च भवेन्नरः । आयुष्मान् भूतिमांश्चैव श्रुत्वा भवति पर्वसु ।
न च व्याधिभयं किञ्चित् प्राप्नोति विगतज्वरः ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि धुन्धुमारोपाख्याने चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

## २०५

वैशम्पायन उवाच ।

ततो युधिष्ठिरो राजा मार्कण्डेयं महाद्युतिम् ।
पप्रच्छ भरतश्रेष्ठ धर्मप्रश्नं सुदुर्विदम् ॥ १
श्रोतुमिच्छामि भगवन् स्त्रीणां माहात्म्यमुत्तमम्
कथ्यमानं त्वया विप्र सूक्ष्मं धर्म्यं च तत्त्वतः ॥ २
प्रत्यक्षमिह विप्रर्षे देवा दृश्यन्ति सत्तम ।
सूर्याचन्द्रमसौ वायुः पृथिवी वह्निरेव च ॥ ३
पिता माता च भगवान् गुरुरेव च सत्तम ।
यच्चान्यदेव विहितं तच्चापि भृगुनन्दन ॥ ४
मान्या हि गुरवः सर्वे एकपत्न्यस्तथा स्त्रियः ।
पतिव्रतानां शुश्रूषा दुष्करा प्रतिभाति मे ॥ ५
पतिव्रतानां माहात्म्यं वक्तुमर्हसि नः प्रभो ।
निरुध्य चेन्द्रियग्रामं मनः संरुध्य चानघ ॥ ६
पतिं दैवतवच्चापि चिन्तयन्त्यः स्थिता हि याः ।
भगवन् दुष्करं त्वेतत् प्रतिभाति मम प्रभो ॥ ७
मातापित्रोश्च शुश्रूषा स्त्रीणां भर्तरि च द्विज ।
स्त्रीणां धर्मात् सुघोराद्धि नान्यं पश्यामि दुष्करम्
साध्वाचाराः स्त्रियो ब्रह्मन् यत् कुर्वन्ति सदादृताः
दुष्करं खलु कुर्वन्ति पितरं मातरं च वै ॥ ९
एकपत्न्यश्च या नार्यो याश्च सत्यं वदन्त्युत ।
कुक्षिणा दशमासांश्च गर्भं सन्धारयन्ति याः १०
नार्यः कालेन सम्भूय किमद्भुततरं ततः ।
संशयं परमं प्राप्य वेदनामतुलामपि ॥ ११
प्रजायन्ते सुतान् नार्यो दुःखेन महता विभो ।
पुष्णन्ति चापि महता स्नेहेन द्विजपुङ्गव ॥ १२
ये च क्रूरेषु सर्वेषु वर्तमाना जुगुप्सिताः ।
स्वकर्म कुर्वन्ति सदा दुष्करं तच्च मे मतम् ॥ १३
क्षत्रधर्मसमाचारतत्त्वं व्याख्याहि मे द्विज ।
धर्मः सुदुर्लभो विप्र नृशंसेन महात्मनाम् ॥ १४
एतदिच्छामि भगवन् प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
श्रोतुं भृगुकुलश्रेष्ठ शुश्रूषे तव सुव्रत ॥ १५

मार्कण्डेय उवाच ।

हन्त तेऽहं समाख्यास्ये प्रश्नमेतं सुदुर्वचम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ गदतस्तन्निबोध मे ॥ १६
मातॄस्तु गौरवादन्ये पितॄनन्ये तु मेनिरे ।
दुष्करं कुरुते माता विवर्धयति या प्रजाः ॥ १७
तपसा देवतेज्याभिर्वन्दनेन तितिक्षया ।
अभिचारैरुपायैश्चापीहन्ते पितरः सुतान् ॥ १८
एवं कृच्छ्रेण महता पुत्रं प्राप्य सुदुर्लभम् ।
चिन्तयन्ति सदा वीर कीदृशोऽयं भविष्यति १९
आशंसते हि पुत्रेषु पिता माता च भारत ।
यशः कीर्तिमथैश्वर्यं प्रजा धर्मं तथैव च ॥ २०
तयोराशां तु सफलां यः करोति स धर्मवित् ।
पिता माता च राजेन्द्र तुष्यतो यस्य नित्यशः २१
इह प्रेत्य च तस्याथ कीर्तिर्धर्मश्च शाश्वतः ।
नैव यज्ञक्रियाः काश्चिन्न श्राद्धं नोपवासकम् ॥ २२
या तु भर्तरि शुश्रूषा तया स्वर्गं जयत्युत ।
एतत् प्रकरणं राजन्नधिकृत्य युधिष्ठिर ॥ २३
पतिव्रतानां नियतं धर्मं चावहितः शृणु ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेय-समास्यापर्वणि पतिव्रतोपाख्याने पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

२०५

**तत इति** । पतिव्रताख्यानमितः स्त्रीमाहात्म्यादीनां पृष्टानां निर्णयार्थं तत्रापि 'नाहं बलाका विप्रर्षे' इत्यतः प्राक्तनो ग्रन्थः स्पष्टार्थः ॥१॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

## २०६

मार्कण्डेय उवाच ।

कश्चिद्द्विजातिप्रवरो वेदाध्यायी तपोधनः ।
तपस्वी धर्मशीलश्च कौशिको नाम भारत ॥ १
साङ्गोपनिषदो वेदानधीते द्विजसत्तमः ।
स वृक्षमूले कस्मिंश्चिद्वेदानुच्चारयन् स्थितः ॥ २
उपरिष्टाच्च वृक्षस्य बलाका संन्यलीयत ।
तया पुरीषमुत्सृष्टं ब्राह्मणस्य तदोपरि ॥ ३
तामवेक्ष्य ततः क्रुद्धः समपध्यायत द्विजः ।
भृशं क्रोधाभिभूतेन बलाका सा निरीक्षिता ॥ ४
अपध्याता च विप्रेण न्यपतद्धरणीतले ।
बलाकां पतितां दृष्ट्वा गतसत्त्वामचेतनाम् ॥ ५
कारुण्यादभिसन्तप्तः पर्यशोचत तां द्विजः ।
अकार्यं कृतवानस्मि रोषरागबलात्कृतः ॥ ६

मार्कण्डेय उवाच ।

इत्युक्त्वा बहुशो विद्वान् ग्रामं भैक्ष्याय संश्रितः ।
ग्रामे शुचीनि प्रचरन् कुलानि भरतर्षभ ॥ ७
प्रविष्टस्तत् कुलं यत्र पूर्वं चरितवांस्तु सः ।
देहीति याचमानोऽसौ तिष्ठेत्युक्तः स्त्रिया ततः ८
शौचं तु यावत् कुरुते भाजनस्य कुटुम्बिनी ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन् क्षुधासम्पीडितो भृशम् ॥९
भर्ता प्रविष्टः सहसा तस्या भरतसत्तम ।
सा तु दृष्ट्वा पतिं साध्वी ब्राह्मणं व्यवहाय तम्१०
पाद्यमाचमनीयं वै ददौ भर्तुस्तथाऽऽसनम् ।
प्रह्वा पर्यचरच्चापि भर्तारमसितेक्षणा ॥ ११
आहारेणाथ भक्ष्यैश्च भोज्यैः सुमधुरैस्तथा ।
उच्छिष्टं भाविता भर्तुर्भुङ्क्ते नित्यं युधिष्ठिर ॥ १२
दैवतं च पतिं मेने भर्तुश्चित्तानुसारिणी ।
कर्मणा मनसा वाचा नान्यचित्ताऽभ्यगात् पतिम्
तं सर्वभावोपगता पतिशुश्रूषणे रता ।
साध्वाचारा शुचिर्दक्षा कुटुम्बस्य हितैषिणी१४
भर्तुश्चापि हितं यत् तत् सततं साऽनुवर्तते ।
देवतातिथिभृत्यानां श्वश्रूश्वशुरयोस्तथा ॥ १५
शुश्रूषणपरा नित्यं सततं संयतेन्द्रिया ।
सा ब्राह्मणं तदा दृष्ट्वा संस्थितं भैक्ष्यकाङ्क्षिणम्॥
कुर्वती पतिशुश्रूषां सस्माराथ शुभेक्षणा ।
व्रीडिता साऽभवत् साध्वी तदा भरतसत्तम ।
भिक्षामादाय विप्राय निर्जगाम यशस्विनी॥ १७

ब्राह्मण उवाच ।

किमिदं भवति त्वं मां तिष्ठेत्युक्त्वा वराङ्गने ।
उपरोधं कृतवती न विसर्जितवत्यसि ॥ १८

मार्कण्डेय उवाच ।

ब्राह्मणं क्रोधसन्तप्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
दृष्ट्वा साध्वी मनुष्येन्द्र सान्त्वपूर्वं वचोऽब्रवीत्१९

स्त्र्युवाच ।

क्षन्तुमर्हसि मे विद्वन् भर्ता मे दैवतं महत् ।
स चापि क्षुधितः श्रान्तः प्राप्तः शुश्रूषितो मया

ब्राह्मण उवाच ।

ब्राह्मणा न गरीयांसो गरीयांस्ते पतिः कृतः ।
गृहस्थधर्मे वर्तन्ती ब्राह्मणानवमन्यसे ॥ २१
इन्द्रोऽप्येषां प्रणमते किं पुनर्मानवो भुवि ।
अवलिप्ते न जानीषे वृद्धानां न श्रुतं त्वया ॥ २२
ब्राह्मणा ह्यग्निसदृशा दहेयुः पृथिवीमपि ।

स्त्र्युवाच ।

नाहं बलाका विप्रर्षे त्यज क्रोधं तपोधन ॥ २३
अनया क्रुद्धया दृष्ट्या क्रुद्धः किं मां करिष्यसि ।
नावजानाम्यहं विप्रान् देवैस्तुल्यान् मनस्विनः २४
अपराधमिमं विप्र क्षन्तुमर्हसि मेऽनघ ।
जानामि तेजो विप्राणां महाभाग्यं च धीमताम्
अपेयः सागरः क्रोधात् कृतो हि लवणोदकः ।
तथैव दीप्ततपसां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २६
येषां क्रोधाग्निरद्यापि दण्डकेनोपशाम्यति ।
ब्राह्मणानां परिभवाद्वातापिः सुदुरात्मवान्॥ २७
अगस्त्यमृषिमासाद्य जीर्णः क्रूरो महासुरः ।
बहुप्रभावाः श्रूयन्ते ब्राह्मणानां महात्मनाम्॥ २८
क्रोधः सुविपुलो ब्रह्मन् प्रसादश्च महात्मनाम् ।
अस्मिंस्त्वतिक्रमे ब्रह्मन् क्षन्तुमर्हसि मेऽनघ ॥२९
पतिशुश्रूषया धर्मो यः स मे रोचते द्विज ।
दैवतेष्वपि सर्वेषु भर्ता मे दैवतं परम् ॥ ३०
अविशेषेण तस्याहं कुर्यां धर्मं द्विजोत्तम ।
शुश्रूषायाः फलं पश्य पत्युर्ब्राह्मण यादृशम् ॥ ३१

२०६

कश्चिदिति ॥ १ ॥ दण्डके दण्डकारण्ये ॥ २७ ॥ शुश्रूषाया इति । भर्तृशुश्रूषया सार्वज्ञ्यप्राप्तिर्दर्शिता ॥ ३१ ॥

बलाका हि त्वया दग्धा रोषात् तद्विदितं मया ।
क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम ३२
यः क्रोधमोहौ त्यजति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
यो वदेदिह सत्यानि गुरुं सन्तोषयेत च ॥ ३३
हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
जितेन्द्रियो धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः॥३४
कामक्रोधौ वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
यस्य चात्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः ३५
सर्वधर्मेषु च रतस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयीत वा ॥ ३६
दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
ब्रह्मचारी वदान्यो योऽप्यधीयाद्द्विजपुङ्गवः ॥३७
स्वाध्यायवानमत्तो वै तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
यद्ब्राह्मणानां कुशलं तदेषां परिकीर्तयेत् ॥ ३८
सत्यं तथा व्याहरतां नानृते रमते मनः ।
धर्मं तु ब्राह्मणस्याहुः स्वाध्यायं दममार्जवम् ३९
इन्द्रियाणां निग्रहं च शाश्वतं द्विजसत्तम ।
सत्यार्जवे धर्ममाहुः परं धर्मविदो जनाः ॥ ४०
दुर्ज्ञेयः शाश्वतो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः ।
श्रुतिप्रमाणो धर्मः स्यादिति वृद्धानुशासनम् ४१
बहुधा दृश्यते धर्मः सूक्ष्म एव द्विजोत्तम ।
भगवानपि धर्मज्ञः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ॥ ४२
न तु तत्त्वेन भगवन् धर्मं वेत्सीति मे मतिः ।
यदि विप्र न जानीषे धर्मं परमकं द्विज ॥ ४३
धर्मव्याधं ततः पृच्छ गत्वा तु मिथिलां पुरीम् ।
मातापितृभ्यां शुश्रूषुः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥४४
मिथिलायां वसेद्व्याधः स ते धर्मान् प्रवक्ष्यति ।
तत्र गच्छस्व भद्रं ते यथाकामं द्विजोत्तम ॥ ४५
अत्युक्तमपि मे सर्वं क्षन्तुमर्हस्यनिन्दित ।
स्त्रियो ह्यवध्याः सर्वेषां ये धर्ममभिविन्दते ॥ ४६

ब्राह्मण उवाच ।

प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते गतः क्रोधश्च शोभने ।
उपालम्भस्त्वया ह्युक्तो मम निःश्रेयसं परम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि साधयिष्यामि शोभने

मार्कण्डेय उवाच ।

तया विसृष्टो निर्गम्य स्वमेव भवनं ययौ ।
विनिन्दन् स स्वमात्मानं कौशिको द्विजसत्तमः४८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि पतिव्रतोपाख्याने षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

## २०७

मार्कण्डेय उवाच ।

चिन्तयित्वा तदाश्चर्यं स्त्रिया प्रोक्तमशेषतः ।
विनिन्दन् स स्वमात्मानमागस्कृत इवाबभौ ॥ १
चिन्तयानः स्वधर्मस्य सूक्ष्मां गतिमथाब्रवीत् ।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं गच्छामि मिथिलामहम् ॥२
कृतात्मा धर्मवित् तस्यां व्याधो निवसते किल ।
तं गच्छाम्यहमद्यैव धर्मं प्रष्टुं तपोधनम् ॥ ३
इति सञ्चिन्त्य मनसा श्रद्दधानः स्त्रिया वचः ।
बलाकाप्रत्ययेनासौ धर्म्यैश्च वचनैः शुभैः ४
सम्प्रतस्थे स मिथिलां कौतूहलसमन्वितः ।
अतिक्रामन्नरण्यानि ग्रामांश्च नगराणि च ॥ ५
ततो जगाम मिथिलां जनकेन सुरक्षिताम् ।
धर्मसेतुसमाकीर्णां यज्ञोत्सववतीं शुभाम् ॥ ६

सा च ब्राह्मणानां ब्रह्मविदामेवास्तीति तल्लक्षणान्याह क्रोध इति ॥ ३२ ॥ अत्र लक्षणकथनं निष्प्रयोजनमिति यान्येव विद्वल्लक्षणानि तानि विद्यासाधनानीति न्यायेन ब्राह्मण्यकामस्य क्रोधादित्यागो गुर्वाराधनादि च कर्तव्यत्वेन विधीयते । य इति । सत्यवाक् गुरुभक्तः क्षमावांश्च भवेदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ शाश्वतो धर्म आत्मदर्शनम् । यदाह याज्ञवल्क्यः 'इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्' इति । सत्ये त्रैकालिकबाधशून्ये वस्तुनि प्रतिष्ठितः पर्यवसितः । अन्यो धर्मस्त्वसत्ये प्रतिष्ठित इत्यर्थात् सिद्धम् ॥ ४१ ॥ साधयिष्यामि स्वकार्यमिति शेषः ॥ ४७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

२०७

चिन्तयित्वेति । आगोऽपराधः कृतमनेनेत्यागस्कृत् ॥ १ ॥

गोपुराट्टालकवतीं हर्म्यप्राकारशोभनाम् ।
प्रविश्य नगरीं रम्यां विमानैर्बहुभिर्युताम् ॥ ७
पण्यैश्च बहुभिर्युक्तां सुविभक्तमहापथाम् ।
अश्वै रथैस्तथा नागैर्योधैश्च बहुभिर्युताम् ॥ ८
हृष्टपुष्टजनाकीर्णां नित्योत्सवसमाकुलाम् ।
सोऽपश्यद्बहुवृत्तान्तां ब्राह्मणः समतिक्रमन् ॥ ९
धर्मव्याधमपृच्छच्च स चास्य कथितो द्विजैः ।
अपश्यत् तत्र गत्वा तं सूनामध्ये ह्यवस्थितम् १०
मार्गमाहिषमांसानि विक्रीणन्तं तपस्विनम् ।
आकुलत्वाच्च क्रेतॄणामेकान्ते संस्थितो द्विजः॥११
स तु ज्ञात्वा द्विजं प्राप्तं सहसा सम्भ्रमोत्थितः ।
आजगाम यतो विप्रः स्थित एकान्तदर्शने ॥ १२

व्याध उवाच ।

अभिवादये त्वां भगवन् स्वागतं ते द्विजोत्तम ।
अहं व्याधो हि भद्रं ते किं करोमि प्रशाधि माम्
एकपत्न्या यदुक्तोऽसि गच्छ त्वं मिथिलामिति ।
जानाम्येतदहं सर्वं यदर्थं त्वमिहागतः ॥ १४
श्रुत्वा च तस्य तद्वाक्यं स विप्रो भृशविस्मितः ।
द्वितीयमिदमाश्चर्यमित्यचिन्तयत द्विजः ॥ १५
अदेशस्थं हि ते स्थानमिति व्याधोऽब्रवीदिदम् ।
गृहं गच्छाव भगवन् यदि ते रोचतेऽनघ ॥ १६

मार्कण्डेय उवाच ।

बाढमित्येव तं विप्रो हृष्टो वचनमब्रवीत् ।
अग्रतस्तु द्विजं कृत्वा स जगाम गृहं प्रति ॥ १७
प्रविश्य च गृहं रम्यमासनेनाभिपूजितः ।
पाद्यमाचमनीयं च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ॥ १८
ततः सुखोपविष्टस्तं व्याधं वचनमब्रवीत् ।
कर्मैतद्वै न सदृशं भवतः प्रतिभाति मे ।
अनुतप्ये भृशं तात तव घोरेण कर्मणा ॥ १९

व्याध उवाच ।

कुलोचितमिदं कर्म पितृपैतामहं परम् ।
वर्तमानस्य मे धर्मे स्वे मन्युं मा कृथा द्विज॥ २०
विधात्रा विहितं पूर्वं कर्म स्वमनुपालयन् ।
प्रयत्नाच्च गुरू वृद्धौ शुश्रूषेऽहं द्विजोत्तम ॥ २१
सत्यं वदे नाभ्यसूये यथाशक्ति ददानि च ।
देवतातिथिभृत्यानामवशिष्टेन वर्तये ॥ २२
न कुत्सयाम्यहं किञ्चिन्न गर्हे बलवत्तरम् ।
कृतमन्वेति कर्तारं पुराकर्म द्विजोत्तम ॥ २३
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमिह लोकस्य जीवनम् ।
दण्डनीतिस्त्रयी विद्या तेन लोको भवत्युत ॥२४
कर्म शूद्रे कृषिर्वैश्ये सङ्ग्रामः क्षत्रिये स्मृतः ।
ब्रह्मचर्यं तपो मन्त्राः सत्यं च ब्राह्मणे सदा ॥२५
राजा प्रशास्ति धर्मेण स्वकर्मनिरताः प्रजाः ।
विकर्माणश्च ये केचित् तान् युनक्ति स्वकर्मसु२६
भेतव्यं हि सदा राज्ञां प्रजानामधिपा हि ते ।
वारयन्ति विकर्मस्थं नृपा मृगमिवेषुभिः ॥ २७
जनकस्येह विप्रर्षे विकर्मस्थो न विद्यते ।
स्वकर्मनिरता वर्णाश्चत्वारोऽपि द्विजोत्तम ॥ २८
स एष जनको राजा दुर्वृत्तमपि चेत् सुतम् ।
दण्ड्यं दण्डे निक्षिपति तथा न ग्लाति धार्मिकम्
सुयुक्तचारो नृपतिः सर्वं धर्मेण पश्यति ।
श्रीश्च राज्यं च दण्डश्च क्षत्रियाणां द्विजोत्तम ३०
राजानो हि स्वधर्मेण श्रियमिच्छन्ति भूयसीम् ।
सर्वेषामेव वर्णानां त्राता राजा भवत्युत ॥ ३१
परेण हि हतान् ब्रह्मन् वराहमहिषानहम् ।
न स्वयं हन्मि विप्रर्षे विक्रीणामि सदा त्वहम्३२
न भक्षयामि मांसानि ऋतुगामी तथा ह्यहम् ।
सदोपवासी च तथा नक्तभोजी सदा द्विज॥ ३३
अशीलश्चापि पुरुषो भूत्वा भवति शीलवान् ।
प्राणिहिंसारतिश्चापि भवते धार्मिकः पुनः ॥ ३४
अभिचारान्नरेन्द्राणां धर्मः सङ्कीर्यते महान् ।
अधर्मो वर्तते चापि सङ्कीर्यन्ते ततः प्रजाः ॥ ३५
भेरुण्डा वामनाः कुब्जाः स्थूलशीर्षास्तथैव च ।
क्लीबाश्चान्धाश्च बधिरा जायन्तेऽत्युच्चलोचनाः
पार्थिवानामधर्मत्वात् प्रजानामभवः सदा ।
स एष राजा जनकः प्रजा धर्मेण पश्यति ॥ ३७
अनुगृह्णन् प्रजाः सर्वाः स्वधर्मनिरताः सदा ।
ये चैव मां प्रशंसन्ति ये च निन्दन्ति मानवाः ॥
सर्वान् सुपरिणीतेन कर्मणा तोषयाम्यहम् ।
ये जीवन्ति स्वधर्मेण संयुञ्जन्ति च पार्थिवाः ३९

---

विमानैः सार्वभौमिकगृहैः ॥ ७ ॥ सूना वधस्थानं तन्मध्ये ॥ १० ॥ अदेशस्थमयोग्यदेशस्थम् ॥ १६ ॥ गुरू मातापितरौ॥२१॥नाभ्यसूये परगुणेषु दोषं नाविष्कुर्वे। वर्तये जीवामि ॥ २२ ॥ कुत्सा विद्यमानदोषसङ्कीर्तनम् । गर्हा अविद्यमानदोषारोपः । पुराकृतं कर्मेति सम्बन्धः ॥ २३ ॥ लोकः परलोकः ॥ २४ ॥ न ग्लाति न ग्लानिं नयति ॥ २९ ॥ अभिचारात् स्वैरगतेः ॥ ३५ ॥ भेरुण्डाः भयानकाः ॥ ३६ ॥ सुपरिणीतेन साधुना ये संयुञ्जन्ति सम्यग्योगं सेनानिवेशं कुर्वन्ति त एव पार्थिवाः अन्ये चोरा इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

न किञ्चिदुपजीवन्ति दान्ता उत्थानशीलिनः ।
शक्त्याऽन्नदानं सततं तितिक्षा धर्मनित्यता ॥४०
यथार्हं प्रति पूजा च सर्वभूतेषु वै सदा ।
त्यागान्नान्यत्र मर्त्यानां गुणास्तिष्ठन्ति पूरुषे ॥ ४१
मृषा वादं परिहरेत् कुर्यात् प्रियमयाचितः ।
न च कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् ॥ ४२
प्रिये नातिभृशं हृष्येदप्रिये न च सञ्ज्वरेत् ।
न मुह्येदर्थकृच्छ्रेषु न च धर्मं परित्यजेत् ॥ ४३
कर्म चेत्किञ्चिदन्यत् स्यादितरन्न तदाचरेत् ।
यत् कल्याणमभिध्यायेत् तत्रात्मानं नियोजयेत् ॥
न पापे प्रतिपापः स्यात् साधुरेव सदा भवेत् ।
आत्मनैव हतः पापो यः पापं कर्तुमिच्छति ॥ ४५
कर्म चैतदसाधूनां वृजिनानामसाधुवत् ।
न धर्मोऽस्तीति मन्वानाः शुचीनवहसन्ति ये ४६
अश्रद्दधाना धर्मस्य ते नश्यन्ति न संशयः ।
महादृतिरिवाध्मातः पापो भवति नित्यदा ॥४७
मूढानामवलिप्तानामसारं भाषितं भवेत् ।
दर्शयत्यन्तरात्मा तं दिवा रूपमिवांशुमान् ॥४८
न लोके राजते मूर्खः केवलात्मप्रशंसया ।
अपि चेह मृजा हीनः कृतविद्यः प्रकाशते ॥ ४९
अब्रुवन् कस्यचिन्निन्दामात्मपूजामवर्णयन् ।
न कश्चिद्गुणसम्पन्नः प्रकाशो भुवि दृश्यते ॥ ५०
विकर्मणा तप्यमानः पापाद्विपरिमुच्यते ।
न तत् कुर्यां पुनरिति द्वितीयात् परिमुच्यते ॥५१
कर्मणा येन तेनेह पापाद्द्विजवरोत्तम ।
एवं श्रुतिरियं ब्रह्मन् धर्मेषु प्रतिदृश्यते ॥ ५२

पापान्यबुद्ध्वेह पुरा कृतानि
प्राग्धर्मशीलोऽपि विहन्ति पश्चात् ।
धर्मो राजन्नुदते पूरुषाणां
यत् कुर्वते पापमिह प्रमादात् ॥ ५३
पापं कृत्वा हि मन्येत नाहमस्मीति पूरुषः ।
तं तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ५४
चिकीर्षेद्देवकल्याणं श्रद्दधानोऽनसूयकः ।
वसनस्येव छिद्राणि साधूनां विवृणोति यः ॥५५
पापश्चेत् पुरुषः कृत्वा कल्याणमभिपद्यते ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महाभ्रेणेव चन्द्रमाः ॥ ५६
यथाऽऽदित्यः समुद्यन् वै तमः पूर्वं व्यपोहति ।
एवं कल्याणमातिष्ठन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७
पापानां विद्ध्यधिष्ठानं लोभमेव द्विजोत्तम ।
लुब्धाः पापं व्यवस्यन्ति नरा नातिबहुश्रुताः ५८
अधर्मा धर्मरूपेण तृणैः कूपा इवावृताः ।
तेषां दमः पवित्राणि प्रलापा धर्मसंश्रिताः ।
सर्वं हि विद्यते तेषु शिष्टाचारः सुदुर्लभः ॥ ५९

मार्कण्डेय उवाच ।

स तु विप्रो §महाप्राज्ञो धर्मव्याधमपृच्छत ।
शिष्टाचारं कथमहं विद्यामिति नरोत्तम ॥ ६०
एतदिच्छामि भद्रं ते श्रोतुं धर्मभृतां वर ।
त्वत्तो महामते व्याध तद्ब्रवीहि यथातथम् ॥ ६१

व्याध उवाच ।

यज्ञो दानं तपो वेदाः सत्यं च द्विजसत्तम ।
पञ्चैतानि पवित्राणि शिष्टाचारेषु सर्वदा ॥ ६२
कामक्रोधौ वशे कृत्वा दम्भं लोभमनार्जवम् ।
धर्ममित्येव सन्तुष्टास्ते शिष्टाः शिष्टसम्मताः ॥६३

संरम्भाद्भयात् ॥ ४२ ॥ अन्यत् विपरीतं स्यात् इतरत् तादृशं द्वितीयं कल्याणमेवात्मनः परस्य चाभिध्यायेत् जानीयात् ॥ ४४ ॥ पापे पापिनि प्रतिपापः प्रतिपापी न स्यात् ॥४५॥ वृजिनानां व्यसनवताम् । असाधुश्चोरादिवत् ॥ ४६ ॥ दृतिर्भस्त्रा आध्मातः सन्नसारोऽपि पुष्टो भवेत् ॥ ४७ ॥ तद्वन्मूढानां भाषितं चिन्तितम् । अन्तरात्मैव तं मूढं दर्शयति मूढस्य मौढ्यमेव स्वरूपज्ञापकम् ॥४८॥ मृजा हीनः मलिनदेहः। श्रियेति पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः ॥ ४९ ॥ मूढमतमाह अब्रुवन्निति ॥ ५० ॥ पापात् प्राक् कृतात् द्वितीयात् करिष्यमाणात् ॥ ५१ ॥ कर्मणेति। येन तेनेति जपतपस्तीर्थाद्यन्यतमेन येन केनचिदपि पापात् परिमुच्यत इत्यनुषज्यते। 'स ब्राह्मणः केन स्यायेन स्यात्तेनेदृश एव स्यात्' इति श्रुतिर्हि धर्मेषु धर्मोत्पत्तिविषया। ज्ञानोत्पत्तौ त्वेक एव श्रवणादिमार्गो 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति श्रूयते ॥ ५२ ॥ प्राक् कृतानीति सम्बन्धः ॥ ५३ ॥ चिकीर्षेदिति। साधूनां छिद्राणि धनादिहीनतया रिक्तानि श्राद्धादीनि यः विवृणोति धनादिदानेन विवृणोति विशेषतः पिदधाति ॥५५॥ सः कल्याणं मोक्षोपायं कर्तुमिच्छेदेव । साधुसेवनजात् पुण्यान्मुमुक्षा उदेतीत्यर्थः ॥५६॥ यथेति । मुमुक्षा पापनाशपूर्विकैवोदेतीति भावः ॥ ५७ ॥ अधर्मा इति। लुब्धाः धर्मशून्या अपि धर्मस्य रूपमिव रूपं यस्य तेन दम्भेन आवृताः तेषां दाम्भिनाम्। अत एव दाम्भिनां साधूनां च विशेषानवगमात् तेषु दाम्भिषु शिष्टाचारः सुदुर्लभः दुर्बोध इत्यर्थः ॥ ५९ ॥ शिष्टाचारमाह यज्ञ इति ॥६२॥ शिष्टलक्षणमाह कामेति ॥ ६३ ॥ § महाप्राज्ञ ख.

न तेषां विद्यते वृत्तं यज्ञस्वाध्यायशीलिनाम् ।
आचारपालनं चैव द्वितीयं शिष्टलक्षणम् ॥ ६४
गुरुशुश्रूषणं सत्यमक्रोधो दानमेव च ।
एतच्चतुष्टयं ब्रह्मन् शिष्टाचारेषु नित्यदा ॥ ६५
शिष्टाचारे मनः कृत्वा प्रतिष्ठाप्य च सर्वशः ।
यामयं लभते तुष्टिं सा न शक्या ह्यतोऽन्यथा ॥
वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः ।
दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा॥६७
ये तु धर्मानसूयन्ते बुद्धिमोहान्विता नराः ।
अपथा गच्छतां तेषामनुयाता च पीड्यते ॥ ६८
ये तु शिष्टाः सुनियताः श्रुतित्यागपरायणाः ।
धर्मपन्थानमारूढाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ६९
नियच्छन्ति परां बुद्धिं शिष्टाचारान्विता जनाः
उपाध्यायमते युक्ताः स्थित्या धर्मार्थदर्शिनः ७०
नास्तिकान् भिन्नमर्यादान् क्रूरान्पापमतौ स्थितान्
त्यज तान् ज्ञानमाश्रित्य धार्मिकानुपसेव्य च ७१
कामलोभग्रहाकीर्णां पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥ ७२
क्रमेण सञ्चितो धर्मो बुद्धियोगमयो महान् ।
शिष्टाचारे भवेत् साधू रागः शुक्लेव वाससि ७३
अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतहितं परम् ।
अहिंसा परमो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः ।
सत्ये कृत्वा प्रतिष्ठां तु प्रवर्तन्ते प्रवृत्तयः ॥ ७४
सत्यमेव गरीयस्तु शिष्टाचारनिषेवितम् ।
आचारश्च सतां धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः ॥७५

यो यथा प्रकृतिर्जन्तुः स स्वां प्रकृतिमश्नुते ।
पापात्मा क्रोधकामादीन् दोषानाप्नोत्यनात्मवान्
आरम्भो न्याययुक्तो यः स हि धर्म इति स्मृतः ।
अनाचारस्त्वधर्मेति एतच्छिष्टानुशासनम् ॥ ७७
अक्रुध्यन्तोऽनसूयन्तो निरहङ्कारमत्सराः ।
ऋजवः शमसम्पन्नाः शिष्टाचारा भवन्ति ते ७८
त्रैविद्यवृद्धाः शुचयो वृत्तवन्तो मनस्विनः ।
गुरुशुश्रूषवो दान्ताः शिष्टाचारा भवन्त्युत ॥७९
तेषामदीनसत्त्वानां दुष्कराचारकर्मणाम् ।
स्वैः कर्मभिः सत्कृतानां घोरत्वं सम्प्रणश्यति८०
तं सदाचारमाश्चर्यं पुराणं शाश्वतं ध्रुवम् ।
धर्मं धर्मेण पश्यन्तः स्वर्गं यान्ति मनीषिणः ॥८१
आस्तिका मानहीनाश्च द्विजातिजनपूजकाः ।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नाः सन्तः स्वर्गनिवासिनः ॥ ८२
वेदोक्तः परमो धर्मो धर्मशास्त्रेषु चापरः ।
शिष्टाचारश्च शिष्टानां त्रिविधं धर्मलक्षणम् ।
पारणं चापि विद्यानां तीर्थानामवगाहनम् ॥ ८३
क्षमा सत्यार्जवं शौचं सतामाचारदर्शनम् ।
सर्वभूतदयावन्तो अहिंसानिरताः सदा ॥ ८४
परुषं च न भाषन्ते सदा सन्तो द्विजप्रियाः ।
शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसञ्चये ॥ ८५
विपाकमभिजानन्ति ते शिष्टाः शिष्टसम्मताः ।
न्यायोपेता गुणोपेताः सर्वलोकहितैषिणः ॥ ८६
सन्तः स्वर्गजितः शुक्लाः सन्निविष्टाश्च सत्पथे ।
दातारः संविभक्तारो दीनानुग्रहकारिणः ॥ ८७

वृत्तं वृतं स्वेच्छोपात्तमिति यावत् । 'वृत्तोऽधीतेऽप्यतीतेति वर्तुलेऽपि मृते वृते' इति मेदिनी ॥६४॥ अतोऽन्यथा गुरुशुश्रूषणाद्यभावे॥६६॥ वेदस्येति । उपनिषद्रहस्यं सत्यं ब्रह्म तदज्ञाने वेदो निष्फल इत्यर्थः। एवं दमाभावे सत्यं नास्ति। त्यागाभावे दमोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥ ६७ ॥ अपथा अमार्गेण अनुयाता अनुगन्ता॥६८॥ श्रुतिश्च त्यागश्च ते द्वे परमयनं स्थानं येषां ते श्रुतित्यागपरायणाः ॥६९॥ परां बुद्धिमात्माकारां वृत्तिमपि नियच्छन्ति निगृह्णन्ति परं वैराग्यवन्त इत्यर्थः॥७०॥ शिष्टाचारवति शुक्लपटोपमे योगधर्मः राग इव साधुर्भवेत् शुक्लेव। वेति इवार्थे। 'व वा यथा तथैवैवम्' इत्यमरः॥७३॥ अहिंसां सत्यं च स्तौति अहिंसेति । प्रतिष्ठां स्थैर्यम् ॥७४॥ यो यथेत्यर्द्धं व्याचष्टे पापात्मेत्यादिना। अनात्मवान् अजितचित्तः॥७६॥ अहङ्कारो दर्पः। मत्सरः परदोषासहिष्णुत्वं तद्वर्जिताः। शिष्टं गुरुशास्त्रोक्तमाचरन्तः शिष्टाचाराः॥७८॥ त्रैविद्यवृद्धाः तिस्रो विद्या ऋग्यजुःसामात्मिका यत्र स त्रिविधो यज्ञस्तत्र साधवस्त्रैविद्या याज्ञिकाः। वृत्तं शीलं तद्वन्तः । मनस्विनः जितचित्ताः ॥ ७९ ॥ दुष्कराचारकर्मणामन्यैर्दुष्करः आचारः शीलं कर्म यज्ञादि येषां तेषाम्। घोरत्वं हिंसादिदोषवत्त्वम्। ॥ ८० ॥ आश्चर्यमसतां दुरनुष्ठेयत्वात् । सदाचारं सद्भिराचीर्णं पुराणमनादि शाश्वतमनवच्छिन्नं ध्रुवं नित्यमत्याज्यमित्यर्थः ॥ ८१ ॥ वेदोक्तोऽग्निहोत्रादिः धर्मशास्त्रोक्तः अष्टकाश्राद्धादिः । शिष्टाचारः होलकादिः । शिष्टानां तुष्टिरिति शेषः । तदुक्तमभियुक्तैः- 'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः' इति । अस्यापि शिष्टाचार एवान्तर्भावात् त्रिविधमित्युक्तम् । पारणं समापनम् ॥८३॥ विपाकं क्रमेण पुण्यपापयोः क्षयम् । तेन पुण्यह्रासहेतुः सुखं नेष्टव्यं पापह्रासहेतुर्दुःखं सोढव्यमिति भावः । न्यायो युक्तिः। गुणाः शमादयस्तदुपेताः ॥ ८६ ॥ शुक्लाः हिंसाशून्यधर्मवन्तः सत्पथे ब्रह्ममार्गे संविभक्तारः कुटुम्बेषु ॥८७॥

सर्वपूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते शिष्टाः शिष्टसम्मताः ॥ ८८
दानशिष्टाः सुखाँल्लोकानाप्नुवन्तीह च श्रियम् ।
पीडया च कलत्रस्य भृत्यानां च समाहिताः ८९
अतिशक्त्या प्रयच्छन्ति सन्तः सद्भिः समागताः ।
लोकयात्रां च पश्यन्तो धर्ममात्महितानि च ९०
एवं सन्तो वर्तमानास्त्वेधन्ते शाश्वतीः समाः ।
अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यमथार्जवम् ॥ ९१
अद्रोहो नाभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः ।
धीमन्तो धृतिमन्तश्च भूतानामनुकम्पकाः ॥ ९२
अकामद्वेषसंयुक्तास्ते सन्तो लोकसाक्षिणः ।
त्रीण्येव तु सतामाहुः सन्तः पदमनुत्तमम् ॥ ९३
न चैव द्रुह्येद्दद्याच्च सत्यं चैव सदा वदेत् ।
सर्वत्र च दयावन्तः सन्तः करुणवेदिनः ॥ ९४
गच्छन्तीह सुसन्तुष्टा धर्मपन्थानमुत्तमम् ।
शिष्टाचारा महात्मानो येषां धर्मः सुनिश्चितः ९५
अनसूया क्षमा शान्तिः सन्तोषः प्रियवादिता ।
कामक्रोधपरित्यागः शिष्टाचारनिषेवणम् ॥ ९६
कर्म च श्रुतसम्पन्नं सतां मार्गमनुत्तमम् ।
शिष्टाचारं निषेवन्ते नित्यं धर्ममनुव्रताः ९७
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य मुच्यन्ते महतो भयात् ।
प्रेक्षन्तो लोकवृत्तानि विविधानि द्विजोत्तम ९८
अतिपुण्यानि पापानि तानि द्विजवरोत्तम ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
शिष्टाचारगुणं ब्रह्मन् पुरस्कृत्य द्विजर्षभ ॥ ९९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

## २०८

मार्कण्डेय उवाच ।
स तु विप्रमथोवाच धर्मव्याधो युधिष्ठिर ।
यदहमाचरे कर्म[1] घोरमेतदसंशयम् ॥ १
विधिस्तु बलवान् ब्रह्मन् दुस्तरं हि पुरा कृतम् ।
पुरा कृतस्य पापस्य कर्मदोषो भवत्ययम् ॥ २
दोषस्यैतस्य वै ब्रह्मन् विघाते यत्नवानहम् ।
विधिना हि हते पूर्वं निमित्तं घातको भवेत्॥ ३
निमित्तभूता हि वयं कर्मणोऽस्य द्विजोत्तम ।
येषां हतानां मांसानि विक्रीणामीह वै द्विज ॥ ४
तेषामपि भवेद्धर्म उपयोगेन भक्षणे ।
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां चापि पूजनम् ॥ ५
ओषध्यो वीरुधश्चैव पशवो मृगपक्षिणः ।
अन्नाद्यभूता लोकस्य इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ ६
आत्ममांसप्रदानेन शिबिरौशीनरो नृपः ।
स्वर्गं सुदुर्गमं प्राप्तः क्षमावान् द्विजसत्तम ॥ ७
राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज ।
द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा ॥ ८
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा ।
समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः ॥ ९
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम ।
चातुर्मास्ये च पशवो वध्यन्त इति नित्यशः॥ १०
अग्नयो मांसकामाश्च इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ।
यज्ञेषु पशवो ब्रह्मन् वध्यन्ते सततं द्विजैः ॥ ११

श्रुतधनाः विद्याधनाः ॥ ८८ ॥ एधन्ते वर्धन्ते ॥ ९१ ॥ नाभिमानः निरभिमानः ॥ ९२ ॥ सतां पदं पदनीयं प्रार्थनीयम् ॥ ९३ ॥ करुणाः करुणावन्तश्च ते वेदनशीलाश्च मत्वर्थीयोऽच् ॥ ९४ ॥ कर्म च कर्मैव । कर्मणेति गौडपाठे कर्मणा श्रुतेन च सम्पन्नमित्यर्थः ॥ ९७ ॥ प्रज्ञा ऋतम्भराख्या वस्तुयाथात्म्यविषयं ज्ञानं तदेव उच्चत्वात् प्रासादं भयात् संसारात् लोकानां वृत्तानि अतीतानागतादीनि ॥ ९८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

२०८

स त्विति । एतन्मांसविक्रयात्मकम् ॥१॥ दोषस्येति यत्नवानपि न परिहर्तुं शक्नोमि विधेः प्राबल्यादित्यर्थः ॥३॥ निमित्तेति । शरवन्निमित्तभूता वयम् । सन्धातृवत् कर्ता तु विधिरेवेत्यर्थः ॥४॥ अन्नाद्यभूताः अन्नं च तदद्यं च भोग्यम् भक्ष्यं चेत्यर्थः । 'सर्वमस्यान्नं भवति' इति श्रुतेः ॥ ६ ॥ 'येऽस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामा' इति मन्त्रलिङ्गमपि श्रुतिरेव ॥ ११ ॥

[1] यदहं ह्याचरे कर्म ख.

संस्कृताः किल मन्त्रैश्च तेऽपि स्वर्गमवाप्नुवन् ।
यदि नैवाग्नयो ब्रह्मन् मांसकामाऽभवन् पुरा १२
भक्ष्यं नैवाभवन्मांसं कस्यचिद्द्विजसत्तम ॥ १३

अत्रापि विधिरुक्तश्च मुनिभिर्मांसभक्षणे ।
देवतानां पितॄणां च भुङ्क्ते दत्वाऽपि यः सदा ।
यथाविधि यथाश्राद्धं न प्रदुष्यति भक्षणात्॥ १४
अमांसाशी भवत्येवमित्यपि श्रूयते श्रुतिः ।
भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति ब्राह्मणः१५

सत्यानृते विनिश्चित्य अत्रापि विधिरुच्यते ।
सौदासेन तदा राज्ञा मानुषा भक्षिता द्विज ।
शापाभिभूतेन भृशमत्र किं प्रतिभाति मे ॥ १६
स्वधर्म इति कृत्वा तु न त्यजामि द्विजोत्तम ।
पुरा कृतमिति ज्ञात्वा जीवाम्येतेन कर्मणा ॥ १७

स्वकर्म त्यजतो ब्रह्मन्नधर्म इह दृश्यते ।
स्वकर्मनिरतो यस्तु धर्मः स इति निश्चयः॥ १८

पूर्वं हि विहितं कर्म देहिनं न विमुञ्चति ।
धात्रा विधिरयं दृष्टो बहुधा कर्मनिर्णये । १९

द्रष्टव्या तु भवेत् प्रज्ञा क्रूरे कर्माणि वर्तता ।
कथं कर्म शुभं कुर्यां कथं मुच्ये पराभवात् ॥ २०

कर्मणस्तस्य घोरस्य बहुधा निर्णयो भवेत् ।
दाने च सत्यवाक्ये च गुरुशुश्रूषणे तथा ॥ २१
द्विजातिपूजने चाहं धर्मे च निरतः तदा ।
अभिमानातिवादाभ्यां निवृत्तोऽस्मि द्विजोत्तम॥

कृषिं साध्वीति मन्यन्ते तत्र हिंसा परा स्मृता ।
कर्षन्तो लाङ्गलैः पुंसो घ्नन्ति भूमिशयान् बहून्॥
जीवानन्यांश्च बहुशस्तत्र किं प्रतिभाति मे ।
धान्यबीजानि यान्याहुर्व्रीह्यादीनि द्विजोत्तम २४
सर्वाण्येतानि जीवानि तत्र किं प्रतिभाति मे ।

अध्याक्रम्य पशूंश्चापि घ्नन्ति वै भक्षयन्ति च २५
वृक्षांस्तथौषधीश्चापि छिन्दन्ति पुरुषा द्विज ।
जीवा हि बहवो ब्रह्मन् वृक्षेषु च फलेषु च ॥ २६

उदके बहवश्चापि तत्र किं प्रतिभाति मे ।
सर्वं व्याप्तमिदं ब्रह्मन् प्राणिभिः प्राणिजीवनैः२७

मत्स्यान् ग्रसन्ते मत्स्याश्च तत्र किं प्रतिभाति मे ।
सत्त्वैः सत्त्वानि जीवन्ति बहुधा द्विजसत्तम॥२८

प्राणिनोऽन्योन्यभक्षाश्च तत्र किं प्रतिभाति मे ।
चङ्क्रम्यमाणा जीवांश्च धरणीसंश्रितान् बहून् ॥

पद्भ्यां घ्नन्ति नरा विप्र तत्र किं प्रतिभाति मे ।
उपविष्टाः शयानाश्च घ्नन्ति जीवाननेकशः ॥ ३०

ज्ञानविज्ञानवन्तश्च तत्र किं प्रतिभाति मे ।
जीवैर्ग्रस्तमिदं सर्वमाकाशं पृथिवी तथा ॥ ३१

अविज्ञानाच्च हिंसन्ति तत्र किं प्रतिभाति मे ।
अहिंसेति यदुक्तं हि पुरुषैर्विस्मितैः पुरा ॥ ३२

के न हिंसन्ति जीवान् वै लोकेऽस्मिन् द्विजसत्तम
बहु सञ्चिन्त्य इति वै नास्ति कश्चिदहिंसकः ॥३३

अहिंसायां तु निरता यतयो द्विजसत्तम ।
कुर्वन्त्येव हि हिंसां ते यत्नादल्पतरा भवेत् ॥ ३४

आलक्ष्याश्चैव पुरुषाः कुले जाता महागुणाः ।
महाघोराणि कर्माणि कृत्वा लज्जन्ति वै न च३५

सुहृदः सुहृदोऽन्यांश्च दुर्हृदश्चापि दुर्हृदः ।
सम्यक्प्रवृत्तान् पुरुषान्नसम्यगनुपश्यतः ॥ ३६

समृद्धैश्च न नन्दति बान्धवा बान्धवैरपि ।
गुरूंश्चैव विनिन्दन्ति मूढाः पण्डितमानिनः ॥ ३७

बहु लोके विपर्यस्तं दृश्यते द्विजसत्तम ।
धर्मयुक्तमधर्मं च तत्र किं प्रतिभाति मे ॥ ३८

अत्रापीत्यादिसार्धः श्लोकः । कलौ तु मांसेन पैतृकस्य निषेधाद्देवताशेषाद्यज्ञियमांसादन्यत्र मांसभक्षणं दुष्यत्येवेति भावः ॥ १३ ॥ अमांसाशीति । यज्ञियमांसभुजोऽपि ऋतुगामिनो ब्रह्मचर्यमिव औपचारिकममांसाशित्वमिति भावः ॥ १५ ॥ सत्यानृते ज्ञानकर्ममार्गौ । अत्रापि यज्ञियमांसभक्षणे विधिर्विशेषः । तमेवाह परकृतिमुखेन सौदासेनेति । कर्तृत्वाद्यभिमानवता मूढेन कर्मठेन यज्ञियमपि मांसं भक्षणीयं न ज्ञानमार्गस्थेनेति भावः । रन्तिदेवनिदर्शनं तु युगान्तराभिप्रायम् । अत्र किं प्रतिभाति मे । किंशब्दः कुत्सायाम् । अत्र मांसे भक्षणीये मम निन्दा प्रतिभाति । अत एव न हन्मि न भक्षयामीति प्रागेवोक्तं मयेत्यर्थः ॥ १६ ॥ कुतस्तर्हि त्वं मांसविक्रयं करोषि । तत्कर्तुरपि प्रयोजकत्वाद्धिंसादोषोऽस्तीत्याशङ्क्याह स्वेति । स्वकर्म इत्यस्य व्याख्या–पुरा कृतमित्यादि ॥१७॥ तथापि हिंसामिश्रं कर्म तवाप्ययोग्यमित्याशङ्क्य सर्वत्र हिंसाया अपरिहार्यत्वमाह कृषिं साध्वीतीत्यादिना । के नरा जीवान्न हिंसन्त्यपि तु सर्वेऽपि हिंसन्त्येवेत्यर्थः ॥ ३३ ॥

वक्तुं बहुविधं शक्यं धर्माधर्मेषु कर्मसु । स्वकर्मनिरतो यो हि स यशः प्राप्नुयान्महत्॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि पतिव्रतोपाख्याने ब्राह्मणव्याधसंवादे अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

## २०९

मार्कण्डेय उवाच ।
धर्मव्याधस्तु निपुणं पुनरेव युधिष्ठिर ।
विप्रर्षभमुवाचेदं सर्वधर्मभृतां वरः ॥ १

व्याध उवाच ।
श्रुतिप्रमाणो धर्मोऽयमिति वृद्धानुशासनम् ।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य बहुशाखा ह्यनन्तिका ॥ २
प्राणान्तिके विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
अनृतेन भवेत् सत्यं सत्येनैवानृतं भवेत् ॥ ३
यद्भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमिति धारणा ।
विपर्ययकृतोऽधर्मः पश्य धर्मस्य सूक्ष्मताम् ॥ ४
यत् करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम ।
अवश्यं तत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥ ५
विषमां च दशां प्राप्तो देवान् गर्हति वै भृशम् ।
आत्मनः कर्मदोषाणि[1] न विजानात्यपण्डितः॥ ६
मूढो नैकृतिकश्चापि चपलश्च द्विजोत्तम ।
सुखदुःखविपर्यासान् सदा समुपपद्यते ॥ ७
नैनं प्रज्ञा सुनीतं वा त्रायते नैव पौरुषम् ।
योऽयमिच्छेद्यथा कामं तं तं कामं स आप्नुयात्८
यदि स्यादपराधीनं पौरुषस्य क्रियाफलम् ।
संयताश्चापि दक्षाश्च मतिमन्तश्च मानवाः ॥ ९
दृश्यन्ते निष्फलाः सन्तः प्रहीणाः सर्वकर्मभिः ।
भूतानामपरः कश्चिद्धिंसायां सततोत्थितः ॥ १०
वञ्चनायां च लोकस्य स सुखी जीवते सदा ।
अचेष्टमपि चासीनं श्रीः कश्चिदुपतिष्ठति ॥ ११
कश्चित् कर्माणि कुर्वन् हि न प्राप्यमधिगच्छति।
देवानिष्ट्वा तपस्तप्त्वा कृपणैः पुत्रगृद्धिभिः ॥ १२
दशमासधृता गर्भे जायन्ते कुलपांसनाः ।
अपरे धनधान्यैश्च भोगैश्च पितृसञ्चितैः ॥ १३
विपुलैरभिजायन्ते लब्धास्तैरेव मङ्गलैः ।
कर्मजा हि मनुष्याणां रोगा नास्त्यत्र संशयः१४
व्याधयो विनिवार्यन्ते व्याधैः क्षुद्रमृगा इव ।
ते चापि कुशलैर्वैद्यैर्निपुणैः संभृतौषधैः ॥ १५
व्याधयो विनिवार्यन्ते मृगा व्याधैरिव द्विज ।
येषामस्ति च भोक्तव्यं ग्रहणीदोषपीडिताः ॥ १६
न शक्नुवन्ति ते भोक्तुं पश्य धर्मभृतां वर ।
अपरे बाहुबलिनः क्लिश्यन्ति बहवो जनाः १७
दुःखेन चाधिगच्छन्ति भोजनं द्विजसत्तम ।
इति लोकमनाक्रन्दं मोहशोकपरिप्लुतम् ॥ १८
स्रोतसाऽसकृदाक्षिप्तं ह्रियमाणं बलीयसा ।
न म्रियेयुर्न जीर्येयुः सर्वे स्युः सर्वकामिकाः १९
नाप्रियं प्रतिपश्येयुर्वशित्वं यदि वै भवेत् ।
उपर्युपरि लोकस्य सर्वो गन्तुं समीहते ।
यतते च यथाशक्ति न च तद्वर्तते तथा ॥ २०
बहवः सम्प्रदृश्यन्ते तुल्यनक्षत्रमङ्गलाः ।
महत् तु फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसन्धिषु ॥ २१
न केचिदीशते ब्रह्मन् स्वयंग्राहस्य सत्तम ।
कर्मणा प्राकृतानां वै इह सिद्धिः प्रदृश्यते ॥ २२

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

२०९

शान्त्यादयो ज्ञानाङ्गभूता धर्माः प्रोक्ताः । सम्प्रति ज्ञानं विना कृतकृत्यता नास्तीति वक्तुं धर्मतत्त्वस्य दुरवगाहत्वं प्रपञ्चस्य निःसारत्वं चोच्यते **धर्मव्याधस्त्वित्यादिना** ॥ १ ॥ धारणावधारणं निश्चय इत्यर्थः ॥ ४ ॥ सुनीतं गुरुशिक्षा ॥ ८ ॥ प्रहीणाः श्रान्ता अपीत्यर्थः ॥ १० ॥ पुत्रगृद्धिभिः पुत्रकामैः ॥ १२ ॥ ग्रहणी विस्रम्भरोगः ॥ १६ ॥ अनाक्रन्दमसहायम् । 'आक्रन्दः क्रन्दनेऽऽह्वाने मित्रदारुणयुद्धयोः' इति मेदिनी ॥ १८ ॥ स्रोतसा कर्मप्रवाहेण । असकृत् आक्षिप्तं आधिव्याधिभिस्ताडितं । ह्रियमाणमवशम् ॥ १९ ॥ ननु सर्वेऽपि स्ववशा एव दृश्यन्ते नेत्याह नेति ॥ २० ॥ बहव इति दैवज्ञशास्त्रमपि व्यभिचारिफलमित्याशयः ॥ २१ ॥ नेति स्वीयमपि वस्तु स्वस्यानधीनं प्राक्कर्मवशाद्भवतीत्यर्थः । तत्रापि दृष्टसामग्रीवैकल्यमिति लोकायतमतमाशङ्क्याह कर्मणेति । प्राकृतानां देहात्मवादिनां कृतहानाकृताभ्यागमादिदोषदर्शिनां तु प्राक्कर्मैव प्रधानमिति भावः ॥ २२ ॥

[1] कर्मदोषेण इति ख.

यथाश्रुतिरियं ब्रह्मन् जीवः किल सनातनः ।
शरीरमध्रुवं लोके सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ २३
वध्यमाने शरीरे तु देहनाशो भवत्युत ।
जीवः सङ्क्रमतेऽन्यत्र कर्मबन्धनिबन्धनः ॥ २४

ब्राह्मण उवाच ।

कथं कर्मविदां श्रेष्ठ जीवो भवति शाश्वतः ।
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं तत्त्वेन वदतां वर ॥ २५

व्याध उवाच ।

न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे
मिथ्यैतदाहुर्म्रियतीति मूढाः ।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति
दशार्धतैवास्य शरीरभेदः ॥ २६
अन्यो हि नाश्नाति कृतं हि कर्म
मनुष्यलोके मनुजस्य कश्चित् ।
यत् तेन किञ्चिद्धि कृतं हि कर्म
तदश्नुते नास्ति कृतस्य नाशः ॥ २७
सुपुण्यशीला हि भवन्ति पुण्या
नराधमाः पापकृतो भवन्ति ।
नरोऽनुयातास्त्विह कर्मभिः स्वै-
स्ततः समुत्पद्यति भावितस्तैः ॥ २८

ब्राह्मण उवाच ।

कथं सम्भवते योनौ कथं वा पुण्यपापयोः ।
जातीः पुण्यास्त्वपुण्याश्च कथं गच्छति सत्तम२९

व्याध उवाच ।

गर्भाधानसमायुक्तं कर्मेदं सम्प्रदृश्यते ।
समासेन तु ते क्षिप्रं प्रवक्ष्यामि द्विजोत्तम ॥ ३०
यथा सम्भृतसंभारः पुनरेव प्रजायते ।
शुभकृच्छुभयोनीषु पापकृत् पापयोनिषु ॥ ३१
शुभैः प्रयोगैर्देवत्वं व्यामिश्रैर्मानुषो भवेत् ।
मोहनीयैर्वियोनीषु त्वधोगामी च किल्बिषी॥ ३२
जातिमृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः ।
×सञ्चारे पच्यमानश्च दोषैरात्मकृतैर्नरः ॥ ३३
तिर्यग्योनिसहस्राणि गत्वा नरकमेव च ।
जीवाः सम्परिवर्तन्ते कर्मबन्धनिबन्धनाः ॥ ३४
जन्तुस्तु कर्मभिस्तैस्तैः स्वकृतैः प्रेत्य दुःखितः ।
तद्दुःखप्रतिघातार्थमपुण्यां योनिमाप्नुते ॥ ३५
ततः कर्म समादत्ते पुनरन्यं नवं बहु ।
पच्यते तु पुनस्तेन भुक्त्वाऽपथ्यमिवातुरः ॥ ३६
अजस्रमेव दुःखार्तोऽदुःखितः सुखसंज्ञकः ।
ततो निवृत्तबन्धत्वात् कर्मणामुदयादपि ॥ ३७
परिक्रामति संसारे चक्रवद्बहुवेदनः ।
स चेन्निवृत्तबन्धस्तु विशुद्धश्चापि कर्मभिः॥ ३८
तपोयोगसमारम्भं कुरुते द्विजसत्तम ।
कर्मभिर्बहुभिश्चापि लोकानश्नाति मानवः ॥ ३९
स चेन्निवृत्तबन्धस्तु विशुद्धश्चापि कर्मभिः ।
प्राप्नोति सुकृताँल्लोकान् यत्र गत्वा न शोचति४०

एतदेव वक्तुं जीवस्य नित्यत्वमाह यथेति ॥ २३ ॥ दशार्धता पञ्चत्वम् ॥ २६ ॥ ननु कृतनाशोऽपि कृष्यादिफलेषु दृश्यतेऽतः कृतं कर्म न देहान्तरेऽनुवर्तिष्यते । देहादन्यस्यात्मनोऽभावादित्याशङ्क्याह अन्यो हीति । भोजनफलवत् कृतस्य कर्मणः फलमपरिहार्यम् । यत्र तु सद्यः फलं न दृष्टं तत्रापि जन्मान्तरे भविष्यतीत्यनुमेयम् । यत्र चाकृतमपि फलं निधिलाभादि उपैति तत्र जन्मान्तरीयं साधनं कल्प्यमित्यर्थः ॥ २७ ॥ उत्पद्यति जन्मान्तरं लभते यतस्तैः प्राचीनैः कर्मभिर्भावितो रञ्जितः अत एव क्रममाणं प्रकृत्य श्रूयते 'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च 'इति । तस्मात् स्वकृतमेव स्वयं भुङ्क्ते न त्वन्यकृतमन्योऽतो नास्ति कृतस्य नाश इत्युक्तम् ॥ २८ ॥ एवं स्थूलशरीरादन्यत्वमात्मनः प्रसाध्य लिङ्गशरीरादपि व्यतिरेकं साधयितुं वैराग्योत्पत्त्यर्थं जन्मादीनां दुःखरूपत्वमाह गर्भेत्यादिना । गर्भाधानेन पिण्डोत्पत्तिप्रकाशकेन ग्रन्थेन । एतत् सर्वं समायुक्तं समाहितम् । तदेव सङ्क्षिप्याह इदं यत् सम्प्रदृश्यते स्थूलदेहादिघटान्तं तत् सर्वं कर्मैवेति । अयमर्थः-म्रियमाणो जन्तुर्विद्याकर्मपूर्वप्रज्ञाभिः पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियरूपसप्तदशकात्मकेन लिङ्गेन इत उत्क्रम्य यथाकर्म स्वर्गं नरकं वा गत्वा तत्र भोगान् भुक्त्वा कर्मशेषेण वृष्टिद्वारेण पुनर्बीजभावं प्राप्य शुक्रशोणितरूपेण परिणमते । बीजे पुनर्लिङ्गशरीरेणाविश्य तैरेव पूर्वविद्यादिसंस्कारैर्युक्तो जायते । तत्केन कर्मणा कुत्र जायत इत्येतत् प्रवक्ष्यामीत्यर्थः ॥ ३० ॥ सम्भृताः सम्भाराः कर्मबीजानि येन ॥ ३१ ॥ मोहनीयैस्तामसैः अधः नरकतिर्यक्षु ॥ ३२ ॥ जातिर्जन्म सञ्चरे योनिसञ्चरे उत्क्रान्त्यादिषु च ॥ ३३ ॥ प्रेत्य मृत्वा दुःखात्मकः प्रतीघातः दुःखं भोक्तुमित्यर्थः ॥ ३५ ॥ अपथ्यमिति छेदः ॥ ३६ ॥ अदुःखित इति छेदः । दुःखाभावस्य च सुखमिति संज्ञा । न तु संसारे स्वरूपतः सुखमस्ति । तथा चाहुः भारेऽपनीते सुखिनः संवृत्ताः स्म इति । ततः अदुःखे सुखाध्यासात् अनिवृत्तेति छेदः ॥ ३७ ॥ निवृत्तबन्धो वीतरागः तत्र हेतुः विशुद्धश्चेति ॥ ३८ ॥ तस्य फलं तपोयोगयोः आलोचनध्यानयोः समारम्भम् ॥ ३९ ॥ × संसारे-स.

पापं कुर्वन् पापवृत्तः पापस्यान्तं न गच्छति ।
तस्मात् पुण्यं यतेत् कर्तुं वर्जयीत च पापकम् ४१
अनसूयुः कृतज्ञश्च कल्याणानि च सेवते ।
सुखानि धर्ममर्थं च स्वर्गं च लभते नरः ॥ ४२
संस्कृतस्य च दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः ।
प्राज्ञस्यानन्तरा वृत्तिरिह लोके परत्र च ॥ ४३
सतां धर्मेण वर्तेत क्रियां शिष्टवदाचरेत् ।
असंक्लेशेन लोकस्य वृत्तिं लिप्सेत वै द्विजः॥ ४४
स्वधर्मेण क्रिया लोके कर्मणः सोऽप्यसङ्करः ।
सन्ति ह्यागमविज्ञानाः शिष्टाः शास्त्रे विचक्षणाः
प्राज्ञो धर्मेण रमते धर्मं चैवोपजीवति ।
तस्माद्धर्मादवाप्तेन धनेन द्विजसत्तम ॥ ४६
तस्यैव सिञ्चते मूलं गुणान् पश्यति यत्र वै ।
धर्मात्मा भवति ह्येवं चित्तं चास्य प्रसीदति॥४७
स मित्रजनसन्तुष्ट इह प्रेत्य च नन्दति ।
शब्दं स्पर्शं तथा रूपं गन्धानिष्टांश्च सत्तम ॥ ४८
प्रभुत्वं लभते चापि धर्मस्यैतत् फलं विदुः ।
धर्मस्य च फलं लब्ध्वा न तुष्यति महाद्विज ॥ ४९
अतृप्यमाणो निर्वेदमापेदे ज्ञानचक्षुषा ।
प्रज्ञाचक्षुर्नर इह दोषं नैवानुरुध्यते ॥ ५०
विरज्यते यथाकामं न च धर्मं विमुञ्चति ।
सर्वत्यागे च यतते दृष्ट्वा लोकं क्षयात्मकम् ॥५१
ततो मोक्षे प्रयतते नानुपायादुपायतः ।
एवं निर्वेदमादत्ते पापं कर्म जहाति च ॥ ५२
धार्मिकश्चापि भवति मोक्षं च लभते परम् ।
तपो निःश्रेयसं जन्तोस्तस्य मूलं शमो दमः ॥ ५३
तेन सर्वानवाप्नोति कामान् यान् मनसेच्छति ।
इन्द्रियाणां निरोधेन सत्येन च दमेन च ।
ब्रह्मणः पदमाप्नोति यत्परं द्विजसत्तम ॥ ५४

ब्राह्मण उवाच ।

इन्द्रियाणि तु यान्याहुः कानि तानि यतव्रत ।
निग्रहश्च कथं कार्यो निग्रहस्य च किं फलम् ॥५५
कथं च फलमाप्नोति तेषां धर्मभृतां वर ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन धर्मं ज्ञातुं निबोध मे ॥ ५६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥

## २१०

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमुक्तस्तु विप्रेण धर्मव्याधो युधिष्ठिर ।
प्रत्युवाच यथा विप्रं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ १

व्याध उवाच ।

विज्ञानार्थं मनुष्याणां मनः पूर्वं प्रवर्तते ।
तत् प्राप्य कामं भजते क्रोधं च द्विजसत्तम ॥ २

यतेत् यतेत ॥ ४१ ॥ पुण्यफलमाह अनसूयुरिति ॥ ४२ ॥ संस्कृतस्य अष्टाचत्वारिंशत्संस्कारयुक्तस्य दान्तस्य जितबाह्येन्द्रियस्य नियतस्य शौचादिपरस्य यतात्मनः जितचित्तस्य अनन्तरा सुलभा वृत्तिर्जीवनं विषयसुखमिति यावत् ॥ ४३ ॥ स्वधर्मेणेति । यतः शिष्टा उपदेष्टारः सन्ति अतः । कर्मणः कर्मणि षष्ठी । कर्म स्वधर्मेण स्वोचितेनाचारेण क्रियाः कुरुष्व । आशीर्लिङ्मध्यमैकवचनम् । सोऽपि असङ्करः धर्माणामिति शेषः ॥ ४५ ॥ यत्र धर्मे ॥ ४७ ॥ प्रभुत्वमप्रतिहतेच्छत्वं धर्मस्येति चित्तशुद्ध्या भोगेच्छायां क्षीणायां स्वर्गेऽपि वैराग्यं जायते इत्यर्थः । अतृप्यमाणः प्रीतिमलभमानः । निर्वेदं वैराग्यम् । आपेदे आप्नोति । लकारव्यत्यय आर्षः । दोषं रागद्वेषादिकं नानुरुध्यते तद्वशो न भवतीत्यर्थः ॥५०॥ उपायत एव मोक्षे प्रयतते न त्वनुपायाद्दैवमात्राश्रयादिति योजना ॥ ५२ ॥ तपः ज्ञानं निःश्रेयसं मोक्षसाधनम् ॥५३॥

तेन तपसा ॥ ५४ ॥ तेषां निग्रहस्य फलं च किं कथं च फलमाप्नोतीति सम्बन्धः ॥ ५५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥

---

२१०

एवमिति ॥ १ ॥ सूक्ष्मशरीराद्यात्मानं विवेचितुमिन्द्रियाणामजये दोषमाह विज्ञानार्थमित्यादिना । महान्धकारे विद्यमानानां घटादीनां विज्ञानार्थं घटच्छिद्राद्बहिर्गतदीपप्रभेव ब्रह्माणि विद्यमानरूपादीनां विज्ञानार्थमिन्द्रियच्छिद्रद्वारा बहिर्गतं तैजसं मनः प्रथमं प्रवर्तते । तत् रूपादिविज्ञानं प्राप्य ज्ञातेऽर्थे कामं रागं क्रोधं द्वेषं च भजते ॥ २ ॥

१ फलत्यागे ख.

ततस्तदर्थं यततेः कर्म चारभते महत् ।
इष्टानां रूपगन्धानामभ्यासं च निषेवते ॥ ३
ततो रागः प्रभवति द्वेषश्च तदनन्तरम् ।
ततो लोभः प्रभवति मोहश्च तदनन्तरम् ॥ ४
ततो लोभाभिभूतस्य रागद्वेषहतस्य च ।
न धर्मे जायते बुद्धिर्व्याजाद्धर्मं करोति च ॥ ५
व्याजेन चरते धर्ममर्थं व्याजेन रोचते ।
व्याजेन सिध्यमानेषु धनेषु द्विजसत्तम ॥ ६
तत्रैव रमते बुद्धिस्ततः पापं चिकीर्षति ।
सुहृद्भिर्वार्यमाणश्च पण्डितैश्च द्विजोत्तम ॥ ७
उत्तरं श्रुतिसम्बद्धं ब्रवीत्यश्रुतियोजितम् ।
अधर्मस्त्रिविधस्तस्य वर्तते रागदोषजः ॥ ८
पापं चिन्तयते चैवं ब्रवीति च करोति च ।
तस्याधर्मप्रवृत्तस्य गुणा नश्यन्ति साधवः ॥ ९
एकशीलैश्च मित्रत्वं भजन्ते पापकर्मिणः ।
स तेन दुःखमाप्नोति परत्र च विपद्यते ॥ १०
पापात्मा भवति ह्येवं धर्मलाभं तु मे शृणु ।
यस्त्वेतान् प्रज्ञया दोषान् पूर्वमेवानुपश्यति ॥ ११
कुशलः सुखदुःखेषु साधूंश्चाप्युपसेवते ।
तस्य साधुसमारम्भाद्बुद्धिर्धर्मेषु राजते ॥ १२

ब्राह्मण उवाच ।

ब्रवीषि सूनृतं धर्म्यं यस्य वक्ता न विद्यते ।
दिव्यप्रभावः सुमहानृषिरेव मतोऽसि मे ॥ १३

व्याध उवाच ।

ब्राह्मणा वै महाभागाः पितरोऽग्रभुजः सदा ।
तेषां सर्वात्मना कार्यं प्रियं लोके मनीषिणा ॥ १४
यत् तेषां च प्रियं तत् ते वक्ष्यामि द्विजसत्तम ।
नमस्कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मीं विद्यां निबोध मे ॥ १५
इदं विश्वं जगत् सर्वमजय्यं चापि सर्वशः ।
महाभूतात्मकं ब्रह्म नातः परतरं भवेत् ॥ १६
महाभूतानि खं वायुरग्निरापस्तथा च भूः ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः १७

तत्र रागकार्यमाह सपादश्लोकेन तत इति ॥ ३ ॥ प्रभवति स्वकार्यसाधनेन कृतकृत्यो भवति । द्वेषकार्यमाह पादोनश्लोकेन द्वेषश्चेति ॥ ४ ॥ उभयोः कार्यमाह ततो लोभेति । व्याजात् दम्भात् ॥ ५ ॥ व्याजेन कौटिल्येन । अर्थं धनम ॥ ६ ॥ श्रुतिसम्बद्धमसङ्गोऽहमुदासीनोऽहमित्यादि । अश्रुतियोजितं श्रुतिपथे शान्त्यादौ योजितं योगः तद्रहितं यथास्यात्तथा । शमादिशून्योऽपि असङ्गत्वं शास्त्रीयं शब्देनैव दर्शयतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ मनोवाक्कायजत्वेन त्रैविध्यमेवाह पापमिति । साधवः शमादयः ॥ ९ ॥ पापकर्मिणः भावप्रधानो निर्देशः । पापकर्मकरत्वादित्यर्थः ॥ १० ॥ धर्मलाभोपायमेवाह साधेन यस्त्विति ॥ ११ ॥ सूनृतं प्रियं धर्म्यं च ॥ १३ ॥ ब्राह्मीं ब्राह्मणानां स्वभूताम् ॥ १५ ॥ विद्यामेवाह इदमित्यादिना । इदं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं विश्वं कृत्स्नं जगत् स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वं सर्वमपि अजय्यं कर्मणा न लभ्यं सर्वशः सर्वप्रकारेण 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'आत्मैवेदं सर्वम' इत्यादिश्रुतिभ्यः । सर्वस्यात्ममात्रत्वादिति भावः । ननु पशुबन्धयाजी सर्वान् लोकानभिजयतीति कर्मजय्यत्वं जगतः कथं श्रूयते तत्राह महाभूतात्मकमिति । यतः ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यं वस्तु तदेव । महाभूतानि आकाशादीनि । आत्मा जीवः । कमानन्दरूप ईश्वर एतत्त्रितयात्मकम् । तथा च श्रुतिः–'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म वै तत्' इति नातः परतरं भवेत् अतो ब्रह्मणोऽन्यत् श्रेष्ठतरं प्राप्यं नास्ति । जयश्रुतिस्तु अविद्यावद्विषयकर्मकाण्डाभिप्राया ॥ १६ ॥ ननु केयं विद्या नाम आत्मैकत्वप्रतिपत्तिरिति ब्रूमः । किं शालग्रामे विष्णुत्वमिव प्रत्यगात्मनि सार्वात्म्यं भावनात्मकं कुर्यादिति विधित एव इह प्रतिपत्तव्यमुत वह्नावौष्ण्यमिव तात्त्विकं तत्त्वमस्यादिशब्दप्रमाणात् प्रतिपत्तव्यम् । आद्येऽजय्यवचनव्याकोपः । द्वितीये तात्त्विकत्वे कर्मोपास्तिकाण्डयोरप्रामाण्यम् । न चेष्टापत्तिः । तद्वदेव ज्ञानकाण्डस्याप्यप्रामाण्यापत्तेः । भेदग्राहिप्रत्यक्षादिप्रमाणान्तरविरोधस्तु स्पष्ट एवेत्याशङ्क्याह महाभूतानीति । खादयः शब्दादयश्च तद्गुणाः तस्मिन् ब्रह्मणि आश्रिता गुणाः त्रिगुणात्मकमायाकार्यत्वात् मायायाश्चाश्रयो ब्रह्मैव । 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढां–' 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' इत्यादिश्रुतिभ्यः । अयमर्थः–चन्द्रेणासंस्पृष्टमपि जलं चन्द्रे चञ्चलत्वानेकत्वाधःस्थत्वाद्यारोपहेतुर्भवति । एवं प्रत्यगात्मनाऽसंस्पृष्टाऽपि माया तत्र दुःखित्वानेकत्वाद्यारोपहेतुर्भवतीति । तथा च श्रुतयः–'एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।' 'स समानः सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीव ।' 'घटसंवृतमाकाशं नीयमाने यथा घटे । घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः' इत्याद्याः । समानः बुद्धितादात्म्यं प्राप्तः । लेलायति लोलुपो भवति ब्रह्मैव स्वप्नादिष्विव स्वाज्ञानात् स्वस्मिन्ननेकभेदभिन्नं प्रपञ्चं पश्यति । प्रमाणतश्च तद्बाधे एकमेव शिष्यते । अतो रज्जूरगन्यायेन प्रपञ्चस्याधिष्ठानादनन्यत्वादात्ममात्रत्वम् । अविद्यावस्थायां कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डानां प्रामाण्यम् । उत्पन्ने तु ज्ञाने वेदा अवेदा इति श्रुत्यैव स्वस्य प्रामाण्यं निषिद्धमिति न किंचिद्दुःस्थम । यदाह

तेषामपि गुणाः सर्वे गुणवृत्तिः परस्परम् ।
पूर्वपूर्वगुणाः सर्वे क्रमशो गुणिषु त्रिषु ॥ १८
षष्ठस्तु चेतना नाम मन इत्यभिधीयते ।
सप्तमी तु भवेद्बुद्धिरहङ्कारस्ततः परम् ॥ १९
इन्द्रियाणि च पञ्चात्मा रजः सत्त्वं तमस्तथा ।
इत्येष सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः ॥ २०
सर्वैरिहेन्द्रियार्थैस्तु व्यक्ताव्यक्तैः सुसंवृतैः ।
चतुर्विंशक इत्येष व्यक्ताव्यक्तमयो गुणः ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि २१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणमाहात्म्ये दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

सम्प्रदायविदः ' देहात्मप्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः । लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात् ' इति । आ आत्मनिश्चयादिति छेदः । तस्माद्युक्तमुक्तं खादयस्तद्गुणा इति ॥ १७ ॥ अत्र तार्किकाः खादयः शब्दादिगुणवन्तो आत्मा च गुणज्ञानन्यो न तु तेषां परस्परं गुणगुणिभावोऽस्तीत्याहुस्तन्निरस्यति तेषामपीति । तेषामन्यत्रधानात् शब्दादीनां खादिगुणानामपि सतां गुणास्तारत्वमन्द्रत्वादयः सन्ति सर्वे दृश्यमानाः । अनेन साक्षात् परम्परया वा प्राथममात्रं पाञ्चभौतिकमित्युक्तम् । फलितमाह गुणवृत्तिः परस्परमिति । अयसि दग्धृत्वं वह्नौ चतुष्कोणत्वमित्यन्योन्यसङ्क्रमो दृष्टः । तद्वदात्मानात्मधर्माणामपि आत्मन्यपि आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सन्ति धर्मास्ते चापृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् पृथगिवावभासमाना अन्तःकरणे दृश्यन्ते । एवमन्तःकरणधर्मा दुःखित्वादयोऽपीतरत्रेति तयोः परस्पराश्रितत्वमाविद्यकं युज्यतेऽतो नात्मनः पृथग्भूताः खादयः किं तु रज्जूरगवत् तत्रवाध्यस्ता इति भावः । त्रिषु ईशसूत्रविराट्सु । सर्वे इति । एतेषां उपर्युपरि परस्पराध्यासेऽपि पूर्वस्य सर्वे गुणा उत्तरस्मिन् भवन्ति । उत्तरस्य तु केचिदेव पूर्वस्मिन् भवन्तीत्युक्तम् । 'अयमर्थः-यथा शुद्धे स्फटिके जपाकुसुमसान्निध्याद्रक्तत्वाध्यासस्तत्रैव स्फटिकधाप्रमोषे सति पद्मरागत्वाध्यासस्तत्रैव चन्द्रिकायामिन्द्रनीलत्वाध्यास इति चतूरूपे स्फटिके गुणवत्सु सोपाधिकेषु त्रिषु पूर्वपूर्वगुणस्य सर्वस्याप्युत्तरोत्तरत्राध्यासो दृश्यते । तथा हि । स्फटिकगता सत्ताऽनिर्वचनीये लौहित्येऽध्यस्ता न तु स्फटिके लौहित्यधर्मोऽनिर्वचनीयत्वमध्यस्तम् । एवं ब्रह्मधर्माः सच्चिदानन्दाः स्थूलेऽपि काये दृश्यन्ते । यथोक्तम्-' अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततोऽद्वयम् ' इति । एवं च रज्जुसर्पभ्रमे भीषणत्वादय एवं सर्पधर्मा रज्ज्वामध्यस्यन्ते न तु मिथ्यात्वादयस्तद्वत । ननु सर्पेऽपि अभिगम्यत्वादयो रज्जुधर्मा न दृश्यन्ते इति सर्वे. इत्युक्तिरसङ्गतेति चेत्सत्यम । अखण्डैकरसे ब्रह्मणि सच्चिदानन्दाः स्वरूपानातिरिक्ता अपि अनृतजडदुःखप्रतियोगित्वेन कल्प्यन्ते न तु रूपरसादिवदकल्पिताः सन्ति । अतः कल्पितानां तेषां कार्येऽनुवृत्तिर्नानुपपन्ना । ये तु ईशादौ अकल्पिता ईशनत्वादयो न ते सूत्रादिष्वनुवर्तन्ते किं तु कर्तृत्वसत्त्वादय एव । तस्मात् कल्पितधर्माभिप्रायेण सर्वे पूर्वस्य धर्मा उत्तरस्मिन् सन्तीत्युक्तम् । नेन दृश्यं सर्वं भौतिकं तच्च ब्रह्मण्यभेदेनाध्यस्तमिति पूर्वार्धार्थः । तत्रापि स्थूलं शुद्धेशसूत्रैरनुगतं सूत्रं शुद्धेशाभ्यामीशः शुद्धेन शुद्धं तु न केनचिदनुगतमिति उत्तरार्धेऽर्थाद्दर्शितम् । श्रौतार्थस्तु तस्य स्पष्ट एवेति निष्कर्षः । तथा च न द्रव्याणां प्रत्यक्स्वरूपात् पृथक् सिद्धिरस्तीति तद्विरुद्धं तर्कमतं निरस्तम् ॥१८॥ अत्रानुभवमेव प्रमाणयति षष्ठ इति । चेतना धीवृत्तिस्तथा कामसङ्कल्पादयोऽप्युपलक्ष्यन्ते । षष्ठं शब्दादिपञ्चकापेक्षया । अयं भावः-मनो विषयं कल्पयति स्वप्ने तथा दर्शनात् । बुद्धिस्तं प्रकाशयति । अहङ्कारोऽभिमन्यते मयायं ज्ञात इति । तस्मात् मनोमात्रं जगत् मनसोऽभावे तत्सत्त्वे प्रमाणाभावादिति ॥ १९ ॥ ननु प्रत्यक्षमेव तत्र प्रमाणमित्याशङ्क्याह इन्द्रियाणीति । आत्मा जीवः । अव्यक्तं माया । तत्संज्ञकः प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं च स्वप्नदृष्टान्तेन मायामात्रमित्यवगन्तव्यमिति भावः ॥२०॥ इन्द्रियाणि मनोबुद्धिभ्यां सह सप्त । तेषामर्थाः मन्तव्यबोद्धव्याभ्यां सह शब्दादयः सप्त । व्यक्ताव्यक्तैः बाह्येन्द्रियग्राह्याः व्यक्ताः अन्येऽव्यक्ताः । तैः सह सुसंवृतैरिति बुद्धिगुहायां लीनैरित्युक्तम् । ते चतुर्दश आकाशादयः पञ्च । आत्मा अहङ्कारो गुणत्रयं चेति चतुर्विंशतेर्गणः व्यक्ताव्यक्तरूपः गुणः भोग्यवर्गः । एतेभ्यो विविक्तं यत्तदेव सर्वं सर्वात्मत्वात् सर्वशब्दाभिधेयं भोक्तृ ब्रह्मेत्यर्थः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

## २११

मार्कण्डेय उवाच ।
एवमुक्तः स विप्रस्तु धर्मव्याधेन भारत ।
कथामकथयद्भूयो मनसः प्रीतिवर्धनीम् ॥ १
ब्राह्मण उवाच ।
महाभूतानि यान्याहुः पञ्च धर्मभृतां वर ।
एकैकस्य गुणान् सम्यक् पञ्चानामपि मे वद ॥ २
व्याध उवाच ।
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां वक्ष्यामि ते गुणान् ३
भूमिः पञ्चगुणा ब्रह्मन्नुदकं च चतुर्गुणम् ।
गुणास्त्रयस्तेजसि च त्रयश्चाकाशवातयोः । ४
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
एते गुणाः पञ्च भूमेः सर्वेभ्यो गुणवत्तराः ॥ ५
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसश्चापि द्विजोत्तम ।
अपामेते गुणा ब्रह्मन् कीर्तितास्तव सुव्रत ॥ ६
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ।
शब्दः स्पर्शश्च वायौ तु शब्दश्चाकाश एव तु ॥७
एते पञ्चदश ब्रह्मन् गुणा भूतेषु पञ्चसु ।
वर्तन्ते सर्वभूतेषु येषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ८
अन्योन्यं नातिवर्तन्ते सम्यक् भवति द्विज ।
यदा तु विषयीभावमाचरन्ति चराचराः ॥ ९
तदा देही देहमन्यं व्यतिरोहति कालतः ।
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः ॥ १०
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः ।
यैरावृतमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ११
इन्द्रियैः सृज्यते यद्यत् तत् तद्व्यक्तमिति स्मृतम् ।
तदव्यक्तमिति ज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥ १२
यथास्वं ग्राहकाण्येषां शब्दादीनामिमानि तु ।
इन्द्रियाणि यदा देही धारयन्निव तप्यते ॥ १३
लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यति ।
परापरज्ञः सक्तः सन् स तु भूतानि पश्यति १४
पश्यतः सर्वभूतानि सर्वावस्थासु सर्वदा ।
ब्रह्मभूतस्य संयोगो नाशुभेनोपपद्यते ॥ १५
ज्ञानमूलात्मकं क्लेशमतिवृत्तस्य पौरुषम् ।
लोकवृत्तिप्रकाशेन ज्ञानमार्गेण गम्यते ॥ १६

---

२११

एवं पूर्वत्र इदं जगन्महाभूतात्मकं ब्रह्मेत्युक्तं तद्व्याख्यातुं भूतगुणान् विभजते। सर्वात्मकत्वं ब्रह्मणो व्याचष्टे **एवमुक्तः स इत्यादिना**ऽध्यायेन ॥१॥ गुणोत्तराणि उत्तरोत्तरगुणाः पूर्वपूर्वास्मिन् वर्तन्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥ एतदेवाह भूमिरिति । त्रय इति । आकाशे एकः वाते द्वावित्यर्थः ॥४॥ सर्वभूतेषु जरायुजादिषु लोकाश्चिदात्मोपाधिभूतानि पञ्चभूतानि ॥८॥ नातिवर्तन्ते पञ्चस्वेकेन विना इतराणि भूतानि न तिष्ठन्तीत्यर्थः । सम्यक् च भवति एकीभावेन प्रकाशन्ते । एकत्वमार्षम् सम्पूर्वादञ्चु गतिपूजनयोरित्यस्माद्धातो ऋत्विगादिना क्विनि समः सामिरादेशः । 'सामित्येकीभावे' इति यास्कः । ननु भूतानां परस्परमवियोगे मरणं न स्यात् तत्सङ्घातो हि चेतन आत्मेति लोकायतमतमाशङ्क्याह यदेति । अविषयं विषयमिव यत्र भावयति स सङ्कल्पो विषयीभावः । ते जीवास्तीव्रसङ्कल्पावेशाद्यं देहं भावयन्ति तदभिमानदार्ढ्येन पूर्वदेहस्यात्यन्तविस्मृतौ सत्यां मृता इत्युच्यन्ते न तु मृतदेहेऽपि भूतानां मिथो वियोगोऽस्तीत्यर्थः । पाठान्तरे भावं सङ्कल्पं विषमं स्वदेहाद्विलक्षणं देहान्तरविषयम्॥९॥ विनश्यन्ति तिरोभवन्ति । जायन्ते आविर्भवन्ति ॥१०॥ धातवो रेत आदयः । प्रत्येकं पाञ्चभौतिकाः सन्तोऽपि॥११॥ सृज्यते । संसृज्यते। यद्वा। प्राणेभ्यो देवा- देवेभ्यो लोका इति श्रूयमाणदृष्टिसृष्ट्यभिप्रायेण चक्षुरादिभिः सूर्यादिसृष्टिद्वारा लोकः सृज्यत इति यथाश्रुतमेव व्यक्तं घटादि । अव्यक्तमिन्द्रियादि। लिङ्गं रूपादिप्रकाशस्तेन ग्राह्यमनुमेयम् ॥ १२ ॥ यथास्वं स्वविषयानतिक्रमेण इमानि इन्द्रियाणि धारयन् निगृह्णन् तप्यत इव आत्मानमविषयमप्यालोचयन इव । मन आदीनां निग्रह एव आत्मा लोचनमित्यर्थः ॥ १३ ॥ आत्मनः सोपाधिकं रूपमपेक्ष्याह लोके इति। विततं कुण्डले कनकमिव उपादानत्वेन व्यापकं निरुपाधिकं रूपमपेक्ष्याह लोकमिति। लोकं च सैन्धव खिल्यवदात्मनि चिदेकरसे विलीनं पश्यति । तथाच श्रुती ब्रह्मविदां द्वे अवस्थे निरूपयतः-'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' । 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति। उक्तं चाभियुक्तैः-'सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते । सोपाधिकः स्यात् सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः' इति। परापरज्ञः। परं निरुपाधि। अपरं सोपाधि। सक्तः प्रारब्धकर्मणा बद्धः सन् यावद्देहपातमेव समाधौ सोपाधिकावस्थामनुभवति न तु विदेहकैवल्येऽपीत्यर्थः ॥ १४ ॥ विद्याफलमाह पश्यन इति । 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेर्ब्रह्मभूतस्य उपाधित्यागादित्यर्थः । अशुभेन पुण्यपापयोः फलेन सम्प्रज्ञातसमाधाविवेकात्म्यधीदार्ढ्याज्जाग्रत्स्वप्नयोरपि तदेव पश्यन् कर्मणा न लिप्यत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ ज्ञानमूलेति । ज्ञानं विद्या । तस्याः मूलं माया ब्रह्माकारान्तःकरणवृत्तेरपि

अनादिनिधनं जन्तुमात्मयोनिं सदाऽव्ययम् ।
अनौपम्यममूर्तं च भगवानाह बुद्धिमान् ॥ १७
तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां विप्रानुपृच्छसि ।
इन्द्रियाण्येव संयम्य तपो भवति नान्यथा ॥ १८
इन्द्रियाण्येव तत् सर्वं यत् स्वर्गनरकावुभौ ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥ १९
एष योगविधिः कृत्स्नो यावदिन्द्रियधारणम् ।
एतन्मूलं हि तपसः कृत्स्नस्य नरकस्य च ॥ २०
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमार्च्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं समाप्नुयात् ॥
षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥२२
रथः शरीरं पुरुषस्य दृष्ट-
मात्मा नियन्तेन्द्रियाण्याहुरश्वान् ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ २३
षण्णामात्मनियुक्तानामिन्द्रियाणां प्रमाथिनाम् ।
यो धीरो धारयेद्रश्मीन् स स्यात् परमसारथिः
इन्द्रियाणां प्रसृष्टानां हयानामिव वर्त्मसु ।
धृतिं कुर्वीत सारथ्ये धृत्या तानि जयेत् ध्रुवम् ॥
इन्द्रियाणां विचरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरते बुद्धिं नावं वायुरिवाम्भसि ॥ २६
येषु विप्रतिपद्यन्ते षट्सु मोहात् फलागमम् ।
तेष्वध्यवसिताध्यायी विन्दते ध्यानजं फलम् २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

मायाकार्यत्वात् । मायात्मकं मिथ्यारूपं क्लेशमविद्यादिरूपम् । अतिवृत्तस्य अतिक्रम्य गतस्य योगिनः लोकसम्बन्धिन्याः प्रवृत्तेर्वर्तनजीवनात्मिकायाः प्रकाशो येन तादृशेन ज्ञानरूपेण ज्ञानमार्गेण पौरुषं परमपुरुषार्थरूपो मोक्षो गम्यते प्रकाशते मायिक्येवाविद्या मायिक्यैव विद्यया नष्टा चेन्मुच्यते इत्यर्थः। यथोक्तं श्रीभागवते-'विद्याविद्ये मम तनू विध्युद्धव शरीरिणाम् । मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते 'इति ज्ञानपूर्वात्मकमिति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ १६ ॥ मुक्तजीवस्य स्वरूपमाह अनादीति । आद्यविशेषणेन लोकायतसम्मतं देहस्यात्मत्वं निरस्तम् । जन्तुं पुत्तिकादिवद्भ्रान्तं जीवमात्मयोनिं जीवस्यात्मयोनित्वं वदता जीवत्वहेतोरविद्यादेः पृथक्सत्तामाख्याद्यभिमता निरस्ता । अव्ययमिति । तार्किकाभिमतं सुखदुःखादिविकारवत्त्वं निरस्तं सदेति आगन्तुकविकारास्पर्शित्वमुक्तम् । एतेनैव क्षणिकशून्यवादावपि निरस्तौ । अमूर्तमिति । अत एवात्मवादो देहसम्मितात्मवादश्च परास्तः । अनौपम्यं तर्कागम्यमित्यर्थः । भगवानाह स्वनिःश्वसितरूपेण वेदेन हेतुदृष्टान्तवर्जितम्-'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ' इत्यादिना । बुद्धिमान् बुद्धिः नियम्यत्वेनास्यास्तीति मतुप्‌ ॥१७॥ तपो ध्यानम् ॥१८॥ इन्द्रियाणि निगृहीतानि स्वर्गाय विसृष्टानि नरकायेति योजनया पूर्वार्धस्यैव व्याख्या ॥ १९ ॥ एतन्मूलमित्येतद्व्याचष्टे इन्द्रियाणामिति । दोषं रागविद्वेषादिरूपं आर्च्छन्ति प्राप्नुवन्ति ॥२१॥ षण्णां मनःषष्ठानामिन्द्रियाणां नित्यानामात्मनि कल्पितत्वेन रज्जुभुजङ्गवदात्यन्तशून्यानाम् । ऐश्वर्यं नियन्तृत्वमनर्थैः प्रमातृत्वादिकर्तव्यभोक्तृत्वरूपैः ॥२२॥ उक्तेऽर्थे प्रमाणसूचनार्थम्-' आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च ' इत्यादिकठवल्लीनामर्थं सङ्गृह्णाति रथ इत्यादिना ॥ २३ ॥ आत्मा बुद्धिः ॥ २४ ॥ इन्द्रियाणामजये शास्त्रजापि प्रज्ञा नश्यतीत्याह इन्द्रियाणामिति ॥२५॥ अनुविधीयत इति कर्मकर्तरि लकारः । यस्येन्द्रियस्याधीनं मनो भवति तदेव प्रज्ञां नाशयतीत्यर्थः ॥ २६ ॥ षट्सु सङ्कल्पेषु शब्दादिषु फलागमे तज्जन्ये सुखाद्युपलम्भे विषये विप्रतिपद्यन्ते रागिणः । सुखमुपादेयमित्याहुर्वीतरागा हेयमित्यादिरूपा विप्रतिपत्तिः । तत्र यस्तेषु अध्यवसितं वस्तुदृष्ट्या निश्चितं यद्धेयत्वं तदेवाध्यातुं शीलं यस्य सः विषयदोषदर्शनेन वीतराग इत्यर्थः ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

## २१२

मार्कण्डेय उवाच ।
एवं तु सूक्ष्मे कथिते धर्मव्याधेन भारत ।
ब्राह्मणः स पुनः सूक्ष्मं पप्रच्छ सुसमाहितः ॥ १
ब्राह्मण उवाच ।
सत्त्वस्य रजसश्चैव तमसश्च यथातथम् ।
गुणांस्तत्त्वेन मे ब्रूहि यथावदिह पृच्छतः ॥ २
व्याध उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
एषां गुणान् पृथक्त्वेन निबोध गदतो मम ॥ ३
मोहात्मकं तमस्तेषां रज एषां प्रवर्तकम् ।
प्रकाशबहुलत्वाच्च स त्वं ज्याय इहोच्यते ॥ ४
अविद्याबहुलो मूढः स्वप्नशीलो विचेतनः ।
दुर्हृषीकस्तमोध्वस्तः सक्रोधस्तामसोऽलसः ॥५
प्रवृत्तवाक्यो मन्त्री च यो नराग्र्योऽनसूयकः ।
विधित्समानो विप्रर्षे स्तब्धो मानी स राजसः ६
प्रकाशबहुलो धीरो निर्विधित्सोऽनसूयकः ।
अक्रोधनो नरो धीमान् दान्तश्चैव स सात्त्विकः ७
सात्त्विकस्त्वथ सम्बुद्धो लोकवृत्तेन क्लिश्यते ।
यदा बुध्यति बोद्धव्यं लोकवृत्तं जुगुप्सते ॥ ८
विरागस्य च रूपं तु पूर्वमेव प्रवर्तते ।
मृदुर्भवत्यहङ्कारः प्रसीदत्यार्जवं च यत् ॥ ९
ततोऽस्य सर्वद्वन्द्वानि प्रशाम्यन्ति परस्परम् ।
न चास्य संशयो नाम कश्चिद्भवति कश्चन ॥ १०
शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः ।
वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् क्षत्रियत्वं तथैव च ॥ ११
आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते ।
गुणास्ते कीर्तिताः सर्वे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

## २१३

ब्राह्मण उवाच ।
पार्थिवं धातुमासाद्य शारीरोऽग्निः कथं भवेत् ।
अवकाशविशेषेण कथं वर्तयतेऽनिलः ॥ १
मार्कण्डेय उवाच ।
प्रश्नमेतं समुद्दिष्टं ब्राह्मणेन युधिष्ठिर ।
व्याधस्तु कथयामास ब्राह्मणाय महात्मने ॥ २

२१२

पूर्वाध्यायान्तोक्तविप्रतिपत्तिकारणं गुणत्रयं सकार्यं वक्तुमारभते एवमिति। सूक्ष्मे ब्रह्मणि सूक्ष्मं तत्प्राप्तिकारणं गुणत्रयविभागं तेनर्ध्याद्गुणेभ्यो ब्रह्मातिरिक्तमित्युक्तं भवति ॥१॥ दुर्हृषीकः दुःस्थेन्द्रियः ॥५॥ विधित्सा विशेषतृष्णा। धेट् पाने अस्य रूपम्। प्रवृत्तवाक्यः प्रवृत्तिवाक्। अनसूयकः परदोषादर्शी। तत्र हेतुः विधित्समान इति। स्तम्भो नमस्काराद्यकरणं मानस्तद्धेतुर्महत्त्वाभिमानस्तदुभयवान् ॥ ६ ॥ लोकवृत्ते रजस्तमःकार्ये यदा यतः तज्जुगुप्सते निन्दति ॥ ८ ॥ विरागस्य रागहीनस्य रूपं लक्षणं मृदुः स्तम्भादिहीनः। आर्जवमकौटिल्यम् ॥९॥ द्वन्द्वानि मानापमानादीनि ॥ १० ॥ जातस्येति कर्मणि षष्ठी। वैश्यत्वं कर्तृ सद्गुणवन्तं वैश्यत्वादयः स्वयमायान्तीति गुणकृत एव वर्णविभागो न जातिकृत इति भावः ॥ ११ ॥ ब्राह्मण्यं ब्रह्मवित्त्वम् ॥ १२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥

२१३

ज्ञानक्रियाशक्तिमतोर्वह्निप्राणयोरात्मान्यत्वम् 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति' इति मन्त्रप्रकाशितं वक्तुमारभते पार्थिवमिति। पार्थिवं पृथिवीबाहुल्यात् धातुं त्वगादिमयं देहमासाद्य प्राप्य प्रकाशप्रवृत्तिहेतुत्वाद्योऽग्निर्ज्ञानाख्यस्तेजोधातुः शारीरः शरीराभिमानी कथं भवेत्। अवकाशविशेषेण नाडीमार्गभेदेन वर्तयते शरीरं चेष्टयते ॥ १ ॥

व्याध उवाच ।

मूर्धानमाश्रितो वह्निः शरीरं परिपालयन् ।
प्राणो मूर्धनि चाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते ॥ ३

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं प्राणे प्रतिष्ठितम् ।
श्रेष्ठं तदेव भूतानां ब्रह्मयोनिमुपास्महे ॥ ४

स जन्तुः सर्वभूतात्मा पुरुषः स सनातनः ।
महान् बुद्धिरहङ्कारो भूतानां विषयश्च सः ॥ ५

एवं त्विह स सर्वत्र प्राणेन परिपाल्यते ।
पृष्ठतस्तु समानेन स्वां स्वां गतिमुपाश्रितः ॥ ६

बस्तिमूलं गुदं चैव पावकं समुपाश्रितः ।
वहन् मूत्रं पुरीषं वाऽप्यपानः परिवर्तते ॥ ७

प्रयत्ने कर्मणि बले स एव त्रिषु वर्तते ।
उदानमिति तं प्राहुरध्यात्मविदुषो जनाः ॥ ८

सन्धौ सन्धौ सन्निविष्टः सर्वेष्वपि तथाऽनिलः ।
शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते ॥ ९

धातुष्वग्निस्तु विततः स तु वायुसमीरितः ।
रसान् धातूंश्च दोषांश्च वर्तयन् परिधावति ॥ १०

प्राणानां सन्निपातात् तु सन्निपातः प्रजायते ।
ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनाम् ॥ ११

समानोदानयोर्मध्ये प्राणापानौ समाहितौ ।
समर्थितस्त्वधिष्ठानं सम्यक् पचति पावकः ॥ १२

अस्यापि पायुपर्यन्तस्तथा स्याद्गुदसंज्ञितः ।
स्रोतांसि तस्माज्जायन्ते सर्वप्राणेषु देहिनाम् ॥ १३

अग्निवेगवहः प्राणो गुदान्ते प्रतिहन्यते ।
स ऊर्ध्वमागम्य पुनः समुत्क्षिपति पावकम् ॥ १४

पक्वाशयस्त्वधो नाभ्यामूर्ध्वमामाशयः स्थितः ।
नाभिमध्ये शरीरस्य प्राणाः सर्वे प्रतिष्ठिताः ॥ १५

प्रवृत्ता हृदयात् सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
वहन्त्यन्नरसान् नाड्यो दश प्राणप्रचोदिताः ॥ १६

मूर्धनि सहस्रारे स्थितत्वाच्छ्रेष्ठत्वाद्वा मूर्धानं चिदात्मानमभि-विज्ञानात्मा श्रितस्तदुपाधितां प्राप्तः सन् शरीरं परिपालयन् चित्प्रतिबिम्बं प्राप्य धीधातुः शरीरं चेतयतीत्यर्थः। एतेना-ग्निर्मूर्द्धेति पदद्वयं व्याख्यातम् । प्राणस्तु तयोरुभयोरप्युपा-धिरित्याह प्राण इति। एतेन चिद्विज्ञानं द्वयं वायुशब्दितं तस्य ककुदिव ककुत् चाल्कतया श्रेष्ठः प्राण इत्युक्तम् ॥३॥ अस्य ककुत्त्वं व्याचष्टे भूतमिति । प्राणे चिद्विज्ञानाभ्यां युक्ते सूत्रात्मरूपे ब्रह्मकार्यरूपं योनिं विराडादेः ॥ ४ ॥ सः चिद्विज्ञानप्राणानां सङ्घातो जन्तुः समष्टिजीवः सर्वेषा भूतानां कार्यकारणरूपाणामात्मा चेतयिता सनातनः पुरुषः परं ब्रह्म च स एव निरस्तोपाधिः सन् स एवोपाधि-पक्षपाती सन् महदाद्यात्मा भवति । विषयश्च शब्दादिः स एव । एतेन पतिः पृथिव्या अयमिति द्वितीयः पादो व्याख्यातः। अयं चिद्विज्ञानप्राणसङ्घातः पृथिव्याः क्षेत्रस्येति श्रुतिपदयोरर्थः ॥ ५ ॥ एवमिति सर्वत्र अन्तर्बहिश्च स्थितं सर्वं प्राणेन देहलीदीपवन्मध्यस्थेन आन्तरं विज्ञानं बाह्यं देहेन्द्रियादिकं च पाल्यत इत्यर्थः। अपां रेतांसि जिन्वतीत्य-न्त्यपादं व्याचष्टे पृष्ठत इत्यादिना । 'अन्नमयं हि सोम्य मन आपो मयः प्राणस्तेजोमयी वाक्' इति श्रुतेः साक्षात् परम्परया वा प्राणमनइन्द्रियाण्यपां रेतांसि जिन्वति तर्पयति सङ्घा-तात्मेति श्रुतिपदानामर्थः । पृष्ठतः उपाध्यावेशाज्जीवत्व-प्राप्त्यनन्तरम् । समानेन इत्थं भावे तृतीया । स्वां स्वां पृथक् गम्यां गतिं आश्रितो भवति। समानवायुत्वं प्राप्तः पावकं जाठरमाश्रितः सन् बस्तिमूलं मूत्राशयं गुदं पुरीषाश्रयं च जाठरस्थः समानो शितपीतादिकं पाचयित्वा पानरूपी भूत्वा स्वं स्वं स्थानं नयतीत्यर्थः । श्लोकद्वयम् ॥ ६ ॥ कर्म गमनादि । प्रयत्नस्तदनुकूला चेष्टा । बलं भारोद्यमनादौ सामर्थ्यम् । विदुषः सकाशात् श्रुत्वेति शेषः ॥ ८ ॥ धातुषु त्वगादिषु। अग्निर्जाठरः विततो व्याप्तः। रसादीन् परिवर्तयन् परिणामयन्। रसान् अन्नादीन् धातूंस्त्वगादीन्। दोषान् पित्तादीन् ॥ १० ॥ कथं वर्तयतेऽनिल इति पृष्टे तत्राह प्राणानामिति। सन्निपातः सङ्घर्षस्तज्ज ऊष्माग्निर्जाठरो भवति ॥ ११ ॥ सन्निपातं व्याकरोति समानेति। नाभिस्थं समानं हृदिस्थः प्राण एति । गुदस्थोऽपानः कण्ठस्थमुदानमेति। तेन प्राणापानसमानानां नाभिदेशे सङ्घर्षेण समर्थितो निष्पा-दितः अधिष्ठानं सप्तधातुमयं शरीरं सम्यक् पचति वृध्यादि-परिणामं नयति ॥ १२ ॥ अस्य पावकस्य पायुपर्यन्तो गुदप्रवेशो गुदसंज्ञितोऽपानो भवति । स्रोतांसि नाडीमार्गाः तस्मादपानात् प्राणेषु प्राणादिषु पञ्चसु प्राणादिभ्यः पावको-त्पत्तिः पावकाच्चापां द्वारा प्राणाद्युत्पत्तिर्भवतीति प्रघट्टकार्थः ॥ १३ ॥ एतदेवोपपादयति अग्नीति । अग्निवेगात् कन्दु-कवदूर्ध्वमुत्प्लुतः प्राणो गुदान्ते प्रतिहतः पुनरुत्पतन्नग्निम-प्युत्क्षिपतीत्यर्थः । दृश्यते चाग्निवेगात् बाष्पवायुवृद्धिर्वायुवे-गाच्चाग्निवृद्धिः । तथा च प्राणरोधे सति जाठरं भयं निवर्त-तेऽतः प्राणो रोद्धव्य इति भावः ॥ १४ ॥ जाठरनिरोधे सर्वेषामिन्द्रियाणां निरोधो भवतीत्याशयेनाह पक्वेति । पक्वाशयः पक्वान्नस्थानमामाशयः । अपक्वान्नस्थानं नाभिमध्ये इति तात्स्थ्याज्जाठरः प्राणा इन्द्रियाणि प्रतिष्ठिताः लीना भवन्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥ सर्वे रसाः हृद्यात् हृदयं प्राप्य दशभिः प्राणैः प्रेरिताः ते च प्राणादयः पञ्च नागकूर्म-कृकलदेवदत्तधनञ्जयाश्च पञ्च ॥ १६ ॥

योगिनामेष मार्गस्तु येन गच्छन्ति तत् परम् ।
जितक्लमाः समा धीरा मूर्ध्न्यात्मानमादधुः ।
एवं सर्वेषु विततौ प्राणापानौ हि देहिषु ॥ १७
एकादशविकारात्मा कलासम्भारसम्भृतः ।
मूर्तिमन्तं हि तं विद्धि नित्यं योगजितात्मकम्१८
तस्मिन् यः संस्थितो ह्यग्निर्नित्यं स्थाल्यामिवाहितः
आत्मानं तं विजानीहि नित्यं योगजितात्मकम् ॥
देवो यः संस्थितस्तस्मिन्नब्बिन्दुरिव पुष्करे ।
क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं योगजितात्मकम्॥२०

एष मूर्द्धादिपायुपर्यन्तः । तत् परं ब्रह्म । मूर्द्धनि सुषुम्नया नाड्या सहस्रारं प्राप्य ये तत्रात्मानं प्राणोपाधिमाहितवन्तस्ते गच्छन्ति । देहिषु जीवदेहेषु सर्वेषामप्येष मार्गो गन्तुं योग्य इति भावः ॥ १७ ॥ न केवलं प्राणरोध एव पुरुषार्थः किन्तु तत् साध्यं विज्ञानमित्याह एकादशेत्यादिना । 'स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति वदन् वाक् पश्यन् चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनः' इति श्रुतेरेकादश विकारा लिङ्गशरीरं तदात्मा तत्तादात्म्यं गतः । यद्यपि ' पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् । अपञ्चीकृतभूतोऽत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्' इति सप्तदशात्मकं लिङ्गम् । तथापि मनसि बुद्धेर्दशेन्द्रियेषु सामान्या करणवृत्तिः। प्राणाद्या वायवः। पञ्चेति साङ्ख्यमतेन प्राणपञ्चकस्य चान्तर्भावं विवक्षित्वा एकादश विकारात्मेति ज्ञेयम् । कलाः षोडश । प्राणः श्रद्धा खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नं वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका नाम चेति एतासां सम्भारेण सम्भृतः कलारूपोपाधिना मूर्तिहीनमपि मूर्तिमन्तं सूक्ष्मस्थूलदेहवन्तमात्मानं विद्धि विजानीहि । ज्ञानसाधनमाह नित्यमिति । योगेन जित आत्मा बुद्धिर्येन तमात्मानमित्युत्तरादपकृष्यते ॥ १८ ॥ प्राणादिभ्यो जीवं विविनक्ति तस्मिन्निति । तस्मिन् कलासम्भारे अग्निवदात्मा प्रकाशरूपः स्थालीवत् कला अप्रकाशात्मिकाः । आत्मानं त्वंपदार्थम् ॥१९॥ अस्य तत्पदार्थाभेदमाह देव इति । अब्बिन्दुदृष्टान्तेनासङ्गत्वं दर्शितम् । क्षेत्रज्ञं परमात्मानम् ॥२०॥ ननु त्वंपदार्थः सङ्गी तत्पदार्थोऽसङ्गः कथमनयोरभेद इत्याशङ्क्य बिम्बप्रतिबिम्बयोरिवेत्याशयेनाह जीवात्मकानीति । रज आदिना प्रवृत्त्यादयो धर्मा जीवात्मका उपाधिविशिष्टाश्रिताश्चाञ्चल्यादय इव जलचन्द्रे तं जीवमात्मगुणमीश्वरस्य गुणं भृत्यवत् प्रेष्यमात्मानमीश्वरं परात्मकं निर्गुणं विद्धि । अयमर्थः-तरङ्गतटाकप्रतिबिम्बकल्पौ धीमायोपाधी जीवेश्वरौ नियम्य नियामकौ तयोर्जीव ईश्वरात्मा । ईश्वरस्तु बिम्बस्थानीयासङ्ग चिद्रूप इति । तथा च श्रुतिः-'एक एव तु भूतात्मा भूते भूते



जीवात्मकानि जानीहि रजः सत्त्वं तमस्तथा ।
जीवमात्मगुणं विद्धि तथाऽऽत्मानं परात्मकम्२१

[1]सचेतनं जीवगुणं वदन्ति
स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति
प्राकल्पयद्यो भुवनानि सप्त ॥ २२

एवं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा सम्प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया ज्ञानवेदिभिः २३

व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् । इति । भूतात्मा नित्यसिद्धश्चिदात्मा । एकधेति ईश्वररूपेण । बहुधेति जीवरूपेण ॥ २१ ॥ अचेतनं जडं शरीरादि । सचेतनमिति तदेव ग्राह्यम् । तत् जीवस्य गुणं भोग्यं वदन्ति , स आत्मा चेष्टते जीवरूपेण । चेष्टयते ईश्वररूपेण । ततस्ताभ्यां जीवेश्वराभ्यां परमुत्कृष्टं तं वदन्ति । यो भुवनानि सप्त भूरादीनि प्राकल्पयत् प्रावर्तयत् । ननु कथं निरुपाधेः प्रवर्तकत्वमुच्यते अधिष्ठानत्वेनेति ब्रूमः । तथा च श्रुतिः-' यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ' इति ब्रह्मणो लक्षणमुक्त्वा अन्नमयादिकोशकारणीभूतानामन्नादिशब्दितानां विराडादीना जगत्कारणत्वम् । ' अन्नाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ' इत्यादिना स्थूलारुन्धतीन्यायेन विराडादीनि सोपाधिकानि ब्रह्माणि उक्त्वा ' प्रज्ञानघन एवानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पाद एष सर्वेश्वरः ' इति माण्डूक्यश्रुतिप्रसिद्धस्यानन्दमयस्य ईश्वरस्य कारणीभूते आनन्दाख्ये ब्रह्मणि ' आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ' इति मुख्यं कारणत्वं व्यवस्थापितम् । तथा प्रदेशान्तरेऽपि ' को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ' इति श्रुतिराकाशाख्ये कारणे यद्यानन्दो न स्यात् तर्हि तत्कार्ये देहादौ कुतः प्राणनादि स्यादिति तत्रैव मुख्यं प्रवर्तकत्वं दर्शयति ॥ २२ ॥ ननु ईश्वरसद्भावे भुवनप्रवृत्तिरेव कारणं दृश्यते न तु तदन्यस्य निर्गुणस्य । ईश्वरेणैव तस्यान्यथासिद्धत्वादित्याशङ्क्याह-एवमिति । भूतात्मा नित्यसिद्ध आत्मा आनन्दाख्यः । ऐश्वर्यस्य तु ईशितव्यसापेक्षत्वान्नित्यसिद्धत्वम् । सुप्तिप्रलययोरीशितव्याभावादनीश्वरत्वापत्तेरित्यानन्दस्यैव नित्यमैश्वर्यं माययाभिव्यज्यत इति भावः । ज्ञानं ब्रह्माकारावृत्तिस्तत्साक्षिभिस्तेन वेद्यादीशादन्यस्तत्प्रकाशक इति दर्शितम् ॥ २३ ॥

[1] अचेतनम् क. ख.

चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते२४
लक्षणं तु प्रसादस्य यथा तृप्तः सुखं स्वपेत् ।
निवाते वा यथा दीपो दीप्येत् कुशलदीपितः २५
पूर्वरात्रे परे चैव युञ्जानः सततं मनः ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यन्नात्मानमात्मनि २६
प्रदीप्तेनेव दीपेन मनोदीपेन पश्यति ।
दृष्ट्वाऽऽत्मानं निरात्मानं स तदा विप्रमुच्यते॥२७
सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।
एतत् पवित्रं लोकानां तपो वै सङ्क्रमो मतः २८
नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेद्धर्मं रक्षेच्च मत्सरात् ।
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥ २९
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम् ।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं व्रतपरं व्रतम् ॥ ३०
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यं ज्ञानं हितं भवेत् ।
यद्भूतहितमत्यन्तं तद्वै सत्यं परं मतम् ॥ ३१
यस्य सर्वे समारम्भा निराशीर्बन्धनाः सदा ।
त्यागे यस्य हुतं सर्वं स त्यागी स च बुद्धिमान्॥
यतो न गुरुरप्येनं श्रावयेदुपपादयेत् ।
तं विद्याद्ब्रह्मणो योगं वियोगं योगसंज्ञितम् ॥३३
न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४
आकिञ्चन्यं सुसन्तोषो निराशित्वमचापलम् ।
एतदेव परं ज्ञानं सदात्मज्ञानमुत्तमम् ॥ ३५
परिग्रहं परित्यज्य भवेद्बुद्ध्या यतव्रतः ।
अशोकं स्थानमाश्रित्य निश्चलं प्रेत्य चेह च॥ ३६
तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना ।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना ॥ ३७
गुणागुणमनासङ्गमेककार्यमनन्तरम् ।
एतत् तद्ब्रह्मणो वृत्तमाहुरेकपदं सुखम् ॥ ३८
परित्यजति यो दुःखं सुखं चाप्युभयं नरः ।
ब्रह्म प्राप्नोति सोऽत्यन्तमसङ्गेन च गच्छति ॥३९
यथाश्रुतमिदं सर्वं समासेन द्विजोत्तम ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि४०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

प्रसन्नात्मा वृत्तिजनितकालुष्यत्यागाद्विशुद्धचित्तः । आत्मनि स्थित्वा चित्तसारूप्यमपि त्यक्त्वा । सुखमनायासेन आनन्त्यं मोक्षम् ॥ २४ ॥ यथा जलादुत्तीर्णस्य शरीरे संश्लिष्टः सूक्ष्मतमः पटः सन्नप्यसन्निव भाति । एवं समाधौ विकल्पाभावात् सदपि चित्तं न भातीति सुप्तितुल्यतां प्रसादस्याह लक्षणमिति ॥ २५ ॥ विशुद्धात्मा शुद्धचित्तः । आत्मानं ब्रह्म । आत्मनि हृदये ॥ २६ ॥ निरात्मानं निर्गुणं निलीनं चित्तं यस्मिन् मृतम् । 'तावन्मनो निरोद्धव्यं हृदि यावत् क्षयं गतम् । एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः । ' इति श्रुतिः । चित्तक्षय एवात्मदर्शनमित्यर्थः ॥ २७ ॥ सङ्क्रमः सेतुः पारप्रापको मार्गः ॥ २८ ॥ भूतहितमनृतमपि सत्यमेव । भूतानामहितकरं सत्यमप्यनृतमेवेत्यर्थः ॥ ३१ ॥ त्यागे फलत्यागे । हुतं होमयज्ञदानादि । त्यागी सन्यासी ॥ ३२ ॥ एनं ब्रह्मणो योगं न श्रावयेत् । अपदार्थत्वात् किं तु उपपादयेल्लक्षणयाज्ञपयेत् । तं चित्तवियोगमेव विरुद्धलक्षणया योगसंज्ञितं प्राहुः । ' तं विद्याद्दुःखसंयोगं वियोगं योगसंज्ञितम् । ' इत्याद्यागमा इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ मैत्रं मित्रभावस्तदेवायनं मार्गस्तद्गतश्चरेत् ॥ ३४ ॥ ज्ञानं ज्ञानसाधनम् । ज्ञानमपि स्तौति साधने प्रवृत्त्यर्थं सदात्मज्ञानमुत्तममिति ॥ ३५ ॥ अशोकं स्थानं वैराग्यम् । प्रेत्य मृत्वा स्वर्गादौ । इह च राज्यादौ आश्रित्य यतव्रतो भवेत् ॥ ३६ ॥ गुणाः लोकवेदादयः अगुणा यस्मिन् तं गुणागुणम् । ' अत्र लोका अलोका वेदा अवेदाः ' इत्यादिश्रुतेः । अनासङ्गं स्त्र्यादिसङ्गहीनम् । अत एव एककार्यम् । एकेन प्रत्यगात्मनैव निष्पाद्यम् । अनन्तरमज्ञानमात्रापनयाद्रम्यं न तु क्रियाव्यवहितं स्वर्गादिसुखवत् । वृत्तं प्राक् सिद्धम् । एकमेव पद्यते गम्यते न तु ज्ञानज्ञेयविभागो यस्मिन् तत् एकपदम् ॥३८॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ब्राह्मणव्याधसंवादे त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

## २१४

मार्कण्डेय उवाच ।
एवं सङ्कथिते कृत्स्ने मोक्षधर्मे युधिष्ठिर ।
दृढप्रीतमना विप्रो धर्मव्याधमुवाच ह ॥ १
न्याययुक्तमिदं सर्वं भवता परिकीर्तितम् ।
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्धर्मेष्विह हि दृश्यते ॥ २
व्याध उवाच ।
प्रत्यक्षं मम यो धर्मस्तं च पश्य द्विजोत्तम ।
येन सिद्धिरियं प्राप्ता मया ब्राह्मणपुङ्गव ॥ ३
उत्तिष्ठ भगवन् क्षिप्रं प्रविश्याभ्यन्तरं गृहम् ।
द्रष्टुमर्हसि धर्मज्ञ मातरं पितरं च मे ॥ ४
मार्कण्डेय उवाच ।
इत्युक्तः स प्रविश्याथ ददर्श परमार्चितम् ।
सौधं हृद्यं चतुःशालमतीव च मनोरमम् ॥ ५
देवतागृहसङ्काशं दैवतैश्च सुपूजितम् ।
शयनासनसम्बाधं गन्धैश्च परमैर्युतम् ॥ ६
तत्र शुक्लाम्बरधरौ पितरावस्य पूजितौ ।
कृताहारौ तु सन्तुष्टावुपविष्टौ वरासने ।
धर्मव्याधस्तु तौ दृष्ट्वा पादेषु शिरसाऽपतत् ॥ ७
वृद्धावूचतुः ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ धर्मज्ञ धर्मस्त्वामभिरक्षतु ।
प्रीतौ स्वस्तव शौचेन दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ ८
गतिमिष्टां तपो ज्ञानं मेधां च परमां गतः ।
सत्पुत्रेण त्वया पुत्र नित्यं काले सुपूजितौ ॥ ९
न तेऽन्यद्दैवतं किञ्चिद्दैवतेष्वपि वर्तते ।
प्रयतत्वाद्द्विजातीनां दमेनासि समन्वितः ॥ १०
पितुः पितामहा ये च तथैव प्रपितामहाः ।
प्रीतास्ते सततं पुत्र दमेनावां च पूजया ॥ ११
मनसा कर्मणा वाचा शुश्रूषा नैव हीयते ।
न चान्या हि तथा बुद्धिर्दृश्यते साम्प्रतं तव ॥ १२
जामदग्न्येन रामेण यथा वृद्धौ सुपूजितौ ।
तथा त्वया कृतं सर्वं तद्विशिष्टं च पुत्रक ॥ १३
ततस्तं ब्राह्मणं ताभ्यां धर्मव्याधो न्यवेदयत् ।
तौ स्वागतेन तं विप्रमर्चयामासतुस्तदा ॥ १४
प्रतिपूज्य च तां पूजां द्विजः पप्रच्छ तावुभौ ।
सुपुत्राभ्यां सभृत्याभ्यां कच्चिद्वां कुशलं गृहे ॥ १५
अनामयं च वां कच्चित् सदैवेह शरीरयोः ।
वृद्धावूचतुः
कुशलं नौ गृहे विप्र भृत्यवर्गे च सर्वशः ।
कच्चित् त्वमप्यविघ्नेन सम्प्राप्तो भगवन्निति ॥१६
मार्कण्डेय उवाच ।
बाढमित्येव तौ विप्रः प्रत्युवाच मुदाऽन्वितः ।
धर्मव्याधो निरीक्ष्याथ ततस्तं वाक्यमब्रवीत् १७
व्याध उवाच ।
पिता माता च भगवन्नेतौ मद्दैवतं परम् ।
यद्दैवतेभ्यः कर्तव्यं तदेताभ्यां करोम्यहम् ॥ १८
त्रयस्त्रिंशद्यथा देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
सम्पूज्याः सर्वलोकस्य तथा वृद्धाविमौ मम १९
उपाहारानाहरन्तो देवतानां यथा द्विजाः ।
कुर्वन्ति तद्वदेताभ्यां करोम्यहमतन्द्रितः ॥ २०
एतौ मे परमं ब्रह्मन् पिता माता च दैवतम् ।
एतौ पुष्पैः फलै रत्नैस्तोषयामि सदा द्विज ॥२१
एतावेवाग्नयो मह्यं यान् वदन्ति मनीषिणः ।
यज्ञा वेदाश्च चत्वारः सर्वमेतौ मम द्विज ॥ २२
एतदर्थं मम प्राणा भार्या पुत्राः सुहृज्जनः ।
सपुत्रदारः शुश्रूषां नित्यमेव करोम्यहम् ॥ २३
स्वयं च स्नापयाम्येतौ तथा पादौ प्रधावये ।
आहारं च प्रयच्छामि स्वयं च द्विजसत्तम ॥ २४
अनुकूलं तथा वच्मि विप्रियं परिवर्जये
अधर्मेणापि संयुक्तं प्रियमाभ्यां करोम्यहम् ॥ २५
§धर्ममेवं गुरुं ज्ञात्वा करोमि द्विजसत्तम ।
अतन्द्रितः सदा विप्र शुश्रूषां वै करोम्यहम् २६
पञ्चैव गुरवो ब्रह्मन् पुरुषस्य बुभूषतः ।
पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च द्विजसत्तम २८
एतेषु यस्तु वर्तेत सम्यगेव द्विजोत्तम ।
भवेयुरग्नयस्तस्य परिचीर्णास्तु नित्यशः ।
गार्हस्थ्ये वर्तमानस्य एष धर्मः सनातनः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि द्विजव्याधसंवादे चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

२१४

एवामिति ॥ १ ॥ शयनासनसम्बाधं शयनादिसङ्कीर्णम् ६ ॥ वां युवयोः ॥ १५ ॥ नौ आवयोः ॥ १६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥ § धर्ममेव क. ख.

## २१५

मार्कण्डेय उवाच ।

गुरू निवेद्य विप्राय तौ मातापितरावुभौ ।
पुनरेव स धर्मात्मा व्याधो ब्राह्मणमब्रवीत् ॥ १

प्रवृत्तचक्षुर्जातोऽस्मि सम्पश्य तपसो बलम् ।
यदर्थमुक्तोऽसि तया गच्छ त्वं मिथिलामिति ॥२

पतिशुश्रूषपरया दान्तया सत्यशीलया ।
मिथिलायां वसंव्याधः स ते धर्मान् प्रवक्ष्यति ३

ब्राह्मण उवाच ।

पतिव्रतायाः सत्यायाः शीलाढ्याया यतव्रत ।
संस्मृत्य वाक्यं धर्मज्ञ गुणवानसि मे मतः ॥ ४

व्याध उवाच ।

यत् तदा त्वं द्विजश्रेष्ठ तयोक्तो मां प्रति प्रभो ।
दृष्टमेव तया सम्यगेकपत्न्या न संशयः ॥ ५

त्वदनुग्रहबुद्ध्या तु विप्रैतद्दर्शितं मया ।
वाक्यं च शृणु मे तात यत् ते वक्ष्ये हितं द्विज ६

त्वया विनिकृता माता पिता च द्विजसत्तम ।
अनिसृष्टोऽसि निष्क्रान्तो गृहात् ताभ्यामनिन्दित

वेदोच्चारणकार्यार्थमयुक्तं तत् त्वया कृतम् ।
तव शोकेन वृद्धौ तावन्धीभूतौ तपस्विनौ ॥ ८

तौ प्रसादयितुं गच्छ मा त्वां धर्मोऽत्यगादयम् ।
तपस्वी त्वं महात्मा च धर्मे च निरतः सदा ॥ ९

सर्वमेतदपार्थं ते क्षिप्रं तौ सम्प्रसादय ।
श्रद्दधस्व मम ब्रह्मन् नान्यथा कर्तुमर्हसि ।
गम्यतामद्य विप्रर्षे श्रेयस्ते कथयाम्यहम् ॥ १०

ब्राह्मण उवाच ।

यदेतदुक्तं भवता सर्वं सत्यमसंशयम् ।
प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते धर्माचारगुणान्वित ॥ ११

व्याध उवाच ।

दैवतप्रतिमो हि त्वं यस्त्वं धर्ममनुव्रतः ।
पुराणं शाश्वतं दिव्यं दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥१२

मातापित्रोः सकाशं हि गत्वा त्वं द्विजसत्तम ।
अतन्द्रितः कुरु क्षिप्रं मातापित्रोर्हि पूजनम् ।
अतः परमहं धर्मं नान्यं पश्यामि कञ्चन ॥ १३

ब्राह्मण उवाच ।

इहाहमागतो दिष्ट्या दिष्ट्या मे सङ्गतं त्वया ।
ईदृशा दुर्लभा लोके नरा धर्मप्रदर्शकाः ॥ १४

एको नरसहस्रेषु धर्मविद्विद्यते न वा ।
प्रीतोऽस्मि तव सत्येन भद्रं ते पुरुषर्षभ ॥ १५

पतमानोऽद्य नरके भवताऽस्मि समुद्धृतः ।
भवितव्यमथैवं च यद्दृष्टोऽसि मयाऽनघ ॥ १६

राजा ययातिर्दौहित्रैः पतितस्तारितो यथा ।
सद्भिः पुरुषशार्दूल तथाऽहं भवता द्विजः ॥ १७

मातापितृभ्यां शुश्रूषां करिष्ये वचनात् तव ।
नाकृतात्मा वेदयति धर्माधर्मविनिश्चयम् ॥ १८

दुर्ज्ञेयः शाश्वतो धर्मः शूद्रयोनौ हि वर्तते ।
न त्वां शूद्रमहं मन्ये भवितव्यं हि कारणम् १९

येन कर्मविशेषेण प्राप्तेयं शूद्रता त्वया ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं तत्त्वेन हि महामते ।
कामया ब्रूहि मे सर्वं सत्येन प्रयतात्मना ॥ २०

व्याध उवाच ।

अनतिक्रमणीया वै ब्राह्मणा मे द्विजोत्तम ।
शृणु सर्वमिदं वृत्तं पूर्वदेहे ममानघ ॥ २१

अहं हि ब्राह्मणः पूर्वमासं द्विजवरात्मजः ।
वेदाध्यायी सुकुशलो वेदाङ्गानां च पारगः ॥२२

आत्मदोषकृतैर्ब्रह्मन्नवस्थामाप्तवानिमाम् ।
कश्चिद्राजा मम सखा धनुर्वेदपरायणः ॥ २३

संसर्गाद्धनुषि श्रेष्ठस्ततोऽहमभवं द्विज ।
एतस्मिन्नेव काले तु मृगयां निर्गतो नृपः ॥ २४

सहितो योधमुख्यैश्च मन्त्रिभिश्च सुसंवृतः ।
ततोऽभ्यहन् मृगांस्तत्र सुबहूनाश्रमं प्रति ॥ २५

अथ क्षिप्तः शरो घोरो मयाऽपि द्विजसत्तम ।
ताडितश्च ऋषिस्तेन शरेणानतपर्वणा ॥ २६

भूमौ निपतितो ब्रह्मन्नुवाच प्रतिनादयन् ।
नापराध्याम्यहं किञ्चित् केन पापमिदं कृतम् २७

मन्वानस्तं मृगं चाहं सम्प्राप्तः सहसा प्रभो ।
अपश्यन्तमृषिं विद्धं शरेणानतपर्वणा ॥ २८

अकार्यकरणाच्चापि भृशं मे व्यथितं मनः ।
तमुग्रतपसं विप्रं निष्टनन्तं महीतले ॥ २९

२१५

गुरू इति ॥ १ ॥ प्रवृत्तचक्षुर्दिव्यदृष्टिः । तपसः पित्रोः शुश्रूषात्मकस्य ॥ २ ॥ कामया इच्छया ॥ २० ॥ निष्टनन्तं शब्दं कुर्वन्तम् ॥ २९ ॥

अजानता कृतमिदं मयेत्यहमथाब्रुवम् ।
क्षन्तुमर्हसि मे सर्वमिति चोक्तो मया मुनिः॥ ३०
ततः प्रत्यब्रवीद्वाक्यमृषिर्मां क्रोधमूर्च्छितः ।
व्याधस्त्वं भविता क्रूर शूद्रयोनाविति द्विज ॥३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

## २१६

व्याध उवाच ।
एवं शप्तोऽहमृषिणा तदा द्विजवरोत्तम ।
अभिप्रसादयमृषिं गिरा त्राहीति मां तदा ॥ १
अजानता मयाऽकार्यमिदमद्य कृतं मुने ।
क्षन्तुमर्हसि तत् सर्वं प्रसीद भगवन्निति ॥ २
ऋषिरुवाच ।
नान्यथा भविता शाप एवमेतदसंशयम् ।
आनृशंस्यात् त्वहं किञ्चित् कर्ताऽनुग्रहमद्य ते ॥३
शूद्रयोन्यां वर्तमानो धर्मज्ञो हि भविष्यसि ।
मातापित्रोश्च शुश्रूषां करिष्यसि न संशयः ॥ ४
तया शुश्रूषया सिद्धिं महत्त्वं समवाप्स्यसि ।
जातिस्मरश्च भविता स्वर्गं चैव गमिष्यसि ॥ ५
शापक्षये तु निर्वृत्ते भविताऽसि पुनर्द्विजः ।
एवं शप्तः पुरा तेन ऋषिणाऽस्म्युग्रतेजसा ॥ ६
प्रसादश्च कृतस्तेन ममैव द्विपदां वर ।
शरं चोद्धृतवानस्मि तस्य वै द्विजसत्तम ॥ ७
आश्रमं च मया नीतो न च प्राणैर्व्ययुज्यत ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यथा मम पुराऽभवत् ॥ ८
अभितश्चापि गन्तव्यं मया स्वर्गं द्विजोत्तम ॥ ९
ब्राह्मण उवाच ।
एवमेतानि पुरुष दुःखानि च सुखानि च ।
आप्नुवन्ति महाबुद्धे नोत्कण्ठां कर्तुमर्हसि ॥ १०
दुष्करं हि कृतं कर्म जानता जातिमात्मनः ।
लोकवृत्तान्ततत्त्वज्ञ नित्यं धर्मपरायण ॥ ११
कर्मदोषश्च वै विद्वन्नात्मजातिकृतेन वै ।
कञ्चित् कालमुष्यतां† वै ततोऽसि भविता द्विजः
साम्प्रतं च मतो मेऽसि ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्मसु ॥ १३
दाम्भिको दुष्कृतः प्राज्ञः शूद्रेण सदृशो भवेत् ।
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः ॥ १४
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः ।
कर्मदोषेण विषमां गतिमाप्नोति दारुणाम् ॥ १५
क्षीणदोषमहं मन्ये चाभितस्त्वां नरोत्तम ।
कर्तुमर्हसि नोत्कण्ठां त्वद्विधा ह्यविषादिनः ।
लोकवृत्तानुवृत्तज्ञा नित्यं धर्मपरायणाः ॥ १६
व्याध उवाच ।
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्॥ १७
अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च ।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते चाल्पबुद्धयः ॥ १८
गुणैर्भूतानि युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथैव च ।
सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते ॥ १९
अनिष्टं चान्वितं पश्यंस्तथा क्षिप्रं विरज्यते ।
ततश्च प्रतिकुर्वन्ति यदि पश्यन्त्युपक्रमान् ॥ २०
शोचतो न भवेत् किञ्चित् केवलं परितप्यते ।
परित्यजन्ति ये दुःखं सुखं वाऽप्युभयं नराः॥ २१
त एव सुखमेधन्ते ज्ञानतृप्ता मनीषिणः ।
असन्तोषपरा मूढाः सन्तोषं यान्ति पण्डिताः२२
असन्तोषस्य नास्त्यन्तस्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ।
न शोचन्ति गताध्वानः पश्यन्तः परमां गतिम्२३
न विषादे मनः कार्यं विषादो विषमुत्तमम् ।
मारयत्यकृतप्रज्ञं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥ २४
यं विषादोऽभिभवति विक्रमे समुपस्थिते ।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न विद्यते ॥ २५

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

२१६

एवमिति । अभिप्रसादयमभवाव आर्षः ॥ १ ॥ गुणैः गुणकार्यैः सुखदुःखमोहैः ॥ १९ ॥ गताध्वानः प्राप्तज्ञानमार्गाः ॥ २३ ॥

† कष्यताम् ख.

अवश्यं क्रियमाणस्य कर्मणो दृश्यते फलम् ।
न हि निर्वेदमागम्य किञ्चित् प्राप्नोति शोभनम् २६
अथाप्युपायं पश्येत दुःखस्य परिमोक्षणे ।
अशोचन्नारभेतैवं मुक्तश्चाव्यसनी भवेत् ॥ २७
भूतेष्वभावं सञ्चिन्त्य ये तु बुद्धेः परं गताः ।
न शोचन्ति कृतप्रज्ञाः पश्यन्तः परमां गतिम् २८
न शोचामि च वै विद्वन् कालाकाङ्क्षी †स्थितो ह्यहम्
एतैर्निदर्शनैर्ब्रह्मन्नावसीदामि सत्तम ॥ २९

ब्राह्मण उवाच ।

कृतप्रज्ञोऽसि मेधावी बुद्धिर्हि विपुला तव ।
नाहं भवन्तं शोचामि ज्ञानतृप्तोऽसि धर्मवित् ३०
आपृच्छे त्वां स्वस्ति तेऽस्तु धर्मस्त्वां परिरक्षतु ।
अप्रमादस्तु कर्तव्यो धर्मे धर्मभृतां वर ॥ ३१

मार्कण्डेय उवाच ।

बाढमित्येव तं व्याधः कृताञ्जलिरुवाच ह ।
प्रदक्षिणमथो कृत्वा प्रस्थितो द्विजसत्तमः ॥ ३२
स तु गत्वा द्विजः सर्वां शुश्रूषां कृतवांस्तदा ।
मातापितृभ्यां वृद्धाभ्यां यथान्यायं सुसंशितः ३३
एतत् ते सर्वमाख्यातं निखिलेन युधिष्ठिर ।
पृष्टवानसि यं तात धर्मं धर्मभृतां वर ॥ ३४
पतिव्रताया माहात्म्यं ब्राह्मणस्य च सत्तम ।
मातापित्रोश्च शुश्रूषा धर्मव्याधेन कीर्तिता ॥ ३५

युधिष्ठिर उवाच ।

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् धर्माख्यानमनुत्तमम् ।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठ कथितं मुनिसत्तम ॥ ३६
सुखश्रव्यतया विद्वन् मुहूर्त इव मे गतः ।
न हि तृप्तोऽस्मि भगवन् शृण्वानो धर्ममुत्तमम्॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि ब्राह्मणव्याधसंवादे षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

## २१७

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वेमां धर्मसंयुक्तां धर्मराजः कथां शुभाम् ।
पुनः पप्रच्छ तमृषिं मार्कण्डेयमिदं तदा ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।

कथमग्निर्वनं यातः कथं चाप्यङ्गिराः पुरा ।
नष्टेऽग्नौ हव्यमवहदग्निर्भूत्वा महाद्युतिः ॥ २
अग्निर्यदा त्वेक एव बहुत्वं चास्य कर्मसु ।
दृश्यते भगवन् सर्वमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ३
कुमारश्च यथोत्पन्नो यथा चाग्नेः सुतोऽभवत् ।
यथा रुद्राच्च सम्भूतो गङ्गायां कृत्तिकासु च ॥ ४

---

बुद्धेस्तत्त्वज्ञानात् परं ब्रह्म गताः प्राप्ताः ॥ २८ ॥ प्रदक्षिणं कृत्वा उपदेष्टा गुरुरिति बुद्ध्या ॥ ३२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

२१७

धर्मव्याधोक्तधर्मेषु 'माता पिताग्निरात्मा च गुरुश्च द्विजसत्तम' इति मुमुक्षूणां पञ्च सेव्यत्वेन प्रोक्तास्तत्र पतिव्रतोपाख्याने धर्मव्याधनिदर्शनेन मातापित्रोः पतिव्रतानिदर्शनेन गुरोश्च शुश्रूषायाः फलं दर्शितम् । तत्रैव मोक्षधर्मप्रस्तावे आत्मसेवनं फलं चोक्तम् । परिशिष्टस्याग्निसेवनस्य मोक्षहेतुत्वप्रकारं वक्तुमाङ्गिरसमारभते **श्रुत्वेमां धर्मसंयुक्तामित्यादिना** ॥ १ ॥ कथमिति । ननु त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिरिति वेदे वह्नेराङ्गिरस्त्वं श्रूयते । अत्र तु अङ्गिरसो वह्नित्वं कथं पृच्छति । सत्यम् । उभयोरभेदेन बीजाङ्कुरवत् परस्परजनकत्वेन वाऽदोषः । तथा च 'अग्निर्वै ब्राह्मणः' इति 'अहं त्वदस्मि मदसि त्वमेतन्ममासि योनिस्तव योनिरस्मि' इति च श्रुती भवतः। वनं सलिलं यातः प्रविष्टः। 'प्रविवेशिथापः' इति मन्त्रवर्णात् । 'जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः ॥ २ ॥ अग्निरिति । एकस्याप्यग्नेः कर्मसु दृश्यमानमनेकत्वम् । कथमुपपद्यते । न हि आग्नेयोऽष्टाकपालः दर्शपूर्णमासचातुर्मास्यादिषु एक एव इति वक्तुं शक्यम् । अन्यावयवत्वायोगात् । अन्यस्य च गुणस्य द्रव्यस्य वा यागभेदकस्याभावाद्देवताभेद एव यागभेदहेतुरिति अवश्यं वाच्यम् । स चाग्निरेव कथं सम्भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ अथ एकस्य सन्ततौ अनेकेऽग्निनामानः सन्तीति तर्हि आग्नेयस्य स्कन्दस्य कथं रुद्रादिपुत्रत्वमपि स्मर्यत इत्याह कुमारश्चेति ॥ ४ ॥ † स्थितोऽस्म्यहम्-ख.

एतदिच्छाम्यहं त्वत्तः श्रोतुं भार्गवसत्तम ।
कौतूहलसमाविष्टो याथातथ्यं महामुने ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा क्रुद्धो हुतवहस्तपस्तप्तुं वनं गतः ॥ ६
यथा च भगवानग्निः स्वयमेवाङ्गिराऽभवत् ।
सन्तापयंश्च प्रभया नाशयंस्तिमिराणि च ॥ ७
पुराऽङ्गिरा महाबाहो चचार तप उत्तमम् ।
आश्रमस्थो महाभागो हव्यवाहं विशेषयन् ।
तथा स भूत्वा तु तदा जगत् सर्वं व्यकाशयत् ८
तपश्चरंस्तु हुतभुक् सन्तप्तस्तस्य तेजसा ।
भृशं ग्लानश्च तेजस्वी न च किञ्चित् प्रजज्ञिवान्
अथ सञ्चिन्तयामास भगवान् हव्यवाहनः ।
अन्योऽग्निरिह लोकानां ब्रह्मणा सम्प्रकल्पितः ॥
अग्नित्वं विप्रनष्टं हि तप्यमानस्य मे तपः ।
कथमग्निः पुनरहं भवेयमिति चिन्त्य सः ॥ ११
अपश्यदग्निवल्लोकांस्तापयन्तं महामुनिम् ।
सोपासर्पच्छनैर्भीतस्तमुवाच तदाऽङ्गिराः ॥ १२
शीघ्रमेव भवस्वाग्निस्त्वं पुनर्लोकभावनः ।
विज्ञातश्चासि लोकेषु त्रिषु संस्थानचारिषु ॥ १३
त्वमग्निः प्रथमं सृष्टो ब्रह्मणा तिमिरापहः ।
स्वस्थानं प्रतिपद्यस्व शीघ्रमेव तमोनुद ॥ १४

अग्निरुवाच ।

नष्टकीर्तिरहं लोके भवान् जातो हुताशनः ।
भवन्तमेव ज्ञास्यन्ति पावकं न तु मां जनाः ॥
निक्षिपाम्यहमग्नित्वं त्वमग्निः प्रथमो भव ।
भविष्यामि द्वितीयोऽहं प्राजापत्यक एव च १६

अङ्गिरा उवाच ।

कुरु पुण्यं प्रजास्वर्ग्यं भवाग्निस्तिमिरापहः ।
मां च देव कुरुष्वाग्ने प्रथमं पुत्रमञ्जसा ॥ १७

मार्कण्डेय उवाच ।

तच्छ्रुत्वाऽङ्गिरसो वाक्यं जातवेदास्तदाऽकरोत्
राजन् बृहस्पतिर्नाम तस्याप्यङ्गिरसः सुतः ॥१८
ज्ञात्वा प्रथमजं तं तु वह्नेराङ्गिरसं सुतम् ।
उपेत्य देवाः पप्रच्छुः कारणं तत्र भारत ॥ १९
स तु पृष्टस्तदा देवैस्ततः कारणमब्रवीत् ।
*प्रत्यगृह्णंस्तु देवाश्च तद्वचोऽङ्गिरसस्तदा ॥ २०
तत्र नानाविधानग्नीन् प्रवक्ष्यामि महाप्रभान् ।
कर्मभिर्बहुभिः ख्यातान्नानार्थान् ब्राह्मणेष्विह ॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

अङ्गिराऽभवत् सन्धिरडभावो वा आर्षः ॥ ७ ॥ तथेति । अग्नेरप्यधिको भूत्वा सूर्यवत् जगत् प्रकाशितवान् ॥ ८ ॥ तपश्चरन्निति । 'महत्तदुल्वं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः' इति श्रुतिप्रसिद्धेन केनाचिन्निमित्तेन जले प्रविश्य तपश्चरन्नग्निराङ्गिरसेन तेजसा सन्तप्तोऽभूदित्यर्थः । उल्वमुल्बणम् । स्थविरं प्राचीनम् । आविश्य तिष्ठतीत्याविष्टं भयं सञ्जातमस्य स आविष्टितः ॥ ९ ॥ संस्थानचारिषु स्थावरजङ्गमेषु । सम्यक् स्थानं गतिनिवृत्तिर्येषु चरणशीलेषु चेति योगात् । त्रिषु अन्तर्बहिर्दिवि च उत्तमाधममध्यमेषु वा ॥ १३ ॥ निक्षिपामीति । अत्राग्निशब्देन दिग्देशकालकर्त्राद्यात्मा सूत्रसंज्ञो हिरण्यगर्भ उच्यते । तस्य अग्नित्वत्यागः कारणात्मनाऽवस्थानम् । प्रथमः प्रथमजः सूत्रात्मेत्यर्थः । हे प्राजापत्य प्रजापतिपुत्र हे आङ्गिरः । अहं द्वितीयः कः कसंज्ञो विराडात्मा भविष्यामि ॥ १६ ॥ कुर्विति । पुण्यं हविर्वहनं प्रजानां स्वर्ग्यं स्वर्गाय हितम् । प्रथमं पुत्रं बृहस्पतिसंज्ञम् । अयं भावः-ईशसूत्रविराडुपासनाभिः सिद्धाः क्रमेण ब्रह्मप्रजापतिबृहस्पतिसंज्ञाः पूर्वपूर्वस्य उत्तरउत्तरः शतांशसंमितैश्वर्यः । तथाच श्रुतिरारोहक्रमेणाह-'ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः । स एको ब्रह्मण आनन्दः' इति । तत्रापि बीजाङ्कुरन्यायेनाग्नेराङ्गिराः । अङ्गिरसो बृहस्पत्याख्योऽग्निरिति बोध्यम् । 'तथिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः' 'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं सूत्रात्मनः सर्वदेवतारूपत्वमाङ्गिरसतात्पर्यम् । तदिदं ज्ञात्वा यजमानस्याग्निरपि मोक्षद्वारं भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वेति । अकरोत् अग्निश्चकार । जातवेदाः स्वयं कारणं गत्वा स्वपुत्रमाङ्गिरसमकरोत् । तस्यापि पुत्रः स्वयं बृहस्पतिर्नामाऽभवदिति ॥ १८ ॥ तत्र बृहस्पतेः कारणत्वं कारणज्ञानादेव युज्यते 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति इति श्रुतेरतस्तत्परीक्षार्थं देवा बृहस्पतिं प्रति कारणं ब्रह्म पप्रच्छुः ॥ १९ ॥ तस्मिंश्च तेनोक्ते सति प्रत्यगृह्णन् अङ्गिरसो वचः अयं भवतां गुरुरिति अङ्गीकृतवन्तः ॥ २० ॥ नानार्थान् पृथक् प्रयोजनान् । ब्राह्मणेषु कर्मविधिवाक्येषु ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ * प्रत्यगृह्णन्त-ख.

## २१८

मार्कण्डेय उवाच ।

ब्रह्मणो यस्तृतीयस्तु पुत्रः कुरुकुलोद्वह ।
तस्याभवत् सुभा भार्या प्रजास्तस्यां च मे शृणु
बृहत्कीर्तिर्बृहज्ज्योतिर्बृहद्ब्रह्मा बृहन्मनाः ।
बृहन्मन्त्रो बृहद्भासस्तथा राजन् बृहस्पतिः ॥ २
प्रजासु तासु सर्वासु रूपेणाप्रतिमाऽभवत् ।
देवी भानुमती नाम प्रथमाऽङ्गिरसः सुता ॥ ३
भूतानामेव सर्वेषां यस्यां रागस्तदाऽभवत् ।
रागाद्रागेति यामाहुर्द्वितीयाऽङ्गिरसः सुता ॥ ४
यां कपर्दिसुतामाहुर्दृश्यादृश्येति देहिनः ।
तनुत्वात् सा सिनीवाली तृतीयाऽङ्गिरसः सुता
पश्यत्यर्चिष्मती भाभिर्हविर्भिश्च हविष्मती ।
षष्ठीमाङ्गिरसः कन्यां पुण्यामाहुर्महिष्मतीम् ॥ ६
महामखेष्वाङ्गिरसी दीप्तिमत्सु महामते ।
महामतीति विख्याता सप्तमी कथ्यते सुता ॥ ७
यां तु दृष्ट्वा भगवतीं जनः कुहुकुहायते ।
एकाऽनंशेति तामाहुः कुहूमाङ्गिरसः सुताम् ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसोपाख्याने अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥

## २१९

मार्कण्डेय उवाच ।

बृहस्पतेश्चान्द्रमसी भार्याऽऽसीद्या यशस्विनी । अग्नीन् साऽजनयत् पुण्यान् षडेकां चापि पुत्रिकाम्

२१८

कालाभिमानिन्यो देवता अपि अङ्गिरःसंज्ञात् सूत्रात्मन एव सकाशाज्जाता इति वक्तुमध्यायमारभते **ब्रह्मण इति** । ब्रह्मणः कारणात् सूत्रं ततस्तदुपास्तिसिद्धोऽङ्गिरा इति तस्य तृतीयत्वम् । सुभा कालाभिमानिनी देवता । सुष्ठु संवत्सराद्यात्मनाऽहोरात्राद्यात्मना वा भातीति सुभा । शुभा इति पाठेऽपि सैव ग्राह्या ॥ १ ॥ बृहत्कीर्तित्यादीनि बृहस्पतेरेव विशेषणानि । कीर्तिर्यशः । ज्योतिः शारीरं तेजः । ब्रह्म वेदाध्ययनं मनः सङ्कल्पादिरूपम् । मन्त्रो विचारः । भाः प्रतिभा विचार्यतत्त्वस्फूर्तिः । एतानि बृहन्ति यस्य स तथा । तथा शब्दः पादपूरणार्थः ॥२॥ तासु वक्ष्यमाणत्वेन बुद्धिस्थासु । भानुमती सूर्ययुक्ता दिवसाभिमानिनीत्यर्थः ॥ ३ ॥ रात्रिमाह भूतानामिति । सुषुप्तिकालत्वेन श्रमनाशकत्वात्तस्यां रागोऽभवत् । रागात् रागहेतुत्वात् सन्ध्याद्वये रागोपेतत्वाद्वा ॥ ४ ॥ कपर्दिनो रुद्रस्य सुतामिव सुतां चन्द्रकलां ललाटे धृतत्वात् दृश्यादृश्यरूपाम् । तत्र हेतुः तनुत्वादिति । तेन सूक्ष्मचन्द्रयुक्तत्वं लक्ष्यते । चतुर्दशीयुक्ताऽमावास्या सिनीवाली । 'या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ' इति श्रुतेः ॥ ५ ॥ अर्चिष्मती पूर्णचन्द्रोपेता शुद्धपौर्णमासी । यस्यां भाभिर्जनो रात्रावपि पश्यति रूपादिकमितिशेषः । सा चतुर्थी । यस्यां हविर्भिर्देवता इज्यन्ते । सा हविष्मती प्रतिपद्युक्ता पौर्णमासी राका नाम पञ्चमी । पुण्यां व्रतार्हां महिष्मतीं नाम चतुर्दशीयुक्तां पूर्वां पौर्णमासीमनुमतीं नाम 'या पौर्णमासी साऽनुमतिर्योत्तरा सा राका ' इति श्रुतेः ॥ ६ ॥ शुद्धाममावास्यामाह महामखेष्विति । सोमयागादिषु दीप्तिमती । अमावास्यायां हि दीक्षां कर्तुं वर्धमानश्चन्द्रोऽग्रे दृश्यते । पौर्णमास्यां तु क्षीयमाणः । अतो दीप्तिमत्सु दिनेषु एषा महामतीत्युच्यते । यतोऽत्र महत् महस्वान् वा अन्तर्हितो विद्यतेऽस्यामिति योगात् । पूर्वपदस्याकारोन्तादेश आर्षः ॥ ७ ॥ कुहुकुहायते विस्मितो भवति । एका कला अनंशा अल्पांशवती । अलवणा यवागूरितिवदल्पार्थे नञ् । ' योत्तरा सा कुहूः 'इति श्रुतेः । प्रतिपद्युक्ता अमावास्या कुहूरिति प्रसिद्धम् ॥ ८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

२१९

तत्र क्रत्वङ्गभूतः कालः प्रागुक्तः । अथ क्रत्वङ्गभूता देवताः प्रपञ्चयितुं विराडुपास्तिफलावस्थस्य बृहस्पतेर्विभूतिरूपां सन्ततिं वक्तुमुपक्रमते **बृहस्पतेरिति** । चान्द्रमसी चन्द्रमसा आक्रान्ता तारा नाम । षडग्नीन् शंयुप्रभृतीन् वक्ष्यमाणान् एकां पुत्रिकां स्वाहाख्याम् ॥ १ ॥

× यां तु दृष्ट्वा भगवतीं जनः कुहुकुहायते । एकानेकेति यामाहुश्चतुर्थ्यङ्गिरसः सुता॥ पञ्चम्यर्चिष्मती नाम्ना हविर्भिश्च हविष्मती । षष्ठीमाङ्गिरसः कन्या–इति खपाठः

आहुतिष्वेव यस्याग्नेर्हविषाज्यं विधीयते ।
सोऽग्निर्बृहस्पतेः पुत्रः शंयुर्नाम महाव्रतः ॥ २
चातुर्मास्येषु यस्येष्ट्यामश्वमेधेऽग्रजः पशुः ।
दीप्तो ज्वालैरनेकाभैरग्निरेकोऽथ वीर्यवान् ॥ ३
शंयोरप्रतिमा भार्या सत्या सत्याऽथ धर्मजा ।
अग्निस्तस्य सुतो दीप्तस्तिस्रः कन्याश्च सुव्रताः ४
प्रथमेनाज्यभागेन पूज्यते योऽग्निरध्वरे ।
अग्निस्तस्य भरद्वाजः प्रथमः पुत्र उच्यते ॥ ५
पौर्णमासेषु सर्वेषु हविषाज्यं स्रुगोद्यतम् ।
भरतो नामतः सोऽग्निर्द्वितीयः शंयुतः सुतः ॥ ६
तिस्रः कन्या भवन्त्यन्या यासां स भरतः पतिः ।
भरतस्तु* सुतस्तस्य भरत्येका च पुत्रिका ॥ ७
भरतो भरतस्याग्नेः पावकस्तु प्रजापतेः ।
महानत्यर्थमहितस्तथा भरतसत्तम ॥ ८
भरद्वाजस्य भार्या तु वीरा वीरस्य पिण्डदा ।
प्राहुराज्येन तस्येज्यां सोमस्येव द्विजाः शनैः ॥ ९
हविषा यो द्वितीयेन सोमेन सह युज्यते ।
रथप्रभू § रथध्वानकुम्भरेताः स उच्यते ॥ १०
शरय्वां जनयत् सिद्धिं भानुं भाभिः समावृणोत् ।
आग्नेयमानयन्नित्यमाह्वाने ह्येष सूयते ॥ ११
यस्तु न च्यवते नित्यं यशसा वर्चसा श्रिया ।
अग्निर्निश्च्यवनो नाम पृथिवीं स्तौति केवलम् १२
विपाप्मा कलुषैर्मुक्तो विशुद्धश्चार्चिषा ज्वलन् ।
विपापोऽग्निः सुतस्तस्य सत्यः समयधर्मकृत् ॥ १३
आक्रोशतां हि भूतानां यः करोति हि निष्कृतिम् ।
अग्निः स निष्कृतिर्नाम शोभयत्यभिसेवितं ॥ १४
अनुकूजन्ति येनेह वेदनार्ताः स्वयं जनाः ।
तस्य पुत्रः स्वनो नाम पावकः स रुजस्करः ॥ १५

आहुतिषु प्रधानाहुतिषु दर्शे पौर्णमासे च यस्य हविः । आद्यं हविषेति तृतीया प्रथमार्थे 'प्रथमं हविर्विधीयते यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति'इत्यादिश्रुत्या चोदने स शंयुर्नाम॥२॥ चातुर्मास्येषु चतुर्षु मासेषु कर्तव्येषु वैश्वदेववरुणप्रघाससाकमेधशुनासीरीयाख्यपर्वचतुष्टयेषु । 'आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुम्'इति प्रतिपर्वतुल्यवदभिराम्नायते । तथाऽश्वमेधे च यस्य इष्ट्यामिष्टिसमाप्ते अग्रजः प्रथमः पशुर्भवति 'तत्र या पशाविष्टिरुभयतोऽन्यतरो वाग्नेयी वाग्नावैष्णवी च'इति आश्वलायनायुक्ता तथा च दर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपश्वश्वमेधाः यत्पूर्वकाः सोऽग्निर्बार्हस्पत्यः शंयुर्नामेत्यर्थः। शंयुसन्ततिमाह शंयोरिति । अप्रतिमा अतिसुन्दरी धर्मजा धर्मकन्या सत्या नाम दीप्तो दीप्तिमान्॥४॥ तस्य नामाह प्रथमेनेति । अध्वरे दर्शादौ । प्रथमाऽऽज्यभागदेवता योऽग्निः स भरद्वाज इत्यर्थः। तस्य शंयोः ॥ ५ ॥ पौर्णमासेष्विति स्रुवोद्यतं हविः प्रथमाघारस्तस्य देवता भरतो नाम शंयोः पुत्रः । पूर्णमासपदं सर्वतद्विकारपरं तेन दर्शोऽपि गृह्यते। 'पौर्णमासेनेष्टिपशुसोमा उपदिष्टाः' इत्याश्वलायनवचनात् । यद्यपि स्रौवाघारः प्राजापत्यस्तथापि स भरतसंज्ञ एव प्रजापतिरिति ज्ञेयम् ॥ ६ ॥ भवन्ति शंयुत इत्यनुकृष्यते । पतिर्ज्येष्ठः । अत्र कन्यानां नामधेयानि सन्ततिश्चानुक्तापि अत्रैवाङ्गप्रत्यङ्गदेवतात्वेन ता बोध्याः । विस्तरभयात् तु मुनिना न प्रदर्शिताः। तस्य भरतस्योर्जसंज्ञस्य पुत्रो भरतः । 'ऊर्जः पुत्रं भरतं सुप्रदानुम् इति मन्त्रवर्णात् ॥ ७ ॥ भरतः भरणं कुर्वतः तेन भरतशब्दस्य निर्वचनं दर्शितम् । भरतस्य प्रजापतेः पावकः सुतः । स अत्यर्थं महितत्वात् महान् । महितत्वं महाफलप्रदातृत्वं यत्र कर्मणि आग्रयणादौ प्रथमोऽग्निर्नास्ति तत्रापि अयं महत्त्वात् कर्तव्य एवेत्यर्थः । पावक इत्यग्निपर्यायमात्रं न गुणः । अग्निसंज्ञोऽग्निरित्यर्थः । तथा च' येन यज्ञेनेत्सेत् कुर्यादेव तत्राग्नेयमष्टाकपालम्'इति आपस्तम्बोक्तिः सङ्गच्छते। ईत्सेत् वर्धितुमिच्छेत् ॥ ८ ॥ शंयोः कनिष्ठपुत्रसन्ततिमुक्त्वा ज्येष्ठसन्ततिमाह भरद्वाजस्येति । वीरा नामतः वीरस्य वह्नेः पिण्डदा शरीरकर्त्री मातेत्यर्थः । भरद्वाजात् वीरायां वीरो जात इत्यर्थः । तस्य आज्येन इज्यां प्राहुः । शनैः उपांशु सोमस्येवेति तत्साहित्यमुच्यते । 'तथाग्नीषोमावुपांशुपष्टव्यावजामित्वाय'इति श्रुतयोरग्नीषोमयोर्मध्यस्थोऽग्निः स इत्यर्थः ॥९॥ एतदेवाह हविषेति । द्वितीयेन आग्नेयान्तरेण अस्यैव नामान्तराणि रथेत्यादीनि ॥ १० ॥ स रथप्रभ्वादिनामा शरय्वां भार्यायां सिद्धिं नाम पुत्रं जनयत् । यः भानुं सूर्यं भाभिर्दीप्तिभिः आवृणोत् सूर्यं आवृते आग्नेयं अग्निदेवत्यं यागमानयन् । 'अग्निमग्न आवह' इत्यत्र मन्त्रेऽभियुक्तसम्बुध्या एव सूयते सुष्ठु ऊयते कीर्त्यते। 'ऊङ् शब्दे' इति धातुः ॥ ११ ॥ बृहस्पतेर्द्वितीयः पुत्रो निश्च्यवनः । पृथिवीं स्तौतीति पृथिव्यासाहचर्यमुच्यते । तेन वागभिमानिदेवतारूपः स इत्यर्थः । 'तस्य वाचा सृष्टा पृथिवी चाग्निश्च'इति श्रुतेः ॥ १२ ॥ निश्च्यवनपुत्रः सत्यः समयधर्मो वाच्यवाचकसम्बन्धस्तत्कर्ता ॥ १३ ॥ सत्यस्यैव नामान्तरं निष्कृतिः । अभिसेविते गृहारामादौ । शोभयति शोभां करोति ॥ १४ ॥ रुजस्करः पीडाकरः । स्वनो नाम सत्यपुत्रः ॥१५॥

* भारतस्तु–ख. § रथध्वानः–ख.

यस्तु विश्वस्य जगतो बुद्धिमाक्रम्य तिष्ठति ।
तं प्राहुरध्यात्मविदो विश्वजिन्नाम पावकम् ॥ १६
अन्तराग्निः स्मृतो यस्तु भुक्तं पचति देहिनाम् ।
स यज्ञे विश्वभुङ्नाम सर्वलोकेषु भारत ॥ १७
ब्रह्मचारी यतात्मा च सततं विपुलव्रतः ।
ब्राह्मणाः पूजयन्त्येनं पाकयज्ञेषु पावकम् ॥ १८
पवित्रा गोमती नाम नदी यस्याभवत् प्रिया ।
तस्मिन् कर्माणि सर्वाणि क्रियन्ते धर्मकर्तृभिः ॥
वडवाग्निः पिबत्यम्भो योऽसौ परमदारुणः ।
ऊर्ध्वभागूर्ध्वभाङ्नाम कविः प्राणाश्रितस्तु यः २०
उदग्द्वारं हविर्यस्य गृहे नित्यं प्रदीयते ।
ततः स्विष्टं भवेदाज्यं स्विष्टकृत् परमः स्मृतः २१
यः प्रशान्तेषु भूतेषु मन्युर्भवति पावकः ।
क्रुद्धस्य तु रसो जज्ञे मन्येतां चाथ पुत्रिकाम् २२
स्वाहेति दारुणा क्रूरा सर्वभूतेषु तिष्ठति ।
त्रिदिवे यस्य सदृशो नास्ति रूपेण कश्चन ।
अतुलत्वात् कृतो देवैर्नाम्ना कामस्तु पावकः ॥२३
संहर्षाद्धारयन् क्रोधं धन्वी स्रग्वी रथे स्थितः ।
समरे नाशयेच्छत्रूनमोघो नाम पावकः ॥ २४
उक्थो नाम महाभाग त्रिभिरुक्थैरभिष्टुतः ।
महावाचं त्वजनयत् समाश्वासं हि यं विदुः ॥२५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसोपाख्याने एकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

## २२०

मार्कण्डेय उवाच ।
काश्यपो ह्यथ वासिष्ठः प्राणश्च प्राणपुत्रकः ।
अग्निराङ्गिरसश्चैव च्यवनस्त्रिषु वर्चकः ॥ १
अचरत् स तपस्तीव्रं पुत्रार्थं बहुवार्षिकम् ।
पुत्रं लभेयं धर्मिष्ठं यशसा ब्रह्मणा समम् ॥ २

एवं द्वयोर्बार्हस्पत्ययोः कर्म कर्मेन्द्रियव्यापित्वमुक्तम् । तृतीयस्य बुद्धिव्यापकत्वमाह यस्त्विति ॥ १६ ॥ चतुर्थमाह अन्तरेति ॥ १७ ॥ एनं विश्वभुजं पाकयज्ञेषु स्मार्तकर्मसु ॥ १८ ॥ कर्माणि गृह्याणि ॥ १९ ॥ पञ्चमं बार्हस्पत्यमाह वडवाग्निरिति । स एवाध्यात्ममूर्ध्वभागूर्ध्वगतिरुदानसंज्ञः । अत एवोर्ध्वभाङ्नाम कविर्ब्राह्मणः प्राणाश्रितः प्राणवाय्वभिमानी ॥ २० ॥ षष्ठं बार्हस्पत्यमाह उदग्द्वारमिति 'उत्तरार्धात् सौविष्टकृतम्' इति श्रुतेः । उदगागमनं गृहे श्रौतसम्बद्धे कर्मणि । ततस्तेन । स्विष्टं सुष्ठु इष्टं भवति । आज्य आज्यादि द्रव्यं च । तत्रोत्तरार्धयोगात् पृथग्ग्रहणं तत्रापि स्विष्टकृत्प्रापणार्थम् ॥ २१ ॥ सप्तमीं कन्यामाह य इति । पावको बृहस्पतिः मन्युः क्रोधरूपी भवति तदा योऽस्य रसस्तेजःप्रभवः प्रस्वेदः । जज्ञे जातः । तामेव तज्जामेव पुत्रिकां मन्ये मन्यन्तीं चाथ पुत्रिकेति पाठे तु स रस एव पुत्रिका । मन्यन्ती देवतोद्देशेन त्यक्तं हविरनुजानती ॥ २२ ॥ कासावित्यत आह स्वाहेत्यर्धेन । अस्यास्त्रिगुणात्मकत्वात्तादृशीं तत्सन्तानमाह त्रिदिवे इति । एतेन राजस्याः स्वाहायाः कामरूपा सन्ततिरुक्ता ॥ २३ ॥ तामस्याः सन्ततिं क्रोधाभिचारात्मिकामाह संहर्षादिति । जेष्याम्येवेत्युत्साहः संहर्षः ॥ २४ ॥ सात्त्विक्याः स्वाहायाः सन्ततिमाह उक्थ इति । उत् ऊर्ध्वं मोक्षपदं नयत्युक्थः । त्रिभिरुक्थैः उत्तिष्ठत्यस्मात् कर्मफलमित्युक्थं तत्र शरीरादुत्थितं कर्मेति शरीरमुक्थम् । शरीरोत्थापकतया प्राण उक्थम् । प्राणोत्थापकतया परमात्माप्युक्थम् । स जन्योऽग्निः त्रिभिरप्युक्थैरभिष्टुतस्तदात्मना स्थितः । महावाचं महतीं वाचं परात्यां तुर्यब्रह्मकलामजनयत् आविर्भावितवान् । पूर्वेषामभ्युपासकानां यं समाश्वासं समाश्वसिति विश्राम्यं प्राप्नोत्यनेनेति तं मोक्षे हेतुं विदुर्वेदाचार्या इति शेषः ॥ २५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

## २२०

काश्यप इति त्रयाणां सम्बन्धः । अत्र पाठक्रमादर्थक्रमस्य बलीयस्त्वात् आद्ययोः श्लोकयोर्व्यत्यासेनार्थो ग्राह्यः । अचरदिति । सं पूर्वाध्यायान्तोक्त उक्थो नाम । काश्यपः वासिष्ठ प्राणपुत्र इति प्राणस्यैव विशेषणम् । अग्निराङ्गिरसश्च्यवन इत्येकः ॥ १ ॥

महाव्याहृतिभिर्ध्यातः पञ्चभिस्तैस्तदा त्वथ ।
जज्ञे तेजो महार्चिष्मान् पञ्चवर्णः प्रभावनः ॥ ३

सामिद्धोऽग्निः शिरस्तस्य बाहू सूर्यनिभौ तथा ।
त्वङ्नेत्रे च सुवर्णाभे कृष्णे जङ्घे च भारत ॥ ४

पञ्चवर्णः स तपसा कृतस्तैः पञ्चभिर्जनैः ।
पाञ्चजन्यः श्रुतो देवः पञ्चवंशकरस्तु सः ॥ ५

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महातपाः ।
जनयत् पावकं घोरं पितॄणां स प्रजाः सृजन् ६

बृहद्रथन्तरं †मूर्ध्नो वक्त्राद्वा तरसाहरौ ।
शिवं नाभ्यां बलादिन्द्रं वाय्वग्नी प्राणतोऽसृजत्

बाहुभ्यामनुदात्तौ च विश्वे भूतानि चैव ह ।
एतान् सृष्ट्वा ततः पञ्च पितॄणामसृजत् सुतान् ८

बृहद्रथस्य प्रणिधिः काश्यपस्य महत्तरः ।
भानुरङ्गिरसो धीरः पुत्रो वर्चस्य सौभरः ॥ ९

प्राणस्य चानुदात्तस्तु व्याख्याताः पञ्चविंशतिः ।
देवान् यज्ञमुषश्चान्यान् सृजन् पञ्चदशोत्तरान् १०
सुभीममतिभीमं च भीमं भीमबलाबलम् ।

एतान् यज्ञमुषः पञ्च देवानां ह्यसृजन् तपः ॥ ११
सुमित्रं मित्रवन्तं च मित्रज्ञं मित्रवर्धनम् ।
मित्रधर्माणमित्येतान् देवानभ्यसृजत् तपः ॥ १२

सुरप्रवीरं वीरं च सुरेशं च सुवर्चसम् ।
सुराणामपि हन्तारं पञ्चैतानसृजत् तपः ॥ १३

त्रिविधं संस्थिता ह्येते पञ्च पञ्च पृथक् पृथक् ।
मुष्णन्त्यत्र स्थिता ह्येते स्वर्गतो यज्ञयाजिनः १४

तेषामिष्टं हरन्त्येते निघ्नन्ति च महद्धविः ।
स्पर्धया हव्यवाहानां निघ्नन्त्येते हरन्ति च ॥ १५

बहिर्वेद्यां तदादानं कुशलैः सम्प्रवर्तितम् ।
तदेतेनोपसर्पन्ति यत्र चाग्निः स्थितो भवेत् ॥ १६

चितोऽग्निरुद्वहन्नाज्यं पक्षाभ्यां तन् प्रवर्तिते ।
मन्त्रैः प्रशमिता ह्येते नेष्टं मुष्णन्ति यज्ञियम् १७

बृहदुक्थतपस्यैव पुत्रो भूमिमुपाश्रितः ।
अग्निहोत्रे हूयमाने पृथिव्यां सद्भिरिज्यते ॥ १८

रथन्तरश्च तपसः पुत्रोऽग्निः परिपठ्यते ।
मित्रविन्दाय वै तस्मै हविरध्वर्यवो विदुः ॥ १९

महाव्याहृतिभिः भूरन्नमग्नये पृथिव्यै स्वाहेत्यादिभिः भूर्भुवःस्वर्महोऽग्निवायुसूर्यचन्द्रपृथिव्यन्तरिक्षद्युदिगुपलक्षितेन सर्वात्मकेन रूपेण तं ध्यातवन्त इत्यर्थः । 'तस्यैवंविदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः' । 'वीतरागविषयं वा चित्तम्' इति श्रुतिस्मृत्योर्विदुषोऽपि ध्येयत्वदर्शनात् । जज्ञे प्रदीप इव पुत्ररूपेणाविर्भूतः । अत एव अर्चिष्मानग्निरिवेति लुप्तोपमा । प्रभावनः जगत्सृष्टिकर्ता ॥ ३ ॥ पञ्चवर्णत्वमेवाह सामिद्ध इति । ज्वालावर्णं शिरस्तस्येत्यर्थः । तथा त्वगिति त्वचोऽपि सूर्यनिभत्वमुक्तम् ॥ ४ ॥ तपसा कृत इति तपो नामेत्यर्थः । स एव पाञ्चजन्यश्च यौगिकमस्य नामद्वयम् ॥ ५ ॥ पितॄणां पावकं दक्षिणाग्निं प्रजाः सृजन् प्रजास्रष्टा ॥ ६ ॥ बृहत् मूर्ध्नः रथन्तरं वक्त्रात् वा शब्दश्चार्थः । 'एते अहोरात्रदेवते राथन्तरी वैराज्यहर्बार्हतम्' इति श्रुतेः । अत एव तरसा वेगेन हरतः आयुष्यादीति तरसाहरौ । शिवमहङ्काराभिमानिनं रुद्रम् । नाभ्यां नाभितः प्राणतः प्राणं सृष्ट्वा वाय्वग्नी असृजदिति सर्वत्र सम्बध्यते ॥ ७ ॥ अनुदात्तौ मन्त्रे प्राकृतोऽनुदात्तः शतपथब्राह्मणे च वैकृतोऽनुदात्तः । 'उदात्तमनुदात्तमनन्त्यम्' इति भाषिकसूत्रेण प्राकृतोदात्तस्य ब्राह्मणेऽनुदात्तत्वविधानात् तेनाभ्यां च तद्वान् मन्त्रब्राह्मणभागात्मको वेदो लक्ष्यते । बाहुभ्यामिति हस्तस्वरेण तयोरनुदात्तयोः प्रदर्शनीयत्वं सूचितम् । एतच्च वेदान्तराणामप्युपलक्षणम् । विश्वे समनस्केन्द्रियदेवताः । भूतानि पञ्च । एतान् विंशतिसङ्ख्याकान् ॥ ८ ॥ बृहद्रथस्य वासिष्ठस्य प्रणिधिरंशत इति शेषः । अङ्गिरसश्च्यवनस्य वर्चस्य सुवर्चकस्य ॥ ९ ॥ असुरसृष्टिमाह देवानिति । उत्तरान् पाश्चात्यान् ॥ १० ॥ भीमबलमबलं चेति समाहारः । तपः तपःसंज्ञः पाञ्चजन्यः ॥ ११ ॥ यज्ञयाजिनः इष्टमित्युत्तरश्लोकादपकृष्यते ॥ १४ ॥ तदादानं तेषामादेयो भागः बहिर्वेद्यामुत्करे देशे 'तुषैर्वैफलीकरणैर्देवा हविर्यज्ञेभ्यो रक्षांसि निरभजन्नस्ना महायज्ञात्' इतिश्रुतेः । अस्ना लोहितेन तत् तस्माद्धेतोः यत्र चाग्निरन्तर्वेद्याम् ॥ १६ ॥ पक्षाभ्यामिव चक्राभ्यामुपलक्षिते तत्र चयने प्रवर्तिते हविर्धाने शकटे प्रवर्तिते सति । चिताग्नेश्चयनकर्तुः यजमानस्य । आज्यं तदुपलक्षितं हविः । एते उद्वहन् उद्वहन्ति उपर्यवहरन्तीत्यर्थः । मन्त्रैः रक्षोघ्नैः प्रशमिताः सन्त इष्टं हविः न मुष्णन्ति ॥ १७ ॥ एवमसुराणां नामानि भागधेयं निवृत्त्युपायं चोक्त्वा पुनः पाञ्चजन्यवंशमनुसन्धत्ते बृहदुक्थ इति । तपस्य तपसः भूमिमुपाश्रित इति तस्यैव पृथिव्याभिमानिदेवतात्वमुक्तम् ॥ १८ ॥ मित्रविन्दो महाविराट् बृहस्पत्यपेक्षया श्रेष्ठः । तस्मै तद्भावप्राप्तये । मित्रविन्दा महावैराजीत्याश्वलायनवचनादिदमूहनीयम् ॥ १९ ॥ † मूर्ध्ना.-ख.

मुमुदे परमप्रीतः सह पुत्रैर्महायशाः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसोपाख्याने विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

## २२१

मार्कण्डेय उवाच ।

गुरुभिर्नियमैर्जातो भरतो नाम पावकः ।
अग्निः पुष्टिमतिर्नाम तुष्टः पुष्टिं प्रयच्छति ।
भरत्येष प्रजाः सर्वास्ततो भरत उच्यते ॥ १
अग्निर्यश्च शिवो नाम शक्तिपूजापरश्च सः ।
दुःखार्तानां च सर्वेषां शिवकृत् सततं शिवः ॥२
तपसस्तु फलं दृष्ट्वा सम्प्रवृत्तं तपो महत् ।
उद्धर्तुकामो मतिमान् पुत्रो जज्ञे पुरन्दरः ॥ ३
ऊष्मा चैवोष्मणो जज्ञे सोऽग्निर्भूतस्य लक्ष्यते ।
अग्निश्चापि मनुर्नाम प्राजापत्यमकारयत् ॥ ४
शम्भुमग्निमथ प्राहुर्ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
आवसथ्यं द्विजाः प्राहुर्दीप्तमग्निं महाप्रभम् ॥ ५
ऊर्जस्करान् हव्यवाहान् सुवर्णसदृशप्रभान् ।
ततस्तपो ह्यजनयत् पञ्च यज्ञसुतानिह ॥ ६
प्रशान्तेऽग्निर्महाभाग परिश्रान्तो गवां पतिः ।
असुरान् जनयन् घोरान् मर्त्यांश्चैव पृथग्विधान् ।
तपसश्च मनुं पुत्रं भानुं चाप्याङ्गिराः सृजत् ।
बृहद्भानुं तु तं प्राहुर्ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ८
भानोर्भार्या सुप्रजा तु बृहद्भासा तु सूर्यजा ।
असृजेतां तु षट् पुत्रान् शृणु तासां प्रजाविधिम् ९
दुर्बलानां तु भूतानामसून् यः सम्प्रयच्छति ।
तमग्निं बलदं प्राहुः प्रथमं भानुतः सुतम् ॥ १०
यः प्रशान्तेषु भूतेषु मन्युर्भवति दारुणः ।
अग्निः स मन्युमान्नाम द्वितीयो भानुतः सुतः ११
दर्शे च पौर्णमासे च यस्येह हविरुच्यते ।
विष्णुर्नामेह योऽग्निस्तु धृतिमान्नाम सोऽङ्गिराः
इन्द्रेण सहितं यस्य हविराग्रयणं स्मृतम् ।
अग्निराग्रयणो नाम भानोरेवान्वयस्तु सः ॥ १३

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

२२१

सिंहावलोकनन्यायेन शंयोः पौत्रमूर्जपुत्रं भरतं स्तौति सार्धेन । गुरुभिरिति । पुष्टिमतिरित्येकं नाम ॥ १ ॥ तथैव तपस्तृतीयं स्तौति अग्निर्यश्चेति । शक्तिश्चिच्छक्तिस्तस्याः पूजा निर्विकल्पसमाधिरूपा ॥ २ ॥ तपस एव पूर्वोक्तचत्वारिंशतोऽन्ये पुरन्दर ऊष्मा मनुः शम्भुः आवसथ्य इति पञ्च पुत्रानाह चतुर्भिः तपस इति । तपसोऽग्रे फलं ऐश्वर्यं संप्रवृद्धं दृष्ट्वा तत् उद्धर्तुं पित्र्यं दायं पुत्र एव लभते इति दर्शनात् तदीयमैश्वर्यं प्राप्तुं पुरन्दरोऽस्य पुत्रो जातः ॥ ३ ॥ ऊष्मा च तपसः सकाशात् जज्ञे यो भूतेषु ऊष्मणो हेतोर्लक्ष्यते । अकारयत् अकरोत् स्वार्थे णिच् ॥ ४ ॥ उपसंहरति ऊर्जस्करानिति । यज्ञसुतान् यज्ञे अभिषुतान् । आदिकर्मणि क्तः । सोमभागिन इत्यर्थः । यद्वा । यज्ञे सोम सुतो येभ्यस्ते इति योगः ॥ ६ ॥ प्रशान्ते अस्तकाले परिश्रान्तो गवां रश्मीनां पतिः सूर्योऽग्निर्भवति । 'आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशति इति श्रुतेः । यश्च घोरानसुरान् जनयन् भवति तं तपो जनयदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ७ ॥ तपस इति । मनुमिति प्राजपत्यकर्तृत्वमुच्यते । भानुं नामतः अङ्गिराश्च सृजदिति सम्बन्धः । तपःपुत्रस्याप्यङ्गिरःसृज्यत्वोक्तिर्भानुं प्रति कुलालपितृवदङ्गिरसोऽन्यथासिद्धत्वं मा भूदिति । तेन मूलकारणनैवान्त्यात् कार्याभेद इव तत्तद्रूपेण स्फुरतीति सिद्धम् । अत एव आकाशाद्वायुरित्यादौ आकाशभावमापन्न आत्मैव वायुमसृजन्न केवल आकाश इति व्याख्यातं सम्प्रदायविद्भिः ॥ ८ ॥ एवं बृहदादीन् भान्वन्तान् तपसः पुत्रान् उक्त्वा तत्पौत्रानाह भानोरिति ॥ ९ ॥ बलदो मन्युमान् । विष्णुरिति त्रयः सुप्रजायाः सुताः ॥ ११ तत्र उपांशुयाजदेवता विष्णुरुभयत्र स्मर्यमाणश्चर्योदशामावास्याथामाहुतयो हूयन्ते । चतुर्दश पौर्णमास्यामिति लिङ्गदर्शनमन्यथयति दर्शेऽपि विष्णोः स्मरणेन चतुर्दशाहुतियोगात् । अत एवान्तरेण हविषी विष्णुमुपांश्वैतरेयिण इत्याश्वलायनः स प्रमाणमुभयत्रोपांशुयाजमन्त्रगमयाति ॥ १२ ॥ भानुभार्याया बृहद्भासायाः सन्ततिराग्रयणस्यैन्द्राग्नाग्रयवोऽग्निरेकः ॥ १३ ॥

चातुर्मास्येषु नित्यानां हविषां यो निरग्रहः ।
चतुर्भिः सहितः पुत्रैर्भानोरेवान्वयः स्तुभः ॥ १४
निशा त्वजनयत् कन्यामग्नीषोमावुभौ तथा ।
मनोरेवाभवद्भार्या सुषुवे पञ्च पावकान् ॥ १५
पूज्यते हविषाग्र्येण चातुर्मास्येषु पावकः ।
पर्जन्यसहितः श्रीमानग्निर्वैश्वानरस्तु सः ॥ १६
अस्य लोकस्य सर्वस्य यः प्रभुः परिपठ्यते ।
सोऽग्निर्विश्वपतिर्नाम द्वितीयो वै मनोः सुतः॥१७
ततः स्विष्टं भवेदाज्यं स्विष्टकृत्परमस्तु सः ।
कन्या सा रोहिणी नाम हिरण्यकशिपोः सुता॥
कर्मणाऽसौ बभौ भार्या स वह्निः स प्रजापतिः ।
प्राणानाश्रित्य यो देहं प्रवर्तयति देहिनाम् ।
तस्य सन्निहितो नाम शब्दरूपस्य साधनः ॥ १९
शुक्लकृष्णगतिर्देवो यो बिभर्ति हुताशनम् ।
अकल्मषः कल्मषाणां कर्ता क्रोधाश्रितस्तु सः ॥
कपिलं परमर्षिं च यं प्राहुर्यतयः सदा ।
अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोगप्रवर्तकः २१
अग्रं यच्छन्ति भूतानां येन भूतानि नित्यदा ।
कर्मस्विह विचित्रेषु सोऽग्रणीर्वह्निरुच्यते ॥ २२
इमानन्यान् समसृजत् पावकान् प्रथितान् भुवि ।
अग्निहोत्रस्य दुष्टस्य प्रायश्चित्तार्थमुल्बणान् । २३
संस्पृशेयुर्यदाऽन्योन्यं कथञ्चिद्वायुनाऽग्नयः ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या वै शुचयेऽग्नये ॥ २४
दक्षिणाग्निर्यदा द्वाभ्यां संसृजेत तदा किल ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या वै वीतयेऽग्नये ॥ २५
यद्यग्नयो हि स्पृश्येयुर्निवेशस्था दवाग्निना ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या तु शुचयेऽग्नये ॥ २६
अग्निं रजस्वला वै स्त्री संस्पृशेदग्निहोत्रिकम् ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या वसुमतेऽग्नये ॥ २७
मृतः श्रूयेत यो जीवः परेयुः पशवो यदा ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या सुरभिमतेऽग्नये ॥ २८
आर्तो न जुहुयादग्निं त्रिरात्रं यस्तु ब्राह्मणः ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्याऽस्यादुत्तराग्नये ॥ २९
दर्शं च पौर्णमासं च यस्य तिष्ठेत प्रतिष्ठितम् ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या पथिकृतेऽग्नये ॥ ३०
सूतिकाग्निर्यदा चाग्निं संस्पृशेदग्निहोत्रिकम् ।
इष्टिरष्टाकपालेन कार्या चाग्निमतेऽग्नये ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसोपाख्याने एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

## २२२

मार्कण्डेय उवाच ।

आपस्य मुदिता भार्या सहस्य परमा प्रिया ।
भूपतिर्भुवभर्ता च जनयत् पावकं परम् ॥ १

हविषामाग्नेयादीनामष्टानां योनिरुद्भवस्थानं वैश्वदेवे पर्वणि मुख्यो विश्वदेवसंज्ञकोऽग्निर्द्वितीयः । स्तुभः स्तूयते भातीति स्तुभस्तृतीयः१४॥ निशानाम्नी भान्वपरनाम्नो मनोरपरा तृतीया भार्याऽभवत् । कन्यां वक्ष्यमाणां रोहिणीमग्निं सोममन्यान् पञ्चेत्यष्टावपत्यानि सुषुवे॥१५॥ शेषान् पञ्च क्रमेणाह पूज्यत इत्यादिना । चातुर्मास्यानामारम्भात् पूर्वं वैश्वानरपार्जन्येष्टिः क्रियते । तत्र वैश्वानरः प्रथमो मनुपुत्रः ॥ १६ ॥ परिपठ्यतेऽन्नं येनेति शेषः । स विश्वपतिर्द्वितीयः ॥ १७ ॥ स्विष्टकृदेव कन्या रोहिणी पञ्चम्योऽधिका॥१८॥ तस्याश्च किञ्चिद्दोषजं भार्यात्वम् । वस्तुतस्तु स वह्निः प्रजापतिर्मनुसंज्ञैव । कर्मणा मैथुनतः प्रजाजननाख्येन निमित्तेन । तथा च श्रुतिः— 'स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्' इति । सन्निहितो नाम तृतीयः शब्दरूपस्य शब्दरूपग्रहणस्य साधनः प्रवर्तकः ॥ १९ ॥ चतुर्थमाह द्वाभ्यां शुक्लेति । यस्मात् उपास्त्या कर्मणा आराधितात् क्रमेण शुक्लकृष्णे गती अर्चिरादिधूमादिमार्गौ अपुनरावृत्तिफलौ प्राप्येते स शुक्लकृष्णगतिः। अकल्मषः शुक्लत्वात् । कल्मषाणां काम्यकर्मणाम् ॥ २० ॥ अत एव कपिलः सांख्यं निरीश्वरशास्त्रं तद्रूपो योगस्तस्य प्रवर्तकः ॥ २१ ॥ पञ्चममाह अग्रमिति । वैश्वदेवान्ते मनुष्ययज्ञार्थं यत् प्रयच्छन्ति तदग्रम् ॥ २२ ॥ इमानन्यानित्यादिना प्रोक्ता अष्टाग्नयो मनोरेव सन्ततिः ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥ *भूतभर्ता—ख.

२२२

कथमग्निर्वनं यात इति प्रश्नमग्नेर्जलप्रवेशप्रकारं वक्तुमारभते आपस्येति । आपस्य अप्सु विदितस्य सहस्य सहसंज्ञस्या-

भूतानां साऽपि सर्वेषां यं प्राहुः पावकं पतिम् ।
आत्मा भुवनभर्तेति सान्वयेषु द्विजातिषु ॥ २
महतां चैव भूतानां सर्वेषामिह यः पतिः ।
भगवान् स महातेजा नित्यं चरति पावकः ॥ ३
अग्निर्गृहपतिर्नाम नित्यं यज्ञेषु पूज्यते ।
हुतं वहति यो हव्यमस्य लोकस्य पावकः ॥ ४
अपां गर्भो महाभागः सत्त्वभुग्यो महाद्भुतः ।
भूपतिर्भुवभर्ता च महतः पतिरुच्यते ॥ ५
दहन् मृतानि भूतानि तस्याग्निर्भरतोऽभवत् ।
अग्निष्टोमे च नियतः क्रतुश्रेष्ठो भरस्य तु ॥ ६
स वह्निः प्रथमो नित्यं देवैरन्विष्यते प्रभुः ।
आयान्तं नियतं दृष्ट्वा प्रविवेशार्णवं भयात् ॥ ७

देवास्तत्रापि गच्छन्ति मार्गमाणा यथादिशम् ।
दृष्ट्वा त्वग्निरथर्वाणं ततो वचनमब्रवीत् ॥ ८
देवानां वह हव्यं त्वमहं वीर सुदुर्बलः ।
अथ त्वं गच्छ मध्वक्षं प्रियमेतत् कुरुष्व मे ॥ ९
प्रेष्य चाग्निरथर्वाणमन्यं देशं ततोऽगमत् ।
मत्स्यास्तस्य समाचख्युः क्रुद्धस्तानग्निरब्रवीत् ।
भक्ष्या वै विविधैर्भावैर्भविष्यथ शरीरिणाम् ॥१०
अथर्वाणं तथा चापि हव्यवाहोऽब्रवीद्वचः ॥ ११
अनुनीयमानो हि भृशं देववाक्याद्धि तेन सः ।
नैच्छद्वोढुं हविः सोढुं शरीरं चापि सोऽत्यजत्१२
स तच्छरीरं सन्त्यज्य प्रविवेश धरां तदा ।
भूमिं स्पृष्ट्वाऽसृजद्धातून् पृथक् पृथगतीव हि १३

मेर्मुदिता नाम परमा प्रिया भार्या । दुहितेति पाठेऽपि संज्ञाशब्द एवायं भूपतिर्भुवभर्ता च सहसंज्ञ एव । भूर्भुवर्लोकयोः स्वामी न तु स्वर्लोकस्य । अनावृत्तिस्थानस्य त्रिधैवात्र लोकविभागोऽभिप्रेतः । तेन ब्रह्मलोकादर्वाचीनस्य कृत्स्नस्य स्वामीत्यर्थः । स परमद्भुताख्यं पावकमजनयत् । सहसस्पुत्रो अद्भुत इति मन्त्रवर्णात् । सहशब्दोऽत्र अकारान्तोऽपि वेदे सकारान्तो ज्ञेयः ॥ १ ॥ अद्भुतमेव स्तौति भूतानामिति चतुर्भिः । यं पावकं पतिमभिप्रेत्य भुवनभर्ता भूतानां चतुर्विधानामात्मेति प्राहुः सान्वयेषूपदेशपरम्परावत्सु ॥ २ ॥ न केवलं जरायुजादीनामात्मा अपि तु महता भूतानां वियदादीनां पतिः स त्वादिना । अत एव भगवान् 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीङ्गना' इति स्मृत्युक्तगुणवान् ॥ ३ ॥ गृहपतिः अधियज्ञं त्रेताग्निः अध्यात्मं जाठरः उभावपि उभयत्र स्थित्वा पिण्डब्रह्माण्डस्थान् देवानन्नेन हविषा च तर्पयत इति हव्यवाहौ ॥ ४ ॥ अपामिति । अप्सम्बन्धादापापरनामा सह एवात्र अप्शब्दार्थः । तस्य गर्भः पुत्रः । मलभुक् अध्यात्मं बुद्धिसंहर्ता अधिभूतं लोकत्रयसंहर्ता । महांश्चासौ अद्भुतः महत इति नामैकदेशेन तस्यैव ग्रहणं भामा सत्यभामेतिवत् । महतो महाद्भुतस्य पतिः पिता भूपतिर्भुवनभर्ता चेत्यर्थः । अत्र महच्छब्देन अध्यात्म महत्तत्त्वं सूक्ष्मबुद्ध्याख्यं ग्राह्यम् । सहशब्देन कारणमव्यक्ताख्यम् । अप्शब्देन सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवतीत्यादिश्रुतौ सलिलेनोपमितं शुद्धं ब्रह्म ग्राह्यम् ॥ ५ ॥ अस्य सहस्य अपां प्रवेशे कारणमाह दहन्निति । अधिभूतं भरतश्चिताग्निः सहस्य पौत्र अद्भुतपुत्रः । अध्यात्मं महतः पुत्रोऽहङ्कारः । भरति बिभर्तीति भूतानि अचेतनानि खादीनि देहाकाराणि धारयतीति भरतो नाम । तस्यैव भूतसंहारस्थानत्व दहन्निति दर्शितम् । भरस्य भरतस्य । तकारलोप आर्षः । क्रतुर्नाम अध्यात्मं क्रतुः संकल्पात्मकं मनः । अग्निष्टोमशब्देन 'तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिः' इत्यादिना तैत्तिरीयके समाम्नातो देहतत्सम्बन्धिक्रियाकलापात्मको मरणरूपावभृथान्तः संसार उच्यते नियतो नित्यः ॥ ६ ॥ स इति । सह उच्यते प्रथम इति विशेषणात् देवैः सुरैरिन्द्रियैश्चान्विष्यते भोगार्थिभिः । परो हि स्वर्गः कारणात्मेति संसारक्रतुफलमनिवार्यं दृष्ट्वा सहोऽपि शुद्धं ब्रह्माविवेशेत्युक्तार्थोऽर्थः । कारणात्मतां प्राप्तस्यापि तत्सम्बन्धानपायात् 'अन्यथा सुषुप्तिमूर्च्छादौ मुच्येतायत्नतो जनः' इत्यापद्येत । पक्षान्तरे शवाग्नि पौत्रं नियताख्यमायान्तं दृष्ट्वा स्पर्शभयात् स्ववंश्योऽयं दुष्ट इति लज्जयाऽर्णवं विवेश । भृगुशापाद्धि सर्वभक्षत्वं प्राप्तोऽग्निरात्मानं बहुधा कृत्वाऽग्निहोत्रादिषु श्मशानादिषु च स्थित इत्युपाख्यायते ॥ ७ ॥ देवा इति । अथर्वाणमङ्गिरसं तीव्रतपसं दृष्ट्वा ॥ ८ ॥ मध्वक्षं पिङ्गाक्षमग्निं भावप्रधानो निर्देशः । 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' इतिवत् । अन्यथा द्व्येकेष्विति स्यात् । द्वित्वैकत्वयोरितिव्याख्यानानुपपत्तिश्च । तेनैकस्त्वमेवाग्नित्वं गच्छेत्यर्थः । तथा च 'निक्षिपाम्यहमग्नित्वं त्वमग्निः प्रथमो भव' इत्युपक्रमस्योपसंहारेण सहैकवाक्यता भवति ॥ ९ ॥ प्रेष्य आदिश्य । सार्धः श्लोकः ॥ १० ॥ तथा चापि तथैव मत्स्यैराख्यातोऽपि वचः त्वं मध्वक्षो भवेति पूर्वोक्तमेव ॥ ११ ॥ शरीरमाग्नेयं देहं पक्षे मायां त्यक्त्वा निर्विकल्पोऽभूदित्यर्थः ॥ १२ ॥ देहत्यागप्रकारमाह स इति । तत् स्थूलं शरीरं सन्त्यज्य धरां धारणात् धराख्यस्थानं लिङ्गशरीरं प्राविश्य तत्रापि सङ्कल्पोपनतान् भूम्यादीनसृजत् । भूमिं स्पृष्ट्वा उपाधौ आवेशं कृत्वा । अत्र धातून् नीलपीतादीन् तानिव वासनामयानि नाडीरूपाणि दृश्यन्ते

पूयात् स गन्धं तेजश्च अस्थिभ्यो देवदारु च ।
श्लेष्मणः स्फाटिकं तस्य पित्तान्मारकतं तथा॥१४
यकृत् कृष्णायसं तस्य त्रिभिरेव बभुः प्रजाः ।
नखास्तस्याभ्रपटलं शिराजालानि विद्रुमम्॥१५
शरीराद्विविधाश्चान्ये धातवोऽस्याभवन्नृप ।
एवं त्यक्त्वा शरीरं च परमे तपसि स्थितः ॥ १६
भृग्वङ्गिरादिभिर्भूयस्तपसोत्थापितस्तदा ।
भृशं जज्वाल तेजस्वी तपसाऽऽप्यायितः शिखी॥
दृष्ट्वा ऋषिं भयाच्चापि प्रविवेश महार्णवम् ।
तस्मिन्नष्टे जगद्भीतमथर्वाणमथाश्रितम् ।
अर्चयामासुरेवैनमथर्वाणं सुरादयः ॥ १८
अथर्वा त्वसृजल्लोकानात्मनाऽऽलोक्य पावकम् ।
मिषतां सर्वभूतानामुन्ममाथ महार्णवम् ॥ १९
एवमग्निर्भगवता नष्टः पूर्वमथर्वणा ।
आहूतः सर्वभूतानां हव्यं वहति सर्वदा ॥ २०
एवं त्वजनयद्धिष्ण्यान् वेदोक्तान् विबुधान् बहून्
विचरन् विविधान् देशान् भ्रममाणस्तु तत्र वै ॥
सिन्धुं नदं पञ्चनदं देविकाऽथ सरस्वती ।
गङ्गा च शतकुम्भा च शरयू गण्डसाह्वया ॥ २२
चर्मण्वती मही चैव मेध्या मेधातिथिस्तदा ।
ताम्रवती वेत्रवती नद्यस्तिस्रोऽथ कौशिकी २३
तमसा नर्मदा चैव नदी गोदावरी तथा ।
वेणोपवेणा भीमा च वडवा चैव भारत ॥ २४
भारती सुप्रयोगा च कावेरी मुर्मुरा तथा ।
तुङ्गवेणा कृष्णवेणा कपिला शोण एव च ॥ २५
एता नद्यस्तु धिष्ण्यानां मातरो याः प्रकीर्तिताः
अद्भुतस्य प्रिया भार्या तस्य पुत्रो विभूरसिः ।
यावन्तः पावकाः प्रोक्ताः सोमास्तावन्त एव तु
अत्रेश्चाप्यन्वये जाता ब्रह्मणो मानसाः प्रजाः ।
अत्रिः पुत्रान् स्रष्टुकामस्तानेवात्मन्यधारयत् २८
तस्य तद्ब्रह्मणः कायान्निर्हरन्ति हुताशनाः ।
एवमेते महात्मानः कीर्तितास्तेऽग्नयो मया ॥ २९
अप्रमेया यथोत्पन्नाः श्रीमन्तस्तिमिरापहाः ।
अद्भुतस्य तु माहात्म्यं यथा वेदेषु कीर्तितम् ३०
तादृशं विद्धि सर्वेषामेको ह्येषु हुताशनः ।
एक एवैष भगवान् विज्ञेयः प्रथमोऽङ्गिराः ॥ ३१
बहुधा निःसृतः कायाज्ज्योतिष्टोमः क्रतुर्यथा ।
इत्येष वंशः सुमहानग्नीनां कीर्तितो मया ।
योऽर्चितो विविधैर्मन्त्रैर्हव्यं वहति देहिनाम् ३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसोपाख्यानेऽग्निसमुद्भवे द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

योगमार्गे। तथा च श्रुतिः 'तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च । एष पन्था ब्रह्मणा ह्यनुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित् पुण्यकृत्तैजसश्च' इति तैजसो लिङ्गदेहाभिमानी । पक्षान्तरे तु धातून् मनःशीलादीन् ॥ १३ ॥ यकृत् शरीरान्तर्वर्ती अवयवविशेषः । त्रिभिः काष्ठपाषाणलोहैः ॥ १५ ॥ अन्ये स्वर्णपारदादयः । शरीरं लिङ्गं परमे निरुपाधौ तपसि आलोचनात्मके ध्याने ॥ १६ ॥ तपसा सामर्थ्येन उत्थापितः समाधेर्व्युत्थापितः ॥ १७ ॥ ऋषिमथर्वाङ्गिरसम् । भयं पूर्वोक्तमेव । सार्धः श्लोकः॥१८॥ अथर्वा त्विति । अथार्णवमुन्ममाथ तेन पावकमालोक्य लोकानसृजदिति क्रमेणान्वयो ज्ञेयः पूर्वोत्तरार्धयोर्व्यत्यासेन॥१९॥ एवं त्विति । अग्नेरङ्गिरास्ततो बृहस्पतिस्ततः शंय्वादिक्रमेण वेदोक्तान् धिष्ण्यान् नाना स्थानानि अजनयत् । अध्यात्मपक्षे तु समाधेः सकाशाद्व्युत्थितोऽहङ्कारं पुरस्कृत्य वृत्तिनदीषु चिदात्मा सञ्चरतीति ॥ २१ ॥ पक्षान्तरे स्पष्ट एवार्थः सिन्धुमिति ॥ २२ ॥ अद्भुतस्येति । विभूरसिरिति श्रुतेरनुकरणं तेन विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहन इत्यनुवाकोक्ता । अन्ये च धिष्ण्या अग्नयो दर्शितास्तेषां ज्येष्ठो विभूरित्यर्थः । यावन्तः पावका धिष्ण्याः सन्ति तावन्तः सोमाः सोमयागाः । एतच्च याज्ञिकेष्वेव प्रसिद्धम् ॥२७॥ तानेवाग्नीनेवात्मनि चित्तेऽधारयत् । अग्निं ध्यायतोऽग्निरेव प्रजारूपेणाविर्बभूवेत्यर्थः । एवं च कव्यन्तराणामप्युपलक्षणम् । तथा च सर्वं कर्माग्निदैवत्यं सर्वे ब्राह्मणा अग्निसन्ततिरित्युक्तं भवति ॥ २८ ॥ तस्यात्रेर्ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य कायाद्देहात् हुताशनाः निर्हरन्ति निःसरन्ति । सार्धः ॥ २९ ॥ कायात् कस्य प्रजापतेः पुत्रोऽङ्गिराः कायस्तस्मात् । कशब्दादण्प्रत्यये कस्येदिति इकारोन्तादेशः। णित्वादादिवृद्धिः । ज्योतिष्टोमो यथा उद्भिदादिरूपेण बहुधा निर्गतस्तद्वत् ॥ ३२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

## २२३

मार्कण्डेय उवाच ।

अग्नीनां विविधा वंशाः कीर्तितास्ते मयाऽनघ ।
शृणु जन्म तु कौरव्य कार्तिकेयस्य धीमतः ॥ १
अद्भुतस्याद्भुतं पुत्रं प्रवक्ष्याम्यमितौजसम् ।
जातं ब्रह्मर्षिभार्याभिर्ब्रह्मण्यं कीर्तिवर्धनम् ॥ २
देवासुराः पुरा यत्ता विनिघ्नन्तः परस्परम् ।
तत्राजयन् सदा देवान् दानवा घोररूपिणः ॥ ३
वध्यमानं बलं दृष्ट्वा बहुशस्तैः पुरन्दरः ।
स सैन्यनायकार्थाय चिन्तामाप भृशं तदा ॥ ४
देवसेनां दानवैर्हि भग्नां दृष्ट्वा महाबलः ।
पालयेद्वीर्यमाश्रित्य स ज्ञेयः पुरुषो मया ॥ ५
स शैलं मानसं गत्वा ध्यायन्नर्थमिदं भृशम् ।
शुश्रावार्तस्वरं घोरमथ मुक्तं स्त्रिया तदा ॥ ६
अभिधावतु मां कश्चित् पुरुषस्त्रातु चैव ह ।
पतिं च मे प्रदिशतु स्वयं वा पतिरस्तु मे ॥ ७
पुरन्दरस्तु तामाह मा भैर्नास्ति भयं तव ।
एवमुक्त्वा ततोऽपश्यत् केशिनं स्थितमग्रतः ॥ ८
किरीटिनं गदापाणिं धातुमन्तमिवाचलम् ।
हस्ते गृहीत्वा कन्यां तामथैनं वासवोऽब्रवीत् ९
अनार्यकर्मन् कस्मात् त्वमिमां कन्यां जिहीर्षसि
वज्रिणं मां विजानीहि विरमास्याः प्रबाधनात् ॥

केश्युवाच ।

विसृजस्व त्वमेवैनां शक्रैषा प्रार्थिता मया ।
क्षमं ते जीवतो गन्तुं स्वपुरं पाकशासन ॥ ११
एवमुक्त्वा गदां केशी चिक्षेपेन्द्रवधाय वै ।
तामापतन्तीं चिच्छेद मध्ये वज्रेण वासवः ॥ १२
अथास्य शैलशिखरं केशी क्रुद्धो व्यवासृजत् ।
तदा पतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैलशृङ्गं शतक्रतुः ॥ १३
बिभेद राजन् वज्रेण भुवि तन्निपपात ह ।
पतता तु तदा केशी तेन शृङ्गेण ताडितः ॥ १४
हित्वा कन्यां महाभागां प्राद्रवद्भृशपीडितः ।
अपयातेऽसुरे तस्मिंस्तां कन्यां वासवोऽब्रवीत् ।
काऽसि कस्यासि किञ्चेह कुरुषे त्वं शुभानने१५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गि० स्कन्दोत्पत्तौ केशिपराभवे त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

## २२४

कन्योवाच ।

अहं प्रजापतेः कन्या देवसेनेति विश्रुता ।
भगिनी मे दैत्यसेना सा पूर्वं केशिना हृता ॥ १
सदैवावां भगिन्यौ तु सखिभिः सह मानसम् ।
आगच्छावेह रत्यर्थमनुज्ञाप्य प्रजापतिम् ॥ २
नित्यं चावां प्रार्थयते हर्तुं केशी महासुरः ।
इच्छत्येनं दैत्यसेना न चाहं पाकशासन ॥ ३
सा हृताऽनेन भगवन् मुक्ताऽहं त्वद्बलेन तु ।
त्वया देवेन्द्र निर्दिष्टं पतिमिच्छामि दुर्जयम् ॥ ४

इन्द्र उवाच ।

मम मातृष्वसेयी त्वं माता दाक्षायणी मम ।
आख्यातुं त्वहमिच्छामि स्वयमात्मबलं त्वया ॥५

कन्योवाच ।

अबलाऽहं महाबाहो पतिस्तु बलवान् मम ।
वरदानात् पितुर्भावी सुरासुरनमस्कृतः ॥ ६

इन्द्र उवाच ।

कीदृशं तु बलं देवि पत्युस्तव भविष्यति ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तव वाक्यमनिन्दिते ॥ ७

कन्योवाच ।

देवदानवयक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम् ।
जेता यो दुष्टदैत्यानां महावीर्यो महाबलः ॥ ८
यस्तु सर्वाणि भूतानि त्वया सह विजेष्यति ।
स हि मे भविता भर्ता ब्रह्मण्यः कीर्तिवर्धनः ॥९

---

२२३

क्रमप्राप्तं कुमारस्य यथोत्पन्नो यथा चाग्नेः सुतोऽभवदित्यस्योत्तरमाह अग्नीनां विविधा वंशा इत्यादिना ॥१॥ अद्भुतस्याग्नेरद्भुतमभिनवम् ॥ २ ॥ स्त्रिया देवसेनाभिमानिदेवतया ॥ ६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

२२४

अहमिति ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

इन्द्रस्तस्या वचः श्रुत्वा दुःखितोऽचिन्तयद्भृशम्।
अस्या देव्याः पतिर्नास्ति यादृशं सम्प्रभाषते ॥१०
अथापश्यत् स उदये भास्करं भास्करद्युतिः ।
सोमं चैव महाभागं विशमानं दिवाकरम् ॥ ११
अमावास्यां प्रवृत्तायां मुहूर्ते रौद्र एव तु ।
देवासुरं च सङ्ग्रामं सोऽपश्यदुदये गिरौ ॥ १२
लोहितैश्च घनैर्युक्तां पूर्वां सन्ध्यां शतक्रतुः ।
अपश्यल्लोहितोदं च भगवान् वरुणालयम् ॥ १३
भृगुभिश्चाङ्गिरोभ्यश्च हुतं मन्त्रैः पृथग्विधैः ।
हव्यं गृहीत्वा वह्निं च प्रविशन्तं दिवाकरम् १४
पर्व चैव चतुर्विंशं तदा सूर्यमुपास्थितम् ।
तथा धर्मगतं रौद्रं सोमं सूर्यगतं च तम् ॥ १५
समालोक्यैकतामेव शशिनो भास्करस्य च ।
समवायं तु तं रौद्रं दृष्ट्वा शक्रोऽन्वचिन्तयत् १६
सूर्याचन्द्रमसोर्घोरं दृश्यते परिवेषणम् ।
एतस्मिन्नेव रात्र्यन्ते महद्युद्धं तु शंसति ॥ १७
सरित्सिन्धुरपीयं तु प्रत्यसृग्वाहिनी भृशम् ।
शृगालिन्याग्निवक्त्रा च प्रत्यादित्यं विराविणी १८
एष रौद्रश्च सङ्घातो महान् युक्तश्च तेजसा ।
सोमस्य वह्निसूर्याभ्यामद्भुतोऽयं समागमः ॥ १९
जनयेद्यं सुतं सोमः सोऽस्या देव्याः पतिर्भवेत् ।
अग्निश्चैतैर्गुणैर्युक्तः सर्वैरग्निश्च देवता ॥ २०
एष चेज्जनयेद्गर्भं सोऽस्या देव्याः पतिर्भवेत् ।
एवं सञ्चिन्त्य भगवान् ब्रह्मलोकं तदा गतः ॥२१
गृहीत्वा देवसेनां तामवदत् स पितामहम् ।
उवाच चास्या देव्यास्त्वं साधुशूरं पतिं दिश ॥

ब्रह्मोवाच ।

मयैतच्चिन्तितं कार्यं त्वया दानवसूदन ।
तथा स भविता गर्भो बलवानुरुविक्रमः ॥ २३
स भविष्यति सेनानीस्त्वया सह शतक्रतो ।
अस्या देव्याः पतिश्चैव स भविष्यति वीर्यवान् ॥
एतच्छ्रुत्वा नमस्तस्मै कृत्वाऽसौ सह कन्यया ।
तत्राभ्यगच्छद्देवेन्द्रो यत्र देवर्षयोऽभवन् ॥ २५
वसिष्ठप्रमुखा मुख्या विप्रेन्द्राः सुमहाबलाः ।
भागार्थं तपसो धातुं तेषां सोमं तथाऽध्वरे ॥ २६
पिपासन्तो ययुर्देवाः शतक्रतुपुरोगमाः ।
इष्टिं कृत्वा यथान्यायं सुसमिद्धे हुताशने ॥ २७
जुहुवुस्ते महात्मानो हव्यं सर्वदिवौकसाम् ।
समाहूतो हुतवहः सोऽद्भुतः सूर्यमण्डलात् ॥ २८
विनिःसृत्य ययौ वह्निर्वाग्यतो विधिवत् प्रभुः ।
आगम्याहवनीयं वै तैर्द्विजैर्मन्त्रतो हुतम् ॥ २९
स तत्र विविधं हव्यं प्रतिगृह्य हुताशनः ।
ऋषिभ्यो भरतश्रेष्ठ प्रायच्छत दिवौकसाम् ॥ ३०
निष्क्रामंश्चाप्यपश्यत् स पत्नीस्तेषां महात्मनाम् ।
स्वेष्वासनेषूपविष्टाः स्वपन्तीश्च तथा सुखम् ॥३१
रुक्मवेदिनिभास्तास्तु चन्द्रलेखा इवामलाः ।
हुताशनार्चिप्रतिमाः सर्वास्तारा इवाद्भुताः॥ ३२
स तत्र तेन मनसा बभूव क्षुभितेन्द्रियः ।
पत्नीर्दृष्ट्वा द्विजेन्द्राणां वह्निः कामवशं ययौ ॥ ३३
भूयः सञ्चिन्तयामास न न्याय्यं क्षुभितो ह्यहम् ।
साध्व्यः पत्न्यो द्विजेन्द्राणामकामाः कामयाम्यहम्.
नैताः शक्या मया द्रष्टुं स्प्रष्टुं वाप्यनिमित्ततः ।
गार्हपत्यं समाविश्य तस्मात् पश्याम्यभीक्ष्णशः॥

मार्कण्डेय उवाच ।

संस्पृशन्निव सर्वास्ताः शिखाभिः काञ्चनप्रभाः ।
पश्यमानश्च मुमुदे गार्हपत्यं समाश्रितः ॥ ३६
निरुष्य तत्र सुचिरमेवं वह्निर्वशं गतः ।
मनस्तासु विनिक्षिप्य कामयानो वराङ्गनाः ३७
कामसन्तप्तहृदयो देहत्यागविनिश्चितः ।
अलाभे ब्राह्मणस्त्रीणामग्निर्वनमुपागमत् ॥ ३८
स्वाहा तं दक्षदुहिता प्रथमं कामयत् तदा ।
सा तस्य छिद्रमन्वैच्छच्चिरात्प्रभृति भाविनी॥३९
अप्रमत्तस्य देवस्य न च पश्यत्यनिन्दिता ।
सा तं ज्ञात्वा यथावत् तु वह्निं वनमुपागतम् ४०
तत्त्वतः कामसन्तप्तं चिन्तयामास भाविनी ।
अहं सप्तर्षिपत्नीनां कृत्वा रूपाणि पावकम् ॥४१
कामयिष्यामि कामार्तं तासां रूपेण मोहितम् ।
एवं कृते प्रीतिरस्य कामावाप्तिश्च मे भवेत् ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे स्कन्दोत्पत्तौ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२४ ॥

धातुं पातुम् ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

## २२५

मार्कण्डेय उवाच ।
शिवा भार्या त्वाङ्गिरसः शीलरूपगुणान्विता ।
तस्याः सा प्रथमं रूपं कृत्वा देवी जनाधिप ॥ १
जगाम पावकाभ्याशं तञ्चोवाच वराङ्गना ।
मामग्ने§ कामसन्तप्तां त्वं कामयितुमर्हसि ॥ २
करिष्यसि न चेदेवं मृतां मामुपधारय ।
अहमङ्गिरसो भार्या शिवा नाम हुताशन ।
शिष्टाभिः प्रहिता प्राप्ता मन्त्रयित्वा विनिश्चयम् ३
अग्निरुवाच ।
कथं मां त्वं विजानीषे कामार्तमितराः कथम् ।
यास्त्वया कीर्तिताः सर्वाः सप्तर्षीणां प्रियाः स्त्रियः
शिवोवाच ।
अस्माकं त्वं प्रियो नित्यं बिभीमस्तु वयं तव ।
त्वच्चित्तमिङ्गितैर्ज्ञात्वा प्रेषिताऽस्मि तवान्तिकम्
मैथुनायेह सम्प्राप्ता कामं प्राप्तं द्रुतं चर ।
जामयो मां प्रतीक्षन्ते गमिष्यामि हुताशन ॥ ६
मार्कण्डेय उवाच ।
ततोऽग्निरुपयेमे तां शिवां प्रीतिमुदायुतः ।
प्रीत्या देवी समायुक्ता शुक्रं जग्राह पाणिना ॥७
अचिन्तयन्ममेदं ये रूपं द्रक्ष्यन्ति कानने
ते ब्राह्मणीनामनृतं दोषं वक्ष्यन्ति पावके ॥ ८
तस्मादेतद्रक्ष्यमाणा गरुडी सम्भवाम्यहम् ।
वनान्निर्गमनं चैव सुखं मम भविष्यति ॥ ९
मार्कण्डेय उवाच ।
सुपर्णी सा तदा भूत्वा निर्जगाम महावनात् ।
अपश्यत् पर्वतं श्वेतं शरस्तम्बैः सुसंवृतम् ॥ १०
दृष्टीविषैः सप्तशीर्षैर्गुप्तं भोगिभिरद्भुतैः ।
रक्षोभिश्च पिशाचैश्च रौद्रैर्भूतगणैस्तथा ॥ ११
राक्षसीभिश्च सम्पूर्णमनेकैश्च मृगद्विजैः ।
सा तत्र सहसा गत्वा शैलपृष्ठं सुदुर्गमम् ॥ १२
प्राक्षिपत् काञ्चने कुण्डे शुक्रं सा त्वरिता शुभा॥
सप्तानामपि सा देवी सप्तर्षीणां महात्मनाम् १३
पत्नीसरूपतां कृत्वा कामयामास पावकम् ।
दिव्यरूपमरुन्धत्याः कर्तुं न शकितं तया ॥ १४
तस्यास्तपःप्रभावेण भर्तृशुश्रूषणेन च ।
षट्कृत्वस्तत् तु निक्षिप्तमग्ने रेतः कुरूत्तम ॥ १५
तस्मिन् कुण्डे प्रतिपदि कामिन्या स्वाहया तदा ।
तत् स्कन्नं तेजसा तत्र संवृतं जनयत् सुतम् ॥१६
ऋषिभिः पूजितं स्कन्नमनयत् स्कन्दतां ततः ।
षट्शिरा द्विगुणश्रोत्रो द्वादशाक्षिभुजक्रमः ॥ १७
एकग्रीवैकजठरः कुमारः समपद्यत ।
द्वितीयायामभिव्यक्तस्तृतीयायां शिशुर्बभौ ॥ १८
अङ्ग-प्रत्यङ्गसम्भूतश्चतुर्थ्यामभवद्गुहः ।
लोहिताभ्रेण महता संवृतः सह विद्युता ॥ १९
लोहिताभ्रे सुमहति भाति सूर्य इवोदितः ।
गृहीतं तु धनुस्तेन विपुलं लोमहर्षणम् ॥ २०
न्यस्तं यत्त्रिपुरघ्नेन सुरारिविनिकृन्तनम् ।
तद्गृहीत्वा धनुः श्रेष्ठं ननाद बलवांस्तदा ॥ २१
सम्मोहयन्निवेमान् स त्रीन् लोकान् सचराचरान्
तस्य तं निनदं श्रुत्वा महामेघौघनिःस्वनम् २२
उत्पेततुर्महानागौ चित्रश्चैरावतश्च ह ।
तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य स बालोऽर्कसमद्युतिः २३
द्वाभ्यां गृहीत्वा पाणिभ्यां शक्तिं चान्येन पाणिना
अपरेणाग्निदायादस्ताम्रचूडं भुजेन सः ॥ २४
महाकायमुपश्लिष्टं कुक्कुटं बलिनां वरम् ।
गृहीत्वा व्यनदद्भीमं चिक्रीड च महाभुजः ॥ २५
द्वाभ्यां भुजाभ्यां बलवान् गृहीत्वा शङ्खमुत्तमम् ।
प्राध्मापयत भूतानां त्रासनं बलिनामपि ॥ २६
द्वाभ्यां भुजाभ्यामाकाशं बहुशो निजघान ह ।
क्रीडन् भाति महासेनस्त्रीन् लोकान् वदनैः पिबन्
पर्वताग्रेऽप्रमेयात्मा रश्मिमानुदये यथा ।
स तस्य पर्वतस्याग्रे निषण्णोऽद्भुतविक्रमः ॥ २८
व्यलोकयदमेयात्मा मुखैर्नानाविधैर्दिशः ।
स पश्यन विविधान् भावांश्चकार निनदं पुनः २९
तस्य तं निनदं श्रुत्वा न्यपतन् बहुधा जनाः ।
भीताश्चोद्विग्नमनसस्तमेव शरणं ययुः ॥ ३०
ये तु तं संश्रिता देवं नानावर्णास्तदा जनाः ।
तानप्याहुः पारिषदान् ब्राह्मणाः सुमहाबलान् ३१
स तूत्थाय महाबाहुरुपसान्त्व्य च तान् जनान् ।
धनुर्विकृष्य व्यसृजद्बाणान् श्वेते महागिरौ ॥ ३२
बिभेद स शरैः शैलं क्रौञ्चं हिमवतः सुतम् ।
तेन हंसाश्च गृध्राश्च मेरुं गच्छन्ति पर्वतम् ॥ ३३



शिवेति ॥ १ ॥ § मामग्ने-ख.

स विशीर्णोऽपतच्छैलो भृशमार्तस्वरान् रुवन् ।
तस्मिन्निपतिते त्वन्ये नेदुः शैला भृशं तदा ॥ ३४
स तं नादं भृशार्तानां श्रुत्वाऽपि बलिनां वरः ।
न प्राच्यवदमेयात्मा शक्तिमुद्यम्य चानदत् ॥ ३५
सा तदा विमला शक्तिः क्षिप्ता तेन महात्मना ।
बिभेद शिखरं घोरं श्वेतस्य तरसा गिरेः ॥ ३६
स तेनाभिहतो दीर्णो गिरिः श्वेतोऽचलैः सह ।
उत्पपात महीं त्यक्त्वा भीतः स सुमहात्मनः ॥ ३७
ततः प्रव्यथिता भूमिर्व्यशीर्यत समन्ततः ।
आर्ता स्कन्दं समासाद्य पुनर्बलवती बभौ ॥ ३८
पर्वताश्च नमस्कृत्य तमेव पृथिवीं गताः ।
अथैनमभजल्लोकः स्कन्दं शुक्लस्य पञ्चमीम् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे कुमारोत्पत्तौ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

## २२६

मार्कण्डेय उवाच ।

तस्मिन् जाते महासत्त्वे महासेने महाबले ।
समुत्तस्थुर्महोत्पाता घोररूपाः पृथग्विधाः ॥ १
स्त्रीपुंसोर्विपरीतं च तथा द्वन्द्वानि यानि च ।
ग्रहा दीप्ता दिशः खं च ररास च मही भृशम् २
ऋषयश्च महाघोरान् दृष्ट्वोत्पातान् समन्ततः ।
अकुर्वन् शान्तिमुद्विग्ना लोकानां लोकभावनाः ३
निवसन्ति वने ये तु तस्मिंश्चैत्ररथे जनाः ।
तेऽब्रुवन्नेष नोऽनर्थः पावकेनाहितो महान् ॥ ४
सङ्गम्य षड्भिः पत्नीभिः सप्तर्षीणामिति स्म ह ।
अपरे गरुडीमाहुस्त्वयाऽनर्थोऽयमाहृतः ॥ ५
यैर्दृष्टा सा तदा देवी तस्या रूपेण गच्छती ।
न तु तत् स्वाहया कर्म कृतं जानाति वै जनः ६
सुपर्णी तु वचः श्रुत्वा ममायं तनयस्त्विति ।
उपगम्य शनैः स्कन्दमाहाहं जननी तव ॥ ७
अथ सप्तर्षयः श्रुत्वा जातं पुत्रं महौजसम् ।
तत्यजुः षट् तदा पत्नीर्विना देवीमरुन्धतीम् ॥ ८
षड्भिरेव तदा जातमाहुस्तद्वनवासिनः ।
सप्तर्षीनाह च स्वाहा मम पुत्रोऽयमित्युत ॥ ९
अहं जाने नैतदेवमिति राजन् पुनः पुनः ।
विश्वामित्रस्तु कृत्वेष्टिं सप्तर्षीणां महामुनिः ॥१०
पावकं कामसन्तप्तमदृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् ।
तत् तेन निखिलं सर्वमवबुद्धं यथातथम् ॥ ११
विश्वामित्रस्तु प्रथमं कुमारं शरणं गतः ।
स्तवं दिव्यं सम्प्रचक्रे महासेनस्य चापि सः १२
मङ्गलानि च सर्वाणि कौमाराणि त्रयोदश ।
जातकर्मादिकास्तस्य क्रियाश्चक्रे महामुनिः ॥१३
षड्वक्त्रस्य तु माहात्म्यं कुक्कुटस्य तु साधनम् ।
शक्त्या देव्याः साधनं च तथा पारिषदामपि १४
विश्वामित्रश्चकारैतत् कर्म लोकहिताय वै ।
तस्मादृषिः कुमारस्य विश्वामित्रोऽभवत् प्रियः १५
अन्वजानाच्च स्वाहाया रूपान्यत्वं महामुनिः ।
अब्रवीच्च मुनीन् सर्वान्नापराध्यन्ति वै स्त्रियः १६
श्रुत्वा तु तत्त्वतस्तस्मात् ते पत्नीः सर्वतोऽत्यजन् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

स्कन्दं श्रुत्वा तदा देवा वासवं सहिताऽब्रुवन् ॥
अविषह्यं बलं स्कन्दं जहि शक्राशु माचिरम् ।
यदि वा न निहंस्येनं देवेन्द्रोऽयं भविष्यति ॥ १८
त्रैलोक्यं सन्निगृह्यास्मांस्त्वां च शक्र महाबल ।
स तानुवाच व्यथितो बालोऽयं सुमहाबलः १९
स्रष्टारमपि लोकानां युधि विक्रम्य नाशयेत् ।
न बालमुत्सहे हन्तुमिति शक्रः प्रभाषते ॥ २०
तेऽब्रुवन् नास्ति ते वीर्यं यत एवं प्रभाषसे ।
सर्वास्त्वद्याभिगच्छन्तु स्कन्दं लोकस्य मातरः ॥
कामवीर्या घ्नन्तु चैनं तथेत्युक्त्वा च ता ययुः ।
तमप्रतिबलं दृष्ट्वा विषण्णवदनास्तु ताः ॥ २२

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

२२६

तस्मिन्निति ॥१॥ विपरीतं वैरम् । द्वन्द्वान्यतिशीतात्युष्णादीनि ॥ २ ॥ जातकर्मादिका विवाहात् प्राचीनास्त्रयोदश क्रियाः ॥१३॥ श्रुत्वा तु श्रुत्वापि सर्वतः लोकापवादभयादामवत् पत्नीस्त्यक्तवन्त इत्यर्थः ॥ १७ ॥

अशक्योऽयं विचिन्त्यैवं तमेव शरणं ययुः ।
ऊचुश्चैनं त्वमस्माकं पुत्रो भव महाबल ॥ २३
अभिनन्दस्व नः सर्वाः प्रस्नुताः स्नेहविक्लवाः ।
तासां तद्वचनं श्रुत्वा पातुकामः स्तनान् प्रभुः २४
ताः सम्पूज्य महासेनः कामांश्चासां प्रदाय सः ।
अपश्यदग्निमायान्तं पितरं बलिनां बली ॥ २५
स तु सम्पूजितस्तेन सह मातृगणेन ह ।
परिवार्य महासेनं रक्षमाणः स्थितः शिवः ॥ २६
सर्वासां या तु मातॄणां नारी क्रोधसमुद्भवा ।
धात्री स्वपुत्रवत् स्कन्दं शूलहस्ताऽभ्यरक्षत २७
लोहितस्योदधेः कन्या क्रूरा लोहितभोजना ।
परिष्वज्य महासेनं पुत्रवत् पर्यरक्षत ॥ २८
अग्निर्भूत्वा नैगमेयश्छागवक्त्रो बहुप्रजः ।
रमयामास शैलस्थं बालं क्रीडनकैरिव ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे स्कन्दोत्पत्तौ षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

## २२७

मार्कण्डेय उवाच ।
ग्रहाः सोपग्रहाश्चैव ऋषयो मातरस्तथा ।
हुताशनमुखाश्चैव दृप्ताः पारिषदां गणाः ॥ १
एते चान्ये च बहवो घोरास्त्रिदिववासिनः ।
परिवार्य महासेनं स्थिता मातृगणैः सह ॥ २
सन्दिग्धं विजयं दृष्ट्वा विजयेप्सुः सुरेश्वरः ।
आरुह्यैरावतस्कन्धं प्रययौ दैवतैः सह ॥ ३
आदाय वज्रं बलवान् सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।
विजिघांसुर्महासेनमिन्द्रस्तूर्णतरं ययौ ॥ ४
उग्रं तं च महानादं देवानीकं महाप्रभम् ।
विचित्रध्वजसन्नाहं नानावाहनकार्मुकम् ॥ ५
प्रवराम्बरसंवीतं श्रिया जुष्टमलङ्कृतम् ।
विजिघांसुं तमायान्तं कुमारः शक्रमन्वयात् ॥६
विनदन् पार्थ देवेशो द्रुतं याति महाबलः ।
संहर्षयन् देवसेनां जिघांसुः पावकात्मजम् ॥ ७
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैस्तथैव परमर्षिभिः ।
समीपमथ सम्प्राप्तः कार्त्तिकेयस्य वासवः ॥ ८
सिंहनादं ततश्चक्रे देवेशः सहितैः सुरैः ।
गुहोऽपि शब्दं तं श्रुत्वा व्यनदत् सागरो यथा ९
तस्य शब्देन महता समुद्भूतोदधिप्रभम् ।
बभ्राम तत्र तत्रैव देवसैन्यमचेतनम् ॥ १०
जिघांसूनुपसम्प्राप्तान् देवान् दृष्ट्वा स पावकिः ।
विससर्ज मुखात् क्रुद्धः प्रवृद्धाः पावकार्चिषः ११
अदहद्देवसैन्यानि वेपमानानि भूतले ।
ते प्रदीप्तशिरोदेहाः प्रदीप्तायुधवाहनाः ॥ १२
प्रच्युताः सहसा भान्ति व्यस्तास्तारागणा इव ।
दह्यमानाः प्रपन्नास्ते शरणं पावकात्मजम् ॥ १३
देवा वज्रधरं त्यक्त्वा ततः शान्तिमुपागताः ।
त्यक्तो देवैस्ततः स्कन्दे वज्रं शक्रो न्यपातयत् ॥
तद्विसृष्टं जघानाशु पार्श्वं स्कन्दस्य दक्षिणम् ।
बिभेद च महाराज पार्श्वं तस्य महात्मनः ॥ १५
वज्रप्रहारात् स्कन्दस्य सञ्जातः पुरुषोऽपरः ।
युवा काञ्चनसन्नाहः शक्तिधृग्दिव्यकुण्डलः १६
यद्वज्रविशनाज्जातो विशाखस्तेन सोऽभवत् ।
सञ्जातमपरं दृष्ट्वा कालानलसमद्युतिम् ॥ १७
भयादिन्द्रस्तु तं स्कन्दं प्राञ्जलिः शरणं गतः ।
तस्याभयं ददौ स्कन्दः सह सैन्यस्य सत्तमः ।
ततः प्रहृष्टास्त्रिदशा वादित्राण्यभ्यवादयन् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे इन्द्रस्कन्दसमागमे सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

२२७

**ग्रहा इति** । उपग्रहा राहुप्रभृतयः ॥ १ ॥ वज्रस्य विशनात् बाहोराखननाच्च विशाख इत्यर्थः ॥ १७ ॥

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

## २२८

मार्कण्डेय उवाच ।

स्कन्दपारिषदान् घोरान् शृणुष्वाद्भुतदर्शनान् ।
वज्रप्रहारात् स्कन्दस्य जज्ञुस्तत्र कुमारकाः ॥ १
ये हरन्ति शिशून् जातान् गर्भस्थांश्चैव दारुणाः ।
वज्रप्रहारात् कन्याश्च जज्ञिरेऽस्य महाबलाः ॥२
कुमारास्ते विशाखं च पितृत्वे समकल्पयन् ।
स भूत्वा भगवान् सङ्ख्ये रक्षंश्छागमुखस्तदा ३
वृतः कन्यागणैः सर्वैरात्मीयैः सह पुत्रकैः ।
मातृणां प्रेक्षतीनां च भद्रशाखश्च कौसलः ॥ ४
ततः *कुमारपितरं स्कन्दमाहुर्जना भुवि ।
रुद्रमग्निमुखां स्वाहां प्रदेशेषु महाबलम् ॥ ५
यजन्ति पुत्रकामाश्च पुत्रिणश्च सदा जनाः ।
यास्तास्त्वजनयत् कन्यास्तपो नाम हुताशनः ॥६
किं करोमीति ताः स्कन्दं सम्प्राप्ताः समभाषयन् ।

कुमार्य ऊचुः ।

भवेम सर्वलोकस्य मातरो वयमुत्तमाः ॥ ७
प्रसादात् तव पूज्याश्च प्रियमेतत् कुरुष्व नः ।
सोऽब्रवीद्बाढमित्येवं भविष्यध्वं पृथग्विधाः ॥ ८
शिवाश्चैवाशिवाश्चैव पुनः पुनरुदारधीः ।
ततः सङ्कल्प्य पुत्रत्वे स्कन्दं मातृगणोऽगमत् ॥९
काकी च हलिमा चैव मालिनी बृंहता तथा ।
आर्या पलाला वैमित्रा सप्तैताः शिशुमातरः १०
एतासां वीर्यसम्पन्नः शिशुर्नामातिदारुणः ।
स्कन्दप्रसादजः पुत्रो लोहिताक्षो भयङ्करः ॥ ११
एष वीराष्टकः प्रोक्तः स्कन्दमातृगणोद्भवः ।
छागवक्त्रेण सहितो नवकः परिकीर्त्यते ॥ १२
षष्ठं छागमयं वक्त्रं स्कन्दस्यैवेति विद्धि तत् ।
षट्शिरोऽभ्यन्तरं राजन्नित्यं मातृगणार्चितम् ॥१३
षण्णां तु प्रवरं तस्य शीर्षाणामिह शब्द्यते ।
शक्तिं येनासृजद्दिव्यां भद्रशाख इति स्म ह १४
इत्येतद्विविधाकारं वृत्तं शुक्लस्य पञ्चमीम् ।
तत्र युद्धं महाघोरं वृत्तं षष्ठ्यां जनाधिप ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे कुमारोत्पत्तौ अष्टविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

## २२९

मार्कण्डेय उवाच ।

उपविष्टं तु तं स्कन्दं हिरण्यकवचस्रजम् ।
हिरण्यचूडमुकुटं हिरण्याक्षं महाप्रभम् ॥ १
लोहिताम्बरसंवीतं तीक्ष्णदंष्ट्रं मनोरमम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्नं त्रैलोक्यस्यापि सुप्रियम् ॥ २
ततस्तं वरदं शूरं युवानं मृष्टकुण्डलम् ।
अभजत् पद्मरूपा श्रीः स्वयमेव शरीरिणी ॥ ३
श्रिया जुष्टः पृथुयशाः स कुमारवरस्तदा ।
निषण्णो दृश्यते भूतैः पौर्णमास्यां यथा शशी ४
अपूजयन्महात्मानो ब्राह्मणास्तं महाबलम् ।
इदमाहुस्तदा चैव स्कन्दं तत्र महर्षयः ॥ ५

ऋषय ऊचुः ।

हिरण्यगर्भ भद्रं ते लोकानां शङ्करो भव ।
त्वया षड्रात्रजातेन सर्वे लोका वशीकृताः ॥ ६
अभयं च पुनर्दत्तं त्वयैवैषां सुरोत्तम ।
तस्मादिन्द्रो भवानस्तु त्रैलोक्यस्याभयङ्करः ॥ ७

स्कन्द उवाच ।

किमिन्द्रः सर्वलोकानां करोतीह तपोधनाः ।
कथं देवगणांश्चैव पाति नित्यं सुरेश्वरः ॥ ८

ऋषय ऊचुः ।

इन्द्रो ददाति भूतानां बलं तेजः प्रजा सुखम् ।
तुष्टः प्रयच्छति तथा सर्वान् कामान् सुरेश्वरः ९
दुर्वृत्तानां संहरति व्रतस्थानां प्रयच्छति ।
अनुशास्ति च भूतानि कार्येषु बलसूदनः ॥ १०
असूर्ये च भवेत् सूर्यस्तथाऽचन्द्रे च चन्द्रमाः ।
भवत्यग्निश्च वायुश्च पृथिव्यापश्च कारणैः ॥ ११

---

२२८

स्कन्देति ॥ १ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

२२९

उपविष्टमिति ॥ १ हिरण्यगर्भेति सम्बोधनेन स्कन्दस्य सूत्रात्ममूर्तितां दर्शयति ॥६॥ * कुमारं संजातम्—ख.

एतदिन्द्रेण कर्तव्यमिन्द्रे हि विपुलं बलम् ।
त्वं च वीर बली श्रेष्ठस्तस्मादिन्द्रो भवस्व नः॥१२

शक्र उवाच ।

भवस्वेन्द्रो महाबाहो सर्वेषां नः सुखावहः ।
अभिषिच्यस्व चैवाद्य प्राप्तकालोऽसि सत्तम ॥ १३

स्कन्द उवाच ।

शाधि त्वमेव त्रैलोक्यमव्यग्रो विजये रतः ।
अहं ते किङ्करः शक्र न ममेन्द्रत्वमीप्सितम् १४

शक्र उवाच ।

बलं तवाद्भुतं वीर त्वं देवानामरीन् जहि ।
अवज्ञास्यन्ति मां लोका वीर्येण तव विस्मिताः॥१५
इन्द्रत्वे तु स्थितं वीर बलहीनं पराजितम् ।
आवयोश्च मिथो भेदे प्रयतिष्यन्त्यतन्द्रिताः १६
भेदिते च त्वयि विभो लोको द्वैधमुपेष्यति ।
द्विधाभूतेषु लोकेषु निश्चितेष्वावयोस्तथा ॥ १७
विग्रहः सम्प्रवर्तेत भूतभेदान्महाबल ।
तत्र त्वं मां रणे तात यथाश्रद्धं विजेष्यसि १८
तस्मादिन्द्रो भवानेव भविता मा विचारय ।

स्कन्द उवाच ।

त्वमेव राजा भद्रं ते त्रैलोक्यस्य ममैव च ॥ १९
करोमि किञ्च ते शक्र शासनं तद्ब्रवीहि मे ।

इन्द्र उवाच ।

अहमिन्द्रो भविष्यामि तव वाक्यान्महाबल २०
यदि सत्यमिदं वाक्यं निश्चयाद्भाषितं त्वया ।
यदि वा शासनं स्कन्द कर्तुमिच्छसि मे शृणु २१
अभिषिच्यस्व देवानां सैनापत्ये महाबल ।

स्कन्द उवाच ।

दानवानां विनाशाय देवानामर्थसिद्धये ॥ २२
गोब्राह्मणहितार्थाय सैनापत्येऽभिषिञ्च माम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

सोऽभिषिक्तो मघवता सर्वैर्देवगणैः सह ॥ २३
अतीव शुशुभे तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ।
तत्र तत् काञ्चनं छत्रं ध्रियमाणं व्यरोचत ॥ २४
यथैव सुसमिद्धस्य पावकस्यात्ममण्डलम् ।
विश्वकर्मकृता चास्य दिव्या माला हिरण्मयी ॥
आबद्धा त्रिपुरघ्नेन स्वयमेव यशस्विना ।
आगम्य मनुजव्याघ्र सह देव्या परन्तप ॥ २६

अर्चयामास सुप्रीतो भगवान् गोवृषध्वज
रुद्रमग्निं द्विजाः प्राहू रुद्रसूनुस्ततस्तु सः ॥ २७
रुद्रेण शुक्रमुत्सृष्टं तच्छ्वेतः पर्वतोऽभवत् ।
पावकस्येन्द्रियं श्वेते कृत्तिकाभिः कृतं नगे ॥ २८
पूज्यमानं तु रुद्रेण दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः ।
रुद्रसूनं ततः प्राहुर्गुहं गुणवतां वरम् ॥ २९
अनुप्रविश्य रुद्रेण वह्निं जातो ह्ययं शिशुः ।
तत्र जातस्ततः स्कन्दो रुद्रसूनुस्ततोऽभवत् ॥३०
रुद्रस्य वह्नेः स्वाहायाः षण्णां स्त्रीणां च भारत ।
जातः स्कन्दः सुरश्रेष्ठो रुद्रसूनुस्ततोऽभवत्॥३१
अरजे वाससी रक्ते वसानः पावकात्मजः ।
भाति दीप्तवपुः श्रीमान् रक्ताभ्राभ्यामिवांशुमान्
कुक्कुटश्चाग्निना दत्तस्तस्य केतुरलङ्कृतः ।
रथे समुच्छ्रितो भाति कालाग्निरिव लोहितः३३
या चेष्टा सर्वभूतानां प्रभा शान्तिर्बलं तथा ।
अग्रतस्तस्य सा शक्तिर्देवानां जयवर्धिनी ॥ ३४
विवेश कवचं चास्य शरीरे सहजं तथा ।
युध्यमानस्य देवस्य प्रादुर्भवति तत् सदा ॥ ३५
शक्तिर्धर्मो बलं तेजः कान्तत्वं सत्यमुन्नतिः ।
ब्रह्मण्यत्वमसम्मोहो भक्तानां परिरक्षणम् ॥ ३६
निकृन्तनं च शत्रूणां लोकानां चाभिरक्षणम् ।
स्कन्देन सह जातानि सर्वाण्येव जनाधिप ॥३७
एवं देवगणैः सर्वैः सोऽभिषिक्तः स्वलङ्कृतः ।
बभौ प्रतीतः सुमनाः परिपूर्णेन्दुमण्डलः ॥ ३८
इष्टैः स्वाध्यायघोषैश्च देवतूर्यवरैरपि ।
देवगन्धर्वगीतैश्च सर्वैरप्सरसां गणैः ॥ ३९
एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्तुष्टैर्हृष्टैः स्वलङ्कृतैः ।
सुसंवृतः पिशाचानां गणैर्देवगणैस्तथा ॥ ४०
क्रीडन् भाति तदा देवैरभिषिक्तश्च पावकिः ।
अभिषिक्तं महासेनमपश्यन्त दिवौकसः ॥ ४१
विनिहत्य तमः सूर्यं यथेहाभ्युदितं तथा ।
अथैनमभ्ययुः सर्वा देवसेनाः सहस्रशः ॥ ४२
अस्माकं त्वं पतिरिति ब्रुवाणाः सर्वतो दिशः ।
ताः समासाद्य भगवान् सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ ४३
अर्चितस्तु स्तुतश्चैव सान्त्वयामास ता अपि ।
शतक्रतुश्चाभिषिच्य स्कन्दं सेनापतिं तदा ॥ ४४

रुद्रमग्निमिति । 'रुद्रो वा एष यदग्निः' इतिश्रुतिविदो द्विजाः प्राहुः ॥ २७ ॥ प्रकारान्तरेण स्कन्दस्य रुद्रसूनुत्वमाह अनुप्रविश्येति । अनुप्रविश्य स्थितेनेति शेषः । ततः वह्निदेहे प्रविष्टाद्रुद्राज्जात इति वा रुद्रसूनुरित्यर्थः ॥ ३० ॥

सस्मार तां देवसेनां या सा तेन विमोक्षिता ।
अयं तस्याः पतिर्नूनं विहितो ब्रह्मणा स्वयम् ४५
इति चिन्तयानयामास देवसेनां स्वलङ्कृताम् ।
स्कन्दं प्रोवाच बलभिदियं कन्या सुरोत्तम ॥४६
अजाते त्वयि निर्दिष्टा तव पत्नी स्वयम्भुवा ।
तस्मात् त्वमस्या विधिवत् पाणिं मन्त्रपुरस्कृतम्
गृहाण दक्षिणं देव्याः पाणिना पद्मवर्चसा ।
एवमुक्तः स जग्राह तस्याः पाणिं यथाविधि ४८
बृहस्पतिर्मन्त्रविद्धि जजाप च जुहाव च ।
एवं स्कन्दस्य महिषीं देवसेनां विदुर्जनाः ॥ ४९
षष्ठीं यां ब्राह्मणाः प्राहुर्लक्ष्मीमाशां सुखप्रदाम् ।
सिनीवालीं कुहूं चैव सद्वृत्तिमपराजिताम् ॥ ५०
यदा स्कन्दः पतिर्लब्धः शाश्वतो देवसेनया ।
तदा तमाश्रयल्लक्ष्मीः स्वयं देवी शरीरिणी ॥ ५१
श्रीजुष्टः पञ्चमीं स्कन्दस्तस्माच्छ्रीपञ्चमी स्मृता ।
षष्ठ्यां कृतार्थोऽभूद्यस्मात्तस्मात् षष्ठी महातिथिः

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे स्कन्दोपाख्याने ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

## २३०

मार्कण्डेय उवाच ।

श्रिया जुष्टं महासेनं देवसेनापतिं कृतम् ।
सप्तर्षिपत्न्यः षड् देव्यस्तत्सकाशमथागमन् ॥ १
ऋषिभिः सम्परित्यक्ता धर्मयुक्ता महाव्रताः ।
द्रुतमागम्य चोचुस्ता देवसेनापतिं प्रभुम् ॥ २
वयं पुत्रपरित्यक्ता भर्तृभिर्देवसम्मितैः ।
अकारणाद्रुषा तैस्तु पुण्यस्थानात् परिच्युताः॥ ३
अस्माभिः किल जातस्त्वमिति केनाप्युदाहृतम् ।
तत्सत्यमेतत् संश्रुत्य तस्मान्नस्त्रातुमर्हसि ॥ ४
अक्षयश्च भवेत् स्वर्गस्त्वत्प्रसादाद्धि नः प्रभो ।
त्वां पुत्रं चाप्यभीप्सामः कृत्वैतदनृणो भव ॥ ५

स्कन्द उवाच ।

मातरो हि भवन्त्यो मे सुतो वोऽहमनिन्दिताः ।
यच्चापीच्छत तत् सर्वं सम्भविष्यति वस्तथा ॥६

मार्कण्डेय उवाच ।

विवक्षन्तं ततः शक्रं किं कार्यमिति सोऽब्रवीत् ।
उक्तः स्कन्देन ब्रूहीति सोऽब्रवीद्वासवस्ततः ॥७
अभिजित् स्पर्धमाना तु रोहिण्या कन्यसी स्वसा
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता ॥ ८
तत्र मूढोऽस्मि भद्रं ते नक्षत्रं गगनाच्च्युतम् ।
कालं त्विमं परं स्कन्द ब्रह्मणा सह चिन्तये ॥९
धनिष्ठादिस्तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः ।
रोहिणी ह्यभवत् पूर्वमेवं सङ्ख्या समाऽभवत् १०
एवमुक्ते तु शक्रेण त्रिदिवं कृत्तिका गताः ।
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम् ॥ ११
विनता चाब्रवीत् स्कन्दं मम त्वं पिण्डदः सुतः ।
इच्छामि नित्यमेवाहं त्वया पुत्र सहासितुम् १२

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

—

२३०

श्रियेति ॥ १ ॥ विवक्षन्तमभिजिन्नक्षत्रस्य पतनान्नक्षत्रसङ्ख्या कथं समा भवेदिति प्रष्टुमिच्छन्तं शक्रं स स्कन्दः किं कार्यमित्यब्रवीत् ॥ ७ ॥ कन्यसी कनिष्ठा वनं गता अधिकारं त्यक्त्वेति शेषः ॥ ८ ॥ सा च ज्येष्ठता स्पर्धया गगनात् च्युता अतोऽहं मूढोऽस्मि नक्षत्रसङ्ख्यापूरणप्रकारस्याज्ञानादिति भावः ॥ ९ ॥ धनिष्ठादिरिति । यस्य नक्षत्रस्यायक्षणे चन्द्रसूर्यगुरूणां योगस्तद्युगादिनक्षत्रम्। तच्च पूर्वं रोहिण्यभूत् तदाऽभिजित्पतनकाले तु एकन्यूनैरहोरात्रैर्गणस्य भोगात् कृतयुगादिनक्षत्रं धनिष्ठैवाभिवदित्यर्थः । सङ्ख्या कलाकाष्ठादीनाम् ॥ १० ॥ तथा च कृत्तिकाभिरेव नक्षत्रसङ्ख्यापूर्तिं कुर्विति शक्राशयं ज्ञात्वा तास्त्रिदिवं गताः ॥ ११ ॥ ननु षट्कृत्तिकाः कथं सप्तशीर्षाभमित्युत आह विनतेति । ऋषिपत्नीनामिव गरुत्मतया अपि रूपं स्वाहया धृतमिति तत्साहित्यात् सप्तशीर्षाभमित्यर्थः ॥ १२ ॥

स्कन्द उवाच ।

एवमस्तु नमस्तेऽस्तु पुत्रस्नेहात् प्रशाधि माम् ।
स्नुषया पूज्यमाना वै देवि वत्स्यासि नित्यदा॥१३

मार्कण्डेय उवाच ।

अथ मातृगणः सर्वः स्कन्दं वचनमब्रवीत् ।
वयं सर्वस्य लोकस्य मातरः कविभिः स्तुताः ।
इच्छामो मातरस्तुभ्यं भवितुं पूजयस्व नः ॥ १४

स्कन्द उवाच ।

मातरो हि भवत्यो मे भवतीनामहं सुतः ।
उच्यतां यन्मया कार्यं भवतीनामथेप्सितम् ॥ १५

मातर ऊचुः ।

यास्तु ता मातरः पूर्वं लोकस्यास्य प्रकल्पिताः
अस्माकं तु भवेत् स्थानं तासां चैव न तद्भवेत् ॥
भवेम पूज्या लोकस्य न ताः पूज्याः सुरर्षभ ।
प्रजाऽस्माकं हृतास्ताभिस्त्वत्कृते ताः प्रयच्छ नः

स्कन्द उवाच ।

दत्ताः प्रजा न ताः शक्या भवतीभिर्निषेवितुम् ।
अन्यां वः कां प्रयच्छामि प्रजां यां मनसेच्छथ ॥

मातर ऊचुः

इच्छाम तासां मातॄणां प्रजा भोक्तुं प्रयच्छ नः ।
त्वया सह पृथग्भूता ये च तासामथेश्वराः १९

स्कन्द उवाच ।

प्रजा वो दद्मि कष्टं तु भवतीभिरुदाहृतम् ।
परिरक्षत भद्रं वः प्रजाः साधु नमस्कृताः ॥ २०

मातर ऊचुः ।

परिरक्षाम भद्रं ते प्रजाः स्कन्द यथेच्छसि ।
त्वया नो रोचते स्कन्द सहवासश्चिरं प्रभो ॥२१

स्कन्द उवाच ।

यावत् षोडश वर्षाणि भवन्ति तरुणाः प्रजाः ।
प्रबाधत मनुष्याणां तावद्रूपैः पृथग्विधैः ॥ २२
अहं च वः प्रदास्यामि रौद्रमात्मानमव्ययम् ।
परमं तेन सहिता सुखं वत्स्यथ पूजिताः ॥ २३

मार्कण्डेय उवाच ।

ततः शरीरात् स्कन्दस्य पुरुषः पावकप्रभः ।
भोक्तुं प्रजाः स मर्त्यानां निष्पपात महाप्रभः॥ २४
अपतत् सहसा भूमौ विसंज्ञोऽथ क्षुधार्दितः ।
स्कन्देन सोऽभ्यनुज्ञातो रौद्ररूपोऽभवद्ग्रहः ॥ २५
स्कन्दापस्मारमित्याहुर्ग्रहं तं द्विजसत्तमाः ।
विनता तु महारौद्रा कथ्यते शकुनिग्रहः ॥ २६
पूतनां राक्षसीं प्राहुस्तं विद्यात् पूतनाग्रहम् ।
कष्टा दारुणरूपेण घोररूपा निशाचरी ॥ २७
पिशाची दारुणाकारा कथ्यते शीतपूतना ।
गर्भान् सा मानुषीणां तु हरते घोरदर्शना ॥ २८
अदितिं रेवतीं प्राहुर्ग्रहस्तस्यास्तु रैवतः ।
सोऽपि बालान् महाघोरो बाधते वै महाग्रहः॥२९
दैत्यानां या दितिर्माता तामाहुर्मुखमण्डिकाम् ।
अत्यर्थं शिशुमांसेन सम्प्रहृष्टा दुरासदा ॥ ३०
कुमाराश्च कुमार्यश्च ये प्रोक्ताः स्कन्दसम्भवाः ।
तेऽपि गर्भभुजः सर्वे कौरव्य सुमहाग्रहाः ॥ ३१
तासामेव तु पत्नीनां पतयस्ते प्रकीर्तिताः ।
आजायमानान् गृह्णन्ति बालकान् रौद्रकर्मिणः॥
गवां माता तु या प्राज्ञैः कथ्यते सुरभिर्नृप ।
शकुनिस्तामथारुह्य सह भुङ्क्ते शिशून् भुवि ॥३३
सरमा नाम या माता शुनां देवी जनाधिप ।
साऽपि गर्भान् समादत्ते मानुषीणां सदैव हि॥३४
पादपानां च या माता करञ्जनिलया हि सा ।
वरदा सा हि सौम्या च नित्यं भूतानुकम्पिनी॥
करञ्जे तां नमस्यन्ति तस्मात् पुत्रार्थिनो नराः ।
इमे त्वष्टादशान्ये वै ग्रहा मांसमधुप्रियाः ॥ ३६
द्विपञ्चरात्रं तिष्ठन्ति सततं सूतिकागृहे ।
कद्रूः सूक्ष्मवपुर्भूत्वा गर्भिणीं प्रविशत्यथ ॥ ३७
भुङ्क्ते सा तत्र तं गर्भं सा तु नागं प्रसूयते ।
गन्धर्वाणां तु या माता सा गर्भं गृह्य गच्छति॥
ततो विलीनगर्भा सा मानुषी भुवि दृश्यते ।
या जनित्री त्वप्सरसां गर्भमास्ते प्रगृह्य सा ॥३९
उपनष्टं ततो गर्भं कथयन्ति मनीषिणः ।
लोहितस्योदधेः कन्या धात्री स्कन्दस्य सा स्मृता
लोहितायनिरित्येवं कदम्बे सा हि पूज्यते ।
पुरुषेषु यथा रुद्रस्तथाऽऽर्या प्रमदास्वपि ॥ ४१

---

स्नुषया देवसेनया ॥ १३ ॥ मातृगणः विनतादिसमूहः ॥ १४ ॥ ताः प्रसिद्धाः मातरो ब्राह्मीमाहेश्वरीप्रभृतयः ॥ १६ ॥ त्वत्कृते त्वदर्थं ताभिर्ब्राह्म्यादिभिरस्मद्भर्तॄन् मिथ्याभिशापदोषेण कोपयन्तीभिः प्रजा हृताः सङ्गाभावादित्यर्थः । सन्धिरार्षः । नः अस्मभ्यं प्रयच्छ । भर्तॄणामनुकूलनेनेत्यर्थः ॥ १७ ॥ दत्ताः मया दत्ता अपि मया प्रार्थिता अपि मुनयो युष्मान् नाङ्गीकरिष्यन्तीति भावः ॥ १८ ॥ मातॄणां ब्राह्म्यादीनां तासां प्रजानां ईश्वराः पित्रादयः ॥ १९ ॥ प्रजाः अस्मदाद्याः नमस्कृता यूयं मयेति शेषः ॥ २० ॥

आर्या माता कुमारस्य पृथक्कामार्थमिज्यते ।
एवमेते कुमाराणां मया प्रोक्ता महाग्रहाः ॥ ४२
यावत् षोडश वर्षाणि शिशूनां ह्यशिवास्ततः ।
ये च मातृगणाः प्रोक्ताः पुरुषाश्चैव ये ग्रहाः ४३
सर्वे स्कन्दग्रहा नाम ज्ञेया नित्यं शरीरिभिः ।
तेषां प्रशमनं कार्यं स्नानं धूपमथाञ्जनम् ।
बलिकर्मोपहाराश्च स्कन्दस्येज्याविशेषतः ॥ ४४
एवमभ्यर्चिताः सर्वे प्रयच्छन्ति शुभं नृणाम् ।
आयुर्वीर्यं च राजेन्द्र सम्यक्पूजानमस्कृताः ४५
ऊर्ध्वं तु षोडशाद्वर्षाद्ये भवन्ति ग्रहा नृणाम् ।
तानहं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ ४६
यः पश्यति नरो देवान् जाग्रद्वा शयितोऽपि वा
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं तं तु देवग्रहं विदुः ॥ ४७
आसीनश्च शयानश्च यः पश्यति नरः पितॄन् ।
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं स ज्ञेयस्तु पितृग्रहः ॥ ४८
अवमन्यति यः सिद्धान् क्रुद्धाश्चापि शपन्ति यम्
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं ज्ञेयः सिद्धग्रहस्तु सः॥४९
उपाघ्राति च यो गन्धान् रसांश्चापि पृथग्विधान्
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं स ज्ञेयो राक्षसो ग्रहः ५०
गन्धर्वाश्चापि यं दिव्याः संविशन्ति नरं भुवि ।
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं ग्रहो गान्धर्व एव सः ५१
अधिरोहन्ति यं नित्यं पिशाचाः पुरुषं प्रति ।
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं ग्रहः पैशाच एव सः ॥५२
आविशन्ति च यं यक्षाः पुरुषं कालपर्यये ।
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं ज्ञेयो यक्षग्रहस्तु सः ॥५३
यस्य दोषैः प्रकुपितं चित्तं मुह्यति देहिनः ।
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं साधनं तस्य शास्त्रतः ५४
वैक्लव्याच्च भयाच्चैव घोराणां चापि दर्शनात् ।
उन्माद्यति स तु क्षिप्रं सान्त्वं तस्य तु साधनम्५५
कश्चित् क्रीडितुकामो वै भोक्तुकामस्तथाऽपरः ।
अभिकामस्तथैवान्य इत्येष त्रिविधो ग्रहः ॥ ५६
यावत् सप्ततिवर्षाणि भवन्त्येते ग्रहा नृणाम् ।
अतः परं देहिनां तु ग्रहतुल्यो भवेज्ज्वरः ॥ ५७
अप्रकीर्णेन्द्रियं दान्तं शुचिं नित्यमतन्द्रितम् ।
आस्तिकं श्रद्दधानं च वर्जयन्ति सदा ग्रहाः ५८
इत्येष ते ग्रहोद्देशो मानुषाणां प्रकीर्तितः ।
न स्पृशन्ति ग्रहा भक्तान् नरान् देवं महेश्वरम् ५९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे मनुष्यग्रहकथने त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

## २३१

मार्कण्डेय उवाच ।

यदा स्कन्देन मातॄणामेवमेतत् प्रियं कृतम् ।
अथैनमब्रवीत् स्वाहा मम पुत्रस्त्वमौरसः ॥ १
इच्छाम्यहं त्वया दत्तां प्रीतिं परमदुर्लभाम् ।
तामब्रवीत् ततः स्कन्दः प्रीतिमिच्छसि कीदृशीम्

स्वाहोवाच ।

दक्षस्याहं प्रिया कन्या स्वाहा नाम महाभुज ।
बाल्यात्प्रभृति नित्यं च जातकामा हुताशने ३
न स मां कामिनीं पुत्र सम्यक् जानाति पावकः
इच्छामि शाश्वतं वासं वस्तुं पुत्र सहाग्निना ॥४

स्कन्द उवाच ।

हव्यं कव्यं च यत्किञ्चिद्द्विजानां मन्त्रसंस्तुतम् ।
होष्यन्त्यग्नौ सदा देवि स्वाहेत्युक्त्वा समुद्धृतम्५
अद्यप्रभृति दास्यन्ति सुवृत्ताः सत्पथे स्थिताः ।
एवमग्निस्त्वया सार्धं सदा वत्स्यति शोभने ॥ ६

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमुक्ता ततः स्वाहा तुष्टा स्कन्देन पूजिता ।
पावकेन समायुक्ता भर्त्रा स्कन्दमपूजयत् ॥ ७
ततो ब्रह्मा महासेनं प्रजापतिरथाब्रवीत् ।
अभिगच्छ महादेवं पितरं त्रिपुरार्दनम् ॥ ८

मिथ्याभिशापप्रस्तानामपि स्कन्दमातॄणां बाल्यग्रहत्वादिना चाधिकारप्राप्तिः किमुत साक्षाद्दोषकर्तॄणामतः सर्वदोषपरिहारार्थं महेश्वरः पूज्य इत्युपसंहरति अप्रकीर्णेन्द्रियमिति ॥ ५८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

२३१

यदेति ॥ १ ॥

रुद्रेणाग्निं समाविश्य स्वाहामाविश्य चोमया ।
हितार्थं सर्वलोकानां जातस्त्वमपराजितः ॥ ९
उमायोन्यां च रुद्रेण शुक्रं सिक्तं महात्मना ।
अस्मिन् गिरौ निपातितं मिञ्जिकामिञ्जिकं यतः॥१०
सम्भूतं लोहितोदे तु शुक्रशेषमवापतत् ।
सूर्यरश्मिषु चाप्यन्यदन्यच्चैवापतद्भुवि ॥ ११
आसक्तमन्यद्वृक्षेषु तदेवं पञ्चधाऽपतत् ।
तत्र ते विविधाकारा गणा ज्ञेया मनीषिभिः ।
तव पारिषदा घोरा य एते पिशिताशिनः ॥ १२
एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा महासेनो महेश्वरम् ।
अपूजयदमेयात्मा पितरं पितृवत्सलः ॥ १३

मार्कण्डेय उवाच ।

अर्कपुष्पैस्तु ते पञ्च गणाः पूज्या धनार्थिभिः ।
व्याधिप्रशमनार्थं च तेषां पूजां समाचरेत् ॥ १४
मिञ्जिकामिञ्जिकं चैव मिथुनं रुद्रसम्भवम् ।
नमस्कार्यं सदैवेह बालानां हितमिच्छता ॥ १५
स्त्रियो मानुषमांसादा वृद्धिका नाम नामतः ।
वृक्षेषु जातास्ता देव्यो नमस्कार्याः प्रजार्थिभिः ॥
एवमेते पिशाचानामसङ्ख्येया गणाः स्मृताः ।
घण्टायाः सपताकायाः शृणु मे सम्भवं नृप ॥१७
ऐरावतस्य घण्टे द्वे वैजयन्त्याविति श्रुते ।
गुहस्य ते स्वयं दत्ते क्रमेणानाय्य धीमता ॥ १८
एका तत्र विशाखस्य घण्टा स्कन्दस्य चापरा ।
पताका कार्तिकेयस्य विशाखस्य च लोहिता ॥
यानि क्रीडनकान्यस्य देवैर्दत्तानि वै तदा ।
तैरेव रमते देवो महासेनो महाबलः ॥ २०
स संवृतः पिशाचानां गणैर्देवगणैस्तथा ।
शुशुभे काञ्चने शैले दीप्यमानः श्रिया वृतः ॥२१
तेन वीरेण शुशुभे स शैलः शुभकाननः ।
आदित्येनेवांशुमता मन्दरश्चारुकन्दरः ॥ २२
सन्तानकवनैः फुल्लैः करवीरवनैरपि ।
पारिजातवनैश्चैव जपाशोकवनैस्तथा ॥ २३
कदम्बतरुषण्डैश्च दिव्यैर्मृगगणैरपि ।
दिव्यैः पक्षिगणैश्चैव शुशुभे श्वेतपर्वतः ॥ २४
तत्र देवगणाः सर्वे सर्वे देवर्षयस्तथा ॥
मेघतूर्यरवाश्चैव क्षुब्धोदधिसमस्वनाः ॥ २५
तत्र दिव्याश्च गन्धर्वा नृत्यन्तेऽप्सरसस्तथा ।
हृष्टानां तत्र भूतानां श्रूयते निनदो महान् ॥ २६
एवं सेन्द्रं जगत् सर्वं श्वेतपर्वतसंस्थितम् ।
प्रहृष्टं प्रेक्षते स्कन्दं न च ग्लायति दर्शनात् ॥ २७

मार्कण्डेय उवाच ।

यदाऽभिषिक्तो भगवान् सैनापत्येन पावकिः ।
तदा सम्प्रस्थितः श्रीमान् हृष्टो भद्रवटं हरः ॥२८
रथेनादित्यवर्णेन पार्वत्या सहितः प्रभुः¶ ।
सहस्रं तस्य सिंहानां तस्मिन् युक्तं रथोत्तमे॥२९
उत्पपात दिवं शुभ्रं कालेनाभिप्रचोदितम् ।
ते पिबन्त इवाकाशं त्रासयन्तश्चराचरान् ॥ ३०
सिंहा नभस्यगच्छन्त नदन्तश्चारुकेसराः ।
तस्मिन् रथे पशुपतिः स्थितो भात्युमया सह॥३१
विद्युता सहितः सूर्यः सेन्द्रचापे घने यथा ।
अग्रतस्तस्य भगवान् धनेशो गुह्यकैः सह ॥ ३२
आस्थाय तु चिरं याति पुष्पकं नरवाहनः ।
ऐरावतं समास्थाय शक्रश्चापि सुरैः सह ॥ ३३
पृष्ठतोऽनुययौ यान्तं वरदं वृषभध्वजम् ।
जृम्भकैर्यक्षरक्षोभिः स्रग्विभिः समलङ्कृतः ॥३४
यात्यमोघो महायक्षो दक्षिणं पक्षमास्थितः ।
तस्य दक्षिणतो देवा वहवश्चित्रयोधिनः ॥ ३५
गच्छन्ति वसुभिः सार्धं रुद्रैश्च सह सङ्गताः ।
यमश्च मृत्युना सार्धं सर्वतः परिवारितः ॥ ३६
घोरैर्व्याधिशतैर्याति घोररूपवपुस्तथा ।
यमस्य पृष्ठतश्चैव घोरस्त्रिशिखरः शितः ॥ ३७
विजयो नाम रुद्रस्य याति शूलः स्वलङ्कृतः ।
तमुग्रपाशो वरुणो भगवान् सलिलेश्वरः ॥ ३८
परिवार्य शनैर्याति यादोभिर्विविधैर्वृतः ।
पृष्ठतो विजयस्यापि याति रुद्रस्य पट्टिशः ॥ ३९
गदामुसलशक्त्याद्यैर्वृतः प्रहरणोत्तमैः ।
पट्टिशं त्वन्वगाद्राजंश्छत्रं रौद्रं महाप्रभम् ॥ ४०
कमण्डलुश्चाप्यनु तं महर्षिगणसेवितः ।
तस्य दक्षिणतो भाति दण्डो गच्छन् श्रिया वृतः
भृग्वङ्गिरोभिः सहितो दैवतैश्चानुपूजितः ।
एषां तु पृष्ठतो रुद्रो विमले स्यन्दने स्थितः ॥ ४२
याति संहर्षयन् सर्वांस्तेजसा त्रिदिवौकसः ।
ऋषयश्चापि देवाश्च गन्धर्वा भुजगास्तथा ॥ ४३
नद्यो ह्रदाः समुद्राश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव देवानां शिशवश्च ये ॥ ४४
स्त्रियश्च विविधाकारा यान्ति रुद्रस्य पृष्ठतः ।
सृजन्त्यः पुष्पवर्षाणि चारुरूपा वराङ्गनाः ॥ ४५

---

जृम्भकैर्ग्रहविशेषैः ॥ ३४ ॥ ¶ अनुयातः सुरैः सर्वैः सहस्राक्षपुरोगमैः । इत्यधिकं-ख.

पर्जन्यश्चाप्यनुययौ नमस्कृत्य पिनाकिनम् ।
छत्रं च पाण्डुरं सोमस्तस्य मूर्ध्न्यधारयत् ॥ ४६
चामरे चापि वायुश्च गृहीत्वाऽग्निश्च धिष्ठितौ ।
शक्रश्च पृष्ठतस्तस्य याति राजञ्छ्रिया वृतः ॥ ४७
सह राजर्षिभिः सर्वैः स्तुवानो वृषकेतनम् ।
गौरी विद्याऽथ गान्धारी केशिनी मित्रसाह्वया ॥
सावित्र्या सह सर्वास्ताः पार्वत्या यान्ति पृष्ठतः
तत्र विद्यागणाः सर्वे ये केचित् कविभिः कृताः
तस्य कुर्वन्ति वचनं सेन्द्रा देवाश्चमूमुखे ।
गृहीत्वा तु पताकां वै यात्यग्रे राक्षसो ग्रहः ॥ ५०
व्यापृतस्तु श्मशाने यो नित्यं रुद्रस्य वै सखा ।
पिङ्गलो नाम यक्षेन्द्रो लोकस्यानन्ददायकः ॥ ५१
एभिश्च सहितो देवस्तत्र याति यथासुखम् ।
अग्रतः पृष्ठतश्चैव न हि तस्य गतिर्ध्रुवा ॥ ५२
रुद्रं सत्कर्मभिर्मर्त्याः पूजयन्तीह दैवतम् ।
शिवमित्येव यं प्राहुरीशं रुद्रं पितामहम् ॥ ५३
भावैस्तु विविधाकारैः पूजयन्ति महेश्वरम् ।
देवसेनापतिस्त्वेवं देवसेनाभिरावृतः ।
अनुगच्छति देवेशं ब्रह्मण्यः कृत्तिकासुतः ॥ ५४
अथाब्रवीन्महासेनं महादेवो बृहद्वचः ।
सप्तमं मारुतस्कन्धं रक्ष नित्यमतन्द्रितः ॥ ५५

स्कन्द उवाच ।

सप्तमं मारुतस्कन्धं पालयिष्याम्यहं प्रभो ।
यदन्यदपि मे कार्यं देव तद्वद माचिरम् ॥ ५६

रुद्र उवाच ।

कार्येष्वहं त्वया पुत्र सन्द्रष्टव्यः सदैव हि ।
दर्शनान्मम भक्त्या च श्रेयः परमवाप्स्यसि ॥ ५७

मार्कण्डेय उवाच ।

इत्युक्त्वा विससर्जैनं परिष्वज्य महेश्वरः ।
विसर्जिते ततः स्कन्दे बभूवौत्पातिकं महत् ॥ ५८
सहसैव महाराज देवान् सर्वान् प्रमोहयत् ।
जज्वाल खं सनक्षत्रं प्रमूढं भुवनं भृशम् ॥ ५९
चचाल व्यनदच्चोर्वी तमोभूतं जगद्बभौ ।
ततस्तद्दारुणं दृष्ट्वा क्षुभितः शङ्करस्तदा ॥ ६०
उमा चैव महाभागा देवाश्च समहर्षयः ।
ततस्तेषु प्रमूढेषु पर्वताम्बुदसन्निभम् ॥ ६१
नानाप्रहरणं घोरमदृश्यत महद्बलम् ।
तद्वै घोरमसङ्ख्येयं गर्जच्च विविधा गिरः ॥ ६२
अभ्यद्रवद्रणे देवान् भगवन्तं च शङ्करम् ।
तैर्विसृष्टान्यनीकेषु बाणजालान्यनेकशः ॥ ६३
पर्वताश्च शतघ्न्यश्च प्रासासिपरिघा गदाः ।
निपतद्भिश्च तैर्घोरैर्देवानीकं महायुधैः ॥ ६४
क्षणेन व्यद्रवत् सर्वं विमुखं चाप्यदृश्यत ।
निकृत्तयोधनागाश्वं कृत्तायुधमहारथम् ॥ ६५
दानवैरर्दितं सैन्यं देवानां विमुखं बभौ ।
असुरैर्वध्यमानं तत् पावकैरिव काननम् ॥ ६६
अपतद्दग्धभूयिष्ठं महाद्रुमवनं यथा ।
ते विभिन्नशिरोदेहाः प्राद्रवन्तो दिवौकसः ॥ ६७
न नाथमध्यगच्छन्ति वध्यमाना महारणे ।
अथ तद्विद्रुतं सैन्यं दृष्ट्वा देवः पुरन्दरः ॥ ६८
आश्वासयन्नुवाचेदं बलभिद्दानवार्दितम् ।
भयं त्यजत भद्रं वः शूराः शस्त्राणि गृह्णत ॥ ६९
कुरुध्वं विक्रमे बुद्धिं मा वः काचिद्व्यथा भवेत् ।
जयतैनान् सुदुर्वृत्तान् दानवान् घोरदर्शनान् ७०
अभिद्रवत भद्रं वो मया सह महासुरान् ।
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा समाश्वस्ता दिवौकसः ॥ ७१
दानवान् प्रत्ययुध्यन्त शक्रं कृत्वा व्यपाश्रयम् ।
ततस्ते त्रिदशाः सर्वे मरुतश्च महाबलाः ॥ ७२
प्रत्युद्ययुर्महाभागाः साध्याश्च वसुभिः सह ।
तैर्विसृष्टान्यनीकेषु क्रुद्धैः शस्त्राणि संयुगे ॥ ७३
शराश्च दैत्यकायेषु पिबन्ति रुधिरं बहु ।
तेषां देहान् विनिर्भिद्य शरास्ते निशितास्तदा ॥
निपतन्तोऽभ्यदृश्यन्त नगेभ्य इव पन्नगाः ।
तानि दैत्यशरीराणि निर्भिन्नानि स्म सायकैः ७५
अपतन् भूतले राजंश्छिन्नाभ्राणीव सर्वशः ।
ततस्तद्दानवं सैन्यं सर्वैर्देवगणैर्युधि ॥ ७६
त्रासितं विविधैर्बाणैः कृतं चैव पराङ्मुखम् ।
अथोत्कुष्टं तदा हृष्टैः सर्वैर्देवैरुदायुधैः ॥ ७७
संहतानि च तूर्याणि प्रावाद्यन्त ह्यनेकशः ।
एवमन्योन्यसंयुक्तं युद्धमासीत् सुदारुणम् ७८
देवानां दानवानां च मांसशोणितकर्दमम् ।
अनयो देवलोकस्य सहसैवाभ्यदृश्यत ॥ ७९
तथाहि दानवा घोरा विनिघ्नन्ति दिवौकसः ।
ततस्तूर्यप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनः ॥ ८०
बभूवुर्दानवेन्द्राणां सिंहनादाश्च दारुणाः ।
अथ दैत्यबलाद्घोरान्निष्पपात महाबलः ॥ ८१

विद्यागणाः स्तुतिप्रबन्धसमूहाः ॥ ४९ ॥ वचनं पठनं सरहस्यव्याख्यानं वा ॥ ५० ॥ अनयो दैत्यहरणादिः ॥ ७९ ॥

दानवो महिषो नाम प्रगृह्य विपुलं गिरिम् ।
ते तं घनैरिवादित्यं दृष्ट्वा सम्परिवारितम् ॥ ८२
तमुद्यतगिरिं राजन् व्यद्रवन्त दिवौकसः ।
अथाभिद्रुत्य महिषो देवांश्चिक्षेप तं गिरिम् ॥ ८३
पतता तेन गिरिणा देवसैन्यस्य पार्थिव ।
भीमरूपेण निहतमयुतं प्रापतद्भुवि ॥ ८४
अथ तैर्दानवैः सार्धं महिषस्त्रासयन् सुरान् ।
अभ्यद्रवद्रणे तूर्णं सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ८५
तमापतन्तं महिषं दृष्ट्वा सेन्द्रा दिवौकसः ।
व्यद्रवन्त रणे भीता विकीर्णायुधकेतनाः ॥ ८६
ततः स महिषः क्रुद्धस्तूर्णं रुद्ररथं ययौ ।
अभिद्रुत्य च जग्राह रुद्रस्य रथकूबरम् ॥ ८७
यदा रुद्ररथं क्रुद्धो महिषः सहसा गतः ।
रेसतू रोदसी गाढं मुमुहुश्च महर्षयः ॥ ८८
अनदंश्च महाकाया दैत्या जलधरोपमाः ।
आसीच्च निश्चितं तेषां जितमस्माभिरित्युत ॥ ८९
तथाभूते तु भगवानहनन्महिषं रणे ।
सस्मार च तदा स्कन्दं मृत्युं तस्य दुरात्मनः ९०
महिषोऽपि रथं दृष्ट्वा रौद्रो रुद्रस्य चानदत् ।
देवान् सन्त्रासयंश्चापि दैत्यांश्चापि प्रहर्षयन् ॥ ९१
ततस्तस्मिन् भये घोरे देवानां समुपस्थिते ।
आजगाम महासेनः क्रोधात् सूर्य इव ज्वलन् ९२
लोहिताम्बरसंवीतो लोहितस्रग्विभूषणः ।
लोहिताश्वो महाबाहुर्हिरण्यकवचः प्रभुः ॥ ९३
रथमादित्यसङ्काशमास्थितः कनकप्रभम् ।
तं दृष्ट्वा दैत्यसेना सा व्यद्रवत् सहसा रणे ॥ ९४
स चापि तां प्रज्वलितां महिषस्य विदारिणीम् ।
मुमोच शक्तिं राजेन्द्र महासेनो महाबलः ॥ ९५
सा मुक्ताऽभ्यहरत् तस्य महिषस्य शिरो महत् ।
पपात भिन्ने शिरसि महिषस्त्यक्तजीवितः ॥ ९६
पतता शिरसा तेन द्वारं षोडशयोजनम् ।
पर्वताभेन पिहितं तदाऽगम्यं ततोऽभवत् ॥ ९७
उत्तराः कुरवस्तेन गच्छन्त्यद्य यथासुखम् ।
क्षिप्ताक्षिप्ता तु सा शक्तिर्हत्वा शत्रून् सहस्रशः ९८
स्कन्दहस्तमनुप्राप्ता दृश्यते देवदानवैः ।
प्रायः शरैर्विनिहता महासेनेन धीमता ॥ ९९
शेषा दैत्यगणा घोरा भीतास्त्रस्ता दुरासदैः ।
स्कन्दपारिषदैर्हत्वा भक्षिताश्च सहस्रशः ॥ १००
दानवान् भक्षयन्तस्ते प्रपिबन्तश्च शोणितम् ।
क्षणान्निर्दानवं सर्वमकार्षुर्भृशहर्षिताः ॥ १०१
तमांसीव यथा सूर्यो वृक्षानग्निर्घनान् खगः ।
तथा स्कन्दोऽजयच्छत्रून् स्वेन वीर्येण कीर्तिमान् ।
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैरभिवाद्य महेश्वरम् ।
शुशुभे कृत्तिकापुत्रः प्रकीर्णांशुरिवांशुमान् ॥ ३
नष्टशत्रुर्यदा स्कन्दः प्रयातस्तु महेश्वरम् ।
तदाऽब्रवीन्महासेनं परिष्वज्य पुरन्दरः ॥ ४
ब्रह्मदत्तवरः स्कन्द त्वयाऽयं महिषो हतः ।
देवास्तृणसमा यस्य बभूवुर्जयतां वर ॥ ५
सोऽयं त्वया महाबाहो शमितो देवकण्टकः ।
शतं महिषतुल्यानां दानवानां त्वया रणे ॥ ६
निहतं देवशत्रूणां यैर्वयं पूर्वतापिताः ।
तावकैर्भक्षिताश्चान्ये दानवाः शतसङ्घशः ॥ ७
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामुमापतिरिव प्रभुः ।
एतत् ते प्रथमं देव ख्यातं कर्म भविष्यति ॥ ८
त्रिषु लोकेषु कीर्तिश्च तवाक्षय्या भविष्यति ।
वशगाश्च भविष्यन्ति सुरास्तव महाभुज ॥ ९
महासेनमेवमुक्त्वा निवृत्तः सह दैवतैः ।
अनुज्ञातो भगवता त्र्यम्बकेण शचीपतिः ॥ १०
गतो भद्रवटं रुद्रो निवृत्ताश्च दिवौकसः ।
उक्ताश्च देवा रुद्रेण स्कन्दं पश्यत मामिव ॥ ११
स हत्वा दानवगणान् पूज्यमानो महर्षिभिः ।
एकाह्नैवाजयत् सर्वं त्रैलोक्यं वह्निनन्दनः ॥ १२
स्कन्दस्य य इदं विप्रः पठेज्जन्म समाहितः ।
स पुष्टिमिह सम्प्राप्य स्कन्दसालोक्यमाप्नुयात् ॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे स्कन्दोत्पत्तौ महिषासुरवधे एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

---

कूबरं धूःप्रदेशम् ॥ ८७ ॥ रेसतुः शब्दं चक्रतुः । रोदसी द्यावाभूमी ॥ ८८ ॥ अहनत् हतवान् ॥ ९० ॥ द्वारमुत्तरकुरूणामिति शेषः । अगम्यमिति छेदः ॥ ९७ ॥ तेन द्वारेण ॥ ९८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

# २३२

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि नामान्यस्य महात्मनः ।
त्रिषु लोकेषु यान्यस्य विख्यातानि द्विजोत्तम ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तः पाण्डवेयेन महात्मा ऋषिसन्निधौ ।
उवाच भगवांस्तत्र मार्कण्डेयो महातपाः ॥ २

मार्कण्डेय उवाच ।

आग्नेयश्चैव स्कन्दश्च दीप्तकीर्तिरनामयः ।
मयूरकेतुर्धर्मात्मा भूतेशो महिषार्दनः ॥ ३

कामजित् कामदः कान्तः सत्यवाग्भुवनेश्वरः ।
शिशुः शीघ्रः शुचिश्चण्डो दीप्तवर्णः शुभाननः ॥ ४

अमोघस्त्वनघो रौद्रः प्रियश्चन्द्राननस्तथा ।
दीप्तशक्तिः प्रशान्तात्मा भद्रकृत् कूटमोहनः ॥ ५

षष्ठीप्रियश्च धर्मात्मा पवित्रो मातृवत्सलः ।
कन्याभर्ता विभक्तश्च स्वाहेयो रेवतीसुतः ॥ ६

प्रभुर्नेता विशाखश्च नैगमेयः सुदुश्चरः ।
सुव्रतो ललितश्चैव बालक्रीडनकप्रियः ॥ ७

खचारी ब्रह्मचारी च शूरः शरवणोद्भवः ।
विश्वामित्रप्रियश्चैव देवसेनाप्रियस्तथा ॥ ८

वासुदेवप्रियश्चैव प्रियः प्रियकृदेव तु ।
नामान्येतानि दिव्यानि कार्तिकेयस्य यः पठेत् ।
स्वर्गं कीर्तिं धनं चैव स लभेन्नात्र संशयः ॥ ९

मार्कण्डेय उवाच ।

स्तोष्यामि देवैर्ऋषिभिश्च जुष्टं
शक्त्या गुहं नामभिरप्रमेयम् ।
षडाननं शक्तिधरं सुवीरं
निबोध चैतानि कुरुप्रवीर ॥ १०

ब्रह्मण्यो वै ब्रह्मजो ब्रह्मविच्च
ब्रह्मेशयो ब्रह्मवतां वरिष्ठः ।
ब्रह्मप्रियो ब्राह्मणसव्रती त्वं
ब्रह्मज्ञो वै ब्राह्मणानां च नेता ॥ ११

स्वाहा स्वधा त्वं परमं पवित्रं
मन्त्रस्तुतस्त्वं प्रथितः षडर्चिः ।
संवत्सरस्त्वमृतवश्च षड्वै
मासार्धमासावयनं दिशश्च ॥ १२

त्वं पुष्कराक्षस्त्वरविन्दवक्त्रः
सहस्रवक्त्रोऽसि सहस्रबाहुः ।
त्वं लोकपालः परमं हविश्च
त्वं भावनः सर्वसुरासुराणाम् ॥ १३

त्वमेव सेनाधिपतिः प्रचण्डः
प्रभुर्विभुश्चाप्यथ शत्रुजेता ।
सहस्रभूस्त्वं धरणी त्वमेव
सहस्रतुष्टिश्च सहस्रभुक् ॥ १४

सहस्रशीर्षस्त्वमनन्तरूपः
सहस्रपात् त्वं गुहशक्तिधारी ।
गङ्गासुतस्त्वं स्वमतेन देव
स्वाहामहीकृत्तिकानां तथैव ॥ १५

त्वं क्रीडसे षण्मुख कुक्कुटेन
यथेष्टनानाविधकामरूपी ।
दीक्षाऽसि सोमो मरुतः सदैव
धर्मोऽसि वायुरचलेन्द्र इन्द्रः ॥ १६

सनातनानामपि शाश्वतस्त्वं
प्रभुः प्रभूणामपि चोग्रधन्वा ।
ऋतस्य कर्ता दितिजान्तकस्त्वं
जेता रिपूणां प्रवरः सुराणाम् ॥ १७

सूक्ष्मं तपस्तत्परमं त्वमेव
परावरज्ञोऽसि परावरस्त्वम् ।
धर्मस्य कामस्य परस्य चैव
त्वत्तेजसा कृत्स्नमिदं महात्मन् ॥ १८

---

२३२

सर्वेषां ग्रहाणां स्कन्धाधीनत्वात् तच्छान्तये स्कन्दं प्रार्थयितुकामस्तदीयं नामादिकं पृच्छति **भगवन्निति** ॥ १ ॥ कामजित् पूर्णमनोरथः ॥ ४ ॥ कूटं कपटं बालग्रहादि तेन मोहयतीति कूटमोहनः ॥ ५ ॥ कन्याभर्ता अग्निपुत्रत्वेनाग्निरूपत्वात् तृतीयोऽग्निष्टेपतिरिति मन्त्रवर्णाच्च ॥ ६ ॥ जुष्टं सेवितम् ॥ १० ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणेषु साधुः । ब्रह्मजो वेदोक्तेन गर्भाधानादिकर्मणा जातः । अत एव हेतुद्वयात् ब्रह्मवित् वेदार्थज्ञाता । तत एव ब्रह्मे ब्रह्मणि कर्मब्रह्मरूपे शेते इति ब्रह्मेशयः । अदन्तत्वमार्षम् । कर्मब्रह्मनिष्ठावानित्यर्थः । ब्रह्मवतां कर्मोपास्तिज्ञानवतां वरिष्ठो ज्ञानीत्यर्थः। वरिष्ठत्वे हेतुर्ब्रह्मप्रियस्तत्कर्मोपास्तिपरः ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तेन सह समानं व्रतमद्वेष्टृत्वादि रूपं यस्य स ब्राह्मणसव्रती । अत एव ब्रह्मज्ञः शुद्धब्रह्मवित् । ब्राह्मणानां नेता ब्रह्मपदप्रापकः ॥ ११ ॥ षडर्चिः षण्मुखत्वात् षड्जिह्वः ॥ १२ ॥

व्याप्तं जगत् सर्वं सुरप्रवीर
शक्त्या मया संस्तुत लोकनाथ ।
नमोऽस्तु ते द्वादशनेत्रबाहो
अतः परं वेद्मि गतिं न तेऽहम् ॥ १९

स्कन्दस्य य इदं विप्रः पठेज्जन्म समाहितः ।
श्रावयेद्ब्राह्मणेभ्यो यः शृणुयाद्वा द्विजेरितम् ॥२०
धनमायुर्यशो दीप्तं पुत्रान् शत्रुजयं तथा ।
स पुष्टितुष्टी सम्प्राप्य स्कन्दसालोक्यमाप्नुयात्२१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मार्कण्डेयसमास्यापर्वणि आङ्गिरसे कार्तिकेयस्तवे द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

समाप्तं च मार्कण्डेयसमास्यापर्व ।

## द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व ।

### २३३

वैशम्पायन उवाच ।
उपासीनेषु विप्रेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
द्रौपदीसत्यभामा च विविशाते तदा समम् ॥ १
जाहस्यमाने सुप्रीते सुखं तत्र निषीदतुः ।
चिरस्य दृष्ट्वा राजेन्द्र तेऽन्योन्यस्य प्रियंवदे ॥ २
कथयामासतुश्चित्राः कथाः कुरुयदूत्थिताः ।
अथाब्रवीत् सत्यभामा कृष्णस्य महिषी प्रिया ३
सात्राजिती याज्ञसेनीं रहसीदं सुमध्यमा ।
केन द्रौपदि वृत्तेन पाण्डवानधितिष्ठसि ॥ ४
लोकपालोपमान् वीरान् पुनः परमसंहतान् ।
कथं च वशगास्तुभ्यं न कुप्यन्ति च ते शुभे ॥५
तव वश्या हि सततं पाण्डवाः प्रियदर्शने ।
मुखप्रेक्षाश्च ते सर्वे तत्त्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ ६
व्रतचर्या तपो वाऽपि स्नानमन्त्रौषधानि वा ।
विद्या वीर्यं मूलवीर्यं जपहोमागदास्तथा ॥ ७
ममाद्याचक्ष्व पाञ्चालि यशस्यं भगदैवतम् ।
येन कृष्णे भवेन्नित्यं मम कृष्णो वशानुगः ॥ ८

एवमुक्त्वा सत्यभामा विरराम यशस्विनी ।
पतिव्रता महाभागा द्रौपदी प्रत्युवाच ताम् ॥ ९
असत्स्त्रीणां समाचारं सत्ये मामनुपृच्छसि ।
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्तनम् ॥ १०
अनुप्रश्नः संशयो वा नैतत् त्वय्युपपद्यते ।
तथा ह्युपेता बुद्ध्या त्वं कृष्णस्य महिषी प्रिया ११
यदैव भर्ता जानीयान्मन्त्रमूलपरां स्त्रियम् ।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ १२
उद्विग्नस्य कुतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।
न जातु वशगो भर्ता स्त्रियाः स्यान्मन्त्रकर्मणा ॥
अमित्रप्रहितांश्चापि गदान् परमदारुणान् ।
मूलप्रचारैर्हि विषं प्रयच्छन्ति जिघांसवः ॥ १४
जिह्वया यानि पुरुषस्त्वचा वाऽप्युपसेवते ।
तत्र चूर्णानि दत्तानि हन्युः क्षिप्रमसंशयम् ॥१५
जलोदरसमायुक्ताः श्वित्रिणः पलितास्तथा ।
अपुमांसः कृताः स्त्रीभिर्जडान्धबधिरास्तथा १६

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

२३३

पतिव्रतोपाख्याने सूचितान् स्त्रीधर्मान् विवरीतुं द्रौपदीसत्यभामासंवादमारभते उपासीनेषु विप्रेष्वित्यादिना । सममेकत्र ॥ १ ॥ जाहस्यमाने परस्परमतिशयेन हसन्त्यौ ॥ २ ॥ कुरुयदूत्थिताः कुरुषु यदुषु च उत्पन्नाः ॥ ३ ॥ संहतान् दृढाङ्गान् ॥ ५ ॥ व्रतं सोमवारव्रतादि । तप उपवासादि । स्नानं सङ्गमादौ । मन्त्रोपेतमौषधं वशीकरणार्थम् । विद्या कामशास्त्रोक्ता-'रतान्ते वामपादेन भर्तृलिङ्गमुपस्पृशेत् । यावज्जीवं पतिस्तस्या गर्भदासो भवेत् ध्रुवम्' इत्यादिका । तद्वीर्यं मूलवीर्यं मूलं अप्रच्युतं तारुण्यादि तद्वीर्यम् । जपहोमागदाः विशकलिताः समुदिता वा अगदोऽञ्जनादिरौषधम् ॥ ७ ॥ भगदैवतं सौभाग्यवर्धकं सौरव्रतादिकम् । भगवेदनमिति पाठे सौभाग्यसूचकम् । वशानुग इच्छानुसारी ॥ ८ ॥ हे सत्ये अनुकीर्तनमुच्चारम् ॥ १० ॥ औषधादिप्रयोगेऽनिष्टमाह अमित्रेति । गदान् रोगान् ॥ १४ ॥ जलोदरः उदररोगः वृकोदर इति पाठे कुक्षिव्याधिर्भस्मकनामा । 'श्वित्रिणः' कुष्ठवन्तः ॥ १६ ॥

पापानुगास्तु पापास्ताः पतीनुपसृजन्त्युत ।
न जातु विप्रियं भर्तुः स्त्रिया कार्यं कथञ्चन ॥१७
वर्ताम्यहं तु यां वृत्तिं पाण्डवेषु महात्मसु ।
तां सर्वां शृणु मे सत्यां सत्यभामे यशस्विनि १८
अहङ्कारं विहायाहं कामक्रोधौ च सर्वदा ।
सदारान् पाण्डवान् नित्यं प्रयतोपचराम्यहम् ॥
प्रणयं प्रतिसंहृत्य निधायात्मानमात्मनि ।
शुश्रूषुर्निरभीमाना पतीनां चित्तरक्षिणी ॥ २०
दुर्व्याहृताच्छङ्कमाना दुःस्थिताद् दुरवेक्षितात् ।
दुरासिताद् दुर्व्रजितादिङ्गिताध्यासितादपि ॥ २१
सूर्यवैश्वानरसमान् सोमकल्पान् महारथान् ।
सेवे चक्षुर्हणः पार्थानुग्रवीर्यप्रतापिनः ॥ २२
देवो मनुष्यो गन्धर्वो युवा चापि स्वलङ्कृतः ।
द्रव्यवानभिरूपो वा न मेऽन्यः पुरुषो मतः ॥ २३
नाभुक्तवति नास्नाते नासंविष्टे च भर्तरि ।
न संविशामि नाश्नामि सदा कर्मकरेष्वपि ॥२४
क्षेत्राद्वनाद्वा ग्रामाद्वा भर्तारं गृहमागतम् ।
अभ्युत्थायाभिनन्दामि आसनेनोदकेन च ॥ २५
प्रमृष्टभाण्डा मृष्टान्ना काले भोजनदायिनी ।
संयता गुप्तधान्या च सुसंमृष्टनिवेशना ॥ २६
अतिरस्कृतसम्भाषा दुःस्त्रियो नानुसेवती ।
अनुकूलवती नित्यं भवाम्यनलसा सदा ॥ २७
अनर्म चापि हसितं द्वारि स्थानमभीक्ष्णशः ।
अवस्करे चिरस्थानं निष्कुटेषु च वर्जये ॥ २८
अतिहासातिरोषौ च क्रोधस्थानं च वर्जये ।
निरताऽहं सदा सत्ये भर्तॄणामुपसेवने ॥ २९
सर्वथा भर्तृरहितं न ममेष्टं कथञ्चन ।
यदा प्रवसते भर्ता कुटुम्बार्थेन केनचित् ॥ ३०
सुमनोवर्णकापेता भवामि व्रतचारिणी ।
यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न सेवते ॥ ३१

यच्च नाश्नाति मे भर्ता सर्वं तद्वर्जयाम्यहम् ।
यथोपदेशं नियता वर्तमाना वराङ्गने ॥ ३२
स्वलङ्कृता सुप्रयता भर्तुः प्रियहिते रता ।
ये च धर्माः कुटुम्बेषु श्वश्र्वा मे कथिताः पुरा ॥
भिक्षाबलिश्राद्धमिति स्थालीपाकाश्च पर्वसु ।
मान्यानां मानसत्कारा ये चान्ये विदिता मम३४
तान् सर्वाननुवर्तामि दिवारात्रमतन्द्रिता ।
विनयान्नियमांश्चैव सदा सर्वात्मना श्रिता ॥ ३५
मृदून् सतः सत्यशीलान् सत्यधर्मानुपालिनः ।
आशीविषानिव क्रुद्धान् पतीन् परिचराम्यहम् ॥
पत्याश्रयो हि मे धर्मो मतः स्त्रीणां सनातनः ।
स देवः सा गतिर्नान्या तस्य का विप्रियं चरेत्
अहं पतीन्नातिशये नात्यश्ने नातिभूषये ।
नापि परिवदे श्वश्रूं सर्वदा परियन्त्रिता ॥ ३८
अवधानेन सुभगे नित्योत्थिततयैव च ।
भर्तारो वशगा मह्यं गुरुशुश्रूषयैव च ॥ ३९
नित्यमार्यामहं कुन्तीं वीरसूं सत्यवादिनीम् ।
स्वयं परिचराम्येतां पानाच्छादनभोजनैः ॥ ४०
नैतामतिशये जातु वस्त्रभूषणभोजनैः ।
नापि परिवदे चाहं तां पृथां पृथिवीसमाम् ॥४१
अष्टावग्रे ब्राह्मणानां सहस्राणि स्म नित्यदा ।
भुञ्जते रुक्मपात्रीषु युधिष्ठिरनिवेशने ॥ ४२
अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः ।
त्रिंशद्दासीक एकैको यान् बिभर्ति युधिष्ठिरः ॥
दशान्यानि सहस्राणि येषामन्नं सुसंस्कृतम् ।
ह्रियते रुक्मपात्रीभिर्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ४४
तान् सर्वानग्रहारेण ब्राह्मणान् वेदवादिनः ।
यथार्हं पूजयामि स्म पानाच्छादनभोजनैः ॥ ४५
शतं दासीसहस्राणि कौन्तेयस्य महात्मनः ।
कम्बुकेयूरधारिण्यो निष्ककण्ठ्यः स्वलङ्कृताः४६

उपसृजन्ति दोषैर्योजयन्ति ॥ १७ ॥ सदारानिति सपत्नीनामपि सेवनं पतिप्रीत्यर्थं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १९ ॥ प्रणयमीर्ष्याम्। आत्मानं चित्तम्। आत्मनि स्वास्मिन् निराभिमाना दर्पहीना ॥ २० ॥ इङ्गितमभिप्रायः अध्यासितः क्षिप्तो यस्मिन् कटाक्षे तस्मात् इङ्गिताध्यासितात् ॥ २१ ॥ चक्षुर्हणः दृष्ट्वैव रिपून् घ्नन्ति तादृशान् ॥ २२ ॥ अभिरूपः सुन्दरः ॥ २३ ॥ नाभुक्तवतीति। भर्तरि अभुक्तवति नाश्नामीत्यपकृष्यते। तथा अस्नाते न स्नामीति शेषः। तथा कर्मकरेषु भृत्येष्वपि असंविष्टेषु न संविशामि। अनाशितेषु नाश्नामीति च विपरिणामापकर्षणेन योज्यम् ॥ २४ ॥ प्रमृष्टभाण्डा सम्मार्जितगृहोपकरणा ॥ २६ ॥ अतिरस्कृतसम्भाषा तिरस्कारशून्यवचना ॥ २७ ॥ अनर्म परिहासहीनम्। हसितं हासः। स्थानं स्थितिम्। अवस्करे तिरस्करोमि किरंतरिदं रूपम्। उत्करे इति वा। निष्कुटेषु गृहारामेषु ॥ २८ ॥ भर्तृरहितं भर्तृवियोगः ॥ ३० ॥ सुमनोवर्णकापेता पुष्पैरनुलेपनैश्च वर्जिता ॥ ३१ ॥ मानः पूजा, सत्कार आदरः ॥ ३४ ॥ नातिशये नातिक्रमामि। न परिवदे न निन्दामि ॥ ३८ ॥ अवधानेन अप्रमादेन मह्यं मम ॥ ३९ ॥ अग्रहारेण वैश्वदेवान्ते प्रथमदेयेनान्नेन ॥ ४५ ॥

महार्हमाल्याभरणाः सुवर्णाश्चन्दनोक्षिताः ।
मणीन् हेम च बिभ्रत्यो नृत्यगीतविशारदाः ॥४७
तासां नाम च रूपं च भोजनाच्छादनानि च ।
सर्वासामेव वेदाहं कर्म चैव कृताकृतम् ॥ ४८
शतं दासीसहस्राणि कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
पात्रीहस्ता दिवारात्रमतिथीन् भोजयन्त्युत ॥४९
शतमश्वसहस्राणि दशनागायुतानि च ।
युधिष्ठिरस्यानुयात्रमिन्द्रप्रस्थनिवासिनः ॥ ५०
एतादासीत् तदा राज्ञो यन्महीं पर्यपालयत् ।
येषां सङ्ख्याविधिं चैव प्रदिशामि शृणोमि च ॥
अन्तःपुराणां सर्वेषां भृत्यानां चैव सर्वशः ।
आगोपालाविपालेभ्यः सर्वं वेद कृताकृतम् ५२
सर्वं राज्ञः समुदयमायं च व्ययमेव च ।
एकाऽहं वेद्मि कल्याणि पाण्डवानां यशस्विनि ॥
मयि सर्वं समासज्य कुटुम्बं भरतर्षभाः ।
उपासनरताः सर्वे घटयन्ति वरानने ॥ ५४
तमहं भारमासक्तमनाधृष्यं दुरात्मभिः ।
सुखं सर्वं परित्यज्य रात्र्यहानि घटामि वै ॥ ५५
अधृष्यं वरुणस्येव निधिपूर्णमिवोदधिम् ।
एकाऽहं वेद्मि कोशं वै पतीनां धर्मचारिणम् ५६
अनिशायां निशायां च सहायाः क्षुत्पिपासयोः
आराधयन्त्याः कौरव्यांस्तुल्या रात्रिरहश्च मे ॥
प्रथमं प्रतिबुद्ध्यामि चरमं संविशामि च ।
नित्यकालमहं सत्ये एतत् संवननं मम ॥ ५८
एतज्जानाम्यहं कर्तुं भर्तृसंवननं महत् ।
असत्स्त्रीणां समाचारं नाहं कुर्यां न कामये ५९
वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा धर्मसहितं व्याहृतं कृष्णया तदा ।
उवाच सत्या सत्कृत्य पाञ्चालीं धर्मचारिणीम्॥
अभिपन्नाऽस्मि पाञ्चालि याज्ञसेनि क्षमस्व मे ।
कामकारः सखीनां हि सोपहासं प्रभाषितम् ६१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

## २३४

द्रौपद्युवाच ।
इमं तु ते मार्गमपेतमोहं
वक्ष्यामि चित्तग्रहणाय भर्तुः ।
अस्मिन् यथावत् सखि वर्तमाना
भर्तारमाच्छेत्स्यसि कामिनीभ्यः ॥ १
नैतादृशं दैवतमस्ति सत्ये
सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु ।
यथा पतिस्तस्य तु सर्वकामा
लभ्याः प्रसादात् कुपितश्च हन्यात् ॥ २
तस्मादपत्यं विविधाश्च भोगाः
शय्यासनान्युत्तमदर्शनानि ।
वस्त्राणि माल्यानि तथैव गन्धाः
स्वर्गश्च लोको विपुला च कीर्तिः ॥ ३
सुखं सुखेनेह न जातु लभ्यं
दुःखेन साध्वी लभते सुखानि ।
सा कृष्णमाराधय सौहृदेन
प्रेम्णा च नित्यं प्रतिकर्मणा च ॥ ४
तथासनैश्चारुभिरग्र्यमाल्यै-
र्दाक्षिण्ययोगैर्विविधैश्च गन्धैः ।
अस्याः प्रियोऽस्मीति यथा विदित्वा
त्वामेव संश्लिष्यति तद्विधत्स्व ॥ ५
श्रुत्वा स्वरं द्वारगतस्य भर्तुः
प्रत्युत्थिता तिष्ठ गृहस्य मध्ये ।
दृष्ट्वा प्रविष्टं त्वरिताऽऽसनेन
पाद्येन चैनं प्रतिपूजयस्व ॥ ६
सम्प्रेषितायामथ चैव दास्या-
मुत्थाय सर्वं स्वयमेव कार्यम् ।
जानातु कृष्णस्तव भावमेतं
सर्वात्मना मां भजतीति सत्ये ॥ ७

---

अनुयात्रं संयात्रायामपि परिवारभूतम् ॥ ५० ॥ वेद वेद्मि ॥ ५२ ॥ संवननं वशीकरणम् ॥ ५८ ॥ अभिपन्ना प्रार्थयाना ॥ ६१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

२३४

इममिति । आच्छेत्स्यसि। बलात् हरिष्यसि। कामिनीभ्यः सपत्नीभ्यः ॥ १ ॥ प्रतिकर्मणा कायक्लेशेन ॥ ४ ॥

त्वत्संनिधौ यत् कथयेत् पतिस्ते
यद्यप्यगुह्यं परिरक्षितव्यम् ।
काचित् सपत्नी तव वासुदेवं
प्रत्यादिशेत् तेन भवेद्विरागः ॥ ८
प्रियांश्च रक्तांश्च हितांश्च भर्तु-
स्तान् भोजयेथा विविधैरुपायैः ।
द्वेष्यैरुपेक्ष्यैरहितैश्च तस्य
भिद्यस्व नित्यं कुहकोद्यतैश्च ॥ ९
मदं प्रमादं पुरुषेषु हित्वा
संयच्छ भावं प्रतिगृह्य मौनम्
प्रद्युम्नसाम्बावपि ते कुमारौ
नोपासितव्यौ रहिते कदाचित् ॥ १०
महाकुलीनाभिरपापिकाभिः
स्त्रीभिः सतीभिस्तव सख्यमस्तु ।
चण्डाश्च शौण्डाश्च महाशनाश्च
चौराश्च दुष्टाश्चपलाश्च वर्ज्याः ॥ ११
एतद्यशस्यं भगदैवतं च
स्वार्थं तथा शत्रुनिबर्हणं च ।
महार्हमाल्याभरणाङ्गरागा
भर्तारमाराधय पुण्यगन्धा ॥ १२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्वणि द्रौपदीकर्तव्यकथने चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

## २३५

वैशम्पायन उवाच ।
मार्कण्डेयादिभिर्विप्रैः पाण्डवैश्च महात्मभिः ।
कथाभिरनुकूलाभिः सह स्थित्वा जनार्दनः ॥ १
ततस्तैः संविदं कृत्वा यथावन्मधुसूदनः ।
आरुरुक्षू रथं सत्यामाह्वयामास केशवः ॥ २
सत्यभामा ततस्तत्र स्वजित्वा द्रुपदात्मजाम् ।
उवाच वचनं हृद्यं यथाभावं समाहितम् ॥ ३
कृष्णे मा भूत् तवोत्कण्ठा मा व्यथा मा प्रजागरः
भर्तृभिर्देवसङ्काशैर्जितां प्राप्स्यसि मेदिनीम् ॥ ४
न ह्येवं शीलसम्पन्ना नैवं पूजितलक्षणाः ।
प्राप्नुवन्ति चिरं क्लेशं यथा त्वमसितेक्षणे ॥ ५
अवश्यं च त्वया भूमिरियं निहतकण्टका ।
भर्तृभिः सह भोक्तव्या निर्द्वन्द्वेति श्रुतं मया ॥ ६
धार्तराष्ट्रवधं कृत्वा वैराणि प्रतियात्य च ।
युधिष्ठिरस्थां पृथिवीं द्रक्ष्यसे द्रुपदात्मजे ॥ ७
यास्ताः प्रव्राजमानां त्वां प्राहसन् दर्पमोहिताः ।
ताः क्षिप्रं हतसङ्कल्पा द्रक्ष्यसि त्वं कुरुस्त्रियः ॥ ८
तव दुःखोपपन्नाया यैराचरितमप्रियम् ।
विद्धि सम्प्रस्थितान् सर्वांस्तान् कृष्णे यमसादनम्
पुत्रास्ते प्रतिविन्ध्यश्च सुतसोमस्तथाविधः ।
श्रुतकर्मार्जुनिश्चैव शतानीकश्च नाकुलिः ॥ १०
सहदेवाच्च यो जातः श्रुतसेनस्तवात्मजः ।
सर्वे कुशलिनो वीराः कृतास्त्राश्च सुतास्तव ॥ ११
अभिमन्युरिव प्रीता द्वारवत्यां रता भृशम् ।
त्वमिवैषां सुभद्रा च प्रीत्या सर्वात्मना स्थिता १२
प्रीयते तव निर्द्वन्द्वा तेभ्यश्च विगतज्वरा ।
दुःखिता तेन दुःखेन सुखेन सुखिता तथा ॥ १३
भजेत् सर्वात्मना चैव प्रद्युम्नजननी तथा ।
भानुप्रभृतिभिश्चैनान् विशेषयति च केशवः ॥ १४
भोजनाच्छादने चैषां नित्यं मे श्वशुरः स्थितः ।
रामप्रभृतयः सर्वे भजन्त्यन्धकवृष्णयः ॥ १५
तुल्यो हि प्रणयस्तेषां प्रद्युम्नस्य च भाविनि ।
एवमादि प्रियं सत्यं हृद्यमुक्त्वा मनोनुगम् ॥ १६
गमनाय मनश्चक्रे वासुदेवरथं प्रति ।
तां कृष्णां कृष्णमहिषी चकाराभिप्रदक्षिणम् १७

रहिते विजने ॥ १० ॥ चण्डाः क्रूराः । शौण्डाः पराभिभवसमर्थाः । महाशनाः बहुभुजः । दुष्टाः द्वेषाद्याक्रान्ताः । स्त्रियो वर्ज्या इति शेषः ॥ ११ ॥ भगदैवतं भाग्यकरम् ॥ १२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

२३५

मार्कण्डेयादिभिरिति ॥ १ ॥ संविदं सम्भाषाम् ॥ २ ॥ स्वजित्वा आश्लिष्य ॥ ३ ॥ कृष्णे हे द्रौपदि ॥ ४ ॥ निर्द्वन्द्वा निष्प्रतिपक्षा ॥ ६ ॥ पुण्यगन्धैः—स्र

आरुरोह रथं शौरेः सत्यभामाऽथ भाविनी । स्मयित्वा तु यदुश्रेष्ठा द्रौपदीं परिसान्त्व्य च ।
उपावर्त्य ततः शीघ्रैर्हयैः प्रायात् पुरं स्वकम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्वणि कृष्णगमने पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

समाप्तमिदं द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व ।

## घोषयात्रापर्व ।

## २३६

जनमेजय उवाच ।
एवं वने वर्तमाना नराग्र्याः
शीतोष्णवातातपकर्शिताङ्गाः ।
सरस्तदासाद्य वनं च पुण्यं
ततः परं किमकुर्वन्त पार्थाः ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
सरस्तदासाद्य तु पाण्डुपुत्रा
जनं समुत्सृज्य विधाय वेशम् ।
वनानि रम्याण्यथ पर्वतांश्च
नदीप्रदेशांश्च तदा विचेरुः ॥ २
तथा वने तान् वसतः प्रवीरान्
स्वाध्यायवन्तश्च तपोधनाश्च ।
अभ्याययुर्वेदविदः पुराणा-
स्तान् पूजयामासुरथो नराग्र्याः ॥ ३
ततः कदाचित् कुशलः कथासु
विप्रोऽभ्यगच्छद्भुवि कौरवेयान् ।
स तैः समेत्याथ यदृच्छयैव
वैचित्रवीर्यं नृपमभ्यगच्छत् ॥ ४
अथोपविष्टः प्रतिसत्कृतश्च
वृद्धेन राज्ञा कुरुसत्तमेन ।
प्रचोदितः सङ्कथयांबभूव
धर्मानिलेन्द्रप्रभवान् यमौ च ॥ ५
कृशांश्च वातातपकर्शिताङ्गान्
दुःखस्य चोग्रस्य मुखे प्रपन्नान् ।
तां चाप्यनाथामिव वीरनाथां
कृष्णां परिक्लेशगुणेन युक्ताम् ॥ ६
ततः कथास्तस्य निशम्य राजा
वैचित्रवीर्यः कृपयाऽभितप्तः ।
वने तथा पार्थिव पुत्रपौत्रान्
श्रुत्वा तथा दुःखनदीं प्रपन्नान् ॥ ७
प्रोवाच दैन्याभिहतान्तरात्मा
निःश्वासवातोपहतस्तदानीम् ।
वाचं कथञ्चित् स्थिरतामुपेत्य
तत् सर्वमात्मप्रभवं विचिन्त्य ॥ ८
कथं नु सत्यः शुचिरार्यवृत्तो
ज्येष्ठः सुतानां मम धर्मराजः ।
अजातशत्रुः पृथिवीतले स्म
शेते पुरा राङ्कवकूटशायी ॥ ९
प्रबोध्यते मागधसूतपूगै-
र्नित्यं स्तुवद्भिः स्वयमिन्द्रकल्पः ।
पतत्रिसङ्घैः स जघन्यरात्रे
प्रबोध्यते नूनमिडातलस्थः ॥ १०

---

प्रणयः स्नेहः । उपावर्त्य पाण्डवानिति शेषः ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

२३६

एवं वने वर्तमाना इत्यादेः स्वपुरं विविक्षुस्तदंत्यन्तस्य प्रन्थस्य ईर्ष्यालुर्दुर्योधनवदपमानं प्राप्नोति । साधुश्च युधिष्ठिर-वच्छत्रूनप्युपकरोतीति तात्पर्यम् । सरो द्वैतवनस्थम् ॥ १ ॥ जनं समुदायम् । वेशं गृहम् । नदीप्रदेशान् तत्समीपस्थाने च ॥ २ ॥ वने द्वैतवने ॥ ३ ॥ नृपं धृतराष्ट्रम् ॥ ४ ॥ रङ्कोर्मृगविशेषस्य लोमराशिमयी तूलिका राङ्कवकूटम् ॥ ९ ॥ इडातलस्थः भूतलस्थः । 'इडा तु बुधयोषिति । सारमेय्यां च वचने वसुमत्यामपि स्त्रियाम्' इति मेदिनी ॥ १० ॥ मागधसूतपुत्रैः-ख.

कथं नु वातातपकर्शिताङ्गो
वृकोदरः कोपपरिप्लुताङ्गः ।
शेते पृथिव्यामतथोचिताङ्गः
कृष्णासमक्षं वसुधातलस्थः ॥ ११

तथाऽर्जुनः सुकुमारो मनस्वी
वशे स्थितो धर्मसुतस्य राज्ञः ।
विदूयमानैरिव सर्वगात्रै-
र्ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात् ॥ १२

यमौ च कृष्णां च युधिष्ठिरं च
भीमं च दृष्ट्वा सुखविप्रयुक्तम् ।
विनिःश्वसन् सर्प इवोग्रतेजा
ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात् ॥ १३

यथा यमौ चाप्यसुखौ सुखार्हौ
समृद्धरूपावमरौ दिवीव ।
प्रजागरस्थौ ध्रुवमप्रशान्तौ
धर्मेण सत्येन च वार्यमाणौ ॥ १४

समीरणेनाथ समो बलेन
समीरणस्यैव सुतो बलीयान् ।
स धर्मपाशेन सितोऽग्रजेन
ध्रुवं विनिःश्वस्य सहत्यमर्षम् ॥ १५

स चापि भूमौ परिवर्तमानो
वधं सुतानां मम काङ्क्षमाणः ।
सत्येन धर्मेण च वार्यमाणः
कालं प्रतीक्षत्यधिको रणेऽन्यैः ॥ १६

अजातशत्रौ तु जिते निकृत्या
दुःशासनो यत् परुषाण्यवोचत् ।
तानि प्रविष्टानि वृकोदराङ्गं
दहन्ति कक्षाग्निरिवेन्धनानि ॥ १७

न पापकं ध्यास्यति धर्मपुत्रो
धनञ्जयश्चाप्यनुवर्त्स्यते तम् ।
अरण्यवासेन विवर्धते तु
भीमस्य कोपोऽग्निरिवानिलेन ॥ १८

स तेन कोपेन विदह्यमानः
करं करेणाभिनिपीड्य वीरः ।
विनिःश्वसन्त्युष्णमतीव घोरं
दहन्निवेमान् मम पुत्रपौत्रान् ॥ १९

गाण्डीवधन्वा च वृकोदरश्च
संरम्भिणावन्तककालकल्पौ ।
न शेषयेतां युधि शत्रुसेनां
शरान् किरन्तावशनिप्रकाशान् ॥ २०

दुर्योधनः शकुनिः सूतपुत्रो
दुःशासनश्चापि सुमन्दचेताः ।
मधु प्रपश्यन्ति न तु प्रपातं
यद्द्यूतमालम्ब्य हरन्ति राज्यम् ॥ २१

शुभाशुभं कर्म नरो हि कृत्वा
प्रतीक्षते तस्य फलं स्म कर्ता ।
स तेन मुह्यत्यवशः फलेन
मोक्षः कथं स्यात् पुरुषस्य तस्मात् ॥ २२

क्षेत्रे सुकृष्टे ह्युपिते च बीजे
देवे च वर्षत्यृतुकालयुक्तम् ।
न स्यात् फलं तस्य कुतः प्रसिद्धि-
रन्यत्र दैवादिति चिन्तयामि ॥ २३

कृतं मताक्षेण यथा न साधु
साधुप्रवृत्तेन च पाण्डवेन ।
मया च दुष्पुत्रवशानुगेन
यथा कुरूणामयमन्तकालः ॥ २४

ध्रुवं प्रवास्यत्यसमीरितोऽपि
ध्रुवं प्रजास्यत्युत गर्भिणी या ।
ध्रुवं दिनादौ रजनीप्रणाश-
स्तथा क्षपादौ च दिनप्रणाशः ॥ २५

क्रियेत कस्मादपरे च कुर्यु-
र्वित्तं न दद्युः पुरुषाः कथञ्चित् ।
प्राप्यार्थकालं च भवेदनर्थः
कथं नु तत् स्यादिति तत् कुतः स्यात् ॥

उग्रतेजा अर्जुनः ॥ १३ ॥ प्रजागरस्थौ भुवि शयाते इति शेषः ॥ १४ ॥ अन्यैः अन्येभ्योऽधिकः प्रतीक्षतीत्यप्युपपदाभावेऽपि छान्दसो गर्हायां लट् ॥ १६ ॥ शुभेति । फलं स्वर्गनरकरूपम् । तेन मूढस्य तस्मान्न मोक्षोऽस्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥ दृष्टसामग्र्यां सत्यामपि दैवप्रातिकूल्यात् फलं न जायत इत्याह क्षेत्रे इति । उपिते न्युप्ते । एवं मच्चित्ते दुर्योधनादीनां च चित्ते कृतहितोपदेशो वृथा भवतीति भावः ॥ २३ ॥ यथा न साधु अशुभं स्यात् तथा मताक्षेण शकुनिना कृतम् । पाण्डवेन च तदानीमेव तान् अनिघ्नता साधु कृतम् । मया च तथा कृतं यथाऽयमन्तकाल उपस्थित इति शेषः ॥ २४ ॥ प्रवास्यति वात इति शेषः । प्रजास्यति अपत्यं जनयिष्यति । क्षपादौ रात्र्यादौ । एतस्य पापस्य फलं अपरिहार्यमिति भावः ॥ २५ ॥ कथं तर्हि प्रागेवैतन्न चिन्तितमित्याशङ्क्याह क्रियेतेति । यद्येवं विवेको नृणां भवेत् तर्हि वित्तं कस्माद्धेतोरस्मदादिरन्यायेनापि क्रियेत साधयेत् । त्वं

कथं नु भिद्येत न च स्रवेत
न च प्रसिच्येदिति रक्षितव्यम् ।
अरक्ष्यमाणं शतधा प्रकीर्येत्
ध्रुवं न नाशोऽस्ति कृतस्य लोके ॥ २७
गतो ह्यरण्यादपि शक्रलोकं
धनञ्जयः पश्यत वीर्यमस्य
अस्त्राणि दिव्यानि चतुर्विधानि
ज्ञात्वा पुनर्लोकमिमं प्रपन्नः ॥ २८
स्वर्गं हि गत्वा सशरीर एव
को मानुषः पुनरागन्तुमिच्छेत् ।
अन्यत्र कालोपहताननेकान्
समीक्षमाणस्तु कुरून् मुमूर्षून् ॥ २९
धनुर्ग्राहश्चार्जुनः सव्यसाची
धनुश्च तद्गाण्डिवं भीमवेगम् ।
अस्त्राणि दिव्यानि च तानि तस्य
त्रयस्य तेजः प्रसहेत कोऽत्र ॥ ३०
निशम्य तद्वचनं पार्थिवस्य
दुर्योधनं रहिते सौबलोऽथ ।
अबोधयत् कर्णमुपेत्य सर्वं
स चाप्यहृष्टोऽभवदल्पचेताः ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि धृतराष्ट्रखेदवाक्ये षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥

## २३७

वैशम्पायन उवाच ।
धृतराष्ट्रस्य तद्वाक्यं निशम्य शकुनिस्तदा ।
दुर्योधनमिदं काले कर्णेन सहितोऽब्रवीत् ॥ १
प्रव्राज्य पाण्डवान् वीरान् स्वेन वीर्येण भारत ।
भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीमेको दिवि शम्बरहा यथा ॥ २
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रतीच्योदीच्यवासिनः ।
कृताः करप्रदाः सर्वे राजानस्ते नराधिप ॥ ३
या हि सा दीप्यमानेव पाण्डवानभजत् पुरा ।
साऽद्य लक्ष्मीस्त्वया राजन्नवाप्ता भ्रातृभिः सह ॥ ४

मूर्खोऽसीति चेत् अपरेऽपि पूर्वे राजानः कस्मात् वित्तं कुर्युरर्जयेयुः । अर्जितं वा वित्तं पुरुषाः साधवोऽपि कथञ्चित् धर्मकामाद्यर्थे वा कस्मान्न दद्युः न परित्यजेयुः । तस्मात् प्राणिनां वित्तस्यार्जने अर्जितस्य पालने च स्वाभाविकी बुद्धिरपरिहार्येति भावः। वित्तेनेति गौडपाठे तु वित्तेन हेतुना वित्तार्थं कस्मात् क्रियेत यत्न इति यत्नं कुर्युरिति च अध्याहृत्य योज्यम् । कथञ्चिद्दद्युरिति दुस्त्यजत्वं च तस्यैवोक्तम् । नन्वर्जनाभावे एव को दोष इत्यत आह प्राप्येति । अर्थकालं अर्थसाध्यदारक्रियादिकालं यौवनादिकं प्राप्य अनर्थः व्याकुलत्वं भवेत् तदेवाह तत् धनसाध्यं कार्यं कथं नु केन प्रकारेण वा मम निर्धनस्य स्यात् । कुतो वा उपायात् तत् धनं मम निर्द्रव्यस्य स्यात् सम्पद्येतेतिचिन्तारूपोऽनर्थः स्यादेवेत्यर्थः ॥ २६ ॥ नन्वेवमर्थस्य इदानीमप्यनर्थकरत्वं जानता त्वया पाण्डवानामंशः सुत्यजस्ततश्च न नाशशङ्काऽस्ति इत्याशङ्क्याह कथं नु इति । पुत्रवत् पशुवच्च पिण्डीभूतः प्रियतमश्चार्थः कथं नु भिद्येत द्विधा भवेत् वेणुरिव करपत्रेण न कथं चिद्भेत्तुं शक्य इति भावः । न च स्रवेत आमपात्राज्जलमिव स्तोकं स्तोकमपि न बहिर्गच्छेत् प्रार्थनायां लिङ् । एवमहं प्रार्थयामि । तेन पञ्चग्राममपञ्चकमपि याचितं चेन्न दास्यामीति दर्शितम् । न च प्रसिच्येत् पात्रभग्या वा न बहिर्गच्छेत्तेनार्धराज्यदानं सुतरां न देयमित्युक्तम् । इति हेतोर्धनं रक्षितव्यमेव न स्तोकमर्धं वा तेभ्यः प्रदेयमिति भावः । तत्र हेतुः अरक्ष्यमाणं शतधा प्रकीर्येदिति । अर्थनाश एव महाननर्थ इत्यर्थः । नन्वर्थेनापि पुत्रनाशः सम्भाव्यत इत्याशङ्क्याह ध्रुवमिति । तेषां मरणं दुर्गतिर्वा दैवकृता दुर्निवार्या किमर्थदानेन प्रत्यक्षदुःखेनेति भावः ॥ २७ ॥ किञ्च तुल्यांशभागिनो दायादस्योत्कर्षोऽपि दुःसह इत्याशयेनाह गत इत्यादिना ॥२८॥ अन्यत्र स्वर्गे स्थानविशेषमहिम्ना दिव्यज्ञानसम्पन्नोऽर्जुनः कुरून् मुमूर्षून् समीक्षमाणः कोऽपि मानुषो नास्तीत्यर्थः ॥ २९ ॥ अहृष्टो मृत्युभयात् स चाथ हृष्ट इति पाठे हृष्टः पाण्डवेभ्योऽल्पमपि न देयमिति धृतराष्ट्रप्रतिज्ञाश्रवणात् ॥ ३१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥

२३७

धृतराष्ट्रस्येति ॥ १ ॥ प्रतीच्या उदीच्याश्च देशास्तद्वासिनः ते त्वया ॥ ३ ॥ साद्यः, सादयितुं नाशयितुं योग्याः शत्रवस्तेषां लक्ष्मीः साद्यलक्ष्मीः ॥ ४ ॥

इन्द्रप्रस्थगते यां तां दीप्यमानां युधिष्ठिरे ।
अपश्याम श्रियं राजन् दृश्यते सा तवाद्य वै ॥ ५
शत्रवस्तव राजेन्द्र न चिरं शोककर्शिताः ।
सा तु बुद्धिबलेनेयं राजंस्तस्माद्युधिष्ठिरात् ॥ ६
त्वया क्षिप्ता महाबाहो दीप्यमानेव दृश्यते ।
तथैव तव राजेन्द्र राजानः परवीरहन् ॥ ७
शासनेऽधिष्ठिताः सर्वे किं कुर्म इति वादिनः ।
तवेयं पृथिवी राजन्निखिला सागराम्बरा ॥ ८
सपर्वतवना देवी सग्रामनगराकरा ।
नानावनोद्देशवती पर्वतैरुपशोभिता ॥ ९
वन्द्यमानो द्विजै राजन् पूज्यमानश्च राजभिः ।
पौरुषाद्दिवि देवेषु भ्राजसे रश्मिवानिव ॥ १०
रुद्रैरिव यमो राजा मरुद्भिरिव वासवः ।
कुरुभिस्त्वं वृतो राजन् भासि नक्षत्रराडिव ॥ ११
यैः स्म ते नाद्रियेताज्ञा न च ये शासने स्थिताः ।
पश्यामस्तान् श्रिया हीनान् पाण्डवान् वनवासिनः ।
श्रूयते हि महाराज सरो द्वैतवनं प्रति ।
वसन्तः पाण्डवाः सार्धं ब्राह्मणैर्वनवासिभिः १३
स प्रयाहि महाराज श्रिया परमया युतः ।
तापयन् पाण्डुपुत्रांस्त्वं रश्मिवानिव तेजसा १४
स्थितो राज्ये च्युतान्राज्याच्छ्रिया हीनाञ्छ्रिया वृतः
असमृद्धान् समृद्धार्थः पश्य पाण्डुसुतान् नृप १५
महाभिजनसम्पन्नं भद्रे महति संस्थितम् ।
पाण्डवास्त्वाऽभिवीक्षन्तु ययातिमिव नाहुषम् ॥
यां श्रियं सुहृदश्चैव दुर्हृदश्च विशाम्पते ।
पश्यन्ति पुरुषे दीप्तां सा समर्था भवत्युत ॥ १७
समस्थो विषमस्थान् हि दुर्हृदो योऽभिवीक्षते ।
जगतीस्थानिवाद्रिस्थः किमतः परमं सुखम् ॥ १८
न पुत्रधनलाभेन न राज्येनापि विन्दति ।
प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शनात् ॥ १९
किं नु तस्य सुखं न स्यादाश्रमे यो धनञ्जयम् ।
अभिवीक्षेत सिद्धार्थो वल्कलाजिनवाससम् २०
सुवाससो हि ते भार्या वल्कलाजिनसंवृताम् ।
पश्यन्तु दुःखितां कृष्णां सा च निर्विद्यतां पुनः ॥
विनिन्दतां तथाऽऽत्मानं जीवितं च धनच्युतम् ।
न तथा हि सभामध्ये तस्या भवितुमर्हति ।
वैमनस्यं यथा दृष्ट्वा तव भार्याः स्वलङ्कृताः ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु राजानं कर्णः शकुनिना सह ।
तूष्णीं बभूवतुरुभौ वाक्यान्ते जनमेजय ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णशकुनिवाक्ये
सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

## २३८

वैशम्पायन उवाच ।

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः ।
हृष्टो भूत्वा पुनर्दीन इदं वचनमब्रवीत् ॥ १
ब्रवीषि यदिदं कर्ण सर्वं मनसि मे स्थितम् ।
न त्वभ्यनुज्ञां लप्स्यामि गमने यत्र पाण्डवाः ॥ २
परिदेवति तान् वीरान् धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
मन्यतेऽभ्यधिकांश्चापि तपोयोगेन पाण्डवान् ॥ ३
अथवाऽप्यनुबुध्येत नृपोऽस्माकं चिकीर्षितम् ।
एवमप्यायतिं रक्षन्नाभ्यनुज्ञातुमर्हति ॥ ४
न हि द्वैतवने किञ्चिद्विद्यतेऽन्यत् प्रयोजनम् ।
उत्सादनमृते तेषां वनस्थानां महाद्युते ॥ ५
जानासि हि यथा क्षत्ता द्यूतकाल उपस्थिते ।
अब्रवीद्यच्च मां त्वां च सौबलं वचनं तदा ॥ ६

न चिरमल्पकालं शोककर्शिताः अतस्त्वत्प्रतिज्ञातेऽस्माकं सुखकालो भूयानस्तीति भावः । सा तु श्रीः ॥ ६ ॥ वन्द्यमानः स्तूयमानः द्विजैस्त्रैवर्णिकैः ॥ १० ॥ नाद्रियेत नादृता ॥ १२ ॥ त्वा त्वाम् ॥ १६ ॥ समर्था सुहृदां हर्षं शत्रूणां च शोकं दातुमिति शेषः ॥ १७ ॥ अमित्रेष्वघदर्शनात् अघं दुःखम् । 'अघं तु व्यसने दुःखे दुरिते च नपुंसकम्' इति मेदिनी ॥ १९ ॥ निर्विद्यतां जीवितादपि विरक्ता भवतु ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

२३८

**कर्णस्येति** ॥ १ ॥ आयतिमुत्तरकालम् ॥ ४ ॥

तानि सर्वाणि वाक्यानि यच्चान्यत् परिदेवितम्
विचिन्त्य नाधिगच्छामि गमनायेतराय वा ॥ ७
ममापि हि महान् हर्षो यदहं भीमफाल्गुनौ ।
क्लिष्टावरण्ये पश्येयं कृष्णया सहिताविति ॥ ८
न तथा ह्याप्नुयां प्रीतिमवाप्य वसुधामिमाम् ।
दृष्ट्वा यथा पाण्डुसुतान् वल्कलाजिनवाससः ९
किं नु स्यादधिकं तस्माद्यदहं द्रुपदात्मजाम् ।
द्रौपदीं कर्ण पश्येयं काषायवसनां वने ॥ १०
यदि मां धर्मराजश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।
युक्तं परमया लक्ष्म्या पश्येतां जीवितं भवेत् ११
उपायं न तु पश्यामि येन गच्छेम तद्वनम् ।
यथा चाभ्यनुजानीयाद्गच्छन्तं मां महीपतिः॥१२
स सौबलेन सहितस्तथा दुःशासनेन च ।
उपायं पश्य निपुणं येन गच्छेम तद्वनम् ॥ १३
अहमप्यद्य निश्चित्य गमनायेतराय च ।
कल्यमेव गमिष्यामि समीपं पार्थिवस्य ह ॥ १४
मयि तत्रोपविष्टे तु भीष्मे च कुरुसत्तमे ।
उपायो यो भवेद्दृष्टस्तं ब्रूयाः सहसौबलः ॥ १५
वचो भीष्मस्य राज्ञश्च निशम्य गमनं प्रति ।
व्यवसायं करिष्येऽहमनुनीय पितामहम् ॥ १६
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे जग्मुरावसथान् प्रति ।
व्युषितायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात् १७
ततो दुर्योधनं कर्णः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
उपायः परिदृष्टोऽयं तं निबोध जनेश्वर ॥ १८
घोषा द्वैतवने सर्वे त्वत्प्रतीक्षा नराधिप ।
घोषयात्रापदेशेन गमिष्यामो न संशयः ॥ १९
उचितं हि सदा गन्तुं घोषयात्रां विशाम्पते ।
एवं च त्वां पिता राजन् समनुज्ञातुमर्हति ॥ २०
तथा कथयमानौ तु घोषयात्राविनिश्चयम् ।
गान्धारराजः शकुनिः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ २१
उपायोऽयं मया दृष्टो गमनाय निरामयः ।
अनुज्ञास्यति नो राजा चोदयिष्यति चाप्युत २२
घोषा द्वैतवने सर्वे त्वत्प्रतीक्षा नराधिप ।
घोषयात्रापदेशेन गमिष्यामो न संशयः ॥ २३
ततः प्रहसिताः सर्वे तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः ।
तदेव च विनिश्चित्य ददृशुः कुरुसत्तमम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि घोषयात्रामन्त्रणे अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥

## २३९

वैशम्पायन उवाच ।
धृतराष्ट्रं ततः सर्वे ददृशुर्जनमेजय ।
पृष्ट्वा सुखमथो राज्ञः पृष्टा राज्ञा च भारत ॥ १
ततस्तैर्विहितः पूर्वं समङ्गो नाम बल्लवः ।
समीपस्थास्तदा गावो धृतराष्ट्रे न्यवेदयत् ॥ २
अनन्तरं च राधेयः शकुनिश्च विशाम्पते ।
आहतुः पार्थिवश्रेष्ठं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ॥ ३
रमणीयेषु देशेषु घोषाः सम्प्रति कौरव ।
स्मारणे समयः प्राप्तो वत्सानामपि चाङ्कनम्॥ ४
मृगया चोचिता राजन्नस्मिन् काले सुतस्य ते ।
दुर्योधनस्य गमनं समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ५
धृतराष्ट्र उवाच ।
मृगया शोभना तात गवां हि समवेक्षणम् ।
विश्रम्भस्तु न गन्तव्यो बल्लवानामिति स्मरे ॥ ६
ते तु तत्र नरव्याघ्राः समीप इति नः श्रुतम् ।
अतो नाभ्यनुजानामि गमनं तत्र वः स्वयम् ॥ ७
छद्मना निर्जितास्ते तु कर्शिताश्च महावने ।
तपोनित्याश्च राधेय समर्थाश्च महारथाः ॥ ८

इतराय अवस्थानाय नाधिगच्छामि अधिगमं निश्चयं न प्राप्नोमि ॥ ७ ॥ लक्ष्म्या उपेतं पश्येतां चेज्जीवितं युक्तमिति सम्बन्धः ॥ ११ ॥ कल्यं प्रातः ॥ १४ ॥ घोषा गोव्रजाः ॥ १९ ॥ अयमुपायो घोषयात्रैव ॥ २२ ॥ तलान् हस्ततलानि ॥ २४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥

२३९

धृतराष्ट्रमिति ॥ १ ॥ स्मारणे स्मरणहेतौ कर्मणि। गवां सङ्ख्यापूर्वकं वयोवर्णजातिनाम्नां लेखने स्मारणासमय इति गौडाः पठन्ति ॥ ४ ॥ विश्रम्भः विश्वासो न गन्तव्यो न कर्तव्यः। पाण्डवैर्भेदितास्ते कदाचिद्युष्मांस्तत्पुरतो निन्युश्चेद् निष्टं स्यादिति भावः ॥ ६ ॥ तदेवाह - ते त्विति ॥ ७ ॥

धर्मराजो न सङ्क्रुध्येद्भीमसेनस्त्वमर्षणः ।
यज्ञसेनस्य दुहिता तेज एव तु केवलम् ॥ ९
यूयं चाप्यपराध्येयुर्दर्पमोहसमन्विताः ।
ततो विनिर्दहेयुस्ते तपसा हि समन्विताः ॥ १०
अथवा सायुधा वीरा मन्युनाऽभिपरिप्लुताः ।
सहिता बद्धनिस्त्रिंशा दहेयुः शस्त्रतेजसा ॥ ११
अथ यूयं बहुत्वात्तानभियात कथञ्चन ।
अनार्यं परमं तत् स्यादशक्यं तच्च वै मतम् ॥ १२
उषितो हि महाबाहुरिन्द्रलोके धनञ्जयः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यवाप्याथ ततः प्रत्यागतो वनम् ॥
अकृतास्त्रेण पृथिवी जिता बीभत्सुना पुरा ।
किं पुनः स कृतास्त्रोऽद्य न हन्याद्वो महारथः ॥
अथवा मद्वचः श्रुत्वा तत्र यत्ता भविष्यथ ।
उद्विग्नवासो विश्रम्भाद्दुःखं तत्र भविष्यति ॥ १५
अथवा सैनिकाः केचिदपकुर्युर्युधिष्ठिरम् ।
तदबुद्धिकृतं कर्म दोषमुत्पादयेच्च वः ॥ १६
तस्माद्गच्छन्तु पुरुषाः स्मारणायाप्तकारिणः ।
न स्वयं तत्र गमनं रोचये तव भारत ॥ १७

शकुनिरुवाच ।

धर्मज्ञः पाण्डवो ज्येष्ठः प्रतिज्ञातं च संसदि ।
तेन द्वादश वर्षाणि वस्तव्यानीति भारत ॥ १८
अनुवृत्ताश्च ते सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः ।
युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो न नः कोपं करिष्यति१९
मृगयां चैव नो गन्तुमिच्छा संवर्तते भृशम् ।
स्मारणं तु चिकीर्षामो न तु पाण्डवदर्शनम् ॥२०
न चानार्यसमाचारः कश्चित् तत्र भविष्यति ।
न च तत्र गमिष्यामो यत्र तेषां प्रतिश्रयः ॥ २१

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तः शकुनिना धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
दुर्योधनं सहामात्यमनुजज्ञे न कामतः ॥ २२
अनुज्ञातस्तु गान्धारिः कर्णेन सहितस्तदा ।
निर्ययौ भरतश्रेष्ठो बलेन महता वृतः ॥ २३
दुःशासनेन च तथा सौबलेन च धीमता ।
संवृतो भ्रातृभिश्चान्यैः स्त्रीभिश्चापि सहस्रशः॥२४
तं निर्यान्तं महाबाहुं द्रष्टुं द्वैतवनं सरः ।
पौराश्चानुययुः सर्वे सहदारा वनं च तत् ॥ २५
अष्टौ रथसहस्राणि त्रीणि नागायुतानि च ।
पत्तयो बहुसाहस्रा हयाश्च नवतिः शताः ॥ २६
शकटापणवेशाश्च वणिजो बन्दिनस्तथा ।
नराश्च मृगयाशीलाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७
ततः प्रयाणे नृपतेः सुमहानभवत् स्वनः ।
प्रावृषीव महावायोरुद्धतस्य विशाम्पते ॥ २८
गव्यूतिमात्रे न्यवसद्राजा दुर्योधनस्तदा ।
प्रयातो वाहनैः सर्वैस्ततो द्वैतवनं सरः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनप्रस्थाने
ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

## २४०

वैशम्पायन उवाच ।

अथ दुर्योधनो राजा तत्र तत्र वने वसन् ।
जगाम घोषानभितस्तत्र चक्रे निवेशनम् ॥ १
रमणीये समाख्याते सोदके समहीरुहे ।
देशे सर्वगुणोपेते चक्रुरावसथान्नराः ॥ २
तथैव तत्समीपस्थान् पृथगावसथान् बहून् ।
कर्णस्य शकुनेश्चैव भ्रातॄणां चैव सर्वशः ॥ ३
ददर्श स तदा गावः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अङ्कैर्लक्षैश्च ताः सर्वा लक्षयामास पार्थिवः ॥ ४

---

तेजोऽग्निरिव ॥९ ॥ अशक्यत्वमेवाह उषितो हीति ॥१३॥ उद्विग्नवास इति वनवासेनोद्विग्नेषु पाण्डवेषु विश्रम्भात् सत्यक्ता एते नास्मान् बाधिष्यन्त इति विश्वासाद्यो भवतां वासः स दुःखं दुःखदो भविष्यति । पूर्वापकृते विश्वासो न कर्तव्य इत्यर्थः ॥ १५ ॥ पक्षान्तरमाह अथवेति ॥ १६ ॥ द्वयमपि दूषयति धर्मज्ञ इत्यादिना ॥ १८ ॥ शकटाः भारवाहान्यनांसि । आपणाः पण्यानि । वेशो वेश्याजनाश्रयः॥ २७ ॥ गव्यूतिः क्रोशद्वयम् ॥ २९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

२४०

**अथेति** । चक्रे कृतवान् ॥ १ ॥ अङ्कैः चिन्हैः लक्षैः सङ्ख्यानैः 'लक्षा च पुंसि संख्यायाम्' इति मेदिनी॥४॥

अङ्कयामास वत्सांश्च जज्ञे चोपसृतांस्तथपि।
बालवत्साश्च या गावः कालयामास ता अपि॥५
अथ स स्मारणं कृत्वा लक्षयित्वा त्रिहायनान्।
वृतो गोपालकैः प्रीतो व्याहरत कुरुनन्दनः॥ ६
स च पौरजनः सर्वः सैनिकाश्च सहस्रशः।
यथोपजोषं चिक्रीडुर्वने तस्मिन् यथाऽमराः॥ ७
ततो गोपाः प्रगातारः कुशला नृत्यवादने।
धार्तराष्ट्रमुपातिष्ठन् कन्याश्चैव स्वलङ्कृताः॥ ८
स स्त्रीगणावृतो राजा प्रहृष्टः प्रददौ वसु।
तेभ्यो यथार्हमन्नानि पानानि विविधानि च॥ ९
ततस्ते सहिताः सर्वे तरक्षून् महिषान् मृगान्।
गवयर्क्षवराहांश्च समन्तात् पर्यकालयन्॥ १०
स ताञ्छरैर्विनिर्भिद्य गजांश्च सुबहून् वने।
रमणीयेषु देशेषु ग्राहयामास वै मृगान्॥ ११
गोरसानुपयुञ्जान उपभोगांश्च भारत।
पश्यन् स रमणीयानि वनान्युपवनानि च॥ १२
मत्तभ्रमरजुष्टानि बर्हिणाभिरुतानि च।
अगच्छदानुपूर्व्येण पुण्यं द्वैतवनं सरः॥ १३
मत्तभ्रमरसञ्जुष्टं नीलकण्ठरवाकुलम्।
सप्तच्छदसमाकीर्णं पुन्नागबकुलैर्युतम्॥ १४
ऋद्ध्या परमया युक्तो महेन्द्र इव वज्रभृत्।
यदृच्छया च तत्रस्थो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १५
ईजे राजर्षियज्ञेन साद्यस्केन विशाम्पते।
दिव्येन विधिना चैव वन्येन कुरुसत्तम॥ १६
कृत्वा निवेशमभितः सरसस्तस्य कौरव।
द्रौपद्या सहितो धीमान् धर्मपत्न्या नराधिपः १७
ततो दुर्योधनः प्रेष्यानादिदेश सहस्रशः।
आक्रीडावसथाः क्षिप्रं क्रियन्तामिति भारत १८
ते तथेत्येव कौरव्यमुक्त्वा वचनकारिणः।
चिकीर्षन्तस्तदाऽऽक्रीडान् जग्मुर्द्वैतवनं सरः॥१९
प्रविशन्तं वनद्वारि गन्धर्वाः समवारयन्।
सेनाग्रं धार्तराष्ट्रस्य प्राप्तं द्वैतवनं सरः॥ २०
तत्र गन्धर्वराजो वै पूर्वमेव विशाम्पते।
कुबेरभवनाद्राजन्नाजगाम गणावृतः॥ २१
गणैरप्सरसां चैव त्रिदशानां तथाऽऽत्मजैः।
विहारशीलः क्रीडार्थं तेन तत् संवृतं सरः॥२२
तेन तत् संवृतं दृष्ट्वा ते राजपरिचारकाः।
प्रतिजग्मुस्ततो राजन् यत्र दुर्योधनो नृपः॥ २३
स तु तेषां वचः श्रुत्वा सैनिकान् युद्धदुर्मदान्।
प्रेषयामास कौरव्य उत्सारयत तानिति॥ २४
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञः सेनाग्रयायिनः।
सरो द्वैतवनं गत्वा गन्धर्वानिदमब्रुवन्॥ २५
राजा दुर्योधनो नाम धृतराष्ट्रसुतो बली।
विजिहीर्षुरिहायाति तदर्थमुपसर्पत॥ २६
एवमुक्तास्तु गन्धर्वाः प्रहसन्तो विशाम्पते।
प्रत्यब्रुवंस्तान् पुरुषानिदं हि परुषं वचः॥ २७
न चेतयति वो राजा मन्दबुद्धिः सुयोधनः।
योऽस्मानाज्ञापयत्येवं वैश्यानिव दिवौकसः २८
यूयं मुमूर्षवश्चापि मन्दप्रज्ञा न संशयः।
ये तस्य वचनादेवमस्मान् ब्रूत विचेतसः॥ २९
गच्छध्वं त्वरिताः सर्वे यत्र राजा स कौरवः।
न चेदद्यैव गच्छध्वं धर्मराजनिवेशनम्॥ ३०
एवमुक्तास्तु गन्धर्वै राज्ञः सेनाग्रयायिनः।
सम्प्राद्रवन् यतो राजा धृतराष्ट्रसुतोऽभवत्॥३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि गन्धर्वदुर्योधनसेनासंवादे चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४०॥

जज्ञे ज्ञातवान्। उपसृतान् दमनार्हान् वत्सतरान् समीपागतान् वा कालयामास संख्यातवान्॥५॥ त्रिहायनांस्त्रिवर्षान् वृषान् व्याहरत् विजहार॥ ६॥ यथोपजोषं यथारुचि॥ ७॥ साद्यस्केन एकाहसाध्येन॥ १६॥ आत्मजैर्जयन्तादिभिः। महेति शेषः॥२२॥ विजिहीर्षुर्विहर्तुमिच्छुः। उपसर्पत तत्समीपं गच्छत॥ २६॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४०॥

## २४१

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्ते सहिताः सर्वे दुर्योधनमुपागमन् ।
अब्रुवंश्च महाराज यदूचुः कौरवं प्रति ॥ १
गन्धर्वैर्वारिते सैन्ये धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।
अमर्षपूर्णः सैन्यानि प्रत्यभाषत भारत ॥ २
शास्तैनानधर्मज्ञान् मम विप्रियकारिणः ।
यदि प्रक्रीडते सर्वैर्देवैः सह शतक्रतुः ।
दुर्योधनवचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
सर्व एवाभिसंनद्धा योधाश्चापि सहस्रशः ॥ ४
ततः प्रमथ्य सर्वांस्तांस्तद्वनं विविशुर्बलात् ।
सिंहनादेन महता पूरयन्तो दिशो दश ॥ ५
ततोऽपरैरवार्यन्त गन्धर्वैः कुरुसैनिकाः ।
ते वार्यमाणा गन्धर्वैः साम्नैव वसुधाधिप ॥ ६
ताननादृत्य गन्धर्वांस्तद्वनं विविशुर्महत् ।
यदा वाचा न तिष्ठन्ति धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥७
ततस्ते खेचराः सर्वे चित्रसेने न्यवेदयन् ।
गन्धर्वराजस्तान् सर्वानब्रवीत् कौरवान् प्रति ८
अनार्यान् शासतेत्येतांश्चित्रसेनोऽत्यमर्षणः ।
अनुज्ञाताश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनेन भारत ॥ ९
प्रगृहीतायुधाः सर्वे धार्तराष्ट्रानभिद्रवन् ।
तान् दृष्ट्वा पततः शीघ्रान् गन्धर्वानुद्यतायुधान् ॥
प्राद्रवंस्ते दिशः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ।
तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान्
राधेयस्तु तदा वीरो नासीत् तत्र पराङ्मुखः ।
आपतन्तीं तु सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम् १२
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत् ।
क्षुरप्रैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैस्तथाऽऽयसैः ॥ १३
गन्धर्वान् शतशोऽभिघ्नँल्लघुत्वात् सूतनन्दनः ।
पातयन्नुत्तमाङ्गानि गन्धर्वाणां महारथः ॥ १४
क्षणेन व्यधमत् सर्वां चित्रसेनस्य वाहिनीम् ।
ते वध्यमाना गन्धर्वाः सूतपुत्रेण धीमता ॥ १५
भूय एवाभ्यवर्तन्त शतशोऽथ सहस्रशः ।
गन्धर्वभूता पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ १६
आपतद्भिर्महावेगैश्चित्रसेनस्य सैनिकैः ।
अथ दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः १७
दुःशासनो विकर्णश्च ये चान्ये धृतराष्ट्रजाः ।
न्यहनंस्तत् तदा सैन्यं रथैर्गरुडनिःस्वनैः ॥ १८
भूयश्च योधयामासुः कृत्वा कर्णमथाग्रतः ।
महता रथसङ्घेन रथचारेण चाप्युत ॥ १९
वैकर्तनं परीप्सन्तो गन्धर्वान् समवाकिरन् ।
ततः सन्न्यपतन् सर्वे गन्धर्वाः कौरवैः सह ॥२०
तदा सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
ततस्ते मृदवोऽभूवन् गन्धर्वाः शरपीडिताः २१
उच्चुक्रुशुश्च कौरव्या गन्धर्वान् प्रेक्ष्य पीडितान् ।
गन्धर्वांस्त्रासितान् दृष्ट्वा चित्रसेनो ह्यमर्षणः २२
उत्पपातासनात् क्रुद्धो वधे तेषां समाहितः ।
ततो मायास्त्रमास्थाय युयुधे चित्रमार्गवित् ।
तयाऽमुह्यन्त कौरव्याश्चित्रसेनस्य मायया ॥ २३
एकैकस्य तदा योधा धार्तराष्ट्रस्य भारत ।
पर्यवर्तन्त गन्धर्वैर्दशभिर्दशभिः सह ॥ २४
ततः सम्पीड्यमानास्ते बलेन महता तदा ।
प्राद्रवन्त रणे भीता ये च राजन् जिजीषवः २५
भज्यमानेष्वनीकेषु धार्तराष्ट्रेषु सर्वशः ।
कर्णो वैकर्तनो राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ २६
दुर्योधनश्च §कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
गन्धर्वान् योधयामासुः समरे भृशविक्षताः ॥२७
सर्व एव तु गन्धर्वाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
जिघांसमानाः सहिताः कर्णमभ्यद्रवन् रणे ॥२८
असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिश्च महाबलाः ।
सूतपुत्रं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवाकिरन् ॥२९
अन्येऽस्य युगमच्छिन्दन् ध्वजमन्ये न्यपातयन् ।
ईषामन्ये हयानन्ये सूतमन्ये न्यपातयन् ॥ ३०
अन्ये छत्रं वरूथं च बन्धुरं च तथाऽपरे ।
गन्धर्वा बहुसाहस्रास्तिलशो व्यधमन् रथम् ॥३१

२४१

ततस्ते सहिता इति ॥ १ ॥ एकैकस्य योधाः एकैकं योधाः पर्यवर्तन्त परीतवन्तः ॥२४॥ जिजीषवः । अत्रार्षो 'लोपो व्योर्वलि' इति लोपः । जिजीविषवः ॥२५॥ राजन् हे जनमेजय ॥ २६ ॥ वरूथं रथगुप्तिम् । बन्धुरं रथबन्धनानि ॥ ३१ ॥ § तेजस्वी-ख.

ततो रथादवप्लुत्य सूतपुत्रोऽसिचर्मभृत् । विकर्णरथमास्थाय मोक्षायाश्वानचोदयत् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णपराभवे एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

## २४२

वैशम्पायन उवाच ।

गन्धर्वैस्तु महाराज भग्ने कर्णे महारथे ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ १
तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान् ।
दुर्योधनो महाराजो नासीत् तत्र पराङ्मुखः ॥ २
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम् ।
महता शरवर्षेण सोऽभ्यवर्षदरिन्दमः ॥ ३
अचिन्त्य शरवर्षं तु गन्धर्वास्तस्य तं रथम् ।
दुर्योधनं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ४
युगमीषां वरूथं च तथैव ध्वजसारथी ।
अश्वांस्त्रिवेणुं तल्पं च तिलशो व्यधमन्शरैः ॥ ५
दुर्योधनं चित्रसेनो विरथं पतितं भुवि ।
अभिद्रुत्य महाबाहुर्जीवग्राहमथाग्रहीत् ॥ ६
तस्मिन् गृहीते राजेन्द्र स्थितं दुःशासनं रथे ।
पर्यगृह्णन्त गन्धर्वाः परिवार्य समन्ततः ॥ ७
विविंशतिं † चित्रसेनावादायान्ये विदुद्रुवुः ।
विन्दानुविन्दावपरे राजदारांश्च सर्वशः ॥ ८
सैन्यं तद्धार्तराष्ट्रस्य गन्धर्वैः समभिद्रुतम् ।
पूर्वं प्रभग्नाः सहिताः पाण्डवानभ्ययुस्तदा ॥ ९
शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः ।
शरणं पाण्डवान् जग्मुर्ह्रियमाणे महीपतौ ॥ १०

सैनिका ऊचुः ।

प्रियदर्शी महाबाहो धार्तराष्ट्रो महाबलः ।
गन्धर्वैर्ह्रियते राजा पार्थास्तमनुधावत ॥ ११
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुर्जयस्तथा ।
बद्ध्वा ह्रियन्ते गन्धर्वै राजदाराश्च सर्वशः ॥ १२
इति दुर्योधनामात्याः क्रोशन्तो राजगृद्धिनः ।
आर्ता दीनास्ततः सर्वे युधिष्ठिरमुपागमन् ॥ १३
तांस्तथा व्यथितान् दीनानभिक्षमाणान्युधिष्ठिरम् ।
वृद्धान् दुर्योधनामात्यान् भीमसेनोऽभ्यभाषत ॥
महता हि प्रयत्नेन संनह्य गजवाजिभिः ।
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम् ॥ १५
अन्यथा वर्तमानानामर्थो जातोऽयमन्यथा ।
दुर्मन्त्रितमिदं तावद्राज्ञो दुर्द्यूतदेविनः ॥ १६
द्वेष्टारमन्ये क्लीबस्य पातयन्तीति नः श्रुतम् ।
इदं कृतं नः प्रत्यक्षं गन्धर्वैरतिमानुषम् ॥ १७
दिष्ट्या लोके पुमानस्ति कश्चिदस्मत्प्रिये स्थितः ।
येनास्माकं हृतो भार आसीनानां सुखावहः ॥ १८
शीतवातातपसहांस्तपसा चैव कर्शितान् ।
समस्थो विषमस्थान् हि द्रष्टुमिच्छति दुर्मतिः ॥ १९
अधर्मचारिणस्तस्य कौरव्यस्य दुरात्मनः ।
ये शीलमनुवर्तन्ते ते पश्यन्ति पराभवम् ॥ २०
अधर्मो हि कृतस्तेन येनैतदुपशिक्षितम् ।
अनृशंसास्तु कौन्तेयास्तत्प्रत्यक्षं ब्रवीमि वः ॥ २१
एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं भीमसेनमपस्वरम् ।
न कालः परुषस्यायमिति राजाऽभ्यभाषत ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनादिहरणे द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

२४२

गंधर्वैरिति ॥ १ ॥ जीवग्राहं जीवन्तमेव गृहीत्वेति णमुलन्तं कषादित्वादग्रहीदित्यनुप्रयोगः ॥ ६ ॥ राज्ञो युधिष्ठिरस्य ॥ १६ ॥ क्लीबस्य अशक्तत्वात् ॥ १७ ॥ अपस्वरं क्रोधेन विकलवर्णं यथा स्यात् तथा ब्रुवाणम् ॥ २२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥ † तिम्–ख. ¶ ·चित्रसेनमा–ख.

## २४३

युधिष्ठिर उवाच ।

अस्मानभिगतांस्तात भयार्ताञ्छरणैषिणः ।
कौरवान् विषमप्राप्तान् कथं ब्रूयास्त्वमीदृशम्॥१
भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर ।
प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति ॥ २
यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः प्रार्थयते कुलम् ।
न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम् ॥ ३
जानात्येष हि दुर्बुद्धिरस्मानिह चिरोषितान् ।
स एवं परिभूयास्मानकार्षीदिदमप्रियम् ॥ ४
दुर्योधनस्य ग्रहणाद्गन्धर्वेण बलात् प्रभो ।
स्त्रीणां बाह्याभिमर्शाच्च हतं भवति नः कुलम्॥५
शरणं च प्रपन्नानां त्राणार्थं च कुलस्य च ।
उत्तिष्ठध्वं नरव्याघ्राः सज्जीभवत मा चिरम् ॥ ६
अर्जुनश्च यमौ चैव त्वं च वीरापराजितः ।
मोक्षयध्वं नरव्याघ्रा ह्रियमाणं सुयोधनम् ॥ ७
एते रथा नरव्याघ्राः सर्वशस्त्रसमन्विताः ।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां विमलाः काञ्चनध्वजाः ॥ ८
सम्वनानधिरोहध्वं नित्यसज्जानिमान् रथान् ।
इन्द्रसेनादिभिः सूतैः कृतशस्त्रैरधिष्ठितान् ॥ ९
एतानास्थाय वै यत्ता गन्धर्वान् योद्धुमाहवे ॥
सुयोधनस्य मोक्षाय प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥ १०
य एव कश्चिद्राजन्यः शरणार्थमिहागतम् ।
परं शक्त्याऽभिरक्षेत किम्पुनस्त्वं वृकोदर ॥ ११
क इहार्यो भवेत् त्राणमभिधावेति चोदितः ।
प्राञ्जलिं शरणापन्नं दृष्ट्वा शत्रुमपि ध्रुवम् ॥ १२
वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च पाण्डवाः ।
शत्रोश्च मोक्षणं क्लेशात्त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥
किं ह्याभ्यधिकमेतस्माद्यदापन्नः सुयोधनः ।
त्वद्बाहुबलमाश्रित्य जीवितं परिमार्गते ॥ १४
स्वयमेव प्रधावेयं यदि न स्याद्वृकोदर ।
विततो मे क्रतुर्वीर न हि मेऽत्र विचारणा ॥ १५
साम्नैव तु यथा भीम मोक्षयेथाः सुयोधनम् ।
तथा सर्वैरुपायैस्त्वं यतेथाः कुरुनन्दन ॥ १६
न साम्ना प्रतिपद्येत यदि गन्धर्वराडसौ ।
पराक्रमेण मृदुना मोक्षयेथाः सुयोधनम् ॥ १७
अथासौ मृदुयुद्धेन न मुञ्चेद्भीम कौरवान् ।
सर्वोपायैर्विमोच्यास्ते निगृह्य परिपन्थिनः ॥ १८
एतावद्धि मया शक्यं सन्देष्टुं वै वृकोदर ।
वैताने कर्मणि तते वर्तमाने च भारत ॥ १९

वैशम्पायन उवाच ।

अजातशत्रोर्वचनं तच्छ्रुत्वा तु धनञ्जयः ।
प्रतिजज्ञे गुरोर्वाक्यं कौरवाणां विमोक्षणम् ॥२०

अर्जुन उवाच ।

यदि साम्ना न मोक्ष्यन्ति गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान् ।
अद्य गन्धर्वराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम्२१
अर्जुनस्य तु तां श्रुत्वा प्रतिज्ञां सत्यवादिनः ।
कौरवाणां तदा राजन् पुनः प्रत्यागतं मनः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोष-यात्रापर्वणि दुर्योधनमोचनानुज्ञायां त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥

## २४४

वैशम्पायन उवाच ।

युधिष्ठिरवचः श्रुत्वा भीमसेनपुरोगमाः ।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥ १
अभेद्यानि ततः सर्वे समनह्यन्त भारत ।
जाम्बूनदविचित्राणि कवचानि महारथाः ॥ २
आयुधानि च दिव्यानि विविधानि समादधुः ।
ते दंशिता रथैः सर्वे ध्वजिनः सशरासनाः ॥ ३
पाण्डवाः प्रत्यदृश्यन्त ज्वलिता इव पावकाः
तान् रथान् साधुसम्पन्नान् संयुक्तान् जवनैर्हयैः
आस्थाय रथशार्दूलाः शीघ्रमेव ययुस्ततः ।
ततः कौरवसैन्यानां प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ५

---

२४३

**अस्मानिति** ॥१॥ अभिधाव याहीति चोदित आर्यः त्राणं रक्षकः शरणागतस्य कः भवेत् । य आर्यो महान् स एव भवेत् । शरणागतरक्षणसमर्थो दुर्लभ इति भावः ॥१२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥ * रणे-ख.

२४४

**युधिष्ठिरेति** ॥ १ ॥ दंशिताः सन्नद्धाः ॥ ३ ॥

प्रयातान् सहितान् दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रान् महारथान् ।
जितकाशिनश्च खचरास्त्वरिताश्च महारथाः ॥६
क्षणेनैव वने तस्मिन् समाजग्मुरभीतवत् ।
न्यवर्तन्त ततः सर्वे गन्धर्वा जितकाशिनः ॥ ७
दृष्ट्वा रथगतान् वीरान् पाण्डवांश्चतुरो रणे ।
तांस्तु विभ्राजितान् दृष्ट्वा लोकपालानिवोद्यतान्
व्यूढानीका व्यतिष्ठन्त §गन्धमादनवासिनः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥ ९
क्रमेण मृदुना युद्धमुपक्रान्तं च भारत ।
न तु गन्धर्वराजस्य सैनिका मन्दचेतसः ॥१०
शक्यन्ते मृदुना श्रेयः प्रतिपादयितुं तदा ।
ततस्तान् युधि दुर्धर्षान् सव्यसाची परन्तपः ११
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच खचरान् रणे ।
विसर्जयत राजानं भ्रातरं मे सुयोधनम् ॥ १२
त एवमुक्ता गन्धर्वाः पाण्डवेन यशस्विना ।
उत्स्मयन्तस्तदा पार्थमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १३
एकस्यैव वयं तात कुर्याम वचनं भुवि ।
यस्य शासनमाज्ञाय चरामो विगतज्वराः ॥ १४
तेनैकेन यथादिष्टं तथा वर्ताम भारत ।
न शास्ता विद्यतेऽस्माकमन्यस्तस्मात् सुरेश्वरात्
एवमुक्तः स गन्धर्वैः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
गन्धर्वान् पुनरेवेदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ १६
न तद्गन्धर्वराजस्य युक्तं कर्म जुगुप्सितम् ।
परदाराभिमर्षश्च मानुषैश्च समागमः ॥ १७
उत्सृज्यध्वं महावीर्यान् धृतराष्ट्रसुतानिमान् ।
दारांश्चैषां विमुञ्चध्वं धर्मराजस्य शासनात् १८
यदा साम्ना न मुञ्चध्वं गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान् ।
मोक्षयिष्यामि विक्रम्य स्वयमेव सुयोधनम् ॥ १९
एवमुक्त्वा ततः पार्थः सव्यसाची धनञ्जयः ।
ससर्ज निशितान् बाणान् खचरान् खचरान् प्रति
तथैव शरवर्षेण गन्धर्वास्ते बलोत्कटाः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त पाण्डवाश्च दिवौकसः ॥ २१
ततः सुतुमुलं युद्धं गन्धर्वाणां तरस्विनाम् ।
बभूव भीमवेगानां पाण्डवानां च भारत ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि पाण्डवगन्धर्वयुद्धे
चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥

## २४५

वैशम्पायन उवाच ।
ततो दिव्यास्त्रसम्पन्ना गन्धर्वा हेममालिनः ।
विसृजन्तः शरान् दीप्तान् समन्तात् पर्यवारयन्१
चत्वारः पाण्डवा वीरा गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।
रणे सन्यपतन् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २
यथा कर्णस्य च रथो धार्तराष्ट्रस्य चोभयोः ।
गन्धर्वैः शतशश्छिन्नौ तथा तेषां प्रचक्रिरे ॥ ३
तान् समापततो राजन् गन्धर्वाञ्छतशो रणे ।
प्रत्यगृह्णन् नरव्याघ्राः शरवर्षैरनेकशः ॥ ४
ते कीर्यमाणाः खगमाः शरवर्षैः समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डुपुत्राणां समीपे परिवर्तितुम् ॥ ५
अभिक्रुद्धानभिक्रुद्धो गन्धर्वानर्जुनस्तदा ।
लक्षयित्वाऽथ दिव्यानि महास्त्राण्युपचक्रमे ॥ ६
सहस्राणां सहस्राणि प्राहिणोद्यमसादनम् ।
आग्नेयेनार्जुनः सङ्ख्ये गन्धर्वाणां बलोत्कटः ॥ ७
तथा भीमो महेष्वासः संयुगे बलिनां वरः ।
गन्धर्वान् शतशो राजन् जघान निशितैः शरैः८
माद्रीपुत्रावपि तथा युध्यमानौ बलोत्कटौ ।
परिगृह्याग्रतो राजन् जघ्नतुः शतशः परान् ९
ते वध्यमाना गन्धर्वा दिव्यैरस्त्रैर्महारथैः ।
उत्पेतुः खमुपादाय धृतराष्ट्रसुतांस्ततः ॥ १०
स तानुत्पतितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
महता शरजालेन समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ११
ते बद्धाः शरजालेन शकुन्ता इव पञ्जरे ।
ववर्षुरर्जुनं क्रोधाद्गदाशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥ १२

---

श्रेयः कल्याणं प्रतिपादयितुम् ॥११॥ खचरान् गगनगमनान् । खचरान् गन्धर्वान् ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥ § गन्धर्वा इत्यर्थः ।

२४५

तत इति ॥१॥ तथा तेषां चतुर्णामपि रथान् छिन्नान् प्रचक्रिरे गन्धर्वाः ॥ ३ ॥

गदाशक्त्यृष्टिवृष्टीस्ता निहत्य परमास्त्रवित् ।
गात्राणि चाहनद्भल्लैर्गन्धर्वाणां धनञ्जयः ॥ १३
शिरोभिः प्रपतद्भिश्च चरणैर्बाहुभिस्तथा ।
अश्मवृष्टिरिवाभाति परेषामभवद्भयम् ॥ १४
ते वध्यमाना गन्धर्वाः पाण्डवेन महात्मना ।
भूमिष्ठमन्तरिक्षस्थाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ १५
तेषां तु शरवर्षाणि सव्यसाची परन्तपः ।
अस्त्रैः संवार्य तेजस्वी गन्धर्वान् प्रत्यविध्यत १६
स्थूणाकर्णेन्द्रजालं च सौरं चापि तथाऽर्जुनः ।
आग्नेयं चापि सौम्यं च ससर्ज कुरुनन्दनः ॥ १७
ते दह्यमाना गन्धर्वाः कुन्तीपुत्रस्य सायकैः ।
दैतेया इव शक्रेण विषादमगमन् परम् ॥ १८
ऊर्ध्वमाक्रममाणाश्च शरजालेन वारिताः ।
विसर्पमाणा भल्लैश्च वार्यन्ते सव्यसाचिना ॥ १९
गन्धर्वांस्त्रासितान् दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रेण भारत ।
चित्रसेनो गदां गृह्य सव्यसाचिनमाद्रवत् ॥ २०
तस्याभिपततस्तूर्णं गदाहस्तस्य संयुगे ।
गदां सर्वायसीं पार्थः शरैश्चिच्छेद सप्तधा ॥ २१
स गदां बहुधा दृष्ट्वा कृत्तां बाणैस्तरस्विना ।
संवृत्य विद्ययाऽऽत्मानं योधयामास पाण्डवम् २२
अस्त्राणि तस्य दिव्यानि सम्प्रयुक्तानि सर्वशः ।
दिव्यैरस्त्रैस्तदा वीरः पर्यवारयदर्जुनः ॥ २३
स वार्यमाणस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना ।
गन्धर्वराजो बलवान् मायया ऽन्तर्हितस्तदा ॥२४
अन्तर्हितं तमालक्ष्य प्रहरन्तमथार्जुनः ।
ताडयामास खचरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ २५
अन्तर्धानवधं चास्य चक्रे क्रुद्धोऽर्जुनस्तदा ।
शब्दवेध्यं समाश्रित्य बहुरूपो धनञ्जयः ॥ २६
स वध्यमानस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना ।
ततोऽस्य दर्शयामास तदाऽऽत्मानं प्रियः सखा॥
चित्रसेनस्तथोवाच सखायं युधि विद्धि माम् ।
चित्रसेनमथालक्ष्य सखायं युधि दुर्बलम् ॥ २८
संजहारास्त्रमथ तत् प्रसृष्टं पाण्डवर्षभः ।
दृष्ट्वा तु पाण्डवाः सर्वे संहृतास्त्रं धनञ्जयम् ॥ २९
संजह्रुः प्रद्रुतानश्वान् शरवेगान् धनूंषि च ।
चित्रसेनश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि ।
पृष्ट्वा कौशलमन्योन्यं रथेष्वेवावतस्थिरे ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि गन्धर्वपराभवे
पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

## २४६

वैशम्पायन उवाच ।
ततोऽर्जुनश्चित्रसेनं प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
मध्ये गन्धर्वसैन्यानां महेष्वासो महाद्युतिः ॥ १
किं ते व्यवसितं वीर कौरवाणां विनिग्रहे ।
किमर्थं च सदारोऽयं निगृहीतः सुयोधनः ॥ २
चित्रसेन उवाच ।
विदितोऽयमभिप्रायस्तत्रस्थेन दुरात्मनः ।
दुर्योधनस्य पापस्य कर्णस्य च धनञ्जय ॥ ३
वनस्थान् भवतो ज्ञात्वा क्लिश्यमानाननाथवत् ।
समस्थो विषमस्थांस्तान् द्रक्ष्यामीत्यनवस्थितान्॥ ४
इमेऽवहसितुं प्राप्ता द्रौपदीं च यशस्विनीम् ।
ज्ञात्वा चिकीर्षितं चैषां मामुवाच सुरेश्वरः ॥ ५
गच्छ दुर्योधनं बद्ध्वा सहामात्यमिहानय ।
धनञ्जयश्च ते रक्ष्यः सह भ्रातृभिराहवे ॥ ६
स च प्रियः सखा तुभ्यं शिष्यश्च तव पाण्डव ।
वचनाद्देवराजस्य ततोऽस्मीहागतो द्रुतम् ॥ ७
अयं दुरात्मा बद्धश्च गमिष्यामि सुरालयम् ।
नेष्याम्येनं दुरात्मानं पाकशासनशासनात् ॥ ८
अर्जुन उवाच ।
उत्सृज्यतां चित्रसेन भ्राताऽस्माकं सुयोधनः ।
धर्मराजस्य सन्देशान्मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ९

गृह्य गृहीत्वा ॥ २० ॥ संवृत्य आच्छाद्य विद्यया अदर्शनशक्त्या ॥ २२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

२४६

ततोऽर्जुन इति ॥१॥ तत्रस्थेन मयेति शेषः ॥ ३ ॥

चित्रसेन उवाच ।

पापोऽयं नित्यसन्तुष्टो न विमोक्षणमर्हति ।
प्रलब्धा धर्मराजस्य कृष्णायाश्च धनञ्जय ॥ १०
नेदं चिकीर्षितं तस्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
जानाति धर्मराजो हि श्रुत्वा कुरु यथेच्छसि ११

वैशम्पायन उवाच ।

ते सर्व एव राजानमभिजग्मुर्युधिष्ठिरम् ।
अभिगम्य च तत् सर्वं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् १२
अजातशत्रुस्तच्छ्रुत्वा गन्धर्वस्य वचस्तदा ।
मोक्षयामास तान् सर्वान् गन्धर्वान् प्रशशंस च
दिष्ट्या भवद्भिर्बलिभिः शक्तैः सर्वैर्न हिंसितः ।
दुर्वृत्तो धार्तराष्ट्रोऽयं सामात्यज्ञातिबान्धवः॥१४
उपकारो महांस्तात कृतोऽयं मम खेचरैः ।
कुलं न परिभूतं मे मोक्षणेऽस्य दुरात्मनः ॥ १५
आज्ञापयध्वमिष्टानि प्रीयामो दर्शनेन वः ।
प्राप्य सर्वानभिप्रायांस्ततो व्रजत मा चिरम्॥१६
अनुज्ञातास्तु गन्धर्वाः पाण्डुपुत्रेण धीमता ।
महाप्सरोभिः संहृष्टाश्चित्रसेनमुखा ययुः ॥ १७
देवराडपि गन्धर्वान् मृतांस्तान् समजीवयत् ।
दिव्येनामृतवर्षेण ये हताः कौरवैर्युधि ॥ १८
ज्ञातींस्तानवमुच्याथ राजदारांश्च सर्वशः ।
कृत्वा च दुष्करं कर्म प्रीतियुक्ताश्च पाण्डवाः १९
सस्त्रीकुमारैः कुरुभिः पूज्यमाना महारथाः ।
बभ्राजिरे महात्मानः क्रतुमध्ये यथाऽग्नयः ॥ २०
ततो दुर्योधनं मुक्तं भ्रातृभिः सहितस्तदा ।
युधिष्ठिरस्तु प्रणयादिदं वचनमब्रवीत् ॥ २१
मा स्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित् ।
न हि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत ॥ २२
स्वस्तिमान सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन ।
गृहान् व्रज यथाकामं वैमनस्यं च मा कृथाः॥२३

वैशम्पायन उवाच ।

पाण्डवेनाभ्यनुज्ञातो राजा दुर्योधनस्तदा ।
अभिवाद्य धर्मपुत्रं गतेन्द्रिय इवातुरः ॥ २४
विदीर्यमाणो व्रीडावान् जगाम नगरं प्रति ।
तस्मिन गते कौरवेये कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २५
भ्रातृभिः सहितो वीरः पूज्यमानो द्विजातिभिः
तपोधनैश्च तैः सर्वैर्वृतः शक्र इवामरैः ॥ २६
तथा द्वैतवने तस्मिन् विजहार मुदा युतः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनमोक्षणे षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४६ ॥

## २४७

जनमेजय उवाच ।

शत्रुभिर्जितबद्धस्य पाण्डवैश्च महात्मभिः ।
मोक्षितस्य युधा पश्चान्मानिनः सुदुरात्मनः ॥ १
कत्थनस्यावलिप्तस्य गर्वितस्य च नित्यशः ।
सदा च पौरुषौदार्यैः पाण्डवानवमन्यतः ॥ २
दुर्योधनस्य पापस्य नित्याहङ्कारवादिनः ।
प्रवेशो हास्तिनपुरे दुष्करः प्रतिभाति मे ॥ ३
तस्य लज्जान्वितस्यैव शोकव्याकुलचेतसः ।
प्रवेशं विस्तरेण त्वं वैशम्पायन कीर्तय ॥ ४

वैशम्पायन उवाच ।

धर्मराजानिसृष्टस्तु धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
लज्जयाऽधोमुखः सीदन्नुपासर्पन् सुदुःखितः ॥ ५
स्वपुरं प्रययौ राजा चतुरङ्गबलानुगः ।
शोकोपहतया बुद्ध्या चिन्तयानः पराभवम् ॥ ६

---

नित्यं सन्तुष्टो मत्त इत्यर्थः। संतुष्टत्वाद्स्य इति। 'हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति' इत्यापस्तम्बवचनात् । प्रलब्धा वञ्चकः ॥१०॥ इदं मदुक्तम् । समस्थो विषमस्थांस्तान् द्रक्ष्यामीति ॥११॥इष्टानि वस्त्रालङ्कारादीनि आज्ञापयध्वं भवदर्थं नान्यो नेष्यतीति ॥१६॥ सुखं सुखेन एधन्ति एधन्ते वर्धन्ते॥२२॥ वैमनस्यं वैरं येनाचित् सह मा कृथाः । मा कुरु ॥ २३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४६ ॥

२४७

शत्रुभिरिति॥१॥ कत्थनस्य-आत्मस्तुतिपरस्य । अवलिप्तस्य पापाशयस्य । गर्वितस्य-अत्यवमानिनः । अत एव पाण्डवानवमन्यतः॥२॥ अहङ्कारं गर्वं वदतीति तथा ॥ ३ ॥

विमुच्य पथि यानानि देशे सुयवसोदके।
सन्निविष्टः शुभे रम्ये भूमिभागे यथेप्सितम् ॥ ७
हस्त्यश्वरथपादातं यथास्थानं न्यवेशयत्।
अथोपविष्टं राजानं पर्यङ्के ज्वलनप्रभे ॥ ८
उपप्लुतं यथा सोमं राहुणा रात्रिसङ्क्षये।
उपागम्याब्रवीत् कर्णो दुर्योधनमिदं तदा ॥ ९
दिष्ट्या जीवसि गान्धारे दिष्ट्या नः सङ्गमः पुनः
दिष्ट्या त्वया जिताश्चैव गन्धर्वाः कामरूपिणः ॥
दिष्ट्या समग्रान् पश्यामि भ्रातृंस्ते कुरुनन्दन।
विजिगीषून् रणे युक्तान् निर्जितारीन् महारथान्
अहं त्वभिद्रुतः सर्वैर्गन्धर्वैः पश्यतस्तव।
नाशक्नुवं स्थापयितुं दीर्यमाणां च वाहिनीम्॥१२
शरक्षताङ्गश्च भृशं व्यपयातोऽभिपीडितः।
इदं त्वत्यद्भुतं मन्ये यद्युष्मानिह भारत ॥ १३
अरिष्टानक्षतांश्चापि सदारबलवाहनान्।
विमुक्तान् सम्प्रपश्यामि युद्धात् तस्मादमानुषात्
नैतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन् पुमान् विद्यति भारत।
यत् कृतं ते महाराज सह भ्रातृभिराहवे ॥ १५
वैशम्पायन उवाच।
एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा।
उवाच बाष्पराजानं बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥

## २४८

दुर्योधन उवाच।
अजानतस्ते राधेय नाभ्यसूयाम्यहं वचः।
जानासि त्वं जितान् शत्रून् गन्धर्वांस्तेजसा मया
आयोधितास्तु गन्धर्वाः सुचिरं सोदरैर्मम।
मया सह महाबाहो कृतश्चोभयतः क्षयः ॥ २
मायाधिकास्त्वयुध्यन्त यदा शूरा वियद्गताः।
तदा नो न समं युद्धमभवत् खेचरैः सह ॥ ३
पराजयं च प्राप्ताः स्मो रणे बन्धनमेव च।
सभृत्यामात्यपुत्राश्च सदारबलवाहनाः ॥ ४
उच्चैराकाशमार्गेण ह्रियामस्तैः सुदुःखिताः।
अथ नः सैनिकाः केचिदमात्याश्च महारथाः॥५
उपगम्याब्रुवन् दीनाः पाण्डवांश्च +रणप्रदान्।
एष दुर्योधनो राजा धार्तराष्ट्रः सहानुजः ॥ ६
सामात्यदारो ह्रियते गन्धर्वैर्दिवमाश्रितैः।
तं मोक्षयत भद्रं वः सहदारं नराधिपम् ॥ ७
परामर्शो मा भविष्यत् कुरुदारेषु सर्वशः।
एवमुक्ते तु धर्मात्मा ज्येष्ठः पाण्डुसुतस्तदा ॥ ८
प्रसाद्य पाण्डवान् सर्वानाज्ञापयत मोक्षणे।
अथागम्य तमुद्देशं पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ ९
सान्त्वपूर्वमयाचन्त शक्ताः सन्तो महारथाः।
यदा चास्मान् न मुमुचुर्गन्धर्वाः सान्त्विता अपि
ततोऽर्जुनश्च भीमश्च यमजौ च बलोत्कटौ।
मुमुचुः शरवर्षाणि गन्धर्वान् प्रत्यनेकशः ॥ ११
अथ सर्वे रणं मुक्त्वा प्रयाताः खेचरा दिवम्।
अस्मानेवाभिकर्षन्तो दीनान् मुदितमानसाः १२
ततः समन्तात् पश्यामः शरजालेन वेष्टितम्।
अमानुषाणि चास्त्राणि प्रमुञ्चन्तं धनञ्जयम् ॥१३
समावृता दिशो दृष्ट्वा पाण्डवेन शितैः शरैः।
धनञ्जयसखाऽऽत्मानं दर्शयामास वै तदा ॥ १४
चित्रसेनः पाण्डवेन समाश्लिष्य परस्परम्।
कुशलं परिपप्रच्छ तैः पृष्टश्चाप्यनामयम् ॥ १५
ते समेत्य तथाऽन्योन्यं सन्नाहान् विप्रमुच्य च॥
एकीभूतास्ततो वीरा गन्धर्वाः सह पाण्डवैः।
अपूजयेतामन्योन्यं चित्रसेनधनञ्जयौ ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनवाक्ये अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥ + पाण्डवान् शरणप्रदान्–ख.

२४८

**अजानतस्ते इति**। नाभ्यसूयामि दोषवदिति न मन्ये ॥ १ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥

२४९

दुर्योधन उवाच ।

चित्रसेनं समागम्य प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।
इदं वचनमक्लीबमब्रवीत् परवीरहा ॥ १
भ्रातॄनर्हसि मे वीर मोक्तुं गन्धर्वसत्तम ।
अनर्हा धर्षणा ह्येमे जीवमानेषु पाण्डुषु ॥ २
एवमुक्तस्तु गन्धर्वः पाण्डवेन महात्मना ।
उवाच यत् कर्ण वयं मन्त्रयन्तो विनिर्गताः ॥ ३
द्रष्टारः स्म सुखाद्धीनान् सदारान् पाण्डवानिति
तस्मिन्नुच्चार्यमाणे तु गन्धर्वेण वचस्तथा ॥ ४
भूमेर्विवरमन्वैच्छं प्रवेष्टुं व्रीडयाऽन्वितः ।
युधिष्ठिरमथागम्य गन्धर्वाः सह पाण्डवैः ॥ ५
अस्मद्दुर्मन्त्रितं तस्मै बद्धांश्चास्मान्न्यवेदयन् ।
स्त्रीसमक्षमहं दीनो बद्धः शत्रुवशं गतः ॥ ६
युधिष्ठिरस्योपहृतः किं नु दुःखमतः परम् ।
ये मे निराकृता नित्यं रिपुर्येषामहं सदा ॥ ७
तैर्मोक्षितोऽहं दुर्बुद्धिर्दत्तं तैरेव जीवितम् ।
प्राप्तः स्यां यद्यहं वीर वधं तस्मिन् महारणे ॥ ८
श्रेयस्तद्भविता मह्यं नैवंभूतस्य जीवितम् ।
अभूद्यशः पृथिव्यां मे ख्यातं गन्धर्वतो वधात् ॥
प्राप्ताश्च पुण्यलोकाः स्युर्महेन्द्रसदनेऽक्षयाः ।
यत्त्वद्य मे व्यवसितं तच्छृणुध्वं नरर्षभाः ॥ १०
इह प्रायमुपासिष्ये यूयं व्रजत वै गृहान् ।
भ्रातरश्चैव मे सर्वे यान्त्वद्य स्वपुरं प्रति ॥ ११
कर्णप्रभृतयश्चैव सुहृदो बान्धवाश्च ये ।
दुःशासनं पुरस्कृत्य प्रयान्त्वद्य पुरं प्रति ॥ १२
नह्यहं सम्प्रयास्यामि पुरं शत्रुनिराकृतः ।
शत्रुमानापहो भूत्वा सुहृदां मानकृत् तथा ॥ १३
स सुहृच्छोकदो जातः शत्रूणां हर्षवर्धनः ।
वारणाह्वयमासाद्य किं वक्ष्यामि जनाधिपम्॥ १४
भीष्मद्रोणौ कृपद्रौणी विदुरः सञ्जयस्तथा ।
बाह्लीकः सौमदत्तिश्च ये चान्ये वृद्धसम्मताः॥१५
ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीनवृत्तयः ।
किं मां वक्ष्यन्ति किञ्चापि प्रतिवक्ष्यामि तानहम्॥
रिपूणां शिरसि स्थित्वा तथा विक्रम्य चोरसि ।
आत्मदोषात् परिभ्रष्टः कथं वक्ष्यामि तानहम्१७
दुर्विनीताः श्रियं प्राप्य विद्यामैश्वर्यमेव च ।
तिष्ठन्ति न चिरं भद्रे यथाहं मदगर्वितः ॥ १८
अहो नार्हमिदं कर्म कष्टं दुश्चरितं कृतम् ।
स्वयं दुर्बुद्धिना मोहाद्येन प्राप्तोऽस्मि संशयम् १९
तस्मात् प्रायमुपासिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम्।
चेतयानो हि को जीवेत् कृच्छ्राच्छत्रुभिरुद्धृतः॥
शत्रुभिश्चावहसितो मानी पौरुषवर्जितः ।
पाण्डवैर्विक्रमाढ्यैश्च सावमानमवेक्षितः ॥ २१

वैशम्पायन उवाच ।

एवं चिन्तापरिगतो दुःशासनमथाब्रवीत् ।
दुःशासन निबोधेदं वचनं मम भारत ॥ २२
प्रतीच्छ त्वं मया दत्तमभिषेकं नृपो भव ।
प्रशाधि पृथिवीं स्फीतां कर्णसौबलपालिताम्२३
भ्रातॄन् पालय विस्रब्धं मरुतो वृत्रहा यथा ।
बान्धवाश्चोपजीवन्तु देवा इव शतक्रतुम् ॥ २४
ब्राह्मणेषु सदा वृत्तिं कुर्वीथाश्चाप्रमादतः ।
बन्धूनां सुहृदां चैव भवेथास्त्वं गतिः सदा ॥ २५
ज्ञातींश्चाप्यनुपश्येथा विष्णुर्देवगणान् यथा ।
गुरवः पालनीयास्ते गच्छ पालय मेदिनीम्॥ २६
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् शात्रवांश्चावभर्त्सयन् ।
कण्ठे चैनं परिष्वज्य गम्यतामित्युवाच ह ॥ २७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दीनो दुःशासनोऽब्रवीत् ।
अश्रुकण्ठः सुदुःखार्तः प्राञ्जलिः प्रणिपत्य च २८
सगद्गदमिदं वाक्यं भ्रातरं ज्येष्ठमात्मनः ।
प्रसीदेत्यपतद्भूमौ दूयमानेन चेतसा ॥ २९
दुःखितः पादयोस्तस्य नेत्रजं जलमुत्सृजन् ।
उक्तवांश्च नरव्याघ्रो नैतदेवं भविष्यति ॥ ३०
विदीर्येत् सकला भूमिर्द्यौश्चापि शकली भवेत् ।
रविरात्मप्रभां जह्यात् सोमः शीतांशुतां त्यजेत्
वायुः शैघ्र्यमथो जह्याद्धिमवांश्च परिव्रजेत् ।
शुष्येत् तोयं समुद्रेषु वह्निरप्युष्णतां त्यजेत् ॥ ३२
न चाहं त्वदृते राजन् प्रशासेयं वसुन्धराम् ।
पुनः पुनः प्रसीदेति वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३३
त्वमेव नः कुले राजा भविष्यसि शतं समाः ।
एवमुक्त्वा स राजानं सुस्वरं प्ररुरोद ह ॥ ३४

२४९

चित्रसेनमिति ॥ १ ॥ एवंभूतस्य जीवितं न श्रेयः इति सम्बन्धः । अभूत् अभविष्यत् ॥ ९ ॥ श्रेणिमुख्याः शिल्पिसङ्घातमुख्याः प्रकृतय इत्यर्थः ॥ १६ ॥ विस्रब्धं सविश्वासं यथा स्यात् तथा ॥ २४ ॥

पादौ संस्पृश्य मानार्हौ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
तथा तौ दुःखितौ दृष्ट्वा दुःशासनसुयोधनौ॥ ३५
अधिगम्य व्यथाविष्टः कर्णस्तौ प्रत्यभाषत ।
विषीदथः किं कौरव्यौ बालिश्यात् प्राकृताविव
न शोकः शोचमानस्य विनिवर्तेत कर्हिचित् ।
यदा च शोचतः शोको व्यसनं नापकर्षति॥ ३७
सामर्थ्यं किं ततः शोके शोचमानौ प्रपद्यथः ।
धृतिं गृह्णीतं मा शत्रून् शोचन्तौ नन्दयिष्यथः ३८
कर्तव्यं हि कृतं राजन् पाण्डवैस्तव मोक्षणम् ।
नित्यमेव प्रियं कार्यं राज्ञो विषयवासिभिः ॥ ३९
पाल्यमानास्त्वया ते हि निवसन्ति गतज्वराः ।
नार्हस्येवंगते मन्युं कर्तुं प्राकृतवद्यथा ॥ ४०
विषण्णास्तव सोदर्यास्त्वयि प्रायं समास्थिते ।
उत्तिष्ठ व्रज भद्रं ते समाश्वासय सोदरान् ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनप्रायोपवेशे ऊनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥

## २५०

कर्ण उवाच ।

राजन्नाद्यावगच्छामि तवेह लघुसत्त्वताम् ।
किमत्र चित्रं यद्वीर मोक्षितः पाण्डवैरसि ॥ १
सद्यो वशं समापन्नः शत्रूणां शत्रुकर्शन ।
सेनाजीवैश्च कौरव्य तथा विषयवासिभिः ॥ २
अज्ञातैर्यदि वा ज्ञातैः कर्तव्यं नृपतेः प्रियम् ।
प्रायः प्रधानाः पुरुषाः क्षोभयन्त्यरिवाहिनीम्॥३
निगृह्यन्ते च युद्धेषु मोक्ष्यन्ते चैव सैनिकैः ।
सेनाजीवाश्च ये राज्ञां विषये सन्ति मानवाः ॥४
तैः सङ्गम्य नृपार्थाय यतितव्यं यथातथम् ।
यद्येवं पाण्डवै राजन् भवद्विषयवासिभिः ॥ ५
यदृच्छया मोक्षितोऽसि तत्र का परिदेवना ।
न चैतत् साधु यद्राजन् पाण्डवास्त्वां नृपोत्तमम्
स्वसेनया सम्प्रयान्तं नानुयान्ति स्म पृष्ठतः ।
शूराश्च बलवन्तश्च संयुगेष्वपलायिनः ॥ ७
भवतस्ते सहाया वै प्रेष्यतां पूर्वमागताः ।
पाण्डवेयानि रत्नानि त्वमद्याप्युपभुञ्जसे ॥ ८
सत्त्वस्थान् पाण्डवान् पश्य न ते प्रायमुपाविशन् ।
उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते न चिरं कर्तुमर्हसि ॥ ९
अवश्यमेव नृपते राज्ञो विषयवासिभिः ।
प्रियाण्याचरितव्यानि तत्र का परिदेवना ॥ १०
मद्वाक्यमेतद्राजेन्द्र यद्येवं न करिष्यसि ।
स्थास्यामीह भवत्पादौ शुश्रूषन्नरिमर्दन ॥ ११
नोत्सहे जीवितुमहं त्वद्विहीनो नरर्षभ ।
प्रायोपविष्टस्तु नृप राज्ञां हास्यो भविष्यसि ॥ १२

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा ।
नैवोत्थातुं मनश्चक्रे स्वर्गाय कृतनिश्चयः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनप्रायोपवेशे कर्णवाक्ये पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५०॥

यदा चेति । यदि शोकेन व्यसनं नश्येत् तर्हि स कर्तव्यः न तु तत् तथाऽस्ति । अतः शोको न कर्तव्य इत्यर्थः ॥३७॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥

२५०

राजन्निति । स्पष्टार्थोऽध्यायः ॥ १ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥

## २५१

वैशम्पायन उवाच ।
प्रायोपविष्टं राजानं दुर्योधनममर्षणम् ।
उवाच सान्त्वयन् राजन् शकुनिः सौबलस्तदा १
शकुनिरुवाच ।
सम्यगुक्तं हि कर्णेन तच्छ्रुतं कौरव त्वया ।
मया हृतां श्रियं स्फीतां तां मोहादपहासि किम्
त्वमल्पबुद्ध्याऽद्य नृपते प्राणानुत्स्रष्टुमर्हसि ।
अथवाऽप्यवगच्छामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ३
यः समुत्पतितं हर्षं दैन्यं वा न नियच्छति ।
स नश्यति श्रियं प्राप्य पात्रमाममिवाम्भसि ॥ ४
अतिभीरुमतिक्लीबं दीर्घसूत्रं प्रमादिनम् ।
व्यसनाद्विषयाक्रान्तं न भजन्ति नृपं प्रजाः ॥ ५
सत्कृतस्य हि ते शोको विपरीते कथं भवेत् ।
मा कृतं शोभनं पार्थैः शोकमालम्ब्य नाशय ॥ ६
यत्र हर्षस्त्वया कार्यः सत्कर्तव्याश्च पाण्डवाः ।
तत्र शोचसि राजेन्द्र विपरीतमिदं तव ॥ ७
प्रसीद मा त्यजात्मानं तुष्टश्च सुकृतं स्मर ।
प्रयच्छ राज्यं पार्थानां यशो धर्ममवाप्नुहि ॥ ८
क्रियामेतां समाज्ञाय कृतज्ञस्त्वं भविष्यसि ।
सौभ्रात्रं पाण्डवैः कृत्वा समवस्थाप्य चैव तान् ९
पित्र्यं राज्यं प्रयच्छैषां ततः सुखमवाप्स्यसि ।
वैशम्पायन उवाच ।
शकुनेस्तु वचः श्रुत्वा दुःशासनमवेक्ष्य च ॥ १०
पादयोः पतितं वीरं विक्लवं भ्रातृसौहृदम् ।
बाहुभ्यां साधुजाताभ्यां दुःशासनमरिन्दमम् ११
उत्थाप्य सम्परिष्वज्य प्रीत्याऽजिघ्रत मूर्धनि ।
कर्णसौबलयोश्चापि संश्रुत्य वचनान्यसौ ॥ १२
निर्वेदं परमं गत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
व्रीडयाऽभिपरीतात्मा नैराश्यमगमत् परम् ॥१३
तच्छ्रुत्वा सुहृदश्चैव समन्युरिदमब्रवीत् ।
न धर्मधनसौख्येन नैश्वर्येण न चाज्ञया ॥ १४
नैव भोगैश्च मे कार्यं मा विहन्यत गच्छत ।
निश्चितेयं मम मतिः स्थिता प्रायोपवेशने ॥ १५
गच्छध्वं नगरं सर्वे पूज्याश्च गुरवो मम ।
त एवमुक्ताः प्रत्यूचू राजानमरिमर्दनम् ॥ १६
या गतिस्तव राजेन्द्र साऽस्माकमपि भारत ।
कथं वा सम्प्रवेक्ष्यामस्त्वद्विहीनाः पुरं वयम् १७
वैशम्पायन उवाच ।
स सुहृद्भिरमात्यैश्च भ्रातृभिः स्वजनेन च ।
बहुप्रकारमप्युक्तो निश्चयान्न विचाल्यते ॥ १८
दर्भास्तरणमास्तीर्य निश्चयाद् धृतराष्ट्रजः ।
संस्पृश्यापः शुचिर्भूत्वा भूतले समुपस्थितः ॥१९
कुशचीराम्बरधरः परं नियममास्थितः ।
वाग्यतो राजशार्दूलः स स्वर्गगतिकाम्यया ॥ २०
मनसोपचितिं कृत्वा निरस्य च बहिःक्रियाः ।
अथ तं निश्चयं तस्य बुद्ध्वा दैतेयदानवाः ॥ २१
पातालवासिनो रौद्राः पूर्वं देवैर्विनिर्जिताः ।
ते स्वपक्षक्षयं तं तु ज्ञात्वा दुर्योधनस्य वै ॥ २२
आह्वानाय तदा चक्रुः कर्म वैतानसम्भवम् ।
बृहस्पत्युशनोक्तैश्च मन्त्रैर्मन्त्रविशारदाः ॥ २३
अथर्ववेदप्रोक्तैश्च याश्चोपनिषदि क्रियाः ।
मन्त्रजप्यसमायुक्तास्तास्तदा समवर्तयन् ॥ २४
जुह्वत्यग्नौ हविः क्षीरं मन्त्रवत् सुसमाहिताः ।
ब्राह्मणा वेदवेदाङ्गपारगाः सुदृढव्रताः ॥ २५
कर्मसिद्धौ तदा तत्र जृम्भमाणा महाद्भुता ।
कृत्या समुत्थिता राजन् किं करोमीति चाब्रवीत्
आहुर्दैत्याश्च तां तत्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
प्रायोपविष्टं राजानं धार्तराष्ट्रमिहानय ॥ २७
तथेति च प्रतिश्रुत्य सा कृत्या प्रययौ तदा ।
निमेषादगमच्चापि यत्र राजा सुयोधनः ॥ २८

---

२५१

प्रायोपविष्टमिति ॥ १ ॥ पात्रं मृत्पात्रम् । आमं अपक्वम् ॥४॥ भीरुम्-आत्मनाशशङ्काकुलम् । क्लीबं सामर्थ्यहीनम् । दीर्घसूत्रं चिरकारिणम् । प्रमादिनमनवहितम् । व्यसनात् द्यूतपानमृगयादिरूपात् । विषयैः स्त्र्यादिभिराक्रान्तम् । त्वं तु तेषां मध्ये प्रमादी विषयाक्रान्तश्चेति भावः ॥५॥ पार्थैः कृतं शोभनं शोकमालम्ब्य मा नाशयेति सम्बन्धः ॥ ६ ॥ आत्मानं शरीरं मा त्यज ॥ ८ ॥ विक्लवं म्लानं भ्रातृसौहृदं भ्रातरि सौहृदं वात्सल्यमस्यास्तीति भ्रातृसौहृदस्तम् ॥ ११ ॥ निर्वेदं जीविते वैराग्यं नैराश्यं राज्यलाभे इति शेषः ॥१३॥ समन्युः दैन्यवान् । धर्मेण धनेन सौख्येन वा न मम कार्यमिति सम्बन्धः । धर्मधनाभ्यां यत् सौख्यं तेन वा आज्ञया आज्ञाफलेन राज्येनेत्यर्थः ॥ १४ ॥ मा विहन्यत आत्मानं मा घातयत । मम सङ्कल्पं वा मा नाशयत ॥ १५ ॥ पूज्याः भवद्भिरिति शेषः । गुरवो वृद्धा आदयः ॥ १६ ॥ सुहृद्भिः कर्णाद्यैः । अमात्यैः शकुनिप्रभृतिभिः । भ्रातृभिर्दुःशासनादिभिः । स्वजनैः सम्बन्धिभिः ॥ १८ ॥

समादाय च राजानं प्रविवेश रसातलम् ।
दानवानां मुहूर्ताच्च तमानीतं न्यवेदयत् ।
तमानीतं नृपं दृष्ट्वा रात्रौ सङ्गत्य दानवाः ॥ २९
प्रहृष्टमनसः सर्वे किञ्चिदुत्फुल्ललोचनाः ।
साभिमानमिदं वाक्यं दुर्योधनमथाब्रुवन् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनप्रायोपवेशे एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

## २५२

दानवा ऊचुः ।
भोः सुयोधन राजेन्द्र भरतानां कुलोद्वह ।
शूरैः परिवृतो नित्यं तथैव च महात्मभिः ॥ १
अकार्षीः साहसमिदं कस्मात् प्रायोपवेशनम् ।
आत्मत्यागी ह्यधो याति वाच्यतां चायशस्करीम्
न हि कार्यविरुद्धेषु बहुपापेषु कर्मसु ।
मूलघातेषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ ३
नियच्छैनां मतिं राजन् धर्मार्थसुखनाशिनीम् ।
यशःप्रतापवीर्यघ्नीं शत्रूणां हर्षवर्धनीम् ॥ ४
श्रूयतां तु प्रभो तत्त्वं दिव्यतां चात्मनो नृप ।
निर्माणं च शरीरस्य ततो धैर्यमवाप्नुहि ॥ ५
पुरा त्वं तपसाऽस्माभिर्लब्धो राजन् महेश्वरात् ।
पूर्वकायश्च पूर्वस्ते निर्मितो वज्रसञ्चयैः ॥ ६
अस्त्रैरभेद्यः शस्त्रैश्चाप्यधःकायश्च तेऽनघ ।
कृतः पुष्पमयो देव्या रूपतः स्त्रीमनोहरः ॥ ७
एवमीश्वरसंयुक्तस्तव देहो नृपोत्तम ।
देव्या च राजशार्दूल दिव्यस्त्वं हि न मानुषः ॥८
क्षत्रियाश्च महावीर्या भगदत्तपुरोगमाः ।
दिव्यास्त्रविदुषः शूराः क्षपयिष्यन्ति ते रिपून् ९
तदलं ते विषादेन भयं तव न विद्यते ।
सहायार्थं च ते वीराः सम्भूता भुवि दानवाः १०
भीष्मद्रोणकृपादींश्च प्रवेक्ष्यन्त्यपरेऽसुराः ।
यैराविष्टा घृणां त्यक्त्वा योत्स्यन्ते तव वैरिभिः ११
नैव पुत्रान्न च भ्रातॄन्न पितॄन्न च बान्धवान् ।
नैव शिष्यान्न च ज्ञातीन्न बालान् स्थविरान्न च॥
युधि सम्प्रहरिष्यन्तो मोक्ष्यन्ति कुरुसत्तम ।
निःस्नेहा दानवाविष्टाः समाक्रान्तेऽन्तरात्मनि ॥
प्रहरिष्यन्ति विवशाः स्नेहमुत्सृज्य दूरतः ।
हृष्टाः पुरुषशार्दूलाः कलुषीकृतमानसाः ।
अविज्ञानविमूढाश्च दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥ १४
व्याभाषमाणाश्चान्योन्यं न मे जीवन् विमोक्ष्यसे
सर्वे शस्त्रास्त्रमोक्षेण पौरुषे समवस्थिताः ॥ १५
श्लाघमानाः कुरुश्रेष्ठ करिष्यन्ति जनक्षयम् ।
तेऽपि पञ्च महात्मानः प्रतियोत्स्यन्ति पाण्डवाः
वधं चैषां करिष्यन्ति दैवयुक्ता महाबलाः ।
दैत्यरक्षोगणाश्चैव सम्भूताः क्षत्रयोनिषु ॥ १७
योत्स्यन्ति युधि विक्रम्य शत्रुभिस्तव पार्थिव ।
गदाभिर्मुसलैः शूलैः शस्त्रैरुच्चावचैस्तथा ॥ १८
यच्च तेऽन्तर्गतं वीर भयमर्जुनसम्भवम् ।
तत्रापि विहितोऽस्माभिर्वधोपायोऽर्जुनस्य वै १९

---

वाग्यतो मौनी। स्वर्गगतिर्मरणं तत्काम्यया तदिच्छया ॥ २० ॥ मनसा. उप समीपे चितिं दाहार्थं काष्ठसञ्चयं कृत्वा सङ्कल्प्य अवश्यं मर्तव्यमिति निश्चित्येत्यर्थः। बहिः-क्रियाः स्नानपानाद्याः ॥ २१ ॥ वैतानसम्भवमग्नित्रिस्तार-साध्यं नवकुण्ड्यादिविधानमाथर्वणिकं न तु त्रयीरूपम् ॥ २३ ॥ उपनिषदि आरण्यके प्रोक्ताः क्रियाः 'सर्वं प्रविध्य हृदयं प्रविध्य शिरोभिन्त्रञ्ज धमनीं व्रज' इत्यादि मन्त्रप्रकाशिताः शत्रुमारणार्था एतन्मन्त्रजपहोमादिरूपाः समवर्तयन् सम्प्रावर्तयन् दैतेयदानवा इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ २४ ॥ कृत्या आज्ञाकरी देवता ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

२५२

भोः सुयोधनेति ॥ १ ॥ कार्यविरुद्धेषु शत्रुजयविरुद्धेषु पापेषु आत्महत्यादिषु ॥ ३ ॥ नियच्छ त्यजेत्यर्थः ॥ ४ ॥ पूर्वकायः नाभेरुपरि ॥ ६ ॥ असुरा इति छेदः घृणां कृपाम् ॥ ११ ॥ अन्तरात्मनि चित्ते समाक्रान्ते दानवैरेव ॥ १३ ॥ अविज्ञानं कार्याकार्यविज्ञानाभावस्तेन मूढाः । दैवाददृष्टात् विधिनिर्मितात् पूर्वकर्मकृतात् ॥ १४ ॥ व्याभाषमाणाः विरुद्धमीभाषन्तः ॥ १५ ॥

मृतस्य नरकस्यात्मा कर्णमूर्तिमुपाश्रितः ।
तद्वैरं संस्मरन् वीर योत्स्यते केशवार्जुनौ ॥ २०
स ते विक्रमशौटीरो रणे पार्थं विजेष्यति ।
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः सर्वांश्चारीन् महारथः ॥ २१
ज्ञात्वैतच्छद्मना वज्री रक्षार्थं सव्यसाचिनः ।
कुण्डले कवचं चैव कर्णस्यापहरिष्यति ॥ २२
तस्मादस्माभिरप्यत्र दैत्याः शतसहस्रशः ।
नियुक्ता राक्षसाश्चैव ये ते संशप्तका इति ॥ २३
प्रख्यातास्तेऽर्जुनं वीरं हनिष्यन्ति च मा शुचः ।
असपत्ना त्वया हीयं भोक्तव्या वसुधा नृप ॥२४
मा विषादं गमस्तस्मान्नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
विनष्टे त्वयि चास्माकं पक्षो हीयेत कौरव ॥२५
गच्छ वीर न ते बुद्धिरन्या कार्या कथञ्चन ।
त्वमस्माकं गतिर्नित्यं देवतानां च पाण्डवाः २६
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा परिष्वज्य दैत्यास्तं राजकुञ्जरम् ।
समाश्वास्य च दुर्धर्षं पुत्रवद्दानवर्षभाः ॥ २७
स्थिरां कृत्वा बुद्धिमस्य प्रियाण्युक्त्वा च भारत ।
गम्यतामित्यनुज्ञाय जयमाप्नुहि चेत्यथ ॥ २८
तैर्विसृष्टं महाबाहुं कृत्या सैवानयत् पुनः ।
तमेव देशं यत्रासौ तदा प्रायमुपाविशत् ॥ २९
प्रतिनिक्षिप्य तं वीरं कृत्या समभिपूज्य च ।
अनुज्ञाता च राज्ञा सा तथैवान्तरधीयत ॥ ३०
गतायामथ तस्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा ।
स्वप्नभूतमिदं सर्वमचिन्तयत भारत ॥ ३१
विजेष्यामि रणे पाण्डूनिति चास्याऽभवन्मतिः ।
कर्णं संशप्तकांश्चैव पार्थस्यामित्रघातिनः ॥ ३२
अमन्यत वधे युक्तान् समर्थांश्च सुयोधनः ।
एवमाशा दृढा तस्य धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ ३३
विनिर्जये पाण्डवानामभवद्भरतर्षभ ।
कर्णोऽप्याविष्टचित्तात्मा नरकस्यान्तरात्मना ३४
अर्जुनस्य वधे क्रूरां करोति स्म तदा मतिम् ।
संशप्तकाश्च ते वीरा राक्षसाविष्टचेतसः ॥ ३५
रजस्तमोभ्यामाक्रान्ताः फाल्गुनस्य वधैषिणः ।
भीष्मद्रोणकृपाद्याश्च दानवाक्रान्तचेतसः ॥ ३६
न तथा पाण्डुपुत्राणां स्नेहवन्तो विशाम्पते ।
न चाचचक्षे कस्मैचिदेतद्राजा सुयोधनः ॥ ३७
दुर्योधनं निशान्ते च कर्णो वैकर्तनोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निवाञ्जलिं कृत्वा पार्थिवं हेतुमद्वचः ॥ ३८
न मृतो जयते शत्रून् जीवन् भद्राणि पश्यति ।
मृतस्य भद्राणि कुतः कौरवेय कुतो जयः ॥ ३९
न कालोऽद्य विषादस्य भयस्य मरणस्य वा ।
परिष्वज्याब्रवीच्चैनं भुजाभ्यां स महाभुजः ॥४०
उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे कस्माच्छोचसि शत्रुहन् ।
शत्रून् प्रताप्य वीर्येण स कथं मृत्युमिच्छसि ॥४१
अथवा ते भयं जातं दृष्ट्वाऽर्जुनपराक्रमम् ।
सत्यं ते प्रतिजानामि वधिष्यामि रणेऽर्जुनम्॥४२
गते त्रयोदशे वर्षे सत्येनायुधमालभे ।
आनयिष्याम्यहं पार्थान् वशं तव जनाधिप ॥ ४३
एवमुक्तस्तु कर्णेन दैत्यानां वचनात् तथा ।
प्रणिपातेन चाप्येषामुदतिष्ठत् सुयोधनः ॥ ४४
दैत्यानां तद्वचः श्रुत्वा हृदि कृत्वा स्थिरां मतिम् ।
ततो मनुजशार्दूलो योजयामास वाहिनीम् ४५
रथनागाश्वकलिलां पदातिजनसङ्कुलाम् ।
गङ्गौघप्रतिमा राजन् सा प्रयाता महाचमूः॥ ४६
श्वेतच्छत्रैः पताकाभिश्चामरैश्च सुपाण्डुरैः ।
रथैर्नागैः पदातैश्च शुशुभेऽतीव सङ्कुला ॥ ४७
व्यपेताभ्रघने काले द्यौरिवाव्यक्तशारदी ।
जयाशीर्भिर्द्विजेन्द्रैः स स्तूयमानोऽधिराजवत् ४८
गृह्णन्नञ्जलिमालाश्च धार्तराष्ट्रो जनाधिपः ।
सुयोधनो ययावग्रे श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ४९
कर्णेन सार्धं राजेन्द्र सौबलेन च देविना ।
दुःशासनादयश्चास्य भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ५०
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च बाल्हिकः ।
रथैर्नानाविधाकारैर्हयैर्गजवरैस्तथा ॥ ५१

विक्रमे शत्रुजये शौटीरः समर्थः ॥ २१ ॥ ते त्वया अन्या मरणार्था वैरशान्त्यर्था वा बुद्धिर्न कार्या ॥२६॥ जयमाप्नुहि चेत्युक्त्वामिति शेषः । अथ तैर्विसृष्टमिति सम्बन्धः ॥ २८ ॥ अन्तरात्मना मनसा ॥ ३४ ॥ पाण्डुपुत्राणामुपरीति शेषः ॥ ३७ ॥ एषां दुःशासनादीनाम् ॥ ४४ ॥ पदातैः पदातिभिः सा चमूर्द्यौरिव शुशुभे इति द्वयोः सम्बन्धः ॥४७॥ व्यपेतः अभ्रघनः मेघविस्तारो यस्मिन् 'घनं स्यात्' इत्युपक्रम्य 'विस्तारे लोहमुद्गरे' इति मेदिनी । शारदीत्यर्थः । अव्यक्ता ईषद्व्यक्ता शारदी शरज्जातपुण्डरीककाशकुसुमाद्याकारच्छत्रचामरादिरूपा शोभा यस्यां साऽव्यक्तशारदी । अधिराजा सार्वभौमो युधिष्ठिरस्तद्वत् ॥ ४८ ॥ गृह्णन् दृक्प्रसारादिना अनुगृह्णन् । अञ्जलिमालाः नमस्काराञ्जलिपङ्क्तीः । बद्धाञ्जलीनित्यर्थः॥४९॥ देविना द्यूतरतेन ॥ ५० ॥

प्रयान्तं नृपसिंहं तमनुजग्मुः कुरूद्वहाः । कालेनाल्पेन राजेन्द्र स्वपुरं विविशुस्तदा ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनपुरप्रवेशे द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

## २५३

जनमेजय उवाच ।
वसमानेषु पार्थेषु वने तस्मिन् महात्मसु ।
धार्तराष्ट्रा महेष्वासाः किमकुर्वत सत्तमाः ॥ १
कर्णो वैकर्तनश्चैव शकुनिश्च महाबलः ।
भीष्मद्रोणकृपाश्चैव तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
एवं गतेषु पार्थेषु विसृष्टे च सुयोधने ।
आगते हास्तिनपुरं मोक्षिते पाण्डुनन्दनैः ॥ ३
भीष्मोऽब्रवीत् महाराज धार्तराष्ट्रमिदं वचः ।
उक्तं तात यथा पूर्वं गच्छतस्ते तपोवनम् ॥ ४
गमनं मे न रुचितं तव तत्र कृतं च ते ।
ततः प्राप्तं त्वया वीर ग्रहणं शत्रुभिर्बलात् ॥ ५
मोक्षितश्चासि धर्मज्ञैः पाण्डवैर्न च लज्जसे ।
प्रत्यक्षं तव गान्धारे ससैन्यस्य विशांपते ॥ ६
सूतपुत्रोऽपयाद्भीतो गन्धर्वाणां तदा रणात् ।
क्रोशतस्तव राजेन्द्र ससैन्यस्य नृपात्मज ॥ ७
दृष्टस्ते विक्रमश्चैव पाण्डवानां महात्मनाम् ।
कर्णस्य च महाबाहो सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥ ८
न चापि पादभाक्कर्णः पाण्डवानां नृपोत्तम ।
धनुर्वेदे च शौर्ये च धर्मे वा धर्मवत्सल ॥ ९
तस्मादहं क्षमं मन्ये पाण्डवैस्तैर्महात्मभिः ।
सन्धिं सन्धिविदां श्रेष्ठ कुलस्यास्य विवृद्धये १०
एवमुक्तश्च भीष्मेण धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
प्रहस्य सहसा राजन् विप्रतस्थे ससौबलः ॥ ११
तं तु प्रस्थितमाज्ञाय कर्णदुःशासनादयः ।
अनुजग्मुर्महेष्वासा धार्तराष्ट्रं महाबलम् ॥ १२
तांस्तु सम्प्रस्थितान् दृष्ट्वा भीष्मः कुरुपितामहः ।
लज्जया व्रीडितो राजन् जगाम स्वं निवेशनम् ॥
गते भीष्मे महाराज धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
पुनरागम्य तं देशममन्त्रयत मन्त्रिभिः ॥ १४
किमस्माकं भवेच्छ्रेयः किं कार्यमवशिष्यते ।
कथं च सुकृतं तत् स्यान्मन्त्रयामोऽद्य यद्धितम् १६
कर्ण उवाच ।
दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
भीष्मोऽस्मान्निन्दति सदा पाण्डवांश्च प्रशंसति १७
त्वद्द्वेषाच्च महाबाहो ममापि द्वेष्टुमर्हति ।
विगर्हते च मां नित्यं त्वत्समीपे नरेश्वर ॥ १७
साऽहं भीष्मवचस्तद्वै न मृष्यामीह भारत ।
त्वत्समक्षं यदुक्तं च भीष्मेणामित्रकर्षण ॥ १८
पाण्डवानां यशो राजंस्तव निन्दां च भारत ।
अनुजानीहि मां राजन् सभृत्यबलवाहनम् ॥ १९
जेष्यामि पृथिवीं राजन् सशैलवनकाननाम् ।
जिता च पाण्डवैर्भूमिश्चतुर्भिर्बलशालिभिः ॥ २०
तामहं ते विजेष्यामि एक एव न संशयः ।
सम्पश्यतु सुदुर्बुद्धिर्भीष्मः कुरुकुलाधमः ॥ २१
अनिन्द्यं निन्दते यो हि अप्रशंस्यं प्रशंसति ।
स पश्यतु बलं मेऽद्य आत्मानं तु विगर्हतु ॥ २२
अनुजानीहि मां राजन् ध्रुवो हि विजयस्तव ।
प्रतिजानामि ते सत्यं राजन्नायुधमालभे ॥ २३
तच्छ्रुत्वा तु वचो राजन् कर्णस्य भरतर्षभ ।
प्रीत्या परमया युक्तः कर्णमाह नराधिपः ॥ २४
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे त्वं महाबलः
हितेषु वर्तसे नित्यं सफलं जन्म चाद्य मे ॥ २५
यदा च मन्यसे वीर सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
तदा निर्गच्छ भद्रं ते ह्यनुशाधि च मामिति २६
एवमुक्तस्तदा कर्णो धार्तराष्ट्रेण धीमता ।
सर्वमाज्ञापयामास प्रायात्रिकमरिन्दम ॥ २७

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

२५३

**वसमानेष्विति** ॥ १ ॥ तव गमनं न रुचितं नानुमोदितम् । मे मया ते त्वया च तत्र कृतम् ॥५॥ अपयात् अपायात् पलायितः ॥ ७ ॥ सान्धिक्षमं युक्तं मन्ये ॥१०॥ ममापि मामपि ॥ १७ ॥ प्रायात्रिकं प्रयातुं राज्ञोऽपेक्षितं शकटापणवीथ्यादि ॥ २७ ॥

प्रययौ च महेष्वासो नक्षत्रे शुभदैवते । शुभे तिथौ मुहूर्ते च पूज्यमानो द्विजातिभिः २८
मङ्गलैश्च शुभैः स्नातो वाग्भिश्चापि प्रपूजितः । नादयन् रथघोषेण त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णदिग्विजये त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥

## २५४

वैशम्पायन उवाच ।
ततः कर्णो महेष्वासो बलेन महता वृतः ।
द्रुपदस्य पुरं रम्यं रुरोध भरतर्षभ ॥ १
युद्धेन महता चैनं चक्रे वीरं वशानुगम् ।
सुवर्णं रजतं चापि रत्नानि विविधानि च ॥ २
करं च दापयामास द्रुपदं नृपसत्तम ।
तं विनिर्जित्य राजेन्द्र राजानस्तस्य येऽनुगाः ३
तान् सर्वान् वशगांश्चक्रे करं चैनानदापयत् ।
अथोत्तरां दिशं गत्वा वशे चक्रे नराधिपान् ॥ ४
भगदत्तं च निर्जित्य राधेयो गिरिमारुहत् ।
हिमवन्तं महाशैलं युध्यमानश्च शत्रुभिः ॥ ५
प्रययौ च दिशः सर्वान् नृपतीन् वशमानयत् ।
स हैमवतिकान् जित्वा करं सर्वानदापयत् ॥ ६
नेपालविषये ये च राजानस्तानवाजयत् ।
अवतीर्य ततः शैलात् पूर्वां दिशमभिद्रुतः ॥ ७
अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च शुण्डिकान् मिथिलानथ
मागधान् कर्कखण्डांश्च निवेश्य विषयेऽऽत्मनः ८
आवशीरांश्च योध्यांश्च अहिक्षत्रं च निर्जयत् ।
पूर्वां दिशं विनिर्जित्य वत्सभूमिं तथाऽगमत् ॥९
वत्सभूमिं विनिर्जित्य केवलां मृत्तिकावतीम् ।
मोहनं पत्तनं चैव त्रिपुरीं कोसलां तथा ॥ १०
एतान् सर्वान् विनिर्जित्य करमादाय सर्वशः ।
दक्षिणां दिशमास्थाय कर्णो जित्वा महारथान् ॥
रुक्मिणं दाक्षिणात्येषु योधयामास सूतजः ।
स युद्धं तुमुलं कृत्वा रुक्मी प्रोवाच सूतजम् १२
प्रीतोऽस्मि तव राजेन्द्र विक्रमेण बलेन च ।
न ते विघ्नं करिष्यामि प्रतिज्ञां समपालयम् ॥१३
प्रीत्या चाहं प्रयच्छामि हिरण्यं यावदिच्छसि ।
समेत्य रुक्मिणा कर्णः पाण्ड्यं शैलं च सोऽगमत्
स केरलं रणे चैव नीलं चापि महीपतिम् ।
वेणुदारिसुतं चैव ये चान्ये नृपसत्तमाः ॥ १५
दक्षिणस्यां दिशि नृपान् करान् सर्वानदापयत् ।
शैशुपालिं ततो गत्वा विजिग्ये सूतनन्दनः ॥ १६
पार्श्वस्थांश्चापि नृपतीन् वशे चक्रे महाबलः ।
आवन्त्यांश्च वशे कृत्वा साम्ना च भरतर्षभ ।
वृष्णिभिः सह सङ्गम्य पश्चिमामपि निर्जयत् १७
वारुणीं दिशमागम्य यावनान् बर्बरांस्तथा ।
नृपान् पश्चिमभूमिस्थान् दापयामास वै करान् ॥
विजित्य पृथिवीं सर्वां स पूर्वापरदक्षिणाम् ।
सम्लेच्छाटविकान् वीरः सपर्वतनिवासिनः ॥
भद्रान् रोहितकांश्चैव आग्रेयान् मालवानपि ।
गणान् सर्वान् विनिर्जित्य नीतिकृत् प्रहसन्निव ॥
शशकान् यवनांश्चैव विजिग्ये सूतनन्दनः ।
नग्नजित्प्रमुखांश्चैव गणान् जित्वा महारथान् २१
एवं स पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा महारथः ।
विजित्य पुरुषव्याघ्रो नागसाह्वयमागमत् ॥ २२
तमागतं महेष्वासं धार्तराष्ट्रो जनाधिपः ।
प्रत्युद्गम्य महाराज सभ्रातृपितृबान्धवः ॥ २३
अर्चयामास विधिना कर्णमाहवशोभिनम् ।
आश्रावयच्च तत् कर्म प्रीयमाणो जनेश्वरः ॥२४
यन्न भीष्मान्न च द्रोणान्न कृपान्न च बाह्लिकात्
प्राप्तवानस्मि भद्रं ते त्वत्तः प्राप्तं मया हि तत् २५

---

मङ्गलैर्मङ्गलद्रव्यैः सुगन्धतैलादिभिः स्नातः शुभैर्नीराजनादिभिः प्रययौ इति सम्बन्धः ॥ २९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥

२५४

तत इति ॥१॥ निवेश्य विषयेऽऽत्मनः आत्मनो गोचरे कृत्वेत्यर्थः । आकारपूर्वरूपं लोपो वा आर्षः ॥ ८ ॥ निर्जयत् जितवान् । अडभाव आर्षः ॥ ९ ॥ प्रतिज्ञां क्षत्रधर्मं समपाल्यं पालितवानस्मि । क्षत्रधर्मापेक्षयैव त्वया सह युद्धं कृतं न त्वजिगीषयेति भावः ॥ १३ ॥ शैलं श्रीशैलम् ॥ १४ ॥ तत् कर्म कर्णविजयं पुरे उद्घोषयामास ॥ २४ ॥

बहुना च किमुक्तेन शृणु कर्ण वचो मम ।
सनाथोऽस्मि महाबाहो त्वया नाथेन सत्तम २६
न हि ते पाण्डवाः सर्वे कलामर्हन्ति षोडशीम् ।
अन्ये वा पुरुषव्याघ्र राजानोऽभ्युदितोदिताः२७
स भवान् धृतराष्ट्रं तं गान्धारीं च यशस्विनीम् ।
पश्य कर्ण महेष्वास अदितिं वज्रभृद्यथा ॥ २८
ततो हलहलाशब्दः प्रादुरासीद्विशांपते ।
हाहाकाराश्च बहवो नगरे नागसाह्वये ॥ २९
केचिदेनं प्रशंसन्ति निन्दन्ति स्म तथा परे ।
तूष्णीमासंस्तथा चान्ये नृपास्तत्र जनाधिप॥ ३०
एवं विजित्य राजेन्द्र कर्णः शस्त्रभृतां वरः ।
सपर्वतवनाकाशां ससमुद्रां सनिष्कुटाम् ॥ ३१
देशैरुच्चावचैः पूर्णां पत्तनैर्नगरैरपि ।
द्वीपैश्चानूपसम्पूर्णैः पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ३२
कालेन नातिदीर्घेण वशे कृत्वा तु पार्थिवान् ।
अक्षयं धनमादाय सूतजो नृपमभ्ययात् ॥ ३३
प्रविश्य च गृहं राजन्नभ्यन्तरमरिन्दम ।
गान्धारीसहितं वीरो धृतराष्ट्रं ददर्श सः ॥ ३४
पुत्रवच्च नरव्याघ्र पादौ जग्राह धर्मवित् ।
धृतराष्ट्रेण चाश्लिष्य प्रेम्णा चापि विसर्जितः ३५
तदाप्रभृति राजा च शकुनिश्चापि सौबलः ।
जानते निर्जितान् पार्थान् कर्णेन युधि भारत ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि कर्णदिग्विजये
चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५४ ॥

## २५५

वैशम्पायन उवाच ।
जित्वा तु पृथिवीं राजन् सूतपुत्रो जनाधिप ।
अब्रवीत् परवीरघ्नो दुर्योधनमिदं वचः ॥ १
कर्ण उवाच ।
दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
श्रुत्वा वाक्यं तथा सर्वं कर्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ २
तवाद्य पृथिवी वीर निःसपत्ना नृपोत्तम ।
तां पालय यथा शक्रो हतशत्रुर्महामनाः ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु कर्णेन कर्णं राजाऽब्रवीत् पुनः ।
न किञ्चिद्दुर्लभं तस्य यस्य त्वं पुरुषर्षभ ॥ ४
सहायश्चानुरक्तश्च मदर्थं च समुद्यतः ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तं वै शृणु यथातथम् ॥५
राजसूयं पाण्डवस्य दृष्ट्वा क्रतुवरं महत् ।
मम स्पृहा समुत्पन्ना तां सम्पादय सूतज ॥ ६
एवमुक्तस्ततः कर्णो राजानमिदमब्रवीत् ।
तवाद्य पृथिवीपाला वश्याः सर्वे नृपोत्तम ॥ ७
आहूयन्तां द्विजवराः सम्भाराश्च यथाविधि ।
सम्भ्रियन्तां कुरुश्रेष्ठ यज्ञोपकरणानि च ॥ ८
ऋत्विजश्च समाहूता यथोक्ता वेदपारगाः ।
क्रियां कुर्वन्तु ते राजन् यथाशास्त्रमरिन्दम ॥ ९
बह्वन्नपानसंयुक्तः सुसमृद्धगुणान्वितः ।
प्रवर्ततां महायज्ञस्तवापि भरतर्षभ ॥ १०
एवमुक्तस्तु कर्णेन धार्तराष्ट्रो विशांपते ।
पुरोहितं समानाय्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ११
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं समाप्तवरदक्षिणम् ।
आहर त्वं मम कृते यथान्यायं यथाक्रमम् ॥ १२
स एवमुक्तो नृपतिमुवाच द्विजसत्तमः ।
न स शक्यः क्रतुश्रेष्ठो जीवमाने युधिष्ठिरे ॥ १३
आहर्तुं कौरवश्रेष्ठ कुले तव नृपोत्तम ।
दीर्घायुर्जीवति च ते धृतराष्ट्रः पिता नृप ॥ १४

अभ्युदितेभ्योऽप्युदिताः श्रेष्ठतमाः ॥ २७ ॥ हलहला-शब्दं हाहाकारं कर्णनिन्दां च पाण्डवपक्षपातिनश्चक्रुरित्यर्थः ॥ २९ ॥ आकाशः पर्वतवनयोरन्तरालं सस्याद्युत्पत्तिभूमिमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ अनूपं सर्वतोजलं तेन सम्पूर्णैः ॥३२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥

२५५

जित्वेति ॥ १ ॥ जीवमाने इत्येकस्मिन् कुले द्वौ राजसूयौ न भवत इति वा तस्मिन्नजित इति वा भावः ॥ १३ ॥ स च शत्रुर्न तत्प्रतिबन्धस्माकं कश्चिदस्ति । द्यूतेन च जितोऽस्त्येवेत्याशङ्क्याह दीर्घायुरिति । पितर्यकृतराजसूये जीवति सति स्वयं तं न कुर्यादित्यर्थः । अन्धस्य पितुरनधिकारात् तत्सत्त्वे यद्यप्यधिकारप्रतिबन्धकं न

अतश्चापि विरुद्धस्ते क्रतुरेष नृपोत्तम ।
अस्ति त्वन्यन्महत् सत्रं राजसूयसमं प्रभो ॥ १५
तेन त्वं यज राजेन्द्र शृणु चेदं वचो मम ।
य इमे पृथिवीपालाः करदास्तव पार्थिव ॥ १६
ते करान् सम्प्रयच्छन्तु सुवर्णं च कृताकृतम् ।
तेन ते क्रियतामद्य लाङ्गलं नृपसत्तम ॥ १७
यज्ञवाटस्य ते भूमिः कृष्यतां तेन भारत ।
तत्र यज्ञो नृपश्रेष्ठ प्रभूतान्नः सुसंस्कृतः ॥ १८
प्रवर्ततां यथान्यायं सर्वतो ह्यनिवारितः ।
एष ते वैष्णवो नाम यज्ञः सत्पुरुषोचितः ॥ १९
एतेन नेष्टवान् कश्चिदृते विष्णुं पुरातनम् ।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं स्पर्धत्येष महाक्रतुः ॥ २०
अस्माकं रोचते चैव श्रेयश्च तव भारत ।
निर्विघ्नश्च भवत्येष सफला स्यात् स्पृहा तव २१
एवमुक्तस्तु तैर्विप्रैर्धार्तराष्ट्रो महीपतिः ।
कर्णं च सौबलं चैव भ्रातृंश्चैवेदमब्रवीत् ॥ २२
रोचते मे वचः कृत्स्नं ब्राह्मणानां न संशयः ।
रोचते यदि युष्माकं तस्मात् प्रब्रूत मा चिरम्२३
एवमुक्तास्तु ते सर्वे तथेत्यूचुर्नराधिपम् ।
सन्दिदेश ततो राजा व्यापारस्थान् यथाक्रमम्२४
हलस्य करणे चापि व्यादिष्टाः सर्वशिल्पिनः ।
यथोक्तं च नृपश्रेष्ठ कृतं सर्वं यथाक्रमम् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनयज्ञसमारम्भे पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

## २५६

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्तु शिल्पिनः सर्वे अमात्यप्रवराश्च ये ।
विदुरश्च महाप्राज्ञो धार्तराष्ट्रे न्यवेदयत् ॥ १
सज्जं क्रतुवरं राजन् कालप्राप्तं च भारत ।
सौवर्णं च कृतं सर्वं लाङ्गलं च महाधनम् ॥ २
एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो धार्तराष्ट्रो विशांपते ।
आज्ञापयामास नृपः क्रतुराजप्रवर्तनम् ॥ ३
ततः प्रववृते यज्ञः प्रभूतान्नः सुसंस्कृतः ।
दीक्षितश्चापि गान्धारिर्यथाशास्त्रं यथाक्रमम् ४
प्रहृष्टो धृतराष्ट्रश्च विदुरश्च महायशाः ।
भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो गान्धारी च यशस्विनी
निमन्त्रणार्थं दूतांश्च प्रेषयामास शीघ्रगान् ।
पार्थिवानां च राजेन्द्र ब्राह्मणानां तथैव च ॥ ६
ते प्रयाता यथोद्दिष्टा दूतास्त्वरितवाहनाः ।
तत्र कश्चित् प्रयातं तु दूतं दुःशासनोऽब्रवीत् ७
गच्छ द्वैतवनं शीघ्रं पाण्डवान् पापपूरुषान् ।
निमन्त्रय यथान्यायं विप्रांस्तस्मिन् वने तदा ॥ ८
स गत्वा पाण्डवान् सर्वानुवाचाभिप्रणम्य च ।
दुर्योधनो महाराज यजते नृपसत्तमः ॥ ९
स्ववीर्यार्जितमर्थौघमवाप्य कुरुसत्तमः ।
तत्र गच्छन्ति राजानो ब्राह्मणाश्च ततस्ततः १०
अहं तु प्रेषितो राजन् कौरवेण महात्मना ।
आमन्त्रयति वो राजा धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः ॥ ११
मनोभिलषितं राज्ञस्तं क्रतुं द्रष्टुमर्हथ ।
ततो युधिष्ठिरो राजा तच्छ्रुत्वा दूतभाषितम् १२
अब्रवीन्नृपशार्दूलो दिष्ट्या राजा सुयोधनः ।
यजते क्रतुमुख्येन पूर्वेषां कीर्तिवर्धनः ॥ १३
वयमप्युपयास्यामो न त्विदानीं कथञ्चन ।
समयः परिपाल्यो नो यावद्वर्षं त्रयोदशम् ॥ १४
श्रुत्वैतद्धर्मराजस्य भीमो वचनमब्रवीत् ।
तदा तु नृपतिर्गन्ता धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १५
अस्त्रशस्त्रप्रदीप्तेऽग्नौ यदा तं पातयिष्यति ।
वर्षात् त्रयोदशादूर्ध्वं रणसत्रे नराधिपः ॥ १६

भवति किन्तु युधिष्ठिरजयासामर्थ्यमेव । तथापि तत्कीर्तयितुमशक्यमित्येतदुदाहृतम् । तथा च वक्ष्यति–'हतेषु युधि पार्थेषु राजसूये तथा त्वया । आहृतेऽहं नरश्रेष्ठ, त्वां सभाजयिता पुनः' इति ॥ १४ ॥ कृतं घटितमलङ्कारादिरूपम् अकृतमन्यत् ॥ १७ ॥ व्यापारस्थान् शिल्पिनः ॥ २४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

२५६

तत इति ॥ १ ॥

यदा क्रोधहविर्मोक्ता धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवः ।
आगन्ताऽहं तदाऽस्मीति वाच्यस्ते स सुयोधनः ॥ १७
शेषास्तु पाण्डवा राजन्नैवोचुः किञ्चिदप्रियम् ।
दूतश्चापि यथावृत्तं धार्तराष्ट्रे न्यवेदयत् ॥ १८
अथाजग्मुर्नरश्रेष्ठा नानाजनपदेश्वराः ।
ब्राह्मणाश्च महाभाग धार्तराष्ट्रपुरं प्रति ॥ १९
ते त्वर्चिता यथाशास्त्रं यथाविधि यथाक्रमम् ।
मुदा परमया युक्ताः प्रीताश्चापि नरेश्वराः ॥ २०
धृतराष्ट्रोऽपि राजेन्द्र संवृतः सर्वकौरवैः ।
हर्षेण महता युक्तो विदुरं प्रत्यभाषत ॥ २१
यथा सुखी जनः सर्वः क्षत्तः स्यादन्नसंयुतः ।
तुष्येत् तु यज्ञसदने तथा क्षिप्रं विधीयताम् ॥ २२
विदुरस्तु तदाज्ञाय सर्ववर्णानरिन्दम ।
यथा प्रमाणतो विद्वान् पूजयामास धर्मवित् ॥ २३
भक्ष्यपेयान्नपानेन माल्यैश्चापि सुगन्धिभिः ।
वासोभिर्विविधैश्चैव योजयामास हृष्टवत् ॥ २४
कृत्वा ह्यावसथान् वीरो यथाशास्त्रं यथाक्रमम् ।
सान्त्वयित्वा च राजेन्द्रो दत्वा च विविधं वसु ॥ २५
विसर्जयामास नृपान् ब्राह्मणांश्च सहस्रशः ।
विसृज्य च नृपान् सर्वान् भ्रातृभिः परिवारितः ॥ २६
विवेश हास्तिनपुरं सहितः कर्णसौबलैः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि दुर्योधनयज्ञे षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

## २५७

वैशम्पायन उवाच ।
प्रविशन्तं महाराज सूतास्तुष्टुवुरच्युतम् ।
जनाश्चापि महेष्वासं तुष्टुवू राजसत्तम ॥ १
लाजैश्चन्दनचूर्णैश्च विकीर्य च जनास्ततः ।
ऊचुर्दिष्ट्या नृपाविघ्नः समाप्तोऽयं क्रतुस्तव ॥ २
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र वातिकास्तं महीपतिम् ।
युधिष्ठिरस्य यज्ञेन न समो ह्येष ते क्रतुः ॥ ३
नैव तस्य क्रतोरेष कलामर्हति षोडशीम् ।
एवं तत्राब्रुवन् केचिद्वातिकास्तं जनेश्वरम् ॥ ४
सुहृदस्त्वब्रुवंस्तत्र अतिसर्वानयं क्रतुः ।
ययातिर्नहुषश्चापि मान्धाता भरतस्तथा ॥ ५
क्रतुमेनं समाहृत्य पूताः सर्वे दिवं गताः ।
एता वाचः शुभाः शृण्वन् सुहृदां भरतर्षभ ॥ ६
प्रविवेश पुरं हृष्टः स्ववेश्म च नराधिपः ।
अभिवाद्य ततः पादौ मातापित्रोर्विशांपते ॥ ७
भीष्मद्रोणकृपादीनां विदुरस्य च धीमतः ।
अभिवादितः कनीयोभिर्भ्रातृभिर्भ्रातृनन्दनः ॥ ८
निषसादासने मुख्ये भ्रातृभिः परिवारितः ।
तमुत्थाय महाराजं सूतपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ९
दिष्ट्या ते भरतश्रेष्ठ समाप्तोऽयं महाक्रतुः ।
हतेषु युधि पार्थेषु राजसूये तथा त्वया ॥ १०
आहृतेऽहं नरश्रेष्ठ त्वां सभाजयिता पुनः ।
तमब्रवीन्महाराजो धार्तराष्ट्रो महायशाः ॥ ११
सत्यमेतत् त्वयोक्तं हि पाण्डवेषु दुरात्मसु ।
निहतेषु नरश्रेष्ठ प्राप्ते चापि महाक्रतौ ॥ १२
राजसूये पुनर्वीर त्वमेवं वर्धयिष्यसि ।
एवमुक्त्वा महाराज कर्णमाश्लिष्य भारत ॥ १३
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं चिन्तयामास कौरवः ।
सोऽब्रवीत् कौरवांश्चापि पार्श्वस्थान् नृपसत्तमः ॥ १४
कदा तु तं क्रतुवरं राजसूयं महाधनम् ।
निहत्य पाण्डवान् सर्वानाहरिष्यामि कौरवाः ॥ १५
तमब्रवीत् तदा कर्णः शृणु मे राजकुञ्जर ।
पादौ न धावये तावद्यावन्न निहतोऽर्जुनः ॥ १६

धार्तराष्ट्रेषु स्वयं क्रोधेन ज्वलत्सु । क्रोधहविः क्रोधरूपं सर्पिस्तेषामत्यन्तोद्दीपकं मोक्ष्यन्ति तदाहमागन्ता–आगमिष्यामि ॥ १७ ॥ कर्णसौबलैः सौबलाद्यैः ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

२५७

प्रविशन्तमिति ॥ १ ॥ वातिकाः वातरोगोपहतचेतस उचितभाषणानभिज्ञाः ॥ ३ ॥ सभाजयिता पूजयिष्यामि ॥ ११ ॥ धावये पदेनेति शेषः ॥ १६ ॥

कीलालजं न खादेयं करिष्ये चासुरव्रतम् ।
नास्तीति नैव वक्ष्यामि याचितो येन केनचित् ॥
अथोत्कुष्टं महेष्वासैर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
प्रतिज्ञाते फाल्गुनस्य वधे कर्णेन संयुगे ॥ १८
विजितांश्चाप्यमन्यन्त पाण्डवान् धृतराष्ट्रजाः ।
दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र विसृज्य नरपुङ्गवान् ॥१९
प्रविवेश गृहं श्रीमान् यथा चैत्ररथं प्रभुः ।
तेऽपि सर्वे महेष्वासा जग्मुर्वेश्मानि भारत॥२०
पाण्डवाश्च महेष्वासा दूतवाक्यप्रचोदिताः ।
चिन्तयन्तस्तमेवार्थं नालभन्त सुखं क्वचित् ॥२१
भूयश्च चारै राजेन्द्र प्रवृत्तिरुपपादिता ।
प्रतिज्ञा सूतपुत्रस्य विजयस्य वधं प्रति ॥ २२
एतच्छ्रुत्वा धर्मसुतः समुद्विग्नो नराधिप ।
अभेद्यकवचं मत्वा कर्णमद्भुतविक्रमम् ॥ २३
अनुस्मरंश्च सङ्क्लेशान्न शान्तिमुपयाति सः ।
तस्य चिन्तापरीतस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ॥ २४
बहुव्यालमृगाकीर्णं त्यक्तुं द्वैतवनं वनम् ।
धार्तराष्ट्रोऽपि नृपतिः प्रशशास वसुन्धराम् ॥२५
भ्रातृभिः सहितो वीरैर्भीष्मद्रोणकृपैस्तथा ।
सङ्गम्य सूतपुत्रेण कर्णेनाहवशोभिना ॥ २६
दुर्योधनः प्रिये नित्यं वर्तमानो महीभृताम् ।
पूजयामास विप्रेन्द्रान् क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ २७
भ्रातॄणां च प्रियं राजन् स चकार परन्तपः ।
निश्चित्य मनसा वीरो दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि घोषयात्रापर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७॥

॥ समाप्तं घोषयात्रापर्व ॥

## ॥ मृगस्वप्नोद्भवपर्व ॥

### २५८

जनमेजय उवाच ।
दुर्योधनं मोक्षयित्वा पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
किमकार्षुर्वने तस्मिंस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
ततः शयानं कौन्तेयं रात्रौ द्वैतवने मृगाः ।
स्वप्नान्ते दर्शयामासुर्बाष्पकण्ठा युधिष्ठिरम् ॥ २
तानब्रवीत् स राजेन्द्रो वेपमानान् कृताञ्जलीन् ।
ब्रूत यद्वक्तुकामाः स्थ के भवन्तः किमिष्यते ॥ ३
एवमुक्ताः पाण्डवेन कौन्तेयेन यशस्विना ।
प्रत्यब्रुवन् मृगास्तत्र हतशेषा युधिष्ठिरम् ॥ ४
वयं मृगा द्वैतवने हतशिष्टास्तु भारत ।
नोत्सीदेम महाराज क्रियतां वासपर्ययः ॥ ५
भवतो भ्रातरः शूराः सर्व एवास्त्रकोविदाः ।
कुलान्यल्पावशिष्टानि कृतवन्तो वनौकसाम् ॥ ६
बीजभूता वयं केचिदवशिष्टा महामते ।
विवर्धेमहि राजेन्द्र प्रसादात् ते युधिष्ठिर ॥ ७
तान् वेपमानान् वित्रस्तान् बीजमात्रावशेषितान्
मृगान् दृष्ट्वा सुदुःखार्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ८
तांस्तथेत्यब्रवीद्राजा सर्वभूतहिते रतः ।
यथा भवन्तो ब्रुवते करिष्यामि च तत् तथा ॥ ९
इत्येवं प्रतिबुद्धः स रात्र्यन्ते राजसत्तमः ।
अब्रवीत् सहितान् भ्रातॄन् दयापन्नो मृगान् प्रति॥
उक्तो रात्रौ मृगैरस्मि स्वप्नान्ते हतशेषितैः ।
तन्तुभूताः स्म भद्रं ते दया नः क्रियतामिति ११
ते सत्यमाहुः कर्तव्या दयाऽस्माभिर्वनौकसाम् ।
साष्टमासं हि नो वर्षं यदेनानुपयुङ्क्ष्महे ॥ १२

कीलालजं मांसं तद्धि घनीभूतं रुधिरमेव । 'कीलालं रुधिरे तोये' इति मेदिनी । असुरं सुरारहितं च व्रतं स्वानियमं करिष्ये मद्यं मांसं च त्यक्ष्ये इत्यर्थः ॥ १७ ॥ उत्कुष्टमुच्चैः शब्दः कृतः ॥ १८ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५७॥

२५८

दुर्योधनमिति ॥ १ ॥ वासस्य पर्ययः वैपरीत्यं नात्र वस्तव्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥ एकं वर्षं वत्सरं उपयुङ्क्ष्महे भक्षयामः ॥१२॥

पुनर्बहुमृगं रम्यं काम्यकं काननोत्तमम् ।
मरुभूमेः शिरःस्थानं तृणबिन्दुसरः प्रति ॥ १३
तत्रेमां वसतिं शिष्टां विहरन्तो रमेमहि ।
ततस्ते पाण्डवाः शीघ्रं प्रययुर्धर्मकोविदाः ॥ १४
ब्राह्मणैः सहिता राजन् ये च तत्र सहोषिताः ।
इन्द्रसेनादिभिश्चैव प्रेष्यैरनुगतास्तदा ॥ १५
ते यात्वाऽनुसृतैर्मार्गैः स्वन्नैः शुचिजलान्वितैः ।
ददृशुः काम्यकं पुण्यमाश्रमं तपसा युतम् ॥ १६
विविशुस्ते स्म कौरव्या वृता विप्रर्षभैस्तदा ।
तद्वनं भरतश्रेष्ठाः स्वर्गं सुकृतिनो यथा ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि मृगस्वप्नोद्भवपर्वणि काम्यकप्रवेशे अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

समाप्तं मृगस्वप्नोद्भवपर्व ।

## ॥ व्रीहिद्रौणिकपर्व ॥

## २५९

वैशम्पायन उवाच ।
वने निवसतां तेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ।
वर्षाण्येकादशार्तानां कृच्छ्रेण भरतर्षभ ॥ १
फलमूलाशनास्ते हि सुखार्हा दुःखमुत्तमम् ।
प्राप्तकालमनुध्यान्तः सेहिरे वरपूरुषाः ॥ २
युधिष्ठिरस्तु राजर्षिरात्मकर्मापराधजम् ।
चिन्तयन् स महाबाहुर्भ्रातॄणां दुःखमुत्तमम् ॥ ३
न सुष्वाप सुखं राजा हृदि शल्यैरिवार्पितैः ।
दौरात्म्यमनुपश्यंस्तत् काले द्यूतोद्भवस्य हि ॥ ४
संस्मरन् परुषा वाचः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ।
निःश्वासपरमो दीनो बिभ्रत् कोपविषं महत् ॥ ५
अर्जुनो यमजौ चोभौ द्रौपदी च यशस्विनी ।
स च भीमो महातेजाः सर्वेषामुत्तमो बली ॥ ६
युधिष्ठिरमुदीक्षन्तः सेहुर्दुःखमनुत्तमम् ।
§अवशिष्टमल्पकालं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ॥ ७
वपुरन्यदिवाकार्षुरुत्साहामर्षचेष्टितैः ।
कस्यचित् त्वथ कालस्य व्यासः सत्यवतीसुतः ॥
आजगाम महायोगी पाण्डवानवलोककः ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९
प्रत्युद्गम्य महात्मानं प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ।
तमासीनमुपासीनः शुश्रूषुर्नियतेन्द्रियः ॥ १०
तोषयन् प्रणिपातेन व्यासं पाण्डवनन्दनः ।
तानवेक्ष्य कृशान् पौत्रान् वने वन्येन जीवतः ११
महर्षिरनुकम्पार्थमब्रवीद्बाष्पगद्गदम् ।
युधिष्ठिर महाबाहो शृणु धर्मभृतां वर ॥ १२
नातप्ततपसो लोके प्राप्नुवन्ति महासुखम् ।
सुखदुःखे हि पुरुषः पर्यायेणोपसेवते ॥ १३
न ह्यनन्तं सुखं कश्चित् प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
प्रज्ञावांस्त्वेव पुरुषः संयुक्तः परया धिया ॥ १४
उदयास्तमनज्ञो हि न हृष्यति न शोचति ।
सुखमापतितं सेवेद्दुःखमापतितं वहेत् ॥ १५
कालप्राप्तमुपासीत सस्यानामिव कर्षकः ।
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ १६
नासाध्यं तपसः किञ्चिदिति बुध्यस्व भारत ।
सत्यमार्जवमक्रोधः संविभागो दमः शमः ॥ १७
अनसूयाऽविहिंसा च शौचमिन्द्रियसंयमः ।
पावनानि महाराज नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ १८

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥ §अवशिष्टं त्वल्पकालम् ख.

२५९

**वने इति** ॥ १ ॥ ध्यान्तः ध्यायन्तः ॥ २ ॥ तत्काले तस्मिन् काले द्यूतोद्भवस्य द्यूतहेतोः शकुन्यादेः ॥ ४ ॥ अवलोककोऽवलोकितुकामः ॥ ९ ॥ अनन्तं सुखं न प्राप्नोति कश्चित् पृथग्जनः । कस्तर्हि तत् प्राप्नोतीत्याह प्रज्ञावानिति । परया धिया ब्रह्मविद्यया ॥ १४ ॥ उदयास्तमनं जगत उत्पत्तिस्थितिलयकारणं ब्रह्म तज्ज्ञो न शोचति न काङ्क्षति मिथ्याभूते जगति प्रियस्य सुखस्याभावात् तद्वियोगजः शोको वा तदिच्छा वा तस्य न जायत इत्यर्थः । प्रारब्धकर्मोपस्थापितं सुखदुःखाद्यपरिहार्यमित्याह सुखमिति ॥ १५ ॥ तपसा ज्ञानेन महद्ब्रह्म ॥ १६ ॥ काले

अधर्मरुचयो मूढास्तिर्यग्गतिपरायणाः ।
कृच्छ्रां योनिमनुप्राप्ता न सुखं विन्दते जनाः॥१९
इह यत् क्रियते कर्म तत् परत्रोपयुज्यते ।
तस्माच्छरीरं युञ्जीत तपसा नियमेन च ॥ २०
यथाशक्ति प्रयच्छेत सम्पूज्याभिप्रणम्य च ।
काले प्राप्ते च हृष्टात्मा राजन् विगतमत्सरः॥२१
सत्यवादी लभेतायुरनायासमथार्जवम् ।
अक्रोधनोऽनसूयश्च निर्वृतिं लभते पराम् ॥ २२
दान्तः शमपरः शश्वत् परिक्लेशं न विन्दति ।
न च तप्यति दान्तात्मा दृष्ट्वा परगतां श्रियम् २३
संविभक्ता च दाता च भोगवान् सुखवान्नरः ।
भवत्यहिंसकश्चैव परमारोग्यमश्नुते ॥ २४
मान्यमानयिता[1] जन्म कुले महति विन्दति ।
व्यसनैर्न तु संयोगं प्राप्नोति विजितेन्द्रियः ॥ २५
शुभानुशयबुद्धिर्हि संयुक्तः कालधर्मणा ।
प्रादुर्भवति तद्योगात् कल्याणमतिरेव सः ॥ २६
युधिष्ठिर उवाच ।
भगवन् दानधर्माणां तपसो वा महामुने ।
किं स्विद्बहुगुणं प्रेत्य किं वा दुष्करमुच्यते ॥ २७
व्यास उवाच ।
दानान्न दुष्करं तात पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
अर्थे च महती तृष्णा स च दुःखेन लभ्यते ॥२८
परित्यज्य प्रियान् प्राणान् धनार्थं हि महामते ।
प्रविशन्ति नरा वीराः समुद्रमटवीं तथा ॥ २९
कृषिगोरक्ष्यमित्येके प्रतिपद्यन्ति मानवाः ।
पुरुषाः प्रेष्यतामेके निर्गच्छन्ति धनार्थिनः ॥ ३०
तस्माद्दुःखार्जितस्यैव परित्यागः सुदुष्करः ।
न दुष्करतरं दानात् तस्माद्दानं मतं मम ॥ ३१
विशेषस्त्वत्र विज्ञेयो न्यायेनोपार्जितं धनम् ।
पात्रे काले च देशे च साधुभ्यः प्रतिपादयेत् ३२
अन्यायात् समुपात्तेन दानधर्मो धनेन यः ।
क्रियते न स कर्तारं त्रायते महतो भयात् ॥ ३३
पात्रे दानं स्वल्पमपि काले दत्तं युधिष्ठिर ।
मनसा हि विशुद्धेन प्रेत्यानन्तफलं स्मृतम्॥ ३४
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
व्रीहिद्रोणपरित्यागाद्यत् फलं प्राप मुद्गलः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि व्रीहिद्रौणिकपर्वणि दानदुष्करत्वकथने
ऊनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

## २६०

युधिष्ठिर उवाच ।
व्रीहिद्रोणः परित्यक्तः कथं तेन महात्मना ।
कस्मै दत्तश्च भगवन् विधिना केन चात्थ मे ॥ १
प्रत्यक्षधर्मा भगवान् यस्य तुष्टो हि कर्मभिः ।
सफलं तस्य जन्माहं मन्ये सद्धर्मचारिणः ॥ २
व्यास उवाच ।
शिलोञ्छवृत्तिर्धर्मात्मा मुद्गलः संयतेन्द्रियः ।
आसीद्राजन् कुरुक्षेत्रे सत्यवागनसूयकः ॥ ३
अतिथिव्रती क्रियावांश्च कापोतीं वृत्तिमास्थितः।
सत्रमिष्टीकृतं नाम समुपास्ते महातपाः ॥ ४

दानकाले ॥ २१ ॥ अनायासं क्लेशपरिहारम् । निर्वृतिं सुखं परां मोक्षाख्याम् ॥ २२ ॥ दान्तः जितेन्द्रियः । दान्तत्व-प्रतिपत्तियोग्यतामापादित आत्मा मनो यस्य जितचित्त इत्यर्थः ॥ २३ ॥ संविभक्ता अन्नादेर्विभागकर्ता दाता धनादेः ॥ २४ ॥ इन्द्रियजयफलमाह मान्येति । व्यसनैः श्रीमद्यूतायैः ॥ २५ ॥ शुभमेवानुशेते शुभपक्षपातिनी बुद्धिर्यस्य । कालधर्मेण मरणेन तद्योगात् शुभानुशययोगात् । स कल्याणमतिरेव प्रादुर्भवति जायते ॥ २६ ॥ दानजानां धर्माणां तपसः कायक्लेशकृतस्य कृच्छ्रादेः एतयोर्मध्ये प्रेत्य मृत्वा किंबहुगुणं किं परलोके श्रेष्ठमित्यर्थः ॥ २७ ॥ दुःखार्जितस्य धनस्येति शेषः । मतं श्रेष्ठत्वेन ॥ ३१ ॥ द्रोणो मानविशेषस्तन्मिता व्रीहयस्तेषां दानात् ॥ ३५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

[1] मान्यं मानयिता-ख.

२६०

व्रीहिद्रोण इति ॥१॥ प्रत्यक्षधर्मा नृणां धर्मस्य वेत्ता भगवान् ईश्वरः ॥ २ ॥ शिलं कणिशार्जनं उञ्छः कणशोर्जनम् । 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः । ते उभे वृत्तिर्जीवनं यस्य स शिलोञ्छवृत्तिः ॥३॥ कापोतीं वृत्तिमल्पसंग्रहरूपाम् । इष्टीकृतमिष्टिभिरेव निर्वर्त्यं न तु पश्वादिना । सत्रं यज्ञम् ॥ ४ ॥

सपुत्रदारो हि मुनिः पक्षाहारो बभूव ह ।
कपोतवृत्त्या पक्षेण व्रीहिद्रोणमुपार्जयत् ॥ ५
दर्शं च पौर्णमासं च कुर्वन् विगतमत्सरः ।
देवतातिथिशेषेण कुरुते देहयापनम् ॥ ६
तस्येन्द्रः सहितो देवैः साक्षात्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रत्यगृह्णान्महाराज भागं पर्वणि पर्वणि ॥ ७
स पर्वकालं कृत्वा तु मुनिवृत्त्या समन्वितः ।
अतिथिभ्यो ददावन्नं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ८
व्रीहिद्रोणस्य तच्चास्य ददतोऽन्नं महात्मनः ।
शिष्टं मात्सर्यहीनस्य वर्धत्यतिथिदर्शनात् ॥ ९
तच्छतान्यपि भुञ्जन्ति ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ।
मुनेस्त्यागविशुद्ध्या तु तदन्नं वृद्धिमृच्छति ॥ १०
तं तु शुश्राव धर्मिष्ठं मुद्गलं संशितव्रतम् ।
दुर्वासा नृप दिग्वासास्तमथाभ्याजगाम ह ॥ ११
बिभ्रच्चानियतं वेषमुन्मत्त इव पाण्डव ।
विकचः परुषा वाचो व्याहरन् विविधा मुनिः ॥
अभिगम्याथ तं विप्रमुवाच मुनिसत्तमः ।
अन्नार्थिनमनुप्राप्तं विद्धि मां द्विजसत्तम ॥ १३
स्वागतं तेऽस्त्विवति मुनिं मुद्गलः प्रत्यभाषत ।
पाद्यमाचमनीयं च प्रतिपाद्यार्घ्यमुत्तमम् ॥ १४
प्रादात् स तापसायान्नं क्षुधितायातिथिव्रती ।
उन्मत्ताय परां श्रद्धामास्थाय स धृतव्रतः ॥ १५
ततस्तदन्नं रसवत् स एव क्षुधयाऽन्वितः ।
बुभुजे कृत्स्नमुन्मत्तः प्रादात् तस्मै च मुद्गलः १६
भुक्त्वा चान्नं ततः सर्वमुच्छिष्टेनात्मनस्ततः ।
अथानुलिलिपेऽङ्गानि जगाम च यथागतम् सः॥ १७
एवं द्वितीये सम्प्राप्ते यथाकाले मनीषिणः ।
आगम्य बुभुजे सर्वमन्नमुञ्छोपजीविनः ॥ १८
निराहारस्तु स मुनिरुञ्छमार्जयते पुनः ।
न चैनं विक्रियां नेतुमशकन्मुद्गलं क्षुधा ॥ १९
न क्रोधो न च मात्सर्यं नावमानो न सम्भ्रमः ।
सपुत्रदारमुञ्छन्तमाविवेश द्विजोत्तमम् ॥ २०

तथा तमुञ्छधर्माणं दुर्वासा मुनिसत्तमम् ।
उपतस्थे यथाकालं षट्कृत्वः कृतनिश्चयः ॥ २१
न चास्य मनसा कश्चिद्विकारं ददृशे मुनिः ।
शुद्धसत्त्वस्य शुद्धं स ददृशे निर्मलं मनः ॥ २२
तमुवाच ततः प्रीतः स मुनिर्मुद्गलं ततः ।
त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्दाता मात्सर्यवर्जितः
क्षुद्धर्मसंज्ञां प्रणुदत्यादत्ते धैर्यमेव च ।
रसानुसारिणी जिह्वा कर्षत्येव रसान् प्रति॥ २४
आहारप्रभवाः प्राणा मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं निश्चितं तपः॥२५
श्रमेणोपार्जितं त्यक्तुं दुःखं शुद्धेन चेतसा ।
तत् सर्वं भवता साधो यथावदुपपादितम् ॥ २६
प्रीताः स्मोऽनुगृहीताश्च समेत्य भवता सह ।
इन्द्रियाभिजयो धैर्यं संविभागो दमः शमः ॥२७
दया सत्यं च धर्मश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जितास्ते कर्मभिर्लोकाः प्राप्तोऽसि परमां गतिम्
अहो दानं विघुष्टं ते सुमहत् स्वर्गवासिभिः ।
सशरीरो भवान् गन्ता स्वर्गं सुचरितव्रत ॥ २९
इत्येवं वदतस्तस्य तदा दुर्वाससो मुनेः ।
देवदूतो विमानेन मुद्गलं प्रत्युपस्थितः ॥ ३०
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ।
कामगेन विचित्रेण दिव्यगन्धवता तथा ॥ ३१
उवाच चैनं विप्रर्षिं विमानं कर्मभिर्जितम् ।
समुपारोह संसिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां मुने ॥ ३२
तमेवंवादिनमृषिर्देवदूतमुवाच ह ।
इच्छामि भवता प्रोक्तान् गुणान् स्वर्गनिवासिनाम्
के गुणास्तत्र वसतां किं तपः कश्च निश्चयः ।
स्वर्गे तत्र सुखं किञ्च दोषो वा देवदूतक ३४
सतां साप्तपदं मित्रमाहुः सन्तः कुलोचिताः ।
मित्रतां च पुरस्कृत्य पृच्छामि त्वामहं विभो ३५
यदत्र तथ्यं पथ्यं च तद्ब्रवीह्यविचारयन् ।
श्रुत्वा तथा करिष्यामि व्यवसायं गिरा तव ३६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि व्रीहिद्रौणिकपर्वणि मुद्गलोपाख्याने षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

---

पर्व वैश्वदेववरुणप्रघासादिकं कर्म । कालं काले फाल्गुन्यादौ । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । व्रीहिद्रोणमात्रं यदा सिध्यति तदा ददाति ॥ ५ ८ ॥ तदा च दीयमानं तद्वर्धति वर्धते ॥ ९ ॥ अर्च्छति प्राप्नोति ॥१०॥ विकचः हसन्मुण्डो वा ॥१२॥ द्वितीयपक्षे ॥ १८ ॥ क्षुत् क्षुधा धर्मसहितां संज्ञाम् । त्वया तु प्राणधर्मः क्षुधा इन्द्रियधर्मो रसना तदुभयं जितमित्यर्थः ॥ २४ ॥ उवाच देवदूत इत्यनुकृष्यते ॥ ३२ ॥ व्यवसायं निश्चयम् ॥ ३६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

## २६१

देवदूत उवाच ।
महर्षे आर्यबुद्धिस्त्वं यः स्वर्गसुखमुत्तमम् ।
सम्प्राप्तं बहु मन्तव्यं विमृशस्यबुधो यथा ॥ १
उपरिष्टाद्य स्वर्लोको योऽयं स्वरिति संज्ञितः ।
ऊर्ध्वगः सत्पथः शश्वद्देवयानचरो मुने ॥ २
नातप्ततपसः पुंसो नामहायज्ञयाजिनः ।
नानृता नास्तिकाश्चैव तत्र गच्छन्ति मुद्गल ॥ ३
धर्मात्मानो जितात्मानः शान्ता दान्ता विमत्सराः
दानधर्मरताः पुंसः शूराश्चाहवलक्षणाः ॥ ४
तत्र गच्छन्ति धर्माग्र्यं कृत्वा शमदमात्मकम् ।
लोकान् पुण्यकृतां ब्रह्मन् सद्भिराचरितान्नृभिः ॥५
देवाः साध्यास्तथा विश्वे तथैव च महर्षयः ।
यामा धामाश्च मौद्गल्य गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ६
एषां देवनिकायानां पृथक् पृथगनेकशः ।
भास्वन्तः कामसम्पन्ना लोकास्तेजोमयाः शुभाः॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि योजनानि हिरण्मयः ।
मेरुः पर्वतराड्यत्र देवोद्यानानि मुद्गल ॥ ८
नन्दनादीनि पुण्यानि विहाराः पुण्यकर्मणाम् ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न शीतोष्णे भयं तथा ९
बीभत्समशुभं वापि तत्र किञ्चिन्न विद्यते ।
मनोज्ञाः सर्वतो गन्धाः सुखस्पर्शाश्च सर्वशः१०
शब्दाः श्रुतिमनोग्राह्याः सर्वतस्तत्र वै मुने ।
न शोको न जरा तत्र नायासपरिदेवने ॥ ११
ईदृशः स मुने लोकः स्वकर्मफलहेतुकः ।
सुकृतैस्तत्र पुरुषाः सम्भवन्त्यात्मकर्मभिः ॥ १२
तैजसानि शरीराणि भवन्त्यत्रोपपद्यताम् ।
कर्मजान्येव मौद्गल्य न मातृपितृजान्युत ॥ १३
न संस्वेदो न दौर्गन्ध्यं पुरीषं मूत्रमेव च ।
तेषां न च रजो वस्त्रं बाधते तत्र वै मुने ॥ १४
न म्लायन्ति स्रजस्तेषां दिव्यगन्धा मनोरमाः ।
संयुज्यन्ते विमानैश्च ब्रह्मन्नेवंविधैश्च ते ॥ १५

ईर्ष्याशोकक्लमापेता मोहमात्सर्यवर्जिताः
सुखं स्वर्गजितस्तत्र वर्तयन्ते महामुने ॥ १६
तेषां तथाविधानां तु लोकानां मुनिपुङ्गव ।
उपर्युपरि लोकस्य लोका दिव्या गुणान्विताः१७
पुरस्ताद्ब्राह्मणास्तत्र लोकास्तेजोमयाः शुभाः ।
यत्र यान्त्यृषयो ब्रह्मन् पूताः स्वैः कर्मभिः शुभैः॥
ऋभवो नाम तत्रान्ये देवानामपि देवताः ।
तेषां लोकात् परतरे यान् यजन्तीह देवताः१९
स्वयंप्रभास्ते भास्वन्तो लोकाः कामदुघाः परे।
न तेषां स्त्रीकृतस्तापो न लोकैश्वर्यमत्सरः ॥ २०
न वर्तयन्त्याहुतिभिस्तेनाप्यमृतभोजनाः ।
तथा दिव्यशरीरास्ते न च विग्रहमूर्तयः ॥ २१
न सुखे सुखकामास्ते देवदेवाः सनातनाः ।
न कल्पपरिवर्तेषु परिवर्तन्ति ते तथा ॥ २२
जरा मृत्युः कुतस्तेषां हर्षः प्रीतिः सुखं न च ।
न दुःखं न सुखं चापि रागद्वेषौ कुतो मुने ॥ २३
देवानामपि मौद्गल्य काङ्क्षिता सा गतिः परा ।
दुष्प्रापा परमा सिद्धिरगम्या कामगोचरैः ॥ २४
त्रयस्त्रिंशदिमे देवा येषां लोका मनीषिभिः ।
गम्यन्ते नियमैः श्रेष्ठैर्दानैर्वा विधिपूर्वकैः ॥ २५
सेयं दानकृता व्युष्टिरनुप्राप्ता सुखं त्वया ।
तां भुङ्क्ष्व सुकृतैर्लब्धान् तपसा द्योतितप्रभः२६
एतत् स्वर्गसुखं विप्र लोका नानाविधास्तथा ।
गुणाः स्वर्गस्य प्रोक्तास्ते दोषानपि निबोध मे २७
कृतस्य कर्मणस्तत्र भुज्यते यत् फलं दिवि ।
न चान्यत् क्रियते कर्म मूलच्छेदेन भुज्यते ॥२८
सोऽत्र दोषो मम मतस्तस्यान्ते पतनं च यत् ।
सुखव्याप्तमनस्कानां पतनं यच्च मुद्गल ॥ २९
असन्तोषः परीतापो दृष्ट्वा दीप्ततराः श्रियः ।
यद्भवत्यवरे स्थाने स्थितानां तत् सुदुष्करम् ॥ ३०

२६१

महर्षे इति । विमृशसि शुभमशुभं वेति विचारयसि । स्वर्लोकः सुखलोकः 'यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं यत् तत् सुखं स्वःपदास्पदम्' इति श्रुतिः । तत्प्रधानत्वाल्लोकोऽपि स्वःशब्दवाच्यः । ऊर्ध्वगमनादित्यूर्ध्वगः सत्पथो ब्रह्ममार्गः क्रममुक्तिस्थानमित्यर्थः । देवयानेन मार्गेण अर्चिरादिपर्ववता चरन्त्यस्मिन्निति देवयानचरः ॥ २ ॥ पुंसः पुमांसः ॥ ३ ॥ धर्माग्र्यं धर्मश्रेष्ठं योगम् ॥ ५ ॥ यामा धामाश्च गणविशेषाः ॥६॥ देवानां निकाया आलया येषु तेषां देवनिकायानाम् ॥ ७ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि योजनानि उपरि परिधिरित्यर्थः । उच्छ्रायस्य चतुरशीति सहस्रं मानमिति जम्बूखण्डे वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ८ ॥ उपपद्यतां उपगच्छताम् ॥ १३ ॥ एवंविधैरिति दृश्यमानप्रदर्शनम् ॥ १५ ॥ व्युष्टिः सम्पत्तिः ॥ २६ ॥

संज्ञामोहश्च पततां रजसा च प्रधर्षणम् ।
प्रम्लानेषु च माल्येषु ततः पिपतिषोर्भयम् ॥ ३१
आब्रह्मभवनादेते दोषा मौद्गल्य दारुणाः ।
नाकलोके सुकृतिनां गुणास्त्वयुतशो नृणाम् ॥ ३२
अयं त्वन्यो गुणः श्रेष्ठश्च्युतानां स्वर्गतो मुने ।
शुभानुशययोगेन मनुष्येषूपजायते ॥ ३३
तत्रापि स महाभागः सुखभागभिजायते ।
न चेत् सम्बुध्यते तत्र गच्छत्यधमतां ततः ॥ ३४
इह यत् क्रियते कर्म तत् परत्रोपभुज्यते ।
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरसौ मता ॥ ३५

मुद्गल उवाच ।

महांतस्तु अमी दोषास्त्वया स्वर्गस्य कीर्तिताः ।
निर्दोष एव यस्त्वन्यो लोकं तं प्रवदस्व मे ॥ ३६

देवदूत उवाच ।

ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
शुद्धं सनातनं ज्योतिः परं ब्रह्मेति यद्विदुः ॥ ३७
न तत्र विप्र गच्छन्ति पुरुषा विषयात्मकाः ।
दम्भलोभमहाक्रोधमोहद्रोहैरभिद्रुताः ॥ ३८
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वाः संयतेन्द्रियाः ।
ध्यानयोगपराश्चैव तत्र गच्छन्ति मानवाः ॥ ३९
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि मुद्गल ।
तवानुकम्पया साधो साधु गच्छाम मा चिरम् ४०

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु मौद्गल्यो वाक्यं विममृशे धिया ।
विमृश्य च मुनिश्रेष्ठो देवदूतमुवाच ह ॥ ४१
देवदूत नमस्तेऽस्तु गच्छ तात यथासुखम् ।
महादोषेण मे कार्यं न स्वर्गेण सुखेन वा ॥ ४२
पतनान्ते महादुःखं परितापः सुदारुणः ।
स्वर्गभाजश्चरन्तीह तस्मात् स्वर्गं न कामये ॥ ४३
यत्र गत्वा न शोचन्ति न व्यथन्ति चलन्ति वा ।
तदहं स्थानमत्यन्तं मार्गयिष्यामि केवलम् ॥ ४४
इत्युक्त्वा स मुनिर्वाक्यं देवदूतं विसृज्य तम् ।
शिलोञ्छवृत्तिर्धर्मात्मा शममातिष्ठदुत्तमम् ॥ ४५
तुल्यनिन्दास्तुतिर्भूत्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
ज्ञानयोगेन शुद्धेन ध्याननित्यो बभूव ह ॥ ४६
ध्यानयोगाद्बलं लब्ध्वा प्राप्य बुद्धिमनुत्तमाम् ।
जगाम शाश्वतीं सिद्धिं परां निर्वाणलक्षणाम् ॥
तस्मात् त्वमपि कौन्तेय न शोकं कर्तुमर्हसि ।
राज्यात् स्फीतात् परिभ्रष्टस्तपसा तदवाप्स्यसि॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
पर्यायेणोपसर्पन्ते नरं नेमिमरा इव ॥ ४९
पितृपैतामहं राज्यं प्राप्स्यस्यमितविक्रम ।
वर्षात्त्रयोदशादूर्ध्वं व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ५०

वैशम्पायन उवाच ।

स एवमुक्त्वा भगवान् व्यासः पाण्डवनन्दनम् ।
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि व्रीहिद्रौणिकपर्वणि मुद्गलदेवदूतसंवादे एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

॥ समाप्तं व्रीहिद्रौणिकपर्व ॥

## ॥ द्रौपदीहरणपर्व ॥

## २६२

जनमेजय उवाच ।

वसत्स्वेवं वने तेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
रममाणेषु चित्राभिः कथाभिर्मुनिभिः सह ॥ १
सूर्यदत्ताक्षयान्नेन कृष्णाया भोजनावधि ।
ब्राह्मणांस्तर्पमाणेषु ये चान्नार्थमुपागताः ॥ २
आरण्यानां मृगाणां च मांसैर्नानाविधैरपि ।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानः सर्वे दुर्योधनादयः ॥ ३

बलं परवैराग्यम् । बुद्धिं ज्ञानम् ॥४७॥ नेमिं चक्रधाराम् । अराः नाभिनेमिसन्धानदारूणि ॥४९॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

२६२

वसत्स्विति ॥ ० ॥

कथं तेष्वन्ववर्तन्त पापाचारा महामुने ।
दुःशासनस्य कर्णस्य शकुनेश्च मते स्थिताः ॥ ४
एतदाचक्ष्व भगवन् वैशम्पायन पृच्छतः ।
वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा तेषां तथा वृत्तिं नगरे वसतामिव ॥ ५
दुर्योधनो महाराज तेषु पापमरोचयत् ।
तथा तैर्निकृतिप्रज्ञैः कर्णदुःशासनादिभिः ॥ ६
नानोपायैरघं तेषु चिन्तयत्सु दुरात्मसु ।
अभ्यागच्छत् स धर्मात्मा तपस्वी सुमहायशाः ७
शिष्यायुतसमोपेतो दुर्वासा नाम कामतः ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य मुनिं परमकोपनम् ॥ ८
दुर्योधनो विनीतात्मा प्रश्रयेण दमेन च ।
सहितो भ्रातृभिः श्रीमानातिथ्येन न्यमन्त्रयत्॥ ९
विधिवत् पूजयामास स्वयं किङ्करवत् स्थितः ।
अहानि कतिचित् तत्र तस्थौ स मुनिसत्तमः१०
तं च पर्यचरद्राजा दिवारात्रमतन्द्रितः ।
दुर्योधनो महाराज शापात् तस्य विशङ्कितः ११
क्षुधितोऽस्मि ददस्वान्नं शीघ्रं मम नराधिप ।
इत्युक्त्वा गच्छति स्नातुं प्रत्यागच्छति वै चिरात्
न भोक्ष्याम्यद्य मे नास्ति क्षुधेत्युक्त्वैत्यदर्शनम्॥१२
अकस्मादेत्य च ब्रूते भोजयास्मांस्त्वरान्वितः ।
कदाचिच्च निशीथे स उत्थाय निकृतौ स्थितः१३
पूर्ववत् कारयित्वाऽन्नं न भुङ्क्ते गर्हयन् स्म सः ।
वर्तमाने तथा तस्मिन् यदा दुर्योधनो नृपः ॥ १४
विकारं नैति न क्रोधं तदा तुष्टोऽभवन्मुनिः ।
आह चैनं दुराधर्षो वरदोऽस्मीति भारत ॥ १५
दुर्वासा उवाच ।
वरं वरय भद्रं ते यत् ते मनसि वर्तते ।
मयि प्रीते तु यद्धर्म्यं नालभ्यं विद्यते तव ॥ १६
वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
अमन्यत पुनर्जातमात्मानं स सुयोधनः ॥ १७
प्रागेव मन्त्रितं चासीत् कर्णदुःशासनादिभिः ।
याचनीयं मुनेस्तुष्टादिति निश्चित्य दुर्मतिः ॥१८
अतिहर्षान्वितो राजन् वरमेनमयाचत ।
शिष्यैः सह मम ब्रह्मन् यथा जातोऽतिथिर्भवान्
अस्मत्कुले महाराजो ज्येष्ठः श्रेष्ठो युधिष्ठिरः ।
वने वसति धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ॥ २०
गुणवान् शीलसम्पन्नस्तस्य त्वमितिथिर्भव ।
यदा च राजपुत्री सा सुकुमारी यशस्विनी ॥ २१
भोजयित्वा द्विजान् सर्वान् पतींश्च वरवर्णिनी ।
विश्रान्ता च स्वयं भुक्त्वा सुखासीना भवेद्यदा ॥
तदा त्वं तत्र गच्छेथा यद्यनुग्राह्यता मयि ।
तथा करिष्ये त्वत्प्रीत्येत्येवमुक्त्वा सुयोधनम् ॥२३
दुर्वासा अपि विप्रेन्द्रो यथागतमगात् ततः ।
कृतार्थमपि चात्मानं तदा मेने सुयोधनः ॥ २४
करेण च करं गृह्य कर्णस्य मुदितो भृशम् ।
कर्णोऽपि भ्रातृसहितमित्युवाच नृपं मुदा ॥ २५
कर्ण उवाच ।
दिष्ट्या कामः सुसंवृत्तो दिष्ट्या कौरव वर्धसे ।
दिष्ट्या ते शत्रवो मग्ना दुस्तरे व्यसनार्णवे २६
दुर्वासःक्रोधजे वन्हौ पतिताः पाण्डुनन्दनाः ।
स्वैरेव ते महापापैर्गता वै दुस्तरं तमः ॥ २७
वैशम्पायन उवाच ।
इत्थं ते निकृतिप्रज्ञा राजन् दुर्योधनादयः ।
हसन्तः प्रीतमनसो जग्मुः स्वं स्वं निकेतनम् २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि दुर्वासउपाख्याने
द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

## २६३

वैशम्पायन उवाच ।
ततः कदाचिद्दुर्वासाः सुखासीनांस्तु पाण्डवान्
भुक्त्वा चावस्थितां कृष्णां ज्ञात्वा तस्मिन् वने मुनिः
अभ्यागच्छत् परिवृतः शिष्यैरयुतसम्मितैः ।
दृष्ट्वा यान्तं तमतिथिं स च राजा युधिष्ठिरः ॥ २

अघं दुःखम् ॥ ७ ॥ धर्म्यं धर्मादनपेतम् ॥ १६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

२६३

तत इति ॥ १ ॥

जगामाभिमुखः श्रीमान् सह भ्रातृभिरच्युतः।
तस्मै बद्धाञ्जलिं सम्यगुपवेश्य वरासने ॥ ३
विधिवत् पूजयित्वा तमातिथ्येन न्यमन्त्रयत्।
आह्निकं भगवन् कृत्वा शीघ्रमेहीति चाब्रवीत् ४
जगाम च मुनिः सोऽपि स्नातुं शिष्यैः सहानघः
भोजयेत् सहशिष्यं मां कथमित्यविचिन्तयन् ५
न्यमज्जत् सलिले चापि मुनिसङ्घः समाहितः।
एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रौपदी योषितां वरा ॥ ६
चिन्तामवाप परमामन्नहेतोः पतिव्रता।
सा चिन्तयन्ती च यदा नान्नहेतुमविन्दत ॥ ७
मनसा चिन्तयामास कृष्णं कंसनिषूदनम्।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥ ८
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय ॥९
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नताऽस्मि ते १०
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर ॥ ११
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल ॥ १२
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥ १३
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥ १४
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥ १५
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव सङ्कटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥ १६

वैशम्पायन उवाच।

एवं स्तुतस्तदा देवः कृष्णया भक्तवत्सलः।
द्रौपद्याः सङ्कटं ज्ञात्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ १७
पार्श्वस्थां शयने त्यक्त्वा रुक्मिणीं केशवः प्रभुः।
तत्राजगाम त्वरितो ह्यचिन्त्यगतिरीश्वरः ॥ १८
ततस्तं द्रौपदी दृष्ट्वा प्रणम्य परया मुदा।
अब्रवीद्वासुदेवाय मुनेरागमनादिकम् ॥ १९
ततस्तामब्रवीत् कृष्णः क्षुधितोऽस्मि भृशातुरः।
शीघ्रं भोजय मां कृष्णे पश्चात् सर्वं करिष्यसि ॥
निशम्य तद्वचः कृष्णा लज्जिता वाक्यमब्रवीत्।
स्थाल्यां भास्करदत्तायामन्नं मद्भोजनावधि ॥२१
भुक्तवत्यस्म्यहं देव तस्मादन्नं न विद्यते।
ततः प्रोवाच भगवान् कृष्णां कमललोचनः २२
कृष्णे न नर्मकालोऽयं क्षुच्छ्रमेणातुरे मयि।
शीघ्रं गच्छ मम स्थालीमानयित्वा प्रदर्शय ॥ २३
इति निर्बन्धतः स्थालीमानाय्य स यदूद्वहः।
स्थाल्याः कण्ठेऽथ संलग्नं शाकान्नं वीक्ष्य केशवः
उपयुज्याब्रवीदेनामनेन हरिरीश्वरः।
विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक्२५
आकारय मुनीन् शीघ्रं भोजनायेति चाब्रवीत्।
सहदेवं महाबाहुः कृष्णः क्लेशविनाशनः ॥ २६
ततो जगाम त्वरितः सहदेवो महायशाः।
आकारितुं तु तान् सर्वान् भोजनार्थं नृपोत्तम २७
स्नातुं गतान् देवनद्यां दुर्वासःप्रभृतीन् मुनीन्।
ते चावतीर्णाः सलिले कृतवन्तोऽघमर्षणम् २८
दृष्ट्वोद्गारान् सान्नरसांस्तृप्त्या परमया युताः।
उत्तीर्य सलिलात् तस्माद्दृष्टवन्तः परस्परम् ॥ २९
दुर्वाससमभिप्रेक्ष्य ते सर्वे मुनयोऽब्रुवन्।
राज्ञा हि कारयित्वाऽन्नं वयं स्नातुं समागताः३०
आकण्ठतृप्ता विप्रर्षे किंस्विद्भुञ्जामहे वयम्।
वृथा पाकः कृतोऽस्माभिस्तत्र किं करवामहे॥३१

दुर्वासा उवाच।

वृथा पाकेन राजर्षेरपराधः कृतो महान्।
माऽस्मानधाक्षुर्दृष्ट्वैव पाण्डवाः क्रूरचक्षुषा ॥ ३२
स्मृत्वाऽनुभावं राजर्षेरम्बरीषस्य धीमतः।
बिभेमि सुतरां विप्रा हरिपादाश्रयाज्जनात् ॥३३
पाण्डवाश्च महात्मानः सर्वे धर्मपरायणाः।
शूराश्च कृतविद्याश्च व्रतिनस्तपसि स्थिताः ॥ ३४

एतस्मिन्नन्तरे काले ॥ ६ ॥ कृष्णं पापकर्षकं कंसस्य कामादेर्दुष्टराज्ञो वा निषूदनं हे कृष्ण कृष्ण। अत्यादरसूचनार्थं द्विर्वचनम्। 'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते' इति श्रुतिप्रणीतः कृष्णपदस्यार्थः। महान्तौ ब्रह्माण्डपिण्डावष्टम्भक्षमौ बाहू यस्य 'सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः' इति श्रुतेः। अव्यय अविनाशिन्। अत्र देवकीनन्दनस्याव्ययत्वं वदन्त्या कृष्णमूर्तेरभौतिकत्वमुक्तम्। एवमादिनामार्थः शङ्करभगवत्पादीये विष्णुसहस्रनामव्याख्याने एव द्रष्टव्यः ॥ ८ ॥ आकूतीनां चित्तीनां चेति चेतोवृत्तिविशेषाणाम् ॥ १० ॥ देवनद्यां तत्रस्थ एव तीर्थविशेषे ॥२८॥

सदाचाररता नित्यं वासुदेवपरायणाः ।
क्रुद्धास्ते निर्दहेयुर्वै तूलराशिमिवानलः ।
तत एतानपृष्ट्वैव शिष्याः शीघ्रं पलायत ॥ ३५

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तास्ते द्विजाः सर्वे मुनिना गुरुणा तदा ।
पाण्डवेभ्यो भृशं भीता दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥३६
सहदेवो देवनद्यामपश्यन्मुनिसत्तमान् ।
तीर्थेष्वितस्ततस्तस्या विचचार गवेषयन् ॥ ३७
तत्रस्थेभ्यस्तापसेभ्यः श्रुत्वा तांश्चैव विद्रुतान् ।
युधिष्ठिरमथाभ्येत्य तं वृत्तान्तं न्यवेदयत् ॥ ३८
ततस्ते पाण्डवाः सर्वे प्रत्यागमनकाङ्क्षिणः ।
प्रतीक्षन्तः कियत्कालं जितात्मानोऽवतस्थिरे३९
निशीथेऽभ्येत्य चाकस्मादस्मान् स छलयिष्यति
कथं च निस्तरेमास्मात्कृच्छ्राद्दैवोपसादितात् ॥
इति चिन्तापरान् दृष्ट्वा निःश्वसन्तो मुहुर्मुहुः ।
उवाच वचनं श्रीमान् कृष्णः प्रत्यक्षतां गतः ४१

श्रीकृष्ण उवाच ।

भवतामापदं ज्ञात्वा ऋषेः परमकोपनात् ।
द्रौपद्या चिन्तितः पार्था अहं सत्वरमागतः ॥ ४२
न भयं विद्यते तस्माद्दृषेर्दुर्वाससोऽल्पकम् ।
तेजसा भवतां भीतः पूर्वमेव पलायितः ॥ ४३
धर्मनित्यास्तु ये केचिन्न ते सीदन्ति कर्हिचित् ।
आपृच्छे वो गमिष्यामि नियतं भद्रमस्तु वः ॥४४

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वेरितं केशवस्य बभूवुः स्वस्थमानसाः ।
द्रौपद्या सहिताः पार्थास्तमूचुर्विगतज्वराः ॥ ४५
त्वया नाथेन गोविन्द दुस्तरामापदं विभो ।
तीर्णाः प्लवमिवासाद्य मज्जमाना महार्णवे ॥ ४६
स्वस्ति साधय भद्रं ते इत्याज्ञातो ययौ पुरीम् ।
पाण्डवाश्च महाभाग द्रौपद्या सहिताः प्रभो॥४७
ऊषुः प्रहृष्टमनसो विहरन्तो वनाद्वनम् ।
इति तेऽभिहितं राजन् यत्पृष्टोऽहमिह त्वया४८
एवंविधान्यलीकानि धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
पाण्डवेषु वनस्थेषु प्रयुक्तानि वृथाऽभवन् ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि दुर्वासउपाख्याने त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

## २६४

वैशम्पायन उवाच ।

तस्मिन् बहुमृगेऽरण्ये अटमाना महारथाः ।
काम्यके भरतश्रेष्ठा विजह्रुस्ते यथाऽमराः ॥ १
प्रेक्षमाणा बहुविधान् वनोद्देशान् समन्ततः ।
यथर्तुकालरम्याश्च वनराजीः सपुष्पिताः ॥ २
पाण्डवा मृगयाशीलाश्चरन्तस्तन्महद्वनम् ।
विजह्रुरिन्द्रप्रतिमाः कञ्चित्कालमरिन्दम ॥ ३
ततस्ते यौगपद्येन ययुः सर्वे चतुर्दिशम् ।
मृगयां पुरुषव्याघ्रा ब्राह्मणार्थे परन्तपाः ॥ ४
द्रौपदीमाश्रमे न्यस्य तृणबिन्दोरनुज्ञया ।
महर्षेर्दीप्ततपसो धौम्यस्य च पुरोधसः ॥ ५
ततस्तु राजा सिन्धूनां वार्धक्षत्रिर्महायशाः ।
विवाहकामः शाल्वेयान् प्रयातः सोऽभवत् तदा
महता परिबर्हेण राजयोग्येन संवृतः ।
राजभिर्बहुभिः सार्धमुपायात् काम्यकं च सः ७
तत्रापश्यत् प्रियां भार्यां पाण्डवानां यशस्विनीम्
तिष्ठन्तीमाश्रमद्वारि द्रौपदीं निर्जने वने ॥ ८
विभ्राजमानां वपुषा बिभ्रतीं रूपमुत्तमम् ।
भ्राजयन्तीं वनोद्देशं नीलाभ्रमिव विद्युतम् ॥ ९
अप्सरा देवकन्या वा माया वा देवनिर्मिता ।
इति कृत्वाऽञ्जलिं सर्वे ददृशुस्तामनिन्दिताम् १०

अलीकानि छलानि । 'अलीकं त्वप्रियेऽनृते' इति नानार्थः ॥ ४९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

२६४

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ परिबर्हेण परिच्छदेन 'परिबर्हं तु राजार्हवस्तुन्यपि परिच्छदे ' इति विश्वः ॥ ७ ॥ नीलाभ्रं नीलमेघम् ॥ ९ ॥

ततः स राजा सिन्धूनां वार्धक्षत्रिर्जयद्रथः।
विस्मितस्त्वनवद्याङ्गीं दृष्ट्वा तां दुष्टमानसः ॥११
स कोटिकास्यं राजानमब्रवीत् काममोहितः।
कस्य त्वेषाऽनवद्याङ्गी यदि वाऽपि न मानुषी १२
विवाहार्थो न मे कश्चिदिमां प्राप्यातिसुन्दरीम् ॥
एतामेवाहमादाय गमिष्यामि स्वमालयम् ॥ १३
गच्छ जानीहि सौम्येमां कस्य वाऽत्र कुतोऽपि वा
किमर्थमागता सुभ्रूरिदं कण्टकितं वनम् ॥ १४
अपि नाम वरारोहा मामेषा लोकसुन्दरी।
भजेदद्यायतापाङ्गी सुदती तनुमध्यमा ॥ १५
अप्यहं कृतकामः स्यामिमां प्राप्य वरस्त्रियम्।
गच्छ जानीहि को न्वस्या नाथ इत्येव कोटिक॥
स कोटिकास्यस्तच्छ्रुत्वा रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली
उपेत्य पप्रच्छ तदा क्रोष्टा व्याघ्रवधूमिव ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि जयद्रथागमने चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥

## २६५

कोटिक उवाच।
का त्वं कदम्बस्य ×विनम्य शाखा-
मेकाऽऽश्रमे तिष्ठसि शोभमाना।
देदीप्यमानाऽग्निशिखेव नक्तं
व्याधूयमाना पवनेन सुभ्रूः ॥ १
अतीव रूपेण समन्विता त्वं
न चाप्यरण्येषु बिभेषि किं नु।
देवी नु यक्षी यदि दानवी वा
वराप्सरा दैत्यवराङ्गना वा ॥ २
वपुष्मती वोरगराजकन्या
वनेचरी वा क्षणदाचरस्त्री।
यद्येव राज्ञो वरुणस्य पत्नी
यमस्य सोमस्य धनेश्वरस्य ॥ ३
धातुर्विधातुः सवितुर्विभोर्वा
शक्रस्य वा त्वं सदनात् प्रपन्ना।
न ह्येव नः पृच्छसि ये वयं स्म
न चापि जानीम तवेह नाथम् ॥ ४
वयं हि मानं तव वर्धयन्तः
पृच्छाम भद्रे प्रभवं प्रभुं च।
आचक्ष्व बन्धूंश्च पतिं कुलं च
तत्त्वेन यच्चेह करोषि कार्यम् ॥ ५
अहं तु राज्ञः सुरथस्य पुत्रो
यं कोटिकास्येति विदुर्मनुष्याः।
असौ तु यस्तिष्ठति काञ्चनाङ्गे
रथे हुतोऽग्निश्चयने यथैव ॥ ६
त्रिगर्तराजः कमलायताक्षः
क्षेमङ्करो नाम स एष वीरः।
अस्मात् परस्त्वेष महाधनुष्मान्
पुत्रः कुलिन्दाधिपतेर्वरिष्ठः ॥ ७
निरीक्षते त्वां विपुलायताक्षः
सुपुष्पितः पर्वतवासनित्यः।
असौ तु यः पुष्करिणीसमीपे
श्यामो युवा तिष्ठति दर्शनीयः ॥ ८
इक्ष्वाकुराज्ञः सुबलस्य पुत्रः
स एव हन्ता द्विषतां सुगात्रि।
यस्यानुचक्रं ध्वजिनः प्रयान्ति
सौवीरका द्वादश राजपुत्राः ॥ ९

कोटिकास्यं कोटी दुर्गमन्तःपुरं तत्राधिकृताः कोटिकाः तेषां आस्यमिव मुख्यम्। आख्यमिति पाठे सङ्ख्यान्तरं बक्तारमिति वा। अस्येति पाठे कोटिकाः अस्याः व्याप्या यस्येति वा राजानं क्षत्रियं प्रभुं वा। 'राजा प्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ' इति मेदिनी ॥१२॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥ × विनाम्य-क.

२६५

केति ॥ १ ॥ धातुः प्रजापतेः सरस्वती वा विधातुः कश्यपस्य रुद्रस्य वा। अदितिः पार्वती वा विभोर्विष्णोर्लक्ष्मीर्वा ॥ ४ ॥ प्रभवं पितरम्। प्रभुं महान्तम् ॥ ५ ॥ राज्ञः क्षत्रियस्य चयने इष्टकोच्चये ॥ ६ ॥ अनुचक्रं सैन्यमनुलक्षीकृत्य प्रयान्ति। 'चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः' इति विश्वः। पाठान्तरेऽनुयात्रा यात्रोपकरणपाला इत्यर्थः ॥९॥

शोणाश्वयुक्तेषु रथेषु सर्वे
मखेषु दीप्ता इव हव्यवाहाः ।
अङ्गारकः कुञ्जरो गुप्तकश्च
शत्रुंजयः सञ्जयसुप्रवृद्धौ ॥ १०
भयङ्करोऽथ भ्रमरो रविश्च
शूरः प्रतापः कुहनश्च नाम
यं षट्सहस्रा रथिनोऽनुयान्ति
नागा हयाश्चैव पदातिनश्च ॥ ११
जयद्रथो नाम यदि श्रुतस्ते
सौवीरराजः सुभगे स एषः ।

तस्यापरे भ्रातरोऽदीनसत्त्वा
बलाहकानीकविदारणाद्याः ॥ १२
सौवीरवीराः प्रवरा युवानो
राजानमेते बलिनोऽनुयान्ति ।
एतैः सहायैरुपयाति राजा
मरुद्गणैरिन्द्र इवाभिगुप्तः ॥ १३
अजानतां ख्यापय नः सुकेशि
कस्यासि भार्या दुहिता च कस्य ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि कोटिकास्यप्रश्ने
पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

## २६६

वैशम्पायन उवाच ।
अथाब्रवीद्द्रौपदी राजपुत्री
पृष्टा शिबीनां प्रवरेण तेन ।
अवेक्ष्य मन्दं प्रविमुच्य शाखां
सङ्गृह्णती कौशिकमुत्तरीयम् ॥ १
बुद्ध्याऽभिजानामि नरेन्द्रपुत्र
न मादृशी त्वामभिभाष्टुमर्हति ।
न त्वेह वक्ताऽस्ति तवेह वाक्य-
मन्यो नरो वाऽप्यथवाऽपि नारी ॥ २
एका ह्यहं सम्प्रति तेन वाचं
ददानि वै भद्र निबोध चेदम् ।
अहं ह्यरण्ये कथमेकमेका
त्वामालपेयं निरता स्वधर्मे ॥ ३
जानामि च त्वां सुरथस्य पुत्रं
यं कोटिकास्येति विदुर्मनुष्याः ।
तस्मादहं शैब्य तथैव तुभ्य-
माख्यामि बन्धून् प्रथितं कुलं च ॥ ४

अपत्यमस्मि द्रुपदस्य राज्ञः
कृष्णेति मां शैब्य विदुर्मनुष्याः ।
साऽहं वृणे पञ्च जनान् पतित्वे
ये खाण्डवप्रस्थगताः श्रुतास्ते ॥ ५
युधिष्ठिरो भीमसेनार्जुनौ च
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
ते मां निवेश्येह दिशश्चतस्रो
विभज्य पार्था मृगयां प्रयाताः ॥ ६
प्राचीं राजा दक्षिणां भीमसेनो
जयः प्रतीचीं *यमजावुदीचीम् ।
मन्ये तु तेषां रथसत्तमानां
कालोऽभितः प्राप्त इहोपयातुम् ॥ ७
संमानिता यास्यथ तैर्यथेष्टं
विमुच्य वाहानवरोहयध्वम् ।
प्रियातिथिर्धर्मसुतो महात्मा
प्रीतो भविष्यत्यभिवीक्ष्य युष्मान् ॥ ८

पदातिनः पद्भ्यामतितुं सततं गन्तुं शीलं येषां ते पदातयः ॥ ११ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

२६६
अथेति । शिबीनां शिबिवंश्यानां क्षत्रियाणाम् । मन्दं स्वैरम् । अवेक्ष्य सङ्कोच्य । त्वेनाह विमुच्येति । कौशिकं कोशजम् ॥१॥ अभिभाष्टुमभिभाषितुम् ॥२॥ तेन कारणेन ॥ ३ ॥ पञ्च जनान् पञ्च पुरुषान् ॥ ५ ॥ जयोऽर्जुनः ॥७॥

---

* यमजौ नकुलसहदेवौ इत्यर्थः ।

एतावदुक्त्वा द्रुपदात्मजा सा
शैब्यात्मजं चन्द्रमुखी प्रतीता ।
विवेश तां पर्णशालां प्रशस्तां
सञ्चिन्त्य तेषामतिथित्वमर्थे ॥

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि द्रौपदीवाक्ये षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

## २६७

वैशम्पायन उवाच ।
तथाऽऽसीनेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।
यदुक्तं कृष्णया सार्धं तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ १
कोटिकास्यवचः श्रुत्वा शैब्यं सौवीरकोऽब्रवीत् ।
यदा वाचं व्याहरन्त्यामस्यां मे रमते मनः ॥ २
सीमन्तिनीनां मुख्यायां विनिवृत्तः कथं भवान् ।
एतां दृष्ट्वा स्त्रियो मेऽन्या यथा शाखामृगस्त्रियः ३
प्रतिभान्ति महाबाहो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
दर्शनादेव हि मनस्तया मेऽपहृतं भृशम् ॥ ४
तां समाचक्ष्व कल्याणीं यदि स्याच्छैब्य मानुषी
कोटिक उवाच ।
एषा वै द्रौपदी कृष्णा राजपुत्री यशस्विनी ॥ ५
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां महिषी सम्मता भृशम् ।
सर्वेषां चैव पार्थानां प्रिया बहुमता सती ॥ ६
तया समेत्य सौवीर सौवीराभिमुखो व्रज ।
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच पश्यामि द्रौपदीमिति ॥ ७
पतिः सौवीरसिन्धूनां दुष्टभावो जयद्रथः ।
स प्रविश्याश्रमं पुण्यं सिंहगोष्ठं वृको यथा ॥ ८
आत्मना सप्तमः कृष्णामिदं वचनमब्रवीत् ।
कुशलं ते वरारोहे भर्तारस्तेऽप्यनामयाः ॥ ९
येषां कुशलकामाऽसि तेऽपि कच्चिदनामयाः ।
द्रौपद्युवाच ।
अपि ते कुशलं राजन् राष्ट्रे कोशे बले तथा ॥१०
कच्चिदेकः शिबीनाढ्यान् सौवीरान्सह सिन्धुभिः
अनुतिष्ठसि धर्मेण ये चान्ये विदितास्त्वया ॥११
कौरव्यः कुशली राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अहं च भ्रातरश्चास्य यांश्चान्यान् परिपृच्छसि १२
पाद्यं प्रतिगृहाणेदमासनं च नृपात्मज ।
मृगान् पञ्चाशतं चैव प्रातराशं ददानि ते ॥ १३
ऐणेयान् पृषतान् न्यङ्कून् हरिणान् शरभान् शशान्
ऋक्षान् रुरून् शम्बरांश्च गवयांश्च मृगान् बहून्॥
वराहान् महिषांश्चैव याश्चान्या मृगजातयः ।
प्रदास्यति स्वयं तुभ्यं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १५
जयद्रथ उवाच ।
कुशलं प्रातराशस्य सर्वं मे दित्सितं त्वया ।
एहि मे रथमारोह सुखमाप्नुहि केवलम् ॥ १६
गतश्रीकान् हृतराज्यान् कृपणान् गतचेतसः ।
अरण्यवासिनः पार्थान्नानुरोद्धुं त्वमर्हसि ॥ १७
नैव प्राज्ञा गतश्रीकं भर्तारमुपयुञ्जते ।
युञ्जानमनुयुञ्जीत न श्रियः सङ्क्षये वसेत् ॥ १८
श्रिया विहीना राष्ट्राच्च विनष्टाः शाश्वतीः समाः
अलं ते पाण्डुपुत्राणां भक्त्या क्लेशमुपासितुम् १९
भार्या मे भव सुश्रोणि त्यजैनान् सुखमाप्नुहि ।
अखिलान् सिन्धुसौवीरानाप्नुहि त्वं मया सह २०
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्ता सिन्धुराजेन वाक्यं हृदयकम्पनम् ।
कृष्णा तस्मादपाक्रामद्देशात् सभ्रुकुटीमुखी॥ २१
अवमत्यास्य तद्वाक्यमाक्षिप्य च सुमध्यमा ।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णा लज्जस्वेति च सैन्धव २२

---

तेषामर्थे, अतिथिषु योग्यं स्वधर्मं पूजादिकं कर्तुं सञ्चिन्त्य शालां विवेश ॥ ९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६६॥

२६७

तथेति ॥ १ ॥ सौवीरको जयद्रथः ॥ २ ॥ यदाऽस्यां मे मनो रमते तदा भवान् कथं विनिवृत्त इति योज्यम् ॥३॥ सिंहगोष्ठं सिंहसभाम् । 'गोष्ठं गोस्थानकं गोष्ठी सभासंलापयोः स्त्रियाम्' इति मेदिनी। लिङ्गं त्वविवक्षितम्। गोष्ठामिव गोष्ठामिति वा स्थानमेव ॥ ८ ॥ सप्तमो बलाहकादीन् षड्भ्रातॄनुपलक्ष्य आत्मना शरीरेण सप्तानां पूरणः ॥ ९ ॥ अनुतिष्ठसि पालयसि । विदिताः लब्धाः ॥११॥ श्रियः सङ्क्षये सतीति शेषः । हीनलक्ष्मीके इत्यर्थः ॥ १८ ॥ समाः संवत्सरान् ॥ १९ ॥

सा काङ्क्षमाणा भर्तॄणामुपयातमनिन्दिता । | विलोभयामास परं वाक्यैर्वाक्यानि युञ्जती॥२३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि जयद्रथद्रौपदीसंवादे सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

## २६८

वैशम्पायन उवाच ।

सरोषरागोपहतेन वल्गुना
सरागनेत्रेण नतोन्नतभ्रुवा ।
मुखेन विस्फूर्य सुवीरराष्ट्रपं
ततोऽब्रवीत् तं द्रुपदात्मजा पुनः ॥ १

यशस्विनस्तीक्ष्णविषान् महारथा-
नभिब्रुवन् मूढ न लज्जसे कथम् ।
महेन्द्रकल्पान् निरतान् स्वकर्मसु
स्थितान् समूहेष्वपि यक्षरक्षसाम् ॥ २

न किंचिदीड्यं प्रवदन्ति पापं
वनेचरं वा गृहमेधिनं वा ।
तपस्विनं सम्परिपूर्णविद्यं
भषन्ति ह्येवं श्वनराः सुवीर ॥ ३

अहं तु मन्ये तव नास्ति कश्चि-
देतादृशे क्षत्रियसंनिवेशे ।
यस्त्वद्य पातालमुखे पतन्तं
पाणौ गृहीत्वा प्रतिसंहरेत ॥ ४

नागं प्रभिन्नं गिरिकूटकल्प-
मुपत्यकां हैमवतीं चरन्तम् ।
दण्डीव यूथादपसेधसि त्वं
यो जेतुमाशंससि धर्मराजम् ॥ ५

बाल्यात् प्रसुप्तस्य महाबलस्य
सिंहस्य पक्ष्माणि मुखाल्लुनासि ।
पदा समाहत्य पलायमानः
क्रुद्धं यदा द्रक्ष्यसि भीमसेनम् ॥ ६

महाबलं घोरतरं प्रवृद्धं
जातं हरिं पर्वतकन्दरेषु ।
प्रसुप्तमुग्रं प्रपदेन हंसि
यः क्रुद्धमायोत्स्यसि जिष्णुमुग्रम् ॥ ७

कृष्णोरगौ तीक्ष्णमुखौ द्विजिह्वौ
मत्तः पदाऽऽक्रामसि पुच्छदेशे ।
यः पाण्डवाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्यां
जघन्यजाभ्यां प्रयुयुत्ससे त्वम् ॥ ८

यथा च वेणुः कदली नलो वा
फलन्त्यभावाय न भूतयेऽऽत्मनः ।
तथैव मां तैः परिरक्ष्यमाणा-
मादास्यसे कर्कटकीव गर्भम् ॥ ९

जयद्रथ उवाच ।

जानामि कृष्णे विदितं ममैत-
द्यथाविधास्ते नरदेवपुत्राः ।
न त्वेवमेतेन विभीषणेन
शक्या वयं त्रासयितुं त्वयाऽद्य ॥ १०

वयं पुनः सप्तदशेषु कृष्णे
कुलेषु सर्वेऽनवमेषु जाताः ।
षड्भ्यो गुणेभ्योऽभ्यधिका विहीनान्
मन्यामहे द्रौपदि पाण्डुपुत्रान् ॥ ११

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

२६८

सरोषेति । रोषेण रागो रक्तिमा तेन सहितं सरोषरागं तदुपहतं च म्लानं च तेन वल्गुना सुन्दरेण । नते स्वभावतः उन्नते क्रोधेन भ्रुवौ यस्यास्तथा । विस्फूर्य फूत्कारं कृत्वा ॥ १ ॥ अभि अभिक्रम्य ब्रुवन् स्थितान् अचलान् यक्षादिभिरप्यजेयानित्यर्थः ॥ २ ॥ ईड्यं स्तुत्यं वनेचरं वानप्रस्थं पापं पापवचनं प्रवदन्ति । सन्त इति शेषः । श्वनराः शुनकतुल्या नरास्त्वादृशास्तु एवं उक्तरीत्या भषन्ति ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥ क्षत्रियसंनिवेशे नृपसमाजे पातालमुखे महागर्ते प्रतिसंहरेत् प्रतिषेधेत ॥ ४ ॥ उपत्यकामद्रिसमीपभूमिं दंडी दण्डमात्रायुधो यूथात् समूहात् अपसेधसि अपकर्षसि ॥५॥ बाल्यात् मौढ्यात् पक्ष्माणि मुखोपरिस्थकेशान् । पदा समाहत्य लुनासि छिनत्सि ॥६॥ वेण्वादयः फलिता एव नश्यन्ति कर्कटी च परिणतगर्भा नश्यतीति लोकप्रसिद्धम् ॥ ९ ॥ विभीषणेन भयप्रदर्शनेन । १०॥ वयमिति । सप्तदश अष्टौ कर्माणि नव शक्त्यादयश्च नित्यं सन्ति येषु तानि सप्तदशानि । नित्ययोगे मत्वर्थीयोऽर्शआद्यच् । तत्र कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जर-

सा क्षिप्रमातिष्ठ गजं रथं वा
न वाक्यमात्रेण वयं हि शक्याः ।
आशंस वा त्वं कृपणं वदन्ती
सौवीरराजस्य पुनः प्रसादम् ॥ १२

द्रौपद्युवाच ।

महाबला किं त्विह दुर्बलेव
सौवीरराजस्य मताऽहमस्मि ।
नाहं प्रमाथादिह सम्प्रतीता
सौवीरराजं कृपणं वदेयम् ॥ १३

यस्या हि कृष्णौ पदवीं चरेतां
समास्थितावेकरथे समेतौ ॥
इन्द्रोऽपि तां नापहरेत् कथञ्चि-
न्मनुष्यमात्रः कृपणः कुतोऽन्यः ॥ १४

यथा किरीटी परवीरघाती
निघ्नन् रथस्थो द्विषतां मनांसि ।
मदन्तरे त्वद्ध्वजिनीं प्रवेष्टा
कक्षं दहन्नग्निरिवोष्णगेषु ॥ १५

जनार्दनः सान्धकवृष्णिवीरो
महेष्वासाः केकयाश्चापि सर्वे ।
एते हि सर्वे मम राजपुत्राः
प्रहृष्टरूपाः पदवीं चरेयुः ॥ १६

मौर्वीविसृष्टाः स्तनयित्नुघोषा
गाण्डीवमुक्तास्त्वतिवेगवन्तः ।
हस्तं समाहत्य धनञ्जयस्य
भीमाः शब्दं घोरतरं नदन्ति ॥ १७

गाण्डीवमुक्तांश्च महाशरौघान्
¶पतङ्गसङ्घानिव शीघ्रवेगान् ।
यदा द्रष्टाऽस्यर्जुनं वीर्यशालिनं
तदा स्वबुद्धिं प्रतिनिन्दिताऽसि ॥ १८

सशङ्खघोषः सतलत्रघोषो
गाण्डीवधन्वा मुहुरुद्वहंश्च ।
यदा शरानर्पयिता तवोरसि
तदा मनस्ते किमिवाभविष्यत् ॥ १९

गदाहस्तं भीममभिद्रवन्तं
माद्रीपुत्रौ सम्पतन्तौ दिशश्च ।
अमर्षजं क्रोधविषं वमन्तौ
दृष्ट्वा चिरं तापमुपैष्यसेऽधम ॥ २०

यथा वाऽहं नातिचरे कथञ्चित्
पतीन् महार्हान् मनसाऽपि जातु ।
तेनाद्य सत्येन वशीकृतं त्वां
द्रष्टाऽस्मि पार्थैः परिकृष्यमाणम् ॥ २१

न सम्भ्रमं गन्तुमहं हि शक्ष्ये
त्वया नृशंसेन विकृष्यमाणा ।
समागताऽहं हि कुरुप्रवीरैः
पुनर्वनं काम्यकमागताऽस्मि ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

साताननुप्रेक्ष्य विशालनेत्रा
जिघृक्षमाणानवभर्त्सयन्ती ।
प्रोवाच मा मा स्पृशतेति भीता
धौम्यं प्रचुक्रोश पुरोहितं सा ॥ २३

जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे
जयद्रथस्तं समवाक्षिपत् सा ।
तया समाक्षिप्ततनुः स पापः
पपात शाखीव निकृत्तमूलः ॥ २४

---

बन्धनम् ॥ खन्याकरकरादानं शून्यानां च निवेशनम् ॥ अष्टौ सन्धानकर्माणि नियुक्तानि मनीषिभिः' इति कर्माष्टकं कोशवृद्धिकरम् । तथा प्रभुशक्तिमन्त्रशक्तिरुत्साहशक्तिः । प्रभुसिद्धिर्मन्त्रसिद्धिरुत्साहसिद्धिः । प्रभूदयो मन्त्रोदय उत्साहोदयः । प्रभुत्वादीनां स्वरूपतः सामर्थ्यतः फलतश्च येषु नित्ययोग इत्यर्थः । अनवमेषु अनीचेषु षड्भ्यो गुणेभ्यः । ल्यब्लोपे पञ्चमी । षड्गुणान् प्राप्य पाण्डवेभ्योऽभ्यधिकाः । ते च शौर्यतेजो धृतिदाक्षिण्यदानैश्वर्याणि भवताप्युक्ताः शौर्यं तेज इति यत्र युद्धे चाप्यपलायनं शौर्ये एवान्तर्भूतमिति षडेव क्षात्रियकर्माणि तस्य गुणत्वेनोच्यन्ते । सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावाश्रयाख्यास्तु गुणा नीतिशास्त्रोक्ता नेह गृह्यन्ते । तेषां सर्वेषामुत्कर्षानाधायकत्वात् । हीनबल एव सन्धिद्वैधादीनि इच्छति न प्रबल इति ॥ ११ ॥ शक्याः निवारयितुमिति शेषः । पुनरिति पाण्डवपराजयानन्तरं वा इदानीमेव वा त्वं मत्प्रसादं आशंस प्रार्थय ॥ १२ ॥ प्रमाथात् निग्रहात् प्रतीता सादरा प्रख्याता वा सभायां वस्त्रराशिप्रदानेन भगवदनुगृहीतत्वात् । 'प्रतीतः सादरे ज्ञाते हृष्टे' इति मेदिनी ॥ १३ ॥ कृष्णौ वासुदेवार्जुनौ । पदवीं चरेतां अन्वेषणं कुरुत एवेत्यर्थः ॥ १४ ॥ मदन्तरे मन्निमित्तं प्रवेष्टा प्रकर्षेण वेष्टयिष्यति उष्णगेषु निदाघेषु ॥ १५ ॥ गाण्डीमुक्ता इति सूचनात् शरा इति विशेष्यानिर्देशो न दोषाय ॥ १७ ॥ अभविष्यत् भविष्यतीत्यर्थे व्यत्ययेन लङ् ॥ १९ ॥ अधमेति च्छेदः ॥ २० ॥ संभ्रमं भयं आगतैवास्मि न तु त्वद्वशे स्यास्यामीत्यर्थः ॥ २२ ॥ ¶ पतङ्गसङ्घानिव–ख

प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन
मुहुर्विनिःश्वस्य च राजपुत्री
सा कृष्यमाणा रथमारुरोह
धौम्यस्य पादावभिवाद्य कृष्णा ॥ २५

धौम्य उवाच ।

नेयं शक्या त्वया नेतुमविजित्य महारथान् ।
धर्मं क्षत्रस्य पौराणमवेक्षस्व जयद्रथ ॥ २६
क्षुद्रं कृत्वा फलं [1]पापं त्वं प्राप्स्यसि न संशयः ।
आसाद्य पाण्डवान् वीरान् धर्मराजपुरोगमान् ॥ २७

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा ह्रियमाणां तां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ।
अन्वगच्छत् तदा धौम्यः पदातिगणमध्यगः ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणे अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

## २६९

वैशम्पायन उवाच ।

ततो दिशः सम्प्रविहृत्य पार्था
मृगान् वराहान् महिषांश्च हत्वा ।
धनुर्धराः श्रेष्ठतमाः पृथिव्यां
पृथक्चरन्तः सहिता बभूवुः ॥ १
ततो मृगव्यालगणानुकीर्णं
महावनं तद्विहगोपघुष्टम् ।
भ्रातॄंश्च तानभ्यवदद्युधिष्ठिरः
श्रुत्वा गिरो व्याहरतां मृगाणाम् ॥ २
आदित्यदीप्तां दिशमभ्युपेत्य
मृगा द्विजाः क्रूरमिमे वदन्ति ।
आयासमुग्रं प्रतिवेदयन्तो
महावनं शत्रुभिर्बाध्यमानम् ॥ ३
क्षिप्रं निवर्तध्वमलं मृगैर्नो
मनो हि मे दूयति दह्यते च ।
बुद्धिं समाच्छाद्य च मे समन्यु-
रुद्धूयते प्राणपतिः शरीरे ॥ ४
सरः सुपर्णेन हृतोरगं यथा
राष्ट्रं यथाऽराजकमात्तलक्ष्मि ।
एवंविधं मे प्रतिभाति काम्यकं
शौण्डैर्यथा पीतरसश्च कुम्भः ॥ ५
ते सैन्धवैरत्यनिलौघवेगै-
र्महाजवैर्वाजिभिरुह्यमानाः ।
युक्तैर्बृहद्भिः सुरथैर्नृवीरा-
स्तदाऽऽश्रमायाभिमुखा बभूवुः ॥ ६
तेषां तु गोमायुरनल्पघोषो
निवर्ततां वाममुपेत्य पार्श्वम् ।
प्रव्याहरत् तत् प्रविमृश्य राजा
प्रोवाच भीमं च धनंजयं च ॥ ७
यथा वदत्येष विहीनयोनिः
शालावृको वाममुपेत्य पार्श्वम् ।
सुव्यक्तमस्मानवमन्य पापैः
कृतोऽभिमर्दः कुरुभिः प्रसह्य ॥ ८
इत्येव ते तद्वनमाविशन्तो
महत्यरण्ये मृगयां चरित्वा ।
बालामपश्यन्त तदा रुदन्तीं
धात्रेयिकां प्रेष्य वधूं प्रियायाः ॥ ९

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

---

२६९

तत इति ॥ १ ॥ महावनं काम्यकम् ॥ २॥ महावनं महानाख्यं· 'गृहिणी गृहमुच्यते' इत्युक्तेर्गृहिणी 'वनं नपुंसकं नीरे निवासालयकानने 'इति मेदिनी । महाधनामिति पाठे महच्च तद्वनं चेति श्रीरूपमेव धनम् ॥ ३ ॥ समाच्छाद्य मोहयित्वा । समन्युः दैन्यसहितः प्राणानां आध्यात्मिकानामिन्द्रियाणां पतिर्मुख्यः प्राणः ॥ ४ ॥ अराजकं राजहीनं शौण्डैः शुण्डया विदितैर्गजैः । पीतरसः पीतजलः । यथा दासीमुदकुंभं नयन्तीमनुलक्ष्य महामात्रस्तयाऽज्ञातमेव गजं तत्पृष्ठतो नीत्वा तेन तज्जलं शोषयति सा चाकस्माद्घटं लघुतया रिक्तं पश्चाज्जानाति तद्वत् अस्माभिरज्ञातोऽस्मद्धनं कश्चिद्धरिष्यति तदा रिक्तकुम्भवद्वनं पश्चाद्द्रक्ष्याम इत्यर्थः । सैन्धवैः सिन्धुदेशजैर्वाजिभिरश्वैः । सुरथैः शोभनरथैः । समानाधिकरणं तृतीयात्रयम् ॥ ६ ॥ प्रेष्यवधूं दासभार्याम् ॥ ९ ॥

[1] पाप-ख, ग.

तामिन्द्रसेनस्त्वरितोऽभिसृत्य
रथादवप्लुत्य ततोऽभ्यधावत् ।
प्रोवाच चैनां वचनं नरेन्द्र
धात्रेयिकामन्तितरस्तदानीम् ॥ १०
किं रोदिषि त्वं पतिता धरण्यां
किं ते मुखं शुष्यति दीनवर्णम् ।
कच्चिन्न पापैः सुनृशंसकृद्भिः
प्रमाथिता द्रौपदी राजपुत्री ॥ ११
*अचिन्त्यरूपा सुविशालनेत्रा
शरीरतुल्या कुरुपुङ्गवानाम् ।
यद्येव देवी पृथिवीं प्रविष्टा
दिवं प्रपन्नाऽप्यथवा समुद्रम् ॥ १२
तस्या गमिष्यन्ति पदे हि पार्था
यथा हि सन्तप्यति धर्मपुत्रः ।
को हीदृशानामरिमर्दनानां
क्लेशक्षमानामपराजितानाम् ॥ १३
प्राणैः समामिष्टतमां जिहीर्षे-
दनुत्तमं रत्नमिव प्रमूढः ।
न बुध्यते नाथवतीमिहाद्य
बहिश्चरं हृदयं पाण्डवानाम् ॥ १४
कस्याद्य कायं प्रतिभिद्य घोरा
महीं प्रवेक्ष्यन्ति शिताः शराग्र्याः ।
मा त्वं शुचस्तां प्रति भीरु विद्धि
यथाऽद्य कृष्णा पुनरेष्यतीति ॥ १५
निहत्य सर्वान् द्विषतः समग्रान्
पार्थाः समेष्यन्त्यथ याज्ञसेन्या ।
अथाब्रवीच्चारुमुखं †विमृज्य
धात्रेयिका सारथिमिन्द्रसेनम् ॥ १६
जयद्रथेनापहृता प्रमथ्य
पञ्चेन्द्रकल्पान् परिभूय कृष्णा ।
तिष्ठन्ति वर्त्मानि नवान्यमूनि
वृक्षाश्च न म्लान्ति तथैव भग्नाः ॥ १७
आवर्तयध्वं ह्यनुयात शीघ्रं
न दूरयातैव हि राजपुत्री
सन्नह्यध्वं सर्व एवेन्द्रकल्पा
महान्ति चारूणि च दंशनानि ॥ १८
गृह्णीत चापानि महाधनानि
शरांश्च शीघ्रं पदवीं चरध्वम् ।
पुरा हि निर्भर्त्सनदण्डमोहिता
प्रमोहचित्ता वदनेन शुष्यता ॥ १९
ददाति कस्मैचिदनर्हते तनुं
वराज्यपूर्णामिव भस्मनि स्रुचम् ।
पुरा तुषाग्नाविव हूयते हविः
पुरा श्मशाने स्रगिवापविध्यते ॥ २०
पुरा च सोमोऽध्वरगोऽवलिह्यते
शुना यथा विप्रजने प्रमोहिते ।
महत्यरण्ये मृगयां चरित्वा
पुरा शृगालो नलिनीं विगाहते ॥ २१
मा वः प्रियायाः सुनसं सुलोचनं
चन्द्रप्रभाच्छं वदनं प्रसन्नम् ।
स्पृश्याच्छुभं कश्चिदकृत्यकारी
श्वा वै पुरोडाशमिवाध्वरस्थम् ।
एतानि वर्त्मान्यनुयात शीघ्रं
मा वः कालः क्षिप्रमिहात्यगाद्वै ॥ २२
युधिष्ठिर उवाच ।
भद्रे प्रतिक्राम नियच्छ वाचं
माऽस्मत्सकाशे परुषाण्यवोचः ।
राजानो वा यदि वा राजपुत्रा
बलेन मत्ता वञ्चनां प्राप्नुवन्ति ॥ २३
वैशम्पायन उवाच ।
एतावदुक्त्वा प्रययुर्हि शीघ्रं
तान्येव वर्त्मान्यनुवर्तमानाः ।
मुहुर्मुहुर्व्यालवदुच्छ्वसन्तो
ज्यां विक्षिपन्तश्च महाधनुर्भ्यः ॥ २४
ततोऽपश्यंस्तस्य सैन्यस्य रेणु-
मुद्धूतं वै वाजिखुरप्रणुन्नम् ।
पदातीनां मध्यगतं च धौम्यं
विक्रोशन्तं भीममभिद्रवेति ॥ २५
ते सान्त्व्य धौम्यं परिदीनसत्त्वाः
सुखं भवानेत्विति राजपुत्राः ।
श्येना यथैवामिषसम्प्रयुक्ता
जवेन तत् सैन्यमथाभ्यधावन् ॥ २६

अन्तितरः समीपतरः आर्ततर इत्यपि पाठः ॥ १० ॥ पुरा यावत् अनर्हते तनुं न ददाति तावत् शीघ्रमनुयातेति चतुर्थेन सम्बन्धः ॥ १९ ॥ प्रतिक्राम दूरे भव परुषाणि अनर्हते तनुं ददातीत्यादीनि दुःश्राव्याणि, मत्तत्वात् वञ्चनः स्वजनस्य तवैव वधरूपाम् ॥ २३ ॥ * अनिन्द्यरूपा-ख. † प्रमृज्य-ग.

तेषां महेन्द्रोपमविक्रमाणां
संरब्धानां धर्षणाद्याज्ञसेन्याः ।
क्रोधः प्रजज्वाल जयद्रथं च
दृष्ट्वा प्रियां तस्य रथे स्थितां च ॥ २७

प्रचुक्रुशुश्चाप्यथ सिन्धुराजं
वृकोदरश्चैव धनञ्जयश्च ।
यमौ च राजा च महाधनुर्धरा-
स्ततो दिशः संमुमुहुः परेषाम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि पार्थागमने ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

## २७०

वैशम्पायन उवाच ।
ततो घोरतरः शब्दो वने समभवत् तदा।
भीमसेनार्जुनौ दृष्ट्वा क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १
तेषां ध्वजाग्राण्यभिवीक्ष्य राजा
स्वयं दुरात्मा नरपुङ्गवानाम् ।
जयद्रथो याज्ञसेनीमुवाच
रथे स्थितां भानुमतीं हतौजाः ॥ २
आयान्तीमे पञ्च रथा महान्तो
मन्ये च कृष्णे पतयस्तवेते ।
सा जानती ख्यापय नः सुकेशि
परं परं पाण्डवानां रथस्थम् ॥ ३

द्रौपद्युवाच ।
किं ते ज्ञातैर्मूढ महाधनुर्धरै-
रनायुष्यं कर्म कृत्वाऽतिघोरम् ।
एते वीराः पतयो मे समेता
न वः शेषः कश्चिदिहास्ति युद्धे ॥ ४
आख्यातव्यं त्वेव सर्वं मुमूर्षो-
र्मया तुभ्यं पृष्टया धर्म एषः ।
न मे व्यथा विद्यते त्वद्भयं वा
सम्पश्यन्त्याः सानुजं धर्मराजम् ॥ ५
यस्य ध्वजाग्रे नदतो मृदङ्गौ
नन्दोपनन्दौ मधुरौ युक्तरूपौ ।
एतं स्वधर्मार्थविनिश्चयज्ञं
सदा जनाः कृत्यवन्तोऽनुयान्ति ॥ ६
य एष जाम्बूनदशुद्धगौरः
प्रचण्डघोणस्तनुरायताक्षः ।
एतं कुरुश्रेष्ठतमं वदन्ति
युधिष्ठिरं धर्मसुतं पतिं मे ॥ ७
अप्येष शत्रोः शरणागतस्य
दद्यात् प्राणान् धर्मचारी नृवीरः ।
परेह्येनं मूढ जवेन भूतये
त्वमात्मनः प्राञ्जलिर्न्यस्तशस्त्रः ॥ ८
अथाप्येनं पश्यसि यं रथस्थं
महाभुजं शालमिव प्रवृद्धम् ।
सन्दष्टौष्ठं भृकुटीसंहतभ्रुं
वृकोदरो नाम पतिर्ममैषः ॥ ९
आजानेया बलिनः साधु दान्ता
महाबलाः शूरमुदावहन्ति ।
एतस्य कर्माण्यतिमानुषाणि
भीमेति शब्दोऽस्य गतः पृथिव्याम् ॥ १०
नास्यापराद्धाः शेषमवाप्नुवन्ति
नायं वैरं विस्मरते कदाचित् ।
वैरस्यान्तं संविधायोपयाति
पश्चाच्छान्तिं न च गच्छत्यतीव ॥ ११

धर्षणात् पराभवात् ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

२७०

तत इति ॥ १ ॥ अनायुष्यमायुर्नाशकं मृत्युदमित्यर्थः ॥ ४ ॥ परेहि शरणं गच्छ एनं धर्मराजम् ॥ ८ ॥ आजानेया अश्वविशेषाः ॥ १० ॥ अपराद्धाः अपराधवन्तः । शेषं जीवनं वैरस्यान्तं शत्रुनाशं संविधाय आहृत्य उपयाति कृत्वापि अतीव शान्तिं नोपैतीति । मरणान्तानि वैराणीति लोके प्रसिद्धम् । अयं तु मारयित्वापि पुत्रपौत्रादिकमपि न शेषयतीत्यत्यन्तं दीर्घकोपित्वमुक्तम् ॥ ११ ॥

धनुर्धराग्र्यो धृतिमान् यशस्वी
जितेन्द्रियो वृद्धसेवी नृवीरः ।
भ्राता च शिष्यश्च युधिष्ठिरस्य
धनञ्जयो नाम पतिर्ममैषः ॥ १२
यो वै न कामान्न भयान्न लोभात्
त्यजेद्धर्मं न नृशंसं च कुर्यात् ।
स एष वैश्वानरतुल्यतेजाः
कुन्तीसुतः शत्रुसहः प्रमाथी ॥ १३
यः सर्वधर्मार्थविनिश्चयज्ञो
भयार्तानां भयहर्ता मनीषी ।
यस्योत्तमं रूपमाहुः पृथिव्यां
यं पाण्डवाः परिरक्षन्ति सर्वे ॥ १४
प्राणैर्गरीयांसमनुव्रतं वै
स एष वीरो नकुलः पतिर्मे ।
यः खड्गयोधी लघुचित्रहस्तो
महांश्च धीमान् सहदेवोऽद्वितीयः ॥१५
यस्याद्य कर्म द्रक्ष्यसे मूढसत्त्व
शतक्रतोर्वा दैत्यसेनासु सङ्ख्ये ।
शूरः कृतास्त्रो मतिमान् मनस्वी
प्रियङ्करो धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ १६
य एष चन्द्रार्कसमानतेजा
जघन्यजः पाण्डवानां प्रियश्च ।
बुद्ध्या समो यस्य नरो न विद्यते
वक्ता तथा सत्सु विनिश्चयज्ञः ॥ १७
स एष शूरो नित्यममर्षणश्च
धीमान् प्राज्ञः सहदेवः पतिर्मे ।
त्यजेत् प्राणान् प्रविशेद्धव्यवाहं
न त्वेवैष व्याहरेद्धर्मबाह्यम् ॥ १८
सदा मनस्वी क्षत्रधर्मे रतश्च
कुन्त्याः प्राणैरिष्टतमो नृवीरः ।
विशीर्यन्तीं नावमिवार्णवान्ते
रत्नाभिपूर्णां मकरस्य पृष्ठे ॥ १९
सेनां तवेमां हतसर्वयोधां
विक्षोभितां द्रक्ष्यसि पाण्डुपुत्रैः ।
इत्येते वै कथिताः पाण्डुपुत्रा
यांस्त्वं मोहादवमन्य प्रवृत्तः ।
यद्येतेभ्यो मुच्यसेऽरिष्टदेहः
पुनर्जन्म प्राप्स्यसे जीव एव ॥ २०

वैशम्पायन उवाच ।

ततः पार्थाः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पा-
स्त्यक्त्वा त्रस्तान् प्राञ्जलींस्तान् पदातीन् ।
यथाऽनीकं शरवर्षान्धकारं
चक्रुः क्रुद्धाः सर्वतः सन्निगृह्य ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि द्रौपदीवाक्ये सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

## २७१

वैशम्पायन उवाच ।

सन्तिष्ठत प्रहरत तूर्णं विपरिधावत ।
इति स्म सैन्धवो राजा चोदयामास तान् नृपान् ।
ततो घोरतमः शब्दो रणे समभवत् तदा ।
भीमार्जुनयमान् दृष्ट्वा सैन्यानां सयुधिष्ठिरान् ॥ २
शिबिसौवीरसिन्धूनां विषादश्चाप्यजायत ।
तान् दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रान् व्याघ्रानिव बलोत्कटान् ।
हेमचित्रसमुत्सेधां सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।
प्रगृह्याभ्यद्रवद्भीमः सैन्धवं कालचोदितम् ॥ ४
तदन्तरमथावृत्य कोटिकास्योऽभ्यहारयत् ।
महता रथवंशेन परिवार्य वृकोदरम् ॥ ५

यं परिरक्षन्ति स नकुल इति द्वयोः सम्बन्धः ॥ १४ ॥ मूढसत्त्व मूढबुद्धे शतक्रतोर्वा शतक्रतोरिव ॥ १६ ॥ जीव एव जीवन्नेव अमृत्वैव पुनर्जन्म प्राप्स्यसे ॥ २० ॥ इत्यारण्य० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्यधिकद्विशततमो० ॥ २७० ॥

२७१

सन्तिष्ठतेति ॥ १ ॥ अन्तरमभ्यहारयत् भीमजयद्रथयोर्मध्ये प्रवेशेन व्यवधानं कृतवान् । रथवंशेन रथवर्गेण ॥ ५ ॥

शक्तितोमरनाराचैर्वीरबाहुप्रचोदितैः ।
कीर्यमाणोऽपि बहुभिर्न स्म भीमोऽभ्यकम्पत ६
गजं तु स गजारोहं पदातींश्च चतुर्दश ।
जघान गदया भीमः सैन्धवध्वजिनीमुखे ॥ ७
पार्थः पञ्चशतान् शूरान् पार्वतीयान् महारथान् ।
परीप्समानः सौवीरं जघान ध्वजिनीमुखे ॥ ८
राजा स्वयं सुवीराणां प्रवराणां प्रहारिणाम् ।
निमेषमात्रेण शतं जघान समरे तदा ॥ ९
ददृशे नकुलस्तत्र रथात् प्रस्कन्द्य खड्गधृक् ।
शिरांसि पादरक्षाणां बीजवत् प्रवपन्मुहुः ॥ १०
सहदेवस्तु संयाय रथेन गजयोधिनः ।
पातयामास नाराचैर्द्रुमेभ्य इव बर्हिणः ॥ ११
ततस्त्रिगर्तः सधनुरवतीर्य महारथात् ।
गदया चतुरो वाहान् राज्ञस्तस्य तदाऽवधीत् ॥
तमभ्याशगतं राजा पदातिं कुन्तिनन्दनः ।
अर्धचन्द्रेण बाणेन विव्याधोरसि धर्मराट् ॥ १३
स भिन्नहृदयो वीरो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ।
पपाताभिमुखः पार्थं छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १४
इन्द्रसेनद्वितीयस्तु रथात् प्रस्कन्द्य धर्मराट् ।
हताश्वः सहदेवस्य प्रतिपेदे महारथम् ॥ १५
नकुलं त्वभिसन्धाय क्षेमङ्करमहामुखौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैः शरवर्षैरवर्षताम् ॥ १६
तोमरैरभिवर्षन्तौ जीमूताविव वार्षिकौ ।
एकैकेन विपाठेन जघ्ने माद्रवतीसुतः ॥ १७
त्रिगर्तराजः सुरथस्तस्याथ रथधूर्गतः ।
रथमाक्षेपयामास गजेन गजयानवित् ॥ १८
नकुलस्त्वपभीस्तस्माद्रथाच्चर्मासिपाणिमान् ।
उद्भ्रान्तं स्थानमास्थाय तस्थौ गिरिरिवाचलः १९
सुरथस्तं गजवरं वधाय नकुलस्य तु ।
प्रेषयामास सक्रोधमत्युच्छ्रितकरं ततः ॥ २०
नकुलस्तस्य नागस्य समीपपरिवर्तिनः ।
सविषाणं भुजं मूले खड्गेन निरकृन्तत ॥ २१
स विनद्य महानादं गजः किङ्किणिभूषणः ।
पतन्नवाक्शिरा भूमौ हस्त्यारोहमपोथयत् ॥ २२
स तत् कर्म महत् कृत्वा शूरो माद्रवतीसुतः ।
भीमसेनरथं प्राप्य शर्म लेभे महारथः ॥ २३

भीमस्त्वापततो राज्ञः कोटिकास्यस्य सङ्गरे ।
सूतस्य नुदतो वाहान् क्षुरेणापाहरच्छिरः ॥ २४
न बुबोध हतं सूतं स राजा बाहुशालिना ।
तस्याश्वा व्यद्रवन् सङ्ख्ये हतसूतास्ततस्ततः ॥२५
विमुखं हतसूतं तं भीमः प्रहरतां वरः ।
जघान तलयुक्तेन प्रासेनाभ्येत्य पाण्डवः ॥ २६
द्वादशानां तु सर्वेषां सौवीराणां धनञ्जयः ।
चकर्त निशितैर्भल्लैर्धनूंषि च शिरांसि च ॥ २७
शिबीनिक्ष्वाकुमुख्यांश्च त्रिगर्तान् सैन्धवानपि ।
जघानातिरथः सङ्ख्ये बाणगोचरमागतान् ॥ २८
सादिताः प्रत्यदृश्यन्त बहवः सव्यसाचिना ।
सपताकाश्च मातङ्गाः सध्वजाश्च महारथाः ॥२९
प्रच्छाद्य पृथिवीं तस्थुः सर्वमायोधनं प्रति ।
शरीराण्यशिरस्कानि विदेहानि शिरांसि च ३०
श्वगृध्रकङ्ककाकोलभासगोमायुवायसाः ।
अतृप्यंस्तत्र वीराणां हतानां मांसशोणितैः ॥ ३१
हतेषु तेषु वीरेषु सिन्धुराजो जयद्रथः ।
विमुच्य कृष्णां सन्त्रस्तः पलायनमनाऽभवत् ३२
स तस्मिन् संकुले सैन्ये द्रौपदीमवतार्य ताम् ।
प्राणप्रेप्सुरुपाधावद्वनं येन नराधमः ॥ ३३
द्रौपदीं धर्मराजस्तु दृष्ट्वा धौम्यपुरस्कृताम् ।
माद्रीपुत्रेण वीरेण रथमारोपयत् तदा ॥ ३४
ततस्तद्विद्रुतं सैन्यमपयाते जयद्रथे ।
आदिश्यादिश्य नाराचैराजघान वृकोदरः ॥ ३५
सव्यसाची तु तं दृष्ट्वा पलायन्तं जयद्रथम् ।
वारयामास निघ्नन्तं भीमं सैन्धवसैनिकान् ३६

अर्जुन उवाच ।

यस्यापचारात् प्राप्तोऽयमस्मान् क्लेशो दुरासदः ।
तमस्मिन् समरोद्देशे न पश्यामि जयद्रथम् ॥३७
तमेवान्विष भद्रं ते किं ते योधैर्निपातितैः ।
अनामिषमिदं कर्म कथं वा मन्यते भवान् ॥ ३८

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तो भीमसेनस्तु गुडाकेशेन धीमता ।
युधिष्ठिरमभिप्रेक्ष्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ ३९
हतप्रवीरा रिपवो भूयिष्ठं विद्रुता दिशः ।
गृहीत्वा द्रौपदीं राजन्निवर्ततु भवानितः ॥ ४०

सविषाणं भुजं सदन्तं शुण्डादण्डम् । मूले गण्डप्रदेशे ॥ २१ ॥ तलयुक्तेन मुष्टियुक्तेन 'तलं स्वरूपे-' इत्युपक्रम्य 'चपेटे च त्सरौ' इति मेदिनी । त्सरुः खड्गादिमुष्टिः ॥२६॥ आदिश्य नाम विश्राव्य ॥ ३५ ॥ सैनिकान् निघ्नन्तं भीमं वारयामास ॥ ३६ ॥ समरोद्देशे रणभूमौ ॥ ३७ ॥ अन्विष अन्विच्छ ॥ ३८ ॥

यमाभ्यां सह राजेन्द्र धौम्येन च महात्मना ।
प्राप्याश्रमपदं राजन् द्रौपदीं परिसान्त्वय ॥ ४१
न हि मे मोक्ष्यते जीवन् मूढः सैन्धवको नृपः ।
पातालतलसंस्थोऽपि यदि शक्रोऽस्य सारथिः४२
युधिष्ठिर उवाच ।
न हन्तव्यो महाबाहो दुरात्माऽपि स सैन्धवः ।
दुःशलामभिसंस्मृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम्॥
वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा द्रौपदी भीममुवाच व्याकुलेन्द्रिया ।
कुपिता ह्रीमती प्राज्ञा पती भीमार्जुनावुभौ॥४४
कर्तव्यं चेत् प्रियं मह्यं वध्यः स पुरुषाधमः ।
सैन्धवापसदः पापो दुर्मतिः कुलपांसनः ॥ ४५
भार्याभिहर्ता वैरी यो यश्च राज्यहरो रिपुः ।
याचमानोऽपि संग्रामे न मोक्तव्यः कथञ्चन४६
इत्युक्तौ तौ नरव्याघ्रौ ययतुर्यत्र सैन्धवः ।
राजा निववृते कृष्णामादाय सपुरोहितः ॥ ४७
स प्रविश्याश्रमपदमपविद्धबृसीमठम् ।
मार्कण्डेयादिभिर्विप्रैरनुकीर्णं ददर्श ह ॥ ४८
द्रौपदीमनुशोचद्भिर्ब्राह्मणैस्तैः समाहितैः ।
समियाय महाप्राज्ञः सभार्यो भ्रातृमध्यगः ॥ ४९
ते स्म तं मुदिता दृष्ट्वा पुनः प्रत्यागतं नृपम् ।
जित्वा तान् सिन्धुसौवीरान् द्रौपदीं चाहृतां पुनः
स तैः परिवृतो राजा तत्रैवोपविवेश ह ।
प्रविवेशाश्रमं कृष्णा यमाभ्यां सह भाविनी॥ ५१
भीमसेनार्जुनौ चापि श्रुत्वा क्रोशगतं रिपुम् ।
स्वयमश्वांस्तुदन्तौ तौ जवेनैवाभ्यधावताम् ॥ ५२
इदमत्यद्भुतं चात्र चकार पुरुषोऽर्जुनः ।
क्रोशमात्रगतानश्वान् सैन्धवस्य जघान यत् ५३
स हि दिव्यास्त्रसम्पन्नः कृच्छ्रकालेऽप्यसम्भ्रमः ।
अकरोद्दुष्करं कर्म शरैरस्त्रानुमन्त्रितैः ॥ ५४
ततोऽभ्यधावतां वीरावुभौ भीमधनञ्जयौ ।
हताश्वं सैन्धवं भीतमेकं व्याकुलचेतसम् ॥ ५५
सैन्धवस्तु हतान् दृष्ट्वा तथाऽश्वान्स्वान् सुदुःखितः
अतिविक्रमकर्माणि कुर्वाणं च धनञ्जयम् ॥ ५६
पलायनकृतोत्साहः प्राद्रवद्येन वै वनम् ।
सैन्धवं त्वभिसम्प्रेक्ष्य पराक्रान्तं पलायने ॥ ५७
अनुयाय महाबाहुः फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ।
अनेन वीर्येण कथं स्त्रियं प्रार्थयसे बलात् ॥ ५८
राजपुत्र निवर्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ।
कथं ह्यनुचरान् हित्वा शत्रुमध्ये पलायसे ॥ ५९
इत्युच्यमानः पार्थेन सैन्धवो न न्यवर्तत ।
तिष्ठ तिष्ठेति तं भीमः सहसाऽभ्यद्रवद्बली ।
मावधीरिति पार्थस्तं दयावान् प्रत्यभाषत ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि द्रौपदीहरणपर्वणि जयद्रथपलायने एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥

॥ समाप्तं द्रौपदीहरणपर्व ॥

## ॥ जयद्रथविमोक्षणपर्व ॥

## २७२

वैशम्पायन उवाच ।
जयद्रथस्तु सम्प्रेक्ष्य भ्रातरावुद्यतावुभौ ।
प्राधावत् तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुदुःखितः ॥१
तं भीमसेनो धावन्तमवतीर्य रथाद्बली ।
अभिद्रुत्य निजग्राह केशपक्षे ह्यमर्षणः ॥ २

दुःशलां दुर्योधनभगिनीम् ॥ ४३ ॥ अपविद्धा इतस्ततो विशीर्णा बृस्यो ऋषीणामासनानि मठाश्च छात्राणामालया यत्र तत् ॥ ४८ ॥ अतिविक्रमयुक्तानि कर्माणि ॥ ५६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥

२७२

जयद्रथस्त्विति ॥ १ ॥

समुद्यम्य च तं भीमो निष्पिपेष महीतले ।
शिरो गृहीत्वा राजानं ताडयामास चैव ह ॥ ३
पुनः सञ्जीवमानस्य तस्योत्पतितुमिच्छतः ।
पदा मूर्ध्नि महाबाहुः प्राहरद्विलपिष्यतः ॥ ४
तस्य जानू ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना ।
स मोहमगमद्राजा प्रहारवरपीडितः ॥ ५
सरोषं भीमसेनं तु वारयामास फाल्गुनः ।
दुःशलायाः कृते राजा यत्तदाहेति कौरव ॥ ६

भीमसेन उवाच ।

नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति ।
कृष्णायास्तदनर्हायाः परिक्लेष्टा नराधमः ॥ ७
किं नु शक्यं मया कर्तुं यद्राजा सततं घृणी ।
त्वं च बालिशया बुद्ध्या सदैवास्मान् प्रबाधसे ८
एवमुक्त्वा सटास्तस्य पञ्च चक्रे वृकोदरः ।
अर्धचन्द्रेण बाणेन किंचिदब्रुवतस्तदा ॥ ९
विकत्थयित्वा राजानं ततः प्राह वृकोदरः ।
जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु ॥ १०
दासोऽस्मीति तथा वाच्यं संसत्सु च सभासु च ।
एवं ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः ॥ ११
एवमस्त्विति तं राजा कृष्यमाणो जयद्रथः ।
प्रोवाच पुरुषव्याघ्रं भीममाहवशोभिनम् ॥ १२
तत एनं विचेष्टन्तं बद्ध्वा पार्थो वृकोदरः ।
रथमारोपयामास विसंज्ञं पांसुगुण्ठितम् ॥ १३
ततस्तं रथमास्थाय भीमः पार्थानुगस्तदा ।
अभ्येत्याश्रममध्यस्थमभ्यगच्छद्युधिष्ठिरम् ॥ १४
दर्शयामास भीमस्तु तदवस्थं जयद्रथम् ।
तं राजा प्राहसद्दृष्ट्वा मुच्यतामिति चाब्रवीत् १५
राजानं चाब्रवीद्भीमो द्रौपद्याः कथ्यतामिति ।
दासभावं गतो ह्येष पाण्डूनां पापचेतनः ॥ १६
तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ।
मुञ्चेममधमाचारं प्रमाणा यदि ते वयम् ॥ १७
द्रौपदी चाब्रवीद्भीममभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरम् ।
दासोऽयं मुच्यतां राज्ञस्त्वया पञ्चसटः कृतः १८
स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे विह्वलो राजंस्तांश्च दृष्ट्वा मुनींस्तदा ॥ १९
तमुवाच घृणी राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
तथा जयद्रथं दृष्ट्वा गृहीतं सव्यसाचिना ॥ २०
अदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः पुनः क्वचित् ।
स्त्रीकामं वा धिगस्तु त्वां क्षुद्रः क्षुद्रसहायवान् ॥
एवंविधं हि कः कुर्यात् त्वदन्यः पुरुषाधमः ।
गतसत्त्वमिव ज्ञात्वा कर्तारमशुभस्य तम् ॥ २२
सम्प्रेक्ष्य भरतश्रेष्ठः कृपां चक्रे नराधिपः ।
धर्मे ते वर्धतां बुद्धिर्मा चाधर्मे मनः कृथाः ॥ २३
साश्वः सरथपादातः स्वस्ति गच्छ जयद्रथ ।
एवमुक्तस्तु सव्रीडं तूष्णीं किंचिदवाङ्मुखः ॥ २४
जगाम राजन् दुःखार्तो गङ्गाद्वाराय भारत ।
स देवं शरणं गत्वा विरूपाक्षमुमापतिम् ॥ २५
तपश्चचार विपुलं तस्य प्रीतो वृषध्वजः ।
बलिं स्वयं प्रत्यगृह्णात् प्रीयमाणस्त्रिलोचनः ॥ २६
वरं चास्मै ददौ देवः स जग्राह च तच्छृणु ।
समस्तान् सरथान् पञ्च जयेयं युधि पाण्डवान् ॥
इति राजाऽब्रवीद्देवं नेति देवस्तमब्रवीत् ।
अजय्यांश्चाप्यवध्यांश्च वारयिष्यसि तान् युधि ॥
ऋतेऽर्जुनं महाबाहुं नरं नाम सुरेश्वरम् ।
बदर्यां तप्ततपसं नारायणसहायकम् ॥ २९
अजितं सर्वलोकानां देवैरपि दुरासदम् ।
मया दत्तं पाशुपतं दिव्यमप्रतिमं शरम् ॥
अवाप लोकपालेभ्यो वज्रादीन् स महाशरान् ३०
देवदेवो ह्यनन्तात्मा विष्णुः सुरगुरुः प्रभुः ।
प्रधानपुरुषोऽव्यक्तो विश्वात्मा विश्वमूर्तिमान् ३१

---

अत्रास्य जयद्रथस्य परदारहर्तुः क्षत्रियाधमत्वात् । पञ्चधा मारणमुक्तं शिरो गृहीत्वेत्यादिना शिरःकेशेष्वित्यर्थः । ताडयामास चपेटाभिरिति शेषः । यथोक्तं नीतिशास्त्रे 'वामपाणिकचोत्पीडा भूमौ निष्पेषणं बलात् । मूर्ध्नि पादप्रहरणं जानुनोदरमर्दनम् । मालूराकारया मुष्ट्या कपोले दृढताडनम् । कफोणिपातोऽप्यसकृत् सर्वतस्तलताडनम् । ताडनेन युद्धे भ्रमणं मारणं स्मृतमष्टधा ' इति । 'चतुर्भिः क्षत्रियं हन्यात् पञ्चभिः क्षत्रियाधमम् । षड्भिर्वैश्यं सप्तभिस्तु शूद्रं सङ्करमष्टभिः' इति ॥ ३ ॥ घृणी दयावान् । बालिशया । स्वल्पया बाधसे शत्रुं हन्तुं न ददासि ॥ ८ ॥ सटाः जटाः केशसन्निवेशे मध्ये मध्ये पञ्चसु स्थानेषु अर्धचन्द्रेण बाणेन क्षौरं कारयामासेत्यर्थः ॥ ९ ॥ बलिमुपहारम् ॥ २६ ॥ नारायणः सहायो यस्य तं नारायणसहायकम् ॥ २९ ॥ शरं शृणाति हिनस्तीति शरमस्त्रम् ॥ ३० ॥ नारायणसहायस्याजेयत्वं वक्तुं नारायणमाहात्म्यमेवाह देवदेव इत्यादिना । देवानां द्योतकानां सूर्यचन्द्राग्निचक्षुर्मनोवाचां ज्योतिषां देवः प्रकाशकः । 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' 'येन चक्षूंषि पश्यन्ति' इत्यादिश्रुतिभ्यः । अनन्तः त्रिविधपरि-

युगान्तकाले सम्प्राप्ते कालाग्निर्दहते जगत् ।
सपर्वतार्णवद्वीपं सशैलवनकाननम् ॥ ३२
निर्दह्य नागलोकांश्च पातालतलचारिणः ।
अथान्तरिक्षे सुमहन्नानावर्णाः पयोधराः ॥ ३३
घोरस्वरा विनदिनस्तडिन्मालावलम्बिनः ।
समुत्तिष्ठन् दिशः सर्वा विवर्षन्तः समन्ततः ॥३४
ततोऽग्निं नाशयामासुः संवर्ताग्निनियामकाः ।
अक्षमात्रैश्च धाराभिस्तिष्ठन्त्यापूर्य सर्वशः ॥ ३५
एकार्णवे तदा तस्मिन्नुपशान्तचराचरे ।
नष्टचन्द्रार्कपवने ग्रहनक्षत्रवर्जिते ॥ ३६
चतुर्युगसहस्रान्ते सलिलेनाप्लुता मही ।
ततो नारायणाख्यस्तु सहस्राक्षः सहस्रपात् ३७
सहस्रशीर्षा पुरुषः स्वप्तुकामस्त्वतीन्द्रियः ।
फटासहस्रविकटं शेषं पर्यङ्कभाजनम् ॥ ३८
सहस्रमिव तिग्मांशुसङ्घातममितद्युतिम् ।
कुन्देन्दुहारगोक्षीरमृणालकुमुदप्रभम् ॥ ३९
तत्रासौ भगवान् देवः स्वपन् जलनिधौ तदा ।
नैशेन तमसा व्याप्तां स्वां रात्रिं कुरुते विभुः ४०
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमपश्यत ।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥ ४१
आपो नारास्तत्तनव इत्यपां नाम शुश्रुम ।
अयनं तेन चैवास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥ ४२
ध्यानसमकालं तु प्रजाहेतोः सनातनः ।
ध्यातमात्रे तु भगवन्नाभ्यां पद्मः समुत्थितः ४३
ततश्चतुर्मुखो ब्रह्मा नाभिपद्माद्विनिःसृतः ।
तत्रोपविष्टः सहसा पद्मे लोकपितामहः ॥ ४४
शून्यं दृष्ट्वा जगत् कृत्स्नं मानसानात्मनः समान् ।
ततो मरीचिप्रमुखान् महर्षीनसृजन्नव ॥ ४५
तेऽसृजन् सर्वभूतानि त्रसानि स्थावराणि च ।
यक्षराक्षसभूतानि पिशाचोरगमानुषान् ॥ ४६
सृज्यते ब्रह्ममूर्तिस्तु रक्षते पौरुषी तनुः ।
रौद्रीभावेन शमयेत् तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः ४७
न श्रुतं ते सिन्धुपते विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
कथ्यमानानि मुनिभिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ४८

च्छेदशून्यः आत्मा स्वरूपं यस्य । प्रधानं त्रिगुणात्मिका माया । पुरुषश्चिद्रूपः तदुभयात्मा चिदाचिन्मयः । अव्यक्तो जगत्कारणरूपो बीजान्तर्गतवटतुल्यः । अत एव विश्वात्मा विश्व एवात्मा चेतनांशेन विश्वमूर्तिमान् जडांशेन ॥ ३१ ॥ एवं नारायणस्य जगद्धेतुत्वमुक्त्वा तस्य जगत्संहर्तृत्वमाह युगान्तेति । कालाग्निरूपो नारायणो निर्दहते ॥ ३२ ॥ विनादिनो गर्जन्तः समुत्तिष्ठन् समुदतिष्ठन् । उत्तिष्ठन्तीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ नाशयामासुः पयोधरा इति पूर्वेणान्वयः । अक्षमात्रैः रथाक्षमात्राभिः स्थूलाभिः । सामान्ये नपुंसकम् । यद्वा । धाराभिरिति धाराशब्द आकारान्तः सोमपा शब्दवत् पुल्लिङ्गः । धावमाना एव रान्ति आददते क्लेदनीयं वस्त्विति धाराः । रा आदानेऽस्मात् क्विप् ॥ ३५ ॥ एकार्णवे इति । अवान्तरप्रलयेऽस्मिन् पवननाशोक्तिर्निदाघ इव तदनुपलम्भमात्रपरा ॥ ३६ ॥ चतुर्युगसहस्रप्रमाणं ब्रह्मणो दिनम् । तदन्ते आप्लुता सलिलेऽन्तर्हितेत्यर्थः। नारायण इत्याख्या नाम यस्य । यद्वा । नारायणादेव आख्या प्रथा यस्य स हिरण्यगर्भः सूत्रात्मा विश्वाभिमानी अत एव सहस्रपादादिमान् ॥ ३७ ॥ स्वप्तुकामः स्वदिनान्ते फटासहस्रं फणासहस्रम् । अध्यतिष्ठदिति शेषः ॥ ३८ ॥ अमितद्युतिमत्यन्तं द्योतमानम् ॥ ३९ ॥ सत्त्वोद्रेकात्तमसोऽभिभवे सति सत्त्वस्याविर्भावात् शून्यं प्राणिसञ्चारहीनम् ॥ ४१ ॥ नारायणपदं निर्वक्ति आप इति । नराज्जाता नाराः । 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' इति गौरादिगणपाठात् प्राप्तो ङीष् गणकार्यस्यानित्यत्वान्न । तत्तनवः तस्य नारायणस्यैव तनवः । यथा सौवर्णं कुण्डलं सुवर्णमेव एवं नरजा आपो नर एवेत्यर्थः । नारा आपः देहाद्याकारपरिणता अयनं निवासस्थानं यस्य । अथवा ताभिः सह तत्तादात्म्यं प्राप्य आस्ते इति वा नारायण इति । 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इति 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' । इति च श्रुतिः। परमात्मन एव सृष्टदेहे प्रवेशं देहसम्बन्धेन भोक्तृत्वं च दर्शयति । तेन 'चेतनाचेतनं सर्वं जगन्नारायणात्मकम्' इत्युक्तं भवति ॥ ४२ ॥ ध्यानेति । ध्यानसमकाले प्रजाहेतोः प्रजानामुत्पत्त्यर्थं सनातनश्चिरन्तनो ब्रह्मा नाभिपद्माद्विनिःसृतः । तादृशेन रूपेण ध्यातुर्दृष्टौ प्रत्यभादित्यर्थः । ततो ध्यातमात्रे ध्यानानन्तरं विष्णोर्नाभ्यां पद्मः समुत्थितः। तस्मिंश्च पद्मे पितामह उपविष्ट इति क्रमभङ्गेन योज्यम् ॥४४॥ मरीचिप्रमुखान्—'मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । वसिष्ठो नारदश्चैव भृगुर्नव महर्षयः' ॥ ४५ ॥ त्रसानि जङ्गमानि ॥ ४६ ॥ प्रजापतेरीश्वरस्य मायाशबलस्य तिस्रोऽवस्था एकैकगुणोत्कर्षनिमित्ताः । रजस उत्कर्षे ब्रह्मा संसृज्यते । सत्त्वोत्कर्षे पौरुषीं वैष्णवीं तनुं प्रविश्य रक्षति । तमस उत्कर्षे रौद्रीभावेन रुद्रभावेन शमयेदिति ॥ ४७ ॥ हे सिन्धुपते ते तव श्रुतं श्रवणं नास्ति यतो विष्णोः अद्भुतकर्मणः कथ्यमानानि कथनीयानि कर्माणि न वेत्सीति शेषः ॥ ४८ ॥

जलेन समनुप्राप्ते सर्वतः पृथिवीतले ।
तदा चैकार्णवे तस्मिन्नेकाकाशे प्रभुश्चरन् ॥ ४९
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले समन्ततः ।
प्रतिष्ठानाय पृथिवीं मार्गमाणस्तदाऽभवत् ॥ ५०
जले निमग्नां गां दृष्ट्वा चोद्धर्तुं मनसेच्छति ।
किं नु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥ ५१
एवं सञ्चिन्त्य मनसा दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।
जलक्रीडाभिरुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ॥ ५२
कृत्वा वराहवपुषं वाङ्मयं वेदसम्मितम् ।
दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ॥ ५३
महापर्वतवर्ष्माभं तीक्ष्णदंष्ट्रं प्रदीप्तिमत् ।
महामेघौघनिर्घोषं नीलजीमूतसन्निभम् ॥ ५४
भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः सम्प्राविशत् प्रभुः ।
दंष्ट्रेणैकेन चोद्धृत्य स्वे स्थाने न्यविशन्महीम् ॥ ५५
पुनरेव महाबाहुरपूर्वां तनुमाश्रितः ।
नरस्य कृत्वाऽर्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ॥ ५६
दैत्येन्द्रस्य सभां गत्वा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।
दैत्यानामादिपुरुषः सुरारिर्दितिनन्दनः ॥ ५७
दृष्ट्वा चापूर्वपुरुषं क्रोधात् संरक्तलोचनः ।
शूलोद्यतकरः स्रग्वी हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ ५८
मेघस्तनितनिर्घोषो नीलाभ्रचयसन्निभः ।
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ॥ ५९
समुपेत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण बलीयसा ।
नारसिंहेन वपुषा दारितः करजैर्भृशम् ॥ ६०
एवं निहत्य भगवान् दैत्येन्द्रं रिपुघातिनम् ।
भूयोऽन्यः पुण्डरीकाक्षः प्रभुर्लोकहिताय च ॥ ६१
कश्यपस्यात्मजः श्रीमानदित्या गर्भधारितः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ॥ ६२
दुर्दिनाम्भोदसदृशो दीप्ताक्षो वामनाकृतिः ।
दण्डी कमण्डलुधरः श्रीवत्सोरसि भूषितः ॥ ६३
जटी यज्ञोपवीती च भगवान् बालरूपधृक् ।
यज्ञवाटं गतः श्रीमान् दानवेन्द्रस्य वै तदा ॥ ६४
बृहस्पतिसहायोऽसौ प्रविष्टो बलिनो मखे ।
तं दृष्ट्वा वामनतनुं प्रहृष्टो बलिरब्रवीत् ॥ ६५
प्रीतोऽस्मि दर्शने विप्र ब्रूहि त्वं किं ददानि ते ।
एवमुक्तस्तु बलिना वामनः प्रत्युवाच ह ॥ ६६
स्वस्तीत्युक्त्वा बलिं देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
मेदिनीं दानवपते देहि मे विक्रमत्रयम् ॥ ६७
बलिर्ददौ प्रसन्नात्मा विप्रायामिततेजसे ।
ततो दिव्याद्भुततमं रूपं विक्रमतो हरेः ॥ ६८
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्यो जहाराशु स मेदिनीम् ।
ददौ शक्राय च महीं विष्णुर्देवः सनातनः ॥ ६९
एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावः प्रकीर्तितः ।
तेन देवाः प्रादुरासन् वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ७०
असतां निग्रहार्थाय धर्मसंरक्षणाय च ।
अवतीर्णो मनुष्याणामजायत यदुक्षये ॥ ७१
स एवं भगवान् विष्णुः कृष्णेति परिकीर्त्यते ।
अनाद्यन्तमजं देवं प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥ ७२
[*]यदेवं विदुषो गान्ति तस्य कर्माणि सैन्धव ।
यमाहुरजितं कृष्णं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ७३
श्रीवत्सधारिणं देवं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रधानं सोऽस्त्रविदुषां तेन कृष्णेन रक्ष्यते ॥ ७४
सहायः पुण्डरीकाक्षः श्रीमानतुलविक्रमः ।
समानस्यन्दने पार्थमास्थाय परवीरहा ॥ ७५

तान्येव कर्माण्याह एकार्णवे सति । एकाकाशे आकाशमात्रे वायुतेजःपृथिवीरहिते जलमात्रे सति ॥ ४९ ॥ खद्योत इति प्रकाशमात्रत्वमुच्यते । प्रतिष्ठानाय लोकप्रतिष्ठापनार्थम् ॥ ५० ॥ जलक्रीडायामभिरुचितं प्रीतिर्यस्य ॥ ५२ ॥ वराहवपुषमात्मानमिति शेषः । वाङ्मयं चतुर्वेदमयम् । वेदसम्मितं वेदप्रमितयज्ञरूपम् ॥ ५३ ॥ वर्ष्म शरीरम् ॥ ५४ ॥ दंष्ट्रेण दंष्ट्रया न्यविशत् न्यवेशयत् ॥ ५५ ॥ एवं वराहावतारमुक्त्वा नरसिंहावतारमाह पुनरेवेत्यादिना । अपूर्वां लोके पूर्वं न दृष्टाम् ॥ ५६ ॥ मृगेन्द्रेणापि समुपेत्य दैत्यसमीपे गत्वा समुपाद्रवन् हिरण्यकशिपुः करजैर्नखैर्दारितः ॥ ६० ॥ एवं नृसिंहावतारकथामुपसंहृत्य वामनावतारकथां प्रस्तौति एवमिति ॥ ६१ ॥ गर्भे धारितः गर्भधारितः । सप्तमीति योगविभागात् समासः ॥ ६२ ॥ दुर्दिनं प्रावृट्दिनं तत्र भवोम्भोदः कृष्णमेघस्तत्सदृशः । 'मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः । श्रीवत्सेन उरसि भूषित इति लुप्तविभक्तिकं पदम् ॥ ६३ ॥ बालो वामनः वाटं स्थानम् ॥ ६४ ॥ बलिनो बलेः अयमिकारान्त इन्नन्तश्च शब्दो दृश्यते ॥ ६५ ॥ ददानि त्वदीप्सितमिति शेषः ॥ ६६ ॥ दिव्यं च तत् अद्भुततमं च रूपं बभूवेति शेषः ॥ ६८ ॥ अवतीर्णोऽवतरणं कुर्वन्नजायत आविर्भूतः । यदुक्षये यदूनां गृहे ॥ ७१ ॥ तस्य कर्माणि विदुषो विद्वांसः गान्ति गायन्ति ॥ ॥ ७३ ॥ सः अर्जुनः अस्त्रविदुषां प्रधानं श्रेष्ठः । यमजितमाहुस्तेन कृष्णेन रक्ष्यते ॥ ७४ ॥ [*] यं देवम्—ख.

न शक्यते तेन जेतुं त्रिदशैरपि दुःसहः ।
कः पुनर्मानुषो भावो रणे पार्थं विजेष्यति ॥ ७६
तमेकं वर्जयित्वा तु सर्वं यौधिष्ठिरं बलम् ।
चतुरः पाण्डवान् राजन् दिनैकं जेष्यसे रिपून् ॥
वैशम्पायन उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा नृपतिं सर्वपापहरो हरः ।
उमापतिः पशुपतिर्यज्ञहा त्रिपुरार्दनः ॥ ७८
वामनैर्विकटैः कुब्जैरुग्रश्रवणदर्शनैः ।
वृतः पारिषदैर्घोरैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ७९
त्र्यम्बको राजशार्दूल भगनेत्रनिपातनः ।
उमासहायो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८०
जयद्रथोऽपि मन्दात्मा स्वमेव भवनं ययौ ।
पाण्डवाश्च वने तस्मिन्न्यवसन् काम्यके तथा ८१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि जयद्रथविमोक्षणपर्वणि
द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

॥ समाप्तं जयद्रथविमोक्षणपर्व ॥

## ॥ रामोपाख्यानपर्व ॥

## २७३

जनमेजय उवाच ।
एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
अत ऊर्ध्वं नरव्याघ्राः किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
एवं कृष्णां मोक्षयित्वा विनिर्जित्य जयद्रथम् ।
आसांचक्रे मुनिगणैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २
तेषां मध्ये महर्षीणां शृण्वतामनुशोचताम् ।
मार्कण्डेयमिदं वाक्यमब्रवीत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३
युधिष्ठिर उवाच ।
भगवन् देवर्षीणां त्वं ख्यातो भूतभविष्यवित् ।
संशयं परिपृच्छामि छिन्धि मे हृदि संस्थितम् ४
द्रुपदस्य सुता ह्येषा वेदिमध्यात् समुत्थिता ।
अयोनिजा महाभागा स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः॥ ५
मन्ये कालश्च भगवान् दैवं च विधिनिर्मितम् ।
भवितव्यं च भूतानां यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥६
इमां हि पत्नीमस्माकं धर्मज्ञां धर्मचारिणीम् ।
संस्पृशेदीदृशो भावः शुचिं स्तैन्यमिवानृतम्॥७
न हि पापं कृतं किञ्चित् कर्म वा निन्दितं क्वचित्
द्रौपद्या ब्राह्मणेष्वेव धर्मः सुचरितो महान् ॥
तां जहार बलाद्राजा मूढबुद्धिर्जयद्रथः ।
तस्याः संहरणात् पापः शिरसः केशपातनम्॥९
पराजयंच सङ्ग्रामे ससहायः समाप्तवान् ।
प्रत्याहृता तथाऽस्माभिर्हत्वा तत् सैन्धवं बलम्१०
तद्दारहरणं प्राप्तमस्माभिरवितर्कितम् ।
दुःखश्चायं वने वासो मृगयायां च जीविका ॥
हिंसा च मृगजातीनां वनौकोभिर्वनौकसाम् ।
ज्ञातिभिर्विप्रवासश्च मिथ्याव्यवसितैरियम् ॥ १२
अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः ।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा भवेत् ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने
त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

तेन कृष्णसहायत्वेन हेतुना भवः पूज्यतमः । 'भावः पूज्यतमे लोके' इत्यनेकार्थः॥ ७६ ॥ दिनैकं एकदिनमेव न सर्वदा॥७७॥ दक्षयज्ञे भगस्य नेत्रे निपातितवान् भगनेत्रनिपातनः॥८०॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

२७३

एवमिति ॥१॥ दैवं धर्माधर्मौ । विधिः सदसत्कर्मणी ताभ्यां निर्मितम् ॥ ६ ॥ ईदृशो भावः । परेण हरणम् ॥ ७ ॥ मिथ्याव्यवसितैः वृथातापसवेषधरैः । इयं हिंसा क्रियत इति शेषः ॥ १२ ॥ मया सम इति शेषः॥ १३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

## २७४

मार्कण्डेय उवाच ।

प्राप्तमप्रतिमं दुःखं रामेण भरतर्षभ ।
रक्षसा जानकी तस्य हृता भार्या बलीयसा ॥ १
आश्रमाद्राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
मायामास्थाय तरसा हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥ २
प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः ।
बद्ध्वा सेतुं समुद्रस्य दग्ध्वा लङ्कां शितैः शरैः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मिन् रामः कुले जातः किंवीर्यः किम्पराक्रमः
रावणः कस्य पुत्रो वा किं वैरं तस्य तेन ह ॥ ४
एतन्मे भगवन् सर्वं सम्यगाख्यातुमर्हसि ।
श्रोतुमिच्छामि चरितं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच ।

अजो नामाऽभवद्राजा महानिक्ष्वाकुवंशजः ।
तस्य पुत्रो दशरथः शश्वत् स्वाध्यायवाञ्छुचिः॥६
अभवंस्तस्य चत्वारः पुत्रा धर्मार्थकोविदाः ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्च महाबलः ॥ ७
रामस्य माता कौसल्या कैकेयी भरतस्य तु ।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायाः परन्तपौ ॥ ८
विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो ।
यां चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषीं प्रियाम्॥९
एतद्रामस्य ते जन्म सीतायाश्च प्रकीर्तितम् ।
रावणस्यापि ते जन्म व्याख्यास्यामि जनेश्वर ॥
पितामहो रावणस्य साक्षाद्देवः प्रजापतिः ।
स्वयम्भूः सर्वलोकानां प्रभुः स्रष्टा महातपाः ॥११
पुलस्त्यो नाम तस्यासीन्मानसो दयितः सुतः ।
तस्य वैश्रवणो नाम गवि पुत्रोऽभवत् प्रभुः ॥१२
पितरं स समुत्सृज्य पितामहमुपास्थितः ।
तस्य कोपात् पिता राजन् ससर्जात्मानमात्मना
स जज्ञे विश्रवा नाम तस्यात्मार्धेन वै द्विजः ।
प्रतीकाराय सक्रोधस्ततो वैश्रवणस्य वै ॥ १४
पितामहस्तु प्रीतात्मा ददौ वैश्रवणस्य ह ।
अमरत्वं धनेशत्वं लोकपालत्वमेव च ॥ १५
ईशानेन तथा सख्यं पुत्रं च नलकूबरम् ।
राजधानीनिवेशं च लङ्कां रक्षोगणान्विताम्१६
विमानं पुष्पकं नाम कामगं च ददौ प्रभुः ।
यक्षाणामाधिपत्यं च राजराजत्वमेव च ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामरावणयोर्जन्मकथने चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

## २७५

मार्कण्डेय उवाच ।

पुलस्त्यस्य तु यः क्रोधादर्धदेहोऽभवन्मुनिः ।
विश्रवा नाम सक्रोधः स वैश्रवणमैक्षत ॥ १
बुबुधे तं तु सक्रोधं पितरं राक्षसेश्वरः ।
कुबेरस्तत्प्रसादार्थं यतते स्म सदा नृप ॥ २
स राजराजो लङ्कायां न्यवसन्नरवाहनः ।
राक्षसीः प्रददौ तिस्रः पितुर्वै परिचारिकाः ॥ ३
ताः सदा तं महात्मानं सन्तोषयितुमुद्यताः ।
ऋषिं भरतशार्दूल नृत्यगीतविशारदाः ॥ ४
पुष्पोत्कटा च राका च मालिनी च विशाम्पते ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन् श्रेयस्कामाः सुमध्यमाः ५

२७४

प्राप्तमिति ॥ १ ॥ मायां संन्यासिवेषम् ॥ २ ॥ त्वष्टा प्रजापतिः स्वयमेव सङ्कल्पेन चकार न तु मैथुनद्वारा । अयोनिजामित्यर्थः ॥ ९ ॥ गवि गोसंज्ञायां भार्यायाम् ॥ १२ ॥ तस्य वैश्रवणस्य कोपात् मां त्यक्त्वा मत्पितरं सेवत इत्यातिज्वलनात् वैश्रवणं बाधितुं पुलस्त्य एव योगबलेन विश्रवःसंज्ञं देहान्तरं चक्रे इत्यर्थः ॥ १३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

२७५

पुलस्त्यस्येति । पितरं विश्रवसं । राक्षसेश्वरः कुबेरो रक्षःपुरीनायकत्वात् ॥ २ ॥

स तासां भगवांस्तुष्टो महात्मा प्रददौ वरान् ।
लोकपालोपमान् पुत्रानेकैकस्या यथेप्सितान्॥६
पुष्पोत्कटायां जज्ञाते द्वौ पुत्रौ राक्षसेश्वरौ
कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेनाप्रतिमौ भुवि ॥ ७
मालिनी जनयामास पुत्रमेकं बिभीषणम् ।
राकायां मिथुनं जज्ञे खरः शूर्पणखा तथा ॥ ८
बिभीषणस्तु रूपेण सर्वेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत् ।
स बभूव महाभागो धर्मगोप्ता क्रियारतिः ॥ ९
दशग्रीवस्तु सर्वेषां श्रेष्ठो राक्षसपुङ्गवः ।
महोत्साहो महावीर्यो महासत्त्वपराक्रमः ॥ १०
कुम्भकर्णो बलेनासीत् सर्वेभ्योऽभ्यधिको युधि
मायावी रणशौण्डश्च रौद्रश्च रजनीचरः ॥ ११
खरो धनुषि विक्रान्तो ब्रह्मद्विट् पिशिताशनः ।
सिद्धाविघ्नकरी चापि रौद्री शूर्पणखा तदा ॥ १२
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
ऊषुः पित्रा सह रता गन्धमादनपर्वते ॥ १३
ततो वैश्रवणं तत्र ददृशुर्नरवाहनम् ।
पित्रा सार्धं समासीनमृद्ध्या परमया युतम् ॥ १४
जातामर्षास्ततस्ते तु तपसे धृतनिश्चयाः ।
ब्रह्माणं तोषयामासुर्घोरेण तपसा तदा ॥ १५
अतिष्ठदेकपादेन सहस्रं परिवत्सरान् ।
वायुभक्षो दशग्रीवः पञ्चाग्निः सुसमाहितः ॥ १६
अधःशायी कुम्भकर्णो यताहारो यतव्रतः ।
विभीषणः शीर्णपर्णमेकमभ्यवहारयन् ॥ १७
उपवासरतिर्धीमान् सदा जप्यपरायणः ।
तमेव कालमातिष्ठत् तीव्रं तप उदारधीः ॥ १८
खरः शूर्पणखा चैव तेषां वै तप्यतां तपः ।
परिचर्यां च रक्षां च चक्रतुर्हृष्टमानसौ ॥ १९
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्छित्त्वा दशाननः ।
जुहोत्यग्नौ दुराधर्षस्तेनातुष्यज्जगत्प्रभुः ॥ २०
ततो ब्रह्मा स्वयं गत्वा तपसस्तान्न्यवारयत् ।
प्रलोभ्य वरदानेन सर्वानेव पृथक् पृथक् ॥ २१

ब्रह्मोवाच ।

प्रीतोऽस्मि वो निवर्तध्वं वरान् वृणुत पुत्रकाः ।
यद्यदिष्टमृते त्वेकममरत्वं तथाऽस्तु तत् ॥ २२
यद्यदग्नौ हुतं सर्वं शिरस्ते महदीप्सया ।
तथैव तानि ते देहे भविष्यन्ति यथेप्सया ॥ २३
वैरूप्यं च न ते देहे कामरूपधरस्तथा ।
भविष्यसि रणेऽरीणां विजेता न च संशयः २४

रावण उवाच ।

गन्धर्वदेवासुरतो यक्षराक्षसतस्तथा ।
सर्पकिन्नरभूतेभ्यो न मे भूयात् पराभवः ॥ २५

ब्रह्मोवाच ।

य एते कीर्तिताः सर्वे न तेभ्योऽस्ति भयं तव ।
ऋते मनुष्याद्भद्रं ते तथा तद्विहितं मया ॥ २६

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमुक्तो दशग्रीवस्तुष्टः समभवत् तदा ।
अवमेने हि दुर्बुद्धिर्मनुष्यान् पुरुषादकः ॥ २७
कुम्भकर्णमथोवाच तथैव प्रपितामहः ।
स वव्रे महतीं निद्रां तमसा ग्रस्तचेतनः ॥ २८
तथा भविष्यतीत्युक्त्वा विभीषणमुवाच ह ।
वरं वृणीष्व पुत्र त्वं प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः २९

विभीषण उवाच ।

परमापद्गतस्यापि नाधर्मे मे मतिर्भवेत् ।
अशिक्षितं च भगवन् ब्रह्मास्त्रं प्रतिभातु मे ॥ ३०

ब्रह्मोवाच ।

यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रकर्शन ।
नाधर्मे धीयते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ॥ ३१

मार्कण्डेय उवाच ।

राक्षसस्तु वरं लब्ध्वा दशग्रीवो विशाम्पते ।
लङ्कायाश्च्यावयामास युधि जित्वा धनेश्वरम् ॥
हित्वा स भगवाँल्लङ्कामाविशद्गन्धमादनम् ।
गन्धर्वयक्षानुगतो रक्षःकिंपुरुषैः सह ॥ ३३
विमानं पुष्पकं तस्य जहाराक्रम्य रावणः ।
शशाप तं वैश्रवणो न त्वामेतद्वहिष्यति ॥ ३४
यस्तु त्वां समरे हन्ता तमेवैतद्वहिष्यति ।
अवमन्य गुरुं मां च क्षिप्रं त्वं न भविष्यसि ॥३५
विभीषणस्तु धर्मात्मा सतां मार्गमनुस्मरन् ।
अन्वगच्छन् महाराज श्रिया परमया युतः ॥ ३६

---

पित्रा विश्रवसा ॥ १३ ॥ पञ्चदिक्षु चत्वार एकः सूर्य इति पञ्चानामग्नीनां मध्यगः पञ्चाग्निः ॥ १६ ॥ विभीषणः तप आतिष्ठदित्यन्वयः ॥ १७ ॥ महदीप्सया श्रेष्ठपदापेक्षया ॥ २३ ॥ तमसेति अनिष्टामपि निद्रां मोहाद्वृतवानित्यर्थः ॥ २८ ॥ योनौ क्षेत्रे न तु रेतोऽत्र राक्षसमस्ति । तस्मान्मातृदोषादेव क्रौर्यं रावणादीनामित्यर्थः । 'नराणां मातुलक्रमः' इति प्रसिद्धम् ॥ ३१ ॥ न भविष्यसि मरिष्यसि ॥ ३५ ॥ अन्वगच्छत् कुबेरमिति शेषः ॥ ३६ ॥

तस्मै स भगवांस्तुष्टो भ्राता भ्रात्रे धनेश्वरः ।
सैनापत्यं ददौ धीमान् यक्षराक्षससेनयोः ॥ ३७
राक्षसाः पुरुषादाश्च पिशाचाश्च महाबलाः ।
सर्वे समेत्य राजानमभ्यषिञ्चन् दशाननम् ॥ ३८
दशग्रीवश्च दैत्यानां देवानां च बलोत्कटः ।
आक्रम्य रत्नान्यहरत् कामरूपी विहङ्गमः ॥ ३९
रावयामास लोकान् यत् तस्माद्रावण उच्यते ।
दशग्रीवः कामबलो देवानां भयमादधत् ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणादिवरप्राप्तौ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥

## २७६

मार्कण्डेय उवाच ।
ततो ब्रह्मर्षयः सर्वे सिद्धा देवर्षयस्तथा ।
हव्यवाहं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं गताः ॥ १
अग्निरुवाच ।
योऽसौ विश्रवसः पुत्रो दशग्रीवो महाबलः ।
अवध्यो वरदानेन कृतो भगवता पुरा ॥ २
स बाधते प्रजाः सर्वा विप्रकारैर्महाबलः ।
ततो नस्त्रातु भगवान्नान्यस्त्राता हि विद्यते ॥ ३
ब्रह्मोवाच ।
न स देवासुरैः शक्यो युद्धे जेतुं विभावसो ।
विहितं तत्र यत् कार्यमभितस्तस्य निग्रहः ॥ ४
तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत् कर्म करिष्यति ॥ ५
मार्कण्डेय उवाच ।
पितामहस्ततस्तेषां सन्निधौ शक्रमब्रवीत् ।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं सम्भव त्वं महीतले ॥ ६
विष्णोः सहायानृक्षीषु वानरीषु च सर्वशः
जनयध्वं सुतान् वीरान् कामरूबलान्वितान् ॥ ७
ततो भागानुभागेन देवगन्धर्वदानवाः ।
अवतर्तुं महीं सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥ ८
तेषां समक्षं गन्धर्वीं दुन्दुभीं नाम नामतः ।
शशास वरदो देवो गच्छ कार्यार्थसिद्धये ॥ ९
पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी ततः
मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत् तदा ॥ १०
शक्रप्रभृतयश्चैव सर्वे ते सुरसत्तमाः ।
वानरर्क्षवरस्त्रीषु जनयामासुरात्मजान् ॥ ११
तेऽन्ववर्तन् पितॄन् सर्वे यशसा च बलेन च ।
भेत्तारो गिरिशृङ्गाणां सालतालशिलायुधाः ॥ १२
वज्रसंहननाः सर्वे सर्वे चौघबलास्तथा ।
कामवीर्यबलाश्चैव सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १३
नागायुतसमप्राणा वायुवेगसमा जवे ।
यत्रेच्छकनिवासाश्च केचिदत्र वनौकसः ॥ १४
एवं विधाय तत् सर्वं भगवाँल्लोकभावनः ।
मन्थरां बोधयामास यद्यत् कार्यं यथा यथा ॥ १५
सा तद्वचः समाज्ञाय तथा चक्रे मनोजवा ।
इतश्चेतश्च गच्छन्ती वैरसन्धुक्षणे रता ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि वानराद्युत्पत्तौ षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

---

रत्नानि । 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते'। विहङ्गमः खेचरः ॥ ३९ ॥ रावयामास हिंसार्थस्य रुवो रूपमिदम् ॥ ४० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥

२७६

तत इति ॥ १ ॥ विप्रकारैः विविधैः प्रकारैः ॥ ३ ॥ वज्रसंहननाः वज्रवदृढाङ्गाः ॥ १३ ॥ यत्रेच्छा तत्रैव निवासो येषां ते यत्रेच्छकनिवासाः ॥ १४ ॥ यद्यत् कार्यं कैकेयीप्रलोभनं रामप्रव्राजनादि च ॥ १५ ॥ संधुक्षणे दीपने ॥ १६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

## २७७

युधिष्ठिर उवाच ।
उक्तं भगवता जन्म रामादीनां पृथक् पृथक् ।
प्रस्थानकारणं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् १
कथं दाशरथी वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सम्प्रस्थितौ वने ब्रह्मन् मैथिली च यशस्विनी॥ २
मार्कण्डेय उवाच ।
जातपुत्रो दशरथः प्रीतिमानभवन्नृप ।
क्रियारतिर्धर्मरतः सततं वृद्धसेविता ॥ ३
क्रमेण चास्य ते पुत्रा व्यवर्धन्त महौजसः ।
वेदेषु सरहस्येषु धनुर्वेदेषु पारगाः ॥ ४
चरितब्रह्मचर्यास्ते कृतदाराश्च पार्थिव ।
यदा तदा दशरथः प्रीतिमानभवत् सुखी ॥ ५
ज्येष्ठो रामोऽभवत् तेषां रमयामास हि प्रजाः ।
मनोहरतया धीमान् पितुर्हृदयनन्दनः ॥ ६
ततः स राजा मतिमान् मत्वाऽऽत्मानं वयोधिकम्
मन्त्रयामास सचिवैर्धर्मज्ञैश्च पुरोहितैः ॥ ७
अभिषेकाय रामस्य यौवराज्येन भारत ।
प्राप्तकालं च ते सर्वे मेनिरे मन्त्रिसत्तमाः ॥ ८
लोहिताक्षं महाबाहुं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
दीर्घबाहुं महोरस्कं नीलकुञ्चितमूर्धजम् ॥ ९
दीप्यमानं श्रिया वीरं शक्रादनवरं रणे ।
पारगं सर्वधर्माणां बृहस्पतिसमं मतौ ॥ १०
सर्वानुरक्तप्रकृतिं सर्वविद्याविशारदम् ।
जितेन्द्रियममित्राणामपि दृष्टिमनोहरम् ॥ ११
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ १२
पुत्रं राजा दशरथः कौसल्यानन्दवर्धनम् ।
सन्दृश्य परमां प्रीतिमगच्छत् कुरुनन्दन ॥ १३
चिन्तयंश्च महातेजा गुणान् रामस्य वीर्यवान् ।
अभ्यभाषत भद्रं ते प्रीयमाणः पुरोहितम् ॥ १४
अद्य पुष्यो निशि ब्रह्मन् पुण्यं योगमुपैष्यति ।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां मे रामश्चोपनिमन्त्र्यताम्॥
इति तद्राजवचनं प्रतिश्रुत्याथ मन्थरा ।
कैकेयीमभिगम्येदं काले वचनमब्रवीत् ॥ १६
अद्य कैकेयि दौर्भाग्यं राज्ञा ते ख्यापितं महत् ।
आशीविषस्त्वां सङ्क्रुद्धश्चण्डो दशतु दुर्भगे॥१७
सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते ।
कुतो हि तव सौभाग्यं यस्याः पुत्रो न राज्यभाक्
सा तद्वचनमाज्ञाय सर्वाभरणभूषिता ।
वेदीविलग्नमध्येव बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ १९
विविक्ते पतिमासाद्य हसन्तीव शुचिस्मिता ।
प्रणयं व्यञ्जयन्तीव मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २०
सत्यप्रतिज्ञ यन्मे त्वं काममेकं निसृष्टवान् ।
उपाकुरुष्व तद्राजंस्तस्मान्मुच्यस्व सङ्कटात् २१
राजोवाच ।
वरं ददानि ते हन्त तद्गृहाण यदिच्छसि ।
अवध्यो वध्यतां कोऽद्य वध्यः कोऽद्य विमुच्यताम्
धनं ददानि कस्याद्य ह्रियतां कस्य वा पुनः ।
ब्राह्मणस्वादिहान्यत्र यत्किञ्चिद्वित्तमस्ति मे ॥२३
पृथिव्यां राजराजोऽस्मि चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
यस्तेऽभिलषितः कामो ब्रूहि कल्याणि मा चिरम्
सा तद्वचनमाज्ञाय परिगृह्य नराधिपम् ।
आत्मनो बलमाज्ञाय तत एनमुवाच ह ॥ २५
आभिषेचनिकं यत् ते रामार्थमुपकल्पितम् ।
भरतस्तदवाप्नोतु वनं गच्छतु राघवः ॥ २६
स तद्राजा वचः श्रुत्वा विप्रियं दारुणोदयम् ।
दुःखार्तो भरतश्रेष्ठ न किञ्चिद्व्याजहार ह ॥ २७
ततस्तथोक्तं पितरं रामो विज्ञाय वीर्यवान् ।
वनं प्रतस्थे धर्मात्मा राजा सत्यो भवत्विति २८
तमन्वगच्छल्लक्ष्मीवान् धनुष्माँल्लक्ष्मणस्तदा ।
सीता च भार्या भद्रं ते वैदेही जनकात्मजा २९
ततो वनं गते रामे राजा दशरथस्तदा ।
समयुज्यत देहस्य कालपर्यायधर्मणा ॥ ३०
रामं तु गतमाज्ञाय राजानं च तथागतम् ।
आनाय्य भरतं देवी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१

२७७

उक्तमिति ॥ १ ॥ रामपदं निर्वक्ति ज्येष्ठ इति ॥६॥ महान्तौ शत्रुजयक्षमौ बाहू यस्य तम् । दीर्घौ आजानुपर्यन्तौ बाहू यस्य तम् ॥९॥ सर्वशः अनुरक्ताः प्रकृतयः प्रजा यस्मिंस्तं सर्वानुरक्तप्रकृतिम् ॥ ११ ॥ भद्रं ते इति युधिष्ठिरं प्रति आशीर्वचनम् । पुरोहितं वसिष्ठम् ॥ १४ ॥ वेदीवत् विलग्नः कृशो मध्यो यस्याः ॥ १९ ॥ कामं वरम् । उपाकुरुष्व देहि सङ्कटात् कष्टात् ॥ २१ ॥ सीता लाङ्गलपद्धतिस्ततो जातत्वादियमपि सीता विदेहापत्यत्वाद्वैदेही ॥ २९ ॥ कालपर्यायधर्मणा मृत्युना ॥ ३० ॥

यतो दशरथः स्वर्गं वनस्थौ रामलक्ष्मणौ ।
गृहाण राज्यं विपुलं क्षेमं निहतकण्टकम् ॥ ३२
तामुवाच स धर्मात्मा नृशंसं बत ते कृतम् ।
पतिं हत्वा कुलं चेदमुत्साद्य धनलुब्धया ॥ ३३
अयशः पातयित्वा मे मूर्ध्नि त्वं कुलपांसने ।
सकामा भव मे मातरित्युक्त्वा प्ररुरोद ह ॥ ३४
स चारित्रं विशोध्याथ सर्वप्रकृतिसन्निधौ ।
अन्वयाद्भ्रातरं रामं विनिवर्तनलालसः ॥ ३५
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च सुदुःखितः
अग्रे प्रस्थाप्य यानैः स शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥३६
वसिष्ठवामदेवाभ्यां विप्रैश्चान्यैः सहस्रशः ।
पौरजानपदैः सार्धं रामानयनकाङ्क्षया ॥ ३७
ददर्श चित्रकूटस्थं स रामं सहलक्ष्मणम् ।
तापसानामलङ्कारं धारयन्तं धनुर्धरम् ॥ ३८
विसर्जितः स रामेण पितुर्वचनकारिणा ।
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं पुरस्कृत्यास्य पादुके ॥३९
रामस्तु पुनराशङ्क्य पौरजानपदागमम् ।
प्रविवेश महारण्यं शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥ ४०
सत्कृत्य शरभङ्गं स दण्डकारण्यमाश्रितः ।
नदीं गोदावरीं रम्यामाश्रित्य न्यवसत् तदा ४१
वसतस्तस्य रामस्य ततः शूर्पणखाकृतम् ।
खरेणासीन्महद्वैरं जनस्थाननिवासिना ॥ ४२
रक्षार्थं तापसानां तु राघवो धर्मवत्सलः ।
चतुर्दशसहस्राणि जघान भुवि राक्षसान् ॥ ४३
दूषणं च खरं चैव निहत्य सुमहाबलौ ।
चक्रे क्षेमं पुनर्धीमान् धर्मारण्यं स राघवः ॥ ४४
हतेषु तेषु रक्षःसु ततः शूर्पणखा पुनः ।
ययौ निकृत्तनासोष्ठी लङ्कां भ्रातुर्निवेशनम् ॥ ४५
ततो रावणमभ्येत्य राक्षसी दुःखमूर्छिता ।
पपात पादयोर्भ्रातुः संशुष्करुधिरानना ॥ ४६
तां तथा विकृतां दृष्ट्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
उत्पपातासनात् क्रुद्धो दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ ४७
स्वानमात्यान् विसृज्याथ विविक्ते तामुवाच सः
केनास्येवं कृता भद्रे मामचिन्त्यावमन्य च ॥ ४८
कः शूलं तीक्ष्णमासाद्य सर्वगात्रैर्निषेवते ।
कः शिरस्यग्निमाधाय विश्वस्तः स्वपते सुखम् ॥ ४९
आशीविषं घोरतरं पादेन स्पृशतीह कः ।
सिंहं केसरिणं कश्च दंष्ट्रायां स्पृश्य तिष्ठति ॥ ५०
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ।
निश्चेरुर्दह्यतो रात्रौ वृक्षस्येव स्वरन्ध्रतः ॥ ५१
तस्य तत् सर्वमाचख्यौ भगिनी रामविक्रमम् ।
खरदूषणसंयुक्तं राक्षसानां पराभवम् ॥ ५२
स निश्चित्य ततः कृत्यं स्वसारमुपसान्त्व्य च ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे राजा विधाय नगरे विधिम् ॥ ५३
त्रिकूटं समतिक्रम्य कालपर्वतमेव च ।
ददर्श मकरावासं गम्भीरोदं महोदधिम् ॥ ५४
तमतीत्याथ गोकर्णमभ्यगच्छद्दशाननः ।
दयितं स्थानमव्यग्रं शूलपाणेर्महात्मनः ॥ ५५
तत्राभ्यगच्छन्मारीचं पूर्वामात्यं दशाननः ।
पुरा रामभयादेव तापस्यं समुपाश्रितम् ॥ ५६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामवनाभिगमने सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

## २७८

मार्कण्डेय उवाच ।
मारीचस्त्वथ सम्भ्रान्तो दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
पूजयामास सत्कारैः फलमूलादिभिस्ततः ॥ १
विश्रान्तं चैनमासीनमन्वासीनः स राक्षसः ।
उवाच प्रसृतं वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् २

चारित्र्यं विशोध्य इदं कैकेय्यैव कृतं न तु मयेति प्रदर्श्य ॥ ३५ ॥ सिंहं हिंस्रं केसरिणं सटावन्तं मृगराजम् ॥ ५० ॥ स्रोतोभ्यश्चक्षुरादिरन्ध्रेभ्यः तेजसोऽर्चिषोऽग्नेर्ज्वालाः ॥५१॥ खरदूषणसंयुक्तं तत्पराभवसहितम् ॥५२॥ विधिं रक्षाम् ॥ ५३ ॥ पुरा रामभयात् विश्वामित्रयज्ञप्रसङ्गेन् जातात् ॥५४॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

२७८

मारीच इति ॥ १ ॥ प्रसृतं पुष्कलार्थवत् ॥ २ ॥

न ते प्रकृतिमान् वर्णः कच्चित् क्षेमं पुरे तव ।
कच्चित् प्रकृतयः सर्वा भजन्ते त्वां यथा पुरा ॥३
किमिहागमने चापि कार्यं ते राक्षसेश्वर ।
कृतमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ४
शशंस रावणस्तस्मै तत् सर्वं रामचेष्टितम् ।
समासेनैव कार्याणि क्रोधामर्षसमन्वितः ॥ ५
मारीचस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा समासेनैव रावणम् ।
अलं ते राममासाद्य वीर्यज्ञो ह्यस्मि तस्य वै॥ ६
बाणवेगं हि कस्तस्य शक्तः सोढुं महात्मनः ।
प्रव्रज्यायां हि मे हेतुः स एव पुरुषर्षभः ॥ ७
विनाशमुखमेतत् ते केनाख्यातं दुरात्मना ।
तमुवाचाथ सक्रोधो रावणः परिभर्त्सयन् ॥ ८
अकुर्वतोऽस्मद्वचनं स्यान्मृत्युरपि ते ध्रुवम् ।
मारीचश्चिन्तयामास विशिष्टान्मरणं वरम् ॥ ९
अवश्यं मरणे प्राप्ते करिष्याम्यस्य यन्मतम् ।
ततस्तं प्रत्युवाचाथ मारीचो रक्षसां वरम् ॥ १०
किं ते साह्यं मया कार्यं करिष्याम्यवशोऽपि तत्
तमब्रवीद्दशग्रीवो गच्छ सीतां प्रलोभय ॥ ११
रत्नशृङ्गो मृगो भूत्वा रत्नचित्रतनूरुहः ।
ध्रुवं सीता समालक्ष्य त्वां रामं चोदयिष्यति १२
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे सीता वश्या भविष्यति ।
तामादायापनेष्यामि ततः स न भविष्यति ॥१३
भार्यावियोगाद्दुर्बुद्धिरेतत् साह्यं कुरुष्व मे ।
इत्येवमुक्तो मारीचः कृत्वोदकमथात्मनः ॥ १४
रावणं पुरतो यान्तमन्वगच्छत् सुदुःखितः ।
ततस्तस्याश्रमं गत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ १५
चक्रतुस्तद्यथा सर्वमुभौ यत् पूर्वमन्त्रितम् ।
रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक्॥
मृगश्च भूत्वा मारीचस्तं देशमुपजग्मतुः ।
दर्शयामास मारीचो वैदेहीं मृगरूपधृक् ॥ १७
चोदयामास तस्यार्थे सा रामं विधिचोदिता ।
रामस्तस्याः प्रियं कुर्वन् धनुरादाय सत्वरः ॥ १८
रक्षार्थे लक्ष्मणं न्यस्य प्रययौ मृगलिप्सया ।
स धन्वी बद्धतूणीरः खड्गगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ १९
अन्वधावन्मृगं रामो रुद्रस्तारामृगं यथा ।
सोऽन्तर्हितः पुनस्तस्य दर्शनं राक्षसो व्रजन्॥२०
चकर्ष महदध्वानं रामस्तं बुबुधे ततः ।
निशाचरं विदित्वा तं राघवः प्रतिभानवान्॥२१
अमोघं शरमादाय जघान मृगरूपिणम् ।
स रामबाणाभिहतः कृत्वा रामस्वरं तदा ॥ २२
हा सीते लक्ष्मणेत्येवं चुक्रोशार्तस्वरेण ह ।
शुश्राव तस्य वैदेही ततस्तां करुणां गिरम् ॥२३
सा प्राद्रवद्यतः शब्दस्तामुवाचाथ लक्ष्मणः ।
अलं ते शङ्कया भीरु को रामं प्रहरिष्यति ॥ २४
मुहूर्ताद्द्रक्ष्यसे रामं भर्तारं त्वं शुचिस्मिते ।
इत्युक्ता सा प्ररुदती पर्यशङ्कत लक्ष्मणम् ॥ २५
हता वै स्त्रीस्वभावेन शुक्लचारित्रभूषणा ।
सा तं परुषमारब्धा वक्तुं साध्वी पतिव्रता ॥ २६
नैष कामो भवेन्मूढ यं त्वं प्रार्थयसे हृदा ।
अप्यहं शस्त्रमादाय हन्यामात्मानमात्मना ॥ २७
पतेयं गिरिशृङ्गाद्वा विशेयं वा हुताशनम् ।
रामं भर्तारमुत्सृज्य न त्वहं त्वां कथञ्चन ॥ २८
निहीनमुपतिष्ठेयं शार्दूली क्रोष्टुकं यथा ।
एतादृशं वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः प्रियराघवः ॥ २९
पिधाय कर्णौ सद्वृत्तः प्रस्थितो येन राघवः ।
स रामस्य पदं गृह्य प्रससार धनुर्धरः ॥ ३०
अवीक्षमाणो बिम्बोष्ठीं प्रययौ लक्ष्मणस्तदा ।
एतस्मिन्नन्तरे रक्षो रावणः प्रत्यदृश्यत ॥ ३१
अभव्यो भव्यरूपेण भस्मच्छन्न इवानलः ।
यतिवेषप्रतिच्छन्नो जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम् ॥ ३२
सा तमालक्ष्य सम्प्राप्तं धर्मज्ञा जनकात्मजा ।
निमन्त्रयामास तदा फलमूलाशनादिभिः ॥ ३३
अवमन्य ततः सर्वं स्वरूपं प्रत्यपद्यत ।
सान्त्वयामास वैदेहीमिति राक्षसपुङ्गवः ॥ ३४
सीते राक्षसराजोऽहं रावणो नाम विश्रुतः ।
मम लङ्का पुरी नाम्ना रम्या पारे महोदधेः ॥ ३५
तत्र त्वं नरनारीषु शोभिष्यसि मया सह ।
भार्या मे भव सुश्रोणि तापसं त्यज राघवम्॥३६
एवमादीनि वाक्यानि श्रुत्वा तस्याथ जानकी ।
पिधाय कर्णौ सुश्रोणी मैवमित्यब्रवीद्वचः ॥ ३७
प्रपतेद्द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ।
शैत्यमग्निरियान्नाहं त्यजेयं रघुनन्दनम् ॥ ३८

राममासाद्य अलम् । सागं नैवासादयेरित्यर्थः । 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' इति निषेधार्थकालंशब्दयोगे क्त्वाप्रत्ययः ॥ ६ ॥ उदकमौर्ध्वदेहिकम् ॥ १४ ॥ गोधा ज्याघातवारणं अङ्गुलित्रं च तद्वान्॥१९॥ तारामृगं तारारूपं मृगं प्रजापतिः स्वां दुहितरं मृगो भूत्वा जगाम तस्य रुद्रः शिरोऽच्छिनत् तदेतन्मृगशीर्षं नाम नक्षत्रम् ॥ २० ॥ पर्यशङ्कत लक्ष्मणो मय्यभिलाषवानिति शङ्कामकरोत्॥२५॥

कथं हि भिन्नकरटं पद्मिनं वनगोचरम् ।
उपस्थाय महानागं करेणुः सूकरं स्पृशेत् ॥ ३९
कथं हि पीत्वा माध्वीकं पीत्वा च मधुमाधवीम्
लोभं सौवीरके कुर्यान्नारी काचिदिति स्मरेत् ॥
इति सा तं समाभाष्य प्रविवेशाश्रमं ततः ।
क्रोधात् प्रस्फुरमाणौष्ठी विधुन्वाना करौ मुहुः॥
तामभिद्रुत्य सुश्रोणीं रावणः प्रत्यषेधयत् ।
भर्त्सयित्वा तु रूक्षेण स्वरेण गतचेतनाम् ॥ ४२
मूर्धजेषु निजग्राह ऊर्ध्वमाचक्रमे ततः ।
तां ददर्श ततो गृध्रो जटायुर्गिरिगोचरः ।
रुदतीं रामरामेति ह्रियमाणां तपस्विनीम् ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि मारीचवधे सीताहरणे च अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥

## २७९

मार्कण्डेय उवाच ।
सखा दशरथस्यासीज्जटायुररुणात्मजः ।
गृध्रराजो महावीरः सम्पातिर्यस्य सोदरः ॥ १
स ददर्श तदा सीतां रावणाङ्कगतां स्नुषाम् ।
सक्रोधोऽभ्यद्रवत् पक्षी रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ २
अथैनमब्रवीद्गृध्रो मुञ्च मुञ्चस्व मैथिलीम् ।
ध्रियमाणे मयि कथं हरिष्यसि निशाचर ॥ ३
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृज्यसे वधूम् ।
उक्त्वैवं राक्षसेन्द्रं तं चकर्त नखरैर्भृशम् ॥ ४
पक्षतुण्डप्रहारैश्च शतशो जर्जरीकृतम् ।
चक्षार रुधिरं भूरि गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ५
स वध्यमानो गृध्रेण रामप्रियहितैषिणा ।
खड्गमादाय चिच्छेद भुजौ तस्य पतत्रिणः॥ ६
निहत्य गृध्रराजं स भिन्नाभ्रशिखरोपमम् ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे सीतां गृहीत्वाऽङ्केन राक्षसः ॥ ७
यत्र यत्र तु वैदेही पश्यत्याश्रममण्डलम् ।
सरो वा सरितो वाऽपि तत्र मुञ्चति भूषणम्॥८
सा ददर्श गिरिप्रस्थे पञ्च वानरपुङ्गवान् ।
तत्र वासो महद्दिव्यमुत्ससर्ज मनस्विनी ॥ ९
तत् तेषां वानरेन्द्राणां पपात पवनोद्धतम् ।
मध्ये सुपीतं पञ्चानां विद्युन्मेघान्तरे यथा ॥ १०
अचिरेणातिचक्राम खेचरः खे चरन्निव ।
ददर्शाथ पुरीं रम्यां बहुद्वारां मनोरमाम् ॥ ११
प्राकारवप्रसम्बाधां निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां ससीतो राक्षसेश्वरः ॥ १२
एवं हृतायां वैदेह्यां रामो हत्वा महामृगम् ।
निवृत्तो ददृशे धीमान् भ्रातरं लक्ष्मणं तथा १३
कथमुत्सृज्य वैदेहीं वने राक्षससेविते ।
इति तं भ्रातरं दृष्ट्वा प्राप्तोऽसीति व्यगर्हयत् १४
मृगरूपधरेणाथ रक्षसा सोपकर्षणम् ।
भ्रातुरागमनं चैव चिन्तयन् पर्यतप्यत ॥ १५
गर्हयन्नेव रामस्तु त्वरितस्तं समासदत् ।
अपि जीवति वैदेहीमिति पश्यामि लक्ष्मण १६
तस्य तत् सर्वमाचख्यौ सीताया लक्ष्मणो वचः।
यदुक्तवत्यसदृशं वैदेही पश्चिमं वचः ॥ १७
दह्यमानेन तु हृदा रामोऽभ्यपतदाश्रमम् ।
स ददर्श तदा गृध्रं निहतं पर्वतोपमम् ॥ १८
राक्षसं शङ्कमानस्तं विकृष्य बलवद्धनुः ।
अभ्यधावत काकुत्स्थस्ततस्तं सहलक्ष्मणः ॥ १९
स तावुवाच तेजस्वी सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
गृध्रराजोऽस्मि भद्रं वां सखा दशरथस्य वै ॥२०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स गृह्य धनुषी शुभे ।
कोऽयं पितरमस्माकं नाम्नाऽऽहेत्यूचतुश्च तौ २१

---

भिन्नकरटं भिन्नगण्डस्थलं मत्तम् । करेणुर्हस्तिनी ॥ ३९ ॥ माध्वीकं मधुपुष्पजं मद्यं मधुमाधवीं क्षौद्रजां सुरां सौवीरं काञ्जिकम्॥ ४० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥

२७९

सखेति ॥ १ ॥ स्वमैथिलीं स्वा चासौ मैथिली । स्वा आत्मीया स्नुषा मैथिलस्नुतेत्यर्थः ध्रियमाणे जीवति ॥ ३ ॥ नखरैः नखैस्तीक्ष्णैः ॥ ६ ॥ चक्षार सुस्राव ॥ ५ ॥ अङ्केन उत्सङ्गेन ॥ ७ ॥ गिरिप्रस्थे पर्वतशिखरे 'प्रस्थो स्त्रियां मानभेदे सानावत्युच्चवस्तुनि' इति मेदिनी ॥ ९ ॥ प्राकारः परिधिभित्तिः वप्रस्तद्बाह्यं वेणुमयं दुर्गं ताभ्यां सम्बाधा दुर्गमां 'वप्रः स्थाने पुमानस्त्री वेणुक्षेत्रे चपेटके' इति मेदिनी ॥ १२ ॥ कथं प्राप्तोऽसीति सम्बन्धः ॥ १४ ॥ वां युवयोः ॥ २० ॥ आह ब्रूते ॥ २१ ॥

स बध्यमानो गृध्रेण रामप्रियहितैषिणा ।
खड्गमादाय चिच्छेद भुजौ तस्य पतत्रिणः ॥

—वनपर्व अ. २७९ पृ. ४४०

ततो ददृशतुस्तौ तं छिन्नपक्षद्वयं खगम् ।
तयोः शशंस गृध्रस्तु सीतार्थे रावणाद्वधम् २२
अपृच्छद्राघवो गृध्रं रावणः कां दिशं गतः ।
तस्य गृध्रः शिरः कम्पैराचचक्षे ममार च ॥ २३
दक्षिणामिति काकुत्स्थो विदित्वाऽस्य तदिङ्गितम्
सत्कारं लम्भयामास सखायं पूजयन् पितुः॥२४
ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं व्यपविद्धबृसीमठम् ।
विध्वस्तकलशं शून्यं गोमायुशतसङ्कुलम् ॥२५
दुःखशोकसमाविष्टौ वैदेहीहरणार्दितौ ।
जग्मतुर्दण्डकारण्यं दक्षिणेन परन्तपौ ॥ २६
वने महति तस्मिंस्तु रामः सौमित्रिणा सह ।
ददर्श मृगयूथानि द्रवमाणानि सर्वशः ॥ २७
शब्दं च घोरं सत्वानां दावाग्नेरिव वर्धतः ।
अपश्येतां मुहूर्ताच्च कबन्धं घोरदर्शनम् ॥ २८
मेघपर्वतसंकाशं शालस्कन्धं महाभुजम् ।
उरोगतविशालाक्षं महोदरमहामुखम् ॥ २९
यदृच्छयाऽथ तद्रक्षः करे जग्राह लक्ष्मणम् ।
विषादमगमत् सद्यः सौमित्रिरथ भारत ॥ ३०
स राममभिसम्प्रेक्ष्य कृष्यते येन तन्मुखम् ।
विषण्णश्चाब्रवीद्रामं पश्यावस्थामिमां मम ॥ ३१
हरणं चैव वैदेह्या मम चायमुपप्लवः ।
राज्यभ्रंशश्च भवतस्तातस्य मरणं तथा ॥ ३२
नाहं त्वां सह वैदेह्या समेतं कोसलागतम् ।
द्रक्ष्यामि पृथिवी राज्ये पितृपैतामहे स्थितम् ३३
द्रक्ष्यन्त्यार्यस्य धन्या ये कुशलाजशमीदलैः ।
अभिषिक्तस्य वदनं सोमं शान्तघनं यथा ॥ ३४
एवं बहुविधं धीमान् विललाप सलक्ष्मणः ।
तमुवाचाथ काकुत्स्थः सम्भ्रमेष्वप्यसम्भ्रमः ३५
मा विषीद नरव्याघ्र नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
छिन्ध्यस्य दक्षिणं बाहुं छिन्नः सव्यो मया भुजः
इत्येवं वदता तस्य भुजो रामेण पातितः ।
खड्गेन भृशतीक्ष्णेन निकृत्तस्तिलकाण्डवत् ॥ ३७
ततोऽस्य दक्षिणं बाहुं खड्गेनाजघ्निवान् बली ।
सौमित्रिरपि सम्प्रेक्ष्य भ्रातरं राघवं स्थितम् ३८
पुनर्जघान पार्श्वे वै तद्रक्षो लक्ष्मणो भृशम् ।
गतासुरपतद्भूमौ कबन्धः सुमहांस्ततः ॥ ३९
तस्य देहाद्विनिःसृत्य पुरुषो दिव्यदर्शनः ।
ददृशे दिवमास्थाय दिवि सूर्य इव ज्वलन् ॥ ४०
पप्रच्छ रामस्तं वाग्मी कस्त्वं प्रब्रूहि पृच्छतः ।
कामया किमिदं चित्रमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४१
तस्याचचक्षे गन्धर्वो विश्वावसुरहं नृप ।
प्राप्तो ब्राह्मणशापेन योनिं राक्षससेविताम् ॥ ४२
रावणेन हृता सीता राज्ञा लङ्काधिवासिना ।
सुग्रीवमभिगच्छस्व स ते साह्यं करिष्यति ॥ ४३
एषा पम्पा शिवजला हंसकारण्डवायुता ।
ऋष्यमूकस्य शैलस्य सन्निकर्षे तटाकिनी ॥ ४४
वसते तत्र सुग्रीवश्चतुर्भिः सचिवैः सह ।
भ्राता वानरराजस्य वालिनो हेममालिनः ॥ ४५
तेन त्वं सह सङ्गम्य दुःखमूलं निवेदय ।
समानशीलो भवतः साहाय्यं स करिष्यति ४६
एतावच्छक्यमस्माभिर्वक्तुं द्रष्टाऽसि जानकीम् ।
ध्रुवं वानरराजस्य विदितो रावणालयः ॥ ४७
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो दिव्यः पुरुषः स महाप्रभः ।
विस्मयं जग्मतुश्चोभौ प्रवीरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कबन्धहनने
ऊनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

## २८०

मार्कण्डेय उवाच ।
ततोऽविदूरे नलिनीं प्रभूतकमलोत्पलाम् ।
सीताहरणदुःखार्तः पम्पां रामः समासदत् ॥ १
मारुतेन सुशीतेन सुखेनामृतगन्धिना ।
सेव्यमानो वने तस्मिन् जगाम मनसा प्रियाम् २

उरसि नेत्रे उदरे मुखं च यस्य । कबन्धः शीर्षहीनः पुमान् ॥ २९ ॥ येन यतः तन्मुखं ततः कृष्यते ॥ ३१ ॥ एवं बहुविधं रामसमब्रवीत् असम्भ्रमः निर्भयः ॥ ३५ ॥ विनिःसृत्य दिव्यदर्शनोऽभूत् पुरुषः कबन्धदेहधारी स च ददृशे दृष्टः ॥ ४० ॥ कामया इच्छया ॥ ४१ ॥ पम्पा नाम तटाकिनी सरसी ॥ ४४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७९॥

२८०

तत इति । अविदूरे समीपे नलिनीं पुष्करिणीं उत्पलानि कुमुदानि॥ १ ॥ अमृतगन्धिना अमृतसदृशेन ॥ २ ॥

विललाप स राजेन्द्रस्तत्र कान्तामनुस्मरन् ।
कामबाणाभिसन्तप्तः सौमित्रिस्तमथाब्रवीत् ॥ ३
न त्वामेवंविधो भावः स्प्रष्टुमर्हति मानद ।
आत्मवन्तमिव व्याधिः पुरुषं वृद्धशीलिनम् ॥ ४
प्रवृत्तिरुपलब्धा ते वैदेह्या रावणस्य च ।
तां त्वं पुरुषकारेण बुद्ध्या चैवोपपादय ॥ ५
अभिगच्छाव सुग्रीवं शैलस्थं हरिपुङ्गवम् ।
मयि शिष्ये च भृत्ये च सहाये च समाश्वस ॥ ६
एवं बहुविधैर्वाक्यैर्लक्ष्मणेन स राघवः ।
उक्तः प्रकृतिमापेदे कार्ये चानन्तरोऽभवत् ॥ ७
निषेव्य वारि पम्पायास्तर्पयित्वा पितॄनपि ।
प्रतस्थतुरुभौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ८
तावृष्यमूकमभ्येत्य बहुमूलफलद्रुमम् ।
गिर्यग्रे वानरान् पञ्च वीरौ ददृशतुस्तदा ॥ ९
सुग्रीवः प्रेषयामास सचिवं वानरं तयोः ।
बुद्धिमन्तं हनूमन्तं हिमवन्तमिव स्थितम् ॥ १०
तेन सम्भाष्य पूर्वं तौ सुग्रीवमभिजग्मतुः ।
सख्यं वानरराजेन चक्रे रामस्तदा नृप ॥ ११
तद्वासो दर्शयामासुस्तस्य कार्ये निवेदिते ।
वानराणां तु यत्सीता ह्रियमाणा व्यपासृजत् १२
तत् प्रत्ययकरं लब्ध्वा सुग्रीवं प्लवगाधिपम् ।
पृथिव्यां वानरैश्वर्ये स्वयं रामोऽभ्यषेचयत् ॥ १३
प्रतिजज्ञे च काकुत्स्थः समरे वालिनो वधम् ।
सुग्रीवश्चापि वैदेह्याः पुनरानयनं नृप ॥ १४
इत्युक्त्वा समयं कृत्वा विश्वास्य च परस्परम् ।
अभ्येत्य सर्वे किष्किन्धां तस्थुर्युद्धाभिकाङ्क्षिणः॥
सुग्रीवः प्राप्य किष्किन्धां ननादौघनिभस्वनः ।
नास्य तन्ममृषे वाली तारा तं प्रत्यषेधयत् ॥ १६
यथा नदति सुग्रीवो बलवानेष वानरः ।
मन्ये चाश्रयवान् प्राप्तो न त्वं निष्क्रान्तुमर्हसि ॥
हेममाली ततो वाली तारां ताराधिपाननाम् ।
प्रोवाच वचनं वाग्मी तां वानरपतिः पतिः ॥ १८
सर्वभूतरुतज्ञा त्वं पश्य बुद्ध्या समन्विता ।
केन चाश्रयवान् प्राप्तो ममैष भ्रातृगन्धिकः॥ १९
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु तारा ताराधिपप्रभा ।
पतिमित्यब्रवीत् प्राज्ञा शृणु सर्वं कपीश्वर ॥ २०
हृतदारो महासत्त्वो रामो दशरथात्मजः ।
तुल्यारिमित्रतां प्राप्तः सुग्रीवेण धनुर्धरः ॥ २१
भ्राता चास्य महाबाहुः सौमित्रिरपराजितः ।
लक्ष्मणो नाम मेधावी स्थितः कार्यार्थसिद्धये २२
मैन्दश्च द्विविदश्चापि हनूमांश्चानिलात्मजः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च सुग्रीवसचिवाः स्थिताः॥ २३
सर्व एते महात्मनो बुद्धिमन्तो महाबलाः ।
अलं तव विनाशाय रामवीर्यबलाश्रयात् ॥ २४
तस्यास्तदाक्षिप्य वचो हितमुक्तं कपीश्वरः ।
पर्यशङ्कत तामीर्षुः सुग्रीवगतमानसाम् ॥ २५
तारां परुषमुक्त्वा तु निर्जगाम गुहामुखात् ।
स्थितं माल्यवतोऽभ्याशे सुग्रीवं सोऽभ्यभाषत॥
असकृत् त्वं मया पूर्वं निर्जितो जीवितप्रियः ।
मुक्तो §ज्ञातिरिति ज्ञात्वा का त्वरा मरणे पुनः २७
इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो भ्रातरं हेतुमद्वचः ।
प्राप्तकालममित्रघ्नो रामं सम्बोधयन्निव ॥ २८
हृतराज्यस्य मे राजन् हृतदारस्य च त्वया ।
किं मे जीवितसामर्थ्यमिति विद्धि समागतम् २९
एवमुक्त्वा बहुविधं ततस्तौ सन्निपेततुः ।
समरे वालिसुग्रीवौ शालतालशिलायुधौ ॥ ३०
उभौ जघ्नतुरन्योन्यमुभौ भूमौ निपेततुः ।
उभौ ववल्गतुश्चित्रं मुष्टिभिश्च निजघ्नतुः ॥ ३१
उभौ रुधिरसंसिक्तौ नखदन्तपरिक्षतौ ।
शुशुभाते तदा वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ३२
न विशेषस्तयोर्युद्धे यदा कश्चन दृश्यते ।
सुग्रीवस्य तदा मालां हनुमान् कण्ठ आसजत् ३३
स मालया तदा वीरः शुशुभे कण्ठसक्तया ।
श्रीमानिव महाशैलो मलयो मेघमालया ॥ ३४
कृतचिह्नं तु सुग्रीवं रामो दृष्ट्वा महाधनुः ।
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठं वालिमुद्दिश्य लक्ष्यवत् ३५
विस्फारस्तस्य धनुषो यन्त्रस्येव तदा बभौ ।
वितत्रास तदा वाली शरेणाभिहतोरसि ॥ ३६
स भिन्नहृदयो वाली वक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ।
ददर्शावस्थितं रामं ततः सौमित्रिणा सह ॥ ३७
गर्हयित्वा स काकुत्स्थं पपात भुवि मूर्छितः ।
तारा ददर्श तं भूमौ तारापतिसमौजसम् ॥ ३८
हते वालिनि सुग्रीवः किष्किन्धां प्रत्यपद्यत ।
तां च तारापतिमुखीं तारां निपतितेश्वराम् ३९

---

उपपादय सफलां कुरु ॥ ५ ॥ अनन्तरः संलग्नः ॥ ७ ॥ ऋष्यमूकं पर्वतम् ॥९॥ ओघो जनवृन्दस्तन्निभः स्वनो यस्य ' ओघो वेगे जलस्य च । वृन्दे परम्परायां च ' इति मेदिनी ॥ १६ ॥ आश्रयवान् परबलाश्रितः ॥ १७ ॥ ईर्षुः ईर्ष्यालुः ॥ २५ ॥ जीवितसामर्थ्यं जीवनस्य श्लाध्यत्वम् ॥ २९ ॥ § गच्छासि दुर्बुद्धे कथङ्कारं रणे-ख.

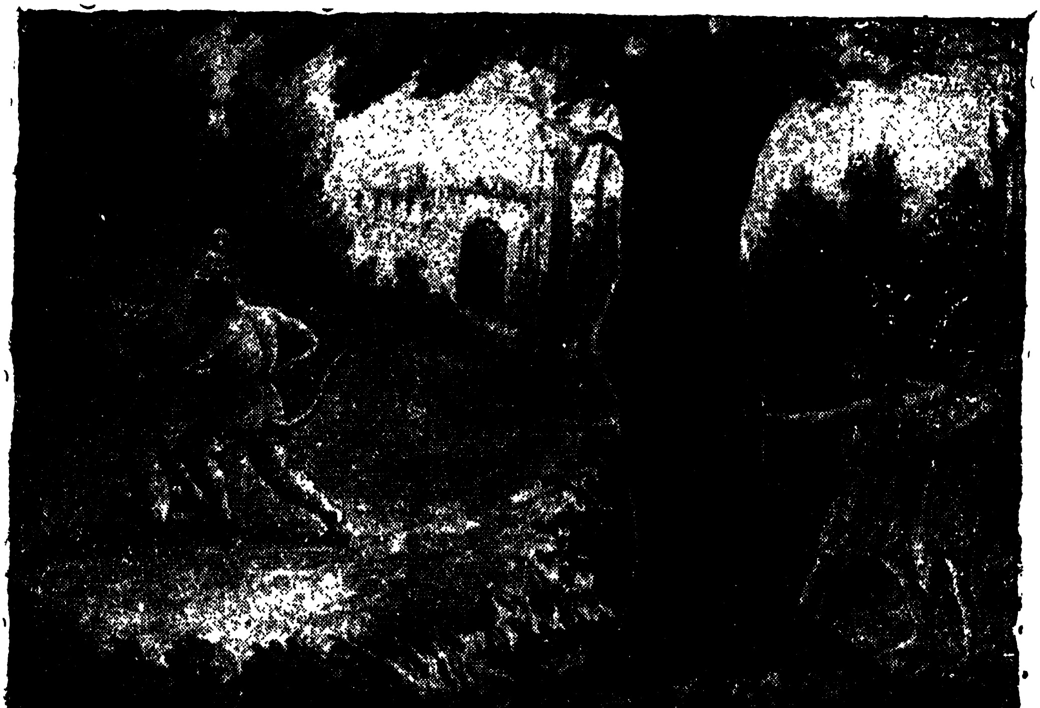

कृतचिन्हं तु सुग्रीवं रामो दृष्ट्वा महाधनुः ॥
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठं वालिमुद्दिश्य लक्ष्यवित् ॥
—वनपर्व अ० २८० पृ. ४४२.

रावणोऽपि पुरीं गत्वा लङ्कां कामबलात्कृतः ।
सीतां निवेशयामास भवने नन्दनोपमे ॥
अशोकवनिकाभ्याशे तापसाश्रमसन्निभे ।
उपवासतपःशीला तत्रास पृथुलेक्षणा ॥

—वनपर्व अ. २८० पृ. ४४३

रामस्तु चतुरो मासान् पृष्ठे माल्यवतः शुभे ।
निवासमकरोद्धीमान् सुग्रीवेणाभ्युपस्थितः ॥ ४०
रावणोऽपि पुरीं गत्वा लङ्कां कामबलात्कृतः ।
सीतां निवेशयामास भवने नन्दनोपमे ॥ ४१
अशोकवनिकाभ्याशे तापसाश्रमसन्निभे ।
भर्तृस्मरणतन्वङ्गी तापसी वेषधारिणी ॥ ४२
उपवासतपःशीला तत्रास पृथुलेक्षणा ।
उवास दुःखवसतिं फलमूलकृताशना ॥ ४३
दिदेश राक्षसीस्तत्र रक्षणे राक्षसाधिपः ।
प्रासासिशूलपरशुमुद्गरालातधारिणीः ॥ ४४
द्व्यक्षीं त्र्यक्षीं ललाटाक्षीं दीर्घजिह्वामजिह्विकाम् ।
त्रिस्तनीमेकपादां च त्रिजटामेकलोचनाम् ॥ ४५
एताश्चान्याश्च दीप्ताक्ष्यः करभोत्कटमूर्द्धजाः ।
परिवार्यासते सीतां दिवारात्रमतन्द्रिताः ॥ ४६
तास्तु तामायतापाङ्गीं पिशाच्यो दारुणस्वराः ।
तर्जयन्ति सदा रौद्राः परुषव्यञ्जनस्वराः ॥ ४७
खादाम पाटयामैनां तिलशः प्रविभज्य ताम् ।
येयं भर्तारमस्माकमवमन्येह जीवति ॥ ४८
इत्येवं परिभर्त्सन्तीस्त्रास्यमानाः पुनः पुनः ।
भर्तृशोकसमाविष्टा निःश्वस्येदमुवाच ताः ॥ ४९
आर्याः खादत मां शीघ्रं न मे लोभोऽस्ति जीविते ।
विना तं पुण्डरीकाक्षं नीलकुञ्चितमूर्धजम् ॥ ५०
अप्येवाहं निराहारा जीवितप्रियवर्जिता ।
शोषयिष्यामि गात्राणि व्याली तालगता यथा ॥ ५१
न त्वन्यमभिगच्छेयं पुमांसं राघवादृते ।
इति जानीत सत्यं मे क्रियतां यदनन्तरम् ॥ ५२
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राक्षस्यस्ताः खरस्वनाः ।
आख्यातुं राक्षसेन्द्राय जग्मुस्तत्सर्वमादृताः ॥ ५३
गतासु तासु सर्वासु त्रिजटा नाम राक्षसी ।
सान्त्वयामास वैदेहीं धर्मज्ञा प्रियवादिनी ॥ ५४
सीते वक्ष्यामि ते किञ्चिद्विश्वासं कुरु मे सखि ।
भयं त्वं त्यज वामोरु शृणु चेदं वचो मम ॥ ५५
अविन्ध्यो नाम मेधावी वृद्धो राक्षसपुङ्गवः ।
स रामस्य हितान्वेषी त्वदर्थे हि स मावदत् ॥ ५६
सीता मद्वचनाद्वाच्या समाश्वास्य प्रसाद्य च ।
भर्ता ते कुशली रामो लक्ष्मणानुगतो बली ॥ ५७
सख्यं वानरराजेन शक्रप्रतिमतेजसा ।
कृतवान् राघवः श्रीमांस्त्वदर्थे च समुद्यतः ॥ ५८
मा + तेऽस्तु भयं भीरु रावणाल्लोकगर्हितात् ।
नलकूबरशापेन रक्षिता ह्यसि नन्दिनि ॥ ५९
शप्तो ह्येष पुरा पापो वधूं रम्भां परामृशन् ।
न शक्नोत्यवशां नारीमुपैतुमजितेन्द्रियः ॥ ६०
क्षिप्रमेष्यति ते भर्ता सुग्रीवेणाभिरक्षितः ।
सौमित्रिसहितो धीमांस्त्वां चेतो मोक्षयिष्यति ॥
स्वप्ना हि सुमहाघोरा दृष्टा मेऽनिष्टदर्शनाः ।
विनाशायास्य दुर्बुद्धेः पौलस्त्यकुलघातिनः ॥ ६२
दारुणो ह्येष दुष्टात्मा क्षुद्रकर्मा निशाचरः ।
स्वभावाच्छीलदोषेण सर्वेषां भयवर्धनः ॥ ६३
स्पर्धते सर्वदेवैर्यः कालोपहतचेतनः ।
मया विनाशलिङ्गानि स्वप्ने दृष्टानि तस्य वै ॥ ६४
तैलाभिषिक्तो विकचो मज्जन् पङ्के दशाननः ।
असकृत् खरयुक्ते तु रथे नृत्यन्निव स्थितः ॥ ६५
कुम्भकर्णादयश्चेमे नग्नाः पतितमूर्धजाः ।
गच्छन्ति दक्षिणामाशां रक्तमाल्यानुलेपनाः ॥ ६६
श्वेतातपत्रः सोष्णीषः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
श्वेतपर्वतमारूढ एक एव विभीषणः ॥ ६७
सचिवाश्चास्य चत्वारः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ।
श्वेतपर्वतमारूढा मोक्ष्यन्तेऽस्मान् महाभयात् ॥ ६८
रामस्यास्त्रेण पृथिवी परिक्षिप्ता ससागरा ।
यशसा पृथिवीं कृत्स्नां पूरयिष्यति ते पतिः ॥ ६९
अस्थिसञ्चयमारूढो भुञ्जानो मधुपायसम् ।
लक्ष्मणश्च मया दृष्टो दिधक्षुः सर्वतो दिशम् ॥ ७०
रुदती रुधिरार्द्राङ्गी व्याघ्रेण परिरक्षिता ।
असकृत्त्वं मया दृष्टा गच्छन्ती दिशमुत्तराम् ॥ ७१
हर्षमेष्यसि वैदेहि क्षिप्रं भर्त्रा समन्विता ।
राघवेण सह भ्रात्रा सीते त्वमचिरादिव ॥ ७२
इत्येतन्मृगशावाक्षी तच्छ्रुत्वा त्रिजटावचः ।
बभूवाशावती बाला पुनर्भर्तृसमागमे ॥ ७३
यावदभ्यागता रौद्राः पिशाच्यस्ताः सुदारुणाः ।
ददृशुस्तां त्रिजटया सहासीनां यथा पुरा ॥ ७४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि त्रिजटाकृतसीतासान्त्वने अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

---

करभोत्कटमूर्धजाः उष्ट्रसदृशकेशाः ॥ ४६ ॥ परुषव्यञ्जनस्वरात्मकाः शब्दा यासां ताः ॥ ४७ ॥ वधूं स्नुषाम् ॥ ६० ॥ परिक्षिप्ता व्याप्ता ॥ ६९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥ + अत्राहम्–ख.

## २८१

मार्कण्डेय उवाच ।
ततस्तां भर्तृशोकार्तां दीनां मलिनवाससम् ।
मणिशेषाभ्यलङ्कारां रुदतीं च पतिव्रताम् ॥ १
राक्षसीभिरुपास्यन्तीं समासीनां शिलातले ।
रावणः कामबाणार्तो ददर्शोपससर्प च ॥ २
देवदानवगन्धर्वयक्षकिंपुरुषैर्युधि ।
अजितोऽशोकवनिकां ययौ कन्दर्पपीडितः ॥ ३
दिव्याम्बरधरः श्रीमान् सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
विचित्रमाल्यमुकुटो वसन्त इव मूर्तिमान् ॥ ४
न कल्पवृक्षसदृशो यत्नादपि विभूषितः ।
श्मशानचैत्यद्रुमवद्भूषितोऽपि भयङ्करः ॥ ५
स तस्यास्तनुमध्यायाः समीपे रजनीचरः ।
ददृशे रोहिणीमेत्य शनैश्चर इव ग्रहः ॥ ६
स तामामन्त्र्य सुश्रोणीं पुष्पकेतुशराहतः ।
इदमित्यब्रवीद्वाक्यं त्रस्तां रौहीमिवाबलाम् ॥ ७
सीते पर्याप्तमेतावत्कृतो भर्तुरनुग्रहः ।
प्रसादं कुरु तन्वङ्गि क्रियतां परिकर्म ते ॥ ८
भजस्व मां वरारोहे महार्हाभरणाम्बरा ।
भव मे सर्वनारीणामुत्तमा वरवर्णिनी ॥ ९
सन्ति मे देवकन्याश्च गन्धर्वाणां च योषितः ।
सन्ति दानवकन्याश्च दैत्यानां चापि योषितः ॥
चतुर्दश पिशाचानां कोट्यो मे वचने स्थिताः ।
द्विस्तावत् पुरुषादानां रक्षसां भीमकर्मणाम् ११
ततो मे त्रिगुणा यक्षा ये मद्वचनकारिणः ।
केचिदेव धनाध्यक्षं भ्रातरं मे समाश्रिताः ॥ १२
गन्धर्वाप्सरसो भद्रे मामापानगतं सदा ।
उपतिष्ठन्ति वामोरु यथैव भ्रातरं मम ॥ १३
पुत्रोऽहमपि विप्रर्षेः साक्षाद्विश्रवसो मुनेः ।
पञ्चमो लोकपालानामिति मे प्रथितं यशः ॥१४
दिव्यानि भक्ष्यभोज्यानि पानानि विविधानि च
यथैव त्रिदशेशस्य तथैव मम भाविनि ॥ १५
क्षीयतां दुष्कृतं कर्म वनवासकृतं तव ।
भार्या मे भव सुश्रोणि यथा मन्दोदरी तथा ॥१६
इत्युक्ता तेन वैदेही परिवृत्य शुभानना ।
तृणमन्तरतः कृत्वा तमुवाच निशाचरम् ॥ १७
अशिवेनातिवामोरूरजस्रं नेत्रवारिणा ।
स्तनावपतितौ बाला संहतावभिवर्षती ॥ १८
उवाच वाक्यं तं क्षुद्रं वैदेही पतिदेवता ।
असकृद्वदतो वाक्यमीदृशं राक्षसेश्वर ॥ १९
विषादयुक्तमेतत् ते मया श्रुतमभाग्यया ।
तद्भद्रसुख भद्रं ते मानसं विनिवर्त्यताम् ॥ २०
परदाराऽस्म्यलभ्या च सततं च पतिव्रता ॥
न चैवौपयिकी भार्या मानुषी कृपणा तव ॥ २१
विवशां धर्षयित्वा च कां त्वं प्रीतिमवाप्स्यसि ।
प्रजापतिसमो विप्रो ब्रह्मयोनिः पिता तव ॥ २२
न च पालयसे धर्मं लोकपालसमः कथम् ।
भ्रातरं राजराजानं महेश्वरसखं प्रभुम् ॥ २३
धनेश्वरं व्यपदिशन् कथं त्विह न लज्जसे ।
इत्युक्त्वा प्रारुदत् सीता कम्पयन्ती पयोधरौ ॥२४
शिरोधरां च तन्वङ्गी मुखं प्रच्छाद्य वाससा ।
तस्या रुदत्या भाविन्या दीर्घा वेणी सुसंयता ॥२५
ददृशे स्वसिता स्निग्धा काली व्यालीव मूर्धनि ।
श्रुत्वा तद्रावणो वाक्यं सीतयोक्तं सुनिष्ठुरम् ॥२६
प्रत्याख्यातोऽपि दुर्मेधाः पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
काममङ्गानि मे सीते दुनोतु मकरध्वजः ॥ २७
न त्वामकामां सुश्रोणीं समेष्ये चारुहासिनीम् ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यत्त्वमद्यापि मानुषम् ॥ २८
आहारभूतमस्माकं राममेवानुरुध्यसे ॥ २९
इत्युक्त्वा तामनिन्द्याङ्गीं स राक्षसमहेश्वरः ।
तत्रैवान्तर्हितो भूत्वा जगामाभिमतां दिशम् ॥३०
राक्षसीभिः परिवृता वैदेही शोककर्शिता ।
सेव्यमाना त्रिजटया तत्रैव न्यवसत् तदा ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सीतारावणसंवादे एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

२८१

तत इति । मणिर्मङ्गलसूत्रगतः स एव शेषो येषां ते तत्सदृशा अभ्यलङ्कारा यस्यास्ताम् ॥ १ ॥ उपास्यन्तीं उपास्यमानाम् ॥ २ ॥ रौहीं हरिणीम् ॥ ७ ॥ परिकर्म वस्त्राभरणादिना प्रसाधनम् ॥ ८ ॥ हे भद्रसुख भद्रं कल्याणावहं सुखं यस्य । पारदार्यसुखं त्वकल्याणावहमिति भावः। विनिवर्त्यतां मत्त इति शेषः ॥ २० ॥ औपयिकी उपयोगार्हा॥२१॥ शिरो मुखं च प्रच्छाद्य धरां ददृशेऽदर्शयदिति-सम्बन्धः ॥ २५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

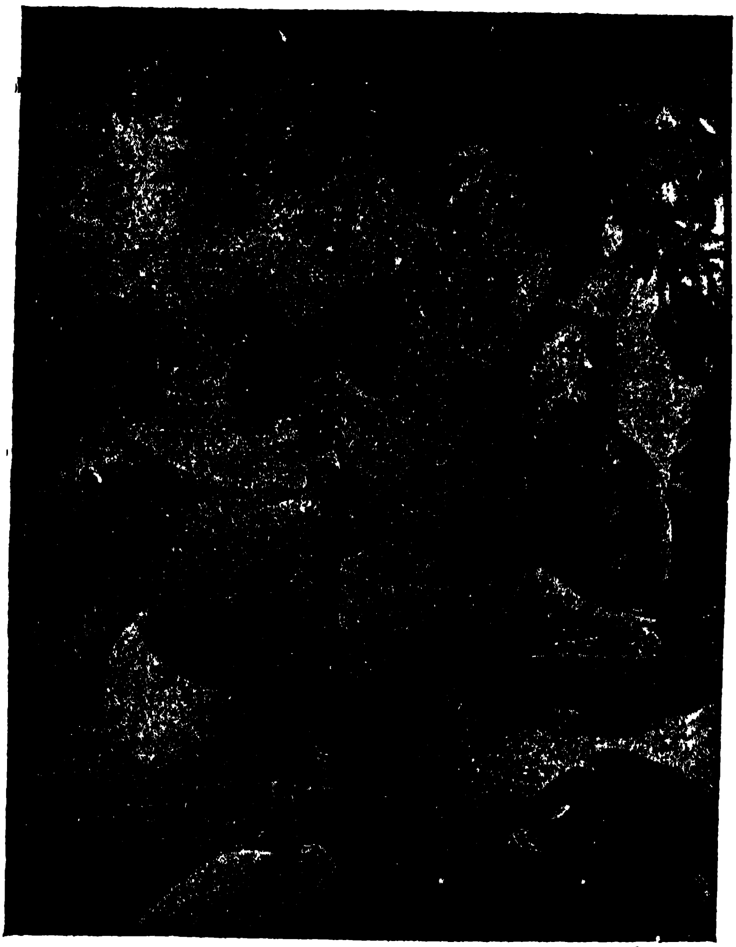

प्रासासिशूलपरशुमुद्गरालातधारिणीः ।
परिवार्यासते सीतां दिवारात्रमतंद्रिताः ॥
तर्जयन्ति सदा रौद्राः परुषव्यञ्जनस्वराः ।

—वनपर्व अ. २८० पृ. ४४३

## २८२

मार्कण्डेय उवाच ।
राघवः सह सौमित्रिः सुग्रीवेणाभिपालितः ।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे ददृशे विमलं नभः ॥ १
स दृष्ट्वा विमले व्योम्नि निर्मलं शशलक्षणम् ।
ग्रह-नक्षत्र-ताराभिरनुयातममित्रहा ॥ २
कुमुदोत्पलपद्मानां गन्धमादाय वायुना ।
महीधरस्थः शीतेन सहसा प्रतिबोधितः ॥ ३
प्रभाते लक्ष्मणं वीरमभ्यभाषत दुर्मनाः ।
सीतां संस्मृत्य धर्मात्मा रुद्धां राक्षसवेश्मनि ॥४
गच्छ लक्ष्मण जानीहि किष्किन्धायां कपीश्वरम् ।
प्रमत्तं ग्राम्यधर्मेषु कृतघ्नं स्वार्थपण्डितम ॥ ५
योऽसौ कुलाधमो मूढो मया राज्येऽभिषेचितः ।
सर्ववानरगोपुच्छा यमृक्षाश्च भजन्ति वै ॥ ६
यदर्थं निहतो वाली मया रघुकुलोद्वह ।
त्वया सह महाबाहो किष्किन्धोपवने तदा ॥ ७
कृतघ्नं तमहं मन्ये वानरापसदं भुवि ।
यो मामेवंगतो मूढो न जानीतेऽद्य लक्ष्मण ॥ ८
असौ मन्ये न जानीते समयप्रतिपालनम् ।
कृतोपकारं मां नूनमवमन्याल्पया धिया ॥ ९
यदि तावदनुद्युक्तः शेते कामसुखात्मकः ।
नेतव्यो वालिमार्गेण सर्वभूतगतिं त्वया ॥ १०
अथापि घटतेऽस्माकमर्थे वानरपुङ्गवः ।
तमादायैव काकुत्स्थ त्वरावान् भव मा चिरम् ॥११
इत्युक्तो लक्ष्मणो भ्रात्रा गुरुवाक्यहिते रतः ।
प्रतस्थे रुचिरं गृह्य समार्गणगुणं धनुः ॥ १२
किष्किन्धाद्वारमासाद्य प्रविवेशानिवारितः ।
सक्रोध इति तं मत्वा राजा प्रत्युद्ययौ हरिः ॥ १३
तं सदारो विनीतात्मा सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
पूजया प्रतिजग्राह प्रीयमाणस्तदर्हया ॥ १४
तमब्रवीद्रामवचः सौमित्रिरकुतोभयः ।
स तत् सर्वमशेषेण श्रुत्वा प्रह्वः कृताञ्जलिः ॥ १५
सभृत्यदारो राजेन्द्र सुग्रीवो वानराधिपः ।
इदमाह वचः प्रीतो लक्ष्मणं नरकुञ्जरम् ॥ १६
नास्मि लक्ष्मण दुर्मेधा नाकृतज्ञो न निर्घृणः ।
श्रूयतां यः प्रयत्नो मे सीतापर्येषणे कृतः ॥ १७
दिशः प्रस्थापिताः सर्वे विनीता हरयो मया ।
सर्वेषां च कृतः कालो मासेनागमनं पुनः ॥ १८
यैरियं सवना साद्रिः सपुरा सागराम्बरा ।
विचेतव्या मही वीर सग्रामनगराकरा ॥ १९
स मासः पञ्चरात्रेण पूर्णो भवितुमर्हति ।
ततः श्रोष्यसि रामेण सहितः सुमहत् प्रियम् ॥
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तेन वानरेन्द्रेण धीमता ।
त्यक्त्वा रोषमदीनात्मा सुग्रीवं प्रत्यपूजयत् ॥ २१
स रामं सहसुग्रीवो माल्यवत्पृष्ठमास्थितम् ।
अभिगम्योदयं तस्य कार्यस्य प्रत्यवेदयत् ॥ २२
इत्येवं वानरेन्द्रास्ते समाजग्मुः सहस्रशः ।
दिशस्तिस्रो विचित्याथ न तु ये दक्षिणां गताः॥२३
आचख्युस्तत्र रामाय महीं सागरमेखलाम् ।
विचितां न तु वैदेह्या दर्शनं रावणस्य वा ॥ २४
गतास्तु दक्षिणामाशां ये वै वानरपुङ्गवाः ।
आशावांस्तेषु काकुत्स्थः प्राणानार्तोऽभ्यधारयत्
द्विमासोपरमे काले व्यतीते प्लवगास्ततः ।
सुग्रीवमभिगम्येदं त्वरिता वाक्यमब्रुवन् ॥ २६
रक्षितं वालिना यत् तत् स्फीतं मधुवनं महत् ।
त्वया च प्लवगश्रेष्ठ तद्भुङ्क्ते पवनात्मजः ॥ २७
वालिपुत्रोऽङ्गदश्चैव ये चान्ये प्लवगर्षभाः ।
विचेतुं दक्षिणामाशां राजन् प्रस्थापितास्त्वया॥२८
तेषामपनयं श्रुत्वा मेने स कृतकृत्यताम् ।
कृतार्थानां हि भृत्यानामेतद्भवति चेष्टितम् ॥ २९
स तद्रामाय मेधावी शशंस प्लवगर्षभः ।
रामश्चाप्यनुमानेन मेने दृष्टां तु मैथिलीम् ॥ ३०
हनुमत्प्रमुखाश्चापि विश्रान्तास्ते प्लवङ्गमाः ।
अभिजग्मुर्हरीन्द्रं तं रामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ ३१
गतिं च मुखवर्णं च दृष्ट्वा रामो हनूमतः ।
अगमत् प्रत्ययं भूयो दृष्टा सीतेति भारत ॥ ३२
हनूमत्प्रमुखास्ते तु वानराः पूर्णमानसाः ।
प्रणेमुर्विधिवद्रामं सुग्रीवं लक्ष्मणं तथा ॥ ३३
तानुवाचागतान् रामः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
अपि मां जीवयिष्यध्वमपि वः कृतकृत्यता ॥ ३४

२८२

राघव इति ॥ १ ॥ ग्राम्यधर्मेषु मैथुनादिषु निमित्तभूतेषु प्रमत्तं असावधानम् ॥ ५ ॥ गुरोर्वाक्ये हिते च रतस्तत्परः ॥१२॥ द्वयोर्मासयोरुपरमः समाप्तिर्यस्मिंस्तस्मिन् काले ॥ २६ ॥

अपि राज्यमयोध्यायां कारयिष्याम्यहं पुनः ।
निहत्य समरे शत्रूनाहृत्य जनकात्मजाम् ॥ ३५
अमोक्षयित्वा वैदेहीमहत्वा च रणे रिपून् ।
हृतदारोऽवधूतश्च नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३६
इत्युक्तवचनं रामं प्रत्युवाचानिलात्मजः ।
प्रियमाख्यामि ते राम दृष्टा सा जानकी मया॥३७
विचित्य दक्षिणामाशां सपर्वतवनाकराम् ।
श्रान्ताः काले व्यतीते स्म दृष्टवन्तो महागुहाम्॥
प्रविशामो वयं तां तु बहुयोजनमायताम् ।
अन्धकारां सुविपिनां गहनां कीटसेविताम् ॥३९
गत्वा सुमहदध्वानमादित्यस्य प्रभां ततः ।
दृष्टवन्तः स्म तत्रैव भवनं दिव्यमन्तरा ॥ ४०
मयस्य किल दैत्यस्य तदा सद्मेदम राघव ।
तत्र प्रभावती नाम तपोऽतप्यत तापसी ॥ ४१
तया दत्तानि भोज्यानि पानानि विविधानि च।
भुक्त्वा लब्धबलाः सन्तस्तयोक्तेन पथा ततः ॥ ४२
निर्याय तस्मादुद्देशात् पश्यामो लवणाम्भसः ।
समीपे सह्यमलयौ दर्दुरं च महागिरिम् ॥ ४३
ततो मलयमारुह्य पश्यन्तो वरुणालयम् ।
विषण्णा व्यथिताः खिन्ना निराशा जीविते भृशम्
अनेकशतविस्तीर्णं योजनानां महोदधिम् ।
तिमिनक्रझषावासं चिन्तयन्तः सुदुःखिताः ॥ ४५
तत्रानशनसङ्कल्पं कृत्वाऽऽसीना वयं तदा ।
ततः कथान्ते गृध्रस्य जटायोरभवत् कथा ॥ ४६
ततः पर्वतशृङ्गाभं घोररूपं भयावहम् ।
पक्षिणं दृष्टवन्तः स्म वैनतेयमिवापरम् ॥ ४७
सोऽस्मानतर्कयद्भोक्तुमथाभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ।
भोः क एष मम भ्रातुर्जटायोः कुरुते कथाम् ४८
सम्पातिर्नाम तस्याहं ज्येष्ठो भ्राता खगाधिपः ।
अन्योन्यस्पर्धया रूढावावामादित्यसत्पदम् ॥ ४९
ततो दग्धाविमौ पक्षौ न दग्धौ तु जटायुषः ।
तदा मे चिरदृष्टः स भ्राता गृध्रपतिः प्रियः ॥५०
निर्दग्धपक्षः पतितो ह्यहमस्मिन् महागिरौ ।
तस्यैवं वदतोऽस्माभिर्हतो भ्राता निवेदितः ॥५१
व्यसनं भवतश्चेदं सङ्क्षेपाद्वै निवेदितम् ।

स सम्पातिस्तदा राजन् श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ५२
विषण्णचेताः पप्रच्छ पुनरस्मानरिन्दम ।
कः स रामः कथं सीता जटायुश्च कथं हतः ॥५३
इच्छामि सर्वमेवैतच्छ्रोतुं प्लवगसत्तमाः ।
तस्याहं सर्वमेवैतद्भवतो व्यसनागमम् ॥ ५४
प्रायोपवेशने चैव हेतुं विस्तरशोऽब्रुवम् ।
सोऽस्मानुत्थापयामास वाक्येनानेन पक्षिराट्५५
रावणो विदितो मह्यं लङ्का चास्य महापुरी ।
दृष्टा पारे समुद्रस्य त्रिकूटगिरिकन्दरे ॥ ५६
भवित्री तत्र वैदेही न मेऽस्त्यत्र विचारणा ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा वयमुत्थाय सत्वराः ॥५७
सागरक्रमणे मन्त्रं मन्त्रयामः परन्तप !
नाध्यवास्यद्यदा कश्चित् सागरस्य विलङ्घनम् ॥
ततः पितरमाविश्य पुप्लुवेऽहं महार्णवम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं निहत्य जलराक्षसीम् ॥ ५९
तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ।
उपवासतपःशीला भर्तृदर्शनलालसा ॥ ६०
जटिला मलदिग्धाङ्गी कृशा दीना तपस्विनी ।
निमित्तैस्तामहं सीतामुपलभ्य पृथग्विधैः ६१
उपसृत्याब्रुवं चार्यामभिगम्य रहोगताम् ।
सीते रामस्य दूतोऽहं वानरो मारुतात्मजः ॥ ६२
त्वद्दर्शनमभिप्रेप्सुरिह प्राप्तो विहायसा ।
राजपुत्रौ कुशलिनौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६३
सर्वशाखामृगेन्द्रेण सुग्रीवेणाभिपालितौ ।
कुशलं त्वाऽब्रवीद्रामः सीते सौमित्रिणा सह६४
सखिभावाच्च सुग्रीवः कुशलं त्वानुपृच्छति ।
क्षिप्रमेष्यति ते भर्ता सर्वशाखामृगैः सह ॥ ६५
प्रत्ययं कुरु मे देवि वानरोऽस्मि न राक्षसः ।
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा सीता मां प्रत्युवाच ह ६६
अवैमि त्वां हनूमन्तमविन्ध्यवचनादहम् ।
अविन्ध्यो हि महाबाहो राक्षसो वृद्धसम्मतः ६७
कथितस्तेन सुग्रीवस्त्वद्विधैः सचिवैर्वृतः ।
गम्यतामिति चोक्त्वा मां सीता प्रादादिमं मणिम्
धारिता येन वैदेही कालमेतमनिन्दिता ।
प्रत्ययार्थं कथां चेमां कथयामास जानकी ॥ ६९

---

कारयिष्यामि स्वार्थे णिच् ॥ ३६ ॥ सत्पदं गतवन्ताविति शेषः ॥ ४९ ॥ धारिता जीवितं प्रापा इदानीमेतद्वियोगादत्यन्तं व्याकुलायास्तस्या लाभार्थं शीघ्रं यतितव्यमिति भावः ॥ ६९ ॥

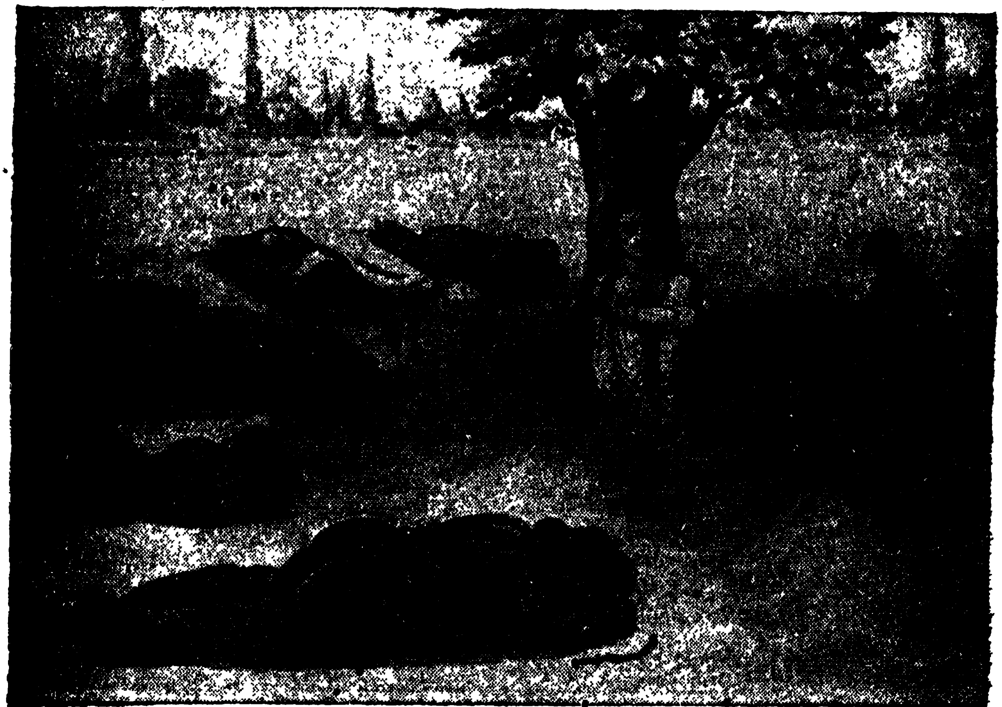

हनूमान्—

सीते ! रामस्य दूतोऽहं वानरो मारुतात्मजः ।
त्वद्दर्शनमभिप्रेप्सुरिह प्राप्तो विहायसा ॥

—वनपर्व अ० २८२. पृ. ४४६.

शिलामिषीकां कृत्वा चित्रकूटे महागिरौ ।
भवता पुरुषव्याघ्र प्रत्यभिज्ञानकारणात् ॥ ७०
ग्राहयित्वाऽहमात्मानं ततो दग्ध्वा च तां पुरीम् ।
सम्प्राप्त इति तं रामः प्रियवादिनमार्चयत् ॥ ७१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि हनुमत्प्रत्यागमने द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

## २८३

मार्कण्डेय उवाच ।
ततस्तत्रैव रामस्य समासीनस्य तैः सह ।
समाजग्मुः कपिश्रेष्ठाः सुग्रीववचनात् तदा ॥ १
वृतः कोटिसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ।
श्वशुरो वालिनः श्रीमान् सुषेणो राममभ्ययात् २
कोटीशतवृतो वाऽपि गजो गवय एव च ।
वानरेन्द्रौ महावीर्यौ पृथक् पृथगदृश्यताम् ॥ ३
षष्टिकोटिसहस्राणि प्रकर्षन् प्रत्यदृश्यत ।
गोलाङ्गूलो महाराज गवाक्षो भीमदर्शनः ॥ ४
गन्धमादनवासी तु प्रथितो गन्धमादनः ।
कोटीशतसहस्राणि हरीणां समकर्षत ॥ ५
पनसो नाम मेधावी वानरः सुमहाबलः ।
कोटीर्दश द्वादश च त्रिंशत्पञ्च प्रकर्षति ॥ ६
श्रीमान् दधिमुखो नाम हरिवृद्धोऽतिवीर्यवान् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं हरीणां भीमतेजसाम् ॥ ७
कृष्णानां मुखपुण्ड्राणामृक्षाणां भीमकर्मणाम् ।
कोटीशतसहस्रेण जाम्बवान् प्रत्यदृश्यत ॥ ८
एते चान्ये च बहवो हरियूथपयूथपाः ।
असङ्ख्येया महाराज समीयू रामकारणात् ॥ ९
गिरिकूटनिभाङ्गानां सिंहानामिव गर्जताम् ।
श्रूयते तुमुलः शब्दस्तत्र तत्र प्रधावताम् ॥ १०
गिरिकूटनिभाः केचित् केचिन्महिषसन्निभाः ।
शरदभ्रप्रतीकाशाः केचिद्धिङ्गुलकाननाः ॥ ११
उत्पतन्तः पतन्तश्च प्लवमानाश्च वानराः ।
उद्धुन्वन्तोऽपरे रेणून् समाजग्मुः समन्ततः ॥ १२
स वानरमहासैन्यः पूर्णसागरसन्निभः ।
निवेशमकरोत् तत्र सुग्रीवानुमते तदा ॥ १३
ततस्तेषु हरीन्द्रेषु समावृत्तेषु सर्वशः ।
तिथौ प्रशस्ते नक्षत्रे मुहूर्ते चाभिपूजिते ॥ १४
तेन व्यूढेन सैन्येन लोकानुद्वर्तयन्निव ।
प्रययौ राघवः श्रीमान् सुग्रीवसहितस्तदा ॥ १५
मुखमासीत् तु सैन्यस्य हनूमान् मारुतात्मजः ।
जघनं पालयामास सौमित्रिरकुतोभयः ॥ १६
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ राघवौ तत्र जग्मतुः ।
वृतौ हरिमहामात्रैश्चन्द्रसूर्यौ ग्रहैरिव ॥ १७
प्रबभौ हरिसैन्यं तत् सालतालशिलायुधम् ।
सुमहच्छालिभवनं यथा सूर्योदयं प्रति ॥ १८
नलनीलाङ्गदक्राथमैन्दद्विविदपालिता ।
ययौ सुमहती सेना राघवस्यार्थसिद्धये ॥ १९
विविधेषु प्रशस्तेषु बहुमूलफलेषु च ।
प्रभूतमधुमांसेषु वारिमत्सु शिवेषु च ॥ २०
निवसन्ती निराबाधा तथैव गिरिसानुषु ।
उपायाद्धरिसेना सा क्षारोदमथ सागरम् ॥ २१
द्वितीयसागरनिभं तद्बलं बहुलध्वजम् ।
वेलावनं समासाद्य निवासमकरोत् तदा ॥ २२
ततो दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवं प्रत्यभाषत ।
मध्ये वानरमुख्यानां प्राप्तकालमिदं वचः ॥ २३
उपायः को नु भवतां मतः सागरलङ्घने ।
इयं हि महती सेना सागरश्चातिदुस्तरः ॥ २४
तत्रान्ये व्याहरन्ति स्म वानरा बहुमानिनः ।
समर्था लङ्घने सिन्धोर्न तु तत्कृत्स्नकारकम् २५
केचिन्नौभिर्व्यवस्यन्ति केचिच्च विविधैः प्लवैः ।
नेति रामस्तु तान् सर्वान् सान्त्वयन् प्रत्यभाषत
शतयोजनविस्तारं न शक्ताः सर्ववानराः ।
क्रान्तुं तोयनिधिं वीरा नैषा वो नैष्ठिकी मतिः २७

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

२८३

ततस्तत्रैवेति ॥ १ ॥ मुखे पुण्ड्रस्तिलकं येषां ते ललाटे ऊर्ध्वपुण्ड्राकारेण चिन्हेन चिन्हितानाम् ॥ ८ ॥ शालिभिर्भातीति शालिभं तच्च तद्वनं पक्वशालिभवनं तद्वत्पीतवर्णमित्यर्थः ॥ १८ ॥

समस्तजनाधिकारिकमित्यर्थः ।

नावो न सन्ति सेनाया बह्वयस्तारयितुं तथा ।
वणिजामुपघातं च कथमस्मद्विधश्चरेत् ॥ २८
विस्तीर्णं चैव नः सैन्यं हन्याच्छिद्रेण वै परः ।
प्लवोडुपप्रतारश्च नैवात्र मम रोचते ॥ २९
अहं त्विमं जलनिधिं समारप्स्याम्युपायतः ।
प्रतिशेष्याम्युपवसन् दर्शयिष्यति मां ततः ॥ ३०
न चेद्दर्शयिता मार्गं धक्ष्याम्येनमहं ततः ।
महास्त्रैरप्रतिहतैरत्याग्निपवनोज्ज्वलैः ॥ ३१
इत्युक्त्वा सह सौमित्रिरुपस्पृश्याथ राघवः ।
प्रतिशिश्ये जलनिधौ विधिवत् कुशसंस्तरे ॥३२
सागरस्तु ततः स्वप्ने दर्शयामास राघवम् ।
देवो नदनदीभर्ता श्रीमान् यादोगणैर्वृतः ॥ ३३
कौसल्यामातरित्येवमाभाष्य मधुरं वचः ।
इदमित्याह रत्नानामाकरैः शतशो वृतः ॥ ३४
ब्रूहि किं ते करोम्यत्र साहाय्यं पुरुषर्षभ ।
ऐक्ष्वाको ह्यस्मि ते ज्ञातिरिति रामस्तमब्रवीत् ॥
मार्गमिच्छामि सैन्यस्य दत्तं नदनदीपते ।
येन गत्वा दशग्रीवं हन्यां पौलस्त्यपांसनम् ॥३६
यद्येवं याचतो मार्गं न प्रदास्यति मे भवान् ।
शरैस्त्वां शोषयिष्यामि दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ३७
इत्येवं ब्रुवतः श्रुत्वा रामस्य वरुणालयः ।
उवाच व्यथितो वाक्यमिति बद्धाञ्जलिः स्थितः॥
नेच्छामि प्रतिघातं ते नास्मि विघ्नकरस्तव ।
शृणु चेदं वचो राम श्रुत्वा कर्तव्यमाचर ॥ ३९
यदि दास्यामि ते मार्गं सैन्यस्य व्रजतोऽऽज्ञया ।
अन्येऽप्याज्ञापयिष्यन्ति मामेवं धनुषो बलात् ॥
अस्ति त्वत्र नलो नाम वानरः शिल्पिसम्मतः ।
त्वष्टुर्देवस्य तनयो बलवान् विश्वकर्मणः ॥ ४१
स यत् काष्ठं तृणं वापि शिलां वा क्षेप्स्यते मयि
सर्वं तद्धारयिष्यामि स ते सेतुर्भविष्यति ॥ ४२
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते तस्मिन् रामो नलमुवाच ह ।
कुरु सेतुं समुद्रे त्वं शक्तो ह्यसि मतो मम ॥ ४३
तेनोपायेन काकुत्स्थः सेतुबन्धमकारयत् ।
दशयोजनविस्तारमायतं शतयोजनम् ॥ ४४
नलसेतुरितिख्यातो योऽद्यापि प्रथितो भुवि ।
रामस्याज्ञां पुरस्कृत्य *निर्यातो गिरिसन्निभः४५
तत्रस्थं स तु धर्मात्मा समागच्छद्विभीषणः ।
भ्राता वै राक्षसेन्द्रस्य चतुर्भिः सचिवैः सह ४६
प्रतिजग्राह रामस्तं स्वागतेन महामनाः ।
सुग्रीवस्य तु शङ्काऽभूत् प्रणिधिः स्यादिति स्म ह
राघवः सत्यचेष्टाभिः सम्यक् चरितेङ्गितैः ।
यदा तत्त्वेन तुष्टोऽभूत् तत एनमपूजयत् ॥ ४८
सर्वराक्षसराज्ये चाप्यभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ।
चक्रे च मन्त्रसचिवं सुहृदं लक्ष्मणस्य च ॥४९
विभीषणमते चैव सोऽत्यक्रामन्महार्णवम् ।
ससैन्यः सेतुना तेन मासेनैव नराधिप ॥ ५०
ततो गत्वा समासाद्य लङ्कोद्यानान्यनेकशः ।
भेदयामास कपिभिर्महान्ति च बहूनि च ॥ ५१
ततस्तौ रावणामात्यौ मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
चरौ वानररूपेण तौ जग्राह विभीषणः ॥ ५२
प्रतिपन्नौ यदा रूपं राक्षसं तौ निशाचरौ ।
दर्शयित्वा ततः सैन्यं रामः पश्चादवासृजत् ५३
निवेश्योपवने सैन्यं तत्पुरः प्राज्ञवानरम् ।
प्रेषयामास दौत्येन रावणस्य ततोऽङ्गदम् ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि सेतुबन्धने त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

## २८४

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रभूतान्नोदके तस्मिन् बहुमूलफले वने । सेनां निवेश्य काकुत्स्थो विधिवत् पर्यरक्षत ॥ १

प्लवः अलाबुघटादिमयं तरणसाधनम् । उडुपं क्षुद्रनौका ताभ्यां प्रतारस्तरणम् ॥ २९ ॥ समारप्स्यामि आराधयिष्यामि ॥ ३० ॥ मधुरं वचः इदं श्रृण्वित्याहेति शेषेण योज्यम् ॥ ३४ ॥ आज्ञयेतिच्छेदः पूर्वरूपमार्षम् ॥ ४० ॥ प्राणिधिश्छलकृत् गुप्तचारो वा । 'प्रणिधिर्ना खले चरे' इति मेदिनी ॥४७॥ दौत्येन हेतुना॥५४॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

२८४

प्रभूतेति ॥ १ ॥

* निर्व्यूढ इत्यर्थः

सागरः—

ब्रूहि किं ते करोम्यत्र साहाय्यं पुरुषर्षभ ।

रामः—

मार्गमिच्छामि सैन्यस्य दत्तं नदनदीपते ! ॥

—वनपर्व अ. २८३ पृ. ४४८

रावणः संविधं चक्रे लङ्कायां शास्त्रनिर्मिताम् ।
प्रकृत्यैव दुराधर्षा दृढप्राकारतोरणा ॥ २
अगाधतोयाः परिखा मीननक्रसमाकुलाः ।
बभूवुः सप्त दुर्धर्षाः खादिरैः शङ्कुभिश्चिताः ॥ ३
कपाटयन्त्रदुर्धर्षा बभूवुः सहुडोपलाः ।
साशीविषघटायोधाः† ससर्जरसपांसवः ॥ ४
मुसलालातनाराचतोमरासिपरश्वधैः ।
अन्विताश्च शतघ्नीभिः समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥ ५
पुरद्वारेषु सर्वेषु गुल्माः स्थावरजङ्गमाः ।
बभूवुः पत्तिबहुलाः प्रभूतगजवाजिनः ॥ ६
अङ्गदस्त्वथ लङ्काया द्वारदेशमुपागतः ।
विदितो राक्षसेन्द्रस्य प्रविवेश गतव्यथः ॥ ७
मध्ये राक्षसकोटीनां बह्वीनां सुमहाबलः ।
शुशुभे मेघमालाभिरादित्य इव संवृतः ॥ ८
स समासाद्य पौलस्त्यममात्यैरभिसंवृतम् ।
रामसन्देशमामन्त्र्य वाग्मी वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ९
आह त्वां राघवो राजन् कोसलेन्द्रो महायशाः ।
प्राप्तकालमिदं वाक्यं तदादत्स्व कुरुष्व च ॥ १०
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
विनश्यन्त्यनयाविष्टा देशाश्च नगराणि च ॥ ११
त्वयैकेनापराद्धं मे सीतामाहरता बलात् ।
वधायानपराद्धानामन्येषां तद्भविष्यति ॥ १२
ये त्वया बलदर्पाभ्यामाविष्टेन वनेचराः ।
ऋषयो हिंसिताः पूर्वं देवाश्चाप्यवमानिताः॥ १३
राजर्षयश्च निहता रुदत्यश्च †हृताः स्त्रियः ।
तदिदं समनुप्राप्तं फलं तस्यानयस्य ते ॥ १४
हन्ताऽस्मि त्वां सहामात्यैर्युध्यस्व पुरुषो भव ।
पश्य मे धनुषो वीर्यं मानुषस्य निशाचर ॥ १५
मुच्यतां जानकी सीता न मे मोक्ष्यसि कर्हिचित्
अराक्षसमिमं लोकं कर्ताऽस्मि निशितैः शरैः॥१६

इति तस्य ब्रुवाणस्य दूतस्य परुषं वचः ।
श्रुत्वा न ममृषे राजा रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥१७
इङ्गितज्ञास्ततो भर्तुश्चत्वारो रजनीचराः ।
चतुर्ष्वङ्गेषु जगृहुः शार्दूलमिव पक्षिणः ॥ १८
तांस्तथाऽङ्गेषु संसक्तानङ्गदो रजनीचरान् ।
आदायैव खमुत्पत्य प्रासादतलमाविशत् ॥ १९
वेगेनोत्पततस्तस्य पेतुस्ते रजनीचराः ।
भुवि संभिन्नहृदयाः प्रहारवरपीडिताः ॥ २०
संसक्तो हर्म्यशिखरात् तस्मात् पुनरवापतत् ।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां सुवेलस्य समीपतः ॥ २१
कोसलेन्द्रमथागम्य सर्वमावेद्य वानरः ।
विशश्राम स तेजस्वी राघवेणाभिनन्दितः ॥ २२
ततः सर्वाभिसारेण हरीणां वातरंहसाम् ।
भेदयामास लङ्कायाः प्राकारं रघुनन्दनः ॥ २३
बिभीषणर्क्षाधिपती पुरस्कृत्याथ लक्ष्मणः ।
दक्षिणं नगरद्वारमवामृद्नाद्दुरासदम् ॥ २४
करभारुणपाण्डूनां हरीणां युद्धशालिनाम् ।
कोटीशतसहस्रेण लङ्कामभ्यपतत् तदा ॥ २५
प्रलम्बबाहूरुकरजङ्घान्तरविलम्बिनाम् ।
ऋक्षाणां धूम्रवर्णानां तिस्रः कोट्यो व्यवस्थिताः॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च निपतद्भिश्च वानरैः ।
नादृश्यत तदा सूर्यो रजसा नाशितप्रभः ॥ २७
शालिप्रसूनसदृशैः शिरीषकुसुमप्रभैः ।
तरुणादित्यसदृशैः शणगौरैश्च वानरैः ॥ २८
प्राकारं ददृशुस्ते तु समन्तात् कपिलीकृतम् ।
राक्षसा विस्मिता राजन् सस्त्रीवृद्धाः समन्ततः
बिभिदुस्ते मणिस्तम्भान् कर्णाट्टशिखराणि च ।
भग्नोन्मथितशृङ्गाणि यन्त्राणि च विचिक्षिपुः ३०
परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्राः सहुडोपलाः ।
चिक्षिपुर्भुजवेगेन लङ्कामध्ये महास्वनाः ॥ ३१

संविधं सम्यग्विध्यन्त्यनया तां यात्रादिसंपत्तिम् ॥ २ ॥ कपाटैर्यन्त्रैश्च गोलाद्युत्क्षेपणसाधनैर्दुर्धर्षाः परिखाः सहुडाः सोपलाश्च । हुडं मूत्राद्युत्सर्जनार्थं श्वभ्रम् । उपलाः प्रक्षेप्या गोलकाः ॥ ४ ॥ समधूच्छिष्टमुद्गराः मधूच्छिष्टं क्षौद्रं मधु । मद्यादिव्याप्त्यर्थमुच्छिष्टपदम् ॥ ५ ॥ गुल्मा गुप्तोपवेशनस्थानानि बुरुजाख्या महास्तंभाः स्थावरगुल्माः । जङ्गमाः गुल्माः सेनाया अलङ्ग इत्यभिहिताः॥६॥ गतव्यथो निर्भयः ॥ ७ ॥ आमन्त्र्य हे रावण इति सम्बोध्य ॥ ९ ॥ सर्वाभिसारः युगपत् सर्वेषामभिसारो यत्नस्तेन । 'सुलतानढवा' इति म्लेच्छप्रसिद्धेन ॥ २३ ॥ ऋक्षाधिपतिर्जाम्बवान् ॥ २४ ॥ करभो मणिबन्धादिकनिष्ठान्तं हस्तप्रदेशस्तद्वदरुणपाण्डवः श्वेतारुणाः ॥ २५ ॥ शणो गोणी सूत्रोपादानवीरुत् ॥२८॥ या तैर्दुर्गरक्षणार्थं सामग्रीकृता सैव तेषां नगरनाशायाभूदित्याह बिभिदुस्ते इत्यादिना । कर्णास्तिर्यग्स्थानं तेन प्रकीरण यत्पाषाणादिविस्तरेण क्रियते तत्सदृग्गृहविशेषं वर्णाट्टमिति वदन्ति । तद्धि दिक्कोणस्य चतुरस्रस्योपरि त्रिदिक्कोणं चतुरस्रं तदुपरि दिक्कोणं तदुपरि पुनर्विदिक्कोणमित्येवं क्रमेणोत्तरोत्तरकल्पप्रमाणैश्चतुरस्रैः समाप्यत इति प्रसिद्धम्॥३०॥ † तोयाः-ख. † चाह-ख.

प्राकारस्थाश्च ये केचिन्निशाचरगणास्तथा ।
प्रदुद्रुवुस्ते शतशः कपिभिः समभिद्रुताः ॥ ३२
ततस्तु राजवचनाद्राक्षसाः कामरूपिणः ।
निर्ययुर्विकृताकाराः सहस्रशतसङ्घशः ॥ ३३
शस्त्रवर्षाणि वर्षन्तो द्रावयित्वा वनौकसः ।
प्राकारं शोभयन्तस्ते परं विक्रममास्थिताः ॥ ३४
स माषराशिसदृशैर्बभूव क्षणदाचरैः ।
कृतो निर्वानरो भूयः प्राकारो भीमदर्शनैः ॥ ३५
पेतुः शूलविभिन्नाङ्गा बहवो वानरर्षभाः ।
स्तम्भतोरणभग्नाश्च पेतुस्तत्र निशाचराः ॥ ३६
केशाकेश्यभवद्युद्धं रक्षसां वानरैः सह ।
नखैर्दन्तैश्च वीराणां खादतां वै परस्परम् ॥ ३७
निष्टनन्तो ह्युभयतस्तत्र वानरराक्षसाः ।
हता निपतिता भूमौ न मुञ्चन्ति परस्परम् ॥ ३८
रामस्तु शरजालानि ववर्ष जलदो यथा ।
तानि लङ्कां समासाद्य जघ्नुस्तान् रजनीचरान् ॥
सौमित्रिरपि नाराचैर्दृढधन्वा जितक्लमः ।
आदिश्यादिश्य दुर्गस्थान् पातयामास राक्षसान् ॥
ततः प्रत्यवहारोऽभूत् सैन्यानां राघवाज्ञया ।
कृते विमर्दे लङ्कायां लब्धलक्ष्यो जयोत्तरः ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि लङ्काप्रवेशे
चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

## २८५

मार्कण्डेय उवाच ।
ततो निविशमानांस्तान् सैनिकान् रावणानुगाः ।
अभिजग्मुर्गणानेके पिशाचक्षुद्ररक्षसाम् ॥ १
पर्वणः पतनो जम्भः खरः क्रोधवशो हरिः ।
प्ररुजश्चारुजश्चैव प्रघसश्चैवमादयः ॥ २
ततोऽभिपततां तेषामदृश्यानां दुरात्मनाम् ।
अन्तर्धानवधं तज्ज्ञश्चकार स विभीषणः ॥ ३
ते दृश्यमाना हरिभिर्बलिभिर्दूरपातिभिः ।
निहताः सर्वशो राजन् महीं जग्मुर्गतासवः ॥ ४
अमृष्यमाणः सबलो रावणो निर्ययावथ ।
राक्षसानां बलैर्घोरैः पिशाचानां च संवृतः ॥ ५
युद्धशास्त्रविधानज्ञ उशना इव चापरः ।
व्यूह्य चौशनसं व्यूहं हरीनभ्यवहारयत् ॥ ६
राघवस्तु विनिर्यान्तं व्यूढानीकं दशाननम् ।
बार्हस्पत्यं विधिं कृत्वा प्रत्यव्यूहन्निशाचरम् ॥ ७
समेत्य युयुधे तत्र ततो रामेण रावणः ।
युयुधे लक्ष्मणश्चापि तथैवेन्द्रजिता सह ॥ ८
विरूपाक्षेण सुग्रीवस्तारेण च निखर्वटः ।
तुण्डेन च नलस्तत्र पटुशः पनसेन च ॥ ९
विषह्यं यं हि यो मेने स स तेन समेयिवान् ।
युयुधे युद्धवेलायां स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १०
स सम्प्रहारो ववृधे भीरूणां भयवर्धनः ।
लोमसंहर्षणो घोरः पुरा देवासुरे यथा ॥ ११
रावणो राममानर्छच्छक्तिशूलासिवृष्टिभिः ।
निशितैरायसैस्तीक्ष्णै रावणं चापि राघवः ॥ १२
तथैवेन्द्रजितं यत्तं लक्ष्मणो मर्मभेदिभिः ।
इन्द्रजिच्चापि सौमित्रिं बिभेद बहुभिः शरैः ॥ १३
विभीषणः प्रहस्तं च प्रहस्तश्च विभीषणम् ।
खगपत्रैः शरैस्तीक्ष्णैरभ्यवर्षद्गतव्यथः ॥ १४
तेषां बलवतामासीन्महास्त्राणां समागमः ।
विव्यथुः सकला येन त्रयो लोकाश्चराचराः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामरावणद्वन्द्वयुद्धे
पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

---

स्तम्भतः स्तम्भैर्वानरोपात्तैः रणे भग्ना रणभग्नाः ॥ ३६ ॥ केशाकेशि अन्योन्यं केशेषु गृहीत्वा ॥ ३७ ॥ निष्टनन्तः शब्दं कुर्वन्तः ॥ ३८ ॥ आदिश्य सम्मुखी कृत्वेत्यर्थः ॥ ४० ॥ प्रत्यवहारः शिबिरं प्रति गमनम् । लब्धाः आयुधैः प्राप्ताः लक्ष्या वेध्या यस्मिन् । अवन्ध्यप्रहार इति यावत् । जयोत्तरो जयोत्कर्षवान् ॥ ४१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

२८५

गणा अनेके इति छेदः ॥ १ ॥ अन्तर्धानवधमन्तर्धानशक्तेर्नाशम् ॥ ३ ॥ हरीन् वानरान् अभ्यवहारयत् आवेष्टितवान् ॥ ६ ॥ आनर्छत् अपीडयत् ॥ १२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

## २८६

मार्कण्डेय उवाच ।

ततः प्रहस्तः सहसा समभ्येत्य विभीषणम् ।
गदया ताडयामास विनद्य रणकर्कशः ॥ १
स तयाऽभिहतो धीमान् गदया भीमवेगया ।
नाकम्पत महाबाहुर्हिमवानिव सुस्थिरः ॥ २
ततः प्रगृह्य विपुलां शतघण्टां विभीषणः ।
अनुमन्त्र्य महाशक्तिं चिक्षेपास्य शिरः प्रति ॥ ३
पतन्त्या स तया वेगाद्राक्षसोऽशनिवेगया ।
हृतोत्तमाङ्गो ददृशे वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ ४
तं दृष्ट्वा निहतं सङ्ख्ये प्रहस्तं क्षणदाचरम् ।
अभिदुद्राव धूम्राक्षो वेगेन महता कपीन् ॥ ५
तस्य मेघोपमं सैन्यमापतद्भीमदर्शनम् ।
दृष्ट्वैव सहसा दीर्णा रणे वानरपुङ्गवाः ॥ ६
ततस्तान् सहसा दीर्णान् दृष्ट्वा वानरपुङ्गवान् ।
निर्ययौ कपिशार्दूलो हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ७
तं दृष्ट्वाऽवस्थितं सङ्ख्ये हरयः पवनात्मजम् ।
महत्या त्वरया राजन् सन्न्यवर्तन्त सर्वशः ॥ ८
ततः शब्दो महानासीत् तुमुलो लोमहर्षणः ।
रामरावणसैन्यानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ ९
तस्मिन् प्रवृत्ते सङ्ग्रामे घोरे रुधिरकर्दमे ।
धूम्राक्षः कपिसैन्यं तद्द्रावयामास पत्त्रिभिः ॥ १०
तं स रक्षोमहामात्रमापतन्तं सपत्नजित् ।
प्रतिजग्राह हनुमांस्तरसा पवनात्मजः ॥ ११
तयोर्युद्धमभूद्घोरं हरिराक्षसवीरयोः ।
जिगीषतोर्युधाऽन्योन्यमिन्द्रप्रल्हादयोरिव ॥ १२
गदाभिः परिघैश्चैव राक्षसो जघ्निवान् कपिम् ।
कपिश्च जघ्निवान् रक्षः सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ १३
ततस्तमतिकोपेन साश्वं सरथसारथिम् ।
धूम्राक्षमवधीत् क्रुद्धो हनूमान् मारुतात्मजः ॥ १४
ततस्तं निहतं दृष्ट्वा धूम्राक्षं राक्षसोत्तमम् ।
हरयो जातविस्रम्भा जघ्नुरभ्येत्य सैनिकान् ॥ १५
ते वध्यमाना हरिभिर्बलिभिर्जितकाशिभिः ।
राक्षसा भग्नसङ्कल्पा लङ्कामभ्यपतन्भयात् ॥ १६
तेऽभिपत्य पुरं भग्ना हतशेषा निशाचराः ।
सर्वं राज्ञे यथावृत्तं रावणाय न्यवेदयन् ॥ १७
श्रुत्वा तु रावणस्तेभ्यः प्रहस्तं निहतं युधि ।
धूम्राक्षं च महेष्वासं ससैन्यं वानरर्षभैः ॥ १८
सुदीर्घमिव निःश्वस्य समुत्पत्य वरासनात् ।
उवाच कुम्भकर्णस्य कर्मकालोऽयमागतः ॥ १९
इत्येवमुक्त्वा विविधैर्वादित्रैः सुमहास्वनैः ।
शयानमतिनिद्रालुं कुम्भकर्णमबोधयत् ॥ २०
प्रबोध्य महता चैनं यत्नेनागतसाध्वसः ।
स्वस्थमासीनमव्यग्रं विनिद्रं राक्षसाधिपः ॥ २१
ततोऽब्रवीद्दशग्रीवः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
धन्योऽसि यस्य ते निद्रा कुम्भकर्णेयमीदृशी ॥ २२
य इदं [1]दारुणाकारं न जानीषे महाभयम् ।
एष तीर्त्वाऽर्णवं रामः सेतुना हरिभिः सह ॥ २३
अवमन्येह नः सर्वान् करोति कदनं महत् ।
मया त्वपहृता भार्या सीता नामास्य जानकी ॥ २४
तां नेतुं स इहायातो बध्वा सेतुं महार्णवे ।
तेन चैव प्रहस्तादिर्महान् नः स्वजनो हतः ॥ २५
तस्य नान्यो निहन्ताऽस्ति त्वामृते शत्रुकर्शन ।
स दंशितोऽभिनिर्याय त्वमद्य बलिनां वर ॥ २६
रामादीन् समरे सर्वान् जहि शत्रूनरिन्दम ।
दूषणावरजौ चैव वज्रवेगप्रमाथिनौ ॥ २७
तौ त्वां बलेन महता सहितावनुयास्यतः ।
इत्युक्त्वा राक्षसपतिः कुम्भकर्णं तरस्विनम् ।
संदिदेशेतिकर्तव्ये वज्रवेगप्रमाथिनौ ॥ २८
तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ रावणं दूषणानुजौ ।
कुम्भकर्णं पुरस्कृत्य तूर्णं निर्ययतुः पुरात् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कुम्भकर्णनिर्गमने षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

---

२८६

ततः प्रहस्त इति ॥ १ ॥ रक्षोमहामात्रं रक्षःश्रेष्ठम् ॥ ११ ॥ आगतसाध्वसः जातभयः ॥ २१ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥ [1] दारुणं कालम्-ख

# २८७

मार्कण्डेय उवाच ।

ततो निर्याय स्वपुरात् कुम्भकर्णः सहानुगः ।
अपश्यत् कपिसैन्यं तज्जितकाश्यग्रतः स्थितम् ॥१
स वीक्षमाणस्तत् सैन्यं रामदर्शनकाङ्क्षया ।
अपश्यच्चापि सौमित्रिं धनुष्पाणिं व्यवस्थितम् २
तमभ्येत्याशु हरयः परिवव्रुः समन्ततः ।
अभ्यघ्नंश्च महाकायैर्बहुभिर्जगतीरुहैः ॥ ३
करजैरतुदंश्चान्ये विहाय भयमुत्तमम् ।
बहुधा युध्यमानास्ते युद्धमार्गैः प्लवङ्गमाः ॥ ४
नानाप्रहरणैर्भीमं राक्षसेन्द्रमताडयन् ।
स ताड्यमानः प्रहसन् भक्षयामास वानरान् ॥५
बलं चण्डबलाख्यं च वज्रबाहुं च वानरम् ।
तद्दृष्ट्वा व्यथनं कर्म कुम्भकर्णस्य रक्षसः ॥ ६
उदक्रोशन् परित्रस्तास्तारप्रभृतयस्तदा ।
तानुच्चैः क्रोशतः सैन्यान् श्रुत्वा स हरियूथपान्॥
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णमपेतभीः ।
ततो निपत्य वेगेन कुम्भकर्णं महामनाः ॥ ८
शालेन जघ्निवान् मूर्ध्नि बलेन कपिकुञ्जरः ।
स महात्मा महावेगः कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ॥ ९
बिभेद शालं सुग्रीवो न चैवाव्यथयत् कपिः ।
ततो विनद्य सहसा शालस्पर्शविबोधितः ॥ १०
दोर्भ्यामादाय सुग्रीवं कुम्भकर्णोऽहरद्बलात् ।
ह्रियमाणं तु सुग्रीवं कुम्भकर्णेन रक्षसा ॥ ११
अवेक्ष्याभ्यद्रवद्वीरः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
सोऽभिपत्य महावेगं रुक्मपुङ्खं महाशरम् ॥ १२
प्राहिणोत् कुम्भकर्णाय लक्ष्मणः परवीरहा ।
स तस्य देहावरणं भित्वा देहं च सायकः ॥ १३
जगाम दारयन् भूमिं रुधिरेण समुक्षितः ।
तथा स भिन्नहृदयः समुत्सृज्य कपीश्वरम् ॥ १४
कुम्भकर्णो महेष्वासः प्रगृहीतशिलायुधः ।
अभिदुद्राव सौमित्रिमुद्यम्य महतीं शिलाम् ॥१५
तस्याभिपततस्तूर्णं क्षुराभ्यामुच्छ्रितौ करौ ।
चिच्छेद निशिताग्राभ्यां स बभूव चतुर्भुजः॥ १६
तानप्यस्य भुजान् सर्वान् प्रगृहीतशिलायुधान् ।
क्षुरैश्चिच्छेद लध्वस्त्रं सौमित्रिः प्रतिदर्शयन् ॥१७
स बभूवातिकायश्च बहुपादशिरोभुजः ।
तं ब्रह्मास्त्रेण सौमित्रिर्ददाराद्रिचयोपमम् ॥ १८
स पपात महावीर्यो दिव्यास्त्राभिहतो रणे ।
महाशनिविनिर्दग्धः पादपोऽङ्कुरवानिव ॥ १९
तं दृष्ट्वा वृत्रसङ्काशं कुम्भकर्णं तरस्विनम् ।
गतासुं पतितं भूमौ राक्षसाः प्राद्रवन् भयात् २०
तथा तान् द्रवतो योधान् दृष्ट्वा तौ दूषणानुजौ ।
अवस्थाप्याथ सौमित्रिं सङ्क्रुद्धावभ्यधावताम्२१
तावाद्रवन्तौ सङ्क्रुद्धौ वज्रवेगप्रमाथिनौ ।
अभिजग्राह सौमित्रिर्विनद्योभौ पतत्रिभिः ॥ २२
ततः सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
दूषणानुजयोः पार्थ लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ २३
महता शरवर्षेण राक्षसौ सोऽभ्यवर्षत ।
तौ चापि वीरौ सङ्क्रुद्धावुभौ तौ समवर्षताम्२४
मुहूर्तमेवमभवद्वज्रवेगप्रमाथिनोः ।
सौमित्रेश्च महाबाहोः सम्प्रहारः सुदारुणः ॥ २५
अथाद्रिशृङ्गमादाय हनुमान् मारुतात्मजः ।
अभिद्रुत्याददे प्राणान् वज्रवेगस्य रक्षसः ॥ २६
नीलश्च महता ग्राव्णा दूषणावरजं हरिः ।
प्रमाथिनमभिद्रुत्य प्रममाथ महाबलः ॥ २७
ततः प्रावर्तत पुनः सङ्ग्रामः कटुकोदयः ।
रामरावणसैन्यानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ २८
शतशो नैर्ऋतान् वन्या जघ्नुर्वन्यांश्च नैर्ऋताः ।
नैर्ऋतास्तत्र वध्यन्ते प्रायेण न तु वानराः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि कुम्भकर्णादिवधे सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥

---

२८७

तत इति । जितकाशि दृढमुष्टि । 'काशिर्मुष्टिः प्रकाशनात्' इति यास्कः ॥१॥ वन्या वनेचरा वानराः ॥२९॥

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥ २८७ ॥

## २८८

मार्कण्डेय उवाच ।
ततः श्रुत्वा हतं सङ्ख्ये कुम्भकर्णं सहानुगम् ।
प्रहस्तं च महेष्वासं धूम्राक्षं चातितेजसम् ॥ १
पुत्रमिन्द्रजितं वीरं रावणः प्रत्यभाषत ।
जहि राममित्रघ्न सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ॥ २
त्वया हि मम सत्पुत्र यशो दीप्तमुपार्जितम् ।
जित्वा वज्रधरं सङ्ख्ये सहस्राक्षं शचीपतिम् ॥ ३
अन्तर्हितः प्रकाशो वा दिव्यैर्दत्तवरैः शरैः ।
जहि शत्रूनमित्रघ्न मम शस्त्रभृतां वर ॥ ४
रामलक्ष्मणसुग्रीवाः शरस्पर्शं न तेऽनघ ।
समर्थाः प्रतिसोढुं च कुतस्तदनुयायिनः ॥ ५
अगता या प्रहस्तेन कुम्भकर्णेन चानघ ।
खरस्यापचितिः सङ्ख्ये तां गच्छ त्वं महाभुज ६
त्वमद्य निशितैर्बाणैर्हत्वा शत्रून् ससैनिकान् ।
प्रतिनन्दय मां पुत्र पुरा जित्वेव वासवम् ॥ ७
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा रथमास्थाय दंशितः ।
प्रययाविन्द्रजिद्राजंस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ ८
ततो विश्राव्य विस्पष्टं नाम राक्षसपुङ्गवः ।
आह्वयामास समरे लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ९
तं लक्ष्मणोऽभ्यधावच्च प्रगृह्य सशरं धनुः ।
त्रासयंस्तलघोषेण सिंहः क्षुद्रमृगान् यथा ॥ १०
तयोः समभवद्युद्धं सुमहज्जयगृद्धिनोः ।
दिव्यास्त्रविदुषोस्तीव्रमन्योन्यस्पर्धिनोस्तदा ॥ ११
रावणिस्तु यदा *नैवं विशेषयति सायकैः ।
ततो गुरुतरं यत्नमातिष्ठद्बलिनां वरः ॥ १२
तत एनं महावेगैरर्दयामास तोमरैः ।
तानागतान् स चिच्छेद सौमित्रिर्निशितैः शरैः ॥
ते निकृत्ताः शरैस्तीक्ष्णैर्न्यपतन् धरणीतले ।
तमङ्गदो वालिसुतः श्रीमानुद्यम्य पादपम् ॥ १४
अभिद्रुत्य महावेगस्ताडयामास मूर्धनि ।
तस्येन्द्रजिदसम्भ्रान्तः प्रासेनोरसि वीर्यवान् ॥ १५
प्रहर्तुमैच्छत तं चास्य प्रासं चिच्छेद लक्ष्मणः ।
तमभ्याशगतं वीरमङ्गदं रावणात्मजः ॥ १६
गदयाऽताडयत् सव्ये पार्श्वे वानरपुङ्गवम् ।
तमचिन्त्यप्रहारं स बलवान् वालिनः सुतः ॥ १७
ससर्जेन्द्रजितः क्रोधाच्छालस्कन्धं तथाऽङ्गदः ।
सोऽङ्गदेन रुषोत्सृष्टो वधायेन्द्रजितस्तरुः ॥ १८
जघानेन्द्रजितः पार्थ रथं साश्वं ससारथिम् ।
ततो हताश्वात् प्रस्कन्द्य रथात् स हतसारथिः ॥
तत्रैवान्तर्दधे राजन् मायया रावणात्मजः ।
अन्तर्हितं विदित्वा तं बहुमायं च राक्षसम् ॥ २०
रामस्तं देशमागम्य तत् सैन्यं पर्यरक्षत ।
स राममुद्दिश्य शरैस्ततो दत्तवरैस्तदा ॥ २१
विव्याध सर्वगात्रेषु लक्ष्मणं च महाबलम् ।
तमदृश्यं शरैः शूरौ मायया‍ऽन्तर्हितं तदा ॥ २२
योधयामासतुरुभौ रावणिं रामलक्ष्मणौ ।
स रुषा सर्वगात्रेषु तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ २३
व्यसृजत् सायकान् भूयः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तमदृश्यं विचिन्वन्तः सृजन्तमनिशं शरान् ॥ २४
हरयो विविशुर्व्योम प्रगृह्य महतीः शिलाः ।
तांश्च तौ चाप्यदृश्यः स शरैर्विव्याध राक्षसः २५
स भृशं ताडयामास रावणिर्मायया वृतः ।
तौ शरैराचितौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
पेततुर्गगनाद्भूमिं सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि इन्द्रजिद्युद्धे
अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

## २८९

मार्कण्डेय उवाच ।
तावुभौ पतितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बबन्ध रावणिर्भूयः शरैर्दत्तवरैस्तदा ॥ १
तौ वीरौ शरबन्धेन बद्धाविन्द्रजिता रणे ।
रेजतुः पुरुषव्याघ्रौ शकुन्ताविव पञ्जरे ॥ २

२८८

तत इति ॥ १ ॥ ससर्ज उत्सृष्टवान् । शालस्कन्धं महास्कन्धं तरुम् ॥ १८ ॥ तान् हरीन् । तौ च रामलक्ष्मणौ । इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥ * नैनम्–ख.

२८९

ताविति ॥ १ ॥

तौ दृष्ट्वा पतितौ भूमौ शतशः सायकैश्चितौ ।
सुग्रीवः कपिभिः सार्धं परिवार्य ततः स्थितः ॥ ३
सुषेणमैन्दद्विविदैः कुमुदेनाङ्गदेन च ।
हनुमन्नीलतारैश्च नलेन च कपीश्वरः ॥ ४
ततस्तं देशमागम्य कृतकर्मा विभीषणः ।
बोधयामास तौ वीरौ प्रज्ञास्त्रेण प्रबोधितौ ॥ ५
विशल्यौ चापि सुग्रीवः क्षणेनैतौ चकार ह ।
विशल्यया महौषध्या दिव्यमन्त्रप्रयुक्तया ॥ ६
तौ लब्धसंज्ञौ नृवरौ विशल्यावुदतिष्ठताम् ।
गततन्द्रीक्लमौ चापि क्षणेनैतौ महारथौ ॥ ७
ततो विभीषणः पार्थ राममिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
उवाच विज्वरं दृष्ट्वा कृताञ्जलिरिदं वचः ॥ ८
इदमम्भो गृहीत्वा तु राजराजस्य शासनात् ।
गुह्यकोऽभ्यागतः श्वेतात् त्वत्सकाशमरिन्दम ॥ ९
इदमम्भः कुबेरस्ते महाराज प्रयच्छति ।
अन्तर्हितानां भूतानां दर्शनार्थं परन्तप ॥ १०
अनेन मृष्टनयनो भूतान्यन्तर्हितान्युत
भवान् द्रक्ष्यति यस्मै च प्रदास्यति नरः स तु ॥ ११
तथेति रामस्तद्वारि प्रतिगृह्याभिसंस्कृतम् ।
चकार नेत्रयोः शौचं लक्ष्मणश्च महामनाः ॥ १२
सुग्रीवजाम्बवन्तौ च हनुमानङ्गदस्तथा ।
मैन्दद्विविदनीलाश्च प्रायः प्लवगसत्तमाः ॥ १३
तथा समभवच्चापि यदुवाच विभीषणः ।
क्षणेनातीन्द्रियाण्येषां चक्षूंष्यासन् युधिष्ठिर ॥ १४
इन्द्रजित् कृतकर्मा च पित्रे कर्म तदाऽऽत्मनः ।
निवेद्य पुनरागच्छत् त्वरयाऽऽजि शिरःप्रति ॥ १५
तमापतन्तं संक्रुद्धं पुनरेव युयुत्सया ।
अभिदुद्राव सौमित्रिर्विभीषणमते स्थितः ॥ १६
अकृताह्निकमेवैनं जिघांसुर्जितकाशिनम् ।
शरैर्जघान संक्रुद्धः कृतसंज्ञोऽथ लक्ष्मणः ॥ १७
तयोः समभवद्युद्धं तदाऽन्योन्यं जिगीषतोः ।
अतीव चित्रमाश्चर्यं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ १८
आविध्यदिन्द्रजित्तीक्ष्णैः सौमित्रिं मर्मभेदिभिः ।
सौमित्रिश्चानलस्पर्शैरविध्यद्रावणिं शरैः ॥ १९
सौमित्रिशरसंस्पर्शाद्रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
असृजल्लक्ष्मणायाष्टौ शरानाशीविषोपमान् ॥ २०
तस्यासून् पावकस्पर्शैः सौमित्रिः पत्रिभिस्त्रिभिः ।
यथा निरहरद्वीरस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ २१
एकेनास्य धनुष्मन्तं बाहुं देहादपातयत् ।
द्वितीयेन स नाराचं भुजं भूमौ न्यपातयत् ॥ २२
तृतीयेन तु बाणेन पृथुधारेण भास्वता ।
जहार सुनसं चापि शिरो भ्राजिष्णुकुण्डलम् ॥ २३
विनिकृत्तभुजस्कन्धं कबन्धं भीमदर्शनम् ।
तं हत्वा सूतमप्यस्त्रैर्जघान बलिनां वरः ॥ २४
लङ्कां प्रवेशयामासुस्तं रथं वाजिनस्तदा ।
ददर्श रावणस्तं च रथं पुत्रविनाकृतम् ॥ २५
स पुत्रं निहतं दृष्ट्वा त्रासात् सम्भ्रान्तमानसः ।
रावणः शोकमोहार्तो वैदेहीं हन्तुमुद्यतः ॥ २६
अशोकवनिकास्थां तां रामदर्शनलालसाम् ।
खड्गमादाय दुष्टात्मा जवेनाभिपपात ह ॥ २७
तं दृष्ट्वा तस्य दुर्बुद्धेरविन्ध्यः पापनिश्चयम् ।
शमयामास संक्रुद्धं श्रूयतां येन हेतुना ॥ २८
महाराज्ये स्थितो दीप्ते न स्त्रियं हन्तुमर्हसि ।
हतैवैषा यदा स्त्री च बन्धनस्था च ते वशे ॥ २९
न चैषा देहभेदेन हता स्यादिति मे मतिः ।
जहि भर्तारमेवास्या हते तस्मिन् हता भवेत् ॥ ३०
न हि ते विक्रमे तुल्यः साक्षादपि शतक्रतुः ।
असकृद्धि त्वया सेन्द्रास्त्रासितास्त्रिदशा युधि ॥ ३१
एवं बहुविधैर्वाक्यैरविन्ध्यो रावणं तदा ।
क्रुद्धं संशमयामास जगृहे च स तद्वचः ॥ ३२
निर्याणे स मतिं कृत्वा निधायासिं क्षपाचरः ।
आज्ञापयामास तदा रथो मे कल्प्यतामिति ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि इन्द्रजिद्वधे
ऊननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

---

अतीन्द्रियाणि अतीन्द्रियार्थग्राहकाणि ॥ १४ ॥ कृतसंज्ञः विभीषणेन संकेतित ॥ १७ ॥ निधाय बध्वा असिं खड्गम् ॥ ३३ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

रावणः शोकमोहार्तो वैदेहीं हन्तुमुद्यतः ॥
खड्गमादाय दुष्टात्मा जवेनाभिपपात ह ॥
—वनपर्व अ० २८९ पृ. ४५४

## २९०

मार्कण्डेय उवाच ।

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः प्रिये पुत्रे निपातिते ।
निर्ययौ रथमास्थाय हेमरत्नविभूषितम् ॥ १
स वृतो राक्षसैर्घोरैर्विविधायुधपाणिभिः ।
अभिदुद्राव रामं स योधयन् हरियूथपान् ॥ २
तमाद्रवन्तं सङ्क्रुद्धं मैन्दनीलनलाङ्गदाः ।
हनूमान् जाम्बवांश्चैव ससैन्याः पर्यवारयन् ॥ ३
ते दशग्रीवसैन्यं तदृक्षवानरपुङ्गवाः ।
द्रुमैर्विध्वंसयांचक्रुर्दशग्रीवस्य पश्यतः ॥ ४
ततः स सैन्यमालोक्य वध्यमानमरातिभिः ।
मायावी चासृजन्मायां रावणो राक्षसाधिपः॥५
तस्य देहविनिष्क्रान्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
राक्षसाः प्रत्यदृश्यन्त शरशक्त्यृष्टिपाणयः ॥ ६
तान् रामो जघ्निवान्सर्वान्दिव्येनास्त्रेण राक्षसान्
अथ भूयोऽपि मायां स व्यदधाद्राक्षसाधिपः॥७
कृत्वा रामस्य रूपाणि लक्ष्मणस्य च भारत ।
अभिदुद्राव रामं च लक्ष्मणं च दशाननः ॥ ८
ततस्ते राममर्च्छन्तो लक्ष्मणं च क्षपाचराः ।
अभिपेतुस्तदा रामं प्रगृहीतशरासनाः ॥ ९
तां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य मायामिक्ष्वाकुनन्दनः ।
उवाच रामं सौमित्रिरसंभ्रान्तो बृहद्वचः ॥ १०
जहीमान् राक्षसान् पापानात्मनः प्रतिरूपकान् ।
जघान रामस्तांश्चान्यानात्मनः प्रतिरूपकान् ११
ततो हर्यश्वयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा ।
उपतस्थे रणे रामं मातलिः शक्रसारथिः ॥ १२

मातलिरुवाच ।

अयं हर्यश्वयुक् जैत्रो मघोनः स्यन्दनोत्तमः ।
अनेन शक्रः काकुत्स्थ समरे दैत्यदानवान् ॥ १३
शतशः पुरुषव्याघ्र रथोदारेण जघ्निवान् ।
तदनेन नरव्याघ्र मया यत्तेन संयुगे ॥ १४
स्यन्दनेन जहि क्षिप्रं रावणं मा चिरं कृथाः ।
इत्युक्तो राघवस्तथ्यं वचोऽशङ्कत मातलेः ॥ १५
मायैषा राक्षसस्येति तमुवाच विभीषणः ।
नेयं माया नरव्याघ्र रावणस्य दुरात्मनः ॥ १६
तदातिष्ठ रथं शीघ्रमिमभैन्द्रं महाद्युते ।
ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थस्तथेत्युक्त्वा विभीषणम्॥ १७
रथेनाभिपपाताथ दशग्रीवं रुषान्वितः ।
हाहाकृतानि भूतानि रावणे समभिद्रुते ॥ १८
सिंहनादाः सपटहा दिवि दिव्यास्तथाऽनदन् ।
दशकन्धरराजसून्वोस्तथा युद्धमभून्महत् ॥ १९
अलब्धोपममन्यत्र तयोरेव तथाऽभवत् ।
स रामाय महाघोरं विससर्ज निशाचरः ॥ २०
शूलमिन्द्राशनिप्रख्यं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ।
तच्छूलं सत्वरं रामश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ २१
तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म रावणं भयमाविशत् ।
ततः क्रुद्धः ससर्जाशु दशग्रीवः शिताञ्छरान् २२
सहस्रायुतशो रामे शस्त्राणि विविधानि च ।
ततो भुशुण्डीः शूलानि मुसलानि परश्वधान्२३
शक्तीश्च विविधाकाराः शतघ्नीश्च शितान् क्षुरान्
तां मायां विकृतां दृष्ट्वा दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ २४
भयात् प्रदुद्रुवुः सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ।
ततः सुपत्रं सुमुखं हेमपुङ्खं शरोत्तमम् ॥ २५
तूणादादाय काकुत्स्थो ब्रह्मास्त्रेण युयोज ह ।
तं बाणवर्यं रामेण ब्रह्मास्त्रेणानुमन्त्रितम् ॥ २६
जहृषुर्देवगन्धर्वा दृष्ट्वा शक्रपुरोगमाः ।
अल्पावशेषमायुश्च ततोऽमन्यन्त रक्षसः ॥ २७
ब्रह्मास्त्रोदीरणाच्छत्रोर्देवदानवकिन्नराः ।
ततः ससर्ज तं रामः शरमप्रतिमौजसम् ॥ २८
रावणान्तकरं घोरं ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ।
मुक्तमात्रेण रामेण दूराकृष्टेन भारत ॥ २९
स तेन राक्षसश्रेष्ठः सरथः साश्वसारथिः ।
प्रजज्वाल महाज्वालेनाग्निनाऽभिपरिप्लुतः ॥ ३०
ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः सहगन्धर्वचारणाः ।
निहतं रावणं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३१
तत्यजुस्तं महाभागं पञ्च भूतानि रावणम् ।
भ्रंशितः सर्वलोकेषु स हि ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ ३२

२९०

ततः क्रुद्ध इति ॥ १ ॥ रामस्य रूपं कृत्वा लक्ष्मणमभिदुद्राव लक्ष्मणस्य रूपं कृत्वा राममिति योजना ॥ ८ ॥ विकृतां भीषणाम् ॥ २४ ॥ पञ्च भूतानि तत्यजुर्मृत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ + इत्युक्त्वाऽभ्यहनद्रामो लक्ष्मणश्चात्मरूपकान्—स

शरीरधातवो ह्यस्य मांसं रुधिरमेव च । नेशुर्ब्रह्मास्त्रनिर्दग्धा न च भस्माप्यदृश्यत ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रावणवधे नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

## २९१

मार्कण्डेय उवाच ।

स हत्वा रावणं क्षुद्रं राक्षसेन्द्रं सुरद्विषम् ।
बभूव हृष्टः ससुहृद्रामः सौमित्रिणा सह ॥ १
ततो हते दशग्रीवे देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
आशीर्भिर्जययुक्ताभिरानर्चुस्तं महाभुजम् ॥ २
रामं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः सर्वदेवताः ।
गन्धर्वाः पुष्पवर्षैश्च वाग्भिश्च त्रिदशालयाः ॥ ३
पूजयित्वा यथा रामं प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
तन्महोत्सवसङ्काशमासीदाकाशमच्युत ॥
ततो हत्वा दशग्रीवं लङ्कां रामो महायशाः ।
विभीषणाय प्रददौ प्रभुः परपुरञ्जयः ॥
ततः सीतां पुरस्कृत्य विभीषणपुरस्कृताम् ।
अविन्ध्यो नाम सुप्रज्ञो वृद्धामात्यो विनिर्ययौ॥ ६
उवाच च महात्मानं काकुत्स्थं दैन्यमास्थितः ।
प्रतीच्छ देवी सद्वृत्तां महात्मन् जानकीमिति ७
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्मादवतीर्य रथोत्तमात् ।
बाष्पेणापिहितां सीतां ददर्शेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ ८
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं यानस्थां शोककर्शिताम् ।
मलोपचितसर्वाङ्गीं जटिलां कृष्णवाससम् ॥ ९
उवाच रामो वैदेहीं परामर्शविशङ्कितः ।
गच्छ वैदेहि मुक्ता त्वं यत्कार्यं तन्मया कृतम् १०
मामासाद्य पतिं भद्रे न त्वं राक्षसवेश्मनि ।
जरां व्रजेथा इति मे निहतोऽसौ निशाचरः॥ ११
कथं ह्यस्मद्विधो जातु जानन् धर्मविनिश्चयम् ।
परहस्तगतां नारीं मुहूर्तमपि धारयेत् ॥ १२
सुवृत्तामसुवृत्तां वाऽप्यहं त्वामद्य मैथिलि ।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा ॥ १३
ततः सा सहसा बाला तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः ।
पपात देवी व्यथिता निकृत्ता कदली यथा ॥ १४
योऽप्यस्या हर्षसम्भूतो मुखरागस्तदाऽभवत् ।
क्षणेन स पुनर्नष्टो निःश्वास इव दर्पणे ॥ १५
ततस्ते हरयः सर्वे तच्छ्रुत्वा रामभाषितम् ।
गतासुकल्पा निश्चेष्टा बभूवुः सहलक्ष्मणाः ॥ १६
ततो देवो विशुद्धात्मा विमानेन चतुर्मुखः ।
पद्मयोनिर्जगत्स्रष्टा दर्शयामास राघवम् ॥ १७
शक्रश्चाग्निश्च वायुश्च यमो वरुण एव च ।
यक्षाधिपश्च भगवांस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः ॥ १८
राजा दशरथश्चैव दिव्यभास्वरमूर्तिमान् ।
विमानेन महार्हेण हंसयुक्तेन भास्वता ॥ १९
ततोऽन्तरिक्षं तत् सर्वं देवगन्धर्वसङ्कुलम् ।
शुशुभे तारकाचित्रं शरदीव नभस्तलम् ॥ २०
तत उत्थाय वैदेही तेषां मध्ये यशस्विनी ।
उवाच वाक्यं कल्याणी रामं पृथुलवक्षसम् ॥२१
राजपुत्र न ते दोषं करोमि विदिता हि ते ।
गतिः स्त्रीणां नराणां च शृणु चेदं वचो मम २२
अन्तश्चरति भूतानां मातरिश्वा सदागतिः ।
स मे विमुञ्चतु प्राणान् यदि पापं चराम्यहम् ॥
अग्निरापस्तथाऽऽकाशं पृथिवी वायुरेव च ।
विमुञ्चन्तु मम प्राणान् यदि पापं चराम्यहम् २४
यथाऽहं त्वदृते वीर नान्यं स्वप्नेऽप्यचिन्तयम् ।
तथा मे देवनिर्दिष्टस्त्वमेव हि पतिर्भव ॥ २५
ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुभगा लोकसाक्षिणी ।
पुण्या संहर्षणी तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥२६

वायुरुवाच ।

भो भो राघव सत्यं वै वायुरस्मि सदागतिः ।
अपापा मैथिली राजन् सङ्गच्छ सह भार्यया २७

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥ १ रणे-ख

२९१

स हत्वेति १ ॥ त्रिदशाख्यः स्वर्गस्तत्स्थाः ॥ ३ ॥

अग्रतः पादुके कृत्वा ददर्शासीनमासने ।
सङ्गतो भरतेनाथ शत्रुघ्नेन च वीर्यवान् ॥

—वनपर्व अ. २९१ पृ. ४५७

अग्निरुवाच ।
अहमन्तःशरीरस्थो भूतानां रघुनन्दन ।
सुसूक्ष्ममपि काकुत्स्थ मैथिली नापराध्यति २८
वरुण उवाच ।
रसा वै मत्प्रसूता हि भूतदेहेषु राघव ।
अहं वै त्वां प्रब्रवीमि मैथिली प्रतिगृह्यताम् ॥२९
ब्रह्मोवाच ।
पुत्र नैतदिहाश्चर्यं त्वयि राजर्षिधर्मणि ।
साधो सद्वृत्त काकुत्स्थ शृणु चेदं वचो मम ॥३०
शत्रुरेष त्वया वीर देवगन्धर्वभोगिनाम् ।
यक्षाणां दानवानां च महर्षीणां च पातितः ॥३१
अवध्यः सर्वभूतानां मत्प्रसादात् पुराऽभवत् ।
कस्माच्चित् कारणात्पापः कञ्चित्कालमुपेक्षितः
वधार्थमात्मनस्तेन हृता सीता दुरात्मना ।
नलकूवरशापेन रक्षा चास्याः कृता मया ॥ ३३
यदि ह्यकामामासेवेत् स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम् ।
शतधाऽस्य फलेन्मूर्धा इत्युक्तः सोऽभवत् पुरा
नात्र शङ्का त्वया कार्या प्रतीच्छेमां महाद्युते ।
कृतं त्वया महत् कार्यं देवानाममरप्रभ ॥ ३५
दशरथ उवाच ।
प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पिता दशरथोऽस्मि ते
अनुजानामि राज्यं त्वं प्रशाधि पुरुषोत्तम ॥ ३६
राम उवाच ।
अभिवादये त्वां राजेन्द्र यदि त्वं जनको मम ।
गमिष्यामि पुरीं रम्यामयोध्यां शासनात् तव ॥
मार्कण्डेय उवाच ।
तमुवाच पिता भूयः प्रहृष्टो भरतर्षभ ।
गच्छायोध्यां प्रशाधीति रामं रक्तान्तलोचनम् ॥
सम्पूर्णानीह वर्षाणि चतुर्दश महाद्युते ।
ततो देवान् नमस्कृत्य सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ३९
महेन्द्र इव पौलोम्या भार्यया स समेयिवान् ।
ततो वरं ददौ तस्मै ह्यविन्ध्याय परन्तपः ॥ ४०
त्रिजटां चार्थमानाभ्यां योजयामास राक्षसीम् ।
तमुवाच ततो ब्रह्मा देवैः शक्रपुरोगमैः ॥ ४१
कौसल्यामातरिष्टांस्ते वरानद्य ददानि कान् ।
वव्रे रामः स्थितिं धर्मे शत्रुभिश्चापराजयम् ॥४२
राक्षसैर्निहतानां च वानराणां समुद्भवम् ।
ततस्ते ब्रह्मणा प्रोक्ते तथेति वचने तदा ॥ ४३
समुत्तस्थुर्महाराज वानरा लब्धचेतसः ।
सीता चापि महाभागा वरं हनुमते ददौ ॥ ४४
रामकीर्त्या समं पुत्र जीवितं ते भविष्यति ।
दिव्यास्त्वामुपभोगाश्च मत्प्रसादकृताः सदा ४५
उपस्थास्यन्ति हनुमन्निति स्म हरिलोचन ।
ततस्ते प्रेक्षमाणानां तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ॥ ४६
अन्तर्धानं ययुर्देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
दृष्ट्वा रामं तु जानक्या सङ्गतं शक्रसारथिः ॥४७
उवाच परमप्रीतः सुहृन्मध्ये इदं वचः ।
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषासुरभोगिनाम् ॥ ४८
अपनीतं त्वया दुःखमिदं सत्यपराक्रम ।
सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ४९
कथयिष्यन्ति लोकास्त्वां यावद्भूमिर्धरिष्यति ।
इत्येवमुक्त्वाऽनुज्ञाप्य रामं शस्त्रभृतां वरम् ॥ ५०
सम्पूज्यापाक्रमत् तेन रथेनादित्यवर्चसा ।
ततः सीतां पुरस्कृत्य रामः सौमित्रिणा सह ५१
सुग्रीवप्रमुखैश्चैव सहितः सर्ववानरैः ।
विधाय रक्षां लङ्कायां विभीषणपुरस्कृतः ॥ ५२
सन्ततार पुनस्तेन सेतुना मकरालयम् ।
पुष्पकेण विमानेन खेचरेण विराजता ॥ ५३
कामगेन यथा मुख्यैरमात्यैः संवृतो वशी ।
ततस्तीरे समुद्रस्य यत्र शिश्ये स पार्थिवः ॥ ५४
तत्रैवोवास धर्मात्मा सहितः सर्ववानरैः ।
अथैनान् राघवः काले समानीयाभ्यपूज्य च ५५
विसर्जयामास तदा रत्नैः सन्तोष्य सर्वशः ।
गतेषु वानरेन्द्रेषु गोपुच्छर्क्षेषु तेषु च ॥ ५६
सुग्रीवसहितो रामः किष्किन्धां पुनरागमत् ।
विभीषणेनानुगतः सुग्रीवसहितस्तदा ॥ ५७
पुष्पकेण विमानेन वैदेह्या दर्शयन् वनम् ।
किष्किन्धां तु समासाद्य रामः प्रहरतां वरः ॥५८
अङ्गदं कृतकर्माणं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।
ततस्तैरेव सहितो रामः सौमित्रिणा सह ॥ ५९
यथागतेन मार्गेण प्रययौ स्वपुरं प्रति ।
अयोध्यां स समासाद्य पुरीं राष्ट्रपतिस्ततः ॥ ६०
भरताय हनूमन्तं दूतं प्रास्थापयत् तदा ।
लक्षयित्वेङ्गितं सर्वं प्रियं तस्मै निवेद्य वै ॥ ६१
वायुपुत्रे पुनः प्राप्ते नन्दिग्राममुपागमत् ।
स तत्र मलदिग्धाङ्गं भरतं चीरवाससम् ॥ ६२
अग्रतः पादुके कृत्वा ददर्शासीनमासने ।
सङ्गतो भरतेनाथ शत्रुघ्नेन च वीर्यवान् ॥ ६३

यत्र शिश्ये पूर्वं समुद्रप्रार्थनार्थं शयनं कृतवान् ॥ ५४ ॥

राघवः सहसौमित्रिर्मुमुदे भरतर्षभ ।
ततो भरतशत्रुघ्नौ समेतौ गुरुणा तदा ॥ ६४
वैदेह्या दर्शनेनाभौ प्रहर्षं समवापतुः ।
तस्मै तद्भरतो राज्यमागतायातिसत्कृतम् ।
न्यासं निर्यातयामास युक्तः परमया मुदा ॥ ६५
ततस्तं वैष्णवे शूरं *नक्षत्रेऽभिमतेऽहनि ।
वसिष्ठो वामदेवश्च सहितावभ्यषिञ्चताम् ॥ ६६
सोऽभिषिक्तः कपिश्रेष्ठं सुग्रीवं ससुहृज्जनम् ।
विभीषणं च पौलस्त्यमन्वजानाद्गृहान् प्रति॥६७
अभ्यर्च्य विविधैर्भोगैः प्रीतियुक्तौ मुदा युतौ ।
समाधायेतिकर्तव्यं दुःखेन विससर्ज ह ॥ ६८
पुष्पकं च विमानं तत् पूजयित्वा स राघवः ।
प्रादाद्वैश्रवणायैव प्रीत्या स रघुनन्दनः ॥ ६९
ततो देवर्षिसहितः सरितं गोमतीमनु ।
दशाश्वमेधानाजह्रे जारूथ्यान् स निरर्गलान्॥७०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि रामाभिषेके
एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

## २९२

मार्कण्डेय उवाच ।
एवमेतन्महाबाहो रामेणामिततेजसा ।
प्राप्तं व्यसनमत्युग्रं वनवासकृतं पुरा ॥ १
मा शुचः पुरुषव्याघ्र क्षत्रियोऽसि परन्तप ।
बाहुवीर्याश्रिते मार्गे वर्तसे दीप्तनिर्णये ॥ २
न हि ते वृजिनं किञ्चिद्वर्तते परमण्वपि ।
अस्मिन्मार्गे विषीदेयुः सेन्द्राऽपि सुरासुराः ३
संहत्य निहतो वृत्रो मरुद्भिर्वज्रपाणिना ।
नमुचिश्चैव दुर्धर्षो दीर्घजिह्वा च राक्षसी ॥ ४
सहायवति सर्वार्थाः सन्तिष्ठन्तीह सर्वशः ।
किं नु तस्याजितं सङ्ख्ये यस्य भ्राता धनञ्जयः५
अयं च बलिनां श्रेष्ठो भीमो भीमपराक्रमः ।
युवानौ च महेष्वासौ वीरौ माद्रवती सुतौ ॥ ६
एभिः सहायैः कस्मात् त्वं विषीदसि परन्तप ।
य इमे वज्रिणः सेनां जयेयुः समरुद्गणाम् ॥ ७
त्वमप्येभिर्महेष्वासैः सहायैर्देवरूपिभिः ।
विजेष्यसि रणे सर्वानमित्रान् भरतर्षभ ॥ ८
इतश्च त्वमिमां पश्य सैन्धवेन दुरात्मना ।
बलिना वीर्यमत्तेन हृतामेभिर्महात्मभिः ॥ ९
आनीतां द्रौपदीं कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
जयद्रथं च राजानं विजितं वशमागतम् ॥ १०
असहायेन रामेण वैदेही पुनराहृता ।
हत्वा सङ्ख्ये दशग्रीवं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥११
यस्य शाखामृगा मित्राण्यृक्षाः कालमुखास्तथा ।
जात्यन्तरगता राजन्नेतद्बुद्ध्याऽनुचिन्तय ॥ १२
तस्मात् स त्वं कुरुश्रेष्ठ मा शुचो भरतर्षभ ।
त्वद्विधा हि महात्मानो न शोचन्ति परन्तप १३

गुरुणा रामेण ॥ ६४ ॥ वैष्णवे नक्षत्रे श्रवणे ॥ ६६ ॥ जारूथ्यान् त्रिगुणदक्षिणानित्यर्जुनमिश्रः । जुवृभ्यामूथन्नि- त्युणादिसूत्रे । जरूथं मांसमिति शाब्दिकाः । तदा मांसमयान् मांसादिदानप्रधानान् पुष्टानित्यर्थः । निरर्गलान् अनार्थिनामनावृतद्वारान् । जरूथोऽसुरविशेष इति वेद- भाष्यम् । 'जरूथं हन् यक्षि राये पुरन्धिम्' इति मन्त्रवर्णात् । 'जरूथं गरूथं गृणातेः' इति यास्कवचनाच्च । जरूथं स्तोत्रम् । तथा चायं मन्त्रो निरुक्तभाष्ये व्याख्यातः-हेऽग्ने त्वां पुरन्धिं महान्तं समिधानः सम्यग्दीपयन् वसिष्ठो मुनिः राये धनप्राप्तये जरूथं स्तोत्रं हन् गमयन् यक्षि जयति । अत्र जरतेः स्तुत्यर्थस्य शब्दसारूप्यादर्थाविरोधाच्च जरूथं स्तोत्रमित्युच्यत इति । जारूथ्यान् स्तोत्रार्हानित्यर्थः ॥७०॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवत्य- धिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥ * नक्षत्रेऽभिजिते-ख.

२९२

एवमेतदिति ॥ १ ॥ दीप्तनिर्णये असन्दिग्धे प्रत्यक्ष- फले ॥ २ ॥

सावित्र्युवाचः—

ब्रह्मचर्येण शुद्धेन दमेन नियमेन च ।
सर्वात्मना च भक्त्या च तुष्टाऽस्मि तव पार्थिव ॥

—वनपर्व अ. २९३ पृ. ४५९

वैशम्पायन उवाच ।

एवमाश्वासितो राजा मार्कण्डेयेन धीमता । त्यक्त्वा दुःखमदीनात्मा पुनरप्येनमब्रवीत् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि रामोपाख्यानपर्वणि युधिष्ठिराश्वासने द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

समाप्तं रामोपाख्यानपर्व ।

## ॥ पतिव्रतामाहात्म्यपर्व

## २९३

युधिष्ठिर उवाच ।

नात्मानमनुशोचामि नेमान् भ्रातॄन् महामुने ।
हरणं चापि राज्यस्य यथेमां द्रुपदात्मजाम् ॥ १
द्यूते दुरात्मभिः क्लिष्टाः कृष्णया तारिता वयम् ।
जयद्रथेन च पुनर्वनाच्चापि हृता बलात् ॥ २
अस्ति सीमन्तिनी काचिद्दृष्टपूर्वाऽपि वा श्रुता ।
पतिव्रता महाभागा यथेयं द्रुपदात्मजा ॥ ३

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् कुलस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर ।
सर्वमेतद्यथाप्राप्तं सावित्र्या राजकन्यया ॥ ४
आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा राजा परमधार्मिकः ।
ब्रह्मण्यश्च महात्मा च सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ५
यज्वा दानपतिर्दक्षः पौरजानपदप्रियः ।
पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम सर्वभूतहिते रतः ॥ ६
क्षमावाननपत्यश्च सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ।
अतिक्रान्तेन वयसा सन्तापमुपजग्मिवान् ॥ ७
अपत्योत्पादनार्थं च तीव्रं नियममास्थितः ।
काले परिमिताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ८
हुत्वा शतसहस्रं स सावित्र्या राजसत्तम ।
षष्ठे षष्ठे तदा काले बभूव मितभोजनः ॥ ९
एतेन नियमेनासीद्वर्षाण्यष्टादशैव तु ।
पूर्णे त्वष्टादशे वर्षे सावित्री तुष्टिमभ्यगात् ॥ १०
रूपिणी तु तदा राजन् दर्शयामास तं नृपम् ।
अग्निहोत्रात् समुत्थाय हर्षेण महताऽन्विता ।
उवाच चैनं वरदा वचनं पार्थिवं तदा ॥ ११

सावित्र्युवाच ।

ब्रह्मचर्येण शुद्धेन दमेन नियमेन च ।
सर्वात्मना च भक्त्या च तुष्टाऽस्मि तव पार्थिव ॥
वरं वृणीष्वाश्वपते मद्रराज यदीप्सितम् ।
न प्रमादश्च धर्मेषु कर्तव्यस्ते कथञ्चन ॥ १३

अश्वपतिरुवाच ।

अपत्यार्थः समारम्भः कृतो धर्मेप्सया मया ।
पुत्रा मे बहवो देवि भवेयुः कुलभावनाः ॥ १४
तुष्टाऽसि यदि मे देवि वरमेतं वृणोम्यहम् ।
सन्तानं परमो धर्म इत्याहुर्मां द्विजातयः ॥ १५

सावित्र्युवाच ।

पूर्वमेव मया राजन्नभिप्रायमिमं तव ।
ज्ञात्वा पुत्रार्थमुक्तो वै भगवांस्ते पितामहः ॥ १६
प्रसादाच्चैव तस्मात्ते स्वयम्भुविहिताद्भुवि ।
कन्या तेजस्विनी सौम्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ १७
उत्तरं च न ते किञ्चिद्व्याहर्तव्यं कथञ्चन ।
पितामहनिसर्गेण तुष्टा ह्येतद्ब्रवीमि ते ॥ १८

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

२९३

नात्मानमिति ॥१॥ सावित्र्या सावित्री सवितृकन्या तद्देवत्यया ऋचा। सा च 'सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा। सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्' इति। यदा सवित्रा त्वष्ट्रा सावित्री स्वकन्या सूर्या सूर्यस्य स्त्री सूर्याय दत्ता तदा सोमोऽस्य वधूयुर्वध्वा अनुचरोऽभूत्। सविता च सूर्यां पत्ये पत्युः कल्याणार्थं शंसन्तीं कथयन्तीं मनसा उभौ वरौ पुत्ररूपौ अश्विनौ अददाति मन्त्रार्थः। इत एव वाक्यादेतस्य मन्त्रस्य लक्षहोमादपत्यप्राप्तिर्भवतीति गम्यते। षष्ठे कालेऽष्टधा विभक्तस्यान्हः षष्ठेंऽशे ॥९॥ उत्तरं पुत्रार्थं प्रार्थनावचनं निसर्गेण आज्ञया ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

स तथेति प्रतिज्ञाय सावित्र्या वचनं नृपः ।
प्रसादयामास पुनः क्षिप्रमेतद्भविष्यति ॥ १९
अन्तर्हितायां सावित्र्यां जगाम स्वपुरं नृपः ।
स्वराज्ये चावसद्वीरः प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ २०
कस्मिंश्चित्तु गते काले स राजा नियतव्रतः ॥
ज्येष्ठायां धर्मचारिण्यां महिष्यां गर्भमादधे ॥ २१
राजपुत्र्यास्तु गर्भः स मानव्या भरतर्षभ ।
व्यवर्धत तदा शुक्ले तारापतिरिवाम्बरे ॥ २२
प्राप्ते काले तु सुषुवे कन्यां राजीवलोचनाम् ।
क्रियाश्च तस्या मुदितश्चक्रे च नृपसत्तमः ॥ २३
सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्या हुतया ह्यपि ।
सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता ॥ २४
सा विग्रहवतीव श्रीर्व्यवर्धत नृपात्मजा ।
कालेन चापि सा कन्या यौवनस्था बभूव ह ॥ २५
तां सुमध्यां पृथुश्रोणीं प्रतिमां काञ्चनीमिव ।
प्राप्तेयं देवकन्येति दृष्ट्वा सम्मेनिरे जनाः ॥ २६
तां तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
न कश्चिद्वरयामास तेजसा प्रतिवारितः ॥ २७
अथोपोष्य शिरःस्नाता देवतामभिगम्य सा ।
हुत्वाऽग्निं विधिवद्विप्रान् वाचयामास पर्वणि ॥ २८
ततः सुमनसः शेषाः प्रतिगृह्य महात्मनः ।
पितुः समीपमगमद्देवी श्रीरिव रूपिणी ॥ २९
साऽभिवाद्य पितुः पादौ शेषाः पूर्वं निवेद्य च ।
कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वमास्थिता ॥ ३०
यौवनस्थां तु तां दृष्ट्वा स्वां सुतां देवरूपिणीम् ।
अयाच्यमानां च वरैर्नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ३१

राजोवाच ।

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोति माम् ।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ ३२
प्रार्थितः पुरुषो यश्च स निवेद्यस्त्वया मम ।
विमृश्याहं प्रदास्यामि वरय त्वं यथेप्सितम् ॥ ३३
श्रुतं हि धर्मशास्त्रेषु पठ्यमानं द्विजातिभिः ।
तथा त्वमपि कल्याणि गदतो मे वचः शृणु ॥ ३४
अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः ।
मृते भर्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ३५
इदं मे वचनं श्रुत्वा भर्तुरन्वेषणे त्वर ।
देवतानां यथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु ॥ ३६

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमुक्त्वा दुहितरं तथा वृद्धांश्च मन्त्रिणः ।
व्यादिदेशानुयात्रं च गम्यतामित्यचोदयत् ॥ ३७
साऽभिवाद्य पितुः पादौ व्रीडितेव तपस्विनी ।
पितुर्वचनमाज्ञाय निर्जगामाविचारितम् ॥ ३८
सा हैमं रथमास्थाय स्थविरैः सचिवैर्वृता ।
तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम ह ॥ ३९
मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिवादनम् ।
वनानि क्रमशस्तात सर्वाण्येवाभ्यगच्छत ॥ ४०
एवं तीर्थेषु सर्वेषु धनोत्सर्गं नृपात्मजा ।
कुर्वती द्विजमुख्यानां तं तं देशं जगाम ह ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युपाख्याने त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

## २९४

मार्कण्डेय उवाच ।

अथ मद्राधिपो राजा नारदेन समागतः ।
उपविष्टः सभामध्ये कथायोगेन भारत ॥ १
ततोऽभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमांस्तथा ।
आजगाम पितुर्वेश्म सावित्री सह मन्त्रिभिः ॥ २

---

प्रतिज्ञाय अङ्गीकृत्य ॥ १९ ॥ मानव्या मनुपुत्र्याः ॥ २२ ॥ प्रतिवारितोऽभिभूत ॥ २७ ॥ सुमनसः इष्टदेवताया 'सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा' इत्यमर । शेषाः प्रसादपूर्वकं दत्तानि माल्यानि । प्रसादभूता माला इत्यर्थः । 'प्रमादाभिजनिर्माल्यदाने शेषानुकीर्तिता इति विश्व. ॥ २९ ॥ प्रार्थित. इच्छितः ॥ ३३ ॥ वाच्यो निन्द्यः । अनुपयन् ऋतावगच्छन् ॥ ३५ ॥ अनुयात्रं यात्रोपकरणं वाहनादि ॥ ३७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्याय. ॥ २९३ ॥ | मनस्विनी-स्व

२९४

अथेति । कथायोगेन कथाप्रसङ्गेन ॥ १ ॥

राजोवाच:—

पुत्रि! प्रदानकालस्ते न च कश्चिद्वृणोति माम्।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः॥

—वनपर्व अ. २९३·पृ. ४६०

सावित्री—

दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥
—वनपर्व अ० २९४ पृ. ४६१.

नारदेन सहासीनं सा दृष्ट्वा पितरं शुभा ।
उभयोरेव शिरसा चक्रे पादाभिवादनम् ॥ ३

नारद उवाच ।

क गताऽभूत् सुतेयं ते कुतश्चैवागता नृप ।
किमर्थं युवतीं भर्त्रे न चैनां सम्प्रयच्छसि ॥ ४

अश्वपतिरुवाच ।

कार्येण खल्वनेनैव प्रेषिताऽद्यैव चागता ।
एतस्याः शृणु देवर्षे भर्तारं योऽनया वृतः ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच ।

सा ब्रूहि विस्तरेणेति पित्रा सञ्चोदिता शुभा ।
तदैव तस्य वचनं प्रतिगृह्येदमब्रवीत् ॥ ६

सावित्र्युवाच ।

आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः ।
द्युमत्सेन इति ख्यातः पश्चादन्धो बभूव ह ॥ ७
विनष्टचक्षुषस्तस्य बालपुत्रस्य धीमतः ।
सामीप्येन हृतं राज्यं छिद्रेऽस्मिन् पूर्ववैरिणा॥८
स बालवत्सया सार्धं भार्यया प्रस्थितो वनम् ।
महारण्यं गतश्चापि तपस्तेपे महाव्रतः ॥ ९
तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धश्च तपोवने ।
सत्यवाननुरूपो मे भर्तेति मनसा वृतः ॥ १०

नारद उवाच ।

अहो बत महत् पापं सावित्र्या नृपते कृतम् ।
अजानन्त्या यदनया गुणवान् सत्यवान् वृतः॥११
सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते ।
तथाऽस्य ब्राह्मणाश्चक्रुर्नामैतत् सत्यवानिति॥१२
बालस्याश्वाः प्रियाश्चास्य करोत्यश्वांश्च मृन्मयान्
चित्रेऽपि विलिखत्यश्वांश्चित्राश्व इति चोच्यते॥

राजोवाच ।

अपीदानीं स तेजस्वी बुद्धिमान् वा नृपात्मजः ।
क्षमावानपि वा शूरः सत्यवान् पितृवत्सलः १४

नारद उवाच ।

विवस्वानिव तेजस्वी बृहस्पतिसमो मतौ ।
महेन्द्र इव धीरश्च वसुधेव क्षमान्वितः ॥ १५

अश्वपतिरुवाच ।

अपि राजात्मजो दाता ब्रह्मण्यश्चापि सत्यवान् ।
रूपवानप्युदारो वाऽप्यथवा प्रियदर्शनः ॥ १६

नारद उवाच ।

साङ्कृते रन्तिदेवस्य स्वशक्त्या दानतः समः ।
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शिबिरौशीनरो यथा॥१७
ययातिरिव चोदारः सोमवत् प्रियदर्शनः ।
रूपेणान्यतमोऽश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतो बली ॥१८
स दान्तः स मृदुः शूरः स सत्यः संयतेन्द्रियः ।
स मैत्रः सोऽनसूयश्च स ह्रीमान् द्युतिमांश्च सः ॥
नित्यशश्चार्जवं तस्मिन् स्थितिस्तस्यैव च ध्रुवा ।
सङ्क्षेपतस्तपोवृद्धैः शीलवृद्धैश्च कथ्यते ॥ २०

अश्वपतिरुवाच ।

गुणैरुपेतं सर्वैस्तं भगवन् प्रब्रवीषि मे ।
दोषानप्यस्य मे ब्रूहि यदि सन्तीह केचन ॥ २१

नारद उवाच ।

एक एवास्य दोषो हि गुणानाक्रम्य तिष्ठति ।
स च दोषः प्रयत्नेन न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २२
एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवान्
संवत्सरेण क्षीणायुर्देहन्यासं करिष्यति ॥ २३

राजोवाच ।

एहि सावित्रि गच्छस्व अन्यं वरय शोभने ।
तस्य दोषो महानेको गुणानाक्रम्य च स्थितः॥२४
यथा मे भगवानाह नारदो देवसत्कृतः ।
संवत्सरेण सोऽल्पायुर्देहन्यासं करिष्यति ॥ २५

सावित्र्युवाच ।

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥२६
दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥ २७
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते ।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ॥ २८

नारद उवाच ।

स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्र्या दुहितुस्तव ।
नैषा वारयितुं शक्या धर्मादस्मात् कथञ्चन॥२९
नान्यस्मिन् पुरुषे सन्ति ये सत्यवति वै गुणाः ।
प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव ॥ ३०

---

सामीप्येन समीपवासिना । छिद्रे अन्धत्वे सति ॥ ८ ॥ सत्यवाक्नामतः॥ १० ॥ तेजस्वी प्रभाववान् बुद्धिमान् वा । वाशब्दश्चार्थे ॥ १४ ॥ साङ्कृतेः सङ्कृतिपुत्रस्य ॥ १७ ॥ आक्रम्य अभिभूय ॥ २२ ॥ अंशः काष्ठपाषाणादेः शकलः सकृन्निपतति कृतस्य करणं नास्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥

राजोवाच ।
अविचाल्यमेतदुक्तं तथ्यं च भवता वचः ।
करिष्याम्येतदेवं च गुरुर्हि भगवान् मम ॥ ३१
नारद उवाच ।
अविघ्नमस्तु सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव ।
साधयिष्याम्यहं तावत् सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥३२
मार्कण्डेय उवाच ।
एवमुक्त्वा समुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः ।
राजाऽपि दुहितुः सर्वं वैवाहिकमकारयत्॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युपाख्याने चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥

## २९५

मार्कण्डेय उवाच ।
अथ कन्याप्रदाने स तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
समानिन्ये च तत् सर्वं भाण्डं वैवाहिकं नृपः॥ १
ततो वृद्धान् द्विजान् सर्वानृत्विजः सपुरोहितान्
समाहूय दिने पुण्ये प्रययौ सह कन्यया ॥ २
मेध्यारण्यं स गत्वा च द्युमत्सेनाश्रमं नृप ।
पद्भ्यामेव द्विजैः सार्धं राजर्षिं तमुपागमत् ॥ ३
तत्रापश्यन्महाभागं शालवृक्षमुपाश्रितम् ।
कौश्यां बृस्यां समासीनं चक्षुर्हीनं नृपं तदा ॥ ४
स राजा तस्य राजर्षेः कृत्वा पूजां यथाऽर्हतः ।
वाचा सुनियतो भूत्वा चकारात्मनिवेदनम् ॥ ५
तस्यार्घ्यमासनं चैव गां चावेद्य स धर्मवित् ।
किमागमनमित्येवं राजा राजानमब्रवीत् ॥ ६
तस्य सर्वमभिप्रायमितिकर्तव्यतां च ताम् ।
सत्यवन्तं समुद्दिश्य सर्वमेव न्यवेदयत् ॥ ७
अश्वपतिरुवाच ।
सावित्री नाम राजर्षे कन्येयं मम शोभना ।
तां स्वधर्मेण धर्मज्ञ स्नुषार्थे त्वं गृहाण मे ॥ ८
द्युमत्सेन उवाच ।
च्युताः स्म राज्याद्वनवासमाश्रिता
श्चराम धर्मं नियतास्तपस्विनः ।
कथं त्वनर्हा वनवासमाश्रमे
निवत्स्यते क्लेशमिमं सुता तव ॥ ९
अश्वपतिरुवाच ।
सुखं च दुःखं च भवाभवात्मकं
यदा विजानाति सुताऽहमेव च ।
न मद्विधे युज्यति वाक्यमीदृशं
विनिश्चयेनाभिगतोऽस्मि ते नृप ॥ १०
आशां नार्हसि मे हन्तुं सौहृदात् प्रणतस्य च ।
अभितश्चागतं प्रेम्णा प्रत्याख्यातुं न माऽर्हसि ११
अनुरूपो हि युक्तश्च त्वं ममाहं तवापि च ।
स्नुषां प्रतीच्छ मे कन्यां भार्यां सत्यवतः सुतः॥
द्युमत्सेन उवाच ।
पूर्वमेवाभिलषितः सम्बन्धो मे त्वया सह ।
भ्रष्टराज्यस्त्वहमिति तत एतद्विचारितम् ॥ १३
अभिप्रायस्त्वयं यो मे पूर्वमेवाभिकाङ्क्षितः ।
स निर्वर्ततु मेऽद्यैव काङ्क्षितो ह्यसि मेऽतिथिः१४
ततः सर्वान् समानाय्य द्विजानाश्रमवासिनः ।
यथाविधिसमुद्वाहं कारयामासतुर्नृपौ ॥ १५
दत्त्वा सोऽश्वपतिः कन्यां यथार्हं सपरिच्छदम् ।
ययौ स्वमेव भवनं युक्तः परमया मुदा ॥ १६
सत्यवानपि तां भार्यां लब्ध्वा सर्वगुणान्विताम्
मुमुदे सा च तं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम् १७
गते पितरि सर्वाणि सन्न्यस्याभरणानि सा ।
जगृहे वल्कलान्येव वस्त्रं काषायमेव च ॥ १८

यत्तत् सावित्र्या वचनं अविचाल्यं भवता च तथ्यं उक्तम् ॥ ३१ ॥ साधयिष्यामि गमिष्यामि धातूनामनेकार्थत्वाद् त्यर्थोऽयम् ॥ ३२ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥

२९५

अथेति । भाण्डं वैवाहिकमुपकरणं विवाहोचितम् ॥१॥ कौश्या कुशमय्या बृस्यां आसने ॥ ४ ॥ आत्मनिवेदनमश्वपतिरहमिति ज्ञापनम् ॥ ५ ॥ भवाभवात्मकं उत्पत्तिविनाशात्मकं ते त्वा प्रति ॥१०॥ मा माम्॥११॥ निर्वर्ततु निष्पद्यताम् ॥ १४ ॥ सपरिच्छदं पारिबर्हसहितम्॥१६॥

परिचारैर्गुणैश्चैव प्रश्रयेण दमेन च ।
सर्वकामक्रियाभिश्च सर्वेषां तुष्टिमादधे ॥ १९
श्वश्रूं शरीरसत्कारैः सर्वैराच्छादनादिभिः ।
श्वशुरं देवसत्कारैर्वाचः संयमनेन च ॥ २०
तथैव प्रियवादेन नैपुणेन शमेन च ।
रहश्चैवोपचारेण भर्तारं पर्यतोषयत् ॥ २१
एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सताम् ।
कालस्तपस्यतां कश्चिदपाक्रामत भारत ॥ २२
सावित्र्या ग्लायमानायास्तिष्ठन्त्यास्तु दिवानिशम्
नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्तते ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि सावित्र्युपाख्यानपर्वणि
पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९५ ॥

## २९६

मार्कण्डेय उवाच ।
ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन ।
प्राप्तः स कालो मर्तव्यं यत्र सत्यवता नृप ॥ १
गणयन्त्याश्च सावित्र्या दिवसे दिवसे गते ।
यद्वाक्यं नारदेनोक्तं वर्तते हृदि नित्यशः ॥
चतुर्थेऽहनि मर्तव्यमिति सञ्चिन्त्य भाविनी ।
व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिताऽभवत् ॥
तं श्रुत्वा नियमं तस्या भृशं दुःखान्वितो नृपः
उत्थाय वाक्यं सावित्रीमब्रवीत् परिसान्त्वयन्
द्युमत्सेन उवाच ।
अतितीव्रोऽयमारम्भस्त्वयाऽऽरब्धो नृपात्मजे ।
तिसृणां वसतीनां हि स्थानं परमदुश्चरम् ॥ ५
सावित्र्युवाच ।
न कार्यस्तात सन्तापः पारयिष्याम्यहं व्रतम् ।
व्यवसायकृतं हीदं व्यवसायश्च कारणम् ॥ ६
द्युमत्सेन उवाच ।
व्रतं भिन्धीति वक्तुं त्वां नास्मि शक्तः कथञ्चन ।
पारयस्वेति वचनं युक्तमस्मद्विधो वदेत् ॥ ७
मार्कण्डेय उवाच ।
एवमुक्त्वा द्युमत्सेनो विरराम महामनाः ।
तिष्ठन्ती चैव सावित्री काष्ठभूतेव लक्ष्यते ॥ ८
श्वोभूते भर्तृमरणे सावित्र्या भरतर्षभ
दुःखान्वितायास्तिष्ठन्त्याः सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत९
अद्य तद्दिवसं चेति हुत्वा दीप्तं हुताशनम् ।
युगमात्रोदिते सूर्ये कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः१०
ततः सर्वान् द्विजान् वृद्धान् श्वश्रूं श्वशुरमेव च ।
अभिवाद्यानुपूर्व्येण प्राञ्जलिर्नियता स्थिता ॥ ११
अवैधव्याशिषस्ते तु सावित्र्यर्थं हिताः शुभाः ।
ऊचुस्तपस्विनः सर्वे तपोवननिवासिनः ॥ १२
एवमस्त्विति सावित्री ध्यानयोगपरायणा ।
मनसा ता गिरः सर्वाः प्रत्यगृह्णात् तपस्विनाम्१३
तं कालं तं मुहूर्तं च प्रतीक्षन्ती नृपात्मजा ।
यथोक्तं नारदवचश्चिन्तयन्ती सुदुःखिता ॥ १४
ततस्तु श्वश्रूश्वशुरावूचतुस्तां नृपात्मजाम् ।
एकान्तमास्थितां वाक्यं प्रीत्या भरतसत्तम १५
श्वशुरावूचतुः ।
व्रतं यथोपदिष्टं तु तथा तत्पारितं त्वया ।
आहारकालः सम्प्राप्तः क्रियतां यदनन्तरम् ॥ १६
सावित्र्युवाच ।
अस्तं गते मयाऽऽदित्ये भोक्तव्यं कृतकामया ।
एष मे हृदि सङ्कल्पः समयश्च कृतो मया ॥ १७
मार्कण्डेय उवाच ।
एवं सम्भाषमाणायाः सावित्र्या भोजनं प्रति ।
स्कन्धे परशुमादाय सत्यवान् प्रस्थितो वनम्१८
सावित्री त्वाह भर्तारं नैकस्त्वं गन्तुमर्हसि ।
सह त्वयाऽऽगमिष्यामि न हि त्वां हातुमुत्सहे ॥

---

परिचारैः सेवनैः गुणैः शीलसत्यादिभिः । प्रश्रयेण स्नेहेन दमेन जितेन्द्रियतया सर्वकामक्रियाभिः सर्वेषां इष्टसम्पादनेन ॥ १९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

२९६

तत इति ॥ १ ॥ वसतीना स्थानं भोजनत्रयनिरोधः। उपवसतीन्यातो वसतेस्तादर्थ्यदर्शनात् ॥ ५ ॥ पारयिष्यामि । समापयिष्यामि व्यवसायकृतमुद्योगकृतम् ॥ ६ ॥ युगं हस्तचतुष्कं तान्दुदिते उपरि गते ॥ १० ॥

सत्यवानुवाच ।

वनं न गतपूर्वं ते दुःखः पन्थाश्च भाविनि ।
व्रतोपवासक्षामा च कथं पद्भ्यां गमिष्यसि ॥ २०

सावित्र्युवाच ।

उपवासान्न मे ग्लानिर्नास्ति चापि परिश्रमः ।
गमने च कृतोत्साहां प्रतिषेद्धुं न मार्ऽहसि ॥ २१

सत्यवानुवाच ।

यदि ते गमनोत्साहः करिष्यामि तव प्रियम् ।
मम त्वामन्त्रय गुरून्न मां दोषः स्पृशेदयम् ॥ २२

मार्कण्डेय उवाच ।

साऽभिवाद्याब्रवीच्छ्वश्रूं श्वशुरं च महाव्रता ।
अयं गच्छति मे भर्ता फलाहारो महावनम् ॥ २३
इच्छेयमभ्यनुज्ञाता आर्यया श्वशुरेण ह ।
अनेन सह निर्गन्तुं न मेऽद्य विरहः क्षमः ॥ २४
गुर्वग्निहोत्रार्थकृते प्रस्थितश्च सुतस्तव ।
न निवार्यो निवार्यः स्यादन्यथा प्रस्थितो वनम्
संवत्सरः किञ्चिदूनो न निष्क्रान्ताऽहमाश्रमात् ।
वनं कुसुमितं द्रष्टुं परं कौतूहलं हि मे ॥ २६

द्युमत्सेन उवाच ।

यतःप्रभृति सावित्री पित्रा दत्ता स्नुषा मम ।
नानयाऽभ्यर्थनायुक्तमुक्तपूर्वं स्मराम्यहम् ॥ २७
तदेषा लभतां कामं यथाभिलषितं वधूः ।
अप्रमादश्च कर्तव्यः पुत्रि सत्यवतः पथि ॥ २८

मार्कण्डेय उवाच ।

उभाभ्यामभ्यनुज्ञाता सा जगाम यशस्विनी ।
सह भर्त्रा हसन्तीव हृदयेन विदूयता ॥ २९
सा वनानि विचित्राणि रमणीयानि सर्वशः ।
मयूरगणजुष्टानि ददर्श विपुलेक्षणा ॥ ३०
नदीः पुण्यवहाश्चैव पुष्पितांश्च नगोत्तमान् ।
सत्यवानाह पश्येति सावित्रीं मधुरं वचः ॥ ३१
निरीक्षमाणा भर्तारं सर्वावस्थमनिन्दिता ।
मृतमेव हि भर्तारं काले मुनिवचः स्मरन्॥३२
अनुव्रजन्ती भर्तारं जगाम मृदुगामिनी ।
द्विधेव हृदयं कृत्वा तं च कालमवेक्षती ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युपाख्याने षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

## २९७

मार्कण्डेय उवाच ।

अथ भार्यासहायः स फलान्यादाय वीर्यवान् ।
कठिनं पूरयामास ततः काष्ठान्यपाटयत् ॥ १
तस्य पाटयतः काष्ठं स्वेदो वै समजायत ।
व्यायामेन च तेनास्य जज्ञे शिरसि वेदना ॥ २
सोऽभिगम्य प्रियां भार्यामुवाच श्रमपीडितः ।

सत्यवानुवाच ।

व्यायामेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ॥ ३
अङ्गानि चैव सावित्रि हृदयं दूयतीव च ।
अस्वस्थमिव चात्मानं लक्षये मितभाषिणि ॥ ४
शूलैरिव शिरो विद्धमिदं संलक्षयाम्यहम् ।
तत् स्वप्तुमिच्छे कल्याणि न स्थातुं शक्तिरस्ति मे
सा समासाद्य सावित्री भर्तारमुपगम्य च ।
उत्सङ्गेऽस्य शिरः कृत्वा निषसाद महीतले ॥ ६
ततः सा नारदवचो विमृशन्ती तपस्विनी ।
तं मुहूर्तं क्षणं वेलां दिवसं च युयोज ह ॥ ७
मुहूर्तादेव चापश्यत् पुरुषं रक्तवाससम् ।
बद्धमौलिं वपुष्मन्तमादित्यसमतेजसम् ॥ ८
श्यामावदातं रक्ताक्षं पाशहस्तं भयावहम् ।
स्थितं सत्यवतः पार्श्वे निरीक्षन्तं तमेव च ॥ ९
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय भर्तुर्न्यस्य शनैः शिरः ।
कृताञ्जलिरुवाचार्ता हृदयेन प्रवेपती ॥ १०

सावित्र्युवाच ।

दैवतं त्वाऽभिजानामि वपुरेतद्ध्यमानुषम् ।
कामया ब्रूहि देवेश कस्त्वं किञ्च चिकीर्षसि ११

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

१ व्यत्ययेन पुंस्त्वम् ।

२९७

अथेति । कठिनं स्थालीं 'कठिनं निष्ठुरे स्थाल्याम्' इति विश्वः ॥ १ ॥ युयोज अनुचिन्तितवती ॥ ७ ॥ कामया इच्छया ॥ ११ ॥

सावित्र्युवाच—

दैवतं त्वाऽभिजानामि वपुरेतद्ध्यमानुषम् ।
कामया ब्रूहि देवेश कस्त्वं किं च चिकीर्षसि ॥

—वनपर्व अ० २९७ पृ. ४६५.

यम उवाच ।

पतिव्रताऽसि सावित्रि तथैव च तपोन्विता ।
अतस्त्वामभिभाषामि विद्धि मां त्वं शुभे यमम् १२
अयं ते सत्यवान् भर्ता क्षीणायुः पार्थिवात्मजः ।
नेष्यामि तमहं बद्ध्वा विद्ध्येतन्मे चिकीर्षितम् १३

सावित्र्युवाच ।

श्रूयते भगवन् दूतास्तवागच्छन्ति मानवान् ।
नेतुं किल भवान् कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो॥

मार्कण्डेय उवाच ।

इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान् स्वचिकीर्षितम् ।
यथावत् सर्वमाख्यातुं तत्प्रियार्थं प्रचक्रमे ॥ १५
अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान् गुणसागरः ।
नार्हो मत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः ॥ १६
ततः सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशं गतम् ।
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ॥ १७
ततः समुद्धृतप्राणं गतश्वासं हतप्रभम् ।
निर्विचेष्टं शरीरं तद्बभूवाप्रियदर्शनम् ॥ १८
यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः ।
सावित्री चैव दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत ।
नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतिव्रता ॥ १९

यम उवाच ।

निवर्त गच्छ सावित्रि कुरुष्वास्यौर्ध्वदेहिकम् ।
कृतं भर्तुस्त्वयाऽऽनृण्यं यावद्गम्यं गतं त्वया ॥२०

सावित्र्युवाच ।

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।
मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ २१
तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद्व्रतेन च ।
तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ॥ २२
प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः ।
मित्रतां च पुरस्कृत्य किञ्चिद्वक्ष्यामि तच्छृणु २३

नानात्मवन्तस्तु वने चरन्ति
धर्मं च वासं च परिश्रमं च ।
विज्ञानतो धर्ममुदाहरन्ति
तस्मात् सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥२४
एकस्य धर्मेण सतां मतेन
सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः ।
मा वै द्वितीयं मा तृतीयं च वाञ्छे
तस्मात् सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम् ॥२५

यम उवाच ।

निवर्त तुष्टोऽस्मि तवानया गिरा
स्वराक्षरव्यञ्जनहेतुयुक्तया ।
वरं वृणीष्वेह विनाऽस्य जीवितं
ददानि ते सर्वमनिन्दिते वरम् ॥ २६

सावित्र्युवाच ।

च्युतः स्वराज्याद्वनवासमाश्रितो
विनष्टचक्षुः श्वशुरो ममाश्रमे ।
स लब्धचक्षुर्बलवान् भवेन्नृप-
स्तव प्रसादाज्ज्वलनार्कसन्निभः ॥ २७

यम उवाच ।

ददानि तेऽहं तमनिन्दिते वरं
यथा त्वयोक्तं भविता च तत् तथा ।
तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये
निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥ २८

अङ्गुष्ठमात्रं हृदयाकाशप्रतिष्ठितत्वात् तत्प्रमाणं पुर्यष्टकवेष्टितं सूक्ष्मशरीरवन्तम् ॥ १७ ॥ अनात्मवन्तः अजितेन्द्रिया वने धर्मं यज्ञादिरूपं न चरन्ति । जितेन्द्रिया एव वने ग्रामे वा यथाशक्तिसम्पद्वान् धर्मान् कुर्वन्ति । तेन गृहस्थवानप्रस्थयोः सङ्ग्रहः । वासं गुरुकुलवासं ब्रह्मचर्यम् । परिश्रमं परित्यागरूपमाश्रमं संन्यासम् । पाठान्तरे प्रतिश्रयं प्रतिनिवृत्त श्रय कर्मफलाश्रयणमत्रेति प्रतिश्रयं संन्यासं विज्ञानतः चतुर्थ्यर्थे सार्वविभक्तिकस्तसिः । धर्मस्य फलं आत्मविज्ञानमित्यर्थः । 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' इति । 'एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति' इति च वेदानुवचनस्य यज्ञादीनां प्रव्रजनस्य च आत्मलाभार्थत्वश्रवणात् ॥ २४ ॥ एतेषामाश्रमधर्माणां समुच्चयं वारयति एकस्येति । चतुर्णामन्यतमस्य एकस्याश्रमस्य धर्मेण सतां मतेन दम्भादिरहितश्रद्धया सम्यगनुष्ठानेनेत्यर्थः । सर्वे वयमाश्रमास्तं मार्गं ज्ञानमार्गं प्रपन्नाः प्राप्ताः स्म । अतो हेतोः अस्मत्सदृशोऽग्निसाध्यानां कर्मणां कर्ता धर्मं च वासं च प्रतिश्रयं चेति पाठक्रमापेक्षया द्वितीयं नैष्ठिकं गुरुकुलवासं दाराकरणरूपं तृतीयं पारिव्राज्यं दारादित्यागरूपं वा न वाञ्छे । ज्ञानेन तु प्रधानभूतस्य धर्मस्यार्थेऽपि सिद्धेरित्यर्थः । मद्भर्तुर्हरणेन आवयोर्धर्मं मा नाशयेति भावः ॥ २५ ॥ निवर्त निवर्तस्व । स्वरः उदात्तादिः । अक्षरमकारादि । व्यञ्जनं ककारादि । एतद्युक्तत्वेन वाक्यस्य शब्दतो निर्दोषत्वमुक्तम् । हेतुयुक्तत्वेन युक्तियुक्तत्वमप्युक्तम् ॥ २६ ॥ भर्तारं मोचयिष्याम्येवेति स्वयं निश्चिन्वाना वरान्तराण्येव तावत् प्रार्थयन्ती सावित्र्युवाच च्युत इति ॥ २७ ॥ अध्वना मार्गेण न तु भर्तृनाशेन अतः एव भर्तेत्याशयः ॥ २८ ॥

सावित्र्युवाच ।

श्रमः कुतो भर्तृसमीपतो हि मे
यतो हि भर्ता मम सा गतिर्ध्रुवा ।
यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः
सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे ॥ २९

सतां सकृत्सङ्गतमीप्सितं परं
ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते ।
न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं
ततः सतां संनिवसेत् समागमे ॥ ३०

यम उवाच ।

मनोनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनम् ।
त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम् ।
विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
वरं द्वितीयं वरयस्व भामिनि ॥ ३१

सावित्र्युवाच ।

हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः
स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः ।
जह्यात् स्वधर्मान्न च मे गुरुर्यथा
द्वितीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥ ३२

यम उवाच ।

स्वमेव राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरा-
न्न च स्वधर्मात् परिहास्यते नृपः ।
कृतेन कामेन मया नृपात्मजे
निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत् ॥ ३३

सावित्र्युवाच ।

प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता
नियम्य चैता नयसे निकामया ।
ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं
निबोध चेमां गिरमीरितां मया ॥ ३४

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥ ३५

एवंप्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशलाः ।
सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दया प्राप्तेषु कुर्वते ॥ ३६

यम उवाच ।

पिपासितस्येव भवेद्यथा पय-
स्तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम् ।
विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवितं
वरं वृणीष्वेह शुभे यदिच्छसि ॥ ३७

सावित्र्युवाच ।

ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता
भवेत् पितुः पुत्रशतं तथौरसम् ।
कुलस्य सन्तानकरं च यद्भवेत्
तृतीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥ ३८

यम उवाच ।

कुलस्य सन्तानकरं सुवर्चसं
शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे ।
कृतेन कामेन नराधिपात्मजे
निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ॥ ३९

---

यतो यत्र भर्ता सा गतिः तत्रैव गमनम् । ध्रुवा निश्चिता ॥ २९ ॥ सतामिति । साधोस्तत्र समागममात्रेण जाता मैत्रीयं निष्फला नैव भवेदिति भावः ॥ ३० ॥ हिताश्रयं युक्त्यनुकूलम् । पूर्वमाश्रमधर्माणां ज्ञानहेतुत्वमुक्तमिदं तु सत्सङ्गस्येति भेदः । तथा च श्रुतिः 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' इति ॥ ३१ ॥ गुरुः श्वशुरः ॥ ३२ ॥ ज्ञानानवाप्तौ दोषमाह प्रजा इति । नियमेन नियमनेन संयता निगृहीताः सत्यः भवन्ति । ताश्च पुनः कर्मभूतास्त्वं निकामया कामितेनार्थेन नयसे संयोजयसि यातनान्ते सत्कर्मफलमपि ताभ्यो ददासि । न कामयेति पाठे तास्त्वमिच्छया न नयसे । कर्मफलायेति शेषः । किं तु तत्तत्कर्मवशादेवेत्यर्थः । येषां तु ज्ञानिनां काम एव नास्ति न ते त्वद्वशे भवन्ति । नापि देहं फलाय संगच्छन्त इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः इति नु कामयमानस्येति संसारिणामुच्चावचां गतिमुपसंहृत्य 'अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकामः स्यान्न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति तद्विदामकामानां गत्याद्यभावं दर्शयति । तथा सकामानामेव पुनः संसारं च दर्शयति । 'न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तलोभेन मूढम् ।' अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे इति यमयातनानिवृत्त्यर्थं सारमुपादिशन् श्रोतारमभिमुखीकरोति निबोधेति ॥ ३४ ॥ अद्रोहः द्रोहाभावः । अनुग्रहो दया । दानं संविभागः । त्वमपि मयि दयां कुर्विति भावः ॥ ३५ ॥ एवंप्राय इत्यल्पायुष्ट्वं भर्तुरभिनयति अशक्तिपेशलाः शक्तिकौशलहीनाः । पाठान्तरे भक्तिः श्रद्धा कौशलं च ताभ्यां हीनाः । सन्धिरार्षः । आयुःशक्तिकौशलहीना मनुष्या मादृशाः सन्तस्त्वमित्रेष्वपि प्राप्तेषु शरणागतेषु दयां कुर्वन्ति किमुत मादृशेषु दीनेष्विति भावः ॥ ३६ ॥ यथा तृप्तिकरमिति शेषः ॥ ३७ ॥ औरसमिति दत्तकृतादिव्यावृत्तिः ॥ ३८ ॥

सावित्र्युवाच—

न तेऽपवर्गः सुकृताद्विनाकृतस्तथा यथाऽन्येषु वरेषु मानद ।
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना ॥

—वनपर्व अ० २९७ पृ. ४६७.

सावित्र्युवाच ।

न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ
मनो हि मे दूरतरं प्रधावति ।
अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां
मयोच्यमानां शृणु भूय एव च ॥ ४०

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवां-
स्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः ।
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजा-
स्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता ॥ ४१

आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः ।
तस्मात् सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति ४२

सौहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते ।
तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः ४३

यम उवाच ।

उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने
शुभे न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया ।
अनेन तुष्टोऽस्मि विनाऽस्य जीवितं
वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च ॥ ४४

सावित्र्युवाच ।

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं
भवेदुभाभ्यामिह यत् कुलोद्वहम् ।
शतं सुतानां बलवीर्यशालिना-
मिदं चतुर्थं वरयामि ते वरम् ॥ ४५

यम उवाच ।

शतं सुतानां बलवीर्यशालिनां
भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले ।
परिश्रमस्ते न भवेन्नृपात्मजे
निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता ॥ ४६

सावित्र्युवाच ।

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति ।
सतां सद्भिर्नाफलः सङ्गमोऽस्ति
सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः ॥ ४७

सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं
सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति ।
सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन्
सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः ॥ ४८

आर्यजुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम् ।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ति परस्परम् ॥ ४९

न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो
न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः ।
यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं
तस्मात् सन्तो रक्षितारो भवन्ति ॥ ५०

यम उवाच ।

यथायथा भाषसि धर्मसंहितं
मनोनुकूलं सुपदं महार्थवत् ।
तथातथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा
वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते ॥ ५१

सावित्र्युवाच ।

न तेऽपवर्गः सुकृताद्विनाकृत-
स्तथा यथाऽन्येषु वरेषु मानद ।
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
यथा मृता ह्येवमहं पतिं विना ॥ ५२

---

समुद्यताम् उपस्थिताम् ॥ ४० ॥ विवस्वतः वस्यते आच्छाद्यते इति वः आच्छादनं तद्वान् वस्वांस्तदन्यो विवस्वान्निरावरणो जगदात्मा सूर्यः । 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति श्रुतेः । तस्य तनयः पुत्रः अत्यन्तहित इत्यर्थः । समेन शत्रुमित्रादितारतम्यहीनेन तव धर्मेण प्रशासनेन ताः प्रजाश्चरन्ति त्वदाज्ञावशगा इत्यर्थः । अत एव तव नाम धर्मराज इति । धर्मेणैव राजते धर्मोऽस्य राजत इति वा ॥ ४१ ॥ लौकिकेष्वपि विश्वासं कुर्वन्निष्टार्थं प्राप्नोति किमुत त्वयि धर्मराजेत्याशयेनाह' आत्मन्यपीति । प्रणयं प्रार्थनाम् ॥ ४२ ॥ ते त्वया ॥ ४४ ॥ ममात्मजं सत्यवतश्च औरसं न तु धृतराष्ट्रादिवदन्यतो मयि जातमित्यर्थः ॥ ४५ ॥ शाश्वतो धर्मः पत्युः सकाशादेवापत्योत्पादनं सतां मदृशानां दाराणां तत्रैव वृत्तिः । ननु गतायुषि पत्यौ कथं तत् स्यादित्यत आह सन्त इति । वरं दत्वा सन्तो न व्यथन्ति नापि सीदन्ति किं तु उक्तं निर्वहन्त्येवेत्यर्थः । अत्यन्ताशक्येऽर्थे कथं स्यादित्यत आह । सतामिति । सतामशक्यमपि नास्ति । भयं चान्येभ्यः तेभ्यो नास्तीति तत्त्वतोऽहं निर्भयाऽस्मीति भावः ॥ ४७ ॥ त्वयाऽपि सत्यं स्वीयं रक्षणीयमित्याह सन्तो हीति । भूतभव्यस्य भूतस्य भविष्यस्य च ॥ ४८ ॥ परस्परमुपकारप्रत्युपकारम् ॥ ४९ ॥ एतत् त्रयं प्रसादोऽर्थो मानश्च दरिद्रस्य प्रसादो नार्थाय श्रीमता प्रसादोऽर्थकृदपि न मानदः सतां तु मानद इति खलेतु प्रसाद एव नास्ति । अतस्त्रयं त्वय्येव स्थितमिति त्वं रक्षिताऽस्माकं भवेति भावः ॥ ५० ॥ ते त्वत्तः अपवर्गः पुष्पफलप्राप्तिः सुकृताद्विना समीचीनादाम्पत्ययोगादृते क्षेत्रजादिपुत्रार्पणेन न कृतो निष्पादितो भवति ।

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम् ।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम् ॥ ५३
वरातिसर्गः शतपुत्रता मम
त्वयैव दत्तो ह्रियते च मे पतिः ।
वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं
तवैव सत्यं वचनं भविष्यति ॥ ५४

मार्कण्डेय उवाच ।

तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यमः ।
धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत् ॥ ५५
एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि ।
अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थः स भविष्यति ॥ ५६
चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यति ।
इष्ट्वा यज्ञैश्च धर्मेण ख्यातिं लोके गमिष्यति ॥ ५७
त्वयि पुत्रशतं चैव सत्यवान् जनयिष्यति ।
ते चापि सर्वे राजानः क्षत्रियाः पुत्रपौत्रिणः ५८
ख्यातास्त्वन्नामधेयाश्च भविष्यन्तीह शाश्वताः ।
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥ ५९
मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः ।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः॥ ६०
एवं तस्यै वरं दत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
निवर्तयित्वा सावित्रीं स्वमेव भवनं ययौ ॥ ६१
सावित्र्यपि यमे याते भर्तारं प्रतिलभ्य च ।
जगाम तत्र यत्रास्या भर्तुः शावं कलेवरम् ॥ ६२
सा भूमौ प्रेक्ष्य भर्तारमुपसृत्योपगृह्य च ।
उत्सङ्गे शिर आरोप्य भूमावुपविवेश ह ॥ ६३
संज्ञां च स पुनर्लब्ध्वा सावित्रीमभ्यभाषत ।
प्रोष्यागत इव प्रेम्णा पुनःपुनरुदीक्ष्य वै ॥ ६४

सत्यवानुवाच ।

सुचिरं बत सुप्तोऽस्मि किमर्थं नावबोधितः ।
क्व चासौ पुरुषः श्यामो योऽसौ मां सञ्चकर्ष ह

सावित्र्युवाच ।

सुचिरं त्वं प्रसुप्तोऽसि ममाङ्के पुरुषर्षभ ।
गतः स भगवान् देवः प्रजासंयमनो यमः ॥ ६६
विश्रान्तोऽसि महाभाग विनिद्रश्च नृपात्मज ।
यदि शक्यं समुत्तिष्ठ विगाढां पश्य शर्वरीम् ६७

मार्कण्डेय उवाच ।

उपलभ्य ततः संज्ञां सुखसुप्त इवोत्थितः ।
दिशः सर्वा वनान्तांश्च निरीक्ष्योवाच सत्यवान्६८
फलाहारोऽस्मि निष्क्रान्तस्त्वया सह सुमध्यमे ।
ततः पाटयतः काष्ठं शिरसो मे रुजाऽभवत् ॥६९
शिरोभितापसन्तप्तः स्थातुं चिरमशक्नुवन् ।
तवोत्सङ्गे प्रसुप्तोऽस्मि इति सर्वं स्मरे शुभे ॥ ७०
त्वयोपगूढस्य च मे निद्रयाऽपहृतं मनः ।
ततोऽपश्यं तमो घोरं पुरुषं च महौजसम् ॥ ७१
तद्यदि त्वं विजानासि किं तद्ब्रूहि सुमध्यमे ।
स्वप्नो मे यदि वा दृष्टो यदि वा सत्यमेव तत् ७२
तमुवाचाथ सावित्री रजनी व्यवगाहते ।
श्वस्ते सर्वं यथावृत्तमाख्यास्यामि नृपात्मज॥७३
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते पितरौ पश्य सुव्रत ।
विगाढा रजनी चेयं निवृत्तश्च दिवाकरः ॥ ७४
नक्तञ्चराश्चरन्त्येते हृष्टाः क्रूराभिभाषिणः ।
श्रूयन्ते पर्णशब्दाश्च मृगाणां चरतां वने ॥ ७५
एता घोरं शिवा नादान् दिशं दक्षिणपश्चिमाम् ।
आस्थाय विरुवन्त्युग्राः कम्पयन्त्यो मनो मम७६

सत्यवानुवाच ।

वनं प्रतिभयाकारं घनेन तमसा वृतम् ।
न विज्ञास्यसि पन्थानं गन्तुं चैव न शक्ष्यसि॥७७

सावित्र्युवाच ।

अस्मिन्नद्य वने दग्धे शुष्कवृक्षः स्थितो ज्वलन् ।
वायुना धम्यमानोऽत्र दृश्यतेऽग्निः क्वचित्क्वचित्
ततोऽग्निमानयित्वेह ज्वालयिष्यामि सर्वतः ।
काष्ठानीमानि सन्तीह जहि सन्तापमात्मनः॥७९
यदि नोत्सहसे गन्तुं सरुजं त्वां हि लक्षये ।
न च ज्ञास्यसि पन्थानं तमसा संवृते वने ॥ ८०
श्वः प्रभाते वने दृश्ये यास्यावोऽनुमते तव ।
वसावेह क्षपामेकां रुचितं यदि तेऽनघ ॥ ८१

सत्यवानुवाच ।

शिरोरुजा निवृत्ता मे स्वस्थान्यङ्गानि लक्षये ।
मातापितृभ्यामिच्छामि सङ्गमं त्वत्प्रसादजम्८२
न कदाचिद्विकाले हि गतपूर्वो मया श्रमः ।
अनागतायां सन्ध्यायां माता मे प्ररुणद्धि माम्८३

---

यथाऽन्येषु वरेषु भर्तृषु मदयन्त्या वसिष्ठस्येव न तद्वत् । यस्मादेवं तस्माद्वरं वृणे ॥ ५२ ॥ व्यवसामि शक्नोमि ॥ ५३ ॥ त्वन्नामधेयाः सावित्रा इति ॥ ५९ ॥ शावं श्यामम् ॥ ६२ ॥ संयोगम्...

दिवाऽपि मयि निष्क्रान्ते सन्तप्येते गुरू मम ।
विचिनोति हि मां तातः सहैवाश्रमवासिभिः ८४
मात्रा पित्रा च सुभृशं दुःखिताभ्यामहं पुरा ।
उपालब्धश्च बहुशश्चिरेणागच्छसीति ह ॥ ८५
का त्ववस्था तयोरद्य मदर्थमिति चिन्तये ।
तयोरदृश्ये मयि च महद्दुःखं भविष्यति ॥ ८६
पुरा मामूचतुश्चैव रात्रावस्रायमाणकौ ।
भृशं सुदुःखितौ वृद्धौ बहुशः प्रीतिसंयुतौ॥ ८७
त्वया हीनौ न जीवाव मुहूर्तमपि पुत्रक ।
यावद्धरिष्यसे पुत्र तावन्नौ जीवितं ध्रुवम् ॥ ८८
वृद्धयोरन्धयोर्दृष्टिस्त्वयि वंशः प्रतिष्ठितः ।
त्वयि पिण्डश्च कीर्तिश्च सन्तानं चावयोरिति८९
माता वृद्धा पिता वृद्धस्तयोर्यष्टिरहं किल ।
तौ रात्रौ मामपश्यन्तौ कामवस्थां गमिष्यतः॥९०
निद्रायाश्चाभ्यसूयामि यस्या हेतोः पिता मम ।
माता च संशयं प्राप्ता मत्कृतेऽनपकारिणी ॥९१
अहं च संशयं प्राप्तः कृच्छ्रामापदमास्थितः ।
मातापितृभ्यां हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे ९२
व्यक्तमाकुलया बुद्ध्या प्रज्ञाचक्षुः पिता मम ।
एकैकमस्यां वेलायां पृच्छत्याश्रमवासिनम्॥ ९३
नात्मानमनुशोचामि यथाऽहं पितरं शुभे ।
भर्तारं चाप्यनुगतां मातरं +परिदुर्बलम् ॥ ९४
मत्कृते न हि तावद्य सन्तापं परमेष्यतः ।
जीवन्तावनुजीवामि भर्तव्यौ तौ मयेति ह ॥ ९५
तयोः प्रियं मे कर्तव्यमिति जानामि चाप्यहम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा गुरुभक्तो गुरुप्रियः ॥ ९६
उच्छ्रित्य बाहू दुःखार्तः सुस्वरं प्ररुरोद ह ।
ततोऽब्रवीत् तथा दृष्ट्वा भर्तारं शोककर्शितम्॥९७
प्रमृज्याश्रूणि नेत्राभ्यां सावित्री धर्मचारिणी ।
यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं यदि दत्तं हुतं यदि ॥ ९८
श्वश्रूश्वशुरभर्तॄणां मम पुण्याऽस्तु शर्वरी ।
न स्मराम्युक्तपूर्वं वै स्वैरेष्वप्यनृतां गिरम् ॥ ९९
तेन सत्येन तावद्य ध्रियेतां श्वशुरौ मम ।

सत्यवानुवाच ।

कामये दर्शनं पित्रोर्याहि सावित्रि मा चिरम्१००
पुरा मातुः पितुर्वाऽपि यदि पश्यामि विप्रियम् ।
न जीविष्ये वरारोहे सत्येनात्मानमालभे ॥ १
यदि धर्मे च ते बुद्धिर्मां चेज्जीवन्तमिच्छसि ।
मम प्रियं वा कर्तव्यं गच्छावाश्रममन्तिकात् ॥ २

मार्कण्डेय उवाच ।

सावित्री तत उत्थाय केशान् संयम्य भाविनी ।
पतिमुत्थापयामास बाहुभ्यां परिगृह्य वै ॥ ३
उत्थाय सत्यवांश्चापि प्रमृज्याङ्गानि पाणिना ।
सर्वा दिशः समालोक्य कठिने दृष्टिमादधे ॥ ४
तमुवाचाथ सावित्री श्वः फलानि हरिष्यसि ।
योगक्षेमार्थमेतं ते नेष्यामि परशुं त्वहम् ॥ ५
कृत्वा कठिनभारं सा वृक्षशाखावलम्बिनम् ।
गृहीत्वा परशुं भर्तुः सकाशे पुनरागमत् ॥ ६
वामे स्कन्धे तु वामोरूर्भर्तुर्बाहुं निवेश्य च ।
दक्षिणेन परिष्वज्य जगाम गजगामिनी ॥ ७

सत्यवानुवाच ।

अभ्यासगमनाद्भीरु पन्थानो विदिता मम ।
वृक्षान्तरालोकितया ज्योत्स्नया चापि लक्षये ॥८
आगतौ स्वः पथा येन फलान्यवचितानि च ।
यथागतं शुभे गच्छ पन्थानं मा विचारय ॥ ९
पलाशखण्डे चैतस्मिन् पन्था व्यावर्तते द्विधा ।
तस्योत्तरेणः यः पन्थास्तेन गच्छ त्वरस्व च १०
स्वस्थोऽस्मि बलवानस्मि दिदृक्षुः पितरावुभौ ।
ब्रुवन्नेव त्वरायुक्तः सम्प्रायादाश्रमं प्रति ॥ ११

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युपाख्याने सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥

अस्रायमाणकौ रुदन्तौ ॥ ८७ ॥ नौ आवयोः ॥ ८८ ॥ प्रज्ञाचक्षुरन्धः ॥९३॥ ध्रियेतां जीवेतां श्वशुरौ श्वश्रूश्वशुरौ ॥ १०४ ॥ कठिने फलपूर्णे पात्रे ॥ ४ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥ + भृशदुःखिताम्-ख.

## २९८

मार्कण्डेय उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु द्युमत्सेनो महाबलः ।
लब्धचक्षुः प्रसन्नायां दृष्ट्यां सर्वं ददर्श ह ॥ १
स सर्वानाश्रमान् गत्वा शैब्यया सह भार्यया ।
पुत्रहेतोः परामार्तिं जगाम भरतर्षभ ॥ २
तावाश्रमान्नदीश्चैव वनानि च सरांसि च ।
तस्यां निशि विचिन्वन्तौ दम्पती परिजग्मतुः ३
श्रुत्वा शब्दं तु यं कञ्चिदुन्मुखौ सुतशङ्कया ।
सावित्रीसहितोऽभ्येति सत्यवानित्यधावताम् ४
भिन्नैश्च परुषैः पादैः सव्रणैः शोणितोक्षितैः ।
कुशकण्टकविद्धाङ्गावुन्मत्ताविव धावतः ॥ ५
ततोऽभिसृत्य तैर्विप्रैः सर्वैराश्रमवासिभिः ।
परिवार्य समाश्वास्य तावानीतौ स्वमाश्रमम् ॥६
तत्र भार्यासहायः स वृतो वृद्धैस्तपोधनैः ।
आश्वासितोऽपि चित्रार्थैः पूर्वराज्ञां कथाश्रयैः ७
ततस्तौ पुनराश्वस्तौ वृद्धौ पुत्रदिदृक्षया ।
बाल्यवृत्तानि पुत्रस्य स्मरन्तौ भृशदुःखितौ ॥ ८
पुनरुक्त्वा च करुणां वाचं तौ शोककर्शितौ ।
हा पुत्र हा साध्वि वधूः क्वासि क्वासीत्यरोदताम्
ब्राह्मणः सत्यवाक्तेषामुवाचेदं तयोर्वचः ॥ ९

सुवर्चा उवाच ।

यथाऽस्य भार्या सावित्री तपसा च दमेन च ।
आचारेण च संयुक्ता तथा जीवति सत्यवान् १०

गौतम उवाच ।

वेदाः साङ्गा मयाऽधीतास्तपो मे सञ्चितं महत् ।
कौमारब्रह्मचर्यं च गुरवोऽग्निश्च तोषिताः ॥ ११
समाहितेन चीर्णानि सर्वाण्येव व्रतानि मे ।
वायुभक्षोपवासश्च कृतो मे विधिवत् पुरा ॥ १२
अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परचिकीर्षितम् ।
सत्यमेतन्निबोधध्वं ध्रियते सत्यवानिति ॥ १३

शिष्य उवाच ।

उपाध्यायस्य मे वक्त्राद्यथा वाक्यं विनिःसृतम् ।
नैव जातु भवेन्मिथ्या तथा जीवति सत्यवान् ॥

ऋषय ऊचुः ।

यथाऽस्य भार्या सावित्री सर्वैरेव सुलक्षणैः ।
अवैधव्यकरैर्युक्ता तथा जीवति सत्यवान् ॥ १५

भारद्वाज उवाच ।

यथाऽस्य भार्या सावित्री तपसा च दमेन च ।
आचारेण च संयुक्ता तथा जीवति सत्यवान् ॥ १६

दाल्भ्य उवाच ।

यथा दृष्टिः प्रवृत्ता ते सावित्र्याश्च यथा व्रतम् ।
गताऽऽहारमकृत्वा च तथा जीवति सत्यवान् १७

आपस्तम्ब उवाच ।

यथा वदन्ति शान्तायां दिशि वै मृगपक्षिणः ।
पार्थिवी च प्रवृत्तिस्ते तथा जीवति सत्यवान् ॥

धौम्य उवाच ।

सर्वैर्गुणैरुपेतस्ते यथा पुत्रो जनप्रियः ।
दीर्घायुर्लक्षणोपेतस्तथा जीवति सत्यवान् ॥ १९

मार्कण्डेय उवाच ।

एवमाश्वासितस्तैस्तु सत्यवाग्भिस्तपस्विभिः ।
तांस्तान् विगणयन् सर्वांस्ततः स्थिर इवाभवत् ॥
ततो मुहूर्तात् सावित्री भर्त्रा सत्यवता सह ।
आजगामाश्रमं रात्रौ प्रहृष्टा प्रविवेश ह ॥ २१

ब्राह्मणा ऊचुः ।

पुत्रेण सङ्गतं त्वां तु चक्षुष्मन्तं निरीक्ष्य च ।
सर्वे वयं वै पृच्छामो वृद्धिं वै पृथिवीपते ॥ २२
समागमेन पुत्रस्य सावित्र्या दर्शनेन च ।
चक्षुषश्चात्मनो लाभात्त्रिभिर्दिष्ट्या विवर्धसे २३
सर्वैरस्माभिरुक्तं यत् तथा तन्नात्र संशयः ।
भूयोभूयः समृद्धिस्ते क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ २४
ततोऽग्निं तत्र संज्वाल्य द्विजास्ते सर्व एव हि ।
उपासांचक्रिरे पार्थ द्युमत्सेनं महीपतिम् ॥ २५
शैब्या च सत्यवांश्चैव सावित्री चैकतः स्थिताः ।
सर्वैस्तैरभ्यनुज्ञाता विशोकाः समुपाविशन् ॥२६
ततो राज्ञा सहासीनाः सर्वे ते वनवासिनः ।
जातकौतूहलाः पार्थ पप्रच्छुर्नृपतेः सुतम् ॥ २७

ऋषय ऊचुः ।

प्रागेव नागतं कस्मात् सभार्येण त्वया विभो ।
विरात्रे चागतं कस्मात् कोऽनुबन्धस्तवाभवत् ॥
सन्तापितः पिता माता वयं चैव नृपात्मज ।
कस्मादिति न जानीमस्तत् सर्वं वक्तुमर्हसि ॥२९

---

२९८

एतस्मिन्नेवेति ॥ १ ॥ भिन्नैर्विदीर्णैः परुषैः कर्कशैः ॥ ५ ॥ शान्तायां प्रसन्नायां पार्थिवी पार्थिवत्वयोग्या प्रवृत्तिः धर्मः ॥१८॥ विरात्रे बहुरात्रे काले आगतमागमनम् ॥२८॥

सत्यवानुवाच ।

पित्राऽहमभ्यनुज्ञातः सावित्रीसहितो गतः ।
अथ मेऽभूच्छिरोदुःखं वने काष्ठानि भिन्दतः ३०
सुप्तश्चाहं वेदनया चिरमित्युपलक्षये ।
तावत् कालं न च मया सुप्तपूर्वं कदाचन ॥ ३१
सर्वेषामेव भवतां सन्तापो मा भवेदिति ।
अतो चिरायागमनं नान्यदस्तीह कारणम् ॥ ३२

गौतम उवाच ।

अकस्माच्चक्षुषः प्राप्तिर्द्युमत्सेनस्य ते पितुः ।
नास्य त्वं कारणं वेत्सि सावित्री वक्तुमर्हति ॥ ३३
श्रोतुमिच्छामि सावित्रि त्वं हि वेत्थ परावरम् ।
त्वां हि जानामि सावित्रि सावित्रीमिव तेजसा ॥
त्वमत्र हेतुं जानीषे तस्मात् सत्यं निरुच्यताम् ।
रहस्यं यदि ते नास्ति किञ्चिदत्र वदस्व नः ३५

सावित्र्युवाच ।

एवमेतद्यथा वेत्थ सङ्कल्पो नान्यथा हि वः ।
न हि किञ्चिद्रहस्यं मे श्रूयतां तथ्यमेव यत् ॥ ३६
मृत्युर्मे पत्युराख्यातो नारदेन महात्मना ।
स चाद्य दिवसः प्राप्तस्ततो नैनं जहाम्यहम् ॥ ३७
सुप्तं चैनं यमः साक्षादुपागच्छत् सकिङ्करः ।
स एनमनयद्बद्ध्वा दिशं पितृनिषेविताम् ॥ ३८
अस्तौषं तमहं देवं सत्येन वचसा विभुम् ।
पञ्च वै तेन मे दत्ता वराः शृणुत तान् मम ॥ ३९
चक्षुषी च स्वराज्यं च द्वौ वरौ श्वशुरस्य मे ।
लब्धं पितुः पुत्रशतं पुत्राणां चात्मनः शतम् ॥ ४०
चतुर्वर्षशतायुर्मे भर्ता लब्धश्च सत्यवान् ।
भर्तुर्हि जीवितार्थं तु मया चीर्णं त्विदं व्रतम् ॥ ४१
एतत् सर्वं मयाऽऽख्यातं कारणं विस्तरेण वः ।
यथावृत्तं सुखोदर्कमिदं दुःखं महन्मम ॥ ४२

ऋषय ऊचुः ।

निमज्ज्यमानं व्यसनैरभिद्रुतं
कुलं नरेन्द्रस्य तमोमये ह्रदे ।
त्वया सुशीलव्रतपुण्यया कुलं
समुद्धृतं साध्वि पुनः कुलीनया ॥ ४३

मार्कण्डेय उवाच ।

तथा प्रशस्य ह्यभिपूज्य चैव
वरस्त्रियं तामृषयः समागताः ।
नरेन्द्रमामन्त्र्य सपुत्रमञ्जसा
शिवेन जग्मुर्मुदिताः स्वमालयम् ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युपाख्याने
अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥

## २९९

मार्कण्डेय उवाच ।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते सूर्यमण्डले ।
कृतपौर्वाह्णिकाः सर्वे समेयुस्ते तपोधनाः ॥ १
तदेव सर्वं सावित्र्या महाभाग्यं महर्षयः ।
द्युमत्सेनाय नातृप्यन् कथयन्तः पुनः पुनः ॥ २
ततः प्रकृतयः सर्वाः शाल्वेभ्योऽभ्यागता †नृप ।
आचख्युर्निहतं चैव स्वेनामात्येन तं द्विषम् ॥ ३
तं मन्त्रिणा हतं श्रुत्वा ससहायं सबान्धवम् ।
न्यवेदयन् यथावृत्तं विद्रुतं च द्विषद्बलम् ॥ ४
ऐकमत्यं च सर्वस्य जनस्याथ नृपं प्रति ।
सचक्षुर्वाऽप्यचक्षुर्वा स नो राजा भवत्विति ॥ ५
अनेन निश्चयेनेह वयं प्रस्थापिता नृप ।
प्राप्तानीमानि यानानि चतुरङ्गं च ते बलम् ॥ ६
प्रयाहि राजन् भद्रं ते घुष्टस्ते नगरे जयः ।
अध्यास्व चिररात्राय पितृपैतामहं पदम् ॥ ७
चक्षुष्मन्तं च तं दृष्ट्वा राजानं वपुषाऽन्वितम् ।
मूर्ध्ना निपतिताः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥
ततोऽभिवाद्य तान् वृद्धान् द्विजानाश्रमवासिनः
तैश्चाभिपूजितः सर्वैः प्रययौ नगरं प्रति ।
शैब्या च सह सावित्र्या स्वास्तीर्णेन सुवर्चसा ।
नरयुक्तेन यानेन प्रययौ सेनया वृता ॥ १०

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ † नृपम्-ख.

२९९
तस्यामिति ॥ १ ॥ चिररात्राय बहुकालम् ॥ ७ ॥

ततोऽभिषिषिचुः प्रीत्या द्युमत्सेनं पुरोहिताः ।
पुत्रं चास्य महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयन्॥ ११
ततः कालेन महता सावित्र्याः कीर्तिवर्धनम् ।
तद्वै पुत्रशतं जज्ञे शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ १२
भ्रातॄणां सोदराणां च तथैवास्याभवच्छतम् ।
मद्राधिपस्याश्वपतेर्मालव्यां सुमहद्बलम् ॥ १३
एवमात्मा पिता माता श्वश्रूः श्वशुर एव च ।
भर्तुः कुलं च सावित्र्या सर्वं कृच्छ्रात् समुद्धृतम्
तथैवैषा हि कल्याणी द्रौपदी शीलसम्मता ।
तारयिष्यति वः सर्वान् सावित्रीव कुलाङ्गना १५

वैशम्पायन उवाच ।

एवं स पाण्डवस्तेन अनुनीतो महात्मना ।
विशोको विज्वरो राजन् काम्यके न्यवसत् तदा
यश्चेदं शृणुयाद्भक्त्या सावित्र्याख्यानमुत्तमम् ।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः ॥१७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि पतिव्रतामाहात्म्यपर्वणि सावित्र्युपाख्याने नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

॥ समाप्तं पतिव्रतामाहात्म्यपर्व ॥

## ॥ कुण्डलाहरणपर्व ॥

३००

जनमेजय उवाच ।

यत् तत् तदा महद्ब्रह्मन् लोमशो वाक्यमब्रवीत् ।
इन्द्रस्य वचनादेव पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १
यच्चापि ते भयं तीव्रं न च कीर्तयसे क्वचित् ।
तच्चाप्यपहरिष्यामि धनञ्जय इतो गते ॥ २
किं नु तज्जपतां श्रेष्ठ कर्णं प्रति महद्भयम् ।
आसीच्च च स धर्मात्मा कथयामास कस्यचित् ३

वैशम्पायन उवाच ।

अयं ते राजशार्दूल कथयामि कथामिमाम् ।
पृच्छतो भरतश्रेष्ठ शुश्रूषस्व गिरं मम ॥ ४
द्वादशे समतिक्रान्ते वर्षे प्राप्ते त्रयोदशे ।
पाण्डूनां हितकृच्छक्रः कर्णं भिक्षितुमुद्यतः ॥ ५
अभिप्रायमथो ज्ञात्वा महेन्द्रस्य विभावसुः ।
कुण्डलार्थे महाराज सूर्यः कर्णमुपागतः ॥ ६
महार्हे शयने वीरं *स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ।
शयानमतिविश्वस्तं ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् ॥ ७
स्वप्नान्ते निशि राजेन्द्र दर्शयामास रश्मिवान् ।
कृपया परयाऽऽविष्टः पुत्रस्नेहाच्च भारत ॥ ८
ब्राह्मणो वेदविद्भूत्वा सूर्यो योगार्थिरूपवान् ।
हितार्थमब्रवीत् कर्णं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ९
कर्ण मद्वचनं तात शृणु सत्यभृतां वर ।
ब्रुवतोऽद्य महाबाहो सौहृदात् परमं हितम् ॥ १०
उपायास्यति शक्रस्त्वां पाण्डवानां हितेप्सया ।
ब्राह्मणच्छद्मना कर्ण कुण्डलोपजिहीर्षया ॥ ११
विदितं तेन शीलं ते सर्वस्य जगतस्तथा ।
यथा त्वं भिक्षितः सद्भिर्ददास्येव न याचसे॥ १२
त्वं हि तात ददास्येव ब्राह्मणेभ्यः प्रयाचितम् ।
वित्तं यच्चान्यदप्याहुर्न प्रत्याख्यासि कस्यचित् ॥
त्वां तु चैवंविधं ज्ञात्वा स्वयं वै पाकशासनः ।
आगन्ता कुण्डलार्थाय कवचं चैव भिक्षितुम् १४
तस्मै प्रयाचमानाय न देये कुण्डले त्वया ।
अनुनेयः परं शक्त्या श्रेय एतद्धि ते परम् ॥ १५
कुण्डलार्थे ब्रुवंस्तात कारणैर्बहुभिस्त्वया ।
अन्यैर्बहुविधैर्वित्तैः संनिवार्यः पुनः पुनः ॥ १६
रत्नैः स्त्रीभिस्तथा गोभिर्धनैर्बहुविधैरपि ।
निदर्शनैश्च बहुभिः कुण्डलेप्सुः पुरन्दरः ॥ १७
यदि दास्यसि कर्ण त्वं सहजे कुण्डले शुभे ।
आयुषः प्रक्षयं गत्वा मृत्योर्वशमुपैष्यसि ॥ १८

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

३००

यत्तदिति ॥१ ॥ विभावसुः विशिष्टा भाः दीप्तिः सैव वसु धनं यस्य तादृशः, सूर्यः ॥६॥ स्वप्नान्ते स्वप्नमध्ये ॥८॥ स्पर्ध्यं विमर्दसहं स्पृहणीयं वेत्यर्थः ।

कवचेन समायुक्तः कुण्डलाभ्यां च मानद ।
अवध्यस्त्वं रणेऽरीणामिति विद्धि वचो मम॥१९
अमृतादुत्थितं ह्येतदुभयं रत्नसम्भवम् ।
तस्माद्रक्ष्यं त्वया कर्ण जीवितं चेत्प्रियं तव ॥२०
कर्ण उवाच ।
को मामेवं भवान् प्राह दर्शयन् सौहृदं परम् ।
कामया भगवन् ब्रूहि को भवान् द्विजवेषधृक्२१
ब्राह्मण उवाच ।
अहं तात सहस्रांशुः सौहृदात्त्वां निदर्शये ।
कुरुष्वैतद्वचो मे त्वमेतच्छ्रेयः परं हि ते ॥ २२
कर्ण उवाच ।
श्रेय एव ममात्यन्तं यस्य मे गोपतिः प्रभुः ।
प्रवक्ताऽद्य हितान्वेषी शृणु चेदं वचो मम ॥२३
प्रसादये त्वां वरदं प्रणयाच्च ब्रवीम्यहम् ।
न निवार्यो व्रतादस्मादहं यद्यस्मि ते प्रियः ॥ २४
व्रतं वै मम लोकोऽयं वेत्ति कृत्स्नं विभावसो ।
यथाऽहं द्विजमुख्येभ्यो दद्यां प्राणानपि ध्रुवम्२५
यद्यागच्छति मां शक्रो ब्राह्मणच्छद्मना वृतः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्राणां खेचरोत्तम भिक्षितुम् ॥२६
दास्यामि विबुधश्रेष्ठ कुण्डले वर्म चोत्तमम् ।
न मे कीर्तिः प्रणश्येत त्रिषु लोकेषु विश्रुता २७
मद्विधस्य यशस्यं हि न युक्तं प्राणरक्षणम् ।
युक्तं हि यशसा युक्तं मरणं लोकसम्मतम् ॥२८
सोऽहमिन्द्राय दास्यामि कुण्डले सह वर्मणा ।
यदि मां बलवृत्रघ्नो भिक्षार्थमुपयास्यति ॥ २९
हितार्थं पाण्डुपुत्राणां कुण्डले मे प्रयाचितुम् ।
तन्मे कीर्तिकरं लोके तस्याकीर्तिर्भविष्यति ॥३०
वृणोमि कीर्तिं लोके हि जीवितेनापि भानुमन्
कीर्तिमानश्नुते स्वर्गं हीनकीर्तिस्तु नश्यति ॥ ३१
कीर्तिर्हि पुरुषं लोके सञ्जीवयति मातृवत् ।
अकीर्तिर्जीवितं हन्ति जीवतोऽपि शरीरिणः ३२
अयं पुराणः श्लोको हि स्वयं गीतो विभावसो ।
धात्रा लोकेश्वर यथा कीर्तिरायुर्नरस्य ह ॥ ३३
पुरुषस्य परे लोके कीर्तिरेव परायणम् ।
इह लोके विशुद्धा च कीर्तिरायुर्विवर्द्धनी ॥ ३४
सोऽहं शरीरजे दत्त्वा कीर्तिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम्
दत्त्वा च विधिवद्दानं ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ३५
हुत्वा शरीरं सङ्ग्रामे कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
विजित्य च परानाजौ यशः प्राप्स्यामि केवलम्॥
भीतानामभयं दत्त्वा सङ्ग्रामे जीवितार्थिनाम् ।
वृद्धान् बालान्द्विजातींश्च मोक्षयित्वा महाभयात्
प्राप्स्यामि परमं लोके यशः स्वर्ग्यमनुत्तमम् ।
जीवितेनापि मे रक्ष्या कीर्तिस्तद्विद्धि मे व्रतम् ॥
सोऽहं दत्त्वा मघवते भिक्षामेतामनुत्तमाम् ।
ब्राह्मणच्छद्मिने देव लोके गन्ता परां गतिम् ३९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्यकर्णसंवादे
त्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०० ॥

## ३०१

सूर्य उवाच ।
माऽहितं कर्ण कार्षीस्त्वमात्मनः सुहृदां तथा ।
पुत्राणामथ भार्याणामथो मातुरथो पितुः ॥ १
शरीरस्याविरोधेन प्राणिनां प्राणभृद्वर ।
इष्यते यशसः प्राप्तिः कीर्तिश्च त्रिदिवे स्थिरा २
यस्त्वं प्राणविरोधेन कीर्तिमिच्छसि शाश्वतीम् ।
सा ते प्राणान् समादाय गमिष्यति न संशयः ३
जीवतां कुरुते कार्यं पिता माता सुतास्तथा ।
ये चान्ये बान्धवाः केचिल्लोकेऽस्मिन् पुरुषर्षभ४
राजानश्च नरव्याघ्र पौरुषेण निबोध तत् ।
कीर्तिश्च जीवतः साध्वी पुरुषस्य महाद्युते ॥ ५
मृतस्य कीर्त्या किं कार्यं भस्मीभूतस्य देहिनः ।
मृतः कीर्तिं न जानीते जीवन् कीर्तिं समश्नुते ६

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥

३०१

*माऽहितमिति* । अहितमिति छेदः ॥ १ ॥ जीवतां पुत्रादीनां कार्यं प्रयोजनं परिष्वङ्गादिजं सुखं पित्रादिः कुरुते लभते। त्वयि मृते तातपित्रादीनां किं सुखं स्यादिति भावः॥४॥

मृतस्य कीर्तिर्मर्त्यस्य यथा माला गतायुषः ।
अहं तु त्वां ब्रवीम्येतद्भक्तोऽसीति हितेप्सया ७
भक्तिमन्तो हि मे रक्ष्या इत्येतेनापि हेतुना ।
भक्तोऽयं परया भक्त्या मामित्येव महाभुज ८
ममापि भक्तिरुत्पन्ना स त्वं कुरु वचो मम ।
अस्ति चात्र परं किञ्चिदध्यात्मं देवनिर्मितम् ।
अतश्च त्वां ब्रवीम्येतत् क्रियतामविशङ्कया ॥ ९
देवगुह्यं त्वया ज्ञातुं न शक्यं पुरुषर्षभ ।
तस्मान्नाख्यामि ते गुह्यं काले वेत्स्यति तद्भवान्॥
पुनरुक्तं च वक्ष्यामि त्वं राधेय निबोध तत् ।
माऽस्मै ते कुण्डले दद्या भिक्षिते वज्रपाणिना ११
शोभसे कुण्डलाभ्यां च रुचिराभ्यां महाद्युते ।
विशाखयोर्मध्यगतः शशीव विमले दिवि ॥ १२
कीर्तिश्च जीवतः साध्वी पुरुषस्येति विद्धि तत् ।
प्रत्याख्येयस्त्वया तात कुण्डलार्थे सुरेश्वरः ॥१३
शक्या बहुविधैर्वाक्यैः कुण्डलेप्सा त्वयाऽनघ ।
विहन्तुं देवराजस्य हेतुयुक्तैः पुनःपुनः ॥ १४
हेतुमदुपपन्नार्थैर्माधुर्यकृतभूषणैः ।
पुरन्दरस्य कर्ण त्वं बुद्धिमेतामपानुद ॥ १५
त्वं हि नित्यं नरव्याघ्र स्पर्धसे सव्यसाचिना ।
सव्यसाची त्वया चेह युधि शूरः समेष्यति ॥१६
न तु त्वामर्जुनः शक्तः कुण्डलाभ्यां समन्वितम् ।
विजेतुं युधि यद्यस्य स्वयमिन्द्रः *सखा भवेत्१७
तस्मान्न देये शक्राय त्वयैते कुण्डले शुभे ।
सङ्ग्रामे यदि निर्जेतुं कर्ण कामयसेऽर्जुनम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्यकर्णसंवादे एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥

## ३०२

कर्ण उवाच ।

भगवन्तमहं भक्तो यथा मां वेत्थ गोपते ।
तथा परमतिग्मांशो नास्त्यदेयं कथञ्चन ॥ १
न मे दारा न मे पुत्रा न चात्मा सुहृदो न च ।
तथेष्टा वै सदा भक्त्या यथा त्वं गोपते मम ॥ २
इष्टानां च महात्मानो भक्तानां च न संशयः ।
कुर्वन्ति भक्तिमिष्टां च जानीषे त्वं च भास्कर॥३
इष्टो भक्तश्च मे कर्णो न चान्यद्दैवतं दिवि ।
जानीत इति वै कृत्वा भगवानाह मद्धितम् ॥ ४
भूयश्च शिरसा याचे प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
इति ब्रवीमि तिग्मांशो त्वं तु मे क्षन्तुमर्हसि ॥ ५
बिभेमि न तथा मृत्योर्यथा बिभ्येऽनृतादहम् ।
विशेषेण द्विजातीनां सर्वेषां सर्वदा सताम् ॥ ६
प्रदाने जीवितस्यापि न मेऽत्रास्ति विचारणा ।
यच्च मामात्थ देव त्वं पाण्डवं फाल्गुनं प्रति ॥ ७
व्येतु सन्तापजं दुःखं तव भास्कर मानसम् ।
अर्जुनं† प्रति मां चैव विजेष्यामि रणेऽर्जुनम्॥८
तवापि विदितं देव ममाप्यस्त्रबलं महत् ।
जामदग्न्यादुपात्तं यत् तथा द्रोणान्महात्मनः॥९
इदं त्वमनुजानीहि सुरश्रेष्ठ व्रतं मम ।
भिक्षते वज्रिणे दद्यामपि जीवितमात्मनः ॥ १०

सूर्य उवाच ।

यदि तात ददास्येते वज्रिणे कुण्डले शुभे ।
त्वमप्येनमथो ब्रूया विजयार्थं महाबलम् ॥ ११
नियमेन प्रदद्यां ते कुण्डले वै शतक्रतो ।
अवध्यो ह्यसि भूतानां कुण्डलाभ्यां समन्वितः१२
अर्जुनेन विनाशं हि तव दानवसूदनः ।
प्रार्थयानो रणे वत्स कुण्डले ते जिहीर्षति ॥ १३
स त्वमप्येनमाराध्य सूनृताभिः पुनः पुनः ।
अभ्यर्थयेथा देवेशममोघार्थं पुरन्दरम् ॥ १४

विशाखयोः विशाखानक्षत्रस्य द्वे भास्वरे तारे तयोर्मध्ये गतः पूर्णचन्द्रः ॥ १२ ॥ विहन्तुं शक्येति सम्बन्धः । हेतुर्जीवनादिप्रदर्शनं तद्युक्तैः हेतुर्युक्तिस्तद्वन्ति च उपपन्नार्थानि हेत्वाभासरहितानि च तैः 'सवत एवात्मानं गोपायेत्' 'न सर्पायांगुलिं दद्यात्' 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' इत्यादिभिर्वाक्यैः ॥ १५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥

* शिरो-ख.

३०२.

भगवन्तमिति ॥ १ ॥ † अर्जुनप्रतिमं-ख.

अमोघां देहि मे शक्तिममित्रविनिबर्हिणीम् ।
दास्यामि ते सहस्राक्ष कुण्डले वर्म चोत्तमम् १५
इत्येव नियमेन त्वं दद्याः शक्राय कुण्डले ।
तया त्वं कर्ण सङ्ग्रामे हनिष्यसि रणे रिपून् १६
नाहत्वा हि महाबाहो शत्रूनेति करं पुनः ।
सा शक्तिर्देवराजस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा सहस्रांशुः सहसाऽन्तरधीयत ।
ततः सूर्याय जप्यान्ते कर्णः स्वप्नं न्यवेदयत् ॥ १८
यथा दृष्टं यथातत्त्वं यथोक्तमुभयोर्निशि ।
तत्सर्वमानुपूर्व्येण शशंसास्मै वृषस्तदा ॥ १९
तच्छ्रुत्वा भगवान् देवो भानुः स्वर्भानुसूदनः ।
उवाच तं तथेत्येव कर्णं सूर्यः स्मयन्निव ॥ २०
ततस्तत्त्वमिति ज्ञात्वा राधेयः परवीरहा ।
शक्तिमेवाभिकाङ्क्षन् वै वासवं प्रत्यपालयत् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्यकर्णसंवादे
द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥

## ३०३

जनमेजय उवाच ।
किं तद्गुह्यं न चाख्यातं कर्णायेहोष्णरश्मिना ।
कीदृशे कुण्डले ते च कवचं चैव कीदृशम् ॥ १
कुतश्च कवचं तस्य कुण्डले चैव सत्तम ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
अयं† राजन् ब्रवीम्येतत् तस्य गुह्यं विभावसोः ।
यादृशे कुण्डले ते च कवचं चैव यादृशम् ॥ ३
कुन्तिभोजं पुरा राजन् ब्राह्मणः पर्युपस्थितः ।
तिग्मतेजा महाप्रांशुः श्मश्रुदण्डजटाधरः ॥ ४
दर्शनीयोऽनवद्याङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
मधुपिङ्गो मधुरवाक् तपःस्वाध्यायभूषणः ॥ ५
स राजानं कुन्तिभोजमब्रवीत् सुमहातपाः ।
भिक्षामिच्छामि वै भोक्तुं तव गेहे विमत्सर ॥ ६
न मे व्यलीकं कर्तव्यं त्वया वा तव चानुगैः ।
एवं वत्स्यामि ते गेहे यदि ते रोचतेऽनघ ॥ ७
यथाकामं च गच्छेयमागच्छेयं तथैव च ।
शय्यासने च मे राजन्नापराध्येत कश्चन ॥ ८
तमब्रवीत् कुन्तिभोजः प्रीतियुक्तमिदं वचः ।
एवमस्तु परं चेति पुनश्चैनमथाब्रवीत् ॥ ९
मम कन्या महाप्राज्ञ पृथा नाम यशस्विनी ।
शीलवृत्तान्विता साध्वी नियता चैव भाविनी॥
उपस्थास्यति सा त्वां वै पूजयाऽनवमन्य च ।
तस्याश्च शीलवृत्तेन तुष्टिं समुपयास्यसि ॥ ११
एवमुक्त्वा तु तं विप्रमभिपूज्य यथाविधि ।
उवाच कन्यामभ्येत्य पृथां पृथुललोचनाम् ॥ १२
अयं वत्से महाभागो ब्राह्मणो वस्तुमिच्छति ।
मम गेहे मया चास्य तथेत्येवं प्रतिश्रुतम् ॥ १३
त्वयि वत्से पराश्वस्य ब्राह्मणस्याभिराधनम् ।
तन्मे ब्राक्यमिथ्या त्वं कर्तुमर्हसि कर्हिचित्१४
अयं तपस्वी भगवान् स्वाध्यायनियतो द्विजः ।
यद्यद्ब्रूयान्महातेजास्तत्तद्देयममत्सरात् ॥ १५
ब्राह्मणो हि परं तेजो ब्राह्मणो हि परं तपः ।
ब्राह्मणानां नमस्कारैः सूर्यो दिवि विराजते ॥१६
अमानयन् हि मानार्हान् वातापिश्च महासुरः ।
निहतो ब्रह्मदण्डेन तालजङ्घस्तथैव च ॥ १७
सोऽयं वत्से महाभार आहितस्त्वयि साम्प्रतम् ।
त्वं सदा नियता कुर्या ब्राह्मणस्याभिराधनम्१८
जानामि प्रणिधानं ते बाल्यात्प्रभृति नन्दिनि ।
ब्राह्मणेष्विह सर्वेषु गुरुबन्धुषु चैव ह ॥ ॥ १९
तथा प्रेष्येषु सर्वेषु मित्रसम्बन्धिमातृषु ।
मयि चैव यथावत् त्वं सर्वमावृत्य वर्तसे ॥ २०

---

अस्मै सूर्याय वृष" कर्णः ॥ १९ ॥ स्वर्भानुसूदनः राहुदमनः ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०२॥ † अहम्-ख.

३०३

किं तद्गुह्यमिति ॥ १ ॥ अनवमन्य अवमानमकृत्वा ॥ ११ ॥ वस्तुं वासं कर्तुम् ॥ १३ ॥ पराश्वस्य परमाश्वासं कृत्वा अभिराधनं कर्तुमिति शेषः ॥ १४ ॥ प्रणिधानं चित्तैकाग्र्यम् ॥ १९ ॥ आवृत्य व्याप्य ॥ २० ॥

न ह्यतुष्टो जनोऽस्तीह पुरे चान्तःपुरे च ते ।
सम्यग्वृत्त्याऽनवद्याङ्गि तव भृत्यजनेष्वपि ॥ २१
सन्देष्टव्यां तु मन्ये त्वां द्विजातिं कोपनं प्रति ।
पृथे बालेति कृत्वा वै सुता चासि ममेति च २२
वृष्णीनां च कुले जाता शूरस्य दयिता सुता ।
दत्ता प्रीतिमता मह्यं पित्रा बाला पुरा स्वयम्२३
वसुदेवस्य भगिनी सुतानां प्रवरा मम ।
अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय तेनासि दुहिता मम ॥ २४
तादृशे हि कुले जाता कुले चैव× विवर्धिता ।
सुखात् सुखमनुप्राप्ता ह्रदाद्ध्रदमिवागता ॥ २५
दौष्कुलेया विशेषेण कथञ्चित् प्रग्रहं गताः ।
बालभावाद्विकुर्वन्ति प्रायशः प्रमदाः शुभे ॥२६
पृथे राजकुले जन्म रूपं चापि तवाद्भुतम् ।
तेन तेनासि सम्पन्ना समुपेता च $^{\S}$भाविनी॥२७
सा त्वं दर्पं परित्यज्य दम्भं मानं च भाविनि ।
आराध्य वरदं विप्रं श्रेयसा योक्ष्यसे पृथे ॥ २८
एवं प्राप्स्यसि कल्याणि कल्याणमनघे ध्रुवम् ।
कोपिते च द्विजश्रेष्ठे कृत्स्नं दह्येत मे कुलम् ॥२९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथोपदेशे त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०३ ॥

## ३०४

कुन्त्युवाच ।
ब्राह्मणं यन्त्रिता राजन्नुपस्थास्यामि पूजया ।
यथाप्रतिज्ञं राजेन्द्र न च मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ १
एष चैव स्वभावो मे पूजयेयं द्विजानिति ।
तव चैव प्रियं कार्यं श्रेयश्च परमं मम ॥ २
यद्येवैष्यति सायाह्ने यदि प्रातरथो निशि ।
यद्यर्धरात्रे भगवान्न मे कोपं करिष्यति ॥ ३
लाभो ममैष राजेन्द्र यद्वै पूजयती द्विजान् ।
आदेशे तव तिष्ठन्ती हितं कुर्यां नरोत्तम ॥ ४
विस्रब्धो भव राजेन्द्र न व्यलीकं द्विजोत्तमः ।
वसन् प्राप्स्यति ते गेहे सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ५
यत्प्रियं च द्विजस्यास्य हितं चैव तवानघ ।
यतिष्यामि तथा राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः६
ब्राह्मणा हि महाभागाः पूजिताः पृथिवीपते ।
तारणाय समर्थाः स्युर्विपरीते वधाय च ॥ ७
साऽहमेतद्विजानन्ती तोषयिष्ये द्विजोत्तमम् ।
न मत्कृते व्यथां राजन् प्राप्स्यसि द्विजसत्तमात्
अपराधेऽपि राजेन्द्र राज्ञामश्रेयसे द्विजाः ।
भवन्ति च्यवनो यद्वत् सुकन्यायाः कृते पुरा ॥९
नियमेन परेणाहमुपस्थास्ये द्विजोत्तमम् ।
यथा त्वया नरेन्द्रेदं भाषितं ब्राह्मणं प्रति ॥ १०
एवं ब्रुवन्तीं बहुशः परिष्वज्य समर्थ्य च ।
इति चेति च कर्तव्यं राजा सर्वमथादिशत् ॥११
राजोवाच ।
एवमेतत् त्वया भद्रे कर्तव्यमविशङ्कया ।
मद्धितार्थं तथाऽऽत्मार्थं कुलार्थं चाप्यनिन्दिते१२
एवमुक्त्वा तु तां कन्यां कुन्तिभोजो महायशाः ।
पृथां परिददौ तस्मै द्विजाय द्विजवत्सलः ॥ १३
इयं ब्रह्मन् मम सुता बाला सुखविवर्धिता ।
अपराध्येत यत् किञ्चिन्न कार्यं हृदि तत् त्वया॥
द्विजातयो महाभागा वृद्धबालतपस्विषु ।
भवन्त्यक्रोधनाः प्रायो ह्यपराद्धेषु नित्यदा ॥ १५
सुमहत्यपराधेऽपि क्षान्तिः कार्या द्विजातिभिः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं पूजा ग्राह्या द्विजोत्तम १६
तथेति ब्राह्मणेनोक्त स राजा प्रीतमानसः ।
हंसचन्द्रांशुसङ्काशं गृहमस्मै न्यवेदयत् ॥ १७
तत्राग्निशरणे क्लृप्तमासनं तस्य भानुमत् ।
आहारादि च सर्वं तत् तथैव प्रत्यवेदयत् ॥ १८
निक्षिप्य राजपुत्री तु तन्द्रीं मानं तथैव च ।
आतस्थे परमं यत्नं ब्राह्मणस्याभिराधने ॥ १९

अग्र्यमग्रे देयम् । मया प्रथममपत्यं तुभ्यं देयमिति प्रतिज्ञातमित्यर्थः ॥ २४ ॥ दौष्कुलेया दुष्कुले जाताः । प्रग्रहं निर्बन्धं गताः प्राप्ताः विकुर्वन्ति दौष्ट्यं कुर्वन्ति ॥ २६ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥ × मम-ख

३०४

ब्राह्मणमिति । यन्त्रिता नियमयुक्ता ॥१॥ विस्रब्धो विश्वस्तः । व्यलीकमप्रियम् ॥ ५ ॥ अग्निशरणे अग्न्यगारे ॥१८॥ तन्द्रीमालस्यम् ॥ १९ ॥ $^{\S}$भामिनी-ख

तत्र सा ब्राह्मणं गत्वा पृथा शौचपरा सती । विधिवत् परिचारार्हं देववत् पर्यतोषयत् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथाद्विजपरिचर्यायां चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३०४ ॥

## ३०५

वैशम्पायन उवाच ।

सा तु कन्या महाराज ब्राह्मणं संशितव्रतम् ।
तोषयामास शुद्धेन मनसा संशितव्रता ॥ १
प्रातरेष्याम्यथेत्युक्त्वा कदाचिद्द्विजसत्तमः ।
तत आयाति राजेन्द्र सायं रात्रावथो पुनः ॥ २
तं च सर्वासु वेलासु भक्ष्यभोज्यप्रतिश्रयैः ।
पूजयामास सा कन्या वर्धमानैस्तु सर्वदा ॥
अन्नादिसमुदाचारः शय्यासनकृतस्तथा ।
दिवसे दिवसे तस्य वर्धते न तु हीयते ॥
निर्भर्त्सनापवादैश्च तथैवाप्रियया गिरा ।
ब्राह्मणस्य पृथा राजन् न चकाराप्रियं तदा ॥ ५
व्यस्ते काले पुनश्चैति न चैति बहुशो द्विजः ।
सुदुर्लभमपि ह्यन्नं दीयतामिति सोऽब्रवीत् ॥ ६
कृतमेव च तत् सर्वं यथा तस्मै न्यवेदयत् ।
शिष्यवत् पुत्रवच्चैव स्वसृवच्च सुसंयता ॥ ७
यथोपजोषं राजेन्द्र द्विजातिप्रवरस्य सा ।
प्रीतिमुत्पादयामास कन्यारत्नमनिन्दिता ॥ ८
तस्यास्तु शीलवृत्तेन तुतोष द्विजसत्तमः ।
अवधानेन भूयोऽस्याः परं यत्नमथाकरोत् ॥ ९
तां प्रभाते च सायं च पिता पप्रच्छ भारत ।
अपि तुष्यति ते पुत्रि ब्राह्मणः परिचर्यया ॥ १०
तं सा परममित्येव प्रत्युवाच यशस्विनी ।
ततः प्रीतिमवापाग्र्यां कुन्तिभोजो महामनाः ॥ ११
ततः संवत्सरे पूर्णे यदाऽसौ जपतां वरः ।
नापश्यद्दुष्कृतं किञ्चित् पृथायाः सौहृदे रतः ॥ १२
ततः प्रीतमना भूत्वा स एनां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि परमं भद्रे परिचारेण ते शुभे ॥ १३
वरान् वृणीष्व कल्याणि दुरापान् मानुषैरिह ।
यैस्त्वं सीमन्तिनीः सर्वा यशसाऽभिभविष्यसि ॥

कुन्त्युवाच ।

कृतानि मम सर्वाणि यस्या मे वेदवित्तम ।
त्वं प्रसन्नः पिता चैव कृतं विप्रवरैर्मम ॥ १५

ब्राह्मण उवाच ।

यदि नेच्छसि मत्तस्त्वं वरं भद्रे शुचिस्मिते ।
इमं मन्त्रं गृहाण त्वमाह्वानाय दिवौकसाम् ॥ १६
यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि ।
तेन तेन वशे भद्रे स्थातव्यं ते भविष्यति ॥ १७
अकामो वा सकामो वा स समेष्यति ते वशे ।
विबुधो मन्त्रसंशान्तो भृत्यवत् प्रणतः ॥ १८

वैशम्पायन उवाच ।

न शशाक द्वितीयं सा प्रत्याख्यातुमनिन्दिता ।
तं वै द्विजातिप्रवरं तदा शापभयान्नृप ॥ १९
ततस्तामनवद्याङ्गीं ग्राहयामास स द्विजः ।
मन्त्रग्रामं तदा राजन्नथर्वशिरसि श्रुतम् ॥ २०
तं प्रदाय तु राजेन्द्र कुन्तिभोजमुवाच ह ।
उषितोऽस्मि सुखं राजन् कन्यया परितोषितः ॥ २१
तव गेहेषु विहितः सदा सुप्रतिपूजितः ।
साधयिष्यामहे तावदित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥ २२

---

परिचारार्हं पूजार्हम् ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३०४ ॥

३०५

**सा त्विति** ॥ १ ॥ प्रतिश्रयैः आश्रयैः शयनासनाद्यैः ॥ ३ ॥ अन्नादिना समुदाचारः समुपसर्पणम् ॥ ४ ॥ निर्भर्त्सनं धिक्कारः अपवादोऽन्नादेर्दूषणम् । पाठान्तरेऽपदेशो व्याजः अप्रियया गालनरूपया ॥ ५ ॥ यथोपजोषं प्रियमनतिक्रम्य ॥ ८ ॥ शीलं शमादि । वृत्तं परिचर्या अवधानं ऐकाग्र्यम् । एतैस्तुतोष । यद्वा अस्याः पृथायाः श्रेयोर्थमवधानेन समाधिकाले यत्नमकरोत् । यत्नेन तस्याः कल्याणं चिन्तितवानित्यर्थः ॥ ९ ॥ द्वितीयं द्वितीयवारम् ॥ १९ ॥ विहितः विधानतः विशेषेण हितस्तृप्तो वा ॥ २१ ॥

स तु राजा द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तर्हितं तदा । बभूव विस्मयाविष्टः पृथां च समपूजयत् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि पृथाया मन्त्रप्राप्तौ पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥

## ३०६

वैशम्पायन उवाच ।
गते तस्मिन् द्विजश्रेष्ठे कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
चिन्तयामास सा कन्या मन्त्रग्रामबलाबलम् ॥ १
अयं वै कीदृशस्तेन मम दत्तो महात्मना ।
मन्त्रग्रामो बलं तस्य ज्ञास्ये नातिचिरादिति ॥२
एवं संचिन्तयन्ती सा ददर्शर्तुं यदृच्छया ।
व्रीडिता साऽभवद्बाला कन्याभावे रजस्वला ॥३
ततो हर्म्यतलस्था सा महार्हशयनोचिता ।
प्राच्यां दिशि समुद्यन्तं ददर्शादित्यमण्डलम् ॥४
तत्र बद्धमनोदृष्टिरभवत् सा सुमध्यमा ।
न चातप्यत रूपेण भानोः सन्ध्यागतस्य सा ॥ ५
तस्या दृष्टिरभूद्दिव्या साऽपश्यद्दिव्यदर्शनम् ।
आमुक्तकवचं देवं कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ॥ ६
तस्याः कौतूहलं त्वासीन्मन्त्रं प्रति नराधिप ।
आह्वानमकरोत् साऽथ तस्य देवस्य भामिनी ७
प्राणानुपस्पृश्य तदा ह्याजुहाव दिवाकरम् ।
आजगाम ततो राजंस्त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ८
मधुपिङ्गो महाबाहुः कम्बुग्रीवो हसन्निव ।
अङ्गदी बद्धमुकुटो दिशः प्रज्वालयन्निव ॥ ९
योगात् कृत्वा द्विधाऽऽत्मानमाजगाम ततापच ।
आबभाषे ततः कुन्तीं साम्ना परमवल्गुना ॥ १०
आगतोऽस्मि वशं भद्रे तव मन्त्रबलात्कृतः ।
किं करोमि वशो राज्ञि ब्रूहि कर्ता तदास्मि ते ११
कुन्त्युवाच ।
गम्यतां भगवंस्तत्र यत एवागतो ह्यसि ।
कौतूहलात् समाहूतः प्रसीद भगवन्निति ॥ १२

सूर्य उवाच ।
गमिष्येऽहं यथा मां त्वं ब्रवीषि तनुमध्यमे ।
न तु देवं समाहूय न्याय्यं प्रेषयितुं वृथा ॥ १३
तवाभिसन्धिः सुभगे सूर्यात् पुत्रो भवेदिति ।
वीर्येणाप्रतिमो लोके कवची कुण्डलीति च ॥१४
सा त्वमात्मप्रदानं वै कुरुष्व गजगामिनि ।
उत्पत्स्यति हि पुत्रस्ते यथासङ्कल्पमङ्गने ॥ १५
अथ गच्छाम्यहं भद्रे त्वया सङ्गम्य सुस्मिते ।
यदि त्वं वचनं नाद्य करिष्यसि मम प्रियम् १६
शपिष्ये त्वामहं क्रुद्धो ब्राह्मणं पितरं च ते ।
त्वत्कृते तान् प्रधक्ष्यामि सर्वानपि न संशयः १७
पितरं चैव ते मूढं यो न वेत्ति तवानयम् ।
तस्य च ब्राह्मणस्याद्य योऽसौ मन्त्रमदात्तव १८
शीलवृत्तमविज्ञाय धास्यामि विनयं परम् ।
एते हि विबुधाः सर्वे पुरन्दरमुखा दिवि ॥ १९
त्वया प्रलब्धं पश्यन्ति स्मयन्त इव भामिनि ।
पश्य चैनान् सुरगणान् दिव्यं चक्षुरिदं हि ते ।
पूर्वमेव मया दत्तं दृष्टवत्यसि येन माम् ॥ २०
वैशम्पायन उवाच ।
ततोऽपश्यत् त्रिदशान् राजपुत्री
सर्वानेव स्वेषु धिष्ण्येषु खस्थान् ।
प्रभावन्तं भानुमन्तं महान्तं
यथाऽऽदित्यं रोचमानांस्तथैव च ॥ २१
सा तान् दृष्ट्वा व्रीडमानेव बाला
सूर्यं देवी वचनं प्राह भीता ।
गच्छ त्वं वै गोपते स्वं विमानं
कन्याभावाद्दुःख एवापचारः ॥ २२

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥

३०६

गते इति ॥ १ ॥ ऋतुं रजः ॥ ३ ॥ प्राणान् इन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रादीनि उपस्पृश्य जलेन सम्यगाचम्येत्यर्थः ॥८॥ वश कामम् ॥ ११ ॥ यथाहं गमिष्ये तथा मा मां ब्रवीषि । न तु तथोच्यमित्याह न त्विति । वृथा प्रसादमप्राप्य ॥१३॥ ब्राह्मणं दुर्वाससम् ॥१७॥ विनयं दण्डं धास्यामि धारयिष्यामि ॥ १९ ॥ अपचारोऽपराधः कृतः ॥ २२ ॥

पिता माता गुरवश्चैव येऽन्ये
देहस्यास्य प्रभवन्ति प्रदाने ।
नाहं धर्मं लोपयिष्यामि लोके
स्त्रीणां वृत्तं पूज्यते देहरक्षा ॥ २३
मया मन्त्रबलं ज्ञातुमाहूतस्त्वं विभावसो ।
बाल्याद्बालेति तत्कृत्वा क्षन्तुमर्हसि मे विभो २४
सूर्य उवाच ।
बालेति कृत्वाऽनुनयं तवाहं
ददानि नान्यानुनयं लभेत ।
आत्मप्रदानं कुरु कुन्ति कन्ये
शांतिस्तवैवं हि भवेच्च भीरु ॥ २५
न चापि गन्तुं युक्तं हि मया मिथ्याकृतेन वै ।
असमेत्य त्वया भीरु मन्त्राहूतेन भाविनि ॥ २६
गमिष्याम्यनवद्याङ्गि लोके समवहास्यताम् ।
सर्वेषां विबुधानां च वक्तव्यः स्यां तथा शुभे२७
सा त्वं मया समागच्छ पुत्रं लप्स्यसि मादृशम् ।
विशिष्टा सर्वलोकेषु भविष्यसि न संशयः ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्याह्वाने
षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०६ ॥

## ३०७

वैशंपायन उवाच ।
सा तु कन्या बहुविधं ब्रुवन्ती मधुरं वचः ।
अनुनेतुं सहस्रांशुं न शशाक मनस्विनी ॥ १
न शशाक यदा बाला प्रत्याख्यातुं तमोनुदम् ।
भीता शापात् ततो राजन् दध्यौ दीर्घमथान्तरम् २
अनागसः पितुः शापो ब्राह्मणस्य तथैव च ।
मन्निमित्तः कथं न स्यात् क्रुद्धादस्माद्विभावसोः३
बालेनापि सता मोहाद्भृशं पापकृतान्यपि ।
नाभ्यासादयितव्यानि तेजांसि च तपांसि च ४
साऽहमद्य भृशं भीता गृहीत्वा च करे भृशम् ।
कथं त्वकार्यं कुर्यां वै प्रदानं ह्यात्मनः स्वयम् ॥५
वैशम्पायन उवाच ।
सा वै शापपरित्रस्ता बहु चिन्तयती हृदा ।
मोहेनाभिपरीताङ्गी स्मयमाना पुनः पुनः ॥ ६
तं देवमब्रवीद्भीता बन्धूनां राजसत्तम ।
व्रीडाविह्वलया वाचा शापत्रस्ता विशांपते ॥ ७
कुन्त्युवाच ।
पिता मे ध्रियते देव माता चान्ये च बान्धवाः ।
न तेषु ध्रियमाणेषु विधिलोपो भवेदयम् ॥ ८
त्वया तु सङ्गमो देव यदि स्याद्विधिवर्जितः ।
मन्निमित्तं कुलस्यास्य लोके कीर्तिर्नशेत् ततः॥ ९
अथवा धर्ममेतं त्वं मन्यसे तपतां वर ।
ऋते प्रदानाद्बन्धुभ्यस्तव कामं करोम्यहम् ॥ १०
आत्मप्रदानं दुर्धर्ष तव कृत्वा सती त्वहम् ।
त्वयि धर्मो यशश्चैव कीर्तिरायुश्च देहिनाम् ॥ ११
सूर्य उवाच ।
न ते पिता न ते माता गुरवो वा शुचिस्मिते ।
प्रभवन्ति वरारोहे भद्रं ते शृणु मे वचः ॥ १२
सर्वान् कामयते यस्मात् कनेर्धातोश्च भाविनि ।
तस्मात् कन्येह सुश्रोणि स्वतन्त्रा वरवर्णिनि१३
नाधर्मश्चरितः कश्चित् त्वया भवति भाविनि ।
अधर्मं कुत एवाऽहं चरेयं लोककाम्यया ॥ १४
अनावृताः स्त्रियः सर्वा नराश्च वरवर्णिनि ।
स्वभाव एष लोकानां विकारोऽन्य इति स्मृतः॥
सा मया सह सङ्गम्य पुनः कन्या भविष्यसि ।
पुत्रश्च ते महाबाहुर्भविष्यति महायशाः ॥ १६

---

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥

३०७

सा तु कन्येति ॥ १ ॥ दध्यौ चिन्तितवती अन्तरं कालम् ॥ २ ॥ बालेन अल्पवयसाऽपि सता साधुना मोहात् चित्तपारवश्यात् अप वृत्तं हिंसितं दैवतानि निष्पापान्यपि तेजांसि सूर्यादीनि । तपांसि दुर्वासआदी । नाभ्यासादयितव्यानि अत्यन्तं प्रत्यासत्तिविषयाणि न कर्तव्यानि ॥ ४ ॥ बन्धूनां सखीनां ताभ्य इत्यर्थः ॥ ७ ॥ ध्रियते जीवति ॥ ८ ॥ नशेत् नश्येत् ॥ ९ ॥ प्रभवन्ति स्वाम्यमर्हन्ति ॥ १२ ॥ कामयते सर्वानिति कन्येति कन्याशब्दनिर्वचनम् ॥ १३ ॥ तत्र हेतुः लोककाम्यया लोकप्रियया कामवत्या ॥ १४ ॥ अन्यो विवाहनियमादिर्विकारः ॥ १५ ॥

कुन्त्युवाच ।

यदि पुत्रो मम भवेत् त्वत्तः सर्वतमोनुद ।
कुण्डली कवची शूरो महाबाहुर्महाबलः ॥ १७

सूर्य उवाच ।

भविष्यति महाबाहुः कुण्डली दिव्यवर्मभृत् ।
उभयं चामृतमयं तस्य भद्रे भविष्यति ॥ १८

कुन्त्युवाच ।

यद्येतदमृतादस्ति कुण्डले वर्म चोत्तमम् ।
मम पुत्रस्य यं वै त्वं मत्त उत्पादयिष्यसि ॥ १९
अस्तु मे सङ्गमो देव यथोक्तं भगवंस्त्वया ।
त्वद्वीर्यरूपसत्त्वौजा धर्मयुक्तो भवेत् स च ॥ २०

सूर्य उवाच ।

अदित्या कुण्डले राज्ञि दत्ते मे मत्तकाशिनि ।
तेऽस्य दास्यामि वै भीरु वर्म चैवेदमुत्तमम् ॥ २१

कुन्त्युवाच ।

परमं भगवन्नेवं सङ्गमिष्ये त्वया सह ।
यदि पुत्रो भवेदेवं यथा वदसि गोपते ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

तथेत्युक्त्वा तु तां कुन्तीमाविवेश विहङ्गमः ।
स्वर्भानुशत्रुर्योगात्मा नाभ्यां पस्पर्श चैव ताम् २३
ततः सा विह्वलेवासीत् कन्या सूर्यस्य तेजसा ।
पपात चाथ सा देवी शयने मूढचेतना ॥ २४

सूर्य उवाच ।

साधयिष्यामि सुश्रोणि पुत्रं वै जनयिष्यसि ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं कन्या चैव भविष्यसि ॥ २५

वैशम्पायन उवाच ।

ततः सा व्रीडिता बाला तदा सूर्यमथाब्रवीत् ।
एवमस्त्विति राजेन्द्र प्रस्थितं भूरिवर्चसम् ॥ २६

इति स्मोक्ता कुन्तिराजात्मजा सा
विवस्वन्तं याचमाना सलज्जा ।
तस्मिन् पुण्ये शयनीये पपात
मोहाविष्टा भज्यमाना लतेव ॥ २७
तिग्मांशुस्तां तेजसा मोहयित्वा
योगेनाविश्यात्मसंस्थां चकार[1] ।
न चैवैनां दूषयामास भानुः
संज्ञां लेभे भूय एवाथ बाला ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि सूर्यकुन्तीसमागमे सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥

## ३०८

वैशम्पायन उवाच ।

ततो गर्भः समभवत् पृथायाः पृथिवीपते ।
शुक्ले दशोत्तरे पक्षे तारापतिरिवाम्बरे ॥ १
सा बान्धवभयाद्बाला गर्भं तं विनिगूहती ।
धारयामास सुश्रोणी न चैनां बुबुधे जनः ॥
न हि तां वेद नार्यन्या काचिद्धात्रेयिकामृते ।
कन्यापुरगतां बालां निपुणां परिरक्षणे ॥
ततः कालेन सा गर्भं सुषुवे वरवर्णिनी ।
कन्यैव तस्य देवस्य प्रसादादमरप्रभम् ॥
तथैवाबद्धकवचं कनकोज्ज्वलकुण्डलम् ।
हर्यक्षं वृषभस्कन्धं यथाऽस्य पितरं तथा ॥ ५
जातमात्रं च तं गर्भं धात्र्या सम्मन्त्र्य भाविनी
मञ्जूषायां समाधाय स्वास्तीर्णायां समन्ततः ६
मधूच्छिष्टस्थितायां सा सुखायां रुदती तथा ।
श्लक्ष्णायां सुपिधानायामश्वनद्यामवासृजत् ॥ ७
जानती चाप्यकर्तव्यं कन्याया गर्भधारणम् ।
पुत्रस्नेहेन सा राजन् करुणं [1]पर्यदेवयत् ॥ ८

अमृतमयं सहजं वर्म ॥ १८ ॥ प्रस्थितं सङ्गमायोपक्रान्तम् ॥२६॥ आत्मसंस्था वचनवशामेना न दूषयामास कन्यावस्थापनेनेति शेषः ॥२८॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥

३०८

तत इति । दशोत्तरे एकादशे शुक्ले पक्षे प्रतिपदि चन्द्र इव बाल उद्भूत. माघशुक्लप्रतिपदि कर्णनिषेकजन्मेत्यर्थ. ॥१॥ हर्यक्षं सिंहनेत्रम् ॥ ५ ॥ मधूच्छिष्टं सिक्थकं म्यनमिति भाषायाम् । तेन स्थितायाः सर्वतो लिप्ताया मञ्जूषायां जलप्रवेशो न भवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥ [1] पर्यवेदयत् क.

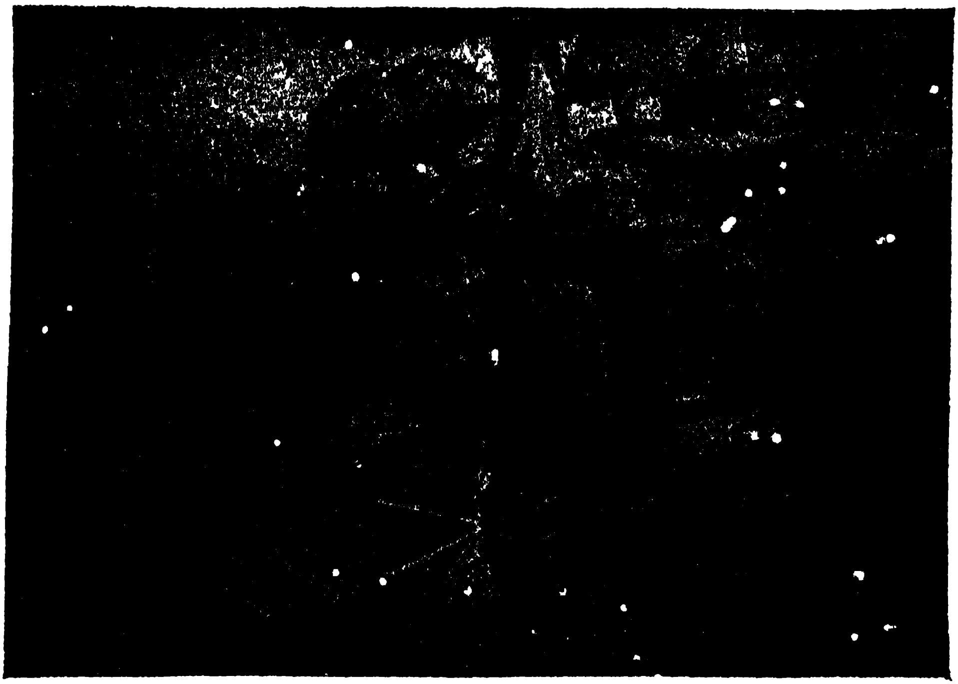

स तामुद्धृत्य मञ्जूषामुत्सार्य जलमन्तिकात्।
यन्त्रैरुद्घाटयामास सोऽद्राऽपश्यत् तत्र बालकम् ॥

—वनपर्व अ० ३०९ पृ. ४८१

समुत्सृजन्ती मञ्जूषामश्वनद्यां† तदा जले ।
उवाच रुदती कुन्ती यानि वाक्यानि तच्छृणु॥ ९
स्वस्ति ते चान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च पुत्रक ।
दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्यस्तथा तोयचराश्च ये ॥ १०
शिवास्ते सन्तु पन्थानो मा च ते परिपन्थिनः ।
आगताश्च तथा पुत्र भवन्त्वद्रोहचेतसः ॥ ११
पातु त्वां वरुणो राजा सलिले सलिलेश्वरः ।
अन्तरिक्षेऽन्तरिक्षस्थः पवनः सर्वगस्तथा ॥ १२
पिता त्वां पातु सर्वत्र तपनस्तपतां वरः ।
येन दत्तोऽसि मे पुत्र दिव्येन विधिना किल १३
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे च देवताः ।
मरुतश्च *सहेन्द्रेण दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ १४
रक्षन्तु त्वां सुराः सर्वे समेषु विषमेषु च ।
वेत्स्यामि त्वां विदेशेऽपि कवचेनाभिसूचितम् ॥
धन्यस्ते पुत्र जनको देवो भानुर्विभावसुः ।
यस्त्वां द्रक्ष्यति दिव्येन चक्षुषा वाहिनीगतम् १६
धन्या सा प्रमदा या त्वां पुत्रत्वे कल्पयिष्यति ।
यस्यास्त्वं तृषितः पुत्र स्तनं पास्यसि देवज॥ १७
को नु स्वप्नस्तया दृष्टो या त्वामादित्यवर्चसम्
दिव्यवर्मसमायुक्तं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥ १८
पद्मायतविशालाक्षं पद्मताम्रदलोज्ज्वलम् ।
सुललाटं सुकेशान्तं पुत्रत्वे कल्पयिष्यति ॥ १९
धन्या द्रक्ष्यन्ति पुत्र त्वां भूमौ संसर्पमाणकम् ।
अव्यक्तकलवाक्यानि वदन्तं रेणुगुण्ठितम् ॥ २०
धन्या द्रक्ष्यन्ति पुत्र त्वां पुनर्यौवनगोचरम् ।
हिमवद्वनसम्भूतं सिंहं केसरिणं यथा ॥ २१
एवं बहुविधं राजन् विलप्य करुणं पृथा ।
अवासृजत मञ्जूषामश्वनद्यां तदा जले ॥ २२
रुदती पुत्रशोकार्ता निशीथे कमलेक्षणा ।
धात्र्या सह पृथा राजन् पुत्रदर्शनलालसा ॥ २३
विसर्जयित्वा मञ्जूषां सम्बोधनभयात् पितुः ।
विवेश राजभवनं पुनः शोकातुरा ततः ॥ २४
मञ्जूषा त्वश्वनद्याः सा ययौ चर्मण्वतीं नदीम् ।
चर्मण्वत्याश्च यमुनां ततो गङ्गां जगाम ह ॥ २५
गङ्गायाः सूतविषयं चम्पामनुययौ पुरीम् ।
स मञ्जूषागतो गर्भस्तरङ्गैरुह्यमानकः ॥ २६
अमृतादुत्थितं दिव्यं तत्तु वर्म सकुण्डलम् ।
धारयामास तं गर्भं दैवं च विधिनिर्मितम् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि कर्णपरित्यागे
अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

## ३०९

वैशम्पायन उवाच ।
एतस्मिन्नेव काले तु धृतराष्ट्रस्य वै सखा ।
सूतोऽधिरथ इत्येव सदारो जाह्नवीं ययौ ॥ १
तस्य भार्याऽभवद्राजन् रूपेणासदृशी भुवि ।
राधा नाम महाभागा न सा पुत्रमविन्दत ॥ २
अपत्यार्थे परं यत्नमकरोच्च विशेषतः ।
सा ददर्शाथ मञ्जूषामुह्यमानां यदृच्छया ॥ ३
दत्तरक्षाप्रतिसरामन्वालभनशोभनाम् ।
ऊर्मीतरङ्गैर्जाह्नव्याः समानीतामुपह्वरम् ॥ ४
सा तु कौतूहलात् प्राप्तां ग्राहयामास भाविनी ।
ततो निवेदयामास सूतस्याधिरथस्य वै ॥ ५
स तामुद्धृत्य मञ्जूषामुत्सार्य जलमन्तिकात् ।
यन्त्रैरुद्घाटयामास सोऽपश्यत् तत्र बालकम्॥६
तरुणादित्यसङ्काशं हेमवर्मधरं तथा ।
मृष्टकुण्डलयुक्तेन वदनेन विराजता ॥ ७
स सूतो भार्यया सार्धं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
अङ्कमारोप्य तं बालं भार्यां वचनमब्रवीत् ॥ ८
इदमत्यद्भुतं भीरु यतो जातोऽस्मि भाविनि ।
दृष्टवान् देवगर्भोऽयं मन्येऽस्मान् समुपागतः ॥ ९

दैवं देवजं विधिना ईश्वरेण निर्मितम् ॥ २७ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

३०९

एतस्मिन्निति ॥ १ ॥ दत्तो रक्षार्थं प्रतिसरो दूर्वाङ्कुरादिर्यो यस्यां ताम् । अन्वालम्भनं कुङ्कुमहस्तदानम् उपह्वरं समीपम् ॥ ४ ॥ उत्सार्य परतो नीत्वा ॥ ६ ॥ यतो जातोऽस्मि उत्पत्तिदिनादारभ्यैवेदमद्भुतं दृष्टम् ॥९॥

† अश्वनद्यास्तदा-क. * महेन्द्रेण-क.

अनपत्यस्य पुत्रोऽयं देवैर्दत्तो ध्रुवं मम ।
इत्युक्त्वा तं ददौ पुत्रं राधायै स महीपते ॥ १०
प्रतिजग्राह तं राधा विधिवद्दिव्यरूपिणम् ।
पुत्रं कमलगर्भाभं देवगर्भं श्रिया वृतम् ॥ ११
पुपोष चैनं विधिवद्ववृधे स च वीर्यवान् ।
ततःप्रभृति चाप्यन्ये प्राभवन्नौरसाः सुताः ॥ १२
वसुवर्मधरं दृष्ट्वा तं बालं हेमकुण्डलम् ।
नामास्य वसुषेणेति ततश्चक्रुर्द्विजातयः ॥ १३
एवं स सूतपुत्रत्वं जगामामितविक्रमः ।
वसुषेण इति ख्यातो वृष इत्येव च प्रभुः ॥ १४
सूतस्य ववृधेऽङ्गेषु श्रेष्ठः पुत्रः स वीर्यवान् ।
चारेण विदितश्चासीत् पृथया दिव्यवर्मभृत् ॥ १५
सूतस्त्वधिरथः पुत्रं विवृद्धं समयेन तम् ।
दृष्ट्वा प्रस्थापयामास पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १६
तत्रोपसदनं चक्रे द्रोणस्येष्वस्त्रकर्माणि ।
सख्यं दुर्योधनेनैवमगमत् स च वीर्यवान् ॥ १७
द्रोणात् कृपाच्च रामाच्च सोऽस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ।
लब्ध्वा लोकेऽभवत् ख्यातः परमेष्वासतां गतः
सन्धाय धार्तराष्ट्रेण पार्थानां विप्रिये रतः ।
योद्धुमाशंसते नित्यं फाल्गुनेन महात्मना ॥ १९
सदा हि तस्य स्पर्धाऽऽसीदर्जुनेन विशाम्पते ।
अर्जुनस्य च कर्णेन यतो दृष्टो बभूव सः ॥ २०
एतद्गुह्यं महाराज सूर्यस्यासीन्न संशयः ।
यः सूर्यसम्भवः कर्णः कुन्त्यां सूतकुले तथा§॥२१
तं तु कुण्डलिनं दृष्ट्वा वर्मणा च समन्वितम् ।
अवध्यं समरे मत्वा पर्यतप्यद्युधिष्ठिरः ॥ २२
यदा च कर्णो राजेन्द्र भानुमन्तं दिवाकरम् ।
स्तौति मध्यन्दिने प्राप्ते प्राञ्जलिः सलिलोत्थितः।
तत्रैनमुपतिष्ठन्ति ब्राह्मणा धनहेतुना ।
नादेयं तस्य तत्काले किञ्चिदस्ति द्विजातिषु २४
तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा भिक्षां देहीत्युपस्थितः।
स्वागतं चेति राधेयस्तमथ प्रत्यभाषत ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि राधाकर्णप्राप्तौ नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥

## ३१०

वैशम्पायन उवाच ।
देवराजमनुप्राप्तं ब्राह्मणच्छद्मना वृतम् ।
दृष्ट्वा स्वागतमित्याह न बुबोधास्य मानसम् ॥ १
हिरण्यकण्ठीः प्रमदा ग्रामान् वा बहुगोकुलान् ।
किं ददानीति तं विप्रमुवाचाधिरथिस्ततः ॥ २
ब्राह्मण उवाच ।
हिरण्यकण्ठ्यः प्रमदा यच्चान्यत् प्रीतिवर्धनम् ।
नाहं दत्तमिहेच्छामि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥ ३
यदेतत्सहजं वर्म कुण्डले च तवानघ ।
एतदुत्कृत्य मे देहि यदि सत्यव्रतो भवान् ॥ ४
एतदिच्छाम्यहं क्षिप्रं त्वया दत्तं परन्तप ।
एष मे सर्वलाभानां लाभः परमको मतः ॥ ५
कर्ण उवाच ।
अवनिं प्रमदा गाश्च निवापं बहुवार्षिकम् ।
तत्ते विप्र प्रदास्यामि न तु वर्म सकुण्डलम् ॥ ६
वैशम्पायन उवाच ।
एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानः स तु द्विजः ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ नान्यं वरमयाचत ॥ ७
सान्त्वितश्च यथाशक्ति पूजितश्च यथाविधि ।
न चान्यं स द्विजश्रेष्ठः कामयामास वै वरम् ॥ ८
यदा नान्यं प्रवृणुते वरं वै द्विजसत्तमः ।
तदैनमब्रवीद्भूयो राधेयः प्रहसन्निव ॥ ९
सहजं वर्म मे विप्र कुण्डले चामृतोद्भवे ।
तेनावध्याऽस्मि लोकेषु ततो नैतज्जहाम्यहम् १०

वसुवर्म स्वर्णकवचम् ॥ १३ ॥ अङ्गेषु जनपदविशेषेषु॥१५॥ उपसदनं गुरूपसदनम् ॥ १७ ॥ परमेष्वासता महाधनुर्धरताम् ॥ १८ ॥ यत काले दृष्ट. ॥ २० ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥ § तदा-क

३१०

देवराजमिति ॥ १ ॥ अवनिं गृहार्थं निवापं न्युप्यते बीजमस्मिन्निति क्षेत्रं बहुवार्षिकं यावज्जीविकप्रदमित्यर्थः ॥ ६ ॥

विशालं पृथिवीराज्यं क्षेमं निहतकण्टकम् ।
प्रतिगृह्णीष्व मत्तस्त्वं साधु ब्राह्मणपुङ्गव ॥ ११
कुण्डलाभ्यां विमुक्तोऽहं वर्मणा सहजेन च ।
गमनीयो भविष्यामि शत्रूणां द्विजसत्तम ॥ १२

वैशम्पायन उवाच ।

¶यदन्यं न वरं वव्रे भगवान् पाकशासनः ।
ततः प्रहस्य कर्णस्तं पुनरित्यब्रवीद्वचः ॥ १३
विदितो देवदेवेश प्रागेवासि मम प्रभो ।
न तु न्याय्यं मया दातुं तव शक्यं वृथा वरम् १४
त्वं हि देवेश्वरः साक्षात्त्वया देयो वरो मम ।
अन्येषां चैव भूतानामीश्वरो ह्यसि भूतकृत् ॥१५
यदि दास्यामि ते देव कुण्डले कवचं तथा ।
वध्यतामुपयास्यामि त्वं च शक्रावहास्यताम्१६
तस्माद्विनिमयं कृत्वा कुण्डले वर्म चोत्तमम् ।
हरस्व शक्र कामं मे न दद्यामहमन्यथा ॥ १७

शक्र उवाच ।

विदितोऽहं रवेः पूर्वमायानेव तवान्तिकम् ।
तेन ते सर्वमाख्यातमेवमेतन्न संशयः ॥ १८
काममस्तु तथा तात तव कर्ण यथेच्छसि ।
वर्जयित्वा तु मे वज्रं प्रवृणीष्व यदिच्छसि ॥ १९

वैशम्पायन उवाच ।

ततः कर्णः प्रहृष्टस्तु उपसङ्गम्य वासवम् ।
अमोघां शक्तिमभ्येत्य वव्रे सम्पूर्णमानसः ॥ २०

कर्ण उवाच ।

वर्मणा कुण्डलाभ्यां च शक्तिं मे देहि वासव ।
अमोघां शत्रुसङ्घानां घातिनीं पृतनामुखे ॥ २१
ततः सञ्चिन्त्य मनसा मुहूर्तमिव वासवः ।
शक्त्यर्थं पृथिवीपाल कर्णं वाक्यमथाब्रवीत् ॥२२
कुण्डले मे प्रयच्छस्व वर्म चैव शरीरजम् ।
गृहाण कर्ण शक्तिं त्वमनेन समयेन च ॥ २३
अमोघा हन्ति शतशः शत्रून् मम करच्युता ।
पुनश्च पाणिमभ्येति मम दैत्यान् विनिघ्नतः २४
सेयं तव करप्राप्ता हत्वैकं रिपुमूर्जितम् ।
गर्जन्तं प्रतपन्तं च मामेवैष्यति सूतज ॥ २५

कर्ण उवाच ।

एकमेवाहमिच्छामि रिपुं हन्तुं महाहवे ।
गर्जन्तं प्रतपन्तं च यतो मम भयं भवेत् ॥ २६

इन्द्र उवाच ।

एकं हनिष्यसि रिपुं गर्जन्तं बलिनं रणे ।
त्वं तु यं प्रार्थयस्येकं रक्ष्यते स महात्मना ॥ २७
यमाहुर्वेदविद्वांसो +वराहमपराजितम् ।
नारायणमचिन्त्यं च तेन कृष्णेन रक्ष्यते ॥ २८

कर्ण उवाच ।

एवमप्यस्तु भगवन्नेकवीरवधे मम ।
अमोघां देहि मे शक्तिं यथा हन्यां प्रतापिनम् ॥
उत्कृत्य तु प्रदास्यामि कुण्डले कवचं च ते ।
निकृत्तेषु तु गात्रेषु न मे बीभत्सता भवेत् ॥ ३०

इन्द्र उवाच ।

न ते बीभत्सता कर्ण भविष्यति कथञ्चन ।
व्रणश्चैव न गात्रेषु यस्त्वं नानृतमिच्छसि ॥ ३१
यादृशस्ते पितुर्वर्णस्तेजश्च वदतां वर ।
तादृशेनैव वर्णेन त्वं कर्ण भविता पुनः ॥ ३२
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यद्यमोघामसंशये ।
प्रमत्तो मोक्ष्यसे चापि त्वय्येवैषा पतिष्यति ३३

कर्ण उवाच ।

संशयं परमं प्राप्य विमोक्ष्ये वासवीमिमाम् ।
यथा मामात्थ शक्र त्वं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३४

वैशम्पायन उवाच ।

ततः शक्तिं प्रज्वलितां प्रतिगृह्य विशाम्पते ।
शस्त्रं गृहीत्वा निशितं सर्वगात्राण्यकृन्तत ॥३५

ततो देवा मानवा दानवाश्च
निकृन्तन्तं कर्णमात्मानमेवम् ।
दृष्ट्वा सर्वे सिंहनादान् प्रणेदु-
र्न ह्यस्यासीन्मुखजो वै विकारः ३६
ततो दिव्या दुन्दुभयः प्रणेदुः
पपातोच्चैः पुष्पवर्षं च दिव्यम् ।
दृष्ट्वा कर्णं शस्त्रसङ्कृत्तगात्रं
मुहुश्चापि स्मयमानं नृवीरम् ॥ ३७
ततश्छित्वा कवचं दिव्यमङ्गा-
त्तथैवार्द्रं प्रददौ वासवाय ।
तथोत्कृत्य प्रददौ कुण्डले ते
कर्णात्तस्मात् कर्मणा तेन कर्णः ॥ ३८

---

गमनीयो वध्यः ॥ १२ ॥ आयानेव आगच्छन्नेव ॥ १८ ॥ कृणाति हिनस्ति कृन्तति छिनत्ति वा अजानीति कर्ण इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ ¶ यदाश्चर्यम्-क. + वाराहं-क.

ततः शक्रः प्रहसन् वञ्चयित्वा
कर्णं लोके यशसा योजयित्वा ।
कृतं कार्यं पाण्डवानां हि मेने
ततः पश्चाद्दिवमेवोत्पपात ॥ ३९

श्रुत्वा कर्णं मुषितं धार्तराष्ट्रा
दीनाः सर्वे भग्नदर्पा इवासन् ।
तां चावस्थां गमितं सूतपुत्रं
श्रुत्वा पार्था जहृषुः ‡काननस्थाः ॥ ४०

जनमेजय उवाच ।
क्वस्था वीराः पाण्डवास्ते बभूवुः
कुतश्चैते श्रुतवन्तः प्रियं तत् ।
किं वाऽकार्षुर्द्वादशेऽब्दे व्यतीते
तन्मे सर्वं भगवान् व्याकरोतु ॥ ४१

वैशम्पायन उवाच ।
लब्ध्वा कृष्णां सैन्धवं द्रावयित्वा
विप्रैः सार्धं काम्यकाश्रमास्ते ।
मार्कण्डेयाच्छ्रुतवन्तः पुराणं
देवर्षीणां चरितं विस्तरेण ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि कुण्डलाहरणपर्वणि कवचकुण्डलदाने
दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥

समाप्तं कुण्डलाहरणपर्व ।

## आरणेयपर्व ।

### ३११

जनमेजय उवाच ।
एवं हृतायां †भार्यायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
प्रतिपद्य ततः कृष्णां किमकुर्वत पाण्डवाः ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।
एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
विहाय काम्यकं राजा सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ २
पुनर्द्वैतवनं रम्यमाजगाम युधिष्ठिरः ।
स्वादुमूलफलं रम्यं विचित्रबहुपादपम् ॥ ३
अनुभुक्तफलाहाराः सर्व एव मिताशनाः ।
न्यवसन् पाण्डवास्तत्र कृष्णया सह भार्यया ॥ ४
वसन् द्वैतवने राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ५
ब्राह्मणार्थे पराक्रान्ता धर्मात्मानो यतव्रताः ।
क्लेशमार्च्छन्त विपुलं सुखोदर्कं परन्तपाः ॥ ६
तस्मिन् प्रतिवसन्तस्ते यत्रापुः कुरुसत्तमाः ।
वन क्लेशं सुखोदर्कं तत्प्रवक्ष्यामि ते शृणु ॥ ७
अरणीसहितं मन्थं ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।
मृगस्य घर्षमाणस्य विषाणे समसज्जत ॥ ८
तदादाय गतो राजंस्त्वरमाणो महामृगः ।
आश्रमान्तरितः शीघ्रं प्लवमानो महाजवः ॥ ९
ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा स विप्रः कुरुसत्तम ।
त्वरितोऽभ्यागमत् तत्र अग्निहोत्रपरीप्सया ॥ १०
अजातशत्रुमासीनं भ्रातृभिः सहितं वने ।
आगम्य ब्राह्मणस्तूर्णं सन्तप्तश्चेदमब्रवीत् ॥ ११
अरणीसहितं मन्थं समासक्तं वनस्पतौ ।
मृगस्य घर्षमाणस्य विषाणे समसज्जत ॥ १२
तमादाय गतो राजंस्त्वरमाणो महामृगः ।
आश्रमात् त्वरितः शीघ्रं प्लवमानो महाजवः ॥ १३
तस्य गत्वा पदं राजन्नासाद्य च महामृगम् ।
अग्निहोत्रं न लुप्येत तदानयत पाण्डवाः ॥ १४
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा सन्तप्तोऽथ युधिष्ठिरः ।
धनुरादाय कौन्तेयः प्राद्रवद्भ्रातृभिः सह ॥ १५

इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥ ‡ वासनेषु-क.

३११

एवमिति ॥ १ ॥ अनुभुक्ता: व्रतिन: फलाहारा: फलान्येवाहर्तुं शीला ॥ ४ ॥ अरणी उत्तराधरेऽभिमथनकाष्ठे ताभ्यां सहितं मन्थं निर्मथनदण्डम् ॥ ८ ॥ आश्रमान्तरितः आश्रमदूरगतः ॥ ९ ॥ पदं मार्गं चिह्नं गत्वा प्राप्य तेनैव पथा तदानयत ॥ १४ ॥ † कृष्णायां-क.

सन्नद्धा धन्विनः सर्वे प्राद्रवन्नरपुङ्गवाः ।
ब्राह्मणार्थे यतन्तस्ते शीघ्रमन्वगमन्मृगम् ॥ १६
कर्णिनालीकनाराचानुत्सृजन्तो महारथाः ।
नाविध्यन् पाण्डवास्तत्र पश्यन्तो मृगमन्तिकात्
तेषां प्रयतमानानां नादृश्यत महामृगः ।
अपश्यन्तो मृगं श्रान्ता दुःखं प्राप्ता मनस्विनः१८
शीतलच्छायमागम्य न्यग्रोधं गहने वने ।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः पाण्डवाः समुपाविशन्१९
तेषां समुपविष्टानां नकुलो दुःखितस्तदा ।
अब्रवीद्भ्रातरं श्रेष्ठममर्षात् कुरुनन्दनम् ॥ २०
नास्मिन् कुले जातु ममज्ज धर्मो
न चालस्यादर्थलोपो बभूव ह ।
अनुत्तराः सर्वभूतेषु भूयः
सम्प्राप्ताः स्मः संशयं किन्नु राजन् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आरणेयपर्वणि मृगान्वेषणे एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥

## ३१२

युधिष्ठिर उवाच ।
नापदामस्ति मर्यादा न निमित्तं न कारणम् ।
धर्मस्तु विभजत्यर्थमुभयोः पुण्यपापयोः ॥ १
भीम उवाच ।
प्रातिकाम्यनयत् कृष्णां सभायां प्रेष्यवत् तदा ।
न मया निहतस्तत्र तेन प्राप्ताः स्म संशयम् ॥ २
अर्जुन उवाच ।
वाचस्तीक्ष्णास्थिभेदिन्यः सूतपुत्रेण भाषिताः ।
अतितीव्रा मया क्षान्तास्तेन प्राप्ताः स्म संशयम्॥३
सहदेव उवाच ।
शकुनिस्त्वां यदाऽजैषीदक्षद्यूतेन भारत ।
स मया न हतस्तत्र तेन प्राप्ताः स्म संशयम् ॥ ४
वैशम्पायन उवाच ।
ततो युधिष्ठिरो राजा नकुलं वाक्यमब्रवीत् ।
आरुह्य वृक्षं माद्रेय निरीक्षस्व दिशो दश ॥ ५
पानीयमन्तिके पश्य वृक्षांश्चाप्युदकाश्रितान् ।
एते हि भ्रातरः श्रान्तास्तव तात पिपासिताः ६
नकुलस्तु तथेत्युक्त्वा शीघ्रमारुह्य पादपम् ।
अब्रवीद्भ्रातरं ज्येष्ठमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥ ७
पश्यामि बहुलान् राजन् वृक्षानुदकसंश्रयान् ।
सारसानां च निर्ह्रादमत्रोदकमसंशयम् ॥ ८
ततोऽब्रवीत् सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
गच्छ सौम्य ततः शीघ्रं तूणैः पानीयमानय ॥ ९
नकुलस्तु तथेत्युक्त्वा भ्रातुर्ज्येष्ठस्य शासनात् ।
प्राद्रवद्यत्र पानीयं शीघ्रं चैवान्वपद्यत ॥ १०
स दृष्ट्वा विमलं तोयं सारसैः परिवारितम् ।
पातुकामस्ततो वाचमन्तरिक्षात् स शुश्रुवे ॥ ११
यक्ष उवाच ।
मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु माद्रेय ततः पिब हरस्व च ॥१२
अनादृत्य तु तद्वाक्यं नकुलः सुपिपासितः ।
अपिबच्छीतलं तोयं पीत्वा च निपपात ह ॥ १३
चिरायमाणे नकुले कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अब्रवीद्भ्रातरं वीरं सहदेवमरिन्दमम् ॥ १४
भ्राता हि चिरयातो नः सहदेव तवाग्रजः ।
तथैवानय सोदर्यं पानीयं च त्वमानय ॥ १५
सहदेवस्तथेत्युक्त्वा तां दिशं प्रत्यपद्यत ।
ददर्श च हतं भूमौ भ्रातरं नकुलं तदा ॥ १६
भ्रातृशोकाभिसन्तप्तस्तृषया च प्रपीडितः ।
अभिदुद्राव पानीयं ततो वागभ्यभाषत ॥ १७
मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा यथाकामं पिबस्व च हरस्व च ॥ १८

धर्मो न ममज्ज धर्मलोपोऽर्थलोपश्च नाभूत् । आलस्यादित्युपचर्यते । त्वयि अनुत्तराः प्रतिवाक्यरहिताः सर्वभूतेषु कार्यार्थे उपस्थिते ओमित्येव वदामो न तु वाक्यान्तरमित्यर्थः । संशयं ब्राह्मणस्य धर्मलोपनिमित्तं दोषम् ॥ २१ ॥ इ० पर्वणि नैल० भारत० एकादशाधिकत्रिशततमो० ॥ ३११ ॥

३१२

नापदामिति । निमित्तं फलं धर्मः प्रारब्धस्तु अर्थं फलं सुखदुःखरूपं विभजति ॥ १ ॥ प्रेष्यवत् प्रेष्यामिव २ ॥ साहसं जलपानरूपम् । परिग्रहो नियमः यो मत्प्रश्नान्वदेत् स एव इतः पयः पिबेत् हरेद्वेति ॥ १२ ॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं सहदेवः पिपासितः ।
अपिबच्छीतलं तोयं पीत्वा च निपपात ह ॥१९
अथाब्रवीत स विजयं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भ्रातरौ ते *परिगतौ बीभत्सो शत्रुकर्शन ॥ २०
तौ चैवानय भद्रं ते पानीयं च त्वमानय ।
त्वं हि नस्तात सर्वेषां दुःखितानामपाश्रयः॥ २१
एवमुक्तो गुडाकेशः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
आमुक्तखड्गो मेधावी तत्सरः प्रत्यपद्यत ॥ २२
ततः पुरुषशार्दूलौ पानीयहरणे गतौ ।
तौ ददर्श हतौ तत्र भ्रातरौ श्वेतवाहनः ॥ २३
प्रसुप्ताविव तौ दृष्ट्वा नरसिंहः सुदुःखितः ।
धनुरुद्यम्य कौन्तेयो व्यलोकयत तद्वनम् ॥ २४
नापश्यत् तत्र किञ्चित् स भूतमस्मिन् महावने ।
सव्यसाची ततः श्रान्तः पानीयं सोऽभ्यधावत॥
अभिधावंस्ततो वाक्यमन्तरिक्षात् स शुश्रुवे ।
किमासीदसि पानीयं नैतच्छक्यं बलात् त्वया॥
कौन्तेय यदि प्रश्नांस्तान् मयोक्तान्प्रतिपत्स्यसे ।
ततः पास्यसि पानीयं हरिष्यसि च भारत॥२७
वारितस्त्वब्रवीत् पार्थो दृश्यमानो निवारय ।
यावद्बाणैर्विनिर्भिन्नः पुनर्नैवं वदिष्यसि ॥ २८
एवमुक्त्वा ततः पार्थः शरैरस्त्रानुमन्त्रितैः ।
प्रववर्ष दिशः कृत्स्नाः शब्दवेधं† च दर्शयन् ॥२९
कर्णिनालीकनाराचानुत्सृजन् भरतर्षभ ।
सत्वमोघानिषून् मुक्त्वा तृष्णयाऽभिप्रपीडितः
अनेकैरिषुसङ्घातैरन्तरिक्षे ववर्ष ह ।

यक्ष उवाच ।

किं विघातेन ते पार्थ प्रश्नानुक्त्वा ततः पिब ॥ ३१
अनुक्त्वा च पिबन् प्रश्नान् पीत्वैव न भविष्यसि ।
एवमुक्तस्ततः पार्थः सव्यसाची धनञ्जयः ३२
अवज्ञायैव तां वाचं पीत्वैव निपपात ह ।
अथाब्रवीद्भीमसेनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३३
नकुलः सहदेवश्च बीभत्सुश्च परन्तप ।
चिरं गतास्तोयहेतोर्न चागच्छन्ति भारत ॥ ३४
तांश्चैवानय भद्रं ते पानीयं च त्वमानय ।
भीमसेनस्तथेत्युक्त्वा तं देशं प्रत्यपद्यत ॥ ३५
यत्र ते पुरुषव्याघ्रा भ्रातरोऽस्य निपातिताः ।
तान् दृष्ट्वा दुःखितो भीमस्तृषया च प्रपीडितः३६
अमन्यत महाबाहुः कर्म तद्यक्षरक्षसाम् ।
स चिन्तयामास तदा योद्धव्यं ध्रुवमद्य वै ॥ ३७
पास्यामि तावत्पानीयमिति पार्थो वृकोदरः ।
ततोऽभ्यधावत् पानीयं पिपासुः पुरुषर्षभः॥ ३८

यक्ष उवाच ।

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥३९
एवमुक्तस्तदा भीमो यक्षेणामिततेजसा ।
अनुक्त्वैव तु तान् प्रश्नान् पीत्वैव निपपात ह ४०
ततः कुन्तीसुतो राजा प्रचिन्त्य पुरुषर्षभः ।
समुत्थाय महाबाहुर्दह्यमानेन चेतसा ॥ ४१
व्यपेतजननिर्घोषं प्रविवेश महावनम् ।
रुरुभिश्च वराहैश्च पक्षिभिश्च निषेवितम् ॥ ४२
नीलभास्वरवर्णैश्च पादपैरुपशोभितम् ।
भ्रमरैरुपगीतं च पक्षिभिश्च महायशाः ॥ ४३
स गच्छन् कानने तस्मिन् हेमजालपरिष्कृतम् ।
ददर्श तत्सरः श्रीमान्विश्वकर्मकृतं यथा ॥ ४४
उपेतं नलिनीजालैः सिन्धुवारैः सवेतसैः ।
केतकैः करवीरैश्च पिप्पलैश्चैव संवृतम् ।
श्रमार्तस्तदुपागम्य सरो दृष्ट्वाऽथ विस्मितः ॥४५

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आरणेयपर्वणि नकुलादिपतने
द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥

दृश्यमानो भूत्वेति शेषः ॥ २८ ॥ विधानेन यत्नेन ॥ ३१ ॥ न भविष्यसि मरिष्यसि ॥ ३२ ॥ हेमजालानि सुवर्णानि केसराणि तैः परिष्कृतं मण्डितम् ॥ ४४ ॥ सिन्धुवारैर्जलजविशेषैः ॥ ४५ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥

* चिरगतौ-क. † शब्दावेधं-क.

# ३१३

वैशम्पायन उवाच ।

स ददर्श हतान् भ्रातॄन् लोकपालानिव च्युतान् ।
युगान्ते समनुप्राप्ते शक्रप्रतिमगौरवान् ॥ १

विनिकीर्णधनुर्बाणं दृष्ट्वा निहतमर्जुनम् ।
भीमसेनं यमौ चैव निर्विचेष्टान् गतायुषः ॥ २

स दीर्घमुष्णं निःश्वस्य शोकबाष्पपरिप्लुतः ।
तान् दृष्ट्वा पतितान् भ्रातॄन् सर्वांश्चिन्तासमन्वितः
धर्मपुत्रो महाबाहुर्विललाप सुविस्तरम् ।
ननु त्वया महाबाहो प्रतिज्ञातं वृकोदर ॥ ४

सुयोधनस्य भेत्स्यामि गदया सक्थिनी रणे ।
व्यर्थं तदद्य मे सर्वं त्वयि वीरे निपातिते ॥ ५

महात्मनि महाबाहो कुरूणां कीर्तिवर्धने ।
मनुष्यसम्भवा वाचो विधर्मिण्यः प्रतिश्रुताः ६

भवतां दिव्यवाचस्तु ता भवन्तु कथं मृषा ।
देवाश्चापि यदाऽवोचन् सूतके त्वां धनञ्जय ॥ ७

सहस्राक्षादनवरः कुन्तिपुत्रस्तवेति वै ।
उत्तरे पारियात्रे च जगुर्भूतानि सर्वशः ॥ ८

विप्रनष्टां श्रियं चैषामाहर्ता पुनरञ्जसा ।
नास्य जेता रणे कश्चिदजेता नैष कस्यचित् ॥ ९

सोऽयं मृत्युवशं यातः कथं जिष्णुर्महाबलः ।
अयं ममाशां संहत्य शेते भूमौ धनञ्जयः ॥ १०

आश्रित्य यं वयं नाथं दुःखान्येतानि सेहिम ।
रणे प्रमत्तौ वीरौ च सदा शत्रुनिबर्हणौ ॥ ११

कथं रिपुवशं यातौ कुन्तीपुत्रौ महाबलौ ।
यौ सर्वास्त्राप्रतिहतौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥ १२

अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम दुर्हृदः ।
यमौ यदेतौ दृष्ट्वाऽद्य पतितौ नावदीर्यते ॥ १३

शास्त्रज्ञा देशकालज्ञास्तपोयुक्ताः क्रियान्विताः ।
अकृत्वा सदृशं कर्म किं शेध्वं पुरुषर्षभाः ॥ १४

अविक्षतशरीराश्चाप्यप्रमृष्टशरासनाः ।
असंज्ञा भुवि सङ्गम्य किं शेध्वमपराजिताः ॥ १५

सानूनिवाद्रेः संसुप्तान् दृष्ट्वा भ्रातॄन् महामतिः ।
सुखं प्रसुप्तान् प्रस्विन्नः खिन्नः कष्टां दशां गतः ॥

एवमेवेदमित्युक्त्वा धर्मात्मा स नरेश्वरः ।
शोकसागरमध्यस्थो दध्यौ कारणमाकुलः ॥ १७

इतिकर्तव्यतां चेति देशकालविभागवित् ।
नाभिपेदे महाबाहुश्चिन्तयानो महामतिः ॥ १८

अथ संस्तभ्य धर्मात्मा तदाऽऽत्मानं तपः सुतः ।
एवं विलप्य बहुधा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १९

बुद्ध्या विचिन्तयामास वीराः केन निपातिताः ॥
नैषां शस्त्रप्रहारोऽस्ति पदं नेहास्ति कस्यचित् ।
भूतं महदिदं मन्ये भ्रातरो येन मे हताः ॥ २१

एकाग्रं चिन्तयिष्यामि पीत्वा वेत्स्यामि वा जलम्
स्यात्तु दुर्योधनेनेदमुपांशु विहितं कृतम् ॥ २२

गान्धारराजरचितं सततं जिह्मबुद्धिना ।
यस्य कार्यमकार्यं वा सममेव भवत्युत ॥ २३

कस्तस्य विश्वसेद्वीरो दुष्कृतेरकृतात्मनः ।
अथवा पुरुषैर्गूढैः प्रयोगोऽयं दुरात्मनः ॥ २४

भवेदिति महाबुद्धिर्बहुधा तदचिन्तयत् ।
तस्यासीन्न विषेणेदमुदकं दूषितं यथा ॥ २५

मृतानामपि चैतेषां विकृतं नैव जायते ।
मुखवर्णाः प्रसन्ना मे भ्रातॄणामित्यचिन्तयत् २६

एकैकशश्चौघबलानिमान् पुरुषसत्तमान् ।
कोऽन्यः प्रतिसमासेत कालान्तकयमादृते ॥ २७

एतेन व्यवसायेन तत् तोयं व्यवगाढवान् ।
गाहमानश्च तत्तोयमन्तरिक्षात् स शुश्रुवे ॥ २८

यक्ष उवाच ।

अहं बकः शैवलमत्स्यभक्षो
नीता मया प्रेतवशं तवानुजाः ।
त्वं पञ्चमो भविता राजपुत्र
न चेत् प्रश्नान् पृच्छतो व्याकरोषि ॥ २९

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥ ३०

युधिष्ठिर उवाच ।

रुद्राणां वा वसूनां वा मरुतां वा प्रधानभाक् ।
पृच्छामि को भवान् देवो नैतच्छकुनिना कृतम् ॥

३१३

स ददर्शेति ॥ १ ॥ विधर्मिण्यः अनृताः ॥ ६ ॥ न कस्यचिदजेताऽपि तु सर्वस्यैव जेता ॥ ९ ॥ आशां राज्याशां संहत्य विनाश्य ॥ १० ॥ दध्यौ कारणं मरणहेतुं विचारितवान् ॥ १७ ॥ तप सुतो धर्मपुत्रः ॥ १९ ॥ उपांशु विहितं अस्माभिरज्ञातं सद्विहितम् ॥ २२ ॥ दुष्कृतेः पापकर्मण ॥ २४ ॥ ओघबलान् महाप्रवाहवेगान् प्रतिसमासेत प्रतियुध्येत् कालोऽन्तं करोति यस्तादृशो यमः कालान्तकयमस्तस्मात् ॥ २७ ॥ प्रधानभाक् प्राधान्यभाक् ॥ ३१ ॥

हिमवान् पारियात्रश्च विन्ध्यो मलय एव च ।
चत्वारः पर्वताः केन पातिता भूरितेजसः ॥ ३२
अतीव ते महत्कर्म कृतं च बलिनां वर ।
यान् न देवा न गन्धर्वा नासुराश्च न राक्षसाः ३३
विषहेरन् महायुद्धे कृतं ते तन्महाद्भुतम् ।
न ते जानामि यत् कार्यं नाभिजानामि काङ्क्षितम् ,
कौतूहलं महज्जातं साध्वसं चागतं मम ।
येनास्म्युद्विग्नहृदयः समुत्पन्नशिरोज्वरः ॥ ३५
पृच्छामि भगवंस्तस्मात् को भवानिह तिष्ठति ।

यक्ष उवाच ।

यक्षोऽहमस्मि भद्रं ते नास्मि पक्षी जलेचरः ॥ ३६
मयैते निहताः सर्वे भ्रातरस्ते महौजसः ।

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तामशिवां श्रुत्वा वाचं स परुषाक्षराम् ॥ ३७
यक्षस्य ब्रुवतो राजन्नुपक्रम्य तदा स्थितः ।
विरूपाक्षं महाकायं यक्षं तालसमुच्छ्रयम् ॥ ३८
ज्वलनार्कप्रतीकाशमधृष्यं पर्वतोपमम् ।
वृक्षमाश्रित्य तिष्ठन्तं ददर्श भरतर्षभः ॥ ३९
मेघगम्भीरनादेन तर्जयन्तं महास्वनम् ।

यक्ष उवाच ।

इमे ते भ्रातरो राजन् वार्यमाणा मयाऽसकृत् ४०
बलात्तोयं जिहीर्षन्तस्ततो वै सूदिता मया ।
न पेयमुदकं राजन् प्राणानिह परीप्सता ॥ ४१
पार्थ मा साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः ।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिब हरस्व च ॥ ४२

युधिष्ठिर उवाच ।

न चाहं कामये यक्ष तव पूर्वपरिग्रहम् ।
कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तो हि पुरुषाः सदा ४३
यदात्मना स्वमात्मानं प्रशंसेत् पुरुषर्षभ ।
यथाप्रज्ञं तु ते प्रश्नान् प्रतिवक्ष्यामि पृच्छ माम् ४४

यक्ष उवाचः—

किं स्विदादित्यमुन्नयति
के च तस्याभितश्चराः ।
कश्चैनमस्तं नयति
कस्मिंश्च प्रतितिष्ठति ॥ ४५

युधिष्ठिर उवाचः—

ब्रह्मादित्यमुन्नयति
देवास्तस्याभितश्चराः ।
धर्मश्चास्तं नयति च
सत्ये च प्रतितिष्ठति ॥ ४६

यक्ष उवाचः—

केनस्विच्छ्रोत्रियो भवति
केनस्विद्विन्दते महत्
केनस्विद्द्वितीयवान् भवति
राजन् केन च बुद्धिमान् ॥ ४७

युधिष्ठिर उवाचः—

श्रुतेन श्रोत्रियो भवति
तपसा विन्दते महत् ।
धृत्या द्वितीयवान् भवति
बुद्धिमान् वृद्धसेवया ॥ ४८

ते तव ॥ ३३ ॥ ते त्वया ॥ ३४ ॥ यत् यतः आत्मनैवात्मस्वरूपं वक्तव्यमतस्ते प्रश्नान् प्रतिवक्ष्यामि ॥ ४४ ॥ किंस्विदादित्यमुन्नयतीत्यादिप्रश्नोत्तरमालिका आत्मनस्तत्त्वं निर्णेतुमारब्धा तरति शोकमात्मवित्' इति तज्ज्ञानस्य फलवत्त्वश्रवणात्तत्सिद्धये च उच्चावचं साधनजातमस्या निरूप्यते तां व्याख्यास्यामः ॥ ४५ ॥ आदित्यं आदत्ते शब्दादीन् श्रोत्रादिभिरित्यादित्यो जीवस्तं गौरोऽहमन्धोऽहमदुःखयं वर्ताहमित्याद्यनुभवाद्देहाद्यात्मतया भासमानं वादिभिश्चानेकधा विकल्प्यमानं ब्रह्म वेद उन्नयति देहादिभ्यः पृथक्करोति श्रुतिरेवात्मतत्त्वनिर्णये मानमित्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इति । ननु सर्वेऽपि वेदादात्मानं जानन्ति नेत्याह । देवा इति । देवाः शमादयस्तस्याभितश्चराः सहायाः । अस्तं स्वस्थानं अपहतपाप्मादिगुणाष्टकविशिष्टं तत्कारणभूतं हार्दाकाशं प्रति एनं धर्मः साक्षात् परं परया वा कर्मोपासनारूपो नयति प्रापयति। स एवमुक्तविधं स्वरूपं सगुणब्रह्मभावं प्राप्य तद्बाधेन सत्ये सर्वबाधावधिभूते शुद्धचिन्मात्रे प्रतिष्ठितो भवति। तथा च श्रुतिः 'स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्वमुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्' इति । प्रथमं शास्त्रजं ज्ञानं ततः शमादिसम्पन्नस्य योगबलाद्देहाद्यध्यासनिवृत्तिस्ततः स्वर्गाख्यसगुणब्रह्मदर्शनं ततः केवलीभाव इति श्रुतेरर्थः ॥ ४६ ॥ वेदस्य सत्ये प्रतिष्ठाहेतुत्वमुक्तं तत्र दृष्टं द्वारमाह श्रुतेनेति । श्रोत्रियो वेदाध्यायी । श्रुतेन आचार्यमुखाद्वेदार्थावधारणेन भवति न त्वक्षरग्रहणमात्रेण ततश्च तपसा युक्त्या च श्रुतस्यार्थस्यालोचनेन महत् ब्रह्म विन्दते जानीते । मानमेयगताऽसम्भावनानिवृत्त्या निश्चिनोति धृत्या 'धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः । योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी' इत्युक्तलक्षणया निदिध्यासनेनेत्यर्थः । द्वितीयमनीशत्वादिविशिष्टदशियाप्रत्युपस्थापिताज्जैवाद्रूपात्तद्विपरीतं विद्याप्राप्यं प्रतीचो यत् द्वितीयं रूपं तद्वान् भवति । 'एतत्र-

यक्ष उवाचः—

किं ब्राह्मणानां देवत्वं
कश्च धर्मः सतामिव ।
कश्चैषां मानुषो भावः
किमेषामसतामिव ॥ ४९

युधिष्ठिर उवाचः—

स्वाध्याय एषां देवत्वं
तप एषां सतामिव
मरणं मानुषो भावः
परिवादोऽसतामिव ॥ ५०

यक्ष उवाचः—

किं क्षत्रियाणां देवत्वं
कश्च धर्मः सतामिव
कश्चैषां मानुषो भावः
किमेषामसतामिव ॥ ५१

युधिष्ठिर उवाचः—

इष्वस्त्रमेषां देवत्वं
यज्ञ एषां सतामिव ।
भयं वै मानुषो भावः
परित्यागोऽसतामिव॥ ५२

यक्ष उवाचः—

किमेकं यज्ञियं साम
किमेकं यज्ञियं यजुः ।
का चैषां वृणुते यज्ञं
कां यज्ञो नातिवर्तते ॥ ५३

युधिष्ठिर उवाचः—

प्राणो वै यज्ञियं साम
मनो वै यज्ञियं यजुः ।
ऋगेका वृणुते यज्ञं
तां यज्ञो नातिवर्तते ॥ ५४

यक्ष उवाचः—

किंस्विदावपतां श्रेष्ठं
किंस्विन्निवपतां वरम् ।
किंस्वित् प्रतिष्ठमानानां
किंस्वित् प्रसवतां वरम् ॥ ५५

युधिष्ठिर उवाचः—

वर्षमावपतां श्रेष्ठं
बीजं निवपतां वरम् ।
गावः प्रतिष्ठमानानां
पुत्रः प्रसवतां वरः ॥ ५६

यक्ष उवाचः—

इन्द्रियार्थाननुभवन्
बुद्धिमान् लोकपूजितः ।
संमतः सर्वभूताना-
मुच्छ्वसन् को न जीवति ॥ ५७

युधिष्ठिर उवाचः—

देवतातिथिभृत्यानां
पितॄणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पञ्चाना-
मुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ ५८

थनिश्चयात्मिका बुद्धिर्गुरूपदेशादेव प्राप्येत्याह बुद्धिमानिति। तथा च श्रुतिः 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । आचार्यवान् पुरुषो वेद इत्यादिरात्मदर्शनसाधनत्वेन श्रवणादित्रयमाचार्यवत्त्वं चेति दर्शयति ॥ ४८ ॥ श्रवणाद्यधिकारे हेतुमाह त्रिभिरुत्तरैः। स्वाध्यायो वेदाध्ययनं विप्राणां देवत्वं स्वर्गलोकप्रापकं तपः शमादिकं सदाचार इत्युपादेयद्वयं मानुषो भावो देहाद्यभिमानः । मरणं जन्ममरणप्रापकः परिवादो देवब्राह्मणादिदूषणं असदाचार इति हेयद्वयम् ॥ ५० ॥ परित्यागः आर्तानामिति शेषः ॥५२॥ इतोऽप्यन्तरङ्गं हेतुमाह प्राणमनसि निरुध्यमाने यज्ञे सामयजुषी इव ज्ञानयज्ञोपकारके ऋक् एका मुख्या यज्ञं ज्ञानं वृणुते स्वीकरोति । ज्ञानोत्पादिकेत्यर्थः। तथा च श्रुतिः 'मनो वाचं प्राणं तान्यात्मने कुरुते' इति आत्महितार्थमेतत् त्रयं प्रजापतिना सृष्टमित्याह तथा तं त्वौपनिषदं पुरुषमित्यौपनिषदत्वविशेषणं वाचो मुख्यत्वमाह ॥५४॥ शमादीनां प्राणजयादीनां चासम्भवे यज्ञाद्येव कर्तव्यमित्याह आवपतां आसमन्तात् देवांस्तर्पयतां वर्षं वृष्टिः श्रेष्ठं फलं सर्वलोकोपकारकत्वात्। यथोक्तम् 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिः' इति । निवपतां निवापः पितृतर्पणं तत्कुर्वतां बीजं क्षेत्रारामाद्यात्मोपकारकं फलम् । 'आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीतास्तुभ्यं पितामहाः' इति स्मृत्युक्तं प्रतिष्ठमानानामिहैव प्रतिष्ठालिप्सूनां गावः श्रेष्ठं प्रसवतां सन्ततिमिच्छूनां पुत्रः श्रेष्ठं फलं दौहित्रादिभ्यः गवां पुत्रस्य च दृष्टार्थत्वेऽपि अतिथिप्रीणनद्वारा श्राद्धप्रदानादिद्वारा उपकारकत्वेन परंपरया श्रवणाद्यधिकारहेतुत्वं ज्ञेयम् ॥ ५६ ॥ इतोऽपि साधनाद्भ्रष्टो यस्तं निंदति । इन्द्रियार्थानिति । इंद्रियार्थान् शब्दादीन् लोके धनादिमत्त्वेन पूजितः सन्मतो दानाधिकारित्वेन ॥ ५७ ॥ न निर्वपति न प्रयच्छति देवतादिभ्यः ॥ ५८ ॥

यक्ष उवाचः—

किंस्विद्गुरुतरं भूमेः
किंस्विदुच्चतरं च खात्।
किं स्विच्छीघ्रतरं वायोः
किंस्विद्बहुतरं तृणात् ॥ ५९

युधिष्ठिर उवाचः—

माता गुरुतरा भूमेः
खात् पितोच्चतरस्तथा।
मनः शीघ्रतरं वाता-
च्चिन्ता बहुतरी तृणात् ॥ ६०

यक्ष उवाचः—

किंस्वित् सुप्तं न निमिषति
किंस्विज्जातं न चोपति।
कस्यस्विद्धृदयं नास्ति
किंस्विद्वेगेन वर्धते ॥ ६१

युधिष्ठिर उवाचः—

मत्स्यः सुप्तो न निमिष-
त्यण्डं जातं न चोपति।
अश्मनो हृदयं नास्ति
नदी वेगेन वर्धते ॥ ६२

यक्ष उवाचः—

किंस्वित् प्रवसतो मित्रं
किंस्विन्मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य च किं मित्रं
किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः॥ ६३

युधिष्ठिर उवाचः—

सार्थः प्रवसतो मित्रं
भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं
दानं मित्रं मरिष्यतः ॥ ६४

यक्ष उवाचः—

कोऽतिथिः सर्वभूतानां
किंस्विद्धर्मं सनातनम्।
अमृतं किंस्विद्राजेन्द्र
किंस्वित् सर्वमिदं जगत् ॥ ६५

युधिष्ठिर उवाचः—

अतिथिः सर्वभूताना-
मग्निः सोमो गवामृतम्।
सनातनोऽमृतो धर्मो
वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ ६६

यक्ष उवाचः—

किंस्विदेको विचरते
जातः को जायते पुनः।
किंस्विद्धिमस्य भैषज्यं
किंस्विदावपनं महत् ॥ ६७

युधिष्ठिर उवाचः—

सूर्य एको विचरते
चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भैषज्यं
भूमिरावपनं महत् ॥ ६८

उक्तसाधनाशक्तेन मातापित्रोः शुश्रूषा मनोनिरोधस्तृष्णाच्छायाश्चिन्तायास्त्यागश्च कर्तव्य इत्याह किंस्विद्गुर्विति ॥ ५९ ॥ ननु मनोनाशे शून्यमेवावशिष्यत इत्याशङ्क्य नेत्याह मत्स्य इति। मत्स्य इव मत्स्यो जीवः जाग्रत्स्वप्नयोरिहलोकपरलोकयोर्वा तीरयोरिव सञ्चारेण सुप्तः स्वनीडभूतं सम्पूर्णं ब्रह्म प्राप्तो न निमिषति मनोवत्सुप्तदार्ष्टीन भवति। न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् इति श्रुतेः। ननु मत्स्योऽविनाशित्वादजातश्चेत्कस्तर्हि जात इत्यत आह अण्डं पिण्डब्रह्माण्डरूपं जातमुत्पन्नं सत् न चोपति चलति। चुप मन्दायां गतौ। पुरुषप्रवर्तितमेवाहङ्कारादिजडजातं चलते इत्यर्थः। 'को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इति श्रुतेः। कस्तर्हि जाताजातयोरेतयोः संयोगस्य दुःखदस्य निवृत्त्युपायं इत्यत आह। अश्मनः, अशरीरस्य निवृत्तदेहत्रयाध्यासस्य योगिनो हृदयं शोकनीडं नास्ति। कथं तर्हि सुप्तेरपि व्युत्तिष्ठन्तीत्याह। नदी चित्तनदी वेगेन वर्धते। सुषुप्तावस्थापन्नस्य स्वप्नदर्शनवत्समाहितोत्थितस्यायं प्रपञ्चो दृष्टिसमसमयमात्रजात इत्यर्थः ॥ ६२ ॥ मनोरोधाशक्तस्य दानमेव श्रेय इत्याह सार्थो यथा प्रवसतो मित्रमेवं मरिष्यतो मर्त्यस्य दानं मित्रमित्यर्थः ॥ ६४ ॥ दानस्य चित्तशुद्धिद्वारा यज्ञादौ यज्ञादेश्च चित्तैकाग्र्यद्वारा समष्ट्युपास्तौ प्रवृत्तिहेतुत्वमाह अतिथिरिति। अग्निराहवनीयादिरूपः। गवामृतं क्षीरं तदेव सोमाख्यं हविस्तम्भं सोऽयं सनातनो नित्यो धर्मः। अमृतो मोक्षहेतुः तत्र द्वारमाह वायुः सर्वमिदं जगत् 'वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिः' इति श्रुतेः। पिण्डब्रह्माण्डात्मकवायुरूपत्वप्राप्तिर्मोक्षद्वारमित्यर्थः ॥ ६६ ॥ उक्तलक्षणस्य वायोरपि संहारे किमवशिष्यत इत्याह सूर्य एको विचरते सूर्यवत्स्वप्रकाशरूप आत्मैवास्ति। अवस्थात्रये तदभावे च प्रकाश्यसत्त्वासत्त्वयोः सूर्य इव। कुतस्तर्हि प्रपञ्चभानमत आह चन्द्रमा जायते पुनः 'चन्द्रमा मनोभूत्वा' इति श्रुतेर्मन एवाविद्यावशादुत्पद्यते तच्च दुःखप्रदं जगत्क-

यक्ष उवाच—
किंस्विदेकपदं धर्म्यं
किंस्विदेकपदं यशः ।
किंस्विदेकपदं स्वर्ग्यं
किंस्विदेकपदं सुखम् ॥ ६९

युधिष्ठिर उवाचः—
दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं
दानमेकपदं यशः ।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं
शीलमेकपदं सुखम् ॥ ७०

यक्ष उवाचः—
किंस्विदात्मा मनुष्यस्य
किंस्विद्दैवकृतः सखा ।
उपजीवनं किंस्विदस्य
किंस्विदस्य परायणम् ॥

युधिष्ठिर उवाचः—
पुत्र आत्मा मनुष्यस्य
भार्या दैवकृतः सखा ।
उपजीवनं च पर्जन्यो
दानमस्य परायणम् ॥ ७२

यक्ष उवाचः—
धन्यानामुत्तमं किंस्विद्
धनानां स्यात् किमुत्तमम् ।
लाभानामुत्तमं किं स्यात्
सुखानां स्यात्किमुत्तमम् ॥ ७३

युधिष्ठिर उवाचः—
धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं
धनानामुत्तमं श्रुतम् ।
लाभानां श्रेय आरोग्यं
सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥ ७४

यक्ष उवाचः—
कश्च धर्मः परो लोके
कश्च धर्मः सदाफलः ।
किं नियम्य न शोचन्ति
कैश्च सन्धिर्न जीर्यते ॥ ७५

युधिष्ठिर उवाचः—
आनृशंस्यं परो धर्म-
स्त्रयी धर्मः सदाफलः ।
मनो यम्य न शोचन्ति
सन्धिः सद्भिर्न जीर्यते ॥ ७६

यक्ष उवाचः—
किं नु हित्वा प्रियो भवति
किं नु हित्वा न शोचति ।
किं नु हित्वाऽर्थवान् भवति
किं नु हित्वा सुखी भवेत् ॥ ७७

युधिष्ठिर उवाचः—
मानं हित्वा प्रियो भवति
क्रोधं हित्वा न शोचति ।
कामं हित्वाऽर्थवान् भवति
लोभं हित्वा सुखी भवेत् ॥ ७८

त्यजति । अविद्यानिवृत्त्युपायमाह अग्निर्हिमस्य भैषज्यं 'अग्निर्वाग्भूत्वा' इति श्रुतेर्वागेव तत्त्वमस्यादिका हिमस्य सूर्याभिभावकस्याविद्याजाड्यस्य औषधं निवारकं भूमिः शरीरं तदेव महदावपनं विद्याअविद्यायाश्च निधानपात्रं इहैव संसारित्ववदसंसारित्वब्रह्मभावोऽपि साक्षात्क्रियत इत्यर्थः ॥ ६८ ॥ अत्र द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यां ब्रह्मविद्यासूत्रं ससाधनमुपक्षिप्तं ततः सप्तभिस्त्वंपदार्थशोधस्ततस्त्रिभिस्तत्पदार्थशोधः ससाधनः कृतः । इदानीं पुनः प्रकारान्तरेण साधनान्येव विदधत्तत्त्वंपदार्थयोरभेदं तत्त्वमस्यहंब्रह्मास्मीत्यादिमहावाक्यप्रतिपाद्यं दर्शयति नवभिः । किंस्विदेकपदमित्यादिना ॥ ६९ ॥ एकपदमेकमेव पर्यवसानस्थानं दाक्ष्ये कृत्स्नो धर्मः पर्यवसित इत्यर्थः । एवमुत्तरत्र ॥ ७० ॥ उद्योगो दानं सत्यं शीलं च सेव्यं तत्रापि दानमेव पुत्रवदात्मा भार्यावत्सखा पर्जन्यवदुपजीवनं च अन्नप्रदत्वात् रमणीयफलत्वात् नादत्तमुपति-

ष्ठतीति वचनेनोपजीवनहेतुत्वाच्चेत्याह किंस्विदात्मेति॥७१॥ धन्यं धनाय हितं धनमपि श्रुतमेव न स्वर्णादीत्याह उत्तमं श्रुतमिति लाभ आरोग्यं धर्मसाधनत्वात् । तुष्टिः सन्तोषः उद्योगोऽध्ययनमारोग्यं सन्तोषश्च दृष्टद्वारेण ज्ञाने उपकुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥ आनृशंस्यं सर्वभूताभयदानं संन्यास इत्यर्थः। त्रयी मोक्षमन्त्रस्त्रयीति श्रुतेस्त्रयीशब्देनात्र त्रिमात्रप्रणव उच्यते तदाश्रितो धर्मः अकारउकारमकाराणां स्थूलसूक्ष्मकारणोपाधीनां क्रमेण पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरत्र प्रविलापनेन अर्धमात्रार्थे तुरीये ब्रह्मण्यवस्थानं सदाफलः अविनाशिफलः। मोक्षहेतुत्वात् । तस्य धर्मस्य प्राप्तावुपायो मनोनिग्रह एव । तावतैव ज्ञातात्मतत्त्वो भूत्वा शोकं तरति । मनोनिग्रहमार्गश्च सद्भिः कृपालुभिरेव प्रदर्शनीय इति तात्पर्यार्थः ॥ ७६ ॥ मनोनिग्रहे दृष्टं द्वारं मानादिचतुष्टयत्याग इत्याह किं नु इति ॥ ७७ ॥

यक्ष उवाचः—

किमर्थं ब्राह्मणे दानं
किमर्थं नटनर्तके ।
किमर्थं चैव भृत्येषु
किमर्थं चैव राजसु ॥ ७९

युधिष्ठिर उवाचः—

धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं
यशोर्थं नटनर्तके ।
भृत्येषु भरणार्थं वै
भयार्थं चैव राजसु ॥ ८०

यक्ष उवाचः—

केन स्विदावृतो लोकः
केन स्विन्न प्रकाशते ।
केन त्यजति मित्राणि
केन स्वर्गं न गच्छति ॥ ८१

युधिष्ठिर उवाचः—

अज्ञानेनावृतो लोक-
स्तमसा न प्रकाशते ।
लोभात्यजति मित्राणि
सङ्गात् स्वर्गं न गच्छति ॥ ८२

यक्ष उवाचः—

मृतः कथं स्यात् पुरुषः
कथं राष्ट्रं मृतं भवेत् ।
श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात्
कथं यज्ञो मृतो भवेत् ॥ ८३

युधिष्ठिर उवाचः—

मृतो दरिद्रः पुरुषो
मृतं राष्ट्रमराजकम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं
मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ॥ ८४

यक्ष उवाचः—

का दिक्किमुदकं प्रोक्तं
किमन्नं किन्न वै विषम् ।
श्राद्धस्य कालमाख्याहि
ततः पिब हरस्व च ॥ ८५

युधिष्ठिर उवाच—

सन्तो दिग्जलमाकाशं
गौरन्नं प्रार्थना विषम् ।
श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः
कथं वा यक्ष मन्यसे ॥ ८६

मानादित्यागोऽपि धर्मफलमतोऽत्रापि ब्राह्मणे दत्तं यद्दानं तदेव धर्महेतुत्वादुपकरोति नान्यत्र । दत्तमित्याह किमर्थमिति ॥ ७९ ॥ ननु दानबलान्माना दीन् जित्वा मनो निगृह्णत एवात्यन्तिको दुःखनाशो भविष्यति किम्प्रविलापनरूपेण त्रयीधर्मेणेत्याशङ्क्याह अज्ञानेनेति । अज्ञानकार्येण स्थूलसूक्ष्मशरीरद्वयेन जरामरणशोकमोहाद्याश्रयेण लोक्यत इति लोक आत्मा । आवृतस्तिरोहितः कल्पितभुजङ्गेनेव रज्जु । अतोऽज्ञाननाशार्थं त्रयीधर्मोऽवश्यमेष्टव्यः । ननु सुषुप्तौ देहद्वयस्याभावादज्ञाननाशोऽस्त्येव किं त्रयीधर्मेणेत्यत आह तमसा मूलाज्ञानेन सुषुप्तावप्यावृतोऽतो न प्रकाशते । तस्माद्देहत्रयमपि प्रविलापनीयमेवेत्यर्थः । ज्ञानाज्ञानयोरेव विरोधादज्ञानकृत संसारो न मनोरोधमात्रेण नश्यति किं तु सर्वबाधेन रज्जुमधिगम्यैव यथा समूलस्य भयस्य नाशस्तथा देहत्रयबाधेन स्वरूपाधिगमेनैव समूलस्य संसारस्य नाश इति भावः । अतो लोभसङ्गौ त्यक्त्वा ज्ञानमेव साधनीयमित्याह लोभादिति ॥ ८२ ॥ लोभसङ्गयोरत्यागे दोषमाह मृत इति । दरिद्रो लुब्धाचरः सदानाद्यसमर्थत्वेन मृत एव । तत्र दृष्टा तत्सुतरं ष्ट्रामेव राष्ट्रं प्राणभूमिपतेः सङ्कारस्थानं शरीरं त्वराजकं नष्टप्राण यथा तथा दरिद्रो जीवन्मृत इत्यर्थः । अग्रिमं दृष्टान्तद्वयं श्रुतिप्रसिद्धमेव ॥ ८४ ॥ एवं लोभादित्यागेन दानाद्यनुष्ठानेन शमादिसम्पत्त्या च युक्तस्य श्रवणादिमतो यज्ज्ञातव्यं ब्रह्मात्मैक्यं तदाह का दिगिति । सन्तो वेदप्रमाणनिष्ठाः । दिक् दिशति उपदिशतीति दिक् उपदेष्टार इत्यर्थः । आचार्यवचनात् ब्रह्म ज्ञातव्यमिति भावः । तथा जलं 'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' इति श्रुतेर्जलं पिण्डब्रह्माण्डात्मकं कार्यं तदभिमानी चेतनश्च तेन व्यष्टिसमष्टिजीवो लक्ष्यते । आकाशः 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशंऽस्तं यान्ति' इति श्रुतेराकाशो व्याकृतं कारणं तदभिमानी ईश्वरस्तेनोच्यते । अनयोर्जलमाकाशमिति सामानाधिकरण्यादभेदउपाध्यंशप्रहाणेन उभयत्र शुद्धचिन्मात्रलक्षणया 'सोऽयं देवदत्त' इत्यत्रेव तदेतद्देशकालरूपविशेषणप्रहाणेन देवदत्तस्वरूपमात्रलक्षणया एतावानेव सर्वेषु वेदान्तेषु ज्ञातव्योऽर्थः । ननु व्यावर्तके उपाधिभेदे जाग्रति सति कथमनयोरभेदः स्यादत आह । गौरन्नमिति । गच्छतीति गौः इन्द्रियं तद्ग्राह्य शब्दाद्यर्थजातं वा तत् अन्नं अदनीयं प्रविलापनीयं सैन्धवोदकन्यायेन । यथा सैन्धवखिल्य उदके क्षिप्त उदकमेवानुविलीयते । अत्र होते सर्वे एकं भवन्ती-

यक्ष उवाच:—

तपः किंलक्षणं प्रोक्तं
को दमश्च प्रकीर्तितः ।
क्षमा च का परा प्रोक्ता
का च ह्रीः परिकीर्तिता ॥ ८७

युधिष्ठिर उवाचः—

तपः स्वधर्मवर्तित्वं
मनसो दमनं दमः ।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं
ह्रीरकार्यनिवर्तनम् ॥ ८८

यक्ष उवाचः—

किं ज्ञानं प्रोच्यते राजन्
कः शमश्च प्रकीर्तितः ।
दया च का परा प्रोक्ता
किञ्चार्जवमुदाहृतम् ॥ ८९

युधिष्ठिर उवाचः—

ज्ञानं तत्त्वार्थसम्बोधः
शमश्चित्तप्रशान्तता ।
दया सर्वसुखैषित्व-
मार्जवं समचित्तता ॥ ९०

यक्ष उवाचः—

कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां
कश्च व्याधिरनन्तकः ।
कीदृशश्च स्मृतः साधु-
रसाधुः कीदृशः स्मृतः ॥ ९१

युधिष्ठिर उवाचः—

क्रोधः सुदुर्जयः शत्रु-
र्लोभो व्याधिरनन्तकः ।
सर्वभूतहितः साधु-
रसाधुर्निर्दयः स्मृतः ॥ ९२

यक्ष उवाचः—

को मोहः प्रोच्यते राजन्
कश्च मानः प्रकीर्तितः
किमालस्यं च विज्ञेयं
कश्च शोकः प्रकीर्तितः ॥ ९३

युधिष्ठिर उवाचः—

मोहो हि धर्ममूढत्वं
मानस्त्वात्माभिमानिता ।
धर्मनिष्क्रियताऽऽलस्यं
शोकस्त्वज्ञानमुच्यते ॥ ९४

यक्ष उवाचः—

किं स्थैर्यमृषिभिः प्रोक्तं
किं च धैर्यमुदाहृतम् ।
स्नानं च किं परं प्रोक्तं
दानं च किमिहोच्यते ॥ ९५

युधिष्ठिर उवाचः—

स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं
धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो
दानं वै भूतरक्षणम् ॥ ९६

यक्ष उवाचः—

कः पण्डितः पुमान् ज्ञेयो
नास्तिकः कश्च उच्यते ।
को मूर्खः कश्च कामः स्यात्
को मत्सर इति स्मृतः ॥ ९७

युधिष्ठिर उवाचः—

धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो
नास्तिको मूर्ख उच्यते ।
कामः संसारहेतुश्च
हृत्तापो मत्सरः स्मृतः ॥ ९८

त्वादिति श्रुतिभ्यः । उपाध्योर्मिथ्यात्वादेव रज्जुरगवत्प्रविलयः सुखसाध्य इत्यर्थः । प्रार्थनाकामः स एव विषमिव विषं जन्ममरणहेतुत्वात् । अतः कामं त्यक्त्वा गुरूपदेशेन प्रपञ्चं प्रविलाप्य प्रत्यक् ब्रह्मणोरभेदं साक्षात् कुर्यादित्यर्थः । ब्राह्मणो ब्रह्मवित् श्राद्धस्य श्रद्धया प्रदेयस्य कालः समयः सदैव सम्पाद्य नास्त्येव धर्मज्ञानादिकमनुष्ठेयं शिक्षणीयं च। समाप्ता ससाधना ब्रह्मविद्या । तथाऽप्यन्यान्यपि ज्ञानसाधनानि तल्लक्षणानि च प्रष्टुमिच्छ[illegible] पूर्णं वरं भ्रातृजीवनादिसुखं न ददात्यतो धर्मराजः परामृशति । कथं वा यक्ष मन्यसे इति । तव मते एतावता कृतकृत्यत्वमस्ति नास्ति वेति प्रश्नाभिप्रायः ॥ ८६ ॥ तत्र आद्यष्टकस्य ज्ञानसाधनस्य लक्षणान्याह द्वाभ्यां तपः स्वधर्मेति ॥ ८८ ॥ क्रोधलोभनिर्दयत्वानि त्यक्त्वा सर्वभूतहितः स्यादित्यर्थः ॥९२॥ त्रिभिर्मोहादीनां लक्षणान्याह मोहो हीत्यादिना ॥ ९४ ॥ नास्तिको नास्ति परलोक इति वादी स एव मूर्खो न । ततोऽन्यः पृथङ्मूर्खः प्रष्टव्य इत्यर्थः । संसारहेतुर्वासना ॥ ९८ ॥

यक्ष उवाचः—

कोऽहङ्कार इति प्रोक्तः
कश्च दम्भः प्रकीर्तितः ।
किं तद्दैवं परं प्रोक्तं
किं तत्पैशुन्यमुच्यते ॥ ९९

युधिष्ठिर उवाचः—

महाज्ञानमहङ्कारो
दम्भो धर्मो ध्वजोच्छ्रयः ।
दैवं दानफलं प्रोक्तं
पैशुन्यं परदूषणम् ॥ १००

यक्ष उवाचः—

धर्मश्चार्थश्च कामश्च
परस्परविरोधिनः ।
एषां नित्यविरुद्धानां
कथमेकत्र सङ्गमः ॥ १०१

युधिष्ठिर उवाचः—

यदा धर्मश्च भार्या च
परस्परवशानुगौ ।
तदा धर्मार्थकामानां
त्रयाणामपि सङ्गमः ॥ २

यक्ष उवाचः—

अक्षयो नरकः केन
प्राप्यते भरतर्षभ ।
एतन्मे पृच्छतः प्रश्नं
तच्छीघ्रं वक्तुमर्हसि ॥ ३

युधिष्ठिर उवाचः—

ब्राह्मणं स्वयमाहूय
याचमानमकिंचनम् ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्
सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ४

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु
मिथ्या यो वै द्विजातिषु ।
देवेषु पितृधर्मेषु
सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ५

विद्यमाने धने लोभा-
द्दानभोगविवर्जितः ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्
सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ६

यक्ष उवाचः—

राजन् कुलेन वृत्तेन
स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण्यं केन भवति
प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम् ॥ ७

युधिष्ठिर उवाचः—

शृणु यक्ष कुलं तात
न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे तु
वृत्तमेव न संशयः ॥ ८

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं
ब्राह्मणेन विशेषतः ।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो
वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ ९

पठकाः पाठकाश्चैव
ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा
यः क्रियावान् स पण्डितः १०

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः
स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः
स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ११

यक्ष उवाचः—

प्रियवचनवादी किं लभते
विमृशितकार्यकरः किं लभते ।
बहुमित्रकरः किं लभते
धर्मे रतः किं लभते कथय ॥ १२

महच्च तदज्ञानं च अहङ्कारः धर्मः ध्वजोच्छ्रयो ध्वजवदुच्छ्रितो लोकेषु ख्यात्यर्थः । दम्भदर्पशून्यानि त्यक्त्वा दैवादीनो यदृच्छालाभसन्तुष्टो निर्दम्भः निष्कामं च धर्ममाचरेदित्यर्थः ॥ १०० ॥ नन्वर्थकामयोर्विरोधिनो सतस्तादृशो धर्मो दुरनुष्ठेय इत्याशङ्क्याह यदेति । धर्मोऽग्निहोत्रादि । परिग्रहा यद्भार्याविरोधी न भवति । यदा च भार्यादानादिप्रातवन्धकं विना धर्मे विरोधिनी न भवति ॥ तदा धर्मोऽर्थान् प्रसूते । भार्या च कामं पूरयति । तेन त्रिवर्गोऽयं सङ्गम प्राप्नोति । तथा च गृहिणामप्यस्ति धर्मद्वारेण मोक्षेऽधिकार इत्युक्तम् ॥ १०२ ॥ अक्षयो नरकः नित्यसंसारित्वम् ॥ ३ ॥ तद्धेतुभूतामसुरीं सम्पदमाह ब्राह्मणमित्यादिना ॥ ४ ॥ स्वाध्यायेन अक्षरावाप्त्या श्रुतेन तदर्थग्रहणेन । सार्थवेदाधिगमेनेत्यर्थः ॥ ७ ॥ कुलं न कारणं स्वाध्यायः श्रुतं च द्वयं मिलित्वैकैकं यदपि न ब्राह्मण्यकारणमिति योज्यम् ॥ ८ ॥ अतिरिच्यते निन्दितायामिति शेषः ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाचः—

प्रियवचनवादी प्रियो भवति
विमृशितकार्यकरोऽधिकं जयति ।
बहुमित्रकरः सुखं वसते
यश्च धर्मरतः स गतिं लभते ॥ १३

यक्ष उवाचः—

को मोदते किमाश्चर्यं
कः पन्थाः का च वार्तिका ।
वद मे चतुरः प्रश्नान्
मृता जीवन्तु बान्धवाः ॥ १४

युधिष्ठिर उवाचः—

पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा
शाकं पचति स्वे गृहे ।
अनृणी चाप्रवासी च
स वारिचर मोदते ॥ १५

अहन्यहनि भूतानि
गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति
किमाश्चर्यमतः परम् ॥ १६

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ १७

अस्मिन् महामोहमये कटाहे
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन
भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥ १८

यक्ष उवाच ।

व्याख्याता मे त्वया प्रश्ना याथातथ्यं परन्तप ।
पुरुषं त्विदानीं व्याख्याहि यश्च सर्वधनी नरः ॥ १९

युधिष्ठिर उवाच ।

दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्येन कर्मणा ।
यावत्स शब्दो भवति तावत् पुरुष उच्यते ॥ २०
तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च ।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः ॥ २१

यक्ष उवाच ।

व्याख्यातः पुरुषो राजन् यश्च सर्वधनी नरः ।
तस्मात् त्वमेकं भ्रातॄणां यमिच्छसि स जीवतु ॥ २२

युधिष्ठिर उवाच ।

श्यामो य एष रक्ताक्षो बृहच्छाल इवोत्थितः ।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु ॥ २३

यक्ष उवाच ।

प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो वः परायणम् ।
स कस्मान्नकुलं राजन् सापत्नं जीवमिच्छसि ॥ २४
यस्य नागसहस्रेण दशसङ्ख्येन वै बलम् ।
तुल्यं तं भीममुत्सृज्य नकुलं जीवमिच्छसि ॥ २५
तथैनं मनुजाः प्राहुर्भीमसेनं प्रियं तव ।
अथ केनानुभावेन सापत्नं जीवमिच्छसि ॥ २६
यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः समुपासते ।
अर्जुनं तमपाहाय नकुलं जीवमिच्छसि ॥ २७

---

कर्मोपास्तिज्ञानानन्तरं ज्ञानसाधनं वैराग्यमाह प्रश्नचतुष्टयोत्तरत्वेन हे वारिचर हे यक्ष ऋणं प्रवासं च अकुर्वन्यदृच्छालाभसन्तुष्टो भवेदित्यर्थः ॥१५॥ अहनीति । देहस्य विनाशित्वमनुसन्धाय प्राप्तानपि भोगांस्त्यक्त्वा शीघ्रं परमार्थाय यतितव्यमित्यर्थः ॥१६॥ तर्क इति । अप्रतिष्ठः निर्णयशून्यः श्रुतयोऽपि विभिन्नाः परस्परविरुद्धार्थवादिन्यः । मुनयोऽपि तद्व्याख्यातारस्तादृशा एव अतोऽनन्तासु धर्मशास्त्रादिविद्यासु श्रममकृत्वा बहुजनसम्मतमेव मार्गमनुसरेदित्यर्थः । ॥ १७ ॥ अस्मिन्निति भुज्यमाना अपि विषया न चिरस्थायिन इति सर्वतो वैराग्यमेवाश्रयेदिति भावः ॥ १८ ॥ कर्मज्ञानफले विवेक्तुं पृच्छति व्याख्याता इति याथातथ्यं यथार्थं यथा स्यात्तथा पुरुषं पुरि शरीरे वसतीति पुरुषस्तं जीवन्तमित्यर्थः । को जीवति कश्चावाप्तसकलकाम इति प्रश्नौ ॥ १९ ॥ तयोरुत्तरं दिवमिति द्वाभ्यां पुण्येन कर्मणा सकामेन निष्कामेण वा द्युभूमिव्यापी कीर्तिशब्दो भवति । यावत्कीर्तिरस्ति तावज्जीवतीत्यर्थः । पश्चादिहलोके पूर्ववासनानुरूपाणि कर्माणि करोति । तत्रापि सोपानारोहक्रमेण निष्कामो मुच्यते अवरोहक्रमणे सकामोऽधिकमधिकं वासनापाशैर्बध्यत इति विवेकः ॥ २० ॥ तुल्ये इति । ब्रह्मविदेव सर्वधनी 'यस्तमात्मानमनुविद्य विजानाति सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्' इति तस्यैवाप्तसकलकामत्वश्रुतेः । तस्य स्वाभाविकमिदं लक्षणं तुल्ये प्रियाप्रिय इति । तदेव साधकस्य यत्नसाध्यं ज्ञानसाधनमित्युच्यते यथोक्तम् 'उत्पन्नात्मप्रबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः । अयत्नतो भवन्त्यस्य न तु साधनरूपिणः' इति ॥२१॥ एवं पुत्रस्य ज्ञानं परीक्ष्य धर्मे स्थितिं परीक्षितुमाह यमेकमिच्छसि स जीवत्विति ॥ २२ ॥ जीवं जीवन्तम् ॥ २४ ॥ अनुभावेन नकुलगतसामर्थ्येन ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥
आनृशंस्यं परो धर्मः परमार्थाच्च मे मतम् ।
आनृशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥ २९
धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः ।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु ॥ ३०
कुन्ती चैव तु माद्री च द्वे भार्ये तु पितुर्मम ।
उभे सपुत्रे स्यातां वै इति मे धीयते मतिः ॥३१
यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः
मातृभ्यां सममिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु ३२

यक्ष उवाच ।

तस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम् ।
तस्मात्ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षभ ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आरणेयपर्वणि यक्षप्रश्ने त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥

## ३१४

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते यक्षवचनादुदतिष्ठन्त पाण्डवाः ।
क्षुत्पिपासे च सर्वेषां क्षणेन व्यपगच्छताम् ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।

सरस्येकेन पादेन तिष्ठन्तमपराजितम् ।
पृच्छामि को भवान् देवो न मे यक्षो मतो भवान्
वसूनां वा भवानेको रुद्राणामथवा भवान् ।
अथवा मरुतां श्रेष्ठो वज्री वा त्रिदशेश्वरः ॥ ३
मम हि भ्रातर इमे सहस्रशतयोधिनः ।
तं योगं न प्रपश्यामि येन सर्वे निपातिताः ॥ ४
सुखं प्रतिप्रबुद्धानामिन्द्रियाण्युपलक्षये ।
स भवान् सुहृदोऽस्माकमथवा नः पिता भवान्

यक्ष उवाच ।

अहं ते जनकस्तात धर्मो मृदुपराक्रम ।
त्वां दिदृक्षुरनुप्राप्तो विद्धि मां भरतर्षभ ॥ ६
यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम् ।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम ॥ ७
अहिंसा समता शान्तिस्तपः शौचममत्सरः ।
द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम॥८
दिष्ट्या पञ्चसु रक्तोऽसि दिष्ट्या ते पदपदी जिता
द्वे पूर्वे मध्यमे द्वे च द्वे चान्ते साम्परायिके ॥ ९

---

नः अस्मान् माऽवधीत् ॥ २८ ॥ आनृशंस्यं अवैषम्यं परमार्थात् सत्यात् ॥ २९ ॥ धीयते निश्चिनुते ॥ ३१ ॥ इति आरण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥

३१४

ततस्ते इति ॥ १ ॥ सुहृदः सुहृत् । छान्दसमदन्तत्वम् ॥ ५ ॥ यशः ख्यातिः सत्यं यथार्थभाषणं दमो बाह्येन्द्रियजयः। शौचं द्विविधं मृज्जलादिना बाह्यं कामक्रोधादिराहित्यादान्तरं आर्जवमवक्रता। मार्दवमिति पाठे अक्रूरता। ह्रीरकार्यप्रवृत्तिवारकश्चेतोवृत्तिविशेषः। अचापलं मनसः स्थैर्यं। दानं प्रसिद्धं। तपः स्वधर्माचरणं ब्रह्मचर्यमुपस्थनिग्रहः। तनवः शरीराणि ॥ ७ ॥ अहिंसात्मनःशरीरैः परपीडावर्जनम् समता मानापमानादिष्ववैषम्यं शान्तिश्चित्तनिग्रहः । तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि शौचं व्याख्यातम्। अमत्सरः परगुणान् दृष्ट्वा सन्तापः। मत्सरस्तदभावः। द्वाराणि धर्मप्राप्तिमुखानि ॥ ८ ॥ दिष्ट्या पञ्चसु रक्तोसि । पञ्चस्वात्मदर्शनसाधनेषु 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति' इति श्रुत्युक्तेषु शमादिषु दिष्ट्या भवत्पुण्यवशात् रक्तोऽसि तस्य फलं च षट्पदीजयः। पद्यन्ते प्राप्नुवन्ति देहिनमिति । पदानि षडूर्मयो 'योशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति' इतिश्रुत्युक्ताः तेषां षण्णां पदानां समाहारः षट्पदी सा त्वया जिता । तेषु पदेषु द्वे पदे पूर्वजातमात्रस्याशनापिपासे प्रथमं भवतः । द्वे मध्ये शोकमोहौ । शोक इष्टवियोगजश्चित्तस्य सन्तापः । मोहोऽतिपापेन कार्याकार्यप्रतिसन्धानशून्यत्वम्। एते मध्ये मध्यमे वयसि प्राप्नुतः। प्र चन्तु पञ्चसु महायज्ञेषु 'कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ च षट्पदी। षट्पदी समतिक्रम्य मुच्यते नात्र संशयः' इति व्याचख्युस्तदध्यात्माधिकाराद्वे पूर्वे इति वाक्यशेषासामञ्जस्याच्चोपेक्षितं साम्परायिके जरामृत्यू उत्तरे वयस्युपतिष्ठतः द्वे अन्ते साम्परायिके। सम्परायः परलोकस्तं प्रति नेतुमुद्यते साम्परायिके॥ ९ ॥

धर्मोऽहमिति भद्रं ते जिज्ञासुस्त्वामिहागतः ।
आनृशंस्येन तुष्टोऽस्मि वरं दास्यामि तेऽनघ १०
वरं वृणीष्व राजेन्द्र दाता ह्यस्मि तवानघ ।
ये हि मे पुरुषा भक्ता न तेषामस्ति दुर्गतिः ॥ ११

युधिष्ठिर उवाच ।

अरणीसहितं यस्य मृगो ह्यादाय गच्छति ।
तस्याग्नयो न लुप्येरन् प्रथमोऽस्तु वरो मम ॥ १२

यक्ष उवाच ।

अरणीसहितं ह्यस्य ब्राह्मणस्य हृतं मया ।
मृगवेषेण कौन्तेय जिज्ञासार्थं तव प्रभो ॥ १३

वैशम्पायन उवाच ।

ददानीत्येव भगवानुत्तरं प्रत्यपद्यत ।
अन्यं वरय भद्रं ते वरं त्वममरोपम ॥ १४

युधिष्ठिर उवाच ।

वर्षाणि द्वादशारण्ये त्रयोदशमुपस्थितम् ।
तत्र नो नाभिजानीयुर्वसतो मनुजाः क्वचित् १५

वैशम्पायन उवाच ।

ददानीत्येव भगवानुत्तरं प्रत्यपद्यत ।
भूयश्चाश्वासयामास कौन्तेयं सत्यविक्रमम् १६
यद्यपि स्वेन रूपेण चरिष्यथ महीमिमाम् ।
न वो विज्ञास्यते कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १७
वर्षं त्रयोदशमिदं मत्प्रसादात् कुरूद्वहाः ।
विराटनगरे गूढा अविज्ञाताश्चरिष्यथ ॥ १८
यद्वः सङ्कल्पितं रूपं मनसा यस्य यादृशम् ।
तादृशं तादृशं सर्वे छन्दतो धारयिष्यथ ॥ १९
अरणीसहितं चेदं ब्राह्मणाय प्रयच्छत ।
जिज्ञासार्थं मया ह्येतदाहृतं मृगरूपिणा ॥ २०
प्रवृणीष्वापरं सौम्य वरमिष्टं ददानि ते ।
न तृप्यामि नरश्रेष्ठ प्रयच्छन् वै वरांस्तथा ॥ २१
तृतीयं गृह्यतां पुत्र वरमप्रतिमं महत् ।
त्वं हि मत्प्रभवो राजन् विदुरश्च ममांशजः ॥ २२

युधिष्ठिर उवाच ।

देवदेवो मया दृष्टो भवान् साक्षात् सनातनः ।
यं ददासि वरं तुष्टस्तं ग्रहीष्याम्यहं पितः ॥ २३
जयेयं लोभमोहौ च क्रोधं चाहं सदा विभो ।
दाने तपसि सत्ये च मनो मे सततं भवेत् ॥ २४

धर्म उवाच ।

उपपन्नो गुणैरेतैः स्वभावेनासि पाण्डव ।
भवान् धर्मः पुनश्चैव यथोक्तं ते भविष्यति ॥ २५

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे धर्मो भगवाँल्लोकभावनः ।
समेताः पाण्डवाश्चैव सुखसुप्ता मनस्विनः ॥ २६
उपेत्य चाश्रमं वीराः सर्व एव गतक्लमाः ।
आरणेयं ददुस्तस्मै ब्राह्मणाय तपस्विने ॥ २७
इदं समुत्थानसमागतं महत्
पितुश्च पुत्रस्य च कीर्तिवर्धनम् ।
पठन्नरः स्याद्विजितेन्द्रियो वशी
स पुत्रपौत्रः शतवर्षभाग्भवेत् ॥ २८
न चाप्यधर्मे न सुहृद्विभेदने
परस्वहारे परदारमर्शने ।
कदर्यभावे न रमेन्मनः सदा
नृणां सदाख्यानमिदं विजानताम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आरण्यके पर्वणि आरणेयपर्वणि नकुलादिजीवनादिवरप्राप्तौ चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥

---

धर्मोऽहमिति । भद्रं ते अहं धर्मस्तव पिताऽस्मीति स्वरूपप्रकाशनं इति भद्रं ते इत्यनेन । इति एवमुक्तप्रकारेण । यशःप्रभृतिभिर्दशभिर्धर्मतनुभिरहिंसादिभिर्धर्मद्वारैश्चोत्पन्नेनादृष्टेन । शमादिपञ्चकानुरक्तस्य षट्पदीजयफलं भद्रं कल्याणं मोक्षसुखाख्यमद्वयसच्चिदानन्दमात्रं ते तव अस्त्विति शेषः । एवं प्रश्नानुवादमुखेन प्रतिपादितां ब्रह्मविद्यां यशः सत्यं दमः शौचामित्यादि श्लोकत्रयेणोपसंहृत्य आख्यायिकामनुसरति जिज्ञासुस्त्वामिहागत इत्यादिना ॥ १० ॥ अरणीसहितमरण्योः समारोपितमग्निम् । यद्वा अरण्योः सहितं समुदायः अरणिद्वयमिति यावत् ॥ १२ ॥ अरण्ये गतानीति शेषः । नः अस्मान् ॥ १५ ॥ छन्दतः इच्छातः ॥ १९ ॥ आरणेयमरणीसम्पुटम् ॥ २७ ॥ समुत्थानसमागतं भ्रात्रादीनां समुत्थानं च धर्मराजेन सह समागतं सम्मेलनं चेति समाहारः । पितुर्धर्मस्य पुत्रस्य युधिष्ठिरस्य चात्समागतमिति समासैकदेशभूतमप्यनुवर्तते ॥ २८ ॥ कदर्यभावे कार्पण्ये सदाख्यानं शुभाख्यानम् ॥ २९ ॥ इत्यारण्यके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥

# ३१५

वैशम्पायन उवाच ।
धर्मेण तेऽभ्यनुज्ञाताः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः ।
अज्ञातवासं वत्स्यन्तश्छन्ना वर्षं त्रयोदशम् ॥ १
उपोपविश्य विद्वांसः सहिताः संशितव्रताः ।
ये तद्भक्ता वसन्ति स्म वनवासे तपस्विनः ॥ २
तानब्रुवन्महात्मानः स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ।
अभ्यनुज्ञापयिष्यन्तस्तं निवासं धृतव्रताः ॥ ३
विदितं भवतां सर्वं धार्तराष्ट्रैर्यथा वयम् ।
छद्मना हृतराज्याश्चानयाश्च बहुशः कृताः ॥ ४
उषिताश्च वने कृच्छ्रे वयं द्वादशवत्सरान् ।
अज्ञातवाससमयं शेषं वर्षं त्रयोदशम् ॥ ५
तद्वत्स्यामो वयं छन्नास्तदनुज्ञातुमर्हथ ।
सुयोधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः ॥ ६
जानतो विषमं कुर्युरस्मास्वत्यन्तवैरिणः ।
युक्तचाराश्च युक्ताश्च पौरस्य स्वजनस्य च ॥ ७
अपि नस्तद्भवेद्भूयो यद्वयं ब्राह्मणैः सह ।
समस्ताः स्वेषु राष्ट्रेषु स्वराज्यस्था भवेमहि ॥ ८
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा दुःखशोकार्तः शुचिर्धर्मसुतस्तदा ।
सम्मूर्छितोऽभवद्राजा साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः ॥९
तमथाश्वासयन् सर्वे ब्राह्मणा भ्रातृभिः सह ।
अथ धौम्योऽब्रवीद्वाक्यं महार्थं नृपतिं तदा ॥ १०
राजन् विद्वान् भवान् दान्तः
सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
नैवंविधाः प्रमुह्यन्ते
नराः कस्याञ्चिदापदि ॥ ११
देवैरप्यापदः प्राप्ताश्छन्नैश्च बहुशस्तथा ।
तत्र तत्र सपत्नानां निग्रहार्थं महात्मभिः ॥ १२
इन्द्रेण निषधान् प्राप्य गिरिप्रस्थाश्रमे तदा ।
छन्नेनोष्य कृतं कर्म द्विषतां च विनिग्रहे ॥ १३
विष्णुनाश्वशिरः प्राप्य तथाऽदित्यां निवत्स्यता ॥
गर्भे वधार्थं दैत्यानामज्ञातेनोषितं चिरम् ॥ १४
प्राप्य वामनरूपेण प्रच्छन्नं ब्रह्मरूपिणा ।
बलेर्यथा हृतं राज्यं विक्रमैस्तच्च ते श्रुतम् ॥ १५
हुताशनेन यच्चापः प्रविश्य छन्नमासता ।
विबुधानां कृतं कर्म तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ॥ १६
प्रच्छन्नं चापि धर्मज्ञ हरिणाऽरिविनिग्रहे ।
वज्रं प्रविश्य शक्रस्य यत् कृतं तच्च ते श्रुतम्॥ १७
और्वेण वसता छन्नमूरौ ब्रह्मर्षिणा तदा ।
यत् कृतं तात देवेषु कर्म तत्तेऽनघ श्रुतम् ॥ १८
एवं विवस्वता तात छन्नेनोत्तमतेजसा ।
निर्दग्धाः शत्रवः सर्वे वसता भुवि सर्वशः॥१९
विष्णुना वसता चापि गृहे दशरथस्य वै ।
दशग्रीवो हतश्छन्नं संयुगे भीमकर्मणा ॥ २०
एवमेव महात्मानः प्रच्छन्नास्तत्र तत्र ह ।
अजयञ्छात्रवान् युद्धे तथा त्वमपि जेष्यसि २१
तथा धौम्येन धर्मज्ञो वाक्यैः सम्परितोषितः ।
शास्त्रबुद्ध्या स्वबुद्ध्या च न चचाल युधिष्ठिरः२२
अथाब्रवीत् महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः ।
राजानं बलिनां श्रेष्ठो गिरा सम्परिहर्षयन् ॥ २३
अवेक्षया महाराज तव गाण्डीवधन्वना ।
धर्मानुगतया बुद्ध्या न किञ्चित् साहसं कृतम्२४
सहदेवो मया नित्यं नकुलश्च निवारितौ ।
शक्तौ विध्वंसने तेषां शत्रूणां भीमविक्रमौ ॥२५
न वयं तत्प्रहास्यामो यस्मिन् योक्ष्यति नो भवान्
भवान् विधत्तां तत् सर्वं क्षिप्रं जेष्यामहे रिपून्२६
इत्युक्ते भीमसेनेन ब्राह्मणाः परमाशिषा ।
उक्त्वा चापृच्छ्य भरतान्यथास्वान्स्वान्ययुर्गृहान्
सर्वे वेदविदो मुख्या यतयो मुनयस्तथा ।
आसेदुस्ते यथान्यायं पुनर्दर्शनकाङ्क्षया ॥ २८
सह धौम्येन विद्वांसस्तथा पञ्च च पाण्डवाः ।
उत्थाय प्रययुर्वीराः कृष्णामादाय धन्विनः ॥ २९

३१५

धर्मेणेति । वत्स्यन्तः वस्तुमिच्छन्तः ॥१॥ स्थिताः स्वधर्मनिष्ठाः ॥ ३ ॥ युक्ताः योजिताश्चाराश्चैस्ते युक्ता अवहिताः पौरस्य स्वजनस्य ... विषमं कुर्युरितो राष्ट्रान्तरेऽस्माभिर्गन्तव्यमित्याशयः ॥ ७ ॥ अशुचिरार्तिग्रस्तत्वात् शुचिरित्येव पाठः स्वच्छः ॥ ९ ॥ उष्य वासं कृत्वा ॥ १३ ॥ न चचाल छलेन शत्रुवधं नाङ्गीकृतवान् ॥ २२ ॥ आशिषोक्ता आशिषं प्रयुज्य ॥ २७ ॥

क्रोशमात्रमुपागम्य तस्माद्देशान्निमित्ततः ।
श्वोभूते मनुजव्याघ्राश्छन्नवासार्थमुद्यताः ॥ ३० पृथक् शास्त्रविदः सर्वे सर्वे मन्त्रविशारदाः ।
सन्धिविग्रहकालज्ञा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यामारण्यके पर्वणि आरणेयपर्वणि अज्ञातवासमन्त्रणे पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

॥ समाप्तमारणेयपर्व ॥

## ॥ समाप्तं चेदमारण्यकं पर्वेति ॥

## ॥ श्रवणमहिमा ॥

इदमारण्यकं श्रुत्वा महापापैः प्रमुच्यते ।
अधनो धनमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ १
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
नारी वा पुरुषो वाऽपि शुचिः प्रयतमानसः ॥ २
आरण्यके श्रुतेऽर्थात् ब्राह्मणान् पायसादिभिः ।
भोजयेद्वस्त्रगोस्वर्णदानैः रत्नैः प्रपूजितान् ॥ ॥३
ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु सन्तुष्टाः पाण्डुनन्दनाः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः शक्रो देवगणास्तथा ॥ ४
भूतानि मुनयो देव्यस्तथा पितृगणाश्च ये ।
वाचकं पूजयेच्छक्त्या वस्त्राद्यैः स्वर्णभूषणैः ॥ ५
विशेषतस्तु कपिला देया तु जपपाठके ।
कांस्यदोहा रौप्यखुरा स्वर्णशृङ्गी सभूषणा ।
पाण्डूनां परितोषार्थं दद्यादन्नं द्विजातये ॥ ६
आरण्यकाख्यमाख्यानं शृणुयाद्यो नरोत्तमः ।
स सर्वकाममाप्नोति पुनः स्वर्गतिमाप्नुयात् ॥ ७

॥इत्यारण्यकश्रवणमहिमा दानविधिश्च समाप्तः॥

---

मन्त्राय विचारार्थम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंस गोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे आरण्यपर्वार्थप्रकाशे पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

* अयं सप्तश्लोकात्मको ग्रंथः क-ख पुस्तकयोर्नास्ति ।

अतः परं विराटपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

जनमेजय उवाचः—

कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः ॥
अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते *वनपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे—"अत्राध्यायशते द्वे तु संख्यया परिकीर्तिते ॥ एकोनसप्ततिश्चैव तथाऽध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ एकादशसहस्राणि श्लोकानां षट्शतानि च ॥ चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः ॥ इत्युक्तम् । तथापि प्रायः संप्रति वनपर्वगताध्यायसंख्या ३१५ श्लोकसंख्या च ११८५९ दृश्यते । तल्लेखकप्रमादादिति ध्येयम् । भवेयुरत्र पर्वणि क्षेपकाः श्लोका अध्यायाश्च । परं तेषां यथार्थं निर्देशः कर्तुं न शक्यते ।

इति श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरीभूतसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचन्द्रशास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यामारण्यकं पर्व समाप्तम् । भारती जयतु ॥ शाके १८५१ ॥

# Shriman

# MAHĀBHĀRATA

## Part III

## IV Viratparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nilkantha.

***Edited by***

**Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar.**



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1852.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

# श्रीमन्महाभारतम्।

## तृतीयभागे—विराटपर्व।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
### भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्।

तच्च

पुण्याख्यपत्तनं

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्र्य प्रकाशितम्।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५२] प्रथमं संस्करणम्। [ख्रिस्ताब्दाः १२३१

॥ श्रीभारती विजयते ॥

# प्रास्ताविकम् ।

–२–

यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महागिरिः ।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥

—आदिपर्व

विदितमेवैतद्विदुषामष्टादशसु पर्वसु विभक्तं महाभारतमिति । तदिदं महाभारतमष्टादशपर्वसंमितं 'शतसाहस्री संहिता' इति सुप्रथितचरम् । अत एव बहुषु स्थलेषु 'वैयासक्यां शतसाहस्र्यां संहितायाम्' इत्याद्युल्लेखो दृश्यते । तथापि तत्रैवं ध्येयं, येयं लक्षश्लोकात्मिका संख्या सा केवलस्य महाभारतस्योताहो हरिवंशसहितस्य ? इति प्रश्ने संप्रत्युपलब्धस्य केवलस्य महाभारतस्य श्लोकसंख्या नैव शतसहस्रसंमिता किंतु चतुरशीतिसहस्रप्रभृतिनवतिसहस्रपर्यंतं सा दरीदृश्यते । अतो हरिवंशसहितमेव महाभारतं लक्षश्लोकात्मकं स्यात्कथंचिन्न केवलमिति भाति ।

अयि प्राज्ञाः ! वस्तुतस्तु महाभारतश्लोकसंख्याविषये बहवो विवदन्ते । नाद्यापि श्रीमद्व्यासविरचितस्य केवलस्य महाभारतस्य कति श्लोकाः संति के च त इत्यसंशयं निर्दे्ष्टुं शक्यते । तथापि—

'एकं शतसहस्रं च मयोक्तं वै निबोधत'

इत्यादिपर्वणि प्रथमाध्याये सूतेन पठितत्वान्महाभारतस्य शतसाहस्री संहिता इत्ययमर्थोऽविकल एवेति सिद्धम् ।

यदेतत्परंपराप्राप्तं महाभारतं स एव जयापरनामक इतिहास इत्यस्मिन्नेव महाभारत उक्तम्—

जयो नामेतिहासोऽयम्, इति ।

अस्य महाग्रंथस्य महाभारतमिति नाम महत्वाद्भारवत्त्वाद्भारतानामितिहासत्वाच्चोच्यते । अस्मिन् ग्रंथ आर्याणां प्राचीना बहव इतिहासभूता वृत्तान्ताः सविस्तरं तत्र तत्र दृष्टान्तोपदृष्टान्ततयाऽऽख्यानोपाख्यानकथनद्वारा च वर्णिता इति नैतत्तिरोहितं संख्यावताम् । उदारमतिना भगवता व्यासेन विरचितेऽस्मिन्ग्रंथे प्रायः सर्वे विषयाः सन्ति । आर्याणां प्राचीना वर्णाश्रमादिव्यवस्था, सामा-

जिकं, भौगोलिकं, दार्शनिकं, ज्योतिर्विषयकं च विज्ञानं; लोकरीतयः, धर्मनीतयः, कुटिलनीतयः इत्यादयो नैके परः सहस्रं विषया महाभारत-प्रतिपाद्याः । येन येन यद्यदपेक्ष्यते ज्ञानं तत्तदत्र सुतरां सन्निहितमिव विराजते । किं बहुना—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ॥

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥—आदिपर्व

इत्यादिना महाभारतस्य महत्ता साक्षात्सूतेन महाभारत एव वर्णिता ।

न केवलं महाभारतमितिहासः किं त्वार्षं महाकाव्यमपि । तथाहि-
'त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात्काव्यं भविष्यति '—इत्यादिनाऽस्मिन् ग्रंथ एवास्य काव्यतया वर्णनान्महाकाव्यलक्षणानुसारित्वाच्च । श्रीमत्तिलकमहोदयैर्लोकमान्यपदवीभाग्भिरस्य महाभारताख्यस्य महाकाव्यस्य वक्ष्यमाणप्रकारेण लक्षणं विरचितम्—

महत्सु राजवंशेषु जातानां दिव्यकर्मणाम् ॥
श्रीविभूतिमतां वाऽपि प्राचीनानां महात्मनाम् ॥ १ ॥

चरितं कीर्त्यते यत्र पुण्यमेकार्थसंगतम् ॥
इतिहासप्रधानार्थं शीलचारित्र्यवर्धनम् ॥ २ ॥

धीरोदात्तं च गहनं श्रव्यैर्वृत्तैरलंकृतम् ॥
वाक्यजातिविशेषैश्च रसोत्कर्षप्रपोषकैः ॥ ३ ॥

अद्भुतार्थाः कथा यत्र धर्मकामार्थसंश्रिताः ॥
लोकयात्राक्रमश्चापि पावनः प्रतिपाद्यते ॥ ४ ॥

विचित्रार्थपदाख्यानं सूक्ष्मार्थन्यायबृंहितम् ॥
रोमहर्षणकृत्काव्यमनेकसमयान्वितम् ॥
महाकाव्यं वरिष्ठं तन्महार्थं चार्षसंज्ञितम् ॥ ५ ॥

एतल्लक्षणानुसारेण महाभारतमिदमार्षमहाकाव्यसंज्ञको ग्रंथ इति श्रीमत्तिलकमहाभागैः प्रतिपादितं तदतीव समुचितम् । लक्षणसमन्वयस्तु स्पष्टार्थत्वान्महाभारतस्यमहाभारतप्रशंसादिवेतॄणां मनसि स्वत एव स्फुरेदिति तद्विषये नैवात्मीयां लेखनीं व्यापारयितुमिच्छामः ।

महाभारतस्य जयापरनामधेयस्यार्षमहाकाव्यस्य कर्ता भगवान् बादरायणः । अस्यैव व्यासः,सत्यवतीसुतः, कृष्णद्वैपायनः पाराशर्य इत्य-भिधेयान्तराणि । स खलु यमुनाद्वीपे पराशरात् सत्यवत्यां जज्ञे । अयं च

विव्यास वेदान् यस्मात्स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ।

वेदव्यासास्त्वष्टाविंशतिसंख्याकाः । तेष्वयमन्तिमो व्यासो बादरायणः । तथाचोक्तं देवीभागवते—द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयंभुवा । प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत् । तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः । पञ्चमे सविता व्यासः षष्ठो मृत्युस्तु द्वापरे । मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः । सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे तथा । एकादशे च त्रिवृषो भारद्वाजस्ततः परे । त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मो चापि चतुर्दशे । त्र्यारुणः पञ्चदशे षोडशे तु धनंजयः । मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा । अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परे । उत्तमाश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा यश्च कीर्तितः । वेनो वाजस्रजाक्षस्तु सोमो न्यूषायणस्तथा । तृणबिन्दुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परे । ततः शक्तिर्जातुकर्णो कृष्णद्वैपायनस्ततः ॥ अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता या मया श्रुता इति । यद्ययं बादरायणो व्यासेष्वन्तिमस्तथापि गुणगरिम्णा सर्वानधिशेते । तथा चोक्तं भगवता—

'द्वैपायनोऽस्मि व्यासानाम्' इति

अयं व्यासो द्वापरे संबभूव । एतेन महान्वेदराशिश्चतुर्धा विभक्तः । अस्य खलु सुमन्तु—जैमिनि—वैशम्पायन—पैला इति चत्वारः शिष्या आसन् । तत्र पैलो ऋग्वेदमध्यैष्ट, वैशंपायनो यजुर्वेदं, जैमिनिः सामवेदं, सुमंतुश्चाथर्ववेदम् । व्यासविरचिता ग्रन्थास्त्विमे—

१ महाभारतं लक्षश्लोकात्मकमितिहासः ।
२ ब्रह्मपुराणं दशसहस्रात्मकम् ( १०००० )
३ पद्मपुराणं पञ्चोनषष्टिसहस्रात्मकम् ( ५५००० )
४ विष्णुपुराणं त्रयोविंशतिसहस्रात्मकम् ( २३००० )
५ शिवपुराणं चतुर्विंशतिसहस्रात्मकम् ( २४००० )
६ भागवतमष्टादशसहस्रात्मकम् ( १८००० )
७ नारदपुराणं पंचविंशतिसहस्रात्मकम् ( २५००० )
८ मार्कण्डेयपुराणं नवसहस्रात्मकम् ( ९००० )
९ अग्निपुराणं पञ्चदशसहस्रात्मकम् ( १५००० )
१० भविष्यपुराणं पंचशताधिकचतुर्दशसहस्रात्मकम् ( १४५०० )
११ ब्रह्मवैवर्तपुराणमष्टादशसहस्रात्मकम् ( १८००० )
१२ लिंगपुराणमेकादशसहस्रात्मकम् ( ११००० )
१३ वराहपुराणं चतुर्विंशतिसहस्रात्मकम् ( २४००० )
१४ स्कंदपुराणमेकादशोत्तरमेकाशीतिसहस्रात्मकम् ( ८१०११ )
१५ वामनपुराणं दशसहस्रात्मकम् ( १०००० )
१६ कूर्मपुराणं सप्तदशसहस्रात्मकम् ( १७००० )
१७ मत्स्यपुराणं चतुर्दशसहस्रात्मकम् ( १४००० )
१८ गरुडपुराणमेकोनविंशतिसहस्रात्मकम् ( १९००० )

१९ ब्रह्माण्डपुराणं द्वादशसहस्रात्मकम् ( १२००० )
२० वेदान्तशारीरकमीमांसासूत्राणि च ।

पुराणानां श्लोकसंख्याविषये बह्व्यो विप्रतिपत्तयः । तथापि सामान्यतः संख्योपरि निर्दिष्टा इत्यवधेयं सुधीभिः ।

अयि ! विपश्चिदपश्चिमाः पण्डितप्रकाण्डाः ! श्रीमद्भगवत्या वाग्देव्याः कृपाकटाक्षेण महाभारतस्यायं विराटोद्योगभीष्मपर्वात्मकस्तृतीयो भागो यथामति संशोध्य भावत्ककरकमलयोर्विन्यस्तः । अस्य भागस्य सूक्ष्मेक्षिकया द्वितीयभागदर्शितादर्शपुस्तकानां साहाय्येन संशोधनं व्यधायि । प्रयतितं च यावच्छक्यं शुद्धाशुद्धविषये । तथापि यदत्र मुद्रायन्त्राघातजनिताक्षरभेदवशात्, मुद्रायोजकस्याज्ञानादस्मदीयदृग्भ्रमाच्च यदि केचन मुद्रणदोषा उपलभ्येरंस्तथापि भ्रान्तेः पुरुषधर्मत्वमाकलय्य क्षन्तव्योऽयं जन इति प्रार्थयित्वा महाभारतस्य चतुर्थे भागे प्रायो द्रोण-कर्ण-शल्य-सौप्तिकानि पर्वाण्यागच्छेयुर्यथाकालं स भवद्दृष्टिपथमवतीर्णश्च स्यादित्यावेदनपूर्वकं विरमति-

महाशिवरात्रिः
शाकः १८५२

विद्वद्विधेयः
किञ्जवडेकरोपाह्वो रामचन्द्रशास्त्री
पुण्यपत्तनस्थभारतीभुवननिवासी

ॐ

# चित्राणां सूचीपत्रम् ।

[ १ ]

**विराटपर्व पृ० १**

[ २ ]

नैव त्वां जातु हिंस्यात् स इतः संप्रेषितां मया ।
इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥ —विराट अ. १५ पृ. २४.

[ ३ ]

सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी ।
प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥ १७ ॥ —विराट अ. १५ पृ. २४.

[ ४ ].

उपातिष्ठत सा सूर्यं मुहूर्तमबला ततः ॥ १९ ॥ —विराट अ. १५ पृ. २४.

[ ५ ]

स तस्यास्तनुमध्यायाः सर्वं सूर्योऽवबुद्धवान् ।
अंतर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत् ।
तच्चैनां नाजहात्तत्र सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् ॥ २० ॥ —विराट अ. १५ पृ. २४.

[ ६ ]

स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम ।
स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥ १ ॥ —विराट अ. १६ पृ. २४.

[ ७ ]

उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
आयुधं सर्वमादाय प्रययौ पाण्डवर्षभः ॥ १ ॥ —विराट अ. ४६ पृ. ६४.

[ ८ ]

**उद्योगपर्व पृ० १**

[ ९ ]

ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः ।
उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने ॥ ८ ॥
ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः ।
पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥ —उद्योग अ. ७ पृ. ८

[ १० ]

अयं ते पुण्डरीकाक्ष ! दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता ॥ ३६ ॥ —उद्योग अ. ८२ पृ. १५९

[ ११ ]

[ सात्यकिरुवाच— ]

इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ।
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ॥१६॥ —उद्योग अ. १३० पृ. २१५

[ १२ ]

भीष्मपर्व पृ० १

[ १३ ]

श्रीभगवानुवाच—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥ —भीष्म अ. २६ पृ. ४५

[ १४ ]

अमी च त्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥२६॥ -भीष्म अ. ३५ पृ.१०८

[ १५ ]

[ भीष्म उवाच— ]

मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥ ६२ ॥ --भीष्म. अ. ११९ पृ. २८५

[ १६ ]

अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥२४॥ -भीष्म अ. १२१ पृ. २९०

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

# विराटपर्व ।

## —४—

## विषयानुक्रमणिका ।


अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

**( १ ) पाण्डवप्रवेशपर्व १—१९**

१—२८ प्रकरणादौ नारायणं नमस्कृत्येत्यादि मङ्गलम्—पाण्डवानामज्ञातवासप्रकारविषयके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्—युधिष्ठिरेण भ्रातृभिः सह मन्त्रणेन विराटनगरे निवासनिर्धारणम्—युधिष्ठिरेण स्वस्य यतिवेषग्रहणपूर्वकं विराटसभास्तारीभवनं कथयित्वा भीमं प्रति तत्कर्तव्यविषयकः प्रश्नः— २

२—३२ भीमसेनः सूदवेषेणाहं विराटनगरे चरिष्यामीत्यब्रवीत्—ततो युधिष्ठिरस्य भीमं प्रत्यर्जुनकर्तव्यकर्मविषये प्रश्नः—षण्ढवेषेण बृहन्नलेति स्वनाम प्रख्याप्यान्तःपुरस्त्रियो गीत-नृत्य—वादित्रादि शिक्षयन्विराटनगरे विहरिष्यामीत्यर्जुनेन स्वकर्तव्यकर्मणः कथनम्— ४

३—२३ धर्मो नकुलं कर्तव्यकर्मविषये पप्रच्छ— ततो 'ग्रन्थिक' इति नाम प्रख्याप्याश्वबन्धो भूत्वा मत्स्याश्वशिक्षादि कर्म कुर्वन्विराटनगरे विहरिष्यामीति नकुलः प्रत्यवोचत्—तथा च 'तन्तिपाल' नाम्ना गोपालको भूत्वा चरिष्यामीति सहदेवः प्रोवाच—सैरन्ध्रीवेषेण राजभार्यां सुदेष्णामुपस्थास्ये इति द्रौपद्यब्रवीद्युधिष्ठिरं प्रति— ५

४—५८ युधिष्ठिरस्य भीमादिभ्रातॄन् प्रति स्वाग्निरक्षण—सूतादिप्रस्थापनविषयिण्युक्तिः—धौम्यो युधिष्ठिरादीन्प्रति राजगृहवासविषयिणीं नीतिमभ्यधात्-वैशम्पायनकथितः पाण्डवानां प्रस्थानवृत्तान्तः— ८

५—३६ द्रौपदीसहिताः पाण्डवाः स्वान्यस्त्राण्यादाय पदातय एव शूरसेनादीन् देशानतिक्रम्यात्मनो व्याधान् ब्रुवाणा विराटनगराभ्याशं प्रापुः-तत उत्पथे गहने महतीं शमीं दृष्ट्वा तस्यामायुधानि समासज्य तत्र मायाशवं च निर्मायास्माकं कुलधर्मोऽयं यच्छवस्योद्बन्धनमिति मार्गे गोपालादीन् कथयन्तः परस्परव्यवहारार्थं गुह्यानि नामानि धृत्वा राजधानीसमीपमाजग्मुः— १०

६—३५ युधिष्ठिरकृतो दुर्गास्तवः प्रस-

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | आयास्तस्याः सकाशाद्वरलाभश्च— | ११ |
| ७ | १८ | युधिष्ठिरस्य विप्ररूपेणाक्षान्कक्षे निक्षिप्य विराटसभायां प्रवेशः-तस्य महानुभावतां वीक्ष्य विराटेन सभास्तारीकरणम्- | १३ |
| ८ | १३ | भीमस्य सूदवेषेण विराटसभायां प्रवेशः-सत्कृत्य विराटेन तत्काम्यया स्वमहानसाधिपत्ये नियोजनम्— | १४ |
| ९ | ३७ | द्रौपद्याः सैरन्ध्रीवेषेण विराटनगरे प्रवेशः-राजभार्यया सुदेष्णया समाहूय स्ववेश्मनि तस्या निवासनम्— | १६ |
| १० | १६ | गोपालवेषधारणपूर्वकं सहदेवस्य विराटसभायां प्रवेशः-विराटेन सत्कृत्य तस्य गोरक्षणे नियोजनम्— | १७ |
| ११ | १४ | अर्जुनस्य षण्ढवेषेण विराटसभायां प्रवेशः-विराटेन राज्ञा तस्य प्रमदाभिरपुंस्त्वं परीक्ष्य कन्यकान्तःपुरे कन्यानाटने विनियोजनम्— | १८ |
| १२ | १३ | हयानीक्षमाणं नकुलं प्रेक्ष्य विराटेन नूनमयं हयज्ञो भवितेति वितर्क्य तमाहूय शिल्पं च पृष्ट्वाऽश्वपालने तस्य नियोजनम्— | १९ |


## ( २ ) समयपालनपर्व १९-२१


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १३ | ४६ | पाण्डवाचरणविषयके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्-सर्वैः पाण्डवैः स्वकर्मणा नृपं तोषयित्वा लब्धद्रव्यस्य विक्रयव्याजेन यथार्हं भ्रातृषु विभजनम् वसत्सु पाण्डवेषु चतुर्थे मासे उत्सवप्रसङ्गेनागतानां मल्लानां मध्ये प्रधानेन जीमूतेन सह युद्धार्थं विराटाज्ञया भीमसेनस्य रङ्गप्रवेशः-युद्धं कुर्वतः सर्वमल्लोपमर्दिना भृशमुत्सिक्तस्य जीमूतमल्लस्य बाहुयुद्धे भीमेन कृतो वधः— | २१ |


## ( ३ ) कीचकवधपर्व २१-३९


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १४ | ५२ | सुदेष्णागृहे कदाचिद्द्रौपदीं सैरन्ध्रीवेषेण परिचरन्तीमालोक्योन्मादमुपगतवता कीचकेन सुदेष्णां प्रति तस्याः प्रार्थनम्-ततो द्रौपदीमेत्य त्वत्सङ्गमसङ्कल्पविवृद्धेन कामाग्निना दह्यमानमात्मप्रदानेनोद्धरेति प्रार्थना-द्रौपद्या परदाराभिमर्शने दोषान्, स्वस्य दुर्लभत्वं चोक्त्वा स्वात्मानं कामयमानस्य कीचकस्य परुषभाषणैः प्रत्याख्यानम्— | २३ |
| १५ | २१ | कीचकेन सुदेष्णां प्रति द्रौपद्याः स्ववशीकरणप्रार्थना---कीचकप्रियचिकीर्षया तद्भवने सुराहरणव्याजेन हठाद्द्रौपद्याः प्रेषणम्-द्रौपदीप्रार्थितेन सूर्येण तद्रक्षणार्थं निगूढं रक्षसो नियोजनम्— | २४ |
| १६ | ५१ | स्वसमीपागतया द्रौपद्या सह कीचकस्य संवादः-कीचकेन द्रौपद्याः स्वशयनारोहणप्रार्थनामगृह्णन्त्याः प्रसह्योत्तरीयग्रहणम्-तं समाक्षिप्य शरणार्थं राजसभां प्राप्तां तां पृष्ठतो धावता कीचकेन केशेष्वाकृष्य भूमौ पातयित्वा पदा हननम्-सूर्यप्रेषितेन रक्षसाऽपवाहितस्य कीचकस्य मूर्च्छाप्राप्तिः—पदाघातं कुर्वता कीचकेनावमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा क्रुद्धस्य भीमस्य युधिष्ठिरेण कृतं सङ्केतेन सान्त्वनम्-द्रौपद्या विलपनपूर्वकं सभ्यानभिक्षिपन्त्या युधिष्ठिरवचनात् सुदेष्णाभवने गमनम्-द्रौपद्याः सुदेष्णया सह संवादः— | २६ |

| अ० श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|
| १७—२१ | द्रौपद्या कीचकवधं चिन्तयन्त्या महानिशि महानसं गत्वा भीमस्य प्रबोधनम्—भीमेन तां प्रत्यागमनप्रयोजनप्रश्नः— | २७ |
| १८—३३ | द्रौपद्या भीमस्यामर्षजननाय द्यूतसभायामाकर्षणादिस्मारणपूर्वकं कीचककृतस्वाभिभवनिरूपणम्—पूर्वविभवमनुस्मृत्य पाण्डवान्प्रत्यशोचनम्— | २९ |
| १९— | विराटगृहस्थान् युधिष्ठिरादीन्प्रति प्रत्येकं नामनिर्देशपूर्वकमनुशोचनम्— | ३० |
| २०—३१ | पूर्वविभवमनुस्मृत्य सम्प्रति दासीभूतामात्मानं परिशोचन्त्या द्रौपद्याः किणवन्तौ पाणी मुखमानीय भीमस्य रोदनम्— | ३२ |
| २१—५१ | भीमसेनेन सुकन्यादिदृष्टान्तैः परिसान्त्वितया द्रौपद्या कीचककृतं स्वपराभवमुपवर्ण्य भीमस्य कीचकवधे प्रेरणम्— | ३४ |
| २२—९४ | भीमेन कीचकवधमङ्गीकृत्य द्रौपदीं प्रति तदुपायकथनम्—पुनः प्रार्थितवता कीचकेन द्रौपदीसमयेऽङ्गीकृते तं प्रति द्रौपद्या सङ्केतस्थानादिकथनम्—पुनर्भीममागत्य द्रौपद्या कीचकमारणोपाये कथिते तयोर्मिथः संवादः—पूर्वमेव भीमे नर्तनागारं प्रविष्टेऽनन्तरं द्रौपदीसङ्गमाशयाऽऽगतस्य कीचकस्य पूर्वमागत्य स्थितं भीमं प्रत्युक्तिः—उपहासोक्तिपूर्वकं भीमे मारणायोद्यते सत्युभयोर्बाहुयुद्धम्—श्रान्तस्य कीचकस्य भ्रामणादिपुरःसरं भीमेन वधः—भीमस्तत्राग्निं प्रज्वाल्य मांसपिण्डाकृति कीचकशरीरं द्रौपद्यै दर्शयित्वा तामामन्त्र्य पुनर्महानसं ययौ—द्रौपद्या निवेदितं कीचकवधं श्रुत्वा सभापाला आगत्य तथाविधं कीचकं ददृशुः— | ३७ |
| २३—३४ | कीचकमन्त्यसंस्कारेण संस्कर्तुं बहिर्नयन्तो रुदन्तः कीचकबान्धवा उपकीचकाख्यया प्रसिद्धास्तत्र स्तम्भमालिङ्ग्य तिष्ठन्तीं द्रौपदीं दृष्ट्वाऽस्याः कृते कीचको हत इति रोषात्तामपि तेन सह दग्धुमिच्छन्तस्तस्मिन्नेव याने तां निबध्य श्मशानाभिमुखं जग्मुः—ततो द्रौपद्या आक्रोशमात्रेण भीमस्यामार्गेण द्रौपद्यभयदानपूर्वकं तद्रक्षार्थं वेषं परिवर्त्य श्मशानाभिमुखं गमनम्—श्मशानस्थं महान्तं वृक्षमुत्पाट्य तेनोपकीचकानां द्रौपदीं त्यक्त्वा प्राद्रवतां निःशेषं हननम्—ततो द्रौपद्या बन्धनं विमुच्य सुदेष्णाभवने प्रेषणं मार्गान्तरेण भीमस्य स्वस्थाने गमनं च— | ३८ |
| २४—३० | पौरैर्गन्धर्वकृते कीचकवधे कथिते विराटस्तान्दग्धुं भृत्यानाज्ञाप्य द्रौपदीनिर्वासनार्थं सुदेष्णामब्रवीत्—द्रौपदी विराटनगरं प्रत्यागत्य महानसद्वारि स्थितं भीमं प्रति सङ्केतेनोक्त्वा नर्तनागारेऽर्जुनं ददर्श—राजकन्याभिराश्वासितायाः सैरन्ध्र्याः कटाक्षपूर्वकं बृहन्नलया संवादः—राजगृहप्रविष्टां द्रौपदीं प्रति 'सैरन्ध्रि गच्छ भद्रं ते' इत्याद्युक्तवतीं सुदेष्णां प्रति द्रौपदी त्रयोदशाहपर्यन्तं राजा क्षाम्यत्वित्याद्यब्रवीत्— | ३९ |
| | **(४) गोहरणपर्व ४०—१००** | |
| २५—२२ | दुर्योधनप्रयुक्तैश्चारैश्चिरमन्विष- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | द्भिरपि पाण्डवप्रवृत्तिमलभमानैर्विराटनगरे सैरन्ध्रीनिमित्तं गन्धर्वैरदृश्यमानैर्निशि सानुजस्य कीचकस्य वधं श्रुतवद्भिर्हास्तिनपुरं गत्वा राज्ञस्तस्य वृत्तान्तस्य निवेदनम्— | ४० |
| २६— | १८ | चाराणां पाण्डवाज्ञानाद्दुर्योधनस्य विषादः-कर्णेन चारान्तरप्रेषणविधानं दुःशासनेन तदनुमत्यापि पाण्डवानां विनाशसम्भावनम्— | ४१ |
| २७— | १० | दुर्योधनं प्रति न तादृशा विनश्यन्तीत्यादिप्रकारेण द्रोणोपदेशः- | ४२ |
| २८— | ३३ | पाण्डवानां धर्मनित्यतया यत्र सर्वतः शुभान्येव सन्निपतन्ति स तदधिष्ठितो देश इति भीष्मेण पाण्डवनिवासलक्षणाभिधानम्— | ४३ |
| २९— | १४ | नीत्युपदेशपूर्वकं कृपस्योपदेशः- | ४४ |
| ३०— | २७ | त्रिगर्तराजेन सुशर्मणा कीचकवधं श्रुत्वा विराटनगराभियानस्य प्राप्तकालत्वकथनम्-तथा भीष्माद्यनुमत्या सुशर्मणो विराटनगरमेत्य दक्षिणभागे गोहरणम्— | ४५ |
| ३१— | ३५ | गोपैर्द्रुततरमागत्य विराटं प्रति सुशर्मणा गोहरणनिवेदनम्-विराटादिभिर्युद्धाय निर्गमोद्यमः-विराटाज्ञया शतानीकेन दत्तं रथादि स्वीकृतवतां पाण्डवानां गोप्रत्याहरणाय त्रिगर्तान्प्रत्यभियानम्— | ४७ |
| ३२— | ३० | विराटसुशर्मसैन्ययोर्युद्धवर्णनम्-शतानीकादिनिहतानां परिसङ्ख्यानम्-विराटसुशर्मणोर्युद्धम्— | ४८ |
| ३३— | ६१ | भ्रातृसहितेन सुशर्मणा पराजित्य विराटे गृहीते पलायमानेषु मत्स्येषु युधिष्ठिराज्ञया युद्धार्थं भीमस्य सुशर्मसमीपगमनम्-युद्धप्रवृत्तं भीमं दृष्ट्वा परावृत्ते विराटसैन्ये युधिष्ठिरादीनां युद्धम्--युद्धप्रसङ्गे पलायमानं, भीमवाक्यात् परावृत्य युध्यमानं सुशर्माणं गृहीतवति भीमे त्रिगर्तानां पलायनम्-बद्धं सुशर्माणं युधिष्ठिरसमीपमानीय तदाज्ञया तं भीमो मुमोच— | ५० |
| ३४— | १९ | तां रात्रिं सङ्ग्रामभूमावेव निवसता विराटेन पाण्डवानां वित्तादिना पूजनम्-पाण्डवैस्तत्प्रतिनन्दनम्-युधिष्ठिरवचनान्मत्स्येन प्रेरितैर्दूतैः सूर्योदये विराटनगरे राज्ञो जयघोषणा- | ५१ |
| ३५— | २२ | दुर्योधनेन भीष्मद्रोणादिभिः सह विराटनगरमेत्योत्तरभागे गोपान् विद्राव्य गवां हरणम्-गोपाध्यक्षेण राजसदनं प्रविश्यान्तःपुरस्थितमुत्तरं प्रति कौरवैर्गोहरणस्य निवेदनपूर्वकं युद्धाय प्रोत्साहनम्— | ५२ |
| ३६— | २४ | गोपवाक्यश्रवणानन्तरमन्तःपुरे कुशलसारथ्यभावकथनयुक्तामुत्तरस्य शौर्योक्तिं श्रुतवतोऽर्जुनस्य द्रौपदीं प्रत्युक्तिः—द्रौपद्या बृहन्नलायाः सारथ्यकर्मनिपुणत्वे कथिते भगिनीं प्रत्युत्तरवाक्यम्— | ५३ |
| ३७— | ३४ | भ्रातृवाक्येन नर्तनागारमागतयोत्तरयाऽतिनिर्बन्धेन भ्रातृसारथ्यकरणे प्रार्थिताया बृहन्नलाया उत्तरसमीपगमनम्-उत्तरप्रार्थनया बृहन्नलया सारथ्येऽङ्गीकृते युद्धार्थं निर्गच्छत्युत्तरे कुरुवस्त्रानयनार्थं प्रेरयन्ती उत्तरादिकन्याः प्रत्युदीर्यार्जुनेनोत्तररथहयानां प्रेरणम्— | ५५ |
| ३८— | ५१ | कुरुसैन्यदर्शनेन भीतमुत्तरं | |

| अ० श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|
| | 'नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुम्' इत्याद्युक्तवन्तं प्रत्यर्जुनस्योत्तेजनवाक्यम्-'कामं हरन्तु मत्स्यानाम्' इत्याद्युक्त्वा रथात्प्रस्कन्द्योत्तरस्य पलायनम्—तदनु पार्थेन रथादवप्लुत्यास्य केशेषु ग्रहणम्-तदवलोकयतां कुरूणामर्जुनविषये विमर्शः—अर्जुनेनाहं कुरुभिर्योत्स्ये त्वं केवलं मदीयं सारथ्यं कुर्वित्यादिवचनैः समाश्वास्योत्तरस्य रथे आरोपणम्— | ५६ |
| ३९—१७ | रथारूढार्जुनदर्शनेन भीष्मादिषु चिन्तयत्सूत्पातदर्शनोत्तरं वदतो द्रोणस्य युद्धार्थं क्लीबवेषेणागतोऽयमर्जुन एवेति निश्चयः—दुर्योधनेनायमर्जुनश्चेन्मम कार्यसिद्धिरेवेति द्रोणं निर्भर्त्सयन्तं कर्णं प्रति कथनम्— | ५७ |
| ४०—८ | शमीवृक्षसमीपमुपागत्योत्तरं प्रत्यर्जुनेन शमीवृक्षाद्धनुरवरोपणचोदना— | ५८ |
| ४१—१२ | शम्यां शवनिधानश्रवणेन तामारोढुं विचारयत उत्तरस्यार्जुनोपदेशाच्छमीमारुह्य धनुरवरोपणे प्रवृत्तिः— | ५८ |
| ४२—१८ | पाण्डवकार्मुकाद्यवलोकनविस्मितस्योत्तरस्यार्जुनं प्रति तत्तदायुधवर्णनपूर्वकं तत्तत्स्वामिविषयकः प्रश्नः— | ६० |
| ४३—२३ | अर्जुनेनोत्तरं प्रति युधिष्ठिराद्यायुधानां पृथक् पृथङ्निर्देशेन तत्तत्स्वामिकत्वकथनम्— | ६१ |
| ४४—२५ | अर्जुनेनोत्तरं प्रति स्वस्यार्जुनत्वकथनपूर्वकं कङ्कादीनां युधिष्ठिरादित्वकथनम्-तत्प्रत्ययार्थं स्वकीयनामदशककथनं तन्निर्वचनं च— | ६२ |
| ४५—४१ | बृहन्नलायामर्जुनत्वविज्ञानेन शीघ्रं गाण्डीवाद्यायुधानां रथे निधानम्-पार्थेन तदाश्वासनम्-अर्जुनेनोत्तरं प्रति स्वस्य क्लैब्यत्वप्राप्तिहेतुकथनम्—अस्त्राणामभिध्यानम्—अस्त्रदेवतासन्निधानम्—प्रणिपातपूर्वकं तासां युद्धे मनसि सन्निधानप्रार्थना— | ६४ |
| ४६—३३ | उत्तरेण सह युद्धार्थं प्रस्थितेनार्जुनेन स्मृतमात्रस्य वानरलक्षणध्वजस्य रथे प्रादुर्भावः-स्वशङ्खनिनादश्रवणसंत्रस्तमुत्तरं समाश्वास्य पुनरर्जुनेन शङ्खाध्मापनम्-रथनिर्घोषश्रवणेन निमित्तदर्शनेन चार्जुनागमनं शंसता द्रोणाचार्येण सेनां व्यूह्यावस्थानविधानम्— | ६५ |
| ४७—३४ | द्रोणवचनादर्जुनस्यार्जुनत्वावधारणेन विषादात्तूष्णींभूतेषु स्वीयेषु दुर्योधनेन तेषां विभ्रान्तमनसां सैनिकानां प्रोत्साहनम्-कर्णेन द्रोणोपालम्भः— | ६७ |
| ४८—२३ | कर्णेनात्मश्लाघापूर्वकं सर्वेषां निरस्कारोऽर्जुनपराभवप्रतिज्ञानं च— | ६८ |
| ४९—२३ | कृपेणार्जुनचरित्रप्रशंसनपूर्वकं कर्णगर्हणम्—तथा स्वेषु एकैकेनार्जुनस्य दुर्जयत्वकथनपूर्वकं सम्भूयाभियाननिर्धारणम्— | ६९ |
| ५०—२८ | द्रोणनिन्दाश्रवणेन क्रुद्धेनाश्वत्थाम्ना कर्णदुर्योधनयोररुन्तुदेन वचसाऽधिक्षेपः— | ७१ |
| ५१—२२ | कर्णकृतद्रोणकृपाधिक्षेपसङ्क्रुद्धस्याश्वत्थाम्नो भीष्मेण द्रोणादिप्रशंसनपूर्वकं परिसान्त्वनम्—कर्णदुर्योधनाभ्यां द्रोणादिक्षमापनम्— | ७२ |
| ५२—२३ | भीष्मेण दुर्योधनं प्रति पाण्डवानामज्ञातकालवासश्चान्द्रमानेन पूर्ण इति कथनम्-पाण्डवपराक्रमप्रशंसनपूर्वकं सङ्ग्रामराज्यप्रदानयोरन्यतरानुष्ठाननिर्णयचोदना-राज्यदानं प्रतिषेधन्तं | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दुर्योधनं गोभिः सह नगरं प्रस्थाप्य व्यूहावस्थानम्— | ७४ |
| ५३ | २५ | व्यूहसमीपागतस्यार्जुनस्य ध्वजादिदर्शनोत्तरमयमर्जुन एवेति निश्चिन्वतो द्रोणस्य बाणद्वाराऽर्जुनकृतस्वपादवंदनादिकथनम्—दुर्योधनरहितं कुरुसैन्यं दृष्टवतोऽर्जुनस्याज्ञयोत्तरोऽर्जुनरथं दुर्योधनं प्रति प्रस्थापयामास—अर्जुनाभिप्रायं विदित्वा तत्पार्ष्णिग्रहणविधानम्—तत्र गत्वाऽर्जुनेन सैनिकेषु शरैस्ताडितेषु गवां विराटनगराभिमुखं प्रतिनिवर्तनम्— | ७५ |
| ५४ | ३६ | दुर्योधनं प्रति प्रयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कुरुवीरेष्वागच्छत्सूत्तरोऽर्जुनवाक्यात् कर्णं प्रति रथं प्रेरयामास—चित्रसेनादिभिर्युध्यमानेनार्जुनेन पराजिते विकर्णेऽपयाते युध्यमानस्य शत्रुन्तपस्यार्जुनकृतो वधः—कुरुसैन्यं घातयतोऽर्जुनेन हतं स्वभ्रातरं श्रुत्वा कर्णोऽर्जुनमभियर्यौ—कर्णार्जुनदर्शनार्थं कुरुष्ववस्थितेष्वर्जुनेन युद्धपराजितस्य कर्णस्यापयानम्— | ७७ |
| ५५ | ६० | कर्णेऽपयाते सत्यागतानां दुर्योधनादीनां सैन्यमाच्छाद्याश्चर्ययुद्धं कुर्वत्यर्जुने सैनिकैस्तत्प्रशंसनम्—द्रोणादिताडनपूर्वकं कौरवसैन्यं भङ्क्त्वाऽर्जुनेन कृपसैन्यं प्रति रथं नेतुमुत्तरं प्रति प्रेरणा—अर्जुन उत्तरं प्रति द्रोणप्रदक्षिणकरणमादिश्याश्वत्थामादींस्तत्तद्ध्वजादिचिह्नदर्शनपूर्वकमभिज्ञापयांचक्रे— | ८० |
| ५६ | १९ | अर्जुनस्य कुरुभिः सह युद्धं द्रष्टुमाकाशे देवर्षिसिद्धानां विमानैः सम्प्राप्तिः— | ८१ |
| ५७ | ४२ | अर्जुनाज्ञया कृपं प्रति रथे नीते उभावपि शङ्खं दध्मतुः—कृपार्जुनयोर्युध्यमानयोरर्जुनेन विरथीकृतं कृपं योद्धारो रणादन्यत्र निन्युः— | |
| ५८ | ७६ | ततो युद्धार्थमागतं द्रोणं प्रत्यर्जुनाज्ञयोत्तरेण रथे नीते द्रोणः शङ्खं वादयति स्म—अर्जुनप्रार्थनं श्रुत्वा पूर्वं द्रोणो बाणांस्तत्याज—द्रोणार्जुनयोर्युध्यमानयोरर्जुनेन द्रोणे पराजितेऽश्वत्थाम्ना सहार्जुने युध्यमाने तदन्तरे द्रोणापयानम्— | ८५ |
| ५९ | २१ | अर्जुनाश्वत्थाम्नोर्युद्धे प्रसक्ते बाणक्षयादश्वत्थाम्नः पराजयः—धनुर्विस्फारयन्तं कर्णं प्रति युद्धायाभिद्रवणं च— | ८६ |
| ६० | २७ | कर्णार्जुनयोराहोपुरुषिकापूर्वको युद्धारंभः—अर्जुनेनाश्वादिहननपूर्वकं बाणेनोरसि विद्धस्य कर्णस्य पलायनम्— | ८७ |
| ६१ | ४६ | भीष्मसैन्यं प्रति रथवाहनार्थं प्रेरितस्योत्तरस्यासामर्थ्यसूचकं वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनः पुनस्तमाश्वास्य रथवाहनार्थं प्रेरितवान्—उत्तरेण भीष्मसैन्यं प्रति रथे नीते वारयतो भीष्मस्यार्जुनो ध्वजं चिच्छेद—दुःशासनादीनामर्जुनेन सह युध्यमानानामर्जुनबाणाघातेन पीडितस्य दुःशासनस्य पलायनम्—अर्जुनशरविद्धे विकर्णे रथात्पतिते युध्यमानयोर्विविंशतिदुःसहयोरर्जुनेनाश्वेषु हतेषु तयोः पलायनम्— | ८८ |
| ६२ | २२ | संहत्य युध्यतः कुरुवीरान् रणे निपात्यार्जुनेन लोहितनदीप्रवर्तनम्— | ८९ |
| ६३ | १४ | पुनर्दुर्योधनादिष्वर्जुनेन सङ्गतेषु मिलितानां कृपादीनां युद्धे प्रसक्तेऽर्जुनेनैन्द्रास्त्रेण रथिषु मोहि- | |

| अ० श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|
| | तेषु सत्सु कौरवसैन्यस्य पला- यनम्— | ९० |
| ६४—४९ | प्रभग्नबलदर्शनेन युद्धार्थमाग- तस्य भीष्मस्यार्जुनेन सह युद्धम्- भीष्मधनुश्छेदनादि कुर्वन्तम- र्जुनं गन्धर्वादयस्तुष्टुवुः-अर्जुन- बाणाघातेन पीडितस्य भीष्म- स्य युद्धादपयानम्— | ९२ |
| ६५—१८ | भीष्मापयानानन्तरमागतस्य दुर्योधनस्यार्जुनेन सह युद्धम्- दुर्योधनरक्षार्थं महता जवेन ह- स्तिनमारुह्य युद्धार्थमागतस्य विकर्णस्यार्जुनेन हस्तिनि हते विकर्णस्य पलायनम्-अर्जुनेन पीडिते दुर्योधने युद्धात्पलाय- माने सति तं प्रत्यर्जुनेन भुजा- स्फालनपूर्वकं निर्भर्त्स्य पुनर्यु- द्धायाह्वानम्— | ९३ |
| ६६—३० | अर्जुनवाक्यात्प्रत्यावृत्ते दुर्योधने तद्रक्षणार्थं कर्णभीष्मद्रोणादी- नामपि प्रत्यावृत्तिः-मिलितैः सर्वैः सह युद्धप्रसङ्गेऽर्जुनः स- म्मोहनास्त्रेण भीष्मवर्जं सर्वा- न्मोहयामास-अर्जुनप्रेरितेनोत्त- रेण कौरवाणां वस्त्रेषु हृतेषु यु- द्धान्निर्गमनम्-अर्जुनस्य भीष्मे- ण युद्धप्रसङ्गे भीष्मस्याश्वान् सारथिं च विद्ध्वा रथसङ्घा- न्निर्गत्य स्थितिः-चैतन्यं लब्धव- त्सु कौरवेषु पुनर्युद्धार्थं प्रवृत्त- स्य दुर्योधनस्य भीष्मकृतं नि- वारणम्-युद्धनिवर्तनानुमतिं द- त्वा प्रस्थितेषु कौरवेषु भीष्मा- दीन् प्रत्यर्जुनस्य प्रणामः-तथाऽ- र्जुनेन दुर्योधनस्य किरीटच्छेद- नम्-अर्जुनाज्ञयोत्तरेण रथनिव- र्तनम्— | ९५ |
| ६७—२३ | भीतकुरुसैन्यस्यार्जुनेनाभये द- त्ते तं प्रति तस्याशीर्वादादि- अर्जुनेनोत्तरं प्रति पाण्डवप्रका- शनप्रतिषेधपूर्वकं कौरवजय- स्यात्मकृतत्वख्यापनचोदनम्— उत्तरेणाप्रकाशनमङ्गीकृत्यापर- स्यानङ्गीकारः-शमीमागत्य रथ- स्थितं कपिध्वजं विसर्ज्य पूर्वं रथे स्थापितं विराटीयं सिंहध्वजं स्थापयित्वा शस्त्राणां यथास्था- ननिधानं पूर्ववेषस्योपादानमु- त्तरस्य जयमाख्यातुमग्रे गो- पालानां प्रेषणं स्वयमपराह्णे ग- मनं च— | ९६ |
| ६८—७६ | विराटस्य युधिष्ठिरादिभिः स- ह स्वनगरप्रवेशः पौरैस्तत्सं- माननं च-अन्तःपुरगतेन राज्ञा कुरूनभियातमुत्तरं श्रुत्वा तद्र- क्षणाय योधप्रेषणम्-अत्रान्तरे उत्तरप्रेषितदूतैर्नगरमागत्य त- ज्जिजयसमावेदनम्-ततः प्रहृ- ष्टेन राज्ञा नगरालङ्कारायादि- श्य कुमारानयनाय तूर्याणि राजकुमारादींश्च प्रस्थाप्य कङ्कं प्रति द्यूतप्रवर्तनचोदना-हृष्टेन राज्ञा देवितुमनिच्छतापि क- ङ्केन राज्ञोऽत्यन्ताभिनिवेशं ज्ञा- त्वा द्यूतप्रवर्तनम्—ततो राज्ञा विराटेन 'पश्य मे पुत्रेण कुरवो जिताः' इति स्ववचनमाकर्ण्य बृहन्नलासहायेनेति ब्रुवतो युधि- ष्ठिरस्य मुखे क्रोधादक्षेण ताड- नम्—तेन युधिष्ठिरस्य नासातो रुधिरस्रावः—द्रौपद्या जलपूर्णे हेमपात्रे तद्रुधिरधारणम्—उ- त्तरस्य सभायां प्रवेशः—उत्तर- वाक्येन विराटेन कङ्कस्य क्षमा- पनम्—विरते कङ्कस्य क्षतज- स्रावे बृहन्नलाप्रवेशः—राज्ञः कुमारं प्रति कर्णादिभिः सह यु- द्धप्रकारप्रश्नः— | ९९ |
| ६९—१९ | उत्तरेण कौरवजयस्य देवपुत्र- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कृतत्वमुक्त्वा तत्पराक्रमं चोपवर्ण्य तं दिदृक्षते राज्ञे स सम्प्रत्यन्तर्हितो द्वित्रैरहोभिः प्रादुर्भविष्यतीत्यभिधानम्—पार्थेनोत्तरायै रणाहृतवस्त्रभूषणादिसमर्पणम्—उत्तरेण सह पाण्डवैरग्रेतनकर्तव्यमन्त्रणम् | १०० |
| | | **( ५ ) वैवाहिकपर्व** | १००–१०४ |
| ७०—२८ | | कुरुविजयदिनात्तृतीये दिवसे प्रभाते युधिष्ठिरादिभी राजलक्षणानि धृत्वा सदोगतनृपासनेषूपवेशनम्—ततः सभां प्रविष्टेन विराटेन राज्ञा तांस्तथावस्थितान्वीक्ष्य कङ्कबुध्या सरोपं युधिष्ठिरस्य राजासनोपवेशनाधिक्षेपः—अर्जुनेन विराटं प्रति युधिष्ठिरस्य याथातथ्यकथनेनेन्द्रासनारोहणार्हत्वमभिधाय राजासनारोहणार्हत्वप्रतिपादनम्— | १०१ |
| ७१— | ३६ | भीमादीन्पृच्छते विराटायार्जुनेन बल्लवादीन् भीमत्वादिना निरूप्य सर्वेषां तद्गृहे सुखेन निवासाभिधानम्—पुनर्हृष्टेनोत्तरेणासाधारणाकारेण युधिष्ठिरादीन्निर्दिश्यार्जुनपराक्रमवर्णनम्—उत्तरेण सह सम्मन्त्र्य राज्ञा सकोशदण्डराज्यनिवेदनेन युधिष्ठिरं प्रसाद्य मुदा सर्वाश्चाभिनन्द्योत्तराया अर्जुनभार्यात्वेन प्रतिग्रहप्रार्थनम्—स्नुषात्वेनार्जुनेन तस्याः स्वीकारः— | १०३ |
| ७२—४० | | राज्ञा पृष्टेनार्जुनेनोत्तराया भार्यात्वेनापरिग्रहे लोकान्यथाशङ्कापाकरणरूपहेत्वभिधानम्—विराटेनार्जुनप्रशंसनपूर्वकमभिमन्यवे कन्यादानाङ्गीकारः—युधिष्ठिरेण तदनुज्ञानम्—विराटेन युधिष्ठिरेण च श्रीकृष्णाय सुहृद्भ्यश्च दूतप्रेषणम्—पाण्डवानामुपप्लव्यनगरगमनम्—तत्र सर्वेषां पाण्डवपक्षीयाणां राज्ञां समागमनमभिमन्युना सहोत्तराया विवाहोत्सवश्च— | १०४ |
| | | श्रवणमहिमा— | १०५ |
| | | भविष्यत्पर्वसूचनपूर्वकं विराटपर्वसमाप्तिः— | १०६ |


समाप्तेयं विराटपर्वविषयानुक्रमणिका ।

॥ शुभं भवतु ॥

ॐ

# विराटपर्व

४

ॐ

# ॥ महाभारतम् ॥

## विराटपर्व ।

### –४–

### पाण्डवप्रवेशपर्व १

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १**

जनमेजय उवाच ।
कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः ।
अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥ २
पतिव्रता महाभागा सततं ब्रह्मवादिनी ।
द्रौपदी च कथं ब्रह्मन्नज्ञाता दुःखिताऽवसत् ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
यथा विराटनगरे तव पूर्वपितामहाः ।
अज्ञातवासमुषितास्तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ४
तथा स तु वराँल्लब्ध्वा धर्मो धर्मभृतां वरः ।
गत्वाऽऽश्रमं ब्राह्मणेभ्य आचख्यौ सर्वमेव तत् ५
कथयित्वा तु तत् सर्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः ।
अरणीसहितं तस्मै ब्राह्मणाय न्यवेदयत् ॥ ६
ततो युधिष्ठिरो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
संनिवर्त्यानुजान् सर्वानिति होवाच भारत ॥ ७

#### नीलकण्ठी टीका–

श्रीगणेशाय नमः । श्रीमल्लारये नमः ।

**श्रीमद्गोपालमानम्य प्राचीमाचार्यवर्त्मना ।**
**विराटपर्वप्रद्योती भावदीपो वितन्यते ॥ १ ॥**

तत्र पूर्वस्मिन् पर्वणि ' दिष्ट्या पंचसु रक्तोऽसि दिष्ट्या ते षट्पदी जिता । द्वे पूर्वे मध्यमे द्वे च द्वे चान्त्ये साम्परायिके 'इति ' शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' इति श्रुतिप्रसिद्धेष्वात्मदर्शनसाधनेषु शमादिषु रक्तः, षडूर्मिलक्षणां षट्पदीं जातमात्रस्याशनापिपासे प्ररूढस्य शोकमोहौ वृद्धस्य जरामृत्यू इति लोके 'योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति' इति वेदे च प्रसिद्धां जयतीत्युक्तं तां जितवता त्वव्यक्तलिङ्गेन स्थेयमात्यान्तिक्यां कृतकृत्यतायां तु व्यक्तलिङ्गेनापि भाव्यमित्येतत् पाण्डवाचरणप्रदर्शनेन दर्शयितुं विराटपर्वारभते । तत्र 'वर्षं त्रयोदशमिदं मत्प्रसादात् कुरूद्वहाः । विराटनगरे गूढा अविज्ञाताश्चरिष्यथ ' इति प्राक्कथितधर्मवाक्यार्थमनुवदन् जनमेजय उवाच–कथमिति । पूर्वः पिता परीक्षित् । तस्य पितामहाः अज्ञातवासं यथा स्यात् तथा कथमुषिताः वासं कृतवन्तः । समूलघातं न्यवधीदितिवत् कषादित्वाद्वसेरनुप्रयोगः । वासमिति णमुलन्तम् ॥ २ ॥ ब्रह्मवादिनी श्रीकृष्णकीर्तनशीला ॥ ३ ॥ अरणीसहितमरण्योर्मिथुनम् । अरणीसहितं मन्थामिति पाठे मन्थोऽग्निनिर्मथनदण्डस्तमरणीभ्यां सहितं ब्राह्मणाय न्यवेदयदित्यर्थः ॥ ६ ॥ संनिवर्त्य एकत्र आनीय । अत्र वर्ततिर्गत्यर्थो 'न च पुनरावर्तते 'इत्यादिप्रयोगदर्शनात् । सन्निकृष्येतिपाठेऽपि स एवार्थः ॥ ७ ॥

द्वादशेमानि वर्षाणि राज्यविप्रोषिता वयम् ।
त्रयोदशोऽयं सम्प्राप्तः कृच्छ्रात् परमदुर्वसः ॥ ८
स साधु कौन्तेय इतो वासमर्जुन रोचय ।
संवत्सरमिमं यत्र वसेमाविदिताः परैः ॥ ९

अर्जुन उवाच ।

तस्यैव वरदानेन धर्मस्य मनुजाधिप ।
अज्ञाता विचरिष्यामो नराणां नात्र संशयः १०
तत्र वासाय राष्ट्राणि कीर्तयिष्यामि कानिचित्
रमणीयानि गुप्तानि तेषां किञ्चित् स्म रोचय ११
सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून् ।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः ॥ १२
दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः ।
कुन्तिराष्ट्रं च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥ १३
एतेषां कतमो राजन् निवासस्तव रोचते ।
यत्र वत्स्यामहे राजन् संवत्सरमिमं वयम् ॥ १४

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतमेतन्महाबाहो यथा स भगवान् प्रभुः ।
अब्रवीत् सर्वभूतेशस्तत् तथा न तदन्यथा ॥ १५
अवश्यं त्वेव वासार्थं रमणीयं शिवं सुखम् ।
सम्मन्त्र्य सहितैः सर्वैर्वस्तव्यमकुतोभयैः ॥ १६
मत्स्यो विराटो बलवानभिरक्तोऽथ पाण्डवान् ।
धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सततं प्रियः ॥ १७
विराटनगरे तात संवत्सरमिमं वयम् ।
कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत ॥ १८
यानि यानि च कर्माणि तस्य वक्ष्यामहे वयम् ।
आसाद्य मत्स्यं तत् कर्म ब्रूत कुरुनन्दनाः ॥१९

अर्जुन उवाच ।

नरदेव कथं तस्य राष्ट्रे कर्म करिष्यसि ।
विराटनगरे साधो रंस्यसे केन कर्मणा ॥ २०
मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यविक्रमः ।
राजंस्त्वमापदाऽऽक्लिष्टः किं करिष्यसि पाण्डव २१
न दुःखमुचितं किञ्चिद्राजा वेद यथा जनः ।
स इमामापदं प्राप्य कथं घोरां तरिष्यसि ॥ २२

युधिष्ठिर उवाच ।

शृणुध्वं यत् करिष्यामि कर्म वै कुरुनन्दनाः ।
विराटमनुसम्प्राप्य राजानं पुरुषर्षभाः ॥ २३
सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः ।
कङ्को नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः +प्रियदेवनः२४
वैदूर्यान् काञ्चनान् दान्तान् फलैर्ज्योतीरसैः सह
कृष्णाक्षाँल्लोहिताक्षांश्च निर्वर्त्स्यामि मनोरमान्॥
विराटराजं रमयन् सामात्यं सहबान्धवम् ।
न च मां वेत्स्यते कश्चित् तोषयिष्ये च तं नृपम् २६
आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा ।
इति वक्ष्यामि राजानं यदि मां सोऽनुयोक्ष्यते† ॥
इत्येतद्वो मयाऽऽख्यातं विहरिष्याम्यहं यथा ।
वृकोदर विराटे त्वं रंस्यसे केन *हेतुना ॥ २८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादिमन्त्रणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अयं संवत्सरः । संवत्सरमिमामिति वाक्यशेषात् ॥ ८ ॥ वत्स्याम इति पाठ अविदिता इति छेदः ॥ ९ ॥ नराणामज्ञाता इति सम्बन्धः ॥ १० ॥ प्रभुर्धर्मः । ' यद्यपि स्वेन रूपेण चरिष्यथ महीमिमाम् । न वो विज्ञा(स्य)यते कश्चित्रिषु लोकेषु कश्चन' इत्यब्रवीत् ॥ १५ ॥ यद्यप्येवं तथापि कंचित्प्रच्छन्नतया वस्तव्यमेवेत्याह-अवश्यं त्वेवेति ॥१६॥ वक्ष्यामहे निर्वोढुं शक्ष्यामह इति वहेरिदं रूपम् । प्रभूत प्रत्येकमिति शेषः ॥ १९ ॥ सभास्तारः सभ्यः । ' सभासदः सभास्ताराः 'इत्यमरः । कङ्को नामतः । 'कङ्कश्छद्मद्विजे ख्यातो लोहपृष्ठकृतान्तयोः' इति विश्वकोशात् । स्वस्य कृतान्तसूनुत्वेन 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेस्तदनन्यत्वात् तन्नाम्नो धारणे मिथ्यावादित्वं न भविष्यतीति भावः । मताक्षो मृहदश्वाज्ज्ञाताक्षतत्त्वः । प्रियदेवनः क्रीडाप्रियः ॥ २४ ॥ दान्तान् गजदन्तमयान् । दन्तः पर्वतसानु तत्सदृशान् वा शारीन् निर्वर्त्स्यामि चालयिष्यामि । 'दन्तः सानुनि कथ्यते' इति विश्वः । तानेव चतुर्वर्णानाह-वैदूर्यान् हरितमणिमयान् नीलान्, काञ्चनान् सौवर्णान् पीतान्, ज्योतींषि च रसाश्च ज्योतीरसास्तैः सह । ज्योतिःशब्देनात्र लोहितं लक्ष्यते । 'यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपम्' इति श्रुतेः । ज्योतीरूपा लोहिताः । रसः पारदस्तद्रूपाः श्वेताः । तैरुभयैः सह चतुर्वर्णसम्पत्तिः । तथा फलैः शारीस्थापनार्थानि कोष्ठयुक्तानि काष्ठादिमयानि फलकानि तैः सह । तेषां निर्वर्तने करणमाह-कृष्णाक्षान् कृष्णा अक्षाः पाशाः येषां चालनार्थमिति कृष्णाक्षास्तान् शारीनेव । तथा लोहिताक्षानित्यपि ॥ २५ ॥ युधिष्ठिराख्यस्य शरीरस्य यथा प्राण उत्थापकस्तद्वच्चिदात्मोऽपीति प्राणसाम्येन युधिष्ठिरात्मैव विवक्षित इति भावः । अनुयोक्ष्यते प्रश्नं करिष्यति ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥१ ॥ + प्रियदेवि-घ. † प्रक्ष्यतीत्यर्थः ।
* कर्मणा-घ.

## २

भीमसेन उवाच ।

पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं बल्लवो नाम भारत ।
उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः ॥ १
सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे ।
कृतपूर्वाणि यान्यस्य व्यञ्जनानि सुशिक्षितैः ॥ २
तान्यप्यभिभविष्यामि प्रीतिं सञ्जनयन्नहम् ।
आहरिष्यामि दारूणां निचयान् महतोऽपि च ॥ ३
यत् प्रेक्ष्य विपुलं कर्म राजा संयोक्ष्यते स माम् ।
अमानुषाणि कुर्वाणस्तानि कर्माणि भारत ॥
राज्ञस्तस्य परे प्रेष्या मंस्यन्ते मां यथा नृपम् ।
भक्ष्यान्नरसपानानां भविष्यामि तथेश्वरः ॥ ५
द्विपा वा बलिनो राजन् वृषभा वा महाबलाः ।
विनिग्राह्या यदि मया निग्रहीष्यामि तानपि ॥ ६
ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः ।
तानहं हि नियोत्स्यामि रतिं तस्य विवर्धयन् ॥ ७
न त्वेतान् युध्यमानान् वै हनिष्यामि कथञ्चन ।
तथैतान् पातयिष्यामि यथा यास्यन्ति न क्षयम् ॥ ८
आरालिको गोविकर्ता सूपकर्ता नियोधकः ।
आसं युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः ॥ ९
आत्मानमात्मना रक्षंश्चरिष्यामि विशाम्पते ।
इत्येतत् प्रतिजानामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।

यमग्निर्ब्राह्मणो भूत्वा समागच्छन्नृणां वरम् ।
दिधक्षुः खाण्डवं दावं दाशार्हसहितं पुरा ॥ ११
महाबलं महाबाहुमजितं कुरुनन्दनम् ।
सोऽयं किं कर्म कौन्तेयः करिष्यति धनञ्जयः ॥ १२
योऽयमासाद्य तं दावं तर्पयामास पावकम् ।
विजित्यैकरथेनेन्द्रं हत्वा पन्नगराक्षसान् ॥ १३
वासुकेः सर्पराजस्य स्वसारं हृतवांश्च यः ।
श्रेष्ठो यः प्रतियोधानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति ॥ १४
सूर्यः प्रतपतां श्रेष्ठो द्विपदां ब्राह्मणो वरः ।
आशीविषश्च सर्पाणामग्निस्तेजस्विनां वरः ॥ १५
आयुधानां वरं वज्रं ककुद्मी च गवां वरः ।
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठः पर्जन्यो वर्षतां वरः ॥ १६
धृतराष्ट्रश्च नागानां हस्तिष्वैरावणो वरः ।
पुत्रः प्रियाणामधिको भार्या च सुहृदां वरा ॥ १७
यथैतानि विशिष्टानि जात्यां जात्यां वृकोदर ।
एवं युवा गुडाकेशः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १८
सोऽयमिन्द्रादनवरो वासुदेवान्महाद्युतिः ।
गाण्डीवधन्वा बीभत्सुः श्वेताश्वः किं करिष्यति ॥ १९
उषित्वा पञ्च वर्षाणि सहस्राक्षस्य वेश्मनि ।
अस्त्रयोगं समासाद्य स्ववीर्यान्मानुषाद्भुतम् ।
दिव्यान्यस्त्राणि चाप्तानि देवरूपेण भास्वता ॥ २०
यं मन्ये द्वादशं रुद्रमादित्यानां त्रयोदशम् ।
वसूनां नवमं मन्ये ग्रहाणां दशमं तथा ॥ २१
यस्य बाहू समौ दीर्घौ ज्याघातकठिनत्वचौ ।
दक्षिणे चैव सव्ये च गवामिव वहः कृतः ॥ २२
हिमवानिव शैलानां समुद्रः सरितामिव ।
त्रिदशानां यथा शक्रो वसूनामिव हव्यवाट् ॥ २३
मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिव ।
वरः सन्नह्यमानानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति ॥ २४

---

२

**पौरोगव इति ।** पुरः पुरस्तात् गावो रश्मयो यस्य स पुरोगुर्वायुः । पिण्डोत्पत्तौ हि प्रथमं रजोरेतसोः कल्के वायुरश्मिभूतः प्राण आविर्भवति । पश्चादिन्द्रियान्तराणीति शास्त्रप्रसिद्धम् । तस्य पुत्रः पौरोगवः । लोके तु पौरोगवो महानसाध्यक्षः, बल्लवः सूपकारः, एतदेव ममान्वर्थं नाम ॥ १ ॥ ईश्वरो यथेष्टं विनियोगकर्ताऽन्न एव नृपो यथा तथा प्रियोऽहं लोकानां भविष्यामीत्युक्तम् ॥ ५ ॥ नियोत्स्यामि निर्हीनं यथा स्यात्तथा मारणवर्जं योत्स्यामि ॥ ७ ॥ तदेवाह-न त्विति ॥ ८ ॥ 'आरालिको गोविकर्ता सूपकर्ता नियोधकः' इति । अराला मत्तगजास्तैः सह क्रीडति तान् जयति वा आरालिकः । 'अरालः कुटिले सर्जरसे वै मत्तदन्तिनि •' इति विश्वः । गोविकर्ता गवां महतां बलीवर्दानामपि विकर्ता दमनेन विकृतिजनकः । वृषभान्वा महाबलान्निग्रहीष्यामीत्युपक्रमात् । सूपकर्ता मुद्गादिविकारकर्ता । पक्षे सूतगमुपकर्ता । नियोधको मारणवर्जं मल्लयुद्धकर्ता । पक्षे नितरां योधकः । विषमश्लोकी-कृतस्त्वारालिकः प्रकृतीनां गुणदोषसूचको हस्तिदमको वा । तथा च विक्रमादित्यः-'आरालिकः सूचनको हस्तिनां दमकस्तथा' इति । गोविकर्ता गवां वाचां विकर्ता गद्यपद्यादिभेदानां प्रयोक्तेति । केचित्तु-'आरालिकोऽन्नपाकी स्यात् सूपकर्ता तु शाकहृत् । तैलान्नं पचते यस्तु गोविकर्ता स उच्यते' इत्यप्युदाहरन्ति । तत्र मूलं द्रष्टव्यम् ॥ ९ ॥ वासुकेः स्वसारमुलूपीं हृतवान् सौन्दर्येणेति शेषः ॥ १४ ॥ सर्पाणां सरीसृपाणाम् । आशीविषो दंष्ट्राविषः ॥ १५ ॥ मानुषेष्वद्भुतं मानुषाद्भुतम् ॥ २० ॥ गवां वृषभाणां स्कन्धे इव वहो युगघर्षणजः किणः कृतः । एतस्यैव गोपनं कठिनमिति भावः ॥ २२ ॥ पततां पक्षिणाम् ॥ २४ ॥

अर्जुन उवाच ।

प्रतिज्ञां षण्ढकोऽस्मीति करिष्यामि महीपते ।
ज्याघातौ हि महान्तौ मे संवर्तुं नृप दुष्करौ २५
वलयैश्छादयिष्यामि बाहू ×किणकृताविमौ ।
कर्णयोः प्रतिमुच्याहं कुण्डले ज्वलनप्रभे ॥ २६
पिनद्धकम्बुः पाणिभ्यां तृतीयां प्रकृतिं गतः ।
वेणीकृतशिरा राजन् नाम्ना चैव बृहन्नला ॥ २७
पठन्नाख्यायिकाश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः ।
रमयिष्ये महीपालमन्यांश्चान्तःपुरे जनान् ॥ २८
गीतं नृत्यं विचित्रं च वादित्रं विविधं तथा ।
शिक्षयिष्याम्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः २९
प्रजानां समुदाचारं बहुकर्म कृतं वदन् ।
छादयिष्यामि कौन्तेय माययाऽऽत्मानमात्मना॥
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका ।
उषिताऽस्मीति वक्ष्यामि पृष्टो राज्ञा च पाण्डव
एतेन विधिना छन्नः कृतकेन यथा नलः ।
विहरिष्यामि राजेन्द्र विराटभवने सुखम् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादिमन्त्रणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

वैशम्पायन उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीर-
स्तथाऽर्जुनो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
वाक्यं तथाऽसौ विरराम भूयो
नृपोऽपरं भ्रातरमाबभाषे ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।

किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि ।
कर्म तत् त्वं समाचक्ष्व राज्ये तस्य महीपतेः ।
सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः ॥ २

नकुल उवाच ।

अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम् ।
सर्वथा ज्ञानसम्पन्नः कुशलः परिरक्षणे ॥ ३
ग्रन्थिको नाम नाम्नाऽहं कर्मैतत् सुप्रियं मम ।
कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने ।
प्रियाश्च सततं मेऽश्वाः कुरुराज यथा तव ॥ ४
ये मामामन्त्रयिष्यन्ति विराटनगरे जनाः ।
तेभ्य एवं प्रवक्ष्यामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ ५
पाण्डवेन पुरा तात अश्वेष्वधिकृतः पुरा ।
विराटनगरे छन्नश्चरिष्यामि महीपते ॥ ६

युधिष्ठिर उवाच ।

सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि ।
किं वा त्वं कर्म कुर्वाणः प्रच्छन्नो विहरिष्यसि ७

सहदेव उवाच ।

गोसङ्ख्याता भविष्यामि विराटस्य महीपतेः ।
प्रतिषेद्धा च दोग्धा च सङ्ख्याने कुशलो गवाम्

---

षण्ढकोऽस्मीति । षण्ढो गोपतिः श्रृंगोपालः । तस्य प्रतिकृतिरवतारान्तरं षण्ढकः । कृष्णसखाऽस्मीत्यर्थः । पक्षे क्लीबः । 'षण्ढो वर्षवरे क्लीबे गोपतौ वन्ध्यपूरुषे' इति विश्वः । संवर्तुं पिधातुम् ॥ २५ ॥ पिनद्धाः कम्बवः शंखवलयानि येन स पिनद्धकम्बुः । तृतीयां प्रकृतिं स्त्रीपुंसापेक्षया क्लीबत्वं तृतीयं गतः प्राप्तः । नर इति रलयोर्डलयोश्चाभेदान्नरः, बृहंश्चासौ नरश्चेति नारायणसख आद्यो नर इत्यर्थः । स्त्रीत्वं स्वरूपगोपनार्थम् ॥ २७ ॥ आख्यायिकाः पूर्वराजचरितानि ॥ २८ ॥ समुदाचारं समीचीनमुत्कृष्टतरं महावदान्यत्वादिरूपम् । ताभिः कृतं बहुकर्म च वदन् । मायया कपटक्लीबवेषेण । आत्मानं शरीरमात्मना बुद्ध्या ॥ ३० ॥ परितश्चारयितुं शीलं यस्याः सा परिचारिणी सैव परिचारिका । द्रौपद्या भर्तेति गूढोऽभिसन्धिः । पक्षे परिचारिका सेवाकर्त्री ॥३१॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

× कृतकिणौ-क.

३

इत्येवमिति ॥ १ ॥ परिरक्षणे अश्वानामिति शेषः ॥ ३ ॥ ग्रन्थान्-आयुर्वेदमाथर्वणं च वेत्तीति ग्रन्थिकोऽश्विनोः सुतत्वात् । 'अश्विनौ वै देवानां भिषजावश्विनावध्वर्यू' इति श्रुतेः ॥ ४ ॥ अश्वेषु-नास्ति श्वो येषां ते शूराः समरे तृणीकृतप्राणास्तेषु अधिकृतो मुख्य इति गूढाशयः । पक्षे स्पष्टोऽर्थः ॥ ६ ॥ सङ्ख्याने परीक्षायाम् ॥ ८ ॥

तन्तिपाल इति ख्यातो नाम्नाऽहं विदितस्त्वथ ।
निपुणं च चरिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ९
अहं हि सततं गोषु भवता प्रहितः पुरा ।
तत्र मे कौशलं सर्वमवबुद्धं विशाम्पते ॥ १०
लक्षणं चरितं चापि गवां यच्चापि मङ्गलम् ।
तत् सर्वं मे सुविदितमन्यच्चापि महीपते ॥ ११
वृषभानपि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १२
सोऽहमेवं चरिष्यामि प्रीतिरत्र हि मे सदा ।
न च मां वेत्स्यते कश्चित् तोषयिष्ये च पार्थिवम्

युधिष्ठिर उवाच ।

इयं हि नः प्रिया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा॥१४
केन स्म द्रौपदी कृष्णा कर्मणा विचरिष्यति ।
न हि किञ्चिद्विजानाति कर्म कर्तुं यथा स्त्रियः॥
सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी ।
पतिव्रता महाभागा कथं नु विचरिष्यति ॥ १६
माल्यगन्धानलङ्कारान् वस्त्राणि विविधानि च ।
एतान्येवाभिजानाति यतो जाता हि भामिनी ॥

द्रौपद्युवाच ।

सैरन्ध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत ।
नैवमन्याः स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः॥
साऽहं ब्रुवाणा सैरन्ध्री कुशला केशकर्मणि॥ १८
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका ।
उषिताऽस्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत ॥
†आत्मगुप्ता चरिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि२०
सुदेष्णां प्रत्युपस्थास्ये राजभार्यां यशस्विनीम् ।
सा रक्षिष्यति मां प्राप्तां मा भूत् ते दुःखमीदृशम्

युधिष्ठिर उवाच ।

कल्याणं भाषसे कृष्णे कुले जाताऽसि भामिनि ।
न पापमभिजानासि साध्वी साधुव्रते स्थिता २२
यथा न ¶दुर्हृदः पापा भवन्ति सुखिनः पुनः ।
कुर्यास्तत् त्वं हि कल्याणि लक्षयेयुर्न ते तथा२३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादिमन्त्रणे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

युधिष्ठिर उवाच ।

कर्माण्युक्तानि युष्माभिर्यानि यानि करिष्यथ । | मम चापि यथा बुद्धिरुचिता विधिनिश्चयात्॥ १ •

तन्तिपालस्तन्तिर्बलीवर्दा यस्यां दीर्घस्थूलरज्ज्वां वणिग्भिरल्पैर्दामभिर्बध्यन्ते सा प्रकृतोपयोगिनी । गुढाभिसन्धौ नु तन्तिर्वाक् । 'तस्य वाक्तान्तिर्नामानि दामानि 'इति श्रुतेर्वा-क्पालो युष्मद्वचनार्थानुष्ठातेत्यर्थः ॥ ९ ॥ इयं हीति । माता लक्ष्मीकृत्तिकादिभूमिर्गौर्वा । ' माता गौर्यादिजननी गोब्रह्माण्यादिभूमिषु' इति मेदिनी । स्वसा आम्बिका । पार्वतीवत्पूज्येत्यर्थः । 'एष ते रुद्रभागः सहस्वस्राम्बिकया तं जुषस्व । शरद्वा अस्याम्बिकास्वसा ' इति मन्त्रब्राह्मणदर्शनात् । 'जाया गार्हपत्यः पुत्रोऽन्वाहार्यपचनः' इति तस्या अपि देवतात्वेन संस्तवात् । 'माता सत्यवती भुमिर्धेनुर्ज्येष्ठा स्वसा भवेत्' इत्यप्युदाहरन्ति ॥१४॥ बाला नित्यनूतना ॥ १६॥ यतो यस्मिन् दिने जाता तत आरभ्य माल्यादीन् भोगानेव वेत्ति न क्लेशानित्यर्थः ॥१७॥ सैरन्ध्रीति । सीरं प्रतिसीरान्तःपटः ध्रियतेऽनयाऽस्यै वेति सीरन्ध्रा सैव सैरन्ध्री । स्वार्थे तद्धितः । अन्तःपुरपरिचारिका राजभार्या वा । 'सैरन्ध्री परवेश्मस्था शिल्पकृत्स्ववशा स्त्रियाम । वर्णसङ्करसंभूतस्त्रीमहिल्लिकयोरपि 'इति विश्वः । मतल्लिकयोरिति मेदिनीपाठः । आद्ये महिल्लिका राजदाराः । द्वितीये मतल्लिकाः प्रशस्ताः स्त्रिय इति । दासीपक्षे अरक्षिता इति छेदः । स्ववशा इत्युक्तेः । पक्षे रक्षिता इत्येव । भुजिष्या पालनीया पालयित्री च । भुज पालनाभ्यवहारयोरित्यस्य रूपम् । नैवमन्याः स्त्रियो रूपवतीर्यान्ति प्राप्नुवन्ति पश्यन्तीतरे इत्यर्थः । दासीरिति भावः । पक्षे नैवं प्रकाशे यान्ति सञ्चरन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ द्रौपद्याः परिचारिकेति राहोः शिर इतिवदभेदेऽपि भेदोपचारः । द्रौपदीरूपा युधिष्ठिरस्य परिचारिकेत्यर्थः ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ † आत्मगुप्ता स्वयं गुप्ता । ¶ दुर्हृदो विपक्षाः ।

---

४

कर्माणीति ॥ १ ॥

पुरोहितोऽयमस्माकमग्निहोत्राणि रक्षतु ।
सूदपौरोगवैः सार्द्धं द्रुपदस्य निवेशने ॥ २
इन्द्रसेनमुखाश्चेमे रथानादाय केवलान् ।
यान्तु द्वारवतीं शीघ्रमिति मे वर्तते मतिः ॥ ३
इमाश्च नार्यो द्रौपद्याः सर्वाश्च परिचारिकाः ।
पाञ्चालानेव गच्छन्तु सूदपौरोगवैः सह ॥ ४
सर्वैरपि च वक्तव्यं न प्राज्ञायन्त पाण्डवाः ।
गता ह्यस्मानपाहाय सर्वे द्वैतवनादिति ॥ ५

वैशम्पायन उवाच ।

एवं तेऽन्योन्यमामन्त्र्य कर्माण्युक्त्वा पृथक् पृथक् ।
धौम्यमामन्त्रयामासुः स च तान् मन्त्रमब्रवीत् ॥ ६

धौम्य उवाच ।

विहितं पाण्डवाः सर्वं ब्राह्मणेषु सुहृत्सु च ।
याने प्रहरणे चैव तथैवाग्निषु भारत ॥ ७
त्वया रक्षा विधातव्या कृष्णायाः फाल्गुनेन च ।
विदितं वो यथा सर्वं लोकवृत्तमिदं तव ॥ ८
विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः ।
एष धर्मश्च कामश्च अर्थश्चैव सनातनः ॥ ९
अतोऽहमपि वक्ष्यामि हेतुमत्र निबोधत ।
हन्तेमां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीम्यहम् ॥ १०
यथा राजकुलं प्राप्य सर्वान दोषांस्तरिष्यथ ।
दुर्वसं चैव कौरव्य जानता राजवेश्मनि ॥ ११
अमानितैर्मानितैर्वा अज्ञातैः परिवत्सरम् ।
ततश्चतुर्दशे वर्षे चरिष्यथ यथासुखम् ॥ १२
दृष्टद्वारो लभेद्द्रष्टुं राजस्वेषु न विश्वसेत् ।
तदेवासनमन्विच्छेद्यत्र नाभिपतेत् परः ॥ १३
यो न यानं न पर्यङ्कं न पीठं न गजं रथम् ।
आरोहेत् सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत्
यत्र यत्रैनमासीनं शङ्केरन् दुष्टचारिणः ।
न तत्रोपविशेद्यो वै स राजवसतिं वसेत् ॥ १५
न चानुशिष्याद्राजानमपृच्छन्तं कदाचन ।
तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयेत् ॥ १६
असूयन्ति हि राजानो जनाननृतवादिनः ।
तथैव चावमन्यन्ते मन्त्रिणं वादिनं मृषा ॥ १७
नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन ।
अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये ॥ १८
विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि ।
एवं विचरतो राज्ञि न क्षतिर्जायते क्वचित् ॥ १९
गच्छन्नपि परां भूमिमपृष्टो ह्यनियोजितः ।
जात्यन्ध इव मन्येत मर्यादामनुचिन्तयन् ॥ २०
न हि पुत्रं न नप्तारं न भ्रातरमरिन्दमाः ।
समतिक्रान्तमर्यादं पूजयन्ति नराधिपाः ॥ २१
यत्नाच्चोपचरेदेनमग्निवद्देववत्त्विह ।
अनृतेनोपचीर्णो हि हन्यादेव न संशयः ॥ २२

अग्निहोत्राण्यग्निहोत्रपात्राण्यरणीसहितानि होमसाधनभूता धेनूर्वा ॥ २ ॥ न प्राज्ञायन्तेति यथार्थमेव । रहस्येव तैर्मत्स्यदेशे वस्तव्यमिति मन्त्रितत्वात् ॥ ५ ॥ विहितं शास्त्रोक्तं ब्राह्मणादिषु उपास्यन्तेषु परिचर्यादिकं पाण्डवाः सर्वं जानन्तीति शेषः । याने विजययात्रायां प्रहरणे युद्धे । यद्यप्येवं तथाऽपि किञ्चिद्वक्ष्यामीति भावः ॥ ७ ॥ तदेवाह त्वयेति । त्वया युधिष्ठिरेण । इदं लोकवृत्तं प्राकृतजनशीलमरक्ष्यमाणासु स्त्रीषु साध्वीष्वप्यन्याय्यकल्पनमतः कृष्णा रक्ष्यैवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ विद्वांसोऽपि सुहृद्भिः प्रीत्याऽवश्यं बोधनीया एवेत्याह-विदिते चापीति । एवं सौहार्दप्रदर्शनेन धर्मादयोऽनुसृता भवन्तीति भावः ॥ ९ ॥ हन्तेत्यनुकम्पायां राजवसतिं राजकुले वासं तद्विधिमित्यर्थः ॥ १० ॥ दुर्वसं दुःखेन वस्तुं शक्यम् ॥ ११ ॥ दृष्टद्वारः प्रतीहारद्वारा निवेद्यैव राजानं द्रष्टुमिच्छेन्न त्वननुज्ञात इत्यर्थः । दिष्टेत्यपि पाठः । पाठान्तरे रहस्येषु मन्त्रकार्येषु न विश्वसेत् संमतोऽस्मीति बुद्ध्या तत्र न गच्छेत् । पुत्रादिष्वप्यविश्वस्ता राजानो मन्त्रविप्लवभयात् सद्यो मारयेयुरिति भावः। तदेवेति। परेण सह वैरं मा भूदिति परासनं नान्विच्छेत् ॥ १३ ॥ यानं परकीयमिति शेषः ॥ १४ ॥ दुष्टचारिणो दुराचाराः । यत्र यत्र द्यूतमद्यवेश्यादिस्थानेषु स्वनगरस्थपरकीयचारमण्डले वा आसीनमेनं द्यूतादिप्रियोऽयं परेणादितोऽयमिति शङ्केरंस्तत्र नोपविशेत् राजगामिपैशुन्यभयादित्यर्थः ॥ १५ ॥ नानुशिष्यादिदमित्थं कुर्विति नाज्ञापयेत् । तूष्णीं मौनेन । काले पराक्रमसमये । समभिपूजयेत् स्तुवीत ॥ १६ ॥ स्तुतिरप्यभूतार्था न कर्तव्येत्याह-असूयन्तीति । दूषयन्तीत्यर्थः ॥ १७ ॥ येऽन्तःपुरचरा यांश्च राजा द्वेष्टि ये च राज्ञोऽहिता द्वेष्टारस्तैः सर्वैः सह मैत्रीं न कुर्यात् ॥ १८ ॥ राज्ञि राजसन्निधौ विचरतो विचारपूर्वकं वसतो न क्षतिर्मानहान्यादिर्जायते ॥ १९ ॥ गच्छन्निति। परामुत्कृष्टां भूमिं नित्यं गच्छन् आसनार्थं प्राप्नुवन् राज्ञा अपृष्टोऽसम्भाषितोऽनियोजितः स्वे स्थान उपविशेत्यनाज्ञप्तो जात्यन्ध इव तत्स्थानमपश्यन्तमिवात्मानं मन्येत । यावद्राजा न सम्भाषते नाप्यासनं दिशति तावत्प्रतीक्षेतैवेत्यर्थः ॥ २० ॥ अन्यथा दोषमाह-न हीति ॥ २१ ॥ यत्नादिति । अतिसान्निध्यादग्निरिव राजा दहति । अवज्ञानाद्देव इव सर्वं हरतीत्यर्थः । अनृतेन कूटकार्षापणादिनोपचीर्ण आराधितो हन्यादेव ॥ २२ ॥

यद्यद्भर्ताऽनुयुञ्जीत तत्तदेवानुवर्तयेत् ।
प्रमादमवलेपं च कोपं च परिवर्जयेत् ॥ २३
समर्थनासु सर्वासु हितं च प्रियमेव च ।
संवर्णयेत् तदेवास्य प्रियादपि हितं भवेत् ॥ २४
अनुकूलो भवेच्चास्य सर्वार्थेषु कथासु च ।
अप्रियं चाहितं यत् स्यात्तदस्मै नानुवर्णयेत् २५
नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा सेवेत पण्डितः ।
अप्रमत्तश्च सततं हितं कुर्यात् प्रियं च यत् ॥ २६
नास्यानिष्टानि सेवेत नाहितैः सह संवदेत् ।
स्वस्थानान्न विकम्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥२७
दक्षिणं वाऽथ वामं वा पार्श्वमासीत पण्डितः ।
रक्षिणां ह्यात्तशस्त्राणां स्थानं पश्चाद्विधीयते २८
नित्यं हि प्रतिषिद्धं तु पुरस्तादासनं महत् ।
न च संदर्शने किञ्चित् प्रवृत्तमपि सञ्जयेत् २९
अपि ह्येतद्दरिद्राणां व्यलीकस्थानमुत्तमम् ।
न मृषाऽभिहितं राज्ञां मनुष्येषु प्रकाशयेत् ॥३०
असूयन्ति हि राजानो नराननृतवादिनः ।
तथैव चावमन्यन्ते नरान् पण्डितमानिनः ॥ ३१
शूरोऽस्मीति न दृप्तः स्याद्बुद्धिमानिति वा पुनः ।
प्रियमेवाचरन् राज्ञः प्रियो भवति भोगवान् ३२

ऐश्वर्यं प्राप्य दुष्प्रापं प्रियं प्राप्य च राजतः ।
अप्रमत्तो भवेद्राज्ञः प्रियेषु च हितेषु च ॥ ३३
यस्य कोपो महाबाधः प्रसादश्च महाफलः ।
कस्तस्य मनसाऽपीच्छेदनर्थं प्राज्ञसंमतः ॥ ३४
न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत् ।
सदा वातं च वाचं च ष्ठीवनं चाचरेच्छनैः ३५
हास्यवस्तुषु चान्यस्य वर्तमानेषु केषुचित् ।
नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्धसेत् ॥ ३६
न चातिधैर्येण चरेद्गुरुतां हि व्रजेत् ततः ।
स्मितं तु मृदुपूर्वेण दर्शयेत प्रसादजम् ॥ ३७
लाभे न हर्षयेद्यस्तु न व्यथेद्योऽवमानितः ।
असंमूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत् ॥ ३८
राजानं राजपुत्रं वा संवर्णयति यः सदा ।
अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठते प्रियः ३९
प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतस्त्वकारणैः ।
न निर्वदति राजानं लभते संपदं पुनः ॥ ४०
प्रत्यक्षं च परोक्षं च गुणवादी विचक्षणः ।
उपजीवी भवेद्राज्ञो विषये योऽपि वा भवेत् ॥४१
अमात्यो हि बलाद्भोक्तुं राजानं प्रार्थयेत यः ।
न स तिष्ठेच्चिरं स्थानं गच्छेच्च प्राणसंशयम् ॥ ४२

---

भर्ता राजा अनुयुञ्जीत आज्ञापयेत पृच्छेद्वा । अनुवर्तयेत् कुर्यात् वदेद्वा । प्रमादमनवधानताम् । अवलेपं शौर्यादिगर्वम् ॥ २३ ॥ समर्थनासु कार्याकार्यपरीक्षासु हितं परिणामसुखं प्रियं श्रुतिसुखं च वदेत् । उभयोः समुच्चयासंभवे प्रियादपि हितं भवेत् प्रियं त्यक्त्वापि यद्धितं भवेत्तदेव वदेन्न तु हितविरोधि प्रियं वदेदित्यर्थः ॥ २४ ॥ अस्य सर्वार्थेषु सर्वेष्वर्थसाधनेषु अनुकूलो यत्नवान् भवेत् न तु प्रातिकूल्यमालस्यं वा कुर्यादित्यर्थः ॥ २५ ॥ पण्डितः परिहासकः । 'पण्डितः सिह्लके कवौ' इति विश्वः । 'खण्डितः' इति पाठे विच्छिद्य न सेवेत किं त्वविच्छेदेनैव सेवेतेत्यर्थः । अप्रमत्तोऽवहितः ॥ २६ ॥ स्वस्थानात् राजदत्तान्न विकम्पेत न चलेत् ॥ २७ ॥ पण्डितो विद्यावान् राजानं कथाभी रमयन् पार्श्वे तिष्ठेत् । रक्षिणां राजगोप्तॄणां तु स्थानं पृष्ठतः ॥ २८ ॥ शूरेण पण्डितेन वा पुरस्तात् आसनमुपवेशनं न कर्तव्यमित्यर्थः । राज्ञां सन्दर्शने समक्षं प्रवृत्तमपि भक्तवेतनादिदानमहंपूर्विकयानाकारितः सन् न सञ्जयेत् स्वीकुर्यात् ॥ २९ ॥ एतत्तु धार्ष्ट्यं दरिद्राणामपि व्यलीकस्थानमप्रियपदं किमुत राज्ञामिति भावः । उत्तमं परमं नेति राज्ञोक्तिमनृतं बहिर्न प्रकाशयेत् ॥ ३० ॥ हि यस्मात् अनृतवादिनो नृपान् हि यतोऽन्ये राजानोऽसूयन्ति दोषवत्त्वेन कीर्तयन्ति । तस्मात् स्वामिनोऽकीर्तिकरं न वदेदित्यर्थः । अवमन्यन्ते राजान इति शेषः ॥ ३१ ॥ प्रियो भोगवांश्च भवतीति सम्बन्धः ॥ ३२ ॥ न चेति । क्रोधचापलयोः सूचकमोष्ठादीनां समाक्षेपं प्रचालनं न कुर्यादित्यर्थः । वातं मुखजमधस्तनं वा शनैरितरणाज्ञातं यथा भवेत्तथा कुर्यादित्यर्थः ॥ ३५ ॥ हास्येति । अन्यस्य राजसेवकस्य हास्यवस्तुषु हास्यास्पदेष्वयथास्थितेषु उष्णीषादिषु वर्तमानेषु निमित्तेषु तदीयवैकल्येनातिगाढं न प्रहृष्येत् नापि हसेत् । तावतैव राजान एनं क्षुद्रं मन्यन्त इति भावः । न चैवंभूते निमित्ते सति धैर्येण काष्ठवत् स्थेयमित्याह नातीति ॥ ३६ ॥ गुरुतां जडतां किमप्ययं न जानातीति वदेयुरिति भावः । अत एव स्मितं मृदुपूर्वं किंचिद्दर्शयेदेव ॥ ३७ ॥ न हर्षयेत् हृष्येत् । असंमूढः सेवायामेकाग्रः ॥ ३८ ॥ राजा तदाश्रिताश्च स्तोतव्या एवेत्याह—राजानमिति । संवर्तयतीति पाठेऽनुसरति । तिष्ठते प्रकाशते ॥ ३९ ॥ न निर्वदति न निन्दति । दण्डितोऽप्यमात्यः पुनरभ्युदयकामो राजानं न निन्देदित्यर्थः ॥ ४० ॥ यो राज्ञो विषये भवेत् देशे वसेत् यो वा राज्ञ उपजीवी स राज्ञो गुणवादी स्यादिति सम्बन्धः ॥ ४१ ॥ बलाद्धठात् भोक्तुं कुटिलीकर्तुं येन केनचिद्व्याजेन लोकान् दण्डयेति शिक्षयन् यः प्रार्थयेत् स राज्ञः प्रियोऽपि बहुजनविरोधाच्चिरं स्थानं पदं न

श्रेयः सदाऽऽत्मनो दृष्ट्वा परं राज्ञा न संवदेत् ।
विशेषयेच्च राजानं योग्यभूमिषु सर्वदा ॥ ४३
अम्लानो बलवान् शूरश्छायेवानुगतः सदा ।
सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत् ॥ ४४
अन्यस्मिन् प्रेष्यमाणे तु पुरस्ताद्यः समुत्पतेत् ।
अहं किं करवाणीति स राजवसतिं वसेत् ४५
आन्तरे चैव बाह्ये च राज्ञा यश्चाथ सर्वदा ।
आदिष्टो नैव कम्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥ ४६
यो वै गृहेभ्यः प्रवसन् प्रियाणां नानुसंस्मरेत् ।
दुःखेन सुखमन्विच्छेत् स राजवसतिं वसेत् ४७
समवेषं न कुर्वीत नोच्चैः सन्निहितो वसेत् ।
न मन्त्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत् ॥ ४८
न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किञ्चिदपि स्पृशेत् ।
प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम् ॥
यानं वस्त्रमलङ्कारं यच्चान्यत् सम्प्रयच्छति ।
तदेव धारयेन्नित्यमेवं प्रियतरो भवेत् ॥ ५०
एवं संयम्य चित्तानि यत्नतः पाण्डुनन्दनाः ।
संवत्सरमिमं तात तथाशीला ×बुभूषत ।
अथ स्वविषयं प्राप्य यथाकामं †करिष्यथ ॥५१

युधिष्ठिर उवाच ।

अनुशिष्टाः स्म भद्रं ते नैतद्वक्ताऽस्ति कश्चन ।
कुन्तीमृते मातरं नो विदुरं वा महामतिम् ॥ ५२
यदेवानन्तरं कार्यं तद्भवान् कर्तुमर्हति ।
तारणायास्य दुःखस्य प्रस्थानाय जयाय च ॥५३

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्ततो राज्ञा धौम्योऽथ द्विजसत्तमः ।
अकरोद्विधिवत् सर्वं प्रस्थाने यद्विधीयते ॥ ५४
तेषां समिध्य तानग्नीन् मन्त्रवच्च जुहाव सः ।
समृद्धिवृद्धिलाभाय पृथिवीविजयाय च ॥ ५५
अग्नीन् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ।
याज्ञसेनीं पुरस्कृत्य +षडेवाथ प्रवव्रजुः ॥ ५६
गतेषु तेषु वीरेषु धौम्योऽथ जपतां वरः ।
अग्निहोत्राण्युपादाय पाञ्चालानभ्यगच्छत ॥ ५७
इन्द्रसेनादयश्चैव यथोक्ताः प्राप्य यादवान् ।
रथानश्वांश्च रक्षन्तः सुखमूषुः सुसंवृताः ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि धौम्योपदेशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

तिष्ठेत् नाधितिष्ठेत्। अवश्यं पदच्युतो भवेदित्यर्थः । भोक्तुमिति । भुज कौटिल्ये इत्यस्य रूपम्॥४२॥ श्रेय इति । राज्ञः सकाशादात्मनः स्वस्य श्रेयो धनमानादिलाभं दृष्ट्वा परमन्यं सदा सर्वदा राज्ञा सार्द्धं न संवदेन्न संवादयेत् किं तु महाराजो न भवादृशान्मन्त्रे लक्षयतीत्येव लोके परं दर्शयेत् । योग्यभूमिषु युद्धे परराष्ट्रिकैः सह संलापे वा राजानं विशेषयेत् राज्ञोऽपेक्षया स्वीयं शौर्यं यौक्तिकत्वं वाऽधिकं दर्शयेत्। तेन राजा प्रीयत इति भावः ॥ ४३ ॥ अम्लान उत्साही बलवान् धीबलयुक्तः । मृदुरनिष्ठुरः दान्तो जितेन्द्रियः सुशिक्षितो वा ॥ ४४ ॥ अन्यस्मिन् पुंसि कस्यचित् कार्यस्यार्थे प्रेष्यमाणे एहि इदं कुर्वित्युच्यमाने सति यस्तदागमनात् पूर्वं समुत्पतेत्तत्कार्यं कर्तुं स शीघ्रकारी राजवसतिं वसेत् ॥४५॥ आन्तरे–धनदारसंरक्षणादौ बाह्ये–सामन्तजये आदिष्ट आज्ञप्तो नैव कम्पेत नैव संशयं भयं वा कुर्यात् । निःसंशयो निर्भयश्च तत्कार्यं कुर्यादेवेत्यर्थः ॥ ४६ ॥ प्रियाणां प्रियाणि स्त्रीपुत्रान्नपानादिसुखानि दुःखेन प्रवासादिना ॥ ४७ ॥ समवेषं वस्त्रालङ्कारादिकं राज्ञा समानं न । उच्चैः अतिशयेन । बहुधा बहुप्रकारं न कुर्यात् न भिन्द्यादित्यर्थः ॥ ४८ ॥ धनमुत्कोचादिना प्राप्तं किञ्चिदप्यत्यल्पमपि न स्पृशेत् ॥ ४९ ॥ यत् सम्प्रयच्छति राजा तदेव राजदत्तं यानादिकं धारयेत् न तु तदन्यस्मै दद्यादित्यर्थः ॥ ५० ॥ संयम्य निगृह्य इमं त्रयोदशं संवत्सरम् । हे तात युधिष्ठिर यूयं सर्वे तथाशीला यथोक्तसद्वृत्ताः सन्तो बुभूषत ऐश्वर्यं प्राप्तुमिच्छथ । अथ अनन्तरं स्वविषयं स्वदेशं प्राप्य यथाकामं यथेष्टं करिष्यथ क्रीडामिति शेषः ॥ ५१ ॥ अनन्तरमनुपदं कार्यं शान्तिकं पौष्टिकं चास्य अज्ञातवासदुःखस्य तारणाय प्रस्थानाय शत्रून्प्रति योद्धुं गमनाय जयाय च यत्कर्म प्रभवति तत्कर्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ समिध्य उद्दीप्य। समृद्धिर्जनाभिसम्पत्तिः। वृद्धिर्युद्धे विशेषः। लाभो राज्यस्य। लब्धाया अपि पृथिव्या विजयाय वशीकरणाय ॥ ५५ ॥ षट् द्रौपद्या सहिताः ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ × बुभूषवः–क. † चरिष्यथ–क. + पाण्डवास्ते–घ.

# ५

वैशम्पायन उवाच ।

ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्धकलापिनः ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः *कालिन्दीमभितो ययुः १
ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः ।
निवृत्तवनवासा हि स्वराष्ट्रं प्रेप्सवस्तदा ।
वसन्तो गिरिदुर्गेषु वनदुर्गेषु धन्विनः ॥ २
विध्यन्तो मृगजातानि महेष्वासा महाबलाः ।
उत्तरेण दशार्णांस्ते पञ्चालान् दक्षिणेन च ॥ ३
अन्तरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पाण्डवाः ।
लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं प्राविशन् वनात्
धन्विनो बद्धनिस्त्रिंशा विवर्णाः श्मश्रुधारिणः ।
ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत् ॥ ५
पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च ।
व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति ।
वसामेहापरां रात्रिं बलवान् मे परिश्रमः ॥ ६

युधिष्ठिर उवाच ।

धनञ्जय समुद्यम्य पाञ्चालीं वह भारत ।
राजधान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः ७

वैशम्पायन उवाच ।

तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव ।
संप्राप्य नगराभ्याशमवतारयदर्जुनः ॥ ८
स राजधानीं संप्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत् ।
क्वायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥ ९
सायुधाश्च प्रवेक्ष्यामो वयं तात पुरं यदि ।
समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्यामो न संशयः ॥ १०
गाण्डीवं च महद्गाढं लोके च विदितं नृणाम् ।
तच्चेदायुधमादाय गच्छामो नगरं वयम् ।
क्षिप्रमस्मान्विजानीयुर्मनुष्या नात्र संशयः ॥ ११
ततो द्वादश वर्षाणि प्रवेष्टव्यं वने पुनः ।
एकस्मिन्नपि विज्ञाते प्रतिज्ञातं हि नस्तथा ॥ १२

अर्जुन उवाच ।

इयं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी ।
भीमशाखा दुरारोहा श्मशानस्य समीपतः ॥ १३
न चापि विद्यते कश्चिन्मनुष्य इति मे मतिः ।
योऽस्मान्निदधतो द्रष्टा भवेच्छस्त्राणि पाण्डवाः
उत्पथे हि वने जाता मृगव्यालनिषेविते ।
समीपे च श्मशानस्य गहनस्य विशेषतः ॥ १५
समाधायायुधं शम्यां गच्छामो नगरं प्रति ।
एवमत्र यथायोगं विहरिष्याम भारत ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स राजानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
प्रचक्रमे निधानाय शस्त्राणां भरतर्षभ ॥ १७
येन देवान् मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् ।
स्फीतान् जनपदांश्चान्यानजयत् कुरुपुङ्गवः ॥ १८
तदुदारं महाघोषं संपन्नबलसूदनम् ।
अपज्यमकरोत् पार्थो गाण्डीवं सुभयंकरम् ॥ १९
येन वीरः कुरुक्षेत्रमभ्यरक्षत् परन्तपः ।
अमुञ्चद्धनुषस्तस्य ज्यामक्षय्यां युधिष्ठिरः ॥ २०
पाञ्चालान् येन सङ्ग्रामे भीमसेनोऽजयत् प्रभुः ।
प्रत्यषेधद्बहूनेकः सपत्नांश्चैव दिग्जये ॥ २१
निशम्य यस्य विस्फारं व्यद्रवन्त रणात् परे ।
पर्वतस्येव दीर्णस्य विस्फोटमशनेरिव ॥ २२
सैन्धवं येन राजानं पर्यामृषितवानथ ।
ज्यापाशं धनुषस्तस्य भीमसेनोऽवतारयत् ॥ २३
अजयत् पश्चिमामाशां धनुषा येन पाण्डवः ।
माद्रीपुत्रो महाबाहुस्ताम्रास्यो मितभाषिता २४
तस्य मौर्वीमपाकर्षच्छूरः संक्रन्दनो युधि ।
कुले नास्ति समो रूपे यस्येति नकुलः स्मृतः २५
दक्षिणां दक्षिणाचारो दिशं येनाजयत् प्रभुः ।
अपज्यमकरोद्वीरः सहदेवस्तदायुधम् ॥ २६

---

५

**ते वीरा** इति। निस्त्रिंशः खड्गः। कलापिनस्तूणवन्तः। तताायुधेति पाठे सज्जीकृतधनुषः ततायुधाश्च ते कलापिनश्चेति विग्रहः। बद्धं गोधातलं ज्याघातवारणाख्यमङ्गुलित्राणं च यैस्ते बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः 'गोधा तलनिहाकयोः' इति मेदिनी ॥ १ ॥ अन्तरेण मध्यतः मत्स्यस्यैव राज्ञो लुब्धा व्याधाः स्म इति ब्रुवाणाः। पक्षे राज्याकाङ्क्षिणः। 'लुब्ध आकाङ्क्षिणि व्याधे' इति मेदिनी। विषयं मत्स्यस्यैव देशम् ॥ ४ ॥ लुब्धत्वाभिमानाय विवर्णाः ॥ ५ ॥ एकपद्यः क्षेत्रगामिनः क्षुद्रमार्गाः ॥ ६ ॥ कूटे इव कूटे उच्चप्रदेशे। 'मायाद्रिशृङ्गयोः कूटम्' इति मेदिनी। दुरारोहा श्मशानस्थत्वात् ॥ १३ ॥ उत्पथे मार्गाद्बहिर्भूते ॥ १५ ॥ संपन्नबलानां देवाराधनप्राप्तबलानामसुरादीनामपि सूदनम् ॥ १९ ॥ सैन्धवं जयद्रथम् ॥ २३ ॥ संक्रन्दनः शत्रूणामाक्रन्दनकरः ॥ २५ ॥ अपज्यं ज्यारहितम् ॥ २६ ॥ * यमुनानिकटं गता इत्यर्थः ।

खड्गांश्च दीप्तान् दीर्घांश्च कलापांश्च महाधनान् ।
विपाठान् क्षुरधारांश्च धनुर्भिर्निदधुः सह ॥ २७

वैशम्पायन उवाच ।

अथान्वशासत्सकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुह्येमां शमीं वीर धनूंष्येतानि निक्षिप ॥ २८
तामुपारुह्य नकुलो धनूंषि निदधे स्वयम् ।
यानि तस्या वकाशानि दिव्यरूपाण्यमन्यत २९
यत्र चापश्यत स वै तिरोवर्षाणि वर्षति ।
तत्र तानि दृढैः पाशैः सुगाढं पर्यबन्धत ॥ ३०
शरीरं च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः ।
विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम् ॥ ३१
आबद्धं शवमत्रेति गन्धमाघ्राय पूतिकम् ।
अशीतिशतवर्षेयं माता न इति वादिनः ॥ ३२
कुलधर्मोऽयमस्माकं पूर्वैराचरितोऽपि वा ।
समासज्याथ वृक्षेऽस्मिन्निति वै व्याहरन्ति ते ॥
आगोपालाविपालेभ्य आचक्षाणाः परंतपाः ।
आजग्मुर्नगराभ्याशं पार्थाः शत्रुनिबर्हणाः ॥ ३४
जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः ।
इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः ॥ ३५
ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन्नगरं महत् ।
अज्ञातचर्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि पुरप्रवेशे अस्त्रसंस्थापने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

वैशम्पायन उवाच ।

विराटनगरं रम्यं गच्छमानो युधिष्ठिरः ।
अस्तुवन्मनसा देवीं दुर्गां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १
यशोदागर्भसंभूतां नारायणवरप्रियाम् ।
नन्दगोपकुले जातां मङ्गल्यां कुलवर्धिनीम् ॥ २
कंसविद्रावणकरीमसुराणां क्षयंकरीम् ।
शिलातटविनिक्षिप्तामाकाशं प्रति गामिनीम् ३
वासुदेवस्य भगिनीं दिव्यमाल्यविभूषिताम् ।
दिव्याम्बरधरां देवीं खड्गखेटकधारिणीम् ॥ ४
भारावतरणे पुण्ये ये स्मरन्ति सदा शिवाम् ।
तान् वै तारयते पापात्पङ्के गामिव दुर्बलाम् ५
स्तोतुं प्रचक्रमे भूयो विविधैः स्तोत्रसंभवैः ।
आमन्त्र्य दर्शनाकाङ्क्षी राजा देवीं सहानुजः ॥ ६
नमोऽस्तु वरदे कृष्णे कुमारि ब्रह्मचारिणि ।
बालार्कसदृशाकारे पूर्णचन्द्रनिभानने ॥ ७
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे पीनश्रोणिपयोधरे ।
मयूरपिच्छवलये केयूराङ्गदधारिणि ।
भासि देवि यथा पद्मा नारायणपरिग्रहः ॥ ८
स्वरूपं ब्रह्मचर्यं च विशदं तव खेचरि ।
कृष्णच्छविसमा कृष्णा संकर्षणसमानना ॥ ९

---

विपाठान् बाणविशेषान् तादृशान् क्षुरधारांश्च ॥ २७ ॥ अन्वशासत् अज्ञापितवान् ॥ २८ ॥ तस्याः शम्याः वकाशानि [1]भागुरिमतेन अल्लोपः । अवकाशाख्यानि सुषिरस्थानानि ॥ २९ ॥ वर्षति मेघः तिरोवर्षाणि असंमुखानि वर्षाणि वृष्टयः यत्रापश्यत तत्र पर्यबन्धत पर्यबध्नात् ॥ ३० ॥ पूतिकममङ्गलम् । अशीत्यधिकशतवर्षा नोऽस्माकमियमिति शवनिर्देशः। पक्षे शमी आयुधरक्षकत्वात् मातेवास्माकमित्यभिसंधः ॥ ३२ ॥ कुलधर्मोऽयं क्षत्रधर्मोऽयं यदायुधसंगोपनमिति गूढ आशयः। पक्षे अयं मातुर्वृक्षे बन्धनाख्यः ॥ ३३ ॥ वत्स्यन्तो वस्तुमिच्छन्तः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

विराट इति । गच्छमानः गच्छन् दुर्गां दुर्गमसंकटतारिणीम् ॥ १ ॥ नारायणेन दत्ता ये वराः उमेति भद्रकालीति देवास्त्वां पूजयिष्यन्तीत्येवमादयो विष्णुपुराणादौ श्रुतास्तत्प्रियां मङ्गल्यां मङ्गलप्रदाम् ॥ २ ॥ शिलातटे कंसेनैव विनिक्षिप्ता सती आकाशं गता ताम् ॥ ३ ॥ खेटकं चर्म ॥ ४ ॥ स्तोत्रार्थमेव संभव उद्भवो येषां नाम्नां वरदेत्यादीनां तैः आमन्त्र्य सम्बोध्य स्तोतुं प्रचक्रमे इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ६ ॥ कृष्णे कृष्णस्वरूपे ॥ ७ ॥ चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे इति विष्णुब्रह्मरूपत्वमुक्तम् । मयूरपिच्छानि इन्द्रनीलादिमणिखचितानि वलयानि यस्यास्तथाविधे । पद्मा लक्ष्मीः अत एव नारायणपरिग्रहो विष्णुकान्ता ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्यमत्यन्तान्यगामित्वं दर्शनम् । तेन लौकिकलक्ष्मीतो व्यावृत्तिः । कृष्णच्छविर्नीलमेघस्तेन समा कृष्णा कृष्णवर्णा ॥ ९ ॥

[1] 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इति ।

बिभ्रती विपुलौ बाहू शक्रध्वजसमुच्छ्रयौ ।
पात्री च पङ्कजी घण्टी स्त्रीविशुद्धा च या भुवि
पाशं धनुर्महाचक्रं विविधान्यायुधानि च ।
कुण्डलाभ्यां सुपूर्णाभ्यां कर्णाभ्यां च विभूषिता
चन्द्रविस्पर्धिना देवि मुखेन त्वं विराजसे ।
मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ॥ १२
भुजङ्गाभोगवासेन श्रोणिसूत्रेण राजता ।
विभ्राजसे चाबद्धेन भोगेनेवेह मन्दरः ॥ १३
ध्वजेन शिखिपिच्छानामुच्छ्रितेन विराजसे ।
कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं पावितं त्वया ॥ १४
तेन त्वं स्तूयसे देवि त्रिदशैः पूज्यसेऽपि च ।
त्रैलोक्यरक्षणार्थाय महिषासुरनाशिनि ।
प्रसन्ना मे सुरश्रेष्ठे दयां कुरु शिवा भव ॥ १५
जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा ।
ममापि विजयं देहि वरदा त्वं च साम्प्रतम् १६
विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठे तव स्थानं हि शाश्वतम् ।
कालि कालि महाकालि सीधुमांसपशुप्रिये॥१७
कृतानुयात्रा भूतैस्त्वं वरदा कामचारिणि ।
भारावतारे ये च त्वां संस्मरिष्यन्ति मानवाः॥
प्रणमन्ति च ये त्वां हि प्रभाते तु नरा भुवि ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोऽपि वा१९
दुर्गात् तारयसे दुर्गे तत् त्वं दुर्गा स्मृता जनैः ।
कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानां च महार्णवे ॥ २०
दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ।
जलप्रतरणे चैव कान्तारेष्वटवीषु च ॥ २१
ये स्मरन्ति महादेवि न च सीदन्ति ते नराः ।
त्वं कीर्तिः श्रीर्धृतिः सिद्धिर्ह्रीर्विद्या सन्ततिर्मतिः
सन्ध्या रात्रिः प्रभा निद्रा
ज्योत्स्ना कान्तिः क्षमा दया ।
नृणां च बन्धनं मोहं पुत्रनाशं धनक्षयम् ॥ २३
व्याधिं मृत्युं भयं चैव पूजिता नाशयिष्यसि ।
सोऽहं राज्यात् परिभ्रष्टः शरणं त्वां प्रपन्नवान्॥
प्रणतश्च यथा मूर्ध्ना तव देवि सुरेश्वरि ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि सत्ये सत्या भवस्व नः२५
शरणं भव मे दुर्गे शरण्ये भक्तवत्सले ।
एवं स्तुता हि सा देवी दर्शयामास पाण्डवम् ॥
उपगम्य तु राजानमिदं वचनमब्रवीत् ।
देव्युवाच ।
शृणु राजन् महाबाहो मदीयं वचनं प्रभो ॥ २७
भविष्यत्यचिरादेव संग्रामे विजयस्तव ।
मम प्रसादान्निर्जित्य हत्वा कौरववाहिनीम्॥२८
राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा भोक्ष्यसे मेदिनीं पुनः ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्
प्रीतिं प्राप्स्यसि पुष्कलाम् ॥ २९
मत्प्रसादाच्च ते सौख्यमारोग्यं च भविष्यति ।
ये च संकीर्तयिष्यन्ति लोके विगतकल्मषाः ३०
तेषां तुष्टा प्रदास्यामि राज्यमायुर्वपुः सुतम् ।
प्रवासे नगरे चापि संग्रामे शत्रुसंकटे ॥ ३१
अटव्यां दुर्गकान्तारे सागरे गहने गिरौ ।
ये स्मरिष्यन्ति मां राजन् यथाऽहं भवता स्मृता
न तेषां दुर्लभं किञ्चिदस्मिँल्लोके भविष्यति ।
इदं स्तोत्रवरं भक्त्या शृणुयाद्वा पठेत वा ॥ ३३
तस्य सर्वाणि कार्याणि
सिद्धिं यास्यन्ति पाण्डवाः ।
मत्प्रसादाच्च वः सर्वान् विराटनगरे स्थितान्॥३४
न प्रज्ञास्यन्ति कुरवो नरा वा तन्निवासिनः ।
इत्युक्त्वा वरदा देवी युधिष्ठिरमरिन्दमम् ।
रक्षां कृत्वा च पाण्डूनां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि दुर्गास्तवे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

अष्टभुजामाह-बिभ्रतीति । विपुलौ वराभयप्रदत्वेन ऊर्जितौ द्वौ बाहू । तत एकः पात्री पात्रवान् । पङ्कजी पङ्कजवान् । घण्टी घण्टावान् पञ्चमः॥१०॥ पाशं धनुर्महाचक्रं च बिभ्रतीति पूर्वेणान्वयः । एतान्येव विविधान्यायुधानि कुण्डलपूर्णौ यौ द्वौ कर्णौ ताभ्यां विराजिता ॥ ११ ॥ केशबन्धेन कबरीरूपेण ॥१२॥ वेणीं वर्णयति-भुजङ्गेति । भुजङ्गाभोगवासेन सर्पशरीराकारेण वासो वासना तेन तदाकार उपलक्ष्यते। कटिसूत्रेण सह राजता शोभमानेन कटिसूत्रोपरि लम्बमानया वेण्येत्यर्थः। भोगेन भुजङ्गफणया तद्वता भुजङ्गेनेत्यर्थः। भोगिनेवेति युक्तः पाठः॥१३॥ शिवा कल्याणरूपा ॥१५॥ कृतानुयात्रा नित्यमनुसृता भूतैर्ब्रह्माद्यैः प्राचीनैः ॥ १८ ॥ कान्तारे महारण्ये॥२०॥ कान्तारे दुर्गममार्गे॥२१॥ संकीर्तयिष्यन्ति मामिति शेषः॥३०॥ इति श्रीमहा० विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दुर्गास्तवः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

वैशम्पायन उवाच ।
ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरो
राजा सभायामुपविष्टमाव्रजत् ।
वैदूर्यरूपान् प्रतिमुच्य काञ्चना-
नक्षान् स कक्षे परिगृह्य वाससा ॥ १
नराधिपो राष्ट्रपतिं यशस्विनं
महायशाः कौरववंशवर्धनः ।
महानुभावो नरराजसत्कृतो
दुरासदस्तीक्ष्णविषो यथोरगः ॥ २
बलेन रूपेण नरर्षभो महा-
नपूर्वरूपेण यथामरस्तथा ।
महाभ्रजालैरिव संवृतो रवि-
र्यथाऽनलो भस्मवृतश्च वीर्यवान् ॥ ३
तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाण्डवं
विराटराडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम् ।
समागतं पूर्णशशिप्रभाननं
महानुभावं नचिरेण दृष्टवान् ॥ ४
मन्त्रिद्विजान् सूतमुखान्विशस्तथा
ये चापि केचित् परितः समासते ।
पप्रच्छ कोऽयं प्रथमं समेयिवान्
नृपोपमोऽयं समवेक्षते सभाम् ॥ ५
स तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमः
पतिः पृथिव्या इति मे मनोगतम् ।
न चास्य दासो न रथो न कुञ्जरः
समीपतो भ्राजति चायमिन्द्रवत् ॥ ६
शरीरलिङ्गैरुपसूचितो ह्ययं
मूर्धाभिषिक्त इति मे मनोगतम् ।
समीपमायाति च मे गतव्यथो
यथा गजस्तामरसीं मदोत्कटः ॥ ७
वितर्कयन्तं तु नरर्षभस्तथा
युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत् ।
सम्राड्विजानात्विह जीवनार्थिनं
विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम् ॥ ८
इहाहमिच्छामि तवानघान्तिके
वस्तुं यथा कामचरस्तथा विभो ।
तमब्रवीत् स्वागतमित्यनन्तरं
राजा प्रहृष्टः प्रतिसंगृहाण च ॥ ९
तं राजसिंहं प्रतिगृह्य राजा
प्रीत्याऽऽत्मना चैनमिदं बभाषे ।
कामेन ताताभिवदाम्यहं त्वां
कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः ॥ १०
गोत्रं च नामापि च शंस तत्त्वतः
किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ११
युधिष्ठिर उवाच ।
युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा
वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि विप्रः ।
अक्षान् प्रयोक्तुं कुशलोऽस्मि देविनां
कङ्केति नाम्नाऽस्मि विराट विश्रुतः ॥ १२

### ७

**तत इति** । वैदूर्यरूपान् काञ्चनांश्च शारान् इदं श्वेतरक्तशारीणां शारिफलकस्य चोपलक्षणमक्षान् पाशांश्च वाससा प्रतिमुच्य बध्वा कक्षे परिगृह्य आव्रजदिति सम्बन्धः॥ १ ॥ नचिरेण शीघ्रमेव ॥ ४ ॥ विशो वैश्यान् ॥ ५ ॥ न तु द्विजोऽयं द्विजवेषोऽपि राजैव भविष्यतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ शरीरलिङ्गैः आजानुबाहुत्वादिभिः तामरसीं पद्मिनीम् । एतेन स्वाभिभवशङ्का दर्शिता ॥ ७ ॥ द्विजं त्रैवर्णिकत्वात् ॥ ८ ॥ कामचरः त्वदिच्छानुवर्ती ॥ ९ ॥ प्रीत्याऽऽत्मना प्रीतिमता मनसा कामेन रागेण तातेति श्रेष्ठत्वात् सम्बोधयति ॥ १० ॥ शिल्पं कौशलं किं विषयं तव त्वया कृतं संपादितम् ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरस्येति लोके । पक्षे युधिष्ठिरोऽहं तव सखा स्यासं भूयासमिति सम्बन्धः । अस्तेराशीर्लिङि छान्दस आर्द्धधातुकत्वाभावः । तेन भूभावः श्नसोरित्यल्लोपाभावश्च न भवतः सलोपाभावोऽपि छान्दसः । युधिष्ठिरः स्या हमहं सखेति पाठेऽपि युधिष्ठिरोऽहं मम सखा स्याः भव इति सम्बन्धः । हमिति तु पादपूरणार्थो निपातः । पक्षे अहमहमिति द्विरुक्तिः सार्वभौमोऽपरसेवां चिकीर्षामीति चिन्तया वैचित्यसूचिका । वैयाघ्रपद्यः व्याघ्रपाद्गोत्रे भवः व्याघ्र इव पततीति व्याघ्रपाद्यमः तस्य कुले जातः वैयाघ्रपद्यः । गर्गादित्वाद्यञ् । यद्वा । वैयाघ्रं व्याघ्रचर्म तेन परिवृतो रथोऽपि वैयाघ्रः स एव पद्यं पादक्रमणीयं वाहनमस्यास्तीति वैयाघ्रपद्यः । 'परिवृतो रथ' इत्यधिकृत्य द्वैपवैयाघ्रादित्यञ् । विप्रः विशेषेण प्राति पूरयति ब्राह्मणादीन् धनादिभिरिति विप्रः । धर्मसूनुत्वाद्वा विप्रोऽहम् । ब्राह्मण इति पाठे तु ब्रह्मविदिति मुख्य एवार्थो ग्रहीतुं शक्यः । कङ्क इति कृतान्तनामेति प्रागेवोक्तम् । अक्षान् प्रयोक्तुं कुशलो बृहदश्वशिष्यत्वात् ॥ १२ ॥

विराट उवाच ।
ददामि ते हन्त वरं यमिच्छसि
प्रशाधि मत्स्यान् वशगो ह्यहं तव ।
प्रियाश्च धूर्ता मम देविनः सदा
भवांश्च देवोपम राज्यमर्हति ॥ १३
युधिष्ठिर उवाच ।
प्राप्तो विवादः प्रथमं विशाम्पते
न विद्यते कं च न मत्स्य हीनतः ।
न मे जितः कश्चन धारयेद्धनं
वरो ममैषोऽस्तु तव प्रसादजः ॥ १४
विराट उवाच ।
हन्यामवध्यं यदि तेऽप्रियं चरेत्
प्रव्राजयेयं विषयाद्द्विजांस्तथा ।
शृण्वन्तु मे जानपदाः समागताः
कङ्को यथाऽहं विषये प्रभुस्तथा ॥ १५
समानयानो भवितासि मे सखा
प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः ।
पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा
कृतं च ते द्वारमपावृतं मया ॥ १६
ये त्वाऽनुवादेयुरवृत्तिकर्शिता
ब्रूयाश्च तेषां वचनेन मां सदा ।
दास्यामि सर्वं तदहं न संशयो
न ते भयं विद्यति सन्निधौ मम ॥ १७
वैशम्पायन उवाच ।
एवं स लब्ध्वा तु वरं समागमं
विराटराजेन नरर्षभस्तदा ।
उवास धीरः परमार्चितः सुखी
न चापि कश्चिच्चरितं बुबोध तत् ॥ १८

महाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरप्रवेशो नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

वैशम्पायन उवाच ।
अथापरो भीमबलः श्रिया ज्वल-
न्नुपाययौ सिंहविलासविक्रमः ।
खजां च दर्वीं च करेण धारय-
न्नसिं च कालाङ्गमकोशमव्रणम् ॥ १
स सूदरूपः परमेण वर्चसा
रविर्यथा लोकमिमं प्रकाशयन् ।
स कृष्णवासा गिरिराजसारवां-
स्तं मत्स्यराजं समुपेत्य तस्थिवान् ॥ २

देविनः देवनशीलाः ॥ १३ ॥ प्राप्तो विवाद इति । द्यूतिनां मध्ये इति शेषः । द्यूतकृतां मध्ये हीनतः हीनात् पराजितात् यं कं च कमपि प्रथमं राजानं राजपुत्रं वा मुख्यं जयवन्तम् । प्रथमशब्दोऽत्र श्रेष्ठवाची तं प्रति विवादः प्राप्तो न विद्यते इति न । सत्यगन्धरहिते द्यूते पराजिता जयवद्भिः सह नित्यं कलहं कुर्वन्त्येवेत्यर्थः । हे विशाम्पते हे मत्स्येति आदरार्थं द्विः सम्बोधयति । यस्मादेवं तस्मात् कश्चन कोऽपि मया जितो मे मदीयं धनं न धारयेत् । अहं कलहाद्भीतस्त्वमेव सत्यं ज्ञात्वा मदीयं धनं दापयेत्यर्थः ॥ १४ ॥ ते तव अप्रियमिति छेदः । यथाऽहं विषये देशे प्रभुस्तथा कङ्कोऽपीति योजना ॥१५॥ अन्तर्धनदारादीन् बहिः सैन्यारामादीन् पश्येः पर्यालोचय । अपावृतमनावृतम् ॥ १६ ॥ अनुवादेयुः पूर्वं देहीत्युक्त्वा दत्तस्यैव क्षेत्रारामादेः प्रतिवर्षं पुनर्देहीति राजवचनं यदधिकारिणं प्रति तदनुवादस्तन्निमित्तं ये त्वां प्रति अयुः प्राप्नुयुस्तेषां वचनेन सदाऽनवसरेऽपि मां ब्रूयाः । क्षणमपि ब्राह्मणवृत्तेः प्रतिबन्धो मा भूदित्याशयः ॥ १७ ॥ वरं श्रेष्ठं समागमं प्रीतिम् ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

८

खजां मन्थनदण्डमङ्गारावक्षेपणं वा हस्ताकारं पिष्टविकारप्रमथनार्थं वा दण्डम् 'खजा मन्थप्रहस्तयोः' इति विश्वः। दर्वीं शाकादिपरिवेषणार्थामसिं मांसाद्यवकर्तनार्थं खड्गं कालाङ्गं कृष्णायसमयं तीक्ष्णमित्यर्थः । अकोशं पिधानहीनम् ॥ १ ॥ गिरिराजसारः महामेरुवत् कठिनदेहः । यद्वा गिरिराजसारो लोहं तेन तद्विकाररूपं पात्रजातं लक्ष्यते मक्ष्यद्रव्यपाकार्थं स्नेहपाकार्थं वा तद्वान् ॥ २ ॥

तं प्रेक्ष्य राजा रमयन्नुपागतं
ततोऽब्रवीज्जानपदान् समागतान् ।
सिंहोन्नतांसोऽयमतीव रूपवान्
प्रदृश्यते को नु नरर्षभो युवा ॥ ३

अदृष्टपूर्वः पुरुषो रविर्यथा
वितर्कयन्नास्य लभामि निश्चयम् ।
तथाऽस्य चित्तं ह्यपि संवितर्कय-
न्नरर्षभस्यास्य न यामि तत्त्वतः ॥ ४

दृष्ट्वैव चैनं तु विचारयाम्यहं
गन्धर्वराजो यदि वा पुरन्दरः ।
जानीत कोऽयं मम दर्शने स्थितो
यदीप्सितं तल्लभतां च माचिरम् ॥ ५

विराटवाक्येन च तेन चोदिता
नरा विराटस्य सुशीघ्रगामिनः ।
उपेत्य कौन्तेयमथाब्रुवंस्तदा
यथा स राजाऽवदताच्युतानुजम् ॥ ६

ततो विराटं समुपेत्य पाण्डव-
स्त्वदीनरूपं वचनं महामनाः ।
उवाच सूदोऽस्मि नरेन्द्र बल्लवो
भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम् ॥ ७

विराट उवाच ।

न सूदतां बल्लव श्रद्दधामि ते
सहस्रनेत्रप्रतिमो विराजसे ।
श्रिया च रूपेण च विक्रमेण च
प्रभासि त्वं नृवरो नरेष्विव ॥ ८

भीम उवाच ।

नरेन्द्र सूदः परिचारकोऽस्मि ते
जानामि सूपान् प्रथमं च केवलान् ।
आस्वादिता ये नृपते पुराऽभवन्
युधिष्ठिरेणापि नृपेण सर्वशः ॥ ९

बलेन तुल्यश्च न विद्यते मया
नियुद्धशीलश्च सदैव पार्थिव ।
गजैश्च सिंहैश्च समेयिवानहं
सदा करिष्यामि तवानघ प्रियम् ॥ १०

विराट उवाच ।

ददामि ते हन्त वरान् महानसे
तथा च कुर्याः कुशल प्रभाषसे ।
न चैव मन्ये तव कर्म यत् समं
समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥ ११

यथा हि कामो भवतस्तथा कृतं
महानसे त्वं भव मे पुरस्कृतः ।
नराश्च ये तत्र समाहिताः पुरा
भवांश्च तेषामधिपो मया कृतः ॥ १२

वैशम्पायन उवाच ।

तथा स भीमो विहितो महानसे
विराटराज्ञो दयितोऽभवद्दृढम् ।
उवास राज्ये न च तं पृथग्जनो
बुबोध तत्रानुचराश्च केचन ॥ १३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि भीमप्रवेशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

वैशम्पायन उवाच ।

ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान् ।
कृष्णान् सूक्ष्मान् मृदून्दीर्घान्समुद्ग्रथ्य शुचिस्मिता
जुगूहे दक्षिणे पार्श्वे मृदूनसितलोचना ।
वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुमलिनं महत् ॥ २

कृत्वा वेषं च सैरन्ध्र्यास्ततो व्यचरदार्तवत् ।
तां नराः परिधावन्तीं स्त्रियश्च समुपाद्रवन् ॥ ३

---

तत्त्वतः तत्त्वं न यामि न प्राप्नोमि ॥ ४ ॥ अवदत् उक्तवान् । अच्युतो धर्मः फलमदत्वा न च्यवत इति योगात्तस्यानुजम् ॥ ६ ॥ सूदः पाककर्ता बल्लवो नामतः ॥ ७ ॥ तव कर्म न चैव समं मन्ये । इतरकर्मणेति शेषः । अतिमानुषं कर्म वदसीत्यर्थः ॥ ११ ॥ इति विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

† ईदृगयमिति परिच्छेत्तुं न शक्नोमीत्यर्थः ।

९

तत इति । वेल्लिताग्रान् आकुञ्चिताग्रान् समुत्क्षिप्य वेणीकृत्य ॥ १ ॥ जुगूहे गोपितवती ॥ २ ॥

अपृच्छंश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किं च चिकीर्षसि ।
सा तानुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमिहागता ॥ ४
कर्म चेच्छामि वै कर्तुं तस्य यो मां युयुक्षति ।
तस्या रूपेण वेषेण श्लक्ष्णया च तथा गिरा ।
न श्रद्दधत तां दासीमन्नहेतोरुपस्थिताम् ॥ ५
विराटस्य तु कैकेयी भार्या परमसम्मता ।
आलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद्द्रुपदात्मजाम् ॥ ६
सा समीक्ष्य तथारूपामनाथामेकवाससम् ।
समाहूयाब्रवीद्भद्रे का त्वं किं च चिकीर्षसि ॥ ७
सा तामुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमुपागता ।
कर्म चेच्छाम्यहं कर्तुं तस्य यो मां युयुक्षति ॥ ८

सुदेष्णोवाच ।

नैवंरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि ।
प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासांश्च विविधान् बहून् ॥ ९
नोच्चगुल्फा संहतोरुस्त्रिगम्भीरा षडुन्नता ।
रक्ता पञ्चसु रक्तेषु हंसगद्गदभाषिणी ॥ १०
सुकेशी सुस्तनी श्यामा पीनश्रोणिपयोधरा ।
तेन तेनैव सम्पन्ना काश्मीरीव तुरङ्गमी ॥ ११
अरालपक्ष्मनयना बिम्बोष्ठी तनुमध्यमा ।
कम्बुग्रीवा गूढशिरा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १२
शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया ।
शारदोत्पलसेविन्या रूपेण सदृशी श्रिया ॥ १३
का त्वं ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथञ्चन ।
यक्षी वा यदि वा देवी गन्धर्वी यदि वाऽप्सराः
देवकन्या भुजङ्गी वा नगरस्याथ देवता ।
विद्याधरी किन्नरी वा यदि वा रोहिणी स्वयम्
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाऽथ मालिनी ।
इन्द्राणी वारुणी वा त्वं त्वष्टुर्धातुः प्रजापतेः ।
देव्यो देवेषु विख्यातास्तासां त्वं कतमा शुभे १६

द्रौपद्युवाच ।

नास्मि देवी न गन्धर्वी नासुरी न च राक्षसी ।
सैरन्ध्री तु भुजिष्याऽस्मि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते १७
केशान् जानाम्यहं कर्तुं पिंषे साधु विलेपनम् ।
मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे ॥ १८
ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः ।
आराधयं सत्यभामां कृष्णस्य महिषीं प्रियाम् १९
कृष्णां च भार्यां पाण्डूनां कुरूणामेकसुन्दरीम् ।
तत्र तत्र चराम्येवं लभमाना सुभोजनम् ॥ २०
वासांसि यावन्ति लभे तावत्तावद्रमे तथा ।
मालिनीत्येव मे नाम स्वयं देवी चकार सा ।
साऽहमद्यागता देवि सुदेष्णे त्वन्निवेशनम् ॥ २१

सुदेष्णोवाच ।

मूर्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते ।
न चेदिच्छति राजा त्वां गच्छेत् सर्वेण चेतसा
स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि ।
प्रसक्तास्त्वा निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २३
वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि ।
तेऽपि त्वां सन्नमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २४
राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम् ।
विहाय मां वरारोहे गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥ २५
यं हि त्वमनवद्याङ्गि तरलायतलोचने ।
प्रसक्तमभिवीक्षेथाः स कामवशगो भवेत् ॥ २६
यश्च त्वां सततं पश्येत् पुरुषश्चारुहासिनि ।
एवं सर्वानवद्याङ्गि स चानङ्गवशो भवेत् ॥ २७
अध्यारोहेद्यथा वृक्षान् वधायैवात्मनो नरः ।
राजवेश्मनि ते सुभ्रु गृहे तु स्यात् तथा मम ॥ २८

---

युयुक्षति योजयितुमिच्छति । पुपूषतीति पाठे पोषयितुमिच्छति ॥ ५ ॥ नैवंरूपा त्वमसि किं तु दासान् दासीश्च प्रेषयन्तीव बहूनां स्वामिन्यसीत्यर्थः ॥ ९ ॥ नोच्चौ न बहिर्निर्गतौ गूढावित्यर्थः । नोच्चौ गुल्फौ पादग्रन्थी यस्याः सा तथा । त्रिगम्भीरा त्रिषु शब्दबुद्धिनाभीषु गहना । षडुन्नता षट्सु नासिकाक्षिद्वयश्रोत्रनखस्तनकृकाटिकासु उत्ताना । पञ्चसु स्थानेषु पादपाणितलनेत्रान्तोष्ठजिह्वानखेषु एतान्येव सञ्ज्ञाया पञ्चरक्तानि तेषु रक्ता । हंसवत् गद्गदं किंचित् लुप्ताक्षरं मधुरं वा भाषते सा हंसगद्गदभाषिणी ॥ १० ॥ तेन तेन लक्षणेन मन्दगतित्वादिना ॥ ११ ॥ अराले वक्रे कृष्णे वा पक्ष्मणी ययोस्तादृशे नयने यस्याः सा । तथा कम्बुग्रीवा शङ्खवत् रेखात्रयाङ्कितग्रीवा । गूढशिरा गुप्तनाडिका ॥ १२ ॥ सैरन्ध्रीभुजिष्यापदे प्राक् व्याख्याते ॥ १७ ॥ कर्तुं संस्कर्तुम् ॥ १८ ॥ कृष्णां च भार्यां पाण्डूनामिति स्वात्मना स्वस्याराधनम् सम्भवतीति नेयं मृषोक्तिः ॥ २० ॥ राजा त्वां चेन्न इच्छति तदा त्वां मूर्ध्नि वासये परन्तु राजा त्वां सर्वेण चेतसा गच्छेत्स्वहृदयेऽदेवेति शङ्के ॥ २२ ॥ त्वं स्त्रीणामपि मोहकरी किमुत पुंसामित्याह-स्त्रिय इति ॥ २३ ॥ वृक्षानिति । वृक्षा अपि त्वां दृष्ट्वा स्तब्धाः सन्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥ प्रसक्तमासक्तियुक्तं यथा स्यात्तथा ॥ २६ ॥ एवमनेनैव स्त्रीवृक्षादिस्तब्धाभावाचिह्नेन ॥ २७ ॥ + शारदोत्पलं हस्तद्वयम् ।

यथा च §कर्कटी गर्भमाधत्ते मृत्युमात्मनः ।
तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते ॥ २९
द्रौपद्युवाच ।
नास्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कदाचन ।
गन्धर्वाः पतयो मह्यं युवानः पञ्च भामिनि ॥ ३०
पुत्रा गन्धर्वराजस्य महासत्त्वस्य कस्यचित् ।
रक्षन्ति ते च मां नित्यं दुःखाचारा तथा ह्यहम् ॥
यो मे न दद्यादुच्छिष्टं न च पादौ प्रधावयेत् ।
प्रीणेरंस्तेन वासेन गन्धर्वाः पतयो मम ॥ ३२
यो हि मां पुरुषो †गृध्येद्यथाऽन्याः प्राकृताः स्त्रियः ।
तामेव निवसेद्रात्रिं प्रविश्य च परां तनुम् ॥ ३३
न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदङ्गने ।
दुःखशीला हि गन्धर्वास्ते च मे बलवत्प्रियाः ३४
प्रच्छन्नाश्चापि रक्षन्ति ते मां नित्यं शुचिस्मिते ।
सुदेष्णोवाच ।
एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वं नन्दिनीच्छसि
न च पादौ न चोच्छिष्टं स्प्रक्ष्यसि त्वं कथंचन ।
वैशम्पायन उवाच ।
एवं कृष्णा विराटस्य भार्यया परिसान्त्विता ३६
उवास नगरे तस्मिन् पतिधर्मवती सती ।
न चैनां वेद तत्रान्यस्तत्त्वेन जनमेजय ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि द्रौपदीप्रवेशे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

वैशम्पायन उवाच ।
सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेषमनुत्तमम् ।
भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ ॥ १
गोष्ठमासाद्य तिष्ठन्तं भवनस्य समीपतः ।
राजाऽथ दृष्ट्वा पुरुषान् प्राहिणोज्जातविस्मयः ॥ २
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य भ्राजमानं नरर्षभम् ।
समुपस्थाय वै राजा पप्रच्छ कुरुनन्दनम् ॥ ३
कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा त्वं तु चिकीर्षसि
न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ॥ ४
संप्राप्य राजानममित्रतापनं
ततोऽब्रवीन्मेघमहौघनिःस्वनः
वैश्योऽस्मि नाम्नाऽहमरिष्टनेमि-
र्गोसङ्ख्य आसं कुरुपुङ्गवानाम् ॥ ५
वस्तुं त्वयीच्छामि विशां वरिष्ठ
तान् राजसिंहान् न हि वेद्मि पार्थान् ।
न शक्यते जीवितुमप्यकर्मणा
न च त्वदन्यो मम रोचते नृपः ॥ ६
विराट उवाच ।
त्वं ब्राह्मणो यदि वा क्षत्रियोऽसि
समुद्रनेमीश्वररूपवानसि ।
आचक्ष्व मे तत्त्वममित्रकर्शन
न वैश्यकर्म त्वयि विद्यते क्षमम् ॥ ७

---

कर्कटी षट्पादवान् जन्तुः ॥ २९ ॥ मह्यं मम गन्धर्वा इति देवताप्रजत्वादमानुषत्वमात्रं विवक्षितम्। अतिमानुषकर्माण इत्यर्थः ॥ ३० ॥ गन्धर्वतुल्यो राजा गन्धर्वराजः पाण्डुस्तस्येति गूढोऽभिसन्धिः। दुःखा दुःखवती अतिदुःखदा चाहं परपत्नीत्वात्। आरा सिंहीव सिंही परैरनाक्रमणीया । 'आरः पुंसि तरोर्भेदे तथा कर्कटदंष्ट्रिणोः' इति मेदिनी। आरशब्दाददन्तत्वात् स्त्रियां टाप्। स्वयमेव तीक्ष्णाग्राऽस्मीति भावः। दुःखाचारेति। क्लेशकालोऽयं कियान् ममास्तीति दर्शयति ॥ ३१ ॥ परां तनुं प्रविश्येत्यनेन परलोकं गच्छेदेवेत्युक्तम् ॥ ३३ ॥ तेऽपि दुःखशीलाः केनचिन्निमित्तेन दुःखं सहन्तीत्यर्थः । बलवन्तश्च ते प्रियाश्च ॥ ३४ ॥ हे नन्दिनि मुद्प्रदे ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ § 'खेकडा' इति प्रसिद्धिः । † गृध्येत्-प्रार्थयेत् ।

१०

**सहदेवेति**। उपयात् उपायात् ॥ १ ॥ वेशो रूपान्तरप्रकाशनं कर्म यस्य स वैश्यः। अरिष्टनेमिः अप्रतिहतचक्रोऽस्मीति गूढोऽभिसन्धिः। कुरुपुङ्गवानां पाण्डवानां मध्ये गोसङ्ख्यः। गो इति इन्द्रियवाचित्वात् पञ्चानां संख्या यस्य स गोसंख्यः पञ्चसंख्यः पञ्चम इत्यर्थः ॥ ५ ॥ तान् राजसिंहान् वर्तमानकाले राजमूर्धस्थान् न वेद्मि नोपलभे स्वर्गा ध्वस्त इतिवद्विशेषणादर्शनाद्विशिष्टादर्शनमुक्तमित्यदोषः ॥ ६ ॥

कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः
किं वाऽपि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ।
कथं त्वमस्मासु निवत्स्यसे सदा
वदस्व किं चापि तवेह वेतनम् ॥ ८

सहदेव उवाच ।

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः ।
तस्याष्टशतसाहस्रा गवां +वर्गाः शतं शतम् ॥९
अपरे शतसाहस्रा द्विस्तावन्तस्तथा परे ।
तेषां गोसङ्ख्य आसं वै तन्तिपालेति मां विदुः॥
भूतं भव्यं भविष्यं च यच्च सङ्ख्यागतं गवाम् ।
न मेऽस्त्यविदितं किञ्चित् समन्ताद्दशयोजनम्
गुणाः सुविदिता ह्यासन् मम तस्य महात्मनः ।
असीच्च स मया दृष्टः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १२
क्षिप्रं च गावो बहुला भवन्ति
न तासु रोगो भवतीह कश्चन ।
तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैत-
देतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ॥ १३
ऋषभांश्चापि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १४

विराट उवाच ।

शतं सहस्राणि समाहितानि
सवर्णवर्णस्य विमिश्रितान् गुणैः ।
पशून् सपालान् भवते ददाम्यहम्
त्वदाश्रया मे पशवो भवन्त्विह ॥ १५

वैशम्पायन उवाच ।

तथा स राज्ञो विदितो विशाम्पते-
रुवास तत्रैव सुखं नरोत्तमः ।
न चैनमन्येऽपि विदुः कथञ्चन
प्रादाच्च तस्मै भरणं यथेप्सितम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि सहदेवप्रवेशे
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

वैशम्पायन उवाच ।

अथापरोऽदृश्यत रूपसम्पदा
स्त्रीणामलङ्कारधरो बृहत्पुमान् ।
प्राकारवप्रे प्रतिमुच्य कुण्डले
दीर्घे च कम्बूपरि हाटके शुभे ॥ १
बाहू च दीर्घान् प्रविकीर्य मूर्धजान्
महाभुजो वारणतुल्यविक्रमः ।
गतेन भूमिं प्रतिकम्पयंस्तदा
विराटमासाद्य सभासमीपतः ॥ २
तं प्रेक्ष्य राजोपगतं सभातले
व्याजात् प्रतिच्छन्नमरिप्रमाथिनम् ।
विराजमानं परमेण वर्चसा
सुतं महेन्द्रस्य गजेन्द्रविक्रमम् ॥ ३
सर्वानपृच्छच्च समानुचारिणः
कुतोऽयमायाति पुरा न मे श्रुतः ।
न चैनमूचुर्विदितं तदा नराः
सविस्मयं वाक्यमिदं नृपोऽब्रवीत् ॥ ४
सत्त्वोपपन्नः पुरुषोऽमरोपमः
श्यामो युवा वारणयूथपोपमः ।
आमुच्य कम्बूपरि हाटके शुभे
विमुच्य वेणीमपिनह्य कुण्डले ॥ ५

---

गोसंख्यो गवां परीक्षकः । तन्तिपालो वचनकरः ॥ १० ॥ संख्यागतं परीक्षायामवगतम् ॥११॥ समानो वर्णो येषां ते सवर्णाः वर्णस्य वर्णेन विमिश्रिताश्च पाटलादयः । विभक्त्यलोप आर्षः । सवर्णाश्च वर्णविमिश्रिताश्च तान् । तत्तद्गुणैः उपलक्षितान् ॥ १५ ॥ राज्ञो राज्यकर्तुः विशाम्पतेः प्रजापालकस्य भरणं वेतनम् ॥ १६ ॥ इति श्रीम० विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

अथेति । अदृश्यत दृष्टः रूपसम्पदा उपलक्षितः प्राकारवप्रे स्थितैः तत्समीपे वा स्थितोऽदृश्यत दृष्टः। प्रतिमुच्य परिधाय दीर्घे कुण्डले ताटङ्के कम्बूनां शङ्खानामुपरि कम्बूपरि हाटके कनकमये वलये च परिमुच्य ॥१॥ दीर्घान् मूर्धजान् बाहू च प्रविकीर्य व प्रसार्य ॥२॥ + वर्गाः सजातीयसमुदायाः ।

स्रग्वी सुकेशः परिधाय चान्यथा
शुशोभ धन्वी कवची शरी यथा ।
आरुह्य यानं परिधावतां भवान्
सुतैः समो मे भव वा मया समः ॥ ६
वृद्धो ह्यहं वै परिहारकामः
सर्वान् मत्स्यांस्तरसा पालयस्व ।
नैवंविधाः क्लीबरूपा भवन्ति
कथञ्चनेति प्रतिभाति मे मनः ॥ ७
अर्जुन उवाच ।
गायामि नृत्याम्यथ वादयामि
भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोऽस्मि गीते ।
त्वमुत्तरायै प्रदिशस्व मां स्वयं
भवामि देव्या नरदेव नर्तकः ॥ ८
इदं तु रूपं मम येन किं तव
प्रकीर्तयित्वा भृशशोकवर्धनम् ।
बृहन्नलां मां नरदेव विद्धि
सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम् ॥ ९
विराट उवाच ।
ददामि ते हन्त वरं बृहन्नले
सुतां च मे नर्तय याश्च तादृशीः ।
इदं तु ते कर्म समं न मे मतं
समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥ १०
वैशम्पायन उवाच ।
बृहन्नलां तामभिवीक्ष्य मत्स्यराट्
कलासु नृत्येषु तथैव वादिते ।
संमन्त्र्य राजा विविधैः स्वमन्त्रिभिः
परीक्ष्य चैनं प्रमदाभिराशु वै ॥ ११
अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं
ततः कुमारीपुरमुत्ससर्ज तम् ।
स शिक्षयामास च गीतवादितं
सुतां विराटस्य धनञ्जयः प्रभुः ॥ १२
सखीश्च तस्याः परिचारिकास्तथा
प्रियश्च तासां स बभूव पाण्डवः ॥ १३
तथा स सत्रेण धनञ्जयो वसन्
प्रियाणि कुर्वन् सह ताभिरात्मवान् ।
तथा च तं तत्र न जज्ञिरे जना
बहिश्चरा वाऽप्यथ चान्तरेचराः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि अर्जुनप्रवेशो नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

वैशम्पायन उवाच ।
अथापरोऽदृश्यत पाण्डवः प्रभु-
र्विराटराजं तरसा समेयिवान् ।
तमापतन्तं ददृशे पृथग्जनो
विमुक्तमभ्रादिव सूर्यमण्डलम् ॥ १
स वै हयानैक्षत तांस्ततस्ततः
समीक्षमाणं स ददर्श मत्स्यराट् ।
ततोऽब्रवीत्ताननुगान्नरेश्वरः
कुतोऽयमायाति नरोऽमरोपमः ॥ २
स्वयं हयानीक्षति मामकान् दृढं
ध्रुवं हयज्ञो भविता विचक्षणः ।
प्रवेश्यतामेष समीपमाशु मे
विभाति वीरो हि यथाऽमरस्तथा ॥ ३
अभ्येत्य राजानममित्रहाऽब्रवी-
ज्जयोऽस्तु ते पार्थिव भद्रमस्तु वः ।
हयेषु युक्तो नृप संमतः सदा
तवाश्वसूतो निपुणो भवाम्यहम् ॥ ४
विराट उवाच ।
ददामि यानानि धनं निवेशनं
ममाश्वसूतो भवितुं त्वमर्हसि ।
कुतोऽसि कस्यासि कथं त्वमागतः
प्रब्रूहि शिल्पं तव विद्यते च यत् ॥ ५

---

परिहारकामः अमात्येषु राज्यभारं न्यस्तुकामः ॥ ७ ॥ देव्या उत्तरायाः ॥ ८ ॥ येन हेतुना इदं रूपं मम जातं तत्कीर्तनं तव निकटे व्यर्थं शोककरं चेत्यर्थः ॥ ९ ॥ ते समं त्वदाकृत्या युक्तं न इति मे मम मतम् ॥ १० ॥ अपुंस्त्वं क्लीबत्वं। निशम्य आलोच्य ॥ १२ ॥ सत्रेण कैतवेन । 'सत्रमाच्छादने यज्ञे सदादाने च कैतवे' इति विश्वः। न जज्ञिरे न ज्ञातवन्तः ॥ १४ ॥ इति श्रीम० विराटप० नैल० भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पृथग्जनः प्राकृतजनः इत्यर्थः ।

नकुल उवाच ।

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः ।
तेनाहमश्वेषु पुरा नियुक्तः शत्रुकर्शन ॥ ६
अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः ।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं चैव चिकित्सितम् ७
न कातरं स्यान्मम जातु वाहनं
न मेऽस्ति दुष्टा वडवा कुतो हयाः ।
जनस्तु मामाह स चापि पाण्डवो
युधिष्ठिरो ग्रन्थिकमेव नामतः ॥ ८

विराट उवाच ।

यदस्ति किञ्चिन्मम वाजिवाहनं
तदस्तु सर्वं त्वदधीनमद्य वै ।
ये चापि केचिन्मम वाजियोजका-
स्त्वदाश्रयाः सारथयश्च सन्तु मे ॥ ९
इदं तवेष्टं यदि वै सुरोपम
ब्रवीहि यत्ते प्रसमीक्षितं वसु ।
न तेऽनुरूपं हयकर्म विद्यते
प्रभासि राजेव हि संमतो मम ॥ १०
युधिष्ठिरस्येव हि दर्शनेन मे
समं तवेदं प्रियमत्र दर्शनम् ।
कथं तु भृत्यैः स विनाकृतो वने
वसत्यनिन्द्यो रमते च पाण्डवः ॥ ११

वैशम्पायन उवाच ।

तथा स गन्धर्ववरोपमो युवा
विराटराज्ञा मुदितेन पूजितः ।
न चैनमन्येऽपि विदुः कथञ्चन
प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा ॥ १२
एवं हि मत्स्ये न्यवसन्त पाण्डवा
यथाप्रतिज्ञाभिरमोघदर्शनाः ।
अज्ञातचर्यां व्यचरन् समाहिताः
समुद्रनेमीपतयोऽतिदुःखिताः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि नकुलप्रवेशे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ समाप्तं पाण्डवप्रवेशपर्व ॥

## समयपालनपर्व २

### १३

जनमेजय उवाच ।

एवं ते मत्स्यनगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः ।
अत ऊर्ध्वं महावीर्याः किमकुर्वत वै द्विज ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

एवं मत्स्यस्य नगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः ।
आराधयन्तो राजानं यदकुर्वत तच्छृणु ॥ २
तृणबिन्दुप्रसादाच्च धर्मस्य च महात्मनः ।
अज्ञातवासमेवं तु विराटनगरेऽवसन् ॥ ३
युधिष्ठिरः सभास्तारो मत्स्यानामभवत् प्रियः ।
तथैव च विराटस्य सपुत्रस्य विशाम्पते ॥ ४
×स ह्यक्षहृदयज्ञस्तान् क्रीडयामास पाण्डवः ।
अक्षवत्यां यथाकामं सूत्रबद्धानिव द्विजान्× ॥ ५
अज्ञातं च विराटस्य विजित्य वसु धर्मराट् ।
भ्रातृभ्यः पुरुषव्याघ्रो यथार्हं संप्रयच्छति ॥ ६
भीमसेनोऽपि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च
अतिसृष्टानि मत्स्येन विक्रीणीते युधिष्ठिरे ॥ ७
वासांसि परिजीर्णानि लब्धान्यन्तःपुरेऽर्जुनः ।
विक्रीणानश्च सर्वेभ्यः पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ ८
सहदेवोऽपि गोपानां वेषमास्थाय पाण्डवः ।
दधि क्षीरं घृतं चैव पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ ९

१२

अथेति । प्रकृतिं जातिम् । विनयं शिक्षाम् । प्रतिपत्तिं दोषनिराकरणप्रकारम् । चिकित्सितं व्याध्युपशमोपायम् ॥ ७ ॥ कातरं भीरु । वडवा अश्वा । अत एव ग्रन्थिकमश्वशास्त्रज्ञम् ॥ ८ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नकुलप्रवेशो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

× स पाण्डवस्तान् द्विजान् पक्षिण इवाक्षवत्यां द्यूतशालायां द्यूतैरक्रीडयामासेति संबन्धः ।

नकुलोऽपि धनं लब्ध्वा कृते कर्मणि वाजिनाम् ।
तुष्टे तस्मिन्नरपतौ पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ १०
कृष्णा तु सर्वान् भर्तृंस्तान्निरीक्षन्ती तपस्विनी ।
यथा पुनरविज्ञाता तथा चरति भामिनी ॥ ११
एवं सम्पादयन्तस्ते तदाऽन्योन्यं महारथाः ।
विराटनगरे चेरुः पुनर्गर्भधृता इव ॥ १२
साशङ्का धार्तराष्ट्रस्य भयात् पाण्डुसुतास्तदा ।
प्रेक्षमाणास्तदा कृष्णामूषुश्छन्ना नराधिप ॥ १३
अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः ।
आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसंमतः १४
तत्र मल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन् सहस्रशः ।
समाजे ब्रह्मणो राजन् यथा पशुपतेरिव ॥ १५
महाकाया महावीर्याः कालखञ्जा इवासुराः ।
वीर्योन्मत्ता बलोदग्रा राज्ञा समभिपूजिताः॥१६
सिंहस्कन्धकटिग्रीवाः स्ववदाता मनस्विनः ।
असकृल्लब्धलक्षास्ते रङ्गे पार्थिवसन्निधौ ॥ १७
तेषामेको महानासीत् सर्वमल्लानथाह्वयत् ।
आवल्गमानं तं रङ्गे नोपतिष्ठति कश्चन ॥ १८
यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः ।
अथ सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट् ॥ १९
नोद्यमानस्तदा भीमो दुःखेनैवाकरोन्मतिम् ।
न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम् ॥२०
ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलश्चरन् ।
प्रविवेश महारङ्गं विराटमभिपूजयन् ॥ २१
बबन्ध कक्षां कौन्तेयस्ततः संहर्षयन् जनम् ।
ततस्तु वृत्रसङ्काशं भीमो मल्लं समाह्वयत् ॥ २२
जीमूतं नाम तं तत्र मल्लं प्रख्यातविक्रमम् ।
तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ भीमपराक्रमौ ॥ २३
मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ ।
ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुयुद्धं समीयतुः ॥ २४
वीरौ परमसंहृष्टावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ।
आसीत् सुभीमः संपातो वज्रपर्वतयोरिव ॥ २५
उभौ परमसंहृष्टौ बलेनातिबलावुभौ ।
अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू परस्परजयैषिणौ ॥ २६
उभौ परमसंहृष्टौ मत्ताविव महागजौ ।
कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सुसङ्कटैः ।
सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा ॥ २७
क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिःस्वनैः ।
तलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ॥ २८
शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ।
जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिरोभिश्चावघट्टनैः ॥२९
तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ।
बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ ॥ ३०
अरज्यत जनः सर्वः सोत्कुष्टनिनदोत्थितः ।
बलिनोः संयुगे राजन् वृत्रवासवयोरिव ॥ ३१
प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षविकर्षणैः ।
आकर्षतुरथान्योन्यं जानुभिश्चापि जघ्नतुः ॥ ३२

१३

**एवमिति** । सम्पादयन्तोऽन्योन्यमाराधयन्तः गर्भधृता इव प्रच्छन्नत्वेन सेवाश्रमेण च दुःखिता इत्यर्थः॥१२॥ब्रह्मणः उत्सवः शरदि नवधान्योत्पत्तौ सर्वैः क्रियते स च देशविशेषे प्रसिद्धः ॥ १४ ॥ यथा ब्रह्मणः समाजे ब्रह्मलोके कैलासे वा पशुपतेः समाजे इव मत्स्येषु समापेतुरिति सम्बन्धः ॥१५॥ स्ववदाताः अत्यन्तनिर्मलाः मनस्विनः प्रीतमनसः लब्धलक्षाः प्राप्तविजयाः ॥ १७ ॥ सूदेन भीमेन ॥ १९॥ दुःखेनैव पारतन्त्र्यात् प्राकट्यभयाद्वा दुःखं न तु भङ्गभयात्। विवृते प्रकाशे॥२०॥ कक्षां परिकरम् । कच्छामिति पाठेऽपि स एवार्थः। यद्वा कक्षां रज्जुं रज्ज्वा पातनभयान्मल्लैरङ्गुल्यो बध्यन्त इति प्रसिद्धेरङ्गुलीर्बध्वेत्यर्थः ॥ २२ ॥ कृतं क्वचिद्देशे निपीडनम्। प्रतिकृतं तस्य मोचनम्। सुसंकटैर्मुष्टिग्रहणेन दृढीकृतैः। सकण्टकैरिति पाठे सकवचैः सकिणैर्वा ' कण्टको बाहुचरणकवचे कठिने किणे'इति विश्वः। सन्निपातोऽङ्गसङ्घट्टनं अवधूतं तेनैव दूरीकरणं। प्रमाथादय उक्ता मल्लशास्त्रे-'निपात्य पेषणं भूमौ प्रमाथ इति कथ्यते। यत्तूत्थायाङ्गमथनं तदुन्मथनमुच्यते' ॥ २७ ॥-'क्षेपणं कथ्यते यत्तु स्थानात्प्रच्यावनं हठात्। उभयोर्भुजयोर्मुष्टिरुरोमध्ये निपात्यते। मुष्टिरित्युच्यते तज्ज्ञैर्मल्लविद्याविशारदैः । अवाङ्मुखं स्कन्धगतं भ्रामयित्वा तथैव यः । क्षिप्तस्य शब्दः स भवेद्वराहोद्धूतनिःस्वनः ।' तलैर्वज्रनिपातैर्वज्रवद्दृढपातैश्चपेटैः ।-'अङ्गुल्यः प्रसृता यास्तु ताः प्रसृष्टा उदीरिताः' ॥ २८ ॥ 'ऋज्वी दृढा रुषा क्षिप्ता शलाका साङ्गुली स्मृता।'तस्या नखपातैः। पादोद्धूतैः पादप्रसारणेनाक्षेपैः। जानुभिः शिरोभिश्च कृतैरवघट्टनैरास्फालनैः । अश्मनिर्घोषैरित्युभयविशेषणम् ॥ २९ ॥ अशस्त्रं निन्द्यम् यथोक्तं तत्रैव-'बाहुयुद्धं हि मल्लानामशस्त्रमृषिभिः स्मृतम् । मृतस्य तस्य न स्वर्गो यशो नेहापि विद्यते ' इति । बलप्राणेन बलेन शारीरबलेन प्राणेन मानसबलेन च॥३०॥ सोत्कुष्टनिनदः हीहीशब्दोच्चारणेन याञ्जितस्य समुत्थापनं तत्सहितः॥३१॥-'आकृष्य क्रोडीकरणं प्रकर्षणमुदाहृतम्। आकर्षणं लालयैव संमुखीकरणं स्मृतम्। पुरः पश्चात् पार्श्वयोश्चा

ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम् ।
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ३३
चकर्ष दोर्भ्यामुत्पात्य भीमो मल्लममित्रहा ।
निनदन्तमभिक्रोशन् शार्दूल इव वारणम् ॥ ३४
समुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयामास वीर्यवान् ।
ततो मल्लाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम् ३५
भ्रामयित्वा *शतगुणं गतसत्त्वमचेतनम् ।
¶प्रत्यपिषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः ॥ ३६
तस्मिन् विनिहते वीरे जीमूते लोकविश्रुते ।
विराटः परमं हर्षमगच्छद्बान्धवैः सह ॥ ३७
प्रहर्षात् प्रददौ वित्तं बहु राजा महामनाः ।
बल्लवाय महारङ्गे यथा वैश्रवणस्तथा ॥ ३८
एवं स सुबहून् मल्लान् पुरुषांश्च महाबलान् ।
[illegible]ीतिमाहरदुत्तमाम् ३९
यदास्य तुल्यः पुरुषो न कश्चित्तत्र विद्यते ।
ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत् ॥ ४०
पुनरन्तःपुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः ।
योध्यते स विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः ॥ ४१
बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्येन च पाण्डवः ।
विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तःपुरस्त्रियः ॥ ४२
अश्वैर्विनीतैर्जवनैस्तत्र तत्र समागतैः ।
तोषयामास राजानं नकुलो नृपसत्तमम् ॥ ४३
तस्मै प्रदेयं प्रायच्छत् प्रीतो राजा धनं बहु ।
विनीतान् वृषभान् दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभितः ।
धनं ददौ बहुविधं विराटः पुरुषर्षभः ॥ ४४
द्रौपदी प्रेक्ष्य तान्सर्वान् क्लिश्यमानान्महारथान् ।
नातिप्रीतमना राजन्निःश्वासपरमाऽभवत् ॥ ४५
एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः ।
कर्माणि तस्य कुर्वाणा विराटनृपतेस्तदा ॥ ४६

[illegible]महाभारते विराटपर्वणि समयपालनपर्वणि जीमूतवधे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ समाप्तं समयपालनपर्व २ ॥

## कीचकवधपर्व ३

### १४

वैशम्पायन उवाच ।
वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा ।
महारथेषु छन्नेषु मासा दश समाययुः ॥ १
याज्ञसेनी सुदेष्णां तु शुश्रूषन्ती विशाम्पते ।
आवसत् परिचारार्हा सुदुःखं जनमेजय ॥ २
तथा चरन्ती पाञ्चाली सुदेष्णाया निवेशने ।
तां देवीं तोषयामास तथा चान्तःपुरस्त्रियः ॥ ३
तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः ।
सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ॥ ४
तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव ।
कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः ॥ ५
स तु कामाग्निसंतप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै ।
प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६

नेयं मया जातु पुरेह दृष्टा
राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा ।
रूपेण चोन्मादयतीव मां भृशं
गन्धेन जाता मदिरेव भामिनी ॥ ७
का देवरूपा हृदयङ्गमा शुभे
ह्याचक्ष्व मे कस्य कुतोऽत्र शोभने ।
चित्तं हि निर्मथ्य करोति मां वशे
न चान्यदत्रौषधमस्ति मे मतम् ॥ ८

[illegible]व्याकर्षो भ्रमणं तथा । पश्चात्प्रपातनं वेगाद्विकर्षणमुदाहृतम्' ॥३२॥ गतसत्त्वं नष्टबुद्धिमत एवाचेतनं शवभूतम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीम० वि० नै० भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः १३॥

* शतगुणं शतवारम् ¶ प्रत्यपिषत्-पिष्टं कृतवान् ।
१४
वसमानेष्विति । अन्यदौषधमेतां विना ॥ ८ ॥

अहो तवेयं परिचारिका शुभा ।
प्रत्यग्ररूपा प्रतिभाति मामियम् ।
अयुक्तरूपं हि करोति कर्म ते
प्रशास्तु मां यच्च ममास्ति किञ्चन ॥ ९
प्रभूतनागाश्वरथं महाजनं
समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम् ।
मनोहरं काञ्चनचित्रभूषणं
गृहं महच्छोभयतामियं मम ॥ १०
ततः सुदेष्णामनुमन्त्र्य कीचक-
स्ततः समभ्येत्य नराधिपात्मजाम् ।
उवाच कृष्णामभिसान्त्वयंस्तदा
मृगेन्द्रकन्यामिव जम्बुको वने ॥ ११
का त्वं कस्यासि कल्याणि कुतो वा त्वं वरानने
प्राप्ता विराटनगरं तत्त्वमाचक्ष्व शोभने ॥ १२
रूपमग्र्यं तथा कान्तिः सौकुमार्यमनुत्तमम् ।
कान्त्या विभाति वक्त्रं ते शशाङ्क इव निर्मलम् ॥
नेत्रे सुविपुले सुभ्रु पद्मपत्रनिभे शुभे ।
वाक्यं ते चारुसर्वाङ्गि परपुष्टरुतोपमम् ॥ १४
एवंरूपा मया नारी काचिदन्या महीतले ।
न दृष्टपूर्वा सुश्रोणि यादृशी त्वमनिन्दिते ॥ १५
लक्ष्मीः पद्मालया का त्वमथ भूतिः सुमध्यमे ।
ह्रीः श्रीः कीर्तिरथो कान्तिरासां का त्वं वरानने
अतीव रूपिणी किं त्वमनङ्गाङ्गविहारिणी ।
अतीव भ्राजसे सुभ्रु प्रभेवेन्दोरनुत्तमा ॥ १७
अपि चेक्षणपक्ष्माणां स्मितज्योत्स्नोपमं शुभम् ।
दिव्यांशुरश्मिभिर्वृत्तं दिव्यकान्तिमनोरमम् ॥ १८
निरीक्ष्य वक्त्रचन्द्रं ते लक्ष्म्याऽनुपमया युतम् ।
कृत्स्ने जगति को नेह कामस्य वशगो भवेत् ॥ १९
हारालङ्कारयोग्यौ तु स्तनौ चोभौ सुशोभनौ ।
सुजातौ सहितौ लक्ष्म्या पीनौ वृत्तौ निरन्तरौ ॥
कुड्मलाम्बुरुहाकारौ तव सुभ्रु पयोधरौ ।
कामप्रतोदाविव मां तुदतश्चारुहासिनि ॥ २१
वलीविभङ्गचतुरं स्तनभारविनामितम् ।
कराग्रसंमितं मध्यं तवेदं तनुमध्यमे ॥ २२
दृष्ट्वैव चारु जघनं सरित्पुलिनसंनिभम् ।
कामव्याधिरसाध्यो मामप्याक्रामति भामिनि २३
जज्वाल चाग्निमदनो दावाग्निरिव निर्दयः ।
त्वत्सङ्गमाभिसङ्कल्पविवृद्धो मां दहत्ययम् ॥ २४
आत्मप्रदानवर्षेण संगमाम्भोधरेण च ।
शमयस्व वरारोहे ज्वलन्तं मन्मथानलम् ॥ २५
मच्चित्तोन्मादनकरा मन्मथस्य शरोत्कराः ।
त्वत्संगमाशानिशितास्तीव्राः शशिनिभानने ।
मह्यं विदार्य हृदयमिदं निर्दयवेगिताः ॥ २६
प्रविष्टा ह्यसितापाङ्गि प्रचण्डाश्चण्डदारुणाः ।
अत्युन्मादसमारम्भाः प्रीत्युन्मादकरा मम ।
आत्मप्रदानसम्भोगैर्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥ २७
चित्रमाल्याम्बरधरा सर्वाभरणभूषिता ।
कामं प्रकामं सेव त्वं मया सह विलासिनि २८
नार्हसीहासुखं वस्तुं सुखार्हा सुखवर्जिता ।
प्राप्नुह्यनुत्तमं सौख्यं मत्तस्त्वं मत्तगामिनि ॥ २९
स्वादून्यमृतकल्पानि पेयानि विविधानि च ।
पिबमाना मनोज्ञानि रममाणा यथासुखम् ॥ ३०
भोगोपचारान् विविधान् सौभाग्यं चाप्यनुत्तमम्
पानं पिब महाभागे भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥ ३१
इदं हि रूपं प्रथमं तवानघे
निरर्थकं केवलमद्य भामिनि ।
अधार्यमाणा स्रगिवोत्तमा शुभा
न शोभसे सुन्दरि शोभना सती ॥ ३२
त्यजामि दारान् मम ये पुरातना
भवन्तु दास्यस्तव चारुहासिनि ।
अहं च ते सुन्दरि दासवत् स्थितः
सदा भविष्ये वशगो वरानने ॥ ३३
द्रौपद्युवाच ।
अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे ।
निहीनवर्णां सैरन्ध्रीं बीभत्सां केशकारिणीम् ३४
परदाराऽस्मि भद्रं ते न युक्तं तव साम्प्रतम् ।
दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तय ॥ ३५

---

प्रत्यग्ररूपा दिव्यरूपा ॥९॥ परपुष्टः कोकिलः॥१४॥ भूतिः ईश्वरी ऐश्वर्याभिमानिनी देवता ॥१६॥ अनङ्गाङ्गविहारिणी स्मरदेहेन क्रीडन्ती रतिरित्यर्थः॥१७॥ ईक्षणपक्ष्मणां नेत्रपक्ष्मणां स्मितमीषदुन्मीलनं तदेव ज्योत्स्नोपमं मनस आल्हादकरम्। लक्ष्माणमिति पाठे वक्त्रचन्द्रविशेषणम्॥१८॥ सुजातौ उन्नतौ निरन्तरौ पृथुत्वात्संश्लिष्टौ॥२०॥ कुड्मलेति। मुकुलीभूतपद्माकारौ॥२१॥[वलीनां जठरगतरेखाणां विभङ्गेन चतुरं शोभनं]कराग्रमंगुष्ठादिमध्यमांतो वितस्तिस्तेन संमितं कृशमित्यर्थः॥२२॥अग्निमदनो मदनाग्निः॥२४॥अत्युन्मादं मरणकालीनं सन्निपातं समारभन्ते तेऽत्युन्मादसमारम्भाः। त्वदलाभे मरिष्याम्येवेति भावः॥२७॥ कामं ईप्सरं प्रकाममतिशायितम् ॥२८॥प्राप्नुहि लभस्व ॥२९॥ अभिमन्यसे कामयसे ॥३४॥

परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्या कथंचन ।
विवर्जनं ह्यकार्याणामेतत् सुपुरुषव्रतम् ॥ ३६
मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः
अयशः प्राप्नुयाद्घोरं महद्वा प्राप्नुयाद्भयम् ॥ ३७
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु सैरन्ध्र्या कीचकः काममोहितः ।
जानन्नपि सुदुर्बुद्धिः परदाराभिमर्शने ॥ ३८
दोषान् बहून् प्राणहरान् सर्वलोकविगर्हितान् ।
प्रोवाचेदं सुदुर्बुद्धिर्द्रौपदीमजितेन्द्रियः ॥ ३९
नार्हस्येवं वरारोहे प्रत्याख्यातुं वरानने ।
मां मन्मथसमाविष्टं त्वत्कृते चारुहासिनि ॥ ४०
प्रत्याख्याय च मां भीरु वशगं प्रियवादिनम् ।
नूनं त्वमसितापाङ्गि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥ ४१
अहं हि सुभ्रु राज्यस्य कृत्स्नस्यास्य सुमध्यमे ।
प्रभुर्वासयिता चैव वीर्ये चाप्रतिमः क्षितौ ॥ ४२
पृथिव्यां मत्समो नास्ति कश्चिदन्यः पुमानिह ।
रूपयौवनसौभाग्यैर्भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥ ४३
सर्वकामसमृद्धेषु भोगेष्वनुपमेष्विह ।
भोक्तव्येषु च कल्याणि कस्माद्दास्ये रता ह्यसि॥
मया दत्तमिदं राज्यं स्वामिन्यसि शुभानने ।
भजस्व मां वरारोहे भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान् ४५
एवमुक्ता तु सा साध्वी कीचकेनाशुभं वचः ।
कीचकं प्रत्युवाचेदं गर्हयन्त्यस्य तद्वचः ॥ ४६
सैरन्ध्र्युवाच ।
मा सूतपुत्र मुह्यस्व माऽद्य त्यक्ष्यस्व जीवितम् ।
जानीहि पञ्चभिर्घोरैर्नित्यं मामभिरक्षिताम्॥ ४७
न चाप्यहं त्वया लभ्या गन्धर्वाः पतयो मम ।
ते त्वां निहन्युः कुपिताः साध्वलं मा व्यनीनशः
अशक्यरूपं पुरुषैरध्वानं गन्तुमिच्छसि ।
यथा निश्चेतनो बालः कूलस्थः कूलमुत्तरम् ।
तर्तुमिच्छति मन्दात्मा तथा त्वं कर्तुमिच्छसि४९
अन्तर्महीं वा यदि वोर्ध्वमुत्पतेः
समुद्रपारं यदि वा प्रधावसि ।
तथाऽपि तेषां न विमोक्षमर्हसि
प्रमाथिनो देवसुता हि खेचराः ॥ ५०
त्वं कालरात्रीमिव कश्चिदातुरः
किं मां दृढं प्रार्थयसेऽद्य कीचक ।
किं मातुरङ्के शयितो यथा शिशु-
श्चन्द्रं जिघृक्षुरिव मन्यसे हि माम् ॥५१
तेषां प्रियां प्रार्थयतो न ते भुवि
गत्वा दिवं वा शरणं भविष्यति ।
न वर्तते कीचक ते दृशा शुभं
या तेन संजीवनमर्थयेत सा ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचककृष्णसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

वैशम्पायन उवाच ।
प्रत्याख्यातो राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोऽब्रवीत्
अमर्यादेन कामेन घोरेणाभिपरिप्लुतः ॥ १
यथा कैकेयि सैरन्ध्री समेयात्तद्विधीयताम् ।
येनोपायेन सैरन्ध्री भजेन्मां गजगामिनी ।
तं सुदेष्णे परीप्सस्व प्राणान्मोहात् प्रहासिषम् २

मिथ्याभिगृध्नो वितथाभिनिवेशी महद्भयं मृत्युम् ॥ ३७ ॥ मन्यसे लिप्ससे । शिशोश्चन्द्रवदहं तव दुर्लभाऽस्मीति भावः ॥ ५१ ॥ तेषां प्रियामिति । तेषां प्रसिद्धानां गन्धर्वाणां प्रियां प्रार्थयतस्ते तव भुवि गत्वा दिवं वा गत्वा शरणं त्राता कश्चिन्न भविष्यति। अत एव हे कीचक ते तव कामान्धस्य सा दृशा दृष्टिर्बुद्धिरिति यावत् या शुभं स्वीयमर्थयेत कामयेत। शुभेच्छारूपा तव नास्तीत्यर्थः। तेन च शुभेन परदारनिवृत्तिरूपेण कामितेन सञ्जीवनं भवतीति शेषः । अन्यथा मरिष्यसीत्यर्थः । न मे भुवीति पाठे तेषां प्रियां प्रार्थयतो मे मम कोऽपि त्राता न भविष्यतीति दृशा बुद्धिस्तव नास्तीति सम्बन्धः । या ते च संजीवनमर्थयत्तमिति पाठे तु या दृष्टिस्ते तव संजीवनं च भवति कीदृशं संजीवनं अर्थयत्तं वस्त्वधीनम्। तस्माद्वितथाभिनिवेशिनस्ते जीवनं नास्तीत्यर्थः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

**प्रत्याख्यात इति** । समेयात् मामुपगच्छेत् मा ऊहादिति छेदः । ऊहात् वितर्कात्तमुपायं युक्त्या परीप्सस्वेति योज्यम्। प्राणान् मा प्रहासिषमिति च ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य सा बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा ।
विराटमहिषी देवी कृपां चक्रे मनस्विनी ॥ ३
स्वमन्त्रमभिसन्धाय तस्यार्थमनुचिन्त्य च ।
उद्योगं चैव कृष्णायाः सुदेष्णा सूतमब्रवीत् ॥ ४
पर्वणि त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नं च कारय ।
तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुराहारीं तवान्तिकम् ॥ ५
तत्र संप्रेषितामेनां विजने निरवग्रहे ।
सान्त्वयेथा यथाकामं सान्त्व्यमाना रमेद्यदि ॥ ६

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तः स विनिष्क्रम्य भगिन्या वचनात्तदा ।
सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिष्कृताम् ॥ ७
†भक्षांश्च विविधाकारान् बहूंश्चोच्चावचांस्तदा ।
कारयामास कुशलैरन्नं पानं सुशोभनम् ॥ ८
तस्मिन् कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता ।
सुदेष्णा प्रेषयामास सैरन्ध्रीं कीचकालयम् ॥ ९

सुदेष्णोवाच ।

उत्तिष्ठ गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम् ।
पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते ॥ १०

सैरन्ध्र्युवाच ।

न गच्छेयमहं तस्य राजपुत्रि निवेशनम् ।
त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः ॥ ११
न चाहमनवद्याङ्गि तव वेश्मनि भामिनि ।
कामवृत्ता भविष्यामि पतीनां व्यभिचारिणी ॥
त्वं चैव देवि जानासि यथा स समयः कृतः ।
प्रविशन्त्या मया पूर्वं तव वेश्मनि भामिनि ॥ १२
कीचकस्तु सुकेशान्ते मूढो मदनदर्पितः ।
सोऽवमंस्यति मां दृष्ट्वा न यास्ये तत्र शोभने १४
सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः ।
अन्यां प्रेषय भद्रं ते स हि मामवमंस्यते ॥ १५

सुदेष्णोवाच ।

नैव त्वां जातु हिंस्यात् स इतः संप्रेषिता मया ।
इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् १६
सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी ।
प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥ १७

सैरन्ध्र्युवाच ।

यथाऽहमन्यं भर्तृभ्यो नाभिजानामि कंचन ।
तेन सत्येन मां प्राप्तां मा कुर्यात् कीचको वशे ॥

वैशम्पायन उवाच ।

उपातिष्ठत सा सूर्यं मुहूर्तमबला ततः ।
स तस्यास्तनुमध्यायाः सर्वं सूर्योऽवबुद्धवान् १९
अन्तर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत् ।
तच्चैनां नाजहात्तत्र सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् २०
तां मृगीमिव सन्त्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम् ।
उदतिष्ठन्मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीसुराहरणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

कीचक उवाच ।

स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम ।
स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥ १
सुवर्णमालाः *कम्बूश्च कुण्डले परिहाटके ।
नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्नं च शोभनम् ॥ २
आहरन्तु च वस्त्राणि कौशिकान्यजिनानि च ।
अस्ति मे शयनं दिव्यं त्वदर्थमुपकल्पितम् ।
एहि तत्र मया सार्द्धं पिबस्व मधुमाधवीम् ॥ ३

---

कृष्णायाः प्राप्त्यर्थे उद्योगमुद्यमं चानुचिन्त्येति योज्यम् ॥४॥ पर्वणि मद्यपायिनामुत्सवकाले चतुर्दश्यादौ। समुद्दिश्य अद्याहं सुदेष्णार्थमन्नादिकं कारयामीति कीर्तयित्वा-ख्यापयित्वा ॥ ५ ॥ विजने एकान्ते निरवग्रहे निष्प्रतिबन्धे ॥ ६ ॥ उपमन्त्रिता प्रार्थिता ॥ ९ ॥ पानं मद्यं सुरामन्नं चेत्युपक्रमात् तस्यैव पिपासा पातुमिच्छा ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ † भक्ष्यांश्च-क,-ङ.

१६

**स्वागतमिति** । परितो हाटके ययोस्ते परिहाटके कुण्डले ताटङ्के इत्यर्थः ॥२॥ मधुमाधवीं मधुपुष्पजां मदिराम् ॥३॥

* कम्बूः शङ्खघटितवलयानि ।

नैव त्वां जातु हिंस्यात् स इतः संप्रेषितां मया ।
इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥
—विराट अ. १५ पृ. २४

सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी ।
प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥ १७ ॥

—विराट अध्याय १५ पृ. २४

उपातिष्ठत सा सूर्यं मुहूर्तमबला ततः ॥ १९ ॥

—विराट अ. १५ पृ. २४

स तस्यास्तनुमध्यायाः सर्वं सूर्योऽवबुद्धवान् ।
अंतर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत् ।
तच्चैनां नाजहात्तत्र-सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् ॥ २० ॥

—विराट अ. १५ पृ. २४ •

स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजना मम ।
स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥ १ ॥

—विराट अ. १६ पृ. २८

द्रौपद्युवाच ।
अप्रैषीद्राजपुत्री मां सुराहारीं तवान्तिकम् ।
पानमाहर मे क्षिप्रं पिपासा मेऽति चाब्रवीत् ॥४
कीचक उवाच ।
अन्या भद्रे नयिष्यन्ति राजपुत्र्याः प्रतिश्रुतम् ।
इत्येतां दक्षिणे पाणौ सूतपुत्रः परामृशत् ॥ ५
द्रौपद्युवाच ।
यथैवाहं नाभिचरे कदाचित्
पतीन् मदाढ्ये मनसाऽपि जातु ।
तेनैव सत्येन वशीकृतं त्वां
द्रष्टाऽस्मि पापं परिकृष्यमाणम् ॥ ६
वैशम्पायन उवाच ।
स तामभिप्रेक्ष्य विशालनेत्रां
जिघृक्षमाणः परिभर्त्सयन्तीम् ।
जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे
स कीचकस्तां सहसाऽऽक्षिपन्तीम् ॥७
प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन
मुहुर्विनिःश्वस्य च राजपुत्री ।
तया समाक्षिप्ततनुः स पापः
पपात शाखीव निकृत्तमूलः ॥ ८
सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम् ।
सभां शरणमागच्छद्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ९
तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपाशे परामृशत् ।
अथैनां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाऽवधीत् ॥
तस्य योऽसौ तदाऽर्केण राक्षसः संनियोजितः ।
स कीचकमपोवाह वातवेगेन भारत ॥ ११
स पपात तदा भूमौ रक्षोबलसमाहतः ।
विघूर्णमानो निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १२
तां चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ ।
अमृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पराभवम् ॥१३
तस्य भीमो वधं प्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः ।
दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः ॥ १४
धूमच्छाया ह्यभजतां नेत्रे चोच्छ्रितपक्ष्मणी ।
सस्वेदा भृकुटी चोग्रा ललाटे समवर्तत ॥ १५
हस्तेन ममृदे चैव ललाटं परवीरहा ।
भूयश्च त्वरितः क्रुद्धः सहसोत्थातुमैच्छत ॥ १६
अथावमृद्नादङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेन युधिष्ठिरः ।
प्रबोधनभयाद्राजा भीमं तं प्रत्यषेधयत् ॥ १७
तं मत्तमिव मातङ्गं वीक्षमाणं वनस्पतिम् ।
स तमावारयामास भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥ १८
आलोकयसि किं वृक्षं सूद दारुकृतेन वै ।
यदि ते दारुभिः कृत्यं बहिर्वृक्षान्निगृह्यताम् ॥१९
सा सभाद्वारमासाद्य रुदती मत्स्यमब्रवीत् ।
अवेक्षमाणा सुश्रोणी पतींस्तान् दीनचेतसः॥ २०
आकारमभिरक्षन्ती प्रतिज्ञा धर्मसंहिता ।
दह्यमानेव रौद्रेण चक्षुषा द्रुपदात्मजा ॥ २१
द्रौपद्युवाच ।
येषां वैरी न स्वपिति षष्ठेऽपि विषये वसन् ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदाऽवधीत्२२
ये दद्युर्न च याचेयुर्ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदाऽवधीत् ॥
येषां दुन्दुभिनिर्घोषो ज्याघोषः श्रूयतेऽनिशम् ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदाऽवधीत् ॥
ये च तेजस्विनो दान्ता बलवन्तोऽतिमानिनः ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदाऽवधीत् ॥
सर्वलोकमिमं हन्युर्धर्मपाशसितास्तु ये ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदाऽवधीत् ॥
शरणं ये प्रपन्नानां भवन्ति शरणार्थिनाम् ।
चरन्ति लोके प्रच्छन्नाः क्व नु तेऽद्य महारथाः २७
कथं ते सूतपुत्रेण वध्यमानां प्रियां सतीम् ।
मर्षयन्ति यथा क्लीबा बलवन्तोऽमितौजसः ॥ २८
क्व नु तेषाममर्षश्च वीर्यं तेजश्च वर्तते ।
न परीप्सन्ति ये भार्यां वध्यमानां दुरात्मना॥२९
मयाऽत्र शक्यं किं कर्तुं विराटे धर्मदूषके ।
यः पश्यन्मां मर्षयति वध्यमानामनागसम् ॥ ३०
न राजा राजवत्किञ्चित् समाचरति कीचके ।
दस्यूनामिव धर्मस्ते न हि संसदि शोभते ॥ ३१

---

सुराहारीं सुरामाहर्तुकामां पिपासा मेऽति मे मम अतिपिपासा ॥ ४ ॥ विधुन्वाना कम्पमाना ॥ ९ ॥ अपोवाह दूरीचकार ॥११॥ धूमच्छायाः कर्म, नेत्रे कर्तृणी अभजताम् । छायामित्येकवचनान्तः पाठः स्वच्छः ॥ १५ ॥ अङ्गुष्ठं पादाङ्गुष्ठं अङ्गुष्ठेन हस्ताङ्गुष्ठेन आचारादेवं ज्ञेयम् ॥१७॥ अभिरक्षन्ती गूहमाना । धर्मसंहिता धर्मबद्धा ॥ २१ ॥ षष्ठे विषये देशपञ्चकव्यवधानेऽपि न स्वपिति । तेषां सार्वभौमत्वात् । यद्वा बाह्येन्द्रियग्राह्यपञ्चविषयापेक्षया षष्ठे मनोमात्रग्राह्ये स्वप्नमनोरथादिरूपेऽपि विषये न स्वपिति भयार्दितः सन् किमुत लोके न स्वपितीत्यर्थः ॥ २२ ॥ सिताः बद्धाः ॥ २६ ॥

नाहमेतेन युक्तं वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके।
सभासदोऽत्र पश्यन्तु कीचकस्य व्यतिक्रमम्॥३२
कीचको न च धर्मज्ञो न च मत्स्यः कथंचन।
सभासदोऽप्यधर्मज्ञा य एनं पर्युपासते॥ ३३

वैशम्पायन उवाच।
एवंविधैर्वचोभिः सा तदा कृष्णाऽश्रुलोचना।
उपालभत राजानं मत्स्यानां वरवर्णिनी॥ ३४

विराट उवाच।
परोक्षं नाभिजानामि +विग्रहं युवयोरहम्।
अर्थतत्त्वमविज्ञाय किं नु स्यात् कौशलं मम॥३५

वैशम्पायन उवाच।
ततस्तु सभ्या विज्ञाय कृष्णां भूयोऽभ्यपूजयन्।
साधु साध्विति चाप्याहुः कीचकं च व्यगर्हयन्

सभ्या ऊचुः।
यस्येयं चारुसर्वाङ्गी भार्या स्यादायतेक्षणा।
परो लाभस्तु तस्य स्यान्न च शोचेत् कथंचन३७
न हीदृशी मनुष्येषु सुलभा वरवर्णिनी।
नारी सर्वानवद्याङ्गी देवीं मन्यामहे वयम्॥ ३८

वैशम्पायन उवाच।
एवं संपूजयन्तस्ते कृष्णां प्रेक्ष्य सभासदः।
युधिष्ठिरस्य कोपात्तु ललाटे स्वेद आगमत्॥३९
अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम्।
गच्छ सैरन्ध्रि माऽत्र स्थाः सुदेष्णाया निवेशनम्
भर्तारमनुरुन्धन्त्यः क्लिश्यन्ते वीरपत्नयः।
शुश्रूषया क्लिश्यमानाः पतिलोकं जयन्त्युत॥ ४१
मन्ये न कालं क्रोधस्य पश्यन्ति पतयस्तव।
तेन त्वां नाभिधावन्ति गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ४२
अकालज्ञाऽसि सैरन्ध्रि शैलूषीव विरोदिषि।
विघ्नं करोषि मत्स्यानां दीव्यतां राजसंसदि॥४३
गच्छ सैरन्ध्रि गन्धर्वाः करिष्यन्ति तव प्रियम्।
व्यपनेष्यन्ति ते दुःखं येन ते विप्रियं कृतम्॥ ४४

सैरन्ध्र्युवाच।
अतीव तेषां घृणिनामर्थेऽहं धर्मचारिणी।
तस्य तस्यैव ते वध्या येषां ज्येष्ठोऽक्षदेविता॥४५

वैशम्पायन उवाच।
इत्युक्त्वा प्राद्रवत् कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम्।
केशान् मुक्त्वा च सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा४६
शुशुभे वदनं तस्या रुदत्याः सुचिरं तदा।
मेघलेखाविनिर्मुक्तं दिवीव शशिमण्डलम्॥ ४७

सुदेष्णोवाच।
कस्त्वाऽवधीद्वरारोहे कस्माद्रोदिषि शोभने।
कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम्॥४८

द्रौपद्युवाच।
कीचको माऽवधीत्तत्र सुराहारीं गतां तव।
सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने वने॥ ४९

सुदेष्णोवाच।
घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे।
योऽसौ त्वां कामसंमत्तो दुर्लभामवमन्यते॥५०

सैरन्ध्र्युवाच।
अन्ये चैनं वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः।
मन्ये चैवाद्य सुव्यक्तं यमलोकं गमिष्यति॥ ५१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीपरिभवे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

## १७

वैशम्पायन उवाच।
सा हता सूतपुत्रेण राजपत्नी यशस्विनी।
वधं कृष्णा परीप्सन्ती सेनावाहस्य भामिनी॥१
जगामावासमेवाथ सा तदा द्रुपदात्मजा।
कृत्वा शौचं यथान्यायं कृष्णा सा तनुमध्यमा॥२

---

कौशलं साध्वसाधुनिर्णये इति शेषः। किं नु कथं नु॥३५॥ माऽत्र स्थाः अत्र मा स्थाः मा तिष्ठ॥ ४०॥ शैलूषीव नटीव निर्लज्जा॥ ४३॥ दुःख दुःखयितारं व्यपनेष्यन्ति जीवितादिति शेषः॥ ४४॥ घृणिनां दयावतां तेषामर्थे। तस्य तस्य सर्वस्यैव ते वध्याः स्युः॥ ४५॥ पश्यतो राज्ञ इत्यनादरे षष्ठी, राजानं लक्षीकृत्येत्यर्थः॥ ४९॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥ + विग्रहं कलहम्।

१७

सेति। सेनावाहस्य सेनापतेः कीचकस्य॥ १॥

गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ।
चिन्तयामास रुदती तस्य दुःखस्य निर्णयम् ॥ ३
किं करोमि क्व गच्छामि कथं कार्यं भवेन्मम ।
इत्येवं चिन्तयित्वा सा भीमं वै मनसाऽगमत्॥ ४
नान्यः कर्ता ऋते भीमान्ममाद्य मनसः प्रियम् ।
तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनं स्वकम् ॥ ५
प्राद्रवन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ।
भवनं भीमसेनस्य क्षिप्रमायतलोचना ॥ ६
दुःखेन महता युक्ता मानसेन मनस्विनी ।

सैरन्ध्र्युवाच ।

तस्मिन् जीवति पापिष्ठे सेनावाह मम द्विषि ७
तत् कर्म कृतवानद्य कथं निद्रां निषेवसे ।

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वाऽथ तां शालां प्रविवेश मनस्विनी ॥ ८
यस्यां भीमस्तथा शेते मृगराज इव श्वसन् ।
तस्या रूपेण सा शाला भीमस्य च महात्मनः॥९
संमूर्छितेव कौरव्य प्रजज्वाल च तेजसा ।
सा वै महानसं प्राप्य भीमसेनं शुचिस्मिता १०
सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायणी ।
उपातिष्ठत पाञ्चाली वासितेव वरर्षभम् ॥ ११
सा लतेव महाशालं फुल्लं गोमतितीरजम् ।
परिष्वजत पाञ्चाली मध्यमं पाण्डुनन्दनम् ॥ १२
बाहुभ्यां परिरभ्यैनं प्राबोधयदनिन्दिता ।
सिंहं सुप्तं वने दुर्गे मृगराजवधूरिव ॥ १३
भीमसेनमुपाश्लिष्यद्धस्तिनीव महागजम् ।
वीणेव मधुरालापा गान्धारं साधु मूर्छती ।
अभ्यभाषत पाञ्चाली भीमसेनमनिन्दिता ॥ १४
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन यथा मृतः ।
नामृतस्य हि पापीयान् भार्यामालभ्य जीवति ॥
स संप्रहाय शयनं राजपुत्र्या प्रबोधितः ।
उपातिष्ठत मेघाभः पर्यङ्के सोपसंग्रहे ॥ १६
अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् ।
केनास्यर्थेन संप्राप्ता त्वरितेव ममान्तिकम् ॥ १७
न ते प्रकृतिमान् वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे ।
आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहं यथा ॥ १८
सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
यथावत् सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत् क्षमम्
अहमेव हि ते कृष्णे विश्वास्यः सर्वकर्मसु ।
अहमापत्सु चापि त्वां मोक्षयामि पुनः पुनः २०
शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत्ते कार्यं विवक्षितम् ।
गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्येन बुध्यते ॥ २१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यः तत्कर्म पदाहतिरूपं कृतवान् तस्मिन् जीवति ॥ ७ ॥ संमूर्छितेव वृद्धिं शोभारूपां प्राप्तेव प्रजज्वाल अशोभत ॥ १० ॥ सर्वश्वेतेवेति । पाञ्चाली द्रौपदी वरर्षभं वरणीयं पतिं श्रेष्ठं भीमसेनमुपलक्ष्य वासितेव पुष्पिणीत्वेन कामातुरेव उपातिष्ठत समीपे स्थितवती । वस्तुतो न कामातुरा किं तु द्वेषातुरैवेति भावः । तत्र दृष्टान्तद्वयम् । इव शब्दः काकाक्षिवदुभयत्र सम्बध्यते सर्वश्वेतेव माहेयीव चेति । सर्वश्वेता बकी यथा कामातुरा वरर्षभं पतिमिति एकः । तस्याः कामातुरत्वे हेतुः वने जातेति । जले जाता तेन जलसामीप्ये लब्धाहारत्वेन उन्मत्तत्वं सूच्यते । तथा माहेयी गौः साऽपि वासिता सती वरर्षभं साण्डं बलीवर्दम्। तस्या अपि वासितात्वे विशेषणं त्रिहायणीति । त्रिवर्षा हि गौर्यौवनारूढा कामातुरा च भवति । *अन्ये तु 'श्वेतः सिते राजहंसे कैलासे द्विपभूपयोः' इति कोशमुदाहृत्य सर्वश्वेता हंसीति व्याचक्षते । तत्र सर्वपदं व्यर्थं हंसस्य लोहितलोचनास्यचरणत्वात् प्रतिकूलं च । यद्यपि 'त्रिहायणी त्रिवर्षा गौः' इति च कोशात् त्रिहायणीपदेनैव गौर्लभ्यते तथापि तत्कामातुरत्वज्ञापनार्थमुपक्षीणं साद्विशेष्यसमर्पकं पदान्तरमपेक्षत एवेति न व्यर्थविशेषणत्वम् । अन्ये व्याख्यानप्रकाराः सर्वेऽनेनैव दोषेण ग्रस्ता इत्युपेक्षिताः ॥ ११ ॥ मध्यमं पाण्डुनन्दनं भीमसेनम् । यमयोः सहजातत्वेन पौर्वापर्याभावात्तौ कनिष्ठावेव । युधिष्ठिरो ज्येष्ठ एव। मध्यमत्वं भीमार्जुनयोरेव विश्रान्तं तत्रापि अत्र प्रकरणात् अर्जुनस्य संप्रति पुंस्त्वाभावाच्च मध्यमत्वं भीमसेने एव मुख्यमित्याशयेनैवैतदुक्तम् । परिष्वजत पर्यष्वजत आलिङ्गितवती ॥ १२ ॥ गान्धारं स्वरविशेषं मूर्छती मूर्छयन्ती ॥ १४ ॥ सोपसङ्ग्रहे सतूलिके ॥ १६ ॥ विद्यां जानीयाम् ॥ १८ ॥ ज्ञास्यामि उपायं चिन्तयिष्यामि क्षमं योग्यम् ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * दुर्घटप्रकाशिनीकारादयः ।

## १८

द्रौपद्युवाच ।

अशोच्यत्वं कुतस्तस्या यस्या भर्ता युधिष्ठिरः ।
जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि
यन्मां दासीप्रवादेन प्रातिकामी तदाऽनयत् ।
सभापरिषदो मध्ये तन्मां दहति भारत ॥ २
पार्थिवस्य सुता नाम का नु जीवति मादृशी ।
अनुभूय दशां दुःखमन्यत्र द्रौपदीं प्रभो ॥ ३
वनवासगतायाश्च सैन्धवेन दुरात्मना ।
परामर्शो द्वितीयो वै सोढुमुत्सहते तु का ॥ ४
मत्स्यराज्ञः समक्षं तु तस्य धूर्तस्य पश्यतः ।
कीचकेन परामृष्टा का नु जीवति मादृशी ॥ ५
एवं बहुविधैः क्लेशैः क्लिश्यमानां च भारत ।
न मां जानासि कौन्तेय किं फलं जीवितेन मे ६
योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत ।
सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः ॥ ७
स मां सैरन्ध्रिवेषेण वसन्तीं राजवेश्मनि ।
नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै ॥ ८
तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन्
कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते ॥ ९
भ्रातरं च विगर्हस्व ज्येष्ठं दुर्द्यूतदेविनम् ।
यस्याऽस्मि कर्मणा प्राप्ता दुःखमेतदनन्तकम्१०
को हि राज्यं परित्यज्य सर्वस्वं चात्मना सह ।
प्रव्रज्यायैव दीव्येत विना दुर्द्यूतदेविनम् ॥ ११
यदि निष्कसहस्रेण यच्चान्यत् सारवद्धनम् ।
सायंप्रातरदेविष्यदपि संवत्सरान् बहून् ॥ १२
रुक्मं हिरण्यं वासांसि यानं युग्यमजाविकम् ।
अश्वाश्वतरसङ्घांश्च न जातु क्षयमावहेत् ॥ १३
सोऽयं द्यूतप्रवादेन श्रियः प्रत्यवरोपितः ।
तूष्णीमास्ते यथा मूढः स्वानि कर्माणि चिन्तयन्
दश नागसहस्राणि हयानां हेममालिनाम् ।
यं यान्तमनुयान्तीह सोऽयं द्यूतेन जीवति ॥ १५
रथाः शतसहस्राणि नृपाणाममितौजसाम् ।
उपासन्त महाराजमिन्द्रप्रस्थे युधिष्ठिरम् ॥ १६
शतं दासीसहस्राणां यस्य नित्यं महानसे ।
पात्रीहस्तं दिवारात्रमतिथीन् भोजयत्युत ॥ १७
एष निष्कसहस्राणि प्रदाय ददतां वरः ।
द्यूतजेन ह्यनर्थेन महता समुपाश्रितः ॥ १८
एनं हि स्वरसंपन्ना बहवः सूतमागधाः ।
सायंप्रातरुपातिष्ठन्सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १९
सहस्रमृषयो यस्य नित्यमासन् सभासदः ।
तपःश्रुतोपसंपन्नाः सर्वकामैरुपास्थिताः ॥ २०
अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः ।
त्रिंशद्दासीक एकैको यान् बिभर्ति युधिष्ठिरः २१
अप्रतिग्राहिणां चैव यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
दश चापि सहस्राणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः २२
आनृशंस्यमनुक्रोशं संविभागस्तथैव च ।
यस्मिन्नेतानि सर्वाणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः २३
अन्धान्वृद्धांस्तथाऽनाथान्बालान् राष्ट्रेषु दुर्गतान्
बिभर्ति विविधान् राजा धृतिमान् सत्यविक्रमः
संविभागमना नित्यमानृशंस्याद्युधिष्ठिरः ॥ २४
स एष निरयं प्राप्तो मत्स्यस्य परिचारकः ।
सभायां देविता राज्ञः कङ्को ब्रूते युधिष्ठिरः॥ २५
इन्द्रप्रस्थे निवसतः समये यस्य पार्थिवाः ।
आसन् बलिभृतः सर्वे सोऽद्यान्यैर्भृतिमिच्छति ॥
पार्थिवाः पृथिवीपाला यस्यासन् वशवर्तिनः ।
स वशे विवशो राजा परेषामद्य वर्तते ॥ २७
प्रताप्य पृथिवीं सर्वां रश्मिमानिव तेजसा ।
सोऽयं राज्ञो विराटस्य सभास्तारो युधिष्ठिरः॥
यमुपासन्त राजानः सभायामृषिभिः सह
तमुपासीनमद्यान्यं पश्य पाण्डव पाण्डवम् ॥ २९
सदस्यं समुपासीनं परस्य प्रियवादिनम् ।
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं कोपो वर्धते मामसंशयम् ॥ ३०
अतदर्हं महाप्राज्ञं जीवितार्थेऽभिसंस्थितम् ।
दृष्ट्वा कस्य न दुःखं स्याद्धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्३१

१८

अशोच्यमिति। सभा शाला तस्यां परिषत् जनसमाजस्तस्य मध्ये । तदा द्यूतकाले ॥२॥ सैन्धवेन जयद्रथेन ॥४॥ प्रव्रज्यं प्रव्रजनम् 'व्रजयजोर्भावे क्यप्' तस्मै प्रव्रज्याय॥११॥ निष्कः सुवर्णपलं तेषां सहस्रेण ॥ १२ ॥ रुक्मं स्वर्णरूपं हिरण्यं 'तस्माद्रजतं हिरण्यमश्रुजम्' इति श्रुतौ हिरण्यशब्दस्य रजतेऽपि दर्शनात् । यानं गजादि । युग्यं युगोपेतं रथशकटादि । अश्वा वडवा ॥ १३ ॥ यतीनां दशसहस्राणि बिभर्तीति पूर्वेणान्वयः ॥ २२ ॥ आनृशंस्यमनैष्ठुर्यमनुक्रोशं दयाम् ॥ २३ ॥ निरयं पारतन्त्र्यं, कङ्कोऽहमिति युधिष्ठिरो ब्रूते। कङ्कव्रतयुधिष्ठिर इति पाठे कङ्कव्रतश्चासौ युधिष्ठिरश्चेति समासः ॥ २५ ॥ सदस्यं सभासदम् ॥३०॥

उपास्ते स्म सभायां यं कृत्स्ना वीर वसुन्धरा ।
तमुपासीनमप्यन्यं पश्य भारत भारतम् ॥ ३२
एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानामनाथवत् ।
शोकसागरमध्यस्थां किं मां भीम न पश्यसि ३३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

द्रौपद्युवाच ।
इदं तु ते महद्दुःखं यत् प्रवक्ष्यामि भारत ।
न मेऽभ्यसूया कर्तव्या दुःखादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १
सूदकर्मणि हीने त्वमसमे भरतर्षभ ।
ब्रुवन् बल्लवजातीयः कस्य शोकं न वर्धयेः ॥ २
सूपकारं विराटस्य बल्लवं त्वां विदुर्जनाः ।
प्रेष्यत्वं समनुप्राप्तं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३
यदा महानसे सिद्धे विराटमुपतिष्ठसि ।
ब्रुवाणो बल्लवः सूदस्तदा सीदति मे मनः ॥ ४
यदा प्रहृष्टः सम्राट् त्वां संयोधयति कुञ्जरैः ।
हसन्त्यन्तःपुरे नार्यो मम तूद्विजते मनः ॥ ५
शार्दूलैर्महिषैः सिंहैरागारे योध्यसे यदा ।
कैकेय्याः प्रेक्षमाणायास्तदा मे कश्मलं भवेत्॥६
तत उत्थाय कैकेयी सर्वास्ताः प्रत्यभाषत ।
प्रेष्याः समुत्थिताश्चापि कैकेयीं ताः स्त्रियोऽब्रुवन्
प्रेक्ष्य मामनवद्याङ्गीं कश्मलोपहतामिव ।
स्नेहात् संवासजाद्धर्मात् सूदमेषा शुचिस्मिता॥
योध्यमानं महावीर्यमियं समनुशोचति ।
†कल्याणरूपा सैरन्ध्री बल्लवश्चापि सुन्दरः ॥ ९
स्त्रीणां चित्तं च दुर्ज्ञेयं युक्तरूपौ च मे मतौ ।
सैरन्ध्री प्रियसंवासान्नित्यं करुणवादिनी ॥ १०
अस्मिन् राजकुले चेमौ तुल्यकालनिवासिनौ ।
इति ब्रुवाणा वाक्यानि सा मां नित्यमतर्जयत्११
क्रुध्यन्तीं मां च संप्रेक्ष्य समशङ्कत मां त्वयि ।
तस्यां तथा ब्रुवत्यां तु दुःखं मां महदाविशत्१२
त्वय्येवं निरयं प्राप्ते भीमे भीमपराक्रमे ।
शोके यौधिष्ठिरे मग्ना नाहं जीवितुमुत्सहे॥ १३
यः सदेवान् मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् ।
सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा ॥
योऽतर्पयदमेयात्मा खाण्डवे जातवेदसम् ।
सोन्तःपुरगतः पार्थ कूपेऽग्निरिव संवृतः ॥ १५
यस्माद्भयममित्राणां सदैव पुरुषर्षभात् ।
स लोकपरिभूतेन वेषेणास्ते धनञ्जयः ॥ १६
यस्य ज्याक्षेपकठिनौ बाहू परिघसन्निभौ ।
स शङ्खपरिपूर्णाभ्यां शोचन्नास्ते धनञ्जयः॥ १७
यस्य ज्यातलनिर्घोषात् समकम्पन्त शत्रवः ।
स्त्रियो गीतस्वनं तस्य मुदिताः पर्युपासते ॥ १८
किरीटं सूर्यसङ्काशं यस्य मूर्धन्यशोभत ।
वेणीविकृतकेशान्तः सोऽयमद्य धनञ्जयः ॥ १९
तं वेणीकृतकेशान्तं भीमधन्वानमर्जुनम् ।
कन्यापरिवृतं दृष्ट्वा भीम सीदति मे मनः ॥ २०
यस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि महात्मनि ।
आधारः सर्वविद्यानां स धारयति कुण्डले ॥ २१
स्प्रष्टुं राजसहस्राणि तेजसाऽप्रतिमानि वै ।
समरे नाभ्यवर्तन्त वेलामिव महार्णवः ॥ २२
सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा ।
आस्ते वेशप्रतिच्छन्नः कन्यानां परिचारकः ॥२३
यस्य स्म रथघोषेण समकम्पत मेदिनी ।
सपर्वतवना भीम सहस्थावरजङ्गमा ॥ २४

---

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ † कल्याणरूपा प्रशस्तरूपा ।

१९

इदमिति ॥१॥ हीने नीचे असमे विषमे ॥२॥ प्रियसंवासात् प्रियस्य भीमसेनस्य संवासः सहवासः सम्बन्धः तस्मात् । तस्मिन् हस्त्यादिभिः सह योध्यमाने सति करुणावादिनी दीनवादिनी भवति ॥ १० ॥ संवासमेवाह अस्मिन्निति ॥ ११ ॥ निरयं दुःखम् ॥ १३ ॥ लोकेपरिभूतेन निन्दितेन ॥ १६ ॥ शङ्खपरिपूर्णाभ्यां बाहुभ्याम् ॥ १७ ॥ स्प्रष्टुमाकलयितुं यमिति शेषः । यस्येत्यपि पठन्ति । अप्रतिमानीति छेदः ॥ २२ ॥ दिशो

यस्मिन् जाते महाभागे कुन्त्याः शोको व्यनश्यत
स शोचयति मामद्य भीमसेन तवानुजः ॥ २५
भूषितं तमलङ्कारैः कुण्डलैः परिहाटकैः ।
कम्बुपाणिनमायान्तं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥ २६
यस्य नास्ति समो वीर्ये कश्चिदुर्व्यां धनुर्धरः ।
सोऽद्य कन्यापरिवृतो गायन्नास्ते धनञ्जयः ॥ २७
धर्मे शौर्ये च सत्ये च जीवलोकस्य संमतम् ।
स्त्रीवेषविकृतं पार्थं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥ २८
यदा ह्येनं परिवृतं कन्याभिर्देवरूपिणम् ।
*प्रभिन्नमिव मातङ्गं परिकीर्णं करेणुभिः ॥ २९
मत्स्यमर्थपतिं पार्थं विराटं समुपस्थितम् ।
पश्यामि †तुर्यमध्यस्थं दिशो नश्यन्ति मे तदा ३०
नूनमार्या न जानाति कृच्छ्रं प्राप्तं धनञ्जयम् ।
अजातशत्रुं कौरव्यं मग्नं दुर्द्यूतदेविनम् ॥ ३१
तथा दृष्ट्वा यवीयांसं सहदेवं गवां पतिम् ।
गोषु गोवेषमायान्तं पाण्डुभूताऽस्मि भारत॥३२
सहदेवस्य वृत्तानि चिन्तयन्ती पुनः पुनः ।
न निद्रामभिगच्छामि भीमसेन कुतो रतिम् ३३
न विन्दामि महाबाहो सहदेवस्य दुष्कृतम् ।
यस्मिन्नेवंविधं दुःखं प्राप्नुयात् सत्यविक्रमः ॥३४
दूयामि भरतश्रेष्ठ दृष्ट्वा ते भ्रातरं प्रियम् ।
गोषु गोवृषसङ्काशं मत्स्येनाभिनिवेशितम् ॥ ३५
संरब्धं रक्तनेपथ्यं गोपालानां पुरोगमम् ।
विराटमभिनन्दन्तमथ मे भवति ज्वरः ॥ ३६
सहदेवं हि मे वीरं नित्यमार्या प्रशंसति ।
महाभिजनसंपन्नः शीलवान् वृत्तवानिति ॥ ३७
ह्रीनिषेवो मधुरवाक् धार्मिकश्च प्रियश्च मे ।
स तेऽरण्येषु बोढव्यो याज्ञसेनि क्षपास्वपि ॥३८
सुकुमारश्च शूरश्च राजानं चाप्यनुव्रतः ।
ज्येष्ठापचायिनं वीरं स्वयं पाञ्चालि भोजयेः ३९
इत्युवाच हि मां कुन्ती रुदती पुत्रगृद्धिनी ।
प्रव्रजन्तं महारण्यं तं परिष्वज्य तिष्ठती ॥ ४०
तं दृष्ट्वा व्यापृतं गोषु वत्सचर्मक्षपाशयम् ।
सहदेवं युधां श्रेष्ठं किं नु जीवामि पाण्डव ॥ ४१
यस्त्रिभिर्नित्यसंपन्नो रूपेणास्त्रेण मेधया ।
सोऽश्वबन्धो विराटस्य पश्य कालस्य पर्ययम् ॥
अभ्यकीर्यन्त वृन्दानि दामग्रन्थिमुदीक्ष्य तम् ।
विनयन्तं जवेनाश्वान् महाराजस्य पश्यतः ॥ ४३
अपश्यमेनं श्रीमन्तं मत्स्यं भ्राजिष्णुमुत्तमम् ।
विराटमुपतिष्ठन्तं दर्शयन्तं च वाजिनः ॥ ४४
किं नु मां मन्यसे पार्थ सुखिनीति परन्तप ।
एवं दुःखशताविष्टा युधिष्ठिरनिमित्ततः ॥ ४५
अतः प्रतिविशिष्टानि दुःखान्यन्यानि भारत ।
वर्तन्ते मयि कौन्तेय वक्ष्यामि शृणु तान्यपि॥४६
युष्मासु ध्रियमाणेषु दुःखानि विविधान्युत ।
शोषयन्ति शरीरं मे किं नु दुःखमतः परम् ॥४७

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

द्रौपद्युवाच ।
अहं सैरन्ध्रिवेषेण चरन्ती राजवेश्मनि ।
शौचदाऽस्मि सुदेष्णाया अक्षधूर्तस्य कारणात् १
विक्रियां पश्य मे तीव्रां राजपुत्र्याः परन्तप ।
आत्मकालमुदीक्षन्ती सर्वं दुःखं किलान्तवत् २

नश्यन्ति शोकेन आन्ध्यमायातीत्यर्थः ॥ ३० ॥ आर्या श्वश्रूः ॥ ३१ ॥ गोवेषं महोक्षसदृशम् ॥ ३२ ॥ दूयामि खेदं प्राप्नोमि ॥ ३५ ॥ रक्तनेपथ्यं रक्तं गैरिकादिधातुमयं नेपथ्यमलङ्कारो यस्य तम् ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठापचायिनं ज्येष्ठपूजकम् ॥ ३९ ॥ वत्सचर्मणि क्षपायां शेते इति तं वत्सचर्मक्षपाशयम् ॥ ४१ ॥ अभ्यकीर्यन्त व्यशीर्यन्त वृन्दानि शत्रूणामिति शेषः । दामग्रन्थिं ग्रन्थिकम् ॥ ४३ ॥ एनं नकुलं वाजिनोऽश्वान् दर्शयन्तं विराटं विराटाय ॥ ४४ ॥ ध्रियमाणेषु जीवत्सु ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * प्रभिन्नम्–मत्तम् । † तुर्यं वाद्यादि ।

२०

अहमिति । सैरन्ध्र्या वेषेण, सैरन्ध्रीवेषेण । शौचदा मृज्जलादिशौचसाधनप्रदा ॥ १ ॥

अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥ २४ ॥

एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन्नान्यः कश्चन विद्यते
आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथापि वा ॥ ४१
सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनंजयः ।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नान्यो वेदेह कश्चन ॥
अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथंचन ।
अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ॥
तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाहवशोभिना ।
कृतिना समरे राजन्सन्धिर्भवतु माचिरम् ॥
यावत्कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम ।
तावत्पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम्
यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
नाशयत्यर्जुनस्तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम्
यावत्तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः ।
नृपाश्च बहवो राजंस्तावत्सन्धिः प्रयुज्यताम्
न निर्दहति ते यावत्क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम् ।
युधिष्ठिरो रणे तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम्
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।
यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ४९
तावत्ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते ।
युद्धं मदन्तमेवास्तु तात संशाम्य पाण्डवैः ॥
एतत्ते रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयानघ ।
एतत्क्षेममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥ ५१

त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः
पर्याप्तमेतद्यत्कृतं फाल्गुनेन ।
भीष्मस्यान्तादस्तु वः सौहृदं च
जीवन्तु शेषाः साधु राजन्प्रसीद ॥
राज्यस्यार्धं दीयतां पाण्डवाना-
मिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु ।
मा मित्रध्रुक्पार्थिवानां जघन्यः
पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र ॥ ५३
ममावसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां
संगच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः ।
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो
भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन् ॥ ५४
न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे
मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्ध्या ।
तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे
सत्यामेतां भारतीमीरयामि ॥ ५५
एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो
मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा ।
तूष्णीमासीच्छल्यसंतप्तमर्मा
योज्यात्मानं वेदनां संनियम्य ॥ ५६

सञ्जय उवाच ।

धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम् ।
नारोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम् ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधनं प्रति भीष्मवाक्ये एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

## १२२

सञ्जय उवाच ।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान्पुनः
तूष्णींभूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥
श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः ।
ईषदागतसंत्रासस्त्वरयोपजगाम ह ॥ २
स ददर्श महात्मानं शरतल्पगतं तदा ।
जन्मशय्यागतं वीरं कार्तिकेयमिव प्रभुम् ॥ ३
निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः ।
भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः
राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव ।
द्वेष्योऽहं तव सर्वत्र इति चैनमुवाच ह ॥ ५

क्षेमं हितम ॥ ५५ ॥ फाल्गुनेन यत्कृतं एतदेतावदेव पर्याप्तमस्तु चकारादेतावतां भ्रातृणामन्तादपीति ॥ ५२ ॥ योज्य योगधारणायुक्तं कृत्वा ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

१२२

तत इति ॥ १ ॥ जन्मशय्यागतं जन्मकाले शरशय्यागतं शरजन्मत्वात् ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि बली संवृतलोचनः ।
शनैरुद्वीक्ष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६
रहितं धिष्ण्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः
पितेव पुत्रं गाङ्गेयः परिरभ्यैकपाणिना ॥ ७
एह्येहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह ।
यदि मां नाधिगच्छेथा न ते श्रेयो ध्रुवं भवेत्
कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः ।
न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते
तेजोवधनिमित्तं तु परुषं त्वाऽहमब्रुवम् ।
अकस्मात् पाण्डवान् सर्वानवाक्षिपसि सुव्रत
येनासि बहुशो राज्ञा चोदितः सूतनन्दन ।
जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥
नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि ।
तेनासि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥
जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि ।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम्
न त्वया सदृशः कश्चित् पुरुषेष्वमरोपम।
कुलभेदभयाच्चाहं सदा परुषमुक्तवान् ॥ १५
इष्वस्त्रे चास्त्रसंधाने लाघवेऽस्त्रबले तथा ।
सदृशः फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महात्मना ॥
कर्ण काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता ।
कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥
तथा च बलवान् राजा जरासन्धो दुरासदः
समरे समरश्लाघिन त्वया सदृशोऽभवत् ॥
ब्रह्मण्यः सत्त्वयोधी च तेजसा च बलेन च ।
देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैरधिको युधि ॥ १९
व्यपनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः।
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमातिवर्तितुम् ॥ २०
सोदर्याः पाण्डवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन।
संगच्छ तैर्महाबाहो मम चेदिच्छसि प्रियम्॥
मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनन्दन ।
पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः॥
कर्ण उवाच ।
जानाम्येव महाबाहो सर्वमेतन्न संशयः ।
यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः॥
अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्धितः।
भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्याकर्तुमुत्सहे ॥
वसुदेवसुतो यद्वत् पाण्डवाय दृढव्रतः ।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥ २५
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण ।
मा चैतद्व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥
कोपिताः पाण्डवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनं
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुं
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ।
पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥
भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥
अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे ।
विजयिष्ये रणे पाण्डूनिति मे निश्चितं मनः॥
न च शक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत् सुदारुणम् ।
धनञ्जयेन योत्स्येऽहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥३१
अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम् ।
अनुज्ञातस्त्वया वीर युद्ध्येयमिति मे मतिः३२
दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात् तथा।
यन्मयेह कृतं किञ्चित्तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ३३
भीष्म उवाच ।
न चेच्छक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत् सुदारुणम् ।
अनुजानामि कर्ण त्वां युद्ध्यस्व स्वर्गकाम्यया
निर्मन्युर्गतसंरम्भः
कृतकर्मा रणे स्म ह ।
यथाशक्ति यथोत्साहं
सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥ ३५
अहं त्वामनुजानामि यदिच्छसि तदाप्नुहि ।
क्षत्रधर्मजितान्लोकानवाप्स्यसि धनञ्जयात् ॥
युध्यस्व निरहङ्कारो
बलवीर्यव्यपाश्रयः ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्
क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३७

पुरुषेषु मानुषेषु एवं सत्यपि अतिसंभावितः पाण्डवानतिपीडयेरिति निश्चित्यातिरथोऽप्यर्धरथत्वेन गणितः इति भावः ॥१७॥ त्वया सदृशो नाभवत् त्वया जित इत्यर्थः।इयं कथा राजधर्मे। अनेन नागायुतबलत्वं कर्णस्य सूचितम् ॥ १८ ॥ युधि संप्रहारे ॥ १९ ॥ निर्वृत्तं समाप्तम् ॥ २२ ॥ अवकीर्णस्त्यक्तः ॥ २४ ॥ निवर्तितुं निवर्तयितुम् ॥ २८ ॥ पाण्डूनर्जुनं विहाय चतुरः अर्जुनेन योत्स्ये अन्यान्विजेष्ये इति भावः ॥ ३० ॥ विप्रतीप विरुद्धम् ॥ ३३ ॥

अनित्या किल मर्त्यानामर्थसिद्धिर्जयाजयौ ।
इतिकृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥ ३
चक्रवत्परिवर्तन्ते ह्यर्थाश्च व्यसनानि च ।
इतिकृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥ ४
य एव हेतुर्भवति पुरुषस्य जयावहः ।
पराजये च हेतुश्च स इति प्रतिपालये ।
किं मां न प्रतिजानीषे भीमसेन मृतामिव ॥ ५
दत्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे ।
पातयित्वा च पात्यन्ते परैरिति च मे श्रुतम् ॥६
न दैवस्यातिभारोऽस्ति न चैवास्यातिवर्तनम् ।
इति चाप्यागमं भूयो दैवस्य प्रतिपालये ॥ ७
स्थितं पूर्वं जलं यत्र पुनस्तत्रैव गच्छति ।
इति पर्यायमिच्छन्ती प्रतीक्षे उदयं पुनः ॥ ८
दैवेन किल यस्यार्थः सुनीतोऽपि विपद्यते ।
दैवस्य चागमे यत्नस्तेन कार्यो विजानता ॥ ९
यत्तु मे वचनस्यास्य कथितस्य प्रयोजनम् ।
पृच्छ मां दुःखितां तत्त्वं पृष्टा चात्र ब्रवीमि ते ॥
महिषी पाण्डुपुत्राणां दुहिता द्रुपदस्य च ।
इमामवस्थां संप्राप्ता मदन्या का जिजीविषेत् ॥
कुरून् परिभवेत् सर्वान् पाञ्चालानपि भारत ।
पाण्डवेयांश्च संप्राप्तो मम क्लेशो ह्यरिन्दम ॥१२
भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैर्बहुभिः परिवारिता ।
एवं समुदिता नारी का त्वन्या दुःखिता भवेत् ॥
नूनं हि बालया धातुर्मया वै विप्रियं कृतम् ।
यस्य प्रसादाद्दुर्नीतं प्राप्ताऽस्मि भरतर्षभ ॥ १४

वर्णावकाशमपि मे पश्य पाण्डव यादृशम् ।
तादृशो मे न तत्रासीद्दुःखे परमके तदा ॥ १५
त्वमेव भीम जानीषे यन्मे पार्थ सुखं पुरा ।
साऽहं दासीत्वमापन्ना न शान्तिमवशा लभे १६
नादैविकमहं मन्ये यत्र पार्थो धनञ्जयः ।
भीमधन्वा महाबाहुरास्ते छन्न इवानलः ॥ १७
अशक्या वेदितुं पार्थ प्राणिनां वै गतिर्नरैः ।
विनिपातमिमं मन्ये युष्माकं ह्यविचिन्तितम् १८
यस्या मम मुखप्रेक्षा यूयमिन्द्रसमाः सदा ।
सा प्रेक्षे मुखमन्यासामवराणां वरा सती ॥ १९
पश्य पाण्डव मेऽवस्थां यथा नार्हामि वै तथा ।
युष्मासु ध्रियमाणेषु पश्य कालस्य पर्ययम् ॥२०
यस्याः सागरपर्यन्ता पृथिवी वशवर्तिनी ।
आसीत् साऽद्य सुदेष्णाया भीताऽहं वशवर्तिनी
यस्याः पुरःसरा आसन् पृष्ठतश्चानुगामिनः ।
साऽहमद्य सुदेष्णायाः पुरः पश्चाच्च गामिनी २२
इदं तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत् ।
या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्तनमात्मनः ।
अन्यत्र कुन्त्या भद्रं ते सा पिनष्म्यद्य चन्दनम् ॥
पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवाभूतां हि यौ पुरा ।
इत्यस्य दर्शयामास किणवन्तौ करावुभौ ॥ २४
बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन ।
साऽद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किङ्करी२५
किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा ।
नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते॥२६

पुरुषस्य दुर्योधनादेः यः कालः स एव काल एव । प्रतिपालये कालमिति शेषः ॥५॥ काल एव सर्वं विपरीतं करोतीत्याह–दत्वेति । ये स्वयं दातारस्त एव कालेन दरिद्राः सन्तो याचका भवन्तीत्यर्थः । तथा अन्यान् हत्वा परैरपि वध्यन्ति वध्यन्ते । पातयित्वा अन्यान् त एवान्यैः पात्यन्त इति ॥ ६ ॥ अतिभारो-दुष्करं दैवस्य किमपि नास्ति ॥ अस्य दैवस्य अतिवर्तनम-तिक्रमणं च नास्ति ॥ केनचित्कृतामिति शेषः । दैवस्य प्राधान्यप्रतिपादकमागमं प्रतिपालये मानये । दैवाधीनाऽस्मीति मत्वा न शोचामीत्यर्थः ॥ ७ ॥ स्थितामिति । यथा रिक्तं सरः पुनः कालेन पूर्यते एवमहमपि पुनः श्रियं प्राप्स्याम्येवेति निश्चयेन पर्यायं कालवैपरीत्यमिच्छन्ती ॥ ८ ॥ यस्य पुंसोऽर्थो दैवेन विपद्यते नश्यति तेन दैवस्यैव आगमे आनुकूल्ये यत्नः कार्यः दैवान्नष्टोऽर्थः पुनर्जपहोमादिना आहर्तव्य इत्यर्थः ॥९॥ कुरूनिति । मम मत्सम्बन्धी मन्निमित्तकः कचग्रहादिरयं क्लेशः पाण्डवेयान् पाण्डोः स्त्री पाण्डवी कुन्ती तस्याः पुत्रान् युष्मान् प्राप्तः सन् कुरून् भीष्मादीन् पाञ्चालान् द्रुपदादींश्च परिभवेत् नाशयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥ समुदिता सम्यगुदयवत्यपि एवं काऽन्या दुःखिता भवेन्न काऽपि श्रीमतामापदो न दृष्टा एव मम तु दृष्टा इति महदाश्चर्यमिति भावः ॥ १३ ॥ बालया न तु प्रौढया तं बाल्ये कृतमपराधं न स्मरामि । यस्य प्रसादादिदं दुर्नीतं दुरवस्थां प्राप्ताऽस्मि ॥ १४ ॥ वर्णावकाशो दीप्तिसङ्कोचः । वन्यान्नवल्कलधारणयुक्तात् स्वातन्त्र्याद्दिव्यान्नवस्त्रसंयुक्तं पारतन्त्र्यमतिदुःखदमिति भावः। तत्र वने इदानीं यथादीप्तिसङ्कोचोऽस्ति न तथा वने आसीदित्यर्थः ॥ १५ ॥ अवशा पराधीना ॥ १६ ॥ अदैविकं न किं तु दैविकमेव ॥१७॥ विनिपातं पराभवम् ॥१८॥ पुरा किणवन्तौ नैवाऽभूतां किं त्विदानीमेव जातावित्यर्थः ॥ २४ ॥ वर्णको विलेपनम् । ‘ वर्णकश्चारणेऽस्त्री तु चन्दने ’ इति मेदिनी । ‘ वर्णकोऽस्त्री विलेपनम् ’ इत्यमरः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

सा कीर्तयन्ती दुःखानि भीमसेनस्य भामिनी ।
रुरोद शनकैः कृष्णा भीमसेनमुदीक्षती ॥ २७
सा बाष्पकलया वाचा निःश्वसन्ती पुनः पुनः ।
हृदयं भीमसेनस्य घट्टयन्तीदमब्रवीत् ॥ २८
नाल्पं कृतं मया भीम देवानां किल्बिषं पुरा ।
अभाग्या यत्र जीवामि कर्तव्ये सति पाण्डव २९

वैशम्पायन उवाच

ततस्तस्याः करौ सूक्ष्मौ किणबद्धौ वृकोदरः ।
मुखमानीय वै पत्न्या रुरोद परवीरहा ॥ ३०
तौ गृहीत्वा च कौन्तेयो बाष्पमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
ततः परमदुःखार्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

भीमसेन उवाच ।

धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फाल्गुनस्य च ।
यत्ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणाविमौ ॥ १
सभायां तु विराटस्य करोमि कदनं महत् ।
तत्र मे कारणं भाति कौन्तेयो यत् प्रतीक्षते ॥ २
अथवा कीचकस्याहं पोथयामि पदा शिरः ।
ऐश्वर्यमदमत्तस्य क्रीडन्निव महाद्विपः ॥ ३
अपश्यं त्वां यदा कृष्णे कीचकेन पदा हताम् ।
तदैवाहं चिकीर्षामि मत्स्यानां कदनं महत् ॥ ४
तत्र मां धर्मराजस्तु कटाक्षेण न्यवारयत् ।
तदहं तस्य विज्ञाय स्थित एवास्मि भामिनि ॥५
यच्च राष्ट्रात् प्रच्यवनं कुरूणामवधश्च यः ।
सुयोधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ॥ ६
दुःशासनस्य पापस्य यन्मया नाहृतं शिरः ।
तन्मे दहति गात्राणि हृदि शल्यमिवार्पितम् ।
मा धर्मं जहि सुश्रोणि क्रोधं जहि महामते ॥ ७
इमं तु समुपालम्भं त्वत्तो राजा युधिष्ठिरः ।
शृणुयाद्यद्यपि कल्याणि कृत्स्नं जह्यात् स जीवितम्
धनञ्जयो वा सुश्रोणि यमौ वा तनुमध्यमे ।
लोकान्तरगतेष्वेषु नाहं शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ ९
पुरा सुकन्या भार्या च भार्गवं च्यवनं वने ।
वल्मीकभूतं शाम्यन्तमन्वपद्यत भामिनी ॥ १०
नारायणी चेन्द्रसेना रूपेण यदि ते श्रुता ।
पतिमन्वचरद्वृद्धं पुरा वर्षसहस्रिणम् ॥ ११
दुहिता जनकस्यापि वैदेही यदि ते श्रुता ।
पतिमन्वचरत् सीता महारण्यनिवासिनम् ॥ १२
रक्षसा निग्रहं प्राप्य रामस्य महिषी प्रिया ।
क्लिश्यमानाऽपि सुश्रोणि राममेवान्वपद्यत ॥ १३
लोपामुद्रा तथा भीरु वयोरूपसमन्विता ।
अगस्तिमन्वयाद्धित्वा कामान् सर्वानमानुषान्१४
द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनिन्दिता ।
साविज्यनुचचारैका यमलोकं मनस्विनी ॥ १५
यथैताः कीर्तिता नार्यो रूपवत्यः पतिव्रताः ।
तथा त्वमपि कल्याणि सर्वैः समुदिता गुणैः॥१६
मा दीर्घं क्षम कालं त्वं मासमर्धं च संमितम् ।
पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ॥ १७

द्रौपद्युवाच ।

आर्तयैतन्मया भीम कृतं बाष्पप्रमोचनम् ।
अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे ॥ १८
किमुक्तेन व्यतीतेन भीमसेन महाबल ।
प्रत्युपस्थितकालस्य कार्यस्यानन्तरो भव ॥ १९

---

बाष्पकलया बाष्पेण गद्गदया मञ्जुलया वा घट्टयन्ती कम्पयन्ती वा॥२८॥ कर्तव्ये मर्तव्ये। कृ हिंसायामित्यस्य रूपम्॥२९॥ इति विराटपर्वणि नैलः भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

धिगिति॥१॥सभायामिति। कारणं प्राकट्यं मा भूदिति हेतुः प्रतीक्षते तदेव सूचयन् मामवेक्षते। अन्यथा तदानीमेव कदनं करोमि कृतं स्यादित्यर्थः॥२॥ पोथयामि चूर्णीकरोमि ॥ ३ ॥ नाहृतं छित्त्वा नानीतम् ॥ ७ ॥ अन्वपद्यत अनुसृतवती ॥ १० ॥ मार्दीर्घमदीर्घमल्पमित्यर्थः । सुपसुपेति समासः । क्षम क्षमस्व मासमर्धं चेति सार्धं मासमित्यर्थः ॥१७॥ अनन्तर आसन्नः सन्नद्धो भव इति यावत् ॥१९॥

ममेह भीम कैकेयी रूपाभिभवशङ्कया ।
नित्यमुद्विजते राजा कथं नेयादिमामिति ॥ २०
तस्या विदित्वा तं भावं स्वयं चानृतदर्शनः ।
कीचकोऽयं सुदुष्टात्मा सदा प्रार्थयते हि माम्॥
तमहं कुपिता भीम पुनः कोपं नियम्य च ।
अब्रुवं कामसम्मूढमात्मानं रक्ष कीचक ॥ २२
गन्धर्वाणामहं भार्या पञ्चानां महिषी प्रिया ।
ते त्वां निहन्युः कुपिताः शूराः साहसकारिणः॥
एवमुक्तः सुदुष्टात्मा कीचकः प्रत्युवाच ह ।
नाहं बिभेमि सैरन्ध्रि गन्धर्वाणां शुचिस्मिते २४
शतं शतसहस्राणि गन्धर्वाणामहं रणे ।
समागतं हनिष्यामि त्वं भीरु कुरु मे क्षणम् २५
इत्युक्ते चाब्रुवं मत्तं कामातुरमहं पुनः ।
न त्वं प्रतिबलश्चैषां गन्धर्वाणां यशस्विनाम् २६
धर्मे स्थिताऽस्मि सततं कुलशीलसमन्विता ।
नेच्छामि कश्चिद्वध्यन्तं तेन जीवसि कीचक २७
एवमुक्तः स दुष्टात्मा प्राहसत् स्वनवत्तदा
अथ मां तत्र कैकेयी प्रेषयत् प्रणयेन तु ॥ २८
तेनैव देशिता पूर्वं भ्रातृप्रियचिकीर्षया ।
सुरामानय कल्याणि कीचकस्य निवेशनात् २९
सूतपुत्रस्तु मां दृष्ट्वा महत्सान्त्वमवर्तयत् ।
सान्त्वे प्रतिहते क्रुद्धः परामर्शमनाऽभवत् ॥ ३०
विदित्वा तस्य सङ्कल्पं कीचकस्य दुरात्मनः ।
तथाऽहं राजशरणं जवेनैव प्रधाविता ॥ ३१
सन्दर्शने तु मां राज्ञः सूतपुत्रः परामृशत् ।
पातयित्वा तु दुष्टात्मा पदाऽहं तेन ताडिता ३२
प्रेक्षते स्म विराटस्तु कङ्कस्तु बहवो जनाः ।
रथिनः पीठमर्दाश्च हस्त्यारोहाश्च नैगमाः ॥ ३३
उपालब्धो मया राजा कङ्कश्चापि पुनः पुनः ।
ततो न वारितो राज्ञा न तस्याविनयः कृतः ३४
योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम सारथिः ।
त्यक्तधर्मा नृशंसश्च नरस्त्रीसम्मतः प्रियः ॥ ३५
शूरोऽभिमानी पापात्मा सर्वार्थेषु च मुग्धवान् ।
दारामर्शी महाभाग लभतेऽर्थान् बहूनपि ॥ ३६
आहरेदपि वित्तानि परेषां क्रोशतामपि ।
न तिष्ठते स्म सन्मार्गे न च धर्मं बुभूषति ॥ ३७
पापात्मा पापभावश्च कामबाणवशानुगः ।
अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुनः पुनः ॥३८
दर्शने दर्शने हन्याद्यदि जह्यां च जीवितम् ।
तद्धर्मे यतमानानां महान् धर्मो नशिष्यति ॥ ३९
समयं रक्षमाणानां भार्या वो नभविष्यति ।
भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ४०
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ।
आत्मा हि जायते तस्यां तेन जायां विदुर्बुधाः ॥
भर्ता तु भार्यया रक्ष्यः कथं जायान्ममोदरे ।
वदतां वर्णधर्मांश्च ब्राह्मणानामिति श्रुतः ॥ ४२
क्षत्रियस्य सदा धर्मो नान्यः शत्रुनिबर्हणात् ।
पश्यतो धर्मराजस्य कीचको मां पदाऽवधीत् ॥
तव चैव समक्षं वै भीमसेन महाबल ।
त्वया ह्यहं परित्राता तस्माद्घोराज्जटासुरात् ॥४४
जयद्रथं तथैव त्वमजैषीर्भ्रातृभिः सह ।
जहीममपि पापिष्ठं योऽयं मामवमन्यते ॥ ४५
कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत ।
तमेवं कामसंमत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि ॥४६
यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत ।
तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति ॥ ४७
विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशं गमम् ।
श्रेयो हि मरणं मह्यं भीमसेन तवाग्रतः ॥ ४८

---

कैकेयी सुदेष्णा । नेयात् न गच्छेत् ॥२०॥ तं भावं राजाऽस्यां कीचकहृतायां विरक्तः स्यादित्येवंरूपमभिप्रायम् ॥ २१ ॥ क्षणं स्वीकारम् ॥ २५ ॥ वध्यन्तं वध्यमानम् ॥ २७ ॥ अवर्तयत् कृतवान् सान्त्वं प्रियवादम् ॥ ३० ॥ राजशरणं राजाधिष्ठितं स्थानम् ॥ ३१ ॥ संदर्शने प्रत्यक्षम्॥३२॥ पीठमर्दा राजप्रियाः 'पीठमर्दोऽतिधृष्टे स्यान्नायकस्य प्रियेऽपि च' इति मेदिनी । नैगमाः नागराः वणिजो वा । 'नैगमः स्यादुपनिषद्वणिजोर्नागरेऽपि च ' इति मेदिनी ॥३३॥ तस्य कीचकस्याविनयो न कृतः न नाशितः॥३४॥ सारथिर्युद्धे सहायः नरस्य राज्ञः स्त्रियः सुदेष्णायाश्च संमतः सम्बन्धित्वात् ॥ ३५ ॥ तर्हि कथं तयोर्विप्रियं तद्बधेन कर्तव्यमित्याशङ्क्याह-शूर इति । मुग्धवान् मौढ्यं गतवान् दारामर्शी तवैव स्त्रियं मां स्पृष्टवान् ॥ ३६ ॥ तिष्ठते स्थिरो भवति बुभूषति प्राप्तुमिच्छति ॥ ३७ ॥ दर्शने दर्शने प्रतिदर्शनं स एवं राजवल्लभः कामात्मा च यदि मां हन्यात्ताडयेत् ताडनभयाद्वाऽहं यदि जीवितं जह्यां तर्हि धर्मे यतमानानां भवतां धर्मो नशिष्यति शौर्यं व्यर्थं स्यादित्यर्थः ॥ ३९ ॥ एतदेवाह-समयमिति । समयं मर्यादां त्रयोदशवर्षरूपाम् । भार्या पोषणीया न भविष्यति॥ ४० ॥ जायात् आविर्भवेत् वदतां कथयतां ब्राह्मणानां मुखात् वर्णधर्मश्च श्रुतः ॥ ४२ ॥ अभ्युदयिष्यति अभ्युदेष्यति ॥ ४७ ॥ कीचकवशं मा गमं न गच्छेयम् ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा भीमस्योरः समाश्रिता ।
भीमश्च तां परिष्वज्य महत्सान्त्वं प्रयुज्य च ॥ ४९
आश्वासयित्वा बहुशो भृशमार्तां सुमध्यमाम् ।
हेतुतत्त्वार्थसंयुक्तैर्वचोभिर्द्रुपदात्मजाम् ॥ ५०
प्रमृज्य वदनं तस्याः पाणिनाऽश्रुसमाकुलम् ।
कीचकं मनसाऽगच्छत् सृक्किणी परिसंलिहन् ।
उवाच चैनां दुःखार्तां भीमः क्रोधसमन्वितः ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीसान्त्वने
एकाविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

भीमसेन उवाच ।

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।
अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सहबान्धवम् ॥ १
अस्याः प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन सङ्गतम् ।
दुःखं शोकं च निर्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते ॥ २
येषा नर्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता ।
दिवाऽत्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्
तत्रास्ति शयनं दिव्यं दृढाङ्गं सुप्रतिष्ठितम् ।
तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ॥ ४
यथा च त्वां न पश्येयुः कुर्वाणां तेन संविदम् ।
कुर्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा सन्निहितो भवेत् ५

वैशम्पायन उवाच ।

तथा तौ कथयित्वा तु बाष्पमुत्सृज्य दुःखितौ ।
रात्रिशेषं तमत्युग्रं धारयामासतुर्हृदि ॥ ६
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः ।
गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥ ७
सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाऽहनम् ।
न चैवालभसे त्राणमभिपन्ना बलीयसा ॥ ८
प्रवादेनेह मत्स्यानां राजा नाम्नाऽयमुच्यते ।
अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः ॥ ९
मां सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते ।
अह्नाय तव सुश्रोणि शतं निष्कान् ददाम्यहम् ॥
दासीशतं च ते दद्यां दासानामपि चापरम् ।
रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु सङ्गमः ॥ ११

द्रौपद्युवाच ।

एवं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्व कीचक ।
न त्वां सखा वा भ्राता वा जानीयात् सङ्गतं मया
अनुप्रवादाद्भीताऽस्मि गन्धर्वाणां यशस्विनाम् ।
एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव ॥ १३

कीचक उवाच ।

एवमेतत् करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे ।
एको भद्रे गमिष्यामि शून्यमावसथं तव ॥ १४
समागमार्थं रम्भोरु त्वया मदनमोहितः ।
यथा त्वां नैव पश्येयुर्गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ॥ १५

द्रौपद्युवाच ।

यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम् ।
दिवाऽत्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्
तमिस्रे तत्र गच्छेथा गन्धर्वास्तन्न जानते ।
तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः ॥ १७

वैशम्पायन उवाच ।

तमर्थमपि जल्पन्त्याः कृष्णायाः कीचकेन ह ।
दिवसार्धं समभवन्मासेनैव समं नृप ॥ १८
कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं हर्षपरिप्लुतः ।
सैरन्ध्रीरूपिणं मूढो मृत्युं तं नावबुद्धवान् ॥ १९
गन्धाभरणमाल्येषु व्यासक्तः सविशेषतः ।
अलञ्चक्रे तदाऽऽत्मानं सत्वरः काममोहितः २०
तस्य तत्कुर्वतः कर्म कालो दीर्घ इवाभवत् ।
अनुचिन्तयतश्चापि तामेवायतलोचनाम् ॥ २१

---

हेतुभिर्युक्तिभिः तत्त्वार्थैर्यथार्थभूतैश्चार्थैः संयुक्तानि तैः ॥५०॥ अगच्छत् स्मृतवान् सृक्किणी गल्लयोरभ्यन्तरे परिसंलिहन् जिह्वया परामृशन् ॥ ५१ ॥ इति श्रीम० विरा० नैल० भा० भा० एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ ✻ पादप्रहारादिपराभवजनितं मानसं दुःखम् । २ संवित्क्रियाप्रतिज्ञायामाचारे ज्ञानगह्वरे । संभाषणे क्रियाकारे संकेतेन ऽभिभाष्यते मेदिनी

२२

तथेति॥१॥ प्रदोषे रजनीमुखे। सङ्गतं संभाषणम्। निर्धूय अप्रकाश्य ॥ २ ॥ दृढाङ्गं काष्ठफलकमयम् ॥ ४ ॥ अहनं हतवान् ॥ ८ ॥ नौ आवयोः ॥ ११ ॥ समयं सङ्केतं प्रतिपद्यस्व स्वीकुरु ॥ १२ ॥ दिवसार्धमहोरात्रार्धं दिनमेकमपि मासेन सममौत्कण्ठ्यादभूत् ॥ १८ ॥

आसीदभ्यधिका चापि श्रीः श्रियं प्रमुमुक्षतः ।
निर्वाणकाले दीपस्य वर्तीमिव दिधक्षतः ॥ २२
कृतसंप्रत्ययस्तस्याः कीचकः काममोहितः ।
नाजानाद्दिवसं यान्तं चिन्तयानः समागमम् २३
ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे ।
उपातिष्ठत कल्याणी कौरव्यं पतिमन्तिकम् २४
तमुवाच सुकेशान्ता कीचकस्य मया कृतः ।
सङ्गमो नर्तनागारे यथाऽवोचः परन्तप ॥ २५
शून्यं स नर्तनागारमागमिष्यति कीचकः ।
एको निशि महाबाहो कीचकं तं निषूदय ॥ २६
तं सूतपुत्रं कौन्तेय कीचकं मददर्पितम् ।
गत्वा त्वं नर्तनागारं निर्जीवं कुरु पाण्डव ॥ २७
दर्पाच्च सूतपुत्रोऽसौ गन्धर्वानवमन्यते ।
तं त्वं प्रहरतां श्रेष्ठ ह्रदान्नागमिवोद्धर ॥ २८
अश्रु दुःखाभिभूताया मम मार्जस्व भारत ।
आत्मनश्चैव भद्रं ते कुरु मानं कुलस्य च ॥ २९

भीमसेन उवाच ।

स्वागतं ते वरारोहे यन्मां वेदयसे प्रियम् ।
न ह्यन्यं कञ्चिदिच्छामि सहायं वरवर्णिनि ॥३०
या मे प्रीतिस्त्वयाऽऽख्याता कीचकस्य समागमे
हत्वा हिडिम्बं सा प्रीतिर्ममासीद्वरवर्णिनि ॥ ३१
सत्यं भ्रातॄंश्च धर्मं च पुरस्कृत्य ब्रवीमि ते ।
कीचकं निहनिष्यामि वृत्रं देवपतिर्यथा ॥ ३२
तं गह्वरे प्रकाशे वा +पोथयिष्यामि कीचकम् ।
अथ चेदपि योत्स्यन्ति हिंस्! मत्स्यानपि ध्रुवम्
ततो दुर्योधनं हत्वा प्रतिपत्स्ये वसुन्धराम् ।
कामं मत्स्यमुपास्तां हि कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥

द्रौपद्युवाच ।

यथा न सन्त्यजेथास्त्वं सत्यं वै मत्कृते विभो ।
निगूढस्त्वं तथा पार्थ कीचकं तं निषूदय ॥ ३५

भीमसेन उवाच ।

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।
अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बान्धवैः ॥३६
अदृश्यमानस्तस्याथ तमस्विन्यामनिन्दिते ।
नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः ।
अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः॥ ३७

वैशम्पायन उवाच ।

भीमोऽथ प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत् ।
मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकाङ्क्षत कीचकम् ॥ ३८
कीचकश्चाप्यलङ्कृत्य यथाकाममुपागमत् ।
तां वेलां नर्तनागारं पाञ्चालीसङ्गमाशया ॥३९
मन्यमानः स सङ्केतमागारं प्राविशच्च तत् ।
प्रविश्य च स तद्वेश्म तमसा संवृतं महत् ॥ ४०
पूर्वागतं ततस्तत्र भीममप्रतिमौजसम् ।
एकान्तावस्थितं चैनमाससाद स दुर्मतिः ॥ ४१
शयानं शयने तत्र सूतपुत्रः परामृशत् ।
जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षणजेन ह ॥ ४२
उपसङ्गम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः ।
हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत॥ ४३
प्रापितं ते मया वित्तं बहुरूपमनन्तकम् ।
यत्कृतं धनरत्नाढ्यं दासीशतपरिच्छदम् ॥ ४४
रूपलावण्ययुक्ताभिर्युवतीभिरलङ्कृतम् ।
गृहं चान्तःपुरं सुभ्रु क्रीडारतिविराजितम् ।
तत्सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसाऽहमुपागतः ॥ ४५
अकस्मान्मां प्रशंसन्ति सदा गृहगताः स्त्रियः।
सुवासा दर्शनीयश्च नान्योऽस्ति त्वादृशः पुमान्

भीमसेन उवाच ।

दिष्ट्या त्वं दर्शनीयोऽथ दिष्ट्याऽऽत्मानं प्रशंससि
ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित्४७
स्पर्शं वेत्सि विदग्धस्त्वं कामधर्मविचक्षणः ।
स्त्रीणां प्रीतिकरो नान्यस्त्वत्समः पुरुषस्त्विह४८

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
सहसोत्पत्य कौन्तेयः प्रहस्येदमुवाच ह ॥ ४९
अद्य त्वां भगिनी पापं कृष्यमाणं मया भुवि ।
द्रक्ष्यतेऽद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महागजम् ॥ ५०
निराबाधा त्वयि हते सैरन्ध्री विचरिष्यति ।
सुखमेव चरिष्यन्ति सैरन्ध्र्याः पतयः सदा ॥ ५१
ततो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः ।
स केशेषु परामृष्टो बलेन बलिनां वरः ॥ ५२

कृतसंप्रत्ययः कृतविश्वासः नाजानात् न ज्ञातवान् ॥ २३ ॥ ह्रदात् यमुनाह्रदान्नागं कालियं कृष्णो यथा उद्धृतवान् तद्वत्त्वमेनमिहलोकाद्दूरे पातयेति भावः ॥२८॥ तस्य ते-ऽदृश्यमानः नागो हस्ती अलभ्यां त्वाम् ॥ ३७ ॥ यत्कृतं यदर्जितं धनादि तत्सर्वं ते तुभ्यं प्रापितं दत्तमिति-संबन्धः ॥ ४४ ॥ अतःपरं त्वां समुद्दिश्याहमत्रागतोऽस्मि ॥ ४५ ॥ प्रशंसन्ति त्वयाऽहं वृत इति हेतोरित्यभिप्रायः ॥ ४६ ॥ + योधयिष्यामीत्यर्थः । ! हिंस्य–ङ.

आक्षिप्य केशान् वेगेन बाहुभ्यां जगृहे पाण्डवम् ।
बाहुयुद्धं तयोरासीत् क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ५३
वसन्ते वासिताहेतोर्बलवद्गजयोरिव ।
कीचकानां तु मुख्यस्य नराणामुत्तमस्य च॥ ५४
वालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोः पुरेव कपिसिंहयोः ।
अन्योन्यमपि संरब्धौ परस्परजयैषिणौ ॥ ५५
ततः समुद्यम्य भुजौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
नखदंष्ट्राभिरन्योन्यं घ्नतः क्रोधविषोद्धतौ ॥ ५६
वेगेनाभिहतो भीमः कीचकेन बलीयसा ।
स्थिरप्रतिज्ञः स रणे पदान्न चलितः पदम् ॥ ५७
तावन्योन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम् ।
उभावपि प्रकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव ॥ ५८
तयोर्ह्यासीत् सुतुमुलः संप्रहारः सुदारुणः ।
नखदन्तायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः ॥ ५९
अभिपत्याथ बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णादमर्षितः ।
मातङ्ग इव मातङ्गं प्रभिन्नकरटामुखम् ॥ ६०
स चाप्येनं तदा भीमः प्रतिजग्राह वीर्यवान् ।
तमाक्षिपत् कीचकोऽथ बलेन बलिनां वरः॥६१
तयोर्भुजविनिष्पेषादुभयोर्बलिनोस्तदा ।
शब्दः समभवद्घोरो वेणुस्फोटसमो युधि ॥ ६२
अथैनमाक्षिप्य बलाद्गृहमध्ये वृकोदरः ।
धूनयामास वेगेन वायुश्चण्ड इव द्रुमम् ॥ ६३
भीमेन च परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे ।
प्रास्पन्दत यथाप्राणं विचकर्ष च पाण्डवम् ॥६४
ईषदाकलितं चापि क्रोधाद्द्रुतपदं स्थितम् ।
कीचको बलवान् भीमं जानुभ्यामाक्षिपद्भुवि ६५
पातितो भुवि भीमस्तु कीचकेन बलीयसा ।
उत्पपाताथ वेगेन दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ६६
स्पर्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ ।
निशीथे पर्यकर्षेतां बलिनौ निर्जने स्थले ॥ ६७
ततस्तद्भवनं श्रेष्ठं प्राकम्पत मुहुर्मुहुः ।
बलवच्चापि संक्रुद्धावन्योन्यं प्रति गर्जतः ॥ ६८

तलाभ्यां स तु भीमेन वक्षस्यभिहतो बली ।
कीचको रोषसंतप्तः पदान्न चलितः पदम् ॥ ६९
मुहूर्तं तु स तं वेगं सहित्वा भुवि दुःसहम् ।
बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः ॥ ७०
तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः ।
वक्षस्यानीय वेगेन ममर्दैनं विचेतसम् ॥ ७१
क्रोधाविष्टो विनिःश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदरः ।
जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम्॥ ७२
गृहीत्वा कीचकं भीमो विरराज महाबलः ।
शार्दूलः पिशिताकाङ्क्षी गृहीत्वेव महामृगम्॥७३
तत एनं परिश्रान्तमुपलभ्य वृकोदरः ।
योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा ॥ ७४
नदन्तं च महानादं भिन्नभेरीसमस्वनम् ।
भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम् ॥ ७५
प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां कण्ठं तस्य वृकोदरः ।
अपीडयत कृष्णायास्तदा कोपोपशान्तये ॥ ७६
अथ तं भग्नसर्वाङ्गं व्याविद्धनयनाम्बरम् ।
आक्रम्य च कटीदेशे जानुना कीचकाधमम् ।
अपीडयत बाहुभ्यां पशुमारममारयत् ॥ ७७
तं विषीदन्तमाज्ञाय कीचकं पाण्डुनन्दनः ।
भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ७८
अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् ।
शान्तिं लब्धाऽस्मि परमां हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम्

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीर-
स्तं कीचकं क्रोधसरागनेत्रः ।
आस्रस्तवस्त्राभरणं स्फुरन्त-
मुद्भ्रान्तनेत्रं व्यसुमुत्ससर्ज ॥ ८०

निष्पिष्य पाणिना पाणिं संदष्टौष्ठपुटं बली ।
समाक्रम्य च संक्रुद्धो बलेन बलिनां वरः ॥ ८१
तस्य पादौ च पाणी च शिरो ग्रीवां च सर्वशः।
काये प्रवेशयामास पशोरिव पिनाकधृक् ॥ ८२

---

वासिताहेतोर्हस्तिनीनिमित्तम् ॥ ५४ ॥ करटामुखं गण्डस्थलस्थं मदनिर्गमस्थानम् । 'करटो गजगण्डे स्यात्' इति मेदिनी ॥ ६० ॥ आकलितमाक्रान्तं द्रुतपदं चलितस्थानं यथा स्यात्तथा स्थितम् ॥ ६५ ॥ सहित्वा सोढ्वा बलादहीयत बलहीनोऽभूत् ॥ ७० ॥ वक्षसि आनीय आनतं भुग्नं कृत्वा तत्राभिना तच्छिरः संयोज्येत्यर्थः ॥ ७१ ॥ गृहीत्वा चेति पाठे इवार्थे चः ॥ ७३ ॥ योक्त्रयामास बबन्ध रशनया रज्ज्वा ॥ ७४ ॥ दोर्भ्यां पाणिभ्याम् ॥ ७६ ॥ व्याविद्धे अतिपीडनात् अधःक्षिप्ते नयने नयनगोलके अम्बरं वस्त्रं च यस्य नयनाकाशो वा । पशुमारं पशुं मारयित्वेवेति यज्ञियपशुवदित्यर्थः ॥ ७७ ॥ सैरन्ध्रिकण्टकं ह्रस्वत्वं समासान्तनिमित्तम् ॥ ७९ ॥ तस्य पादौ चेति । काये देहमध्यभागे तत्तन्निर्गममार्गेणैवान्तान्यन्तः प्रवेश्य । 'यो अस्मै रेवान् सुनोति सोमं निरत्नौ मघवा तं दधाति' इति श्रुतमरत्नौ निधानमेतदेव ज्ञेयम् । रेवान् धनवान् निधानं निष्कृष्य स्थापनम् ॥ ८२ ॥

तं संमथितसर्वाङ्गं मांसपिण्डोपमं कृतम् ।
कृष्णाया दर्शयामास भीमसेनो महाबलः ॥ ८३
उवाच च महातेजा द्रौपदीं योषितां वराम् ।
पश्यैनमेहि पाञ्चालि कामुकोऽयं यथा कृतः॥८४
एवमुक्त्वा महाराज भीमो भीमपराक्रमः ।
पादेन पीडयामास तस्य कायं दुरात्मनः ॥ ८५
ततोऽग्निं तत्र प्रज्वाल्य दर्शयित्वा तु कीचकम् ।
पाञ्चालीं स तदा वीर इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८६
प्रार्थयन्ति सुकेशान्ते ये त्वां शीलगुणान्विताम् ।
एवं ते भीरु वध्यन्ते कीचकः शोभते यथा॥ ८७
तत् कृत्वा दुष्करं कर्म कृष्णायाः प्रियमुत्तमम् ।
तथा स कीचकं हत्वा गत्वा रोषस्य वै शमम्८८
आमन्त्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम् ।
कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा ।
प्रहृष्टा गतसंतापा सभापालानुवाच ह ॥ ८९
कीचकोऽयं हतः शेते गन्धर्वैः पतिभिर्मम ।
परस्त्रीकामसंमत्तस्तत्रागच्छत पश्यत ॥ ९०
तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या नर्तनागाररक्षिणः ।
सहसैव समाजग्मुरादायोल्काः सहस्रशः ॥ ९१
ततो गत्वाऽथ तद्वेश्म कीचकं विनिपातितम् ।
गतासुं ददृशुर्भूमौ रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ९२
पाणिपादविहीनं तु दृष्ट्वा च व्यथिताऽभवन् ।
निरीक्षन्ति ततः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ९३
अमानुषं कृतं कर्म तं दृष्ट्वा विनिपातितम् ।
क्वास्य ग्रीवा क्व चरणौ क्व पाणी क्व शिरस्तथा ॥
इति स्म तं परीक्षन्ते गन्धर्वेण हतं तदा ॥ ९४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचकवधे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

वैशम्पायन उवाच ।
तस्मिन् काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बान्धवाः।
रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य समन्ततः ॥ १
सर्वे संहृष्टरोमाणः संत्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम् ।
तथा संभिन्नसर्वाङ्गं कूर्मं स्थल इवोद्धृतम् ॥ २
पोथितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम् ।
संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः ॥ ३
ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूतपुत्राः समागताः ।
अदूराच्चानवद्याङ्गीं स्तम्भमालिङ्ग्य तिष्ठतीम्॥४
समवेतेषु सर्वेषु तामूचुरुपकीचकाः ।
हन्यतां शीघ्रमसती यत्कृते कीचको हतः ॥ ५
अथवा नैव हन्तव्या दह्यतां कामिना सह ।
मृतस्यापि प्रियं कार्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा ॥ ६
ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः ।
सहानेनाद्य दह्येम तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७
पराक्रमं तु सूतानां मत्वा राजाऽन्वमोदत ।
सैरन्ध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशाम्पतिः ॥ ८
तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम् ।
मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम् ॥ ९
ततस्तु तां समारोप्य निबध्य च सुमध्यमाम् ।
जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानाभिमुखास्तदा ॥ १०
ह्रियमाणा तु सा राजन् सूतपुत्रैरनिन्दिता ।
प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ११
द्रौपद्युवाच ।
जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः ।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम्॥१२
येषां ज्यातलनिर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
व्यश्रूयत महायुद्धे भीमघोषस्तरस्विनाम् ॥ १३
रथघोषश्च बलवान् गन्धर्वाणां तरस्विनाम् ।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम्॥१४
वैशम्पायन उवाच ।
तस्यास्ताः कृपणा वाचः कृष्णायाः परिदेवितम् ।
श्रुत्वैवाभ्यापतद्भीमः शयनादविचारयन् ॥ १५

कृष्णायाः द्रौपद्यै ॥८३॥ सुकेशान्ते सुष्ठु कौटिल्येन विराजमानाः केशान्ता यस्याः। शोभत इत्युपहासः। एवमेव धार्तराष्ट्रान्मारयिष्यामीति भावः ॥ ८७ ॥ रोषस्य शममन्तं फलस्य जातत्वात् ॥ ८८ ॥ इति विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

तस्मिन्निति ॥ १ ॥

भीमसेन उवाच ।
अहं शृणोमि ते वाचं त्वया सैरन्ध्रि भाषिताम् ।
तस्मात्ते सूतपुत्रेभ्यो भयं भीरु न विद्यते ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा स महाबाहुर्विजज़ृम्भे जिघांसया ।
ततः स व्यायतं कृत्वा वेषं विपरिवर्त्य च ॥ १७
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य निर्जगाम बहिस्तदा ।
स भीमसेनः प्राकारादारुह्य तरसा द्रुमम् ॥१८
श्मशानाभिमुखः प्रायाद्यत्र ते कीचका गताः ।
स लङ्घयित्वा प्राकारं निःसृत्य च पुरोत्तमात् ।
जवेन पतितो भीमः सूतानामग्रतस्तदा ॥ १९
चितासमीपे गत्वा स तत्रापश्यद्वनस्पतिम् ।
तालमात्रं महास्कन्धं मूर्धशुष्कं विशाम्पते ॥२०
तं नागवदुपक्रम्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ।
[1]स्कन्धमारोपयामास दशव्यामं परन्तपः ॥ २१
स तं वृक्षं दशव्यामं सस्कन्धविटपं बली ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत् सूतान् दण्डपाणिरिवान्तकः २२
ऊरुवेगेन तस्याथ न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकाः ।
भूमौ निपातिता वृक्षाः सङ्घशस्तत्र शेरते ॥२३
तं सिंहमिव संक्रुद्धं दृष्ट्वा गन्धर्वमागतम् ।
वित्रेसुः सर्वशः सूता विषादभयकम्पिताः ॥ २४
गन्धर्वो बलवानेति क्रुद्ध उद्यम्य पादपम् ।
सैरन्ध्री मुच्यतां शीघ्रं यतो नो भयमागतम् २५
ते तु दृष्ट्वा तदाऽऽविद्धं भीमसेनेन पादपम् ।
विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ २६
द्रवतस्तांस्तु संप्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव ।
शतं पञ्चाधिकं भीमः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ २७
वृक्षेणैतेन राजेन्द्र प्रभञ्जनसुतो बली ।
तत आश्वासयत् कृष्णां स विमुच्य विशाम्पते ॥२८
उवाच च महाबाहुः पाञ्चालीं तत्र द्रौपदीम् ।
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां दुर्धर्षः स वृकोदरः ॥ २९
एवं ते भीरु वध्यन्ते ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम् ।
प्रैहि त्वं नगरं कृष्णे न भयं विद्यते तव ॥ ३०
अन्येनाहं गमिष्यामि विराटस्य महानसम् ॥३१

वैशम्पायन उवाच ।
पञ्चाधिकं शतं तच्च निहतं तेन भारत ।
महावनमिव छिन्नं शिश्ये विगलितद्रुमम् ॥ ३२
एवं ते निहता राजन् शतं पञ्च च कीचकाः ।
स च सेनापतिः पूर्वमित्येतत् सूतषट्शतम् ॥ ३३
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नरा नार्यश्च सङ्गताः ।
विस्मयं परमं गत्वा नोचुः किञ्चन भारत ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

वैशम्पायन उवाच ।
ते दृष्ट्वा निहतान् सूतान् राज्ञे गत्वा न्यवेदयन् ।
गन्धर्वैर्निहता राजन् सूतपुत्रा महाबलाः ॥ १
यथा वज्रेण वै दीर्णं पर्वतस्य महच्छिरः ।
व्यतिकीर्णाः प्रदृश्यन्ते तथा सूता महीतले ॥ २
सैरन्ध्री च विमुक्ताऽसौ पुनरायाति ते गृहम् ।
सर्वं संशयितं राजन् नगरं ते भविष्यति ॥ ३
यथारूपा च सैरन्ध्री गन्धर्वाश्च महाबलाः ।
पुंसामिष्टश्च विषयो मैथुनाय न संशयः ॥ ४
यथा सैरन्ध्रिदोषेण न ते राजन्निदं पुरम् ।
विनाशमेति वै क्षिप्रं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ५

---

व्यायतं व्यापारं यत्नं कृत्वा वेषं च विपरिवर्त्य गन्धर्ववेषसदृशं कृत्वा ॥ १७ ॥ अभ्यवस्कन्द्य निपत्य द्रुममारुह्य ततश्च द्रौपदीनयनप्रदेशं दृष्ट्वेत्यर्थः ॥ १८ ॥ मूर्ध्नि शुष्कमिति शोषणोन्मुखत्वेनातिपक्वत्वं सूच्यते ॥२०॥ परिरभ्य उपक्रम्य उत्पाटनार्थं यत्नं कृत्वा उत्पाटितं च तं स्कन्धे आरोपयामास व्यामं प्रसारितयोर्बाह्वोरन्तरम् ॥२१॥ विमुच्य मोचयित्वा ॥ २९ ॥ अन्येन मार्गेण ॥ ३१ ॥ शिश्ये शयितम् ॥ ३२ ॥ षट्शतं षडधिकं शतम् ॥३३॥ इति विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

[1] वृक्षमुत्पाटयामास भीमो भीमपराक्रमः—ङ

२४

ततइति ॥ १ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विराटो वाहिनीपतिः ।
अब्रवीत्क्रियतामेषां सूतानां परमक्रिया ॥ ६
एकस्मिन्नेव ते सर्वे सुसमिद्धे हुताशने ।
दह्यन्तां कीचकाः शीघ्रं रत्नैर्गन्धैश्च सर्वशः ॥ ७
सुदेष्णामब्रवीद्राजा महिषीं जातसाध्वसः ।
सैरन्ध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम् ॥ ८
गच्छ सैरन्ध्रि भद्रं ते यथाकामं वरानने ।
बिभेति राजा सुश्रोणि गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ९
न हित्वामुत्सहे वक्तुं स्वयं गन्धर्वरक्षिताम् ।
स्त्रियास्त्वदोषस्तां वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम्॥१०

वैशम्पायन उवाच ।

अथ मुक्ता भयात्कृष्णा सूतपुत्रान्निरस्य च ।
मोक्षिता भीमसेनेन जगाम नगरं प्रति ॥ ११
त्रासितेव मृगी बाला शार्दूलेन मनस्विनी ।
गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा १२
तां दृष्ट्वा पुरुषा राजन् प्राद्रवन्त दिशो दश ।
गन्धर्वाणां भयत्रस्ताः केचिद्दृष्ट्वा न्यमीलयन् १३
ततो महानसद्वारि भीमसेनमवस्थितम् ।
ददर्श राजन् पाञ्चाली यथा मत्तं महाद्विपम्॥१४
तं विस्मयन्ती शनकैः संज्ञाभिरिदमब्रवीत् ।
गन्धर्वराजाय नमो येनास्मि परिमोचिता ॥ १५

भीमसेन उवाच ।

ये पुरा विचरन्तीह पुरुषा वशवर्तिनः ।
तस्यास्ते वचनं श्रुत्वा ह्यनृणा विहरन्त्वतः ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

ततः सा नर्तनागारे धनञ्जयमपश्यत ।
राज्ञः कन्या विराटस्य नर्तयानं महाभुजम् ॥ १७
ततस्ता नर्तनागाराद्विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः ।
कन्या ददृशुरायान्तीं क्लिष्टां कृष्णामनागसम् १८

कन्या ऊचुः ।

दिष्ट्या सैरन्ध्रि मुक्तासि दिष्ट्याऽसि पुनरागता
दिष्ट्या विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्

बृहन्नलोवाच ।

कथं सैरन्ध्रि मुक्ताऽसि कथं पापाश्च ते हताः ।
इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥ २०

सैरन्ध्र्युवाच ।

बृहन्नले किं नु तव सैरन्ध्र्या कार्यमद्य वै ।
या त्वं वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम्॥
न हि दुःखं समाप्नोषि सैरन्ध्री यदुपाश्नुते ।
तेन मां दुःखितामेवं पृच्छसे प्रहसन्निव ॥ २२

बृहन्नलोवाच ।

बृहन्नलाऽपि कल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम् ।
तिर्यग्योनिगता बाले न चैनामवबुध्यसे ॥ २३
त्वया सहोषिता चास्मि त्वं च सर्वैः सहोषिता।
क्लिश्यन्त्यां त्वयि सुश्रोणि को नु दुःखं न चिन्तयेत्
न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिद्धृदयं क्वचित् ।
वेदितुं शक्यते नूनं तेन मां नावबुध्यसे ॥ २५

वैशम्पायन उवाच ।

ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत् ।
प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमुपगामिनी ॥ २६
तामब्रवीद्राजपुत्री विराटवचनादिदम् ।
सैरन्ध्रि गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम् २७
राजा बिभेति ते भद्रे गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ।
त्वं चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥
पुंसामिष्टश्च विषयो गन्धर्वाश्चातिकोपनाः ॥२८

सैरन्ध्र्युवाच ।

त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षमतु भामिनि ।
कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः॥२९
ततो मामुपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम् ।
ध्रुवं च श्रेयसा राजा योक्ष्यते सह बान्धवैः ॥३०

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचकदाहे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥
समाप्तं कीचकवधपर्व ॥

---

न हित्वामिति। हित्वां हातुं योग्याम् "कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः" इति त्वन् जहातेश्चेति हिलमवत्वायामपि छान्दसम्। पित्वो भिक्षितेत्यादिवत् त्वां सैरंध्रीं हित्वां त्यक्तुं योग्यामप्यहं राजा गच्छेति वक्तुं नोत्सहे स्त्रियास्तु सुदेष्णायास्तव तां प्रत्येतद्वक्तुमदोष इति राजवाक्यानुवादः। यस्मादेवं राजा मामाज्ञापितवान् तस्मादेवं त्वां प्रति प्रब्रवीम्यहमिति सुदेष्णावचनम् ॥१०॥ पुरुषा यस्याः वशवर्तिन आज्ञाकारिणः। इह विराटपुरे पुरा वर्षमात्रं विहरन्ति ते तस्याः वचनं गन्धर्वराजाय नम इत्यादिरूपं श्रुत्वाऽतःपरमनृणास्तदाज्ञासम्पादनेनाज्ञातवाससमाप्त्या वा कृतकृत्याः सन्तो विहरन्तु ॥ १६ ॥ प्रहसन्निवेति पूर्वसंस्कारात्पुल्लिंगप्रयोगः। प्रहसन्तीवेत्यर्थः ॥ २२ ॥ तिर्यक् नीचं क्लीबत्वं तन्मयीं योनिः शरीरं तत्र गता ॥ २३ ॥ इति महाभारते विराटप० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

# गोहरणपर्व ४

## २५

वैशम्पायन उवाच ।
कीचकस्य तु घातेन सानुजस्य विशाम्पते ।
अत्याहितं चिन्तयित्वा व्यस्मयन्त पृथक् जनाः ॥
तस्मिन् पुरे जनपदे सञ्जल्पोऽभूच्च सङ्घशः ।
शौर्याद्धि वल्लभो राज्ञो महासत्त्वः स कीचकः ॥२
आसीत् प्रहर्ता सैन्यानां दारामर्षी च दुर्मतिः ।
स हतः खलु पापात्मा गन्धर्वैर्दुष्टपूरुषः ॥ ३
इत्यजल्पन्महाराज परानीकविनाशनम् ।
देशे देशे मनुष्याश्च कीचकं दुष्प्रधर्षणम् ॥ ४
अथ वै धार्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः ।
मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च ।
संविधाय यथा दृष्टं यथादेशप्रदर्शनम् ।
कृतकृत्या न्यवर्तन्त ते चरा नगरं प्रति ॥ ६
तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम् ।
द्रोणकर्णकृपैः सार्धं भीष्मेण च महात्मना ॥ ७
सङ्गतं भ्रातृभिश्चापि त्रिगर्तैश्च महारथैः ।
दुर्योधनं सभामध्ये आसीनमिदमब्रुवन् ॥ ८
चरा ऊचुः ।
कृतोऽस्माभिः परो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा ।
पाण्डवानां मनुष्येन्द्र तस्मिन् महति कानने ॥ ९
निर्जने मृगसङ्कीर्णे नानाद्रुमलताकुले ।
लताप्रतानबहुले नानागुल्मसमावृते ॥ १०
न च विद्मो गता येन पार्थाः सुदृढविक्रमाः ।
मार्गमाणाः पदन्यासं तेषु तेषु तथा तथा ॥ ११
गिरिकूटेषु तुङ्गेषु नानाजनपदेषु च ॥
जनाकीर्णेषु देशेषु ×खर्वटेषु पुरेषु च ॥ १२
नरेन्द्र बहुशोऽन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान् ।
अत्यन्तं वा विनष्टास्ते भद्रं तुभ्यं नरर्षभ ॥ १३
वर्त्मन्यन्वेष्यमाणा वै रथिनां रथिसत्तम ।
न हि विद्मो गतिं तेषां वासं हि नरसत्तम ॥१४
किंचित्काले मनुष्येन्द्र सूतानामनुगा वयम् ।
मृगयित्वा यथान्यायं वेदितार्थाः स्म तत्त्वतः १५
प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परन्तप ।
न तत्र कृष्णा राजेन्द्र पाण्डवाश्च महाव्रताः॥ १६
सर्वथा विप्रनष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ ।
न हि विद्मो गतिं तेषां वासं वाऽपि महात्मनाम्॥
पाण्डवानां प्रवृत्तिं च विद्मः कर्मापि वा कृतम् ।
स नः शाधि मनुष्येन्द्र अत ऊर्ध्वं विशाम्पते १८
अन्वेषणे पाण्डवानां भूयः किं करवामहे ।
इमां च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु ॥ १९
येन त्रिगर्ता निहता बलेन महता नृप ।
सूतेन राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन बलीयसा ॥ २०
स हतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि भारत ।
अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा भ्रातृभिः सह सोदरैः ॥२१
प्रियमेतदुपश्रुत्य शत्रूणां च पराभवम् ।
कृतकृत्यश्च कौरव्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चारप्रत्यागमने
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

वैशम्पायन उवाच ।
ततो दुर्योधनो राजा ज्ञात्वा तेषां वचस्तदा । चिरमन्तर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः ॥ १

२५

**कीचकस्येति** । 'अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवानपेक्षि च' इत्यमरः ॥१॥ कृतकृत्याः कीचकवधज्ञानेनात्रैव पाण्डवानां वासं स्वयमेव धार्तराष्ट्रा अनुमानतो ज्ञास्यन्तीत्याशयः ॥६॥ येन मार्गेण ॥ ११ ॥ गिरिकूटेषु गिरिशिखरेषु॥१२॥ सूतानां पाण्डवीयानामिन्द्रसेनादीनाम् ॥१५॥
इति महाभा० वि० नैल० भा० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

× गव्यूतिदीर्घं क्रोशार्धविस्तारं खर्वटं भवेत् ।

२६

**तत इति** ॥ १ ॥

सुदुःखा खलु कार्याणां गतिर्विज्ञातुमन्ततः+ ।
तस्मात् सर्वे निरीक्षध्वं क नु ते पाण्डवा गताः२
अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः ।
तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ॥ ३
अस्य वर्षस्य शेषं चेद्व्यतीयुरिह पाण्डवाः ।
निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४
क्षरन्त इव नागेन्द्राः सर्वे ह्याशीविषोपमाः ।
दुःखा भवेयुः संरब्धाः कौरवान् प्रति ते ध्रुवम्॥५
सर्वे कालस्य वेत्तारः कृच्छ्ररूपधराः स्थिताः ।
प्रविशेयुर्जितक्रोधास्तावदेव पुनर्वनम् ॥ ६
तस्मात् क्षिप्रं बुभूषध्वं यथा तेऽत्यन्तमव्ययम् ।
राज्यं निर्द्वन्द्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरं भवेत् ॥ ७
अथाब्रवीत्ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत ।
अन्ये धूर्ता नरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः॥ ८
चरन्तु देशान् संवीताः स्फीताञ्जनपदाकुलान् ।
तत्र गोष्ठीषु रम्यासु सिद्धप्रव्रजितेषु च ॥ ९
परिचारेषु तीर्थेषु विविधेष्वाकरेषु च ।
विज्ञातव्या मनुष्यैस्तैस्तर्कया सुविनीतया ॥ १०
विविधैस्तत्परैः सम्यक् तज्ज्ञैर्निपुणसंवृतैः ।
अन्वेष्टव्याः सुनिपुणैः पाण्डवाश्छन्नवासिनः॥११
नदीकुञ्जेषु तीर्थेषु ग्रामेषु नगरेषु च ।
आश्रमेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च ॥ १२
अथाग्रजानन्तरजः पापभावानुरागवान् ।
ज्येष्ठं दुःशासनस्तत्र भ्राता भ्रातरमब्रवीत् ॥ १३
येषु नः प्रत्ययो राजंश्चारेषु मनुजाधिप ।
ते यान्तु दत्तदेया वै भूयस्तान् परिमार्गितुम्॥१४
एतच्च कर्णो यत्प्राह सर्वमीहामहे तथा ।
यथोद्दिष्टं चराः सर्वे मृगयन्तु यतस्ततः ॥ १५
एते चान्ये च भूयांसो देशाद्देशं यथाविधि ।
न तु तेषां गतिर्वासः प्रवृत्तिश्चोपलभ्यते ॥ १६
अत्यन्तं वा निगूढास्ते पारं चोर्मिमतो गताः ।
व्यालैश्चापि महारण्ये भक्षिताः शूरमानिनः॥१७
अथवा विषमं प्राप्य विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।
तस्मान्मानसमव्यग्रं कृत्वा त्वं कुरुनन्दन ।
कुरु कार्यं महोत्साहं मन्यसे यन्नराधिप ॥ १८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि कर्णदुःशासनवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

वैशम्पायन उवाच ।
अथाब्रवीन्महावीर्यो द्रोणस्तत्त्वार्थदर्शिवान् ।
न तादृशा विनश्यन्ति न प्रयान्ति पराभवम् ॥ १
शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः ।
धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः ॥ २
नीतिधर्मार्थतत्त्वज्ञं पितृवच्च समाहितम् ।
धर्मे स्थितं सत्यधृतिं ज्येष्ठं ज्येष्ठानुयायिनः ॥ ३
अनुव्रता महात्मानं भ्रातरो भ्रातरं नृप ।
अजातशत्रुं श्रीमन्तं सर्वभ्रातृननुव्रतम् ॥ ४
तेषां तथा †विधेयानां निभृतानां महात्मनाम् ।
किमर्थं नीतिमान् पार्थः श्रेयो नैषां करिष्यति॥५
तस्माद्यत्नात् प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम् ।
न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया ॥ ६
§साम्प्रतं चैव यत्कार्यं तच्च क्षिप्रमकालिकम् ।
क्रियतां साधु सञ्चिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम्॥७

दुःखा दुःखयितारः । संरब्धाः कुपिताः ॥ ५ ॥ यथा ते पुनर्वनं प्रविशेयुस्तथा बुभूषध्वं तान् प्राप्तुमिच्छतेत्यर्थः॥६॥ तत्फलं चाह-अत्यन्तमित्यादिना ॥ ७ ॥ जनपदाकुलान् जनव्याप्तान्। 'भवेज्जनपदो जानपदोऽपि जनदेशयोः' इति मेदिनी । गोष्ठीषु विद्वत्सभासु सिद्धानां प्रव्रजितं गमनं येषु तेषु मुनीनामाश्रमेषु ॥९॥ परि आगत्य चरन्त्येषु ते परिचाराः राजपुराणि । तेषु तर्कया कांक्षया 'तर्कः कांक्षावितर्कयोः' इति मेदिनी ॥ १० ॥ अग्रजानन्तरजो द्वितीयो भ्राता ॥ १३ ॥ ऊर्मिमतः सिन्धोः ॥१७॥ इति महाभा० विरा० नैल० भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

+ अन्ततः-स्वभावतः । अथवा अन्ते-पर्यवसाने कार्याणां गतिः सुदुःखा विज्ञातुम् ।

२७

अथेति ॥ १ ॥ विधेयानां किंकराणां निभृतानामत्यन्तावहितानाम् ॥ ५ ॥ अकालिकं विलम्बासहम् ॥७॥

† विधेयानां विनयग्राहिणाम् । § सांप्रतं युक्तम् ।

यथावत् पाण्डुपुत्राणां सर्वार्थेषु *धृतात्मनाम् ।
दुर्ज्ञेयाः खलु शूरास्ते दुरापास्तपसा वृताः ॥ ८
शुद्धात्मा गुणवान् पार्थः सत्यवान्नीतिमान् शुचिः
तेजोराशिरसङ्ख्येयो गृह्णीयादपि चक्षुषा ॥ ९
विज्ञाय क्रियतां तस्माद्भूयश्च मृगयामहे ।
ब्राह्मणैश्चारकैः सिद्धैर्ये चान्ये तद्विदो जनाः १०

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रोणवाक्ये चारप्रत्याचारे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः ।
श्रुतवान् देशकालज्ञस्तत्त्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ १
आचार्यवाक्योपरमे तद्वाक्यमभिसन्दधत् ।
हितार्थं समुवाचैनां भारतीं भारतान् प्रति ॥ २
युधिष्ठिरे समासक्तां धर्मज्ञे धर्मसंवृताम् ।
असत्सु दुर्लभां नित्यं सतां चाभिमतां सदा ॥ ३
भीष्मः समवदत्तत्र गिरं साधुभिरर्चिताम् ।
यथैष ब्राह्मणः प्राह द्रोणः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ ४
सर्वलक्षणसम्पन्नाः साधुव्रतसमन्विताः ।
श्रुतव्रतोपपन्नाश्च नानाश्रुतिसमन्विताः ॥ ५
वृद्धानुशासने युक्ताः सत्यव्रतपरायणाः ।
समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः ॥ ६
क्षत्रधर्मरता नित्यं केशवानुगताः सदा ।
प्रवीरपुरुषास्ते वै महात्मानो महाबलाः ।
नावसीदितुमर्हन्ति उद्वहन्तः सतां धुरम् ॥ ७
धर्मतश्चैव गुप्तास्ते सुवीर्येण च पाण्डवाः ।
न नाशमधिगच्छेयुरिति मे धीयते मतिः ॥ ८
तत्र बुद्धिं प्रवक्ष्यामि पाण्डवान् प्रति भारत ।
न तु नीतिः सुनीतस्य शक्यतेऽन्वेषितुं परैः ॥९
यत्तु शक्यमिहास्माभिस्तान्वै सञ्चिन्त्य पाण्डवान्
बुद्ध्या प्रयुक्तं न द्रोहात् प्रवक्ष्यामि निबोध तत् ॥१०
न त्वियं मादृशैर्नीतिस्तस्य वाच्या कथञ्चन ।
सा त्वियं साधु वक्तव्या न त्वनीतिः कथञ्चन ११
वृद्धानुशासने तात तिष्ठता सत्यशीलिना ।
अवश्यं त्विह धीरेण सतां मध्ये विवक्षता ॥ १२
यथार्हमिह वक्तव्यं सर्वथा धर्मलिप्सया ।
तत्र नाहं तथा मन्ये यथाऽयमितरो जनः ॥ १३
निवासं धर्मराजस्य वर्षेऽस्मिन्वै त्रयोदशे ।
तत्र तात न तेषां हि राज्ञां भाव्यमसाम्प्रतम् १४
पुरे जनपदे चापि यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
दानशीलो वदान्यश्च निभृतो ह्रीनिषेवकः ।
जनो जनपदे भाव्यो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १५
प्रियवादी सदा दान्तो भव्यः सत्यपरो जनः ।
हृष्टः पुष्टः शुचिर्दक्षो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १६

गृह्णीयादपि चक्षुषा प्रत्यक्षदृष्टोऽपि मोहयेदेवेत्यर्थः ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभा० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

* धृतात्मनां सावधानानाम् ।

२८

तत इति ॥ १ ॥ अभिसंदधत् तद्वाक्यानुगुणमव वदन् भारतीं भरतवंशीयपाण्डवविषयां गिरं वाचं भारतान कौरवान् उवाचेति संबन्धः ॥ २ ॥ समं वदत् समं पक्षपातशून्यं वदत् वदन् । नुमभाव आर्षः ॥४॥ श्रुतं शास्त्रं, नानाश्रुतिरनेका आख्यायिका ॥ ५ ॥ महात्मान उदारचित्ताः । सतां धुरं धर्मम् ॥ ७ ॥ परैरनीतिपरैः । अन्वेषितुमनुगन्तुम ॥ ९ ॥ यत्तु प्रयुक्तं प्रयोगः शक्यं ज्ञातुं योग्यः तदेव वक्ष्यामि न तु भवतां द्रोहात् ॥ १० ॥ नत्विति । तस्य दुर्जनस्य त्वादृशस्येति गूढोऽभिसन्धिः । सा तु । तुशब्दो हेत्वर्थे । सा हि यतो नीतिरियं साधुवाच्या साधुष्वेव वक्तव्याऽतोऽसाधौ त्वयि नैवैषा वक्तव्येत्यर्थः । अनीतिस्तु कथञ्चन साधुष्वसाधुषु वा नैव वक्तव्येत्यर्थः ॥ ११ ॥ तिष्ठता वक्तव्यमिति सम्बन्धः ॥ १२ ॥ तत्र वक्तव्ये सति यथा इतरो जनः पाण्डवानां निवासं लोकसाधारणं मन्यते तथाऽहं न मन्ये इति योजना ॥ १३ ॥ असाधारण्यमेवाह-तत्रेति । तत्र पुरादौ असाम्प्रतमकल्याणम् ॥ १४ ॥ वदान्यः प्रियवादी । 'वदान्यो दानशीले च चारुवादिनि वाच्यवत्' इति मेदिनी । निभृतो नियतेन्द्रियः । भाव्य अवश्यंभावी 'ओरावश्यके' इति ण्यत् ॥ १५ ॥ भव्यो भविता ॥१६॥

नासूयको न चापीर्षुर्नाभिमानी न मत्सरी ।
भविष्यति जनस्तत्र स्वयं धर्ममनुव्रतः ॥ १७
ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुत्यस्तथैव च ।
क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः ॥ १८
सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः ।
सम्पन्नसस्या च मही निरातङ्का भविष्यति ॥१९
गुणवन्ति च धान्यानि रसवन्ति फलानि च ।
गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च †भारती
वायुश्च सुखसंस्पर्शो ऽनिष्प्रतीपं च दर्शनम् ।
न भयं त्वाविशेत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २१
गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः ।
पयांसि दधिसर्पींषि रसवन्ति हितानि च ॥ २२
गुणवन्ति च पेयानि भोज्यानि रसवन्ति च ।
तत्र देशे भविष्यन्ति यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२३
रसाः स्पर्शाश्च गन्धाश्च शब्दाश्चापि गुणान्विताः
दृश्यानि च प्रसन्नानि यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २४
धर्माश्च तत्र सर्वेस्तु सेविताश्च द्विजातिभिः ।
स्वैः स्वैर्गुणैश्च संयुक्ता अस्मिन् वर्षे त्रयोदशे२५
देशे तस्मिन् भविष्यन्ति तात पाण्डवसंयुते ।
संप्रीतिमाञ्जनस्तत्र सन्तुष्टः शुचिरव्ययः ॥ २६
देवतातिथिपूजासु सर्वभावानुरागवान् ।
इष्टदानो महोत्साहः स्वस्वधर्मपरायणः ॥ २७
अशुभाद्धि शुभप्रेप्सुरिष्टयज्ञः शुभव्रतः ।
भविष्यति जनस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २८
त्यक्तवाक्यानृतस्तात शुभकल्याणमङ्गलः ।
शुभार्थेप्सुः शुभमतिर्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २९
भविष्यति जनस्तत्र नित्यं चेष्टप्रियव्रतः ।
धर्मात्मा शक्यते ज्ञातुं नापि तात द्विजातिभिः॥
किं पुनः प्राकृतैस्तात पार्थो विज्ञायते क्वचित् ।
यस्मिन् सत्यं धृतिर्दानं परा शान्तिर्ध्रुवा क्षमा॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः परं तेज आनृशंस्यमथार्जवम् ।
तस्मात्तत्र निवासं तु छन्नं यत्नेन धीमतः ।
गतिं च परमां तत्र नोत्सहे वक्तुमन्यथा ॥ ३२
एवमेतत्तु सञ्चिन्त्य यत्कृते मन्यसे हितम् ।
तत् क्षिप्रं कुरु कौरव्य यद्येवं श्रद्दधासि मे ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चारप्रत्याचारे भीष्मवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा ।
युक्तं प्राप्तं च वृद्धेन पाण्डवान् प्रति भाषितम्॥१
धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं तत्त्वतश्च सहेतुकम् ।
तत्रानुरूपं भीष्मेण ममाप्यत्र गिरं शृणु ॥ २
तेषां चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् ।
नीतिर्विधीयतां चापि साम्प्रतं या हिता भवेत्
नावज्ञेयो रिपुस्तात प्राकृतोऽपि बुभूषता ।
किं पुनः पाण्डवास्तात सर्वास्त्रकुशला रणे ॥ ४

असूयकः परगुणेषु दोषारोपकः, ईर्षुः परोत्कर्षासहिष्णुः । अभिमानी आत्मसंभावितः, मत्सरी परद्रोहकर्ता तत्र, यत्र युधिष्ठिर इत्यनुकृष्यते ॥ १७ ॥ दर्शनं धर्मब्रह्मस्वरूपावेक्षणं निष्प्रतीपं पाखण्डमार्गवर्जितम् ॥ २१ ॥ दृश्यानि रूपाणि ॥ २४ ॥ सर्वभावेन सर्वात्मनाऽनुरागवान् ॥२७॥ अशुभात् अशुभं त्यक्त्वा ॥ २८ ॥ इष्टे यागादि प्रियं परसुखदं च व्रतं पालनीयं यस्य । एवंभूतस्य दुर्ज्ञेयत्वमप्याह-धर्मात्मेति ॥ ३० ॥ तस्मादिति । धीमतः पाण्डवस्य वासं छन्नं तत्र विद्धीति शेषः । परमां गतिं गमनं च तत्रैव स्वकीयं कुरु । एतच्चाह-मन्यथा विपरीतं वचो वक्तुं नोत्सहे वृद्धत्वात् पाण्डवेषु द्वेषस्याधर्मरूपत्वाच्चेति भावः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ † भारती वाणी । ऽ निष्प्रतीपं निर्विरोधमप्रतिकूलं चेति पर्यायौ ।

२९

तत इति । युक्तं युक्तिमत् प्राप्तं प्राप्तकालम् ॥ १ ॥ तत्त्वतश्च सहेतुकं युक्त्याभासहीनम्॥२॥ तीर्थैश्चारैः ॥ ३ ॥

तस्मात् सत्रं प्रविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
गूढभावेषु छन्नेषु काले चोदयमागते ॥ ५
स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे च ज्ञातव्यं बलमात्मनः ।
उदयः पाण्डवानां च प्राप्ते काले न संशयः ॥ ६
निवृत्तसमयाः पार्था महात्मानो महाबलाः ।
महोत्साहा भविष्यन्ति पाण्डवा ह्यमितौजसः ७
तस्माद्बलं च कोशश्च नीतिश्चापि विधीयताम् ।
यथाकालोदये प्राप्ते सम्यक्तैः सन्दधामहे ॥ ८
तात बुद्ध्याऽपि तत् सर्वं बुद्ध्यस्व बलमात्मनः ।
नियतं सर्वमित्रेषु बलवत्स्वबलेषु च ॥ ९

†उच्चावचं बलं ज्ञात्वा मध्यस्थं चापि भारत
प्रहृष्टमप्रहृष्टं च सन्दधाम तथा परैः ॥ १०
साम्ना दानेन भेदेन दण्डेन बलिकर्मणा ।
न्यायेनाक्रम्य च परान् बलाच्चानम्य दुर्बलान् ११
सान्त्वयित्वा तु मित्राणि बलं चाभाष्यतां सुखम्
सुकोशबलसंवृद्धः सम्यक् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२
योत्स्यसे चापि बलिभिररिभिः प्रत्युपस्थितैः ।
अन्यैस्त्वं पाण्डवैर्वाऽपि हीनैः स्वबलवाहनैः ॥ १३
एवं सर्वं विनिश्चित्य व्यवसायं स्वधर्मतः ।
यथाकालं मनुष्येन्द्र चिरं सुखमवाप्स्यसि ॥ १४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चारप्रत्याचारे कृपवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

वैशम्पायन उवाच ।
अथ राजा त्रिगर्तानां सुशर्मा रथयूथपः ।
प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली ॥ १
असकृन्निकृताः पूर्वं मत्स्यशाल्वेयकैः प्रभो ।
सूतेनैव च मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः ॥ २
बाधितो बन्धुभिः सार्धं बलाद्बलवतां विभो ।
स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत ॥ ३

असकृन्मत्स्यराज्ञा मे राष्ट्रं बाधितमोजसा ।
प्रणेता कीचकस्तस्य बलवानभवत् पुरा ॥ ४
क्रूरोऽमर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः ।
निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान् ॥ ५
तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः ।
भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः ॥ ६

सत्रं कैतवं वेषान्तररूपम् । छन्नेषु गुप्तेषु उदयमुद्गमनं प्रतिज्ञाते काले उत्क्रान्ते सति । सामीप्ये सप्तमी । कालेऽल्पावशिष्टे सतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ परराष्ट्रेषु मित्रराष्ट्रेषु स्वराष्ट्रेषु च स्वस्य बलं सैन्यं सामर्थ्यं च यत्तज्ज्ञातव्यम् ॥ ६ ॥ नीतिर्भक्तवेतनदानचारप्रवृत्त्यादिका तथा विधीयतां यथा येन प्रकारेण तैः सह सन्दधामहे शरादिसन्धानं कुर्महे । यद्वा बलकोशयोरल्पत्वं स्वस्य परस्य बहुत्वं नीतिर्यथाप्रतिज्ञं सामरूपा विधीयतां यथा तैः सह सन्दधामहे सख्यं कुर्महे इति कालोदये मृत्यूदयरूपे युद्धे प्राप्ते सति । तेषां विधीयत इति पाठे तेषां कालत उदये प्राप्ते सति यथा सम्यग्विधीयते तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ८ ॥ नियतमचञ्चलं नियमेन बुध्यस्व ॥ ९ ॥ बोधफलमाह उच्चेति । उच्चादिभेदेन त्रिविधमपि प्रहृष्टं वा अप्रहृष्टं वा ज्ञातव्यम् । उच्चं समं वा स्वबलम् । अप्रहृष्टं चेत् प्रहृष्टबलैः शत्रुभिः सह सन्दधाम सन्धिं करवाम । विपरीतं चेदपि सन्दधाम शरानिति शेषः । सन्धनीयामिति पाठेऽपि तदेवार्थद्वयं ज्ञेयम् । 'आतो धातोः' इत्यालो-पोऽनापत्प्रत्यये परे भवति । सन्धानीयामिति तु युक्तः पाठः ॥ १० ॥ साम्ये सामभेदौ । अपरस्याधिक्ये दानं स्वस्याधिक्ये दण्डो युद्धे निपातनं वा बलिकर्म वा करादानाख्यमिति बलज्ञानफलम् ॥ ११ ॥ बलं स्वसैन्यं सुखं यथा स्यात्तथा आभाष्यतां प्रीतिवादेन भक्तवेतनमानदानेन संमन्त्रणीयमित्यर्थः । सिद्धिं जयम् ॥ १२ ॥ अन्यैः शत्रुभिः पाण्डवैश्चापि सह योत्स्यसे । कीदृशैः स्वबलादिना हीनैः ॥ १४ ॥ व्यवसायं स्वकर्तव्यम् ॥ १५ ॥ इति श्रीम० विरा० नैल० भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

† उच्चावचम्–उच्चं राजपुत्रादि, अवचं चण्डालादि, मध्यस्थं वैश्यादि । प्रकृष्टमप्रकृष्टं राजानं प्रतीत्यर्थः ।

३०

अथेति ॥ १ ॥ वाक्यमुवाचेत्यत्र हेतुमाह–असकृदिति । निकृता वञ्चितास्त्रिगर्ता इति शेषः । प्रभो हे जनमेजय ॥ २ ॥ बाधितः सुशर्मा बलवतां कौरवाणां विभौ स्वामिनि भीष्मे समीपे सति कर्णं चोदीक्ष्य दुर्योधनमभाषत ॥ ३ ॥

तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ ।
कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः ॥ ७
एतत् प्राप्तमहं मन्ये कार्यमात्ययिकं† हि नः ।
राष्ट्रं तस्याभियास्यामो बहुधान्यसमाकुलम् ॥८
आददामोऽस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च ।
ग्रामान् राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः
अथवा गोसहस्राणि शुभानि च बहूनि च ।
विविधानि हरिष्यामः प्रतिपीड्य पुरं बलात् ॥१०
कौरवैः सह सङ्गत्य त्रिगर्तैश्च विशाम्पते ।
गास्तस्यापहरामोऽद्य सर्वैश्चैव सुसंहताः ॥ ११
संविभागेन कृत्वा तु निबध्नीमोऽस्य पौरुषम् ।
हत्वा चास्य चमूं कृत्स्नां वशमेवानयामहे ॥ १२
तं वशे न्यायतः कृत्वा सुखं वत्स्यामहे वयम् ।
भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः ॥ १३
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजानमब्रवीत् ।
सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः ॥१४
तस्मात् क्षिप्रं विनिर्यामो योजयित्वा वरूथिनीम्
विभज्य चाप्यनीकानि यथा वा मन्यसेऽनघ ॥१५
प्राज्ञो वा कुरुवृद्धोऽयं सर्वेषां नः पितामहः ॥
आचार्यश्च यथा द्रोणः कृपः शारद्वतस्तथा ।
मन्यन्ते ते यथा सर्वे तथा यात्रा विधीयताम् १६
संमन्त्र्य चाशु गच्छामः साधनार्थं महीपतेः ।
किं च नः पाण्डवैः कार्यं हीनार्थबलपौरुषैः ॥ १७
अत्यन्तं वा प्रनष्टास्ते प्राप्ता वाऽपि यमक्षयम्§ ।
यामो राजन्निरुद्विग्ना विराटनगरं वयम् ॥
आदास्यामो हि गास्तस्य विविधानि वसूनि च

वैशम्पायन उवाच ।

ततो दुर्योधनो राजा वाक्यमादाय तस्य तत् ।
वैकर्तनस्य कर्णस्य क्षिप्रमाज्ञापयत् स्वयम् ॥
शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम् ।
सह वृद्धैस्तु संमन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥२०
यथोद्देशं च गच्छामः सहितास्तत्र कौरवैः ॥
सुशर्मा च यथोद्दिष्टं देशं यातु महारथः ।
त्रिगर्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः ॥ २१
प्रागेव हि सुसंवीतो≈ मत्स्यस्य विषयं प्रति ॥
जघन्यतो* वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरे ।
विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः ॥ २२
ते यान्तु सहितास्तत्र विराटनगरं प्रति ।
क्षिप्रं गोपान् समासाद्य गृह्णन्तु विपुलं धनम् २३
गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च ।
वयमप्यनुगृह्णीमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम् ॥ २४

वैशम्पायन उवाच ।

ते स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वह्नेर्महीपते ।
सन्नद्धा रथिनः सर्वे सपदाता बलोत्कटाः ॥२५
प्रति वैरं चिकीर्षन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः ।
आदातुं गाः सुशर्माऽथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम् २६
अपरे दिवसे सर्वे राजन् संभूय कौरवाः ।
अष्टम्यां ते न्यगृह्णन्त गोकुलानि सहस्रशः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे सुशर्मादियाने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तेषां महाराज तत्रैवामिततेजसाम् ।
छद्मलिङ्गप्रविष्टानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१
व्यतीतः समयः सम्यग्वसतां वै पुरोत्तमे ।
कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः ॥ २

निबध्नीमः निरुन्धीमः ॥ १२ ॥ विनिर्यामो निर्गच्छामः ॥ १५ ॥ यथोद्देशं यथानिर्दिष्टां दक्षिणामुत्तरां वा दिशं यथायोग्यं बलविभागं वा उद्दिश्येत्यर्थः ॥ २१ ॥ गृद्धा लुब्धाः ॥ २६ ॥ न्यगृह्णन्न कालयामासुः ॥ २७ ॥ इति श्रीम० विरा० नैल० भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

† आत्ययिकं कालक्षेपम् । § क्षयं गृहम् । ≈ सुसंवीतो बलेन परिवेष्टितः । * जघन्यतः पश्चात् ।

३१

तत इति । छद्मलिङ्गेन ब्राह्मणादिकपटवेषेण प्रविष्टानाम् ॥ १ ॥ व्यतीतोऽतिक्रान्तः समयः संवत्सरः ॥ २ ॥

कीचके तु हते राजा विराटः परवीरहा ।
परां संभावनां चक्रे कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३
ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत ।
सुशर्मणा गृहीतं तद्गोधनं तरसा बहु ॥ ४
ततो जवेन महता गोपः पुरमथाव्रजत् ।
स दृष्ट्वा मत्स्यराजं च रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ॥५
शूरैः परिवृतं योधैः कुण्डलाङ्गदधारिभिः ॥
संवृतं मन्त्रिभिः सार्धं पाण्डवैश्च महात्मभिः ६
तं सभायां महाराजमासीनं राष्ट्रवर्धनम् ।
सोऽब्रवीदुपसंगम्य विराटं प्रणतस्तदा ॥ ७
अस्मान् युधि विनिर्जित्य परिभूय सबान्धवान् ।
गवां शतसहस्राणि त्रिगर्ताः कालयन्ति ते ॥ ८
तान् परीप्सस्व राजेन्द्र मा नेशुः पशवस्तव ।
तच्छ्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत् ॥ ९
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् ।
राजानो राजपुत्राश्च तनुत्राण्यथ भेजिरे ॥ १०
भानुमन्ति विचित्राणि शूरसेव्यानि भागशः ।
सवज्रायसगर्भं तु कवचं तत्र काञ्चनम् ॥ ११
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीकोऽभ्यहारयत् ।
सर्वपारसवं वर्म कल्याणपटलं दृढम् ॥ १२
शतानीकादवरजो मदिराक्षोऽभ्यहारयत् ।
शतसूर्यं शतावर्तं शतबिन्दु शताक्षिमत् ॥ १३
अभेद्यकल्पं मत्स्यानां राजा कवचमाहरत् ।
उत्सेधे यस्य पद्मानि शतं सौगन्धिकानि च ॥ १४
सुवर्णपृष्ठं सूर्याभं सूर्यदत्तोऽभ्यहारयत् ।
दृढमायसगर्भं च श्वेतं वर्म शताक्षिमत् ॥ १५
विराटस्य सुतो ज्येष्ठो वीरः शङ्खोऽभ्यहारयत् ।
शतशश्च तनुत्राणि यथास्वं ते महारथाः ॥ १६
योत्स्यमाना अनह्यन्त देवरूपाः प्रहारिणः ।
सूपस्करेषु* शुभ्रेषु महत्सु च महारथाः ॥ १७
पृथक् काञ्चनसंनाहान् रथेष्वश्वानयोजयन् ।
सूर्यचन्द्रप्रतीकाशो रथे दिव्ये हिरण्मये ॥ १८
महानुभावो मत्स्यस्य ध्वज उच्छिश्रिये तदा ।
अथान्यान् विविधाकारान्ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ।
यथास्वं क्षत्रियाः शूरा रथेषु समयोजयन् ।
अथ मत्स्योऽब्रवीद्राजा शतानीकं जघन्यजम् ॥
कङ्कबल्लवगोपाला दामग्रन्थिश्च वीर्यवान् ।
युध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्तते नात्र संशयः ॥ २१
एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः ।
कवचानि च चित्राणि दृढानि च मृदूनि च ॥ २२
प्रतिमुञ्चन्तु गात्रेषु दीयन्तामायुधानि च ।
वीराङ्गरूपाः पुरुषा नागराजकरोपमाः ॥ २३
नेमे जातु न युध्येरन्निति मे धीयते मतिः ।
एतच्छ्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं त्वरितमानसः ।
शतानीकस्तु पार्थेभ्यो रथान् राजन् समादिशत् ।
सहदेवाय राज्ञे च भीमाय नकुलाय च ।
तान् प्रहृष्टांस्ततः सूता राजभक्तिपुरस्कृताः ॥२५
निर्दिष्टा नरदेवेन रथान् शीघ्रमयोजयन् ।
कवचानि विचित्राणि मृदूनि च दृढानि च ॥२६
विराटः प्रादिशद्यानि तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
तान्यामुच्य शरीरेषु दंशितास्ते परन्तपाः ॥ २७
रथान् हयैः सुसंपन्नानास्थाय च नरोत्तमाः ।
निर्ययुर्मुदिताः पार्थाः शत्रुसङ्घावमर्दिनः ॥ २८
तरस्विनश्छन्नरूपाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
रथान् हेमपरिच्छन्नानास्थाय च महारथाः ॥ २९
विराटमन्वयुः पार्थाः सहिताः कुरुपुङ्गवाः ।
चत्वारो भ्रातरः शूराः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः ॥३०

---

संभावनां कीचकवधयमपि मम जयकर्ता भविष्यतीत्येवंरूपाम् ॥ ३ ॥ मा नेशुः नाशमदर्शनं दूरे इति यावत् मा गच्छेयुः ॥ ९ ॥ तनुत्राणि कवचानि ॥ १० ॥ भानुमन्ति दीप्यमानानि वज्रायसमशानिलोहम् । यद्वा वज्रवदच्छेद्यमभेद्यं च यदयः भाषाया 'पोलाद' इति संज्ञितं तद्वज्रायसं तन्मयो गर्भोऽन्तः कवचं तेन सहितं सवज्रायसगर्भम् । पाठान्तरे सन्नाहाय गर्भाभावाय सगर्भं सकण्टकम् । 'गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनसकण्टके' इति नानार्थः । 'वज्रं स्याद्धीरके पवौ' इति च ॥११ ॥ अभ्यहारयत् बबन्ध । पारसवं परान् सुनोति पीडयति सुवति क्षिपति वा परसवम् । ऋदोरप् स्वार्थे तद्धितः । पारसवं शस्त्रं सर्वपारसवं सर्वशस्त्रसहमित्यर्थः । कल्याणपटलं सुवर्णपत्राच्छादितम् । 'कल्याणमक्षये स्वर्णे' इति विश्वः ॥ १२ ॥ आवर्तते पुनःपुनर्म्लायति विलसतीति योगात् चन्द्रः पद्मं वा बिन्दुः सूक्ष्मचक्रम् । अक्षि नेत्राकारं चक्रम् ॥ १३ ॥ उत्सेधे उच्छ्राये संपूर्णे विस्तारे कल्हारजातीयानि शतं पद्मानि पङ्क्त्या निविष्टानि एवं विशालमित्यर्थः ॥ १४ ॥ अभ्यनह्यन्त इति पाठे सन्धिरार्षः । सूपस्करेषु शोभनरथाङ्गेषु ॥ १७ ॥ उच्छिश्रिये उच्छ्रितोऽभूत् ॥ १९ ॥ गोपालस्तन्तिपालाख्यः दामग्रन्थिरश्वपालः ॥२१॥ * सूपस्करेषु-शोभनचक्रेषु रथेषु ।

भीमाश्च मत्तमातङ्गा प्रभिन्नकरटामुखाः ।
क्षरन्तश्चैव नागेन्द्राः सुदन्ताः षष्टिहायनाः ॥३१
स्वारूढा युद्धकुशलैः शिक्षिता हस्तिसादिभिः ।
राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२
विशारदानां मुख्यानां हृष्टानां चारुजीविनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि दश नागशतानि च ॥ ३३
षष्टिश्चाश्वसहस्राणि मत्स्यानामभिनिर्ययुः ।
तदनीकं विराटस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ३४
संप्रयातं तदा राजन्निरीक्षन्तं गवां पदम् ।
तद्बलाग्र्यं विराटस्य संप्रस्थितमशोभत ।
दृढायुधजनाकीर्णं गजाश्वरथसङ्कुलम् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे मत्स्यराजरणोद्योगे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

वैशम्पायन उवाच ।
निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
त्रिगर्तानस्पृशन् मत्स्याः सूर्ये परिणते सति ॥ १
ते त्रिगर्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः ॥ २
भीमाश्च मत्तमातङ्गास्तोमराङ्कुशनोदिताः ।
ग्रामणीयैः समारूढाः कुशलैर्हस्तिसादिभिः ॥ ३
तेषां समागमो घोरस्तुमुलो लोमहर्षणः ।
घ्नतां परस्परं राजन् यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ४
देवासुरसमो राजन्नासीत् सूर्येऽवलम्बति ।
पदातिरथनागेन्द्रहयारोहबलौघवान् ॥ ५
अन्योन्यमभ्यापततां निघ्नतां चेतरेतरम् ।
उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ६
पक्षिणश्चापतन् भूमौ सैन्येन रजसाऽऽवृताः ।
इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत ॥ ७
खद्योतैरिव संयुक्तमन्तरिक्षं व्यराजत ।
रुक्मपृष्ठानि चापानि व्यतिषिक्तानि धन्विनाम्
पततां लोकवीराणां सव्यदक्षिणमस्यताम् ।
रथा रथैः समाजग्मुः पादातैश्च पदातयः ॥ ९
सादिनः सादिभिश्चैव गजैश्चापि महागजाः ।
असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि॥१०
संरब्धाः समरे राजन्निजघ्नुरितरेतरम् ।
निघ्नन्तः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ ११
न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्तुं पराङ्मुखान् ।
कृत्तोत्तरोष्ठं सुनसं कृत्तकेशमलङ्कृतम् ॥ १२
अदृश्यत शिरश्छिन्नं रजोध्वस्तं सकुण्डलम् ।
अदृश्यंस्तत्र गात्राणि शरैश्छिन्नानि भागशः १३
शालस्कन्धनिकाशानि क्षत्रियाणां महामृधे ।
नागभोगनिकाशैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ १४
आस्तीर्णा वसुधा भाति शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
रथिनां रथिभिश्चात्र संप्रहारोऽभ्यवर्तत ॥ १५
सादिभिः सादिनां चापि पदातीनां पदातिभिः ।
उपाशाम्यद्रजो भौमं रुधिरेण प्रसर्पता ॥ १६
कश्मलं चाविशद्धोरं निर्मर्यादमवर्तत ।
उपाविशन् गरुत्मन्तः शरैर्गाढं प्रवेजिताः ।
अन्तरिक्षे गतिर्येषां दर्शनं चाप्यरुध्यत ॥ १७
ते घ्नन्तः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ।
न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्तुं पराङ्मुखान्१८

प्रभिन्नकरटामुखाः 'काकेभगण्डौ करटौ' इत्यमरः ॥३१॥ निरीक्षन्तं निरीक्षमाणं पुंलिङ्गमार्षम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

३२

निर्यायेति । निर्याय निर्गत्य अस्पृशन् प्राप्नुवन्तः । परिणते पञ्चधा विभक्तस्याह्नश्चतुर्थभागं प्राप्ते ॥ १ ॥ ग्रामणीयैः राजकीयैः । 'ग्रामणीर्नापिते पुंसि त्रिष्वध्यक्षेऽधिपेऽपि च' इति नानार्थः ॥ ३ ॥ समागमः संग्रामः ॥ ४ ॥ अवलम्बति–अवरोहति ॥ ५ ॥ सैन्येन सेनोत्थेन ॥ ७ ॥ व्यतिषिक्तानि हस्तात् हस्तान्तरं गतानि ॥ ८ ॥ अस्यतां क्षिपताम् ॥ ९ ॥ नागभोगनिकाशैः सर्पदेहोपमैः ॥ १४ ॥ कश्मलं मूर्छा आविशत् शूरानिति शेषः । येषां गरुत्मतां पक्षिणामन्तरिक्षे गतिर्दर्शनं च तेऽपि शरैः प्रवेजिता उद्वेगं प्रापिताः सन्त उपाविशन् ध्वजाग्रादौ । बाणपटलेन तेषां गतिर्दर्शनं च न्यरुध्यत निरुद्धम् ॥ १७ ॥

शतानीकः शतं हत्वा विशालाक्षश्चतुःशतम् ।
प्रविष्टौ महतीं सेनां त्रिगर्तानां महारथौ ॥ १९
तौ प्रविष्टौ महासेनां बलवन्तौ मनस्विनौ ।
आर्च्छेतां बाहुसंरब्धौ केशाकेशि रथारथि॥ २०
लक्षयित्वा त्रिगर्तानां तौ प्रविष्टौ रथव्रजम् ।
अग्रतः सूर्यदत्तश्च मदिराक्षश्च पृष्ठतः ॥ २१
विराटस्तत्र संग्रामे हत्वा पञ्चशतान् रथान् ।
हयानां च शतान्यष्टौ हत्वा पञ्च महारथान्॥२२
चरन् स विविधान् मार्गान् रथेन रथसत्तमः ।
त्रिगर्तानां सुशर्माणमार्च्छद्रुक्मरथं रणे ॥ २३
तौ व्यवाहरतां तत्र महात्मानौ महाबलौ ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तौ गोष्ठेषु वृषभाविव ॥ २४
ततो राजा त्रिगर्तानां सुशर्मा युद्धदुर्मदः ।
मत्स्यं समीयाद्राजानं द्वैरथेन नरर्षभः ॥ २५
ततो रथाभ्यां रथिनौ व्यतीयतुरमर्षणौ ।
शरान् व्यसृजतां शीघ्रं तोयधारा घना इव॥ २६
अन्योन्यं चापि संरब्धौ विचेरतुरमर्षणौ ।
कृतास्त्रौ निशितैर्बाणैरसिशक्तिगदाभृतौ ॥ २७
ततो राजा सुशर्माणं विव्याध दशभिः शरैः ।
पञ्चभिः पञ्चभिश्चास्य विव्याध चतुरो हयान्॥२८
तथैव मत्स्यराजानं सुशर्मा युद्धदुर्मदः ।
पञ्चाशद्भिः शितैर्बाणैर्विव्याध परमास्त्रवित् ॥२९
ततः सैन्यं महाराज मत्स्यराजसुशर्मणोः ।
नाभ्यजानत्तदाऽन्योन्यं सैन्येन रजसाऽऽवृतम्३०

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे विराटसुशर्मयुद्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## ३३

वैशम्पायन उवाच ।
तमसाऽभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत ।
अतिष्ठन् वै मुहूर्तं तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ १
ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमाः ।
कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥ २
ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्तत ।
घोररूपं ततस्ते स्म नावेक्षन्त परस्परम् ॥ ३
ततः सुशर्मा त्रैगर्तः सह भ्रात्रा यवीयसा ।
अभ्यद्रवन्मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः ॥ ४
ततो रथाभ्यां प्रस्कन्द्य भ्रातरौ क्षत्रियर्षभौ ।
गदापाणी सुसंरब्धौ समभ्यद्रवतां रथान् ॥ ५
तथैव तेषां तु बलानि तानि
क्रुद्धान्यथान्योन्यमभिद्रवन्ति ।
गदासिखड्गैश्च परश्वधैश्च
प्रासैश्च तीक्ष्णाग्रसुपीतधारैः ॥ ६
बलं तु मत्स्यस्य बलेन राजा
सर्वं त्रिगर्ताधिपतिः सुशर्मा ।
प्रमथ्य जित्वा च प्रसह्य मत्स्यं
विराटमोजस्विनमभ्यधावत् ॥ ७
तौ निहत्य पृथक् धुर्यावुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
विरथं मत्स्यराजानं जीवग्राहमगृह्णताम् ॥ ८

त्रिगर्तानां सेनां प्रविष्टावित्यन्वयः ॥ १९ ॥ प्रविश्य च तामार्च्छेतां मोहितवन्तौ । केशाकेशि- केशेषु केशेषु गृहीत्वा प्रवृत्तं युद्धं केशाकेशि । एवं रथारथि । पाठान्तरे नखानखि-नखैर्नखैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं नखानखि । केशेषु गृहीत्वा योधान्, रथेषु गृहीत्वा रथांश्च प्राक्षिपत इति भावः ॥ २० ॥ सूर्यदत्तः शतानीकः ॥ २१ ॥ तौ विराटसुशर्माणौ ॥ २४ ॥ ततः सैन्यमिति श्लोकः प्राचीनपुस्तकेष्वन्यथा पठ्यते । 'ततः सेनाः समाहृत्य मत्स्यराजसुशर्मणौ । न जानीतां तदाऽन्योन्यं सैन्येन रजसावृतौ' इति, तत्र सुशर्मणाविति ह्रस्वत्वमार्षम् । सेनाः सेनास्थान् शूरान् समाहृत्य अन्योन्यसंघट्टं कारयित्वा सैन्येन सेनोत्थेन ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

तमसेति तमसा नैशेनान्धकारेण मुहूर्तमाचंद्रोदयकालं न तु घटीद्वयमात्रम् । कृष्णपक्षस्य सप्तमीमिति सप्तम्यां गोग्रहणस्योक्तत्वात् ॥ १ ॥ प्रस्कन्द्य अवरुह्य ॥ ५ ॥ तीक्ष्णानि अग्राणि सुपीताः सुतरां पीताः शोषिताः कृशीकृता अनायासेन शीघ्रं परशरीरप्रवेशक्षमा धाराश्च येषां ते तीक्ष्णाग्रसुपीतधारास्तैः । तीक्ष्णायसपीतेति पाठेऽपि पीतशब्दस्योक्त एवार्थः ॥ ६ ॥ बलं जित्वा चेति सम्बन्धः ॥ ७ ॥

तमुन्मथ्य सुशर्माऽथ युवतीमिव कामुकः ।
स्यन्दनं स्वं समारोप्य प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥ ९
तस्मिन् गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे ।
प्राद्रवन्त भयान्मत्स्यास्त्रिगर्तैरर्दिता भृशम् ॥१०
तेषु सन्त्रस्यमानेषु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रत्यभाषन्महाबाहुं भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ११
मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्तेन सुशर्मणा ।
तं मोचय महाबाहो न गच्छेद्द्विषतां वशम् ॥१२
उषिताः स्म सुखं सर्वे सर्वकामैः सुपूजिताः ।
भीमसेन त्वया कार्या तस्य वासस्य निष्कृतिः॥

भीमसेन उवाच ।

अहमेनं परित्रास्ये शासनात् तव पार्थिव ।
पश्य मे सुमहत् कर्म युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ १४
स्वबाहुबलमाश्रित्य तिष्ठ त्वं भ्रातृभिः सह ।
एकान्तमाश्रितो राजन् पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥१५
सुस्कन्धोऽयं महावृक्षो गदारूप इव स्थितः ।
अहमेनमपारुज्य द्रावयिष्यामि शात्रवान् ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

तं मत्तमिव मातङ्गं वीक्षमाणं वनस्पतिम् ।
अब्रवीद्भ्रातरं वीरं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १७
मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पतिः ।
मा त्वं वृक्षेण कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ॥१८
जनाः समवबुध्येरन् भीमोऽयमिति भारत ।
अन्यदेवायुधं किञ्चित् प्रतिपद्यस्व मानुषम् ॥१९
चापं वा यदि वा शक्तिं निस्त्रिंशं वा परश्वधम् ।
यदेव मानुषं भीम भवेदन्यैरलक्षितम् ॥ २०
तदेवायुधमादाय मोक्षयाशु महीपतिम् ।
यमौ च चक्ररक्षौ ते भवितारौ महाबलौ ॥ २१
सहिताः समरे तत्र मत्स्यराजं परीप्सत ।

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु वेगेन भीमसेनो महाबलः ॥ २२
गृहीत्वा तु धनुः श्रेष्ठं जवेन सुमहाजवः ।
व्यमुञ्चच्छरवर्षाणि सतोय इव तोयदः ॥ २३
तं भीमो भीमकर्माणं सुशर्माणमथाद्रवत् ।
विराटं समवीक्ष्यैनं तिष्ठ तिष्ठेति चावदत् ॥ २४
सुशर्मा चिन्तयामास कालान्तकयमोपमम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं पृष्ठतो रथपुङ्गवः ॥
पश्यतां सुमहत् कर्म महद्युद्धमुपास्थितम् ॥ २५
परावृत्तो धनुर्गृह्य सुशर्मा भ्रातृभिः सह ।
निमेषान्तरमात्रेण भीमसेनेन ते रथाः ॥ २६
रथानां च गजानां च वाजिनां चससादिनाम् ।
सहस्रशतसङ्घाताः शूराणामुग्रधन्विनाम् ॥२७
पातिता भीमसेनेन विराटस्य समीपतः ।
पत्तयो निहतास्तेषां गदां गृह्य महात्मना ॥ २८
तद्दृष्ट्वा तादृशं युद्धं सुशर्मा युद्धदुर्मदः ।
चिन्तयामास मनसा किं शेषं हि बलस्य मे ॥
अपरो दृश्यते सैन्ये पुरा मग्नो महाबले ॥ २९
आकर्णपूर्णेन तदा धनुषा प्रत्यदृश्यत ।
सुशर्मा सायकांस्तीक्ष्णान् क्षिपते च पुनः पुनः॥
ततः समस्तास्ते सर्वे तुरगानभ्यचोदयन् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणास्त्रिगर्तान् प्रत्यमर्षणाः ॥ ३१
तान्निवृत्तरथान् दृष्ट्वा पाण्डवान् सा महाचमूः ।
वैराटिः परमक्रुद्धो युयुधे परमाद्भुतम् ॥ ३२
सहस्रमवधीत्तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमः सप्त सहस्राणि यमलोकमदर्शयत् ॥ ३३
नकुलश्चापि सप्तैव शतानि प्राहिणोच्छरैः ।
शतानि त्रीणि शूराणां सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३४
युधिष्ठिरसमादिष्टो निजघ्ने पुरुषर्षभः ।
ततोऽभ्यपतदत्युग्रः सुशर्माणमुदायुधः ॥ ३५
हत्वा तां महतीं सेनां त्रिगर्तानां महारथः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥ ३६
अभिपत्य सुशर्माणं शरैरभ्याहनद्भृशम् ।
सुशर्माऽपि सुसंरब्धस्त्वरमाणो युधिष्ठिरम् ॥ ३७

---

अपारुज्य उत्पाट्य ॥ १६ ॥ विराटं समवीक्ष्यैनं हे सम हे साधो इति विराटं वीक्ष्य वाचा दृशा च संभाव्य एनं सुशर्माणं तिष्ठ तिष्ठेति चावददिति सम्बन्धः ' सर्व-साधुसमानेषु समं स्यादाभिधेयवत् ' इति मेदिनी ॥ २४ ॥ रथपुङ्गवः तिष्ठ तिष्ठेति भाषमाणः महत्कर्माऽन्योऽन्ययुद्धं पश्यता । कर्मव्यतिहारे तङ् । अयं मां महत्कर्म कुर्वाण पश्यतु अहं चैनं द्रक्ष्ये इत्यर्थः ॥ २५ ॥ रथाः संगता इति शेषः ॥ २६ ॥ चिन्तयामासेति । सुशर्मा बलस्य सैन्यस्य किं शेषं कुत्सितं वधं चिन्तयामास ' शेषः संकर्षणे वधे ' इति मेदिनी । तत्र हेतुः हि यस्मात् मे मम अपरो भ्राता महाबले सैन्ये पुरा मग्नो दृश्यते भ्रातुः संकटं दृष्ट्वा सैन्यनाशं चिन्तयामासेत्यर्थः ॥ २९ ॥ धनुषा शोभमान इति शेषः ॥ ३० ॥ ते सर्वे मत्स्याः ॥ ३१ ॥ अत्युग्रो युधिष्ठिरः वाक्यशेषात् ॥ ३५ ॥

अविध्यन्नवभिर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
ततो राजन्नाशुकारी कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ ३८
समासाद्य सुशर्माणमश्वानस्य व्यपोथयत् ।
पृष्ठगोपांश्च तस्याथ हत्वा परमसायकैः ॥ ३९
अथास्य सारथिं क्रुद्धो रथोपस्थादपातयत् ।
चक्ररक्षश्च शूरो वै मदिराक्षोऽतिविश्रुतः ॥ ४०
समायाद्विरथं दृष्ट्वा त्रिगर्तं प्राहरत् तदा ।
ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः ॥ ४१
गदां तस्य परामृश्य तमेवाभ्यद्रवद्बली ।
स चचार गदापाणिर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा॥ ४२
पलायमानं त्रैगर्तं दृष्ट्वा भीमोऽभ्यभाषत ।
राजपुत्र निवर्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ॥ ४३
अनेन वीर्येण कथं गास्त्वं प्रार्थयसे बलात् ।
कथं चानुचरांस्त्यक्त्वा शत्रुमध्ये विषीदसि ॥४४
इत्युक्तः स तु पार्थेन सुशर्मा रथयूथपः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भीमं स सहसाऽभ्यद्रवद्बली ॥ ४५
भीमस्तु भीमसंकाशो रथात् प्रस्कन्द्य पाण्डवः।
प्राद्रवत्तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुशर्मणः ॥ ४६
तं भीमसेनो धावन्तमभ्यधावत वीर्यवान् ।
त्रिगर्तराजमादातुं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४७
अभिद्रुत्य सुशर्माणं केशपक्षे परामृशत् ।
समुद्यम्य तु रोषात् तं निष्पिपेष महीतले॥४८
पदा मूर्ध्नि महाबाहुः प्राहरद्विलपिष्यतः ।
तस्य जानुं ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना ॥
स मोहमगमद्राजा प्रहारवरपीडितः ॥ ४९
तस्मिन् गृहीते विरथे त्रिगर्तानां महारथे ।
अभज्यत बलं सर्वं त्रैगर्तं तद्भयातुरम् ॥ ५०
निवर्त्य गास्ततः सर्वाः पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
अवजित्य सुशर्माणं धनं चादाय सर्वशः ॥ ५१
स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः ।
विराटस्य महात्मानः परिक्लेशविनाशनाः ॥ ५२
स्थिताः समक्षं ते सर्वे त्वथ भीमोऽभ्यभाषत ॥
नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति ।
किं तु शक्यं मया कर्तुं यद्राजा सततं घृणी ॥५४
गले गृहीत्वा राजानमानीय विवशं वशम् ।
तत एनं विचेष्टन्तं बध्वा पार्थो वृकोदरः ॥ ५५
रथमारोपयामास विसंज्ञं पांसुगुण्ठितम् ।
अभ्येत्य रणमध्यस्थमभ्यगच्छद्युधिष्ठिरम् ॥ ५६
दर्शयामास भीमस्तु सुशर्माणं नराधिपम् ।
प्रोवाच पुरुषव्याघ्रो भीममाहवशोभिनम् ॥ ५७
तं राजा प्राहसन् दृष्ट्वा मुच्यतां वै नराधमः ।
एवमुक्तोऽब्रवीद्भीमः सुशर्माणं महाबलम् ॥ ५८

भीम उवाच ।

जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु ।
दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च॥
एवं ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः ।
तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ॥ ६०

युधिष्ठिर उवाच ।

मुञ्च मुञ्चाधमाचारं प्रमाणं यदि ते वयम् ।
दासभावं गतो ह्येष विराटस्य महीपतेः ॥
अदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः कदाचन६१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

त्रैगर्तं त्रिगर्ताधिपतिम् ॥ ४३ ॥ भीमसंकाशो भीमोपम 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव' इतिवदनुपम इत्यर्थः ॥४६॥केशपक्षे केशकलापे 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इति॥ 'पक्षो मासार्धके' इत्युपक्रम्य 'केशादेः परतो वृन्दे' इति मेदिनी। अत्रोक्तं नीतिशास्त्रे-वामपाणिकचोत्पीडा (१) भूमौ निष्पेषणं बलात् ( २ ) मूर्ध्नि पादप्रहरणम् (३) जानुनोदरमर्दनम् ( ४ ) मल्लाकारया मुष्ट्या कपोले दृढताडनम् ( ५ ) कफोणिपातोऽप्यसकृत् ( ६ ) सर्वतस्तलताडनम् ( ७ ) तालेन युद्धे भ्रमणम् ( ८ ) मारणं स्मृतमष्टधा । चतुर्भिः क्षत्रियं हन्यात् पञ्चभिः क्षत्रियाधमम्। षड्भिर्वैश्यं सप्तभिस्तु शूद्रं संकरमष्टभिः' इति। एतेषां मध्ये तं केशग्रहादिभिः पञ्चभिर्मारयताऽस्य क्षत्रियाधमत्वं दर्शितम् ॥ ४८ ॥ घृणी दयालुः ॥ ५४ ॥ विवशमचित्तं वशं पराधीनम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्ते तु सव्रीडः सुशर्माऽऽसीदधोमुखः ।
स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य प्रतस्थिवान् १
विसृज्य तु सुशर्माणं पाण्डवास्ते हतद्विषः ।
स्वबाहुबलसंपन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः ॥
संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोऽवसन् ॥
ततो विराटः कौन्तेयानतिमानुषविक्रमान् ।
अर्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान् ॥ ३
विराट उवाच ।
यथैव मम रत्नानि युष्माकं तानि वै तथा ।
कार्यं कुरुत वै सर्वे यथाकामं यथासुखम् ॥ ४
ददाम्यलङ्कृताः कन्या वसूनि विविधानि च ।
मनसश्चाप्यभिप्रेतं युद्धे शत्रुनिबर्हणाः ॥ ५
युष्माकं विक्रमादद्य मुक्तोऽहं स्वस्तिमानिह ।
तस्माद्भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः सर्व एव हि ॥६
वैशम्पायन उवाच ।
तथेतिवादिनं मत्स्यं कौरवेयाः पृथक् पृथक् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ७
प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वं चैव विशाम्पते ।
एतेनैव प्रतीताः स्म यत्त्वं मुक्तोऽद्य शत्रुभिः ॥८
ततोऽब्रवीत् प्रीतमना मत्स्यराजो युधिष्ठिरम् ।
पुनरेव महाबाहुर्विराटो राजसत्तमः ॥ ९
एहि त्वामभिषेक्ष्यामि मत्स्यराजस्तु नो भवान्॥
मनसश्चाप्यभिप्रेतं यथेष्टं भुवि दुर्लभम् ।
तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि सर्वमर्हति नो भवान्॥११
रत्नानि गाः सुवर्णं च मणिमुक्तमथापि च ।
वैयाघ्रपद्य विप्रेन्द्र सर्वथैव नमोऽस्तु ते ॥ १२
त्वत्कृते ह्यद्य पश्यामि राज्यं सन्तानमेव च ।
यतश्च जातसंरम्भो न च शत्रुवशं गतः ॥ १३
ततो युधिष्ठिरो मत्स्यं पुनरेवाभ्यभाषत ।
प्रतिनन्दामि ते वाक्यं मनोज्ञं मत्स्य भाषसे ॥१४
आनृशंस्यपरो नित्यं सुसुखी सततं भव ।
गच्छन्तु दूतास्त्वरितं नगरं तव पार्थिव ॥ १५
सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ।
ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान् राजा समादिशत्१६
आचक्षध्वं पुरं गत्वा संग्रामविजयं मम ।
कुमार्यः समलंकृत्य पर्यागच्छन्तु मे पुरात् ॥१७
वादित्राणि च सर्वाणि गणिकाश्च स्वलंकृताः ।
एतां चाज्ञां ततः श्रुत्वा राज्ञा मत्स्येन नोदिताः।
तामाज्ञां शिरसा कृत्वा प्रस्थिता हृष्टमानसाः १८
ते गत्वा तत्र तां रात्रिमथ सूर्योदयं प्रति ।
विराटस्य पुराभ्याशे दूता जयमघोषयन् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे विराटजयघोषे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

वैशम्पायन उवाच ।
याते त्रिगर्तान्मत्स्ये तु पशूंस्तान्वै परीप्सति ।
दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ ॥ १
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित् ।
द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभो ॥ २
विविंशतिर्विकर्णश्च चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
दुर्मुखो दुःशलश्चैव ये चैवान्ये महारथाः ॥ ३
एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः ।
घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जह्रुरोजसा ॥४
षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति च ।
महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः ॥ ५

---

३४

**एवमिति** ॥१॥प्रतीताः हृष्टाः॥८॥ नः अस्मत्सम्बन्धि सर्वं भवान् ग्रहीतुमर्हति॥११॥ यतो निगृहीतः जातसंरम्भो जातभयोऽपि त्वद्बलान्न च शत्रुवशंगतोऽस्मि॥१३॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

**यात** इति । परीप्सति लिप्सति यतः अथ अतः विराटं विराटदेशं उपयात् उपायात् ॥ १ ॥ कालयन्ति नयन्ति रथवंशेन रथसमूहेन ॥ ५ ॥

गोपालानां तु घोषस्य हन्यतां तैर्महारथैः ।
आरावः सुमहानासीत् संप्रहारे भयङ्करे ॥ ६
गोपाध्यक्षो भयत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः ।
जगाम नगरायैव परिक्रोशंस्तदार्तवत् ॥ ७
स प्रविश्य पुरं राज्ञो नृपवेश्माभ्ययात् ततः ।
अवतीर्य रथात् तूर्णमाख्यातुं प्रविवेश ह ॥ ८
दृष्ट्वा भूमिञ्जयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम् ।
तस्मै तत् सर्वमाचष्ट राष्ट्रस्य पशुकर्षणम् ॥ ९
षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते ।
तद्विजेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्धन ॥ १०
राजपुत्र हितप्रेप्सुः क्षिप्रं निर्याहि च स्वयम् ॥
त्वां हि मत्स्यो महीपालः शून्यपालमिहाकरोत् ॥
त्वया परिषदो मध्ये श्लाघते स नराधिपः ।
पुत्रो ममानुरूपश्च शूरश्चेति कुलोद्वहः ॥ १२
इष्वस्त्रे निपुणो योधः सदावीरश्च मे सुतः ॥
तस्य तत्सत्यमेवास्तु मनुष्येन्द्रस्य भाषितम् ॥१३
आवर्तय कुरून् जित्वा पशून् पशुमतां वर ।
निर्दहैषामनीकानि भीमेन शरतेजसा ॥ १४
धनुश्च्युतै रुक्मपुङ्खैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
द्विषतां भिन्ध्यनीकानि गजानामिव यूथपः ॥१५
पाशोपधानां ज्यातन्त्रीं चापदण्डां महास्वनाम् ।
शरवर्णां धनुर्वीणां शत्रुमध्ये प्रवादय ॥ १६
श्वेता रजतसङ्काशा रथे युज्यन्तु ते हयाः ।
ध्वजं च सिंहं सौवर्णमुच्छ्रयन्तु तव प्रभो ॥ १७
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा मुक्ता हस्तवता त्वया ॥
छादयन्तु शराः सूर्यं राज्ञां मार्गनिरोधकाः ॥१८
रणे जित्वा कुरून् सर्वान् वज्रपाणिरिवासुरान् ।
यशो महदवाप्य त्वं प्रविशेदं पुरं पुनः ॥ १९
त्वं हि राष्ट्रस्य परमा गतिर्मत्स्यपतेः सुतः ।
यथा हि पाण्डुपुत्राणामर्जुनो जयतां वरः ॥ २०
एवमेव गतिर्नूनं भवान् विषयवासिनाम् ।
गतिमन्तो वयं त्वद्य सर्वे विषयवासिनः ॥ २१

वैशम्पायन उवाच ।

स्त्रीमध्य उक्तस्तेनासौ तद्वाक्यमभयंकरम् ।
अन्तःपुरे श्लाघमान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे गोपवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

उत्तर उवाच ।

अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम् ॥
यदि मे सारथिः कश्चिद्भवेदश्वेषु कोविदः ॥ १
तं त्वहं नावगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः ।
पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यतः ॥ २
अष्टाविंशतिरात्रं वा मासं वा नूनमन्ततः ॥
यत्तदासीन्महद्युद्धं तत्र मे सारथिर्हतः ॥ ३
स लभेयं यदा त्वन्यं हययानविदं नरम् ।
त्वरावानद्य यात्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥ ४
विगाह्य तत्परानीकं गजवाजिरथाकुलम् ।
शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान् कुरून् जित्वाऽऽनये पशून् ॥५
दुर्योधनं शान्तनवं कर्णं वैकर्तनं कृपम् ।
द्रोणं च सहपुत्रेण महेष्वासान् समागतान् ॥ ६

घोषस्य घोषस्थानां गवां गोपालानां च हन्यतां हन्यमानानामारावः शब्दो महानभूत् ॥ ६ ॥ भूमिञ्जयमित्युत्तरस्यैव नामान्तरम् ॥९॥ शून्यपालं राज्ञोऽसन्निधाने पालकम् ॥११॥यूथपो गन्धहस्ती॥१५॥ पाशोपधानामिति । पाशौ मौर्वीप्रान्तद्वयगतौ तावेव उपधाने वीणायां तन्त्रीसन्धानार्थं कीलविशेषौ यस्यां सा पाशोपधाना ताम् । ज्यातन्त्रीं मौर्व्येव तन्त्री कार्ष्णायसतन्तवो यस्यां तां चापो धनुर्यष्टिः सैव अलाबुसहितो दण्डो यस्यास्तां महास्वनामित्युभयत्र तुल्यम्। शरास्ततो निःसरन्तस्त एव वर्णाः शब्दवत्त्वसामान्यात् स्वरस्पर्शादयो यस्याम्। धनुःशब्दोऽत्र सज्यचापवाची तामेव वीणां शत्रूणां मध्ये प्रवादय॥१६॥ युज्यन्तु युज्यन्तां सिंहं सिंहाकारं सौवर्णम् ॥ १७ ॥ हस्तवता दृढहस्तेन प्रशंसायां मतुप् ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

अद्याहमिति ॥१॥ हययानविदमश्वगतिज्ञम् ॥ ४ ॥

वित्रासयित्वा सङ्ग्रामे दानवानिव वज्रभृत् ।
अनेनैव मुहूर्तेन पुनः प्रत्यानये पशून् ॥ ७
शून्यमासाद्य कुरवः प्रयान्त्यादाय गोधनम् ।
किं तु शक्यं मया कर्तुं यदहं तत्र नाभवम् ॥ ८
पश्येयुरद्य मे वीर्यं कुरवस्ते समागताः ।
किं नु पार्थोऽर्जुनः साक्षादयमस्मान् प्रबाधते॥९
वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा तदर्जुनो वाक्यं राज्ञः पुत्रस्य भाषतः ॥
अतीतसमये काले प्रियां भार्यामनिन्दिताम् ॥१०
द्रुपदस्य सुतां तन्वीं पाञ्चालीं पावकात्मजाम् ।
सत्यार्जवगुणोपेतां भर्तुः प्रियहिते रताम् ॥ ११
उवाच रहसि प्रीतः कृष्णां सर्वार्थकोविदः ।
उत्तरं ब्रूहि कल्याणि क्षिप्रं मद्वचनादिदम् ॥१२
अयं वै पाण्डवस्यासीत् सारथिः संमतो दृढः ।
महायुद्धेषु संसिद्धः स ते यन्ता भविष्यति ॥ १३
वैशम्पायन उवाच ।
तस्य तद्वचनं स्त्रीषु भाषतश्च पुनः पुनः ॥
न साऽमर्षत पाञ्चाली बीभत्सोः परिकीर्तनम् ॥
अथैनमुपसंगम्य स्त्रीमध्यात् सा तपस्विनी ।
व्रीडमानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १५
योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः ।
बृहन्नलेति विख्यातः पार्थस्यासीत् स सारथिः ॥
धनुष्यनवरश्चासीत् तस्य शिष्यो महात्मनः ।
दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान् प्रति ॥१७
यदा तत्पावको दावमदहत् खाण्डवं महत् ।
अर्जुनस्य तदाऽनेन संगृहीता हयोत्तमाः॥ १८
तेन सारथिना पार्थः सर्वभूतानि सर्वशः ।
अजयत् खाण्डवप्रस्थे न हि यन्ताऽस्ति तादृशः॥१९
उत्तर उवाच ।
सैरन्ध्रि जानासि तथा युवानं
नपुंसको नैव भवेद्यथाऽसौ ।
अहं न शक्नोमि बृहन्नलां शुभे
वक्तुं स्वयं यच्छ हयान् ममेति वै ॥ २०
द्रौपद्युवाच ।
येयं कुमारी सुश्रोणी भगिनी ते यवीयसी ।
अस्याः सा वीर वचनं करिष्यति न संशयः॥२१
यदि वै सारथिः स स्यात् कुरून् सर्वान्न संशयः
जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत् ॥ २२
एवमुक्तः स सैरन्ध्र्या भगिनीं प्रत्यभाषत ।
गच्छ त्वमनवद्याङ्गि तामानय बृहन्नलाम् ॥ २३
सा भ्रात्रा प्रेषिता शीघ्रमगच्छन्नर्तनागृहम् ॥
यत्रास्ते स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे बृहन्नलासारथ्यकथने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

वैशम्पायन उवाच ।
सा प्राद्रवत्काञ्चनमाल्यधारिणी
ज्येष्ठेन भ्रात्रा प्रहिता यशस्विनी ।
सुदक्षिणा वेदिविलग्नमध्या
सा पद्मपत्राभनिभा शिखण्डिनी ॥ १
तन्वी शुभाङ्गी मणिचित्रमेखला
मत्स्यस्य राज्ञो दुहिता श्रिया वृता ।
तन्नर्तनागारमरालपक्ष्मा
शतह्रदा मेघमिवान्वपद्यत ॥ २

नर्तनागृहम् ' ण्यासश्रन्थो युच् ' इति ण्यन्तायुचि टाबन्तम् । सत्रेण छद्मना ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

**सेति** । माल्यं माला । ' माल्यं कुसुमतत्स्रजोः 'इति मेदिनी । सुदक्षिणा भ्रातृच्छन्दानुवर्तिनी 'दक्षिणा दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तिषु'इति मेदिनी । वेदिवत् विलग्नः कृशो मध्यो यस्याः सा । पद्मपत्राभिनवा शिखण्डिनीति प्राचीनपाठः । पद्मपत्राभनिभा पद्मपत्रेषु आभातीति पद्मपत्राभा लक्ष्मीः तद्वत् निभा दीप्तिर्यस्याः सा । ये तु पद्मपत्राभं मरकतं तन्निभां श्यामामिति व्याचख्युः। तेषां कनकोज्ज्वलत्वचामिति वाक्यशेषेण विरोधः स्पष्टः । शिखण्डिनी मयूरपिच्छालङ्कारवती ॥ १ ॥ अरालपक्ष्मा वक्राक्षिपक्ष्मा शतह्रदा विद्युत् ॥ २ ॥

सा हस्तिहस्तोपमसंहितोरुः
स्वनिन्दिता चारुदती सुमध्यमा ।
आसाद्य तं वै वरमाल्यधारिणी
पार्थं शुभा नागवधूरिव द्विपम् ॥ ३
सा रत्नभूता मनसः प्रियाऽर्चिता
सुता विराटस्य यथेन्द्रलक्ष्मीः ।
सुदर्शनीया प्रमुखे यशस्विनी
प्रीत्याऽब्रवीदर्जुनमायतेक्षणा ॥ ४
सुसंहतोरुं कनकोज्ज्वलत्वचं
पार्थः कुमारीं स तदाऽभ्यभाषत
किमागमः काञ्चनमाल्यधारिणि
मृगाक्षि किं त्वं त्वरितेव भामिनि ॥
किं ते मुखं सुन्दरि न प्रसन्न—
माचक्ष्व तत्त्वं मम शीघ्रमङ्गने ॥ ५

वैशम्पायन उवाच ।

स तां दृष्ट्वा विशालाक्षीं राजपुत्रीं सखीं तथा ॥
प्रहसन्नब्रवीद्राजन् किमागमनमित्युत ॥ ६
तमब्रवीद्राजपुत्री समुपेत्य नरर्षभम् ।
प्रणयं भावयन्ती सा सखीमध्य इदं वचः ॥ ७
गावो राष्ट्रस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नले ।
ता विजेतुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्धरः ॥ ८
नाचिरं निहतस्तस्य संग्रामे रथसारथिः ।
तेन नास्ति समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत्॥९
तस्मै प्रयतमानाय सारथ्यर्थं बृहन्नले ।
आचचक्षे हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव ॥ १०
अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा ।
त्वयाऽजयत्सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ॥ ११
सा सारथ्यं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नले ।
पुरा दूरतरं गावो ह्रियन्ते कुरुभिर्हि नः ॥ १२
अथैतद्वचनं मेऽद्य नियुक्ता न करिष्यसि ।
प्रणयादुच्यमाना त्वं परित्यक्ष्यामि जीवितम्॥१३
एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तया सख्या परंतपः ।
जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः ॥ १४
तमाव्रजन्तं त्वरितं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
अन्वगच्छद्विशालाक्षी शिशुं गजवधूरिव ॥ १५
दूरादेव तु तां प्रेक्ष्य राजपुत्राऽभ्यभाषत ।
त्वया सारथिना पार्थः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत्१६
पृथिवीमजयत् कृत्स्नां कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
सैरन्ध्री त्वां समाचष्टे सा हि जानाति पाण्डवान्
संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नले ।
कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः ॥ १८
अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा ।
त्वयाऽजयत् सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ॥ १९
एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नला ।
का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्तुं सङ्ग्राममूर्धनि ॥२०
गीतं वा यदि वा नृत्यं वादित्रं वा पृथग्विधम् ।
तत् करिष्यामि भद्रं ते सारथ्यं तु कुतो मम ॥२१

उत्तर उवाच ।

बृहन्नले गायनो वा नर्तनो वा पुनर्भव ॥
क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान् ॥२२

वैशम्पायन उवाच ।

स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत् पाण्डवो बहु ॥
उत्तरायाः प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिन्दमः ॥ २३
ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत ।
कुमार्यस्तत्र तं दृष्ट्वा प्राहसन् पृथुलोचनाः ॥ २४
स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः ।
कवचेन महार्हेण समनह्यद्बृहन्नलाम् ॥ २५
स बिभ्रत्कवचं चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्प्रभम् ।
ध्वजं च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्ये समकल्पयत्॥२६
धनूंषि च महार्हाणि बाणांश्च रुचिरान् बहून् ।
आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नलसारथिः ॥ २७
अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्तामब्रुवंस्तदा ।
बृहन्नले आनयेथा वासांसि रुचिराणि च ॥ २८
पाञ्चालिकार्थं चित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च ।
विजित्य संग्रामगतान् भीष्मद्रोणमुखान् कुरून्
एवं ता ब्रुवतीः कन्याः सहिताः पाण्डुनन्दनः ।
प्रत्युवाच हसन् पार्थो मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ ३०

बृहन्नलोवाच ।

यद्युत्तरोऽयं संग्रामे विजेष्यति महारथान् ।
अथाहरिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः प्राचोदयद्धयान् ।
कुरूनभिमुखः शूरो नानाध्वजपताकिनः ॥ ३२

प्रमुखे अग्रे ॥४॥ किं किमर्थं आगमनम् ॥६॥ प्रणयं विनयं भावयन्ती दर्शयन्ती ॥ ७ ॥ यावत् गावो दूरतरं ह्रियन्ते ततः प्रागेव सारथ्यं कुरु ॥ १२ ॥ पाञ्चालिकार्थं 'पाञ्चालिका पुत्तिका स्याद्वस्त्रदन्तादिभिः कृता' इत्यमरः ॥२९॥

तमुत्तरं वीक्ष्य रथोत्तमे स्थितं
बृहन्नलायाः सहितं महाभुजम् ।
स्त्रियश्च कन्याश्च द्विजाश्च सुव्रताः
प्रदक्षिणं चक्रुरथोचुरङ्गनाः ॥ ३३

यदर्जुनस्यर्षभतुल्यगामिनः
पुराऽभवत् खाण्डवदाहमङ्गलम् ।
कुरून् समासाद्य रणे बृहन्नले
सहोत्तरेणाद्य तदस्तु मङ्गलम् ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे उत्तरनिर्याणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

वैशम्पायन उवाच ।

स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः ।
प्रयाहीत्यब्रवीत् सूतं यत्र ते कुरवो गताः ॥ १
समवेतान् कुरून् सर्वान् जिगीषूनवजित्य वै ।
गास्तेषां क्षिप्रमादाय पुनरेष्याम्यहं पुरम् ॥ २
ततस्तांश्चोदयामास सदश्वान् पाण्डुनन्दनः ।
ते हया नरसिंहेन नोदिता वातरंहसः ॥
आलिखन्त इवाकाशमूहुः काञ्चनमालिनः ॥ ३
नातिदूरमथो गत्वा मत्स्यपुत्रधनञ्जयौ ।
अवेक्षेतामभित्रघ्नौ कुरूणां बलिनां बलम् ॥ ४
श्मशानमभितो गत्वा आससाद कुरूनथ ।
तां शमीमन्ववीक्षेतां व्यूढानीकांश्च सर्वशः ॥ ५
तदनीकं महत्तेषां विबभौ सागरोपमम् ।
सर्पमाणमिवाकाशे वनं बहुलपादपम् ॥ ६
ददृशे पार्थिवो रेणुर्जनितस्तेन सर्पता ।
दृष्टिप्रणाशो भूतानां दिवस्पृक् कुरुसत्तम ॥ ७
तदनीकं महद्दृष्ट्वा गजाश्वरथसङ्कुलम् ।
कर्णदुर्योधनकृपैर्गुप्तं शान्तनवेन च ॥ ८
द्रोणेन च सपुत्रेण महेष्वासेन धीमता ।
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ॥ ९

उत्तर उवाच ।

नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं हि पश्य मे ।
बहुप्रवीरमत्युग्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ १०
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि कुरुसैन्यमनन्तकम् ।
नाशंसे भारतीं सेनां प्रवेष्टुं भीमकार्मुकाम् ॥ ११
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् ।
दृष्ट्वैव हि परानाजौ मनः प्रव्यथतीव मे ॥ १२
यत्र द्रोणश्च भीष्मश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाल्हिकः ॥ १३
दुर्योधनस्तथा वीरो राजा च रथिनां वरः ।
द्युतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १४
दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः ।
हृषितानि च रोमाणि कश्मलं चागतं मम ॥ १५

वैशम्पायन उवाच ।

अविजातो विजातस्य मौर्ख्यात् धूर्तस्य पश्यतः
परिदेवयते मन्दः सकाशे सव्यसाचिनः ॥ १६
त्रिगर्तान्मे पिता यातः शून्ये संप्रणिधाय माम् ।
सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः ॥ १७
सोऽहमेको बहून् बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः ।
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि निवर्तस्व बृहन्नले ॥ १८

बृहन्नलोवाच ।

भयेन दीनरूपोऽसि द्विषतां हर्षवर्द्धनः ।
न च तावत्कृतं कर्म परैः किञ्चिद्रणाजिरे ॥ १९
स्वयमेव च मामात्थ वह मां कौरवान् प्रति ।
सोऽहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्रैते बहुला ध्वजाः ॥
मध्यमामिषगृध्राणां कुरूणामाततायिनाम् ।
नेष्यामि त्वां महाबाहो पृथिव्यामपि युध्यताम्

---

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

**स इति** ॥ १ ॥ अतिवेगेन आकाशे ॥ ६ ॥ हृष्टरोमा रोमाञ्चितः ॥ ९ ॥ नोत्सहे इत्यत्र हेतुमाह बह्विति ॥ १० ॥ कलिलां गहनाम् ॥ १२ ॥ कश्मलं मूर्च्छा ॥ १५ ॥ अविजातः जातं सामान्यं विगतं यस्मात् स विजातोऽसाधारणः तदन्योऽविजातः साधारणः प्राकृतः । प्राचां तु सयकारः पाठः तदा वियातो धृष्टः । 'धृष्टे धृष्णुर्वियातश्च' इत्यमरः । अवियातोऽप्रगल्भः धूर्तस्य छद्मवेषधारिणः ॥ १६ ॥ आमिषं मांसं तत्र यथा गृध्राः पतन्ति तत्तुल्यानां गोलुब्धानाम् । पृथिव्यां निमित्तभूतायाम् । एतेनाग्रे भाविसंग्रामेष्वपि त्वां नेष्यामीत्युक्तम् ॥ २१ ॥

तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च ।
कत्थमानोऽभिनिर्याय किमर्थं न युयुत्ससे ॥२२
न चेद्विजित्य गास्तास्त्वं गृहान् वै प्रतियास्यसि
प्रहसिष्यन्ति वीरास्त्वां नरा नार्यश्च संगताः ॥
अहमप्यत्र सैरन्ध्र्या ख्याता सारथ्यकर्मणि ।
न च शक्ष्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं पुरं प्रति॥२४
स्तोत्रेण चैव सैरन्ध्र्यास्तव वाक्येन तेन च ।
कथं न युध्येयमहं कुरून् सर्वान् स्थिरो भव २५

उत्तर उवाच ।

कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांसः कुरवो धनम् ।
प्रहसन्तु च मां नार्यो नरा वाऽपि बृहन्नले ॥ २६
सङ्ग्रामे न च कार्यं मे गावो गच्छन्तु चापि मे ।
शून्यं मे नगरं चापि पितुश्चैव बिभेम्यहम् ॥ २७

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा प्राद्रवद्भीतो रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ।
त्यक्त्वा मानं च दर्पं च विसृज्य सशरं धनुः ॥ २८

बृहन्नलोवाच ।

नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम् ।
श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ॥ २९

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोऽवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
तमन्वधावद्धावन्तं राजपुत्रं धनञ्जयः ॥ ३०
दीर्घां वेणीं विधुन्वानः साधु रक्ते च वाससी ।
विधूय वेणीं धावन्तमजानन्तोऽर्जुनं तदा ॥ ३१
सैनिकाः प्राहसन् केचित्तथारूपमवेक्ष्य तम् ।
तं शीघ्रमभिधावन्तं सम्प्रेक्ष्य कुरवोऽब्रुवन् ॥ ३२
क एष वेषसंच्छन्नो भस्मन्येव हुताशनः ।
किंचिदस्य यथा पुंसः किंचिदस्य यथा स्त्रियः ॥
सारूप्यमर्जुनस्येव क्लीबरूपं बिभर्ति च ।
तदेवैतच्छिरो ग्रीवं तौ बाहू परिघोपमौ ।
तद्वदेवास्य विक्रान्तं नायमन्यो धनञ्जयात् ॥ ३४
अमरेष्विव देवेन्द्रो मानुषेषु धनञ्जयः ।
एकः कोऽस्मानुपायायादन्यो लोके धनञ्जयात्॥
एकः पुत्रो विराटस्य शून्ये सन्निहितः पुरे ।
स एष किल निर्यातो बालभावान्न पौरुषात् ॥
सत्रेण नूनं छन्नं हि चरन्तं पार्थमर्जुनम् ।
उत्तरः सारथिं कृत्वा निर्यातो नगराद्बहिः ॥ ३७
स नो मन्यामहे दृष्ट्वा भीत एष पलायते ।
तं नूनमेष धावन्तं जिघृक्षति धनञ्जयः ॥ ३८

वैशम्पायन उवाच ।

इति स्म कुरवः सर्वे विमृशन्तः पृथक् पृथक् ॥
न च व्यवसितुं किंचिदुत्तरं शक्नुवन्ति ते ॥ ३९
छन्नं तथा तं सत्रेण पाण्डवं प्रेक्ष्य भारत ।
उत्तरं तु प्रधावन्तमभिद्रुत्य धनञ्जयः ॥
गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत् ॥ ४०
सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्यदेवयदार्तवत् ।
बहुलं कृपणं चैव विराटस्य सुतस्तदा ॥ ४१

उत्तर उवाच ।

शृणुयास्त्वं हि कल्याणि बृहन्नले सुमध्यमे ॥
निवर्तय रथं क्षिप्रं जीवन् भद्राणि पश्यति ॥ ४२
शातकुम्भस्य शुद्धस्य शतं निष्कान् ददामि ते ।
मणीनष्टौ च वैदूर्यान् हेमबद्धान् महाप्रभान् ॥४३
हेमदण्डप्रतिच्छन्नं रथं युक्तं च सुव्रतैः ।
मत्तांश्च दशमातङ्गान् मुञ्च मां त्वं बृहन्नले ॥४४

वैशम्पायन उवाच ।

एवमादीनि वाक्यानि विलपन्तमचेतसम् ।
प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत् ॥ ४५
अथैनमब्रवीत् पार्थो भयार्तं नष्टचेतसम् ।
यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्षण ॥
एहि मे त्वं हयान् यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः॥४६
प्रयाह्येतद्रथानीकं मद्बाहुबलरक्षितः ।
अप्रधृष्यतमं घोरं गुप्तं वीरैर्महारथैः ॥ ४७
मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परन्तप ।
कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ४८
अहं वै कुरुभिर्योत्स्ये विजेष्यामि च ते पशून् ।
प्रविश्यैतद्रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥ ४९
यन्ता भव नरश्रेष्ठ योत्स्येऽहं कुरुभिः सह ।
एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्वैराटिमपराजितः ॥
समाश्वास्य मुहूर्तं तमुत्तरं भरतर्षभ ॥ ५०
तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीडितम् ।
रथमारोपयामास पार्थः प्रहरतां वरः ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे उत्तराश्वासने अष्टात्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

---

अभिनिर्यायाभिनिर्गत्य न युयुत्ससे योद्धुं नेच्छसि ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

वैशम्पायन उवाच ।

तं दृष्ट्वा क्लीबवेषेण रथस्थं नरपुंगवम् ।
शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम् ॥ १
भीष्मद्रोणमुखास्तत्र कुरवो रथिसत्तमाः ।
वित्रस्तमनसः सर्वे धनंजयकृताद्भयात् ॥ २
तानवेक्ष्य हतोत्साहानुत्पातानपि चाद्भुतान् ।
गुरुः शस्त्रभृतां श्रेष्ठो भारद्वाजोऽभ्यभाषत ॥ ३
चण्डाश्च वाताः संवान्ति रूक्षाः शर्करवर्षिणः ।
भस्मवर्णप्रकाशेन तमसा संवृतं नभः ॥ ४
रूक्षवर्णाश्च जलदा दृश्यन्तेऽद्भुतदर्शनाः ॥
निःसरन्ति च कोशेभ्यः शस्त्राणि विविधानि च
शिवाश्च विनदन्त्येता दीप्तायां दिशि दारुणाः ।
हयाश्चाश्रूणि मुञ्चन्ति ध्वजाः कम्पन्त्यकम्पिताः॥
यादृशान्यत्र रूपाणि सन्दृश्यन्ते बहूनि च ।
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु साध्वसं समुपस्थितम् ॥७
रक्षध्वमपि चात्मानं व्यूहध्वं वाहिनीमपि ।
वैशसं च प्रतीक्षध्वं रक्षध्वं चापि गोधनम् ॥ ८
एष वीरो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
आगतः क्लीबवेषेण पार्थो नास्त्यत्र संशयः ॥
नदीज लङ्केशवनारिकेतु-
नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः ।
एषोऽङ्गनावेषधरः किरीटी
जित्वाऽद्य यं नेष्यति चाद्य गा वः॥१०
स एष पार्थो विक्रान्तः सव्यसाची परंतपः ।
नायुद्धेन निवर्तेत सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ११
क्लेशितश्च वने शूरो वासवेनापि शिक्षितः ।
अमर्षवशमापन्नो वासवप्रतिमो युधि ।
नेहास्य प्रतियोद्धारमहं पश्यामि कौरवाः ॥ १२
महादेवोऽपि पार्थेन श्रूयते युधि तोषितः ।
किरातवेषप्रच्छन्नो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ १३

कर्ण उवाच ।

सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे ।
न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च ॥ १४

दुर्योधन उवाच ।

यद्येष पार्थो राधेय कृतं कार्यं भवेन्मम ।
ज्ञाताः पुनश्चरिष्यन्ति द्वादशाब्दान् विशांपते ॥
अथैष कश्चिदेवान्यः क्लीबवेषेण मानवः ।
शरैरेनं सुनिशितैः पातयिष्यामि भूतले ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

तस्मिन् ब्रुवति तद्वाक्यं धार्तराष्ट्रे परंतप ।
भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः पौरुषं तदपूजयन् ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनप्रशंसायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

वैशम्पायन उवाच ।

तां शमीमुपसंगम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत् ॥
सुकुमारं समाज्ञाय सङ्ग्रामे नातिकोविदम् ॥१
समादिष्टो मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर ।
नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम् ।
भारं चापि गुरुं वोढुं कुञ्जरं वा प्रमर्दितुम् ॥ २

---

**३९**

**तमिति** ॥ १ ॥ वैशसं वैरं युद्धे कदनं वा ॥ ८ ॥ नदीजेति । हे नदीज गाङ्गेय हे भीष्म लङ्केशस्य रावणस्य वनं तस्यारिर्नाशको हनूमान् सः केतुर्ध्वजो यस्य सः लङ्केशवनारिकेतुः । नगो वृक्षस्तदाह्वयः वृक्षनामा । नामेति वितर्के निश्चिते वा अर्जुन इत्यर्थः ' शैलवृक्षौ नगावगौ ' इत्यमरः । नगारिरिन्द्रस्तस्य सूनुः एष अङ्गनावेषधरः । किरीटी एतन्नामा यं जित्वा वः युष्माकं गाः धेनूः नेष्यति तं दुर्योधनमत्र पालय ॥ १० ॥ कला षोडशोंऽशः पूर्णः कृत्स्नः ॥१४॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

**४०**

**तामिति** ॥ १ ॥ अवहर अवतारय ॥ २ ॥

मम वा बाहुविक्षेपं शत्रूनिह विजेष्यतः ।
तस्माद्भूमिंजयारोह शमीमेतां पलाशिनीम् ॥ ३
अस्यां हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत ।
युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥ ४
ध्वजाः शराश्च शूराणां दिव्यानि कवचानि च ।
अत्र चैतन्महावीर्यं धनुः पार्थस्य गाण्डिवम् ॥ ५
एकं शतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्धनम् ।
व्यायामसहमत्यर्थं तृणराजसमं महत् ॥ ६
सर्वायुधमहामात्रं शत्रुसंबाधकारकम् ।
सुवर्णविकृतं दिव्यं श्लक्ष्णमायतमव्रणम् ॥ ७
अलं भारं गुरुं वोढुं दारुणं चारुदर्शनम् ।
तादृशान्येव सर्वाणि बलवन्ति दृढानि च ।
युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥ ८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनास्त्रकथने
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

उत्तर उवाच ।
अस्मिन् वृक्षे किलोद्बद्धं शरीरमिति नः श्रुतम् ।
तदहं राजपुत्रः सन् स्पृशेयं पाणिना कथम् ॥ १
नैवंविधं मया युक्तमालब्धुं क्षत्रयोनिना ।
महता राजपुत्रेण मन्त्रयज्ञविदा सता ॥ २
स्पृष्टवन्तं शरीरं मां शववाहमिवाशुचिम् ।
कथं वा व्यवहार्यं वै कुर्वीथास्त्वं बृहन्नले ॥ ३
बृहन्नलोवाच ।
व्यवहार्यश्च राजेन्द्र शुचिश्चैव भविष्यसि ।
धनूंष्येतानि मा भैस्त्वं शरीरं नात्र विद्यते ॥ ४
दायादं मत्स्यराजस्य कुले जातं मनस्विनाम् ।
त्वां कथं निन्दितं कर्म कारयेयं नृपात्मज ॥ ५
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तः स पार्थेन रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ।
आरुरोह शमीवृक्षं वैराटिरवशस्तदा ॥ ६
तमन्वशासच्छत्रुघ्नो रथे तिष्ठन् धनंजयः ।
अवरोपय वृक्षाग्राद्धनूंष्येतानि माचिरम् ॥ ७
परिवेष्टनमेतेषां क्षिप्रं चैव व्यपानुद ।
सोऽपहृत्य महार्हाणि धनूंषि पृथुवक्षसाम् ।
परिवेष्टनपत्राणि विमुच्य समुपानयत् ॥ ८
तथा संनहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः ।
अपश्यद्गाण्डिवं तत्र चतुर्भिरपरैः सह ॥ ९
तेषां विमुच्यमानानां धनुषामर्कवर्चसाम् ।
विनिश्चेरुः प्रभा दिव्या ग्रहाणामुदयेष्विव ॥ १०
स तेषां रूपमालोक्य भोगिनामिव जृम्भताम् ।
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः क्षणेन समपद्यत ॥ ११
संस्पृश्य तानि चापानि भानुमन्ति बृहन्ति च ।
वैराटिरर्जुनं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अस्त्रारोपणे
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

---

बाहुविक्षेपं सोढुं न शक्ष्यन्तीति संबन्धः । भूमिंजय हे उत्तर पलाशिनीं बहुपत्रवतीम् ॥ ३ ॥ तृणराजस्तालस्तत्समम ॥ ६ ॥ महामात्रमतिप्रमाणम् ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

**अस्मिन्निति** ॥ १ ॥ आलब्धुं स्प्रष्टुम् ॥ २ ॥ दायादं पुत्रम् ॥ ५ ॥ अपहृत्य वृक्षादध आनीय ॥ ८ ॥ संनहनानि धनुषां बन्धनानि ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

# ४२

उत्तर उवाच ।
बिन्दवो जातरूपस्य शतं यस्मिन् निपातिताः ।
सहस्रकोटिसौवर्णाः कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ १
वारणा यत्र सौवर्णाः पृष्ठे भासन्ति दंशिताः ।
सुपार्श्वं सुग्रहं चैव कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २
तपनीयस्य शुद्धस्य पृष्ठे यस्येन्द्रगोपकाः ।
पृष्ठे विभक्ताः शोभन्ते कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ३
सूर्या यत्र च सौवर्णास्त्रयो भासन्ति दंशिताः ।
तेजसा प्रज्वलन्तो हि कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ४
शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविभूषिताः ।
सुवर्णमणिचित्रं च कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ५
इमे च कस्य नाराचाः सहस्रा लोमवाहिनः ।
समन्तात् कलधौताग्रा उपासङ्गे हिरण्मये ॥ ६
विपाठाः पृथवः कस्य गार्ध्रपत्राः शिलाशिताः ।
हारिद्रवर्णाः सुमुखाः पीताः सर्वायसाः शराः ॥ ७
कस्यायमसितश्चापः पञ्चशार्दूललक्षणः ।
वराहकर्णव्यामिश्रान् शरान् धारयते दश ॥ ८
कस्येमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्धदर्शनाः ।
शतानि सप्त तिष्ठन्ति नाराचा रुधिराशनाः ॥ ९
कस्येमे शुकपत्राभैः पूर्वैरर्धैः सुवाससः ।
उत्तरैरायसैः पीतैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १०
गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयंकरः ।
कस्यायं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः ॥
वैयाघ्रकोशे निहितो हेमचित्रत्सरुर्महान् ।
सुफलश्चित्रकोशश्च किङ्किणीसायको महान् ॥१२
कस्य हेमत्सरुर्दिव्यः खड्गः परमनिर्मलः ।
कस्यायं विमलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः १३
हेमत्सरुरनाधृष्यो नैषध्यो भारसाधनः ।
कस्य पाञ्चनखे कोशे सायको हेमविग्रहः ॥ १४
प्रमाणरूपसंपन्नः पीत आकाशसन्निभः ।
कस्य हेममये कोशे सुतप्ते पावकप्रभे ॥ १५
निस्त्रिंशोऽयं गुरुः पीतः सायकः परनिर्व्रणः ।
कस्यायमसितः खड्गो हेमबिन्दुभिरावृतः ॥ १६
आशीविषसमस्पर्शः परकायप्रभेदनः ।
गुरुभारसहो दिव्यः सपत्नानां भयप्रदः ॥ १७

४२

**अस्मिन्निति** ॥ १ ॥ कस्य जातरूपस्य जातकार्तेः 'रूपं स्वभावे सौंदर्ये नाणकपशुशब्दयोः । ग्रन्थावृत्तौ नाटकादावाकारश्लोकयोरपि' इति मेदिनी । बिन्दवः सौवर्णा इति संबन्धः । सहसि सहस्वत्यौ बलवत्यौ दीप्तिमत्यौ वा कोटी प्रान्तौ यस्य तत् सहस्रकोटि । 'सहो बले ज्योतिषि च' इति मेदिनी । सहस्शब्दान्मत्वर्थीयो रप्रत्ययः ॥ १ ॥ दंशिताः भासमानाः सुग्रहं गृह्यतेऽस्मिन्निति ग्रहो मध्यम ॥ २ ॥ तपनीयस्य सुवर्णस्य इन्द्रगोपकाः कीटविशेषाः रक्तपीतभास्वरवर्णाः ॥ ३ ॥ सौवर्णाः शलभाः सुवर्णः कृष्णागुरुवर्णं द्रव्यं 'मीना' इति संज्ञितं तन्मयाः तेषु हि नीलवर्णेषु तपनीयाख्यस्वर्णभूषणानि शोभन्ते । 'सुवर्णश्च सुवर्णा च कृष्णागुरुमखान्तरे' इति विश्वः । सुवर्णमणयः स्वर्णबिन्दवः शोभनवर्णमणिखचितत्वाद्वा सुवर्णमणिचित्रत्वम् ॥ ५ ॥ साहस्राः सहस्रशः संख्याताः । लोमवाहिनः पत्रवन्तः । लोमच्छेदिन इत्यन्ये उपासङ्गे निषङ्गे ॥ ६ ॥ विपाठाः स्थूलदण्डा बाणविशेषाः । 'विपाठः स्थूलदण्डः स्यात्' इति कल्पद्रुः । गार्ध्रपत्राः गृध्रपत्रवाहिनः शिलाशिताः शिलायां तीक्ष्णीकृताः पीताः कर्मारेण तेजनजलं पायिताः सर्वायसाः केवलं लोहमयाः । काष्ठदण्डरहिता इत्यर्थः ॥ ७ ॥ वराहकर्णाकारैः शल्यैः व्यामिश्रान् युक्तान् धारयते शरान् चित्ररूपानेवेति भावः ॥ ८ ॥ चन्द्रबिम्बार्धवद्दर्शनं येषामर्धचन्द्राकारा इत्यर्थः ॥ ९ ॥ पूर्वैरपरिस्थैरर्धैः उपलक्षिताः सुवाससः सुपुङ्खा बाणा एव उत्तरैरग्रभागैः हेमपुङ्खैःसुवर्णधाराचित्रितैः॥१० शिली भेकी पृष्ठे चित्ररूपेण यस्य परिचयार्थं शिलीमुखो भेक्या मुखमिव मुखं यस्य सायकः खड्गः । 'शरे खड्गे च सायकः' इत्यमरः ॥ ११॥ वैयाघ्रकोशे व्याघ्रचर्मकोशे। 'त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात्' इत्यमरः । सुफलः शोभनभल्लिकः । 'फलं शस्त्राग्रे व्युष्टिलाभयोः' इति विश्वः । किंकिणीयुक्तः सायकः ॥ १२ ॥ गव्ये गोचर्मजे ॥ १३ ॥ नैषध्यो निषधदेशजः पाञ्चनखे अजचर्मजे । 'पञ्चनखोऽजे कूर्मे' इति विश्वः। हेमविग्रहः सुवर्णालङ्कृतदेहः ॥१४॥ आकाशसन्निभः कृष्णभास्वरः ॥१५ ॥ निस्त्रिंशः त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निर्गतः त्रिंशदङ्गुलाधिकः सायकः खड्गः । परेषां शस्त्रेण निर्गतो व्रणो यस्य परानभिभूतः । शिक्य इति पाठे पुरुषद्वयेनोह्यमाना सांगीति प्रसिद्धा तद्योग्यः ॥ १६ ॥

निर्दिष्टस्त्व यथातत्त्वं मया पृष्टा बृहन्नले । | विस्मयो मे परो जातो दृष्ट्वा सर्वमिदं महत् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरवाक्यंनाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

बृहन्नलोवाच ।

यन्मां पूर्वमिहापृच्छः शत्रुसेनापहारिणम् ॥
गाण्डीवमेतत् पार्थस्य लोकेषु विदितं धनुः ॥ १
सर्वायुधमहामात्रं शातकुम्भपरिष्कृतम् ।
एतत्तदर्जुनस्यासीद्गाण्डीवं परमायुधम् ॥ २
यत्तच्छतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्द्धनम् ।
येन देवान्मनुष्यांश्च पार्थो विजयते मृधे ॥ ३
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः श्लक्ष्णमायतमव्रणम् ।
देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ॥ ४
एतद्वर्षसहस्रं तु ब्रह्मा पूर्वमधारयत् ।
ततोऽनन्तरमेवाथ प्रजापतिरधारयत् ॥ ५
त्रीणि पञ्चशतं चैव शक्रोऽशीति च पञ्च च ।
सोमः पञ्चशतं राजा तथैव वरुणः शतम् ॥
पार्थः पञ्च च षष्टिं च वर्षाणि श्वेतवाहनः ॥ ६
महावीर्यं महादिव्यमेतत् तद्धनुरुत्तमम् ।
एतत् पार्थमनुप्राप्तं वरुणाच्चारुदर्शनम् ॥ ७
पूजितं सुरमर्त्येषु बिभर्ति परमं वपुः ।
सुपार्श्वं भीमसेनस्य जातरूपग्रहं धनुः ॥
येन पार्थोऽजयत् कृत्स्नां दिशं प्राचीं परंतपः ॥८
इन्द्रगोपकचित्रं च यदेतच्चारुदर्शनम् ।
राज्ञो युधिष्ठिरस्यैतद्वैराटे धनुरुत्तमम् ॥ ९
सूर्या यस्मिंस्तु सौवर्णाः प्रकाशन्ते प्रकाशिनः ।
तेजसा प्रज्वलन्तो वै नकुलस्यैतदायुधम् ॥ १०
शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविचित्रिताः ।
एतन्माद्रीसुतस्यापि सहदेवस्य कार्मुकम् ॥ ११
ये त्विमे क्षुरसङ्काशाः सहस्रा लोमवाहिनः ।
एतेऽर्जुनस्य वैराटे शराः सर्पविषोपमाः ॥ १२
एते ज्वलन्तः सङ्ग्रामे तेजसा शीघ्रगामिनः ।
भवन्ति वीरस्याक्षय्या व्यूहतः समरे रिपून् ॥१३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

४३

**यन्मामिति।** अपहरतीत्यपहारी कालःसोऽस्त्यस्मिन्नित्यपहारिणम् । पामादित्वान्मत्वर्थीयो न प्रत्ययः कालरूपीत्यर्थः ॥ १ ॥ धनुषां शतसहस्रेण लक्षेण संमितम् ॥ ३ ॥ त्रीणि वर्षाणि पञ्चशतं वर्षाणि प्रजापतिरधारयदिति संबन्धः । अत्र ब्रह्मादीनां वर्षाणि देवमानेनैव ज्ञेयानि यो ह्यस्माकं सौरः संवत्सरः स तेषामेकं दिनमिति शास्त्रप्रसिद्धम्।पार्थः पञ्च च षष्टिं च इत्यत्र तु वर्षशब्दो वृष्टिपरः । तथा च संवत्सरे वर्षद्वयं जायते। तथा हि'एकेन वर्षेण तृप्तः शरदि व्रीह्याग्रयणं करोति अपरेण तृप्तो वसन्ते यवाग्रयणं करोति ' तथाचाग्रयणं प्रकृत्य आश्वलायनः श्रुतिमुदाहरति–' अपि हि देवा आहुस्तृप्तो नूनं वर्षस्याग्रयणेन हि यजेत इति । तथाऽन्यत्रापि तदेव प्रकृत्य श्रुतं ' व्रीहिभिरिष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेताथ यवेभ्यो यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत व्रीहिभ्यः ' इति । एवं चैकस्मिन् संवत्सरे कर्कायनाद्येकं वर्षमपरं मकरायनादीति द्वे वर्षे ततश्च सार्धद्वात्रिंशता संवत्सरैः पञ्चषष्टिर्वर्षाणि भवन्तीति युक्तमुक्तं पार्थः पञ्च च षष्टिं च वर्षाणि एतद्धनुर्दधारेति । अन्ये तु अतीतमनागतं च कालमेकीकृत्य पञ्चषष्टिसंवत्सरं धनुर्द्धारणं वर्णयन्ति । ' वर्षोऽस्त्री भारतादौ तु जम्बूद्वीपाब्दवृष्टिषु ' इति मेदिनी । ' वृष्टिर्वर्षम् ' इत्यमरश्च । तत्र प्राचां मतेऽधारयदिति भूतकालानुपपत्तिः । वक्तुः कदाचिदायुर्ज्ञानकल्पनेऽपि प्रतिपत्तुः पारोक्ष्येणार्जुनवयोविदोऽप्रतिपत्तिश्चेति विचारणीयम्। अस्माकं तु गाण्डीवलाभानन्तरं गतेषु सार्धद्वात्रिंशद्वर्षेषु त्रयोदशवर्षाणि वनवासे । ब्राह्मणकार्यार्थमायुधागारं प्रविष्टस्यार्जुनस्य द्रौपदीधर्मराजयोः सहासनकालेऽनुप्रवेशनिमित्ते द्वादशवर्षाणि इति पञ्चविंशतिर्गतानि अन्यान्यपि दिग्विजयराजसूयराज्यकरणादिकाले प्रागेव सार्धसप्तवर्षाणि गतानीति समुन्नेयम् ॥ ६ ॥ सहस्राः तेजस्विनो दृढाः सहस्रशः संमिता वा ॥ १२ ॥ व्यूहतः क्षिपतः ॥ १३ ॥

ये चेमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्धदर्शनाः ।
एते भीमस्य निशिता रिपुक्षयकराः शराः ॥ १४
हारिद्रवर्णा ये त्वेते हेमपुङ्खाः शिलाशिताः ।
नकुलस्य कलापोऽयं पञ्चशार्दूललक्षणः ॥ १५
येनासौ व्यजयत्कृत्स्नां प्रतीचीं दिशमाहवे ।
कलापो ह्येष तस्यासीन्माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ १६
ये त्विमे भास्कराकाराः सर्वपारसवाः शराः ।
एते चित्रक्रियोपेताः सहदेवस्य धीमतः ॥ १७
ये त्विमे निशिताः पीताः पृथवो दीर्घवाससः ।
हेमपुङ्खास्त्रिपर्वाणो राज्ञ एते महाशराः ॥ १८
यस्त्वयं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः ।
अर्जुनस्यैष सङ्ग्रामे गुरुभारसहो दृढः ॥ १९
वैयाघ्रकोशः सुमहान् भीमसेनस्य सायकः ।
गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयंकरः ॥ २०
सुफलश्चित्रकोशश्च हेमत्सरुरनुत्तमः ।
निस्त्रिंशः कौरवस्यैष धर्मराजस्य धीमतः ॥ २१
यस्तु पाञ्चनखे कोशे निहितश्चित्रयोधने ।
नकुलस्यैष निस्त्रिंशो गुरुभारसहो दृढः ॥ २२
यस्त्वयं विपुलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः ।
सहदेवस्य विद्ध्येनं सर्वभारसहं दृढम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे आयुधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

उत्तर उवाच ।
सुवर्णविकृतानीमान्यायुधानि महात्मनाम् ।
रुचिराणि प्रकाशन्ते पार्थानामाशुकारिणाम् ॥ १
क्व नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २
सर्व एव महात्मानः सर्वामित्रविनाशनाः ।
राज्यमक्षैः पराकीर्य न श्रूयन्ते कथंचन ॥ ३
द्रौपदी क्व च पाञ्चाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता ।
जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद्वनम् ॥ ४
अर्जुन उवाच ।
अहमस्म्यर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः ।
बल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः ॥ ५
अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले ।
सैरन्ध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत्कृते कीचका हताः ॥ ६
उत्तर उवाच ।
दश पार्थस्य नामानि यानि पूर्वं श्रुतानि मे ।
प्रब्रूयास्तानि यदि मे श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ७
अर्जुन उवाच ।
हन्त तेऽहं समाचक्षे दश नामानि यानि मे ।
वैराटे शृणु तानि त्वं यानि पूर्वं श्रुतानि ते ॥ ८
एकाग्रमानसो भूत्वा शृणु सर्वं समाहितः ।
अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः ।
बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनंजयः ॥ ९
उत्तर उवाच ।
केनासि विजयो नाम केनासि श्वेतवाहनः ।
किरीटी नाम केनासि सव्यसाची कथं भवान् ॥
अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः कृष्णो बीभत्सुरेव च ।
धनंजयश्च केनासि ब्रूहि तन्मम तत्त्वतः ॥ ११
श्रुता मे तस्य वीरस्य केवला नामहेतवः ।
तत्सर्वं यदि मे ब्रूयाः श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ १२
अर्जुन उवाच ।
सर्वाञ्जनपदाञ्जित्वा वित्तमादाय केवलम् ।
मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनंजयम् ॥ १३

सर्वपारसवाः सर्वं च तत्पारं परसमूहं सुवते हिंसन्ति ते सर्वपारसवाः सर्वशत्रुसमूहनाशकराः ॥ १७ ॥ चित्रयोधने विचित्रयुद्धनिमित्तं निहितः पालितः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

सुवर्णेति ॥ १ ॥ पराकीर्य अपास्य ॥ ३ ॥ नररूपस्य मम महाविष्णोर्नामानि संकटे स्मर्यमाणानि विजयावहानीत्यभिप्रेत्याह एकाग्रेति ॥ ९ ॥

अभिप्रयामि सङ्ग्रामे यदहं युद्धदुर्मदान् ।
नाजित्वा विनिवर्तामि तेन मां विजयं विदुः १४
श्वेताः काञ्चनसन्नाहा रथे युज्यन्ति मे हयाः ।
सङ्ग्रामे युध्यमानस्य तेनाहं श्वेतवाहनः ॥ १५
उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा ।
जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः ॥१६
पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः ।
किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम्॥ १७
न कुर्यां कर्म बीभत्सं युध्यमानः कथंचन ।
तेन देवमनुष्येषु बीभत्सुरिति विश्रुतः ॥ १८
उभौ मे दक्षिणौ पाणी गाण्डीवस्य विकर्षणे ।
तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ॥ १९
पृथिव्यां चतुरन्तायां वर्णो मे दुर्लभः समः ।
करोमि कर्म शुक्लं च तस्मान्मामर्जुनं विदुः ॥२०
अहं दुरापो दुर्धर्षो दमनः पाकशासनिः ।
तेन देवमनुष्येषु जिष्णुर्नामाऽस्मि विश्रुतः ॥ २१
कृष्ण इत्येव दशमं नाम चक्रे पिता मम ।
कृष्णावदातस्य ततः प्रियत्वाद्बालकस्य वै ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात् ।
अहं भूमिंजयो नाम नाम्नाऽहमपि चोत्तरः ॥ २३
दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनंजय ।
लोहिताक्ष महाबाहो नागराजकरोपम ॥ २४
यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम ।
यतस्त्वया कृतं पूर्वं चित्रं कर्म सुदुष्करम् ॥
अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥२५

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनपरिचये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

उत्तर उवाच ।

आस्थाय रुचिरं वीर रथं सारथिना मया ।
कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया॥ १

अर्जुन उवाच ।

प्रीतोऽस्मि पुरुषव्याघ्र न भयं विद्यते तव ।
सर्वान्नुदामि ते शत्रून् रणे रणविशारद ॥ २
स्वस्थो भव महाबाहो पश्य मां शत्रुभिः सह ।
युध्यमानं विमर्देऽस्मिन् कुर्वाणं भैरवं महत् ॥ ३
एतान्सर्वानुपासङ्गान् क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे ।
एकं चाहर निस्त्रिंशं जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ४

वैशम्पायन उवाच ।

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा त्वरावानुत्तरस्तदा ।
अर्जुनस्यायुधान् गृह्य शीघ्रेणावातरत्ततः ॥ ५

अर्जुन उवाच ।

अहं वै कुरुभिर्योत्स्याम्यवजेष्यामि ते पशून् ॥ ६
संकल्पपक्षविक्षेपं बाहुप्राकारतोरणम् ।
त्रिदण्डतूणसंबाधमनेकध्वजसंकुलम् ॥ ७

नक्षत्राभ्यां ताराभ्यां तत्र स्थिते चन्द्रे इत्यर्थः । उत्तराभ्यां च पूर्वाभ्यामिति पाठे नक्षत्रसन्धौ इत्यर्थः ॥ १६ ॥ बीभत्सुरिति । भादि कल्याणे सुखे चेत्यस्य सनि रूपम्॥१८॥ विकर्षणे शक्तौ इति शेषः । सव्येन वामेनापि हस्तेन सचितुं ज्याकर्षणादिक्रियायां संबद्धं शीलमस्येति सव्यसाचीत्यर्थः ॥१९॥अर्जुन इति 'ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु' इत्यतः उनन् प्रत्यये भवति । वर्णो दीप्तिः समः ऋजुः दीप्तिमत्त्वात् समत्वात् शुद्धकर्मकरत्वाच्चार्जुन इत्यर्थः ॥ २० ॥ जिष्णुर्जयशीलः ॥ २१ ॥ कृष्णावदातस्य कृष्णभास्वरवर्णस्य कर्षति चित्तमिति मनोहरत्वाद्वा कृष्ण इत्याह प्रियत्वादिति ॥ २२ ॥ नागराज ऐरावतः तस्येव करोपमा हस्तयोः सादृश्यं यस्य हस्तिहस्तोपमकरेत्यर्थः ॥ २४ ॥ कर्म दिग्विजयादि ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

आस्थायेति ॥ १ ॥ नुदामि दूरीकरोमि ॥ २ ॥ भैरवं भयानकं महत् कर्म कुर्वाणम् ॥ ३ ॥ उपासङ्गान् तूणीरान् ॥ ४ ॥ गृह्य गृहीत्वा शीघ्रेण वेगेन ततः शमीतोऽवातरत् इतरेषामायुधानि तत्र निधायेति शेषः ॥ ५ ॥ अवजेष्यामि हेलया जेष्यामि ॥ ६ ॥ त्वं तु भयं त्यजेत्याह संकल्पेति त्रिभिः । इदं मया गुप्तं रक्षितं रथोपस्थं रथोपरिभागस्ते तव नगरं नगरवद्रक्षकं भविष्यति । तत्र रथाङ्गेषु नगराङ्गसंपत्तिमाह–संकल्पपक्षविक्षेपमिति । संकल्पः रम्य-

व्याक्षेपणं क्रोधकृतं नेमीनिनदद्दुन्दुभि ।
नगरं ते मया गुप्तं रथोपस्थं भविष्यति ॥ ८
अधिष्ठितो मया संख्ये रथो गाण्डीवधन्वना।
अजेयः शत्रुसैन्यानां वैराटे व्येतु ते भयम् ॥ ९

उत्तर उवाच ।

बिभेमि नाहमेतेषां जानामि त्वां स्थिरं युधि ।
केशवेनापि सङ्ग्रामे साक्षादिन्द्रेण वा समम्॥ १०
इदं तु चिन्तयन्नेवं परिमुह्यामि केवलम् ।
निश्चयं चापि दुर्मेधा न गच्छामि कथंचन ॥ ११
एवं युक्ताङ्गरूपस्य लक्षणैः सूचितस्य च ।
केन कर्मविपाकेन क्लीबत्वमिदमागतम् ॥ १२
मन्ये त्वां क्लीबवेषेण चरन्तं शूलपाणिनम् ।
गन्धर्वराजप्रतिमं देवं वाऽपि शतक्रतुम् ॥ १३

अर्जुन उवाच ।

भ्रातुर्नियोगाज्ज्येष्ठस्य संवत्सरमिदं व्रतम् ।
चरामि व्रतचर्यं च सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १४
नास्मि क्लीबो महाबाहो परवान् धर्मसंयुतः ।
समाप्तव्रतमुत्तीर्णं विद्धि मां त्वं नृपात्मज ॥ १५

उत्तर उवाच ।

परमोऽनुग्रहो मेऽद्य यतस्तर्को न मे वृथा ।
न हीदृशाः क्लीबरूपा भवन्ति तु नरोत्तम ॥ १६
सहायवानस्मि रणे युध्येयममरैरपि ।
साध्वसं हि प्रनष्टं मे किं करोमि ब्रवीहि मे॥ १७
अहं ते संग्रहीष्यामि हयान् शत्रुरथारुजान् ।
शिक्षितो ह्यस्मि सारथ्ये तीर्थतः पुरुषर्षभ ॥ १८
दारुको वासुदेवस्य यथा शक्रस्य मातलिः ।
तथा मां विद्धि सारथ्ये शिक्षितं नरपुंगव ॥ १९
यस्य याते न पश्यन्ति भूमौ क्षिप्तं पदं पदम् ।
दक्षिणां यो धुरं युक्तः सुग्रीवसदृशो हयः ॥ २०
योऽयं धुरं धुर्यवरो वामां वहति शोभनः ।
तं मन्ये मेघपुष्पस्य जवेन सदृशं हयम् ॥ २१
योऽयं काञ्चनसन्नाहः पार्ष्णिं वहति शोभनः ।
समं शैब्यस्य तं मन्ये जवेन बलवत्तरम् ॥ २२
योऽयं वहति मे पार्ष्णिं दक्षिणामभितः स्थितः ।
बलाहकादपि मतः स जवे वीर्यवत्तरः ॥ २३
त्वामेवायं रथो वोढुं सङ्ग्रामेऽर्हति धन्विनम् ।
त्वं चेमं रथमास्थाय योद्धुमर्हो मतो मम ॥ २४

वैशम्पायन उवाच ।

ततो विमुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान् ।
चित्रे काञ्चनसन्नाहे प्रत्यमुञ्चत् तदा तले ॥ २५
कृष्णान् भङ्गिमतः केशान् श्वेतेनोद्ग्रथ्य वाससा।
अथासौ प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः।
अभिदध्यौ महाबाहुः सर्वास्त्राणि रथोत्तमे ॥ २६
ऊचुश्च पार्थं सर्वाणि प्राञ्जलीनि नृपात्मजम् ।
इमे स्म परमोदाराः किंकराः पाण्डुनन्दन ॥ २७
प्रणिपत्य ततः पार्थः समालभ्य च पाणिना ।
सर्वाणि मानसानीह भवतेत्यभ्यभाषत ॥ २८
प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनोऽभवत् ।
अधिज्यं तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः २९

क्लृप्तं चक्राक्षध्वजकूबरयुगादीनामङ्गानां दार्ढ्येन समर्थनं तदेव पक्षयोर्वीथीनां पार्श्वयोः विक्षेपो विस्तारो यस्मिन् बाहू एव स्वीयौ बाहुतुल्यत्वाद्वान्धवा एव वा प्राकारः पुरपरिधिभित्तिस्तस्मिंस्तोरणं पुरद्वारं यस्मिन् । रथिसारथ्योरपि रथाङ्गत्वाविवक्षया एतदुक्तम् । त्रिदण्डः ईषा तदुभयपार्श्वदारुणी चेति मिलित्वा त्रिदण्ड उच्यते स च तूणो निषङ्गश्च ताभ्यां संबाधं संकटं दुष्प्रवेशम् । पक्षे त्रिदण्डं सैन्यत्रयं रथिनां हस्तिसादिनां हयसादिनां चेति त्रीणि सैन्यानि तेषां तूणोपलक्षितानि आयुधानि तैः संबाधमनेकध्वजसंकुलं बहुध्वजव्याप्तम् । अनेकेन अनन्येन ध्वजेन वानरेण संकुलं भयंकरम् ' एके मुख्यान्यकेवलाः' इति नानार्थः ॥७॥ ज्या धनुर्मौर्वी सैव क्षेपणानि गोलासनानि नालिकाख्यानि यस्मिन् । क्रोधेन परजिघांसाहेतुना चित्तवृत्तिविशेषेण निमित्तभूतेन कृतं परिष्कृतं द्वयमपि ॥ ८ ॥ फलितमाह अधिष्ठित इति ॥९॥ केशवेन इन्द्रेण वा समं सार्धं सङ्ग्रामे त्वां स्थिरं जानामि ॥ १० ॥ युक्ताङ्गरूपस्य युक्तानि समीचीनानि अङ्गानि युद्धाङ्गानि शस्त्रास्त्रनैपुणादीनि रूपमाकृतिश्च यस्य लक्षणैः पद्मरक्तत्वादिभिः ॥१२॥ परवान् नाथवान् उत्तीर्णमापद्भ्य इति शेषः ॥१३॥ शत्रुरथारुजान् शत्रुरथभञ्जकान् । मूलविभुजादित्वात् कः तीर्थतो गुरुतः ॥१८॥ याते गमने पदं पदं सर्वमपि पदं भूमौ क्षिप्तं तत उद्गृहीतं वा न पश्यन्ति वेगवत्त्वात् सुग्रीवमेघपुष्पशैब्यबलाहका भगवतोऽश्वास्तत्साम्यमेषां वाहानामुक्तम् ॥ २० ॥ पार्ष्णि पुरः स्थितयोरश्वयोः पृष्ठभागं पाश्चात्यं युगमिति यावत् । 'पार्ष्णिः स्यादुन्मदस्त्रियां । स्त्रियां द्वयोः सैन्यपृष्ठे' इति मेदिनी ॥२२॥ पर्यमुञ्चतत् तदा शुभे इति पाठे तु कुण्डले इति शेषः ॥२५॥ भङ्गिमतः कौटिल्यवतः अभिदध्यौ स्मृतवान् ॥२६॥ मानसानि प्रयोजनकाले स्मृतिगोचराणि ॥ २८ ॥ प्रतिगृह्य अनुकूलानि कृत्वा व्याक्षिपत् टणत्कारितवान् ॥२९॥

तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महाध्वनिः ।
यथा शैलस्य महतः शैलेनैवावजघ्नतः ॥ ३०
स निर्घातोऽभवद्भूभिद्दिक्षु वायुर्ववौ भृशम् ।
पपात महती चोल्का दिशो न प्रचकाशिरे ।
भ्रान्तध्वजं खं तदासीत्प्रकम्पितमहाद्रुमम् ॥ ३१
तं शब्दं कुरवोऽजानन् विस्फोटमशनेरिव ।
यदर्जुनो धनुःश्रेष्ठं बाहुभ्यामाक्षिपद्रथे ॥ ३२

उत्तर उवाच ।

एकस्त्वं पाण्डवश्रेष्ठ बहूनेतान् महारथान् ।
कथं जेष्यसि सङ्ग्रामे सर्वशस्त्रास्त्रपारगान् ॥ ३३
असहायोऽसि कौन्तेय ससहायाश्च कौरवाः ।
अत एव महाबाहो भीतस्तिष्ठामि तेऽग्रतः ॥ ३४
उवाच पार्थो मा भैषीः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ३५
युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः ।
सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम ३६
तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले ।
खाण्डवे युध्यमानस्य कस्तदासीत् सखा मम ३७
निवातकवचैः सार्धं पौलोमैश्च महाबलैः ।
युध्यतो देवराजार्थे कः सहायस्तदाऽभवत्॥ ३८
स्वयंवरे तु पाञ्चाल्या राजाभिः सह संयुगे ।
युध्यतो बहुभिस्तात कः सहायस्तदाऽभवत् ३९
उपजीव्य गुरुं द्रोणं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
वरुणं पावकं चैव कृपं कृष्णं च माधवम् ॥ ४०
पिनाकपाणिनं चैव कथमेतान्न योधये ।
रथं वाहय मे शीघ्रं व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे उत्तरार्जुनयोर्वाक्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

वैशम्पायन उवाच ।

उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
आयुधं सर्वमादाय प्रययौ पाण्डवर्षभः ॥ १
ध्वजं सिंहं रथात् तस्मादपनीय महारथः ।
प्रणिधाय शमीमूले प्रायादुत्तरसारथिः ॥ २
दैवीं मायां रथे युक्तां विहितां विश्वकर्मणा ।
काञ्चनं सिंहलाङ्गूलं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ३
मनसा चिन्तयामास प्रसादं पावकस्य च ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ध्वजे भूतान्यदेशयत् ॥४
सपताकं विचित्राङ्गं सोपासङ्गं महाबलम् ।
खात् पपात रथे तूर्णं दिव्यरूपं मनोरमम् ॥ ५
रथं तमागतं दृष्ट्वा दक्षिणं प्राकरोत् तदा ।
रथमास्थाय बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः॥ ६
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।
ततः प्रायादुदीचीं च कपिप्रवरकेतनः ॥ ७
स्वनवन्तं महाशङ्खं बलवानरिमर्दनः ।
प्राधमद्बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ८
ततस्ते जवना धुर्या जानुभ्यामगमन्महीम् ।
उत्तरश्चापि सन्त्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ९
संस्थाप्य चाश्वान्कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः
उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः ॥ १०

अवजघ्नतः अवहन्यमानस्य अभिनिघ्नत इति पाठान्तरम् ॥ ३० ॥ भूभित् भूविदारकः प्रचकाशिरे प्रकाशवत्योऽभूवन् । भ्रान्ता इतश्चलिताः ध्वजा यस्मिन् । एतेन परसैन्यवाहेषु शब्दजात्त्रासादुत्पथगामित्वं व्यज्यते प्रकम्पितमहाद्रुमंमित्यनेन भूमिकम्पो व्यज्यते ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटप० नैलकण्ठीये भारतभाव० पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

उत्तरमिति ॥ १ ॥ सिंहं सिंहाकारम् ॥ २ ॥ दैवीं मायामित्यद्भुतत्वं ध्वजस्य दर्शितम् । मायामय इव ध्वजोऽद्भुत इत्यर्थः । विश्वकर्मणा ब्रह्मणा भौमनेन वा काञ्चनं काञ्चनवर्णं सिंहं हिंस्रं लाङ्गूलं यस्य पुच्छविक्षेपणेनैव बहून् हस्त्यादीन् पोथयन्तमित्यर्थः । वानरलक्षणं वानरस्वरूपम् ॥ ३ ॥ प्रसादं प्रसादप्राप्तं सः पावकः तच्चिन्तितं अर्जुनचिन्तितं अदेशयत् अयोजयत् ॥ ४ ॥ ते जवनाः प्रसिद्धाः वेगवन्तोऽपि उत्तरस्थाः ॥ ९ ॥ संस्थाप्य यथावत्कृत्वा ॥ १० ॥

उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
आयुधं सर्वमादाय प्रययौ पाण्डवर्षभः ॥ १ ॥

—विराट अ. ४३ पृ. ६४

अर्जुन उवाच ।

मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परंतप ।
कथं तु पुरुषव्याघ्र शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ११
श्रुतास्ते शङ्खशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।
कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥ १२
स त्वं कथमिहानेन शङ्खशब्देन भीषितः ।
विवर्णरूपो वित्रस्तः पुरुषः प्राकृतो यथा ॥ १३

उत्तर उवाच ।

श्रुता मे शङ्खशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।
कुञ्जराणां निनदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥ १४
नैवंविधः शङ्खशब्दः पुरा जातु मया श्रुतः ।
ध्वजस्य चापि रूपं मे दृष्टपूर्वं न हीदृशम् ॥ १५
धनुषश्चैव निर्घोषः श्रुतपूर्वो न मे क्वचित् ।
अस्य शङ्खस्य शब्देन धनुषो निःस्वनेन च ॥ १६
अमानुषाणां शब्देन भूतानां ध्वजवासिनाम् ।
रथस्य च निनादेन मनो मुह्यति मे भृशम् ॥ १७
व्याकुलाश्च दिशः सर्वा हृदयं व्यथतीव मे ।
ध्वजेन पिहिताः सर्वा दिशो न प्रतिभान्ति मे ॥ १८
गाण्डीवस्य च शब्देन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ।
स मुहूर्तं प्रयातं तु पार्थो वैराटिमब्रवीत् ॥ १९

अर्जुन उवाच ।

एकान्तं रथमास्थाय पद्भ्यां त्वमवपीडयन् ॥
दृढं च रश्मीन् संयच्छ शङ्खं ध्मास्याम्यहं पुनः ॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततः शङ्खमुपाध्मासीद्दारयन्निव पर्वतान् ।
गुहा गिरीणां च तदा दिशः शैलांस्तथैव च ॥
उत्तरश्चापि संलीनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ २१
तस्य शङ्खस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत ॥ २२
तं समाश्वासयामास पुनरेव धनञ्जयः ॥ २३

द्रोण उवाच ।

यथा रथस्य निर्घोषो यथा मेघ उदीर्यते ॥
कम्पते च यथा भूमिर्नैषोऽन्यः सव्यसाचिनः ॥ २४
शस्त्राणि न प्रकाशन्ते न प्रहृष्यन्ति वाजिनः ।
अग्नयश्च न भासन्ते समिद्धास्तन्न शोभनम् ॥ २५
+प्रत्यादित्यं च नः सर्वे मृगा घोरप्रवादिनः ।
ध्वजेषु च निलीयन्ते वायसास्तन्न शोभनम् ॥ २६
।शकुनाश्चापसव्या नो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २७
गोमायुरेष सेनायां रुदन्मध्येन धावति ।
अनाहतश्च निष्क्रान्तो महद्वेदयते भयम् ॥ २८
भवतां रोमकूपाणि प्रहृष्टान्युपलक्षये ।
ध्रुवं विनाशो युद्धेन क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥ २९
ज्योतींषि न प्रकाशन्ते दारुणा मृगपक्षिणः ।
उत्पाता विविधा घोरा दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ ३०
विशेषत इहास्माकं निमित्तानि विनाशने ।
उल्काभिश्च प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥
वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ॥ ३१
उपासते च सैन्यानि गृध्रास्तव समन्ततः ।
तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥
पराभूता च वः सेना न कश्चिद्योद्धुमिच्छति ॥ ३२
विवर्णमुखभूयिष्ठाः सर्वे योधा विचेतसः ।
गाः संप्रस्थाप्य तिष्ठामो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे औत्पातिको नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६

## ४७

वैशम्पायन उवाच ।

अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत् ॥
द्रोणं च रथशार्दूलं कृपं च सुमहारथम् ॥ १
उक्तोऽयमर्थ आचार्यो मया कर्णेन चासकृत् ।
पुनरेव प्रवक्ष्यामि न हि तृप्यामि तं ब्रुवन् ॥ २

---

एकान्तं सुदृढम् । सप्तम्यन्तपाठस्तु लेखकप्रमादः । रथं सुदृढमवलम्ब्येत्यर्थः ॥ २० ॥ अनाहतः अक्षतो धावति ॥ २८ ॥ ज्योतींषि सूर्यचक्षुर्वाज्ञानासि ॥ ३० ॥ इति श्रीम० वि० नैल० भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ + प्रत्यादित्यं पूर्वस्यां दिशि। । शकुनाः पक्षिणः ।

४७

अथेति ॥ १ ॥ आचार्यो द्रोणं कृपं च प्रति मयाऽयमर्थ उक्तः । पाठान्तरेऽयमाचार्योऽस्मिन्नर्थे विषये मया कर्णेन चोक्त इति योजना ॥ २ ॥

पराभूतैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादश वत्सरान्।
वने जनपदे ज्ञातैरेष एव पणो हि नः ॥ ३
तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम्।
अज्ञातवासो बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥ ४
अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः।
पुनर्द्वादशवर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५
लोभाद्वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत्।
हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥ ६
अर्थानां च पुनर्द्वैधे नित्यं भवति संशयः।
अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा॥७
उत्तरं मार्गमाणानां मत्स्यानां च युयुत्सताम्।
यदि बीभत्सुरायातस्तदा कस्यापराध्नुमः ॥ ८
त्रिगर्तानां वयं हेतोर्मत्स्यान्योद्धुमिहागताः।
मत्स्यानां विप्रकारांस्ते बहूनस्मानकीर्तयन्॥ ९
तेषां भयाभिभूतानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम्।
प्रथमं तैर्ग्रहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत् ॥
सप्तम्यामपराह्णे वै तथा तैस्तु समाहितम् ॥ १०
अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति।
इमा गावो ग्रहीतव्या गते मत्स्ये गवां पदम्॥११
ते वा गाश्चानयिष्यन्ति यदि वा स्युः पराजिताः।
अस्मान् वा ह्युपसंधाय कुर्युर्मत्स्येन संगतम् ॥ १२
अथवा तानपाहाय मत्स्यो जनपदैः सह।
सर्वया सेनया सार्धं संवृतो भीमरूपया।
आयातः केवलं रात्रिमस्मान्योद्धुमिहागतः ॥ १३
तेषामेव महावीर्यः कश्चिदेव पुरःसरः।
अस्मान् जेतुमिहायातो मत्स्यो वाऽपि स्वयं भवेत्।
यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः।
सर्वैर्योद्धव्यमस्माभिरिति नः समयः कृतः ॥ १५
अथ कस्मात् स्थिता ह्येते रथेषु रथसत्तमाः।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विकर्णो द्रौणिरेव च॥ १६
संभ्रान्तमनसः सर्वे काले ह्यस्मिन् महारथाः।
नान्यत्र युद्धाच्छ्रेयोऽस्ति तथाऽऽत्मा प्रणिधीयताम्
आच्छिन्ने गोधनेऽस्माकमपि देवेन वज्रिणा।
यमेन वाऽपि सङ्ग्रामे को हास्तिनपुरं व्रजेत्॥ १८
शरैरेभिः प्रणुन्नानां भग्नानां गहने वने।
को हि जीवेत् पदातीनां भवेदश्वेषु संशयः॥ १९
दुर्योधनवचः श्रुत्वा राधेयस्त्वब्रवीद्वचः।
आचार्यं पृष्ठतः कृत्वा तथा नीतिर्विधीयताम्॥२०
जानाति हि मतं तेषामतस्त्रासयतीह नः।
अर्जुने चास्य सम्प्रीतिमधिकामुपलक्षये ॥ २१

हीनेति। न जातमधिकं वाऽज्ञातवासकालं ज्ञातुमर्हति ॥ ६ ॥ तत्र ऊनपक्षे इष्टमेव सिद्धम्। अधिकपक्षेऽपि दोषमाह-अर्थानामिति। द्वैधे द्विप्रकारत्वे संशयो भवति अर्थानां प्रयोजनानाम्। अयं भावः-यदि ते निस्तीर्णप्रतिज्ञास्तर्हि तेषां स्वांशलाभार्थं मामुपगतानां मत्प्रसादतस्तत्प्राप्तिर्वेति द्वैधे संभवति संशयाक्रान्तानामकस्माद्युद्धार्थमागमनं दोष एवेति। पूर्ववैरेण सत्यपि संशयेऽस्माञ्जिघांसया आगतानां पराजयोऽपि संभाव्यत इत्याहान्यथेति। अन्यायेन युध्यतः पराजयेऽप्यधिकैव नष्टिरस्तीति भावः ॥ ७ ॥ उत्तरं गोग्रहं मार्गमाणानामिच्छतामस्माकम्। अनादरे षष्ठी। अस्मान् अनादृत्येत्यर्थः। वालिसुग्रीवयोर्युद्धे प्रविशन् राम इवार्जुनोऽपि कुरुमत्स्यसंनिपाते प्रविशन्नपराधी स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥ ननु तर्हि मत्स्यत्रिगर्तविमर्दे कुरुभिरपि किमर्थं गन्तव्यमित्याशङ्क्याह त्रिगर्तानामित्यादिना। ते तव समक्षमिति शेषः ॥ ९ ॥ तेषां त्रिगर्तानामर्थे तत् मत्स्यैः सह युद्धं प्रतिश्रुतम् ॥ १० ॥ न केवलं मित्रपक्षपातमात्रमस्माकमास्ति अपि तु स्वार्थोऽप्यस्तीत्याह-अष्टम्यामिति। तथा च स्वार्थं युध्यतां नास्माकमपराधोऽस्ति। मत्स्ये गवां त्रिगर्तैर्हृतानां पदं मार्गं गते सति अस्माभिरिमा गावो ग्रहीतव्याः ॥ ११ ॥ ते त्रिगर्ताः उपसंधाय वञ्चयित्वा मत्स्येन संगतं स्नेहं कुर्युः। सर्वथा पक्षत्रयेऽप्यस्माभिरिदानीं योद्धव्यमेवेत्यर्थः ॥ १२ ॥ तान् त्रिगर्तानपाहाय गोभिः सह उपेक्ष्य केवलं रात्रिं रात्रौ स्वगृहमायात इदानीं प्रातरस्मान्योद्धुमिहागत इति संबन्धः ॥ १३ ॥ पक्षान्तरमाह—तेषामिति ॥ १४ ॥ फलितमाह—सर्वैरिति। सर्वैरस्माभिरेकीभूय ये आगतास्तैः सह योद्धव्यमेवेत्यर्थः ॥ १५ ॥ आत्मा चित्तं प्रणिधीयतां सावधानं क्रियताम् ॥ १७ ॥ लब्धस्य गोधनस्य नाशेऽस्माभिः स्वपुरं न प्रवेष्टव्यमिति प्रतिजानीते-आच्छिन्न इति। पदातयस्त्वस्मिन्युद्धे नङ्क्ष्यन्त्येवाश्वास्तु कदाचिज्जीविष्यन्त्यपीत्याह—शरैरिति प्राचां व्याख्या वक्तुरपकर्षसूचिका। वस्तुतस्तु आच्छिन्नेऽपहृते गोधने निमित्ते देवेन वा सह सङ्ग्रामे उपस्थिते सत्यस्माकं भीष्मादीनां मध्ये ह इति प्रसिद्धः कोऽस्ति यो न पुरं व्रजेत् अपि तु प्रत्येकं सर्वे एव स्वं पुरं गन्तुं देवानपि जेतुं गाश्चाच्छेत्तुं समर्थाः स्म इत्यर्थः ॥ १८ ॥ शैरैरिति। एभिरिति स्वकीयशरप्रदर्शनम् ॥ १९ ॥ आचार्यं रणाद्भीतं पृष्ठतः कृत्वा सेनामुखादपसार्य अस्मिन् भीते सर्वेऽपि भीताः स्युरिति भावः ॥ २० ॥ तेषां पाण्डवानां मतं संमतमस्मत्तेजोवधकरणं जानातीति ॥ २१ ॥

तथा हि दृष्ट्वा बीभत्सुमुपायान्तं प्रशंसति ।
यथा सेना न भज्येत तथा नीतिर्विधीयताम्॥२२
ह्रेषितं ह्युपश्रृण्वाने द्रोणे सर्वं विघट्टितम् ।
अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः ।
यथा न विभ्रमेत् सेना तथा नीतिर्विधीयताम्
इष्टा हि पाण्डवा नित्यमाचार्यस्य विशेषतः ।
आसयन्नपरार्थाश्च कथ्यते स्म स्वयं तथा ॥ २४
अश्वानां ह्रेषितं श्रुत्वा कः प्रशंसापरो भवेत् ।
स्थाने वाऽपि व्रजन्तो वा सदा ह्रेषन्ति वाजिनः
सदा च वायवो वान्ति नित्यं वर्षति वासवः ।
स्तनयित्नोश्च निर्घोषः श्रूयते बहुशस्तथा ॥ २६
किमत्र कार्यं पार्थस्य कथं वा स प्रशस्यते ।
अन्यत्र कामाद्द्वेषाद्वा रोषादस्मासु केवलात्॥ २७
आचार्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चापापदर्शिनः ।
नैते महाभये प्राप्ते संप्रष्टव्याः कथञ्चन ॥ २८
प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीषूपवनेषु च ।
कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्र शोभनाः
बहून्याश्चर्यरूपाणि कुर्वाणा जनसंसदि ।
इज्यास्त्रे चोपसन्धाने पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३०
परेषां विवरज्ञाने मनुष्यचरितेषु च ।
हस्त्यश्वरथचर्यासु खरोष्ट्राजाविकर्मणि ॥ ३१
गोधनेषु प्रतोलीषु वरद्वारमुखेषु च ।
अन्नसंस्कारदोषेषु पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ ३२
पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा परेषां गुणवादिनः ।
विधीयतां तथा नीतिर्यथा वध्यो भवेत् परः॥३३
गा वश्च संप्रतिष्ठाप्य सेनां व्यूह्य समन्ततः ।
आरक्षाश्च विधीयन्तां यत्र योत्स्यामहे परान् ३४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे दुर्योधनवाक्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

कर्ण उवाच ।

सर्वानायुष्मतो भीतान् संत्रस्तानिव लक्षये ।
अयुद्धमनसश्चैव सर्वांश्चैवानवस्थितान् ॥ १
यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ २
मम चापप्रयुक्तानां शराणां नतपर्वणाम् ।
नावृत्तिर्गच्छतां तेषां सर्पाणामिव सर्पताम् ॥ ३

---

द्रोणे भीते सति सर्वं विघट्टितं विचलितं भवेत् । सामर्थ्यमिति शेषः । ग्रीष्मे घर्मकाले वसन्त इत्यर्थः । इतः षण्मासानन्तरं युद्धारम्भस्य शरदि दृष्टत्वात् । अदेशिकाः स्वदेशाच्च्युताः व्यूहभङ्गो मा भूदित्यर्थः॥२३॥ इष्टा हीति । पाण्डवाः अपरार्थाः नास्ति परार्थो येषां तेऽपरार्थाः स्वार्थपरा आसयन् द्रोणं त्वत्समीपे स्थापितवन्तः । परकीयोऽयमित्यर्थः । तत्र हेतुमाह-स्वयं द्रोणेन तथा कथ्यते यथा पाण्डवीयत्वं स्वस्य प्रकाशते तथेत्यर्थः ॥ २४ ॥ एतदेव विवृणोति-अश्वानामित्यादिना ॥ २५ ॥ पार्थस्यार्जुनस्यागमनेऽत्र किं कार्यं किमर्थं वासोऽनेन प्रशस्यते तत्र हेतुः-अन्यत्र पार्थश्रेयसि कामादभिलाषादस्मासु वा द्वेषात् जिघांसातः । रोषात् तन्मूलादभिज्वलनात् ॥ २७ ॥ द्रोणमुपहसति आचार्या इत्यादिना । कारुणिका इत्यनेन युद्धधर्मानभिज्ञत्वमुक्तम् । अपापमहिंसा तद्दर्शिनः॥२८॥ आश्चर्यरूपाणि विनोदादीनि इज्यास्त्रे यज्ञायुधे कपालादौ तेषामुपसंधाने आसादनप्रोक्षणादौ परेषामिज्याज्ञानां याज्ञिकानां विवरज्ञाने छिद्रदर्शने ॥ ३० ॥ मनुष्यचरितेषु स्नानाचमनभोजनादिषु हस्त्यश्वरथचर्यासु हस्त्यादिना वाहनेन चर्या गमनं खरादीनां कर्माणि चिकित्सादौ ॥ ३१ ॥ प्रतोलीषु गृहबाह्यावयवेषु प्रदीयमानबलिदानादौ इत्यर्थः । संस्कारो वैश्वदेवादिना। दोषः केशकीटपातादिना ॥ ३२ ॥ गाः व इति छेदः गावश्च संप्रतिष्ठन्तामिति पाठान्तरे गाव इत्येकं पदम् । आरक्षाः रक्षकाः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

---

४८

सर्वानिति । सर्वान् भीष्मादीन् अनवस्थितान् चञ्चलान् ॥ १ ॥ अनावृत्तिः लक्ष्यच्युतिर्न ॥ ३ ॥

रुक्मपुङ्खाः सुतीक्ष्णाग्रा मुक्ता हस्तवता मया
छादयन्तु शराः पार्थं शलभा इव पादपम् ॥ ४
शराणां पुङ्खसक्तानां मौर्व्याभिहतया दृढम् ।
श्रूयतां तलयोः शब्दो भेर्योराहतयोरिव ॥ ५
समाहितो हि बीभत्सुर्वर्षाण्यष्टौ च पञ्च च ।
जातस्नेहश्च युद्धेऽस्मिन् मयि संप्रहरिष्यति ॥ ६
पात्रीभूतश्च कौन्तेयो ब्राह्मणो गुणवानिव ।
शरौघान् प्रतिगृह्णातु मया मुक्तान् सहस्रशः ॥ ७
एष चैव महेष्वासस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
अहं चापि नरश्रेष्ठादर्जुनान्नावरः क्वचित् ॥ ८
इतश्चेतश्च निर्मुक्तैः काञ्चनैर्गार्ध्रवाजितैः ।
दृश्यतामद्य वै व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ॥ ९
अद्याहमृणमक्षय्यं पुरा वाचा प्रतिश्रुतम् ।
धार्तराष्ट्राय दास्यामि निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥ १०
अन्तरा छिद्यमानानां पुङ्खानां व्यतिशीर्यताम् ।
शलभानामिवाकाशे प्रचारः संप्रदृश्यताम् ॥ ११
इन्द्राशनिसमस्पर्शं महेन्द्रसमतेजसम् ।
अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १२
रथादतिरथं शूरं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
विवशं पार्थमादास्ये गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ १३
तमग्निमिव दुर्धर्षमसिशक्तिशरेन्धनम् ।
पाण्डवाग्निमहं दीप्तं प्रदहन्तमिवाहितम् ॥ १४
अश्ववेगपुरोवातो रथौघस्तनयित्नुमान् ।
शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पाण्डवम् ॥ १५
मत्कार्मुकविनिर्मुक्ताः पार्थमाशीविषोपमाः ।
शराः समभिसर्पन्तु वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६
सुतेजनै रुक्मपुङ्खैः सुधौतैर्नतपर्वभिः ।
आचितं पश्य कौन्तेयं कर्णिकारैरिवाचलम् ॥ १७
जामदग्न्यान्मया ह्यस्त्रं यत्प्राप्तमृषिसत्तमात् ।
तदुपाश्रित्य वीर्यं च युध्येयमपि वासवम् ॥ १८
ध्वजाग्रे वानरस्तिष्ठन् भल्लेन निहतो मया ।
अद्यैव पततां भूमौ विनदन् भैरवान् रवान् ॥ १९
शत्रोर्मया विपन्नानां भूतानां ध्वजवासिनाम् ।
दिशः प्रतिष्ठमानानामस्तु शब्दो दिवंगमः ॥ २०
अद्य दुर्योधनस्याहं शल्यं हृदि चिरस्थितम् ।
समूलमुद्धरिष्यामि बीभत्सुं पातयन् रथात् ॥ २१
हताश्वं विरथं पार्थं पौरुषे पर्यवस्थितम् ।
निःश्वसन्तं यथा नागमद्य पश्यन्तु कौरवाः ॥ २२
कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलम् ।
रथेषु वाऽपि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तर-गोग्रहे कर्णविकत्थने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

कृप उवाच ।
सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः ।
नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबन्धमवेक्षसे ॥ १
माया हि बहवः सन्ति शास्त्रमाश्रित्य चिन्तिताः
तेषां युद्धं तु पापिष्ठं वेदयन्ति पुराविदः ॥ २
देशकालेन संयुक्तं युद्धं विजयदं भवेत् ।
हीनकालं तदेवेह फलं न लभते पुनः ॥
देशे काले च विक्रान्तं कल्याणाय विधीयते ॥ ३

पुङ्खसक्तानां सक्तपुङ्खानाम् ॥ ५ ॥ गार्ध्रवाजितैः गृध्रपक्ष-वाजो वेगः शब्दः पक्षो वा संजातो येषां तैः 'वाजो निःस्व-नपक्षयोः । वेगे पुमान्' इति मेदिनी ॥ ९ ॥ अक्षय्य-मितरैः अपाकर्तुमशक्यम् ॥ १० ॥ पुङ्खानां पुङ्खवतां शराणाम् ॥ ११ ॥ नतपर्वभिः समीकृतग्रन्थिप्रदेशैः ॥ १७ ॥ विपन्नानां श्रीशतानाम् ॥ २० ॥ धनं गोधनम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

४९

सदैवेति । अर्थानां गवादीनां प्रकृतिं प्राप्तकारणमनुबन्धं प्राप्तौ वा फलं न हि द्यूतमर्थप्राप्तेर्मुख्यं कारणं नापि ततः प्राप्तानामर्थानां परिणामे सुखकरत्वं चास्तीत्यभिसन्धिः ॥ १ ॥ माया इति । येषां शकुन्यादीनां मायाः कपटानि बहवो बहवः सन्ति तेषां दृष्ट्या युद्धं पापिष्ठं नाशकरत्वात् । न हीदानीमर्जुनो द्यूतेनेव मायामात्रेण जेतुं शक्य इति भावः । पाठान्तरे नयाः नीतयः सामाद्यास्तेषां मध्ये युद्धं पापिष्ठम् ॥ २ ॥ देशेति । इदानीं ग्रीष्मो न युद्धकालः श्रान्त्या जलाभावेन च सद्यो वाहनानां नाशा-पत्तेः । नापि देशो गिरिदुर्गाद्याश्रितोऽस्तीति भावः । इदं युद्धं फलं न लभते फलं न लम्भयेत् । परस्य तु देश-

आनुकूल्येन कार्याणामन्तरं संविधीयते ।
भारं हि रथकारस्य न व्यवस्यन्ति पण्डिताः ॥ ४
परिचिन्त्य तु पार्थेन संनिपातो न नः क्षमः ।
एकः कुरूनभ्यगच्छदेकश्चाग्निमतर्पयत् ॥ ५
एकश्च पञ्च वर्षाणि ब्रह्मचर्यमधारयत् ।
एकः सुभद्रामारोप्य द्वैरथे कृष्णमाह्वयत् ॥ ६
एकः किरातरूपेण स्थितं रुद्रमयोधयत् ।
अस्मिन्नेव वने पार्थो हृतां कृष्णामवाजयत् ॥ ७
एकश्च पञ्च वर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत ।
एकः सोऽयमरिं जित्वा कुरूणामकरोद्यशः ॥ ८
एको गन्धर्वराजानं चित्रसेनमरिन्दमः ।
विजिग्ये तरसा संख्ये सेनां प्राप्य सुदुर्जयाम् ॥ ९
तथा निवातकवचाः कालखञ्जाश्च दानवाः ।
दैवतैरप्यवध्यास्ते एकेन युधि पातिताः ॥ १०
एकेन हि त्वया कर्ण किं नामेह कृतं पुरा ।
एकैकेन यथा तेषां भूमिपाला वशे कृताः ॥ ११
इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति ।
यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्तव्यं तस्य भेषजम् ॥ १२
आशीविषस्य क्रुद्धस्य पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
अविमुच्य प्रदेशिन्या दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ १३
अथवा कुञ्जरं मत्तमेक एव चरन् वने ।
अनङ्कुशं समारुह्य नगरं गन्तुमिच्छसि ॥ १४
समिद्धं पावकं चैव घृतमेदोवसाहुतम् ।
घृताक्तश्चीरवासास्त्वं मध्येनोत्सर्तुमिच्छसि ॥ १५
आत्मानं कः समुद्बध्य कण्ठे बध्वा महाशिलाम् ।
समुद्रं तरते दोर्भ्यां तत्र किं नाम पौरुषम् ॥ १६
अकृतास्त्रः कृतास्त्रं वै बलवन्तं सुदुर्बलः ॥
तादृशं कर्ण यः पार्थं योद्धुमिच्छेत् स दुर्मतिः ॥ १७
अस्माभिर्ह्येष निकृतो वर्षाणीह त्रयोदश ॥
सिंहः पाशविनिर्मुक्तो न नः शेषं करिष्यति ॥ १८
एकान्ते पार्थमासीनं कूपेऽग्निमिव संवृतम् ।
अज्ञानादभ्यवस्कन्द्य प्राप्ताः स्मो भयमुत्तमम् ॥ १९
सह युध्यामहे पार्थमागतं युद्धदुर्मदम् ॥
सैन्यास्तिष्ठन्तु संनद्धा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ २०
द्रोणो दुर्योधनो भीष्मो भवान् द्रौणिस्तथा वयम् ।
सर्वे युध्यामहे पार्थं कर्ण मा साहसं कृथाः ॥ २१
वयं व्यवासितं पार्थं वज्रपाणिमिवोद्यतम् ।
षड्रथाः प्रतियुध्येम तिष्ठेम यदि संहताः ॥ २२
व्यूढानीकानि सैन्यानि यत्ताः परमधन्विनः ।
युध्यामहेऽर्जुनं संख्ये दानवा इव वासवम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे कृपवाक्यं नाम
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## ५०

अश्वत्थामोवाच ।

न च तावाज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः । न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वं च कर्ण विकत्थसे ॥ १

कालावनुकूलावेव वर्तेते इति भावः । विक्रान्तं पराक्रमः ॥ ३ ॥ देशादेरानुकूल्येन हेतुना कार्याणां युद्धादीनामन्तरं तादर्थ्यं फलवत्त्वमिति यावत् । संविधीयते सम्यक् क्रियते । ' अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये '- इति मेदिनी । मन्त्राणामिति पाठे देशाद्यानुकूल्येन कार्यं विचार्यमित्यर्थः । तत्राभाणकमाह-भारमिति । यथा रथकारेण दिव्योऽयं मया निर्मितो रथः सुदृढाङ्गोऽनेन त्वं देवानपि सर्वथा जेष्यसीत्युक्ते तद्वचसि भारं दत्वा देशकालानुकूल्यमनपेक्ष्यैव पण्डिता न व्यवस्यन्ति योद्धुमिति शेषः । एवं त्वद्वचसि भारं दत्वा देशाद्यानुकूल्यमनवेक्ष्य कथमस्माभिर्योद्धव्यं तव तु वचनं रथकारवचनवदर्थशून्यमिति भावः । 'सर्वानायुष्मतो भीतान् संत्रस्तानिव लक्षय' इति यत्कर्णेनोक्तं तस्यैतदुत्तरम् ॥ ४ ॥ विचारफलमाह-परिचिन्त्येति ॥ ५ ॥ प्रदेशिन्या तर्जन्या ॥ १३ ॥ मध्येन मध्यत उत्सर्तुमुत्सर्पितुम् ॥ १५ ॥ यत्तूक्तं 'कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलं । रथेषु वाऽपि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम 'इति तत्राह-षड्रथा इति । संहताः षडपि एकीभूय तेनैकेन योद्धुं कथंचिच्छक्ष्यामो न त्वेकैकश इति भावः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

**नचेति** । शूराः परवित्तं जित्वा परसीमामुल्लङ्घ्य स्वनगरं प्रति नीत्वाऽपि न श्लाघन्ते त्वं तु एतेषामेकतममप्यकृत्वा कत्थसेऽतो निर्लज्जोऽसीति भावः ॥ १ ॥

सङ्ग्रामांश्च बहूञ्जित्वा लब्ध्वा च विपुलं धनम् ।
विजित्य च परां सेनां नाहुः किंचन पौरुषम् ॥२
दहत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भाति दिवाकरः ।
तूष्णीं धारयते लोकान् वसुधा सचराचरान् ॥३
चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि विहितानि स्वयंभुवा ।
धनं यैरधिगन्तव्यं यच्च कुर्वन्न दुष्यति ॥ ४
अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत वा ।
क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेच्चैव न याजयेत् ॥ ५
वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत् ।
शूद्रः शुश्रूषणं कुर्यात्त्रिषु वर्णेषु नित्यशः ।
वन्दनायोगविधिभिर्वैतसीं वृत्तिमास्थितः ॥ ६
वर्तमाना यथाशास्त्रं प्राप्य चापि महीमिमाम् ।
सत्कुर्वन्ति महाभागा गुरून् सुविगुणानपि ॥ ७
प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति ।
तथा नृशंसरूपोऽयं धार्तराष्ट्रश्च निर्घृणः ॥ ८
तथाऽधिगम्य वित्तानि को विकत्थेद्विचक्षणः ।
निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन् वैतंसिको यथा ॥ ९
कतमं द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्धनञ्जयम् ।
नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हृतम् ॥ १०
युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमश्च बलिनां वरः ।
इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् सङ्ग्रामे निर्जितं पुरा ॥११
तथैव कतमद्युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता त्वया ।
एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन् रजस्वला ॥ १२
मूलमेषां महत्कृत्तं सारार्थी चन्दनं यथा ।
कर्म कारयिथाः सूत तत्र किं विदुरोऽब्रवीत् ॥१३

यदुक्तं 'नैते महाभये प्राप्ते संप्रष्टव्याः' इत्यादिना ब्राह्मणानां भोजनादावेव कौशलं न युद्धे इति तत्र तवापि वैश्यत्वान्न युद्धे सामर्थ्यमस्तीति दर्शयिष्यन् वर्णानां कर्माणि विभजते-चातुर्वर्ण्यस्येत्यादिना ॥४॥ वित्तान्यधिगम्य कृष्यादिनेति शेषः।ब्रह्मकर्माणि वेदोक्तकर्माणि आधानादीनि कारयेत्।स्वार्थे णिच् ॥६॥वर्तमाना इति। न्यायेन पृथिवीं जित्वाऽपि सन्तो विगुणानपि गुरून् सत्कुर्वन्ति त्वं त्वन्यायेन पाण्डवं जित्वा साधूनपि गुरून् निन्दसीति भावः॥७॥एतदेवाह-प्राप्येति । निर्घृणो निर्लज्जः ॥ ८ ॥ निकृत्या शाठ्येन वञ्चनायोगैः छद्मोपायैः वितंसो बन्धनोपायस्तेन जीवतीति वैतंसिको व्याधः ॥ ९ ॥ इन्द्रप्रस्थं तत्स्थाः पाण्डवाः ॥ ११ ॥ मूलमिति। एषां पाण्डवानां मूलं महत् महच्छब्दवाच्यं ब्रह्म श्रीकृष्णाख्यं वेदवाक्यं ब्राह्मणाश्च । यथोक्तमादिपर्वणि-'मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च' इति । तदेतद्वेदविरुद्ध-मनृतं द्यूतं कुर्वता धार्तराष्ट्रेण धर्मस्य मूलं कृत्तं छिन्नम्। इदानीं च ब्राह्मणानवजानता त्वयाऽपि तदेव कृतम्। अतो धर्मनाशाद्भवतां नाशोऽवश्यं भावीत्यर्थः। मूलं कीदृशं चन्दनं यथा शान्तं शीतलं न तु दाहकं क्रोधरूपं तथा च दुर्योधनः केवलं क्रोधमय इत्युक्तं प्राक् । 'दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः' इति । सारार्थी कर्म कारयिथा इति व्यवहितेन संबन्धः । सारार्थी धनार्थी । 'धने च सारम्'इति मेदिनी । पाण्डवान् कर्मकारानिव कृतवानसि यत्र काले तत्र तदा विदुरः किमब्रवीत् । क्षयमूलं द्यूतमिति, तदिदानीं स्मरेति भावः। सूतेति संबोधयन्नक्षत्रियत्वादस्य युद्धेष्वकौशलं व्यनक्ति। 'नन्वादित्यो वै दैवं क्षत्रम्' इति श्रुतेर्दिव्यात् क्षत्रात् कुन्त्यां जातस्यास्य कथमक्षत्रत्वं युद्धाकौशलं चेति विदुषाऽप्यश्वत्थाम्ना वक्तुं युक्तमिति चेत् शृणु। सर्वेषां हि वर्णानां द्विविधं जन्म योनिजं संस्कारजं च । तत्र य एव योनिः स एव संस्कर्ता चेत्स एकजो न प्रकृतितश्च्यवते। कर्णस्तु दैवक्षत्रजोऽप्यक्षत्रियेण सूतेन संस्कृत इति द्विजातत्वात् क्षत्रियत्वेन प्रहर्तुं कुशलोऽपि सूतत्वेन परकीयप्रहारं सोढुमशक्त इति युद्धात्पलायते इत्याशयेनैनं सूर्यपुत्रं जानन्नपि सूतेति संबोधयति ।तथा च मन्त्रवर्णः-'सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्। उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम्। इति। अस्यार्थः-तापसो मन्युर्ऋषिः संकल्पाधिष्ठात्रीं देवतां मन्युसंज्ञां प्रार्थयते त्वया मन्यो इति सूक्ते तृतीयेयमृक्। यस्ते मन्याविति मध्यंदिन इति माध्यंदिने सवने श्येनयागे शत्रुमारणार्थेऽस्य सूक्तस्य विनियोगः हे मन्यो अस्मै शरणागताय राज्याय वा एतद्रक्षणार्थमिति यावत्। अभिमातिं सर्वतःपीडां पित्रादिभिः सह विरोधं ज्ञातिवधदोषं वा सहस्व क्षमस्व। कथं तेषां रक्षणं स्यादत आह-रुजन्रोगं प्राप्नुवन् मृणन् म्रियमाणो जराग्रस्त इत्यर्थः। प्रमृणन् अत्यन्तमासन्नमृत्युर्वा शत्रून् प्रेहि प्रकर्षेण जेतुं गच्छ । अत्र शरीरगतं रोगादि तदभिमानिनि चेतसि उपचर्यते। नन्वशक्तेन रोगाद्याक्रान्तेन मया कथं शत्रवो जेतुं शक्या इत्याशङ्क्याह-उग्रमिति । उग्रं परमर्दनक्षमं ते तव पाजस्तेजो ननु निश्चितम् आरुरुध्रे आरोढुं शत्रून् समर्थमस्ति। दृष्टसंकल्पस्य हि तेजः परानवश्यं नाशयेदेवेत्यर्थः। एतदेवाह-वशी सर्वमस्य वशेऽस्तीति वशी। संकल्पदार्ढ्यादेव ह्यगस्त्यादिभिः समुद्रपानादान्यपि कृतानि । अत एव सर्वं जगत् त्वमेव वशं नयसे। वशित्वे हेतुः-हे एकज एकस्माज्जात नन्वेकमेव । मनः संकल्पस्योपादानमिति भ्यर्थं

यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे ।
अन्येषामपि सत्त्वानामपि कीटपिपीलिकैः ।
द्रौपद्याः संपरिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति ॥ १४
क्षयाय धार्तराष्ट्राणां प्रादुर्भूतो धनञ्जयः ।
त्वं पुनः पण्डितो भूत्वा वाचं वक्तुमिहेच्छसि१५
वैरान्तकरणो जिष्णुर्न नः शेषं करिष्यति ॥ १६
नैष देवान् न गन्धर्वान् न सुरान् न च राक्षसान् ।
भयादिह न युध्येत कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १७
यं यमेषोऽतिसंक्रुद्धः सङ्ग्रामे निपतिष्यति ।
वृक्षं गरुत्मान् वेगेन विनिहत्य तमेष्यति ॥ १८
त्वत्तो विशिष्टं वीर्येण धनुष्यमरराट्समम् ।
वासुदेवसमं युद्धे तं पार्थं को न पूजयेत् ॥ १९
दैवं दैवेन युध्येत मानुषेण च मानुषम् ।
अस्त्रं ह्यस्त्रेण यो हन्यात् कोऽर्जुनेन समः पुमान्॥
पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः ।
एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः ॥२१
यथा त्वमकरोर्द्यूतमिन्द्रप्रस्थं यथाऽहरः ।
यथाऽऽनैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम्
अयं ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्मस्य कोविदः ।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह ॥ २३
नाक्षान् क्षिपति गाण्डीवं न कृतं द्वापरं न च ।
ज्वलतो निशितान्बाणांस्तीक्ष्णान्क्षिपति गाण्डिव
न हि गाण्डीवनिर्मुक्ता गार्ध्रपक्षाः सुतेजनाः ।
नान्तरेष्ववतिष्ठन्ते गिरीणामपि दारणाः ॥ २५
अन्तकः पवनो मृत्युस्तथाऽग्निर्वडवामुखः ।
कुर्युरेते क्वचिच्छेषं न तु क्रुद्धो धनञ्जयः ॥ २६
यथा सभायां द्यूतं त्वं मातुलेन सहाकरोः ।
तथा युध्यस्व सङ्ग्रामे सौबलेन सुरक्षितः ॥ २७
युध्यन्तां कामतो योधा नाहं योत्स्ये धनञ्जयम्
मत्स्यो ह्यस्माभिरायोध्यो यद्यागच्छेद्गवां पदम् ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे द्रौणिवाक्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

भीष्म उवाच ।
साधु पश्यति वै द्रौणिः कृपः साध्वनुपश्यति ।
कर्णस्तु क्षत्रधर्मेण केवलं योद्धुमिच्छति ॥
आचार्यो नाभिवक्तव्यः पुरुषेण विजानता ।
देशकालौ तु संप्रेक्ष्य योद्धव्यमिति मे मतिः ॥ २

विशेषणमिति चेन्न कुण्डस्याव्यावृत्त्यर्थत्वात् । स ह्यन्येन जातोऽन्येन च आत्मीयबुद्ध्या संस्कृत इति न दृढसंकल्पो भवति । न च परांस्त्रातुं शक्नोति द्विजत्वात् । तथाच लोके आभाणकः–यस्य द्वे वचने सद्विपितृक इति वक्तारो भवन्ति । अत एकजेत्यर्थवद्वचनम् । दत्तक्रीतादौ तु शास्त्रीयमेकस्यैव स्वत्वमस्तीति नासौ कुण्डतुल्य इति दिक्॥१३॥ ननु मम सूतत्वाद्दोषवत्वं चेत् सुजाता अपि ते कुतो न शाम्यन्ति कुतो वा परसाहाय्यार्थमस्मान्योद्धुमागता वालिवधे राम इवेत्याशङ्क्याह यथाशक्तीति द्वाभ्याम् । पिपीलिकैरपि कृतं शमं लक्षयामहे इति योज्यम् । वालिरामयोर्विरोधाभावेऽपि रामेण वाली हत इति सोऽपराधी । पाण्डवास्तु युष्माभिरपकृता इति युष्मान् जिघांसन्तो नापराध्यन्तीति भावः।१४। नैव न युध्येत अपि तु युध्येतैवेत्यर्थः ॥ १७ ॥ एष्यति गमिष्यति ॥ १८ ॥ देवेन देवयोग्येन युध्येत ॥ २० ॥ अहरः हृतवानसि आनैषीः आनीतवानसि । यथा उत्साहपूर्वकमेतत् कर्म त्वया कृतं तथैवेदानीमपरावृत्तो युध्यस्वेत्यर्थः ॥२२॥ न चेति चकारात् त्रेताऽपि न भवतीत्यध्याहार्यम् । अयमर्थः—क्रमेण एकाद्वित्रिचतुरङ्काङ्कितप्रदेशैरङ्कचतुष्टयवान् पाशो भवति । तत्र एकाङ्कः कलिः। द्व्यङ्को द्वापरः । त्र्यङ्कस्त्रेता । चतुरङ्कः कृतं तत्र द्यूते पञ्च स्वीयाः पञ्च परकीयाश्च दीनारादयः स्थाप्यन्ते तादिनः पाशप्रक्षेपे यद्येकाङ्क उपर्यायाति तर्हि स्वीयेष्वेक एव जितो भवति । यदि द्वौ तदा परकीयं दीनारद्वयं स्वीयश्चैको जितः।यदि त्र्यङ्क उपरि पतेत् तदा परकीयं त्रयं स्वीयं च त्रयं जितम् । चतुरङ्कस्योपरिपतने सर्वेऽपि स्वीयाः परकीयाश्च जिता भवन्ति । तथा च कलिपाते जयो नास्ति । द्वापरादिपाते उत्तरोत्तरवृद्ध्या जयोऽस्ति । तेन गाण्डीवस्थाः शराः सर्वथा न जयावहा इत्यर्थः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

५१

साध्विति ॥ १ ॥

यस्य सूर्यसमाः पञ्च सपत्नाः स्युः प्रहारिणः ।
कथमभ्युदये तेषां न प्रमुह्येत पण्डितः ॥ ३
स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः ।
तस्माद्राजन् ब्रवीम्येष वाक्यं ते यदि रोचते ॥ ४
कर्णो हि यदवोचत् त्वां तेजः संजननाय तत् ।
आचार्यपुत्रः क्षमतां महत् कार्यमुपस्थितम् ॥ ५
नायं कालो विरोधस्य कौन्तेये समुपस्थिते ।
क्षन्तव्यं भवता सर्वमाचार्येण कृपेण च ॥ ६
भवतां हि कृतास्त्रत्वं यथाऽऽदित्ये प्रभा तथा ।
यथा चन्द्रमसो लक्ष्मीः सर्वथा नापकृष्यते ॥ ७
एवं भवत्सु ब्राह्मण्यं ब्रह्मास्त्रं च प्रतिष्ठितम् ।
चत्वार एकतो वेदाः क्षात्रमेकत्र दृश्यते ॥ ८
नैतत् समस्तमुभयं कस्मिंश्चिदनुशुश्रुम ।
अन्यत्र भारताचार्यात् सपुत्रादिति मे मतिः ॥ ९
वेदान्ताश्च पुराणानि इतिहासं पुरातनम् ।
जामदग्न्यमृते राजन् को द्रोणादधिको भवेत् ॥
ब्रह्मास्त्रं चैव वेदाश्च नैतदन्यत्र दृश्यते ।
आचार्यपुत्रः क्षमतां नायं कालो विभेदने ॥ ११
सर्वे संहत्य युध्यामः पाकशासनिमागतम् ॥ १२
बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः ।
मुख्यो भेदो हि तेषां तु पापिष्ठो विदुषां मतः ॥

अश्वत्थामोवाच ।

नैव न्याय्यमिदं वाच्यमस्माकं पुरुषर्षभ ।
किं तु रोषपरीतेन गुरुणा भाषिता गुणाः ॥ १४
शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि ।
सर्वथा सर्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत् ॥ १५

दुर्योधन उवाच ।

आचार्य एव क्षमतां शान्तिरत्र विधीयताम् ।
अभिद्यमाने तु गुरौ तद्वृत्तं रोषकारितम् ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

ततो दुर्योधनो द्रोणं क्षमयामास भारत ।
सह कर्णेन भीष्मेण कृपेण च महात्मना ॥ १७

द्रोण उवाच ।

यदेतत् प्रथमं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।
तेनैवाहं प्रसन्नो वै नीतिरत्र विधीयताम् ॥ १८
यथा दुर्योधनं पार्थो नोपसर्पति सङ्गरे ।
साहसाद्यदि वा मोहात् तथा नीतिर्विधीयताम्
वनवासे ह्यनिर्वृत्ते दर्शयेन्न धनञ्जयः ।
धनं चालभमानोऽत्र नाद्य तत् क्षन्तुमर्हति ॥२०
यथा नायं समायुञ्ज्याद्धार्तराष्ट्रान् कथञ्चन ।
न च सेना पराजय्यात् तथा नीतिर्विधीयताम् ॥
उक्तं दुर्योधनेनापि पुरस्ताद्वाक्यमीदृशम् ।
तदनुस्मृत्य गाङ्गेय यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रोणवाक्ये
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

---

यस्य दुर्योधनस्य पञ्च पाण्डवाः ॥ ३ ॥ यत् अवोचदाचार्यस्य निन्दारूपं तत् तस्यैव तेजःसंजननायैव न तु द्वेषात् ॥ ५ ॥ बलस्य सैन्यस्य व्यसनानि विनाशकानि ॥ १३ ॥ नैवेति । अस्माकमिदं न्याय्यं वचनं त्वया नैव वाच्यं नैव निन्द्यम् । रोषेण दुर्द्यूतादिदर्शनजेन परीतस्तेन गुरुणा द्रोणेन । गुणा अर्जुनस्य ॥ १४ ॥ हितं बलवता सह निर्बलैर्भवद्भिर्विचार्य योद्धव्यमित्येवंरूपम् ॥ १५ ॥ आचार्य इति । रोषादेतद्वचनमाचार्येणोक्तं न तु भेदार्थमिति भावः। पाठान्तरे अभिषद्यमाणे अभिमृष्यमाणे उपालभ्यमाने इति यावत्। शेषकारितं शेषं कर्तव्यं कारणीयं च तत् सर्वं न कृतं स्यात् । प्रस्तुतकार्यनाशो भवेदित्यर्थः ॥ १६ ॥ प्रथमं मुख्यं भेदो न कार्यः क्षन्तव्यं चेति यदुक्तं तेनैवाहं वाक्येन प्रसन्नोऽस्मि ॥ १८ ॥ धनं चेति । धनं लब्ध्वा अस्मानुपेक्ष्य गृहं गमिष्यति गोधनं अत्यन्तं दूरतोऽन्यैर्नीतं युध्यतामस्माकमन्तमेवायं करिष्यतीति भावः ॥ २० ॥ समायुञ्ज्यात् संप्राप्नुयात् पराजय्यात् पराजयं प्राप्नुयात् ॥ २१ ॥ पुरस्ताद्वाक्यमुक्तम् । अज्ञातवासकालः पूर्णो न वेति प्रथमं विचार्यमित्येवंरूपम् ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

# ५२

भीष्म उवाच ।

कलाः काष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्ताश्च दिनानि च ।
अर्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ १
ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि ।
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्तते ॥ २
तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात् ।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३
एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः ।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४
सर्वं यथावच्चरितं यद्यदेभिः प्रतिश्रुतम् ।
एवमेतद्ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥ ५
सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ।
येषां युधिष्ठिरो राजा कस्माद्धर्मेऽपराध्नुयुः ॥ ६
अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम् ।
न चापि केवलं राज्यमिच्छेयुस्तेऽनुपायतः ॥ ७
तदैव ते हि विक्रान्तुमीषुः कौरवनन्दनाः ।
धर्मपाशनिबद्धास्तु न चेलुः क्षत्रियव्रतात् ॥ ८
यश्चानृत इति ख्यायाद्यः स गच्छेत् पराभवम् ।
वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथंचन ॥ ९
प्राप्तकाले तु प्राप्तव्यं नोत्सृजेयुर्नरर्षभाः ।
अपि वज्रभृता गुप्तं तथावीर्या हि पाण्डवाः ॥ १०
प्रतियुध्येम समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
तस्माद्यदत्र कल्याणं लोके सद्भिरनुष्ठितम् ॥
तत् संविधीयतां शीघ्रम्
मा वो ह्यर्थोऽभ्यगात् परम् ॥ ११
न हि पश्यामि सङ्ग्रामे कदाचिदपि कौरव ।
एकान्तसिद्धिं राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनंजयः ॥ १२
संप्रवृत्ते तु सङ्ग्रामे भावाभावौ जयाजयौ ।
अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयम् ॥ १३
तस्माद्युद्धोचितं कर्म कर्म वा धर्मसंहितम् ।
क्रियतामाशु राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनञ्जयः ॥ १४

दुर्योधन उवाच ।

नाहं राज्यं प्रदास्यामि पाण्डवानां पितामह ॥
युद्धोपचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं प्रविधीयताम् ॥ १५

भीष्म उवाच ।

अत्र या मामिका बुद्धिः श्रूयतां यदि रोचते ।
सर्वथा हि मया श्रेयो वक्तव्यं कुरुनन्दन ॥ १६
क्षिप्रं बलचतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति ।
ततोऽपरश्चतुर्भागो गाः समादाय गच्छतु ॥ १७
वयं चार्धेन सैन्यस्य प्रतियोत्स्याम पाण्डवम् ।
अहं द्रोणश्च कर्णश्च अश्वत्थामा कृपस्तथा ॥
प्रतियोत्स्याम बीभत्सुमागतं कृतनिश्चयम् ॥ १८
मत्स्यं वा पुनरायातमागतं वा शतक्रतुम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ १९

५२

**कलाः काष्ठाश्चेति**॥१॥अत्र चतुर्विंशत्या पक्षैश्चान्द्रः संवत्सरः चतुष्पञ्चाशदधिकशतत्रयदिनात्मकः षष्ठ्यधिकशतत्रयदिनात्मा सावनः स एव द्वादशवार्षिकादिप्रतिज्ञासु गवामयनादिसत्रादिषु च उपयुज्यते । त्रीणि शतानि पञ्चषष्टिश्च दिनानि पञ्चदशघटिका एकत्रिंशत् पलानि त्रिंशदक्षराणि सौरस्य संवत्सरस्य मानम्। तत्र प्रायेण ज्योतिर्विदः सौरसंवत्सरानुरोधेनैव वर्षप्रवेशादिकं कुर्वन्ति । स्मार्ते वर्धापनादौ तु चान्द्रेणेति विशेषे सत्यपि यदा एतयोरान्तरालिकः सावनाब्दो गण्यते तदा .. रगता वृद्धिस्तत्र गण्यते एवं गणनायां क्रियमाणायां त्रयोदशस्वब्देषु पञ्च चान्द्रा मासाः द्वे दिने सप्तत्रिंशन्नाड्यः पञ्चचत्वारिंशत् पलानि पञ्चदशाक्षराणि च तथा च किंचिदधिकानि नवदिनान्यवधिपूर्तेरधिकानि जातानि ज्योतिषां नक्षत्राणां व्यतिक्रमात् सूर्येण चन्द्रेण च लङ्घनात् उपजायतः अधिकौ भवतः ॥ ३ ॥ अत्र तु अर्धमासाश्च मासाश्च युज्यन्त इति ग्रहणात् त्रयोदशानां वर्षाणां चान्द्रमासाः षट्पञ्चाशदधिकं शतं भवन्तीति त एव गृहीता इति ज्ञेयम् । तथा च विजयदशम्यां द्यूते पाण्डवपराजयः । लोके तस्यैव प्रायेण द्यूतकालत्वात् । ग्रीष्मे च गोग्रहार्थं प्रवृत्ता इत्युक्तम्। तेन विजयदशम्यामागामिन्यां त्रयोदशाब्दपूरणं भविष्यतीति दुर्योधनप्रत्याशा। पाण्डवास्तु चान्द्राब्दमानेन त्रयोदशवत्सरानतिवाह्य कृतकृत्या अभूवन् । तत्र विजयदशमीतः पूर्वं पञ्चमासाः द्वादश दिनानि प्रकटीभवितव्यम् । तत्र दर्शान्तमासे चैत्रकृष्णसप्तम्यामाविर्भूताः प्रतिज्ञां निस्तीर्यैव कानिचिदधिकान्यपि दिनानि अतिवाह्य आविर्भूता इत्यर्थः ॥ ४ ॥ यच्च यदि च पाण्डवमनृतोऽयमर्जुन इति ख्यायात् कथयेत् स पराभवं गच्छेत् ॥ ९ ॥ धर्मसंहितं कर्म अयुद्धेन एतैः सह ऐक्यं गत्वा राज्यप्रदानम् ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

तद्वाक्यं रुरुचे तेषां भीष्मेणोक्तं महात्मना ।
तथा हि कृतवान् राजा कौरवाणामनन्तरम्॥२०
भीष्मः प्रस्थाप्य राजानं गोधनं तदनन्तरम् ।
सेनामुख्यान् व्यवस्थाप्य व्यूहितुं संप्रचक्रमे॥ २१

भीष्म उवाच ।

आचार्य मध्ये तिष्ठ त्वमश्वत्थामा तु सव्यतः ।
कृपः शारद्वतो धीमान् पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम्॥२२
अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठतु दंशितः ।
अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चात् स्थास्यामि पालयन्॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि भीष्मसैन्यव्यूहे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

वैशम्पायन उवाच ।

तथा व्यूढेष्वनीकेषु कौरवेयेषु भारत ।
उपायादर्जुनस्तूर्णं रथघोषेण नादयन् ॥ १
ददृशुस्ते ध्वजाग्रं वै शुश्रुवुश्च महास्वनम् ।
दोधूयमानस्य भृशं गाण्डीवस्य च निःस्वनम्॥२
ततस्तु सर्वमालोक्य द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
महारथमनुप्राप्तं दृष्ट्वा गाण्डीवधन्विनम् ॥ ३

द्रोण उवाच ।

एतत् ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः संप्रकाशते ।
एष घोषः स रथजो रोरवीति च वानरः ॥ ४
एष तिष्ठन् रथश्रेष्ठे रथे च रथिनां वरः ।
उत्कर्षति धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमशनिस्वनम् ॥ ५
इमौ च बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ ।
अपरौ चाप्यतिक्रान्तौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ॥६
निरुष्य हि वने वासं कृत्वा कर्मातिमानुषम् ।
अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति ॥ ७
चिरदृष्टोऽयमस्माभिः प्रज्ञावान् बान्धवप्रियः ।
अतीव ज्वलितो लक्ष्म्या पाण्डुपुत्रो धनंजयः ॥८
रथी शरी चारुतली निषङ्गी
शङ्खी पताकी कवची किरीटी ॥
खड्गी च धन्वी च विभाति पार्थः
शिखी वृतः स्रुग्भिरिवाज्यसिक्तः ॥ ९

अर्जुन उवाच ।

इषुपाते च सेनाया हयान् संयच्छ सारथे ॥
यावत् समीक्षे सैन्येऽस्मिन् क्वासौ कुरुकुलाधमः
सर्वानेताननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥
तस्य मूर्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः॥ ११
एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरम् ।
भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वासाः समागताः॥१२
राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति ।
दक्षिणं मार्गमास्थाय शङ्के जीवपरायणः ॥ १३ ॥
उत्सृज्यैतद्रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः ।
तत्रैव योत्स्ये वैराटे नास्ति युद्धं निरामिषम् ।
तं जित्वा विनिवर्तिष्ये गाः समादाय वै पुनः ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तः स वैराटिर्हयान् संयम्य यत्नतः ।
नियम्य च ततो रश्मीन् यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ।
अचोदयत् ततो वाहान् यत्र दुर्योधनो गतः॥ १५
उत्सृज्य रथवंशं तु प्रयाते श्वेतवाहने ।
अभिप्रायं विदित्वा च कृपो वचनमब्रवीत्॥ १६
नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति ।
तस्य पार्ष्णिं ग्रहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः१७
न ह्येनमतिसंक्रुद्धमेको युध्येत संयुगे ।
अन्यो देवात् सहस्राक्षात् कृष्णाद्वा देवकीसुतात्
आचार्याच्च सपुत्राद्वा भारद्वाजान्महारथात्॥१८

अनन्तरम् अविलम्बितम् ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३

तथेति ॥१॥ मे मम कर्णौ संस्पृश्य अतिक्रान्तौ ॥६॥ चारुतलं हस्तावापश्चारुतलं तद्वान् चारुतली स्रुग्भिः जुहूप्रभृतिभिः ॥ ९ ॥ इषुपाते इषुपातप्रमिते देशे असौ दुर्योधनः ॥ १० ॥ महेष्वासाः महनीयधनुषः ॥ १२ ॥ रथवंशं रथसमूहम् ॥ १६ ॥

किं नो गावः करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा ।
दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति ॥ १९
तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः ।
शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत् ॥ २०
कीर्यमाणाः शरौघैस्तु योधास्ते पार्थचोदितैः ।
नापश्यन्नावृतां भूमिं नान्तरिक्षं च पत्रिभिः २१
तेषामापततां युद्धे नापयानेऽभवन्मतिः ।
शीघ्रत्वमेव पार्थस्य पूजयन्ति स्म चेतसा ॥ २२
ततः शङ्खं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम् ।
विस्फार्य च धनुःश्रेष्ठं ध्वजे भूतान्यचोदयत् २३
तस्य शङ्खस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत ॥ २४
अमानुषाणां भूतानां तेषां च ध्वजवासिनाम् ।
ऊर्ध्वं पुच्छान् विधुन्वाना रेभमाणाः समन्ततः ।
गावः प्रतिन्यवर्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम् २५

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे गोनिवर्तने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

वैशम्पायन उवाच ।
स शत्रुसेनां तरसा प्रणुद्य
गास्ता विजित्याथ धनुर्धराग्र्यः ।
दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातो
भूयो रणं सोऽभिचिकीर्षमाणः ॥ १
गोषु प्रयातासु जवेन मत्स्यान्
किरीटिनं कृतकार्यं च मत्वा ।
दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातं
कुरुप्रवीराः सहसा निपेतुः ॥ २
तेषामनीकानि बहूनि गाढं
व्यूढानि दृष्ट्वा बहुलध्वजानि ।
मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता
वैराटिमामन्त्र्य ततोऽभ्युवाच ॥ ३
एतेन तूर्णं प्रतिपादयेमान्
श्वेतान् हयान् काञ्चनरश्मियोक्त्रान् ।
जवेन सर्वेण कुरु प्रयत्न-
मासादयेऽहं कुरुसिंहवृन्दम् ॥ ४
गजो गजेनेव मया दुरात्मा
योद्धुं समाकाङ्क्षति सूतपुत्रः ।
तमेव मां प्रापय राजपुत्र
दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ॥ ५
स तैर्हयैर्वातजवैर्बृहद्भिः
पुत्रो विराटस्य सुवर्णकक्षैः ।
व्यध्वंसयत् तद्रथिनामनीकं
ततोऽवहत् पाण्डवमाजिमध्ये ॥ ६
तं चित्रसेनो विशिखैर्विपाठैः
सङ्ग्रामजिच्छत्रुसहो जयश्च ।
प्रत्युद्ययुर्भारतमापतन्तं
महारथाः कर्णमभीप्समानाः ॥ ७
ततः स तेषां पुरुषप्रवीरः
शरासनार्चिः शरवेगतापः ।
व्रातं रथानामदहत् समन्यु-
र्वनं यथाग्निः कुरुपुङ्गवानाम् ॥ ८
तस्मिंस्तु युद्धे तुमुले प्रवृत्ते
पार्थं विकर्णोऽतिरथं रथेन ।
विपाठवर्षेण कुरुप्रवीरो
भीमेन भीमानुजमाससाद ॥ ९

---

आवृतां भूमिं नापश्यन्निति न अपि तु शरैरावृतामेवापश्यन् ॥ २१ ॥ रेभमाणाः हम्बारवं कुर्वाणाः ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३ ॥

५४

स इति ॥ १ ॥ एतेन पथा काञ्चनमया रश्मयो रज्जवस्ता एव योक्त्राणि बन्धनानि येषां तान् कुरुसिंहस्य दुर्योधनस्य वृन्दं मुख्यम् । वृहि वृद्धौ अस्मात् कप्रत्यये हस्य दः ॥ ४ ॥ सुवर्णकक्षैः स्वर्णमयौ कक्षौ पल्याणस्य पश्चादुज्ज्वलपल्लवौ येषां तैः ' कक्षः स्यादन्तरीयस्य पश्चादुज्ज्वलपल्लवे ' इति मेदिनी ॥ ६ ॥ अभीप्समानाः कर्णं जीवन्तमिच्छन्तः ॥ ७ ॥ व्रातं समूहम् ॥ ८ ॥ विपाठः स्थूलदण्डो बाणः ॥ ९ ॥

ततो विकर्णस्य धनुर्विकृष्य
जाम्बूनदाग्र्योपचितं दृढज्यम् ।
अपातयत् तं ध्वजमस्य मथ्य
छिन्नध्वजः सोऽप्यपयाज्जवेन ॥ १०

तं शात्रवाणां गणबाधितारं
कर्माणि कुर्वन्तममानुषाणि
शत्रुंतपः पार्थममृष्यमाणः
समार्दयच्छरवर्षेण पार्थम् ॥ ११

स तेन राज्ञाऽतिरथेन विद्धो
विगाहमानो ध्वजिनीं कुरूणाम् ।
शत्रुंतपं पञ्चभिराशु विद्ध्वा
ततोऽस्य सूतं दशभिर्जघान ॥ १२

ततः स विद्धो भरतर्षभेण
बाणेन गात्रावरणातिगेन ।
गतासुराजौ निपपात भूमौ
नगो नगाग्रादिव वातरुग्णः ॥ १३

नरर्षभास्तेन नरर्षभेण
वीरा रणे वीरतरेण भग्नाः ।
चकम्पिरे वातवशेन काले
प्रकम्पितानीव महावनानि ॥ १४

हतास्तु पार्थेन नरप्रवीरा
गतासवोर्व्यां सुषुपुः सुवेषाः ।
वसुप्रदा वासवतुल्यवीर्याः
पराजिता वासवजेन संख्ये ॥ १५

सुवर्णकार्ष्णायसवर्मनद्धा
नागा यथा हैमवताः प्रवृद्धाः ।
तथा स शत्रून् समरे विनिघ्नन्
गाण्डीवधन्वा पुरुषप्रवीरः ॥ १६

चचार संख्ये विदिशो दिशश्च
दहन्निवाग्निर्वनमातपान्ते ।
प्रकीर्णपर्णानि यथा वसन्ते
विशातयित्वा पवनोऽम्बुदांश्च ॥ १७

तथा सपत्नान् विकिरन् किरीटी
चचार संख्येऽतिरथो रथेन ।
शोणाश्ववाहस्य हयान् निहत्य
वैकर्तनभ्रातुरदीनसत्त्वः ।
एकेन सङ्ग्रामजितः शरेण
शिरो जहाराथ किरीटमाली ॥ १८

तस्मिन् हते भ्रातरि सूतपुत्रो
वैकर्तनो वीर्यमथाददानः ।
प्रगृह्य दन्ताविव नागराजो
महर्षभं व्याघ्र इवाभ्यधावत् ॥ १९

स पाण्डवं द्वादशभिः पृषत्कै-
र्वैकर्तनः शीघ्रमथो जघान ।
विव्याध गात्रेषु हयांश्च सर्वान्
विराटपुत्रं च करे निजघ्ने ॥ २०

तमापतन्तं सहसा किरीटी
वैकर्तनं वै तरसाऽभिपत्य ।
प्रगृह्य वेगं न्यपतज्जवेन
नागं गरुत्मानिव चित्रपक्षः ॥ २१

तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां
महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ।
कर्णस्य पार्थस्य निशम्य युद्धं
दिदृक्षमाणाः कुरवोऽभितस्थुः ॥ २२

स पाण्डवस्तूर्णमुदीर्णकोपः
कृतागसं कर्णमुदीक्ष्य हर्षात् ।
क्षणेन साश्वं सरथं ससारथि-
मन्तर्दधे घोरशरौघवृष्ट्या ॥ २३

ततः सुविद्धाः सरथाः सनागा
योधा विनेदुर्भरतर्षभाणाम् ।
अन्तर्हिता भीष्ममुखाः सहाश्वाः
किरीटिना कीर्णरथाः पृषत्कैः ॥ २४

---

विकृष्य विलिख्य छित्वेत्यर्थः अस्य तं प्रसिद्धं ध्वजं च मथ्य उन्मथ्यापातयत् अपयात् अपायात् ॥ १० ॥ गणस्य बाधितारं तेजोहरं शत्रुंतपनामा ॥ ११ ॥ नगो वृक्षः नगाग्रात् पर्वताग्रात् । 'शैलवृक्षौ नगावगौ' इत्यमरः ॥ १३ ॥ गतासवः उर्व्यामिति छेदः संधिरार्षः ॥ १५ ॥ आतपान्ते घर्मस्वरूपे निदाघे । 'अन्तः स्वरूपे नाशे ना' इति मेदिनी ॥१७॥ शोणाश्वाः वाहे वाहके रथे यस्य तस्य ॥ १८ ॥ आददान आदातुमिच्छन् प्रगृह्य आग्रहेण दन्ताविव पर्वतशिखरतुल्यौ अर्जुनोत्तरौ प्रति अभ्यधावत् । 'दन्तः सानुनि कथ्यते' इति विश्वः 'दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे' इति मेदिनी ॥ १९ ॥ वेगं प्रगृह्य स्वीकृत्य ॥ २१ ॥ निशम्य युद्धादुपरम्य दिदृक्षमाणास्तस्थुः ॥ २२ ॥ कर्णस्यान्तर्धानानन्तरमितरेऽपि शरैरन्तर्हिताः कृताः ॥ २४ ॥

स चापि तानर्जुनबाहुमुक्तान्
शरान् शरौघैः प्रतिहत्य वीरः ।
तस्थौ महात्मा सधनुः सबाणः
सविस्फुलिङ्गोऽग्निरिवाशु कर्णः ॥ २५

ततस्त्वभूद्वै तलतालशब्दः
सशङ्खभेरीपणवप्रणादः ।
प्रक्ष्वेडितज्यातलनिःस्वनं तं
वैकर्तनं पूजयतां कुरूणाम् ॥ २६

उद्धूतलाङ्गूलमहापताक-
ध्वजोत्तमांसाकुलभीषणान्तम् ।
गाण्डीवनिर्ह्रादकृतप्रणादं
किरीटिनं प्रेक्ष्य ननाद कर्णः ॥ २७

स चापि वैकर्तनमर्दयित्वा
साश्वं ससूतं सरथं पृषत्कैः ।
तमाववर्ष प्रसभं किरीटी
पितामहं द्रोणकृपौ च दृष्ट्वा ॥ २८

स चापि पार्थं बहुभिः पृषत्कै-
र्वैकर्तनो मेघ इवाभ्यवर्षत् ।
तथैव कर्णं च किरीटमाली
संछादयामास शितैः पृषत्कैः ॥ २९

तयोः सुतीक्ष्णान् सृजतोः शरौघान्
महाशरौघास्त्रविवर्धने रणे ।
रथे विलग्नाविव चन्द्रसूर्यौ
घनान्तरेणानुददर्श लोकः ॥ ३०

अथाशुकारी चतुरो हयांश्च
विव्याध कर्णो निशितैः किरीटिनः ।
त्रिभिश्च यन्तारममृष्यमाणो
विव्याध तूर्णं त्रिभिरस्य केतुम् ॥ ३१

ततोऽभिविद्धः समरावमर्दी
प्रबोधितः सिंह इव प्रसुप्तः ।
गाण्डीवधन्वा ऋषभः कुरूणा-
मजिह्मगैः कर्णमियाय जिष्णुः ॥ ३२

शरास्त्रवृष्ट्या निहतो महात्मा
प्रादुश्चकारातिमनुष्यकर्म ।
प्राच्छादयत् कर्णरथं पृषत्कै-
र्लोकानिमान् सूर्य इवांशुजालैः ॥ ३३

स हस्तिनेवाभिहतो गजेन्द्रः
प्रगृह्य भल्लान् निशितान् निषङ्गात् ।
आकर्णपूर्णं च धनुर्विकृष्य
विव्याध गात्रेष्वथ सूतपुत्रम् ॥ ३४

अथास्य बाहूरुशिरोललाटं
ग्रीवां वराङ्गानि परावमर्दी ।
शितैश्च बाणैर्युधि निर्बिभेद
गाण्डीवमुक्तैरशनिप्रकाशैः ॥ ३५

स पार्थमुक्तैरिषुभिः प्रणुन्नो
गजो गजेनेव जितस्तरस्वी ।
विहाय सङ्ग्रामशिरः प्रयातो
वैकर्तनः पाण्डवबाणतप्तः ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे कर्णापयाने
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

---

प्रक्ष्वेडितो मुक्तो ज्यातलयोर्निःस्वनो येन तं पूजयतां तलतालशब्दः तलेन चपेटया तालः करास्फालनं तज्जः शब्दोऽभूत् । 'तलश्चपेटे तालद्रौ' 'तालः करास्फाले' इति च मेदिनी ॥ २६ ॥ उद्धूतमुपरिकृतं लाङ्गूलमेव महती पताका ध्वजाञ्चलो यस्मिंस्तस्य ध्वजस्य उत्तमौ अंसौ उपरिस्थतिर्यक्फलकाग्रभागौ तत्र आकुला व्यग्राः ये भीषणाः भूतादयः ते अन्ते समीपे यस्य तम् । गाण्डीवनिर्ह्रादेन सह कृतः प्रणादो येन तं गाण्डीवनिर्ह्रादकृतप्रणादं किरीटिनम् । ध्वजोपरिस्थभूतनादैः संवर्धितनादमित्यर्थः ॥ २७ ॥ द्रोणकृपौ च दृष्ट्वा ववर्षेति अनुकृष्यते ॥ २८ ॥ महद्भिः शरौघैरस्त्रौघैश्च विवर्धनं छेदनं यत्र तस्मिन्रणे विलग्नौ संनिहितौ चन्द्रसूर्यौ घनमध्यादिव तौ बाणसंघमध्याल्लोकोऽनुददर्श ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

# ५५

वैशम्पायन उवाच ।
अपयाते तु राधेये दुर्योधनपुरोगमाः ।
अनीकेन यथास्वेन शनैराछन्त पाण्डवम् ॥ १
बहुधा तस्य सैन्यस्य व्यूढस्यापततः शरैः ।
अधारयत वेगं स वेलेव तु महोदधेः ॥ २
ततः प्रहस्य बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वाणः प्रत्यायाद्रथसत्तमः ॥ ३
यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम् ।
तथा गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो दिशो दश ॥
न रथानां न चाश्वानां न गजानां न वर्मणाम् ।
अनिविद्धं शितैर्बाणैरासीत् द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥ ५
दिव्ययोगाच्च पार्थस्य हयानामुत्तरस्य च ।
शिक्षाशिल्पोपपन्नत्वादस्त्राणां च परिक्रमात् ।
वीर्यवत्त्वं द्रुतं चाग्र्यं दृष्ट्वा जिष्णोरपूजयन् ॥ ६
कालाग्निमिव बीभत्सुं निर्दहन्तमिव प्रजाः ।
नारयः प्रेक्षितुं शेकुर्ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ७
तानि ग्रस्तान्यनीकानि रेजुरर्जुनमार्गणैः ।
शैलं प्रति बलाभ्राणि व्याप्तानीवार्करश्मिभिः॥ ८
अशोकानां वनानीव छत्त्राणि बहुशः शुभैः ।
रेजुः पार्थशरैस्तत्र तदा सैन्यानि भारत ॥ ९
स्रजोऽर्जुनशरैः शीर्णे शुष्यत्पुष्पं हिरण्मयम् ।
छत्त्राणि च पताकाश्च खे दधार सदागतिः ॥ १०
स्वबलत्रासनात्त्रस्ताः परिपेतुर्दिशो दश ।
रथाङ्गदेशानादाय पार्थच्छिन्नयुगा हयाः ॥ ११
कर्णकक्षविषाणेषु अन्तरोष्ठेषु चैव ह ।
मर्मस्वङ्गेषु चाहत्य पातयत् समरे गजान् ॥ १२
कौरवाग्रगजानां तु शरीरैर्गतचेतसाम् ।
क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ॥ १३
युगान्तसमये सर्वं यथा स्थावरजङ्गमम् ।
कालक्षयमशेषेण दहत्यग्रशिखः शिखी ।
तद्वत् पार्थो महाराज ददाह समरे रिपून् ॥ १४
ततः सर्वास्त्रतेजोभिर्धनुषो निःस्वनेन च ।
शब्देनामानुषाणां च भूतानां ध्वजवासिनाम् ।
भैरवं शब्दमत्यर्थं वानरस्य च कुर्वतः ॥ १५
दैवारिपाच्च बीभत्सुस्तस्मिन् दौर्योधने बले ।
भयमुत्पादयामास बलवानरिमर्दनः ॥ १६
रथशक्तिममित्राणां प्रागेव निपतद्भुवि ।
सोपयात् सहसा पश्चात् साहसाच्चाभ्युपेयिवान्
शरव्रातैः सुतीक्ष्णाग्रैः समादिष्टैः खगैरिव ।
अर्जुनस्तु खमावव्रे लोहितप्राशनैः खगैः ॥ १८
अन्त्रमध्ये यथार्कस्य रश्मयस्तिग्मतेजसः ।
दिशासु च तथा राजन्नसंख्याताः शरास्तदा १९

---

५५

**अपयात इति** । आर्छन्त आगताः ॥ १ ॥ प्रत्यायात् प्रातिकूल्येनाभिमुखोऽगादित्यर्थः ॥३॥ दिशो दश प्रच्छादितवान् ॥४॥ अनिविद्धं नितरामविद्धम् । अन्तरमवकाशः ॥५॥ उत्तरस्य हयानां शिक्षाशिल्पोपपन्नत्वादिति संबन्धः । द्रुतं वेगं अपूजयन् अरय इत्यपकृष्यते ॥ ६ ॥ शैलं प्रति शैलसमीपे बलाभ्राणि बलवन्ति अचञ्चलानि अभ्राणि सूर्यरश्मिव्याप्तानि यथा तथा तान्यनीकानि शरव्याप्तान्यर्जुनसमीपे रेजुरित्यर्थः ॥ ८ ॥ शुभैः पुष्पैः फलसूचकत्वात्तेषां शुभत्वम् ॥ ९ ॥ स्रजः पुष्पं हिरण्मयं स्वर्णचम्पकजं शुष्यत् शरैः शीर्णं च तद्वच्छत्त्रादीनि च सदागतिः वायुः खे दधार बाणजालान्तर्हितत्वात्तेषामधः पतनं नाभूदित्यर्थः ॥ १० ॥ रथाङ्गदेशान् युगस्यैकदेशान् आदाय हयाः परिपेतुरित्यन्वयः ॥ ११ ॥ गजान् कर्णादि प्रदेशेषु आहत्य विद्ध्वाऽपातयत् पातयति स्म ॥ १२ ॥ अग्रजाना सेनाग्रगामिनां गजानां गतचेतसां मृतानाम् ॥ १३ ॥ कालक्षयं कालस्य ऐश्वर्यं जगदित्यर्थः अग्रशिखः अग्रवतीक्ष्णाः शिखा यस्य ॥ १४ ॥ दैवारिपात् देवारीनसुरान् पातीति देवारिपःसमुद्रस्तत्र जातो दैवारिपः शङ्खस्तस्मात् चात् भैरवं शब्दं कुर्वत इत्येनुकृष्यते ॥ १६ ॥ अमित्राणां वैरिणां रथशक्तिं शरीरसामर्थ्यम् । ' रथः स्यन्दनदेहयोः ' इति कोशः प्रागेव सहसा दर्शनमात्रादेव निपतत् न्यपातयत् शक्तिरिति पाठे न्यपतत् अडभावादिरार्षः सोऽर्जुनः अपयात् पय गतौ गत्यभावादित्यर्थः साहसाच्च अशक्तवधरूपात् पश्चात्तान् युद्धार्थं उपेयिवान् ॥ १७ ॥ खगैः पक्षिभिरिव खगैर्बाणैः ॥ १८ ॥ अत्रमध्ये अत्रम् अमत्रं ' अत्राण्यस्मै षड्भिः संभरन्ति ' इत्यादाविवात्रापि मध्यमवर्णलोपश्छांदसः यदाह शौनको बृहद्देवतायां । 'वर्णस्य वर्णयोर्लोपो बहूनां व्यञ्जनस्य वा । अत्राणीति कपिर्नाभादनो यामीत्यघासु च'इति अत्राण्यस्मै षड्भिः अमत्राणीत्यपेक्षिते वर्णस्य लोपः प्रियातश्चानि मे कपिः वृषाकपिरित्यपेक्षिते वृषा इत्येतयोर्वर्णयोर्लोपः । अयं नाभा वदति नाभानेदिष्ठ इत्यपेक्षिते वर्णत्रयलोपः दनो विश इंद्र दनो दानमनस इत्यपेक्षिते बहूनां वर्णानां लोपः 'दनो दानमनसः' इति यास्कः

सकृदेवानतं शेकू रथमभ्यसितुं परे ।
अलभ्यः पुनरश्वैस्तु रथात्सोऽतिप्रपादयेत् ॥ २०
ते शरा द्विट्शरीरेषु यथैव न ससञ्जिरे ।
द्विडनीकेषु बीभत्सोर्न ससञ्ज रथस्तदा ॥ २१
स तद्विक्षोभयामास द्वरातिबलमञ्जसा ।
अनन्तभोगो भुजगः क्रीडन्निव महार्णवे ॥ २२
अस्यतो नित्यमत्यर्थं सर्वमेवातिगस्तथा ।
अश्रुतः श्रूयते भूतैर्धनुर्घोषः किरीटिनः ॥ २३
संततास्तत्र मातङ्गा बाणैरल्पान्तरान्तरे ।
संवृतास्तेन दृश्यन्ते मेघा इव गभस्तिभिः ॥ २४
दिशोऽनुभ्रमतः सर्वाः सव्यदक्षिणमस्यतः ।
सततं दृश्यते युद्धे सायकासनमण्डलम् ॥ २५
पतन्त्यरूपेषु यथा चक्षूंषि न कदाचन ।
नालक्ष्येषु शराः पेतुस्तथा गाण्डीवधन्वनः ॥ २६
मार्गो गजसहस्रस्य युगपद्गच्छतो वने ।
यथा भवेत्तथा जज्ञे रथमार्गः किरीटिनः ॥ २७
नूनं पार्थजयैषित्वाच्छक्रः सर्वामरैः सह ।
हन्त्यस्मानित्यमन्यन्त पार्थेन निहताः परे ॥ २८
घ्नन्तमत्यर्थमहितान् विजयं तत्र मेनिरे ।
कालमर्जुनरूपेण संहरन्तमिव प्रजाः ॥ २९
कुरुसेनाशरीराणि पार्थेनैवाहतान्यपि ।
सेदुः पार्थहतानीव पार्थकर्मानुशासनात् ॥ ३०
ओषधीनां शिरांसीव द्विषच्छीर्षाणि सोऽन्वयात् ।
अवनेशुः कुरूणां हि वीर्याण्यर्जुनजाद्भयात् ॥ ३१
अर्जुनानिलभिन्नानि वनान्यर्जुनविद्विषाम् ।
चक्रुर्लोहितधाराभिर्धरणीं लोहितान्तराम् ॥ ३२
लोहितेन समायुक्तैः पांसुभिः पवनोद्धृतैः ।
बभूवुर्लोहितास्तत्र भृशमादित्यरश्मयः ॥ ३३
सार्कं खं तत्क्षणेनासीत् सन्ध्यायामिव लोहितम् ।
अप्यस्तं प्राप्य सूर्योऽपि निवर्तेत न पाण्डवः ॥ ३४
तान्सर्वान् समरे शूरः पौरुषे समवस्थितान् ।
दिव्यैरस्त्रैरचिन्त्यात्मा सर्वानार्छद्धनुर्धरान् ॥ ३५
स तु द्रोणं त्रिसप्तत्या क्षुरप्राणां समार्पयत् ।
दुःसहं दशभिर्बाणैर्द्रौणिमष्टाभिरेव च ॥ ३६
दुःशासनं द्वादशभिः कृपं शारद्वतं त्रिभिः ।
भीष्मं शान्तनवं षष्ट्या राजानं च शतेन ह ।
कर्णं च कर्णिना कर्णे विव्याध परवीरहा ॥ ३७
तस्मिन्विद्धे महेष्वासे कर्णे सर्वास्त्रकोविदे ।
हताश्वसूते विरथे ततोऽनीकमभज्यत ॥ ३८
तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पार्थमाजिस्थितं पुनः ।
अभिप्रायं समाज्ञाय वैराटिरिदमब्रवीत् ॥ ३९
आस्थाय रुचिरं जिष्णो रथं सारथिना मया ।
कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥ ४०

अर्जुन उवाच ।

लोहिताश्वमरिष्टं यं वैयाघ्रमनुपश्यसि ।
नीलां पताकामाश्रित्य रथे तिष्ठन्तमुत्तर ॥ ४१
कृपस्यैतदनीकाग्र्यं प्रापयस्वैतदेव माम् ।
एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं दृढधन्विनः ॥ ४२

---

तत्त्वा यामि याचामीत्यपेक्षिते । अघासु हन्यन्ते गावः मघास्वित्यपेक्षिते व्यञ्जनलोपः यथा पात्रे प्रविष्टाः सूर्यरश्मयोऽवकाशाभावात्संकुचन्ति तद्वद्गगनेऽर्जुनबाणा न मान्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ सकृदेव तत्क्षणमेव आनतं उपगतं रथं अर्जुनरथं परे रिपवः अभ्यसितुं परिचेतुं शेकुः तुशब्दो हेत्वर्थेऽतः स पुनः क्षणान्तरे अलभ्यः परैर्ज्ञातुमशक्यः तत्र हेतुमाह अश्वैरिति । सः अश्वैः सह · परान् रथात् अतिप्रपादयेत् इमं लोकमतिहापयित्वाऽमुं लोकं नयेत् दृष्टमात्रोऽर्जुनः शरैः परान् परलोकं प्रापयतीत्यर्थः ॥ २० ॥ न ससज्जिरे न सक्ताः किं तु भित्वा परत एव गताः एवं रथोऽपि द्विषां अनीकेष्वित्यर्थः शराणां रथस्य च गतिर्न कुण्ठिता भवतीत्यर्थः ॥२१॥ अनन्तभोगः बहुफणः शेष इत्यर्थः ॥२२॥ सर्वमेवातिगः सर्वाधिकः सर्वशब्दाभिभावीत्यर्थः ॥ २३ ॥ तत्र रणभूमौ अल्पान्तरान्तरे अल्पे अन्यान्तरे पदे पदे संतता इत्यर्थः तेन कारणेन ते गभस्तिभिः सूर्यरश्मिभिः संवृता मेघा इव दृश्यन्ते ॥ २४ ॥ सायकासनं धनुः तस्य मण्डलं अतिवेगात् अलातचक्रसदृशमित्यर्थः ॥ २५ ॥ मार्ग इति । गजसहस्रेण वनमिवार्जुनरथेन परसैन्यमुपमृद्यत इत्यर्थः ॥ २७ ॥ विजयम् अर्जुनं कालमिव मेनिरे ॥ २९ ॥ पार्थेनैव हतानि पार्थहतानीव सेदुर्विशीर्णानि बभूवुरिति । रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिवेतिवदभूतोपमेयामित्यर्थः यतोऽत्र पार्थकर्मैवानुशासनमुपमार्थं कर्तव्यं नान्यकर्म अतः पार्थहतानीव सेदुरित्यर्थः ॥ ३० ॥ ओषधीनां व्रीह्यादीनां शिरांसि कणिशानि अन्वयात् अनुक्रमात् अवनेशुः नष्टानि अर्जुनजात् अर्जुनकृतात् भयात् छेदरूपात् ॥३१॥ अर्जुनविद्विषां स्थाणुभूतानां वनानि आलयानि शरीराणीति यावत् । ' वनं नपुंसकं नीरे निवासालयकानने ' इति मेदिनी ॥ ३२ ॥ कर्णिना बाणेन कर्णे कर्णदेशे ॥ ३७ ॥ अरिष्टं शुभं वैयाघ्रं व्याघ्रचर्मपरिवृतम् ॥ ४१ ॥ अत्रैव

ध्वजे कमण्डलुर्यस्य शातकौम्भमयः शुभः ।
आचार्य एष हि द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४३
सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि ।
सुप्रसन्नं महावीरं कुरुष्वैनं प्रदक्षिणम् ॥ ४४
अत्रैव चाऽवरोहैनमेष धर्मः सनातनः ।
यदि मे प्रथमं द्रोणः शरीरे प्रहरिष्यति ॥
ततोऽस्य प्रहरिष्यामि नास्य कोपो भवेदिति ४५
अस्याविदूरे हि धनुर्ध्वजाग्रे यस्य दृश्यते ।
आचार्यस्यैष पुत्रो वै अश्वत्थामा महारथः ॥ ४६
सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि ।
एतस्य त्वं रथं प्राप्य निवर्तेथाः पुनः पुनः ॥ ४७
य एष तु रथानीके सुवर्णकवचावृतः ।
सेनाग्र्येण तृतीयेन व्यावहार्येण तिष्ठति ॥ ४८
यस्य नागो ध्वजाग्रेऽसौ हेमकेतनसंवृतः ।
धृतराष्ट्रात्मजः श्रीमानेष राजा सुयोधनः ॥ ४९
एतस्याभिमुखं वीर रथं परस्थारुजम् ।
प्रापयस्वैष राजा हि प्रमाथी युद्धदुर्मदः ॥ ५०
एष द्रोणस्य शिष्याणां शीघ्रास्त्रे प्रथमो मतः ।
एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं विपुलं रणे ॥ ५१
नागकक्षा तु रुचिरा ध्वजाग्रे यस्य तिष्ठति ।
एष वैकर्तनः कर्णो विदितः पूर्वमेव ते ॥ ५२
एतस्य रथमास्थाय राधेयस्य दुरात्मनः ।
यत्तो भवेथाः सङ्ग्रामे स्पर्धते हि सदा मया ॥५३
यस्तु नीलानुसारेण पञ्चतारेण केतुना ।
हस्तावापी बृहद्धन्वा रथे तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ५४
यस्य तारार्कचित्रोऽसौ ध्वजो रथवरे स्थितः ।
यस्यैतत् पाण्डुरं छत्रं विमलं मूर्ध्नि तिष्ठति ॥५५
महतो रथवंशस्य नानाध्वजपताकिनः ।
बलाहकाग्रे सूर्यो वा य एष प्रमुखे स्थितः ॥५६
हैमं चन्द्रार्कसंकाशं कवचं यस्य दृश्यते ।
जातरूपशिरस्त्राणं मनस्तापयतीव मे ॥ ५७
एष शांतनवो भीष्मः सर्वेषां नः पितामहः ।
राजश्रियाभिवृद्धश्च सुयोधनवशानुगः ॥ ५८
पश्चादेष प्रयातव्यो न मे विघ्नकरो भवेत् ।
एतेन युध्यमानस्य यत्तः संयच्छ मे हयान् ॥ ५९
ततोऽभ्यवहदव्यग्रो वैराटिः सव्यसाचिनम् ।
यत्रातिष्ठत्कृपो राजन्योत्स्यमानो धनंजयम्॥ ६०

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनकृपसङ्ग्रामे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

वैशंपायन उवाच ।
तान्यनीकान्यदृश्यन्त कुरूणामुग्रधन्विनाम् ।
संसर्पन्ते यथा मेघा घर्मान्ते मन्दमारुताः ॥ १
अभ्याशे वाजिनस्तस्थुः समारूढाः प्रहारिणः ।
भीमरूपाश्च मातङ्गास्तोमराङ्कुशनोदिताः ॥
महामात्रैः समारूढा विचित्रकवचोज्ज्वलाः ॥२
ततः शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम् ।
सहोपायात् तदा राजन्विश्वाश्विमरुतां गणैः॥३
तद्देवयक्षगन्धर्वमहोरगसमाकुलम् ।
शुशुभेऽभ्रविनिर्मुक्तं ग्रहाणामिव मण्डलम् ॥ ४
अस्त्राणां च बलं तेषां मानुषेषु प्रयुञ्जताम् ।
तच्च भीमं महद्युद्धं कृपार्जुनसमागमे ॥
द्रष्टुमभ्यागता देवाः स्वविमानैः पृथक् पृथक् ॥ ५

---

ममये एनम् अत्र मानय अवरोह च अध्यारूढो भव युद्धाय सज्जो भव एनम् अनुलक्षीकृत्येत्यर्थः एतदेव द्वयं प्रकटयति यदि मे इति । प्रथममप्रहारान्माननं पश्चात्प्रहारेणाधिरोहणं चेत्यर्थः॥ ४५॥ व्यावहार्येण व्यवहारयोग्येन अश्रान्तेनेत्यर्थः ॥ ४८ ॥ नागकक्षा हस्त्यङ्कितपताकाञ्चलः हस्तिशृङ्खलेत्यन्ये ॥५२॥ नीलानुसारेण नीलपताकावता ताराः सुवर्णमण्डलानि हस्तावापो हस्तत्राणं तद्वान् ॥ ५४ ॥ सूर्यो वा सूर्य इव ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

तानीति । घर्मान्ते प्रावृट्काले ॥ १ ॥ समारुह्य विमानमिति शेषः सुदर्शनं शत्रुसमागमम् । उपायात् सुदर्शनो हरेश्चक्रे द्वीपे शत्रुसमागमे ' इति मेदिनी सुदर्शनं यानमित्यन्ये ॥३॥ तत् मण्डलं द्यु भूमिभागः ग्रहाणां मण्डलमिव वृत्तं शुशुभे ॥ ४ ॥

शतं शतसहस्राणां यत्र स्थूणा हिरण्मयी ।
मणिरत्नमयी चान्या प्रासादं तदधारयत् ॥ ६
ततः कामगमं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।
विमानं देवराजस्य शुशुभे खेचरं तदा ॥ ७
तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तिष्ठन्ति सहवासवाः ।
गन्धर्वा राक्षसाः सर्पाः पितरश्च महर्षिभिः ॥ ८
तथा राजा वसुमना बलाक्षः सुप्रतर्दनः ।
अष्टकश्च शिबिश्चैव ययातिर्नहुषो गयः ॥ ९
मनुः पूरू रघुर्भानुः कृशाश्वः सगरो नलः ।
विमाने देवराजस्य समदृश्यन्त सुप्रभाः ॥ १०
अग्नेरीशस्य सोमस्य वरुणस्य प्रजापतेः ।
तथा धातुर्विधातुश्च कुबेरस्य यमस्य च ॥ ११
अलम्बुषोग्रसेनानां गन्धर्वस्य च तुम्बुरोः ।
यथामानं यथोद्देशं विमानानि चकाशिरे ॥ १२
सर्वदेवनिकायाश्च सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्जुनस्य कुरूणां च द्रष्टुं युद्धमुपागताः ॥ १३
दिव्यानां सर्वमाल्यानां गन्धः पुण्योऽथ सर्वशः ।
प्रससार वसन्ताग्रे वनानामिव भारत ॥ १४
तत्र रत्नानि देवानां समदृश्यन्त तिष्ठताम् ।
आतपत्राणि वासांसि स्रजश्च व्यजनानि च ॥ १५
उपाशाम्यद्रजो भौमं सर्वं व्याप्तं मरीचिभिः ।
दिव्यगन्धानुपादाय वायुर्योधानसेवत ॥ १६
प्रभासितमिवाकाशं चित्ररूपमलङ्कृतम् ।
संपतद्भिः स्थितैश्चापि नानारत्नविभासितैः ॥ १७
विमानैर्विविधैश्चित्रैरुपानीतैः सुरोत्तमैः ।
वज्रभृच्छुशुभे तत्र विमानस्थैः सुरैर्वृतः ॥ १८
बिभ्रन्मालां महातेजाः पद्मोत्पलसमायुताम् ।
विप्रेक्ष्यमाणो बहुभिर्नातृप्यत्सुमहाहवम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि देवागमने
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

वैशम्पायन उवाच ।
दृष्ट्वा व्यूढान्यनीकानि कुरूणां कुरुनन्दन ॥
तत्र वैराटिमामन्त्र्य पार्थो वचनमब्रवीत् ॥ १
जाम्बूनदमयी वेदी ध्वजे यस्य प्रदृश्यते ।
तस्य दक्षिणतो याहि कृपः शारद्वतो यतः ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
धनञ्जयवचः श्रुत्वा वैराटिस्त्वरितस्ततः ।
हयान् रजतसंकाशान् हेमभाण्डानचोदयत् ॥ ३
आनुपूर्व्यात्तु तत् सर्वमास्थाय जवमुत्तमम् ।
प्राहिणोच्चन्द्रसंकाशान् कुपितानिव तान् हयान् ॥ ४
स गत्वा कुरुसेनायाः समीपं हयकोविदः ।
पुनरावर्तयामास तान् हयान् वातरंहसः ॥ ५
प्रदक्षिणमुपावृत्य मण्डलं सव्यमेव च ।
कुरून् संमोहयामास मत्स्यो यानेन तत्त्ववित् ॥ ६
कृपस्य रथमास्थाय वैराटिरकुतोभयः ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ७
ततोऽर्जुनः शङ्खवरं देवदत्तं महारवम् ।
प्रदध्मौ बलमास्थाय नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ८
तस्य शब्दो महानासीद्धम्यमानस्य जिष्णुना ।
तथा वीर्यवता संख्ये पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ९
पूजयाञ्चक्रिरे शङ्खं कुरवः सहसैनिकाः ।
अर्जुनेन तथा ध्मातः शतधा यन्न दीर्यते ॥ १०
दिवमावृत्य शब्दस्तु निवृत्तः शुश्रुवे पुनः ।
सृष्टो मघवता वज्रः प्रपतन्निव पर्वते ॥ ११
एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलवीर्यसमन्वितः ।
अर्जुनं प्रति संरब्धः कृपः परमदुर्जयः ॥
अमृष्यमाणस्तं शब्दं कृपः शारद्वतस्तदा ॥ १२

---

शतसहस्राणां शतं लक्षशतं कोटिसंख्याः स्थूणाः एका हिरण्मयी स्थूणा च यदधारयत् ॥ ६ ॥ त्रयस्त्रिंशत् 'अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च' इति ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥ अलम्बुषोग्रसेनानां तत्प्रभृतीनां गन्धर्वाणाम् ॥ १२॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ हेमभाण्डान् स्वर्णालङ्कारान् ॥ ३ ॥ मत्स्यः उत्तरः ॥ ६ ॥ वज्रः अशनिः॥ ११ ॥

अर्जुनं प्रति संरब्धो युद्धार्थी स महारथः ।
महोदधिजमादाय दध्मौ वेगेन वीर्यवान् ॥ १३
स तु शब्देन लोकांस्त्रीनावृत्य रथिनां वरः ।
धनुरादाय सुमहज्ज्याशब्दमकरोत् तदा ॥ १४
तौ रथौ सूर्यसंकाशौ योत्स्यमानौ महाबलौ ।
शारदाविव जीमूतौ व्यरोचेतां व्यवस्थितौ ॥ १५
ततः शारद्वतस्तूर्णं पार्थं दशभिराशुगैः ।
विव्याध परवीरघ्नं निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥ १६
पार्थोऽपि विश्रुतं लोके गाण्डीवं परमायुधम् ।
विकृष्य चिक्षेप बहून् नाराचान् मर्मभेदिनः ॥ १७
तानप्राप्तान् शितैर्बाणैर्नाराचान् रक्तभोजनान् ।
कृपश्चिच्छेद पार्थस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८
ततः पार्थस्तु संक्रुद्धश्चित्रान् मार्गान् प्रदर्शयन् ।
दिशः संछादयन् बाणैः प्रदिशश्च महारथः ।
एकच्छायमिवाकाशमकरोत् सर्वतः प्रभुः ॥ १९
प्राच्छादयदमेयात्मा पार्थः शरशतैः कृपम् ।
स शरैरर्दितः क्रुद्धः शितैरग्निशिखोपमैः ॥ २०
तूर्णं दशसहस्रेण पार्थमप्रतिमौजसम् ।
अर्दयित्वा महात्मानं ननर्द समरे कृपः ॥ २१
ततः कनकपर्वाग्रैर्वीरः सन्नतपर्वभिः ।
त्वरन् गाण्डीवनिर्मुक्तैरर्जुनस्तस्य वाजिनः ॥ २२
चतुर्भिश्चतुरस्तीक्ष्णैरविध्यत् परमेषुभिः ।
ते हया निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ।
उत्पेतुः सहसा सर्वे कृपः स्थानादथाच्यवत् ॥ २३
च्युतं तु गौतमं स्थानात् समीक्ष्य कुरुनन्दनः ।
नाविध्यत् परवीरघ्नो रक्षमाणोऽस्य गौरवम् २४
स तु लब्ध्वा पुनः स्थानं गौतमः सव्यसाचिनम्
विव्याध दशभिर्बाणैस्त्वरितः कङ्कपत्रिभिः॥ २५
ततः पार्थो धनुस्तस्य भल्लेन निशितेन ह ।
चिच्छेदैकेन भूयश्च हस्तावापमथाहरत् ॥ २६
अथास्य कवचं बाणैर्निशितैर्मर्मभेदिभिः ।
व्यधमन्न च पार्थोऽस्य शरीरमवपीडयत् ॥ २७
तस्य निर्मुच्यमानस्य कवचात् काय आबभौ ।
समये मुच्यमानस्य सर्पस्येव तनुर्यथा ॥ २८
छिन्ने धनुषि पार्थेन सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
चकार गौतमः सज्यं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९
स तदप्यस्य कौन्तेयश्चिच्छेद नतपर्वणा ।
एवमन्यानि चापानि बहूनि कृतहस्तवत् ।
शारद्वतस्य चिच्छेद पाण्डवः परवीरहा ॥ ३०
स छिन्नधनुरादाय रथशक्तिं प्रतापवान् ।
प्राहिणोत् पाण्डुपुत्राय प्रदीप्तामशनीमिव ॥ ३१
तामर्जुनस्तदाऽऽयान्तीं शक्तिं हेमविभूषिताम् ।
वियद्गतां महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ३२
साऽपतद्दशधा छिन्ना भूमौ पार्थेन धीमता॥ ३३
युगपच्चैव भल्लैस्तु ततः सज्यधनुः कृपः ।
तमाशु निशितैः पार्थं बिभेद दशभिः शरैः ॥ ३४
ततः पार्थो महातेजा विशिखानग्नितेजसः ।
चिक्षेप समरे क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ३५
अथास्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
षष्ठेन च शिरः कायाच्छरेण रथसारथेः ॥ ३६
त्रिभिस्त्रिवेणुं समरे द्वाभ्यामक्षं महारथः ।
द्वादशेन तु भल्लेन चकर्तास्य ध्वजं तदा ॥ ३७
ततो वज्रनिकाशेन फाल्गुनः प्रहसन्निव ।
त्रयोदशेनेन्द्रसमः कृपं वक्षस्यविध्यत ॥ ३८
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवप्लुत्य तूर्णं चिक्षेप तां गदाम् ॥ ३९
सा च मुक्ता गदा गुर्वी कृपेण सुपरिष्कृता ।
अर्जुनेन शरैर्नुन्ना प्रतिमार्गमथागमत् ॥ ४०
तं तु योधाः परीप्सन्तः शारद्वतममर्षणम् ।
सर्वतः समरे पार्थं शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४१
ततो विराटस्य सुतो सव्यमावृत्य वाजिनः ।
यमकं मण्डलं कृत्वा तान् योधान् प्रत्यवारयत् ४२
ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः ।
अपजग्मुर्महावेगाः कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहणे कृपापयाने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

---

महोदाधिजं शङ्खम् ॥ १३ ॥ रथौ रथिनौ ॥ १५ ॥ कनकपर्वाग्रैः कनकलिप्तफलकैः ॥ २२ ॥ स्थानं स्थैर्यं संज्ञामिति यावत् ॥ २५ ॥ नुन्ना दूरीकृता प्रतिमार्गम् अगमत् परावृत्तेत्यर्थः ॥ ४० ॥ असव्यम् आवृत्य अप्रदक्षिणं कृत्वेत्यर्थः। यमकं शत्रूणां निरोधकं मंडलं कृत्वा यस्मिन्कृते शत्रुरपमानितो लज्जितस्तिष्ठति ॥४२॥ अपजग्मुर्नीतवन्तः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

वैशम्पायन उवाच ।

कृपेऽपनीते द्रोणस्तु प्रगृह्य सशरं धनुः ।
अभ्यद्रवदनाधृष्यः शोणाश्वः श्वेतवाहनम् ॥ १
स तु रुक्मरथं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमन्तिकात् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २

अर्जुन उवाच ।

यत्रैषा काञ्चनी वेदी ध्वजे यस्य प्रकाशते ।
उच्छ्रिता प्रवरे दण्डे पताकाभिरलङ्कृता ।
अत्र मां वह भद्रं ते द्रोणानीकाय सारथे ॥ ३
अश्वाः शोणाः प्रकाशन्ते बृहन्तश्चारुवाहिनः ।
स्निग्धाविद्रुमसंकाशास्ताम्रास्याः प्रियदर्शनाः ।
युक्ता रथवरे यस्य सर्वशिक्षाविशारदाः ॥ ४
दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः ।
सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५
बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये ।
वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ ६
ससंहाराणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष ।
धनुर्वेदश्च कात्स्न्येन यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितः ॥ ७
क्षमा दमश्च सत्यं च आनृशंस्यमथार्जवम् ।
एते चान्ये च बहवो यस्मिन्नित्यं द्विजे गुणाः ८
तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे ।
तस्मात् त्वं प्रापयाचार्यं क्षिप्रमुत्तर वाहय ॥ ९

वैशम्पायन उवाच ।

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु वैराटिर्हेमभूषणान् ।
चोदयामास तानश्वान् भारद्वाजरथं प्रति ॥ १०
तमापतन्तं वेगेन पाण्डवं रथिनां वरम् ।
द्रोणः प्रत्युद्ययौ पार्थं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ११
ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम् ।
प्रचुक्षुभे बलं सर्वमुद्धूत इव सागरः ॥ १२
अथ शोणान् सदश्वांस्तान् हंसवर्णैर्मनोजवैः ।
मिश्रितान् समरे दृष्ट्वा व्यस्मयन्त रणे नराः ॥ १३
तौ रथौ वीरसंपन्नौ दृष्ट्वा सङ्ग्राममूर्धनि ।
आचार्यशिष्यावजितौ कृतविद्यौ मनस्विनौ ॥ १४
समाश्लिष्टौ तदाऽन्योन्यं द्रोणपार्थौ महाबलौ ।
दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुर्भरतानां महद्बलम् ॥ १५
हर्षयुक्तस्ततः पार्थः प्रहसन्निव वीर्यवान् ।
रथं रथेन द्रोणस्य समासाद्य महारथः ॥ १६
अभिवाद्य महाबाहुः सामपूर्वमिदं वचः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेयः परवीरहा ॥ १७
उषिताः स्मो वने वासं प्रतिकर्म चिकीर्षवः ।
कोपं नार्हसि नः कर्तुं सदा समरदुर्जय ॥ १८
अहं तु प्रहृते पूर्वं प्रहरिष्यामि तेऽनघ ।
इति मे वर्तते बुद्धिस्तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥ १९
ततोऽस्मै प्राहिणोद्द्रोणः शरानधिकविंशतिम् ।
अप्राप्तांश्चैव तान् पार्थश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ २०
ततः शरसहस्रेण रथं पार्थस्य वीर्यवान् ।
अवाकिरत् ततो द्रोणः शीघ्रमस्त्रं विदर्शयन् ॥ २१
हयांश्च रजतप्रख्यान् कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
अवाकिरदमेयात्मा पार्थं संकोपयन्निव ॥ २२
एवं प्रववृते युद्धं भारद्वाजकिरीटिनोः ।
समं विमुञ्चतोः संख्ये विशिखान् दीप्ततेजसः ॥ २३
तावुभौ ख्यातकर्माणावुभौ वायुसमौ जवे ।
उभौ दिव्यास्त्रविदुषावुभावुत्तमतेजसौ ।
क्षिपन्तौ शरजालानि मोहयामासतुर्नृपान् ॥ २४
व्यस्मयन्त ततो योधा ये तत्रासन्समागताः ।
शरान्विसृजतोस्तूर्णं साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २५
द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात् ।
रौद्रः क्षत्रियधर्मोऽयं गुरुणा यदयुध्यत ।
इत्यब्रुवञ्जनास्तत्र सङ्ग्रामशिरसि स्थिताः ॥ २६
वीरौ तावभिसंरब्धौ संनिकृष्टौ महाभुजौ ।
छादयेतां शरव्रातैरन्योन्यमपराजितौ ॥ २७
विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
भारद्वाजोऽथ संक्रुद्धः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ॥ २८

---

५८

कृप इति ॥ १ ॥ प्रतिद्वंद्विनोर्द्रोणार्जुनयोर्वाजिनां मिश्रणेनातिसान्निध्याद्विस्मयो जातः ॥ १३ ॥ यदा तु तौ समाश्लिष्टौ परस्परं रथस्थावेवालिंगितवन्तौ तदा भरतानां बलं प्राकम्पत द्रोणोऽर्जुनेन सख्यं गतोऽस्मानेव प्रहरिष्यतीतिशङ्कया ॥ १५ ॥ प्रतिकर्म शत्रूणां अपकारम् ॥ १८ ॥ कृतहस्तवत् सुशिक्षितहस्तयुक्तं यथा स्यात्तथा चिच्छेद ॥ २० ॥ समम् अविशेषेण ॥ २३ ॥ विदुषौ विद्वांसौ ॥ २४ ॥

स सायकमयैर्जालैरर्जुनस्य रथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोराच्छादयत् प्रभाम्॥
पार्थं च सुमहाबाहुर्महावेगैर्महारथः ।
विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥३०
तथैव दिव्यं गाण्डीवं धनुरादाय पाण्डवः ।
शत्रुघ्नं वेगवान् हृष्टो भारसाधनमुत्तमम् ॥ ३१
विससर्ज शरांश्चित्रान् सुवर्णविकृतान् बहून् ।
नाशयन् शरवर्षाणि भारद्वाजस्य वीर्यवान् ।
तूर्णं चापविनिर्मुक्तैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२
स रथेन चरन् पार्थः प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वतोऽस्त्राण्यदर्शयत् ॥ ३३
एकच्छायमिवाकाशं बाणैश्चक्रे समन्ततः ।
नादृश्यत तदा द्रोणो नीहारेणेव संवृतः ॥ ३४
तस्याभवत् तदा रूपं संवृतस्य शरोत्तमैः ।
जाज्वल्यमानस्य तदा पर्वतस्येव सर्वतः ॥ ३५
दृष्ट्वा तु पार्थस्य रणे शरैः स्वरथमावृतम् ।
स विस्फार्य धनुः श्रेष्ठं मेघस्तनितनिःस्वनम् ३६
अग्निचक्रोपमं घोरं व्यकर्षत् परमायुधम् ।
व्यशातयच्छरांस्तांस्तु द्रोणः समितिशोभनः ३७
महानभूत्ततः शब्दो वंशानामिव दह्यताम् ॥ ३८
जाम्बूनदमयैः पुङ्खैश्चित्रचापविनिर्गतैः ।
प्राच्छादयदमेयात्मा दिशः सूर्यस्य च प्रभाम्॥३९
ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ।
वियच्चराणां वियति दृश्यन्ते बहवो व्रजाः ॥ ४०
द्रोणस्य पुङ्खसक्ताश्च प्रभवन्तः शरासनात् ।
एको दीर्घ इवादृश्यदाकाशे संहतः शरः ॥ ४१
एवं तौ स्वर्णविकृतान् विमुञ्चन्तौ महाशरान् ।
आकाशं संवृतं वीरावुल्काभिरिव चक्रतुः ॥ ४२
शरास्तयोस्तु विबभुः कङ्कबर्हिणवाससः ।
पङ्क्त्यः शरदि खस्थानां हंसानां चरतामिव ४३
युद्धं समभवत् तत्र सुसंरब्धं महात्मनोः ।
द्रोणपाण्डवयोर्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥ ४४
तौ गजाविव चासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ४५
तौ व्यवाहरतां युद्धे संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयन्तौ समरे दिव्यान्यस्त्राणि भागशः ॥ ४६

अथ त्वाचार्यमुख्येन शरान् सृष्टान् शिलाशितान्
न्यवारयाच्छितैर्बाणैरर्जुनो जयतां वरः ॥ ४७
दर्शयन् वीक्षमाणानामस्त्रमुग्रपराक्रमः ।
इषुभिस्तूर्णमाकाशं बहुभिश्च समावृणोत् ॥ ४८
जिघांसन्तं नरव्याघ्रमर्जुनं तिग्मतेजसम् ।
आचार्यमुख्यः समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अर्जुनेन सहाक्रीडच्छरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४९
दिव्यान्यस्त्राणि वर्षन्तं तस्मिन् वै तुमुले रणे ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य फाल्गुनं समयोधयत् ॥ ५०
तयोरासीत् संप्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ।
अमर्षिणोस्तदाऽन्योन्यं देवदानवयोरिव ॥ ५१
ऐन्द्रं वायव्यमाग्नेयमस्त्रमस्त्रेण पाण्डवः ।
द्रोणेन मुक्तमात्रं तु ग्रसति स्म पुनः पुनः ॥ ५२
एवं शूरौ महेष्वासौ विसृजन्तौ शितान् शरान् ।
एकच्छायं चक्रतुस्तावाकाशं शरवृष्टिभिः ॥ ५३
तत्रार्जुनेन मुक्तानां पततां वै शरीरिषु ।
पर्वतेष्विव वज्राणां शराणां श्रूयते स्वनः ॥ ५४
ततो नागा रथाश्चैव वाजिनश्च विशांपते ।
शोणिताक्ता व्यदृश्यन्त पुष्पिता इव किंशुकाः ॥
बाहुभिश्च सकेयूरैर्विचित्रैश्च महारथैः ।
सुवर्णचित्रैः कवचैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ५६
योधैश्च निहतैस्तत्र पार्थबाणप्रपीडितैः ।
बलमासीत् समुद्भ्रान्तं द्रोणार्जुनसमागमे ॥ ५७
विधुन्वानौ तु तौ तत्र धनुषी भारसाधने ।
आच्छादयेतामन्योन्यं ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ५८
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ ।
द्रोणकौन्तेययोस्तत्र बलिवासवयोरिव ॥ ५९
अथ +पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
व्यदारयेतामन्योन्यं प्राणद्यूते प्रवर्तिते ॥ ६०
अथान्तरिक्षे नादोऽभूद्द्रोणं तत्र प्रशंसताम् ।
दुष्करं कृतवान्द्रोणो यदर्जुनमयोधयत् ॥ ६१
प्रमाथिनं महावीर्यं दृढमुष्टिं दुरासदम् ।
जेतारं देवदैत्यानां सर्वेषां च महारथम् ॥ ६२
अविभ्रमं च शिक्षां च लाघवं दूरपातिताम् ।
पार्थस्य समरे दृष्ट्वा द्रोणस्याभूच्च विस्मयः ॥ ६३

शिलाधौतैः दृषदि तेजितैः ॥ २९ ॥ भारसाधनं शत्रुमर्दनक्षमं अच्छेद्यमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ विषाणाग्रैः दन्ताग्रैः ॥ ४५ ॥ व्यवहरतां व्यवहारं धर्मयुद्धं कृतवन्तौ ॥ ४६ ॥ जिघांसताऽप्यर्जुनेन सह वात्सल्यात् स्वयमक्रीडत् न तु क्रूरोऽभूत् ॥ ४९ ॥ ततक्षतुः क्षीणं चक्रतुः ॥ ५८ ॥+ पूर्णायतेन मण्डलीकृतेन धनुषा उत्सृष्टैः प्रेरितैः ।

अथ गाण्डीवमुद्यम्य दिव्यं धनुरमर्षणः ।
विचकर्ष रणे पार्थो बाहुभ्यां भरतर्षभ ॥ ६४
तस्य बाणमयं वर्षं शलभानामिवायतिम् ।
दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन् ॥
न च बाणान्तरे वायुरस्य शक्नोति सर्पितुम् ।
अनिशं संदधानस्य शरानुत्सृजतस्तथा ॥ ६६
ददर्श नान्तरं कश्चित् पार्थस्याददतोऽपि च ॥
तथा शीघ्रास्त्रयुद्धे तु वर्तमाने सुदारुणे ।
शीघ्रं शीघ्रतरं पार्थः शरानन्यानुदीरयत् ॥ ६८
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
युगपत् प्रापतंस्तत्र द्रोणस्य रथमन्तिकात् ॥ ६९
कीर्यमाणे तदा द्रोणे शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ७०
पाण्डवस्य तु ×शीघ्रास्त्रं मघवा प्रत्यपूजयत् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव ये च तत्र समागताः ॥ ७१
ततो वृन्देन महता रथानां रथयूथपः ।
आचार्यपुत्रः सहसा पाण्डवं पर्यवारयत् ॥ ७२
अश्वत्थामा तु तत् कर्म हृदयेन महात्मनः ।
पूजयामास पार्थस्य कोपं चास्याकरोद्भृशम् ७३
स मन्युवशमापन्नः पार्थमभ्यद्रवद्रणे ।
किरञ्छरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ७४
आवृत्य तु महाबाहुर्यतो द्रौणिस्ततो हयान् ।
अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसर्पितुम् ॥ ७५
स तु लब्ध्वाऽन्तरं तूर्णमपायाज्जवनैर्हयैः ।
छिन्नवर्मध्वजः शूरो निकृत्तः परमेषुभिः ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रोणापयाने
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

वैशम्पायन उवाच ।
ततो द्रौणिर्महाराज प्रययावर्जुनं रणे ।
तं पार्थः प्रतिजग्राह वायुवेगमिवोद्धतम् ।
शरजालेन महता वर्षमाणमिवाम्बुदम् ॥ १
तयोर्देवासुरसमः संनिपातो महानभूत् ।
किरतोः शरजालानि वृत्रवासवयोरिव ॥ २
न स्म सूर्यस्तदा भाति न च वाति समीरणः ।
शरजालावृते व्योम्नि च्छायाभूते समन्ततः ॥ ३
महांश्चटचटाशब्दो योधयोर्हन्यमानयोः ।
दह्यतामिव वेणूनामासीत् परपुरंजय ॥ ४
हयानस्यार्जुनः सर्वान् कृतवानल्पजीवितान् ।
ते राजन्न प्रजानन्त दिशं काञ्चन मोहिताः ॥ ५
ततो द्रौणिर्महावीर्यः पार्थस्य विचरिष्यतः ।
विवरं सूक्ष्ममालोक्य ज्यां चिच्छेद क्षुरेण ह ।
तदस्यापूजयन् देवाः कर्म दृष्ट्वाऽतिमानुषम् ॥ ६
द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्चैव महारथाः ।
साधु साध्विति भाषन्तोऽपूजयन् कर्म तस्य तत्
ततो द्रौणिर्धनुः श्रेष्ठमपकृष्य रथर्षभम् ।
पुनरेवाहनत् पार्थं हृदये कङ्कपत्रिभिः ॥ ८
ततः पार्थो महाबाहुः प्रहस्य स्वनवत् तदा ।
योजयामास नवया मौर्व्या गाण्डीवमोजसा ॥ ९
ततोऽर्धचन्द्रमावृत्य तेन पार्थः समागमत् ।
वारणेनेव मत्तेन मत्तो वारणयूथपः ॥ १०
ततः प्रववृते युद्धं पृथिव्यामेकवीरयोः ।
रणमध्ये द्वयोरेवं सुमहल्लोमहर्षणम् ॥ ११
तौ वीरौ ददृशुः सर्वे कुरवो विस्मयान्विताः ।
युध्यमानौ महावीर्यौ यूथपाविव संगतौ ॥ १२
तौ समाजघ्नतुर्वीरावन्योन्यं पुरुषर्षभौ ।
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ॥ १३

आयतिं संततिम् ॥ ६५ ॥ अन्तरमवकाशम् ॥ ७५ ॥ निकृत्तः प्रहृतः ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

× शीघ्रास्त्रं–शीघ्रास्त्रत्वम् ।

५९

तत इति ॥१॥ न प्रजानन्त अडभाव आर्षः । न च ज्ञातवन्तः ॥ ५ ॥ विवरं रंध्रम् ॥ ६ ॥ अपकृष्य आकृष्य ॥८॥ अर्धचन्द्रम् अर्धचन्द्राकारं ललाटम् । आवृत्य प्रमृज्य स्वेदेन ज्यां प्रमृज्येत्यर्थः । तेन अश्वत्थाम्ना ॥ १० ॥

अक्षय्याविषुधी दिव्यौ पाण्डवस्य महात्मनः।
तेन पार्थो रणे शूरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४
अश्वत्थाम्नः पुनर्बाणाः क्षिप्रमभ्यस्यतो रणे।
जग्मुः परिक्षयं तूर्णमभूत् तेनाधिकोऽर्जुनः ॥ १५
ततः कर्णो महाचापं विकृष्याभ्याधिकं तथा।
अवाक्षिपत् ततः शब्दो हाहाकारो महानभूत् १६
ततश्चक्षुर्दधे पार्थो यत्र विस्फार्यते धनुः।
ददर्श तत्र राधेयं तस्य कोपो व्यवर्धत ॥ १७
स रोषवशमापन्नः कर्णमेव जिघांसया।
तमैक्षत विवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां कुरुपुङ्गवः ॥ १८
तथा तु विमुखे पार्थे द्रोणपुत्रस्य सायकात्।
त्वरिताः पुरुषा राजन्नुपाजह्रुः सहस्रशः ॥ १९
उत्सृज्य च महाबाहुर्द्रोणपुत्रं धनञ्जयः।
अभिदुद्राव सहसा कर्णमेव सपत्नजित् ॥ २०
तमभिद्रुत्य कौन्तेयः क्रोधसंरक्तलोचनः।
कामयन् द्वैरथं तेन युद्धं वचनमब्रवीत् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनाश्वत्थामयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

अर्जुन उवाच।
कर्ण यत् ते सभामध्ये बहु वाचा विकत्थितम्।
न मे युधि समोऽस्तीति तदिदं समुपस्थितम् १
सोऽद्य कर्ण मया सार्धं व्यवहृत्य महामृधे।
ज्ञास्यस्यबलमात्मानं न चान्यानवमन्यसे ॥ २
अवोचः परुषा वाचो धर्ममुत्सृज्य केवलम्।
इदं तु दुष्करं मन्ये यदिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ३
यत् त्वया कथितं पूर्वं मामनासाद्य किंचन।
तदद्य कुरु राधेय कुरुमध्ये मया सह ॥ ४
यत्सभायां स पाञ्चालीं क्लिश्यमानां दुरात्मभिः
दृष्टवानसि तस्याद्य फलमाप्नुहि केवलम् ॥ ५
धर्मपाशनिबद्धेन यन्मया मर्षितं पुरा।
तस्य राधेय कोपस्य विजयं पश्य मे मृधे ॥ ६
वने द्वादश वर्षाणि यानि सोढानि दुर्मते।
तस्याद्य प्रतिकोपस्य फलं प्राप्नुहि संप्रति ॥ ७
एहि कर्ण मया सार्धं प्रतियुध्यस्व सङ्गरे।
प्रेक्षकाः कुरवः सर्वे भवन्तु तव सैनिकाः ॥ ८
कर्ण उवाच।
ब्रवीषि वाचा यत् पार्थ कर्मणा तत् समाचर।
अतिशेते हि ते वाक्यं कर्मैतत् प्रथितं भुवि ॥ ९
यत् त्वया मर्षितं पूर्वं तदशक्तेन मर्षितम्।
इतो गृह्णीमहे पार्थ तव दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥ १०
धर्मपाशनिबद्धेन यत् त्वया मर्षितं पुरा।
तथैव बद्धमात्मानमबद्धमिव मन्यसे ॥ ११
यदि तावद्वने वासो यथोक्तश्चरितस्त्वया।
तत्त्वं धर्मार्थवित्क्लिष्टः स मया योद्धुमिच्छसि १२
यदि शक्रः स्वयं पार्थ युध्यते तव कारणात्।
तथाऽपि न व्यथा काचिन्मम स्याद्विक्रमिष्यतः
अयं कौन्तेय कामस्ते न चिरात् समुपस्थितः।
योत्स्यसे हि मया सार्धमद्य द्रक्ष्यसि मे बलम् ॥
अर्जुन उवाच।
इदानीमेव तावत्त्वमपयातो रणान्मम।
तेन जीवसि राधेय निहतस्त्वनुजस्तव ॥ १५
भ्रातरं घातयित्वा कस्त्यक्त्वा रणशिरश्च कः।
त्वदन्यः कः पुमान् सत्सु ब्रूयादेवं व्यवस्थितः ॥
वैशम्पायन उवाच।
इति कर्णं ब्रुवन्नेव बीभत्सुरपराजितः।
अभ्ययाद्विसृजन् बाणान् कायावरणभेदिनः ॥१७
प्रतिजग्राह तं कर्णः प्रीयमाणो महारथः।
महता शरवर्षेण वर्षमाणमिवाम्बुदम् ॥ १८
उत्पेतुः शरजालानि घोररूपाणि सर्वशः।
अविध्यदश्वान् बाह्वोश्च हस्तावापं पृथक् पृथक्१९

---

चक्षुर्दधे धृतवान् ॥ १७ ॥ कामयन् कामयमानः ॥२१॥ इति श्रीम० विरा० नै० भा० भा० एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

× अवाक्षिपत्—आक्षिप्य मुमोच।

६०

कर्णेति। ते त्वया ॥ १ ॥ ते तव वाक्यं कर्तृ कर्म अतिशेते अल्पं कर्म वाक्यं तु बहुलमित्यर्थः ॥ ९ ॥ इतः परं तव पराक्रमं गृह्णामहे अङ्गीकुर्महे ॥१०॥

सोऽमृष्यमाणः कर्णस्य निषङ्गस्यावलम्बनम् ।
चिच्छेद निशिताग्रेण शरेण नतपर्वणा ॥ २०
उपासङ्गादुपादाय कर्णो बाणानथापरान् ।
विव्याध पाण्डवं हस्ते तस्य मुष्टिरशीर्यत ॥ २१
ततः पार्थो महाबाहुः कर्णस्य धनुरच्छिनत् ।
स शक्तिं प्राहिणोत् तस्मै तां पार्थो व्यधमच्छरैः
ततोऽनुपेतुर्बहवो राधेयस्य पदानुगाः ।
तांश्च गाण्डीवनिर्मुक्तैः प्राहिणोद्यमसादनम्॥ २३
ततोऽस्याश्वान् शरैस्तीक्ष्णैर्बीभत्सुर्भारसाधनैः।
आकर्णमुक्तैरभ्यघ्नंस्ते हताः प्रापतन् भुवि ॥ २४
अथापरेण बाणेन ज्वलितेन महौजसा ।
विव्याध कर्णं कौन्तेयस्तीक्ष्णेनोरसि वीर्यवान् ॥
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं कायमभ्यगमच्छरः ।
ततः स तमसाऽऽविष्टो न स्म किंचित्प्रजज्ञिवान्
स गाढवेदनो हित्वा रणं प्रायादुदङ्मुखः ।
ततोऽर्जुन उदक्रोशदुत्तरश्च महारथः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि कर्णापयाने
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

वैशम्पायन उवाच ।

ततो वैकर्तनं जित्वा पार्थो वैराटिमब्रवीत् ।
एतन्मां प्रापयानीकं यत्र तालो हिरण्मयः ॥ १
अत्र शान्तनवो भीष्मो रथेऽस्माकं पितामहः।
काङ्क्षमाणो मया युद्धं तिष्ठत्यमरदर्शनः ॥ २
अथ सैन्यं महद्दृष्ट्वा रथनागहयाकुलम् ।
अब्रवीदुत्तरः पार्थमपविद्धः शरैर्भृशम् ॥ ३
नाहं शक्ष्यामि वीरेह नियन्तुं ते हयोत्तमान् ।
विषीदन्ति मम प्राणा मनो विह्वलतीव मे ॥ ४
अस्त्राणामिव दिव्यानां प्रभावः संप्रयुज्यताम् ।
त्वया च कुरुभिश्चैव द्रवन्तीव दिशो दश ॥ ५
गन्धेन मूर्छितश्चाहं वसारुधिरमेदसाम् ।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य तव चैव प्रपश्यतः ॥ ६
अदृष्टपूर्वः शूराणां मया संख्ये समागमः ।
गदापातेन महता शङ्खानां निःस्वनेन च ॥ ७
सिंहनादैश्च शूराणां गजानां बृंहितैस्तथा ।
गाण्डीवशब्देन भृशमशनिप्रतिमेन च ।
श्रुतिः स्मृतिश्च मे वीर प्रनष्टा मूढचेतसः ॥ ८
अलातचक्रप्रतिमं मण्डलं सततं त्वया ।
व्याक्षिप्यमाणं समरे गाण्डीवं च प्रकर्षता ।
दृष्टिः प्रचलिता वीर हृदयं दीर्यतीव मे ॥ ९
वपुश्चोग्रं तव रणे क्रुद्धस्येव पिनाकिनः ।
व्यायच्छतस्तव भुजं दृष्ट्वा भीर्मे भवत्यपि ॥ १०
नाददानं न संधानं न मुञ्चन्तं शरोत्तमान् ।
त्वामहं संप्रपश्यामि पश्यन्नपि न चेतनः ॥ ११
अवसीदन्ति मे प्राणा भूरियं चलतीव च ।
न च प्रतोदं रश्मींश्च संयन्तुं शक्तिरस्ति मे ॥१२

अर्जुन उवाच ।

मा भैषीः स्तम्भयात्मानं त्वयाऽपि नरपुङ्गव ।
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतानि रणमूर्धनि ॥ १३
राजपुत्रोऽसि भद्रं ते कुले मत्स्यस्य विश्रुते ।
जातस्त्वं शत्रुदमने नावसीदितुमर्हसि ॥ १४
धृतिं कृत्वा सुविपुलां राजपुत्र रथे मम ।
युध्यमानस्य समरे हयान् संयच्छ शत्रुहन् ॥ १५

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैराटिं नरसत्तमः ।
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६
सेनाग्रमाशु भीष्मस्य प्रापयस्वैतदेव माम् ।
आच्छेत्स्याम्यहमेतस्य धनुर्ज्यामपि चाहवे॥ १७
अस्यन्तं दिव्यमस्त्रं मां चित्रमद्य निशामय ।
शतह्रदामिवायान्तीं स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥ १८
सुवर्णपृष्ठं गाण्डीवं द्रक्ष्यन्ति कुरवो मम ।
दक्षिणेनाथ वामेन कतरेण स्विदस्यति ॥ १९

अवलम्बनं सूत्रं चिच्छेद ॥ २० ॥ ततो निषङ्गे महातूणीरे पतिते सति उपासङ्गात्क्षुद्रतूणीरात् स्वदेहबाह्यात् ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

तत इति ॥ १ ॥ न संधानं न संदधानं वर्णलोप आर्षः ॥११॥ निशामय पश्य शतह्रदां विद्युतम् ॥१८॥

इति मां सङ्गताः सर्वे तर्कयिष्यन्ति शत्रवः ।
शोणितोदां रथावर्तां नागनक्रां दुरत्ययाम् ।
नदीं प्रस्कन्दयिष्यामि परलोकप्रवाहिनीम्॥ २०
×पाणिपादशिरःपृष्ठबाहुशाखानिरन्तरम् ।
वनं कुरूणां छेत्स्यामि शरैः सन्नतपर्वभिः ।। २१
जयतः कौरवीं सेनामेकस्य मम धन्विनः ।
शतं मार्गा भविष्यन्ति पावकस्येव कानने ॥ २२
मया चक्रमिवाविद्धं सैन्यं द्रक्ष्यसि केवलम् ।
इष्वस्त्रे शिक्षितं चित्रमहं दर्शयिताऽस्मि ते॥२३
असंभ्रान्तो रथे तिष्ठ समेषु विषमेषु च ।
दिवमावृत्य तिष्ठन्तं गिरिं भिन्द्यां स्म पत्रिभिः॥२४
अहमिन्द्रस्य वचनात् सङ्ग्रामेऽभ्यहनं पुरा ।
पौलोमान् कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च
अहमिन्द्राद्दृढां मुष्टिं ब्रह्मणः कृतहस्तताम् ।
प्रगाढे तुमुलं चित्रमिति विद्धि प्रजापतेः ॥ २६
अहं पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जित्वा षष्टिं सहस्राणि रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥२७
शीर्यमाणानि कूलानि प्रवृद्धेनेव वारिणा ।
मया कुरूणां वृन्दानि पात्यमानानि पश्य वै २८
ध्वजवृक्षं पत्तितृणं रथसिंहगणायुतम् ।
वनमादीपयिष्यामि कुरूणामस्त्रतेजसा ॥ २९
तानहं रथनीडेभ्यः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
यत्तान् सर्वानतिबलान् योत्स्यमानानवस्थितान्
एकः संकालयिष्यामि वज्रपाणिरिवासुरान्॥ ३०
रौद्रं रुद्रादहं ह्यस्त्रं वारुणं वरुणादपि ।
अस्त्रमाग्नेयमग्नेश्च वायव्यं मातरिश्वनः ।
वज्रादीनि तथाऽस्त्राणि शक्रादहमवाप्तवान् ३१
धार्तराष्ट्रवनं घोरं नरसिंहाभिरक्षितम् ।
अहमुत्पाटयिष्यामि वैराटे व्येतु ते भयम् ॥ ३२

वैशम्पायन उवाच ।
एवमाश्वासितस्तेन वैराटिः सव्यसाचिना ।
व्यवागाहद्रथानीकं भीमं भीष्माभिरक्षितम् ३३
तमायान्तं महाबाहुं जिगीषन्तं रणे कुरून् ।
अभ्यवारयदव्यग्रः क्रूरकर्माऽऽपगासुतः ॥ ३४
तस्य जिष्णुरुपावृत्य ध्वजं मूलादपातयत् ।
विकृष्य कलधौताग्रैः स विद्धः प्रापतद्भुवि ॥ ३५
तं चित्रमाल्याभरणाः कृतविद्या मनस्विनः ।
आगच्छन् भीमधन्वानं चत्वारश्च महाबलाः ३६
दुःशासनो विकर्णश्च दुःसहोऽथ विविंशतिः ।
आगत्य भीमधन्वानं बीभत्सुं पर्यवारयन् ॥ ३७
दुःशासनस्तु भल्लेन विद्ध्वा वैराटमुत्तरम् ।
द्वितीयेनार्जुनं वीरः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३८
तस्य जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम् ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ३९
अथैनं पञ्चभिः पश्चात् प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
सोऽपयातो रणं हित्वा पार्थबाणप्रपीडितः॥ ४०
तं विकर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्गृध्रपत्रैरजिह्मगैः ।
विव्याध परवीरघ्नमर्जुनं धृतराष्ट्रजः ॥ ४१
ततस्तमपि कौन्तेयः शरेणानतपर्वणा ।
ललाटेऽभ्यहनत् तूर्णं स विद्धः प्रापतद्रथात्॥४२
ततः पार्थमभिद्रुत्य दुःसहः स विविंशतिः ।
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णैः परीप्सुर्भ्रातरं रणे ॥ ४३
तावुभौ गार्ध्रपत्राभ्यां निशिताभ्यां धनञ्जयः ।
विद्ध्वा युगपदव्यग्रस्तयोर्वाहानसूदयत् ॥ ४४
तौ हताश्वौ विभिन्नाङ्गौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ ।
अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगैः ॥ ४५
सर्वा दिशश्चाभ्यपतद्बीभत्सुरपराजितः ।
किरीटमाली कौन्तेयो लब्धलक्षो महाबलः॥४६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनदुःशासनादियुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

शतं मार्गा इति सर्वतो मार्गस्यानिरोध उक्तः सर्वतो वा मम बाणा गमिष्यन्तीत्यर्थः ।। २२ ॥ आविद्धं भ्राम्यमाणं शिक्षितं शिक्षाम् ॥ २३ ॥ प्रगाढे संकटे चित्रं नानाविधं तुमुलं संकटयुद्धं सर्वत्र वेद्मीति शेषः ॥ २६ ॥ जित्वा जेतुं शक्तः ॥ २७ ॥ रथसिंहगणैः आ समन्तात् युतम् ॥ २९ ॥ व्यवागाहत् आलोडितवान् ॥ ३३ ॥ उपावृत्य संमुखीभूय विकृष्य छित्वा कलधौताग्रैः स्वर्णराजितफलकैर्बाणैः ॥ ३५ ॥ एनं दुःशासनम् ॥ ४० ॥ लब्धलक्षः अप्रच्युतलक्षः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

× कुरूणां वनं वनमिव सैन्यम् । पाण्यादयः शाखा इव शाखाश्चेत्येताभिर्निरन्तरम् ।

## ६२

वैशम्पायन उवाच ।

अथ सङ्गम्य सर्वे ते कौरवाणां महारथाः ।
अर्जुनं सहिता यत्ताः प्रत्ययुध्यन्त भारत ॥ १
स सायकमयैर्जालैः सर्वतस्तान् महारथान् ।
प्राच्छादयदमेयात्मा नीहारेणेव पर्वतान् ॥ २
नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ ३
नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
पार्थस्य शरजालानि विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ ४
त्वरमाणः शरानस्यन्पाण्डवः प्रबभौ रणे ।
मध्यन्दिनगतोऽर्चिष्मान् शरदीव दिवाकरः ॥ ५
उपप्लवन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा ।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चैव पदातयः ॥ ६
शरैः संछिद्यमानानां कवचानां महात्मनाम् ।
ताम्रराजतलौहानां प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ७
छन्नमायोधनं सर्वं शरीरैर्गतचेतसाम् ।
गजाश्वसादिनां तत्र शितबाणात्तजीवितैः ॥ ८
रथोपस्थाभिपतितैरास्तृता मानवैर्मही ।
प्रनृत्यतीव सङ्ग्रामे चापहस्तो धनञ्जयः ॥ ९
श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
त्रस्तानि सर्वसैन्यानि व्यपागच्छन्महाहवात् १०
कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजस्तथा ।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्धनि ॥११
विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चान्यैः प्रच्छन्ना भाति मेदिनी॥१२
शिरसां पात्यमानानामन्तरा निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशादभवद्भरतर्षभ ॥ १३
दर्शयित्वा तथाऽऽत्मानं रौद्रं रुद्रपराक्रमः ।
अवरुद्धोऽचरत्पार्थो वर्षाणि त्रिदशानि च ।
क्रोधाग्निमुत्सृजन्वीरो धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवः॥ १४
तस्य तद्दहतः सैन्यं दृष्ट्वा चैव पराक्रमम् ।
सर्वे शान्तिपरा योधा धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः॥ १५
वित्रासयित्वा तत्सैन्यं द्रावयित्वा महारथान्।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः पर्यवर्तत भारत ॥ १६
प्रावर्तयन्नदीं घोरां शोणितोदां तरङ्गिणीम् ।
अस्थिशैवालसम्बाधां युगान्ते कालनिर्मिताम् ॥
शरचापप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
तनुत्रोष्णीषसम्बाधां नागकूर्ममहाद्विपाम् ॥ १८
मेदोवसासृक्प्रवहां महाभयविवर्धिनीम् ।
रौद्ररूपां महाभीमां श्वापदैरभिनादिताम् ॥ १९
तीक्ष्णशस्त्रमहाग्राहां क्रव्यादगणसेविताम् ।
मुक्ताहारोर्मिकलिलां चित्रालङ्कारबुद्बुदाम् ॥२०
शरसङ्घमहावर्तां नागनक्रां दुरत्ययाम् ।
महारथमहाद्वीपां शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाम् ।
चकार च तदा पार्थो नदीं दुस्तरशोणिताम्॥२१
आददानस्य हि शरान् सन्धाय च विमुञ्चतः ।
विकर्षतश्च गाण्डीवं न कश्चिद्ददृशे जनः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनसंकुलयुद्धे
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

वैशम्पायन उवाच ।

ततो दुर्योधनः कर्णो दुःशासनविविंशती ।
द्रोणश्च सह पुत्रेण कृपश्चापि महारथः ॥ १

६२

अथेति ॥ १ ॥ नीहारेण धूमोष्मणा ॥ २ ॥ उपप्लवन्ति इतस्ततो धावन्ति॥६॥ आयोधनं रणभूः गतचेतसां मूढानाम् । आत्तजीवितैर्मृतैः शरीरैः ॥८॥ रथोपस्थेभ्योऽभितः पतितैः ॥९॥ धारीणि शिरांसि स्रजश्च पतितानि दृश्यन्ते॥११॥त्रीणि च दश चेति त्रिदशानि वर्षाणि अवरुद्धः पार्थस्तदानीं स्वेच्छयाऽचरदित्यर्थः ॥१४॥ नागा हस्तिन एव कूर्माः महाद्विपा जलगजाश्च यस्यां ताम् ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

तत इति ॥ १ ॥

पुनर्ययुश्च संरब्धा धनञ्जयजिघांसवः ।
विस्फारयन्तश्चापानि बलवन्ति दृढानि च ॥ २
तान्विकीर्णपताकेन रथेनादित्यवर्चसा ।
प्रत्युद्ययौ महाराज समन्ताद्वानरध्वजः ॥ ३
ततः कृपश्च कर्णश्च द्रोणश्च रथिनां वरः ।
तं महास्त्रैर्महावीर्यं परिवार्य धनञ्जयम् ॥ ४
शरौघान्सम्यगस्यन्तो जीमूता इव वार्षिकाः ।
ववर्षुः शरवर्षाणि पातयन्तो धनञ्जयम् ॥ ५
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं समरे लोमवाहिभिः ।
अदूरात्पर्यवस्थाप्य पूरयामासुरादृताः ॥ ६
तथा तैरवकीर्णस्य दिव्यैरस्त्रैः समन्ततः ।
न तस्य द्व्यङ्गुलमपि विवृतं सम्प्रदृश्यते ॥ ७
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः ।
अस्त्रमादित्यसङ्काशं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ८
शररश्मिरिवादित्यः प्रतस्थे समरे बली ।
किरीटमाली कौन्तेयः सर्वान्प्राच्छादयत्कुरून् ९
यथा बलाहके विद्युत्पावको वा शिलोच्चये ।
तथा गाण्डीवमभवदिन्द्रायुधमिवानतम् ॥ १०
यथा वर्षति पर्जन्ये विद्युद्विभ्राजते दिवि ।
द्योतयन्ती दिशः सर्वाः पृथिवीं च समन्ततः ॥
तथा दश दिशः सर्वाः पतद्गाण्डीवमावृणोत् ।
नागाश्च रथिनः सर्वे मुमुहुस्तत्र भारत ॥ १२
सर्वे शान्तिपरा योधाः स्वचित्तानि न लेभिरे ।
सङ्ग्रामे विमुखाः सर्वे योधास्ते हतचेतसः ॥ १३
एवं सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ ।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीविते ॥१४

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनसंकुलयुद्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः ॥
वध्यमानेषु योधेषु धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ १
प्रगृह्य कार्मुकश्रेष्ठं जातरूपपरिष्कृतम् ।
शरानादाय तीक्ष्णाग्रान् मर्मभेदान् प्रमाथिनः ॥२
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
शुशुभे स नरव्याघ्रो गिरिः सूर्योदये यथा ॥ ३
प्रध्माय शङ्खं गाङ्गेयो धार्तराष्ट्रान्प्रहर्षयन् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य बीभत्सुं समवारयत् ॥ ४
तमुदीक्ष्य समायान्तं कौन्तेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णात्प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः ॥ ५
ततो भीष्मः शरानष्टौ ध्वजे पार्थस्य वीर्यवान् ।
समार्पयन्महावेगान् श्वसमानानिवोरगान् ॥ ६
ते ध्वजं पाण्डुपुत्रस्य समासाद्य पतत्रिणः ।
ज्वलन्तं कपिमाजघ्नुर्ध्वजाग्रनिलयांश्च तान् ॥ ७
ततो भल्लेन महता पृथुधारेण पाण्डवाः ।
छत्रं चिच्छेद भीष्मस्य तूर्णं तदपतद्भुवि ॥ ८
ध्वजं चैवास्य कौन्तेयः शरैरभ्यहनद्भृशम् ।
शीघ्रकृद्रथवाहांश्च तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ९
अमृष्यमाणस्तद्भीष्मो जानन्नपि स पाण्डवम् ।
दिव्येनास्त्रेण महता धनञ्जयमवाकिरत् ॥ १०
तथैव पाण्डवो भीष्मे दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
प्रत्यगृह्णादमेयात्मा महामेघमिवाचलः ॥ ११
तयोस्तदभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भीष्मेण सह पार्थेन बलिवासवयोरिव ॥ १२
प्रैक्षन्त कुरवः सर्वे योधाश्च सहसैनिकाः ।
भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि ॥
अन्तरिक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि ॥ १३
अग्निचक्रमिवाविद्धं सव्यदक्षिणमस्यतः ।
गाण्डीवमभवद्राजन् पार्थस्य सृजतः शरान्॥१४

---

विकीर्णा विस्तारिता पताकाध्वजाञ्चलो यस्य तेन॥३॥ पातयन्तः पीडयन्तः ॥ ५ ॥ पर्यवस्थाप्य स्तब्धीकृत्य इषुभिः पूरयामासुः आवृतवन्तः ॥ ६ ॥ स्वाचित्तानि अयमहामितिन ज्ञातवन्तः ॥१३॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३॥

६४

तत इति ॥ १ ॥ अग्निचक्रमलातचक्रमाविद्धं भ्राम्यमाणम् ॥ १४ ॥

ततः संछादयामास भीष्मं शरशतैः शितैः।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ १५
तां स वेलामिवोद्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम्।
व्यधमत्सायकैर्भीष्मः पाण्डवं समवारयत् ॥ १६
ततस्तानि निकृत्तानि शरजालानि भागशः।
समरे च व्यशीर्यन्त फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥ १७
ततः कनकपुङ्खानां शरवृष्टिं समुत्थिताम्।
पाण्डवस्य रथात्तूर्णं शलभानामिवायतिम् ॥
व्यधमत्तां पुनस्तस्य भीष्मः शरशतैः शितैः॥१८
ततस्ते कुरवः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन्।
दुष्करं कृतवान्भीष्मो यदर्जुनमयोधयत् ॥ १९
बलवांस्तरुणो दक्षः क्षिप्रकारी धनञ्जयः।
कोऽन्यः समर्थः पार्थस्य वेगं धारयितुं रणे॥२०
ऋते शान्तनवाद्भीष्मात्कृष्णाद्वा देवकीसुतात्।
आचार्यप्रवराद्वाऽपि भारद्वाजान्महाबलात् ॥ २१
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य क्रीडन्तौ भरतर्षभौ।
चक्षूंषि सर्वभूतानां मोहयन्तौ महाबलौ ॥ २२
प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं रौद्रदारुणम्।
कौबेरं वारुणं चैव याम्यं वायव्यमेव च ॥
प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः ॥ २३
विस्मितान्यथ भूतानि तौ दृष्ट्वा संयुगे तदा।
साधु पार्थ महाबाहो साधु भीष्मेति चाब्रुवन् ॥
नायं युक्तो मनुष्येषु योऽयं संदृश्यते महान्।
महास्त्राणां संप्रयोगः समरे भीष्मपार्थयोः॥ २५

वैशम्पायन उवाच।

एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्तत ॥
अस्त्रयुद्धे तु निर्वृत्ते शरयुद्धमवर्तत ॥ २६
अथ जिष्णुरुपावृत्य क्षुरधारेण कार्मुकम्।
चकर्त भीष्मस्य तदा जातरूपपरिष्कृतम् ॥ २७
निमेषान्तरमात्रेण भीष्मोऽन्यत्कार्मुकं रणे।
समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महारथः।
शरांश्च सुबहून्क्रुद्धो मुमोचाशु धनञ्जये ॥ २८
अर्जुनोऽपि शरांस्तीक्ष्णान्भीष्माय निशितान्बहून्।
चिक्षेप सुमहातेजास्तथा भीष्मश्च पाण्डवे ॥ २९
तयोर्दिव्यास्त्रविदुषोरस्यतोर्निशितान् शरान्।
न विशेषस्तदा राजन् लक्ष्यते स्म महात्मनोः॥३०

अथावृणोद्दश दिशः शरैरतिरथस्तदा।
किरीटमाली कौन्तेयः शूरः शान्तनवस्तथा॥३१
अतीव पाण्डवो भीष्मं भीष्मश्चातीव पाण्डवम्।
बभूव तस्मिन्सङ्ग्रामे राजँल्लोके तदद्भुतम् ॥ ३२
पाण्डवेन हताः शूरा भीष्मस्य रथरक्षिणः।
शेरते स्म तदा राजन् कौन्तेयस्याभितो रथम् ॥
ततो गाण्डीवनिर्मुक्ता निरमित्रं चिकीर्षवः।
आगच्छन्पुङ्खसंश्लिष्टाः श्वेतवाहनपत्रिणः ॥ ३४
निष्पतन्तो रथात्तस्य धौता हैरण्यवाससः।
आकाशे समदृश्यन्त हंसानामिव पङ्क्तयः ॥ ३५
तस्य तद्दिव्यमस्त्रं हि विगाढं चित्रमस्यतः।
प्रेक्षन्ते स्मान्तरिक्षस्थाः सर्वे देवाः सवासवाः ॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीतो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम्।
शशंस देवराजाय चित्रसेनः प्रतापवान् ॥ ३७
पश्येमान्पार्थनिर्मुक्तान्संसक्तानिव गच्छतः।
चित्ररूपमिदं जिष्णोर्दिव्यमस्त्रमुदीर्यतः ॥ ३८
नेदं मनुष्याः संदध्युर्नहीदं तेषु विद्यते।
पौराणानां महास्त्राणां विचित्रोऽयं समागमः ३९
आददानस्य हि शरान् संधाय च विमुञ्चतः।
विकर्षतश्च गाण्डीवं नान्तरं समदृश्यत ॥ ४०
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे।
नाशक्नुवन्त सैन्यानि पाण्डवं प्रति वीक्षितुम्॥४१
तथैव भीष्मं गाङ्गेयं द्रष्टुं नोत्सहते जनः ॥ ४२
उभौ विश्रुतकर्माणावुभौ तीव्रपराक्रमौ।
उभौ सदृशकर्माणावुभौ युधि सुदुर्जयौ ॥ ४३
इत्युक्तो देवराजस्तु पार्थभीष्मसमागमम्।
पूजयामास दिव्येन पुष्पवर्षेण भारत ॥ ४४
ततः शान्तनवो भीष्मो वामं पार्श्वमताडयत्।
पश्यतः प्रतिसंधाय विध्यतः सव्यसाचिनः ॥ ४५
ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम्।
चिच्छेद गार्ध्रपत्रेण भीष्मस्यादित्यतेजसः ॥ ४६
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ४७
स पीडितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम्।
गाङ्गेयो युद्धदुर्धर्षस्तस्थौ दीर्घमिवान्तरम् ॥ ४८

उपावृत्य समीपमेत्य ॥ २७ ॥ अस्त्रं बाणानां क्षेपणं कर्म ॥ ३८ ॥ कूबरं रथयुगन्धरम् ॥ ४८ ॥

तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम् । उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम् ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि भीष्मापयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

वैशम्पायन उवाच ।

भीष्मे तु सङ्ग्रामशिरो विहाय
पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः ॥
उत्सृज्य केतुं विनदन्महात्मा
धनुर्विगृह्यार्जुनमाससाद ॥ १

स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं
धनञ्जयं शत्रुगणे चरन्तम् ।
आकर्णपूर्णायतचोदितेन
विव्याध भल्लेन ललाटमध्ये ॥ २

स तेन बाणेन समर्पितेन
जाम्बूनदाग्रेण सुसंहितेन ।
रराज राजन्महनीयकर्मा
यथैकपर्वा रुचिरैकशृङ्गः ॥ ३

अथास्य बाणेन विदारितस्य
प्रादुर्बभूवासृगजस्रमुष्णम् ।
स तस्य जाम्बूनदपुङ्खचित्रो
भित्त्वा ललाटं सुविराजते स्म ॥ ४

दुर्योधनश्चापि तमुग्रतेजाः
पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः ।
अन्योन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ
समौ समाजग्मतुराजमीढौ ॥ ५

ततः प्रभिन्नेन महागजेन
महीधराभेन पुनर्विकर्णः ।
रथैश्चतुर्भिर्गजपादरक्षैः
कुन्तीसुतं जिष्णुमथाभ्यधावत् ॥ ६

तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं
धनञ्जयः कुम्भविभागमध्ये ।
आकर्णपूर्णेन महायसेन
बाणेन विव्याध महाजवेन ॥ ७

पार्थेन सृष्टः स तु गार्ध्रपत्र
आपुङ्खदेशात् प्रविवेश नागम् ।
विदार्य शैलप्रवरं प्रकाशं
यथाऽशनिः पर्वतमिन्द्रसृष्टः ॥ ८

शरप्रतप्तः स तु नागराजः
प्रवेपिताङ्गो व्यथितान्तरात्मा ।
संसीदमानो निपपात मह्यां
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ९

निपातिते दन्तिवरे पृथिव्यां
त्रासाद्विकर्णः सहसाऽवतीर्य ।
तूर्णं पदान्यष्टशतानि गत्वा
विविंशतेः स्यन्दनमारुरोह ॥ १०

निहत्य नागं तु शरेण तेन
वज्रोपमेनाद्रिवराम्बुदाभम् ।
तथाविधेनैव शरेण पार्थो
दुर्योधनं वक्षसि निर्बिभेद ॥ ११

ततो गजे राजनि चैव भिन्ने
भग्ने विकर्णे च सपादरक्षे ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्ना-
स्ते योधमुख्याः सहसाऽपजग्मुः ॥ १२

दृष्ट्वैव पार्थेन हतं च नागं
योधांश्च सर्वान्द्रवतो निशम्य ।
रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो
रणात्प्रदुद्राव यतो न पार्थः ॥ १३

अपोवाह अपसारयामास ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५

भीष्म इति । धृतराष्ट्रपुत्रो दुर्योधन उत्सृज्य उन्मुच्य केतुं पताकाम् ॥ १ ॥ एकश्शृङ्गः पर्वतो यथा एकेन पर्ववता दीर्घवंशेन । एकः पर्वा यस्मिन्निति समासः । मतुब्लोप आर्षः ॥३॥ असृक् रक्तम् ॥ ४ ॥ महायसेन महाफलकेन ॥८॥ अपजग्मुः पलायनं कृतवन्तः ॥ १२ ॥

तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं
दुर्योधनं शत्रुसहोऽभिषङ्गात् ।
प्रास्फोटयद्योद्धुमनाः किरीटी
बाणेन विद्धं रुधिरं वमन्तम् ॥ १४
अर्जुन उवाच ।
विहाय कीर्तिं विपुलं यशश्च
युद्धात्परावृत्य पलायसे किम् ।
न तेऽद्य तूर्याणि समाहतानि
तथैव राज्यादवरोपितस्य ॥ १५
युधिष्ठिरस्यास्मि निदेशकारी
पार्थस्तृतीयो युधि संस्थितोऽस्मि ।
तदर्थमावृत्य मुखं प्रयच्छ
नरेन्द्र वृत्तं स्मर धार्तराष्ट्र ॥ १६
मोघं तवेदं भुवि नामधेयं
दुर्योधनेतीह कृतं पुरस्तात् ।
न हीह दुर्योधनता तवास्ति
पलायमानस्य रणं विहाय ॥ १७
न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा
पश्यामि दुर्योधन रक्षितारम् ।
अपेहि युद्धात् पुरुषप्रवीर
प्राणान्प्रियान्पाण्डवतोऽद्य रक्ष ॥ १८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दुर्योधनापयाने
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

वैशम्पायन उवाच ।
आहूयमानश्च स तेन संख्ये
महात्मना वै धृतराष्ट्रपुत्रः ।
निवर्तितस्तस्य गिराङ्कुशेन
महागजो मत्त इवाङ्कुशेन ॥ १
सोऽमृष्यमाणो वचसाऽभिमृष्टो
महारथेनातिरथस्तरस्वी ।
पर्याववर्ताथ रथेन वीरो
भोगी यथा पादतलाभिमृष्टः ॥ २
तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्तमानं
निवर्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रम् ।
दुर्योधनस्योत्तरतोऽभ्यगच्छत्
पार्थं नृवीरो युधि हेममाली ॥ ३
भीष्मस्ततः शान्तनवो विवृत्य
हिरण्यकक्षस्त्वरयाऽभिषङ्गी ।
दुर्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत्
पार्थान्महाबाहुरधिज्यधन्वा ॥ ४
द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च
दुःशासनश्चैव विवृत्य शीघ्रम् ।
सर्वे पुरस्ताद्विततोरुचापा
दुर्योधनार्थं त्वरिताऽभ्युपेयुः ॥ ५
स तान्यनीकानि निवर्तमाना-
न्यालोक्य पूर्णौघनिभानि पार्थः ।
हंसो यथा मेघमिवापतन्तं
धनञ्जयः प्रत्यतपत्तरस्वी ॥ ६
ते सर्वतः संपरिवार्य पार्थ-
मस्त्राणि दिव्यानि समाददानाः ।
ववर्षुरभ्येत्य शरैः समन्ता-
न्मेघा यथा भूधरमम्बुवर्गैः ॥ ७
ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य तेषां
गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम् ।
संमोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं
प्रादुश्चकारैन्द्रिरपारणीयम् ॥ ८

---

अभिषङ्गात् पराभवात् द्रवन्तमालक्ष्य प्रास्फोटयत् आस्फोटं बाहुशब्दं कृतवान् ॥ १४ ॥ तूर्याणि जयवाद्यानि तथैवेत्यादि उत्तरान्वयि ॥ १५ ॥ तृतीयः पार्थः पृथासुतोऽर्जुनोऽस्मि वृत्तं द्यूतादिष्वधर्मम् ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

आहूयेति ॥ १ ॥ पर्याववर्त परावृत्तवान् ॥ २ ॥ नृवीरो दुर्योधनः ॥३॥ अभिषङ्गी शत्रुपराजयसमर्थः ॥४॥ त्वरिताः अभ्युपेयुः सन्धिरार्षः ॥ ५ ॥ हंसः सूर्यः प्रत्यतपत् प्रातितापितावान् ॥ ६ ॥

ततो दिशश्चानुदिशो विवृत्य
शरैः सुधारैर्निशितैः सुपत्रैः ।
गाण्डीवघोषेण मनांसि तेषां
महाबलः प्रव्यथयाञ्चकार ॥ ९

ततः पुनर्भीमरवं प्रगृह्य
दोर्भ्यां महाशङ्खमुदारघोषम् ।
व्यनादयत्स प्रदिशो दिशः खं
भुवं च पार्थो द्विषतां निहन्ता ॥ १०

ते शङ्खनादेन कुरुप्रवीराः
संमोहिताः पार्थसमीरितेन ।
उत्सृज्य चापानि दुरासदानि
सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः ॥ ११

तथा विसंज्ञेषु च तेषु पार्थः
स्मृत्वा च वाक्यानि तथोत्तरायाः ।
निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्र-
मुवाच यावत्कुरवो विसंज्ञाः ॥ १२

आचार्यशारद्वतयोः सुशुक्ले
कर्णस्य पीतं रुचिरं च वस्त्रम् ।
द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले
वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीर ॥ १३

भीष्मस्य संज्ञा तु तथैव मन्ये
जानाति सोऽस्त्रप्रतिघातमेषः ।
एतस्य वाहान् कुरु संयतस्त्व-
मेवं हि यातव्यममूढसंज्ञैः ॥ १४

रश्मीन् समुत्सृज्य ततो महात्मा
रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः ।
वस्त्राण्युपादाय महारथानां
तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह ॥ १५

ततोऽन्वशासच्चतुरः सदश्वान्
पुत्रो विराटस्य हिरण्यकक्षान् ।
ते तद्व्यतीयुर्ध्वजिनामनीकं
श्वेता वहन्तोऽर्जुनमाजिमध्यात् ॥ १६

तथाऽनुयान्तं पुरुषप्रवीरं
भीष्मः शरैरभ्यहनत्तरस्वी ।
स चापि भीष्मस्य हयान्निहत्य
विव्याध पार्थो दशभिः पृषत्कैः ॥ १७

ततोऽर्जुनो भीष्ममपास्य युद्धे
विद्ध्वाऽस्य यन्तारमरिष्टधन्वा ।
तस्थौ विमुक्तो रथवृन्दमध्या-
न्मेघं विदार्येव सहस्ररश्मिः ॥ १८

लब्ध्वा हि संज्ञां तु कुरुप्रवीराः
पार्थं निरीक्ष्याथ सुरेन्द्रकल्पम् ।
रणे विमुक्तं स्थितमेकमाजौ
स धार्तराष्ट्रस्त्वरितं बभाषे ॥ १९

अयं कथं वै भवतो विमुक्त-
स्तथा प्रमथ्नीत यथा न मुच्येत् ।
तमब्रवीच्छान्तनवः प्रहस्य
क्व ते गता बुद्धिरभून्न क्व वीर्यम् ॥ २०

शान्तिं परां प्राप्य यदा स्थितोऽभू-
रुत्सृज्य बाणांश्च धनुर्विचित्रम् ।
न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं
कर्तुं न पापेऽस्य मनो विशिष्टम् ॥ २१

त्रैलोक्यहेतोर्न जहेत्स्वधर्मं
सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन् ।
क्षिप्रं कुरून् याहि कुरुप्रवीर
विजित्य गाश्च प्रतियातु पार्थः ।
मा ते स्वकोऽर्थो निपतेत मोहा-
त्तत्संविधातव्यमरिष्टबन्धम् ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

दुर्योधनस्तस्य तु तन्निशम्य
पितामहस्यात्महितं वचोऽथ ।
अतीतकामो युधि सोऽत्यमर्षी
राजा विनिःश्वस्य बभूव तूष्णीम् ॥ २३

तद्भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे
धनञ्जयाग्निं च विवर्धमानम् ।
निवर्तनायैव मनो निदध्यु-
र्दुर्योधनं ते परिरक्षमाणाः ॥ २४

---

विवृत्य व्याप्य॥ ९ ॥ शान्तिपराः उपरतचित्ताः ॥११॥ अमूढसंज्ञैः भीष्मादिभिः सम्यतः कृतैरलक्षितेन भवता यातव्यं गन्तव्यम् ॥ १४ ॥ अयमर्जुनो भवतो विसंज्ञान् युष्मान् यथा न मुच्येत् न मोचनं स्यात्तथा प्रमथ्नीत उपमृद्यात् न तु मृदितवानिति भावः ॥ २० ॥ शान्तिं नष्टचित्तताम् । नृशंसं कर्तुं संमूढान् मारयितुं न अलं न योग्यः। अत्र हेतुः-न पापेऽस्य मनोऽस्ति यतो विशिष्टं श्रेष्ठम् ॥ २१ ॥ अरिष्टबन्धं कल्याणानुबन्धि कर्म ॥ २२ ॥

तान्प्रस्थितान्प्रीतमनाः स पार्थो
धनञ्जयः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीरान् ।
अभाषमाणोऽनुनयं मुहूर्तं
वचोऽब्रवीत् सम्परिहृत्य भूयः ॥ २५
पितामहं शान्तनवं च वृद्धं
द्रोणं गुरुं च प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।
द्रौणिं कृपं चैव कुरूंश्च मान्या-
ञ्छरैर्विचित्रैरभिवाद्य चैव ॥ २६
दुर्योधनस्योत्तमरत्नचित्रं
चिच्छेद पार्थो मुकुटं शरेण ।
आमन्त्र्य वीरांश्च तथैव मान्यान्
गाण्डीवघोषेण विनाद्य लोकान् ॥ २७
स देवदत्तं सहसा विनाद्य
विदार्य वीरो द्विषतां मनांसि ।
ध्वजेन सर्वानभिभूय शत्रून्
सहेममालेन विराजमानः ॥ २८
दृष्ट्वा प्रयातांस्तु कुरून् किरीटी
हृष्टोऽब्रवीत्तत्र स मत्स्यपुत्रम् ।
आवर्तयाश्वान् पशवो जितास्ते
याताः परे याहि पुरं प्रहृष्टः ॥ २९
देवास्तु दृष्ट्वा महदद्भुतं त-
द्युद्धं कुरूणां सह फाल्गुनेन ।
जग्मुर्यथास्वं भवनं प्रतीताः
पार्थस्य कर्माणि विचिन्तयन्तः ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि समस्तकौरवपलायने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

वैशम्पायन उवाच ।
ततो विजित्य सङ्ग्रामे कुरून् स वृषभेक्षणः ।
समानयामास तदा विराटस्य धनं महत् ॥ १
गतेषु च प्रभग्नेषु धार्तराष्ट्रेषु सर्वतः ।
वनान्निष्क्रम्य गहनाद्बहवः कुरुसैनिकाः ॥ २
भयात् संत्रस्तमनसः समाजग्मुस्ततस्ततः ।
मुक्तकेशास्त्वदृश्यन्त स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ३
क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता विदेशस्था विचेतसः ।
ऊचुः प्रणम्य सम्भ्रान्ताः पार्थ किं करवाम ते ४
अर्जुन उवाच ।
स्वस्ति व्रजत वो भद्रं न भेतव्यं कथञ्चन ।
नाहमार्तान् जिघांसामि भृशमाश्वासयामि वः ॥५
वैशम्पायन उवाच ।
तस्य तामभयां वाचं श्रुत्वा योधाः समागताः ।
आयुःकीर्तियशोदाभिस्तमाशीर्भिरनन्दयन् ॥ ६
ततोऽर्जुनं नागमिव प्रभिन्न-
मुत्सृज्य शत्रून् विनिवर्तमानम् ।
विराटराष्ट्राभिमुखं प्रयान्तं
नाशक्नुवंस्तं कुरवोऽभियातुम् ॥ ७
ततः स तन्मेघमिवापतन्तं
विद्राव्य पार्थः कुरुमेघसैन्यम् ।
मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता
वचोऽब्रवीत् संपरिरभ्य भूयः ॥ ८
पितुः सकाशे तव तात सर्वे
वसन्ति पार्था विदितं तवैव ।
तान् मा प्रशंसेर्नगरं प्रविश्य
भीतः प्रणश्येद्धि स मत्स्यराजः ॥ ९
मया जिता सा ध्वजिनी कुरूणां
मया च गावो विजिता द्विषद्भ्यः ।
पितुः सकाशं नगरं प्रविश्य
त्वमात्मनः कर्म कृतं ब्रवीहि ॥ १०
उत्तर उवाच ।
यत्ते कृतं कर्म न पारणीयं
तत्कर्म कर्तुं मम नास्ति शक्तिः ।
न त्वां प्रवक्ष्यामि पितुः सकाशे
यावन्न मां वक्ष्यसि सव्यसाचिन् ॥ ११

परिहृत्य परिवृत्य ॥ २५ ॥ शरैरेव पाददेशे पातितैरभिवाद्य मान्यान् बाल्हीकसोमदत्तादीन् ॥ २६ ॥ मुकुटं चिच्छेदेति दुर्योधनस्य मरणमेव सूचितम् ॥२७॥ हेममालया सहितेन सहेममालेन ध्वजेन ॥ २८ ॥ इति श्रीम० वि० पर्व० नैल० भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

६७

तत इति । वृषभेक्षणः श्रेष्ठदृष्टिः ॥ १ ॥ आपतन्तं पुंस्त्वमार्षम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

स शत्रुसेनामवजित्य जिष्णु-
राच्छिद्य सर्वं च धनं कुरुभ्यः ।
श्मशानमागत्य पुनः शमीं ता-
मभ्येत्य तस्थौ शरविक्षताङ्गः ॥ १२

ततः स वह्निप्रतिमो महाकपिः
सहैव भूतैर्दिवमुत्पपात ।
तथैव माया विहिता बभूव
ध्वजं च सैंहं युयुजे रथे पुनः ॥ १३

विधाय तच्चायुधमाजिवर्धनं
कुरूत्तमानामिषुधीः शरांस्तथा ।
प्रायात्स मत्स्यो नगरं प्रहृष्टः
किरीटिना सारथिना महात्मना ॥ १४

पार्थस्तु कृत्वा परमार्यकर्म
निहत्य शत्रून् द्विषतां निहन्ता ।
चकार वेणीं च तथैव भूयो
जग्राह रश्मीन् पुनरुत्तरस्य ।
विवेश हृष्टो नगरं महामना
बृहन्नलारूपमुपेत्य सारथिः ॥ १५

वैशम्पायन उवाच ।

ततो निवृत्ताः कुरवः प्रभग्ना वशमास्थिताः ।
हस्तिनापुरमुद्दिश्य सर्वे दीना ययुस्तदा ॥ १६
पन्थानमुपसङ्गम्य फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ १७
राजपुत्र प्रत्यवेक्ष्य समानीतानि सर्वशः ।
गोकुलानि महाबाहो वीर गोपालकैः सह ॥ १८
ततोऽपराह्णे यास्यामो विराटनगरं प्रति ।
आश्वास्य पाययित्वा च परिप्लाव्य च वाजिनः ॥
गच्छन्तु त्वरिताश्चेमे गोपालाः प्रेषितास्त्वया ।
नगरे प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥ २०

वैशम्पायन उवाच ।

अथोत्तरस्त्वरमाणः स दूता-
नाज्ञापयद्वचनात् फाल्गुनस्य ।
आचक्षध्वं विजयं पार्थिवस्य
भग्नाः परे विजिताश्चापि गावः ॥ २१

इत्येवं तौ भारतमत्स्यवीरौ
संमन्त्र्य सङ्गम्य ततः शमीं ताम् ।
अभ्येत्य भूयो विजयेन तृप्ता-
वुत्सृष्टमारोपयतां स्वभाण्डम् ॥ २२

स शत्रुसेनामभिभूय सर्वा-
माच्छिद्य सर्वं च धनं कुरुभ्यः ।
वैराटिरायान्नगरं प्रतीतो
बृहन्नलासारथिना प्रवीरः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरागमने
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

वैशम्पायन उवाच ।

धनं चापि विजित्याशु विराटो वाहिनीपतिः ।
विवेश नगरं हृष्टश्चतुर्भिः पाण्डवैः सह ॥ १
जित्वा त्रिगर्तान् सङ्ग्रामे गाश्चैवादाय सर्वशः ।
अशोभत महाराज सहपार्थैः श्रिया वृतः ॥ २
तमासनगतं वीरं सुहृदां हर्षवर्धनम् ।
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे सह पार्थैः परन्तपाः ॥ ३
उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ता ब्राह्मणैः सह ।
सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट् ४
विसर्जयामास तदा द्विजांश्च प्रकृतीस्तथा ।
तथा स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ५

---

सैंहं ध्वजं विराटीयं पूर्वं तत्र स्थापितम् ॥ १३ ॥ विधाय यथावत् स्थापयित्वा ॥ १४ ॥ वशं परवशतां आस्थिताः प्राप्ताः ॥ १६ ॥ विजये न तृप्तौ इतोऽप्यधिकं युद्धं प्रार्थयानौ । यद्वा विजयेन स्वीयेन तृप्तौ आनन्दितौ स्वस्य भाण्डमलंकारादिकं यत् पूर्वमुत्सृष्टं तत्तथैव शरीरे रथे च आरोपयतामारोपितवन्तौ ॥ २२ ॥ धनं गोधनं प्रतीतो हृष्टः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

दक्षिणगोग्रहवृत्तान्तमाह-धनं चेति ॥१॥ सभाजितः पूजितः ॥ ४ ॥

उत्तरं परिपप्रच्छ क्व यात इति चाब्रवीत् ।
आचख्युस्तस्य तत्सर्वं स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि॥६
अन्तःपुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम्
विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात् ।
बृहन्नलासहायश्च निर्गतः पृथिवीञ्जयः ॥ ७
उपयातानतिरथान् भीष्मं शान्तनवं कृपम् ।
कर्णं दुर्योधनं द्रोणं द्रोणपुत्रं च षड्रथान् ॥ ८

वैशम्पायन उवाच ।

राजा विराटोऽथ भृशाभितप्तः
श्रुत्वा सुतं त्वेकरथेन यातम् ।
बृहन्नलासारथिमाजिवर्धनं
प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान् ॥ ९
सर्वथा कुरवस्ते हि ये चान्ये वसुधाधिपाः ।
त्रिगर्तान्निःसृतान् श्रुत्वा न स्थास्यन्ति कदाचन॥
तस्माद्गच्छन्तु मे योधा बलेन महता वृताः ।
उत्तरस्य परीप्सार्थं ये त्रिगर्तैरविक्षताः॥ ११
हयांश्च नागांश्च रथांश्च शीघ्रं
पदातिसङ्घांश्च ततः प्रवीरान् ।
प्रस्थापयामास सुतस्य हेतो-
र्विचित्रशस्त्राभरणोपपन्नान् ॥ १२
एवं स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेशाथ तां क्षिप्रं वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् १३
कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा ।
यस्य यन्ता गतः षण्ढो मन्येऽहं स न जीवति १४

वैशम्पायन उवाच ।

तमब्रवीद्धर्मराजो विहस्य
विराटराजं तु भृशाभितप्तम् ।
बृहन्नला सारथिश्चेन्नरेन्द्र
परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः ॥ १५
सर्वान् महीपान् सहितान् कुरूंश्च
तथैव देवासुरसिद्धयक्षान् ।
अलं विजेतुं समरे सुतस्ते
स्वनुष्ठितः सारथिना हि तेन ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः ।
विराटनगरं प्राप्य विजयं समवेदयन् ॥ १७
राज्ञस्ततु सर्वमाचख्यौ मन्त्री विजयमुत्तमम् ।
पराजयं कुरूणां चाप्युपायान्तं तथोत्तरम् ॥ १८
सर्वा विनिर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः ।
उत्तरः सह सूतेन कुशली च परन्तपः ॥ १९

युधिष्ठिर उवाच ।

दिष्ट्या विनिर्जिता गावः कुरवश्च पलायिताः ।
नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत्ते पुत्रोऽजयत् कुरून् ॥
ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नला ।

वैशम्पायन उवाच ।

ततो विराटो नृपतिः संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ २१
श्रुत्वा स विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः ।
आच्छादयित्वा दूतांस्तान्मन्त्रिणं सोऽभ्यचोदयत्
राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलङ्कृताः ।
पुष्पोपहारैरर्च्यन्तां देवताश्चापि सर्वशः ॥ २३
कुमारा योधमुख्याश्च गणिकाश्च स्वलङ्कृताः ।
वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम ॥ २४
घण्टावान्मानवः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम् ।
शृङ्गाटकेषु सर्वेषु आख्यातु विजयं मम ॥ २५
उत्तरा च कुमारीभिर्बह्वीभिः परिवारिता ।
शृङ्गारवेषाभरणा प्रत्युद्यातु सुतं मम ॥ २६

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वा चेदं वचनं पार्थिवस्य
सर्वं पुरं स्वस्तिकपाणिभूतम् ।
भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च
वेषैः परार्ध्यैः प्रमदाः शुभाश्च ॥ २७
तथैव सूतैः सह मागधैश्च
नान्दीवाद्याः पणवास्तूर्यवाद्याः ।
पुराद्विराटस्य महाबलस्य
प्रत्युद्ययुः पुत्रमनन्तवीर्यम् ॥ २८

वैशम्पायन उवाच ।

प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्च गणिकाश्च स्वलङ्कृताः ।
मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत् ॥ २९
अक्षानाहर सैरन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्तताम् ।
तं तथावादिनं दृष्ट्वा पाण्डवः प्रत्यभाषत ॥ ३०

आच्छादयित्वा वस्त्रादिभिरभ्यर्च्य ॥ २२ ॥ शृङ्गाटकेषु चतुष्पथेषु 'शृङ्गाटकं भवेद्द्वारि कण्टके च चतुष्पथे' इति मेदिनी ॥ २५ ॥ शृङ्गारवेषाभरणा नाट्यरसवेषाभरणा 'शृङ्गारः सुरते नाट्ये' इति मेदिनी ॥ २६ ॥ स्वस्तिकं मङ्गलारार्तिकादि दधिदूर्वादि च पाणौ यस्य तत् स्वस्तिकपाणिभूतं ऋद्धिमत् । वारिजाः शङ्खाः ॥ २७ ॥ नान्दीवाद्याः मङ्गलवाद्यानि तूर्यवाद्या जयवाद्यानि ॥२८॥

न देवितव्यं हृष्टेन कितवेनेति नः श्रुतम् ।
तं त्वामद्य मुदा युक्तं नाहं देवितुमुत्सहे ।
प्रियं तु ते चिकीर्षामि वर्ततां यदि मन्यसे ॥ ३१

विराट उवाच ।

स्त्रियो गावो हिरण्यं च यच्चान्यद्वसु किंचन ।
न मे किञ्चित्त्वया रक्ष्यं ते अन्तरेणापि देवितुम् ॥३२

कङ्क उवाच ।

किं ते द्यूतेन राजेन्द्र बहुदोषेण मानद ।
देवने बहवो दोषास्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ३३
श्रुतस्ते यदि वा दृष्टः पाण्डवेयो युधिष्ठिरः ।
स राष्ट्रं सुमहत् स्फीतं भ्रातॄंश्च त्रिदशोपमान् ।
राज्यं हारितवान् सर्वं तस्माद् द्यूतं न रोचये ।
अथवा मन्यसे राजन् दीव्याम यदि रोचते ॥३५

वैशम्पायन उवाच ।

प्रवर्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् ।
पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः ॥३६
ततोऽब्रवीन्महात्मा स एनं राजा युधिष्ठिरः ।
बृहन्नला यस्य यन्ता कथं स न जयेद्युधि ॥ ३७
इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् ।
समं पुत्रेण मे षण्ढं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि ॥ ३८
वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे ।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान् कस्मान्न स विजेष्यति ॥
वयस्यत्वात्तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे ।
नेदृशं तु पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि ॥ ४०

युधिष्ठिर उवाच ।

यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्तनः कृपः ।
दुर्योधनश्च राजेन्द्रस्तथाऽन्ये च महारथाः ॥ ४१
मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि मरुत्पतिः ।
कोऽन्यो बृहन्नलायास्तान् प्रतियुध्येत सङ्गतान् ॥
यस्य बाहुबले तुल्यो न भूतो न भविष्यति ।
अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योपजायते ॥ ४३
योऽजयत्सङ्गतान् सर्वान् ससुरासुरमानवान् ।
तादृशेन सहायेन कस्मात्स न विजेष्यते ॥ ४४

विराट उवाच ।

बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि ।
नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद्धर्ममाचरेत् ॥ ४५

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद्भृशम् ।
मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन् ॥ ४६
बलवत्प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमावहत् ।
तदप्राप्तं महीं पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥ ४७
अवैक्षत स धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम् ।
सा ज्ञात्वा तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा ॥ ४८
पात्रं गृहीत्वा सौवर्णं जलपूर्णमनिन्दिता ।
तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद्यत् प्रसुस्राव नस्ततः ॥ ४९
अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा ।
अवकीर्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागतः ॥ ५०
सभाज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा ।
आसाद्य भवनद्वारं पित्रे संप्रत्यवेदयत् ॥ ५१
ततो द्वास्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत् ।
बृहन्नलासहायश्च पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः ॥ ५२
ततो हृष्टो मत्स्यराजः क्षत्तारमिदमब्रवीत् ।
प्रवेश्यतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः ॥ ५३
क्षत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्णमुपाजपत् ।
उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नला ॥ ५४
एतस्य हि महाबाहो व्रतमेतत् समाहितम् ।
यो ममाङ्गे व्रणं कुर्याच्छोणितं वाऽपि दर्शयेत् ।
अन्यत्र सङ्ग्रामगतान्न स जीवेत् कथञ्चन ॥ ५५
न मृष्याद्भृशसंक्रुद्धो मां दृष्ट्वा तु सशोणितम् ।
विराटमिह सामात्यं हन्यात् सबलवाहनम् ॥ ५६

वैशम्पायन उवाच ।

ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत् पृथिवीञ्जयः ।
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कङ्कं चाप्युपतिष्ठत ॥५७
ततो रुधिरसंयुक्तमनेकाग्रमनागसम् ।
भूमावासीनमेकान्ते सैरन्ध्र्या प्रत्युपस्थितम् ॥५८
ततः पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः ।
केनायं ताडितो राजन् केन पापमिदं कृतम् ॥५९

विराट उवाच ।

मयायं ताडितो जिह्मो न चाप्येतावदर्हति ।
प्रशस्यमाने यच्छूरे त्वयि षण्ढं प्रशंसति ॥ ६०

उत्तर उवाच ।

अकार्यं ते कृतं राजन् क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम् ।
मा त्वां ब्रह्मविषं घोरं समूलमिह निर्दहेत् ॥६१

---

हृष्टेन त्वया सह कितवेन मया न देवितव्यम् ॥ ३१ ॥ अन्तरेण विनाऽपि द्यूतम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मबन्धो ब्राह्मणाधम ॥ ३८ ॥ वयस्यत्वात् सख्यात् ॥ ४० ॥ नियच्छसि निगृह्णासि ॥ ४५ ॥ नैवं वाच्यमिति ॥ ४६ ॥ नस्तः नासिकातः ॥ ४७ ॥ नस्ततः नासिकानाडीतः तनोति देहं प्रथयतीति तच्छब्दो नाडीवचनः पुरीतति शेते इत्यादिप्रयोगदर्शनात् ॥४९॥ कुरुराजः युधिष्ठिरः कर्णे कर्णे उपाजपत् उपांशु उक्तवान् ॥५४॥ अनेकाग्रं व्यग्रम्॥५८॥

वैशम्पायन उवाच ।
स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्धनः ।
क्षमयामास कौन्तेयं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ ६२
क्षमयन्तं तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत ।
चिरं क्षान्तमिदं राजन्न मन्युर्विद्यते मम ॥ ६३
यदि ह्येतत् पतेद्भूमौ रुधिरं मम नस्ततः ।
सराष्ट्रस्त्वं महाराज विनश्येथा न संशयः ॥ ६४
न दूषयामि ते राजन् यद्वै हन्याददूषकम् ।
बलवन्तं प्रभुं राजन् क्षिप्रं दारुणमाप्नुयात् ॥ ६५
वैशम्पायन उवाच ।
शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नला ।
अभिवाद्य विराटं तु कङ्कं चाप्युपतिष्ठत ॥ ६६
क्षामयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम् ।
प्रशशंस ततो मत्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः॥६७
त्वया दायादवानस्मि कैकेयीनन्दिवर्धन ।
त्वया मे सदृशः पुत्रो न भूतो न भविष्यति॥ ६८
पदं पदसहस्रेण यश्चरन्नापराध्नुयात् ।
तेन कर्णेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ६९
मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते ।
तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत् समागमः ॥७०
आचार्यो वृष्णिवीराणां कौरवाणां च यो द्विजः।
सर्वक्षत्रस्य चाचार्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
तेन द्रोणेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७१
आचार्यपुत्रो यः शूरः सर्वशस्त्रभृतामपि ।
अश्वत्थामेति विख्यातस्तेनासीत् सङ्गरः कथम् ॥
रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हृतस्वा वणिजो यथा ।
कृपेण तेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७३
पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः ।
दुर्योधनेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७४
अवगाढा द्विषन्तो मे सुखो वातोऽभिवाति माम्
यस्त्वं धनमथाजैर्षीः कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥ ७५
तेषां भयाभिपन्नानां सर्वेषां बलशालिनाम् ।
नूनं प्रकाल्य तान् सर्वांस्त्वया युधि नरर्षभ ।
आच्छिन्नं गोधनं सर्वं शार्दूलेनामिषं यथा ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

उत्तर उवाच ।
न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे।
कृतं तत् सकलं तेन देवपुत्रेण केनचित् ॥ १
स हि भीतं द्रवन्तं मां देवपुत्रो न्यवर्तयत् ।
स चातिष्ठद्रथोपस्थे +वज्रसन्नहनो युवा ॥ २
तेन ता निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः ।
तस्य तत् कर्म वीरस्य न मया तात तत् कृतम्३
स हि शारद्वतं द्रोणं द्रोणपुत्रं च षड्रथान् ।
सूतपुत्रं च भीष्मं च चकार विमुखान् शरैः ॥ ४
दुर्योधनं विकर्णं च सनागमिव यूथपम् ।
प्रभग्नमब्रवीद्भीतं राजपुत्रं महाबलः ॥ ५
न हास्तिनपुरे त्राणं तव पश्यामि किञ्चन ।
व्यायामेन परीप्सस्व जीवितं कौरवात्मज ॥ ६

हे राजन् ते तव तत् कर्म न दूषयामि यत् अदूषकं परापवादहीनं हन्यादन्यायि तत् दुष्यमपि न दूषयामि यतः बलवन्तं प्रभुं क्षिप्रं शीघ्रं दारुणं नृशंसं कर्म प्राप्नुयादेव। 'हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति' इति स्मृतेः कल्यन्तामिति पाठे जानन्नमपि ॥ ६५ ॥ दायादवान् पुत्रवान् ॥ ६८ ॥ पदमिति । पदं बाणानिपातस्थानं पदसहस्रेण लक्ष्यसहस्रार्थं हेत्वर्थे तृतीया । सहस्रलक्ष्याणि वेद्धुमित्यर्थः । चरन् बाणैः प्रचरन्नेकमपि स्थानं नापराध्नुयात् न रिक्तं कुर्यात् । युगपल्लक्ष्यसहस्रमुद्दिश्य बाणैश्चरन्नेकमपि लक्ष्यं न जह्यादित्यर्थः । पदं पदामिति पाठे सर्वं पदं नापराध्नुयात् सहस्रेण चरन्नित्यर्थात् पदसहस्रोद्देशेनेति बोध्यम् । समागमः सङ्ग्रामः ॥ ६९ ॥ हृतस्वाः हृतधनाः वणिज इव सीदन्ति शूरा इति शेषः ॥ ७३ ॥ अवगाढाः पराभूताः ॥७५॥ प्रकाल्य निर्जित्य ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

न मयेति ॥ १ ॥ व्यायामेन नित्यं देशान्तरसञ्चारेण एतेन स देवपुत्रस्तेषामग्रेऽपि नाशं करिष्यतीति सूचितम् ॥ ६ ॥ +वज्रसंहननो—ङ

न मोक्ष्यसे पलायंस्त्वं राजन् युद्धे मनः कुरु ।
पृथिवीं भोक्ष्यसे जित्वा हतो वा स्वर्गमाप्स्यसि॥
स निवृत्तो नरव्याघ्रो मुञ्चन् वज्रनिभान् शरान्
सचिवैः संवृतो राजा रथे नाग इव श्वसन् ॥ ८
तं दृष्ट्वा रोमहर्षोऽभूदूरुकम्पश्च मारिष ।
स तत्र सिंहसङ्काशमनीकं व्यधमच्छरैः ॥ ९
तत् प्रणुद्य रथानीकं सिंहसंहननो युवा ।
कुरूंस्तान् प्रहसन् राजन् संस्थितान् हृतवाससः॥
एकेन तेन वीरेण षड्रथाः परिनिर्जिताः ।
शार्दूलेनेव मत्तेन यथा वनचरा मृगाः ॥ ११

विराट उवाच ।

क्व स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः ।
यो मे धनमथाजैषीत् कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥ १२
इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुं च महाबलम् ।
येन मे त्वं च गावश्च रक्षिता देवसूनुना ॥ १३

उत्तर उवाच ।

अन्तर्धानं गतस्तत्र देवपुत्रो महाबलः ।
स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति१४

वैशम्पायन उवाच ।

एवमाख्यायमानं तु छन्नं सत्रेण पाण्डवम् ।
वसन्तं तत्र नाज्ञासीद्विराटो वाहिनीपतिः ॥१५
ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना ।
प्रददौ तानि वासांसि विराटदुहितुः स्वयम् ॥१५
उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि नवानि च ।
प्रतिगृह्याभवत् प्रीता तानि वासांसि भामिनी ॥
मन्त्रयित्वा तु कौन्तेय उत्तरेण महात्मना ।
इतिकर्तव्यतां सर्वां राजन् पार्थे युधिष्ठिरे ॥ १८
ततस्तथा तद्व्यदधाद्यथावत् पुरुषर्षभ ।
सह पुत्रेण मत्स्यस्य प्रहृष्टा भरतर्षभाः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

॥ समाप्तं गोहरणपर्व ॥

## वैवाहिकपर्व ५

### ७०

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
स्नाताः शुक्लाम्बरधराः समये चरितव्रताः॥ १
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः ।
द्वारि मत्ता यथा नागा भ्राजमाना महारथाः॥२
विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ ।
निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः ॥३
तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः ।
आजगाम सभां कर्तुं राजकार्याणि सर्वशः ॥ ४
श्रीमतः पाण्डवान् दृष्ट्वा ज्वलतः पावकानिव ।
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा सरोषः पृथिवीपतिः ॥ ५
अथ मत्स्योऽब्रवीत् कङ्कं देवरूपमिव स्थितम् ।
मरुद्गणैरुपासीनं त्रिदशानामिवेश्वरम् ॥ ६
स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया वृतः ।
अथ राजासने कस्मादुपविष्टस्त्वलङ्कृतः ॥ ७

रोमहर्षोऽभून्ममेति शेषः ॥ ९ ॥ सत्रेण व्याजेन ॥ १५ ॥ मन्त्रयित्वेति । युधिष्ठिरे युधिष्ठिरविषये इतिकर्तव्यतामग्रे कर्तुमिष्टां भद्रासेन राज्ञ उपवेशनादिरूपां क्रियामुत्तरेण सह मन्त्रयित्वा तथा यथामन्त्रं तत् तां व्यदधादित्युभयोरन्वयः । हे राजन् जनमेजय ॥ १८ ॥ प्रहृष्टा अभूवन्निति शेषः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

तत इति ॥ १ ॥ धिष्ण्येषु आयतनेषु ॥ ३ ॥ अक्षातिवापः अक्षान् अतिवपतीति तथा द्यूतकारी ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

परिहासेप्सया वाक्यं विराटस्य निशम्य तत् ।
स्मयमानोऽर्जुनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ८

अर्जुन उवाच ।

इन्द्रस्यार्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति ।
ब्रह्मण्यः श्रुतवांस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः ॥ ९
एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः ।
एष बुद्ध्याऽधिको लोके तपसां च परायणम् ॥ १०
एषोऽस्त्रं विविधं वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ।
न चैवान्यः पुमान् वेत्ति न वेत्स्यति कदाचन ॥
न देवा नासुराः केचिन्न मनुष्या न राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥ १२
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ।
पाण्डवानामतिरथो यज्ञधर्मपरो वशी ॥ १३
महर्षिकल्पो राजर्षिः सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
बलवान् धृतिमान् दक्षः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
धनैश्च सञ्चयैश्चैव शक्रवैश्रवणोपमः ॥ १४
यथा मनुर्महातेजा लोकानां परिरक्षिता ।
एवमेष महातेजाः प्रजानुग्रहकारकः ॥ १५
अयं कुरूणामृषभो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अस्य कीर्तिः स्थिता लोके सूर्यस्येवोद्यतः प्रभा ।
संसरन्ति दिशः सर्वा यशसोऽस्य इवांशवः ।
उदितस्येव सूर्यस्य तेजसोऽनु गभस्तयः ॥ १७
एनं दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
अन्वयुः पृष्ठतो राजन् यावदध्यावसत् कुरून् ॥ १८
†त्रिंशदेवं सहस्राणि रथाः काञ्चनमालिनः ।
सदश्वैरुपसम्पन्नाः पृष्ठतोऽनुययुस्तदा ॥ १९
एनमष्टशताः सूताः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ।
अब्रुवन् मागधैः सार्धं पुरा शक्रमिवर्षयः ॥ २०
एनं नित्यमुपासन्त कुरवः किङ्करा यथा ।
सर्वे च राजन् राजानो धनेश्वरमिवामराः ॥ २१
एष सर्वान् महीपालान् करदान् समकारयत् ।
वैश्यानिव महाभागो विवशान् स्ववशानपि ॥ २२
अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम् ।
उपजीवन्ति राजानमेनं सुचरितव्रतम् ॥ २३
एष वृद्धाननाथांश्च पङ्गून्धांश्च मानवान् ।
पुत्रवत् पालयामास प्रजा धर्मेण वै विभुः ॥ २४
एष धर्मे दमे चैव क्रोधे चापि जितव्रतः ।
महाप्रसादो ब्रह्मण्यः सत्यवादी च पार्थिवः ॥ २५
शीघ्रं तापेन चैतस्य तप्यते स सुयोधनः ।
सगणः सह कर्णेन सौबलेनापि वा विभुः ॥ २६
न शक्यन्ते ह्यस्य गुणाः प्रसङ्ख्यातुं नरेश्वर ।
एष धर्मपरो नित्यमानृशंस्यश्च पाण्डवः ॥ २७
एवं युक्तो महाराजः पाण्डवः पार्थिवर्षभः ।
कथं नार्हति राजार्हमासनं पृथिवीपते ॥ २८

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि पाण्डवप्रकाशे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

विराट उवाच ।

यद्येष राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली ॥ १
नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी ।
यदा द्यूतजिताः पार्था न प्राज्ञायन्त ते क्वचित् ॥ २

अर्जुन उवाच ।

य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप ।
एष भीमो महाराज भीमवेगपराक्रमः ॥ ३
एष क्रोधवशान् हत्वा पर्वते गन्धमादने ।
सौगन्धिकानि दिव्यानि कृष्णार्थे समुपाहरत् ॥ ४

---

परिहासेप्सया सनिन्दोपालम्भमपेक्ष्य यद्विराटस्य वाक्यं तन्निशम्य ॥ ८ ॥ अस्य इवेत्यत्र सन्धिरविवक्षितः । उपमेयद्वयस्योपमाद्वयसूचनमेकेनापि इव शब्देन भवति तथाऽप्यत्र स्पष्टार्थं पुनरिवग्रहणम् ॥ १७ ॥ अब्रुवन् अस्तुवन् ॥ २० ॥ शीघ्रं तीव्रम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

† त्रिंशदेनं—ङ

७१

यदिति ॥ १ ॥

गन्धर्व एष वै हन्ता कीचकानां दुरात्मनाम् ।
व्याघ्रानृक्षान् वराहांश्च हतवांस्त्रीपुरे+तव ॥ ५
यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परन्तपः ।
*गोसङ्ख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ६
शृङ्गारवेषाभरणौ रूपवन्तौ यशस्विनौ ।
महारथसहस्राणां समर्थौ भरतर्षभौ ॥ ७
एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी ।
सैरन्ध्री द्रौपदी राजन् यस्यार्थे कीचका हताः ८
अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः ।
भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः॥ ९
ऊषिताः स्मो महाराज सुखं तव निवेशने ।
अज्ञातवासमुषिता †गर्भवास इव प्रजाः॥ १०

वैशम्पायन उवाच ।

यदाऽर्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः ।
तदाऽर्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ ११
पुनरेव च तान् पार्थान् दर्शयामास चोत्तरः १२

उत्तर उवाच ।

य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-
तनुर्महान् सिंह इव प्रवृद्धः ।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र-
स्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ १३
अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी
प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः ।
पृथ्वायतांसो गुरुदीर्घबाहु-
र्वृकोदरः पश्यत पश्यतैनम् ॥ १४
यस्त्वेव पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान्
श्यामो युवा वारणयूथपोपमः ।
सिंहोन्नतांसो गजराजगामी
पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ १५
राज्ञः समीपे पुरुषोत्तमौ तु
यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति
ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ १६
आभ्यां तु पार्श्वे कनकोत्तमाङ्गी
यैषा प्रभा मूर्तिमतीव गौरी ।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव
कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः ॥१७

वैशम्पायन उवाच ।

एवं निवेद्य तान् पार्थान् पाण्डवान् पञ्च भूपतेः ।
ततोऽर्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ १८

उत्तर उवाच ।

अयं स द्विषतां हन्ता मृगाणामिव केसरी ।
अचरद्रथवृन्देषु निघ्नंस्तांस्तान् वरान् रथान् ॥१९
अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणा हतः ।
सुवर्णकक्षः सङ्ग्रामे दन्ताभ्यामगमन्महीम् ॥ २०
अनेन विजिता गावो जिताश्च कुरवो युधि ।
अस्य शङ्खप्रणादेन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥ २१

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मत्स्यराजः प्रतापवान् ।
उत्तरं प्रत्युवाचेदमभिपन्नो युधिष्ठिरे ॥ २२
प्रसादनं पाण्डवस्य प्राप्तकालं हि रोचते ।
उत्तरां च प्रयच्छामि पार्थाय यदि मन्यसे ॥ २३

उत्तर उवाच ।

आर्याः पूज्याश्च मान्याश्च प्राप्तकालं च मे मतम्
पूज्यन्तां पूजनार्हाश्च महाभागाश्च पाण्डवाः॥२४

विराट उवाच ।

अहं खल्वपि सङ्ग्रामे शत्रूणां वशमागतः ।
मोक्षितो भीमसेनेन गावश्चापि जितास्तथा २५
एतेषां बाहुवीर्येण अस्माकं विजयो मृधे ।
एवं सर्वे सहामात्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
प्रसादयामो भद्रं ते सानुजं पाण्डवर्षभम् ॥ २६
यदस्माभिरजानद्भिः किञ्चिदुक्तो नराधिपः ।
क्षन्तुमर्हति तत् सर्वं धर्मात्मा ह्येष पाण्डवः॥ २७

वैशम्पायन उवाच ।

ततो विराटः परमाभितुष्टः
समेत्य राजा समयं चकार ।
राज्यं च सर्वं विससर्ज तस्मै
सदण्डकोशं सपुरं महात्मा ॥ २८
पाण्डवांश्च ततः सर्वान् मत्स्यराजः प्रतापवान् ।
धनञ्जयं पुरस्कृत्य दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् २९
समुपाघ्राय मूर्धानं संश्लिष्य च पुनः पुनः ।
युधिष्ठिरं च भीमं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ३०
नातृप्यद्दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः ।
स प्रीयमाणो राजानं युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ॥ ३१

प्रचण्डघोणः पृथुनासिकः घोणा कन्धरेत्यपि ॥ १३ ॥ अभिपन्नोऽपराधं कृतवान् ॥ २२ ॥ समेत्य पुत्रेण सह समयं निश्चयं चकार विससर्ज ददौ ॥२८॥ + स्त्रीपुरे-अन्तःपुरे । * गोसंख्यो गोपालकः । † गर्भवासे उदरे ।

दिष्ट्या भवन्तः संप्राप्ताः सर्वे कुशलिनो वनात्
दिष्ट्या संपालितं कृच्छ्रमज्ञातं वै दुरात्मभिः ३२
इदं च राज्यं पार्थाय यच्चान्यदपि किञ्चन ।
प्रतिगृह्णन्तु तत् सर्वं पाण्डवा अविशङ्कया ॥ ३३
उत्तरां प्रतिगृह्णातु सव्यसाची धनञ्जयः ।
अयं ह्यौपयिको भर्ता तस्याः पुरुषसत्तमः ॥ ३४
एवमुक्तो धर्मराजः पार्थमैक्षद्धनञ्जयम् ।
ईक्षितश्चार्जुनो भ्रात्रा मत्स्यं वचनमब्रवीत् ॥ ३५
प्रतिगृह्णाम्यहं राजन् स्नुषां दुहितरं तव ।
युक्तश्चावां हि सम्बन्धो मत्स्यभारतयोरपि ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि उत्तराविवाहप्रस्तावे
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

## ७२

विराट उवाच ।
किमर्थं पाण्डवश्रेष्ठ भार्यां दुहितरं मम ।
प्रतिग्रहीतुं नेमां त्वं मया दत्तामिहेच्छसि ॥ १
अर्जुन उवाच ।
अन्तःपुरेऽहमुषितः सदा पश्यन् सुतां तव ।
रहस्यं च प्रकाशं च विश्वस्तां पितृवन्मयि ॥ २
प्रियो बहुतमश्चासं नर्तको गीतकोविदः ।
आचार्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव ॥ ३
वयस्थया तया राजन् सह संवत्सरोषितः ।
अतिशङ्का भवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो ॥ ४
तस्मान्निमन्त्रयेऽयं ते दुहितां मनुजाधिप ।
शुद्धो जितेन्द्रियो दान्तस्तस्याः शुद्धिः कृता मया॥
स्नुषायां दुहितुर्वापि पुत्रे चात्मनि वा पुनः ।
अत्र शङ्कां न पश्यामि तेन शुद्धिर्भविष्यति ॥ ६
अभिशापादहं भीतो मिथ्यावादात् परन्तप ।
स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम् ॥ ७
स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद्देवशिशुर्यथा ।
दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः ॥ ८
अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते ।
जामाता तव युक्तो वै भर्ता च दुहितुस्तव ॥ ९
विराट उवाच ।
उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ।
य एवं धर्मनित्यश्च जातज्ञानश्च पाण्डवः ॥ १०
यत्कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम् ।
सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धी यस्य मेऽर्जुनः ११
वैशम्पायन उवाच ।
एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अन्वशासत् स संयोगं समये मत्स्यपार्थयोः ॥१२
ततो मित्रेषु सर्वेषु वासुदेवं च भारत ।
प्रेषयामास कौन्तेयो विराटश्च महीपतिः ॥ १३
ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः ।
उपप्लव्यं विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः ॥ १४
अभिमन्युं च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम् ।
आनर्तेभ्योऽपि दाशार्हानानयामास पाण्डवः ।१५
काशिराजश्च शैब्यश्च प्रीयमाणौ युधिष्ठिरे ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितावागतौ पृथिवीपती ॥ १६
अक्षौहिण्या च सहितो यज्ञसेनो महाबलः ।
द्रौपद्याश्च सुता वीराः शिखण्डी चापराजितः॥१७
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समस्ताक्षौहिणीपाला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
वेदावभृथसंपन्नाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ॥ १८
तानागतानभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृतां वरः ।
पूजयामास विधिवत् सभृत्यबलवाहनान् ॥ १९
प्रीतोऽभवद्दुहितरं दत्त्वा तामभिमन्यवे ।
ततः प्रत्युपयातेषु पार्थिवेषु ततस्ततः ॥ २०

---

औपयिकः उचितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

७२

किमर्थमिति ॥ १ ॥ या शङ्का भवेत् सा स्थाने उचिता । अयमहं ते तव दुहितां निमन्त्रये स्नुषात्वेन याचे । 'दुहिता दुर्हिता दूरे हिता' इति यास्केन निरुक्तत्वात् । वर्णविकारेण दुहिताशब्द आकारान्तोऽप्यस्ति ॥ ४ ॥ एवं च स्नुषात्वेन एनां वरयतो मे ब्रह्मचर्यशुद्धिरपि भविष्यतीत्याह—शुद्ध इति ॥ ५ ॥ अभिशापात् भार्यार्थे प्रतिग्रहेऽनयोः प्रागेव सम्बन्ध आसीदिति कल्पयतो लोकस्य दुर्वाक्यभयात् ॥ ७ ॥ अन्वशासत् आज्ञापितवान् संयोगं विवाहसम्बन्धम् ॥१२ ॥ प्रेषयामास आह्वानार्थं दूतानिति शेषः ॥ १३ ॥ उपप्लव्यं विराटनगरसमीपस्थनगरान्तरम् ॥१४॥ वेदाध्ययनसम्पन्ना इत्यपि पाठः ॥ १८ ॥

तत्रागमद्वासुदेवो वनमाली हलायुधः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यो युयुधानश्च सात्यकिः ॥२१
अनाधृष्टिस्तथाऽक्रूरः साम्बो निशठ एव च ।
अभिमन्युमुपादाय सह मात्रा परन्तपाः ॥ २२
इन्द्रसेनादयश्चैव रथैस्तैः सुसमाहितैः ।
आययुः सहिताः सर्वे परिसंवत्सरोषिताः ॥ २३
दशनागसहस्राणि हयानां च दशायुतम् ।
रथानामर्बुदं पूर्णं निखर्वं च पदातिनाम् ॥ २४
वृष्ण्यन्धकाश्च बहवो भोजाश्च परमौजसः ।
अन्वयुर्वृष्णिशार्दूलं वासुदेवं महाद्युतिम् ॥ २५
पारिबर्हं ददौ कृष्णः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
स्त्रियो रत्नानि वासांसि पृथक् पृथगनेकशः ॥
ततो विवाहो विधिवद्ववृधे मत्स्यपार्थयोः ॥ २६
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च गोमुखाडम्बरास्तथा ।
पार्थैः संयुज्यमानस्य नेदुर्मत्स्यस्य वेश्मनि ॥२७
उच्चावचान्मृगान् जघ्नुर्मेध्यांश्च शतशः पशून् ।
सुरामैरेयपानानि प्रभूतान्यभ्यहारयन् ॥ २८
गायनाख्यानशीलाश्च नटवैतालिकास्तथा ।
स्तुवन्तस्तानुपातिष्ठन् सूताश्च सह मागधैः ॥ २९
सुदेष्णां च पुरस्कृत्य मत्स्यानां च वरस्त्रियः ।
आजग्मुश्चारुसर्वाङ्ग्यः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ ३०

वर्णोपपन्नास्ता नार्यो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
सर्वाश्चाभ्यभवन् कृष्णा रूपेण यशसा श्रिया ॥३१
परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलङ्कृताम् ।
सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे ॥ ३२
तां प्रत्यगृह्णात् कौन्तेयः सुतस्यार्थे धनञ्जयः ।
सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं विराटतनयां तदा ॥ ३३
तत्रातिष्ठन्महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन् ।
स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४
प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम् ।
विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः ॥ ३५
तस्मै सप्त सहस्राणि हयानां वातरंहसाम् ।
द्वे च नागशते मुख्ये प्रादाद्बहुधनं तदा ॥ ३६
हुत्वा सम्यक्समिद्धाग्निमर्चयित्वा द्विजन्मनः ।
राज्यं बलं च कोशं च सर्वमात्मानमेव च ॥ ३७
कृते विवाहे तु तदा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं यदुपाहरदच्युतः ॥ ३८
गोसहस्राणि रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च ।
भूषणानि च मुख्यानि यानानि शयनानि च ॥३९
भोजनानि च हृद्यानि पानानि विविधानि च ।
तन्महोत्सवसङ्काशं हृष्टपुष्टजनायुतम् ।
नगरं मत्स्यराजस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि उत्तराविवाहे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ॥ समाप्तं चेदं विराटपर्व ॥

सुरा नानाद्रव्यसाररूपं मद्यं, मैरेयं वृक्षरसरूपं मद्यम् ॥ २८ ॥ अभ्यभवन् अभिभूताः ॥ ३१ ॥ आत्मानमेव च प्रादादिति पूर्वेणान्वयः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे विराटपर्वार्थप्रकाशे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

# ॥ श्रवणमहिमा ॥

श्रुत्वा तु चरितं पुण्यं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
नाधिव्याधिभयं तेषां जायते पुण्यकर्मणाम् ॥ १
दुर्गतेस्तरणे तेषामायतं तरणं भवेत् ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं पुण्यवृद्धिः प्रजायते ॥ २
सर्वपापानि नश्यन्ति जायन्ते सर्वसंपदः ॥ ३
एकाकी विजयेच्छत्रून् स्मृत्वा फाल्गुनकर्म च ।
ईतयः संप्रणश्यन्ति न वियोगः प्रिये जने ॥ ४
श्रुत्वा वैराटकं पर्व वासांसि विविधानि च ।
हिरण्यं धान्यं गावश्च दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ५
प्रीतये देवतानां वै दद्याद्वै द्विजमुख्यके ।
वाचके तु सुसंतुष्टे तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ६
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या पायसैः सर्पिषा सितैः ।
एवं श्रुते च वैराटे सम्यक् फलमवाप्नुयात् ॥ ७

॥ इति श्रवणमहिमा दानविधिश्च समाप्तः ॥

अतः परमुद्योगपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

वैशम्पायन उवाच ।

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरा-
स्तदाऽभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः ॥
विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः,
सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते *विराटपर्व समाप्तम् ॥

*यद्यप्यादिपर्वणि द्वितीयाध्याये पर्वसंग्रहकथनावसरे—'अत्रापि परिसंख्याता अध्यायाः परमर्षिणा। सप्तषष्टिरथो पूर्णा श्लोकानामपि मे शृणु ॥ श्लोकानां द्वे सहस्रे तु श्लोकाः पञ्चाशदेव तु ॥' इत्युक्तम् । तथाऽपि प्रायोऽत्र पुस्तके विराटपर्वाध्याय-संख्या ७२. श्लोकसंख्या च २३२७. एतावती दृश्यते । अयं न्यूनाधिकभावो लेखकप्रमादजः स्यादिति भाति ।

इति श्रीकिंजवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचंद्रशास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यां विराटकं पर्व समाप्तम् । भारती जयतु ॥ शाके १८५२ ॥

# Shriman
# MAHĀBHĀRATAM.

## Part III

## V Udyogaparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nilkantha.

***Edited by***

**Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar.**



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1852.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

# श्रीमन्महाभारतम्।

## तृतीयभागे—उद्योगपर्व।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्।

तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितम्।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५२] प्रथमं संस्करणम्। [ख्रिस्ताब्दाः १९३१

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## उद्योगपर्व ।

—५—

### विषयानुक्रमणिका ।


| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | **(१) सेनोद्योगपर्व १–२४** | |
| १ | २६ | अभिमन्योर्विवाहार्थं समागतेषु नृपेषु विराटस्य सभायामुपविष्टेषु भगवता श्रीकृष्णेन कौरवाणां दौःशील्यं पाण्डवानां धर्मज्ञत्वं चोक्त्वा सर्वैर्युद्धे पाण्डवानां साहाय्यं कर्तव्यमिति सूचनम्... ... ... | ३ |
| २ | १५ | युधिष्ठिरापराधकृतैवेयं पाण्डवानां विपत्तिर्नतु तत्र दुर्योधनो हेतुरतो दूतं प्रेष्य प्रणिपातपूर्वकमेवार्धराज्यं याचन्तां पाण्डवा इति बलदेवस्य राज्ञः प्रत्युक्तिः ... | ४ |
| ३ | २३ | बलदेववाक्यं श्रुत्वा पाण्डवानां निरागस्त्वोपपादनपूर्वकं सात्यकिना बलदेववाक्यगर्हणम्... ... | ५ |
| ४ | २६ | दुर्योधनो न सामसाध्योऽतः शीघ्रं प्रस्थाप्यन्तां मित्रेभ्यो दूताः, नोचेत् दुर्योधनेन पूर्वं प्रार्थितास्ते तमेव भजेयुः। एवं मम पुरोहितो धृतराष्ट्रं प्रति गृहीतसंदेशो गच्छतु इति द्रुपदवाक्यम्... ... ... | ६ |
| ५ | १८ | द्रुपदवाक्यमभिनन्द्य तं प्रति भवानेव श्रुतवयोभ्यां गुरुरसि नः सर्वेषामिति भवत्संदिष्टं वचोऽस्माकं संमतमिति श्रीकृष्णवचनम् । कृष्णस्य द्वारकां प्रति गमनम्। कुरुपाण्डवानां युद्धोद्योगवर्णनम्... | ७ |
| ६ | १९ | प्रशंसापूर्वकं धृतराष्ट्रं प्रति कर्तव्यार्थमुपादिश्य द्रुपदेन स्वपुरोधसो हास्तिनपुरप्रेषणम्... ... | |
| ७ | ३९ | सर्वपार्थिवाह्वानार्थं दूतसंप्रेषणानन्तरमर्जुनस्य श्रीकृष्णसाहाय्ययाचनार्थं द्वारकां प्रति गमनम् । तेनैव हेतुना दुर्योधनस्यापि गमनम् । कृष्णगृहं प्रविष्टयोस्तयोर्द्वयोर्निद्रितस्य श्रीकृष्णस्य पाददेशेऽर्जुनस्तस्थौ शिरोदेशे दुर्योधनश्च । दुर्योधनकृष्णयोः संवादानन्तरमर्जुनः कृष्णमेव वव्रे दुर्योधनस्तु नारायणगणानेव वव्रे । बलदेवेनोभयोरपि साहाय्येऽनङ्गीकृते ससैन्यो दुर्योधनः स्वगृहं प्रति जगाम। कृष्णार्जुनयोः संवदतोः सतोरर्जुनप्रार्थनया कृष्णेन तत्सारथ्याङ्गीकरणम् । कृतकार्यस्यार्जुनस्य युधिष्ठिरसमीपे गमनम्... ... | ९ |
| ८ | ५४ | सैन्येन सह पाण्डवान्प्रति प्रस्थितं मद्रराजं शल्यं मध्येमार्गं वञ्चयित्वा दुर्योधनेन स्वसाहाय्यकरणवरग्रहणम् । अथ युधिष्ठिरदर्शनार्थं गतेन | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | शल्येन तत्प्रार्थनया कर्णस्य तेजोवधकरणाङ्गीकारः... ... | ११ |
| ९ | ५९ | कथमिन्द्रेण दुःखं प्राप्तमिति युधिष्ठिरेण प्रश्ने कृते शल्येन युधिष्ठिराय वृत्रवधाख्याननिरूपणम्। इन्द्रद्रोहात्त्वष्ट्रा प्रजापतिना निर्मिते त्रिशिरसि विश्वरूपे तपस्यति तत्तपोभंगार्थमिन्द्रेणाप्सरसां प्रेषणम्। अप्सरस्सु प्रतिहतासु विश्वरूपवधोपायं चिन्तयतेन्द्रेण तस्योपरि वज्रप्रहारः। तच्छिरश्छेदे इन्द्रेणाज्ञप्तेन तक्ष्णा तच्छिरस्सु छिन्नेषु तेभ्योऽण्डजानामुत्पत्तिः। पुत्रवधं श्रुत्वेन्द्रविनाशार्थं त्वष्ट्रा वृत्रस्योत्पादनम्। वृत्रेण संग्रामे देवराजस्य पराजयः ... | १३ |
| १० | ५० | वृत्रवधोपायजिज्ञासया विष्णुं प्रति शरणं गतानामृषिगणसहितानामिन्द्रादिदेवानां वाक्यम्। विष्णुना वृत्रेण सह सन्धिकरणे आज्ञप्तानां सर्षीणां देवानां वृत्रसमीपगमनम्। महर्षिभिर्देवादिसख्यार्थं प्रेरितो वृत्रेण 'न शुष्केण न चार्द्रेण' इत्यादिना शक्रस्य न वध्यो भवेयमिति तेभ्यो वरग्रहणम्। तत इन्द्रेण कदाचित्समुद्रान्ते उपासीनाय वृत्राय सफेनस्य वज्रस्य प्रक्षेपः। फेनप्रविष्टेन विष्णुना वृत्रस्य वधः। इन्द्रस्य ब्रह्महत्याभिभवाददर्शनम्... ... ... | १४ |
| ११ | २६ | ऋषिभिर्देवैश्च चक्षुर्विषयवर्तिनस्तेजोहरणवरेण संवर्ध्य नहुषस्य देवराज्येऽभिषेचनम्। ततः कदाचिद्देवकन्याभिः सह क्रीडता तेन शचीं दृष्ट्वा देवान् प्रति शची कस्मान्मां नोपतिष्ठते इति प्रश्नः। ततस्तद्भीतया शच्या त्राणार्थं बृहस्पतेर्देवगुरोराश्रयणम्... ... ... | १५ |
| १२ | ३२ | देवैः प्रतिषिद्धस्यापि नहुषस्य शच्यां प्रतिनिवेशः। ततो देवैः शचीदानाय बृहस्पतिप्रार्थनम्। बृहस्पतिना तदत्यागप्रतिज्ञापूर्वकं सर्वैः सह संमन्त्र्य कालयाचनार्थं नहुषसमीपे शचीप्रेषणम्... ... ... | १७ |
| १३ | २७ | शच्या प्रार्थिते समये नहुषेणाङ्गीकृते सति पुनर्बृहस्पतिं प्रति तस्या आगमनम्। शक्रान्वेषणं चिन्तयतां देवानां विष्णुसमीपे गमनम्। इन्द्रपावनार्थमश्वमेधकरणे विष्ण्वाज्ञया देवेन्द्रसमीपं गतेषु सत्स्वश्वमेधप्रवृत्तिः। ब्रह्महत्याविभागानन्तरं निष्पापोऽपीन्द्रो वरदानादिप्रभावान्नहुषतेजसो दुःसहत्वमालोच्य पुनरन्तर्दधे। इन्द्रेऽन्तर्हिते विलापपूर्वकं शच्या कृतमुपश्रुत्याह्वानम्... | १८ |
| १४ | १८ | इन्द्राणीं प्रति उपश्रुतेरुपस्थितिः। तया हिमवत उत्तरे पार्श्वे कस्मिंश्चिन्महाद्वीपे महासरसि पद्मनाले प्रविष्टस्येन्द्रस्येन्द्राण्यै दर्शनम्। इन्द्राण्यास्तं प्रति नहुषवधप्रार्थना | १८ |
| १५ | ३४ | इन्द्रोपदेशाच्छच्या नहुषं प्रति सप्तर्षियानेनोपसृतस्य तेऽहं वशगा स्यामित्युक्तिः। नहुषेण तत्प्रतिश्रुत्य स्ववाहने ऋषीणां योजना। इन्द्रान्वेषणाय शचीप्रार्थितेन बृहस्पतिनाग्निं निरूप्येन्द्रान्वेषणाध्येषणा। अग्निना जलादन्यत्रेन्द्रस्यासत्त्वकथनम्... ... | २० |
| १६ | ३४ | बृहस्पतिना स्तुत्या मन्त्रैश्च संवर्धितेनाग्निना जलं प्रविश्य पद्मनालगतमिन्द्रमुपलभ्य बृहस्पतये तदाख्यानम्। तत्र गतेन बृहस्पतिना स्तुत्वा संवर्धितायेन्द्राय नहुषात्पीडाकथनम्। इन्द्रेण लोकपालैःसह नहुषवधोपायचिन्तनम्... ... | २१ |
| १७ | २२ | नहुषवधोपायं चिन्तयन्तमिन्द्रं प्रत्यागतेनागस्त्येन तस्मै नहुषस्य नास्तिक्याद्ब्राह्मणावमाननाच्च स्वर्गात्परिभ्रंशकथनम्। शक्रादीनां स्वर्गगमनोत्तरं देवर्षिगन्धर्वादिभिरागतयेन्द्रस्याभिनन्दनम्... ... | २२ |
| १८ | २५ | इन्द्रेण देवैः सह त्रिविष्टपं प्रविश्य | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

शच्या समेत्य त्रैलोक्यपालनम्—'इन्द्र इव भवानपि शत्रून्निर्जित्य राज्यं भोक्ष्यसे' इति युधिष्ठिरमाश्वास्य तत्प्रार्थितं कर्णतेजोवधकरणं प्रतिज्ञाय शल्यस्य दुर्योधनसमीपगमनम्... ... ... ... २३

१९ ३३ सात्यकेर्धृष्टकेत्वादीनां च युधिष्ठिरं प्रत्यागमनं भगदत्तादीनां वीराणां दुर्योधनं प्रत्यागमनं च-२४

**(२). सञ्जययानपर्व २५-५१**

२० २१ धृतराष्ट्रसभायां गतस्य द्रुपदपुरोहितस्य महात्मानः पाण्डवा युष्मत्कृतानपराधान् पृष्ठतः कृत्वा लोकानामविनाशाय साम काङ्क्षन्ति। तस्मात्तेषां प्रभावं च विचिन्त्य राज्यार्धदानेन भवद्भिस्तत्साम कर्तव्यमिति वचनम्... ... ... २५

२१ २१ द्रुपदपुरोहितोक्तमर्थमनुमन्यमानस्य भीष्मस्य वाक्यमाक्षिप्य कर्णेन समयमुल्लङ्घ्य युध्यतः पाण्डवान्वयं जेष्याम इति वचनम्। भीष्मेण तद्गर्हणम्। धृतराष्ट्रेण कर्णं निर्भर्त्स्य पाण्डवान् प्रति सञ्जयं प्रेषयामीत्युक्त्वा सत्कृत्य द्रुपदपुरोहितप्रतियापनम्... ... ... ... २६

२२ ४० धृतराष्ट्रेण सञ्जयस्याग्रे 'पाण्डवांस्तत्पक्षीयांश्च धर्मतो बलतश्च संस्तूय यथा ते युद्धाय न स्पृहयेयुस्तथा तेषु भाषेथाः' इत्युक्त्वा तत्प्रेषणम्...२९

२३ २८ उपप्लव्यं गतेन सञ्जयेन धृतराष्ट्रवचनाद्युधिष्ठिरं प्रत्यनामयप्रश्नः। युधिष्ठिरेण तं प्रति कुरूणां कुशलं ब्राह्मणेषु वृत्तिं चापृच्छ्य, द्रोणादीनां पाण्डवेषु कीदृशी मतिः? दुर्योधनादयश्च भीमादीनां दिग्विजयादिकर्माणि स्मरन्ति न वा? इत्यादयः प्रश्नाः... ... ... ३१

२४ १० सर्वेषामनामयं ब्राह्मणवृत्तीनामलोपनं चोक्त्वा सञ्जयेन पुत्रादिभिः सह धृतराष्ट्रवचनश्रवणप्रार्थनम् ३२

२५ १५ युधिष्ठिरानुमतेन सञ्जयेन धृतराष्ट्रानुशिष्टस्य युद्धे बहुविधदोषसत्त्वाच्छमविधानपरस्य वाक्यस्याभिधानम्... ... ... ... ... ३३

२६ २९ युधिष्ठिरेण स्वपरयोः शुभाशुभाभिसन्धिकथनपूर्वकं स्वस्याजय्यत्वमभिधाय इन्द्रप्रस्थे राज्यदाने शान्तिकथनम्... ... ... ... ३६

२७ २७ युद्धे भीष्मादीनां हननेन राज्यसंपादनापेक्षया भैक्ष्यचर्यादिकं वरमित्यादिका युधिष्ठिरं प्रति सञ्जयस्योक्तिः... ... ... ... ३८

२८ १४ धर्मेणैवाहं स्वं भागं कामये, अधर्मेण त्रिदशानामपि राज्यं नेच्छामि, धर्माधर्मविनिर्णयः सुदुष्करस्तस्माद्भगवान् धर्मेश्वरो वासुदेव एव ब्रवीतु यदत्र धर्म्यमिति युधिष्ठिरवचनम्... ... ... ... ४०

२९ ५८ भगवता विद्यातः कर्मणो ज्यायस्त्वं राज्ञां युद्धेऽपि धर्मतन्त्रत्वं, धार्तराष्ट्राणां राज्यापहारित्वाद्गर्ह्यव्यवहरणाच्च वध्यत्वमुपपाद्य पाण्डवस्य शमे युद्धे च शक्तत्वकथनम्... ४४

३० ४९ हास्तिनपुरं प्रस्थितस्य सञ्जयस्य युधिष्ठिरेण तत्पुरवासिषु ब्राह्मणादिदासपर्यन्तेषु तत्तत्कुशलप्रश्नस्वकुशलनिवेदनयोरन्धादीनां भरणाश्वासने दुर्योधनं प्रति च सर्वकुरूणामैकाधिपत्यकामासिद्धिकथने चोदनम्... ... ... ... ४७

३१ २३ युधिष्ठिरेण सञ्जयस्य स्वोक्तार्थस्य धृतराष्ट्रे याथातथ्येन कथने दुर्योधनं प्रति च कुरुवधं परिहर्तुं पञ्चभिरपि ग्रामैः शमाय युद्धाय च शक्तोऽस्मीति कथने चोदनम्... ... ४८

३२ ३२ युधिष्ठिरसकाशात्प्रत्यागतः सञ्जयो द्वारपालद्वारा धृतराष्ट्रानुज्ञां प्राप्य तत्समीपं जगाम। युधिष्ठिरः स्वध-

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | र्मेण भवतः सकाशाद्राज्यादिकमिच्छतीत्याद्युक्त्वा तदकरणेऽनर्थं चोक्त्वा सञ्जयेन धृतराष्ट्राज्ञया स्वस्थानगमनम् ... ... ... | ५५ |
| | | **( ३ ) प्रजागरपर्व ५१-८१** | |
| ३३ | १२३ | सञ्जयवाक्यानुतप्तेन धृतराष्ट्रेण द्वाःस्थद्वाराऽऽहूतस्य विदुरस्य तत्समीपागमनम्। उभयोः संवादानन्तरं परं धर्म्यं ते वचः श्रोतुमिच्छामीति धृतराष्ट्रप्रश्ने विदुरस्य सदुपदेशः। पण्डितमूर्खयोर्लक्षणानि कथयित्वा साधारणीं नीतिं कथयता विदुरेणासुरेन्द्रगीतेतिहासकथनद्वारा राजनीतिकथनम् ... ... ... | ५७ |
| ३४ | ८६ | 'जाग्रतो दह्यमानस्य' इत्यादिके धृतराष्ट्रेणोक्ते विदुरेण सर्वोपयोगि सन्नीतिकथनम् ... ... ... | ६१ |
| ३५ | ७७ | 'ब्रूहि भूयो महाबुद्धे' इत्यादिना पुनर्धृतराष्ट्रेणोक्ते विदुर उपदिशन् विरोचनकेशिनीसुधन्वसंवादरूपमितिहासमाह। तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसीत्याद्युक्त्वा मद्यमांसादिवर्जनं, साक्ष्ये वर्जनीयान् मनुष्यान्, ब्रह्मघ्नसमान्मनुष्यांश्च कथयित्वा विदुरः पुनर्नीतिमुवाच ... ... ... ... | ६५ |
| ३६ | ७४ | विदुरेणात्रेयसाध्यसंवादरूपे इतिहासे कथिते तं प्रति धृतराष्ट्रस्य महाकुलविषयः प्रश्नः। विदुरो महाकुललक्षणानि कुलदूषणानि वृत्तप्रशंसां च कथयित्वा पुनर्हितवाक्यान्युवाच। पुनर्धृतराष्ट्रप्रश्नानन्तरं विदुरेण नीत्युपदेशः ... ... | ६९ |
| ३७ | ६४ | विदुरेण सप्तदशसु मूर्खेषु कथितेषु तं प्रति धृतराष्ट्रस्यायुःक्षयविषयकः प्रश्नः। अतिमानादीनामायुर्नाशकत्वं कथयित्वा विदुरः पाण्डवैः सह विग्रहे दोषादिकमाह। पुरुषाणां पञ्चविधं बलं कथयित्वा पुनर्हितमुपादिदेश ... ... ... ... | ७३ |
| ३८ | ४७ | वृद्धानामातिथ्यं चिकित्सकादीनां तदभावमविक्रेयद्रव्याणि भिक्षुकलक्षणानि तापसलक्षणानि च कथयित्वा विदुरः पुना राजनीत्यादि कथयामास ... ... ... ... | ७५ |
| ३९ | ८६ | विदुरहितोपदेशानन्तरं 'दुर्योधनं त्यक्तुं नोत्सहे' इत्यादि वदन्तं धृतराष्ट्रं प्रति विदुरो दोषिणां वर्जनाद्याह। ज्ञातिविग्रहे दोषकथनपूर्वकं हितमुपदिदेश विदुरः। तापसादीनां बलमवादीनामव्रतघ्नत्वं वेदादीनां मलादिकं च कथयित्वा विदुरो दानं प्रशशंस ... ... ... | ७९ |
| ४० | ३२ | पुनर्हितमुपदिशन् विदुरो विद्याशत्रून् विद्यार्थिनां सप्त दोषानाह स्म। आशादीनां धृतिनाशकत्वं गृहे स्थापनार्हाणि वैराग्योत्पादकवाक्यानि चाभ्यधात्। धृत्यादिभिः शिश्नोदरादिजयं कथयित्वा ब्राह्मणादिधर्मानभ्याचष्ट ... ... ... ... | ७८ |
| | | **(४) सनत्सुजातपर्व ८१-१०९** | |
| ४१ | १२ | धृतराष्ट्रविदुरयोः पूर्वकथितावशिष्टकथनविषये संवादः। धृतराष्ट्रेण ब्रह्मतत्त्वं पृष्टो विदुर आत्मनः शूद्रयोनावुत्पन्नत्वं विचिन्त्य सनत्सुजातं चिन्तयामास। विदुरस्मृतिमात्रेण सन्निहितं सनत्सुजातं प्रति 'मया वक्तुमशक्यं धृतराष्ट्रस्य संशयं वक्तुमर्हसि' इत्यादि विदुरप्रार्थनम् ... | ८२ |
| ४२ | ४६ | 'न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम्' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रमादापेक्षयाऽन्यो मृत्युर्नास्तीति सोपपत्तिकं कथयित्वा तन्निवृत्तिर्ब्रह्मज्ञानमन्तरा नास्तीत्याह सनत्सुजातः ... ... | ८९ |
| ४३ | ६३ | एतदन्ते प्रमादात्मकमृत्युप्रतिरोधकत्वेनोक्तानि यानि मौनादीनि तेषामेव धृतराष्ट्रप्रश्नपूर्वकं विवरणम्। एतत्प्रसङ्गे दोषत्वेन क्रोधादिगणकथनं त्रयोदशनृशंसकथनं च ... | ९७ |
| ४४ | ३१ | ब्रह्मविद्यासाधनस्य ब्रह्मचर्यस्य वि- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | स्तरतो निरूपणं ब्रह्मस्वरूपनिरूपणं च... ... ... ... | १०१ |
| ४५ | २६ | ब्रह्मविद्याप्राप्तिसाधनं निरूपयितुं पुनः प्रागुक्तानेव दोषान् हेयत्वेन गुणांश्चोपादेयत्वेनाह सनत्सुजातः.. | १०३ |
| ४६ | ३१ | ब्रह्मचर्यादिसाधनैः स्वरूपं ब्रह्मैव प्रत्यगभिन्नत्वेन ज्ञेयमित्यस्मिन्नर्थे मन्त्रान् योगिप्रत्यक्षं च प्रमाणत्वेनाह स्म सनत्सुजातः... ... | १०९ |
| | | **( ५ ) यानसंधिपर्व १०९–१४५** | |
| ४७ | १७ | सनत्सुजातेन विदुरेण च सह कथाः कथयतो धृतराष्ट्रस्य रात्र्यामतीतायां प्रभाते तेन सह भीष्मादयो दुर्योधनादयश्च सभामाविविशुः। सभां प्रविष्टः सञ्जयो युधिष्ठिरस्य प्रणामादि कथयति स्म... ... | ११० |
| ४८ | १०९ | अर्जुनोक्तिश्रवणविषये धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। युधिष्ठिर—भीम—नकुल——सहदेवाभिमन्युप्रभृतीनां स्वस्य च भावियुद्धप्रसङ्गे दुर्योधनस्यानुतापविषयकमर्जुनवाक्यमाह सञ्जयः। श्रीकृष्णप्रशंसापूर्वकमर्जुनेन कृतायाः कौरवनाशप्रतिज्ञायाः कथनम्... ... ... ... | ११७ |
| ४९ | ४८ | अर्जुनस्य नरावतारत्वं बोधयितुं भीष्मो दुर्योधनं प्रति नरनारायणवृत्तान्तं कथयति स्म। वासुदेवार्जुनयोः नरनारायणावतारत्वेनाजय्यत्वं कथयित्वा भीष्मो दुर्योधनमनुनयति स्म। कर्णस्य दर्पोक्तिं श्रुत्वा भीष्मो धृतराष्ट्रं प्रति कर्णनिन्दारूपं वाक्यं व्याजहार। धृतराष्ट्रं प्रति भीष्मवाक्यानुकूलमेव द्रोणवाक्यम्... ... ... ... | ११९ |
| ५० | ५० | 'युधिष्ठिरः किमभाषत' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने तं प्रति सञ्जयस्योक्तिः। पाण्डवसैन्यजिज्ञासया धृतराष्ट्रप्रश्नं श्रुत्वा सञ्जयस्य कश्मलप्राप्तिः। पुनः प्रत्याश्वस्तो युधिष्ठिरादीनां पाण्डवानां प्रशंसामुक्त्वा शिखण्डिप्रभृतीनां राज्ञां साहाय्यकरणादि व्याहरति स्म | १२० |
| ५१ | ६१ | धृतराष्ट्रो 'भीमाद्भयं जायते' इत्युक्त्वा भीमपराक्रमस्य स्मरणेनात्यन्तमन्वतपत... ... ... ... | १२२ |
| ५२ | २० | अर्जुनस्य पराक्रमं चिन्तयानो धृतराष्ट्रः शोचति... ... ... | १२३ |
| ५३ | १६ | धृतराष्ट्रः पाण्डवपक्षपातिनां पराक्रममुक्त्वा युधिष्ठिरादिक्रोधाद्भयं भवतीत्याद्यभिधाय युधिष्ठिरं प्रशस्य युद्धोपरमाभिप्रायमाह स्म.. | १२४ |
| ५४ | २२ | युद्धे त्वदीयानां क्षयो नियतोऽनीशस्य ते विलपनं च व्यर्थमिति सञ्जयस्य धृतराष्ट्रं प्रत्युक्तिः... ... | १२५ |
| ५५ | ६९ | सञ्जयवाक्यश्रवणोत्तरं दुर्योधनो भीष्मादिभिर्दत्तपूर्वं युद्धानुमोदनं कथयित्वा धृतराष्ट्रमाश्वासयामास। दुर्योधन आत्मानं प्रशस्य भीष्मादिसाहाय्यमुक्त्वा कर्णप्रशंसापूर्वकमेकादशाक्षौहिणीबलमभिधाय पुनर्धृतराष्ट्रमाश्वासयामास... | १२७ |
| ५६ | १७ | दुर्योधनसंजयसंवादस्तत्रार्जुनाद्यश्वादिप्रश्ने सञ्जयकृतं तत्कथनं च... | १२८ |
| ५७ | ६२ | पाण्डवसैन्यजिज्ञासया धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। कृष्णादीनां पाण्डवसाहाय्यार्थमागमनस्य कथनम्। पाण्डवसैनिकैः शिखण्डिप्रभृतिभिर्भीष्मादयः स्वस्वभागत्वेन कल्पिता इति कथनम्। धृतराष्ट्रः स्वपुत्रनिन्दापूर्वकं पाण्डवबलं प्रशंसन् पाण्डवसैन्यनेतॄणां नामानि व्याजहार। पाण्डवोद्दीपकः क इति प्रश्ने धृष्टद्युम्नोत्साहादिकथनम् | १३० |
| ५८ | २९ | अर्जुनपराक्रमाद्भीतेन धृतराष्ट्रेण भीष्मादयो युद्धं नेच्छन्ति नापि त्वं स्वेच्छया किंतु कर्णशकुनिदुःशासनैः पापैः प्रयुक्त एवेत्युक्तो दुर्योधनः कर्णादयश्चत्वार एव वयं शत्रून् | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | हनिष्यामो नाहं भीष्मादिषु भारं कृत्वा पाण्डवान् समाह्वये इत्युक्तवान्। ततो धृतराष्ट्रस्य विलपनम्... ... ... ... | १३१ |
| ५९ | ३१ | 'वासुदेवार्जुनौ यदब्रूतां तत्कथय' इति धृतराष्ट्रेणोक्ते सञ्जयस्तदभिहितवान्। एकासनस्थितयोः कृष्णार्जुनयोः समीपे स्वप्रवेशमभ्यधात् सञ्जयः। भोगदानादिकं विधेयं महद्वो भयमागतमित्याद्यर्जुनप्रशंसासहितं कृष्णसन्देशं सञ्जय आचख्यौ... ... ... ... | १३२ |
| ६० | ३३ | वचसो गुणदोषौ स्वपरयोर्बलाबलं च निश्चित्य 'देवाः पुत्रप्रीत्याऽग्निश्च प्रत्युपकारेच्छया युद्धे पाण्डवानां साहाय्यं करिष्यति' इति धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनं प्रत्युक्तिः... ... | १३३ |
| ६१ | २९ | देवत्वभ्रंशभयान्न देवाः पाण्डवानां साहाय्यं करिष्यन्ति दैवं बलं मय्यस्तीति दुर्योधनोक्तिः... ... | १३४ |
| ६२ | १८ | अहमेव पाण्डवान् हन्तुं 'समर्थो भीष्मादयस्तिष्ठन्तु ते समीपे' इति धृतराष्ट्रस्य पुरत आत्मानं श्लाघमानः कर्णो भीष्मेण गर्हितो 'भीष्मेऽप्रशान्ते नाहं योत्स्ये' इति प्रतिज्ञाय सभां विहाय स्वं भवनं जगाम। भीष्मः सभातो निर्गतं कर्णं विनिन्दन दुर्योधनमुवाच... ... | १३६ |
| ६३ | २४ | 'ममायं युद्धसमारंभो न भवत्सु भारं कृत्वा प्रवृत्तः, अहं कर्णदुःशासनाभ्यां सहितः शत्रून् हनिष्यामि' इति भीष्मं प्रति क्रुधा ब्रुवाणं दुर्योधनमुद्दिश्य विदुरो दमं प्रशंसति... ... ... ... | १३७ |
| ६४ | २७ | विदुरेण शकुनिद्वयवृत्तान्तकथनेन किरातवृत्तान्तकथनेन च विवादस्योभयनाशं कथयित्वाऽविवादोपदेशः... ... ... ... | ८३१ |
| ६५ | १६ | पाण्डवास्त्वया जेतुं न शक्या इति दुर्योधनं प्रति धृतराष्ट्रोक्तिः... | १३९ |
| ६६ | १५ | पृच्छते धृतराष्ट्राय सञ्जयेन यथा रणयज्ञे सर्वे राजानो न हताः स्युस्तथा प्रयतध्वमिति तत्र समागताः पार्थिवास्त्वया वाच्या इत्यर्जुनवचनकथनम्... ... ... | १४० |
| ६७ | १० | सभात उत्थितेषु राजस्वेकान्ते धृतराष्ट्रः सञ्जयं प्रति स्वपरसैन्ययोर्बलाबले पृच्छति स्म—एकान्ते त्वामेकं प्रत्येव न कथयामि व्यासं गान्धारीं चानय, तयोः सांनिध्ये कथयामीति सञ्जयेनोक्ते विदुरस्तावानयामास। व्यासः कथयितुं सञ्जय प्रेरयामास... ... ... | १४० |
| ६८ | १५ | व्यासवचनात् सञ्जयेन धृतराष्ट्राय कृष्णार्जुनयोर्याथातथ्यकथनम्.. | १४१ |
| ६९ | २१ | 'कथं त्वं माधवं वेत्थ' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने 'विद्यया तात जानामि' इत्यादिना तदुत्तरकथनं सञ्जयेन। कृष्णार्जुनयोर्माहात्म्यं श्रुतवता धृतराष्ट्रेण 'श्रीकृष्णं शरणं गच्छ' इति दुर्योधनोपदेशः। तत्प्रत्याचक्षाणस्य दुर्योधनस्य गान्धार्या गर्हणम्। सञ्जयेन धृतराष्ट्राय पृच्छते भगवत्प्राप्त्युपायकथनम्... ... ... | १४३ |
| ७० | १५ | वासुदेवादिनाम्नामर्थज्ञानार्थं धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयेन कृष्णस्य कतिपयनाम्नां निरुक्तिः... ... ... | १४४ |
| ७१ | ७ | धृतराष्ट्रस्य चक्षुष्मद्भाग्यस्पृहापूर्वकं श्रीकृष्णं प्रति शरणगमनम्... | १४५ |
| | | **(६) भगवद्यानपर्व १४५–२४४** | |
| ७२ | ९३ | आपत्तारणं प्रार्थयन्तं युधिष्ठिरं प्रति भगवतस्त्वत्कथितं करिष्यामीत्याद्युक्तिः। धृतराष्ट्रो राज्याप्रदानेन शममिच्छतीत्याद्युक्त्वा स्वप्रार्थनीयानवस्थलादीन् पञ्च ग्रामान् कथयति स्म युधिष्ठिरः। युधिष्ठिरो लोभादीनां प्रज्ञादिनाशकत्वमभिधाय निर्धनस्यानर्थप्राप्तिक्रमं धनिकस्यार्थ | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | प्राप्त्यादि चोक्त्वा स्वस्य युद्धनिवारणाभिप्रायं निवेदयति स्म। शूद्रादीनां धर्माद्यभिधाय युद्धे दोषकथनादि कुर्वतो युधिष्ठिरस्य कृष्णेन संवादः... ... ... | १४९ |
| ७३ | ४२ | 'दुर्योधनः प्रागिव संप्रत्यपि त्वय्यपकारशीलो जीवंस्ते राज्यं दातुं नालमिति परैः सहाहं युद्धमेवाशंसे. तदह तत्र गत्वा राज्ञां मध्ये तव गुणान् दुर्योधनस्य च व्यतिक्रमान् कीर्तयिष्यामि। येन सर्वे त्वां धर्मात्मानं संप्रतिपद्य धृतराष्ट्रं दुर्योधनं च गर्हयिष्यन्ति' इति श्रीकृष्णस्य युधिष्ठिरं प्रति वचनम्... ... | १५० |
| ७४ | २३ | कौरवान् प्रति यास्यते कृष्णाय भरतानां दयमानस्य भीमस्याद्भुतपूर्वं वचनं—'दुर्योधनोऽत्यन्तममर्षी नोग्रमुक्तः शमं गृह्णीयादिति मृदु ब्रूयाः। अपि वयमधश्चरा भूत्वा तमनुयास्यामः मा स्म भरता नशन्" इति... ... ... ... | १५१ |
| ७५ | २३ | कृष्णेन सन्तेजनार्थं भीमस्योपालम्भः... ... ... ... | १५२ |
| ७६ | १८ | कशयाभिहतेनेव सदश्वेन भगवदुपालम्भेन भीमेन स्वपौरुषाविष्करणम्... ... ... ... | १५३ |
| ७७ | २० | दैवपौरुषयोर्बलाबलानवधारणात्पौरुषं कर्तव्यमेवेति बुद्ध्या युद्धाख्यपौरुषाद्विमुखं त्वां तत्र प्रवर्तयितुमहं किञ्चित् परुषमिवोक्तवानिति भीमं प्रति भगवदुक्तिः... ... | १५४ |
| ७८ | १९ | यदि परेषु भवान् प्रशममसुकरं मन्यते न च त न वधार्हास्तस्माद्यन्नः श्रेयस्तदाशु क्रियतामिति कृष्णं प्रत्यर्जुनस्योक्तिः... ... | १५५ |
| ७९ | २१ | कार्यसिद्धिर्हि दैवपुरुषकारोभयायत्ता। तन्मया शमं याचितोऽपि न स गृह्णीयान्न चाहं दैवमन्यथयितुं शक्नोमि न च शमामिच्छामीति जानन्नपि कथमद्य मामभिशंकसे इत्यर्जुनं प्रति भगवदुक्तिः... ... | १५६ |
| ८० | १८ | नकुलेन श्रीकृष्णं प्रति यद्भवान् प्राप्तकालं क्षमं च मन्यते तत्करोत्विति कथनम्... ... ... | १५७ |
| ८१ | ९ | सहदेवेन श्रीकृष्णस्य कौरवैः सह युद्धयोजनप्रार्थनं सर्वैस्तदनुमोदनं च... ... ... ... | १५८ |
| ८२ | ४९ | द्रौपद्याः स्वपरिभवादिकथनपूर्विका श्रीकृष्णं प्रत्युक्तिः। अर्जुनाद्याक्षेपपूर्वकं दुःशासनधृतकेशान् दर्शयित्वाऽतिविषादेन भीममाक्षिप्य कृष्णादीनामग्रे रुरोद द्रौपदी। श्रीकृष्णो द्रौपदीं सान्त्वयित्वा दुर्योधनादिनाशनं प्रतिजज्ञे... ... ... | १५९ |
| ८३ | ७२ | अर्जुनकृष्णयोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं गमनसामयिकमाङ्गल्यकरणपूर्वकं सात्यकिना सज्जीकृते रथे तेन सह श्रीकृष्ण आरुरोह। गमनसमये वाय्वादीनामानुकूल्ये सति वसिष्ठादीन्प्रदक्षिणीकृत्य निर्गतं श्रीकृष्णं प्रति युधिष्ठिरादयोऽनुजग्मुः। श्रीकृष्णं प्रति संदेशं कथयित्वा युधिष्ठिरे निवृत्ते सति स्वमभिप्रायं निवेदयतोऽर्जुनस्योक्तिं श्रुत्वा भीमे हृष्टेऽर्जुनादयो निववृतिरे। मार्गे ऋषीन् दृष्ट्वाऽभिवंदनपुरःसरं श्रीकृष्णप्रश्ने जामदग्न्यः सभागतस्य तव भाषणादि श्रोतुमागच्छाम इत्युवाच। दशभिर्महारथैः सह कृष्णे गते तत्प्रयाणे कानि निमित्तान्यभवन्निति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनकृतं तेषां कथनम्... | १६२ |
| ८४ | २९ | मार्गे उपप्लव्यवासिभिः पूजितः कृष्णो वृकस्थलमागत्य रथादवरुह्य सन्ध्यावन्दनादि विधाय रात्रौ तत्रैव वसंस्तत्रत्यैर्ब्राह्मणैः सत्कृतस्तानपि पूजयति स्म... ... ... | १६३ |
| ८५ | १८ | धृतराष्ट्रानुमते दुर्योधनेन श्रीकृष्ण- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | पूजार्थं पथि सर्वकामसमृद्धसभानिर्माणम् । अनवेक्षमाणस्यैव ता भगवतो हास्तिनपुरप्राप्तिः ... | १६४ |
| ८६ | २१ | धृतराष्ट्रः श्रीकृष्णाय देयत्वेन संकल्पितानि रथादिवस्तूनि विदुरं श्रावयति... ... ... ... | १६४ |
| ८७ | १७ | न त्वयाऽर्थेन पाण्डवेभ्यः कृष्णो भेदयितुं शक्य इति धृतराष्ट्रं प्रति विदुरोक्तिः... ... ... | १६५ |
| ८८ | २३ | 'पूज्यतममपि कृष्णं संप्रति वयं न सत्कर्तुमर्हामः' इति दुर्योधनवचः श्रुत्वा भीष्मेण कृष्णो नावज्ञेयस्तद्द्वारा पाण्डवैः सह शमः कर्तव्य इत्युक्ते दुर्योधनेन तन्नियमनोपायं पृष्टस्य भीष्मस्य क्रुधा सभाया निर्गमनम्... ... ... ... | १६६ |
| ८९ | २७ | प्रातर्वृकस्थलान्निर्गतः कृष्णः प्रत्युद्गतैर्भीष्मादिभिर्वृतो हास्तिनपुरमेत्य धृतराष्ट्रगृहं प्रविवेश । धृतराष्ट्रादिभिः सत्कृतः श्रीकृष्णो विदुरगृहमाजगाम । पूजापूर्वकं विदुरेण पाण्डवकुशलं पृष्टः श्रीकृष्णस्तं प्रति तत्कथयामास... ... | १६७ |
| ९० | १०५ | कुन्तीगृहं प्रति गतं श्रीकृष्णं प्रति कुन्त्याः पाण्डवा वने कथमूषुरित्यादि वाक्यम् । युधिष्ठिरादिप्रशंसनपूर्वकं कुन्त्या कृतं श्रीकृष्णाग्रे स्वविषादप्रकाशनम् । कुन्ती विदुरं प्रशस्य स्वदुःखं कथयित्वा युधिष्ठिरादीन् प्रति वक्तव्यं स्वसंदेशं कृष्णं प्रति कथयामास । कुन्ती कृष्णं प्रत्यर्जुनोत्पत्तिकालिकं वृत्तान्तं कथयति स्म । कृष्णेन कुन्तीं प्रशस्य पाण्डवानां युद्धोत्साहमभिधाय पाण्डवाभिवादने निवेदिते तं प्रति कुन्त्युक्तिः... ... ... | १७१ |
| ९१ | ४१ | कुन्तीमापृच्छ्य दुर्योधनगृहं गतः श्रीकृष्णः प्रत्युत्थानादिना सत्कृतो दुर्योधनेन भोजनार्थं निमन्त्रितस्तन्नाङ्गीचकार । दुर्योधनेन 'भवता सह नो वैराभावादस्मत्प्रयुक्तपूजादेरग्रहणं न युक्तम्' इत्युक्तेन श्रीकृष्णेन 'संप्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ॥ न च संप्रीयसे राजन्न चैवापद्गता वयम्' इत्याद्युक्तवान्ते 'धर्मे स्थितैः पाण्डवैः सह द्वेष एव मे द्वेषस्तस्माद्दुष्टाभिसंहितं त्वदन्नं न भोक्तव्यम्' इत्यभिधाय विदुरगृहगमनम् । ततो द्रोणादिभिः सह संभाषणानन्तरं विदुरपूजामङ्गीकृत्य कृष्णस्तदन्नं बुभुजे ... ... ... | १७२ |
| ९२ | ३० | 'निर्मर्यादानां दुष्टचेतसां धार्तराष्ट्राणां मध्ये तवावतरणं मे न रोचते' इति विदुरो धार्तराष्ट्रनिन्दारूपं वाक्यमुक्त्वा कौरवाणामनभिमतं सन्धिकरणमित्याह । विदुरः श्रीकृष्णं प्रति संधियत्नवारणाभिप्रायकं सभागमनवारणाभिप्रायकं च वाक्यमुक्त्वा तद्दर्शनजां स्वप्रीतिं च निवेदयति स्म... ... | १७३ |
| ९३ | २२ | न मे पर्याप्ताः सर्वे पार्थिवाः, किं च पाण्डवानामर्थमहापयन्यादि कुरूणां शममाचरेयं तदा मे पुण्यं चरितं स्यादिति बुद्ध्याऽहमागतोऽस्मीत्युक्त्वा श्रीकृष्णो विदुरवाक्यमभिनन्द्य स्वागमनप्रयोजनादि कथयित्वा सुष्वाप... ... ... | १७४ |
| ९४ | ५४ | प्रभाते सूतादिभिर्बोधितं श्रीकृष्णमावश्यकं प्राभातिकं कृत्वा संध्यामुपास्यमानं प्रति शकुनिदुर्योधनावाजग्मतुः । ताभ्यां धृतराष्ट्रादीनां सभाप्रवेशे निवेदिते श्रीकृष्णो ब्राह्मणेभ्यो हिरण्यादि दत्त्वाऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य रथमारुरोह । दुर्योधनादिभिरनुगतं वाद्यघोषपुरःसरं कौरवसभां प्रविशन्तं श्रीकृष्णं प्रति धृतराष्ट्रादयोऽभ्युत्थानादिनाऽर्चयामासुः । आकाशे समागतानृषीन् दृष्ट्वा श्रीकृष्णेन प्रेरितो भीष्मस्तेभ्य | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | आसनादि ददौ। दुःशासनादयश्च सात्यकिप्रभृतिभ्यो ददुः...... | १७६ |
| ९५ | ६३ | "त्वं स्वबन्धुषु नृशंसवद्व्यवहरतः स्वपुत्रान्निगृह्णीष्व न चेदस्मिन्कुले त्वन्निमित्तः सर्वपार्थिवक्षयो भवेत्। पाण्डवास्तु त्वया प्राणेषु वित्तेषु चासकृत्प्रहृता अपि सौशील्यात्त्वामेवान्ववर्तन्त। संप्रति च शुश्रूषयितुं योद्धुं च स्थिताः। तदत्र यत्पथ्यं मन्यसे तत्कुरु" इति श्रीकृष्णः स्वागमनाभिप्रायमुक्त्वा कौरवकुलप्रशंसां विधाय धृतराष्ट्रं प्रति शमविधानार्थकं वाक्यमभिधाय युद्धे दोषानब्रवीत्। तथैव पाण्डवसंदेशमभिधायाधर्माचरणे सभ्यदोषानुद्भाव्य धृतराष्ट्रं प्रति हितमुपदिश्य युधिष्ठिरादीनां धैर्यादिकमभिदधाति स्म... ... ... | १७८ |
| ९६ | ५२ | श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा सर्वेषु राजसु तूष्णींभूतेषु दंभोद्भवराजवृत्तांतकथनपूर्वकं परशुरामस्योपदेशः। 'अस्ति कश्चिद्युधि मत्समः' इति दर्पात्पृच्छन्तं दंभोद्भवं प्रति नरनारायणाभ्यां युद्धं कुर्विति ब्राह्मणैरुक्ते तयोराश्रमं स जगाम। आतिथ्यादिना सत्कृतो युद्धं याचमानस्ताभ्यां निवारितोऽपि दंभोद्भवो यदा नाश्रौषीत्तदा नर इषीकामुष्टिमादाय युद्धार्थं प्रववृते। इषीकास्त्रेण पराभूतं स्वपादयोः पतन्तं दंभोद्भवं प्रति नरस्योपदेशः। रामोऽप्यर्जुनं शरणं गच्छेत्युक्त्वाऽर्जुनस्याजय्यत्वकथनपूर्वकं शममुपदिदेश... | १८० |
| ९७ | २१ | कण्वो दुर्योधनं प्रति कृष्णार्जुनप्रशंसावाक्यमुक्त्वा मातलिवरान्वेषणाख्यानमाचख्यौ। कन्याया वरं चिन्तयन्मातलिः कन्याजन्मनिन्दापूर्वकं देवादिलोकानन्विष्य तया सह नागलोकं गन्तुं प्रतस्थे... | १८१ |
| ९८ | २५ | पथि गच्छतो मातलेर्मार्गमध्ये दृष्टेन नारदेन सहोक्तिप्रत्युक्ती। नारदमातल्योर्वरुणलोकदर्शनाद्यनंतरं नागलोके भ्रमतोः सतोर्नारदो मातलिं प्रति वरुणपुत्रादीनां नामरूपादि व्याजहार। नारदकृतं वरुणलोकसंपत्तिकथनम्... ... | १८२ |
| ९९ | २० | नारदेन सह मातलिना पातालदर्शनम्... ... ... ... | १८३ |
| १०० | १९ | उभयोर्हिरण्यपुरनामकदैत्यस्थानगमनम्। हिरण्यपुरनिर्माणादिकथनपूर्वकं तत्र कालखंजादिवसत्यादि कथयन्तं नारदं प्रत्यन्यत्र गमनाय मातल्यनुज्ञा... ... ... | १८४ |
| १०१ | २६ | सुपर्णलोकं गत्वा तद्वृत्तांतकथनपूर्वकं सुवर्णचूडादीनां नामानि कथयति स्म नारदः... ... ... | १८४ |
| १०२ | १५ | नारदो रसातलं गत्वा तद्वृत्तांतं कथयंस्तत्रत्यसुरभिप्रशंसापूर्वकं तल्लोकं प्रशशंस... ... ... | १८५ |
| १०३ | २६ | वरान्वेषणाय वासुकिपालितां भोगवतीं गत्वा तद्वृत्तांतं कथयन्वासुक्यादीनां नामान्यभिधाय 'अत्र ते रोचते कश्चित्' इत्याद्याह मातलिं नारदः। तत्रार्यकपुत्रं सुमुखं दृष्ट्वा प्रश्नमुखेन नारदात्तज्जन्मवृत्तांतं श्रुत्वा 'एष मे रुचितो वरः' इत्याद्याह मातलिः ... ... | १८६ |
| १०४ | ३० | आर्यकं प्रति मातलिप्रशंसापूर्वकं सुमुखायायं स्वकन्यां दातुमिच्छतीत्याह नारदः। मासानंतरं सुमुखभक्षणं गरुडेन प्रतिज्ञातमित्याद्यार्यकवाक्यं श्रुत्वा तं प्रति मातलिः सुमुखस्य स्वेन सहेन्द्रं प्रति गमनं प्रार्थयति स्म। सुमुखेन सह नारदमातल्योरिन्द्रसभोपगमनानंतरं तं प्रति नारदो विवाहादिवृत्तमकथयत्। विष्णोरनुमत्या नारदमातलिभ्यां प्रार्थितेन्द्रेण सुमुखाय चिरायुष्प्रदानम्... ... ... | १८७ |
| १०५ | ४० | सुमुखायायुष्प्रदानश्रवणक्रुद्धेन गरु | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | ढेनेन्द्रोपेन्द्रयोरात्मानमधिकबलवत्त्वेन विकत्थ्य भर्त्सनम् । गरुडवाक्यं श्रुत्वा ममेमं सव्येतरं बाहुं धारयेत्युक्त्वा विष्णुना निहितस्य बाहोर्भारेण गरुडः पपात । अनंतरं गतदर्पेण गरुडेन प्रार्थितस्य विष्णोः प्रसादादि । स उपेन्द्र एवायं वासुदेवस्तेन द्वारीभूतेनात्मानं रक्षेत्युक्तवतः कण्वस्य दुर्योधनेनोपहसनम्... ... ... ... | १८९ |
| १०६ | २७ | जनमेजयप्रश्नानंतरं नारदकृतमुपदेशं कथयांचक्रे वैशंपायनः । दुर्योधनं प्रति हितमुपदिशन्नारदो गालवचरित्रं कथयति स्म । विश्वामित्र एकदा वसिष्ठवेषेण स्वसमीपमागतस्य धर्मस्य कृते चरुं श्रपयति स्म । चरुश्रपणमप्रतीक्ष्यान्यत्र भुक्तवति वसिष्ठे श्रपितं चरुं गृहीत्वा आगतो विश्वामित्रो 'भुक्तं मयाऽन्यत्र त्वं तिष्ठ' इति वसिष्ठेनोक्तस्तथैव शतं वर्षाणि तस्थौ । पुनरागते धर्मे भुक्त्वा प्रसन्ने गते सति तत्कालकृतया गालवसेवया तुष्टेन विश्वामित्रेणानुज्ञातो गालव आग्रहपूर्वकं गुरुदक्षिणार्थं प्रार्थितवान् । 'एकतः श्यामकर्णानां हयानामष्टौ शतानि देहि' इति गालवं प्रत्याह विश्वामित्रः... ... ... ... | १९० |
| १०७ | १९ | आहारादिपरित्यागपूर्वकं यतमानोऽपि दक्षिणामलभमानो गालवो विललाप । विलपन्तं गालवं प्रति तत्सखा गरुड आगत्य दक्षिणासंपादनार्थं यत्र यत्र त्वया गन्तव्यं तत्र तत्र त्वां प्रापयिष्यामीत्युवाच... ... ... ... | १९१ |
| १०८ | १८ | गरुडेन गालवाय प्राचीवर्णनम् | १९२ |
| १०९ | २१ | दक्षिणस्या दिशो वर्णनम्... | १९३ |
| ११० | २० | प्रतीच्या वर्णनम्... ... | १९४ |
| १११ | २८ | उदीचीवर्णनम्... ... ... | १९५ |
| ११२ | २२ | पूर्वाध्यायान्ते 'कां दिशं जिगमिषासि' इत्युक्तवन्तं गरुडं प्रति पूर्वां दिशं प्रयाहीति गालव उवाच । गरुडपृष्ठमारुह्य गच्छन् गालवस्तद्वेगमसहमानो 'न मे प्रयोजनं किंचित्' इत्याद्याह गरुडं प्रति । ऋषभपर्वते विश्रान्तिं गृहीत्वा निवर्तिष्यावह इत्याद्याह स्म गरुडो गालवम् ... ... ... | १९६ |
| ११३ | २३ | ऋषभपर्वते शाण्डिलीं दृष्ट्वा तस्या आश्रमं भुक्त्वा तदनुज्ञया सुप्तयोः पश्चात्प्रतिबुद्धयोर्गालवगरुडयोर्मध्ये गरुडो गलितपक्षो मांसपिंडाकृतिश्चाभूत् । गालवेन तथाविधाकृतिर्गरुडः पृष्टस्तत्कारणं कथयति स्म । प्रार्थनाहृष्टायाः शाण्डिल्याः प्रसादाल्लब्धपक्षबले गरुडेऽलब्धाश्वो गालवः प्रत्याजगाम । मध्येमार्गं विश्वामित्रवाक्यं श्रुत्वा गरुडो दक्षिणालाभार्थं मन्त्रयिष्याव इत्याह गालवम्... ... ... | १९७ |
| ११४ | २० | ययातिर्मम सखाऽस्ति तन्निकटं गच्छाव इति गरुडेनोक्ते तौ ययातिं ययतुः—ययातिं प्रति गरुडेन गालववृत्तांते कथिते गालवो गुरुदक्षिणामयाचत... ... ... | १९८ |
| ११५ | २१ | क्रतुषु क्षीणवित्तेन ययातिना धनं याचमानाय गालवाय माधवीनाम्न्याः स्वकन्याया धनार्जनोपायतया दानम् । कन्यामादाय शुल्कार्थं हर्यश्वं प्रति गालवगमनम... | १९९ |
| ११६ | २२ | हर्यश्वेनैकपुत्रोत्पादनायैकतः श्यामकर्णानामश्वानां द्विशत्या मूल्येन कन्यापरिक्रयणम् । पुत्रमुत्पाद्य पुनः कन्याभूतां तामादाय दिवोदासं प्रति गालवगमनम्... | २०० |
| ११७ | २१ | दिवोदासेनापि तेनैव मूल्येनैकं पुत्रमुत्पादयितुं माधवीस्वीकरणं पुत्रमुत्पाद्य गालवाय निवर्तनं च | २०१ |
| ११८ | २१ | गालवेन पुनरौशीनराय तेनैव मूल्येनैकं पुत्रं जनयितुं माधवीदानम् । | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | पुत्रमुत्पाद्य तेन निर्यातितां तामादाय गच्छता गालवेन पथि सुपर्णदर्शनम् ... ... ... | २०२ |
| ११९ | २४ | सुपर्णवचसा ज्ञाताधिकाश्वालाभेन गालवेनाश्वषट्शत्या सहैकपुत्रोत्पादनाय विश्वामित्राय माधवीदानम्। एवं गुरुदक्षिणां निर्यात्य विश्वामित्रेण पुत्रोत्पादनान्ते पुनः कन्याभूताया माधव्यास्तत्पित्रे निर्यातनम् ... ... ... ... | २०२ |
| १२० | २२ | राज्ञोपक्रान्तस्वयंवरया माधव्या वनं गत्वा तपश्चरणम्। बहुना कालेन स्वर्गतस्य ययातेः सर्वावमाननेन क्षीणपुण्यस्य तत्रस्थैरनभिज्ञानाच्चिस्तेजस्त्वप्राप्तिः ... ... ... | २०३ |
| १२१ | २८ | ययातेः स्वदौहित्राणां प्रतर्दनादीनां वाजपेयेन यजमानानां मध्ये पतितस्य माधवीगालवाभ्यां स्वस्वतपसोऽर्धेनाष्टमभागेन च तारणम् ... ... ... | २०४ |
| १२२ | १८ | प्रतर्दनादिभिः स्वसर्वपुण्यदानेन ययातेः स्वर्गारोपणम् ... | २०५ |
| १२३ | २३ | पुनः स्वर्गतस्य ययातेर्दैवतैरभिनन्दनम्। ययातिना स्वपतनहेतुं पृष्टेन ब्रह्मणाऽभिमान इति कथनम्। नारदेन दुर्योधनाय मानत्यागोपदेशः ... ... ... | २०६ |
| १२४ | ६२ | धृतराष्ट्रप्रार्थितेन श्रीकृष्णेन शमार्थे दुर्योधनस्य बहुविधानुनयः... | २०८ |
| १२५ | २७ | भीष्मद्रोणाभ्यां विदुरेण धृतराष्ट्रेण च भगवद्वचनावमानने दोषानुक्त्वा तद्वचनकरणोपदेशः ... ... | २०९ |
| १२६ | १८ | भीष्मद्रोणाभ्यां दुर्योधनाय शमस्य श्रेयस्त्वोपदेशः ... ... | २१० |
| १२७ | २५ | न मया पाण्डवानां सुसूक्ष्ममप्यपराद्धं न च तीक्ष्णतरया सूच्या यावद्विद्ध्येत्तावदपि भूमेः मया पाण्डवान्प्रति परित्याज्यमिति दुर्योधनस्य दर्पोक्तिः ... ... | २११ |
| १२८ | ५० | भगवता श्रीकृष्णेन द्रौपदीसभाप्रवेशन—लाक्षागृहदाह—विषबन्धनादिदुर्योधनव्यतिक्रमेषु श्रावितेषु भीष्मादीननादृत्य महता क्रोधेन सभातो दुर्योधनप्रस्थानम्। कर्ण—शकुनि—दुःशासन—दुर्योधनानां निग्रह एव प्राप्तकाल इति कुरून्प्रति भगवदुक्तिः ... ... | २१३ |
| १२९ | ५४ | धृतराष्ट्रेण दुर्योधनमनुनेतुं गान्धार्यानयनम्—गान्धार्या धृतराष्ट्राज्ञया विदुरेण पुनः सभां प्रवेशिताय पुत्राय पाण्डवेभ्यो राज्यार्धदानोपदेशः ... ... ... .. | २१५ |
| १३० | ५३ | मातुर्वाक्यमनादृत्य पुनः सभातो निष्क्रम्य दुःशासनादिभिः कृष्णबन्धनं मन्त्रयमाणस्य दुर्योधनस्याभिप्रायमिङ्गितेन ज्ञात्वा सात्यकिना कृतवर्मणे सभाद्वाररक्षणाय सेनायोजनमादिश्य कृष्णं प्रति तेषामभिप्रायमुक्त्वा स्मितपूर्वं धृतराष्ट्रविदुराभ्यां तत्कथनम्। विदुरेण धृतराष्ट्र! पुत्रास्ते परीतकाला इत्युक्ते श्रीकृष्णेन दुर्योधनादिभिः स्वनिग्रहणं स्वेन वा तन्निग्रहणं यत्स्यात्तदनुजानीहीति सर्वेषु शृण्वत्सु धृतराष्ट्रप्रार्थनम्। धृतराष्ट्रेण पुनर्दुर्योधनं सानुजं सहामात्यं च सभामानाय्य बहु गर्हयित्वा कृष्णधर्षणत्वस्याप्यशक्यत्वप्रतिपादनम्। विदुरेणापि कृष्णस्येश्वरत्वप्रतिपादनमुखेन तथैव प्रतिपादनम् ... ... ... ... | २१६ |
| १३१ | ४१ | श्रीकृष्णो दुर्योधनं प्रति 'त्वमेकाकिनं मां मन्यसे चेत्सर्वमेतन्मयि पश्य' इत्युक्त्वा विश्वरूपं दर्शयामास। तत् दृष्ट्वा सर्वेषु राजसु भयेन निमीलितनेत्रेषु सत्सु द्रोणादयो भगवद्दत्तदिव्यदृष्ट्या तत्पश्यन्त एव तस्थुः। ततः सभाया निर्गतं कौरवैरनुयातं श्रीकृष्णं प्रति धृत- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | राष्ट्रस्य प्रार्थनोक्तिः । धृतराष्ट्रादीनामन्त्र्य निर्गतः श्रीकृष्णः कुन्तीं द्रष्टुं ययौ ... ... ... | २१८ |
| १३२ | ३४ | पृथागृहगतेन भगवता तस्यै सभावृत्तान्तकथनम् । तया तं प्रति युधिष्ठिराय क्षत्रियोचिताचरणसन्देशः ... ... ... | २१९ |
| १३३ | ४९ | युधिष्ठिरमिव क्षत्रियोचिताचारपराङ्मुखं परपरिभूतं स्वपुत्रं विदुला नाम राजन्या बहु गर्हयित्वा शत्रुजये प्रावर्तयत्ततो विक्रमोपार्जितमेव क्षत्रियस्य प्रशस्यतरं नतु याञ्चायापनतं तस्माद्युद्धमेव प्रवर्ततामिति भवता युधिष्ठिरो वक्तव्य इत्युक्त्वा कुन्त्या श्रीकृष्णाय विदुलातत्पुत्रयोः संवादकथनम् ... | २२१ |
| १३४ | ४१ | विदुलया अनुद्यमनिमित्तेन पुत्रं बहु विनिन्द्य क्षत्रस्वभावं च निर्वर्ण्य तस्य शत्रूत्सादनचोदनम् ... ... ... ... | २२३ |
| १३५ | ४० | पुनः पुनर्युद्धचोदनात्पुत्रेण निष्करुणत्वेनाऽऽक्षिप्तया विदुलया धर्मार्थहीनपुत्रवात्सल्यं खरीवात्सल्यत्वेन विगर्ह्य मनस्विपुरुषस्वभाववर्णनेन तद्विपरीतः पुत्रोऽर्थादधमत्वेनोक्तः पुनः करुणं ब्रुवन् शत्रुवधानन्तरं त्वां पूजयिष्यामीति तया समाश्वासितः कोशाभावादात्मानमवजानन्नुपायमपृच्छत्। मात्राऽऽत्मन्यवज्ञाया अयुक्तत्वस्य शत्रुजयोपायस्य च कथनम् ... ... | २२५ |
| १३६ | २२ | मातुः शत्रुजयोपायनिगूढकोशनिचयौ शृण्वता सञ्जयेन शत्रुजयोद्योगप्रतिज्ञानम् । कुन्त्यास्याख्यानस्य जयनामत्व-वीरप्रसवहेतुत्वयोः कथनम् ... ... ... | २२६ |
| १३७ | ३२ | कुन्त्याऽर्जुनादिभ्यः प्रनष्टस्वांशोद्धारावश्यकत्व-शत्रुकृतापराधाक्षम्यत्वपरसन्देशप्रेषणम् । भगवता कुन्तीमभिवाद्य स्वरथे कर्णमारोप्य तेन सह सुचिरं मन्त्रयित्वोपप्लव्यगमनम् ... ... ... ... | २२७ |
| १३८ | २७ | भीष्मद्रोणौ दुर्योधनं प्रत्यर्जुनप्रशंसापूर्वकं शमार्थं युद्धनिवारणार्थं च वाक्यमूचतुः ... ... ... | २२८ |
| १३९ | २२ | स्ववचनश्रवणेन विमनसं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीष्मद्रोणाभ्यां शुश्रूषुणा पार्थेन सहावश्यंभावियुद्धप्रसंगं शोचित्वा दुर्योधनं च विगर्ह्य पाण्डवानामजय्यत्वमात्मनश्च जीवित उदासीनत्वमुक्त्वा पुनः शमोपदेशः ... ... ... ... | २२९ |
| १४० | २९ | कृष्णः कर्णं प्रति किमब्रवीदिति धृतराष्ट्रप्रश्नः । 'कर्णं प्रति भगवता धर्मतस्त्वं पाण्डोः पुत्रोऽसि तद्दुर्योधनादीन् परित्यज्य युधिष्ठिरं समाश्रय पार्थाश्चाग्रजत्वात्त्वामेव राज्येऽभिषेक्ष्यन्तीत्युक्तम्' इति सञ्जयेन धृतराष्ट्रं प्रति कथनम् ... | २३० |
| १४१ | ५७ | इदानीं मया पाण्डवाश्रयणे मम तेषां चाकीर्तिः स्यात् किं चाधिरथदुर्योधनादीनां सौहार्दादपि तथा कर्तुं नोत्सहे युद्धे च पाण्डवानामेव जयो भवितेत्यादि कर्णस्य भाषणम् ... ... ... | २३२ |
| १४२ | २० | कृष्णः कर्णं प्रति पाण्डवजयनिश्चयं कथयित्वार्जुनयुद्धं प्रशंसन् द्रोणभीष्मादीन् प्रति वक्तव्यं संदेशं कथयामास ... ... ... | २३३ |
| १४३ | ५२ | कालः क्षत्रं नाशयिष्यति तत्र निमित्तमात्रं वयं किं च पाण्डवधार्तराष्ट्राणां क्रमेण शुभाशुभशंसीनि निमित्तानि दृश्यन्ते तेन पाण्डवानामेव जयो भवितेत्युक्तवतः कर्णस्य भगवता विसर्जनम् ... ... | २३५ |
| १४४ | ३१ | कौरवनिन्दारूपं वाक्यं वदन्तं विदुरं प्रति विषादोक्तिपूर्वकं कर्णजन्मवृत्तान्तं कथयित्वा गङ्गासमीपं गतवत्याः | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | कुन्त्याः कर्णदर्शनादि ... | २३७ |
| १४५ | १२ | कुन्त्या कर्णं प्रति त्वं सूर्यान्मयि जातोऽसि न राधेयस्तस्मान्मद्वचनाद्धार्तराष्ट्रान्परित्यज्य पाण्डवैः संगच्छस्वेति कथनम् ... ... | २३७ |
| १४६ | २७ | कुन्तीवाक्यानुमोदकं सूर्यवाक्यं श्रुत्वा कुन्त्याक्षेपपूर्वकमर्जुनं विना तव पुत्रान्न हनिष्यामीति कर्णेन प्रतिज्ञाते सत्युभौ यथास्थानं जग्मतुः ... ... ... | २३८ |
| १४७ | ४३ | उपप्लव्यमागत्य सर्वं वृत्तान्तं संक्षेपेणोक्त्वा विश्रान्तं कृष्णं प्रति भानावस्तं गते युधिष्ठिरेण प्रश्ने कृते स दुर्योधनं प्रति स्वोक्तिमाह। भीष्मादयः किमुक्तवन्त इति युधिष्ठिरेण पृष्टे दुर्योधनं प्रति भीष्मेण कथितं शन्तनुमारभ्य पाण्डवपर्यन्तं राज्याधिकारिक्रमेण पाण्डवा एव राज्याधिकारिण इत्यादि वाक्यमाह स्म भगवान् श्रीकृष्णः ... | २४० |
| १४८ | ३६ | 'दुर्योधननिन्दापूर्विका भीष्मं प्रति विदुरोक्तिः। क्रुद्धा गान्धारी दुर्योधनं प्रति पाण्डोरेवैतद्राज्यमित्याद्युवाच' ... ... ... | २४२ |
| १४९ | ३६ | 'धृतराष्ट्रो दुर्योधनं प्रति वदंश्चन्द्रवंशविवरणपूर्वकमात्मनो राज्यानधिकारमुक्त्वा युधिष्ठिरस्यैवैतद्राज्यमित्याद्याह स्म' ... ... ... | २४३ |
| १५० | २० | भीष्मादिभिरेवं बोधितोऽप्यबुध्यमानो दुर्योधनः कुरुक्षेत्रगमनार्थं राज्ञ आदिदेश। श्रीकृष्णो युधिष्ठिरं प्रति बहुप्रकारं स्वकर्तव्यं कथयामास ... ... ... ... | २४४ |
| | | **(७) सैन्यनिर्याणपर्व २४४–२५९** | |
| १५१ | ७० | युधिष्ठिरः सेनाविभागार्थं भ्रातॄनादिश्य द्रुपदादीन् सप्ताक्षौहिणीपतीन्निर्दिश्य सप्तानामपि नियन्तारमेकं सेनापतिं ब्रूहीति सहदेवमब्रवीत्। सेनापतिकरणे सहदेवादीनां मतभेदे युधिष्ठिरप्रेरणया श्रीकृष्णो धृष्टद्युम्नमेवान्वमोदत। हृष्टानां सैनिकानां सन्नहनपूर्वकं कुरुक्षेत्रगमनम् ... ... ... | २४६ |
| १५२ | १८ | युधिष्ठिराज्ञया धृष्टद्युम्नादयो धृतराष्ट्रसैनिकान् विद्राव्य हिरण्वत्यास्तीरे महार्हाणि शिबिराणि निर्माय परिखादि चक्रुः। तत्र काष्ठादीनां सञ्चयादिकं ज्याधनुर्बाणादीनां शिबिरे स्थापनं चाकुर्वन् ... | २४७ |
| १५३ | २७ | 'पाण्डवसेनां निविष्टां श्रुत्वा किमकार्षीत् दुर्योधनः' इति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्। दुर्योधनः शिबिरादिनिर्माणार्थं कर्णादीनाज्ञापयामास। आसनेभ्य उत्थिता राजानो धार्तराष्ट्राश्च युद्धोत्साहं प्रकाशयांचक्रुः ... ... | २४८ |
| १५४ | २७ | युधिष्ठिरेण श्रीकृष्णं प्रति कथमस्मिन्काले स्वधर्मान्न च्यवेमहीति प्रश्नः। भगवता न वयमत्यर्थं परित्यागेन शर्ममिच्छाम इत्युक्ते युधिष्ठिरेण युद्धमाज्ञाप्य गुरुभिः सह संग्रामस्य शोचनमर्जुनेन कुन्तीविदुराभ्यामपि तथोपदेशान्नात्राधर्मशङ्कायुक्तेति समाधानम्। युद्धार्थं कृतनिश्चयाः पाण्डवाः कुरुक्षेत्र ऊषुः ... ... ... ... | २४९ |
| १५५ | ३५ | दुर्योधनेन विभक्तस्य सैन्यस्य वर्णनम्। सेनादीनां पत्यादीनां च लक्षणकथनं कृपादीनां पृथगक्षौहिणीपतित्वकथनं च ... ... | २५१ |
| १५६ | ३६ | सैनापत्यार्थं दुर्योधनेन प्रार्थितो भीष्मस्तदङ्गीकृत्य प्रतिदिनमयुतसेनानाशनं प्रतिजज्ञे। भीष्मे कर्णमाक्षिपति स यावद्गाङ्गेयो जीवति तावदहं न योत्स्ये इति प्रतिजज्ञे। भीष्मस्य सैनापत्याभिषेके कृते दुर्निमित्तान्यभूवन्। सर्वैः सैनिकैः सह कुरुक्षेत्रमागतो दुर्योधनः शिबिरादिकं कारयामास ... ... | २५२ |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

१५७ ३५ भीष्मं युद्धाय दीक्षितं श्रुत्वा युधिष्ठिरादयः किमभाषन्तेति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्। धार्तराष्ट्रैर्भीष्मं सैनापत्येऽभिषिक्तं श्रुत्वा युधिष्ठिरो द्रुपदादीनक्षौहिणीपतित्वे धृष्टद्युम्नं सर्वसेनापतित्वेऽभिषिच्यार्जुनं च सेनापतिं कृत्वा कृष्णं तस्यापि नेतारं चक्रे। अत्रान्तरे बलरामस्तत्रागत्य पाण्डवैः पूजितो युद्धात्समुत्तीर्णान्भवतो द्रक्ष्यामीत्युक्त्वा कौरवान्नश्यत उपेक्षितुमशक्तस्तीर्थयात्रां प्रययौ ... २५३

१५८ ४० अस्मिन्नेव काले रुक्मी महत्या सेनया पाण्डवानुपेत्यार्जुनं 'यदि भीतोऽसि साहाय्यं ते करिष्यामि' इति वदन्नर्जुनेन प्रत्याख्यातो धार्तराष्ट्रं गतस्तत्रापि पूर्ववद्वदंस्तेनापि प्रत्याख्यातः स्वनगरं ययौ ... २५५

१५९ १५ युद्धदोषान् दुर्योधने आधित्सन्तं धृतराष्ट्रं प्रति त्वमात्मनो दुश्चरितादनर्थमापन्नो न दुर्योधनं कालमीश्वरं वा दूषयितुमर्हसीति सञ्जयवचनम् ... ... ... २५५

## (८) उलूकदूतागमनपर्व २५७–२६७

१६० ६५ हिरण्वत्यां पाण्डवेषु निविष्टेषु तत्र दुर्योधनो बलं निवेश्य कर्णादिभिः सह मन्त्रयित्वोपह्वरे वासुदेवस्य शृण्वतः "वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वाऽमोघेषुं मामासाद्य दश दिशो विद्रोष्यन्ति, अहं वासुदेवभयात्तथा युष्माकं भयाद्वा राज्यं न प्रतिप्रदास्यामि" इति संदेशं पाण्डवेभ्यः कथयेत्युलूकं प्रति बिडालव्रताख्यानकथनपूर्विका दुर्योधनोक्तिः ... ... २६०

१६१ ४३ उलूकः पाण्डवान् प्रति गत्वा युधिष्ठिरादभयं लब्ध्वा दुर्योधनकथितं संदेशं युधिष्ठिरार्जुनौ प्रत्याह ... ... ... ... २६३

१६२ ६३ उलूकवाक्यश्रवणेन क्रुद्धेषु पाण्डवेषु श्रीकृष्णः "प्रयाहि गच्छ" इत्याद्याहोलूकम्। कृष्णाधिक्षेपेण क्रुद्धेषु राजसु भीमः सहदेवश्च क्रमेणोलूकं प्रत्यूचतुः। भीमं धृष्टद्युम्नादींश्च प्रत्यर्जुनेनोक्तं वाक्यं श्रुत्वा राजानोऽर्जुनं प्रशशंसुः। दुर्योधनं प्रति वक्तव्यमुलूकं प्रत्याहार्जुनः श्रीकृष्णश्च ... ... ... २६४

१६३ ५७ भीष्मं पुरस्कृत्य युद्ध्यमानं दुर्योधनमाधिक्षिप्योलूकनिकटे भीष्महननप्रतिज्ञादि विधाय वक्तव्यं संदेशमाहार्जुनः। युधिष्ठिर-भीम-नकुल सहदेव-विराट-द्रुपद-शिखण्डि-धृष्टद्युम्ना अपि स्वस्वसंदेशमुलूकं प्रत्याहुः। पुनर्युधिष्ठिरसंदेशवाक्यं श्रुत्वा तदनुज्ञया ततो निर्गत उलूको दुर्योधनमागत्यार्जुनादिसंदेशान् कथयामास। दुर्योधनः सेनाप्रस्थाने कर्णादीनाज्ञापयामास ... ... ... ... २६६

१६४ १२ उलूकवाक्यं श्रुत्वा युधिष्ठिरेण निर्यापितायाः सेनाया अग्रेसरो धृष्टद्युम्नः "अर्जुनं सूतपुत्राय" इत्यादिना सर्वेषां योधानां भागान् कल्पयित्वा स्वस्य द्रोणं भागमकल्पयत् ... ... ... ... २६७

## (९) रथातिरथसंख्यानपर्व २६७–२७५

१६५ ३३ सञ्जयं प्रति धृतराष्ट्रप्रश्नः। अभिषिक्तेन भीष्मेण समाश्वासितो दुर्योधनस्तं प्रत्युभयपक्षीयाणां रथातिरथसंख्यां पप्रच्छ। भीष्मः स्वसैन्यगतानां महारथादीनां संख्यां कथयन् रथातिरथविभागकथनपूर्वकं दुर्योधनादीनां पराक्रमं स्वस्य कृतवर्मादीनां सिन्धुराजस्य च पराक्रमं कथयामास ... ... २६८

१६६ २२ काम्बोजादीनारभ्य कृपपर्यन्तानां रथातिरथसंख्यानपूर्वकं पराक्रमकथनम् ... ... ... २६९

१६७ ३८ शकुन्यश्वत्थामद्रोणप्रभृतिभगदत्ता-

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम् ।

न्तानां संख्यानपूर्वकं पराक्रमकथनम् ... ... ... ... २७०

१६८ ४२ अचलवृषकयोः पराक्रमकथनानन्तरं कर्णनिन्दापूर्वकं तमर्धरथत्वेन गणयति स्म भीष्मो द्रोणश्च तदेवान्वमोदत । भीष्मं प्रति सक्रोधं निन्दावाक्यमुक्त्वा दुर्योधनं प्रति भीष्मत्यागादिकं कथयन्तं कर्णं प्रति भीष्मः सक्रोधमुवाच । भीष्मं क्षमापयन् दुर्योधनः परेषां रथातिरथसंख्यां शुश्रूषुः पप्रच्छ ... २७२

१६९ २८ पाण्डवानां रथातिरथसंख्यानं कथयन् भीष्मो युधिष्ठिरादीनामर्जुनस्य च पराक्रमं वर्णयति स्म । भीष्मकथितं पाण्डवपराक्रमं श्रुतवतां योधानां बाहवः शिथिला बभूवुरित्याह वैशम्पायनः ... ... ... ... २७३

१७० १४ द्रौपदेयानारभ्य विराटद्रुपदपर्यन्तानां पराक्रमं कथयामास भीष्मः ... ... ... २७३

१७१ २७ शिखण्डिप्रभृति काश्याद्यन्तानां पराक्रमकथनम् ... ... २७४

१७२ २१ कुन्तिभोजप्रभृतिघटोत्कचाद्यन्तानां पराक्रममभिधाय शिखण्डिनं नाहं हन्यामित्याद्यभिदधाति स्म भीष्मः ... ... २७५

(१०) अम्बोपाख्यानपर्व २७५–३०४

१७३ २३ दुर्योधने भीष्मं प्रति शिखण्डिनोऽहनने निमित्तं पृच्छति भीष्म आह स्म । विचित्रवीर्यस्य विवाहार्थं भीष्मः काशीं गत्वा काशिपतेस्तिस्रः कन्या आजहार । कन्याहरणसमये युध्यमानानां राज्ञां भीष्मात्पराजयः ... ... २७६

१७४ १० कन्यानां विचित्रवीर्येण सह उपक्रान्ते विवाहे ज्येष्ठयाऽम्बया मया मनसा शाल्वो वृतस्तेन चाहं रहसि वृतेति तं प्रति मां प्रेषयेति भीष्मप्रार्थना ... ... २७७

१७५ ४५ भीष्मेण सर्वानुमत्या वृद्धादिभिर्गुप्तायास्तस्याः शाल्वाय प्रेषणं भीष्मभयाच्च शाल्वेन तस्याः परित्यागः । तया स्वदुःखस्य भीष्मं हेतुं निश्चित्य तद्वधाय तपश्चिकीर्षया तपोवनं गत्वा प्राव्राज्यदीक्षार्थं तापसप्रार्थनम्... ... २७८

१७६ ५९ तापसेष्वम्बया संवदत्स्वकस्मादागतं हौत्रवाहनं प्रति तापसा अम्बावृत्तान्तं कथयांचक्रुः । हौत्रवाहनस्तापसवाक्यं श्रुत्वा अम्बां स्वाङ्कमारोप्य पृष्टया तया कथितं वृत्तान्तं च श्रुत्वा रामसमीपगमनार्थं तामाज्ञापयति स्म । एतस्मिन्नेवावसरेऽकस्मादागतेन रामानुचरेणाकृतव्रणेन श्वः प्रभाते रामोऽत्रागमिष्यतीति कथिते तं प्रति हौत्रवाहनोऽम्बावृत्तं निवेदयामास... ... २७९

१७७ ४२ अकृतव्रणाम्बयोः संवादः । तत्रागतं रामं प्रति हौत्रवाहनेन 'अस्या वृत्तं शृणु' इत्युक्ते स्वसमीपे रुदत्यम्बा रामेण पृष्टा सती दुःखितां मामुद्धरेति सामान्यतः उवाच । 'किमियं वक्ष्यति' इति चिन्तयन्तं जामदग्न्यं प्रत्यम्बा विशेषतः स्वं वृत्तं निवेद्य भीष्मवधार्थं प्रार्थयामास... ... २८२

१७८ ९५ रामाम्बयोः संवदतोरकृतव्रणे 'शरणागतामिमां मा त्यज' इत्युक्तवति तदङ्गीकरणवाक्यं प्रति राम उवाच । रामे कन्यया सह कुरुक्षेत्रमागत्य भीष्मं प्रतीमां प्रतिगृह्णीष्वेत्युक्तवति सत्युभयोरुक्तिप्रत्युक्ती । आक्षेपपूर्वकं स्वस्य युद्धाभिप्रायं प्रकटीकृत्य भर्त्सयमानं भीष्मं प्रति रामः

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
| --- | --- | --- | --- |
| | | सक्रोधमुवाच । भीष्मेण सह युद्धार्थं रामः कुरुक्षेत्रमाजगाम । जामदग्न्यभीष्मयोर्युद्धोपक्रमः । तदात्वे गङ्गा युद्धनिवारणार्थं भीष्मं बोधयित्वा तस्मिन्नशृण्वति राममागत्य प्रार्थयित्वा तस्मिन्नशृण्वति पुनरपि भीष्ममुपससर्प ... ... ... | २८५ |
| १७९ | ३९ | भीष्मरामयोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरमुभयोस्तुमुले युद्धे प्रसक्ते बाणप्रहारेण मोहितं रामं दृष्टवतो भीष्मस्य पश्चात्तापः ... | २८६ |
| १८० | ३८ | पुनर्द्वितीये दिवसे युद्धप्रवृत्त्यनन्तरं रामबाणप्रहारेण मोहिते भीष्मे अकृतव्रणादयो जहृषुः । लब्धसंज्ञस्य भीष्मस्य बाणप्रहारेण रामे मूर्छिते सति तत्समीपागतैरकृतव्रणादिभिः संज्ञां लम्भितस्य तस्य भीष्मं प्रति 'तिष्ठ भीष्म' इत्यादि वाक्यम्... | २८७ |
| १८१ | १६ | तृतीये दिवसे दिव्यैरस्त्रैर्युध्यमानयोरुभयोः परस्परं बाणैर्गाढविद्धयोः सायं युद्धविरामः | २८८ |
| १८२ | ३० | चतुर्थदिवसे पुनर्युद्धे प्रसक्ते बाणजालविद्धे भीष्मसारथौ मृते रामबाणप्रहारेण मोहितो भीष्मोऽष्टभिर्ब्राह्मणैः संज्ञां लम्भितः सारथिस्थाने स्थित्वा हयान् संगृह्णतीं स्वमातरं गङ्गां दृष्ट्वा भीष्मः प्रणामपूर्वकं तां विसृज्य स्वयं रश्मीन् गृहीत्वा युद्धं चकार। भीष्मबाणप्रहारमोहिते रामे पतिते सत्यौत्पातिका उल्कापातादयो बभूवुः। एवं प्रतिदिनं युध्यमानयोस्तयोर्विंशतिदिनान्यतीयुः ... ... ... | २९० |
| १८३ | १९ | वसुभिः स्वप्ने 'त्वं रामं जेष्यसि न त्वां रामो जेता, प्रस्वापनास्त्रं च त्वामुपस्थास्यति यद्रामो न वेद' इति भीष्मं प्रति कथनम् ... ... ... ... | २९० |
| १८४ | २३ | ततः परेद्युरुभाभ्यामपि तुमुले युद्धे प्रसक्ते भीष्मेण ब्रह्मास्त्रे योजिते तत्प्रतीघातार्थं रामेणापि तस्मिन् प्रयोजिते तत्तेजसा व्योम्नि प्रज्वालिते लोकेषु च हाहाकारेषु जातेषु प्रस्वापनं नामास्त्रं मोक्तुकामस्य भीष्मस्य तत्प्रतिभानम् | २९१ |
| १८५ | ३७ | प्रस्वापनास्त्रं प्रयुञ्जानो भीष्मो देवैर्नारदेन च निवारितः स्वप्नदृष्टब्राह्मणवाक्याच्च तत्संजहार । ऋचीकादिषु रामपितृष्वागत्य भीष्मं रामं च प्रति युद्धान्निवृत्तिमाज्ञापयत्स्वपि यदोभौ नाङ्गीचक्रतुस्तदा भागीरथ्या सह ते सर्वे रणाजिरं प्रतिरुध्य रामं शस्त्रं न्यासयांचक्रिरे । 'ततः स्वप्नदृष्टब्राह्मणवाक्यादहमपि रामस्य पादवन्दनाद्यकार्षमित्याद्याह भीष्मः ... ... ... ... | २९३ |
| १८६ | ४१ | "त्वं यथेष्टं गच्छ भीष्मं वा प्रपद्यस्व" इत्याद्युक्तवन्तं रामं प्रति भीष्मगमनानङ्गीकारपूर्वकं 'यत्र गत्वा स्वयमेव भीष्मं हनिष्यामि तत्रैव गमिष्यामि' इत्युक्त्वा तपःसङ्कल्पं कृत्वा जगामाम्बा । तस्यास्तपःसङ्कल्पं श्रुत्वा चिन्तयन्तं भीष्मं प्रति व्यासनारदावागत्याऽऽश्वासयामासतुः । तपश्चरणार्थं वत्सभूमिमागत्य नन्दाश्रमादिषु तपश्चरन्त्या अम्बाया गङ्गायाश्चोक्तिप्रत्युक्ती । तीर्थलोभादितस्ततो धावन्ती पतिताऽम्बा गङ्गाशापात्तीर्थासरित् कन्या च बभूव ... | २९४ |
| १८७ | १९ | कन्याशरीरेण तत्र पुनस्तपसि प्रवृत्तयाऽम्बया दर्शितस्वरूपादीश्वरात् 'भवान्तरे भीष्मं हनिष्यसि कन्या भूत्वा पश्चात्पुमांश्च भविष्यसि' इति वरं लब्ध्वाऽग्निप्रवेशनम् ... ... ... | २९५ |

१८८ २० कन्या भूत्वा कथं पुरुषो भवेदिति दुर्योधनप्रश्ने भीष्मस्योत्तरकथनम्। अपत्यार्थं तपस्यन् द्रुपदस्तुष्टान्महादेवात् 'स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति' इति वरं लब्ध्वा स्वभार्यां प्रति कथयामास। शिखण्डिनो जन्मादिवृत्तान्तकथनम् ... ... ... ... २९५

१८९ २३ यौवनस्थां कन्यां दृष्ट्वा चिन्तयन्द्रुपदो भार्ययाऽऽश्वासितः सन् दशार्णकन्यया सह शिखण्डिनो विवाहमकरोत्। शिखण्डिन्याः स्त्रीत्वं ज्ञात्वा दशार्णकन्या स्वधात्रीभ्यो न्यवेदयत्, ताश्च स्वदासीद्वारा दशार्णाय निवेदयामासुः। तच्छ्रुत्वा क्रुद्धेन दशार्णाधिपतिना प्रेषितो दूतो द्रुपदमागत्य तत्सन्देशमेकान्ते कथयामास ... ... ... ... ... २९६

१९० २२ इदमसदिति दूतद्वारा द्रुपदसन्देशं श्रुत्वा दशार्णाधिपतिः पुनर्निश्चित्य सैन्येन सह द्रुपदमभियास्यन् युद्धाय स्थिरो भवेत्यादि सन्देशं दूतद्वारा प्रेषयति स्म। दशार्णसन्देशश्रवणेन भीतो द्रुपदो भार्यां प्रति पृच्छति स्म। २९७

१९१ ३० ततो भार्यावाक्यं श्रुत्वा द्रुपदे मन्त्रिभिः सह चिन्तयति शिखण्डिनी प्राणत्यागनिश्चयं कृत्वा वनं जगाम। वनगतेन स्थूणाकर्णयक्षेण पृष्टा शिखण्डिनी तं प्रति स्ववृत्तान्तं कथयित्वा दशार्णपरावर्तनपर्यन्तं पुंस्त्वं मे देहीति ययाचे ... ... ... २९८

१९२ ७० समयबन्धनपूर्वकं यक्षशिखण्डिन्योरन्योन्यलिङ्गपरिवर्तनानन्तरं शिखण्डी पुंस्त्वं लब्ध्वा स्वपुरमाजगाम। शिखण्डिपुंस्त्वसन्देशं द्रुपदप्रेषितदूतमुखाच्छ्रुत्वाऽप्यविश्वस्तो दशार्णः काम्पिल्यनगरमेत्य द्रुपदं प्रति स्वपुरोहितं प्रेषयामास। पुनर्द्रुपदप्रेषितदूतवाक्यं श्रुत्वा दशार्णः शिखण्डिसमीपे परीक्षार्थं युवतीः प्रेषयामास। युवतीमुखाच्छिखण्डिनः पुंस्त्वं श्रुत्वा दाशार्णो हृष्टः सन् द्रुपदगृहे वसति स्म। एतदन्तरे वने समागतस्य कुबेरस्य पूर्ववत् प्रत्युद्गमनादिकमकुर्वन्तं स्थूणाकर्णं प्रति शिखण्डिजीवनपर्यन्तं तव स्त्रीत्वं तिष्ठत्विति कुबेरः शशाप। एतदनन्तरं पूर्वसङ्केतानुरोधेन पुंस्त्वं दातुमागतः शिखण्डी स्थूणाकर्णेन कुबेरशापादिकथनपूर्वकं विसर्जितः सन् स्वगृहं प्रत्याजगाम। एवं शिखण्डिवृत्तं कथयित्वा स्त्रीपूर्वत्वादेनं न हनिष्यामीति भीष्मः प्रतिजज्ञे ... ... ... ... ३०१

१९३ २२ सर्वां पाण्डवसेनां कतिदिनैर्हनिष्यसीति भीष्मादीन् प्रति दुर्योधनप्रश्ने भीष्म-द्रोण-कृपाश्वत्थामानो मासादीनवधीन् कथयामासुः। कर्णेन पञ्चरात्रावधौ कथिते भीष्मो जहास ... ३०२

१९४ २२ भीष्मप्रतिज्ञां श्रुत्वा युधिष्ठिरेण पृष्टोऽर्जुनः स्वबलं कथयित्वा स्वसैनिकानां पराक्रममुवाच ३०२

१९५ १९ पाण्डवान् प्रति गन्तुं दुर्योधनेन प्रेरिताः ससैन्या राजानः कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धं आगत्य दुर्योधनेन कारितानि शिबिराणि प्रविविशुः ... ... ... ३०३

१९६ ३५ युधिष्ठिरः प्रथमं धृष्टद्युम्नादीन्, अनन्तरं भीमादींश्च प्रेषयित्वा विराटादिभिः सह स्वयं निर्जगाम। भीमादिसैन्यसम्बन्धिनामश्वादीनां परिगणनम् ... ३०४

परिशिष्टम्—विषं भुङ्क्ष्वेत्यादिकूटश्लोकस्य निर्वचनम् भाविष्यत्पर्वसूचनपूर्वकमुद्योगपर्वसमाप्तिश्च ... ... ... ... ... २


समाप्तेयमुद्योगपर्वविषयानुक्रमणिका। ॥ शुभं भवतु ॥

# उद्योगपर्व

५

# ॥ महाभारतम् ॥

## उद्योगपर्व ।

—५—

### सेनोद्योगपर्व १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरा-
स्तदाऽभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः ।
विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः
सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः ॥ १

सभा तु सा मत्स्यपतेः समृद्धा
मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासना माल्यवती सुगन्धा
तामभ्ययुस्ते नरराजवृद्धाः ॥ २

अथासनान्याविशतां पुरस्ता-
दुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ ।
वृद्धौ च मान्यौ पृथिवीपतीनां
पित्रा समं रामजनार्दनौ च ॥ ३

पाञ्चालराजस्य समीपतस्तु
शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः ।
मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसन्निकृष्टौ
जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च ॥ ४

सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो
भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च ।
प्रद्युम्नसाम्बौ च युधि प्रवीरौ
विराटपुत्रैश्च सहाभिमन्युः ॥ ५

सर्वे च शूराः पितृभिः समाना
वीर्येण रूपेण बलेन चैव ।
उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः
सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु ॥ ६

---

### नीलकण्ठी टीका—

श्रीमद्गोपालमानम्य श्रीलक्ष्मणपदानुगः ।
नीलकण्ठो भावदीपं करोत्युद्योगपर्वणि ॥ १

गोपालनारायणलक्ष्मणार्या
धीरेशगङ्गाधरनीलकण्ठाः ।
चिन्तामणिः साम्बशिवश्च पूज्या
दिशन्तु सर्वे गुरवो मतिं मे ॥ २ ॥

भारते सारमुद्योगमिति वृद्धानुशासनम् ॥
अतो विस्तरतस्तत्र व्याख्यानमुपपद्यते ॥ ३ ॥

कृत्वेति। अभिमन्योः स्वपक्षाः यादवपाण्डवाद्याः तस्यैव विवाहं कृत्वा मुदिता अभूवन्निति शेषः। प्रतीताः प्रबुद्धाः ॥ १ ॥ मणयो मुक्ताप्रवालादयः तेषां प्रवेको जालादिरूपः समूहः तेन उत्तमरत्नैः हीरपद्मरागाद्यैश्च चित्रा ।' मणिः द्वयोःपुंसयो-रश्मजातौ मुक्तादिकेष्वपि' इति मेदिनी ॥ २ ॥ आविशता-मुपविष्टौ पित्रा वसुदेवेन ॥ ३ ॥ रौहिणेयः बलरामः ॥ ४ ॥

तथोपविष्टेषु महारथेषु
विराजमानाभरणाम्बरेषु ।
रराज सा राजवती समृद्धा
ग्रहैरिव द्यौर्विमलैरुपेता ॥ ७

ततः कथास्ते समवाययुक्ताः
कृत्वा विचित्राः पुरुषप्रवीराः ।
तस्थुर्मुहूर्तं परिचिन्तयन्तः
कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ॥ ८

कथान्तमासाद्य च माधवेन
सङ्घट्टिताः पाण्डवकार्यहेतोः ।
ते राजसिंहाः सहिता ह्यशृण्वन्
वाक्यं महार्थं सुमहोदयं च ॥ ९

श्रीकृष्ण उवाच ।

सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथाऽयं
युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम् ।
जितो निकृत्याऽपहृतं च राज्यं
वनप्रवासे समयः कृतश्च ॥ १०

शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च
सत्ये स्थितैः सत्यरथैर्यथावत् ।
पाण्डोः सुतैस्तद्व्रतमुग्ररूपं
वर्षाणि षट् सप्त च चीर्णमग्र्यैः ॥ ११

त्रयोदशश्चैव सुदुस्तरोऽय-
मज्ञायमानैर्भवतां समीपे ।
क्लेशानसह्यान् विविधान् सहद्भि-
र्महात्मभिश्चापि वने निविष्टम् ॥ १२

एतैः परप्रेष्यनियोगयुक्तै-
रिच्छद्भिराप्तं स्वकुलेन राज्यम् ।
एवंगते धर्मसुतस्य राज्ञो
दुर्योधनस्यापि च यद्धितं स्यात् ॥ १३

तच्चिन्तयध्वं कुरुपुङ्गवानां
धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च ।
अधर्मयुक्तं न च कामयेत
राज्यं सुराणामपि धर्मराजः ॥ १४

धर्मार्थयुक्तं तु महीपतित्वं
ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत् ।
पित्र्यं हि राज्यं विदितं +नृपाणां
यथाऽपकृष्टं धृतराष्ट्रपुत्रैः ॥ १५

मिथ्योपचारेण यथा ह्यनेन
कृच्छ्रं महत् प्राप्तमसह्यरूपम् ।
न चापि पार्थो विजितो रणे तैः
स्वतेजसा धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः ॥ १६

तथाऽपि राजा सहितः सुहृद्भि-
रभीप्सतेऽनामयमेव तेषाम् ।
यत्तु स्वयं पाण्डुसुतैर्विजित्य
समाहृतं भूमिपतीन् प्रपीड्य ॥ १७

तत् प्रार्थयन्ते पुरुषप्रवीराः
कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च ।
बालास्त्विमे तैर्विविधैरुपायैः
संप्रार्थिता हन्तुममित्रसङ्घैः ॥ १८

राज्यं जिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैः
सर्वं च तद्वो विदितं यथावत् ।
तेषां च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं
धर्मज्ञतां चापि युधिष्ठिरस्य ॥ १९

संबन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां
मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक् ।
इमे च सत्येऽभिरताः सदैव
तं पालयित्वा समयं यथावत् ॥ २०

अतोऽन्यथा तैरुपचर्यमाणा
हन्युः समेतान् धृतराष्ट्रपुत्रान् ।
तैर्विप्रकारं च निशम्य कार्ये
सुहृज्जनास्तान् परिवारयेयुः ॥ २१

युद्धेन बाधेयुरिमांस्तथैवं
तैर्बाध्यमाना युधि तांश्च हन्युः ।
तथाऽपि नेमेऽल्पतया समर्था-
स्तेषां जयायेति भवेन्मतं वः ॥ २२

---

संघट्टिताः सन्नद्धीकृताः महार्थं सारार्थं महोदयं श्रेष्ठफलम् ॥९॥ अक्षवत्यां द्यूतक्रीडायाम् । निकृत्याम् छलेन । समयः पणः ॥ १० ॥ सत्यरथैः सत्पृथिव्यप्तेजांसि त्यत् वाय्वाकाशौ उभयत्र अकुण्ठितो रथो येषां तैरिति मध्यमपदलोपेन समासः । सत्यं रथवदारोढुं योग्यं येषां वा । पाठान्तरे सत्यैकप्रियैः ॥ ११ ॥ बुभूषेत् प्राप्तुमिच्छेत् तङ्भाव आर्षः ॥१५ ॥अनामयं कुशलम् । यत्तु धनादिकं स्वयमेव समाहृतं न पित्रादिभिः ॥ १७॥ पारयित्वेति पाठे समाप्य ॥२०॥ अतो राज्यार्धप्रदानात् । कार्ये राज्यलाभनिमित्तं तैर्धार्तराष्ट्रैः कृतं विप्रकारमपकारं निशम्य ज्ञात्वा । तान् पाण्डवान् ॥ २१ ॥ यदि इमान् बाधेयुस्तर्हि एतेऽपि तान् कौरवान् हन्युः । इमे पाण्डवाः ॥२२॥ + नृपाणां पाण्डवानाम् ।

समेत्य सर्वे सहिताः *सुहृद्भि-
स्तेषां विनाशाय यतेयुरेव ।
दुर्योधनस्यापि मतं यथाव-
न्न ज्ञायते किं नु करिष्यतीति ॥ २३
अज्ञायमाने च मते परस्य
किं स्यात् समारभ्यतमं मतं वः ।
तस्मादितो गच्छतु धर्मशीलः
शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः ॥ २४
दूतः समर्थः प्रशमाय तेषां
राज्यार्धदानाय युधिष्ठिरस्य
निशम्य वाक्यं तु जनार्दनस्य
धर्मार्थयुक्तं मधुरं ¶समं च ॥ २५
समाददे वाक्यमथाग्रजोऽस्य
संपूज्य वाक्यं तदतीव राजन् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

बलदेव उवाच ।
श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य
वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च ।
अजातशत्रोश्च हितं हितं च
दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः ॥ १
अर्धं हि राज्यस्य विसृज्य वीराः
कुन्तीसुतास्तस्य कृते यतन्ते ।
प्रदाय चार्धं धृतराष्ट्रपुत्रः
सुखी सहास्माभिरतीव मोदेत् ॥ २
लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः
सम्यक्प्रवृत्तेषु परेषु चैव ।
ध्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयु-
स्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम् ॥ ३
दुर्योधनस्यापि मतं च वेत्तुं
वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य ।
प्रियं च मे स्याद्यदि तत्र कश्चि-
द्व्रजेच्छमार्थं कुरुपाण्डवानाम् ॥ ४
स भीष्ममामन्त्र्य कुरुप्रवीरं
वैचित्रवीर्यं च महानुभावम् ।
द्रोणं सपुत्रं विदुरं कृपं च
गान्धारराजं च ससूतपुत्रम् ॥ ५
सर्वे च येऽन्ये धृतराष्ट्रपुत्रा
बलप्रधाना निगमप्रधानाः ।
स्थिताश्च धर्मेषु तथा स्वकेषु
लोकप्रवीराः श्रुतकालवृद्धाः ॥ ६
एतेषु सर्वेषु समागतेषु
पौरेषु वृद्धेषु च संगतेषु ।
ब्रवीतु वाक्यं प्रणिपातयुक्तं
कुन्तीसुतस्यार्थकरं यथा स्यात् ॥ ७
सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या
ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः ।
प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य
द्यूते प्रसक्तस्य हृतं च राज्यम् ॥ ८
निवार्यमाणश्च कुरुप्रवीरः
सर्वैः सुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः ।
स दीव्यमानः प्रतिदीव्य चैनं
गान्धारराजस्य सुतं मताक्षम् ॥ ९
हित्वा हि कर्णं च सुयोधनं च
समाह्वयद्देवितुमाजमीढः ।
दुरोदरास्तत्र सहस्रशोऽन्ये
युधिष्ठिरो यान्विषहेत जेतुम् ॥ १०

---

इति श्रीम० उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

* सुहृद्भिरस्मदादिभिः । ¶ सममुभयपक्षतुल्यम् ।

२

श्रुतमिति॥१॥अर्धं राज्यस्य विसृज्य तस्य कृते अर्धस्य राज्यस्यार्थे॥२॥ राज्यं राज्यार्धम्॥३॥ बलं चतुरङ्गं निगमो नीतिशास्त्रं ते उभे प्रधानं येषां श्रुतेन कालेन च वृद्धाः। वृत्ता इति पाठे श्रुतं कालवृत्तं सर्वसंहारकत्वं यैस्ते ॥६॥ समागतेषु सभायामिति शेषः॥७॥ वाक्यमेवाह-सर्वास्विति। सर्वथाऽपि ते पाण्डवाः न कोप्याः भवद्भिरिति शेषः। सोऽर्थो ग्रस्तः वनवासादिप्रतिज्ञानिस्तीर्णेत्यर्थः। बलं सत्यपालने सामर्थ्यं, पूर्वं कोपिता अपि अन्यैः परं न कोप्या इति भावः ॥ ८ ॥अयं युधिष्ठिरः अतज्ज्ञः द्यूतानभिज्ञः ॥ ९ ॥

उत्सृज्य तान् सौबलमेव चायं
समाह्वयत्तेन जितोऽक्षवत्याम् ।
स दीव्यमानः प्रतिदेवनेन
अक्षेषु नित्यं तु पराङ्मुखेषु ॥ ११
संरम्भमाणो विजितः प्रसह्य
तत्रापराधः शकुनेर्न कश्चित् ।
तस्मात् प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु
वैचित्रवीर्यं बहुसामयुक्तम् ॥ १२
तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः
स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन ।
अयुद्धमाकाङ्क्षत कौरवाणां
साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम् ॥ १३
साम्ना जितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत
युद्धेऽनयो भविता नेह सोऽर्थः ॥ १४

वैशम्पायन उवाच ।

एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे
शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात ।
तच्चापि वाक्यं परिनिन्द्य तस्य
समाददे वाक्यमिदं समन्युः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बलदेववाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

सात्यकिरुवाच ।

यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं संप्रभाषते ।
यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥ १
सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा ।
उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान् प्रति ॥ २
एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ ।
फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन् वनस्पतौ ॥ ३
नाभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लाङ्गलध्वज ।
ये तु शृण्वन्ति ते वाक्यं तानसूयामि माधव ॥ ४
कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन् ।
लभते परिषन्मध्ये व्याहर्तुमकुतोभयः ॥ ५
समाहूय महात्मानं जितवन्तोऽक्षकोविदाः ।
अनक्षज्ञं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः ।
यदि कुन्तीसुतं गेहे क्रीडन्तं भ्रातृभिः सह ॥ ६
अभिगम्य जयेयुस्ते तत्तेषां धर्मतो भवेत् ।
समाहूय तु राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा ॥ ७
निकृत्या जितवन्तस्ते †किं नु तेषां परं शुभम् ।
कथं प्रणिपतेच्चायमिह कृत्वा पणं परम् ॥ ८
वनवासाद्विमुक्तस्तु प्राप्तः पैतामहं पदम् ।
यद्ययं परवित्तानि कामयेत युधिष्ठिरः ॥ ९
एवमप्ययमत्यन्तं परान्नार्हति याचितुम् ।
कथं च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यं जिहीर्षवः ॥ १०
निवृत्तवासान् कौन्तेयान् य आहुर्विदिता इति ।
अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ॥ ११
न व्यवस्यन्ति पाण्डूनां प्रदातुं पैतृकं वसु ।
अहं तु तान् शितैर्बाणैरनुनीय रणे बलात् ॥ १२
पादयोः पातयिष्यामि कौन्तेयस्य महात्मनः ।
अथ ते न व्यवस्यन्ति प्रणिपाताय धीमतः ॥ १३
गमिष्यन्ति सहामात्या यमस्य सदनं प्रति ।
न हि ते युयुधानस्य संरब्धस्य युयुत्सतः ॥ १४

संरम्भमाणः हठं कुर्वाणः संरब्धमान इति पाठे संवृद्धदर्प इत्यर्थः ॥१२॥ युद्धे अनयः भविता भविष्यति । इह सामोपाये सोऽर्थः अनयः न ॥१४॥ इति श्रीम० उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे बलदेववाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

३

**यादृश इति** । यादृश आत्मा शुद्धः पापो वा तादृशं शुद्धं पापं वा भाषते ॥ १ ॥ फलाफलवती सुपो लुक् आर्षः पूर्वसवर्णो वा॥३॥ ते तव वाक्यं तत्रापराधः शकुनेर्न कश्चिदिति पूर्वोक्तं कौरवपक्षपातयुक्तम्॥४॥यथाश्रद्धं द्यूते आसक्तिरहितमिव धर्मे जयः धर्मनिमित्तं जयः कुतः। किं तु अधर्ममूलक एव तेषां जय इत्यर्थः ॥ ६ ॥ प्रणिपतेत् शरणागतो भवेत् । पणं कृत्वा वनवासप्रतिज्ञां निस्तीर्य ॥ ८ ॥ पैतामहमिति न्यायलभ्यत्वं सूचितम् ॥ ९ ॥ विदिता अज्ञातचर्यायामिति शेषः। अनुनीताः परिमितः काल एतैरतिवाहित इति बोधिताः ॥ ११ ॥ † किमित्याक्षेपे ।

वेगं समर्थाः संसोढुं वज्रस्येव महीधराः ।
को हि गाण्डीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि ॥ १५
मां चापि विषहेत् क्रुद्धं कश्च भीमं दुरासदम् ।
यमौ च दृढधन्वानौ यमकालोपमद्युती ।
विराटद्रुपदौ वीरौ यमकालोपमद्युती ॥ १६
को जिजीविषुरासादेद्धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
पञ्चैतान् पाण्डवेयांस्तु द्रौपद्याः कीर्तिवर्धनान् १७
समप्रमाणान् पाण्डूनां समवीर्यान् मदोत्कटान् ।
सौभद्रं च महेष्वासममरैरपि दुःसहम् ॥ १८
गदप्रद्युम्नसाम्बांश्च कालसूर्यानलोपमान् ।
ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रं शकुनिना सह ॥ १९
कर्णं चैव निहत्याजावभिषेक्ष्याम पाण्डवम् ।
नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः ॥
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम् ।
हृद्गतस्तस्य यः कामस्तं कुरुध्वमतन्द्रिताः ॥ २१
निसृष्टं धृतराष्ट्रेण राज्यं प्राप्नोतु पाण्डवः ।
अद्य पाण्डुसुतो राज्यं लभतां वा युधिष्ठिरः २२
निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यन्ति वसुधातले ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि सात्यकिक्रोधवाक्ये
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

द्रुपद उवाच ।
एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः ।
न हि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति ॥ १
अनुवर्त्स्यति तं चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ।
भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद्राधेयसौबलौ ॥२
बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते ।
एतद्धि पुरुषेणाग्रे कार्यं सुनयमिच्छता ॥ ३
न तु वाच्यो मृदुवचो धार्तराष्ट्रः कथञ्चन ।
न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतो मम ॥ ४
गर्दभे मार्दवं कुर्याद्गोषु तीक्ष्णं समाचरेत् ।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि ॥ ५
मृदुं वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिकम् ।
जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति ॥ ६
एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह ।
प्रस्थापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः ॥ ७
शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य वा विभो ।
केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छन्तु शीघ्रगाः ॥८
स च दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः ।
पूर्वाभिपन्नाः सन्तश्च भजन्ते पूर्वचोदनम् ॥ ९
तत् त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव प्रचोदने ।
महद्धि कार्यं वोढव्यमिति मे वर्तते मतिः ॥ १०
शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्यानुगा नृपाः ।
भगदत्ताय राज्ञे च पूर्वसागरवासिने ॥ ११
अमितौजसे तथोग्राय हार्दिक्यायान्धकाय च ।
दीर्घप्रज्ञाय शूराय रोचमानाय वा विभो ॥ १२
आनीयतां बृहन्तश्च सेनाबिन्दुश्च पार्थिवः ।
सेनजित्प्रतिविन्ध्यश्च चित्रवर्मा सुवास्तुकः ॥१३
बाह्लीको मुञ्जकेशश्च चैद्याधिपतिरेव च ।
सुपार्श्वश्च सुबाहुश्च पौरवश्च महारथः ॥ १४
शकानां पह्लवानां च दरदानां च ये नृपाः ।
सुरारिश्च नदीजश्च कर्णवेष्टश्च पार्थिवः ॥ १५
नीलश्च वीरधर्मा च भूमिपालश्च वीर्यवान् ।
दुर्जयो दन्तवक्रश्च रुक्मी च जनमेजयः ॥ १६
आषाढो वायुवेगश्च पूर्वपाली च पार्थिवः ।
भूरितेजा देवकश्च एकलव्यः सहात्मजैः ॥ १७
कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
काम्बोजा ऋषिका ये च पश्चिमानूपकाश्च ये ॥१८

---

यमः शरीरात् प्राणानामुद्धर्ता कालः आयुःपरिच्छेदकर्ता ॥ १६ ॥ पाण्डवेयान् पाण्डवी द्रौपदी तत्पुत्रान् । पुंयोगलक्षणङीषन्तात् स्त्रीभ्यो ढगिति ढक् ॥ १७ ॥ पाण्डूनां पाण्डुतुल्यानां पाण्डवानाम् ॥ १८॥ तस्य पाण्डवस्य ॥२१॥ इति श्रीम० उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

एवमेतदिति । मधुरेण साम्ना ॥ १ ॥ कार्पण्यात् तदन्नभक्षणेन दैन्यात् ॥ २ ॥ ज्ञाने ज्ञानवतां समाजे न युज्यते अयुक्तमित्यर्थः । एतद्वक्ष्यमाणम् ॥ ३ ॥ पूर्वाभिपन्नाः पूर्वं साहाय्यार्थं वृताः । पूर्वचोदनं पूर्वं चोदना प्रेरणा यस्य तम् ॥ ९ ॥

जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पञ्चनदा नृपाः ।
क्राथपुत्रश्च दुर्धर्षः पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ १९
जानकिश्च सुशर्मा च मणिमान्योऽतिमत्सकः* ।
पांशुराष्ट्राधिपश्चैव धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ॥ २०
तुण्डश्च दण्डधारश्च बृहत्सेनश्च वीर्यवान् ।
अपराजितो निषादश्च श्रेणिमान् वसुमानपि ॥२१
बृहद्बलो महौजाश्च बाहुः परपुरञ्जयः ।
समुद्रसेनो राजा च सह पुत्रेण वीर्यवान् ॥ २२
उद्भवः क्षेमकश्चैव वाटधानश्च पार्थिवः ।
श्रुतायुश्च दृढायुश्च शाल्वपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २३
कुमारश्च कलिङ्गानामीश्वरो युद्धदुर्मदः ।
एतेषां प्रेष्यतां शीघ्रमेतद्धि मम रोचते ॥ २४
अयं च ब्राह्मणो विद्वान् मम राजन् पुरोहितः ।
प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम् ॥२५
यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शान्तनवो नृपः ।
धृतराष्ट्रो यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः ॥२६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि द्रुपदवाक्ये
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

वासुदेव उवाच ।
उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरंधरे ।
अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पाण्डवस्यामितौजसः ॥ १
एतच्च पूर्वं कार्यं नः सुनीतमभिकाङ्क्षताम् ।
अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः २
किं तु संबन्धकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु ।
यथेष्टं वर्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च ॥ ३
ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान् ।
कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान् प्रति ॥४
भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च ।
शिष्यवत् ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः ॥ ५
भवन्तं धृतराष्ट्रश्च सततं बहु मन्यते ।
आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च ॥६
स भवान् प्रेषयत्वद्य पाण्डवार्थकरं वचः ।
सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद्भवान् ॥ ७
यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुङ्गवः ।
न भवेत् कुरुपाण्डूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः ॥८
अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद्धृतराष्ट्रजः ।
अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान् समाह्वयेः ॥९
ततो दुर्योधनो मन्दः सहामात्यः सबान्धवः ।
निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गाण्डीवधन्वनि ॥१०
वैशम्पायन उवाच ।
ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः ।
गृहात् प्रस्थापयामास सगणं सहबान्धवम् ॥ ११
द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः ॥ १२
ततः संप्रेषयामास विराटः सह बान्धवैः ।
सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥ १३
वचनात् कुरुसिंहानां मत्स्यपाञ्चालयोश्च ते ।
समाजग्मुर्महीपालाः संप्रहृष्टा महाबलाः ॥ १४
तच्छ्रुत्वा पाण्डुपुत्राणां समागच्छन्महद्बलम् ।
धृतराष्ट्रसुताश्चापि समानिन्युर्महीपतीन् ॥ १५
समाकुला मही राजन् कुरुपाण्डवकारणात् ।
तदा समभवत् कृत्स्ना संप्रयाणे महीक्षिताम्॥१६
संकुला च तदा भूमिश्चतुरङ्गबलान्विता ।
बलानि तेषां वीराणामागच्छन्ति ततस्ततः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ *अतिमत्स्यकः इत्यपि पाठः।

५

**उपपन्नमिति** । उपपन्नं युक्तम् ॥१ ॥ सम्बन्धकं तुल्यमिति पाण्डवेषु कुन्तीद्वारा कुरुषु दुर्योधनकन्यायाः साम्बेनाहरणात् ॥ ३ ॥ वचः सन्देशवाक्यम् ॥ ७ ॥ प्रेषयित्वा दूतमिति शेषः ॥ ९ ॥ निष्ठां नाशम् । 'निष्ठा निष्पत्तिनाशान्तयाच्ञानिर्वहणेषु च ' इति विश्वः ॥१०॥

चालयन्तीव गां देवीं सपर्वतवनामिमाम् । ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम् ॥
कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

द्रुपद उवाच ।
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेष्वपि द्विजातयः ॥ १
द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥ २
स भवान् कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः ।
कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ॥ ३
प्रज्ञया सदृशश्चासि शुक्रेणाङ्गिरसेन च ।
विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तः स कौरवः ॥ ४
पाण्डवश्च यथावृत्तः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धृतराष्ट्रस्य विदिते वञ्चिताः पाण्डवाः परैः ॥ ५
विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्तते ।
शकुनिर्बुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत् ॥ ६
अनक्षज्ञं मताक्षः सन् क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम् ।
ते तथा वञ्चयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७
न कस्यांचिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम् ।
भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन्वचः ॥ ८
मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्तयिष्यति ।
विदुरश्चापि तद्वाक्यं साधयिष्यति तावकम् ॥ ९
भीष्मद्रोणकृपादीनां भेदं संजनयिष्यति ।
अमात्येषु च भिन्नेषु योधेषु विमुखेषु च ॥ १०
पुनरेकत्रकरणं तेषां कर्म भविष्यति ।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः ॥ ११
सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव सञ्चयम् ।
विद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने तथा त्वयि ॥ १२
न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः ।
एतत्प्रयोजनं चात्र प्राधान्येनोपलभ्यते ॥ १३
संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्याद्धर्म्यं वचस्तव ।
स भवान् धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन् ॥ १४
कृपालुषु परिक्लेशान् पाण्डवीयान् प्रकीर्तयन् ।
वृद्धेषु कुलधर्मं च ब्रुवन् पूर्वैरनुष्ठितम् ॥ १५
विभेत्स्यति मनांस्येषामिति मे नात्र संशयः ।
न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित् ॥
दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः ।
स भवान् पुष्ययोगेन मुहूर्तेन जयेन च ॥ १७
कौरवेयान् प्रयात्वाशु कौन्तेयस्यार्थसिद्धये ॥
वैशम्पायन उवाच ।
तथाऽनुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना ।
पुरोधा वृत्तसम्पन्नो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १८
शिष्यैः परिवृतो विद्वान् नीतिशास्त्रार्थकोविदः ।
पाण्डवानां हितार्थाय कौरवान्प्रति जग्मिवान् १९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

भूतानामिति ॥१॥ वैद्याः विद्यावन्तः कृतबुद्धयः सिद्धान्तज्ञाः ॥२॥ एतस्मिन्नन्तरे शत्रुषु भिन्नानामेकीकरणे व्यापृतेष्वित्यर्थः ॥ ११ ॥ लम्बमाने विलम्बं कुर्वाणे ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

वैशम्पायन उवाच ।

पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम् ।
दूतान् प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः ॥ १
प्रस्थाप्य दूतानन्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः ।
स्वयं जगाम कौरव्यः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ २
गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे ।
सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तदा ॥ ३
सर्वमागमयामास पाण्डवानां विचेष्टितम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः ॥ ४
स श्रुत्वा माधवं यान्तं सदश्वैरनिलोपमैः ।
बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम् ॥ ५
तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः ।
आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनञ्जयः ॥ ६
तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ ।
सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाभिजग्मतुः ॥ ७
ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः ।
उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने ॥ ८
ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः ।
पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ॥९
प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम् ।
स तयोः स्वागतं कृत्वा यथावत्प्रतिपूज्य तौ ॥१०
तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः ।
ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ॥ ११
विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हति ।
समं हि भवतः सख्यं मम चैवार्जुनेऽपि च ॥ १२
तथा संबन्धकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव ।
अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन ॥ १३
पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते * पूर्वसारिणः ।
त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन ॥ १४
सततं संमतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय ।

कृष्ण उवाच ।

भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः ।
दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनञ्जयः ॥ १५
तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात् ।
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन ॥ १६
प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः ।
तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनञ्जयः ॥ १७
मत्संहनतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत् ।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे सङ्ग्रामयोधिनः १८
ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः ।
अयुध्यमानः सङ्ग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः॥ १९
आभ्यामन्यतरं पार्थ यत्ते हृद्यतरं मतम् ।
तद्वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः ॥ २०

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अयुध्यमानं सङ्ग्रामे वरयामास केशवम् ॥ २१
नारायणममित्रघ्नं कामाज्जातमजं नृषु ।
सर्वक्षत्रस्य पुरतो देवदानवयोरपि ॥ २२
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमावरयत्तदा ।
सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत॥ २३
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा संप्राप परमां मुदम् ।
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः ॥ २४
ततोऽभ्ययाद्भीमबलो रौहिणेयं महाबलम् ।
सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत् ॥ ।
प्रत्युवाच ततः शौरिर्धार्तराष्ट्रमिदं वचः ॥ २५

बलदेव उवाच ।

विदितं ते नरव्याघ्र सर्वं भवितुमर्हति ।
यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा ॥ २६
निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनन्दन ।
मया संबन्धकं तुल्यमिति राजन् पुनः पुनः २७
न च तद्वाक्यमुक्तं वै केशवं प्रत्यपद्यत ।
न चाहमुत्सहे कृष्णं विना स्थातुमपि क्षणम् २८
नाहं सहायः पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै ।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह ॥ २९
जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते ।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ ॥ ३०

वैशम्पायन उवाच ।

इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम् ।
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धान्मेने जितं जयम् ३१

७

पुरोहितमिति ॥ १ ॥ आगमयामास ज्ञातवान् ॥ ४ ॥ प्रवारणमीप्सितप्रदानम् 'काम्यदानं प्रवारणम्' इति विश्वः । पूर्वमर्हस्त्वत्तः कनिष्ठत्वादित्यर्थः ॥ १७ ॥ अपहृतं रिक्तं कृतम् ॥ २४ ॥ * पूर्वाचारानुकारिण इत्यर्थः ।

ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः ।
उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने ॥ ८ ॥
ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः ।
पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥

—उद्योग अ. ७ पृ. ८

सोऽभ्ययात् कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः ।
कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा ॥ ३२
स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः ।
वृतः प्रतिययौ हृष्टः सुहृदः संप्रहर्षयन् ॥ ३३
ततः पीताम्बरधरो जगत्स्रष्टा जनार्दनः ।
गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत् ॥ ३४
अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं वृतस्त्वया ।

अर्जुन उवाच ।

भवान् समर्थस्तान् सर्वान्निहन्तुं नात्र संशयः ।
निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ ॥ ३५
भवांस्तु* कीर्तिमाँल्लोके तद्यशस्त्वां गमिष्यति ।
यशसां चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः ॥ ३६
सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा ।
चिररात्रेप्सितं कामं तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥ ३७

वासुदेव उवाच ।

उपपन्नमिदं पार्थ यत्स्पर्धसे मया सह ।
सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव ॥३८

वैशम्पायन उवाच ।

एवं प्रमुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा ।
वृतो दाशार्हप्रवरैः पुनरायाद्युधिष्ठिरम् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि कृष्णसारथ्यस्वीकारे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

वैशम्पायन उवाच ।

शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः ।
अभ्ययात् पाण्डवान् राजन् सह पुत्रैर्महारथैः ॥१
तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्धमिव योजनम् ।
तथा हि विपुलां सेनां बिभर्ति स नरर्षभः ॥ २
अक्षौहिणीपती राजन् महावीर्यपराक्रमः ।
विचित्रकवचाः शूरा विचित्रध्वजकार्मुकाः ॥३
विचित्राभरणाः सर्वे विचित्ररथवाहनाः ।
विचित्रस्रग्धराः सर्वे विचित्राम्बरभूषणाः ॥ ४
स्वदेशवेषाभरणा वीराः शतसहस्रशः ।
तस्य सेनाप्रणेतारो बभूवुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५
व्यथयन्निव भूतानि कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
शनैर्विश्रामयन् सेनां स ययौ येन पाण्डवः ॥ ६
ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महात्मानं महारथम् ।
उपायान्तमभिद्रुत्य स्वयमानर्च भारत ॥ ७
कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः ।
रमणीयेषु देशेषु रत्नचित्राः स्वलङ्कृताः ॥ ८
शिल्पिभिर्विविधैश्चैव क्रीडास्तत्र प्रयोजिताः ।
तत्र माल्यानि मांसानि भक्ष्यं पेयं च सत्कृतम् ९
कूपाश्च विविधाकारा मनोहर्षविवर्धनाः ।
वाप्यश्च विविधाकारा औदकानि गृहाणि च१०
स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथाऽमरः ।
दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः ॥ ११
आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसम् ।
स तत्र विषयैर्युक्तः कल्याणैरतिमानुषैः ॥ १२
मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरंदरम् ।
पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः ॥ १३
युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः ।
आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥
प्रसादमेषां दास्यामि कुन्तीपुत्रोऽनुमन्यताम् ।
दुर्योधनाय तत् सर्वं कथयन्ति स्म विस्मिताः ॥
संप्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम् ।
+गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ॥ १६
तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम् ।
परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति॥१७

दुर्योधन उवाच ।

सत्यवाग्भव कल्याण वरो वै मम दीयताम् ।
सर्वसेनाप्रणेता वै भवान् भवितुमर्हति ॥ १८

---

इति श्रीम० उद्योगप० नैल० भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ७

*'भवांस्तु कीर्तिमान्' इत्यत्र कीर्तिमान् नियतकीर्तिमान् त्वं यत्र तिष्ठसि तत्तत्कीर्तिरेव भवतीतिभावः ।

८

शल्य इति ॥ १ ॥ येन यत्र देशे तत्र, ययौ ॥६॥ दिदित्सुः दद दानेऽस्य रूपम् ॥१६॥ +गूढः प्रच्छन्नः ।

वैशम्पायन उवाच ।

कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत्क्रियतामिति ।
कृतमित्येव गान्धारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १९

शल्य उवाच ।

गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकमेव नरर्षभ ।
अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिन्दमम् ॥ २०
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं राजन् क्षिप्रमेष्ये *नराधिप ।
अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पाण्डवः पुरुषर्षभः ॥ २१

दुर्योधन उवाच ।

क्षिप्रमागम्यतां राजन् पाण्डवं वीक्ष्य पार्थिव ।
त्वय्यधीनाः स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः ॥२२

शल्य उवाच ।

क्षिप्रमेष्यामि भद्रं ते गच्छस्व स्वपुरं नृप ।
परिष्वज्य तथाऽन्योन्यं शल्यदुर्योधनावुभौ ॥२३
स तथा शल्यमामन्त्र्य पुनरायात् स्वकं पुरम् ।
शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत् २४
उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च ।
पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह २५
समेत्य च महाबाहुः शल्यः पाण्डुसुतैस्तदा ।
पाद्यमर्घ्यं च गां चैव प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ २६
ततः कुशलपूर्वं हि मद्रराजोऽरिसूदनः ।
प्रीत्या परमया युक्तः समाश्लिष्य युधिष्ठिरम् ॥ २७
तथा भीमार्जुनौ कृष्णौ स्वस्रीयौ च यमावुभौ ।
आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह ॥ २८
कुशलं राजशार्दूल कच्चित्ते कुरुनन्दन ।
अरण्यवासाद्दिष्ट्याऽसि विमुक्तो जयतां वर ॥२९
सुदुष्करं कृतं राजन्निर्जने वसता त्वया ।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह ॥३०
अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम् ।
दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत ॥ ३१
दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै ।
अवाप्स्यासि सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परंतप ॥३२
विदितं ते महाराज लोकतन्त्रं नराधिप ।
तस्माल्लोभकृतं किञ्चित्तव तात न विद्यते ॥ ३३
राजर्षीणां पुराणानां मार्गमन्विच्छ भारत ।
दाने तपसि सत्ये च भव तात युधिष्ठिर ॥ ३४
क्षमा दमश्च सत्यं च अहिंसा च युधिष्ठिर ।
अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन् प्रतिष्ठितः ॥३५
मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः ।
धर्मास्ते विदिता राजन् बहवो लोकसाक्षिकाः ॥
सर्वं जगदिदं तात विदितं ते परन्तप ।
दिष्ट्या कृच्छ्रमिदं राजन् पारितं भरतर्षभ ॥ ३७
दिष्ट्या पश्यामि राजेन्द्र धर्मात्मानं सहानुगम् ।
निस्तीर्णं दुष्करं राजँस्त्वां धर्मनिचयं प्रभो ॥३८

वैशम्पायन उवाच ।

ततोऽस्याकथयद्राजा दुर्योधनसमागमम् ।
तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत ॥ ३९

युधिष्ठिर उवाच ।

सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
दुर्योधनस्य यद्वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ ४०
एकं त्विच्छामि भद्रं ते क्रियमाणं महीप ते ।
राजन्नकर्तव्यमपि कर्तुमर्हसि सत्तम ॥ ४१
मम त्ववेक्षया वीर शृणु विज्ञापयामि ते ।
भवानिह महाराज वासुदेवसमो युधि ॥ ४२
कर्णार्जुनाभ्यां संप्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम ।
कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः ॥ ४३
तत्र पाल्योऽर्जुनो राजन् यदि मत्प्रियमिच्छसि ।
तेजोवधश्च ते कार्यः सौतेरस्मज्जयावहः ॥ ४४
अकर्तव्यमपि ह्येतत् कर्तुमर्हसि मातुल ।

शल्य उवाच ।

शृणु पाण्डव ते भद्रं यद्ब्रवीषि महात्मनः ।
तेजोवधनिमित्तं मां सूतपुत्रस्य सङ्गमे ॥ ४५
अहं तस्य भविष्यामि सङ्ग्रामे सारथिर्ध्रुवम् ।
वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते ॥ ४६
तस्याहं कुरुशार्दूल +प्रतीपमहितं वचः ।
ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे ॥ ४७
यथा स हृतदर्पश्च हृततेजाश्च पाण्डव ।
भविष्यति सुखं हन्तुं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४८
एवमेतत् करिष्यामि यथा तात त्वमात्थ माम् ।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत्करिष्यामि ते प्रियम् ॥

---

गच्छस्व प्राप्नुहि स्वपुरं स्वराज्यम् ॥ २३ ॥ उपप्लव्यं विराटनगरस्य प्रदेशविशेषम् । स्कन्धावारं सेनानिवेशस्थानम् ॥२५ ॥ कृष्णाविति । भीमोऽपि कृष्ण एवासीदिति गम्यते । हृष्टाविति पाठः सुगमः ॥ २८ ॥ 'तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते' इत्यमरः ॥ ३३ ॥ वदान्यो मञ्जुलवाक् । 'वदान्यो वल्गुवागपि' इत्यमरः ॥३६॥ पारितं निस्तीर्णम् ॥३७॥ प्रतीपं प्रसङ्गप्रतिकूलमहितं परिणामविरुद्धम् ॥ ४७ ॥ * एष्ये–आगमिष्यामि । + प्रतीपं प्रतिकूलमत एवाहितम् ।

यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह ।
परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै ॥ ५०
जटासुरात् परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते ।
द्रौपद्याऽधिगतं सर्वं* दमयन्त्या यथाऽशुभम् ॥५१
सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदर्कं भविष्यति ।
नात्र मन्युस्त्वया कार्यो विधिर्हि बलवत्तरः ५२
दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर ।
देवैरपि हि दुःखानि प्राप्तानि जगतीपते ॥ ५३
इन्द्रेण श्रूयते राजन् सभार्येण महात्मना ।
अनुभूतं महद्दुःखं देवराजेन भारत ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि शल्यवाक्ये
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

युधिष्ठिर उवाच ।
कथमिन्द्रेण राजेन्द्र सभार्येण महात्मना ।
दुःखं प्राप्तं परं घोरमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १
शल्य उवाच ।
शृणु राजन् पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
सभार्येण यथाप्राप्तं दुःखमिन्द्रेण भारत ॥ २
त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ।
स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्रोहात् किलासृजत् ३
ऐन्द्रं स प्रार्थयत् स्थानं विश्वरूपो महाद्युतिः ।
तैस्त्रिभिर्वदनैर्घोरैः सूर्येन्दुज्वलनोपमैः ॥ ४
वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन चापिबत् ।
एकेन च दिशः सर्वाः पिबन्निव निरीक्षते ॥ ५
स तपस्वी मृदुर्दान्तो धर्मे तपसि चोद्यतः ।
तपस्तस्य महत्तीव्रं सुदुश्चरमरिन्दम ॥ ६
तस्य दृष्ट्वा तपोवीर्यं सत्यं चामिततेजसः ।
विषादमगमच्छक्र इन्द्रोऽयं मा भवेदिति ॥ ७
कथं सज्जेच्च भोगेषु न च तप्येन्महत्तपः ।
विवर्धमानस्त्रिशिराः सर्वं हि भुवनं ग्रसेत् ॥ ८
इति सञ्चिन्त्य बहुधा बुद्धिमान् भरतर्षभ ।
आज्ञापयत् सोऽप्सरसस्त्वष्टृपुत्रप्रलोभने ॥ ९
यथा स सज्जेत्त्रिशिराः कामभोगेषु वै भृशम् ।
क्षिप्रं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत मा चिरम् ॥ १०
शृङ्गारवेषाः सुश्रोण्यो हारैर्युक्ता मनोहरैः ।
हावभावसमायुक्ताः सर्वाः सौन्दर्यशोभिताः ११
प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं भयं मम ।
अस्वस्थं ह्यात्मनाऽऽत्मानं लक्षयामि वराङ्गनाः ॥
भयं तन्मे महाघोरं क्षिप्रं नाशयताबलाः ।
अप्सरस ऊचुः ।
तथा यत्नं करिष्यामः शक्र तस्य प्रलोभने ।
यथा नावाप्स्यसि भयं तस्माद्बलनिषूदन ॥ १३
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां योऽसावास्ते तपोनिधिः ।
तं प्रलोभयितुं देव गच्छामः सहिता वयम् ॥१४
यतिष्यामो वशे कर्तुं व्यपनेतुं च ते भयम् ।
शल्य उवाच ।
इन्द्रेण तास्त्वनुज्ञाता जग्मुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ।
तत्र ता विविधैर्भावैर्लोभयन्त्यो वराङ्गनाः ॥ १५
नित्यं संदर्शयामासुस्तथैवाङ्गेषु सौष्ठवम् ।
नाभ्यगच्छत् प्रहर्षं ताः स पश्यन् सुमहातपाः॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा पूर्वसागरसन्निभः ।
तास्तु यत्नं परं कृत्वा पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥१७
कृताञ्जलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन् ।
न स शक्यः सुदुर्धर्षो धैर्याच्चालयितुं प्रभो ॥१८
यत् ते कार्यं महाभाग क्रियतां तदनन्तरम् ।
संपूज्याप्सरसः शक्रो विसृज्य च महामतिः १९
चिन्तयामास तस्यैव वधोपायं युधिष्ठिर ।
स तूष्णीं चिन्तयन् वीरो देवराजः प्रतापवान् ॥
विनिश्चितमतिर्धीमान् वधे त्रिशिरसोऽभवत् ।
वज्रमस्य क्षिपाम्यद्य स क्षिप्रं नभविष्यति ॥ २१
शत्रुः प्रवृद्धो नोपेक्ष्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा ।
शास्त्रबुद्ध्या विनिश्चित्य कृत्वा बुद्धिं वधे दृढाम् ॥
अथ वैश्वानरनिभं घोररूपं भयावहम् ।
मुमोच वज्रं सङ्क्रुद्धः शक्रस्त्रिशिरसं प्रति ॥ २३

मन्युर्दैन्यम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

* 'दमयन्त्याः अशुभं यथा' इति योजना ।

९

कथमिति । हावाः शृङ्गारचेष्टाः, भावाः चित्तविकारा हर्षादयस्तैर्युक्ताः ॥ ११ ॥

स पपात हतस्तेन वज्रेण दृढमाहतः ।
पर्वतस्येव शिखरं प्रणुन्नं मेदिनीतले ॥ २४
तं तु वज्रहतं दृष्ट्वा शयानमचलोपमम् ।
न शर्म लेभे देवेन्द्रो दीपितस्तस्य तेजसा ॥ २५
हतोऽपि दीप्ततेजाः स जीवन्निव हि दृश्यते ।
घातितस्य शिरांस्याजौ जीवन्तीवाद्भुतानि वै ॥
ततोऽतिभीतगात्रस्तु शक्र आस्ते विचारयन् ।
अथाजगाम परशुं स्कन्धेनादाय वर्धकिः ॥ २७
तदरण्यं महाराज यत्रास्तेऽसौ निपातितः ।
स भीतस्तत्र तक्षाणं घटमानं शचीपतिः ॥ २८
अपश्यदब्रवीच्चैनं सत्वरं पाकशासनः ।
क्षिप्रं छिन्धि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥२९

तक्षोवाच ।

महास्कन्धो भृशं ह्येष परशुर्नभविष्यति ।
कर्तुं चाहं न शक्ष्यामि कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥३०

इन्द्र उवाच ।

मा भैस्त्वं शीघ्रमेतद्वै कुरुष्व वचनं मम ।
मत्प्रसादाद्धि ते शस्त्रं वज्रकल्पं भविष्यति ॥ ३१

तक्षोवाच ।

कं भवन्तमहं विद्यां घोरकर्माणमद्य वै ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ३२

इन्द्र उवाच ।

अहमिन्द्रो देवराजस्तक्षन् विदितमस्तु ते ।
कुरुष्वैतद्यथोक्तं मे तक्षन् माऽत्र विचारय ॥ ३३

तक्षोवाच ।

क्रूरेण नापत्रपसे कथं शक्रेह कर्मणा ।
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न ते ॥ ३४

शक्र उवाच ।

पश्चाद्धर्मं चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम् ।
शत्रुरेष महावीर्यो वज्रेण निहतो मया ॥ ३५
अद्यापि चाहमुद्विग्नस्तक्षन्नस्माद्बिभेमि वै ।
क्षिप्रं छिन्धि शिरांसि त्वं करिष्येऽनुग्रहं तव ॥
शिरः पशोस्ते दास्यन्ति भागं यज्ञेषु मानवाः ।
एष तेऽनुग्रहस्तक्षन् क्षिप्रं कुरु मम प्रियम् ॥ ३७

शल्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु तक्षा स महेन्द्रवचनात्तदा ।
शिरांस्यथ त्रिशिरसः कुठारेणाच्छिनत् तदा ॥३८
निकृत्तेषु ततस्तेषु निष्क्रामन्नण्डजास्त्वथ ।
+कपिञ्जलास्तित्तिराश्च कलविङ्काश्च सर्वशः ॥३९
येन वेदानधीते स्म पिबते सोममेव च ।
तस्माद्वक्त्राद्विनिश्चेरुः क्षिप्रं तस्य कपिञ्जलाः॥ ४०
येन सर्वा दिशो राजन् पिबन्निव निरीक्षते ।
तस्माद्वक्त्राद्विनिश्चेरुस्तित्तिरास्तस्य पाण्डव॥ ४१
यत्सुरापं तु तस्यासीद्वक्त्रं त्रिशिरसस्तदा ।
कलविङ्काः समुत्पेतुः श्येनाश्च भरतर्षभ ॥ ४२
ततस्तेषु निकृत्तेषु विज्वरो मघवानथ ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टस्तक्षाऽपि स्वगृहान् ययौ॥४३
मेने कृतार्थमात्मानं हत्वा शत्रुं सुरारिहा ।
त्वष्टा प्रजापतिः श्रुत्वा शक्रेणाथ हतं सुतम्॥४४
क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ।

त्वष्टोवाच ।

तप्यमानं तपो नित्यं क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ।
विनाऽपराधेन यतः पुत्रं हिंसितवान् मम ॥ ४५
तस्माच्छक्रविनाशाय वृत्रमुत्पादयाम्यहम् ।
लोकाः पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलं महत्॥ ४६
स च पश्यतु देवेन्द्रो दुरात्मा पापचेतनः ।
उपस्पृश्य ततः क्रुद्धस्तपस्वी सुमहायशाः ॥ ४७
अग्नौ हुत्वा समुत्पाद्य घोरं वृत्रमुवाच ह ।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रभावात्तपसो मम ॥ ४८
सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा सूर्यवैश्वानरोपमः ।
किं करोमीति चोवाच कालसूर्य इवोदितः॥ ४९
शक्रं जहीति चाप्युक्तो जगाम त्रिदिवं ततः ।
ततो युद्धं समभवद्वृत्रवासवयोर्महत् ॥ ५०
संक्रुद्धयोर्महाघोरं प्रसक्तं कुरुसत्तम ।
ततो जग्राह देवेन्द्रं वृत्रो वीरः शतक्रतुम् ॥ ५१
अपावृत्याक्षिपद्वक्त्रे शक्रं कोपसमन्वितः ।
ग्रस्ते वृत्रेण शक्रे तु संभ्रान्तास्त्रिदिवेश्वराः ॥ ५२
असृजंस्ते महासत्त्वा जृंभिकां वृत्रनाशिनीम् ।
विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादपावृतात् ॥५३
स्वान्यङ्गान्यभिसङ्क्षिप्य निष्क्रान्तो बलनाशनः ।
ततःप्रभृति लोकस्य जृम्भिका प्राणसंश्रिता ५४
जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिःसृतम् ।
ततः प्रववृते युद्धं वृत्रवासवयोः पुनः ॥ ५५

सौष्ठवं सौन्दर्यं, प्रहर्षं लब्धभोगोऽस्मीति तोषम् ॥१६॥ वर्धकिः तक्षा ॥ २७ ॥ न भविष्यति नङ्क्ष्यति ॥३०॥ उपस्पृश्य आचम्य ॥ ४७ ॥ अपावृत्य मुखं संप्रसार्य ॥५२॥ + कपिञ्जलाः कृष्णातित्तिराः । कलविङ्काश्चटकाः ।

संरब्धयोस्तदा घोरं सुचिरं भरतर्षभ ।
यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो बलसमन्वितः ॥ ५६
त्वष्टुस्तेजोबलाविद्धस्तदा शक्रो न्यवर्तत ।
निवृत्ते च तदा देवा विषादमगमन् परम् ॥ ५७
समेत्य सह शक्रेण त्वष्टुस्तेजोविमोहिताः ।
अमन्त्रयन्त ते सर्वे मुनिभिः सह भारत ॥ ५८
किं कार्यमिति वै राजन् विचिन्त्य भयमोहिताः
जग्मुः सर्वे महात्मानं मनोभिर्विष्णुमव्ययम् ।
उपविष्टा मन्दराग्रे सर्वे वृत्रवधेप्सवः ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्रविजये
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

इन्द्र उवाच ।

सर्वं व्याप्तमिदं देवा वृत्रेण जगदव्ययम् ।
न ह्यस्य सदृशं किञ्चित् प्रतिघाताय यद्भवेत्॥ १
समर्थो ह्यभवं पूर्वमसमर्थोऽस्मि सांप्रतम् ।
कथं नु कार्यं भद्रं वो दुर्धर्षः स हि मे मतः ॥ २
तेजस्वी च महात्मा च युद्धे चामितविक्रमः ।
ग्रसेत्त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३
तस्माद्विनिश्चयमिमं शृणुध्वं त्रिदिवौकसः ।
विष्णोः *क्षयमुपागम्य समेत्य च महात्मना ॥ ४
तेन सम्मन्त्र्य वेत्स्यामो वधोपायं दुरात्मनः ।

शल्य उवाच ।

एवमुक्ते मघवता देवाः सर्षिगणास्तदा ।
शरण्यं शरणं देवं जग्मुर्विष्णुं महाबलम् ॥ ५
ऊचुश्च सर्वे देवेशं विष्णुं वृत्रभयार्दिताः ।
त्रयो लोकास्त्वया क्रान्तास्त्रिभिर्विक्रमणैः पुरा॥
अमृतं चाहृतं विष्णो दैत्याश्च निहता रणे ।
बलिं बद्ध्वा महादैत्यं शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ ७
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां त्वया सर्वमिदं ततम् ।
त्वं हि देवो महादेव सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ८
गतिर्भव त्वं देवानां सेन्द्राणाममरोत्तम ।
जगद्व्याप्तमिदं सर्वं वृत्रेणासुरसूदन ॥ ९

विष्णुरुवाच ।

अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमुत्तमम् ।
तस्मादुपायं वक्ष्यामि यथाऽसौ नभविष्यति १०
गच्छध्वं सर्षिगन्धर्वा यत्रासौ विश्वरूपधृक् ।
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥ ११
भविष्यति जयो देवाः शक्रस्य मम तेजसा ।
अदृश्यश्च प्रवेक्ष्यामि वज्रं ह्यस्यायुधोत्तमे ॥ १२
गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वैश्च सुरोत्तमाः ।
वृत्रस्य सह शक्रेण सन्धिं कुरुत मा चिरम् १३

शल्य उवाच ।

एवमुक्ते तु देवेन ऋषयस्त्रिदशास्तथा ।
ययुः समेत्य सहिताः शक्रं कृत्वा पुरःसरम् ॥ १४
समीपमेत्य च यदा सर्व एव महौजसः ।
तं तेजसा प्रज्वलितं प्रतपन्तं दिशो दश ॥ १५
ग्रसन्तमिव लोकांस्त्रीन् सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।
ददृशुस्ते ततो वृत्रं शक्रेण सहदेवताः ॥ १६
ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ।
व्याप्तं जगदिदं सर्वं तेजसा तव दुर्जय ॥ १७
न च शक्नोषि निर्जेतुं वासवं बलिनां वर ।
युध्यतोश्चापि वां कालो व्यतीतः सुमहानिह ॥
पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १९
अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रलोकांश्च शाश्वतान्
ऋषिवाक्यं निशम्याथ वृत्रः स तु महाबलः ॥
उवाच तानृषीन् सर्वान् प्रणम्य शिरसाऽसुरः ।
सर्वे यूयं महाभागा गन्धर्वाश्चैव सर्वशः ॥ २१
यद्ब्रूथ तच्छ्रुतं सर्वं ममापि शृणुतानघाः ।
सन्धिः कथं वै भविता मम शक्रस्य चोभयोः ।
तेजसोर्हि द्वयोर्देवाः सख्यं वै भविता कथम् २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

सर्वमिति ॥ १ ॥ क्षयं गृहम् ' निलयापचयौ क्षयौ ' इत्यमर ॥ ४ ॥ *' क्षयं स्थानंच वृद्धिश्च ' इत्यमरः

ऋषय ऊचुः ।
सकृत् सतां सङ्गतं लिप्सितव्यं
ततः परं भविता भव्यमेव ।
नातिक्रामेत् सत्पुरुषेण सङ्गतं
तस्मात् सतां सङ्गतं लिप्सितव्यम् ॥ २३
दृढं सतां सङ्गतं चापि नित्यं
ब्रूयाच्चार्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः ।
*महार्थवत्सत्पुरुषेण सङ्गतं
तस्मात्सन्तं न जिघांसेत धीरः ॥ २४
इन्द्रः सतां संमतश्च निवासश्च महात्मनाम् ।
सत्यवादी ह्यनिन्द्यश्च धर्मवित् सूक्ष्मनिश्चयः ॥२५
तेन ते सह शक्रेण सन्धिर्भवतु नित्यदा ।
एवं विश्वासमागच्छ मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा ॥ २६
शल्य उवाच ।
महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महाद्युतिः ।
अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ २७
ब्रवीमि यदहं देवास्तत् सर्वं क्रियते यदि ।
ततः सर्वं करिष्यामि यदूचुर्मां द्विजर्षभाः ॥ २८
न शुष्केण न चार्द्रेण ×नाश्मना न च दारुणा ।
न शस्त्रेण न चास्त्रेण न दिवा न तथा निशि २९
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नित्यदा ॥ ३०
बाढमित्येव ऋषयस्तमूचुर्भरतर्षभ ।
एवं वृत्ते तु सन्धाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥ ३१
युक्तः सदाऽभवच्चापि शक्रो हर्षसमन्वितः ।
वृत्रस्य वधसंयुक्तानुपायानन्वचिन्तयत् ॥ ३२
छिद्रान्वेषी समुद्विग्नः सदा वसति देवराट् ।
स कदाचित् समुद्रान्ते समपश्यन्महासुरम् ॥ ३३
सन्ध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्ते चातिदारुणे ।
ततः सञ्चिन्त्य भगवान् वरदानं महात्मनः ॥ ३४
सन्ध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसं न च ।
वृत्रश्चावश्यवध्योऽयं मम सर्वहरो रिपुः ॥ ३५
यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महासुरम् ।
महाबलं महाकायं न मे श्रेयो भविष्यति ॥ ३६
एवं सञ्चिन्तयन्नेव शक्रो विष्णुमनुस्मरन् ।
अथ फेनं तदाऽपश्यत् समुद्रे पर्वतोपमम् ॥ ३७
‡नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ।
एनं क्षेप्स्यामि वृत्रस्य क्षणादेव नशिष्यति ॥ ३८
सवज्रमथ फेनं तं क्षिप्रं वृत्रे निसृष्टवान् ।
प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ॥ ३९
निहते तु ततो वृत्रे दिशो वितिमिराऽभवन् ।
प्रववौ च शिवो वायुः प्रजाश्च जहृषुस्तथा ॥ ४०
ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः ।
ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन् विविधैः स्तवैः ॥ ४१
नमस्कृतः सर्वभूतैः सर्वभूतान्यसान्त्वयत् ।
हत्वा शत्रुं प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ४२
विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास धर्मवित् ।
ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे ॥ ४३
अनृतेनाभिभूतोऽभूच्छक्रः परमदुर्मनाः ।
त्रैशीर्षयाऽभिभूतश्च स पूर्वं ब्रह्महत्यया ॥ ४४
सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ।
न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतः स्वकल्मषैः ॥ ४५
प्रतिच्छन्नोऽवसच्चाप्सु चेष्टमान इवोरगः ।
ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥ ४६
भूमिः प्रध्वस्तसङ्काशा निर्वृक्षा शुष्ककानना ।
विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि च ॥ ४७
संक्षोभश्चापि सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ।
देवाश्चापि भृशं त्रस्तास्तथा सर्वे महर्षयः ॥ ४८
अराजकं जगत् सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ।
ततो भीताऽभवन् देवाः को नो राजा भवेदिति ॥
दिवि देवर्षयश्चापि देवराजविनाकृताः ।
न स्म कश्चन देवानां राज्ये वै कुरुते मतिम् ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि वृत्रवधे इन्द्रविजयो नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

* तस्मान्महार्थत्वाच्च न जिघांसेत न द्विनास्ति ॥ × न शुष्केण न चार्द्रेण इत्यस्य भेदकथनं नाश्मनेत्यादि ।
‡ नायं शुष्को जलात्फेनस्योत्पत्तेः । निष्पीडने जलस्य तदन्यस्य च काठिनस्य दर्शनात् ।

## ११

शल्य उवाच ।
ऋषयोऽथाब्रुवन् सर्वे देवाश्च त्रिदिवेश्वराः ।
अयं वै नहुषः श्रीमान् देवराज्येऽभिषिच्यताम् १
तेजस्वी च यशस्वी च धार्मिकश्चैव नित्यदा ।
ते गत्वा त्वब्रुवन् सर्वे राजा नो भव पार्थिव ॥२
स तानुवाच नहुषो देवानृषिगणांस्तथा ।
पितृभिः सहितान् राजन् परीप्सन् हितमात्मनः
दुर्बलोऽहं न मे शक्तिर्भवतां परिपालने ।
बलवान् जायते राजा बलं शक्रे हि नित्यदा ॥ ४
तमब्रुवन् पुनः सर्वे देवा ऋषिपुरोगमाः ।
अस्माकं तपसा युक्तः पाहि राज्यं त्रिविष्टपे ॥५
परस्परभयं घोरमस्माकं हि न संशयः ।
अभिषिच्यस्व राजेन्द्र भव राजा त्रिविष्टपे ॥ ६
देवदानवयक्षाणामृषीणां रक्षसां तथा ।
पितृगन्धर्वभूतानां चक्षुर्विषयवर्तिनाम् ॥ ७
तेज आदास्यसे पश्यन् बलवांश्च भविष्यसि ।
धर्मं पुरस्कृत्य सदा सर्वलोकाधिपो भव ॥ ८
ब्रह्मर्षींश्चापि देवांश्च गोपायस्व त्रिविष्टपे ।
अभिषिक्तः स राजेन्द्र ततो राजा त्रिविष्टपे ॥ ९
धर्मं पुरस्कृत्य तदा सर्वलोकाधिपोऽभवत् ।
सुदुर्लभं वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे ॥१०
धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा समपद्यत ।
देवोद्यानेषु सर्वेषु नन्दनोपवनेषु च ॥ ११
कैलासे हिमवत्पृष्ठे मन्दरे श्वेतपर्वते ।
सह्ये महेन्द्रे मलये समुद्रेषु सरित्सु च ॥ १२
अप्सरोभिः परिवृतो देवकन्यासमावृतः ।
नहुषो देवराजोऽथ क्रीडन् बहुविधं तदा ॥ १३
शृण्वन् दिव्या बहुविधाः कथाः श्रुतिमनोहराः
वादित्राणि च सर्वाणि गीतं च मधुरस्वनम् ॥१४
विश्वावसुर्नारदश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ऋतवः षट् च देवेन्द्रं मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥१५
मारुतः सुरभिर्वाति मनोज्ञः सुखशीतलः ।
एवं च क्रीडतस्तस्य नहुषस्य दुरात्मनः ॥ १६
संप्राप्ता दर्शनं देवी शक्रस्य महिषी प्रिया ।
स तां संदृश्य दुष्टात्मा प्राह सर्वान् सभासदः॥१७
इन्द्रस्य महिषी देवी कस्मान्मां नोपतिष्ठति ।
अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वरः॥१८
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् ।
तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥ १९
रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मंस्त्वामस्मि शरणं गता ।
सर्वलक्षणसम्पन्नां ब्रह्मंस्त्वं मां प्रभाषसे ॥ २०
देवराजस्य दयितामत्यन्तं सुखभागिनीम् ।
अवैधव्येन युक्तां चाप्येकपत्नीं पतिव्रताम् ॥ २१
उक्तवानसि मां पूर्वमृतां तां कुरु वै गिरम् ।
नोक्तपूर्वं च भगवन् वृथा ते किञ्चिदीश्वर ॥ २२
तस्मादेतद्भवेत् सत्यं त्वयोक्तं द्विजसत्तम ।
बृहस्पतिरथोवाच शक्राणीं भयमोहिताम् ॥ २३
यदुक्ताऽसि मया देवि सत्यं तद्भविता ध्रुवम् ।
द्रक्ष्यसे देवराजानमिन्द्रं शीघ्रमिहागतम् ॥ २४
न भेतव्यं च नहुषात् सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
समानयिष्ये शक्रेण न चिराद्भवतीमहम् ॥ २५
अथ शुश्राव नहुषः शक्राणीं शरणं गताम् ।
बृहस्पतेराङ्गिरसश्चुक्रोध स नृपस्तदा ॥ २६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीभये
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

शल्य उवाच ।
क्रुद्धं तु नहुषं दृष्ट्वा देवा ऋषिपुरोगमाः ।
अब्रुवन् देवराजानं नहुषं घोरदर्शनम् ॥ १
देवराज जहि क्रोधं त्वयि क्रुद्धे जगद्विभो ।
त्रस्तं सासुरगन्धर्वं सकिंनरमहोरगम् ॥ २

---

११

क्रुद्धमिति ॥ १ ॥ नोऽस्माकं राजा भव ॥ २ ॥ शक्राणीमिन्द्राणी मार्षं आनुक् ॥२३॥ इति श्रीम० उद्यो० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

जहि क्रोधमिमं साधो न कुप्यन्ति भवद्विधाः ।
परस्य पत्नी सा देवी प्रसीदस्व सुरेश्वर ॥ ३
निवर्तय मनः पापात् परदाराभिमर्शनात् ।
देवराजोऽसि भद्रं ते प्रजा धर्मेण पालय ॥ ४
एवमुक्तो न जग्राह तद्वचः काममोहितः ।
अथ देवानुवाचेदमिन्द्रं प्रति सुराधिपः ॥ ५
अहल्या धर्षिता पूर्वमृषिपत्नी यशस्विनी ।
जीवतो भर्तुरिन्द्रेण स वः किं न निवारितः॥ ६
बहूनि च नृशंसानि कृतानीन्द्रेण वै पुरा ।
वैधर्म्याण्युपधाश्चैव स वः किं न निवारितः ॥७
उपतिष्ठतु देवीमामेतदस्या हितं परम् ।
युष्माकं च सदा देवाः शिवमेवं भविष्यति ॥ ८

देवा ऊचुः ।

इन्द्राणीमानयिष्यामो यथेच्छसि दिवस्पते ।
जहि क्रोधमिमं वीर प्रीतो भव सुरेश्वर ॥ ९

शल्य उवाच ।

इत्युक्त्वा तं तदा देवा ऋषिभिः सह भारत ।
जग्मुर्बृहस्पतिं वक्तुमिन्द्राणीं चाशुभं वचः ॥ १०
जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि ।
दत्ताभयां च विप्रेन्द्र त्वया देवर्षिसत्तम ॥ ११
ते त्वां देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च महाद्युते ।
प्रसादयन्ति चेन्द्राणी नहुषाय प्रदीयताम्॥ १२
इन्द्राद्विशिष्टो नहुषो देवराजो महाद्युतिः।
वृणोत्विमं वरारोहा भर्तृत्वे वरवर्णिनी ॥ १३
एवमुक्ते तु सा देवी बाष्पमुत्सृज्य सस्वनम् ।
उवाच रुदती दीना बृहस्पतिमिदं वचः ॥ १४
नाहमिच्छामि नहुषं पतिं देवर्षिसत्तम ।
शरणागताऽस्मि ते ब्रह्मंस्त्रायस्व महतो भयात्॥

बृहस्पतिरुवाच ।

शरणागतं न त्यजेयमिन्द्राणि मम निश्चयः ।
धर्मज्ञां सत्यशीलां च न त्यजेयमनिन्दिते ॥ १६
नाकार्यं कर्तुमिच्छामि ब्राह्मणः सन्विशेषतः ।
श्रुतधर्मा सत्यशीलो जानन् धर्मानुशासनम्॥ १७
नाहमेतत् करिष्यामि गच्छध्वं वै सुरोत्तमाः ।
अस्मिंश्चार्थे पुरा गीतं ब्रह्मणा श्रूयतामिदम् ॥१८
न तस्य बीजं रोहति रोहकाले
न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे
न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन् ॥ १९
मोघमन्नं विन्दति चाप्यचेताः
स्वर्गाल्लोकाद्भ्रश्यति नष्टचेष्टः ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै
न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः ॥ २०
प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले
सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे
सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥ २१
एतदेवं विजानन् वै न दास्यामि शचीमिमाम् ।
इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम्
अस्या हितं भवेद्यच्च मम चापि हितं भवेत् ।
क्रियतां तत्सुरश्रेष्ठा न हि दास्याम्यहं शचीम्२३

शल्य उवाच ।

अथ देवाः सगन्धर्वा गुरुमाहुरिदं वचः ।
कथं सुनीतं नु भवेन्मन्त्रयस्व बृहस्पते ॥ २४

बृहस्पतिरुवाच ।

नहुषं याचतां देवी किंचित्कालान्तरं शुभा ।
इन्द्राणी हितमेतद्धि तथाऽस्माकं भविष्यति २५
बहुविघ्नः सुराः कालः कालः कालं नयिष्यति ।
गर्वितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात् ॥ २६

शल्य उवाच ।

ततस्तेन तथोक्ते तु प्रीता देवास्तथाऽब्रुवन् ।
ब्रह्मन् साध्विदमुक्तं ते हितं सर्वं दिवौकसाम् ॥
एवमेतद्द्विजश्रेष्ठ देवी चेयं प्रसाद्यताम् ।
ततः समस्ता इन्द्राणीं देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥ २८
ऊचुर्वचनमव्यग्रा लोकानां हितकाम्यया ।

देवा ऊचुः ।

त्वया जगदिदं सर्वं धृतं स्थावरजङ्गमम् ।
एकपत्न्यासि सत्या च गच्छस्व नहुषं प्रति ॥ २९
क्षिप्रं त्वामभिकामश्च विनशिष्यति पापकृत् ।
नहुषो देवि शक्रश्च सुरैश्वर्यमवाप्स्यति ॥ ३०
एवं विनिश्चयं कृत्वा इन्द्राणी कार्यसिद्धये ।
अभ्यगच्छत सव्रीडा नहुषं घोरदर्शनम् ॥ ३१

---

१२

क्रुद्धमिति । वैधर्म्याणि त्वाष्ट्रवधादीनि उपधाः वृत्रसख्यादीनि छलानि ॥ ७ ॥ प्रपन्नं शरणागतम् ॥ १९ ॥ अचेताः दुर्बलचित्तः ॥ २० ॥ कालान्तरं कालावधिम् ॥ २५ ॥

दृष्ट्वा तां नहुषश्चापि वयोरूपसमन्विताम् । समहृष्यत दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीकालावधियाचने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

शल्य उवाच ।

अथ तामब्रवीद्दृष्ट्वा नहुषो देवराट् तदा ।
त्रयाणामपि लोकानामहमिन्द्रः शुचिस्मिते ॥ १
भजस्व मां वरारोहे पतित्वे वरवर्णिनि ।
एवमुक्ता तु सा देवी नहुषेण पतिव्रता ॥ २
प्रावेपत भयोद्विग्ना प्रवाते कदली यथा ।
प्रणम्य सा हि ब्रह्माणं शिरसा तु कृताञ्जलिः ॥ ३
देवराजमथोवाच नहुषं घोरदर्शनम् ।
कालमिच्छाम्यहं लब्धुं त्वत्तः कंचित्सुरेश्वर ॥ ४
न हि विज्ञायते शक्रः किंवा प्राप्तः क वा गतः ।
तत्त्वमेतत्तु विज्ञाय यदि न ज्ञायते प्रभो ॥ ५
ततोऽहं त्वामुपस्थास्ये सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ६

नहुष उवाच ।

एवं भवतु सुश्रोणि यथा मामिह भाषसे ॥
ज्ञात्वा चागमनं कार्यं सत्यमेतदनुस्मरेः ॥ ७
नहुषेण विसृष्टा च निश्चक्राम ततः शुभा ।
बृहस्पतिनिकेतं च सा जगाम यशस्विनी ॥ ८
तस्याः संश्रुत्य च वचो देवाश्चाग्निपुरोगमाः ।
चिन्तयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं राजसत्तम ॥ ९
देवदेवेन सङ्गम्य विष्णुना प्रभविष्णुना ।
ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥
ब्रह्मवध्याभिभूतो वै शक्रः सुरगणेश्वरः ।
गतिश्च नस्त्वं देवेश पूर्वजो जगतः प्रभुः ॥ ११
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ।
त्वद्वीर्यनिहते वृत्रे वासवो ब्रह्महत्यया ॥ १२
वृतः सुरगणश्रेष्ठ मोक्षं तस्य विनिर्दिश ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ॥ १३
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ।
पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ॥ १४
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः ।
स्वकर्मभिश्च नहुषो नाशं यास्यति दुर्मतिः १५
किंचित्कालमिदं देवा मर्षयध्वमतन्द्रिताः ।
श्रुत्वा विष्णोः शुभां सत्यां वाणींताममृतोपमाम्
ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः ।
यत्र शक्रो भयोद्विग्नस्तं देशमुपचक्रमुः ॥ १७
तत्राश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः ।
ववृते पावनार्थं वै ब्रह्महत्यापहो नृप ॥ १८
विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ।
पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैव युधिष्ठिर ॥ १९
संविभज्य च भूतेषु विसृज्य च सुरेश्वरः ।
विज्वरो धूतपाप्मा च वासवोऽभवदात्मवान् २०
अकम्पन्नहुषं स्थानाद्दृष्ट्वा बलनिषूदनः ।
तेजोघ्नं सर्वभूतानां वरदानाच्च दुःसहम् ॥ २१
ततः शचीपतिर्देवः पुनरेव व्यनश्यत ।
अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकाङ्क्षी चचार ह ॥ २२
प्रनष्टे तु ततः शक्रे शची शोकसमन्विता ।
हा शक्रेति तदा देवी विललाप सुदुःखिता २३
यदि दत्तं यदि हुतं गुरवस्तोषिता यदि ।
एकभर्तृत्वमेवास्तु सत्यं यद्यस्ति वा मयि ॥ २४
पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे ।
देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः २५
प्रयता च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा ।
पतिव्रतात्वात् सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत् २६

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

अथेति ॥१॥ विष्णुत्वं व्यापकत्वमव्यापकेन जगद्रक्षाया असंभवात् ॥१२॥ अकम्पत् अकम्पत तद्भाव आर्षः॥२१॥ उपश्रुतिं संदेहनिर्णायिकां देवीमाकरोदाकारितवती ॥ २६ ॥

यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे । इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि उपश्रुतियाचने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

शल्य उवाच ।

अथैनां रूपिणीं साध्वीमुपातिष्ठदुपश्रुतिः ।
तां वयोरूपसंपन्नां दृष्ट्वा देवीमुपस्थिताम् ॥ १
इन्द्राणी संप्रहृष्टात्मा संपूज्यैनामथाब्रवीत् ।
इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं का त्वं ब्रूहि वरानने ॥ २

उपश्रुतिरुवाच ।

उपश्रुतिरहं देवि तवान्तिकमुपागता ।
दर्शनं चैव संप्राप्ता तव सत्येन भाविनि ॥ ३
पतिव्रता च युक्ता च यमेन नियमेन च ।
दर्शयिष्यामि ते शक्रं देवं वृत्रनिषूदनम् ॥ ४
क्षिप्रमन्वेहि भद्रं ते द्रक्ष्यसे सुरसत्तमम् ।
ततस्तां प्रहितां देवीमिन्द्राणी सा समन्वगात् ५
देवारण्यान्यतिक्रम्य पर्वतांश्च बहूंस्ततः ।
हिमवन्तमतिक्रम्य उत्तरं पार्श्वमागमत् ॥ ६
समुद्रं च समासाद्य बहुयोजनविस्तृतम् ।
आससाद महाद्वीपं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ ७
तत्रापश्यत् सरो दिव्यं नानाशकुनिभिर्वृतम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं तावदेवायतं शुभम् ॥ ८
तत्र दिव्यानि पद्मानि पञ्चवर्णानि भारत ।
षट्पदैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सहस्रशः ॥ ९
सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा ।
गौरेणोन्नतनालेन पद्मेन महता वृता ॥ १०
पद्मस्य भित्त्वा नालं च विवेश सहिता तया ।
बिसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम् ॥ ११
तं दृष्ट्वा च सुसूक्ष्मेण रूपेणावस्थितं प्रभुम् ।
सूक्ष्मरूपधरा देवी बभूवोपश्रुतिश्च सा ॥ १२
इन्द्रं तुष्टाव चेन्द्राणी विश्रुतैः पूर्वकर्मभिः ।
स्तूयमानस्ततो देवः शचीमाह पुरन्दरः ॥ १३
किमर्थमसि संप्राप्ता विज्ञातश्च कथं त्वहम् ।
ततः सा कथयामास नहुषस्य विचेष्टितम् ॥ १४
इन्द्रत्वं त्रिषु लोकेषु प्राप्य वीर्यसमन्वितः ।
दर्पाविष्टश्च दुष्टात्मा मामुवाच शतक्रतो ॥ १५
उपतिष्ठेति स क्रूरः कालं च कृतवान्मम ।
यदि न त्रास्यसि विभो करिष्यति स मां वशे ॥
एतेन चाहं संप्राप्ता द्रुतं शक्र तवान्तिकम् ।
जहि रौद्रं महाबाहो नहुषं पापनिश्चयम् ॥ १७
प्रकाशयात्मनाऽऽत्मानं दैत्यदानवसूदन ।
तेजः समाप्नुहि विभो देवराज्यं प्रशाधि च ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीन्द्रस्तवे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

यत्रेति । अयं चार्थः 'आ नो या ह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ॥ दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो' इति मन्त्रोक्त उपबृंहितः। मन्त्रार्थस्तु—हे उपश्रुति नः अस्मान् प्रति आयाहि उक्थेषु काम्येषु कर्मसु इह रणय इष्टं कामं गमय प्रापय ॥ रण गताविति अस्य रूपम् । अमुष्य बुद्धिस्थस्य दिवं शासत इन्द्रस्य दिवं प्रकाशं यय गमय यच्छेत्यर्थः । य्यय गतावित्यस्य लोटि रूपम् । वलोप आर्षः। हे दिवावसो अह्नो धनं सूर्यस्तद्वत् तमोग्रस्तमर्थं प्रकाशयितुं समर्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

अथैनामिति ॥ १ ॥ प्रहितां प्रस्थिताम् ॥ ५ ॥ त्रस्यासि पालयिष्यासि तङ्भाव आर्षः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥

## १५

शल्य उवाच ।

एवमुक्तः स भगवान् शच्या तां पुनरब्रवीत् ।
विक्रमस्य न कालोऽयं नहुषो बलवत्तरः ॥ १
विवर्धितश्च ऋषिभिर्हव्यकव्यैश्च भामिनि ।
नीतिमत्र विधास्यामि देवि तां कर्तुमर्हसि ॥ २
गुह्यं चैतत्त्वया कार्यं नाख्यातव्यं शुभे क्वचित् ।
गत्वा नहुषमेकान्ते ब्रवीहि च सुमध्यमे ॥ ३
ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते ।
एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति तं वद ॥ ४
इत्युक्ता देवराजेन पत्नी सा कमलेक्षणा ।
एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तु जगाम नहुषं प्रति ॥ ५
नहुषस्तां ततो दृष्ट्वा सस्मितो वाक्यमब्रवीत् ।
स्वागतं ते वरारोहे किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ६
भक्तं मां भज कल्याणि किमिच्छसि मनस्विनि
तव कल्याणि यत् कार्यं तत् करिष्ये सुमध्यमे ॥
न च व्रीडा त्वया कार्या सुश्रोणि मयि विश्वसेः
सत्येन वै शपे देवि करिष्ये वचनं तव ॥ ८

इन्द्राण्युवाच ।

यो मे कृतस्त्वया कालस्तमाकाङ्क्षे जगत्पते ।
ततस्त्वमेव भर्ता मे भविष्यसि सुराधिप ॥ ९
कार्यं च हृदि मे यत्तद्देवराजावधारय ।
वक्ष्यामि यदि मे राजन् प्रियमेतत् करिष्यसि१०
वाक्यं प्रणयसंयुक्तं ततः स्यां वशगा तव ।
इन्द्रस्य वाजिनो वाहा हस्तिनोऽथ रथास्तथा११
इच्छाम्यहमथापूर्वं वाहनं ते सुराधिप ।
यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम्॥ १२
वहन्तु त्वां महाभागा ऋषयः सङ्गता विभो ।
सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम रोचते ॥ १३
नासुरेषु न देवेषु तुल्यो भवितुमर्हसि ।
सर्वेषां तेज आदत्से स्वेन वीर्येण दर्शनात् ॥ १४
न ते प्रमुखतः स्थातुं कश्चिच्छक्नोति वीर्यवान् ।

शल्य उवाच ।

एवमुक्तस्तु नहुषः प्राहृष्यत तदा किल ।
उवाच वचनं चापि सुरेन्द्रस्तामनिन्दिताम् ॥१५

नहुष उवाच ।

अपूर्वं वाहनमिदं त्वयोक्तं वरवर्णिनि ।
दृढं मे रुचितं देवि त्वद्वशोऽस्मि वरानने ॥ १६
न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान् कुरुते मुनीन् ।
अहं तपस्वी बलवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ १७
मयि क्रुद्धे जगन्न स्यान्मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
देवदानवगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ॥ १८
न मे क्रुद्धस्य पर्याप्ताः सर्वे लोकाः शुचिस्मिते ।
चक्षुषा यं प्रपश्यामि तस्य तेजो हराम्यहम् ॥१९
तस्मात्ते वचनं देवि करिष्यामि न संशयः ।
सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे ब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २०
पश्य माहात्म्ययोगं मे ऋद्धिं च वरवर्णिनि ।

शल्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तु तां देवीं विसृज्य च वराननाम्॥२१
विमाने योजयित्वा च ऋषीन्नियममास्थितान् ।
अब्रह्मण्यो बलोपेतो मत्तो मदबलेन च ।
कामवृत्तः स दुष्टात्मा वाहयामास तानृषीन्२२
नहुषेण विसृष्टा च बृहस्पतिमथाब्रवीत् ॥
समयोऽल्पावशेषो मे नहुषेणेह यः कृतः ॥ २३
शक्रं मृगय शीघ्रं त्वं भक्तायाः कुरु मे दयाम् ।
बाढमित्येव भगवान् बृहस्पतिरुवाच ताम् ॥ २४
न भेतव्यं त्वया देवि नहुषाद्दुष्टचेतसः
न ह्येष स्थास्यति चिरं गत एष नराधमः ॥ २५
अधर्मज्ञो महर्षीणां वाहनाच्च ततः शुभे ।
इष्टिं चाहं करिष्यामि विनाशायास्य दुर्मतेः २६
शक्रं चाधिगमिष्यामि मा भैस्त्वं भद्रमस्तु ते ।
ततः प्रज्वाल्य विधिवज्जुहाव परमं हविः ॥ २७
बृहस्पतिर्महातेजा देवराजोपलब्धये ।
हुत्वाऽग्निं सोऽब्रवीद्राजञ्छक्रमान्विष्यतामिति२८
तस्माच्च भगवान् देवः स्वयमेव हुताशनः ।
स्त्रीवेषमद्भुतं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २९
स दिशः प्रदिशश्चैव *पर्वतानि वनानि च ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विचिन्त्याथ मनोगतिः३०
निमेषान्तरमात्रेण बृहस्पतिमुपागमत् ।

अग्निरुवाच ।

बृहस्पते न पश्यामि देवराजमिह क्वचित् ।
आपः शेषाः सदा चापः प्रवेष्टुं नोत्सहाम्यहम् ३१

---

१५

एवमिति ॥ १ ॥ मां वक्ष्यन्ति मम वहनं करिष्यन्ति ॥ २० ॥ अन्विष्यतामनुगच्छतु भवान् ॥ इष्ट गतावित्यस्य दिवादे रूपम् ॥ २८ ॥ *पर्वतांश्च—ङ

न मे तत्र गतिर्ब्रह्मन् किमन्यत् करवाणि ते ।
तमब्रवीद्देवगुरुरपो विश महाद्युते ॥ ३२

अग्निरुवाच ।

नापः प्रवेष्टुं शक्ष्यामि क्षयो मेऽत्र भविष्यति ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु महाद्युते ३४

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
×तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बृहस्पत्यग्निसंवादे
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

बृहस्पतिरुवाच ।

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यवाट् ।
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि साक्षिवत् ॥ १

त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ।
त्वया त्यक्तं जगच्चेदं सद्यो नश्येद्धुताशन ॥ २

कृत्वा तुभ्यं नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम् ।
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ३

त्वमेवाग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः ।
यजन्ति सत्रैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे ॥ ४

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह
प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः ।
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूति-
स्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा ॥ ५

त्वामग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च मनीषिणः ।
वहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः ॥ ६

त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु पावक ७

स्वयोनिं भजते सर्वो विशस्वापोऽविशङ्कितः ।
अहं त्वां वर्धयिष्यामि ब्राह्मैर्मन्त्रैः सनातनैः ॥ ८

एवं स्तुतो हव्यवाट् स भगवान् कविरुत्तमः ।
बृहस्पतिमथोवाच प्रीतिमान् वाक्यमुत्तमम् ॥ ९

दर्शयिष्यामि ते शक्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।

शल्य उवाच ।

प्रविश्यापस्ततो वह्निः ससमुद्राः सपल्वलाः ।
आससाद सरस्तच्च गूढो यत्र शतक्रतुः ॥ १०

अथ तत्रापि पद्मानि विचिन्वन् भरतर्षभ ।
अपश्यत् स तु देवेन्द्रं बिसमध्यगतं तदा ॥ ११

आगत्य च ततस्तूर्णं तमाचष्ट बृहस्पतेः ।
अणुमात्रेण वपुषा पद्मतन्त्वाश्रितं प्रभुम् ॥ १२

गत्वा देवर्षिगन्धर्वैः सहितोऽथ बृहस्पतिः ।
पुराणैः कर्मभिर्देवं तुष्टाव बलसूदनम् ॥ १३

महासुरो हतः शक्र नमुचिर्दारुणस्त्वया ।
शम्बरश्च बलश्चैव तथोभौ घोरविक्रमौ ॥ १४

शतक्रतो विवर्धस्व सर्वान् शत्रून्निषूदय ।
उत्तिष्ठ शक्र संपश्य देवर्षींश्च समागतान् ॥ १५

महेन्द्र दानवान् हत्वा लोकास्त्रातास्त्वया विभो
अपां फेनं समासाद्य विष्णुतेजोऽतिबृंहितम् ।
त्वया वृत्रो हतः पूर्वं देवराज जगत्पते ॥ १६

त्वं सर्वभूतेषु शरण्य ईड्य-
स्त्वया समं विद्यते नेह भूतम् ।
त्वया धार्यन्ते सर्वभूतानि शक्र
त्वं देवानां महिमानं चकर्थ ॥ १७

पाहि सर्वांश्च लोकांश्च महेन्द्र बलमाप्नुहि ।
एवं संस्तूयमानश्च सोऽवर्धत शनैः शनैः ॥ १८

स्वं चैव वपुरास्थाय बभूव स बलान्वितः ।
अब्रवीच्च गुरुं देवो बृहस्पतिमवस्थितम् ॥ १९

किं कार्यमवशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः ।
वृत्रश्च सुमहाकायो यो वै लोकाननाशयत् ॥ २०

बृहस्पतिरुवाच ।

मानुषो नहुषो राजा देवर्षिगणतेजसा ।
देवराज्यमनुप्राप्तः सर्वान्नो बाधते भृशम् ॥ २१

---

इति श्रीम० उद्यो० नैल० भार० भा० पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

× तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यतीत्यत्र तेषामग्नि बाह्याश्मनां धमये सर्वत्रगं गच्छत्तेजः स्वासु स्वसम्बन्धीषु योनिषु कारणभूतास्वप्स्विति भावः ।

१६

त्वमिति १ एकं जाठरं त्रिविधं गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयरूपेण त्वयैकेन ॥ २ ॥ तुभ्यं त्रिविधाय ॥ ३ ॥ प्रसूतिरुत्पत्तिस्थानम् । प्रतिष्ठा लयस्थानम् ॥ ५ ॥ हेतयः ज्वालाः ॥ ६ ॥

इन्द्र उवाच ।

कथं च नहुषो राज्यं देवानां प्राप दुर्लभम् ।
तपसा केन वा युक्तः किंवीर्यो वा बृहस्पते २२

बृहस्पतिरुवाच ।

देवा भीताः शक्रमकामयन्त
त्वया त्यक्तं महदैन्द्रं पदं तत् ।
तदा देवाः पितरोऽथर्षयश्च
गन्धर्वमुख्याश्च समेत्य सर्वे ॥ २३

गत्वाऽब्रुवन्नहुषं तत्र शक्र
त्वं नो राजा भव भुवनस्य गोप्ता ।
तानब्रवीन्नहुषो नास्मि शक्त
आप्यायध्वं तपसा तेजसा माम् ॥ २४

एवमुक्तैर्वर्धितश्चापि देवै
राजाऽभवन्नहुषो घोरवीर्यः ।
त्रैलोक्ये च प्राप्य राज्यं महर्षीन्
कृत्वा वाहान् याति लोकान् दुरात्मा ॥

तेजोहरं दृष्टिविषं सुघोरं
मा त्वं पश्येर्नहुषं वै कदाचित् ।
देवाश्च सर्वे नहुषं भृशार्ता
न पश्यन्ते गूढरूपाश्चरन्तः ॥ २६

शल्य उवाच ।

एवं वदत्यङ्गिरसां वरिष्ठे
बृहस्पतौ लोकपालः कुबेरः ।
वैवस्वतश्चैव यमः पुराणो
देवश्च सोमो वरुणश्चाजगाम ॥ २७

ते वै समागम्य महेन्द्रमूचु-
र्दिष्ट्या त्वाष्ट्रो निहतश्चैव वृत्रः ।
दिष्ट्या च त्वां कुशलिनमक्षतं च
पश्यामो वै निहतारिं च शक्र ॥ २८

स तान् यथावच्च हि लोकपालान्
समेत्य वै प्रीतमना महेन्द्रः ।
उवाच चैनान् प्रतिभाष्य शक्रः
संचोदयिष्यन्नहुषस्यान्तरेण ॥ २९

राजा देवानां नहुषो घोररूप-
स्तत्र साह्यं दीयतां मे भवद्भिः ।
ते चाब्रुवन्नहुषो घोररूपो
दृष्टीविषस्तस्य बिभीम ईश ॥ ३०

त्वं चेद्राजानं नहुषं पराजये-
स्ततो वयं भागमर्हाम शक्र ।
इन्द्रोऽब्रवीद्भवतु भवानपां पति-
र्यमः कुबेरश्च मयाऽभिषेकम् ॥ ३१

संप्राप्नुवन्त्वद्य सहैव दैवतै
रिपुं जयाम तं नहुषं घोरदृष्टिम् ।
ततः शक्रं ज्वलनोऽप्याह भागं
प्रयच्छ मह्यं तव साह्यं करिष्ये ।
तमाह शक्रो भविताऽग्ने तवापि
चेन्द्राग्न्योर्वै भाग एको महाक्रतौ ॥ ३२

शल्य उवाच ।

एवं सञ्चिन्त्य भगवान् महेन्द्रः पाकशासनः ।
कुबेरं सर्वयक्षाणां *धनानां च प्रभुं तथा ॥ ३३
वैवस्वतं पितॄणां च वरुणं चाप्यपां तथा ।
आधिपत्यं ददौ शक्रः सञ्चिन्त्य वरदस्तथा ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्रवरुणादिसंवादे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

शल्य उवाच ।

अथ संचिन्तयानस्य देवराजस्य धीमतः ।
नहुषस्य वधोपायं लोकपालैः सदैवतैः ॥ १
तपस्वी तत्र भगवानगस्त्यः प्रत्यदृश्यत ।
सोऽब्रवीदर्च्य देवेन्द्रं दिष्ट्या वै वर्धते भवान् ॥२

---

नहुषस्यान्तरेण अन्तरं भेदः बुद्धिभेदार्थमित्यर्थः ॥ २९ ॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

अथेति ॥१॥ अर्च्याभ्यर्च्य ॥ २ ॥ *जनानाम्-ङ

विश्वरूपविनाशेन वृत्रासुरवधेन च ।
दिष्ट्याऽद्य नहुषो भ्रष्टो देवराज्यात् पुरन्दर ॥ ३
दिष्ट्या हतारिं पश्यामि भवन्तं बलसूदन ।

इन्द्र उवाच ।

स्वागतं ते महर्षेऽस्तु प्रीतोऽहं दर्शनात् तव ।
पाद्यमाचमनीयं च गामर्घ्यं च प्रतीच्छ मे ॥ ४

शल्य उवाच ।

पूजितं चोपविष्टं तमासने मुनिसत्तमम् ।
पर्यपृच्छत देवेशः प्रहृष्टो ब्राह्मणर्षभम् ॥ ५
एतदिच्छामि भगवन् कथ्यमानं द्विजोत्तम ।
परिभ्रष्टः कथं स्वर्गान्नहुषः पापनिश्चयः ॥ ६

अगस्त्य उवाच ।

शृणु शक्र प्रियं वाक्यं यथा राजा दुरात्मवान् ।
स्वर्गाद्भ्रष्टो दुराचारो नहुषो बलदर्पितः ॥ ७
श्रमार्ताश्च वहन्तस्तं नहुषं पापकारिणम् ।
देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ८
पप्रच्छुर्नहुषं देव संशयं जयतां वर ।
य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम् ॥ ९
एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव ।
नहुषो नेति तानाह तमसा मूढचेतनः ॥ १०

ऋषय ऊचुः ।

अधर्मे संप्रवृत्तस्त्वं धर्मं न प्रतिपद्यसे ।
प्रमाणमेतदस्माकं पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ११

अगस्त्य उवाच ।

ततो विवदमानः स मुनिभिः सह वासव ।
अथ मामस्पृशन् मूर्ध्नि पादेनाधर्मपीडितः ॥ १२
तेनाभूद्धततेजाश्च निःश्रीकश्च महीपतिः ।
ततस्तं तमसाऽऽविग्नमवोचं भृशपीडितम् ॥ १३
यस्मात् पूर्वैः कृतं राजन् ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितम् ।
अदुष्टं दूषयसि मे यच्च मूर्ध्न्यस्पृशः पदा ॥ १४
यच्चापि त्वमृषीन् मूढ ब्रह्मकल्पान् दुरासदान् ॥ १५
वाहान् कृत्वा वाहयसि तेन स्वर्गाद्धतप्रभः ।
ध्वंस पापपरिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीतले ॥ १६
दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान् ।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ १७
एवं भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यादरिन्दम ।
दिष्ट्या वर्धामहे शक्र हतो ब्राह्मणकण्टकः ॥ १८
त्रिविष्टपं प्रपद्यस्व पाहि लोकान् शचीपते ।
जितेन्द्रियो जितामित्रः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ १९

शल्य उवाच ।

ततो देवा भृशं तुष्टा महर्षिगणसंवृताः ।
पितरश्चैव यक्षाश्च भुजगा राक्षसास्तथा ॥ २०
गन्धर्वा देवकन्याश्च सर्वे चाप्सरसां गणाः ।
सरांसि सरितः शैलाः सागराश्च विशांपते ॥ २१
उपागम्याब्रुवन् सर्वे दिष्ट्या वर्धसि शत्रुहन् ।
हतश्च नहुषः पापो दिष्ट्याऽगस्त्येन धीमता ॥
दिष्ट्या पापसमाचारः कृतः सर्पो महीतले ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्रागस्त्यसंवादे नहुषभ्रंशे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

शल्य उवाच ।

ततः शक्रः स्तूयमानो गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
ऐरावतं समारुह्य द्विपेन्द्रं लक्षणैर्युतम् ॥ १
पावकः सुमहातेजा महर्षिश्च बृहस्पतिः ।
यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च धनेश्वरः ॥ २
सर्वैर्देवैः परिवृतः शक्रो वृत्रनिषूदनः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यातस्त्रिभुवनं प्रभुः ॥ ३

गवां प्रोक्षणे प्रोक्षणोपाकरणमारणादिसंस्कारे ये मन्त्राः 'देवांश्च याभिर्यजते ददाति च गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः' इत्यादयः । याभिः पशुभूताभिर्गोभिः भक्ष इति भक्षणान्तयाग उच्यते ॥ ९ ॥ नहुषस्तु 'ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति' इति शास्त्रप्रामाण्याद्ब्राह्मणवद्गवामवध्यत्वं मन्वानो वेदमप्रमाणीचकार । वेदस्य ब्राह्मणानां चावमानादधोगतिः प्राप्यत इत्याख्यायिकातात्पर्यम् ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नहुषभ्रंशे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

तत इति ॥ १ ॥

स समेत्य महेन्द्राण्या देवराजः शतक्रतुः ।
मुदा परमया युक्तः पालयामास देवराट् ॥ ४
ततः स भगवांस्तत्र अङ्गिराः समदृश्यत ।
अथर्ववेदमन्त्रैश्च देवेन्द्रं समपूजयत् ॥ ५
ततस्तु भगवानिन्द्रः संहृष्टः समपद्यत ।
वरं च प्रददौ तस्मै अथर्वाङ्गिरसे तदा ॥ ६
अथर्वाङ्गिरसो नाम वेदोऽस्मिन् वै भविष्यति ।
उदाहरणमेतद्धि यज्ञभागं च लप्स्यसे ॥ ७
एवं संपूज्य भगवानथर्वाङ्गिरसं तदा ।
व्यसर्जयन्महाराज देवराजः शतक्रतुः ॥ ८
संपूज्य सर्वांस्त्रिदशानृषींश्चापि तपोधनान् ।
इन्द्रः प्रमुदितो राजन् धर्मेणापालयत् प्रजाः ॥ ९
एवं दुःखमनुप्राप्तमिन्द्रेण सह भार्यया ।
अज्ञातवासश्च कृतः शत्रूणां वधकाङ्क्षया ॥ १०
नात्र मन्युस्त्वया कार्यो यत्क्लिष्टोऽसि महावने ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र भ्रातृभिश्च महात्मभिः ॥ ११
एवं त्वमपि राजेन्द्र राज्यं प्राप्स्यसि भारत ।
वृत्रं हत्वा यथा प्राप्तः शक्रः कौरवनन्दन ॥ १२
दुराचारश्च नहुषो ब्रह्मद्विट् पापचेतनः ।
अगस्त्यशापाभिहतो विनष्टः शाश्वतीः समाः ॥ १३
एवं तव दुरात्मानः शत्रवः शत्रुसूदन ।
क्षिप्रं नाशं गमिष्यन्ति कर्णदुर्योधनादयः ॥ १४
ततः सागरपर्यन्तां भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ।
भ्रातृभिः सहितो वीर द्रौपद्या च सहानया ॥ १५
उपाख्यानमिदं शक्रविजयं वेदसंमितम् ।
राज्ञा व्यूढेष्वनीकेषु श्रोतव्यं जयमिच्छता ॥ १६
तस्मात् संश्रावयामि त्वां विजयं जयतां वर ।
संस्तूयमाना वर्धन्ते महात्मानो युधिष्ठिर ॥ १७
क्षत्रियाणामभावोऽयं युधिष्ठिर महात्मनाम् ।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १८
आख्यानमिन्द्रविजयं य इदं नियतः पठेत् ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गः परत्रेह च मोदते ॥ १९
न चारिजं भयं तस्य नापुत्रो वा भवेन्नरः ।
नापदं प्राप्नुयात् काञ्चिद्दीर्घमायुश्च विन्दति ।
सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित् पराजयम् ॥ २०

वैशम्पायन उवाच ।

एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ ।
पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वरः ॥ २१
श्रुत्वा तु शल्यवचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्रराजमिदं वचः ॥ २२
भवान् कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः ।
तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्यार्जुनसंस्तवः ॥ २३

शल्य उवाच ।

एवमेतत् करिष्यामि यथा मां संप्रभाषसे ।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्याम्यहं तव ॥ २४

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्त्वामन्त्र्य कौन्तेयाच्छल्यो मद्राधिपस्तदा ।
जगाम सबलः श्रीमान् दुर्योधनमरिन्दम ॥ २५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि शल्यगमने
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

वैशम्पायन उवाच ।

युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः ।
महता चतुरङ्गेण बलेनागाद्युधिष्ठिरम् ॥ १
तस्य योधा महावीर्या नानादेशसमागताः ।
नानाप्रहरणा वीराः शोभयाञ्चक्रिरे बलम् ॥ २
*परश्वधैर्भिन्दिपालैः शूलतोमरमुद्गरैः ।
परिघैर्यष्टिभिः पाशैः करवालैश्च निर्मलैः ॥ ३
×खड्गकार्मुकनिर्व्यूहैः शरैश्च विविधैरपि ।
तैलधौतैः प्रकाशद्भिः सदाऽशोभत वै बलम् ॥ ४

---

अथर्वाङ्गिरसो नामेति यतोऽङ्गिरा अथर्ववेदमन्त्रैरिन्द्रं तुष्टाव ततोऽथर्वाङ्गिरसो नामाऽभवत् अस्मिन्वेदेऽथर्ववेदे अथर्ववेदस्य ऋषिरित्यर्थः । उदाहरणं वाक्यमेतत् अथर्ववेदरूपं, 'यस्य वाक्यं स ऋषिः' इति परिभाषावचनात् ॥ ७ ॥ शत्रुतेजसो वधो येन तादृशोऽर्जुनसंस्तवः ॥ २३ ॥

इति श्रीम० उद्यो० नैल० भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः १८

१९

युयुधान इति । युयुधानः सात्यकिः ॥ १ ॥
*तोमरो हस्तक्षेप्यः काण्डः । करवाल एकधारः खड्गः ×खड्गस्तु द्विधारः । निर्व्यूहः समूहः । तैलधौतैस्तैलमार्जितैरित्यर्थः ।

तस्य मेघप्रकाशस्य सौवर्णैः शोभितस्य च ।
बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥ ५
अक्षौहिणी तु सा सेना तदा यौधिष्ठिरं बलम् ।
प्रविश्यान्तर्दधे राजन् सागरं कुनदी यथा ॥ ६
तथैवाक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली ।
धृष्टकेतुरुपागच्छत् पाण्डवानमितौजसः ॥ ७
मागधश्च जयत्सेनो जारासन्धिर्महाबलः ।
अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत् ॥ ८
तथैव पाण्ड्यो राजेन्द्र सागरानूपवासिभिः ।
वृतो बहुविधैर्योधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥ ९
तस्य सैन्यमतीवासीत् तस्मिन् बलसमागमे ।
प्रेक्षणीयतरं राजन् सुवेषं बलवत् तदा ॥ १०
द्रुपदस्याप्यभूत्सेना नानादेशसमागतैः ।
शोभिता पुरुषैः शूरैः पुत्रैश्चास्य महारथैः ॥ ११
तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।
पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पाण्डवानियात् ॥ १२
इतश्चेतश्च पाण्डूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् ।
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैता विविधध्वजसङ्कुलाः ॥ १३
युयुत्समानाः कुरुभिः पाण्डवान् समहर्षयन् ।
तथैव धार्तराष्ट्रस्य हर्षं समभिवर्धयन् ॥ १४
भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ ।
तस्य चीनैः किरातैश्च काञ्चनैरिव संवृतम् ॥ १५
बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा ।
तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनन्दन ॥ १६
दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक् ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यो भोजान्धककुकुरैः सह ॥ १७
अक्षौहिण्यैव सेनाया दुर्योधनमुपागमत् ।
तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्बलम् ॥ १८
अशोभत यथा मत्तैर्वनं प्रक्रीडितैर्गजैः ।
जयद्रथमुखाश्चान्ये सिन्धुसौवीरवासिनः ॥ १९
आजग्मुः पृथिवीपालाः कम्पयन्त इवाचलान् ।
तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौ तदा ॥ २०
विधूयमानो वातेन बहुरूप इवाम्बुदः ।
सुदक्षिणश्च काम्बोजो यवनैश्च शकैस्तथा ॥ २१
उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशाम्पते ।
तस्य सेनासमावायः शलभानामिवाबभौ ॥ २२
स च संप्राप्य कौरव्यं तत्रैवान्तर्दधे तदा ।
तथा माहिष्मतीवासी नीलो नीलायुधैः सह २३
महीपालो महावीर्यैर्दक्षिणापथवासिभिः ।
आवन्त्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ॥ २४
पृथगक्षौहिणीभ्यां तावभियातौ सुयोधनम् ।
केकयाश्च नरव्याघ्राः सोदर्याः पञ्च पार्थिवाः २५
संहर्षयन्तः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् ।
ततस्ततस्तु सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ॥ २६
+तिस्रोऽन्याः समवर्तन्त वाहिन्यो भरतर्षभ ।
एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः ॥ २७
युयुत्समानाः कौन्तेयान्नानाध्वजसमाकुलाः ।
न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत् तदा ॥ २८
राज्ञां स्वबलमुख्यानां प्राधान्येनापि भारत ।
ततः पञ्चनदं चैव कृत्स्नं च कुरुजाङ्गलम् ॥ २९
तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला ।
अहिच्छत्रं कालकूटं गङ्गाकूलं च भारत ॥ ३०
वारणं वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः ।
एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ॥ ३१
बभूव कौरवेयाणां बलेनातीव संवृतः ।
तत्र सैन्यं तथायुक्तं ददर्श स पुरोहितः ॥ ३२
यः स पाञ्चालराजेन प्रेषितः कौरवान् प्रति ३३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितसैन्यदर्शने

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ समाप्तं सेनोद्योगपर्व ॥

वनमाला आपादलम्बिनी माला ॥१८॥ समवायः समूहः ॥२२॥ आवन्त्यौ विन्दानुविन्दौ ॥ २४ ॥ अहिच्छत्रादयः प्रदेशविशेषाः ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

+तिस्रो वाहिन्यः सेनाप्रकरणाच्चाक्षौहिण्य इति लक्ष्यते । एवं सेना इत्यत्रापि ।

# सञ्जययानपर्व २

## २०

वैशम्पायन उवाच ।
स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः ।
सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥ १
सर्वं कौशल्यमुक्त्वाऽऽदौ पृष्ट्वा चैवमनामयम् ।
सर्वसेनाप्रणेतॄणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥ २
सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः ।
वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति ३
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ ।
तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः ॥ ४
धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः पैतृकं वसु ।
पाण्डुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥ ५
एवंगते पाण्डवेयैर्विदितं वः पुरा यथा ।
न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धृतराष्ट्रेण संवृतम् ॥ ६
प्राणान्तिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः ।
शेषवन्तो न शकिता नेतुं वै यमसादनम् ॥ ७
पुनश्च वर्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः ।
छद्मनाऽपहृतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलैः ॥ ८
तदप्यनुमतं कर्म यथायुक्तमनेन वै ।
वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ९
सभायां क्लेशितैर्वीरैः सहभार्यैस्तथा भृशम् ।
अरण्ये विविधाः क्लेशाः संप्राप्तास्तैः सुदारुणाः॥
तथा विराटनगरे योन्यन्तरगतैरिव ।
प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः ॥ ११
ते सर्वं पृष्ठतः कृत्वा तत् सर्वं पूर्वकिल्बिषम् ।
सामैव कुरुभिः सार्धमिच्छन्ति कुरुपुंगवाः १२
तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च ।
अनुनेतुमिहार्हन्ति धार्तराष्ट्रं सुहृज्जनाः ॥ १३
न हि ते विग्रहं वीराः कुर्वन्ति कुरुभिः सह ।
अविनाशेन लोकस्य काङ्क्षन्ते पाण्डवाः स्वकम्॥
यश्चापि धार्तराष्ट्रस्य हेतुः स्याद्विग्रहं प्रति ।
स च हेतुर्न मन्तव्यो बलीयांसस्तथा हि ते १५
अक्षौहिण्यश्च सप्तैव धर्मपुत्रस्य संगताः ।
युयुत्समानाः कुरुभिः प्रतीक्षन्तेऽस्य शासनम्१६
अपरे पुरुषव्याघ्राः सहस्राक्षौहिणीसमाः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च यमौ च सुमहाबलौ ॥ १७
एकादशैताः पृतना एकतश्च समागताः ।
एकतश्च महाबाहुर्बहुरूपी धनञ्जयः ॥ १८
यथा किरीटी सर्वाभ्यः सेनाभ्यो व्यतिरिच्यते ।
एवमेव महाबाहुर्वासुदेवो महाद्युतिः ॥ १९
बहुलत्वं च सेनानां विक्रमं च किरीटिनः ।
बुद्धिमत्त्वं च कृष्णस्य बुद्ध्वा युध्येत को नरः ॥
ते भवन्तो यथाधर्मं यथासमयमेव च ।
प्रयच्छन्तु प्रदातव्यं मा वः कालोऽत्यगादयम्२१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि पुरोहितयाने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

वैशम्पायन उवाच ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रज्ञावृद्धो महाद्युतिः ।
संपूज्यैनं यथाकालं भीष्मो वचनमब्रवीत् ॥ १
दिष्ट्या कुशलिनः सर्वे सह दामोदरेण ते ।
दिष्ट्या सहायवन्तश्च दिष्ट्या धर्मे च ते रताः २
दिष्ट्या च सन्धिकामास्ते भ्रातरः कुरुनन्दनाः ।
दिष्ट्या न युद्धमनसः पाण्डवाः सह बान्धवैः॥३
भवता सत्यमुक्तं तु सर्वमेतन्न संशयः ।
अतितीक्ष्णं तु ते वाक्यं ब्राह्मण्यादिति मे मतिः४

---

२०

**स चेति** ॥१॥ वाक्येति । भवद्भिः किञ्चिद्वक्तव्यमतो हेतोरित्यर्थः ॥ ३ ॥ शेषवन्तः आयुःशेषयुक्ताः ॥ ७ ॥ योन्यन्तरगतैरिवेति तैर्दत्तान् क्लेशान् जन्मान्तरव्यवहितानिव न स्मरन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

**तस्येति** ॥ १ ॥

असंशयं क्लेशितास्ते वने चेह च पाण्डवाः ।
प्राप्ताश्च धर्मतः सर्वं पितुर्धनमसंशयम् ॥ ५
किरीटी बलवान् पार्थः कृतास्त्रश्च महारथः ।
को हि पाण्डुसुतं युद्धे विषहेत धनञ्जयम् ॥ ६
अपि वज्रधरः साक्षात् किमुतान्ये धनुर्भृतः ।
त्रयाणामपि लोकानां समर्थ इति मे मतिः ॥ ७
भीष्मे ब्रुवति तद्वाक्यं धृष्टमाक्षिप्य मन्युना ।
दुर्योधनं समालोक्य कर्णो वचनमब्रवीत् ॥ ८
न तन्नाविदितं ब्रह्मन् लोके भूतेन केनचित् ।
पुनरुक्तेन किं तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥ ९
दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान् पुरा ।
समयेन गतोऽरण्यं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १०
स तं समयमाश्रित्य राज्यं नेच्छति पैतृकम् ।
बलमाश्रित्य मत्स्यानां पाञ्चालानां च मूर्खवत् ॥
दुर्योधनो भयाद्विद्वन्न दद्यात् पादमन्ततः ।
धर्मतस्तु महीं कृत्स्नां प्रदद्याच्छत्रवेऽपि च ॥ १२
यदि काङ्क्षन्ति ते राज्यं पितृपैतामहं पुनः ।
यथाप्रतिज्ञं कालं तं चरन्तु वनमाश्रिताः ॥ १३
ततो दुर्योधनस्याङ्के वर्तन्तामकुतोभयाः ।
अधार्मिकीं तु मा बुद्धिं मौर्ख्यात् कुर्वन्तु केवलात्
अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पाण्डवाः ।
आसाद्येमान् कुरुश्रेष्ठान् स्मरिष्यन्ति वचो मम॥

भीष्म उवाच ।

किं नु राधेय वाचा ते कर्म तत् स्मर्तुमर्हसि ।
एक एव यदा पार्थः षड्रथाञ्जितवान् युधि ॥ १६
बहुशो जीयमानस्य कर्म दृष्टं तदैव ते ।
न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान्॥ १७

वैशम्पायन उवाच ।

धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च ।
अवभर्त्स्य च राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८
अस्मद्धितं वाक्यमिदं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्
पाण्डवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥ १९
चिन्तयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि सञ्जयम् ।
स भवान् प्रति यात्वद्य पाण्डवानेव मा चिरम् ॥
स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषयामास पाण्डवान् ।
सभामध्ये समाहूय सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि पुरोहितयाने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

धृतराष्ट्र उवाच ।

प्राप्तानाहुः सञ्जय पाण्डुपुत्रा-
नुपप्लव्ये तान् विजानीहि गत्वा ।
अजातशत्रुं च सभाजयेथा
दिष्ट्याऽऽनह्य स्थानमुपस्थितस्त्वम् ॥ १
सर्वान् वदेः सञ्जय स्वस्तिमन्तः
कृच्छ्रं वासमतदर्हा निरुप्य ।
तेषां शान्तिर्विद्यतेऽस्मासु शीघ्रं
*मिथ्योपेतानामुपकारिणां सताम् ॥ २
नाहं क्वचित् सञ्जय पाण्डवानां
मिथ्यावृत्तिं काञ्चन जात्वपश्यम् ।
सर्वां श्रियं ह्यात्मवीर्येण लब्धां
पर्याकार्षुः पाण्डवा मह्यमेव ॥ ३

धृष्टं धर्षणायुक्तं यथा स्यात्तथा आक्षिप्य तिरस्कृत्य ॥ ८ ॥ तत्र पाण्डवपक्षे ॥ ९ ॥ तं समयं कालं तत्त्व सङ्केतवाक्यं त्रयोदशवर्षे ज्ञातैः पुनर्वने वस्तव्यमित्येवंरूपं वा । समय इत्युपक्रम्य 'सङ्केत कालभाषयोः' इति मेदिनी । आश्रित्य निर्वाह्य पैतृकं राज्यांशं नेच्छति । किंतु तदतिक्रमेणैव पैतृकमिच्छतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ पादं चतुर्थांशमपि किमुतार्धमित्यर्थः ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पुरोहितयाने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ अन्ततः सर्वाभावे ।

२२

प्राप्तानिति । दिष्ट्या भाग्येन आनह्य संनद्धो भूत्वा स्थानं स्थितिमुपस्थितः प्राप्त इति सभाजयेथाः पूजयेथाः ॥ १ ॥ स्वस्तिमन्तो वयमिति सर्वान् वदेः कृच्छ्रं निरुप्यापि तेषां शान्तिरक्रोधोऽस्मासु विद्यते मिथ्योपेतानां निष्कपटानाम् ॥ २ ॥ मह्यं पर्याकार्षुः मदर्थं परित आनीतवन्त ॥ ३ ॥

* मिथ्योपेतानां मिथ्यैव पराजयेनाभियोजितानाम् ।

दोषं ह्येषां नाध्यगच्छं परीच्छ-
न्नित्यं कश्चिद्येन गर्हेय पार्थान् ।
धर्मार्थाभ्यां कर्म कुर्वन्ति नित्यं
सुखप्रियेनानुरुध्यन्ति कामात् ॥ ४

धर्मे शीतं क्षुत्पिपासे तथैव
निद्रां तन्द्रीं क्रोधहर्षौ प्रमादम् ।
धृत्या चैव प्रज्ञया चाभिभूय
धर्मार्थयोगात् प्रयतन्ति पार्थाः ॥ ५

त्यजन्ति मित्रेषु धनानि काले
न संवासाज्जीर्यति तेषु मैत्री ।
यथार्हमानार्थकरा हि पार्था-
स्तेषां द्वेष्टा नास्त्याजमीढस्य पक्षे ॥ ६

अन्यत्र पापाद्विषमान्मन्दबुद्धे-
र्दुर्योधनात् क्षुद्रतराच्च कर्णात् ।
तेषां हीमौ हीनसुखप्रियाणां
महात्मनां संजनयतो हि तेजः ॥ ७

उत्थानवीर्यः सुखमेधमानो
दुर्योधनः सुकृतं मन्यते तत् ।
तेषां भागं यच्च मन्येत बालः
शक्यं हर्तुं जीवतां पाण्डवानाम् ॥ ८

यस्यार्जुनः पदवीं केशवश्च
वृकोदरः सात्यकोऽजातशत्रोः ।
माद्रीपुत्रौ सृञ्जयाश्चापि यान्ति
पुरा युद्धात् साधु तस्य प्रदानम् ॥ ९

स ह्येवैकः पृथिवीं सव्यसाची
गाण्डीवधन्वा प्रणुदेद्रथस्थः ।
तथा जिष्णुः केशवोऽप्यप्रधृष्यो
लोकत्रयस्याधिपतिर्महात्मा ॥ १०

तिष्ठेत कस्तस्य मर्त्यः पुरस्ता-
द्यः सर्वलोकेषु वरेण्य एकः ।
पर्जन्यघोषान् प्रवपन् शरौघान्
पतङ्गसङ्घानिव शीघ्रवेगान् ॥ ११

दिशं ह्युदीचीमपि चोत्तरान् कुरून्
गाण्डीवधन्वैकरथो जिगाय ।
धनं चैषामाहरत् सव्यसाची
सेनानुगान् द्रविडांश्चैव चक्रे ॥ १२

यश्चैव देवान् खाण्डवे सव्यसाची
गाण्डीवधन्वा प्रजिगाय सेन्द्रान् ।
उपाहरत् पाण्डवो जातवेदसे
यशो मानं वर्धयन् पाण्डवानाम् ॥ १३

गदाभृतां नास्ति समोऽत्र भीमा-
द्धस्त्यारोहो नास्ति समश्च तस्य ।
रथेऽर्जुनादाहुरहीनमेनं
बाह्वोर्बलेनायुतनागवीर्यम् ॥ १४

सुशिक्षितः कृतवैरस्तरस्वी
दहेत् क्षुद्रांस्तरसा धार्तराष्ट्रान् ।
सदात्यमर्षी न बलात् स शक्यो
युद्धे जेतुं वासवेनापि साक्षात् ॥ १५

सुचेतसौ बलिनौ शीघ्रहस्तौ
सुशिक्षितौ भ्रातरौ फाल्गुनेन ।
श्येनौ यथा पक्षिपूगान् रुजन्तौ
माद्रीपुत्रौ शेषयेतां न शत्रून् ॥ १६

एतद्बलं पूर्णमस्माकमेवं
यत्सत्यं तान् प्राप्य नास्तीति मन्ये ।
तेषां मध्ये वर्तमानस्तरस्वी
धृष्टद्युम्नः पाण्डवानामिहैकः ॥ १७

सहामात्यः सोमकानां प्रबर्हः
संत्यक्तात्मा पाण्डवार्थे श्रुतो मे ।
अजातशत्रुं प्रसहेत कोऽन्यो
येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥ १८

सहोषितश्चरितार्थो वयस्थो
मात्स्येयानामधिपो वै विराटः ।
स वै सपुत्रः पाण्डवार्थे च शश्व-
द्युधिष्ठिरे भक्त इति श्रुतं मे ॥ १९

---

धर्मार्थाभ्यां धर्मार्थमर्थार्थं च सुखं प्रीतिः प्रियं पुत्रादि तदनुरोधेन कामात् धर्मं न त्यजन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥ तन्द्री जाग्रत एव मौढ्यम् ॥ ५ ॥ यथार्हं मानमर्थं च कुर्वन्ति ते तथा ॥ ६ ॥ तेजः क्रोधम् ॥ ७ ॥ उत्थाने आरम्भकाले एव वीर्यं न प्रसङ्गे यस्य स उत्थानवीर्यः यत्तु तेषां भागं हर्तुं शक्यं मन्यते तत् सुकृतं युक्तमिति मन्यते मौढ्यादिति भावः ॥ ८ ॥ यस्य पदवीं यान्ति यस्यानुगा इत्यर्थः । तस्य तस्मै प्रदानं भागप्रदानम् ॥ ९ ॥ जिष्णु-जयशीलः ॥ १० ॥ वरेण्यः भोगमोक्षकामैर्वरणीयः ॥ ११ ॥ न केवलं मध्यदेशापेक्षया उदीचीं किंतु उत्तरान् कुरून् हिमाचलादप्युदक्देशान् स्वर्गभूमिरूपान् ॥ १२ ॥ जातवेदसे उपाहरत् खाण्डवमिति विपरिणामेनानुषङ्गः ॥ १३ ॥ एतत् परिदृश्यमानं बलं भीष्मद्रोणादीनां सामर्थ्यं तदपि सत्यं तथाऽपि तान् पाण्डवान् प्राप्य नास्तीति मन्ये तुच्छमित्यर्थः ॥ १७ ॥ प्रबर्हः श्रेष्ठः । सन्त्यक्तात्मा त्यक्तदेहः ॥ १८ ॥ सहोषितो वर्षमात्रं चरितार्थः गोग्रहे राक्षितः । मात्स्येयानां मत्स्यदेशजानाम् ॥ १९ ॥

अवरुद्धा रथिनः केकयेभ्यो
 महेष्वासा भ्रातरः पञ्च सन्ति ।
केकयेभ्यो राज्यमाकाङ्क्षमाणा
 युद्धार्थिनश्चानुवसन्ति पार्थान् ॥ २०
सर्वांश्च वीरान् पृथिवीपतीनां
 समागतान् पाण्डवार्थे निविष्टान् ।
शूरानहं भक्तिमतः शृणोमि
 प्रीत्या युक्तान् संश्रितान् धर्मराजम् ॥
गिर्याश्रया दुर्गनिवासिनश्च
 योधाः पृथिव्यां कुलजातिशुद्धाः ।
म्लेच्छाश्च नानायुधवीर्यवन्तः
 समागताः पाण्डवार्थे निविष्टाः ॥ २२
पाण्ड्यश्च राजा समितीन्द्रकल्पो
 योधप्रवीरैर्बहुभिः समेतः ।
समागतः पाण्डवार्थे महात्मा
 लोकप्रवीरोऽप्रतिवीर्यतेजाः ॥ २३
अस्त्रं द्रोणादर्जुनाद्वासुदेवात्
 कृपाद्भीष्माद्येन वृतं शृणोमि ।
यं तं कार्ष्णिप्रतिममाहुरेकं
 स सात्यकिः पाण्डवार्थे निविष्टः ॥ २४
उपाश्रिताश्चेदिकरूषकाश्च
 सर्वोद्योगैर्भूमिपालाः समेताः ।
तेषां मध्ये सूर्यमिवातपन्तं
 श्रिया वृतं चेदिपतिं ज्वलन्तम् ॥ २५
अस्तम्भनीयं युधि मन्यमानो
 ज्यां कर्षतां श्रेष्ठतमं पृथिव्याम् ।
सर्वोत्साहं क्षत्रियाणां निहत्य
 प्रसह्य कृष्णस्तरसा संममर्द ॥ २६
यशोमानौ वर्धयन् पाण्डवानां
 पुराऽभिनच्छिशुपालं समीक्ष्य ।
यस्य सर्वे वर्धयन्ति स्म मानं
 करूषराजप्रमुखा नरेन्द्राः ॥ २७
तमसह्यं केशवं तत्र मत्वा
 सुग्रीवयुक्तेन रथेन कृष्णम् ।
के प्राद्रवंश्चेदिपतिं विहाय
 सिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा इवान्ये ॥ २८
यस्तं प्रतीपस्तरसा प्रत्युदीया-
 दाशंसमानो द्वैरथे वासुदेवम् ।
सोऽशेत कृष्णेन हतः परासु-
 र्वातेनेवोन्मथितः कर्णिकारः ॥ २९
पराक्रमं मे यदवेदयन्त
 तेषामर्थे सञ्जय केशवस्य ।
अनुस्मरंस्तस्य कर्माणि विष्णो-
 र्गावल्गणेनाधिगच्छामि शान्तिम् ॥ ३०
न जातु ताञ्छत्रुरन्यः सहेत
 येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ।
प्रवेपते मे हृदयं भयेन
 श्रुत्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ३१
न चेद्गच्छेत् सङ्गरं मन्दबुद्धि-
 स्ताभ्यां लभेच्छर्म तदा सुतो मे ।
नोचेत् कुरून् सञ्जय निर्दहेता-
 मिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव ॥ ३२
मतो हि मे शक्रसमो धनञ्जयः
 सनातनो वृष्णिवीरश्च विष्णुः ।
धर्मारामो ह्रीनिषेवस्तरस्वी
 कुन्तीपुत्रः पाण्डवोऽजातशत्रुः ॥ ३३
दुर्योधनेन निकृतो मनस्वी
 नोचेत् क्रुद्धः प्रदहेद्धार्तराष्ट्रान् ।
नाहं तथा ह्यर्जुनाद्वासुदेवा-
 द्भीमाद्वाऽहं यमयोर्वा बिभेमि ॥ ३४

---

केकयेभ्यो देशेभ्यः । अवरुद्धाः बहिर्निःसारिताः पञ्च भ्रातरः केकयानाम् । यतः केकयेभ्यः राज्यं प्राप्तुमिच्छन्तः पूर्वमस्मदीया अपि संप्रति पाण्डवान् अनुवसन्ति—अनुसरन्ति । तेन स्वपक्षहानिःपरपक्षपुष्टिश्च दर्शिता ॥२०॥ समिति संग्रामे 'समित्याजिसमिद्युधः' इति कोशः । अप्रतिवीर्यतेजाः अतुल्यतेजाः॥२३॥ कार्ष्णिः प्रद्युम्नस्तत्तुल्यम् ॥ २४ ॥ चेदिपतिं शिशुपालं कृष्णो ममर्देत्युत्तरेणान्वयः ॥ २५ ॥ ज्यां धनुर्गुणं कर्षतां धनुर्भृताम् ॥ २६ ॥ यस्य मानं वर्धयन्ति तं शिशुपालमभिनदिति सम्बन्धः ॥ २७॥ चेदिपतिं विहायान्ये तं कृष्णं के प्राद्रवन् न केऽपि किंतु स एव तेन स्पर्द्धां चकारेत्यर्थः ॥ २८ ॥ आशंसमानो जयमिति शेषः । अशेत शयनं कृतवान् शिशुपालः ॥२९॥ यत् यतः अवेदयंत ज्ञापितवन्तः चाराः इति शेषः ॥ ३० ॥ कृष्णौ वासुदेवार्जुनौ ॥३१॥ संगरं चेन्न गच्छेत्तदा शर्म लभेत् नोचेदन्यथा इन्द्रो विष्णुश्च अर्जुनवासुदेवौ निर्दहेतामित्यन्वयः ॥ ३२ ॥ शक्रपुत्रत्वात् शक्रसमः धर्मपुत्रत्वात् धर्मारामः ॥ ३३ ॥ निकृतो वञ्चितः मनस्वी जितमनाः ॥ ३४ ॥ * ते केकयेभ्यः ङ

यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूत
मन्योरहं भीततरः सदैव ।
महातपा ब्रह्मचर्येण युक्तः
सङ्कल्पोऽयं मानसस्तस्य सिद्ध्येत् ३५
तस्य क्रोधं सञ्जयाहं समीक्ष्य
स्थाने जानन् भृशमस्म्यद्य भीतः ।
स गच्छ शीघ्रं प्रहितो रथेन
पाञ्चालराजस्य चमूनिवेशनम् ॥ ३६
अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः
पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम् ।
जनार्दनं चापि समेत्य तात
महामात्रं वीर्यवतामुदारम् ॥ ३७
अनामयं मद्वचनेन पृच्छे-
र्धृतराष्ट्रः पाण्डवैः शान्तिमीप्सुः ।
न तस्य किञ्चिद्वचनं न कुर्यात्
कुन्तीपुत्रो वासुदेवस्य सूत ॥ ३८
प्रियश्चैषामात्मसमश्च कृष्णो
विद्वांश्चैषां कर्मणि नित्ययुक्तः ।
समानीतान् पाण्डवान् सृञ्जयांश्च
जनार्दनं युयुधानं विराटम् ॥ ३९
अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः
सर्वांस्तथा द्रौपदेयांश्च पञ्च ।
यद्यत्तत्र प्राप्तकालं परेभ्य-
स्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च ।
तद्भाषेथाः सञ्जय राजमध्ये
न मूर्च्छयेद्यन्न च युद्धहेतुः ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययाने धृतराष्ट्रसन्देशे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

वैशम्पायन उवाच ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य सञ्जयः ।
उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः ॥ १
स तु राजानमासाद्य कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ २
गावल्गणिः सञ्जयः सूतसूनु-
रजातशत्रुमवदत् प्रतीतः ।
दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये
सहायवन्तं च महेन्द्रकल्पम् ॥ ३
अनामयं पृच्छति त्वाऽम्बिकेयो
वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी ।
कच्चिद्भीमः कुशली पाण्डवाग्र्यो
धनञ्जयस्तौ च माद्रीतनूजौ ॥ ४
कच्चित् कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री
सत्यव्रता वीरपत्नी सपुत्रा ।
मनस्विनी यत्र च वाञ्छसि त्व-
मिष्टान् कामान् भारत स्वस्तिकामः॥ ५
युधिष्ठिर उवाच ।
गावल्गणे सञ्जय स्वागतं ते
प्रीयामहे ते वयं दर्शनेन ।
अनामयं प्रतिजाने तवाहं
सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन् ॥ ६
चिरादिदं कुशलं भारतस्य
श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत ।
मन्ये साक्षाद्दृष्टमहं नरेन्द्रं
दृष्ट्वैव त्वां सञ्जय प्रीतियोगात् ॥ ७

मन्योः क्रोधात् ॥ ३५ ॥ स्थाने जानन् युक्तं पश्यन् ॥ ३६ ॥ महामात्रं महाभागम् ॥ ३७ ॥ शान्तिमीप्सुरस्तीति वदेत्यध्याहारः ॥ ३८ ॥ समानीतान् एकत्र स्थितान ॥ ३९ ॥ न मूर्च्छयेत् वर्धयेत् क्रोधमिति शेषः ॥४०॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगप० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

राज्ञ इति ॥ १ ॥ प्रतीतो हृष्टः ॥ ३ ॥ यत्र आप्तवर्गे त्वं स्वस्तिकामः कल्याणार्थी यांश्च इष्टान् कामान् भोग्यान् गजरथादीन् वाञ्छसि ते सर्वे कुशलिनः कच्चिदित्यनुषङ्गः ॥ ५ ॥

पितामहो नः स्थविरो मनस्वी
महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः ।
स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो
यथापूर्वं वृत्तिरस्त्यस्य कच्चित् ॥ ८
कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा ।
महाराजो बाह्लिकः प्रातिपेयः
कच्चिद्विद्वान् कुशली सूतपुत्र ॥ ९
स सोमदत्तः कुशली तात कच्चि-
द्भूरिश्रवाः सत्यसन्धः शलश्च ।
द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो
महेष्वासाः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥ १०
सर्वे कुरुभ्यः स्पृहयन्ति सञ्जय
धनुर्धरा ये पृथिव्यां प्रधानाः ।
महाप्रज्ञाः सर्वशास्त्रावदाता
धनुर्भृतां मुख्यतमाः पृथिव्याम् ॥ ११
कच्चिन्मानं तात लभन्त एते
धनुर्भृतः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ।
येषां राष्ट्रे निवसति दर्शनीयो
महेष्वासः शीलवान् द्रोणपुत्रः ॥ १२
वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चि-
न्महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः ।
कर्णोऽमात्यः कुशली तात कच्चित्
सुयोधनो यस्य मन्दो विधेयः ॥ १३
स्त्रियो वृद्धा भारतानां जनन्यो
महानस्यो दासभार्याश्च सूत ।
वध्वः पुत्रा भागिनेया भगिन्यो
दौहित्रा वा कच्चिदप्यव्यलीकाः ॥ १४
कच्चिद्राजा ब्राह्मणानां यथावत्
प्रवर्तते पूर्ववत् तात वृत्तिम् ।
कच्चिद्दायान् मामकान् धार्तराष्ट्रो
द्विजातीनां सञ्जय नोपहन्ति ॥ १५
कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्र
उपेक्षते ब्राह्मणातिक्रमान् वै ।
स्वर्गस्य कच्चिन्न तथा वर्त्मभूता-
मुपेक्षते तेषु सदैव वृत्तिम् ॥ १६
एतज्ज्योतिश्चोत्तमं जीवलोके
शुक्लं प्रजानां विहितं विधात्रा ।
ते चेद्दोषं न नियच्छन्ति मन्दाः
कृत्स्नो नाशो भविता कौरवाणाम् ॥१७
कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
बुभूषते वृत्तिममात्यवर्गे ।
कच्चिन्न भेदेन जिजीविषन्ति
सुहृद्रूपा दुर्हृदश्चैकमर्त्यात् ॥ १८
कच्चिन्न पापं कथयन्ति तात
ते पाण्डवानां कुरवः सर्व एव ।
द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च वीरो
नास्मासु पापानि वदन्ति कच्चित् ॥ १९
कच्चिद्राज्ये धृतराष्ट्रं सपुत्रं
समेत्याहुः कुरवः सर्व एव ।
कच्चिद्दृष्ट्वा दस्युसंघान् समेतान्
स्मरन्ति पार्थस्य युधां प्रणेतुः ॥ २०
मौर्वीभुजाग्रप्रहितान् स्म तात
दोधूयमानेन धनुर्धरेण ।
गाण्डीवनुन्नांस्तनयित्नुघोषा-
नजिह्मगान् कच्चिदनुस्मरन्ति ॥ २१
न चापश्यं कञ्चिदहं पृथिव्यां
योधं समं वाऽधिकमर्जुनेन ।
यस्यैकषष्टिर्निशितास्तीक्ष्णधाराः
सुवाससः संमतो हस्तवापः ॥ २२

---

वृत्तिरस्मासु स्नेहः ॥ ८ ॥ कुरुभ्यः स्पृहयन्ति कच्चिदित्यनुषङ्गः । कुरूणां कल्याणमयुद्धेन वाञ्छन्ति कच्चिदिति भावः ॥ ११ ॥ येषां राष्ट्रे निवसति तेषां कुरूणां मध्ये धनुर्भृतः कश्चिन्मानं लभन्ते ॥ १२ ॥ महानस्यो महानसे परिचारिकाः। वध्वः स्नुषाः। अव्यलीकाः निष्कपटाः ॥ १४ ॥ वृत्तिं जीविकां दातुमिति शेषः । दायान्मद्दत्तान् ग्रामादीन्।१५॥आतिक्रमान्नोपेक्षत इत्युत्तरार्धा न्नञोऽपकर्षेण योज्यम् ।।१६।। एतद्ब्राह्मणानां वृत्तेः पालनं ज्योतिः परलोकप्रकाशकं जीवलोके इह शुक्लं यशस्करम्। दोषं लोभं ब्राह्मणवृत्त्युपघातेन न नियच्छन्ति ।। १७ ।। बुभूषते प्रापयितुमिच्छति । भेदेन जिजीविषन्ति शत्रुभिर्भेदिताः सन्तस्तद्दत्तैर्धनैर्जीवितुमिच्छन्ति ।। १८ ।। पार्थस्यार्जुनस्य कृत्यं स्मरन्ति । युधां सङ्ग्रामाणां प्रणेतुर्निर्वाहकस्य आहुः शमं कुर्विति शेषः । शमेति पाठे शम शाम्य शांतिं गच्छेत्यर्थः ॥ २० ।। मौर्व्याः भुजः कौटिल्यं तस्य अग्रमिवाग्रं शरसन्धानदेशः । ततः प्रहितान् प्रेषितान् ॥ २१ ॥ सुवाससः सुपुङ्खाः। हस्तवापो हस्तक्षेपः। वचनभेदेऽपि सामानाधिकरण्यं शतं स्त्रियोऽस्य परिग्रह इतिवत् एकषष्टिर्बाणा अस्य एकेन यत्नेन प्रक्षेप्या इत्यर्थः ॥ २२ ॥

गदापाणिर्भीमसेनस्तरस्वी
प्रवेपयञ्छत्रुसङ्घाननीके ।
नागः प्रभिन्न इव नड्वलेषु
चङ्क्रम्यते कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २३

माद्रीपुत्रः सहदेवः कलिङ्गान्
समागतानजयद्दन्तकूरे ।
वामेनास्यन् दक्षिणेनैव यो वै
महाबलं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २४

पुरा जेतुं नकुलः प्रेषितोऽयं
शिबींस्त्रिगर्तान् सञ्जय पश्यतस्ते ।
दिशं प्रतीचीं वशमानयन्मे
माद्रीसुतं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २५

पराभवो द्वैतवने य आसी-
द्दुर्मन्त्रिते घोषयात्रागतानाम् ।
यत्र मन्दाञ्छत्रुवशं प्रयाता-
नमोचयद्भीमसेनो जयश्च ॥ २६

अहं पश्चादर्जुनमभ्यरक्षं
माद्रीपुत्रौ भीमसेनोऽप्यरक्षत् ।
गाण्डीवधन्वा शत्रुसङ्घानुदस्य
स्वस्त्यागमत्कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २७

न कर्मणा साधुनैकेन नूनं
सुखं शक्यं वै भवतीह सञ्जय ।
सर्वात्मना परिजेतुं वयं चे-
न्न शक्नुमो धृतराष्ट्रस्य पुत्रम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥

## २४

सञ्जय उवाच ।

यथाऽऽत्थ मे पाण्डव तत्तथैव
कुरून् कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि ।
अनामयास्तात मनस्विनस्ते
कुरुश्रेष्ठान् पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम् ॥ १

सन्त्येव वृद्धाः साधवो धार्तराष्ट्रे
सन्त्येव पापाः पाण्डव तस्य विद्धि ।
दद्याद्रिपुभ्योऽपि हि धार्तराष्ट्रः
कुतो दायांल्लोपयेद्ब्राह्मणानाम् ॥ २

यद्युष्माकं वर्तते सौनधर्म्य-
मद्रुग्धेषु द्रुग्धवत्तन्न साधु ।
मित्रध्रुक् स्यात् धृतराष्ट्रः सपुत्रो
युष्मान् द्विषन् साधुवृत्तानसाधुः ॥ ३

न चानुजानाति भृशं च तप्यते
शोचत्यन्तः स्थविरोऽजातशत्रो ।
शृणोति हि ब्राह्मणानां समेत्य
मित्रद्रोहः पातकेभ्यो गरीयान् ॥ ४

---

नड्वलेषु सतृणेषु स्थलेषु॥ २३॥ दन्तकूरे कूरमन्नं दन्ताः क्रोधावेशात् कूरवच्चर्व्यन्तेऽस्मिन्निति दन्तकूरः सङ्ग्रामः तस्मिन् अस्यन् क्षिपन् ॥ २४ ॥ जयः अर्जुनः ॥ २६ ॥ अहं अर्जुनस्य तदा पृष्ठरक्षकः प्रेरकोऽभवमित्यर्थः । भीमसेनश्च माद्रीसुतयोःपृष्ठरक्षकोऽभूत् पञ्चभिरप्यस्माभिस्ते मोचिता इत्यर्थः ॥ २७ ॥ न कर्मणेति सर्वात्मना सर्वोपायैः दानभेददण्डैश्चेत् धृतराष्ट्रस्य पुत्रं जेतुं न शक्नुमस्तर्हि एकेन साधुना कर्मणा सामाख्येनोपायेन सुखं सुखेन जेतुं नैव शक्यं भवति। साम्नाऽसाध्ये हि दानादयः प्रत्युज्यन्ते तैरप्यसाध्यः कथं साममात्रेण साध्यः स्यात् । अतो दण्डैकसाध्यः स इति भावः । पाठान्तरे परिणेतुं स्वायत्तीकर्तुम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगप॰ नैलकण्ठीये भा॰ भा॰ त्रयोविं॰ ॥ २३ ॥

२४

**यथेति** ॥ १ ॥ यदिति । अद्रुग्धेषु अनपकृतेषु धार्तराष्ट्रेषु यत् युष्माकं द्रुग्धवत् अपकृतस्येव सौनः सूनावान् हिंस्रः तद्धर्मादनपेतं सौनधर्म्यं कार्यं वर्तते तन्न साधु द्रुग्धैरपि भवद्भिस्तेषु प्रव्राजनकालेऽपि द्रोहो न कृत इदानीं तु सुतरां न कर्तव्य इत्याशयः । ते तु स्वकृतं भोक्ष्यन्त्येवेत्याह-मित्रध्रुगिति ॥ ३ ॥ न चानुजानाति सन्धिं नानुमोदते । तप्यते च पुत्रनाशभयात् गरीयानिति शृणोति चेति सम्बन्धः ॥ ४ ॥

स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संयुगे
युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः ।
समुत्क्रुष्टे दुन्दुभिशङ्खशब्दे
गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति ॥
माद्रीसुतौ चापि रणाजिमध्ये
सर्वा दिशः संपतन्तौ स्मरन्ति ।
सेनां वर्षन्तौ शरवर्षैरजस्रं
महारथौ समरे दुष्प्रकम्पौ ॥
नत्वेव मन्ये पुरुषस्य राज-
न्ननागतं ज्ञायते यद्भविष्यम् ।
त्वं चेत्तथा सर्वधर्मोपपन्नः
प्राप्तः क्लेशं पाण्डव कृच्छ्ररूपम् ।
त्वमेवैतत् कृच्छ्रगतश्च भूयः
*समीकुर्याः प्रज्ञयाऽजातशत्रो ॥
न कामार्थं सन्त्यजेयुर्हि धर्मं
पाण्डोः सुताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।
त्वमेवैतत् प्रज्ञयाऽजातशत्रो
समीकुर्या येन शर्माप्नुयुस्ते ॥ ८
धार्तराष्ट्राः पाण्डवाः सृञ्जयाश्च
ये चाप्यन्ये सन्निविष्टा नरेन्द्राः ।
यन्मां ब्रवीद्धृतराष्ट्रो निशाया-
मजातशत्रो वचनं पिता ते ॥ ९
सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन्
समेत्य तां वाचमिमां निबोध ॥ १०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि सञ्जयवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## २५

युधिष्ठिर उवाच ।
समागताः पाण्डवाः सृञ्जयाश्च
जनार्दनो युयुधानो विराटः ।
यत्ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं
गावल्गणे ब्रूहि तत् सूतपुत्र ॥ १
सञ्जय उवाच ।
अजातशत्रुं च वृकोदरं च
धनञ्जयं माद्रवतीसुतौ च ।
आमन्त्रये वासुदेवं च शौरिं
युयुधानं चेकितानं विराटम् ॥ २
पञ्चालानामधिपं चैव वृद्धं
धृष्टद्युम्नं पार्षतं याज्ञसेनिम् ।
सर्वे वाचं शृणुतेमां मदीयां
वक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन् कुरूणाम् ३
शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्द-
न्नयोजयत्त्वरमाणो रथं मे ।
सभ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञ-
स्तद्रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु ॥ ४
सर्वैर्धर्मैः समुपेतास्तु पार्थाः
संस्थानेन मार्दवेनार्जवेन ।
जाताः कुले ह्यनृशंसा वदान्या
ह्रीनिषेवाः कर्मणां निश्चयज्ञाः ॥ ५
न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं
सत्वं हि वस्तादृशं भीमसेनाः ।
उद्भासते ह्यञ्जनबिन्दुवत्त-
च्छुभ्रे वस्त्रे यद्भवेत् किल्बिषं वः ॥ ६

---

कच्चिदस्मान् स्मरन्तीति पृष्टं तत्राह-स्मरन्तीति । तुभ्यं त्वाम् ॥ ५ ॥ रणो योधध्वनिस्तद्विशिष्टा या आजिः सङ्ग्रामस्तन्मध्ये । 'रक्षणत्राणे रणः क्वणे' इत्यमरः ॥ ६ ॥ अनागतमज्ञातमदृष्टमित्यर्थः ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

समागता इति ॥ १ ॥ रथमयोजयत् इह आगन्तुं राज्ञो वचनं पाण्डवानां रोचतां ततश्च शमोऽस्तु ॥ ४ ॥ संस्थानेनाकारेण । मार्दवेन कृपया। आर्जवेन अकौटिल्येन । अनृशंसाः अनुग्राः । ह्रीनिषेवाः लज्जापरायणाः ॥ ५ ॥ हीनं हिंस्रं सत्त्वं बुद्धिसत्त्वं साधुत्वं वा भीमसेनाः भीषण-सैन्याः ॥ ६ ॥ * समीकुर्याः पुनः कलहरूपविषयस्य प्रशान्त्या इति भावः ।

सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः
पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः ।
कस्तत्र कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन्
पराजयो यत्र समो जयश्च ॥ ७
ते वै धन्या यैः कृतं ज्ञातिकार्यं
ते वै पुत्राः सुहृदो बान्धवाश्च ।
उपक्रुष्टं जीवितं सन्त्यजेयु-
र्यतः कुरूणां नियतो वै भवः स्यात् ॥ ८
ते चेत् कुरूननुशिष्याथ पार्था
निर्णीय सर्वान् द्विषतो निगृह्य ।
समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्या-
द्यज्जीवध्वं ज्ञातिवधे न साधु ॥ ९
को ह्येव युष्मान् सह केशवेन
सचेकितानान् पार्षतबाहुगुप्तान् ।
ससात्यकीन् विषहेत प्रजेतुं
लब्ध्वाऽपि देवान् सचिवान् सहेन्द्रान्
को वा कुरून् द्रोणभीष्माभिगुप्ता-
नश्वत्थाम्ना शल्यकृपादिभिश्च ।
रणे विजेतुं विषहेत राजन्
राधेयगुप्तान् सह भूमिपालैः ॥ ११
महद्बलं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञः
को वै शक्तो हन्तुमक्षीयमाणः ।
सोऽहं जये चैव पराजये च
निःश्रेयसं नाधिगच्छामि किञ्चित् १२
कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया
निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः ।
सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं
पञ्चालानामधिपं चैव वृद्धम् ॥ १३
कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये
कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृञ्जयानाम् ।
न ह्येवमेवं वचनं वासुदेवो
धनञ्जयो वा जातु किंचिन्न कुर्यात् १४
प्राणान् दद्याद्याचमानः कुतोऽन्य-
देतद्विद्वन् साधनार्थं ब्रवीमि ।
एतद्राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य
मतं यद्वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि सञ्जयवाक्ये
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

युधिष्ठिर उवाच ।
कां नु वाचं सञ्जय मे शृणोषि
युद्धैषिणीं येन युद्धाद्बिभेषि ।
अयुद्धं वै तात युद्धाद्गरीयः
कस्तल्लब्ध्वा जातु युद्ध्येत सूत ॥ १
अकुर्वतश्चेत् पुरुषस्य सञ्जय
सिद्ध्येत् संकल्पो मनसा यं यमिच्छेत्
न कर्म कुर्याद्विदितं ममैत-
दन्यत्र युद्धाद्बहु यल्लघीयः ॥ २

सर्वक्षयः अभावसंस्थः शून्ये एव परिसमाप्तः क्षयः तत्र तत् प्रथमार्थे त्रल् । जयोऽपि बन्धुनाशात् पराजय एव ॥ ७ ॥ ज्ञातीनां दुर्योधनादीनां कार्यं घोषयात्रायां गन्धर्वेभ्यो मोचनादिकमुपक्रुष्टं निन्दितम् ॥ ८ ॥ निर्णीय निश्चयं कृत्वा निगृह्य हत्वेत्यर्थः ॥ ९ ॥ ननु युद्धे जयपराजयावनित्यावित्याह–को हीति द्वाभ्याम् ॥ १० ॥ निःश्रेयसं निश्चयम् ॥ १२ ॥ निर्धर्मार्थं धर्मार्थयोर्विरुद्धं कर्म कथं कुर्युः । प्रणतोऽस्मीति शेषः ॥ १३ ॥ एवमेवं वचनमिति द्विरुक्त्या विकल्पवाक्यं न कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्राणानिति । एतत् भवतां जयोऽपि पराजय एवेति दीनवचनम् । को वा कुरून् जयेतेति तीक्ष्णवचनम् । कथं स्वस्ति स्यादित्युभयनाशवचनं च साधनार्थं सन्धिकार्यस्य सिध्यर्थं ब्रवीमि न तु युष्मान् भीषयामीत्यर्थः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

**कामिति** ॥ १ ॥ अकुर्वतश्चेत्संकल्पः सिध्येत्तर्हि कर्म न कुर्यात् । असिद्धावपि युद्धादन्यत्र–अन्यत् । अत्रापि प्रथमार्थे त्रल् । लघीयोऽपि कर्म कुर्यान्न तु युद्धम् ॥ २ ॥

कुतो युद्धं जातु नरोऽवगच्छेत्
को देवशप्तो हि वृणीत युद्धम् ।
सुखैषिणः कर्म कुर्वन्ति पार्था
धर्मादहीनं यच्च लोकस्य पथ्यम् ॥ ३

धर्मोदयं सुखमाशंसमानाः
कृच्छ्रोपायं तत्त्वतः कर्म दुःखम् ।
सुखं प्रेप्सुर्विजिघांसुश्च दुःखम्
य इन्द्रियाणां प्रीतिरसानुगामी ॥ ४

कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति
यया प्रमुक्तो न करोति दुःखम् ।
यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो
भूयो बलं वर्धते पावकस्य ॥ ५

कामार्थलाभेन तथैव भूयो
न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः ।
संपश्येमं भोगचयं महान्तं
सहास्माभिर्धृतराष्ट्रस्य राज्ञः ॥ ६

नाश्रेयानीश्वरो विग्रहाणां
नाश्रेयान्वै गीतशब्दं शृणोति ।
नाश्रेयान्वै सेवते माल्यगन्धा-
न्न चाप्यश्रेयाननुलेपनानि ॥ ७

नाश्रेयान्वै प्रावारान् संविवस्ते
कथं त्वस्मान् संप्रणुदेत् कुरुभ्यः ।
अत्रैव स्यादबुधस्यैव कामः
प्रायः शरीरे हृदयं दुनोति ॥ ८

स्वयं राजा विषमस्थः परेषु
सामर्थ्यमन्विच्छति तन्न साधु ।
यथात्मनः पश्यति वृत्तमेव
तथा परेषामपि सोऽभ्युपैति ॥ ९

आसन्नमग्निं तु निदाघकाले
गंभीरकक्षे गहने विसृज्य ।
यथा विवृद्धं वायुवशेन शोचेत्
क्षेमं मुमुक्षुः शिशिरव्यपाये ॥ १०

प्राप्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रोऽद्य राजा
लालप्यते सञ्जय कस्य हेतोः ।
प्रगृह्य दुर्बुद्धिमनार्जवे रतं
पुत्रं मन्दं मूढममन्त्रिणं तु ॥ ११

अनाप्तवच्चाप्ततमस्य वाचः
सुयोधनो विदुरस्यावमत्य ।
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी
संबुध्यमानो विशतेऽधर्ममेव ॥ १२

मेधाविनं ह्यर्थकामं कुरूणां
बहुश्रुतं वाग्मिनं शीलवन्तम् ।
स तं राजा धृतराष्ट्रः कुरुभ्यो
न सस्मार विदुरं पुत्रकाम्यात् ॥ १३

मानघ्नस्यासौ मानकामस्य चेर्षोः
संरम्भिणश्चार्थधर्मातिगस्य ।
दुर्भाषिणो मन्युवशानुगस्य
कामात्मनो दौर्हृदैर्भावितस्य ॥ १४

अहीनमनपगतम् ॥ ३ ॥ धर्मोदयं सुखं निदाघे गङ्गावगाहादिजं न त्वधर्मोदयं हिंसादिजं तत्त्वतो वस्तुतस्तु सर्वं कर्म दुःखमेव यतः कृच्छ्रोपायं क्लेशसाध्यं तर्हि कुतः कर्म कुर्वन्तीत्याशङ्क्याह-सुखमिति ॥ ४ ॥ कामाभिध्या विषयध्यानं ययेति सर्वात्मना विषयविस्मरणे महत्सुखमस्तीति भावः । भोगाभिष्कामता न संभवतीत्याह-यथेति ॥ ५ ॥ उक्तमर्थं प्रकृते योजयति-संपश्येति । अस्माभिरित्यत्र धार्तराष्ट्रान् अन्तर्भाव्याह पञ्चाधिकेन पुत्रशतेन सह धृतराष्ट्रस्य भोगं महान्तं पश्य अथापि कृत्स्नं स्वस्यैव भवत्विति बुद्ध्याऽस्मान् राज्याद्दूरीकृत्य ततो भोगात् तृप्तिं न लभत इति भावः ॥ ६ ॥ पितृव्यानिन्दादोषाद्भीतः पुनराह-नाश्रेयानिति यः पुण्यवत्तरः स विग्रहाणामीश्वरो भवति परैः सह विरोधं कृत्वा स्वोत्कर्षं करोति । अन्यस्तु तेनैव नश्यति अतः स पुण्यवत्तर एव । अस्मद्दोषात्तु वयं वने दुःखमनुभवामो न तु परापराधेनेति भावः ॥ ७ ॥ प्रावारान् दिव्यवासांसि संविवस्ते परिधत्ते । अन्यथा अश्रेयांश्चेद्राजा तर्हि अस्मान् कुरुभ्यः कथं संप्रणुदेत् दूरीकुर्यात् । शत्रूणां राज्याद्भ्रंशनं हि पुण्यवतामेव कर्म नाश्रेयसामिति भावः । अत्रेति । यद्यप्येवं तथाऽपि अन्तर्दाहकरोऽयं कामः । अबुधस्य दुर्योधनादेरेव उचितो न बुधस्यास्मदादेरित्यर्थः । शरीरे शरीरमध्ये स्थितं हृदयं दुनोति खेदयति ॥ ८ ॥ अबुधत्वमेवाह-स्वयमिति । विषमस्थः सङ्कटस्थः सन् परेषु कर्णादिषु । आत्मनो वृत्तमशक्तत्वं तथा परेषां कर्णादीनामपि स दुर्योधनोऽभ्युपैति ॥ ९ ॥ गम्भीरकक्षे बहुतृणे गहने वने क्षेमं शोचेत् मम सुखं नास्तीति शोकं कुर्यात् । मुमुक्षुः तस्माद्दाहादात्मानं मोचयितुमिच्छुः शिशिरव्यपाये वसन्ते तत्रापि निदाघकाले दाहकाले मध्याह्ने ॥ १० ॥ लालप्यते दीनवत् भाषते मन्दमभाग्यम् ॥ ११ ॥ विदुरस्य वाचोऽवमत्य सुतस्य प्रियैषी अधर्ममेव संविशते आश्रयते ॥ १२ ॥ कुरुभ्यः कुरूणां हितार्थं न सस्मार नादृतवान् । पुत्रकाम्यात् पुत्रलोभात् ॥ १३ ॥ असौ राजा सुतस्य प्रियैषी धर्मकामौ प्राजहात् त्यक्तवानिति

अनेयस्याश्रेयसो दीर्घमन्यो-
र्मित्रद्रुहः सञ्जय पापबुद्धेः ।
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी
प्रपश्यमानः प्राजहाद्धर्मकामौ ॥ १५

तदैव मे सञ्जय दीव्यतोऽभू-
न्मतिः कुरूणामागतः स्यादभावः ।
काव्यां वाचं विदुरो भाषमाणो
न विन्दते यद्धार्तराष्ट्रात् प्रशंसाम्॥ १६

क्षत्तुर्यदा नान्ववर्तन्त बुद्धिं
कृच्छ्रं कुरून् सूत तदाऽभ्याजगाम ।
यावत् प्रज्ञामन्ववर्तन्त तस्य
तावत्तेषां राष्ट्रवृद्धिर्बभूव ॥ १७

तदर्थलुब्धस्य निबोध मेऽद्य
ये मन्त्रिणो धार्तराष्ट्रस्य सूत ।
दुःशासनः शकुनिः सूतपुत्रो
गावल्गणे पश्य संमोहमस्य ॥ १८

सोऽहं न पश्यामि परीक्षमाणः
कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृञ्जयानाम् ।
आत्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रः परेभ्यः
प्रव्राजिते विदुरे दीर्घदृष्टौ ॥ १९

आशंसते वै धृतराष्ट्रः सपुत्रो
महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम् ।
तस्मिन् शमः केवलं नोपलभ्यः
सर्वं स्वकं मद्गते मन्यतेऽर्थम् ॥ २०

यत्तत् कर्णो मन्यते पारणीयं
युद्धे गृहीतायुधमर्जुनं वै ।
आसंश्च युद्धानि पुरा महान्ति
कथं कर्णो नाभवद्द्वीप एषाम् ॥ २१

कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च
द्रोणश्च जानाति पितामहश्च ।
अन्ये च ये कुरवस्तत्र सन्ति
यथार्जुनान्नास्त्यपरो धनुर्धरः ॥ २२

जानन्त्येतत् कुरवः सर्व एव
ये चाप्यन्ये भूमिपालाः समेताः ।
दुर्योधने राज्यमिहाभवद्यथा
अरिन्दमे फाल्गुनेऽविद्यमाने ॥ २३

तेनानुबन्धं मन्यते धार्तराष्ट्रः
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वम् ।
किरीटिना तालमात्रायुधेन
तद्वेदिना संयुगं तत्र गत्वा ॥ २४

गाण्डीवविस्फारितशब्दमाजा-
वशृण्वाना धार्तराष्ट्रा ध्रियन्ते ।
क्रुद्धं न चेदीक्षते भीमसेनं
सुयोधनो मन्यते सिद्धमर्थम् ॥ २५

इन्द्रोऽप्येतन्नोत्सहेत्तात हर्तु-
मैश्वर्यं नो जीवति भीमसेने ।
धनञ्जये नकुले चैव सूत
तथा वीरे सहदेवे सहिष्णौ ॥ २६

स चेदेतां प्रतिपद्येत बुद्धिं
वृद्धो राजा सह पुत्रेण सूत ।
एवं रणे पाण्डवकोपदग्धा
न नश्येयुः सञ्जय धार्तराष्ट्राः ॥ २७

जानासि त्वं क्लेशमस्मासु वृत्तं
त्वां पूजयन् सञ्जयाहं क्षमेयम् ।
यश्चास्माकं कौरवैर्भूतपूर्वं
या नो वृत्तिर्धार्तराष्ट्रे तदाऽऽसीत् २८

द्वयोः संबन्धः । ईर्षोः परोत्कर्षासहिष्णोः संराम्भिणः क्रोधिनः मन्युवशानुगस्य दैन्यभाजां कर्णादीनामनुगस्य दौर्हृदैः पापैः भावितस्य पूजितस्य ॥ १४ ॥ अनेयस्य अशिक्षणीयस्य अश्रेयसः अभाग्यस्य प्रपश्यमानः पश्यन्नपि ॥ १५ ॥ प्रशंसां विदुरेण सम्यगुक्तमिति स्तुतिं धार्तराष्ट्राद्विदुरो न लेभे ॥ १६ ॥ तस्मिन् लुब्धे शमः न उपलभ्यः यः मद्गते मम वनं प्रति गमने सति सर्वं स्वकमेवार्थं मन्यते इति योज्यम् ॥ २० ॥ पारणीयं जेतुं शक्यम् युद्धानि गोग्रहादौ आसन् । द्वीपो द्वीपवत् युद्धप्रवाहेण उह्यमानस्याश्रयः ॥ २१ ॥ यथेति । गन्धर्वतो बन्धनप्राप्तिं सूचयति ॥ २२ ॥ जानन्तीति । अविद्यमाने इति छेदः ॥ २३ ॥ अनुबन्धं बध्नातीति बन्धो राज्यादिः तमनुसृत्य वर्तमानं पाण्डवानां ममत्वं धार्तराष्ट्रो हर्तुं शक्यं मन्यते । किं कृत्वा तेन किरीटिना सह तत्र राज्ये निमित्ते सति संयुगं संग्रामं गत्वा प्राप्य । तालो हस्तचतुष्टयम् । तद्वेदिना धनुर्विद्यावेदिना ॥२४॥ ध्रियन्ते जीवन्ति॥२५॥ एतां बुद्धिं राज्यस्य अप्रदाने नाशोऽस्तीत्येवंरूपाम् ॥२७॥ भूतपूर्वं भीमबन्धनजतुगृहदाहादि ॥ २८ ॥

अद्यापि तत्तत्र तथैव वर्ततां
शान्तिं गमिष्यामि यथा त्वमात्थ ।
इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं
सुयोधनो यच्छतु भारताग्र्यः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

सञ्जय उवाच ।

धर्मनित्या पाण्डव ते विचेष्टा
लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ ।
महास्रावं जीवितं चाप्यनित्यं
संपश्य त्वं पाण्डव मा व्यनीनशः ॥ १

न चेद्भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्
प्रयच्छेरंस्तुभ्यमजातशत्रो ।
भैक्षचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये
श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम् ॥ २

अल्पकालं जीवितं यन्मनुष्ये
महास्रावं नित्यदुःखं चलं च ।
भूयश्च तद्यशसो नानुरूपं
तस्मात् पापं पाण्डव मा कृथास्त्वम् ३

कामा मनुष्यं प्रसजन्त एते
धर्मस्य ये विघ्नमूलं नरेन्द्र ।
पूर्वं नरस्तान् मतिमान् प्रणिघ्नन्
लोके प्रशंसां लभतेऽनवद्याम् ॥ ४

निबन्धनी ह्यर्थतृष्णेह पार्थ
तामिच्छतां बाध्यते धर्म एव ।
धर्मं तु यः प्रवृणीते स बुद्धः
कामे गृध्नो हीयतेऽर्थानुरोधात् ॥ ५

धर्मं कृत्वा कर्मणां तात मुख्यं
महाप्रतापः सवितेव भाति ।
हीनो हि धर्मेण महीमपीमां
लब्ध्वा नरः सीदति पापबुद्धिः ॥ ६

वेदोऽधीतश्चरितं ब्रह्मचर्यं
यज्ञैरिष्टं ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम् ।
परं स्थानं मन्यमानेन भूय
आत्मा दत्तो वर्षपूगं सुखेभ्यः ॥ ७

सुखप्रिये सेवमानोऽतिवेलं
योगाभ्यासे यो न करोति कर्म ।
वित्तक्षये हीनसुखोऽतिवेलं
दुःखं शेते कामवेगप्रणुन्नः ॥ ८

एवं पुनर्ब्रह्मचर्याप्रसक्तो
हित्वा धर्मं यः प्रकरोत्यधर्मम् ।
अश्रद्दधत् परलोकाय मूढो
हित्वा देहं तप्यते प्रेत्य मन्दः ॥ ९

न कर्मणां विप्रणाशोऽस्त्यमुत्र
पुण्यानां वाऽप्यथवा पापकानाम् ।
पूर्वं कर्तुर्गच्छति पुण्यपापं
पश्चात्त्वेनमनुयात्येव कर्ता ॥ १०

---

इन्द्रप्रस्थे इत्युपराज्यं मम भवतु, भारताग्र्य इति हास्तिनापुरं सुयोधनस्य भवत्विति सूचितम् ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२७

**धर्मनित्या इति।** महान् श्रावः श्रवणं यस्य महाकीर्तिरित्यर्थः । पाठान्तरे तु महान् स्रावो गतिर्यस्य अतिचञ्चलमित्यर्थः । मा व्यनीनशः क्रोधेन धार्तराष्ट्रान् मा नाशय ॥ १ ॥ प्रसजन्ते स्पृशन्ति ॥४॥ गृध्रः स्पृहावान् ॥ ५ ॥ कर्मणामर्थकामाद्यर्थानां मध्ये ॥ ६ ॥ परं स्थानं परलोकं मन्यमानेन मानयता वर्षपूगं वर्षगणं तत्रत्यसुखेभ्यस्तदर्थं त्वया आत्माऽपि दत्तः ॥७॥ सुखप्रिये भोगान् पुत्रादींश्च सेवमानः योगाभ्यासे चित्तवृत्तिनिरोधमभ्यसितुं कर्म आसनप्राणायामादिकं न करोति ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्येति । ब्रह्मणि चर्या आत्मानुसन्धानं तत्र अप्रसक्तः प्रकर्षेण अनासक्तः योगाद्व्यावृत्तः धर्मं च यज्ञादिरूपं हित्वा यः अधर्ममेव प्रकरोति सञ्चिनोति ॥ ९ ॥ ननु 'धर्मेण पापमपनुदति' इति श्रुतेः कालान्तरे अधर्मस्य नाशार्थं धर्ममप्यनुष्ठास्यामः किं मुक्त्येत्याशङ्क्याह—न कर्मणामिति । कृतं कर्म भोगं विना आत्मज्ञानं विना वा न नश्यतीत्यर्थः। 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म' 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' इत्यादिवाक्येभ्यः । उदाहृतश्रुतिस्तु प्रायश्चित्ता-

न्यायोपेतं ब्राह्मणेभ्योऽथ दत्तं
श्रद्धापूतं गन्धरसोपपन्नम् ।
अन्वाहार्येषूत्तमदक्षिणेषु
तथारूपं कर्म विख्यायते ते ॥ ११

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्यं
न वै किञ्चित् क्रियते प्रेत्य कार्यम् ।
कृतं त्वया पारलौक्यं च कर्म
पुण्यं महत्सद्भिरतिप्रशस्तम् ॥ १२

जहाति मृत्युं च जरां भयं च
न क्षुत्पिपासे मनसोऽप्रियाणि ।
न कर्तव्यं विद्यते तत्र किञ्चि-
दन्यत्र वै चेन्द्रियप्रीणनाद्धि ॥ १३

एवंरूपं कर्मफलं नरेन्द्र
माऽत्रावहं हृदयस्य प्रियेण ।
स क्रोधजं पाण्डव हर्षजं च
लोकावुभौ मा प्रहासीश्चिराय ॥ १४

अन्तं गत्वा कर्मणां मा प्रजह्याः
सत्यं दमं चार्जवमानृशंस्यम् ।
अश्वमेधं राजसूयं तथेज्याः
पापस्यान्तं कर्मणो मा पुनर्गाः ॥ १५

तच्चेदेवं द्वेषरूपेण पार्थाः
करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय ।
निवसध्वं वर्षपूगान् वनेषु
दुःखं वासं पाण्डवा धर्म एव ॥ १६

अप्रव्रज्ये मा स्म हित्वा पुरस्ता-
दात्माधीनं यद्बलं ह्येतदासीत् ।
नित्यं च वश्याः सचिवास्तवेमे
जनार्दनो युयुधानश्च वीरः ॥ १७

मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः
प्रहारिभिः सह पुत्रैर्विराटः ।
राजानश्च ये विजिताः पुरस्तात्
त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः ॥ १८

महासहायः प्रतपन् बलस्थः
पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम् ।
वरान् हनिष्यन् द्विषतो रङ्गमध्ये
व्यनेष्यथा धार्तराष्ट्रस्य दर्पम् ॥ १९

बलं कस्माद्वर्धयित्वा परस्य
निजान् कस्मात् कर्शयित्वा सहायान् ।
निरुष्य कस्माद्वर्षपूगान् वनेषु
युयुत्ससे पाण्डव हीनकालम् ॥ २०

अप्राज्ञो वा पाण्डव युध्यमानो-
ऽधर्मज्ञो वा भूतिमथोऽभ्युपैति ।
प्रज्ञावान् वा बुध्यमानोऽपि धर्मं
संस्तम्भाद्वा सोऽपि भूतेरपैति ॥ २१

दिना पापनाशो भवति सोऽपि अत्रैव व्यवहार्यत्वमापादयति न तु परलोकेऽपि पापास्पर्शाय प्रभवतीत्येवंपरा ॥ १० ॥ अन्वाहार्येष्वित्यनेन श्रौतमिष्ट्यादिकं लक्ष्यते तत्र हि अन्वाहार्यो दक्षिणात्वेन दीयते ॥ ११ ॥ कार्यं धर्मः प्रेत्य मृत्वा ॥१२॥ परलोके कर्म नास्तीत्याह–जहातीति ॥१३॥ एवंरूपमिति । हृदयस्य प्रियेण कामेन ईदृशं क्षयिष्णु इन्द्रियप्रीतिमात्रहेतु कर्मफलं तत् अत्र आस्मिन् लोके माऽवहं नैव वहेयमत्र कर्म कुर्वन् कामवशादमुत्र फलं न प्रार्थयेतेत्यर्थः । ततश्च को लाभ इत्यत आह–स इति । सः त्वमेवं निष्कामकर्मकृत् क्रोधजं लोकं नरकं हर्षजं स्वर्गं चेत्युभौ लोकौ चिराय अपुनरावृत्तये मा प्रहासीः मा गच्छ । ओहाङ् गतावित्यस्य रूपम्। तङभाव आर्षः । कर्मजं फलं त्यक्त्वा परेण वैराग्येण संपन्नो मोक्षार्थं योगाभ्यासमेव कुरुष्व किं राज्येन बन्धुनाशलभ्येनेत्यर्थः ॥ १४ ॥ एवं ज्ञानेन कर्मणामन्तं नाशं गत्वा प्राप्य 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन' इति भगवद्वचनात्, बुद्धतत्त्वोऽपि कृतकृत्योऽपि सत्यादिकं मा त्यज अश्वमेधादीनि कर्माण्यपि लोकसंग्रहार्थं कुरु परन्तु पापस्य कर्मणोऽन्तं समीपं पुनर्मा गाः। ज्ञानोत्तरकालं कृतमपि कर्म न ज्ञानिनं स्पृशतीति भावः । 'तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापकं कर्म न श्लिष्यते' इति श्रुतेः ॥ १५ ॥ तच्चेदिति । भो पार्थाः भो पाण्डवाः तत् पापं कर्म गोत्रवधरूपं द्वेषरूपेण चिराय प्रागेव चेत् करिष्यध्वं तर्हि यद्वने वर्षपूगान् दुःखं वासं निवसध्वं तद्धर्म एवेति यत्तत्पदाध्याहारेण योज्यम् । राज्यार्थं सर्वलोकनाशमिच्छतां भवतां दुर्योधनेन यो वनवासः कारितः स धर्म एवेत्यर्थः ॥१६॥ ननु तदानीं सहायाभावादस्माभिर्वनवासोऽङ्गीकृतो न दुर्योधनाज्ञयेत्याशङ्क्याह–अप्रव्रज्येति । इमा इमानि राज्यादीनि। सुपां सुलुगिति सुपो डादेशः । पुरस्तात् प्रव्रजनकाले एव हित्वा धाओ रूपम्। बलेन धृत्वा अप्रव्रज्य वने प्रव्रजनमकृत्वैव आस्म भवेम वयम्। पाण्डवान् आत्मन्यन्तर्भाव्य उत्तमपुरुषप्रयोगः। यत् यतः पुरस्तादपि एतद्बलं आत्माधीनमेवासीत् ॥ १७ ॥ हीनकालं गते काले इत्यर्थः ॥ २० ॥ एवं पूर्वं युद्धमकुर्वता इदानीमपि तन्न कर्तव्यमित्युक्तम् । अथ

नाधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धि-
र्न संरम्भात् कर्म चकर्थ पापम् ।
आत्थ किं तत्कारणं यस्य हेतोः
प्रज्ञाविरुद्धं कर्म चिकीर्षसीदम् ॥ २२
अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
यशोमुषं पापफलोदयं वा ।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ २३
पापानुबन्धं को नु तं कामयेत
क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः ।
यत्र भीष्मः शान्तनवो हतः स्या-
द्यत्र द्रोणः सहपुत्रो हतः स्यात् ॥ २४
कृपः शल्यः सौमदत्तिर्विकर्णो
विविंशतिः कर्णदुर्योधनौ च ।
एतान् हत्वा कीदृशं तत्सुखं स्या-
द्यद्विन्देथास्तदनु ब्रूहि पार्थ ॥ २५
लब्ध्वाऽपीमां पृथिवीं सागरान्तां
जरामृत्यू नैव हि त्वं प्रजह्याः ।
प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राज-
न्नेवं विद्वान्नैव युद्धं कुरु त्वम् ॥ २६
अमात्यानां यदि कामस्य हेतो-
रेवं युक्तं कर्म चिकीर्षसि त्वम् ।
अपक्रामेः स्वं प्रदायैव तेषां
मा गास्त्वं वै देवयानात् पथोऽद्य ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि सञ्जयवाक्ये
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

युधिष्ठिर उवाच ।
असंशयं सञ्जय सत्यमेत-
द्धर्मो वरः कर्मणां यत्त्वमात्थ ।
ज्ञात्वा तु मां सञ्जय गर्हयेस्त्वं
यदि धर्मं यद्यधर्मं चरेयम् ॥ १
यत्राधर्मो धर्मरूपाणि धत्ते
धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः ।
बिभ्रद्धर्मो धर्मरूपं तथा च
विद्वांसस्तं संप्रपश्यन्ति बुद्ध्या ॥ २
एवं तथैवापदि लिङ्गमेत-
द्धर्माधर्मौ नित्यवृत्ती भजेताम् ।
आद्यं लिङ्गं यस्य तस्य प्रमाण-
मापद्धर्मं सञ्जय तं निबोध ॥ ३

सर्वथाऽपि युद्धं न कर्तव्यं जयपराजययोरव्यवस्थितत्वा-दित्याह--अप्राज्ञ इति । मूढोऽधर्मज्ञो वा युध्यन्नैश्वर्यं लभते प्राज्ञो धर्मज्ञः अयुध्यन् दैवात् ऐश्वर्यात् भ्रश्यतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ ग्रन्थतात्पर्यमाह- नेति । संरम्भात् कोपात् पूर्व-मपि पापभयादेव त्वया न कृतं तर्हि इदानीं प्रज्ञाविरुद्धं तत्किमर्थं चिकीर्षसीति भावः ॥२२॥ अव्याधिजं कटुकं पित्तादिकं विनाऽप्यरोचकं यशोमुषं यशोहरं पेयं गिलनीयं मन्युं क्रोधं प्रशाम्य शान्तो भव ॥ २३ ॥ पापेऽनुबध्नाति तं तथाविधं पापस्य मूलं तं मन्युं यत्र भोगेषु निमित्तेषु । एतेन भीष्मादीनां गुरूणामपि वधो राज्यार्थिनस्त्वत्तो भविष्यतीति दर्शितम् ॥ २४ ॥ देवयानात् पथोऽर्चिरादि-मार्गादपुनरावृत्तिफलात् गोत्रद्रोहेण मा गा इत्यर्थः ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

२८

असंशयमिति । असंशयं यदि धर्मं चरेयं यदि वा अधर्मं तदुभयं ज्ञात्वा परीक्ष्याधर्माचरणमुपलभ्य गर्हयेः निंदस्व ॥ १ ॥ धर्माधर्मपरीक्षायां त्रैविध्यमाह--यत्रेति । यत्र पुरुषे दम्भादिमति अधर्मः अभिचारार्थे मन्त्रजपादिः धर्म इत्येवान्ये जानन्ति तथा प्रच्छन्नयोगिनि दत्तात्रेयादौ धर्मो रागद्वेषादिशून्यतारूपो योगधर्मोऽपि उन्मत्तवदा-चरणाद्धर्मरूप इव दृश्यते । यत्र वसिष्ठादौ धर्मः धर्मरूप एव यद्यपि चाण्डालादौ अधर्मोऽप्यधर्मरूप एवास्ति तथाऽपि तस्यानुपादेयत्वात्त्रयमेव विचार्यम्। पाठान्तरेऽधर्मेति छेदः। एतच्च त्वयाऽपि विदुषा मयि विचार्यमित्याशयः ॥ २ ॥ अत्र आद्ययोः प्रच्छन्नत्वात् चिरकालेन तत्त्वनिश्चयः अन्त्ये तु प्रत्यक्षलिङ्गेऽपि आपत्कालवशाद्धर्माधर्मयोर्व्यत्यासो जायत इत्याह--एवमिति । एतदेवरूपं लोकप्रत्यक्षं लिङ्गं ब्राह्मणस्य स्वाध्यायप्रवचनादि।क्षत्रियस्य शौर्यादि । वैश्यस्य

लुप्तायां तु प्रकृतौ येन कर्म
निष्पादयेत्तत् परीप्सेद्विहीनः ।
प्रकृतिस्थश्चापदि वर्तमान
उभौ गर्ह्यौ भवतः सञ्जयैतौ ॥ ४

अविनाशमिच्छतां ब्राह्मणानां
प्रायश्चित्तं विहितं यद्विधात्रा ।
संपश्येथाः कर्मसु वर्तमानान्
विकर्मस्थान् सञ्जय गर्हयेस्त्वम् ॥ ५

मनीषिणां सत्त्वविच्छेदनाय
विधीयते सत्सु वृत्तिः सदैव ।
अब्राह्मणाः सन्ति तु ये न वैद्याः
सर्वोत्सङ्गं साधु मन्येत तेभ्यः ॥ ६

तदध्वानः पितरो ये च पूर्वे
पितामहा ये च तेभ्यः परेऽन्ये ।
यज्ञैषिणो ये च हि कर्म कुर्यु-
र्नान्यं ततो नास्तिकोऽस्मीति मन्ये ॥ ७

यत्किञ्चनेदं वित्तमस्यां पृथिव्यां
यद्देवानां त्रिदशानां परं यत् ।
प्राजापत्यं त्रिदिवं ब्रह्मलोकं
नाधर्मतः सञ्जय कामयेयम् ॥ ८

धर्मेश्वरः कुशलो नीतिमांश्चा-
प्युपासिता ब्राह्मणानां मनीषी ।
नानाविधांश्चैव महाबलांश्च
राजन्यभोजाननुशास्ति कृष्णः ॥ ९

यदि ह्यहं विसृजन् साम गर्ह्यो
नियुद्ध्यमानो यदि जह्यां स्वधर्मम् ।
महायशाः केशवस्तद्ब्रवीतु
वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः ॥ १०

शैनेयोऽयं चेदयश्चान्धकाश्च
वार्ष्णेयभोजाः कुकुराः सृञ्जयाश्च ।
उपासीना वासुदेवस्य बुद्धिं
निगृह्य शत्रून् सुहृदो नन्दयन्ति ॥ ११

कृष्यादि। तत्तथैव यथोक्तमेव तथाऽपि नित्यवृत्ती नित्यं वर्तेते तौ नित्यवृत्ती धर्माधर्मौ तल्लिङ्गं भजेताम् । अयं भावः क्षत्रालिङ्गं ब्राह्मणवैश्ययोरापदि धर्मः अनापद्यधर्मः तथा चैकस्यैव लिङ्गस्य वर्णान्तरे अवस्थाभेदाद्धर्मत्वमधर्मत्वं च नित्यमिति । तत्रापि विशेषमाह-आर्यमिति । आर्यं ब्राह्मणलिङ्गं याजनादि यस्यास्ति ब्राह्मणस्य तस्यैव तत् प्रमाणमव्यभिचारि आपद्यपि क्षत्रियेण याजनाध्यापनादिकं न कर्तव्यमित्यर्थः । एवंविधं तमापद्धर्मं शास्त्रान्निबोध बुध्यस्व ॥ ३ ॥ ननु कथं तर्हि एकचक्रायां भिक्षाटनं ब्राह्मणस्यैवासाधारणत्वेन विहितं भवाद्भिः कृतमित्याशङ्क्याह-लुप्तायामिति । प्रकृतिः जीविकाहेतुभूतं धनं तच्च क्षत्रियस्य भूमिशस्त्रादिकं वैश्यस्य धनपश्वादिकं तस्मिन्सर्वात्मना नष्टे सति येन कर्म सन्ध्योपासनादिकं निष्पादयेत् तत् भिक्षाटनादिकमपि परीप्सेत् कर्तुमिच्छेत् अन्यथा जीविकाया अभावात्कर्मलोपः प्राणनाशश्च स्यादतोऽत्यन्तापदि तावान् विप्रधर्मोऽपीतरैरनुष्ठेय एव । प्रकृतिस्थश्चेति । आपदि आपद्धर्मे प्रकृतिस्थोऽपि यद्यापद्धर्ममनुसरेत् स लोभाद्गर्ह्यः । आपत्स्थोऽपि यदि प्राकृतं धर्ममनुसरेत् स जीवनलोपात् कुटुम्बहिंसया च गर्ह्य इत्यर्थः ॥ ४ ॥ अविनाशमिति । यत् यस्माद्धेतोः विधात्रा अविनाशो वृत्त्यन्तरोपजीवनेन ब्राह्मण्यस्य नाशो विनाशस्तदभावमिच्छतां ब्राह्मणानामापदुत्तीर्णानां प्रायश्चित्तं विहितं तस्माद्धेतोरापदि अन्यस्यान्यधर्माश्रयणं प्रसक्तमेवेति ज्ञायते। अत एव एकचक्रायामस्माभिः कृतं भिक्षाटनं नानुचितमित्यर्थः । एवमनापदि कर्मसु वर्तमानान् आपदि च विकर्मस्थान् संपश्येथाः सम्यगेवेदमिति पश्येथाः । अन्यथा तु आपदि कर्मस्थान् आत्मपरहिंस्रान् अनापदि विकर्मस्थांश्चातिलुब्धान् विगर्हयेस्त्वम् ॥५॥ किं च मनीषिणां मनसः निग्रहं नाशं कर्तुमिच्छताम्। ईष गतिहिंसादर्शनेष्वित्यस्य रूपम् । सत्त्वविच्छेदनाय सत्त्वस्य बुद्धिसत्त्वस्य चिदात्मना सह एकलोलीभूतस्य विच्छेदनाय मुञ्जेषीकान्यायेन पृथक्करणाय सत्सु सतां गृहेषु वृत्तिर्जीविका शास्त्रे विधीयते । ' वेदानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मनात्मानमन्विच्छेत् 'इतिश्रुत्याऽऽत्मान्वेषणाय सर्वसंन्यासपूर्वकं भिक्षाचर्यविधानात् न ब्राह्मी वृत्तिः कस्यापि निन्द्या । ये तु अब्राह्मणा अपि वैद्याः विद्यानिष्ठाः न भवन्ति तेषां भिक्षाचर्यस्याविधानात् । तेभ्यः तेषामर्थे सर्वोत्सङ्गं सर्वेषामुत्सङ्गं समीपं स्वधर्मसंयोगमापदनापदोरुचितं साधु मन्येत सर्वोच्छेदमिति पाठे तेभ्यस्तेषामर्थे भिक्षाद्यटनं सर्वधर्मोच्छेदाय मन्येतेत्यर्थः ॥ ६ ॥ तदध्वान इति । पित्रादयः यज्ञैषिणो ये ते सर्वे तदध्वानः स एव मयोक्तोऽध्वा मार्गो येषां ते तदध्वानोऽभूवन् हि प्रसिद्धं ये च कर्म न कुर्युः संन्यासिन इत्यर्थः। ते सर्वे तदध्वानः अहमपि आस्तिकोऽस्मीति ततोऽन्यमध्वानं न मन्ये ॥ ७ ॥ एवं स्वस्य नीतिज्ञत्वप्रकाशनप्रसङ्गादापद्धर्मान्योगिधर्मांश्चोक्त्वा प्रकृतमनुसरति यत्किञ्चेति ॥ ८ ॥ धर्मेश्वरः धर्मफलस्य दाता ॥९॥ यदि साम विसृजन् स्यां तर्हि गर्ह्यः स्यां यदि वा युद्ध्यमानः स्वधर्मं जह्यां तदा गर्ह्यः स्याम्। मम तु द्वयमपीष्टमेवेति भावः ॥ १० ॥

वृष्ण्यन्धका ह्युग्रसेनादयो वै
कृष्णप्रणीताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।
मनस्विनः सत्यपरायणाश्च
महाबला यादवा भोगवन्तः ॥ १२
काश्यो बभ्रुः श्रियमुत्तमां गतो
लब्ध्वा कृष्णं भ्रातरमीशितारम् ।
यस्मै कामान् वर्षति वासुदेवो
ग्रीष्मात्यये मेघ इव प्रजाभ्यः ॥ १३
ईदृशोऽयं केशवस्तात विद्वान्
विद्धि ह्येनं कर्मणां निश्चयज्ञम् ।
प्रियश्च नः साधुतमश्च कृष्णो
नातिक्रामे वचनं केशवस्य ॥ १४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

वासुदेव उवाच ।
अविनाशं सञ्जय पाण्डवाना-
मिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियं च ।
तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत
समाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम् ॥ १
कामो हि मे सञ्जय नित्यमेव
नान्यद्ब्रूयां तान्प्रति शाम्यतेति ।
राज्ञश्च हि प्रियमेतच्छृणोमि
मन्ये चैतत्पाण्डवानां समक्षम् ॥ २
सुदुष्करस्तत्र शमो हि नूनं
प्रदर्शितः सञ्जय पाण्डवेन ।
यस्मिन् गृद्धो धृतराष्ट्रः सपुत्रः
कस्मादेषां कलहो नावमूर्च्छेत् ॥ ३
न त्वं धर्मं विचरं सञ्जयेह
मत्तश्च जानासि युधिष्ठिराच्च ।
अथो कस्मात् सञ्जय पाण्डवस्य
उत्साहिनः पूरयतः स्वकर्म ॥ ४
यथाख्यातमावसतः कुटुम्बे
पुरा कस्मात् साधुविलोपमात्थ ।
अस्मिन् विधौ वर्तमाने यथाव-
दुच्चावचा मतयो ब्राह्मणानाम् ॥ ५
कर्मणाऽऽहुः सिद्धिमेके परत्र
हित्वा कर्म विद्यया सिद्धिमेके ।
नाभुञ्जानो भक्ष्यभोज्यस्य तृप्ये-
द्विद्वानपीह विहितं ब्राह्मणानाम् ॥ ६

कृष्णप्रणीताः कृष्णेनैव नीतिपथं नीताः ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे युधिष्ठिरवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

**अविनाशमिति** ॥ १ ॥ शाम्यतेति वचनादन्यत्तान् प्रति न ब्रूयां पाण्डवानां समक्षं राज्ञो युधिष्ठिराच्च एतदेव शृणोमि अहं च एतन्मन्ये मानयामि ॥ २ ॥ तत्र राज्ये निमित्ते गृद्धः लिप्सावान् एवं सति एषां कौरवाणां कस्माद्धेतोः कलहः नावमूर्च्छेत् ॥ ३ ॥ विचरं विचालितं पूरयतः पालयतः ॥४॥ यथाख्यातं प्रसिद्धिमनतिक्रम्य आवसतः आधातिष्ठतः साधुविलोपं धर्मलोपं युधिष्ठिरे कस्माद्धेतोः आत्थ उक्तवान् त्वम् । अस्मिन् विधौ शुचिरद्रोहो कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो यावदायुष्यं वर्तयेदित्येवंरूपे वर्तमानेऽपि ब्राह्मणानामुच्चावचा मतयो गार्हस्थ्यस्य अपरिग्रहे वा त्यागे वा नैष्ठिकब्रह्मचर्ये पारिव्राज्ये वा भवन्ति ॥ ५ ॥ तत्र हेतुमाह—कर्मणेति । सिद्धिं मोक्षमेके । 'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः' इत्येके आहुः । 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इत्येके आहुः । यद्यपि एवं कुटुम्बेऽवस्थितिः संन्यासश्च द्वयमपि तुल्यवत् शास्त्रेण विहितं तथाऽपि कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारन्यायेन आश्रमान्तरसाध्यं ज्ञानं गृहस्थेन साधयितुं शक्यं न तु गृहस्थेन साध्यं यज्ञादिकमाश्रमान्तरेऽप्यस्तीति कृत्स्नो धर्मो गार्हस्थ्य एव प्राप्यत इत्याशयेनाह—नाभुञ्जान इति । यतो विद्वानपि अभुञ्जानो न तृप्यति यतश्च ब्राह्मणानां संन्यासिनामपि गृहस्थगृहे विहितं भोजनादिकम् ॥ ६ ॥

या वै विद्याः साधयन्तीह कर्म
तासां फलं विद्यते नेतरासाम् ।
तत्रेह वै दृष्टफलं तु कर्म
पीत्वोदकं शाम्यति तृष्णयाऽऽर्तः ॥ ७
सोऽयं विधिर्विहितः कर्मणैव
संवर्तते सञ्जय तत्र कर्म ।
तत्र योऽन्यत् कर्मणः साधु मन्ये-
न्मोघं तस्यालपितं दुर्बलस्य ॥ ८
कर्मणाऽमी भान्ति देवाः परत्र
कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा ।
अहोरात्रे विदधत् कर्मणैव
अतन्द्रितो नित्यमुदेति सूर्यः ॥ ९
मासार्धमासानथ नक्षत्रयोगा-
नतन्द्रितश्चन्द्रमाश्चाभ्युपैति ।
अतन्द्रितो दहते जातवेदाः
समिध्यमानः कर्म कुर्वन् प्रजाभ्यः ॥१०
अतन्द्रिता भारमिमं महान्तं
बिभर्ति देवी पृथिवी बलेन ।
अतन्द्रिताः शीघ्रमपो वहन्ति
सन्तर्पयन्त्यः सर्वभूतानि नद्यः ॥ ११
अतन्द्रितो वर्षति भूरितेजाः
सन्नादयन्नन्तरिक्षं दिशश्च ।
अतन्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार
श्रेष्ठत्वमिच्छन् बलभिद्देवतानाम् ॥ १२
हित्वा सुखं मनसश्च प्रियाणि
तेन शक्रः कर्मणा श्रैष्ठ्यमाप ।
सत्यं धर्मं पालयन्नप्रमत्तो
दमं तितिक्षां समतां प्रियं च ॥ १३

एतानि सर्वाण्युपसेवमानः
स देवराज्यं मघवान् प्राप मुख्यम् ।
बृहस्पतिर्ब्रह्मचर्यं चचार
समाहितः संशितात्मा यथावत् ॥ १४
हित्वा सुखं प्रतिरुध्येन्द्रियाणि
तेन देवानामगमद्गौरवं सः ।
तथा नक्षत्राणि कर्मणाऽमुत्र भान्ति
रुद्रादित्या वसवोऽथापि विश्वे ॥ १५
यमो राजा वैश्रवणः कुबेरो
गन्धर्वयक्षाप्सरसश्च सूत ।
ब्रह्मविद्यां ब्रह्मचर्यं क्रियां च
निषेवमाणा ऋषयोऽमुत्र भान्ति ॥ १६
जानन्निमं सर्वलोकस्य धर्मं
विप्रेन्द्राणां क्षत्रियाणां विशां च ।
स कस्मात्त्वं जानतां ज्ञानवान् सन्
व्यायच्छसे सञ्जय कौरवार्थे ॥ १७
आम्नायेषु नित्यसंयोगमस्य
तथाऽश्वमेधे राजसूये च विद्धि ।
संयुज्यते धनुषा वर्मणा च
हस्त्यश्वाद्यै रथशस्त्रैश्च भूयः ॥ १८
ते चेदिमे कौरवाणामुपाय-
मवगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः ।
धर्मत्राणं पुण्यमेषां कृतं स्या-
दार्ये वृत्ते भीमसेनं निगृह्य ॥ १९
ते चेत्पित्र्ये कर्मणि वर्तमाना
आपद्येरन् दिष्टवशेन मृत्युम् ।
यथाशक्त्या पूरयन्तः स्वकर्म
तदप्येषां निधनं स्यात् प्रशस्तम् ॥ २०

तेन कर्मणामनुकूला या विद्यास्ता एव फलवत्यो न तु तत्प्रतिकूला इत्याह–या इति । तथा हि 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता' इति छान्दोग्ये सर्वभूतसंवेशनोद्गमनलिङ्गेन जगत्कारणतया निश्चितस्य प्राणाख्यपरमात्मनो विद्यायाः प्रस्तावकर्मसाधकत्वं दृष्टम् । तासां कर्मसाधकानां विद्यानां फलमस्ति नेतरासां स्वतन्त्राणाम् । अयं भावः–गृहस्थः स्वात्मानमन्यांश्च पित्रादींस्तारयति यतींश्च पुष्णाति यतिस्त्वात्मानमेव तारयति न पित्रादीन् पोषणं च स्वस्यापि न करोति भैक्षोपजीवित्वादतो गार्हस्थ्यमेव श्रेष्ठमिति । किंच नैष्कर्म्यं दृष्टविरुद्धमपीत्याह– तत्रेति । तत्र कर्मतदभावतारतम्ये विचारणीये कर्म इहैव दृष्टफलम् ॥ ७ ॥ सोऽयं ज्ञानविधिः कर्मणैव सह विहितः तत्र च अनुष्ठीयमाने कर्म उद्वर्तते उच्छिद्यते । कर्मसमवेतमेव ज्ञानं सकलकर्मोच्छेदहेतुरित्यर्थः। कर्मणोऽन्यत् संन्यासं मन्येत् मन्यते ॥ ८ ॥ कर्मसमुच्चितं ज्ञानं स्तौति–कर्मणाऽमी भान्तीत्यादिना । ब्रह्मविद्यां ब्रह्मचर्यं क्रियां च निषेवमाणा इत्युपसंहारात् ॥ ९ ॥ व्यायच्छसे निग्रहं करोषि ॥ १७ ॥ आम्नायेष्विति । विद्या धर्मः शौर्यं च युधिष्ठिरे पुष्कलमस्तीति नायमन्येन शिक्षणीयो जेतुं वा शक्य इत्यर्थः ॥ १८ ॥ कौरवाणामवधेन उपायं राज्यप्राप्ताविति शेषः । एषामेतैः भीमसेनमार्ये वृत्ते अहिंसायां निगृह्य पुण्यमेव कृतं स्यात् ॥ १९ ॥ पित्र्ये कर्मणि क्षात्रधर्मे युद्धे पूरयन्तः पालयन्तः ॥ २० ॥

उताहो त्वं मन्यसे शाम्यमेव
राज्ञां युद्धे वर्तते धर्मतन्त्रम् ।
अयुद्धे वा वर्तते धर्मतन्त्रं
तथैव ते वाचमिमां शृणोमि ॥ २१

चातुर्वर्ण्यस्य प्रथमं संविभाग-
मवेक्ष्य त्वं सञ्जय स्वं च कर्म ।
निशम्याथो पाण्डवानां च कर्म
प्रशंस वा निन्द वा या मतिस्ते ॥ २२

अधीयीत ब्राह्मणो वै यजेत
दद्यादीयात्तीर्थमुख्यानि चैव ।
अध्यापयेद्याजयेच्चापि याज्यान्
प्रतिग्रहान् वा विहितान् प्रतीच्छेत् २३

तथा राजन्यो रक्षणं वै प्रजानां
कृत्वा धर्मेणाप्रमत्तोऽथ दत्त्वा ।
यज्ञैरिष्ट्वा सर्ववेदानधीत्य
दारान् कृत्वा पुण्यकृदावसेद्गृहान् ॥ २४

स धर्मात्मा धर्ममधीत्य पुण्यं
यदिच्छया व्रजति ब्रह्मलोकम् ।
वैश्योऽधीत्य कृषिगोरक्षपण्यै-
र्वित्तं चिन्वन् पालयन्नप्रमत्तः ॥ २५

प्रियं कुर्वन् ब्राह्मणक्षत्रियाणां
धर्मशीलः पुण्यकृदावसेद्गृहान् ।
परिचर्या वन्दनं ब्राह्मणानां
नाधीयीत प्रतिषिद्धोऽस्य यज्ञः ।
नित्योत्थितो भूतयेऽतन्द्रितः स्या-
देवं स्मृतः शूद्रधर्मः पुराणः ॥ २६

एतान् राजा पालयन्नप्रमत्तो
नियोजयन् सर्ववर्णान् स्वधर्मे ॥
अकामात्मा समवृत्तिः प्रजासु
नाधार्मिकाननुरुध्येत कामान् ॥ २७

श्रेयांस्तस्माद्यदि विद्येत कश्चि-
दभिज्ञातः सर्वधर्मोपपन्नः ।
स तं द्रष्टुमनुशिष्यन् प्रजानां
न चैतद्बुध्येदिति तस्मिन्नसाधुः ॥ २८

यदा गृध्येत् परभूतौ नृशंसो.
विधिप्रकोपाद्बलमाददानः ।
ततो राज्ञामभवद्युद्धमेत-
त्तत्र जातं वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥ २९

इन्द्रेणैतद्दस्युवधाय कर्म
उत्पादितं वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥ ३०

शाम्यमेव शमः कार्य एवेति मन्यसे तर्हि धर्मतन्त्रं धर्मानुष्ठानं युद्धपक्षेऽस्ति उत अयुद्धपक्षे तयोर्मध्ये यदेव वक्ष्यसि तथैव ते वाचं शृणोमि करिष्यामीत्यर्थः ॥ २१ ॥ ननु क्षत्रधर्मलोपेऽपि गोत्रवधो न कर्तव्य इत्याशङ्क्याह–चातुर्वर्ण्यस्येत्यादिना ॥ २२ ॥ प्रतीच्छेत् प्रतिगृह्णीयात् ॥ २३ ॥ सः क्षत्रियः अधीत्य प्राप्य यदिच्छया यस्य धर्मस्य इच्छया बलेन ब्रह्मलोकं गच्छति नोचेज्जनकादिवदिहैव कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः । भोगमोक्षकरः क्षात्रो धर्मो दुस्त्यज इति भावः ॥ २५ ॥ नाधीयीत वेदाध्ययनं न कुर्यात् । यज्ञः श्रौतः स्मार्तश्च प्रतिषिद्धः । तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनववक्लृप्तः इति श्रुतेः॥२६॥ एतानिति । यथा सर्वाश्रमपालकत्वाद्गृहस्थस्य श्रैष्ठ्यं तथा सर्ववर्णपालकत्वात् धर्मेण राज्यकरणमपि श्रेष्ठतमामित्यर्थः ॥ २७ ॥ तस्मात् राज्ञः श्रेयान् प्रशस्ततरः अभिज्ञातः ज्ञानतः धर्मतश्च यदि कश्चिदस्ति स तं युधिष्ठिरं प्रजानां–कर्मणि षष्ठी–प्रजाः द्रष्टुं राज्यं प्राप्तुमित्यर्थः । अनुशिष्यन् अनुशासितुमिच्छन् एतन्मदुक्तं धर्मजातं युधिष्ठिरेऽस्तीति बुध्येत् । न च तस्मिन्नसाधुः युधिष्ठिरेऽसाधुधर्मो न चास्तीत्यपि बुध्येत् । यद्वा एवं सत्यपि तस्मिन्ननुशास्तरि राजा साधुर्न इति न अपि तु साधुरेव । यदि तेन इतोऽधिकं ज्ञायते उच्यते च तर्हि तस्यापि वचनं करिष्यत्येवेत्यर्थः। अनुशिष्यात् प्रजानां न चेद्गृध्येदिति तस्मिन्नसाध्विति पाठे श्रेयांश्चेत् द्रष्टुं धर्मं दर्शयितुमनुशिष्यात् न चेत्प्रजानां प्रजाः राज्यं न गृध्येदिति हेतोस्तस्मिन् युधिष्ठिरे साध्वेव वर्तेत इति शेषः ॥२८॥ धर्मतस्तु नृशंसत्वात् दुर्योधनो धार्मिकेण राज्ञा वध्य एवेति सूचयन्नाह–यदेत्यादिना सार्धेन । परभूतौ परैश्वर्ये नृशंसश्चोरकल्पो राजा विधिप्रकोपात् दैवप्रातिकूल्यात् गृद्ध्येत् ततो हेतोः राज्ञां परस्परं युद्धं समभवत् । अनेन युद्धाख्यस्य कर्मण उत्पत्तिरुक्ता ॥ २९ ॥ कर्म युद्धं तत्रोत्पत्तिशिष्टं गुणत्रयमाह वर्म कवचं शस्त्रं खड्गादि धनुश्चेति। यत् इन्द्रेण दस्युवधायैतत्त्रयमुत्पादितमत एतैरेव धर्मो दस्युं दुर्योधन यदि हन्यात् स एव धर्म इति भावः ॥३०॥

तत्र पुण्यं दस्युवधेन लभ्यते
सोऽयं दोषः कुरुभिस्तीव्ररूपः ।
अधर्मज्ञैर्धर्ममबुध्यमानैः
प्रादुर्भूतः सञ्जय साधु तन्न ॥ ३१

तत्र राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
धर्म्यं हरेत् पाण्डवानामकस्मात् ।
नावेक्षन्ते राजधर्मं पुराणं
तदन्वयाः कुरवः सर्व एव ॥ ३२

स्तेनो हरेद्यत्र धनं ह्यदृष्टः
प्रसह्य वा यत्र हरेत दृष्टः ।
उभौ गर्ह्यौ भवतः सञ्जयैतौ
किं वै पृथक्त्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्रे ॥ ३३

सोऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं
यमिच्छति क्रोधवशानुगामी ।
भागः पुनः पाण्डवानां निविष्ट-
स्तं नः कस्मादाददीरन् परे वै ॥ ३४

अस्मिन् पदे युद्ध्यतां नो वधोऽपि
श्लाघ्यः पित्र्यं परराज्याद्विशिष्टम् ।
एतान् धर्मान् कौरवाणां पुराणा-
नाचक्षीथाः सञ्जय राजमध्ये ॥ ३५

एते मदान्मृत्युवशाभिपन्नाः
समानीता धार्तराष्ट्रेण मूढाः ।
इदं पुनः कर्म पापीय एव
सभामध्ये पश्य वृत्तं कुरूणाम् ॥ ३६

प्रियां भार्यां द्रौपदीं पाण्डवानां
यशस्विनीं शीलवृत्तोपपन्नाम् ।
यदुपैक्षन्त कुरवो भीष्ममुख्याः
कामानुगेनोपरुद्धां व्रजन्तीम् ॥ ३७

तं चेत्तदा ते सकुमारवृद्धा
अवारयिष्यन् कुरवः समेताः ।
मम प्रियं धृतराष्ट्रोऽकरिष्यत्
पुत्राणां च कृतमस्याभविष्यत् ॥ ३८

दुःशासनः प्रातिलोम्यान्निनाय
सभामध्ये श्वशुराणां च कृष्णाम् ।
सा तत्र नीता करुणं व्यपेक्ष्य
नान्यं क्षत्तुर्नाथमवाप किञ्चित् ॥ ३९

कार्पण्यादेव सहितास्तत्र भूपा
नाशक्नुवन् प्रतिवक्तुं सभायाम् ।
एकः क्षत्ता धर्म्यमर्थं ब्रुवाणो
धर्मबुद्ध्या प्रत्युवाचाल्पबुद्धिम् ॥ ४०

अबुद्ध्वा त्वं धर्ममेतं सभाया-
मथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम् ।
कृष्णा त्वेतत् कर्म चकार शुद्धं
सुदुष्करं तत्र सभां समेत्य ॥ ४१

येन कृच्छ्रात् पाण्डवानुज्जहार
तथाऽऽत्मानं नौरिव सागरौघात् ।
यत्राब्रवीत् सूतपुत्रः सभायां
कृष्णां स्थितां श्वशुराणां समीपे ॥ ४२

न ते गतिर्विद्यते याज्ञसेनि
प्रपद्य दासी धार्तराष्ट्रस्य वेश्म ।
पराजितास्ते पतयो न सन्ति
पतिं चान्यं भाविनि त्वं वृणीष्व ॥ ४३

यो बीभत्सोर्हृदये प्रौत आसी-
दस्थि च्छिन्दन्मर्मघाती सुघोरः ।
कर्णाच्छरो वाङ्मयस्तिग्मतेजाः
प्रतिष्ठितो हृदये फाल्गुनस्य ॥ ४४

कृष्णाजिनानि परिधित्समानान्
दुःशासनः कटुकान्यभ्यभाषत् ।
एते सर्वे षण्ढतिला विनष्टाः
क्षयं गता नरकं दीर्घकालम् ॥ ४५

---

दुर्योधने दस्युत्वं निरूपयति-तत्रेत्यादिना । कुरुभिर्निमित्तभूतैरयं दोषो वञ्चनारूपः प्रादुर्भूतः । पारदार्यदोष इव इन्द्रात् ॥ ३१ ॥ धर्म्यं धर्मादागतं पित्र्यं राज्यं तदन्वयास्तदनुसारिणः ॥ ३२ ॥ पृथक्त्वं स्तेनादन्यत्वम् ॥३३॥ एतं छलेन राज्यापहारं निविष्टः वनवासादूर्ध्वं राज्यं प्राप्यमिति कौरवेषु न्यासरूपेण स्थितः तं भागं नः अस्माकं परे कस्मात् आददीरन् गृहीतवन्तः ॥ ३४ ॥ पदे पदनीये अवश्यप्राह्ये भागे निमित्ते ॥ ३५ ॥ कामानुगेन रजसा उपरुद्धां गृहकर्मतो निरुद्धां पाठान्तरे रजसा उपरुद्धं यथा स्यात्तथा व्रजन्तीम् ॥ ३७ ॥ तं दुःशासनं यद्यवारयिष्यत् तदा मम प्रियं अकरिष्यत् अस्य पुत्राणां च दुर्योधनादीनां प्रियं कृतमभविष्यत् । दुःशासनस्यानिवारणान्मत्प्रियस्याकरणाच्च तत्पुत्राणां नाशो भविष्यतीति तत्त्वोक्तिः ॥ ३८ ॥ प्रातिलोम्यात् अक्रमेण श्वशुराणां मध्ये कृष्णां सभां निनायेति संबन्धः । किंचित्करुणं व्यपेक्ष्य दीनं यथा स्यात्तथा किञ्चिदालोच्येत्यर्थः । क्षत्तुरन्यं नाथं रक्षितारं न अवाप ॥ ३९ ॥ कार्पण्यात् दैन्यात् ॥ ४० ॥ पाण्डवस्य धर्ममुपदेष्टुमिच्छसे हे सञ्जयेति शेषः ॥ ४१ ॥ प्रपद्य गच्छ ॥ ४३ ॥ परिधित्समानान् परिधातुमिच्छतः ॥४५॥

गान्धारराजः शकुनिर्निकृत्या
यदब्रवीत् द्यूतकाले स पार्थम् ।
पराजितो नन्दनः किं तवास्ति
कृष्णया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या ॥ ४६

जानासि त्वं सञ्जय सर्वमेतत्
द्यूते वाक्यं गर्ह्यमेवं यथोक्तम् ।
स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं
समाधातुं कार्यमेतद्विपन्नम् ॥ ४७

अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं
शमं कुरूणामपि चेच्छकेयम् ।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महोदयम्
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ ४८

अपि मे वाचं भाषमाणस्य काव्यां
धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम् ।
अवेक्षेरन् धार्तराष्ट्राः समक्षं
मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ ४९

अतोऽन्यथा रथिना फाल्गुनेन
भीमेन चैवाहवदंशितेन ।
परासिक्तान् धार्तराष्ट्रांश्च विद्धि
प्रदह्यमानान् कर्मणा स्वेन पापान् ५०

पराजितान् पाण्डवेयांस्तु वाचो
रौद्रा रूक्षा भाषते धार्तराष्ट्रः ।
गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो
दुर्योधनं स्मारयिता हि काले ॥ ५१

सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥ ५२

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा ।
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ।

वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
व्याघ्रास्ते वै सञ्जय पाण्डुपुत्राः ॥ ५३

मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं
मा व्याघ्राऽनीनशन्वनात् ॥ ५४

निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्
तस्माद्व्याघ्रो वनं रक्षेद्वनं व्याघ्रं च पालयेत् ॥ ५५

लताधर्मा धार्तराष्ट्राः शालाः सञ्जय पाण्डवाः ।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ५६

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः ।
यत्कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत्करोतु नराधिपः ॥ ५७

स्थिताः शमे महात्मानः पाण्डवा धर्मचारिणः ।
योधाः समर्थास्तद्विद्वन्नाचक्षीथा यथातथम् ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि कृष्णवाक्ये
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

सञ्जय उवाच ।
आमन्त्रये त्वां नरदेवदेव
गच्छाम्यहं पाण्डव स्वस्ति तेऽस्तु ।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं हि किञ्चि-
दुच्चारितं मे मनसोऽभिषङ्गात् ॥ १

जनार्दनं भीमसेनार्जुनौ च
माद्रीसुतौ सात्यकिं चेकितानम् ।
आमन्त्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः
सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः ॥ २

---

नन्दन आनन्दयिता कनिष्ठभ्राता ॥ ४६ ॥ विपन्नं नष्टं समाधातुं समीकर्तुम् ॥४७॥ शकेयं शक्तश्चेत्स्याम् ॥४८॥ काव्यां शौक्रीं नीतियुक्तामित्यर्थः ॥ ४९ ॥ परासिक्तान् निर्धूतान् संपदा हीनान् ॥५०॥ रौद्राः मर्मच्छिदः रूक्षाः निःस्नेहाः भाषते द्यूतावसानेऽभाषत ॥ ५१ ॥ अहमीश्वरः ब्रह्म वेदः ब्राह्मणाश्च धार्तराष्ट्रोच्छेदे एको धृतराष्ट्र एव शोच्यो भवेत् पाण्डवोच्छेदे तु वयं त्रयोऽपि शोच्या भविष्याम इति श्लोकद्वयस्यार्थः । बहूनामुच्छेदो न भविष्यतीति तात्पर्यम् ॥ ५३ ॥ लतेति । पाण्डवाश्रयेणैव धार्तराष्ट्राणां जीवनं नान्यथेति भावः ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

**आमन्त्रय इति** । अभिषङ्गात् आवेशात् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
अनुज्ञातः सञ्जय स्वस्ति गच्छ
न नः स्मरस्यप्रियं जातु विद्वन् ।
विद्मश्च त्वां ते च वयं च सर्वे
शुद्धात्मानं मध्यगतं सभास्थम् ॥ ३
आप्तो दूतः सञ्जय सुप्रियोऽसि
कल्याणवाक् शीलवांस्तृप्तिमांश्च ।
न मुह्येस्त्वं सञ्जय जातु मत्या
न च क्रुद्ध्येरुच्यमानो दुरुक्तैः ॥ ४
न मर्मगां जातु वक्ताऽसि रूक्षां
नोपश्रुतिं कटुकां नोत मुक्ताम् ।
धर्मारामामर्थवतीमहिंस्रा-
मेतां वाचं तव जानीम सूत ॥ ५
त्वमेव नः प्रियतमोऽसि दूत
इहागच्छेद्विदुरो वा द्वितीयः ।
अभीक्ष्णदृष्टोऽसि पुरा हि नस्त्वं
धनञ्जयस्यात्मसमः सखाऽसि ॥ ६
इतो गत्वा सञ्जय क्षिप्रमेव
उपातिष्ठेथा ब्राह्मणान् ये तदर्हाः ।
विशुद्धवीर्याश्चरणोपपन्नाः
कुले जाताः सर्वधर्मोपपन्नाः ॥ ७
स्वाध्यायिनो ब्राह्मणा भिक्षवश्च
तपस्विनो ये च नित्या वनेषु ।
अभिवाद्या वै मद्वचनेन वृद्धा-
स्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः ॥ ८
पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञ-
स्तथाऽऽचार्यानृत्विजो ये च तस्य ।
तैश्च त्वं तात सहितैर्यथार्हं
सङ्गच्छेथाः कुशलेनैव सूत ॥ ९
अश्रोत्रिया ये च वसन्ति वृद्धा
मनस्विनः शीलबलोपपन्नाः ।
आशंसन्तोऽस्माकमनुस्मरन्तो
यथाशक्ति धर्ममात्रां चरन्तः ॥ १०
श्लाघस्व मां कुशलिनं स्म तेभ्यो
ह्यनामयं तात पृच्छेर्जघन्यम् ।
ये जीवन्ति व्यवहारेण राष्ट्रे
ये पालयन्तो निवसन्ति राष्ट्रे ॥ ११
आचार्य इष्टो नयगो विधेयो
वेदानभीप्सन् ब्रह्मचर्यं चचार ।
योऽस्त्रं चतुष्पात्पुनरेव चक्रे
द्रोणः प्रसन्नोऽभिवाद्यस्त्वयाऽसौ ॥ १२
अधीतविद्यश्चरणोपपन्नो
योऽस्त्रं चतुष्पात्पुनरेव चक्रे ।
गन्धर्वपुत्रप्रतिमं तरस्विनं
तमश्वत्थामानं कुशलं स्म पृच्छेः ॥ १३
शारद्वतस्यावसथं स्म गत्वा
महारथस्यात्मविदां वरस्य ।
त्वं मामभीक्ष्णं परिकीर्तयन् वै
कृपस्य पादौ सञ्जय पाणिना स्पृशेः १४
यस्मिन् शौर्यमानृशंस्यं तपश्च
प्रज्ञा शीलं श्रुतिसत्त्वे धृतिश्च ।
पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य
भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः ॥ १५
प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेता कुरूणां
बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी ।
तस्मै राज्ञे स्थविरायाभिवाद्य
आचक्षीथाः सञ्जय मामरोगम् ॥ १६
ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मन्दो
मूर्खः शठः सञ्जय पापशीलः ।
प्रशास्ता वै पृथिवीं येन सर्वां
सुयोधनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १७
भ्राता कनीयानपि तस्य मन्द-
स्तथाशीलः सञ्जय सोऽपि शश्वत् ।
महेष्वासः शूरतमः कुरूणां
दुःशासनः कुशलं तात वाच्यः ॥ १८
×यस्य कामो वर्तते नित्यमेव
नान्यच्छमाद्भारतानामिति स्म ।
स बाह्लिकानामृषभो मनीषी
त्वयाऽभिवाद्यः सञ्जय साधुशीलः १९

---

उपश्रुतिं वार्तां रूक्षां मर्मगां च नो वक्ताऽसि कटुकां नीरसां मुक्तां अप्रकृतां कार्यहीनां वा ॥ ५ ॥ चरणं ब्रह्मचर्येणाध्ययनम् ॥ ७ ॥ अश्रोत्रियाः अत्रैवर्णिकाः शूद्रादयः वृद्धत्वाच्च धर्ममात्रां धर्मलेशं चरन्तः ॥ १० ॥ श्लाघस्व स्तुहि पूर्वं जघन्यं पश्चात्तेभ्यस्तेषामनामयं पृच्छेः । व्यवहारेण वाणिज्यादिना पालयन्तः स्थानाधिकारिणः ॥११॥ चतुष्पात् मन्त्र उपचारः प्रयोगः संहारश्चेति चत्वारः पादा अस्येति अस्त्रम् ॥१२ ॥गन्धर्वेति सौंदर्य सङ्गीतं च तस्मिन् द्योतितम् ॥१३॥×शमादन्यः कामो न वर्तत इति योजना।

गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो
विज्ञानवान्नैव च निष्ठुरो यः ।
स्नेहादमर्षं सहते सदैव
स सोमदत्तः पूजनीयो मतो मे ॥ २०

अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः
स नो भ्राता सञ्जय मत्सखा च ।
महेष्वासो रथिनामुत्तमोऽर्हः
सहामात्यः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ २१

ये चैवान्ये कुरुमुख्या युवानः
पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्चैव ये नः ।
यं यमेषां मन्यसे येन योग्यं
तत्तत्प्रोच्यानामयं सूत वाच्याः ॥ २२

ये राजानः पाण्डवायोधनाय
समानीता धार्तराष्ट्रेण केचित् ।
वशातयः शाल्वकाः केकयाश्च
तथाऽम्बष्ठा ये त्रिगर्ताश्च मुख्याः ॥ २३

प्राच्योदीच्या दाक्षिणात्याश्च शूरा-
स्तथा प्रतीच्याः पार्वतीयाश्च सर्वे ।
अनृशंसाः शीलवृत्तोपपन्ना-
स्तेषां सर्वेषां कुशलं सूत पृच्छेः ॥ २४

हस्त्यारोहा रथिनः सादिनश्च
पदातयश्चार्यसङ्घा महान्तः ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म नित्य-
मनामयं परिपृच्छेः समग्रान् ॥ २५

तथा राज्ञो ह्यर्थयुक्तानमात्यान्
दौवारिकान् ये च सेनां नयन्ति ।
आयव्ययं ये गणयन्ति नित्य-
मर्थांश्च ये महतश्चिन्तयन्ति ॥ २६

वृन्दारकं कुरुमध्येष्वमूढं
महाप्रज्ञं सर्वधर्मोपपन्नम् ।
न तस्य युद्धं रोचते वै कदाचि-
द्वैश्यापुत्रं कुशलं तात पृच्छेः ॥ २७

निकर्तने देवने योऽद्वितीय-
श्छन्नोपधः साधुदेवी मताक्षः ।
यो दुर्जयो देवरथेन संख्ये
स चित्रसेनः कुशलं तात वाच्यः ॥ २८

गान्धारराजः शकुनिः पार्वतीयो
निकर्तनीयोऽद्वितीयोऽक्षदेवी ।
मानं कुर्वन् धार्तराष्ट्रस्य सूत
मिथ्याबुद्धेः कुशलं तात पृच्छेः ॥ २९

यः पाण्डवानेकरथेन वीरः
समुत्सहत्यप्रधृष्यान् विजेतुम् ।
यो मुह्यतां मोहयिताऽद्वितीयो
वैकर्तनः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ ३०

स एव भक्तः स गुरुः स भर्ता
स वै पिता स च माता सुहृच्च ।
अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी
स नो मन्त्री कुशलं तं स्म पृच्छेः ॥ ३१

वृद्धाः स्त्रियो याश्च गुणोपपन्ना
ज्ञायन्ते नः सञ्जय मातरस्ताः ।
ताभिः सर्वाभिः सहिताभिः समेत्य
स्त्रीभिः सवृद्धाभिरभिवादं वदेथाः ३२

कच्चित् पुत्रा जीवपुत्राः सुसम्य-
ग्वर्तन्ते वो वृत्तिमनृशंसरूपाः ।
इति स्मोक्त्वा सञ्जय ब्रूहि पश्चा-
दजातशत्रुः कुशली सपुत्रः ॥ ३३

या नो भार्याः सञ्जय वेत्थ तत्र-
तासां सर्वासां कुशलं तात पृच्छेः ।
सुसंगुप्ताः सुरभयोऽनवद्याः
कच्चिद्गृहानावसथाप्रमत्ताः ॥ ३४

कच्चिद्वृत्तिं श्वशुरेषु भद्राः
कल्याणीं वर्तध्वमनृशंसरूपाम् ।
यथा च वः स्युः पतयोऽनुकूला-
स्तथा वृत्तिमात्मनः स्थापयध्वम् ॥ ३५

या नः स्नुषाः सञ्जय वेत्थ तत्र
प्राप्ताः कुलेभ्यश्च गुणोपपन्नाः ।
प्रजावत्यो ब्रूहि समेत्य ताश्च
युधिष्ठिरो वोऽभ्यवदत् प्रसन्नः ॥ ३६

कन्याः स्वजेथाः सदनेषु सञ्जय
अनामयं मद्वचनेन पृष्ट्वा ।
कल्याणा वः सन्तु पतयोऽनकूला
यूयं पतीनां भवतानुकूलाः ॥ ३७

पाण्डवायोधनाय पाण्डवैः सह युद्धाय तथाऽवन्त्या इत्यपि पाठः ॥ २३ ॥ वृन्दारकं श्रेष्ठम् ॥ २७ ॥ निकर्तनेऽर्थापहारे साध्ये । प्रथमान्तपाठेऽर्थापहर्ता । छन्नोपधो गुप्तछलः ॥ २८ ॥ मुह्यतां धार्तराष्ट्राणाम् ॥ ३० ॥ न इति धार्तराष्ट्रान् अन्तर्भाव्योक्तं तेषां भार्या इत्यर्थः । सुसंगुप्ता इति कुशलप्रश्नप्रकारकथनम् ॥ ३४ ॥

अलंकृता वस्त्रवत्यः सुगन्धा
अबीभत्साः सुखिता भोगवत्यः ।
लघु यासां दर्शनं वाक् च लघ्वी
वेशस्त्रियः कुशलं तात पृच्छेः ॥ ३८

दास्यः स्युर्या ये च दासाः कुरूणां
तदाश्रया बहवः कुब्जखञ्जाः ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्यो-
ऽप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ३९

कच्चिद्वृत्तिं वर्तते वै पुराणीं
कच्चिद्भोगान् धार्तराष्ट्रो ददाति ।
अङ्गहीनान् कृपणान् वामनान् वा
यानानृशंस्यो धृतराष्ट्रो बिभर्ति ॥ ४०

अन्धांश्च सर्वान् स्थविरांस्तथैव
हस्त्याजीवा बहवो येऽत्र सन्ति ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्यो-
ऽप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ४१

मा भैष्ट दुःखेन कुजीवितेन
नूनं कृतं परलोकेषु पापम् ।
निगृह्य शत्रून् सुहृदोऽनुगृह्य
वासोभिरन्नेन च वो भरिष्ये ॥ ४२

सन्त्येव मे ब्राह्मणेभ्यः कृतानि
भावीन्यथो नो बत वर्तयन्ति ।
तान् पश्यामि युक्तरूपांस्तथैव
तामेव सिद्धिं श्रावयेथा नृपं तम् ॥ ४३

ये चानाथा दुर्बलाः सर्वकाल-
मात्मन्येव प्रयतन्तेऽथ मूढाः ।
तांश्चापि त्वं कृपणान् सर्वथैवा-
स्मद्वाक्यात् कुशलं तात पृच्छेः ॥ ४४

ये चाप्यन्ये संश्रिता धार्तराष्ट्रा-
न्नानादिग्भ्योऽभ्यागताः सूतपुत्र ।
दृष्ट्वा तांश्चैवार्हतश्चापि सर्वान्
संपृच्छेथाः कुशलं चाव्ययं च ॥ ४५

एवं सर्वानागताभ्यागतांश्च
राज्ञो दूतान् सर्वदिग्भ्योऽभ्युपेतान् ।
पृष्ट्वा सर्वान् कुशलं तांश्च सूत
पश्चादहं कुशली तेषु वाच्यः ॥ ४६

न हीदृशाः सन्त्यपरे पृथिव्यां
ये योधका धार्तराष्ट्रेण लब्धाः ।
धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव
महाबलः शत्रुनिबर्हणाय ॥ ४७

इदं पुनर्वचनं धार्तराष्ट्रं
सुयोधनं सञ्जय श्रावयेथाः ।
यस्ते शरीरे हृदयं दुनोति
कामः कुरूनसपत्नोऽनुशिष्याम् ॥ ४८

न विद्यते युक्तिरेतस्य काचि-
न्नैवंविधाः स्याम यथा प्रियं ते ।
ददस्व वा शक्रपुरीं ममैव
युद्धयस्व वा भारतमुख्य वीर ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिरसन्देशे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

युधिष्ठिर उवाच ।

उत सन्तमसन्तं वा बालं वृद्धं च सञ्जय ।
उताबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशे ॥ १

लघु शीघ्रहारि वेशस्त्रियो वेश्याः ॥ ३८ ॥ आनृशंस्यं दयामर्हतीत्यानृशंस्यः ॥ ४० ॥ शत्रून् धार्तराष्ट्रान् निगृह्य वः युष्मान् भरिष्ये पोषयिष्ये इति ब्रूया इति शेषः ॥ ४२ ॥ सन्तीति मे मया कृतानि वत्सरदेयानि नो वर्तयन्ति न चालयन्ति त्वदीया अधिकारिणः तान्यहं यथा यथावत्पश्यामि तथैव तान् सिद्धिं त्वद्दत्तं सम्यक् परिपालयामीति दूतद्वारा मां श्रावयेथा इति तं नृपं दुर्योधनं ब्रूहीति शेषः। एतेन ब्राह्मणवृत्तिषु पक्षपातो दुर्योधने च कनिष्ठत्वादाज्ञाप्रतिपालनौचित्यं च दर्शितम् ॥ ४३ ॥ आत्मन्येव प्रयतन्ते न तु कर्तुं शक्नुवन्ति ॥ ४४ ॥ नहीति । धर्मबलेनैव जयो भविष्यति न सहायैरित्यर्थः । नित्यः अविनाशिफलः ॥ ४७ ॥ युक्तिः संभावना एतस्यार्थस्य न विद्यते। शक्रपुरीमिन्द्रप्रस्थम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

उतेति । सन्तं साधुमसन्तं दुष्टं धाता ईश्वरः ॥ १ ॥ शुक्र

उत बालाय पाण्डित्यं पण्डितायोत बालताम् ।
ददाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २
बलं जिज्ञासमानस्य आचक्षीथा यथातथम् ।
अथ मन्त्रं मन्त्रयित्वा याथातथ्येन हृष्टवत् ॥ ३
गावल्गणे कुरून् गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम् ।
अभिवाद्योपसङ्गृह्य ततः पृच्छेरनामयम् ॥ ४
ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम् ।
तवैव राजन् वीर्येण सुखं जीवन्ति पाण्डवाः ॥
तव प्रसादाद्बालास्ते प्राप्ता राज्यमरिन्दम ।
राज्ये तान् स्थापयित्वाऽग्रे नोपेक्षस्व विनश्यतः
सर्वमप्येतदेकस्य नालं सञ्जय कस्यचित् ।
तात संहत्य जीवामो द्विषतां मा वशं गमः ॥ ७
तथा भीष्मं शान्तनवं भारतानां पितामहम् ।
शिरसाऽभिवदेथास्त्वं मम नाम प्रकीर्तयन् ॥ ८
अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोऽस्माकं पितामहः ।
भवता शन्तनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धृतः ॥ ९
स त्वं कुरु तथा तात स्वमतेन पितामह ।
यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥
तथैव विदुरं ब्रूयाः कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरे ॥ ११
अथ दुर्योधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम् ।
मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः ॥ १२
अपापां यदुपैक्षस्त्वं कृष्णामेतां सभागताम् ।
तद्दुःखमतितिक्षाम मावधीष्म कुरूनिति ॥ १३
एवं पूर्वापरान् क्लेशानतितिक्षन्त पाण्डवाः ।
बलीयांसोऽपि सन्तो यत्तत्सर्वं कुरवो विदुः १४
यन्नः प्रव्राजयेः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान् ।
तद्दुःखमतितिक्षाम मावधीष्म कुरूनिति ॥ १५
यत्कुन्तीं समतिक्रम्य कृष्णां केशेष्वधर्षयत् ।
दुःशासनस्तेऽनुमते तच्चास्माभिरुपेक्षितम् ॥ १६
अथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परन्तप ।
निवर्तय परद्रव्याद्बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥ १७
शान्तिरेवं भवेद्राजन् प्रीतिश्चैव परस्परम् ।
राज्यैकदेशमपि नः प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥ १८
अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ।
अवसानं भवत्वत्र किञ्चिदेकं च पञ्चमम् ॥ १९
भ्रातॄणां देहि पञ्चानां पञ्चग्रामान् सुयोधन ।
शान्तिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सह सञ्जय ॥
भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम् ।
स्मयमानाः समायान्तु पाञ्चालाः कुरुभिः सह ॥
अक्षतान् कुरुपाञ्चालान् पश्येयमिति कामये ।
सर्वे सुमनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ ॥ २२
अलमेव शमायास्मि तथा युद्धाय सञ्जय ।
धर्मार्थयोरलं चाहं मृदवे दारुणाय च ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिरसंदेशे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

## ३२

वैशम्पायन उवाच ।
अनुज्ञातः पाण्डवेन प्रययौ सञ्जयस्तदा ।
शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः ॥ १
संप्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च ।
अन्तःपुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥ २
आचक्ष्व धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां समुपागतम् ।
सकाशात् पाण्डुपुत्राणां सञ्जयं मा चिरं कृथाः

जागर्ति चेदभिवदेस्त्वं हि द्वाःस्थ
प्रविशेयं विदितो भूमिपस्य ।
निवेद्यमत्रात्ययिकं हि मेऽस्ति
द्वाःस्थोऽथ श्रुत्वा नृपतिं जगाद ॥ ५

---

बीजभूतं प्राचीनं कर्म उच्चरन्नुदीपयन् ॥ २ ॥ सर्वं ब्रह्माण्डं संहृत्य एकीभूय ॥ ७ ॥ अतितिक्षाम क्षान्तवन्तो वयं तत्र हेतुः मावधीष्मेति ॥१३॥ गृद्धां लुब्धाम् ॥१७॥ अवसानं वसतिस्थानम् ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

३२

**अनुज्ञात इति** । अनुज्ञातः गच्छेत्युक्तः ॥ १ ॥ आत्ययिकमावश्यकम् ॥ ४ ॥

द्वाःस्थ उवाच ।

सञ्जयोऽयं भूमिपते नमस्ते
दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते ।
प्राप्तो दूतः पाण्डवानां सकाशात्
प्रशाधि राजन् किमयं करोतु ॥ ५

धृतराष्ट्र उवाच ।

आचक्ष्व मां कुशलिनं कल्पमस्मै
प्रवेश्यतां स्वागतं सञ्जयाय ।
न चाहमेतस्य भवाम्यकल्पः
स मे कस्माद्द्वारि तिष्ठेच्च सक्तः ॥ ६

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रविश्यानुमते नृपस्य
महद्वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम् ।
सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद
वैचित्रवीर्यं प्राञ्जलिः सूतपुत्रः ॥ ७

सञ्जय उवाच ।

सञ्जयोऽहं भूमिपते नमस्ते
प्राप्तोऽस्मि गत्वा नरदेव पाण्डवान् ।
अभिवाद्य त्वां पाण्डुपुत्रो मनस्वी
युधिष्ठिरः कुशलं चान्वपृच्छत् ॥ ८
स ते पुत्रान् पृच्छति प्रीयमाणः
कच्चित्पुत्रैः प्रीयसे नप्तृभिश्च ।
तथा सुहृद्भिः सचिवैश्च राजन्
ये चापि त्वामुपजीवन्ति तैश्च ॥ ९

धृतराष्ट्र उवाच ।

अभिनन्द्य त्वां तात वदामि सञ्जय
अजातशत्रुं च सुखेन पार्थम् ।
कच्चित् स राजा कुशली सपुत्रः
सहामात्यः सानुजः कौरवाणाम् ॥ १०

सञ्जय उवाच ।

सहामात्यः कुशली पाण्डुपुत्रो
बुभूषते यच्च तेऽग्रेऽऽत्मनोऽभूत् ।
निर्णिक्तधर्मार्थकरो मनस्वी
बहुश्रुतो दृष्टिमान् शीलवांश्च ॥ ११
परो धर्मात् पाण्डवस्यानृशंस्यं
धर्मः परो वित्तचयान्मतोऽस्य ।
सुखप्रिये धर्महीनेऽनपार्थे
नु रुध्यते भारत तस्य बुद्धिः ॥ १२
परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते
सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।
इमं दृष्ट्वा नियमं पाण्डवस्य
मन्ये परं कर्म दैवं मनुष्यात् ॥ १३
इमं च दृष्ट्वा तव कर्मदोषं
पापोदर्कं घोरमवर्णरूपम् ।
यावत्परः कामयतेऽतिवेलं
तावन्नरोऽयं लभते प्रशंसाम् ॥ १४
अजातशत्रुस्तु विहाय पापं
जीर्णां त्वचं सर्प इवासमर्थाम् ।
विरोचतेऽहार्यवृत्तेन वीरो
युधिष्ठिरस्त्वयि पापं विसृज्य ॥ १५
हन्तात्मनः कर्म निबोध राजन्
धर्मार्थयुक्तादार्यवृत्तादपेतम् ।
उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन्
भूयश्च पापं प्रसजेदमुत्र ॥ १६

कल्पं दृढम् अकल्पः दर्शने असमर्थः । सक्तः निरुद्धः ॥६॥ प्राज्ञाः शूराः आर्याः साधवश्च तैर्गुप्तम् ॥ ७ ॥ नप्तृभिः पुत्रस्य पुत्रैः॥ ९ ॥ अजातशत्रुं सुखेन अभिनन्द्य त्वां प्रतिवदामि कच्चिदिति ॥ १० ॥ ते तव अग्रे यत् आत्मनः—पूर्वरूपमार्षम्—राज्यधनादिकमभूत् तत् बुभूषते प्राप्तुमिच्छति। अग्रे मनोऽभूदिति पाठे अनुद्यूतात् प्राक् यत्त्वया दत्तं तद्बुभूषते इति ज्ञेयम् । निर्णिक्तौ दोषमलहीनौ धर्मार्थौ करोतीति स तथा मनस्वी उदारः दृष्टिमान् क्रान्तदर्शी ॥ ११ ॥ परो· मुख्यः आनृशंस्यं दया ततः परोऽमुख्यः वित्तचयात् जात इति शेषः वित्तसाध्यः यज्ञदानादिः । किं च तस्य बुद्धिः अनपार्थे न अपार्थे निष्प्रयोजने सप्रयोजने सुखप्रिये सन्धिरार्षः । नु निश्चितं रुध्यते अनुरुध्यते । अन्नादिजं देहपुष्टिसुखं पुत्रादि प्रियं च स परोपकारार्थमेवानुरुध्यते न कामकारेणेत्यर्थः । पार्थ इति पाठे तस्य बुद्धिरित्युत्तरान्वयि इतीति शेषः ॥ १२ ॥ परेण ईश्वरेण प्रयुक्तः नियमं निग्रहं मनुष्यात् मनुष्यकारात् दैवं ऐश्वरं कर्म परं श्रेष्ठं मन्ये ॥१३॥ अवर्णरूपमवर्णनीयरूपमवाच्यमित्यर्थः । यावत् परः उत्कृष्टः शत्रुः कामयते तिष्ठत्वयं कञ्चित्कालमितीच्छति तावदपरो नरः प्रशंसां लभते ॥ १४ ॥ जीर्णत्वादेव देहे स्थातुमसमर्थाम् अहार्येण स्वाभाविकेन वृत्तेन । यो हि स्वस्वरूपे तिष्ठति तस्य पापं शत्रुष्वेव गच्छति तथा च श्रुतिः ‘ तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम् ’ इति ॥१५॥हन्त आलोचने सानुग्रहसंबोधने वा उपक्रोशं निंदामुत्र परलोके पापं दुःखं नरकमित्यर्थः ॥ १६ ॥ तैर्विना

स त्वमर्थं संशयितं विना तै-
राशंससे पुत्रवशानुगोऽस्य ।
अधर्मशब्दश्च महान् पृथिव्यां
नेदं कर्म त्वत्समं भारताग्र्य ॥ १७

हीनप्रज्ञो दौष्कुलेयो नृशंसो
दीर्घं वैरी क्षत्रविद्यास्वधीरः ।
एवंधर्मानापदः संश्रयेयु-
र्हीनवीर्यो यश्च भवेदशिष्टः ॥ १८

कुले जातो बलवान् यो यशस्वी
बहुश्रुतः सुखजीवी यतात्मा ।
धर्माधर्मौ ग्रथितौ यो बिभर्ति
स ह्यस्य दिष्टस्य वशादुपैति ॥ १९

कथं हि मन्त्राग्र्यधरो मनीषी
धर्मार्थयोरापदि संप्रणेता ।
एवमुक्तः सर्वमन्त्रैरहीनो
नरो नृशंसं कर्म कुर्यादमूढः ॥ २०

तव ह्यमी मन्त्रविदः समेत्य
समासते कर्मसु नित्ययुक्ताः ।
तेषामयं बलवान्निश्चयश्च
कुरुक्षये नियमेनोदपादि ॥ २१

अकालिकं कुरवो नाभविष्यन्
पापेन चेत्पापमजातशत्रुः ।
इच्छेज्जातु त्वयि पापं विसृज्य
निन्दा चेयं तव लोकेऽभविष्यत् ॥ २२

किमन्यत्र विषयादीश्वराणां
यत्र पार्थः परलोकं स्म द्रष्टुम् ।
अत्यक्रामत् स तथा संमतः स्या-
न्न संशयो नास्ति मनुष्यकारः ॥ २३

एतान् गुणान् कर्मकृतानवेक्ष्य
भावाभावौ वर्तमानावनित्यौ ।
बलिर्हि राजा पारमविन्दमानो
नान्यत्कालात् कारणं तत्र मेने ॥ २४

चक्षुःश्रोत्रे नासिका त्वक् च जिह्वा
ज्ञानस्यैतान्यायतनानि जन्तोः ।
तानि प्रीतान्येव तृष्णाक्षयान्ते
तान्यव्यथो दुःखहीनः प्रणुद्यात् ॥ २५

न त्वेव मन्ये पुरुषस्य कर्म
संवर्तते सुप्रयुक्तं यथावत् ।
मातुः पितुः कर्मणाऽभिप्रसूतः
संवर्धते विधिवद्भोजनेन ॥ २६

---

एकाकिना संशयितं दुर्लभमपि आशंससे प्राप्तुमस्य तव-महान्पृथिव्यामधर्मशब्दोऽकीर्तिर्भवेत् ॥ १७ ॥ एवं-धर्मान् ईदृशधर्मयुक्तान् पुरुषान् ॥ १८ ॥ धर्माधर्मौ सत्यानृते प्रथितौ सत्यं विनाऽनृतं नास्ति निराधिष्ठानकभ्रमासंभवात् । अनृतं देहं विना च सत्यं ब्रह्म न प्रथते अत उभयं यो धत्ते केवलं बाह्यनिष्ठो न भवति स हि स एव दिष्टस्य वशात् भाग्यवशात् अस्य कुले जातत्वादिगुणजातस्य-कर्मणि षष्ठी—इदं गुणषट्कमुपैति प्राप्नोति त्वं तु कुले जातोऽपि केवलमनृतोपजीवित्वात् गुणान्तरहीनोऽसीति भावः ॥१९॥ अत एव सत्यामपि संपादि त्वया मौढ्यात् नृशंसं कृतमित्याह—कथमिति । मन्त्र एव अग्र्यः श्रेष्ठो येषां ते मन्त्राग्र्याः भीष्मादयः तेषां धरो धर्ता तैरेव-मुक्तरीत्या द्यूतं मा कुर्वित्युक्तः कथं नृशंसं कर्म पाण्डव-प्रव्राजनं कुर्यान्न कथमपीत्यर्थः ॥ २० ॥ अमी कर्णादयः तेषां कुरुक्षये कुरुक्षयनिमित्तमयं राज्यं न देयमिति निश्चयः नियमेन उदपादि उत्पन्नः ॥ २१ ॥ अकालिकमकस्मादेव कुरवो नाभविष्यन् नष्टाः स्युश्चेत् तव पापेन कर्मणा प्रेरितोऽजातशत्रुस्त्वयि पापमिच्छेत् । नन्वेवं तर्हि तस्य गोत्रवधदोषः स्यादित्याशंक्याह–त्वयीति । स्वनाशहेतु-मधर्मं कुर्वति त्वयि चोरे इव पापं निंदां च विसृज्य राजा निष्पापोऽनिन्द्यश्च स्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥ ईश्वराणां देवानां विषयादन्यत्र किं सर्वं देवाधीनमित्यर्थः। यत्र यतः पार्थोऽर्जुनः परलोकं द्रष्टुमत्यक्रामत् इमं लोकं सशरीर एव त्यक्तवान् स तादृशः नारदादिवदुभयलोकसञ्चारयोग्यत्वेन साधूनां संमतोऽपि यदि तथा वनवासेन क्लेशसहः स्यात् तदा मनुष्यकारो नास्तीत्यस्मिन्नर्थे संशयो न ॥२३॥ एतानिति। एतान् शौर्यादीन् गुणान् कर्मकृतान् कर्मानुसारेण वृद्धिह्रास-युक्तान् अवेक्ष्य अत एव भावाभावौ ऐश्वर्यानैश्वर्यं आनित्यौ आगमापायिनौ च अवेक्ष्य बलिराजा पूर्वपूर्वकर्मकारणपार-मन्तमविन्दमानः सन् कालात् ईश्वरादन्यत्कारणमभ्युदयादि-हेतुरन्यत्किंचिन्नास्तीति मेने ॥ २४ ॥ अतः सर्वस्य देवायत्तत्वात् तृष्णाक्षयेणैव इन्द्रियप्रीतिः संपादनीया न तु नाना-यत्नसाध्यतत्तद्विषयसमर्पणेनेत्याह–चक्षुरिति । ननु स्वस्व-विषयालाभे तेषां कथं प्रीतिः स्यादित्याशङ्क्य तानि निरोध्यान्येवेत्याह–तानीति । अव्यथः लाभालाभादौ वैषम्यहीनः प्रणुद्यात् स्वस्वगोचरेभ्यो निवर्तयेत् ॥ २५ ॥ एतद्दूषयति –नत्विति । एवं प्राप्ते सति अन्ये आहुः तदेवाह–पुरुषस्येति । संवर्तते सम्यक् फलवत् वर्तते तदेवाह–मातुरिति । कर्माभावे जन्मवृद्धी न स्यातामित्यर्थः । पाठान्तरे तेनैव स्यातामित्यर्थः ॥ २६ ॥

प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्
निन्दाप्रशंसे च भजन्त एव ।
परस्त्वेनं गर्हयतेऽपराधे
प्रशंसते साधुवृत्तं तमेव ॥ २७

स त्वां गर्हे भारतानां विरोधा-
दन्तो नूनं भविताऽयं प्रजानाम् ।
नो चेदिदं तव कर्मापराधात्
कुरून् दहेत् कृष्णवर्त्मेव कक्षम् ॥ २८

त्वमेवैको जातु पुत्रस्य राजन्
वशं गत्वा सर्वलोके नरेन्द्र ।
कामात्मनः श्लाघनो द्यूतकाले
नागाः शमं पश्य विपाकमस्य ॥ २९

अनाप्तानां संग्रहात्त्वं नरेन्द्र
तथाऽऽप्तानां निग्रहाच्चैव राजन् ।
भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनन्ता-
मशक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥ ३०

अनुज्ञातो रथवेगावधूतः
श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं नृसिंह ।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-
मजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥ ३१

धृतराष्ट्र उवाच ।

अनुज्ञातोऽस्यावसथं परेहि
प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र ।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-
मजातशत्रोर्वचनं त्वयोक्तम् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

समाप्तं सञ्जययानपर्व २

## प्रजागरपर्व ३

## ३३

वैशम्पायन उवाच ।

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय माचिरम् ॥ १
प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत् ।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥ २
एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम् ।
अब्रवीद्धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां प्रतिवेदय ॥ ३

द्वाःस्थ उवाच ।

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ४

धृतराष्ट्र उवाच ।

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम् ।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्पो जातु दर्शने ॥ ५

द्वाःस्थ उवाच ।

प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः ।
न हि ते दर्शने कल्पो जातु राजाऽब्रवीद्धि माम् ६

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ७

---

किंच नोचेदिति इदं मया उच्यमानं कर्म पाण्डवेभ्यो राज्यांशप्रदानात्मकं तव नोचेत् संमतमिति शेषः । तर्हि तवापराधात् कृष्णवर्त्माऽग्निः कक्षं यथा दहति एवं कृष्णवर्त्मा कृष्ण एव मार्ग इव सुखप्रापको यस्य स कृष्णवर्त्माऽर्जुनः कुरून् दहेदित्यावृत्त्या योज्यम् ॥ २८ ॥ श्लाघन आत्मानं कृतार्थं मन्वानः नागाः न गतवानसि ॥ २९ ॥ अनाप्तानां कर्णादीनामाप्तानां विदुरादीनां निग्रहात् दूरीकरणात् ॥ ३० ॥ अवधूतस्तिरस्कृतः अत एव श्रान्तः प्रपद्ये प्राप्नुयाम् ॥ ३१ ॥ आवसथं गृहं परेहि गच्छ प्रपद्यस्व सेवस्व ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

द्वाःस्थमिति ॥ १ ॥ अकल्पो न किं तु कल्पः समर्थ एव सर्वदा विदुरसन्दर्शनं मम अप्रत्याख्येयमित्यर्थः जातु कदाचित् । अथवा कल्पः कल्पना संशय इत्यर्थः ॥ ५ ॥

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ संप्राप्तस्तव शासनात् ।
यदि किञ्चन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥ ८

धृतराष्ट्र उवाच ।

सञ्जयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः ।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ९
तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् १०
जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ।
तद्ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ११

यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो
न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः ।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि
किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥ १२

विदुर उवाच ।

[1]अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ १३
कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप ।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे ॥ १४

धृतराष्ट्र उवाच ।

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसंमतः १५

[ विदुर उवाच ।

राजा लक्षणसंपन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् ।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥ १
विपरीततरश्च त्वं भागधेयेन संमतः ।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥ २
आनृशंस्यादनुक्रोशाद्धर्मात् सत्यात् पराक्रमात् ।
गुरुत्वात्त्वयि संप्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते ॥ ३
दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा ।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ ४
आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ ५ ]
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम् १६
क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १७
यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते १८
यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ १९
यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥ २०
यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते ।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २१

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासंपृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ २२

---

प्रजागरं निद्राया अभावम् ॥ १० ॥ यतः यदा प्राप्तः संजयस्तदारभ्येत्यर्थः। प्रचिन्ता प्रकृष्टा चिन्ता॥१२॥ अभियुक्तमित्यर्धोपात्त एकः त्रयोऽन्ये च प्रजागरा वेशभाजनानि ॥१३॥ गृध्यन् लिप्सावान् ॥१४॥ [क्वचित्पुस्तकान्तरे स्थितस्य मूलस्य टिप्पणम्-प्रेष्यःप्रकर्षेण एषणीयःप्रार्थ्य इति यावत्। ते त्वया प्रेषितो वनमिति शेषः॥१॥विपरीतः राजलक्षणहीनः सर्वेषां द्वेष्यः । भागधेये राज्यांशे अर्चिषां नेत्ररश्मीनां प्रक्षयात् न संमतस्त्वं धर्मात्माऽपि सन्निति उपहासः। अथवा भागधेयेन राज्यभागित्वेन हेतुनाऽपि संमत इत्यप्युपहास एव ॥ २ ॥ आनृशंस्यात् क्रूरत्वाभावात् अनुक्रोशात् दयालुत्वात् तितिक्षते युधिष्ठिर इति शेषः ॥ ३ ॥ एतेष्विति । एतेषामधीनो भूत्वेत्यर्थः ॥४॥ एतेषु पाण्डित्यं नास्तीति वक्तुं पण्डितलक्षणान्याह-आत्मज्ञानमित्यादिना । आत्मज्ञानं शास्त्रीयापेक्षम् । समारंभः शक्त्यपेक्षः। तितिक्षा वैराग्यापेक्षा धर्मनित्यता श्रद्धापेक्षा । एतानि अयथाभूतानि मूढान् पुरुषार्थात् भ्रंशयन्ति न तु पण्डितानित्यर्थः॥ ५ ॥] अनास्तिकः परलोकोऽस्तीति जानन् श्रद्दधानः श्रद्धा गुरुवेदवाक्यादिषु फलावश्यंभाविनिश्चयस्तद्वान् ॥ १६ ॥ दर्पः परावज्ञानम्। स्तम्भः असन्नतिः। मान्यमानिता मान्यं मानार्हं आत्मानं मन्यत इति मान्यमानी तस्य भावस्तत्ता ॥१७॥ संसारिणी स्वभावतोऽनवस्थिताऽपि कामादैहिकसुखादुभयलोकसुखावहं धर्ममर्थं वृणीते स पण्डितः । कामो धर्मार्थापेक्षया निकृष्ट इत्यर्थः । कामादिति । यस्तु कामं त्यक्त्वा अर्थं वृणीते स अर्थार्थी मोक्षादेव सर्वमर्थं विन्दति ज्ञानफले मोक्षे कृत्स्नस्यार्थस्यान्तर्भावात् स जनकादितुल्यः अतः पण्डित उच्यते ॥२०॥ चिरं शृणोति ज्ञानदार्ढ्याय । असंपृष्टः यथावदपृष्टः।ह्युपयुङ्क्ते वाग्व्ययं करोति । परार्थे विषये प्रज्ञानं चिह्नम् ॥२२॥ [1]अतःप्रभृति धृतराष्ट्रविदुरसंवादे विदुरवाक्यानि कानिचिद्धृतराष्ट्रनिन्दापराणि कानिचिद्युधिष्ठिरप्रशंसापराणि कानिचित्साधारणोपदेशपराणि बोद्धव्यानि ।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति
नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति
नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २३
निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥
आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥ २५
न हृष्यत्यात्मसंमाने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते २६
तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥ २७
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ २९
अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ ३०
स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्याचरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ३१
अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत् ।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३२
अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३३

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ ३४
श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति ।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३५
अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ ३६
परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥ ३७
आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥ ३८
अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते ।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३९
अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा ।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥ ४०
एकः संपन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम् ।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ४१
एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ४२
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥ ४३
एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव
एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥ ४५

निश्चित्य स्वयत्नसाध्यत्वं कर्मणः अन्तर्मध्ये न वसति नोपरमते किं तु समापयत्येव । अवन्ध्यकालः सर्वदा सप्रयोजनमेव कर्माचरन् ॥ २४ ॥ आर्याः शिष्टाः तद्योग्यकर्माणि भूतिरैश्वर्यं तत्प्राप्त्यर्थं कर्माणि ॥ २५ ॥ तत्त्वं विनाशित्वं भूतानां जातानामैश्वर्यादीनाम् । योगो रचनाप्रकारः उपायस्तदर्थसामग्री । मनुष्याणां मध्ये स नरः पण्डितः ॥ २७ ॥ प्रवृत्तवाक् अकुण्ठितवचनः । चित्रकथो लौकिककथाभिज्ञः। ऊहस्तर्कः। प्रतिभानं तत्कालस्फूर्तिः॥२८॥ प्रज्ञानुगं बुद्धिवश्यम् । श्रुतानुगा शास्त्रानुसारिणी ॥ २९ ॥ अकर्मणा हीनकर्मणा द्यूतादिनेत्यर्थः।तादृशो दुर्योधनः॥३०॥ स्वमर्थमिति तादृशः शकुनिः ॥ ३१ ॥ अकामान् त्वयि भक्तिहीनान् कर्णादीन् । कामयानान् त्वयि भक्तिमतः पाण्डवान् । बलवन्तं युधिष्ठिरम्॥३२॥ दुष्टं जतुगृहदाहादि ॥ ३३ ॥ संसारयति भृत्यादिद्वारा प्रवर्तयति ॥ ३४ ॥ नैष्कर्म्यात् अयत्नतः ॥ ३८ ॥ शून्यं राजदारादीन् अज्ञातं यथा स्यात्तथा उपास्ते । कदर्यमदातारम्॥३९॥ असमुन्नद्धः अनुद्धतः ॥ ४० ॥ एकयेति । बुद्धिर्बुद्धिमतेत्युपक्रमादेकया बुद्ध्येति व्याख्याद्वयेऽपि समानं द्वे नीती । कार्याकार्ये अध्यात्मपक्षे नित्यानित्ये विनिश्चित्य सम्यगवधार्य । त्रीन् नीतौ मित्रोदासीनशत्रून्। पक्षे कामक्रोधलोभान्। चतुर्भिः सामदानभेददण्डैः। मित्रं साम्नैव दानभेदाभ्यामुदासीनं सर्वैः शत्रुं वशीकुरु। पक्षे शमदमोपरमश्रद्धाभिः। पञ्च पक्षद्वयेऽपीन्द्रियाणि जित्वा । षड्विदित्वा सन्धिविग्रहादीन् ज्ञात्वा। पक्षे अशनायां पिपासां शोकं मोहं जरां मृत्युं च । सप्त हित्वा 'स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् । महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च' इति सप्त हेयानि।पक्षे पञ्चेन्द्रियाणि बुद्धिमनसी च त्यक्त्वा सुखी भव। तथा च श्रुतिः 'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम्' इति पूर्वमिन्द्रियाणां प्रत्याहार उक्तः इदानीं तु प्रविलापनमिति भेदः ॥ ४४ ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥ ४६
एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ४७
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ४८
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ४९
क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते ।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥ ५१
एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥ ५२
द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ५३
द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥ ५४
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥
द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ ५६
द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ ५७
द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ ५८
न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥ ५९
द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ ६०
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ६१
त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥ ६२
त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ६३
त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ६४
हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ ६५
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ६६
वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत ।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात्त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥
भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेताञ्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न संत्यजेत् ६८
चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात् ।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्या-
न्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च ॥ ६९
चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु
श्रियाऽभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः
सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ७०

सत्यं यथार्थभाषणं स्वर्गस्य पक्षे सत्यं ब्रह्म स्वर्गो मोक्षः पारावारस्य समुद्रस्य ॥४७॥ अहिंसेति । पुत्राणां विग्रहेण कुलक्षयं मा कुर्विति भावः ॥५२ ॥ द्वावित्यादिषु किंचित्प्रकृतोपयोग्युच्यते किंचित् प्रसंगात् दृष्टान्तार्थं चेति ज्ञेयम् ॥५३॥ असतः शकुन्यादींस्त्वमर्चयसीति भावः ॥५४॥ पूजितेति । पुत्रेण पूजितं कर्णं त्वमपि पूजयसीत्यर्थः ॥ ५५ ॥ अनीश्वरत्वं त्वत्पुत्रे ॥ ५६ ॥ निरारम्भ उदासीनस्त्वं पुत्रकलहनिवारणे ॥ ५७ ॥ प्रभुः पाण्डवः ॥ ५८ ॥ पात्रे धर्मे ॥ ५९ ॥ अप्रदातारं त्वत्पुत्रम् ॥ ६० ॥ उपाया इति छेदः। युद्धं कनीयान् भेददाने मध्यमः साम उत्तमः। अपाया इति च्छेदे काम्ययोगः कनीयान् काम्यधर्मो मध्यम इहलोकलोभोऽधमः। त्रयो न्याया इति पाठः स्पष्टार्थः॥६२॥ यथावन्नियोजयेत् त्वया त्वधमाः कर्णादय उत्तमे मन्त्रकार्ये नियुज्यन्त इति भावः ॥ ६३ ॥ त्वयि सति त्वत्पुत्रोऽधनोऽतस्त्वमेव पाण्डवानां राज्यं दातुं प्रभुरसीत्यर्थः ॥६४॥ हरणादयस्त्रयोऽपि दोषाः कामादित्रयसहितास्त्वय्येव सन्तीत्यर्थः ॥ ६५ ॥ शत्रोर्युधिष्ठिरस्य कृच्छ्राद्गोत्रवधात् ॥ ६७॥ भक्तादयः पाण्डवाः शरणं गृहं विषमेऽपि संकटेऽपि तव तु तन्नास्तीत्यर्थः ॥ ६८ ॥ दीर्घसूत्रैः क्षिप्रसाध्ये कार्ये चिरं कुर्वाद्भिः रभसैः हर्षतरलैः । अलसैरित्यपि पाठः । चारणैः स्तावकैः अरणैरिति छेदो वा रणविरोधिभिर्धूतायासक्तैरित्यर्थः । अशनैरिति पाठे बहुभोक्तृभिः ॥ ६९ ॥ वृद्धः कुलधर्मानुपदिशति । कुलीनः शिशूनाचारं ग्राहयति । सखा हितं वदति तादृशा भीष्मद्रोणविदुराः । भगिनी धनं रक्षति । तव गृहे सर्वेऽपि सन्ति परन्तूपदेशं न गृह्णासीति भावः ॥ ७० ॥

चत्वार्याह महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः ।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥ ७१
देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम् ।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥ ७२
चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ ७३
पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।
पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥ ७४
पञ्चैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान्पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥ ७५
पञ्च त्वाऽनुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ७६
पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य ×छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः +पात्रादिवोदकम् ७७
षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा *तन्द्री भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ७८
षडिमान् पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥ ७९
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ८०
षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥ ८१

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ ८२
षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥८३
षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते ।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥ ८५
षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात् ।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः ॥ ८६
षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम् ।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम् ॥
आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ ८९
ईर्षुर्घृणी नसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥ ९०
सप्त दोषाः सदा राज्ञा हतव्या व्यसनोदयाः ।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः ॥ ९१

---

साद्यस्कानि सद्यःफलानि ॥ ७१ ॥ देवताः स्वर्गभाजः स्वर्गपदार्थश्च–' यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम् ' इत्येवंरूपः । अतस्ते सत्यसंकल्पाः धीमतामगस्त्यादीनामनुभावं समुद्रपानादिप्रभावं तेऽपि देवतुल्या इत्यर्थः। विनयोऽपि गुरुप्रसादकरत्वेन सद्यःफलः विनाशं विनाशहेतु कर्मापि चौर्यादिकं तच्च त्वय्येवास्ति । तव तु सर्वं कर्म मानार्थमेवेति भावः ॥७२॥ अग्निवत् पित्रादयोऽपि पूज्या एव नास्कन्दनीयाः । तव पुत्रस्तु गुरुं युधिष्ठिरं न पूजयतीति भावः ॥ ७४ ॥ पितॄन् अग्निष्वात्तादीन् गोत्रप्रवर्तकानृषींश्च । मनुष्यान् पित्रादीन् ' ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ' इति पितृतुल्यस्त्वत्पुत्रस्य युधिष्ठिर इति भावः ॥ ७५ ॥ त्वा त्वामुपजीव्या गुरवः इह लोके साधिता मित्रादयः । इहपरलोके जन्मांतरे वा स्वं स्वं कार्यं कुर्वन्तीत्यर्थः । मित्रेषु पांडवेषु मैत्रीमाचरेति भावः । त्वं त्वन्धत्वाद्दुर्जनवचनप्रतारितः पांडवानां गुणान् न पश्यसीति भावः ॥ ७६ ॥ दृतेश्चर्ममयाज्जलपात्रात् ॥७७॥ षडिति। क्रोधोऽत्र तन्मूलको द्वेषो ग्राह्यः ॥ ७८ ॥ पाण्डवानामरक्षिता राजा त्वमन्येषामपि त्याज्यो भविष्यसीत्यर्थः ॥ ८० ॥ दुर्योधनत्यागार्थं तव धृतिर्धैर्यं नास्तीति भावः ॥ ८१ ॥ षण्णामिति । आत्मनि चित्ते नित्यानां षण्णां 'कामक्रोधौ शोकमोहौ मदमानौ च षट्पदी' इत्युक्तानामैश्वर्यं वशित्वं त्वं तु राज्यकामः पापैरनर्थैश्च युक्तोऽसीति भावः ॥ ८३ ॥ पंडिताः पांडवाः मूर्खेषु त्वत्पुत्रेषु राज्यं लप्स्यंत्येवेत्यर्थः ॥ ८५ ॥ वृषलः शूद्रः पुत्रस्नेहाक्रांतेन त्वया सद्विद्याऽनवेक्षणान्नाशिता अन्यथा सत्यं न जह्या इति भावः ॥ ८६ ॥ आतुरा आरोग्ये सतीति शेषः। त्वं तु कृत्स्नराज्यलाभेन कृतकृत्यत्वात् पाण्डवानवमन्यसे ॥ ८८ ॥ स्वप्रत्यया स्वानुकूला वृत्तिर्जीविका तव सत्सङ्गो नास्तीत्यर्थः ॥८९॥ ईर्षुरिति। त्वयि तु ईर्षुत्वं घृणादया। तव तु वश्यः पुत्रो नास्तीति भावः ॥९०॥ × छिद्रमसंवृतमित्यर्थः । +पादा–ङ. *तंद्रा–ङ.

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् ।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥ ९२
अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः ।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ९३
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ॥ ९४
नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति ।
एतान् दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद्बुध्वा विसर्जयेत् ९५
अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि ॥ ९६
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः सन्निपातश्च मैथुने ॥ ९७
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः ।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥ ९८

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ९९

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ॥
दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥ १०२
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैव सुधन्वना ॥ १०३

यः काममन्यू प्रजहाति राजा
पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी
तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥ १०४

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्
विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम् ।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च
तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥ १०५

सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चि-
द्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् ।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः
काले च यो विक्रमते स धीरः ॥ १०६

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचि-
दुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
दुःखं च काले सहते महात्मा
धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥ १०७

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः
पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम् ।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं
न सेवते यश्च सुखी सदैव ॥ १०८

न संरम्भेणारभते त्रिवर्ग-
माकारितः शंसति तत्त्वमेव ।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं
नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥ १०९

न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च
न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति ।
नात्याह किञ्चित् क्षमते विवादं
सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ ११०

---

वाक्पारुष्यं दण्डपारुष्यं च पाण्डवेषु त्वत्पुत्रैः कृतम् ॥ ९२ ॥ द्वेष्टि मनसाऽनिष्टं चिन्तयाति विरुध्यते कर्मणा ॥ ९३ ॥ अप्सु चरमं त्वत्पुत्रे मैत्रेयस्यावमाननो भविष्यतीति जानामीति भावः ॥ ९४ ॥ जनसंसदि सभायां द्रौपद्या आनयनेन पूजाऽपि तव नष्टा ॥ ९८ ॥ नवेति । श्रोत्रादिपञ्चकं मनोबुद्ध्यहङ्काराः स्थूलशरीरं चेति नव द्वाराणीव द्वाराणि विषयग्रहणमार्गा यस्मिंस्तत् । तिस्रः स्थूणाः स्तम्भा इव विधारका यस्य ते च अविद्या कामः कर्म च । वेश्म गृहं देहद्वयात्मकं पञ्च साक्षिवदुदासीनाः शब्दादयो ग्राह्या यस्मिन् । पञ्चभूमिकाभिति पाठे पञ्चभूमयः प्रचारस्थानानीति त एव । पाञ्चभौतिकमित्यर्वाचीनः पाठ उपेक्ष्यः । क्षेत्रज्ञेन चिदात्मना अधिष्ठितमिदं क्षेत्रं तत्त्वेन यो विद्वान् वेद स परः सर्वोत्कृष्टः कविर्ब्रह्मविदित्यर्थः ॥१००॥ मत्तो मद्यादिना । प्रमत्तो विषयान्तरासक्त्याऽनवहितः । उन्मत्तो धातुदोषात् एतेषां मध्ये त्वं लुब्धोऽसीति भावः ॥ १०१ ॥ काममन्यू कामक्रोधौ विशेषवित् तारतम्यज्ञः ॥ १०४ ॥ मात्रामपराधानुसारेण दण्डप्रमाणं ब्राह्मणादावपराधस्य क्षमां च जानाति ॥ १०५ ॥ युक्तः छिद्रप्रेक्षणेऽवहितः ॥ १०६ ॥ धुरन्धरः कार्यभारसहः ॥ १०७ ॥ संरंभेण क्रोधेन त्रिवर्गं धर्मकामार्थान् आकारितः आहूतः पाठान्तरे मात्रार्थे अल्पार्थे ॥ १०९ ॥ प्रातिभाव्यं प्रतिकूलो भावः चित्ताभिप्रायः तस्य भावः प्रातिभाव्यं विरोधं अत्याह अतिक्रम्य ब्रवीति ॥ ११० ॥

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं
न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥ १११
न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥ ११२
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं
नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा न पश्चात् कुरुते न तापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥ ११३
देशाचारान् समयान् जातिधर्मान्
बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव
महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ ११४
दंभं मोहं मत्सरं पापकृत्यं
राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं
यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः ॥ ११५
दानं मोहं दैवतं मङ्गलानि
प्रायश्चित्तान् विविधाँल्लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि
तस्योत्थानं देवता राधयन्ति ॥ ११६
समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः
समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ ११७
मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥ ११८
चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य
नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित्।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च
नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः ॥ ११९
यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः
सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये
महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः ॥ १२०
य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः
स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः
स तेजसा सूर्य इवावभासते ॥ १२१
वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः
पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः।
त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च
तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय ॥ १२२
प्रदायैषामुचितं तात राज्यं
सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः।
न देवानां नापि च मानुषाणां
भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥ १२३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३ ॥

## ३४

धृतराष्ट्र उवाच।

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि। तद्ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ १

समयान् भाषाभेदान् बुभूषते ऐश्वर्यं प्राप्तुमिच्छति परावरज्ञः उत्तमाधमविवेकवान्॥११४॥ दंभं परवञ्चनेच्छया धर्मानुष्ठानम्। मोहमनात्मन्यात्मबुद्धिम्। मत्सरं द्वेषम्। पापकृत्यं पापक्रियामभिचारादिरूपाम्। पूगवैरं बहुभिः सह वैरम् ॥११५॥ जात्य अभिजातः उत्तमे आकरे जातः ॥१२०॥ आत्मना अपत्रपते परैरज्ञातेऽपि स्वब्धलीके स्वयमेव लज्जते ॥१२१॥ तर्कणीयः शङ्क्यः॥१२३॥ इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

३४

जाग्रत इति। दह्यमानस्य चिन्ताग्निनेति शेषः। धर्मार्थयोः कुशलः मोक्षेऽस्य वक्तुमनधिकाराद्द्वयोरेव ग्रहः ॥ १ ॥

त्वं मां यथावद्विदुर प्रशाधि
प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व
श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् ॥ २
पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन्
पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाऽहम् ।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथाव-
न्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३

विदुर उवाच ।

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्
अपृष्टस्तस्य तद्ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत् पराभवम् ॥ ४
तस्माद्वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरून्प्रति
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ५
मिथ्योपेतानि कर्माणि सिद्धेयुर्यानि भारत ।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ६
तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिद्ध्यति ।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ ७
अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु
संप्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥ ८
अनुबन्धं च संप्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥ ९
यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ॥ १०
यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति ।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ॥ ११
न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसांप्रतम् ।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥ १२
भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम् ।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥ १३
यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ १४
वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति १५
यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम् ।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ १६
यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ १७
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाऽङ्गारकारकः ॥ १८
किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा १९
अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथाऽगताः ।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः ॥ २०
प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः॥ २१
कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ २२
ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषाऽनुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः॥ २३
सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद्दुरारुहः ।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् २४
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥ २५
यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥ २६
पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा ।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ २७
धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।
वसुधा वसुसंपूर्णा वर्धते भूतिवर्धनी ॥ २८

अजातशत्रोः पथ्यं कुरूणां च श्रेयस्करम् ॥ २ ॥ पापाशङ्की भाविदुःखादुद्विजन् पापं स्वकृतं पूर्वापराधं पश्यन् कवे हे सर्वज्ञ ॥ ३ ॥ मिथ्योपेतानि कपटद्यूतादीनि अनुपायैः असदुपायैः प्रयुक्तानि दुःखफलानीत्यर्थः ॥ ६ ॥ अनुबन्धान् प्रयोजनानि संप्रधार्य निश्चित्य ॥८॥ विपाकः फलसिद्धावपि परिपाकः । उत्थानमुद्यमं वा न वेति सिद्धिपक्षे कुर्वीत नान्यथेत्यर्थः ॥ ९ ॥ प्रमाणं निश्चयद्वारं स्थानादीनि सर्वदा विचार्याणीत्यर्थः । स्थाने दुर्गादौ दंडे सेनायाम् ॥ १० ॥ एतानि स्थानादिज्ञापकानि प्रमाणानि लेख्यादीनि ॥ ११ ॥ असांप्रतमयुक्तं यथा स्यात्तथा न वर्तितव्यम् ॥ १२ ॥ भक्ष्येति । मुखे मिष्टमन्ते मृत्युदं कर्म न कर्तव्यमित्यर्थः । अनुबन्धं पश्चाद्बन्धनम् ॥ १३ ॥ आद्यं भक्षणीयम् ॥१४॥ अङ्गारकारको हि मूलत उत्कृत्य काष्ठं दहति अङ्गार इङ्गालः ॥ १८ ॥ अनारभ्याः प्रबलैः सह वैरादयः । अगताः कदाचिदप्यप्राप्ताः ॥ २० ॥ लघुमूलानल्पोपायान् ॥ २२ ॥ चक्षुषा प्रीतिमयेन ॥ २३ ॥ सुपुष्पितः वाचा चक्षुषा चानुग्रहं दर्शयन्नपि अफलः स्यात् भृत्यं न धनेन वर्धयेत् सफलोऽपि सन् दुरारुहः भृत्यवश्यो न भवेत् । अपक्व इति । अन्तर्बलहीनोऽपि बलवत्तां बहिः प्रकाशयेदेवेत्यर्थः ॥ २४ ॥ कर्मणा दानेन लोकं भृत्यवर्गम् ॥ २५ ॥ अनये स्थितः अनीतिमान् ॥ २७ ॥

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः ।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥ २९
य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने ।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ ३०
धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ ३१
अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ ३२
सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः ।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा
गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ३४
भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदन्त्यपि ॥ ३५
यदतप्तं प्रणमति न तत् सन्तापयन्त्यपि ।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत्सन्तापयन्त्यपि ॥ ३६
एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे ।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ३७
पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः३८
सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३९
मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचेलतः ४०
न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ४१
य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ ४२
अकार्यकरणाद्भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिबेत् ॥ ४३
विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥ ४४
असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन ।
तावच्च तस्य सुकृतं किंचित्कार्यं कदाचन ।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम् ॥ ४५
गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः ।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः४६
जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता ।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्४७
शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः॥ ४८
आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम् ।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥ ४९
संपन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा ।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥५०
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ॥५१
अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् ।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम् ॥ ५२
ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते ॥ ५३

---

प्रतिसंवेष्टते संकुचति बहुफलं न प्रयच्छतीत्यर्थः ॥२९॥ न जहाति श्रियम्॥३१॥ सुव्याहृतानि पाण्डित्यवचनानि सूक्तानि शोभनतया उक्तानि मातृपितृगुर्वादीनि। सुकृतानि तदुपदिष्टकर्माणि । शिलं कणिशाद्यर्जनम्।'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः। त्वमपि अस्मदादिवाक्यात् सारं गृहाणेति भावः ॥ ३३ ॥ गन्धेनेति । पाण्डवबलं ज्ञातुं चारान् नियुङ्क्ष्वेति भावः ॥ ३४ ॥ भूयांसमिति श्लोकत्रयतात्पर्यं पाण्डवान् प्रति त्वया नम्रीभवितव्यं तेन बलाधिष्ठात्री देवता इन्द्रश्च त्वामनुग्रहीष्यतीति ॥ ३५ ॥ एतच्च मन्त्रिभिः सहालोचनीयं सत्यं च संरक्ष्यमित्याह-पर्जन्येति त्रिभिः॥३८॥ योगेन अभ्यासेन मृजया उद्वर्तनेन ॥ ३९ ॥ अनुक्रमः व्यायामाशिक्षादिः ॥ ४० ॥ प्रमाणं धर्मस्य कारणं न कुलमिति । द्वयोर्वृत्तमाश्रय ईर्ष्यां त्यजेति भावः ॥४१॥ अकाले इष्टसिद्धेः प्राक् भीतः स्यात् येन माद्येत् लोभादिना तन्न पिबेत् नाश्रयेत् ॥ ४३ ॥ अभिजनः सहायः तव तु भयं दमश्च नास्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ असन्त इति सार्धश्लोको वाक्यं सद्भिरर्थिता असन्तस्तत्कार्यमल्पमप्यकृत्वा असन्तमिति ख्यातमप्यात्मानं सन्तं मन्यन्त इति तदर्थः। किंचिदपि तस्य कार्यं यावत् सुष्टु न कृतं तावदेव मन्यन्त इति योजना ॥ ४५ ॥ गतिरिति । पाण्डवा एव त्वामुपकरिष्यन्ति न तु त्वं तानिति भावः ॥ ४६ ॥ जितेति । शीलं संरक्ष्यं त्वयेति द्वयोर्भावः ॥ ४७ ॥ आढ्यानामिति त्रयस्य शीलवतस्ते दारिद्र्यप्राप्तिरपि श्रेय इति भावः ॥ ४९ ॥ संपन्नं मिष्टम् ॥ ५० ॥ शीलाभावे सत्सु अवमानो महान् क्लेश इत्याह-अवृत्तिरिति॥५२॥ऐश्वर्यमदः पापिष्ठो निन्दिततमो येभ्यस्ते पानमदादयो मदाः ॥ ५३ ॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः ।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव ॥ ५४
यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा ।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥ ५५
अविजित्य यथाऽऽत्मानममात्यान् विजिगीषते ।
अमित्रान् वा जितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ५६
आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ ५७
वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ ५८
रथः शरीरं पुरुषस्य राज-
न्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ ५९
एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥६०
अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः ।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ ६१
धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ ६२
अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः ॥ ६३
आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ६४
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः ।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः॥ ६५
क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू ।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः॥६६
समवेक्ष्येह धर्मार्थौ संभारान् योऽधिगच्छति ।
स वै संभृतसंभारः सततं सुखमेधते ॥ ६७
यः पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रूनविजित्य मनोमयान् ।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम्६८
दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः ।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥६९
असन्त्यागात् पापकृतामपापां-
स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावा-
त्तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात् ७०
निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्च प्रयोजनान् ।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद्ग्रसते नरम् ॥ ७१
अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ७२
आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ७३
आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥ ७४

इन्द्रियार्थेषु शब्दादिषु ग्रहैः सूर्यादिभिः आक्रमोऽत्र तापनम्॥५४॥ पञ्चवर्गः श्रोत्रादिगणः त्वमैश्वर्यमत्तोऽजितेन्द्रियश्चावश्यमापदं प्राप्स्यसीति लयस्य भावः ॥५५॥ आत्मानं मनः। अमात्यान् पुत्रादीन् द्वेष्यरूपेण शत्रुवत्। मन एव प्रथमं जेतव्यं ततोऽमात्यादीन् विजिगीषते तत् न मोघं न निष्फलं भवति ॥ ५७ ॥ त्वं त्वजितमनस्कतया पुत्रादिवशो न लक्ष्मीयोग्य इति त्रयाणां भावः ॥ ५८ ॥ एतदेव रथिरथादिरूपककल्पनया आह-रथ इति ॥५९॥ व्यापादयितुं नाशयितुं अविधेयाः अवशाः॥६०॥अर्थतोऽर्थहेतोः अनर्थतः अन्यायतः॥६१॥ इन्द्रियाणां वश इच्छा तदनुसारी इन्द्रियवशानुगः॥६२॥कृत्स्नस्योपदेशस्य फलमाह-आत्मनेत्यर्धेन । आत्मना बुद्ध्या आत्मानं प्रत्यक्चैतन्यरूपं अन्विच्छेत् । तत्रोपायमाह-मनसः संकल्पात्मकस्य बुद्धेश्च तन्मूलभूतायाः इन्द्रियाणां च निग्रहेणेत्यर्थः । अत्र न तव सहायान्तरापेक्षेत्याहात्मेति धीजय एव पुरुषार्थ इत्यर्थः ॥ ६४ ॥ स एव धीरेव जीवस्य बंधुः रिपुश्च ॥ ६५ ॥ द्वावपि मोहजालपिहितौ झषौ मीनौ उरू महान्तौ तत्र द्वितीयोऽन्यस्य जातिस्वभावाच्छत्रुरपि जालच्छेदार्थं मित्रत्वमापन्नो बन्धुरपि भवति । एवं धीश्चिदात्मनः संसारप्रदत्वाच्छत्रुरपि मोहच्छेदार्थे तस्य मित्रमपि भवतीति भावः। क्षुद्राक्षेण सूक्ष्मछिद्रेण यद्वा उत्तरान्वय्येवायमर्धः । कामक्रोधयोरावरकं. प्रज्ञानं तौ नाशयतः जालमिव महामीनावित्यर्थः ॥६६॥ समवेक्ष्य अनुरुध्य संभारान् जयसाधनानि ॥६७॥ आभ्यन्तरान् श्रोत्रादीन् मनोमयान् मनसो विकारभूतान् तथा च श्रुतिः-'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति 'इति ॥ ६८ ॥ राजानो रावणादयः राज्यविभ्रमैः ऐश्वर्यविलासैः स्वकर्मभिः सीताहरणादिभिः ॥ ६९ ॥ पञ्च इन्द्रियाणि पञ्च प्रयोजनानि शब्दश्रवणादीनि येषां तान् उत्पततः उत्पथेन गच्छतः त्वं तु अजितचित्तत्वाद्दुःसंगाच्चापद्ग्रस्तोऽसीति भावः ॥ ७१ ॥ अनायासः अचाञ्चल्यम् ॥ ७२ ॥ तितिक्षा द्वन्द्वसहनशीलता वाक्गुप्ता असंबद्धप्रलापाद्रक्षिता अन्त्येषु नीचेषु त्वत्पुत्रेष्वार्जवादिकं गुप्तवाक्त्वं च नास्तीति तेऽन्त्याः ॥७३॥ आक्रोशो रूक्षभाषणं परिवादो निंदा तयोर्वक्ता त्वत्पुत्रः हिंस्रश्चातो नाशी जयभाक् ॥ ७४ ॥

हिंसाबलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ७५
वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥७६
अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥ ७७
रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥
कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ॥ ८०

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ८१
बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ८२
सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुद्ध्यसे ॥ ८३
राजा लक्षणसंपन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत् ।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः
अतीव सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः ।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ८५
अनुक्रोशादानृशंस्याद्योऽसौ धर्मभृतां वरः ।
गौरवात्तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षति ॥ ८६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

धृतराष्ट्र उवाच ।
ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः ।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥१
विदुर उवाच ।
सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते २
आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो ।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ३
यावत् कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।
तावत्स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥ ४

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ॥ ५
स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः ।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया ॥ ६
विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह ।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी ॥ ७
केशिन्युवाच ।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति ॥ ८

---

वाक्संयमो नियतं वचनं विचित्रं चमत्कारयुक्तम् ॥ ७६ ॥ बीभत्सं निन्दितं यतो न संरोहति ॥ ७८ ॥ कर्णी कर्णाकृतिफलको बाणः नालीकः नलीकया प्रक्षेप्यो बाणः निर्हरन्ति निःसारयन्ति ॥ ७९ ॥ नामर्मसु किन्तु मर्मस्वेव सभायां द्रौपदीं प्रति दुर्वचनं वदतां त्वत्पुत्राणामपराधः क्षन्तुमयोग्योऽस्तीति भावः ॥८०॥ अवाचीनानि नीचकर्माणि ॥ ८१ ॥ शिष्यस्ते त्वदाज्ञाकारी शासिता पृथिव्याः ॥८४॥ भागधेये राज्यांशे पुरस्कृतः मूर्धाभिषिक्तस्य पाण्डोः पुत्रास्ते राज्यार्हाः अतथाभूतस्यान्धस्य तव पुत्रास्ते न राज्यार्हा इत्यर्थः ॥ ८५ ॥ अनुक्रोशात् दयालुत्वात् आनृशंस्यात् अक्रौर्यात् ॥८६॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विदुरवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

ब्रूहीति ॥ १ ॥ आर्जवमवैषम्यम् ॥ २ ॥ सुधन्वा ब्राह्मणः पर्यङ्कमधिरोहत्येव त्वं तु नीचो दैत्यः सन् किमर्थं तत्प्रत्याख्यानं करोषीति भावः ॥ ८ ॥

विरोचन उवाच ।

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः ।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः

केशिन्युवाच ।

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन ।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ॥ १०

विरोचन उवाच ।

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टाऽसि सङ्गतौ ११

विदुर उवाच ।

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले ।
अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम ।
विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः
सुधन्वा च समागच्छत् प्राह्लादिं केशिनीं तथा ।
समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥ १३

सुधन्वोवाच ।

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादे ते वरासनम् ।
एकत्वमुपसंपन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह ॥ १४

विरोचन उवाच ।

तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाऽप्यथवा बृसी ।
सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम् ॥ १५

सुधन्वोवाच ।

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि ।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥
पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः ।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे ॥

विरोचन उवाच ।

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः ।
सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥ १८

सुधन्वोवाच ।

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन ।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥

विरोचन उवाच ।

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ॥२०

सुधन्वोवाच ।

पितरं ते गमिष्याव प्राणयोर्विपणे कृते ।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत् ॥२१

विदुर उवाच ।

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा ।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ २२

प्रह्लाद उवाच ।

इमौ तौ संप्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ ॥ २३
किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह ।
विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना ॥

विरोचन उवाच ।

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे ।
प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ॥ २५

प्रह्लाद उवाच ।

उदकं मधुपर्कं वाऽप्यानयन्तु सुधन्वने ।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरीकृता २६

सुधन्वोवाच ।

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम ।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः ॥
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहोस्विद्विरोचनः॥

प्रह्लाद उवाच ।

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः ॥
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥ २८

सुधन्वोवाच ।

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वाऽन्यत्स्यात् प्रियं धनम्
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया ॥२९

प्रह्लाद उवाच ।

अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वाऽनृतम् ।
एतत्सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत्३०

---

इह स्थाने उपस्थाने मामुपस्थातुं वां दैत्यब्राह्मणौ अहं पश्येयम् ॥ १० ॥ समागच्छत् उभयोः संमुखमगच्छत् । समागतं संमुखं प्राप्तम् ॥ १३ ॥ विरोचनेन सौवर्णे पीठे मया सह उपवेश्यतामिति प्रार्थितः सुधन्वा उवाच । अन्वालभे स्पृशाम्येव हे प्रह्लादे एकत्वं त्वया सह साम्यं उपसंपन्नश्चेत् भवेदहं गच्छेयमिति शेषः । न तु त्वया सह एकासने आसे उपविशामि ॥ १४ ॥ फलकं काष्ठपीठं कूर्चं बृसीं वर्तितदर्भमयं पीठं वा तव अर्हते योग्यं भवति ॥ १५ ॥ उपासीत सेवते अधःस्थित्वेति शेषः ॥ १७ ॥ प्रश्नं आवयोः कः श्रेष्ठ इति प्रश्नं ये विदुस्तान् पृच्छाव ॥ १८ ॥ सह न चरितं वैरात् ॥२३॥ पीवरी पुष्टा कृता मधुपर्कार्थं उपकल्पिता ॥ २६ ॥ पथिष्विति प्रश्ननिर्णयेनैतत्प्राप्तमिति भावः ॥ २७ ॥ दुर्विवक्ता दुष्टविवेककर्ता अन्याय्यवक्तेत्यर्थः। किं वसेत् किं दुःखं प्राप्नुयात् ॥ ३० ॥

सुधन्वोवाच ।

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः ।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत्॥
नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः ॥
अमित्रान् भूयसः पश्येद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ३२
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ३३ ॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदेः ॥३४॥

प्रल्हाद उवाच ।

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ।
माताऽस्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः॥
विरोचन सुधन्वाऽयं प्राणानामीश्वरस्तव ।
सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥

सुधन्वोवाच ।

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः ।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रल्हाद दुर्लभम् ॥
एष प्रल्हाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः सन्निधौ मम ॥

विदुर उवाच ।

तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन् ॥ ३९
न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्४०

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः॥
नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्तमानम् ।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षा-
श्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ४२
मद्यपानं कलहं पूगवैरं
भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं
वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ॥ ४३
सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं
शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च ।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च
नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ॥ ४४
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ।
एतानि चत्वार्यभयङ्कराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥ ४५
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ॥४६
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः ।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ४७
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि ।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः४८

अधिविन्ना कृतसपत्नीका स्त्री तां रात्रिं वसेत्तद्दुःखं प्राप्नुयात् ॥ ३१ ॥ नगरे इति शरणमलभमानः क्षुधार्तः शत्रुभिर्वेष्टितश्च यत् दुःखं लभते सः अनृतसाक्ष्यवक्ताऽपि लभेतेत्यर्थः ॥ ३२ ॥ पञ्च पूर्वजान् पश्वनृते अजादिपश्वर्थमनृते उक्ते सति हन्ति नाशयति परलोकात् च्यावयति एवमुत्तरत्र ॥ ३३ ॥ भूमितुल्या केशिनी तदर्थमनृतं भूम्यनृतम् ॥ ३४ ॥ अङ्गिराः सुधन्वनः पिता त्वत् त्वत्तः ॥ ३५ ॥ पादप्रक्षालनं हरिद्रया पादधावनं कुमार्याः केशिन्याः विवाहे दंपत्योः परस्परं हरिद्रया पादधावनं कुर्वन्तीति प्रसिद्धम् । अस्यैव भार्या केशिनी भवत्वित्यर्थः ॥ ३८ ॥ प्रकृते आख्यायिकोपयोगमाह–तस्मादिति। अब्रुवन्सत्यमिति शेषः ॥ ३९ ॥ तत्र दैवं प्रतिकूलं अधीतं च निष्फलमित्याह त्रयेण–न देवा इति॥४०॥ छन्दांसि वेदाः ॥४२ ॥ अन्तरं वियोगं विवादं वैरप्रवर्तनं ज्ञातिभेदे कलहे च तत्र प्रवृत्तिर्न योग्येति भावः ॥ ४३ ॥ सामुद्रिकं हस्तरेखादिपरीक्षकं वणिजं चोरपूर्वं पूर्वं चोरः पश्चाद्वणिक्भूतः तं कूटतुलावन्तं वा शलाकया पाशादिना वा शकुनादिकमुक्त्वा योऽन्यान् वञ्चयति तमरिं विपरीतसाक्ष्यभयात् मित्रं परीक्षकाणामविश्वासात् कुशीलवं कुत्सितं शीलं वाति अनुसरतीति तं नर्तकीदासं विटोन्मत्तादिकं वा तत्र तु कूटद्यूतकारी शकुनिः कुशीलव एव प्रमाणम् ॥ ४४ ॥ सत्कर्मद्वाराऽपि तस्य साधुत्वं न मन्तव्यमित्याह–मानेति । मानः लोकेषु उत्कर्षः तदर्थान्यग्निहोत्रादीनि भयदानीत्यर्थः मौनं ध्यानम् ॥ ४५ ॥ कुण्डाशी भगभक्षः । जीवति भर्तरि जाराज्जातः कुण्डस्तेन निमित्तेनाशितुं शीलः सोमविक्रयी प्रसिद्धः । पर्वकारः शरकृत् आयुधमात्रकर्तेत्यर्थः । सूची सूचको नक्षत्रादीनां परदोषाणां च ज्योतिषिकः पिशुनो वा ॥ ४६ ॥ काकः काकवत् क्षतोद्वर्तनेन दुःखितस्यापि दुःखप्रदः नास्तिकः परलोकादिद्वेषी ॥ ४७ ॥ स्रुवप्रग्रहणः राजकीयवृत्तिबलेन सर्वेभ्यो वणिग्भ्यः स्रुवेण धान्यादिकमादत्ते 'खोंचीग्राहक' इति भाषायां प्रसिद्धः।ग्रामपुरोहित इत्यन्ये । व्रात्यः अतीतोपनयनकालः पतितसावित्रीको वा । कीनाशः कर्षकः आत्मवान् समर्थोऽपि यो रक्षेत्युक्तो हिंस्यात् एतेष्वार्यं द्रयं त्वत्पुत्रेषु दृष्टम् ॥ ४८ ॥ तृणोल्कया तृण-

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं
वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः ।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः
कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥ ४९

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥ ५०

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् संप्रवर्धते ।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ॥ ५१

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ५२

एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति ॥ ५३

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके
स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भि-
श्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥ ५४

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं
चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥ ५५

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥
तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥ ५७

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ ५८

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ॥ ५९

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥ ६०

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६१

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६२

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ॥ ६३

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन् ६४

अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा ।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ॥ ६५

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः ।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ६६

दिवसेनैव तत् कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ।
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥ ६७

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥ ६८

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम् ।
शूरं विजितसङ्ग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥ ६९

---

ज्वालया जातरूपं रूपवद्वस्तु ज्ञायतेऽन्धकारे सति भद्रो वृषःधर्म इति । यावत् वृत्तेन शीलेन सोऽस्ति नास्तीति ज्ञायते व्यवहारेण अहिंसादिप्रधानेन कृच्छ्रेषु दुर्भिक्षादिसङ्कटेषु । त्वत्पुत्रेषु धर्मः साधुत्वं च नास्तीत्यर्थः ॥ ४९ ॥ जरेति । त्वत्पुत्रेऽभिमानदोषोऽस्ति ॥ ५० ॥ श्रीरिति । दाक्ष्यं शीघ्रकारित्वं त्वयि संयमाभावान्न श्रीः स्थास्यति ॥ ५१ ॥ अष्टाविति । राज्ञा पुरस्कृतं पुरुषं प्रज्ञादयो हठादनुसरन्तीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ५२ ॥ एष गुणो राजसत्कारः विभाति भासयति कर्णादिषु सत्कृतेषु आगन्तुका एते गुणाः संति न स्वाभाविकाः अतस्ते नोपयोक्ष्यन्त इति भावः ॥ ५३ ॥ इमानि वक्ष्यमाणानि अन्ववेतानि नित्यसंबद्धानि अनुयान्ति यत्नेन भजन्ति ॥ ५४ ॥ तत्रेति। असत्यपि दमादौ दंभार्थं यज्ञादिसंभवात् ॥ ५७ ॥ रूपं विनयमुद्रा श्रुतमध्ययनं विद्यादेवताद्युपासनं चित्रभाष्यं युक्तियुक्तं वचनं दशसंसर्गजा गुणा इति पाठे तद्युक्तैः सह सङ्गे कृते एते जायंते तेन सत्संगः कर्तव्य इति भावः ॥ ५९ ॥ पापकीर्तिः कलङ्कित्वेन प्रसिद्धः ॥ ६० ॥ दन्दशूको मर्मछेत्ता निष्ठुरः अप्रियवाक् नचिरात् शीघ्रम् ॥ ६४ ॥ न कृच्छ्रं समस्तं पदं सुखवाची ॥ ६५ ॥ आगमयति आन्प्यति ॥ ६६ ॥ वर्षा इत्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ ६७ ॥ गतपारं प्राप्ततत्त्वम् ॥ ६९ ॥

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते† ।
असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवदीर्यते ॥ ७०
गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ७१
ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ७२
द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।
क्षत्रियः शीलभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम् ७३
+सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥ ७४
बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत ।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ७५
दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ।
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥७६
सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ ।
पितृवत्त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

विदुर उवाच ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ।
चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम् ।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥२॥

साध्या ऊचुः ।

साध्या देवा वयमेते महर्षे
दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम् ।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः
काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम् ॥ ३ ॥

हंस उवाच ।

एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे
धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः ।
×ग्रंथिं विनीय हृदयस्य सर्वं
प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥ ४
आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ५
नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य
मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी ।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो
रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत ॥ ६

परिपाकसुखं कर्म त्वत्पुत्रा न कुर्वन्ति अन्यायेन च सुखं लिप्सन्ति तत्तु विपरीतमेवेत्याह-धनेनेति ॥ ७० ॥ आत्मवतां जितचित्तानां प्रच्छन्नपापो दुर्योधनः ॥७१॥ प्रभवः माहात्म्यं ' प्रभवो जन्ममूले स्याज्जन्महेतौ पराक्रमे ' इति मेदिनी । नाधिगन्तव्यः नाधिगन्तुं शक्योऽनन्तत्वात्॥७२॥ ज्ञातिषु अनार्जवी दुर्योधनः ॥७३॥ शूराः पांडवाः सर्वत्र सुवर्णभाज इति भावः ॥ ७४ ॥ बुद्धिरेव येषां फलसिद्धौ साधनं तानि बुद्धिश्रेष्ठानि प्रशस्ततमानि कर्माणि बाहुमध्यानि बाहुबलसाध्यानि मध्यानि । जंघेति गोपनीयत्वं लक्ष्यते तेन कपटसाध्यानि जघन्यानि नीचानि । येषां सिद्धौ स्वशिरसि भारः संकटं पतति तानि नीचतराणि ॥७५॥ तत्रान्त्यद्वयवन्तो दुर्योधनादय इति मत्वा प्राह-दुर्योधन इति ॥७६॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ † अपिधीयते-आच्छाद्यते + सुवर्णपुष्पां-सुवर्णमेव तेभ्यो या पुष्प्यति ताम् ।

३६

अत्रैवेति ॥ १ ॥ हंसरूपेण परिव्राजकरूपेण ॥ २ ॥ अनुमातुं लिङ्गेन ज्ञातुम् । काव्यां विद्वल्लक्षणाभिधायिनीम् ॥ ३ ॥ मे मया संश्रुतं गुरुभ्य इति शेषः । तदेवाह-धृतिरिति । धृतिः दुःखैरभिघातेऽपि अवैकल्यम् । शमः सर्वेन्द्रियजयः । सत्यधर्माः ब्रह्मप्रापका धर्माः धारणाध्यानसमाधयः तेषामनुवृत्तिरविच्छेदः । तैश्च ग्रन्थिं चिज्जडयोरात्मान्तःकरणयोरेकलोलीभावं विनीय तयोः पृथक्करणेन शिथिलीकृत्य । प्रियाप्रिये सुखदुःखे । आत्मसममात्मसाम्यं नयीत प्रापयेत् प्रियाप्रियधर्मिणोऽन्तःकरणस्यात्मन्यध्यस्तस्य स्वाधिष्ठाने प्रलये सति तयोरपि तत्रैव लय इत्यर्थः । यथा रज्ज्वां रज्जुसर्पे लीने सति भीषणत्वादयोऽपि तत्रैव लीयन्ते तद्वत् ॥ ४ ॥ नाक्रोशेत् न शपेत् यतस्तितिक्षतो मन्युः क्रोध एव आक्रोष्टारं दहति ॥५॥ रुषतीं रोषवतीं पाठान्तरे उषतीं दाहिकां वा॥६॥ × ग्रंथिम्-आत्मादिषु संदेहम् ।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथाऽसून्
रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम् ।
तस्माद्वाचमुषतीं रूक्षरूपां
धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥ ७

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम् ॥ ८

परश्चेदेनमभिविद्ध्येत बाणै-
र्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः ।
स विद्ध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो
विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति ॥ ९

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ १०

अतिवादं न प्रवदेन्न वादये-
द्योऽनाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत् ।
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै
तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥ ११

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं
धर्म्यं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ १२

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥ १३

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते ।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥ १४

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्या-
न्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च ।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो
न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥ १५

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः ।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥ १६

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥ १७

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो
नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः ।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा
कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः ॥ १८

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः ।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः १९

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् ।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ २०

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन
नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण ।
न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां
न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥ २१

धृतराष्ट्र उवाच ।

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा
धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च ।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं
भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥ २२

---

निर्ऋतिमलक्ष्मीं मृत्युं वा ॥ ८ ॥ बाणैः वाग्बाणैः दधाति पुष्णाति ॥ ९ ॥ त्वत्पुत्राः रूक्षवाचस्त्वमपि तत्संगात्तादृशो भविष्यसीत्याह–यदीति । रङ्गस्य नीलादेर्वशं नीलताम् ॥ १० ॥ अतिप्रोक्तोऽपि न वदेत् वादयेद्वा । अनाहतो नैव प्रतिहन्यात् आहतोऽपि पापकं हंतारं यदि हन्तुं नेच्छेत् स देवानामपि श्रेष्ठो भवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ अव्याहृतं मौनं ततोऽपि श्रेयः सत्यवचनं सत्यमपि प्रियं चेत्ततोऽपि श्रेयः तदपि धर्मादनपेतं चेत् श्रेष्ठतममित्यर्थः ॥ १२ ॥ तस्मात्सत्संग एव त्वयाऽपि कर्तव्य इत्याशयेनाह–यादृशैरिति ॥ १३ ॥ यतो यत इति । यथा स्वप्ने बाह्याद्विषयान्निवृत्तस्तज्जेन दुःखेन मुच्यते । एवं जाग्रति स्वाप्नविषयजेन सुषुप्तौ समाधौ च सर्वतो निवृत्तो दुःखलेशमपि न भजतेऽतो निवृत्तिरेव त्वया कार्येति भावः ॥ १४ ॥ अस्यामवस्थायां पुरुषस्य न किंचिद्दुःखादिकमस्तीत्याह–न जीयते चेति । नानुजिगीषते इति पाठे नो पुरुषः ॥ १५ ॥ भावं कल्याणमभावे अकल्याणे ॥ १६ ॥ अनर्थकं मिथ्या न सान्त्वयति ॥ १७ ॥ उपहतो गदया घोषयात्रायां गन्धर्वैस्ताडितः । अभिशस्तः अभितः शस्त्रैर्विदीर्णः । मन्युवशात् क्रोधवशात् नावर्तते न ऋजुर्भवति । यतः कृतघ्नः पाण्डवैस्तदा मोचितोऽपि तदुपकारं हन्त्येव । एताः कलाः चित्तस्य वृत्तयः अधमस्यैव ॥ १८ ॥ अधमलक्षणमाह–नेति । परेभ्यः गुरुभ्यः । आत्मन्येव शंकितः विश्वासहीनः ॥ १९ ॥ महाकुलेभ्य इति स्पृहेरीप्सित इति कर्मणि चतुर्थी ॥ २२ ॥

विदुर उवाच ।

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः
पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥ २३

येषां न वृत्तं व्यथते न योनि-
श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥ २४

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥२५

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥२६

ब्राह्मणानां परिभवात् परीवादाच्च भारत ।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥ २७

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया ।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ३१

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु
राजाऽमात्यो मा परस्वापहारी ।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा
पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥ ३२

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत् ।
न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत् कृषिम् ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ३४

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ३५

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै
शक्तो वोढुं न तथाऽन्ये महीजाः ।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति
महाकुलीना न तथाऽन्ये मनुष्याः ॥३६

न तन्मित्रं यस्य कोपाद्बिभेति
यद्वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम् ।
यस्मिन्मित्रे पितरीवाश्वसीत
तद्वै मित्रं सङ्गतानीतराणि ॥ ३७

यः कश्चिदप्यसंबद्धो मित्रभावेन वर्तते ।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत्परायणम् ॥ ३८

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः ॥ ३९

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ४०

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥ ४१

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥ ४२

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसति वा धने ।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्॥४३

---

तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि दमः इन्द्रियजयः ब्रह्मवित्तं ब्राह्मणस्य धनं वेदाध्ययनं वेदाध्यापनं च । वितानाः यज्ञकर्माणि सम्यग्वृत्ताश्च ये तानि-क्लीबत्वं विधेयापेक्षया-महाकुलानि विद्धि ।२३।न व्यथते न चलति न योनिः पित्रादयोऽपि येषां दोषेण न व्यथन्ते किन्तु गुणैरेव तुष्यन्ति ।।२४।। परिभवात्ताडनात् परीवादात् निन्दातः ॥ २७ ॥ गोभिर्वाग्भिर्विद्ययेत्यर्थः । पुरुषतः सत्पुरुषैः अर्थतः धनैश्च कुलानि कुलसंख्यां कुलेषु गणनां समुपेतानि भवन्ति ।। २८ ।। वृत्ततः धर्मेण कर्षन्ति आहरन्ति ॥ २९ ॥ गोभिर्विद्याभिः ॥ ३१ ॥ नैकृतिकः कपटी वैरकृदादयः कुलघ्ना इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ प्रसंगाद्वृत्तलक्षणमाह-यश्चेति । न इति अस्मच्छब्दस्यादेशचतुष्टयं न नः स इति पाठे। न तस्येति पाठे तु त्रयमेव । निर्वपेत् कुर्यात् पितॄनिति पाठे नो निषेधार्थः ।।३३।। नोच्छिद्यन्ते किन्त्वतिथीनुपगच्छन्त्येव ।।३४।। सत्कृतिं सत्कारं कर्तुं प्रवृत्तानि तृणादीनि ।।३५।। युक्ताः स्यन्दनवदविकलाः ।।३६।। प्रकृतमाह- न तदिति । तत्र तु शङ्काकुलस्य मय्यपि मित्रत्वबुद्धिर्नास्तीति भावः । संगतानि संबन्धमात्राणि ।। ३७ ।। मूर्खस्य तु दुर्योधनादेः कुलशीलादिभिरसंबद्धोऽपि कर्णादिर्मित्रभावेनास्तीत्याशयेनाह-य इति । बंधुः संबंधी मित्रमुपकारकृत्।।३८।।पारिप्लवमतेः चलबुद्धेः।।३९।।समभिवर्तन्ते सम्यगभित एव वर्तन्ते न तु स्पृशन्ति। समतिवर्तन्त इत्यपि पठन्ति।।४०।। अभ्रं मेघः।।४१।।मित्राणां हितायेति शेषः ।।४२।। अनर्थयन्प्रार्थनाशून्यः लुब्धस्तु मित्राणां सारफल्गुत्वेन जानातीत्यतःस कार्यार्थी वणिक्तुल्यो न तु मित्रम्।।४३।।

सन्तापाद्भ्रश्यते रूपं सन्तापाद्भ्रश्यते बलम् ।
सन्तापाद्भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद्व्याधिमृच्छति ४४
अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च
पुनर्नरो हीयते वर्धते च ।
पुनर्नरो याचति याच्यते च
पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ ४६
सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति
तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४७
चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि
तेषां यद्यद्वर्धते यत्र यत्र ।
ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य
छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥ ४८

धृतराष्ट्र उवाच ।

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ ४९
नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः ।
यत्तत्पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥ ५०

विदुर उवाच ।

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र लोभसन्त्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ॥
बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत् ।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥ ५२
अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥ ५३
स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥ ५४

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना
न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति
न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥ ५५
न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥ ५६
न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं
न विद्यते किञ्चिदन्यद्विनाशात् ॥ ५७

सम्पन्नं गोषु संभाव्यं संभाव्यं ब्राह्मणे तपः ।
संभाव्यं चापलं स्त्रीषु संभाव्यं ज्ञातितो भयम्५८
तन्तवोऽऽप्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः।
बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम्५९

सन्तापात् इष्टवियोगात् शोकात् ॥४४॥ अनवाप्यं न प्राप्यं शोकेन शोकमात्रेण इष्टमिति शेषः ॥ ४५ ॥ दुःखादेरागमापायित्वादपि न शोकादिकं कर्तव्यमित्याह—पुनरिति ॥ ४६ ॥ सर्वं पुरुषमात्रम ॥ ४७ ॥ षट् मनसा सह श्रोत्रादीनि पञ्च । स्रवते स्वार्थाद्भ्रश्यति ततो विषयसेवनात् ॥ ४८ ॥ तनुः शरीरमभिव्यक्तिस्थानं काष्ठं तत्र रुद्धोऽनभिव्यक्तः शिखी अग्निस्तथाऽयं राजा धर्मेण रुद्धः । तनुना सूक्ष्मेण धर्मेण वा रुद्धः ॥४९॥ उद्विग्नं भीतं चलितं च अनुद्विग्नमभयमचलं च पदं पदनीयं प्राप्यं ब्रह्म ॥५०॥ तत्प्राप्तिसाधनान्येवाह—नान्यत्रेति । विद्याऽध्ययनजा । तपः स्वधर्माचरणम् । त्वं तु लोभी तत्पदं प्राप्तुमनर्ह इति भावः। शांतिं कल्याणम ॥ ५१ ॥ बुद्ध्या आत्मज्ञानेन भयं संसारम् । विन्दते महत् सद्गुरुशास्त्रादिकं लभते । ततो गुरुशुश्रूषया ज्ञानं ग्रन्थजं योगेन सर्वचित्तवृत्तिनिरोधेन शान्तिम् ॥ ५२ ॥ शान्तिप्राप्तौ सर्वं तुच्छमित्याह—अनाश्रिता इति । दानजं पुण्यं तत्फलं स्वर्गादीत्यर्थः । अनाश्रिताः नाश्रयन्ते तुच्छत्वात्तस्य॥५३॥ तस्यान्ते स्वधीतादीनां कर्मणामन्ते नाशे सुखं परमानन्दं विन्दते जगत्कारणदर्शनादेव सकलकर्मनाशे सत्यकारणं शुद्धं प्राप्नोतीत्यर्थः । 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे'परो हिरण्यगर्भोऽवरो नीचो यस्मात्कारणात्तस्मिन् दृष्टे सति ॥५४॥ तदन्यद्दुःखरूपमेवेत्याह—स्वास्तीर्णानीति। भिन्नाःभेददृष्टिमन्तः 'द्वितीयाद्वै भयं भवति'इति श्रुतेरद्वैततत्त्वात् प्रच्युता इत्यर्थः । पक्षे भिन्नाः ज्ञातिभेदवन्तः ॥५५॥ प्रशममक्रोधम् ॥ ५६ ॥ योग अलब्धलाभः । क्षेमं लब्धपरिपालनं तदुभयं न कल्पते न युज्यते ॥ ५७ ॥ तदेवाह—संपन्नमिति । संपन्नं क्षीरादिसम्पत्तिः ॥ ५८ ॥ तन्तवः कुलतन्तवः पाण्डवाः आप्यायिताः त्वयैव संवर्धिताः । पूर्वरूपमार्षम् । तनवः सूक्ष्माः बाला इत्यर्थः । बहुलाः समाः बहून् संवत्सरान् । बहुत्वात् बन्धूनामन्येषां च ऋषीणां बहुत्वात् वने आयासान् सहन्ति अतः सतामुपमा भवन्ति पाण्डवा इव सन्त इति लोके वदन्ति । अतः सत्तमाः पांडवास्त्वया न वञ्चनीया

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ ६०
ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥ ६१
महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥ ६२
अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः ।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्
एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ ६४
अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातयः संप्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥ ६५
अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ६६
*न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन् सधनतामृते ।
अनातुरत्वाद्भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ ६७
अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् ।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ ६८
रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव
न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम्† ॥ ६९
पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे
द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् ।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां
कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥ ७०
न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते
सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः ।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-
र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ ७१
धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु
पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु ।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या
जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः ॥ ७२
मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य
त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान्
गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७३
सन्धत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रै-
र्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु ।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे
दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥ ७४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

इति भावः ॥ ५९ ॥ अन्ये तु ज्ञातयो न पाण्डवतुल्या इत्याह—धूमायन्ते इति । व्यपेतानि पृथग्भूतानि ॥ ६० ॥ ब्राह्मणादिसाहचर्यात् ज्ञातयोऽप्यत्रायुद्धार्थिन एव ग्राह्याः । तादृशांश्च पाण्डवान् जिघांसन्तः पतिष्यन्त्येवेत्यर्थः॥६१॥ एकजः एकाकी प्रसह्यः शक्यः ॥ ६२ ॥ सधनतां ऋते विना अनातुरत्वात् ऋते च । भद्रं तेऽस्तु इत्याशीर्वचनमात्र-त्वसूचनार्थम् ॥६७॥ धनवाननातुरश्च त्वं गुणी सन् शमं प्राप्नुहीत्याह—अव्याधिजमिति । कटुकमरोचकं परुषं रूक्षं तीक्ष्णं छेदकमुष्णं दुःसहस्पर्शं पेयं गिलनीयं मन्युं दैन्यं 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इति कोशात् । प्रशाम्य शान्तिं क्षमां प्राप्नुहि ॥६८॥ सन्तापाद्व्याधिमृच्छतीत्युक्तमतस्तौ द्वावपि निन्दति फलानि पुत्रपश्वादीनि । तत्त्वमिष्टानिष्ट-विवेकं पित्तोपहतरसनत्वात् । एवं सर्वत्र भोगः स्त्र्यादि-संगः धनादिजं सुखं लब्धमपि न बुध्यन्ते । अतः सन्तापं जागरादिद्वारा रोगोत्पादकं त्यजेत्यर्थः ॥ ६९ ॥ कितवत्वं द्यूतप्रियत्वम् ॥ ७० ॥ मृदुना सहिष्णुना धर्मः दार्यविभा-गाख्यः । क्रूरे त्वत्पुत्रे समाहिता मृदुना युधिष्ठिरेण । प्रौढा सती ॥ ७१ ॥ मेढीभूतः स्वयं निर्व्यापारोऽपि परितः संचरमाणानां बलीवर्दानामिव पुत्राणां यथेष्टप्रचारनिरोधकः ॥ ७३ ॥ अन्तरं भेदं स्थापय युद्धान्निवर्तयस्व ॥७४॥ इति श्रीमं० उद्यो० नैल० भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६

* धनवतामप्यनातुरत्वादन्यो न गुणः । † तदेवं तवापि जागरादिना शोकेन रोगो भविष्यति। ततः प्रशाम्य शोको-न स्यात् इति रोगनिन्दा तात्पर्यम् ।

# ३७

विदुर उवाच ।

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥ २
यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्ये-
द्यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते
यश्चायाच्यं याचते कत्थते वा ॥ ३
यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं
यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति
यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥ ४
वध्वाऽवहासं श्वशुरो मन्यते यो
वध्वाऽवसन्नभयो मानकामः ।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं
स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥ ५
यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी
दत्वा च यः कत्थति याच्यमानः ।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत
एतान्नयन्ति निरयं पाशहस्ताः ॥ ६
यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥ ७
जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥ ८

धृतराष्ट्र उवाच ।

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९

विदुर उवाच ।

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥ १०
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ ११
विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः ।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥ १२
आदेशकृद्वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः ।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः ।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १३

३७

**सप्तदशेति** ॥ १ ॥ दानूनां मेघानां समूहो दानवं तस्मिन् । सुपां सुलुगिति सप्तम्या लुक् डादेशो वा । इन्द्रस्य धनुः वर्षासु दृश्यमानमनाम्यं धूमज्योतिषोः सन्निपातरूपत्वात् नामयितुमयोग्यं नमतः नामयतः मरीचिनः मरीचिमतः सूर्यचन्द्रादेः। व्रीह्यादित्वान्मत्वर्थीय इनिः। पादान् रश्मीन् आकाशहननादिकमकार्यं कुर्वतोऽतिमूढानित्यर्थः ॥ २ ॥ अशिष्यं शासनानर्हं दुर्योधनादिभ्यः शास्ति । तुष्येत् अल्पलाभेनेति शेषः । द्विषन्तं भजते स्वकार्यार्थमिति शेषः। कार्यमेवाह–भद्रमश्नुत इति । शत्रुसेवया स्त्रीरक्षया च यो भद्रमश्नुते तौ द्वौ मूर्खावित्यर्थः । यः कत्थते किञ्चित्कृत्वा श्लाघते स षष्ठो मूर्खः ॥ ३ ॥ अभिजातः कुलीनः ॥ ४ ॥ श्वशुरः सन् यो वध्वा पुत्रभार्यया सह अवहासं परिहासं तत्पित्रादिभिरिव मन्यते स एकादशः। वध्वा स्नुषया भूतया अवसन्नभयो नष्टभयः वधूपित्रादिभिरापादितातोऽपि तत्रैव मानं कामयते यः स द्वादशो मूर्खः। अन्ये तु वध्वा सह रतिं कुर्वन्नपि अभयो मानकामश्चेति व्याचख्युः । तद्विगीतत्वादुपेक्ष्यं परक्षेत्र इत्यनेन संगृहीतं च ॥ ५ ॥ दत्वा तीर्थे वाचा दानं कृत्वा गृहे याचकेन याच्यमानः सन् कत्थते दानमकृत्वैव श्लाघते असतो दुष्टस्य सत्त्वं साधुत्वमसतः मृषार्थस्य सत्त्वं सत्यत्वं वा उपानयीत समर्थयते स सप्तदशो मूर्खः ॥ ६ ॥ यस्मिन्निति । साधुषु पाण्डवेषु त्वयाऽपि साधुना भवितव्यमित्याशयः ॥ ७ ॥ जरेति । अभिमानं त्यजेति भावः ॥ ८ ॥ अभिमानः सर्वहर इत्युक्तेऽभिमानवतां मत्पुत्राणां यदि स्वल्पमेवायुरस्ति तर्हि त्यक्तेऽप्यभिमाने न जीविष्यन्ति । यदि बहु तर्हि सत्यपि तस्मिन्न मरिष्यन्तीत्याशयेनाह–शतायुरिति ॥ ९ ॥ अत्यागः उत्कृष्टोऽपराधश्चौर्यादिर्गरदानादिर्वा ।अत्याश इति पाठे बहुभोजित्वम् । आत्मविधित्सेति–पोषणार्थस्य धाञः सनि रूपम् । आत्मपोषणेच्छा शिश्नोदरपरायणतेत्यर्थः ॥ १० ॥ असयः खड्गाः । भद्रमस्तु ते एतेषां षण्णां त्यागेन तव पुत्राः शतायुषो भवन्त्वित्यर्थः ॥ ११ ॥ वृषली शूद्रा । द्विजस्त्रैवर्णिकः । पानपो मद्यपः ॥ १२ ॥ आदेशकृत् ग्रामणीः प्रेषकः द्विजान् दास्ये

गृहीतवाक्यो नयविद्वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ १४
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः १५
यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् १६
त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् १७
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १८
द्यूतमेतत् पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्१९
उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राज-
न्नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय ।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य
न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥ २०
काकैरिमांश्चित्रबर्हान् मयूरान्
पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रैः ।
हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान् गूहमानः
प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥ २१
यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य ।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २२
न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन
राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम् ।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः
स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥२३
कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वा-
ण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम् ।
संगृह्णीयादनुरूपान् सहायान्
सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २४
अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः
सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री ।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः
शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २५
वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः
प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः ।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी
त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥ २६
अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं
सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं
दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २७
न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे
गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले ।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो
न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥ २८
न निन्हवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्
संसृष्टमन्त्रस्य कुसंगतस्य ।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति
सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥ २९

---

नियोजयन् समेत्य संमृज्य । यदि त्वत्पुत्रा अतिमानादीन्न त्यजन्ति तर्हि तेषां पाण्डवप्राप्तिहन्तॄणां सङ्गस्त्वया न कार्य इति भावः ॥ १३ ॥ गृहीतवाक्यो विद्यावान् । नयवित् नीतिज्ञः । वदान्यो दाता । गृहीतवाग्योऽनपविद्धवाक्य इति पाठे मितभाषी अनिरस्तगुरुवचनः ॥ १४ ॥ इदं द्यूतं न युक्तमिति वचनं मया उक्तमिति सम्बन्धः ॥ २० ॥ भक्तस्य सेवां कुर्वतः ॥ २२ ॥ अपूर्वं परकीयं स्निग्धा हि स्नेहवन्तोऽपि ॥ २३ ॥ कृत्यानि परिसंख्याय साध्यासाध्यनिश्चयं कृत्वा तथा वृत्तिं भृत्यजीविकामायव्ययानुरूपां कृत्वेत्यर्थः । दुष्कराणि परराष्ट्रग्रहणादीनि ॥ २४ ॥ अनुकम्प्यो मादृशो वचनस्वीकारेणानुग्राह्य इति प्रार्थयते ॥ २५ ॥ प्रत्याह प्रत्याख्यानं करोति प्रतिकूलमाज्ञाविरुद्धं वदतीति प्रतिकूलवादी ॥ २६ ॥ अस्तब्धं दर्पशून्यमक्लीबं सामर्थ्यवन्तमदीर्घसूत्रं क्षिप्रकारिणं सानुक्रोशं सदयं श्लक्ष्णं मञ्जुलमहार्यमभेद्यमरोगजातीयं रोगलेशशून्यमुदारं युक्तियुक्तं महार्थं च वाक्यं यस्य तं दूतं प्रेष्यम् ॥ २७ ॥ विकाले सायंकाले परस्य अविश्वस्तस्य गेहे न गच्छेत् । प्रार्थयीत भोक्तुमिति शेषः ॥२८॥ संसृष्टः बहुकर्तृकत्वेन मिश्रो मन्त्रो यस्य त्वादृशस्य कर्णादिसहायवतो राज्ञो निन्हवं मन्त्रस्य अपहारं न गच्छेत् मादृशः तं मन्त्रं न दूषयेत् । तैः सर्वैः सह विरोधापत्तेरिति भावः । त्वयि बहूनां शास्ये अहं नाश्वसिमीति न ब्रूयात् किंतु मम किंचित्कार्यमस्तीति तथा व्यपदेशं व्याजं कृत्वा तादृशान्मन्त्रादपसरेदेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः
पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव
व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥ ३०
अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ३१
एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो बिभर्ति ॥ ३२
गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते
बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च
श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥ ३३
गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते
आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं
न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥ ३४
अकर्मशीलं च महाशनं च
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेष-
मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ॥ ३५
कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च
वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्न-
मेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥
संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं
नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च ।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चा-
प्येतान्न सेवेत नराधमान् षट् ॥ ३७
सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः ।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनाऽन्योन्यं न सिद्ध्यतः
उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा
वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित् ।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा
अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ३९
हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत्कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥ ४०
वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्वमुत्थानमेव च ।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्यावृत्तिभयं कुतः ॥ ४१
पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं
यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः ।
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो
यशःप्रणाशो द्विषतश्च हर्षः ॥ ४२
भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प
द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः
श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन् खे ॥ ४३

---

घृणी लज्जावान् । स हि यथोक्तं दण्डमधमर्णेषु पातयितुं न शक्तः क्रूरोऽयमिति लोकापवादभयात् । उद्धृतभूतिः दूरीकृताधिकारः । एते व्यवहारे धनदानादौ वर्जनीयाः । द्रव्यनाशभयात् एतेभ्यो न ग्राह्यं च । अधमर्णो घृणी लज्जावांश्चेदतिनिर्बन्धेन याच्यमानः प्राणानेव जह्यात् एवमन्यत्राप्यूह्यम् । त्वमपि नाशभयात् पुत्राय राज्यं मा देहीति भावः ।३०॥स्वरो ध्वनिस्तस्य प्रशुद्धिः मञ्जुलता वर्णाः कादयः तेषां प्रशुद्धिर्यथास्थानकरणं विस्पष्टमुच्चारणं स्पर्शः मृदुता । सौकुमार्यं लावण्यम् ॥ ३३ ॥ मितभुक्तं मितभोजिनमाद्यूनो बहुभोजीति क्षिपन्ति निन्दन्ति ॥ ३४ ॥ अनिष्टवेषं क्षपणकादिवेषधरम् ॥ ३५ ॥ कदर्यमदातारमाक्रोशकं गालयितारमश्रुतं मूर्खं वनौकसं कैवर्तकं धूर्तं कितवं निष्ठूरिणं निर्दयं हिंस्रं कृतवैरमन्येन स्वेन वा ॥ ३६ ॥ संक्लिष्टकर्माणमाततायिनम् । स च षड्विधः—' अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ' इति प्रसिद्धः । अतिप्रमादं सदाव्यग्रम् । विसृष्टरागं त्यक्तस्नेहम् । पटुमानिनं कुशलंमन्यम् ॥ ३७ ॥ एवं निर्गुणानां स्वपुत्राणां पक्षपातेन सगुणान् पाण्डुपुत्रान् मा त्यजेत्युक्तम् । सम्प्रति सर्वेषामैकमत्येनाभ्युदयं प्रसाध्य स्वहितमेव कुर्वित्याह–सहायेत्यादिना ॥ ३८ ॥ ईश्वरे कालान्तरीयफलप्रतिभूभूते एतदेव स्वपरहिताचरणं मूलं हेतुभूतम् । एतद्विना ईश्वरोऽपि फलं दातुं न समर्थ इत्यर्थः ॥ ४० ॥ ननु परहितकरणे स्वहितं कथं स्यादित्यत आह–वृद्धिरिति । वृद्धिः सहायमेलनेन धनादीनां प्रचयः । बुद्धिरिति पाठे मित्रसङ्ग्रहधीः । प्रभावः शत्रूणां पराजयः । तेजः तद्धेतुभूतं शौर्यं सत्वं धर्मज्ञानैश्वर्यरूपमुत्थानमुद्यमः व्यवसायो निश्चयः । अवृत्तिर्जीविकाया अभावः ॥ ४१ ॥ श्वेतो ग्रहो धूमकेतुः ॥ ४३ ॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः ।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥ ४४
धार्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः।
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन्वनात्
न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम् ॥
न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान् ।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥ ४७
अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्॥ ४८
यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥ ४९
यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥ ५०
सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति॥५१
बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥ ५२
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ५३
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥ ५४
येन त्वेतानि सर्वाणि सङ्गृहीतानि भारत ।
यद्बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ ५५
महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः ।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ५६
स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु ।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति॥ ५७
प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तो-
श्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि ।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि
नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥ ५८
सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥ ५९
अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु ।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥ ६०
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ ६१
एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते॥६२
लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः ।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ६३
वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय
सिंहान् वने पाण्डवांस्तात विद्धि ।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्
सिंहा विनश्येयुर्ऋते वनेन ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

विदुर उवाच ।

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ १

नीनशन् नाशं प्राप्नुयुः ॥४५॥ परेषां पाण्डवानां पापचेतसो दुर्योधनाद्याः ॥ ४७ ॥ आत्मा चित्तम्। पापात् इदं मे स्यादिदं मे स्यादित्येवंरूपात् सङ्कल्पात् । कल्याणे भूमानन्दे ब्रह्मणि । प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका माया । विकृतिर्महदादिः । आत्मज्ञानात् सर्वज्ञानप्रसिद्धेः ॥ ४९ ॥ मोक्षानधिकारिणं प्रत्याह—य इति ॥ ५० ॥ अभिजातबलं कुलबलम् ॥ ५४ ॥ औषधाद्याश्चिकित्सकाः न सन्ति । तैरचिकित्स्य इत्यर्थः। आथर्वणा वेदमन्त्रा अपि किंपुनर्भाषामन्त्रादयः । सुसिद्धाः अगदाः पारदादयः ॥ ५८ ॥ कुलपुत्रो ज्ञातिः ॥ ५९ ॥ कुले जाताः पाण्डवाः ॥६२॥ शालाः महावृक्षाः पाण्डवान् आश्रित्य सपुत्रो वर्धस्वेत्यर्थः ॥ ६३ ॥ त्वत्पुत्रान्निहत्य पाण्डवा अपि स्नेहान्नश्येयुरेवेति भावः॥ ६४ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

३८

ऊर्ध्वमिति । आयति आगच्छति ॥ १ ॥ निर्णिज्य

पीठं दत्वा साधवेऽभ्यागताय
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च
न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे ।
लोभाद्भयादथ कार्पण्यतो वा
तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३

चिकित्सकः शल्यकर्ताऽवकीर्णी
स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च ।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च
भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४

अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं
दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च
तिला मांसं फलमूलानि शाकं
रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥ ५

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः ।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ६

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः
सुसंयतात्माऽग्निकार्येषु चोद्यः ।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो
धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ ७

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ९

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्
पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः
पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत् १२

भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ।
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् १३

तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ।
नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥ १४

क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ।
यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।
करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥ १६

धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ।
गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ १७

अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ।
नासुहृत्परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥ १८

अपण्डितो वाऽपि सुहृत्पण्डितो वाऽप्यनात्मवान्
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात् सचिवमात्मनः ॥१९

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च ।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः २०

धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः ।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २१

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशाद्भ्रश्यते जीवितादपि ॥ २२

---

प्रक्षाल्य आत्मसंस्थां स्वास्थितिं प्रतिवेद्य निवेद्य ॥ २ ॥ यस्य कदर्यस्य भयात् राज्यादिषु धनिकत्वप्रथाभयात् । अदीयमानत्वादेव न प्रतिगृह्णाति तस्य जीवितमनर्थं व्यर्थम् ॥ ३ ॥ शल्यकर्ता काण्डकृत् । अवकीर्णी नष्टब्रह्मचर्यः । नोदकार्ह उदकमात्रानर्होऽपि अतिथिः भृशं प्रियः प्रियवज्जामात्रादिवदर्चनीय एवेत्यर्थः ॥ ४ ॥ श्रुतिविक्रायकप्रसङ्गादन्यदप्यविक्रेयं यो विक्रीणाति सोऽपि मान्य एवेति विवक्षयाऽविक्रेयाण्याह-अविक्रेयमिति ॥ ५ ॥ दोषवानप्यतिथिः पूज्यः किमुत गुणवानिति वक्तुं तद्गुणानाह-अरोषण इति । गतसन्धिविग्रहः स्नेहवैररहितः उदासीनवत् रागद्वेषादिराहित्यात् ॥ ६ ॥ चोद्यः विधेयः सावधान इत्यर्थः। तापसो दरिद्रोऽप्यतिथिष्वप्रमत्तो भवेत्किंपुनर्भाग्यवानिति भावः ॥ ७ ॥ दीर्घौ बाहू बुद्ध्या दूरस्थमप्यादातुं शक्नुत इत्यर्थः । हिंसति हिनस्ति अतिथिभक्ता दूरस्था अपि पाण्डवा न हेलनीया इति भावः ॥ ८ ॥ अविश्वस्ते भीमे न विश्वासः कार्यः ॥ ९ ॥ अनीर्षुरित्यादिसार्धश्लोकत्रयस्य गुप्तदाराः पांडवाः तेषां स्त्री श्रीतुल्या द्रौपदी सा पित्रा त्वया रक्षणीयैवातस्तदतिक्रमात्तव भयमस्तीति तात्पर्यम् ॥ १० ॥ प्रसंगात् प्रकृतेऽनुपयुक्तानपि धर्मानाह-अद्भ्य इति । एतेषां च यथालाभं प्रकृतोपयोगित्वमप्यूह्यम-द्भ्य इत्यादिना । मैत्रेयादीनां ब्राह्मणानामवज्ञा न कार्येति सूचितम् ॥ १३ ॥ सर्वतश्चक्षुश्चारैः परमन्त्रं जानन् ॥१६॥ निःशलाके तृणैरनावृते तत्रापि कश्चिल्लीनश्चेन्मन्त्रभेदः संभवेदिति भावः ॥१८॥ अनात्मवान् चपलवाक् ॥१९॥ पार्षदाः सभासदः कृतान्येव विदुः किमुतान्ये॥२०॥ अप्रशस्तानि निन्द्यानि विपरिभ्रंशात् विपरीतत्वेन भ्रंशात्॥२२॥

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३
अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ २४
स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५
अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वाऽन्ववेक्षिणः ।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥ २६
नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः ।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ॥ २७
ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा ।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २८
न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः ।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद्बले सति ।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव ॥ २९
दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च ।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ ३०
निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ ३१
प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ३२
न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३३
विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत ।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥ ३४
अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ३५
अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ॥
अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥ ३७
धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः
असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥ ३९
न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि ।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥४०
येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत ।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ४१
येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च ।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥४२
यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता ।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन्नद्यामश्मप्लवा इव ॥ ४३
प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत ।
तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः॥ ४४
यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः॥४५
हित्वा तान् परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः ।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥ ४६
तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात्त्वमचिरादिव ।
ऐश्वर्यमदसंमूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

षाड्गुण्यं षण्णां सन्धि-विग्रह-यानासन-द्वैधीभाव समाश्रयाणां समूहः न श्रुतो येन सः ॥ २४ ॥ षाड्गुण्याभिज्ञत्वेन विदित आत्मा स्वरूपं यस्य तस्य स्थानं यथास्थितत्वावस्था अनवज्ञातं सत्कृतं शीलमस्य ॥२५॥ नवेक्षिण इति पाठे नवमिवादरेण ईक्षितुं शीलमस्य । आत्मनैव प्रत्ययो ज्ञानं यस्य स्वयमेव ज्ञातकोशस्य ॥२६॥ नाममात्रेणैव राजा भवेत् भोगांस्तु भृत्यैः समानानेव भुञ्जीत ॥ २७ ॥ लोकस्य पर्यायः इहलोकपरलोकवत्त्वं तेन तद्विषयवृत्तान्तं कर्मफलाधीनत्वस्वरूपं प्राज्ञो जानाति न तु बुद्ध्या धनं जाड्येन वा दारिद्र्यं लभ्यते सर्वत्र व्यभिचारदर्शनादिति भावः ॥३३॥ अभिजातः कुलीनः ॥३४॥ अविसंवादनं वञ्चनाशून्यं समयस्य स्वपरकृतमर्यादायाः आवर्तयन्ति शत्रूनपि स्वीयान कुर्वन्ति प्रणिहिता प्रयुक्ता ॥ ३६ ॥ परिवारणं परिवारान् भृत्यमित्रादीन् ॥३७॥ समिधः उद्दीपिकाः ॥ ३८ ॥ असंविभागी पोष्येभ्योऽदत्वा स्वयं भुञ्जानः ॥ ३९ ॥ दुष्टेषु दूषितेषु वेतनाद्यतिक्रमात् ॥४१॥ समासक्ताः निहिताः संशयं गताः कदाचित्प्राप्या इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ ये भृत्याः विशेषा आधिक्यानि तेषु हि प्रदर्श्यमानेषु परस्परं स्वीयानामेव कलहप्रसंगान्मुख्यं प्रयोजनं नश्यतीति भावः। प्रसंगिनः प्रसंगः संघर्षस्तत्कारिणः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

धृतराष्ट्र उवाच ।
अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे
सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं
तस्माद्वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १
विदुर उवाच ।
अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥ २
प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥ ३
द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥ ४
उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्
दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम् ।
तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धि-
रस्यात्यागात् पुत्रशतस्य नाशः ॥ ५
न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥ ६
न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्
समृद्धा गुणतः केचिद्भवन्ति धनतोऽपरे ।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय ॥ ८
धृतराष्ट्र उवाच ।
सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसंमतम् ।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९
विदुर उवाच ।
अतीव गुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः ।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥ १०
परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च ।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ ११
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम् ।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥ १२
ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥
युक्तांश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति ॥ १४
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ।
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥ १५
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति ।
तादृशैः सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ १६
निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद्विवर्जयेत् ।
यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ॥ १७
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ।
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् १८
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर ।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः ॥ २०
प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते ।
दीयन्तां ग्रामकाः केचित्तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥२१
एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप ।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् ॥
मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना ।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥ २३
संभोजनं संकथनं संप्रीतिश्च परस्परम् ।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥
ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥ २५

---

३९

**अनीश्वरोऽयमिति** । भवाभवे ऐश्वर्यानैश्वर्ये दिष्टस्य दैवस्य । वदैव न तु मां दूषयेति भावः । धृतः धृतिमान् ॥ १ ॥ बुद्ध्यवज्ञानमवज्ञातबुद्धित्वम् ॥ २ ॥ मन्त्रबलेन मूलबलेन च प्रियकृत् प्रियो भवति स च दानाद्यभावे पुनरप्रियो भवति । अहं तु न तथाऽतस्त्वया प्राप्तकाले मदुक्तेऽनादरो न कर्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ द्वेष्ये इति । यो यस्य द्वेष्यस्तस्मिन् तद्दृष्ट्या साधुत्वादिकं सदपि नास्ति प्रिये त्वसदपि तद्दृष्ट्याऽस्तीति भावः ॥४॥ आयतीयुक्तं उदर्के हितम् ॥ ९ ॥ पुत्रं त्यक्तुमशक्तेन दुष्टाः शकुन्यादयो वा त्याज्या इत्याशयेनाह–अतीवेति । कुलविनाशो नोपेक्षणीय इति भावः ॥ १० ॥ सौहार्दे मैत्रीहेतौ निवर्तमाने सति प्रीतिः फलनिर्वृत्तिः सुखं च प्रणश्यति स नीचोऽपवादाय यतते क्षये च यत्नमारभते शान्तिं च न गच्छतीति द्वयोः संबन्धः ॥ १४ ॥ संगतं संबन्धम् ॥ १६ ॥ निशम्य विचार्य ॥ १७ ॥ शुभार्थिना ऐश्वर्यलिप्सुना ॥ २३ ॥

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद ।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥ २६
श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥ २७
पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति ।
तान् वा हतान् सुतान् वाऽपि श्रुत्वा तदनुचिन्तय
येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २९
न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात् ।
शेषसंप्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ ३०
दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम् ।
त्वया तत्कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥ ३१
तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः ।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥ ३२
सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः ।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३३
असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि ।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥ ३४
पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते ॥ ३५
यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते ॥ ३६
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ।
मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् ३७
अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ।
मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसंभवम् ॥ ३८
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ।
द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप ३९
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ।
न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ॥ ४०
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ।
नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ॥ ४१
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ।
मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत् ।
श्रुत्वा दृष्ट्वाऽथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ।
अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ॥ ४३
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।
परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ॥ ४४
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ।
उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते ४५
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ।
प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ॥ ४६
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ।
दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत्
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद्वरः ।
ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा ४८
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ।
दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव ॥ ४९
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति ।
अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च ॥ ५०

---

दिग्धहस्तं विषाक्तबाणहस्तम् । स श्रीमान् एनस्तस्य ज्ञातिरवसादजं पापं विन्दति । मृगवधजं पापं व्याध इवेत्यर्थः ॥ २७ ॥ खट्वां समारूढश्चिन्तागारं प्रविष्टः लोके आगन्तुं लज्जमान इत्यर्थः ॥ २९ ॥ न कश्चिदिति । भार्गवात् शुक्रादन्यत्र नीतिशास्त्रकर्तारं शुक्रं विहाय अन्यः कश्चिदपि न अपनयते इति न अपि तु सर्वोऽप्यपनयते अनीतिं करोति । अतः यत् अतीतं तत् अतीतमेव शेषस्य तत्कालोचितस्य अर्थस्य प्रतिपत्तिः विचारः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ ३० ॥ तदेवाह—दुर्योधनेनेति । प्रत्यानेयं प्रतिकर्तव्यम् ॥ ३१ ॥ प्रतीकारमेवाह—तानिति । प्रतिष्ठाप्य राज्यांशदानेन स्थिरीकृत्य ॥ ३२ ॥ धीराणामुपदेष्टृणां सुव्याहृतानि वचनानि । अध्यवस्यति निश्चयं करोति । उत्तमफलं कर्मारभत इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ सुकुशलैरप्युपयुक्तमुपदिष्टं तत् ज्ञानमसम्यगेव यतः उपलभ्यं ज्ञेयं तेन अविदितं न ज्ञातं विदितं ज्ञातं वा तत् नानुष्ठितं मदुक्तं त्वयि निष्फलमेवेति भावः ॥३४॥ यस्य श्येनादेः फलं ब्रह्मवधादि पापोदयं पापहेतुः । तत्फलं फलहेतभूतं कर्म यो नारभते स वर्धते ॥ ३५ ॥ अविमृश्य अविचार्य पापमेवानुवर्तते सततं करोति ॥ ३६ ॥ पङ्के नरके ॥ ३७ ॥ अर्थसन्ततिः अर्थानामविच्छेदेन वृद्धिः तत्कामः । मदं सुरापानजं चित्तवैक्लव्यम् । स्वप्नं निद्राम् । अविज्ञानं परकीयगुप्तचारादेरज्ञानम् । आत्मसंभवमाकारं नेत्रवक्त्रविकारादिकम् । तावतैव परदूता मन्त्रमुन्नयन्ति ॥ ३८ ॥ मंत्रभेदस्य द्वाराणि संवृणोति पिदधाति ॥ ३९ ॥ श्रुतं शास्त्रम् ॥ ४० ॥ मत्या मननेन युक्तिभिरनुचिन्तनेन । जात्येतिपाठे कुलीनत्वेन । बुद्ध्या स्वानुभवेन संपाद्य कार्ययोग्यतां निश्चित्य ॥४२॥ श्रुत्वा परतः दृष्ट्वा स्वयमाकृत्या ज्ञात्वा विज्ञाय पुनः पुनर्विशेषेण ज्ञात्वा प्राज्ञताम् ॥४३॥ परिच्छदः भोग्यवस्तुसामग्री क्षेत्रेण जन्मस्थानेन कुग्रामवासिषु प्रायेण विवेकाभावात् परिचर्यया आचारेण ॥४४॥ वैद्यं विद्यावन्तम् ॥ ४६ ॥ चित्तं ज्ञानमात्रं निभृतं गूढाचारप्रवृत्तं मन्त्रयन्त्रादि प्रज्ञा विशेषतोर्थोन्नयनक्षमता॥४८॥ रौद्राः कोपनाः साहसिकाः अविमृश्यकारिणस्तेषु ॥ ५० ॥

तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद्बुधः ।
कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम् ॥ ५१
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ।
इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनाऽपि विशिष्यते ५२
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतान्यपि ।
मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ॥ ५३
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ।
अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते ॥ ५४
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ।
आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः ॥ ५५
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ।
कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ॥ ५६
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत् ।
मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ॥ ५७
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ।
अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ५८
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते ।
नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत् पथ्यतमं मतम् ५९
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ।
क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात् ।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता६०
यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥ ६१
दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥ ६२
आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम् ।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥ ६३
अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥ ६४
न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च ।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते ॥ ६५
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ।
अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥ ६६
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ।
अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ ६७
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ।
कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु संभ्रमे ॥ ६८
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ।
उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ६९
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ।
तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ॥ ७०
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ।
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ॥ ७१
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ।
न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ॥७२
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ।
अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ॥ ७३
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम् ।
स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ॥ ७४
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥ ७५
चत्वारि संप्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ।
अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा ७६
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ।
अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ॥
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्
अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ॥ ७८
असंभोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ।
अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ॥ ७९

---

इन्द्रियाणामुत्सर्गो विषयेषु प्रवृत्तिः । अनुत्सर्गो विषयेभ्यो निवृत्तिः । सा मृत्युतुल्या दुरनुष्ठेयेत्यर्थः ॥ ५२ ॥ आयुष्याणि आयुःकराणि अपनीतमन्यायेन नाशितम् ॥ ५४ ॥ आयत्यामागामिनि काले दुःखस्य प्रतीकारज्ञः । तदात्वे वर्तमाने दृढनिश्चयः । भोगं विना प्राप्तस्य दुःखस्य नाशो नास्तीति ज्ञात्वा तत्संबन्धेऽपि नोत्तपति ॥ ५५ ॥ मङ्गलानां दधिदूर्वागवादीनामालंभनं स्पर्शः योगः सहायसंपत् उत्थानमुद्यमः ॥५७॥ अनिर्वेदः उद्योगात् अनुपरमः ॥५८॥ तस्य मध्यमस्य यो न शक्तः नाप्यशक्तस्तस्येत्यर्थः। सर्वेषां क्षमा श्रेयस्करीत्यर्थः ॥ ६० ॥ मूढव्रतमाहारादौ अतिनिर्बन्धम् ॥ ६१ ॥ अदान्तेषु लिप्साहीनेषु ॥ ६२ ॥ सव्यपत्रपं सलज्जम् ॥ ६३ ॥ अत्यार्यमत्यन्तमकुटिलम् ॥६४॥ और्ध्वदेहिकं परलोकसाधनं यज्ञदानादि ॥ ६७ ॥ संयम इन्द्रियाणां निग्रहः ॥६९॥ भवस्य ऐश्वर्यस्य ॥७०॥ ब्राह्मणकाम्या ब्राह्मणस्य इच्छा तदाज्ञेयेत्यर्थः॥७१॥सन्दध्यात् कुर्यात् ॥ ७२ ॥ अन्योऽधर्मः कामात् इच्छया साधुना कर्मणा ॥७३॥ स्त्रीधूर्तके स्त्रियां धूर्ते चेत्येकवद्भावः॥७४॥ वाक्शल्यं दुर्वचनमनाम्नायः अनभ्यास एव मलं येषाम् ॥ ७९ ॥

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम् ।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ८०
सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु ।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ८१
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः ।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥ ८२
यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ८३
सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते ॥ ८४
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ८५
राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर ।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ८६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

## ४०

विदुर उवाच ।
योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः
करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा ।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्त-
मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः ॥ १
महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं
यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव ।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते
जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य ॥ २
अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ३
असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥ ४
आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च॥५
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ७
आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः
क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता ।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राज-
न्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥ ८
अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं
मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन
एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥ ९
अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥ १०

बाह्लीकाः 'पंचानां सिंधुषष्ठानां नदीनां यत्र संगमः बाह्लीका नाम ते देशाः'॥८०॥ विप्रवासः प्रवासः ॥८१॥ स्वप्नेन शयनेन ॥८२॥ यदि ते स्वेषु पुत्रेषु पाण्डवेषु च समताऽस्ति तर्हि सर्वेषु सममेवाचर । यथाभागं राज्यं तेभ्यो देहीत्यर्थः ॥ ८६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

**४०**

**योऽभ्यर्चित** इति । असज्जमानः अभिमानशून्यः शक्तिमहापयित्वा अनतिक्रम्य यथाशक्तीत्यर्थः । सन्तं साधु-मुपैति लभते यतः प्रसन्नाः सन्तः साधवः सुखाय अलं सुखं दातुं पर्याप्ताः ॥ १ ॥ अनपाकृष्टः परैरपकर्षमप्रापितोऽपि ॥ २ ॥ समुत्कर्षः अनृतेन जय इत्यर्थः ॥ ३ ॥ एकपदं सर्वात्मना ॥४॥ स्तब्धता औद्धत्यम् । अभिमानो दर्पः । तद्वत्त्वमत्यागित्वं लुब्धता । मदमोहौ एकीकृत्य सप्त ॥ ५ ॥ आकर्षः विषादीनाम् ॥ ९ ॥ अजेन सहितः उक्षा अजोक्षा औदुम्बरं ताम्रमयं पात्रजातं 'उदुम्बरं स्मृतं ताम्रे' इति **विश्वः**। विषं लोहमिति **सर्वज्ञः**। स्वर्णनाभः शालग्रामः । दक्षिणावर्तः शंख इति **नारायणः** ॥ १० ॥

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत् ।
देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥ ११

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् ।
न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ १२

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।
त्यक्त्वाऽनित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये
सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥ १३

महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम् ।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्
गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य ॥ १४

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति ।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति
चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ १५

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् ।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ १६

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः ।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥
अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम् ।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं संचिनुयाच्छनैः ॥ १८

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो
महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम् ।
तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां
बुद्ध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन् ॥ १९

इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथाव-
न्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव ।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके
भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥ २०

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था
सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥ २१

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥ २२

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं
विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम् ।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य
यः संपृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित् ॥ २३

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा २४

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती
नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्व-
न्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥ २५

अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नी-
निष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च ।
गोब्राह्मणार्थे शस्त्रपूतान्तरात्मा
हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥ २६

---

धन्यानि मंगलावहानि ॥ ११ ॥ सर्वपरं सर्वेभ्यः पुण्यहेतुभ्यः परमुत्कृष्टं महाविशिष्टं महेन उत्सवेन अविशिष्टं समानं मांगलिकमित्यर्थः ॥ १२ ॥ अस्य जीवत्वस्य हेतुरविद्या। अनित्यं सुखदुःखे अविद्यां च। नित्ये धर्मे निरवद्ये आत्मनि च प्रतितिष्ठस्व निष्ठां कुरु। सन्तुष्य संतोषं प्राप्नुहि। तोषः पर उत्कृष्टः यस्मिन् लाभे ॥ १३ ॥ गृहात् निर्हरन्ति दूरीकुर्वन्ति ॥१५॥ उत्सृज्य मृतस्य देहं त्यक्त्वा ॥ १७ ॥ अस्माल्लोकादूर्ध्वं स्वर्गं अमुष्य अमुष्मात् स्वर्गात् चात् अस्माच्च अधः पाताले महत्तमः तमोगुणप्रधानैः पुरुषैः प्राप्यं स्थानमन्धकारमप्रकाशं तत् अन्धन्तमः अन्धतामिस्राख्यं नरकं बुद्ध्यस्व मा त्वां रागान्धं प्रलभेत स्पृशेत् ॥ १९ ॥ प्रतिपत्तुं ज्ञातुं शक्ष्यसि चेदिति संबन्धः ॥२० ॥ आत्मा जीवो नदी पुण्यं धर्म एव तीर्थं यस्याम्। सत्यं ब्रह्म तस्मादुदयो यस्याः। तस्यां स्नातः निष्णातः प्रत्यग्रूपे मग्न इत्यर्थः। पूयेत शुध्यति कः पुण्यकर्मा पुण्यमपि किं नित्यमलोभ एव वैराग्यान्न परं पुण्यमित्यर्थः ॥ २१ ॥ नदीं संसारनदीं जन्मदुर्गाणि संतर मोक्षार्थं यतस्वेत्यर्थः ॥ २२ ॥ धृत्येति। कामं अशनायां च धैर्येण जित्वा शिश्नोदरं दोषात् रक्षेत्। सम्यग्दृष्ट्वा वस्तूनामादानेन दृष्टपूते स्थले पदन्यासेन च पाणिपादं चक्षुषा रक्षेत्। चक्षुःश्रोत्रे मनसैव परस्त्र्यादिभ्यः कुशब्देभ्यश्च व्यावर्तनेन रक्षेत्। मनो वाचं च कर्मणा संयमनेन रक्षेत् ॥ २४ ॥ नित्योदकी नित्यं यथाकालं स्नानाचमनपरः ॥ २५ ॥ परिसंस्तीर्याग्नीन् परिस्तरणैः एतेना-

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च
धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च ।
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं
प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥ २७

ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः
क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः ।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपाप-
स्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते ॥ २८

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो
हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध ।
क्षात्राद्धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्र-
स्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुङ्क्ष्व ॥ २९

धृतराष्ट्र उवाच ।

एवमेतद्यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा ।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम् ॥ ३०

सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥ ३१

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित् ।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

॥ समाप्तं प्रजागरपर्व ॥

## सनत्सुजातपर्व ४

## ४१

धृतराष्ट्र उवाच ।

अनुक्तं यदि ते किञ्चिद्वाचा विदुर विद्यते ।
तन्मे शुश्रूषतो ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे ॥ १

विदुर उवाच ।

धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः ।
सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत ॥ २

स ते गुह्यान् प्रकाशांश्च सर्वान् हृदयसंश्रयान् ।
प्रवक्ष्यति महाराज सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ ३

धृतराष्ट्र उवाच ।

किं त्वं न वेद तद्भूयो यन्मे ब्रूयात् सनातनः ।
त्वमेव विदुर ब्रूहि प्रज्ञाशेषोऽस्ति चेत्तव ॥ ४

विदुर उवाच ।

शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे ।
कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम् ॥ ५

ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपि यो वदेत् ।
न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६

धृतराष्ट्र उवाच ।

ब्रवीहि विदुर त्वं मे पुराणं तं सनातनम् ।
कथमेतेन देहेन स्यादिहैव समागमः ॥ ७

वैशम्पायन उवाच ।

चिन्तयामास विदुरस्तमृषिं शंसितव्रतम् ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास भारत ॥ ८

---

ग्निहोत्रमुपलक्षयतीति **नारायणः** । परिसंस्तीर्य वितत्य स्वे स्वे स्थाने आधायेत्यर्थः ततो यज्ञैरिष्ट्वा शस्त्रपूतः अन्तरात्मा र्चित्तं यस्य गोब्राह्मणार्थे मृत इत्यर्थः। संग्रामे हतो वा क्षत्रियः ॥ २६ ॥ अधीत्य वेदं शास्त्रमिति शेषः । त्रेता अग्नित्रयं तस्याः पूतं धूमं आघ्राय पुण्यं पावनं प्रेत्य मृत्वा ॥ २७ ॥ क्षात्रात् धर्मात् पृथिवीपालनरूपात् राज्यादिति यावत् राजधर्मे राज्ये ॥ २९ ॥ मामनुशाससि अनुशास्सि ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

**४१**

एवं ब्रह्मविद्याधिकारिविशेषणीभूता साधनसंपत्तिः सम्यगुपपादिता तत्र क्वचित्क्वचित्प्रसंगात् यतो यतो निवर्तत इत्यादिना संक्षेपेण ब्रह्मविद्या सूचिता । तां विस्तरेण श्रोतुकामो धृतराष्ट्र उवाच-**अनुक्तमिति** । ते त्वया॥१॥ मृत्युः जन्ममरणप्रवाहात्मकः संसारः ॥ २ ॥ ते तुभ्यम् । गुह्यान् गोप्यान् योगकलादीन् प्रकाशान् शमादीन् हृदयसंश्रयान् धर्मान् प्रवक्ष्यति ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमक्रममुलंघ्य ब्रह्मविद्यां नोपादिशेदित्याख्यायिकामुखेनाह-**किं त्वमित्यादिना** । सनातनापरनामा सनत्सुजातः ॥ ४ ॥

स चैनं प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ।
सुखोपविष्टं विश्रान्तमथैनं विदुरोऽब्रवीत् ॥ ९
भगवन् संशयः कश्चिद्धृतराष्ट्रस्य मानसः ।
यो न शक्यो मया वक्तुं त्वमस्मै वक्तुमर्हसि ॥ १०
यं श्रुत्वाऽयं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरान्तकौ ॥ ११
विषहेरन् भयामर्षौ क्षुत्पिपासे मदोद्भवौ ।
अरतिश्चैव तन्द्री च कामक्रोधौ क्षयोदयौ ॥ १२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातीयपर्वणि विदुरकृतसनत्सुजातप्रार्थने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

वैशम्पायन उवाच ।
ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी
संपूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत् ।
सनत्सुजातं रहिते महात्मा
पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥ १

धृतराष्ट्र उवाच ।
सनत्सुजात यदिदं शृणोमि
न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम् ।
देवासुरा ह्याचरन् ब्रह्मचर्य-
ममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥ २

सनत्सुजात उवाच ।
अपृच्छः कर्मणा यच्च मृत्युर्नास्तीति चापरम् ।
शृणु मे ब्रुवतो राजन् यथैतन्मा विशङ्किथाः ॥ ३
उभे सत्ये क्षत्रियैतस्य विद्धि
मोहान्मृत्युः संमतोऽयं कवीनाम् ।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि
तथाऽप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ ४

विधिदृष्टेन शास्त्रादवगतेन कर्मणा मधुपर्कादिना ॥ ९ ॥ विद्याप्राप्तिफलमाह-**यं श्रुत्वेति** ॥११॥ विषहेरन् बाधेरन् अमर्षः असहिष्णुता उद्भव उत्कृष्टैश्वर्यं क्षयोदयौ तयोर्हेतुभूते पापपुण्ये च ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

——

### ४२

उद्योगपर्वणि सनत्सुजातीये भाष्यकारादिभिर्व्याख्यातान् संप्रतितनपुस्तकेषु च स्थितान् पाठान् श्लोकांश्च गुणोपसंहारन्यायेनैकीकृत्य व्याख्यायते-**ततो राजेति** । मनीषी शास्त्रसंस्कृतमनीषावान् रहिते एकान्ते परमां बुद्धिं परविद्याम् ' अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ' इति श्रुतिप्रसिद्धां पप्रच्छ । एतेन **विषयो** दर्शितः। **प्रयोजनं** दर्शयति-महात्मा बुभूषन्निति। परं ब्रह्म भवितुमिच्छन् 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति ब्रह्मज्ञानस्य ब्रह्मभावफलकत्वश्रवणात् । विदुरेरितं वाक्यं 'सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत' इति मृत्युशब्दितस्य बन्धस्याभावं श्रुत्वा प्रतिपूज्यासंगत्वात् कपटवतोऽपि मम पापात् भयं नास्तीति संतोषं प्राप्य। तेन ज्ञानस्य सर्वकर्मोन्मूलनहेतुत्वं दर्शितम्। यथोक्तम्-'हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' इति ॥१॥ प्रश्नमेवाह-**सनत्सुजातेति** । **मृत्युरिति** । ध्रुवं जन्म मृतस्य चेति साहचर्याज्जन्ममरणप्रवाहरूपो बन्ध उच्यते । स नास्तीति तव प्रकर्षेण वादं पूर्वोक्तं विदुरादीनां मुखात् शृणोमि । हे सनत्सुजात सनत् सर्वदा सुष्ठु जातं जन्म यस्य नित्यकुमारत्वेन जरामरणविवर्जितेत्यर्थः । श्रुतिश्चैतदाह-'न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता' इति। नु तथा अमृत्यवे मृत्योरभावाय। एकशतं वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवासेति बन्धनिवृत्त्यर्थो यत्नश्च श्रूयते । न ह्यसतो नित्यनिवृत्तस्य निवृत्त्यर्थं यत्नो युज्यते । तदनयोः पक्षयोः कतरत् मतं सत्यं तद्ब्रूहीति शेषः ॥२॥ यत् कर्मणा ब्रह्मचर्येण मृत्युर्नास्तीति तेन सत्यस्य बन्धस्य साधनेन नाश इति अपृच्छः पृष्टवानसि। यच्चापरं मृत्युः स्वरूपत एव नास्तीत्यपृच्छः। एतत् एतयोः पक्षयोः परस्परविरुद्धत्वं मा विशंकिथाः मामंस्थाः । अमृत्युः कर्मणा केचिदिति पाठे कर्मसाध्यममृतत्वमुत ज्ञानसाध्यमिति पक्षद्वयोपन्यासः तयोश्च क्रमसमुच्चयपक्षाश्रयेण विरोधभावं मन्वानो मा विशंकिथा इति ब्रवीतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ अविरोधमेवाह-**उभे इति** । एतस्य एकस्यैव पुंसोऽवस्थाभेदेन उभे अपि सत्ये एव । हे क्षत्रिय विद्धि अविद्यावस्थायां बन्धः सत्यः कर्मनाश्यश्च विद्यावतां तु रज्जुरगवत् कालत्रयेऽपि नास्ति । मोहाद्भासमानस्य तु ज्ञानमात्रेण निवृत्तिर्भवतीति भावः । आय-

प्रमादाद्वै असुराः पराभव-
न्नप्रमादाद्ब्रह्मभूता भवन्ति ।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तू-
न्न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥ ५
यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहु-
रात्मावसन्नममृतं ब्रह्मचर्यम् ।
पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः
शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम् ॥ ६

अस्यादेशान्निःसरते नराणां
क्रोधः प्रमादो लोभरूपश्च मृत्युः ।
अहंगतेनैव चरन्विमार्गा-
न्न चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥ ७
ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना
इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति ।
ततस्तान् देवा अनुविप्लवन्ते
अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति ॥ ८

प्रवृत्ते इति पाठे उभे अपि मते अनादिनी नित्ये इत्यर्थः । सिद्धान्तमाह-**मोहादिति** । निर्मोहानां तु नास्त्येव मृत्यु-रित्यर्थः । मोहं विवृणोति-**प्रमादमिति** । आत्मतत्त्वान-वेक्षणं प्रमादः । मूलाज्ञानमिति यावत् । तदेव मृत्युः 'मृत्युर्वै तमः' इति श्रुतेः । अप्रमादमवहिततां सम्यगवे-क्षणं ज्ञानमिति यावत् । 'ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्' इति स्मृतेः। अमृतत्वं अमृतत्वहेतुः ॥ ४ ॥ प्रमादात् अज्ञानात् असुराः असुषु रममाणाः कामक्रोधाद्यासुरवृत्तिभिराक्रान्ताः । परा-भवन् मृत्युवशा अभूवन् । तथा अप्रमादात् ज्ञानात् ब्रह्म-भूताः पूर्वं ब्रह्मैव सन्तः अविद्ययाऽब्रह्मत्वमात्मनो मन्य-मानाः विद्यया पुनर्ब्रह्मैव भवन्ति । 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति श्रुतेः । सुराश्चेति पाठे सुराः शमदमादिमन्तः ब्रह्मभूताः ब्रह्मभावं गता इत्यर्थः । मृत्युरज्ञानं जन्तून् अत्ति संसार-सङ्कटे पातयति न तु व्याघ्र इव दृश्यते । कार्यमेवास्य दृश्यते न स्वरूपमित्यर्थः । हि यतः अस्य रूपं निरीक्ष्यमाण-मपि न उपलभ्यते । न हि रज्जूरगोपादानमज्ञानमुरगव-द्द्रष्टुं शक्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥ ननु यदि मृत्योः रूपं नोप-लभ्यते तर्हि तत्सत्त्वे किं प्रमाणमत आह—**यममिति** । अतः अज्ञानाख्यान्मृत्योरन्यं यमसंज्ञमेके मूढाः मृत्युमाहुः। 'अथ सत्यवतः कायात्पाशबद्धं वशं गतम्। अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्' इति। अस्य व्यतिरेकमुखेन आत्मनि कल्पितत्वमाह—**आत्मावसन्नमिति** । आत्मनि प्रतीच्ये वाऽवसन्नं लीनं, तेन रज्जूरगादिवद्यमादिकमपि आत्मनि कल्पितमेवेत्यर्थः। आत्मावासमिति पाठे आत्माश्रयमित्यर्थः। यमप्रशमोपायमाह-**मृतमिति** । ब्रह्मचर्यं ब्रह्मणि चर्या आत्मानुसन्धानं निरस्ताखिलकल्पनाजालं अमृतं मोक्षहेतुः। योगिनां यमभयं नास्तीत्यर्थः। 'न तस्य रोगो न जरा न-मृत्युः' इति श्रुतेः । ननु कल्पितस्य यमस्य मृगजलादेरि-वार्थक्रियाकारित्वं न युक्तमत आह—**पितृलोक इति** । 'यादृशो यक्षस्तादृशो बलिः' इति न्यायेनात्मनि कल्पित-गरुडभावस्य विषनिवर्तकत्ववत् तत्राप्यर्थक्रियाकारित्व-मस्तीति भावः। अत्र युक्तिमाह--**शिव इति**। शीतोष्णादि-वदेकस्मिन् सत्यस्य विरुद्धधर्मद्वयस्यासंभवात् तस्मिन्नेव शिवत्वाशिवत्वे रज्ज्वां सर्पदण्डादिवत्काल्पिते इत्यर्थः ॥६॥ **अस्येति** । अस्य यमस्य आदेशादाज्ञातः क्रोधादिरूपो मृत्यु-र्मरणहेतुर्निःसरति उद्भवति । अत्र यथाऽज्ञानाभिमानिनी देवता यमः, एवं क्रोधाद्यभिमानिन्योऽपि देवताः यमस्य दासभूताः सन्तीत्यधिदैवमर्थः । अध्यात्मं तु अज्ञानादेव क्रोधादय उद्भवन्ति ततो म्रियत इत्यर्थः । ननु यथात्मावा-समज्ञानं तर्हि तत् आत्मनः पृथक् सिद्धमपृथक् सिद्धं वा । अन्त्ये मुक्तानामपि पुनर्बन्धापत्तिः । आद्ये सांख्यप्रकृति-वत्तदनाशापत्तिरित्याशंक्य मृत्युं विशिनष्टि--नराणामहं गतेनैव विमार्गान् चरन्निति । जीवानां योऽहंकारस्तेन सह गतं गमनमहंकारसाहित्यं तेन विमार्गान् अनात्मगान् मार्गान् चरन् विषयान् भुञ्जान इत्यर्थः । मुक्तौ अज्ञाना-श्रयस्याहमर्थस्य चिदाभासस्य नष्टत्वात् न शुद्धादात्मनः सकाशादज्ञानं पुनरुदेति नापि पृथगवतिष्ठत इति भावः । ननु सुषुप्तावहंकारलयेऽपि दृश्यत इत्यत आह--**न चेति**। तदानीमपि सूक्ष्मस्याहमर्थस्य सत्त्वान्न कश्चित् ज्ञानं विना आत्मयोगमुपैति स्वं रूपं प्राप्नोतीत्यर्थः। अतोऽहंकारनाशात् प्राक् आत्मनः क्रोधादिरूपस्य मृत्योरुदयो युज्यत एवेत्यर्थः। आस्यादेष इति पाठे आस्तेऽस्मिन्नित्यास्यमज्ञानस्याधिष्ठान-महङ्कारस्तस्मान्निःसरत इति पूर्ववत् ॥ ७ ॥ आत्मयोगाभावे दोषमाह-**ते इति** । ते नराः मोहिताः क्रोधादिभिरिति शेषः । तद्वशे क्रोधादिरूपस्य मृत्योर्वशे वर्तमानाः सन्तः इतोऽस्माल्लोकात् प्रेताः गताः सन्तः तत्र यमलोके पुनरित्यसकृद्गमनसूचनार्थं पतन्ति गच्छन्ति नर-कादाविति शेषः। ततस्तान् तत्र गतान् अनु देवा इन्द्रियाणि प्लवन्ते तत्रैव गच्छन्ति 'तमुत्क्रामन्तं प्राणोनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति' इति श्रुतेः । मृङ् प्राणत्यागे इत्यनुशासनाच्च मृत्युरज्ञानं मरणसंज्ञामपि लभते । अयं भावः-'मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः' इति स्मृतेरज्ञानं प्रत्यगानन्दविस्मारकत्वेन यमश्च प्रत्यक्त्वेन गृहीतस्य देहस्य च विस्मारकत्वेन साम्यात् द्वयमपि मृत्युशब्दितं तथा च मुख्यो मृत्युरज्ञानं गौणो यम इति ॥ ८ ॥

कर्मोदये कर्मफलानुरागा-
स्तत्रानु ते यान्ति न तरन्ति मृत्युम् ।
सदर्थयोगानवगमात् समन्तात्
प्रवर्तते भोगयोगेन देही ॥ ९

तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां
मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या ।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा
स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात् ॥ १०

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति लोकान्
कामक्रोधावनुगृह्याशु पश्चात् ।
एते बालान् मृत्यवे प्रापयन्ति
धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम् ॥ ११

सोऽभिध्यायन्नुत्पतितान्निहन्या-
दनादरेणाप्रतिबुध्यमानः ।
नैनं मृत्युर्मृत्युरिवात्ति भूत्वा
एवं विद्वान्यो विनिहन्ति कामान् ॥ १२

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति ।
कामान् व्युदस्य धुनुते यत्किञ्चित्पुरुषो रजः ॥ १३

तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते ।
मुह्यन्त इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत्सुखम् ॥ १४

अमूढवृत्तेः पुरुषस्येह कुर्यात्
किं वै मृत्युस्तार्ण इवास्य व्याघ्रः ।
अमन्यमानः क्षत्रिय किञ्चिदन्य-
न्नाधीयीत निर्णुदन्निवास्य चायुः ॥ १५

ननु प्राक्मरणान्मृत्युभयं मृतस्य तु कृतकृत्यतैवा-स्तीत्याशंक्याह-**कर्मोदय इति** । भोगप्रदस्य-कर्मण उदये सति कर्मफलभोगेऽनुरागो येषां ते तथाभूताः तत्र स्वर्गादौ अनुयान्ति भोगवासनया पूर्वदेहं त्यक्त्वा गच्छन्ति । अतो मृत्युं न तरन्ति । देहनाशमात्रेण न मुच्यन्त इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः-'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येकेनायमस्तीति चैके' इति मृतस्यास्तित्वनास्तित्वे उपक्षिप्य 'योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।' इत्यस्तीत्येवोपलब्धव्य इति चास्तित्वं देहान्तरप्राप्तिं चाह--अत्र हेतुः **सदर्थेति** । सत् ब्रह्म तत्प्राप्त्यर्थो योगः सदर्थयोगः यमाद्यष्टाङ्गोपेतः तस्यानवगमादलाभात् समन्तात् ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्योनिषु भोगयोगेन भोगलिप्सया देही देहाभिमानी प्रवर्तते ॥ ९ ॥ भोगमेव निन्दति--**तद्वा इति** । यत् अस्य पुंसः मिथ्याभूतेषु अर्थेषु शब्दादिविषयेषु योगो रागस्तदर्थं गतिः प्रवृत्तिः नित्या स्वाभाविकी तदेव इन्द्रियाणां महामोहनमर्थानां मिथ्यात्वं संकल्पकृतत्वात् यदाहाक्षपादः-'दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः' इति दोषो रागादिः मिथ्यार्थयोगेन विषयसंगेन अभिहतान्तरात्मा व्यथितचित्तः सन् विषयान् स्मरन् स्मरणपूर्वकमुपास्ते। हेतौ शतृप्रत्ययः । स्मरणमेव विषयोपासनाहेतुरतस्तेषां विस्मरणमेव कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ तत्स्मरणे दोषमाह—**अभिध्येति** । अभिध्या विषयस्मरणं प्रथमं ततः कामस्तत्प्राप्त्यभिलाषः । केनचिन्निमित्तेन तत्प्रतिहतौ क्रोधः एते अभिध्यादयः। एवं क्रमेण बालान् अजितचित्तान् मृत्यवे मोहाय प्रापयन्ति । ये तु धीराः जितचित्ताः निष्कामास्ते मृत्युं तरन्ति। पाठान्तरे धर्मं योगाभ्यासं चरन्ति ॥११॥ **स इति** । सः मृत्युतरणकामः योगी वा अभिध्यायन् आत्मानं चिन्तयन् उत्पतितान् कामानेव निहन्यात् हननोपायमाह-अनादरेण तुच्छत्वबुद्ध्या पथि पतिततृणवत् स्त्र्यादीन् प्राप्तानपि अप्रतिबुध्यमानः अचिन्तयन् । य एवं विद्वान् भूत्वा कामान्निहन्ति एनं पुरुषं मृत्युरज्ञानं मृत्युरिव यम इव नात्ति न ग्रसते। निष्कामस्य मृत्युभयं नास्तीत्यर्थः ॥१२॥ सकामं निन्दति-**कामानुसारीति** । विषयार्थी विषयमनुविनश्यति। यथोक्तं-'कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च' इति । फलितमाह—**कामानिति** । विषयांस्त्यक्त्वा रजो दुःखरूपं यत्किंचि [illegible] सर्वं धुनुते नाशयति ॥ १३ ॥ विपक्षे दोषमाह—**तम इति** । अयं कामः भूतानां तमः अज्ञानं तत्कार्यकरत्वात् यतः अप्रकाशो नास्ति प्रकाशो विषयविवेको यस्मिन् स तथा अत एव नरकवद्दुःखदः। एतदेवाह--**मुह्यन्त इति** । यथा मुह्यन्तो मदिरामत्ताः। गृह्यन्त इतिपाठे ग्रहगृहीताः। पथि गच्छन्तः श्वभ्रवत् गर्तयुक्तं देशं धावन्ति । तथा कामिनः संसारे वर्तमानाः सुखं सुखप्रदं भार्यादिं प्रति धावन्तीत्यर्थः॥ १४ ॥ अमूढवृत्तेः कामेनानभिभूतचित्तस्य पुंसस्तु तृणमयव्याघ्रवत् मृत्युर्यमः किं कुर्यान्न किमपीत्यर्थः । यस्मादेवं तस्मात् अस्य कामस्य आयुः जीवनं मूलाज्ञानं निर्णुदन् अपनेष्यन् अन्यत् किंचित् काम्यमानं स्त्र्यादिकममन्यमानः अगणयन् नाधीयीत न स्मरेत् तुच्छत्वबुद्ध्या विषयविस्मरणमेव काममूलोच्छेदहेतुरित्यर्थः। यदाह वसिष्ठः-'भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् । अपुनःस्मरणं मन्ये साधो विस्मरणं वरम् । तथापि तव न स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ' इति च ॥ १५ ॥

स क्रोधलोभौ मोहवानन्तरात्मा
स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः ।
एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा
ज्ञाने तिष्ठन्न बिभेतीह मृत्योः ।
विनश्यते विषये तस्य मृत्यु-
र्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ॥ १६

धृतराष्ट्र उवाच ।

यानेवाहुरिज्यया साधुलोकान्
द्विजातीनां पुण्यतमान् सनातनान् ।
तेषां परार्थं कथयन्तीह वेदा
एतद्विद्वान्नोपैति कथं नु कर्म ॥ १७

सनत्सुजात उवाच ।

एवं ह्यविद्वानुपयाति तत्र
तत्रार्थजातं च वदन्ति वेदाः ।
अनीह आयाति परं परात्मा
प्रयाति मार्गेण निहत्य मार्गान् ॥ १८

धृतराष्ट्र उवाच ।

कोऽसौ नियुङ्क्ते तमजं पुराणं
स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण ।
किं वाऽस्य कार्यमथवा सुखं च
तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत् ॥ १९

यमं त्वेके इत्यत्र आत्मावसन्नमिति यमोऽप्यात्मनि कल्पित इत्युक्तं तद्व्याचष्टे—**स क्रोधलोभाविति**। यस्त्वच्छरीरे एषः अहंप्रत्ययविषय अन्तरात्मा बाह्यात्मानं शरीरमपेक्ष्य आन्तरः चिदचिद्ग्रन्थिरूपो जीवः स मोहवान् अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मोहः अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिः विपर्ययरूपं ज्ञानं तद्वान् क्रोधलोभमृत्युरूपो भवति। शुकनलिकान्यायेन स्वयं बन्धहीनोऽपि अज्ञानात् स्वात्मानं बद्धं मन्यते तेन कामादिवशो भवतीत्यर्थः। उपसंहरति—**एवमिति**। जायमानं मोहादिति शेषः। मोहविरोधिनि ज्ञाने तिष्ठन्निष्ठावान् यमान्न बिभेति तत्र दृष्टान्तः-विषये गोचरे तस्य ज्ञानस्य मृत्युर्बन्धः विनश्यते मृत्योर्यमस्य मर्त्यः देहः अज्ञानकृतो बन्धो ज्ञानेनैव नश्यति न कर्मणेति प्रघट्टकार्थः ॥ १६ ॥ अत्र शंकते—**यानिति**। साधु इज्यया सोपासनेन अश्वमेधादिना कर्मणा पुण्यतमान् इन्द्रलोकाद्यपेक्षया पुण्यान् सनातनान् व्यवहारापेक्षया नित्यान्। लोकान् सत्यलोकाख्यान् इह वेदे आहुः वेदविदः तेषां लोकानां परार्थं परार्थत्वं मोक्षप्रापकत्वं वेदाः कथयन्ति। एतत्कर्मणां क्रममुक्तिहेतुत्वं विद्वान् जानन् कर्म कथं नु न उपैति न शरणीकरोति कर्मभिरेव मोक्षसिद्धौ किं ज्ञानेनेति भावः ॥ १७ ॥ समाधत्ते--**एवमिति**। अविद्वान् एवं त्वदुक्तक्रमेण तत्र मोक्षपदे उपयाति तथैव अर्थजातं भोगमोक्षाख्यं प्रयोजनसामान्यं वेदाः वदन्ति तथा अनीहो निष्कामः परात्मा परमनात्मानं देहादिकमविद्यया आत्मत्वेन गृह्णन् जीवः परं निर्गुणात्मानमायाति आभिमुख्येन प्राप्नोति निष्कामस्तत्तदुपाध्याकारतां त्यक्त्वा निष्कलेन रूपेणावतिष्ठत इत्यर्थः। अन्यथा तु स एव जीवः मार्गेण सुषुम्नानाड्या मार्गान् तत्तल्लोकप्रापकान् निहत्य निरस्य ब्रह्मलोकद्वारा परं प्रयाति 'तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति' इति श्रुतेः। तथा च बृहदारण्यके-'तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादायाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते एवमेवेदं शरीरं निहत्य विद्यां गमयित्वाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वेति तु कामयमानोऽथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकामः स्यान्न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते'

इति कामयमानस्य अस्माद्देहादुत्क्रान्तस्य देहं मरणेनासद्रूपत्वं नयतः स्वर्णकारदृष्टान्तेन पित्र्यगान्धर्वादिरूपान्तरकर्तृत्वमुक्त्वा निष्कामस्य पूर्णब्रह्मभावं गतस्य उत्क्रान्तिर्निषिध्यते ॥ १८ ॥ ननु जीवः परं प्राप्नोति चेदन्यस्यान्यात्मताऽयोगात् पर एव जीवत्वं प्राप्नोतीत्युक्तं भवति तच्चायुक्तम्। अनियोज्यब्रह्मात्मत्वात् परस्येत्याशङ्कते—**कोऽसाविति**। तं परमात्मानमजं जन्मादिहीनं पुराणं पुराऽपि नवमित्यनेन परिणामित्वं निरस्तम्। तादृशं परं कोऽसौ नियुङ्क्ते यन्नियोगादयं दुःखादिभाग्भवति। नियोजकान्तरसत्वे तस्याप्यन्यस्तस्याप्यन्य इति पराऽनवस्थेति भावः। ननु पर एव नियोजकान्तरं विना इदं सर्वं चेतनाचेतनं विश्वम्। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इति श्रुतेः क्रमेण भवतीति शङ्कते--**स चेदिति**। एतद्दूषयति—**किंवेति**। अस्य परस्यावाप्तकामतया निष्कामस्य किं वा कार्यं कर्तव्यमस्ति न किमपीत्यर्थः। 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते' इति न्यायेन प्रयोजनं विना परे प्रवृत्तिर्न संभवतीत्यर्थः। ननु 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' इति न्यायेन लोके निष्प्रयोजनापि चतुरङ्गादिक्रीडा दृश्यते तद्वत्परस्यापि लीलैव जगत्सृष्टिप्रवेशादिकमित्याशंक्याह—**अथवेति**। चतुरङ्गादिक्रीडाऽपि सुखार्थमेव क्रियते न च परस्य सुखलिप्साऽस्ति न च स्वात्मानं स्वयमेव सङ्कटे पातयतः सुखं वाऽस्तीति न परस्य स्वतः सृष्टौ प्रवृत्तिः संभवति। नापि तेन सह जीवस्याभेदः संभवति। जीवपरयोर्भेदे तु जीवादृष्टानुरोधेन राजवत् परो जीवभोगार्थं सृष्ट्यादौ प्रवर्तते स्वकृतमर्यादापरिपालनार्थं चेति युज्यतेऽतः न तयोरभेदः संभवतीत्यर्थः॥१९

सनत्सुजात उवाच ।

दोषो महानत्र विभेदयोगे
ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः ।
तथाऽस्य नाधिक्यमपैति किञ्चि-
दनादियोगेन भवन्ति पुंसः ॥ २०

य एतद्वा भगवान् स नित्यो
विकारयोगेन करोति विश्वम् ।
तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्यते
तथाऽर्थयोगे च भवन्ति वेदाः ॥ २१

धृतराष्ट्र उवाच ।

येऽस्मिन् धर्मान्नाचरन्तीह केचि-
त्तथा धर्मान् केचिदिहाचरन्ति ।
धर्मः पापेन प्रतिहन्यते स्वि-
दुताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ॥ २२

सनत्सुजात उवाच ।

उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च ॥ २३

उत्तरमाह—**दोष इति**। विभेदयोगे विशेषेण भेदो ययोस्तौ विभेदौ विभिन्नौ तयोर्योगे 'अभेदेन ऐक्ये महान् दोषः अन्यस्यान्यात्मत्वासंभवात् । अतो जीवपरयोस्तात्त्विको भेदो न युक्त इत्यर्थः । किं तर्हि अनादियोगेन । न अन्तं शीलमस्येत्यनादिर्भोग्यवर्गः । स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयात्मकानि क्षेत्राणि तैः सह योगेन संबन्धेन पुंसः परस्मात् सकाशात् नित्याः जीवा घटाकाशजलचन्द्रादिन्यायेन भवन्ति तथा तेन औपाधिकेन भेदेनास्य आधिक्यं किञ्चिदपि न अपैति न हि जलचन्द्रे कम्पमाने मुख्यश्चन्द्रः कम्पते । नापि घटाकाशे चलति मुख्ये आकाशे चलनं संभाव्यते । तथा च श्रुतयः—' एक एव तु भूतात्मा भूते भूते प्रकाशते । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् । यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन् । उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा । घटसंवृतमाकाशं नीयमाने यथा घटे । घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः ' इत्याद्याः। औपाधिकं जीवपरयोर्भेदं दर्शयति—**एकधेति** । ईश्वररूपेण बहुधेति जीवरूपेण एक एव शुद्धः जलाशयतरङ्गचन्द्रन्यायेन प्रकाशत इत्याद्यश्रुतेरर्थः । एवं च जीवेशभेदप्रयुक्तः सर्वोऽपि व्यवहारः सेत्स्यति न च परान्तरकल्पनाऽवतरतीति सिद्धम् । कथंभूतेन अनादियोगाख्येन क्षेत्रसंम्बन्धेन अनादियोगेन अनादिना आदिशून्येनाज्ञानेन हेतुना योगः संबन्धोऽस्य सोऽनादियोगस्तेन भवन्ति जन्मादिभाज इति शेषः । पुंसः पुमांसः अज्ञानयोगोत्थः क्षेत्रयोग इत्यर्थः ॥ २० ॥ जीवेशयोर्भेदं निरस्य प्रपञ्चस्यापि परमेश्वरात् पृथक्त्वं वारयति—**य एतद्वेति** । वाशब्द उपमार्थ । य इति पुंस्त्वं विधेयापेक्षया । एतत् परिदृश्यमानं जगत् यज्जगदिव भाति स नित्योऽविकारी भगवान् सर्वैश्वर्यसम्पन्नः परमात्मैव । वाशब्दो मिथ्यात्वद्योतकः । तथाहि । ' यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति ' अहमद्य स्वप्ने गजमिवाद्राक्षमिति वेदे लोके च मिथ्यार्थानुवादे इवशब्दः प्रयुज्यते । श्रुतिश्च– ' इदं सर्वं यदयमात्मा ब्रह्मैवेदं विश्वं सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्याद्या । प्रपञ्चस्य ब्रह्मानन्यत्वमाह विकारोऽनृतं माया तद्योगेन विश्वं करोति स्वप्नेन्द्रजालवन्न तु कनककुण्डलवज्जगद्ब्रह्मणोः परमार्थतो विकारविकारिभावोऽस्ति । ब्रह्मणोऽप्यनित्यत्वापत्तेरित्यर्थः । ननु नित्यं परिणामि च प्रधानं स्वतंत्रमेव जडस्य जगतो जडमेव कारणमस्तु साद‌‌ृश्यात् न तु चेतनं वैलक्षण्यादित्याशङ्क्याह--**तथा च तच्छक्तिरिति** । तथा च तेनैव प्रकारेण स्वात्मनि स्वप्नवज्जगदवभासयन्ती तस्य परमात्मनः शक्तिस्तदनन्याऽस्तीति वेदोऽपि मन्यते स्म तथा च श्रूयते–' देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ' इति । ' पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ' इति च । ननु भोग्यत्वात् शक्तिः आत्मनः स्वं भोक्तृत्वादात्मा तत्स्वामी । तथा च तयोर्भेद इत्याशङ्क्याह—**तथार्थेति** । शक्तिर्हि न शक्तिमतः पृथग्दृष्टा वह्नेरिव दहनप्रकाशनशक्तिः । वेदा अपि 'बहु स्यां प्रजायेय' इति ' सच्च त्यच्चाभवत् ' इत्यादयः । चकाराल्लोके शक्तिग्रहोऽपि तादृशार्थयोगे शक्तिशक्तिमतोरभेदेन संबन्धे प्रमाणं भवतीत्यर्थः ॥२१॥ एवं जीवेशयोरभेदात् जगतो मिथ्यात्वात् जगज्जन्मादिनिमित्तभूतायाः प्रकृतेः ब्रह्मानन्यत्वाच्च ब्रह्माद्वैतं सिद्धम् । तेन मृत्युर्नास्तीति पक्षः स्थिरः । येषां च मते कर्मणा मृत्युनाशस्तेषामपि क्रममुक्तिप्रणाड्या कर्मणां मोक्षहेतुत्वं च स्थितम् । ये केचित्तु अस्मिन् मोक्षे निमित्ते धर्मान् अग्निहोत्रादीनि कर्माणि नाचरन्ति किन्तु मोक्षार्थं संन्यासमेव कुर्वन्ति । ये केचित् क्रममुक्त्यर्थं कर्माण्येव उपासनासहितानि कुर्वंति येषां तु तादृशो महान् धर्मो नास्ति किन्तु अल्प एवाग्निहोत्रादिर्नित्यानुष्ठानात्मकोऽस्ति तेषामपि स धर्मः पापेन रागादिदोषेण हन्यते उत धर्म एव पापं हन्तीति प्रश्नार्थः ॥ २२ ॥ उत्तरमाह—**उभयमिति** । तत्र मोक्षे उभयं संन्यासः सोपासनं कर्म च उपयुज्यते । तथा धर्मस्य फलं स्वर्गः चित्तशुद्धिर्वा । इतरस्य अधर्मस्य पापस्य नित्यकर्मत्यागस्य वा फलं नरकः उपयुज्यत इति ॥ २३ ॥

तस्मिन् स्थितौ वाऽप्युभयं हि नित्यं
ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम् ।
तथाऽन्यथा पुण्यमुपैति देही
तथागतं पापमुपैति सिद्धम् ॥ २४
गत्वोभयं कर्मणा युज्यते स्थिरं
शुभस्य पापस्य स चापि कर्मणा ।
धर्मेण पापं प्रणुदतीह विद्वान्
धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः ॥ २५
धृतराष्ट्र उवाच ।
यानिहाहुः स्वस्य धर्मस्य लोकान्
द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान् ।
तेषां क्रमान् कथय ततोऽपि चान्या-
न्नैतद्विद्वन् वेत्तुमिच्छामि कर्म ॥ २६
सनत्सुजात उवाच ।
येषां व्रतेऽथ विस्पर्धा बले बलवतामिव ।
ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य ब्रह्मलोकप्रकाशकाः ॥ २७
येषां धर्मे च विस्पर्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम् ।
ते ब्राह्मणा इतो मुक्ताः स्वर्गं यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ २८
तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः ।
नैनं मन्येत भूयिष्ठं बाह्यमाभ्यन्तरं जनम् ॥ २९

इदमेव संग्रहवाक्यं विवृणोति--**तस्मिन् स्थिताविति द्वाभ्याम्** । उभयं संन्यासः सोपासनं कर्म च तस्मिन् मोक्षे स्वस्वरूपे स्थितौ स्थितिनिमित्तं नित्यमविचलं वाशब्द एवार्थः । तयोर्विशेषमाह--**ज्ञानेनेति**। संन्यासपूर्वकेण ज्ञानेन ब्रह्मविद्यया सिद्धं नित्यनिर्वृत्तं ब्रह्म प्रतिहन्ति अनृतजडदुःखादिप्रातिकूल्येन सच्चिदानन्दात्मकं गच्छति प्राप्नोति । हन्तेरत्र गत्यर्थत्वं ज्ञेयम्। तथा सोपासनेन कर्मणा अन्यथासिद्धाद्विपरीतं साध्यं पुण्यं प्रशस्तं देवतादिभावमुपैति । यतः देही देहाभिमानी भवति तथागतं तेन प्रकारेण स्थितं सिद्धं नरदेहाभिमानजं पापमपि कदाचित् उपैति । देवभावं प्राप्तोऽपि कदाचिन्मुच्यतेऽन्यथा जयविजयादिवत्ततो भ्रश्यत्यपीति ज्ञानमेव श्रेष्ठमिति भावः ॥ २४ ॥ फलं धर्मस्यैवेतरस्य चेत्युत्तरार्धं विवृणोति--**गत्वेति** । उभयं पुण्यस्य पापस्य च फलं स्वर्गनरकाख्यं तच्च अस्थिरं क्षयिष्णु गत्वा प्राप्य पुनरस्मिन् लोके कर्मणा पूर्वसंस्कारानुगुणेन तत्तद्योन्युचितेन युज्यते योगं प्राप्नोति । कर्म कृत्वा तत्फलं भुक्त्वा पुनः कर्मैव कुरुते तेन कर्मपाशान्न मुच्यते इत्यर्थः । यद्यप्येवं तथाऽपि स चापि कर्मयोगी कर्मणा धर्मेण धर्मरूपेण पापं प्रणुदति दूरीकरोति विद्वान् । मूढस्तु कर्मणः फलं स्वर्गपश्वादिकमेवेच्छतीति भावः । अतो हेतोर्धर्मो बलीयान् न त्वधर्मः । इति हेतोस्तस्य धर्मं कुर्वतः सिद्धिः कालेन रागादिदोषनाशद्वारा मोक्षोऽप्यस्तीत्यर्थः । विद्धीति पाठे सिद्धिमिति शेषः ॥ २५ ॥ काम्यो धर्मः पापं च बन्धहेतुः नित्यधर्मजं च पुण्यं मोक्षहेतुरिति मन्वानः पृच्छति--**यानिहाहुरिति** । 'अपाम सोमममृता अभूम । अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति । यस्यैतेऽष्टाचत्वारिंशत्संस्काराः स ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां गच्छति' इत्याद्याः श्रुतयः स्मृतयश्च पुण्यकृतां द्विजातीनां स्वधर्मस्य फलभूतान् सनातनान् नित्यान् लोकान् आहुः । तेषां क्रमान् धर्मतारतम्येन उच्चनीचभावं कथय । ततोऽपि चान्यान् निरातिशयान् प्रत्यगानन्दरूपान्-बहुत्वं पूजायाम्-मोक्षसुखं च कथय। एतत् स्वधर्मादन्यत्स्वाभाविकप्रवृत्तिविषयभूतं निषिद्धं काम्यं च कर्म वेदितुं न इच्छामि । एतेन स्वस्य वैराग्यं दर्शितम् । प्रकृते च तदुपयोगोऽस्तीति ज्ञेयम् ॥ २६ ॥ उत्तरमाह--**येषामिति** । व्रते यमनियमादिरूपे विस्पर्धा अहमन्येभ्योऽधिकं यमादीन् साधयिष्यामि अहमन्येभ्य इति संघर्षः। विश्वामित्रादिवत्तपस्यभिनिवेश इति यावत् । बलवतां मल्लादीनामिव । ते योगिनः ब्राह्मणाः सगुणब्रह्मविद इतः देहात् प्रेत्य गत्वा ब्रह्मलोके तेजस्विनः पूज्या भवन्ति ततो मुक्तिं च ब्रह्मणा सह प्राप्नुवन्ति । तथा च स्मर्यते-'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्' इति ॥ २७ ॥ सर्वधर्मश्रेष्ठस्य योगधर्मस्य फलमुक्त्वा इज्यादिधर्मस्य फलमाह--**येषामिति** । अहमेव यज्ञादीन् सर्वोत्कर्षेणानुतिष्ठेयमिति येषामाग्रहः तेषां तत् यज्ञादिकं ज्ञानस्य साधनं विविदिषोत्पादनद्वारा भवति तथा च श्रुतिः--'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' इति त्रिविष्टपं देवलोकं न तु सत्यलोकम् । विविदिषार्थमपि कर्मानुतिष्ठतामानुषंगिकं स्वर्गफलमपि भवतीत्यर्थः । यदाहापस्तम्बः--'तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते छायागन्ध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते' इति॥२८॥ ये तु अकरणे प्रत्यवायं मत्वा धर्मार्थमेव धर्ममनुतिष्ठन्ति न ज्ञानार्थं नापि स्वर्गार्थं तानाह--**तस्येति** । तस्य धर्मस्य समाचारं सम्यगनुष्ठानं वेदविदो वैदिकत्वाभिमानिनो जनाः सम्यगित्याहुः । न तु ततः किंचिदैहिकमामुष्मिकं वा फलं कामयन्ते । एनं जनमेनान् जनान् भूयिष्ठमत्यन्तं न मन्येत न मानयेत् । किंचित्तु मानयेदेवेत्यर्थः । तमेव विशिनष्टि--बाह्यमात्मनि वर्णाश्रमवयोवस्थाभिमानित्वात् बहिर्मुखं वैदिकत्वान्निष्कामत्वाच्चाभ्यन्तरम् । यतः अकामहतस्य

यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोलपम् ।
अन्नं पानं ब्राह्मणस्य तज्जीवेन्नानुसञ्ज्वरेत् ॥ ३०
यत्राकथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम् ।
अतिरिक्तमिवाकुर्वन् स श्रेयान्नेतरो जनः ॥ ३१
यो वा कथयमानस्य ह्यात्मानं नानुसञ्ज्वरेत् ।
ब्रह्मस्वं नोपभुञ्जीत तदन्नं संमतं सताम् ॥ ३२
यथास्वं वान्तमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये ।
एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपसेवनात् ॥ ३३
नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः ।
ज्ञातीनां तु वसन् मध्ये तं विदुर्ब्राह्मणं बुधाः ३४
को ह्यनन्तरमात्मानं ब्राह्मणो हन्तुमर्हति ।
निर्लिङ्गमचलं शुद्धं सर्वद्वैतविवर्जितम् ॥ ३५
तस्माद्धि क्षत्रियस्यापि ब्रह्म वसति पश्यति ३६
योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ ३७
अश्रान्तः स्यादनादाता संमतो निरुपद्रवः ।
शिष्टो न शिष्टवत्स स्याद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्कविः

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या दैवे तथा क्रतौ ।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्यास्तान्विद्याद्ब्रह्मणस्तनुम्॥३९
सर्वान्स्विष्टकृतो देवान् विद्याद्य इह कश्चन ।
न समानो ब्राह्मणस्य तस्मिन् प्रयतते स्वयम्४०

श्रोत्रियस्य कामोपमर्दतारतम्येन हिरण्यगर्भादर्वाचीनानां मानुषादीनामानन्दगणनायामुत्तरोत्तरशतगुणितायां 'स एक इन्द्रस्यानन्दः स एकः प्रजापतेरानन्दः' इति प्रतिपर्यायं श्रोत्रियस्य चाकामहतस्येत्यानन्दोत्कर्षः श्रूयते ॥ २९ ॥ एवं योगिनामात्मविविदिषूणां निष्कामवर्णाश्रमाभिमानिनां च धर्मः उत्तममध्यमाधमभावेन प्रोक्तः संप्रति अहिंसाप्रधानान्योगिधर्मानाह—**यत्र मन्येतेति** । यत्र गृहेऽन्नं पानं च ब्राह्मणस्य संन्यासिनः भूयिष्ठमस्तीति मन्येत जानीयात् तत् गृहं प्राप्य जीवेत् प्राणयात्रां कुर्यात् । न क्षीणवृत्तिं गृहस्थं पीडयेदिति भावः । प्रावृषि वर्षाकाले तृणं च उलपः उच्छ्रिततरं तृणम् । 'उलपो न स्त्री गुल्मिन्यां ना तृणान्तरे' इति **मेदिनी** । तृणोदकमिति पाठान्तरम् । नानुसञ्ज्वरेत् क्षुद्बाधया आत्मानं न पीडयेदित्यर्थः ॥ ३० ॥ यत्र देशे अकथयमानस्य स्वमाहात्म्यमप्रकाशयतः अशिवममङ्गलं भयं प्रयच्छति सप्तम्यन्तमिदं भयप्रदेऽपि देशे स्थित्वा सत्यपि सामर्थ्ये तत्रत्यजनमध्ये आत्मानं स्वविद्यादिना अतिरिक्तमधिकमिव अकुर्वन् स्वोत्कर्षमप्रकाशयन् यो जनो भवति स श्रेयान् प्रशस्ततरः । परपीडां मानं च त्यजेदिति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३१ ॥ ईदृशेन कस्यान्नं भोक्तव्यं तमाह—**य इति** । यः पुमान् आत्मानं कथयमानस्य स्वप्रौढिं दर्शयतो नरस्योपरि नानुसञ्ज्वरेत् परोत्कर्षं दृष्ट्वा न सन्तप्येत् । तथा ब्रह्मस्वं 'यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ' इति स्मृतेर्यत्यादिभ्योऽदत्वा यद्भोजनं तद्ब्रह्मस्वभोजनमकुर्वंश्च यो भवति तदन्नं तस्यान्नं सतां सम्मतमसूयारहितस्य श्रद्धापूर्वकं प्रयच्छत एवान्नं भोज्यमित्यर्थः ॥३२॥ श्वा शुनकः ते संन्यासिनः स्ववीर्यस्य स्वपाण्डित्यस्य उपजीवनात् पाण्डित्यादिकं प्रकाश्य भिक्षामिच्छन् यतिर्वान्ताशी भवतीत्यर्थः ॥३३॥ यः ब्राह्मणः ब्रह्मवित् ज्ञातीनां मध्ये वसन्नपि ज्ञातयो मे मम नित्यमज्ञाता चर्या याभिस्ता अज्ञातचर्याः सन्तु इति मन्येत ज्ञातयो मे योगगतिं मा ज्ञासिषुरिति यस्य प्रच्छन्नतेजसो मतिः तं ब्राह्मणं ब्रह्मिष्ठं बुधाः तल्लक्षणज्ञाः विदुः ॥३४॥ ईदृशीं चर्यां विना अनन्तरमुपाधिकृतव्यवधानशून्यमात्मानं प्रत्यञ्चं निर्लिंगमनुमानाद्यगम्यमचलं व्यापकं शुद्धमसंगं सर्वद्वैतविवर्जितं सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यम् । हन्तुं गन्तुं हन्तेर्गत्यर्थत्वमत्र ज्ञेयम् । ज्ञातुमित्यर्थः कोऽर्हति न कोऽपीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ तस्मादब्राह्मणस्यापि क्षत्रियादेरीदृक्चर्यावतः—कर्मणि षष्ठी—क्षत्रियमपि ब्रह्म स्वप्रकाशेन आवसति अधिरूढं भवति येन सोऽप्यात्मनो ब्रह्मभावं पश्यतीति सार्धश्लोको वाक्यम्।पाठान्तरं तु सुगमम्॥३६॥आत्माज्ञाने दोषमाह—**य इति** । अन्यथा आत्मत्वेन भासमानाद्देहादेर्विपरीतं सन्तमन्यथा कर्त्रादिरूपं शेषं स्पष्टम् ॥ ३७ ॥ आत्मतत्त्वप्रतिपत्त्युपायमाह—**अश्रान्त इति** । अश्रान्तः श्रमहीनः यतः अनादाता आदानशून्यः निष्परिग्रह इत्यर्थः । अत एव संमतः शिष्टानां निरुपद्रवश्च स्वयं भवति तथा शिष्टोऽपि शिष्टवन्न स्यात् शिष्टत्वं न प्रकाशयेत् । पाठान्तरे अशिष्टवत् यथेष्टाचरण कृत् स्यात् किं तु शिष्ट एव वैदिकमर्यादापरिपालनपर एव स्यात् । कविः क्रान्तदर्शी ॥३८॥ मानुषे वित्ते चक्षुर्ग्राह्यधनदारादिरूपे विषये अनाढ्याः दरिद्राः सर्वसङ्गत्यागिन इत्यर्थः । दैवे वित्ते श्रोत्रग्राह्ये पारलौकिके धर्मादौ आढ्याः संपन्नाः । तथा क्रतौ ईश्वरोपासनायां स क्रतुं कुर्वीतेत्युपासनायामपि क्रतुशब्दप्रयोगदर्शनात् वैराग्यपूर्वककर्मोपासनानुष्ठानपरा निर्भया भवन्तीत्यर्थः । तनुं स्वरूपम् ॥३९॥ सर्वक्रतुभ्यो ब्रह्मज्ञानमेव श्रेष्ठमित्याह—**सर्वानिति** । स्विष्टं शोभनमिष्टं दिव्यस्त्र्यन्नपानादिकं ये यागेन प्रीताः सन्तो यजमानाय कुर्वन्ति ते स्विष्टकृतो देवाः । तान् सर्वान् योऽश्वमेधान्तसकलक्रतुकर्ता वेद साक्षात् कुर्यात्

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः ।
न मान्यमानो मन्येत न मान्यमभिसञ्ज्वरेत् ॥४१
लोकः स्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत्सदा ।
विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ॥ ४२
अधर्मनिपुणा मूढा लोके मायाविशारदाः ।
न मान्यं मानयिष्यन्ति मान्यानामवमानिनः ४३
न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा ।
अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद्विदुः ॥
श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी ।
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥ ४५
द्वाराणि तस्येह वदन्ति सन्तो
बहुप्रकाराणि दुराधराणि ।
सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौचविद्या
यथा न मोहप्रतिबोधनानि ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

धृतराष्ट्र उवाच ।
कस्यैष मौनः कतरन्नु मौनं
प्रब्रूहि विद्वन्निह मौनभावम् ।
मौनेन विद्वानुत याति मौनं
कथं मुने मौनमिहाचरन्ति ॥ १

सोऽपि ब्राह्मणस्य ब्रह्मविदः समानो न भवति । तत्र हेतुः—**तस्मिन्निति** । यतः तस्मिन् स्विष्टे निमित्ते स्वयं प्रयतते यत्नवान् भवति ! अयं भावः-स्विष्टं क्रियासाध्यत्वादनित्यफलं ब्रह्म तु स्वतःसिद्धमेवाभिव्यज्यत इति तज्ज्ञानफलभूतो मोक्षोऽपि स्वतःसिद्धत्वान्नित्य इति न स्विष्टं ब्रह्मज्ञानसममिति ॥ ४० ॥ **यमिति** । यमप्रयतमानं निरारम्भं यादृशं मानयन्ति देवादयः स एव ब्रह्मात्मवित् मानितो भवति । यं तु यज्ञादिकर्ता यमिति मानयन्ति स देवानां पशुरमानित एव । तथा च श्रुतिः—'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्' इति । उपास्ते यज्ञादिना तर्पयति ततो हेतोः आत्मानमन्यैर्मान्यमानमपि मान्यं न मन्येत नापि अभिसञ्ज्वरेत् अवमाने सतीति शेषः। नकारो भिन्नक्रमः ॥४१॥ लोकः स्वभावादेव मां मानयति न तु मयि मानयोग्यताऽस्तीति मत्वा दर्पं न प्राप्नुयादित्याह—**लोक इति** । ॥ ४२ ॥ ये न मानयन्ति तेऽपि पशुवन्निर्विवेकत्वादुपेक्ष्या एव न तु दण्डनीया इत्याह—**अधर्मेति** ॥ ४३ ॥ **न वा इति** । मानं क्लीबत्वमार्षम् । मुनेः कर्म मौनं योगिचर्या मानार्थिनां परलोको दुःसम्पादः परलोकार्थिनां मौनिनां च इहलोको दुःसंपाद इति भावः ॥ ४४ ॥ **श्रीरिति** । धनाभिजनैश्वर्यरूपा लक्ष्मीः सुखस्य मानरूपस्य संवासोऽधिष्ठानं तथाऽपि सा परिपन्थिनी चोरतुल्या परलोकस्य नाशिनी योगिनां तु सुतरामनिष्टकरीत्यर्थः । ब्राह्मी ब्राह्मणस्य योग्या श्रीः ऋग्यजुःसामात्मिका । 'ऋचः सामानि यजूꣳषि । सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेः । प्रज्ञाहीनेन ऋगादीनां रहस्यं न प्राप्तुं शक्यमित्यर्थः ॥ ४५ ॥ तस्य ब्राह्मसुखस्य द्वाराणि प्राप्तिसाधनानि दुराधराणि दुःसंरक्ष्याणि । सत्यं यथार्थभाषणम् । आर्जवमवक्रता । ह्रीर्लोकापवादभयम् । दम इन्द्रियनिग्रहः । शौचं मृज्जलाभ्यां बाह्यम् । आन्तरं तु मनःशुद्धिः । विद्या वेदशास्त्राधिगमः । **यथेति** । एतेषु सत्सु अनादिवासनया आगतोऽपि मोहो यथावन्न प्रभवति । षण्मानमोहप्रतिबन्धकानीति पाठे स्पष्टोऽर्थः॥४६॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

**४३**

पूर्वाध्यायान्ते मौनं ब्राह्मी श्रीः सत्यादिषट्कं च मोहात्मकस्य मृत्योः प्रतिरोधकानीत्युक्तम् । तान्येव प्रश्नपूर्वकं विवरीतुमध्यायान्तरमारभते—**कस्यैष मौन इत्यादि** । न्यासपूर्वकं स्वीक्रियमाणो मुनेर्धर्मः मौनसंज्ञः कस्य प्रयोजनस्यार्थे इत्येकः प्रश्नः । लोकप्रसिद्धेर्वाङ्नियमो वा । 'अमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः' इति श्रौतप्रसिद्धेर्मौनशब्दितात् पाण्डित्यबाल्यापरपर्यायात् श्रवणमननाख्यात् द्वयादन्यत्तत्समनियतं निदिध्यासनं वा मौनशब्दितं तयोर्मध्येऽत्र कतरन्मौनशब्दाभिधेयमिति द्वितीयः । तस्य च भावं स्वलक्षणं ब्रूहीति तृतीयः । तेन **मौनेन विद्वान्** मौनं मनःप्राणेन्द्रियक्रियाणां निरवशेषेणोपरमं निर्विकल्पं पदमिति यावत् । तदुत अपि यातीति चतुर्थः । कथं वा केन प्रकारेण मौनमाचरन्तीति पञ्चमः प्रश्नः ॥ १ ॥

**सनत्सुजात उवाच ।**

**यतो न वेदा मनसा सहैन-**
**मनुप्रविशन्ति ततोऽथ मौनम् ।**
**यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथाऽयं**
**स तन्मयत्वेन विभाति राजन् ॥ २**

**धृतराष्ट्र उवाच ।**

**ऋचो यजूंषि यो वेद सामवेदं च वेद यः ।**
**पापानि कुर्वन् पापेन लिप्यते किं न लिप्यते ॥ ३**

**सनत्सुजात उवाच ।**

**नैनं सामान्यृचो वाऽपि न यजूंष्यविचक्षणम् ।**
**त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥४**

**न च्छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति**
**मायाविनं मायया वर्तमानम् ।**
**नीडं शकुन्ता इव जातपक्षा-**
**श्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ५**

**धृतराष्ट्र उवाच ।**

**न चेद्वेदा विना धर्मं त्रातुं शक्ता विचक्षण ।**
**अथ कस्मात् प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः ॥६**

**सनत्सुजात उवाच ।**

**तस्यैव नामादिविशेषरूपै-**
**रिदं जगद्भाति महानुभाव ।**
**निर्दिश्य सम्यक्प्रवदन्ति वेदा-**
**स्तद्विश्ववैरूप्यमुदाहरन्ति ॥ ७**

पञ्चानामपि प्रश्नानां तन्त्रेणोत्तरमाह--**यत इति** । यस्माद्धेतोः एनं प्रत्यगात्मानं मनसा सह वेदा न अनुप्रविशन्ति । 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति वाङ्मनसातीतत्वश्रुतेः । ततो हेतोः मौनमिति एतन्नामेत्यर्थः । एतेन वाङ्मनसातीतपदप्राप्तिर्मौनस्य प्रयोजनं तच्च वागादिबाह्येन्द्रियनिग्रहरूपं मनोनिग्रहरूपं तेन च क्रमाद्बाह्याभ्यन्तरप्रपञ्चयोरभानं तेन चाभानेन प्राप्यं वाङ्मनसातीतं पदमिति प्रश्नचतुष्टयस्योत्तरमुक्तं भवति । पञ्चमप्रश्नस्योत्तरमाह--**यत्रोत्थित इति** । यत्र अधिष्ठाने भूमब्रह्मात्मनि वेदशब्दस्तथा अयमिति लौकिकशब्दश्च उत्थितः क्षेत्रे अंकुर इव समुद्रे तरङ्ग इव चाविर्भूतः स भूतात्मा तन्मयत्वेन शब्दमयत्वेन विभाति प्रकाशते हे राजन् । अयं भावः—वेदशब्देन वेदस्य सारतरः प्रणवः 'भूरित्येव ऋग्वेदादजायत भुव इति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात्तानि शुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत्तदेतदोमिति' बह्वृचब्राह्मणात् । तस्य च प्रणवस्य 'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् इति सार्वात्म्यश्रुतेस्तन्मात्राणां च अकारोकारमकाराणां क्रमात् स्थूलसूक्ष्मकारणप्रपञ्चवाचकानां वाच्यवाचकयोरभेदात् पूर्वपूर्वस्य उत्तरोत्तरत्र प्रविलापने गुरूक्तयुक्त्या क्रियमाणे स्थूलस्य जगतः सूक्ष्मे लवणोदकन्यायेन प्रविलयो भवति । तथा सूक्ष्मस्य कारणे कारणस्य तुरीयेऽर्धमात्रावाच्येऽमात्राख्ये । 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति श्रुतेर्गलिताखिलद्वैतभाने वाङ्मनसातीते प्रविलयो भवति अतः प्रणवाख्यशब्दमयत्वेन तद्द्वारा वाङ्मनसातीतं वस्तु भातीति युक्तमिति ॥ २ ॥ ननु यदि वेदशब्दमयत्वेन तद्द्वारा वाङ्मनसातीते पदं भाति तज्ज्ञानाच्च 'यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति श्रुतेः । सर्वपापनाशश्च भवति तर्हि मौनहीनस्यापि ऋगाद्यभ्यासेन तदुभयं भविष्यतीत्याशङ्कते—**ऋच इति** ॥ ३ ॥ अविचक्षणं वाङ्मनसनिग्रहासमर्थम् ॥ ४ ॥ छन्दांसि वेदाः । वृजिनात् पापात् । ननु 'अथागमो यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति' इति वचनात् 'यं यं वाऽपि स्मरन् भावम्' इति स्मृतेश्च नित्याभ्यासादन्तकाले यद्दैवत्यं मन्त्रं स्मरति तद्देवताताद्भाव्यमस्य भविष्यतीति किं वाङ्मनसनिग्रहरूपेण मौनेनेत्याशङ्क्याह—**नीडमिति** । मौनाभावेऽन्तकाले छन्दांस्येव न स्फुरन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ धर्मं स्वाभाविकम् । 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' इति गीतासूक्तं विना । प्रलापः 'ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते।' 'यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति' इति ब्राह्मणानां माहात्म्यप्रख्यापकोऽनर्थको वाक्यसन्दर्भः प्रवृत्त इति शेषः। सनातनोऽनादिः। उत्तरमाह—**तस्येति** । 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः' इत्यादिश्रुतेर्यस्य प्रलापोऽयं वेदशास्त्रादिप्रपञ्चः तस्यैव परमात्मनः स्वयमव्याकृतस्य नामरूपात्मना व्याकृतस्य स्वरूपमिदं जगद्भाति । नामादिविशेषरूपैरितीत्थंभावे तृतीया । नामरूपात्मको यो विशेषस्तदात्मकस्वरूपस्येत्यर्थः। तथा च श्रुतिः-'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतासौनामायमिदंरूप इति' इति हे महानुभाव 'निर्दिश्य द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च' इत्यादिना कृत्स्नं दृश्यमदृश्यं च विश्वं ब्रह्मरूपत्वेन निर्दिश्य ब्रह्मैवेदमिति सम्यक् प्रवदन्तीत्यध्यारोपप्रसङ्गे अपवादप्रसङ्गे च तत् ब्रह्म विश्वस्मान्मूर्तामूर्तात् विरूपमेव वैरूप्यं विलक्षणमुदाहरन्ति वेदा

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या
ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्।
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात्
सञ्जायते ज्ञानविदीपितात्मा ॥ ८

ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वा-
नथान्यथा वर्गफलानुकाङ्क्षी।
अस्मिन् कृतं तत्परिगृह्य सर्व-
ममुत्र भुङ्क्ते पुनरेति मार्गम् ॥ ९

अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते ।
ब्राह्मणानामिमे लोका धात्वे तपसि तिष्ठताम् १०

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं समृद्धमसमृद्धं तपो भवति केवलम् ।
सनत्सुजात तद्ब्रूहि यथा विद्याम तद्वयम् ॥ ११

सनत्सुजात उवाच ।
निष्कल्मषं तपस्त्वेतत् केवलं परिचक्षते ।
एतत् समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम् ॥ १२
तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय ।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः ॥ १३

धृतराष्ट्र उवाच ।
कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः ।
सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम् ॥ १४

---

एव 'अथात आदेशो नेति नेति नह्येतस्मादन्यत् परमस्तीतिनेति' इत्यादयः। अत्र 'नेति नेति' नञ्द्वयेन प्रकृते मूर्तामूर्ते निषिध्य शून्यशेषत्वे प्रसक्ते एतस्मादात्मनोऽन्यत् परं कार्यं कारणं वाऽतिरिक्तं नास्ति इति हेतोर्नेतीत्युच्यते न तु शून्यमवशेष्यते इति श्रुत्यैव ब्रह्मणो विश्वरूपत्वमुक्तं ततश्च यत्प्रभवत्वेन वेदो मान्यस्तं वेदोक्तमार्गानुष्ठानेनावजानतो वेदाध्ययनमपि निष्फलं भवति भगवदाज्ञाभङ्गदोषादिति भावः । श्रूयते च । न तस्य वाच्यपि भागो अस्तीति। देहाद्यात्मबुद्ध्या परमात्मा नास्तीति मत्वा तं त्यजतः वेदोच्चारणमात्रसंभवेऽपि फलांशो नास्तीति श्रुत्यर्थः ॥ ७ ॥ **तदर्थमिति** । यत् विश्वस्माद्विलक्षणं ब्रह्म प्रोक्तं तदर्थं तत्प्राप्त्यर्थमेतत् प्रसिद्धं तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि ध्यानधारणादि च उक्तं 'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व' इति श्रुत्या प्रोक्तम् । तथा एषा इज्या यागादिरपि तदर्थमेव । तत्र क्रममाह--**ताभ्यामिति** । इज्यातपोभ्यां पुण्योत्पत्तिः पुण्येन पापनाशः निष्पापस्तु ज्ञानेन ब्रह्माकारया चेतोवृत्त्या विदीपितात्मा प्रकाशितात्मतत्त्वो भवति । एतेन इज्यातपसोः साक्षान्मोक्षहेतुत्वनिरसनेन ज्ञानकर्मसमुच्चयपक्षो निर्मूलो वेदितव्यः ॥ ८ ॥ किमात्मतत्त्वप्रकाशेनेत्यत आह--**ज्ञानेन चात्मानमुपैतीति** । आत्मलाभान्न परं विद्यते । 'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसञ्ज्वरेत्' इत्यादिशास्त्रादात्मप्राप्तिरेव परमपुरुषार्थ इति भावः । विपक्षे दोषमाह--**अथेति** । अथेति पक्षान्तरे अन्यथा आत्मज्ञानाभावेनानात्मनि पुरुषार्थत्वबुद्ध्या वर्गफलानुकांक्षी भवति । वृङ्क्ते आत्मानं स्वस्वविषयोपहारमुखेनावृणोतीति वर्ग इन्द्रियगणस्तस्य प्रियं फलं विषयसुखं तदाकाङ्क्षी सन् अस्मिन् लोके कृतं यत्पुण्यं पापं वा तत्सर्वं परिगृह्य 'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च' इति श्रुतेः । तमुत्क्रामन्तमितिश्रुति पदस्यार्थः अमुत्र स्वर्गे नरके वा तत्फलं सुखं दुःखं वा भुङ्क्ते । ततः पुनरिमं मार्गं लोकं कर्मशेषेण उपैति । 'तस्मिन् यावत्सम्पातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते ।' 'तस्माल्लोकात् पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे' इत्यादिश्रुतिभ्यः सम्पतत्यनेनेति सम्पातः कर्म ॥९॥ नन्वेवं तर्हि 'स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तप'--इत्यादरेणाध्ययनाध्यापनयोर्मुख्यतपस्त्वश्रवणादस्ति तयोरपि मोक्षहेतुत्वं तत्कथमुच्यते न छन्दांसि वृजिनात्तारयन्तीति मत्वा विद्वदविद्वत्तपसोर्भेदमाह--**अस्मिन्निति** । अविदुषां तपसः फलमामुष्मिकं विदुषां ब्राह्मणानां तु इमे एव लोकाः फलदाः ज्ञानं दृष्टफलमित्यर्थः । कीदृशानां धात्वे तपसि तिष्ठतां धात्वे धातव्ये । कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वन इति धाञ्स्त्वन् अवश्यकर्तव्ये इत्यर्थः । तच्च शमोदमस्तपः शौचमिति प्रागेवोक्तं वृद्धे तपसीति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ १० ॥ समृद्धं विदुषः असमृद्धमविदुषश्च एकमेव तपः केवलं शुद्धं सत्कथं द्वैविध्यं प्राप्नोतीति पृच्छति--**कथमिति** ॥ ११ ॥ उत्तरमाह--**निष्कल्मषमिति** । कल्मषं कामः श्रद्धादिराहित्यं च तद्रहितं तपः केवलं कैवल्यसाधनत्वात् केवलमित्युच्यते तदेव श्रद्धाद्युपेतमपि सकामं चेत्समृद्धमित्युच्यते । यत्तु केवलं दम्भार्थमेव क्रियते तदृद्धम् । तथा च श्रुतौ--'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति' इति तरप्प्रत्ययश्रुतेर्विद्याहीनस्यापि तपसो वीर्यवत्त्वावगमादृद्धत्वं गम्यते ॥ १२ ॥ तप एव प्रशंसति--**तप इति** । इदं सर्वं भोग्यं तपोमूलं तपःप्राप्यं परममृतं मुक्तिम् ॥ १३ ॥ ननु निष्कल्मषं तपः श्रुतं, तत्र किं तत्किल्बिषं यद्रहितेन तपसा सनातनं गुह्यं ब्रह्मविद्यां जानीयामिति पृच्छति--**कल्मषमिति** ॥ १४ ॥

सनत्सुजात उवाच ।
क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषा-
स्तथा नृशंसानि दशात्रि राजन् ।
धर्मादयो द्वादशैते पितॄणां
शास्त्रे गुणा ये विदिता द्विजानाम् ॥ १५
क्रोधः कामो लोभमोहौ विधित्सा
कृपासूये मानशोकौ स्पृहा च ।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा
वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम् ॥ १६
एकैकः पर्युपास्ते ह मनुष्यान् मनुजर्षभ ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः १७
विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी
बिभ्रत्कोपं चपलोऽरक्षणश्च ।
एतान् पापाः षण्नराः पापधर्मान्
प्रकुर्वते नोत्रसन्तः सुदुर्गे ॥ १८
संभोगसंविद्विषमोऽतिमानी
दत्तानुतापी कृपणो बलीयान् ।
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा
एते परे सप्त नृशंसवर्गाः ॥ १९
धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च
अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया ।
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च
व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ २०
यस्त्वेतेभ्यः प्रभवेद्द्वादशभ्यः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ।
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वाऽर्थितो य-
स्तस्य स्वमस्तीति स वेदितव्यः ॥ २१
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम् ।
तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः॥ २२

---

तदेवाह--**क्रोधादय इति** । क्रोधादिगणो द्वादशकः दशात्रि त्रयोदशेत्यर्थः । तावान् नृशंसवर्गश्च तपसः कल्मषं धर्मादिगणविरुद्धत्वात् तद्रहितधर्माद्युपेतं तु तपो निष्कल्मषं मोक्षहेतुरित्यर्थः । पितॄणां वंशकर्तॄणां मन्वादीनाम् । आतताना इत्यपि पाठः १५ क्रोधः--इच्छाप्रतीघातोत्थ आक्रोशताडनादिहेतुर्मनस्तापः १ कामः--स्त्र्यभिलाषः २ लोभो-धनव्ययभीरुत्वम् ३ मोहः--कृत्याकृत्यविवेकराहित्यम् ४ विधित्सा--सत्यप्युत्तरोत्तरलाभे पिपासाख्या अतृप्तिः । धेट् पाने इत्यस्य रूपम् ५ अकृपा--निर्दयत्वम् ६ असूया--परगुणेषु दोषदर्शनम् ७ मान--आत्मनि पूज्यताबुद्धिः ८ शोकः--इष्टार्थनाशे सति मनोवैक्लव्यम् ९ स्पृहा--भोग्यवर्गेष्वादरः १० ईर्ष्या--परोत्कर्षासहिष्णुत्वम् ११ जुगुप्सा--परनिन्दा बीभत्सता वा १२ मनुष्याणां योगिनामयोगिनां चैते दोषाः सर्वेषामपि वर्ज्या इत्यर्थः ॥ १६ ॥ एतेषां मध्ये एकैकोऽपि मनुष्यं नाशयितुं समर्थः । किं तु कतिपयसमुदायः सर्वसमुदायो वेत्याह--**एकैक इति** । अन्तरं छिद्रम् ॥१७॥ त्रयोदश नृशंसानि हिंस्राण्याह द्वाभ्याम् । **विकत्थन इति** । विकत्थनः--परगुणाक्षेपेण स्वगुणोत्कर्षाभिधानशीलः १ स्पृहयालुः--अतियत्नपूर्वकं परस्त्र्यादिभोगेच्छावान् २ मनस्वी गर्वाधिक्यात् परावमानशीलः ३ बिभ्रत्कोपं--निमित्तं विनाऽपि सदा कोपपरः ४ चपलः--मित्रभावादिष्वस्थिरः ५ अरक्षणः--शक्तौ सत्यां स्वीकृतस्त्र्यादेः पालनमकुर्वन् ६ एतान् षट् पापधर्मान् पापाः पापिनो नराः कुर्वते । के ते ये सुदुर्गे महासंकटे इह परत्र वा उपस्थिते नोत्रसन्तः त्रासमकुर्वतः। एकमिद पदं सुप्सुपेति समासः। एते-षडत्यन्तं हिंस्रा इत्यर्थः ॥ १८ ॥ सम्भोगः स्त्रीसङ्गादिस्तद्विषया संवित् सम्मातिस्तदेव पुरुषार्थ इति या बुद्धिस्तया विषमो दुर्व्यवस्थितः १ अतिमानी--अत्यन्तं दर्पवान् २ पाठान्तरे सम्भोगसंवित् भोगे बुद्धिमान् द्विषं द्वेषमेधमानो वर्धयन् । दत्तानुतापी--दानं कृत्वाऽपि लोभवशात् मम धनं नष्टमिति सन्तापवान् ३ कृपणः--प्राणान्तेऽपि वित्तव्ययमसहमानः ४ बलीयान्--अतिशयेन बलिमान् । पूर्वराजेभ्योऽप्याधिकं प्रजानां सकाशात् बलिं गृह्णन्नित्यर्थः ५ वर्गप्रशंसी-वर्गो वृजिनं पराभिभवस्तत्प्रशंसनशीलः । अन्येषां दुःखेन सुखीत्यर्थः ६ वनितासु परिणीतासु द्वेष्टा७ एते सप्त नृशंसाः पूर्वे च षट् एवं त्रयोदश ॥ १९ ॥ गुणानाह--**धर्म इति** । धर्मो--वर्णाश्रमनियतः सन्ध्योपासनादिः १ सत्यं--हिंसावर्जं यथार्थभाषणम् २ दमः--जिह्वोपस्थादिनिग्रहः ३ तपः--कृच्छ्रचान्द्रायणादि ४ अमात्सर्यं--मत्सरः परगुणासहिष्णुत्वं तदभावः५ ह्रीर्लज्जा ६ तितिक्षा--सत्यपि क्रोधनिमित्ते तदनुत्पादः ७ अनसूया--परगुणेषु दोषाविष्करणमसूया तदभावः८ यज्ञो--ज्योतिष्टोमादिः ९ दानं--बहिर्वेदिसंविभागः १० धृतिः--अत्यन्तापद्यपि व्रतादेरत्यागः ११ श्रुतमर्थग्रहणसहितं वेदाध्ययनम् १२। ब्राह्मणस्य ब्रह्म प्राप्तुमिच्छोः॥२०॥ **यस्त्विति**। सर्वगुणाढ्यो ब्रह्मवित् सत्यकामादिगुणभाक् भवति । 'यस्तमात्मानमनुविद्य विजानाति स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्' इति श्रुतेः । एतेषां मध्ये त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वा अर्थितः अर्थः वित्तं सञ्जातमस्य स तथा स्वं दैवं वित्तम् ॥ २१ ॥ दमः--जितेन्द्रियत्वं त्यागः--कर्मणामीश्वरेऽर्पणमप्रमादस्तत्त्वानुसन्धानममृतं मुक्तिः सत्यमुखानि सत्यप्रधानान्येव एतानि फलानि भवन्तीत्यर्थः॥२२॥

दमो ह्यष्टादशगुणः प्रतिकूलं कृताकृते ।
अनृतं चाभ्यसूया च कामार्थौ च तथा स्पृहा ॥ २३
क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च ।
मत्सरश्च विहिंसा च परितापस्तथाऽरतिः ॥ २४
अपस्मारश्चातिवादस्तथा संभावनाऽऽत्मनि ।
एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दान्तः सद्भिरुच्यते ॥ २५
मदोऽष्टादशदोषः स्यात्त्यागो भवति षड्विधः ।
विपर्ययाः स्मृता एते मददोषा उदाहृताः ॥ २६
श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागस्तृतीयो दुष्करो भवेत् ।
तेन दुःखं तरत्येव भिन्नं तस्मिन् जितं कृते ॥ २७
श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः श्रियं प्राप्य न हृष्यति ।
इष्टापूर्ते द्वितीयं स्यान्नित्यवैराग्ययोगतः ॥ २८
कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः ।
अप्यवाच्यं वदन्त्येतं स तृतीयो गुणः स्मृतः ॥ २९
त्यक्तैर्द्रव्यैर्यद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ।
न च द्रव्यैस्तद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ॥ ३०
न च कर्मस्वसिद्धेषु दुःखं तेन च न ग्लपेत् ।
सर्वैरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानपि यो भवेत् ॥ ३१
अप्रिये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति ।
इष्टान् पुत्रांश्च दारांश्च न याचेत कदाचन ॥ ३२
अर्हते याचमानाय प्रदेयं तच्छुभं भवेत् ।
अप्रमादी भवेदेतैः स चाप्यष्टगुणो भवेत् ॥ ३३
सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च ।
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च तथाऽसंग्रहमेव च ॥ ३४
एवं दोषा मदस्योक्तास्तान् दोषान् परिवर्जयेत् ।
तथा त्यागोऽप्रमादश्च स चाप्यष्टगुणो मतः ॥ ३५
अष्टौ दोषाः प्रमादस्य तान् दोषान् परिवर्जयेत् ।
इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्यो मनसश्चैव भारत ।
अतीतानागतेभ्यश्च मुक्त्युपेतः सुखी भवेत् ।
सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम् ॥ ३७

अष्टादशदोषत्यागादष्टादशगुणत्वं दमस्याह—**दम इति** । कृते कर्माणि वैदिके प्रतिकूलमश्रद्धा आलस्यादि च । अकृते उपवासव्रतादौ प्रतिकूलं क्षुधाजिह्वालौल्यादि । इदं द्वयमेको दोषः १ अनृताभ्यसूये प्रसिद्धे ३ कामः-स्त्र्यभिलाषः ४ अर्थो-धनार्जनार्थेऽतियत्नः ५ स्पृहा धनाद्यभिलाषः ६ ॥ २३ ॥ पैशुन्यं-परदोषसूचकत्वम् ११ परितापः-अतिदुःखित्वम् १४ अरतिः-सत्क्रियानभिलाषः १५ ॥ २४ ॥ अपस्मारः-कर्तव्याविस्मरणम् १६ अतिवादः-पराक्रोशः १७ संभावना-महत्वबुद्धिः १८ ॥ २५ ॥ **मद इति** । येषां विपर्यया दमगुणत्वेन उक्तास्त एव कृताकृतप्रतिकूलादयोऽष्टादश । तथा वक्ष्यमाणस्य षड्विधत्यागस्य च विपर्ययाः षट् । ते च लक्ष्मीप्राप्तौ हर्षः १ अप्रिये जाते व्यथा २ स्वीयेषु याञ्चा ३ पात्रेष्वप्रदानम् ४ सत्यधिकारे इष्टापूर्तयोरकरणम् ५ कामस्यात्यागः प्रमादश्च ६ एते चतुर्विंशतिर्मददोषाः ॥ २६ ॥ श्रेयान् प्रशस्ततरः तृतीयो वक्ष्यमाणः कामत्यागः । तस्मिन् कामत्यागे कृते सति । भिन्नं भेदः—भावे निष्ठा—द्वैतमिति यावत् स एव दुःखं 'द्वितीयाद्वै भयं भवति यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोति तदल्पं अथ यदल्पं तद्दुःखम्' इत्यादिश्रुतिभ्यः कामत्यागादेव सर्वदुःखनिवृत्तिरूपो मोक्षः सिद्धः । तथा च श्रुतिः—'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति ॥ २७ ॥ त्यागमेवाह—**श्रेयानिति** । श्रियं लक्ष्मीं विद्यां च न हृष्यति न दृप्यति १ इष्टं-यागहोमादि । आपूर्तं-तडागारामादि २ ॥ २८ ॥ कामत्यागस्य परां काष्ठामाह—**अपीति** । अवाच्यं निर्वृत्तिकत्वात् तथा चोदाहृतं 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते' इति ॥ २९ ॥ **त्यक्तैरिति** । द्रव्यैः स्त्र्यादिभिस्त्यक्तैरेव यत् निष्कामत्वं भवति तत्कामपूर्वकमुपभुक्तैर्न भवति । यथोक्तं—'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति' इति । निष्कामत्वं बहुभिर्लब्धैरपि द्रव्यैर्न भवति नाप्युपयुक्तैः काम्यद्वारा व्ययीकृतैरित्यर्थः ॥ ३० ॥ न दुःखं कुर्यादिति शेषः । तेन च दुःखेन न ग्लपेत् ग्लानिं न प्राप्नुयात् । गुणैः कीर्त्यादिभिः ॥ ३१ ॥ अप्रिये कीर्तिवित्तनाशादिप्रभवे समुत्पन्नेऽपि यो व्यथां न गच्छति स चतुर्थस्त्याग इत्यर्थः ४ पञ्चमं त्यागमयाञ्चारूपमाह—**इष्टानिति** ५ ॥ ३२ ॥ षष्ठमाह—**अर्हत इति** । अर्हते योग्याय ६ षड्विधत्यागफलमाह—**अप्रमादीति** । स च अप्रमादश्च ॥ ३३ ॥ सत्यं-यथार्थं वचनम् १ ध्यानं-मूर्तेरीश्वरस्य आत्मनो वाऽनुसन्धानम् २ समाधानं-संप्रज्ञातासंप्रज्ञातभेदेन द्विविधः समाधिः ३ चोद्यं तर्कः येन समाधिफले सार्वकाम्यादौ दोषमुन्नयन्ति ४ वैराग्यमुपरमः ५ अस्तेयं-परस्वापहरणाभावः ६ ब्रह्मचर्यं-स्त्रीसङ्गराहित्यम् ७ ॥ असंग्रहो-निष्परिग्रहता ८ ॥ ३४ ॥ उक्तमनुवदत्यप्रमादप्रतियोगिनं प्रमादं वक्तुम्-**एवमिति** ॥ ३५ ॥ पञ्चभ्य इन्द्रियेभ्यः षष्ठान्मनसश्च स्वस्वविषये रागद्वेषोत्थाः षट् प्रमादाः । अतीते नष्टपुत्रशोकादिजः सप्तमः । अनागते पुत्रकामस्य तदभावे यः क्लेशः सोऽष्टमः प्रमादः । एतेभ्यः प्रमादेभ्यो मुक्त्युपेतो मुक्तिं प्राप्तः सुखी भवेत् ॥ ३६ ॥ दमत्यागाप्रमादानुक्त्वा तेषां सत्यमुखत्वं प्रागुक्तं विवृणोति—

निवृत्तेनैव दोषेण तपोव्रतमिहाचरेत् ।
एतद्धातृकृतं वृत्तं सत्यमेव सतां व्रतम् ॥ ३८
दोषैरेतैर्वियुक्तस्तु गुणैरेतैः समन्वितः ।
एतत्समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ॥ ३९
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र संक्षेपात् प्रब्रवीमि ते ।
एतत् पापहरं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ४०

धृतराष्ट्र उवाच ।

आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कथ्यते जनः ।
तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथा परे ॥ ४१
द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाप्यनृचश्च तथा परे ।
तेषां तु कतरः स स्याद्यमहं वेद वै द्विजम् ॥ ४२

**सत्यात्मेति** । सत्ये आत्मा चित्तं यस्य स तथा तान् दमत्यागाप्रमादान् ॥ ३७ ॥ दोषनिवृत्त्यैव तपःसिद्धिर्नात्रा कृत्यत्याह—**निवृत्तेनैवेति** ॥३८॥ प्रश्नव्याख्यानमुपसंहरति—**दोषैरिति** ॥ ३९ ॥ एवं विद्यासाधनान्यधिगम्य अध्ययनगृहीताद्विदादधिगतवेद्यानामनेकत्वं मन्वानः किं तद्वेद्यं श्रेष्ठमिति पृच्छति—**आख्यानेति** । आख्यानमितिहासपुराणादि पञ्चमं येषु तैर्वेदैः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'ब्रह्मैवेदं विश्वं' 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यादिभिर्भूयिष्ठं नामादिप्रपञ्चादधिकतमं भूमाख्यं परं ब्रह्म तदेव जनः स्थावरजंगमरूपं जगदिति कथ्यते । अन्ये शाखिनः पुनश्चतुर्वेदाः चत्वारि वेदयन्ति ते तथा चत्वारः पुरुषा इति । बाह्यः शरीरपुरुषश्छंदः 'पुरुषो वेदपुरुषो महापुरुष इति । छंदो गायत्र्यादिनियताक्षरपादं तच्च यजुःसाम्नोरप्युपलक्षणं वेदः कर्मचोदनात्मकं ब्राह्मणम् । तथा त्रिवेदाः त्रीन् क्षरमक्षरमुत्तमं चेति पुरुषं वेदयन्ते त्रिवेदाः 'क्षरं प्रधानं अमृताक्षरं ह क्षरात्मानावीशते देव एकः' इति अमृतो जीवः कूटस्थः सोऽक्षरं—सुलोप आर्षः—ईशते ईष्टे । 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते । उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः' इति ॥ ४१ ॥ तथा द्विवेदाः द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरं च यदिति वाच्यवाचकयोरभेदेन शब्दब्रह्मशब्देनात्र कृत्स्नो नामरूपात्मकः प्रपञ्च उच्यते । परं च तदतीतमिति द्वयमपि वेद्यत्वेन वदन्ति एकवेदाः 'एकधैवानुद्रष्टव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन' इत्यादय एकमेव वेद्यं वेदयन्ति । अनृचश्च ऋच्यते स्तूयते इति ऋक् ईश्वरः स पृथक्त्वेन नास्ति येषां तेऽनृचो ब्रह्माद्वैतवादिनः । एकवेदानां व्युत्थानकाले द्वैतमस्ति समाधौ तु बाधितं तद्भवति । अनृचां तु अवस्थाद्वयेऽपि द्वैताभावस्तुल्य इति भेदः। एतेषां षण्णां मध्ये स कतरः कतमः यमहं वेद जानीयां द्विजं ब्राह्मणं ब्रह्मविदमित्यर्थः । अत्र भूयिष्ठं जन इति प्रथमः स विशेषाद्वैतपक्षः। द्वितीयो निरीश्वरपक्षः। सांख्यानां मीमांसकानां च त्रिवेदास्तु पातञ्जला जीवेशजगतां भेदं वदन्तः। द्विवेदास्त्वौडुलोमाः कार्यात्मना भेदं कारणात्मना अभेदं च सत्यमेव वदन्तः। यथा कटकमुकुटाद्यात्मना भेदोऽपि सत्यः कनकात्मनाऽभेदोऽपि सत्य एवेति। एकवेदानामपि किंचिद्बाधयोग्यं सत्त्वासत्त्वाभ्यामानिर्वचनीयं द्वैतमस्त्येव व्यावहारिकं प्रातिभासिकात् सद्योबाध्यात् रज्जूरगादेर्विलक्षणं यावन्मोक्षबाध्यम् । अनृचां तु दृष्टिसृष्टिवादिनां यथा रज्ज्वामुरगः स्रक् च कल्पिता एवमात्मनि जाग्रत्स्वप्नौ समसत्ताकौ इति भेदः । 'तत्राध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते' इति न्यायेन आद्यं पक्षचतुष्टयं व्यवहारस्य पारमार्थिकत्वपरमध्यारोपदृष्ट्योपन्यस्तम् । अन्त्यः पक्षोऽपवाददृष्ट्या व्यवहारापलापेन । एकवेदपक्षस्तु व्यामिश्रदृष्ट्याऽनिर्वचनीयाख्यया । एवमेव दृष्टित्रयमाश्रित्य शास्त्रमपि प्रवृत्तम् **आत्मकृतेः परिणामादिति** '। अध्यारोपकाले परिणामदृष्टिः सूचिता ब्रह्मैव कनककुण्डलन्यायेन जगदाकारेण परिणतम् । तथा च श्रुतिः—' तदात्मान ँ स्वयमकुरुत सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् ' सत्यं व्यावहारिकं जाग्रद्रज्ज्वादि । अनृतं प्रातिभासिकं स्वप्नरज्जूरगादि । एतदुभयात्मकं सत्यं कालत्रयाबाध्यं ब्रह्मैव प्राप्तमिति श्रुत्यर्थः । तथा आत्मनि चैवं विचित्राश्च हीति स्वप्नकाले आत्मनि जाग्रत्काले मायेन्द्रजालमरीचिकोदकादयो हि प्रसिद्धतराः सृष्टयो भवंति विचित्राश्च ताः न च ताः न सन्तीति वक्तुं शक्यम्। अनुभूयमानत्वात्। नापि सन्तीति ज्ञानेन सद्यो बाधात्। एवं ब्रह्मण्यपि विचित्राऽनिर्वचनीया सृष्टिरस्तीति सूत्रार्थः । तथा चास्य जगतोऽनिर्वचनीयत्वं श्रुतिराह— 'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः '—इति । तं कोऽपि न वेद न कोऽपि प्रावोचत् इति श्रुत्यर्थः । सेयं व्यामिश्रदृष्टिः। अपवाददृष्टिस्तु आह च तन्मात्रमिति सूचिता । 'स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत । स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवं वा अरेऽयमात्मा कृत्स्नः प्रज्ञानघनः' इति श्रुत्या च दर्शिता। यथा जले प्रास्तः सैन्धवखिल्यः स्वोपादानमुदकं जले लीनमनुस्वयमपि लीयते । अन्यथा करकालये इव जले परिमाणाधिक्यं स्यात् । अतः सः अतरं कारणं बाह्यं घनीभावः तदुभयवर्जितः केवलरसतन्मात्रात्मना जलेऽभिव्यक्तो दृश्यते एवमयं प्रपञ्चः कार्यकारणोभयस्वरूपहीनः समाधौ केवलप्रज्ञानघनोऽभिव्यज्यते इति श्रुत्यर्थः। अनेन दृष्टित्रयेण जनबोधार्थं शास्त्रं प्रवृत्तम् । यथोक्तं

सनत्सुजात उवाच ।
एकस्य वेदस्याज्ञानाद्वेदास्ते बहवः कृताः ।
सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः ॥ ४३

एवं वेदमविज्ञाय प्राज्ञोऽहमिति मन्यते ।
दानमध्ययनं यज्ञो लोभादेतत् प्रवर्तते ॥ ४४

सत्यात् प्रच्यवमानानां सङ्कल्पश्च तथा भवेत् ।
ततो यज्ञः प्रतायेत सत्यस्यैवावधारणात् ॥ ४५

मनसाऽन्यस्य भवति वाचान्यस्याथ कर्मणा ।
सङ्कल्पसिद्धः पुरुषः सङ्कल्पानधितिष्ठति ॥ ४६

अनैभृत्येन चैतस्य दीक्षितव्रतमाचरेत् ।
नामैतद्धातुनिर्वृत्तं सत्यमेव सतां परम् ॥ ४७

ज्ञानं वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः ।
विद्याद्बहु पठन्तं तु द्विजं वै बहुपाठिनम् ॥ ४८

तस्मात् क्षत्रिय मामंस्था जल्पितेनैव वै द्विजम् ।
य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥ ४९

छन्दांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा
पुरा जगौ महर्षिसङ्घ एषः ।
छन्दोविदस्ते य उत नाधीतवेदा
न वेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम् ॥ ५०

**सङ्क्षेपशारीरके**--'आरोपदृष्टिरपवादकदृष्टिरेवं व्यामिश्रदृष्टिरिति दृष्टिविभागमेनम् । संगृह्य सूत्रकृदयं पुरुषं मुमुक्षुं सम्यक्प्रबोधयितुमुत्सहते क्रमेण ' इत्यादिना 'श्रुतिवचांसि मुनिस्मरणानि च द्वयविशारदगीरपि सर्वशः । त्रयमपेक्ष्य दृशां त्रितयं विना न हि घटामुपयान्ति कदाचन ' इत्यन्तेन ॥ ४२ ॥ एवमनेकेषु पक्षेषूपस्थापितेषु सिद्धान्तमाह--**एकस्येति**। ब्रह्मैव एकं वेद्यं तच्च सत्यं कालत्रयेऽप्यबाध्यं तस्य अज्ञानात् बहूनि वेद्यानि उपास्यानि अब्रह्मभूतानि कृतानि कल्पितानि वेदे सत्यप्रतिपत्त्यर्थं तेषामब्रह्मत्वं वेद एवाह--' तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इति । तस्मिंश्च सत्ये ब्रह्मणि कश्चिदेव अवस्थितः । ब्रह्मलाभोऽतिदुर्घट इत्यर्थः । श्रुतिरप्यज्ञानकार्यत्वं जगत आह--' तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत् तमसस्तन्महिनाऽजायतैकम् ' इति तुच्छेन रज्जूरगादिवदध्यस्तेन मिथ्याभूतेन तमसा आभु सर्वव्यापकं ब्रह्म अपिहितमाच्छादितं यत् आसीत् तत् एकमेव सत् तमसः अज्ञानस्य । तपस इति पाठे आलोचनस्य सङ्कल्पमात्रस्य महिना माहात्म्येन अजायत प्रपञ्चाकारेण आविर्बभूव । यथा रज्जुरज्ञानावृता सर्पाकारेणाविर्भवति तद्वदिति श्रुत्यर्थः ॥४३॥ **एवमिति**। सत्यं प्रत्यगद्वयानन्दं वेद्यमज्ञात्वा बाह्यसुखलोभात् एतद्दानादिकं कर्तुं प्रवर्तते इत्यर्थः ॥ ४४ ॥ **सत्यादिति** । तथा भवेत् परमानंदात् प्रच्युतस्य क्षुद्रानन्दविषयोऽभिलाषो भवेत् ततश्चासौ यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः प्रतायेत सन्तन्यते । सत्यस्य वेदवचनस्य ' ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत ' इत्यादेरवधारणात् प्रामाण्यनिश्चयात् । सङ्कल्पो वितथो भवेदिति पाठे सत्यज्ञस्यैव सत्यसङ्कल्पत्वं अन्यस्य तु संकल्पो वन्ध्य इत्यर्थः । सनत्पाठे यज्ञोऽपि सत्यस्यानवधारणादापरोक्ष्येण अनिश्चयादेव प्रवर्तते । ज्ञाते तु सत्ये 'एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत' इति कृतकृत्यत्वमेव स्मर्यते ॥४५॥ **मनसेति** । यज्ञ इत्यनुकृष्यते । अन्यस्य एकस्य यज्ञो मनसा देवताध्यानादिरूपो भवति । वाचा ब्रह्मयज्ञजपादिरूपो यज्ञो भवति । कर्मणा प्रसिद्धो ज्योतिष्टोमादिः एतेषां पूर्वः पूर्वो ज्यायान् । संकल्पसिद्धः सत्यसंकल्पः संकल्पानां कल्पनीयपदार्थानां ब्रह्मलोकादीनामधिष्ठाता भवति ब्रह्मवित् । तथा च श्रुतिः--'आप्नोति स्वाराज्यम् आप्नोति मनसस्पतिं, वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः, श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः' इति । स्वराजो भावः स्वाराज्यं ब्रह्मैश्वर्यम् ॥ ४६ ॥ तस्य सङ्कल्पस्य अनैभृत्येन अदार्ढ्येन आत्मज्ञानाद् न्ध्यसङ्कल्पत्वे सतीत्यर्थः । दीक्षितव्रतं मुष्टीकरणवाग्यमनादिकं कुर्यात् । एतन्नाम दीक्षित इति तद्दीक्ष व्रतादेशे इत्यनेन धातुना निष्ठाप्रत्ययान्तेन निष्पन्नम् । कर्मजः संस्कार आगन्तुको विनाशी चेत्यर्थः। सतां तु सत्यमेव परं ब्रह्मैव श्रेष्ठम् । अकृतकत्वे विनाशित्वात् ॥ ४७ ॥ एतदेव स्पष्टयति--**ज्ञानमिति**। प्रत्यक्षं शोकमोहनिवृत्तिरूपं ज्ञानफलं प्रत्यक्षमित्यर्थः । तपः कायिकं वाचिकं मानसिकं च । तत् परोक्षमामुष्मिकफलप्रदमित्यर्थः । विद्यादित्यर्धेन परोक्षज्ञानस्य व्यावृत्तिरिह उच्यते ॥ ४८ ॥ उक्तमेवोपसंहरति--**तस्मादिति** । जल्पितेनैव केवलाध्ययनेनैव सत्यात् प्रत्यगद्वयानन्दात् । तथा च श्रुतिः--' यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः ' इत्यपरोक्षज्ञानिनो ब्राह्मणत्वमुक्त्वाऽर्थादितरस्याब्राह्मणत्वं दर्शयति ॥४९॥ नन्वेवमध्ययनयागादेर्वैयर्थ्यं स्यादित्याशङ्क्येष्टापत्तिमाह--**छंदांसीति** । एष उपनिषत्प्रसिद्धः अथर्वा महामुनिर्महर्षिसङ्घो यानि पुरा जगौ तान्येव छन्दांसि उपनिषद्रूपाणि नाम निश्चितम् । ' छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात् कर्मणः' इति श्रुत्या छन्दःशब्दनिर्वचनात् । 'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः' इति अथर्वणोपनिषदि यज्ञानां पापाद्रक्षितुमसामर्थ्यदर्शनात् ब्रह्मविद्यार्थानां छन्दसां मुख्यं छन्दस्त्वं कर्मार्थानां तु गौणमिति भावः । किञ्च । उत अपि येऽपि अधीतवेदाः सोपनिषत्कं वेदं पाठतोऽर्थतश्च

छन्दांसि नाम द्विपदां वरिष्ठ
स्वच्छन्दयोगेन भवन्ति तत्र ।
छन्दोविदस्तेन च तानधीत्य
गता न वेदस्य न वेद्यमार्याः ॥ ५१

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति
कश्चित्त्वेतान् बुध्यते वाऽपि राजन् ।
यो वेद वेदान्न स वेद वेद्यं
सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम् ॥ ५२

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति
वेद्येन वेदं न विदुर्न वेद्यम् ।
यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं
यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम् ॥ ५३

यो वेद वेदान् स च वेद वेद्यं
न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः ।
तथाऽपि वेदे न विदन्ति वेदं
ये ब्राह्मणा वेदविदो भवन्ति ॥ ५४

धामांशभागस्य तथा हि वेदा
यथा च शाखा हि महीरुहस्य ।
संवेदने चैव यथाऽऽमनन्ति
तस्मिन् हि सत्ये परमात्मनोऽर्थे ॥ ५५

अधीतवन्तस्तेऽपि न च्छन्दोविदः । यतः वेदवेद्यस्य औपनिषदस्य पुरुषस्य तत्त्वं याथात्म्यं न विदुः न जानान्ति । ' अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवामफलामपुष्पाम् ' इति । ' पुष्पं हि फलं वाचः सत्यम् ' इति श्रुतिश्चैतदाह । सत्यं परं ब्रह्म ॥ ५० ॥ **छन्दांसि नामेति** । द्विपदां मनुष्याणां मध्ये वरिष्ठ तत्र सत्ये ब्रह्मणि विषये छन्दांसि वेदाः स्वच्छन्दयोगेन स्वातन्त्र्यसम्बन्धेनैव भवन्ति । कर्मकाण्डार्थज्ञानवत् ब्रह्मकाण्डार्थज्ञानं न मध्येऽनुष्ठानान्तरमपेक्षते । तथाहि । ' तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्च ' इति श्रुत्या दर्शनसार्वात्म्ययोर्मध्ये तिष्ठन्गायतीत्यादौ तिष्ठति गायत्योर्मध्ये इव कार्यान्तरं वार्यते । तेन च ज्ञातेन सत्येन चकार एवकारार्थे तेनैवेत्यर्थः । छन्दोविदो भवन्ति न कर्ममात्रज्ञानेन। तान् छन्दोज्ञान् अधीत्य प्राप्य आर्याः वेदस्य वेद्यं वेदनीयं ब्रह्म न गता इति न अपि तु गताः प्राप्ता एवेत्यर्थः। एतेन ' तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ' इत्यस्याः श्रुतेरर्थो दर्शितः ॥ ५१ ॥ तथाऽपि ब्रह्मणो दुर्ज्ञेयत्वमाह— **नेति** । वेदानां रहस्यवेदिता ज्ञाता कश्चिन्नास्ति । कश्चित्तु एतान् वेदान् रहस्यप्रतिपादकान् चित्तशुद्ध्यतिशयाद् बुद्ध्यते । यो व्युत्थितः तत्त्वमसिवाक्यार्थानुसंधाता वा वेदान् वेद स सविकल्पकः निर्विकल्पकं वेद्यं सर्ववृत्तिलये प्रकाशमानं ब्रह्म न वेद किं तु सत्ये सर्ववृत्तिबाधावधिभूते प्रत्यक्चैतन्ये स्थित एव निर्विकल्पकं सुखं वेद ॥ ५२ ॥ इममेवार्थं भङ्ग्यन्तरेणाह—**नेति** । वेदानां वेद्यानामहङ्कारादीनामचेतनानां मध्ये कश्चिद्वेदिता नास्ति। अतो हेतोः वेद्येन चेतसा वेदं वेदबोध्यमात्मानं न विदुः । नापि वेद्यमनात्मानमपि न विदुः आत्माऽनात्मा च न जडस्य विषयावित्यर्थः । ननु जडया धीवृत्त्या आत्मा ज्ञायत एव ' दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या ' इति श्रुतेरित्याशंक्याह—वेदमात्मानं यो वेद स एव वेद्यमनात्मानं सर्वं वेद आत्मप्रभवत्वात्सर्वस्य । यस्तु बहिर्मुखः वेद्यमनात्मानं वेद स सत्यं ब्रह्म न वेद । तथा च श्रुती भवतः—'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' । 'पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ' इति व्यतृणत् हिंसितवान् ॥ ५३ ॥ किञ्च यश्चिदात्मा सर्वेषां प्रत्यक्त्वेन प्रसिद्धः वेदान् वेदयन्ति ते वेदाः तान् प्रमाणानि वेद स एव वेद्यं प्रमेयमपि वेद न तु तं तान् वेद्यं विदुः जडत्वात् । तं च ' प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः ' इति प्राणादीनां प्रवर्तकत्वेन प्रसिद्धं वेदाः प्रमाणानि वेदविदः प्रमातारश्च न विदुः। ' यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ' इति तस्य वाङ्मनसातीतत्वश्रुतेः । यद्यप्येवं तथाऽपि वेदं वेदितारमात्मानं वेदेनैव प्रमाणेन ' अहं ब्रह्मास्मि ' इत्यादिना विदन्ति जानन्ति के ते ये ब्राह्मणाः वेदविदो वेदं पाठतोऽर्थतोऽनुष्ठानतश्च विदन्ति ते वेदविदः । अध्ययनयज्ञादिना संस्कृतचित्ता एव वाक्यादात्मानं लक्षणया जानन्ति न त्वन्ये इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ इदमेव दृष्टान्तेन प्रतिपादयति— **धामांशेति** । धाम तेजः तन्मयाः अंशा यस्य स तेजोमयोऽर्थाच्चन्द्रः तस्य भागः कला प्रतिपद्गता तस्य संवेदने ज्ञापने यथा च यथैव हि प्रसिद्धं महीरुहस्य शाखा उपादीयते । तथाहि तथैव वेदाः परमात्मनः संवेदनेऽर्थे परमपुरुषार्थरूपे सत्ये सर्वथाऽप्यबाध्ये वेदाः उपादीयन्त इति आमनन्ति तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीत्यौपनिषदत्वविशेषणात् वाचामगोचरत्वश्रुतेश्च सोऽयं देवदत्त इत्यादिवाक्यवत् तत्त्वमस्यादिवाक्यमपि लक्षणया स्वार्थं प्रमापयत्येवेत्यर्थः ॥ ५५ ॥

अभिजानामि ब्राह्मणं व्याख्यातारं विचक्षणम् ।
यश्छिन्नविचिकित्सः स व्याचष्टे सर्वसंशयान् ५६
नास्य पर्येषणं गच्छेत् प्राचीनं नोत दक्षिणम् ।
नार्वाचीनं कुतस्तिर्यङ्नादिशं तु कथञ्चन ॥ ५७
तस्य पर्येषणं गच्छेत् प्रत्यर्थिषु कथञ्चन ।
अविचिन्वन्निमं वेदे तपः पश्यति तं प्रभुम् ॥ ५८
तूष्णींभूत उपासीत न चेष्टेन्मनसाऽपि च ।
उपावर्तस्व तद्ब्रह्म अन्तरात्मनि विश्रुतम् ॥ ५९
मौनान्न स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः ।
स्वलक्षणं तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ६
सर्वार्थानां व्याकरणाद्वैयाकरण उच्यते ।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा ॥ ६
प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ।
सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद्विद्वान् सर्वविद्भवेत् ६
धर्मादिषु स्थितोऽप्येवं क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति ।
वेदानां चानुपूर्व्येण एतद्बुद्ध्या ब्रवीमि ते ॥ ६

**इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥**

---

एवं गुरूपसदनपूर्वकं वाक्यार्थप्रतिपत्त्युपायमुक्त्वा गुरुलक्षणान्याह अभीति। ब्राह्मणं ब्रह्मविदं लक्षणतोऽभिजानामि। लक्षणमेवाह व्याख्यातारमुपक्रमोपसंहारैकरूप्यादिषड्विधतात्पर्यलिङ्गानुसारेण वाक्यार्थवर्णनकुशलं, विचक्षणं श्रुतार्थस्य युक्तिभिरनुचिन्तने समर्थं, निदिध्यासनपरिपाकेनापरोक्षसाक्षात्कारबलात् यश्छिन्नविचिकित्सो निःसंशयः सन् परस्यापि सर्वसंशयान् व्याचष्टे विवृणोति । अत्र स्वरूपव्याक्रियैव पराक्रियेति न्यायेन संशयान् दूरीकरोतीत्यर्थः ॥ ५६ ॥ परीष्यतेऽस्मिन्निति पर्येषणमन्वेषणस्थानं प्राचीनं प्राग्दिक्स्थं नापि दक्षिणादिदिक्स्थं नापि अदिशं दिग्विहीनं अन्तर्हृदये इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ एतदेवाह—**तस्येति** । प्रत्यर्थिषु आत्मत्वेन प्रथमानेष्वनात्मसु पञ्चसु कोशेषु पर्येषणमन्वेषणं गच्छेत्कुर्यादित्यर्थः । कथं च नेत्यव्यक्तमालम्बनं क्लेशसाध्यमिति सूचयति । 'अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते' इति स्मृतेः । वेदे इमं आत्मानं अविचिन्वन् वेदान्तन्यायानप्यचिन्तयन्नित्यर्थः । तपः तपस्वी आलोचनवान् ध्यायी तं प्रभुं पश्यति । 'तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः' इति श्रुतेः ॥ ५८ ॥ तूष्णींभूत इत्यनेन वागादिबाह्येन्द्रियव्यापारोपरम उक्तः । मनसाऽपि न चेष्टेत् न चेष्टेतेत्यनेन मानसव्यापारोपरम उक्तः । अन्तरात्मनि हार्दाकाशे विश्रुतं वेदे प्रख्यातं तद्वाचामगोचरं ब्रह्म उपावर्तस्व उपागच्छ ॥५९॥ मौनात् ध्यानमात्रान्न मुनिर्भवति नापि अरण्यवासात् संन्यासमात्रात् किं तर्हि यः स्वलक्षणं स्वस्य प्रत्यगात्मनो लक्षणं जगज्जन्मादिहेतुत्वं सच्चिदानन्दात्मकत्वं च यो वेद जानाति स श्रेष्टः । संन्यासिभ्यो योगिभ्यश्च ज्ञानी श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ ६० ॥ सर्वार्थानां व्याकरणात् प्रकटीकरणात् सर्वज्ञत्वादयं ज्ञानी वैयाकरण इत्युच्यते । तच्च व्याकर केचिद्योगजधर्मप्रत्यासत्त्या वदन्ति तन्निराचष्टे—**मूल इति** । आत्मज्ञानाद्धि सर्वविज्ञानं श्रूयते न प्रधानज्ञाना अन्यतो वा मूलत इति—ल्यब्लोपे पञ्चमी—मूलं कारणं प्रा प्राप्येत्यर्थः । तत्र व्याकर्ता परमात्मैव 'तन्नामरूपाभ्य मेव व्याक्रियत' 'नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुतिभ्या त्याह—**व्याकरोतीति** । श्रौतव्युत्पत्तिप्रदर्शनमेतत् ॥६ सार्वज्ञ्यमपि ब्रह्मविदामनौपचारिकमित्याह—**प्रत्यक्षेति** सत्ये तिष्ठन् न तु वृत्त्यन्तरे देहाद्याकारे । ब्राह्मणः ब्रह्मवि तद्विद्वान् ब्रह्मविद्वानिति ब्राह्मणपदव्युत्पत्तिप्रदर्शनम् ॥६२ अध्यायार्थमुपसंहरति—**धर्मादिष्विति** । धर्मश्च सत्यं दमस्तपश्चेत्यादिषु द्वादशसु स्थितः । तथा सत्यादिरूपे अ विधे अप्रमादे च स्थितः एवं साधनवान् वेदेषु पूर्वोक्ते आरोपदृष्टिव्यामिश्रदृष्ट्यपवाददृष्टिरूपेषु आनुपूर्व्येण सोपान रोहणन्यायेन परमे पदे स्थितोऽहमेतत्स्वानुभवसिद्धं बुद्ध स्वतः स्नेहवत्या ते तुभ्यं ब्रवीमि । सोपानक्रमस्तु नृसिंहता नीये श्रूयते—'ओतानुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्पैः' इति । अस्यार्थः 'ओतत्वं कारणव्याप्तिः कार्ये यद्वन्मृदो घटे । सर्वं ब्रह्मेति तन्निष्ठा जानते परिणामतः १ कार्यस्यासमसत्त्वं यत्कार समुदीरितम् । तदनुज्ञातृशब्दार्थो मरौ वारिविवर्तनम् एतन्निष्ठास्ततो भूत्वा जगन्मिथ्येति जानते । अनुज्ञा जगत्तुच्छं शशशृङ्गादिवन्मतम् ३ एवं सोपानरीत्यैव भूमि त्रितयलंघनात् । अविकल्पं परं यत्तदहं ब्रह्मास्मि निर्भयम्' इति ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठी भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

# ४४

धृतराष्ट्र उवाच ।

सनत्सुजात यामिमां परां त्वं
ब्राह्मीं वाचं वदसे विश्वरूपाम् ।
परां हि कामेन सुदुर्लभां कथां
प्रब्रूहि मे वाक्यमिदं कुमार ॥ १

सनत्सुजात उवाच ।

नैतद्ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं
यन्मां पृच्छन्नतिहृष्यस्यतीव ।
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या
विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ॥ २

धृतराष्ट्र उवाच ।

अत्यन्तविद्यामिति यत्सनातनीं
ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येण सिद्धाम् ।
अनारभ्यां वसतीह कार्यकाले
कथं ब्राह्मण्यममृतत्वं लभेत ॥ ३

सनत्सुजात उवाच ।

अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं
बुद्ध्या च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम् ।
यां प्राप्यैनं मर्त्यलोकं त्यजन्ति
या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या ॥ ४

धृतराष्ट्र उवाच ।

ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमञ्जसा ।
तत्कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतद्ब्रह्मन् ब्रवीहि मे ॥ ५

सनत्सुजात उवाच ।

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य
भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति
प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम् ॥ ६

अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान्
ब्राह्मीं स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः ।
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहा-
न्मुञ्जादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः ॥ ७

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत ।
अचार्यशास्ता या जातिः सा पुण्या साजराऽमरा

## ४४

एवमात्मज्ञानमार्गं श्रुत्वा तस्यान्तरङ्गसाधनं योगं श्रोतुं पृच्छति—**सनत्सुजातेति** । परामुक्तादपि अत्युत्कृष्टां ब्राह्मीं ब्रह्मप्रापिकां वाचं उपनिषदं वदसे जानीषे । भासनोपसंभाषाज्ञानेति तङ् । विश्वं रूप्यते प्रकाशतेऽस्याम् । यां ज्ञातवतोऽन्यत् ज्ञातव्यं नावशिष्यत इत्यर्थः । कामेन काम्यमानेन विषयेण परां दूरीभूतां विषयवार्ताहीनामित्यर्थः। अत एव सुदुर्लभां कथां कथनीयां प्रब्रूहि । हे कुमार इदं मे मम वाक्यं त्वां प्रति प्रार्थनारूपं वचनं अवधेहीति शेषः ॥ १ ॥ ब्रह्मविद्यायाः दुर्लभत्वं दर्शयन् सनत्सुजात उवाच—**नैतदिति** । हृष्यसि अहं ब्रह्मविद्याधिकार्यस्मीति हृष्यसि । पाठान्तरे अभिषङ्गेण निर्बन्धेन । विद्यालक्षणमाह—**बुद्धाविति** । सर्वेषामिन्द्रियाणां निरोधेन मनोमात्रमनुपरतं संकल्पायात्मकं तिष्ठति । तस्मिन्नपि अहं ब्रह्मास्मीतिनिश्चयस्वभावायां बुद्धौ विलीने सति । प्रचिन्त्या प्रगतं चिन्त्यं यस्यां सा निरुद्धसर्ववृत्तिका काचिदवस्था विद्येत्युच्यते । सा च ब्रह्मचर्येण गुरुकुलवासेन लभ्या ॥ २ ॥ अत्यन्ते अन्तस्त्रिविधपरिच्छेदः तमतिक्रान्तं अत्यन्तं ब्रह्म तद्विषयां विद्यां सनातनीं नित्यसिद्धां प्रत्यगात्मनो नित्यापरोक्षत्वात् । 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म'इति श्रुतेः। सिद्धां अभिव्यज्यमानाम्। तत्र हेतुः—अनारभ्यां कर्मवदारंभायोग्याम्। या च कार्यकाले इह आत्मन्येव वसति नित्यसिद्धत्वात्। एवं सति ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य योग्यं अमृतत्वं कथं लभेता न हि लब्धलाभार्थं यत्नोऽपेक्ष्यते इति ब्रह्मचर्याद्यनुष्ठानाक्षेपः ॥ ३ ॥ अत्रोत्तरमाह—**अव्यक्तेति** । बुद्ध्याख्योपाधिसम्बन्धजनितकालुष्यादविविक्ततया न व्यक्तमव्यक्तं ब्रह्म तस्य विद्याम् । अयं भावः—यद्यपि ब्रह्म नित्यापरोक्षं आत्मवात् तथाऽपि अशनायायतीतस्य तस्य विविक्तस्य परोक्षत्वात्तदापरोक्ष्याय यत्नो युक्त इति ॥ ४ ॥ अञ्जसा आर्जवेन ॥५॥ **आचार्येति** । योनिः स्थानम्। 'योनिष्ट इन्द्रनिषदे अकारि । स्वे योनौ निषदतं सरूपा' इत्यादौ दर्शनात् । गर्भे भूत्वा तस्य निष्कपटसेवया अन्तरङ्गत्वं प्राप्येत्यर्थः । शास्त्रकाराः शास्त्रकर्तृत्वं ब्रह्मण्येव श्रुतं 'महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदः' इत्यादिना । गुरोरनुग्रहादिहैव ब्रह्मभावं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । परममपुनरावृत्तिं योगं ब्रह्मणा सह ऐक्यं यान्ति ॥ ६ ॥ **अस्मिन्निति** । ये जितकामाः ब्राह्मीं स्थितिं प्राप्तुं ये च द्वन्द्वसहाः ते देहादात्मानं निर्हरन्ति पृथक्कुर्वन्ति सत्वसंस्थाः सत्वगुणभाजः। श्रुतिश्च—'तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिव इषीकात् धैर्येण' इति । प्रवृहेत् पृथक्कुर्यात् ॥७॥ आचार्यः शास्ता उपदेष्टा यस्यां सा जातिर्जन्म । यथा ब्राह्म-

यः प्रावृणोत्यवितथेन वर्णा-
नृतं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्॥ ९
गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत
स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः।
मानं न कुर्यान्नादधीत रोष-
मेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः॥ १०
शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते॥ ११
आचार्यस्य प्रियं कुर्यात्प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते॥ १२
समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाऽऽचरेत्।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते १३
आचार्येणात्मकृतं विजानन्
ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन।
यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः
स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः॥ १४
नाचार्यस्यानपाकृत्य प्रवासं
प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि।
इतीव मन्येत न भाषयेत
स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः॥ १५
कालेन पादं लभते तथाऽर्थं
ततश्च पादं गुरुयोगतश्च।
उत्साहयोगेन च पादमृच्छे-
च्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति॥ १६
धर्मादयो द्वादश यस्य रूप-
मन्यानि चाङ्गानि तथा बलं च।
आचार्ययोगे फलतीति चाहु-
र्ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम्॥ १७
एवं प्रवृत्तो यदुपालभेत वै
धनमाचार्याय तदनु प्रयच्छेत्।
सतां वृत्तिं बहुगुणामेवमेति
गुरोः पुत्रे भवति च वृत्तिरेषा॥ १८
एवं वसन् सर्वतो वर्धतीह
बहून् पुत्रान् लभते च प्रतिष्ठाम्।
वर्षन्ति चास्मै प्रदिशो दिशश्च
वसन्त्यस्मिन् ब्रह्मचर्ये जनाश्च॥ १९
एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन्।
ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिणः॥ २०

नस्य सावित्रीप्राप्त्या सावित्रं द्वितीयं जन्म, एवं आचार्यात् परब्रह्मविद्याप्राप्त्याऽपि तस्य जन्मान्तरं भवति तच्च मोक्षहेतुत्वात् पुण्यत्वादिगुणसंयुक्तम्॥ ८॥ आचार्यमाहात्म्यप्रख्यापकं मन्त्रं पठति—**यः प्रावृणोतीति**। यः आचार्यः वर्णान् ब्राह्मणादीन् अवितथेन वितथमनृतमनात्मा जडं तदन्येन सत्येन चिदात्मना प्रकर्षेण आवृणोति सबाह्याभ्यन्तरं वासयति। द्वैतोत्थभयनिवारणेन पालयतीत्यर्थः। ऋतं ब्रह्म कुर्वन् वाचा आविष्कुर्वन्। तस्य फलमाह—**अमृतं संप्रयच्छन्निति**। अमृतं मोक्षं, कृतं तत्कृतमुपकारम्॥९॥ शुचिः स्नानादिना भावशुद्ध्या च अप्रमत्तः गुरुशुश्रूषायां सावधानः मानं न कुर्यात्। तुच्छमपि कार्यं शिष्टानां शौचादिकं तदपि कर्तव्यमेवेत्यर्थः। अत्यन्तं श्रमेऽपि रोषं नादधीत न विदध्यात्॥ १०॥ शिष्यवृत्तिः सायंप्रातर्भिक्षणेन जीवनं तेनैव क्रमेण न तु गुर्वन्नोपजीवनेनेत्यर्थः॥ ११॥ द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां ब्रह्मचर्यस्य प्रथमं पादमुक्त्वा द्वाभ्यां द्वितीयं पादमाह—**आचार्यस्येति**॥१२-१३॥ प्राप्तविद्यो विद्यासुखेन हृष्यन् आचार्यं यत् अत्यन्तं मानयति स ब्रह्मचर्यस्य तृतीयः पाद इत्याह—**आचार्येणेति**। आत्मकृतं स्वस्मै उपकृतं विद्यादानेन तस्य च अर्थं प्रयोजनं दुःखनिवृत्तिमानन्दावाप्तिं च ज्ञात्वाऽनुभूय। अनेनाचार्येण भावितो वर्धितोऽस्मीति जानन् यन्मन्यते॥ १४॥ अनपाकृत्य विद्यायाः निष्क्रयार्थमृणमर्थदानेन अपरिहृत्य प्रवासं गुरुगृहादन्यत्राश्रमान्तरे स्थितिं न कुर्वीत। एतत् गुरवे अर्थप्रदानमहं करोमीति नैव मन्येत मनसा। न च भाषयेत—स्वार्थे णिच्—वदेत वाचा॥ १५॥ चतुष्पाद्ब्रह्मचर्येण लभ्यां चतुष्पदीं विद्यामाह—**कालेनेति**। कालेन बुद्धिपरिपाकेन। उत्साहयोगेन बुद्धिवैभवेन शास्त्रेण सहाध्यायिभिर्विचारेण। क्रमस्तु न विवक्षितः। उक्तं च—'आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया। कालेन पादमादत्ते पादं सब्रह्मचारिभिः' इति॥ १६॥ **धर्मादय इति**। यस्य ब्रह्मचर्यस्य रूपं स्वरूपभूता इत्यर्थः। अन्यानि चाङ्गानि आसनप्राणजयादीनि। बलं योगे नित्योद्युक्तता। ब्रह्मार्थो वेदार्थः कर्मब्रह्मणी तयोर्योगेन अधिगमेन ब्रह्मचर्यं फलतीत्यर्थः॥ १७॥ **एवमिति**। अहं करोमीत्यभिमानं विना तत्प्रकाशकं वचनं च विना गुर्वर्थार्थं प्रवृत्तः सः आचर्यः वृत्तिं जीविकां एति प्राप्नोति। वृत्तिर्वर्तनं शिष्यस्येति शेषः॥१८॥ वसन् ब्रह्मचर्ये इति शेषः। सर्वतः सर्वैः प्रकारैः वर्धति वर्धते। वर्षन्ति धनैरिति शेषः॥१९॥

गन्धर्वाणामनेनैव रूपमप्सरसामभूत् ।
एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्योऽप्यह्नाय जायते ॥ २१

आकाङ्क्ष्यार्थस्य संयोगाद्रसभेदार्थिनामिव ।
एवं ह्येते समाज्ञाय तादृग्भावं गता इमे ॥ २२

य आश्रयेत् पावयेच्चापि राजन्
सर्वं शरीरं तपसा तप्यमानः ।
एतेन वै बाल्यमभ्येति विद्वान्
मृत्युं तथा स जयत्यन्तकाले ॥ २३

अन्तवतः क्षत्रिय ते जयन्ति
लोकान् जनाः कर्मणा निर्मलेन ।
ब्रह्मैव विद्वांस्तेन चाभ्येति सर्वं
नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥ २४

धृतराष्ट्र उवाच ।

आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो
कृष्णमथाञ्जनं काद्रवं वा ।
सद्ब्रह्मणः पश्यति योऽत्र विद्वान्
कथं रूपं तदमृतमक्षरं पदम् ॥ २५

सनत्सुजात उवाच ।

आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो
कृष्णमायसमर्कवर्णम् ।
न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे
नैतत्समुद्रे सलिलं बिभर्ति ॥ २६

न तारकासु न च विद्युदाश्रितं
न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य ।
न चापि वायौ न च देवतासु
नैतच्चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये ॥ २७

नैवर्क्षु तन्न यजुष्षु नाप्यथर्वसु
न दृश्यते वै विमलेषु सामसु ।
रथन्तरे बार्हद्रथे वाऽपि राजन्
महाव्रतेनैव दृश्येत् ध्रुवं तत् ॥ २८

**आकाङ्क्ष्येति** । रसभेदः पारदगुटिकाविशेषश्चिन्तामणिसंज्ञस्तं चिन्तितवस्तुप्रदं अर्थयन्ते तेषां रसभेदार्थिनां यथा आकाङ्क्ष्यस्य लिप्सितस्यार्थस्य संयोगः प्राप्तिस्ततो यादृक् भावो भवति एवमेव एते देवादयः समाज्ञाय ब्रह्मचर्यमुपेत्य तादृग्भावं सत्यसंकल्पत्वाच्चिन्तितवस्तुप्रदत्वं गताः ॥ २२ ॥ **य इति** । सर्वं चतुष्पाद्ब्रह्मचर्यं य आश्रयेत् शरीरं च पावयेत् । बाल्यं रागद्वेषादिराहित्यं वेदान्तार्थानां युक्तिपूर्वकमनुचिन्तनेन तत्त्वनिश्चयं वा । अन्तकाले इत्यनेन यावज्जीवमुक्तप्रकारे बाल्ये तिष्ठेदिति दर्शितम् यथोक्तम्—'शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः' इति ॥ २३ ॥ **अन्तेति** । ते अविद्वांसः अन्तवतः अनित्याँल्लोकान् कर्मणा जयन्ति । विद्वांस्तु ब्रह्मैव सार्वात्म्यात् सर्वं तेन ज्ञातेन ब्रह्मणा अभ्येति अतस्तस्य कर्मप्राप्यं किञ्चित्फलं नावतिष्ठते इत्यर्थः । अतः ज्ञानादन्यः पन्थाः अयनाय मोक्षाय न विद्यते । 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' इत्यवधारणात् ॥ २४ ॥ नान्यः पन्था अयनाय विद्यत इति श्रुत्वा 'तूष्णींभूत उपासीत न चेष्टेन्मनसाऽपि च । उपावर्तस्व तद्ब्रह्म अन्तरात्मनि विश्रुतम्' इति प्रागुक्तप्रकारेण आत्मानमनुसन्दधानस्तमनवाप्य नानावर्णान्नाडीमार्गान् अन्तर्हृदये पश्यन् पृच्छति—**आभातीति** । सद्ब्रह्मणो रूपं यो विद्वानत्र हृदये पश्यति स शुक्लादिरूपमिव अनवस्थितरूपं ब्रह्म पश्यति । अतः कथंरूपं कीदृक्रूपं तदक्षरं व्यापकं अमृतमविनाशि पदं पदनीयं तद्ब्रूहीति शेषः । काद्रवं कुत्सितः परपीडकः द्रवो गतिर्यस्य स काद्रवो धूमः तद्वर्णं काद्रवं कद्रुपिंगलं तद्वर्णम् । श्रूयन्ते च ब्रह्ममार्गे रूपाणि—'तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं च । एष पन्था ब्रह्मणा ह्यनुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित् पुण्यकृत्तैजसश्च' इति ॥२५॥ उत्तरमाह—**आभातीति** । ब्रह्ममार्गे यद्यपि शुक्लादिरूपाणि भान्ति तथाऽपि यत् ब्रह्मणो रूपं तत् पृथिव्यादिषु नास्ति । 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्' इति तत्र शब्दादीनां निषेधात् । तेषां शब्दादिमत्त्वात् रूपान्तराणि तु ब्रह्मप्राप्तिचिह्नानि न तु ब्रह्मरूपाणि । तथा च श्रुतिः—'नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे' इति । समुद्रे संसारसागरे एनं परमात्मानं सलिलं सलिलोपलक्षितः पञ्चभूतात्मको देहः न बिभर्ति । जीवानामिव ब्रह्मण उपाधिजं दुःखं नास्तीत्यर्थः । यद्वा । सामुद्रे जले एतद्रूपं नास्तीत्यर्थः॥२६॥न **तारकास्विति** । रूपादिराहित्यस्यैव प्रपञ्चः ॥ २७ ॥ नामरूपात्मके प्रपञ्चे सति तद्रहितत्वं ब्रह्मणो वक्तुं रूपप्रपञ्चादन्यत्वमुक्त्वा नामप्रपञ्चादप्यन्यत्वमाह — **नैवर्क्षु तदित्यादिना** । तदित्यनेन अर्थात् ब्रह्मणो नाम निर्दिश्यते । विमलेषु वैश्वानरसामादिषु । रथन्तरबार्हद्रथे च पृष्ठ्यसामनी । महाव्रते यज्ञविशेषेऽपि नैव तद्दृश्येत् पश्येत् । कर्मभिरपि तद्दर्शनं न प्राप्यत इत्यर्थः । 'नास्त्यकृतः कृतेन' इति श्रुतेः । अकृतः मोक्षः कृतेन कर्मणा नास्तीति श्रुत्यर्थः । यतः तत् ध्रुवं नित्यम् ॥ २८ ॥

अपारणीयं तमसः परस्तात्
तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले ।
अणीयो रूपं क्षुरधारया समं
महच्च रूपं तद्वै पर्वतेभ्यः ॥ २९
सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद्ब्रह्म तद्यशः ।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात्प्रलयं यान्ति तत्र हि ॥ ३०
अनामयं तन्महदुद्यतं यशो
वाचो विकारं कवयो वदन्ति ।
यस्मिन् जगत् सर्वमिदं प्रतिष्ठितं
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

सनत्सुजात उवाच ।
शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मानः परासुता ।
ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपाऽसूया जुगुप्सुता
द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः ।
एकैकमेते राजेन्द्र मनुष्यान् पर्युपासते ।
यैराविष्टो नरः पापं मूढसंज्ञो व्यवस्यति ॥ २
स्पृहयालुरुग्रः पुरुषो वा वदान्यः
क्रोधं बिभ्रन् मनसा वै विकत्थी ।
नृशंसधर्माः षडिमे जना वै
प्राप्याप्यर्थं नोत सभाजयन्ते ॥ ३
संभोगसंविद्विषमोऽतिमानी
दत्त्वा विकत्थी कृपणो दुर्बलश्च ।
बहुप्रशंसी वनिताद्विड् सदैव
सप्तैवोक्ताः पापशीला नृशंसाः ॥ ४

अपारणीयमनतिक्रमणीयमहेयत्वात् । तमसः अज्ञानरूपादुपाधेः परस्तात् पराचीनम्। अन्तकः कालः तत् ब्रह्म अप्येति गच्छति। प्रलयान्ते कालोऽपि तत्र लीयत इत्यर्थः । अणीय इति दुर्लक्ष्यम् । क्षुरधारया सममित्यत्यन्तावहितेन प्राह्यम्। महच्च पर्वतेभ्य इति उपलक्षणं सर्वस्य। सर्वस्मादपि महदित्यर्थः ॥ २९ ॥ प्रतिष्ठा अधिष्ठानममृतं निर्विकारम्। विकारो हि विकारान्तरमापद्यमानो मृत उच्यते। लोक्यन्त इति लोकाः दृश्यमात्रम् । ब्रह्म बृहत् यशो रमणीयमपि तदेव, 'तस्य नाम महद्यशः' इति हि श्रुतेः । तस्मादुपादानात् कनकात् कुण्डलादीनीव भूतानि जातानि । यतः तत्रैव प्रलयं मृदि घट इव यान्ति । एतेन ब्रह्मणो जगत्कारणत्वमुक्तम् । तथा च श्रुतिः—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति तद्विजिज्ञासस्व तत्ब्रह्मेति' ॥ ३० ॥ अनामयं निर्दुःखं उद्यतं जगदाकारेण उद्गतं महद्यशः परं व्यापकमाकाशादिभ्योऽपि महदित्यर्थः । वाच इति षष्ठी तृतीयार्थे । कवयः विकारं वाचैवास्तीति वदन्ति न स्वरूपेणास्तीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'वाचारंभणं विकारो नामधेयम्' इति वागालम्बनत्वं विकारस्याह । यस्मिन्निदं जगत् प्रतिष्ठितं रज्ज्वामुरगवल्लीनं तद्ये विदुस्ते अमृताः मुक्ताः भवन्ति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४ ॥

४५

समाप्ता ज्ञानप्रधाना योगोपसर्जना ब्रह्मविद्या । इदानीं योगप्रधानां ज्ञानोपसर्जनां तां वक्तुमध्यायद्वयमारभ्यते । यत्र पूर्वं चित्तवृत्तिनिरोधेन त्वंपदार्थं ज्ञात्वा पश्चाद्वेदान्तश्रवणादिना तस्य ब्रह्मत्वं निश्चीयते सा आद्या । यत्र तु श्रवणादिना पूर्वं पारोक्ष्येण प्रतीचो ब्रह्मभावं निश्चित्य पश्चान्निदिध्यासनेन स अपरोक्षीक्रियते सा द्वितीया । क्रमद्वयेऽपि फलैक्यात् साधनजातमप्येकरूपमेवेति दर्शयितुं प्रागुक्तानेव हेयान् दोषान् उपादेयान् गुणांश्च दर्शयति-**शोकः क्रोधश्चेत्यादिना** । तत्र क्रोधादयः प्राग्व्याख्याता एव तथापि क्वचित् विशेषो दृश्यते स एव व्याख्यायते। लोभः-स्पृहा । मोहः-प्रज्ञाया अभावः । अत्रापि लोभ इति पाठेऽपि स एवार्थः। लुभ विमोहन इति धात्वर्थानुगमात् । परासुता निद्रापरत्वम्। कृपाऽत्र स्नेहः ॥१॥ पापं पापफलं कर्म व्यवस्यति आरभते । मूढसंज्ञः मूढबुद्धिः ॥ २ ॥ उग्रः निर्दयः।परुषः रूक्षवाक्। वदान्यो बहुभाषी।न सभाजयन्ते परं न मानयन्ति ॥ ३ ॥ बहुप्रशंसी—आत्मस्तुतिपरः ॥ ४ ॥

धर्मश्च सत्यं च तपो दमश्च
अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया ।
दानं श्रुतं चैव धृतिः क्षमा च
महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ ५
यो नैतेभ्यः प्रच्यवेद्द्वादशभ्यः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ।
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वाऽर्थितो यो
नास्य स्वमस्तीति च वेदितव्यम् ॥ ६
दमस्त्यागोऽथाप्रमाद इत्येतेष्वमृतं स्थितम् ।
एतानि ब्रह्ममुख्यानां ब्राह्मणानां मनीषिणाम्॥७
सद्वाऽसद्वा परीवादो ब्राह्मणस्य न शस्यते ।
नरकप्रतिष्ठास्ते वै स्युर्य एवं कुर्वते जनाः ॥ ८
मदोऽष्टादशदोषः स स्यात् पुरा योऽप्रकीर्तितः ।
लोकद्वेष्यं प्रातिकूल्यमभ्यसूया मृषा वचः ॥ ९
कामक्रोधौ पारतन्त्र्यं परिवादोऽथ पैशुनम् ।
अर्थहानिर्विवादश्च मात्सर्यं प्राणिपीडनम् ॥ १०
ईर्ष्या मोदोऽतिवादश्च संज्ञानाशोऽभ्यसूयिता ।
तस्मात् प्राज्ञो न माद्येत सदा ह्येतद्विगर्हितम् ११
सौहृदे वै षड्गुणा वेदितव्याः
प्रिये हृष्यन्त्यप्रिये च व्यथन्ते ।
स्यादात्मनः सुचिरं याचते यो
ददात्ययाच्यमपि देयं खलु स्यात् ।
इष्टान् पुत्रान् विभवान् स्वांश्च दारा-
नभ्यर्थितश्चार्हति शुद्धभावः ॥ १२
त्यक्तद्रव्यः संवसेन्नेह कामा-
द्भुङ्क्ते कर्म स्वाशिषं बाधते च ॥ १३
द्रव्यवान् गुणवानेवं त्यागी भवति सात्त्विकः ।
पञ्च भूतानि पञ्चभ्यो निवर्तयति तादृशः ॥ १४
एतत्समृद्धमप्यूर्ध्वं तपो भवति केवलम् ।
सत्त्वात् प्रच्यवमानानां सङ्कल्पेन समाहितम् १५
यतो यज्ञाः प्रवर्धन्ते सत्यस्यैवावरोधनात् ।
मनसाऽन्यस्य भवति वाचाऽन्यस्याथ कर्मणा१६

महाव्रता महाव्रतानि । सुपां सुलुगिति सुपो डादेशश्छान्दसः ॥ ५ ॥ नास्य स्वं स्वीयं किमपि नास्ति धर्मादिष्वेकैकस्मिन्नपि पक्षपाते सति तदर्थं सर्वं त्यजतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ ब्रह्मैव मुख्यं प्राप्यं येषां तेषाम् ॥ ७ ॥ परीवादः परदोषकीर्तनं सत् यथार्थभूतम् । असत् आरोपितम् ॥८॥ **अप्रकीर्तित इति** । दमविरोधिन एव प्रातिकूल्यादयो मददोषत्वेन सूचिता अपि शङ्कग्राहिकया प्रकर्षेण विधिमुखेन न प्रोक्ता इत्यर्थः । लोकद्वेष्यं-पारदार्यादि । प्रातिकूल्यं-धर्मादौ विघ्नाचरणमभ्यसूया-गुणिषु दोषारोपः॥९॥ कामः-स्त्र्यभिलाषः पारतन्त्र्यं-मद्यादिवशत्वम्। पैशुनं-राजद्वारादौ परदोषसूचनं अर्थहानिः-नटनर्तकवेश्यादिषु दण्डेन वा वित्तनाशः। विवादो-वैरम् ॥१०॥ मोदो-हर्षः दर्पहेतुः । 'हृष्टो दृप्यति' इत्यापस्तम्बोक्तेः । अतिवादो-निर्मर्यादं वचनम्। संज्ञानाशः कार्याकार्यविवेकराहित्यम्। अभ्यसूयिता-नैरन्तर्येण परद्रोहशीलता। एतत् मदवत्त्वं विगर्हितं निन्दितं सद्भिः । सदा हीत्यापत्कालेऽपि नाश्रयणीयमिति सूचितम् ॥ ११ ॥ सुहृदां प्रिये सति हर्षः, अप्रिये सति व्यथेति द्वौ सौहृदगुणौ । तृतीयमाह—**स्यादिति** । सुहितमिति सुतरां हितं इष्टं पुष्टिकरम्।देयं दातारम्। भव्यगेयेतिवत्कर्तरि कृत्यः। यो दातारमयाच्यमपि पुत्रादिकं मुख्यं कर्मभूतं याचते स अभ्यर्थितः प्रार्थितो दाता तस्मै इष्टादीन् अर्हति । दातुमिति शेषः । सार्धश्लोको वाक्यम् ॥ १२ ॥ चतुर्थमाह—**त्यक्तेति** । यस्मै सर्वस्वं दत्तं तस्य गृहे कामात् मयाऽयमुपकृत इति बुद्धितः न संवसेत् । तेन कदाचिदनादृतः सन् सौहार्दभङ्गं कुर्यादिति भावः । पञ्चममाह—**भुङ्क्ते कर्मेति** । स्वकर्मार्जितमेव धनं भुङ्क्ते न तु मित्राद्यर्जितमन्यथा कालेन हेलनां प्राप्य सौहृदभङ्गो मा भूदिति । षष्ठमाह—**स्वाशिषं** बाधते च । स्वस्य श्रेयोऽपि मित्रहितार्थं नाशयतीत्यर्थः । पाठान्तरे स्वासितं स्वस्थानं राज्यादिकमास्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या ज्ञेयम् । स्वाशिवमिति पाठे स्वस्य आसमन्तात् शिवं श्रेयस्करमित्यर्थः ॥ १३ ॥ द्रव्यवान् गृहस्थः एवमुक्तरीत्या गुणवान् त्यागी दाता सात्त्विकः सत्त्वप्रधानश्च यो भवति तादृशः पुरुषः पञ्चभ्यः शब्दादिभ्यः पञ्चभूतानि श्रोत्राद्याकारेण परिणतानि इन्द्रियाणि निवर्तयति ॥ १४ ॥ एतत् स्वविषयेभ्य इन्द्रियाणां निवर्तनं समृद्धं पुष्कलमपि केवलं तप एव ऊर्ध्वमूर्ध्वगतिप्रदं भवति न ज्ञानवदिहैव कृतकृत्यतामापादयतीत्यर्थः । केषामित्यत आह—**सत्त्वादिति** । ये सत्त्वात् धैर्यात् च्यवन्ते तीव्रवैराग्याभावात् तेषां च संकल्पेन ब्राह्मलौकिकान् दिव्यान् भोगान् भोक्ष्ये इत्येवंरूपेण समाहितं संभृतं तपो भवति तेषामेवोर्ध्वगतिर्भवतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ यतः संकल्पात् यज्ञाः प्रवर्धन्ते । तस्यैव सत्यस्य सङ्कल्पस्यावधारणात् । 'सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति' इति श्रुतेर्योगी सत्यसङ्कल्पो भवति । अन्यस्य एकस्य यज्ञः मनसैव भवति सत्यसङ्कल्पत्वात् । तथा ह्युपाख्यायते-त्रितो नाम मुनिर्भ्रात्रा कूपे पातितः सन् तत्रैव मनसा कृत्स्नं यज्ञं चकारेति।'त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये' इति मन्त्रवर्णाच्चैतद्गम्यते । अवहितो ध्यायन् हवते आह्वयति ऊतये यज्ञसन्तत्यै । अन्यस्य मध्यमस्य वाचैव ब्रह्मयज्ञजपादिना यज्ञो

सङ्कल्पसिद्धं पुरुषमसङ्कल्पोऽधितिष्ठति ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण किञ्चान्यदपि मे शृणु ॥ १७
अध्यापयेन्महदेतद्यशस्यं
वाचो विकाराः कवयो वदन्ति ।
अस्मिन् योगे सर्वमिदं प्रतिष्ठितं
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १८
न कर्मणा सुकृतेनैव राजन्
सत्यं जयेज्जुहुयाद्वा यजेद्वा ।
नैतेन बालोऽमृत्युमभ्येति राजन्
रतिं चासौ न लभत्यन्तकाले ॥ १९

तूष्णीमेक उपासीत चेष्टेत मनसाऽपि न ।
तथा संस्तुतिनिन्दाभ्यां प्रीतिरोषौ विवर्जयेत् २०

अत्रैव तिष्ठन् क्षत्रिय ब्रह्माविशति पश्यति ।
वेदेषु चानुपूर्व्येण एतद्विद्वन् ब्रवीमि ते ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

सनत्सुजात उवाच ।
यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः ।
तद्वै देवा उपासते तस्मात् सूर्यो विराजते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १

भवति । अन्यस्य प्राकृतस्य कर्मणा आज्यपशुपुरोडाशीयादिप्रधानया क्रियया॥१६॥**संकल्पेति** । सगुणब्रह्मवेदनात् सत्यसंकल्पं पुरुषं असंकल्पश्चिदात्माऽधितिष्ठति भृत्यमिव राजा । ननु अत एव चानन्याधिपतिरिति विदुषः सत्यसङ्कल्पत्वादेव अनन्याधिपतित्वं कथं सूत्रितम् । ईश्वरान्तराभिप्रायेणेति गृहाण । तथा च श्रुतिः—'तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति ' इति । देवाश्च न देवा अपि ह प्रसिद्धं तस्य ब्रह्मविदः अभूत्यै अनैश्वर्याय न ईशते न समर्था भवन्ति । तत्र हेतुः आत्मा हीति इति श्रुत्यर्थः । किञ्च अन्यदपि मे मत्तः शृणु । तदेवाह—ब्राह्मणस्य निर्गुणब्रह्मविदः संकल्पविशेषेण असंकल्पोऽधितिष्ठति । सगुणोपासकापेक्षया निर्गुणविदि सत्यसङ्कल्पत्वादिकमतिशयेनाविर्भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ एतद्योगशास्त्रमध्यापयेत् शिष्यान् ग्राहयेत् यतः यशस्यं यशसे ब्रह्मणे तत्प्राप्त्यै हितम् । इतोऽन्यत् शास्त्रं वाचो विकारा एव । एतच्च कवयो वदन्ति । योगे योगिनि तदधीनं सर्वमित्यर्थः । ये तत् तं योगं विदुः । शेषं स्पष्टम् ॥ १८ ॥ कर्मणा सत्यं ब्रह्म न जयेत् न प्राप्नुयात् यत् जुहुयात् यत् यजेद्वा एतेन होमयागात्मकेन कर्मणा बालः अविद्वान् अमृत्युं मोक्षं न जयति न प्राप्नोति रतिमानंदं लभति लभते ॥ १९ ॥ तूष्णीमित्यर्धो व्याख्यातः । स्तुत्या प्रीतिं निन्दया रोषं च वर्जयेत् ॥ २० ॥ **अत्रेति** । हे क्षत्रिय वेदेषु पूर्वोक्तदृष्टिभेदेषु आनुपूर्व्येण आरोपन्यामिश्रापवादक्रमेण तिष्ठन् अत्रैव ब्रह्म पश्यति आविशति तादात्म्यं च महाकाशघटाकाशन्यायेन उपाधिविलयात्प्राप्नोति । तस्माद्दृष्टार्थाऽनन्तफला च ब्रह्मविद्याऽदृष्टार्थात् विनाशिफलात् कर्मणः श्रेयसीति ज्ञात्वा ज्ञानार्थमेव यतेतेति ते तुभ्यं ब्रवीमि ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

पूर्वाध्यायान्ते मनसाऽपि न चेष्टेतेत्युक्तं तत्र मनसश्चेष्टाराहित्ये सति महता ब्रह्मचर्यादियत्नेन शून्यशेषतैव साधिता भवतीत्याशङ्क्य शून्यवदेव निर्धर्मकं शून्यभावस्यापि प्रकाशकं सद्रूपं ब्रह्म प्रत्यगभिन्नत्वेन ज्ञेयमस्तीत्यस्मिन्नर्थे मन्त्रानुदाहरति योगिप्रत्यक्षं च पुनः पुनः प्रमाणत्वेनोपन्यस्यति-**यत्तच्छुक्रमित्यादिनाऽध्यायेन** । यत्तच्छुक्रं बीजमिव बीजं विश्वोत्पत्त्यादिमूलकारणं सर्वचेष्टाप्रवर्तकं आनंदरूपम्। महत् वृत्तिरूपोपाधिशून्यम्। ज्योतिर्ज्ञप्तिमात्रम्। दीप्यमानं सूर्यादिरूपेण । महद्यशोनामकं तदेव देवा इन्द्रियाणि उपासते अनुसरन्ति । तस्मादेव मूलकारणात् सूर्यो जगत्प्रसवधर्मा मायोपाधिरीश्वरो विराजते।तथा च श्रुतयः—' आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' इति। 'को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः। न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः। न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति

शुक्राद्ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्धते ।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २

अपोऽथ अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये
उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे ।
अतन्द्रितः सवितुर्विवस्वा-
नुभौ बिभर्ति पृथिवीं दिवं च ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ३

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च
दिशः शुक्रो भुवनं बिभर्ति ।
तस्माद्दिशः सरितश्च स्रवन्ति
तस्मात् समुद्रा विहिता महान्ताः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ४

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तोऽध्रुवस्याव्ययकर्मणः ।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ५

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।
मनीषयाऽथो मनसा हृदा च
य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ६

द्वादशपूगां सरितं पिबन्तो देवरक्षिताम् ।
मध्वीक्षन्तश्च ते तस्याः सञ्चरन्तीह घोराम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ७

यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ। प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः' इत्यादयः। तं परमात्मानं योगिनः चित्तवृत्तिनिरोधेन भगवन्तं सर्वैश्वर्यवन्तं संप्रज्ञाते। असंप्रज्ञाते तु सनातनं अखंडैकरसं पश्यन्तीति सर्वत्र ज्ञेयम्। योगेनैव तं परमात्मानं पश्येन्नान्यथा। यथाह दक्षः—'स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा। अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि यथा घटम्'इति ॥ १ ॥ अस्यैव मन्त्रस्य विवरणार्था उत्तरे मन्त्राः। शुक्रात् आनन्दात् तं प्राप्येत्यर्थः। ब्रह्म जगतो बृंहकं परमव्योमाख्यमव्याकृतं वाऽवस्तु सदपि चैतन्यप्रतिबिंबं प्राप्य प्रभवति जगज्जन्मादिकार्ये समर्थं भवति तेनैव च वर्द्धते। अतस्तच्छुक्रं ज्योतिषां सूर्यादीनां मध्येऽन्तः स्थित्वा तपति प्रकाशते। तथा च गीता—'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्'इति। अतप्तमन्येनाप्रकाशितं स्वयंज्योतिरित्यर्थः। तापनं सूर्यादीनामपि भयप्रदम्। 'भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' इति श्रुतेः ॥ २ ॥ अप इति। सलिलस्य सलिलमिव सलिलमेकरसं ब्रह्म। 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' इति श्रुतिप्रसिद्धम्। तस्य मध्ये स्थिताभ्योऽद्भ्यः अबुपलक्षितेभ्यः पञ्चमहाभूतेभ्यः सकाशादुत्पन्नाः अपः पाञ्चभौतिकं देहं अन्तरिक्षे हृदयाकाशे शिश्रियाते श्रयतः। कौ उभौ देवौ चिद्रूपत्वेन द्योतमानौ जीवेश्वरौ सुप्तिप्रलययोः क्रमेण तन्द्रावन्तौ ताभ्यामन्यः अतन्द्रितः निर्मायः सवितुः जगत्कारणस्य विवस्वान् वस आच्छादने वस्वान् आच्छादनवान् तद्विपरीतो विवस्वान् अपरिच्छिन्नसंविद्रूपः सन्ततमनुदितानस्तमितप्रकाशः सर्वाधिष्ठानभूतः उभौ जीवेश्वरौ पृथिवीं। दिवं च बिभर्ति आसध्रीचीः सविषूचीर्वसानाविति पाठे सः शुक्रसंज्ञः शुद्ध आत्मा कीदृशौ उभौ देवौ सध्रीचीः विषूचीश्च आवसानौ दिशः उपदिशश्च पटवद्वसानौ। दिगन्तपर्यन्तं विस्तीर्णावित्यर्थः। व्यवहिताश्चेति छान्दसं क्रियोपसर्गयोर्व्यवधानम्। शेषं प्राग्वदेव ॥ ३ ॥ एतदेवाह —उभाविति। देवौ जीवेश्वरौ पृथिव्यादिकं भुवनं ब्रह्मांडं शुक्रो बिभर्ति। तस्मात् सर्वोत्पत्तिमाह—तस्मादिति। महान् दुरधिगमोऽन्तो येषां ते महान्ताः समुद्राः कामाः 'कामं समुद्रमाविश' इति मंत्रलिङ्गात् ॥ ४ ॥ चक्रे इति। रथस्य शरीरस्य 'रथः स्यन्दनदेहयोः' इति विश्वः। अध्रुवस्य विनाशिनोऽपि अव्ययं अविनाशि कर्म यस्य तस्य अव्ययकर्मणः चक्रे चक्रवच्चालके प्राक्कर्मणि निमित्ते सति तिष्ठन्तः कर्माधीना इत्यर्थः। अश्वाः इन्द्रियाणि शरीरस्थं विषयदेशं प्रति नयन्तः केतुमन्तं प्रज्ञावन्तं जीवम्। किं ज्ञानेऽस्मात्तु न्। तं परमात्मानं प्रतिवहन्ति वहतिर्द्विकर्मा। वश्यैरिन्द्रियाश्वैर्देहरथे योजितैः जीवः परमात्मतां नीयते। अन्यथा शरीरे नष्टेऽपि तत्कृतं कर्म न क्षीयतेऽतः शरीरान्तरेण सद्य एव बध्यते। दिव्यमलौकिकं अहंप्रत्ययविषयादन्यमशनायाद्यतीतमित्यर्थः। अजरमिति सर्वविकारप्रतिषेधः। दिवि हार्दाकाशे ॥ ५ ॥ अस्य रूपं आकृतिः सादृश्येन तिष्ठति अनुपमस्वरूपमित्यर्थः। न चक्षुषेति सर्वेन्द्रियगोचरत्वं निषिध्यते। 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्'इति रूपादिहीनत्वश्रुतेः। मनीषया मनसो निग्रहेण। मनसा सूक्ष्मेण। 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इति तस्य करणत्वश्रुतेः। हृदा हृदुपलक्षिते देशे निगृहीतेन मनसा। ये एनं विदुः ते अमृता मुक्ता भवन्ति ॥ ६ ॥ तदवेदने संसारानुच्छेदमाह—द्वादशेति। द्वादशसंख्याः पूगाः समुदाया यस्यां तां द्वादशपूगां ते च— 'चित्तादिपूगः स्मरणादिपूगः श्रोत्रादिपूगः श्रवणादिपूगः। वागादिपूगो वचनादिपूगः शब्दादिपूगो वियदादिपूगः॥१॥ प्राणादिपूगः श्वसनादिपूगः संस्कारपूगः सुकृतादिपूगः।

**तदर्धमासं पिबति सञ्चित्य भ्रमरो मधु ।**
**ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत् ॥**
**योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ८**
**हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपद्य ह्यपक्षकाः ।**
**ते तत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथा दिशम् ॥**
**योगिनस्तं प्रपश्यंति भगवन्तं सनातनम् ॥ ९**

**पूर्णात् पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात् पूर्णानि चक्रिरे ।**
**हरन्ति पूर्णात् पूर्णानि पूर्णमेवावशिष्यते ॥**
**योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १०**
**तस्माद्वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा ।**
**तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः ११**

एतैर्महापुङ्गवैरविद्यानद्यामधश्चोपरि चैति जीवः २ ' तादृशीं नित्यप्रवाहवर्तीं सरितमविद्याख्यां पिबन्तस्तत्कृतैरिष्टैः पुत्रपश्वादिभिर्लब्धैस्तृप्यन्तः देवैश्चक्षुरादीनामनुग्राहकैः सूर्यादिभिस्तत्तद्विषयदर्शनद्वाराऽनेकसंस्कारसन्ततिं सन्तन्वानैः रक्षितां देवरक्षिताम् । ते जीवाः तस्या अविद्यानद्याः मधु पुत्रपश्वादिकं मधुरं फलं ईक्षन्तः पश्यन्तस्तल्लिप्सया इह शुक्राख्येऽधिष्ठाने भासमानां घोरां महाभयङ्करां सञ्चरन्ति ऊर्ध्वाधोमार्गेषु पुनः पुनरावर्तन्त इत्यर्थः । इह यत्राधिष्ठाने सञ्चरन्ति तं परमेश्वरं योगिनः पश्यन्ति ॥ ७ ॥ ननु इह कृतस्य कर्मणः कृत्स्नस्य अमुत्रैव भोगात् कर्मशेषाभावे कुतः पुनरावृत्तिः किं तु मुक्तिरेव भवतीत्याशङ्क्याह—**तदर्धेति** । तत् मधु कर्मफलं अर्धमासं अर्धमासश्चन्द्रो यस्मिन् भोग्यत्वेन तत् अर्धमासं भवति । तथा हि–'तेषां सोमो राजाऽन्नं तं देवा भक्षयन्ति' इति श्रुत्याऽमुत्र गत्वा देवभावं प्राप्ता इष्टादिकारिणः सोमस्थममृतं पिबन्तीति दर्शितम् । तथा च भ्रमरो जीवः इतस्ततो भ्रमणशीलः अमुत्र सोमरूपमर्धं कर्मफलं भुङ्क्ते शेषेणात्रावर्तत इत्यर्थः । सञ्चित्येत्यनेन आमुष्मिकफलभोगानन्तरमैहिकफलभोगवासनाऽप्यस्तीति सूचितम् । द्विविधं हि कर्म किञ्चिदामुष्मिकफलं किञ्चिदैहिकफलम् । तत्रैकं भुक्त्वा इतरार्थमत्रावतरतीति श्लिष्टम् । श्रुतिश्च—'यावत्सम्पातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशोह ते रमणीयां योनिमापद्यन्ते कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते ' इत्याह । सम्पातः कर्म । चरणं कर्मशेषः । अभ्याशोह शीघ्रमेवेति श्रुतिपदानामर्थः । य एवंविधो जीवः स एव ईशानः अन्तर्यामी सर्वभूतेषु तिष्ठति स एव च हविर्भूतं हविर्भिः सिद्धं यज्ञं च कल्पितवान् वेदस्य वैदिकमार्गस्य च प्रवर्तक इत्यर्थः । एतेन त्वंपदार्थस्य तत्पदार्थाभेद उक्तः । यो यज्ञं अकल्पयत् तं योगिनः पश्यन्ति ॥ ८ ॥ ननु ईश्वरस्य जीवभावे किं कारणमत आह—**हिरण्येति**।हिरण्यानि हरणशीलानि आपातरमणीयत्वात् । पर्णानीव पर्णानि अवयवाः स्त्रीपुत्रादयो यस्य तं हिरण्यपर्णं अश्वत्थं न श्वोऽपि तिष्ठतीत्यश्वत्थो नश्वरः अविद्यावृक्षः तमभिपद्य प्राप्य अपक्षकाः न सन्ति पक्षाः उत्क्रमणहेतव उपाधयः प्राणरूपा येषां ते चिदात्मानः तत्र अविद्यायां पक्षिणो भूत्वा प्राणाद्युपाधिप्राप्त्या उत्क्रमणयोग्या भूत्वा यथादिशं 'यथावासनं प्रपतन्ति तासु तासु योनिष्वित्यर्थात् । बहुवचनं औपाधिकरूपभेदापेक्षया । श्रूयते च प्राणोपाधिकमुत्क्रमणं चिदात्मनः प्रश्नोपनिषदि षोडशकलं पुरुषं प्रस्तुत्य—' स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्ते उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत ' इति ॥ ९ । एवमीश्वरस्यापि जीवत्वे उपाधिसम्बन्ध एव कारणमित्युक्तं तत्र किं उपाधिभिः कृत्स्नं ब्रह्म उपाधीयते उत ब्रह्मणोंऽश एवोपधीयन्ते । आद्ये जीवबहुत्वानुपपत्तिः । अन्त्ये ब्रह्मणो निष्कलत्वानुपपत्तिः । अंशस्यांशित्वायोगाज्जीवेशयोरभेदानुपपत्तिश्चेत्याशङ्क्याह—**पूर्णादिति** । पूर्णात् व्यापकात् चिदाकाशात् पूर्णानि चित्प्रतिबिम्बभूतानि जीवरूपाणि उद्धरन्ति पृथक्कुर्वन्ति । प्राणादय उपाधिदर्पणाः । ननु उपाधीनां पृथक्सत्त्वे पूर्णस्य पूर्णत्वमेव व्याहन्येतेत्याशङ्क्याह—**पूर्णादिति** । पूर्णानि प्राणादीनि पूर्णादेव चक्रिरे कृतानि । अयं भावः—घटाकाशन्यायेनोपाध्युपधेययोः परस्परपरिच्छेदकत्वेऽन्यतरस्यापि पूर्णत्वं न युज्यतेऽत्र उपाधिरप्यध्यस्त एव । तथा चाधिष्ठानाध्यस्तयोर्विषमसत्ताकत्वान्न परस्परपरिच्छेदकत्वं किं त्वितरेतरतिरोधायकत्वमेवास्तीति स्वस्वप्रतीतिकाले द्वयोरपि पूर्णत्वं प्रतियोगिनस्तदानीमदर्शनात् । कल्पित उपाधिर्जीवेश्वरभेदे हेतुरित्यर्थः । यदा तु पूर्णानि प्राणादीनि ब्रह्मण्यध्यस्तानि ततः सकाशात् हरन्ति सम्यगवेक्षणेन दूरीकुर्वन्ति रज्जुत इव सर्पं तदा जीवेशभेदनिमित्तस्योपाधेरभावात् पूर्णं ब्रह्मैवावशिष्यते । यथोक्तं विष्णुपुराणे—'विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते । आत्मनो ब्रह्मणा भेदमसन्तं कः करिष्यति ' इति । एवं च अंशांशित्वरूपेण जीवेशयोर्भेदानुपगमादनुपचरितस्तयोरभेदप्रतिपादकस्तत्त्वमस्यहंब्रह्मास्म्ययमात्मा ब्रह्मेत्यादिरागम इति सिद्धम् । यत्पूर्णं शिष्यते तं भगवन्तं योगिनः पश्यन्ति ॥ १० ॥ तस्मात् पूर्णात् वायुरिति पञ्चानामपि भूतानामुपलक्षणम् । ' तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेराप

सर्वमेव ततो विद्यात्तत्वक्तुं न शक्नुमः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १२
अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः ।
आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १३
एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
तं चेत्सन्ततमूर्ध्वाय न मृत्युर्नामृतं भवेत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १४
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
लिङ्गस्य योगेन स याति नित्यम् ।
तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं
पश्यन्ति मूढा न विराजमानम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १५
असाधना वाऽपि ससाधना वा
समानमेतद्दृश्यते मानुषेषु ।
समानमेतदमृतस्येतरस्य
मुक्तास्तत्र मध्व उत्सं समापुः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १६
उभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति
तदा हुतं चाहुतमग्निहोत्रम् ।
मा ते ब्राह्मी लघुतामादधीत
प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १७

अद्भ्यः पृथिवी ' इति तत एव सर्वभूतोद्भवश्रुतेः । प्रयतः निगृहीतः । एतेन तत्रैव लयं दर्शयता तदुपादानकत्वं भूतानामुक्तम् । अग्निर्भोक्ता सोमो भोज्यं प्राण इति देहेन्द्रियादिसङ्घातग्रहणम् ॥ ११ ॥ इदं सर्वं तत एव आततं तस्माज्जातं तत् आत्मत्वेन प्रसिद्धम् । तत् तच्छब्दवाच्यं ' तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति ' इति श्रुतिप्रसिद्धेः । वक्तुं न शक्नुमः । वाचामगोचरं योगिनः पश्यन्ति ॥ १२ ॥ इदानीं तद्दर्शनाभ्युपायं योगं संक्षेपेणाह—**अपानमिति** । गिरति उपसंहरति स्वात्मनि योगशास्त्रोक्तरीत्या ' पार्ष्णिना गुदमापीड्य दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् । दृढासनोऽपानवायुमुन्नयेच्च शनैः शनैः । तं प्राणेनैकतां नीत्वा स्थिरं कृत्वा हृदम्बरे । चेतोमात्रेण तिष्ठेत तच्च बुद्धौ विलापयेत् ' चन्द्रमा अत्र मनः, आदित्यो बुद्धिः, परः परमात्मा । एवं य आदित्यं गिरति तं योगिनः पश्यन्ति ॥ १३ ॥ ननु नित्यापरोक्षं ब्रह्म यत्साक्षादपरोक्षात् इति श्रुतेः । अतः किं योगेनेत्याशङ्क्याह—**एकमिति** । हंस इव हंसः परमात्मा शरीरवृक्षमारूढोऽपि तेन असंबद्धः स चतुष्पात् ' सोऽयमात्मा चतुष्पात् ' इति श्रुतेः । चतुर्णां पादानां जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुरीयाख्यानां मध्ये एकं पादं तुरीयं नोत्क्षिपति न प्रकाशयति । कीदृशः सलिलात् निर्विशेषात् अतिगंभीरात् उच्चरन् उपर्येव पादत्रयेण चरन् ' तं तुरीयं पादं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः 'इतिश्रुतिप्रसिद्धम्। ऊर्ध्वाय उपरितनाय पादत्रयाय विश्वतैजसप्राज्ञाख्याय तेषां चालनायेत्यर्थः । संततं व्याप्तम् । तुरीयं त्रिषु सन्ततमित्युक्तेः।न,हि चैतन्यानुबन्धं विना विश्वादयः स्वकार्ये प्रभवन्ति तं चेत् पश्यति तदा मृत्युरमृतं च अज्ञानकृतं द्वयं सति ज्ञाने कालत्रयेऽपि नास्तीत्यर्थः । यद्यपि नित्यापरोक्षं ब्रह्म तथापि उपाधिविशिष्टेनैव रूपेण परोक्षं न तु ततो निष्कृष्टरूपेणातस्तदापरोक्ष्याय योगोऽपेक्षित इत्यर्थः । सततमृत्विजमिति पाठे ऋत्विग्वत् पादत्रयक्रियानिमित्तमित्यर्थः ॥ १४ ॥ **अंगुष्ठेति** । अंगुष्ठमात्रे हृदये प्रतिष्ठितत्वादंगुष्ठमात्रः एतेन हृदयपुण्डरीकं ध्यानस्थलमुपदिष्टं भवति । पुरुषः पूर्णः अन्तरात्मा बाह्यात्मभ्योऽन्नमयादिभ्यः पंचभ्य आन्तरः । लिङ्गस्य पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियात्मकस्य लिङ्गशरीरस्य संबंधेन नित्यं स याति इहलोकपरलोकौ जाग्रत्स्वप्नौ वा गच्छति तं ईशं यमयितारम् । ईड्यं स्तुत्यम्। अनुकल्पं उपाधिमनु सर्वकार्येषु समर्थं,आद्यं मूलकारणं, विराजमानं प्रत्यक्चैतन्यरूपेण प्रकाशमानमपि मूढा न पश्यंति तं योगिनः पश्यन्ति॥१५॥ नन्वंगुष्ठमात्रस्य हृदये स्थितस्य हृदयतापेन तापप्राप्तिरपि स्यात्तथा च तापस्वभावस्य कुतो मुक्तिरित्याशंक्य तस्य कदाचिदपि तापो नास्तीत्याह—**असाधना इति**। मानुषेषु संघाताभिमानिषु जीवेषु केचिदसाधनाः शमादिहीनाः । केचित्ससाधनास्तद्युक्ता वा भवंतु तत्स्थं एतद्ब्रह्म समानं निर्विकारम्।'असंगो ह्ययं पुरुषः' इत्यसंगत्वश्रुतेः । एवं मुक्तबद्धयोरपीत्याह—**समानमिति** । कस्तर्हि मुक्तेषु विशेष इत्यत आह—**मुक्ता इति** । तत्र तेषु मध्ये मुक्ताः मध्वः मधुनः ब्रह्मरसस्य उत्सं उत्कर्षं परां काष्ठां समापुः संप्राप्ताः । अयं भावः—अवस्थान्तरगतस्य दुःखस्यावस्थान्तरेऽदर्शनादुपाधिधर्म एव दुःखं भ्रान्त्या उपहितेऽपि भाति स्फटिके इव जपाकुसुमलौहित्यं सर्वात्मना उपाधित्यागात्तु मुक्तानां न दुःखस्पर्शोऽस्तीति ते निरतिशयानन्दभाज इति । य एवं समानस्तं योगिनः पश्यन्ति ॥१६॥ एवं ब्रह्मप्राप्तौ सर्वफलावाप्तिं कृतकृत्यतां चाह—**उभाविति।** उभौ लोकौ आत्मलोकं अनात्मलोकं च विद्यया ब्रह्माकारया अन्तःकरणवृत्त्या अहमेवेदं सर्वोऽस्मीति सार्वात्म्याकारया

एवंरूपो महात्मा स पावकं पुरुषो गिरन् ।
यो वै तं पुरुषं वेद तस्येहार्थो न रिष्यते ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १८

यः सहस्रं सहस्राणां पक्षान् सन्तत्य संपतेत् ।
मध्यमे मध्य आगच्छेदपि चेत्स्यान्मनोजवः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १९

न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य
पश्यन्ति चैनं सुविशुद्धसत्त्वाः ।
हितो मनीषी मनसा न तप्यते
ये प्रव्रजेयुरमृतास्ते भवन्ति ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २०

गूहन्ति सर्पा इव गह्वराणि
स्वशिक्षया स्वेन वृत्तेन मर्त्याः ।
तेषु प्रमुह्यन्ति जना विमूढा
यथाऽध्वानं मोहयन्ते भयाय ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २१

नाहं सदाऽसत्कृतः स्यां न मृत्यु-
र्नचामृत्युरमृतं मे कुतः स्यात् ।
सत्यानृते सत्यसमानबन्धे
सतश्च योनिरसतश्चैक एव ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २२

च वृत्त्या व्याप्य प्रकाश्य ज्ञात्वा याति प्रारब्धकर्मावष्टब्धदेहः सन् सञ्चरति विद्वान् यदैवं तदा अहुतमप्यग्निहोत्रं अस्य हुतमेव भवति । ज्ञाने सर्वाणि कर्मफलान्यन्तर्भवन्तीत्यर्थः । अतः ब्राह्मी वाक् ते तव अहं महानस्मीति वदतः लघुतां नीचत्वं मा दधीत मा करोतु। अहं दासोऽस्मीति मा ब्रूहीत्यर्थः । तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीतेति श्रुत्यैव ब्रह्मविदामतिवादित्वदोषो नास्तीति प्रदर्शितम् प्रज्ञानमिति अस्य नामैव स्यात् 'प्रज्ञानं ब्रह्मेति ब्रह्मविद्ब्रह्मैवेति' च श्रुतिभ्याम् । ब्रह्मणा विद्वद्रूपेण स्वमाहात्म्यं न गोपनीयमधिकारिष्वेव । प्राकृतेषु तु गोपनीयमेव । 'तथा चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् । जना यथाऽवमन्येरन् गच्छेयुर्नैव सङ्गतम्' इति । एतच्च प्रज्ञानमिति नाम धीराः ध्यानवन्त एव लभन्ते। यस्य नाम प्रज्ञानं तं योगिनः पश्यन्ति ॥१७॥ एवंरूपो वाङ्मनसातीतो जगज्जन्मादियोनिर्निर्विकारो योगैकगम्यो यज्ज्ञानान्महापूज्यत्वं लभ्यते कर्मलोपदोषश्च नास्ति स एवंरूपः परमात्मा पावकं भोक्तारं जीवं गिरन् आत्मनि संहरन् पुरुषं पूर्णं तं यो वेद तस्य अर्थः पुरुषार्थो मोक्षो न रिष्यते न हिंस्यते । कर्मफलवत् ज्ञानफलं नानित्यमित्यर्थः । यस्य ज्ञानादर्थनाशो नास्ति तं योगिनः पश्यन्ति ॥ १८ ॥ न केवलं मोक्ष एव ज्ञानतः स्यात् अपि तु सर्वं दूरस्थमपि आत्मन्यन्तर्भूतमेवास्तीत्याह—**य इति** । दशलक्षाणि अनन्तान् वा पक्षान् कृत्वा यो दूरे गच्छेत्सोऽपि मध्ये शरीरान्तः मध्यमे मध्यस्थे हृदयस्थे परमेश्वरे आगच्छेदेव । विप्रकृष्टमप्यर्थं हार्दाकाशे योगिनः पश्यन्तीत्यर्थः । एतच्चातीतानागतादेरप्युपलक्षणम् । तथा च हार्दाकाशं प्रकृत्य श्रूयते 'यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दते' इति—यत्र दूरस्थोऽप्यस्ति तं योगिनः पश्यन्ति ॥१९ एवंविधस्यात्मनो दर्शनार्थं योगानुगुणानि साधनान्तराण्याह—**नेति** । चक्षुराद्यग्राह्यमेनं शुद्धचित्ता एव चित्तेन गृह्णन्तीति पूर्वार्धार्थः । किं च यदाऽयं हितः जगन्मित्रं मनीषी मनोनिग्रहशीलश्च भवति तथा मनसा च पुत्रादीनां नाशे सत्यपि न तप्यते तदैव चित्तशुद्धिर्जातेति ज्ञेयम् । एवं ज्ञात्वा ये प्रव्रजेयुः विक्षेपहेतून् गृहादींस्त्यजेयुस्ते संन्यासिनः अमृता भवन्तीति। तं अमृतं योगिनः पश्यन्ति ॥ २० ॥ संन्यासं कृत्वाऽपि वञ्चकानां संगतिर्न कर्तव्येत्याह—**गूहन्तीति** । मर्त्याः कौलिकाः स्वशिक्षया स्वेषां गुरूणां शिक्षया स्वेन वृत्तेन वा बहिर्दृष्टीनां रमणीयेन च दंभरूपेण गह्वराणि पापानि मद्यमांसपरस्त्रीसेवनादीनि गूहन्ति छादयन्ति । यथा सर्पाः खलाः परमुद्वेजयन्तोऽपि बिलादौ निलीय आत्मानं गूहन्ति तद्वत् । तेषु बाह्यतो रमणीयेषु तेषां समीपे विमूढाः जनाः मुह्यन्ति । एतदेवाह यथाऽध्वानं मार्गमनतिक्रम्य शिष्टानां लोकदृष्टमाचारमत्यजतः भयाय नरकाय प्रापयितुं तान् मोहयन्ते मद्यमांसाद्यशुचिव्रतोपदेशेन प्रतारयन्ति । अतः सम्यक्परीक्षितैः सहैव संगतिर्यल्लाभाय कर्तव्या तं योगिनः पश्यन्ति ॥ २१ ॥ एवं सर्वकर्मास्पर्शिनां योगिनामपि दुःसङ्गत्यागमावश्यकतयोक्त्वा जीवन्मुक्तानां तेषामनुभवमनुवदति—**नाहमिति** । अहं सदा कालत्रयेऽपि असत्कृतः असता देहेन्द्रियादिना तादात्म्याध्यासेन तद्वत्कृतः सुखदुःखजरामरणादिधर्मवान् कृतः असत्कृतः न स्यां न भवेयं देहादीनामसत्त्वादेवेत्यर्थः । अत एव देहवियोगरूपो मृत्युरपि नास्ति नापि अमृत्युस्तद्विरोधी जन्मलाभः जन्ममरणप्रवाहरूपस्य मृत्युसंज्ञितस्य बन्धस्याभावात् । अमृतं मोक्षोऽपि मम कुतः न कुतश्चिदित्यर्थः । तत्र हेतुः। सत्यं घटादि अनृतं रज्जूरगादि ते उभे अपि सत्यसमानबन्धे सत्यं अबाधितं समानं सर्वदा सर्वदेशेषु चैकरूपं ब्रह्म तदेव बन्धो निग्रहस्थानं ययोस्ते तथा । सर्वं जगद्ब्रह्माधीनमित्यर्थः। सतः कार्यस्य असतः कार-

न साधुना नोत असाधुना वा
ऽसमानमेतद्दृश्यते मानुषेषु ।
समानमेतदमृतस्य विद्या-
देवं युक्तो मधु तद्वै परीप्सेत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २३
नास्यातिवादा हृदयं तापयन्ति
नानधीतं नाहुतमग्निहोत्रम् ।
मनो ब्राह्मी लघुतामादधीत
प्रज्ञां चास्मै नाम धीरा लभन्ते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २४
एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति ।
अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत्ततः परम् ॥२५
यथोदपाने महति सर्वतः संप्लुतोदके ।
एवं सर्वेषु वेदेषु आत्मानमनुजानतः ॥ २६
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा
न दृश्यते सौ हृदि संनिविष्टः ।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितश्च
स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः ॥ २७
अहमेव स्मृतो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः ।
आत्माऽहमपि सर्वस्य यच्च नास्ति यदस्ति च॥२८
पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत ।
ममैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न वो वयम् ॥२९
आत्मैव स्थानं मम जन्म चात्मा
ओतप्रोतोऽहमजरप्रतिष्ठः ।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितोऽहं ।
मां विज्ञाय कविरास्ते प्रसन्नः ॥ ३०

णस्य च योनिः उत्पत्तिप्रलयस्थानं अहं एक एव तं मां योगिनः पश्यन्ति। तथा च श्रुतिः-'न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ' इति सृष्ट्यादिकं सर्वं मय्येव कल्पितमित्याह ॥ २२ ॥ 'स न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयान्' इति श्रुतिसिद्धं कर्मास्पर्शं ब्रह्मविद्याफलमाह—**न साधुनेति**। असाधना वाऽपि ससाधना वेत्यत्र ब्रह्मणः असंगत्वमुक्तम् । इह तु ब्रह्मविदः पापास्पर्श उच्यते। एतद्ब्रह्म चिद्रूपं ब्रह्म साधुना कर्मणा समानं उत्कृष्टं न भवति उत अपि असाधुना कर्मणाऽसमानं अपकृष्टं च न भवति मानुषेषु देहाभिमानिषु तु एतत् दृश्यत एव उच्चावचं कर्मफलं न तथा ब्रह्मविदीत्यर्थः । अत्र हेतुः—**समानमिति**। एतद्ब्रह्म चिद्रूपं ब्रह्म अमृतस्य कैवल्यस्य समानं यथा कैवल्ये सर्ववादिसंमतः पुण्यपापयोरस्पर्श एवं ब्रह्मविद्यपीत्यर्थः । अत एवं पूर्वोक्तप्रकारेण युक्तो योगवान् तन्मधु ब्रह्म । बह्विति पाठेऽपि स एवार्थः । निरवधिकस्य बहुत्वस्य तत्रैव पर्यवसानात् परीप्सेत् सर्वप्रकारेण प्राप्तुमिच्छेत् तमेव च योगिनः पश्यन्ति ॥२३॥ **नास्येति** । अस्य आत्मविदः अतिवादाः निन्दावचनानि हृदयं न तापयन्ति । अथवा मया नाधीतं मया न हुतमित्यादिकमपि अस्य मन इति। पूर्वान्वयि श्रूयते च-'नैनं कृताकृते तपत इति । 'एत ँह वाव न तपति किमहँसाधु नाकरवं किमहं पापमकरवम्' इति च । ब्राह्मी ब्रह्मसम्बन्धिनीयं विद्या अस्मै पुरुषाय लघु शीघ्रं तां प्रज्ञां यामाधिकृत्य स्मरति ' प्रज्ञाप्रासादमारुह्य ह्यशोच्यः शोचतो जनान् । भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति ' इति तां प्रज्ञामृतंभराख्यां आदधीत समर्पयेत् । आत्मवित्सर्वविद्भवतीत्यर्थः । तां कां यां प्रज्ञां धीराः ध्यानवन्तो नाम निश्चितं लभंते नान्ये। एतेन शोकमोहनिवृत्तिः सर्वज्ञत्वं च ब्रह्मविद्याफलमुक्तं भवति । यं न तापयन्ति तं विद्वदभिन्नं परमेश्वरं योगिनः पश्यन्ति ॥ २४ ॥ एवमनेन प्रकारेण यः सर्वभूतेषु सद्रूपेण अनुस्यूतमात्मानं गुरूक्तिमनुपश्यति ध्यानेन साक्षात्करोति सः अन्यत्र दारादौ अन्यत्र कर्मादौ युक्तेषु पुरुषान्तरेषु सत्सु किं शोचति नैव शोचति किं तु त एव शोचन्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥ उदकं पीयतेऽस्मिन्नित्युदपाने कासारादौ तृषर्तस्य यावता जलेन स्नानपानादिसिद्धिस्तावतैव सर्वेषु वेदेषु आत्मज्ञस्य ध्यायिन इष्टसिद्धिः । अतो ग्रन्थभारवहनं वृथैव किं तु तदन्तर्गतं स्वोपयुक्तं सारमात्रं गुरुवाक्याद्गृहीत्वा योगेन कृतकृत्यो भवेदित्यर्थः ॥ २६ ॥ **अङ्गुष्ठेति** । उपाधितोऽल्पपरिमाणोऽपि स्वतो महात्मा व्यापकः । न दृश्यते रूपादिहीनत्वात् । अजो जन्मादिशून्यः । दिवारात्रं चरतीति चरः जगन्नियमने नित्योद्युक्त इत्यर्थः । सः अधिकारी तं आत्मानं मत्वा ज्ञात्वा कविः क्रान्तदर्शी । आस्ते कर्मभ्य उपरतो भवति कृतकृत्यत्वात् । अत एव प्रसन्नः उपाधिकृतकालुष्यत्यागान्निर्मलः ॥ २७ ॥ अथेदानीं ब्रह्मविदात्मनो ब्रह्मभावं वामदेववदपरोक्षीकुर्वन् स्वस्य सार्वात्म्यं स्तौति—**अहमेवेति**। नास्ति अतीतानागतम्। अस्ति वर्तमानम्। सर्वेषामन्तरात्मा-चाहमेवास्मि ॥ २८ ॥ **पितामह** इति । एवमात्मनि सर्वमारोप्य अपवदति न मे यूयं न वो वयमिति । यद्यपि रज्ज्वामुरग आरोपितस्तथाऽपि तयोर्न कश्चित् संबन्धोऽस्ति अधिष्ठानव्यतिरेकेणाध्यस्तस्यासत्त्वात्। एवं प्रत्यगात्मजगतोरप्यसंबन्धो द्रष्टव्यः २९ अहमेव मुमुक्षूणां ज्ञेय इत्याह—**आत्मैवेति** । मम स्थानं अधिष्ठानं आत्मैव।'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितः' इति श्रुतेः।अत एव मम जन्म जननहेतुरपि आत्मैव। अजत्वा-

अणोरणीयान् सुमनाः सर्वभूतेषु जाग्रति । | पितरं सर्वभूतेषु पुष्करे निहितं विदुः ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

॥ समाप्तं सनत्सुजातपर्व ॥

# यानसन्धिपर्व ५

## ४७

वैशम्पायन उवाच ।
एवं सनत्सुजातेन विदुरेण च धीमता ।
सार्धं कथयतो राज्ञः सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १
तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते ।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया ॥ २
शुश्रूषमाणाः पार्थानां वाचो धर्मार्थसंहिताः ।
धृतराष्ट्रमुखाः सर्वे ययू राजसभां शुभाम् ॥ ३
सुधावदातां विस्तीर्णां कनकाजिरभूषिताम् ।
चन्द्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां चन्दनवारिणा ॥ ४
रुचिरैरासनैस्तीर्णां काञ्चनैर्दारवैरपि ।
अश्मसारमयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः ॥ ५
भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ६
विदुरश्च महाप्राज्ञो युयुत्सुश्च महारथः ।
सर्वे च सहिताः शूराः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ ७
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां शुभाम् ।
दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ८
दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उलूकोऽथ विविंशतिः ।
कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ९
विविशुस्तां सभां राजन् सुराः शक्रसदो यथा ।
आविशद्भिस्तदा राजन् शूरैः परिघबाहुभिः ॥१०
शुशुभे सा सभा राजन् सिंहैरिव गिरेर्गुहा ।
ते प्रविश्य महेष्वासाः सभां सर्वे महौजसः ॥११
आसनानि विचित्राणि भेजिरे सूर्यवर्चसः ।
आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ॥ १२
द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थितम् ।
अयं स रथ आयाति योऽयासीत् पाण्डवान् प्रति
दूतो नस्तूर्णमायातः सैन्धवैः साधुवाहिभिः ।
उपेयाय स तु क्षिप्रं रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ॥
प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः ॥ १४

---

देव अहं कार्ये ओतः प्रोतश्च तिर्यगूर्ध्वं च पटे तन्तव इवानुस्यूतोऽस्मि । अजरा अप्रच्युतस्वभावा प्रतिष्ठा अधिष्ठानत्वं यस्य स तथा । अजश्चर इति पादो व्याख्यातः । मां सर्वेषां भूतानामन्तरात्मानं सर्वेश्वरं सर्वकर्तारं विज्ञाय कविः प्रसन्न आस्ते ॥ ३० ॥ प्रकरणार्थमुपसंहरति—**अणोरिति** । अणोरप्यणुतरो दुर्लक्ष्यः । न त्वणुतरपरिमाणवान् । अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमिति ब्रह्मणि चतुर्विधपरिमाणनिषेधात् । एतेन निर्गुणं रूपमुक्तम् । सुमनाः शोभनं मनो दिव्यं चक्षुर्मायाख्यं अतीतादिसर्वप्रकाशकं यस्य ।'मनोऽस्य दैवं चक्षुः' इति श्रुतेः स सुमनाः। एतेन सगुणं रूपमुक्तम् । सर्वभूतेषु जाग्रति अन्तर्यामिरूपेण जागर्ति । शपो लुगार्षः गुणाभावश्च । पितरं अर्थाद्वियदादीनां जरायुजादीनां च सर्वभूतेषु सर्वदेहेषु पुष्करे हृदयपुंडरीके निहितं स्थितं विदुर्ब्राह्मणा जानन्ति । एवंगुणविशिष्टं प्रत्यगात्मानं हृदये विचिन्तनेन साक्षात्कृत्य कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविंदसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ उद्योपर्वणि भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

प्रासंगिकमध्यात्मं समाप्य प्रस्तुतां कथामेवानुसन्धत्ते—**एवं सनत्सुजातेनेत्यादिना** । कथयतः कथामिति शेषः ॥ १ ॥ सूतस्य सञ्जयस्य ॥ २ ॥ कनकमयेन अजिरेण अङ्गणेन भूषिताम् ॥ ४ ॥ अश्मसारमयैः रत्नखचितैः ॥ ५ ॥ उपेयाय उपाजगाम प्रस्कन्द्य उत्तीर्य ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच ।
प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान् गत्वा तं विजानीत कौरवाः
यथावयः कुरून् सर्वान् प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः॥
अभिवादयन्ति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत् ।
यूनश्चाभ्यवदन् पार्थाः प्रतिपूज्य यथावयः॥ १६
यथाऽहं धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः ।
अब्रुवं पाण्डवान् गत्वा तन्निबोधत पार्थिवाः॥१७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयप्रत्यागमने
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

धृतराष्ट्र उवाच ।
पृच्छामि त्वां सञ्जय राजमध्ये
किमब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वः ।
धनञ्जयस्तात युधां प्रणेता
दुरात्मनां जीवितच्छिन्महात्मा ॥ १
सञ्जय उवाच ।
दुर्योधनो वाचमिमां शृणोतु
यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः ।
युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा
धनञ्जयः शृण्वतः केशवस्य ॥ २
अन्वत्रस्तो बाहुवीर्यं विदान
उपह्वरे वासुदेवस्य धीरः ।
अवोचन्मां योत्स्यमानः किरीटी
मध्ये ब्रूया धार्तराष्ट्रं कुरूणाम् ॥ ३
संशृण्वतस्तस्य दुर्भाषिणो वै
दुरात्मनः सूतपुत्रस्य सूत ।
यो योद्धुमाशंसति मां सदैव
मन्दप्रज्ञः कालपक्कोऽतिमूढः ॥ ४
ये वै राजानः पाण्डवायोधनाय
समानीताः शृण्वतां चापि तेषाम् ।
यथा समग्रं वचनं मयोक्तं
सहामात्यं श्रावयेथा नृपं तत् ॥ ५
यथा नूनं देवराजस्य देवाः
शुश्रूषन्ते वज्रहस्तस्य सर्वे ।
तथाऽशृण्वन् पाण्डवाः सृञ्जयाश्च
किरीटिना वाचमुक्तां समर्थाम् ॥ ६
इत्यब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानो
गाण्डीवधन्वा लोहितपद्मनेत्रः ।
न चेद्राज्यं मुञ्चति धार्तराष्ट्रो
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥ ७
अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्ता-
दनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः ।
येषां युद्धं भीमसेनार्जुनाभ्यां
तथाऽश्विभ्यां वासुदेवेन चैव ॥ ८
शैनेयेन ध्रुवमात्तायुधेन
धृष्टद्युम्नेनाथ शिखण्डिना च ।
युधिष्ठिरेणेन्द्रकल्पेन चैव
योऽपध्यानान्निर्दहेद्गां दिवं च ॥ ९
तैश्चेद्योद्धुं मन्यते धार्तराष्ट्रो
निर्वृत्तोऽर्थः सकलः पाण्डवानाम् ।
मा तत्कार्षीः पाण्डवस्यार्थहेतो-
रुपैहि युद्धं यदि मन्यसे त्वम् ॥ १०

---

यथावयः वयसोऽनुरूपम् ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

**पृच्छामीति** ॥ १ ॥ अन्वत्रस्त इत्यनुशब्दस्य अवोचादित्यनेन सम्बन्धः। व्यवहिताश्चेति धातूपसर्गयोश्छान्दसं व्यवहितत्वम् । विदानःजानन् उपह्वरे समीपे कुरूणां मध्ये धार्तराष्ट्रं ब्रूयाः इत्यन्ववोचदिति संबन्धः ॥ ३ ॥ पाण्डवायोधनाय पाण्डवैः सह युद्धाय ॥५॥ कर्म पापम् । अनिर्विष्टमनुपभुक्तमश्विभ्यामश्विपुत्राभ्याम्॥८॥ अपध्यानादपकारचिन्तनमात्रात् गां पृथ्वीम् ॥ ९ ॥ निर्वृत्तः सिद्धः सकल इत्ययुद्धपक्षेऽर्थस्यैत्रार्थस्य लाभो भवेत्स चानभिमत इति सूचितम्। तत् राज्याधदानं मा कार्षीः पाण्डवस्य अर्थहेतोः हितार्थम् ॥ १० ॥

यां तां वने दुःखशय्यामवात्सीत्
प्रव्राजितः पाण्डवो धर्मचारी ।
आप्नोतु तां दुःखतरामनर्था-
मन्त्यां शय्यां धार्तराष्ट्रः परासुः ॥ ११

ह्रिया ज्ञानेन तपसा दमेन
शौर्येणाथो धर्मगुप्त्या धनेन ।
अन्यायवृत्तिः कुरुपाण्डवेया-
नध्यातिष्ठद्धार्तराष्ट्रो दुरात्मा ॥ १२

मायोपधः प्रणिपातार्जवाभ्यां
तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन ।
सत्यं ब्रुवन् प्रतिपन्नो नृपो न-
स्तितिक्षमाणः क्लिश्यमानोऽतिवेलम् ॥

यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा
क्रोधं यत्तं वर्षपूगान् सुघोरम् ।
अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेता-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १४

कृष्णवर्त्मेव ज्वलितः समिद्धो
यथा दहेत् कक्षमग्निर्निदाघे ।
एवं दग्धा धार्तराष्ट्रस्य सेनां
युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽन्ववेक्ष्य ॥ १५

यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं
गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् ।
अमर्षणं पाण्डवं भीमवेगं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १६

सेनाग्रगं दंशितं भीमसेनं
स्वालक्षणं वीरहणं परेषाम् ।
घ्नन्तं चमूमन्तकसन्निकाशं
तदा स्मर्ता वचनस्यातिमानी ॥ १७

यदा द्रष्टा भीमसेनेन नागान्
निपातितान् गिरिकूटप्रकाशान् ।
कुम्भैरिवासृग्वमतो भिन्नकुम्भां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १८

महासिंहो गा व इव प्रविश्य
गदापाणिर्धार्तराष्ट्रानुपेत्य ।
यदा भीमो भीमरूपो निहन्ता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १९

महाभये वीतभयः कृतास्त्रः
समागमे शत्रुबलावमर्दी ।
सकृद्रथेनाप्रतिमान् रथौघान्
पदातिसङ्घान् गदयाऽभिनिघ्नन् ॥ २०

शैक्येन नागांस्तरसा विगृह्णन्
यदा छेत्ता धार्तराष्ट्रस्य सैन्यम् ।
छिन्दन् वनं परशुनेव शूर-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २१

तृणप्रायं ज्वलनेनेव दग्धं
ग्रामं यथा धार्तराष्ट्रान् समीक्ष्य ।
पक्वं सस्यं वैद्युतेनेव दग्धं
परासिक्तं विपुलं स्वं बलौघम् ॥ २२

हतप्रवीरं विमुखं भयार्तं
पराङ्मुखं प्रायशोऽधृष्टयोधम् ।
शस्त्रार्चिषा भीमसेनेन दग्धं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २३

---

दुःखशय्यां दुःखवासमन्त्यां शय्यां युद्धे मरणं प्राप्तः सन् ॥ ११ ॥ त्वमेतावत् कुर्वित्याह—ह्रियेति यान् लोकान् अन्यायवृत्तिर्धार्तराष्ट्रोऽध्यातिष्ठत् तान् ह्रीप्रभृतिभिर्गुणैरुपलक्षिते पाण्डवेऽनुरक्तान् कुरु । दुर्योधने नष्टे प्रजानामस्मदभिमुखीकरणं त्वत्कार्यं न तु तेन सहास्माकं सन्धानमिति भावः ॥ १२ ॥ मायया कपटेन उपधीयन्ते ते मायोपधाश्छलवादाः तान् मायोपधः । आतो धातोरिति द्वितीयाबहुवचने परे आलोपः। प्रतिपन्नः प्राप्तः प्रणिपातादिभिरुपेतः सत्यं ब्रुवंश्च अतिवेलं क्लिश्यमानोऽपि तितिक्षमाण एवास्ते इति शेषः ॥ १३ ॥ क्रोधमवस्रष्टा उत्स्रक्ष्यति । उद्वृत्तं क्रोधाक्रान्तं चेतो यस्य सः उद्वृत्तचेताः । जन्मना सुवृत्तचेता अपि सन् । अन्वतप्स्यत् शोचिष्यति । आर्षो लकारव्यत्ययः ॥ १४ ॥ कृष्णवर्त्मा दाहेन कृष्णीकृतभूभाग इति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु अग्निहोत्रे वस्त्रादिसप्तरूपोऽग्निः श्रूयते यदग्निमुद्धरतीत्यनुवाके । तत्र कृष्णवर्त्मेत्यन्वर्थसंज्ञातो धूमायन् रौद्रोऽग्निरुच्यते । ज्वलित इति किञ्चित्प्रदीप्तः । समिद्ध इति सर्वशो दीप्तः दग्धा धक्ष्यति ॥१५॥ दंशितं सन्नद्धम् । स्वालक्षणं स्वीयानामपि अलक्षणं नास्ति लक्षणं सम्यगवलोकनं यस्य तं स्वालक्षणम् । रणे आवेशवशात् स्वैरपि दुर्दर्शमित्यर्थः । यतः अन्तकसन्निकाशं वचनस्य वचनम् ॥ १७ ॥ गाः वः इवेति छेदः वः युष्मान् गा इव ॥ १९ ॥ शैक्येन शिक्यसदृशेन पाशेन नागान् विगृह्णन् वैपरीत्येन गृह्णन् । गले पादे वा पाशं दत्वा मृतवत्सवत्कर्षन्नित्यर्थः। अन्ये तु विमृद्नन्निति पाठान्तरं कल्पयित्वा शैक्येन खड्गेनेति व्याचख्युः ॥ २१ ॥ तृणप्रायं तृणगृहमयं ग्रामं परासिक्तं दूरे निरस्तम् ॥ २२ ॥ अधृष्टयोधमप्रगल्भयोधम् ॥२३॥

उपासङ्गानाचरद्दक्षिणेन
वराङ्गनानां नकुलश्चित्रयोधी ।
यदा रथाग्र्यो रथिनः प्रचेता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २४
सुखोचितो दुःखशय्यां वनेषु
दीर्घं कालं नकुलो यामशेत ।
आशीविषः क्रुद्ध इवोग्रमन्विषं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २५
त्यक्तात्मानः पार्थिवायोधनाय
समादिष्टा धर्मराजेन सूत ।
रथैः शुभ्रैः सैन्यमभिद्रवन्तो
दृष्ट्वा पश्चात्तप्स्यते धार्तराष्ट्रः ॥ २६
शिशून् कृतास्त्रानशिशुप्रकाशान्
यदा द्रष्टा कौरवः पञ्च शूरान् ।
त्यक्त्वा प्राणान् कौरवानाद्रवन्त-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २७
यदा गतोद्वाहमकूजनाक्षं
सुवर्णतारं रथमाततायी ।
दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः
शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः २८
महाभये संप्रवृत्ते रथस्थं
विवर्तमानं समरे कृतास्त्रम् ।
सर्वा दिशः सम्पतन्तं समीक्ष्य
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २९
ह्रीनिषेवो निपुणः सत्यवादी
महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः ।
गान्धारिमार्च्छंस्तुमुले क्षिप्रकारी
क्षेप्ता जनान् सहदेवस्तरस्वी ॥ ३०
यदा द्रष्टा द्रौपदेयान् महेषून्
शूरान् कृतास्त्रान् रथयुद्धकोविदान् ।
आशीविषान् घोरविषानिवायत-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३१
यदाऽभिमन्युः परवीरघाती
शरैः परान् मेघ इवाभिवर्षन् ।
विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्र-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३२
यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं
द्विषच्चमूं मृत्युमिवोत्पतन्तम् ।
सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३३
प्रभद्रकाः शीघ्रतरा युवानो
विशारदाः सिंहसमानवीर्याः ।
यदा क्षेप्तारो धार्तराष्ट्रान् ससैन्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३४
वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ
पृथक्चमूभ्यामभिवर्तमानौ ।
यदा द्रष्टारौ धार्तराष्ट्रान् ससैन्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३५
यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वन्
शिरांसि यूनां समरे रथस्थः ।
क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३६
यदा विराटः परवीरघाती
ममत्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा ।
मत्स्यैः सार्धमनृशंसरूपै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३७
ज्येष्ठं मात्स्यमनृशंसार्यरूपं
विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात् ।
यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डवार्थे
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३८

---

उपेति । वराङ्गानां शिरसामुपासङ्गानुच्चयान् दक्षिणेन कुशलेन अनायासेनेति यावत् । आचरत् कुर्यात् रथिनः योधान् प्रचेता कूटीकरिष्यति । पाठान्तरे उपासङ्गेन निषङ्गेण दक्षिणभागस्थेन शतात् परमाचरन् तत्रत्यैः शताधिकैः शरैर्युध्यन् वामहस्तेनापि शरप्रक्षेपस्य अभ्यस्तत्वात् । दुःखशय्यामशेतेत्युत्तरस्मादपकृष्यते अत एव दुःखाद्रथिनः प्रचेतेति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ दुःखशय्यामशेतेत्युत्तरं तां यदा स्मरिष्यतीति शेषः । अत एव दुःखात् रथिनः प्रचेतेति पूर्वस्मादनुकृष्यते ॥२५॥ हे पार्थिव आयोधनाय युद्धाय समादिष्टाः सैन्यं तावकं दृष्ट्वा तानिति शेषः ॥२६॥ शिशून् द्रौपदीपुत्रान् प्रतिविन्ध्यादीन् आद्रवन्तः आद्रवतः ॥२७॥ गतोद्वाहमपगतोद्वत्तगातिमनुकूलगातिमित्यर्थः। अकूजनो निःशब्दोऽक्षो यस्य तं सुवर्णस्य तारो दीर्घतन्तुः तमतिवेगादलातचक्रवत्सुवर्णरेखातुल्यमित्यर्थः । दान्तैः विनीतैः अश्वैरित्यर्थात् ॥ २८ ॥ विवर्तमानं विविधैर्मण्डलैर्वर्तमानं चरन्तम् ॥२९॥ गान्धारिं शकुनिमार्च्छन् गच्छन् ॥३०॥ आयतः आगच्छतः ॥ ३१ ॥ विगाहिता अभिभविष्यति ॥३२॥ क्षेप्तारः क्षेप्स्यन्ति ॥३४॥ ममत्तरे मृशं मथ्नातीति ममत् यङ्लुगन्तात् क्विप् ततस्तरप् बलवत्तरे ममादिति निपातो बलवद्वाचको वा संग्रामे इत्यर्थः । सहोत्तर इत्याधुनिकाः पठन्ति ॥ ३७ ॥

रणे हते कौरवाणां प्रवीरे
शिखण्डिना सत्तमे शान्तनूजे ।
न जातु नः शत्रवो धारयेयु-
रसंशयं सत्यमेतद्ब्रवीमि ॥ ३९

यदा शिखण्डी रथिनः प्रचिन्वन्
भीष्मं रथेनाभियाता वरूथी ।
दिव्यैर्हयैरवमृद्नन् रथौघां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥४०

यदा दृष्ट्वा सृञ्जयानामनीके
धृष्टद्युम्नं प्रमुखे रोचमानम् ।
अस्त्रं यस्मै गुह्यमुवाच धीमान्
द्रोणस्तदा तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ४१

यदा स सेनापतिरप्रमेयः
परामृद्नन्निषुभिर्धार्तराष्ट्रान् ।
द्रोणं रणे शत्रुसहोऽभियाता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४२

ह्रीमान् मनीषी बलवान् मनस्वी
स लक्ष्मीवान् सोमकानां प्रबर्हः ।
न जातु तं शत्रवोऽन्ये सहेरन्
येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥ ४३

इदं च ब्रूया मा वृणीष्वेति लोके
युद्धेऽद्वितीयं सचिवं रथस्थम् ।
शिनेर्नप्तारं प्रवृणीम सात्यकिं
महाबलं वीतभयं कृतास्त्रम् ॥ ४४

महोरस्को दीर्घबाहुः प्रमाथी
युद्धेऽद्वितीयः परमास्त्रवेदी ।
शिनेर्नप्ता तालमात्रायुधोऽयं
महारथो वीतभयः कृतास्त्रः ॥ ४५

यदा शिनीनामधिपो मयोक्तः
शरैः परान् मेघ इव प्रवर्षन् ।
प्रच्छादयिष्यत्यरिहा योधमुख्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४६

यदा धृतिं कुरुते योत्स्यमानः
स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा ।
सिंहस्येव गन्धमाघ्राय गावः
सञ्चेष्टन्ते शत्रवोऽस्माद्रणाग्रे ॥ ४७

स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा
भिन्द्याद्गिरीन् संहरेत् सर्वलोकान् ।
अस्त्रे कृती निपुणः क्षिप्रहस्तो
दिवि स्थितः सूर्य इवाभिभाति ॥ ४८

चित्रः सूक्ष्मः सुकृतो यादवस्य
अस्त्रे योगो वृष्णिसिंहस्य भूयान् ।
यथाविधं योगमाहुः प्रशस्तं
सर्वैर्गुणैः सात्यकिस्तैरुपेतः ॥ ४९

हिरण्मयं श्वेतहयैश्चतुर्भि-
र्यदा युक्तं स्यन्दनं माधवस्य ।
द्रष्टा युद्धे सात्यकेर्धार्तराष्ट्र-
स्तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः ॥ ५०

यदा रथं हेममणिप्रकाशं
श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम् ।
दृष्ट्वा ममाप्यास्थितं केशवेन
तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः ॥ ५१

यदा मौर्व्यास्तलनिष्पेषमुग्रं
महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम् ।
विधूयमानस्य महारणे मया
स गाण्डिवस्य श्रोष्यति मन्दबुद्धिः ५२

तदा मूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्र-
स्तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः ।
दृष्ट्वा सैन्यं बाणवर्षान्धकारे
प्रभज्यन्तं गोकुलवद्रणाग्रे ॥ ५३

बलाहकादुच्चरतः सुभीमान्
विद्युत्स्फुलिङ्गानिव घोररूपान् ।
सहस्रघ्नान् द्विषतां सङ्गरेषु
अस्थिच्छिदो मर्मभिदः सुपुङ्खान् ॥ ५४

यदा द्रष्टा ज्यामुखाद्बाणसङ्घान्
गाण्डीवमुक्तानापततः शिताग्रान् ।
हयान् गजान् वर्मिणश्चाददानां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५५

शान्तनूजे दैर्घ्यमार्षम् । धारयेयुः जीवेयुः ॥ ३९ ॥ वरूथी रथगुप्तिमान् ॥४०॥ इदं चेति सन्निहितं युद्धमूलमुच्यते राज्यं च मा वृणीष्व मा प्रार्थयस्व इति ब्रूयाः । दुर्योधनं प्रतीत्यर्थात् । यतः वयं युद्धेऽद्वितीयं सहायं सात्यकिं प्रवृणीम वृतवन्तः तस्मिन् अवृते तु कदाचित्तव जयोऽपि संभाव्येतेति भावः ॥४४॥ अस्मात्–ल्यब्लोपे पंचमी–एनं प्राप्य संचेष्टन्ते इतस्ततो भ्रमन्ति ॥४७॥ चित्रः विस्मयकृत् सूक्ष्मः दुर्लक्ष्यः श्लक्ष्ण इतिपाठे रमणीयः । शूराणामुत्साहकरत्वात् सुकृतः सुशिक्षितः । अस्त्रयोगोऽस्त्रलाभः वृष्णिसिंहस्य कृष्णस्य यथाविधं यादृक्प्रकारं योगमाहुः तैः सर्वैर्गुणैः सात्यकिरुपेतः ॥ ४९ ॥ सुपुंखान्यदा द्रष्टेति द्वयोः संबंधः ॥ ५४ ॥ आददानान् ग्रसमानान् ॥ ५५ ॥

यदा मन्दः परवाणान् विमुक्तान्
ममेषुभिर्ह्रियमाणान् प्रतीपम् ।
तिर्यग्विध्यांश्छिद्यमानान् पृषत्कै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५६
यदा विपाठा मद्भुजविप्रमुक्ता
द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात् ।
प्रचेतार उत्तमाङ्गानि यूनां
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५७
यदा द्रष्टा पततः स्यन्दनेभ्यो
महागजेभ्योऽश्वगतान् सुयोधनान् ।
शरैर्हतान् पातितांश्चैव रङ्गे
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५८
असंप्राप्तानस्त्रपथं परस्य
यदा द्रष्टा नश्यतो धार्तराष्ट्रान् ।
अकुर्वतः कर्म युद्धे समन्ता-
त्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५९
पदातिसङ्घान् रथसङ्घान् समन्ता-
द्व्यात्ताननः काल इवाततेषुः ।
प्रणोत्स्यामि ज्वलितैर्बाणवर्षैः
शत्रूंस्तदा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६०
सर्वा दिशः संपतता रथेन
रजोध्वस्तं गाण्डिवेन प्रकृत्तम् ।
यदा द्रष्टा स्वबलं संप्रमूढं
तदा पश्चात्तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६१
कान्दिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं
दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम् ।
हताश्ववीराग्र्यनरेन्द्रनागं
पिपासितं श्रान्तपत्रं भयार्तम् ॥ ६२
आर्तस्वरं हन्यमानं हतं च
विकीर्णकेशास्थिकपालसङ्घम् ।
प्रजापतेः कर्म यथाऽर्थनिष्ठितं
तदा दृष्ट्वा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६३
यदा रथे गाण्डिवं वासुदेवं
दिव्यं शङ्खं पाञ्चजन्यं हयांश्च ।
तूणावक्षय्यौ देवदत्तं च मां च
दृष्ट्वा युद्धे धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ६४
उद्वर्तयन् दस्युसङ्घान् समेतान्
प्रवर्तयन् युगमन्यद्युगान्ते ।
यदा धक्ष्याम्यग्निवत्कौरवेयां-
स्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः ॥ ६५
सभ्राता वै सहसैन्यः सभृत्यो
भ्रष्टैश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः ।
दर्पस्यान्ते निहतो वेपमानः
पश्चान्मन्दस्तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ६६
पूर्वाह्णे मां कृतजप्यं कदाचि-
द्विप्रः प्रोवाचोदकान्ते मनोज्ञम् ।
कर्तव्यं ते दुष्करं कर्म पार्थ
योद्धव्यं ते शत्रुभिः सव्यसाचिन् ॥ ६७
इन्द्रो वा ते हरिवान् वज्रहस्तः
पुरस्ताद्यातु समरेऽरीन् विनिघ्नन् ।
सुग्रीवयुक्तेन रथेन वा ते
पश्चात् कृष्णो रक्षतु वासुदेवः ॥ ६८
वव्रे चाहं वज्रहस्तान्महेन्द्रा-
दस्मिन्युद्धे वासुदेवं सहायम् ।
स मे लब्धो दस्युवधाय कृष्णो
मन्ये चैतद्विहितं दैवतैर्मे ॥ ६९
अयुद्ध्यमानो मनसाऽपि यस्य
जयं कृष्णः पुरुषस्याभिनन्देत् ।
एवं सर्वान् स व्यतीयादमित्रान्
सेन्द्रान् देवान् मानुषे नास्ति चिन्ता ७०

तिर्यक् विद्ध्य विध्वा पृषत्कैश्छिद्यमानान्यदा द्रष्टा इति पूर्वेणान्वयः ॥ ५६ ॥ विपाठाः विस्तृतबाणाः प्रचेतारः राशीकरिष्यन्ति ॥ ५७ ॥ अस्त्रपथं असंप्राप्तान् अस्त्रं दृष्ट्वैव नश्यत इत्यर्थः । युद्धे कर्म अकुर्वतः भयेन वैक्लव्यात् ॥ ५९ ॥ आतताः संतताः अविच्छिन्नधाराः इषवो यस्य प्रणोत्स्यामि दूरीकरिष्यामि ॥ ६० ॥ रजोध्वस्तं रजसा व्याकुलीभूय रथादिभ्यः पतितम् । प्रकृत्तं छिन्नम् ॥ ६१ ॥ कांदिग्भूतं भयेन पलायितं श्रान्तपत्रं श्रान्तवाहनम् ॥ ६२ ॥ प्रजापतेः कर्म यथेति यथा वाजपेये प्रजापतिदैवत्याः सप्तदश पशवो विशस्यन्ते तद्वद्बहूनामिहापि विशसनं कृतं तेन बीभत्सत्वं लक्ष्यते । अर्थः स्वर्गो राज्यं च तदर्थं निष्ठितं संजातनिश्चयम् ॥ ६३ ॥ देवदत्तं अर्जुनस्य शंखम् ॥ ६४ ॥ दस्युसङ्घान् । न्यायतः प्रदेयस्य राज्यस्याप्रदानाद्दस्यवो धार्तराष्ट्राः । 'यथा कथा च परप्रतिग्रहमभिमन्यते स्तेनो भवति' इति स्मृतेः । युगान्ते शत्रूणां संहारे जाते सति अन्ययुगं धर्मप्रधानं कालं प्रवर्तयन् । 'राजा कालस्य कारणम्' इति स्मृतेः ॥ ६५ ॥ दर्पस्य अन्ते नाशे ॥ ६६ ॥ उदकान्ते सन्ध्यावन्दनाचमनान्ते ॥ ६७ ॥ पुरस्तात् इन्द्रो रक्षतु इत्यपकृष्यते ॥ ६८ ॥

स बाहुभ्यां सागरमुत्तितीर्षे-
न्महोदधिं सलिलस्याप्रमेयम् ।
तेजस्विनं कृष्णमत्यन्तशूरं
युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥ ७१
गिरिं य इच्छेत्तु तलेन भेत्तुं
शिलोच्चयं श्वेतमतिप्रमाणम् ।
तस्यैव पाणिः सनखो विशीर्ये-
न्न चापि किञ्चित् स गिरेस्तु कुर्यात् ७२
अग्निं समिद्धं शमयेद्भुजाभ्यां
चन्द्रं च सूर्यं च निवारयेत ।
हरेद्देवानाममृतं प्रसह्य
युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥ ७३
यो रुक्मिणीमेकरथेन भोजा-
नुत्साद्य राज्ञः समरे प्रसह्य ।
उवाह भार्यां यशसा ज्वलन्तीं
यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा ॥ ७४
अयं गान्धारांस्तरसा संप्रमथ्य
जित्वा पुत्रान्नग्नजितः समग्रान् ।
बद्धं मुमोच विनदन्तं प्रसह्य
सुदर्शनं वै देवतानां ललामम् ॥ ७५
अयं कपाटेन जघान पाण्ड्यं
तथा कलिङ्गान् दन्तकूरे ममर्द ।
अनेन जग्धा वर्षपूगान्विनाथा
वाराणसी नगरी संबभूव ॥ ७६
अयं स्म युद्धे मन्यतेऽन्यैरजेयं
तमेकलव्यं नाम निषादराजम् ।
वेगेनैव शैलमभिहत्य जम्भः
शेते स कृष्णेन हतः परासुः ॥ ७७
ततोऽग्रसेनस्य सुतं सुदुष्टं
वृष्ण्यन्धकानां मध्यगतं सभास्थम् ।
अपातयद्बलदेवद्वितीयो
हत्वा ददौ चोग्रसेनाय राज्यम् ॥ ७८
अयं सौभं योधयामास खस्थं
विभीषणं मायया शाल्वराजम् ।
सौभद्वारि प्रत्यगृह्णाच्छतघ्नीं
दोर्भ्यां क एनं विषहेत मर्त्यः । ७९
प्राग्ज्योतिषं नाम बभूव दुर्गं
पुरं घोरमसुराणामसह्यम् ।
महाबलो नरकस्तत्र भौमो
जहारादित्या मणिकुण्डले शुभे ॥ ८०
न तं देवाः सह शक्रेण शेकुः
समागता युधि मृत्योरभीताः ।
दृष्ट्वा च तं विक्रमं केशवस्य
बलं तथैवास्त्रमवारणीयम् ॥ ८१
जानन्तोऽस्य प्रकृतिं केशवस्य
न्ययोजयन् दस्युवधाय कृष्णम् ।
स तत्कर्म प्रतिशुश्राव दुष्कर-
मैश्वर्यवान् सिद्धिषु वासुदेवः ॥ ८२
निर्मोचने षट् सहस्राणि हत्वा
संच्छिद्य पाशान् सहसा क्षुरान्तान् ।
मुरं हत्वा विनिहत्यौघरक्षो
निर्मोचनं चापि जगाम वीरः ॥ ८३
तत्रैव तेनास्य बभूव युद्धं
महाबलेनातिबलस्य विष्णोः ।
शेते स कृष्णेन हतः परासु-
र्वातेनेव मथितः कर्णिकारः ॥ ८४
आहृत्य कृष्णो मणिकुण्डले ते
हत्वा च भौमं नरकं मुरं च ।
श्रिया वृतो यशसा चैव विद्वान्
प्रत्याऽऽजगामाप्रतिमप्रभावः ॥ ८५

---

सागरं सगरैर्वर्द्धितम् । सलिलस्य महोदधिं जलसमुद्रम् । अप्रमेयमनन्तत्वात् ॥ ७१ ॥ तलेन चपेटिकया । शिलोच्चयमिति काठिन्यप्रदर्शनार्थं विशेषणम् । श्वेतं कैलासम् । बलवदाश्रितत्वमनेन सूचितम् ॥ ७२ ॥ सुदर्शनं नाम राजानं नग्नजितः पुत्रैर्बद्धं मुमोच । देवतानां ललामं रत्नभूतं देवैरपि शिरसा धार्यमित्यर्थः ॥ ७५ ॥ कपाटेन वक्षस्तटाघातेन दन्तकूरे सङ्ग्रामे अन्ये तु कपाटे निजघानेति पाठं प्रकल्प्य कपाटे नगरे। एवं दन्तकूरे चेति व्याचख्युः । अनाथा संबभूवेति योज्यम् ॥ ७६ ॥ अयं कृष्णः तं युद्धे मन्यते युद्धार्थं प्रार्थयते सर्वदैव सः इदानीं तेनैव कृष्णेन हतः शेते । यथा जंभो दैत्यः शैलं वेगेन अभिहत्य शैलाघातात् स्वयंकृतात् हतः शेते तद्वत् ॥ ७७॥ ततोग्रसेनस्येति सान्धिरार्षः । तथेति वा पाठः ॥ ७८ ॥ खस्थं खेचरं विभीषणं निर्भयं शतघ्नीं शक्तिं शाल्वेन क्षिप्तां दोर्भ्यां पाणिभ्यां कन्दुकवत् प्रत्यगृह्णात् ॥ ७९ ॥ भौमो भूमिपुत्रः ॥ ८० ॥ शेकुर्जेतुमिति शेषः ॥ ८१ ॥ प्रकृतिं स्वभावं दस्युहननशीलतां प्रतिशुश्राव अंगीचकार । सिद्धिषु कार्यसिद्धिषूपस्थितासु ऐश्वर्यवान् सामर्थ्यवान् ॥८२॥ निर्मोचने नगरे क्षुरान्तान् तीक्ष्णधारान् लोहमयानित्यर्थः । ओघसंज्ञं रक्षः ॥ ८३ ॥

अस्मै वराण्यददंस्तत्र देवा
दृष्ट्वा भीमं कर्म कृतं रणे तत् ।
श्रमश्च ते युध्यमानस्य न स्या-
दाकाशे चाप्सु च ते क्रमः स्यात् ॥ ८६

शस्त्राणि गात्रे न च ते क्रमेर-
न्नित्येव कृष्णश्च ततः कृतार्थः ।
एवंरूपे वासुदेवेऽप्रमेये
महाबले गुणसंपत्सदैव ॥ ८७

तमसह्यं विष्णुमनन्तवीर्य-
माशंसते धार्तराष्ट्रो विजेतुम् ।
सदा ह्येनं तर्कयते दुरात्मा
तच्चाप्ययं सहतेऽस्मान् समीक्ष्य ॥ ८८

पर्यागतं मम कृष्णस्य चैव
यो मन्यते कलहं संप्रसह्य ।
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वं
तद्वेदिता संयुगं तत्र गत्वा ॥ ८९

नमस्कृत्वा शान्तनवाय राज्ञे
द्रोणायाथो सहपुत्राय चैव ।
शारद्वतायाप्रतिद्वन्द्विने च
योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः ॥ ९०

धर्मेणास्तं निधनं तस्य मन्ये
यो योत्स्यते पाण्डवैः पापबुद्धिः ।
मिथ्या ग्लहे निर्जिता वै नृशंसैः
संवत्सरान् वै द्वादश राजपुत्राः ॥ ९१

वासः कृच्छ्रो विहितश्चाप्यरण्ये
दीर्घं कालं चैकमज्ञातवर्षम् ।
ते हि कस्माज्जीवतां पाण्डवानां
नन्दिष्यन्ते धार्तराष्ट्राः पदस्थाः ॥ ९२

ते चेदस्मान् युध्यमानाञ्जयेयु-
र्देवैर्महेन्द्रप्रमुखैः सहायैः ।
धर्मादधर्मश्चरितो गरीयां-
स्ततो ध्रुवं नास्ति कृतं च साधु ॥ ९३

न चेदिमं पुरुषं कर्मबद्धं
न चेदस्मान् मन्यतेऽसौ विशिष्टान् ।
आशंसेऽहं वासुदेवद्वितीयो
दुर्योधनं सानुबन्धं निहन्तुम् ॥ ९४

न चेदिदं कर्म नरेन्द्र वन्ध्यं
न चेद्भवेत्सुकृतं निष्फलं वा ।
इदं च तच्चाभिसमीक्ष्य नूनं
पराजयो धार्तराष्ट्रस्य साधुः ॥ ९५

प्रत्यक्षं वः कुरवो यद्ब्रवीमि
युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति ।
अन्यत्र युद्धात् कुरवो यदि स्यु-
र्न युद्धे वै शेष इहास्ति कश्चित् ॥ ९६

हत्वा त्वहं धार्तराष्ट्रान् सकर्णा-
न्राज्यं कुरूणामवजेता समग्रम् ।
यद्वः कार्यं तत्कुरुध्वं यथास्व-
मिष्टान् दारानात्मभोगान् भजध्वम् ॥ ९७

अप्येवं नो ब्राह्मणाः सन्ति वृद्धा
बहुश्रुताः शीलवन्तः कुलीनाः ।
सांवत्सरा ज्योतिषि चाभियुक्ता
नक्षत्रयोगेषु च निश्चयज्ञाः ॥ ९८

उच्चावचं दैवयुक्तं रहस्यं
दिव्याः प्रश्ना मृगचक्रा मुहूर्ताः ।
क्षयं महान्तं कुरुसृञ्जयानां
निवेदयन्ते पाण्डवानां जयं च ॥ ९९

यथा हि नो मन्यतेऽजातशत्रुः
संसिद्धार्थो द्विषतां निग्रहाय ।
जनार्दनश्चाप्यपरोक्षविद्यो
न संशयं पश्यति वृष्णिसिंहः ॥ १००

---

वराणि वरान् । अददन् दत्तवन्तः । क्रमः गतिः ॥ ८६ ॥ तर्कयते बद्धुं यतते ॥ ८८ ॥ प्रसह्य पर्यागतं हठात् प्राप्तं मन्यते वांछति अस्मासु मित्रभेदं प्रार्थयते इत्यर्थः । तेन च पाण्डवानां कृष्णे ममत्वमस्मदीयत्वं हर्तुं शक्यमिति मन्यते । तत् तत्र कुरुक्षेत्रे संयुगं गत्वा प्राप्य वेदिता ज्ञास्यति ॥ ८९ ॥ साधु कृतं सत्कर्म नास्ति निष्फलत्वात् । वृथैव धर्म इत्यर्थः ॥ ९३ ॥ **न चेदिति** । यदि कर्मबद्धः पुरुषो न स्यात्, यदि वा वयं तेभ्यः श्रेष्ठाः न स्याम तर्हि तस्यैव जयो भविष्यतीत्यर्थः ॥ ९४ ॥ इदं राज्यस्याप्रदानमिदानीन्तनं तच्च राज्यात् निःसारणं तदानींतनं अभिसमीक्ष्य आलोच्य पापवशात् पराजय एव तस्येत्यर्थः ॥ ९५ ॥ दिव्या अनागतार्थज्ञापकाः । मृगचकाः—चक्राणि सर्वतोभद्रादीनि शैवागमप्रसिद्धानि मृगयन्ते किं नक्षत्रं केन ग्रहेण विद्धमिति विचारयन्ति सदसत्फलकथनार्थं ते चक्रमृगाः—पूर्वनिपात आर्षः—मृगाणि मार्गितानि चक्राणि यैस्ते इति वा ॥ ९९ ॥ संशयं युद्धे जयपराजयविषये न पश्यति यतः अपरोक्षविद्यः दिव्यदृष्ट्याऽतीतानागतादिकं पश्यन् ॥ १०० ॥

अहं तथैवं खलु भाविरूपं
पश्यामि बुद्ध्या स्वयमप्रमत्तः।
दृष्टिश्च मे न व्यथते पुराणी
संयुध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति॥ १०१
अनालब्धं जृम्भति गाण्डिवं धनु-
रनाहता कम्पति मे धनुर्ज्या ।
बाणाश्च मे तूणमुखाद्विसृत्य
मुहुर्मुहुर्गन्तुमुशन्ति चैव ॥ १०२
खड्गः कोशान्निःसरति प्रसन्नो
हित्वेव जीर्णामुरगस्त्वचं स्वाम् ।
ध्वजे वाचो रौद्ररूपा भवन्ति
कदा रथो योक्ष्यते ते किरीटिन् ॥ १०३
गोमायुसङ्घाश्च नदन्ति रात्रौ
रक्षांस्यथो निष्पतन्त्यन्तरिक्षात् ।
मृगाः शृगालाः शितिकण्ठाश्च काका
गृध्रा बकाश्चैव तरक्षवश्च ॥ १०४
सुवर्णपत्राश्च पतन्ति पश्चा-
दृष्ट्वा रथं श्वेतहयप्रयुक्तम् ।
अहं ह्येकः पार्थिवान् सर्वयोधान्
शरान् वर्षन् मृत्युलोकं नयेयम्॥ १०५
समाददानः पृथगस्त्रमार्गान्
यथाग्निरिद्धो गहनं निदाघे ।
स्थूणाकर्णं पाशुपतं महास्त्रं
ब्राह्मं चास्त्रं यच्च शक्रोऽप्यदान्मे ॥ १०६
वधे धृतो वेगवतः प्रमुञ्च-
न्नाहं प्रजाः किंचिदिहावशिष्ये ।
शान्तिं लप्स्ये परमो ह्येष भावः
स्थिरो मम ब्रूहि गावल्गणे तान् १०७
ये वै जय्याः समरे सूत लब्ध्वा
देवानपीन्द्रप्रमुखान् समेतान् ।
तैर्मन्यते कलहं संप्रसह्य
स धार्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य ॥ १०८
वृद्धो भीष्मः शान्तनवः कृपश्च
द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान् ।
एते सर्वे यद्वदन्ते तदस्तु
आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे ॥ १०९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि अर्जुनवाक्यनिवेदनेऽ-
ष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

वैशम्पायन उवाच ।

समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् १
बृहस्पतिश्चोशना च ब्रह्माणं पर्युपस्थितौ ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण वसवश्चाग्निना सह ॥ २
आदित्याश्चैव साध्याश्च ये च सप्तर्षयो दिवि ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वः शुभाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३
नमस्कृत्योपजग्मुस्ते लोकवृद्धं पितामहम् ।
परिवार्य च विश्वेशं पर्यासत दिवौकसः ॥ ४
तेषां मनश्च तेजश्चाप्याददानाविवौजसा ।
पूर्वदेवौ व्यतिक्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ५
बृहस्पतिस्तु पप्रच्छ ब्रह्माणं काविमाविति ।
भवन्तं नोपतिष्ठेते तौ नः शंस पितामह ॥ ६

ब्रह्मोवाच ।

यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ ।
ज्वलन्तौ रोचमानौ च व्याप्यातीतौ महाबलौ ७
नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ ।
ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्त्वपराक्रमौ ॥ ८
एतौ हि कर्मणा लोकं नन्दयामासतुर्ध्रुवम् ।
द्विधा भूतौ महाप्राज्ञौ विद्धि ब्रह्मन् परंतपौ ॥
असुराणां विनाशाय देवगन्धर्वपूजितौ ॥ ९

---

पुराणी योगप्रभाववती न व्यथते न तिरस्कृता ॥ १०१ ॥ वधे धृतः बधार्थे सज्जः । वेगवतः बाणान् ॥ १०७ ॥ विजयः कर्म येषां ते वैजय्याः देवानपि लब्ध्वा विजयवन्त एवेत्यर्थः ॥ १०८॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकं० भा० भाव० अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८

४९

समवेतेष्विति ॥ १ ॥ पर्यासत परिवार्य तस्थुः ॥४॥ लोकात् मानुषात् लोकं ब्राह्मम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

जगाम शक्रस्तच्छ्रुत्वा यत्र तौ तेपतुस्तपः ।
सार्धं देवगणैः सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ॥ १०
तदा देवासुरे युद्धे भये जाते दिवौकसाम् ।
अयाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥ ११
तावब्रूतां वृणीष्वेति तदा भरतसत्तम ।
अथैतावब्रवीच्छक्रः सह्यं नः क्रियतामिति ॥ १२
ततस्तौ शक्रमब्रूतां करिष्यावो यदिच्छसि ।
ताभ्यां च सहितः शक्रो विजिग्ये दैत्यदानवान्
नर इन्द्रस्य संग्रामे हत्वा शत्रून् परन्तपः ।
पौलोमान् कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च१४
एष भ्रान्ते रथे तिष्ठन् भल्लेनापाहरच्छिरः ।
जम्भस्य ग्रसमानस्य तदा ह्यर्जुन आहवे ॥ १५
एष पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजत् ।
जित्वा षष्टिं सहस्राणि निवातकवचान् रणे ॥१६
एष देवान् सहेन्द्रेण जित्वा परपुरञ्जयः ।
अतर्पयन्महाबाहुरर्जुनो जातवेदसम् ॥ १७
नारायणस्तथैवात्र भूयसोऽन्यान् जघान ह ।
एवमेतौ महावीर्यौ तौ पश्यत समागतौ ॥ १८
वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ ।
नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः ॥ १९
अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः ।
नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम् ॥ २०
एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान् ध्रुवान् ।
तत्र तत्रैव जायेते युद्धकाले पुनःपुनः ॥ २१
तस्मात् कर्मैव कर्तव्यमिति होवाच नारदः ।
एतद्धि सर्वमाचष्ट वृष्णिचक्रस्य वेदवित् ॥ २२
शङ्खचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम् ।
पर्याददानं चास्त्राणि भीमधन्वानमर्जुनम् ॥ २३
सनातनौ महात्मानौ कृष्णावेकरथे स्थितौ ।
दुर्योधन तदा तात स्मर्तासि वचनं मम ॥ २४
नोचेदयमभावः स्यात् कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।
अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपप्लुता ॥ २५
न चेद्ग्रहीष्यसे वाक्यं श्रोतासि सुबहून् हतान्
तवैव हि मतं सर्वे कुरवः पर्युपासते ॥ २६
त्रयाणामेव च मतं तत्त्वमेकोऽनुमन्यसे ।
रामेण चैव शप्तस्य कर्णस्य भरतर्षभ ॥ २७
दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च ॥ २८

कर्ण उवाच ।

नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह ।
क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् ॥ २९
किंचान्यन्मयि दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे ।
न हि मे वृजिनं किञ्चिद्धार्तराष्ट्रा विदुः क्वचित्
नाचरं वृजिनं किञ्चिद्धार्तराष्ट्रस्य नित्यशः ।
अहं हि पाण्डवान् सर्वान् हनिष्यामि रणे स्थितान्
प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः ।
राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्यं प्रियं मया ।
तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः ३२

वैशम्पायन उवाच ।

कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
धृतराष्ट्रं महाराज संभाष्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ ३३
यदयं कत्थते नित्यं हन्ताऽहं पाण्डवानिति ।
नायं कलाऽपि संपूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम्३४
अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम् ।
तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥ ३५
एतमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।
अवामन्यत तान् वीरान् देवपुत्रानरिन्दमान् ३६
किं चाप्येतेन तत्कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम् ।
तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥ ३७
दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम् ।
धनञ्जयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥ ३८
सहितान् हि कुरून् सर्वानभियातो धनञ्जयः ।
प्रमथ्य चाच्छिनद्वासः किमयं प्रोषितस्तदा ॥ ३९
गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत्सुतस्तव ।
क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद्य इदानीं वृषायते ॥ ४०
ननु तत्रापि भीमेन पार्थेन च महात्मना ।
यमाभ्यामेव संगम्य गन्धर्वास्ते पराजिताः ॥४१

---

अयाचत इन्द्रः ॥ ११ ॥ सह्यं साहाय्यम् ॥१२॥ भ्रांते अस्थिरेऽपि रथे लक्ष्यात् न व्यपैतीत्याश्चर्यम् ॥१५॥ आरुजत् पीडितवान् ॥१६॥ भूयसो बहून् ॥१८॥ सत्त्वं बुद्धिसत्त्वं एक एव देवो योगप्रभावाद्रूपद्वयेन वर्तते इत्यर्थः ॥ २० ॥ अश्नुवाते व्याप्नुतः ॥ २१ ॥ कर्म युद्धं कर्तव्यं तयोरिति शेषः । आचष्ट आख्यातवान् नारद एव ॥ २२ ॥ स हि राज्ये इति । अस्य वचनं मया न कर्तव्यं किं तु राज्ञ एवेति भावः ॥ ३२ ॥ कलाऽपि षोडशांशोऽपि ॥३४॥ ह्रियते यद्यदा वृषायते वृषवन्नर्दति ॥ ४० ॥ इति श्रीमहा-

एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ ।
विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥ ४२
भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महामनाः ।
धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन् ॥ ४३
यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत्क्रियतां नृप ।
न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ४४
पुरा युद्धात् साधु मन्ये पाण्डवैः सह संगतम् ।
यद्वाक्यमर्जुनेनोक्तं सञ्जयेन निवेदितम् ॥ ४५
सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पाण्डवः ।
न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥४६
अनादृत्य तु तद्वाक्यमर्थवद्द्रोणभीष्मयोः ।
ततः स सञ्जयं राजा पर्यपृच्छत पाण्डवान् ॥ ४७
तदैव कुरवः सर्वे निराशा जीवितेऽभवन् ।
भीष्मद्रोणौ यदा राजा न सम्यगनुभाषते ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## ५०

धृतराष्ट्र उवाच ।
किमसौ पाण्डवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।
श्रुत्वेह बहुलाः सेनाः प्रीत्यर्थं नः समागताः १
किमसौ चेष्टते सूत योत्स्यमानो युधिष्ठिरः ।
के वाऽस्य भ्रातृपुत्राणां पश्यन्त्याज्ञेप्सवो मुखम्
के स्विदेनं वारयन्ति युद्धाच्छाम्येति वा पुनः ।
निकृत्या कोपितं मन्दैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम् ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
राज्ञोमुखमुदीक्षन्ते पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
युधिष्ठिरस्य भद्रं ते स सर्वाननुशास्ति च ॥ ४
पृथग्भूताः पाण्डवानां पाञ्चालानां रथव्रजाः ।
आयान्तमभिनन्दन्ति कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५
नभःसूर्यमिवोद्यन्तं कौन्तेयं दीप्ततेजसम् ।
पाञ्चालाः प्रतिनन्दन्ति तेजोराशिमिवोदितम् ६
आगोपालाविपालाश्च नन्दमाना युधिष्ठिरम् ।
पाञ्चालाः केकया मत्स्याः प्रतिनन्दन्ति पाण्डवम्
ब्राह्मण्यो राजपुत्र्यश्च विशां दुहितरश्च याः ।
क्रीडन्त्योऽभिसमायान्ति पार्थं सन्नद्धमीक्षितुम् ८
धृतराष्ट्र उवाच ।
सञ्जयाचक्ष्व येनास्मान् पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
धृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च ॥ ९
वैशम्पायन उवाच ।
गावल्गणिस्तु तत् पृष्टः सभायां कुरुसंसदि ।
निःश्वस्य सुभृशं दीर्घं मुहुः सञ्चिन्तयन्निव १०
तत्रानिमित्ततो दैवात् सूतं कश्मलमाविशत् ।
तदाचचक्षे विदुरः सभायां राजसंसदि ॥ ११
सञ्जयोऽयं महाराज मूर्च्छितः पतितो भुवि ।
वाचं न सृजते काञ्चिद्धीनप्रज्ञोऽल्पचेतनः ॥१२
धृतराष्ट्र उवाच ।
अपश्यत् सञ्जयो नूनं कुन्तीपुत्रान् महारथान् ।
तैरस्य पुरुषव्याघ्रैर्भृशमुद्वेजितं मनः ॥ १३
वैशम्पायन उवाच ।
सञ्जयश्चेतनां लब्ध्वा प्रत्याश्वस्येदमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्र महाराज सभायां कुरुसंसदि ॥ १४
सञ्जय उवाच ।
दृष्टवानस्मि राजेन्द्र कुन्तीपुत्रान् महारथान् ।
मत्स्यराजगृहावासनिरोधेनावकर्शितान् ॥ १५
शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ १६
यो नैव रोषान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाद्धर्मात्मा सत्यं जह्यात् कदाचन॥ १७
यः प्रमाणं महाराज धर्मे धर्मभृतां वरः ।
अजातशत्रुणा तेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ १८
यस्य बाहुबले तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यो वै सर्वान् महीपालान् वशे चक्रे धनुर्धरः ।
यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाऽजयत्

---

भारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

**किमसाविति** ॥ १ ॥ येन सहायेन अस्मानालक्ष्य अभ्ययुञ्जत संनद्धा अभूवन् ॥ ९ ॥ कुरवः संसीदंत्यस्यां सभायाम् ॥१०॥ वस्ते वः युष्मान् ते पाण्डवाः ॥१६॥

तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
यस्य वीर्येण सहसा चत्वारो भुवि पाण्डवाः २०
निःसृत्य जतुगेहाद्वै हिडिम्बात् पुरुषादकात् ।
यश्चैषामभवद्द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ २१
याज्ञसेनीमथो यत्र सिन्धुराजोऽपकृष्टवान् ।
तत्रैषामभवद्द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ २२
यश्च तान् सङ्गतान् सर्वान् पाण्डवान् वारणावते।
दह्यतो मोचयामास तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ २३
कृष्णायां चरता प्रीतिं येन क्रोधवशा हताः ।
प्रविश्य विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ॥ २४
यस्य नागायुतैर्वीर्यं भुजयोः सारमर्पितम् ।
तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ २५
कृष्णद्वितीयो विक्रम्य तुष्ट्यर्थं जातवेदसः ।
अजयद्यः पुरा वीरो युध्यमानं पुरन्दरम् ॥ २६
यः स साक्षान्महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम् ।
तोषयामास युद्धेन देवदेवमुमापतिम् ॥ २७
यश्च सर्वान् वशे चक्रे लोकपालान् धनुर्धरः ।
तेन वो विजयेनाजौ पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ २८
यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् ।
स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः २९
तेन वो दर्शनीयेन वीरेणातिधनुर्भृता ।
माद्रीपुत्रेण कौरव्य पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३०
यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाऽजयत् ।
तेन वः सहदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३१
यस्य वीर्येण सदृशाश्चत्वारो भुवि मानवाः ।
अश्वत्थामा धृष्टकेतू रुक्मी प्रद्युम्न एव च ॥ ३२
तेन वः सहदेवेन युद्धं राजन् महात्ययम् ।
यवीयसा नृवीरेण माद्रीनन्दिकरेण च ॥ ३३
तपश्चचार या घोरं काशिकन्या पुरा सती ।
भीष्मस्य वधमिच्छन्ती प्रेत्यापि भरतर्षभ ॥ ३४
पाञ्चालस्य सुता जज्ञे दैवाच्च स पुनः पुमान् ।
स्त्रीपुंसोः पुरुषव्याघ्र यः स वेद गुणागुणान् ३५
यः कलिङ्गान् समापेदे पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
शिखण्डिना वः कुरवः कृतास्त्रेणाभ्ययुञ्जत ॥ ३६
यं यक्षः पुरुषं चक्रे भीष्मस्य निधनेच्छया ।
महेष्वासेन रौद्रेण पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३७
महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
आमुक्तकवचाः शूरास्तैश्च वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ३८
यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान् सत्यविक्रमः ।
तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन सङ्गरः ॥ ३९
य आसीच्छरणं काले पाण्डवानां महात्मनाम् ।
रणे तेन विराटेन भविता वः समागमः ॥ ४०
यः स काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः ।
स तेषामभवद्योद्धा तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ४१
शिशुभिर्दुर्जयैः सङ्ख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः ।
आशीविषसमस्पर्शैः पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४२
यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे ।
तेनाभिमन्युना सङ्ख्ये पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४३
यश्चैवाप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः ।
दुःसहः समरे क्रुद्धः शैशुपालिर्महारथः ॥ ४४
तेन वश्चेदिराजेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
अक्षौहिण्या परिवृतः पाण्डवान्योऽभिसंश्रितः ॥४५
यः संश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।
तेन वो वासुदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४६
तथा चेदिपतेर्भ्राता शरभो भरतर्षभ ।
करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ४७
जारासन्धिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ ।
युद्धेऽप्रतिरथे वीरौ पाण्डवार्थे व्यवस्थितौ ॥ ४८
द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः ।
त्यक्तात्मा पाण्डवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः
एते चान्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः ।
शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः॥ ५०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सिन्धुराजो जयद्रथः ॥ २२ ॥ विजयेन अर्जुनेन ॥ २८ ॥ करकर्षेण करकर्षसंज्ञेन भ्रात्रा ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

धृतराष्ट्र उवाच ।
सर्व एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः ।
एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः ॥ १
भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं सञ्जायते महत् ।
क्रुद्धादमर्षणात्तात व्याघ्रादिव महारुरोः ॥ २
जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ।
भीतो वृकोदरात्तात सिंहात् पशुरिवापरः ॥ ३
न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः ।
सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद्युधि ॥ ४
अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डवः ।
अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः ॥ ५
महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ ६
उरुग्राहगृहीतानां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
कुरूणामृषभो युद्धे दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ७
अष्टास्रिमायसीं घोरां गदां काञ्चनभूषणाम् ।
मनसाऽहं प्रपश्यामि ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥ ८
यथा मृगाणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत् ।
मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति ॥ ९
सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः ।
बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येऽपि रभसः सदा ॥ १०
उद्वेपते मे हृदयं ये मे दुर्योधनादयः ।
बाल्येऽपि तेन युध्यन्तो वारणेनेव मर्दिताः ॥ ११
तस्य वीर्येण सङ्क्लिष्टा नित्यमेव सुता मम ।
स एव हेतुर्भेदस्य भीमो भीमपराक्रमः ॥ १२
ग्रसमानमनीकानि नरवारणवाजिनाम् ।
पश्यामीवाग्रतो भीमं क्रोधमूर्छितमाहवे ॥ १३
अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।
महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद्भीममाहवे ॥ १४
सञ्जयाचक्ष्व मे शूरं भीमसेनममर्षणम् ।
अतिलाभं तु मन्येऽहं यत्तेन रिपुघातिना ॥ १५
तदैव न हताः सर्वे पुत्रा मम मनस्विना ।
येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः ॥ १६
कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यति ।
न स जातु वशे तस्थौ मम बाल्येऽपि सञ्जय ॥ १७
किं पुनर्मम दुष्पुत्रैः क्लिष्टः सम्प्रति पाण्डवः ।
निष्ठुरो रोषणोऽत्यर्थं भज्येतापि न संनमेत् ।
तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद्वृकोदरः ॥ १८
शूरस्तथाऽप्रतिबलो गौरस्ताल इवोन्नतः ।
प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाधिकोऽर्जुनात् ॥ १९
जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनात्येति कुञ्जरान् ।
अव्यक्तजल्पी मध्वक्षो मध्यमः पाण्डवो बली ॥ २०
इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात् पुरा ।
रूपतो वीर्यतश्चैव याथातथ्येन पाण्डवः ॥ २१
आयसेन स दण्डेन रथान्नागान्नरान् हयान् ।
हनिष्यति रणे क्रुद्धो रौद्रः क्रूरपराक्रमः ॥ २२
अमर्षी नित्यसंरब्धो भीमः प्रहरतां वरः ।
मया तात प्रतीपानि कुर्वन् पूर्वं विमानितः ॥ २३
निष्कर्णामायसीं स्थूलां सुपार्श्वां काञ्चनीं गदाम् ।
शतघ्नीं शतनिर्ह्रादां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥ २४
अपारमप्लवागाधं समुद्रं शरवेगिनम् ।
भीमसेनमयं दुर्गं तात मन्दास्तितीर्षवः ॥ २५
क्रोशतो मे न शृण्वन्ति बालाः पण्डितमानिनः ।
विषमं न हि मन्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः ॥ २६
संयुगं ये गमिष्यन्ति नररूपेण मृत्युना ।
नियतं चोदिता धात्रा सिंहेनेव महामृगाः ॥ २७
शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्रिममितौजसम् ।
प्रहितां दुःखसंस्पर्शां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥
गदां भ्रामयतस्तस्य भिन्दतो हस्तिमस्तकान् ।
सृक्किणी लेलिहानस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः ॥ २९
उद्दिश्य नागान् पततः कुर्वतो भैरवान्रवान् ।
प्रतीपं पततो मत्तान् कुञ्जरान् प्रतिगर्जतः ॥ ३०
विगाह्य रथमार्गेषु वरानुद्दिश्य निघ्नतः ।
अग्नेः प्रज्वलितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजा ॥ ३१

---

५१

**सर्वे इति** ॥ १ ॥ महारुरोः महामृगस्य ॥ २ ॥ अनर्महासी नर्म वृथोपहासः तदन्यो हासः सत्यमेव कृत्वा शत्रूनुपहसतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ उरुग्राहः महानिर्बन्धस्तेन गृहीतानां वशीकृतानाम् ॥ ७ ॥ रभसः वेगवान् ॥ १० ॥ संहते क्रोधेन ग्रथिते भ्रुवौ यस्य संहतभ्रूः ॥ १८ ॥ **इतीति** । पुरा पुराणं निकटेऽतिदृढमिति वाऽर्थः । 'पुरा पुराणेऽतिदृढे' इति **मेदिनी** । 'पुरा भाविपुराणयोः । प्रबन्धे निकटेऽतीते' इति **विश्वलोचनः** ॥ २१ ॥ निष्कर्णामवक्रां तिर्यग्भावहीनां शतनिर्ह्रादां महाशब्दवतीम् ॥ २४ ॥ शैक्यां शिक्यस्थाम् । अधःपतनेन भूमिविदारणशङ्कया शिक्ये स्थापिताम् ॥ २८ ॥

वीथीं कुर्वन्महाबाहुर्द्रावयन्मम वाहिनीम् ।
नृत्यन्निव गदापाणिर्युगान्तं दर्शयिष्यति ॥ ३२
प्रभिन्न इव मातङ्गः प्रभञ्जन् पुष्पितान् द्रुमान् ।
प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः ॥ ३३
कुर्वन् रथान् विपुरुषान् विसारथिहयध्वजान् ।
आरुजन् पुरुषव्याघ्रो रथिनः सादिनस्तथा ॥ ३४
गङ्गावेग इवानूपांस्तीरजान् विविधान् द्रुमान् ।
प्रभङ्क्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मम सञ्जय ॥ ३५
दिशो नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनभयार्दिताः ।
मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव सञ्जय ॥ ३६
येन राजा महावीर्यः प्रविश्यान्तःपुरं पुरा ।
वासुदेवसहायेन जरासन्धो निपातितः ॥ ३७
कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासन्धेन धीमता ।
मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता ॥ ३८
भीष्मप्रतापात् कुरवो नयेनान्धकवृष्णयः ।
यत्र तस्य वशे जग्मुः केवलं दैवमेव तत् ॥ ३९
स गत्वा पाण्डुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना ।
अनायुधेन वीरेण निहतः किं ततोऽधिकम् ॥४०
दीर्घकालसमासक्तं विषमाशीविषो यथा ।
स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम सञ्जय ॥ ४१
महेन्द्र इव वज्रेण दानवान् देवसत्तमः ।
भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान् ४२
अविषह्यमनावार्यं तीव्रवेगपराक्रमम् ।
पश्यामीवातिताम्राक्षमापतन्तं वृकोदरम् ॥ ४३
अगदस्याप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः ।
बाहुभ्यां युद्ध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥४४
भीष्मो द्रोणश्च विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा ।
जानन्त्येते यथैवाहं वीर्यज्ञस्तस्य धीमतः ॥ ४५
आर्यव्रतं तु जानन्तः सङ्गरान्तं विधित्सवः ।
सेनामुखेषु स्थास्यन्ति मामकानां नरर्षभाः ॥४६
बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः ।
पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत्सुतान् ४७
ते पुराणं महेष्वासा मार्गमैन्द्रं समास्थिताः ।
त्यक्ष्यन्ति तुमुले प्राणान् रक्षन्तः पार्थिवं यशः ॥
यथैषां मामकास्तात तथैषां पाण्डवा अपि ।
पौत्रा भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च
ये त्वस्मदाश्रयं किञ्चिद्दत्तमिष्टं च सञ्जय ।
तस्यापचितिमार्यत्वात् कर्तारः स्थविरास्त्रयः ५०
आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः ।
निधनं क्षत्रियस्याजौ वरमेवाहुरुत्तमम् ॥ ५१
स वै शोचामि सर्वान् वै ये युयुत्सन्ति पाण्डवैः
विक्रुष्टं विदुरेणादौ तदेतद्भयमागतम् ॥ ५२
न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य सञ्जय ।
भवत्यतिबलं ह्येतज्ज्ञानस्याप्युपघातकम् ॥ ५३
ऋषयो ह्यपि निर्मुक्ताः पश्यन्तो लोकसंग्रहान् ।
सुखैर्भवन्ति सुखिनस्तथा दुःखेन दुःखिताः ५४
किं पुनर्मोहमासक्तस्तत्र तत्र सहस्रधा ।
पुत्रेषु राज्यदारेषु पौत्रेष्वपि च बन्धुषु ॥ ५५
संशये तु महत्यस्मिन् किं नु मे क्षममुत्तरम् ।
विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिन्तयन् ५६
द्यूतप्रमुखमाभाति कुरूणां व्यसनं महत् ।
मन्दैनैश्वर्यकामेन लोभात् पापमिदं कृतम् ॥ ५७
मन्ये पर्यायधर्मोऽयं कालस्यात्यन्तगामिनः ।
चक्रे प्रधिरिवासक्तो नास्य शक्यं पलायितुम् ५८
किन्नु कुर्यां कथं कुर्यां क्व नु गच्छामि सञ्जय ।
एते नश्यन्ति कुरवो मन्दाः कालवशं गताः ५९
अवशोऽहं तदा तात पुत्राणां निहते शते ।
श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत् ॥

यथा निदाघे ज्वलनः समिद्धो
दहेत् कक्षं वायुना चोद्यमानः ।
गदाहस्तः पाण्डवो वै तथैव
हन्ता मदीयान् सहितोऽर्जुनेन ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

वीथीं रथमार्गम् ॥३२॥ अनूपान् सजलदेशे स्थितान् ॥३५॥ अगदस्य गदाहीनस्य ॥४४॥ सङ्गरे अन्तं स्वस्य नाशम् । स्थास्यन्ति भीष्मादयः ॥ ४६ ॥ ऐन्द्रं मार्गं स्वर्गमार्गम् ॥ ४८ ॥ अपचितिं निष्कृतिम् ॥ ५० ॥ विक्रुष्टमुच्चैरुक्तम् ॥ ५२ ॥ एतत् भावि दुःखं अतिबलं ज्ञानेन अनिवार्यम् ॥ ५३ ॥ निर्मुक्ताः जीवन्मुक्ताः ॥ ५४ ॥ क्षमं शक्यमुत्तरमुत्तरकार्यं प्रतीकारः ॥ ५६ ॥ पर्यायधर्मः विपरीतधर्मः । प्रधिर्नेमिः । अस्य कालवशस्य । तृतीयार्थे षष्ठी ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

धृतराष्ट्र उवाच ।
यस्य वै नानृता वाचः कदाचिदनुशुश्रुम ।
त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद्योद्धा यस्य धनञ्जयः १
तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अनिशं चिन्तयानोऽपि यः प्रतीयाद्रथेन तम् ॥२
अस्यतः कर्णिनालीकान् मार्गणान् हृदयाच्छिदः ।
प्रत्येता न समः कश्चिद्युधि गाण्डीवधन्वनः ३
द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वीरौ नरर्षभौ ।
कृतास्त्रौ बलिनां श्रेष्ठौ समरेष्वपराजितौ ॥ ४
महान् स्यात् संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम
घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः ।
समर्थो बलवान् पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः ।
भवेत् सुतुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः ॥ ६
सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे प्राप्ता महद्यशः ।
अपि सर्वामरैश्वर्यं त्यजेयुर्न पुनर्जयम् ॥ ७
वधे नूनं भवेच्छान्तिस्तयोर्वा फाल्गुनस्य च ।
न तु हन्ताऽर्जुनस्यास्ति जेता चास्य न विद्यते८
मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मन्दान् प्रति य उत्थितः
अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च९
एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य ह ।
त्रयस्त्रिंशत्समाऽऽहूय खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १०
जिगाय च सुरान् सर्वान्नास्य विद्मः पराजयम् ।
यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ॥ ११
ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा ।
कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गाण्डिवं धनुः ॥ १२
युगपत्त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुम ।
नैवास्ति नो धनुस्तादृक् न योद्धा न च सारथिः
तच्च मन्दा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः ।
शेषयेदशनिर्दीप्तो विपतन्मूर्ध्नि सञ्जय ॥ १४
न तु शेषं शरास्तात कुर्युरस्ताः किरीटिना ।
अपि चास्यन्निवाभाति निघ्नन्निव धनञ्जयः ॥ १५
उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः ।
अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः ॥ १६
गाण्डीवोत्थं दहेताजौ पुत्राणां मम वाहिनीम् ।
अपि सारथ्यघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः ॥ १७
वित्रस्ता बहुधा सेना भारती प्रतिभाति मे ।
यथा कक्षं महानग्निः प्रदहेत् सर्वतश्चरन् ।
महार्चिरनिलोद्धूतस्तद्वद्धक्ष्यति मामकान् ॥ १८
यदोद्वमन्निशितान् बाणसङ्घां-
स्तानाततायी समरे किरीटी ।
सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा
यथा भवेत्तद्वदपारणीयः ॥ १९
यदा ह्यभीक्ष्णं सुबहून् प्रकारान्
श्रोताऽस्मि तानावसथे कुरूणाम् ।
तेषां समन्ताच्च तथा रणाग्रे
क्षयः किलायं भरतानुपैति ॥ २०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

धृतराष्ट्र उवाच ।
यथैव पाण्डवाः सर्वे पराक्रान्ता जिगीषवः ।
तथैवाभिसरास्तेषां त्यक्तात्मानो जये धृताः ॥ १
त्वमेव हि पराक्रान्तानाचक्षीथाः परान्मम ।
पञ्चालान्केकयान्मत्स्यान्मागधान्वत्सभूमिपान् ।

---

५२

**यस्येति** । स धनञ्जयः यस्य योद्धेति तच्छब्दाध्याहारेण पूरणीयम् ॥१॥ तस्य तं प्रति योद्धारं न पश्यामि य एनं प्रतीयादित्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ २ ॥ घृणी कृपावान् भीमादिषु । प्रमादी अन्ते विद्यां न स्मरिष्यतीति भावः ॥ ५ ॥ अपराजयस्तेषामिति शेषः॥ ६ ॥ तयोः कर्णद्रोणयोर्वधे अस्मदीयानां शान्तिः फाल्गुनस्य वधे तु परेषामित्यर्थः ॥ ८ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समाः वर्षाणि अतीता इत्यर्थः । सान्धिरार्षः ॥ १० ॥ अस्ताः क्षिप्ताः ॥ १५ ॥ कुरूणां प्रकारान् छेदभेदपलायनादीनावसथे गृहे श्रोताऽस्मि श्रोष्यामि ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

५३

**यथैवेति** । अभिसराः पुरोगाः ॥ १ ॥

यश्च सेन्द्रानिमाँल्लोकानिच्छन् कुर्याद्वशे बली ।
स स्रष्टा जगतः कृष्णः पाण्डवानां जये धृतः ३
समस्तामर्जुनाद्विद्यां सात्यकिः क्षिप्रमाप्तवान् ।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपन् शरान् ॥ ४
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः क्रूरकर्मा महारथः ।
मामकेषु रणं कर्ता बलेषु परमास्त्रवित् ॥ ५
युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात् ।
यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ॥ ६
अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जालं विततमन्तरा ।
न मे सैन्यास्तरिष्यन्ति ततः क्रोशामि सञ्जय ॥
दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान् ब्रह्मवर्चसी ।
मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पाण्डुनन्दनः ॥ ८
मित्रामात्यैः सुसंपन्नः संपन्नो युद्धयोजकैः ।
भ्रातृभिः श्वशुरैर्वीरैरुपपन्नो महारथैः ॥ ९
धृत्या च पुरुषव्याघ्रो नैभृत्येन च पाण्डवः ।
अनृशंसो वदान्यश्च ह्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १०
बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
तं सर्वगुणसम्पन्नं समिद्धमिव पावकम् ॥ ११
तपन्तमभि को मन्दः पतिष्यति पतङ्गवत् ।
पाण्डवाग्निमनावार्यं मुमूर्षुर्नष्टचेतनः ॥ १२
तनुरुच्चः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ १३
तैरयुद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत ।
युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् १४
एषा मे परमा बुद्धिर्यया शाम्यतिमे मनः ।
यदि त्वयुद्धमिष्टं वो वयं शान्त्यै यतामहे ॥ १५
न तु नः क्लिश्यमानानामुपेक्षेत युधिष्ठिरः ।
जुगुप्सति ह्यधर्मेण मामेवोद्दिश्य कारणम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

सञ्जय उवाच ।

एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत ।
युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गाण्डीवेन प्रदृश्यते ॥ १
इदं तु नाभिजानामि तव धीरस्य नित्यशः ।
यत् पुत्रवशमागच्छेस्तत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ॥ २
नैष कालो महाराज तव शश्वत् कृतागसः ।
त्वया ह्येवादितः पार्था निकृता भरतर्षभ ॥ ३
पिता श्रेष्ठः सुहृद्यश्च सम्यक् प्रणिहितात्मवान् ।
आस्थेयं हि हितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ॥ ४
इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान् ।
द्यूतकाले महाराज स्मयसे स्म कुमारवत् ॥ ५
परुषाण्युच्यमानांश्च पुरा पार्थानुपेक्षसे ।
कृत्स्नं राज्यं जयन्तीति प्रपातं नानुपश्यसि ॥ ६
पित्र्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते सजाङ्गलाः ।
अथ वीरैर्जितामुर्वीमखिलां प्रत्यपद्यथाः ॥ ७
बाहुवीर्यार्जिता भूमिस्तव पार्थैर्निवेदिता ।
मयेदं कृतमित्येव मन्यसे राजसत्तम ॥ ८
ग्रस्तान् गन्धर्वराजेन मज्जतो ह्यप्लवेऽम्भसि ।
आनिनाय पुनः पार्थः पुत्रांस्ते राजसत्तम ॥ ९
कुमारवच्च स्मयसे द्यूते विनिकृतेषु यत् ।
पाण्डवेषु वने राजन् प्रव्रजत्सु पुनः पुनः ॥ १०

जगतः स्रष्टा कृष्णः ॥३॥ जालमन्नमंतरा सैन्यमध्ये ॥७॥ युद्धयोजकैः युद्धोद्योगिभिः ॥ ९ ॥ नैभृत्येन मन्त्रगुप्त्या ॥१०॥ तमभिमुखः पतिष्यति ॥१२॥ तनुरुच्च इति पाठेऽपि तनुः राज्यापहारादल्पः स्वतस्तु उच्च एव शिखी वन्हिरिव वन्हिः ॥१३॥ क्लिश्यमानानां–कर्माणि षष्ठी–अस्मान् न उपेक्षेत । मामेव अधर्मेण कलहस्य कारणं उद्दिश्य जुगुप्सति निन्दति स कथं प्रार्थितः सन् कलहं करिष्यतीति भावः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

एवमिति ॥ १ ॥ एष कालः एषा कलना बुद्धिस्तव नैव स्यास्यति ॥ ३ ॥ प्रणिहितात्मवान् सावधानचित्तः ॥ ४ ॥ स्मयसे तप्यसे ॥ ५ ॥ अस्यतां बाणान् क्षिपतां मध्ये ॥ १२ ॥

प्रवर्षतः शरव्रातानर्जुनस्य सितान् बहून् ।
अप्यर्णवा विशुष्येयुः किं पुनर्मांसयोनयः ॥ ११
अस्यतां फाल्गुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम् ।
केशवः सर्वभूतानामायुधानां सुदर्शनम् ॥ १२
वानरो रोचमानश्च केतुः केतुमतां वरः ।
एवमेतानि सरथो बहून् श्वेतहयो रणे ॥ १३
क्षपयिष्यति नो राजन् कालचक्रमिवोद्यतम् ।
तस्याद्य वसुधा राजन्निखिला भरतर्षभ ॥ १४
यस्य भीमार्जुनौ योधौ स राजा राजसत्तम ।
तथा भीमहतप्रायां मज्जन्तीं तव वाहिनीम् ॥ १५
दुर्योधनमुखा दृष्ट्वा क्षयं यास्यन्ति कौरवाः ।
न भीमार्जुनयोर्भीता लप्स्यन्ते विजयं विभो ॥ १६
तव पुत्रा महाराज राजानश्चानुसारिणः ।
मत्स्यास्त्वामद्य नार्चन्ति पञ्चालाश्च सकेकयाः ॥
शाल्वेयाः शूरसेनाश्च सर्वे त्वामवजानते ।
पार्थं ह्येते गताः सर्वे वीर्यज्ञास्तस्य धीमतः ॥ १८
भक्त्या ह्यस्य विरुध्यन्ते तव पुत्रैः सदैव ते ।
अनर्हानेव तु वधे धर्मयुक्तान् विकर्मणा ॥ १९
योऽक्लेशयत् पाण्डुपुत्रान् यो विद्वेष्ट्यधुनाऽपि वै
सर्वोपायैर्नियन्तव्यः सानुगः पापपूरुषः ॥ २०
तव पुत्रो महाराज नानुशोचितुमर्हसि ।
द्यूतकाले मया चोक्तं विदुरेण च धीमता ॥ २१
यदिदं ते विलपितं पाण्डवान् प्रति भारत ।
अनीशेनेव राजेन्द्र सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

दुर्योधन उवाच ।
न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम् ।
समर्थाः स्म परान् जेतुं बलिनः समरे विभो ॥ १
वने प्रव्राजितान् पार्थान् यदाऽऽयान्मधुसूदनः ।
महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना ॥ २
केकया धृष्टकेतुश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
राजानश्चान्वयुः पार्थान् बहवोऽन्येऽनुयायिनः ३
इन्द्रप्रस्थस्य चादूरात् समाजग्मुर्महारथाः ।
व्यगर्हयंश्च सङ्गम्य भवन्तं कुरुभिः सह ॥ ४
ते युधिष्ठिरमासीनमजिनैः प्रतिवासितम् ।
कृष्णप्रधानाः संहत्य पर्युपासन्त भारत ॥ ५
प्रत्यादानं च राज्यस्य कार्यमूचुर्नराधिपाः ।
भवतः सानुबन्धस्य समुच्छेदं चिकीर्षवः ॥ ६
श्रुत्वा चैवं मयोक्तास्तु भीष्मद्रोणकृपास्तदा ।
ज्ञातिक्षयभयाद्राजन् भीतेन भरतर्षभ ॥ ७
ततः स्थास्यन्ति समये पाण्डवा इति मे मतिः ।
समुच्छेदं हि नः कृत्स्नं वासुदेवश्चिकीर्षति ॥ ८
ऋते च विदुरात् सर्वे यूयं वध्या मता मम ।
धृतराष्ट्रस्तु धर्मज्ञो न वध्यः कुरुसत्तमः ॥ ९
समुच्छेदं च कृत्स्नं नः कृत्वा तात जनार्दनः ।
एकराज्यं कुरूणां स्म चिकीर्षति युधिष्ठिरे ॥ १०
तत्र किं प्राप्तकालं नः प्रणिपातः पलायनम् ।
प्राणान् वा संपरित्यज्य प्रतियुध्यामहे परान् ११
प्रतियुद्धे तु नियतः स्यादस्माकं पराजयः ।
युधिष्ठिरस्य सर्वे हि पार्थिवा वशवर्तिनः ॥ १२
विरक्तराष्ट्राश्च वयं मित्राणि कुपितानि नः ।
धिक्कृताः पार्थिवैः सर्वैः स्वजनेन च सर्वशः ॥ १३
प्रणिपाते न दोषोऽस्ति सन्धिर्नः शाश्वतीः समाः
पितरं त्वेव शोचामि प्रज्ञानेत्रं जनाधिपम् ॥ १४

---

भीमेन भीमसेनेन हतप्रायाम् ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

**न भेतव्यमिति** ॥ १ ॥ यदाऽऽयात् आगतस्तदा भीष्मद्रोणकृपाः मया उक्ता इति षष्ठेनान्वयः ॥ २ ॥ मम मत्संबन्धिनः ॥ ९ ॥ प्रणिपातो वा सन्ध्यर्थः । पलायनं वा लज्जया ॥ ११ ॥ प्रणिपाते दोषो वंशक्षयकृतो नास्ति किं तु सन्धिरेव भवति तथापि मम युद्धमेव रोचते इत्याशयेनाह—**पितरमिति** ॥ १४ ॥

मत्कृते दुःखमापन्नं क्लेशं प्राप्तमनन्तकम् ।
कृतं हि तव पुत्रैश्च परेषामवरोधनम् ।
मत्प्रियार्थं पुरैवैतद्विदितं ते नरोत्तम ॥ १५
ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सामात्यस्य महारथाः ।
वैरं प्रतिकरिष्यन्ति कुलोच्छेदेन पाण्डवाः ॥ १६
ततो द्रोणोऽब्रवीद्भीष्मः कृपो द्रौणिश्च भारत ।
मत्वा मां महतीं चिन्तामास्थितं व्यथितेन्द्रियम्
अभिद्रुग्धाः परे चेन्नो न भेतव्यं परन्तप ।
असमर्थाः परे जेतुमस्मान् युधि समास्थितान् ॥
एकैकशः समर्थाः स्मो विजेतुं सर्वपार्थिवान् ।
आगच्छन्तु विनेष्यामो दर्पमेषां शितैः शरैः ॥१९
पुरैकेन हि भीष्मेण विजिताः सर्वपार्थिवाः ।
मृते पितर्यतिक्रुद्धो रथेनैकेन भारत ॥ २०
जघान सुबहूंस्तेषां संरब्धः कुरुसत्तमः ।
ततस्ते शरणं जग्मुर्देवव्रतमिमं भयात् ॥ २१
स भीष्मः सुसमर्थोऽयमस्माभिः सहितो रणे ।
परान् विजेतुं तस्मात्ते व्येतु भीर्भरतर्षभ ॥ २२
इत्येषां निश्चयो ह्यासीत्तत्कालेऽमिततेजसाम् ।
पुरा परेषां पृथिवी कृत्स्नाऽऽसीद्वशवर्तिनी ॥२३
अस्मान् पुनरमी नाद्य समर्था जेतुमाहवे ।
छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पाण्डवाः २४
अस्मत्संस्था च पृथिवी वर्तते भरतर्षभ ।
एकार्थाः सुखदुःखेषु समानीताश्च पार्थिवाः २५
अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं वा परन्तप ।
मदर्थे पार्थिवाः सर्वे तद्विद्धि कुरुसत्तम ॥ २६
उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसन्तीह दुःखितम् ।
विलपन्तं बहुविधं भीतं परविकत्थने ॥ २७
एषां ह्येकैकशो राज्ञां समर्थः पाण्डवान् प्रति ।
आत्मानं मन्यते सर्वो व्येतु ते भयमागतम् ॥ २८
जेतुं समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात्
हन्तुमक्षय्यरूपेयं ब्रह्मणोऽपि स्वयंभुवः ॥ २९
युधिष्ठिरः पुरं हित्वा पञ्च ग्रामान् स याचति ।
भीतो हि मामकात् सैन्यात् प्रभावाच्चैव मे विभो॥
समर्थं मन्यसे यच्च कुन्तीपुत्रं वृकोदरम् ।
तन्मिथ्या न हि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत ३१

मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
नासीत् कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन३२
युक्तो दुःखोषितश्चाहं विद्यापारगतस्तथा ।
तस्मान्न भीमान्नान्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित् ३३
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ।
संकर्षणस्य भद्रं ते यत्तदैनमुपावसम् ॥ ३४
युद्धे संकर्षणसमो बलेनाभ्यधिको भुवि ।
गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद्युधि ॥ ३५
एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप ।
स एवैनं नयेद्घोरं क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम् ॥ ३६
इच्छेयं च गदाहस्तं राजन् द्रष्टुं वृकोदरम् ।
सुचिरं प्रार्थितो ह्येष मम नित्यं मनोरथः ॥ ३७
गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः ।
विशीर्णगात्रः पृथिवीं परासुः प्रपतिष्यति ॥ ३८
गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः ।
सकृन्मया विदीर्येत गिरिः शतसहस्रधा ॥ ३९
स चाप्येतद्विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा ।
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ॥ ४०
तत्ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे ।
व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन् विमना भव ॥ ४१
तस्मिन् मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः ।
तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्स्यन्ति भरतर्षभ ॥ ४२
भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिन्धुराजो जयद्रथः
एकैक एषां शक्तस्तु हन्तुं भारत पाण्डवान् ।
समेतास्तु क्षणेनैतान्नेष्यन्ति यमसादनम् ।
समग्रा पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनञ्जयम् ॥ ४४
कस्मादशक्ता निर्जेतुमिति हेतुर्न विद्यते ।
शरव्रातैस्तु भीष्मेण शतशो निचितोऽवशः ॥४५
द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गन्ता पार्थो यमक्षयम् ।
पितामहोऽपि गाङ्गेयः शान्तनोरधि भारत ॥ ४६
ब्रह्मर्षिसदृशो जज्ञे देवैरपि सुदुःसहः ।
न हन्ता विद्यते चापि राजन् भीष्मस्य कश्चन ॥
पित्रा ह्युक्तः प्रसन्नेन नाकामस्त्वं मरिष्यसि ।
ब्रह्मर्षेश्च भरद्वाजाद्द्रोणो द्रोण्यामजायत ॥ ४८

हे नरोत्तम धृतराष्ट्र ! तव पुत्रैः अस्माभिः ॥ १५ ॥ प्रतिकरिष्यन्ति प्रतियातयिष्यन्ति ॥ १६ ॥ तत इति पूर्ववृत्तान्तकथनम् ॥ १७ ॥ नः अस्माभिः परे चेत् यद्यपि अभिद्रुग्धाः द्रोहविषयं नीताः तथाऽपि न भेतव्यम् ॥ १८ ॥ समानीताः मयेति शेषः ॥ २५ ॥ परविकत्थने परेषां गुणाख्याने ॥ २७ ॥ ब्रह्मणोऽपि अक्षय्यरूपा हन्तुमशक्या ॥ २९ ॥ युक्तोऽभियोगवान् दुःखोषितः गुरुकुले ॥ ३३ ॥ उपावसं शिष्यत्वेन पर्यचरम् ॥ ३४ ॥ पार्थिवी पृथ्वीसम्बन्धिनी पार्थिवानां राज्ञां वा ॥ ४४ ॥

द्रोणाज्जज्ञे महाराज द्रौणिश्च परमास्त्रवित् ।
कृपश्चाचार्यमुख्योऽयं महर्षेर्गौतमादपि ॥ ४९
शरस्तम्बोद्भवः श्रीमानवध्य इति मे मतिः ।
अयोनिजास्त्रयो ह्येते पिता माता च मातुलः ॥५०
अश्वत्थाम्नो महाराज स च शूरः स्थितो मम ।
सर्व एते महाराज देवकल्पा महारथाः ॥ ५१
शक्रस्यापि व्यथां कुर्युः संयुगे भरतर्षभ ।
नैतेषामर्जुनः शक्त एकैकं प्रति वीक्षितुम् ॥ ५२
सहितास्तु नरव्याघ्रा हनिष्यन्ति धनञ्जयम् ।
भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम ५३
अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोऽसीति भारत ।
कुण्डले रुचिरे चास्तां कर्णस्य सहजे शुभे ॥५४
ते शच्यर्थे महेन्द्रेण याचितः स परंतपः ।
अमोघया महाराज शक्त्या परमभीमया ॥ ५५
तस्य शक्त्योपगूढस्य कस्माज्जीवेद्धनञ्जयः ।
विजयो मे ध्रुवं राजन् फलं पाणाविवाहितम् ॥
अभिव्यक्तः परेषां च कृत्स्नो भुवि पराजयः ।
अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयं प्रयुतं हन्ति भारत ५७
तत्समाश्च महेष्वासा द्रोण-द्रौणि-कृपा अपि ।
संशप्तकानां वृन्दानि क्षत्रियाणां परंतप ॥ ५८
अर्जुनं वयमस्मान् वा निहन्यात् कपिकेतनः ।
तं चालमिति मन्यन्ते सव्यसाचिवधे धृताः ॥५९
पार्थिवाः स भवांस्तेभ्यो ह्यकस्माद्व्यथते कथम् ।
भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत ॥ ६०
परेषां तन्ममाचक्ष्व यदि वेत्थ परंतप ।
पञ्च ते भ्रातरः सर्वे धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ॥६१
परेषां सप्त ये राजन् योधाः सारं बलं मतम् ।
अस्माकं तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः ६२
द्रौणिर्विकर्तनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाल्हिकः ।
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य आवन्त्यौ च जयद्रथः ॥
दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशाम्पते ।
श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ ६४
शलो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः ।
अक्षौहिण्यो हि मे राजन् दशैका च समाहृताः ॥
न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात् पराजयः ।
बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृहस्पतिः ।
परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी ॥ ६६
गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत ।
गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशाम्पते ॥ ६७
एतत् सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत ।
न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि ॥ ६८
इत्युक्त्वा सञ्जयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ।
विवित्सुः प्राप्तकालानि ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ॥ ६९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि दुर्योधनवाक्ये
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

दुर्योधन उवाच ।
अक्षौहिणीः सप्त लब्ध्वा राजभिः सह सञ्जय ।
किं स्विदिच्छति कौन्तेयो युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ॥ १
सञ्जय उवाच ।
अतीव मुदितो राजन् युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमावपि न बिभ्यतः ॥ २
रथं तु दिव्यं कौन्तेयः सर्वा विभ्राजयन् दिशः ।
मंत्रं जिज्ञासमानः सन् बीभत्सुः समयोजयत् ३
तमपश्याम सन्नद्धं मेघं विद्युत्तं यथा ।
समन्तात् समभिध्याय हृष्यमाणोऽभ्यभाषत ॥ ४
पूर्वरूपमिदं पश्य वयं जेष्याम सञ्जय ।
बीभत्सुर्मां यथोवाच तथाऽवैम्यहमप्युत ॥ ५

---

शक्त्या मूल्यभूतया ते कुण्डले याचितः ॥५५॥ तस्य पुरत इति शेषः ॥५६॥ तमर्जुनम् ॥५९॥ तेभ्यः पाण्डवेभ्यः ॥६०॥ त्रिगुणतः त्र्यंशेन हीनं त्रिगुणा त्र्यंशेनाधिका ॥ ६६ ॥ विवित्सुः विज्ञातुमिच्छुः प्राप्तकालानि कर्माणि ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

अक्षौहिणीरिति ॥ १ ॥ मन्त्रमन्त्रप्रयोजकं जिज्ञासमानः परीक्षितुमिच्छन् ॥३॥ तथा अवैमीति च्छेदः ॥५॥

दुर्योधन उवाच ।
प्रशंसस्यभिनन्दंस्तान् पार्थानक्षपराजितान् ।
अर्जुनस्य रथे ब्रूहि कथमश्वाः कथं ध्वजाः ॥ ६
सञ्जय उवाच ।
भौमनः सह शक्रेण बहुचित्रं विशाम्पते ।
रूपाणि कल्पयामास त्वष्टा धाता सदा विभो ७
ध्वजे हि तस्मिन् रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया ।
महाधनानि दिव्यानि महान्ति च लघूनि च॥ ८
भीमसेनानुरोधाय हनूमान् मारुतात्मजः ।
आत्मप्रतिकृतिं तस्मिन् ध्वज आरोपयिष्यति॥ ९
सर्वा दिशो योजनमात्रमन्तरं
स तिर्यगूर्ध्वं च रुरोध वै ध्वजः ।
न संसज्जत्यसौ तरुभिः संवृतोऽपि
तथा हि माया विहिता भौमनेन ॥ १०
यथाऽऽकाशे शक्रधनुः प्रकाशते ।
न चैकवर्णं न च विद्म किं नु तत् ।
तथा ध्वजो विहितो भौमनेन
बह्वाकारं दृश्यते रूपमस्य ॥ ११
यथाऽग्निधूमो दिवमेतिरुद्ध्वा
वर्णान् बिभ्रत्तैजसांश्चित्ररूपान् ।
तथा ध्वजो विहितो भौमनेन
न चेद्भारो भविता नोत रोधः ॥ १२
श्वेतास्तस्मिन् वातवेगाः सदश्वा
दिव्या युक्ताश्चित्ररथेन दत्ताः ।
भुव्यन्तरिक्षे दिवि वानरेन्द्र
येषां गतिर्हीयते नात्र सर्वा ।
शतं यत्तत्पूर्यते नित्यकालं
हतं हतं दत्तवरं पुरस्तात् ॥ १३
तथा राज्ञो दन्तवर्णा बृहन्तो
रथे युक्ता भान्ति तद्वीर्यतुल्याः ।
ऋक्षप्रख्या भीमसेनस्य वाहा
रथे वायोस्तुल्यवेगा बभूवुः ॥ १४
कल्माषाङ्गास्तित्तिरिचित्रपृष्ठा
भ्रात्रा दत्ताः प्रीयता फाल्गुनेन ।
भ्रातुर्वीरस्य स्वैस्तुरङ्गैर्विशिष्टा
मुदा युक्ताः सहदेवं वहन्ति ॥ १५
माद्रीपुत्रं नकुलं त्वाजमीढ
महेन्द्रदत्ता हरयो वाजिमुख्याः ।
समा वायोर्बलवन्तस्तरस्विनो
वहन्ति वीरं वृत्रशत्रुं यथेन्द्रम् ॥ १६
तुल्यांश्चैभिर्वयसा विक्रमेण
महाजवाश्चित्ररूपाः सदश्वाः ।
सौभद्रादीन् द्रौपदेयान् कुमारान्
वहन्त्यश्वा देवदत्ता बृहन्तः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

धृतराष्ट्र उवाच ।
कांस्तत्र सञ्जयापश्यः प्रीत्यर्थेन समागतान् ।
ये योत्स्यन्ते पाण्डवार्थे पुत्रस्य मम वाहिनीम्॥१
सञ्जय उवाच ।
मुख्यमन्धकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम् ।
चेकितानं च तत्रैव युयुधानं च सात्यकिम् ॥ २
पृथगक्षौहिणीभ्यां तु पाण्डवानभिसंश्रितौ ।
महारथौ समाख्यातावुभौ पुरुषमानिनौ ॥ ३
अक्षौहिण्याऽथ पाञ्चाल्यो दशभिस्तनयैर्वृतः ।
सत्याजित्प्रमुखैर्वीरैर्धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ४
द्रुपदो वर्धयन् मानं शिखण्डिपरिपालितः ।
उपायात्सर्वसैन्यानां प्रतिच्छाद्य तदा वपुः ॥ ५

---

भौमनो विश्वकर्मा धाता प्रजापतिः ॥ ७ ॥ ते त्वष्टृशक्रधातारः रूपाणि चक्रुः ॥ ८ ॥ रुरोध स्वतेजसेति शेषः ॥ १० ॥ भारो रथे रोधः द्वारादौ द्वयमपि न भवेत् ॥ १२ ॥ यत्तत् अश्वानां शतं हतं पुनः पुनः कतिपयाश्वहननेऽपि दिव्यप्रभावात् शतं पूर्यते यतः पुरस्ताद्दत्तवरम् ॥ १३ ॥ तथा अमराः राज्ञो दन्तवर्णाः श्वेताः रथे युक्ता अश्वाः भान्ति ऋक्षप्रख्याः सप्तर्षितुल्यतेजसः । 'ऋक्षा इति ह स्म वै पुरा सप्त ऋषीनाचक्षते' इति शतपथश्रुतेः । पाठान्तरे ऋश्यो मृगभेदः ॥ १४ ॥ देवदत्ताः चित्ररथेन दत्ताः ॥१७॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

कांस्तत्रेति ॥ १ ॥

विराटः सह पुत्राभ्यां शङ्खेनैवोत्तरेण च ।
सूर्यदत्तादिभिर्वीरैर्मदिराक्षपुरोगमैः ॥ ६
सहितः पृथिवीपालो भ्रातृभिस्तनयैस्तथा ।
अक्षौहिण्यैव सैन्यानां वृतः पार्थं समाश्रितः ॥७
जारासन्धिर्मागधश्च धृष्टकेतुश्च चेदिराट् ।
पृथक् पृथगनुप्राप्तौ पृथगक्षौहिणीवृतौ ॥ ८
केकया भ्रातरः पञ्च सर्वे लोहितकध्वजाः ।
अक्षौहिणीपरिवृताः पाण्डवानभिसंश्रिताः ॥ ९
एतानेतावतस्तत्र तानपश्यं समागतान् ।
ये पाण्डवार्थे योत्स्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्
यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
स तत्र सेनाप्रमुखे धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ११
भीष्मः शांतनवो राजन् भागः क्लृप्तः शिखण्डिनः
तं विराटोऽनुसंयाता सार्धं मत्स्यैः प्रहारिभिः ॥
ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य भागो मद्राधिपो बली ।
तौ तु तत्राब्रुवन् केचिद्विषमौ नो मताविति॥१३
दुर्योधनः सहसुतः सार्धं भ्रातृशतेन च ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भीमसेनस्य भागतः ॥
अर्जुनस्य तु भागेन कर्णो वैकर्तनो मतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १५
अशक्याश्चैव ये केचित् पृथिव्यां शूरमानिनः ।
सर्वांस्तानर्जुनः पार्थः कल्पयामास भागतः ॥ १६
महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
केकयानेव भागेन कृत्वा योत्स्यन्ति संयुगे ॥१७
तेषामेव कृतो भागो मालवाः शाल्वकास्तथा ।
त्रिगर्तानां चैव मुख्यौ यौ तौ संशप्तकाविति १८
दुर्योधनसुताः सर्व तथा दुःशासनस्य च ।
सौभद्रेण कृतो भागो राजा चैव बृहद्बलः ॥ १९
द्रौपदेया महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
धृष्टद्युम्नमुखा द्रोणमभियास्यन्ति भारत ॥ २०
चेकितानः सोमदत्तं द्वैरथे योद्धुमिच्छति ।
भोजं तु कृतवर्माणं युयुधानो युयुत्सति ॥ २१
सहदेवस्तु माद्रेयः शूरः सङ्क्रन्दनो युधि ।
स्वमंशं कल्पयामास श्यालं ते सुबलात्मजम्॥२२
उलूकं चैव कैतव्यं ये च सारस्वता गणाः ।
नकुलः कल्पयामास भागं माद्रवतीसुतः ॥ २३
ये चान्ये पार्थिवा राजन् प्रत्युद्यास्यन्ति सङ्गरे ।
समाह्वानेन तांश्चापि पाण्डुपुत्रा अकल्पयन् ॥ २४
एवमेषामनीकानि प्रविभक्तानि भागशः ।
यत्ते कार्यं सपुत्रस्य क्रियतां तदकालिकम् ॥ २५

धृतराष्ट्र उवाच ।

न सन्ति सर्वे पुत्रा मे मूढा दुर्द्यूतदेविनः ।
येषां युद्धं बलवता भीमेन रणमूर्धनि ॥ २६
राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा ।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम्॥२७
विद्रुतां वाहिनीं मन्ये कृतवैरैर्महात्मभिः ।
तां रणे केऽनुयास्यन्ति प्रभग्नां पाण्डवैर्युधि॥ २८
सर्वे ह्यतिरथाः शूराः कीर्तिमन्तः प्रतापिनः ।
सूर्यपावकयोस्तुल्यास्तेजसा समितिंजयाः ॥ २९
येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः ।
योधौ च पाण्डवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ३०
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ३१
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ।
शिखण्डी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः ॥ ३२
काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृञ्जयाः ।
विराटपुत्रो बभ्रुश्च पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥ ३३
येषामिन्द्रोऽप्यकामानां न हरेत् पृथिवीमिमाम् ।
वीराणां रणधीराणां ये भिन्द्युः पर्वतानपि ॥ ३४
तान् सर्वगुणसम्पन्नानमनुष्यप्रतापिनः ।
क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति सञ्जय ॥ ३५

दुर्योधन उवाच ।

उभौ स्व एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ ।
अथ कस्मात् पाण्डवानामेकतो मन्यसे जयम्३६
पितामहं च द्रोणं च कृपं कर्णं च दुर्जयम् ।
जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च ॥ ३७
सुतेजसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः ।
अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पाण्डवाः ॥३८
सर्वे च पृथिवीपाला मदर्थे तात पाण्डवान् ।
आर्याः शस्त्रभृतः शूराः समर्थाः प्रतिबाधितुम् ३९
न मामकान् पाण्डवास्ते समर्थाः प्रतिवीक्षितुम् ।
पराक्रान्तो ह्यहं पाण्डून् सपुत्रान् योद्धुमाहवे॥४०
मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे ये चिकीर्षन्ति भारत ।
ते तानावारयिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना ॥ ४१

---

समाह्वानेन तत्तन्नामाख्यानेन ॥ २४ ॥ अकालिकं कालविलम्बं विना ॥ २५ ॥ प्रोक्षिताः पशुवत् वधार्थं संस्कृताः कालधर्मणा यजमानेन वा ॥ २७ ॥ ऐणेयान् हरिणशावान् तन्तुना पाशेन ॥ ४१ ॥

महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः ।
अभिद्रुता भविष्यन्ति पाञ्चालाः पाण्डवैः सह४२

धृतराष्ट्र उवाच ।

उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष सञ्जय ।
न हि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ४३
जानाति हि यथा भीष्मः पाण्डवानां यशस्विनाम्
बलवत्तां सपुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम् ॥ ४४
यतो नारोचयदयं विग्रहं तैर्महात्मभिः ।
किं तु सञ्जय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम् ॥ ४५
कस्तांस्तरस्विनो भूयः सन्दीपयति पाण्डवान् ।
अर्चिष्मतो महेष्वासान् हविषा पावकानिव॥४६

सञ्जय उवाच ।

धृष्टद्युम्नः सदैवैतान् सन्दीपयति भारत ।
युद्ध्यध्वमिति मा भैष्ट युद्धाद्भरतसत्तमाः ॥ ४७
ये केचित्पार्थिवास्तत्र धार्तराष्ट्रेण *संवृताः ।
युद्धे समागमिष्यन्ति तुमले शस्त्रसङ्कुले ॥ ४८
तान् सर्वानाहवे क्रुद्धान् सानुबन्धान् समागतान्
अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिवोदकात् ४९
भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम् ।
एतांश्चापि *निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम्॥५०
तथा ब्रुवन्तं धर्मात्मा प्राह राजा युधिष्ठिरः ।
तव धैर्यं च वीर्यं च पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ५१
सर्वे समधिरूढाः स्म सङ्ग्रामान्नः समुद्धर ।
जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ५२
समर्थमेकं+ पर्याप्तं कौरवाणां विनिग्रहे ।
पुरस्तादुपयातानां कौरवाणां युयुत्सताम् ॥ ५३
भवता यद्विधातव्यं तन्नः श्रेयः परन्तप ।
सङ्ग्रामादपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम् ॥ ५४
पौरुषं दर्शयन् शूरो यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ।
क्रीणीयात्तं सहस्रेण इति नीतिमतां मतम्॥ ५५
स त्वं शूरश्च वीरश्च विक्रान्तश्च नरर्षभ ।
भयार्तानां परित्राता संयुगेषु न संशयः ॥ ५६
एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे ।
धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वचो गतसाध्वसम् ।
सर्वान् जनपदान् सूत योधा दुर्योधनस्य ये॥ ५७
सबाह्लिकान् कुरून् ब्रूयाः प्रातिपेयान् शरद्वतः ।
सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रं जयद्रथम् ॥ ५८
दुःशासनं विकर्णं च तथा दुर्योधनं नृपम् ।
भीष्मं च ब्रूहि गत्वा त्वमाशु गच्छ च मा चिरम्

युधिष्ठिरः साधु नैवाभ्युपेयो
मा वोऽवधीदर्जुनो देवगुप्तः ।
राज्यं दद्ध्वं धर्मराजस्य तूर्णं
याचध्वं वै पाण्डवं लोकवीरम् ॥ ६०

नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन ।
यथाविधः सव्यसाची पाण्डवः सत्यविक्रमः ६१
देवैर्हि संभृतो दिव्यो रथो गाण्डीवधन्वनः ।
न स जेयो मनुष्येण मा स्म कृद्ध्वं मनो युधि ६२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

धृतराष्ट्र उवाच ।

क्षत्रतेजा ब्रह्मचारी कौमारादपि पाण्डवः ।
तेन संयुगमेष्यन्ति मन्दा विलपतो मम ॥ १
दुर्योधन निवर्तस्व युद्धाद्भरतसत्तम ।
न हि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थमरिन्दम ॥ २
अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ॥ ३
एतद्धि कुरवः सर्वे मन्यन्ते धर्मसंहितम् ।
यत्त्वं प्रशान्तिं मन्येथाः पाण्डुपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४

शरद्वतः आयुष्मतः विरुद्धलक्षणया गतायुष इत्यर्थः ॥ ५८ ॥ दद्ध्वं ददत ॥ ६० ॥ कृद्ध्वं कुरुध्वम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ * संवृता रुद्धाः । * निरोत्स्यामि निरोधविषयीकरिष्यामि। वेला तीरम् । + एकमद्वितीयं समर्थं पर्याप्तमिति पर्यायाभ्यां सामर्थ्यातिशयमाह । समर्थं हितं वा ।

५८

क्षत्रेति ॥ १ ॥

अङ्गेमां समवेक्षस्व पुत्र स्वामेव वाहिनीम् ।
जात एष तवाभावस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ ५
न त्वहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः ।
न च भीष्मो न च द्रोणो नाश्वत्थामा न सञ्जयः
न सोमदत्तो न शलो न कृपो युद्धमिच्छति ।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा ॥ ७
येषु संप्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः ।
ते युद्धं नाभिनन्दन्ति तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥८
न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव ।
दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः ९

दुर्योधन उवाच ।

नाहं भवति न द्रोणे नाश्वत्थाम्नि न सञ्जये ।
न भीष्मे न च काम्बोजे न कृपे न च बाह्लिके१०
सत्यव्रते पुरुमित्रे भूरिश्रवसि वा पुनः ।
अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वयम् ॥ ११
अहं च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै ।
युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥ १२
रथो वेदी स्रुवः खड्गो गदा स्रुक् कवचं सदः ।
चातुर्होत्रं च धुर्या मे शरा दर्भा हविर्यशः १३
आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे ।
विजित्य च समेष्यावो हतामित्रौ श्रिया वृतौ १४
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ।
एते वयं हनिष्यामः पाण्डवान् समरे त्रयः ॥ १५
अहं हि पाण्डवान् हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम्
मां वा हत्वा पाण्डुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम्
त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वं च पार्थिव ।
न जातु पाण्डवैः सार्धं वसेयमहमच्युत ॥ १७
यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष ।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥ १८

धृतराष्ट्र उवाच ।

सर्वान् वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया
ये मन्दमनुयास्यध्वं यान्तं वैवस्वतक्षयम् ॥ १९
रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः ।
वरान् वरान् हनिष्यन्ति समेता युधि पाण्डवाः
+प्रतीपमिव मे भाति युयुधानेन भारती ।
व्यस्ता सीमन्तिनी ग्रस्ता प्रमृष्टा दीर्घबाहुना२१
संपूर्णं पूरयन् भूयो धनं पार्थस्य माधवः ।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत् प्रवपन् शरान्॥ २२
सेनामुखे *प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति ।
तं सर्वे संश्रयिष्यन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २३
यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरान् विनिपातितान् ।
विशीर्णदन्तान् गिर्याभान्भिन्नकुम्भान्सशोणितान्
तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान् ।
भीतो भीमस्य संस्पर्शात् स्मर्ताऽसि वचनस्य मे
निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं रथ-हय-द्विपम् ।
गतिमग्नेरिव प्रेक्ष्य स्मर्ताऽसि वचनस्य मे ॥ २६
महद्वो भयमागामि न चेच्छाम्यथ पाण्डवैः ।
गदया भीमसेनेन हताः शममुपैष्यथ ॥ २७
महावनमिव छिन्नं यदा द्रक्ष्यसि पातितम् ।
बलं कुरूणां भीमेन तदा स्मर्ताऽसि मे वचः॥२८

वैशम्पायन उवाच ।

एतावदुक्त्वा राजा तु सर्वांस्तान् पृथिवीपतीन् ।
अनुभाष्य महाराज पुनः पप्रच्छ सञ्जयम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽ-
ष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

---

जात एष तवाभाव इत्यत्र शम एव महच्छ्रेय इत्याधुनिकः पाठः । तराभ्याव इति पाठे तराणामश्वादीनां वेगवतां वाहनानामभ्यावः सर्वतः खादनं कण्डूरोगाद्युपद्रव इति यावत् । अव-रक्षणगतिकान्तीत्यादेः खादनार्थात् घञ् । आस्राव इति पाठे आस्रावः क्षतम् यानेषूपद्रवः पराजयलक्षणमिति भावः ॥ ५ ॥ चातुर्होत्रं चतुर्णां होतॄणां ऋत्विजां कर्म ॥ १३ ॥ रुरूणामिवेत्यत्र कुरूणां लाटभाषया । अजानामिति पाठो युक्तः । पक्षे कुरूणां मध्ये वरान् वरान् व्याघ्रा इवेति योजना ॥ २० ॥ भारती सेना स्त्रीरूपकेण निर्दिष्टा २१॥ धनं बलम् ॥२२॥ प्राकारमिव भीमं संश्रयिष्यन्ति ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८ ॥

+ प्रतीपमिवेति इवशब्दो भिन्नक्रमः । प्रतीपं प्रातिकूल्येन व्यस्ता सीमन्तिनी स्त्रीव सेना भविष्यतीति मे भाति ।

* प्रयुद्धा नां युध्यमानानां सेनामाभिभविष्यति भीमः ।

## ५९

धृतराष्ट्र उवाच ।

यदब्रूतां महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ १

सञ्जय उवाच ।

शृणु राजन् यथा दृष्टौ यथा कृष्णधनञ्जयौ ।
ऊचतुश्चापि यद्वीरौ तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ २
पादाङ्गुलीरभिप्रेक्षन् प्रयतोऽहं कृताञ्जलिः ।
शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः ॥ ३
नैवाभिमन्युर्न यमौ तं देशमभियान्ति वै ।
यत्र कृष्णौ च कृष्णा च सत्यभामा च भामिनी ४
उभौ मध्वासवक्षीबावुभौ चन्दनरूषितौ ।
स्रग्विणौ वरवस्त्रौ तौ दिव्याभरणभूषितौ ॥ ५
नैकरत्नविचित्रं तु काञ्चनं महदासनम् ।
विविधास्तरणाकीर्णं यत्रासातामरिन्दमौ ॥ ६
अर्जुनोत्सङ्गगौ पादौ केशवस्योपलक्षये ।
अर्जुनस्य च कृष्णायां सत्यायां च महात्मनः ७
काञ्चनं पादपीठं तु पार्थो मे प्रादिशत्तदा ।
तदहं पाणिना स्पृष्ट्वा ततो भूमावुपाविशम् ॥ ८
ऊर्ध्वरेखातलौ पादौ पार्थस्य शुभलक्षणौ ।
पादपीठादपहृतौ तत्रापश्यमहं शुभौ ॥ ९
श्यामौ बृहन्तौ तरुणौ शालस्कन्धाविवोद्गतौ ।
एकासनगतौ दृष्ट्वा भयं मां महदाविशत् ॥ १०
इन्द्रविष्णुसमावेतौ मन्दात्मा नावबुध्यते ।
संश्रयाद्द्रोणभीष्माभ्यां कर्णस्य च विकत्थनात् ॥
निदेशस्थाविमौ यस्य मानसस्तस्य सेत्स्यते ।
सङ्कल्पो धर्मराजस्य निश्चयो मे तदाऽभवत् ॥१२
सत्कृतश्चान्नपानाभ्यामासीनो लब्धसत्क्रियः ।
अञ्जलिं मूर्ध्नि सन्धाय तौ सन्देशमचोदयम् ॥ १३
धनुर्गुणाकिणाङ्केन पाणिना शुभलक्षणम् ।
पादमानमयन् पार्थः केशवं समचोदयत् ॥ १४
इन्द्रकेतुरिवोत्थाय सर्वाभरणभूषितः ।
इन्द्रवीर्योपमः कृष्णः संविष्टो माभ्यभाषत ॥ १५
वाचं स वदतां श्रेष्ठो ह्लादिनीं वचनक्षमाम् ।
त्रासिनीं धार्तराष्ट्राणां मृदुपूर्वां सुदारुणाम् ॥१६
वाचं तां वचनार्हस्य शिक्षाक्षरसमन्विताम् ।
अश्रौषमहमिष्टार्थां पश्चाद्धृदयहारिणीम् ॥ १७

वासुदेव उवाच ।

सञ्जयेदं वचो ब्रूया धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
कुरुमुख्यस्य भीष्मस्य द्रोणस्यापि च शृण्वतः ॥
आवयोर्वचनात् सूत ज्येष्ठानप्यभिवादयन् ।
यवीयसश्च कुशलं पश्चात् पृष्ट्वैवमुत्तरम् ॥ १९
यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणाः ।
पुत्रैर्दारैश्च मोदध्वं महद्वो भयमागतम् ॥ २०
अर्थांस्त्यजत पात्रेभ्यः सुतान् प्राप्नुत कामजान् ।
प्रियं प्रियेभ्यश्चरत राजा हि त्वरते जये ॥ २१
ऋणमेतत्प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ।
यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् २२
तेजोमयं दुराधर्षं गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् ।
मद्द्वितीयेन तेनेह वैरं वः सव्यसाचिना ॥ २३
मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमिच्छति ।
यो न कालपरीतो वाऽप्यपि साक्षात् पुरंदरः ॥
बाहुभ्यामुद्वहेद्भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥२५
देवासुरमनुष्येषु यक्ष-गन्धर्व-भोगिषु
न तं पश्याम्यहं युद्धे पाण्डवं योऽभ्ययाद्रणे॥२६
यत्तद्विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ २७
एकेन पाण्डुपुत्रेण विराटनगरे यदा ।
भग्नाः पलायत दिशः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ २८
बलं वीर्यं च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता ।
अविषादश्च धैर्यं च पार्थान्नान्यत्र विद्यते ॥ २९

---

५९

यदब्रूतामिति ॥ १ ॥ आसातामुपविष्टौ ॥ ६ ॥ द्रोणभीष्माभ्यां द्रोणभीष्मयोः ॥ ११ ॥ मानसः संकल्पः सेत्स्यते ॥ १२ ॥ ऋणमिति । वस्त्रापहरणकाले गोविंदेति चुक्रोश तद्वस्त्रप्रदानमात्रेण तस्याक्रोशस्य ऋणं न परिहृतं किं तु कौरवाणामुच्छेदं विना तद्धृदयान्नापसर्पतीत्यर्थः ॥ २२ ॥ बलं-शारीरम् । वीर्यम्—मानसोत्साहः । तेजः-शौर्यम् । शीघ्रता-शीघ्रं कार्यावबोधः । लघुहस्तता-वेगेन बाणप्रक्षेप्तृता ॥ २९ ॥

इत्यब्रवीद्धृषीकेशः पार्थमुद्धर्षयन् गिरा ।
गर्जन् समयवर्षीव गगने पाकशासनः ॥ ३०

केशवस्य वचः श्रुत्वा किरीटी श्वेतवाहनः ।
अर्जुनस्तन्महद्वाक्यमब्रवीद्रोमहर्षणम् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयेन श्रीकृष्णवाक्यकथने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

वैशम्पायन उवाच ।

सञ्जयस्य वचः श्रुत्वा प्रज्ञाचक्षुर्जनेश्वरः ।
ततः सङ्ख्यातुमारेभे तद्वचो गुणदोषतः ॥ १
प्रसङ्ख्याय च सौक्ष्म्येण गुणदोषान् विचक्षणः ।
यथावन्मतितत्त्वेन जयकामः सुतान् प्रति ॥ २
बलाबलं विनिश्चित्य याथातथ्येन बुद्धिमान् ।
शक्तिं सङ्ख्यातुमारेभे तदा वै मनुजाधिपः ॥ ३
देवमानुषयोः शक्त्या तेजसा चैव पाण्डवान् ।
कुरून् शक्त्याऽल्पतरया दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥४
दुर्योधनेयं चिन्ता मे शश्वन्न व्युपशाम्यति ।
सत्यं ह्येतदहं मन्ये प्रत्यक्षं नानुमानतः ॥ ५
आत्मजेषु परं स्नेहं सर्वभूतानि कुर्वते ।
प्रियाणि चैषां कुर्वन्ति यथाशक्ति हितानि च ६
एवमेवोपकर्तॄणां प्रायशो लक्षयामहे ।
इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत् प्रियम् ॥ ७
अग्निः साचिव्यकर्ता स्यात् खाण्डवे तत्कृतं स्मरन्
अर्जुनस्यापि भीमेऽस्मिन् कुरुपाण्डुसमागमे॥ ८
जातिगृद्ध्याभिपन्नाश्च पाण्डवानामनेकशः ।
धर्मादयः समेष्यन्ति समाहूता दिवौकसः ॥ ९
भीष्म-द्रोण-कृपादीनां भयादशनिसन्निभम् ।
रिरक्षिषन्तः संरंभं गमिष्यन्तीति मे मतिः ॥ १०
ते देवैः सहिताः पार्था न शक्याः प्रतिवीक्षितुम्
मानुषेण नरव्याघ्रा वीर्यवन्तोऽस्त्रपारगाः ॥ ११
दुरासदं यस्य दिव्यं गाण्डीवं धनुरुत्तमम् ।
दारुणौ चाक्षयौ दिव्यौ शरपूर्णौ महेषुधी ॥ १२
वानरश्च ध्वजे दिव्यो निःसङ्गो धूमवद्गतिः ।
रथश्च चतुरन्तायां यस्य नास्ति समः क्षितौ १३
महामेघनिभश्चापि निर्घोषः श्रूयते जनैः ।
महाशनिसमः शब्दः शात्रवाणां भयङ्करः ॥ १४
यं चातिमानुषं वीर्ये कृत्स्नो लोको व्यवस्यति ।
देवानामपि जेतारं यं विदुः पार्थिवा रणे ॥ १५
शतानि पञ्च चैवेषून् यो गृह्णन्नेव दृश्यते ।
निमेषान्तरमात्रेण मुञ्चन् दूरं च पातयन् ॥ १६
यमाह भीष्मो द्रोणश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
मद्रराजस्तथा शल्यो मध्यस्था ये च मानवाः१७
युद्धायावस्थितं पार्थं पार्थिवैरतिमानुषैः ।
अशक्यं नरशार्दूलं पराजेतुमरिन्दमम् ॥ १८
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
सदृशं बाहुवीर्येण कार्तवीर्यस्य पाण्डवम् ॥ १९
तमर्जुनं महेष्वासं महेन्द्रोपेन्द्रविक्रमम् ।
निघ्नन्तमिव पश्यामि विमर्देऽस्मिन् महाहवे ॥
इत्येवं चिन्तयन् कृत्स्नमहोरात्राणि भारत ।
अनिद्रो निःसुखश्चास्मि कुरूणां शमचिन्तया २१
क्षयोदयोऽयं सुमहान् कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।
अस्य चेत्कलहस्यान्तः शमादन्यो न विद्यते २२
शमो मे रोचते नित्यं पार्थैस्तात न विग्रहः ।
कुरुभ्यो हि सदा मन्ये पाण्डवान् शक्तिमत्तरान् २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रविवेचने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

६०

**सञ्जयस्येति** ॥ १ ॥ वचस एव गुणान् दोषांश्च निश्चित्य स्वेषां परेषां च बलाबलं निश्चित्याह-**देवेति** । पाण्डवेषु दैवं मानुषं च बलमस्ति अस्माकं तु केवलं मानुषमेवास्तीत्यर्थः । शक्त्या परिच्छिद्येति शेषः ॥ ४ ॥ दैवं बलाधिक्यं पाण्डवेषु दर्शयति—**अग्निरिति** । भीमे भयंकरे ॥ ८ ॥ जातिगृद्ध्या जन्मग्रहणाद्धेतोः । युधिष्ठिरादीनां पितरो धर्मादयोऽपि तेषांसहायाः सन्ति ॥ ९ ॥ रिरक्षिषन्तः रक्षितुमिच्छन्तः संरंभं क्रोधम् ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

# ६१

वैशम्पायन उवाच ।
पितुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ।
आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ १
अशक्या देवसचिवाः पार्थाः स्युरिति यद्भवान् ।
मन्यते तद्भयं व्येतु भवतो राजसत्तम ॥ २
अकामद्वेषसंयोगाल्लोभाद्द्रोहाच्च भारत ।
उपेक्षया च भावानां देवा देवत्वमाप्नुवन् ॥ ३
इति द्वैपायनो व्यासो नारदश्च महातपाः ।
जामदग्न्यश्च रामो नः कथामकथयत् पुरा ॥ ४
नैव मानुषवद्देवाः प्रवर्तन्ते कदाचन ।
कामात् क्रोधात्तथा लोभाद्द्वेषाच्च भरतर्षभ ॥ ५
यदा ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि ।
कामयोगात् प्रवर्तेरन्न पार्था दुःखमाप्नुयुः ॥ ६
तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात् कथञ्चन
दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद्भावेषु भारत ॥ ७
अथ चेत्कामसंयोगाद्द्वेषो लोभश्च लक्ष्यते ।
देवेषु दैवप्रामाण्यान्नैषां तद्विक्रमिष्यति ॥ ८
मयाऽभिमन्त्रितः शश्वज्जातवेदाः प्रशाम्यति ।
दिधक्षुः सकलाँल्लोकान् परिक्षिप्य समन्ततः ॥ ९
यद्वा परमकं तेजो येन युक्ता दिवौकसः ।
ममाप्यनुपमं भूयो देवेभ्यो विद्धि भारत ॥ १०
विदीर्यमाणां वसुधां गिरीणां शिखराणि च ।
लोकस्य पश्यतो राजन् स्थापयाम्यभिमन्त्रणात्
चेतनाचेतनस्यास्य जङ्गमस्थावरस्य च ।
विनाशाय समुत्पन्नमहं घोरं महास्वनम् ॥ १२
अश्मवर्षं च वायुं च शमयामीह नित्यशः ।
जगतः पश्यतोऽभीक्ष्णं भूतानामनुकम्पया ॥ १३
स्तम्भितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः ।
देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता ॥ १४
अक्षौहिणीभिर्यान् देशान् यामि कार्येण केनचित् ।
तत्राश्वा मे प्रवर्तन्ते यत्र यत्राभिकामये ॥ १५
भयानकानि विषये व्यालादीनि न सन्ति मे ।
मन्त्रगुप्तानि भूतानि न हिंसन्ति भयङ्कराः ॥ १६
निकामवर्षी पर्जन्यो राजन् विषयवासिनाम् ।
धर्मिष्ठाश्च प्रजाः सर्वा ईतयश्च न सन्ति मे ॥ १७
अश्विनावथ वाय्वग्नी मरुद्भिः सह वृत्रहा ।
धर्मश्चैव मया द्विष्टान्नोत्सहन्तेऽभिरक्षितुम् १८
यदि ह्येते समर्थाः स्युर्मद्द्विषस्त्रातुमञ्जसा ।
न स्म त्रयोदश समाः पार्था दुःखमवाप्नुयुः ॥ १९
नैव देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ।
शक्तास्त्रातुं मया द्विष्टं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २०
यदभिध्याम्यहं शश्वच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
नैतद्विपन्नपूर्वं मे मित्रेष्वरिषु चोभयोः ॥ २१
भविष्यतीदमिति वा यद्ब्रवीमि परन्तप ।
नान्यथा भूतपूर्वं च सत्यवागिति मां विदुः ॥ २२
लोकसाक्षिकमेतन्मे माहात्म्यं दिक्षु विश्रुतम् ।
आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघया नृप ॥२३
न ह्यहं श्लाघनो राजन् भूतपूर्वः कदाचन ।
असदाचरितं ह्येतद्यदात्मानं प्रशंसति ॥ २४
पाण्डवांश्चैव मत्स्यांश्च पाञ्चालान् केकयैः सह ।
सात्यकिं वासुदेवं च श्रोताऽसि विजितान् मया ।
सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः ।
तथैव ते विनंक्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः २६
परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम ।
परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते २७
पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा ।
अस्त्रेषु यत् प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते ॥ २८
इत्युक्त्वा सञ्जयं भूयः पर्यपृच्छत भारतः ।
ज्ञात्वा युयुत्सोः कार्याणि प्राप्तकालमरिन्दमः २९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि दुर्योधनवाक्ये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

---

६१

**पितुरिति** ॥ १ ॥ अकामेति । कामद्वेषयोरसंयोगात् ॥ ३ ॥ दैवेष्विति । एते देवादयः दैवेषु भावेषु शमदमादिषु शश्वदपेक्षका अपेक्षमाणाः न तु आसुरेषु भावेषु कामक्रोधादिषु । तस्माद्देवाः पाण्डवानां साहाय्यं न करिष्यन्तीति भावः ॥७॥ अथेति । दैवप्रामाण्यात् वेदप्रामाण्यात् कामादिमता कृतमपि निष्फलं भविष्यतीत्यर्थः ॥८॥ दैवं बलमप्यस्तीत्याह—मयाऽभीति ॥९॥ मद्द्विषः मच्छत्रून् ॥१९॥ अभिध्यामि चिन्तयामि ॥२१॥ इतीति । इति एवं दुर्योधनोक्तं धृतराष्ट्रः सञ्जयं प्रति उक्त्वा प्राप्तकालं पूर्वप्रस्तुतं अर्जुनमाहात्म्यमेव अपृच्छत् । इदं मत्पुत्रस्य बलं ज्ञात्वा पाण्डवबलं च त्वं ब्रूहीत्यर्थः । युयुत्सोः वैश्यापुत्रस्य पाण्डवेष्वनुरक्तस्य कार्याणि ज्ञात्वा । एतेषां सर्वेषां विनाशेन तस्यैव राज्यलाभरूपाणि कार्याणि भविष्यन्तीति ज्ञात्वेत्यर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

# ६२

वैशम्पायन उवाच ।

तथा तु पृच्छन्तमतीव पार्थं
वैचित्रवीर्यं तमचिन्तयित्वा ।
उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं
प्रहर्षयन् संसदि कौरवाणाम् ॥ १

मिथ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं
रामात् कृतं ब्रह्ममयं पुरस्तात् ।
विज्ञाय तेनास्मि तदैव मुक्त-
स्तेनान्तकाले प्रतिभाऽस्यतीति ॥ २

महापराधे ह्यपि यन्न तेन
महर्षिणाऽहं गुरुणा च शप्तः ।
शक्तः प्रदग्धुं ह्यपि तिग्मतेजाः
ससागरामप्यवनिं महर्षिः ॥ ३

प्रसादितं ह्यस्य मया मनोऽभू-
च्छुश्रूषया स्वेन च पौरुषेण ।
तदस्ति चास्त्रं मम सावशेषं
तस्मात् समर्थोऽस्मि ममैष भारः ४

निमेषमात्रात्तमृषेः प्रसाद-
मवाप्य पाञ्चाल-करूष-मत्स्यान् ।
निहत्य पार्थान् सह पुत्रपौत्रै-
र्लोकानहं शस्त्रजितान् प्रपत्स्ये ॥ ५

पितामहस्तिष्ठतु ते समीपे
द्रोणश्च सर्वे च नरेन्द्रमुख्याः ।
यथा प्रधानेन बलेन गत्वा
पार्थान् हनिष्यामि ममैष भारः ६

एवं ब्रुवन्तं तमुवाच भीष्मः
किं कत्थसे कालपरीतबुद्धे ।
न कर्ण जानासि यथा प्रधाने
हते हताः स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः ॥ ७

यत् खाण्डवं दाहयता कृतं हि
कृष्णाद्वितीयेन धनञ्जयेन ।
श्रुत्वैव तत्कर्म नियन्तुमात्मा
युक्तस्त्वया वै सह बान्धवेन ॥ ८

यां चापि शक्तिं त्रिदशाधिपस्ते
ददौ महात्मा भगवान् महेन्द्रः ।
भस्मीकृतां तां समरे विशीर्णां
चक्राहतां द्रक्ष्यसि केशवेन ॥ ९

यस्ते शरः सर्पमुखो विभाति
सदाऽग्र्यमाल्यैर्महितः प्रयत्नात् ।
स पाण्डुपुत्राभिहतः शरौघैः
सह त्वया यास्यति कर्ण नाशम् ॥ १०

बाणस्य भौमस्य च कर्ण हन्ता
किरीटिनं रक्षति वासुदेवः ।
यस्त्वादृशानां च वरीयसां च
हन्ता रिपूणां तुमुले प्रगाढे ॥ ११

कर्ण उवाच ।

असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्त-
स्तथा च भूयांश्च ततो महात्मा ।
अहं यदुक्तः परुषं तु किञ्चित्
पितामहस्तस्य फलं शृणोतु ॥ १२

न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु सङ्ख्ये
पितामहो द्रक्ष्यति मा सभायाम् ।
त्वयि प्रशान्ते तु मम प्रभावं
द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः १३

वैशम्पायन उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान्
हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम ।
भीष्मस्तु दुर्योधनमेव राजन्
मध्ये कुरूणां प्रहसन्नुवाच ॥ १४

सत्यप्रतिज्ञः किल सूतपुत्र-
स्तथा स भारं विषहेत कस्मात् ।
व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्त्वा
लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात् ॥ १५

---

६२

**तथेति** । पार्थं पृच्छन्तं वैचित्रवीर्यमचिन्तयित्वेति सम्बन्धः ॥ १ ॥ हे स्तेन अन्तकाले प्रतिभा अस्त्रस्मृतिः अस्यति क्षिपति त्वां त्यक्ष्यतीत्यर्थः ॥ २ ॥ सावशेषं मम आयुरस्ति । अतोऽन्तकालस्यानुपस्थितत्वात्तदस्त्रं ममास्तीत्यहं समर्थोऽस्मि । अर्जुनं जेतुमित्यर्थः ॥ ४ ॥ प्रपत्स्ये प्रापयिष्ये ॥५॥ प्रधाने त्वयि हते सति सर्वे हताः स्युरत आत्मानं गोपायेत्युपहासः ॥ ७ ॥ आत्मा मनो नियन्तुं युक्तः । अर्जुनद्वेषादुपरमः कर्तव्यस्तस्य दुर्जयत्वं ज्ञात्वेति भावः ॥८॥ मां कृतविजयं सभायां द्रक्ष्यति । अयं भावः— यद्यहं योत्स्ये तर्हि एतस्य जीवनं भविष्यति तन्माभूदतोऽयं निःसारो म्रियतामिति ॥ १३ ॥ सत्यप्रतिज्ञः पूर्वमादावेव योत्स्य इत्युक्त्वा इदानीं मयि सति न योत्स्य इति वदति मज्जीवनपर्यंतं त्वत्क्षयमुपेक्षते स कथं मित्रमिति भावः।

आवन्त्य-कालिङ्ग-जयद्रथेषु
चेदिध्वजे तिष्ठति बाह्लिके च।
अहं हनिष्यामि सदा परेषां
सहस्रशश्चायुतशश्च योधान् ॥ १६
यदैव रामे भगवत्यनिन्द्ये
ब्रह्म ब्रुवाणः कृतवांस्तदस्त्रम् ।
तदैव धर्मश्च तपश्च नष्टं
वैकर्तनस्याधमपूरुषस्य ॥ १७

वैशम्पायन उवाच ।

तथोक्तवाक्ये नृपतीन्द्र भीष्मे
निक्षिप्य शस्त्राणि गते च कर्णे ।
वैचित्रवीर्यस्य सुतोऽल्पबुद्धि-
र्दुर्योधनः शान्तनवं बभाषे ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि कर्णभीष्मवाक्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

दुर्योधन उवाच ।

सदृशानां मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम् ।
कथमेकान्ततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम् ॥ १
वयं च तेऽपि तुल्या वै वीर्येण च पराक्रमैः ।
समेन वयसा चैव प्रातिभेन श्रुतेन च ॥ २
अस्त्रेण योगयुग्या च शीघ्रत्वे कौशले तथा ।
सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः ॥ ३
पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम् ।
नाहं भवति न द्रोणे न कृपे न च बाह्लिके ॥ ४
अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे ।
अहं वैकर्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ५
पाण्डवान् समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः ।
ततो राजन् महायज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ६
ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च ।
यदा परिकरिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना ॥
अतरित्रानिव जले बाहुभिर्मामका रणे ॥ ७
पश्यन्तस्ते परांस्तत्र रथ-नाग-समाकुलान् ।
तदा दर्पं विमोक्ष्यन्ति पाण्डवाः स च केशवः॥ ८

विदुर उवाच ।

इह निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥ ९
तस्य दानं क्षमा सिद्धिर्यथावदुपपद्यते ।
दमो दानं तपो ज्ञानमधीतं चानुवर्तते ॥ १०
दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उत्तमम् ।
विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विन्दते महत्॥ ११
क्रव्याद्भ्य इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम् ।
येषां च प्रतिषेधार्थं क्षत्रं सृष्टं स्वयंभुवा ॥ १२
आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम् ।
तस्य लिङ्गं प्रवक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ॥ १३
क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।
इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ १४

---

॥१५॥ ब्रह्म ब्रुवाणः ब्राह्मणोऽहमिति वदन् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

सदृशानामिति ॥१॥ प्रातिभेन समयस्फूर्त्या ॥२॥ योगयुग्या शूरसमृद्धया-युजेरौणादिकः किः-कुत्वमार्षम् ॥३॥ तरित्रा नौरक्षकाः कर्णधारादयः तद्रहितान् जलं यथा परिहरति आवर्तेषु पातयति । अनरित्रानिति पाठे 'अरित्रं केनिपातनम् नौचालनदंडस्तद्रहितानित्यर्थः। तद्वत् मामकास्तान् रणे बाहुभ्यां परिहरिष्यन्ति ॥ ७ ॥ अदान्तोऽयं कुलक्षयं करिष्यतीति वक्ष्यन् दममेव प्रशंसन्विदुर उवाच—इहेति । किं तन्निःश्रेयसं कल्याणं ब्राह्मणस्य ब्रह्मजिज्ञासोः दम एव सनातनोऽनादिर्मुख्यो धर्मः ॥ ९ ॥ तस्य पुंसः दानं क्षमासिद्धिर्मोक्षश्च उपपद्यते कस्य यस्य दमः दानादीन् अनुवर्तते । दान्तः सन् यो दानादिकं करोति स दानफलं क्षमां सिद्धिं च प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १० ॥ विन्दते लभते दमेन महद्ब्रह्म ॥ ११ ॥ समुदयः उदयहेतुः ॥१३॥ तान्येवाह—क्षमा परेभ्यः ताडनादिप्राप्तावपि संतापानुदयः। धृतिः—कामादिभिरननुतप्तता अहिंसा—वाङ्मनःशरीरैः परस्य पीडाया अकरणम्। समता—शत्रुमित्रादौ तुल्यत्वम्। सत्यं—यथार्थभाषणम्। आर्जवम्—अकौटिल्यम् । इंद्रियाणां जयः धैर्यं अत्यन्तापद्यपि मनसोऽवैक्लव्यम् । मार्दवं-प्रियवादिता। ह्रीरकार्यान्निवृत्तिः। अचापलं—स्थैर्यं वाङ्मनःकायानाम् । एते दान्तानां गुणाः ॥१४॥ काम इति ।

अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता ।
एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषः स्मृतः १५
कामो लोभश्च दर्पश्च मन्युर्निद्रा विकत्थनम् ।
मान ईर्ष्या च शोकश्च नैतद्दान्तो निषेवते ।
अजिह्ममशठं शुद्धमेतद्दान्तस्य लक्षणम् ॥ १६
अलोलुपस्तथाऽल्पेप्सुः कामानामविचिन्तिता ।
समुद्रकल्पः पुरुषः स दान्तः परिकीर्तितः ॥ १७
सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद्बुधः ।
प्राप्येह लोके संमानं सुगतिं प्रेत्य गच्छति ॥ १८
अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तमः ॥ १९
सर्वभूतहितो मैत्रस्तस्मान्नोद्विजते जनः ।
समुद्र इव गम्भीरः प्रज्ञातृप्तः प्रशाम्यति ॥ २०
कर्मणाऽऽचरितं पूर्वं सद्भिराचरितं च यत् ।
तदेवास्थाय मोदन्ते दान्ताः शमपरायणाः ॥ २१
नैष्कर्म्यं वा समास्थाय ज्ञानतृप्तो जितेन्द्रियः ।
कालाकाङ्क्षी चरँल्लोके ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २२
शकुनीनामिवाकाशे पदं नैवोपलभ्यते ।
एवं प्रज्ञानतृप्तस्य मुनेर्वर्त्म न दृश्यते ॥ २३
उत्सृज्यैव गृहान् यस्तु मोक्षमेवाभिमन्यते ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य कल्पन्ते शाश्वता दिवि ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धि-पर्वणि विदुरवाक्ये
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

विदुर उवाच ।
शकुनीनामिहार्थाय पाशं भूमावयोजयत् ।
कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम ॥ १
तस्मिंस्तौ शकुनौ बद्धौ युगपत्सहचारिणौ ।
तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ ॥ २
तौ विहाय समाक्रान्तौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा ।
अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥ ३
तथा तमनुधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम् ।
आश्रमस्थो मुनिः कश्चिद्ददर्शाथ कृताह्निकः ॥ ४
तावन्तरिक्षगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम् ।
श्लोकेनानेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥ ५
विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन् प्रतिभाति मे ।
प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि ॥ ६
शाकुनिक उवाच ।
पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम ।
यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥ ७
विदुर उवाच ।
तौ विवादमनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसन्धितौ ।
विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां सन्निपेततुः ॥ ८

कामादिमत्वादयमदान्त इत्यर्थः । अजिह्ममकुटिलम् । अशठं सुशीलम् । शुद्धं मनसा ॥१६॥ अलोलुपः आशाहीनः। कामानां स्त्र्यादीनामविचिन्तिता ध्यानमकुर्वन् । समुद्रकल्पः गंभीराशयः ॥ १७ ॥ प्रसन्नात्मा शुद्धचित्तः अत एवात्मवित् बुधः ज्ञातज्ञेयः प्रेत्य मृत्वा ॥१८॥ **कर्मणेति** । दैवदत्तैर्भोगैः सदाचारेण च ये युक्तास्ते दान्तास्त एव च मोदन्ते ॥ २१ ॥ नैष्कर्म्यं वाङ्मनःशरीराणां सर्वात्मना अप्रवृत्तिः निर्विकल्पकावस्था । तत्र हेतुः ज्ञानतृप्तः श्रवणमननजेनापरोक्षज्ञानेन तृप्तः रागद्वेषशून्यः । तत्रापि हेतुः जितेंद्रियः कालाकांक्षी सर्वत्र ममताशून्यः ब्रह्मभूयाय ब्रह्मभावाय कल्पते योग्यो भवति ॥ २२ ॥ ब्रह्मभूयफलमाह— **शकुनीनामिति** । 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति श्रुतेर्ब्रह्मविदोऽनुपाख्यं रूपं गतस्य गगनवद्विश्वव्यापिनो गत्यभावात् स्वर्गिणामिव तस्य मार्गो न दृश्यते ॥ २३ ॥ केवलं संन्यासात्कममुक्तिस्थानमाह—**उत्सृज्येति** । मोक्षं मोक्षाश्रमं शाश्वताः पुनरावृत्तिशून्याः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

दमस्य श्रेष्ठ्यं प्रतिपाद्यादान्तयोः कलहं कुर्वतोर्द्वयोरपि नाश इति प्रतिपादयन्नाख्यायिकामुखेनाह—**शकुनीनामिति** । पूर्वेषां मुखात् ॥१॥ विहायसं व्योम ॥ ३ ॥

तौ युध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ।
उपसृत्यापरिज्ञातो जग्राह मृगहा तदा ॥ ९
एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्।
तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहात्॥ १०
सम्भोजनं सङ्कथनं संप्रश्नोऽथ समागमः।
एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥११
ये स्म काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते।
सिंहगुप्तमिवारण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते ॥ १२
येऽर्थं सन्ततमासाद्य दीना इव समासते।
श्रियं ते संप्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ ॥ १३
धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १४
इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं गिरौ मया।
श्रुत्वा तदपि कौरव्य यथा श्रेयस्तथा कुरु ॥ १५
वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम्।
ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजम्भकवार्तिकैः ॥ १६
कुञ्जभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम्।
दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १७
तत्रापश्याम वै सर्वे मधुपीतकमाक्षिकम्।
मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसम्मितम् ॥ १८
आशीविषै रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम्।
यत्प्राप्य पुरुषो मर्त्योऽप्यमरत्वं नियच्छति ॥ १९
अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा।
इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधकाः २०
ततः किरातास्तद्दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते।
विनेशुर्विषमे तस्मिन् ससर्पे गिरिगह्वरे ॥ २१
तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति।
मधु पश्यति सम्मोहात् प्रपातं नानुपश्यति ॥ २२
दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना।
न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम्॥
एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता।
भीष्मद्रोणप्रभृतयः सन्त्रस्ताः साधुयायिनः २४
विराटनगरे भग्नाः किं तत्र तव दृश्यताम्।
प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव ॥ २५
द्रुपदो मत्स्यराजश्च संक्रुद्धश्च धनञ्जयः।
न शेषयेयुः समरे वायुयुक्ता इवाग्नयः ॥ २६
अङ्के कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम्।
युध्यतोर्हि द्वयोर्युद्धे नैकान्तेन भवेज्जयः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि विदुरवाक्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

धृतराष्ट्र उवाच।

दुर्योधन विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वगः ॥ १
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां यत्तेजः प्रजिहीर्षसि।
पञ्चानामिव भूतानां महतां लोकधारिणाम् ॥ २
युधिष्ठिरं हि कौन्तेयं परं धर्मिहास्थितम्।
परां गतिमसंप्रेत्य न त्वं जेतुमिहार्हसि ॥ ३
भीमसेनं च कौन्तेयं यस्य नास्ति समो बले।
रणान्तकं तर्जयसे महावातमिव द्रुमः ॥ ४
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव।
युधि गाण्डीवधन्वानं को नु युध्येत बुद्धिमान् ५
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः कमिवाद्य न शातयेत्।
शत्रुमध्ये शरान् मुञ्चन् देवराडशनीमिव ॥ ६

---

अमित्रेति छेदः ॥१०॥ विद्याजंभकवार्तिकाः विद्या मन्त्रयंत्रादिरूपा जंभक औषधीसाधनानि तद्वार्ताप्रियाः विद्याजंभकवार्तिकाः ॥१६॥ कुञ्जभूतं सर्वतो लताभिः परिवृतम् ॥१७॥ पीतकमाक्षिकं सुवर्णमाक्षिकं धातुविशेषः ॥१८॥ तव दृश्यतां त्वया द्रष्टव्यं बलमिति शेषः। यो वीरः कर्णादिः ॥ २५ ॥ युद्ध्यतोरन्यतरस्य नाशोऽपि त्वन्नाश एवेति भावः ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५

दुर्योधनेति। उत्पथममार्गमेव मार्गं मन्यसे ॥ १ ॥ परां गतिं मरणं असंप्रेत्य अप्राप्य मरिष्यस्येवेत्यर्थः ॥ ३ ॥ न शातयेत् न छिन्द्यात् ॥६॥

सात्यकिश्चापि दुर्धर्षः संमतोऽन्धकवृष्णिषु ।
ध्वंसयिष्यति ते सेनां पाण्डवेयहिते रतः ॥ ७
यः पुनः प्रतिमानेन त्रीन् लोकानतिरिच्यते ।
तं कृष्णं पुण्डरीकाक्षं को नु युद्ध्येत बुद्धिमान् ॥ ८
एकतो ह्यस्य दाराश्च ज्ञातयश्च सबान्धवाः ।
आत्मा च पृथिवी चेयमेकतश्च धनञ्जयः ॥ ९
वासुदेवोऽपि दुर्धर्षो यतात्मा यत्र पाण्डवः ।
अविषह्यं पृथिव्याऽपि तद्बलं यत्र केशवः ॥ १०
तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् ।
वृद्धं शान्तनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम् ॥ ११
मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम् ।
द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ १२
एते ह्यपि यथैवाहं मंतुमर्हसि तांस्तथा ।
सर्वे धर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ॥ १३
यत्तद्विराटनगरे सह भ्रातृभिरग्रतः ।
उत्सृज्य गाः सुसंत्रस्तं बलं ते समशीर्यत ॥ १४
यच्चैव नगरे तस्मिन् श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १५
अर्जुनस्तत्तथाऽकार्षीत् किं पुनः सर्व एव ते ।
सभ्रातॄनभिजानीहि वृत्त्या तं प्रतिपादय ॥ १६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रः सुयोधनम् ।
पुनरेव महाभागः सञ्जयं पर्यपृच्छत ॥ १
ब्रूहि सञ्जय यच्छेषं वासुदेवादनन्तरम् ।
यदर्जुन उवाच त्वां परं कौतूहलं हि मे ॥ २
सञ्जय उवाच ।
वासुदेववचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
उवाच काले दुर्धर्षो वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३
पितामहं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च सञ्जय ।
द्रोणं कृपं च कर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ ४
द्रौणिं च सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम् ।
दुःशासनं शलं चैव पुरुमित्रं विविंशतिम् । ५
विकर्णं चित्रसेनं च जयत्सेनं च पार्थिवम् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम् ६
सैन्धवं दुःसहं चैव भूरिश्रवसमेव च ।
भगदत्तं च राजानं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥ ७
ये चाप्यन्ये पार्थिवास्तत्र योद्धुं
समागताः कौरवाणां प्रियार्थम् ।
मुमूर्षवः पाण्डवाग्नौ प्रदीप्ते
समानीता धार्तराष्ट्रेण होतुम् ॥ ८
यथान्यायं कौशलं वन्दनं च
समागता मद्वचनेन वाच्याः ।
इदं ब्रूयाः सञ्जय राजमध्ये
सुयोधनं पापकृतां निधानम् ॥ ९
अमर्षणं दुर्मतिं राजपुत्रं
पापात्मानं धार्तराष्ट्रं सुलुब्धम् ।
सर्वं ममैतद्वचनं समग्रं
सहामात्यं सञ्जय श्रावयेथाः ॥ १०
एवं प्रतिष्ठाप्य धनञ्जयो मां
ततोऽर्थवद्धर्मवच्चापि वाक्यम् ।
प्रोवाचेदं वासुदेवं समीक्ष्य
पार्थो धीमाँल्लोहितान्तायताक्षः ॥ ११
यथा श्रुतं ते वदतो महात्मनो
मधुप्रवीरस्य वचः समाहितम् ।
तथैव वाच्यं भवता हि मद्वचः
समागतेषु क्षितिपेषु सर्वशः ॥ १२

---

प्रतिमानेन तुल्यत्वेन ॥ ८ ॥ भीष्मं तितिक्षस्व तद्वाक्यं गृहाणेत्यर्थः ॥ ११ ॥ वृत्त्या राज्यार्धदानेन प्रतिपादय संभावय ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

एवमिति ॥ १ ॥ लोहितान्ते आयते च अक्षिणी यस्य स लोहितान्तायताक्षः ॥ ११ ॥

शराग्निधूमे रथनेमिनादिते
धनुःस्रुवेणास्त्रबलप्रसारिणा ।
यथा न होमः क्रियते महामृधे
समेत्य सर्वे प्रयतध्वमादृताः ॥ १३
न चेत्प्रयच्छध्वममित्रघातिनो
युधिष्ठिरस्यांशमभीप्सितं स्वकम् ।
न यामि वः साश्वपदातिकुञ्जरान्
दिशं पितॄणामशिवां शितैः शरैः ॥१४
ततोऽहमामन्त्र्य तदा धनञ्जयं
चतुर्भुजं चैव नमस्य सत्वरः ।
जवेन संप्राप्त इहामरद्युते
तवान्तिकं प्रापयितुं वचो महत् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

वैशम्पायन उवाच ।
दुर्योधने धार्तराष्ट्रे तद्वचो नाभिनन्दति ।
तूष्णींभूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥ १
उत्थितेषु महाराज पृथिव्यां सर्वराजसु ।
रहिते सञ्जयं राजा परिप्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ २
आशंसमानो विजयं तेषां पुत्रवशानुगः ।
आत्मनश्च परेषां च पाण्डवानां च निश्चयम् ॥३
धृतराष्ट्र उवाच ।
गावल्गणे ब्रूहि नः सारफल्गु
स्वसेनायां यावदिहास्ति किञ्चित् ।
त्वं पाण्डवानां निपुणं वेत्थ सर्वं
किमेषां ज्यायः किमु तेषां कनीयः ॥४
त्वमेतयोः सारवित् सर्वदर्शी
धर्मार्थयोर्निपुणो निश्चयज्ञः ।
स मे पृष्टः सञ्जय ब्रूहि सर्वं
युध्यमानाः कतरेऽस्मिन्न सन्ति ॥ ५
सञ्जय उवाच ।
न त्वां ब्रूयां रहिते जातु किञ्चि-
दसूया हि त्वां प्रविशेत राजन् ।
आनयस्व पितरं महाव्रतं
गान्धारीं च महिषीमाजमीढ ॥ ६
तौ तेऽसूयां विनयेतां नरेन्द्र
धर्मज्ञौ तौ निपुणौ निश्चयज्ञौ ।
तयोस्तु त्वां सन्निधौ तद्वदेयं
कृत्स्नं मतं केशवपार्थयोर्यत् ॥ ७
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तेन च गान्धारी व्यासश्चात्राजगाम ह ।
आनीतौ विदुरेणेह सभां शीघ्रं प्रवेशितौ ॥ ८
ततस्तन्मतमाज्ञाय सञ्जयस्यात्मजस्य च ।
अभ्युपेत्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ९
व्यास उवाच ।
संपृच्छते धृतराष्ट्राय सञ्जय
आचक्ष्व सर्वं यावदेषोऽनुयुङ्क्ते ।
सर्वं यावद्वेत्थ तस्मिन् यथाव-
द्याथातथ्यं वासुदेवेऽर्जुने च ॥ १०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि व्यासगान्धार्यागमने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

---

शराणां मिथः सन्निपातजोऽग्निस्तस्य धूमो यस्मिन् यज्ञे इति शेषः । रथध्वनिरेव मन्त्रस्थाने । धनुःस्रुवेण अस्त्रबलेन प्रसरति । शास्त्रबलेनेव यज्ञः ॥ १३ ॥ **चतुर्भुजमिति** । सञ्जयस्यापि योगिदृश्यं भगवतश्चतुर्भुजं रूपं सदा दृष्टिगोचरमासीदित्यनुमीयते ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

**दुर्योधन इति** ॥ १ ॥ परेषां तटस्थानाम् ॥ ३ ॥ युद्ध्यमाना न सन्ति उदासीना इत्यर्थः ॥ ५ ॥ **असूया** मयि दोषदृष्टिः । पितरं व्यासम् ॥ ६ ॥ **अनुयुङ्क्ते** पृच्छति ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

सञ्जय उवाच ।

अर्जुनो वासुदेवश्च धन्विनौ परमार्चितौ ।
कामादन्यत्र सम्भूतौ सर्वभावाय सम्मितौ ॥ १
व्यामान्तरं समास्थाय यथामुक्तं मनस्विनः ।
चक्रं तद्वासुदेवस्य मायया वर्तते विभो ॥ २
सापह्नवं कौरवेषु पाण्डवानां सुसम्मतम् ।
सारासारबलं ज्ञातुं तेजःपुञ्जावभासितम् ॥ ३
नरकं शम्बरं चैव कंसं चैद्यं च माधवः ।
जितवान् घोरसङ्काशान् क्रीडन्निव महाबलः ॥४
पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः ।
मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी ५
भूयो भूयो हि यद्राजन् पृच्छसे पाण्डवान् प्रति ।
सारासारबलं ज्ञातुं तत् समासेन मे शृणु ॥ ६
एकतो वा जगत्कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः ।
सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ ७
भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः ।
न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनम् ॥ ८
यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः ।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः॥ ९
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिवं च पुरुषोत्तमः ।
विचेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः ॥ १०
स कृत्वा पाण्डवान् सत्रं लोकं संमोहयन्निव ।
अधर्मनिरतान् मूढान् दग्धुमिच्छति ते सुतान्॥११
कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः ।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयतेऽनिशम् ॥ १२
कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च ।
ईशते भगवानेकः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १३
ईशन्नपि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः ।
कर्माण्यारभते कर्तुं कीनाश इव वर्धनः ॥ १४
तेन वञ्चयते लोकान्मायायोगेन केशवः ।
ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

धृतराष्ट्र उवाच ।

कथं त्वं माधवं वेत्थ सर्वलोकमहेश्वरम् ।
कथमेनं न वेदाहं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥

---

६८

**अर्जुन इति** । कामादिति कामपूर्वकं कर्मोच्यते । अकर्मजं तयोर्जन्म लोकानुग्रहार्थं सूर्यवदाविर्भावमात्रमित्यर्थः । सर्वभावाय ब्रह्मभावाय संमितौ तुल्यौ उभावपि साक्षाद्ब्रह्मरूपावित्यर्थः ॥ १ ॥ व्यामान्तरं प्रसारितयोर्हस्तयोर्यावान् विस्तारः पञ्चहस्तमितः तावत् अन्तरं मध्यप्रमाणं यस्य तद्व्यामान्तरं यथामुक्तं यथा यथारूपं यावत्प्रमाणं चिंतितं तावत्प्रमाणं भूत्वा यत् मुक्तं भवति । मायया दुर्लक्ष्यरूपेणत्यर्थः ॥२॥ सापह्नवं ससंहारमत एव पाण्डवानां सुसंमतम् ॥ ३ ॥ मनसैव संकल्पमात्रेण विशिष्टात्मा श्रेष्ठरूपः वशी ऐश्वर्यवान् ॥५॥ विचेष्टयति चालयति यतो भूतात्मा सर्वेषां भूतानामन्तरात्मा॥१०॥सत्रं मिषम् 'सत्रमाच्छादने यज्ञे सदादाने च कैतवे ' इति **विश्वः**। संमोहयन् आत्मनो जगत्कर्तृत्वेऽपि अकर्तृत्वं दर्शयन् ॥ ११ ॥ कालचक्रं संवत्सरात्मकम् । जगच्चक्रं जगतो जन्मस्थितिलयप्रवाहं युगचक्रं कर्मचक्रं कृतं यत्र धर्मश्चतुष्पात् त्रेतायां त्रिपाद्धर्म एकपादधर्मः। द्वापरेऽर्धं धर्मोऽर्धमधर्मः । कलौ त्रिपात्पापं एकपाद्धर्म इति । तदिदं कर्मचक्रं पुनःपुनर्जन्ममरणयोर्हेतुभूतं पुनः कर्म पुनः संसारः पुनः कर्मेत्येवंरूपमात्मयोगेन चैतन्यसम्बन्धेन। न हि संवत्सरादिकं केवलजडाश्रयं भवितुमर्हति । सर्वस्य चिदेकप्रकाश्यत्वात् ॥१२॥ कालः आयुःपरिच्छेदकर्त्री देवता मृत्युर्देहप्राणयोर्वियोगकर्त्री ईशते ईष्टे ॥ १३ ॥ ईशन्नपि ईशानोऽपि—शपोऽलुक् परस्मैपदं चार्षम् । कीनाशः कर्षकः वर्धनः धान्यादिवृद्धिकृत् । यद्वा कीनाशो यमः वर्धनः देहादेश्छेत्ता ॥ १४ ॥ ते नरा न मुह्यन्ति ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

**कथमिति** । कथं केन प्रकारेण कानि ज्ञानसाधनानि कानि वा ज्ञानप्रतिबन्धकानीति प्रश्नार्थः ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच ।

शृणु राजन्न ते विद्या मम विद्या न हीयते ।
विद्याहीनस्तमोध्वस्तो नाभिजानाति केशवम् २
विद्यया तात जानामि त्रियुगं मधुसूदनम् ।
कर्तारमकृतं देवं भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ ३

धृतराष्ट्र उवाच ।

गावल्गणेऽत्र का भक्तिर्या ते नित्या जनार्दने ।
यया त्वमभिजानासि त्रियुगं मधुसूदनम् ॥ ४

सञ्जय उवाच ।

मायां न सेवे भद्रं ते न वृथा धर्ममाचरे ।
शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम् ५

धृतराष्ट्र उवाच ।

दुर्योधन हृषीकेशं प्रपद्यस्व जनार्दनम् ।
आप्तो नः सञ्जयस्तात शरणं गच्छ केशवम् ॥ ६

दुर्योधन उवाच ।

भगवान् देवकीपुत्रो लोकांश्चेन्निहनिष्यति ।
प्रवदन्नर्जुने सख्यं नाहं गच्छेऽद्य केशवम् ॥ ७

धृतराष्ट्र उवाच ।

अवाग्गान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः ।
ईर्षुर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः ॥ ८

गान्धार्युवाच ।

ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन् वृद्धानां शासनातिग ।
ऐश्वर्यजीविते हित्वा पितरं मां च बालिश ॥ ९
वर्धयन् दुर्हृदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन् ।
निहतो भीमसेनेन स्मर्तासि वचनं पितुः ॥ १०

व्यास उवाच ।

प्रियोऽसि राजन् कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे ।
यस्य ते सञ्जयो दूतो यस्त्वां श्रेयसि योक्ष्यते ११
जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम् ।
शुश्रूषमाणमैकाग्र्यं मोक्ष्यते महतो भयात् ॥ १२
वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः ।
सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥१३
यमस्य वशमायान्ति काममूढाः पुनः पुनः ।
अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः १४
एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति ॥ १५

धृतराष्ट्र उवाच ।

अङ्ग सञ्जय मे शंस पन्थानमकुतोभयम् ।
येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयां सिद्धिमुत्तमाम् । १६

सञ्जय उवाच ।

नाकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याज्जनार्दनम् ।
आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् १७

विद्या तत्त्वमस्यादिवाक्यजं ज्ञानं तेन हीनो यः स तमोध्वस्तस्तमसा स्वस्वरूपात् निर्विषयानन्दमात्रात् च्युतः ॥ २ ॥ विद्यया तमोविरोधिन्या त्रियुगं त्रीणि स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराणि युज्यन्ते रज्जुरगवत् सम्बध्यन्ते यस्मिन् अधिष्ठानभूते तं त्रियुगमज्ञानकल्पितस्यावस्थात्रयस्य विद्यया बाधे सति निरुपाधिप्रत्यगात्मरूपं ज्ञायत इत्यर्थः । कर्तारं विश्वस्य निमित्तकारणमकृतं कर्मभिरसाध्यं नित्यसिद्धत्वात् । भूतानां वियदादीनां प्रभवमुत्पत्तिस्थानम् । अप्ययो लयस्थानम् ॥३॥ भक्तिः आराध्यत्वेन ज्ञानं तच्च कीदृशं किं भेदेन राजवत्तटस्थतया भगवान् ध्येय उत प्रत्यगात्मत्वेनेति भावः ॥४॥ मायां पुत्रकलत्राद्याकारेण परिणतामविद्यां न सेवे । वृथा धर्मं भगवदर्पणं विना न चरामि। शुद्धभावं मनसः कामक्रोधादिराहित्येन नैर्मल्यं गतः प्राप्तः भक्त्या ध्यानेन। शास्त्रात् तत्त्वमसीत्यागमात् । जनार्दनं जगल्लयाधिष्ठानं ज्ञानमात्रव्यवहितं ब्रह्म । नास्मि संसारी । ब्रह्मैवास्मीति तत्त्वालोचनात्मकेन ज्ञानेनैव प्राप्यते। नायं सर्पो रज्जुरेवेयमितिवत् । न तु कीटभृङ्गन्यायेन भावनादित्यर्थः ॥ ५ ॥ अर्जुने विशुद्धे कामक्रोधादिमलशून्ये सख्यं वदन् भगवानस्ति अद्य कामाद्याक्रान्तदशायां नाहं गच्छे न प्राप्नुयाम् । आसुरो भावो न मया त्यक्तुं शक्योऽतो न मे तत्प्राप्तिसंभावनाऽपीत्यर्थः॥७॥ अवाक् अधो नरकमित्यर्थः । श्रेयसां साधूनां वचनातिगः उपदेशावमानी ॥ ८ ॥ ऐकाग्र्यं शुश्रूषमाणं सेवमानं त्वां मोक्ष्यते मोचयिष्यति ॥ १२ ॥ सिताः बद्धाः पाशैः कामादिभिः ॥ १३ ॥ अन्धो नेता येषां ते अन्धनेत्राः ॥ १४ ॥ एषः ज्ञानमार्गः एकायनः एकस्य ब्रह्मणः प्रापकः तं दृष्ट्वा तं मार्गं ज्ञात्वा मृत्युं संसारमत्येति अतिक्रम्य गच्छति। अभ्येतीति पाठे आत्मत्वेन मृत्युरप्येनं प्रविशतीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति ' इति । देवाश्च न देवा अपि तत्र संसारे महान् न सज्जति सक्तो न भवति ॥ १५ ॥ सिद्धिं मोक्षम् ॥ १६ ॥ अकृतात्मा अजितमनाः कृतात्मानं नित्यसिद्धं प्रत्यगात्मानमात्मनः स्वस्य इंद्रियनिग्रहादन्यत्र इंद्रियनिग्रहं विना क्रिया यागादिरूप उपायः प्राप्त्युपायो नास्ति ॥ १७ ॥

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः ।
अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम् ॥ १८
इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः ।
बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः ॥ १९
एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम् ।
एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यान्ति मनीषिणः २०
अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः ।
आगमाधिगमाद्योगाद्वशी तत्त्वे प्रसीदति ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये
ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## ७०

धृतराष्ट्र उवाच ।
भूयो मे पुण्डरीकाक्षं सञ्जयाचक्ष्व पृच्छतः ।
नामकर्मार्थवित्तात प्राप्नुयां पुरुषोत्तमम् ॥ १
सञ्जय उवाच ।
श्रुतं मे वासुदेवस्य नामनिर्वचनं शुभम् ।
यावत्तत्राभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥ २
वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्त्वाद्विष्णुरुच्यते ॥ ३
मौनाद्ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम् ।
सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः ॥ ४
कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः॥ ५
पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् ।
तद्भावात् पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः॥ ६
यतः सत्वान्न च्यवते यच्च सत्वान्न हीयते ।
सत्वतः सात्वतस्तस्मादार्षभाद्वृषभेक्षणः ॥ ७

इंद्रियाणामप्रमादतः अवहिततया कामत्यागः अप्रमादः अविहिंसेति छेदः । ज्ञानस्य योनिः कारणम् ॥ १८ ॥ मा च्यवतु तत्त्वात् प्रच्युता मा भूत् यतस्ततः सर्वेभ्य आन्तरेभ्यो बाह्येभ्यश्च विषयेभ्यो नियच्छ निगृह्णीष्व ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणां समनस्कानां धारणं निग्रहणम् ॥ २० ॥ आगमाधिगमात् शास्त्रयुक्त्योर्लाभात् योगात् चित्तवृत्तिनिरोधात् । वशी ईश्वरः । तत्त्वे स्वयाथात्म्ये विषये प्रसीदति ज्ञानदानेन अनुगृह्णाति ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

**भूय इति** । नाम्नां कर्मणां च अर्थवित् भूत्वा ॥ १ ॥ यावदभिजाने तावत् वदामीति शेषः । वस्तुतस्तु सः अप्रमेयो वाचामगोचरः ॥ २ ॥ वस्ते आच्छादयति मायया आवृणोतीति वा वस्यति स्तभ्नाति भुवनमिति वा वसत्यस्मिन् भुवनमिति वा वासुः स चासौ देवो द्योतमानश्च वासुदेवः, वसन्ति देवा अस्मिन्निति वा; करणग्रामस्योद्भवप्रलयस्थानमित्यर्थः । बृहत्त्वाद्व्यापकत्वात् वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वमिति विष्णुः ॥ ३ ॥ मौनात् ध्यानाच्च योगाच्चेति मा धीवृत्तिः तां स्वस्य उपाधिभूतां मौनादिभिः धवयति दूरीकरोतीति माधवः । मौनं—मुनेः कर्म मननं शास्त्रतो युक्तितश्च तत्त्वालोचनम्, ध्यानं-निश्चिते तत्त्वे चेतसः प्रणिधानं योगस्तस्यैव चेतसो निरोधः । मधुसूदनो मधोर्दैत्यस्य नाशकः श्रीकृष्णः । सर्वाणि चतुर्विंशतिसंख्यानि तत्त्वानि तन्मयत्वात् तत्प्रधानत्वात् । मधुहा मधूनि पृथिव्यादीनि हन्ति संहरति गच्छन्ति वा एनामिति मधुहा। 'इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु' इति श्रुत्या पृथिव्यादितत्त्वजातस्य मधुशब्देनैव निर्देशात् ॥ ४ ॥ कृषिः कर्षत्यात्मनि सर्वं संहरतीति कृषिः सर्वप्रपञ्चबाधावधिभूतं सत्तामात्रम् । भूवाचकः भवतीति भूः सत्ता तद्वाचकः कृषिरिति शब्दः। णश्च निर्वृतिः सुखं विष्णुस्तद्भावयोर्धात्वर्थयोर्योगात् कृष्णः सन्मात्रानन्दरूपो भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ पुण्डरीकं श्वेतपद्मं तत्सदृशं पुण्डरीकमिव पुण्डरीकं हृदयकमलं धाम वासस्थानं तत्र सन्नपि अक्षो न क्षीयते हन्यते वेति पुण्डरीकाक्षः। तथा च श्रुतिः- 'नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यते' इति। हृत्पद्मदोषैर्जरानाशादिभिः परमात्मनोऽस्पृष्टत्वमाह । दस्युत्रासात् जनं दस्युजनं अर्दयति पीडयतीति जनार्दन इत्यर्थः ॥६॥ सत्त्वमबाधितत्वमस्यास्तीति सत्वतः 'तप्पर्वमरुद्भ्याम्' इति स्मृतो मत्वर्थीयस्तपप्रत्ययो बाहुलकात् सत्वशब्दादपि बोध्यः अत्र सत्वेन अत्याज्यः सत्वं च यस्य अत्याज्यं स सत्वतः सत्वत एव सात्वतः-राक्षसवायसादिवत्स्वार्थे तद्धितः-आर्ष

न जायते जनित्राऽयमजस्तस्मादनीकजित् ।
देवानां स्वप्रकाशत्वाद्दमाद्दामोदरो विभुः ॥ ८
हर्षात् सुखात् सुखैश्वर्याद्धृषीकेशत्वमश्नुते ।
बाहुभ्यां रोदसी बिभ्रन्महाबाहुरिति स्मृतः॥ ९
अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः ।
नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥ १०
पूरणात् सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः ।
असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ॥ ११
सर्वस्य च सदा ज्ञानात् सर्वमेतं प्रचक्षते ।
सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम् ॥ १२
सत्यात्सत्यं तु गोविन्दस्तस्मात्सत्योऽपि नामतः
विष्णुर्विक्रमणाद्देवो जयनाज्जिष्णुरुच्यते ॥ १३
शाश्वतत्वादनन्तश्च गोविन्दो वेदनाद्गवाम् ।
अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः ॥ १४
एवंविधो धर्मनित्यो भगवान् मधुसूदनः ।
आगन्ता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

धृतराष्ट्र उवाच ।
चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि सञ्जय
द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे ।
विभ्राजमानं वपुषा परेण
प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च ॥ १
ईरयन्तं भारतीं भारताना-
मभ्यर्चनीयां शङ्करीं सृञ्जयानाम् ।
बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामनिन्द्यां
परासूनामग्रहणीयरूपाम् ॥ २
समुद्यन्तं सात्वतमेकवीरं
प्रणेतारमृषभं यादवानाम् ।
निहन्तारं क्षोभणं शात्रवाणां
मुञ्चन्तं च द्विषतां वै यशांसि ॥ ३
द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता
महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम् ।
ब्रुवन्तं वाचमनृशंसरूपां
वृष्णिश्रेष्ठं मोहयन्तं मदीयान् ॥ ४

---

वेदस्तेन भातीत्यार्षभ औपनिषदः पुरुषः उपनिषद्वेद्यत्वा-योगात् वृषभेक्षणः । तथा चायं योगः वृषं धर्मं भासयतीति वृषभो वेदस्तदेव ईक्षणं चक्षुरिव ज्ञापकं यस्य सः वृषभेक्षण इति ॥ ७ ॥ न जायत इत्यजः अनीकजित्सेनाजित् कृष्णः देवानामिन्द्रियाणां मध्ये स्वप्रकाशत्वात् । ऋ गतावित्यस्मा-दुत्पूर्वात् अप् । उत् उत्कर्षेण ऋच्छति प्रकाशत इति उदरः दमोऽस्यास्तीति दामः दामश्चासावुदरश्चेति दामोदरः। दामादिति पाठे दम एव दामस्तस्मात् ॥८॥ हर्षादिति। हृष्यत्यनेनेति हृषीकं वृत्तिसुखं सुखं स्वरूपानन्दः ईश ईशनवान् अतो हृषीकेशः ॥ ९ ॥ अधो न क्षीयते जातु इति विग्रहवाक्ये उत्तरपदावयवलोपेन अधोक्षजः सततोर्ध्व-रूपः संसारधर्मेणास्पृष्ट इत्यर्थः ॥ १० ॥ पूरयतीति पुरुः सीदन्त्यस्मिन्निति सः तस्मात् पुरुषः स चासावुत्तमश्च पुरुषोत्तमः । असतः कारणस्य सतः कार्यस्य प्रभवाप्ययात् उत्पत्तिप्रलयस्थानत्वात् ॥ ११ ॥ सत्ये धर्मे ॥ १२ ॥ सत्यात् धर्मात् तत्फलात् ब्रह्मलोकावधेरपि सत्यमबाधितम-तः सत्योऽपि नामतः। विशेषेण प्नौति प्रस्रवते गच्छतीति विष्णुरित्यर्थः । एवं जयतीति जिष्णुः ॥ १३ ॥ शाश्वत-त्वात् शश्वद्भवत्वात् गवामिंद्रियाणां वेदनात् लाभात् प्रकाशाद्वा गोविंदः । अतत्वं मिथ्याभूतं जगत्तत्वं सत्यामिव स्वीयसत्तास्फूर्तिप्रदानेन करोति तेन हेतुना लो-कान्मोहयति ॥१४॥ धर्मे नित्यं सन्निधानात् धर्मनित्यः । आगन्ता आगमिष्यति आनृशंस्यार्थं कुरूणां क्षयो मा भूदिति कृपां कर्तुम् ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योग-पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः॥७०॥

७१

चक्षुष्मतामिति । चक्षुष्मतां भाग्याय स्पृहयामि धन्याश्चक्षुष्मन्त इत्यर्थः । चक्षुष्मतां ज्ञानवतां वा परेण चिन्मात्रेण वपुषा स्वरूपेण ॥१॥भारतानां पाण्डवानां भारतीं वाचं ईरयन्तं अस्मत्सभायां कथयन्तं शंकरीं कल्याणकरीं बुभूषद्भिः ऐश्वर्यमिच्छद्भिः । परासूनां मृतानाम् ॥ २ ॥ उद्यन्तं प्रकटीभवन्तं देहरूपेणेत्यर्थात् शाश्वतं नित्यम् ॥ ३ ॥ वरेण्यं वरणीयम् ॥ ४ ॥

ऋषिं सनातनतमं विपश्चितं
वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम् ।
अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णं
हरिं प्रजानां भुवनस्य धाम ॥ ५
सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराण-
मनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम् ।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं
परं परेषां शरणं प्रपद्ये ॥ ६
त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं
देवासुराणामथ नागरक्षसाम् ।
नराधिपानां विदुषां प्रधान-
मिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

समाप्तं यानसन्धिपर्व ।

# भगवद्यानपर्व ६

## ७२

वैशम्पायन उवाच ।
सञ्जये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम् ॥ १
अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
न च त्वदन्यं पश्यामि यो न आपत्सु तारयेत् २
त्वां हि माधवमाश्रित्य निर्भया मोघदर्पितम् ।
धार्तराष्ट्रं सहामात्यं स्वयं समनुयुङ्क्ष्महे ॥ ३
यथा हि सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीनरिन्दम ।
तथा ते पाण्डवा रक्ष्याः पाह्यस्मान् महतो भयात्
श्रीभगवानुवाच ।
अयमस्मि महाबाहो ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यत्त्वं वक्ष्यसि भारत ॥ ५
युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुतं ते धार्तराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम् ।
एतद्धि सकलं कृष्ण सञ्जयो मां यदब्रवीत् ॥ ६
तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्यात्मा विवृतान्तरः ।
यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन् ॥ ७
अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति
लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः ॥ ८
यत्तद्द्वादश वर्षाणि वनेषु व्युषिता वयम् ।
छद्मना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ९
स्थाता नः समये तस्मिन् धृतराष्ट्र इति प्रभो ।
नाहास्म समयं कृष्ण तद्धि नो ब्राह्मणा विदुः १०
*गृद्धो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नानुपश्यति ।
वश्यत्वात् +पुत्रगृद्धित्वान्मन्दस्यान्वेति शासनम्
सुयोधनमते तिष्ठन् राजाऽस्मासु जनार्दन ।
मिथ्या चरति लुब्धः सन् चरन् हि प्रियमात्मनः॥

ऋषिं मुख्यं नारायणं विपश्चितं आत्मज्ञं यतीनां संन्यासिनां कलशमिव कलशं करग्राह्यं समुद्रं योगमुद्रयोपेतम् । अरिष्टः अहिंसितः नेमिः पादो यस्य सः अरिष्टनेमिरिति प्राञ्चः । अरिष्टनेमिर्नामतः अहिंसितमर्यादः नेमिरिव नेमिर्मर्यादा । गरुडं जातितः सुपर्णं शोभनपक्षं हरिं हर्तारम् ॥ ५ ॥ आदिः कारणं शुक्रस्य कर्मजन्यस्य बीजभूतस्य पुण्यादेः धातारं प्रतिभूरूपं परेषां विराडादीनां परं श्रेष्ठम् ॥ ६ ॥ निर्माणं रचना जनित्रं जनयितारम् ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकंठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१॥

७२

सञ्जय इति ॥ १ ॥ मोघं दर्पितं यस्य अनुयुंक्ष्महे प्रार्थयामहे ॥ ३ ॥ विवृतान्तरः प्रकाशितभावः ॥ ७ ॥ छद्मना अज्ञातचर्यया ॥ ९॥ स्थाता स्थास्यति नः अस्माकम् । तस्मिन् चतुर्दशे वर्षे स्वं राज्यं गृहीतेत्यस्मिन् न अहास्म न युक्तवन्तो वयम् ॥ १०॥

* गृद्धो लुब्धः । + मन्दस्य मूढस्य दुर्योधनस्य ।

इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः ।
संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन ॥१३
काशिभिश्चेदिपाञ्चालैर्मत्स्यैश्च मधुसूदन ।
भवता चैव नाथेन पञ्च ग्रामा वृता मया ॥ १४
अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दी वारणावतम् ।
अवसानं च गोविन्द कञ्चिदेवात्र पञ्चमम्॥ १५
पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा ।
वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥ १६
न च तानपि दुष्टात्मा धार्तराष्ट्रोऽनुमन्यते ।
स्वाम्यमात्मनि मत्वाऽसावतो दुःखतरं नु किम्
कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृद्ध्यतः ।
लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम्१८
ह्रीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हन्ति हतः श्रियम् ।
श्रीर्हता पुरुषं हन्ति पुरुषस्याधनं वधः ॥ १९
अधनाद्धि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः ।
अपुष्पादफलाद्वृक्षाद्यथा कृष्ण पतत्रिणः ॥ २०
एतच्च मरणं तात यन्मत्तः पतितादिव ।
ज्ञातयो विनिवर्तन्ते प्रेतसत्त्वादिवासवः ॥ २१
नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ २२
धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥
ये धनादपकर्षन्ति नरं स्वबलमास्थिताः ।
ते धर्ममर्थं कामं च प्रमथ्नन्ति नरं च तम् ॥ २४
एतामवस्थां प्राप्यैके मरणं वव्रिरे जनाः ।
ग्रामायैके वनायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥ २५
उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम् ।
दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥ २६
आपदेवास्य मरणात् पुरुषस्य गरीयसी ।
श्रियो विनाशस्तद्ध्यस्य निमित्तं धर्मकामयोः २७
यदस्य धर्म्यं मरणं शाश्वतं लोकवर्त्म तत् ।
समंतात् सर्वभूतानां न तदत्येति कश्चन ॥ २८
न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः ।
यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखैधितः २९
स तदाऽऽत्मापराधेन संप्राप्तो व्यसनं महत् ।
सेन्द्रान् गर्हयते देवान्नात्मानं च कथञ्चन ॥ ३०
न चास्य सर्वशास्त्राणि प्रभवन्ति निबर्हणे ।
सोऽभिक्रुध्यति भृत्यानां सुहृदश्चाभ्यसूयति ३१
तत्तदा मन्युरेवैति स भूयः संप्रमुह्यति ।
स मोहवशमापन्नः क्रूरं कर्म निषेवते ॥ ३२
पापकर्मतया चैव सङ्करं तेन पुष्यति ।
सङ्करो नरकायैव सा काष्ठा पापकर्मणाम् ॥ ३३
नचेत्प्रबुध्यते कृष्ण नरकायैव गच्छति ।
तस्य प्रबोधः प्रज्ञैव प्रज्ञाचक्षुस्तरिष्यति ॥ ३४
प्रज्ञालाभे हि पुरुषः शास्त्राण्येवान्ववेक्षते ।
शास्त्रनिष्ठः पुनर्धर्मं तस्य ह्रीरङ्गमुत्तमम् ॥ ३५
ह्रीमान् हि पापं प्रद्वेष्टि तस्य श्रीरभिवर्धते ।
श्रीमान् स यावद्भवति तावद्भवति पूरुषः ॥ ३६

मातरं संविधातुं सम्यक्पोषयितुं ततः तत्रस्थामित्यर्थः । मित्राणां-कर्मणि षष्ठी । मातुरिति पाठे अन्ततोऽन्येषां वणिक्प्रभृतीनां नागरिकाणां परित्यागेऽपि मातरं मित्राणि च विदुरादीनि संविधातुमिति प्राग्वत् ॥१३॥ काशिभिः राजाभिः नाथेन नाथवता भवदनुग्रहात् शक्तेनापीत्यर्थः ॥१४॥ अवसीयते संस्थयितेऽस्मिन्नित्यवसानं यावज्जीवनं वासस्थानम् ॥ १५ ॥ नः अस्माकं कृते भरताः भरतवंश्या भीष्मादयः मा नशन् मा नश्यन्तु ॥१६॥ तानपि भरतानपि ॥ १७ ॥ कुले इति द्वाभ्यां गर्वजा दोषसन्ततिरुक्ता ॥ १८ ॥ द्विजाः अर्थिनः ॥ २० ॥ प्रेतसत्त्वात् प्रगतबुद्धेर्मृतादित्यर्थः ॥ २१ ॥ धर्मं धर्मकारणम् । सर्वं यज्ञदानादि ये अधनास्ते मृता एव ॥२३॥ एतां निर्धनताख्यां एके नागरिकाः ग्रामाय कुग्रामवासार्थं वनायास्सादयः नाशाय मरणाय ॥ २५ ॥ आपत्पदार्थमाह— **श्रियो विनाश इति** । तद्धि श्रीर्हि ॥ २७ ॥ धर्म्यं देहस्वभावात् प्राप्तं न तु दारिद्र्याद्यपराधजं मरणं तच्छाश्वतं अनिमित्तमित्यर्थः । समन्तात् सर्वत्र अपरिहार्यमिति शेषः । नात्येति नातिक्रामति ॥ २८ ॥ तदा संपत्काले आत्मापराधेन चित्तदोषेण रागादिना नात्मानं चेत्यस्य न चात्मानमित्यर्थः ॥ ३० ॥ अस्य व्यसनस्य निबर्हणे नाशनिमित्तम् ॥ ३१ ॥ तत्तदा सर्वदेत्यर्थः । मन्युः क्रोधः स तद्वानेवेत्यर्थः । मुह्यति कार्याकार्ये न जानाति ॥ ३२ ॥ एवं श्रिया युक्तानां नरकप्राप्तिमुक्त्वा तेषामुद्धारोपायमाह— **तस्येति** । तस्य श्रीमतः अविद्याया निद्राणस्य प्रज्ञा विवेकः स एव प्रबोधो जागरणम् । यतः प्रज्ञाचक्षुः पुमान् तरिष्यति अविद्यामिति शेषः ॥ ३४ ॥ तरणे क्रममाह— **प्रज्ञेति** । धर्मं करोतीति शेषः । तस्य धर्मस्य ह्रीरकार्यकरणान्निवृत्तिहेतुश्चेतोवृत्तिविशेषः । ह्रीहीनेन कृतो धर्मोऽप्यधर्म एवेति भावः ॥ ३५ ॥

धर्मनित्यः प्रशान्तात्मा कार्ययोगवहः सदा ।
नाधर्मे कुरुते बुद्धिं न च पापे प्रवर्तते ॥ ३७
अन्हीको वा विमूढो वा नैव स्त्री न पुनः पुमान्
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति यथा शूद्रस्तथैव सः ॥
ह्रीमानवति देवांश्च पितॄनात्मानमेव च ।
तेनामृतत्वं व्रजति सा काष्ठा पुण्यकर्मणाम् ॥ ३९
तदिदं मयि ते दृष्टं प्रत्यक्षं मधुसूदन ।
यथा राज्यात् परिभ्रष्टो वसामि वसतीरिमाः ४०
ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित् ।
अत्र नो यतमानानां वधश्चेदपि साधु तत् ॥ ४१
तत्र नः प्रथमः कल्पो यद्वयं ते च माधव ।
प्रशान्ताः शमभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ॥ ४२
तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया ।
यद्वयं कौरवान् हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुमः ॥ ४३
ये पुनः स्युरसम्बद्धा अनार्याः कृष्ण शत्रवः ।
तेषामप्यवधः कार्यः किं पुनर्ये स्युरीदृशाः ॥ ४४
ज्ञातयश्चैव भूयिष्ठाः सहाया गुरवश्च नः ।
तेषां वधोऽतिपापीयान् किं नु युद्धेऽस्ति शोभनम्
पापः क्षत्रियधर्मोऽयं वयं च क्षत्रबन्धवः ।
स नः स्वधर्मो धर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता ७६
शूद्रः करोति शुश्रूषां वैश्या वै पण्यजीविकाः ।
वयं वधेन जीवामः कपालं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥ ४७
क्षत्रियः क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति ।
श्वा श्वानं हन्ति दाशार्ह पश्य धर्मो यथागतः ॥
युद्धे कृष्ण कलिर्नित्यं प्राणाः सीदन्ति संयुगे ।
बलं तु नीतिमाधाय युध्ये जयपराजयौ ॥ ४९
नात्मच्छन्देन भूतानां जीवितं मरणं तथा ।
नाप्यकाले सुखं प्राप्यं दुःखं वाऽपि यदूत्तम ५०

एको ह्यपि बहून् हन्ति घ्नन्त्येकं बहवोऽप्युत ।
शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशस्विनम् ॥ ५१
जयो नैवोभयोर्दृष्टो नोभयोश्च पराजयः ।
तथैवापचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ ॥ ५२
सर्वथा वृजिनं युद्धं को घ्नन्न प्रतिहन्यते ।
हतस्य च हृषीकेश समौ जयपराजयौ ॥ ५३
पराजयश्च मरणान्मन्ये नैव विशिष्यते ।
यस्य स्याद्विजयः कृष्ण तस्याप्यपचयो ध्रुवम् ५४
अन्ततो दयितं घ्नन्ति केचिदप्यपरे जनाः ।
तस्याङ्ग बलहीनस्य पुत्रान् भ्रातॄनपश्यतः ॥ ५५
निर्वेदो जीविते कृष्ण सर्वतश्चोपजायते ।
ये ह्येव धीरा ह्रीमन्त आर्याः करुणवेदिनः ॥ ५६
त एव युद्धे हन्यन्ते यवीयान् मुच्यते जनः ।
हत्वाऽप्यनुशयो नित्यं परानपि जनार्दन ॥ ५७
अनुबन्धश्च पापोऽत्र शेषश्चाप्यवशिष्यते ।
शेषो हि बलमासाद्य न शेषमनुशेषयेत् ॥ ५८
सर्वोच्छेदे च यतते वैरस्यान्तविधित्सया ।
जयो वैरं प्रसृजति दुःखमास्ते पराजितः ॥ ५९
सुखं प्रशान्तः स्वपिति हित्वा जयपराजयौ ।
जातवैरश्च पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा ॥ ६०
अनिर्वृत्तेन मनसा ससर्प इव वेश्मनि ।
उत्सादयति यः सर्वं यशसा स विमुच्यते ॥ ६१
अकीर्तिं सर्वभूतेषु शाश्वतीं स नियच्छति ।
न हि वैराणि शाम्यन्ति दीर्घकालधृतान्यपि ६२
आख्यातारश्च विद्यन्ते पुमांश्चेद्विद्यते कुले ।
न चापि वैरं वैरेण केशव व्युपशाम्यति ॥ ६३
हविषाऽग्निर्यथा कृष्ण भूय एवाभिवर्धते ।
अतोऽन्यथा नास्ति शान्तिर्नित्यमन्तरमन्ततः ६४

---

अन्हीकः तिर्यक्स्थावरतुल्यो न मनुष्य इत्यर्थः ॥३८॥ इदं ह्रीमत्त्वं ते त्वया मयि दृष्टम् ॥४०॥ अत्र श्रीनिमित्तं नः अस्माकम् ॥ ४१ ॥ प्रथमः कल्पः मुख्यः पक्षः समभूताः निर्वैरत्वं गताः ॥ ४२ ॥ रौद्रकर्म रौद्रकर्मणां सुपां सुलुगिति सम्याश्च (?) लुक् । क्षयोदया क्षयपूर्वक उदयो यस्यां सा रौद्रकर्मणां परमा काष्ठेति सम्बन्धः ॥ ४३ ॥ असंबद्धाः अबान्धवाः अवधः वधविरुद्धं पालनं ईदृशा इति बान्धवा आर्या अशत्रवश्च ये तेषामवधः कार्य इति किमाश्चर्यमित्यर्थः ॥ ४४ ॥ तदेवाह—ज्ञातय इति । भूयिष्ठाः अतिमहान्तः ॥ ४५ ॥ कपालं भिक्षापात्रम् ॥ ४७ ॥ यथा येन प्रकारेण आगतः कुलपरंपरया प्राप्तस्तं पश्येति योजना ॥ ४८ ॥ बलमिति । नीतिमेव बलं कृत्वा युध्ये योत्स्ये ।

जयपराजयौ तु आत्मच्छन्देन स्वेच्छया न भवतः । तथा तद्वत् भूतानां जीवितं मरणं च स्वेच्छया न स्तः ॥ ४९ ॥ पराजयभयाद्व्यपयाने पलायनेऽपि अपचयः क्षयव्ययौ च दृष्टौ भवत एव । अपचयो—दीनता । क्षयो-मरणम् । तत्र हेतुः व्ययः-द्रव्यादिनाशः ॥५२॥ विजयोऽप्यजयः पराजय एव इष्टजननाशादित्याह—यस्येति ५४॥ दयितं पुत्रादि । हे अङ्ग बलहीनस्य जातिबलहीनस्य ५५॥ यवीयान् कनिष्ठः । अनुशयः पश्चात्तापः ॥५७॥ अनुबन्धो दोषोत्पादः स च पापः कष्टप्रदः शेषः शत्रोः शेषं स्वस्य ॥ ५८ अनिर्वृत्तेन अस्वस्थेन ॥ ६१ ॥ अत इति । यतः अन्तरं छिद्रं नित्यं अपरिहार्यमतो हेतोः अन्ततोऽन्यथा स्वस्य शत्रोर्वा नाशं विना शान्तिर्नास्ति ॥ ६४ ॥

अन्तरं लिप्समानानामयं दोषो निरंतरः ।
पौरुषे यो हि बलवानाधिर्हृदयबाधनः ।
तस्य त्यागेन वा शान्तिर्मरणेनापि वा भवेत्॥६५
अथवा मूलघातेन द्विषतां मधुसूदन ।
फलनिर्वृत्तिरिद्धा स्यात्तन्नृशंसतरं भवेत् ॥ ६६
या तु त्यागेन शान्तिः स्यात्तदृते वध एव सः ।
संशयाच्च समुच्छेदाद्द्विषतामात्मनस्तथा ॥ ६७
न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम् ।
अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी ॥ ६८
सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकाङ्क्षताम् ।
सान्त्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धं नापराक्रमः ॥ ६९
प्रतिघातेन सान्त्वस्य दारुणं संप्रवर्तते ।
तच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम् ॥ ७०
लाङ्गूलचालनं क्ष्वेडा प्रतिवाचो विवर्तनम् ।
दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते ॥ ७१
तत्र यो बलवान्कृष्ण जित्वा सोऽत्ति तदामिषम्
एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ७२
सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम् ।
अनादरो विरोधश्च प्रणिपाती हि दुर्बलः ७३
पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति ।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च धृतराष्ट्रो जनार्दन ॥ ७४
पुत्रस्नेहश्च बलवान् धृतराष्ट्रस्य माधव ।
स पुत्रवशमापन्नः प्रणिपातं प्रहास्यति ॥ ७५
तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम् ।
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेम हि माधव ॥ ७६
ईदृशेऽत्यर्थकृच्छ्रेऽस्मिन् कमन्यं मधुसूदन ।
उपसंप्रष्टुमर्हामि त्वामृते पुरुषोत्तम ॥ ७७
प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
को हि कृष्णास्ति नस्त्वादृक् सर्वनिश्चयवित्सुहृत्

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः ।
उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥ ७९
शमं तत्र लभेयं चेद्युष्मदर्थमहापयन् ।
पुण्यं मे सुमहद्राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥ ८०
मोचयेयं मृत्युपाशात् संरब्धान् कुरुसृञ्जयान् ।
पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च सर्वां च पृथिवीमिमाम्

युधिष्ठिर उवाच ।

न ममैतन्मतं कृष्ण यत्त्वं यायाः कुरून् प्रति ।
सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥ ८२
समेतं पार्थिवं क्षत्रं दुर्योधनवशानुगम् ।
तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये ॥ ८३
न हि नः प्रीणयेद्द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम् ।
न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव ॥ ८४

श्रीभगवानुवाच ।

जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम् ।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम्
न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।
क्रुद्धस्य संयुगे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ८६
अथ चेत्ते प्रवर्तेत मयि किञ्चिदसाम्प्रतम् ।
निर्दहेयं कुरून् सर्वानिति मे धीयते मतिः ॥ ८७
न जातु गमनं पार्थ भवेत्तत्र निरर्थकम् ।
अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाऽप्यवाच्यता

युधिष्ठिर उवाच ।

यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान् ।
कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ८९
विष्वक्सेन कुरून् गत्वा भरतान् शमयन् प्रभो ।
यथा सर्वे सुमनसः सह स्याम सुचेतसः ॥ ९०

---

अयं दोषः नाशाख्यः अन्तत इत्येतद्व्याचष्टे—**पौरुषेय इति** सार्धेन ॥ ६५ ॥ द्विषतां मूलघातेन फलनिर्वृत्तिः निष्कण्टकराज्यप्राप्तिः इद्धा प्रदीप्ता स्यात् तावता च नृशंसतरं न भवेत् नृशंसं तु भवेदेवेत्यर्थः । अतः शम एव श्रेयानितिभावः ॥ ६६ ॥ त्यागेन राज्यस्येति शेषः । तदृते राज्यं विना द्विषतां संशयात् किं शत्रवश्छिद्रे प्रहरिष्यन्ति उत उपेक्षां करिष्यन्तीत्येवं रूपात् । आत्मनः भ्रष्टश्रीकस्य सद्यः समुच्छेदात् नाशसंभवात् । अतो राज्यत्यागो न युक्त इति भावः ॥ ६७ ॥ सिद्धान्तमाह—**न चेति** ॥ ६८ ॥ सर्वथा सामदानभेदैः राज्यार्थं यतमानानां युद्धं प्रसिद्धमवश्यं कर्तव्यमित्यर्थः । न तु अपराक्रमः क्लीबत्वं युक्त इति शेषः ॥ ६९ ॥ दारुणं युद्धं तच्छुनामिव निन्द्यमित्यर्थः ॥ ७० ॥ दृष्टान्तं विवृणोति—**लांगूलेति** । अत्र लांगूलेन ध्वज उपमीयते । क्ष्वेडा ध्वनिर्कौटिल्यं परस्परछिद्रान्वेषणं च । प्रतिवाचः परस्परनिंदा स्वप्रशंसा च । विवर्तनं भूमौ लुंठनं दन्तदर्शनं मुखस्य व्यादानेन । आरावः भषणं पक्षे सिंहनादः ॥७१॥ सर्वथेति। अनादरे राज्यस्याप्राप्तिः । युद्धे कुलक्षयः । प्रणिपाते तु दौर्बल्यप्रसिद्धिः ॥ ७३ ॥ अंत्यः पक्षोऽपि न सेत्स्यतीत्याह— पितेति द्वाभ्याम् ॥ ७४ ॥ प्रहास्यति न स्वीकरिष्यति ॥ ७५ ॥ ते त्वत्संबंधिनि मयि चेत् कुरुकृतं असांप्रतं अयुक्तं वधबन्धादि प्रवर्तेत तदा निर्दहेयं कुरूनित्यन्वयः ॥ ८७ ॥ कुरून् गत्वा तथा वदेति शेषः ॥९०॥

भ्राता चासि सखा चासि बीभत्सोर्मम च प्रियः।
सौहृदेनाविशङ्क्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये९१
अस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थान्वेत्थ भाषितुम्
यद्यदस्मद्धितं कृष्ण तत्तद्वाच्यः सुयोधनः ॥ ९२
यद्यधर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः।
तत्तत्केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत्॥९३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि युधिष्ठिरकृतकृष्णप्रेरणे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

श्रीभगवानुवाच।

सञ्जयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया।
सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥ १
तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः।
यदयुद्धेन लभ्येत तत्ते बहुमतं भवेत् ॥ २
न चैवं नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते।
आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत् ॥ ३
जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्टः सनातनः।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥ ४
न हि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर।
विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परन्तप ॥ ५
अतिगृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः।
कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परंतप ॥ ६
न पर्यायोऽस्ति यत्साम्यं त्वयि कुर्युर्विशांपते।
बलवत्तां हि मन्यन्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः ॥ ७
यावच्च मार्दवेनैतान्राजन्नुपचरिष्यसि।
तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिन्दम ॥ ८
नानुक्रोशान्न कार्पण्यान्न च धर्मार्थकारणात्।
अलंकर्तुं धार्तराष्ट्रास्तव काममरिन्दम ॥ ९
एतदेव निमित्तं ते पाण्डवास्तु यथा त्वयि।
नान्वतप्यन्त कौपीनं तावत्कृत्वाऽपि दुष्करम्१०
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः।
ब्राह्मणानां च साधूनां राज्ञश्च नगरस्य च ॥ ११
पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः।
दानशीलं मृदुं दान्तं धर्मशीलमनुव्रतम् ॥ १२
यत्त्वामुपधिना राजन् द्यूते वञ्चितवांस्तदा।
न चापत्रपते तेन नृशंसः स्वेन कर्मणा ॥ १३
तथा शीलसमाचारे राजन् मा प्रणयं कृथाः।
वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत ॥ १४
वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत्त्वां सहानुजम्।
श्लाघमानः प्रहृष्टः सन् भ्रातृभिः सह भाषते १५
एतावत् पाण्डवानां हि नास्ति किञ्चिदिह स्वकम्
नामधेयं च गोत्रं च तदप्येषां न शिष्यते ॥ १६
कालेन महता चैषां भविष्यति पराभवः।
प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो मयि ॥ १७
दुःशासनेन पापेन तदा द्यूते प्रवर्तिते।
अनाथवत्तदा देवी द्रौपदी सुदुरात्मना ॥ १८
आकृष्य केशे रुदती सभायां राजसंसदि।
भीष्मद्रोणप्रमुखतो गौरिति व्याहृता मुहुः ॥ १९

यदीति। अधर्मेण सान्त्वं नो राज्यार्धार्हाणां पञ्चग्रामदानेन अधर्मेण इतरत् द्यूतेनैव राज्यप्रत्यादानं वृद्धश्वादक्षहृदयस्य प्राप्तत्वात्। यद्यद्धर्मेणेति सत्यं वेति च पाठे त्वनृतस्य धर्मसंयुक्तत्वमहिंसाप्राधान्येन बोध्यम्॥९३॥ इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः७२

७३

सञ्जयस्येति ॥ १ ॥ नैष्ठिकं कर्म यावज्जीवं ब्रह्मचर्यं पारिव्राज्यं च विहितमिति शेषः ॥ ३ ॥ कार्पण्यं ग्रामपञ्चकं देहीति दीनवचनम् ॥ ४ ॥ वृत्तिः जीविका कर्तुमिति शेषः ॥ ५ ॥ अतिगृद्धाः अत्यंतलुब्धाः ॥ ६ ॥ पर्याय उपायः। यद्येन बलवत्तां स्वस्येति शेषः ॥ ७ ॥ अनुक्रोशात् भवत्सु कृपातः। कार्पण्यात् स्वस्य दैन्यात्। अलं कर्तुं पूर्णं कर्तुं न समर्थाः ॥ ९ ॥ निमित्तमशमे कारणम्। हे पांडव त्वयि कौपीनं धारयति सति ते कौरवाः नान्वतप्यंत पश्चात्तापं न कृतवंतः। तावत् वनवासादि ॥१०॥ पितामहादीननादृत्य उपधिना छलेन त्वां द्यूते वञ्चितवानिति सार्धद्वयसम्बन्धः ॥ ११ ॥ अतुदत् पीडितवान् ॥ १५ ॥ प्रकृतिं पंचतां मयि मत्समीपे नष्टा प्रकृतिः शौर्यादिरूपः स्वभावो येषाम् ॥ १७ ॥ गौरिव सर्वभोग्येत्युपहासो गौर्गौरिति ॥ १९ ॥

भवता वारिताः सर्वे भ्रातरो भीमविक्रमाः ।
धर्मपाशनिबद्धाश्च न किञ्चित् प्रतिपेदिरे ॥ २०
एताश्चान्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन् ।
श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम् २१
ये तत्रासन् समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम् ।
अश्रुकण्ठा रुदन्तश्च सभायामासते सदा ॥ २२
न चैनमभ्यनन्दंस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह ।
सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः ॥ २३
कुलीनस्य च या निन्दा वधो वाऽमित्रकर्शन ।
महागुणो वधो राजन्न तु निन्दा कुजीविका २४
तदैव निहतो राजन् यदैव निरपत्रपः ।
निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः ॥ २५
ईषत्कार्यो वधस्तस्य यस्य चारित्रमीदृशम् ।
प्रस्कुन्देन प्रतिस्तब्धश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ २६
वध्यः सर्प इवानार्यः सर्वलोकस्य दुर्मतिः ।
जह्येनं त्वममित्रघ्न मा राजन् विचिकित्सिथाः २७
सर्वथा त्वत्क्षमं चैतद्रोचते च ममानघ ।
यत्त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः ॥ २८
अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम् ।
येषामस्ति द्विधाभावो राजन् दुर्योधनं प्रति ॥
मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान् गुणान् ।
तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ३०
ब्रुवतस्तत्र मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः ॥ ३१
त्वयि सम्प्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति ।
तस्मिंश्चाधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्तत ॥ ३२
गर्हयिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि ।
वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्ये समागते ॥ ३३
शमं वै याचमानस्त्वं नाधर्मं तत्र लप्स्यसे ।
कुरून् विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः ३४
तस्मिन् लोकपरित्यक्ते किं कार्यमवशिष्यते ।
हते दुर्योधने राजन् यदन्यत्क्रियतामिति ॥ ३५
यात्वा चाहं कुरून् सर्वान् युष्मदर्थमहापयन् ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ॥ ३६
कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम् ।
निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ॥ ३७
सर्वथा युद्धमेवाहमाशंसामि परैः सह ।
निमित्तानि हि सर्वाणि तथा प्रादुर्भवन्ति मे ३८

मृगाः शकुन्ताश्च वदन्ति घोरं
हस्त्यश्वमुख्येषु निशामुखेषु ।
घोराणि रूपाणि तथैव चाग्नि-
र्वर्णान् बहून् पुष्यति घोररूपान् ॥ ३९
मनुष्यलोकक्षयकृत् सुघोरो
नो चेदनुप्राप्त इहान्तकः स्यात् ।
शस्त्राणि यन्त्रं कवचा रथांश्च
नागान् हयांश्च प्रतिपादयित्वा ॥ ४०
योधाश्च सर्वे कृतनिश्चयास्ते
भवन्तु हस्त्यश्वरथेषु यत्ताः ।
साङ्ग्रामिकं ते यदुपार्जनीयं
सर्वं समग्रं कुरु तन्नरेन्द्र ॥ ४१
दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं
जीवंस्तवैतन्नृपते कथञ्चित् ।
यत्ते पुरस्तादभवत्समृद्धं
द्यूते हृतं पाण्डवमुख्य राज्यम् ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

## ७४

भीम उवाच ।

यथा यथैव शान्तिः स्यात् कुरूणां मधुसूदन । तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥ १

ईषत्कार्यः अनायाससाध्यः प्रस्कुंदेन चक्राकारया वेदिकया 'कुंदश्चक्रभ्रमे मेघे' इति विश्वः । पारस्करादित्वात् सुट् । प्रस्कंदेनेति पाठे मध्यमशिफयेति प्राञ्चः ॥ २६ ॥ द्विधाभावः-अयं साधुरसाधुर्वेति संशयः ॥ २९ ॥ प्रातिपौरुषिकान् सर्वपुरुषसाधारणान् ॥ ३० ॥ हते नियतया नष्टप्राये ॥३५॥ यात्वा गत्वा ॥३६॥ निशम्य आलोच्य ॥३७॥ चेदिहान्तकोऽनुप्राप्तो नो स्यात्तर्हि एतन्न स्यादिति शेषः । यन्त्रं गोलकोत्क्षेपणं कवचा कवचानि वर्माणि सुपां सुलुगिति सुपो डादेशः । नान्तपाठे पुंस्त्वमार्षम् । प्रतिपाद्यित्वा सज्जीकृत्य ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

यथेति । शान्तिबाधकं भयं तेषां मा कुर्वित्याह—तथेति ॥ १ ॥

अमर्षी जातसंरम्भः श्रेयोद्वेषी महामनाः ।
नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्नैवैनं समाचरेः ॥ २
प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेतास्तु दस्युभिः ।
ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः ॥ ३
अदीर्घदर्शी निष्ठुरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः ।
दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥ ४
म्रियेतापि न भज्येत नैव जह्यात् स्वकं मतम् ।
तादृशेन शमः कृष्ण मन्ये परमदुष्करः ॥ ५
सुहृदामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ।
प्रतिहन्त्येव सुहृदां वाचश्चैव मनांसि च ॥ ६
स मन्युवशमापन्नः स्वभावं दुष्टमास्थितः ।
स्वभावात् पापमभ्येति तृणैश्छन्न इवोरगः ॥ ७
दुर्योधनो हि यत्सेनः सर्वथा विदितस्तव ।
यच्छीलो यत्स्वभावश्च यद्बलो यत्पराक्रमः ॥ ८
पुरा प्रसन्नाः कुरवः सहपुत्रास्तथा वयम् ।
इन्द्रज्येष्ठा इवाभूम मोदमानाः सबान्धवाः ॥ ९
दुर्योधनस्य क्रोधेन भरता मधुसूदन ।
धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः ॥ १०
अष्टादशेमे राजानः प्रख्याता मधुसूदन ।
ये समुच्चिच्छिदुर्ज्ञातीन् सुहृदश्च सबान्धवान् ११
असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।
*पर्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते कलिरजायत ॥ १२
हैहयानां मुदावर्तो नीपानां जनमेजयः ।
बहुलस्तालजङ्घानां कृमीणामुद्धतो वसुः ॥ १३
अजबिन्दुः सुवीराणां सुराष्ट्राणां रुषर्द्धिकः ।
अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ॥ १४
हयग्रीवो विदेहानां वरयुश्च महौजसाम् ।
बाहुः सुन्दरवंशानां दीप्ताक्षाणां पुरूरवाः ॥ १५
सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृषध्वजः ।
धारणश्चन्द्रवत्सानां मुकुटानां विगाहनः ॥ १६
शमश्च नन्दिवेगानामित्येते कुलपांसनाः ।
युगान्ते कृष्ण सम्भूताः कुले कुपुरुषाधमाः ॥१७
अप्ययं नः कुरूणां स्याद्युगान्ते कालसम्भृतः ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः ॥ १८
तस्मान्मृदु शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम् ।
कामानुबद्धं बहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम ॥ १९
अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः ।
नीचैर्भूत्वाऽनुयास्यामो मा स्म नो भरताऽनशन्॥
अप्युदासीनवृत्तिः स्याद्यथा नः कुरुभिः सह ।
वासुदेव तथा कार्यं न कुरूननयः स्पृशेत् ॥ २२
वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः ।
भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥
अहमेतद्ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयाऽर्जुने ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमवाक्ये
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## ७५

वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव ।
अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपहितं वचः ॥ १
गिरेरिव लघुत्वं तच्छीतत्वमिव पावके ।
मत्वा रामानुजः शौरिः शार्ङ्गधन्वा वृकोदरम् २
सन्तेजयंस्तदावाग्भिर्मातरिश्वेव पावकम् ।
उवाच भीममासीनं कृपयाऽभिपरिप्लुतम् ॥ ३
श्रीभगवानुवाच ।
त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि ।
वधाभिनन्दिनः क्रूरान् धार्तराष्ट्रान् मिमर्दिषुः ४

महामनाः स्तब्धः समाचरेः प्रागपि समाहितवानसि ॥ २ ॥ निष्ठुरी निष्ठुरवाक् क्षेप्ता निन्दकः अनेयः शिक्षयितुमयोग्यः ॥ ४ ॥ अवाचीनो विपरीतः ॥६॥ ज्ञातीन् सगोत्रान् सुहृदः मित्राणि बान्धवान् शालश्वशुरादीन् ११ पर्यायकाले धर्मान्तकाले॥१२॥ कामानुबन्धबहुलं बाहुल्येन तस्य चित्तानुसारि ॥ १९ ॥ अनयः कुलक्षयकृतो दोषः ॥२१॥ प्रशंसति शममेवेति शेषः॥२३॥इति श्रीम० उद्यो० नैल० भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

* यस्मिन् काले दानवान् वर्जयित्वा धर्मो गतः दानवा निर्मर्यादा यत्राभवन्नित्यर्थः ।

७५

एतदिति ॥ १

न च स्वपिषि जागर्षि न्युब्जः शेषे परंतप ।
घोरामशान्तां रुषतीं सदा वाचं प्रभाषसे ॥ ५
निःश्वसन्नग्निवत्तेन संतप्तः स्वेन मन्युना ।
अप्रशान्तमना भीम सधूम इव पावकः ॥ ६
एकान्ते निःश्वसन् शेषे भारार्त इव दुर्बलः ।
अपि त्वां केचिदुन्मत्तं मन्यन्ते तद्विदो जनाः ७
आरुज्य वृक्षान्निर्मूलान् गजः परिरुजन्निव ।
निघ्नन् पद्भिः क्षितिं भीम निष्टनन् परिधावसि ८
नास्मिन् जने न रमसे रहः क्षिपसि पाण्डव ।
नान्यं निशि दिवा चापि कदाचिदभिनन्दसि ॥९
अकस्मात् स्मयमानश्च रहस्यास्से रुदन्निव ।
जान्वोर्मूर्धानमाधाय चिरमास्से प्रमीलितः ॥ १०
भ्रुकुटिं च पुनः कुर्वन्नोष्ठौ च विदशन्निव ।
अभीक्ष्णं दृश्यसे भीम सर्वं तन्मन्युकारितम् ११
यथा पुरस्तात् सविता दृश्यते शुक्रमुच्चरन्
यथा च पश्चान्निर्मुक्तो ध्रुवं पर्येति रश्मिवान् १२
तथा सत्यं ब्रवीम्येतन्नास्ति तस्य व्यतिक्रमः ।
हन्ताहं गदयाऽभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ १३
इति स्म मध्ये भ्रातॄणां सत्येनालभसे गदाम् ।
तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्धीयतेऽद्य परंतप ॥ १४
अहो युद्धाभिकाङ्क्षाणां युद्धकाल उपस्थिते ।
चेतांसि विप्रतीपानि यत्त्वां भीर्भीम विन्दति १५
अहो पार्थ निमित्तानि विपरीतानि पश्यसि ।
स्वप्नान्ते जागरान्ते च तस्मात् प्रशममिच्छसि
अहो नाशंससे किञ्चित् पुंस्त्वं क्लीब इवात्मनि ।
कश्मलेनाभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः ॥ १७
उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रतिसीदति ।
ऊरुस्तंभगृहीतोऽसि तस्मात् प्रशममिच्छसि १८
अनित्यं किल मर्त्यस्य पार्थ चित्तं चलाचलम् ।
वातवेगप्रचलिता अष्ठीला शाल्मलेरिव ॥ १९
तवैषा विकृता बुद्धिर्गवां वागिव मानुषी ।
मनांसि पाण्डुपुत्राणां मज्जयत्यप्लवानिव ॥ २०
इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् ।
यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनासमं वचः ॥ २१
स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत ।
उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव २२
न चैतदनुरूपं ते यत्ते ग्लानिररिन्दम ।
यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमोत्तेजकश्रीकृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

वैशम्पायन उवाच ।
तथोक्तो वासुदेवेन नित्यमन्युरमर्षणः ।
सदश्ववत्समाधावद्बभाषे तदनन्तरम् ॥ १
भीमसेन उवाच ।
अन्यथा मां चिकीर्षन्तमन्यथा मन्यसेऽच्युत ।
प्रणीतभावमत्यर्थं युधि सत्यपराक्रमम् ॥ २
वेत्सि दाशार्ह सत्त्वं मे दीर्घकालं सहोषितः ।
उत वा मां न जानासि प्लवन् ह्रद इवाप्लवे ॥ ३
तस्मादनभिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्छसि ।
कथं हि भीमसेनं मां जानन् कश्चन माधव ४
ब्रूयादप्रतिरूपाणि यथा मां वक्तुमर्हसि ।
तस्मादिदं प्रवक्ष्यामि वचनं वृष्णिनन्दन ॥ ५
आत्मनः पौरुषं चैव बलं च न समं परैः ।
सर्वथा नार्यकर्मैतत् प्रशंसा स्वयमात्मनः ॥ ६
अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि बलमात्मनः ।
पश्येमे रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः ७

रुषतीं रोषवतीम् ॥ ५ ॥ अग्निवत् अग्निनेव ॥ ६ ॥ आरुज्य भंक्त्वा ॥ ८ ॥ अस्मिन् वने जनेन ब्राह्मणसमूहेन क्षिपसि नयसि कालमिति शेषः ॥ ९ ॥ शुक्रं तेजः निर्मुक्तोऽस्तं गतः ध्रुवं निश्चयं पुनः पर्येति मेरुं पुनः पुनः प्रदक्षिणीकरोति ॥ १२ ॥ नियमेन हन्ता अस्मीति शेषः ॥ १३ ॥ निमित्तानि महिषारोहण-वामनेत्रस्फुरणादीनि स्वप्नान्ते स्वप्ने । जागरान्ते जागरे ॥ १६ ॥ अष्ठीला फलान्तर्ग्रन्थिः सा च शाल्मलेः केवलं तूलमयी भवति ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

**तथोक्त इति** । समाधावत् तीव्रवेगं यथा स्यात्तथा ॥ १ ॥ रोदसी द्यावाभूमी ॥ ७ ॥

अचले चाप्रतिष्ठे चाप्यनन्ते सर्वमातरौ ।
यदिमे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले इव ॥ ८
अहमेते निगृह्णीयां बाहुभ्यां सचराचरे ।
पश्यैतदन्तरं बाह्वोर्महापरिघयोरिव ॥ ९
य एतत्प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम् ।
हिमवांश्च समुद्रश्च वज्री वा बलभित् स्वयम् १०
मयाऽभिपन्नं त्रायेरन् बलमास्थाय न त्रयः ।
युद्धार्हान् क्षत्रियान् सर्वान् पाण्डवेष्वाततायिनः
अधः पादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले ।
न हि त्वं नाभिजानासि मम विक्रममच्युत॥ १२
यथा मया विनिर्जित्य राजानो वशगाः कृताः
अथ चेन्मां न जानासि सूर्यस्येवोद्यतः प्रभाम् १३
विगाढे युधि सम्बाधे वेत्स्यसे मां जनार्दन ।
परुषैराक्षिपसि किं व्रणं पूतिमिवोन्नयन् ॥ १४
यथामति ब्रवीम्येतद्विद्धि मामधिकं ततः ।
द्रष्टाऽसि युधि सम्बाधे प्रवृत्ते वैशसेऽहनि ॥१५
मया प्रणुन्नान्मातङ्गान्रथिनः सादिनस्तथा ।
तथा नरानभिक्रुद्धं निघ्नन्तं क्षत्रियर्षभान् ॥ १६
द्रष्टा मां त्वं च लोकश्च विकर्षन्तं वरान् वरान् ।
न मे सीदन्ति मज्जानो न ममोद्वेपते मनः ॥ १७
सर्वलोकादभिक्रुद्धान्न भयं विद्यते मम ।
किं तु सौहृदमेवैतत् कृपया मधुसूदन ।
सर्वांस्तितिक्षे संक्लेशान् मा स्म नो भरता नशन्

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमसेनवाक्ये
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

श्रीभगवानुवाच ।
भावं जिज्ञासमानोऽहं प्रणयादिदमब्रुवम् ।
न चाक्षेपान्न पाण्डित्यान्न क्रोधान्न विवक्षया॥ १
वेदाहं तव माहात्म्यमुत ते वेद यद्बलम् ।
उत ते वेद कर्माणि न त्वां परिभवाम्यहम् ॥ २
यथा चात्मनि कल्याणं सम्भावयसि पाण्डव ।
सहस्रगुणमप्येतत्त्वयि सम्भावयाम्यहम् ॥ ३
यादृशे च कुले जन्म सर्वराजाभिपूजिते ।
बन्धुभिश्च सुहृद्भिश्च भीम त्वमसि तादृशः ॥ ४
जिज्ञासन्तो हि धर्मस्य सन्दिग्धस्य वृकोदर ।
पर्यायं नाध्यवस्यन्ति दैवमानुषयोर्जनाः ॥ ५
स एव हेतुर्भूत्वा हि पुरुषस्यार्थसिद्धिषु ।
विनाशेऽपि स एवास्य सन्दिग्धं कर्म पौरुषम् ६
अन्यथा परिदृष्टानि कविभिर्दोषदर्शिभिः ।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः ॥ ७
सुमन्त्रितं सुनीतं च न्यायतश्चोपपादितम् ।
कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनापि विरुध्यते ॥ ८
दैवमप्यकृतं कर्म पौरुषेण विहन्यते ।
शीतमुष्णं तथा वर्षं क्षुत्पिपासे च भारत ॥ ९

सम्बाधे सङ्कीर्णे ॥१४॥ वैशसे विशसनवति ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

**भावमिति** । विवक्षया त्वया स्वरूपं वक्तव्यमितीच्छया प्रागेव तस्य ज्ञातत्वात् ॥ १ ॥ वेद वेद्मि ॥ २ ॥ कुतस्तर्हि मां निन्दितवानसीत्याशंक्याह—**जिज्ञासन्त** इति । दैवमानुषयोर्धर्मस्य पर्यायमिति सम्बन्धः । दैवधर्मस्य भाविनः पुण्यपापफलस्य पर्यायं पर्यन्तं दैवज्ञादेः सकाशाज्जिज्ञासन्तो ज्ञातुमिच्छन्तोऽपि नाध्यवस्यन्ति न निश्चिन्वन्ति । कदाचिद्दैवज्ञाद्युक्तावपि विसंवाददर्शनात् । तथा मानुषधर्मस्य पुरुषकारस्य पर्यायं बलाबलनिर्णयमिति पूर्ववत् । शूरस्यापि कदाचित् क्लीबन्वदृष्टेरिति भावः ॥ ५ ॥ स एव धर्म एव सन्दिग्धं सन्दिग्धफलम् ॥ ६ ॥ परिदृष्टानि कर्तव्यत्वेन निश्चितानि कार्याणि ॥ ७ ॥ सुनीतं सम्यगनुष्ठितं विरुध्यते निष्फलं क्रियते ॥ ८ ॥ अकृतं भोगायानारब्धं कर्म पुण्यादिकमागामि दुःखं दैवज्ञादिभिरुपदिष्टतया निश्चितसद्भावं पौरुषेण विहन्यते तेन काम्यकर्मणामपि फलवत्त्वमस्त्येवेति सिद्धम् । यद्वा । अकृतं कालस्वभावजं कर्म अनुभूयमानं शीतोष्णादि तत् पौरुषेण प्रावरणादिसंपादनेन निवार्यत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

यदन्यद्दिष्टभावस्य पुरुषस्य स्वयं कृतम् ।
तस्मादनुपरोधश्च विद्यते तत्र लक्षणम् ॥ १०
लोकस्य नान्यतो वृत्तिः पाण्डवान्यत्र कर्मणः ।
एवंबुद्धिः प्रवर्तेत फलं स्यादुभयान्वये ॥ ११
य एवं कृतबुद्धिः स कर्मस्वेव प्रवर्तते ।
नासिद्धौ व्यथते तस्य न सिद्धौ हर्षमश्नुते ॥ १२
तत्रेयमनुमात्रा मे भीमसेन विवक्षिता ।
नैकान्तसिद्धिर्वक्तव्या शत्रुभिः सह संयुगे ॥ १३
नातिप्रहीणरश्मिः स्यात्तथा भावविपर्यये ।
विषादमर्छेद्ग्लानिं वाऽप्येतमर्थं ब्रवीमि ते॥ १४
श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ १५
शमं चेत्ते करिष्यन्ति ततोऽनन्तं यशो मम ।
भवतां च कृतः कामस्तेषां च श्रेय उत्तमम्॥१६
ते चेदभिनिवेक्ष्यन्ते नाभ्युपैष्यन्ति मे वचः ।
कुरवो युद्धमेवात्र घोरं कर्म भविष्यति ॥ १७
अस्मिन्युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः ।
धूर्जुनेन धार्या स्याद्वोढव्य इतरो जनः ॥ १८
अहं हि यन्ता बीभत्सोर्भविता संयुगे सति ।
धनञ्जयस्यैष कामो न हि युद्धं न कामये ॥ १९
तस्मादाशङ्कमानोऽहं वृकोदर मतिं तव ।
गदतः क्लीबया वाचा तेजस्ते समदीदिपम् ॥२०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

अर्जुन उवाच ।

उक्तं युधिष्ठिरेणैव यावद्वाच्यं जनार्दन ॥
तव वाक्यं तु मे श्रुत्वा प्रतिभाति परंतप ॥ १
नैव प्रशममत्र त्वं मन्यसे सुकरं प्रभो ।
लोभाद्वा धृतराष्ट्रस्य दैन्याद्वा समुपस्थितात् ॥२
अफलं मन्यसे वाऽपि पुरुषस्य पराक्रमम् ।
न चान्तरेण कर्माणि पौरुषेण बलोदयः* ॥ ३

**यदन्यदिति** । दिष्टः फलभोगाय आज्ञप्तः भावः सत्ता यस्य तत् दिष्टभावं प्रारब्धकर्म-पञ्चम्यर्थे षष्ठी-प्रारब्धादन्यदित्यर्थः । पुरुषस्य पुरुषेण सञ्चितं यत्स्वयं कृतं कर्म तस्मादनुपरोधो जन्मान्तरे निरोधो नास्ति । तत्र ज्ञानेन प्रायश्चित्तेन वा सञ्चितपापानां नाशे लक्षणं ज्ञापकं श्रुतिस्मृतिजातं विद्यते ।'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ' 'धर्मेण पापमपनुदति' 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ' इति । भावः प्रारब्धकर्म । यद्वा अकृतात् दैवात् शीतादेरन्यत्स्वयं कृतं दैवं देहान्तःकरणसन्तापहेतुः तस्मादपि उपरोधोऽत्रैव नास्ति । यतस्तत्रापि लक्षणं चिकित्सा विवेकहेतुः शास्त्रं प्रवर्तते सर्वेष्वपि पौरुषं कर्तव्यमिति भावः ॥ १० ॥ एतदेवाह- **लोकस्येति** । कर्मणोऽन्यत्र पौरुषं विना अन्यत एकस्माद्दैवादेव वृत्तिर्जीविका नास्ति । एवंबुद्धिः ईदृग्ज्ञानवान् सन् प्रवर्तेत पुरुषकारं कुर्यात् । तथा सति उभयान्वये दैवपौरुषयोः सम्बन्धे फलं भवति नान्यतरत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ **य इति** । यथा कर्षकः कर्म कृत्वा दैवानुकूल्यात् फलं लब्ध्वाऽपि न हृष्यति । अनाकस्मिकत्वात् फलस्य । दैवप्रातिकूल्यादलब्ध्वाऽपि न व्यथते अनुचितस्याकरणात्। तद्वदत्रापि ज्ञेयमित्याशयः ॥ १२ ॥ तं प्रकृते योजयति— **तत्रेति** । अनुमात्राऽवधारणं निश्चय इत्यर्थः । 'मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे' इति कोशः । लिंगव्यत्यय आर्षः ॥१३॥ प्रहीणरश्मिः निष्प्रभः भावः प्रारब्धं कर्म अर्च्छेत् प्राप्नुयात् ॥ १४ ॥ ते कुरव इति सम्बन्धः ॥ १७॥ **अस्मिन्निति** । रथोपमो भीमः । अश्वोपमोऽर्जुनः ॥ १८ ॥ **अहमिति** । युद्धकामोऽप्यहमर्जुनप्रीत्यै सारथ्यं करिष्यामीत्यर्थः ॥१९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८

**उक्तमिति** ॥ १ दैन्याद्वा अस्मदीयात् ॥ २ ॥ पराक्रमं सर्वेषां रक्षणे यत्नं कर्माणि जीवनबीजानि प्राक्तनानि तदभावात् दलद्वयहितार्थं कृतोऽपि यत्नो निष्फल इति मत्वा शममेवेच्छसीत्यर्थः ॥ ३ ॥*फलोदयः-ङ

तदिदं भाषितं वाक्यं तथाचन तथैव तत् ।
न चैतदेवं द्रष्टव्यमसाध्यमपि किञ्चन ॥ ४
किं चैतन्मन्यसे कृच्छ्रमस्माकमवसादकम् ।
कुर्वन्ति तेषां कर्माणि येषां नास्ति फलोदयः ॥
संपाद्यमानं सम्यक्च स्यात् कर्म सफलं प्रभो ।
स तथा कृष्ण वर्तस्व यथा शर्म भवेत्परैः ॥ ६
पाण्डवानां कुरूणां च भवान्नः प्रथमः सुहृत् ।
सुराणामसुराणां च यथा वीर प्रजापतिः ॥ ७
कुरूणां पाण्डवानां च प्रतिपत्स्व निरामयम् ।
अस्मद्धितमनुष्ठानं मन्ये तव न दुष्करम् ॥ ८
एवं च कार्यतामेति कार्यं तव जनार्दन ।
गमनादेवमेव त्वं करिष्यसि जनार्दन ॥ ९
चिकीर्षितमथान्यत्ते तस्मिन् वीर दुरात्मनि ।
भविष्यति च तत्सर्वं यथा तव चिकीर्षितम् ॥ १०
शर्म तैः सह वा नोऽस्तु तव वा यच्चिकीर्षितम् ।
विचार्यमाणो यः कामस्तव कृष्ण स नो गुरुः ॥
न स नार्हति दुष्टात्मा वधं ससुतबान्धवः ॥ ११
येन धर्मसुते दृष्ट्वा न सा श्रीरुपमर्षिता ।
यच्चाप्यपश्यतोपायं धर्मिष्ठं मधुसूदन ॥ १२
उपायेन नृशंसेन हृता दुर्द्यूतदेविना ।
कथं हि पुरुषो जातः क्षत्रियेषु धनुर्धरः ॥ १३
समाहूतो निवर्तेत प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।
अधर्मेण जितान् दृष्ट्वा वने प्रव्रजितांस्तथा ॥ १४
वध्यतां मम वार्ष्णेय निर्गतोऽसौ सुयोधनः ।
न चैतदद्भुतं कृष्ण मित्रार्थे यच्चिकीर्षसि ॥
क्रिया कथं च मुख्या स्यान्मृदुना चेतरेण वा ॥
अथवा मन्यसे ज्यायान् वधस्तेषामनन्तरम् ।
तदेव क्रियतामाशु न विचार्यमतस्त्वया ॥ १६
जानासि हि यथैतेन द्रौपदी पापबुद्धिना ।
परिक्लिष्टा सभामध्ये तच्च तस्योपमर्षितम् ॥ १७
स नाम सम्यग्वर्तेत पाण्डवेष्विति माधव ।
न मे संजायते बुद्धिर्बीजमुप्तमिवोषरे ॥ १८
तस्माद्यन्मन्यसे युक्तं पाण्डवानां हितं च यत् ।
तदाऽऽशु कुरु वार्ष्णेय यन्नः कार्यमनन्तरम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि अर्जुनवाक्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मन्त्रकारणमाह—तदिदमिति । न हि युद्धं न कामये इति यत्त्वया भाषितं तथाचन तथाऽपि । चनशब्दोऽप्यर्थे । यद्यपि ममैतदनिष्टं तथापि त्वया यद्भाषितं तत्तथैव भविष्यतीत्यर्थः । परन्तु शमोऽपि तव नासाध्योऽस्तीत्याह—न चेति ॥ ४ ॥ एतत् कृच्छ्रं युद्धं संकटं मन्यसेऽङ्गीकरोषि । अस्माकं कुरुपाण्डवानां शमासंभवाद्युद्धमिच्छसीत्याह—कुर्वन्तीति । येषां पुंसां फलोदयो नास्ति तेषां कर्माणि क्रियमाणान्यपि सामादीनि कुर्वन्ति कृण्वन्ति हिंसन्ति। कृ हिंसायामित्यस्य स्वादिगणस्थस्य रूपम्।तनादित्वमस्यार्षं लेखकप्रमादजं वा । 'चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया' इत्यभियुक्तोक्तेर्जीवनादृष्टाभावाद्दण्डैकसाध्येषु कुरुषु सान्त्वप्रयोगो दुष्कर इत्यर्थः ॥ ५ ॥ एवं जानन्नपि सामैव चेन्मन्यसे तत्राह—संपाद्येति । यत्कर्म सम्यक् संपाद्यमानं भवेत् तत्सफलं स्यादिति सम्बन्धः । प्रभो इत्यनेन असाध्यसाधनसामर्थ्यमस्य दर्शयति । फलितमाह—स इति ॥ ६ ॥ निरामयं कुशलम् ॥ ८ ॥ कार्यतामौचित्यं कार्यं कर्म ॥ ९ ॥ शर्मेति । कृष्णात्स्वस्य व्यवहारतो भेदान्मतभेदमुक्त्वा तत्त्वमाह—विचार्यमाण इति । गुरुः उपदेष्टा । 'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुस्ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम् ' इति श्रुतेरस्मन्मनसोऽपि मतस्त्वमतस्तव यः कामः स एवास्मत्कामस्य प्रवर्तक इति भावः । वस्तुतस्तु तवैव कामो युक्त इत्याह—न स इत्यादिना ॥११॥ धर्मिष्ठं युद्धादिकम् ॥ १२ ॥ हृता श्रीः ॥ १३ ॥ समाहूतो द्यूतार्थम् ॥ १४ ॥ निर्गतः निश्चयेन प्राप्तः कथं च कथमपि मुख्या फलवती मृदुना साम्ना इतरेण युद्धेन ॥ १५ ॥ नाम निश्चितं स पाण्डवेषु सम्यग्वर्तेतेति बुद्धिर्मे न सञ्जायते नोत्पद्यते ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

# ७९

श्रीभगवानुवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
पाण्डवानां कुरूणां च प्रतिपत्स्ये निरामयम् ॥ १
सर्वं त्विदं ममायत्तं बीभत्सो कर्मणोर्द्वयोः ।
क्षेत्रं हि रसवच्छुद्धं कर्मणैवोपपादितम् ॥ २
ऋते वर्षान्न कौन्तेय जातु निर्वर्तयेत् फलम् ।
तत्र वै पौरुषं ब्रूयुरासेकं यत्र कारितम् ॥ ३
तत्र चापि ध्रुवं पश्येच्छोषणं दैवकारितम् ।
तदिदं निश्चितं बुद्ध्या पूर्वैरपि महात्मभिः ॥ ४
दैवे च मानुषे चैव संयुक्तं लोककारणम् ।
अहं हि तत्करिष्यामि परं पुरुषकारतः ॥ ५
दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथञ्चन ।
स हि धर्मं च लोकं च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः॥
न हि सन्तप्यते तेन तथारूपेण कर्मणा ।
तथाऽपि बुद्धिं पापिष्ठां वर्धयन्त्यस्य मन्त्रिणः
शकुनिः सूतपुत्रश्च भ्राता दुःशासनस्तथा ।
स हि त्यागेन राज्यस्य न शमं समुपैष्यति ॥ ८
अन्तरेण वधं पार्थ सानुबन्धः सुयोधनः ।
न चापि प्रणिपातेन त्यक्तुमिच्छति धर्मराट् ॥
याच्यमानश्च राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ॥ ९
न तु मन्ये स तद्वाच्यो यद्युधिष्ठिरशासनम् ।
उक्तं प्रयोजनं यत्तु धर्मराजेन भारत ॥ १०
तथा पापस्तु तत्सर्वं न करिष्यति कौरवः ।
तस्मिंश्चाक्रियमाणेऽसौ लोके वध्यो भविष्यति ॥
मम चापि स वध्यो हि जगतश्चापि भारत ।
येन कौमारके यूयं सर्वे विप्रकृताः सदा ॥ १२
विप्रलुप्तं च वो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना ।
न चोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ १३
असकृच्चाप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदितः ।
न मया तद्गृहीतं च पापं तस्य चिकीर्षितम् ॥
जानासि हि महाबाहो त्वमप्यस्य परं मतम् ।
प्रियं चिकीर्षमाणं च धर्मराजस्य मामपि ॥ १५
स जानंस्तस्य चात्मानं मम चैव परं मतम् ।
अजानन्निव मां कस्मादर्जुनाद्याभिशङ्कसे ॥ १६
यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाप्यनुगतं त्वया ।
विधानं विहितं पार्थ कथं शर्म भवेत् परैः ॥ १७
यत्तु वाचा मया शक्यं कर्मणा वाऽपि पाण्डव ।
करिष्ये तदहं पार्थ न त्वाशंसे शमं परैः ॥ १८
कथं गोहरणे ह्युक्तो नैतच्छर्म तथा हितम् ।
याच्यमानो हि भीष्मेण संवत्सरगतेऽध्वनि ॥
तदैव ते पराभूता यदा संकल्पितास्त्वया ।
लवशः क्षणशश्चापि न च तुष्टः सुयोधनः ॥ २०
सर्वथा तु मया कार्यं धर्मराजस्य शासनम् ।
विभाव्यं तस्य भूयश्च कर्म पापं दुरात्मनः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

७९

**एवमिति** ॥ १॥ द्वयोः कर्मणोः शमयुद्धयोर्मध्ये इदमनामयं सर्वं कृत्स्नं मम दूतस्यायत्तमधीनं तथाऽपि दैवानुकूल्यमत्रापेक्षितमित्याह—**क्षेत्रमिति** । कर्मणा कर्षणेन वाप्यादिजलदानेन च शुद्धं भूदोषहीनं रसवदार्द्रं च उपपादितं कृतं तत् कदाचिद्वर्षे विनाऽपि फलप्रदं भवेत् ॥ २ अत्र केवलं पौरुषस्यैव श्रेष्ठ्यं दृष्टमित्याह—**तत्रेति** ॥ ३ ॥ एतदपि दैवाधीनमेवेत्याह—**तत्र चापीति** । शोषणं वाप्यादेः । सर्वथा वृष्ट्यभावे यथा न फलनिष्पत्तिस्तद्वद्दैवाभावेऽपीत्यर्थः ॥ ४ ॥ संयुक्तमाहितं लोककारणं लोकहितसाधनम् ॥ ५ ॥ दैवं कर्म प्राक्तनं कर्म कर्तुमन्यथाकर्तुम् ॥ ६ ॥ पुरुषकाराच्छमोऽप्यत्र दुःसंपाद इत्याह—**स हीति** । त्यागेन दानेन ॥ ८ ॥ सानुबन्धः सपरिवारः **न चेति** । एको राज्यं त्यक्तुं नेच्छति परो दातुं नेच्छतीत्यर्थः ॥ ९ ॥ शासनं पञ्चग्रामान् देहीति तत् न वक्तव्यः दैन्यद्योतकत्वादिति भावः । अफलत्वाच्च नैवं स वाच्य इत्याह—**उक्तमिति** । प्रयोजनं शमम् ॥ १० ॥ अभिशंकसे मां शममनिच्छन्तमिव मन्यसे ॥ १६ ॥ दिव्यं विधानं भूभारापहारार्थं स्वर्गाद्देवानामवतरणम् ॥१७॥ आशंसे संभावयामि ॥ १८ ॥ **कथमिति** । भीष्मेण एतच्छर्म याच्यमानोऽपि सः हितं कथं नोक्तः अपि तु उक्त उपदिष्ट एव दुर्योधनस्तथाऽपि न गृहीतवानिति भावः। संवत्सरगते गतसंवत्सरे ॥ १९ ॥ संकल्पिताः वध्यत्वेन निश्चिताः । लवशः क्षणशः लवांशः क्षणः स्वीकारः । राज्यलेशस्य स्वीकारेऽपि न संतुष्ट इत्यर्थः । क्रमेण षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च शस्प्रत्ययः ॥ २० ॥ विभाव्यं विचारणीयम् ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

नकुल उवाच ।

उक्तं बहुविधं वाक्यं धर्मराजेन माधव ।
धर्मज्ञेन वदान्येन श्रुतं चैव हि तत्त्वया ॥
मतमाज्ञाय राज्ञश्च भीमसेनेन माधव ।
संशमो बाहुवीर्यं च ख्यापितं माधवात्मनः ॥ २
तथैव फाल्गुनेनापि यदुक्तं तत्त्वया श्रुतम् ।
आत्मनश्च मतं वीर कथितं भवता सकृत् ॥ ३
सर्वमेतदतिक्रम्य श्रुत्वा परमतं भवान् ।
यत्प्राप्तकालं मन्येथास्तत्कुर्याः पुरुषोत्तम ॥ ४
तस्मिंस्तस्मिन्निमित्ते हि मतं भवति केशव ।
प्राप्तकालं मनुष्येण क्षमं कार्यमरिन्दम ॥ ५
अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा ।
अनित्यमतयो लोके नराः पुरुषसत्तम ॥ ६
अन्यथा बुद्धया ह्यासन्नस्मासु वनवासिषु ।
अदृश्येष्वन्यथा कृष्ण दृश्येषु पुनरन्यथा ॥ ७
अस्माकमपि वार्ष्णेय वने विचरतां तदा ।
न तथा प्रणयो राज्ये यथा सम्प्रति वर्तते ॥ ८
निवृत्तवनवासान्नः श्रुत्वा वीर समागताः ।
अक्षौहिण्यो हि सप्तेमास्त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ९
इमान् हि पुरुषव्याघ्रानचिन्त्यबलपौरुषान् ।
आत्तशस्त्रान् रणे दृष्ट्वा न व्यथेदिह कः पुमान् १०
स भवान् कुरुमध्ये तं सान्त्वपूर्वं भयोत्तरम् ।
ब्रूयाद्वाक्यं यथा मन्दो न व्यथेत सुयोधनः ॥ ११
युधिष्ठिरं भीमसेनं बीभत्सुं चापराजितम् ।
सहदेवं च मां चैव त्वां च रामं च केशव ॥ १२
सात्यकिं च महावीर्यं विराटं च सहात्मजम् ।
द्रुपदं च सहामात्यं धृष्टद्युम्नं च माधव ॥ १३
काशिराजं च विक्रान्तं धृष्टकेतुं च चेदिपम् ।
मांसशोणितभृन्मर्त्यः प्रतियुध्येत को युधि १४
स भवान् गमनादेव साधयिष्यत्यसंशयम् ।
इष्टमर्थं महाबाहो धर्मराजस्य केवलम् ॥ १५
विदुरश्चैव भीष्मश्च द्रोणश्च सहबाह्लिकः ।
श्रेयः समर्था विज्ञातुमुच्यमानास्त्वयाऽनघ १६
ते चैनमनुनेष्यन्ति धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
तं च पापसमाचारं सहामात्यं सुयोधनम् ॥ १७
श्रोता चार्थस्य विदुरस्त्वं च वक्ता जनार्दन ।
कमिवार्थं निवर्तन्तं स्थापयेतां न वर्त्मनि ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि नकुलवाक्ये
अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

## ८१

सहदेव उवाच ।

यदेतत्कथितं राज्ञा धर्म एष सनातनः ।
यथा च युद्धमेव स्यात्तथा कार्यमरिन्दम ॥
यदि प्रशममिच्छेयुः कुरवः पाण्डवैः सह ।
तथाऽपि युद्धं दाशार्ह योजयेथाः सहैव तैः ॥ २
कथं नु दृष्ट्वा पाञ्चालीं तथा कृष्ण सभागताम् ।
अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने ॥ ३

### ८०

**उक्तमिति** ॥ १ ॥ राज्ञो मतमाज्ञाय संशमः सम्यक् शमः ख्यापितः हे माधव मधुदेशज आत्मनः मतमाज्ञाय बाहुवीर्यं ख्यापितं हे माधव लक्ष्मीपते ॥ २ ॥ **तस्मिन्निति** । निमित्तभेदान्मतभेदो भवति । कुलधुर्यस्य युधिष्ठिरस्य मतं कुलोच्छेदो मा भूदिति, केशाकर्षणक्लिष्टायाः द्रौपद्या मतं शत्रवो निर्मूलमुन्मूलनीया इति । तत्र कालानुरूपं यत् क्षमं योग्यं तत्त्वया कार्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥ अनित्या नाशवती मतिर्येषां ते ॥ ६ ॥ न केवलं व्यक्तिभेदान्मतभेदः किं तु व्यक्त्यैक्येऽप्यवस्थाभेदान्मतभेदो भवतीत्याह—**अन्यथेत्यादिना** । **अदृश्येष्विति** । अज्ञातवासकाले कथमनावृत्ताश्चरिष्याम इत्येव मनोरथ आसीत् । दृश्येषु इदानीं भव्येषु अस्मासु कदा राज्यं प्राप्स्याम इत्यस्तीति भावः ॥ ७ ॥ प्रणय आदरः ॥ ८ ॥ न व्यथेत् युध्येत् ॥ ९ ॥ अर्थं प्रयोजनं निवर्तन्तं भ्रश्यन्तम् ॥ १८ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

### ८१

**यदेतदिति** ॥ १ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण धर्मराजश्च धार्मिकः ।
धर्ममुत्सृज्य तेनाहं योद्धुमिच्छामि संयुगे ॥ ४
सात्यकिरुवाच ।
सत्यमाह महाबाहो सहदेवो महामतिः ।
दुर्योधनवधे शान्तिस्तस्य कोपस्य मे भवेत् ॥ ५
न जानासि यथा दृष्ट्वा चीराजिनधरान् वने ।
तवापि मन्युरुद्भूतो दुःखितान् प्रेक्ष्य पाण्डवान् ६
तस्मान्माद्रीसुतः शूरो यदाह रणकर्कशः ।
वचनं सर्वयोधानां तन्मतं पुरुषोत्तम ॥ ७
वैशम्पायन उवाच ।
एवं वदति वाक्यं तु युयुधाने महामतौ ।
सुभीमः सिंहनादोऽभूद्योधानां तत्र सर्वशः ॥ ८
सर्वे हि सर्वशो वीरास्तद्वचः प्रत्यपूजयन् ।
साधु साध्विति शैनेयं हर्षयन्तो युयुत्सवः ९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि सहदेवसात्यकिवाक्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

वैशम्पायन उवाच ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम् ।
कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता ॥ १
सुता द्रुपदराजस्य स्वसितायतमूर्धजा ।
संपूज्य सहदेवं च सात्यकिं च महारथम् ॥ २
भीमसेनं च संशान्तं दृष्ट्वा परमदुर्मनाः ।
अश्रुपूर्णेक्षणा वाक्यमुवाचेदं मनस्विनी ॥ ३
विदितं ते महाबाहो धर्मज्ञ मधुसूदन ।
यथा निकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पाण्डवाः सुखात्
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सामात्येन जनार्दन ।
यथा च सञ्जयो राज्ञा मन्त्रं रहसि श्रावितः ॥ ५
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह तच्चापि विदितं तव ।
यथोक्तः सञ्जयश्चैव तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ॥ ६
पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा इति महाद्युते ।
अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ॥ ७
अवसानं महाबाहो कञ्चिदेकं च पञ्चमम् ।
इति दुर्योधनो वाच्यः सुहृदश्चास्य केशव ॥ ८
न चापि ह्यकरोद्वाक्यं श्रुत्वा कृष्ण सुयोधनः ।
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह श्रीमतः सन्धिमिच्छतः ॥ ९
अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः ।
सन्धिमिच्छेन्न कर्तव्यं तत्र गत्वा कथञ्चन ॥ १०
शक्ष्यन्ति हि महाबाहो पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
धार्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम् ॥ ११
न हि साम्ना न दानेन शक्योऽर्थस्तेषु कश्चन ।
तस्मात्तेषु न कर्तव्या कृपा ते मधुसूदन ॥ १२
साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शाम्यन्ति शत्रवः ।
योक्तव्यस्तेषु दण्डः स्याज्जीवितं परिरक्षता ॥ १३
तस्मात्तेषु महादण्डः क्षेप्तव्यः क्षिप्रमच्युत ।
त्वया चैव महाबाहो पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ १४
एतत्समर्थं पार्थानां तव चैव यशस्करम् ।
क्रियमाणं भवेत् कृष्ण क्षत्रस्य च सुखावहम् १५
क्षत्रियेण हि हन्तव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः ।
अक्षत्रियो वा दाशार्ह स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥ १६
अन्यत्र ब्राह्मणात्तात सर्वपापेष्ववस्थितात् ।
गुरुर्हि सर्ववर्णानां ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक् ॥ १७
यथाऽवध्ये वध्यमाने भवेद्दोषो जनार्दन ।
स वध्यस्यावधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥ १८
यथा त्वां न स्पृशेदेष दोषः कृष्ण तथा कुरु ।
पाण्डवैः सह दाशार्हैः सृञ्जयैश्च ससैनिकैः ॥ १९
पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रम्भेण जनार्दन ।
का तु सीमन्तिनी मादृक् पृथिव्यामस्ति केशव २०

---

यदि यद्यपि भीमादयो धार्मिकाः स्युस्तथाऽप्यहं धर्ममुत्सृज्य तेन सह योद्धुमिच्छामि ॥ ४ ॥ महाबाहो हे कृष्ण ॥ ५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

८२

राज्ञस्त्विति ॥ १ ॥ स्वसितायतमूर्धजा अतिकृष्णा दीर्घाश्च केशा यस्याः ॥ २ ॥ मन्त्रं शमप्रधानम् ॥ ५ ॥ प्रतिसमासितुं प्रतिपक्षतया स्थातुम् ॥ ११ ॥ कश्चन अर्थः शमोपायः शक्यः कर्तुमिति शेषः ॥ १२ ॥ समर्थं युक्तम् ॥ १५ ॥ प्रसृतं प्रदत्तं च तदग्र्यं च तस्य भोक्ता प्रसृताग्रभुक् । पूज्य इत्यर्थः ॥ १७ ॥

अयं ते पुण्डरीकाक्ष ! दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता ॥३६॥

—उद्योग अ० ८२ पृ. १५४

सुता द्रुपदराजस्य वेदिमध्यात् समुत्थिता ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी तव कृष्ण प्रिया सखी॥ २१
आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ।
महिषी पाण्डुपुत्राणां पञ्चेन्द्रसमवर्चसाम् ॥ २२
सुता मे पञ्चभिर्वीरैः पञ्च जाता महारथाः ।
अभिमन्युर्यथा कृष्ण तथा ते *तव धर्मतः ॥२३
साऽहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता ।
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव॥ २४
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पञ्चालेष्वथ वृष्णिषु ।
दासीभूताऽस्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता॥
निरमर्षेष्वचेष्टेषु प्रेक्षमाणेषु पाण्डुषु ।
पाहि मामिति गोविन्द मनसा चिन्तितोऽसि मे
यत्र मां भगवान्राजा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत् ।
वरं वृणीष्व पाञ्चालि वरार्हाऽसि मता मम॥२७
अदासाः पाण्डवाः सन्तु सरथाः सायुधा इति ।
मयोक्ते यत्र निर्मुक्ता वनवासाय केशव ॥ २८
एवंविधानां दुःखानामभिज्ञोऽसि जनार्दन ।
त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष सभर्तृज्ञातिबान्धवान् ॥ २९
नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।
स्नुषा भवामि धर्मेण साऽहं दासीकृता बलात्॥
धिक् पार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग्बलम् ।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१
यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।
धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण +विधीयताम्३२
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम् ।
सुनीलमसितापाङ्गी सर्वगन्धाधिवासितम् ॥ ३३
सर्वलक्षणसम्पन्नं महाभुजगवर्चसम् ।
केशपक्षं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना ॥ ३४
पद्माक्षी पुण्डरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी ।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ३५
अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता ॥ ३६
यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ सन्धिकामुकौ ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः ॥ ३७
पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह ॥३८
दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुण्ठितम् ।
यद्यहं तु न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥३९
त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे ।
विधाय हृदये मन्युं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ४०
विदीर्यते मे हृदयं भीमवाक्शल्यपीडितम् ।
योऽयमद्य महाबाहुर्धर्ममेवानुपश्यति ॥ ४१
इत्युक्त्वा बाष्परुद्धेन कण्ठेनायतलोचना ।
रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम् ॥ ४२
स्तनौ पीनायतश्रोणी सहिताविभिवर्षती ।
द्रवीभूतमिवात्युष्णं मुञ्चती वारि नेत्रजम् ॥ ४३
तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन् ।
अचिराद्द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ॥ ४४
एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवाः ।
हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धाऽसि भामिनी ॥ ४५
अहं च तत्करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह ।
युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥ ४६
धार्तराष्ट्राः कालपक्का न चेच्छृण्वन्ति मे वचः ।
शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वसृगालादनीकृताः ॥४७
चलेद्धि हिमवान् शैलो मेदिनी शतधा फलेत् ।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत् ॥४८
सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम् ।
हतामित्रान् श्रिया युक्तानचिराद्द्रक्ष्यसे पतीन् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि द्रौपदीकृष्णसंवादे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

---

मृदुसंहारं वेणीरूपेण समाहृतमपि मृदुं वृजिनाग्रं कुटिलाग्रं केशवत्सूक्ष्माग्रं वा । 'वृजिनः कुटिलेऽन्यवत्' इति विश्वः सुदर्शनं रमणीयम् ॥ ३३ ॥ हे भीम शत्रुभयंकर कृष्ण योऽयं भवान् ॥ ४१ ॥ अत्युष्णं वह्निम् ॥ ४३ ॥ रोत्स्यन्ति रोदिष्यन्ति ॥ ४५ ॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

* अभिमन्युर्यथा तव भागिनेयस्तथा तेपीति भावः ।

\+ विधीयतां विशिष्टः क्रियतां वधेनापनयिताम् ।

## ८३

अर्जुन उवाच ।
कुरूणामद्य सर्वेषां भवान् सुहृदनुत्तमः ।
सम्बन्धी दयितो नित्यमुभयोः पक्षयोरपि ॥ १
पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां प्रतिपाद्यमनामयम् ।
समर्थः प्रशमं चैव कर्तुमर्हसि केशव ॥ २
त्वामितः पुण्डरीकाक्ष सुयोधनममर्षणम् ।
शान्त्यर्थं भ्रातरं ब्रूया यत्तद्वाच्यममित्रहन् ॥
त्वया धर्मार्थयुक्तं चेदुक्तं शिवमनामयम् ।
हितं नादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ ४
श्रीभगवानुवाच ।
धर्म्यमस्मद्धितं चैव कुरूणां यदनामयम् ।
एष यास्यामि राजानं धृतराष्ट्रमभीप्सया ॥ ५
वैशम्पायन उवाच ।
ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते ।
मैत्रे मुहूर्ते संप्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥ ६
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ।
स्फीतसस्यसुखे काले कल्पः सत्त्ववतां वरः ७
मङ्गल्याः पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृताः ।
ब्राह्मणानां प्रतीतानामृषीणामिव वासवः ॥ ८
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलङ्कृतः ।
उपतस्थे विवस्वन्तं पावकं च जनार्दनः ॥ ९
ऋषभं पृष्ठ आलभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च ।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रतः ॥ १०
तत्प्रतिज्ञाय वचनं पाण्डवस्य जनार्दनः ।
शिनेर्नप्तारमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम् ॥ ११
रथ आरोप्यतां शङ्खश्चक्रं च गदया सह ।
उपासङ्गाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि च ॥ १२
दुर्योधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः ।
न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ॥ १३
ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुरःसराः ।
प्रसस्रुर्योजयिष्यन्तो रथं चक्रगदाभृतः ॥ १४
तं दीप्तमिव कालाग्निमाकाशगमिवाशुगम् ।
सूर्यचन्द्रप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलङ्कृतम् ॥१५
अर्धचन्द्रैश्च चन्द्रैश्च मत्स्यैः समृगपक्षिभिः ।
पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणिरत्नैश्च सर्वशः ॥ १६
तरुणादित्यसंकाशं बृहन्तं चारुदर्शनम् ।
मणिहेमविचित्राङ्गं सुध्वजं सुपताकिनम् ॥ १७
सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
यशोघ्नं प्रत्यमित्राणां यदूनां नन्दिवर्धनम् ॥ १८
वाजिभिः शैब्य-सुग्रीव-मेघपुष्प-बलाहकैः ।
स्नातैः संपादयामासुः संपन्नैः सर्वसंपदा ॥ १९
महिमानं तु कृष्णस्य भूय एवाभिवर्धयन् ।
सुघोषः पतगेन्द्रेण ध्वजेन युयुजे रथः ॥ २०
तं मेरुशिखरप्रख्यं मेघदुन्दुभिनिःस्वनम् ।
आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव कामगम् ॥ २१
ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च रथघोषेण नादयन् ॥ २२
व्यपोढाभ्रस्ततः कालः क्षणेन समपद्यत ।
शिवश्चानुववौ वायुः प्रशान्तमभवद्रजः ॥ २३
प्रदक्षिणानुलोमाश्च मङ्गल्या मृगपक्षिणः ।
प्रयाणे वासुदेवस्य बभूवुरनुयायिनः ॥ २४
मङ्गल्यार्थपदैः शब्दैरन्ववर्तन्त सर्वशः ।
सारसाः शतपत्राश्च हंसाश्च मधुसूदनम् ॥ २५
मन्त्राहुतिमहाहोमैर्हूयमानश्च पावकः ।
प्रदक्षिणमुखो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥ २६
वसिष्ठो वामदेवश्च भूरिद्युम्नो गयः क्रथः ।
शुक्र-नारद-वाल्मीका मरुतः कुशिको भृगुः॥ २७
देवब्रह्मर्षयश्चैव कृष्णं यदुसुखावहम् ।
प्रदक्षिणमवर्तन्त सहिता वासवानुजम् ॥ २८
एवमेतैर्महाभागैर्महर्षिगणसाधुभिः ।
पूजितः प्रययौ कृष्णः कुरूणां सदनं प्रति ॥ २९

८३

कुरूणामिति ॥ १ ॥ प्रतिपाद्यं संपाद्यं अनामयं कुशलम् ॥ २ ॥ यास्यामि । तदेव कर्तुमिति शेषः । अभीप्सया प्राप्तुमिच्छया ॥ ५ ॥ विमलवद्गते निर्मलाकाशगे मैत्रे जन्मर्क्षादष्टमतारायां दूतस्य हि स्वामिबलेनैव बलवत्त्वमित्यर्थः ॥ ६ ॥ कौमुदे कार्तिके रेवत्यां अर्जुनस्य फल्गुनीजातस्य रेवती मैत्रतारा भवतीति प्रसिद्धम् ॥ ७ ॥ प्रतिज्ञाय अनुस्मृत्य ॥ ११ ॥ आकाशगः सूर्यः । आकाशमिव चेति पाठे जङ्गमाकाशतुल्यमित्यर्थः । विशालत्वात् नक्षत्रोपमरत्नरचितत्वाच्च । तदेवाह—सूर्येति ॥ १५ ॥ सूपस्करं शोभनैरुपकरणैरुपेतम् ॥ १८ ॥ संपादयामासुः सज्जीकृतवन्तः ॥ १९ ॥ मङ्गल्यार्थपदैः विजयी भवेत्यादिमङ्गलावहैः ॥ २५ ॥

तं प्रयान्तमनुप्रायात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥३०
चेकितानश्च विक्रान्तो धृष्टकेतुश्च चेदिपः ।
द्रुपदः काशिराजश्च शिखण्डी च महारथः ॥३१
धृष्टद्युम्नः सपुत्रश्च विराटः केकयैः सह ।
संसाधनार्थं प्रययुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ ३२
ततोऽनुव्रज्य गोविन्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
राज्ञां सकाशे द्युतिमानुवाचेदं वचस्तदा ॥ ३३
यो वै न कामान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात् ।
अन्यायमनुवर्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः ॥ ३४
धर्मज्ञो धृतिमान्प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः ।
ईश्वरः सर्वभूतानां देवदेवः सनातनः ॥ ३५
तं सर्वगुणसंपन्नं श्रीवत्सकृतलक्षणम् ।
संपरिष्वज्य कौन्तेयः संदेष्टुमुपचक्रमे ॥ ३६

युधिष्ठिर उवाच ।

या सा बाल्यात्प्रभृत्यस्मान् पर्यवर्धयताबला ॥
उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता ॥ ३७
देवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता ।
वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियाऽस्माकं जनार्दन ॥३८
सुयोधनभयाद्या नोऽत्रायतामित्रकर्शन ।
महतो मृत्युसंबाधादुद्धरेन्नौरिवार्णवात् ॥ ३९
अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव ।
अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम् ॥
भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम् ।
अभिवाद्य स्वजेथास्त्वं पाण्डवान् परिकीर्तयन् ॥
ऊढात्प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिन्दम ।
निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्नुते ॥ ४२
अपि जातु स कालः स्यात् कृष्ण दुःखविपर्ययः ।
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखं दद्यामरिन्दम ॥ ४३
प्रव्रजन्तोऽनुधावन्तीं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।
रुदतीमुपहायैनामगच्छाम वयं वनम् ॥ ४४
न नूनं म्रियते दुःखैः सा चेज्जीवति केशव ।
तथा पुत्राधिभिर्गाढमार्ता ह्यानर्तसत्कृत ॥ ४५
अभिवाद्याथ सा कृष्ण त्वया मद्वचनाद्विभो ।
धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोधिकाः ॥ ४६
भीष्मं द्रोणं कृपं चैव महाराजं च बाल्हिकम् ।
द्रौणिं च सोमदत्तं च सर्वांश्च भरतान् प्रति ॥
विदुरं च महाप्राज्ञं कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
अगाधबुद्धिं धर्मज्ञं स्वजेथा मधुसूदन ॥ ४८
इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः ।
अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४९
व्रजन्नेव तु बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम् ।
अब्रवीत् परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम् ॥ ५०
यदस्माकं विभो वृत्तं पुरा वै मन्त्रनिश्चये ।
अर्धराज्यस्य गोविन्द विदितं सर्वराजसु ॥ ५१
तच्चेद्दद्यादसङ्गेन सत्कृत्यानवमन्य च ।
प्रियं मे स्यान्महाबाहो मुच्येरन्महतो भयात् ॥
अतश्चेदन्यथा कर्ता धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।
अन्तं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन ॥ ५३

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्ते पाण्डवेन समहृष्यद्वृकोदरः ।
मुहुर्मुहुः क्रोधवशात् प्रावेपत च पाण्डवः ॥ ५४
वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान् ।
धनञ्जयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम् ॥ ५५
तस्य तं निनदं श्रुत्वा संप्रावेपन्त धन्विनः ।
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रे प्रसुस्रुवुः ॥ ५६
इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चोक्त्वा विनिश्चयम् ।
अनुज्ञातो निववृते परिष्वज्य जनार्दनम् ॥ ५७
तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः ।
तूर्णमभ्यगमद्धृष्टः शैब्य-सुग्रीववाहनः ॥ ५८
ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः ।
*पन्थानमाचेमुरिव ग्रसमाना इवाम्बरम् ॥ ५९
अथापश्यन्महाबाहुर्ऋषीनध्वनि केशवः ।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानान् स्थितानुभयतः पथि
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णमभिवाद्य जनार्दनः ।
यथावृत्तानृषीन् सर्वानभ्यभाषत पूजयन् ॥ ६१
कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चिद्धर्मः स्वनुष्ठितः ।
ब्राह्मणानां त्रयो वर्णाः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने ६२
तेभ्यः प्रयुज्यतां पूजां प्रोवाच मधुसूदनः ।
भगवन्तः क्व संसिद्धाः का वीथी भवतामिह ॥
किं वा कार्यं भगवतामहं किं करवाणि वः ।
केनार्थेनोपसंप्राप्ता भगवन्तो महीतलम् ॥ ६४
तमब्रवीज्जामदग्न्य उपेत्य मधुसूदनम् ।
परिष्वज्य च गोविन्दं सुरासुरपतेः सखा ॥ ६५

संसाधनार्थं कार्यनिष्पत्त्यर्थम् ॥ ३२ ॥ ऊढात् विवाहात् । यद्वा ' उढस्तंद्रितबालयोः ' इति विश्वः । बाल्यादित्यर्थः । उभयत्र भावप्रधानो निर्देशः ॥ ४२ ॥ वीथी मार्गः ॥ ६३ ॥ * आचेमुः पीतवन्तः ।

देवर्षयः पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ॥
राजर्षयश्च दाशार्ह मानयन्तस्तपस्विनः ।
देवासुरस्य‡ द्रष्टारः पुराणस्य महामते ॥ ६६
समेतं पार्थिवं क्षत्रं दिदृक्षन्तश्च सर्वतः ।
सभासदश्च राजानस्त्वां च सत्यं जनार्दनम् ॥
एतन्महत्प्रेक्षणीयं द्रष्टुं गच्छाम केशव ।
धर्मार्थसहिता वाचः श्रोतुमिच्छाम माधव ॥
त्वयोच्यमानाः कुरुषु राजमध्ये परंतप
भीष्मद्रोणादयश्चैव विदुरश्च महामतिः ॥ ६९
त्वं च यादवशार्दूल सभायां वै समेष्यथ ।
तव वाक्यानि दिव्यानि तथा तेषां च माधव ॥
श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च हितानि च ।
आपृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम् ॥ ७१
याह्यविघ्नेन वै वीर द्रक्ष्यामस्त्वां सभागतम् ।
आसीनमासने दिव्ये बलतेजःसमाहितम् ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रस्थाने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

वैशम्पायन उवाच ।
प्रयान्तं देवकीपुत्रं परवीररुजो दश ।
महारथा महाबाहुमन्वयुः शस्त्रपाणयः ॥ १
पदातीनां सहस्रं च सादिनां च परंतप ।
भोज्यं च विपुलं राजन् प्रेष्याश्च शतशोऽपरे ॥
जनमेजय उवाच ।
कथं प्रयातो दाशार्हो महात्मा मधुसूदनः ।
कानि वा व्रजतस्तस्य निमित्तानि महौजसः ॥
वैशम्पायन उवाच ।
तस्य प्रयाणे यान्यासन्निमित्तानि महात्मनः ॥
तानि मे शृणु सर्वाणि दैवान्यौत्पातिकानि च ॥
अनभ्रेऽशनिनिर्घोषः सविद्युत्समजायत ।
अन्वगेव च पर्जन्यः प्रावर्षद्विघने भृशम् ॥ ५
प्रत्यगूहुर्महानद्यः प्राङ्मुखाः सिन्धुसप्तमाः ।
विपरीता दिशः सर्वा न प्राज्ञायत किंचन ॥
प्राज्वलन्नग्नयो राजन् पृथिवी समकम्पत ।
उदपानाश्च कुंभाश्च प्रासिञ्चन् शतशो जलम् ॥
तमःसंवृतमप्यासीत् सर्वं जगदिदं तथा ।
न दिशो नादिशो राजन् प्रज्ञायन्ते स्म रेणुना ॥
प्रादुरासीन्महाञ्छब्दः खे शरीरं न दृश्यते ।
सर्वेषु राजन् देशेषु तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९
प्रामथ्नाद्धास्तिनपुरं वातो दक्षिणपश्चिमः ।
आरुजन् गणशो वृक्षान् परुषोऽशनिनिःस्वनः ॥
यत्र यत्र च वार्ष्णेयो वर्तते पथि भारत ।
तत्र तत्र सुखो वायुः सर्वं चासीत् प्रदक्षिणम् ॥
ववर्ष पुष्पवर्षं च कमलानि च भूरिशः ।
समश्च पन्था निर्दुःखो व्यपेतकुशकण्टकः ॥ १२
संस्तुतो ब्राह्मणैर्गीर्भिस्तत्र तत्र सहस्रशः ।
अर्च्यते मधुपर्कैश्च वसुभिश्च वसुप्रदः ॥ १३
तं किरन्ति महात्मानं वन्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।
स्त्रियः पथि समागम्य सर्वभूतहिते रतम् ॥ १४
स शालिभवनं रम्यं सर्वसस्यसमाचितम् ।
सुखं परमधर्मिष्ठमभ्यगाद्भरतर्षभ ॥ १५
पश्यन् बहुपशून् ग्रामान् रम्यान् हृदयतोषणान् ।
पुराणि च व्यतिक्रामन् राष्ट्राणि विविधानि च ॥
नित्यं हृष्टाः सुमनसो भारतैरभिरक्षिताः ।
नोद्विग्नाः परचक्राणां व्यसनानामकोविदाः १७
उपप्लव्यादथागम्य जनाः पुरनिवासिनः ।
पथ्यतिष्ठन्त सहिता विष्वक्सेनदिदृक्षया ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

‡ देवासुरस्य देवासुरसमुदायस्य ।

८४

प्रयान्तमिति ॥ १ ॥ दैवानि शकुनानि औत्पातिकानि अशकुनानि ॥ ४ ॥ प्रत्यक् प्रतीपं ऊहुः प्रवाहं कृतवत्यः ॥ ६ ॥ खे शरीरं छायापुरुषशरीरम् ॥ ९ ॥ दक्षिणपश्चिमः निर्ऋतिदेशः ॥ १० ॥ औत्पातिकान्युक्त्वा दैवान्याह-यत्र यत्रेति ॥ ११ ॥ भवन्ति अस्मिन्निति भवनं क्षेत्रम् ॥ १५ ॥ उपप्लव्यात् ग्रामात् ॥ १८ ॥

ते तु सर्वे समायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम् ।
अर्चयामासुरर्चार्हं देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९
वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा ।
प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति २०
अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥ २१
दारुकोऽपि हयान्मुक्त्वा परिचर्य च शास्त्रतः ।
मुमोच सर्वयोक्त्रादि मुक्त्वा चैतानवासृजत् ॥ २२
अभ्यतीत्य तु तत्सर्वमुवाच मधुसूदनः ।
युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम् २३
तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावसथं नराः ।
क्षणेन चान्नपानानि गुणवन्ति समार्जयन् ॥ २४
तस्मिन् ग्रामे प्रधानास्तु य आसन् ब्राह्मणा नृप ।
आर्याः कुलीना ह्रीमन्तो ब्राह्मीं वृत्तिमनुष्ठिताः
तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिन्दमम् ।
पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्मङ्गलसंयुताम् ॥ २६
ते पूजयित्वा दाशार्हं सर्वलोकेषु पूजितम् ।
न्यवेदयन्त वेश्मानि रत्नवन्ति महात्मने ॥ २७
तान् प्रभुः कृतमित्युक्त्वा सत्कृत्य च यथार्हतः ।
अभ्येत्य चैषां वेश्मानि पुनरायात् सहैव तैः २८
सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणांस्तत्र केशवः ।
भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत्तां क्षपां सुखम् २९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रयाणे
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

वैशम्पायन उवाच ।
तथा दूतैः समाज्ञाय प्रयान्तं मधुसूदनम् ।
धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम् ॥ १
द्रोणं च सञ्जयं चैव विदुरं च महामतिम् ।
दुर्योधनं सहामात्यं हृष्टरोमाऽब्रवीदिदम् ॥ २
अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥ ३
सत्कृत्याचक्षते चान्ये तथैवान्ये समागताः ।
पृथग्वादाश्च वर्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥ ४
उपायास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी ।
स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥ ५
तस्मिन् हि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः
तस्मिन् धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥६
स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः ।
पूजितो हि सुखाय स्यादसुखः स्यादपूजितः ७
स चेत्तुष्यति दाशार्ह उपचारैररिन्दमः ।
कृष्णात् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ८
तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परंतप ।
सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमन्विताः ॥ ९
यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत तस्य वै ।
तथा कुरुष्व गान्धारे कथं वा भीष्म मन्यसे १०
ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
ऊचुः परममित्येवं पूजयन्तोऽस्य तद्वचः ॥ ११
तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सभा वास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ १२
ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः ।
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥ १३
आसनानि विचित्राणि युतानि विविधैर्गुणैः ।
स्त्रियो गन्धानलङ्कारान् सूक्ष्माणि वसनानि च ॥
गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च ।
माल्यानि च सुगन्धीनि तानि राजा ददौ ततः ॥
विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥ १६
एतद्विधाय वै सर्वं देवार्हमतिमानुषम् ।
आचख्यौ धृतराष्ट्राय राजा दुर्योधनस्तदा ॥ १७

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५
तथा दूतैरिति ॥ १ ॥ अभिप्रायान् मनोरथान् ॥ ८ ॥

ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च । | असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात् कुरुसद्म तत् १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मार्गे सभानिर्माणे
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## ८६

धृतराष्ट्र उवाच

उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः ।
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ॥ १
आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम् ।
महामना महावीर्यो महासत्वो जनार्दनः ॥ २
स्फीतस्य वृष्णिराष्ट्रस्य भर्ता गोप्ता च माधवः ।
त्रयाणामपि लोकानां भगवान् प्रपितामहः ॥ ३
वृष्ण्यन्धकाः सुमनसो यस्य प्रज्ञामुपासते ।
आदित्या वसवो रुद्रा यथा बुद्धिं बृहस्पतेः ॥ ४
तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने ।
प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शृणु ॥ ५
एकवर्णैः सुकल्पाङ्गैर्बाह्लिजातैर्हयोत्तमैः ।
चतुर्युक्तान् रथांस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश
नित्यप्रभिन्नान् मातङ्गानीषादन्तान् प्रहारिणः ।
अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव ॥ ७
दासीनामप्रजातानां* शुभानां रुक्मवर्चसाम् ।
शतमस्मै प्रदास्यामि दासानामपि तावताम् ८
आविकं च सुखस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम् ।
तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट च ॥ ९
अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च ।
तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः ॥ १०
दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः ।
तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः ॥ ११
एकेनाभिपतत्यह्ना योजनानि चतुर्दश ।
यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम् ॥ १२
यावन्ति वाहनान्यस्य यावन्तः पुरुषाश्च ते ।
ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा ॥ १३
मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।
प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥ १४
स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः ।
वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम् १५
नगरादपि याः काश्चिद्गमिष्यन्ति जनार्दनम् ।
द्रष्टुं कन्याश्च कल्याण्यस्ताश्च यास्यन्त्यनावृताः ॥
सस्त्रीपुरुषबालं च नगरं मधुसूदनम् ।
उदीक्षतां महात्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः ॥ १७
महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतो दिशः ।
जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात्
दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद्वरम् ।
तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसंमृष्टमलंकृतम् ॥ १९
एतद्धि रुचिराकारैः प्रासादैरुपशोभितम् ।
शिवं च रमणीयं च सर्वर्तु सुमहाधनम् ॥ २०
सर्वमस्मिन् गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च ।
यद्यदर्हति वार्ष्णेयस्तत्तद्देयमसंशयम् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये
षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

उपप्लव्यादिति ॥ १ ॥ प्रपितामहः पितामहस्य ब्रह्मणोऽपि पिता ॥ ३ ॥ ईषा लाङ्गलदण्डस्तत्सदृशदन्तान् अष्टौ अनुचराः यस्य गजस्य ॥७॥ सर्वर्तु सर्वे ऋतवो युगपदस्मिन् सन्तीति तथा ॥२०॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

* अप्रजातानामप्रसूतानाम् ।

## ८७

विदुर उवाच ।

राजन् बहुमतश्चासि त्रैलोक्यस्यापि सत्तमः ।
संभावितश्च लोकस्य संमतश्चासि भारत ॥ १
यत्त्वमेवंगते ब्रूयाः पश्चिमे वयसि स्थितः ।
शास्त्राद्वा सुप्रतर्काद्वा सुस्थिरः स्थविरो ह्यसि २
लेखा शशिनि, भाः सूर्ये, महोर्मिरिव सागरे ।
धर्मस्त्वयि तथा राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ३
सदैव भावितो लोको गुणौघैस्तव पार्थिव ।
गुणानां रक्षणे नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥ ४
आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद्बहु नीनशः ।
राजन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चैव सुप्रियान् ॥ ५
यत्त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु ।
एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति ॥ ६
न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात् ।
एतद्दित्सासि कृष्णाय सत्येनात्मानमालभे ॥ ७
मायैषा सत्यमेवैतच्छद्मैतद्भूरिदक्षिण ।
जानामि त्वन्मतं राजन् गूढं बाह्येन कर्मणा॥ ८
पञ्च पञ्चैव लिप्स्यन्ति ग्रामकान् पाण्डवा नृप ।
न च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तच्छमं न करिष्यसि ९
अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं *जिहीर्षसि ।
अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो विभेत्स्यसि॥ १०
न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।
अन्यो धनञ्जयात् कर्तुमेतत्तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥ ११
वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदास्य दृढभक्तिताम् ।
अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनञ्जयम् ॥ १२
अन्यत् कुम्भादपां पूर्णादन्यत् पादावसेचनात् ।
अन्यत् कुशलसंप्रश्नान्नैवेक्ष्यति जनार्दनः ॥ १३
यत्त्वस्य प्रियमातिथ्यं मानार्हस्य महात्मनः ।
तदस्मै क्रियतां राजन् मानार्होऽसौ जनार्दनः१४
आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः ।
येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु ॥ १५
शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥ १६
पिताऽसि राजन् पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे ।
वर्तस्व पितृवत्तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुरवाक्ये
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

दुर्योधन उवाच ।

यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत् सत्यमच्युते ।
अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान् प्रति जनार्दनः ॥ १
यत्तत्सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने ।
अनेकरूपं राजेन्द्र न तद्देयं कदाचन ॥ २
देशः कालस्तथाऽयुक्तो न हि नार्हति केशवः ।
मंस्यत्यधोक्षजो राजन् भयादर्चति मामिति ॥ ३
अवमानश्च यत्र स्यात् क्षत्रियस्य विशाम्पते ।
न तत् कुर्याद्बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः॥४
स हि पूज्यतमो लोके कृष्णः पृथुललोचनः ।
त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा ॥ ५
न तु तस्मै प्रदेयं स्यात्तथा कार्यगतिः प्रभो ।
विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात् ॥ ६

### ८७

**राजन्निति** ॥ १ ॥ भावितः हृष्टः ॥४॥ मा नीनशः हेतुमाण्णिच् मा नाशं प्राप्नुहि॥५॥ माया इन्द्रजालं छद्म वञ्चनम् ॥८॥ विभेत्स्यसि शल्यवत् पृथक्करिष्यसि ॥१०॥ वेद वेद्मि ॥ १२ ॥ नैवेक्ष्यति नैवाङ्गीकरिष्यति ॥ १३ ॥ आतिथ्यं शमरूपम् ॥ १४ ॥ उपाकुरु अर्पय ॥ १५॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

*जिहीर्षसि पाण्डवेभ्य अपहर्तुमिच्छसि ।

### ८८

**यदाहेति** । असंहार्यः हर्तुमशक्यः ॥ १ ॥ **देश इति** । यद्यपि केशवोऽर्चामर्हत्येव तथाऽप्यर्चायां देशः कालश्चायुक्त इत्यर्थः । तदेवाह—**मंस्यतीति** ॥ ३ ॥ कार्यगतिः कर्तव्यरीतिः । अविग्रहात् आतिथ्यमात्रेण ॥६॥

वैशम्पायन उवाच ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः ।
वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७
सत्कृतोऽसत्कृतो वाऽपि न क्रुद्ध्येत जनार्दनः ।
नालमेनमवज्ञातुं नावज्ञेयो हि केशवः ॥ ८
यत्तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम् ।
सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित् कर्तुमन्यथा ॥ ९
स यद्ब्रूयान्महाबाहुस्तत्कार्यमविशङ्कया ।
वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः ॥ १०
धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः ।
तस्मिन् वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह
दुर्योधन उवाच ।
न पर्यायोऽस्ति यद्राजन् श्रियं निष्केवलामहम् ।
तैः सहेमामुपाश्नीयां यावज्जीवं पितामह ॥ १२
इदं तु सुमहत् कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम् ।
परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम् ॥ १३
तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा ।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥ १४
अत्रोपायान् यथा सम्यङ्न बुद्ध्येत जनार्दनः ।
न चापायो भवेत्कश्चित्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १५
वैशम्पायन उवाच ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम् ।
धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाऽभवत् ॥
ततो दुर्योधनमिदं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ।
मैवं वोचः प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः ॥ १७
दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः ।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति ॥ १८
भीष्म उवाच ।
परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः ।
वृणोत्यनर्थं नैवार्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः ॥ १९
इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम् ।
वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्तसे ॥ २०
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः ।
तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति ॥ २१
पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः ।
नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथञ्चन ॥ २२
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान् ।
उत्थाय तस्मात् प्रातिष्ठद्भीष्मः सत्यपराक्रमः २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्ये
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## ८९

वैशम्पायन उवाच ।
प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥ १
तं प्रयान्तं महाबाहुमनुज्ञाप्य महाबलम् ।
पर्यवर्तन्त ते सर्वे वृकस्थलनिवासिनः ॥ २
धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः ।
दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ३
पौराश्च बहुला राजन् हृषीकेशं दिदृक्षवः ।
यानैर्बहुविधैरन्यैः पद्भिरेव तथा परे ॥ ४
स वै पथि समागम्य भीष्मेणाक्लिष्टकर्मणा ।
द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥ ५
कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम् ।
बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥ ६
न च कश्चिद्गृहे राजंस्तदाऽऽसीद्भरतर्षभ ।
न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७
राजमार्गे नरास्तस्मिन् संस्तुवन्त्यवनिं गताः ।
तस्मिन् काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥ ८
आवृतानि वरस्त्रीभिर्गृहाणि सुमहान्त्यपि ।
प्रचलन्तीव भारेण दृश्यन्ते स्म महीतले ॥ ९

नालं न पर्याप्तोऽसि ॥८ ॥ तीर्थेन अवतरणवर्त्मना संशाम्य शान्तो भव ॥१०॥ पर्यायः प्रकारान्तरं निष्केवलां कृत्स्नां पाण्डवान् यथा दासवद्वासयेयं तथा प्रकारो नास्तीत्यर्थः॥१२॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

प्रातरिति ॥ १ ॥

तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः ।
प्रनष्टगतयोऽभूवन् राजमार्गे नरैर्वृते ॥ १०
स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः ।
पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ११
तिस्रः कक्ष्या व्यतिक्रम्य केशवो राजवेश्मनः ।
वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १२
अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ १३
कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।
आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् १४
ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम् ।
स भीष्मं पूजयामास वार्ष्णेयो वाग्भिरञ्जसा १५
तेषु धर्मानुपूर्वीं तां प्रयुज्य मधुसूदनः ।
यथावयः समीयाय राजभिः सह माधवः ॥ १६
अथ द्रोणं सबाह्लीकं सपुत्रं च यशस्विनम् ।
कृपं च सोमदत्तं च समीयाय जनार्दनः ॥ १७
तत्रासीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम् ।
शासनाद्धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥ १८
अथ गां मधुपर्कं चाप्युदकं च जनार्दने ।
उपजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रपुरोहिताः ॥ १९
कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान् परिहसन् कुरून् ।
आस्ते साम्बन्धिकं कुर्वन् कुरुभिः परिवारितः
सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः ।
राजानं समनुज्ञाप्य निरक्रामदरिन्दमः ॥ २१
तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि ।
विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥ २२
विदुरः सर्वकल्याणैरभिगम्य जनार्दनम् ।
अर्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥ २३
या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा ।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥
कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥ २५
प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुरो बुद्धिसत्तमः ।
धर्मार्थनित्यस्य सतो गतरोषस्य धीमतः ॥ २६
तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम् ।
क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रगृहप्रवेशपूर्वकं श्रीकृष्णस्य विदुरगृहप्रवेशे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## ९०

वैशम्पायन उवाच ।
अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः ।
पितृष्वसारं स पृथामभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १
सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम् ।
कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत् स्मरन्ती तनयान् पृथा २
तेषां सत्त्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम् ।
चिरस्य दृष्ट्वा वार्ष्णेयं बाष्पमाहारयत् पृथा ॥ ३
साऽब्रवीत् कृष्णमासीनं कृतातिथ्यं युधां पतिम् ।
बाष्पगद्गदपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ॥ ४
ये ते बाल्यात् प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः ।
परस्परस्य सुहृदः सम्मताः समचेतसः ।
निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः ५
विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदतीमपहाय माम् ॥ ६
अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम ।
अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः ॥ ७
ऊषुर्महावने तात सिंह-व्याघ्र-गजाकुले ।
बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः ८
अपश्यन्तश्च पितरौ कथमूषुर्महावने ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गैर्वेणुनिःस्वनैः ॥ ९

मृष्टं शोधितम् ॥ १८ ॥ परिहसन् नर्म कुर्वन् साम्बन्धिकं धनञ्जयादिसम्बन्धहेतुकं व्यवहारम् ॥ २० ॥ पूजितः स्तुतः ॥ २१ ॥ विदुरः पाण्डवानां विचेष्टितं तस्य तं कृष्णं प्रत्यपृच्छदित्यन्वयः । सार्धश्लोक एकं वाक्यम् । अपृच्छादिति पूर्वस्मादनुकृष्यते । प्रीयमाणस्येत्यादिषष्ठ्यौ द्वितीयार्थे ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

अथेति ॥ १ प्रियं राज्यादि सुखं भोगोत्थ आल्हादः ॥ ६ ॥

पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात्प्रभृति केशव ।
ये स्म वारणशब्देन हयानां हेषितेन च ॥ १०
रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त तदा गृहे ।
शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना ॥ ११
पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः ।
वस्त्रै रत्नैरलङ्कारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः ॥ १२
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिर्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
अर्चितैरर्चनार्हैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ॥ १३
प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्कवाजिनशायिनः ।
क्रूरं च निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ॥ १४
न स्मोपयान्ति निद्रान्ते न तदर्हा जनार्दन ।
भेरी-मृदङ्गनिनदैः शङ्ख-वैणव-निःस्वनैः ॥ १५
स्त्रीणां गीतनिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन ।
बन्दि-मागध-सूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम् ॥ १६
महावनेष्वबोध्यन्त श्वापदानां रुतेन च ।
ह्रीमान् सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता १७
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते ।
अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ॥ १८
भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च ।
राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्वहाम् ॥ १९
शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसङ्गरः ।
राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत् २०
अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृत्ततः ।
प्रियदर्शो दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः ॥ २१
यः स नागायुतप्राणो वातरंहा महाबलः ।
सामर्षः पाण्डवो नित्यं प्रियो भ्रातुः प्रियङ्करः २२
कीचकस्य तु सज्ञातेर्यो हन्ता मधुसूदन ।
शूरः क्रोधवशानां च हिडिम्बस्य बकस्य च २३
पराक्रमे शक्रसमो मातरिश्वसमो बले ।
महेश्वरसमः क्रोधे भीमः प्रहरतां वरः ॥ २४
क्रोधं बलममर्षं च यो निधाय परंतपः ।
जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने ॥
तेजोराशिं महात्मानं वरिष्ठममितौजसम् ।
भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दनम् ॥ २६
तं ममाचक्ष्व वार्ष्णेय कथमद्य वृकोदरः ।
आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पाण्डवो बली २७
अर्जुनेनार्जुनो यः स कृष्ण बाहुसहस्रिणा ।
द्विबाहुः स्पर्धते नित्यमतीतेनापि केशव ॥ २८
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्तवीर्यस्य पाण्डवः २९
तेजसाऽऽदित्यसदृशो महर्षिसदृशो दमे ।
क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः ॥ ३०
आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं मधुसूदन ।
आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु ॥ ३१
यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः पर्युपासते ।
स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः ३२
यं गत्वाऽभिमुखः संख्ये न जीवन् कश्चिदाव्रजेत्
यो जेता सर्वभूतानामजेयो जिष्णुरच्युत ॥ ३३
योऽपाश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।
स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनञ्जयः ॥ ३४
दयावान् सर्वभूतेषु ह्रीनिषेवो महास्त्रवित् ।
मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे ॥ ३५
सहदेवो महेष्वासः शूरः समिति शोभनः ।
भ्रातॄणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा ॥ ३६
सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन ।
वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः ॥ ३७
ज्येष्ठापचायिनं वीरं सहदेवं युधां पतिम् ।
शुश्रूषुं मम वार्ष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे ॥ ३८
सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
भ्रातॄणां चैव सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ३९
चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः ।
कच्चित्स कुशली कृष्ण वत्सो मम सुखैधितः ४०
सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम् ।
अपि जातु महाबाहो पश्येयं नकुलं पुनः ॥ ४१
पक्ष्मसम्पातजे काले नकुलेन विनाकृता ।
न लभामि धृतिं वीर साऽद्य जीवामि पश्य माम् ॥
सर्वैः पुत्रैः प्रियतरा द्रौपदी मे जनार्दन ।
कुलीना रूपसम्पन्ना सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४३
पुत्रलोकात् पतिलोकं वृण्वाना सत्यवादिनी ।
प्रियान् पुत्रान् परित्यज्य पाण्डवाननुरुध्यते ४४

---

धुरं भारम् ॥ १९ ॥ प्रियो दर्शो दर्शनं यस्य दर्शादि-श्राद्धकर्म वा यस्य ॥ २१ ॥ सामर्षत्वादेव पाण्डवः पाण्डुरेव पाण्डवः स्वार्थे तद्धितः । यद्वा पाण्डवः पाण्डुपुत्रः । 'पाण्डुः कुन्तीपतौ सिते' इति विश्वः ॥ २२ ॥ ज्येष्ठो-पचायिनं ज्येष्ठानां भावद्धिकरम् ॥ ३८ ॥ पक्ष्मणोः संपातजे निमेषमात्रे इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ पुत्रलोकात् पुत्र-सन्निकर्षं त्यक्त्वा पतिलोकं पतिसन्निधिं वृण्वाना ॥ ४४ ॥

महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत ॥ ४५
पतिभिः पञ्चभिः शूरैरग्निकल्पैः प्रहारिभिः ।
उपपन्ना महेष्वासैर्द्रौपदी दुःखभागिनी ॥ ४६
चतुर्दशमिदं वर्षं यन्नापश्यमरिन्दम ।
पुत्राधिभिः परिद्यूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम् ४७
न नूनं कर्मभिः पुण्यैरश्नुते पुरुषः सुखम् ।
द्रौपदी चेत्तथावृत्ता नाश्नुते सुखमव्ययम् ॥ ४८
न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः ।
भीमसेनो यमौ वाऽपि यदपश्यं सभागताम् ४९
न मे दुःखतरं किञ्चिद्भूतपूर्वं ततोऽधिकम् ।
स्त्रीधर्मिणीं द्रौपदीं यच्छ्वशुराणां समीपगाम् ५०
आनायितामनार्येण क्रोधलोभानुवर्तिना ।
सर्वे प्रैक्षन्त कुरव एकवस्त्रां सभागताम् ॥ ५१
तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।
कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा ॥ ५२
तस्यां संसदि सर्वेषां क्षत्तारं पूजयाम्यहम् ।
वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ॥ ५३
तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः ।
क्षत्तुः शीलमलङ्कारो लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति ५४

वैशम्पायन उवाच

सा शोकार्ता च हृष्टा च दृष्ट्वा गोविन्दमागतम् ।
नानाविधानि दुःखानि सर्वाण्येवान्वकीर्तयत्
पूर्वैराचरितं यत्तत्कुराजभिररिन्दम ।
अक्षद्यूतं मृगवधः कच्चिदेषां सुखावहम् ॥ ५६
तन्मां दहति यत्कृष्णा सभायां कुरुसन्निधौ ।
धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा नकुशलं तथा ॥ ५७
निर्वासनं च नगरात् प्रव्रज्या च परंतप ।
नानाविधानां दुःखानामभिज्ञाऽस्मि जनार्दन ५८
अज्ञातचर्या बालानामवरोधश्च माधव ।
न मे क्लेशतमं तत्स्यात् पुत्रैः सह परंतप ॥ ५९
दुर्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्दशम् ।
दुःखादपि सुखं नः स्याद्यदि पुण्यफलक्षयः ६०
न मे विशेषो जात्वासीत् धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः ।
तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम् ।
अस्माद्विमुक्तं सङ्ग्रामात् पश्येयं पाण्डवैः सह ६१
नैव शक्याः पराजेतुं सत्त्वं ह्येषां तथाविधम् ।
पितरं त्वेव गर्हेयं नात्मानं न सुयोधनम् ॥ ६२
येनाहं कुन्तिभोजाय धनं वृत्तैरिवार्पिता ।
बालां मामार्यकस्तुभ्यं क्रीडन्तीं कन्दुहस्तिकाम्॥
अदात्तु कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ।
साऽहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परंतप ॥
अत्यन्तदुःखिता कृष्ण किं जीवितफलं मम॥६४
यन्मां वागब्रवीन्नक्तं सूतके सव्यसाचिनः ।
पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत् ॥
हत्वा कुरून् महाजन्ये राज्यं प्राप्य धनञ्जयः ।
भ्रातृभिः सह कौन्तेयस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति ॥
नाहं तामभ्यसूयामि नमो धर्माय वेधसे ।
कृष्णाय महते नित्यं धर्मो धारयति प्रजाः ॥ ६७
धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय यथा वागभ्यभाषत ।
त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं संपादयिष्यसि ॥
न मां माधव वैधव्यं नार्थनाशो न वैरता ।
तथा शोकाय दहति यथा पुत्रैर्विनाभवः ॥ ६९
याऽहं गाण्डीवधन्वानं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
धनञ्जयं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
इतश्चतुर्दशं वर्षं यन्नापश्यं युधिष्ठिरम् ॥ ७०
धनञ्जयं च गोविन्द यमौ तं च वृकोदरम् ।
जीवनाशं प्रनष्टानां श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ॥७१

---

तथावृत्ता पुण्यशीला ॥ ४८ ॥ कच्चिदिति काक्वा सुखावहत्वं नास्तीति व्यज्यते । एषां मत्पुत्रभर्त्रादीनाम् ५६ ॥ नकुशलं मरणम् ॥ ५७ ॥ अवरोधः राज्याप्रदानरूपो वृत्तिनिरोधः ॥ ५९ ॥ यदि सुखं पुण्यक्षयरूपम् । अर्थाद्दुःखं पापक्षयरूपं तर्हि दुःखात् पापक्षयहेतोस्तत्सुखं नः अस्माकं स्यात् । तथा च न वयं दुःखाद्भयं प्राप्नुम इत्यर्थः ॥६०॥ अस्मात् भाविनः कुरुपाण्डवसंग्रामात् गोत्रकलहे विषमधिया-मेवावमर्दः समबुद्धीनां तु सुखमेवेति भावः ॥ ६१ ॥ सत्त्वं वृत्तम् । एषां पाण्डवानां तथाविधमविषमम् ॥ ६२ ॥ वृत्तैर्वदान्यत्वेन ख्यातैर्धनं यथा अक्लेशेनार्प्यते तद्वत् येनाहमर्पिता । 'वृत्तोऽतीते दृढे ख्याते' इति विश्वः । धूर्तैरिवेत्यपपाठः । आर्यकः पितामहः । तुभ्यं तव ॥ ६३ ॥ श्वशुरैर्भीष्मादिभिः धृतराष्ट्रोऽपि भर्तुर्ज्येष्ठत्वात् श्वशुर एव ॥ ६४ ॥ महाजन्ये महायुद्धे मेधान् अश्वमेधान् ॥६६ ॥ अभ्यसूयामि निन्दामि वेधसे विश्वकर्त्रे महते इति कृष्णस्येश्वरस्य निन्दार्थमुपहासः । कर्मण एव प्राबल्यं धर्मपदस्यार्थदर्शनेनाह—धर्म इति । धारयतीति धर्म इति व्युत्पत्त्या धर्म एव कर्ता धारयिता । ईश्वराराधनं तु व्यर्थमेवेति भावः॥६७ धर्मश्चेदिति । धर्मेऽपि संशयं दर्शयति सतोऽपीश्वरस्याकिंचित्करत्वमाह—त्वं चेति ॥ ६८ ॥

अर्थतस्ते मम मृतास्तेषां चाहं जनार्दन ।
ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥७२
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ।
पराश्रया वासुदेव या जीवति धिगस्तु ताम्॥७३
वृत्तेः कार्पण्यलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी ।
अथो धनञ्जयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ॥ ७४
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
अस्मिंश्चेदागते काले मिथ्या चातिक्रमिष्यति ॥
लोकसंभाविताः सन्तः सुनृशंसं करिष्यथ ।
नृशंसेन च वो युक्तांस्त्यजेयं शाश्वतीः समाः॥
काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवनम् ।
माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा ॥ ७७
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ।
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ॥ ७८
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ।
गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ७९
अर्जुनं पाण्डवं वीरं द्रौपद्याः पदवीं चर
विदितौ हि तवात्यन्तं क्रुद्धौ तौ तु यथान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ।
तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभां गता ॥ ८१
दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यभ्यभाषताम् ।
दुर्योधनो भीमसेनमभ्यगच्छन्मनस्विनम् ॥ ८२
पश्यतां कुरुमुख्यानां तस्य द्रक्ष्यति यत्फलम् ।
न हि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः ॥ ८३
सुचिरादपि भीमस्य न हि वैरं प्रशाम्यति ।
यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्छत्रुकर्शनः ॥ ८४
न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः ।
प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद्दुःखकारणम् ॥ ८५
यत्तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता ।
अशृणोत् परुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः ॥
स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाभ्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥८७
यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन ।
रामश्च बलिनां श्रेष्ठः प्रद्युम्नश्च महारथः ॥ ८८
साऽहमेवंविधं दुःखं सहेयं पुरुषोत्तम ।
भीमे जीवति दुर्धर्षे विजये चापलायिनि ॥ ८९

वैशम्पायन उवाच ।

तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिप्लुताम्
पितृष्वसारं शोचन्तीं शौरिः पार्थसखः पृथाम् ॥

वासुदेव उवाच ।

का तु सीमन्तिनी त्वादृक् लोकेष्वस्ति पितृष्वसः
शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता ॥ ९१
महाकुलीना भवती ह्रदाद्ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ ९२
वीरसूर्वीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः ।
सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति ॥ ९३
निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ ।
एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीरसुखे रताः ॥
त्यक्तग्राम्यसुखाः पार्था नित्यं वीरसुखप्रियाः ।
न तु स्वल्पेन तुष्येयुर्महोत्साहा महाबलाः ॥ ९५
अन्तं धीरा निषेवन्ते मध्यं ग्राम्यसुखप्रियाः ।
उत्तमांश्च परिक्लेशान् भोगांश्चातीव मानुषान् ॥
अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ॥
अन्तप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमेतयोः ॥ ९७
अभिवादयन्ति भवतीं पाण्डवाः सह कृष्णया ।
आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याहुरनामयम् ॥ ९८
अरोगान् सर्वसिद्धार्थान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान्
ईश्वरान् सर्वलोकस्य हतामित्रान् श्रियावृतान्९९
एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम् ।
पुत्राधिभिरभिध्वस्ता निगृह्याबुद्धिजं तमः १००

कुन्त्युवाच ।

यद्यत्तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन ।
यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा॥
अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परंतप ।
प्रभावज्ञाऽस्मि ते कृष्ण सत्यस्याभिजनस्य च॥

अतिक्रमिष्यति अयुद्धेनेत्यर्थः ॥७५॥ सुनृशंसमत्यन्तबीभत्सम् ॥ ७६ ॥ अन्तं राज्यं वा वनं वा मध्यमल्पैश्वर्यम् । अन्तपदं व्याचष्टे-**उत्तमानिति** । उत्तमान् तीव्रवैराग्यजान् परिक्लेशान् शीतवातादीन् ॥९६॥ अन्तेषु अन्तयोः परब्रह्मानन्दे सुषुप्तौ वा उभयत्रैव द्वैतादर्शनात् सुखमस्ति एतयोरन्तरं जाग्रत्स्वप्नौ दुःखं दुःखरूपं स्वयमात्मा निर्दुःख एव जाग्रत्स्वप्नयोस्तूपाधिसम्बन्धात्तत्र भासमानं दुःखं आगमापायित्वात्तत्र पुत्राः सहंते त्वं च सहस्वेति भावः ॥९७॥ अबुद्धिजमज्ञानजं तमो विपर्ययज्ञानं अनात्मनि देहादावात्माभिमानरूपम् ॥ १०० ॥ अनिकृत्या अच्छलेन ॥ १०२ ॥

व्यवस्थायां च मित्रेषु बुद्धिविक्रमयोस्तथा ।
त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं तपो महत्॥१०३
त्वं त्राता त्वं महद्ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यथैवात्थ तथैवैतत्त्वयि सत्यं भविष्यति ॥ १०४

वैशम्पायन उवाच ।
तामामन्त्र्य च गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
प्रातिष्ठत महाबाहुर्दुर्योधनगृहान् प्रति ॥ १०५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णकुन्तीसंवादे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

वैशम्पायन उवाच ।
पृथामामन्त्र्य गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १
लक्ष्म्या परमया युक्तं पुरन्दरगृहोपमम् ।
विचित्रैरासनैर्युक्तं प्रविवेश जनार्दनः ॥ २
तस्य कक्ष्या व्यतिक्रम्य तिस्रो द्वाःस्थैरवारितः ।
ततोऽभ्रघनसंकाशं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ॥ ३
श्रिया ज्वलन्तं प्रासादमारुरोह महायशाः ।
तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाभिसंवृतम् ॥ ४
धार्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शासीनमासने ।
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि सौबलम्॥ ५
दुर्योधनसमीपे तानासनस्थान् ददर्श सः ।
अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः ॥ ६
उदतिष्ठत् सहामात्यः पूजयन्मधुसूदनम् ।
समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः ॥ ७
राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद्यथावयः ।
तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम् ॥
विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ।
तस्मिन् गां मधुपर्कं चाप्युदकं च जनार्दने॥ ९
निवेदयामास तदा गृहान् राज्यं च कौरवः ।
तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम् । १०
उपासांचक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह ।
ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम् ॥ ११
न्यमन्त्रयद्भोजनेन नाभ्यनन्दच्च केशवः ।
ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १२
मृदुपूर्वं शठोदर्कं कर्णमाभाष्य कौरवः ।
कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च १३
त्वदर्थमुपनीतानि नाग्रहीस्त्वं जनार्दन ।
उभयोश्च ददत्साह्यमुभयोश्च हिते रतः ॥ १४
सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव ।
त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः ।
तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर ॥ १५

वैशम्पायन उवाच ।
स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः ।
उद्यन्मेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ १६
अलघूकृतमग्रस्तमनिरस्तमसंकुलम् ।
राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १७
कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह ।
कृतार्थं मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत ॥ १८
एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रो जनार्दनम् ।
न युक्तं भवताऽस्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ॥ १९

---

त्वमेवेति भगवतः सार्वात्म्यं सर्वाधिष्ठानत्वं प्रोक्तम् १०३॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

**पृथामिति** । तामामन्त्र्येति पूर्वश्लोकेन प्रस्थानमात्रमुक्त्वा पृथामामन्त्र्येत्यत्र तु तदर्थानुवादपूर्वकं दुर्योधनगृहप्राप्तिरुच्यत इत्यपौनरुक्त्यम् ॥ १ ॥ अभ्रघनः सजलो मेघः । स हि सविद्युत् तत्सादृश्येन महेन्द्रनीलमणिमयत्वं सुवर्णमयत्वं च सूचितम् । अन्ये तु अभ्रघनः आकाशमात्रवर्तिघनः स हि शरत्सम्बन्धाद्धवल इति व्याचख्युः ॥३ ॥ शठोदर्कं शाठ्यपर्यवसानम् । आभाष्य सम्बोधनेनोन्मुखीकृत्य ॥ १३ ॥ तत्र अन्नादेरग्रहणे ॥ १५ ॥ प्रगृह्य उद्यम्य ॥ १६ ॥ अलघूकृतं प्रयत्नशैथिल्यहीनकरणम् । पाठान्तरे अनंबूकृतं अनिष्ठीवनं अनन्यकृतमित्यपि पठन्ति। अग्रस्तं अलुप्ताक्षरं अनिरस्तं स्थानभ्रंशरहितं असंकुलं असंकीर्णवर्णम् ॥ १७ ॥ असांप्रतं प्रतिपत्तुं—अयुक्तं कर्तुम् ॥ १९ ॥

कृतार्थं वाऽकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन ।
यतामहे पूजयितुं दाशार्ह न च शक्नुमः ॥ २०
न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन्नो मधुसूदन ।
पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नामंस्थाः पुरुषोत्तम ॥ २१
वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः ।
स भवान् प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रं जनार्दनः
अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ २३
नाहं कामान्न संरंभान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन ॥ २४
संप्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न च संप्रीयसे राजन्न चैवापद्गता वयम् ॥ २५
अकस्माद्द्वेष्टि वै राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान् ।
प्रियानुवर्तिनो भ्रातॄन् सर्वैः समुदितान् गुणैः॥२६
अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते ।
धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति
यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु ।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः २८
कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद्विरुरुत्सति ।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ २९
यः कल्याणगुणान् ज्ञातीन् मोहाल्लोभाद्दिदृक्षते ।
सोऽजितात्माऽजितक्रोधो न चिरं तिष्ठति श्रियम्
अथ यो गुणसंपन्नान् हृदयस्याप्रियानपि ।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३१
सर्वमेतदभोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम् ।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥ ३२
एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम् ।
निश्चक्राम ततः शुभ्राद्धार्तराष्ट्रनिवेशनात् ॥ ३३
निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः ।
निवेशाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः ॥ ३४
तमभ्यगच्छद्द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाह्लिकः ।
कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम् ॥ ३५
त ऊचुर्माधवं वीरं कुरवो मधुसूदनम् ।
निवेदयामो वार्ष्णेय सरत्नांस्ते गृहान्वयम् ॥ ३६
तानुवाच महातेजाः कौरवान् मधुसूदनः ।
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽपचितिः कृता ३७
यातेषु कुरुषु क्षत्ता दाशार्हमपराजितम् ।
अभ्यर्चयामास तदा सर्वकामैः प्रयत्नवान् ॥ ३८
ततः क्षत्ताऽन्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च ।
उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥ ३९
तैस्तर्पयित्वा प्रथमं ब्राह्मणान् मधुसूदनः ।
वेदविद्भ्यो ददौ कृष्णः प्रथमं द्रविणान्यपि ॥ ४०
ततोऽनुयायिभिः सार्धं मरुद्भिरिव वासवः ।
विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णदुर्योधनसंवादे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

## ९२

वैशम्पायन उवाच ।

तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत् ।
नेदं सम्यग्व्यवसितं केशवागमनं तव ॥ १
अर्थधर्मातिगो मन्दः संरंभी च जनार्दन ।
मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः ॥ २
धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः ।
अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्तराष्ट्रो जनार्दन ॥ ३

---

वैरं द्वेषः विग्रहो युद्धम् ॥ २२ ॥ संरंभात् क्रोधात् । हेतुवादात् कपटात् ॥ २४ ॥ द्वेष्टि भवान् ॥ २६ ॥ विरुरुत्सति विरोधं कर्तुमिच्छति ॥ २९ ॥ मोहात् अदुष्टे दुष्टबुद्धिर्मोहः। लोभः परकीयधनापहारेच्छा। अजितक्रोध इति छेदः ॥ ३० ॥ शुभ्रात् नानारत्नमयत्वेन प्रदीप्तात् 'शुभ्रं प्रदीप्ते धवलेऽभ्रके च' इति विश्वः ॥३३॥ अपचितिः पूजा ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

९२

तं भुक्तवन्तमिति १ प्रग्रहं निर्बंधं अत्यंताभिनिवेशमित्यर्थः ॥ अनेयः अप्रापणीयः श्रेयसां कर्मणि षष्ठी ॥ ३॥

कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक्सर्वशङ्कितः ।
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ॥ ४
मूढश्चाकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः ।
कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः ॥ ५
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्दोषैरेव समन्वितः ।
त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति ॥ ६
भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे जयद्रथे ।
भूयसीं वर्तते वृत्तिं न शमे कुरुते मनः ॥ ७
निश्चितं धार्तराष्ट्राणां सकर्णानां जनार्दन ।
भीष्मद्रोणमुखान् पार्था न शक्ताः प्रतिवीक्षितुम् ।
सेनासमुदयं कृत्वा पार्थिवं मधुसूदन ।
कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ॥ ९
एकः कर्णः परान् जेतुं समर्थ इति निश्चितम् ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥ १०
संविच्च धार्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव ।
शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकाङ्क्षिणः ॥ ११
न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम् ।
इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥ १२
यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन ।
न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥ १३
अविजानत्सु मूढेषु निर्मर्यादेषु माधव ।
न त्वं वाक्यं ब्रुवन्युक्तश्चाण्डालेषु द्विजो यथा १४
सोऽयं बलस्थो मूढश्च न करिष्यति ते वचः ।
तस्मिन्निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥ १५
तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम् ।
तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥ १६
दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।
प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥ १७
अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रियो दर्पाच्च मोहितः ।
वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥ १८
बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव ।
त्वय्यस्य महती शङ्का न करिष्यति ते वचः ॥ १९
नेदमद्य युधा शक्यमिन्द्रेणापि सहामरैः ।
इति व्यवसिताः सर्वे धार्तराष्ट्रा जनार्दन ॥ २०
तेष्वेवमुपपन्नेषु कामक्रोधानुवर्तिषु ।
समर्थमपि ते वाक्यमसमर्थं भविष्यति ॥ २१

मध्ये तिष्ठन्हस्त्यनीकस्य मन्दो
रथाश्वयुक्तस्य बलस्य मूढः ।
दुर्योधनो मन्यते वीतभीतिः
कृत्स्ना मयेयं पृथिवी जितेति ॥ २२
आशंसते वै धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम् ।
तस्मिन् शमः केवलो नोपलभ्यो
बद्धं सन्तं मन्यते लब्धमर्थम् ॥ २३
पर्यस्तेयं पृथिवी कालपक्वा
दुर्योधनार्थे पाण्डवान् योद्धुकामाः ।
समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां
राजानश्च क्षितिपालैः समेताः ॥ २४
सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्तात्
त्वया राजानो हृतसाराश्च कृष्ण ।
तवोद्वेगात्संश्रिता धार्तराष्ट्रान्
सुसंहताः सह कर्णेन वीराः ॥ २५
त्यक्तात्मानः सह दुर्योधनेन
हृष्टा योद्धुं पाण्डवान् सर्वयोधाः ।
तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं
न तन्मतं मम दाशार्ह वीर ॥ २६

तेषां समुपविष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।
कथं मध्यं प्रपद्येथाः शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ २७
सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः ।
प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥ २८
या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव ।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥ २९
या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा ।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णविदुरसंवादे
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सर्वशंकिता सर्वत्र विश्वासहीनः ॥ ४ ॥ वृत्तिं जीविकां एते युद्धेन मह्यं राज्यं दास्यन्तीत्याशयेत्यर्थः ॥ ७ ॥ पार्थिवं पृथ्वीसम्बन्धिनम् ॥ ९ ॥ प्रतिदेयं परावृत्य देयम् व्यवसिताः निश्चिताः ॥ १२ ॥ ते त्वत्तः ॥ १८ ॥ बद्धं भवदीयत्वेन प्रतिबद्धमपि लब्धमेव मन्यते ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

श्रीभगवानुवाच ।

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद्विचक्षणः ।
यथा वाच्यस्त्वद्विधेन भवता मद्विधः सुहृत् ॥ १
धर्मार्थयुक्तं तथ्यं च यथा त्वय्युपपद्यते ।
तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत्पितृमातृवत् ॥ २
सत्यं प्राप्तं च युक्तं वाऽप्येवमेव यथाऽऽत्थ माम्
शृणुष्वागमनं हेतुं विदुरावहितो भव ॥ ३
दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरताम् ।
सर्वमेतदहं जानन् क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥ ४
पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ।
यो मोचयेन्मृत्युपाशात् प्राप्नुयाद्धर्ममुत्तमम् ॥ ५
धर्मकार्यं यतन् शक्त्या नो चेत्प्राप्नोति मानवः ।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६
मनसा चिन्तयन् पापं कर्मणा नातिरोचयन् ।
न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ७
सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया ।
कुरूणां सृञ्जयानां च सङ्ग्रामे विनशिष्यताम् ॥ ८
सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता ।
कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥ ९
व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते ।
अनर्थाय यथाशक्ति तन्नृशंसं विदुर्बुधाः ॥ १०
आकेशग्रहणान्मित्रमकार्यात् संनिवर्तयन् ।
अवाच्यः कस्यचिद्भवति कृतयत्नो यथाबलम् ॥ ११
तत्समर्थं शुभं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
धार्तराष्ट्रः सहामात्यो ग्रहीतुं विदुरार्हति ॥ १२
हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च ।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया ॥ १३
हिते प्रयतमानं मां शङ्केद्दुर्योधनो यदि ।
हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति ॥ १४
ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते ।
सर्वयत्नेन माध्यस्थं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥ १५
न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा ।
शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरुपाण्डवान् ॥ १६
उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत ।
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥ १७
मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम् ।
न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ १८
अहापयन् पाण्डवार्थं यथाव-
च्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम् ।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ १९
अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां
धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम् ।
अवेक्षेरन् धार्तराष्ट्राः शमार्थं
मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ २०
न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ २१

वैशम्पायन उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा ।
शयने सुखसंस्पर्शे शिश्ये यदुसुखावहः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

## ९४

वैशम्पायन उवाच ।

तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा ।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १

---

९३

**यथेति** ॥ १ ॥ पर्यस्तामन्यथाभूताम् ॥ ५ ॥ यतन् यतमानः ॥ ६ ॥ तन्नृशंसमनर्थाय विदुरिति सम्बन्धः । अनुनीयेत्यपि पाठः ॥ १० ॥ हितं कर्तुमिति शेषः १३ ॥ नाभिपद्यते नोपकरोति ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४

**तथेति** । नक्षत्रसंपन्ना शरदि निरभ्रत्वात् ॥ १ ॥

धर्मार्थकामयुक्ताश्च विचित्रार्थपदाक्षराः ।
शृण्वतो विविधा वाचो विदुरस्य महात्मनः
कथाभिरनुरूपाभिः कृष्णस्यामिततेजसः ।
अकामस्येव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥
ततस्तु स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन् ॥ ४
तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम् ।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः ॥ ५
कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः ।
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥ ६
अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ॥ ७
आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम् ।
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ८
त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवामराः ।
तावभ्यनन्दद्गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना ॥ ९
ततो विमल आदित्ये ब्राह्मणेभ्यो जनार्दनः ।
ददौ हिरण्यं वासांसि गाश्चाश्वांश्च परंतपः १०
विसृज्य बहुरत्नानि दाशार्हमपराजितम् ।
तिष्ठन्तमुपसङ्गम्य ववन्दे सारथिस्तदा ॥ ११
ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः ॥ १२
तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः ।
महाभ्रघननिर्घोषं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ १३
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा ब्राह्मणांश्च जनार्दनः ।
कौस्तुभं मणिमामुच्य श्रिया परमया ज्वलन् १४
कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाभिरक्षितः ।
आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥ १५
अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् ॥
सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम् ॥ १६
ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परंतपम् ॥ १७
सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां चापरे रथाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वै रथैरपि ॥ १८
तेषां हेमपरिष्कारैर्युक्ताः परमवाजिभिः ।
गच्छतां घोषिणश्चित्ररथा राजन् विरेजिरे ॥ १९
संमृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम् ।
राजर्षिचरितं काले कृष्णो धीमान् श्रिया ज्वलन्
ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यन्तैकपुष्कराः ।
शंखाश्च दध्मिरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च ॥
प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः ।
परिवार्य रथं शौरेरगच्छन्त परंतपाः ॥ २२
ततोऽन्ये बहुसाहस्रा विचित्राद्भुतवाससः ।
असिप्रासायुधधराः कृष्णस्यासन् पुरःसराः ॥
गजाः पञ्चशतास्तत्र रथाश्चासन् सहस्रशः ।
प्रयान्तमन्वयुर्वीरं दाशार्हमपराजितम् ॥ २४
पुरं कुरूणां संवृत्तं द्रष्टुकामं जनार्दनम् ।
सबालवृद्धं सस्त्रीकं रथ्यागतमरिन्दम ॥ २५
वेदिकामाश्रिताभिश्च समाक्रान्तान्यनेकशः ।
प्रचलन्तीव भारेण योषिद्भिर्भवनान्युत ॥ २६
स पूज्यमानः कुरुभिः संशृण्वन् मधुराः कथाः।
यथार्हं प्रतिसत्कुर्वन् प्रेक्षमाणः शनैर्ययौ ॥ २७
ततः सभां समासाद्य केशवस्यानुयायिनः ।
स शंखैर्वेणुनिर्घोषैर्दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ २८
ततः सा समितिः सर्वा राज्ञाममिततेजसाम् ।
संप्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकाङ्क्षया ॥ २९
ततोऽभ्याशगते कृष्णे समहृष्यन्नराधिपाः ।
श्रुत्वा तं रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३०
आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम् ।
अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात् ॥ ३१
नवमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः ॥ ३२
पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः ।
ज्योतींष्यादित्यवद्राजन्कुरून् प्राच्छादयन् श्रिया
अग्रतो वासुदेवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ।
वृष्णयः कृतवर्मा चाप्यासन् कृष्णस्य पृष्ठतः ॥ ३४
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः ।
आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ३५
अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन् महायशाः ॥ ३६
उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥ ३७
आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ३८

---

उदकं स्नानाचमनादि । अनुजप्यं सन्ध्योपासनादि ते उभे कृते येन सः कृतोदकानुजप्यः ॥ ६ ॥ तिष्ठन्तं उपासीनम् ॥ ७ ॥ चित्राश्च ते रथाश्च ॥ १९ ॥ संमृष्टं दूरीकृतं संसिक्तं जलेनाप्लावितं च रजो यस्मात्तम् । अविभक्तिकं पदम् ॥ २० ॥ एकपुष्कराः काहलाः ॥ २१ ॥

स्मयमानस्तु राजानं भीष्मद्रोणौ च माधवः ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा राज्ञश्चान्यान्यथावयः ॥३९
तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभाम् ।
राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥ ४०
तत्र तिष्ठन् स दाशार्हो राजमध्ये परंतपः ।
अपश्यदन्तरिक्षस्थानृषीन् परपुरञ्जयः ॥
ततस्तानभिसंप्रेक्ष्य नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ४१
अभ्यभाषत दाशार्हो भीष्मं शान्तनवं शनैः ।
पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता-नृप ॥ ४२
निमन्त्र्यन्तामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा ।
नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केनचिदासितुम् ॥ ४३
पूजा प्रयुज्यतामाशु मुनीनां भावितात्मनाम् ।
ऋषीन् शान्तनवो दृष्ट्वा सभाद्वारमुपस्थितान् ॥
त्वरमाणस्ततो भृत्यानासनानीत्यचोदयत् ।
आसनान्यथ मृष्टानि महान्ति विपुलानि च ४५
मणिकाञ्चनचित्राणि समाजह्रुस्ततस्ततः ।
तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घेषु भारत ॥ ४६
निषसादासने कृष्णो राजानश्च यथासनम् ।
दुःशासनः सात्यकये ददावासनमुत्तमम् ॥ ४७
विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे ।
अविदूरे तु कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ॥ ४८
एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ ।
गान्धारराजः शकुनिर्गान्धारैरभिरक्षितः ॥ ४९
निषसादासने राजा सहपुत्रो विशाम्पते ।
विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पर्ध्याजिनोत्तरे ॥ ५०
संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत् ।
चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्व एव ते ॥ ५१
अमृतस्येव नातृप्यन् प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशः पीतवासा जनार्दनः ॥ ५२
व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः ॥ ५३
ततस्तूष्णीं सर्वमासीद्गोविन्दगतमानसम् ।
न तत्र कश्चित् किञ्चिद्वा व्याजहार पुमान् क्वचित्

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णसभाप्रवेशे
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## ९५

वैशम्पायन उवाच ।
तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।
वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः ॥ १
जीमूत इव घर्मान्ते सर्वां संश्रावयन् सभाम् ।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः ॥ २
श्रीभगवानुवाच ।
कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥ ३
राजन्नान्यत् प्रवक्तव्यं तव नैःश्रेयसं वचः ।
विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिंदम ॥ ४
इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव ।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः ॥ ५
कृपाऽनुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं च भारत ।
तथाऽऽर्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद्विशिष्यते ॥ ६
तस्मिन्नेवंविधे राजन् कुले महति तिष्ठति ।
त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥ ७
त्वं हि धारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरुसत्तम ।
मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ॥ ८
ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः ।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥ ९
अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद्वेत्थ पुरुषर्षभ ॥ १०

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

९५

तेष्विति ॥१॥ आगतोऽस्मीति शेषः॥३॥ कृपा परस्य सुखार्थे यत्नः। अनुकम्पा-परदुःखदर्शने त्रासः। कारुण्यं-परदुःखप्रहाणार्थो यत्नः । आनृशंस्यं-परदुःखाप्रदानम् ॥ ६ ॥ असांप्रतं कृपादिभ्यो विपरीतं परस्य दुःखार्थो यत्नः परदुःखदर्शने आह्लादः । परस्य सुखनाशार्थो यत्नः । परस्य दुःखसंपादनं कौटिल्यादिकं च तच्चायुक्तम् ॥ ७ ॥ बाह्येषु द्यूतादिषु आभ्यन्तरेषु जतुगृहादिषु ॥ ८ ॥

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता ।
उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति ॥ ११
शक्या चेयं शमयितुं न चेद्दित्ससि भारत ।
न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ ॥ १२
त्वय्यधीनः शमो राजन् मयि चैव विशांपते ।
पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् १३
आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहान्वयैः ।
हितं बलवदप्येषां तिष्ठतां तव शासने ॥ १४
तव चैव हितं राजन् पाण्डवानामथो हितम् ।
शमे प्रयतमानस्य मम शासनकाङ्क्षिणः ॥ १५
स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशाम्पते ।
सहायभूता भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर ॥ १६
धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन् पाण्डवैरभिरक्षितः ।
न हि शक्यास्तथाभूता यत्नादपि नराधिप ॥१७
न हि त्वां पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः ।
इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपः ॥ १८
यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः॥१९
सैन्धवश्च कलिङ्गश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
युधिष्ठिरो भीमसेनः सव्यसाची यमौ तथा ॥२०
सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः ।
को नु तान्विपरीतात्मा युध्येत भरतर्षभ ॥ २१
लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् ।
प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरुपाण्डवैः॥ २२
तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते ।
श्रेयांसश्चैव राजानः सन्धास्यन्ते परन्तप ॥ २३
स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम्२४
एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा ।
अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते ॥२५
एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत ।
अन्यान्विजेष्यसे शत्रूनेष स्वार्थस्तवाखिलः ॥२६
तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परन्तप ।
यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहामात्यैर्नराधिप ॥ २७
संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान् क्षयः ।
क्षये चोभयतो राजन् कं धर्ममनुपश्यसि ॥ २८
पाण्डवैर्निहतैः सङ्ख्ये पुत्रैर्वाऽपि महाबलैः ।
यद्विन्देथाः सुखं राजंस्तद्ब्रूहि भरतर्षभ ॥ २९
शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः ।
पाण्डवास्तावकाश्चैव तान्रक्ष महतो भयात् ॥३०
न पश्येम कुरून् सर्वान् पाण्डवांश्चैव संयुगे ।
क्षीणानुभयतः शूरान्रथिनो रथिभिर्हतान् ॥ ३१
समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम ।
अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥ ३२
त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।
त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात् कुरुनन्दन ॥ ३३
शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान् पाहि महतो भयात्
शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ३५
सुवाससः स्रग्विणश्च सत्कृता भरतर्षभ ।
अमर्षं च निराकृत्य वैराणि च परंतप ॥ ३६
हार्दं यत् पाण्डवेष्वासीत् प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये
तदेव ते भवत्वद्य सन्धत्स्व भरतर्षभ ॥ ३७
बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।
तान् पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥ ३८
भवतैव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः ।
मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ॥ ३९
आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च ।
भवतः शासनाद्दुःखमनुभूतं सहानुगैः ॥ ४०
द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि नः ।
त्रयोदशं तथाऽज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥ ४१
स्थाता नः समये तस्मिन् पितेति कृतनिश्चयाः ।
नाहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ४२
तस्मिन्नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ ।
नित्यं सङ्क्लेशिता राजन् स्वराज्यांशं लभेमहि॥
त्वं धर्ममर्थं सञ्जानन् सम्यङ्नस्त्रातुमर्हसि ।
गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्ष्महे ॥ ४४
स भवान् मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम् ।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ ४५

कुरुष्वेव भवत्स्वेव न तु पाण्डवेषु॥११॥ न दित्ससि कुलं न छेत्तुमिच्छसि।त्वं चेदिच्छसीति पाठे कुरून् स्थापयितुमिच्छसि तर्हि शमो न दुष्करः ॥ १२ ॥ बलवत् अत्यन्तमेषामेव। अपिशब्द एवार्थे ॥ १४ ॥ शासनकांक्षिणः पुत्रान् शासितुमिच्छतस्तव ॥ १५॥ निष्फलं वैरं संविधत्स्व शमं कुरु ॥ १६ ॥ पाण्डवैः सह सन्धास्यन्ते सन्धिं करिष्यन्ति ॥२३॥ अखिलां निष्कण्टकाम् ॥ २५ ॥ प्रकृतिं सत्त्वगुणम् ॥३३॥ हार्दं प्रीतिः आसीत् पूर्वं बाल्ये ॥ ३७ ॥ स्थाता स्थास्यति ॥ ४२ ॥ गुरोः गुरौ ॥ ४५ ॥

वर्तामहे त्वयि च तां त्वं च वर्तस्व नस्तथा ।
पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ४६
संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ धर्मे सुवर्त्मनि ।
आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ॥ ४७
धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् ।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥ ४८
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।
विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते ॥ ४९
न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ।
धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान् ॥ ५०
ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।
ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥ ५१
शक्यं किमन्यद्वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर ।
ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये समासते ॥ ५२
धर्मार्थौ संप्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
प्रमुञ्चेमान् मृत्युपाशात् क्षत्रियान् पुरुषर्षभ ॥५३
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा मन्युवशमन्वगाः ।
पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम्५४
ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुङ्क्ष्व भोगान् परंतप ।
अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ॥ ५५
सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते यां नराधिप ।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ॥ ५६
इन्द्रप्रस्थं त्वयैवासौ सपुत्रेण विवासितः ।
स तत्र विवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान् ॥५७
त्वन्मुखानकरोद्राजन्न च त्वामत्यवर्तत ।
तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता ॥ ५८
राष्ट्राणि धनधान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः ।
स तामवस्थां संप्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभागताम्
क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिरः ।
अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत ॥ ६०
धर्मादर्थात् सुखाच्चैव मा राजन्नीनशः प्रजाः ।
अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थं चानर्थमात्मनः ॥ ६१
लोभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान्निगृह्णीष्व विशांपते ।
स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः॥
यत्ते पथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परंतप ॥ ६२

वैशम्पायन उवाच ।

तद्वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन् ।
न तत्र कश्चिद्वक्तुं हि वाचं प्राक्रामदग्रतः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

## ९६

वैशम्पायन उवाच ।

तस्मिन्नभिहिते वाक्ये केशवेन महात्मना ।
स्तिमिता हृष्टरोमाण आसन् सर्वे सभासदः ॥ १
कश्चिदुत्तरमेतेषां वक्तुं नोत्सहते पुमान् ।
इति सर्वे मनोभिस्ते चिन्तयन्ति स्म पार्थिवाः॥२
तथा तेषु च सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।
जामदग्न्य इदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ ३
इमां मे सोपमां वाचं शृणु सत्यामशङ्कितः ।
तां श्रुत्वा श्रेय आदत्स्व यदि साध्विति मन्यसे ४
राजा दम्भोद्भवो नाम सार्वभौमः पुराऽभवत् ।
अखिलां बुभुजे सर्वां पृथिवीमिति नः श्रुतम् ॥५
स स्म नित्यं निशापाये प्रातरुत्थाय वीर्यवान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्चैव पृच्छन्नास्ते महारथः ॥ ६
अस्ति कश्चिद्विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद्युधि ।
शूद्रो वैश्यः क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वापि शस्त्रभृत्
इति ब्रुवन्नन्वचरत् स राजा पृथिवीमिमाम् ।
दर्पेण महता मत्तः कञ्चिदन्यमचिन्तयन् ॥ ८

परिषदं धर्मज्ञसभां पुत्राः पाण्डवाः ॥ ४७ ॥ आरुजति हिनस्ति अनुकूलजान् कूलं कूलमनुसृत्य जातान् वृक्षादीन् ॥ ५० ॥ ये पाण्डवास्तूष्णीमासते कालं निर्वाह्य भवद्भ्यो राज्यांशं लब्धुमिच्छंति ते सत्यं धर्म्यं न्याय्यं चाहुः ॥५१॥ दाहितः जतुगृहे निरस्तो द्यूतेन राज्याद्दूरीकृतः ॥ ५६ ॥ परमोपधिः महच्छद्म ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५

९६

तस्मिन्निति ॥ १ ॥

तं च वैद्या अकृपणा ब्राह्मणाः सर्वतोऽभयाः ।
प्रत्यषेधन्त राजानं श्लाघमानं पुनः पुनः ॥ ९
निषिध्यमानोऽप्यसकृत् पृच्छत्येव स वै द्विजान्।
अतिमानं श्रिया मत्तं तमूचुर्ब्राह्मणास्तदा ॥ १०
तपस्विनो महात्मानो वेदप्रत्ययदर्शिनः ।
उदीर्यमाणं राजानं क्रोधदीप्ता द्विजातयः ॥ ११
अनेकजयिनौ संख्ये यौ वै पुरुषसत्तमौ ।
तयोस्त्वं न समो राजन् भविताऽसि कदाचन॥
एवमुक्तः स राजा तु पुनः पप्रच्छ तान् द्विजान्।
क तौ वीरौ क जन्मानौ किंकर्माणौ च कौ च तौ

ब्राह्मणा ऊचुः ।

नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम् ।
आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युध्यस्व पार्थिव ॥
श्रूयेते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ।
तपो घोरमनिर्देश्यं तप्यते गन्धमादने ॥ १५
स राजा महतीं सेनां योजयित्वा षडङ्गिनीम् ।
अमृष्यमाणः संप्रायाद्यत्र तावपराजितौ ॥ १६
स गत्वा विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ।
मृगयाणोऽन्वगच्छत्तौ तापसौ वनमाश्रितौ॥१७
तौ दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाभ्यां कृशौ धमनिसन्ततौ ।
शीतवातातपैश्चैव कर्शितौ पुरुषोत्तमौ ॥ १८
अभिगम्योपसङ्गृह्य पर्यपृच्छदनामयम् ।
तमर्चित्वा मूलफलैरासनेनोदकेन च ॥ १९
न्यमन्त्रयेतां राजानं किं कार्यं क्रियतामिति ।
ततस्तामानुपूर्वीं स पुनरेवान्वकीर्तयत् ॥ २०
बाहुभ्यां मे जिता भूमिर्निहताः सर्वशत्रवः ।
भवद्भ्यां युद्धमाकांक्षन्नुपयातोऽस्मि पर्वतम् ॥
आतिथ्यं दीयतामेतत् कांक्षितं मे चिरं प्रति ।

नरनारायणावूचतुः ।

अपेतक्रोधलोभोऽयमाश्रमो राजसत्तम
न ह्यस्मिन्नाश्रमे युद्धं कुतः शस्त्रं कुतोऽनृजुः ।
अन्यत्र युद्धमाकांक्ष बहवः क्षत्रियाः क्षितौ ॥२३

राम उवाच ।

उच्यमानस्तथाऽपि स्म भूय एवाभ्यभाषत ।
पुनः पुनः क्षम्यमाणः सान्त्व्यमानश्च भारत ॥
दम्भोद्भवो युद्धमिच्छन्नाह्वयत्येव तापसौ ।
ततो नरस्त्विषीकाणां मुष्टिमादाय भारत ॥२५
अब्रवीदेहि युद्ध्यस्व युद्धकामुक क्षत्रिय ।
सर्वशस्त्राणि चादत्स्व योजयस्व च वाहिनीम् ॥
अहं हि ते विनेष्यामि युद्धश्रद्धामितः परम् ।

दम्भोद्भव उवाच ।

यद्येतदस्त्रमस्मासु युक्तं तापस मन्यसे ॥ २७
एतेनापि त्वया योत्स्ये युद्धार्थी ह्यहमागतः ।

राम उवाच ।

इत्युक्त्वा शरवर्षेण सर्वतः समवाकिरत् ॥ २८
दंभोद्भवस्तापसं तं जिघांसुः सहसैनिकः ।
तस्य तानस्यतो घोरानिषून् परतनुच्छिदः ॥ २९
कदर्थीकृत्य स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत् ।
ततोऽस्मै प्रासृजद्घोरमैषीकमपराजितः ॥ ३०
अस्त्रमप्रतिसन्धेयं तदद्भुतमिवाभवत् ।
तेषामक्षीणि कर्णांश्च नासिकाश्चैव मायया ॥३१
निमित्तवेधी स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत् ।
स दृष्ट्वा श्वेतमाकाशमिषीकाभिः समाचितम् ॥
पादयोर्न्यपतद्राजा स्वस्ति मेऽस्त्विति चाब्रवीत्
तमब्रवीन्नरो राजन् शरण्यः शरणैषिणाम् ॥ ३३
ब्रह्मण्यो भव धर्मात्मा मा च स्मैवं पुनः कृथाः ।
नैतादृक् पुरुषो राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ३४
मनसा नृपशार्दूल भवेत् परपुरञ्जयः ।
मा च दर्पसमाविष्टः क्षेप्सीः कांश्चित् कथञ्चन ॥
अल्पीयांसं विशिष्टं वा तत्ते राजन् समाहितम् ।
कृतप्रज्ञो वीतलोभो निरहंकार आत्मवान् ॥ ३६
दान्तः क्षान्तो मृदुः सौम्यः प्रजाः पालय पार्थिव
मा स्म भूयः क्षिपेः कञ्चिदविदित्वा बलाबलम्॥
अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः ।
कुशलं ब्राह्मणान् पृच्छेरावयोर्वचनाद्भृशम् ॥ ३८
ततो राजा तयोः पादावभिवाद्य महात्मनोः ।
प्रत्याजगाम स्वपुरं धर्मं चैवाचरद्भृशम् ॥ ३९
सुमहच्चापि तत्कर्म यन्नरेण कृतं पुरा ।
ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत् ॥४०
तस्माद्यावद्धनुःश्रेष्ठे गाण्डीवेऽस्त्रं न युज्यते ।
तावत्त्वं मानमुत्सृज्य गच्छ राजन् धनञ्जयम्॥४१

---

वेदप्रत्ययदर्शिनः वेदजः प्रत्ययो ब्रह्मात्मैक्यापरोक्ष्यं तदेव द्रष्टुं शीलं येषां ते ॥ ११ ॥ तप्यते ताभ्यामिति शेषः ॥१५॥
षडंगिनीं रथनागाश्वपादातशकटोष्ट्रवतीम्॥ १६ ॥

काकुदीकं शुकं नाकमक्षिसन्तर्जनं तथा ।
संतानं नर्तकं घोरमास्यमोदकमष्टम् ॥ ४२
एतैर्विद्धाः सर्व एव मरणं यान्ति मानवाः ।
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ तथैव च ॥ ४३
मात्सर्याहङ्कृती चैव क्रमादेत उदाहृताः ।
उन्मत्ताश्च विचेष्टन्ते नष्टसंज्ञा विचेतसः ॥ ४४
स्वपन्ति च प्लवन्ते च छर्दयन्ति च मानवाः ।
मूत्रयन्ते च सततं रुदन्ति च हसन्ति च ॥ ४५
निर्माता सर्वलोकानामीश्वरः सर्वकर्मवित् ।
यस्य नारायणो बन्धुरर्जुनो दुःसहो युधि ॥ ४६
कस्तमुत्सहते जेतुं त्रिषु लोकेषु भारत ।
वीरं कपिध्वजं जिष्णुं यस्य नास्ति समो युधि ॥
असंख्येया गुणाः पार्थे तद्विशिष्टो जनार्दनः ।
त्वमेव भूयो जानासि कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ४८
नरनारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥ ४९
यद्येतदेवं जानासि न च मामभिशंकसे ।
आर्यां मतिं समास्थाय शाम्य भारत पाण्डवैः ॥
अथ चेन्मन्यसे श्रेयो न मे भेदो भवेदिति ।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा च युद्धे मनः कृथाः ॥ ५१
भवतां च कुरुश्रेष्ठ कुलं बहुमतं भुवि ।
तत्तथैवास्तु भद्रं ते स्वार्थमेवोपचिन्तय ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दम्भोद्भवोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

## ९७

वैशम्पायन उवाच ।
जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १
कण्व उवाच ।
अक्षयश्चाव्ययश्चैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी ॥ २
आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः ।
अक्षय्यश्चाव्ययश्चैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः ॥ ३
निमित्तमरणाश्चान्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम् ।
वायुरग्निस्तथाऽऽकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा ॥४
ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा ।
क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः ॥ ५
मुहूर्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः ।
तैर्यग्योन्यश्च ये चान्ये जीवलोकचरास्तथा ॥ ६
भूयिष्ठेन तु राजानः श्रियं भुक्त्वाऽऽयुषः क्षये ।
तरुणाः प्रतिपद्यन्ते भोक्तुं सुकृतदुष्कृते ॥ ७
स भवान् धर्मपुत्रेण शमं कर्तुमिहार्हति ।
पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुन्धराम् ॥ ८
बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन ।
बलवन्तो बलिभ्यो हि दृश्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ९
न बलं बलिनां मध्ये बलं भवति कौरव ।
बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमाः ॥ १०
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मातलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम् ॥ ११

---

काकुदीकमित्यादयोऽष्टावस्त्रजातयः । येनास्त्रेणाभिभूता रथगजादीनां ककुद्येव शेरते तत्काकुदीकं प्रस्वापनं नाम । येन शुकनलिकान्यायेन अभयेऽपि भयदर्शिनो हयरथादिपादेषु गाढं श्लिष्यन्ति तत् शुकं मोहनं नाम । येन स्वर्गनगरं पश्यति तन्नाकं उन्मादनं नाम । येन क्षिप्तमात्रेणानुविद्धास्त्रासात् शकृन्मूत्रं स्रवन्ति तत् अक्षिसन्तर्जनं त्रासनं नाम । संतानं अविच्छेदेन शस्त्राणां वृष्टिकरमैन्द्रादि दिव्यम् । नर्तकं नर्तनकरं पैशाचं, घोरं कदनकरं राक्षसं, आस्यमोदकं येनाभिहताः मुखे पाषाणं दत्वा मरणार्थमेव प्रतिष्ठंते तत् याम्यं नाम । अत्रैव उन्मत्ताश्चेति श्लोकोक्ता दोषा यथायोग्यं सम्बन्धनीयाः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

९७

**जामदग्न्येति** ॥ १ ॥ अक्षयः अपचयशून्यः ॥ २ ॥ प्रभवत्यस्मादिति प्रभुर्जगत उपादानकारणं घटस्येव मृत्पिण्डः ॥ ३ ॥ निमित्तमरणा इति । नाशवन्त इत्यर्थः । पाठान्तरे निमित्तकारणानि चक्रचीवरकुलालादिस्थानीयानि ॥ ४ ॥ **तरुणा इति** । भोगकाले युद्धेन मरणं मा प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥ बलं सैन्यं बलिनां औरसबलवतां बलं सामर्थ्यं न भवति ॥ १० ॥ मातलेरितिहासमिति सम्बन्धः ॥ ११ ॥

मतस्त्रिलोकराजस्य मातलिर्नाम सारथिः ।
तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता ॥ १२
गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सा देवरूपिणी ।
श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्याः साऽतिरिच्यते
तस्याः प्रदानसमयं मातलिः सह भार्यया ।
ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्परः परिचिन्तयन् ॥१४
धिक्खल्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम्।
नराणां मृदुसत्वानां कुले कन्याप्ररोहणम् ॥ १५
मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।
कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम् ॥ १६
देवमानुषलोकौ द्वौ मानुषेणैव चक्षुषा ।
अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः ॥ १७

कण्व उवाच ।

न देवान्नैव दितिजान्न गन्धर्वान्न मानुषान् ।
अरोचयद्वरकृते तथैव बहुलानृषीन् ॥ १८
भार्ययाऽनु स संमन्त्र्य सह रात्रौ सुधर्मया ।
मातलिर्नागलोकाय चकार गमने मतिम् ॥ १९
न मे देवमनुष्येषु गुणकेश्याः समो वरः ।
रूपतो दृश्यते कश्चिन्नागेषु भविता ध्रुवम् ॥ २०
इत्यामन्त्र्य सुधर्मां स कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
कन्यां शिरस्युपाघ्राय प्रविवेश महीतलम् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे
सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

## ९८

कण्व उवाच ।

मातलिस्तु व्रजन्मार्गे नारदेन महर्षिणा ॥
वरुणं गच्छता द्रष्टुं समागच्छद्यदृच्छया ॥ १
नारदोऽथाब्रवीदेनं क्व भवान् गन्तुमुद्यतः ।
स्वेन वा सूत कार्येण शासनाद्वा शतक्रतोः ॥ २
मातलिर्नारदेनैवं संपृष्टः पथि गच्छता ।
यथावत्सर्वमाचष्ट स्वकार्यं नारदं प्रति ॥ ३
तमुवाचाथ स मुनिर्गच्छावः सहिताविति ।
सलिलेशदिदृक्षार्थमहमप्युद्यतो दिवः ॥ ४
अहं ते सर्वमाख्यास्ये दर्शयन् वसुधातलम् ।
दृष्ट्वा तत्र वरं कञ्चिद्रोचयिष्याव मातले ॥ ५
अवगाह्य तु तौ भूमिमुभौ मातलिनारदौ ।
ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपां पतिम् ॥ ६
तत्र देवर्षिसदृशीं पूजां स प्राप नारदः ।
महेन्द्रसदृशीं चैव मातलिः प्रत्यपद्यत ॥ ७
तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवन्तौ निवेद्य ह ।
वरुणेनाभ्यनुज्ञातौ नागलोकं विचेरतुः ॥ ८
नारदः सर्वभूतानामन्तर्भूमिनिवासिनाम् ।
जानंश्चकार व्याख्यानं यन्तुः सर्वमशेषतः ॥ ९

नारद उवाच ।

दृष्टस्ते वरुणः सूत पुत्रपौत्रसमावृतः ।
पश्योदकपतेः स्थानं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ १०
एष पुत्रो महाप्राज्ञो वरुणस्येह गोपतेः ।
एष वै शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते ॥ ११
एषोऽस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः ।
रूपवान् दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः ॥ १२
ज्योत्स्ना कालीति यामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम्
अदित्याश्चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः ॥
भवनं पश्य वारुण्यं यदेतत्सर्वकाञ्चनम् ।
यत्प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे ॥१४
एतानि हृतराज्यानां दैतेयानां स्म मातले ।
दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत ॥ १५
अक्षयाणि किलैतानि विवर्तन्ते स्म मातले ।
अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह॥ १६

---

उच्छ्रितानां महत्तया ख्यातानाम् ॥ १५ ॥ चक्षुषा ज्ञानेन विचितौ अन्वेषितौ ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७

९८

मातलिरिति ॥ १ ॥ यन्तुः यन्तारं मातलिं प्रति ॥ ९ ॥ गोपतेः वारिपतेः, 'भूवाग्वारिषु गौर्मता' इति विश्वः ॥ ११ ॥ द्वितीयां सोमपुत्रीं तया अदित्याः पुत्रः सूर्यः श्रेष्ठः कृतः भर्ता कृतः ॥ १३ ॥ वारुण्यं वारुण्याः सुरायाः इदं वारुण्यम् सुरा विद्यते येषां ते सुराः ॥ १४ ॥ विवर्तन्ते प्रक्षिप्तान्यपि पुनः पुनः प्रहर्तुर्हस्तमायान्ति॥१६॥

अत्र राक्षसजात्यश्च दैत्यजात्यश्च मातले ।
दिव्यप्रहरणाश्चासन् पूर्वदैवतनिर्मिताः ॥ १७
अग्निरेष महार्चिष्मान् जागर्ति वारुणे ह्रदे ।
वैष्णवं चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता ॥ १८
एष गाण्डीमयश्चापो लोकसंहारसंभृतः ।
रक्ष्यते दैवतैर्नित्यं यतस्तद्गाण्डिवं धनुः ॥ १९
एष कृत्ये समुत्पन्ने तत्तद्धारयते बलम् ।
सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवः ॥ २०
अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबंधुषु राजसु ।
सृष्टः प्रथमतश्चण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥ २१
एतच्छत्रं नरेन्द्राणां महच्चक्रेण भासितम् ।
पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम् ॥ २२
एतत् सलिलराजस्य छत्रं छत्रगृहे स्थितम् ।
सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति ॥ २३
एतच्छत्रात् परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम् ।
तमसा मूर्छितं भाति येन नार्छति दर्शनम् ॥ २४
बहून्यद्भुतरूपाणि द्रष्टव्यानीह मातले ।
तव कार्यविरोधस्तु तस्माद्गच्छाव मा चिरम् २५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

## ९९

नारद उवाच ।
एतत्तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम् ।
पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥ १
इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद्भुवि जङ्गमाः ।
प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ॥ २
अत्रासुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः ।
व्यापारेण धृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ॥ ३
अत्रामृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः ।
अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रदृश्यते ॥ ४

जात्यः जातीयाः पूर्वदैवतानि पूर्वदेवाः दैत्याः । सर्वेतिपाठे निर्मिताः निश्चयेन प्रक्षिप्ताः ॥ १७ ॥ **अग्निरिति** । हविष्मताऽग्निना आविद्धं रुद्धं विष्णुचक्रजमप्यत्र भयं नास्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ गाण्डी खड्गाख्यः पशुविशेषः । तस्य विकारो गाण्डीमयः तस्य हि पशूनां वा पृष्ठवंशस्य धनुः कर्तुं शक्यं यतः गाण्डीमयत्वादेव तत् गाण्डीवं नाम धनुरभूत् । गाण्डीशब्दाद्विकारार्थो वप्रत्ययः कल्प्यत इति भावः । गाण्डी वज्रग्रन्थिस्तन्मय इत्यन्ये ॥ १९ ॥ एष चापः कृत्ये अभेद्यभेदने तत्तत् तावत्तावत्प्राणेन बलेन। सर्वदा लक्षचापतुल्यबलोऽप्ययं चापः कार्यकालेऽधिकबलोऽपि भवतीत्यनन्तबल इत्यर्थः ॥ २० ॥ रक्षोबंधुषु रक्षस्तुल्येषु ॥ २१ ॥ एतच्छत्रं धनुः चक्रेण चक्रादपि । एतच्छास्त्रं नरेन्द्राणां महच्छुक्रेण भाषितमिति पाठे नीतिशास्त्रं शुक्रेण काव्येन छत्रेणेति वा पाठः ॥ २२ ॥ मूर्छितमभिभूतं आवृतमिति यावत् । येन हेतुना जनोऽस्य दर्शनं नार्छति न प्राप्नोति ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

९९

**एतदिति** ॥ १ ॥ अद्भिः समं प्राप्ताः जलवेगेनानीताः ॥ २ ॥ व्यापारेण यत्नेन धृतः मर्यादायां स्थापितः अन्यथा सद्यः कृत्स्नं समुद्रं लोकांश्च दहेत् आत्मानं निबद्धं देवैरिति शेषः । समबुद्ध्यत अग्निरित्यर्थः । धृतात्मेति सन्धिरार्षः ॥ ३ ॥ निहितं स्थापितं अतः सोमस्येति कन्दुकाकारं भूगोलं प्रदक्षिणीकुर्वतः सूर्यस्य सोमस्य वा केनचिद्भूगोलप्रदेशेन आवरणात् कदाचिददर्शनं भवति । सैव तेषां रात्रिः । ये तु गोलस्य शिरसि अधस्ताच्च तिष्ठन्ति ते सर्वदैव सूर्यादीन् पश्यन्ति तत्र जलमयं चन्द्रमण्डलं सूर्यरश्मिभिस्तैजसैः प्रकाश्यते तयोश्च यथा यथा विप्रकर्षः तथा तथाऽधिकं चन्द्रोऽवभासते यथा यथा सन्निकर्षः तथा तथाऽधिकं सूर्यपुरोवर्तिभिरग्न्यादिभिर्देवताभिस्तिरोधीयतेऽस्मदृष्ट्या । एतदेवाभिलक्ष्य 'प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः' इत्यादि शास्त्रं प्रवृत्तम् । पानं चेह सान्निध्यादाप्यायनमात्रम् ।पातालनाभिस्थानां तु मेरुशिखरस्थानामिव सर्वदा संपूर्ण एव चंद्रोऽवभासते । तद्दृश्यप्रदेशेऽन्न्यावरणाभावात् । अतः स्थानात् चन्द्रस्य ह्रासवृद्धी प्रदृश्येते इति विरुद्धलक्षणया न दृश्येते इत्यर्थः । न दृश्यते इत्येव पाठो लेखकप्रमादाद्भ्रष्टो वा ॥ ४ ॥

अत्रादित्यो हयशिराः काले पर्वणि पर्वणि ।
उत्तिष्ठति सुवर्णाख्यं वाग्भिरापूरयन् जगत् ॥ ५
यस्मादलं समस्तास्ताः पतन्ति जलमूर्तयः ।
तस्मात् पातालमित्येव ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥ ६
ऐरावणोऽस्मात् सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः ।
मेघेष्वामुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ॥ ७
अत्र नानाविधाकारास्तिमयो नैकरूपिणः ।
अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसन्ति जलचारिणः ॥ ८
अत्र सूर्यांशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः ।
मृता हि दिवसे सूत पुनर्जीवन्ति वै निशि ॥ ९
उदयन्नित्यशश्चात्र चन्द्रमा रश्मिबाहुभिः ।
अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात् सञ्जीवयति देहिनः ॥ १०
अत्र ते धर्मनिरता बद्धाः कालेन पीडिताः ।
दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हृतश्रियः ॥ ११
अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः ।
भूतये सर्वभूतानामचरत्तप उत्तमम् ॥ १२
अत्र गोव्रतिनो विप्राः स्वाध्यायाम्नायकर्शिताः
त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥ १
यत्रतत्रशयो नित्यं येन केनचिदाशितः ।
येन केनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते ॥ १
ऐरावणो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
प्रसूताः सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥ १
पश्य यद्यत्र ते कश्चिद्रोचते गुणतो वरः ।
वरयिष्यामि तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥ १
अण्डमेतज्जले न्यस्तं दीप्यमानमिव श्रिया ।
आप्रजानां निसर्गाद्वै नोद्भिद्यति न सर्पति ॥ १
नास्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि वै
पितरं मातरं चापि नास्य जानाति कश्चन ॥ १
अतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः ।
धक्ष्यते मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १
मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याथ भाषितम् ।
न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो व्रज माचिरम् ॥ २

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे ऊनशततमोऽध्याय ॥ ९९ ॥

## १००

नारद उवाच ।
हिरण्यपुरमित्येतत् ख्यातं पुरवरं महत् ।
दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥ १
अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥ २
अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः ।
दानवा निवसन्ति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ॥ ३
नैते शक्रेण नान्येन यमेन वरुणेन वा ।
शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ॥ ४
असुराः कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः ।
नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मपादोद्भवाश्च ये ॥
दंष्ट्रिणो भीमवेगाश्च वातवेगपराक्रमाः ।
मायावीर्योपसंपन्ना निवसन्त्यत्र मातले ॥
निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः ।
जानासि च यथा शक्रो नैतान् शक्नोति बाधितु
बहुशो मातले त्वं च तव पुत्रश्च गोमुखः ।
निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः ॥
पश्य वेश्मानि रौक्माणि मातले राजतानि च ।
कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च ॥

आदित्योऽदितेः पुत्रो विष्णुर्हयग्रीवरूपी सुवर्णाख्यं जगत् वेदरूपी नामात्मकः प्रपञ्चः 'नाम वा ऋग्वेदः' इत्यादिश्रुतेः। तं वाग्भिरापूरयन् उत्तिष्ठति वेदाध्यायिनां ध्वनिं उपबृंहयितुमाविर्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ जलमूर्तयश्चन्द्राद्याः पतन्ति चंद्रकान्तवज्जलं स्रवन्ति । अतोऽयं पतज्जल इति वक्तव्ये पाताल इत्यर्थः ॥ ६ ॥ प्रदेशान्तरं गत्वाह–अत्र सूर्यांशुभिरिति । दिवसेऽस्मदीयरात्रौ निशि अस्मदीयदिवसे ॥ ९ ॥ स्वाध्यायाम्नायो वेदपाठः ॥ १३ ॥ गोव्रतं व्याचष्टे-यत्रेति ॥ १४ ॥ आ प्रजानां निसर्गात् प्रजोत्पत्तिमारभ्य १ जातिं जन्म निसर्गं स्वभावं ततः पूर्वमुत्पन्नस्य कस्यचिदभावात् ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकंण्ठीये भारतभावदीपे ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

१००

हिरण्येति ॥ १ ॥

वैदूर्यमणिचित्राणि प्रवालरुचिराणि च ।
अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानि च १०
पार्थिवानीव चाभान्ति पद्मरागमयानि च ।
शैलानीव च दृश्यन्ते दारवाणीव चाप्युत ॥ ११
सूर्यरूपाणि चाभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च ।
मणिजालविचित्राणि प्रांशूनि निबिडानि च॥१२
नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतो द्रव्यतस्तथा ।
गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च ॥ १३
आक्रीडान् पश्य दैत्यानां तथैव शयनान्युत ।
रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानि च॥ १४
जलदाभांस्तथा शैलांस्तोयप्रस्रवणानि च ।
कामपुष्पफलांश्चापि पादपान् कामचारिणः ॥१५
मातले कश्चिदत्रापि रुचिरस्ते वरो भवेत् ।
अथवाऽन्यां दिशं भूमेर्गच्छाव यदि मन्यसे॥ १६
मातलिस्त्वब्रवीदेनं भाषमाणं तथाविधम् ।
देवर्षे नैव मे कार्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम्॥ १७
नित्यानुषक्तवैरा हि भ्रातरो देवदानवाः ।
परपक्षेण सम्बन्धं रोचयिष्याम्यहं कथम् ॥ १८
अन्यत्र साधु गच्छाव द्रष्टुं नार्हामि दानवान् ।
जानामि तव चात्मानं हिंसात्मकमनं तथा॥ १९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## १०१

नारद उवाच ।
अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम् ।
विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ॥ १
वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् ।
सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥ २
सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले ।
वर्धितानि प्रसूत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ॥ ३
पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च ।
कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्धनैः ॥ ४
सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः ।
सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ॥ ५
कर्मणा क्षत्रियाश्चैते निर्घृणा भोगिभोजिनः ।
ज्ञातिसंक्षयकर्तृत्वाद्ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ॥ ६
नामानि चैषां वक्ष्यामि यथा प्राधान्यतः शृणु ।
मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥ ७
दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम् ।
हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव सदा गतिः ॥ ८
सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः ।
अनिलश्चानलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥ ९
पङ्कजिद्वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः ।
वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषोऽनिमिषस्तथा ॥ १०
त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकिर्द्वीपकस्तथा ।
दैत्यद्वीपः सरिद्द्वीपः सारसः पद्मकेतनः ॥ ११
सुमुखश्चित्रकेतुश्च चित्रबर्हस्तथाऽनघः ।
मेषहृत् कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सहभोजनः ॥ १२
गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः ।
विष्णुधर्मा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ॥ १३
सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च ।
मालयो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥ १४
एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः ।
प्राधान्यतस्ते यशसा कीर्तिताः प्राणिनश्च ये१५

---

शैलानि शिलामयानि ॥ ११ ॥ आक्रीडान् क्रीडास्थानानि ॥ १४ ॥ आत्मानं अहिंसापरं जानामि हिंसात्मनां तथा हिंसात्मकमनं हिंसाप्रधानानां दैत्यानां कमनं अपेक्षणीयं च हिंसोदर्कतया जानामि। अन्ये तु दित्सात्मकमलं तथेति पाठं प्रकल्प्य दित्सात्मकं दानेच्छाप्रचुरं अलं अत्यर्थं इति व्याचक्षते ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

अयमिति ॥ १ ॥ प्रसूत्या प्रकृष्टगत्या जवेन वृद्धिमन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥ निर्घृणाः निर्दयाः ॥ ६ ॥

यद्यत्र न रुचिः काचिदेहि गच्छाव मातले । तं नयिष्यामि देशं त्वां वरं यत्रोपलप्स्यसे ॥ १६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## १०२

नारद उवाच ।

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् ।
यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसंभवा ॥ १
क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसंभवम् ।
षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम् ॥ २
अमृतेनाभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा ।
पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता ॥ ३
यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले ।
ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुच्यते ॥ ४
पुष्पितस्येव फेनेन पर्यन्तमनुवेष्टितम् ।
पिबन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ॥ ५
फेनपा नाम ते ख्याताः फेनाहाराश्च मातले ।
उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ॥ ६
अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले ।
निवसन्ति दिशां पाल्यो धारयन्तो दिशः स्म ताः
पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी ।
दक्षिणां हंसिका नाम धारयत्यपरां दिशम् ॥ ८
पश्चिमा वारुणी दिक्च धार्यते वै सुभद्रया ।
महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ॥ ९
सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् ।
उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम् ॥ १०
आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ॥ ११
उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले ।
उच्चैःश्रवाश्चाश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम् १२
सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् ।
अमृतं चामृताशेषु सुरभी क्षरते पयः ॥ १३
अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः ।
पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः॥१४
न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।
परिवासः सुखस्तादृक् रसातलतले यथा ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१०२

**इदं रसातलमिति** ॥ १ ॥ वदनात् मुखादुदतिष्ठत् तेन मुखजेन ब्राह्मणेन तस्या एककुलत्वं यथोक्तं–' ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्' इति ॥ ३ ॥ फेनेन पुष्पितस्येव श्वेतस्यास्य पर्यन्तं तीरप्रदेशं फेनेनैवानुवेष्टितं पिबन्तः सादरमवलोकयन्त एव वसन्ति तेनैव फेनपा इत्युच्यन्ते ॥ ५ ॥ एतेभ्योऽन्ये फेनाहाराश्चेत्यर्थः ॥ ६ ॥ इलाबिलस्येमामैलविलसंज्ञिताम् ॥ १० ॥ असुरसंहितैः असुरसहितैः ॥ ११ ॥ **सुधेति** । सर्पपितृदेवानां तत्तद्योग्याहाररूपं पयः क्षरतीत्यर्थः । सुधा सर्पस्य भोजनम् स्वधाभोजिनः पितरः । अमृताशेषु देवेषु ॥१३॥ परिवासः निवासः सुखः सुखकरः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## १०३

नारद उवाच ।

इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ।
यादृशी देवराजस्य पुरीवर्याऽमरावती ॥ १
एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा ।
तपसा लोकमुख्येन प्रभावसहिता मही ॥ २
¶श्वेताचलनिभाकारो दिव्याभरणभूषितः ।
सहस्रं धारयन् मूर्ध्नां ज्वालाजिह्वो महाबलः ॥३
इह नानाविधाकारा नानाविधविभूषणाः ।
सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥४
मणिस्वास्तिकचक्राङ्काः कमण्डलुकलक्षणाः ।
सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥५
सहस्रशिरसः केचित् केचित् पञ्चशताननाः ।
शतशीर्षास्तथा केचित् केचित्त्रिशिरसोऽपि च॥
द्विपञ्चशिरसः केचित् केचित् सप्तमुखास्तथा ।
महाभोगा महाकायाः *पर्वताभोगभोगिनः ॥७
बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
नागानामेकवंशानां यथाश्रेष्ठं तु मे शृणु ॥ ८
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
कालीयो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ ९
बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः ।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥ १०
आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ ।
कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥ ११
सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ ।
आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्ठूरिकस्तथा ॥ १२
तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः ।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥ १३
करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च ।
पिण्डारो बिल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः ॥ १४
दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथापराजितः ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ॥ १५
विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः ।
बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः सुरसस्तथा ॥१६
एते चान्ये च बहवः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ।
मातले पश्य यद्यत्र कश्चित्ते रोचते वरः ॥ १७

कण्व उवाच ।

मातलिस्त्वेकमव्यग्रः सततं संनिरीक्ष्य वै ।
पप्रच्छ नारदं तत्र प्रीतिमानिव चाभवत् ॥ १८

मातलिरुवाच ।

स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्यार्यकस्य तु ।
द्युतिमान् दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः ॥ १९
कः पिता जननी चास्य ×कतमस्यैष भोगिनः ।
वंशस्य कस्यैष महान् केतुभूत इव स्थितः ॥ २०
+प्रणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे ।
मनःप्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिर्वरः ॥ २१

कण्व उवाच ।

मातलिं प्रीतमनसं दृष्ट्वा सुमुखदर्शनात् ।
निवेदयामास तदा माहात्म्यं जन्म कर्म च ॥ २२

नारद उवाच ।

ऐरावतकुले जातः सुमुखो नाम नागराट् ।
आर्यकस्य मतः पौत्रो दौहित्रो वामनस्य च॥२३
एतस्य हि पिता नागश्चिकुरो नाम मातले ।
नचिराद्वैनतेयेन †पञ्चत्वमुपपादितः ॥ २४
ततोऽब्रवीत् प्रीतमना मातलिर्नारदं वचः ।
एष मे रुचितस्तात जामाता भुजगोत्तमः ॥ २५
क्रियतामत्र यत्नो वै प्रीतिमानस्म्यनेन वै ।
अस्मै नागाय वै दातुं प्रियां दुहितरं मुने ॥ २६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

---

१०३

इयमिति ॥ १ ॥ कमण्डलुकलक्षणाः पानपात्रसदृशचिह्नाः ॥ ५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ¶ श्वेताचलः कैलासः । * पर्वताभोगवत् भोगो येषाम् । × कतमस्य भोगिनः वंशस्येत्यन्वयः । + प्रणिधानेनावधानेन । † पञ्चत्वं मरणम् ।

## १०४

नारद उवाच ।

सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत् ।
शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान् बली ॥ १
शक्रस्यायं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च ।
अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे ॥ २
अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम् ।
देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव नियच्छति ॥ ३
अनेन विजितानश्वैर्दोर्भ्यां जयति वासवः ।
अनेन बलभित्पूर्वं प्रहृते प्रहरत्युत ॥ ४
अस्य कन्या वरारोहा रूपेणासदृशी भुवि ।
सत्यशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ॥ ५
तस्यास्य यत्नाच्चरतस्त्रैलोक्यममरद्युते ।
सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ॥ ६
यदि ते रोचते सम्यग्भुजगोत्तम मा चिरम् ।
क्रियतामार्यक क्षिप्रं बुद्धिः कन्यापरिग्रहे ॥ ७
यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः ।
कुले तव तथैवास्तु गुणकेशी सुमध्यमा ॥ ८
पौत्रस्यार्थे भवांस्तस्माद्गुणकेशीं प्रतीच्छतु ।
सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ॥ ९
पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे ।
बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च ॥ १०
सुमुखश्च गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः ।
अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः ॥ ११
मातलिस्तस्य संमानं कर्तुमर्हो भवानपि ।

कण्व उवाच ।

स तु दीनः प्रहृष्टश्च प्राह नारदमार्यकः ॥ १२
व्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते ।
कथमिच्छामि देवर्षे गुणकेशीं स्नुषां प्रति ॥ १३

आर्यक उवाच ।

न मे नैतद्बहुमतं महर्षे वचनं तव ।
सखा शक्रस्य संयुक्तः कस्यायं नेप्सितो भवेत् ॥
कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने ।
अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महाद्युते ॥ १५
भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्तास्तेन वै वयम् ।
पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता ॥
मासेनान्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो ॥ १६
ध्रुवं तथा तद्भविता जानीमस्तस्य निश्चयम् ।
तेन हर्षः प्रनष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ॥ १७

कण्व उवाच ।

मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया ।
जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ॥ १८
सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः ।
त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥ १९
शेषेणैवास्य कार्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः ।
सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ॥ २०
सुमुखश्च मया सार्धं देवेशमभिगच्छतु ।
कार्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजङ्गम ॥ २१
ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः ।
ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥ २२
सङ्गत्या तत्र भगवान् विष्णुरासीच्चतुर्भुजः ।
ततस्तत् सर्वमाचख्यौ नारदो मातलिं प्रति ॥ २३

वैशम्पायन उवाच ।

ततः पुरन्दरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम् ।
अमृतं दीयतामस्मै क्रियताममरैः समः ॥ २४
मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव ।
लभन्तां भवतः कामात् काममेतं यथेप्सितम् ॥
पुरन्दरोऽथ सञ्चिन्त्य वैनतेयपराक्रमम् ।
विष्णुमेवाब्रवीदेनं भवानेव ददात्विति ॥ २६

विष्णुरुवाच ।

ईशस्त्वं सर्वलोकानां चराणामचराश्च ये ।
त्वया दत्तमदत्तं कः कर्तुमुत्सहते विभो ॥ २७
प्रादाच्छक्रस्ततस्तस्मै पन्नगायायुरुत्तमम् ।
न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा ॥ २८
लब्ध्वा वरं तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह ।
कृतदारो यथा कामं जगाम च गृहान् प्रति ॥ २९
नारदस्त्वार्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ ।
अभिजग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

---

१०४

सूत इति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

## १०५

कण्व उवाच ।

गरुडस्तत्र शुश्राव यथावृत्तं महाबलः ।
आयुःप्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत ॥ १
पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः ।
सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवं समुपाद्रवत् ॥ २

गरुड उवाच ।

भगवन् किमवज्ञानात्क्षुत्तिः प्रतिहता मम ।
*कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि ॥ ३
निसर्गात् सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे ।
आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्यते त्वया ४
वृतश्चैष महानागः स्थापितः समयश्च मे ।
अनेन च मया देव भर्तव्यः प्रसवो महान् ॥ ५
एतस्मिंस्तु तथाभूते नान्यं हिंसितुमुत्सहे ।
क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम् ॥ ६
सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि तथा परिजनो मम ।
ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान् भव वासव ॥ ७
एतच्चैवाहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन् ।
त्रैलोक्यस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः ॥ ८
त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम ।
त्रैलोक्यराज राज्यं हि त्वयि वासव शाश्वतम्॥९
ममापि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता ।
अहमप्युत्सहे लोकान् समन्ताद्वोढुमञ्जसा ॥ १०
असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम् ।
मयाऽपि सुमहत्कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥ ११
श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान्रोचनामुखः ।
प्रसृतः कालकाक्षश्च मयाऽपि दितिजा हताः१२
यत्तु ध्वजस्थानगतो यत्नात् परिचराम्यहम् ।
वहामि चैवानुजं ते तेन मामवमन्यसे ॥ १३
कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः
मया योऽहं विशिष्टः सन् वहामीमं सबान्धवम्॥
अवज्ञाय तु यत्तेऽहं भोजनाद्व्यपरोपितः ।
तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चास्माच्च वासव ॥ १५
अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः ।
त्वमेषां किल सर्वेषां बलेन बलवत्तरः ॥ १६
सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः ।
विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ॥१७

कण्व उवाच ।

स तस्य वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्कदारुणम् ।
अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ॥ १८
गरुत्मन् मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बलम् ।
अलमस्मत्समक्षं ते स्तोतुमात्मानमण्डज ॥ १९
त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे ।
अहमेवात्मनाऽऽत्मानं वहामि त्वां च धारये२०
इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह ।
यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ॥ २१
ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहुं समासजत् ।
निपपात स भारार्तो विह्वलो नष्टचेतनः ॥ २२
यावान् हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह
एकस्या देहशाखायास्तावद्भारममन्यत ॥ २३
न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः ।
ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ॥२४
व्यात्तास्यः स्रस्तकायश्च विचेता विह्वलः खगः ।
मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः ॥ २५
स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः ।
विचेता विह्वलो दीनः किञ्चिद्वचनमब्रवीत्॥ २६
भगवन् लोकसारस्य सदृशेन वपुष्मता ।
भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले ॥ २७
क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याल्पचेतसः ।
बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः ॥ २८
न हि ज्ञातं बलं देव मया ते परमं विभो ।
तेन मन्याम्यहं वीर्यमात्मनो न समं परैः ॥ २९
ततश्चक्रे स भगवान् प्रसादं वै गरुत्मतः ।
मैवं भूय इति स्नेहात्तदा चैनमुवाच ह ॥ ३०
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सुमुखं गरुडोरसि ।
ततःप्रभृति राजेन्द्र सह सर्पेण वर्तते ॥ ३१
एवं विष्णुबलाक्रान्तो गर्वनाशमुपागतः ।
गरुडो बलवान्राजन्वैनतेयो महायशाः ॥ ३२

कण्व उवाच ।

तथा त्वमपि गान्धारे यावत्पाण्डुसुतान्रणे ।
नासादयसि तान् वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक॥३३
भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः ।
धनञ्जयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातां तु कं रणे॥ ३४

१०५

गरुड इति ॥ १ ॥ * कामकारवरम्–कामेन कारः कार्यकरणं तस्य वरम् ।

विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाश्विनावुभौ ।
एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः ॥ ३५
तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज ।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ॥ ३६
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः ।
माहात्म्यस्य तदा विष्णोः सोऽयं चक्रगदाधरः॥

वैशम्पायन उवाच ।
दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन् भृकुटीमुखः ।
राधेयमभिसंप्रेक्ष्य जहास स्वनवत्तदा ॥ ३८
कदर्थीकृत्य तद्वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः ।
ऊरुं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत् ॥ ३९
यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः ।
तथा महर्षे वर्तामि किं प्रलापः करिष्यति ॥४०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

## १०६

जनमेजय उवाच ।
अनर्थे जातनिर्बन्धं परार्थे लोभमोहितम् ।
अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ॥ १
ज्ञातीनां दुःखकर्तारं बंधूनां शोकवर्धनम् ।
सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥ २
कथं नैनं विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः ।
सौहृदाद्वा सुहृत् स्निग्धो भगवान् वा पितामहः ३
वैशम्पायन उवाच ।
उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत्क्षमम् ।
उक्तं बहुविधं चैव नारदेनापि तच्छृणु ॥ ४
नारद उवाच ।
दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत् ।
तिष्ठते हि सुहृद्यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते ॥ ५
श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन ।
न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ॥ ६
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा निर्बन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥ ७
विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा ।
अभ्यगच्छत्स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८
सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत ।
बुभुक्षुः क्षुधितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य तु ॥ ९
विश्वामित्रोऽथ संभ्रान्तः श्रपयामास वै चरुम् ।
परमान्नस्य यत्नेन न च तं प्रत्यपालयत् ॥ १०
अन्नं तेन यदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः ।
अथ गृह्यान्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽप्युपागमत् ११
भुक्तं मे तिष्ठ तावत्त्वमित्युक्त्वा भगवान् ययौ ।
विश्वामित्रस्ततो राजन् स्थित एव महाद्युतिः १२
भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना वै बाहुभ्यां संशितव्रतः ।
स्थितः स्थाणुरिवाभ्याशे निश्चेष्टो मारुताशनः ॥
तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोद्गालवो मुनिः ।
गौरवाद्बहुमानाच्च हार्देन प्रियकाम्यया ॥ १४
अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत् ।
वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं भोजनेप्सया ॥१५

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

१०६

**अनर्थे इति** । परार्थे परस्वनिमित्तम् ॥ १ ॥ भगवान् पितामहो व्यासो न तु भीष्मः । उत्तरे तस्य पृथगुपादानात् उक्तमित्यस्यावृत्तिदर्शनाच्च ॥ ३ ॥ सुहृत्—प्रत्युपकारमनपेक्ष्य उपकर्ता मादृशः तदीयवाक्यस्य श्रोता सुहृच्छ्रोता मूढोऽयं हितमप्युक्तं न श्रोष्यतीति भावः । तिष्ठते स्थिरो भवति यत्र महासंकटे तत्र बन्धुः उपकारमपेक्ष्योपकर्ता कर्णादिः न तिष्ठते न प्रकाशते । 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' इत्युभयत्र तङ् । बन्धुतोऽपि सुहृद्वचः श्रेयस्करमित्यर्थः ॥ ५ ॥ श्रोतव्यं श्रोतुं युक्तम् । निर्बन्धः सत्यपि बलवद्बाधके तत्रैवग्राहः सुदारुणो नाशकारी ॥ ६ ॥ वसिष्ठमूर्त्या धर्मोऽभ्यागच्छत् ॥ ८ ॥ न प्रत्यपालयत् अन्नसिद्धिपर्यन्तं न प्रतीक्षितवान् ॥ १० ॥ तेन वसिष्ठेन । उपागमत् वसिष्ठसमीपम् ॥ ११ ॥ मूर्ध्ना बाहुभ्यां च परिगृह्य अभ्याशे समीपे आश्रमस्य ॥१३॥ गौरवात् गुरुत्वात् बहुमानात् लोकपूज्यत्वात् हार्देन प्रीत्या ॥ १४ ॥

स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं ध्रियमाणं महर्षिणा ।
तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ॥ १६
प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथैवोष्णं तथा नवम् ।
भुक्त्वा प्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः १७
क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।
धर्मस्य वचनात् प्रीतो विश्वामित्रस्तथाऽभवत् ॥
विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ।
शुश्रूषया च भक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच ह १९
अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् ॥ २०
प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम् ।
दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरुकर्मणि ॥२१
दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिद्ध्यति मानद ।
दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते ॥ २२
स्वर्गे क्रतुफलं तद्धि दक्षिणा शान्तिरुच्यते ।
किमाहरामि गुर्वर्थे ब्रवीतु भगवानिति ॥ २३
जानानस्तेन भगवान् जितः शुश्रूषणेन वै ।
विश्वामित्रस्तमसकृद्गच्छ गच्छेत्यचोदयत् ॥ २४
असकृद्गच्छ गच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः ।
किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत ॥ २५
निर्बन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः ।
किञ्चिदागतसंरंभो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् २६
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव मा चिरम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## १०७

नारद उवाच ।
एवमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
नास्ते न शेते नाहारं कुरुते गालवस्तदा ॥ १
त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ता-शोकपरायणः ।
शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना ।
गालवो दुःखितो दुःखाद्विललाप सुयोधन ॥ २
कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः सञ्चयः कुतः ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥ ३
कुतो मे भोजने श्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे ।
श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे ४
अहं पारे समुद्रस्य पृथिव्या वा परंपरात् ।
गत्वाऽऽत्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे
अधनस्याकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः ।
ऋणं धारयमाणस्य कुतः सुखमनीहया ॥ ६
सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम् ।
प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम् ॥ ७
प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः ।
मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टापूर्तं प्रणश्यति ॥ ८
न रूपमनृतस्यास्ति नानृतस्यास्ति सन्ततिः ।
नानृतस्याधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा ॥ ९

शुश्रूषया सेवया भक्त्या आराध्यत्वज्ञानेन ॥१९॥ गुरुकर्मणि ब्रह्मचर्यव्रतसमाप्तौ सत्याम् ॥ २१ ॥ मानवमिति पाठे सिध्यति सिद्धं कृतकृत्यं करोतीत्यर्थः । एतदेवाह—**दक्षिणानामिति** । अपवर्गेण फलप्राप्त्या ॥ २२ ॥ क्रतुफलं दक्षिणाप्रद एव प्राप्नोति ' हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ' इति स्मृतेरदक्षिणस्य क्रतोर्हतत्वेनाफलत्वात् । शान्तिः सर्वोपद्रवहारिण्युच्यते वेदेन ' दक्षिणां कर्म कृणुते विजानन्' इति ॥ २३ ॥ जानानः शुश्रूषणेनैव दक्षिणाकर्मसमाप्तिरिति । स जानंस्तेनेति पाठे तेन गालवेन शुश्रूषणेनैव जितो वशीकृतोऽस्मीति जानन्नित्यन्वयः॥२४॥ श्यामो हरितः एकतः। बहिःप्रदेशे एव श्यामाः कर्णा येषामेकतःश्यामकर्णानाम् ॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

**एवमिति** ॥ १ ॥ हरिणः पाण्डुरः मन्युना दैन्येन दह्यमानश्चिन्ताग्निना ॥ २ ॥ परंपरात् दूरादपि दूरम् । आत्मानं देहम् ॥ ५ ॥ अनीहया अनुद्यमेन ॥ ६ ॥ ईप्सितं प्रणयं कृत्वा ईप्सितं दास्यामीति विश्वासमुत्पाद्य । ' प्रणयः प्रेम्णि विस्रंभे' इति **विश्वः** ॥ ७ ॥ एतदेवाह—**प्रतिश्रुत्येति** । करिष्येतीति सन्धिरार्षः ॥ ८ ॥ अनृतस्य सत्यहीनस्य रूपं स्वरूपं जीवन्नेव स मृत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः १०
न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम् ।
पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन् कृतम् ॥११
सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चानृतोऽपि च ।
गुरोर्यः कृतकार्यः संस्तत्करोमि न भाषितम् १२
सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि कृत्वा यत्नमनुत्तमम् ।
अर्थिता न मया काचित् कृतपूर्वा दिवौकसाम्१३
मानयन्ति च मां सर्वे त्रिदशा यज्ञसंस्तरे ।
अहं तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम् ।
विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिमतां वरम् १४
भोगा यस्मात् प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान् सुरासुरान्
प्रणतो द्रष्टुमिच्छामि कृष्णं योगिनमव्ययम् ॥१५
एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः ।
दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया ॥ १६
सुहृद्भवान्मम मतः सुहृदां च मतः सुहृत् ।
ईप्सितेनाभिलाषेण योक्तव्यो विभवे सति ॥ १७
विभवश्चास्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज ।
पूर्वमुक्तस्त्वदर्थं च कृतः कामश्च तेन मे ॥ १८
स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम् ।
देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालव मा चिरम्१९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## १०८

सुपर्ण उवाच ।
अनुशिष्टोऽस्मि देवेन गालव ज्ञानयोगिना ।
ब्रूहि कामं तु कां यामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम् ॥ १
पूर्वां वा दक्षिणां वाऽहमथवा पश्चिमां दिशम् ।
उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव ॥ २
यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः ।
सविता यत्र संध्यायां साध्यानां वर्तते तपः ॥ ३
यस्यां पूर्वं मतिर्याता यया व्याप्तमिदं जगत् ।
चक्षुषी यत्र धर्मस्य यत्रवै सुप्रतिष्ठिते ॥ ४
कृतं यतो हुतं हव्यं सर्पते सर्वतोदिशम् ।
एतद्द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाऽध्वनः ॥ ५
अत्र पूर्वं प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः ।
यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥६

तन्त्रणं कुटुम्बधारणम् । पाठान्तरे मन्त्रणमिष्टैः सह विचारणम् । अविश्वसनीयत्वादित्यर्थः ॥ ११ ॥ तत् भाषितमिति सम्बन्धः ॥ १२ ॥ अनुत्तमं यत्नमधमोपायं विषोद्बन्धनादिरूपं कृत्वा प्राणान् मोक्ष्यामीत्यर्थः । अर्थिता याञ्चा ॥ १३ ॥ अहन्त्विति । अत्राहमिति पदस्य द्विरावृत्तिर्वक्तुर्वैक्लव्याददोषः ॥ १४ ॥ भोगाः भोग्यवर्गो वियदादिः प्रतिष्ठन्ते निःसरन्ति बीजादिव वृक्षाः ॥ १५ ॥ तस्य विष्णुदासत्वेन सखा न तु पूर्वोपकारादिना ॥ १६ ॥ सुहृदां विश्वं विष्णुरिति बुध्या सर्वलोकमित्राणाम् ॥ १७ ॥ वासवादवरजो विष्णुरुक्तः- अहं गालवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छामीति प्रार्थितः तेन विष्णुना ॥ १८ ॥ देशं पृथिव्यन्तर्गतमेव पृथिव्याः पारः समुद्रः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

१०८

अनुशिष्ट इति । अनुशिष्ट आज्ञापितः ज्ञानयोनिना धीप्रवर्तकेन विष्णुना । पाठान्तरे अज्ञातयोनिना सर्वादित्वात् अज्ञातः रूपादिहीनत्वाच्च तादृशोऽपि योनिः जगदुदयप्रलयस्थानं तेन कामं यथेष्टम् ॥१॥ साध्यानां देवताविशेषाणाम् । तप आलोचनं वर्तते अनुवर्तते। साध्या देवा इह ध्यायन्तः सत्यकामा बभूवुरित्यर्थः ॥ ३ ॥ मतिर्बुद्धिः याता प्राप्ता प्रातःसन्ध्यायां सवितुः प्रसादात् प्रथमं यत्र धीप्राप्तिर्भवति । गायत्र्यां सवितुर्धीप्रवर्तकत्वदर्शनादित्यर्थः । चक्षुषी आज्यभागाख्ये अग्नीषोमदैवत्ये धर्मस्य यज्ञस्य यन्त्रवै यन्त्रणार्थं यंत्रयतेस्तुमर्थे तवैप्रत्ययो वैदिकस्तकारलोपश्च ॥ ४ ॥ तदेवाह—कृतं संस्कृतं हव्यं यतो हुतं ययोर्मध्ये हुतं सत् ' तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ' इति श्रुतेर्यज्ञस्य रक्षणं भवति । अन्यत्र गतं त्वर्थाद्धर्मनाशकं भवतीति भावः । अध्वनः देवयानस्य पितृयाणस्य वा ॥५॥ दाक्षायण्यः अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा इत्यादयः । प्रजाः लोकान् ॥ ६ ॥

अतो मूलं सुराणां श्रीर्यत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत ।
सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चात्र तपश्चितम् ॥ ७
एतस्मात् कारणाद्ब्रह्मन् पूर्वेत्येषा दिगुच्यते ।
यस्मात् पूर्वतरे काले पूर्वमेवावृता सुरैः ॥ ८
अत एव च सर्वेषां पूर्वामाशां प्रचक्षते ।
पूर्वं सर्वाणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता ॥ ९
अत्र वेदान् जगौ पूर्वं भगवान् लोकभावनः ।
अत्रैवोक्ता सवित्राऽऽसीत् सावित्री ब्रह्मवादिषु
अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम ।
अत्र लब्धवरः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते ॥ ११
अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते ।
अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च ॥ १२
अत्र पूर्वं वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ ।
सूतिश्चैव प्रतिष्ठा च निधनं च प्रकाशते ॥ १३
ओङ्कारस्यात्र जायन्ते सृतयो दशतीर्दश ।
पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धूमं स्म धूमपाः ॥ १४
प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने ।
शक्रेण यज्ञभागार्थे दैवतेषु प्रकल्पिताः ॥ १५
अत्राहिताः कृतघ्नाश्च मानुषाश्चासुराश्च ये ।
उदयंस्तान् हि सर्वान् वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः
एतद्द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च ।
एष पूर्वो दिशां भागो विशावोऽत्र यदीच्छसि ॥
प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्यास्मि वचने स्थितः ।
ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाप्यपरां दिशम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

## १०९

सुपर्ण उवाच ।
इयं विवस्वता पूर्वं श्रौतेन विधिना किल ।
गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यते च दिक् ॥ १
अत्र लोकत्रयस्यास्य पितृपक्षः प्रतिष्ठितः ।
अत्रोष्मपाणां देवानां निवासः श्रूयते द्विज ॥ २
अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्धमासते ।
इज्यमानाः स्म लोकेषु संप्राप्तास्तुल्यभागताम् ॥ ३
एतद्द्वितीयं वेदस्य द्वारमाचक्षते द्विज ।
त्रुटिशो लवशश्चापि गण्यते कालनिश्चयः ॥ ४
अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा ।
तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ५
अत्र धर्मश्च सत्यं च कर्म चात्र निगद्यते ।
गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणामवसायिनाम् ॥ ६
एषा दिक् सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते ।
वृता त्वनवबोधेन सुखं तेन न गम्यते ॥ ७

---

पूर्वं पूर्वसंस्थानि सुखमीप्सता सुखाद्यर्थिना ॥ ९ ॥ यजूंषि दत्तानि याज्ञवल्क्यायेति शेषः ॥ ११ ॥ स्वां योनिं सोमाज्यपय आदिरूपं जलम् ॥ १२ ॥ पूर्वं मित्रावरुणयोर्यज्ञकाले पौराणस्य पुराणस्य । स्वार्थे तद्धितः । निधनं निमिशापात् स्थूलदेहवियोगः सूतिः कुंभात् तस्मिन्नेव यज्ञे १३॥ दशशतीशब्दस्य पृषोदरादिशकारलोपेन दशतीशब्दः सहस्रवाची सृतयो मार्गाः । 'ओंकारो वै सर्वा वाक्' इति श्रुतेर्वेदस्य शाखाप्रशाखादिभेदोऽत्रैव जात इत्यर्थः ॥१४॥ ये मानुषाः कृतघ्नाः ये वाऽसुरास्तान् अत्रैवोदयन् हन्ति तेषामायुरल्पीकरोतीत्यर्थः ॥ १६ ॥ विशावः प्रविशावः १७॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

इयमिति । स्रौवेणेति पाठे स्रुवेण हूयतेऽस्मिन्निति स्रौवो विधिर्यज्ञः । गुरवे कश्यपाय ॥ १ ॥ ऊष्मपाणां उष्णान्नभोजिनां 'यावदुष्णं भवत्यन्नं पितरस्तावदश्नन्ति' इति स्मृतेः ॥ २ विश्वे त्रयोदशमितो गणः ॥ ३ ॥ द्वितीयं देवस्य धर्मस्य द्वारं पूर्वा दिक् प्रथमं तदपेक्षया पित्र्यस्य धर्मस्य द्वारमिदं द्वितीयं 'प्राक्संस्थानि दैवानि कर्माणि दाक्षिणसंस्थानि पित्र्याणि' इति स्मृतेः ४॥ कर्म पुण्यापुण्यरूपं निगद्यते प्रकाश्यते चित्रगुप्तादिभिः । अवसायिनां मृतानां कर्म निग्रहानुग्रहरूपम् ॥ ६ ॥ सर्वः मुमूर्षुमात्रः वृता छन्ना अनवबोधेन तमसा पुण्यवान् पापी वा मरणकाले अत्यन्तमूढत्वात् दुःखे वसन्नेतां दिशं गच्छतीत्यर्थः । कृत्वा त्वनवरोधेनेति पाठे अनवः प्राक्सञ्चितेन कर्मणा उपस्थितो रोधो मोहस्तेन सर्वः कृत्वा कर्ता पुरुषः 'आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च' इति सूत्रात् क्वनिबित्यनुवर्तमाने 'अन्येऽभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति कृत्नः कर्तरि क्वनिप् ॥ ७ ॥

नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ ।
सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः ॥ ८
अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च ।
गायन्ति गाथा गन्धर्वाश्चित्तबुद्धिहरा द्विज ॥ ९
अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः ।
गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः ॥ १०
अत्र सावर्णिना चैव यवक्रीतात्मजेन च ।
मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन् यां सूर्यो नातिवर्तते॥११
अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना ।
रावणेन तपश्चीर्त्वा सुरेभ्योऽमरता वृता ॥ १२
अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान् ।
अत्र सर्वासवः प्राप्ताः पुनर्गच्छन्ति पञ्चधा ॥१३
अत्र दुष्कृतकर्माणो नराः पच्यन्ति गालव ।
अत्र वैतरणी नाम नदी वितरणैर्वृता ॥ १४
अत्र गत्वा सुखस्यान्तं दुःखस्यान्तं प्रपद्यते ।
अत्र वृत्तो दिनकरः सुरसं क्षरते पयः ॥ १५
काष्ठां चासाद्य वासिष्ठीं हिममुत्सृजते पुनः ।
अत्राहं गालव पुरा क्षुधार्तः परिचिन्तयन् ॥१६
लब्धवान् युध्यमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ ।
अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः ॥ १७
विदुर्यं कपिलं देवं येनार्ताः सगरात्मजाः ।
अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः॥१८
अधीत्य सकलान् वेदाँल्लेभिरे मोक्षमक्षयम् ।
अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ॥ १९
तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च ।
अत्र निर्याणकालेऽपि तमः संप्राप्यते महत् ॥२०
अभेद्यं भास्करेणापि स्वयं वा कृष्णवर्त्मना ।
एष तस्यापि ते मार्गः परिचार्यस्य गालव ॥
ब्रूहि मे यदि गन्तव्यं प्रतीचीं शृणु चापराम्॥२१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## ११०

सुपर्ण उवाच ।
इयं दिग्दयिता राज्ञो वरुणस्य तु गोपतेः ।
सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चादिरेव च ॥ १
अत्र पश्चादहः सूर्यो विसर्जयति गाः स्वयम् ।
पश्चिमेत्यभिविख्याता दिगियं द्विजसत्तम ॥ २
यादसामत्र राज्येन सलिलस्य च गुप्तये ।
कश्यपो भगवान् देवो वरुणं स्माभ्यषेचयत् ॥ ३
अत्र पीत्वा समस्तान् वै वरुणस्य रसांस्तु षट् ।
जायते तरुणः सोमः शुक्लस्यादौ तमिस्रहा॥१४
अत्र पश्चात्कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा ।
निःश्वसन्तो महावातैरर्दिताः सुषुपुर्द्विज ॥ ५
अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः ।
अस्तो नाम यतः सन्ध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति॥६

---

चित्तं च बुद्धिश्च तयोर्हराः योगिनां तत्त्वानुसन्धानं प्रपञ्चमिथ्यात्वनिश्चयं च हरन्तीत्यर्थः ॥९॥ गाथाः वर्णमय्यो मन्त्राद्याः सामानि तदाश्रयाणि गीतानि श्रुत्वाऽतीतं कालमजानन् भूलोके आगत्य दाराञ्नष्टान् ज्ञात्वा वनं गत इति पौराणी कथा ॥ १० ॥ सावर्णिना मनुना मर्यादा सूर्यरथस्य वीथीनां वाहकानां देवतानां च नियमः ॥ ११ ॥ सर्वासवः सर्वेषां प्राणा अत्र प्राप्ताः सन्तः पुनः पञ्चधा गच्छन्ति देहं प्राप्नुवंति प्राणापानादिभेदेनेत्यर्थः ॥ १३ ॥ वितरणैः वैतरणीनदीसंज्ञकनरकगामिभिः ॥ १४ ॥ सुखस्यान्तं नरकं दुःखस्यान्तं स्वर्गसुखम् । आवृत्तः कर्कायनगतः तदा हि प्रायेणार्द्रानक्षत्रं भवति तच्च वर्षाकालस्यादिभूतं प्रसिद्धम् ॥१५॥ वासिष्ठीं काष्ठामुदीचीं वसिष्ठोपलक्षितसप्तर्षिभिरधिष्ठिताम् । धानिष्ठीमिति पाठेऽतिशयेन धनवान् धनिष्ठः कुबेरस्तदीयां उत्सृजते त्यजति ॥ १६ ॥ निर्याणकाले मरणकाले तमः आन्ध्यम् ॥ २० ॥ तस्य ते तव परिचार्यस्य सेव्यस्य २१॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

११०

इयमिति । गोपतेः सूर्यस्य प्रतिष्ठेति सम्बन्धः ॥१॥ एतदेवाह-पश्चादह इति । अह्नःपश्चाद्भागे गाः रश्मीन् विसर्जयति अत एव पश्चिमा अन्तिमेत्यर्थः ॥ २ ॥ पश्चात्कृताः विमुखीकृताः संयताः सन्नद्धाः सन्तः ॥ ५ ॥

अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये ।
जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवायुषः ॥ ७
अत्र देवीं दितिं सुप्तामात्मप्रसवधारिणीम् ।
विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ॥ ८
अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम् ॥
अपि वर्षसहस्रेण न चास्यान्तोऽधिगम्यते ॥ ९
अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनांबुरुहस्य च ।
उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ॥ १०
अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते ।
स्वर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः॥११
सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः ।
अदृश्यस्याप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः ॥ १२
अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः ।
आकाशे तिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात्॥
अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खं चापि गालव ।
आह्निकं चैव नैशं च दुःखं स्पर्शं विमुञ्चति॥१४
अतःप्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्तते गतिः ।
अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम्॥
अष्टाविंशतिरात्रं च चंक्रम्य सह भानुना ।
निष्पतन्ति पुनः सूर्यात् सोमसंयोगयोगतः ॥ १६
अत्र नित्यं स्रवन्तीनां प्रभवः सागरोदयः ।
अत्र लोकत्रयस्यापस्तिष्ठन्ति वरुणालये ॥ १७
अत्र पन्नगराजस्याप्यनन्तस्य निवेशनम् ।
अनादिनिधनस्यात्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥१८
अत्रानलसखस्यापि पवनस्य निवेशनम् ।
महर्षेः कश्यपस्यात्र मारीचस्य निवेशनम् ॥ १९
एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः ।
ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम २०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## १११

सुपर्ण उवाच ।
यस्मादुत्तार्यते पापाद्यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते ।
अस्मादुत्तारणबलादुत्तरेत्युच्यते द्विज ॥ १
उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापश्च गालव ।
मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः
अस्यां दिशि वरिष्ठायामुत्तरायां द्विजर्षभ ।
नासौम्यो नाविधेयात्मा नाधर्मो वसते जनः ॥३

अर्धमायुषो हर्तुं निद्रया व्ययीकर्तुमित्यर्थः ॥७॥ मन्दरं समुद्रे मग्नं एतेन हिमवन्मूलस्य समुद्रजलस्य चाप्रमेयत्वमुक्तम् ॥ ९ ॥ काञ्चनमयानि अम्बुरुहाणि यत्र तस्य उदधेः समुद्रतुल्यस्य सरसः ॥ १० ॥ सुवर्णशिरसो मुनेः हरिरोम्णः अपलितस्य नित्यतरुणस्येत्यर्थः ॥ १२ ॥ हरिमेधसो मुनेः कुमारी तिष्ठ तिष्ठेति सूर्यस्य शासनात्॥१३॥ अत्र वायुरिति। वाय्वादयोऽत्र दुःखदं शीतोष्णस्पर्शं विमुञ्चन्ति । सदा सुखसंस्पर्शा एवेत्यर्थः ॥ १४ ॥ **अतः प्रभृतीति** । मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन् सूर्यः सर्वदा तिर्यग्गतिरेव सन् लोकदृष्ट्या उपर्यधश्च गच्छतीत्येव भाति । अतःपरं लोकदृष्ट्यभावात्तिर्यगेवावर्तत इत्यर्थः । आदित्यमण्डलं कर्तृ ज्योतींष्यग्न्यादीन् विशति । 'आदित्यो वा अस्तं यन्नाग्निमनुप्रविशति' इति श्रुतेः । नक्षत्रादीन्यपि अम्मयत्वादप्रकाशानि आदित्यप्रभयैव भासन्ते रात्रौ दिवा तु तयैव तिरोभवन्तीति प्रसिद्धिः ॥ १५ ॥ **अष्टेति** । अष्टाविंशतितमे दिने एकैकं नक्षत्रं भानुना चन्द्रेण सह संक्रम्य एकोनत्रिंश्यां रात्रौ निष्पतति बहिर्निर्गच्छति चन्द्रादेव । पुनस्तद्वत् सोमसंयोगसदृशेन योगेन सम्बन्धेन सूर्येण सहापि संक्रम्य काले निष्पतन्तीत्यर्थः । एवं चन्द्रवत् सर्वेषामपि नक्षत्राणां सर्वग्रहयोगस्तुल्यः ॥ १६॥ स्रवन्तीनां नदीनाम् । सागरस्य उदयः पूर्तिर्येन तादृशः प्रभवः ॥ १७ ॥ दिग्द्वारेण संक्षेपप्रकारेण ते तव ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकशततमोऽध्यायः ११०

१११

**यस्मादिति** । उत्तरेण पथा गतानां हि पापनाशः स्वर्गप्राप्तिश्च भवतीति योगादुत्तरा उत्कृष्टतरा इयं दिगित्यर्थः ॥ १ ॥ परिवापः स्थानं हिरण्यस्य निधीनामित्यर्थः उत्तरं यन्निधिस्थानं ततः स्वर्गमार्गः दिग्भ्यामुपलक्षितो मध्यमो ज्ञेय इति भावः ॥ २ ॥ अविधेयात्मा अजितचित्तः ॥ ३ ॥

अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः ।
बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्मा च शाश्वतः ॥ ४
अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्यमास्ते महेश्वरः ।
प्रकृत्या पुरुषः सार्धं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५
न स दृश्यो मुनिगणैस्तथा देवैः सवासवैः ।
गन्धर्वयक्षसिद्धैर्वा नरनारायणादृते ॥ ६
अत्र विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रचरणोऽव्ययः ।
सहस्रशिरसः श्रीमानेकः पश्यति मायया ॥ ७
अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाभ्यषिच्यत ।
अत्र गङ्गां महादेवः पतन्तीं गगनाच्च्युताम् ॥ ८
प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम ।
अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ॥ ९
अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च संबभुः ।
अत्र राक्षसयक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव ॥ १०
आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः ।
अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः ॥ ११
अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्च द्विजर्षभ ।
अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरभिरक्ष्यते ॥ १२
शाद्वलं कदलीस्कन्धमत्र सन्तानका नगाः ।
अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् १३
विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव ।
अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चारुन्धती तथा ॥ १४
अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्रास्या उदयः स्मृतः ।
अत्र यज्ञं समासाद्य ध्रुवं स्थाता पितामहः ॥ १५
ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः ।
अत्र गङ्गां महाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तम ॥ १६
धामा नाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिनः ।
न तेषां ज्ञायते मूर्तिर्नाकृतिर्न तपश्चितम् ॥ १७
परिवर्तः सहस्राणि कामभोज्यानि गालव ।
यथा यथा प्रविशति तस्मात् परतरं नरः ॥ १८
तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव ।
नैतत् केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ ॥ १९
ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम् ।
अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत् ॥२०
अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश ।
अत्र विष्णुपदं नाम क्रमता विष्णुना कृतम् ॥ २१
त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मन्नुत्तरां दिशमाश्रितम् ।
अत्र राज्ञा मरुत्तेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम ॥ २२
उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः ।
जीमूतस्यात्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः ॥ २३
साक्षाद्धैमवतः पुण्यो विमलः कनकाकरः ।
ब्राह्मणेषु च यत्कृत्स्नं स्वन्तं कृत्वा धनं महत् ॥२४
वव्रे धनं महर्षिः स जैमूतं तद्धनं ततः ।
अत्र नित्यं दिशांपालाः सायं प्रातर्द्विजर्षभ ॥ २५
कस्य कार्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव ।
एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यैर्दिगुत्तरा ॥ २६
उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा ।
एता विस्तरशस्तात तव सङ्कीर्तिता दिशः ॥ २७
चतस्रः क्रमयोगेन कामाशां गन्तुमिच्छसि ।
उद्यतोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः ।
पृथिवीं चाखिलां ब्रह्मंस्तस्मादारोह मां द्विज २८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

प्रकृत्या उमया ॥ ५ ॥ न सः मायाविष्टोऽपि न दृश्यो दर्शनार्हः किमुत मायारहितः शुद्धचिन्मात्रः ॥ ६ ॥ सहस्रशिरस इत्यकारान्तः शब्दः । मायया उपेतमिति शेषः । वस्तुतोऽस्य प्रत्यगात्मत्वेन द्रष्टृदृश्यभावस्याभावादिति भावः । सगुणब्रह्मभावप्राप्तिपूर्वकैव निर्गुणप्राप्तिरिति प्रघट्टकार्थः । यथोक्तं–'सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते । सोपाधिकः स्यात्सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः ' इति । एतच्च सम्यग्व्युत्पादितमस्माभिर्वेदान्तकतके ॥ ७ ॥ शाद्वलं जम्बालं देवताभेदः । कदली वैजयंती पताका तस्याः स्कन्धवदुच्छ्रितम्। 'अथ कदलीपताकामृगभेदयोः ' इति मेदिनी । नगाः वृक्षा कल्पद्रुमाः संयमो धारणाध्यानादिभिर्नित्यो न त्याज्यो येषां तेषाम् ॥ १३ ॥ गंगा महाद्वारमित्यत्र गायन्तिकाद्वारमिति पाठे गायन्तिका बिलविशेषः ॥ १६ ॥ मूर्तिः पिण्डः आकृतिः संस्थानविशेषः ॥ १७ ॥ परिवर्तो गतागतम्। सहस्राणि सत्रेऽन्नपरिवेषणपात्राणि कामभोज्यानि च ज्ञायन्ते स्थूलदृष्टिभिरित्यर्थः । तस्मात् हिमस्थानात् १८॥ प्रविलीयति हिमेन नश्यति ॥ १९ ॥ ऐलविलस्य कुबेरस्य ॥ २० ॥ उशीरबीजे स्थाने ॥ २३ ॥ कनकाकरः जीमूतस्य उप समीपे तस्थे प्रकाशं गतः । 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ' इति तङ् ॥ २४ ॥ वव्रे ब्राह्मणेभ्यः मन्नामकमेतदस्त्विति ॥ २५ ॥ उत्तरा उत्कृष्टतरा ॥ २६ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## ११२

गालव उवाच ।
गरुत्मन् भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज ।
नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी ॥ १
पूर्वमेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्तिता ।
देवतानां हि सान्निध्यमत्र कीर्तितवानसि ॥ २
अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक् प्रकीर्तितः ।
इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्दैवतैरहम् ।
भूयश्च तान् सुरान् द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज ॥ ३
नारद उवाच ।
तमाह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम् ।
आरुरोहाथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा ॥ ४
गालव उवाच ।
क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यते पन्नगाशन ।
भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥ ५
पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम् ।
प्रस्थितानामिव समं पश्यामीह गतिं खग ॥ ६
ससागरवनामुर्वीं सशैलवनकाननाम् ।
आकर्षन्निव चाभासि पक्षवातेन खेचर ॥ ७
समीननागनक्रं च खमिवारोप्यते जलम् ।
वायुना चैव महता पक्षवातेन चानिशम् ॥ ८
तुल्यरूपाननान् मत्स्यांस्तथा तिमितिमिङ्गिलान् ।
नागांश्च नरवक्त्रांश्च पश्याम्युन्माथितानिव ॥ ९
महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरे कृते ।
न शृणोमि न पश्यामि नात्मनो वेद्मि कारणम् ॥
शनैः स तु भवान्यातु ब्रह्मवध्यामनुस्मरन् ।
न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग ११
तम एव तु पश्यामि शरीरं ते न लक्षये ।
मणी व जात्यौ पश्यामि चक्षुषी तेऽहमण्डज १२
शरीरं तु न पश्यामि तव चैवात्मनश्च ह ।
पदे पदे तु पश्यामि शरीरादग्निमुत्थितम् ॥ १३
स मे निर्वाप्य सहसा चक्षुषी शाम्यते पुनः ।
तन्नियच्छ महावेगं गमने विनतात्मज ॥ १४
न मे प्रयोजनं किञ्चिद्गमने पन्नगाशन ।
संनिवर्त महाभाग न वेगं विषहामि ते ॥ १५
गुरवे संश्रुतानीह शतान्यष्टौ हि वाजिनाम् ।
एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम् ॥
तेषां चैवापवर्गाय मार्गं पश्यामि नाण्डज ।
ततोऽयं जीवितत्यागे दृष्टो मार्गो मयाऽऽत्मनः ॥
नैव मेऽस्ति धनं किञ्चिन्न धनेनान्वितः सुहृत् ।
न चार्थेनापि महता शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥ १८
नारद उवाच ।
एवं बहु च दीनं च ब्रुवाणं गालवं तदा ।
प्रत्युवाच व्रजन्नेव प्रहसन्विनतात्मजः ॥ १९
नातिप्रज्ञोऽसि विप्रर्षे योऽऽत्मानं त्यक्तुमिच्छसि
न चापि कृत्रिमः कालः कालो हि परमेश्वरः ॥
किमहं पूर्वमेवेह भवता नाभिचोदितः ।
उपायोऽत्र महानस्ति येनैतदुपपद्यते ॥ २१
तदेष ऋषभो नाम पर्वतः सागरान्तिके ।
अत्र विश्रम्य भुक्त्वा च निवर्तिष्याव गालव २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

---

११२

**गरुत्मन्निति** । पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि चक्षुषी अग्नीषोमौ ॥ १ ॥ समागन्तुं एकीभवितुम् ॥ ३ ॥ सहस्रांशोर्विवस्वत इति पक्षवातानुगामिनां गरुडप्रभयाऽवभासितानां वृक्षाणामंशुसाम्यं निरावरणत्वं चाभिप्रेत्य विशेषणद्वयम्। एतच्च वाक्यशेषाद्व्यक्तं भविष्यति । वस आच्छादनेऽस्मात् क्विपि वः वस्त्रादि तद्वान् वस्वान् तद्विपरीतो विवस्वानित्यर्थः ॥ ५ ॥ खमिवारोप्यते खेऽवस्थाप्यत इव ॥ ८ ॥ रवैः शब्दैः कारणं प्रयोजनमपि न वेद्मि न स्मरामि ॥ १० ॥ ते तव मणीवेति इवार्थे व शब्दः ॥ १२ ॥ निर्वाप्य मन्दीकृत्य ॥ १४ ॥ सन्निवर्त निवर्तस्व ॥ १५ ॥ योऽऽत्मानं सन्धिरार्षः । कृत्रिमः स्वेच्छासम्पाद्यः कालो मृत्युः॥२० ॥ निवर्तिष्यावेत्यार्षस्तङोऽभावः ॥ २२ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## ११३

नारद उवाच ।
ऋषभस्य ततः शृङ्गे निपत्य द्विजपक्षिणौ ।
शाण्डिलीं ब्राह्मणीं तत्र ददृशाते तपोन्विताम् १
अभिवाद्य सुपर्णस्तु गालवश्चाभिपूज्य ताम् ।
तया च स्वागतेनोक्तौ विष्टरे संनिषीदतुः ॥ २
सिद्धमन्नं तया दत्तं बलिमन्त्रोपबृंहितम् ।
भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावनुमोहितौ ॥ ३
मुहूर्तात्प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया ।
अथ भ्रष्टतनूजाङ्गमात्मानं ददृशे खगः ॥ ४
मांसपिण्डोपमोऽभूत्स मुखपादान्वितः खगः ।
गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विमनाः पर्यपृच्छत ॥ ५
किमिदं भवता प्राप्तमिहागमनजं फलम् ।
वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति ६
किं नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
न ह्ययं भवतः स्वल्पो व्यभिचारो भविष्यति ७
सुपर्णोऽथाब्रवीद्विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज ।
इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः ॥ ८
यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः ।
यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ॥ ९
सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया ।
मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ॥ १०
तदेवं बहुमानात्ते मयेहानीप्सितं कृतम् ।
सुकृतं दुष्कृतं वा त्वं माहात्म्यात्क्षन्तुमर्हसि ११
सा तौ तदाऽब्रवीत्तुष्टा पतगेन्द्रद्विजर्षभौ ।
न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्ण त्यज संभ्रमम् १२
निन्दिताऽस्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम्
लोकेभ्यः सपदि भ्रश्येद्यो मां निन्देत पापकृत् १३
हीनयाऽलक्षणैः सर्वैस्तथाऽनिन्दितया मया ।
आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा १४
आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥
तदायुष्मन्खगपते यथेष्टं गम्यतामितः ।
न च ते गर्हणीयाऽहं गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित्
भवितासि यथापूर्वं बलवीर्यसमन्वितः ।
बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥ १७
अनुज्ञातस्तु शाण्डिल्या यथागतमुपागमत् ।
नैव चासादयामास तथारूपांस्तुरङ्गमान् ॥ १८
विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवं चाध्वनि स्थितः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य संनिधौ ॥ १९
यस्त्वया स्वयमेवार्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज ।
तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् ॥
प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथा परम् ।
यथा संसिध्यते विप्र स मार्गस्तु निशम्यताम् २१
सुपर्णोऽथाब्रवीद्दीनं गालवं भृशदुःखितम् ।
प्रत्यक्षं खल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥
तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव ।
नादत्त्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयाऽऽसितुम् २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

## ११४

नारद उवाच ।
अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः ।
निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ।
यस्माद्धिरण्मयं सर्वं हिरण्यं तेन चोच्यते ॥ १

---

११३

ऋषभस्येति ॥ १ ॥ भ्रष्टतनूजं छिन्नपक्षमङ्गं यस्य तं भ्रष्टतनूजाङ्गम् ॥ ४ ॥ व्यभिचारो धर्मातिक्रमः ॥ ७ ॥ शोचता कथमियमत्र वसतीति ॥ १० ॥ द्रविणवत्तरौ बलवत्तरौ ॥ १७ ॥ अपवर्गस्य फलप्राप्तेः ॥ २० ॥ निशम्यतां विचार्यताम् ॥ २१ ॥ आसितुं स्थातुम् ॥ २३ ॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भा० भा० त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ११३

११४

अथेति । हिरण्यपदप्रवृत्तिनिमित्तमाह — निर्मितमिति । भूम्यन्तर्गतमेव पार्थिवेषु पांसुषु वह्निना धम्यमानेषु व्यक्तीभवतीति वह्निना निर्मितं वायुना वह्निमुद्दीपयता विशोधितम् । वायुना

धत्ते धारयते चेदमेतस्मात् कारणाद्धनम् ।
तदेतत्त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ॥ २
नित्यं प्रोष्ठपदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ।
मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ॥ ३
अजैकपादहिर्बुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च ।
एवं न शक्यते लब्धुमलब्धव्यं द्विजर्षभ ॥
ऋते च धनमश्वानां नावाप्तिर्विद्यते तव ॥ ४
स त्वं याचात्र राजानं कञ्चिद्राजर्षिवंशजम् ।
अपीड्य राजा पौरान् हि यो नौ कुर्यात् कृतार्थिनौ
अस्ति सोमान्ववाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा ।
अभिगच्छावहे तं वै तस्यास्ति विभवो भुवि ॥६
ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः ।
स दास्यति मया चोक्तो भवता चार्थितः स्वयम्॥
विभवश्चास्य सुमहानासीद्धनपतेरिव ।
एवं गुरुधनं विद्वन् दानेनैव विशोधय ॥ ८
तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत्क्षमम्।
प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपस्थितौ ॥ ९
प्रतिगृह्य च सत्कारैरर्घ्यं पाद्यादिकं वरम् ।
पृष्टश्चागमने हेतुमुवाच विनतासुतः १०
अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः ।
विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद्वर्षाण्ययुतशो नृप ॥
सोऽयं तेनाभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः ।
तमाह भगवान् काले ददानि गुरुदक्षिणाम् ॥
असकृत्तेन चोक्तेन किञ्चिदागतमन्युना ।
अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥ १३
एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥
गुर्वर्थो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे ।
इत्येवमाह सक्रोधो विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ १५
सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः ।
अशक्तः प्रतिकर्तुं तद्भवन्तं शरणं गतः ॥ १६
प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः ।
कृत्वाऽपवर्गं गुरवे चरिष्यति महत्तपः ॥ १७
तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते ।
स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ॥ १८
यावन्ति रोमाणि हये भवन्तीह नरेश्वर ।
तावन्तो वाजिनो लोकान् प्राप्नुवन्ति महीपते॥१९
पात्रं प्रतिग्रहस्यायं दातुं पात्रं तथा भवान् ।
शङ्खे क्षीरमिवासिक्तं भवत्वेतत्तथोपमम् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

## ११५

नारद उवाच ।
एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम् ॥
विमृश्यावहितो राजा निश्चित्य च पुनः पुनः ॥१
यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः ॥
ययातिः सर्वकाशीश* इदं वचनमब्रवीत् ॥ २

वर्धितमित्यपि पाठः । सर्वं जगत् हिरण्मयं हिरण्यप्रधानं तेन भूमेः सारत्वात् शुद्धत्वात् सर्वजगन्मोहकत्वाच्च हिरण्यमित्युच्यत इत्यर्थः ॥१॥ धत्ते पुष्णाति धारयते जीवयति ॥२॥ **नित्यमिति** । प्रोष्ठपदाभ्यामिति तृतीया 'मूलेनावाहयेद्देवीम्' इतिवत्सप्तम्यर्थे तेन तस्मिन् नक्षत्रद्वये शुक्रे शुक्रवासरे तद्योगे सति शुक्रोऽग्निः धनपतौ कुबेरस्य वृद्ध्यर्थं मनुष्येभ्यः संप्रदानेभ्यः धनं दत्ते ददाति । शुक्रश्चित्तार्जितमित्यनेन वह्निरेतत्त्वं तस्य प्रदर्श्यते । 'शुक्रः काव्येऽनले ज्येष्ठे' इति विश्वः । धनार्थी उक्तनक्षत्रवारयोगे वह्निं प्रार्थयेत् । तच्च धनं यागादिद्वारा वा भूमौ निखननेन वा सर्वं कुबेरं प्रत्येव गच्छतीति भावः ॥ ३ ॥ **अजेति** । अज एकपात् पूर्वप्रोष्ठपदा देवता । अहिर्बुध्न्य उत्तरप्रोष्ठपदा देवता । धनदश्च तदध्यक्षस्तस्मादेतानि प्रार्थयता धनं लब्धुं शक्यं नान्यथेत्यर्थः ॥ ४ ॥ याच याचस्व यः राजा नौ आवाम् ॥ ५ ॥ विशोधय परिहर ॥ ८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

११५

**एवमुक्त इति** ॥ १ ॥ *वत्सकाशीश इतिपाठः ।

दृष्ट्वा प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवं च द्विजर्षभम् ।
निदर्शनं च तपसा भिक्षां श्लाघ्यां च कीर्तिताम् ।
अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसंभवान् ।
मत्सकाशमनुप्राप्तावेतां बुद्धिमवेक्ष्य च ॥ ४
अद्य मे सफलं जन्म तारितं चाद्य मे कुलम् ।
अद्यायं तारितो देशो मम तार्क्ष्य त्वयाऽनघ ॥ ५
वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा ।
न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तं च मे सखे ॥ ६
न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग ।
न चाशामस्य विप्रर्षेर्वितथीकर्तुमुत्सहे ॥ ७
तत्तु दास्यामि यत् कार्यमिदं सम्पादयिष्यति ।
अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम् ॥ ८
नातः परं वैनतेय किञ्चित् पापिष्ठमुच्यते ।
यथाऽऽशानाशनाल्लोके देहि नास्तीति वा वचः
हताशो ह्यकृतार्थः सन् हतः संभावितो नरः ।
हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्चाकुर्वतो हितम् ॥
तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम ।
इयं सुरसुतप्रख्या सर्वधर्मोपचायिनी ॥ ११
सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव ।
काङ्क्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम् ॥
अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम् ।
किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते ॥ १३
स भवान् प्रतिगृह्णातु ममैतां माधवीं सुताम् ।
अहं दौहित्रवान् स्यां वै वर एष मम प्रभो ॥ १४
प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ।
पुनर्द्रक्ष्याव इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५
उपलब्धमिदं द्वारमश्वानामिति चाण्डजः ।
उक्त्वा गालवमापृच्छ्य जगाम भवनं स्वकम् ॥
गते पतगराजे तु गालवः सह कन्यया ।
चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुल्कतोऽगमत् ॥
सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम् ।
अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ १८
कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम् ।
प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् ॥ १९
तमुपागम्य विप्रः स हर्यश्वं गालवोऽब्रवीत् ।
कन्येयं मम राजेन्द्र प्रसवैः कुलवर्धिनी ॥ २०
इयं शुल्केन भार्यार्थं हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् ।
शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा संप्रधार्यताम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## ११६

नारद उवाच ।
हर्यश्वस्त्वब्रवीद्राजा विचिन्त्य बहुधा ततः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ॥ १
उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु ।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ॥ २
बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना ।
बहुलक्षणसम्पन्ना बहुप्रसवधारिणी ॥ ३
समर्थेयं जनयितुं चक्रवर्तिनमात्मजम् ।
ब्रूहि शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विभवं मम ॥ ४
गालव उवाच ।
एकतः श्यामकर्णानां शतान्यष्टौ प्रयच्छ मे ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम् ॥ ५
ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा ।
अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना ॥ ६

---

हताशोऽतिथिरिति शेषः ॥८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६

**हर्यश्व इति** ॥ १ ॥ षट्सु करपृष्ठयोः पादपृष्ठयोः कुचयोश्च । स्तनयोर्नितम्बयोश्चक्षुषोश्चेति प्राञ्चः। 'वक्षः–कुक्ष्य-लकस्कन्धकरवक्त्रं षडुन्नतम् ' इति **काशीखंडोक्तिः**। सप्तसु सूक्ष्मा त्वक्केशदशनेषु कराङ्गुलिषु पादाङ्गुलिषु तदुभयपर्वसु च सूक्ष्मा । त्रिषु स्वरसत्वनाभिषु गम्भीरा । पञ्चसु पाणितले नेत्रान्ते तालुनि जिह्वायां अधरोष्ठे च रक्ता ॥ २ ॥ बहुभिर्देवैरसुरैश्च आलोकयितुं योग्या बहुदेवासुरालोका । गन्धर्वाणां दर्शनं शास्त्रं गीतादिविद्या यस्यां सा तथा ॥ ३ ॥

उपस्थाय स तं विप्रो गालवः प्रतिगृह्य च । | कन्यां प्रयातस्तां राजन् दृष्टवान् विनतात्मजम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

नारद उवाच ।
गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
दिष्ट्या कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज ॥१
गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम् ।
चतुर्भागावशिष्टं तदाचख्यौ कार्यमस्य हि ॥ २
सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं वदतां वरः ।
प्रयत्नस्तेन कर्तव्यो नैव संपत्स्यते तव ॥ ३
पुरा हि कान्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम् ।
भार्यार्थे वरयत् कन्यामृचीकस्तेन भाषितः ॥ ४
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
भगवन् दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव ॥ ५
ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्यालयं गतः ।
अश्वतीर्थे हयान् लब्ध्वा दत्तवान् पार्थिवाय वै
इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु ।
तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्ते तैः पार्थिवैस्तदा
अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम ।
नीयमानानि सन्तारे हृतान्यासन् वितस्तया ॥८
एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तुं गालव कर्हिचित् ।
इमामश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय ॥ ९
विश्वामित्राय धर्मात्मन् षड्भिरश्वशतैः सह ।
ततोऽसि गतसंमोहः कृतकृत्यो द्विजोत्तम ॥१०
गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः ।
आदायाश्वांश्च कन्यां च विश्वामित्रमुपागमत् ॥
अश्वानां कांक्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै ।
शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम् ॥ १२
अस्यां राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकास्त्रयः
चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तम ॥ १३
पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु ते ।
भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्यां यथासुखम् ॥
विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा ।
कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद्वचः ॥ १५
किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव ।
पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः ॥ १६
प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै ।
अश्वाश्चाश्रममासाद्य चरन्तु मम सर्वशः ॥ १७
स तया रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः ।
आत्मजं जनयामास माधवी पुत्रमष्टकम् ॥ १८
जातमात्रं सुतं तं च विश्वामित्रो महामुनिः ।
संयोज्यार्थैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत् ॥ १९
अथाष्टकः पुरं प्रायात्तदा सोमपुरप्रभम् ।
निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ
गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम् ।
मनसाऽतिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह ॥ २१
जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथाऽपरः ।
सत्यधर्मरतश्चान्यो यज्वा चापि तथाऽपरः ॥२२
तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः ।
चत्वारश्चैव राजानस्तथा चाहं सुमध्यमे ॥ २३
गालवस्त्वभ्यनुज्ञाय सुपर्णं पन्नगाशनम् ।
पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह ॥ २४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

गालवमिति ॥ १ ॥ संतारे मार्गे निर्यात्य प्रत्यर्प्य शिष्याय गालवाय ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## १२०

नारद उवाच ।

स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम् ।
उपगम्याश्रमपदं गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ १
गृहीतमाल्यदामां तां रथमारोप्य माधवीम् ।
पूरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ॥ २
नागयक्षमनुष्याणां गन्धर्वमृगपक्षिणाम् ।
शैलद्रुमवनौकानामासीत्तत्र समागमः ॥ ३
नानापुरुषदेश्यानामीश्वरैश्च समाकुलम् ।
ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ॥ ४
निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी ।
वरानुत्क्रम्य सर्वांस्तान् वरं वृतवती वनम् ॥ ५
अवतीर्य रथात् कन्या नमस्कृत्य च बन्धुषु ।
उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ॥ ६
उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा ।
आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥ ७
वैदूर्याङ्कुरकल्पानि मृदूनि हरितानि च ।
चरन्ती श्लक्ष्णशष्पाणि तिक्तानि मधुराणि च ८
स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च ।
पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ९
वनेषु मृगराजेषु व्याघ्रविप्रोषितेषु च ।
दावाग्निविप्रयुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ॥ १०
चरन्ती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी ।
चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्येण संवृतम् ॥ ११
ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः ।
बहुवर्षसहस्रायुर्युयुजे कालधर्मणा ॥ १
पूरुर्यदुश्च द्वौ वंशे वर्धमानौ नरोत्तमौ ।
ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः॥१
महीपते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः ।
महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्र्यफलभुग्विभुः ॥ १
बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते ।
राजर्षिषु निषण्णेषु महीयस्सु महर्षिषु ॥ १
अवमेने नरान् सर्वान् देवानृषिगणांस्तथा ।
ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १
ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः ।
ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ॥ १
विचारश्च समुत्पन्नो निरीक्ष्य नहुषात्मजम् ।
को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः१
कर्मणा केन सिद्धोऽयं क वाऽनेन तपश्चितम् ।
कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽप्युत ॥ १
एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः ।
दृष्ट्वा पप्रच्छुरन्योन्यं ययातिं नृपतिं प्रति ॥ २
विमानपालाः शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः ।
पृष्टा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाब्रुवन् ॥ २
सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाभ्यजानन्त तं नृपम् ।
स मुहूर्तादथ नृपो हतौजाश्चाभवत्तदा ॥ २

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिमोहे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

## १२१

नारद उवाच ।

अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः ।
कम्पितेनेव मनसा धर्षितः शोकवह्निना ॥ १
म्लानस्रग्भ्रष्टविज्ञानः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ।
विघूर्णन् स्रस्तसर्वाङ्गः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः ॥

---

१२०

**स इति** । स तु राजा आश्रमपदमुपगम्य कर्तुकामः अभूदिति शेषः ॥१॥ पर्यधावतां वरान्वेषणायेत्यर्थः ॥२॥ वनं वनवासम् ॥ ५ ॥ आत्मनः चित्तस्य लघुतां रागद्वेषादिमलराहित्येन सूक्ष्मार्थभेदने शीघ्रताम् ॥ ७ ॥ व्याघ्राणां विप्रोषितं पर्यटनं येषु ॥ १० ॥ युयुजे योगं प्राप्तवान् कालधर्मणा मृत्युना ॥ १२ ॥ नाहुषः ययातिः ॥ १३
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

१२१

**अथेति** ॥ १ ॥

अदृश्यमानस्तान् पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः ।
शून्यः शून्येन मनसा प्रप्रतिप्यन् महीतलम् ॥ ३
किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
येनाहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत् ॥ ४
ते तु तत्रैव राजानः सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा ।
अपश्यन्त निरालम्बं तं ययातिं परिच्युतम् ॥ ५
अथैत्य पुरुषः कश्चित् क्षीणपुण्यनिपातकः ।
ययातिमब्रवीद्राजन् देवराजस्य शासनात् ॥ ६
अतीव मदमत्तस्त्वं न कश्चिन्नावमन्यसे ।
मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नार्हस्त्वं पार्थिवात्मज ॥ ७
न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत् ।
पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः ॥ ८
पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः ।
एतस्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान् ॥ ९
चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात ह ।
प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशीनरोऽष्टकः ॥ १०
वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम् ।
तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११
ययातिरुपजिघ्रन् वै निपपात महीं प्रति ।
भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीमिव ।
गङ्गां गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः ॥ १२
श्रीमत्स्ववभृथाग्र्येषु चतुर्षु प्रतिबन्धुषु ।
मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु सः ॥ १३
चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु ।
पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये ॥ १४
तमाहुः पार्थिवाः सर्वे दीप्यमानमिव श्रिया ।
को भवान् कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा ॥ १५
यक्षो वाऽप्यथवा देवो गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा ।
न हि मानुषरूपोऽसि को वाऽर्थः काङ्क्ष्यते त्वया

ययातिरुवाच ।

ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः ।
पतेयं सत्स्विति ध्यायन् भवत्सु पतितस्ततः ॥ १७

राजान ऊचुः ।

सत्यमेतद्भवतु ते काङ्क्षितं पुरुषर्षभ ।
सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ १८

ययातिरुवाच ।

नाहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो ह्यहम् ।
न च मे प्रवणा बुद्धिः परपुण्यविनाशने ॥ १९

नारद उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्याक्रमागताम् ।
माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाद्येदमब्रुवन् ॥ २०
किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव ।
आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने ॥ २१
तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा ।
पितरं समुपागच्छद्ययातिं सा ववन्द च ॥ २२
स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान् पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत् ।
दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः ॥ २३
इमे त्वां तारयिष्यन्ति दृष्टमेतत् पुरातने ।
अहं ते दुहिता राजन् माधवी मृगचारिणी ॥ २४
मयाऽप्युपचितो धर्मस्ततोऽर्धं प्रतिगृह्यताम् ।
यस्माद्राजन्नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः ॥ २५
तस्मादिच्छन्ति दौहित्रान् यथा त्वं वसुधाधिप ।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥ २६
अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथाब्रुवन् ।
उच्चैरनुपमैः स्निग्धैः स्वरैरापूर्य मेदिनीम् ॥ २७
मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम् ।
अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ।
तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिस्वर्गभ्रंशे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

---

धर्मदूषणं पुण्यनाशकम् ॥ ४ ॥ प्रज्ञायसे हीनतेजस्त्वेन अप्रकाशत्वात् ॥ ८ ॥ शिबिरौशीनर इत्येकः ॥ १० ॥ एक इवशब्दः पादपूरणार्थः गङ्गां नदीमिव धूममयीं लेखामालम्ब्य निपपातेति सम्बन्धः ॥ १२ ॥ प्रतिबन्धुषु दौहित्ररूपेषु ॥ १३ ॥ बन्धुः पालयिता ॥ १५ ॥ पुरातने अनादिकालप्रवृत्ते वेदे ॥ २४ ॥ अष्टभागेन अष्टमांशेन ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

## १२२

नारद उवाच ।
प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः ।
समारुरोह नृपतिरस्पृशन् वसुधातलम् ।
ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः ॥ १
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ।
दिव्यगन्धगुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत् पदा ॥ २
ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन् वचः ।
ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ॥ ३
प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हया ।
तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ४
यत्फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत्फलम् ।
यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ५
ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः ।
यथा धर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ॥ ६
प्राप्तवानस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः ।
वीरशब्दफलं चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ७
शिबिरौशीनरो धीमानुवाच मधुरां गिरम् ।
यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च ॥ ८
सङ्गरेषु× निपातेषु तथा तद्व्यसनेषु च ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज ॥ ९
यथा प्राणांश्च राज्यं च राजन् कामसुखानि च ।
त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज ॥ १०
यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः ।
प्रीतः शतक्रतुश्चैव तेन सत्येन खं व्रज ॥ ११
अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः ।
अनेकशतयज्वानं नाहुषं प्राप्य धर्मवित् ॥ १२
शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्चरिताः प्रभो ।
क्रतवो वाजपेयाश्च तेषां फलमवाप्नुहि ॥ १३
न मे रत्नानि न धनं न तथाऽन्ये परिच्छदाः ।
क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज ॥ १४
यथा यथा हि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ।
तथा तथा वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥ १५
एवं सर्वे समस्तैस्ते राजानः सुकृतैस्तदा ।
ययातिं स्वर्गतो भ्रष्टं तारयामासुरञ्जसा ॥ १६
दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै ।
चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्धनाः ।
मातामहं महाप्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते ॥ १७
राजान ऊचुः ।
राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः ।
दौहित्रास्ते वयं राजन् दिवमारोह पार्थिव ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिस्वर्गारोहणे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## १२३

नारद उवाच ।
सद्भिरारोपितः स्वर्गं पार्थिवैर्भूरिदक्षिणैः ।
अभ्यनुज्ञाय दौहित्रान् ययातिर्दिवमास्थितः ॥ १
अभिवृष्टश्च वर्षेण नानापुष्पसुगन्धिना ।
परिष्वक्तश्च पुण्येन वायुना पुण्यगन्धिना ॥ २
अचलं स्थानमासाद्य दौहित्रफलनिर्जितम् ।
कर्मभिः स्वैरुपचितो जज्वाल परया श्रिया ॥ ३
उपगीतोपनृत्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
प्रीत्या प्रतिगृहीतश्च स्वर्गे दुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४
अभिष्टुतश्च विविधैर्देवराजर्षिचारणैः ।
अर्चितश्चोत्तमार्घेण दैवतैरभिनन्दितः ॥ ५

---

**१२२**

**प्रत्यभिज्ञातेति** ॥ १ ॥ आधाने अग्न्याधानोपलक्षिते श्रौतधर्मे ॥ ५ ॥ वैहार्येषु परिहासेन लालनीयेषु स्यालसम्बन्ध्यादिषु ॥ ८ ॥ (निपातेषु?) आपत्सु व्यसनेषु संकटेषु द्यूतादिषु खं स्वर्गम् ॥९॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ × संगरः प्रतिज्ञा, निपातो विपत्तिः ।

**१२३**

**सद्भिरिति** ॥ १ ॥ वर्षेण वृष्ट्या ॥ २ ॥

आप्तः स्वर्गफलं चैव तमुवाच पितामहः ।
निर्वृतं शान्तमनसं वचोभिस्तर्पयन्निव ॥ ६
चतुष्पादस्त्वया धर्मश्चितो लोक्येन कर्मणा ।
अक्षयस्तव लोकोऽयं कीर्तिश्चैवाक्षया दिवि ७
पुनस्त्वयैव राजर्षे सुकृतेन विघातितम् ।
आवृतं तमसा चेतः सर्वेषां स्वर्गवासिनाम् ॥ ८
येन त्वां नाभिजानन्ति ततोऽज्ञातोऽसि पातितः
प्रीत्यैव चासि दौहित्रैस्तारितस्त्वमिहागतः ॥ ९
स्थानं च प्रतिपन्नोऽसि कर्मणा स्वेन निर्जितम्
अचलं शाश्वतं पुण्यमुत्तमं ध्रुवमव्ययम् ॥ १०

ययातिरुवाच ।

भगवन् संशयो मेऽस्ति कश्चित्तं छेत्तुमर्हसि ।
न ह्यन्यमहमर्हामि प्रष्टुं लोकपितामह ॥ ११
बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैरर्जितं मे महत्फलम् ॥ १२
कथं तदल्पकालेन क्षीणं येनास्मि पातितः ।
भगवन् वेत्थ लोकांश्च शाश्वतान् मम निर्मितान्
कथं नु मम तत्सर्वं विप्रनष्टं महाद्युते ॥ १३

पितामह उवाच ।

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैर्यत्त्वयोपार्जितं फलम् ॥ १४
तदनेनैव दोषेण क्षीणं येनासि पातितः ।
अभिमानेन राजेन्द्र धिक्कृतः स्वर्गवासिभिः ॥ १५
नायं मानेन राजर्षे न बलेन न हिंसया ।
न शाठ्येन न मायाभिर्लोको भवति शाश्वतः १६
नावमान्यास्त्वया राजन्नवमोत्कृष्टमध्यमाः ।
न हि मानप्रदग्धानां कश्चिदस्ति शमः क्वचित् ॥
पतनारोहणमिदं कथयिष्यन्ति ये नराः ॥
विषमाण्यपि ते प्राप्तास्तरिष्यन्ति न संशयः १८

नारद उवाच ।

एष दोषोऽभिमानेन पुरा प्राप्तो ययातिना ।
निर्बन्धतातिमात्रं च गालवेन महीपते ॥ १९
श्रोतव्यं हितकामानां सुहृदां हितमिच्छताम् ।
न कर्तव्यो हि निर्बन्धो निर्बन्धो हि क्षयोदयः ॥
तस्मात्त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधं च वर्जय ।
सन्धत्स्व पाण्डवैर्वीर संरम्भं त्यज पार्थिव ॥ २१
ददाति यत्पार्थिव यत्करोति
यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।
न तस्य नाशोऽस्ति न चापकर्षो
नान्यस्तदश्नाति स एव कर्ता ॥ २२
इदं महाख्यानमनुत्तमं हितं
बहुश्रुतानां गतरोषरागिणाम् ।
समीक्ष्य लोके बहुधा प्रधारितं
त्रिवर्गदृष्टिः पृथिवीमुपाश्नुते २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

## १२४

धृतराष्ट्र उवाच ।

भगवन्नेवमेवैतद्यथा वदसि नारद ।
इच्छामि चाहमप्येवं न त्वीशो भगवन्नहम् ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा ततः कृष्णमभ्यभाषत कौरवः ।
स्वर्ग्यं लोक्यं च मामात्थ धर्म्यं न्याय्यं च केशव२
न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न मे प्रियम् ।
अङ्ग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम ॥ ३
अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम ।
न शृणोति महाबाहो वचनं साधुभाषितम् ॥ ४
गान्धार्याश्च हृषीकेश विदुरस्य च धीमतः ।
अन्येषां चैव सुहृदां भीष्मादीनां हितैषिणाम्॥५

---

चतुष्पादः तपो-यज्ञ-ज्ञान-दानवान्।अहिंसा सत्यमस्तेयमानृश्यं चेति वा पादाः॥७॥ सुकृतेन सम्यक्संपादितेन कर्मणा। मया समोऽन्यो नास्तीति वाक्प्रयोगेण। तमसा क्रोधेन ॥८॥ नाभिजानन्ति श्रेष्ठोऽयमिति नाङ्गीकुर्वन्ति । ततो हेतोः अज्ञातः अकीर्त्या तिरोभूतः ॥ ९ ॥ **शाठ्यं** विश्वासघातः **माया** अद्भुतार्थप्रदर्शनरंजनपूर्वकं परवञ्चनम् ॥ १८ ॥ पापिष्ठत्वेन त्वत्कृतं पापं त्वयैव भोक्तव्यं न तु भ्रात्रादिभिरित्याशयेनाह—**ददातीति** । किं तु कर्तैव तदाप्नोति ॥ २२ ॥ बहुधा नानाशास्त्रयुक्त्यादिभिः प्रधारितं निश्चितम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३ ॥

१२४

**भगवन्निति** ॥ १ ॥

स त्वं पापमतिं क्रूरं पापचित्तमचेतनम् ।
अनुशाधि दुरात् मान स्वयं दुर्योधनं नृपम् ॥ ६
सुहृत्कार्यं तु सुमहत् कृतं ते स्याज्जनार्दन ।
ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७
अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।
दुर्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम ॥ ८
शर्मार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत ।
महाप्राज्ञ कुले जातः साध्वेतत् कर्तुमर्हसि ॥ ९
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः ।
दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः ॥१०
त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे ।
धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन् प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम् ॥
असतां विपरीता तु लक्ष्यते भरतर्षभ ।
विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि ॥ १२
अधर्मश्चानुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान् ।
अनिष्टश्चानिमित्तश्च न च शक्यश्च भारत ॥ १३
तमनर्थं परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि ।
भ्रातॄणामथ भृत्यानां मित्राणां च परन्तप ॥ १४
अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे ।
प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ॥ १५
सन्धत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ ।
तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १६
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः ।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ॥ १७
अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य सञ्जयस्य विविंशतेः ।
ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परंतप ॥ १८
शमे शर्म भवेत्तात सर्वस्य जगतस्तथा ।
ह्रीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान् ।
तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ ॥ १९
एतच्छ्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत ।
उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम् ॥ २०
रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह सङ्गमः ।
सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥ २१
श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते ।
विपाकान्ते दहत्येनं किंपाकमिव+भक्षितम् ॥२२
यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिपद्यते ।
स दीर्घसूत्रो हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ २३
यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राक्तदेवाभिपद्यते ।
आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते ॥ २४
योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते ।
शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः ॥ २५
सतां मतमतिक्रम्य योऽसतां वर्तते मते ।
शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो न चिरादिव ॥ २६
मुख्यानमात्यानुत्सृज्य यो निहीनान्निषेवते ।
स घोरामापदं प्राप्य नोत्तारमधिगच्छति ॥ २७
योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सताम् ।
परान् वृणीते स्वान् द्वेष्टि तं गौस्त्यजति भारत ॥
स त्वं विरुध्य तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि ।
अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ ॥ २९
को हि शक्रसमान् ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान् ।
अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत्त्वदन्यो भुवि मानवः ॥ ३०
जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया ।
न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः
मिथ्योपचरितास्तात जन्मप्रभृति बान्धवाः ।
त्वयि सम्यङ्महाबाहो प्रतिपन्ना यशस्विनः ॥ ३२
त्वयाऽपि प्रतिपत्तव्यं तथैव भरतर्षभ ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु मा मन्युवशमन्वगाः ॥ ३३
त्रिवर्गयुक्तः प्राज्ञानामारम्भो भरतर्षभ ।
धर्मार्थावनुरुध्यन्ते त्रिवर्गासम्भवे नराः ॥ ३४
पृथक्च विनिविष्टानां धर्मं धीरोऽनुरुध्यते ।
मध्यमोऽर्थं कलिं बालः काममेवानुरुध्यते ॥३५
इन्द्रियैः प्राकृतो लोभाद्धर्मं विप्रजहाति यः ।
कामार्थावनुपायेन लिप्समानो विनश्यति ३६
कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः कामो वाऽपि कदाचन ३७
उपायं धर्ममेवाहुस्त्रिवर्गस्य विशाम्पते ।
लिप्समानो हि तेनाशु कक्षेऽग्निरिव वर्धते ॥३८
स त्वं तातानुपायेन लिप्ससे भरतर्षभ ।
आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ ३९
आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा ।
यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन् प्रवर्तते ॥
न तस्य हि मतिं छिन्द्याद्यस्य नेच्छेत् पराभवम्

अभ्यावृत्य पुनः पुनः ॥ ७ ॥ शास्त्रे शासने ॥ १९ ॥ किंपाकं महाकालफलम् ॥ २२ ॥ निःश्रेयसं कल्याणम् ॥ २४ ॥ अर्थकामस्य इष्टार्थिनः ॥ २५ ॥ उपचरिताः प्रतारिताः ॥३२॥ अर्थं कलिं कलहहेतुम् ॥३५॥ अनुपायेन हीनोपायेन ॥३६॥ छिन्द्यात् लोभादिना दूषयेत् ॥४०॥ +किंपाकःस्यान्महाकालावोष्टी बिम्बाच तुण्डिकेति हलायुधः

अविच्छिन्नमतेरस्य कल्याणे धीयते मतिः ।
आत्मवान्नावमन्येत त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ४१
अप्यन्यं प्राकृतं किंचित् किमुतान् पाण्डवर्षभान् ।
अमर्षवशमापन्नो न किंचिद्बुध्यते जनः ॥ ४२
छिद्यते ह्याततं सर्वं प्रमाणं पश्य भारत ।
श्रेयस्ते दुर्जनात्तात पाण्डवैः सह सङ्गतम् ॥ ४३
तैर्हि संप्रीयमाणस्त्वं सर्वान् कामानवाप्स्यसि ।
पाण्डवैर्निर्मितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम ॥ ४४
पाण्डवान् पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशंससेऽन्यतः ।
दुःशासने दुर्विपहे कर्णे चापि ससौबले ॥ ४५
एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छसि भारत ।
न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा ॥ ४६
विक्रमे चाप्यपर्याप्ताः पाण्डवान् प्रति भारत ।
न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे ।
इदं संनिहितं तात समग्रं पार्थिवं बलम् ॥ ४८
अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चायं तथा कृपः ।
भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः ॥ ४९
अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनञ्जयम् ।
अजेयो ह्यर्जुनः सङ्ख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः ।
मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत आधिथाः ॥५०
दृश्यतां वा पुमान् कश्चित् समग्रे पार्थिवे बले ।
योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहान्॥५१
किं ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ ।
यस्मिञ्जिते जितं तत्स्यात् पुमानेकः स दृश्यताम्॥
यः स देवान् सगन्धर्वान् सयक्षासुरपन्नगान् ।
अजयत् खाण्डवप्रस्थे कस्तं युध्येत मानवः ।
तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५४
युद्धे येन महादेवः साक्षात् सन्तोषितः शिवः ।
तमजेयमनाधृष्यं विजेतुं जिष्णुमच्युतम् ।
आशंससीह समरे वीरमर्जुनमूर्जितम् ॥ ५५
मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमर्हति ।
युद्धे प्रतीपमायान्तमपि साक्षात् पुरन्दरः ॥ ५६
बाहुभ्यामुद्वहेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ५७
पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातॄन् ज्ञातीन् सम्बन्धिनस्तथा ।
त्वत्कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तमाः ॥ ५८
अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् ।
कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥ ५९
त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः ।
महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ६०
मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम् ।
अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ६१
पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः ।
संप्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥६२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये
चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

## १२५

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् ।
केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥ १
कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता ।
अन्वपद्यस्व तत्तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥ २
अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः ।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥३
धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः ।
तदर्थमभिपद्यस्व मा राजन्नीनशः प्रजाः ॥ ४
ज्वलितां त्वमिमां लक्ष्मीं भारतीं सर्वराजसु ।
जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद्भ्रंशयिष्यसि ॥ ५

---

छिद्यते प्रमाणमार्गात् च्युतो भवतीत्यर्थः । प्रमाणं लोकवेदप्रसिद्धम्। दुर्जनात् सङ्गिनः पाण्डवैः सङ्गतं श्रेयः॥४३॥ निर्मितां वशीकरणेनोत्पादिताम् ॥ ४४ ॥ यस्मिन्नर्जुने जिते सति ते तव जितं जयः स्यात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

१२५

तत इति ॥ १ ॥ मा नीनशः मा नाशय ॥ ४ ॥

आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम् ।
अहमित्यनया बुद्ध्या जीविताद्भ्रंशयिष्यसि ॥ ६
अतिक्रामन् केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत् ।
पितुश्च भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः ॥ ७
मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः ।
मातरं पितरं चैव मा मज्जीः शोकसागरे ॥ ८
अथ द्रोणोऽब्रवीत्तत्र दुर्योधनमिदं वचः ।
अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनःपुनः ॥ ९
धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः ।
तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप ॥ १०
प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ ।
आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तज्जुषस्व नराधिप ॥ ११
अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः ।
माधवं बुद्धिमोहेन माऽवमंस्थाः परंतप ॥ १२
ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित् ।
वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्ष्यन्ति संयुगे ॥ १३
मा जीघनः प्रजाः सर्वाः पुत्रान् भ्रातॄंस्तथैव च ।
वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयानलं हि तान् ॥
एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः ।
यदि नादास्यसे तात पश्चात्तप्स्यसि भारत ॥
यथोक्तं जामदग्न्येन भूयानेष ततोऽर्जुनः ।
कृष्णो हि देवकीपुत्रो देवैरपि सुदुःसहः ।
किं ते सुखप्रियेणेह प्रोक्तेन भरतर्षभ ॥ १६
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथेच्छसि तथा कुरु ।
न हि त्वामुत्सहे वक्तुं भूयो भरतसत्तम ॥ १७

वैशम्पायन उवाच ।

तस्मिन्वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत् ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ १८
दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ ।
इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥
यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा ।
हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाण्डजौ ॥ २०
भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् ।
कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम् ॥ २१
अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।
आसीनं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥
दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना ।
आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥ २३
अनेन हि सहायेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
इष्टान् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥
सुसंहतः केशवेन तात गच्छ युधिष्ठिरम् ।
चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भरतानामनामयम् ॥ २५
वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छस्व संशमम् ।
कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥
शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराभवः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मादिवाक्ये पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## १२६

वैशम्पायन उवाच ।

धृतराष्ट्रवचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ समव्यथौ ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १
यावत् कृष्णावसन्नद्धौ यावत्तिष्ठति गाण्डिवम् ।
यावद्धौम्यो न मेधाग्नौ जुहोतीह द्विषद्बलम् ॥ २

---

कुलघ्नो मा भूरिति शेषः ॥८॥ एते कर्णादयः कृत्याय जयाय परेषामस्मदादीनाम् ॥ १३ ॥ मा जीघनः मा घातय। यत्र तान् अजेयान् विद्धि ॥ १४ ॥ सुखं हितावहं प्रियं च न्यायोपेतत्वात् तेन सुखप्रियेण प्रोक्तेन वचनेन तव मूढस्य किं न किमपीत्यर्थः ॥ १६ ॥ सुसंहतः सुष्ठु एकीभूतः ॥ २५ ॥ तीर्थेन उपायेन ॥२६॥ अपराभवो जयः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

१२६

धृतराष्ट्रवच इति ॥१॥ मेधाग्नौ संग्रामाग्नौ। मेधो यज्ञः 'यान्येव संग्रामनामानि तानि यज्ञनामानि' इति यास्कः ॥२॥

यावन्न प्रेक्षते क्रुद्धः सेनां तव युधिष्ठिरः ।
ह्रीनिषेवो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ३
यावन्न दृश्यते पार्थः स्वेऽप्यनीके व्यवस्थितः ।
भीमसेनो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥
यावन्न चरते मार्गान् पृतनामभिधर्षयन् ।
भीमसेनो गदापाणिस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः॥
यावन्न शातयत्याजौ शिरांसि गजयोधिनाम् ।
गदया वीरघातिन्या फलानीव वनस्पतेः ॥ ६
कालेन परिपक्वानि तावच्छाम्यतु वैशसम् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७
विराटश्च शिखण्डी च शैशुपालिश्च दंशिताः ॥
यावन्न प्रविशन्त्येते नक्रा इव महार्णवम् ॥ ८
कृतास्त्राः क्षिप्रमस्यन्तस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ।
यावन्न सुकुमारेषु शरीरेषु महीक्षिताम् ॥ ९
गार्ध्रपत्राः पतन्त्युग्रास्तावच्छाम्यतु वैशसम् ।
चन्दनागुरुदिग्धेषु हारनिष्कधरेषु च ।
नोरःसु यावद्योधानां महेष्वासैर्महेषवः ॥ १०
कृतास्त्रैः क्षिप्रमस्यद्भिर्दूरपातिभिरायसाः ।
अभिलक्ष्यैर्निपात्यन्ते तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ११
अभिवादयमानं त्वां शिरसा राजकुञ्जरः ।
पाणिभ्यां प्रतिगृह्णातु धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १२
ध्वजाङ्कुशपताकाङ्कं दक्षिणं ते सुदक्षिणः ।
स्कन्धे निक्षिपतां बाहुं शान्तये भरतर्षभ ॥ १३
रत्नौषधिसमेतेन रत्नाङ्गुलितलेन च ।
उपविष्टस्य पृष्ठं ते पाणिना परिमार्जतु ॥ १४
शालस्कन्धो महाबाहुस्त्वां स्वजानो वृकोदरः ।
साम्नाऽभिवदतां चापि शान्तये भरतर्षभ ॥ १५
अर्जुनेन यमाभ्यां च त्रिभिस्तैरभिवादितः ।
मूर्ध्नि तान् समुपाघ्राय प्रेम्णाभिवद पार्थिव ॥१६
दृष्ट्वा त्वां पाण्डवैर्वीरैर्भ्रातृभिः सह संगतम् ।
यावदानन्दजाश्रूणि प्रमुञ्चन्तु नराधिपाः ॥ १७
घुष्यतां राजधानीषु सर्वसंपन्महीक्षिताम् ।
पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## १२७

वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि ।
प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १
प्रसमीक्ष्य भवानेतद्वक्तुमर्हति केशव ।
मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे ॥ २
भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन ।
भवान् गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम् ३
भवान्क्षत्ता च राजा वाऽप्याचार्यो वा पितामहः
मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कञ्चन पार्थिवम् ॥ ४
न चाहं लक्षये कञ्चिद्व्यभिचारमिहात्मनः ।
अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः ॥५
न चाहं कञ्चिदत्यर्थमपराधमरिन्दम ।
विचिन्तयन् प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव ॥ ६
प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन ।
जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम् ७

वैशसं वैरम् ॥ ३ ॥ उरस्सु निपात्यन्त इति उत्तरेण सम्बन्धः ॥१०॥ रत्नयुक्तौषधिवद्वेष्टयतीति रत्नौषधिरत्नांगुलीयकम् । रत्नबन्धसमेतेनेति पाठः स्वच्छः । 'आबन्धो दृढबन्धे स्यात् प्रेमालङ्कारयोरपि' इति विश्वः। रत्नालङ्कारेण रत्नैः प्रेम्णा च वा समेतेनेति भावः । रत्नवदारक्तानि अङ्गुलितलानि यस्य तेन रत्नांगुलितलेन ॥ १४ ॥ स्वजानः वक्षसि मिलितः । स्वंज परिष्वंगे ॥ १५ ॥ सर्वसंपत् परस्परं प्रीतिः ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

१२७

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ प्रसमीक्ष्य विचार्य विभाष्य परुषमुक्त्वा ॥ २ ॥ व्यभिचारमन्याय्यम् ॥ ५ ॥ प्रियाभ्युपगते प्रीत्या स्वीकृते ॥ ७ ॥

यत्पुनर्द्रविणं किञ्चित्तत्राजीयन्त पाण्डवाः ।
तेभ्य एवाभ्यनुज्ञातं तत्तदा मधुसूदन ॥ ८
अपराधो न चास्माकं यत्ते ह्यक्षैः पराजिताः ।
अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम् ॥९
केन वाऽप्यपवादेन विरुद्ध्यन्त्यरिभिः सह ।
अशक्ताः पाण्डवाः कृष्ण प्रहृष्टाः प्रत्यमित्रवत् ॥
किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन् वा पुनरागसि ।
धार्तराष्ट्रान् जिघांसन्ति पाण्डवाः सृञ्जयैः सह॥
न चापि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा ।
*प्रभ्रष्टाः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतुम् ॥ १२
न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम् ।
उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ॥ १३
न हि भीष्मकृपद्रोणाः सकर्णा मधुसूदन ।
देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत पाण्डवैः ॥१४
स्वधर्ममनुपश्यन्तो यदि माधव संयुगे ।
अस्त्रेण निधनं काले प्राप्स्यामः स्वर्ग्यमेव तत् ॥
मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन ॥
यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ॥ १६
ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे ।
अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तप्स्यन्ति माधव ॥ १७
कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन् ।
भयाद्वृत्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कर्हिचित् ॥ १८
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ॥ १९
इति मातङ्गवचनं परीप्सन्ति हितेप्सवः ।
धर्माय चैव प्रणमेद्ब्राह्मणेभ्यश्च मद्विधः ॥ २०
अचिन्तयन् कञ्चिदन्यं यावज्जीवं तथाऽऽचरेत् ।
एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥ २१
राज्यांशश्चाभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराऽभवत् ।
न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव ॥ २२
यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दन ।
न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाऽप्युपजीवाम माधव ।
अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम ॥ २३
अज्ञानाद्वा भयाद्वाऽपि मयि बाले जनार्दन ।
न तदद्य पुनर्लभ्यं पाण्डवैर्वृष्णिनन्दन ॥ २४
ध्रियमाणे महाबाहौ मयि सम्प्रति केशव ।
यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव ॥
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥ २५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्ये
सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

## १२८

वैशम्पायन उवाच ।
ततः प्रशम्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १
लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि ।
स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान्
यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद्व्यतिक्रमः ।
पाण्डवेष्विति तत्सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥ ३
श्रिया सन्तप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम् ।
त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥ ४
कथं च ज्ञातयस्तात श्रेयांसः साधुसंमताः ।
अथान्याय्यमुपस्थातुं जिह्मेनाजिह्मचारिणः ॥ ५
अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतां मतिविनाशनम् ।
असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च ॥ ६
तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम् ।
असमीक्ष्य सदाचारैः सार्धं पापानुबन्धनैः ॥ ७
कश्चान्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथाऽर्हति ।
आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया
कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी
महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया ९

---

उद्यच्छेदेव उद्यमं कुर्यादेव अपर्वणि अप्रस्तावे । 'पर्व स्यादुत्सवे ग्रन्थौ प्रस्तावे लक्षणान्तरे ' इति विश्वः ॥ १९ ॥ मातङ्गः मुनिः ॥२० ॥ न्यस्तशस्त्राः त्यक्तक्षत्रियधर्माः उपजीवाम भिक्षुकवत्सिद्धमन्नं भोक्ष्याम इत्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥ * वित्रस्ता इति पाठः

१२८

तत इति । प्रशम्य विचार्य ॥१॥

जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि ।
दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्तः परंतपाः ॥ १०
सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु ।
स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम् ॥ ११
नृशंसानामनार्याणां पुरुषाणां च भाषणम् ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् १२
सह मात्रा प्रदग्धुं तान् बालकान् वारणावते ।
आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत्तव ॥ १३
ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा ।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ १४
विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया ।
सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत्तव ॥ १५
एवंबुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान् ।
कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १६
यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि ।
तच्च पाप प्रदाताऽसि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः १७
कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत् ।
मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य विप्रतिपद्यसे ॥ १८
मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव
शमे हि सुमहाँल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः ।
न च रोचयसे राजन् किमन्यद्बुद्धिलाघवात् २०
न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः ।
अधर्म्यमयशस्यं च क्रियते पार्थिव त्वया ॥ २१

वैशम्पायन उवाच ।

एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ २२
न चेत्सन्धास्यसे राजन् स्वेन कामेन पाण्डवैः ।
बद्ध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः
वैकर्तनं त्वां च मां च त्रीनेतान् मनुजर्षभ ।
पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते
भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् २५
विदुरं धृतराष्ट्रं च महाराजं च बाह्लिकम् ।
कृपं च सोमदत्तं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् २६
सर्वानेताननादृत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः ।
अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता ॥ २७
तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभम् ।
अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः २८
सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् २९
धर्मार्थावभिसन्त्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते ।
हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो न चिरादिव ॥ ३०
दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।
मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः ३१
कालपक्वमिदं मन्ये सर्वं क्षत्रं जनार्दन ।
सर्वे ह्यनुसृता मोहात् पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः
भीष्मस्याथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः ।
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान् ॥
सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः ।
प्रसह्य मन्दमैश्वर्ये न नियच्छत यन्नृपम् ॥ ३४
तत्र कार्यमहं मन्ये कालप्राप्तमरिन्दमाः ।
क्रियमाणे भवेच्छ्रेयस्तत् सर्वं शृणुतानघाः ३५
प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वक्ष्यामि हितं वचः ।
भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः ॥ ३६
भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान् ।
जीवतः पितुरैश्वर्यं हृत्वा मृत्युवशं गतः ॥ ३७
उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः ।
ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे ॥ ३८
आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः ।
उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्धनः ॥ ३९
कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः ।
सम्भूय सुखमेधन्ते भारतान्धकवृष्णयः ॥ ४०
अपि चाप्यवदद्राजन् परमेष्ठी प्रजापतिः ।
व्यूढे देवासुरे युद्धेऽभ्युद्यतेष्वायुधेषु च ॥ ४१
द्वैधीभूतेषु लोकेषु विनश्यत्सु च भारत ।
अब्रवीत् सृष्टिमान् देवो भगवाँल्लोकभावनः ॥४२
पराभविष्यन्त्यसुरा दैतेया दानवैः सह ।
आदित्या वसवो रुद्रा भविष्यन्ति दिवौकसः ॥
देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
अस्मिन् युद्धे सुसंक्रुद्धा हनिष्यन्ति परस्परम् ४४
इति मत्वाऽब्रवीद्धर्मं परमेष्ठी प्रजापतिः ।
वरुणाय प्रयच्छैतान् बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४५
एवमुक्तस्ततो धर्मो नियोगात् परमेष्ठिनः ।
वरुणाय ददौ सर्वान् बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४६

विप्रतिपद्यसे विवादं कुरुषे मात्रादिभिः सह ॥ १८ ॥ भविष्यंति जेष्यंति ॥ ४३ ॥

तान् बद्ध्वा धर्मपाशैश्च स्वैश्च पाशैर्जलेश्वरः।
वरुणः सागरे यत्तो नित्यं रक्षति दानवान् ॥ ४७
तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चापि सौबलम्।
बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छथ ॥
त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥४९
राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये
अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

## १२९

वैशम्पायन उवाच।
कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥ १
गच्छ तात महाप्राज्ञां गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम्।
आनयेह तया सार्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥ २
यदि साऽपि दुरात्मानं शमयेद्दुष्टचेतसम्।
अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥ ३
अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत्।
दुर्बुद्धेर्दुःसहायस्य शमार्थं ब्रुवती वचः ॥ ४
अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत्।
शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम् ॥ ५
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम्।
आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ६

धृतराष्ट्र उवाच।
एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः।
ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति† ॥ ७
अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान्।
सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥ ८

वैशम्पायन उवाच।
सा भर्तृवचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी।
अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत्

गान्धार्युवाच।
आनायय सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम्।
न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना ॥ १०
आप्तुमाप्तं तथापीदमविनीतेन सर्वथा।
त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः ॥ ११
यो जानन् पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्तसे।
स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः ॥
अशक्योऽद्य त्वया राजन्विनिवर्तयितुं बलात्।
राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः ॥ १३
दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम्।
कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महीपतिः।
भिन्नं हि स्वजनेन त्वां प्रहसिष्यन्ति* शत्रवः ॥
या हि शक्या महाराज साम्ना भेदेन वा पुनः।
निस्तर्तुमापदः स्वेषु दण्डं कस्तत्र पातयेत् ॥ १५

वैशम्पायन उवाच।
शासनाद्धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम्।
मातुश्च वचनात् क्षत्ता सभां प्रावेशयत् पुनः ॥
स मातुर्वचनाकाङ्क्षी प्रविवेश पुनः सभाम्।
अभिताम्रेक्षणः क्रोधान्निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ १७
तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम्।
विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥
दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक।
हितं ते सानुबन्धस्य तथाऽऽयत्यां सुखोदयम् ॥
दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम।
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः ॥
भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता।
भवेद्द्रोणमुखानां च सुहृदां शाम्यता त्वया ॥
न हि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते।
अवाप्तुं रक्षितुं वाऽपि भोक्तुं भरतसत्तम ॥ २२

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

१२९

कृष्णस्येति ॥ १ ॥ चिररात्राय योगक्षेमवत् बहुकालमप्राप्तस्य सुखस्य प्राप्तिः प्राप्तस्य संरक्षणं च निर्वहेदित्यर्थः ॥५॥ आयत्यां परिणामे ॥१९॥ अपचितिः पूजा ॥२१॥

† प्रहास्यति-परित्यक्ष्यति। * प्रहसिष्यन्ति-धर्षयिष्यन्ति।

न ह्यवश्येन्द्रियो राज्यमश्नीयाद्दीर्घमन्तरम् ।
विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् २३
कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः ।
तौ तु शत्रू विनिर्जित्य राजा विजयते महीम् २४
लोकेश्वरप्रभुत्वं हि महदेतद्दुरात्मभिः ।
राज्यं नामेप्सितं स्थानं न शक्यमभिरक्षितुम् २५
इन्द्रियाणि महत्प्रेप्सुर्नियच्छेदर्थधर्मयोः ।
इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्धतेऽग्निरिवेन्धनैः ॥ २६
अविधेयानि हीमानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् २७
अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते ।
अमित्रान् वाऽजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते॥
आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥२९
वश्येन्द्रियं जितामात्यं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यर्थं श्रीर्निषेवते ॥ ३०
क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुभौ ।
कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः ३१
याभ्यां हि देवाः स्वर्यातुः स्वर्गस्य पिदधुर्मुखम्।
बिभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौ स्म वर्धितौ ३२
कामं क्रोधं च लोभं च दंभं दर्पं च भूमिपः ।
सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥ ३३
सततं निग्रहे युक्त इन्द्रियाणां भवेन्नृपः ।
ईप्सन्नर्थं च धर्मं च द्विषतां च पराभवम् ॥ ३४
कामाभिभूतः क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते ।
स्वेषु चान्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ३५
एकीभूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिबर्हणैः ।
पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी ३६
यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः ।
आहतुस्तात तत्सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३७
प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः ॥ ३८
सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने ।
प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥ ३९
न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् ।
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः
भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च ।
दत्तोंशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद्भीतैररिन्दम ॥ ४१
तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि ।
यद्भुङ्क्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम् ॥ ४२
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ।
यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं प्रदीयताम् ४३
अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।
सुहृदां वचने तिष्ठन् यशः प्राप्स्यसि भारत ४४
श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात् ॥ ४५
निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम् ।
स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ ॥ ४६
अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः ।
शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥ ४७
न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि ।
सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते ॥ ४८
भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनञ्जये ।
धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम् ४९
अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीघनः ।
एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मागमत्त्वत्कृते वधम् ५०
यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः ।
योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते ॥ ५१
समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विदितात्मनाम्
पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः ५२
राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम् ।
न हि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम् ५३

दीर्घमन्तरं चिरकालम् ॥ २३ ॥ महद्राज्यं 'महद्राज्यविशालयोः' इति विश्वः ॥ २६ ॥ अविधेयानि अवशीकृतानि व्यापादयितुं हन्तुम् ॥ २७ ॥ क्षुद्राक्षेण सूक्ष्मछिद्रेण ॥ ३१ ॥ अनुपरागस्य अनासक्तस्यापि कामक्रोधौ स्वर्गनिरोधकावित्यर्थः ॥ ३२ ॥ अभिजायते शास्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ यः कामेन अभिभूतः क्रोधाद्वा अभिभूतः मिथ्या कपटेन वाऽभिभूतः प्रतिपद्यते ईप्सितार्थादीन् तस्य सहाया न भवन्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ अंशो भागः ॥ ४१ ॥ निकारः अपकारः समाः वर्षाणि ॥ ४७ ॥ यः त्वं पार्थानामर्थमभीप्ससि स एष त्वं न शक्तः तदर्थापहारायेत्यर्थः । नापि सूतपुत्रादयः शक्ताः ॥ ४८ ॥ मा गमत् मा गच्छतु ॥ ५० ॥

[ सात्यकिरुवाच-- ]

इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ।
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ॥१६॥

—उद्योग अ. १३० पृ. २१५

न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते । तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गान्धारीवाक्ये ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

## १३०

वैशम्पायन उवाच ।
तत्तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम् ।
पुनः प्रतस्थे संरम्भात्सकाशमकृतात्मनाम् ॥ १
ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः ।
सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह ॥ २
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद्विचेष्टितम् ॥ ३
पुराऽयमस्मान्गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः ।
सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥ ४
वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव ।
प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा ॥ ५
श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः ।
निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ६
अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च ।
अस्मिन्गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम् ॥ ७
निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह ।
तस्माद्वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम् ॥ ८
क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून् ।
तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम् ॥ ९
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः ।
तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः ॥ १०
अब्रवीत्कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ।
व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः ॥ ११
यावदाख्याम्यहं चैतत्कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव ॥ १२
आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने ।
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत ॥ १३
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव ।
धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम् ॥ १४
मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथञ्चन ।
पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥ १५
धर्षिताः काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः ।
इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥ १६
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ।
सात्यकेस्तद्वचः श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ॥ १७
धृतराष्ट्रं महाबाहुमब्रवीत्कुरुसंसदि ।
राजन्परीतकालास्ते पुत्राः सर्वे परंतप ॥ १८
अशक्यमयशस्यं च कर्तुं कर्म समुद्यताः ।
इमं हि पुण्डरीकाक्षमभिभूय प्रसह्य च ॥ १९
निग्रहीतुं किलेच्छन्ति सहिता वासवानुजम् ।
इमं पुरुषशार्दूलमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥ २०
आसाद्य न भविष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ।
अयमिच्छन्हि तान्सर्वान्युध्यमानाञ्जनार्दनः
सिंहो नागानिव क्रुद्धो गमयेद्यमसादनम् ।
न त्वयं निन्दितं कर्म कुर्यात्पापं कथञ्चन ॥ २२
न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः ।
विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः ।
राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा ॥ २४
एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव ।
एतान्हि सर्वान्संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे ॥ २५
न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथञ्चन ।
पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान्हास्यन्ति ते सुताः

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

१३०

तत्त्विति ॥ १ ॥ वैरोचनिं बलिम् ॥ ५ ॥ केशवं बद्ध्वा रिपून्योत्स्यामह इत्युत्तरश्लोकेनान्वयः ॥ ८ ॥ कर्म दूतनिग्रहाख्यम् ॥ १४ ॥ विकुर्वते विकारं कलहाख्यं कुर्वते ॥ १५ ॥ अशक्यं न च कर्तुं शक्यम् ॥ १९ ॥ वासवानुजं विष्णुं त्रिविक्रममित्यर्थः ॥ २० ॥ न भविष्यन्ति मरिष्यन्ति ॥ २१ ॥ पाण्डवार्थे पाण्डवधने लुभ्यन्तः लोभं कुर्वन्तः ॥ २६ ॥

एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः ।
अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत ॥ २७
निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत् ।
इदं तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म भारत ॥ २८
सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम् ।
एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथाऽस्तु तत् ॥
अहं तु सर्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप ।
एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।
क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥ ३०
सहमित्रं सहामात्यं ससोदर्यं सहानुगम् ।
शक्नुयां यदि पन्थानमवतारयितुं पुनः ॥ ३१
ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत् सभाम् ।
अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ ३२
अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चापि संवृतम् ३३
नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान् ।
पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि ॥ ३४
अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम् ।
यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत् कुलपांसनः ॥ ३५
त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम् ।
पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि ॥ ३६
यो न शक्यो बलात्कर्तुं देवैरपि सवासवैः ।
तं त्वं प्रार्थयसे मन्द बालश्चन्द्रमसं यथा ॥ ३७
देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः ।
न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुध्यसि केशवम् ॥ ३८
दुर्ग्राह्यः पाणिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी ।
दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्राह्यः केशवो बलात् ॥ ३९
इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्ताऽपि विदुरोऽब्रवीत् ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ ४०

विदुर उवाच ।

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम साम्प्रतम् ।
सौभद्वारे वानरेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः ।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम् ॥ ४१
ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम् ।
ग्रहीतुं नाशकच्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४२
प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः ।
ग्रहीतुं नाशकत्तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४३
अनेकयुगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे ।
नीत्वा कन्यासहस्राणि उपयेमे यथाविधि ॥ ४४
निर्मोचने षट्सहस्राः पाशैर्बद्धा महासुराः ।
ग्रहीतुं नाशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४५
अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा ।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥ ४६
अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः ।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन् ॥ ४७
जरासन्धश्च वक्त्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
बाणश्च निहतः सङ्ख्ये राजानश्च निषूदिताः ॥ ४८
वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा ।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥ ४९
एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥ ५०
अयं कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे ।
यद्यदिच्छेदयं शौरिस्तत्तत् कुर्यादयत्नतः ॥ ५१
तं न बुध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम् ॥ ५२
प्रधर्षयन्महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि ५३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुरवाक्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

## १३१

वैशम्पायन उवाच ।

विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा । दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ १

---

इदं तु कर्म कर्तुमिति शेषः ॥२८॥ पन्थानमवतारयितुं सत्पथे निवेशयितुम् ॥३१॥ निर्मोचने नगरविशेषे ॥४५॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

१३१

विदुरेणेति ॥ १ ॥

एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन ।
परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥ २
इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवान्धकवृष्णयः ।
इहादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः ॥ ३
एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा ।
तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ॥ ४
अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः ।
अस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाभवत्॥ ५
लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत ।
आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाश्विनावपि॥ ६
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथैव च ।
बभूवुश्चैकरूपाणि यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥ ७
प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां सङ्कर्षणधनञ्जयौ ।
दक्षिणेऽथार्जुनो धन्वी हली रामश्च सव्यतः ॥ ८
भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः ।
अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः ॥ ९
अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः ।
शङ्ख-चक्र-गदा-शक्ति-शार्ङ्ग-लाङ्गल-नन्दकाः॥
अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च ।
नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ॥ ११
नेत्राभ्यां *नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्यां च समन्ततः ।
प्रादुरासन्महारौद्राः सधूमाः पावकार्चिषः§ ॥१२
रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरीचयः ।
तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं× केशवस्य महात्मनः ॥ १३
न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः ।
ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम्॥ १४
सञ्जयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् ।
प्रादात्तेषां स भगवान् दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः ॥ १५
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च ॥ १६

धृतराष्ट्र उवाच ।

त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः ।
तस्मात्त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १७
भगवन् मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः ।
भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नान्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ १८
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।
अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥ १९
तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रश्च चक्षुषी ।
लब्धवान् वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदृक्षया ॥ २०
लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः ।
विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ २१
चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे ।
विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२
ततः स पुरुषव्याघ्रः संजहार वपुः स्वकम् ।
तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिन्दमः ॥२३
ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४
ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः ।
तस्मिन् कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाभवत् ॥२५
तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।
अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ २६
अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद्राजमण्डलम् ।
निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २७
ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हेमजालविचित्रेण लघुना+ मेघनादिना ॥ २८
सूपस्करेण शुभ्रेण †वैयाघ्रेण वरूथिना= ।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २९
तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।
वृष्णीनां संमतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥
उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिन्दमम् ।
धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ३१
यावद्बलं मे पुत्रेषु पश्यतस्ते जनार्दन ।
प्रत्यक्षं ते न ते किञ्चित्परोक्षं शत्रुकर्शन ॥ ३२
कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव ।
विदित्वैतामवस्थां मे नाभिशङ्कितुमर्हसि ॥ ३३
न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान् प्रति केशव ।
ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥
जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः ।
शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥ ३५

वैशम्पायन उवाच ।

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।
द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥
प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वृत्तं कुरुसंसदि ।
यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः ॥ ३७
वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम्३८

महामतिं धृतराष्ट्रम् ॥ १४ ॥ अदृश्यमाने इतरैरिति शेषः ॥ १९ ॥ वरूथिना रथगुप्तिमता ॥ २९ ॥ मन्दो दुर्योधनः ॥ ३७ ॥ * नस्ततो नासिकारन्ध्रतः । आर्षस्तकारः । § अर्चिषो ज्वालाः × आत्मानं स्वरूपम् । + लघुना शीघ्रेण । † वैयाघ्रेण व्याघ्रचर्मावृतेन । = वरूथिना गुप्तिमता ।

आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥ ३९
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥ ४०
ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विश्वरूपदर्शने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

## १३२

वैशम्पायन उवाच ।
प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च ।
आचख्यौ तत्समासेन यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १
वासुदेव उवाच ।
उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम् ।
ऋषिभिश्चैव च मया न चासौ तद्गृहीतवान् ॥ २
कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम् ।
आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति ३
किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया ।
तद्ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥ ४
कुन्त्युवाच ।
ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥५
श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः ।
अनुवाकहताबुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते ॥ ६
अङ्गावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयंभुवा ।
बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ॥
क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ।
शृणु चात्रोपमामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ॥८
मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददत् पृथिवीमिमाम् ।
पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चासौ तद्गृहीतवान् ॥ ९
बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये ।
ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥ १०
मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद्वसुन्धराम् ।
बाहुवीर्यार्जितां सम्यक् क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ११
यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा विन्देत भारत ॥ १२
राजा चरति चेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते ।
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ १३
दण्डनीतिश्च धर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति ।
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति ॥
दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते
तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते । १५
कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥
राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ १७
कृतस्य करणाद्राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।
त्रेतायाः करणाद्राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ॥ १८
प्रवर्तनाद्द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते ।
कलेः प्रवर्तनाद्राजा पापमत्यन्तमश्नुते ॥ १९
ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।
राजदोषेण हि जगत् स्पृश्यते जगतः स च ॥

---

किङ्किणीकं क्षुद्रघण्टिकाजालं तद्वता किंकिणीकिना ॥४१॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

१३२

प्रविश्येति ॥ १ ॥ भूयान् पृथ्वीपालनजो धर्मः ॥ ५ ॥ श्रोत्रियस्य वेदाध्यायिनः मन्दकस्य अर्थज्ञानशून्यस्य अनुवाकेन अत्यन्तं वेदाक्षराग्रृत्त्या हता नष्टा ॥ ६ ॥ दण्डनीतिः स्वामिना प्रयुक्तेति सम्बन्धः । धर्मेभ्यः धर्मार्थं नियच्छति निर्बन्धं करोति दण्डनीतिरेव ॥ १४ ॥ राजा धर्मं अधर्मं वा प्रवर्तयन् कृतत्रेतादियुगरूपस्य कालस्य कारणमेवं च सर्वस्मिन्नपि काले धर्मादितारतम्याद्युगचतुष्टयमस्तीति भावः ॥ १६ ॥ जगतः दोषेण स च राजा स्पृश्यते ॥ २० ॥

राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान् ।
नैतद्राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि ॥ २१
न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्यव्यवस्थितः ।
प्रजापालनसंभूतं फलं किंचन लब्धवान् ॥ २२
न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाहं न पितामहः ।
प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया ॥ २३
यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रज्ञा संतानमेव च ।
माहात्म्यं बलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया ॥२४
नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं दद्युर्मानुषदेवताः ।
दीर्घमायुर्धनं पुत्रान् सम्यगाराधिताः शुभाः ॥
पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च ।
दानमध्ययनं यज्ञः प्रजानां परिपालनम् ॥ २६
एतद्धर्ममधर्मं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः ।
ते तु वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः ॥
यत्र दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः ।
प्राप्य तुष्टाः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः २८
दानेनान्यं बलेनान्यं तथा सूनृतया परम् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥ २९
ब्राह्मणः प्रचरेद्भैक्षं क्षत्रियः परिपालयेत् ।
वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान् ॥३०
भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते ।
क्षत्रियोऽसि क्षतात्त्राता बाहुवीर्योपजीविता ३१
पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर ।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाथ नयेन वा ॥ ३२
इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा ।
परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वाऽमित्रनन्दन ॥ ३३
युद्ध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।
मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम्

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

# १३३

कुन्त्युवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परंतप ॥ १
ततः श्रेयश्च भूयश्च यथावद्वक्तुमर्हसि ।
यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी ।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३
विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४

विदुलोवाच ।
अनन्दन मया जात द्विषतां हर्षवर्धन ।
न मया त्वं न पित्रा च जातः क्वाभ्यागतो ह्यसि
निर्मन्युश्चाप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः ।
यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ६
माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः ।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः ।
अमित्रान्नन्दयन् सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ८

---

फलं न लब्धवान् प्राप्तवान् असीति शेषः ॥ २२ ॥ नित्यमिति । मानुषाश्च देवताश्च सम्यगाराधिताः सत्यः इहलोके आयुरादीनि परलोकसाधनानि स्वधादीनि सत्कर्माणि च दद्युः ॥ २५ ॥ एतत् मद्वाक्यं धर्मं धर्मयुक्तं अधर्मं वा जन्मनैव स्वभावत एव अभ्यजायथाः अभिजानीषे हे कृष्ण । ते तु पांडवास्तु वैद्याः विद्यावन्तः ॥ २७ ॥ दानपतिं पालनाधिकारिणं देह पालने अस्य रूपम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

१३३

अत्रेति ॥ १ ॥ ततः मदुक्तात् श्रेयः प्रशस्ततरं भूयोऽधिकतरं मन्युमती दैन्यवती विभावरी कुपिता 'विभावरी रजन्यां च वक्रयोषिति' इति विश्वः ॥२॥ राजन्या मूर्धाभिषिक्ता।'मूर्द्धाभिषिक्तो राजन्यः' इत्यमरः। जगर्हे निन्दितवती अनंदन कुपुत्र कुत्सार्थेऽत्र नञ् ॥५ ॥ असंख्येयः अगणनीयः तुच्छत्वात् क्लीबं निर्वीर्यं साधनं बाह्वादिकं यस्य स तथा ॥ ६ ॥ मा बीभरः मा पालय । प्रतिसंहर भयमिति शेषः ॥ ७ ॥ मा शेष्व निरुद्योगो मा भूः ॥ ८ ॥

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः ।
सुसंतोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥ ९
अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज ।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः १०
अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् ।
विवदन् वाऽथवा तूष्णीं व्योम्नीवापरिशङ्कितः ॥
त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद्वज्रहतो यथा ।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सीः शत्रुनिर्जितः १२
माऽस्तंगमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा ।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माऽधो भूस्तिष्ठ गर्जितः
अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि हि ज्वल ।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः १४
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।
मा ह स्म कस्यचिद्गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः॥१५
कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाऽऽजिं यावदुत्तमम् ।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ॥ १६
अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः ।
आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते ॥ १७
उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम् ।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि १८
इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता ।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि १९
शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता ।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत् कथञ्चन २०
उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन् ।
कुरु सत्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः २१
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ।
यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ॥ २२
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।
दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः ॥ २३
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ।
श्रुतेन तपसा वाऽपि श्रिया वा विक्रमेण वा २४
जनान्योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान्
न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि २५
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ।
यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम् ॥ २६
लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम् ।
अहो लाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम् ॥ २७
नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते ।
अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात् प्रवासिताः॥२८
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिञ्चनाः ।
अवल्गुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम् ॥ २९
कालिं पुत्रप्रवादेन सञ्जय त्वामजीजनम् ।
निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ॥ ३०
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम् ।
मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्॥३१

पराक्रमेः पराक्रमं कुरु ॥ १० ॥ विवदन् शत्रुजयार्थमनेकान् पक्षानुद्भावयन् वा तूष्णींभूतोऽरेश्छिद्रं पश्येः । यथा व्योम्नि अपरिशङ्कितः शत्रोराधिक्याद्भयमपश्यन् श्येनस्तद्वत् ॥११॥ विश्रूयस्व ख्यातो भव। मा मध्य इति । सामभेदौ जघन्य-मध्यमौ दानमधमो नीच उपायो दंडस्तूत्तमः । तत्राद्यत्रय कर्ता मा भूः किं तु गर्जितो दंडयितैव भवेत्यर्थः । ऊर्जित इति वा पाठः ॥ १३ ॥ तिंदुकस्य अलातं यथा दिक्षु स्फुलिङ्गान् विक्षिपति ज्वलति तद्वत् ज्वल दीप्यस्व परंतु तुषाग्निवदनर्चिर्मा धूमायस्व । काकरं खा जिजीविषुरिति पाठान्तरे काकरं खाः काकरमन्यगारं मा खाः मा नाशय । खै तु स्थैर्ये खदनहिंसयोरिति खायतेरिदं रूपम् । काकरंख इतिपाठे काकवत् रंखति पलायते वा काकरङ्खः । रखि गता-वित्यस्य रूपम् ॥१४॥ मा जनि मा उत्पद्यतां खरः कर्कशः खरीति पाठे खरत्ववानिति स एवार्थः मृदुर्दयालुः ॥१५॥ आजिं संग्रामं सृत्वाऽभिसृत्य मानुष्यकं मनुष्यस्योचितम् ॥ १६ ॥ प्राणानां प्राणाः बलं तत्साध्यानां कार्याणां आनन्तर्यं अविच्छेदेन कार्यधारामारभत इत्यर्थः। न धनायते धनं आत्मनो नेच्छति तृष्णां त्यजतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ ध्रुवां गतिं मरणमग्रत इत्युपहसिः पृष्ठतः कृत्वेत्यर्थः ॥१८॥ भोगमूलं राज्यं धनं वा ॥ १९ ॥ निमज्जता प्रपतिष्यता च शत्रुर्जङ्घायां ग्राह्यः तेनैव सह निमज्जेत्पतेद्वेत्यर्थः । न विषीदेत् निरुद्यमो न भवेत् ॥ २० ॥ उद्यम्य उद्यमं कृत्वा धुरं भारमुत्कर्षेत् उद्यच्छेत् आजानेयाः जात्यश्वाः तेषां कृतं कर्म युद्धेऽनवसादरूपं स्मरन् विद्धि प्राप्नुहि ॥ २१ ॥ त्वत्कृते मग्नमिति सम्बन्धः ॥ २२॥ राशिवर्धनः संख्या-पूरको न तु प्रयोजनान्तरार्हः ॥ २३ ॥ मातुः उच्चारो विष्ठा ॥ २४ ॥ कापालीं वृत्तिं भिक्षाचर्याम् ॥ २५ ॥ यमेनममित्रा अभिनन्देयुः तं बन्धुं बान्धवः आसाद्य न सुखमेधत इति तृतीयश्लोकेन सम्बन्धः ॥ २६ ॥ अहो लाभकरं अल्पेऽपि लाभे अहो लाभो जात इति विस्मयं कुर्वाणम् ॥ २७ ॥ अवृत्त्या जीवनोपायाभावेन विपत्स्यामः मरिष्यामः ॥२८॥ अवल्गु अमङ्गलम् । अकर्मेति वा पाठः। तत्कारिणं निश्चेष्टं कुलं ज्ञातयः वंशः सोमसूर्यादिमूलोत्पत्ति-स्थानम् ॥ २९ ॥ संजयति तस्य नाम ॥ ३० ॥

ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ।
एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥ ३२
क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।
सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च ३३
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत् ।
एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना॥ ३४
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ।
परं विषहते यस्मात्तस्मात् पुरुष उच्यते ॥ ३५
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद्य इह जीवति ।
शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः॥ ३६
दिष्टभावं गतस्यापि विघसे मोदते प्रजा ।
य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम्॥ ३७
अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८

पुत्र उवाच ।

किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३९

मातोवाच ।

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः ।
ये त्वादृतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान् व्रजन्तु नः॥
भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम् ।
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ४१
अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।
पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ४२
यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय ।
पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४३
यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम् ।
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥४४
स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः ।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

## १३४

विदुलोवाच ।

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि ।
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १
यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् ।
क्षत्रियो जीविताकाङ्क्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ २
अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च ।
नैव संप्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥ ३
सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जनाः ।
दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४
सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः ।
अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५
तैः कृत्वा सह सङ्घातं गिरिदुर्गालयं चर ।
काले व्यसनमाकाङ्क्षन्नैवायमजरामरः ॥ ६

अनुक्रोशो दया॥३३॥ अनुत्थानं शत्रुं प्रत्यनवस्थानं भयं च ते उभे च श्रियं हत इति पूर्वेण सम्बन्धः। निरीहो निश्चेष्टो नाश्नुते महत्पदमिति शेषः। निकृतिपापेभ्यः पराभवदोषेभ्यः ॥ ३४ ॥ स्वकं धनादिकं परं विषहते इति पुरुषपदनिर्वचनं वर्णविकारादिना ज्ञेयम् ॥ ३५ ॥ दिष्टभावं मरणं प्रजा सन्ततिः । प्रियं पुत्रादिसुखं तत्परिष्वङ्गादिजो हर्षः ॥ ३७ ॥ मामपश्यन्त्यास्ते पृथिव्या किमिति सम्बन्धः ॥ ३९ ॥ किमद्य किं भोक्तव्यमिति ये चिन्तयन्ति निर्धनास्तेषां किमद्यकानाम् । यद्वा किमद्य त्वरया श्व एव शत्रून् जेष्याम इति विलम्बशीलानाम् । हन्यमानस्येति पाठे अनुद्रुतस्य । अत्र हन्तिर्गत्यर्थः । अनादृतानामिति पाठे शत्रुरक्षतानाम् । अनादृतानामिति पाठे अलसानाम् । निर्मन्युकानामित्यपि पाठः ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

१३४

अथेति ॥ १ ॥ सहायोपचितिं सहायसंपत्तिं कृत्वाऽपि अपरे स्वकार्यास्तव पौरुषमपश्यन्तो यत्नवैफल्यादनुदुष्येयुः शत्रुपक्षं श्रयेयुरित्यर्थः ॥ ५ ॥ स्वीयानां संग्रहे उपायमाह -तैरिति । तैः स्वीयैः संघातमैक्यं व्यसनं परस्य अयं तव शत्रुः ॥ ६ ॥

सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत्त्वयि ।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥ ७
सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
अयं प्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८
तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव ।
तस्मात्तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः९
यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे ।
तस्यार्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥ १०
समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय ।
एवं विद्वान्युद्धमना भव मा प्रत्युपाहरः ॥ ११
नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२
पतिपुत्रवधादेतत् परमं दुःखमब्रवीत् ।
दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३
अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४
महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् ।
पुरा दृष्टः सुहृद्वर्गो मामपश्यत् सुहृद्गताम् ॥ १५
यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टाऽसि भृशदुर्बलाम् ।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सञ्जय ॥ १६
दासकर्मकरान् भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।
अवृत्त्याऽस्मान् प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते १७
यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा ।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥१८
नेति चेद्ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्यते हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान्॥ १९
वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रोतारः परस्य च ।
साऽन्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम्
अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान् सञ्जीवयस्व नः॥ २१
सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमर्हसि ।
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२
निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम् ।
एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।
माहेन्द्रं च गृहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥
नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान् ।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः ।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६
त्यक्त्वाऽऽत्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः ॥
अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥
राज्यं चाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा ।
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥२८
स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाऽप्यमृतोपमम् ।
रुद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥ २९
जहि शत्रून्रणे राजन् स्वधर्ममनुपालय ।
मा त्वादृशं सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम् ॥ ३०
अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम् ।
अपि त्वां नानुपश्येयं दीनाद्दीनमिवास्थितम् ॥
हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघस्वार्थैर्यथा पुरा ।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः ॥ ३२

मे महां ब्राह्मणोऽब्रवीदिति सम्बन्धः ॥ ८ ॥ अर्थाभिनिर्वृत्तौ प्रयोजननिष्पत्तौ परे तत्सम्बन्धिनः । तेनार्थेन आप्यायिता भवन्ति तस्य तद्भाग्यादेवार्थसिद्धिः । नयेषु नीतिमार्गेषु ॥ १० ॥ पूर्वेषां मम च युद्धे समृद्धिरसमृद्धिर्वाऽवश्यंभाविनीत्येवं विद्वान् युद्धमना भव लाभालाभौ समौ कृत्वा युद्धस्वेति भावः । मा प्रत्युपाहरः प्रत्युपहारं युद्धोपसंहारं मा कार्षीरित्यर्थः ॥ ११ ॥ अयुध्यतो दरिद्रत्वं स्यात्तच्चानिष्टमित्याह—**नात इति** ॥ १२ ॥ पर्यायमरणं दारिद्र्यं नामान्तरेण मरणमेवेत्यर्थः ॥ १३ ॥ अस्मान् प्रजहतः अस्मत्त्यागं कुर्वतः ॥ १७ ॥ कृत्यं कर्तव्यं पराक्रमम् ॥ १८ ॥ श्रोतारः पराज्ञायाः । पाठान्तरे श्रेतार आश्रयितारः ॥ २० ॥ शक्याः जेतुमिति शेषः । सह्या इति पाठे सहनीयाः ॥ २२ ॥ निर्विण्णात्मा विरक्तचित्तः यतो हतमना नष्टसंकल्पः । विश्रुतिं ख्यातिम् ॥ २३ ॥ ग्रहं सोमपात्रम् । प्रग्रहमिति पाठे नियमनं नियन्तृत्वमित्यर्थः। 'प्रग्रहश्च तुलासूत्रे बन्द्यां नियमने भुजे' इति **विश्वः** २४॥ कापुरुषाः जनाः रणे आत्मानं देहं त्यक्त्वा रणे दक्षं शूरं समृद्धिभिस्तर्पयन्ति स्मेति सम्बन्धः ॥२७॥ उग्रविभ्रंशं महाप्रपातं जीवितस्य संशयो मरणम् । लब्धस्य जितस्य शेषं पुनः स्वल्पेन विभवेनावस्थापनम् ॥ २८ ॥ रुद्धं प्रस्तं मत्वा एकायनं स्वर्गराज्ययोर्मध्य एकं मार्गं पत गच्छ ॥ २९ ॥ **मा त्वेति** । शत्रूणां भयवर्धनं भयच्छेदनम् । अनुप्रत्वात् सुकृपणं दीनं त्वा त्वां मादृशं माद्राक्षं द्दशमिति माङ्योगादडभावे इरितो वेत्यङ्पक्षे दृशिर प्रेक्षणेऽस्य लुङुत्तमैकवचनं पाठान्तरं तु मूढजनकल्पितं नादरणीयम् ॥ ३० ॥ हृष्य हर्षं प्राप्नुहि सौवीरकन्याभिः स्वदारैः । **मा चेति** । सैन्धवकन्यानां शत्रुदेशजकन्यानाम् ॥ ३२ ॥

युवा रूपेण संपन्नो विद्ययाऽभिजनेन च ।
यस्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ॥३३
अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् ।
यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ॥
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः
न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि ।
अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत् परिशाश्वतम् ॥ ३६
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि ।
शाश्वतं चाव्ययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥३७
यो वै कश्चिदिहाजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित् ।
भयाद्वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥३८
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥ ३९
मातङ्गो मत्त इव च परीयात् स महामनाः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥ ४०
नियच्छन्नितरान् वर्णान् विनिघ्नन् सर्वदुष्कृतः ।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥४१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

## १३५

पुत्र उवाच ।
कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम् ।
मम मातस्त्वकरुणे वीरप्रज्ञे ह्यमर्षणे ॥ १
अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा ।
नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा ॥ २
ईदृशं वचनं ब्रूयाद्भवती पुत्रमेकजम् ।
किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ॥
किमाभरणकृत्येन किं भोगैर्जीवितेन वा ॥
मयि वा सङ्गरहते प्रियपुत्रे विशेषतः ॥ ४
मातोवाच ।
सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् ।
तावेवाभिसमीक्ष्याहं सञ्जय त्वामचूचुदम् ॥ ५
स समीक्ष्य क्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः ।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ॥ ६
असंभावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ।
तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय ॥ ७
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ।
सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ॥ ८
अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ।
तव स्याद्यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥ ९
धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन ।
दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ १०

विकुर्वीत अपसरणं कुर्वीत॥३३॥ अधुर्यवत् अदान्तवृषभवत् अनड्वानिवेत्यपि पाठः । तत् विकारकरणम् ॥ ३४ ॥ वेद वेद्मि । परिशाश्वतं सर्वथैवैकरूपमक्षोणिमित्यर्थः ॥३६॥ पूर्वैः स्ववंशजैः परैरन्यवंशीयैः परतरैर्वृद्धैः अव्ययमपक्षयहीनं क्षत्रहृदयं प्रोक्तमिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ३७ ॥ आजातः सम्यग्जातः कुले जात इत्यर्थः । य आजातः स भयात् कस्यचिन्न नमेत् । वृत्तिसमीक्षो वृत्तिं समीक्षमाणो वा न नमेत् ॥ ३८ ॥ उद्यच्छेत् उद्यमं कुर्यात् अपर्वणि अकांडे वृथाऽपीत्यर्थः ॥ ३९ ॥ परीयात् पर्यटनं कुर्यात् ॥ ४० ॥ दुष्कृतः पापिष्ठान् ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

१३५

**कृष्णायसस्येवेति** । कृष्णायसस्य लोहस्य संहृत्य पिण्डीकृत्य ॥१॥ एकजमभ्रातृकम् ॥३॥ सर्वावस्था गार्हस्थ्यादिरूपा । सर्वारंभा इति पाठान्तरम् । तावेव धर्मार्थावेव । अचूचुदं प्रेरितवत्यस्मि ॥ ५ ॥ समीक्ष्य क्रमोपेतः द्रष्टुं योग्येन पराक्रमेण युक्तः अस्मिन् काले चेत् कार्यं कर्तव्यं युद्धं न प्रतिपद्यसे ॥६॥ आनृशंस्यं शत्रुषु स्वदेहे वा दयां करिष्यसि तर्हि त्वमसंभावितरूपास्तिरस्कृतरूपो भविष्यसीति सम्बन्धः ॥७॥ **खरीति** । उभयलोकानुपयुक्तेऽपि पुत्रे वृथा वात्सल्यं खरी करोति तद्वदहमपि स्यामित्यर्थः ॥ ८ ॥ अविद्या अनात्मनि देहे आत्मबुद्धिः सा यदि तव स्यात् तर्हि सत् समीचीनं तव देहनाशादात्मनाशं पश्यतो वृत्तं शीलम् । उपहासार्थमिदमुच्यते तेन देहात्मभावेन मम देहादन्यदात्मानं पश्यन्त्याः प्रियो भवेः । अयमप्युपहासः । देहात्मवादी दुर्वृत्तो मम द्वेष्यश्च भविष्यसीत्यर्थः ॥ ९ ॥ **धर्मार्थेति** । त्वया भाव्यमिति शेषः ॥ १० ॥

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्र नप्तृणा ।
अनुत्थानवता चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ॥ ११
रमते यस्तु पुत्रेण मोघं तस्य प्रजाफलम् ।
अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च ॥
सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ।
युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च ॥ १३
जयन्वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ।
न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम् ।
यदमित्रान् वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥ १४
मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना ।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून् प्रतिजिगीषया ॥ १५
आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च ।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत्॥१६
इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति ।
यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याल्पमप्रियम् १७
प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् ।
ध्रुवं चाभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥ १८

पुत्र उवाच ।

नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः ।
कारुण्यमेवात्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ १९

मातोवाच ।

अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि ।
चोद्यं मां चोदयस्येतद्भृशं वै चोदयामि ते ॥ २०
अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान् ।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्रभावितमेव ते ॥ २१

पुत्र उवाच ।

अकोशस्यासहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम ।
इत्यवस्थां विदित्वैतामात्मनाऽऽत्मनि दारुणाम्२२
राज्याद्भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतः ।
ईदृशं भवती कञ्चिदुपायमनुपश्यति ॥ २३
तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक्प्रब्रूहि पृच्छते ।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ २४

मातोवाच ।

पुत्र नात्माऽवमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ।
अमर्षेणैव चाप्यर्था नारब्धव्याः सुबालिशैः ॥२५
सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता ।
अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च॥२६
अथ येनैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते ।
ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥ २७
अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा ।
यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता ॥ २८
नुदेद्वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज ।
उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु । २९
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।
मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ॥ ३०
प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ।
अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः॥ ३१
निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च ।
अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२
पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहार्हसि ।
क्रुद्धान् लुब्धान् परिक्षीणानवलिप्तान्विमानितान्
स्पर्धिनश्चैव ये केचित्तान्युक्त उपधारय ।
एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ॥ ३४

---

निकृतेन अपकृतेनापि शत्रून् प्रति जिगीषया प्रस्थातव्यमेवेति शेषः॥१५॥ स्वल्पमैश्वर्यं अप्रियमनिष्टं इच्छति मन्यते प्राज्ञः । यस्य तु अल्पमेवैश्वर्यं प्रियं तस्य ध्रुवं निश्चितं तदेवाल्पं प्रियत्वेन गृहीतं अप्रियमनर्थकरं स्यात् । तेन राज्ञाऽल्पसंतुष्टेन न भवितव्यमित्यर्थः ॥ १७ ॥ अभावं नाशम् ॥१८॥ कारुण्यमेव पश्य हितत्वेनेति शेषः ॥ १९ ॥ अतो वचनात् मे मम भूयसी नन्दिः समृद्धिः । भवितेति शेषः । यत् एवं कारुण्यं देहे कृपामनुपश्यसि हितत्वेन एवं सत्यपि त्वमेव चोद्यं पूर्वपक्षं चोदयसि प्रेरयसि कारुण्यं कुर्विति । अथाऽपि वज्रहृदयाऽहं ते तुभ्यं चोदयामि ॥ २० ॥ सैन्धवान् हत्वा कृच्छ्रेण भावितं ते तव विजयं यदा पश्यामि द्रक्ष्यामि अथ त्वां पूजयिष्यामीति योजना ॥ २१ ॥ एतामवस्थां दारुणामात्मनि आत्मना स्वयं विदित्वा मे मम भावश्चित्तं राज्यान्निवृत्त इत्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ २२ ॥ अर्थाः धर्माद्याः बालिशैरमर्षेणैव नारब्धव्याः पण्डितैस्तु आदरेण आरब्धव्या एवेति भावः॥ २५॥ अनित्यमिति जानन्तः पण्डिता आरभमाणा न भवन्ति कदाचिदैश्वर्यं न लभन्ते भवन्ति च कदाचित्सिद्धार्थाः ॥ २६ ॥ अकुर्वाणाश्निन्दति —अथेति । अनीहायां चेष्टाया अभावे ऐकगुण्यमेकगुणमेव फलं यत्कर्मणामीप्सिततमानामभावोऽप्राप्तिः ॥ २७॥ ईहायां तु द्वैगुण्यं गुणद्वयं यत्फलं भवति वा न वेत्यभावनिश्चयापेक्षया पाक्षिकफलसद्भाववती प्रवृत्तिरेव श्रेष्ठेत्यर्थः ॥ २८ ॥ वृद्धिः पीडा । वृधु हिंसायामित्यस्य रूपम्। समृद्धिरैश्वर्यम् । ते उभे नुदेत् दूरीकुर्यात् । आत्मनः पीडां परस्यैश्वर्यं च नुदेदित्यर्थः । योक्तव्यं सज्जीभवितव्यम् २९ ॥ ईश्वरैर्देवैः ॥ ३० ॥ उद्धर्षणानि प्रोत्साहकानि अनुदर्शितं रूपं लोकवृत्तान्तो यस्मै स तथा ॥ ३२ ॥

महावेग इवोद्धूतो मातरिश्वा बलाहकान्।
तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्पोत्थायी प्रियंवदः॥३५
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरोधास्यन्ति च ध्रुवम्
यदैव शत्रुर्जानीयात् सपत्नं त्यक्तजीवितम्।
तदैवास्मादुद्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव॥ ३६
तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि।
निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद्भविष्यति॥ ३७
निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च॥३८
स्खलितार्थं पुनस्तानि सन्त्यजन्ति च बान्धवाः।
अप्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम्॥
शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति।
अतः संभाव्यमेवैतद्यद्राज्यं प्राप्नुयादिति॥ ४०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३५॥

## १३६

मातोवाच।
नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत्॥
दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्यते।
राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक्कुर्वन्ति ते मतीः॥ २
शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः।
अन्ये तु प्राजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः॥ ३
य एवात्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते।
अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इला इव॥ ४
शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान्।
अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः॥ ५
ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः।
मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ६
प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव।
विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये॥ ७
यद्येतत्संविजानासि यदि सम्यग्ब्रवीम्यहम्।
कृत्वाऽसौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय
अस्ति नः कोशनिचयो महान् ह्यविदितस्तव।
तमहं वेद नान्यस्तमुपसंपादयामि ते॥ ९
सन्ति नैकशता भूयः सुहृदस्तव सञ्जय।
सुखदुःखसहा वीर सङ्ग्रामादनिवर्तिनः॥ १०

---

तेषां क्षुद्रादीनामग्रप्रदायी भक्तं वेतनं च सर्वेभ्यः प्रथमं देयं न चेत्स्वयः कुपितास्ते त्यजेयुरित्यर्थः॥३५॥ त्यक्तजीवितं युद्धे जीवितनिराकाङ्क्षं शत्रुर्जीविताकाङ्क्षी उद्विजते॥३६॥ **तमिति**। तं शत्रुं पराक्रान्तं पराक्रमवन्तं विदित्वा अशक्त्या वशे स्वाज्ञायां यदि न करोति। तर्हि एनं निर्वादैः परिनिष्ठितैर्दूतैर्निर्वदेत् परिनिष्ठां प्रापयेत्। साम्ना दानेन वा तं पर्यवस्थापयेदित्यर्थः। 'निर्वादः स्यात् परीवादे परिनिष्ठितवादयोः' इति **विश्वः**। अन्ततः फलतः तत् शत्रोर्वशीकरणं भविष्यति॥ ३७॥ तत्रोपायमाह— **निर्वादादिति**। एवं परिनिष्ठिततया आस्पदं स्थानं प्राप्तं चेत् शत्रुणाऽनुपद्रुतस्य धनवृद्ध्यादिकं सर्वं सेत्स्यतीत्यर्थः॥ ३८॥ स्खलितार्थं च्युतधनं न आश्वसन्ते इति छेदः। विश्वासं न कुर्वन्तीत्यर्थः॥ ३९॥ संभाव्यमेवैतदित्युपहासः। असंभावितमेतत् यच्छत्रौ विश्वासं कृत्वाऽपि राज्यं प्राप्नुयादिति॥ ४०॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३५॥

१३६

**नैवेति**। दरो भयं जातु कदाचित् दीर्णो भीतः॥१॥ महीमिति पाठे महीस्थान् लोकान्॥ २॥ अपरे स्वीयाः। प्राजिहीर्षन्ति प्रहर्तुं ताडितुमिच्छन्ति॥ ३॥ इलाः धेनवः 'इला धेनुः सहवत्सा न आगात्' इति मन्त्रवर्णात् ४॥ ते तवापि सुहृदः सन्ति॥ ५॥ ये राष्ट्रमस्मदीयमिदमस्माभी रक्षणीयं राजा च व्यसनादुद्धर्तव्य इति अभिमन्यन्ते अभिमानवन्तः। मा दीदरः मा विदारय॥६॥ समाश्वासं धैर्यम्॥ ७॥

तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः ।
इष्टं जिहीर्षतः किञ्चित्सचिवाः शत्रुकर्शन ॥ ११
यस्यास्त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वाऽपि स्वल्पचेतसः ।
तमस्त्वपागमत्तस्य सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥ १२

पुत्र उवाच ।

उदके भूरियं धार्या मर्तव्यं प्रवणे मया ।
यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतिदर्शिनी ॥ १३
अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम् ।
किञ्चित् किञ्चित् प्रतिवदंस्तूष्णीमासं मुहुर्मुहुः ।
अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल्लब्धस्य बान्धवात् ।
उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमार्थं जयाय च ॥ १५

कुन्त्युवाच ।

सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः ।
तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ १६
इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम् ।
राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् १७
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥ १८
इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च ।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९
विद्याशूरं तपःशूरं दानशूरं तपस्विनम् ।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च संमतम् ।
अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम् ।
धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ २१
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।
ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासनसमाप्तौ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

## १३७

कुन्त्युवाच ।

अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके ।
उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता ॥ १
अथान्तरिक्षे वागासीद्दिव्यरूपा मनोरमा ।
सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः ॥ २
एष जेष्यति सङ्ग्रामे कुरून् सर्वान् समागतान् ।
भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति ॥ ३
पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत् ।
हत्वा कुरूंश्च सङ्ग्रामे वासुदेवसहायवान् ॥ ४
पित्र्यमंशं प्रनष्टं च पुनरप्युद्धरिष्यति ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति ५
स सत्यसन्धो बीभत्सुः सव्यसाची यथाऽच्युत ।
तथा त्वमेव जानासि बलवन्तं दुरासदम् ॥ ६
तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत ।
धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति ॥ ७
त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ।
नाहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत ॥ ८
नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः ।
एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥ ९
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः ॥ १०
विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति
यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ ११

---

स्वल्पचेतसोऽपि तस्य तमोऽपागमदिति सम्बन्धः ॥ १२ ॥ उदके मज्जन्तीव भूः पित्र्यं राज्यम् । धूरितिपाठेऽपि स एवार्थः । इयं मया धार्या मम राज्यं वा उद्धर्तव्यं प्रवणे प्रपाते वा युद्धाख्ये वा मर्तव्यं न तु एवमेव निर्व्यापारेण स्थेयम् । नेत्री शिक्षयित्री ॥ १३ ॥ अपरापरमपरमपरं उत्तरोत्तरमिति यावत् । प्रतिवदन् प्रतिकूलं वदन् आयसं हृदयं तवेति पुत्रे निःस्नेहासीत्यादि॥१४॥ बान्धवात् बन्धुतः उद्यच्छामि उद्यमं करोमि नियमार्थं निग्रहार्थं बान्धवानिति पाठे उद्यच्छामि धारयामि ॥ १५ ॥ पुंसवनं पुत्रप्रसवकरम् । वीराणामाजननं येन तद्वीराजननं प्रजायते जनयति ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३६

१३७

**अर्जुनमिति** ॥ १ ॥ उद्वर्तयिष्यति आकुलीकरिष्यति लोकं शत्रुजनम् ॥ ३ ॥ मेधान् अश्वमेधान् ॥ ५ ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम्
युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि ।
यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत्त्वमवर्तिथाः ॥ १३
माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ ।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ॥
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥ १५
यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम् ।
पाञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत् क्षन्तुमर्हति ॥
न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चापि पराजयः ।
प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद्दुःखकारणम् ॥ १७
यत्र सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा ।
अश्रौषीत् परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं महत् १८
स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाध्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती १९
तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर ॥ २०
विदितं हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् २१
तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभागता ।
दुःशासनश्च यद्भीमं कटुकान्यभ्यभाषत ॥ २२
पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारयेः पुनः ।
पाण्डवान् कुशलं पृच्छेः सपुत्रान् कृष्णया सह ।
मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान् मे प्रतिपालय ॥ २४

वैशम्पायन उवाच ।

अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः ॥ २५
ततो विसर्जयामास भीष्मादीन् कुरुपुङ्गवान् ।
आरोप्याथ रथे कर्णं प्रायात् सात्यकिना सह ॥
ततः प्रयाते दाशार्हे कुरवः संगता मिथः ।
जजल्पुर्महदाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम् ॥ २७
प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशवशीकृता ।
दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैतदस्तीति चाब्रुवन् ॥
ततो निर्याय नगरात् प्रययौ पुरुषोत्तमः ।
मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥ २९
विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः ।
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ ३०
ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः ।
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः ॥ ३१
ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः ।
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

## १३८

वैशम्पायन उवाच

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य संनिधौ ॥
वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम् ॥ २
तत् करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य संमतम् ।
न हि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव ॥ ३
क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा ।
सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव ॥ ४
कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम् ।
गाण्डीवं चेषुधी चैव रथं च ध्वजमेव च ॥ ५

---

धर्मोपचायिनां धर्मवर्धनशीलानाम् ॥ १६ ॥ पदवीं चर मार्गमनुसर शत्रुस्त्रीणां वैधव्यार्थं यतस्वेत्यर्थः ॥ २० ॥ परां गतिं मरणम् ॥ २१ ॥ नैतदस्ति राष्ट्रमिति शेषः २८ ॥ निर्याय निर्गत्य ॥ २९ ॥ उपप्लव्यं विराटनगरम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

१३८

कुन्त्या इति ॥ १ ॥

नकुलं सहदेवं च बलवीर्यसमन्वितौ ।
सहायं वासुदेवं च नक्षंस्यति युधिष्ठिरः ॥ ६
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता ।
विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः ॥ ७
दानवा घोरकर्माणो निवातकवचा युधि ।
†रौद्रमस्त्रं समादाय दग्धा वानरकेतुना ॥ ८
कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वं चापि कवची रथी ।
मोक्षितो घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम्§ ।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ ९
रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गताम् ।
ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक्शुचिः॥
तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् ।
दृष्टश्च त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः ॥ ११
प्रशान्तभ्रुकुटिः श्रीमान् कृता शान्तिः कुलस्य नः
तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम् ॥१२
अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिन्दम ।
अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः ॥ १३
प्रतिगृह्णातु सौहार्दात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः ॥ १४
परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः ।
कम्बुग्रीवो *गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः १५
अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १६
आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि ।
तौ च त्वां गुरुवत्प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥
मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः ।
संगच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं संत्यज्य पार्थिव ॥
प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह ।
समालिङ्ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥१९
अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु वारणम् ।
ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥ २०
ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः ।
उत्पाता विविधा वीर दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः २१
विशेषत इहास्माकं निमित्तानि निवेशने ।
उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥ २२
वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ।
गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥ २३
नगरं न यथापूर्वं तथा राजनिवेशनम् ।
शिवाश्चाशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥
कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम् ।
त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च ॥
न चेत्करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्शन ।
तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम्॥२६
भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे ।
श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निःस्वनं
यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

## १३९

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ।
संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किंचिद्व्याजहार ह ॥ १
तं वै विमनसं दृष्ट्वा संप्रेक्ष्यान्योन्यमन्तिकात् ।
पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥ २

भीष्म उवाच ।

शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् ।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम् ॥ ३

द्रोण उवाच ।

अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनञ्जये ।
बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे ॥ ४

---

प्रशाम्य प्रशमं कुरु ॥ ९ ॥ आश्विनेयौ अश्विनोः पुत्रौ नकुलसहदेवौ ॥ १७ ॥ वारणं प्रतिषेधम् ॥ २० ॥ दीप्तां दिशामिति दिग्दाहाख्य उत्पात उक्तः ॥ २४ ॥ शुष्मिणः बलिनः अपसव्यं विपरीतम्। यदि निर्घातसदृशमिति पाठे निर्घातसदृशं वज्रपाततुल्यम् ॥ २७ ॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भा० भा० अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥
† रौद्रं रुद्रस्य संबन्धि । पाशुपतास्त्रमित्यर्थः । § निदर्शनं दृष्टान्तः । * गुडाका धनुर्विद्या तस्या ईशः ।

१३९

एवमिति ॥ १ ॥

तं च पुत्रात् प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनञ्जयम् ।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५
यस्य लोके समो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः ।
मत्प्रसादात् स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥ ६
मित्रध्रुग्दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः ।
न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः ॥ ७
वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति ।
चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥८
मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनुप्रिये ।
अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम ॥ ९
त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च ।
वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिमन्यसे ॥ १०
अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि ।
सग्राहनक्रमकरं गङ्गावेगमिवोष्णगे ॥ ११
वाससैव यथा हि त्वं प्रावृण्वानोऽभिमन्यसे ।
स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद्यौधिष्ठिरीं श्रियम्
द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम् ।
वनस्थमपि राज्यस्थः पाण्डवं को विजेष्यति १३
निदेशे यस्य राजानः सर्वे तिष्ठन्ति किङ्कराः ।
तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥ १४
कुबेरसदनं प्राप्य ततो रत्नान्यवाप्य च ।
स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः
दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः ।
आवयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥ १६
त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च
विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद्व्यसनमाप्स्यसि ॥ १७
द्रौपदी यस्य चाशास्ते विजयं सत्यवादिनी ।
तपोघोरव्रता देवी कथं जेष्यसि पाण्डवम् १८
मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनञ्जयः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम् १९
सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः ।
तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ २०
पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत्कार्यं भूतिमिच्छता ।
सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥ २१
अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये ।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च पराभवम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

## १४०

धृतराष्ट्र उवाच ।
राजपुत्रैः परिवृतस्तथा भृत्यैश्च सञ्जय ।
उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः ॥ १
किमब्रवीदमेयात्मा राधेयं परवीरहा
कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान् २
उद्यन्मेघस्वनः काले कृष्णः कर्णमथाब्रवीत् ।
मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
आनुपूर्व्येण वाक्यानि तीक्ष्णानि च मृदूनि च ।
प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च ४
हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः ।
यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत ॥ ५
वासुदेव उवाच ।
उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ॥ ६
त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान् ।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥ ७

पूजां न लभते हे दुर्योधन त्वद्वत् ॥ ७ ॥ एते पाण्डवास्त्वया मिथ्योपचरिता अपि अनु पश्चात्प्रिये वर्तमाना हि प्रसिद्धं तव तु दोषाः द्वेषादयः अहितत्वाय वैरभावाय कल्पन्ते ॥ ९ ॥ उष्णगे उष्णातिगमे वर्षाकाले ॥ ११ ॥ वास एवेति पाठे वासगृहे । पाठान्तरे त्यक्तं वासो वस्त्रं परकीयं स्वीयमिति मन्यसे इति योज्यम् ॥ १२ ॥ ऐलविलं कुबेरमासाद्य रणे प्राप्य ॥१४॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

१४०

राजपुत्रैरिति ॥ १ ॥

कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते ।
वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥ ८
सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥ ९
पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः ।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥ १०
मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः ।
अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ११
पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः ॥ १२
राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थे समागताः ।
पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चान्धकवृष्णयः ॥ १३
हिरण्मयांश्च ते कुम्भान्राजतान् पार्थिवांस्तथा ।
ओषध्यः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः ॥ १४
राजन्या राजकन्याश्चाप्यानयन्त्वाभिषेचनम् ।
षष्ठे त्वां च तथा काले द्रौपद्युपगमिष्यति ॥
अग्निं जुहोतु वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः ।
अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥ १६
पुरोहितः पाण्डवानां ब्रह्मकर्मण्यवस्थितः ।
तथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ १७
द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा ।
अहं च त्वाऽभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ॥
युवराजोऽस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ १९
उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रं च ते महाश्वेतं भीमसेनो महाबलः ॥ २०
अभिषिक्तस्य कौन्तेयो धारयिष्यति मूर्धनि ।
किङ्किणीशतनिर्घोषं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ २१
रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति ।
अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति २२
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये ।
पञ्चालाश्चानुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः २३
अहं च त्वाऽनुयास्यामि सर्वे चान्धकवृष्णयः ।
दाशार्हाः परिवारास्ते दाशार्णाश्च विशाम्पते २४
भुङ्क्ष्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो मङ्गलैश्च पृथग्विधैः ॥ २५
पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः ।
आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा २६
स्तुवन्तु त्वां च बहुभिः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।
विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥ २७
स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय २८
मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।
सौभ्रात्रं चैव तेऽद्यास्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः २९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

## १४१

कर्ण उवाच ।
असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव ।
सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च ॥
सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥ २
कन्या गर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन ।
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥ ३
सोस्मि कृष्ण तथा जातः पांडोः पुत्रोस्मि धर्मतः
कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥
सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद्गृहान् ।
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ॥ ५
मत्स्नेहाच्चैव राधायां सद्यः क्षीरमवातरत् ।
सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ॥ ६
तस्याः *पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् ।
धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥ ७
तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम् ।
पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा ॥ ८

---

कानीनो द्विविधः सहोढः विवाहादूर्ध्वं जातः विवाहात् प्राग्जातश्च तन्मातुर्वोढारं तस्य पितरं प्राहुः॥८॥इति श्रीम० उद्यो०नैल०भा०भा०चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः१४०

१४१

असंशयमिति ॥१॥ * पिण्डो ग्रासः व्यपनयोऽपहारः । अपोषणेन परित्याजनमित्यर्थः ।

स हि मे जातकर्मादि कारयामास माधव।
शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥ ९
नाम वै वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः।
भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तत्परिग्रहात् ॥ १०
तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन।
तासु मे हृदयं कृष्ण सञ्जातं कामबन्धनम् ॥ ११
न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः।
हर्षाद्भयाद्वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥१२
धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात्।
मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ १३
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैः सह सूतैर्मयाऽसकृत्।
आवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैर्मया कृताः ॥ १४
मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पाण्डवैः ॥ १५
तस्माद्रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत।
वृतवान् परमं कृष्ण प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥ १६
वधाद्बन्धाद्भयाद्वाऽपि लोभाद्वाऽपि जनार्दन।
अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १७
यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथं सव्यसाचिना।
अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥
असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन।
सर्वं च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः ॥१९
मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन।
एतदत्र हितं मन्ये सर्वं यादवनन्दन ॥ २०
यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥२१
प्राप्य चापि महद्राज्यं तदहं मधुसूदन।
स्फीतं दुर्योधनायैव संप्रदद्यामरिन्दम ॥ २२
स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः।
नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ॥
पृथिवी तस्य राष्ट्रं च यस्य भीमो महारथः।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥ २४
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः।
उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सौमकिः ॥
चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चापराजितः।
इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा।
इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तिभोजो महामनाः ॥ २६
मातुलो भीमसेनस्य श्येनजिच्च महारथः।
शङ्खः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वं च जनार्दन ॥
महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः।
राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ २८
धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति।
अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥२९
आध्वर्यवं च ते कृष्ण क्रतावस्मिन् भविष्यति।
होता चैवात्र बीभत्सुः सन्नद्धः स कपिध्वजः ॥
गाण्डीवं स्रुक् तथा चाज्यं वीर्यं पुंसां भविष्यति
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं च माधव।
मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥
अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे।
गीतं स्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक् तत्र भविष्यति॥
उद्गाताऽत्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः।
विनदन् स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद्रणे ॥ ३३
स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद्राजा युधिष्ठिरः।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥ ३४
शङ्खशब्दाः समुरजा भेर्यश्च मधुसूदन।
उत्कृष्टसिंहनादश्च सुब्रह्मण्यो भविष्यति ॥ ३५
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ।
शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक् तत्र भविष्यतः॥

आवाहाः कुलधर्माः। आवापा इति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ १४ ॥ मां च मित्रमिति शेषः। शस्त्रसमुद्यमो युद्धोत्साहः ॥ १५ ॥ वधात् वधं प्राप्यापि बन्धात् निर्बन्धात् कुन्तीसंबन्धाद्वा। भयात् पराजयभयात् ॥ १७ ॥ उभयोरपि अकीर्तिः उभाभ्यामपि अन्योन्यवधस्य प्रतिज्ञातत्वात् ॥ १८ ॥ ब्रूयास्त्वं पाण्डवान् प्रतीति शेषः। त्वद्वशित्वात् त्वमेव वशी नियामको येषां तेषां भावस्तत्त्वं ततः ॥१९॥ मन्त्रस्य 'कर्णः कुन्तीसुतः' इत्येवंविधस्य आवयोर्गुप्तपरिभाषणस्य नियमं गोपनं युधिष्ठिरेऽप्रकाशनामिति यावत् ॥ २० ॥ अन्यथा बाधकमाह— **यदीति** ॥ २१ ॥ इष्टापत्तिमाशङ्क्याह--**प्राप्येति**। अधार्मिष्ठस्य दुर्योधनस्य राज्यं लोकनाशकरमिति भावः ॥ २२ ॥ इन्द्रगोपकः वर्षासु प्रचलन् रक्तजंतुस्तद्वर्णास्ताम्रा इत्यर्थः। इन्द्रायुधं इंद्रधनुः ॥ २६ ॥ निधिस्त्वं च जनार्दन निधिरिवाक्षयः कामपूरकः ॥ २७ ॥ समुदानयः समुदायीकरणम् ॥ २८ ॥ अस्य यज्ञस्य वेत्ता उपद्रष्टा ॥२९॥ आध्वर्यवं यज्ञस्य नेतृत्वम्। लोके हि उपद्रष्टाऽन्योऽध्वर्युरन्यो दृश्यते। अत्र तु त्वमेव ईश्वररूपेण कर्ता ब्रह्मरूपेण साक्षी चेति भावः ॥३०॥ अनुयातोऽनुगतः पितृसम इत्यर्थः। गीतं स्तोत्रं प्रगीतमन्त्रप्रसाध्यां स्तुतिम्। उद्गातृकर्मेत्यर्थः। तत् सौभद्रः भविष्यति अनुभविष्यति करिष्यतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ कारयिष्यति स्वार्थे णिच्। करिष्यतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ नाद एव सुब्रह्मण्यो युद्धयज्ञे भोक्तुः कालस्याऽऽवाहनकर्ता ॥ ३५ ॥ शामित्रं क्षत्रियपशूनां मारणम् ॥ ३६ ॥

कल्माषदण्डा गोविंद विमला रथपङ्क्तयः ।
यूपाः समुपकल्पन्तामस्मिन् यज्ञे जनार्दन ॥ ३७
कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः ।
तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥३८
असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ।
हविस्तु रुधिरं कृष्ण तस्मिन् यज्ञे भविष्यति ॥
इध्माः परिधयश्चैव शक्तयो विमला गदाः ।
सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ ४०
इषवोऽत्र परिस्तोमा मुक्ता गाण्डीवधन्वना ।
महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥ ४१
प्रतिप्रास्थानिकं कर्म सात्यकिस्तु करिष्यति ।
दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चास्य महाचमूः॥४२
घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः ।
अतिरात्रे महाबाहो विततें यज्ञकर्मणि ॥ ४३
दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
वैतानिके कर्ममुखे जातो यत्कृष्ण पावकात् ४४
यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान् ।
प्रियार्थं धार्तराष्ट्रस्य तेन तप्ये ह्यकर्मणा ॥ ४५
यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना ।
पुनश्चितिस्तदा चास्य यज्ञस्याथ भविष्यति ४६
दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पाण्डवः ।
आनर्दं नर्दतः सम्यक् तदा सूत्यं भविष्यति ॥४७
यदा द्रोणं च भीष्मं च पाञ्चाल्यौ पातयिष्यतः ।
तदा यज्ञावसानं तद्भविष्यति जनार्दन ॥ ४८
दुर्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः ।
तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्तराष्ट्रस्य माधव ॥ ४९
स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य सङ्गताः ।
हतेश्वरा नष्टपुत्रा हतनाथाश्च केशव ॥ ५०
रुदन्त्यः सह गान्धार्या श्व-गृध्र-कुररकुले ।
स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्दन ॥ ५१
विद्यावृद्धा वयोवृद्धाः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।
वृथा मृत्युं न कुर्वीरंस्त्वत्कृते मधुसूदन ॥ ५२
शस्त्रेण निधनं गच्छेत् समृद्धं क्षत्रमण्डलम् ।
कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे त्रैलोक्यस्यापि केशव ॥ ५३
तदत्र पुण्डरीकाक्ष विधत्स्व यदभीप्सितम् ।
यथा कार्त्स्न्येन वार्ष्णेय क्षत्रं स्वर्गमवाप्नुयात् ५४
यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन ।
तावत् कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति
ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम् ।
समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥ ५६
समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव ।
मन्त्रसंवरणं कुर्वन्नित्यमेव परंतप ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

---

काल्माषदंडाश्चित्रध्वजाः ॥ ३७ ॥ कर्णिप्रभृतयो वत्स दन्तान्ताः उपबृंहणाः अध्वर्योः सोमाहुतिप्रक्षेपकाले सहायाश्चमसाध्वर्यव इत्यर्थः । सोमकलशाः सोमरसग्रहणपात्राणि । तोमराः तोमरच्छायाः । पवित्राणि सोमोत्पवनसाधनानि बाणोत्क्षेपणसाम्यात् धनूंषि ॥ ३८ ॥ कपालानि शिरःपुरोडाशपाचकानि खर्परशकलानि हविः सोमाज्यपयोरूपम् ३९॥ इध्माः अग्निसमिन्धनार्थाः समिधः शक्तयः। परिधयः अग्नेः परितः आहुतिरक्षणार्थं स्थापितानि काष्ठानि गदाः ॥ ४० ॥ परिस्तोमाः सोमचमसादयः ॥ ४१ ॥ प्रतिप्रस्थाताऽध्वर्योस्तव द्वितीयः तस्य कर्म प्रतिप्रास्थानिकम् ॥ ४२ ॥ अतिरात्रे क्रतौ श्लेषेण निशीथे च घटोत्कचः रात्रिचरत्वात् शामित्रं करिष्यति ॥ ४३ ॥ वैतानिके वितानोऽग्नीनां विस्तरः तत्र विदिते वैतानिके श्रौतयज्ञे कर्ममुखे कर्मप्रभवे द्वारे कर्मैव मुखं निर्गमद्वारं यस्मिन्न तु योनिः तस्मिन् ॥ ४४ ॥ पाण्डवेषु स्नेहं दर्शयति—यदब्रुवमिति ॥ ४५ ॥ पुनश्चितिर्यज्ञानन्तरं चयनारंभो यज्ञविशेषेषूक्तः ॥ ४६ ॥ आनर्दं महानादं नर्दतः णमुलन्तं पूर्वपदं सूत्यं सोमाभिषवः राजसूयसूर्येति निपातनात् उपपदयोगस्त्वनित्यः आर्षो वा । तदभावेऽपि सुत्रः क्यप् दीर्घश्च । सुत्यमित्यपि पठन्ति ॥ ४७ ॥ यज्ञावसानं यज्ञस्य मध्ये मध्ये विरम्यावस्थानम् ॥ ४८ ॥ प्रस्नुषाः स्नुषाणामपि स्नुषाः संगता एकीभूता हतेश्वराः ईश्वरो राजा । नाथः पतिः ॥५०॥ स्नुषादयो यद्रुदंत्योऽश्रुभिरार्द्रदेहाः स एवार्द्रीभावोऽवभृथ इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ इदं युद्धं श्रेय एवेत्याह—विद्येति । वृथा अयुद्धेन ॥ ५२ ॥ समागमेषु संग्रामेषु यशो जयः पराक्रमेण मृत्युर्वा तदेव क्षत्रियाणां धनम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

## १४२

सञ्जय उवाच ।
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
उवाच प्रहसन् वाक्यं स्मितपूर्वमिदं यथा ॥ १
श्रीभगवानुवाच ।
अपि त्वां न लभेत् कर्ण राज्यलंभोपपादनम् ।
मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि २
ध्रुवो जयः पाण्डवानामितीदं
न संशयः कश्चन विद्यतेऽत्र ।
जयध्वजो दृश्यते पाण्डवस्य
समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ॥ ३
दिव्या माया विहिता भौमनेन
समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा ।
दिव्यानि भूतानि जयावहानि
दृश्यन्ति चैवात्र भयानकानि ॥ ४
न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य
ऊर्ध्वं तिर्यग्योजनमात्ररूपः ।
श्रीमान् ध्वजः कर्ण धनञ्जयस्य
समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः ॥ ५
यदा द्रक्ष्यसि सङ्ग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चाप्यग्निमारुते ॥ ६
गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ७
यदा द्रक्ष्यसि सङ्ग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥ ८
आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम् ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ९
यदा द्रक्ष्यसि सङ्ग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥ १०
प्रभिन्नमिव मातङ्गं प्रतिद्विरदघातिनम् ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ११
यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।
सुयोधनं च राजानं सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ १२
युद्धायापततस्तूर्णं वारितान् सव्यसाचिना ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १३
यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ ।
वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव १४
विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १५
ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।
सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥ १६
सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः ।
निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः १७
सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति ।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥
तथा राज्ञो वदेः सर्वान् ये युद्धायाभ्युपागताः ।
यद्वो मनीषितं तद्वै सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥ १९
राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम् २०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे भगवद्वाक्ये द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

### १४२

**कर्णस्येति** ॥ १ ॥ राज्यलंभोपपादनं राज्यप्राप्त्युपायस्त्वां न लभेत् न स्पृशेत् तं न स्वीयं मन्यसे इत्यर्थः ॥ २ ॥ भौमनेन विश्वकर्मणा दृश्यन्ति पश्यन्ति । स्वार्थयगन्तोऽयं कंड्वादेराकृतिगणत्वात् । अत्र ध्वजे ॥ ४ ॥ अग्निमारुते आग्नेयं मारुतं च ॥ ६ ॥ **न तदेति** । कृते हि सर्वे कृतकृत्या एवेति न. त्रिवर्गं कश्चिदपेक्षते । त्रेतायां तु धर्मप्राधान्येनार्थकामावानुषंगिकत्वेन चापेक्षन्ते । द्वापरे तु अर्थकामौ प्राधान्येन धर्मं च तदंगत्वेन । तत्र कृतं न भवितेति मोक्षात् भ्रंश उक्तः । **न त्रेतेति** । धर्माद्भ्रंश उक्तः । स च दुर्योधनादीनामस्त्येव । द्वापरं न भवितेति तेषामर्थकामावपि न भविष्यतो युद्धेन मरणस्यावश्यंभावादित्यर्थः ॥ ७ ॥ रथारुजौ रथभञ्जकौ ॥ १५ ॥ सौम्यः चन्द्रिकया अभिरामः ॥ १६ ॥ संग्रामः संग्रामसाधनकलापः युज्यतां एकीभूयावतिष्ठतां संग्रामारंभस्तु दिनान्तरे एवेति वक्ष्यते ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

## १४३

सञ्जय उवाच ।

केशवस्य तु तद्वाक्यं कर्णः श्रुत्वाऽऽहितः शुभम्
अब्रवीदभिसंपूज्य कृष्णं तं मधुसूदनम् ॥ १
जानन् मां किं महाबाहो संमोहयितुमिच्छसि ।
योऽयं पृथिव्याः कार्त्स्न्येन विनाशः समुपस्थितः
निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ ३
असंशयमिदं कृष्ण महद्युद्धमुपस्थितम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥ ४
राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम्॥
स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन ।
निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः॥
पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे ।
शंसन्त इव वार्ष्णेय विविधा रोमहर्षणाः ॥ ७
प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः ।
शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम् ८
कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन ।
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संगमयन्निव ॥ ९
नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम् ।
विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥ १०
सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च ।
दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः॥
निष्टनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः ।
पानीयं यवसं चापि नाभिनन्दन्ति माधव ॥ १२
प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम् ।
निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥ १३
अल्पे भुक्ते पुरीषं च प्रभूतमिह दृश्यते ।
वाजिनां वारणानां च मनुष्याणां च केशव ॥
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन ।
पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १५
प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते ।
प्रदक्षिणा मृगाश्चैव तत्तेषां जयलक्षणम् ॥ १६
अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत् पराभवलक्षणम् ॥
मयूराः पुण्यशकुना हंस-सारस-चातकाः ।
जीवंजीवकसङ्घाश्चाप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥
गृध्राः कङ्का बकाः श्येना यातुधानास्तथा वृकाः
मक्षिकाणां च सङ्घाता अनुधावन्ति कौरवान्॥
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु भेरीणां नास्ति निःस्वनः ।
अनाहताः पाण्डवानां नदन्ति पटहाः किल ॥२०
उदपानाश्च नर्दन्ति यथा गोवृषभास्तथा ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तत् पराभवलक्षणम् ॥ २१
मांसशोणितवर्षं च वृष्टं देवेन माधव ।
तथा गन्धर्वनगरं भानुमत्समुपस्थितम् ॥ २२
सप्राकारं सपरिखं सवप्रं चारुतोरणम् ।
कृष्णश्च परिघस्तत्र भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ २३
उदयास्तमने सन्ध्ये वेदयन्ती महद्भयम् ।
शिवा च वाशते घोरं तत् पराभवलक्षणम्॥ २४
एकपक्षाक्षिचरणाः पक्षिणो मधुसूदन ।
उत्सृजन्ति महद्घोरं तत् पराभवलक्षणम् ॥ २५

---

१४३

**केशवस्येति** । शुभं राज्यादिलाभं आहितः प्रवेशितः प्रलोभित इत्यर्थः ॥१॥ प्राजापत्यं रोहिणीनक्षत्रं प्रजानां पतिर्दुर्योधनस्तदीयं नाम नक्षत्रं उत्तराभाद्रपदाख्यमिति वा । तेन पत्युः पीडया प्राणिनामपि पीडेति युक्तम् । यद्वा पृथ्वीकूर्मोदरस्थां रोहिणीं शनैश्चरः पीडयति तेन मध्यदेशे महान् क्षयो राज्ञो नाशश्चेति भावः ॥८॥ **कृत्वा चेति** । ज्येष्ठामप्राप्य यदि भौमो वक्री भवेत्तर्हि ज्येष्ठस्य राज्ञो येऽमित्रभूतास्ते सर्वे नश्येयुरिति भावः । मैत्रं मित्रसमूहं संगमयन् नाशयन् । वैवस्वतं संगमनं जनानामित्यादौ संपूर्वस्य गमेर्मारणार्थत्वदर्शनात् ॥ ९ ॥ चित्रां ग्रहो महापाताख्यो ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धः । तेन राकारस्य वेधाद्राजजातीयानां क्षयो भवितेति भावः ॥१०॥ लक्ष्म व्यावृत्तं क्षीणत्वादमावास्यासान्निध्यात् क्षीणचन्द्रोऽपि पाप एव । तस्मिंश्चामावास्यायामर्केण युक्ते उभयोः शत्रुः सदा वक्री राहुरर्कं उपैति चेदयं कर्तरीयोगः । सोमवंश्यानां सूर्यवंश्यानां च राज्ञां क्षयकर इत्यर्थः। पुण्यशकुना हंसादय एव। पाठान्तरे पुण्यशकुनाः कुक्कुटाः जीवंजीवकाः पक्षिविशेषाः। ये जीवजीवेत्येवशब्दं कुर्वन्ति तेषां संघाश्चकोरादयः ॥ १८ ॥ पाठान्तरे बलाः काकाः ॥१९॥उदपानाः कूपादयो जलाशयाः ॥२१॥ गन्धर्वनगरं सप्राकारं परिघः परिवेषः तत्राकाशे गन्धर्वनगरोपर्येव॥२३॥ शिवा क्रोष्ट्री वाशते शब्दं करोति॥२४॥ एकपक्षाक्षिचरणाः पक्षिणो महाराष्ट्रभाषायां 'पांकोळी' इति प्रसिद्धाः । घोरं बभित्सं मलमूत्रादिकमित्यर्थः ॥२५॥

कृष्णग्रीवाश्च शकुना रक्तपादा भयानकाः ।
सन्ध्यामभिमुखा यान्ति तत् पराभवलक्षणम् २६
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि गुरूंश्च मधुसूदन ।
भृत्यान् भक्तिमतश्चापि तत् पराभवलक्षणम् २७
पूर्वा दिग्लोहिताकारा शस्त्रवर्णा च दक्षिणा ।
आमपात्रप्रतीकाशा पश्चिमा मधुसूदन ।
उत्तरा शंखवर्णाभा दिशां वर्णा उदाहृताः ॥ २८
प्रदीप्ताश्च दिशः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
महद्भयं वेदयन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥ २९
सहस्रपादं प्रासादं स्वप्नान्ते स्म युधिष्ठिरः ।
अधिरोहन्मया दृष्टः सह भ्रातृभिरच्युत ॥ ३०
श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे वै शुक्लवाससः ।
आसनानि च शुभ्राणि सर्वेषामुपलक्षये ॥ ३१
तव चापि मया कृष्ण स्वप्नान्ते रुधिराविला ।
अन्त्रेण पृथिवी दृष्टा परिक्षिप्ता जनार्दन ॥ ३२
अस्थिसंचयमारूढश्चामितौजा युधिष्ठिरः ।
सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान् घृतपायसम् ॥ ३३
युधिष्ठिरो मया दृष्टो ग्रसमानो वसुन्धराम् ।
त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम् ॥
उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः ।
गदापाणिर्नरव्याघ्रो ग्रसन्निव महीमिमाम् ॥ ३५
क्षपयिष्यति नः सर्वान् स सुव्यक्तं महारणे ।
विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३६
पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनञ्जयः ।
त्वया सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ३७
यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः ।
पार्थिवान् समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥ ३८
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
शुक्लकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृताः ॥ ३९
अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम् ।
त्रय एते मया दृष्टाः पाण्डुरच्छत्रवाससः ॥ ४०
श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन ।
धार्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान् विजानीहि केशव ॥ ४१
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः॥४२
उष्ट्रप्रयुक्तमारूढौ भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेण वा विभो॥ ४३
अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन ।
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥ ४४
अहं चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम् ।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः ॥

कृष्ण उवाच ।

उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुन्धरा ।
यथा हि मे वचः कर्ण नोपैति हृदयं तव ॥ ४६
सर्वेषां तात भूतानां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ४७

कर्ण उवाच ।

अपि त्वां कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात्
समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षत्रविनाशनात् ॥ ४८
अथवा सङ्गमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम् ।
तत्रेदानीं समेष्यामः पुनः सार्धं त्वयाऽनघ॥ ४९

सञ्जय उवाच ।

इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम् ।
विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥ ५०
ततः स्वरथमास्थाय जाम्बूनदविभूषितम् ।
सहास्माभिर्निववृते राधेयो दीनमानसः ॥ ५१
ततः शीघ्रतरं प्रायात् केशवः सहसात्यकिः ।
पुनरुच्चारयन् वाणीं याहि याहीति सारथिम् ५२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे कृष्णकर्णसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

---

सहस्रपादं सहस्रस्तंभम् ॥ ३० ॥ तव पृथिवीति सम्बन्धः त्वच्छरीरमित्यर्थः । परिक्षिप्ता परिवेष्टिता ॥ ३२ ॥ वसुन्धरां ग्रसमानो मृद्भक्षणं कुर्वन् ॥ ३३ ॥ शुक्लानि मौक्तिकमयत्वात् केयूराणि बाहुभूषणानि कण्ठत्राणि कण्ठपूरकाख्यानि शिरोदेशमारभ्य अंसपर्यन्तं लम्बमानानि कण्ठाभरणानि येषां ते शुक्लकेयूरकण्ठत्राः ॥ ३९ ॥ तव हृदयं कर्तृ मम वचो नोपैति नाङ्गीकरोति ॥ ४६ ॥ पीडितं यथा स्यात्तथा गाढं परिष्वज्येत्यर्थः ॥ ५० ॥ **इतिकरणे**–कर्णोपनिवादः कर्णस्य भेदनम् । इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

## १४४

वैशम्पायन उवाच ।

असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान् गते ।
अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाब्रवीत्॥ १
जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे ।
क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः ॥ २
उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः ।
भीमार्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि ॥ ३
उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः ।
काङ्क्षते ज्ञातिसौहार्दाद्बलवान् दुर्बलो यथा ॥ ४
राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति ।
मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते ॥ ५
जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च ।
सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथो भेदः प्रपत्स्यते ॥ ६
अधर्मेण हि धर्मिष्ठं कृतं वै कार्यमीदृशम् ।
येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति ॥ ७
क्रियमाणे बलाद्धर्मे कुरुभिः को न सञ्ज्वरेत् ।
असाम्ना केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः॥ ८
ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः ।
चिन्तयन्न लभे निद्रामहःसु च निशासु च ॥ ९
श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम् ।
सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह१०
धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महान् ज्ञातिवधः कृतः ।
वर्त्स्यते सुहृदां चैव युद्धेऽस्मिन् वै पराभवः११
पाण्डवाश्चेदिपञ्चाला यादवाश्च समागताः ।
भारतैः सह योत्स्यन्ति किं नु दुःखमतः परम्॥
पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथाऽयुद्धे पराभवम् ।
अधनस्य मृतं श्रेयो न हि ज्ञातिक्षयो जयः ॥ १३
इति मे चिन्तयन्त्या वै हृदि दुःखं प्रवर्तते ।
पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ॥ १४
कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थं वर्धयन्ति भयं मम ।
नाचार्यः कामवान् शिष्यैर्द्रोणो युद्ध्येत जातुचित्
पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः ।
अयं त्वेको वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १६
मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान् ।
महत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांश्च विशेषतः ॥ १७
कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति संप्रति ।
आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान् प्रति१८
प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम् ।
तोषितो भगवान् यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ॥ १९
आह्वानं मन्त्रसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेश्मनि ।
साऽहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तिभोजपुरस्कृता ॥ २०
चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता ।
बलाबलं च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम्२१
स्त्रीभावाद्बलभीवाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः ।
धात्र्या विस्रब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा॥ २२
दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारित्र्यरक्षिणी ।
कथं न सुकृतं मे स्यान्नापराधवती कथम् ॥ २३
भवेयमिति सञ्चिन्त्य ब्राह्मणं तं नमस्य च ।
कौतूहलात्तु तं लब्ध्वा बालिश्यादाचरं तदा ।
कन्या सती देवमर्कमासादयमहं ततः ॥ २४
योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत् परिरक्षितः ।
कस्मान्न कुर्याद्वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ॥ २५
इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यनिश्चयमुत्तमम् ।
कार्यार्थमभिनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ॥ २६
आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसङ्गिनः ।
गङ्गातीरे पृथाऽश्रौषीद्वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥ २७

---

१४४

**असिद्धेति** । असिद्धानुनये विफलविनये ॥ १ ॥ क्रोशत इत्यनादरे षष्ठी ॥ २ ॥ उपप्लव्ये विराटनगरे ॥४॥ विधर्मे धर्महीने ॥ ५ ॥ **अधर्मेणेति** । हि यस्मात् येषां अधर्मेण कृतमपि वैकार्यं विकारजनकं वैरं ईदृशं चतुर्दशे वर्षे स्वं राज्यं प्राप्स्यथेति प्रतिज्ञाया अयथाकरणरूपं धर्मिष्ठं धर्मयुक्तमेव भवति । तेषामधर्मकृतमेव वैरं धर्मवद्भातीत्यर्थः । तेषामयं विकृतो धर्मः सानुबंधः सफलो भविष्यति । अधर्मफलं विनाशस्तेषां भविष्यत्येवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ बलाद्धर्मे पाखण्डिनां पारदार्यं उभयसंतोषकरमिति द्वयोरपि धर्महेतुरिति बलात्कल्पना शास्त्रबुद्धिर्भूता तद्वदयमपीत्यर्थः ॥८॥ अर्थकामेन हितकामेन ॥ १० ॥ कृतः निश्चितत्वात् कृत इव ॥ ११ ॥ पश्ये पश्यामि आर्षमात्मनेपदम् । अयुद्धे युद्धाभावे ॥ १३ ॥ तं लब्ध्वा मन्त्रं प्राप्य आचरं तेन मंत्रेण देवतावाहनाख्यं कार्यं कृतवती । आसादयं लब्धवती ॥२४॥ 'पुत्रवत् परिरक्षितः ' इत्यत्र कामं च परिवासित इति पाठे स्वेच्छया त्यक्त इत्यर्थः ॥ २५ ॥ कार्यार्थमवश्यकर्तव्यं प्रयोजनम् ॥ २६ ॥ घृणिनः दयालोः सत्यसंगिनः सत्यरतस्य ॥ २७ ॥

प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः ।
जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी ॥ २८
अतिष्ठत् सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवाससि ।
कौरव्यपत्नी वार्ष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥ २९
आपृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्य यतव्रतः ।
दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ३०
यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः ।
उत्स्मयन् प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ३१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे
चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

## १४५

कर्ण उवाच ।
राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये ।
प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १
कुन्त्युवाच ।
कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता ।
नासि सूतकुले जातः कर्ण तद्विद्धि मे वचः ॥ २
कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः ।
कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३
प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः ।
अजीजनत्त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४
कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः ।
जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥ ५
स त्वं भ्रातॄनसंबुद्ध्य मोहाद्यदुपसेवसे ।
धार्तराष्ट्रान्न तद्युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥ ६
एतद्धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये ।
यत्तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाप्येकदर्शिनी ॥ ७
अर्जुनेनार्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः ।
आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुङ्क्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ ८
अद्य पश्यन्ति कुरवः कर्णार्जुनसमागमम् ।
सौभ्रात्रेण समालक्ष्य संनमन्तामसाधवः ॥ ९
कर्णार्जुनौ वै भवतां यथा रामजनार्दनौ ।
असाध्यं किं नु लोके स्याद्युवयोः संहितात्मनोः ॥ १०
कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः ।
देवैः परिवृतो ब्रह्मा वेद्यामिव महाध्वरे ॥ ११
उपपन्नो गुणैः सर्वैर्ज्येष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु ।
सूतपुत्रेति मा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् १२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे
पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

## १४६

वैशम्पायन उवाच ।
ततः सूर्यान्निश्चरितां कर्णः शुश्राव भारतीम् ।
दुरत्ययां प्रणयिनीं पितृवद्भास्करेरिताम् ॥ १
सत्यमाह पृथा वाक्यं कर्ण मातृवचः कुरु ।
श्रेयस्ते स्यान्नरव्याघ्र सर्वमाचरतस्तथा ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्य मात्रा च स्वयं पित्रा च भानुना ।
चचाल नैव कर्णस्य मतिः सत्यधृतेस्तदा ॥ ३

---

उत्तरवाससि उत्तरीयवस्त्रच्छायायाम् ॥२९॥ आपृष्ठतापाद- पराङ्गपर्यन्तमित्यर्थः ॥३०॥ उत्स्मयन् उद्गतविस्मयः ॥३१॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

१४५

राधेय इति ॥१॥ एकं पुत्रमेव स्नेहेन पश्यन्ती एक- दर्शिनी ॥ ७ ॥ संनमन्तां प्रह्वा भवन्तु ॥ ९ ॥ भवेतां वर्धेतां संहितात्मनोः मिलितचेतसोः ॥ १० ॥ सूतपुत्रेति शब्दो माभूदिति शेषः ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशदधिक- शततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

१४६

तत इति ॥ १ ॥

कर्ण उवाच ।

न चैतच्छ्रद्दधे वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया ।
धर्मद्वारं ममैतत्स्यान्नियोगकरणं तव ॥ ४
अकरोन्मयि यत् पापं भवती सुमहात्ययम् ।
अपाकीर्णोऽस्मि यन्मातस्तद्यशःकीर्तिनाशनम् ५
अहं चेत्क्षत्रियो जातो न प्राप्तः क्षत्रसत्क्रियाम् ।
त्वत्कृते किं नु पापीयः शत्रुः कुर्यान्ममाहितम् ६
क्रियाकाले त्वनुक्रोशमकृत्वा त्वमिमं मम ।
हीनसंस्कारसमयमद्य मां समचूचुदः ॥ ७
न वै मम हितं पूर्वं मातृवच्चेष्टितं त्वया ।
सा मां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥ ८
कृष्णेन सहितात् को वै न व्यथेत धनञ्जयात् ।
कोऽद्य भीतं न मां विद्यात् पार्थानां समितिं गतम्
अभ्राता विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः ।
पाण्डवान् यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिष्यति
सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथासुखम् ।
अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥ ११
उपनह्य परैर्वैरं ये मां नित्यमुपासते ।
नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा ॥ १२
मम प्राणेन ये शत्रून् शक्ताः प्रतिसमासितुम् ।
मन्यन्ते ते कथं तेषामहं छिन्द्यां मनोरथम् ॥ १३
मया प्लवेन सङ्ग्रामं तितीर्षन्ति दुरत्ययम् ।
अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥ १४
अयं हि कालः संप्राप्तो धार्तराष्ट्रोपजीविनाम् ।
निर्वेष्टव्यं मया तत्र प्राणानपरिरक्षता ॥ १५
कृतार्थाः सुभृता ये हि कृत्यकाले ह्युपस्थिते ।
अनवेक्ष्य कृतं पापा विकुर्वन्त्यनवस्थिताः ॥ १६
राजकिल्बिषिणां तेषां भर्तृपिण्डापहारिणाम् ।
नैवायं न परो लोको विद्यते पापकर्मणाम् ॥ १७
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः ।
बलं च शक्तिं चास्थाय न वै त्वय्यनृतं वदे ॥१८
आनृशंस्यमथो वृत्तं रक्षन् सत्पुरुषोचितम् ।
अतोऽर्थकरमप्येतन्न करोम्यद्य ते वचः ॥ १९
न च तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति ।
वध्यान् विषह्यान् संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान्
युधिष्ठिरं च भीमं च यमौ चैवार्जुनादृते ।
अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥ २१
अर्जुनं हि निहत्याजौ संप्राप्तं स्यात् फलं मया ।
यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥ २२
न ते जातु न शिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि ।
निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥ २३
इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात् प्रवेपती ।
उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्णं धैर्यादकम्पनम् ॥ २४
एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यास्यन्ति कौरवाः ।
यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवं तु बलवत्तरम् ॥ २५
त्वया चतुर्णां भ्रातॄणामभयं शत्रुकर्शन ।
दत्तं तत् प्रतिजानीहि संगरप्रतिमोचनम् ॥ २६
अनामयं स्वस्ति चेति पृथाऽथो कर्णमब्रवीत् ।
तां कर्णोऽथ तथेत्युक्त्वा ततस्तौ जग्मतुः पृथक् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

---

न श्रद्दधे कर्तव्यत्वेन न मन्ये धर्मद्वारं धर्मापगमद्वारं तव नियोगकरणं त्वदाज्ञप्तार्थानुष्ठानम् ॥ ४ ॥ सुमहात्ययं सुमहान् अत्ययो जातिभ्रंशाख्यो विनाशो यस्मात् । अपाकीर्णस्त्यक्तः यशो माहात्म्यख्यातिः कीर्तिः सद्भिस्तस्याः कीर्तनम् ॥ ५ ॥ त्वत्कृते त्वत्सुखार्थे कानीनो गर्भः प्रकटो मा भूदितिहेतोरहं क्षत्रसत्क्रियां चेन्न प्राप्तस्तर्हि त्वदन्यः कः शत्रुः किं ममाहितं पापीय इति इतोऽपि पापतरं कुर्यान्न कोऽपीत्यर्थः ॥ ६ ॥ क्रियाकाले क्षत्रियोचितसंस्कारकाले अनुक्रोशं दयां समचूचुदः स्वकार्यार्थं प्रेरितवत्यसि ॥ ७ ॥ उपनह्य बद्ध्वा ॥ १२ ॥ प्रतिसमासितुं जेतुम् ॥ १३ ॥ निर्वेष्टव्यं भुक्तस्य तदन्नादेरानृण्यं कर्तव्यम् ॥ १५ ॥ वध्यान् वधार्हान् विषह्यान् हन्तुं शक्यानपीत्यर्थः ॥ २० ॥ सा च स च तौ ।

धर्माधर्मौ न त्यजतो धर्माधर्मैकसंश्रयौ ।
प्रार्थितावपि पित्राद्यैः कर्णदुर्योधनाविव ॥

इति कृत्स्नाख्यायिकातात्पर्यम् ॥ २७ ॥ इति० श्रीम० उद्यो० नैल० भा० षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

## १४७

वैशम्पायन उवाच ।

आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिन्दमः ।
पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥ १
संभाष्य सुचिरं कालं मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।
स्वमेव भवनं शौरिर्विश्रामार्थं जगाम ह ॥ २
विसृज्य सर्वान्नृपतीन् विराटप्रमुखांस्तदा ।
पाण्डवा भ्रातरः पञ्च भानावस्तं गते सति ॥ ३
सन्ध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसाः ।
आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रममन्त्रयन् ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

त्वया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।
किमुक्तः पुण्डरीकाक्ष तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ५

वासुदेव उवाच ।

मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।
तथ्यं पथ्यं हितं चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥६

युधिष्ठिर उवाच ।

तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः ।
किमुक्तवान् हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७
आचार्यो वा महाभाग भारद्वाजः किमब्रवीत् ।
पिता वा धृतराष्ट्रस्तं गान्धारी वा किमब्रवीत् ८
पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मविदां वरः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम् ॥ ९
किं च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते ।
उक्तवन्तो यथातत्त्वं तद्ब्रूहि त्वं जनार्दन ॥ १०
उक्तवान् हि भवान् सर्वं वचनं कुरुमुख्ययोः ।
धार्तराष्ट्रस्य तेषां हि वचनं कुरुसंसदि ॥ ११
कामलोभाभिभूतस्य मन्दस्य प्राज्ञमानिनः ।
अप्रियं हृदये मह्यं तन्न तिष्ठति केशव ॥ १२
तेषां वाक्यानि गोविन्द श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो
यथा च नाभिपद्येत कालस्तात तथा कुरु ।
भवान् हि नो गतिः कृष्ण भवान्नाथो भवान् गुरुः

वासुदेव उवाच ।

शृणु राजन् यथा वाक्यमुक्तो राजा सुयोधनः ।
मध्ये कुरूणां राजेन्द्र सभायां तन्निबोध मे ॥
मया विश्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः ।
अथ भीष्मः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ १५
दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थे यद्ब्रवीमि ते ।
तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्वकुलस्य हितं कुरु ॥ १६
मम तात पिता राजन् शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
तस्याहमेक एवासं पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥ १७
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना द्वितीयः स्यात् कथं सुतः
एकपुत्रमपुत्रं वै प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १८
न चोच्छेदं कुलं यायाद्विस्तीर्येच्च कथं यशः ।
तस्याहमीप्सितं बुद्ध्वा कालीं मातरमावहम् ॥
प्रतिज्ञां दुष्करां कृत्वा पितुरर्थे कुलस्य च ।
अराजा चोर्ध्वरेताश्च यथा सुविदितं तव ।
प्रतीतो निवसाम्येष प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २०
तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रीमान् कुरुकुलोद्वहः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कनीयान् मम पार्थिव ॥
स्वर्याते ऽहं पितरि तं स्वराज्ये सन्न्यवेशयम् ।
विचित्रवीर्यं राजानं भृत्यो भूत्वा ह्यधश्चरः ॥२२
तस्याहं सदृशान् दारान् राजेन्द्र समुपाहरम् ।
जित्वा पार्थिवसङ्घातमपि ते बहुशः श्रुतम् ॥
ततो रामेण समरे द्वन्द्वयुद्धमुपागमम् ।
स हि रामभयादेभिर्नागरैर्विप्रवासितः ॥ २४
दारेष्वप्यातिसक्तश्च यक्ष्माणं समपद्यत ।
यदा त्वराजके राष्ट्रे न ववर्ष सुरेश्वरः ।
तदाऽभ्यधावन्मामेव प्रजाः क्षुद्भयपीडिताः ॥

प्रजा ऊचुः ।

उपक्षीणाः प्रजाः सर्वा राजा भव भवाय नः ।
ईतीः प्रणुद भद्रं ते शान्तनोः कुलवर्धन ॥ २६
पीड्यन्ते ते प्रजाः सर्वा व्याधिभिर्भृशदारुणैः ।
अल्पावशिष्टा गाङ्गेय ताः परित्रातुमर्हसि ॥ २७
व्याधीन् प्रणुद वीर त्वं प्रजा धर्मेण पालय ।
त्वयि जीवति मा राष्ट्रं विनाशमुपगच्छतु ॥ २८

---

१४७

आगम्येति । पाण्डवानां पुर इति शेषः ॥ १ ॥ नागपुरं हास्तिनपुरम् ॥ ५ ॥ पथ्यं न्यायोपेतं हितमुभयत्र जयावहम् ॥ ६॥ कुरुमुख्ययोः भीष्मधृतराष्ट्रयोः तेषां राज्ञां च वचनं यच्च भवानुक्तवान् वचनं मह्यं मदर्थं तत्सर्वं धार्तराष्ट्रस्य हृदये न तिष्ठतीति द्वयोः सम्बन्धः ॥११-१२ नाभिपद्येत नातिक्रामेत नोऽस्माकम् ॥ १३ ॥ कालीं सत्यवतीम् ॥१९॥ प्रतीतः तुष्टः ॥२०॥ विप्रवासितः दूरे स्थापितः रामभयात् स्वयं पलायनेन प्रजाभिस्तदीयशिबिरस्य शून्यताकरणात् ॥ २४ ॥ ईतीः अनावृष्ट्यादिरूपाः॥२६॥

भीष्म उवाच ।
प्रजानां क्रोशतीनां वै नैवाक्षुभ्यत मे मनः ।
प्रतिज्ञां रक्षमाणस्य सद्वृत्तं स्मरतस्तथा ॥ २९
ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा ।
भृत्याः पुरोहिताचार्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।
मामूचुर्भृशसंतप्ता भव राजेति सन्ततम् ॥ ३०
प्रतीपरक्षितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनशिष्यति ।
स त्वमस्मद्धितार्थं वै राजा भव महामते ॥ ३१
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्भूत्वा दुःखितो भृशमातुरः ।
तेभ्यो न्यवेदयं तत्र प्रतिज्ञां पितृगौरवात् ॥ ३२
ऊर्ध्वरेता ह्यराजा च कुलस्यार्थे पुनः पुनः ।
विशेषतस्त्वदर्थं च धुरि मा मां नियोजय ॥ ३३
ततोऽहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मातरं संप्रसादयम् ।
नाम्ब शान्तनुना जातः कौरवं वंशमुद्वहन् ॥ ३४
प्रतिज्ञां वितथां कुर्यामिति राजन् पुनःपुनः ।
विशेषतस्त्वदर्थं च प्रतिज्ञां कृतवानहम् ॥ ३५
अहं प्रेष्यश्च दासश्च तवाद्य सुतवत्सले ।
एवं तामनुनीयाहं मातरं जनमेव च ॥ ३६
अयाचं भ्रातृदारेषु तदा व्यासं महामुनिम् ।
सह मात्रा महाराज प्रसाद्य तमृषिं तदा ॥ ३७
अपत्यार्थं महाराज प्रसादं कृतवांश्च सः ।
त्रीन् स पुत्रानजनयत्तदा भरतसत्तम ॥ ३८
अन्धः करणहीनत्वान्न वै राजा पिता तव ।
राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः ॥ ३९
स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः ।
मा तात कलहं कार्षी राज्यस्यार्धं प्रदीयताम् ४०
मयि जीवति राज्यं कः संप्रशासेत् पुमानिह ।
मावमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा ४१
न विशेषोऽस्ति मे पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव ।
मतमेतत् पितुस्तुभ्यं गान्धार्या विदुरस्य च ॥ ४२
श्रोतव्यं खलु वृद्धानां नाभिशङ्कीर्वचो मम ।
नाशयिष्यासि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

## १४८

वासुदेव उवाच ।
भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनमभाषत ।
मध्ये नृपाणां भद्रं ते वचनं वचनक्षमः ॥ १
प्रातीपः शान्तनुस्तात कुलस्यार्थे यथा स्थितः ।
यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्यार्थे स्थितोऽभवत् २
तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः ॥ ३
ज्येष्ठाय राज्यमददद्धृतराष्ट्राय धीमते ।
यवीयसे तथा क्षत्त्रे कुरूणां वंशवर्धनः ॥ ४
ततः सिंहासने राजन् स्थापयित्वैनमच्युतम् ।
वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितो नृपः ॥ ५
नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत् ।
प्रेष्यवत् पुरुषव्याघ्रो वालव्यजनमुत्क्षिपन् ॥ ६
ततः सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
अन्वपद्यन्त विधिवद्यथा पाण्डुं जनाधिपम् ॥ ७
विसृज्य धृतराष्ट्राय राज्यं सविदुराय च ।
चचार पृथिवीं पाण्डुः सर्वां परपुरञ्जयः ॥ ८
कोशसंवनने दाने भृत्यानां चान्ववेक्षणे ।
भरणे चैव सर्वस्य विदुरः सत्यसङ्गरः ॥ ९
सन्धि-विग्रहसंयुक्तो राज्ञां संवाहनक्रियाः ।
अवैक्षत महातेजा भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १०
सिंहासनस्थो नृपतिर्धृतराष्ट्रो महाबलः ।
अन्वास्यमानः सततं विदुरेण महात्मना ॥ ११
कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि ।
सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुङ्क्ष भोगान् जनाधिप १२

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

१४८

भीष्मेणोक्त इति ॥ १ ॥ ज्येष्ठोऽन्धत्वादनर्हः क्षत्ता वियोनित्वादनर्ह इति सूचयन् यथा ज्येष्ठायाददात् तथा क्षत्त्रे विदुरायापि न्यासभूतमददादिति भावः ॥ ४ ॥ संवननमात्मीयताकरणम् ॥ ९ ॥ संवाहनक्रियाः संवाहनं संप्रापणं दानोपदानादिकं ता एव क्रियाः ॥ १० ॥

ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान्नार्थहेतोः कथञ्चन ।
भीष्मेण दत्तमिच्छामि न त्वया राजसत्तम॥ १३
नाहं त्वत्तोऽभिकाङ्क्षिष्ये वृत्त्युपायं जनाधिप ।
यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद्भीष्मस्त्वाह तत् कुरु॥
दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन ।
सममाचार्यकं तात तव तेषां च मे सदा ॥ १५
अश्वत्थामा यथा मह्यं तथा श्वेतहयो† मम ।
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १६

वासुदेव उवाच ।

एवमुक्ते महाराज द्रोणेनामिततेजसा ।
व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गरः ।
पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥ १७

विदुर उवाच ।

देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः ।
प्रनष्टः कौरवो वंशस्त्वयाऽयं पुनरुद्धृतः ॥ १८
तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्षसे ।
कोऽयं दुर्योधनो नाम कुलेऽस्मिन् कुलपांसनः ॥
यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्तसे ।
अनार्यस्याकृतज्ञस्य लोभेन हृतचेतसः ॥ २०
अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्मार्थदर्शिनः ।
एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै ॥ २१
यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु ।
मां चैव धृतराष्ट्रं च पूर्वमेव महामते ॥ २२
चित्रकार इवालेख्यं कृत्वा स्थापितवानसि ।
प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा ॥ २३
नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम् ।
अथ तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ २४
वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव ह ।
बद्ध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ २५
शाधीदं राज्यमद्याशु पाण्डवैरभिरक्षितम् ।
प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान् ॥ २६
पाण्डवानां कुरूणां च राज्ञामामिततेजसाम् ।
विररामैवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः ।
प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २७
ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री
धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता ।
दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं
राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥ २८
ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा
ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये ।
शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवापराधं
पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य ॥ २९
राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं
क्रमागतो नः कुलधर्म एषः ।
त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन्
राज्यं कुरूणामनयाद्विहंसि ॥ ३०
राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी
तस्यानुजो विदुरो दीर्घदर्शी ।
एतावतिक्रम्य कथं नृपत्वं
दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात् ॥ ३१
राजा च क्षत्ता च महानुभावौ
भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम् ।
अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा
न कामयेद्यो नृवरो नदीजः ॥ ३२
राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं
तस्याद्य पुत्राः प्रभवन्ति नान्ये ।
राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां
पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि ॥ ३३
यद्वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा
देवव्रतः सत्यसन्धो मनीषी ।
सर्वं तदस्माभिरहत्य+ कार्यं
राज्यं स्वधर्मान् परिपालयद्भिः ॥ ३४
अनुज्ञया चाथ महाव्रतस्य
ब्रूयान्नृपोऽयं विदुरस्तथैव ।
कार्यं भवेत्तत्सुहृद्भिर्नियोज्यं
धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम् ॥ ३५

कार्पण्याद्युद्धभयात् ॥ १३ ॥ पितुर्भीष्मस्य ॥ १७ ॥ शास्त्रमाज्ञाम् । दुर्योधनकृतेन दुर्योधनकर्मणा ॥ २१ ॥ वनं गच्छेति । तावता त्वया त्वदनुगामिना द्रोणेन च त्यक्तोऽयं हीनपक्षो दुर्योधनः पांडवेभ्यो भयं प्राप्स्यतीत्याशयः ॥ २५ ॥ † श्वेतहयोऽर्जुनः । + अहत्य-अहत्वा ।

न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां
युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः ।
प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

## १४९

वासुदेव उवाच ।
एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप ॥ १
दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
तथा तत् कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥ २
सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः ।
सोमाद्बभूव षष्ठोऽयं ययातिर्नहुषात्मजः ॥ ३
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत् प्रभुः ॥ ४
पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः ।
शर्मिष्ठया संप्रसूतो दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ ५
यदुश्च भरतश्रेष्ठ देवयान्याः सुतोऽभवत् ।
दौहित्रस्तात शुक्रस्य काव्यस्यामिततेजसः ॥ ६
यादवानां कुलकरो बलवान् वीर्यसम्मतः ।
अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥ ७
न चातिष्ठत् पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः ।
अवमेने च पितरं भ्रातॄंश्चाप्यपराजितः ॥ ८
पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाभवद्बली ।
वशे कृत्वा स नृपतीन्न्यवसन्नागसाह्वये ॥ ९
तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः ।
शशाप पुत्रं गान्धारे राज्याच्चापि व्यरोपयत् १०
ये चैनमन्ववर्तन्त भ्रातरो बलदर्पिताः ।
शशाप तानभिक्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥ ११
यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्तिनम् ।
राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥ १२
एवं ज्येष्ठोऽप्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते ।
यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥१३
तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः ।
प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४
तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः ।
त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा यशस्विनः ॥ १५
देवापिरभवच्छ्रेष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम् ।
तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान् मे पितामहः १६
देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः ।
धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः १७
पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः ।
सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयंगमः ॥ १८
वदान्यः सत्यसन्धश्च सर्वभूतहिते रतः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥ १९
बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शान्तनोश्च महात्मनः ।
सौभ्रात्रं च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् २०
अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः ।
सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः ॥ २१
कारयामास सर्वाणि मङ्गलार्थानि वै विभुः ।
तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह ॥ २२
सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम् ।
स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम् ।
अश्रुकण्ठोऽभवद्राजा पर्यशोचत चात्मजम् २३
एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च सोऽभवत् ।
प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः ॥ २४
हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः ।
इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन् द्विजर्षभाः ॥ २५
ततः प्रव्यथिताङ्गोऽसौ पुत्रशोकसमन्वितः ।
निवारितं नृपं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥२६
बाह्लीको मातुलकुलं त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः ।
पितृभ्रातॄन् परित्यज्य प्राप्तवान् परमर्द्धिमत् २७

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

१४९

एवमुक्त इति ॥ १ ॥ अभिजायते प्राप्नोति। जायन्ते लभन्ते ॥ १३ ॥ त्वग्दोषी कुष्ठी ॥ १७ ॥ वृद्धः प्रतीपः आत्मजं देवापिम् ॥ २३ ॥ राज्यं त्यक्त्वा मातुलकुलं समाश्रित इति सम्बन्धः ॥ २७ ॥

बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
पितर्युपरते राजन् राजा राज्यमकारयत् ॥ २८
तथैवाहं मतिमता परिचिन्त्येह पाण्डुना ।
ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनाङ्ग इति भारत ॥२९
पाण्डुस्तु राज्यं संप्राप्तः कनीयानपि सन्नृपः ।
विनाशे तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिन्दम ॥ ३०
मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि ।
अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि ३१
युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा
न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य ।
स कौरवस्यास्य कुलस्य भर्ता
प्रशासिता चैव महानुभावः ॥ ३२
स सत्यसन्धः स तथाऽप्रमत्तः
शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः ।
प्रियः प्रजानां सुहृदनुकम्पी
जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता ॥ ३३
क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च
सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः ।
भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च
युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः ॥ ३४
अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो
लुब्धः सदा बन्धुषु पापबुद्धिः ।
क्रमागतं राज्यमिदं परेषां
हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीत ॥ ३५
प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः
सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च ।
ततोऽवशेषं तव जीवितस्य
सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्यकथने
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

## १५०

वासुदेव उवाच ।
एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न वै मन्दोऽन्वबुद्ध्यत ॥ १
अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
अन्वद्रवन्त तं पश्चाद्राजानस्त्यक्तजीविताः ॥ २
आज्ञापयच्च राज्ञस्तान् पार्थिवान्नष्टचेतसः ।
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥ ३
ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः ।
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः ४
अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणां समागताः ।
तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत ॥ ५
यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद्विधत्स्व विशाम्पते ।
उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च ॥ ६
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत ।
एतत्ते कथितं राजन् यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ ७
साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन् सौभ्रात्रमिच्छता ।
अभेदायास्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥ ८
पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते ।
कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम् ॥ ९
यदा नाद्रियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः ।
तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः॥ १०
अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत ।
अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि मया विभो॥११
निर्भर्त्सयित्वा राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् ।
राधेयं भीषयित्वा च सौबलं च पुनःपुनः ॥ १२
द्यूततो धार्तराष्ट्राणां निन्दां कृत्वा तथा पुनः ।
भेदयित्वा नृपान् सर्वान् वाग्भिर्मन्त्रेण चासकृत्॥
पुनः सामाभिसंयुक्तं संप्रदानमथाब्रुवम् ।
अभेदात् कुरुवंशस्य कार्ययोगात्तथैव च ॥ १४

---

अकारयत् अकरोत् ॥ २८ ॥ आसमन्तात् अनुकंपी दयावान्॥३३॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४९॥

१५०

एव मुक्त इति ॥ १॥ पुष्योऽद्येति । पुष्यनक्षत्रं हि अश्विन्याः पौर्णमास्या उपरि अष्टम्यां भवति । पूर्वमपि सप्तमाद्दिवसादूर्ध्वममावास्या भविष्यति । 'संग्रामं योजयेत्तस्याम्' इत्युक्तत्वात् ॥ ३ ॥ साम्यं साम्नो भावः सामेति यावत् ॥ ८ ॥ पुनर्भेदश्च कर्णेन सहोपसंवादेन ॥ ९ ॥

ते शूरा धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य विदुरस्य च ।
तिष्ठेयुः पाण्डवाः सर्वे हित्वा मानमधश्चराः १५
प्रयच्छन्तु च ते राज्यमनीशास्ते भवन्तु च ।
यथाऽऽह राजा गाङ्गेयो विदुरश्च हितं तव ॥ १६
सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्च ग्रामान् विसर्जय ।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥ १७
एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ॥ १८
निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रं नराधिपाः ।
एतत्ते कथितं राजन् यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १९
न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव ।
विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

समाप्तं भगवद्यानपर्व ।

## सैन्यनिर्याणपर्व ७

### १५१

वैशम्पायन उवाच ।

जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥ १
श्रुतं भवद्भिर्यद्वृत्तं सभायां कुरुसंसदि ।
केशवस्यापि यद्वाक्यं तत् सर्वमवधारितम् ॥ २
तस्मात् सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः ।
अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः समेता विजयाय वै ॥ ३
तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान्निबोधत ।
द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ४
सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् ।
एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥ ५
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ६
इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः ।
सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ॥ ७
यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिःपावकोपमम् ।
तं तावत् सहदेवात्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन ।
स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ॥ ८

सहदेव उवाच ।

संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः ।
यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥ ९
मत्स्यो विराटो बलवान् कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ॥ १०

वैशम्पायन उवाच ।

तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारद ।
नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥ ११
वयसा शास्त्रतो धैर्यात् कुलेनाभिजनेन च ।
ह्रीमान् बलान्वितः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १२
वेद चास्त्रं भरद्वाजाद्दुर्धर्षः सत्यसङ्गरः ।
यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मं चैव महाबलम् ॥ १३
श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः ॥ १४
यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः ।
रोषाद्द्रोणविनाशाय वीरः समिति शोभनः ॥ १५
पितेवास्मान् समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः ।
श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु ॥ १६
स द्रोणभीष्मावायातौ सहेदिति मतिर्मम ।
स हि दिव्यास्त्रविद्राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः ॥ १७
माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु स्वमते कुरुनन्दनः ।
वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद्वचः ॥ १८
योऽयं तपःप्रभावेण ऋषिसन्तोषणेन च ।
दिव्यः पुरुष उत्पन्नो ज्वालावर्णो महाभुजः ॥ १९

---

पञ्चग्राममात्रस्वीकारेण कृत्स्नराज्यसमर्पणरूपं दानमपि प्रयुक्तम् ॥ १७ ॥ दण्ड एवोपायो नान्य इत्याह--दंडमिति ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१

जनार्दनेति ॥ १ ॥ संयुक्तः सम्बन्धी ॥ ९ ॥ कुलेन वंशेन अभिजनेन स्वजनसमूहेन ॥ १२ ॥ अङ्गिरसो द्रोणस्य ॥ १७ ॥

धनुष्मान् कवची खड्गी रथमारुह्य दंशितः ।
दिव्यैर्हयवरैर्युक्तमग्निकुण्डात् समुत्थितः ॥ २०
गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान् ।
सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रमः ॥ २१
सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्षा महाबलः ।
सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ॥
सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः ।
सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः ॥ २३
अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः ।
जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२४
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद्भीष्मस्य सायकान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥ २५
यमदूतसमान् वेगे निपाते पावकोपमान् ।
रामेणाजौ विषहितान् वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥
पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।
धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥ २७
क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।
अभेद्यकवचः श्रीमान् मातङ्ग इव यूथपः ॥ २८

भीमसेन उवाच ।

वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥२९
यस्य सङ्ग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः ।
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥ ३०
न तं युद्धे प्रपश्यामि यो भिन्द्यात्तु शिखण्डिनम् ।
शस्त्रेण समरे राजन् सन्नद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥३१
द्वैरथे समरे नान्यो भीष्मं हन्यान्महाव्रतम् ।
शिखण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः ॥ ३२

युधिष्ठिर उवाच ।

सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् ।
सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषां च केशवः ॥३३
यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम ।
कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा
एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये ।
अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे ३५
एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता ।
यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः
ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते ।
ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनः ॥ ३७
रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम् ।
अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३८

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥ ३९
ममाप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः ।
नेतारस्तव सेनाया मता विक्रान्तयोधिनः ॥ ४०
सर्व एव समर्था हि तव शत्रुं प्रबाधितुम् ।
इन्द्रस्यापि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ॥ ४१
किं पुनर्धार्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम् ।
मयाऽपि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थं महाहवे ॥४२
कृतो यत्नो महांस्तत्र शमः स्यादिति भारत ।
धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम्४३
कृतास्त्रं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ।
धार्तराष्ट्रो बलस्थं च पश्यत्यात्मानमातुरः ॥ ४४
युज्यतां वाहिनी साधु वधसाध्या हि मे मताः ।
न धार्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनञ्जयम् ४५
भीमसेनं च संक्रुद्धं यमौ चापि यमोपमौ ।
युयुधानद्वितीयं च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ४६
अभिमन्युं द्रौपदेयान् विराटद्रुपदावपि ।
अक्षौहिणीपतींश्चान्यान्नरेन्द्रान् भीमविक्रमान् ४७
सारवद्बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम् ।
धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः ॥ ४८
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिन्दम ।

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्ते तु कृष्णेन संप्राहृष्यन्नरोत्तमाः ॥ ४९
तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् ।
योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां संप्रधावताम् ॥ ५०
हयवारणशब्दाश्च नेमिघोषाश्च सर्वतः ।
शङ्खदुन्दुभिघोषाश्च तुमुलाः सर्वतोऽभवन् ॥ ५१
तदुग्रं सागरनिभं क्षुब्धं बलसमागमम् ।
रथपत्तिगजोदग्रं महोर्मिभिरिवाकुलम् ॥ ५२
धावतामाह्वयानानां तनुत्राणि च बध्नताम् ।
प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः ५३

---

शस्त्राणामधिवासनं गन्धाद्यैः पूजनं कौतुकं रक्षाबन्धनं मङ्गलं स्वस्तिवाचनम् ॥ ३८ ॥ धनञ्जयमवेक्ष्येत्यनेनार्जुनाभिमतो धृष्टद्युम्नः सेनापतिरिति स्वाशयं प्रदर्शयेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ अस्माकं बलं कर्तृ, धार्तराष्ट्रबलं कर्म ॥ ४८ ॥ योगो युद्धाय सज्जीभवनम् । 'द्रव्योपायसन्नहनेष्वपि योगः' इति विश्वः ॥ ५० ॥

गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृश्यत वाहिनी ।
अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च दंशितौ ॥ ५४
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
*प्रभद्रकाश्च पञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः ॥ ५५
ततः शब्दः समभवत् समुद्रस्येव पर्वणि ।
हृष्टानां संप्रयातानां घोषो दिवमिवास्पृशत्॥५६
प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः ।
तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥५७
शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः ।
कोशं यन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः५८
फल्गु यच्च बलं किञ्चिद्यच्चापि कृशदुर्बलम् ।
तत्संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः॥५९
उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी ।
सह स्त्रीभिर्निववृते दासीदाससमावृता ॥ ६०
कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ६१
ददतो गां हिरण्यं च ब्राह्मणैरभिसंवृताः ।
स्तूयमाना ययू राजन् रथैर्मणिविभूषितैः ॥ ६२
केकया धृष्टकेतुश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभुः ।
श्रेणिमान् वसुदानश्च शिखण्डी चापराजितः ६३
हृष्टास्तुष्टाः कवचिनः सशस्त्राः समलङ्कृताः ।
राजानमन्वयुः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ६४
जघनार्धे विराटश्च याज्ञसेनिश्च सौमकिः ।
सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ॥६५
रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्तथा ।
पत्तिसैन्यं दशगुणं गजानामयुतानि षट् ॥ ६६
अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः ।
परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६७
आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥ ६८
तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शङ्खान् दध्मुररिन्दमाः ।
तथैव दध्मतुः शङ्खं वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६९
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥ ७०
शङ्खदुन्दुभिसंहृष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरांश्चान्वनादयत् ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि कुरुक्षेत्रप्रवेशे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

## १५२

वैशम्पायन उवाच ।
ततो देशे समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने ।
निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥ १
परिहृत्य श्मशानानि देवतायतनानि च ।
आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥ २
मधुरानूषरे देशे शुचौ पुण्ये महामतिः ।
निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३
ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः ।
प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ ४
विद्राव्य शतशो गुल्मान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
पर्यक्रामत् समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥ ५
शिबिरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानश्च वीर्यवान् ६
आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम् ।
सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥ ७
खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत ।
गुप्त्यर्थमपि चादिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥ ८

---

शकटा अनांसि आपणो वणिग्वीथ्युपलक्षितं विक्रेयद्रव्यं वेशो वेश्याजनाश्रयः पटगृहाणि यानयुग्यं यानेषु युग्यं युगमर्हतीति रथादि । शकटमुपस्करादिभारवहं युग्यम् । इदं तु केवलं प्रयाणार्हं 'युग्यं च पत्रे' इति निपातनात् । कोशं धनचयं यंत्रायुधं गोलकप्रक्षेपणं नाल इत्युच्यते लोके । चिकित्सकाः शस्त्रवैद्याः ॥ ५८ ॥ मूलप्रतीकारं धनदाररक्षां गुल्मैः स्थावरैः प्राकाररूपैः जङ्गमैः परितः स्थाने स्थाने शूरसङ्घैः स्कन्धावारेण सैन्येन ॥ ६१ ॥ गां भूमिं धेनुं वा ॥६२॥ जघनार्धे पश्चिमार्धे॥६५॥ समहृष्यन्त रोमाञ्चितानि॥७०॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भा०भा० एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५१ ॥* प्रभद्रकाः सपञ्चाला इति पाठान्तरम् ॥

१५२

तत इति ॥ १ ॥ मधुरे मनोहरे ॥ ३ ॥ गुल्मान् सैनिकसङ्घान् ॥ ५ ॥ सूपतीर्थां शोभनोपकण्ठाम् ॥ ७ ॥

विधिर्यः शिबिरस्यासीत् पाण्डवानां महात्मनाम्
तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥ ९
प्रभूततरकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानि शतशोऽथ सहस्रशः १०
शिबिराणि महार्हाणि राज्ञां तत्र पृथक्पृथक् ।
विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥ ११
तत्रासन् शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः ।
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥ १२
ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः ।
ससर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः ॥ १३
बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम् ।
शिबिरे शिबिरे राजा संचकार युधिष्ठिरः ॥ १४
महायन्त्राणि नाराचास्तोमराणि परश्वधाः ।
धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः १५
गजाः कण्टकसन्नाहा लोहवर्मोत्तरच्छदाः ।
दृश्यन्ते तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥ १६
निविष्टान् पाण्डवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत
अभिसस्रुर्यथादेशं सबलाः सहवाहनाः ॥ १७
चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः ।
जयाय पाण्डुपुत्राणां समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि शिबिरादिनिर्माणे
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

# १५३

जनमेजय उवाच ।
युधिष्ठिरं सहानीकमुपायान्तं युयुत्सया ।
सन्निविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम् ॥ १
विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम् ।
केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥ २
महेन्द्रमिव चादित्यैरभिगुप्तं महारथैः ।
श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ ३
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते ।
संभ्रमे तुमुले तस्मिन् यदासीत् कुरुजाङ्गले ४
व्यथयेयुरिमे देवान् सेन्द्रानपि समागमे ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ॥ ५
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ।
युधामन्युश्च विक्रान्तो देवैरपि दुरासदः ॥ ६
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
कुरूणां पाण्डवानां च यद्यदासीद्विचेष्टितम् ७
वैशम्पायन उवाच ।
प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाब्रवीदिदम् ॥ ८
अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानधोक्षजः ।
स एनान्मन्युनाऽऽविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥ ९
इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥ १०
अजातशत्रुरत्यर्थं भीमसेनवशानुगः ।
निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः ॥ ११
विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह ।
तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥ १२
भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः ।
तस्मात् सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः १३
शिबिराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः ।
स्वपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥ १४
आसन्नजलकोष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
अच्छेद्याहारमार्गाणि बन्धोच्छ्रयचितानि च १५
विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च ।
समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद्बहिः ॥ १६
प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् ।
ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥ १७
हृष्टरूपा महात्मानो निवासाय महीक्षिताम् ।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम् १८

---

तद्विधानि शिबिराणि ॥ ९ ॥ कण्टकसन्नाहाः येषां स्पर्शमात्रादपि गजान्तराणां कण्टकवेधो भवति तादृशाः सन्नाहाः कवचानि कण्टकैः कवचैः सन्नहनं येषामिति प्राञ्चः ॥ १६ ॥ अभिसस्रुरभ्याजग्मुः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

१५३

युधिष्ठिरमिति ॥ १ ॥ आसन्नजलाः कोष्ठाः कक्ष्याः येषु तानि तथा । अच्छेद्यः शत्रुभिरनिवार्यः आहार आहारणं वस्तूनां मार्गाश्च येषु तानि अच्छेद्याहारमार्गाणि १५॥

आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः ।
बाहून् परिघसङ्काशान् संस्पृशन्तः शनैः शनैः॥१९
काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागुरुभूषितान् ।
उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः ।
अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥ २०
ते रथान् रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः ।
सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षास्वनुष्ठिताः॥२१
अथ वर्माणि चित्राणि काञ्चनानि बहूनि च ।
विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सर्वाणि सर्वशः॥२२
पदातयश्च पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च ।
उपाजह्रुः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥ २३
तदुत्सव इवोदग्रं संप्रहृष्टनरावृतम् ।
नगरं धार्तराष्ट्रस्य भारतासीत्समाकुलम् ॥ २४
जनौघसलिलावर्तो रथनागाश्वमीनवान् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः कोशसञ्चयरत्नवान् ॥ २५
चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान् ।
प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाह्रदः ॥ २६
योधचन्द्रोदयोद्भूतः कुरुराजमहार्णवः ।
व्यदृश्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवोदधिः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यसज्जकरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

## १५४

वैशम्पायन उवाच ।
वासुदेवस्य तद्वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः ।
पुनः पप्रच्छ वार्ष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥ १
अस्मिन्नभ्यागते काले किं च नः क्षममच्युत ।
कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥ २
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
वासुदेवमतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥ ३
विदुरस्यापि तद्वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चोभयोः ।
कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कार्त्स्न्येन ते श्रुता ॥४
सर्वमेतदतिक्रम्य विचार्य च पुनःपुनः ।
क्षमं यन्नो महाबाहो तद्ब्रवीह्यविचारयन् ॥ ५
श्रुत्वैतद्धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६
कृष्ण उवाच ।
उक्तवानस्मि यद्वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
न तु तन्निकृतिप्रज्ञे कौरव्ये प्रतितिष्ठति ॥ ७
न च भीष्मस्य दुर्मेधाः शृणोति विदुरस्य वा ।
मम वा भाषितं किञ्चित्सर्वमेवातिवर्तते ॥ ८
नैष कामयते धर्मं नैष कामयते यशः ।
जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥ ९
बन्धमाज्ञापयामास मम चापि सुयोधनः ।
न च तं लब्धवान् कामं दुरात्मा पापनिश्चयः॥१०
न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राहतुर्वचः ।
सर्वे तमनुवर्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥ ११
शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि ।
त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त मूढा मूढममर्षणम् ॥ १२
किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषत कौरवः ।
संक्षेपेण दुरात्माऽसौ न युक्तं त्वयि वर्तते ॥ १३
पार्थिवेषु न सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः ।
यत् पापं यन्न कल्याणं सर्वं तस्मिन् प्रतिष्ठितम्
न चापि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् ।
कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥ १५
वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् ।
अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥ १६
युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमभिलक्ष्य महीक्षिताम् ।
योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥ १७

---

अन्तरीयं परिधानीयमुत्तरीयं प्रावरणवस्त्रम् ॥ २० ॥ उपाजह्रुः परिधानं कृतवन्तः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

१५४

वासुदेवेति ॥ १ ॥ युक्तं सम्यक् ॥ १३ ॥ न कल्याणमकल्याणं पापमकल्याणं च त्वदीयेष्वविद्यमानं सर्वं तस्मिन् दुर्योधने प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥ परित्यागेन राज्यस्योपेक्षया ॥ १५ ॥ योगं युद्धोद्योगम् ॥ १७ ॥

ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह ।
आज्ञापिते तदा यागे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥ १८
अवध्यानां वधं पश्यन् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
निःश्वसन् भीमसेनं च विजयं चेदमब्रवीत् ॥ १९
यदर्थे वनवासश्च प्राप्तं दुःखं च यन्मया ।
सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥ २०
तस्मिन् यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः
अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥ २१
कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति ।
कथं हत्वा गुरून् वृद्धान् विजयो नो भविष्यति
तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परंतपः ।
यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद्वचः ॥ २३
उक्तवान् देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च ।
वचनं तत्त्वया राजन्निखिलेनावधारितम् ॥ २४
न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः ।
नापि युक्तं च कौन्तेय निवर्तितुमयुध्यतः ॥ २५
तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा ।
स्मयमानोऽब्रवीद्वाक्यं पार्थमेवमिति ब्रुवन् ॥ २६
ततस्ते धृतसङ्कल्पा युद्धाय सहसैनिकाः ।
पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखमावसन् ॥२७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे
चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

## १५५

वैशम्पायन उवाच ।
व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः ।
व्यभजत्तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥ १
नर-हस्ति-रथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च ।
सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु सन्दिदेश नराधिपः ॥ २
सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः ।
सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सहर्ष्टयः ॥३
सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः ।
रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिच्छदाः ४
सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः ।
साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः । ५
सघण्टफलकाः सर्वे सायोगुडजलोपलाः ।
सशालभिन्दिपालाश्च समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥ ६

---

यदर्थं यन्निवृत्त्यर्थं अनर्थः कुलक्षयः प्रयत्नतो बलात् ॥२०॥ **तस्मिन्निति** । तस्मिन्ननर्थे निमित्ते सति यत्नस्तत्परिहारार्थं उपायः सद्यः शत्रुवधरूपो भीमस्य द्यूतकाले संमतः । स नोऽस्माकं अस्माभिः क्षमां कुर्वाद्भिः प्रयत्नतो बलाद्धीनो व्यर्थः कृतः । अकृते तु अकृतेऽपि प्रयत्ने युद्धार्थमुद्योगे तथाऽपि अस्मान् कलिः उपावृत्त आगतः ॥ २१ ॥ तौ कुन्तीविदुरौ अधर्ममिति च्छेदः । अयुद्ध्यतस्तव निवर्तितुमपि न युक्तम् ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

१५५

**व्युष्टायामिति** । युष्टायां व्यतीतायाम् ॥ १ ॥ सारं पुरोगामि मध्यं मध्यमं फल्गु पाश्चात्यम् ॥ २ ॥ सानुकर्षा इत्यादीनि नानामणिविभूषिता इत्यन्तानि चित्रानीकानां विशेषणानि । अनुकर्षः युद्धाविमर्दे यस्य कस्यचिद्रथावयवस्य नष्टस्य प्रतिसमाधानार्थं यद्रथस्याधो दारु बध्यते तत् । 'अनुकर्षो रथाधःस्थदारुणि ' इति **मेदिनी** । तूणीरो रथबाह्यो बाणकोशः । महान् निषङ्ग इति यावत् । वरूथो रथगुप्तिर्व्याघ्रादिचर्ममयी । तोमराः हस्तक्षेप्याः सशल्या दण्डाः उपासङ्गाः हयगजवाह्यास्तूणाः । निषङ्गः पत्तिग्राह्यः स एव । शक्तिर्लोहदण्डः ऋष्टिर्गुरुतरः काष्ठदण्डः ॥ ३ ॥ शरासनतोमराः धनुःप्रक्षेप्यास्तोमराः स्थूलबाणाः । पाशाः समीपागतस्य गले प्रक्षेपार्थं परिच्छदा आस्तरणादीनि । परिस्तरा इति पाठे आस्तरणमेव ॥ ४ ॥ कचग्रहविक्षेपः कचेषु गृहीत्वा येन शत्रुर्विक्षिप्यते तादृशः कलविंकग्रहतुल्यश्चिक्कणद्रव्याञ्जिताग्रो दण्डविशेषः । करग्रहेति पाठे अङ्कुशविशेषः । तैलादयः प्रतप्ताः शत्रूणामुपरि क्षिप्यन्ते । साशीविषघटाः सर्पाः कुंभाः सर्जरसो रालद्रव्यमग्न्युद्दीपकम् ॥ ५ ॥ सघण्टानि फलकानि शस्त्राणि येषां ते सघंटफलकाः घण्टासहितं चर्मेत्यन्ये अयोऽसिखड्गपट्टिशच्छुरिकादीनि । गुडजलं तप्तं उपला यन्त्रक्षेप्या गोलाः शालते कथते शब्दं करोतीति शालः स चासौ भिन्दिपालो गोफलकः । सशूलेति गौडपाठः । मधूच्छिष्टं मयनं तदपि द्रवीकृत्य गुडजलवत्प्रक्षेप्यम् । मुद्गरोः मुशलतुल्यो दण्डः ॥ ६ ॥

सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः ।
सशूर्पपिटकाः सर्वे सांकुशतोमराः ॥ ७
सकीलकवचाः सर्वे वासीवृक्षादनान्विताः ।
व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते ॥ ८
सहर्ष्टयः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः ।
सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः ॥ ९
रुक्मजालप्रतिच्छन्ना नानामणिविभूषिताः ।
चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः॥१०
तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्चयाः ।
कुलीना हययोनिज्ञाः सारथ्ये विनिवेशिताः ११
बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः ।
बद्धाभरणनिर्यूहा बद्धचर्मासिपट्टिशाः॥ १२
चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे चोत्तमवाजिनः ।
सप्रासर्ष्टिकाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥ १३
धुर्ययोर्हययोरेकस्तथाऽन्यौ पार्ष्णिसारथी ।
तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित्तथा १४
नगराणीव गुप्तानि दुराधर्षाणि शत्रुभिः ।
आसन् रथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥ १५
यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः स्वलङ्कृताः ।
बभूवुः सप्तपुरुषा रत्नवन्त इवाद्रयः ॥ १६
द्वावङ्कुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ ।
द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥१७
गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सवर्मायुधकोशकैः ।
तद्बभूव बलं राजन् कौरव्यस्य महात्मनः ॥ १८
आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलङ्कृतैः ।
सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चायुतशो हयाः॥ १९
असंग्राहाः सुसंपन्ना हेमभाण्डपरिच्छदाः ।
अनेकशतसाहस्राः सर्वे सादिवशे स्थिताः ॥ २०
नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः ।
पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥ २१
रथस्यासन् दश गजा गजस्य दश वाजिनः ।
नरा दश हयस्यासन् पादरक्षाः समन्ततः ॥ २२
रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्यासन् शतं हयाः ।
हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नसन्धानकारिणः ॥ २३
सेना पञ्चशतं नागा रथास्तावन्त एव च ।
दश सेना च पृतना पृतना दशवाहिनी ॥ २४

काण्डं बाणफलकं तद्युक्तो दण्डः काण्डदण्डः कण्टकदण्ड इति यावत् । दण्डकण्टक इति पाठे स एवार्थः । सीरं लाङ्गलम् । विषं प्रसिद्धं तेन युक्तास्तोमरा विषतोमराः शूर्पाणि तप्तगुडादिप्रक्षेपार्थानि पिटकास्तदाश्रया मञ्जूषाः । अवरोधनार्था वा दात्रं परशुप्रभृति । अङ्कुशतोमराः बदरीकण्टकतुल्यलोहकण्टकोपेतास्तोमराः । येषामन्तःप्रविष्टानां बहिर्निःसरणे अन्त्राण्यपि बहिर्निःसरन्ति ॥ ७ ॥ कीलकवचवान् हि परेण मुष्टियुद्धे जेतुमशक्यः । सकीलकचा इति पाठे सदन्तं करपत्रं येन तक्षा काष्ठं पाटयति । वाशी काष्ठप्रच्छन्नं शस्त्रं वास्येति वासीति वा पाठेऽपि स एवार्थः। वृक्षादनाः लोहकण्टककीलादीन्युपकरणानि। व्याघ्रचर्मणा द्वीपी चित्रव्याघ्रस्तच्चर्मणा च परिवृता रथा एव ८ ऋष्टिः द्रविडेषु प्रसिद्धं हस्तक्षेप्यं वक्रं काष्ठफलकं शृंगसाहचर्यात् । शृंगं गदाघातेन नष्टस्य रक्तस्य मोक्षणार्थं विण्मूत्रोत्सर्जनस्थानं वा । प्रासाः भल्लाः । तैलक्षौमानि तैलाक्तवस्त्रविशेषा येषां भस्म प्रहारस्थले दीयते । सर्पिश्च पुरातनं तदर्थमेव ॥ ९ ॥ चित्राश्च ते अनीकाश्च चित्रानीकाः चित्राणि सैन्यानि । 'अनीकोऽस्त्री रणे सैन्ये' इति मेदिनी ॥ १० ॥ विनिवेशिता येषु रथेष्विति शेषः ॥ ११ ॥ बद्धानि अरिष्टानि अशुभहराणि यन्त्रौषधादीनि येषु ते बद्धारिष्टाः । 'रिष्टं क्षेमाशुभाभावे' इति मेदिनी । बद्धकक्षाः बद्धाः कक्षाः स्पर्धापदानि तुरगादिशिरसि घण्टामालामौक्तिकगुच्छादीन्यतिशौर्यावद्योतीनि बिरुदानि येषु । 'कक्षा स्यादन्तरीयस्य पश्चादञ्चलपल्लवे । स्पर्धापदेनादोर्मूले' इति मेदिनी । बद्धानि आभरणानि क्षुद्रघटिकादीनि निर्यूहाः शिखराणि च येषु। 'निर्यूहः शिखरे द्वारे' इति मेदिनी १२ चतुर्युज इत्येतद्व्याचष्टे-धुर्ययोरिति । धुर्ययोः धूः संनिहितयोः पार्ष्णिसारथी चक्ररक्षौ ॥ १४ ॥ अङ्कुशधरौ गजनियन्तारौ । उत्तमधनुर्धरौ दूरस्थान् प्रहर्तुम् । असिधरौ समीपस्थान् शक्तिपिनाकधरौ मध्यस्थान् पिनाकः त्रिशूलम् । 'पिनाकोऽस्त्री रुद्रचापे पांशुवर्षत्रिशूलयोः' इति मेदिनी ॥ १७ ॥ सादिभिः अश्वारोहैः ॥ १९ ॥ संग्राहः बृहदुद्रंगः हेषणपूर्वकमग्रपादाभ्यामुल्लवनमिति यावत् । तद्रहिता असंग्राहाः 'संग्राहो बृहदुद्रंगे इति' विश्वः । यतः सुसंपन्नाः सम्यक् शिक्षिताः । भाण्डं अश्वाभरणं तेन परिच्छदः परिष्कारो येषां ते । 'भाण्डं भूषाश्वभूषयोः' इति विश्वः २० ॥ रूपविकाराः रक्तकृष्णहयमुखत्वादयः ॥ २१ ॥ रथस्येति । एकस्य रथस्य यथोक्तविभागेन दशगजाः शतं अश्वाः सहस्रं पदातयश्च परिवार इत्यर्थः ॥ २२ ॥ पक्षान्तरमाह-रथस्येति । एकस्य रथस्य पञ्चाशद्गजाः पञ्चसहस्रं अश्वाः पञ्चत्रिंशत्सहस्रं पदातयः परिवार इत्यर्थः ॥ २३ ॥ अत्र रथादीनां प्राधान्याप्राधान्याभिप्रायेण परिवाराल्पत्वबहुत्वे ज्ञेये । साधारणी तु संख्या आदिपर्वण्युक्ता । 'एको रथो गजस्त्वेको नराः पञ्च पदातयः । त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्ति-

सेना च वाहिनी चैव पृतना ध्वजिनी चमूः ।
अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ता च वरूथिनी ॥ २५
एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता ।
अक्षौहिण्यो दशैका च सङ्ख्याताः सप्त चैव ह२६
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद्बलम् ।
अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद्बलम्॥ २७
नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते ।
सेनामुखं च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिशब्दितम् २८
त्रयो गुल्मा गणस्त्वासीद्गणास्त्वयुतशोऽभवन् ।
दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः॥२९
तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान् ।
प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥ ३०
पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन्नरसत्तमान् ।
विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यभाषत ॥ ३१
कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम् ।
सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥ ३२
द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।
शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम्॥ ३३
दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलं च भारत ।
चक्रे स विविधाः पूजाः प्रत्यक्षं च पुनः पुनः ३४
तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः ।
बभूवुः सैनिका राज्ञां प्रियं राज्ञश्चिकीर्षवः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यविभागे
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

## १५६

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः ।
सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १
ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि ।
दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥ २
न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित् ।
शौर्यं च बलनेतॄणां स्पर्धते च परस्परम् ॥ ३
श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः ।
अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः ॥ ४
तानभ्ययुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह ।
एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५
ततो युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः ।
क्षत्रियाश्च जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम् ॥ ६
ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।
तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥ ७
वयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे ।
भवन्तस्तु पृथक्सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥ ८
ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम् ।
नये सुकुशलं शूरमजयन् क्षत्रियांस्ततः ॥ ९
एवं ये कुशलं शूरं हितेप्सितमकल्मषम् ।
सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥ १०
भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम ।
असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥ ११

---

रित्यभिधीयते ' इत्यादिना। तामेवानुसरति-सेनेति। तत्र गजानां रथानां च तुल्यसंख्योक्तिः पूर्वोक्तसंख्योपलक्षणार्था । तेन पञ्चविंशतिशतानि मनुष्याः पञ्चदशशतं तुरगा इत्यपि ज्ञेयम् । पृतनायां तु पञ्चसहस्रं नागास्तावन्तो रथाः पञ्चविंशतिसहस्रं नराः पञ्चदशसहस्रं अश्वाः । वाहिन्यां पञ्चाशत्सहस्रं नागास्तावन्तो रथाः सार्धलक्षद्वयं नराः सार्धलक्षं अश्वा इति ज्ञेयम् ॥ २४ ॥ एवमपि पूर्वोक्ताक्षौहिणीसंख्यया विसंवाद एवेत्याशङ्क्याह-सेनेति । सेनादयः शब्दाः पर्यायाः न तु संख्येयानां संख्याभेदमात्रेण नानार्थाः । एकस्मिन्नपि भीमसेने दशनागसहस्रबलत्वस्मरणात् । एवं च बलस्यैवेयं एकादश सप्तेतिसंख्या न संख्येयस्येति भावः । पाण्डवानां हीनबलत्वेऽपि असंख्येयं वासुदेवबलं तत्र सहायीभूतमिति जयोऽभूदिति द्रष्टव्यम् ॥ २५ ॥ नराणामिति । अयुतश इत्यनेन नराणामन्तो नास्तीति दर्शितम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

१५६

तत इति ॥ १ ॥ उशनसा शुक्रेण असंहार्यः पितुर्वरदानात् कालेनापि संहर्तुमशक्यः ॥ ११ ॥ कुमारः

रश्मिवतामिवादित्यो वीरुधामिव चन्द्रमाः ।
कुबेर इव यक्षाणां देवानामिव वासवः ॥ १२
पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पक्षिणां यथा ।
कुमार इव देवानां वसूनामिव हव्यवाट् ॥ १३
भवता हि वयं गुप्ताः शक्रेणेव दिवौकसः ।
अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥१४
प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।
वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥ १५

भीष्म उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥ १६
अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप ।
संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥ १७
न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि ।
ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात् कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥१८
स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।
न तु मां विवृतो युद्धे जातु युध्येत पाण्डवः ॥ १९
अहं चैव क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत् ।
कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥ २०
न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप ।
तस्माद्योधान् हनिष्यामि प्रयोगेणायुतं सदा २१
एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन ।
न चेत्ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥ २२
सेनापतिस्त्वहं राजन् समये नापरेण ते ।
भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि ॥२३
कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते ।
स्पर्धते हि सदाऽत्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे ॥ २४

कर्ण उवाच ।

नाहं जीवति गाङ्गेये राजन् योत्स्ये कथञ्चन ।
हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद्भूरिदक्षिणम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत
ततो भेरीश्च शङ्खांश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
वादयामासुरव्यग्रा वादका राजशासनात् ॥ २७
सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः ।
प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षं रुधिरकर्दमम् ॥ २८
निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजबृंहितनिःस्वनाः ।
आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत ॥ २९
वाचश्चाप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे ।
शिवाश्च भयवेदिन्यो नेदुर्दीप्ततरा भृशम् ॥ ३०
सैनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान् ।
तदैतान्युग्ररूपाणि बभूवुः शतशो नृप ॥ ३१
ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम् ।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान् गोभिर्निष्कैश्च भूरिशः ॥
वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः ।
आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ ३३
स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह ॥ ३४
परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः ।
शिबिरं मापयामास समे देशे जनाधिप ॥ ३५
मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने ।
यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि भीष्मसैनापत्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

## १५७

जनमेजय उवाच ।

आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।
पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम् ॥ १
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम् ।
समुद्रमिव गांभीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम् ॥ २

---

कार्तिकेयः ॥ १३ ॥ पावकिः कार्तिकेय एव ॥ १५ ॥ विवृतो विस्पष्टो भूत्वेत्यर्थः ॥ १९ ॥ न मे मया उत्सादनीयाः नाशयितुं शक्याः सदा प्रत्यहम् ॥ २१ ॥ पातयन्तः मूर्च्छितानि कुर्वन्तः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

१५७

आपगेयमिति ॥ १ ॥

प्रजापतिमिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम् ।
महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः ॥ ३
रणयज्ञे प्रवितते सुभीमे लोमहर्षणे ।
दीक्षितं चिररात्राय श्रुत्वा तत्र युधिष्ठिरः ॥ ४
किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
भीमसेनार्जुनौ वाऽपि कृष्णो वा प्रत्यभाषत॥ ५
वैशम्पायन उवाच ।
आपद्धर्मार्थकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ।
सर्वान् भ्रातॄन् समानीय वासुदेवं च शाश्वतम्६
उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिताः ॥ ७
पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति ।
तस्मात् सप्तसु सेनासु प्रणेतॄन् मम पश्यत ॥ ८
कृष्ण उवाच ।
यथाऽर्हति भवान् वक्तुमस्मिन् काले ह्युपस्थिते ।
तथेदमर्थवद्वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥ ९
रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम् ।
नायकास्तव सेनायां क्रियन्तामिह सप्त वै ॥ १०
वैशम्पायन उवाच ।
ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् ।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिव ॥ ११
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवं च मागधम् ।
एतान् सप्त महाभागान् वीरान् युद्धाभिकांक्षिणः
सेनाप्रणेतॄन् विधिवदभ्यषिञ्चद्युधिष्ठिरः ।
सर्वसेनापतिं चात्र धृष्टद्युम्नं चकार ह ॥ १२
द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः ।
सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ॥ १४
सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनञ्जयम् ।
अर्जुनस्यापि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् १५
सङ्कर्षणानुजः श्रीमान्महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
तद्दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ १६
प्राविशद्भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः ।
सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः ॥ १७
रौक्मिणेयाहुकसुतैश्चारुदेष्णपुरोगमैः ।
वृष्णिमुख्यैरधिगतैर्व्याघ्रैरिव बलोत्कटैः ॥ १८
अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः ।
नीलकौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ॥ १९
सिंहखेलगतिः श्रीमान् मदरक्तान्तलोचनः ।
तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ॥ २०
उदतिष्ठत्ततः पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः ।
गाण्डीवधन्वा ये चान्ये राजानस्तत्र केचन॥२१
पूजयांचक्रिरे ते वै समायान्तं हलायुधम् ।
ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥२२
वासुदेवपुरोगास्तं सर्व एवाभ्यवादयन् ।
विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाद्य हलायुधः ॥ २३
युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिन्दमः ।
ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः ।
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥ २४
भविताऽयं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः ।
‡दिष्टमेतद्ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २५
तस्माद्युद्धात् समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान् ।
अरोगानक्षतैर्देहैद्रष्टाऽस्मीति मतिर्मम ॥ २६
समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्वमसंशयम् ।
विमर्दश्च महान् भावी मांसशोणितकर्दमः ॥ २७
उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे ।
सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्तस्व मधुसूदन ॥ २८
पाण्डवा हि यथाऽस्माकं तथा दुर्योधनो नृपः ।
तस्यापि क्रियतां साह्यं स पर्येति पुनःपुनः॥ २९
तच्च मे नाकरोद्वाक्यं त्वदर्थे मधुसूदनः ।
निर्विष्टः सर्वभावेन धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥ ३०
ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः ।
तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥ ३१
न चाहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम् ।
ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥ ३२
उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ ।
तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे॥ ३३
तस्माद्यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् ।
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम् ३४
एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः ।
तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि बलरामतीर्थयात्रागमने
सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

---

इद्धात् प्रदीप्तात् ॥ १४ ॥ महात्ययमत्यन्तं क्षयकरम् ॥१६॥ रौहिणेयो बलरामः ॥२४॥ उपह्वरे एकान्ते॥२८॥

इति श्रीम० उद्यो० नैल० भा० भा० सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५७ ॥ ‡ दिष्टमेव इति पाठान्तरम् ।

## १५८

वैशम्पायन उवाच ।
एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।
हिरण्यरोम्णो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥ १
आकृतीनामधिपतेर्भोजस्यातियशस्विनः ।
दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥२
यः किंपुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः ।
कृत्स्नं शिष्यो धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥ ३
यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा ।
शार्ङ्गेण च महाबाहुः सम्मितं दिव्यलक्षणम् ॥ ४
त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि दिवि चारिणाम् ।
वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः ।
शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः ॥ ५
धारयामास तत्कृष्णः परसेनाभयावहम् ।
गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः॥ ६
द्रुमाद्रुक्मी महातेजा विजयं प्रत्यपद्यत ।
संछिद्य मौरवान् पाशान्निहत्य मुरुमोजसा ॥ ७
निर्जित्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले ।
षोडश स्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च ॥८
प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम् ।
रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघनिभस्वनम् ॥ ९
विभीषयन्निव जगत् पाण्डवानभ्यवर्तत ।
नामृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलगर्वितः ॥ १०
रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता ।
कृत्वा प्रतिज्ञां नाहत्वा निवर्तिष्ये जनार्दनम्॥ ११
ततोऽन्वधावद्वार्ष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
सेनया चतुरङ्गिण्या महत्या दूरपातया ॥ १२
विचित्रायुधवर्मिण्या गङ्गयेव प्रवृद्धया ।
स समासाद्य वार्ष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम्॥ १३
व्यंसितो व्रीडितो राजन्नाजगाम स कुण्डिनम् ।
यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा ॥ १४
तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम् ।
सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना ॥ १५
पुरं तद्भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप ।
स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः ॥ १६
अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान् क्षिप्रमागमत् ।
ततः स कवची धन्वी तली खड्गी शरासनी १७
ध्वजेनादित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम् ।
विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेप्सया ॥ १८
युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत् ।
स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसंस्तुतः ॥ १९
प्रतिगृह्य तु तान् सर्वान् विश्रान्तः सहसैनिकः ।
उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ २०
सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव
करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥ २१
न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ।
हनिष्यामि रणे भागं यन्मे दास्यसि पाण्डव॥२२
अपि द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः ।
अथवा सर्वे एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ॥ २३
निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम् ।
इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च सन्निधौ ॥ २४
शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः ।
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजं च पाण्डवम् ॥ २५
उवाच धीमान् कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम् ।
कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ॥
द्रोणं व्यपदिशन् शिष्यो वासुदेवसहायवान् ।
भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः
युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः ।
सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम ॥
तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले ।
खाण्डवे युद्ध्यमानस्य कः सहायस्तदाऽभवत् ॥
निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः ।
तत्र मे युद्ध्यमानस्य कः सहायस्तदाऽभवत् ॥
तथा विराटनगरे कुरुभिः सह सङ्गरे ।
युध्यतो बहुभिस्तत्र कः सहायोऽभवन्मम ॥ ३१
उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
वरुणं पावकं चैव कृपं द्रोणं च माधवम् ॥ ३२
धारयन् गाण्डिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम् ।
अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिबृंहितः ॥ ३३
कथमस्मद्विधो ब्रूयाद्भीतोऽस्मीति यशोहरम् ।
वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥ ३४

---

१५८

एतस्मिन्निति । साक्षात्पुत्र इति सम्बन्धः ॥ १ ॥ आकूतीनां सङ्कल्पानां सत्यसङ्कल्प इत्यर्थः ॥ २ ॥ मौरवान् आन्त्रतन्तिमयान् । यैरिदानीं शार्ङ्गे धनुषि ज्या क्रियते ॥ ७ ॥ द्रोणमयं मम गुरुरिति व्यपदिशन् कथयन् ॥ २७ ॥ उपजीव्य आराध्य रणे युद्धानीमितम् ॥ ३२ ॥

नास्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नास्ति मे॥
यथाकामं यथायोगं गच्छ वाऽन्यत्र तिष्ठ वा॥
विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसंनिभाम् ।
दुर्योधनमुपागच्छत्तथैव भरतर्षभ ॥ ३६
तथैव चाभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः ।
प्रत्याख्यातश्च तेनापि स तदा शूरमानिना ३७
द्वावेव तु महाराज तस्माद्युद्धादपेयतुः ।
रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिप ॥३८
गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा ।
उपाविशन् पाण्डवेया मन्त्राय पुनरेव च ॥ ३९
समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला ।
शुशुभे तारकैश्चित्रा द्यौश्चन्द्रेणेव भारत ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि रुक्मिप्रत्याख्याने
अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५८ ॥

## १५९

जनमेजय उवाच ।
तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ ।
किमकुर्वश्च कुरवः कालेनाभिप्रचोदिताः॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ ।
धृतराष्ट्रो महाराज सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २
एहि सञ्जय सर्वं मे आचक्ष्वानवशेषतः ।
सेनानिवेशे यद्वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ३
दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम् ।
यदहं बुध्यमानोऽपि युद्धदोषान् क्षयोदयान् ॥ ४
तथाऽपि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम् ।
न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः ॥
भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी ।
दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते ॥ ६
एवं गते वै यद्भावि तद्भविष्यति सञ्जय ।
क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः ॥ ७
सञ्जय उवाच ।
त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथेच्छसि ।
न तु दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ ८
शृणुष्वानवशेषेण वदतो मम पार्थिव ।
य आत्मनो दुश्चरिताद्शुभं प्राप्नुयान्नरः ।
न स कालं न वा देवानेनसा गन्तुमर्हति ॥ ९
महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥
निकारा मनुजश्रेष्ठ पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया ।
अनुभूताः सहामात्यैर्निकृतैरधिदेवने ॥ ११
हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम् ।
वैशसं समरं वृत्तं यत्तन्मे शृणु सर्वशः ॥ १२
स्थिरो भूत्वा महाप्राज्ञ सर्वलोकक्षयोदयम् ।
यथा भूतं महायुद्धे श्रुत्वा चैकमना भव ॥ १३
न ह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः ।
अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥ १४
केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचिदेव यदृच्छया ।
पूर्वकर्मभिरप्यन्ये त्रैधमेतत्प्रदृश्यते ।
तस्मादनर्थमापन्नः स्थिरो भूत्वा निशामय ॥ १५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि सञ्जयवाक्ये
ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

समाप्तं सैन्यनिर्याणपर्व ।

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

१५९

तथेति ॥ १ ॥ क्षयस्यैव उदयो येभ्यस्तान् क्षयोदयान् ॥४॥ निकृतिप्रज्ञं कपटविषयैव प्रज्ञा न धर्मविषया यस्य तम् ॥५॥एनसा दोषेण देवान् कालं वा गन्तुं उपालब्धुं नार्हति 'दृष्टे संभवत्यदृष्टकल्पनाया अन्याय्यत्वात्' दृष्टापराधाभावे देवस्य कालस्य वा उपालंभः कर्तुमुचितो न तु तस्मिन् सतीत्यर्थः न स कालं न वा देवं वक्तुमेतदिहार्हतीति पाठेऽप्ययमेवार्थः ॥ ९ ॥ निकाराः तिरस्काराः ॥ ११ ॥ वैशसं वैरं समरे निमित्ते ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः १५९

# उलूकदूतागमनपर्व ८

## १६०

सञ्जय उवाच ।
हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥ १
तत्र दुर्योधनो राजा निवेश्य बलमोजसा ।
संमानयित्वा नृपतीन्न्यस्य गुल्मांस्तथैव च ॥ २
आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ३
आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत ।
तत्र दुर्योधनो राजा कर्णेन सह भारत ॥ ४
संभाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ।
सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ॥ ५
आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ।
उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान्सहसोमकान् ॥६
गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ।
इदं तत्समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ॥ ७
पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयङ्करम् ।
यदेतत्कत्थनावाक्यं सञ्जयो महदब्रवीत् ॥ ८
वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते ।
मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः॥ ९
यथा वः संप्रतिज्ञातं तत्सर्वं क्रियतामिति ।
ज्येष्ठं तथैव कौन्तेयं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ॥ १०
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः ।
कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥
य इच्छसि जगत्सर्वं नश्यमानं नृशंसवत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः ॥१२
श्रूयते हि पुरा गीतः श्लोकोऽयं भरतर्षभ ।
प्रह्लादेनाथ भद्रं ते हृते राज्ये तु दैवतैः ॥ १३
यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुराध्वज इवोच्छ्रितः ।
प्रच्छन्नानि च पापानि बैडालं नाम तद्व्रतम् १४
अत्र ते वर्तयिष्यामि आख्यानमिदमुत्तमम् ।
कथितं नारदेनेह पितुर्मम नराधिप ॥ १५
मार्जारः किल दुष्टात्मा निश्चेष्टः सर्वकर्मसु ।
ऊर्ध्वबाहुः स्थितो राजन्गङ्गातीरे कदाचन १६
स वै कृत्वा मनःशुद्धिं प्रत्ययार्थं शरीरिणाम् ।
करोमि धर्ममित्याह सर्वानेव शरीरिणः ॥ १७
तस्य कालेन महता विश्रंभं जग्मुरण्डजाः ।
समेत्य च प्रशंसन्ति मार्जारं तं विशाम्पते ॥ १८
पूज्यमानस्तु तैः सर्वैः पक्षिभिः पक्षिभोजनः ।
आत्मकार्यं कृतं मेने चर्यायाश्च कृतं फलम् ॥ १९
अथ दीर्घस्य कालस्य तं देशं मूषिका ययुः ।
ददृशुस्तं च ते तत्र धार्मिकं व्रतचारिणम् ॥ २०
कार्येण महता युक्तं दम्भयुक्तेन भारत ।
तेषां मतिरियं राजन्नासीत्तत्र विनिश्चये ॥ २१
बहुमित्रा वयं सर्वे तेषां नो मातुलो ह्ययम् ।
रक्षां करोतु सततं वृद्धबालस्य सर्वशः ॥ २२
उपगम्य तु ते सर्वे बिडालमिदमब्रुवन् ।
भवत्प्रसादादिच्छामश्चर्तुं चैव यथासुखम् ॥ २३
भवान्नो गतिरव्यग्रा भवान्नः परमः सुहृत् ।
ते वयं सहिताः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ २४
भवान्धर्मपरो नित्यं भवान्धर्मे व्यवस्थितः ।
स नो रक्ष महाप्रज्ञ त्रिदशानिव वज्रभृत् ॥ २५
एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्मूषिकैः स विशाम्पते ।
प्रत्युवाच ततः सर्वान्मूषिकान्मूषिकान्तकृत्
द्वयोर्योगं न पश्यामि तपसो रक्षणस्य च ।
अवश्यं तु मया कार्यं वचनं भवतां हितम् ॥ २७
युष्माभिरपि कर्तव्यं वचनं मम नित्यशः ।
तपसाऽस्मि परिश्रान्तो दृढं नियममास्थितः २८
न चापि गमने शक्तिं काञ्चित्पश्यामि चिन्तयन्
सोऽस्मि नेयः सदा ताता नदीकूलमितः परम्
तथेति तं प्रतिज्ञाय मूषिका भरतर्षभ ।
वृद्धबालमथो सर्वं मार्जाराय न्यवेदयन् ॥ ३०

---

१६०

हिरण्वत्यामिति ॥ १ ॥ गुल्मान् सैन्यान् ॥ २ ॥ आरक्षस्य रक्षणीयस्य द्रव्यादेः विधिं रक्षाविधानम् । ' आरक्षं रक्षणीये स्यात् ' इति विश्वः ॥ ३ ॥ कत्थनावाक्यं आत्मप्रशंसनम् ॥ ८॥ संप्रतिज्ञातं दुःशासनरुधिरपानादि । भ्रातृभिः सहितः कथमधर्मे मनः कृथा इति सम्बन्धः ॥११॥ दाता दास्यसि पारिव्राज्यं करिष्यसीत्यर्थः ॥ १२ ॥ भो सुरा इति देवान् प्रह्लादः संबोधयति यस्य व्रतस्य धर्मध्वजो धर्मचिह्नं दर्भपवित्रपाणित्वादि । उच्छ्रितः सर्वलोकविदितः ॥ १४ ॥ मनःशुद्धिं हिंसातो निवृत्तिम् ॥ १७ ॥ विश्रंभं विश्वासम् ॥ १८ ॥ बहवश्च ते मित्राणि चेति बहुमित्राः । बहुमित्रा इत्यपि पाठः । वृद्धाश्च बालाश्च तेषां समाहारो वृद्धबालं तस्य ॥ २२ ॥

ततः स पापो दुष्टात्मा मूषिकानथ भक्षयन् ।
पीवरश्च सुवर्णश्च दृढबन्धश्च जायते ॥ ३१
मूषिकाणां गणश्चात्र भृशं संक्षीयतेऽथ सः ।
मार्जारो वर्धते चापि तेजोबलसमन्वितः ॥ ३२
ततस्ते मूषिकाः सर्वे समेत्यान्योऽन्यमब्रुवन् ।
मातुलो वर्धते नित्यं वयं क्षीयामहे भृशम् ॥ ३३
ततः प्राज्ञतमः कश्चिड्डिण्डिको नाम मूषिकः ।
अब्रवीद्वचनं राजन् मूषिकाणां महागणम् ॥ ३४
गच्छतां वो नदीतीरं सहितानां विशेषतः ।
पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि सहैव मातुलेन तु ॥ ३५
साधु साध्विति ते सर्वे पूजयांचक्रिरे तदा ।
चक्रुश्चैव यथान्यायं डिण्डिकस्य वचोऽर्थवत् ३६
अविज्ञानात्ततः सोऽथ डिण्डिकं ह्युपभुक्तवान् ।
ततस्ते सहिताः सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥ ३७
तत्र वृद्धतमः कश्चित् कोलिको नाम मूषिकः ।
अब्रवीद्वचनं राजन् ज्ञातिमध्ये यथातथम् ॥ ३८
न मातुलो धर्मकामश्छद्ममात्रं कृता शिखा ।
न मूलफलभक्षस्य विष्ठा भवति लोमशा ॥ ३९
अस्य गात्राणि वर्धन्ते गणश्च परिहीयते ।
अद्य सप्ताष्टदिवसान् डिण्डिकोऽपि न दृश्यते ४०
एतच्छ्रुत्वा वचः सर्वे मूषिका विप्रदुद्रुवुः ।
बिडालोऽपि स दुष्टात्मा जगामैव यथागतम् ॥४१
तथा त्वमपि दुष्टात्मन् बैडालं व्रतमास्थितः ।
चरसि ज्ञातिषु सदा बिडालो मूषिकेष्विव ॥
अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते ।
दम्भनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोपशमश्च ते ॥ ४३
त्यक्त्वा छद्म त्विदं राजन् क्षत्रधर्मं समाश्रितः ।
कुरु कार्याणि सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि नरर्षभ ४४
बाहुवीर्येण पृथिवीं लब्ध्वा भरतसत्तम ।
देहि दानं द्विजातिभ्यः पितृभ्यश्च यथोचितम् ॥
क्लिष्टाया वर्षपूगांश्च मातुर्मातृहिते स्थितः ।
प्रमार्जाश्रु रणे जित्वा सम्मानं परमावह ॥ ४६

पञ्च ग्रामा वृता यत्नान्नास्माभिरपवर्जिताः ।
युध्यामहे कथं संख्ये कोपयेम च पाण्डवान् ४७
त्वत्कृते दुष्टभावस्य संत्यागो विदुरस्य च ।
जातुषे च गृहे दाहं स्मर तं पुरुषो भव ॥ ४८
यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि ।
अयमस्मि स्थितो राजन् शमाय समराय च ४९
तस्यायमागतः कालः समरस्य नराधिप ।
एतदर्थं मया सर्वं कृतमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५०
किं नु युद्धात् परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते ।
किं च त्वं क्षत्रियकुले जातः संप्रथितो भुवि ५१
द्रोणादस्त्राणि संप्राप्य कृपाच्च भरतर्षभ ।
तुल्ययोनौ समबले वासुदेवं समाश्रितः ॥ ५२
ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः ।
आत्मार्थे पाण्डवार्थे च यत्तो मां प्रति योधय ॥
सभामध्ये च यद्रूपं मायया कृतवानसि ।
तत्तथैव पुनः कृत्वा सार्जुनो मामभिद्रव ॥ ५४
इन्द्रजालं च मायां वै कुहका वाऽपि भीषणा ।
आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ५५
वयमप्युत्सहेम द्यां खं च गच्छेम मायया ।
रसातलं विशामोऽपि ऐन्द्रं वा पुरमेव तु ॥ ५६
दर्शयेम च रूपाणि स्वशरीरे बहून्यपि ।
न तु पर्यायतः सिद्धिर्बुद्धिमाप्नोति मानुषीम् ॥५७
मनसैव हि भूतानि धातैव कुरुते वशे ।
यद्ब्रवीषि च वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ५८
घातयित्वा प्रदास्यामि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम् ।
आचचक्षे च मे सर्वं सञ्जयस्तव भाषितम् ॥ ५९
मद्द्वितीयेन पार्थेन वैरं वः सव्यसाचिना ।
स सत्यसङ्गरो भूत्वा पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ६०
युद्धयस्वाद्य रणे यत्तः पश्यामः पुरुषो भव ।
यस्तु शत्रुमभिज्ञाय शुद्धं पौरुषमास्थितः ॥ ६१
करोति द्विषतां शोकं स जीवति सुजीवितम् ।
अकस्माच्चैव ते कृष्ण ख्यातं लोके महद्यशः ॥६२

शिखा शाखा अमित्रस्यापि मित्रभावरूपं पक्षान्तरकृता स्वीकृता । 'शिखा शाखा बर्हिचूडा' इति 'शाखा पक्षान्तरे बाहौ' इति च मेदिनी॥३९॥ गणश्च मूषिकाणाम् ॥ ४० ॥ इदं छद्म अजातशत्रुत्वरूपं धर्मिष्ठोऽसीत्युपहासः ॥४४॥ प्रमार्ज प्रमार्जय ॥४६॥ इन्द्रजालं प्रसिद्धम् । माया छलं कुहका कृत्या प्रतिगर्जनाः विपरीतं कोपं वहन्ति प्रापयन्ति न तु भयं जनयन्तीत्यर्थः । 'गर्जनं निनदे कोपे' इति मेदिनी ॥ ५५ ॥ पर्यायतः पर्यायो भयप्रदर्शनादिरूपः प्रकारस्तेन सिद्धिः स्वस्य न तु भवति तथा परोऽपि तेन बुद्धिं मानुषीं भयात्मिकां न प्राप्नोति ॥ ५७ ॥ यतो मनसैव ईश्वरेणैव वयं वशे कर्तव्या न त्वादृशैर्बिभीषिकयेति भावः । पूर्वश्लोकेन त्वित्यत्र नन्विति पाठे पर्यायतः क्रमतः भावस्तु स एव । 'पर्यायः प्रकारेऽवसरे क्रमे' इति मेदिनी ॥ ५८ ॥ आचचक्षे आख्यातवान् ॥ ५९ ॥

अद्येदानीं विजानीमः सन्ति षण्ढाः सश्मश्रुकाः ।
मद्विधो नापि नृपतिस्त्वयि युक्तः कथञ्चन ॥ ६३
सन्नाहं संयुगे कर्तुं कंसभृत्ये विशेषतः ।
तं च तूबरकं बालं बह्वाशिनमविद्यकम् ॥ ६४
उलूक मद्वचो ब्रूहि असकृद्भीमसेनकम् ।
विराटनगरे पार्थ यस्त्वं सूदो ह्यभूः पुरा ॥ ६५
बल्लवो नाम विख्यातस्तन्ममैव हि पौरुषम् ।
प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ॥ ६६
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ।
यद्ब्रवीषि च कौन्तेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ६७
निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः ।
त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत ६८
क्व युद्धं क्व च भोक्तव्यं युध्यस्व पुरुषो भव ।
शयिष्यसे हतो भूमौ गदामालिङ्ग्य भारत ६९
तद्वृथा च सभामध्ये वल्गितं ते वृकोदर ।
उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत ॥ ७०
युद्ध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम् ।
युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषं च मयि भारत ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम् ॥ ७१
ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम ।
युद्ध्येदानीं रणे यत्तः क्लेशान् स्मर च पाण्डव ७२
विराटद्रुपदौ चोभौ ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।
न दृष्टपूर्वा भर्तारो भृत्यैरपि महागुणैः ॥ ७३
तथाऽथपतिभिर्भृत्या यतः सृष्टाः प्रजास्ततः ।
अश्लाघ्योऽयं नरपतिर्युवयोरिति चागतम् ॥ ७४
ते यूयं संहता भूत्वा तद्वधार्थं ममापि च ।
आत्मार्थं पाण्डवार्थं च प्रयुद्ध्यध्वं मया सह ॥ ७५
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।
एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयाऽपि सः ७६
द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम् ।
युध्यस्व ससुहृत्पापं कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ ७७
शिखण्डिनमथो ब्रूहि उलूकवचनान्मम ।
स्त्रीति मत्वा महाबाहुर्न हनिष्यति कौरवः ॥ ७८
गाङ्गेयो धन्विनां श्रेष्ठो युद्ध्येदानीं सुनिर्भय ।
कुरु कर्म रणे यत्तः पश्यामः पौरुषं तव ॥ ७९
एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत् ।
धनञ्जयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ८०
अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्
अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसि ८१
राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ८२
यदर्थं क्षत्रिया सूते सर्वं तदिदमागतम् ।
बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम् ॥ ८३
पौरुषं दर्शयन् युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ।
परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च ।
हृदयं कस्य न स्फोटेदैश्वर्याद्भ्रंशितस्य च ॥ ८४
कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृध्यतः ।
आस्थितं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥
यत्तदुक्तं महद्वाक्यं कर्मणा तद्विभाव्यताम् ।
अकर्मणा कत्थितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः ॥ ८६
अमित्राणां वशे स्थानं राज्यं च पुनरुद्धर ।
द्वावर्थौ युद्धकामस्य तस्मात्तत् कुरु पौरुषम् ॥ ८७
पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम् ।
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ८८
द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः ।
संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८९
राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ९०

---

सश्मश्रुकाः श्मश्रु पुंस्त्वचिह्नं श्मश्रुलत्वलिङ्गस्वरत्वादिकं तत्सहिताः षण्ढाः निर्वीर्याः सन्ति येषु तव शौर्यं प्रख्यातमिति भावः ॥ ६३ ॥ तूबरकं तूबरः प्रौढश्शृङ्गोऽनड्वान् तत्तुल्यम् । तूपर इति पाठेऽपि स एवार्थः । अश्मश्रुपुरुषमित्यन्ये । तूबरोऽश्मश्रुपुरुषे प्रौढश्शृङ्गानडुह्यपि' इति मेदिनी । तेषां भीमसेनो निःश्मश्रुक इति कल्पना भवति । अश्वोऽजस्तूपरो गोमृग इति प्राजापत्या इति श्रुतौ अश्वादिसाहचर्यात्तूपरोऽपि पशुरेव । अविद्यकं मूढम् ॥ ६४ ॥ न दृष्टेति । भर्तारः राजानः ॥ ७३ ॥ अथपतिभी राजभिः । यतः कालात् तत आरभ्येत्यर्थः । मूढा यूयं मयि गुणवति स्वामिनि न संतुष्टाः स्थ । मूढश्च युधिष्ठिरो भवदादिषु निर्गुणेष्वपि तुष्यतीति भावः ॥ ७४ ॥ तत्तस्माद्धेतोर्मम वधार्थं च प्रयुद्ध्यध्वमिति सम्बन्धः ॥ ७५ ॥ पापं कर्म कुरु गुरुवधाख्यम् । स्वार्थमिति पाठे दुष्करपदादेवायमर्थो ज्ञेयः । ससुहृत्पार्थमिति पाठे तु क्रियाविशेषणमिदं सुहृद्भिः पार्थैश्च सहितं यथा स्यात्तथा युद्ध्यस्वेत्यर्थः । अयमेव मूलपाठ इति भाति ॥ ७७ ॥ राज्यमाक्रम्य मादृश इति शेषः ॥ ८५ ॥ अकर्मणा अयुद्धेन कत्थितेन स्वप्रशंसामात्रेण ॥ ८६ ॥ स्थानं स्थितिं तत् स्थानराज्ययोरुद्धरणं पौरुषं पुरुषकर्म कुरु ॥ ८७ ॥ धिष्ण्यात् गृहात् ॥ ८९ ॥

अप्रियाणां च वचनं प्रब्रुवत्सु पुनः पुनः ।
अमर्षं दर्शयस्व त्वममर्षो ह्येव पौरुषम् ॥ ९१
क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम् ।
इह ते दृश्यतां पार्थ युद्ध्यस्व पुरुषो भव ॥ ९२
लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।
पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युद्ध्यस्व सकेशवः
असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ९४
एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव ।
सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ ९५
द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि॥ ९६
ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः ।
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥ ९७
द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।
न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ ९८
अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वाऽपि निपतेन्महीम् ।
युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथाऽऽत्थ माम् ९९
को ह्यस्ति जीविताकाङ्क्षी प्राप्येममरिमर्दनम् ।
पार्थो वा इतरो वाऽपि कोऽन्यः स्वस्ति गृहान्व्रजेत्
कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा ।
रणे जीवन् प्रमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १०१
किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां
न बुध्यसे राजचमूं समेताम् ।
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां
गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ १०२
प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ।
शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेश्यै-
र्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः १०३
नानाजनौघं युधि संप्रवृद्धं
गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये
युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ १०४
अक्षय्यावि‌षुधी चैव अग्निदत्तं च ते रथम् ।
जानीमो हि रणे पार्थ केतुं दिव्यं च भारत १०५
अकत्थमानो युद्ध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु ।
पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिध्यति कत्थनात्१०६
यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनञ्जय ।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥
जानामि ते वासुदेवं सहायं
जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् ।
जानाम्यहं त्वादृशो नास्ति योद्धा
जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥ १०८
न तु पर्यायधर्मेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।
मनसैवानुकूलानि धातैव कुरुते वशे ॥ १०९
त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये त्वां निहत्य सबान्धवम् ११०
क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दास पणैर्जितः ।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन १११
सगदाद्भीमसेनाद्वा फाल्गुनाद्वा सगाण्डिवात् ।
न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम् ।
सा वो दास्ये समापन्नान् मोचयामास पार्षती
अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान् ॥
अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् ।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ११४
सूदकर्माणि विश्रान्तं विराटस्य महानसे ।
भीमसेनेन कौन्तेय यत्तु तन्मम पौरुषम् ॥ ११५
एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।
वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ११६

---

अप्रियाणां शत्रूणां वक्तुं योग्यं वचनं गोगौः 'न सन्ति पतयो भद्रे षण्ढतिला एते' इत्यादिकं प्रब्रुवत्सु दुःशासनादिषु अमर्षं कोपं दर्शय ॥ ९१ ॥ लोहाभिसारः शस्त्राणां नीराजनादिकं तेषु मन्त्रेण देवतावाहनादिकं च अकर्दममिति युद्धयोग्यत्वं भूमेरुक्तम् ॥ ९३ ॥ वेदयोः श्रुतिधनुर्वेदयोः अन्तगं पारगम् ॥ ९७ ॥ युगं कालचक्रम् ॥ ९९ ॥ आभ्यां द्रोणभीष्माभ्यां अभिध्यातो हन्तव्यत्वेन निश्चितः । दारुणेन भयानकेनास्त्रादिना पदा भूमिमिति मर्त्य उक्तः ॥ १०१ ॥ दर्दुरो मण्डूकः ॥ १०२ ॥ नागबलस्य हस्तिसैन्यस्य ॥ १०४ ॥ पर्यायात् युद्धप्रकारात् ॥ १०६ ॥ पर्यायधर्मेण उपधर्मेण मायादिना अन्ये तु राजपुत्रोऽयं राज्यार्ह इति क्रमधर्मस्तेन न किं तु शौर्येणैव सिद्धिमाप्नोतीत्यर्थः । मनसा संकल्पेन धातैव कुरुते न तु मनुष्यः ॥ १०९ ॥ हे दास वासव इति पाठे इन्द्रपुत्र ॥ १११ ॥ अमानुष्यं नीचमनुष्यत्वं अलवणा यवागूरितिवदल्पार्थोऽत्र नञ् ॥ ११३ ॥ वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसीत्येतस्मात्परं 'श्रोण्यां वेण्यां च कक्ष्यां च संयुगे यः पलायते ' इत्यर्धं दृश्यते । तस्यार्थः--यः षण्ढवेषः अस्त्री अपि स्त्रीवेषभृत् श्रोणिकक्षावेण्युपलक्षितेषु रत्यवमर्ददंशनस्थानेषु संयुगे स्मरयुद्धे उपस्थिते सति पलायते

न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।
राज्यं प्रति प्रदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः ११७
न मायाऽहीन्द्रजालं वा कुहका वाऽपि भीषणा
आत्तशस्त्रस्य सङ्ग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ११८
वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।
आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ११९
संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम्
तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् १२०
शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥ १२१
भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्ण-शल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ १२२
दुःशासनौघं शल-शल्यमत्स्यं
सुषेण-चित्रायुधनाग-नक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्र-गाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ १२३
शस्त्रौधमक्षय्यमभिप्रवृद्धं
यदाऽवगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ १२४
तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचे-
र्निवर्तिता पार्थ महीप्रशासनात् ।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया
बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥ १२५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि दुर्योधनवाक्ये षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

## १६१

सञ्जय उवाच ।
सेनानिवेशं संप्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह ।
समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १
अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम ।
दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २
युधिष्ठिर उवाच ।
उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः ।
यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ३
ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ४
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ।
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥ ५
उलूक उवाच ।
इदं त्वामब्रवीद्राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ६
पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम्
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ७
द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः ।
संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८
अमर्षं राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ९
अशक्तेन च यच्छप्तं भीमसेनेन पाण्डव ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥ १०
लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।
समः पन्था भृतास्तेऽश्वाः श्वो युध्यस्व सकेशवः
असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १२

---

स्त्री त्वस्मिन्संयुगे स्थिरीभवति । अयं तु ततोऽप्यधम इति भावः। कक्षायामित्यपेक्षित आकारलोप आर्षः॥११६॥ न मायेति व्याख्यात एव श्लोकः ॥ ११८ ॥ भीष्मेण सह संग्रामः गिरौ शिरोभेदनादिवत् स्वनाशकर इत्यर्थः॥१२०॥ उद्वेलो वृद्धिः ॥ १२१ ॥ ओघः प्रवाहः पुरुमित्रो दुर्योधनभ्राता स एव गाधो गाम्भीर्यस्य पर्यन्तो यस्मिन् । गाढमिति पाठे तेन गाढं दुष्प्रवेशं दुर्मर्षणोदं दुर्मर्षणोदकं सोऽपि दुर्योधनभ्रातैव ॥ १२३ ॥ निवर्तिता निवर्तिष्यति प्रशाम्य शान्तो भव । प्रशास्येति पाठे प्रशास्यं च तद्राज्यं चेति समासः । बुभूषितः प्राप्तुमिष्टः । अतपस्विना स्वर्ग इव त्वया राज्यं दुर्लभं लब्धुमशक्यम् ॥ १२५ ॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भा० भा० षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः १६०

१६१

सेनेति ॥ १ शप्तं शपथः कृतः ॥ १० ॥ व्याख्यात एवायमध्यायः ॥ ११ ॥

एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव ।
सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ १३

द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ १४

ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः ।
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥ १५

द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।
न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥

अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वाऽपि निपतेन्महीम् ।
युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथाऽऽत्थ माम् ॥

को ह्यस्ति जीविताकाङ्क्षी प्राप्येममरिमर्दनम् ।
गजो वाजी रथो वाऽपि पुनः स्वस्ति गृहान्व्रजेत्

कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा ।
रणे जीवन् विमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥१९

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां
न बुध्यसे राजचमूं समेताम् ।
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां
गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ २०

प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ।
शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमुख्यदेश्यै-
र्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ २१

नानाजनौघं युधि संप्रवृद्धं
गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये
युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ २२

इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अभ्यावृत्य पुनर्जिष्णुमुलूकः प्रत्यभाषत ॥ २३

अकत्थमानो युध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु ।
पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिध्यति कत्थनात् ॥

यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनञ्जय ।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं
जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् ।
जानाम्येतत् त्वादृशो नास्ति योद्धा
जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥ २६

न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति मानुषः ।
मनसैवानुकूलानि विधाता कुरुते वशे ॥ २७

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् ॥

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दास पणैर्जितः ।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ २९

सगदाद्भीमसेनाद्वा पार्थाद्वाऽपि सगाण्डिवात् ।
न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम्॥

सा वो दास्ये समापन्नान् मोक्षयामास पार्षती ।
अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान्॥३१

अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् ।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ३२

सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे ।
भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ॥ ३३

एवमेतत् सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।
वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि॥ ३४

न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।
राज्यं प्रति प्रदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः ॥३५

न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वाऽपि भीषणा ।
आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ३६

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।
आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥३७

संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम्
तरेमं वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥ ३८

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥ ३९

भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ ४०

दुःशासनौघं शल-शल्यमत्स्यं
सुषेण-चित्रायुधनाग-नक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ ४१

शस्त्रौघमक्षय्यमतिप्रवृद्धं
यदाऽवगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ ४२

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचे-
निर्वर्तिता पार्थ महीप्रशासनात् ।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया
बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकवाक्ये
एकषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः॥ १६१ ॥

## १६२

सञ्जय उवाच ।
उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया ॥ १
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम् ।
प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येनापि धर्षिताः ॥ २
आसनेषूदतिष्ठन्त बाहूंश्चैव प्रचिक्षिपुः ।
आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षांचक्रुः परस्परम् ॥ ३
अवाक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम् ।
नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन्॥
आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाभिहतं भृशम् ।
उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥ ५
प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम् ।
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत्॥
एवमुक्त्वा महाबाहुः केशवो राजसत्तम ।
पुनरेव महाप्राज्ञं युधिष्ठिरमुदैक्षत ॥ ७
सृञ्जयानां च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः ।
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ॥ ८
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ।
उलूकोऽप्यर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ९
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया ।
कृष्णादींश्चैव तान् सर्वान् यथोक्तं वाक्यमब्रवीत्॥
उलूकस्य तु तद्वाक्यं पापं दारुणमीरितम् ।
श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटं चाप्यमार्जयत् ॥
तदवस्थं तदा दृष्ट्वा पार्थं सा समितिर्नृप ।
नामृष्यन्त महाराज पाण्डवानां महारथाः॥ १२
अधिक्षेपेण कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाज्जज्वलुरच्युत ॥१३
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १४
द्रौपदेयाभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ।
भीमसेनश्च विक्रान्तो यमजौ च महारथौ ॥ १५
उत्पेतुरासनात् सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
बाहून् प्रगृह्य रुचिरान् रक्तचन्दनरूषितान् ।
अङ्गदैः पारिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान् ॥ १६
दन्तान् दन्तेषु निष्पिष्य सृक्किणी परिलेलिहन् ।
तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ १७
उदतिष्ठत् स वेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव ।
उद्वृत्य सहसा नेत्रे दन्तान् कटकटाय्य च ॥ १८
हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत् ।
अशक्तानामिवास्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम् १९
श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत्त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम् ॥ २०
सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद्वक्ष्यसि सुयोधनम् ।
शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः ॥ २१
अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।
मर्षितं ते दुराचार तत्त्वं न बहु मन्यसे ॥ २२
प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकाङ्क्षी कुरून् प्रति ।
कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता ॥ २३
त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम् ।
गच्छस्वाहवमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम् २४
मयाऽपि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते ।
स तथा भविता पाप नात्र कार्या विचारणा २५
वेलामतिक्रमेत् सद्यः सागरो वरुणालयः ।
पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत् ॥ २६

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

१६२

उलूकस्त्विति ॥ १ ॥ समितिः सभा ॥ १२ ॥ द्रौपदेयैः सहितोऽभिमन्युः द्रौपदेयाभिमन्युः ॥ १५ ॥ पारिहार्यैः परितो हारा येषां ते परिहाराः मौक्तिकगुच्छाः मौक्तिकादिजालानि वा त एव पारिहार्याणि स्वार्थे ष्यञ् ॥ १६ ॥

सहायस्ते यदि यमः कुबेरो रुद्र एव वा ।
यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पाता चास्मि यथेप्सितम् २७
यश्चेह प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो माऽभियास्यति ।
अपि भीष्मं पुरस्कृत्य तं नेष्यामि यमक्षयम्॥ २८
यच्चैतदुक्तं वचनं मया क्षत्रस्य संसदि ।
यथैतद्भविता सत्यं तथैवात्मानमालभे ॥ २९
भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवोऽप्यमर्षणः ।
क्रोधसंरक्तनयनस्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ३०
शौटीरशूरसदृशमनीकजनसंसदि ।
शृणु पाप वचो मह्यं यद्वाच्यो हि पिता त्वया ॥
नास्माकं भविता भेदः कदाचित्कुरुभिः सह ।
धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात्त्वया सह॥३२
त्वं तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रकुलस्य च ।
उत्पन्नो वैरपुरुषः स्वकुलघ्नश्च पापकृत् ॥ ३३
जन्मप्रभृति चास्माकं पिता ते पापपूरुषः ।
अहितानि नृशंसानि नित्यशः कर्तुमिच्छति॥ ३४
तस्य वैरानुषङ्गस्य गन्ताऽस्म्यन्तं सुदुर्गमम् ।
अहमादौ निहत्य त्वां शकुनेः संप्रपश्यतः ॥ ३५
ततोऽस्मि शकुनिं हन्ता मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
भीमस्य वचनं श्रुत्वा सहदेवस्य चोभयोः ॥ ३६
उवाच फाल्गुनो वाक्यं भीमसेनं स्मयन्निव ।
भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह ॥ ३७
मन्दा गृहेषु सुखिनो मृत्युपाशवशं गताः ।
उलूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम ॥ ३८
दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्यानुभाषिणः ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भीमं भीमपराक्रमम् ॥ ३९
धृष्टद्युम्नमुखान् वीरान् सुहृदः समभाषत ।
श्रुतं वस्तस्य पापस्य धार्तराष्ट्रस्य भाषितम्॥ ४०
कुत्सनं वासुदेवस्य मम चैव विशेषतः ।
श्रुत्वा भवन्तः संरब्धा अस्माकं हितकाम्यया ॥
प्रभावाद्वासुदेवस्य भवतां च प्रयत्नतः ।
समग्रं पार्थिवं क्षत्रं सर्वं न गणयाम्यहम् ॥ ४२
भवद्भिः समनुज्ञातो वाक्यमस्य यदुत्तरम् ।
उलूके प्रापयिष्यामि यद्वक्ष्यति सुयोधनम् ॥ ४३
श्वोभूते कत्थितस्यास्य प्रतिवाक्यं चमूमुखे ।
गाण्डीवेनाभिधास्यामि क्लीबा हि वचनोत्तराः॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रशशंसुर्धनञ्जयम् ।
तेन वाक्योपचारेण विस्मिता राजसत्तमाः ॥४५
अनुनीय च तान् सर्वान् यथामान्यं यथावयः ।
धर्मराजं तदा वाक्यं तत्प्राप्यं प्रत्यभाषत ॥ ४६
आत्मानमवमन्वानो न हि स्यात् पार्थिवोत्तमः ।
तत्रोत्तरं प्रवक्ष्यामि तव शुश्रूषणे रतः ॥ ४७
उलूकं भरतश्रेष्ठ सामपूर्वमथोर्जितम् ।
दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ॥ ४८
अतिलोहितनेत्राभ्यामाशीविष इव श्वसन् ।
स्मयमान इव क्रोधात् सृक्किणी परिसंलिहन्॥४९
जनार्दनमभिप्रेक्ष्य भ्रातॄंश्चैवेदमब्रवीत् ।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ ५०
उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम् ।
कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलपांसनम् ॥ ५१
पाण्डवेषु सदा पाप नित्यं जिह्मं प्रवर्तसे ।
स्ववीर्याद्यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान् ।
अभीतः पूरयन् वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान्॥५२
स पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाहूय संयुगे ।
मान्यामान्यान् पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम॥
आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव ।
आह्वयस्व रणे पार्थान् सर्वथा क्षत्रियो भव ॥ ५४
परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥ ५५
स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे ।
कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान् समभिगर्जसि ॥ ५६

---

यश्चेति । इह दुःशासनरुधिरपानकाले मा मां अभियास्यति ॥ २८ ॥ आत्मानं आलभे शपामि । अन्तरात्मानं ईश्वरं वा स्पृष्ट्वाऽऽइह आलभे इति ईश्वरशपथं करोमीत्यर्थः ॥ २९ ॥ शौटीरः सगर्वः शूरो विक्रान्तः । शौट गर्वे, शूर विक्रान्तौ इति धातू । अनीकजनः सैन्यवासीजनः हे पाप मह्यं मम ॥ ३१ ॥ नास्माकमिति । धृतराष्ट्रदोषादेव वैरं जातं अन्यथा तेन बाल्ये एव त्वयि त्यक्ते सति तन्न स्यादिति भावः ॥ ३२ ॥ ते तव पिता अस्माकं अहितानि कर्तुमिच्छतीति सम्बन्धः ॥ ३४ ॥ भीमसेनस्येति प्राचीनपाठे श्रुत्वेत्यध्याहारः ॥ ३६ ॥ पाण्डवेष्विति । हे पाप पाण्डवेषु त्वयोक्तं बैडालव्रतरूपं जिह्मं प्रवर्तत इति तुष्यतु दुर्जनन्यायेनाङ्गीकरोति । प्रवर्तसे इति पाठे तु स्पष्टोऽर्थः । पूरयन् वाक्यं तदर्थानुष्ठानेन समर्थयन् ॥५२॥ मान्याः भीष्मद्रोणादयः अमान्याः पुत्राः लक्ष्मणादयः बालवृद्धनाशं मा कार्षीरित्यर्थः ॥ ५३ ॥ नपुंसकं नपुंसकत्वं तव ॥ ५५ ॥ परेषां कर्णादीनाम्॥५६॥

कृष्ण उवाच ।

मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः ।
श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥ ५७
मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः ।
सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥ ५८
जघन्यकालमप्येतन्न भवेत् सर्वपार्थिवान् ।
निर्दहेयमहं क्रोधात् तृणानीव हुताशनः ॥ ५९
युधिष्ठिरनियोगात्तु फाल्गुनस्य महात्मनः ।
करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विजितात्मनः ६०
यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन् यद्याविशसि भूतलम् ।
तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसे पुनः ॥ ६१
यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्यावधारय ॥ ६२
न त्वां समीक्षते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः ।
न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम् ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूताभिगमनपर्वणि कृष्णादिवाक्ये द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

## १६३

सञ्जय उवाच ।

दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशाम्य भरतर्षभ ।
नेत्राभ्यामतिताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत ॥ १
स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः ।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ २
स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान् ।
अभीतो युध्यते शत्रून् स वै पुरुष उच्यते ॥ ३
परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।
क्षत्रबन्धुरशक्तत्वाल्लोके स पुरुषाधमः ॥ ४
स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः ।
स्वयं कापुरुषो मूढ परांश्च क्षेप्तुमिच्छसि ॥ ५
यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम् ।
मरणाय महाप्रज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे ॥ ६
भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन ।
न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि ॥ ७
यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्र विकत्थसे ।
हन्ताऽस्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ८
कैतव्य गत्वा भरतान् समेत्य
सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व ।
तथेत्युवाचार्जुनः सव्यसाची
निशाव्यपाये भविता विमर्दः ॥ ९
यद्वाऽब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वो
मध्ये कुरून् हर्षयन् सत्यसन्धः ।
अहं हन्ता सृञ्जयानामनीकं
शाल्वेयकांश्चेति ममैष भारः ।
कैतव्य गत्वा भरतान् समेत्य
सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व ॥ १०
हन्यामहं द्रोणमृतेऽपि लोकं
न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।
ततो हि ते लब्धतमं च राज्य-
मापद्गताः पाण्डवाश्चेति भावः ॥ ११

---

जघन्यकालं चरमकालेऽपि एतन्न भवेन्मा भूत् एतदेवाह— **सर्वेत्यादिना** श्लोकशेषेण ॥ ५९ ॥ समीक्षते गणयति ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

१६३

**दुर्योधनस्येति** । समुदैक्षत गुडाकेश इति सम्बन्धः ॥ १ ॥ पूरणात् पुरुष इति पुरुषशब्दनिर्वचनं अन्यथा त्वपुरुष एवेत्यर्थः ॥ ३ ॥ क्षत्रबन्धुः क्षत्रजातिरेव न तु क्षत्रकर्मेत्यर्थः ॥ ४ ॥ वृद्धं बाल्हीकं भीष्मं च ॥ ६ ॥ मिषतां पश्यताम् ॥ ८ ॥ **कैतव्येति** । समेत्य एकीकृत्य निशाव्यपाये श्वोभूते ॥ ९ ॥ सत्यसन्धो भीष्मः भीष्मवाक्यमेवाह—**अहं हन्तेति** । हे कैतव्य अहं हन्तेत्यादि मदीयं वाक्यं भरतान् पाण्डवान् प्रति गत्वा वदस्व किं कृत्वा सुयोधनं समेत्य मदीयं सन्देशं दुर्योधनाय श्रावयित्वा पाण्डवान् प्रति कथयेत्यर्थः । तेन दुर्योधनस्य सुखं पाण्डवानां भयं चोदेष्यतीति भावः ॥ १० ॥ द्रोणमृतेऽपि द्रोणं विनाऽप्यसहाय एवाहं लोकं हन्यां ततो भीष्मवाक्यात् ते तव भाव एवंभूतो जात इत्यर्थः ॥ ११ ॥

स दर्पपूर्णो न समीक्षसे त्व-
मनर्थमात्मन्यपि वर्तमानम् ।
तस्मादहं ते प्रथमं समूहे
हन्ता समक्षं कुरुवृद्धमेव ॥ १२
सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य
ध्वजी रथी रक्षत सत्यसन्धम् ।
अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं
भीष्मं रथात् पातयिष्यामि बाणैः १३
श्वोभूते कत्थनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः ।
आचितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम् ॥ १४
यदुक्तश्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव ॥ १५
अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसवत् ।
सत्यां प्रतिज्ञामचिराद्द्रक्ष्यसे तां सुयोधन ॥ १६
अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपारुष्ययोस्तथा ।
नैष्ठुर्यस्यावलेपस्य आत्मसंभावनस्य च ॥ १७
नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च ।
अधर्मस्यातिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च ॥ १८
दर्शनस्य च चक्रस्य कृत्स्नस्यापनयस्य च ।
द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधन ॥ १९
वासुदेवद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधम ।
आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना ॥ २०
शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते ।
निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥ २१
भ्रातॄणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणां च सुयोधन ।
भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ॥ २२
न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव ।
सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत् सर्वं सत्यं भविष्यति ॥ २३
युधिष्ठिरोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।
उलूक मद्वचो ब्रूहि गत्वा तात सुयोधनम् ॥ २४
स्वेन वृत्तेन मे वृत्तं नाधिगन्तुं त्वमर्हसि ।
उभयोरन्तरं वेद सूनृतानृतयोरपि ॥ २५
न चाहं कामये पापमपि कीटपिपीलयोः ।
किं पुनर्ज्ञातिषु वधं कामयेयं कथञ्चन ॥ २६
एतदर्थं मया तात पञ्च ग्रामा वृताः पुरा ।
कथं तव सुदुर्बुद्धे न प्रेक्षेय व्यसनं महत् ॥ २७
स त्वं कामपरीतात्मा मूढभावाच्च कत्थसे ।
तथैव वासुदेवस्य न गृह्णासि हितं वचः ॥ २८
किञ्चेदानीं बहूक्तेन युध्यस्व सह बान्धवैः ।
मम विप्रियकर्तारं कैतव्य ब्रूहि कौरवम् ॥ २९
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत् ।
भीमसेनस्ततो वाक्यं भूय आह नृपात्मजम् ३०
उलूक मद्वचो ब्रूहि दुर्मतिं पापपूरुषम् ।
शठं नैकृतिकं पापं दुराचारं सुयोधनम् ॥ ३१
गृध्रोदरे वा वस्तव्यं पुरे वा नागसाह्वये ।
प्रतिज्ञातं मया तच्च सभामध्ये नराधम ॥ ३२
कर्ताऽहं तद्वचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते ।
दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे ॥ ३३
सक्थिनी तव भङ्क्त्वैव हत्वा हि तव सोदरान्
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन ॥ ३४
सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम् ।
कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु ॥ ३५
हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः ।
आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३६
नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते ।
उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३७
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथातथम् ।
तथा कर्ताऽस्मि कौरव्य यथा त्वमनुशासि माम्
सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत् ।
सुयोधन मतिर्या ते वृथैषा ते भविष्यति ॥ ३९
शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।
इमं च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत्त्वं विकत्थसे ॥ ४०

---

हन्ता हनिष्यामि कुरुवृद्धं भीष्मम् ॥ १२ ॥ यो युक्तसेनो ध्वजी रथी तं रक्षतेति योजना । द्वीपं मज्जतामाधारम् ॥ १३ ॥ **अभिमानः** श्रेष्ठोऽस्मीति बुद्धिः । **दर्पः** पराभिभवसमर्थोऽस्मीति धीः । क्रोधोऽभिज्वलनं **पारुष्यं** निष्ठुरवाक्यत्वम् । **नैष्ठुर्यं** निःस्नेहता । **अवलेपो**ऽन्येषामवज्ञा । **आत्मसंभावनं** अहमेव ज्ञाता शूरश्चास्मीति बुद्धिः ॥ १७ ॥ **नृशंसता** निर्दयत्वम् । **तैक्ष्ण्यं** तीक्ष्णता विषदानादिबीभत्सकर्मकारित्वम् । धर्मविद्वेषणं कपटद्यूतादिना । अधर्मो यथाप्रतिज्ञातराज्याप्रदानं । अतिवादो धर्मिष्ठेष्वधर्मिष्ठत्वारोपो बैडालव्रतिकोऽसीत्यादिवचनम् । वृद्धातिक्रमणं विदुरादीनामवमाननम् ॥ १८ ॥ दर्शनं कर्णादिषु जयनिश्चयः चक्रं सेनाया आधिक्यं । अपनयः अस्माकं दूरीकरणं एतेषां फलं द्रक्ष्यसि ॥ १९ ॥ वेद वेद्मि ॥ २५ ॥ **कथमिति** । हे सुदुर्बुद्धे तव व्यसनं मरणागमं कथमपि न प्रेक्षे इति हेतोः पञ्च ग्रामा वृता इति सम्बन्धः ॥ २७ ॥ यत् इमं क्लेशं श्रुत्वा हृष्टः सन् विकत्थसे ततो हेतोः शोचिष्यसे इति सम्बन्धः ॥ ४० ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धावुलूकमिदमूचतुः ।
दासभावं नियच्छेव साधोरिति मतिः सदा ।
तौ च दासावदासौ वा पौरुषं यस्य यादृशम् ॥
शिखण्डी तु ततो वाक्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।
वक्तव्यो भवता राजा पापेष्वभिरतः सदा ॥ ४२
पश्य त्वं मां रणे राजन् कुर्वाणं कर्म दारुणम् ।
यस्य वीर्यं समासाद्य मन्यसे विजयं युधि ॥ ४३
तमहं पातयिष्यामि रथात्तव पितामहम् ।
अहं भीष्मवधात् सृष्टो नूनं धात्रा महात्मना ४४
सोऽहं भीष्मं हनिष्यामि मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
धृष्टद्युम्नोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ॥ ४५
सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः ।
अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ॥ ४६
अवश्यं च मया कार्यं पूर्वेषां चरितं महत् ।
कर्ता चाहं तथा कर्म यथा नान्यः करिष्यति ४७
तमब्रवीद्धर्मराजः कारुण्यार्थं वचो महत् ।
नाहं ज्ञातिवधं राजन् कामयेयं कथञ्चन ॥ ४८
तवैव दोषाद्दुर्बुद्धे सर्वमेतत्त्वनावृतम् ।
स गच्छ मा चिरं तात उलूक यदि मन्यसे ॥ ४९
इह वा तिष्ठ भद्रं ते वयं हि तव बान्धवाः ।
उलूकस्तु ततो राजन् धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५०
आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।
उलूकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ५१
अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ।
वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ॥ ५२
नकुलस्य विराटस्य द्रुपदस्य च भारत ।
सहदेवस्य च वचो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ।
केशवार्जुनयोर्वाक्यं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ॥ ५३
कैतव्यस्य तु तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ।
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि भारत ॥ ५४
*आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा ।
यथा प्रागुदयात् सर्वे युक्तास्तिष्ठन्त्यनीकिनः ५५
ततः कर्णसमादिष्टा दूताः संत्वरिता रथैः ।
उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥ ५६
तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात् ।
आज्ञापयन्तो राज्ञश्च योगः प्रागुदयादिति ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकापयाने
त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

## १६४

सञ्जय उवाच ।
उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥ १
पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम् ।
चतुर्विधबलां भीमामकम्प्यां पृथिवीमिव ॥ २
भीमसेनादिभिर्गुप्तां सार्जुनैश्च महारथैः ।
धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥ ३
तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
द्रोणप्रेप्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नो व्यकर्षत ॥ ४
यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत् ।
अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥ ५

---

अश्लाघ्योऽहं नरपतिर्युवयोरिति दुर्योधनवाक्यस्योत्तरं विराटद्रुपदावाहतुरित्याह-विराटेति । साधोः दासभावं नियच्छेव नितरां यच्छेव प्रार्थयावहे । इषुगमीति छादेशे यमयतेर्विधिलिङि उत्तमस्य द्विवचनम् । इति आवयोर्मतिरस्ति । तौ च आवां दासावदासौ वेति यस्य तव यादृशं पौरुषं तत्तथैव श्वो द्रक्ष्याव इति शेषः ॥ ४१ ॥ वधात् वधहेतोः ॥ ४४ ॥ पूर्वेषां चरितं द्रोणवधेन पितृवैरप्रतियातनम् । सर्वेषामिति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ ४७ ॥ अनावृतं विस्पष्टम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भा०भा० त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

* उदयात् प्राक् सूर्योदयात् प्राक् योगः सेनासन्नाहः कार्य इति आज्ञापयत इति योजना ।

१६४

उलूकस्येति ॥ १ ॥ रथिनः राजन्यान् धृष्टद्युम्नः समुपादिशदिति सम्बन्धः । त्वमनेन युद्ध्यस्व त्वमनेनेत्येवं तत्तद्दंशव्यवस्थां चकारेत्यर्थः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतुं च शल्याय गौतमायोत्तमौजसम् ।
अश्वत्थाम्ने च नकुलं शैब्यं च कृतवर्मणे ॥ ६
सैन्धवाय च वार्ष्णेयं युयुधानं समादिशत् ।
शिखण्डिनं च भीष्माय प्रमुखे समकल्पयत् ॥ ७
सहदेवं शकुनये चेकितानं शलाय वै ।
द्रौपदेयांस्तथा पञ्च त्रिगर्तेभ्यः समादिशत् ॥ ८
वृषसेनाय सौभद्रं शेषाणां च महीक्षिताम् ।
स समर्थं हि तं मेने पार्थादभ्यधिकं रणे ॥ ९
†एवं विभज्य योधांस्तान् +पृथक् *सह चैव ह ।
ज्वालावर्णो महेष्वासो द्रोणमंशमकल्पयत् ॥ १०
धृष्टद्युम्नो महेष्वासः सेनापतिपतिस्ततः ।
विधिवद्व्यूह्य मेधावी युद्धाय धृतमानसः ॥ ११
यथोद्दिष्टानि सैन्यानि पाण्डवानामयोजयत् ।
जयाय पाण्डुपुत्राणां यत्तस्तस्थौ रणाजिरे ॥ १२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि सेनापतिनियोगे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

समाप्तमुलूकदूतागमनपर्व ।

## रथातिरथसंख्यानपर्व ९

### १६५

धृतराष्ट्र उवाच ।
प्रतिज्ञाते फाल्गुनेन वधे भीष्मस्य संयुगे ।
किमकुर्वत मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥ १
हतमेव हि पश्यामि गाङ्गेयं पितरं रणे ।
वासुदेवसहायेन पार्थेन दृढधन्वना ॥ २
स चापरिमितप्रज्ञस्तच्छ्रुत्वा पार्थभाषितम् ।
किमुक्तवान् महेष्वासो भीष्मः प्रहरतां वरः ॥
सैनापत्यं च संप्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः ।
किमचेष्टत गाङ्गेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ ४
वैशम्पायन उवाच ।
ततस्तत्सञ्जयस्तस्मै सर्वमेव न्यवेदयत् ।
यथोक्तं कुरुवृद्धेन भीष्मेणामिततेजसा ॥ ५
सञ्जय उवाच ।
सैनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप ।
दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥ ६
नमस्कृत्य कुमाराय सेनान्ये शक्तिपाणये ।
अहं सेनापतिस्तेऽद्य भविष्यामि न संशयः ॥ ७
सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च ।
कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा ॥ ८
यात्रायाने च युद्धे च तथा प्रशमनेषु च ।
भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः ॥ ९
व्यूहानां च समारंभान् दैवगान्धर्वमानुषान् ।
तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान् व्येतु ते ज्वरः १०
सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम् ।
यथावच्छास्त्रतो राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः ११
दुर्योधन उवाच ।
विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि ।
समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १२
किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैनापत्ये व्यवस्थिते ।
द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥ १३
भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम ।
न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥ १४
रथसंख्यां तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा ।
तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥ १५

---

अंशं अकल्पयत् स्वकीयमिति शेषः ॥ १० ॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल०भा०भा० चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः १६४
† उलूकस्य वचः श्रुत्वा इत्यादेः योधसारविवेकेन यथायोगं विनियोगस्तात्पर्यार्थः । + पृथगुक्तप्रकारेण प्राधान्यात् * सह तदितरान् । तैर्मिलितैर्वा योद्धव्यत्वात् ।

१६५

प्रतिज्ञाते इति ॥ १ ॥ भृतान् वेतनभक्षकान् अभृतान् मैत्र्या समागतान् ॥ ८ ॥ यात्रार्थं याने प्रयाणे युद्धे प्रशमनेषु परास्त्राणां प्रतीकारेषु विषयेषु वेद वेद्मि । वेद वेत्ति ॥ ९ ॥ तत्त्वेन अकापट्येन ॥ ११ ॥

पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ १६

भीष्म उवाच ।

गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले ।
ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये ॥ १७
बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि= च ।
रथानां तव सेनायां यथामुख्यं तु मे शृणु ॥ १८
भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः ।
दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः ×शतसंमितैः ॥ १९
सर्वे +कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः ।
रथोपस्थे गजस्कन्धे गदाप्रासासिचर्मणि ॥ २०
संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः ।
इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ २१
एते हनिष्यन्ति रणे पञ्चालान्युद्धदुर्मदान् ।
कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा *मनस्विनः ॥
तथाऽहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव ।
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि §कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥
न त्वात्मनो गुणान् वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते
कृतवर्मा ‡त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः ॥
†अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः ।
शस्त्रविद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः ॥ २५
हनिष्यति चमूं तेषां महेन्द्रो दानवानिव ।
मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः ॥२६
स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे ।
भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्तेऽतिरथो मतः
एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवांश्च महारथान् ॥२७
सागरोर्मिसमैर्बाणैः प्लावयन्निव शात्रवान् ।
भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत् ॥२८
सौमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः ।
बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति ॥ २९
सिन्धुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः ।
योत्स्यते समरे राजन् विक्रान्तो रथसत्तमः ॥
द्रौपदीहरणे राजन् परिक्लिष्टश्च पाण्डवैः ।
संस्मरंस्तं परिक्लेशं योत्स्यते परवीरहा ॥ ३१
एतेन हि तदा राजंस्तप आस्थाय दारुणम् ।
सुदुर्लभो वरो लब्धः पाण्डवान् योद्धुमाहवे ३२
स एष रथशार्दूलस्तद्वैरं संस्मरन् रणे ।
योत्स्यते पांडवैस्तात प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान्

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

## १६६

भीष्म उवाच ।

सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः ।
तवार्थसिद्धिमाकाङ्क्षन् योत्स्यते समरे परैः ॥ १
एतस्य रथसिंहस्य तवार्थे राजसत्तम ।
पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि ॥ २
एतस्य रथवंशो हि तिग्मवेगप्रहारिणः ।
काम्बोजानां महाराज शलभानामिवायतिः ॥ ३
नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव ।
रथवंशेन कदनं शत्रूणां वै करिष्यति ॥ ४
कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मारिष ।
योत्स्यते सततं राजंस्तवार्थे कुरुनन्दन ॥ ५

रथोदारः रथेष्वेव उदारो न तु महारथस्तादृशा एव दुःशासनादय इति भावः ॥ १९ ॥ न त्वात्मन इति स्वस्यासंख्येयत्वं सूचितम् ॥ २४ ॥ रथयूथपा महारथाः तेषां यूथपोऽतिरथः ॥ २९ ॥ सिन्धुराजो जयद्रथो द्विरथः ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

= अर्बुदानि बहुसंख्यानि । × शतसंमितैः शतसङ्ख्यैः । + कृतप्रहरणाः अभ्यस्तास्त्राः । * मनस्विनः साहंकाराः । § कदर्थीकृत्य क्लेशयित्वा । ‡ अतिरथो रथिनोऽपि विशिष्टः † अर्थसिद्धिं प्रयोजनसिद्धिम् ।

१६६

सुदक्षिण इति ॥ १ ॥ रथवंशेन रथसंघेन सहित इति शेषः । 'वंशः पुंसि कुले वेणौ पृष्ठावयववर्गयोः' इति मेदिनी ॥ ४ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ संमतौ रथसत्तमौ ।
कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ ॥ ६
एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः ।
गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च करच्युतैः ॥ ७
युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ ।
यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत् ॥ ८
त्रिगर्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम ।
कृतवैराश्च पार्थैस्ते विराटनगरे तदा ॥ ९
मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम् ।
गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम्
ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम् ।
एते योत्स्यन्ति सङ्ग्रामे संस्मरन्तः पुराकृतम् ११
व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह ।
दिशो विजयता राजन् श्वेतवाहेन भारत ॥ १२
ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान् ।
वरान् वरान् महेष्वासान् क्षत्रियाणां धुरन्धरान्
लक्ष्मणस्तव पुत्रश्च तथा दुःशासनस्य च ।
उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ सङ्ग्रामेष्वपलायिनौ ॥ १
तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ ।
युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः ॥ १
रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ ।
क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १
दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभ ।
योत्स्यते तव संग्रामे स्वेन सैन्येन पालितः ॥ १
बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः ।
रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः ॥ १
एष योत्स्यति संग्रामे स्वान् बन्धून् संप्रहर्षयन्
उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ १
कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः ।
प्रियान् प्राणान्परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव २
गौतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः ।
कार्तिकेय इवाजेयः शरस्तम्बात्सुतोऽभवत् २
एष सेनाः सुबहुला विविधायुधकार्मुकाः ।
अग्निवत्समरे तात चरिष्यति विनिर्दहन् ॥ २

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

## १६७

भीष्म उवाच ।
शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप ।
प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः ॥ १
एतस्य सेना दुर्धर्षा समरे प्रतियायिनः ।
विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे ॥ २
द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवातिधन्विनः ।
समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥ ३
एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः ।
शरासनविनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः॥४
नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः ।
निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महायशाः ॥ ५
क्रोधस्तेजश्च तपसा संभृतोऽऽश्रमवासिनाम् ।
द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः ॥ ६
दोषस्त्वस्य महानेको येनैव भरतर्षभ ।
न मे रथो नातिरथो मतः पार्थिवसत्तमः ॥ ७
जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः ।
न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥ ८
हन्यादेकरथेनैव देवानामपि वाहिनीम् ।
वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान् ॥ ९
असंख्येयगुणो वीरः प्रहन्ता दारुणद्युतिः ।
दण्डपाणिरिवासह्यः कालवत् प्रचरिष्यति ॥१०
युगान्ताग्निसमः क्रोधात् सिंहग्रीवो महाद्युतिः
एष भारतयुद्धस्य पृष्ठं संशमयिष्यति ॥ ११
पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि *युवभिर्वरः ।
रणे कर्म महत् कर्ता अत्र मे नास्ति संशयः १२

---

समुद्धततरङ्गिणीं उच्छ्रितपताकां सेनां उच्छ्रिततरङ्गवतीं गङ्गां च ॥ १० सत्यरथो नाम पञ्चानां मुखं श्रेष्ठः ॥११॥ व्यलीकं अप्रियम् ॥ १२॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

१६७

शकुनिरिति ॥ १ ॥ विकृतानि नानाविधानि आयुधानि तैर्भूयिष्ठा ॥ २ ॥ आश्रमवासिनामृषीणां क्रोधस्तेजश्च तयोः समुदायरूप इत्यर्थः । आश्रमेत्याकारस्य पूर्वरूपमार्षम् ॥ ६ ॥ पृष्ठं शेषम् ॥११ ॥ *युवभिर्युवभ्यः ।

अश्ववेगानिलोद्भूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः ।
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः ॥ १३
रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः ।
भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हितं तव ॥ १४
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
गच्छेदन्तं सृञ्जयानां प्रियस्त्वस्य धनञ्जयः ॥ १५
नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम् ।
हन्यादाचार्यकं+ दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम् १६
श्लाघतेऽयं सदा वीर पार्थस्य गुणविस्तरैः ।
पुत्रादभ्यधिकं चैनं भारद्वाजोऽनुपश्यति ॥ १७
हन्यादेकरथेनैव देवगन्धर्वमानुषान् ।
एकीभूतानपि रणे दिव्यैरस्त्रैः प्रतापवान् ॥ १८
पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन् महारथः ।
मतो मम रथोदारः परवीररथारुजः ॥ १९
स्वेन सैन्येन महता प्रतपन् शत्रुवाहिनीम् ।
प्रधक्ष्यति स पञ्चालान् कक्षमग्निगतिर्यथा* ॥२०
सत्यश्रवा रथस्त्वेको राजपुत्रो बृहद्बलः ।
तव राजन् रिपुबले कालवत् प्रचरिष्यति ॥ २१
एतस्य योधा राजेन्द्र विचित्रकवचायुधाः ।
विचरिष्यन्ति सङ्ग्रामे निघ्नन्तः शात्रवांस्तव २२
वृषसेनो रथस्तेऽग्र्यः कर्णपुत्रो महारथः ।
प्रधक्ष्यति रिपूणां ते बलं तु बलिनां वरः ॥ २३
जलसन्धो महातेजा राजन् रथवरस्तव ।
त्यक्ष्यते समरे प्राणान् मागधः परवीरहा ॥ २४
एष योत्स्यति सङ्ग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।
रथेन वा महाबाहुः क्षपयन् शत्रुवाहिनीम् ॥ २५
रथ एष महाराज मतो मे राजसत्तम ।
त्वदर्थे त्यक्ष्यते प्राणान् सहसैन्यो महारणे ॥ २६
एष विक्रान्तयोधी च चित्रयोधी च सङ्गरे ।
वीतभीश्चापि ते राजन् शत्रुभिः सह योत्स्यते ॥
बाह्लीकोऽतिरथश्चैव समरे चानिवर्तनः ।
मम राजन्मतो युद्धे शूरो वैवस्वतोपमः ॥ २८
न ह्येष समरं प्राप्य निवर्तेत कथञ्चन ।
यथा †सततगो राजन् स हि हन्यात् परान् रणे ॥
सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः ।
रणेष्वद्भुतकर्मा च रथी पररथारुजः ॥ ३०
एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथाऽस्ति कथञ्चन ।
उत्स्मयन्नुत्पतत्येष परान् रथपथे स्थितान् ॥ ३१
एष चारिषु विक्रान्तः कर्म सत्पुरुषोचितम् ।
कर्ता विमर्दे सुमहत्त्वदर्थे पुरुषोत्तमः ॥ ३२
अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः ।
हनिष्यति परान् राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३३
एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः ।
मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति ॥ ३४
प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान् ।
×गजाङ्कुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः ॥ ३५
एतेन युद्धमभवत् पुरा गाण्डीवधन्वनः ।
दिवसान् सुबहून् राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः ॥ ३६
ततः सखायं गान्धारे मानयन् पाकशासनम् ।
अकरोत् संविदं तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ३७
एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।
ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

## १६८

भीष्म उवाच ।
अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरावुभौ ।
रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून् विध्वंसयिष्यतः ॥ १
बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ ।
गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥ २

---

सत्यश्रवाः सत्यकीर्तिः ॥ २१ ॥ उत्स्मयन् हृष्यन् ॥३१॥ गजाङ्कुशधरेषु गजयुद्धकुशलेषु श्रेष्ठः । 'सप्तमीशौण्डैः' इति समासः ॥३५॥ संविदं मैत्रीम् ॥३७॥ इति श्रीम० उद्यो० नैल० भारत० सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

+आचार्यकमाचार्यकर्म । दीप्तं प्रसिद्धम् । गुणनिर्जितं गुणोपार्जितम् । *'कक्षं कृष्णगतिर्यथा' इति पाठान्तरम् । †सततगो वातः । ×गजाङ्कुशाकारपरिणतं नारायणास्त्रमिति वा ॥

१६८

अचल इति ॥ १ ॥

सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः ।
उत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥ ३
परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव ।
मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः
एष नैव रथः कर्णो न चाप्यतिरथो रणे ।
वियुक्तः कवचेनैष सहजेन विचेतनः ॥ ५
कुण्डलाभ्यां च दिव्याभ्यां वियुक्तः सततं घृणी
अभिशापाच्च *रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ॥
करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः ।
नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन् विमोक्ष्यसे ॥ ७
ततोऽब्रवीत् पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्याऽस्ति कदाचन॥
रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते ।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥ ९
एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने ।
उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन् वाग्भिः प्रतोदवत् ॥
पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि ।
अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ॥ ११
मर्षयामि च तत् सर्वं दुर्योधनकृतेन वै ।
त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥
भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नात्र संशयः ।
सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेयो न मृषा वदेत् ॥ १३
कुरूणामहितो नित्यं न च राजाऽवबुध्यते ।
को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु ॥ १४
तेजोवधमिमं कुर्याद्विभेदयिषुराहवे ।
यथा त्वं गुणविद्वेषादपरागं चिकीर्षसि ॥ १५
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।
महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥ १६
बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः ।
धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः॥
यथेच्छकं स्वयं ग्रूया रथानतिरथांस्तथा ।
कामद्वेषसमायुक्तो मोहात् प्रकुरुते भवान् ॥ १८

दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम् ।
त्यज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत्तव १९
भिन्ना हि सेना नृपते दुःसन्धेया भवत्युत ।
मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नानासमुत्थिताः २०
एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत ।
तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥ २१
रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः ।
अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥२२
आसाद्य माममोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश
पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥ २३
क्व च युद्धं विमर्दो वा मन्त्रे सुव्याहृतानि च ।
क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालचोदितः२४
एकाकी स्पर्धते नित्यं सर्वेण जगता सह ।
न चान्यं पुरुषं कञ्चिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥ २५
श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम् ।
न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः २६
अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ।
सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥ २७
कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप ।
सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान् कथञ्चन॥२८
नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन् कथञ्चन ।
हते भीष्मे तु योद्धाऽस्मि सर्वैरेव महारथैः ॥२९

भीष्म उवाच ।

समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः ।
धार्तराष्ट्रस्य सङ्ग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ॥३०
तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे ।
मिथो भेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥ ३१
न ह्यहं त्वद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव ।
युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ॥ ३२
जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि विमुञ्चता ।
न मे व्यथा कृता काचित्त्वं तु मे किं करिष्यसि
कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् ।
वक्ष्यामि तु त्वां संतप्तो निहीनकुलपांसन ॥ ३४

विचेतनः मूर्खः ॥ ५ ॥ घृणी निन्दकः ॥ ६ ॥ करणानां सहजकवचादीनाम् ॥ ७ ॥ प्रमादी स्वीयं कल्पनावाक्यं विस्मरति च ॥ ९ ॥ भवान् कर्णोऽधरथो मह्यं मम मत इति गाङ्गेयो वदेत्तन्न मृषेति सर्वस्य जगतो मत इति सम्बन्धः । त्वद्वाक्यात् सर्वेऽपि मामवमंस्यन्त इति भावः ॥ १३ ॥ विभेदयिषुर्भेदं कर्तुमिच्छुः । अपरागं द्वेषम् ॥ १५ ॥ प्रकुरुते प्रकारं भेदं कुरुते 'प्रकारस्तुल्यभेदयोः' इति विश्वः ॥ १८ ॥

मौलाः पारंपर्यागताः तेऽपि भिन्नाः सन्तो दुःसन्धेया भवन्ति किमु नाना पृथक्भूताः सन्त एककार्यार्थं समुत्थिता इति ॥ २० ॥ क्व चेति । युद्धे वृद्धो मन्त्रेषु मूर्खश्च अशक्तत्वाद्भ्रष्टबुद्धित्वाच्चायोग्य इति भावः ॥ २४ ॥ येऽतिवृद्धास्ते पुनर्बाला एव मे मतास्तादृशश्चायं भीष्म इत्यर्थः ॥ २६ ॥ त्वयि हन्तरि कुतो भीष्मं यशो गमिष्यतीत्याशङ्क्याह—कृत इति ॥२८॥ न हि छिन्द्यामित्यन्वयः । भेदभयादेवाहं त्वद्वधं न कुर्यामित्यर्थः । आशङ्कायां लकारः ॥ ३२ ॥ * रामस्य जामदग्न्यस्य ।

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयंवरे ।
निर्जित्यैकरथेनैव याः कन्यास्तरसा हृताः ॥ ३५
ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः ।
मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥ ३६
त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान् ।
उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ॥ ३७
युद्ध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह ।
द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद्युद्धात् सुदुर्मते ३८
तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।
मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ ३९
चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम् ।
उभावपि भवन्तौ मे महत् कर्म करिष्यतः ॥४०
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान् ।
ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥ ४१
बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव ।
प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

## १६९

भीष्म उवाच ।
एते रथास्तवाख्यातास्तथैवातिरथा नृप ।
ये चाप्यर्धरथा राजन् पाण्डवानामतः शृणु ॥ १
यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप ।
रथसंख्यां शृणुष्व त्वं सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ २
स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः ।
अग्निवत् समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥ ३
भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसंमितः ।
न तस्यास्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥ ४
नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः ।
माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ॥ ५
अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ ।
एते चमूमुपगताः स्मरन्तः क्लेशमुत्तमम् ॥ ६
रुद्रवत् प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नास्ति संशयः ।
सर्व एव महात्मानः शालस्तम्भा इवोद्गताः ॥७
प्रादेशेनाधिकाः पुंभिरन्यैस्ते च प्रमाणतः ।
सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ॥ ८
चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः ।
ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥९
जवे प्रहारे संमर्दे सर्व एवातिमानुषाः ।
सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥ १०
न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान् ।
विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्यपि कौरव ॥ ११
उद्यतां वा गदां गुर्वीः शरान् वा क्षेप्तुमाहवे ।
जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ॥ १२
बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः ।
एतत् सैन्यं समासाद्य सर्वे एव बलोत्कटाः॥१३
विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः ।
एकैकशस्ते संमर्दे हन्युः सर्वान् महीक्षितः ॥ १४
प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाऽभवत् ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं द्यूते च परुषा गिरः ॥ १५
ते स्मरन्तश्च सङ्ग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत् ।
लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् ॥१६
उभयोः सेनयोर्वीरो रथो नास्तीति तादृशः ।
न हि देवेषु वा पूर्वं मनुष्येषूरगेषु च ॥ १७
राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु ।
भूतोऽथवा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः॥१८

रथादिसंख्यातात्पर्यं तु-भीष्मद्रोणौ समर्थावपि पाण्डवान् न हनिष्यतः । कर्णोऽपि कुन्तीवरदानात् भीमादीन् हन्तुं शक्तोऽपि न हनिष्यति । अर्जुनस्त्वनेन दुर्जेय एवेति पाण्डवानामेव जय इति ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

१६९

एते इति ॥ १ ॥ 'उद्यतामुद्गच्छतां क्षिपतामिति यावत् । उद्यन्तुमिति पाठान्तरम् । भोज्ये कौटिल्ये मर्मपीडने इति यावत् । भुज कौटिल्येऽस्य रूपम् । पांसुविकर्षणे पांसुषु विकर्षणे भूमौ मुष्टियुद्धे इत्यर्थः ॥ १२ ॥

समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः ।
वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनञ्जयः ॥ १९
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाश्वा वातरंहसः ।
अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी ॥ २०
अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च ।
याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥ २१
वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च ।
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ २२
हतान्येकरथेनाजौ कस्तस्य सदृशो रथः ।
एष हन्याद्धि संरंभी बलवान् सत्यविक्रमः ॥२३
तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन् ।
अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनञ्जयम् ॥२४
न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि ।
य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद्रथी ॥ २५
जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः ।
समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान् ।
तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभावपि ॥ २६

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा ।
काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः ॥२७
मनोभिः सह संवेगैः संस्मृत्य च पुरातनम् ।
सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथा प्रत्यक्षदर्शनात् ॥२८

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि पाण्डवरथातिरथसंख्यायां ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

## १७०

भीष्म उवाच ।

द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः ।
वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम ॥ १
अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः ।
समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चारिहा ॥ २
लब्धास्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः ।
संस्मरन् वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥ ३
सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः ।
एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः ॥ ४
उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो मतो मम ।
युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥ ५
एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा ।
योत्स्यन्ते ते तनूंस्त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया ॥
पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत ।
अग्निमारुतवद्राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ७
अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा ।
महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥ ८
वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ ।
यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥ ९
सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात् ।
आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहवीर्यसितावुभौ ॥ १०
कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः ।
शूरा वा कातरा वाऽपि भवन्ति कुरुपुङ्गव ११
एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढधन्विनौ ।
प्राणांस्त्यक्त्वा परं शक्त्या घट्टितारौ परंतप १२
पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ ।
संबन्धिभावं रक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १३
लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत ।
प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

---

प्रत्युदियां युद्धे संमुखः स्याम् ॥२४॥ दध्वंसिरे विगलिताः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

१७०

द्रौपदेया इति ॥ १ ॥ वीरगते वीरैरनुसृते ॥ ९ ॥ सितौ बद्धौ ॥ १० ॥ एकायनगतौ मरणैकशरणौ घट्टितारौ घट्टनं संघट्टं करिष्यतः ॥ १२ ॥ त्यक्तात्मानौ त्यक्तदेहौ ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

# १७१

भीष्म उवाच ।

पञ्चालराजस्य सुतो राजन् परपुरञ्जयः ।
शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥ १
एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन् पूर्वसंस्थितम् ।
परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥ २
एतस्य बहुलाः सेनाः पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ।
तेनासौ रथवंशेन महत् कर्म करिष्यति ॥ ३
धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत ।
मतो मेऽतिरथो राजन् द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ४
एष योत्स्यति संग्रामे सूदयन् वै परान् रणे ।
भगवानिव संक्रुद्धः पिनाकी युगसंक्षये ॥ ५
एतस्य तद्रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः ।
बहुत्वात् सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥ ६
क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप ।
धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नातिकृतश्रमः ॥ ७
शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः ।
धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य ह ॥ ८
एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत ।
महारथानां सुकरं महत् कर्म करिष्यति ॥ ९
क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरञ्जयः ।
क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः ॥ १०
जयन्तश्चामितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः ।
महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः ॥ ११
योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः ।
अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थे महारथौ ॥
योत्स्येते बलिनौ शूरौ परं शक्त्या क्षयिष्यतः ।
शीघ्रास्त्राश्चित्रयोद्धारः कृतिनो दृढविक्रमाः १३
केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो दृढविक्रमाः ।
सर्वे चैव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥ १४
काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चापरो नृप ।
सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः ॥ १५
सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाहवलक्षणाः ।
सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम ॥ १६
वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः ।
चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः ॥ १७
स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः ।
चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ ॥
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम ॥ १८
व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत ।
मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः ॥ १९
सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः ।
यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन वा विभो ॥ २०
स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः ।
मां च द्रोणं कृपं चैव यथा संमन्यते भवान् ॥ २१
तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः ।
काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः २२
रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरञ्जयः ।
अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः २३
सत्यजित् समरश्लाघी द्रुपदस्यात्मजो युवा ।
गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन संमितः ॥ २४
पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति ।
अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान् ॥ २५
पाण्ड्यराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरंधरः ।
दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां महारथः २६
श्रेणिमान् कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः ।
उभावेतावतिरथौ मतौ परपुरञ्जयौ ॥ २७

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

---

१७१

पञ्चालेति ॥ १ ॥ नाशयन् पूर्वसंस्थितं प्राचीनं क्लीबत्वेनावस्थानं अदर्शयन् पौरुषं दर्शयन्नित्यर्थः । यद्वा । पूर्वसंस्थितं पूर्वव्यूहसंस्थानं नाशयन् सैन्यानि विद्रावयन्नित्यर्थः ॥ २ ॥ क्षयिष्यतः सामर्थ्यं दर्शयिष्यतः । ऐश्वर्यार्थोऽयं क्षयतिः ॥ १३ ॥ विदुषः विद्वांसः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

## १७२

भीष्म उवाच ।

रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः ।
योत्स्यतेऽमरवत्संख्ये परसैन्येषु भारत ॥ १
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः ।
मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥ २
एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह ।
चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः ॥ ३
स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः ।
योधा ये चास्य विख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥
भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति सङ्गरे ।
सुमहत् कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः ॥ ५
भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥ ६
योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः ।
ये चास्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्तिनः ७
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ८
एते प्राधान्यतो राजन् पाण्डवस्य महात्मनः ।
रथाश्चातिरथाश्चैव ये चान्येऽर्धरथा नृप ॥ ९
नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप ।
महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ॥ १०
तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः ।
योत्स्यामि जयमाकाङ्क्षन्नथवा निधनं रणे ॥ ११
वासुदेवं च पार्थं च चक्रगाण्डीवधारिणौ ।
सन्ध्यागताविवार्केन्दू समेष्येते रथोत्तमौ ॥
ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥ १३

एते रथाश्चातिरथाश्च तुभ्यं
यथाप्रधानं नृप कीर्तिता मया ।
तथाऽपरे येऽर्धरथाश्च केचि-
त्तथैव तेषामपि कौरवेन्द्र ॥ १४

अर्जुनं वासुदेवं च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः ।
सर्वांस्तान् वारयिष्यामि यावद्द्रक्ष्यामि भारत ॥
पाञ्चाल्यं तु महाबाहो नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥ १६
लोकस्तं वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥ १७
चित्राङ्गदं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ।
विचित्रवीर्यं च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम् १८
देवव्रतत्वं विज्ञाप्य पृथिवीं सर्वराजसु ।
नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥ १९
स हि स्त्रीपूर्वको राजन् शिखण्डी यदि ते श्रुतः
कन्या भूत्वा पुमान् जातो न योत्स्ये तेन भारत
सर्वांस्त्वन्यान् हनिष्यामि पार्थिवान् भरतर्षभ ।
यान् समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान्नृप ॥ २१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

समाप्तं रथातिरथसंख्यानपर्व ।

# अम्बोपाख्यानपर्व १०

## १७३

दुर्योधन उवाच ।

किमर्थं भरतश्रेष्ठ नैव हन्याः शिखण्डिनम् । उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥ १

---

१७२

**रोचमान इति** ॥ १ ॥ भीमसेनस्येति क्रोधोद्दीपनार्थं भीमसेनसाम्यार्थं वा विशेषणम् ॥ २ ॥ रथोत्तमौ उत्तमोऽभिरत्तो रथो ययोस्तौ । आहिताग्न्यादित्वादुत्तमपदस्य परनिपातः । ग्रद्वा । रथे रथयुद्धे उत्तमौ उत्कृष्टतमौ ॥ १२ ॥ पाठान्तरे प्रक्ष्यामि शक्तिं धारयामि ॥१५॥ देवव्रतत्वं ब्रह्मचारिव्रतवत्त्वं स्त्रीसंमुखे गमने हि दृष्टिमैथुनं स्यात् । स्त्रीपूर्वदर्शनेऽपि मनसा तदीयस्त्रीभावस्मरणेन विकारः स्यादिति भावः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

१७३

**किमर्थमिति** ॥ १ ॥

पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पञ्चालान् सह सोमकैः ।
हनिष्यामीति गाङ्गेय तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २

भीष्म उवाच ।

शृणु दुर्योधन कथां सहैभिर्वसुधाधिपैः ।
यदर्थं युधि संप्रेक्ष्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ३
महाराजो मम पिता शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
दिष्टान्तमाप धर्मात्मा समये भरतर्षभ ॥ ४
ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन् ।
चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ ५
तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः ।
विचित्रवीर्यं राजानमभ्यषिञ्चं यथाविधि ॥ ६
मयाऽभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥ ७
तस्य दारक्रियां तात चिकीर्षुरहमच्युत ।
अनुरूपादिव कुलादित्येव च मनो दधे ॥ ८
तथाऽश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयंवराः ।
रूपेणाप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा ।
अम्बां चैवाम्बिकां चैव तथैवाम्बालिकामपि ॥
राजानश्च समाहूताः पृथिव्यां भरतर्षभ ।
अम्बा ज्येष्ठाऽभवत्तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ॥
अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी ।
सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरीम् ॥ ११
अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः ।
राज्ञश्चैव समाहूतान् पार्थिवान् पृथिवीपते ॥१२
ततोऽहं तान्नृपान् सर्वानाहूय समरे स्थितान् ।
रथमारोपयांचक्रे कन्यास्ता भरतर्षभ ॥ १३
वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा ।
अवोचं पार्थिवान् सर्वानहं तत्र समागतान् ।
भीष्मः शान्तनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः ॥
ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः ।
प्रसह्य हि हराम्येष मिषतां वो नरर्षभाः ॥ १५
ततस्ते पृथिवीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ।
योगो योग इति क्रुद्धाः सारथीनभ्यचोदयन् ॥
ते रथैर्गजसङ्काशैर्गजैश्च गजयोधिनः ।
पुष्टैश्चाश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ॥ १७
ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशांपते ।
रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ १८
तानहं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयम् ।
सर्वान्नृपांश्चाप्यजयं देवराडिव दानवान् ॥ १९
अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन् भरतर्षभ ।
तेषामापततां चित्रान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ॥
एकैकेन हि बाणेन भूमौ पातितवानहम् ।
हयांस्तेषां गजांश्चैव सारथींश्चाप्यहं रणे ॥ २१
ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम ।
अथाहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः ॥२२
ततोऽहं ताश्च कन्या वै भ्रातुरर्थाय भारत ।
तच्च कर्म महाबाहो सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि कन्याहरणे
त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

## १७४

भीष्म उवाच ।

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ मातरं वीरमातरम् ।
अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् ॥ १
इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान्
विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हृता इति ॥ २
ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप ।
आह सत्यवती हृष्टा दिष्ट्या पुत्र जितं त्वया ॥३
सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते ।
उवाच वाक्यं सव्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ४

दिष्टान्तं मरणम् ॥ ४ ॥ मिषतां पश्यताम् । अनादरे षष्ठी ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

१७४

ततोऽहमिति । मातरं उपसंगृह्य पादयोः पतित्वा ॥ १ ॥ वीर्यशुल्काः वीर्यमेव शुल्कं मौल्यं यासां ताः ॥ २ ॥

भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
श्रुत्वा च वचनं धर्म्यं मह्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ५
मया शाल्वपतिः पूर्वं मनसाऽभिवृतो वरः ।
तेन चास्मि वृता पूर्वं रहस्यविदिते पितुः ॥ ६
कथं मामन्यकामां त्वं राजधर्ममतीत्य वै ।
वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन् विशेषतः॥ ७
एतद्बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ ।
यत् क्षमं ते महाबाहो तदिहारब्धुमर्हसि ॥ ८
स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशांपते ।
तस्मान्मां त्वं कुरुश्रेष्ठ समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ९
कृपां कुरु महाबाहो मयि धर्मभृतां वर ।
त्वं हि सत्यव्रतो वीर पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बावाक्ये
चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

## १७५

भीष्म उवाच ।
ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तदा ।
मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान् ॥ १
समनुज्ञासिषं कन्यामम्बां ज्येष्ठां नराधिप ।
अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम् ॥
वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चानुगता तदा ।
अतीत्य च तमध्वानमासाद्य नृपतिं तथा ॥ ३
सा तमासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत् ।
आगताऽहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महामते ॥ ४
तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशांपते ।
त्वयाऽन्यपूर्वया नाहं भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥ ५
गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य वै ।
नाहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै ॥६
त्वं हि भीष्मेण निर्जित्य नीता प्रीतिमती तदा ।
परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन् ॥ ७
नाहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि ।
कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत् ॥ ८
नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ॥
अम्बा तमब्रवीद्राजन्ननङ्गशरपीडिता ।
नैवं वद महीपाल नैतदेवं कथञ्चन ॥ १०
नास्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणामित्रकर्शन ।
बलान्नीताऽस्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ॥
भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम् ।
भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ १२
साऽहमामन्त्र्य गाङ्गेयं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
अनुज्ञाता च तेनैव ततोऽहं भृशमागता ॥ १३
न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशाम्पते ।
भ्रातृहेतोः समारंभो भीष्मस्येति श्रुतं मया ॥१४
भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप ।
प्रादाद्विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे ॥ १५
यथा शाल्वपते नान्यं वरं ध्यामि कथञ्चन ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्धानमालभे ॥ १६
न चान्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता ।
सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत् सत्येनात्मानमालभे १७
भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम् ।
अनन्यपूर्वां राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणीम्१८
तामेवं भाषमाणां तु शाल्वः काशिपतेः सुताम् ।
अत्यजद्भरतश्रेष्ठ जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ १९
एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तया नृपः ।
नाश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्यायां भरतर्षभ ॥ २०
ततः सा मन्युनाऽऽविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अब्रवीत् साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥ २१
त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र तत्र विशाम्पते ।
तत्र मे गतयः सन्तु सन्तः सत्यं यथा ध्रुवम्॥२२

---

मह्यं मम ॥ ५ ॥ सत्यव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी ॥ १० ॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

१७५

तत इति ॥ १ ॥ समनुज्ञासिषं समनुज्ञातवान् अड-
भाव आर्षः ॥२॥ परामृश्य हस्ते धृत्वा नीता ॥ ७ ॥ सन्तः
साधवः गतयः रक्षितारः सन्तु ॥ २२ ॥

एवं तां भाषमाणां तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा ।
परितत्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम् ॥ २३
गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत ।
बिभेमि भीष्मात् सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः ॥
एवमुक्ता तु सा तेन शाल्वेनादीर्घदर्शिना ।
निश्चक्राम पुराद्दीना रुदती कुररी यथा ॥ २५

भीष्म उवाच ।

निष्क्रामन्ती तु नगराच्चिन्तयामास दुःखिता ।
पृथिव्यां नास्ति युवतिर्विषमस्थतरा मया ॥ २६
बन्धुभिर्विप्रहीणाऽस्मि शाल्वेन च निराकृता ।
न च शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम् ॥ २७
अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वमुद्दिश्य कारणम् ।
किं नु गर्हाम्यथात्मानमथ भीष्मं दुरासदम् ॥२८
अथवा पितरं मूढं यो मेऽकार्षीत् स्वयंवरम् ।
मयाऽयं स्वकृतो दोषो याऽहं भीष्मरथात्तदा॥२९
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे शाल्वार्थं नापतं पुरा ।
तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नाऽस्मि मूढवत् ॥ ३०
धिग्भीष्मं धिक् मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् ।
येनाहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीव प्रचोदिता ॥ ३१
धिङ्मां धिक् शाल्वराजानं धिग्धातारमथापि वा
येषां दुर्नीतभावेन प्राप्ताऽस्म्यापदमुत्तमाम् ॥ ३२
सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः ।
अनयस्यास्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम॥३३
सा भीष्मे प्रतिकर्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम् ।
तपसा वा युधा वाऽपि दुःखहेतुः स मे मतः ३४
को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः ।
एवं सा परिनिश्चित्य जगाम नगराद्बहिः ॥ ३५
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ।
ततस्तामवसद्रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥ ३६
आचख्यौ च यथावृत्तं सर्वमात्मनि भारत ।
विस्तरेण महाबाहो निखिलेन शुचिस्मिता ।
हरणं च विसर्गं च शाल्वेन च विसर्जनम् ॥ ३७
ततस्तत्र महानासीद्ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
शैखावत्यस्तपोवृद्धः शास्त्रे चारण्यके गुरुः॥ ३८
आर्तां तामाह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः ।
निःश्वसन्तीं सतीं बालां दुःखशोकपरायणाम् ॥
एवं गते तु किं भद्रे शक्यं कर्तुं तपस्विभिः ।
आश्रमस्थैर्महाभागे तपोयुक्तैर्महात्मभिः ॥ ४०
सा त्वेनमब्रवीद्राजन् क्रियतां मदनुग्रहः ।
प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ४१
मयैव यानि कर्माणि पूर्वदेहे तु मूढया ।
कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत् फलं ध्रुवम् ॥४२
नोत्सहे तु पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः ।
प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ४३
उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतकल्मषाः ।
युष्माभिर्देवसंकाशैः कृपा भवतु वो मयि ॥ ४४
स तामाश्वासयत् कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः ।
सान्त्वयामास कार्यं च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ४५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शैखावत्याम्बासंवादे
पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

## १७६

भीष्म उवाच ।

ततस्ते तापसाः सर्वे कार्यवन्तोऽभवंस्तदा । तां कन्यां चिन्तयन्तस्ते किं कार्यमिति धर्मिणः ॥१

करुणं दीनं यथा स्यात्तथा परिदेवतीं शोचन्तीम् ॥ २३ ॥ अदीर्घदर्शिनेति शाल्वस्याधर्मः सूचितः ॥ २५ ॥ वारणेन हस्तिना समानाह्वयं समानाख्यं हस्तिनापुरम् ॥ २७ ॥ शैखावत्यः शिखावान् वह्निस्तत्साध्यानि श्रौतस्मार्तकर्माणि शैखावतानि तेषु साधुः शैखावत्यः । कर्मणि निष्णातः । आरण्यके उपनिषदि गुरुः ब्रह्मविदित्यर्थः ॥ ३८ ॥ प्राव्राज्यं प्रव्रज्या संन्यासः तत्रोचितं कर्म प्राव्राज्यम् ॥४१॥ तापस्यं तपसे हितं धर्मजातम् ॥ ४४ ॥ दृष्टान्तो लौकिकोदाहरणम् । आगमो वेदः हेतुर्युक्तिस्तैः प्रारब्धकर्मभोगस्यापरिहार्यत्वं ज्ञात्वा समाश्वस्ता भवेत्युक्तेत्यर्थः ॥ ४५ ॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

१७६

तत इति ॥ १ ॥

केचिदाहुः पितुर्वेश्म नीयतामिति तापसाः ।
केचिदस्मदुपालम्भे मतिं चक्रुर्हि तापसाः ॥ २
केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे ।
नेति केचिद्व्यवस्यन्ति प्रत्याख्याता हि तेन सा ॥
एवं गते तु किं शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः ।
पुनरूचुश्च तां सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥ ४
अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः ।
इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ॥ ५
प्रतिपत्स्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम् ।
तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता ॥ ६
न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेद्भद्रे यथा पिता ।
पतिर्वाऽपि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनि ७
गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः ।
प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः ॥ ८
राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्यास्तव भामिनि ।
भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि ॥ ९
आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे ।
ततस्त्वन्येऽब्रुवन् वाक्यं तापसास्तां तपस्विनीम्
त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने ।
प्रार्थयिष्यन्ति राजानस्तस्मान्मैवं मनः कृथाः ११

अम्बोवाच ।

न शक्यं काशिनगरं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान् ।
अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः १२
उषिताऽस्मि तथा बाल्ये पितुर्वेश्मनि तापसाः ।
नाहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम ।
तपस्तप्तुमभीप्सामि तापसैः परिरक्षिता ॥ १३
यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः ।
दौर्भाग्यं तापसश्रेष्ठास्तस्मात्तप्स्याम्यहं तपः १४

भीष्म उवाच ।

इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु यथातथम् ।
राजर्षिस्तद्वनं प्राप्तस्तपस्वी होत्रवाहनः ॥ १५
ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम् ।
पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च १६
तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः ।
पुनरेव कथां चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः ॥ १७
अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराज्ञश्च भारत ।
राजर्षिः स महातेजा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ १८
तां तथावादिनीं श्रुत्वा दृष्ट्वा च स महातपाः ।
राजर्षिः कृपयाऽऽविष्टो महात्मा होत्रवाहनः १९
स वेपमान उत्थाय मातुस्तस्याः पिता तदा ।
तां कन्यामङ्कमारोप्य पर्यश्वासयत प्रभो ॥ २०
स तामपृच्छत् कार्त्स्न्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः
सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत् ॥ २१
ततः स राजर्षिरभूद्दुःखशोकसमन्वितः ।
कार्यं च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः ॥ २२
अब्रवीद्वेपमानश्च कन्यामार्तां सुदुःखितः ।
मा गाः पितुर्गृहं भद्रे मातुस्ते जनको ह्यहम् २३
दुःखं छिन्द्यामहं ते वै मयि वर्तस्व पुत्रिके ।
पर्याप्तं ते मनो वत्से यदेवं परिशुष्यसि ॥ २४
गच्छ मद्वचनाद्रामं जामदग्न्यं तपस्विनम् ।
रामस्ते सुमहद्दुःखं शोकं चैवापनेष्यति ॥ २५
हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद्वचः ।
तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ॥ २६
प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः ।
ततस्तु सुस्वरं बाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः ॥ २७
अब्रवीत् पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम् ।
अभिवादयित्वा शिरसा गमिष्ये तव शासनात्
अपि नामाद्य पश्येयमार्य तं लोकविश्रुतम् ।
कथं च तीव्रं दुःखं मे नाशयिष्यति भार्गवः ॥
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं यथा यास्यामि तत्र वै २९

होत्रवाहन उवाच ।

रामं द्रक्ष्यसि भद्रे त्वं जामदग्न्यं महावने ।
उग्रे तपसि वर्तन्तं सत्यसन्धं महाबलम् ॥ ३०
महेन्द्रं वै गिरिश्रेष्ठं रामो नित्यमुपास्ति ह ।
ऋषयो वेदविद्वांसो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ३१
तत्र गच्छस्व भद्रं ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम ।
अभिवाद्य च तं मूर्ध्ना तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥ ३२
ब्रूयाश्चैनं पुनर्भद्रे यत्ते कार्यं मनीषितम् ।
मयि संकीर्तिते रामः सर्वं तत्ते करिष्यति ॥ ३३
मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे ।
जमदग्निसुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४
एवं ब्रुवति कन्यां तु पार्थिवे होत्रवाहने ।
अकृतव्रणः प्रादुरासीद्रामस्यानुचरः प्रियः ॥ ३५

---

ये दोषा विद्यन्ते आश्रमे प्रव्रज्यायां ते दोषाः पितुर्गृहे न भवेयुः। सुंदरीं तरुणीं च त्वां दृष्ट्वा मुनयो वा मोहं प्राप्स्यन्ति त्वं वा धर्मात् स्खलिष्यसीति भावः ॥ १० ॥ महात्ययः सुखनाशः । 'मह उद्धव उत्सवः' इति कोशः ॥ १४ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः ।
स च राजा वयोवृद्धः सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥३६
ततो दृष्ट्वा कृतातिथ्यमन्योन्यं ते वनौकसः ।
सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य तम् ॥ ३७
ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः ।
धन्या दिव्याश्च राजेन्द्र प्रीतिहर्षमुदा युताः॥३८
ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः ।
रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥ ३९
क्व संप्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वर ॥ ४०

अकृतव्रण उवाच ।

भवन्तमेव सततं रामः कीर्तयति प्रभो ।
सृञ्जयो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव ॥ ४१
इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम ।
द्रष्टाऽस्येनमिहायान्तं तव दर्शनकाङ्क्षया ॥ ४२
इयं च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता ।
कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वेदितुम्४३

होत्रवाहन उवाच ।

दौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता प्रिया ।
ज्येष्ठा स्वयंवरे तस्थौ भगिनीभ्यां सहानघ ॥ ४४
इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन॥४५
समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां ततोऽभवत् ।
कन्यानिमित्तं विप्रर्षे तत्रासीदुत्सवो महान्॥४६
ततः किल महावीर्यो भीष्मः शान्तनवो नृपान्।
अधिक्षिप्य महातेजास्तिस्रः कन्या जहार ताः॥४७

निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मो गजाह्वयम् ।
आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारतः४८
सत्यवत्यै निवेद्याथ विवाहं समनन्तरम् ।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापयत प्रभुः ॥ ४९
तं तु वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम् ।
अब्रवीत्तत्र गाङ्गेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ ॥ ५०
मया शाल्वपतिर्वीरो मनसाऽभिवृतः पतिः ।
न मामर्हसि धर्मज्ञ दातुं भ्रात्रेऽन्यमानसाम्॥५१
तच्छ्रुत्वा वचनं भीष्मः संमन्त्र्य सह मन्त्रिभिः ।
निश्चित्य विससर्जेमां सत्यवत्या मते स्थितः५२
अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः ।
कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत् ॥ ५३
विसर्जिताऽस्मि भीष्मेण धर्मं मां प्रतिपादय ।
मनसाऽभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ ॥ ५४
प्रत्याचख्यौ च शाल्वोऽस्याश्चारित्रस्याभिशङ्कितः
सेयं तपोवनं प्राप्ता तापस्येऽभिरता भृशम् ॥ ५५
मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्तनात् ।
अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते ॥५६

अम्बोवाच ।

भगवंस्तथमेवेह यथाऽऽह पृथिवीपतिः ।
शरीरकर्ता मातुर्मे सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥ ५७
न ह्युत्सहे स्वनगरं प्रतियातुं तपोधन ।
अपमानभयाच्चैव व्रीडया च महामुने ॥ ५८
यत्तु मां भगवान् रामो वक्ष्यति द्विजसत्तम ।
तन्मे कार्यतमं कार्यमिति मे भगवन्मतिः ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि होत्रवाहनाम्बासंवादे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

## १७७

अकृतव्रण उवाच ।

दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि ।
प्रतिकर्तव्यमबले तत्त्वं वत्से वदस्व मे ॥ १
यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो मतस्तव ।
नियोक्ष्यति महात्मा स रामस्त्वद्धितकाम्यया २

---

तं विचित्रवीर्यं वैवाहिकं विवाहार्थमुद्यतं समुपार्जितं अभ्यञ्जकौतुकबन्धादिना संस्कृतं दृष्ट्वा इयं कन्या गाङ्गेयमब्रवीदिति योजना ॥ ५० ॥ उत्पत्तिं कारणम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

१७७

दुःखद्वयमिति । दुःखद्वयं दुःखकरद्वयं भीष्मशाल्वाख्यं यद्वा । निर्भर्तृकत्वमेकं दुःखं त्वच्छत्रोर्वधश्चेति तापसानां दुःखद्वयं तथाऽपि शत्रुद्वयमध्ये कतरस्य कं प्रतिकर्तव्यं हंतुं यत्नं चिकीर्षसि । यद्वा । एकैकस्य गतिहानिर्मरणं वेति दुःखद्वयं ज्ञेयम् ॥१॥ नियोक्तव्यस्तव पाणिग्रहणार्थमिति शेषः ॥२॥

अथापगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छसि धीमता ।
रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात्तदपि भार्गवः ॥ ३
सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते ।
यदत्र ते भृशं कार्यं तदद्यैव विचिन्त्यताम् ॥ ४
अम्बोवाच ।
अपनीतास्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता ।
नाभिजानाति मे भीष्मो ब्रह्मन् शाल्वगतं मनः ५
एतद्विचार्य मनसा भवानेतद्विनिश्चयम् ।
विचिनोतु यथान्यायं विधानं क्रियतां तथा ॥ ६
भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथवा पुनः ।
उभयोरेव वा ब्रह्मन् युक्तं यत्तत् समाचर ॥ ७
निवेदितं मया ह्येतद्दुःखमूलं यथातथम् ।
विधानं तत्र भगवन् कर्तुमर्हसि युक्तितः ॥ ८
अकृतव्रण उवाच ।
उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि ।
धर्मं प्रति वचो ब्रूयाः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९
यदि त्वामापगेयो वै न नयेद्गजसाह्वयम् ।
शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृह्णीयाद्रामचोदितः१०
तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीतासि भाविनि
संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥ ११
भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च ।
तस्मात् प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं तव१२
अम्बोवाच ।
ममाप्येष सदा ब्रह्मन् हृदि कामोऽभिवर्तते ।
घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव नित्यदा ॥ १३
भीष्मं वा शाल्वराजं वा यं वा दोषेण गच्छसि ।
प्रशाधि तं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता ॥१४
भीष्म उवाच ।
एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता ॥ १५
ततो रामः प्रादुरासीत् प्रज्वलन्निव तेजसा ।
शिष्यैः परिवृतो राजन् जटाचीरधरो मुनिः॥१६
धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गं बिभ्रन् परश्वधी ।
विरजा राजशार्दूल सृञ्जयं सोऽभ्ययान्नृपम्॥१७
ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपाः ।
तस्थुः प्राञ्जलयो राजन् सा च कन्या तपस्विनी
पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम् ।
अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः ॥ १९
ततः पूर्वव्यतीतानि कथयन्तौ स्म तावुभौ ।
आसातां जामदग्न्यश्च सृञ्जयश्चैव भारत ॥ २०
तथा कथान्ते राजर्षिर्भृगुश्रेष्ठं महाबलम् ।
उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत् ॥ २१
रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो ।
अस्याः शृणु यथातत्त्वं कार्यं कार्यविशारद ॥ २२
परमं कथ्यतां चेति तां रामः प्रत्यभाषत ।
ततः साऽभ्यवदद्रामं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २३
ततोऽभिवाद्य चरणौ रामस्य शिरसौ शुभौ ।
स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता २४
रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना ।
प्रपेदे शरणं चैव शरण्यं भृगुनन्दनम् ॥ २५
राम उवाच ।
यथा त्वं सृञ्जयस्यास्य तथा मे त्वं नृपात्मजे ।
ब्रूहि यत्ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव ॥ २६
अम्बोवाच ।
भगवन् शरणं त्वाऽद्य प्रपन्नाऽस्मि महाव्रतम् ।
शोकपङ्कार्णवान्मग्नां घोरादुद्धर मां विभो ॥२७
भीष्म उवाच ।
तस्याश्च दृष्ट्वा रूपं च वपुश्चाभिनवं पुनः ।
सौकुमार्यं परं चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ २८
किमियं वक्ष्यतीत्येवं विममर्श भृगूद्वहः ।
इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाऽभिपरिप्लुतः ॥ २९
कथ्यतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता
सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे ॥ ३०
तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु राजपुत्र्या वचस्तदा ।
उवाच तां वरारोहां निश्चित्यार्थविनिश्चयम् ३१
राम उवाच ।
प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भाविनि ।
करिष्यति वचो मह्यं श्रुत्वा च स नराधिपः ३२
न चेत्करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः ।
धक्ष्याम्यहं रणे भद्रे सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥ ३३
अथवा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि न वर्तते ।
यावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥ ३४

---

भीष्मस्य तु सत्यप्रतिज्ञस्य त्वत्सुखार्थं जयमात्रं कर्तव्यं न तु तावता तव हितमित्याशयेनाह–अथेति ॥ ३ ॥ विधानं प्रतीकारम् ॥ ६ ॥ आसातां लङि द्विवचनम् ॥२०॥ परमं तव विवक्षितं यत्तन्मेऽवश्यं वक्तव्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥ शिरसौ श्रेष्ठौ । 'शिरः प्रधाने सेनाग्रे' इति मेदिनी । पुंस्त्वमार्षम् ॥ २४ ॥ सृञ्जयस्य दौहित्रीति शेषः ॥ २७ ॥

अम्बोवाच ।

विसर्जिताऽहं भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन ।
शाल्वराजगतं भावं मम पूर्वं मनीषितम् ॥ ३५
सौभराजमुपेत्याहमवोचं दुर्वचं वचः ।
न च मां प्रत्यगृह्णात् स चारित्र्यपरिशङ्कितः ३६
एतत् सर्वं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या भृगुनन्दन ।
यदत्रौपयिकं× कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥ ३७
मम तु व्यसनस्यास्य भीष्मो मूलं महाव्रतः ।
येनाहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात्तदा ॥ ३८
भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम् ।
प्राप्ताऽहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ॥ ३९
स हि लुब्धश्च नीचश्च जितकाशी च भार्गव ।
तस्मात् प्रतिक्रिया कर्तुं युक्ता तस्मै त्वयाऽनघ ४०
एष मे क्रियमाणाया भारतेन तदा विभो ।
अभवद्धृदि संकल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥ ४१
तस्मात् कामं ममाद्येमं राम सम्पादयानघ ।
जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामाम्बासंवादे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

## १७८

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो ।
उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥ १
काश्ये न †कामं गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि ।
ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत् करवाणि ते ॥ २
वाचा भीष्मश्च शाल्वश्च मम राज्ञि वशानुगौ ।
भविष्यतोऽनवद्याङ्गि तत् करिष्यामि मा शुचः
न तु शस्त्रं ग्रहीष्यामि कथञ्चिदपि भाविनि ।
ऋते नियोगाद्विप्राणामेष मे समयः कृतः ॥ ४

अम्बोवाच ।

मम दुःखं भगवता व्यपनेयं यतस्ततः ।
तच्च भीष्मप्रसूतं मे तं जहीश्वर मा चिरम् ॥ ५

राम उवाच ।

काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ ।
शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति गिरा मम ॥ ६

अम्बोवाच ।

जहि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा ।
समाहूतो रणे राम मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
प्रतिश्रुतं च यदपि तत् सत्यं कर्तुमर्हसि ॥ ७

भीष्म उवाच ।

तयोः संवदतोरेवं राजन् रामाम्बयोस्तदा ।
ऋषिः परमधर्मात्मा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८
शरणागतां महाबाहो कन्यां न त्यक्तुमर्हसि ।
यदि भीष्मो रणे राम समाहूतस्त्वया मृधे ॥ ९
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूयात् कुर्याद्वा वचनं तव ।
कृतमस्या भवेत् कार्यं कन्याया भृगुनन्दन ॥ १०
वाक्यं सत्यं च ते वीर भविष्यति कृतं विभो ।
इयं चापि प्रतिज्ञा ते तदा राम महामुने ॥ ११
जित्वा वै क्षत्रियान् सर्वान् ब्राह्मणेषु प्रतिश्रुता ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव रणे यदि ॥ १२
ब्रह्मद्विड्भविता तं वै हनिष्यामीति भार्गव ।
शरणार्थं प्रपन्नानां भीतानां शरणार्थिनाम् ॥ १३
न शक्ष्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन् कथञ्चन ।
यश्च कृत्स्नं रणे क्षत्रं विजेष्यति समागतम् ॥ १४
दीप्तात्मानमहं तं च हनिष्यामीति भार्गव ।
स एवं विजयी राम भीष्मः कुरुकुलोद्वहः ॥
तेन युध्यस्व सङ्ग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥ १५

---

लुब्धो यतो मां हृतवान् । नीचो यतो मदङ्गीकारं स्वयं न कृतवान् । अकामुकस्य कन्याहरणं दोष इति भावः ॥४०॥ क्रियमाणायाः बलादाहरणेन हिंस्यमानायाः। कृ हिंसायां स्वादिः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥ × औपयिकं युक्तम् ।

१७८

एवमिति ॥ १ ॥ काश्ये काशिराजकन्ये ॥ २ ॥ ऋषिः अकृतव्रणः । पाठान्तरे 'तु स्पष्टमेव सः कीर्त्यते ॥ ८ ॥ † काममिच्छानुसारेण ।

राम उवाच ।

स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम ।
तथैव च चरिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते ॥ १६
कार्यमेतन्महद्ब्रह्मन् काशिकन्यामनोगतम् ।
गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः १७
यदि भीष्मो रणश्लाघी न करिष्यति मे वचः ।
हनिष्याम्येनमुद्रिक्तमिति मे निश्चिता मतिः १८
न हि बाणा मयोत्सृष्टाः *सज्जन्तीह शरीरिणाम्
कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसङ्गरे ॥ १९
एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महातपाः २०
ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः ।
हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रतस्थुर्मज्जिघांसया ॥ २१
अभ्यगच्छत्ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥ २२
न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीम् ।
तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥ २३

भीष्म उवाच ।

ततस्तृतीये दिवसे संदिदेश व्यवस्थितः ।
कुरु प्रियं स मे राजन् प्राप्तोऽस्मीति महाव्रतः २४
तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्तं महाबलम् ।
अभ्यगच्छं जवेनाशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् २५
गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः ।
ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥ २६
स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
प्रतिजग्राह तां पूजां वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७

राम उवाच ।

भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता तदा ।
अकामेन त्वयाऽऽनीता पुनश्चैव विसर्जिता॥२८
विभ्रंशिता त्वया हीयं धर्मादास्ते यशस्विनी ।
परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहार्हति ॥२९
प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वयाऽऽनीतेति भारत।
तस्मादिमां मन्नियोगात् प्रतिगृह्णीष्व भारत ३०
स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम् ।
न युक्तस्त्ववमानोऽयं राज्ञां कर्तुं त्वयाऽनघ ३१
ततस्तं वै विमनसमुदीक्ष्याहमथाब्रुवम् ।
नाहमेनां पुनर्दद्यां ब्रह्मन् भ्रात्रे कथञ्चन ॥ ३२
शाल्वस्याहमिति प्राह पुरा मामेव भार्गव ।
मया चैवाभ्यनुज्ञाता गतेयं नगरं प्रति ॥ ३३
न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थलोभान्न काम्यया ।
क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥ ३४
अथ मामब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
न करिष्यसि चेदेतद्वाक्यं मे नरपुङ्गव ॥ ३५
हनिष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः ।
संरंभादब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३६
तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिन्दम ।
अयाचं भृगुशार्दूलं न चैव प्रशशाम सः ॥ ३७
प्रणम्य तमहं मूर्ध्ना भूयो ब्राह्मणसत्तमम् ।
अब्रुवं कारणं किं तद्यत्त्वं युद्धं मयेच्छसि ॥ ३८
इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम् ।
उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥
ततो मामब्रवीद्रामः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
जानीषे मां गुरुं भीष्म गृह्णासीमां न चैव ह ४०
सुतां काश्यस्य कौरव्य मत्प्रियार्थं महामते ।
न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ॥ ४१
गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः ।
त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्तारं नाधिगच्छति ॥
तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।
नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥ ४३
गुरुत्वं त्वयि संप्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम् ।
प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्तैषा तु पुरा मया ॥ ४४
को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमिवस्थिताम्।
वासयेत गृहे जानन् स्त्रीणां दोषो महात्ययः ॥
न भयाद्वासवस्यापि धर्मं जह्यां महाव्रत ।
प्रसीद मा वा यद्वा ते कार्यं तत्कुरु मा चिरम् ॥
अयं चापि विशुद्धात्मन् पुराणे श्रूयते विभो ।
मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥ ४७
"गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते" ॥ ४८
स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया संमानितो भृशम् ।
गुरुवृत्तिं न जानीषे तस्माद्योत्स्यामि वै त्वया ॥
गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः ।
विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥ ५०
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत् ।
यो हन्यात् समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायिनम् ॥ ५१

अवलिप्तस्य दृप्तस्य ॥४८॥ *इहलोके शरीरिणां शरीरवतां सतां न सज्जन्ति । मम शरघातैः शरीरपात एव भवतीति भावः।

ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः ।
क्षत्रियाणां स्थितो धर्मे क्षत्रियोऽस्मि तपोधन॥
यो यथा वर्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्तयन् ।
नाधर्मं समवाप्नोति न चाश्रेयश्च विन्दति ॥ ५३
अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित् ।
अर्थसंशयमापन्नः श्रेयान्निःसंशयो नरः ॥ ५४
यस्मात् संशयितेऽप्यर्थेऽयथान्यायं प्रवर्तसे ।
तस्माद्योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे ५५
पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चातिमानुषम् ।
एवं गतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ॥ ५६
तत्करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह ।
द्वन्द्वे राम यथेष्टं मे सज्जीभव महाद्युते ॥ ५७
तत्र त्वं निहतो राम मया शरशतार्दितः ।
प्राप्स्यसे निर्जिताँल्लोकान् शस्त्रपूतो महारणे ५८
स गच्छ विनिवर्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रिय ।
तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥ ५९
अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः ।
तत्राहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्ताऽस्मि भार्गव६०
तत्र राम समागच्छ त्वरितं युद्धदुर्मद ।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मणब्रुवः ॥ ६१
यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिवत्सरे ।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥ ६२
न तदा जातवान् भीष्मः क्षत्रियो वाऽपि मद्विधः
पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया॥६३
यस्ते युद्धमयं दर्पं कामं च व्यपनाशयेत् ।
सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरञ्जयः ।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥ ६४

भीष्म उवाच ।

ततो मामब्रवीद्रामः प्रहसन्निव भारत ।
दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्धुमिच्छसि सङ्गरे॥
अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह ।
भाषितं ते करिष्यामि तत्रागच्छ परंतप ॥ ६६
तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम् ।
जान्हवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबलाशनम् ॥ ६७
कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता ।
मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥ ६८
अतदर्हा महाभागा भगीरथसुताऽनघा ।
या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥ ६९
एहि गच्छ मया भीष्म युद्धकामुक दुर्मद ।
गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ॥ ७०
इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।
प्रणम्य शिरसा राममेवमस्त्वित्यथाब्रुवम् ॥ ७१
एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया ।
प्रविश्य नगरं चाहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ ७२
ततः कृतस्वस्त्ययनो मात्रा च प्रतिनन्दितः ।
द्विजातीन् वाच्य पुण्याहं स्वस्ति चैव महाद्युते७३
रथमास्थाय रुचिरं राजतं पाण्डुरैर्हयैः ।
सूपस्करं स्वधिष्ठानं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ ७४
उपपन्नं महाशस्त्रैः सर्वोपकरणान्वितम् ।
तत्कुलीनेन वीरेण हयशास्त्रविदा रणे ॥ ७५
युक्तं सूतेन शिष्टेन बहुशो दृष्टकर्मणा ।
दंशितः पाण्डुरेणाहं कवचेन वपुष्मता ॥ ७६
पाण्डुरं कार्मुकं गृह्य प्रायां भरतसत्तम ।
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥ ७७
पाण्डुरैश्चापि व्यजनैर्वीज्यमानो नराधिप ।
शुक्लवासाः सितोष्णीषः सर्वशुक्लविभूषणः॥ ७८
स्तूयमानो जयाशीर्भिर्निष्क्रम्य गजसाह्वयात् ।
कुरुक्षेत्रं रणक्षेत्रमुपायां भरतर्षभ ॥ ७९
ते हयाश्चोदितास्तेन सूतेन परमाहवे ।
अवहन्मां भृशं राजन् मनोमारुतरंहसः ॥ ८०
गत्वाऽहं तत् कुरुक्षेत्रं स च रामः प्रतापवान् ।
युद्धाय सहसा राजन् पराक्रान्तौ परस्परम् ॥८१

---

यः पुमान् यस्मिन्नरे यथा प्रीत्या द्वेषेण वा वर्तते स नरस्तस्मिन् तथैव प्रीतिं द्वेषं वा प्रवर्तयन् ॥५३॥ ननु त्वामर्थे प्रवर्तयन्नहं त्वयि प्रीतिमेव करोमीत्याशङ्क्याहार्थेवेति । अर्थे गुरुवाक्याद्वारकरणे, धर्मे पितृप्रीत्यर्थं स्वकृते ब्रह्मचर्ये विषये, देशकालानुसारेण समर्थो विवेककुशलः। तत्र धर्मलोपेन गुरुवाक्यात् प्राप्यमाणोऽर्थः श्रेयानुत नेत्यर्थे संशयवानुत गुरुवाक्यविरोधेनापि पाल्यमानो धर्मः श्रेयानुत नेति धर्मे संशयवान्। एतयोर्मध्ये अर्थे संशयमापन्नोऽर्थमननुतिष्ठन् श्रेयान् । परिशेषात् धर्मे तु निःसंशयो धर्ममेवानुतिष्ठन् श्रेयानित्यर्थः ॥ ५४ ॥ अयथान्यायमिति छेदः । न्यायातिक्रमेण मां प्रवर्तयसे ॥ ५५ ॥ बाहुवीर्यं बाणप्रक्षेपादौ एवंगते एवंस्थिते त्वयि ॥ ५६ ॥ **अपि यत्रेति** । पितृवद्गुरुमरणेऽप्याशौचप्राप्तौ सत्यां तत्रैव तीर्थे शौचं सचैलस्नानादिना दशमेऽहि शुद्धिं स्वस्य करिष्यामीत्यर्थः । शौचं रुधिराञ्जलिदानमित्यर्वाचीनः ॥ ६० ॥ पौराणं पुराकृतम् ६१॥ बलाः काकाः तेषामशनं अन्नभूतम् ॥६७॥ सूपस्करं स्वस्वधिष्ठानं सुचक्रं वैयाघ्रं व्याघ्रचर्म तदेव परिवारणं आच्छादनं यस्य तम् ॥ ७४ ॥

ततः संदर्शनेऽतिष्ठं रामस्यातितपस्विनः ।
प्रगृह्य शङ्खप्रवरं ततः प्राधममुत्तमम् ॥ ८२
ततस्तत्र द्विजा राजंस्तापसाश्च वनौकसः ।
अपश्यन्त रणं दिव्यं देवाः सेन्द्रगणास्तदा ॥ ८३
ततो दिव्यानि माल्यानि प्रादुरासंस्ततस्ततः ।
वादित्राणि च दिव्यानि मेघवृन्दानि चैव ह ॥८४
ततस्ते तापसाः सर्वे भार्गवस्यानुयायिनः ।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त परिवार्य रणाजिरम् ॥ ८५
ततो मामब्रवीद्देवी सर्वभूतहितैषिणी ।
माता स्वरूपिणी राजन् किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥
गत्वाऽहं जामदग्न्यं तु प्रयाचिष्ये कुरूद्वह ।
भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति पुनः पुनः ॥
मा मैवं पुत्र निर्बन्धं कुरु विप्रेण पार्थिव ।
जामदग्न्येन समरे योद्धुमित्येव भर्त्सयत् ॥ ८८
किन्न वै क्षत्रियहणो हरतुल्यपराक्रमः ।
विदितः पुत्र रामस्ते यतस्त्वं योद्धुमिच्छसि ॥ ८९
ततोऽहमब्रुवं देवीमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
सर्वं तद्भरतश्रेष्ठ यथावृत्तं स्वयंवरे ॥ ९०
यथा च रामो राजेन्द्र मया पूर्वं प्रचोदितः ।
काशिराजसुतायाश्च यथा कर्म पुरातनम् ॥ ९१
ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी ।
मदर्थं तमृषिं वीक्ष्य क्षमयामास भार्गवम् ॥ ९२
भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत्
स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्तय ।
न च मे कुरुते काममित्यहं तमुपागमम् ॥ ९३

वैशम्पायन उवाच ।

ततो गङ्गा सुतस्नेहाद्भीष्मं पुनरुपागमत् ।
न चास्याश्चाकरोद्वाक्यं क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥९४
अथादृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः ।
आह्वयामास च तदा युद्धाय द्विजसत्तमः ॥ ९५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयोः कुरुक्षेत्रावतरणे अष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

## १७९

भीष्म उवाच ।

तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ।
भूमिष्ठं नोत्सहे योद्धुं भवन्तं रथमास्थितः ॥ १
आरोह स्यन्दनं वीर कवचं च महाभुज ।
बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि ॥ २
ततो मामब्रवीद्रामः स्मयमानो रणाजिरे ।
रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत् ३
सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः ।
सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ॥ ४
एवं ब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः ।
शरव्रातेन महता सर्वतः प्रत्यवारयत् ॥ ५
ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथमध्ये व्यवस्थितम् ।
सर्वायुधवरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने ॥ ६
मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे ।
दिव्याश्वयुजि सन्नद्धे काञ्चनेन विभूषिते ॥ ७
कवचेन महाबाहो सोमार्ककृतलक्ष्मणा ।
धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ ८
सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः ।
सखा वेदविदत्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥ ९
आह्वयानः स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे ।
पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गवः ॥ १०
तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम् ।
क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥ ११
ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु वाहान्निगृह्य वै ।
अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिर्ऋषिसत्तमम् ॥ १२
अभ्यागच्छं तदा राममर्चिष्यन् द्विजसत्तमम् ।
अभिवाद्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् १३

भार्गवस्य रामस्य ॥८५॥ देवी गङ्गा ॥ ८६ ॥ क्षत्रियहणः क्षत्रियहन्ता ॥ ८९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

१७९

तमिति । स्मयन्निव हसन्निव ॥ १ ॥ वेदमातरो गायत्री-सावित्री-सरस्वत्यः ॥ ४ ॥ सत्यविक्रम इति पाठे लङ्घितक्रमः ॥५॥ अद्भुतोपमं अभूतोपमं दर्शनं यस्य तस्मिन् ॥६॥

योत्स्ये त्वया रणे राम सदृशेनाधिकेन वा ।
गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्व मे विभो ॥ १४

राम उवाच ।

एवमेतत् कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।
धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥
शपेयं त्वां न चेदेवमागच्छेथा विशांपते ।
युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्यमालम्ब्य कौरव ॥ १६
न तु ते जयमाशासे त्वां विजेतुमहं स्थितः ।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण प्रीतोऽस्मि चरितेन ते १७
ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः ।
प्राध्मापयं रणे शङ्खं पुनर्हेमपरिष्कृतम् ॥ १८
ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत ।
दिवसान् सुबहून् राजन् परस्परजिगीषया ॥ १९
स मे तस्मिन् रणे पूर्वं प्राहरत् कङ्कपत्रिभिः ।
षष्ट्या शतैश्च नवभिः शराणां नतपर्वणाम् २०
चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशाम्पते ।
प्रतिरुद्धास्तथैवाहं समरे दंशितः स्थितः ॥ २१
नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।
तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् २२
आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि ।
भूयश्च शृणु मे ब्रह्मन् सम्पदं धर्मसंग्रहे ॥ २३
ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत् ।
तपश्च ते महत्तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥ २४
प्रहारे क्षत्रधर्मस्य यं राम त्वं समाश्रितः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् २५
पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाह्वोर्बलं मम ।
एष ते कार्मुकं वीर छिनद्मि निशितेषुणा ॥ २६
तस्याहं निशितं भल्लं चिक्षेप भरतर्षभ ।
तेनास्य धनुषः कोटिं छित्वा भूमावपातयम् २७
तथैव च पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ।
चिक्षेप कङ्कपत्राणां जामदग्न्यरथं प्रति ॥ २८
काये विषक्तास्तु तदा वायुना समुदीरिताः ।
चेलुः क्षरन्तो रुधिरं नागा इव च ते शराः २९
क्षतजोक्षितसर्वाङ्गः क्षरन् स रुधिरं रणे ।
बभौ रामस्तदा राजन् मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ३०
हेमन्तान्तेऽशोक इव रक्तस्तबकमण्डितः ।
बभौ रामस्तथा राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ ३१
ततोऽन्यद्धनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः ।
हेमपुङ्खान् सुनिशितान् शरांस्तान् हि ववर्ष सः
ते समासाद्य मां रौद्रा बहुधा मर्मभेदिनः ।
अकम्पयन्महावेगाः सर्पानलविषोपमाः ॥ ३३
तमहं समवष्टभ्य पुनरात्मानमाहवे ।
शतसंख्यैः शरैः क्रुद्धस्तदा राममवाकिरम् ॥ ३४
स तैरग्न्यर्कसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः ।
शितैरभ्यर्दितो रामो मन्दचेता इवाभवत् ॥ ३५
ततोऽहं कृपयाऽऽविष्टो विष्टभ्यात्मानमात्मना ।
धिग्धिगित्यब्रुवं युद्धं क्षत्रधर्मं च भारत ॥ ३६
असकृच्चाब्रुवं राजन् शोकवेगपरिप्लुतः ।
अहो बत कृतं पापं मयेदं क्षत्रधर्मणा ॥ ३७
गुरुर्द्विजातिर्धर्मात्मा यदेवं पीडितः शरैः ।
ततो न प्राहरं भूयो जामदग्न्याय भारत ॥ ३८
अथावताप्य पृथिवीं पूषा दिवससंक्षये ।
जगामास्तं सहस्रांशुस्ततो युद्धमुपारमत् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७९ ॥

## १८०

भीष्म उवाच ।

आत्मनस्तु ततः सूतो हयानां च विशाम्पते ।
मम चापनयामास शल्यान् कुशलसम्मतः ॥ १
स्नातापवृत्तैस्तुरगैर्लब्धतोयैरविह्वलैः ।
प्रभाते चोदिते सूर्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २

---

न तु त जयमाशासे इत्युक्तिर्भूतिमिच्छता त्वया प्रागेव मदभिवंदनस्य जयहेतोः कृतत्वादिति भावः । तच्चैवमेतत्कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छतेत्यनेन सूचितम् ॥ १७ ॥ मे मया मानिता ॥ २३ ॥ चिक्षेपेति पारोक्ष्यार्थे लिट्प्रयोगो हेलया कृतत्वसूचनार्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

१८०

आत्मन इति॥१॥ स्नातापवृत्तैः स्नातैः परावृत्तैश्च॥२॥

दृष्ट्वा मां तूर्णमायान्तं दंशितं स्यन्दने स्थितम् ।
अकरोद्रथमत्यर्थं रामः सज्जं प्रतापवान् ॥ ३
ततोऽहं राममायान्तं दृष्ट्वा समरकाङ्क्षिणम् ।
धनुःश्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसाऽवतरं रथात् ॥ ४
अभिवाद्य तथैवाहं रथमारुह्य भारत ।
युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ५
ततोऽहं शरवर्षेण महता समवाकिरम् ।
स च मां शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरत् ॥ ६
संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव सुतेजितान् ।*
सम्प्रैषीन्मे शरान् घोरान् दीप्तास्यानुरगानिव ७
ततोऽहं निशितैर्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥ ८
ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
मयि प्रयोजयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ॥ ९
अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम् ।
ततो दिवि महान्नादः प्रादुरासीत् समन्ततः १०
ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् ।
प्रत्याजघ्ने च तद्रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११
ततोऽहमस्त्रमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् ।
वारुणेनैव तद्रामो वारयामास मे विभुः ॥ १२
एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्याहमवारयम् ।
रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिन्दमः ॥ १३
ततो मां ‡सव्यतो राजन् रामः कुर्वन् द्विजोत्तमः
उरस्यविध्यत् संक्रुद्धो जामदग्न्यः प्रतापवान् १४
ततोऽहं भरतश्रेष्ठ †संन्यषीदं रथोत्तमे ।
ततो मां +कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमुदावहत्॥ १५
ग्लायन्तं भरतश्रेष्ठ रामबाणप्रपीडितम् ।
ततो मामपयातं वै भृशं विद्धमचेतसम ॥ १६
रामस्यानुचरा हृष्टाः सर्वे दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ।
अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥ १७
ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाब्रुवम् ।
याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ॥ १८
ततो मामवहत् सूतो हयैः परमशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ ॥ १९
ततोऽहं राममासाद्य बाणवर्षैश्च कौरव ।
अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धं च जिगीषया ॥ २०
तानापतत एवासौ रामो बाणानजिह्मगान् ।
बाणैरेवाच्छिनत्तूर्णमेकैकं त्रिभिराहवे ॥ २१
ततस्ते सूदिताः सर्वे मम बाणाः सुसंशिताः ।
रामबाणैर्द्विधा छिन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२
ततः पुनः शरं दीप्तं सुप्रभं कालसम्मितम् ।
असृजं जामदग्न्याय रामायाहं जिघांसया ॥ २३
तेन त्वभिहतो गाढं बाणवेगवशं गतः ।
मुमोह समरे रामो भूमौ च निपपात ह ॥ २४
ततो हाहाकृतं सर्वं रामे भूतलमाश्रिते ।
जगद्भारत संविग्नं यथार्कपतने भवेत् ॥ २५
तत एनं समुद्विग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ।
तपोधनास्ते सहसा काश्या च कुरुनन्दन ॥ २६
तत एनं परिष्वज्य शनैराश्वासयंस्तदा ।
पाणिभिर्जलशीतैश्च जयाशीर्भिश्च कौरव ॥ २७
ततः स विह्वलं वाक्यं राम उत्थाय चाब्रवीत् ।
तिष्ठ भीष्म हतोऽसीति बाणं सन्धाय कार्मुके
स मुक्तो न्यपतत्तूर्णं सव्ये पार्श्वे महाहवे ।
येनाहं भृशमुद्विग्नो व्याघूर्णित इव द्रुमः ॥ २९
हत्वा हयांस्ततो रामः शीघ्रास्त्रेण महाहवे ।
अवाकिरन्मां विस्रब्धो बाणैस्तैर्लोमवाहिभिः ३०
ततोऽहमपि शीघ्रास्त्रं समरप्रतिवारणम् ।
अवासृजं महाबाहो तेऽन्तराधिष्ठिताः शराः ३१
रामस्य मम चैवाशु व्योमावृत्य समन्ततः ।
न स्म सूर्यः प्रतपति शरजालसमावृतः ॥ ३२
मातरिश्वा ततस्तस्मिन् मेघरुद्ध इवाभवत् ।
ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च गभस्तिभिः ३३
अभिघातप्रभावाच्च पावकः समजायत ।
ते शराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्रभानुना ॥ ३४
भूमौ सर्वे तदा राजन् भस्मभूताः प्रपेदिरे ।
तदा शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ ३५
अयुतान्यथ खर्वाणि निखर्वाणि च कौरव ।
रामः शराणां संक्रुद्धो मयि तूर्णं न्यपातयत् ३६
ततोऽहं तानपि रणे शरैराशीविषोपमैः ।
संछिद्य भूमौ नृपते पातयेयं नगानिव ॥ ३७
एवं तदभवद्युद्धं तदा भरतसत्तम ।
सन्ध्याकाले व्यतीते तु व्यपायात् स च मे गुरुः

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे
अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

सुतेजितान् सुष्ठु तीक्ष्णीकृतान् ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥‡ सव्यतः करणं पराजयलिंगम् । † संन्यषीदं समुपाविशम् । + कश्मलो मोहः ।

# १८१

भीष्म उवाच ।

समागतस्य रामेण पुनरेवातिदारुणम् ।
अन्येद्युस्तुमुलं युद्धं तदा भरतसत्तम ॥ १
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।
अयोजयत् स धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः ॥ २
तान्यहं तत्प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत ।
व्यधमं तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ।
अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा हतेष्वेव च भारत ।
अक्रुध्यत महातेजास्त्यक्तप्राणः स संयुगे ॥ ४
ततः शक्तिं प्राहिणोद्घोररूपा-
मस्त्रे रुद्धे जामदग्न्यो महात्मा ।
कालोत्सृष्टां प्रज्वलितामिवोल्कां
संदीप्ताग्रां तेजसा व्याप्य लोकम् ॥ ५
ततोऽहं तामिषुभिर्दीप्यमानां
समायान्तीमन्तकालार्कदीप्ताम् ।
छित्वा त्रिधा पातयामास भूमौ
ततो ववौ पवनः पुण्यगन्धिः ॥ ६
तस्यां छिन्नायां क्रोधदीप्तोऽथ रामः
शक्तीर्घोराः प्राहिणोद्द्वादशान्याः ।
तासां रूपं भारत नोत शक्यं
तेजस्वित्वाल्लाघवाच्चैव वक्तुम् ॥ ७
किं त्वेवाहं विह्वलः सम्प्रदृश्य
दिग्भ्यः सर्वास्ता महोल्का इवाग्नेः ।
नानारूपास्तेजसोऽग्रेण दीप्ता
यथाऽऽदित्या द्वादश लोकसंक्षये ॥८
ततो जालं बाणमयं विवृत्तं
संदृश्य भित्त्वा शरजालेन राजन् ।
द्वादशेषून् प्राहिणवं रणेऽहं
ततः शक्तीरप्यधमं घोररूपाः ॥ ९
ततो राजन् जामदग्न्यो महात्मा
शक्तीर्घोरा व्याक्षिपद्धेमदण्डाः ।
विचित्रिताः काञ्चनपट्टनद्धा
यथा महोल्का ज्वलितास्तथा ताः १०
ताश्चाप्युग्राश्चर्मणा वारयित्वा
खड्गेनाजौ पातयित्वा नरेन्द्र ।
बाणैर्दिव्यैर्जामदग्न्यस्य संख्ये
दिव्यानश्वानभ्यवर्षं ससूतान् ॥ ११
निर्मुक्तानां पन्नगानां सरूपा
दृष्ट्वा शक्तीर्हेमचित्रा निकृत्ताः ।
प्रादुश्चक्रे दिव्यमस्त्रं महात्मा
क्रोधाविष्टो हैहयेशप्रमाथी ॥ १२
ततः श्रेण्यः शलभानामिवोग्राः
समापेतुर्विशिखानां प्रदीप्ताः ।
समाचिनोच्चापि भृशं शरीरं
हयान् सूतं सरथं चैव मह्यम् ॥ १३
रथः शरैर्मे निचितः सर्वतोऽभू-
त्तथा वाहाः सारथिश्चैव राजन् ।
युगं रथेषा च तथैव चक्रे
तथैवाक्षः शरकृत्तोऽथ भग्नः ॥ १४
ततस्तस्मिन् बाणवर्षे व्यतीते
शरौघेण प्रत्यवर्षं गुरुं तम् ।
स विक्षतो मार्गणैर्ब्रह्मराशि-
र्देहाद्सक्तं मुमुचे भूरि रक्तम् ॥ १५
यथा रामो बाणजालाभितप्त-
स्तथैवाहं सुभृशं गाढविद्धः ।
ततो युद्धं व्यरमच्चापराह्णे
भानावस्तं प्रति याते महीध्रम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि
एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

१८१

**समागतस्येति** ॥१॥ निकृत्ताः छिन्नाः हैहयेशप्रमाथी कार्तवीर्यस्य हन्ता ॥ १२ ॥ शरकृत्तः बाणैश्छिन्नः ॥१४॥ अस्तं महीध्रं अस्ताचलम् ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

# १८२

भीष्म उवाच ।

ततः प्रभाते राजेन्द्र सूर्ये विमलतां गते ।
भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्तत ॥ १
ततोऽभ्रान्ते रथे तिष्ठन् रामः प्रहरतां वरः ।
ववर्ष शरजालानि मयि मेघ इवाचले ॥ २
ततः सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण ताडितः ।
अपयातो रथोपस्थान्मनो मम विषादयन् ॥ ३
ततः सूतो ममात्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत् ।
पृथिव्यां च शराघातान्निपपात मुमोह च ॥ ४
ततः सूतोऽजहात् प्राणान् रामबाणप्रपीडितः ।
मुहूर्तादिव राजेन्द्र मां च भीराविशत्तदा ॥ ५
ततः सूते हते तस्मिन् क्षिपतस्तस्य मे शरान् ।
प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसंमितम् ॥ ६
ततः सूतव्यसनिनं विप्लुतं मां स भार्गवः ।
शरेणाभ्यहनद्गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ७
स मे भुजान्तरे राजन्निपत्य रुधिराशनः ।
मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥ ८
मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ ।
मेघवद्विननादोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥ ९
तथा तु पतिते राजन् मयि रामो मुदा युतः ।
उदक्रोशन्महानादं सह तैरनुयायिभिः ॥ १०
मम तत्राभवन् ये तु कुरवः पार्श्वतः स्थिताः ।
आगता अपि युद्धं तज्जनास्तत्र दिदृक्षवः ।
आर्तिं परमिकां जग्मुस्ते तदा पतिते मयि ॥ ११

ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह
द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान् ।
ते मां समन्तात् परिवार्य तस्थुः
स्वबाहुभिः परिधार्याजिमध्ये ॥ १२

रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्नाहं भूमिमुपास्पृशम् ।
अन्तरिक्षे धृतो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ॥ १३
श्वसन्निवान्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः ।
ततस्ते ब्राह्मणा राजन्नब्रुवन् परिगृह्य माम् ॥ १४
मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चासकृत् ।
ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहसोत्थितः ।
मातरं सरितां श्रेष्ठामपश्यं रथमास्थिताम् ॥ १५

हयाश्च मे संगृहीतास्तयाऽऽसन्
महानद्या संयति कौरवेन्द्र ।
पादौ जनन्याः प्रतिगृह्य चाहं
तथा पितॄणां रथमभ्यरोहम् ॥ १६

ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्कराणि च ।
तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥ १७
ततोऽहं स्वयमुद्यम्य हयांस्तान् वातरंहसः ।
अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥ १८
ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम् ।
अमुञ्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥ १९
ततो जगाम वसुधां मम बाणप्रपीडितः ।
जानुभ्यां धनुरुत्सृज्य रामो मोहवशं गतः ॥ २०
ततस्तस्मिन्निपतिते रामे भूरिसहस्रदे ।
आवव्रुर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥ २१
उल्काश्च शतशः पेतुः सनिर्घाताः सकम्पनाः ।
अर्कं च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभिसंवृणोत् ॥ २२
ववुश्च वाताः परुषाश्चलिता च वसुंधरा ।
गृध्रा बलाश्च कङ्काश्च परिपेतुर्मुदा युताः ॥ २३
दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत् ।
अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशनिःस्वनाः ॥ २४
एतदौत्पातिकं सर्वं घोरमासीद्भयंकरम् ।
विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि ॥ २५
ततो वै सहसोत्थाय रामो मामभ्यवर्तत ।
पुनर्युद्धाय कौरव्य विह्वलः क्रोधमूर्छितः ॥ २६
आददानो महाबाहुः कार्मुकं बलसन्निभम् ।
ततो मय्याददानं तं राममेव न्यवारयन् ॥ २७
महर्षयः कृपायुक्ताः क्रोधाविष्टोऽथ भार्गवः ।
स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम् ॥ २८

---

१८२

तत इति ॥ १ ॥ अभ्रान्ते मेघमण्डलसमीपे ॥ २ ॥ द्विजान् ब्राह्मणरूपधरान् वसून् ॥ १२ ॥ भूरिसहस्रदे स्वर्णसहस्राणां दातरि 'भूरिर्ना वासुदेवे च हरे च परमेष्ठिनि । नपुंसकं सुवर्णे च प्राज्ये स्याद्वाच्यलिंगके' इति मेदिनी ॥ २१ ॥ सकम्पनाः सविद्युतः ॥ २२ ॥ बलाः बलाकाः ॥ २३ ॥ विह्वलः व्याकुलः क्रोधावेशादेव वृद्धिं गतः ॥ २६ ॥ बलसन्निभं गन्धकरसवत् 'बलं गंधरसे रूपे' इति मेदिनी । मयि मन्निमित्तं आददानं शरमिति शेषः । शरं मय्याददानमिति पाठान्तरम् ॥ २७ ॥ मे मयि । अहरत् संहृतवान् मुनीनां वाक्यादित्यर्थः २८।

ततो रविर्मन्त्रमरीचिमण्डलो
जगामास्तं पांसुपुञ्जावगूढः ।
निशा व्यगाहत् सुखशीतमारुता
ततो युद्धं प्रत्यवहारयावः ॥ २९

एवं राजन्नवहारो बभूव
ततः पुनर्विमलेऽभूत् सुघोरम् ।
कल्यं कल्यं विंशतिं वै दिनानि
तथैव चान्यानि दिनानि त्रीणि ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे
द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

## १८३

भीष्म उवाच ।
ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रणम्य शिरसा तदा ।
ब्राह्मणानां पितॄणां च देवतानां च सर्वशः ॥ १
नक्तंचराणां भूतानां राजन्यानां विशाम्पते ।
शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम् ॥ २
जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम् ।
अहानि च बहून्यद्य वर्तते सुमहात्ययम् ॥ ३
न च रामं महावीर्यं शक्नोमि रणमूर्धनि ।
विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम् ॥ ४
यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम ॥ ५
ततो निशि च राजेन्द्र प्रसुप्तः शरविक्षतः ।
दक्षिणेनेह पार्श्वेन प्रभातसमये तदा ॥ ६
ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात् ।
उत्थापितो धृतश्चैव मा भैरिति च सान्त्वितः ७
त एव मां महाराज स्वप्नदर्शनमेत्य वै ।
परिवार्याब्रुवन् वाक्यं तन्निबोध कुरूद्वह ॥ ८
उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय न भयं तेऽस्ति किञ्चन ।
रक्षामहे त्वां कौरव्य स्वशरीरं हि नो भवान् ॥
न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथञ्चन ।
त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ ॥ १०
इदमस्त्रं सुदयितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान् ।
विदितं हि तवाप्येतत् पूर्वस्मिन् देहधारणे ॥ ११
प्राजापत्यं विश्वकृतं प्रस्वापं नाम भारत ।
नहीदं वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान् क्वचित्
तत् स्मरस्व महाबाहो भृशं संयोजयस्व च ।
उपस्थास्यति राजेन्द्र स्वयमेव तवानघ ॥ १३
येन सर्वान् महावीर्यान् प्रशासिष्यसि कौरव ।
न च रामः क्षयं गन्ता तेनास्त्रेण नराधिप ॥ १४
एनसा न तु संयोगं प्राप्स्यसे जातु मानद ।
स्वप्स्यते जामदग्न्योऽसौ त्वद्बाणबलपीडितः ॥
ततो जित्वा त्वमेवैनं पुनरुत्थापयिष्यसि ।
अस्त्रेण दयितेनाजौ भीष्म संबोधनेन वै ॥ १६
एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते रथमास्थितः ।
प्रसुप्तं वा मृतं वेति तुल्यं मन्यामहे वयम् ॥ १७
न च रामेण मर्तव्यं कदाचिदपि पार्थिव ।
ततः समुत्पन्नमिदं प्रस्वापं युज्यतामिति ॥ १८
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता राजन् सर्व एव द्विजोत्तमाः ।
अष्टौ सदृशरूपास्ते सर्वे भास्वरमूर्तयः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मप्रस्वापनास्त्रलाभे
त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

---

मन्त्रमयाः मरीचयो मण्डलं च यस्य स तथा । तथा च श्रुतिः— 'सैषा त्रय्येव विद्या तपति' इति । प्रत्यवहारयावः समाप्तं कृतवन्तौ आवामिति शेषः ॥ २९ ॥ विमले दिवसे वितमसीत्यर्थः । कल्यंकल्यं प्रातःप्रातः ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

१८३

ततोऽहमिति ॥ १ ॥ रहिते एकान्ते ॥ २ ॥ निशां निशि दर्शयन्तु आत्मानं प्रकाशयन्तु ॥ ५ ॥ प्रत्यभिज्ञा परिचयस्तं प्राप्स्यसे पूर्वस्मिन् वसुभावे ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

## १८४

भीष्म उवाच ।

ततो रात्रौ व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत ।
ततः सञ्चिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥ १
ततः समभवद्युद्धं मम तस्य च भारत ।
तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥ २
ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः ।
न्यवारयमहं तच्च शरजालेन भारत ॥ ३
ततः परमसंक्रुद्धः पुनरेव महातपाः ।
ह्यस्तनेन च कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि ॥ ४
इन्द्राशनिसमस्पर्शां यमदण्डसमप्रभाम् ।
ज्वलन्तीमग्निवत्संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥ ५
ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशगं यथा ।
स मामभ्यवधीत्तूर्णं जत्रुदेशे कुरूद्वह ॥ ६
अथास्रमस्रवद्घोरं गिरेर्गैरिकधातुवत् ।
रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजेक्षण ॥ ७
ततोऽहं जामदग्न्याय भृशं क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप मृत्युसंकाशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥ ८
स तेनाभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः ।
अशोभत महाराज सशृंग इव पर्वतः ॥ ९
स संरब्धः समावृत्य शरं कालान्तकोपमम् ।
सन्दधे बलवत्कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ १०
स वक्षसि पपातोग्रः शरो व्याल इव श्वसन् ।
महीं राजंस्ततश्चाहमगमं रुधिराविलः ॥ ११
संप्राप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते ।
प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ १२
सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे ।
विह्वलश्चाभवद्राजन् वेपथुश्चैनमाविशत् ॥ १३
तत एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः ।
अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥ १४
समाश्वस्तस्ततो रामः क्रोधामर्षसमन्वितः ।
प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥ १५
ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवास्त्रमुत्तमम् ।
मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥ १६
तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः ।
असम्प्राप्यैव रामं च मां च भारतसत्तम ॥
ततो व्योम्नि प्रादुरभूत्तेज एव हि केवलम् ।
भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्तिं विशांपते ॥ १८
ऋषयश्च सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत ।
सन्तापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोभिपीडिताः ॥ १९
ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
सन्तप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥ २०
प्रजज्वाल नभो राजन् धूमायन्ते दिशो दश ।
न स्थातुमन्तरिक्षे च शेकुराकाशगास्तदा ॥ २१
ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे ।
इदमन्तरमित्येवं मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥ २२
प्रस्वापमस्त्रं त्वरितो वचनाद्ब्रह्मवादिनाम् ।
विचित्रं च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात्तदा ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परस्परब्रह्मास्त्रप्रयोगे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

## १८५

भीष्म उवाच ।

ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन् महानभूत् ।
प्रस्वापं भीष्म मा स्राक्षीरिति कौरवनन्दन ॥ १
अयुञ्जमेव चैवाहं तदस्त्रं भृगुनन्दने ।
प्रस्वापं मां प्रयुञ्जानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ २

---

१८४

तत इति ॥ १ ॥ धिष्ण्यं नक्षत्रं । 'धिष्ण्यं स्थानाग्निसद्मसु । शक्रावृक्षे च' इति मेदिनी । जत्रुदेशे कण्ठकक्षयोरन्तराले ॥ ६ ॥ अस्रं शोणितम् । पाठान्तरेऽसृगपि तदेव ॥ ७ ॥ कृष्य आकृष्य ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

१८५

तत इति । दिवि देवानामिति शेषः ॥ १ ॥

एते वियति कौरव्य दिवि देवगणाः स्थिताः ।
ते त्वां निवारयन्त्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥ ३
रामस्तपस्वी ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्च गुरुश्च ते ।
तस्यावमानं कौरव्य मा स्म कार्षीः कथञ्चन ४
ततोऽपश्यं दिविष्ठान् वै तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
ते मां स्मयन्तो राजेन्द्र शनकैरिदमब्रुवन् ॥ ५
यथाऽऽह भरतश्रेष्ठ नारदस्तत्तथा कुरु ।
एतद्धि परमं श्रेयो लोकानां भरतर्षभ ॥ ६
ततश्च प्रतिसंहृत्य तदस्त्रं स्वापनं महत् ।
ब्रह्मास्त्रं दीपयांचक्रे तस्मिन् युधि यथाविधि ७

ततो रामो हृषितो राजसिंह
दृष्ट्वा तदस्त्रं विनिवार्तितं वै ।
जितोऽस्मि भीष्मेण सुमन्दबुद्धि-
रित्येव वाक्यं सहसा व्यमुञ्चत् ॥ ८
ततोऽपश्यत्पितरं जामदग्न्यः
पितुस्तथा पितरं चास्य मान्यम् ।
ते तत्र चैनं परिवार्य तस्थु-
रूचुश्चैनं सान्त्वपूर्वं तदानीम् ॥ ९

पितर ऊचुः ।

मा स्मैवं साहसं तात पुनः कार्षीः कथञ्चन ।
भीष्मेण संयुगं गन्तुं क्षत्रियेण विशेषतः ॥ १०
क्षत्रियस्य तु धर्मोऽयं यद्युद्धं भृगुनन्दन ।
स्वाध्यायो व्रतचर्याऽथ ब्राह्मणानां परं धनम् ॥ ११
इदं निमित्ते कस्मिंश्चिदस्माभिः प्रागुदाहृतम् ।
शस्त्रधारणमत्युग्रं तच्चाकार्यं कृतं त्वया ॥ १२
वत्स पर्याप्तमेतावद्भीष्मेण सह संयुगे ।
विमर्दस्ते महाबाहो व्यपयाहि रणादितः ॥ १३
पर्याप्तमेतद्भद्रं ते तव कार्मुकधारणम् ।
विसर्जयैतद्दुर्धर्ष तपस्तप्यस्व भार्गव ॥ १४
एष भीष्मः शान्तनवो देवैः सर्वैर्निवारितः ।
निवर्तस्व रणादस्मादिति चैव प्रसादितः ॥ १५
रामेण सह मा योत्सीर्गुरुणेति पुनः पुनः ।
न हि रामो रणे जेतुं त्वया न्याय्यः कुरूद्वह ॥
मानं कुरुष्व गाङ्गेय ब्राह्मणस्य रणाजिरे ।
वयं तु गुरवस्तुभ्यं तस्मात्त्वां वारयामहे ॥ १७
भीष्मो वसूनामन्यतमो दिष्ट्या जीवसि पुत्रक ।
गाङ्गेयः शान्तनोः पुत्रो वसुरेष महायशाः ॥ १८
कथं शक्यस्त्वया जेतुं निवर्तस्वेह भार्गव ।
अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरन्दरसुतो बली ॥ १९
नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः ।
सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ।
भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयंभुवा ॥२०

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तः स पितृभिः पितॄन् रामोऽब्रवीदिदम् ।
नाहं युधि निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ २१
न निवर्तितपूर्वश्च कदाचिद्रणमूर्धनि ।
निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात् पितामहाः ॥
न त्वहं विनिवर्तिष्ये युद्धादस्मात् कथञ्चन ।
ततस्ते मुनयो राजन्नृचीकप्रमुखास्तदा ॥ २३
नारदेनैव सहिताः समागम्येदमब्रुवन् ।
निवर्तस्व रणात्तात मानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ २४
इत्यवोचमहं तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया ।
मम व्रतमिदं लोके नाहं युद्धात् कदाचन ॥ २५
विमुखो विनिवर्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ।
नाहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नार्थकारणात् ॥२६
त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः ।
ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ॥ २७
भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे ।
तथैवात्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः ।
स्थिरोऽहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन् ॥ २८
समेत्य सहिता भूयः समरे भृगुनन्दनम् ।
नावनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ॥ २९
राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद्द्विजोत्तम ।
अवध्यो वै त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ३०
एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे प्रतिरुध्य रणाजिरम् ।
न्यासयांचक्रिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥ ३१
ततोऽहं पुनरेवाथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
अद्राक्षं दीप्यमानान् वै ग्रहानष्टाविवोदितान् ॥
ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन् समरे स्थितम् ।
प्रैहि रामं महाबाहो गुरुं लोकहितं कुरु ॥ ३३
दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै ।
लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥ ३४
ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः ।
रामश्चाभ्युत्स्मयन् प्रेम्णा मामुवाच महातपाः ३५

---

चक्रे कृतवानहम् ॥ ७ ॥ हे भीष्म सुमंदबुद्धिरहं जितोऽस्मीति सम्बन्धः ॥ ८ ॥ देवैर्निवारित इत्येतदेवाहुः-निवर्तस्वेति ॥ १५ ॥ शाम्य शान्तो भव ॥ २९ ॥ न्यासयांचक्रिरे त्याजितवन्तः ॥ ३१ ॥

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः
गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया
मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः ।
उक्तवान् दीनया वाचा मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि युद्धनिवृत्तौ
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

## १८६

राम उवाच ।
प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भाविनि ।
यथाशक्त्या मया युद्धं कृतं वै पौरुषं परम् ॥ १
न चैवमपि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।
विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २
एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद्वा करोमि ते ॥ ३
भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः ।
निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥
एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः ।
तूष्णीमासीत्ततः कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥ ५
भगवन्नेवमेवैतद्यथाऽऽह भगवांस्तथा ।
अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥ ६
यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्यं कृतं त्वया ।
अनिवार्यं रणे वीर्यमस्त्राणि विविधानि च ॥ ७
न चैव शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः ।
न चाहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथञ्चन ॥ ८
गमिष्यामि तु तत्राहं यत्र भीष्मं तपोधन ।
समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥ ९
एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना ।
तापस्ये धृतसंकल्पा सा मे चिन्तयती वधम् ॥
ततो महेन्द्रं सहितैर्मुनिभिर्भृगुसत्तमः ।
यथागतं तथा सोऽगान्मामुपामन्त्र्य भारत ॥ ११
ततो रथं समारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः ।
प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ १२
यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत ।
पुरुषांश्चादिशं प्राज्ञान् कन्यावृत्तान्तकर्मणि ॥
दिवसे दिवसे ह्यस्या गतिजल्पितचेष्टितम् ।
प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते सदा ॥
यदैव हि वनं प्रायात् सा कन्या तपसे धृता ।
तदैव व्यथितो दीनो गतचेता इवाभवम् ॥ १५
न हि मां क्षत्रियः कश्चिद्वीर्येण व्यजयद्युधि ।
ऋते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥ १६
अपि चैतन्मया राजन्नारदेऽपि निवेदितम् ।
व्यासे चैव तथा कार्यं तौ चोभौ मामवोचताम्
न विषादस्त्वया कार्यो भीष्म काशिसुतां प्रति ।
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ॥ १८
सा कन्या तु महाराज प्रविश्याश्रममण्डलम् ।
यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥ १९
निराहारा कृशा रूक्षा जटिला मलपङ्किनी ।
षण्मासान् वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना ॥ २०
यमुनाजलमाश्रित्य संवत्सरमथापरम् ।
उदवासं निराहारा पारयामास भाविनी ॥ २१
शीर्णपर्णेन चैकेन पारयामास सा परम् ।
संवत्सरं तीव्रकोपा पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठिता ॥ २२
एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी ।
निवर्त्यमानाऽपि च सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते २३
ततोऽगमद्वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम् ।
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् २४
तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साऽऽप्लुताङ्गी दिवानिशम् ।
व्यचरत् काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी २५
नन्दाश्रमे महाराज तथोलूकाश्रमे शुभे ।
च्यवनस्याश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च ॥ २६
प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह ।
भोगवत्यां महाराज कौशिकस्याश्रमे तथा २७
माण्डव्यस्याश्रमे राजन् दिलीपस्याश्रमे तथा ।
रामह्रदे च कौरव्य पैलगर्गस्य चाश्रमे ॥ २८

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

१८६

प्रत्यक्षमिति ॥ १ अस्याः काशिराजकन्यायाः ॥ १४

एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशाम्पते ।
आप्लावयत गात्राणि व्रतमास्थाय दुष्करम् २९
तामब्रवीच्च कौरव्य मम माता जले स्थिता ।
किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेव वदस्व मे ॥ ३०
सैनामथाब्रवीद्राजन् कृताञ्जलिरनिन्दिता ।
भीष्मेण समरे रामो निर्जितश्चारुलोचने ॥ ३१
कोऽन्यस्तमुत्सहेज्जेतुमुद्यतेषु महीपतिः ।
साऽहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्स्ये सुदारुणम् ३२
विचरामि महीं देवि यथा हन्यामहं नृपम् ।
एतद्व्रतफलं देवि परमस्मिन्यथा हि मे ॥ ३३
ततोऽब्रवीत्सागरगा जिह्मं चरसि भाविनि ।
नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाऽबले ३४
यदि भीष्मविनाशाय काश्ये चरसि वै व्रतम् ।
व्रतस्था च शरीरं त्वं यदि नाम विमोक्ष्यसि ॥
नदी भविष्यसि शुभे कुटिला वार्षिकोदका ।
दुस्तीर्था न तु विज्ञेया वार्षिकी नाष्टमासिकी ॥
भीमग्राहवती घोरा सर्वभूतभयङ्करी ।
एवमुक्त्वा ततो राजन् काशिकन्यां न्यवर्तत ॥ ३७
माता मम महाभागा स्मयमानेव भाविनी ।
कदाचिदष्टमे मासि कदाचिद्दशमे तथा ।
न प्राश्नीतोदकमपि पुनः सा वरवर्णिनी ॥ ३८
सा वत्सभूमिं कौरव्य तीर्थलोभात्ततस्ततः ।
पतिता परिधावन्ती पुनः काशिपतेः सुता ३९
सा नदी वत्सभूम्यां तु प्रथिताम्बेति भारत ।
वार्षिकी ग्राहबहुला दुस्तीर्था कुटिला तथा ४०
सा कन्या तपसा तेन देहार्धेन व्यजायत ।
नदी च राजन् वत्सेषु कन्या चैवाभवत्तदा ४१

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बातपस्यायां षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

## १८७

भीष्म उवाच ।
ततस्ते तापसाः सर्वे तपसे धृतनिश्चयाम् ।
दृष्ट्वा न्यवर्तयंस्तात किं कार्यमिति चाब्रुवन् ॥ १
तानुवाच ततः कन्या तपोवृद्धानृषींस्तदा ।
निराकृताऽस्मि भीष्मेण भ्रंशिता पतिधर्मतः २
वधार्थं तस्य दीक्षा मे न लोकार्थं तपोधनाः ।
निहत्य भीष्मं गच्छेयं शान्तिमित्येव निश्चयः ३
यत्कृते दुःखवसतिमिमां प्राप्ताऽस्मि शाश्वतीम्
पतिलोकाद्विहीना च नैव स्त्री न पुमानिह ॥ ४
नाहत्वा युधि गाङ्गेयं निवर्तिष्ये तपोधनाः ।
एष मे हृदि संकल्पो यदिदं कथितं मया ॥ ५
स्त्रीभावे परिनिर्विण्णा पुंस्त्वार्थे कृतनिश्चया ।
भीष्मे प्रतिचिकीर्षामि नास्मि वार्येति वै पुनः ६
तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः ।
मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण तापसीम् ॥ ७
छन्द्यमाना वरेणाथ सा वव्रे मत्पराजयम् ।
हनिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम् ८
ततः सा पुनरेवाथ कन्या रुद्रमुवाच ह ।
उपपद्येत् कथं देव स्त्रिया युधि जयो मम ॥ ९
स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुमापते ।
प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपराजयः ॥ १०
यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज ।
यथा हन्यां समागम्य भीष्मं शान्तनवं युधि ॥
तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः ।
न मे वागनृतं प्राह सत्यं भद्रे भविष्यति ॥ १२
हनिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे ।
स्मरिष्यसि च तत् सर्वं देहमन्यं गता सती॥१३
द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः ।
शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसंमतः ।
यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद्भविष्यति ।
भविष्यसि पुमान् पश्चात्कस्माच्चित्कालपर्ययात्
एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः ।
पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६

वार्षिकी वर्षास्वेव वहतीति वार्षिकी ॥ ३६ ॥ पतिता गता परिधावन्ती पर्यटन्ती ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

१८७

तत इति ॥ १ ॥ शान्तं शौर्यधर्मरहितम् ॥ १० ॥

ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता ।
समाहृत्य वनात्तस्मात् काष्ठानि वरवर्णिनी॥ १७
चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम् ।
प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन चेतसा ॥ १८
उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविवेश हुताशनम् ।
ज्येष्ठा काशिसुता राजन् यमुनामभितो नदीम् १९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बाहुताशनप्रवेशे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

## १८८

दुर्योधन उवाच ।
कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा पुरा तदा ।
पुरुषोऽभूद्युधि श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः ।
महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशांपते ॥ २
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः ।
अपत्यार्थं महाराज तोषयामास शङ्करम् ॥ ३
अस्मद्वधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः ।
ऋते कन्यां महादेव पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ४
भगवन् पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रतिचिकीर्षया ।
इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥ ५
निवर्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥ ६
कृतो यत्नो महादेवस्तपसाऽऽराधितो मया ।
कन्या भूत्वा पुमान्भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना
पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः ।
न तदन्यद्धि भविता भवितव्यं हि तत्तथा ॥ ८
ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी ।
पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं प्रविवेश ह ॥ ९
लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
पार्षतस्य महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् १०
ततो दधार सा देवी गर्भं राजीवलोचना ।
तां स राजा प्रियां भार्यां द्रुपदः कुरुनन्दन॥ ११
पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्यचरत्तदा ।
सर्वानभिप्रायकृतान् भार्याऽलभत कौरव ॥ १२
अपुत्रस्य सतो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः ।
यथाकालं तु सा देवी महिषी द्रुपदस्य ह ॥ १३
कन्यां प्रवररूपां तु प्राजायत नराधिप ।
अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य मनस्विनी ॥ १४
ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो ह्येष ममेति वै ।
ततः स राजा द्रुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ॥ १५
पुत्रवत् पुत्रकार्याणि सर्वाणि समकारयत् ।
रक्षणं चैव मन्त्रस्य महिषी द्रुपदस्य सा ॥ १६
चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत ।
न च तां वेद नगरे कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥ १७
श्रद्दधानो हि तद्वाक्यं देवस्याच्युततेजसः ।
छादयामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत्
जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवः ।
पुंवद्विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः१९
अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य च ।
ज्ञातवान् देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा॥ २०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्ड्युत्पत्तौ अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

---

यमुनामभितः यमुनाद्वीपे इत्यर्थः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

१८८

कथं शिखण्डीति ॥ १ ॥ स्त्रीपुमान् पूर्वं स्त्री सैव स्यात् पुमान् । पूर्वकालैकसर्वेति समासः ॥५॥ द्रुपदं प्रविवेश ह तेन सह मिथुनीभावं जगाम ॥ ९ ॥ विधिदृष्टेन शास्त्रदृष्टेन कर्मणा गर्भाधानाख्येन । पार्षतस्य गर्भं दधार इति उत्तरेण सम्बन्धः ॥ १० ॥ अभिप्रायकृतान् वासनानिर्मितान् दोहदानित्यर्थः ॥ १२ ॥ प्राजायत प्रसूतवती ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

## १८९

भीष्म उवाच ।
चकार यत्नं द्रुपदः सुतायाः सर्वकर्मसु ।
ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परंतप ॥ १
इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणशिष्यो बभूव ह ।
तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी ॥ २
चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत्तदा ।
ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां संप्राप्तयौवनाम् ।
स्त्रियं मत्वा ततश्चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥ ३
द्रुपद उवाच ।
कन्या ममेयं संप्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी ।
मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥ ४
भार्योवाच ।
न तन्मिथ्या महाराज भविष्यति कथञ्चन ।
त्रैलोक्यकर्ता कस्माद्धि वृथा वक्तुमिहार्हति ॥ ५
यदि ते रोचते राजन् वक्ष्यामि शृणु मे वचः ।
श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथाः स्वां मतिं पृषतात्मज ॥ ६
क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद्दारसंग्रहः ।
भविता तद्वचः सत्यमिति मे निश्चिता मतिः ७
ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन् कार्येऽथ दंपती ।
वरयांचक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥ ८
ततो राजा द्रुपदो राजसिंहः
सर्वान् राज्ञः कुलतः सन्निशाम्य ।
दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां
शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥ ९
हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः ।
स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने॥
स च राजा दशार्णेषु महानासीत् सुदुर्जयः ।
हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः ॥ ११
कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम ।
यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी१२
कृतदारः शिखण्डी च काम्पिल्यं पुनरागमत् ।
ततः सा वेद तां कन्यां कञ्चित्कालं स्त्रियं किल
हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तां तु शिखण्डिनीम्
धात्रीणां च सखीनां च व्रीडयाना न्यवेदयत् ।
कन्यां पञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम्
ततस्ता राजशार्दूल धात्र्यो दाशार्णिकास्तदा ।
जग्मुरार्तिं परां प्रेष्याः प्रेषयामासुरेव च ॥ १५
ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वा न्यवेदयन् ।
विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुक्रोध पार्थिवः ॥ १६
शिखण्ड्यपि महाराज पुंवद्राजकुले तदा ।
विजहार मुदा युक्तः स्त्रीत्वं नैवातिरोचयन् ॥१७
ततः कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषादार्तिं जगाम ह ॥ १८
ततो दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः ।
दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशनम् ॥ १९
ततो द्रुपदमासाद्य दूतः काञ्चनवर्मणः ।
एक एकान्तमुत्सार्य रहो वचनमब्रवीत् ॥ २०
दाशार्णराजो राजंस्त्वामिदं वचनमब्रवीत् ।
अभिषङ्गात् प्रकुपितो विप्रलब्धस्त्वयाऽनघ ॥ २१
अवमन्यसे मां नृपते नूनं दुर्मन्त्रितं तव ।
यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे मोहाद्याचितवानसि॥२२
तस्याद्य विप्रलम्भस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।
एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥ २३

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि हिरण्यवर्मदूतागमने ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

---

१८९

चकारेति ॥ १ ॥ शूलयुक्तः पाणिः शूलपाणिः सोऽस्यास्तीति शूलपाणी तस्य शूलपाणिनः । व्रीह्यादित्वान्मत्वर्थीय इनिः ॥ ४ ॥ धात्रीणां पितृगृहादागतानां सखीनां च ॥ १४ ॥ ता एव [illegible] प्रेषयामासुः दशार्णपतिमिति शेषः ॥ १५ ॥ विप्रलंभं वञ्चनाम् ॥ १६ ॥ उत्सार्य नीत्वा ॥ २० ॥ अभिषङ्गात् पराभवात् ॥ २१ ॥ उद्धरामि उच्छेत्स्यामि ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे [illegible]

## १९०

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप ।
चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्तत भारती ॥ १
स यत्नमकरोत्तीव्रं सम्बन्धिष्वनुमानने ।
दूतैर्मधुरसंभाषैर्नैतदस्तीति संदिशन् ॥ २
स राजा भूय एवाथ ज्ञात्वा तत्त्वमथागमत् ।
कन्येति पाञ्चालसुतां त्वरमाणो विनिर्ययौ ॥ ३
ततः संप्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम् ।
दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात्तदा ॥ ४
ततः समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तमः ।
अभियाने मतिं चक्रे द्रुपदं प्रति भारत ॥ ५
ततः संमन्त्रयामास मन्त्रिभिः स महीपतिः ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥ ६
तत्र वै निश्चितं तेषामभूद्राज्ञां महात्मनाम् ।
तथ्यं भवति चेदेतत् कन्या राजन् शिखण्डिनी ७
बद्ध्वा पञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहम् ।
अन्यं राजानमाधाय पञ्चालेषु नरेश्वरम् ॥ ८
घातयिष्याम नृपतिं पाञ्चालं सशिखण्डिनम् ९
तत्तदाऽनृतमाज्ञाय पुनर्दूतान्नराधिपः ।
प्रास्थापयत् पार्षताय निहन्मीति स्थिरो भव ॥ १०

भीष्म उवाच ।

स हि प्रकृत्या वै भीतः किल्बिषी च नराधिपः ।
भयं तीव्रमनुप्राप्तो द्रुपदः पृथिवीपतिः ॥ ११
विसृज्य दूतान् दाशार्णे द्रुपदः शोकमूर्छितः ।
समेत्य भार्यां रहिते वाक्यमाह नराधिपः ॥ १२
भयेन महताऽऽविष्टो हृदि शोकेन चाहतः ।
पाञ्चालराजो दयितां मातरं वै शिखण्डिनः १३
अभियास्यति मां कोपात् सम्बन्धी सुमहाबलः ।
हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥ १४
किमिदानीं करिष्यावो मूढौ कन्यामिमां प्रति ।
शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशङ्कितः॥१५
इति सञ्चिन्त्य यत्नेन समित्रः सबलानुगः ।
वञ्चितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति
किमत्र तथ्यं सुश्रोणि मिथ्या किं ब्रूहि शोभने ।
श्रुत्वा त्वत्तः शुभं वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा॥
अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी ।
त्वं च राज्ञि महत् कृच्छ्रं संप्राप्ता वरवर्णिनि॥१८
सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ।
तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यमाशु शुचिस्मिते॥१९
शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः।
कृपयाऽहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ॥ २०
मया दाशार्णको राजा वञ्चितः स महीपतिः ।
तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्धितम् ॥ २१
जानता हि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै ।
प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥२२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि द्रुपदप्रश्ने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

## १९१

भीष्म उवाच ।

ततः शिखण्डिनो माता यथातत्त्वं नराधिप । आचचक्षे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम्॥

---

१९०

**एवमिति** ॥ १ ॥ अगमत् ज्ञातवान् ॥ ३ ॥ **समुदयं** समुदायम् ॥ ५ ॥ भार्याया अदण्ड्यत्वं जानन् स्वस्य निर्दोषतां ख्यापयितुं उभयकृतमप्यपराधं लोकमध्ये भार्यायामेवासञ्जयितुं तामाह-**शिखण्डिनीति** । यद्यप्यहं शिखण्ड्यर्थे त्वया शिखण्डिन्या च वञ्चितस्तथाऽपि त्वं मा भैः शिखण्डिनिविषये विधास्ये युवयोर्धारणं च करिष्ये न तु हिंसिष्ये इत्यर्थः । यद्वा । हे शिखण्डिनि त्वं मा भैः हे वरारोहे भार्ये त्वं च मा भैरिति द्वयोरपि अभयं दत्वा जनमध्ये पृच्छति ॥ २० ॥ **मयेति** । विधास्ये करिष्ये ॥ २१ ॥ परस्य शत्रोर्लोकस्य च ॥२२॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

१९१

**तत इति** ॥ १ ॥

अपुत्रया मया राजन् सपत्नीनां भयादिदम् ।
कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदिता २
त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्याऽनुमोदितम् ।
पुत्रकर्म कृतं चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ॥ ३
भार्या चोढा त्वया राजन् दशार्णाधिपतेः सुता।
मया च प्रत्यभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात् ।
कन्या भूत्वा पुमान् भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ४
एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः
सर्वं तत्त्वं मन्त्रविद्भ्यो निवेद्य ।
मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन्
यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥ ५
सम्बन्धकं चैव समर्थ्य तस्मिन्
दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्र ।
स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथाव-
न्मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥ ६
स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत ।
गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥ ७
आर्तिं च परमां राजा जगाम सह भार्यया ।
दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥ ८
कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद्विग्रहो महान्।
इति सञ्चिन्त्य मनसा देवतामर्चयत्तदा ॥ ९
तं तु दृष्ट्वा तदा राजन् देवी देवपरं तदा ।
अर्चां प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥ १०
देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्यं साधुमता सताम् ।
किमु दुःखार्णवं प्राप्य तस्मादर्चयतां गुरून् ॥
दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणम् ।
अग्नयश्चापि हूयन्तां दाशार्णप्रतिषेधने ॥ १२
अयुद्धेन निवृत्तिं च मनसा चिन्तय प्रभो ।
देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १३
मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया पृथुललोचन ।
पुरस्यास्याविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥ १४
दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिद्ध्यति पार्थिव ।
परस्परविरोधाद्धि सिद्धिरस्ति न चैतयोः ॥ १५
तस्माद्विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह ।
अर्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशांपते ॥ १६
एवं संभाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ ।
शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव तपस्विनी १७
ततः सा चिन्तयामास मत्कृते दुःखिताविमौ ।
इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ॥ १८
एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा ।
निर्जगाम गृहं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ॥ १९
यक्षेणर्द्धिमता राजन् स्थूणाकर्णेन पालितम् ।
तद्भयादेव च जनो विसर्जयति तद्वनम् ॥ २०
तत्र च स्थूणभवनं सुधामृत्तिकलेपनम ।
लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥ २१
तत् प्रविश्य शिखण्डी सा द्रुपदस्यात्मजा नृप।
अनश्नाना बहुतिथं शरीरमुदशोषयत् ॥ २२
दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मार्दवसंयुतः ।
किमर्थोऽयं तवारंभः करिष्ये ब्रूहि मा चिरम् ॥
अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह ।
करिष्यामीति वै क्षिप्रं प्रत्युवाचाथ गुह्यकः ॥२४
धनेश्वरस्यानुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे ।
अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ २५
ततः शिखण्डी तत् सर्वमखिलेन न्यवेदयत् ।
तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥ २६

शिखण्ड्युवाच ।

अपुत्रो मे पिता यक्ष न चिरान्नाशमेष्यति ।
अभियास्यति सक्रोधो दशार्णाधिपतिर्हि तम्२७
महाबलो महोत्साहः सहेमकवचो नृपः ।
तस्माद्रक्षस्व मां यक्ष मातरं पितरं च मे ॥ २८
प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिशमो मम ।
भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥ २९
यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम ।
तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि स्थूणाकर्णसमागमे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

---

सम्बन्धकं सामर्थ्ययुक्तमेव साम्बन्धिकं मया कृतं न प्रतारणा कृतेति उपपाद्य ॥ ६ ॥ देवी राज्ञी ॥ १० ॥ साधुमता कल्याणवताऽपि देवानां प्रतिपत्तिः पूजा नित्यं कर्तव्येति शेषः । किमु दुःखार्णवं प्राप्य कर्तव्येति । तस्मात् भवान् गुरून् देवाराधनार्थं ब्राह्मणान् अर्चयतां पूजयतु ॥ ११ ॥ भूरिदक्षिणं यथा स्यात्तथ प्रतिषेधने परावृत्त्यर्थम् ॥ १२ ॥ सुधामृत्तिकलेपनं सुधा चूर्णं सैव मृत्तिका तया लेपनं यस्य । लाजोल्लापिकः लाजानि उशीराणि उल्लापयति सूचयतीति लाजोल्लापिकः । उशीरपरिमलयुक्तधूमाढ्यमित्यर्थः । 'उशीरे लाजमुद्दिष्टम्' इति विश्वः ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः १९१

# १९२

भीष्म उवाच ।
शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाऽथ स यक्षो भरतर्षभ ।
प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः ॥ १
भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव ।
भद्रे कामं करिष्यामि समयं तु निबोध मे ॥ २
किञ्चित् कालान्तरे दास्ये पुल्लिङ्गं स्वमिदं तव ।
आगन्तव्यं त्वया काले सत्यं चैव वदस्व मे ॥ ३
प्रभुः संकल्पसिद्धोऽस्मि कामचारी विहङ्गमः ।
मत्प्रसादात् पुरं चैव त्राहि बंधूंश्च केवलम् ॥ ४
स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यामि तदेवं पार्थिवात्मजे ।
सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव ॥ ५
शिखण्डयुवाच ।
प्रतिदास्यामि भगवन् पुल्लिङ्गं तव सुव्रत ।
किञ्चित्कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ६
प्रतियाते दशार्णे तु पार्थिवे हेमवर्मणि ।
कन्यैव हि भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ७
भीष्म उवाच ।
इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप ।
अन्योऽन्यस्याभिसंदेहे तौ संक्रामयतां ततः ॥ ८
स्त्रीलिंगं धारयामास स्थूणायक्षोऽथ भारत ।
यक्षरूपं च तद्दीप्तं शिखण्डी प्रत्यपद्यत ॥ ९
ततः शिखण्डी पाञ्चाल्यः पुंस्त्वमासाद्य पार्थिव
विवेश नगरं हृष्टः पितरं च समासदत् ॥ १०
यथावृत्तं तु तत् सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य तत् ।
द्रुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत् परम् ॥ ११
सभार्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा ।
ततः संप्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृपः ॥ १२
पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धत्तां मे भवानिति ।
अथ दाशार्णको राजा सहसाऽभ्यागमत्तदा १३
पञ्चालराजं द्रुपदं दुःखशोकसमन्वितः ।
ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्ततः॥१४
प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम् ।
ब्रूहि मद्वचनाद्दूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम् ॥ १५
यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते ।
फलं तस्यावलेपस्य द्रक्ष्यस्यद्य न संशयः ॥ १६
एवमुक्तश्च तेनासौ ब्राह्मणो राजसत्तम ।
दूतः प्रयातो नगरं दाशार्णनृपचोदितः ॥ १७
तत आसादयामास पुरोधा द्रुपदं पुरे ।
तस्मै पाञ्चालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम्१८
प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखण्डिना ।
तां पूजां नाभ्यनन्दत् स वाक्यं चेदमुवाच ह
यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा काञ्चनवर्मणा ।
यत्तेऽहमधमाचार दुहित्राऽस्म्यभिवञ्चितः ॥ २०
तस्य पापस्य करणात् फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।
देहि युद्धं नरपते ममाद्य रणमूर्धनि ॥ २१
उद्धरिष्यामि ते सद्यः सामात्यसुतबान्धवम् ।
तदुपालंभसंयुक्तं श्रावितः किल पार्थिवः ॥ २२
दशार्णपतिना चोक्तो मन्त्रिमध्ये पुरोधसा ।
अभवद्भरतश्रेष्ठ द्रुपदः प्रणयानतः ॥ २३
यदाह मां भवान् ब्रह्मन् सम्बन्धिवचनाद्वचः ।
अस्योत्तरं प्रतिवचो दूतो राज्ञे वदिष्यति ॥ २४
ततः संप्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने ।
हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ २५
तमागम्य तु राजानं दशार्णाधिपतिं तदा ।
तद्वाक्यमाददे राजन् यदुक्तं द्रुपदेन ह ॥ २६
आगमः क्रियतां व्यक्तः कुमारोऽयं सुतो मम ।
मिथ्यैतदुक्तं केनापि तदश्रद्धेयमित्युत ॥ २७
ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा
विमर्षयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः ।
संप्रेषयामास सुचारुरूपाः
शिखण्डिनं स्त्री पुमान्वेति वेत्तुम् ॥ २८
ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा
प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम् ।
शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र
दाशार्णराजाय महानुभावम् ॥ २९
ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमानथ ।
सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वासमुवास ह ॥ ३०
शिखण्डिने च मुदितः प्रादाद्वित्तं जनेश्वरः ।
हस्तिनोऽश्वांश्च गाश्चैव दास्योऽथ बहुलास्तथा

---

**१९२**

शिखण्डीति । चिन्त्य चिन्तयित्वा ॥ १ ॥ विहंगमः आकाशगामी ॥ ४ ॥ समयं शपथं सन्देहे लिङ्गे सम्यग्दिह्येते उपचीयेते रतिकाले प्रथेते इति व्युत्पत्तेः । अभिसन्दोहे इति पाठेऽपि संदुह्यते प्रजा आभ्यामिति व्युत्पत्त्या ते एव ॥ ८॥ उत्तरं उत्कृष्टतरम्॥२४॥ आगमः परीक्षा॥२७॥

पूजितश्च प्रतिययौ निर्भर्त्स्य तनयां किल ।
विनीतकिल्बिषे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे ॥ ३२
प्रतियाते दशार्णे तु हृष्टरूपा शिखण्डिनी ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः ।
लोकयात्रां प्रकुर्वाणः स्थूणस्यागान्निवेशनम् ३३
स तद्गृहस्योपरि वर्तमान
आलोकयामास धनाधिगोप्ता ।
स्थूणस्य यक्षस्य विवेश वेश्म
स्वलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रैः ॥ ३४
लाजैश्च गन्धैश्च तथा वितानै-
रभ्यर्चितं धूपनधूपितं च ।
ध्वजैः पताकाभिरलंकृतं च
भक्ष्यान्नपेयामिषदन्तहोमम् ॥ ३५
तत् स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलङ्कृतम् ।
मणिरत्नसुवर्णानां मालाभिः परिपूरितम् ॥ ३६
नानाकुसुमगन्धाढ्यं सिक्तसंमृष्टशोभितम् ।
अथाब्रवीद्यक्षपतिस्तान्यक्षाननुगांस्तदा ॥ ३७
स्वलंकृतमिदं वेश्म स्थूणस्यामितविक्रमाः ।
नोपसर्पति मां चैव कस्मादद्य स मन्दधीः ॥ ३८
यस्माज्जानन् स मन्दात्मा मामसौ नोपसर्पति ।
तस्मात्तस्मै महादण्डो धार्यः स्यादिति मे मतिः

यक्षा ऊचुः ।

द्रुपदस्य सुता राजन् राज्ञो जाता शिखण्डिनी ।
तस्या निमित्ते कस्मिंश्चित् प्रादात् पुरुषलक्षणम्
अग्रहील्लक्षणं स्त्रीणां स्त्रीभूतो तिष्ठते गृहे ।
नोपसर्पति तेनासौ सव्रीडः स्त्रीसरूपवान् ॥ ४१
एतस्मात् कारणाद्राजन् स्थूणो न त्वाद्य सर्पति
श्रुत्वा कुरु यथान्यायं विमानमिह तिष्ठताम् ४२
आनीयतां स्थूण इति ततो यक्षाधिपोऽब्रवीत् ।
कर्तास्मि निग्रहं तस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ४३
सोऽभ्यगच्छत यक्षेन्द्रमाहूतः पृथिवीपते ।
स्त्रीसरूपो महाराज तस्थौ व्रीडासमन्वितः॥४४
तं शशापाथ संक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन ।
एवमेव भवत्वद्य स्त्रीत्वं पापस्य गुह्यकाः ॥ ४५
ततोऽब्रवीद्यक्षपतिर्महात्मा
यस्माददास्त्ववमन्येह यक्षान् ।
शिखण्डिनो लक्षणं पापबुद्धेः
स्त्रीलक्षणं चाग्रहीः पापकर्मन् ॥ ४६
अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धे यस्मादेतत्त्वया कृतम् ।
तस्मादद्य प्रभृत्येव स्त्री त्वं सा पुरुषस्तथा ॥ ४७
ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल ।
स्थूणस्यार्थे कुरुष्वान्तं शापस्येति पुनः पुनः॥४८
ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचानुगामिनः ।
सर्वान् यक्षगणांस्तात शापस्यान्तचिकीर्षया ४९
शिखण्डिनि हते यक्षाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यते ।
स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः॥ ५०
इत्युक्त्वा भगवान् देवो यक्षराजः सुपूजितः ।
प्रययौ सहितः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः ॥ ५१
स्थूणस्तु शापं संप्राप्य तत्रैव न्यवसत्तदा ।
समये चागमत्तूर्णं शिखण्डी तं क्षपाचरम्॥ ५२
सोऽभिगम्याब्रवीद्वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति ।
तमब्रवीत्ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः५३
आर्जवेनागतं दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम् ।
सर्वमेव यथावृत्तमाचचक्षे शिखण्डिने ॥ ५४

यक्ष उवाच ।

शप्तो वैश्रवणेनाहं त्वत्कृते पार्थिवात्मज ।
गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान् यथासुखम्॥
दिष्टमेतत् पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ।
गमनं त्वव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम्॥५६

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत ।
प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महता वृतः ॥ ५७
पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः ।
द्विजातीन् देवतांश्चैव चैत्यानथ चतुष्पथान्॥५८
द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना ।
मुदं च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः॥ ५९
शिष्यार्थं प्रददौ चाथ द्रोणाय कुरुपुङ्गव ।
शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥ ६०
प्रतिपेदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मजः ।
शिखण्डी सह युष्माभिर्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ६१
मम त्वेतच्चरास्तात यथावत् प्रत्यवेदयन् ।
जडान्धबधिराकारा ये मुक्ता द्रुपदे मया ॥ ६२

---

लाजैः उशीरजैः । पाठान्तरे लाजैरुशीरैः । भक्ष्यं लड्डुकेक्षुदण्डादि दन्तव्यापारग्राह्यं, अन्नं अदनीयं ओदनपायसखण्डशर्करादि । भोज्यं लेह्यरूपम् । पेयं सुरासवादि । आमिषं मांसमभ्यर्हितत्वादस्य भक्ष्यात् पृथक्करणम् । एतान्येव दन्तहोमा दन्तैर्हूयन्त इति व्युत्पत्त्याऽभ्यवहार्याणि यस्मिन् तं भक्ष्यान्नपेयामिषदन्तहोमम् । आमिषमप्रमेयमिति पाठस्तु मूर्खकल्पितः ॥ ३५ ॥ तिष्ठते गृहे एव स्थिरोऽस्ति ॥ ४१ ॥ त्वाऽद्य त्वामद्य ॥ ४२ ॥ चतुष्पादं ग्रहणधारणप्रयोगप्रतीकारैश्चतुर्भिः पादैर्युक्तम् ॥ ६१ ॥

एवमेष महाराज स्त्रीपुमान् द्रुपदात्मजः ।
स संभूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥ ६३
ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बानामेति विश्रुता ।
द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥ ६४
नाहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाप्युत ॥ ६५
व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् ।
स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चैव स्त्रीनाम्नि स्त्रीसरूपिणि ॥ ६६
न मुञ्चेयमहं बाणमिति कौरवनन्दन ।
न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ॥ ६७
एतत्तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः ।
ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥ ६८
यदि भीष्मः स्त्रियं हन्यात् सन्तः कुर्युर्विगर्हणम् ।
नैनं तस्माद्धनिष्यामि दृष्ट्वाऽपि समरे स्थितम् ॥ ६९
वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा ।
मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्डिपुंस्त्वप्राप्तौ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

## १९३

सञ्जय उवाच ।
प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥ १
पाण्डवेयस्य गाङ्गेय यदेतत्सैन्यमुद्यतम् ।
प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥ २
भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः ।
लोकपालसमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ३
अप्रधृष्यमनावार्यमुद्धूतमिव सागरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥ ४
केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते ।
आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः ॥ ५
कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः ।
दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥ ६
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे ।
हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ॥ ७
भीष्म उवाच ।
अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत् पृथिवीपते ।
बलाबलममित्राणां तेषां यदिह पृच्छसि ॥ ८
शृणु राजन् मम रणे या शक्तिः परमा भवेत् ।
शस्त्रवीर्ये रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥ ९
आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः ।
मायायुद्धेन मायावी इत्येतद्धर्मनिश्चयः ॥ १०
हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम् ।
दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम ॥ ११
योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते ।
सहस्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम ॥ १२
अनेनाहं विधानेन संनद्धः सततोत्थितः ।
क्षपयेयं महत् सैन्यं कालेनानेन भारत ॥ १३
मुञ्चेयं यदि वाऽस्त्राणि महान्ति समरे स्थितः ।
शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ॥ १४
सञ्जय उवाच ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तद्वाक्यं राजा दुर्योधनस्ततः ।
पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम् ॥ १५
आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ १६
स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः ।
शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७
यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम ।
एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥ १८
द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ॥ १९

---

युक्तं स्त्रीषु अयुद्धमिति शेषः ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

१९३

प्रभातायामिति ॥ १ ॥ प्रागाह्निकं अह्नः पूर्वभागकार्यम् ॥ ११ ॥

कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ।
तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः ॥ २०
जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह ।
न हि यावद्रणे पार्थं बाणशङ्खधनुर्धरम् ॥ २१
वासुदेवसमायुक्तं रथेनायान्तमाहवे ।
समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे ।
शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मादिशक्तिकथने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

## १९४

वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान् भ्रातॄनुपह्वरे ।
आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १
युधिष्ठिर उवाच ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम ।
ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम् ॥
दुर्योधनः किलापृच्छदापगेयं महाव्रतम् ।
केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥३
मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः ।
तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान्॥
गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम् ।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥ ५
तथा दिव्यास्त्रवित् कर्णः संपृष्टः कुरुसंसदि ।
पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं ससैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ॥ ६
तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः ॥
कालेन कियता शत्रून् क्षपयेरिति फाल्गुन ॥ ७
एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनञ्जयः ।
वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ ८
सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः ।
असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः ॥ ९
अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान् ॥ १०
सामरानपि लोकांस्त्रीन् सर्वान् स्थावरजङ्गमान् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः॥११
यत्तद्घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम ।
कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते ॥ १२
यद्युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन् ।
प्रयुङ्क्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्तते ॥ १३
तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः ।
न च द्रोणसुतो राजन् कुत एव तु सूतजः ॥ १४
न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम् ।
आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान् ॥ १५
तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तत्र पार्थिव ।
सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥
वेदान्तावभृथस्नाताः सर्व एतेऽपराजिताः ।
निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव ॥ १७
शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥१८
विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि ।
शङ्खश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः ॥ १९
पुत्रोऽस्याञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः ।
शैनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः ॥ २०
अभिमन्युश्च बलवान् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि च
क्रोधाद्यं पुरुषं पश्येस्तथा शक्रसमद्युते ।
स क्षिप्रं न भवेद्व्यक्तमिति त्वां वेद्मि कौरव ॥ २२

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

१९४

एतच्छ्रुत्वेति ॥ १ ॥ व्युषितां निशां प्रभातकाले ॥ २ ॥ भूतमुत्पन्नं भव्यमुत्पाद्यमानमनयोर्बीजभूतयोर्नाशे बीजाभावाद्भविष्यस्यापि नाशो मयैव कर्तव्य इत्यर्थः॥११॥ वेदान्तावभृथस्नाताः वेदग्रहणान्त एव दारक्रियया सहैव यागं कृतवन्त इत्यर्थः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

# १९५

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः ।
दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान् प्रति ॥ १
आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः ।
गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्तिवाच्यहुताग्नयः ॥
सर्वे ब्रह्मविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
सर्वे कामकृतश्चैव सर्वे चाहवलक्षणाः ॥ ३
आहवेषु पराँल्लोकान् जिगीषन्तो महाबलाः ।
एकाग्रमनसः सर्वे श्रद्दधानाः परस्परम् ॥ ४
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केकया बाह्लिकैः सह ।
प्रययुः सर्व एवैते भारद्वाजपुरोगमाः ॥ ५
अश्वत्थामा शान्तनवः सैन्धवोऽथ जयद्रथः ।
दाक्षिणात्याः प्रतीच्याश्च पार्वतीयाश्च ये नृपाः
गान्धारराजः शकुनिः प्राच्योदीच्याश्च सर्वशः ।
शकाः किराता यवनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥
स्वैः स्वैरनीकैः सहिताः परिवार्य महारथम् ।
एते महारथाः सर्वे द्वितीये निर्ययुर्बले ॥ ८
कृतवर्मा सहानीकस्त्रिगर्तश्च महारथः ।
दुर्योधनश्च नृपतिर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ९
शलो भूरिश्रवाः शल्यः कौसल्योऽथ बृहद्रथः ।
एते पश्चादनुगता धार्तराष्ट्रपुरोगमाः ॥ १०
ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११
दुर्योधनस्तु शिबिरं कारयामास भारत ।
यथैव हास्तिनपुरं द्वितीयं समलंकृतम् ॥ १२
न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिबिरस्य वा ।
कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥ १३
तादृशान्येव दुर्गाणि राज्ञामपि महीपतिः ।
कारयामास कौरव्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४
पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम् ।
सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्छतसङ्घशः ॥१५
तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम् ।
विविशुः शिबिराण्यत्र द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥ १६
तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ।
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥
सनागाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ।
ये चान्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधबन्दिनः ॥ १८
वणिजो गणिकाश्चारा ये चैव प्रेक्षका जनाः ।
सर्वांस्तान् कौरवो राजा विधिवत्प्रत्यवैक्षत॥१९

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि कौरवसैन्यनिर्याणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

# १९६

वैशम्पायन उवाच ।

तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धृष्टद्युम्नमुखान् वीरांश्चोदयामास भारत ॥ १
चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम् ।
सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथादिशत् ॥ २
विराटं द्रुपदं चैव युयुधानं शिखण्डिनम् ।
पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्यूत्तमौजसौ॥ ३
ते शूराश्चित्रवर्माणस्तप्तकुण्डलधारिणः ।
आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः
अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव ।
अथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभः ॥ ५
दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः ।
तेषां युधिष्ठिरो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ६
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ।
सगजाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ॥ ७

---

१९५

ततः प्रभात इति ॥ १ ॥ आप्लाव्य स्नात्वा ॥ २ ॥ उत्सृज्य उत्कर्षेण सृष्ट्वा पञ्चयोजनं वर्तुलं परिधिं कृत्वेत्यर्थः सेनानिवेशाः सैनिकाः वणिक्शूराश्वादयः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

१९६

तथैवेति ॥ १ ॥

अभिमन्युं बृहन्तं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नमुखानेतान् प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ॥ ८
भीमं च युयुधानं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
द्वितीयं प्रेषयामास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः ॥ ९
भाण्डं समारोपयतां चरतां संप्रधावताम् ।
हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवास्पृशत् १०
स्वयमेव ततः पश्चाद्विराटद्रुपदान्वितः ।
अथापरैर्महीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥ ११
भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नेन पालिता ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत १२
ततः पुनरनीकानि न्ययोजयत बुद्धिमान् ।
मोहयन् धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिश्चयम् १३
द्रौपदेयान्महेष्वासानभिमन्युं च पाण्डवः ।
नकुलं सहदेवं च सर्वांश्चैव प्रभद्रकान् ॥ १४
दश चाश्वसहस्राणि द्विसहस्राणि दन्तिनाम् ।
अयुतं च पदातीनां रथाः पञ्चशतं तथा ॥ १५
भीमसेनस्य दुर्धर्षं प्रथमं प्रादिशद्बलम् ।
मध्यमे च विराटं च जयत्सेनं च पाण्डवः ॥ १६
महारथौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ १७
अन्वयातां तदा मध्ये वासुदेवधनञ्जयौ ।
बभूवुरतिसंरब्धाः कृतप्रहरणा नराः ॥ १८
तेषां विंशतिसाहस्रा हयाः शूरैरधिष्ठिताः ।
पञ्च नागसहस्राणि रथवंशाश्च सर्वशः ॥ १९
पदायतश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः ।
सहस्रशोऽन्वयुः पश्चादग्रतश्च सहस्रशः ॥ २०
युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेव बलार्णवे ।
तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्यवस्थिताः ॥ २१
तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।
तथा रथसहस्राणि पदातीनां च भारत ॥ २२
चेकितानः स्वसैन्येन महता पार्थिवर्षभ ।
धृष्टकेतुश्च चेदीनां प्रणेता पार्थिवो ययौ ॥ २३
सात्यकिश्च महेष्वासो वृष्णीनां प्रवरो रथः ।
वृतः शतसहस्रेण रथानां प्रणुदन् बली ॥ २४
क्षत्रदेवब्रह्मदेवौ रथस्थौ पुरुषर्षभौ ।
जघनं पालयन्तौ च पृष्ठतोऽनुप्रजग्मतुः ॥ २५
शकटापणवेशाश्च यानं युग्यं च सर्वशः ।
तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।
फल्गु सर्वं कलत्रं च यत्किञ्चित् कृशदुर्बलम् २६
कोशसञ्चयवाहांश्च कोष्ठागारं तथैव च ।
गजानीकेन संगृह्य शनैः प्रायाद्युधिष्ठिरः ॥ २७
तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य वा विभुः ।
रथा विंशतिसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः ।
हयानां दश कोट्यश्च महतां किंकिणीकिनाम् ।
गजा विंशतिसाहस्रा ईषादन्ताः प्रहारिणः ।
कुलीना भिन्नकरटा मेघा इव विसर्पिणः ॥ ३०
षष्टिर्नागसहस्राणि दशान्यानि च भारत ।
युधिष्ठिरस्य यान्यासन् युधि सेना महात्मनः ३१
क्षरन्त इव जीमूताः प्रभिन्नकरटामुखाः ।
राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२
एवं तस्य बलं भीमं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
यदाश्रित्याथ युयुधे धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३३
ततोऽन्ये शतशः पश्चात् सहस्रायुतशो नराः ।
नर्दन्तः प्रययुस्तेषामनीकानि सहस्रशः ॥ ३४
तत्र भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
न्यवादयन्त संहृष्टाः सहस्रायुतशो नराः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि पाण्डवसेनानिर्याणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

---

बलस्कन्धं सैन्यसमुदायम् ॥९॥ भाण्डं युद्धोपकरणम् ॥ १० ॥ भीमधन्वानः अयन्ते प्रचरन्त्यस्यामिति भीमधन्वायनी ॥१२॥ कृतप्रहरणाः कृतयुद्धाः ॥१८॥ शकटा भाण्डवन्ति अनांसि। आपणो वणिक्समुदायः वेशो वेश्याजनः यानं युद्धयोग्यं वाहनं युग्यं केवलं वाहनं फल्गु बालादिकम्। कलत्रं स्त्र्यादिकम् ॥ २६ ॥ कोशो धनं कोष्ठो धान्यादिसामग्री संगृह्य एकीकृत्य ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविंदसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

॥ समाप्तमुद्योगपर्व ॥

# परिशिष्टम् ।

सनत्सुजातीयपर्वानन्तरं कस्मिंश्चित्पुस्तक एतत्पद्यमस्ति—

> विषं भुङ्क्ष्व सहामात्यै-
> विनाशं प्राप्नुहि ध्रुवम् ।
> राजन् केन विना नाभ्यां
> स्फीतं कृष्णाजिनं वरम् ॥

अस्यार्थः—

भो राजन् ! धृतराष्ट्र स्फीतं पुष्कलं कृष्णाजिनं वरमुत्कृष्टं भुङ्क्ष्व पालय । कृष्णाजिनं किंभूतं विषं विगतषकारं सह सार्धममात्यैः कर्णादिभिः । तथा केन विना ककारेण विना, नाभ्यां नकाराभ्यां विना । एवं ऋ+ आजि+ अम् इति स्थिते सन्धौ कृते राज्यमिति निष्पद्यते । न केवलं राज्यं भुङ्क्ष्व शं कल्याणमाप्नुहि इत्यर्थः ।

उत्तानार्थस्तु—

भो राजन् ! विषं हालाहलं भुङ्क्ष्व भक्षय । अमात्यैः शकुनिप्रभृतिभिः सह । तेन किं स्यात् तत्राह—विनाशं प्राप्नुहि । ध्रुवं निश्चितं, किमिति पुरा वर्तमानं पुत्रादिविनाशं पश्यसीति भावः ॥ आत्मघातस्य निषिद्धत्वादेवं चेन्न कुरुषे तदा केन सुखेन राज्यसुखप्रत्याशया विना नाभ्यां उत्कृष्टक्षत्रियकुले प्रसूतस्य तव कृष्णाजिनं तस्य ग्रहणमेव वरं श्रेष्ठम् । प्रव्रज्यैव तव श्रेयसीति भावः । सुखच्युतस्य क्षत्रियस्य प्रव्रज्यैव परं सुखमित्याचार्यवचनादित्यर्थः ।

इतः परं भीष्मपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

जनमेजय उवाच—

कथं युधिष्ठिरो वीराः कुरु-पाण्डव-सामकाः ॥
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते +उद्योगपर्व समाप्तम् ॥

+ यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे—

‘ उद्योगपर्व निर्दिष्टं सन्धिविग्रहमिश्रितम् ।
अध्यायानां शतं प्रोक्तं षडशीतिर्महर्षिणा ॥
श्लोकानां षट् सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च
श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथैवाष्टौ महात्मना ।
व्यासेनोदारमतिना पर्वण्यस्मिंस्तपोधनाः ’ ॥

इति उक्तम् । तथापि संप्रति उद्योगपर्वाध्यायसंख्या १९६, श्लोकसंख्या च ६६१४ दृश्यते । एतन्न्यूनाधिक्यं लेखकप्रमादजमिति भाति । भवेयुरस्मिन्पर्वणि क्षेपकाः श्लोका अध्यायाश्च । परं तेषां यथास्थलं निर्देशः कर्तुं न शक्यत इति सर्वं शिवम् ।

इति श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रय दीक्षिततनुज
पण्डितरामचंद्रशास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यामुद्योगपर्व समाप्तम् ।
भारती जयतु ॥ शके १८५२.

# Shriman

# MAHĀBHĀRATAM.

## Part III

## VI Bhīshmaparvan

WITH

## Bharata-Bhawadeepa By Nīlkantha.

***Edited by***

**Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar.**



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1852.* ]   *First Edition.*   [ *A. D. 1931.*

# श्रीमन्महाभारतम्।

## तृतीयभागे—भीष्मपर्व ।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम् ।

तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्र्य प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५२] प्रथमं संस्करणम् । [ खिस्ताब्दाः १९३१

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## भीष्मपर्व ।

## —६—

### विषयानुक्रमणिका ।


| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | **(१) जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व १–२२** | |
| १ | ३४ | 'कथं युयुधिरे वीराः' इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम् । सैन्यानामभिज्ञानादिषु युधिष्ठिरेण कृतेषु सैन्यानां हर्षं दृष्ट्वा वासुदेवार्जुनौ स्वशङ्खौ दध्मतुः । कुरुपाण्डवा युद्धार्थं समयं चक्रुः ... ... ... ... | २ |
| २ | ३८ | तत्कालागतस्य व्यासस्य धृतराष्ट्रेण संवादानन्तरं तेन युद्धश्रवणेच्छायां प्रदर्शितायां युद्धकथनार्थं सञ्जयाय दिव्यां दृशं ददौ व्यासः । तत्कालसञ्जातानि व्यासकथितानि दुर्निमित्तान्याह वैशम्पायनः ... ... | ४ |
| ३ | ८५ | दुर्निमित्तानि कथयन् व्यासो धृतराष्ट्रवाक्यं श्रुत्वा किञ्चित्कालं दध्यौ । पुनर्युद्धनिवारणार्थमुपदिशति व्यासे धृतराष्ट्रः स्वसामर्थ्यं प्रकाशयति स्म । 'यत्ते मनसि वर्तते तत्कथय' इति व्यासेन प्रेरितो धृतराष्ट्रो विजयैषिणां चिह्नानि श्रोतुमिच्छामीत्याह । व्यासो भाविविजयचिह्नानि कथयन्नुपायविजयादिभेदेन त्रिविधं विजयं कथयामास ... ... ... ... | ९ |
| ४ | २१ | व्यासगमनानन्तरं किञ्चित्कालं ध्यात्वा भूमिगुणादि शुश्रुषुर्धृतराष्ट्रः सञ्जयं पृच्छति स्म । भौमगुणादिकथनं प्रतिजानानः सञ्जयः स्थिरचरभेदेन भूतानां द्वैविध्यमाह । ग्राम्यारण्यसप्तकद्वयभेदेन चतुर्दशविधानां पशूनां नामानि कथयन् भूमिं प्रशशंस संजयः ... ... ... ... | १० |
| ५ | १८ | नद्यादीनां नामधेयादि कथयेत्यादिनि धृतराष्ट्रवाक्ये संजयस्योत्तरम् । संजयः क्षित्यादीनां गुणादि कथयित्वा सङ्क्षेपेण सुदर्शनद्वीपवृत्तान्तमाचख्यौ ... | १२ |
| ६ | ५६ | विस्तरेण शुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने संजयो हिमालयादिवृत्तान्तं कथयित्वा सुमेरोः परिमाणादिकमभिदधाति स्म । सुमेरुपार्श्वस्थद्वीपवृत्तान्तमुक्त्वा तत्र देवानां वसतिमभिधाय च तत्पार्श्वमपार्श्वस्थदेशवृत्तान्तमाचचक्षे । गन्धमादनपार्श्वस्थानामा रादि कथयित्वा ऐरावतादिवर्षवृत्तान्त- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | माख्याय कैलासादिवृत्तान्तकथनानन्तरं बिन्दुसरोमाहात्म्यं वदन् हिमालयादिषु राक्षसादीनां वासमाह ... ... ... | १६ |
| ७ | ३२ | पुनर्धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयः सुमेरोरुत्तरपार्श्वस्थदेशवृत्तान्तं कथयित्वा पूर्वपार्श्वस्थदेशोदन्तमकथयत्। नीलपर्वतं दक्षिणेन जम्बूवृक्षादिवृत्तान्तं कथयित्वा माल्यवद्वृत्तान्तमाचख्यौ ... ... | १७ |
| ८ | २२ | वर्षादीनां नामानि कानि? इति धृतराष्ट्रप्रश्ने संजयेन कथितं रमणकहिरण्मयैरावतवर्षवृत्तान्तं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः पुत्रानुद्दिश्य ध्यानमन्वगमत् ... ... | १९ |
| ९ | ७६ | भारतवर्षशुश्रूषया धृतराष्ट्रप्रश्ने संजयो दुर्योधनादिनिन्दापूर्वकं भारतवर्षवृत्तान्तं कथयति स्म। भारतवर्षस्थानां पर्वतानां नदीनां देशानां च नामानि कथयंस्तद्विषये राज्ञामभिलाषं गदति स्म सञ्जयः ... ... ... ... | २१ |
| १० | १५ | भारतवर्षस्थानामायुःप्रमाणकथनप्रश्ने सञ्जयश्चतुर्युगस्थमनुष्याणामायुः कथयति स्म ... | २२ |
| | | **(२) भूमिपर्व २२–२६** | |
| ११ | ४० | जम्बूखण्डस्थशाकद्वीपादीनां च परिमाणादिविषयके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्तत्कथयामास। शाकद्वीपविस्तरं शुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयेन तद्वृत्तान्तकथनम् ... | २४ |
| १२ | ५२ | शाकद्वीपस्थवर्षपर्वतनद्यादीनां नामादिकथनम्। सञ्जयः कुशद्वीपादिद्वीपानां वृत्तान्तं कथयंस्तत्रत्यवर्षपर्वतनद्यादीनां नामादिकमभिदधाति स्म। धृतराष्ट्रप्रश्नानुरोधेन स्वर्भानुचन्द्रसूर्याणां परिमाणं कथयन्सञ्जयश्चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणवृत्तान्तमब्रवीत् ... | २६ |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | **(३) भगवद्गीतापर्व २७–१५०** | |
| १३ | १३ | भीष्ममरणकथां प्रस्तुवन्सञ्जयो भीष्मस्य शरशय्याशयनकथनपूर्वकं तं प्रशशंस ... ... | २७ |
| १४ | ८० | भीष्मः कथं हत इत्यादि पृच्छंस्तत्प्रशंसापूर्वकं धृतराष्ट्रोऽन्वतप्यत। हते भीष्मे के योद्धार इत्यादिकं पृच्छन्पुनरनुतप्यमानो धृतराष्ट्रो हते भीष्मे दुर्योधनादयः किमकुर्वन्नित्यादिकं पुनः पप्रच्छ ... ... ... ... | ३० |
| १५ | २० | धृतराष्ट्रप्रश्नमभिनन्दन्सञ्जयो धृतराष्ट्रं सांत्वयित्वा व्यासं नमस्कृत्य युद्धोदन्तं विस्तरेण शृण्वित्याद्याह। भीष्मरक्षणार्थं दुःशासनं प्रति दुर्योधनोपदेशः | ३० |
| १६ | २७ | युद्धारम्भे शकुनिसौबलादीनां प्रत्येकाक्षौहिणीनेतृत्वं भीष्मस्य सर्वसेनापतित्वमभिधायोभयोः सेनयोः समागमं कथयति स्म सञ्जयः ... ... ... ... | ३१ |
| १७ | ३९ | सञ्जयो 'मघाविषयगः सोमः' इत्यादिना सैन्यसमागमवेलामभिधाय भीष्मद्रोणावहन्यहनि 'जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणाम्' इति पाण्डवशुभाशंसनपूर्वकं त्वदर्थे युयुधाते इत्याह। भीष्मप्रोक्तां नीतिं श्रुत्वा कुरुसैन्यानि युद्धार्थं निर्ययुः। युद्धार्थं निर्गतां सेनां वर्णयन्नामतो भीष्मादीन्वर्णयामास सञ्जयः ... ... | ३३ |
| १८ | १८ | पुनः सेनागमनसामयिकीं शोभां वर्णयन् भीष्मस्य पृष्ठगोपादीन् वर्णयति स्म ... ... | ३४ |
| १९ | ४५ | पाण्डवव्यूहनिर्माणविषये धृतराष्ट्रेण पृष्टः सञ्जय आह। व्यूढां कौरवसेनां दृष्ट्वा युधिष्ठिरेणाज्ञप्तोऽर्जुनो वज्रव्यूहरचनां प्रतिज्ञाय युद्धार्थं निर्ययौ। अर्जुनेन | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | वज्रव्यूहे रचिते सज्जीभूतेषु सैन्येषु निरभ्र आकाशे सबिन्दुवाय्वादीनि निमित्तान्यभूवन् | ३६ |
| २० | २० | उभयोः सेनयोर्मध्ये के प्राहृष्यन्त' केषां च दुर्निमित्तसुनिमित्तानि? इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने तदनुरूपं सञ्जयस्योत्तरं भीष्मकृतव्यूहरचनाकथनं च ... | ३७ |
| २१ | १७ | कुरुसैन्यं दृष्ट्वा विषण्णं युधिष्ठिरमर्जुनः समाश्वासयां चक्रे | ३८ |
| २२ | १६ | समाश्वस्ते युधिष्ठिरे प्रतिव्यूह्य स्थितेऽर्जुनरथवर्णनादि कृत्वाऽर्जुनं प्रति कृष्णोक्तिं कथयामास सञ्जयः ... ... ... ... | ३९ |
| २३ | २८ | दुर्गास्तोत्रपाठार्थं कृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनो रथादवरुह्य दुर्गास्तवमकरोत्। अर्जुनस्तुत्या तुष्टा दुर्गा तस्मै जयाशीर्वरं ददौ। 'मोहादेतौ न जानन्ति' इत्यादिना सञ्जयो दुर्योधनादीन्निनिन्द ... | ४० |
| २४ | ७ | पुनर्धृतराष्ट्रेण 'केषां योधाः प्रहृष्टाः' इत्यादिके पृष्टे उभयोर्योधानां हर्षादिकमकथयत् ... | ४१ |

# भगवद्गीताविषयानुक्रमः ।

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| २५ | १।४७ | 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' इत्यादिना धृतराष्ट्रकृतः सञ्जयं प्रति प्रश्नः। सञ्जयस्य धृतराष्ट्रकृतप्रश्नोत्तरारम्भः। दुर्योधनो द्रोणमुपसङ्गम्य प्राधान्येन पाण्डवयोधान्स्वयोधांश्च कथयित्वा भीष्मरक्षणार्थं द्रोणादीन्प्रत्युवाच। दुर्योधनं हर्षयितुं भीष्मेण शङ्खे वादिते कृष्णार्जुनादयोऽपि स्वस्वशङ्खान् दध्मुः। पाण्डवकृतशङ्खवादनेन धार्तराष्ट्रहृदयव्यथा। युद्धार्थं व्यवस्थितान् धार्तराष्ट्रानवलोक्य विशेषतो युद्धभूस्थितयोद्धृदर्शनार्थं श्रीकृष्णं प्रत्यर्जुनकृता सेनाद्वयमध्ये रथस्थापनप्रार्थना। सेनाद्वयमध्ये श्रीकृष्णकृतस्य रथस्थापनपूर्वकसम्भाषणस्य धृतराष्ट्रं प्रति सञ्जयोक्तिः। युद्धभूमौ पित्रादीन् दृष्ट्वाऽर्जुनस्य विषादः। विषण्णोऽर्जुनः कुलक्षयदोषादीनुक्त्वा सशरं धनुरुत्सृज्य रथोपस्थ उपाविशत् ... ... ... ... | ४५ |
| २६ | २।७२ | सञ्जयवचनम्। 'कुतस्त्वा कश्मलम्' इत्यादि कृष्णवाक्यं श्रुत्वा भीष्मादिभिः कथं योत्स्यामीत्यादि वदन् 'युद्धभैक्ष्ययोर्मध्ये कतरच्छ्रेयस्तद्ब्रूहि' इत्युक्त्वा तूष्णीं बभूवार्जुनः। अर्जुनं प्रति तत्त्वमुपदिशन् श्रीकृष्णो देहानामवश्यनाश्यत्वं कथयित्वा विषयानभिभूतस्य मोक्षं कथयति स्म। सदसतोर्भावाभावादि कथयित्वा देहानामन्तवत्त्वमात्मनो हननकर्तृत्वकर्मत्वाभावं चोपपाद्य जन्मादिषड्भावविकाराभावमुपपादयति स्म केशवः। 'वासांसि जीर्णानि' इत्यादिदृष्टान्तेनात्मनो देहान्तरप्राप्तिमभिधाय शस्त्राद्यच्छेद्यत्वाद्युक्त्वा जन्यस्य मृत्योरवश्यंभावित्वमाह। आत्मनो दुर्ज्ञेयत्वकथनपूर्वकं युद्धस्य धर्मत्वेन तत्परित्यागे दोषं कथयन् सुखदुःखयोः समत्वेन वर्तमानस्य तत्करणे पापाभावमाह। श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति कर्मयोगमुपदिशंस्तस्य निष्कामत्वेन कृतस्य प्राशस्त्यं द्योत- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | यन् निष्कामसकामयोर्वैषम्यमभिदधाति स्म। वेदानां त्रैगुण्यविषयत्वकथनपूर्वकं काम्यकर्मणामप्राशस्त्यं वदन् कर्मफलत्यागे फलं कथयति स्म। स्थितप्रज्ञलक्षणादिज्ञानार्थमर्जुनप्रश्ने श्रीकृष्णस्तत्कथयामास। इन्द्रियाणामवशत्वकथनपूर्वकं विषयध्यायिनः सङ्गाद्यनर्थप्राप्तिमुद्भाव्य रागद्वेषरहितानां प्रसादं कथयति स्म। प्रसादस्य सर्वदुःखनाशकत्वमभिधाय कामनापरित्यागे शान्तिप्राप्तिमब्रवीद्धरिः ... ... ... ... ... | ६० |
| २७३ | ४३ | ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिरित्याद्यर्जुनप्रश्ने न कर्मणामित्यादिना भगवदुत्तरम्। कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं न भवतीत्याद्युक्त्वा निष्कामकर्मकरणमुपदिश्य कर्माकरणे दोषं जगौ। आत्मनः कार्याभावं कथयित्वा निष्कामकर्मणा भगवत्प्राप्तिमाह। श्रेष्ठानामाचारदर्शनेन लोकप्रवृत्तिमभिधाय लोकसंग्रहार्थं स्वस्यापि कर्माचरणमाह। सक्तासक्तयोः कर्मविभागादि दर्शयित्वा मयि सर्वाणि कर्माणीत्याद्युपदिश्य परधर्मस्यानाश्रयणीयत्वमभिदधाति स्म। केन प्रयुक्तो जीवः पापं चरतीत्यर्जुनप्रश्ने काम एष क्रोध एष इत्यादि भगवदुत्तरम् ... ... | ६७ |
| २८४ | ४२ | इमं विवस्वत इत्यादिना पूर्वसंप्रदायप्रसिद्ध एव योगो मयोक्त इति भगवतोक्ते संदिहानोऽर्जुनोऽपरं भवत इत्युक्तिपूर्वकं पप्रच्छ। स्वीयजन्मवृत्तान्तं कथयन् यदा यदा हि धर्मस्येत्याद्यवतारप्रयोजनकथनपूर्वकं ये यथा मां प्रपद्यन्त इत्याद्याह भगवान्। भगवानात्मतत्त्वमुपादिश्य कर्मणो गहनां गतिं च प्रदर्श्य निष्कामकर्मिप्रशंसादिकं चकार। द्रव्यादियज्ञान् कथयित्वा कर्मयज्ञापेक्षया ज्ञानयज्ञस्य श्रैष्ठ्यमुपपादयंस्तं प्रशशंस ... ... ... ... | ७५ |
| २९५ | २९ | संन्यासं कर्मणामित्याद्यर्जुनप्रश्ने संन्यासकर्मयोगयोर्मध्ये कर्मयोगस्य वैशिष्ट्यमभिधाय निष्कामकर्मयोगिनां प्रशंसापूर्वकं मोक्षमाह। ब्राह्मणादिषु पण्डितानां समदर्शित्वं कथयित्वेन्द्रियभोगानां दुःखदत्वस्यान्द्रियवेगसहिष्णूनां सुखस्य च कथनादिपूर्वकमुपदिदेश भगवान् ... ... | ८१ |
| ३०६ | ४७ | निष्कामकर्मयोगस्य सत्त्वशुद्धिद्वारा ध्यानयोगारोहणसाधनत्वात्स्तुतिः। ध्यानयोगेऽवस्थातुमसमर्थस्य निष्कामकर्मयोगः समर्थस्य तु सर्वकर्मसंन्यास इत्युक्तिः। ध्यानयोगारूढलक्षणकथनम्। विस्तरेणासनाहारादिनियमकथनयुतं सफलध्यानयोगनिरूपणम्। उक्तध्यानयोगस्य मनश्चाञ्चल्येन सुदुष्करत्वप्रतिपादकप्रश्नः। अभ्यासवैराग्याभ्यां मनोनिग्रहे ध्यानयोगसिद्धिकथनम्। असंयतात्मना ध्यानयोगस्य दुष्प्रापत्वकथनम्। ध्यानयोगे प्रवृत्तस्य त्यक्तसर्वकर्मणस्तत्फलसम्यग्दर्शनप्राप्तेः प्रागेव देहवियोगे का गतिरित्यर्जुनप्रश्नः। योगभ्रष्टस्य विनाशाभावप्रतिपादनपूर्वकमुत्तमगतिप्राप्तिप्रतिपादनम्। ध्यानयोगिनः सर्वश्रेष्ठत्वकथनपूर्वकं ध्यानयोगेऽर्जुनस्य प्रवर्तनम्। रुद्रादित्यादिध्यानपराणां मध्ये वासुदेवध्यानपरस्य युक्ततमत्वबोधनम् ... ... ... ... | ८७ |
| ३१७ | ३० | भगवद्ध्यानयोगं कुर्वतः सम- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | स्तविभूतिबलशक्त्यैश्वर्यादिगुणसंपन्नभगवज्ज्ञानप्राप्तिप्रकारोपदेशप्रतिज्ञा। ज्ञानदुर्लभत्वप्रकटनम्। अपरप्रकृतेरष्टधा भिन्नत्वकथनम्। जीवभूतपरप्रकृतिकथनपूर्वकमुक्तप्रकृतिद्वयद्वारेणेश्वरस्य जगत्कारणत्वप्रदर्शनम्। दृष्टान्तेन सर्वभूतानां परमेश्वरे ग्रथितत्वकथनम्। संक्षेपतो रसादिविभूतिकथनम्। मूढानां त्रिविधसात्त्विकादिभावैर्मोहितत्वाद्भगवत्तत्त्वानभिज्ञतावर्णनम्। भगवदेकशरणतया तत्त्वज्ञानद्वारेण मायातिक्रमकथनम्। दुष्कृतिनां भगवद्भजनपराङ्मुखत्वकथनम्। सुकृतित्वेन भगवद्भजनप्रवृत्तिबोधनपूर्वकं भक्तानां चतुर्विधत्वकथनम्। चतुर्विधभक्तेषु ज्ञानिनः श्रेष्ठत्वप्रतिपादनम्। अन्यदेवताभजनेऽपहृतविवेकविज्ञानहेतुत्वकथनम्। अन्यदेवतोपासकानां तत्तद्देवतोपासनश्रद्धादार्ढ्यकरणेन तत्तद्देवतास्वरूपिणो मत्त एव कामप्राप्तिरिति कथनम्। अन्यदेवतोपासकानां फलस्यान्तवत्त्वकथनम्। परमार्थतत्त्वज्ञाने हेतुकथनम्। सुकृतिनां भगवद्भजनेनोत्तमगतिप्राप्तिकथनम् ... ... | ९१ |
| ३२-८ | २८ | किं तद्ब्रह्मेत्याद्यर्जुनकृतप्रश्नसप्तकम्। अर्जुनोक्तप्रश्नसप्तकस्योत्तरम्। अन्त्यभावनानुसारेण देहान्तरप्राप्तिकथनम्। सर्वेषु कालेषु भगवद्ध्यानपूर्वकं युद्धादिकरणेऽर्जुनस्य प्रवर्तनम्। योगयुक्तचेतसः परमपुरुषावाप्तिकथनम्। प्रणवोपासना। ईश्वरं प्राप्तानामपुनरावृत्तिकथनम्। स्वर्गादिसत्यलोकान्तलोकगतानां सहेतुकं पुनरावृत्तिकथनम्। परतत्त्वस्वरूपप्रदर्शनम्। परपुरुषस्य ज्ञानलक्षणभक्तिलभ्यत्वकथनम्। ध्यानयोगिनां कर्मिणां च क्रमेण देवयानपितृयाणमार्गद्वयकथनम्। शुक्लकृष्णमार्गद्वयगतानां क्रमेणानुवृत्त्यादिकथनम्। मार्गद्वयचिन्तनफलम्। योगमाहात्म्यम् | ९७ |
| ३३-९ | ३४ | गुह्यतमपरब्रह्मतत्त्वज्ञानोपदेशः। श्रीकृष्णकृतं मूढकृतस्वावज्ञायाः स्वतत्त्वज्ञानाभावरूपकारणस्य कथनम्। महात्मनां भगवद्भक्तिलक्षणमोक्षमार्गे प्रवृत्तिकथनम्। संक्षेपेण विभूतिकथनम्। सकामानां संसारप्राप्तिकथनम्। निष्कामभक्तानां सम्यग्दर्शिनां भगवतो योगक्षेमप्रापकत्वनिरूपणम्। अन्यदेवताभक्तानामपि भगवद्भक्तत्वप्रतिपादनपूर्वकं भजनानुसारेण फलप्राप्तिकथनम्। भगवदाराधनस्य सुकरत्वप्रतिपादनम्। भगवदाराधनेऽर्जुनस्य प्रवर्तनम्। भक्तिमाहात्म्यप्रतिपादनपूर्वकमर्जुनस्य भक्तिमार्गे प्रवर्तनम्। ईश्वरभजनेतिकर्तव्यताप्रदर्शनम् ... ... ... | १०१ |
| ३४-१० | ४२ | भगवान् 'भूय एव महाबाहो' इत्याद्युक्त्वा स्वस्य सुरादीनां दुर्ज्ञेयत्वाद्यभिधायाहं सर्वस्य प्रभव इत्याद्याचख्यौ। विभूतियोगज्ञानार्थमनुयुक्तो भगवान् स्वीया विभूतीरभ्यधात्... | १०५ |
| ३५-११ | ५५ | विश्वरूपदिदृक्षयाऽर्जुनकृता भगवत्प्रार्थना। पश्य मे पार्थेत्यादि भगवद्भाषणम्। धृतराष्ट्रं प्रति संजयकृतं हरिः पार्थाय विश्वरूपं दर्शयामासेत्यादिवृत्तान्तकथनम्। भगवद्दर्शितविश्वरूपस्य स्वानुभवप्रकटीकरणार्थमर्जुनवाक्यम्। स्वस्य भूभारहरणार्थं प्रवृत्तत्वा- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | न्मयैवैते निहतास्त्वं निमित्तमात्रं भवेत्यादि श्रीकृष्णभाषणम् । पराजयभयात्करिष्यति संधिमिति बुद्ध्या संजयस्य धृतराष्ट्रं प्रति वृत्तान्तकथनम्। अर्जुनकृता भगवत्स्तुतिः ।पूर्वरूपप्रदर्शनार्थमर्जुनकृत भगवत्प्रार्थना । अर्जुनं भीतमुपलभ्य विश्वरूपमुपसंहृत्य प्रियवचनेनाश्वासनार्थं श्रीकृष्णस्योक्तिः । संजयभाषणम्। पूर्वरूपदर्शनेनार्जुनकृतं स्वचित्तस्थैर्यप्रदर्शनम्। विश्वरूपदर्शनस्य भगवत्कृतं भक्त्यैकसाध्यत्वप्रतिपादनम् । भगवदर्थकर्मादियुतस्य भगवत्प्राप्तिप्रतिपादनम् | १११ |
| ३६-१२ | २० | योगवित्तमानां ज्ञानार्थमर्जुनप्रश्ने तेषां लक्षणमभिधाय ब्रह्मोपासकानामहमेव प्राप्यः इत्याह भगवान् । ब्राह्मोपासकानां दुःखकथनपूर्वकमनन्यभावेन मद्भक्तानामहमुद्धर्ता इत्यादि कथयित्वा मय्येव मन आधत्स्वेत्याद्याख्यातवान् । अभ्यासादीनामुत्तरोत्तरं विशेषं कथयित्वा स्वस्य प्रियतमान् भक्तानाह भगवान् | ११५ |
| ३७-१३ | ३४ | प्रकृत्यादीनां जिज्ञासयाऽर्जुनस्य प्रश्ने क्षेत्रक्षेत्रज्ञादीनां लक्षणानि कथयित्वा प्रकृत्यादीनामनादित्वमभिधाय पुरुषस्वरूपं निरूपयामास श्रीकृष्णः। पुरुषं जानतां क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्विशेषं जानतां च मोक्ष इत्याह ... ... | १२३ |
| ३८-१४ | २७ | उत्तमज्ञानोपदेशकरणं प्रतिज्ञाय त्रयाणां सत्त्वादिगुणानां प्रकृतिसम्भवत्वकथनपूर्वकं तेषां स्वरूपं कार्यं चाचष्ट भगवान्। सत्त्वादिषु प्रलयं गतानां गतिं निरूप्य सत्त्वादिफलकथनपूर्वकं सात्त्विकादीनां प्राप्याँल्लोकानाह । कैर्लिङ्गैर्गुणातीतो भवतीत्याद्यर्जुनप्रश्ने भगवांस्तल्लक्षणमन्वाचष्ट। ... ... ... ... | १२७ |
| ३९-१५ | २० | संसारस्य वृक्षरूपत्वकल्पना। संसारवृक्षस्यासङ्गशस्त्रेण च्छेदने ब्रह्मपदप्राप्तिकथनम्। ब्रह्मपदलक्षणकथनम् । जीवस्य भगवदंशतायाउत्क्रान्तिकाल इन्द्रियाकर्षकत्वादेश्च कथनम्।मूढानामात्मज्ञानासम्भवकथनम् । संक्षेपेण विभूतिवर्णनम् । क्षराक्षरोत्तमपुरुषाणां निरूपणम् । हेतुकथनपुरःसरं भगवतः पुरुषोत्तमत्वस्य तज्ज्ञानफलस्य च निरूपणम्। भगवत्तत्त्वज्ञानप्रशंसा ... | १३१ |
| ४०-१६ | २४ | दैवासुरसम्पद्विभागं कथयन् भगवानासुरसम्पद्वतां दम्भादिकं स्वभावं चाह । कामिनामाशाप्रकारस्य गतेश्च स्वरूपकथनपूर्वकं कामादीनां निरयत्वमुपपाद्य कामादित्रयत्यागोपदेशः ... ... ... ... | १३३ |
| ४१-१७ | २८ | शास्त्रविधिमुत्सृज्य श्रद्धया कर्म कुर्वतां का गतिरित्यर्जुनस्य प्रश्नः । श्रद्धात्रय-त्रिविधाहार-त्रिविधयज्ञादिकथनम् । कायिकवाचिकमानसिकभेदेन तपसस्त्रिविधत्वम्। सात्त्विकादिभेदेन तपसस्त्रैविध्यम्। सात्त्विकराजसतामसभेदेन दानस्य त्रिविधता। यज्ञादीनां साद्गुण्यार्थोतत्सदितिशब्दत्रयस्य विनियोगप्रदर्शनम्। अश्रद्धया कृतस्य हवनादेः सर्वकर्मणोऽसत्त्वप्रतिपादनम् ... | १३६ |
| ४२-१८ | ७८ | संन्यासत्यागयोस्तत्त्वविषयकः प्रश्नः। संन्यासत्यागपदार्थोक्तिः। कर्मणस्त्यागात्यागयोः सांख्यमीमांसकपक्षद्वयप्रदर्शनम्। फलासक्तिं त्यक्त्वा नित्यनैमित्तिकानि कर्माणि कर्तव्यानीति स्वम- | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम् ।

तप्रदर्शनं भगवता।नित्यकर्मत्यागोपपत्त्यभावकथनपुरःसरं तामसादिभेदेन त्यागस्य त्रिविधत्वम् । फलासक्तित्यागपूर्वकं नित्यकर्म कुर्वतो नैष्कर्म्यलक्षणज्ञाननिष्ठाप्राप्तिप्रतिपादनम्। कर्मफलत्यागिनस्त्यागीत्यभिधान—कथनम् । संन्यासिनामनिष्टादित्रिविधफलाभावः । सर्वकर्मणामधिष्ठानादिकारणपञ्चकवर्णनम्। केवलात्मनि कर्तृत्वाभिमानिनां दुर्मतित्वस्य कथनम् । कर्तृत्वाभिमानरहितस्य सुमतित्वकथनम् । कर्मप्रवर्तकज्ञानादित्रयस्य करणादित्रयस्य च प्रदर्शनम् । ज्ञानकर्मकर्तृणां गुणभेदेन त्रैविध्यकथनप्रतिज्ञा । सात्त्विकादिभेदेन ज्ञानकर्मकर्तृणां त्रैविध्यकथनम् । बुद्धिधृत्योर्गुणभेदेन त्रैविध्यकथन.तिज्ञा । सात्त्विकादिभेदेन बुद्धिधृतिसुखानां त्रैविध्यकथनम् । संसारान्तर्गतस्य सर्वस्य त्रिगुणात्मकत्वम् । ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रकर्मणां विभागः । ब्राह्मणादीनां स्वस्वकर्मणा भगवदाराधनेन ज्ञाननिष्ठायोग्यतालक्षणसिद्धिप्रतिपादनम् । स्वधर्मस्यात्याज्यताप्रतिपादनम् । आसक्त्यादिरहितस्य संन्यासेन ज्ञाननिष्ठालक्षणनैष्कर्म्यसिद्धिकथनम् । केवलात्मज्ञाननिष्ठारूप नैष्कर्म्यलक्षणसिद्धिप्राप्तिक्रमक—थन तिज्ञा। विस्तरेण परज्ञाननिष्ठा ।प्तिक्रमकथनम् । उक्तक्रमेण ज्ञानलक्षणभक्तिप्राप्ति.तिपादनम्। ज्ञानलक्षणभक्त्या भगवत्तत्त्व—ज्ञानसिद्धिकथनम् । ज्ञाननिष्ठायोग्यताफलकस्य भगवद्भक्तियोगस्य स्तुतिः । अर्जुनं प्रति श्रीकृष्णकृतो विवेकबुद्ध्या मयीश्वरे सर्वकर्मसंन्यासपूर्वकं समाहितबुद्धित्वाश्रयणेन सर्वदा मदभिन्नेश्वरे चित्तस्थापनोपदेशः । मच्चित्तत्वे मत्प्रसादात्सर्वदुर्गतरणस्यान्यथा विनाशस्य च कृष्णकृतं कथनम् । अहङ्काराश्रयणेन युद्धाकरणं निश्चयस्य मिथ्या.निश्चयत्वकथनपूर्वकमर्जुनस्य प्रकृतिपरतन्त्रत्वम् । ईश्वरस्यान्तर्यामित्वेन सर्वभूतप्रेरकत्वकथनम् । सर्वभावेनेश्वराश्रयणेन शाश्वतपदप्राप्तिकथनम् । उक्तगुह्यतरज्ञानविचारेणेच्छानुरूप—करणानुज्ञा । अर्जुनस्य परमप्रि—प्रियत्वात्सर्वगुह्यतमवचनश्रवणप्रवर्तनम् । गुह्यतमस्य कर्मयोगनिष्ठारहस्यस्येश्वरशरणत्वस्य कर्मयोगनिष्ठाफलस्य च सम्यग्दर्शनस्योपदेशः अपात्रे शास्त्रोपदेशनिषेधस्य, पात्रे तदुपदेशफलस्य च प्रतिपादनम् । एतच्छास्त्राध्ययनश्रवणयोः फलकथनम्-मदुक्तगीताशास्त्रश्रवणेनाज्ञानसंमोहः प्रनष्टः कच्चिदित्यर्जुनं प्रति श्रीकृष्णप्रश्नः । 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा' इत्याद्यर्जुनोत्तरम् । 'इत्यहं वासुदेवस्य' इत्यादिकेन सञ्जयभाषणेन गीताशास्त्रस्य समाप्तिः ... ... ... १५०

## (४) भीष्मवधपर्व १५१–२९२

४३ १०९ गीता सुगीतेत्यादिना गीतापठनप्रशंसनं गीताश्लोकसंख्याकथनं च । गीतोपदेशानन्तरमर्जुनेन गाण्डीवे धृते हृष्टाः पाण्डवादयः शङ्खान्दध्मुर्देवादयश्च युद्धदर्शनार्थमाजग्मुः । युधिष्ठिरे भीष्ममभिप्रेक्ष्य रथादवरुह्य गच्छत्यनुगम्यमानेष्वर्जुनादिषु पृच्छत्स्वपि निरुत्तरे सति तदभिप्रायं श्रीकृष्ण आह । कुरुसैन्ये-

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | निन्दति सति युधिष्ठिरो भीष्मं प्रति चरणौ निपीड्य युद्धानुज्ञामाशिषं च प्रार्थयति स्म । यद्येवमित्यादिनाऽनागमने दोषमभिधाय प्रीतोऽहं युध्यस्व त्वं जयं चाप्नुहीत्युक्त्वाऽस्मत्तो वरो व्रियतामित्याह भीष्मः । मदर्थे हितैषी सन् मंत्रयस्व कौरवार्थे च युध्यस्वेति प्रार्थयति युधिष्ठिरे तदंगीकृत्य भीष्मो 'ब्रूहि यत्ते विवक्षितम्' इत्याह । 'कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम्' इति युधिष्ठिरेण याचिते नैनं पश्यामीत्याद्युक्तवति भीष्मे युधिष्ठिरो वधोपायं ब्रवीहीत्याह । 'न तावन्मृत्युकालोपि पुनरागमनं कुरु' इत्युक्तवति भीष्मे युधिष्ठिरस्तद्वाक्यं शिरसा गृहीत्वा तमभिवाद्य द्रोणाचार्यं प्रति ययौ । भीष्मवदेव द्रोणाद्वरादिकं लब्ध्वा कृपशल्यौ प्रति गत्वा तथैव ताभ्यामपि वरादिकं लब्ध्वा प्रत्याववृते । कृष्णोऽपि कर्णं गत्वा 'यावद्भीष्मजीवनं तावदस्मान्वृणु' इत्युवाच कर्णेन तदनंगीकृते निववृते च । युधिष्ठिरे सैन्ययोर्मध्ये स्थित्वा 'योऽस्मान् वृणोति तमहं' इत्युक्तवत्यागतं युयुत्सुमंगीकृत्य स्व सैन्यमागत्य कवचमग्रहीत् । युधिष्ठिरस्येमां कृतिं वीक्ष्य साधु साध्विति सर्वे राजान ऊचुर्हृष्टाश्च संतो भेरीवादनपूर्वकं शखान् दध्मुश्च ... ... | १५४ |
| | | **प्रथमदिवसयुद्धम् ।** | |
| ४४ | ३० | केऽपूर्वं प्राहरन्निति धृतराष्ट्रप्रश्ने संजय आह । युद्धारंभे सेनायास्तुमुलं शब्दं श्रुत्वा नदन्तं भीमं प्रति बाणवर्षपूर्वकं परिवारयद्भिर्दुर्योधनादिभिः सह द्रौपदीपुत्रादीनां युद्धम् ... ... | १५६ |
| ४५ | ८७ | संजयो युद्धारंभसामयिकं सिंहनादादि कथयन् पूर्वं भीष्मार्जुनयोर्द्वंद्वयुद्धान्याह ... ... | १५८ |
| ४६ | ५० | पितृपुत्रादिसंबंधमविगणय्य युध्यमानानां योधानां संकुलयुद्धं कथयन् संजयो भीष्मदर्शनेन पाण्डवसेनानां कंपादिकमाह ... ... ... | १६० |
| ४७ | ६७ | दुर्योधनप्रेरणया दुर्मुखादिषु भीष्मं रक्षत्सु तस्याभिमन्युना सह युद्धम् । अभिमन्युरक्षार्थमागतेषु पाण्डवमहारथेषु भीमेन सह भीष्मस्य युद्धम् । उत्तरशल्ययोर्युध्यमानयोः शल्यशक्तिप्रहारेणोत्तरे पतिते तद्भ्राता श्वेतेन सह शल्यादीनां युद्धम् । शल्यरक्षणार्थं भीष्मादिष्वागतेषु भीष्मस्य भीमादिभिस्तुमुलं युद्धम् ... ... ... ... | १६३ |
| ४८ | १२१ | शल्यरथं प्रति श्वेते गते भीमादिभिर्भीष्मस्य कुरुभिः सह श्वेतस्य तुमुलं युद्धम् । भीष्मश्वेतयोर्युध्यमानयोः श्वेतो भीष्मस्य धनुरादि चिच्छेद । भीष्मरक्षार्थं दुर्योधनेन सैन्ये प्रेरिते श्वेतभीष्मयोस्तुमुलं युध्यमानयोः श्वेतप्रेषितां शक्तिं भीष्मश्चिच्छेद । श्वेतप्रेरितया गदया भीष्मे विरथीकृते आकाशवाणीं श्रुत्वा तद्वधे यत्नं कुर्वन् भीष्मो ब्राह्मास्त्रेण तं जघान । श्वेतमरणेन शोचन्तः पाण्डवा अवहारं चक्रुः ... ... | १६६ |
| ४९ | ५३ | धृतराष्ट्रः 'श्वेते हते पाण्डवाः किमकुर्वन्' इत्यादि पृष्ट्वा दुर्योधनाग्रहं निरूप्य धनञ्जयः किमकरोदित्यादिप्रश्नपूर्वकमर्जुनं प्रशस्य श्वेते हते धृष्टद्युम्नः किमकरोदिति पप्रच्छ । सञ्जयो धृतराष्ट्रं | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

निर्भर्त्स्य शल्यं प्रति शङ्खस्य गमनं तद्रक्षार्थं कौरवसैन्यगमनं, शङ्खस्य वधार्थं भीष्मगमनं चाभिधाय शङ्खरक्षणार्थमागतेनार्जुनेन सह भीष्मस्य महद्युद्धमाह। भीष्मे द्रुपदमेत्य पाण्डवसेनां निघ्नति भीतायां तस्यां पाण्डवा अवहारमकुर्वन्। अयमवहारः प्रथमदिवसीयः ... ... १६७

**द्वितीयदिवसयुद्धम्।**

५० ५८ युधिष्ठिरो भ्रातृभिः सह कृष्णमेत्यात्मनो विषादप्रकाशकं वाक्यं वदन् भीमं प्रशस्य भीष्मवधोपायं जिज्ञासुरुवाच। कृष्णेनाश्वासितो युधिष्ठिरो धृष्टद्युम्नप्रोत्साहनं कृत्वा क्रौञ्चव्यूहरचनार्थं तमादिदेश, स च तं रचयामास ... ... ... ... १६९

५१ ३० क्रौञ्चव्यूहं दृष्ट्वा दुर्योधनो द्रोणाचार्यादीन् प्रोत्साहयन् शूरसेनादीन् भीष्मरक्षार्थं नियोजयति स्म। व्यूहं रचयित्वा भीष्मे शङ्खं वादयति कौरवाः पाण्डवाश्च शङ्खनादं कुर्वन्तो युद्धमुपचक्रमिरे ... ... ... ... १७०

५२ ७२ कथं प्रहारं चक्रुरिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। दुर्योधनाज्ञयोभयोः सैन्ययोस्तुमुलं युध्यमानयोर्भीष्मः सौभद्रादीन्प्रति बाणांस्तत्याज। भीष्मसमीपगमनार्थमर्जुनेन प्रेरितः कृष्णो यत्तो भवेत्याद्युक्त्वा यावद्रथं प्रेरयति तावद्भीष्मोऽर्जुनसमीपं जगाम। भीष्मादिभिरर्जुनस्य युद्धे प्रसक्ते सात्यकिप्रभृतयोऽर्जुनरक्षार्थमाजग्मुः। भीष्मार्जुनयोर्युद्धप्रसङ्गेऽश्वत्थामप्रभृतयो भीष्मं ररक्षुः। उभयोर्युध्यमानयोः शरविद्धाङ्गं कृष्णं दृष्ट्वाऽर्जुनश्चुक्रोध देवादयः सर्वे च विस्मयं चक्रुर्योधाश्च परस्परं युयुधिरे द्रोणधृष्टद्युम्नौ च तुमुलं युयुधाते ... ... १७२

५३ ४१ 'द्रोणधृष्टद्युम्नयोः कथं समागमः?' इति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयः पाण्डवानामजय्यत्वकथनपूर्वकं तयोर्युद्धं शशंस। द्रोणेन विरथीकृतं धृष्टद्युम्नं प्रति साह्यार्थमागतो भीमो दुर्योधनप्रेषितेन कालिङ्गेन सह युयुधे ... १७४

५४ १२४ 'भीमकालिङ्गयोः कथं युद्धम्?' इति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। कालिङ्गे भीमरथं प्रत्यागते उभयोः सैन्ययोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते भीमः स्वसमीपागतं कालिङ्गपुत्रं शक्रदेवं गदया जघान। पुनः कालिङ्गभीमयोर्युद्धप्रसङ्गे भीमो भानुमन्तं हत्वा गजादिसैन्यं मारयति स्म। भीमयुद्धदर्शनेनान्येषु विस्मितेषु सत्सु भीमो रथमारुह्य कालिङ्गादीन् जघान। स्वसमीपागतेषु कालिङ्गसैन्येषु भीमः सप्तशताधिकद्विसहस्रयोधान्हत्वा शंखं दध्मौ। धृष्टद्युम्नाज्ञया शिखण्डिप्रभृतिष्वागतेषु धृष्टद्युम्नो भीमपार्श्वे स्थित्वा हर्षेण शंखवादनादि चकार। भीमधृष्टद्युम्नयोःपार्श्वे सात्यकावागते बहूनि सैन्यानि नाशयन्तं भीमं प्रत्यागतेषु भीष्मादिषु भीष्मेण सह सात्यकिप्रभृतीनां महद्युद्धम्, सात्यकिकृतं भीमप्रोत्साहनं च १७७

५५ ४३ गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि धृष्टद्युम्नेऽश्वत्थामशल्यकृपैर्युध्यमाने तत्साहाय्यार्थमभिमन्युराजगाम। शल्यादिभिर्युध्यमाने सौभद्रे युद्धार्थमागतेन लक्ष्मणेन सह तस्य तुमुले युद्धे प्रसक्ते सौभद्रं प्रति दुर्योधनादय आजग्मुः। महारथैर्वेष्टितमभिमन्युं दृष्ट्वा तद्रक्षार्थमाग-

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | तस्यार्जुनस्य तुमुलं युद्धं दृष्ट्वा भीष्मोऽवहारं चकार । अयं द्वितीयदिवसावहारः ... | १७९ |
| | | **तृतीयदिवसयुद्धम् ।** | |
| ५६ | २२ | प्रभाते भीष्मेण यानार्थं सेनामादिश्य गारुडव्यूहे रचिते पांडवा अप्यर्धचंद्रव्यूहं रचयामासुस्ततो युद्धारंभः ... ... ... | १८० |
| ५७ | ४० | अर्जुने रथानीकं घ्नत्युभयोः सैन्ययोस्तुमुलयुद्धे प्रवृत्ते नरशोणितैः पृथिवीरजःशान्तौ भीष्मादयः पाण्डवसेनां जघ्नुर्भीमादयश्च कौरवसेनाम् ... ... ... | १८१ |
| ५८ | ४६ | युद्धेषु राजसु बाणादीन्प्रहरत्सु तेषां बाणादीन्निवारयत्यर्जुने देवादयस्तं प्रशशंसुः । सौबलानां सात्यक्यभिमन्युभ्यां युधिष्ठिरादीनां द्रोणभीष्माभ्यां घटोत्कचभीमयोर्दुर्योधनादिभिश्च युद्धे प्रसक्ते दुर्योधनस्य मोहः । द्रोणभीष्मयोर्निवारणमगणय्य पलायमानं कौरवसैन्यं दुर्योधनं गतमोहं दृष्ट्वा निवृत्ते । भीष्ममनुनयन् दुर्योधनः क्रुद्धस्य भीष्मस्य वाक्यं श्रुत्वा हर्षाच्छंखं दध्मौ, तच्छ्रुत्वा पाण्डवा अपि शंखान् दध्मुः... ... ... ... | १८२ |
| ५९ | १३९ | 'तत्र भीष्मः किमकरोत्?' इति धृतराष्ट्रप्रश्नः । कौरवपाण्डवयोस्तुमुले युद्धे प्रसक्ते तद्युद्धं प्रशंसन् संजयो योधानां नानाविधान् ध्वनीन् कथयामास । आश्चर्ययुद्धं कुर्वतो भीष्मस्य बाणैः पाण्डवसैन्ये भग्ने कृष्णेनोक्तोऽर्जुनः सक्रोधमुक्त्वा भीष्मस्य धनुश्चिच्छेद । अर्जुनं प्रशस्य भीष्मे कृष्णार्जुनौ प्रति बाणान् क्षिपति तत्पराक्रमं दृष्ट्वा कृष्णश्चिन्तयामास । पुनर्भीष्मे बाणैर्दिश आच्छादयति द्रोणादिषु च युगपद्बाणप्रहारान् कुर्वत्सु पलायमानं पाण्डवसैन्यं प्रति सात्यकिरुवाच । कृष्णे सात्यकिं प्रति सक्रोधमुक्त्वा चक्रं धृत्वा भीष्मवधार्थं निर्गते भीष्मस्तं दृष्ट्वा तुष्टाव । अर्जुनेन रथादवप्लुत्य पादौ धृत्वाऽनुनीतः कृष्णो पुना रथमारुरोह । कृष्णादिषु शंखान्वादयत्सु भूरिश्रवःप्रभृतिभिर्युगपद्युद्धे प्रसक्तेऽर्जुनो बहु सैन्यं पातयति स्म । अर्जुनप्रेरितैन्द्रास्त्रभयेन सभीष्मकौरवेष्वपयातेष्वर्जुनादयोऽपि शिबिरं जग्मुः। अयं तृतीयदिवसावहारः ... ... ... ... ... | १८८ |
| | | **चतुर्थदिवसयुद्धम् ।** | |
| ६० | २९ | द्रोणादिषु भीष्मेण सह युद्धभूमिं गतेषु सत्स्वर्जुनोऽपि ससैन्यो निर्जगाम । उभयसैनिकेषु युध्यमानेषु युध्यमानमर्जुनं प्रत्यागतान्भीष्मादीन् दृष्ट्वा साहाय्यार्थमागतोऽभिमन्युर्युयुधे । भीष्मार्जुनावपि महद्युद्धं चक्रतुः | १९० |
| ६१ | ३६ | द्रौणिप्रभृतिभिर्युध्यमानमभिमन्युं प्रति दुर्योधनः पंचविंशतिसहस्रसंख्यान् योधान् प्रेषयामास । मद्रानीकादिभिर्युद्ध्यमानो धृष्टद्युम्नः शलपुत्रं जघान । तस्मिन्हते कुरुसैन्येषु हाहाकारं कुर्वत्सु सांयमनिधृष्टद्युम्नौ युयुधाते ... ... ... | १९१ |
| ६२ | ६५ | पुनरनुतप्यमानं धृतराष्ट्रं प्रति संजयोक्तिः । धृष्टद्युम्नशल्ययोर्युद्धानंतरमभिमन्युशल्ययोर्युध्यमानयोः शल्यरक्षणार्थं दुर्योधनादय आजग्मुः । दुर्योधनादिभिर्युध्यमानो भीमो यदा गदां जग्राह तदा तं दृष्ट्वा कौरवेषु पलायमा- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | नेषु दशसहस्रगजानीकसहितं मगधं पुरस्कृत्य दुर्योधन आजगाम। भीमरक्षणार्थं द्रौपदीपुत्रादिषु युध्यमानेष्वभिमन्युर्मागधं जघान। भीमे गदाप्रहारेण योधान् पशुमारं मारयति पीडिता गजा पलायनं चक्रुः ... | १९३ |
| ६३ | ३३ | भीमं हतेत्युक्त्वा दुर्योधनेन प्रेषिते सैन्ये भीमपराक्रमं प्रशस्य तस्य महद्युद्धं प्राह संजयः। भीमस्य गदायुद्धं दृष्ट्वा विषीदत्सु कौरवेषु सैन्यानि ग्रसमाने तस्मिन्भीष्म आजगाम। सात्यकिप्रभृतिषु भीष्मं प्रति बाणांस्त्यजत्सु भूरिश्रवा आजगाम ... | १९४ |
| ६४ | ८७ | सात्यकिभूरिश्रवसोर्युध्यमानयोर्भूरिश्रवसं रक्षितुं दुर्योधनादय आययुः सात्यकिं रक्षितुं पाण्डवाश्च। दुर्योधनादिभिर्भीमस्य बाणयुद्धे प्रसक्ते दुर्योधनबाणप्रहारेण मूर्च्छितं भीमं दृष्ट्वाऽभिमन्युप्रभृतयो युयुधिरे। भीमबाणपीडिते दुर्योधने पलायिते युद्धार्थमागतान् सेनापतिसुषेणप्रभृतींस्तद्भ्रातॄन् भीमो जघान। भीष्मप्रेरणया आगच्छत्सु महारथेषु भीमसमीपमागतस्य भगदत्तस्याभिमन्युप्रभृतिभिर्युद्धम्। बाणप्रहारेण मूर्च्छितं भीमं दृष्ट्वा भगदत्ते सिंहनादं कुर्वति घटोत्कचो मायया युयुधे। आर्तनादं श्रुत्वा भीष्मेण प्रेरिता द्रोणादयो भगदत्तरक्षणार्थमाययुस्तान् दृष्ट्वा युधिष्ठिरादयोऽपि। घटोत्कचयुद्धं दृष्टवता भीष्मेण प्रेरितेषु कौरवेषु युद्धान्निवृत्तेषु तान् दृष्ट्वा पाण्डवा अपि सिंहनादादिपूर्वकं निववृतिरे। पराजितेषु कौरवेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु च स्वस्वशिबिरं गतेषु दुर्योधनो भ्रातृवधेन दीनः संश्चिन्तयामास, चतुर्थदिवसयुद्धसमाप्तिः ... ... | १९६ |


## पञ्चमदिवसयुद्धम्।


| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| ६५ | ७५ | अनुतप्तस्य धृतराष्ट्रस्य 'दुर्योधनादयः किं कृतवन्तः' इति प्रश्ने सञ्जयः पाण्डवान् प्रशस्य कौरवान्निन्दन्धृतराष्ट्रभर्त्सनपूर्वकं दुर्योधनभीष्मसंवादमाह। पाण्डवजयकारणे दुर्योधनेन पृष्टे तं प्रति भीष्मस्तत्कथयन् विश्वोपाख्यानमाह—गंधमादनपर्वते ऋषिभिः सहोपविष्टो ब्रह्माऽकस्मादागतं विमानं दृष्ट्वा विश्वरूपं भगवन्तं तुष्टाव | १९९ |
| ६६ | ४१ | ब्रह्मस्तवेन तुष्टो भगवान् 'विदितं तात योगान्मे' इत्याद्युक्त्वाऽन्तर्दधे। देवर्ष्यादिभिः पृष्टो ब्रह्मा तान्प्रति नरनारायणावेताविति कथयित्वा तदवज्ञाकरणे दोषमभिधाय स्वभवनं जगाम। भीष्मो दुर्योधनं प्रति युद्धानिवृत्तिकथनपूर्वकं श्रीकृष्णसंमाननाद्युपदिशंस्तदाश्रयादेव पाण्डवानां जय इत्याह ... ... | २०० |
| ६७ | २५ | भगवत्तत्वज्ञानार्थं दुर्योधनेन पृष्टो भीष्मस्तत्तत्त्वं कृष्णप्रसादादिरूपं फलं च कथयतिस्म | २०१ |
| ६८ | २० | भीष्मेण नारदादिकृते श्रीकृष्णस्तवे कथिते केशवं बहु मानयन्तं दुर्योधनं प्रति पुनः शमविधानार्थमुवाच। समाप्तं विश्वोपाख्यानम् ... ... ... | २०२ |
| ६९ | ३४ | उदिते सूर्ये मकरव्यूहं रचयित्वा भीष्मे युद्धाय निर्गते पाण्डवा अपि श्येनव्यूहं विरचय्य निर्ययुः। प्रथमं भीमेन बाणैराच्छादिते भीष्मे बाणवर्षेण पाण्डवसैन्यं मोहयति सत्यर्जुनःशरसहस्रेण तं विव्याध। दुर्योधनप्रार्थितो द्रोणः सात्यकिप्रभृतिभिर्युयुधे भीष्मादयश्चाभिमन्युप्रभृतिभिर्युयुधिरे... | २०३ |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| ७० | २९ | भीष्मे तुमुलं युध्यमाने छिन्नैर्मस्तकादिभिर्युद्धभूमौ व्याप्तायां कुरुपाण्डवयोस्तुमुलं युद्धम् ... ... ... ... | २०४ |
| ७१ | ४३ | भीष्मं प्रत्यागतस्यार्जुनस्य गाण्डीवध्वनिं श्रुत्वा योधेषु बिभ्यत्सु काम्बोजा युद्धार्थमाजग्मुः। भीष्मार्जुनप्रभृतीनां द्वंद्वयुद्धेषु प्रसक्तेषु दुर्निमित्तान्यभूवन् | २०५ |
| ७२ | ३५ | द्रोणदुर्योधनादिभिरर्जुनभीमप्रभृतीनां युद्धे प्रवृत्ते शक्त्याद्यायुधप्रभाभिर्दिशां शोभावर्णनम्। भीष्मभीमयोर्युद्धानंतरं युध्यमानस्य सात्यकेर्भीष्मबाणेन सारथौ पतिते भीष्मादिभिर्धृष्टद्युम्नादीनां युद्धम् ... ... | २०६ |
| ७३ | ४३ | भीष्माश्वत्थामप्रभृतिषु विराटार्जुनप्रभृतिभिर्द्वन्द्वशो युध्यमानेष्वभिमन्युलक्ष्मणयोर्युध्यमानयोर्लक्ष्मणस्य पलायनम् ... | २०७ |
| ७४ | ३९ | तुमुलं युध्यमानेन सात्यकिना सह भूरिश्रवसो युद्धम्। मध्ये आगतैर्दशभिः सात्यकिपुत्रैर्युध्यमानेन भूरिश्रवसा तेषु हतेषु तेन सह सात्यकेर्महद्युद्धम्। अर्जुनकृतपञ्चविंशतिसहस्रमहारथनाशानन्तरं भीष्मोऽवहारं चकार। अयं च पञ्चमो दिवसावहारः ... ... ... | २०९ |
| | | **षष्ठदिवसयुद्धम्।** | |
| ७५ | ३७ | शर्वर्यामतीतायां युद्धार्थं कुरुपाण्डवयोर्निर्गतयोः सतोर्युधिष्ठिरवाक्याद्धृष्टद्युम्नो मकरव्यूहं रचयामास भीष्मश्च क्रौञ्चव्यूहम्। युद्धारम्भे सेनाद्वयशोभावर्णनपुरःसरं भीमद्रोणयोर्युद्धवर्णनम् | २१० |
| ७६ | २६ | अनुतापपूर्वकं दुर्योधननिन्दारूपा धृतराष्ट्रस्योक्तिः ... | २११ |
| ७७ | ७१ | दुःशासनादीन् दृष्ट्वा क्रुद्धो भीमः कौरवचमूं प्रविवेश। 'जीवग्राहं गृह्णीम एनम्' इति वदत्सु दुःशासनादिषु तद्वधं चिन्तयन् भीमो रथमुत्सृज्य गदामादाय युद्धमकरोत्। भीमरथं शून्यं दृष्ट्वा आगतो धृष्टद्युम्नो विशोकवाक्यं श्रुत्वा कौरवचमूमध्ये प्रविश्य भीममाश्वासयामास। दुर्योधनप्रेरणया स्वसमीपागतान् दुःशासनादीन् दृष्ट्वा तान् धृष्टद्युम्नो मोहनास्त्रेणामोहयत्। तान् दृष्ट्वा कौरवेषु पलायमानेषु द्रोणो धृष्टद्युम्नमागत्य प्रज्ञास्त्रेण दुःशासनादीनां मोहमपाचकार। युधिष्ठिरप्रेरणया साह्यार्थमागतेऽभिमन्यौ भीमधृष्टद्युम्नौ जहृषतुः। धृष्टद्युम्नद्रोणयोर्युद्धे प्रवृत्ते द्रोणेन विरथीकृतो धृष्टद्युम्नोऽभिमन्युरथमारुराह ... ... ... | २१३ |
| ७८ | ३६ | भीमदुर्योधनयोर्युद्धे प्रवृत्ते भीमनिग्रहार्थं दुःशासनादिषु यतमानेषु भीमश्चित्रसेनादीन्प्रति बाणान्मुमोच। अभिमन्युविकर्णयोर्द्रौपदेयैर्दुर्योधनस्य च युद्धमभिधाय योधानां युद्धोत्साहमभ्यधात्संजयः ... ... ... ... | २१४ |
| ७९ | ६४ | युद्धार्थमागतं दुर्योधनं दृष्ट्वा क्रुद्धेन भीमेन 'अयं स कालः' इत्याद्युक्त्वा तस्य धनुरादिषु छिन्नेषु तद्रक्षणार्थं जयद्रथादय आजग्मुः। विकर्णादिभिरभिमन्युप्रभृतीनां द्वंद्वशो युद्धे प्रवृत्ते भीष्मः पाण्डवसैन्यं नाशयित्वाऽवहारं चक्रे, युधिष्ठिरादयश्च शिबिरं जग्मुः। अयं च षष्ठदिवसयुद्धावहारः ... ... ... | २१६ |
| | | **सप्तमदिवसयुद्धम्।** | |
| ८० | १९ | शूरेषु स्वस्वशिबिराणि गतेषु खिद्यमानेन दुर्योधनेन पृष्टो भीष्मः | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

'अहं सर्वात्मना जीवितं परित्यज्य पाण्डवसेनां प्रति योत्स्यामि, सदेवदैत्यान् सर्वान् दहेयं शत्रुसेनां किमु' इत्यादि व्याजहार तेन स तुष्टो बभूव। दुर्योधनाज्ञया योधानां निर्गमनमभिधाय कौरवसैन्यशोभां वर्णयति स्म संजयः ... ... ... २१७

८१ ४६ भीष्मो दुर्योधनं प्रति पाण्डवानामजय्यत्वमभिधाय 'पाण्डवांश्च रणे जेष्ये' इति प्रतिज्ञाय तस्मै विशल्यकरणीमोषधिं दत्वा प्रातर्मण्डलव्यूहं रचयामास युधिष्ठिरश्च वज्रव्यूहम्। 'भारद्वाजो ययौ मत्स्यम्' इत्यादिना योधप्रतियोधयोर्नामतः कथनम्। अर्जुनःश्रीकृष्णं प्रत्युक्त्वा बाणान् ववर्ष ... ... ... ... २१९

८२ ६२ अर्जुनं प्रति भीष्मगमनानंतरमर्जुनपराक्रमं दृष्ट्वा दुर्योधनप्रेरिताः सुशर्मादयो भीष्ममाजग्मुः। भीष्मार्जुनौ दृष्ट्वा सैन्यानि त्रेसुः। द्रोणविराटयोर्युध्यमानयोर्द्रोणेन शंखे हते विराटोऽपर्ययौ। अलंबुषसात्यक्योर्युध्यमानयोरलंबुषः पलायते स्म। धृष्टद्युम्नदुर्योधनयोः कृतवर्मभीमयोश्च युद्धम् ... २२०

८३ ५७ धृतराष्ट्रवाक्यं श्रुत्वा तं भर्त्सयन् संजय इरावदावन्त्ययोर्घटोत्कचभगदत्तयोर्युद्धं शशांस। भयात्पांडवसैन्ये पलायिते घटोत्कचेऽप्यपयाते भगदत्तः पाण्डवसैन्यं नाशयति स्म। नकुलसहदेवयोः शल्येन युद्धे प्रसक्ते सहदेवबाणप्रहारेण शल्ये मोहिते द्वावपि शङ्खौ दध्मतुः ... २२२

८४ ५५ युधिष्ठिरश्रुतायुषोर्युध्यमानयोर्युधिष्ठिरेण श्रुतायुषो धनुरादिषु छिन्नेषु स रणादुद्वेगेन विप्रदुद्राव।

अध्याय। श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

चेकितानकृपयोः सौमदत्तिधृष्टकेत्वोश्चित्रसेनादिभिरभिमन्योश्च युद्धवर्णनम्। अभिमन्युं प्रति गच्छन्तं भीष्मं दृष्ट्वाऽर्जुनप्रेरितेन श्रीकृष्णेन तत्र रथे नीतेऽर्जुनेनाधिक्षिप्ताः सुशर्मादयस्तमावव्रुः ... ... ... २२४

८५ ४० अर्जुनो महद्युद्धं कृत्वा महारथान्नाशयन् यावद्भीष्मसमीपमगच्छत्तावत्तत्समीपमागतांस्त्रिगर्तादीन् पराजिग्ये। युधिष्ठिरो भीष्मेण सह युद्धार्थं गच्छञ्जयद्रथादिभिर्युयुधे। युधिष्ठिरवाक्याद्भीष्मं प्रति गच्छन् शिखण्डी शल्येन सह युद्धं चकार। गदां गृहीत्वा जयद्रथं प्रति गच्छन् भीमसेनो गदाप्रहारेण चित्रसेनरथं बभंज ... ... २२६

८६ ५७ भीष्मयुधिष्ठिरयोर्युध्यमानयोर्भीष्मेणाश्वेषु हतेषु रथं त्यक्त्वा युधिष्ठिरो नकुलरथमारुरोह। महारथान्नाशयन्भीष्मः सृञ्जयैः सह युयुधे। विंदानुविंदादिभिर्धृष्टद्युम्नादीनां युद्धम्। अर्जुने सुशर्मादीन् जित्वा स्वशिबिरंगते दुर्योधनादयोऽपि स्वस्वशिबिराणि जग्मुः, अयं सप्तमदिवसयुद्धावहारः... ... ... २२८

## अष्टमदिवसयुद्धम्।

८७ ४० प्रभाते वीरेषु युद्धाय निर्गतेषु भीष्मो महाव्यूहं रचयामास, धृष्टद्युम्नः शकटव्यूहम्। भीष्मादीनां धृष्टद्युम्नादीनां च युद्धार्थमागमनम् ... ... ... २२९

८८ ४४ भीष्मेण सृंजयादिषु हतेषु तेन सह युध्यमानो भीमस्तस्य सारथिं जघान। हते सूते भीष्मरथे प्रद्रुताश्वे सति भीमः सुनाभप्रभृतीनष्ट दुर्योधनभ्रातॄञ्जघान। हतशेषेषु कौरवेषु पलायितेषु भीमं

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | हतेत्युवाच दुर्योधनः सैनिकान्। विलपन्तं दुर्योधनं प्रति भीष्मो भर्त्सयन्नुवाच ... ... | २३० |
| ८९ | ४० | अनुतापपूर्वकं दुर्योधनं निन्दन्तं धृतराष्ट्रं प्रति तन्निन्दारूपं संजयवाक्यम्। धृष्टद्युम्नादिषु भीष्मं प्रति गतेष्वर्जुनादिषु च कौरवान्प्रति गतेषु सत्सु सृंजयैः सह द्रोणस्य युद्धम्। कौरवसैन्यं निघ्नता भीमेन कृतं हस्तिसमूहनाशनं नकुलसहदेवकृतमश्वसमूहनाशनं च ... ... | २३२ |
| ९० | ९३ | संजयः शकुन्यादीनां पाण्डवान्प्रत्यागमनमुक्त्वा इरावतोऽर्जुनपुत्रस्य तज्जन्मादिवृत्तकथनपूर्वकं युद्धार्थमागमनं शशंस। युद्धार्थमागतैर्गजगवाक्षादिभिर्युद्धं कुर्वन्निरावांस्तेषां मध्यात्पञ्च जघान। दुर्योधनप्रेरणया गतेनार्ष्यशृंगिणा राक्षसेन युध्यमानमिरावन्तं स राक्षसो जघान। पुत्रवधमजानन्नर्जुनो भीष्मरक्षिणो राज्ञ आजघान। द्रोणपराक्रमदर्शनेन भीतानां पाण्डवानां मिथः सभयोक्तिः ... | २३४ |
| ९१ | ३१ | इरावन्नाशं दृष्ट्वा महान्तं शब्दं कृत्वा युद्धार्थमागतं घटोत्कचं प्रति दुर्योधनो जगाम। दुर्योधनघटोत्कचयोर्महति युद्धे प्रवृत्ते घटोत्कचः सक्रोधः सन् 'अद्यानृण्यं गमिष्यामि' इत्याद्युवाच ... | २३५ |
| ९२ | ४३ | दुर्योधनघटोत्कचयोर्युध्यमानयोर्दुर्योधनसाहाय्यार्थमागतस्य वंगराजस्य गजं घटोत्कचः शक्त्या जघान। घटोत्कचशब्दं श्रुत्वा भीष्मेण प्रेरितानां द्रोणादीनां घटोत्कचसमीपमागमनं तेन सह तेषां तुमुलं युद्धं च... | २३७ |
| ९३ | ४३ | दुर्योधनं प्रत्यागतस्य घटोत्कचस्य शब्दं श्रुत्वा युधिष्ठिरेण प्रेरिते सत्यधृतिप्रभृतिभिरनुगम्यमाने भीमे आगते उभयसैन्ययोस्तुमुलं युद्धम् ... ... ... ... | २३८ |
| ९४ | ५० | दुर्योधनभीमयोर्युध्यमानयोर्भीमस्य मोहं दृष्ट्वा घटोत्कचादिष्वागतेषु द्रोणप्रेरणया कृपादयोऽप्याजग्मुः। द्रोणभीमयोर्युद्धे प्रसक्ते भीमबाणप्रहारेण मोहितं द्रोणमवलोक्य दुर्योधने आगते गदां गृहीतवन्तं भीमं दृष्ट्वा कौरवा आजग्मुः। नीलाश्वत्थाम्नोर्युध्यमानयोर्नीलं मुह्यन्तं दृष्ट्वा आगतस्य घटोत्कचस्याश्वत्थाम्ना युद्धे प्रसक्ते निवारयत्यपि भीष्मे कौरवसैन्यं प्रदुद्राव। स्वसमीपमागतेन दुर्योधनेन निजपराजये कथिते भीष्मस्तं निवार्य भगदत्तं प्रेरयति स्म स च घटोत्कचं जगाम ... ... | २४० |
| ९५ | ८६ | आगच्छन्तं भगदत्तं दृष्ट्वा आगतानां भीमादीनां महति युद्धे प्रसक्ते भीमो भगदत्तसैन्यं नाशयामास। भीमरथं प्रति भगदत्तेन प्रेषितो गजो भीमादिबाणप्रहारेण पलायमानः पाण्डवसैन्यमर्दयत्। गजनाशार्थं घटोत्कचेन प्रक्षिप्तं शूलं भङ्क्त्वा भगदत्तेन प्रक्षिप्तां शक्तिं सोऽपि जानुन्यारोप्य बभंज। भगदत्तेन विरथीकृते भीमे गदां गृण्हाति तं दृष्ट्वा कौरवा बिभ्युः। भगदत्तेन सह युद्धार्थमागतोऽर्जुनो भीमादिरावद्वधवृत्तांतं शुश्राव ... | २४२ |
| ९६ | ८० | इरावद्वधश्रवणेन विषण्णस्यार्जुनस्यानुतापवाक्यं श्रुत्वा श्रीकृष्णः कौरवान्प्रति वाहान् चोदयामास। अर्जुनं प्रति भीष्मादिष्वागतेषु भीमो नव व्यूढोरस्कादीन्दुर्योधनभ्रातॄञ्जघान, शेषाश्च विदुद्रुवुः। द्रोणभीमयोर्भीष्मा- | |

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

दिभिरर्जुनादीनां च तुमुले युद्धे प्रसक्ते धनुरादिप्रभावर्णनपूर्वकं मृतसैन्याद्यास्तृताया भूमेः शोभां वर्णयति स्म सञ्जयः। ततः कुरुपाण्डवा अवहारं चक्रुः। अयं चावहारोऽष्टमदिवसस्य ... २४५

**नवमदिवसयुद्धम्।**

९७ ४३ दुर्योधनादिषु मंत्रयत्सु दुर्योधनवाक्यं श्रुत्वा कर्णो भीष्मनिंदापूर्वकं 'भीष्मे रणादपयाते अहं पाण्डवान्हनिष्यामि' इत्याद्युवाच। अनुयाथि सज्जीकरणार्थं दुःशासनमाज्ञाप्याहं भीष्ममनुनीयागमिष्यामीत्युक्त्वा गतस्य दुर्योधनस्य भीष्मं प्रत्यनुनयवाक्यम्। ... ... ... २४६

९८ ५१ दुर्योधनवाक्यं श्रुत्वा क्रुद्धो भीष्मोऽर्जुनशंसादिकथनपूर्वकं दुर्योधनं निर्भर्त्स्य 'अहं तु सोमकानित्याद्युक्त्वा सुखं स्वपिहि गांधारे' इत्यादि प्रतिजज्ञे। भीष्मवाक्यं श्रुत्वा शिबिरमागतेन दुर्योधनेन सेना सज्जीकरणमाज्ञाप्य भीष्मवाक्यकथनपूर्वकं भीष्मरक्षणार्थं दुःशासनादीनाज्ञापयामास। दुर्योधनवाक्यात्तथा कृत्वा भीष्मं पुरस्कृत्य सेनया सहागतं दुःशासनं निरीक्ष्यार्जुनोऽद्य शिखण्डिनं भीष्माग्रे कुरु, तस्याहं गोप्तेत्याद्युवाच धृष्टद्युम्नम् ... ... २४८

९९ ३० युद्धार्थं निर्गच्छन् भीष्मः सर्वतोभद्रव्यूहं रचयामास युधिष्ठिरादयश्च महाव्यूहम्। उभयोर्युद्धार्थं समागमे दुर्निमित्तदर्शनम् ... ... ... २४९

१०० ५४ युद्धारंभे दृढं युध्यमानस्याभिमन्योर्बाणप्रहारेण पीडितानां सैन्यानामार्तनादं श्रुत्वा दुर्योधनेन प्रेरितस्यार्ष्यशृंगेस्तेन सह युद्धम्। द्रौपदेयादीन् पराजितवता राक्षसेन सहाभिमन्योः पुनर्युद्धम् ... ... ... २५१

१०१ ५९ अलंबुषाभिमन्युप्रभृतीनां युद्धविषये धृतराष्ट्रप्रश्ने संजयस्य तत्कथनम्। अभिमन्युबाणप्रहारेण पीडितोऽलंबुषो रथं त्यक्त्वा पलायनपरो बभूव। भीष्मादिभिः सौभद्रस्य कृपस्यार्जुनसात्यकिभ्यां सात्यकेरश्वत्थाम्ना च युद्धम्। द्रोणसात्यक्योर्युद्धानंतरमर्जुनद्रोणयोः समागमः ... ... ... ... २५२

१०२ ३९ द्रोणार्जुनयोर्युद्धविषये धृतराष्ट्रप्रश्ने संजयस्य तत्कथनम्। द्रोणार्जुनयोर्युध्यमानयोर्दुर्योधनाज्ञया द्रोणसाह्यार्थमागतैः सुशर्मादिभिरर्जुनस्य युद्धम्। भीमो गजानीकं दृष्ट्वा गदामादाय रथादवप्लुत्य तज्जघान, गजाश्च तद्भयात्पलायनं चक्रुः ... २५४

१०३ ४७ मध्यंदिने भीष्मे पाण्डवसेनां प्रति तेन सह धृष्टद्युम्नादीनां युद्धम्। भीमादिषु युद्धार्थं भीष्मसमीपागतेषु कौरवपाण्डवयोस्तुमुलयुद्धे प्रवृत्ते शोणितनदी प्रावर्तत। क्षत्रियेषु दुर्योधनं धृतराष्ट्रं च निंदत्सु दुर्योधनस्य भीष्मादीन् प्रति सक्रोधवाक्यं कथयित्वा संजयो धृतराष्ट्रं निनिंद ... ... २५५

१०४ ३८ सुशर्मप्रभृतिभिरर्जुनस्य युद्धे प्रसक्ते तद्भयात्सुशर्मसहायभूतेषु महारथेषु पलायितेषु तत्साहाय्यार्थं दुर्योधन आजगाम। अर्जुनसाहाय्यार्थं पाण्डवेष्वागतेषु भीष्मादीनां संकुलं युद्धम्। द्रोणभयाद्द्रुपदेऽपयाते

अध्यायः श्लोकाः विषयः पृष्ठम्।

भीमबाल्हिकयोः सात्यकिभीष्मयोश्च युद्धम्... ... २५७

१०५ ३५ क्रुद्धं भीष्मं दृष्ट्वा दुर्योधनेन प्रेरितः ससैन्यो दुःशासनस्तत्साहाय्यार्थं जगाम। पाण्डवनिवारणार्थं दुर्योधनेन प्रेषिते सैन्ये युधिष्ठिरादिभिः पराजिते दुर्योधनप्रेरणया आगतेन शल्येन सह तेषां युद्धम् ... ... २५८

१०६ ८५ भीमादीन्प्रति बाणांस्त्यजति भीष्मे नकुलादिषु च बाणैः प्रहरत्सु क्रुद्धस्य महद्युद्धं कुर्वतस्तस्य भयात्पाण्डवसेना भङ्गमाप। सैन्यभङ्गं विलोक्यार्जुनं प्रोत्साहयन् श्रीकृष्णस्तद्वाक्यं श्रुत्वा भीष्मसमीपे रथं प्रेषयामास। भीष्मेण बाणैराच्छादितेऽपि रथेऽर्जुनस्य मृदुयुद्धतां संप्रेक्ष्य क्रुद्धः श्रीकृष्णः प्रतोदं गृहीत्वा रथादवप्लुत्य प्रत्यधावत्। आगच्छन्तं तं श्रीकृष्णं 'प्रति एह्येहि पुण्डरीकाक्ष!' इत्यादिनाऽनुनयति भीष्मेऽर्जुनेन यथाकथंचिन्निगृह्य 'निवर्तस्व' इत्याद्युक्त्वा भीष्मवधे प्रतिज्ञाते स पुना रथमारुरोह। भीष्मे शरवृष्टिं कुर्वति तद्भयेन सैन्यं पलायते स्म ... २६१

१०७ १०७ सूर्येऽस्तमुपागते युधिष्ठिरोऽवहारं चकार, अयं नवमदिवसावहारः। भीष्मपराक्रमं दृष्ट्वा चिंतापूर्वकं मंत्रयत्सु पाण्डवेषु कृष्णेन सांत्वितो युधिष्ठिरस्तदनुमत्या वधोपायजिज्ञासया भीष्मं प्रति कृष्णादिभिः सह जगाम युधिष्ठिरादीन् प्रति भीष्मेण स्वागतप्रश्ने कृते युधिष्ठिरस्तद्वधोपायं पप्रच्छ। भीष्मकथितमात्मवधोपायं श्रुत्वा युधिष्ठिरादिषु स्वशिबिरमागतेषु भीष्मेण सह युद्धमनिच्छन्तमर्जुनं प्रति श्रीकृष्ण उपदिदेश। शिखण्डिनं पुरस्कृत्येत्याद्यर्जुनवाक्यं श्रुत्वा सर्वे हृष्टाः सन्तः स्वानि स्वानि शयनानि भेजिरे... ... ... ... २६४

दशमदिवसयुद्धम्।

१०८ ६० युद्धार्थं निर्गतैः पाण्डवैर्व्यूहे रचिते कौरवेषु चागतेषु भीष्मस्य महद्युद्धम्। बाणांस्त्यजन्तं शिखण्डिनं प्रति भीष्मेण 'त्वया नाहं योत्स्ये' इत्युक्ते शिखण्डी 'ध्रुवं च त्वां हनिष्यामि' इत्याद्युक्त्वा बाणान् मुमोच। अर्जुनः शिखण्डिनं प्रति 'अहं त्वामनुयास्यामि' इत्याद्युक्त्वा भीष्मं प्रति गन्तुं प्रेरयामास ... ... ... ... २६६

१०९ ३९ 'कथं शिखण्डी' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। भीष्मे महायुद्धं कुर्वत्यर्जुन आगत्य बाणान् विसृजन् कालवच्चकार, तद्भयात् कौरवसैन्यं दुद्राव च। तत् दृष्ट्वा दुर्योधनेनोक्तो भीष्मः 'अहं वाद्य हतः शेषे' इत्यादि प्रतिज्ञाय पाण्डवसैन्यं नाशयामास ... ... ... ... २६७

११० ४८ अर्जुनप्रेरितः शिखण्डी भीष्मं प्रति जगाम तमनु धृष्टद्युम्नादयोऽपि। योधप्रतियोधानां द्वंद्वयुद्धानि। धृष्टद्युम्नोऽर्जुनप्रशंसापूर्वकं सर्वान् सैनिकान् भीष्मं प्रेरयात स्म। दुःशासनार्जुनयोर्युद्धम् ... ... २६९

१११ ५८ अलम्बुषसात्यक्योर्युध्यमानयोरागतेन भगदत्तेन सह सात्यकेर्युद्धम्। दुर्योधनप्रेरितानां तद्भ्रातॄणां सात्यकिना सह युद्धम्। अभिमन्युकाम्बोजप्रभृतीनां द्वंद्वशो युद्धम् ... ... ... २७१

११२ ४१ युध्यमानो द्रोणो दुर्निमित्तानि

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | दृष्ट्वाऽश्वत्थामानं प्रति तत्कथनपूर्वकमर्जुनाजय्यात्वादिकं कथयामास ... ... ... | २७२ |
| ११३ | ५३ | भगदत्तादिभिर्दशभिर्भीमस्य युद्धे प्रसक्ते तत्साहाय्यार्थमर्जुने आगते सति दुर्योधनप्रेरितः सुशर्मा तं प्रत्याजगाम ... | २७४ |
| ११४ | ४७ | भीमार्जुनयोः कौरवैः सह युध्यमानयोरर्जुनपराक्रमं दृष्ट्वा दुर्योधनादिषु भीष्मसमीपं गतेषूभौ कौरवसैन्यं नाशयामासतुः। शल्यार्जुनयोर्भीममागधयोर्द्रोणभीमयोश्चयुद्धम्। भीष्मादीनां पाण्डवादीनां च परस्परसमीपगमनोत्तरं महद्युद्धम् ... | २७५ |
| ११५ | ४३ | भीष्मयुद्धजिज्ञासोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्य तत्कथनप्रतिज्ञा। भीष्मोऽयुतशो योधान् हत्वा निर्विण्णः स्वात्मनाशाय समीपस्थं युधिष्ठिरं प्रति प्रेरयति स्म। तच्छ्रुत्वा शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवेषु भीष्मं प्रति गतेषु दुर्योधनाज्ञया दुःशासनादयोऽर्जुनं प्रत्याजग्मुः। सात्यकिप्रभृतिभिरश्वत्थामप्रभृतीनां युद्धम्... | २७७ |
| ११६ | ८० | अभिमन्युदुर्योधनप्रभृतीनां द्वंद्वशो युद्धवर्णनं द्रोणधृष्टद्युम्नयोः सविस्तरं युद्धवर्णनं च। योद्धुं भीष्मं प्रति गच्छन्नर्जुनो मध्ये युद्धायागतस्य भगदत्तस्य गजं प्रति बाणान्वर्षन् शिखण्डिनं प्रति 'याहि भीष्मं जहि' इत्युवाच। भगदत्ते द्रुपदं प्रति गते शिखण्डिनं पुरस्कृत्य युद्धं प्रवर्तयन्नर्जुनः स्वसमीपागतान् कौरववीरान्निजग्राह। शिखण्डिनि बाणान्वर्षति क्रुद्धो भीष्मोऽस्त्राणि क्षिप्त्वा सोमकान्निजघ्नन् घोरं युद्धं चकार ... ... ... ... | २७९ |
| ११७ | ६४ | शिखण्डिना दशभिर्भल्लैर्हृदि ताडितोऽपि भीष्मस्तस्य स्त्रीत्वं बुद्ध्वा न प्रतिजह्रे। अर्जुनप्रेरणया शिखण्डिनि बाणान् वर्षत्यपि भीष्मस्तमनादृत्यार्जुनं प्रति बाणांश्चिक्षेप। अर्जुनदुःशासनयोर्युध्यमानयोरर्जुनेन विजितस्यापि दुःशासनस्य पुनर्युद्धम्। शिखण्डिनो बाणवृष्टिं सहमाने भीष्मेऽर्जुनो दुर्योधनप्रेरणया स्वसमीपागतान् योधान् प्रति बाणान् ववर्ष। अर्जुनो बाणप्रहारेण नानाविधान् योधान्नाशयित्वा दुःशासनमागत्य तस्य सारथिं हयांश्च जघान। अर्जुनेन विरथीकृताः कृपादयो युद्धात्संप्राद्रवन्। सञ्जयो युध्यमानस्यार्जुनस्य स्वरूपं वर्णयन् शोणितनद्यादिकं युद्धभूमिं च वर्णयामास। अभिमुखमायान्तं भीष्मं प्रति शिखण्डिनि गतेऽर्जुनो भीष्ममोहनपूर्वकं सैन्यं निजघ्ने ... ... ... ... | २८१ |
| ११८ | ५४ | निर्मर्यादे युद्धे प्रवृत्ते शल्यादिभिर्विद्धानां भीष्मेण निकृत्तानां पाण्डवसैनिकानां वर्णनम्। पार्थे सेनां मारयति पराक्रान्तं भीष्ममवलोक्य धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्प्रति जग्मुः। दुर्योधनकृतक्लेशान् स्मृत्वा पाण्डवेषु निर्भयं युध्यमानेषु सेनापतेर्धृष्टद्युम्नस्य प्रेरणया योधा भीष्मं प्रति गत्वा शरान् ववृषुः। भीष्मो रामात्प्राप्तामस्त्रशिक्षां स्मृत्वा गजाश्वादीन् निघ्नन् शतानीकं वीरं जघान, पराक्रान्तं भीष्मं दृष्ट्वा श्रीकृष्णेन प्रेरितस्यार्जुनस्य बाणान् स खण्डयामास। भीष्मबाणैः पीड्यमानेषु पाञ्चालराजादिष्वर्जुनेन रक्ष्यमाणे शिखण्डिनि भीष्मं प्रति गते सात्यकिप्रभृतयोऽपि तमभि- | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् । |
|---|---|---|---|
| | | दुद्रुवुः । सात्यकिप्रभृतीनां बाणान् विधूय सेनां प्रविशति शिखण्डिनमुपेक्षमाणे भीष्मे मत्स्यादिभिर्बाणैराच्छन्नेऽर्जुनस्य शिखण्डिपुरस्कारेण तत्समीपगमनम् ... ... ... | २८३ |
| ११९ | २२ | पाण्डवैर्बाणैस्ताडितोऽपि भीष्मोऽव्यथमानो युगान्ताग्निसमो बभौ । पाञ्चालराजादीनवमत्य सेनामध्यं प्राप्य सात्यक्यादीन् विध्यति भीष्मे तद्बाणाग्निवार्थं ते बाणांस्तत्यजुः । शिखण्डिपुरस्कारेण युध्यमानेनार्जुनेन भीष्मधनुषि छिन्ने तदसहमाना द्रोणादयोऽर्जुनाभिमुखं जग्मुः । अर्जुनसाहाय्यार्थमागतेषु सात्यकिप्रमुखेषूभयोः सेनयोर्युद्धे प्रवृत्तेऽर्जुनरक्षितः शिखण्डी भीष्मस्य धनुरादिकं चिच्छेद । छिन्नशक्तिदर्शनेन चिन्ताक्रान्तो भीष्मो यदा स्वमृत्युं बहु मेने तदा वियत्स्था ऋषयो वसवश्चानुमतिं दुंदभिनादपूर्वकं ददुर्देवाश्च पुष्पाणि ववृषुः । शिखण्डिबाणप्रहारैरचलस्य भीष्मस्यार्जुनो मर्माणि विद्ध्वा ध्वजादिकं चिच्छेद । अर्जुनबाणेनातिविद्धो भीष्मो दुःशासनं प्रति तस्याजय्यत्वं कथयित्वा तद्बाणप्रहारवेदनामभिनयपूर्वकं प्रदर्श्य तं प्रति शक्तिं चिक्षेप । अर्जुनेन शक्तौ छिन्नायां भीष्मः खड्गचर्मणी गृहीत्वा यावद्रथादनवरूढस्तावत्तच्चर्म शतधा चिच्छेद । युधिष्ठिरप्रेरितेषु सैन्येषु भीष्मं प्रत्यागतेषु तज्जयेप्सया धार्तराष्ट्रेषु चागतेषूभयोः सैन्ययोस्तुमुलं युद्धम् । अर्जुनेन निशितैर्बाणैर्निरन्तरं सर्वाङ्गेषु विद्धो भीष्मः प्राक्शिरा रथात्पपात । दिव्यभावं गतो भीष्मो दैवीं वाचं श्रुत्वोत्तरायणप्रवृत्तिं यावत्प्राणान्धारयति स्म । गङ्गया प्रेषितान्हंसरूपेणागतान्महर्षीन् प्रति भीष्मो नाहं दक्षिणायने गन्तेत्याद्युक्त्वा शरशय्यामधिशिश्ये । भीष्मे पतिते पाण्डवेषु सिंहनादं नदत्सु रुदति च दुर्योधने शङ्खान् वादयत्सु तेषु भीमो ननादोच्चैः । ऋषिषु पितृषु च प्रशंसत्सु भीष्मो महोपनिषदं जपन्नुत्तरायणं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ ... ... ... | २८७ |
| १२० | ७१ | 'कथमासंस्तदा योधाः' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । मेदिनीस्पर्शं वर्जयित्वा भीष्मे शयाने भूतानि हाहाशब्दपूर्वकं 'अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठः' इत्यादिना तं प्रशशंसुः । पतितं भीष्मं दृष्ट्वा दुःशासनो द्रोणसमीपं गत्वा तद्वधं निवेदयति स्म । तच्छ्रुत्वा द्रोणो मोहं प्राप्य पुनः संज्ञां लब्ध्वा सेनां निवारयामास । सर्वेषु योधेषु भीष्मसमीपमागत्याभिवंदनपूर्वकमुपविष्टेषु भीष्मः स्वागतप्रश्नं कृत्वा लम्बमाने स्वशिरस्युपधानं प्रार्थयामास । मृदून्युपधानानि समर्पयतो राज्ञः प्र 'नैतानि वीरशय्यासु' इत्याद्युक्त्वा भीष्मेण तदर्थमाज्ञप्तोऽर्जुनस्त्रिभिर्बाणैरुपधानं ददौ । तादृगुपधानेन तुष्टो भीष्मोऽर्जुनं प्रशस्य 'शयनस्यानुरूपं मे' इत्याद्युक्त्वा सर्वान्प्रति 'पश्यध्वमुपधानं मे' इत्याद्यभिधाय रक्षणार्थं मां परितः परिखा खन्यतामित्युवाच । आगतेषु शल्योद्धरणवैद्येषु भीष्मवाक्याद्दुर्योधनेन विसर्जितेषु कौरवाः पाण्डवाश्च भीष्मरक्षां विधाय स्वस्वनिवेशनानि जग्मुः । भीष्मपतनेन हृ— | |

| अध्यायः | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम्। |
|---|---|---|---|
| | | ष्ठान् पाण्डवान् प्रत्यागतस्य श्रीकृष्णस्य युधिष्ठिरेण सह संवादः ... ... ... | २८९ |
| १२१ | ५७ | व्युष्टायां निशि पुनः स्वसमीपागतान् सर्वान् प्रति पिपासाक्रान्तो भीष्मो जलमयाचत। राजभिर्जलकुंभेष्वानीतेषु तदनिच्छुर्भीष्मोऽखिलान्विनिन्दन्नर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यब्रवीत्। समीपमागतोऽर्जुनो भीष्मेण जले प्रार्थिते रथमारुह्य गाण्डीवमाकृष्य भीष्मदक्षिणपार्श्वभूमिं पर्जन्यास्त्रेण बिभेद। अर्जुनबाणविद्धाया भूमेर्निर्गतया वारिधारया भीष्मस्तुतोष, तद्दृष्ट्वा सर्वेषु विस्मितेषु कौरवाश्चकंपिरे। तेन कर्मणा तुष्टो भीष्मोऽर्जुनप्रशंसां विधाय दुर्योधनमाचिक्षेप। तच्छ्रुत्वा दीनमनसं दुर्योधनं प्रति भीष्मः पाण्डवानामजय्यत्वकथनपूर्वकं तेभ्यो राज्यार्धं दीयतामित्याद्युक्त्वा तूष्णीं बभूव ... ... ... | २९१ |
| १२२ | ३९ | तूष्णींभूतेषु राजसु स्वस्वालयेषु गतेषु भीष्मं हतं श्रुत्वा कर्णस्तत्समीपमाजगाम। 'राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ' इत्यादि कर्णवाक्यं श्रुत्वा नेत्रे उन्मील्य भीष्म एह्येहीत्युक्त्वा प्रशंसापूर्वकं पाण्डवास्ते भ्रातरस्तैः संगच्छस्वेत्युवाच। तच्छ्रुत्वा कर्णः "कुन्त्याहं त्यक्तः" इत्याद्यभिधाय "धनंजयेनाहं योत्स्ये, मामनुजानीहि, मद्दोषो नालोचनीयः" इत्याह। भीष्मो न चेच्छक्यमवस्रष्टुमित्याद्युक्त्वा युद्धानुज्ञां दत्त्वा क्षत्रियस्य युद्धादन्यच्छ्रेयो नास्तीत्युवाच। तच्छ्रुत्वा कर्णो दुर्योधनं प्रति जगाम ... ... ... ... | २९३ |
| | | श्रवणमाहिमा ... ... | २९३ |
| | | भविष्यत्पर्वसूचनपूर्वकं भीष्मपर्वसमाप्तिः ... ... | २९४ |

॥ समाप्तेयं भीष्मपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

शुभं भवतु

ॐ

धृतराष्ट्र संजय
संवादः।

कुरु पाण्डव युद्धम्।

ॐ

# ॥ महाभारतम् ॥

## भीष्मपर्व ।

—६—

### जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १

जनमेजय उवाच ।
कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥ १

वैशम्पायन उवाच
यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते ॥ २
तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः ।
कौरवाः समवर्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः ॥ ३
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाभिमुखा रणे ॥ ४
अभियाय च दुर्धर्षां धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः ॥ ५
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिबिराणि सहस्रशः ।
कारयामास विधिवत् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ६
शून्या च पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवासीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ ७
यावत्तपति सूर्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम् ।
तावदेव समायातं बलं पार्थिवसत्तम
एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम् ।
पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान् वनानि च ॥ ९
तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ ।
व्यादिदेश सबाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १०

१

### नीलकण्ठी टीका—

श्रीलक्ष्मणार्यगुरवे जडजन्तुचक्षु-
र्बन्धापनोदनमृते न हि रोचतेऽन्यत् ।
पादावनेजनमुखाऽपचितिस्ततस्तु
श्रीभीष्मपर्वणि विदध्महि भावदीपम् ॥

पूर्वस्मिन् पर्वणि भगवद्भक्तः सत्यपि सामर्थ्ये यः सत्यं पालयत्यैश्वर्यं च न प्रकाशयति काले प्राप्तेऽन्यस्मै उपकरोति चेति पाण्डवाचारप्रदर्शनव्याजेन दर्शितम् । तमेवंभूतं स्वयं भगवान् हितोपदेशेनानुगृह्णाति तदीयां प्रतिज्ञां च स्वप्रतिज्ञाबाधेनैव सत्यां करोतीत्यर्जुनोपदेशेन भीष्मवधार्थं भगवतः शस्त्रधारणेन च दर्शयिष्यन् भीष्मपर्वारभते । पूर्वत्र युद्धोद्योगं श्रुत्वा युद्धं श्रोतुकामो जनमेजय उवाच **कथं युयुधिरे वीरा** इति ॥ १ ॥ **तपःक्षेत्र इति ।** खड्गधारातीर्थेऽस्मिन् स्नानमत्युचितमिति भावः ॥ २ ॥ जिगीषन्तोऽन्योन्यं जेतुमिच्छन्तः ॥ ३ ॥ **अभियाय** अभ्येत्य न्यविशन्त पाण्डवीया इति शेषः ॥ ५ ॥ **बाह्यं** बहिः ॥ ६ ॥ यावत्तपति सूर्य इत्यनेन कृत्स्नं सप्तद्वीपात्मकं भूवलयं जम्बूद्वीपशब्देनोच्यते लिंगसमवायाच्छत्रिणो गच्छन्तीतिवत् ॥ ८ ॥ सबाह्यानां कैवर्तम्लेच्छान्ध्रादिप्रान्त्यदेशवासिनो बाह्यास्तत्सहितानाम् ॥ १० ॥

शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः ।
एवंवेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत ॥ ११
अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाभरणानि च ।
योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥ १२
दृष्ट्वा ध्वजाग्रं पार्थस्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पाण्डवम् ॥ १३
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १४
दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पञ्चाला युद्धनन्दिनः ।
दध्मुः प्रीता महाशङ्खान् भेरीश्च मधुरस्वनाः ॥ १५
ततः प्रहृष्टां तां सेनामभिवीक्ष्याथ पाण्डवाः ।
बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ १६
ततो हर्षं समागम्य वासुदेवधनञ्जयौ ।
दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शङ्खौ रथे स्थितौ १७
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः ।
श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ १८
यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः ।
त्रसेयुर्निनदं श्रुत्वा तथाऽसीदत तद्बलम् ॥ १९
उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अस्तङ्गत इवादित्ये सैन्येन सहसाऽऽवृते ॥ २०
ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान् ।
दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१
वायुस्ततः प्रादुरभून्नीचैः शर्करकर्षणः ।
विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२
उभे सैन्ये च राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम् ।
कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३
तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु सङ्गमः ।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४
शून्याऽऽसीत्पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवासीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ २५
तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः ।
ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥ २६
धर्मान् संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ।
निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ २७
यथापरं यथायोगं न च स्यात् कस्यचित् पुनः ।
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम् ।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन २८
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९
यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम् ।
समाभाष्य प्रहर्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३०
एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा ।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥ ३१
न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु× ।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्तव्यं कथञ्चन ॥ ३२
एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः ।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम् ॥ ३३
निविश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः ।
हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सैन्यशिक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

भक्ष्यादिदानफलमाह-**एवमिति** । एवंवेदी विद्वान् इति अन्यैः पाण्डवेयो ज्ञातव्य इत्येतदर्थमित्यर्थः॥ ११ ॥ अभिज्ञानानि स्वकीयचिह्नानि स्वीया एव स्वीयान्मा निहन्युरित्येतदर्थम् ॥ १२ ॥ शकृत् पुरीषम् ॥ १८ ॥ असीदत अवसन्नमभूत् ॥ १९ ॥ शर्कराः स्थूलवालुकाः कर्षयतीति तथा विनिघ्नन् शर्कराभिरित्यर्थः ॥ २२ ॥ सागरक्षुभितोपमे क्षुभितसागरोपमे ॥ २३ ॥ धर्मान् पराङ्मुखस्त्यक्तशस्त्रः शरणागतोऽन्येन संयुक्तश्च न हन्तव्य इत्यादीन् ॥ २७ ॥ धर्मसंस्थापनमेवाह-**यथापरमिति** । यथायोगं तुल्ययोर्योगस्यानतिक्रमणं यथा येन प्रकारेण अपरमनुत्कृष्टमन्याय्यमित्यर्थः ॥ तथा न कस्यचित्तुल्ययोगातिक्रमः स्यादिति भावः ॥ २८ ॥ गजधूर्गतः गजस्कन्धगतः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ × शस्त्रोपजीविषु इति पाठान्तरम् ।

## २

वैशम्पायन उवाच ।

ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः ।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १
भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः ।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान् भूतभव्यभविष्यवित् ॥ २
वैचित्रवीर्यं राजानं सरहस्यं ×ब्रवीदिदम् ।
शोचन्तमार्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा ॥ ३

व्यास उवाच ।

राजन् परीतकालास्ते पुत्राश्चान्ये च पार्थिवाः ।
ते हिंसन्तीव सङ्ग्रामे समासाद्येतरेतरम् ॥ ४
तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्स्वेव भारत ।
कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः ५
यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान् विशांपते ।
चक्षुर्ददानि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय ॥ ६

धृतराष्ट्र उवाच ।

न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम ।
युद्धमेतत्त्वशेषेण शृणुयां तव तेजसा ॥ ७

वैशम्पायन उवाच ।

एतस्मिन्नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति ।
वराणामीश्वरो व्यासः सञ्जयाय वरं ददौ ॥ ८
एष ते सञ्जयो राजन् युद्धमेतद्वदिष्यति ।
एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति ॥ ९
चक्षुषा सञ्जयो राजन् दिव्येनैव समन्वितः ।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥ १०
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि ।
मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति सञ्जयः ११
नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः ।
गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद्विमोक्ष्यति १२
अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः १३
दिष्टमेतन्नरव्याघ्र नाभिशोचितुमर्हसि ।
न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १४

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवान् कुरूणां प्रपितामहः ।
पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह ॥ १५
इह युद्धे महाराज भविष्यति महान् क्षयः ।
तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये ॥ १६
श्येना गृध्राश्च काकाश्च कङ्काश्च सहिता बकैः ।
संपतन्ति नगाग्रेषु समवायांश्च कुर्वते ॥ १७
अभ्यग्रं च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः ।
क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम् ॥ १८
निर्दयं चाभिवाशन्तो भैरवा भयवेदिनः ।
कङ्काः प्रयान्ति मध्येन दक्षिणामभितो दिशम् १९
उभे पूर्वापरे सन्ध्ये नित्यं पश्यामि भारत ।
उदयास्तमने सूर्यं कबन्धैः परिवारितम् ॥ २०
श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः ।
त्रिवर्णाः परिघाः सन्धौ भानुमन्तमवारयन् २१
ज्वलितार्केन्दुनक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षयम् ।
अहोरात्रं मया दृष्टं तत्क्षयाय भविष्यति ॥ २२
अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्तले ॥ २३
स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥ २४
अन्तरिक्षे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः ।
प्रणादं युध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये ॥ २५

---

२

**तत इति** ॥ १ ॥ भविष्यति भाविनि ॥ २ ॥ हिंसन्तीव नाशयिष्यन्त्येव ॥४॥ पर्यायं वैपरीत्यम् ॥ ५ ॥ निशामय पश्य ॥ ६ ॥ न परोक्षमिति पाठे प्रत्यक्षम् ॥७॥ नगाग्रेषु वृक्षाग्रेषु संपतन्ति एकीभूय पतन्ति समवायान् सङ्घान् ॥ १७ ॥ अभ्यग्रं समीपं क्रव्यादा मांसभक्षकाः सृगालकाकादयः ॥ १८ ॥ वाशन्तः शब्दं कुर्वन्तः ॥१९॥ परिघाः परिवेषाः कृष्णग्रीवाः श्वेतलोहितपर्यन्ताश्च मध्ये कृष्णास्ततो बहिः श्वेतास्ततो बाह्यलोहिता इति त्रिवर्णाः सन्धौ सन्ध्यायां अवारयन् अवेष्टयन् ॥ २१ ॥ निर्विशेषदिनक्षयमहोरात्रं निश्चयेन विगतः शेषो यस्य तस्य दिनस्य तिथेः क्षयो यस्मिन् सूर्योदयद्वयास्पर्शिनी क्षयतिथिर्यस्मिन् अहोरात्रे तन्मया दृष्टम् । तदेव विशिनष्टि- **ज्वलितेति** । अर्केन्द्वोर्नक्षत्रममावास्यायामुभाभ्यामाक्रान्तं नक्षत्रं तदेव ज्वलितं पापग्रहाक्रान्तं यस्मिन् दर्शे क्षयतिथिः तन्नक्षत्रे च पापग्रह इत्ययं महान् दुर्योग इत्यर्थः ॥ २२ ॥ पद्मवर्णे रक्तपद्मवर्णे । 'लोहिनी द्यौर्भवति यथा माञ्जिष्ठा' इति श्रुतेर्दिवो रक्तत्वमशुभसूचकम् ॥२३॥ वराहो गृहकोलो वृषदंशो मार्जारस्तयोर्भूचरयोरप्यन्तरिक्षे उत्प्लुत्य युद्ध्यतोः प्रणादम् ॥ २५ ॥ × अकारलोप आर्षः ।

देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च ।
वमन्ति रुधिरं चास्यैः खिद्यन्ति प्रपतन्ति च २६
अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशांपते ।
अयुक्ताश्च प्रवर्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २७
कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा
सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः २८
गृहीतशस्त्राः क्रोशन्ति चर्मिणो वाजिपृष्ठगाः ।
अरुणोदये प्रदृश्यन्ते शतशः शलभव्रजाः ॥ २९

उभे सन्ध्ये प्रकाशन्ते दिशो दाहसमन्विते ।
पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥ ३०
या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसंमता ।
अरुन्धती तयाऽप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥ ३१
रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजन् शनैश्चरः ।
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद्भयम् ३२
अनभ्रे च महाघोरः स्तनितः श्रूयते स्वनः ।
वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि श्रीवेदव्यासदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

व्यास उवाच ।
खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः ।
अनार्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥ १
गर्भिण्योऽजातपुत्राश्च जनयन्ति विभीषणान् ।
क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि सहाश्नन्ति परस्परम् २
त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः ।
द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ३
जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः ।
त्रिपदाः शिखिनस्तार्क्ष्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ॥
तथैवान्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम् ।
वैनतेयान् मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ॥ ५
गोवत्सं वडवा सूते श्वा सृगालं महीपते ।

कुक्कुरान् करभाश्चैव शुकाश्चाशुभवादिनः ॥ ६
स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः ।
जातमात्राश्च नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥
पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च ।
नृत्यन्ति परिगायन्ति वेदयन्तो महद्भयम् ॥ ८
प्रतिमाश्चालिखन्त्येताः सशस्त्राः कालचोदिताः ।
अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥ ९
अन्योन्यमभिमृद्नन्ति नगराणि युयुत्सवः ।
पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥ १०
विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाप्युपशाम्यति ।
अभीक्ष्णं वर्तते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ११

---

अयुक्ता अश्वैरयोजिता अपि प्रवर्तन्ते चलन्ति महान्तो रथा महारथाः ॥ २७ ॥ गृहीतशस्त्राः आत्तलोहा लोहतुण्डा इति यावत्। 'शस्त्रमायुधलोहयोः' इत्यमरः। चर्मिणो भृङ्गरिटिसंज्ञाः कृष्णशलभविशेषाः। 'चर्मी फलकपाणौ स्याद्भूर्जे भृङ्गरिटावपि' इति **मेदिनी**। ते वाजिपृष्ठगा अश्वांस्तुदन्तो दृश्यन्त इत्यर्थः ॥ २९ ॥ व्यावृत्तं नष्टं लक्ष्महीनश्चन्द्रो दृश्यत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ स्तनितः स्वनो गर्जितरूपः शब्दः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

**खरा इति** । खराः प्रजायन्ते मिथुनीभवन्ति उत्पद्यन्त इति वा ॥ १ ॥ क्रव्यादाः सारमेयादयः ॥ २ ॥ विषाणिनः शृङ्गवन्तस्तार्क्ष्या एव ॥ ४ ॥ वडवा अश्वा, श्वा शुनी, करभो मृगविशेषः। 'करभः कलभो वाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे' इति **विश्वः** ॥ ६ ॥ प्रजायन्ते जनयन्ति ॥ ७ ॥ पृथग्जनस्य नीचजनस्य संबन्धिनः क्षुद्रकाः व्यङ्गाः चण्डालादिषु जाताः काणकुब्जादय इत्यर्थः। 'क्षुद्रा व्यङ्गा नटी' इत्यादि **मेदिनी** ॥ ८ ॥ नगराणि कृत्रिमाणि शिशव एवावमृद्नन्ति पद्मानि महान्ति उत्पलानि क्षुद्राणीति भेदः। कुमुदानि चन्द्रोदयविकासीनि तान्येव ॥ १० ॥ वर्तते वर्तयति दीप्यत इत्यर्थः। नित्यं दावदाहो भवतीति यावत्। कल्पत इति पाठेऽपि स एवार्थः। कार्तिक्याः परं हि संग्रामारंभस्तत्र तुलास्थमर्कं राहुरुपैति ॥ ११ ॥

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।
अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति ।
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३
मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः ।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४
शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ।
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥ १५
श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः ।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६
ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्तते ।
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ ।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥१८
सर्वसस्यपरिच्छन्ना पृथिवी सस्यमालिनी ।
पञ्चशीर्षा यवाश्चापि शतशीर्षाश्च शालयः ॥१९
प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत् ।
ता गावः प्रस्नुता वत्सैः शोणितं प्रक्षरन्त्युत २०
निश्चेरुरर्चिषश्चापात् खड्गाश्च ज्वलिता भृशम् ।
व्यक्तं पश्यन्ति शस्त्राणि संग्रामं समुपस्थितम्२१
अग्निवर्णा यथा भासः शस्त्राणामुदकस्य च ।
कवचानां ध्वजानां च भविष्यति महाक्षयः॥२२
पृथिवी शोणितावर्ता ध्वजोडुपसमाकुला ।
कुरूणां वैशसे राजन् पाण्डवैः सह भारत ॥ २३
दिक्षु प्रज्वलितास्याश्च व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।
अत्याहितं दर्शयन्तो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २४
एकपक्षाक्षिचरणः शकुनिः खचरो निशि ।
रौद्रं वदति संरब्धः शोणितं छर्दयन्निव ॥ २५
शस्त्राणि चैव राजेन्द्र प्रज्वलन्तीव संप्रति ।
सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा ॥ २६
संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ॥ २७
चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम् ।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८
अशोभिता दिशः सर्वाः पांसुवर्षैः समंततः ।
उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् २९

---

तदैव श्वेतो ग्रहः केतुश्चित्रामतिक्रामति स्वात्यादौ वर्तते । नित्यं समसप्तकस्थौ राहुकेतू इदानीमेकराशिगतौ महानिष्टसूचकाविति भावः ॥ १२ ॥ धूमकेतुरुपग्रहविशेषः । स पुष्यं क्षत्रियनक्षत्रमाक्रम्य तिष्ठति । तथा वक्ष्यमाणरीत्या ज्येष्ठास्थेनापि केतुना पुष्यो विद्धस्तथा च स्वनक्षत्रे क्रूराक्रान्ते क्रूरविद्धे च सत्यवश्यं क्षत्रियाणां नाशो भवतीत्यर्थः । यथोक्तम्–'कृत्तिकायां तथा पुष्ये रेवत्यां च पुनर्वसौ । वेधे सति क्रमाद्वेधो वर्णेषु ब्राह्मणादिषु ' इति **नरपतिविजये** ॥ १३ ॥ भगं नक्षत्रं पूर्वाफल्गुनी श्रुतिमते तूत्तराफल्गुनी ॥ १४ ॥ पूर्वे प्रोष्ठपदे पूर्वाभाद्रपदानक्षत्रे समारुह्य परिक्रम्य परिघाख्य उपग्रहस्तेन सहितः उत्तरे उत्तराभाद्रपदानक्षत्रं उदीक्षते आक्रान्तुमिच्छति ॥ १५ ॥ श्वेतो द्वितीय उपग्रहः केतुसंज्ञः ऐन्द्रं ज्येष्ठानक्षत्रमिति योज्यम् ॥ १६ ॥ **ध्रुवमिति** । परुषग्रहो राहुरेकनक्षत्रस्थौ शशिभास्करौ पीडयति अपसव्यं प्रवर्तते सर्वदा वक्री सन् सर्वतोभद्रचक्रे वेधेन स्वातीस्थः सन् रोहिणीनक्षत्रं च पीडयतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ **वक्रेति** । तत्रैव सर्वतोभद्रचक्रे मघास्थो लोहिताङ्गोऽङ्गारको वक्रानुवक्रं कृत्वा पुनःपुनर्वक्रीभूय ब्रह्मणा बृहस्पतिनाऽऽक्रान्तं राशिं नक्षत्रं श्रवणं समावृत्य सम्यक् दिता पञ्च शीर्षाणि शिबीसदृशानि येषां ते पञ्चशीर्षाः ॥ १९ ॥ शोणितमया आवर्ताः यस्यां रक्तप्रवाहवतीत्यर्थः। अत एव ध्वजा एव उडुपानि क्षुद्रनावस्तैः समाकुला वैशसे विरोधे ॥ २३ ॥ छर्दयन् श्रोतॄणां क्लेशकरत्वेन रक्तवमनं कारयन्निव ॥ २५ ॥ शस्त्राणि प्रभया ज्वलन्तीव ॥ २६ ॥ **संवत्सरेति** । पूर्वं श्रवणस्थो बृहस्पतिर्भगनक्षत्रस्थःसूर्यपुत्र इत्युक्तं तावुभौ विशाखासमीपे तिर्यग्वेधेन शतपदे चक्रे विशाखानक्षत्रं विध्यत इत्यर्थः । तथाहि । तस्मिंश्चक्रे खुखेखो इति श्रवणान्त्यपादत्रयं व्युत्क्रमेण विशाखाद्यपादत्रयेण तितुते इत्यनेन विद्ध्यते तृतीयेन चतुर्थो, द्वितीयेन तृतीयः, प्रथमेन द्वितीय इति । तथा उत्तराफल्गुन्या अन्त्यपादत्रयेण टोपापीत्यनेन क्रमेण तितुते इति विशाखाद्यपादत्रयं तत्रैव चक्रे विध्यत इति तच्चक्रविदां प्रत्यक्षम् ॥ २७ ॥ **चन्द्रादित्याविति** । अपर्वाणि पर्व दर्शाख्यं पञ्चदशेऽह्नि भवति एकतिथिवृद्धौ षोडशे वा एकतिथिक्षये चतुर्दशे वाऽह्नि भवति । तिथिद्वयक्षयस्तु लोकेऽत्यन्तमप्रसिद्ध इत्यपर्वणीत्युक्तम् । ग्रहं यातौ राहुणा ग्रहणं प्राप्तौ एतदेव प्रजासंक्षयहेतुत्वेन शास्त्रे दृष्टमित्याह–**प्रजेति** ॥ २८ ॥

कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते ।
अभीक्ष्णवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३०
विषमं जनयन्त्येत आक्रन्दजननं महत् ।
त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशांपते ॥
गृध्रः सम्पतते शीर्षं जनयन्भयमुत्तमम् ॥ ३१
चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ।
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ॥
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥ ३२
अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः ।
मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत्कृष्णचतुर्दशीम् ।
शोणितैर्वक्त्रसंपूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥ ३३

प्रतिस्रोतो महानद्यः सरितः शोणितोदकाः ।
फेनायमानाः कूपाश्च कूर्दन्ति वृषभा इव ॥ ३४
पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः ।
अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥ ३५
विनिःसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतोदिशम् ।
अन्योन्यमुपतिष्ठद्भिस्तत्र चोक्तं महर्षिभिः ॥ ३६
भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् ।
कैलासमन्दराभ्यां तु तथा हिमवता विभो ३७
सहस्रशो महाशब्दः शिखराणि पतन्ति च ।
महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक् ।
वेलामुद्वर्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८

चित्रास्वात्यन्तरस्थः परुषो ग्रहो रोहिणीं पीडयतीत्युक्तं तत्र चित्रांशे स्थित्वा रोहिणीमष्टादशत्वेन सामुदायिकनक्षत्रं पीडयति । स्वात्यंशे स्थित्वा कृत्तिकां षोडशकत्वेन साङ्घातिकनक्षत्रं पीडयति । सर्वतोभद्रचक्रे तथा दर्शनात् । तदेतदाह कृत्तिकामित्यर्धेन। तीक्ष्णैः क्रूरैः कर्मभिरुपलक्षितो राहुरित्यर्थः धूमकेतुमुत्पातविशेषमनुलक्ष्यावस्थिताः ॥३०॥ एते वायवः विषमं वैरम् । युद्धमिति यावत्। **त्रिष्विति**।त्रिष्वपि च्छत्रेषु नरपतिविजयप्रोक्तेषु यथाऽश्विन्यादिभिर्नवभिर्नक्षत्रैरौदीच्यस्याश्वपतेश्छत्रे चामरं कलशो वीणा छत्रं दंडः पतद्ग्रह आसनं शीलकं रज्जुरित्यवयवाः कल्प्यन्ते। एवं मघादिनवकेन प्राच्यस्य गजपतेः । तथा मूलादिनवकेन दक्षिणस्य नरपतेः। एवंविधेषु त्रिष्वपि छत्रेषु तत्रापि सर्वेषु नक्षत्रेषु नास्ति क्षत्रमेभिरिति योगेन क्षत्रविरोधिषु नक्षत्रेषु नक्षत्राणि च तानि नक्षत्राणि भानि तेषु क्रूराक्रान्तत्वादिना क्षत्रियाभावकरेषु नक्षत्रेषु गृध्रः पापग्रहः शीर्षं कलशस्थानं संपतते । तेन च्छत्रत्रयस्य तदन्तर्गतानामन्येषां च माण्डलिकानां राज्ञां नाशः सूच्यते । तत्रैवं सति मघासु कुजोऽस्ति तथा यदा भगनक्षत्रं पूर्वाफल्गुनी तदा तत्रत्यः शनैश्चरोऽवश्यं युद्धादिना गजपतेर्महद्भयं करिष्यति । यथोक्तं तत्रैव– ' कलशस्थे भवेद्युद्धं रणे रोगे महद्भयम् ॥ घातपातादिकं सर्वं जायते नात्र संशयः ' इति । कलशस्थे शनैश्चरे इति शेषः । तथा विशाखाज्येष्ठे अप्यत्रैव च्छत्रे क्रूरविद्धे क्रूराक्रान्ते वर्तेते इत्यवश्यं गजपतेश्छत्रभङ्गः । एवं प्रथमच्छत्रेऽपि कृत्तिकारोहिण्योः पुष्यस्य च पीडाऽस्ति। यथान्तिमच्छत्रे श्रवणप्रोष्ठपदयोर्बृहस्पतिशुक्रौ वर्तेते इति तथाऽपि तावनिष्टफलावेव । एवं पूर्वस्य निरन्वयो नाशः । इतरयोश्छत्रयो राजनाशेऽपि तत्पुत्राणां च्छत्रप्राप्तिरस्तीति विशेषः । तथा च मध्यमच्छत्रे मघासु भौमः स्वात्यां सूर्यचन्द्रा-

बृहस्पतिश्चास्ति । तेषां फलं तत्रैवोक्तम्–' क्रूरग्रहचतुष्कं च बुधचन्द्रेण संयुतम् ॥ पूर्वच्छत्रविनाशाय कथितं पूर्वसूरिभिः ' इति । तत्र सिन्धुसागरसंगमाद्गोदावरीसागरसंगमपर्यंतमेका रेखा तद्दक्षिणे नरपतिः । तत एव कर्णप्रावरणपर्यन्तं द्वितीया तदुत्तरे गजपतिः । तयो रेखयोर्मध्येऽश्वपतिः । हस्तिनापुरं तु ईशानदेशस्थत्वाद्गङ्गाद्वारात् पूर्वभागेऽस्तीति गजपतिच्छत्रान्तर्गतमेव । हरिद्वारं तु देहलीदीपन्यायेनाश्वपतिगजपत्योरन्तर्गतमिति तेन हास्तिनापुरस्थानां प्राच्यत्वादत्यन्तं क्षयस्तथैव पाञ्चालादीनामपीति । एतच्च नरपतिविजयदर्शिनां स्पष्टम्। ईशानदेशाः कूर्मचक्रे प्रोक्ताः–'रेवती अश्विनी याम्ये पादे ईशानगोचरे ॥ गङ्गाद्वारं कुरुक्षेत्रं श्रीकंठं हस्तिनापुरम् ॥ अश्ववक्त्रैकपादाश्च कर्णप्रावरणास्तथा॥ विनश्यन्ति च ते सर्वे देशास्त्वीशानगोचरे '· इति दिक् ॥ ३१ ॥ चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावित्येतेन श्लोकेनोक्तमर्थं विशदयति द्वाभ्यां चतुर्दशीमिति । त्रयोदशीं त्रयोदशानामन्हां पूरणीममावास्यां भूतपूर्वां नाभिजाने न जानामि । अतिभूयसा कालेनायं दुर्योग आगत इति भावः । एकमासीं एकस्मिन्नेव मासे भवां पूर्वं त्रयोदश्यां रात्रौ पक्षसमाप्त्या सूर्यग्रहणमेवोक्तम् । इदानीं तु एकस्मिन्मासे चन्द्रः पूर्णमास्यां राहुणा ग्रहेण ग्रस्तः सूर्योऽमावास्यायां, यदा सूर्यो ग्रस्तस्तदा चंद्रोऽपि ग्रस्त एव । दर्शे तयोः संहतत्वात् ॥ ३२ ॥ **अपर्वणीति** । लोकाप्रसिद्धपर्वणीति पूर्ववत् ज्ञेयम् ॥ ३३ ॥ प्रतिस्रोतसो महानद्यः विपरीतप्रवाहाः । विभक्तिलोप आर्षः विशेषणं विशेष्येण बहुलमिति समासो वा क्रियाविशेषणं वा । कूपा जलाशयाः । कूर्दन्ति क्रीडन्ति । वातैः क्षुभ्यन्त इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अनयं अनीतिफलम् ॥ ३५ ॥ महोल्काभिः दीपाभावात् शणकाष्ठज्वालया रात्रौ विनिःसृत्य गृहाद्बहिर्निर्गत्य ॥ ३६ ॥ महाशब्दः क्रियत इति शेषः महाभूता वृद्धीभूताः । अभूततद्भावे महच्छब्दाद्भवतौ परे

वृक्षानुन्मथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करकर्षिणः ।
आभग्नाः सुमहावातैरशनीभिः समाहताः ॥ ३९
वृक्षाः पतन्ति चैत्याश्च ग्रामेषु नगरेषु च ।
नीललोहितपीतश्च भवत्यग्निर्हुतो द्विजैः ॥ ४०
वामार्चिर्दुष्टगन्धश्च मुञ्चन्वै दारुणं स्वनम् ।
स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥ ४१
धूमं ध्वजाः प्रमुञ्चन्ति कम्पमाना मुहुर्मुहुः ।
मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षं च भेर्यश्च पटहास्तथा ॥ ४२
शिखराणां समृद्धानामुपरिष्टात् समन्ततः ।
वायसाश्च रुवन्त्युग्रं वामं मण्डलमाश्रिताः ॥ ४३
पक्वापक्वेति सुभृशं वावाश्यन्ते वयांसि च ।
निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय पृथिवीक्षिताम् ४४
ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च व्याला वेपथुसंयुताः ।
दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाश्रयाः ४५
एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम् ।
यथा लोकः समुच्छेदं नायं गच्छेत भारत ४६

वैशम्पायन उवाच ।

पितुर्वचो निशम्यैतद्धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।
दिष्टमेतत् पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः ॥ ४७
राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे ।
वीरलोकं सामासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ।
इह कीर्तिं परे लोके दीर्घकालं महत्सुखम् ।
प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे।

वैशम्पायन उवाच ।

एवं मुनिस्तथेत्युक्त्वा कवीन्द्रो राजसत्तम ।
धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत् परम् ॥ ५०
स मुहूर्तं तथा ध्यात्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षयते जगत् ॥ ५१
सृजते च पुनर्लोकान्नेह विद्यति शाश्वतम् ।
ज्ञातीनां वै कुरूणां च संबन्धिसुहृदां तथा ॥ ५२
धर्म्यं देशय पन्थानं समर्थो ह्यसि वारणे ।
क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाप्रियम् ॥ ५३
कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते ।
न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथञ्चन ॥ ५४
हन्यात् स एनं यो हन्यात् कुलधर्मं स्विकां तनुम्
कालेनोत्पथगन्तासि शक्ये सति यथाऽऽपदि ॥
कुलस्यास्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम् ।
अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशांपते ॥ ५६
लुप्तधर्मा परेणासि धर्मं दर्शय वै सुतान् ।
किं ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्बिषम्
यशो धर्मं च कीर्तिं च पालयन् स्वर्गमाप्स्यसि
लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः॥
एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यं चैवाब्रवीत् पुनः

धृतराष्ट्र उवाच ।

यथा भवान्वेत्ति तथैव वेत्ता
भावाभावौ विदितौ मे यथार्थौ ।
स्वार्थे हि संमुह्यति तात लोको
मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि ॥ ६०
प्रसादये त्वामतुलप्रभावं
त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः ।
न चापि ते मद्वशगा महर्षे
न चाधर्मं कर्तुमर्हा हि मे मतिः ॥ ६१
त्वं हि धर्मप्रवृत्तिश्च यशः कीर्तिश्च भारती ।
कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चापि पितामहः ॥

व्यास उवाच ।

वैचित्रवीर्य नृपते यत्ते मनसि वर्तते ।
अभिधत्स्व यथाकामं छेत्ताऽस्मि तव संशयम् ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

यानि लिंगानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम् ।
तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

---

अशनीभिः ' अशनिर्द्वयोः' इति कोशात् स्त्रीत्वम् ॥ ३९॥ शिखराणां द्रुमाग्राणाम्। 'शिखरोऽस्त्री द्रुमाग्रे च' इति मेदिनी ॥४३॥ पक्वापक्वेति । विनाशाभिमुखानां परस्परं युद्धमिति 'पक्वं परिणतेऽपि स्याद्विनाशाभिमुखे त्रिषु ' इति मेदिनी। पक्वापक्वेति । पक्षिरुतानुकरणं वावाश्यन्ते अतिशयेन शब्दं कुर्वन्ति ॥ ४४ ॥ प्राकिरन्तः शकृन्मूत्रमिति शेषः । व्यालाः दुष्टहस्तिनः सलिलाश्रयाः अत्यन्तं प्रस्वेदयुक्ताः ॥ ४५ ॥ मुनिः एवं तथेत्युक्त्वेति संबंधः । धृतराष्ट्रेण हेतुना तदर्थमित्यर्थः। ध्यानं चिन्ताम् ॥५०॥ संक्षयते क्षिणोति ॥५१॥ धर्म्यं धर्मादनपेतं पन्थानं देशय शिक्षय ॥५३॥ अयं दुर्योधनः ॥ ५४ ॥ सः धर्मः एनं धर्महन्तारं शक्येऽनापदि सत्यां किमर्थमापदीव उन्मार्गगामी भवसीत्यर्थः ॥ ५५ ॥ परेण अतिशयेन ॥ ५७ ॥ आक्षिप्य वाक्यं ब्रुवतीति संबन्धः ॥ ५९ ॥ वेत्ता ज्ञाताऽस्मीति शेषः । भावाभावौ स्थितिविनाशौ परेषां स्वेषां च ॥६०॥ गतिः परायणं दर्शयिता उपदेष्टा ॥६१॥ त्वं हि धर्मादौ हेतुरित्यर्थः ॥६२॥

व्यास उवाच ।
प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः
प्रदक्षिणावर्तशिखो विधूमः ।
पुण्या गन्धाश्चाहुतीनां प्रवान्ति
जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ६५

गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च
शङ्खा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र ।
विशुद्धरश्मिस्तपनः शशी च
जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ६६

इष्टा वाचः प्रसृता वायसानां
संप्रस्थितानां च गमिष्यतां च ।
ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन्
ये चाग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ ६७

कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः
शुकाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च यत्र ।
प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति संख्ये
ध्रुवं जयस्तत्र वदन्ति विप्राः ॥ ६८

अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च
सुखप्रणादैर्हेषितैर्वा हयानाम् ।
भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया
येषां चमूस्ते विजयन्ति शत्रून् ॥ ६९

इष्टा वाचस्तथा सत्त्वं योधानां यत्र भारत ।
न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥७०

इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः ।
पश्चात् संधारयन्त्यर्थमग्रे च प्रतिषेधिकाः ॥ ७१

शब्द-रूप-रस-स्पर्श-गन्धाश्चाविकृताः शुभाः ।
सदा हर्षश्च योधानां जयतामिह लक्षणम् ॥ ७२

अनुगा वायवो वान्ति तथाऽभ्राणि वयांसि च ।
अनुप्लवन्ति मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंषि च ॥ ७३

एतानि जयमानानां लक्षणानि विशांपते ।
भवन्ति विपरीतानि मुमूर्षूणां जनाधिप ॥ ७४

अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।
हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥ ७५

एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि ।
तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधाः शूरतरा अपि ॥ ७६

दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः ।
अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ७७

नैव शक्या समाधातुं सन्निपाते महाचमूः ।
दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥७८

भीतान् भग्नांश्च संप्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्धते ।
प्रभग्ना सहसा राजन्दिशो विद्रवते चमूः ॥ ७९

नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः ।
सत्कृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः ।
उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥ ८०

उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्यमम् ।
जघन्य एष विषयो यो युद्धेन विशांपते ॥ ८१

महान् दोषः सन्निपातस्ततस्याद्यः क्षय उच्यते ।
परस्परज्ञाः संहृष्टा व्यवधूताः सुनिश्चिताः ॥ ८२

अपि पञ्चाशतं शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम् ।
अपि वा पञ्च षट् सप्त विजयन्त्यनिवर्तिनः ॥८३

न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम् ।
दृष्ट्वा सुपर्णोऽपचितिं महत्या अपि भारत ॥ ८४

---

रूपं गमकं चिह्नम् ॥६५॥ इष्टा इति । ये पृष्ठतो भाषमाणा वायसास्ते गन्तारं त्वरयन्ति सिद्धिसूचका इत्यर्थः । ये पुरतो भाषमाणास्ते गमनं निषेधन्तीत्यर्थः ॥ ६७ ॥ प्रविष्टस्य परसैन्यामिति शेषः । इष्टा मारितो मारित इति दक्षिणाः दाक्ष्ययुक्ता हतोऽसीत्याद्याः । पश्चादर्थं पाश्चात्यं प्रयोजनं जयाख्यं सन्धारयन्ति निश्चिन्वन्ति याश्चाग्रे प्रतिषेधिका मा युद्धस्व मरिष्यसीत्येवंजातीयकास्ता अपि मरणस्यैव सूचिकास्ताश्च दुर्योधनं प्रत्येव प्रवर्तन्त इति भावः ॥ ७१ ॥ अनुगाः अनुकूलाः ॥ ७३ ॥ उपायविजयं लाभपूर्वकं जयं साम्ना प्रार्थनया दानेन वा शत्रुणा वाचा प्रार्थितस्य धनेन वा सन्तर्पितस्य मुख्यो जयः । शत्रुं भेदयतो मध्यमः, निघ्नतोऽधम इत्यर्थः ॥ ८१ ॥ सन्निपातो योधानां सङ्घर्षः । व्यवधूताः दारादिष्वनासक्ताः ॥८२ ॥ शूराणां सहायसंपत्तिर्नापेक्षितेत्यत्र दृष्टान्तमाह— न वैनतेय इति । महत्या अपि सेनाया अपचितिं प्रतिकारं नाशं वा एकेनैवात्मना कर्तुं शक्यं दृष्ट्वा आलोच्य । सुपर्णः शोभनपतत्रो गरुडो नामतो वैनतेयो विनतायाः पुत्रो महाजनं बहुजनसमूहं न प्रशंसति न कामयत इत्यर्थः । 'भवेदपचितिः पूजाव्ययनिष्कृतिहानिषु' इति मेदिनी । शूराणां न सहायापेक्षाऽस्तीत्यक्षौहिणीबाहुल्यान्मत्पुत्राणां जयोऽवश्यंभावीति त्वया न मन्तव्यमिति भावः ॥ ८४ ॥

न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः । अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चात्र परायणम् ।
जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने
तृतीयोऽध्यायः ॥३ ॥

## ४

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते ।
धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ।
सञ्जयं संशितात्मानमपृच्छद्भरतर्षभ ॥ २
सञ्जयेमे महीपालाः शूरा युद्धाभिनन्दिनः ।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्ति शस्त्रैरुच्चावचैरिह ॥ ३
पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम् ।
न वा शाम्यन्ति निघ्नन्तो वर्धयन्ति यमक्षयम् ४
भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम् ।
मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ५
बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोट्यश्च लोकवीराणां संमेताः कुरुजाङ्गले ॥ ६
देशानां च परीमाणं नगराणां च सञ्जय ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः ॥ ७
दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा ।
प्रभावात्तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्यामिततेजसः ॥ ८
सञ्जय उवाच ।
यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान्वक्ष्यामि ते गुणान् ।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ ॥ ९
द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः १०
त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजन् जरायुजाः ।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ॥ ११
नानारूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश ।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः १२
ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चारण्यवासिनाम्
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनोपजीवनम् ॥ १३
उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः ।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ १४

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

**एवमुक्त्वेति** ॥१ ॥ न वा शाम्यन्ति नैव शाम्यन्ति यमक्षयं यमलोकम् ॥ ४ ॥ **दिव्येति** । यथा दीपेनान्धकारे नाशिते चक्षुषा घटो दृश्यते एवं धीवृत्त्या सर्वविषयावरकाज्ञानतमसि नाशिते सति चिदात्मरूपेण चक्षुषा सर्वं प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ८ ॥ **शास्त्रचक्षुरिति** । यदाऽहं ब्रह्मास्मीति वाक्योत्थया धियाऽऽत्मानं योगी पश्यति तदाऽन्धोऽप्यनन्धो भवति तथा च श्रुतिः 'तं वा एतं सेतुं तीर्त्वाऽधः सन्नन्धो भवति' इति । सेतुं मर्यादाविधारकं परमेश्वरं तीर्त्वा प्राप्येति श्रुतिपदयोरर्थः । अनेनैवाभिप्रायेणावेक्षस्वेत्याह—**नमस्त इति** । विनयः स्वस्योपदेष्टृत्ववारणाय व्यासेनैव त्वमुपदिष्टोऽसीति भावः ॥ ९ ॥ त्रसानां जङ्गमानां योनिरुत्पत्तिस्थानम् । अण्डजाः पक्षिसरीसृपाद्याः । स्वेदजाः यूकालिक्षाद्याः । जरायुजाः मनुष्यपश्वाद्याः ॥ १० ॥ येषु चतुर्दशसु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ते मानवास्त्रैवर्णिकाः । पशवश्च गोऽजाद्या जरायुजानां मध्ये प्रवरा इति योजना ॥ ११ ॥ ग्राम्याणां वक्ष्यमाणानां पशूनां मध्ये तथाऽरण्यवासिनामित्यपि । 'पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्त तस्मात्त्रयः पशूनां हस्तादानाः पुरुषो, हस्ती, मर्कटः' इति विध्यर्थवादादिषु पुरुषेऽपि पशुत्वमस्येवेति ग्राम्यपशुषु पुरुषस्य गणनम् ॥ १३ ॥ उद्भिज्जाः भूमिमुद्भिद्य जाताः वृक्षा अश्वत्थादयः । गुल्माः कुशकाशादिस्तम्बाः । लता वृक्षाद्यारूढा गुडूच्यादयः । वल्ल्यो भूमिप्रसारा वर्षमात्रस्थायिन्यः कूष्माण्ड्याद्याः । त्वक्सारा वेण्वादयः । त एव तृणजातयो न तु वृक्षाः॥१४॥

तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु ।
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसंमता ॥ १५
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥ १६
अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा १७
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्तारण्याः स्मृता नृप ।
गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ १८
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः ।
एते वै पशवो राजन् ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ १९
भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति ।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव सनातनम् ॥ २०
यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
तत्रातिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

धृतराष्ट्र उवाच ।
नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सञ्जय ।
तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः ॥ १
प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सञ्जय ॥ २

सञ्जय उवाच ।
पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥ ३
भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥ ४

**तेषामिति** । सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः पञ्चोद्भिजा इत्येकोनविंशतिसंख्यानां विकाराणां प्रकृतिभूतेषु पञ्चसु महाभूतेषु प्रक्षेपे सति चतुर्विंशत्यक्षरसंख्यासाम्यात् प्रकृतिविकृत्यात्मिका गायत्रीयं भवति । अत्र स्वेदजानामुद्भिज्जेष्वन्तर्भावः । ते हि भूमिमुद्भिद्य जायन्ते स्वेदजास्तु जलमुद्भिद्य जायन्त इति साम्यात् । तृतीयेनावरोधः संशोकजस्येति न्यायाच्च अण्डजानामपि मैथुनजत्वसाम्यांज्जरायुजेष्वेवान्तर्भावः । जरायुर्गर्भवेष्टनं तद्रूपस्य अण्डस्यैव तत्र सत्त्वादित्याशयेन चतुर्विंशतिः । तदिदं कार्यकारणसमुदायात्मकं गायत्र्याख्यं ब्रह्म । 'गायत्री वा इदं सर्वं भूतम्' इत्युपक्रम्य 'सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री' तदेतदृचाभ्यनूक्तम् । 'एतावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' इति छान्दोग्ये उपसंहारदर्शनात् ॥ १५॥ **यस्य भूमिरिति** । राजा हि सार्वभौमो राजसूयेनेष्ट्वा स्वाराज्यं प्राप्नोति अश्वमेधेनेष्ट्वा क्रममुक्तिस्थानं प्राप्नोतीति यस्य कृत्स्ना भूमिस्तस्य इदं सर्वं यज्ञद्वारा वशे भवति तथा च वाजसनेयके श्रूयते । 'पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयतातिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदं सर्वं स्यामिति स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रयज्ञक्रतुमपश्यत्' इत्यादिना ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

एवं वक्ष्यमाणभगवद्गीतोपनिषदर्थज्ञानाधिकारार्थं कर्मणामनुष्ठेयत्वं प्रकारान्तरेणोपपाद्याधिकृतानामुत्पन्नात्मविविदिषाणामपि सूक्ष्मतमात्मतत्त्वग्रहणयोग्यतासिद्ध्यर्थं स्थूले भगवतो रूपे कृत्स्नब्रह्माण्डात्मके चित्तसंयमः कर्तव्य इत्याशयेन भुवनकोशं वर्णयति-**नदीनां पर्वतानां चेत्यादिना तत्सर्वं श्रुतवानसी**त्यन्तेनाध्यायाष्टकेन ॥ १ ॥ तत्र तावत् **पञ्चेमानि महाराजे**त्यादिना **तदेषां रूपमैश्वरमित्यन्तेन** सर्वं वियदादिकं भगवदुपादानकत्वात् कुण्डलकनकन्यायेन भगवत एव रूपमिति प्रतिपादयति। महाभूतानि पृथिव्यादीनि तान्येव जगतां कृत्स्नब्रह्माण्डरूपाणि पिण्डरूपाणि च तत्स्थानि च सर्वाणि चैतन्यपदवाच्यानि समानि तुल्यान्येव बहुत्वमुपाधिभेदाभिप्रायेण । न हि कुंभद्रोण्याद्युपाधिष्वाकाशस्येव मशकमतङ्गजादिशरीरेषु चैतन्यस्य स्वतो विषमत्वं दृश्यते । तस्मात्सर्वाणि जगतीस्थानि समान्येव । वक्ष्यति च भगवान् 'पण्डिताः समदर्शिनः' इति ॥ ३ ॥ **भूमिरिति** । वायोरग्निरिति श्रुतेरग्निहेतुर्वायुरग्नेः परो द्रष्टव्यः गुणोत्तराणि पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरमुत्तरमेकैकगुणाधिकं इदं च । 'आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी' इति श्रूयमाणजन्मक्रमाभिप्रायेणोक्तम् ॥ ४ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ५
चत्वारोऽप्सु गुणा राजन् गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥६
एते पञ्च गुणा राजन् महाभूतेषु पञ्चसु ।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥ ७
अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥ ८
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम् ।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा ॥ ९
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥ १०
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः ।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १२

शब्दादयो गुणाः प्रसिद्धाः ॥५॥ **एते पञ्चेति** । महाभूतेषु पञ्चमहाभूतात्मकेषु सर्वेषु लोकेषु भोग्यवस्तुषु शरीरादिघटान्तेषु एते पञ्च गुणाः सन्ति । एते के । येषु गुणेषु भोक्तारो भूताः नित्यनिर्वृत्ताश्चेतनाः पुरुषाः प्रतिष्ठिताः देहेन्द्रियादीन् भोग्यानाधिष्ठाय चेतनाः शब्दादीनि भोग्यान्तराणि भुञ्जते देहादीनामपि भोगोपकरणत्वाद्भोग्यत्वमेव न भोक्तृत्वमित्यर्थः ॥ ७ ॥ **अन्योन्यमिति** । समस्य भावः साम्यं ब्रह्मभावः । 'सम आत्मेति विद्यात्' 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' इति श्रुतिस्मृत्योर्ब्रह्मणि समशब्ददर्शनात् । भोक्तृभोग्ययोर्यदा सुषुप्तिप्रलयसमाधिमोक्षेषु ब्रह्मभावो भवति । तदा ते उभे अन्योन्यं नाभिवर्तेते व्यवहारतो विद्यमानमपि भोग्यं भोक्तारं नोपसर्पति । नापि भोक्ताऽलुप्तदृगपि भोगायतनस्य देहेंद्रियादेरभावाद्भोग्यजातमुपसर्पतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ **यदा त्विति** । भोगप्रदकर्मोद्भवकाले विषमीभावं साम्यात् प्रच्युतिमाविशन्ति प्राप्नुवन्ति । तदा त एव भोक्तारो भोग्यपदार्थाश्च देहैः स्वस्वरूपैः देहवन्तो लब्धस्वरूपा भूत्वा तैरेव स्वै रूपैः परस्परं व्यतिरोहन्ति भोक्तारो भोग्येषु निपतन्ति । भोग्यार्थाश्च भोक्तरि सूक्ष्मरूपेण स्ववासनां जनयन्तीत्यर्थः ॥ ९ ॥ आनुपूर्व्या भूम्यादिक्रमेण विनश्यन्ति जायंते च आनुपूर्वश आकाशादिक्रमेण । विपर्ययेण क्रमोऽत उपपद्यते चेतिन्यायेन सृष्टिक्रमविपरीतत्वात् संहारक्रमस्य अत एव उत्पत्तिविनाशशीलत्वादेव सर्वाण्येतानि भोक्तृभोग्यान्यपरिमेयाणि अनन्तानि मरीचिकोदकहृदतुल्यत्वात् । न हि मरीचिकोदकमियत्प्रमाणमिति परिमातुं शक्यम् । यत एतान्यपरिमेयाणि ततस्माद्धेतोः एषां रूपं ऐश्वरमेव न तु भौतिकं न ह्यध्यस्तस्याधिष्ठानादन्यद्रूपमस्ति । अत एव 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'आत्मैवेदं सर्वं । ब्रह्मैवेदं सर्वम्' इति सर्वस्य ब्रह्मभावश्रवणमुपपद्यत इत्यर्थः ॥ १० ॥ अपरिमेयत्वमेवाह—**तत्र तत्रेति** । सिद्धा अपि यत्र ब्रह्माण्डं भित्वा गच्छन्ति तत्रापि वासनामया धातवो व्यक्तयः पाञ्चभौतिका दृश्यन्तेऽतोऽपरिमेया एव ते । एवं सत्यपि मनुष्या गणकादयस्तर्केण सूर्यगत्या देशभेदेन दिनमानभेदपादच्छायाभेदादिना च तेषां प्रमाणानि । एतच्चोपलक्षणं आकारभेदस्यापि । तथाहि । केचित्कन्दुकाकारं केचिच्चतुरस्रं केचित्त्रिकोणं केचिच्चक्राकारं च भूमिसंस्थानं कल्पयंति। तथा प्रमाणभेदोऽपि जम्बूद्वीपपरिणाहगणकाः 'तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिका' इति वदन्ति । पञ्चदशशतान्येकाशीतियोजनानि । योजनचतुर्विंशांशसहितानि । तथा लक्षयोजनं तत्परिणाह इति पुराणान्तरे । अत्रापि 'अष्टादशसहस्राणि षट्शतानि च'—इति वक्ष्यति ॥११॥ कस्तर्ह्यत्र सिद्धान्त इत्याशंक्यानिर्वचनीय एवायमर्थो न तर्केण साधयितुं योग्य इत्याह-**अचिन्त्या इति** । ये भावाः जगज्जन्मोपादाननिमित्तपरिमाणधर्माधर्मादयः पदार्थाश्चिन्तयितुमयोग्यास्तान्न तर्केण साधयेत् नहि ते तर्केण साधयितुं शक्यन्ते । तर्कान्तरेण तस्य बाधसंभवात् तर्काप्रतिष्ठानात् इति न्यायाच्च । अत एवास्य श्लोकस्योत्तरार्द्धमन्यत्र पठन्ति–'नाप्रतिष्ठिततर्केण गंभीरार्थस्य निश्चयः' इति । तथाहि । कन्दुकाकारे भुवनकोशे कल्प्यमाने ये कन्दुकपृष्ठे कमठपृष्ठोपमे तिष्ठन्ति तेषां कियानपि देशो जलपशुमनुष्याश्रययोग्योऽस्तीति वक्तुं युक्तं, ये तु तन्नितम्बे तदधश्च वसन्ति तेषां गुरुत्ववतामर्थानामधस्तादाश्रयाभावेनावश्यं पतनं भवतीति तावान्देशो रिक्त एवास्तीति वक्तव्यम् । तथा च तदाश्रया तत्कृता द्वीपान्तरकल्पना लोकदृष्टिविरुद्धेति पामरा अपि प्रतियन्ति । ननु यथा पृथिव्या अन्तरिक्षेऽवस्थानशक्तिर्दिगम्बरादन्यैः सर्ववादिभिः कल्प्यते तथा वयमपि तस्या आकर्षणशक्तिमन्यां कल्पयामहे । यया सर्वदिक्स्थाः प्राणिनः पृथिवीं पादाधस्थामेव मन्यन्ते खं चोपरिस्थमिति । तर्हि लोकदृष्टिविरुद्धकल्पनापेक्षया सर्वप्राणिप्रत्यक्षस्वप्नमायेन्द्रजालादितुल्यतैवास्याः कुतो न कल्प्यते । ननु स्वप्नादिवदस्या बाधो न दृश्यत इति चेत् प्राग्ब्रह्मात्मज्ञानात् मादर्शि किं नश्छिन्नं श्रुत्या तु ज्ञाते द्वैतं न विद्यते । 'नेह नानाऽस्ति किंचन' इत्यादिकया ब्रह्मदर्शनेन रज्जुदर्शनेन सर्पस्येव प्राग्बाध आम्नायते । तथा च निष्कलंकात् श्रुतिप्रमाणात् ब्रह्माद्वितमेवादर्तव्यं न तु सकलंकात्तर्काज्जगतोऽनिर्वचनीयत्वमिति भावः ॥ १२ ॥

सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन ।
परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥
नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्रसन्निभैः ।
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः संपन्नधनधान्यवान् ।
लवणेन समुद्रेण समंतात् परिवारितः ॥ १५
यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ।
एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥ १६
द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान् ।
सर्वौषधिसमावायः सर्वतः परिवारितः ॥ १७
आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते ।
ततोऽन्य उच्यते चायमेनं संक्षेपतः शृणु ॥ १८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सुदर्शनद्वीपवर्णने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

तर्हि किमस्य प्रमाणं का वा आकृतिस्तत्राभिमतेत्याशंक्याह—**सुदर्शनमिति** । सुदर्शनो नाम जंबूवृक्षविशेषस्तन्नामाङ्कितोऽयं द्वीपः सुदर्शनद्वीपः । कृत्स्नं ब्रह्माण्डमित्यर्थः। तं प्रमाणत आकृतितश्च प्रकर्षेण वक्ष्यामि । तुशब्दः पक्षान्तरव्यावृत्त्यर्थः । परिमण्डलः परमाणुमात्रं परिमाणतो दुर्लक्ष्य इत्यर्थः । ' एषोऽन्तरात्मा चेतसा वेदितव्यः ' इत्यात्मवदिति भावः । परिमण्डल इत्यस्य सर्वतोवृत्तरूपः कन्दुकाकार इति व्याख्याने प्रागेव दोष उक्तः । अथ चक्राकार इत्युच्यते चेन्न । चिपिटाकारे तस्मिन् परिमण्डलशब्दस्यायोगात् चक्रसंस्थित इत्यनेन चक्रवत् संस्थितं संस्थानमाकारोऽस्येत्यनेनैव सिद्धत्वाच्च । अयं हि शब्दस्तार्किकाणां परमाणुपरिमाणे प्रसिद्धः । न चानेन परिमाणेनोपेतं निरंशं वस्तु सिद्ध्यति यस्य कस्याप्यल्पपरिमाणस्य दशादिगवच्छेद्यप्रदेशभेदवत्त्वेन तस्यापि निरंशत्वायोगात् । न हि परिमाणोः पूर्वदिगवच्छिन्नो देशः प्रतीच्याऽप्यवछियत इति वक्तुं शक्यम् दृष्टविरोधात् । तस्मात्परिमण्डलशब्दो दुर्लक्ष्यसद्वस्तुमात्रवचनः । तार्किकाणां परमाणुरपि तादृश एव । तत्र पारिभाषिकपरिमाणकल्पनं प्रस्थानभेदापादनार्थं शून्यकारणतानिरासार्थं चेति दिक् । एवं सुदर्शनद्वीपस्य परिमाणमुक्त्वा आकारमाह—**चक्रसंस्थित इति** । परिदृश्यमानराष्ट्राकार इत्यर्थः । ' चक्रं राष्ट्रास्त्रयोरपि' इति **विश्वः** ॥१३॥ तदेव संस्थानमाह द्वाभ्यां—**नदीति** ॥ १४ ॥ नन्वेवंविधस्य कथमतिसूक्ष्मत्वमुच्यतेऽत आह—**यथा हीति** । चन्द्रमण्डले चन्द्राधिष्ठिते मनसीत्यर्थः । यद्येतद्ब्रह्माण्डं महाप्रमाणं स्यात् कथं तर्हि गिरिगुहैकदेशस्थो योगी स्वीये सूक्ष्मे हृदयावकाशे तत्कृत्स्नमादर्शे मुखवत्पश्येत् । न ह्यल्पप्रमाणे सर्षपादौ महाप्रमाणानां मेर्वादीनां संनिवेशो युज्यते प्रपञ्चस्य स्वप्नादिवदनिर्वचनीयत्वांगीकारं विनेति भावः ॥१६॥ **द्विरंश इति** । तत्र चन्द्रमण्डलाख्ये मनसि अंशे एकदेशे वृत्त्यानन्त्यादनन्तस्य मनस एकदेश एकाकारा सूक्ष्मा वृत्तिरंशस्तत्र द्विःकार्यकारणरूपेण स्थूलसूक्ष्मरूपेण वा द्विरावृत्तः पिप्पलो गीतासु वक्ष्यमाणः संसाराश्वत्थोऽस्ति । सर्वमेतन्मनोमात्रमित्यर्थः । द्विरंशे च शशो महान् चकारात्तत्रेत्यनुवर्तते तस्मिन्नेव मनसि महान् परमात्मा शश इव शशः प्लुतगतिः शीघ्रगामी मनसो जवीय इति । ' तद्धावतोऽन्यानत्येति ' इति च श्रुतेः। अंशे एकदेशे द्विर्वर्तते नियम्यानियामकभावेनेत्यर्थः । तथा च कार्यकारणप्रपञ्चो जीव, ईश्वरश्च परब्रह्मण्यधिष्ठाने मनसैव कल्पित इत्यर्थः ॥ १७ ॥ अस्य शशस्य प्रत्यगभेदं वक्ष्यन् प्रपञ्चादिभ्यः पृथक्त्वमाह—**आप इति** । आप इत्युपलक्षितं भूतपञ्चकमुच्यते । ' आपः पुरुषवचसो भवन्ति' इत्यादि श्रुतौ तथा दर्शनात् । एतेन कृत्स्नं भूतभौतिकं कार्यं ततः शशादन्यत् । तर्हि कारणं वस्तु तदभिन्नं स्यादित्याशंक्याह—**शेषः संक्षेप उच्यत इति** । समस्तकार्यप्रलये सति शिष्यत इति शेषः कारणं तदपि संक्षेपः कार्यस्यैव सूक्ष्मं रूपमाकुञ्चितावयवकूर्मसमानमुच्यतेऽतोऽव्याकृतं कारणमप्याप इवानात्मैवेत्यर्थः । ततो व्याकृताव्याकृताद्द्वयादन्यः शशः शुद्धं ब्रह्म तदेव अयं प्रत्यगात्मा जीव इत्युच्यते वेदे ' तत्त्वमसि' ' अहं ब्रह्मास्मि ' ' अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादौ परमात्मन एव प्रत्यगात्मत्वमुच्यते । न ततोऽन्यो जीवो नाम कश्चिद्धातुरस्तीत्यर्थः । एनं प्रत्यगभिन्नं परमेश्वरं शशाख्यं संक्षेपतो मया प्रोच्यमानं शृणु ॥१८॥ **इतिकरणे**—जम्बू इति जम्बूद्वीपः खण्ड एकदेशो यस्य तस्य ब्रह्माण्डस्य निर्माणे विस्तार इत्यर्थः ॥ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

# ६

धृतराष्ट्र उवाच ।
उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद्बुद्धिमंस्त्वया ।
तत्त्वज्ञश्चासि सर्वस्य विस्तरं ब्रूहि सञ्जय ॥ १
यावान्भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे ।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
एवं राज्ञा स पृष्टस्तु सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ।
सञ्जय उवाच ।
प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ३
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः ।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसन्निभः ॥ ४
सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान्नाम पर्वतः ।
एते वै पर्वता राजन् सिद्धचारणसेविताः ॥ ५
एषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ॥ ६

---

६

पिप्पलशशयोः स्वरूपश्रवणे स्वस्यानधिकारं पश्यन् स्थूलमेव तावत् भगवतो रूपं श्रोतुमिच्छन् धृतराष्ट्र उवाच—**उक्तो द्वीपस्येति** । द्वीपस्य विस्तरमिति संबंधः ॥ १ ॥ यावानिति । शशलक्षणे परमात्मनो ज्ञापके मायाशबले हार्दे ब्रह्मणि मायाकल्पितो भूम्यवकाशो यावान् व्यवहारदृष्ट्या सत्यवत्प्रतीयमानो योगिवरैर्दृश्यते तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि । ननु कारणमेवादौ ज्ञातव्यं यज्ज्ञानात्सार्वज्ञ्यं भवतीति वेदे प्रसिद्धं किं द्वीपज्ञानेनेत्याशङ्क्याह—**ततो वक्ष्यसि पिप्पलमिति** । शशं च वक्ष्यसीति शेषः । प्रागेव कारणज्ञानात्तत्तद्विभूतिकार्यमेव वदेत्येतेन तत्रात्यन्तमादरो भवतीति भावः ॥२॥ प्रागायताः पूर्वपश्चिमसमुद्रस्पर्शिनः । अत्रेयं शास्त्रानुभवयोरविरोधेन भूकल्पना प्रतिभाति । यथा हस्तमात्रस्य चतुरस्रस्य चतुर्विंशत्यंगुलानि परिणाहः षण्णवत्यंगुलानि परिधिः किंचिन्न्यूनानि चतुस्त्रिंशदंगुलानि कर्णो भवति । एवं अष्टादशसहस्राणि षट्शतानि च जम्बूपर्वसंज्ञिताया भुवः प्रमाणमुक्तम् । तदेवात्र परिधित्वेन कल्पितं तच्चतुर्थांशत्वेन चत्वारि सहस्राणि षट्शतानि पंचाशच्च योजनान्येकैको भुज इति तदेव समचतुरस्रस्य विष्कंभप्रमाणं अस्य कर्णः **शुल्बशास्त्रोक्त**रीत्या षट्सहस्राणि पंचशतानि षट्सप्ततिश्च योजनानि तस्यास्य भूचतुरस्रस्य चतुर्भिः समुद्रैर्वेष्टितस्य कोणा दिक्षु वर्तन्ते । तेन दक्षिणस्यां दिशि रामसेतौ द्वयोः समुद्रयोः सन्धिः । एवमितरास्वपि दिक्षु समुद्रसन्धयो ज्ञेयाः । यस्त्वत्र ज्योतिर्विदां भूपरिधिः सप्तांगनन्दाब्धियोजन ४९६७ संमितोऽभिमतः स एवास्माकं चतुरस्रविष्कंभः खबाणरसवेदमितः ४६५० यत्तु एतयोरन्तरं सप्तेन्दुरामाः ३१७ तदपि यजमानेनोर्ध्वबाहुना प्रपदोच्छ्रितेन समपादास्थितेन वा उन्मितस्य सूत्रस्य यः पंचमोंऽशः स हस्त इति विकल्पस्य कात्यायनादिभिरुक्तत्वाद्धस्तप्रमाणभेदकल्पनया योजनबहुत्वाल्पत्ववचनेन समाधेयम् । तथा भूमेश्चतुरस्रत्वेऽपि तन्मध्यस्थमत्युच्छ्रितं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वतः सूर्यस्य मार्गो मण्डलाकारोऽस्तीति न बौद्धाभिमतं सूर्यद्वयं कल्प्यं भवति । अन्यत् सर्वं युक्त्यविरुद्धं ज्योतिर्विन्मतमेवात्रानुसर्तव्यम् यत्तु पुराणे पंचाशत्कोटियोजनं भूगोलप्रमाणमित्युक्तं तदप्यचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेदित्यनेनैव प्रत्युक्तम् । अव्यवस्थितत्वान्मतानामनिर्वचनीयवाद एव शरणीकरणीय इत्येव वरम् । यद्वा सर्वत्र यत्प्रमाणं दृष्टं तद्विंशांशेन तद्बोध्यं तेन पंचाशत्कोटिस्थाने सार्द्धकोटिद्वयविस्तारा भूमिः । लक्षस्थाने पंचसहस्रविस्तारो जम्बूद्वीपः । नवसहस्रस्थाने सार्धचतुःशतयोजनायामं भरतखण्डमिति । अस्मिन् पक्षे उदाहरिष्यमाणवैष्णवादिवाक्येभ्यो जम्बूद्वीपश्चतुर्दलकमलाकारः तस्याश्चान्तःपरिधिः षट्शताधिकान्यष्टादशयोजनसहस्राणि । त्रयस्त्रिंशच्छतानि मध्यव्यासः । तेन फलतः पञ्चसहस्रव्यासता ज्ञेया । एवं सति यदा प्रागायतो हिमाचलः पूर्वपश्चिमसमुद्रौ स्पृष्ट्वाऽस्ति तदाऽयं भरतवर्षस्त्रिकोणो भवति । तेन पृथिवी त्रिकोणेति लोकप्रवादोऽनुभवश्चानुसृतो भवति । अन्यथा भरतवर्षस्य धनुराकारत्वे भूमध्यरेखाया लङ्कातः सेतुमार्गेण प्रस्थितायाः । 'पुरी रक्षसां देवकन्याऽथ काञ्ची सितः पर्वतः पर्यली वत्सगुल्मम् ॥ पुरी चोज्जयिन्याह्वया गर्गराटं कुरुक्षेत्रमेषा भुवो मध्यरेखा ' इति स्मर्यमाणया मध्यरेखया कुरुक्षेत्रस्य रामसेतुः सन्निहितो द्वारका च दूरे स्यात् । द्वारका समीपे सेतुश्च दूरे इति प्रत्यक्षमुपलभ्यते । भरतवर्षस्य त्रिकोणत्वमित्येषैव कल्पना साधीयसीति दिक् ॥ ३ ॥ एवं दक्षिणां दिशमारभ्य यावदुत्तरसमाप्ति षट् प्राक्पश्चिमायताः पर्वतास्तैश्च सप्तवर्षाणि भवन्ति मध्ये मध्ये वासयोग्यानि स्थानानि भवन्ति तेषां स्थानानां वर्षाख्यानामन्तरमाह—**एषामिति** । विष्कंभो विस्तारः सहस्रशः

वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥ ७
हेमकूटात् परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते ।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ८
प्रागायतो महाभाग माल्यवान्नाम पर्वतः ।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ९
परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ १०
योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ॥ ११
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्च लोकानावृत्य तिष्ठति ।
तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो ।
भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत ।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ १३
विहगः सुमुखो यस्तु सुपर्णस्यात्मजः किल ।
स वै विचिन्तयामास सौवर्णान्वीक्ष्य वायसान् ।
मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् ।
अविशेषकरो यस्मात्तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥ १५
तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥ १६
स पर्वतो महाराज दिव्यपुष्पफलान्वितः ।
भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदपरिष्कृतैः ॥ १७
तत्र देवगणा राजन् गन्धर्वासुरराक्षसाः ।
अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥ १८
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः ।
समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ॥ १९
तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हहा हुहूः ।
अभिगम्यामरश्रेष्ठांस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥ २०
सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः ।
तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि ॥ २१
तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ॥ २२
तस्मात् कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति २३
पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥ २४
तत्र साक्षात् पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।
उमासहायो भगवान् रमते भूतभावनः ॥ २५
कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २६
तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः २७
तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपा परिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ॥ २८
पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा ।
प्लवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ॥ २९

---

शब्द एष शतशः शब्दपरः कर्तव्यः । लंकाहिमाचलयोरनेकसहस्रयोजनान्तराभावात् षष्ट्यधिकशतचतुष्कयोजनमितस्यैवान्तरस्य प्रसिद्धेः । तत्रापि शतं सेतोः परतः षष्ट्यधिकत्रिशतं योजनानि सेतुतो हिमालय इति प्रत्यक्षसिद्धम् । वर्षाणि वर्षन्ति कामैः सिञ्चन्ति पूरयन्तीति वर्षाणि रम्यस्थानानि ॥ ६ ॥ वसन्त्येषु तानि वर्षाणीति योगान्तरमाह-**वसन्तीति** । हिमवतो दक्षिणे भारतं वर्षं उत्तरतो हैमवतं वर्षं द्वितीयम् ॥ ७ ॥ हेमकूटनिषधयोर्मध्ये हरिवर्षं। निषधनीलयोर्मध्ये वर्षविभागमाह-**दक्षिणेनेति** । दक्षिणेन दक्षिणतः समीप इत्यर्थः । एवमुत्तरेणेत्यादौ ज्ञेयम् ॥ ८ ॥ नीलनिषधयोर्मध्ये मेरुस्तस्य प्राक् माल्यवान् पूर्वसमुद्रावधिः पश्चिमसमुद्रावधिर्गन्धमादन इत्यर्थः ॥ ९ ॥ परिमण्डलशब्दस्य पूर्वोक्त एवार्थः । अत्याश्चर्यमयो मेरुः प्रतिक्षणं नवो नव इत्यर्थः । आदित्यतरुणो बालादित्यः ॥ १० ॥ चतुरशीतिसहस्रस्थाने द्विचत्वारिंशच्छती उच्छ्रायो बोध्यः अधस्तात् भूमेर्गर्भे ॥ ११ ॥ **तस्य पार्श्वेष्विति** । पार्श्वेषु चतुर्दिक्षु द्वीपा इव द्वीपाः नद्यन्तरत्वाद्वर्षाणि ॥ १२ ॥ भद्राश्वादिसाहचर्याज्जम्बूद्वीपशब्दोऽत्र भरतवर्षपरस्तस्य तत्सारत्वज्ञापनार्थः । तानेव स्तौति-**कृतपुण्यप्रतिश्रया इत्यादिना** । कृता विहिताः पुण्यैः पुण्यवद्भिः प्रतिश्रया आश्रमा येषु ते ॥ १३ ॥ तत्र सुमुखाख्येन पक्षिणा मेरुं त्यक्त्वा प्रश्रयः कृत इत्याह -**विहग इति** द्वाभ्याम् ॥१४॥ एनं त्यजामि त्यक्त्वा उत्तरान् कुरूनेव गच्छामीति शेषः ॥१५॥ तं मेरुमादित्योऽनुपर्येति प्रदक्षिणीकरोति ॥ १६ ॥ काव्यः कविश्रेष्ठः शुक्रो रमत इति शेषः। तस्य काव्यस्य ॥२२॥ तस्मात् काव्यात् ततः कुबेरात् कलांशं षोडशभागस्यापि लेशम् ॥ २३ ॥ कर्णिकारा राजवृक्षास्तेषां वनम् ॥ २४ ॥ क्षीरवत् श्वेता धारा यस्याः सा गङ्गा विश्वरूपा। विश्वो विष्णुस्तद्रूपा। तथा च स्मरन्ति-' योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी निरञ्जनः । स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः' इति ॥ २८ ॥

तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः ।
तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ॥ ३०
शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक् ।
मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो महीपते ॥ ३१
जम्बूखण्डे तु तत्रैव महाजनपदो नृप ।
आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां तत्र भारत ॥ ३२
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ ३३
जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः ।
गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥ ३४
संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः ।
गन्धमादनपार्श्वे तु परे त्वपरगण्डिकाः ॥ ३५
एकादशसहस्राणि वर्षाणां परमायुषः ।
तत्र हृष्टा नरा राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ३६
नीलात्परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् ।
वर्षमैरावतं राजन्नानाजनपदावृतम् ॥ ३७
धनुःसंस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
इलावृतं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥ ३८
उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ।
आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३९
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत ।
एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ॥ ४०
हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः ।
यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते ॥ ४१
अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥
तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् ।
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥ ४३
दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः ।
यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः॥४४
तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ।
स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः ॥ ४५
उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ॥ ४६
तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।
ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ ४७
वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥
अचिन्त्या दिव्यसंकाशा प्रभोरेषैव संविधिः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ ४९
दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्तगङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥५०
रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ॥ ५१
देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा ।
शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसञ्चरः ॥ ५२
इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ५३

---

तयैव प्रवेगेन मेरुप्राकारात् पतनजनितबलेन खनन्त्या स ह्रद उत्पादित इति सम्बन्धः ॥ ३० ॥ सुवर्णवर्णाः गौराः ॥ ३३ ॥ निष्टप्तेति । पीतभास्वरा इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अपरगण्डिकाः अन्ये गन्धमादनस्यैवावयवभूता बुद्बुदोपमाः क्षुद्रशैलाः ।'गण्डो भूषणबुद्बुदे ' इति मेदिनी । स्वार्थिकः कः ॥ ३५ ॥ उत्पलवर्णेन आभान्ति ताः उत्पलवर्णाभाः ॥ ३६॥ **नीलात्परतरमिति** । नीलोत्पलधरमित्यपपाठः। एवं हिमवतो दक्षिणे भरतवर्षं तदुत्तरे हैमवतं वर्षं हेमकूटादुत्तरे हरिवर्षम् । निषधादुत्तरे नीलाच्च दक्षिणे मेरोः परित इलावृत्तमेकमेव चतुर्थं वर्षम् । अत्रैव केचिद्भद्राश्वकेतुमालयोर्वर्षान्तरत्वं प्रकल्प्य नववर्षाणीत्याचक्षते । ततो नीलात् पर्वतादुत्तरतः श्वेतं पञ्चमं वर्षम् । श्वेतात् पर्वतादुत्तरतो हैरण्यकं वर्षं षष्ठम् । ततः शृङ्गवत्पर्वतादैरावतं सप्तमं वर्षम् ॥ ३७ ॥ धनुःसंस्थे धनुष्कोटी संस्थाशब्दः समाप्तिवचनः । सन्तिष्ठतेऽग्निहोत्रमित्यादिप्रयोगदर्शनात् । तेन मिश्रितधनुष्कोटिद्वयाकारे इत्यर्थः । शार्ङ्गस्य हि धनुषो द्वे कोटी एकीकृते भवतस्तदा मध्ये किञ्चिन्नतं त्रिकोणं भवति । अत एव रामसेतौ धनुष्कोटिशब्देनैव रत्नाकरमहोदध्याख्यसमुद्रद्वयसंगमप्रदेशो व्यवह्रियते एवमाकारं दक्षिणे भरतवर्षमुत्तरे ऐरावतं च मध्ये पञ्चेति सप्तवर्षाणि ॥ ३८ ॥ समन्वितानि भिन्नभावेन सङ्गतानि ॥ ४० ॥ **हेमेति** । हेमकूट एव कैलासस्तस्योत्तरे मैनाकस्तस्योत्तरतो हिरण्यशृङ्गः एतयोरन्तराले बिन्दुसरोऽस्तीति श्लोकत्रयार्थः ॥ ४१ ॥ भूतपती रुद्रः ॥ ४६ ॥ पावनी सरस्वतीत्येका ॥ ४८ ॥ प्रभोरीश्वरस्यैष सप्तनद्यात्मकः संविधिः समीचीनं लोकोपकारार्थं विधानम् ।एषैवेति सन्धिरार्षः। कारुण्यात् परमेश्वरेण पावनाः पदार्थाः निर्मिता इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ श्वेतपर्वतः स्थानमिति शेषः । गन्धर्वा वसन्तीति शेषः । प्रतिसञ्चरः व्यवहारस्थानम् ॥ ५२ ॥ इतीति । वर्षाणि तत्र उपनिविष्टानि गतिमन्ति जङ्गमानि ध्रुवाणि स्थावराणि च सर्वाणि भूतान्येव सर्वं दृश्यमाश्रयाश्रितरूपं पाञ्चभौतिकमेवेत्यर्थः ॥ ५३ ॥

तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ॥ ५४
यां तु पृच्छसि मां राजन्दिव्यामेतां शशाकृतिम्।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे ।
कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ॥ ५५
ताम्रपर्णशिलो राजञ्श्रीमान् मलयपर्वतः ।
एतद्द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥ ५६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

धृतराष्ट्र उवाच ।
मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाचक्ष्व सञ्जय ।
निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥ १
सञ्जय उवाच ।
दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः॥२
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३
सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा जनाधिप ।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥ ४

---

बुभूषता श्रेयः प्राप्तुमिच्छता श्रद्धेया अदृष्टेष्वर्थेषु श्रद्धावान् हि तत्प्राप्त्यर्थं चोदितानि कर्माणि करोति न त्वश्रद्दधान इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ एवं भूसंस्थानमुक्त्वा एतदेव परमात्मनः शरीरमिति चिन्तनीयमित्याशयेनाह-**यां त्विति**। दिवि मायाशबले भवां दिव्यां मायिकीं शशस्य चिदात्मनः आकृतिं पिप्पलाख्याम्। ततो वक्ष्यसि पिप्पलमिति पूर्वं त्वयैवोक्तत्वात् इदानीं पृच्छसि अवसरं प्राप्य वक्ष्यसि वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः। तामहं त्वयाऽपृष्टामपि वक्ष्यामीति शेषः। तामेवाह-**पार्श्वे इति**। भुक्तस्यान्नादेः संग्रहस्थानं पार्श्वद्वयं यथा एवं कर्मसञ्चयस्थानं भरतवर्षमेकं परमेश्वरस्य दक्षिणपार्श्वत्वेन ज्ञेयम्। तथा ऐरावतवर्षमपि योगसञ्चयस्थानमुत्तरपार्श्वत्वेन ज्ञेयम्। तत्र हि ब्रह्मलोकच्युता योगभ्रष्टा विदेहप्रकृतिलयाख्या एव जायन्ते। ते च पूर्वसंस्कारात्पुनर्योगमभ्यस्यन्ति। भरतवर्षं तु कर्मयोगयोरप्यनुष्ठानाय योग्यमिति दाक्षिणकुक्षित्वेनाभ्यर्हितत्वमस्य सूचितम्। यथा लौकिके शशशरीरे कर्णावत्युच्छ्रितं स्थानं तत्तुल्यौ परमेश्वरशरीरे नागद्वीपकाश्यपद्वीपौ क्रमेण दक्षिणोत्तरौ। अर्चिरादिमार्गप्राप्यः सत्यलोको योगिप्राप्यः। धूमादिमार्गप्राप्यो देवलोकः। कर्मप्राप्यश्च विश्वकोशे। 'नागं तु सीसके रंगे' इत्युपक्रम्य 'श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थिते' इति सर्वोपरिस्थे श्रेष्ठे हिरण्यगर्भे नागशब्दप्रयोगदर्शनात्तस्य द्वीप इव द्वीपो लोक इतरैरगम्य इति नागद्वीपः सत्यलोकः। तथा कश्यं मद्यं सुरासोमादिरूपं मादकं क्रतौ ये पिबन्ति ते कश्यपाः कर्मिणस्तेषामयं काश्यपद्वीपः स्वर्गः। एवं शशस्य कुक्षिकर्णानुसारेण ये ब्रह्माण्डे उच्चप्रदेशास्ते कुक्ष्युपरिभागत्वेन ये वाऽधःप्रदेशास्ते कुक्षेरधोभागत्वेन च कल्पनीयाः तथा च श्रुतिः-'अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा' इति। अत्रापि चन्द्रसूर्यपदेन कृष्णशुक्लमार्गावेव गृह्येते। दिक्शब्देन च तत्प्राप्यौ शशकर्णस्थानीयौ देशभेदाविति ज्ञेयम् ॥ ५५ ॥ एवं शशस्य मायिकं बाह्यं प्रथमं रूपमुक्तं तद्वासनोत्थं द्वितीयमान्तरं रूपमाह-**ताम्रेति**। रञ्जनात्मकत्वात् रक्तं रजस्ताम्रशब्दितं तत्प्रधानं मनोऽपि ताम्रमेव। तन्मयानि पर्णोपलक्षितानि वस्त्रान्नपानफलपुष्पादीनि शिलोपलक्षितानि हर्म्यादीनि च यत्रासौ ताम्रपर्णशिलः अत एव श्रीमान् मलयपर्वतः मलयेषु आरामेषु पर्वत इव उच्छ्रितः श्रेष्ठतम आराम इत्यर्थः। 'मलयो देश आरामः' इति **विश्वः**। 'आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन' इति बृहदारण्यकषष्ठे स्वाप्नप्रपञ्चे आरामपदप्रयोगदर्शनात्। एतत् मलयरूपं द्वीपस्य जम्बूखण्डस्य द्वितीयं वासनामयं शशसंस्थितं शशस्वरूपम्। एतेन 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च' इति श्रुतिप्रसिद्धे स्थूलसूक्ष्मे परमेश्वरस्य द्वे रूपे चिन्त्यत्वेन दर्शिते। ते उभे धृतराष्ट्रेणापि चिन्तनीये इति वक्तुराशयः ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### ७

एवमुक्तेऽपि ध्यानमार्गे चित्तदोषेणानधिकारात् कर्मप्राप्याण्येव स्वर्गच्युतानां स्थानानि पृच्छति-**मेरोरिति** ॥ १ ॥ मधुफलाः स्वादुफलाः ॥ ३ ॥

ये क्षरन्ति* सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम् ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ५
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका ।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप ।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥ ६
देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥ ७
मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥ ८
मिथुनं जायते काले समं तच्च प्रवर्धते ।
तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ॥ ९
एवमेवानुरूपं च चक्रवाकसमं विभो ।
निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः १०
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
जीवन्ति ते महाराज न चान्योऽन्यं जहत्युत ११
भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः ।
तान्निर्हरन्तीह मृतान् दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥ १२
उत्तराः कुरवो राजन् व्याख्यातास्ते समासतः ।
मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥ १३
तस्य मूर्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य विशांपते ।
भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ १४
कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः ।
द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः ॥ १५
तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः ।
स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ १६
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
चन्द्रशीतलगात्र्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७
दश वर्षसहस्राणि तत्रायुर्भरतर्षभ ।
कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥ १८
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः सनातनः ॥ १९
सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः २०
योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ ।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ्मनुजेश्वर ॥ २१
अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्च च ।
परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ॥ २२
पतमानानि तान्युर्वीं कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
मुञ्चन्ति च रसं राजंस्तस्मिन् रजतसन्निभम् २३
तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप ।
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा संप्रयात्युत्तरान् कुरून् ॥२४
तत्र तेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप ।
तस्मिन् फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ।
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भास्वरं तु तत् ॥ २६
तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा २७
नाम्ना संवर्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वपूर्वानुगण्डिका ॥ २८
योजनानां सहस्राणि पञ्चषण्माल्यवानथ ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २९
ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः ।
तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः ।
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ते दिवाकरम् ॥ ३०
षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ।
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ॥ ३१
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च ।
आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

शुक्लाभिजनो विष्णुभक्तजनस्तेन संपन्नास्तत्सङ्गिनः ॥ ७ ॥ चक्रवाकौ सहचरौ पक्षिदम्पती॥१०॥न जहति सममेव द्वावपि शरीरं त्यजत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ मूर्धाभिषेको मूर्धाभिषिक्तं मुख्यमिति यावत् ॥ १४ ॥ **योजनानामिति** । अत्राप्येकादशशत्या विंशोऽशः पञ्चपञ्चाशत् ॥ २१ ॥ एवं सति सार्धसहस्रद्वयमरत्नीनां तस्य परिणाहो यत्र तत्र सपादशतं अरत्नयः फलपरिणाहो युज्यते रसभेदिनां कर्कटीफलवत् पक्वतादशायां भेदशीलानाम् ॥ २२ ॥ गण्डिका क्षुद्रपर्वतः ॥ २८ ॥ पञ्चषट् पञ्चाधिकाः षट् एकादशेत्यर्थः । महारजतं काञ्चनं तत्सङ्काशाः ॥ २९ ॥ **ब्रह्मलोकेति** । ये इतः कर्मणा ब्रह्मलोकं गतास्ते ततश्च्युताः सन्तो माल्यवति पर्वते जन्म लब्ध्वा भूतानां रक्षणार्थं तपस्तप्त्वा दिवाकरं प्रविशन्ते तत्समीपं प्राप्नुवन्ति ॥ ३० ॥ तत्रापि आदित्यालोकेन कृत्स्नं विराट्पुरुषं बहुकालमुपास्य चन्द्रं मनसोऽधिष्ठातारं प्रविशन्ति सूत्रात्मभावं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ *'रक्षन्ति' इत्यपि पाठः ।

## ८

धृतराष्ट्र उवाच ।
वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च सञ्जय ।
आचक्ष्व मे यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ॥ १
सञ्जय उवाच ।
दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।
निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ३
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जीवन्ति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥ ४
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ५
यत्र चायं महाराज पक्षिराट् पतगोत्तमः ।
यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः ॥ ६
महाबलास्तत्र जना राजन् मुदितमानसाः ।
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ ७
आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।
शृङ्गाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप ८
एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् ।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९
तत्र स्वयंप्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥ १०
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ॥ ११
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवावृतः ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ १२
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
अनिष्यन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः १३
देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ १४
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ।
हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ॥ १५
अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोजवम् ।
अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम् ॥ १६

---

### ८

**वर्षाणामिति** ॥ १ ॥ **दक्षिणेन त्विति** । यद्यपि श्वेतस्य दक्षिणे नीलस्तस्य दक्षिणे निषधस्तथाऽपि निषधोत्तरत्वमस्त्येवेत्यविरोधः । रमणकं यत्पूर्वं नीलादुत्तरतः श्वेताद्दक्षिणतश्च श्वेतवर्षमित्युक्तं तस्यैव रमणकमिति संज्ञान्तरम् । दक्षिणेन तु नीलस्य नीलमाल्यवतोर्नीलगन्धमादनयोश्च सन्धावित्यर्थः । निषधस्योत्तरेण तथैव तयोरेव सन्धिद्वय इत्यर्थः ॥ २ ॥ शृङ्गाणि शृङ्गवतः षष्ठस्य वर्षपर्वतस्य सानूनि ॥ ८ ॥ शृङ्गस्य शृङ्गवतः ॥ १० ॥ शृङ्गं शृङ्गवत् यस्मात् सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान्नाम पर्वत इत्युक्तमहिम्ना पर्वतेन परिच्छिन्नमिदमैरावताख्यं वर्षं तस्मात् । अतः पूर्वोक्ताद्वर्षगणात् परं श्रेष्ठमिदं वर्षमित्यर्थः । एतदेवाह— **न तत्रेत्यादिना** ॥ ११ ॥ अनिष्यन्दा अस्वेदाः देवतुल्या इत्यर्थः ॥ १३ ॥ आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलमिति विराड्भावं त्यक्त्वा सूत्रात्मभावं गच्छन्तीत्युक्तं स्थूलसूक्ष्मरूपं कार्यद्वयम् । इदानीं पिप्पलं तु वदिष्यसीत्युक्तः सञ्जयोऽवसरं प्राप्य पिप्पलाख्यं कारणमप्याह—**क्षीरोदस्येति** । तत्राधिदैवं लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरशुद्धोदकानां सप्तसमुद्राणामुपान्त्यः क्षीरोदः अध्यात्मम् । अन्नमयः कोश आत्मा प्राणमयस्तु इन्द्रियमयप्राणमयभेदेन द्विविध इति द्वौ । चतुर्थो मनोमयः । पञ्चमो विज्ञानमयः । षष्ठ आनन्दमयः । सर्वकारणभूतः सप्तमः । शुद्धं ब्रह्मेति । तत्र क्षीरोदात्परतो महाविष्णोर्जगज्जन्मादिहेतोः स्थानमस्ति यदिदं दहराद्युपासकैः प्राप्यते । यत्रारण्यश्चार्णवौ यत्र प्रभुविमितं हिरण्मयं वेश्म यत्राश्वत्थसोमसवन इत्यादि चिन्हमुक्तं श्रुतिप्रसिद्धं स प्रभुरन्तर्यामी हरिः सर्वसंहर्ता वैकुण्ठोऽकुण्ठितसामर्थ्यः शकटे शकटवदचेतने कनकामये कनकवद्भास्वरज्योतिर्मये । 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' इति दीर्घः । चिन्मये शरीरे वसति ॥ १५ ॥ अस्य वस्तुवृत्त्या यद्यपि चिन्मयत्वं तथापि हि लोकप्रसिद्धं अष्टचक्रं अष्टाभिर्भगवत्तनुभिरुह्यत इति अष्टचक्रं यानं इहलोकपरलोकगतिसाधनम् । अष्टौ चक्राणि तु कर्मेन्द्रियपञ्चकं ज्ञानेन्द्रियपंचकं मन आदिचतुष्कं प्राणपञ्चकं सूक्ष्मभूतपञ्चकं अविद्या कामः कर्म चेति पुर्यष्टकात्मकं लिङ्गं शकटवदचेतनमचलमपि भूतयुक्तं भूतेन नित्यसिद्धेन ब्रह्मणा अनुप्रविष्टं सत् मनोजवं शीघ्रगं भवति प्राणनादिक्रियाः करोतीत्यर्थः । अत एव श्रूयते 'को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इति । अग्निवर्णं अग्निवत् वर्णो वर्णना यस्य । अत्यन्तं संसारदुःखप्रदमित्यर्थः । महातेजः अनेकविधज्ञानेन्द्रियप्रधानम् । जाम्बूनदं दिव्यसुवर्णं चेतोहरणं वासनाजालं तेन विभूषितं तन्मयमित्यर्थः । अधिदैवं तु स्पष्ट एवार्थः ॥ १६ ॥

स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ ।
संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्ता कारयिता तथा ॥ १७
पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च पार्थिव ।
स यज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ॥ १८
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तः सञ्जयेन धृतराष्ट्रो महामनाः ।
ध्यानमन्वगमद्राजन् पुत्रान् प्रति जनाधिप १९
स विचिन्त्य महातेजाः पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत् ॥ २०
सृजते च पुनः सर्वं नेह विद्यति शाश्वतम् ।
नरो नारायणश्चैव सर्वज्ञः सर्वभूतहृत् ॥ २१
देवा वैकुण्ठमित्याहुर्नरा विष्णुमिति प्रभुम् ॥२२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि
धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

धृतराष्ट्र उवाच ।
यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्च्छितं बलम् ।
यत्रातिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ १
यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः ।
एतन्मे तत्त्वमाचक्ष्व त्वं हि मे बुद्धिमान् मतः ॥२
सञ्जय उवाच ।
न तत्र पाण्डवा गृद्धाः शृणु राजन् वचो मम ।
गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ३
अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः ।
ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम् ॥ ४
अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥ ५
पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ॥ ६
तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च ।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥ ७
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः ।
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च ॥ ८
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥ ९
तत्ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथायथमरिन्दम ।
शृणु मे गदतो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि१०
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ ११

---

स प्रभुरिति । योऽस्मिन् शकटे वसति स एव सर्वेषां जीवानां प्रभुर्नियन्ता । विभुर्व्यापकः । संक्षेपः संहर्ता । विस्तरः सम्यक्विरचयिता । कर्ता जीवरूपेण । कारयिता ईश्वररूपेण ॥ १७ ॥ एवमध्यात्मादिदैवरूपत्वमुक्त्वा अधिभूताधियज्ञरूपत्वमपि तस्यैवाह—पृथिवीति । सर्वेषां भूतानां संबंधी यथाधिकारं निर्वर्त्यो यज्ञः स एव आस्यं तस्य हुताशनः। विशेषतस्तु स यज्ञेनैव तृप्यतीति भावः ॥१८॥ एवं संजयेन उक्तः उपदिष्टो धृतराष्ट्रो महामनाः महत् पिप्पलापरपर्यायविश्वरूपदर्शनयोग्यं मनो यस्य स एवंभूतो ध्यानं सविकल्पसमाधिं अन्वगमत् सञ्जयवाक्यश्रवणमनुप्राप्तवान् ॥ १९ ॥ तत्र च यथाऽर्जुनेन विश्वरूपदर्शनकाले भावी क्षत्रक्षयो दृष्टस्तद्वत्सोऽपि नरनारायणाभ्यां क्रियमाणं सर्वक्षत्रक्षयं दृष्ट्वा स्वपुत्रान् प्रति विचिन्त्य पुनरेवाब्रवीत्। तदेव वचनमाह—असंशयमिति। इह लोके त्वदुक्ते जम्बूखण्डे शाश्वतं शश्वद्ध्रुवं मेर्वादिकमपि नास्ति किं तु सर्वं दृष्टनष्टस्वभावं संकल्पमात्रोत्थम्। किं तर्हि शाश्वतमस्ति नरो नारायणश्चेति जीवेश्वरावेव शाश्वतौ नेत्याह उभयं मिलित्वा एक एव सर्वज्ञः सर्वभूतहृच्च तमेवेश्वरं देवा वैकुण्ठमाहुः अधिदैवं स एव वैकुण्ठाधिपतिरित्युच्यत इत्यर्थः। नरा जीवास्तु तमेव विष्णुं अध्यात्मं अन्तःप्रविष्टं जनानां शास्तारं अश्वकस्य शकटस्य चालकमाहुः। तथापि प्रभुं कृत्वाऽपि लेपशून्यं अत ईश्वरस्य चिकीर्षितः क्षत्रक्षयो नास्मद्दोषज इति भावः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

९

॥ यदिदमिति ॥ १॥ गृद्धाः लोभयुक्ताः एतत् एतस्य मे मह्यं तत्त्वं याथार्थ्यम् ॥२॥ प्रियमिति कर्मभूमित्वादिन्द्रादीनामिदं प्रियम् ॥५॥ अग्रे स्पष्टार्थो ग्रन्थः ॥६॥

तेषां सहस्रशो राजन् पर्वतास्ते समीपतः ।
अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः ॥ १२
अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।
आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो
नदीं पिबन्ति विपुलां गंगां सिन्धुं सरस्वतीम् ।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ १४
शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥ १५
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ॥ १६
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ॥ १७
गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम् ।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम्
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च ।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ॥ १९
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि ।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ॥ २०
नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप ।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा ।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥ २२
करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् ।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥ २३
पुरावतीमनुष्णां च शैब्यां कापीं च भारत ।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ॥ २४
सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरमतीमपि ।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् २५
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् २६
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीरामम्बुवाहिनीम् ।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥ २७
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् २८
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम्
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम्
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् ।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ॥ ३०
सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम् ।
नीलां घृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ ३१
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनीम् ।
एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥ ३२
सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मदवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥ ३३
चित्रोपलां चित्ररथां मञ्जुलां वाहिनीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोषां चापि महानदीम् ॥ ३४
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम् ।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥ ३५
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ॥ ३६
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७
इत्येताः सरितो राजन् समाख्याता यथास्मृति ।
अत उर्ध्वं जनपदान्निबोध गदतो मम ॥ ३८
तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥ ३९
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुंतयः कांतिकोसलाः
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ४०
उत्तमाश्वदशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरंधराः ॥ ४१
गोधा मद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुकुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥ ४२
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः ।
गोमन्ता मण्डकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥
अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः ।
अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम् ॥ ४४
वारवास्यायवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः ।
विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥ ४५
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रल्हादा माहिकाः शशिकास्तथा
बाल्हिका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः ॥ ४७
अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष ।
उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८
कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९
बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः ।
समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥ ५०

पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥ ५१
दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा।
तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यकागुणाः ॥ ५२
तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा
अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा ।
दार्वी च वानवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४
बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ५५
वनायवो दशापार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः ।
कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः५६
किराता बर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
ओण्ड्रा म्लेच्छाः सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष
अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः॥
कर्णाटका महिषका विकल्पा मूषकास्तथा ।
झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननाः॥५९
कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः
समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ६०
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिगर्ताः शाल्वसेनयः ।
व्यूकाः कोकबकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ६१
तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह ।
मालवा बल्लवाश्चैव तथैवापरबल्लवाः ॥ ६२
कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा ।
मूषकास्तनबालाश्च सनीपा घटसृञ्जयाः ॥ ६३
अठिदाः पाशिवाटाश्च तनयाः सुनयास्तथा ।
ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः६४
उत्तराश्चापरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम ।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः॥६५
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ६७
खाशीराश्चान्तचाराश्च पल्हवा गिरिगह्वराः ।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ॥ ६८
प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः ।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥ ६९
एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्तिता विभो ७०
यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ।
दुह्येत धेनुः कामधुक् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ७१
तस्यां गृद्ध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः ।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान् वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥७२
देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम् ।
अन्योन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेया यथाऽऽमिषम्॥
राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुन्धराम् ।
न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित्
तस्मात् परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः ।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५
पिता भ्राता च पुत्राश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव ।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयनदीदेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

**यथागुणबलमिति** । यथागुणं सत्त्वादिगुणान् अनतिक्रम्य तद्वत् यथाबलं शौर्यं चानतिक्रम्य त्रिवर्गस्य धर्मार्थकामात्मकस्य महाफलं उत्कृष्टफलं हैरण्यगर्भपदप्राप्त्यन्तं सम्यगनुष्ठिता सम्यक्पालिता भूमिर्दुह्येत प्रपूरयेत् धेनुरिव कामान् अन्यांश्च दुग्धे इति कामधुक् ॥ ७१ ॥ गृद्ध्यन्ति अभिकाङ्क्षां कुर्वन्ति वसुगृद्धाः धनलुब्धाः ॥ ७२ ॥ देवकायानां यज्ञेन मानुषकायानामन्नप्रसवेन भूमिः परायणं शरणम् ॥७३॥ तस्मात् अतृप्तत्वात् ॥७५॥ एवमाधिदैविकं भूमिजयफलमुक्तम् । अथाध्यात्मं भूमिजयफलमाह-**पितेति** । अच्छिद्रं संपूर्णदर्शनं यस्याः सा भूमिः योगमार्गरीत्या कार्त्स्न्येन दृष्टा सती पित्रादिवदिह भौतिकेभ्य आघातेभ्यः पाति वज्रकायत्वं प्रयच्छतीत्यर्थः । खं स्वस्थं सूर्यादीनां पदं द्यौः स्वर्गपदं च सैव भवति तत्तत्प्रापयतीत्यर्थः ॥ ७६ ॥
॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

धृतराष्ट्र उवाच ।
भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च ।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥ १
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च सञ्जय ।
आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥ २
सञ्जय उवाच ।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्धन ॥ ३
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो ।
संक्षेपाद्द्वापरस्याथ ततस्तिष्यं प्रवर्तते ॥ ४
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम ।
आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥ ५
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥ ६
न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन् भरतर्षभ ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ७
महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८
जाताः कृतयुगे राजन् धनिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥ ९
महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्धराः ॥ १०
वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः ।
त्रेतायां क्षत्रिया राजन् सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥ ११
सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैव च द्वापरे ।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ॥ १२
तेजसाऽल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप ।
लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भारत ॥ १३
ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च ।
तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत॥ १४
संक्षेपो वर्तते राजन् द्वापरेऽस्मिन्नराधिप ।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतवर्षे कृताद्यनुरोधेनायुर्निरूपणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समाप्तं जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व ।

## भूमिपर्व २

११

धृतराष्ट्र उवाच ।
जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह सञ्जय ।
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥ १
समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शनम् ।
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च सञ्जय ॥ २
शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ।
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
राजन् सुबहवो द्वीपा यैरिदं सन्ततं जगत् ।
सप्तद्वीपान् प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ॥ ४

---

१०

भारतस्येति ॥ १ ॥ तिष्यं कलियुगम् ॥ ३ ॥ प्रजायन्ते प्रजां जनयन्ति ॥ ८ ॥ वपुष्मन्तः प्रशस्तदेहाः ॥ १० ॥ सर्वे वर्णाः परस्परजयैषिणो जायन्त इति संबन्धः ॥१२॥ ईर्ष्या परोत्कर्षासहिष्णुत्वम् । मानः स्वस्मिन् पूज्यताबुद्धिः । क्रोधोऽभिज्वलनम् । माया कपटम् । असूया परगुणेषु दोषाविष्करणम् । रागो विषयेषु प्रीतिः । लोभस्तल्लिप्सा ॥ १४ ॥ संक्षेपो गुणानामिति शेषः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

११

जम्बूखण्ड इति ॥ १ ॥ ग्रहं राहुम् ॥ ४ ॥

अष्टादश सहस्राणि योजनानि विशाम्पते ।
षट्शतानि च पूर्णानि विष्कंभो जम्बुपर्वतः ॥ ५
लावणस्य समुद्रस्य विष्कंभो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः ।
सिद्धचारणसंकीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥ ७
शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव ।
शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ॥ ८
जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप ।
विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ॥ ९
क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन संपरिवारितः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ॥ १०
कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते ।
शाकद्वीपस्य सङ्क्षेपो यथावद्भरतर्षभ ॥ ११
उक्त एष महाराज किमन्यत् कथयामि ते ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

शाकद्वीपस्य सङ्क्षेपो यथावदिह सञ्जय ॥ १२
उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः ।

सञ्जय उवाच ।

तथैव पर्वता राजन् सप्तात्र मणिभूषिताः ॥ १३
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु ।
अतीव गुणवत् सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥ १४
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते ।
प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥ १५
ततो मेघाः प्रवर्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः ।
ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥ १६
ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ।
ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥ १७
उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता ।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥ १८
उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः ।
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥ १९
यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

सुमहान् संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं सञ्जय त्वया ॥
प्रजाः कथं सूतपुत्र संप्राप्ताः श्यामतामिह ।

सञ्जय उवाच ।

सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ॥ २१
गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे नृप ।
श्यामो यस्मात्प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामो गिरिः स्मृतः
ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः ।
केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्तते ॥ २३
तेषां योजनविष्कंभो द्विगुणः प्रविभागशः ।
वर्षाणि तेषु कौरव्य सप्तोक्तानि मनीषिभिः ॥ २४
महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः ।
जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ॥ २५
रैवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः ।
केसरस्याथ मौदाकी परेण तु महापुमान् ॥ २६
परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च ।
जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥ २७
शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदानुगा ।
तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शंकरः ॥ २८
तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च ।
धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत २९
वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते ।
दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः ॥ ३०
प्रजास्तत्र विवर्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः ।
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता ॥ ३१

---

अष्टादश सहस्राणि षट् शतानि च योजनानि विष्कम्भश्चतुर्दलकमलाकारस्य जम्बूद्वीपस्य पत्रान्तपरिधिः तादृशविस्तार एव पिण्डप्रमाणमन्तर्भाव्य पर्वताकृतित्वाजम्बूपर्वत इत्युच्यते ॥ ५ ॥ **लावणस्येति** । क्षेत्रफलतः पञ्चसहस्रायामत्वाज्जम्बूद्वीपस्य तदुभयतः पञ्चपञ्चभिः सहस्रैः समुद्रस्य विष्कम्भो विस्तारः । तेन ससमुद्रस्य द्वीपस्य पञ्चदशसहस्रयोजनो व्यासः । द्विगुणः दशसहस्रयोजनः परिमण्डलश्चेदुभयतः समुद्रवेष्टनेन सह चत्वारिंशत्सहस्रः । एवं तृतीयोऽशीतिसहस्रः । चतुर्थः षष्टिसहस्राधिकं लक्षम् । पञ्चमो लक्षत्रयं विंशतिसहस्राणि । षष्ठो लक्षषट्कं चत्वारिंशत्सहस्राणि । सप्तमो द्वादशलक्षाण्यशीतिसहस्राणि । एतेषां सङ्कलने पञ्चविंशतिलक्षाणि पञ्चत्रिंशत् सहस्राणि योजनानि सप्तानां द्वीपानां ससमुद्राणां विस्तारः ॥ ६ ॥ रेवती ज्योतिर्मण्डलरूपेण दिवि विभ्रम्यमाणाऽपि दिव्येन रूपेणात्रापि वर्तते एवं विधिर्मर्यादा पितामहेन कृता ॥ १८ ॥ पतगवर्णं व्याचष्टे-**तयोरिति** । मिश्रो वर्णः पतग इत्यर्थः । 'कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते' इति न्यायेन श्यामपर्वतभवः श्यामवर्णः शाकाद्यन्नपरिणामेन मनुष्या अपि श्यामत्वं गता इत्यर्थः । यस्मात् श्यामो गिरिस्तस्मात्तत्स्थानां श्यामो वर्णः प्रवृत्त इत्यर्थः ॥ २२ ॥

सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा ।
महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥ ३२
चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम ।
तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥ ३३
सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ।
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥ ३४
शक्यन्ते परिसंख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः ।
तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसंमताः ॥ ३५
मङ्गाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।
मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ॥ ३६
मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ।
मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥ ३७
सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः ।
शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥ ३८
न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिकः
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ३९
एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ।
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि शाकद्वीपवर्णने
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

सञ्जय उवाच ।
उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥ १
घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथाऽन्यो जलसागरः ॥ २
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥ ३
गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥ ४
तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाभवत्तत्र प्रजानां व्यदधत् सुखम् ॥ ५
कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह ।
संपूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥ ६
क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः ।
संपूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥ ७
गोमन्तः पर्वतो राजन् सुमहान् सर्वधातुकः ।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान् कमललोचनः ॥ ८
मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।
कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९
स्वनामनामा दुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ।
द्युतिमान्नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः १०
चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥ ११
तेषामन्तरविष्कंभो द्विगुणः सर्वभागशः ।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥ १२
तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कंबलं स्मृतम् ।
धृतमत् पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ १३
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः ।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ १४
विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ।
गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव ।
अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥ १५
यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः शृणु ।
क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥ १६
क्रौञ्चात् परो वामनको वामनादन्धकारकः ।
अन्धकारात् परो राजन् मैनाकः पर्वतोत्तमः १७
मैनाकात् परतो राजन् गोविन्दो गिरिरुत्तमः
गोविन्दात् परतो राजन्निबिडो नाम पर्वतः १८
परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्धन ।
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१२

उत्तरेष्विति ॥ १ ॥ मानःशिलो मनःशिलामः ॥ ४ ॥

क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः ।
मनोनुगात् परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥ २१
उष्णात् परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः ।
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ २२
मुनिदेशात् परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ।
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥ २३
एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः ।
पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ॥ २४
तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः ।
तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥ २५
वाग्भिर्मनोनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप ।
जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥ २६
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम ।
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ॥ २७
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
एको जनपदो राजन् द्वीपेष्वेतेषु भारत ।
उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥ २८
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः ।
द्वीपानेतान्महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥ २९
स राजा स शिवो राजन् स पिता प्रपितामहः ।
गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ ३०
भोजनं चात्र कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम् ।
सिद्धमेव महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ३१
ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
चतुरस्रं महाराज त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ॥ ३२
तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः ।
दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥ ३३
सुप्रतीकस्तथा राजन् प्रभिन्नकरटामुखः ।
तस्याहं परिमाणं तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ ३४
असंख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि ॥
असंबद्धा महाराज तान्निगृह्णन्ति ते गजाः ।
पुष्करैः पद्मसंकाशैर्विकसद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३६
शतधा पुनरेवाशु ते तान् मुञ्चन्ति नित्यशः ॥
श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥ ३७
आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

परो वै विस्तरोऽत्यर्थं त्वया सञ्जय कीर्तितः ३८
दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि सञ्जय ।

सञ्जय उवाच ।

उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै शृणु तत्त्वतः ॥ ३९
स्वर्भानोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।
परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ४०
योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशास्य वै ।
परिणाहेन षट्त्रिंशद्विपुलत्वेन चानघ ॥ ४१
षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ४२
विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ।
एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥ ४३
सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चान्ये कुरुनन्दन ।
विष्कम्भेण ततो राजन् मण्डलं त्रिंशता समम् ४४
अष्टपञ्चाशतं राजन्विपुलत्वेन चानघ ।
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥ ४५
एतत्प्रमाणमर्कस्य निर्दिष्टमिह भारत ।
स राहुश्छादयत्येतौ यथाकालं महत्तया ॥ ४६
चन्द्रादित्यौ महाराज संक्षेपोऽयमुदाहृतः ।
इत्येतत्ते महाराज पृच्छतः शास्त्रचक्षुषा ॥ ४७
सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ४८
तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति ।
श्रुत्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥ ४९
श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः ।
आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥ ५०

---

चतुरस्रं चतुर्दलकमलाकारं जम्बूमण्डलमिति शेषः । तस्य पूर्वं अश्रान्तपरिधिरुक्तः । 'अष्टादश सहस्राणि षट् शतानि च भारत' इति । इह यत्र मध्यममण्डलपरिधिस्त्रयस्त्रिंशच्छतयोजन इत्युच्यते । ततश्च पञ्चसहस्रीतो यावान्यत्राग्रभागो बहिर्वृत्तस्तावानेव त्रयस्त्रिंशतोऽग्रे पञ्चसहस्रीतो गर्भे भाग ऊन इति ज्ञेयम् ॥ ३२ ॥ तत्र पत्रसन्धिस्थानेषु चतुषु ॥ ३३ ॥ तस्य गजचतुष्टयस्य पृथिव्या आश्रयभूतस्य तत्कस्योपरि वर्तते इति दुर्वचं तेन ईश्वरशक्त्यैव दिग्गजा ध्रियन्त इति भावः ॥ ३४ ॥ सः गजसमूहः वातरज्जुभिर्गजा बद्धा इत्येतन्मतान्तरं तदपि दूषयति–**तत्रेति** ३५॥ प्रत्युत वायोरेव निग्रहं ते कुर्वन्तीत्याह–**तानिति** । पुष्करैः शुण्डाग्रैः ॥ ३६ ॥ उत्तरं सूर्येन्दुराहुप्रमाणम् ॥ ३९ ॥ परिणाहेन परिधिना षट्त्रिंशत्सहस्राणि विपुलत्वेन ततोऽप्याधिक्येन इदमुत्तरान्वयि ॥४१॥ षष्टिर्योजनानि परिणाह एवेत्यर्थः ॥४२॥ पतगः शीघ्रगः विभावसुः सूर्यः ॥४५॥

यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः । प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ५१
इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्तामहे वयम् । पूर्वैः प्रवर्तितं पुण्यं तत् सर्वं श्रुतवानसि ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने
द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

॥ समाप्तं भूमिपर्व ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविंद-
सूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

# भगवद्गीतापर्व ३

## १३

वैशम्पायन उवाच ।
अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्य भारत ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः ।
आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥ २
सञ्जय उवाच ।
सञ्जयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ ।
हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ ३
ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४
यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाकरोत् ।
स शेते निहतो राजन् संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ५
यः सर्वान् पृथिवीपालान् समवेतान् महामृधे ।
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६
जामदग्न्यं रणे रामं योऽयुध्यदपसम्भ्रमः ।
न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ७
महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गांभीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ ८
शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः॥ ९
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १०
परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥११
यः स शक्र इवाक्षोभ्यो वर्षन् बाणान् सहस्रशः
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १२
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् यथा नार्हः स भारत ॥१३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्ममृत्युश्रवणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं कुरूणामृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना ।
कथं रथात् स न्यपतत्पिता मे वासवोपमः ॥ १
कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ २
तस्मिन् हते महाप्राज्ञे महेष्वासे महाबले ।
महासत्त्वे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तव ॥ ३
आर्तिं परामाविशति मनः शंससि मे हतम् ।
कुरूणामृषभं वीरमकम्पं पुरुषर्षभम् ॥ ४
के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वाऽस्यासन्पुरोगमाः ।
केऽतिष्ठन् के न्यवर्तन्त केऽन्ववर्तन्त सञ्जय ॥ ५
के शूरा रथशार्दूलमच्युतं क्षत्रियर्षभम् ।
तथाऽनीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ६

---

१३

अथेति ॥१॥ककुदं राज्ञां मध्ये ध्वजतुल्यम् । 'ककुदोऽप्यस्त्री वृषांगे राट्ध्वजे वरे' इति मेदिनी । धाम तेजः ॥ ४ ॥ अपसंभ्रमो निर्भयः ॥ ७ ॥ अर्बुदं कोटिदशकं लक्षं वा पूर्वमयुतस्य प्रत्यहं प्रतिज्ञानात् ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

कथमिति ॥ १ ॥

यस्तमोऽर्क इवापोहन् परसैन्यममित्रहा ।
सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥ ७
अकरोद्दुष्करं कर्म रणे पाण्डुसुतेषु यः ।
ग्रसमानमनीकानि य एनं पर्यवारयन् ॥ ८
कृतिनं तं दुराधर्षं सञ्जयास्य त्वमन्तिके ।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ९
निकृन्तन्तमनीकानि शरदंष्ट्रं मनस्विनम् ।
चापव्यात्ताननं घोरमसिजिह्वं दुरासदम् ॥ १०
अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि ॥ ११
उग्रधन्वानमुग्रेषु वर्तमानं रथोत्तमे ।
परेषामुत्तमाङ्गानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥ १२
पाण्डवानां महत् सैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥ १३
परिकृष्य स सेनां तु दशरात्रमनीकहा ।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् १४
यः स शक्र इवाक्षय्यं वर्षं शरमयं क्षिपन् ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १५
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।
मम दुर्मन्त्रितेनाजौ यथा नार्हति भारतः ॥ १६
कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी ।
प्रहर्तुमशकत्तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ १७
कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन् पाण्डुनन्दनाः ।
कथं च नाजयद्भीष्मो द्रोणे जीवति सञ्जय ॥ १८
कृपे सन्निहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥१९
कथं चातिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ २०
यः स्पर्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम् ।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ २१
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम् ।
सञ्जयाचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥ २२
मामकाः के महेष्वासा नाजहुः सञ्जयाच्युतम् ।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥ २३

यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः ।
कच्चित्ते कुरवः सर्वे नाजहुः सञ्जयाच्युतम् ॥ २४
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५
यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ २६
मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान् ।
धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥ २७
योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान् सपाञ्चालान् ससृञ्जयान् ।
निघ्नन् पररथान् वीरो दानवानिव वज्रभृत्॥२८
इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम् ।
कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥ २९
गदासिमकरावासं हयावर्तं गजाकुलम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ३०
हयान् गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून् ।
निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥ ३१
विदह्यमानं कोपेन तेजसा च परंतपम् ।
वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ३२
भीष्मो यदकरोत् कर्म समरे सञ्जयारिहा ।
दुर्योधनहितार्थाय के तस्यास्य पुरोऽभवन्॥ ३३
के रक्षन् दक्षिणं चक्रं भीष्मस्यामिततेजसः ।
पृष्ठतः के परान् वीरानपासेधन् यतव्रताः ॥ ३४
के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके ।
केऽरक्षन्नुत्तरं चक्रं वीरा वीरस्य युध्यतः ॥ ३५
वामे चक्रे वर्तमानाः केऽघ्नन् सञ्जय सृञ्जयान् ।
अग्रतोऽग्र्यमनीकेषु केऽभ्यरक्षन् दुरासदम् ॥ ३६
पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम् ।
समूहे के परान् वीरान् प्रत्ययुध्यन्त सञ्जय ॥३७
रक्ष्यमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
दुर्जयानामनीकानि नाजयंस्तरसा युधि ॥ ३८
सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतेः ।
कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः सञ्जय पाण्डवाः ॥ ३९
यस्मिन् द्वीपे समाश्वस्य युध्यन्ते कुरवः परैः ।
तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि सञ्जय ॥ ४०

---

अस्य त्वमन्तिके स्थित्वा सर्वं दृष्टवानसीति शेषः ॥ ९ ॥ प्रचिन्वन्तं पुष्पवदाददानम् ॥ १२ ॥ समचेष्टत म्रियमाणपशुवद्धस्तपादविक्षेपं कृतवत् ॥ १३ ॥ अजहुस्त्यक्तवन्तः ॥ २३ ॥ मौर्वीघोषेण स्तनयित्नुर्गर्जन्मेघ इव पृषत्कपृषतो बाणबिन्दुः धनुषैव ह्रादरूपो महाशब्दोऽशनिध्वनिरूपो यस्य ॥ २७ ॥ कार्मुकोर्मिणं चापोर्मिमन्तं अद्वीपं निराश्रयं अप्लवं तरणोपायहीनम् ॥ २९ ॥ अपासेधन् न्यवारयन् ॥ ३४ ॥ यः प्रजापतेर्दक्षादेः परमेष्ठी परमे पदे तिष्ठतीति तथा हिरण्यगर्भ इव तस्मिन्निति शेषः ॥ ३९ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः ।
न पाण्डवानगणयत् कथं स निहतः परैः ॥ ४१
यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहाये युद्धदुर्मदः ।
कांक्षितो दानवान् घ्नद्भिः पिता मम महाव्रतः४२
यस्मिन्जाते महावीर्ये शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
शोकं दैन्यं च दुःखं च प्राजहात् पुत्रलक्ष्मणि४३
प्रोक्तं परायणं प्राज्ञं स्वधर्मनिरतं शुचिम् ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥ ४४
सर्वास्त्रविनयोपेतं शान्तं दान्तं मनस्विनम् ।
हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥ ४५
धर्माद्धर्मो बलवान् संप्राप्त इति मे मतिः ।
यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः४६
जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः ।
अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः४७
तमिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम् ।
हतं शंससि मे भीष्मं किं नु दुःखमतः परम् ४८
असकृत्क्षत्रियव्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः ।
जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिघातिना ॥ ४९
न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना ।
तस्मान्नूनं महावीर्याद्भार्गवाद्युद्धदुर्मदात् ॥ ५०
तेजोवीर्यबलैर्भूयान् शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ५१
परमास्त्रविदं वीरं जघान भरतर्षभम् ।
के वीरास्तममित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥ ५२
शंस मे तद्यथा चासीद्युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः ।
योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य सञ्जय ॥ ५३
अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद्बलं मम ।
पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन् महाहवे ॥ ५४
परासक्ते च वस्तस्मिन् कथमासीन्मनस्तदा ।
जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवास्मासु सञ्जय ५५
घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम् ।
अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः ॥ ५६
भीष्मे हते भृशं दुःखान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ॥ ५७
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ।
यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥ ५८
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।
न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥ ५९
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद्विमुच्यते ।
कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः ॥ ६०
यत्र शान्तनवं भीष्मं हतं शंससि सञ्जय ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तो महद्दुःखमचिन्तयम् ॥ ६१
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छन्तनुनन्दनात् ।
यदाऽऽदित्यमिवापश्यत्पतितं भुवि सञ्जय ॥ ६२
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत ।
नाहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या सञ्जय चिन्तयन् ॥
शेषं किंचित्प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् ।
दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः संप्रदर्शितः ॥ ६४
यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ।
वयं वा राज्यमिच्छामो घातयित्वा महाव्रतम् ॥
क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नापराध्यन्ति पुत्रकाः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ६६
पराक्रमः परा शक्तिस्तत्तु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ६७
कथं शान्तनवं तातं पाण्डुपुत्रा न्यवारयन् ।
यथा युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः॥६८
कथं वा निहतो भीष्मः पिता सञ्जय मे परैः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ६९
दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् ।
यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥ ७०
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम् ।
प्राविशन्कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम्७१
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः ।
के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः७२
अन्ये भीष्माच्छान्तनवात्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ।
न हि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ७३
पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम् ।
आर्तिं मे हृदये रूढां महतीं पुत्रहानिजाम् ॥ ७४
त्वं हि मे सर्पिषेवाग्निमुद्दीपयसि सञ्जय ।
महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥ ७५
दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम्७६

पुत्रलक्ष्मणि पुत्रोत्तमे । 'लक्ष्म चिह्ने प्रधाने च' इति **विश्वः** ॥ ४३ ॥ प्रोक्तं लोके ख्यातम् ॥ ४४ ॥ सर्वास्त्रविनयोपेतं सर्वास्त्रशिक्षायुक्तम् । 'विनया तु बलायां स्त्री शिक्षायां प्रणतौ पुमान' इति **मेदिनी** ॥ ४५ ॥ परासक्ते परलोकप्रिये ॥ ५५ ॥

तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद्वृत्तं तत्र सञ्जय ।
यद्वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याबुद्धिसंभवम् ॥ ७७
अपनीतं सुनीतं यत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ।
यत्कृतं तत्र सङ्ग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥ ७८
तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाप्यशेषतः ।
तथा तदभवद्युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९
क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाऽभवत्॥ ८०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

सञ्जय उवाच ।
त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथाऽर्हसि ।
न तु दुर्योधने दोषमिममासंक्तुमर्हसि ॥ १
य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः ।
एनसा तेन नान्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥ २
महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन्॥ ३
निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया ।
अनुभूतः सहामात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥ ४
हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम् ।
प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥ ५
शृणु तत् पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः ।
दिष्टमेतत्पुरा नूनमिदमेव नराधिप ॥ ६
नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते ।
यस्य प्रसादाद्दिव्यं तत्प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७
दृष्टिश्चातीन्द्रिया राजन् दूराच्छ्रवणमेव च ।
परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥ ८
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा ।
अस्त्रैरसंगो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥ ९
शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम् ।
भरतानामभूद्युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥ १०
तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विधानतः ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ ११
दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ १२
अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिन्तितः ।
पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः १३
नातः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात् ।
हन्याद्गुप्तो ह्यसौ पार्थान् सोमकांश्च ससृञ्जयान् १४
अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद्वर्ज्यो रणे मम ॥ १५
तस्माद्भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः ।
शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः १६
तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः ।
सर्वथाऽस्त्रेषु कुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥ १७
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाबलम् ।
मा सिंहं जम्बुकेनेव घातयामः शिखण्डिना १८
वामं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ।
गोप्तारौ फाल्गुनं प्राप्तौ फाल्गुनोऽपि शिखण्डिनः
संरक्ष्यमाणः पार्थेन भीष्मेण च विवर्जितः ।
यथा न हन्याद्गाङ्गेयं दुःशासन तथा कुरु ॥ २०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्योधनदुःशासनसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

त्वद्युक्त इति । आसक्तुं आसञ्जयितुम् ॥१॥ एनसा पापेन ॥ २ ॥ व्युत्थितस्य उच्छास्त्रवर्तिन उत्पत्तिः कारणं तस्य विज्ञानम् ॥ ९ ॥ व्यूढेषु व्यूहरचनया स्थितेषु ॥११॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

सञ्जय उवाच ।

ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान् ।
क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥ १
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत ।
हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा ॥ २
गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जताम् ।
क्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ ३
उदतिष्ठन्महाराज सर्वं युक्तमशेषतः ।
सूर्योदये महत् सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४
राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च ।
दुष्प्रधृष्याणि चास्त्राणि सशस्त्रकवचानि च ॥ ५
ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत ।
त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ६
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः ।
विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥ ७
रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः ।
अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥ ८
धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः ।
योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥ ९
गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशांपते ।
व्यतिष्ठन् वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः १०
ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः ।
स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥ ११
काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः ।
अर्चिष्मन्तो व्यरोचन्त गजारोहाः सहस्रशः १२
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ।
सन्नद्धास्ते प्रवीराश्च ददृशुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १३
उद्यतैरायुधैश्चित्रास्तलबद्धाः कलापिनः ।
ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः ॥ १४
शकुनिः सौबलः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजश्च सुदक्षिणः
श्रुतायुधश्च कालिङ्गो जयत्सेनश्च पार्थिवः ।
बृहद्बलश्च कौशल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १६
दशैते पुरुषव्याघ्राः शूराः परिघबाहवः ।
अक्षौहिणीनां पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥१७
एते चान्ये च बहवो दुर्योधनवशानुगाः ।
राजानो राजपुत्राश्च नीतिमन्तो महारथाः १८
सन्नद्धाः समदृश्यन्त स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ।
बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे बलिनो युद्धशालिनः १९
हृष्टा दुर्योधनस्यार्थे ब्रह्मलोकाय दीक्षिताः ।
समर्था दश वाहिन्यः परिगृह्य व्यवस्थिताः ॥ २०
एकादशी धार्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शान्तनवोऽग्रणीः २१
श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम् ।
अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् २२
हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम् ।
श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥ २३
सृञ्जयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥ २४
धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः ।
एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव २५
पाण्डवानां तथा सप्त महापुरुषपालिताः ।
उन्मत्तमकरावर्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥ २६
युगान्ते समवेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव ।
नैव नस्तादृशो राजन् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ।
अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः २७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

१६

**तत इति** ॥ १ ॥ युक्तं सन्नद्धं अशेषतः सर्वप्रकारैः ॥ ४ ॥ वागुराकाराः परेषां बन्धनार्थमित्यर्थः ॥ १० ॥ तलबद्धाः तलं ज्याघातत्राणं बद्धं यैस्ते कलापिनः तूणवन्तः ॥ १४ ॥ बद्धकृष्णाजिना इति युद्धे मरणदीक्षां कृतवन्त इत्यर्थः ॥ १९ ॥ तथाविधः संमर्द इति शेषः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

सञ्जय उवाच ।

यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥ २
द्विधाभूत इवादित्य उदये प्रत्यदृश्यत ।
ज्वलन्त्या शिखया भूयो भानुमानुदितो रविः ३
ववाशिरे च दीप्तायां दिशि गोमायुवायसाः ।
लिप्समानाः शरीराणि मांसशोणितभोजनाः॥ ४
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतौ ॥ ५
जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिन्दमौ ।
युयुधाते तदार्थाय यथा स समयः कृतः ॥ ६
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ।
समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७
इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायापावृतं महत् ।
गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ॥ ८

१७

**यथा स इति** ॥ १ ॥ 'मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति मघा पित्र्यं नक्षत्रं तस्य विषयो देशः पितृलोकस्तद्गतः सोमः कुरुपाण्डवयुद्धारम्भादिनमुक्तं भारतसावित्र्याम्—**'हेमन्ते प्रथमे मासि शुक्लपक्षे त्रयोदशीम् । प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रे यमदैवते'** । प्रथमे मार्गशीर्षे अत्र त्रयोदशीशब्देन तद्युक्ता चतुर्दश्येव ग्राह्या । 'अर्जुनेन हतो भीष्मो माघमासेऽसिताष्टमी' इति 'त्रयोदश्यां तु मध्याह्ने भारद्वाजो निपातितः' इति तत्रैव युद्धस्य दशमे पञ्चदशे चाह्नि हतयोर्भीष्मद्रोणयोरष्टमीत्रयोदशीसंयोगदर्शनात् । अत्र पौषेऽपि माघशब्दो मकरायनाभिप्रायेण तदानीं तत्संभवात् असिताष्टमीति च्छेदः । अन्यथा सप्तमीद्वादश्योरेव तयोर्हननं प्राप्नोति । यत्तु अमावास्यायां दुर्योधनहननं तत्रैवोक्तं तत्राप्यमावास्याशब्द इष्टिदिने प्रतिपद्येव प्रयुक्तो वेदितव्यः । यमदैवत इति भरणी न ग्राह्या किं तु युग्मदैवतं मृगशीर्षमेव ग्राह्यम् । तस्य हि पूर्वदलं शुक्रदैवत्यत्वादासुरं उत्तरार्धं बुधदैवत्यत्वाद्दैवं तेन तत्रासुराणामुपरमो देवानामभ्युदयश्च सिद्ध्यति । किंच '**चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ॥ पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः**' इति युद्धारंभादष्टादशेऽह्नि तीर्थयात्रात आगतस्य बलदेवस्य वचनात् श्रवणे युद्धसमाप्तिर्दृश्यते । ततः प्राचीनेऽष्टादशर्क्षे मृगशीर्ष एव युद्धारंभः संभवति न त्वेकविंशे । भरण्यां अष्टादशदिनमध्ये नक्षत्रत्रयक्षयस्य कल्पयितुमयुक्तत्वात् । कार्तिकीकृत्तिकायोगानुपातेन चतुर्दश्यां मृगस्यैव संभावनाच्च एतेन युद्धारंभं प्रकृत्य 'मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति भीष्मपर्वणि सञ्जयवाक्यान्मघायां युद्धारंभ इत्यपि निरस्तम् । बलदेववाक्यविरुद्धत्वात् । शब्दार्थस्तु मघापदेन तत्सहचराः पितरो लक्ष्यन्ते तेन युद्धे मृतानामुत्तमदेहप्रदानार्थं चन्द्रस्तदा पितृलोके सन्निहितोऽभूदिति स्वर्गिणां दिव्यदेहलाभश्चन्द्राधीन इति शास्त्रप्रसिद्धेः । तथा द्वादश्यां रात्रियुद्धे चन्द्रोदयकाले त्रिभागमात्रशेषायां रात्रौ युद्धमवर्ततेत्युक्तं तत्र त्रिभागेत्यस्य त्रिमुहूर्तशेषायामित्यर्थः । तथा 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' इति भीष्मवचनं तु माघोऽयं समनुप्राप्तः त्रिभागमात्रः पक्षोऽयमिति वाक्यशेषानुसारात् । अशतं शतहीनं यथा स्यात्तथा अष्टपञ्च अष्टपञ्चाशद्रात्रयो व्यतीता इति व्याख्येयम् । विलोमशोधनात् अष्टपञ्चाशदूनं शतं रात्रयो द्वाचत्वारिंशद्रात्रयो व्यतीता इत्यर्थः । तथा च पौषकृष्णाष्टमीतो माघशुक्लपञ्चम्यां तावती दिनसंख्या पूर्यते, पक्षस्य च तृतीयो भागो गतो भवति, तत्राप्येकतिथिक्षयात् । पंचम्याः द्विचत्वारिंशत्तमत्वं ज्ञेयम् । शेषो भवितुमर्हतीत्यत्र कार्यशेषो देहत्यागादिरेव शेषो न तु पक्षशेष इति व्याख्या ज्ञेया । तत्रायं निष्कर्षः—कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवत्यां कृष्णप्रयाणं ततो मार्गशीर्षकृष्णपञ्चम्यां पुष्ये सेनयोर्निर्याणं ततः पञ्चम्या उपरि षष्ठीमारभ्य सप्तदिनानि गणयित्वा तदुपर्यष्टमेऽह्नि अमावास्या भविष्यतीत्यनेन त्रयोदशदिनात्मकोऽयं कृष्णपक्षो महोत्पातजनक इति सूचितम् । क्षीणयोश्च तिथ्योः पक्षान्तरे पुनर्वृद्ध्या संख्यापूरणं भवतीति मार्गशीर्षकृष्णपञ्चमीमारभ्य पौषशुक्लप्रतिपत् द्विचत्वारिंशी तिथिर्भवतीति बलदेववाक्योक्ता दिनसंख्या नक्षत्रसंख्या चानुगृहीता भवति । यत्तु '**सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति । संग्रामं योजयेत्तत्र तां ह्याहुः शक्रदैवताम् ॥ प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽयमिति पुनः पुनः**' इति दुर्योधनवाक्यम् । तत्र संग्राममित्यनेन संग्रामे जयसाधनं धाराबंधादिकं तस्यां योजयेदित्युक्तम् । शक्रदैवतामित्यनेन तस्यां ज्येष्ठानक्षत्रयोग उच्यते स च तिथिद्वयक्षयात्तत्रासंभवन्नपि तत्र तिथिवदेव नक्षत्रक्षयाद्वा तिथिनक्षत्रयोराद्यन्तयोगाद्वा ज्ञेयं इति सर्वं समंजसम् । महाग्रहाः राहुकेत्वोरुपग्रहत्वात्सप्तैव ॥२॥ ववाशिरे शब्दं कृतवन्तः ॥४॥

एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः ।
संभावयत चात्मानमव्यग्रमनसो युधि ॥ ९
नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः ।
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः ॥ १०
अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे ।
यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥ ११
एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ ।
निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥ १२
स तु वैकर्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः ।
न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥ १३
अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः ।
निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥ १४
श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः ।
तान्यनीकानि शोभन्ते रथैरथ पदातिभिः ॥ १५
भेरीपणवशब्दैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
रथनेमिनिनादैश्च बभूवाकुलिता मही ॥ १६
काञ्चनाङ्गदकेयूरैः कार्मुकैश्च महारथाः ।
भ्राजमाना व्यराजन्त साग्नयः पर्वता इव ॥ १७
तालेन महता भीष्मः पञ्चतारेण केतुना ।
विमलादित्यसङ्काशस्तस्थौ कुरुचमूपरि ॥ १८
ये त्वदीया महेष्वासा राजानो भरतर्षभ ।
अवर्तन्त यथा देशं राजन् शान्तनवस्य ते ॥ १९
स तु गोवासनः शैब्यः सहितः सर्वराजभिः ।
ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना ।
पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः ॥ २०
अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलाङ्गूलकेतुना ।
श्रुतायुधश्चित्रसेनः पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ २१
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः ।
एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥ २२
स्यन्दनैर्वरवर्माणो भीष्मस्यासन्पुरोगमाः ।
तेषामपि महोत्सेधाः शोभयन्तो रथोत्तमान् ॥ २३
भ्राजमाना व्यरोचन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः ।
जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता ॥ २४
केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह ।
अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः ॥ २५
महान् दुर्योधनस्यासीन्नागो मणिमयो ध्वजः ।
तस्य पौरवकालिङ्गकाम्बोजाः सक्षुदक्षिणाः ॥ २६
क्षेमधन्वा च शल्यश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः ।
स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च ।
प्रकर्षन्निव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ ॥ २७
तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना ।
शारदाम्बुधरप्रख्यं प्राच्यानां सुमहद्बलम् ॥ २८
अनीकप्रमुखे तिष्ठन् वराहेण महायशाः ।
शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥ २९
शतं रथसहस्राणां तस्यासन् वशवर्तिनः ।
अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥ ३०
तत्सिन्धुपतिना राज्ञा पालितं ध्वजिनीमुखम् ।
अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद्बलम् ॥ ३१
षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च ।
पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥ ३२
तस्य पर्वतसङ्काशा व्यरोचन्त महागजाः ।
यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥ ३३
शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः ।
श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥ ३४
केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमाङ्कुशम् ।
आस्थितः समरे राजन् मेघस्थ इव भानुमान् ॥ ३५
तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः ।
भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥ ३६
गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन संमितौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥ ३७
स रथानीकवान् व्यूहो हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान् ।
वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन् सर्वतोमुखः ॥ ३८
द्रोणेन विहितो राजन् राज्ञा शान्तनवेन च ।
तथैवाचार्यपुत्रेण बाल्हीकेन कृपेण च ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

अयोनिधनं अयसा शस्त्रेण मरणम् ॥ ११ ॥ तालेन ध्वजभूतेन ॥ १८ ॥ गोवासनः तद्देश्यः ॥ २० ॥ अङ्गपतिना कर्णपुत्रेण वृषकेतुना ॥ २८ ॥ वराहेण केतुमुख्येनेति सम्बन्धः ॥ २९ ॥ निष्केण कण्ठाभरणेन ३४॥
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

सञ्जय उवाच ।
ततो मुहूर्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः ।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥ १
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥ २
हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् ।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनापूरितं तदा ॥ ३
पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च ।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ ४
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ५
ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप ।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः ॥ ६
स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत ।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥ ७
काञ्चनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ ८
कुरुयोधवरा राजन्विचित्रायुधकार्मुकाः ।
उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः पताकिनः ॥ ९
ऋषभाक्षा महेष्वासाश्चमूमुखगता बभुः ।
पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप ।
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा ॥ १०
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः ॥ ११
रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥१२
शाल्वा मत्स्यास्तथाम्बष्ठास्त्रैगर्ताः केकयास्तथा ।
सौवीराः कैतवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यवासिनः
द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।
महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम् ॥ १४
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
मागधो यत्र नृपतिस्तद्रथानीकमन्वयात् ॥ १५
रथानां चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम् ।
अभवन् वाहिनीमध्ये शतानामयुतानि षट् ॥ १६
पादाताश्चाग्रतोऽगच्छन् धनुश्चर्मासिपाणयः ।
अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः ॥ १७
अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत ।
अदृश्यन्त महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा ॥ १८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

धृतराष्ट्र उवाच ।
अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढा दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पांडवः ॥ १
यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत सञ्जय ॥ २
सञ्जय उवाच ।
धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनञ्जयम् ॥ ३
महर्षेर्वचनात्तात वेदयन्ति बृहस्पतेः ।
संहतान्योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ ४
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह ।
अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ ५
एतद्वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव ।
एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः ॥ ६
एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम् ।
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ ७

---

१८

तत इति ॥ १ ॥ शतानामयुतानि षट् षट्शतान्ययुतगुणानि षष्टिलक्षाणीति यावत् ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

अक्षौहिण्य इति ॥ १ ॥ संहतानिति । अल्पैः संहत्यैव योद्धव्यं बहुभिस्तु विशकलितैरपि योद्धुं शक्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ व्यूह व्यूहं कुरु ॥ ६ ॥

यः स वात इवोद्धूतः समरे दुःसहः परैः ।
स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः ॥ ८
तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन् पुरुषसत्तमः ।
अग्रेऽग्रणीर्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥ ९
यं दृष्ट्वा कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
निवर्तिष्यन्ति सन्त्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा ॥
तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं देवराजमिवामराः ॥ ११
न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम् ।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥ १२
एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनञ्जयः ।
व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा १३
संप्रयातान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्पन्दमाना व्यदृश्यत॥१४
भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५
विराटश्च ततः पश्चाद्राजाऽथाक्षौहिणीवृतः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥ १६
चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती ।
द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः॥ १७
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः ।
सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥ १८
शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाभिरक्षितः ।
यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥ १९
पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्यासीद्युयुधानो महाबलः ।
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २०
कैकेयो धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
भीमसेनो गदां बिभ्रद्वज्रसारमयीं दृढाम् ।
चरन्वेगेन महता समुद्रमपि शोषयेत् ॥ २१
एते तिष्ठन्ति सामात्याः प्रेक्षन्तस्ते जनाधिप ।
धृतराष्ट्रस्य दायादा इति बीभत्सुरब्रवीत् ॥ २२
भीमसेनं तदा राजन् दर्शयस्व महाबलम् ।
ब्रुवाणं तु तथा पार्थं सर्वसैन्यानि भारत ॥ २३
अपूजयंस्तदा वाग्भिरनुकूलाभिराहवे ।
राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २४
बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव ।
अक्षौहिण्याऽथ पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः ।
विराटमन्वयात् पश्चात् पाण्डवार्थे पराक्रमी॥२५
तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः ।
नानाचिह्नधरा राजन्रथेष्वासन्महाध्वजाः ॥ २६
समुत्सार्य ततः पश्चाद्धृष्टद्युम्नो महारथः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षद्युधिष्ठिरम् ॥२७
त्वदीयानां परेषां च रथेषु विप्लान् ध्वजान् ।
अभिभूयार्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः ॥ २८
पदातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः ।
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥ २९
वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः ।
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाचलाः ॥ ३०
क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः ।
राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥ ३१
भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन् परिघोपमाम् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३२
तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् ।
न शेकुः सर्वयोधास्तं प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३३
वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ।
चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥ ३४
यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥ ३५
सन्ध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रावात्सपृषतो वायुर्निरभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३६
विष्वग्वाताश्च विववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।
रजश्चोद्धूयत महत्तम आच्छादयज्जगत् ॥ ३७
पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ ।
उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३८
अथ संनह्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ।
निष्प्रभोऽभ्युद्ययौ सूर्यः सघोषं भूश्चचाल च ३९
व्यशीर्यत सनादा च भूस्तदा भरतर्षभ ।
निर्घाता बहवो राजन्दिक्षु सर्वासु चाभवन् ४०
प्रादुरासीद्रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥ ४१
किङ्किणीजालबद्धानां काञ्चनस्रग्वराम्बरैः ।
महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥ ४२
सर्वं झणझणीभूतमासीत्तालवनेष्विव ।
एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा युद्धनन्दिनः ॥ ४३

स्पन्दमाना किञ्चिच्चलन्ती॥१४॥ धृतराष्ट्रस्य दायादा इत्यनेन तवैवैते भाग इति सूचयति ॥२२॥ वारणा राजानमन्वयुरिति सम्बन्धः । अचलाः निष्कम्पाः ॥ ३० ॥ जीमूताः पर्वताः । 'जीमूतोऽद्रौ' इति मेदिनी ॥ ३१ ॥ प्रावात् प्रववौ सपृषतः सबिन्दुः ॥ ३६ ॥ वाताः रूक्षा वायवः ॥ ३७ ॥ आहत्य आस्फाल्य ॥ ३८ ॥

व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् । प्रसन्न इव मज्जा नो योधानां भरतर्षभ ॥ ४४
दृष्ट्वाऽग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि पाण्डवसैन्यव्यूहे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

धृतराष्ट्र उवाच ।
सूर्योदये सञ्जय के नु पूर्वं
युयुत्सवो हृष्यमाणा इवासन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे
पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥ १
केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू
केषां सेनां श्वापदाश्चाभषन्त ।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः
सर्वं मे त्वं ब्रूहि मेवं यथावत् ॥ २
सञ्जय उवाच ।
उभे सेने तुल्यमिवोपयाते
उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र ।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे
तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥ ३
उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे
तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये ।
तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे
तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे ॥ ४
पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः ।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां
देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५
चक्रे वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां
धार्तराष्ट्रान् श्वापदा व्याहरन्त ।
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रा-
न्न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥ ६
दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं
सुवर्णकक्षं जालवन्तं प्रभिन्नम् ।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां
संस्तूयमानो बन्दिभिर्मागधैश्च ॥ ७
चन्द्रप्रभं श्वेतमथातपत्रं
सौवर्णस्रग्भ्राजति चोत्तमाङ्गे ।
तं सर्वतः शकुनिः पार्वतीयैः
सार्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः ॥ ८
भीष्मोऽग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः
श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सखड्गः ।
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन
श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशैः ॥ ९
तस्य सैन्ये धार्तराष्ट्राश्च सर्वे
बाल्हीकानामेकदेशः शलश्च ।
ये चाम्बष्ठाः क्षत्रिया ये च सिन्धो-
स्तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः ॥ १०
शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा
द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्त्वः ।
आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां
पश्चाच्च भूमीन्द्र इवाभियाति ॥ ११
वार्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये
भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च ।
शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चेति सर्वे
गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः ॥ १२

---

मज्जा न इति । नोऽस्माकं योधानां मज्जाः धातुविशेषान् प्रसन्न इवेति योज्यम् ॥ ४४ ॥ भीमसेनं दृष्ट्वा व्यवस्थिता इति सम्बन्धः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

सूर्योदय इति । भीष्मो नेता निर्वोढा येषां ते भीष्मनेत्राः ॥ १ ॥ मेवं पुष्कलं यथा स्यात्तथा ब्रूहि । मेवामिति मीवतेः पुष्ट्यर्थस्य घञि बाहुलकादुपधाह्रस्वे ततो गुणे रूपम् । गौडास्त्विह पाठान्तरं कल्पयन्ति सर्वमेतद्ब्रूहि मे त्वं यथावदिति ॥ २ ॥ व्यूहे स्वे स्वे इति शेषः ॥ ३ ॥ भूमीन्द्र इव पर्वत इव अप्रकंप्य इत्यर्थः ॥ ११ ॥

शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा
महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी ।
शकैः किरातैर्यवनैः पह्लवैश्च
सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति ॥ १३
महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं
सुराष्ट्रकैर्विहितैरात्तशस्त्रैः ।
बृहद्बलं कृतवर्माभिगुप्तं
बलं त्वदीयं दक्षिणेनाभियाति ॥ १४
संशप्तकानामयुतं रथानां
मृत्युर्जयो वाऽर्जुनस्येति सृष्टाः ।
येनार्जुनस्तेन राजन् कृतास्त्राः
प्रयातारस्ते त्रिगर्ताश्च शूराः ॥ १५
साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तत्र भारत ।
नागे नागे रथशतं शतमश्वा रथे रथे ॥ १६
अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के शतचर्मिणः ।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत । १७
संव्यूह्य मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणीः १८
महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान् ।
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि १९
अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र
भीमा त्वदीया न तु पाण्डवानाम् ।
तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां
यस्या नेता केशवश्चार्जुनश्च ॥ २०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

संजय उवाच ।
बृहतीं धार्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम् ।
विषादमगमद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १
व्यूहं भीष्मेण चाभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अभेद्यमिव संप्रेक्ष्य विवर्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २
धनंजय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे ।
धार्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥ ३
अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणामित्रकर्षिणा ।
कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा ॥ ४
ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण ।
कथमस्मान्महाव्यूहादुत्थानं नो भविष्यति ॥ ५
अथार्जुनोऽब्रवीत् पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा ।
विषण्णमिव सम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥ ६
प्रज्ञयाऽभ्यधिकान् शूरान् गुणयुक्तान् बहूनपि ।
जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशांपते ॥ ७
तत्र ते कारणं राजन् प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥ ८
एतमेवार्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् ।
पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन् दिवौकसः ९
न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः ।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ १०
ज्ञात्वा धर्ममधर्मं च लोभं चोत्तममास्थिताः ।
युद्ध्यध्वमनहङ्कारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११
एवं राजन्विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः ।
यथा तु नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२
गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽन्वेति माधवम् ।
तद्यथा विजयश्चास्य संनतिश्चापरो गुणः ॥ १३
अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः ।
पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४
पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः ।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्त्विति ॥ १५
कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम् ।
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः १६

येन यत्र तेन तत्र ॥ १५ ॥ अनन्तरूपा बह्वी त्वदीया न तु पाण्डवानां सेना बह्वी तथापि तां बृहतीमेव मन्ये इति सम्बन्धः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

बृहतीमिति ॥ १ ॥ उत्थानं जयः ॥ ५ ॥ गुणभूतो दासभूतः ॥१३॥ अकुण्ठसायकः अप्रतिहतायुधः॥१५

तस्य ते न व्यथां काश्चिदिह पश्यामि भारत । यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः १७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

सञ्जय उवाच ।

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत् ।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १
यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।
स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २
मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना ।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३
अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम् ।
श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४

महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु
सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् ।
युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं
समास्थितो नागपुरस्य मध्ये ॥ ५
समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य
सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति ।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्त
महर्षयः संस्तुतिभिर्महेन्द्रम् ॥ ६
पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो
ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम् ।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च महौषधीभिः
समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥ ७
ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ।
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा
कुर्वन् ययौ शक्र इवामरेशः ॥ ८

सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ।
रथोऽर्जुनस्याग्निरिवार्चिमाली
विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः ॥ ९
तमास्थितः केशवसंगृहीतं
कपिध्वजो गाण्डिवबाणपाणिः ।
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां
न विद्यते नो भविता कदाचित् ॥ १०
उद्वर्तयिष्यंस्तव पुत्रसेना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम् ।
अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां
नराश्वनागान् युधि भस्म कुर्यात् ॥ ११
स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां
वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता ।
तं तत्र सिंहर्षभमत्तखेलम्
लोके महेन्द्रप्रतिमानकल्पम् ॥ १२
समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं
संविव्यथुः पङ्कगता यथा द्विपाः ।
वृकोदरं वारणराजदर्पं
योधास्त्वदीया भयविग्नसत्त्वाः ॥ १३

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं गुडाकेशं जनार्दनः ॥ १४

वासुदेव उवाच ।

य एष रोषात् प्रतपन् बलस्थो
यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च ।
स एष भीष्मः कुरुवंशकेतु-
र्येनाहृतास्त्रिशतं वाजिमेधाः ॥ १५

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

तत इति ॥ १ ॥ पुरस्य मध्ये स्थितमिदानीमानीत-मिति भावः ॥ ५ ॥ सहस्रं सूर्यतुल्यान्यादर्शचक्राणि यस्मिन्स सहस्रसूर्यः ॥ ९ ॥ पाठान्तरे यो नः सेनां यो भीष्मो नोऽस्मभ्यं अस्मत्तः सेनां स्वां आरक्ष अभेद्यव्यूहरचनया रक्षितवान् ॥ १५ ॥

एतान्यनीकानि महानुभावं
गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम् ।
एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर
काङ्क्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥ १६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

सञ्जय उवाच ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धार्थं समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १

श्रीभगवानुवाच ।
शुचिर्भूत्वा महाबाहो सङ्ग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तोऽर्जुनः संख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात् पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३

अर्जुन उवाच ।
नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ४
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५
कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६
अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७
महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८
उमे शाकंभरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ९
वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जंबूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १०
त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११
स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती ।
सावित्रि वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२
स्तुताऽसि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥ १३
कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४

गूहन्ति परिवारयन्ति भरतर्षभेण भीष्मेण ॥१६॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

**२३**

इदानीं स्वस्य दिव्यं ज्ञानमस्तीति दर्शयन् सञ्जय उवाच —**धार्तराष्ट्रबलमिति** । हितार्थाय हितश्चासावर्थश्च हितार्थो जयस्तदर्थम् ॥ १ ॥ दुर्गायाः असुरविहन्तृत्वेन प्रसिद्धायाः स्तोत्रं उदीरय असुरांशानां शत्रूणां पराजयाय ॥ २ ॥ संख्ये संग्रामे ॥ ३ ॥ हे सिद्धसेनानि सिद्धानां योगिनां सेना समुदायस्तस्य नेत्री परमपदप्रापिका योगसिद्धिकरीत्यर्थः । आर्ये। ऋगतौ अस्मात् ऋहलोर्ण्यत्। प्राप्यब्रह्मस्वरूपे इत्यर्थः । मंदरे मंदरवने वसतीति तथा कुमारि अविप्लुतब्रह्मचर्यें जरादिहीने इति वा । कालि कालशक्ते । कापालि कपालस्यायं पतिः कापालो रुद्रस्तत्पत्नि । कपिलः कृष्णपिंगलश्च वर्णविशेषौ तद्वति ॥ ४ ॥ भद्रं कल्याणं कालयति भक्तान् प्रत्यानयति सा भद्रकाली । महती चासौ काली च कालयित्री संहर्त्री कालरूपा महाकाली । चण्डि चण्डस्य कालान्तकस्य भार्ये। चण्डे प्रगल्भे। तारिणि सङ्कटोत्तरणकर्त्रि । वरवर्णिनी सर्वसौभाग्यलक्षणोपेता स्त्री तद्रूपे ॥ ५ ॥ कात्यायनि कतगोत्रोद्भवे । महाभागे आतिपूज्ये । करालि क्रूरे । विजये विशिष्टो जयो यया सा जयप्रदे इत्यर्थः । जये जयस्वरूपे ॥ ६ ॥ अट्टं अत्युत्कटं शूलं तदेव प्रहरणमायुधं यस्याः । खेटकं चर्म ॥७ कौशिकि कुशिककुलोत्पन्ने । अट्टहासे प्रशस्तस्मिते । कोकं चक्रवत् वृत्तं वा रक्तबीजवधेऽसुरादानशीलं वा मुखं यस्याः सा कोकमुखा ॥ ८ ॥ श्वेते महेश्वररूपे । कृष्णे वासुदेवरूपे । हिरण्याक्षि पीतनेत्रे । विरूपाक्षि विविधरूपयुक्तनेत्रे मनुष्यादौ । सुधूम्राक्षि मार्जारादौ । एतेन सार्वात्म्यमुक्तं भवति ॥ ९ ॥ ब्रह्मण्ये यज्ञकर्मविप्रादिषु साध्वी ब्रह्मण्या । जातवेदसि अतीतज्ञे अतीतैर्ज्ञाते वा । जम्बूकटकेषु जम्बूद्वीपराजधानीषु चैत्येषु देवतालयेषु नित्यं सन्निहित आलयः स्थानं यस्याः सा तथा ॥ १० ॥ महानिद्रा ब्रह्मविद्याफलभूता मुक्तिः । **स्कन्दमातरिति** । सर्वदेवतारूपत्वोपलक्षणम् ॥११ ॥ **स्वाहेति**। सर्वकर्मरूपत्वम्। **कलेति** । सर्वस्थूलसूक्ष्मकालरूपत्वम् । **सावित्रीति** । सर्ववाङ्मयरूपत्वं च उच्यते ॥ १२ ॥ रणाजिरे युद्धाङ्गणे ॥ १३ ॥

त्वं जंभनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च
सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा १५
तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।
भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥१६

सञ्जय उवाच ।

ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला ।
अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याग्रतः स्थिता १७

देव्युवाच ।

स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रून् जेष्यसि पाण्डव ।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥ १८
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।
इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनान्तरधीयत ॥ १९
लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।
आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसंमतम् ॥ २०
कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।
य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१
यक्षरक्षःपिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा ।
न चापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥२२
न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि ।
विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्यति बन्धनात् ॥२३
दुर्गं तरति चावश्यं तथा चौरैर्विमुच्यते ।
संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् २४
आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं तथा ।
एतद्दृष्टं प्रसादात्तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५
मोहादेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ।
तव पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मन्युवशानुगाः ॥ २६
प्राप्तकालमिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः ।
द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथाऽनघः ।
अवारयंस्तव सुतं न चासौ तद्गृहीतवान् ॥ २७
यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः २८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्गास्तोत्रे
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

जम्भनी तन्द्रा । मोहिनी निद्रा । माया अद्भुतप्रदर्शनम् । ह्रीर्लज्जाख्या चेतोवृत्तिः । एतच्च कामादिवृत्तीनामप्युपलक्षणम् । श्रीर्लक्ष्मीः विद्यातपोधनादिसमृद्धिरूपा । सन्ध्या सन्धौ आदावन्ते च भवा सन्ध्या सृष्टिप्रलयकर्त्रीत्यर्थः । प्रभावती चन्द्रसूर्यप्रभायुक्ताहोरात्ररूपा । सावित्री सवितुः सूर्यस्य संबन्धिनी प्रभा प्रकाशनशक्तिस्तद्रूपा । जननी मातृवत्पालयित्री ॥ १५॥ तुष्टिः सन्तोषः । पुष्टिरुपचयः । धृतिर्धैर्यम् । दीप्तिर्ज्योतिः । यया कान्त्या चन्द्रादित्यौ वर्धेते अत्यन्तं कान्तिमन्तौ भवतः वक्ष्यति च-' यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।' इति । 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध.' इति श्रुतिश्च ।परं चिन्मात्रं ब्रह्मैवेत्यर्थः । भूतिःऐश्वर्यं भूतिमतां महेश्वरादीनाम् । ' एषाऽस्य परमा सम्पत् ' इति श्रुतेर्ब्रह्मरूपैव । संख्ये सम्यक् ख्यानं प्रकाशनं यत्र तस्मिन्नात्मानात्मविवेकरूपे समाधौ सिद्धैर्जीवन्मुक्तैश्चारणैराजानसिद्धैश्च वीक्ष्यसेऽनुभूयसे प्रत्यगात्मत्वेन तदेवमाकारविशेषोपाहितं ब्रह्माभिध्यातं सत् सर्वा मोक्षादर्वाचीना राज्यविजयादिसिद्धिः प्रयच्छतीति प्रदर्शितम् । तदेव वक्ष्यति भगवान्-' येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् । लभन्ते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्' इति च । तथा महती विमोक्षाख्या सिद्धिरपि सर्वाकारानुपहितब्रह्मज्ञानादेव भवतीति प्रतिपादनाय गीताशास्त्रमारीप्समानेन तत्र विश्वासोत्पत्त्यर्थं सद्यः प्रत्ययकरं देवीस्तोत्रं कुर्विति नियुक्तोऽर्जुनो देवीं प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा जातप्रत्ययो गीतास्वपि श्रद्धां बध्नीयादित्याशयवता भगवता एतदुक्तमिति प्रघट्टकार्थः । एवमेव वेदेऽपि कारीर्यादीनां सद्योवृष्ट्यादिफलानां कर्मणां विधानमदृष्टार्थेषु कर्मसु श्रद्धोत्पादनार्थमेवेति निर्णीतं पूर्वाचार्यैः १६॥ **ततः पार्थस्येति** । अन्तरिक्षगतेत्यैश्वर्यप्रदर्शनार्थं विशेषणम् ॥ १७ ॥ नरस्त्वमित्यर्जुनाय पूर्वं नरनारायणात्मकं रूपं स्मारयति तेन च तत्स्मृत्यैव सर्वभयनिवृत्तिर्भवति तद्विस्मरणादेव तु पराजयभयमित्यपि दर्शितम् । एवमयं गीताशास्त्रस्य वक्ष्यमाणस्योपोद्घातो दर्शितः ॥ १८ ॥ कथामनुसन्धत्ते—**लब्ध्वेत्यादिना** ॥ २० ॥ एतत्स्तोत्रपाठफलमाह—**य इदमिति** । कल्ये प्रभाते ॥ २१ ॥ तेभ्यो न भयमिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ २२ ॥ **यत्रेति** । धर्मफलं द्युतिप्रभृतयः । तर्हि मत्पक्षेऽपि धर्मोऽस्त्येवेति मन्वानं प्रत्याह यत्र धर्मस्तत्र कृष्णः । त्वत्पक्षे कृष्णाभावाद्धर्मोऽपि नास्ति तत्फलभूता द्युत्यादयोऽपि न सन्तीत्यर्थः। फलितमाह-**यतः कृष्णस्ततो जय इति** । २८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

धृतराष्ट्र उवाच ।
केषां प्रहृष्टास्तत्राग्रे योधा युध्यन्ति सञ्जय ।
उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥ १
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २
कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा ।
स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ ४
संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ ।
संसर्गात्समुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥ ५
वादित्रशब्दस्तुमुलः शंखभेरीविमिश्रितः ।
शूराणां रणशूराणां गर्जतामितरेतरम् ॥ ६
उभयोः सेनयो राजन्महान्व्यतिकरोऽभवत् ।
अन्योन्यं वीक्ष्यमाणानां योधानां भरतर्षभ ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥ ७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

२४

केषामित्याद्यध्यायः स्पष्टार्थः ॥ १ ॥ इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंस— श्रीगोविंदसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणकात्यायनीस्तवान्तग्रन्थार्थप्रकाशे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

# ॥ भगवद्गीता ॥

२५

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १

सञ्जय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥७

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ ८

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९

२५

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो वंशऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः ।

प्रणम्य भगवत्पादान् श्रीधरादींश्च सद्गुरून् । संप्रदायानुसारेण गीताव्याख्यां समारभे ॥ १

भारते सर्ववेदार्थो भारतार्थश्च कृत्स्नशः । गीतायामस्ति तेनेयं सर्वशास्त्रमयी मता ॥ २

कर्मोपास्तिज्ञानभेदैः शास्त्रं काण्डत्रयात्मकम् । अन्ये तूपासनाकाण्डात्तृतीयो नातिरिच्यते ॥ ३

तदेव ब्रह्म विद्धि त्वं नेदं यदिदमुपासते । इति श्रुत्यैव वेद्यस्य ह्युपास्यादन्यतेरिता ॥ ४

इयमष्टादशाध्यायी क्रमात् षट्कत्रिकेण हि । कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डत्रितयात्मा निगद्यते ॥ ५

तत्र युद्धोद्यमं श्रुत्वौत्सुक्यादग्रिमं वृत्तान्तं बुभुत्सुर्धृतराष्ट्र उवाच—**धर्मक्षेत्र इति** । तत्र वेदे 'तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास' इति कर्मकाण्डप्रसिद्धं कुरुक्षेत्रमन्यत् । 'अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्' इत्यविमुक्ताख्यं ब्रह्मप्राप्तिस्थानभूतं कुरुक्षेत्रमन्यत् । ब्रह्मसदनत्वं चास्यात्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे । येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवतीति वाक्यशेषेण व्युत्पादितम् । एतद्व्यावृत्त्यर्थं धर्मक्षेत्रे इति विशेषणम् । कुरुदेशान्तर्गतं हि कुरुक्षेत्रं धर्मक्षेत्रमेव न तु तत् ब्रह्मसदनम् । प्रवर्ग्यकाण्डे तस्य धर्मक्षेत्रत्वमात्रश्रवणात् । तत्र समवेताः मिलिताः युयुत्सवो योद्धुमिच्छवः पाण्डवानां पृथग्ग्रहणं तेषु ममत्वाभावसूचनार्थम् ॥ १ ॥ व्यूढं व्यूहरचनया स्थितं आचार्यं द्रोणम् । राजा दुर्योधनः । राजाऽब्रवीदित्येव सिद्धे वचनपदेन संक्षिप्तबह्वर्थत्वादिगुणवत्त्वं वाक्यस्य सूच्यते ॥ २ ॥ द्रुपदपुत्रेणेति । पूर्ववैरसूचनेन क्रोधोद्दीपनार्थं विशेषणम् ॥ ३॥ महेष्वासा महान्ति इष्वासाः धनूंषि येषां ते युयुधानः सात्यकिः द्रुपदश्च महारथः इत्येकः ॥ ४ ॥ धृष्टकेत्वादयः षट् ॥ ५ ॥ युधामन्यूत्तमौजसौ सौभद्रोऽभिमन्युः पञ्च । द्रौपदेयाः प्रतिविन्ध्यादयश्चेत्यष्टौ चकारात् पाण्डवा घटोत्कचादयश्चातिप्रसिद्धा ग्राह्याः । सर्वेऽपि महारथा एव । तल्लक्षणं तु—'एकादश सहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स वै प्रोक्तो महारथः ॥ अमितान्योधयेद्यस्तु संप्रोक्तोऽतिरथस्तु सः । रथस्त्वेकेन योद्धा स्यात्तन्न्यूनोऽर्धरथः स्मृतः' इति ॥ ६ ॥ विशिष्टाः श्रेष्ठाः निबोध बुध्यस्व । भौवादिकस्य परस्मैपदिनो बुधेरिदं रूपम् । संज्ञार्थं अस्मत्पक्षेऽपि शूराः सन्तीति ज्ञापनार्थम् । परेषु प्राबल्यं दृष्ट्वा तवोत्साहभङ्गो माभूदित्यर्थः ॥ ७ ॥ विकर्णः स्वभ्राता सौमदत्तिर्भूरिश्रवाः । जयद्रथपदस्थाने तथैव चेति क्वचित्पाठः ॥ ८ ॥ अन्ये शल्यकृतवर्मप्रभृतयः शस्त्राणि विदारकाणि खड्गादीनि । प्रहरणानि केवलं प्रहारार्थानि गदादीनि नानाविधानि येषां ते नानाशस्त्रप्रहरणाः ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १०
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११
तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२
ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९
अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २०
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति २५
तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान्सखींस्तथा
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान्
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ३०

पर्याप्तं परित आप्तं परिवेष्टितुं पाण्डवसैन्यं हि सप्ताक्षौहिणीमितत्वादल्पं । बहुनैकादशाक्षौहिणीमितेनास्मत्सैन्येन वेष्टयितुं शक्यं न तु तदीयेनास्मदीयमित्यर्थः । एवं च पर्याप्तमित्यस्य पारणीयमित्यर्थः ॥ १० ॥ अयनेषु व्यूहरचनया स्थिते सैन्ये प्रवेशमार्गेषु स्वे स्वे स्थाने स्थिता यूयं मध्यस्थं भीष्ममेवाभिरक्षन्तु । अस्य सेनापतेश्चाञ्चल्ये सर्वाऽपि सेना आकुलीभवेत् । तत्स्थैर्ये स्थिरा च भवेदतः स एव रक्ष्य इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तस्यैवंवदतो दुर्योधनस्य सञ्जयवाक्यमिदम् । सिंहनादमिति णमुलन्तम् । तेन विनद्येत्यस्यानुप्रयोगः कषादित्वात् । 'समूलकाषं कषति स्म दैत्यान्' इत्यादिवत् । कुरुवृद्धो भीष्मः । प्राग्विराटनगरादौ दृष्टप्रभावान् पाण्डवान् दृष्ट्वा राज्ञो भयं मा भूदिति शङ्खं दध्मौ । हर्षं युद्धोत्साहं जनयन् । हेत्वर्थे शतृप्रत्ययः । हर्षजननार्थमित्यर्थः ॥ १२ ॥ अभ्यहन्यन्त अभिहताः कर्मकर्तरिप्रयोगः ॥ १३ ॥ व्यवस्थितान् भयोद्विग्नतया वैषम्येणावस्थितान् कपिध्वजपाण्डवपदाभ्यां भीषणध्वजत्वं शौर्यं च प्रदश्यते ॥ २० ॥ हृषीकेशं सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तकत्वेन पराचित्ताभिज्ञम् । वाक्यमेवाह न तु कञ्चिदर्थमिति द्योतनार्थं वाक्यपदम् । वाक्यमेवाह-**सेनयोरिति** ॥ २१ ॥ रथस्थापनप्रयोजनमाह—**यावदिति** । कैः सह मया योद्धव्यं मया सह वा कैर्योद्धव्यमित्युभयत्र सहशब्दसंबन्धः । के वा मां जेतुं यतन्ते मया वा के जेतव्या इत्यालोचनार्थमित्यर्थः ॥ २२ ॥ योत्स्यमानान् न तु शान्तिकामान् । यतो दुर्बुद्धेः प्रियं चिकीर्षन्ति तेन तेषामपि तत्तुल्यत्वं सूचितम् ॥ २३ ॥ रथोत्तमं स्थापयित्वा उवाचेति द्वयोः संबन्धः ॥ २४ ॥ महीक्षितां पृथिवीश्वराणाम् ॥ २५ ॥ पितॄन पितृव्यादीन् भूरिश्रवःप्रभृतीन् । पितामहान् भीष्मादीन् । मातुलान् शल्यादीन् । भ्रातॄन् दुर्योधनादीन् । पुत्रान् लक्ष्मणादीन् । पौत्रान् लक्ष्मणादिपुत्रान् । सखीन् अश्वत्थामादीन् ॥ २६ ॥ सुहृदः कृतवर्मादीन् ॥ २७ ॥ कृपया स्नेहेन स च स्वजनमिति विशेषणेन प्रदर्श्यते ॥ २८ ॥ सीदन्ति निश्चेष्टानि भवन्ति रोमहर्षो रोमाञ्चः ॥ २९ ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः संबन्धिनस्तथा
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किंनु महीकृते॥ ३५
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥ ३७

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४०
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ४३
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४

निमित्तानि लोकक्षयकराणि भूमिकम्पादीनि ॥ ३१ ॥ स्याला इति । स्यालशब्दो दन्त्यादिः ' विजामातुरुतवा घास्यालात् ' इति मन्त्रवर्णात् । ' स्याल्लाजानावपतीति वा लाजा लाजतेः स्यं शूर्पं स्यतेः ' इति यास्कः ॥ ३४ ॥ हन्तुं इच्छाऽपि मम न भवति किमुत हन्तृत्वमित्यर्थः । महीकृते पृथिव्यर्थे ॥ ३५ ॥ आततायिनः । ' अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ॥ क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ' इति, यद्यप्येवं तथापि एतान् हत्वा अस्मान् पापमेव आश्रयेत् आततायिवधो हि **अर्थशास्त्रविहितः** । ' न हिंस्यात्सर्वभूतानि इति तु **धर्मशास्त्रम्** । तच्च पूर्वस्मात्प्रबलं यथोक्तं याज्ञवल्क्येन ' स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः ॥ अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः' इति । अस्मान्हत्वा एतान् आततायिनः पापमेवाश्रयेदित्यपरा योजना । तथा च एत एवास्मद्वधेन नश्यन्तु न तु वयमेतेषां वधेन नंक्ष्याम इति भावः ॥ ३६ ॥ ननु ' आहूतो न निवर्तेत द्यूतादपि रणादपि' इति ' विजितं क्षत्रियस्य' इति च युद्धादनिवृत्तिर्हिंसया च वृत्तिः क्षत्रियस्येष्टा तत् कथं युद्धान्निवृत्तिमिच्छसीत्याशङ्क्याह-**कथमिति** । सा हि लोभमूलिका स्मृतिः कुलक्षयदोषविधिना बाध्यते । यथा ' औदुंबरीं स्पृष्ट्वोद्गायेत् ' इति स्पर्शनविधिना विरुद्धा सती ' औदुंबरी सर्वा वेष्टयितव्या ' इति सर्ववेष्टनस्मृतिर्बाध्यते । लोभमूलकत्वात्तद्वत् । न हि विधिमात्रात्किञ्चित्कर्तव्यम् । श्येनादीनामधर्मरूपाणामप्यवश्यानुष्ठेयत्वापत्तेः । तस्माद्यत्फलतो न दुष्यति तदेव विहितं धर्मरूपमनुष्ठेयम् यथोक्तम्-'फलतोऽपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते । केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म इति कथ्यते ' इति. । श्येनादिवत्पापानुबन्धित्वात् युद्धं राज्यमेवेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ प्रणश्यन्ति अनुष्ठातॄणां वृद्धानामभावादवशिष्टं बालादिरूपं वंशं धर्मलोपादधर्मोऽभिभवति ॥ ४० ॥ दुष्टासु पुत्रार्थं वर्णान्तरमुपासीनासु ॥ ४१ ॥ कथं तर्हि जामदग्न्येन रामेण क्षत्रियेषु हतेषु तत्स्त्रियः पुनः पुनर्ब्राह्मणेभ्यः पुत्रान् जनयामासुरित्युपाख्यायते । कथं वा धृतराष्ट्रादीनामसंकरजत्वमित्याशंक्याह—**पतन्तीति** । हिशब्दो वैदिकीं प्रसिद्धिं द्योतयति । सा हि 'न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति ' इति श्रुतिः । अन्यस्माज्जातं शेषोऽपत्यं नास्तीति तदर्थः । ' अन्योदर्यो मनसाऽपि न मन्तव्यो ममायं पुत्र इति ' **यास्कवचनाच्च** । ' ये यजामहे ' इति शास्त्रात् । ये वयं स्मस्ते वयं यजामह इत्यर्थकाद्दृश्यमानस्य पित्रादेः संशयग्रस्तत्वादयं मम पितैवेति निश्चयस्य दुःसाध्यत्वात् । मन्त्रश्च-'योऽहमस्मि स सन् यजे' ब्राह्मणेऽर्थवादश्च- ' न चैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मो वयमब्राह्मणा वा ' इति । तस्माद्बीजपतेरेव पिण्डादिप्राप्तिर्न तु क्षेत्रपतेरिति लुप्तपिण्डोदकक्रियत्वादवश्यं पितॄणां पातो भवति । क्षेत्रजपुत्रस्मृतिस्तु इह लोके वंशस्थापनमात्रपरा न तु तेन क्षेत्रपतेः कश्चिदामुष्मिक उपकारोऽस्ति । उदाहृतश्रुतिविरोधात् । अयं च संकरोऽस्माभिः स्वयं कृतश्चेदवश्यमस्मान्बाधिष्यत एवेति भावः ॥ ४२ ॥ एतदेव विवृणोति द्वाभ्यां—**दोषैरिति** ॥ ४३ ॥

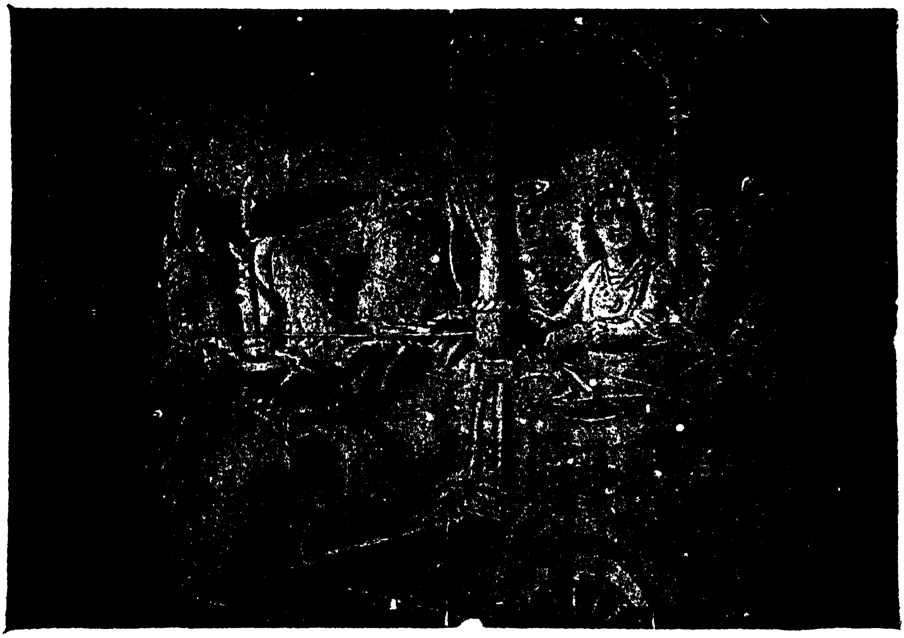

श्रीभगवानुवाच—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

—भीष्मपर्व अ. २६ पृ. ४५

अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ पर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

सञ्जय उवाच ।
तं तथा कृपयाऽऽविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १
श्रीभगवानुवाच ।
कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३

अर्जुन उवाच ।
कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४
गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५

संख्ये संग्रामे ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते नैलकण्ठीये भारतभावदीपे भीष्मपर्वप्रकाशे भगवद्गीतासु प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ पर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

२

अर्जुने युद्धादुपरते मत्पुत्रा निष्कण्टकं राज्यं प्राप्स्यन्तीत्याशावन्तं राजानं प्रति सञ्जय उवाच-**तं तथेति** । तमर्जुनं तथा । ' स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव' इत्युक्तप्रकारेण कृपया स्नेहेन न तु दयया परदुःखप्रहाणेच्छारूपया तस्याः परदौर्बल्यनिश्चयोत्तरभाविन्याः अर्जुने ' यदि वा नो जयेयुः ' इति स्वपराजयमाशङ्कमाने दुर्भणत्वात् । ' यानेव हत्वा न जिजीविषामः ' इति स्नेहातिशयसूचकवाक्यशेषविरोधाच्च आविष्टं व्याप्तं विषीदन्तं ' सीदन्ति मम गात्राणि ' इत्यादिना उक्तरूपं विषादं प्राप्नुवन्तं इदं वक्ष्यमाणं वाक्यं वचनीयं ' उवाच मधुसूदनः ' इति दुष्टहन्तृत्वादेवार्जुनं निमित्तीकृत्य त्वत्पुत्रानपि हनिष्यत्येवेति त्वया जयाशा न कार्येति भावः ॥ १ ॥ अर्जुनमुद्योजयन् श्रीभगवानुवाच-**कुत इति** । कश्मलं वैक्लव्यं विषमे युद्धसङ्कटे अनार्यैर्भीरुभिर्जुष्टं सेवितं न तु त्वादृशैः शूरैः न आर्यैर्जुष्टमिति वा यत्तु आर्यैरजुष्टमिति विग्रहो दर्शितस्तदर्थैक्येऽपि पदभ्युत्क्रमदोषादुपेक्ष्यं अत एवास्वर्ग्यमकीर्तिकरं च हे अर्जुन स्वच्छस्वभाव तव नैतद्युक्तमिति भावः ॥ २ ॥

तदेवाह-**क्लैब्यमिति** । क्लैब्यं निर्वीर्यत्वं न च शक्नोम्यवस्थातुमित्युक्तरूपं मा गाः नैतत् त्वयि महादेवप्रतिभटे युक्तं अतः क्षुद्रं तुच्छं हृदयकृतमेव तव दौर्बल्यं न तु शक्तिसहायाद्यभावकृतं तत्त्यक्त्वा उत्तिष्ठ युद्धाय परन्तप शत्रुतापन ॥ ३ ॥ ननु शत्रवो वा स्वभावदुष्टा वा तापनीयाः न तु बान्धवाः साधवश्चेत्यर्जुन उवाच-**कथमिति** । मधुसूदनारिसूदनेति संबोधयन् तवापि दुष्टानपि शत्रूनेव तापयतः पूजार्हौ अदुष्टौ गुरू च भीष्मद्रोणौ जहीति वक्तुमयुक्तमिति सूचयति । समानार्थकमिदं संबोधनद्वयं वक्तुः शोकेन विक्लवत्वान्न पौनरुक्त्यदोषावहमित्यन्ये । **इषुभिरिति** । ताभ्यां सह वाचाऽपि योद्धुमशक्यं किमुत बाणैरिति भावः ॥ ४ ॥ ननु युद्धोद्यतानां गुरूणामपि वधः श्रेयानित्याशंक्याह-**गुरूनिति** । यद्यपि त्वदुक्तं प्रशस्तमेव तथाऽपि महानुभावान् गुरूनहत्वा भैक्ष्यमेव भोक्तुं श्रेयः प्रशस्ततरम् । एवं तर्हि गुरूंस्त्यक्त्वा दुर्योधनादीनेव दुष्टान् जहीत्याशंक्याह-**अर्थकामानिति** । धनार्थिनो गुरवोऽवश्यं दुर्योधनसाहाय्यं करिष्यन्ति । तेन तद्वधोऽपि प्रसक्त एवेत्यर्थः । तुशब्दः पक्षान्तरोपन्यासार्थः । इहैव न तु परलोके भुञ्जीयेति संप्रश्ने लिङ् । गुरूनहत्वा भैक्षं श्रेयः उत हत्वा भोगसंपादनं श्रेय इति संप्रश्ने स्वयमेवान्यपक्षे दूषणमाह-**रुधिरप्रदिग्धानिति** ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥९
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १०

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११
न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२

एवं तर्हि भैक्षमेव तव श्रेय इत्याशङ्क्याह-**न चैतदिति**। यद्यप्यक्षत्रियस्य भैक्षमेवेष्टं तथापि नः अस्माकं क्षत्रियाणां भैक्षभोगयोर्मध्ये कतरत् गरीय इति वयं न विद्मः। ननूक्तं युद्धमेव गरीय इति तत्राह-**यद्वेति**। यदि वा वयं जयेम शत्रून् यदि वा नोऽस्मान् शत्रव एव जयेयुः इदमपि न विद्मः। अन्त्यपक्षे पुनर्मरणमप्रार्थितं भैक्षमेव वाऽऽपद्यत इति भावः। ननु मयि सहाये सति तव जय एव निश्चित इत्यत आह-**यानेवेति**। इष्टनाशाज्जयोऽपि पराजयरूप एवेत्यर्थः। यत्तु निश्चितेऽपि भैक्षश्रेयस्त्वे पुनर्युद्धभैक्षयोः कतरत् श्रेय इति संशयो नोचितः। अतो नः अस्माकं मध्ये कतरत् सैन्यं गरीय इति व्याख्येयमिति, तदसत्। **धर्मसंमूढचेता** इतिविशेषणादुक्तसंशयस्यैवोचितत्वात् सैन्यगरीयस्त्वसंशयेनैव जयसंशयेऽन्यथासिद्धेऽन्यतरसंशयस्य वैयर्थ्यात् विशेषाध्याहारदोषाच्च ॥ ६ ॥ उक्तसंशयवानेव पृच्छति-**कार्पण्येति**। कार्पण्यं दीनत्वं स्वभावः शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यमित्यादिना वक्ष्यमाणलक्षणः। शेषं स्पष्टम् ॥ ७ ॥ ननु 'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप' इति युद्धमेव श्रेय इत्युक्तं किं पुनः पृच्छसीत्यत आह-**न हीति**। बन्धुनाशनिमित्तः शोको राज्यलाभेन स्वर्गाधिपत्यलाभेन वा न निवर्तयिष्यत इति युद्धादन्यं कश्चित् निवृत्तिरूपं शमोपायं ब्रूहीत्याशयः। अत्रार्जुनविषादव्याजेन ब्रह्मविद्याधिकारिविशेषणं भैक्षचर्या इहामुत्रार्थफलभोगविरागश्च दर्शितः ॥ ८ ॥ **तमिति**। मूढोऽप्ययममूढवद्वदतीति प्रहसन्निव इदं वक्ष्यमाणम् ॥ १० ॥ अर्जुनस्य देहनाशे आत्मनाशधीः स्वधर्मे युद्धे चाधर्मधीरिति मोहद्वयम्। तत्राद्यं ब्रह्मविद्यासूत्रभूतैर्विंशत्या श्लोकैरपनिनीषन् श्रीभगवानुवाच—**अशोच्यानन्वशोचस्त्वमिति**। 'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते' इति श्रुतेर्देहाद्युपाधिनाशेऽप्याकाशवन्नाशरहितत्वेन अशोचनीयान् भीष्मादीनन्वशोचः कथमेते गुरवो मया हन्तव्याः कथं वा तैर्विनाऽहं जीविष्यामीति शोकं कृतवानसि। एवं मूढोऽपि त्वं प्रज्ञावादान् प्रज्ञावतां देहादन्यमात्मानं जानतां वादान् शब्दान्। 'नरके नियतं वासः' 'पतन्ति पितरो ह्येषाम्' इत्यादीन्। भाषसे। परं न तु प्रज्ञावानसि तत्र हेतुः-**गतासूनिति**। गतासून् गतप्राणान् देहाननुशोचन्ति प्रत्युत निर्हरन्त्येव एतेन प्राण एवेष्टो न तु देहः तथा च श्रुतिः—'प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राण आचार्यः' इत्यादिः। अत एव सप्राणानेतानवगणयन्तं नरं पित्रादिहन्ता त्वमसि धिक्त्वामिति वदन्ति। उत्क्रान्तप्राणान् दहन्तमपि नैवं वदन्तीति लोकवेदप्रसिद्धिः। तस्मात् आत्मा देहादन्यः चेतनत्वात्। व्यतिरेकेण घटवत्। देहो न चेतनः दृश्यत्वात्। घटवत्। यदि देहश्चेतनः स्यात् मृतेऽपि तत्र चैतन्यमुपलभ्येत। तस्माद्देहनाशेनात्मनाशं मन्वानो मूर्ख एवासीत्यर्थः। यत्तु प्रज्ञावतां पण्डितानां अवादान् वक्तुमयोग्यान् भाषसे इति तार्किकव्याख्यानं तत् अर्हार्थे घञो दुर्लभत्वात् विशेषाध्याहारसोपक्षत्वाच्चोपेक्ष्यम् ॥ ११ ॥ ननु देहादन्योऽपि देहनाशेन नश्यतां कोशकार इव कोशनाशेनेति तत्राह-**न त्वेवाहमिति**। त्वमहमिमे च सर्वे अनादयोऽनन्ताश्च स्म इत्यर्थः। जातु कदाचित् अहं न आसं इति न, अपि तु आसमेव। तथा त्वमपि नासीरिति न अपि त्वासीरेव। इमे जनाधिपाः राजान इत्युपलक्षणं सर्वस्य जन्तुजातस्य नासन्निति न अपि त्वासन्नेवेति योजना। अनादित्वादनन्ताश्चेत्याह-**न चेति**। न भविष्याम इति नैव किंतु सर्वे भविष्याम एव। ननु देहस्यानात्मत्वे कथं तत्पीडयाऽयं पीड्यत इति चेद्यक्षवत्तदभिमानमात्रादिति ब्रूमः। यदा हि यक्षः परशरीरे विशति तदा तत्पीडया देहपतिर्न बाध्यते तस्य तदानीं

**देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३**

**मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत १४**

देहाभिमानाभावात् । यक्षस्तु बाध्यतेऽभिमानसत्त्वादिति लोके प्रसिद्धम् । किं च प्राचीनकर्मव्यतिरेकेण जीवनं नोपपद्यते कृतहानाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् । वृक्षादिष्वपि प्राक्कर्मास्तीत्यनुमेयम् । स्थावरजीविका प्राक्कर्मपूर्विका । जीविकात्वात् । पाकादिक्रियापूर्वकास्मदादिजीविकावत् । अपि च क्रियावैचित्र्यात्कार्यवैचित्र्यं दृष्टं घटशरावोदञ्चनादिषु तद्वदिहापि सुखदुःखादिवैचित्र्यं प्राक्कर्मवैचित्र्यादनुमेयम् । तथा सद्योजातस्य गोवत्सस्य स्तनपानादौ प्रवृत्तिर्जन्तुमात्रस्य मरणात्रासश्च प्राग्भवीयानुभवजनितसंस्कारजन्यो भोजनादिप्रवृत्तिश्चोच्छ्वासादिवादित्यतोऽस्ति प्राचीनं कर्म । अपि च कौलिकशास्त्रप्रसिद्धमेतत् । यथा देवदत्तः स्वशरीरे कण्टकवेधेन खिद्यते एवं शत्रुकृतायां देवदत्तप्रतिमायां कण्टकेन विद्धायां देवदत्तो व्यथते । तत्र व्यथाहेतुर्नान्तरं धातुवैषम्यं नापि बाह्यं कण्टकवेधादि, किन्तु केवलं प्राक्कर्ममात्रम्। एवं च बीजाङ्कुरन्यायेन कर्मतज्जन्यसंस्कारपरम्परयाऽनादिः संसार इति न देहनाशादात्मनाशोऽस्तीति न भीष्मादयः शोचनीयाः । अत्र पूर्वस्मिन् श्लोके आत्मनो देहादन्यत्वमुक्तं गतासून् देहानिति विशेषणेन । अत्र सूक्ष्मशरीरविशिष्टस्यात्मनो व्यवहारदृष्ट्या नित्यत्वं साधितमिति भेदः ॥ १२ ॥ यद्यप्येवं तथापीष्टदेहवियोगजः शोकोऽको भवत्येवेत्याशङ्क्याह–**देहिन इति**। देहौ स्थूलसूक्ष्मौ विद्येते अस्य स देही चिदात्मा तस्य यथाऽस्मिन् स्थूलशरीरे कौमाराद्यवस्थासु देहभेदेऽपि एक एवाहं बाल आसमिदानीं वृद्धोऽस्मीत्यभेदप्रत्यभिमानादैक्यं बालादिशरीरेभ्योऽन्यत्वं च । व्यावृत्तेभ्योऽनुवृत्तं भिन्नं कुसुमेभ्यः सूत्रमिवेति न्यायात् । एवं देहान्तरप्राप्तिरपि स्थूलाच्छरीरादन्येषां लिङ्गशरीराणां सूक्ष्माणां स्थूलशरीरानुकारिणां प्राप्तिः । अयमर्थः-यथा एकमपि स्थूलं शरीरं कौमाराद्यवस्थाभेदादनेकरूपं, एवं नित्यमपि लिङ्गशरीरं प्राणिकर्मभेदात्सुरनरतिर्यगाद्यवस्थाभेदादनेकं भवति । ततश्चोक्तन्यायेन स्थूलादिवत्सूक्ष्मादपि शरीरादात्मा विविक्त एव । एवं च शोकादिधर्मिणो लिङ्गादपि विभिन्नस्य तव इष्टवियोगजः शोकोऽपि न युक्तः । अत एव तत्र तस्मिन्विषये धीरो न मुह्यति । आभिमानिकौ शोकमोहौ देहद्वयाभिमानत्यागाद्धीरं न बाधेते अतस्त्वमपि धीरो भवेति भावः। पूर्वश्लोकयोर्गतासूनिति वयमिति च बहुवचनं उपाधिभेदाभिप्रायम्। अत्र तु देहिन इत्येकवचनं उपधेयचिदात्मैक्याभिप्रायमिति ज्ञेयम्। तथा च श्रुतिरेकस्यात्मन औपाधिकं भेदमाह 'यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन्। उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा' इति । क्षेत्रेषु वक्ष्यमाणलक्षणेषु स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयात्मकेषु । 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' इति च एकत्वाच्च विभुत्वमप्यस्य सिद्धम्। तेन देहादीनामनित्यानामविभूनां च पराभिमतमात्मत्वं प्रत्याख्यातं वेदितव्यम्॥१३॥ननु आत्मनो लिङ्गशरीरादन्यत्वेऽप्यहं दुःखीत्याद्यनुभवात् दुःखादिधर्माश्रयत्वं दुर्वारं ततश्च भीष्मादिबन्धुवर्गनाशे सति दुःखसम्बन्धो भवत्येवेत्याशङ्क्याह–**मात्रास्पर्शा इति**। मीयन्ते विषया आभिस्ता मात्रा इन्द्रियवृत्तयः। यद्वा। दश प्रज्ञामात्राः वागादयः। दश भूतमात्राः नामादयः कौषीतकिप्रसिद्धा इन्द्रियविषयरूपा ग्राह्याः। तासां स्पर्शाः परस्परं विषयविषयिभावेन संबन्धः इति व्याख्येयम्। यद्वा। मात्रा प्रमात्रा सह स्पर्शाः विषयेन्द्रियसंबन्धाः । स्पर्शशब्दस्य तद्वाचित्वं 'स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यान्' इत्यत्र दृष्टम्। तत्र स्पर्शपदेन तद्गतोर्विषयेन्द्रिययोरपि लाभः । तेन प्रमातुः प्रमाणद्वारा प्रमेयेण सह संबन्धाः सर्वे शीतोष्णादिवदागमापायिन उत्पत्तिविनाशशीला अत एवानित्याश्च तद्वदेव **सुखदुःखदाश्च**। अतस्तान् **तितिक्षस्व** सहस्व । हे कौन्तेय भारतेत्युत्तमवंश्यत्वेन धीरत्वमस्य सूचयति प्रमातृत्वादिरनर्थो हि सुप्तिसमाधिप्रह्वावेशादिष्वभावाज्जाग्रत्स्वप्रादौ भावाच्च कादाचित्कतया आत्मनि प्रतीयमानोऽपि रज्जूरगादिवन्मिथ्याभूतः सन्न तद्धर्मत्वं भजते । यद्धि यत्राभेदेन कदाचिद्भाति कदाचिन्न तत्तत्राध्यस्तं रज्ज्वामिव सर्पः । प्रमात्रादिश्च प्रतीचि प्रत्यगभेदेन कदाचिद्भाति अतो मिथ्येति निश्चितं।तेन प्रतीचि प्रमातृसंबन्ध एव नास्ति सत्यमिथ्यावस्तुनोर्वास्तवसंबन्धायोगात् । प्रमातृधर्माणां दुःखादीनां तु प्रतीचि संबन्धो दूरापेत एव। कथं तर्ह्यात्मनि दुःखित्वप्रत्ययः तत्तदुपाधितादात्म्याध्यासादिति ब्रूमः । अत एव जाग्रति दृष्टं दुःखं स्वप्ने नानुवर्तते । स्वप्नदृष्टं वा जाग्रति न दृश्यते । तथा च श्रुतिः– 'स यत्तत्र पश्यति पुण्यं च पापं चानन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुषः–' इति। 'कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा' इत्यादि श्रुतिरेतत्सर्वं मन एवेति अभेदनिर्देशात्कामादिसर्वविकारोपादानत्वं मनस एवाह । तस्मात्स्वप्न इवात्मनि दुःखित्वप्रतीतिर्भ्रान्तिरेवेतीष्टवियोगजनितां तां तितिक्षस्वेति भावः ॥ १४ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७

तितिक्षाफलं प्रत्यक्षमेवेत्याह-यं हीति । एते मात्रास्पर्शाः प्राक् व्याख्यातरीत्या त्रिविधा अपि यं जाग्रति स्वप्नेऽसंप्रज्ञातसमाधौ वा न व्यथयन्ति स्वात्थ्यात्र प्रच्यावयन्ति । पुरुषं पूर्षु अष्टासु वसतीति पुरुषस्तम् । पुरश्च 'कर्मेन्द्रियाणि खलु पञ्च तथापराणि ज्ञानेन्द्रियाणि मनआदिचतुष्टयं च । प्राणादिपञ्चकमथो वियदादिकं च कामश्च कर्म च तमः पुनरष्टमी पूः' इति प्रसिद्धाः । यद्वा । स्थूलसूक्ष्मोपाधिमध्ये एव इतरासामन्तर्भावादत्र पूरिति तम एव ग्राह्यम् । तेन कारणोपाधेरप्यात्मनो विविक्तत्वं दर्शितम् । पुरुषर्षभेति त्वमप्येतदनुभवितुं योग्योऽसि सर्वपुरुषश्रेष्ठत्वादिति सूचयति । उपाधित्रयत्यागादेव समे दुःखसुखे यस्य तं न हि समाधिस्थस्य सुखाय दुःखाय वा शीतोष्णस्पर्शौ भवत इति युक्तमस्य समदुःखसुखत्वं । धीरं ध्यायिनं योगिनं न व्यथयन्ति सोऽमृतत्वाय मोक्षाय कल्पते योग्यो भवति ॥ १५ ॥ ननु सुप्तिसमाध्यादौ त्यक्तोपाधेरात्मनः समदुःखसुखत्वेऽपि सोपाधिकदशायां तप्तायःपिंडस्य दग्धृत्वमिव तस्य दुःखित्वं दुर्वारम् । उपाधिश्च मूलप्रकृतेर्व्यापिकाया मात्रारूप इति तत्सत्त्वे तु न निर्मूलोच्छेदमर्हत्यतः सोऽमृतत्वाय कल्पत इत्यनुपपन्नमित्याशङ्क्याह-नासत इति । प्रमात्रादेरागमापायित्वेन कादाचित्कत्वात् रज्जूरगादिवत् असतः भावः सत्ता कालत्रयेऽपि नास्ति । अयमर्थः-प्रमात्रादिर्मूलाज्ञानेन चिदात्मनि कल्पितः मूलाज्ञानस्य चात्मज्ञानेन निवृत्तौ कारणाभावान्न पुनःप्रमात्राद्युद्भवोऽस्तीति निष्प्रत्यूहममृतत्वं ज्ञानात्सिद्धयतीति । ननु प्रतीतिमात्रात्प्रमात्रादेर्मिथ्यात्वोपगमे आत्मनोऽपि सुप्त्यादावप्रतीयमानत्वाविशेषान्मिथ्यात्वमस्तु उभयोर्वा सत्यत्वमस्तु इत्याशंक्याह-नाभावो विद्यते सत इति । सद्वस्तुनः अभावोऽसत्त्वं कदाचिदपि न विद्यते । सुषुप्त्यादावप्यनुभूतयोः सुखाज्ञानयोः । 'सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषम्' इत्युत्थाने परामर्शदर्शनात् तदनुभवमन्तरेण तयोः परामर्शासंभवात् । अतः सतोऽसत्त्वं नास्ति । श्रुतिरपि सुप्तिकैवल्ययोः प्रमात्राद्यभावं द्रष्टृ नित्यत्वं चाह । 'यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्' इति । यदि प्रमात्रादिः सत्यस्तर्हि सतोऽर्थस्य सुषुप्त्यादावदर्शनं सान्निध्याभावाद्वा द्रष्टृदर्शलोपाद्वा वक्तव्यम् । नाद्यः । आत्मनि दृष्टनष्टस्वभावस्यान्यत्र सद्भावकल्पनायोगात् । नान्त्यः । उदाहृतया श्रुत्यैव तन्निषेधात् । तस्मादुभयोरपि सत्यत्वेन मिथ्यात्वेन वा साम्यं दुर्वचम् । ननु सत आकाशादेः क्वचिदपि देशे काले चाभावो यद्यपि नास्ति तथापि सत एव परमाणोर्देशान्तरेऽभावोऽस्ति प्रागसतोऽपि घटादेर्भावश्च दृष्टः तत्कथमुच्यते 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' इत्याशङ्क्य विद्वदनुभवेन निरस्यति-उभयोरपीति । अन्तो याथात्म्यम् । यथा, स्वप्ने नभःकुंभरज्जूरगादयो नित्यत्वानित्यत्वसत्यत्वासत्यत्वादिधर्मोपेततया निश्चिता अपि प्रबोधेन बाध्यन्ते तद्वज्जाग्रद्दृष्टा अपि ते तत्त्वज्ञानेन बाध्यन्ते । ननु जाग्रद्वासनावशात् स्वप्नगतनभ आदौ नित्यत्वादिनिश्चयो भ्रम इति चेदनादिकालप्रवृत्तप्राग्भवीयसंस्कारवशात् जाग्रन्नभ आदावपि स भ्रम एवेति तुल्यम् । ननु स्वरूपसदेव रजतादिकं शुक्त्यादावध्यस्यते न त्वसत् । शशशृङ्गादिकं गगनादिकं तु त्वद्रीत्या स्वरूपेणासदपि कथमात्मन्यध्यस्यत इति चेन्न । अध्यासे हि पूर्वानुभवमात्रमपेक्षते न त्वनुभूतस्य स्वरूपेण सत्त्वमपि दर्पणप्रतिबिम्बिते गगनेऽपि नैल्याध्यासदर्शनात् । न च गगने नैल्यं स्वरूपेण सत्यमस्ति अथ चान्यत्राध्यस्यते तस्मात् भ्रमपरंपरायाः संभवात् स्वप्नदृग्भिरिवास्माभिरदृष्टमपि सदसतोर्याथात्म्यं प्रबुद्धैर्द्रष्टुं शक्यमेव । तथा च श्रुतयः-'नेह नानाऽस्ति किंचन' 'अस्तीत्येवोपलब्धव्यः' 'अतोऽन्यदार्तम्' इत्याद्या अनात्मनोऽसत्त्वं चात्मनश्च सत्त्वं प्रतिपादयन्ति । एवं सतो ज्ञानेनासतो बाधात्कैवल्यं सिद्धयतीति भावः ॥ १६ ॥ यस्याभावो नास्ति तस्य सतः सत्त्वे किं मानमित्याशंक्याह—अविनाशीति । तच्छब्देन प्रकृतं सत् परामृश्यते येन सता इदं सर्वं वियदादि ततं व्याप्तं घटः सन्पटः सन्निति सर्वस्य सदभेदानुभवात् । यथा घटो मृत् शरावो मृदिति घटादीनां मृदभेदानुभवान्मृदुपादानकत्वं, तद्वत्सर्वस्यापि सदुपादानकत्वं बोध्यम् । ननु मृद्वत्सदपि किं विकारवद्भवतीत्याशंक्याह—अविनाशीति । तत् सत् अविनाशि विद्धि । अयमर्थः-पूर्वावस्थापरित्यागोऽत्र विनाशः । मृद्धि पिण्डाकारतां त्यक्त्वा घटीभवति । अतः सा विनाशशीला । विकारधाराश्रयत्वात् । ब्रह्म तु न तथा । किं तर्हि रज्जुवत्स्वयमविनश्यदेव कार्याकारं भवति । स्वकीये च सत्तास्फुरणे कार्येऽर्पयति अतोऽविनाशि । तथा च श्रुत-

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत १८

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

यः–'अजायमानो बहुधा विजायते' 'जात एव न जायते को न्वेनं जनयेत्पुनः' अजायमानो जन्माख्यं विकारमलभमानोऽपि विजायते वियदादिरूपेणाविर्भवति । तथा लोकदृष्ट्या जातो घटादिः परमार्थदृष्ट्या न जायते परिणाम्युपादानस्याभावात् । मृदादिस्तु स्वाप्नमृदादिवत्तुच्छत्वात् अत एनं घटादिं को नु जनयेन्न कोऽपि । कुतस्तर्हि भासत इति चेत् रज्जूरगादिवदिति दत्तोत्तरमेतत् । तथा 'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् । तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'इति । सतः सत्यत्वेन प्राणोपलक्षितस्य प्रपञ्चस्य सत्यत्वं सतो भानमेव प्रपञ्चस्य भानमिति तथा चै प्रपञ्चगते सत्तास्फूर्ती सतः सत्त्वे प्रमाणमित्यर्थः । श्रुतिश्च 'अन्नेन सोम्य शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' इति । सतो जगदुपादानत्वं कार्यलिङ्गेन द्रढयति । सतोऽविनाशित्वं च विनाशहेत्वभावादित्याह—**विनाशमिति** । न व्येति नापक्षीयत इत्यव्ययम् । एतेन सर्वविकारशून्यस्य विनाशो नास्तीत्यर्थः । अपक्षयो हि जन्मादिविकारवत एव भवतीति स एवात्र सर्वविकारोपलक्षणतया बोध्यः । न कश्चिदित्यनेन तदन्यस्य विनाशहेतोरभावो दर्शितः । 'द्वितीयाद्वै भयं भवति ' इति श्रुतेः ॥ १७ ॥ एवं सत आत्मनो नित्यत्वमसतो देहादेरनित्यत्वं चोक्तमुपसंहरन्नेनं युद्धाभिमुखं करोति—**अन्तवन्त** इति । यद्यपि 'नासतो विद्यते भावः' इत्यत्रासतां देहानां कालत्रयेऽपि सत्त्वं नास्तीति परमार्थदृष्ट्योक्तं तथापि तां दृष्टिमप्रतिपद्यमानस्य नरकादिभयमनुरुध्यमानस्य व्यवहाराभिप्रायेण नित्यानित्यविभागमभिप्रेत्य देहानामन्तवत्त्वमुच्यत इति न दोषः । नित्यत्वं कालापरिच्छेद्यत्वं तच्च व्यवहारे नभसोऽप्यस्तीत्यत उक्तमनाशिन इति । नाशः अदर्शनं तद्वान् हि आकाशः 'नभ आत्मनि लीयते' इति स्मृतेः । अयं तु न तथेत्यनाशी सर्वदैव प्रकाशमान इत्यर्थः । एतदपि न घटादिवद्दृश्यत्वेनेत्याह—**अप्रमेयस्येति** । तथा च श्रुतिरात्मनोऽप्रमेयत्वमाह–'एतदप्रमयं ध्रुवम्' इति। अप्रमयमित्यस्याप्रमेयमित्यर्थः । एतच्चात्मनि प्रमाणाप्रसराज्ज्ञेयं तथा च श्रुतिः–' येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयात् '। इति प्रसिद्धिस्त्वस्य प्रत्यगात्मत्वादेव । 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः' इति श्रुतेः । उक्तं च–'प्रमाणमप्रमाणं च प्रमाभासस्तथैव च । यत्प्रसादात्प्रसिद्ध्यन्ति तदसम्भावना कुतः ' इति । तस्माद्युद्ध्यस्व भारत । भीष्मादिदेहानां मिथ्यात्वादनित्यत्वाच्च स्वयमेव नष्टप्रायतया हननान्निवृत्त्या त्वया स्वधर्मो न नाशनीय इति भावः ॥१८॥ ननु 'नासतो विद्यते भावः' इति न्यायेनासतो मात्रादेर्मिथ्यात्वेन निःस्वरूपत्वात्कर्तृत्वं न सम्भवति । अतः सत एव कर्तृत्वं बन्धमोक्षभाक्त्वं च वाच्यं अन्यथाऽन्तःकरणे बन्ध आत्मनश्च मोक्ष इति तयोर्वैयाधिकरण्यं स्यात् । तथा येन सर्वमिदं ततमिति सतो देहाद्युपादानत्वं चोक्तम् । तथा च हननक्रियां प्रत्येकस्यैव कर्तृत्वं कर्मत्वं चापतति तच्च विरुद्धं स्वात्मनि स्वव्यापारायोगात् । न हि वह्निर्वह्निं दहतीति युक्तमित्याशंक्याह—**य एनमिति** । यश्च तार्किकादिरेनमात्मानं हन्तारं हननक्रियायाः कर्तारं मन्यते । यश्च । चार्वाकादिरेनं हतं हननक्रियायाः कर्मीभूतं मन्यते तावुभावपि न जानीतः आत्मतत्त्वमिति शेषः। यस्मान्नायं हन्ति न हन्यते । न हि यः कर्ता स आत्मा, नापि देह आत्मा । तयोः प्रागेवानात्मत्वावधारणात् । अयं भावः–यथायःपिण्डे वह्निसम्बन्धादेव दग्धृत्वं न तु स्वतः । एवं मात्राद्युदयसमनियतं कर्तृत्वं मात्रादिधर्म एव नात्मनः । आत्मनि तु कर्तृत्वप्रतीतिर्मात्रादिसम्बन्धादेव, अतो मात्रादिविशिष्टस्यैव बन्धो न केवलस्य । मोक्षश्च मात्रादिवियोग एवेति न बन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यम्। न च मात्रादेर्निःस्वरूपत्वमस्ति। सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयस्य व्यवहारयोग्यस्य ब्रह्मज्ञानैकबाध्यस्य स्वप्नमायागन्धर्वनगरादितुल्यस्य तत्स्वरूपस्याभ्युपगमात् । तस्मान्न कर्तृत्वमात्मधर्मः। यथोक्तम्–'आत्मा कर्त्रादिरूपश्चेन्माकांक्षीस्तर्हि मुक्तताम् । न हि स्वभावो भावानां व्यावर्तेतौष्ण्यवद्रवेः ' इति । किं च । कर्तृत्वं रागद्वेषादिविकारवत एव सम्भवति । तद्वांश्च दुःखीत्यात्मनोऽनुभूयमानं साक्षित्वं बाध्येत । यथोक्तम्–'नर्ते स्याद्विक्रियां दुःखी साक्षिता का विकारिणः । धीविक्रियासहस्राणां साक्ष्यतोऽहमविक्रियः ' इति । न च सतो देहाद्युपादानत्वेन हननक्रियाकर्मत्वं सम्भवति । विवर्तवादाभ्युपगमात् । न ह्यध्यस्तस्य धर्मैरधिष्ठाने विकारो दृश्यते । यथोक्तं भाष्ये–'यत्र यदध्यस्तं तत्कृतेन गुणेन दोषेण वाऽणुमात्रेणापि न सम्बध्यते' इति विवृतं चैतद्वृद्धैः ' न हि भूमिरूषरवती मृगतृष्णाजलवाहिनी सरितमुद्वहति । मृगवारिपूरपरिपूरवती न नदी तथोषरभुवं स्पृशति ' इति । एतेन कर्तृत्वकर्मत्वयोरनात्मधर्मत्वादनात्मनश्चानेकरूपत्वादेकत्रात्मनि तदुभयविरोधोद्भावनमपि निरस्तं वेदितव्यम्। एवं चार्वाकतार्किकाभिमतौ

**न जायते म्रियते वा कदाचि-**
**न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।**
**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो**
**न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २०**
**वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।**
**कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१**

देहात्मकर्त्रात्मवादौ । 'हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते' इति काठकोक्तेन मन्त्रेण पूर्वार्धे पाठभेदात्पठितेन परिहृतौ वेदितव्यौ ॥ १९ ॥ 'नायं हन्ति न हन्यते' इत्युक्तं तत्र न हन्यत इत्येतदुपपादयति तत्रस्थेनैव द्वितीयेन मन्त्रेण **न जायत इति** । अयं आत्मा कदाचित् न जायते अभिनवो नोत्पद्यते। न वा म्रियते निरन्वयो न नश्यति तार्किकाभिमतघटवत् । तत्र क्रमेण हेतुद्वयं अजो नित्य इति । अजत्वान्न जायते नित्यत्वाच्च न वा म्रियत इत्यर्थः । अस्तु तर्हि क्षणिकविज्ञानधारारूपः तस्या विज्ञानवादिभिरजत्वनित्यत्वाभ्युपगमादित्याशंक्याह—**भूत्वा भविता वा न भूय इति** । अयमित्यनुवर्तते । अयं भूत्वा भूयो भविता न भूयोऽसकृत् भूत्वा भवितेति भवनक्रियाद्वयस्य क्त्वाप्रत्ययोक्तं समानकर्तृत्वं धारेयत्याभिप्रायेण भूत्वैव भविता न तु भूत्वा स्थित्वा विनश्यति । तार्किकाणां हि विज्ञानमुत्पत्तिस्थितिनाशक्षणत्रयाभिव्याप्तत्वात्त्रिक्षणावस्थायि । विज्ञानवादिनां तु पूर्वस्य नाशक्षण एवोत्तरस्योत्पत्तिक्षणः स एव तस्य स्थितिक्षणश्चेति क्षणिकत्वाद्विज्ञानानां भवनक्रियाद्वयस्याव्यवधानाद्भूत्वा भवितेत्युक्तम् । तादृशोऽप्ययं न यतः शाश्वतः शश्वदेकरूपः । योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं सोऽहं स्थाविरे प्रणप्तृननुभवामीति बाल्यस्थाविरयोरात्मैक्यप्रत्यभिज्ञानात् । न च सादृश्यात्प्रत्यभिज्ञानं सादृश्यग्रहीतुः स्थिरस्याभावात् । यद्वा । जन्ममरणहीनोऽपि धर्मान्तरविशिष्टः पूर्वं भूत्वा पुनर्धर्मान्तरविशिष्टो भविता इत्यपि न भूत्वैव भविता न त्वभूत्वेति योजना । आर्हता हि शरीरपरिमाणमात्मानमभ्युपगच्छन्तो नित्यस्यैवात्मनः क्रमेण व्युत्क्रमेण वा मशकमनुजमतङ्गजशरीरप्राप्तौ परिमाणभेदं मन्यमाना भूतस्यैवात्मनो विशेषणीभूतपरिमाणभवनादौपचारिकं भवनमभ्युपगच्छन्ति तदपि न । शाश्वतत्वादेव उपचयापचयवतो मध्यमपरिमाणस्य वस्तुनो नित्यत्वायोगात् । अनेनैव सुखदुःखादिधर्मान्तरोत्पत्त्याऽऽत्मनो भाक्तं भूत्वा भवनं प्रत्याख्येयम् । न हि दुःखादिधर्मिणः स्वनाशमन्तरेणात्यन्तिकदुःखोच्छेदः संभवति । घटादौ यावद्रूपनाशादर्शनात् । नन्वजत्वं नित्यत्वं शाश्वतत्वं चाकाशेऽप्यस्ति अत आह—**पुराण इति** । पुरा वियदादिसृष्टेः प्रागपि नव एव । एतेन अपक्षयादिधर्मराहित्यान्मुख्यमजत्वादिकमात्मन एव वियदादेस्त्वमुख्यं तदिति दर्शितम् । अत एव शरीरे हन्यमाने न हन्यते । भाष्ये तु वाशब्दश्चार्थे न जायते म्रियते चेत्यर्थः । तत्रोपपत्तिः— अयं न भूत्वा अनुत्पद्य न भविता घटादिवदतो न जायते । अथवा नञः पूर्वान्वयित्वं न जायते न वा म्रियत इति यतो भूत्वा अभविता घटवद्विनाशी न । अतो न म्रियत इति । शाश्वतः पुराण इत्येताभ्यामुपचयापचयौ निषिध्येते इति न हन्यते न विपरिणम्यत इति च व्याख्यातम् । केचिदेवमाहुः—न जायते म्रियत इति प्रतिज्ञा । कदाचिदित्यादिना तस्या उपपादनम् । अज इत्यादिरुपसंहार इति ॥ २० नायं हन्तीत्येतदुपपादयति—**वेदेति** । विनष्टुं अदर्शनं गन्तुं शीलमस्येति विनाशी रज्जूरगतुल्यमुपाधित्रयं स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराख्यं ततोऽन्यं विनाशिनं अत एव नित्यं नाशहीनं तत्र हेतुः—अजं जन्मवान् हि अनित्यः अयं तु अजत्वान्नित्यश्चेत्यर्थः । ननु विनाशिनः स्वकार्यापेक्षया अन्यत्वमजत्वं नित्यत्वं च सांख्याभिमते प्रधाने तार्किकाभिमते नभसि चास्ति अत उक्तं **अव्ययमिति** । न व्येति पूर्वावस्थां त्यजतीत्यव्ययमपरिणामि प्रधानं तु चलं गुणवृत्तमिति न्यायेन गुणसाम्यावस्थायामपि परिणममाणमेव सर्वदाऽस्तीति तेषामभ्युपगमात् । आकाशस्यापि 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इति उत्पत्तिश्रवणादजत्वाभावादेव नाव्ययत्वम् । तादृशमात्मानं यो वेद अपरोक्षीकरोति स पुमान् कथं केन प्रकारेण कमन्यं घातयति हननक्रियायां प्रवर्तयति कं वा हन्ति । न केनचित्प्रकारेण कमपि घातयति न वा हन्तीत्यर्थः । द्वैताभावात् । तथाहि । श्रुतिर्विद्यावस्थायां सर्वकारकव्यापारं निषेधति । 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्-' इत्यादि । अविद्यावस्थायामेव च सर्वकारकव्यवहारं दर्शयति-'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति-' इत्यादि । एतेन सर्वकारकोपमर्दिन्या विद्यायाः सर्वकारकसापेक्षैः कर्मभिः सह समुच्चयो निरस्तः परस्परविरुद्धस्वभावत्वेन शीतोष्णयोरिव द्वयोरेककार्यकारित्वस्य रथाश्वन्यायेनासंभवादित्यन्यत्र विस्तरः । मादृशानां ज्ञानिनां व्युत्थानकाले अविद्यालेशानुवृत्त्या घातयितृत्वादेः प्रसक्तावपि विद्यया तस्य बाधितत्वादागामिकर्मणामश्लेषाच्च न दोषः । तथा च वक्ष्यते 'हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' इति ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथाऽपि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥२६
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७

ननु 'ब्राह्मणो यजेत जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत' इति आत्मानं वयोवर्णादिविशेषणवन्तमेवाधिकृत्य कर्मविधयः प्रवर्तन्ते । तेन नीलादुत्पलमिव देहादन्य आत्माऽवधारयितुं न शक्यत इत्याशंक्याह–**वासांसीति** । 'दण्डी प्रैषानन्वाह' इति दण्डस्य विशेषणत्वेऽपि न प्रैषानुवक्तृस्वरूपान्तर्गतत्वम् । एवं ब्राह्मणत्वादेरपि न स्वर्गकामस्वरूपान्तर्गतत्वमिति वस्त्रदेवदत्तयोरिव जडाजडयोर्देहात्मनोरत्यन्तविलक्षणत्वमस्तीति वस्त्रनाशेन देवदत्तनाशं मन्वानस्येव तव देहनाशादात्मनाशं मन्वानस्यात्यन्तमौढ्यं स्पष्टमिति भावः। स्पष्टार्थश्च श्लोकः॥ २२ ॥ कीदृशोऽसौ देहीत्यत आह–**नैनमिति** । एनं शस्त्राणि न छिन्दन्ति न द्वेधा कुर्वन्ति । अस्थूलत्वात् । तर्हि पार्थिवपरमाणुवत्पाकजरूपाद्याश्रयो भविष्यति इत्याशंक्याह–**नैनं दहति पावक इति**। अनणुत्वात् । आपश्चैनं न क्लेदयन्ति । अस्पर्शत्वात् । स्पर्शवद्धि द्रव्यमद्भिरार्द्रीकर्तव्यं न त्वस्पर्शम् । न शोषयति मारुतः । अस्नेहत्वात् । एतेन 'अदीर्घमस्थूलमनणु अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्' इति श्रुतिप्रसिद्धानामदीर्घत्वाशब्दत्वादीनामपि संग्रहो ज्ञेयः ॥ २३ ॥ कुतो हेतोरस्य शस्त्रादीनि च्छेदादीन्न कुर्वन्तीत्याशंक्य तस्य छेदाद्ययोग्यत्वादित्याह– **अच्छेद्योऽयमिति** । अत्राच्छेद्यत्वादौ पूर्वोक्तान्येव अस्थूलत्वादीनि कारणानि ज्ञेयानि । एवमच्छेद्यत्वादिना स्थूलादीनभावरूपान् गुणानुक्त्वा भावरूपानपि गुणानाह– **नित्य इति** । सर्वैर्विशेषणैरखण्डैकरसस्यैव वस्तुनो लक्ष्यत्वात् नित्यत्वादिभिरुत्पाद्यत्वादिकं निराक्रियते । यतो नित्यः अतो घटवदनुत्पाद्यः। यतः सर्वगतः अतो ग्रामवदप्राप्यः । यतः स्थाणुः पूर्वरूपापरित्यागेन स्थिरस्वभावः। अतः क्षीरादिवदविकार्यः । अचलः यथा दर्पणः स्वतः स्वाच्छयादप्रच्युतोऽपि मलरूपेणावरणेन स्वाच्छयात्प्रच्याव्यते । एवं स्वयं स्थाणुरपि अन्यसंयोगाच्चाञ्चल्यमश्नुवीत स च दोषापकर्षणलक्षणं संस्कारमपेक्षते । अयं तु अचलत्वान्न तथा । एवं च उत्पत्त्याप्तिविकृतिसंस्कृतिरूपं चतुर्विधं क्रियाफलमात्मनि न संभवतीत्युक्तम् ॥ तत्र हेतुः **सनातन इति** । सना इत्यव्ययं नैरन्तर्ये तच्च देशतः कालतो वस्तुतश्च परिच्छेदराहित्यम् । परमते परमाणूनां कालतः परिच्छेदाभावेऽपि देशतः परिच्छेदोऽस्ति आकाशस्य तदुभयाभावेऽपि वस्तुतः परिच्छेदोऽस्ति सोऽपि त्रिविधः सजातीयविजातीयस्वगतभेदरूपः। यथा—

'वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादितः ।
वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयः शिलादितः ॥ '

ततश्च सना नैरंतर्येण त्रिविधपरिच्छेदराहित्येन भवति अस्तीति सनातनोऽखण्डैकरसो यस्मात्तस्माच्छोकस्याप्राप्त्य इत्यर्थः ॥ २४ ॥ एवं ज्ञेयं वस्तूक्तं तच्च तत्राध्यस्तदेहत्रयनिरासेन अपरोक्षीकर्तव्यमित्याह–**अव्यक्तोऽयमिति** । व्यक्तं स्थूलशरीरं प्रत्यक्षगम्यं तदन्योऽयं प्रत्यगात्मा । तथा ह्यचिन्त्योऽयं चिन्त्यं चिन्तायोग्यं रूपादिप्रकाशकार्येणानुमेयं चक्षुरादिसमुदायात्मकं लिङ्गशरीरं अप्रत्यक्षं ततोऽप्यन्योऽयम् । तथा अविकार्योऽयं 'विकारं स्थूलसूक्ष्मकार्यभावेनावस्थानमर्हतीति विकार्यं त्रिगुणात्मकं मूलाज्ञानं कारणशरीरं सुप्तोत्थितस्य न किंचिदवेदिषमिति परामर्शदर्शनादहं न जानामीत्यनुभवाच्च साक्ष्येकगम्यं ततोऽप्यन्योयम्। उच्यते। व्यक्तादिनिषेधमुखेन न तु शुक्लादिक्रयाऽयमेवंविध इति विधिमुखेनोच्यते । यस्मादेवमयमुच्यते तस्मादेनं विदित्वा नानुशोचितुमर्हसि । 'तरति शोकमात्मवित्' इति श्रुतेरात्मविद्भूत्वा बन्धुवियोगजं शोकं मा कार्षीरित्यर्थः । उक्तं चात्मनोऽवस्थात्रयातीतत्वम्—

'स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ॥
न निद्रां नैव च स्वप्नं तुर्ये पश्यन्ति निश्चिताः॥ ' इति

॥ २५ ॥ एवं तत्त्वदृष्ट्या शोको नोचित इत्युक्तम् । इदानीं प्राकृतजनदृष्ट्याऽपि शोको नोचित इत्याह–**अथ चेति** नित्यं नियमेन जातं नित्यजातमिति **चार्वाकपक्षः** । नित्यं सर्वदा जातमिति **क्षणिकविज्ञानवादिपक्षः** । नित्यश्चासौ अपूर्वदेहेन्द्रियसंबन्धाज्जातश्चेति **तार्किकादिपक्षः** । एवं नित्यं वा मन्यसे मृतमित्यपि योज्यम्। पक्षत्रयेऽपि शोको न युक्तः । महाबाहो इति युद्धार्थमुत्साहयति ॥२६॥ शोचितुं नार्हसीत्युक्तम्। तत्र हेतुमाह–**जातस्येति**। ध्रुवोऽपरिहार्यः मृत्युर्मरणमपरिहार्ये अर्थे मरणाख्ये त्वदुद्योगं

**अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।**
**अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८**

**आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-**
**माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।**
**आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति**
**श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९**

विनाऽपि अवश्यंभाविनि विषये न त्वं शोचितुमर्हसि वक्ष्यति च-'मयैवैते निहताः पूर्वमेव' इति ॥२७॥ अस्त्वात्मनोऽशोच्यत्वं तथाऽपि दृष्टदेहविनाशजः शोको भवत्येवेत्याशंक्य सकारणस्य देहादेर्मिथ्यात्वं साधयति-**अव्यक्तादीनीति**-भूतानि वियदादीनि तद्विकारभूतानि जरायुजादीनि च न व्यक्तमव्यक्तमज्ञानमादिर्येषां तथाविधानि । व्यक्तः स्पष्टः मध्यः उत्पत्तिमारभ्य मरणात्प्रागवस्था येषाम् । अव्यक्त एव निधनं लयो येषामिति । अयमर्थः--रज्जूरगादिकारणमज्ञानं न रज्जुवत् उरगवद्वा व्यक्तमस्ति । परीक्ष्यमाणं च न दृष्टिपथमवतरति । अतस्तदव्यक्तं तत तत्पन्नः सर्पस्तत्रैव लीयते न रज्ज्वाम् । एवमात्मनि कल्पितानां भूतानामादिरन्तश्चाव्यक्तमेव । तेन 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' इति न्यायेन मध्ये भासमानान्यपि तानि रज्जूरगवत् असंत्येव । एवंविधे तत्र तस्मिन्विषये का परिदेवना को वा विलापः न हि मरुमरीचिकान्हृदो नष्ट इति कश्चित्तत्त्ववित् विलपति । अत एव भूतानां रज्जूरगादीनामिव प्रतीतिसमकालिकीं सृष्टिमभिप्रेत्य कौषीतकिब्राह्मणे स्वापप्रबोधयोर्जगल्लयोदयौ पठ्येते।'स यदा स्वपिति तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति, स यदा प्रबुध्यतेऽथैतस्मादात्मनः सर्वे प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः' इति । प्राणाश्चक्षुरादीन्द्रियाणि । देवास्तदनुग्राहकाः सूर्यादयः। लोकाः रूपादयः । नन्विहान्यत्र च आत्मैव सर्वभूतानां लयोदयस्थानमित्युच्यते नान्यत् । तत्कथमेतेषामव्यक्तं लयोदयस्थानमित्युच्यते सत्यम् । अज्ञानाश्रयत्वाद्ब्रह्मणि तथात्वव्यपदेशो न वस्तुगत्या । न हि अपरिणामिनः कूटस्थस्य भूतकार्यप्रविलयोदयस्थानत्वं संभवति । यथोक्तम्--

'अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणम्
अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ' इति ॥ २८ ॥

ननु वज्रपञ्जरतुल्यस्य सर्वप्रमाणसिद्धस्य वियदादिप्रपञ्चस्य कथं रज्जूरगादिवदज्ञानप्रभवत्वेनात्यन्ततुच्छत्वमुच्यते । कथं वा कर्मज्ञानकाण्डापेक्षितमात्मनो यज्ञादिकर्तृत्वं श्रवणादिकर्तृत्वं चापन्हूयत इत्याशंक्याह-**आश्चर्यवदिति** । कश्चित् ज्ञातात्मतत्त्व एनमतीतानन्तरश्लोकोक्तं भूतग्राममाश्चर्यवत् आश्चर्यमद्भुतं स्वप्नमायेन्द्रजालादिकं तेन तुल्यं आश्चर्यवत् तथाभूतं पश्यति । तथा कश्चिदेनं आश्चर्यवद्वदति सत्त्वेन असत्त्वेन वा निर्वक्तुमशक्यमपि अनिर्वचनीयेनैव लोकाप्रसिद्धेन रूपेणोपपादयति । तथाहि रज्जूरगवत्प्रपञ्चः संश्चेत् 'नेह नानाऽस्ति किंचन' इति श्रुत्या न बाध्येत। असंश्चेन्न प्रतीयेत तस्मादनिर्वचनीयोऽयमिति । तदिदं सर्वव्यवहारास्पदस्यापि प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वोपपादनमत्याश्चर्यमित्यर्थः। तथा । एनं प्रपञ्चमन्य आश्चर्यवत् शृणोति ।'इमे लोका इमे देवा इमे वेदा इदं सर्वं यदयमात्मा' इति प्रत्यक्षेणानात्मतया उपलभ्यमानस्यापि प्रपञ्चस्य यत् प्रत्यगभिन्नत्वेन श्रवणं तदत्यन्तमाश्चर्यम् । न हीयं श्रुतिर्यजमानः प्रस्तर इत्यादिवदुपचरितार्था प्रपञ्चस्यात्मनः पृथक्त्वे । 'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितं भवति ' इत्येकविज्ञानात्सर्वविज्ञानप्रतिज्ञोपरोधापत्तेः। न च प्रतिज्ञाऽप्यौपचारिकी प्रदेशान्तरे श्रुतस्य ' यथा सौम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्' इति दृष्टान्तस्योपरोधापत्तेः । तस्मात्प्रतिज्ञादृष्टान्तनिगमनानामेकवाक्यत्वात् न प्रपञ्चस्यात्मान्यत्वम् । तच्च भेदग्राहिप्रत्यक्षविरोधादाश्चर्यमिव शृणोति । तथा कश्चिदेनं प्रपञ्चं प्रत्यगनन्यत्वेन श्रुत्वा अपिशब्दात् उक्त्वा स्वप्नादिदृष्टान्तैरुपपाद्य दृष्ट्वा ध्यानेन च साक्षात्कृत्वाऽपि तत्त्वतो न वेद न जानाति । तथाहि । प्राप्ताऽपि प्रज्ञा तीव्रविक्षेपवतः परिहीयत इति वक्ष्यति । तस्मादात्मैक्यात्संभवत्येव प्रपञ्चस्य रज्जूरगादितुल्यत्वेन तुच्छत्वम् । यद्वा ।एनमात्मानं कर्तृत्वभोक्तृत्व-दुःखित्वानित्यत्व-जडत्व--संगित्व-परिच्छिन्नत्वादिधर्मवत्तया प्रसिद्धमपि तत्त्वमसीत्यागमोत्थया ब्रह्माकारान्तःकरणवृत्त्या ब्रह्मविद्याख्यया अकर्तारमभोक्तारमानन्दघनं सत्यचिद्रूपमसंगमनंतमपरोक्षीकरोतीति महदाश्चर्यम् । यत् पश्यति तदाश्चर्यवदिति क्रियाविशेषणं वा आविद्यकमपि दर्शनमविद्यां स्वात्मानं च कतकरजोवन्निवर्तयतीति । यद्वा। यः पश्यति स आश्चर्यवदिति कर्तृविशेषणं यत एक एव विद्वान् समाधिव्युत्थानयोः परस्परविरुद्धमात्मनो ब्रह्मभावं जीवभावं च यावदारब्धकर्मक्षयमनुभवतीति तथा वाङ्मनसातीतमप्यात्मानं यद्वाचा वदति तदप्याश्चर्यम् । अगृहीतसङ्गतिकेनापि शब्देन यथा सुप्तः प्रबोध्यते तद्वत् । यथोक्तं वार्तिके-'अगृहीत्वैव संबन्धमभिधानाभिधेययोः ।

हित्वा निद्रां प्रबुध्यन्ते सुषुप्ते बोधिताः परैः ।
जाग्रद्वन्न यतः शब्दं सुषुप्ते वेत्ति कश्चन ।
ध्वस्तेऽतो ज्ञानतो ज्ञाने ब्रह्मास्मीति भवेत्फलम् ॥'

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ३०
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ३१
यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ३२
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ३५
अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ३६
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८
एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ३९

---

अविद्याघातिनः शब्दाद्याऽहं ब्रह्मेति धीर्भवेत् ।
नश्यत्यविद्यया सार्धं हत्वा रोगमिवौषधम् ' इति ।
तथा यः शृणोति सोऽपि आश्चर्यवत् अतिदुर्लभ इत्यर्थः ।
' श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः ' इति श्रुतेः । 'शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः ' इति श्रुतिद्वितीयपादार्थं संगृह्णाति—**श्रुत्वाऽप्येनमिति** । ' आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलेनानुशिष्टः ' इति उत्तरार्द्धस्तु श्लोकपूर्वार्द्धेन संगृहीत इति ज्ञेयम् । दुर्विज्ञेयोऽयमात्माऽतस्त्वं तज्ज्ञानार्थं यतस्वेति भावः॥ २९ ॥ प्रकृतमर्थमुपसंहरति—**देहीति** । सर्वाणि भूतानि । कथमेते दीना अल्पबला' बलवत्तरेण मया हन्तव्याः, कथमेषां पुत्रादय एतैर्विना जीविष्यन्ति, कथं वाऽहं भीष्मादिभिर्गुरुभिर्विना जीविष्यामीति शोचितुं नार्हसीत्यर्थः ॥३०॥ अर्जुनस्यं अनात्मनि देहे आत्मधीरूपो मोहो निवारितः । इदानीं स्वधर्मे युद्धे अधर्मधीरूपं मोहं निवारयति—**स्वधर्ममपीत्यादिना** । युद्धं क्षत्रियस्य स्वो धर्मः तमवेक्ष्यापि विकम्पितुं चलितुं नार्हसि । हि यस्मात् धर्म्यात् धर्मादनपेताद्युद्धादन्यत् क्षत्रियस्य श्रेयः प्रशस्ततरं नास्ति ॥ ३१ ॥ किं च यदृच्छया अप्रार्थितमप्युपपन्नमुपस्थितं स्वर्गद्वारमपावृतमुद्घाटितं ये क्षत्रिया लभन्ते ते सुखिनो धन्या भवन्तीति सम्बन्धः ॥ ३२ ॥ युद्धत्यागे इष्टनाशोऽनिष्टप्राप्तिश्च भवतीत्याह—**अथ चेदिति** ॥ ३३ ॥ अव्ययां दीर्घकालाम् ॥ ३४ ॥ अकीर्तिमेवाह—**भयादिति** । त्वं बहुमतो भूत्वा स्वत एव अतिश्लाघ्यवृत्तः सन् लाघवं लघुभावं कातर्याख्यं येषां पुरतो यास्यसि ते महारथास्त्वां भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्त इति योजना ॥ ३५ ॥ किं च अवाच्यवादान् वक्तुमयोग्यान् शब्दान् षण्ढतिलोऽर्जुन इत्यादीन् सामर्थ्यं निन्दन्तः धिगस्य शौर्यं यो भीष्मादिभयात् पलायित इति इदं वचनं मरणादप्यधिकं दुःखं इतोऽन्यद्दुःखतरमधिकं दुःखं किं न किमपीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुरित्युक्तं तत्राह—**हतो वेति** । रणे स्थितस्य स्वर्गो वा राज्यं वा सिद्धमस्तीति पक्षद्वयमपि हितावहमित्यर्थः ॥ ३७ ॥ स्वधर्मस्य युद्धस्याकरणे धर्मकीर्त्योर्नाशः पापावाप्तिश्चाथ चेदिति श्लोकेन भगवता यद्यप्युक्ता तथापि युद्धस्य अर्जुनाभिमते काम्यत्वपक्षे—

' अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ' ॥

इति । तत्करणे पापप्रसक्तिरस्ति । तां निवारयितुं सिद्धयसिद्धयोः समत्वलक्षणं योगमाह—**सुखदुःख इति** । समे कृत्वा सुखदुःखयोस्तद्धेत्वोः राज्यलाभालाभयोस्तद्धेत्वोश्च जयाजययो रागद्वेषावकृत्वेत्यर्थः । केवलं स्वधर्मोऽयमिति मत्वा युद्धाय युज्यस्व घटस्व । एवं कुर्वंस्त्वं पापं नावाप्स्यसि । यस्तु राज्यलोभेन सुहृद्वधं करोति तस्यास्त्येव पापमिति भावः । कथं तर्हि स्वधर्मत्वेनानुष्ठितेऽपि युद्धे ' हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम् ' इत्यादिफलस्मरणमानुषङ्गिकमिति ब्रूमः । तथा चापस्तंबः—'तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गन्ध इत्यनूत्पद्येते । एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते न धर्महानिर्भवति ' इति आम्रनिदर्शनेन प्रतिपादयति ॥ ३८ ॥ एवमर्जुनस्य पूर्वोक्तौ द्वावपि मोहावपनीतौ । तत्र ' कं घातयति हन्ति कम् ' इति कर्तृत्वकारयितृत्वयोरात्मन्यसंभव उक्तः । ' ततो युद्धाय युज्यस्व ' इति नियोगश्चोक्तः । न ह्यकर्तुराकाशवत्सर्वगतस्य नियोज्यत्वं संभवतीति परस्परव्याहतमेतदितीमामाशंकामधिकारिभेदेनोभयं व्यवस्थापयन् परिहरति—**एषा त इति** । एषा ते तुभ्यं अभिहिता ' अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्' इत्यादिना ' स्वधर्ममपि चावेक्ष्य ' इत्यतः प्राक्तनेन संदर्भेण उक्ता । **सांख्ये** सम्यक् ख्यायते प्रकथ्यते वस्तुतत्त्वमनयेति संख्या उपनिषत् तत्र विदिते सांख्ये औपनिषदे ब्रह्मणि विषये बुद्धिर्ज्ञानं संसारनिवर्तकम् । एषा ते सांख्ये बुद्धिरभिहितेति सम्बन्धः । **योगे** ' सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा

**नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।**
**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४०**
**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।**
**बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१**
**यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।**
**वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२**

समत्वं योग उच्यते' इति वक्ष्यमाणलक्षणे विषये । तुशब्दः पूर्ववैलक्षण्यद्योतनार्थः । वक्ष्यति च ज्ञानकर्मनिष्ठयोर्विभिन्नाधिकारिकत्वम्—

'लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ' इति

एतेन ज्ञानकर्मणोः समुच्चयशङ्काऽप्यपास्ता । इमां ' स्वधर्ममपि चावेक्ष्य ' इत्यादिनाऽनन्तरग्रन्थेनोक्तामपि विस्तरेणाभिधीयमानां शृणु । इमामेव बुद्धिं स्तौति सार्धेन बुद्ध्येत्यादिना । ननु कर्मबन्धप्रहाणमात्मज्ञानेनैव श्रूयते—' तपसैवात्मपदं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेन ' इति श्रुतेः । कर्मयोगस्तु कर्मबन्धं दृढीकरिष्यत्येवेति कथमुच्यते कर्मबन्धं प्रहास्यसीति चेत् श्रुतिबलादिति ब्रूमः । तथा हि ।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् । '
' कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे । '

इति श्रुतिरीश्वरेणेदं सर्वं स्तंभितमस्तीति न कश्चित्किञ्चित्स्वेच्छया कर्तुं प्रभवति । अतः सर्वत्र ममताहीनः सन् भोक्तृत्वकर्तृत्वाभिमानत्यागेनैव भोगान् भुङ्क्ष्व कर्माणि च कुरु । एवं कुर्वति त्वयि कर्मलेपो नास्ति इतोऽन्यदुपायान्तरं च नास्तीति वदति । तस्मात् कनककाष्णायसादिवत् केनचिद्विशेषरूपेणोपेतं कर्मैव सजायतीयोच्छेदनिमित्तं भविष्यतीति युक्तमुक्तं कर्मयोगेनापि कर्मबन्धं प्रहास्यसीति ॥ ३९ ॥ एतदेवोपपादयति—**नेहेति** । इह कर्मबन्धप्रहाणार्थे कर्मयोगेऽनुष्ठीयमाने अभिक्रम्यते व्याप्यत इत्यभिक्रमः कर्मारंभः कर्मैव वा। तस्य नाशो नास्ति अन्यत् फलं दत्वा नश्यति न त्विदमिष्टफलस्याजननात् । नन्वेतस्यापि काम्यान्तःपातितया नित्याकरणजनितः प्रत्यवाय उत्पद्येतैव सकृदनुष्ठितस्य बन्धप्रहाणप्रत्यवायपरिहाराख्यफलद्वयहेतुत्वायोगादित्याशङ्क्याह—**प्रत्यवायो न विद्यत इति** । ' तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ' इति श्रुत्या संयोगपृथक्त्वन्यायेन ' दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् ' इत्यनेन नित्यस्य दध्नो वीर्यार्थत्वमिव नित्यानामपि कर्मणां विविदिषार्थत्वं विनियोगबलात्सिद्धयति । ततश्च काम्येनैव प्रयोगेण नित्यस्यापि सिद्धेर्न नित्याकरणनिमित्तो वाऽकाम्यत्वात्सर्वाङ्गानुपसंहारनिमित्तो वा प्रत्यवायो विद्यते । नित्यानामेव विनियोगात् । नित्येषु च यथाशक्त्युपबन्धस्यानुज्ञानात् । वार्तिके तु काम्यानामप्यत्र विनियोगो दृष्टः यथा—

' वेदानुवचनादीनामैकात्म्यज्ञानजन्मने ॥
तमेतमिति वाक्येन नित्यानां वक्ष्यते विधिः ।
यद्वा विविदिषार्थत्वं काम्यानामपि कर्मणाम् ॥
तमेतमिति वाक्येन संयोगस्य पृथक्त्वतः ' इति ।

अस्मिन्पक्षे काम्यानामपि तुल्यफलत्वान्नित्यवद्यथाशक्त्युपबन्धो भविष्यतीति न सर्वाङ्गानुपसंहारजनितः प्रत्यवायो विद्यते । स्वल्पमपि अस्य योगधर्मस्यानुष्ठितमनुपभुक्तबीजकल्पम् ।

' जन्मजन्मान्तराभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन तच्चैवाभ्यसते पुनः ' ॥

इति स्मृतेरुत्तरोत्तरसंस्काराधानद्वारा स्वसजातीयवृद्धेर्निमित्तं सत्कामादिदोषक्षपणद्वारा महतो भयात्संसारात्त्रायते । तस्मात्साङ्ख्यानाधिकारिणा कर्मयोग एवानुष्ठेय इति भावः ॥ ४० ॥ नन्वेवं साङ्ख्ययोगयोर्महाभयात्त्राणहेतुत्वं तुल्यं चेत्कोऽनयोर्विशेष इत्याशङ्क्य साङ्ख्यानां पातशङ्का नास्ति । योगिनां तु यावद्विदेहकैवल्यं पातशङ्काऽस्तीत्याह—**व्यवसायात्मिकेति** । व्यवसायस्तत्त्वनिश्चयस्तदात्मिका तदाकारा बुद्धिरन्तःकरणवृत्तिरहं ब्रह्मास्मीति वाक्यजन्या ब्रह्माकारान्तःकरणवृत्तिर्ब्रह्मविद्याभिधाना समस्तवृत्त्यन्तरबाधेन सम्यगभ्युदिता एका एकैव । 'सकृद्विभातो ह्येष ब्रह्मलोकः ' इति श्रुतेः । ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकः। इह ब्रह्मैव न हि सकृत् ज्ञाते ब्रह्मणि ज्ञातव्यं कर्तव्यं वा किंचिदवशिष्यते कृतकृत्यत्वाद्ब्रह्मविदोऽतोऽस्य पातशङ्का नास्ति । अव्यवसायिनामज्ञानिनां तु बुद्धयोऽनन्ताः ताश्च प्रत्येकं बहुशाखा इति इदमेव मम श्रेय इति निश्चयस्य दुर्लभत्वात्कदाचिदश्रेयस्यापि श्रेयोबुद्धौ सत्यां पातशङ्काऽस्तीति महान्स्तयोर्विशेष इति भावः ॥ ४१ ॥ उत्तरार्धमेव विवृणोति—**यामिमामित्यादिना** । यां पुष्पितां पुष्पितद्रुमवद्रूरतो रमणीयां वाचम् । ' अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति ' ' अपाम सोममम्रता अभूम ' इत्येवंरूपां प्रवदन्ति **अविपश्चितः** अव्यवसायिनो मूढाः यतो **वेदवादरताः** वेदान्तर्गतेषु अर्थवादेषु । ' यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न पापं श्लोकं शृणोति ' इत्येवमादिषु रताः बद्धश्रद्धाः अत एव कर्मणोऽन्यत् आत्मज्ञानं तत्फलं मोक्षश्च नास्तीति वादिनो वदनशीलाः ॥ ४२ ॥

**कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।**
**क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३**
**भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।**
**व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ४४**
**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।**
**निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्४५**

तथा भोगश्च ऐश्वर्यं च, तयोर्गतिः प्राप्तिस्तां प्रति तदर्थमित्यर्थः । कामात्मानः कामग्रस्तचित्ताः अत एव स्वर्गपराः । कीदृशीं भोगैश्वर्यगतिं जन्मकर्मफलप्रदाम् । प्राप्तभोगैश्वर्यो हि पुरुषस्तद्वासनावासितः पुनर्भोगैश्वर्यप्राप्तये जन्म लभते तदर्थं कर्माणि च कुरुते फलं च ततो भोगादिकं प्राप्नोतीति चक्रमनिशमावर्तते तेन निष्ठातश्च्युतो भवतीत्यर्थः । किं च क्रियाविशेषेण बहुलां यथा यथा वित्तव्ययायासाद्याधिक्यं तथा तथा भोगैश्वर्यप्राप्तेरप्याधिक्यमित्यर्थः । एतेनात्यन्तायाससाध्येष्वपि कर्मसु फललोभात्सज्जन्त इत्युक्तम् । **भाष्ये** भोगैश्वर्यगतिं प्रति साधनभूताः ये क्रियाविशेषा अग्निहोत्रादयः तद्बहुलां जन्मरूपं यत् कर्मफलं तत्प्रदां च वाचमेवेति व्याख्यातम् ॥ ४३ ॥ **भोगेति**। तया पुष्पितया वाचा अपहृतचेतसां पुंसां बुद्धिः समाधौ समाध्यनुष्ठानकाले **व्यवसायात्मिका** व्यवसायो ज्ञानं तदात्मिका शुद्धचिन्मात्राकारा न विधीयते न भवति-कर्मकर्तरि लकारः । विरक्तस्य हि बुद्धिः समाधौ चिन्मात्राकारा भवति न तु भोगाद्यासक्तस्येति स्पष्टमेव । **भाष्ये** तु समाधौ अन्तःकरणे व्यवसायात्मिका बुद्धिर्न भवतीति व्याख्यातम् । यद्वा । समाध्यनुष्ठानार्थमेव निश्चयात्मिका तेषां बुद्धिर्न भवतीति व्याख्येयम् ॥ ४४ ॥ कस्य तर्हि समाधौ बुद्धिर्भवतीत्यत आह—**त्रैगुण्येति** । त्रैगुण्यं गुणत्रयकार्यमूर्ध्वमध्याधोगतिरूपं संसरणं तदेव प्रकाश्यत्वेन विषयो येषां तादृशाः कर्मकाण्डपरा वेदाः । त्वं तु निस्त्रैगुण्यो भव ऊर्ध्वगतावपि विरक्तो भवेत्यर्थः । वक्ष्यति च तत्तद्गुणप्रधानं गतित्रयम् ‘ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था ’ इति । दिव्येभ्योऽपि विषयेभ्यो विरक्तः समाधावधिक्रियत इति भावः । किंलक्षणोऽसौ निस्त्रैगुण्य इत्यत आह—**निर्द्वंद्व इति** । सुखदुःखे मानापमानौ शत्रुमित्रे शीतोष्णे इत्यादीनि द्वन्द्वानि सप्रतिपक्षपदार्थरूपाणि तेभ्यो निर्गतो निर्द्वन्द्वः सर्वत्र समबुद्धिरित्यर्थः । ननु बाधमानमुष्णादिकं कथं शीतादिवत् क्षन्तुं शक्यमत आह-**नित्यसत्त्वस्थ इति** । नित्यं सर्वदा सत्त्वं धैर्यं सत्त्वगुणो वा तदाश्रितो भूत्वा । धीरो हि सर्वं सोढुं शक्तः । सात्त्विको वा प्रारब्धकर्मोपस्थापितमिदं दुःखमपरिहार्यं किमु तप्तयेति जानन् सर्वं सोढुं शक्नोत्येव । नन्वत्यन्तदुःसहं क्षुधादिदुःखं कथं निस्त्रैगुण्येन सर्वथाप्रवृत्तिशून्येन सोढुं शक्यमत आह—**निर्योगक्षेम इति** । अप्राप्तस्य प्राप्तिर्योगः, प्राप्तसंरक्षणं क्षेमः । एतद्द्वयमपि प्रारब्धकर्माधीनमिति ततोऽपि निर्गत इत्यर्थः । तत्र **हेतुः** यत **आत्मवान्** जिताचित्तः । स हि सर्वास्वप्यापत्स्वनाकुलो नित्यतृप्ततया निरुद्यमश्च भवतीति त्वमप्येतादृशो निस्त्रैगुण्यो भवेत्यर्थः ॥ ४५ ॥ नन्वात्मवत्त्वं चित्तशुद्धौ सत्यामेव भवति सा च सकलवेदोक्तकर्मानुष्ठानसाध्या । अतो निस्त्रैगुण्यत्वं दुर्लभमित्याशंक्याह—**यावानिति** । सर्वतः संप्लुतोदके महति उदपाने जलाशये पुरुषस्य यावान् अर्थो यावत् स्नानपानादिकं प्रयोजनं घटमात्रजलनिर्वर्त्यं भवति न कृत्स्नजलाशयव्ययनिर्वर्त्यं तावानेवार्थो विजानतो व्युत्पन्नचित्तस्य ब्राह्मणस्य ब्रह्म बुभूषोः सर्वेषु वेदेषु वेदैकदेशोपनिषच्छ्रवणमात्रनिर्वर्त्यो भवति न कृत्स्नवेदार्थानुष्ठानं स्वसिद्ध्यर्थमपेक्षते । एकेन जन्मना कृत्स्नवेदार्थानुष्ठानासंभवात् । ऐहिकेन जन्मान्तरीयेण वा जपादिना चित्तशुद्धौ सत्यामुपनिषच्छ्रवणान्निस्त्रैगुण्यता संभवतीति भावः। **वृद्धास्तु**—सर्वतः संप्लुतोदकस्थानीये आत्मज्ञाने पुरुषस्य तावानर्थः कृत्स्नोऽपि भवति यावाननेककूपरूपोदपानस्थानीयेषु सकलवेदोक्तकर्मस्वनुष्ठितेषु भवति ब्रह्मानन्दे क्षुद्रानन्दानामन्तर्भावात् । तथा च श्रुतिर्ज्ञाने सर्वकर्मफलान्तर्भावं दर्शयति । यथा-‘ कृतायाविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेवैनं सर्वं तदभिसमेति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद ’ इति । वक्ष्यति च —‘सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ’ इति । गङ्गातुल्यज्ञानोदयात्प्रागेव कूपोपमानि कर्माणि कर्तव्यानीति भाव इति व्याचख्युः । अस्मिन् पक्षे पूर्वार्धे अनेकस्मिन् यथा तथा भवतीति पदचतुष्टयाध्याहारः। यावान् तावान् पदयोरनुषङ्गश्च दार्ष्टान्तिके द्रष्टव्यः ॥ ४६ ॥ ननु ममाप्यौपनिषदात्मज्ञानार्थिनः शम एवेष्टस्तत्कथं मां युद्धयस्वेति प्रेरयसीत्याशंक्याह—**कर्मण्येवेति** । कर्मण्येवाधिकारो न ज्ञाननिष्ठायां मा फलेषु सङ्गोऽस्त्वित्यपकृष्यते कर्मफलं स्वर्गपश्वादिहेतुः कर्मसु प्रवर्तकं यस्य तादृशो माभूः अकर्माणि कर्माकरणेऽपि तव सङ्गो माऽस्तु ॥ ४७ ॥ एतदेव विवृणोति—**योगस्थ इति** । योगस्थः सन् संगं फलतृष्णां कर्तृत्वाभिमानं च त्यक्त्वा कर्माणि ज्ञानार्थं कुरु।

**यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।**
**तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६**
**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७**
**योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।**
**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते**

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ५०

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्ताऽसि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ५२

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ५३

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५

हे धनञ्जय सिद्ध्यसिद्ध्योः कर्मफलस्य विविदिषादेः सिद्धावसिद्धौ वा समो हर्षविषादशून्यो भूत्वा कर्माणि कुर्विति संबंधः । इदमेव सिद्ध्यसिद्ध्योः समत्वं योग इत्युच्यते ॥४८॥ इममेव बुद्धियोगं स्तौति-**दूरेणेति** । कर्म फलकामेन क्रियमाणं बुद्धियोगात् पूर्वोक्तान्निष्कामात्कर्मणः दूरेण हि प्रसिद्धं अवरं अत्यन्तनिकृष्टम् । अतो बुद्धौ योगरूपायां तत्फलभूतायां सांख्यरूपायां वा तन्निमित्तं शरणं रक्षितारं आश्रयं वा ईश्वरं अन्विच्छ प्रार्थयस्व तत्प्रीत्यर्थं कर्माणि कुर्वित्यर्थः । यतः **फलहेतवः** फलमेव हेतुः प्रवर्तकं येषां तादृशाः फलतृष्णावन्तः कृपणा दीना भवन्ति । 'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः' इति श्रुतेः॥ ४९ ॥ किं च बुद्धीति। बुद्धियुक्तः समत्वबुद्धियुक्तो योगाय समत्वबुद्धियोगाय युज्यस्व घटस्व । योगः सिद्ध्यसिद्ध्योः समत्वबुद्धिः कर्मसु बन्धकेष्वपि कौशलं बन्धनिवर्तकत्वसंपादनम् । ननु बुद्धियुक्तः कर्मभिर्दुष्कृतं त्यजतु । 'धर्मेण पापमपनुदति' इति श्रुतेः। सुकृतं तु सजातीयत्वात्दुष्परिहरमिति कथमुभे सुकृतदुष्कृते जहातीत्युच्यते । सत्वशुद्धिज्ञानोत्पत्तिद्वारेति प्राञ्चः । अर्वाञ्चस्तु दुष्कृतत्यागमुक्तरीत्याऽभ्युपेत्य फलत्यागात् सुकृतत्यागोऽपि कर्मयोगिनो भवति । दुष्कृतफलवन्मोक्षप्रतिबन्धकतत्फलस्यानुत्पादात् । यत्तु आपस्तंबोक्ताम्रवृक्षनिदर्शनेन नान्तरीयकं सुकृतफलमुक्तं न तत्फलत्वेनोपपद्यते नान्तरीयकत्वादेव । तस्मात्फलद्वारा मोक्षप्रतिबन्धके क्रियमाणे एव सुकृतदुष्कृते कर्मयोगी जहाति । ज्ञानी तु सञ्चिते अपि ते जहातीति तयोर्विशेष इत्याहुः ॥ ५० ॥ एतदेवाह-**कर्मजमिति** । बुद्धियुक्ताः समत्वबुद्धियुक्ताः क्रियमाणकर्मजं फलं त्यक्त्वा मनीषिणो मनोनिग्रहसमर्था भूत्वा जन्मरूपेण बन्धेन मुक्ताः सन्तोऽनामयं निरुपद्रवं पदं मोक्षाख्यं गच्छन्ति ॥ ५१ ॥ कदा मनीषिणो भवन्तीत्यत आह-**यदेति** । ते तव मोह इष्टानिष्टवियोगसंयोगजपरितापजन्यं वैचित्यं तदेव कलिलमिव कलिलं कालुष्यं बुद्धिगतं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति अतिक्रमिष्यति बुद्धिः प्रसन्ना भविष्यति तदा श्रोतव्यस्य शास्त्रभागस्य श्रुतस्य च निर्वेदं वैराग्यं गन्ताऽसि। अयं भावः-मलिनायां बुद्धावसकृद्गृहीतस्यापि शास्त्रार्थस्य स्फुरणात् श्रोतव्यं श्रुतं च वृथैव। तद्वत् शुद्धायामपि बुद्धौ सद्यः शास्त्रार्थस्फुरणात्तयोर्वैयर्थ्यमित्युभयथाऽपि तत्र निर्वेद उचितः । प्रसन्ना च बुद्धिर्निग्रहीतुं योग्या भवतीति श्रवणादिकं त्यक्त्वा ध्याननिष्ठ एव भवेदिति ॥ ५२ ॥ ननु बुद्धिप्रसादोऽपि केन लिङ्गेन ज्ञेय इत्यत आह-**श्रुतीति** । श्रुतिभिर्नानाविधशास्त्रश्रवणैर्विप्रतिपन्ना आत्मा नित्योऽनित्यो,वा नित्योऽपि कर्ताऽकर्ता वा, अकर्ताऽप्येकोऽनेको वेत्येवमादिसंशयग्रस्ता सती यदा असंभावनाविपरीतभावनानिरासपूर्वकं श्रुतितात्पर्यविषयीभूते ब्रह्माद्वैते निश्चला पुनः कुतर्कैरनास्कंदनीया निर्विचिकित्साऽपरोक्षनिश्चयवती भूत्वा समाधौ निर्विकल्पके प्रत्यगात्मनि अचला लयाविक्षेपशून्या स्थास्यति स्थिरा भविष्यति । तदा योगं विवेकप्रज्ञां प्राप्स्यसि । निश्चलसमाधिलाभ एव बुद्धिप्रसादलिङ्गमिति भावः ॥ ५३ ॥ लब्धसमाधेः स्थितप्रज्ञापरनाम्नो लक्षणानि बुभुत्सुरर्जुन उवाच-**स्थितप्रज्ञस्येति** । स्थिता प्रत्यगात्मनि प्रतिष्ठिता प्रज्ञा यस्य तस्य स्थितप्रज्ञस्य समाधिस्थस्य समाधौ स्थितस्य का भाषा भाषणं वचनं कथमसौ परैर्भाष्यते इत्येकः प्रश्नः । स्थितधीः स्थितप्रज्ञः अर्थाद्व्युत्थितः सन् किं प्रभाषेत कथं वदति । कथमास्ते । कथं वा व्रजति विषयान्भुंक्ते । इति प्रश्नत्रयम् ॥ ५४ ॥ एतेषां क्रमेणोत्तराण्याह भगवान्-**प्रजहातीत्यादिना** । अत्र यान्येव कृतार्थलक्षणानि तानि ज्ञानसाधनानीति मत्वा उपदिश्यन्ते स्थितप्रज्ञलक्षणानि तेषामकृतार्थेषु यत्नसाध्यत्वात् कृतार्थेषु स्वाभाविकत्वात् । यथोक्तम्—

उत्पन्नात्मप्रबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः ।
भवन्त्ययत्नतस्तस्य न तु साधकरूपिणः' इति ।

यदाऽयं योगी सर्वान् स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरभोग्यान् कामान् काम्यमानान्विषयान् प्रकर्षेण समूलं जहाति त्यजति कीदृशान् कामान् मनोगतान् मनस्येव सङ्कल्पविकल्पात्मके-

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५८
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६०
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ६१
ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते६२

---

स्थितान् न तु बहिः । यथोक्तमक्षपादाचार्यैः-' दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः'इति। तत्र स्थूलानां कामानां त्याग एकान्तसेवनमात्राद्भवतीति स स्थवीयानेव। विलीनकरणग्रामस्य समनस्कस्य जाग्रद्वासनामयाः स्वप्ने ये कामाःस्फुरन्ति तेषामपि त्यागो भगवद्ध्यानादिरूपसद्वासनाभ्यासबलेन भवति । ये तूपसंहृतकरणस्य संप्रज्ञातसमाधिकाले दिव्याः कामाः सङ्कल्पमात्रोपनता दहरविद्यादिषु प्रसिद्धास्तेषामपि त्यागोऽसंप्रज्ञातसमाध्यभ्यासबलेन भवति । एवं त्रिविधान् कामान् त्यक्त्वा आत्मन्येवाखण्डैकरसे आत्मना स्वेनैव स्वरूपानन्देन तुष्टो बाह्यविषयनिरपेक्षो यदा भवति तदाऽयं **स्थितप्रज्ञ** इत्युच्यते ॥५५॥ दुःखेषु शस्त्रपातादिषु दुःखसाधनेषु प्राप्तेष्वपि अनुद्विग्नमना अचञ्चलमनाः। वक्ष्यति च-'यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते'इति। सुखेषु सुखसाधनेषु स्रक्चन्दनादिषु प्राप्तेष्वपि विगतस्पृहो निवृत्तिकत्वाद्भवति। अत एव वीताः रागभयक्रोधा यस्मात् स तथा। नहि तस्यामवस्थायां रागादयो दुःखादयो वा संभवन्ति । एवंविधः समाधिस्थः स्थितधीः स्थितप्रज्ञ उच्यते ॥५६॥ स्थितधीः किं प्रभाषेतेत्यस्योत्तरमाह-**यःसर्वत्रेति**।सर्वेषु धनदारदेहजीवनादिषु अनभिस्नेहः अभिस्नेहवान्हि धनदारादिषु विकलेषु सकलेषु वाऽहमेव विकलः,सकलोऽस्मीति दैन्यदर्पोपेतः पूर्वापरानुसन्धानरहितो जल्पति अयं तु न तथेति भावः । तथा शुभं प्राप्य नाभिनन्दति सन्तुष्टो भूत्वा शुभप्रापयितारं न प्रशंसति । तथा अशुभं प्राप्य न द्वेष्टि दुःखी भूत्वा अशुभप्रापयितारं न निन्दति यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥ किमासीतेत्यस्योत्तरमाह-**यदेति**। इन्द्रियार्थेभ्यः शब्दादिविषयेभ्यः प्रारब्धकर्मवशेन व्युत्थितोऽपि योगी द्वैतदर्शनादुद्विग्नः सन् निरोधसंस्कारप्राबल्यात् प्रीत्या समाधिमनुतिष्ठन्नेवास्त इत्यर्थः शेषं स्पष्टम्५८॥ ननु विषयेभ्य इन्द्रियाणां निवृत्तिश्चेत् स्थितप्रज्ञताहेतुस्तर्हि सुप्तिमूर्च्छालयग्रहावेशादावपि साऽस्तीति सर्वोऽपि स्थितप्रज्ञ एवेत्याशंक्याह-**विषया इति** । सत्यं। देहिनो देहाभिमानवतो मूढस्य सुप्त्यादौ निराहारस्य इन्द्रियैर्विषयाननाहरतोऽभुञ्जानस्य विषया विनिवर्तन्त एव, तथापि रसवर्जं रसो रागस्तद्वर्जं निवर्तन्ते । तदाऽपि सूक्ष्मरूपेण रागोऽस्ति । रागमूलस्यात्माज्ञानस्यादाहान्नासौ स्थितप्रज्ञ इत्यर्थः । अस्यैव पुनः परं दृष्ट्वा आत्मानं साक्षात्कृत्य निराहारस्य शब्दादीनगृह्णतो रसोऽपि निवर्तते मूलाज्ञानदाहादित्यस्ति सुप्तादेः समाधिस्थस्य च महान् विशेष इति भावः । **प्राञ्चस्तु** रोगिणः काष्ठतपस्विनो वा मूढस्यापि विषयाननाहरतो रसवर्जं विषया विनिवर्तन्ते तस्यैव परं दृष्ट्वा स्थितस्य रसोऽपि निवर्तत इति व्याचख्युः ॥ ५९ ॥ किंच सुप्तादेरिन्द्रियाणि श्रान्त्या स्वयमेव लीयन्ते, समाहितेन तु तानि कूर्मेणाङ्गानीव स्वेच्छया संह्रियन्ते, एतच्चात्यन्तायाससाध्यमित्याह—**यतत इति** । विपश्चितः शास्त्राचार्योपदेशवतो यततोऽपि समाधिसिद्धयर्थं यतमानस्यापि पुरुषस्य इन्द्रियाणि कर्तॄणि मनः प्रतीचि स्थिरीक्रियमाणं कर्मीभूतं हरन्ति विषयप्रवणं कुर्वन्ति । यतः प्रमाथीनि यथा बहवश्चोरा वने एकं पुरुषं प्रमथ्य तस्य वित्तं हरन्ति, एवमिन्द्रियाणि यततो मनो हरन्ति । यतः प्रसभमतिशयेन प्रमथनशीलानि ॥ ६० ॥ यद्यप्येवं तथाऽपि तानि नियन्तव्यान्येवान्यथा स्थितप्रज्ञत्वस्यैवासिद्धेरित्याह—**तानीति** । संयम्य वशीकृत्य युक्तः संनद्धो मत्परः अहमेव सर्वेषां प्रत्यगात्मा परः स्त्र्यादिभ्यो बाह्येभ्यो देहेन्द्रियादिभ्य आन्तरेभ्यश्च उत्कृष्टः प्रियतमो यस्य स मत्परः सन्नासीत । हि यस्मात् वशे आज्ञायाम्। शेषं स्पष्टम्॥ ६१॥ 'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्'इति श्रुतौ इन्द्रियमनोबुद्धीनां निग्रहे परमपदप्राप्तिरित्युक्तम् । तत्र उपसंहृतकरणस्य बाह्यान् शब्दादीनगृह्णतो मनोमात्रेणावस्थितस्य योगिनो मनसोऽनिग्रहे किं स्यादित्याह—**ध्यायत इति** द्वाभ्याम्। विषयान् शब्दादीन् ध्यायतश्चिन्तयतः पुंसः पुरुषस्य तेषु शब्दादिषु सङ्गः संबन्धो जायते । बाह्यार्थेभ्यो निगृहीतान्यपीन्द्रियाणि मनोदोषात्पुनर्बाह्यार्थान् गृह्णन्तीत्यर्थः । ततः सङ्गात्कामस्तास्मिन्विषयेऽभिलाषः सञ्जायते। कामात्कुतश्चिद्धेतोः प्रतिहतादभिज्वलनात्मा क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

**क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**
**स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ६३**
**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।**
**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४**
**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।**
**प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५**
**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।**
**न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ६६**
**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।**
**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७**
**तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८**
**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।**
**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ६९**

ततः क्रोधात् संमोहः कार्याकार्यविवेकाभावो भवति । ततः स्मृतिविभ्रमः शास्त्रार्थानुसंन्धानस्य विभ्रंशरूपं चलनं भवति । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशः शास्त्रार्थस्य निश्चितस्यापि तिरोधानं भवति। तस्मिंश्च शास्त्रजे परोक्षज्ञानेऽपि नष्टे पुरुषो नश्यति पुरुषार्थायोग्यो भवति । यो हि तादृशः स नष्ट एवेति लोके वदन्ति ॥ ६३ ॥ ननु विषयानध्यायतोऽपि योगिनो व्युत्थाने प्रमाणस्वाभाव्यादिन्द्रियाणां विषयेषु सङ्गो दुष्परिहरस्ततश्चोक्तरीत्या तस्यापि नाशप्रसक्तिरित्याशङ्क्याह—**रागद्वेषेति** । विधेयात्मा किंकरीकृतमनास्तु आत्मवश्यैर्मनोधीनैरिन्द्रियैः स्वामिनश्चित्तस्य किंकरीकृतस्य कामक्रोधहीनत्वात्स्वयमपि रागद्वेषावियुक्तैः विषयान् पथि पतिततृणादीनीवानास्थया चरन् पश्यन्नपि पुमान् तत्र कामाद्यनुदयात् प्रसादं संकल्पविकल्पपङ्कलेपप्रक्षालनेन मनसः स्वाच्छ्यमधिगच्छति । मनसः स्वाच्छ्यमेव प्रत्यगात्मनः स्वाच्छ्यं तस्य तद्गुणसारत्वात् । अजितमनस्कमिव जितमनस्कं विषयसङ्गो न बाधतेऽतो मनोजयोऽवश्यं कर्तव्य इत्यर्थः ॥ ६४ ॥ किंच चित्तस्य प्रसादे हि अस्य पुंसः सर्वदुःखानां काममूलकानां कामाभावाद्धानिः परिहारो जायते । कामानुदये हेतुमाह—**प्रसन्नेति** । हि यस्मात् प्रसन्नचेतसः पुंसो बुद्धिर्ब्रह्मात्मैक्यनिश्चय आशु शीघ्रं पर्यवतिष्ठते सुदृढो भवति । तस्मिंश्च सति प्राप्याभावान्न कामोदय इत्यर्थः ॥ ६५ ॥ समनस्कानामिन्द्रियाणामनिग्रहे दोष उक्तः । बुद्धेरपर्यवस्थाने को दोष इत्यत आह—**नास्तीति** । अयुक्तस्य श्रवणमननयोरनासक्तस्य बुद्धिर्ब्रह्मात्मैक्यनिश्चयो नास्ति । प्रमाणविषयासंभावनायाः प्रमेयविषयासंभावनायाश्चानिरासात् । तथा अयुक्तस्यासमाहितमनसो भावना ब्रह्माकारान्तःकरणवृत्तिप्रवाहो नास्ति । मनसश्चाञ्चल्येन बुद्धेरपि चाञ्चल्यात् । अभावयतो ध्यानमकुर्वतः शान्तिः सर्वदुःखोपरमश्च नास्ति । चेतसोऽनवस्थितत्वेन दुःखावश्यंभावात् । अशान्तस्यानुपरतसर्वदुःखस्य सुखं प्रत्यगद्वयानन्दात्मकं कुतो न कुतश्चित् । दुःखित्वादेव आद्यमयुक्तस्येति पदं ' युजिर्योगे ' इत्यस्य रूपम् । द्वितीयं 'युज समाधौ' इत्यस्य। तस्माद्बुद्धेः पर्यवस्थानमावश्यकम्॥ ६६ तदभावे दोषमाह—**इन्द्रियाणां हीति** । हि यस्मादिन्द्रियाणां चरतां स्वस्वविषये प्रवर्तमानानां—कर्मणि षष्ठी । यत् रागादिकलुषितं मनः तान्यनुलक्षीकृत्य विधीयते प्रवर्त्यते—कर्मकर्तरि लकारः—प्रवर्तत इत्यर्थः । तत् इन्द्रियानुसारि मनोऽस्य साधकस्य प्रज्ञामात्मतत्त्वविषयां बुद्धिं हरति । तस्या मनोनुसारित्वात् । दृष्टान्तः स्पष्टार्थः । अन्ये तु इन्द्रियाणां मध्ये यदिन्द्रियमनुलक्षीकृत्य मनः प्रवर्तते तदिन्द्रियमस्य साधकस्य मनसो वा प्रज्ञां हरतीति योजयन्ति । आत्मविषयां प्रज्ञां हृत्वा मनोविषयाविषयां करोतीति भाष्यमप्यालोचनीयम् ॥ ६७ ॥ यततो ह्यपीत्यत्रोपक्रान्तमर्थं बहुधोपपाद्य उपसंहरति—**तस्मादिति** । यस्मादिन्द्रियाधीनं मनो मनोनुगा च प्रज्ञा तस्मात् हे महाबाहो,यस्य यतेरिन्द्रियाणि सर्वशः सर्वप्रकारेण स्वकारणेन मनसा सहितानीति यावत् । इन्द्रियार्थेभ्यः शब्दादिभ्यो निगृहीतानि भवन्ति तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठितेति विद्धि ॥६८॥ 'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते' इत्युदाहृतश्रुतेः'तामाहुः परमां गतिम्'इत्येतं चतुर्थं पादं व्याचष्टे—**या निशेति** । सर्वेषां भूतानामज्ञानां या निशेव निशा यस्यां मध्यंदिने उलूका इवानन्धा अप्यन्धा एव सर्वे प्राणिनो भवन्ति । तस्यां तस्मिन्प्रत्यग्ज्योतिषि संयमी इंद्रियमनोबुद्धीनां निग्रहणशीलो योगी जागर्ति । इन्द्रियादीनां दृक्शक्तिलोपेऽप्यनुपरतदृक्शक्तिरेवास्ते । तथा च श्रुतिः—' नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् ' इति । यस्यामविद्याख्यायां निशायां क्रियाकारकादिद्वैतस्वप्नप्रवर्तिकायां सर्वाणि भूतानि जाग्रति निशीथे उलूका इव स्वस्वव्यापारे प्रवर्तन्ते सा अविद्या पश्यतो मुनेः आत्मदर्शनवतो योगिनः प्रारब्धकर्मणा विदेहकैवल्यप्रतिबन्धाल्लेशतोऽनुवर्तमाना व्युत्थानकाले व्यवहरतोऽस्य गाढान्धकारवती निशेव क्लेशकरी भवति । अतिसुकुमारा हि योगिनो बाह्यव्यवहारादुद्विजन्ते नरा इव गाढान्धकारे सञ्चारात्। यथोक्तं योगभाष्ये— 'अक्षिपात्रकल्पो हि विद्वानत्यल्पदुःखलेशेनाप्युद्विजते ' इति । अत्र वार्तिकानि—

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७०

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति

'कारकव्यवहारे हि शुद्धं वस्तु न वीक्ष्यते ।
शुद्धे वस्तुनि सिद्धे च कारकव्यापृतिस्तथा ॥
काकोलूकनिशेवायं संसारोऽज्ञात्मवेदिनोः ॥
या निशा सर्वभूतानामित्यवोचत्स्वयं हरिः' इति ॥
'बुद्धतत्त्वस्य लोकोऽयं जडोन्मत्तपिशाचवत् ।
बुद्धतत्त्वोऽपि लोकस्य जडोन्मत्तपिशाचवत्' इति ॥
तदेवं किमासीतेत्यस्योत्तरं 'यदा संहरते चायम्' इत्यादिना एतदन्तेन ग्रन्थेन स्थितप्रज्ञः सदा समाधिमनुतिष्ठन् परमां गतिं प्राप्यास्त इत्युक्तम् ॥ ६९ ॥ ननु 'प्रजहाति यदा कामान्' 'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निगृहीतानि' इत्यादिनाऽसकृद्विषयाणां प्रहाणं तेभ्यश्च इन्द्रियादीनां प्रत्याहरणमुक्तम्। तेन तेषामात्मनः पृथक्सत्त्वमस्तीति सिद्धं न च 'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि श्रुत्या तेषां बाधान्न तदस्तीति वाच्यम्। इहेति प्रतीच्येव तन्निषेधात्। नहि इह भूतले घटो नास्तीत्युक्ते घटस्य स्वरूपं निषिध्यते किं तु तस्य भूतलसंबन्धमात्रम्। तस्मात् कामानां पृथक्सत्त्वमस्त्यतो नाद्वैतसिद्धिरित्याशङ्क्य सदृष्टान्तं परिहरति- **आपूर्यमाणमिति** । प्रतिक्षणं नदीभिरद्भिरापूर्यमाणमप्यचलप्रतिष्ठमनुद्रिक्तं वृद्धिहीनत्वात्। एवं निर्गच्छन्तीभिरद्भी रिच्यमानमप्यचलप्रतिष्ठमरिक्तं ह्रासहीनत्वादित्यपि बोध्यम्। एवंविधं समुद्रं यद्वत् आत्मप्रभवा आपः प्रविशन्ति, तद्वत् यं पुरुषं कामैरापूर्यमाणं हीयमानं वा अचलप्रतिष्ठं निर्विकारं वृद्धिह्रासहीनत्वात् आत्मप्रभवाः सर्वे कामाः प्रविशन्ति, स एव शान्तिं मोक्षमात्यन्तिकं दुःखोपरमं प्राप्नोति नतु कामकामी विषयार्थी । अयं भावः- कूटस्थादात्मनः सर्वस्योत्पत्तिस्तत्रैव च लय इति सर्वश्रुतिस्मृतिप्रसिद्धम् । तेन कामानां प्रहाणं तेभ्यश्चेन्द्रियाणां प्रत्याहरणं स्मर्यमाणं न तेषां परमार्थतः पृथक्सत्त्वं साधयति बहुप्रमाणविरोधात्। किं तु पामरप्रसिद्धं पृथक्सत्त्वमभिप्रेत्य प्रहाणादिकमुक्तं प्रविलापनं त्वेवमेव व्याख्येयम्। यथा 'अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्' इत्यादौ निर्वपतिना याग उच्यते नतु श्रौतार्थमात्रं तद्वदिहापि ज्ञेयम्। 'नेह नानास्ति' इत्यपीह परिदृश्यमाने प्रपञ्चे आत्मातिरिक्तं नाना किमपि नास्तीत्येवंपरतया व्याख्येयम्। तथा च 'आत्मैवेदं सर्वं' 'ब्रह्मैवेदं सर्वं' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादयः श्रुतिवादाः संगच्छन्ते । आत्मनि कल्पितस्यास्य तत्रैव निषेधेनान्यत्र सत्त्वानुपपत्तेर्न कामानां पृथक्सत्त्वमस्तीति युक्त एव समुद्रदृष्टान्तः । यत्तु समुद्रात्पृथग्गङ्गायाः सत्त्वमस्तीति। तन्न। कार्ये कारणसत्तातिरिक्तसत्ताया अभावात् । 'वाचारंभणं विकारो नामधेयम्' इति कार्यस्य वागालम्बनमात्रत्वश्रवणादित्यन्यत्र विस्तरः ॥७०॥ प्रासङ्गिकीमाशङ्कां परिहृत्य व्रजेत किमित्यस्य प्रश्नस्योत्तरमाह-**विहायेति** । पूर्वोक्तान् त्रिविधान् कामान् विहाय यश्चरति विषयान् भुङ्क्ते निस्पृहश्च। यतो निर्ममः। ममतावान् हि इदं मम भूयादित्यन्यधनाद्यर्थे स्पृहां करोति,न निर्ममोऽपि। कुतः, यतो निरहंकारः। न ह्यहङ्कारशून्यस्य सुत्यादौ ममता दृष्टा तस्मादहङ्कारप्रविलयाच्छान्तिं मोक्षं प्राप्नोति । अत्र यः सर्वत्रानभिस्नेह इति सर्वत्र यच्छब्ददर्शनात् साधनविधिपर एवायं ग्रन्थः । अन्यथा स्थितप्रज्ञस्य प्रकृतत्वात्तदनुवादार्थो यच्छब्दोऽनर्थकः प्राप्नोति। लोकेऽपि हि परस्वभावकथने स एवं करोतीति तच्छब्द एव प्रयुज्यते,नतु यच्छब्दः । विधौ तु य एवं करोति स इदं प्राप्नोतीति द्वयोरपि प्रयोगो दृश्यते । लक्षणकथनार्थत्वेऽपि तत्र तात्पर्याभावाद्विधावेव पर्यवस्यतीति दिक् ॥ ७१ ॥ प्रतिपादितां कर्मयोगप्राप्यां साङ्ख्ययोगनिष्ठां फलेन स्तुवन्नुपसंहरति-**एषेति** । एषा स्थितप्रज्ञलक्षणप्रसङ्गात् कथिता ब्राह्मी । ब्रह्मशब्देनात्र ब्रह्मविदुच्यते । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः । तस्येयं ब्राह्मी स्थितिर्निष्ठा । एनां निष्ठां प्राप्य नरो न विमुह्यति पुनर्मोहं न प्राप्नोति । अस्यामन्तकालेऽपि स्थित्वेति सकृज्जाताऽपीयं फलवती न तूपासनावच्चिराभ्याससापेक्षेत्युक्तम्। ब्रह्म ऋच्छति प्राप्नोति। किं लोकान्तरवद्गतिप्राप्यं ब्रह्म नेत्याह-**निर्वाणमिति** । निर्गतं वानं गमनं यस्मिन्प्राप्ये ब्रह्मणि तन्निर्वाणम्। तथा च श्रुतिः-'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति गतिमन्तरेण प्राणरूपोपाधिप्रविलयमात्रात् घटाकाशस्य महाकाशत्वप्राप्तिवज्जीवस्य ब्रह्मप्राप्तिमाह । अन्तकालेऽपीत्यपिशब्दाद्यो ब्रह्मचर्यादारभ्यात्र तिष्ठति स ब्रह्मनिर्वाणं कैमुतिकन्यायेन प्राप्नोतीति गम्यते । अस्याध्यायस्यार्थः संगृहीतो मधुसूदनश्रीपादैः—

'ज्ञानं तत्साधनं कर्म सत्त्वशुद्धिश्च तत्फलम् ।
तत्फलं ज्ञाननिष्ठैवेत्यध्यायेऽस्मिन् प्रकीर्तितम्'
॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ पर्वणि तु षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

अर्जुन उवाच ।

**ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।**
**तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १**
**व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।**
**तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २**

श्रीभगवानुवाच ।

**लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ**
**ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३**

इति श्रीमत्पदवाक्य० मर्या० चतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविंदसूरिसूनोर्नीलकंठस्य कृतौ भारतभावदीपे भगवद्गीताप्रकाशे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ पर्वणि० ॥ २६ ॥

२७

पूर्वस्मिन्नध्याये 'एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु' इति द्वे बुद्धी प्रदर्श्य व्यवसायात्मिका बुद्धिरिति श्लोकेन सांख्यनिष्ठावतां पातशंका नास्ति कर्मयोगनिष्ठावतां तु साऽस्तीत्युक्त्वा 'यावानर्थ उदपाने' इति सांख्यनिष्ठायां सर्वकर्मफलान्तर्भावश्रवणात्तामेव प्रशमात्मिकां स्वाशयानुकूलां मन्वानोऽर्जुन उवाच—**ज्यायसीति** । हे जनार्दन, कर्मणो निष्कामकर्मयोगापेक्षया बुद्धिः सांख्यनिष्ठालक्षणं ज्ञानं ज्यायसी प्रशस्ततरा चेत्ते तव मता तत्तर्हि मां भैक्ष्यवृत्त्याऽपि तुष्यन्तं घोरे बन्धुवधाख्ये कर्मणि किं कुतो हेतोर्नियोजयसि पुनः पुनर्युध्यस्वेति वदन् ॥ १ ॥ ननु तव ज्ञाननिष्ठायामनधिकारात् कर्मैव कुर्विति त्वां ब्रवीमीत्याशंक्याह—**व्यामिश्रेणेति** । व्यामिश्रेण अविविक्तेन । इवशब्दो विविक्तेऽपि बुद्धिदोषादविविक्ततां गृह्णामीति सूचयति तेन वाक्येन 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' इति क्वचिद्वेदनिष्ठां त्याजयसि । 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इति तामेव च ग्राहयसि । तथा 'निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् भव' इति निवृत्तिमार्गमुपदिशसि । 'धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते' इति प्रवृत्तिमप्युपदिशसि । न ह्येकेन मया युगपदुभयं स्थितिगतिवदनुष्ठातुं शक्यमतो मे मम बुद्धिं मोहयसीव । वस्तुतस्तु मम मोहं नाशयितुं प्रवृत्तोऽसीति इवशब्देनोच्यते । तत्तयोर्मध्ये यदेकं प्रधानं मद्योग्यं तन्निश्चित्य वद । येनानुष्ठितेनाहं श्रेयः कल्याणमाप्नुयाम् ॥ २ ॥ अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच—**लोकेऽस्मिन्निति** । पुरा पूर्वाध्याये मया निष्ठा एकैव प्रोक्ता परंतु सा द्विविधा द्विप्रकारा। एकस्या एव ब्रह्मनिष्ठायाः प्रकारद्वयमुक्तमधिकारिभेदेन नतु ब्रह्मप्राप्तये परस्परानिरपेक्षमार्गद्वयमुक्तमिति भावः । हेऽनघ, विशुद्धान्तःकरण, मद्वचनस्यार्थं सम्यगालोचयेत्यर्थः । तदेव प्रकारद्वयमाह—**ज्ञानयोगेनेति** । सांख्यानां प्रकृतिपुरुषयोर्विविक्तत्वं जानतामात्मानात्मविवेकज्ञानवतां ज्ञानार्थं युज्यते इति ज्ञानयोगः ज्ञानोपायो वेदान्तश्रवणमनननिदिध्यासनात्मकस्तेन ज्ञानयोगेन ब्रह्मणि निष्ठां परिसमाप्तिं सांख्याः प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । योगिनां 'सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते' इत्युक्तलक्षणयोगवतां कर्मयोगेन सन्ध्योपासनादिनिर्विकल्पसमाध्यनुष्ठानान्तमिह कर्मयोगपदार्थः । तेन योगिनो ब्रह्मनिष्ठां प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । अयं भावः—इह जन्मनि जन्मान्तरे वा ईश्वरप्रीत्यर्थमनुष्ठितैः कर्मभिर्विशुद्धसत्त्वो विवेकवैराग्यशमादिषट्कोपेतो मुमुक्षुः प्रत्यक्प्रवणचित्तः श्रवणमननाभ्यामेव कृतकृत्यो भवति । स चेच्छ्रवणादेः प्रागसमाहितचित्तस्तर्हि निदिध्यासनमस्यापेक्षितम् । अत एव 'सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण' इति सूत्रकृता निदिध्यासनस्य पाक्षिकत्वमुक्तम् । सोऽयं सांख्यमार्गः । तथा सर्वाणि कर्माणि परमगुरावर्पयन् श्रवणमननात्मकं विचारमन्तरेणैव केवलं श्रद्धामात्रात् प्रतीचो निर्विशेषब्रह्मरूपत्वं गुरुवाक्यतो निश्चित्यासंभावनादिदोषरहित आचार्यान्निर्गुणब्रह्मोपास्तिप्रकारमधिगम्य कर्मच्छिद्रेषु समाध्यभ्यासं कुर्वन्निष्कलं प्रत्यगात्मस्वरूपं साक्षात्करोति । सोऽयं योगमार्गः । तेन ऊहापोहकौशलं येषामस्ति ते सांख्याः । येषां तन्नास्ति ते योगिन इति । अत इयं द्विप्रकारा निष्ठा नतु द्वे निष्ठे इति भ्रमितव्यम् । यथोक्तं वसिष्ठेन—'द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव । योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥ असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित्तत्त्वनिश्चयः । प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमः शिवः' इति । चित्तादर्शनोपलक्षितस्य ब्रह्मसाक्षात्कारस्य द्वौ क्रमौ । चित्तादेर्मिथ्यात्वपक्षे ज्ञानमेव यथा रज्जूरगादिसम्यगवेक्षणेनैव नश्यति तद्वत्तस्य सत्यत्वपक्षे योग एव । यथा सत्य उरगो मन्त्रादिना निरुद्धप्रचारः स्वयमेव नश्यति तद्वच्चित्त-

**न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।**
**न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४**
**न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।**
**कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५**
**कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।**
**इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ६**
**यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।**
**कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७**
**नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।**
**शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८**

मपि योगेन निबद्ध्यमानं नश्यति । तस्य निरन्वयोच्छेदस्तु प्रारब्धकर्मान्ते पक्षद्वयेऽपि तुल्य इति ॥ ३ ॥ अनयोः प्रकारयोरङ्गाङ्गिभावमाह—**न कर्मणामिति** । कर्मणां यज्ञादीनामनारंभादननुष्ठानात् नैष्कर्म्यं ज्ञाननिष्ठां नाश्नुते न प्राप्नोति । ' विविदिषन्ति यज्ञेन ' इति श्रुत्या यज्ञादीनां विद्याङ्गत्वेन विधानात् । ननु, सन्प्रत्ययप्राधान्यात्कर्मणां विविदिषाङ्गत्वमत्र गम्यते । तेन विविदिषायां यज्ञादिना सिद्धायाम् 'एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति' इति श्रुतेः प्रव्रज्यारूपमेव नैष्कर्म्यमिह ज्ञाननिष्ठासाधनं ग्राह्यम् । न ज्ञानं नैष्कर्म्यसिद्धिं परमामित्यादाविवात्र तद्ग्राहकस्य परमत्वविशेषणस्याभावात् । ननु कर्मयोगजनितचित्तशुद्ध्यभावे केवलात् संन्यासात् सिद्धिं समधिगच्छतीति योजनायां विप्रकृष्टयोर्ज्ञानकर्मणोः समुच्चयासंभवस्याभीष्टस्य सिद्धेः किमिति नैष्कर्म्यशब्देन निष्ठा गृह्यत इति चेत्सत्यम् । गुणैः कर्म कार्यत इति वाक्यशेषान्नैर्गुण्यहेतुकं मुख्यं ज्ञानमेवेह नैष्कर्म्यपदार्थो न तु प्रव्रज्या । 'विविदिषन्ति यज्ञेन 'इत्यत्रापि जिगमिषत्यश्वेन जिघांसत्यसिनेत्यादाविव तृतीयान्तस्य धात्वर्थेनैवान्वयाद्श्वादीनां गमनादाविव यज्ञादीनां वेदन एवान्वयो ज्ञेयः । एतमेवेति श्रुतिस्तु विविदिषां संन्यासाभिप्रायेण प्रवृत्ता । ' एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ' इति ज्ञानपरिपाकार्थस्य जीवन्मुक्तिसुखार्थस्य वा याज्ञवल्क्यादिभिरनुष्ठितस्य विद्वत्संन्यासस्यापि शास्त्रे दर्शनात् । असंन्यासिनो ज्ञानमेव नोत्पद्यत इति प्राचामाग्रहो विक्षेपककर्मत्यागरूपसंन्यासविषयो न तु काषायपरिधानमात्रविषयः । गर्गीव्याधवसिष्ठादीनामतथाविधानामपि ज्ञानोत्पत्त्यवगमादित्यास्तां तावत् । कर्मभिरशोधितचित्तस्य मन्दबुद्धेः रागद्वेषादिग्रस्तस्यात्मानात्मविवेकद्वारा चित्तरोधद्वारा वा नैष्कर्म्यप्राप्तिर्नास्तीति पूर्वार्धार्थः । नन्वभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा नैष्कर्म्यमाचरेदिति केवलात्कर्मसंन्यासादपि नैष्कर्म्यसिद्धिः स्मर्यते तत्कथमुच्यते न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यमस्तीति तत्राह—**न चेति** । कर्मजचित्तशुद्ध्यभावे कृतादपि संन्यासान्न मोक्षसिद्धिः । उदाहृतस्मृतिस्तु चित्तशुद्धिपूर्वकसंन्यासाभिप्राया । न हि रागादिग्रस्तः सर्वभूतेभ्यः सर्वात्मनाऽभयं दातुमीष्टेऽतो युक्तमुक्तं **न च संन्यसनादेवेति** ॥ ४ ॥ एतदेव प्रपञ्चयति—**न हीति** । अवशः कर्मजशुद्ध्यभावादजितचित्तः कश्चिदपि जातु कदाचित् समाधिकालेऽपि क्षणमपि अकर्मकृत् कर्माणि दुर्मनोरथादीनि अकुर्वन् हि प्रसिद्धं न तिष्ठति । हि यस्मात् सर्वोऽपि लोकः प्रकृतिजैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिः स्वभावप्रभवैः रागद्वेषादिभिर्वा कर्म कायिकं वाचिकं मानसिकं वा कार्यतेऽवश्यं तत्र प्रवर्त्यते ॥ ५ ॥ ननु संन्यासपूर्वकं ध्यानेनैव चित्तशुद्धिमपि सम्पादयिष्यामि । किं कर्मभिरित्याशङ्क्याह—**कर्मेन्द्रियाणीति** । यो विमूढात्मा रागाद्याक्रान्तचित्तः कर्मेन्द्रियाणि वागादीनि संयम्य निगृह्य आस्ते । एकान्ते ध्यानापदेशेनोपविशति स मिथ्याचारः । तस्य तदासननियमनादिकमाचरणं मिथ्या अलीकमेव । निष्फलत्वात् । तत्र हेतुः इन्द्रियार्थान्मनसा स्मरन्निति । यतः इन्द्रियार्थान् शब्दादीन् श्रोत्रादिभिर्गृह्णाति मनसा च स्मरति अतो मिथ्याचारः स विषयांश्चिन्तयन्योगनिष्ठामात्मनो लोकेऽभिव्यञ्जयतः कपटीत्यर्थः । तस्मात्कर्मव्यतिरिक्तश्चित्तशुद्ध्युपायो नास्तीति भावः ॥ ६ ॥ यस्तु पूर्वस्मान्मिथ्याचाराद्विलक्षणः पुरुषधौरेय इन्द्रियाणि मनसा सह नियम्य रागद्वेषवियुक्तानि कृत्वा कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमारभते । हे अर्जुन, सः कर्मफले स्वर्गादावैहिके वा शब्दादावसक्तोऽनासक्तोऽतो विशिष्यते पूर्वस्मादधिको भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ **नियतमिति** । यस्मादेवं तस्मात्त्वं नियतं सन्ध्योपासनादिकमेव कुरु । यद्वा । नियतं नियमेन त्वं कर्म नित्यकाम्यसाधारणं यत्पापनिवर्तकस्वभावं तत्तदेव कुरु । हि यस्मात् अकर्मणः सकलकर्मेन्द्रियनिग्रहेण तदकरणात् चित्तजयशून्यात्कर्मैव ज्यायः प्रशस्ततरम् । अपि च ते तव क्षत्रियस्य अकर्मणः सत्यामपि चित्तशुद्धौ सर्वकर्मत्यागिनः शरीरयात्रा देहव्यवहारो न प्रसिद्ध्येत् भैक्ष्यचर्यायामनधिकारात् । ब्राह्मणाः ' पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति' इति संन्यासविधायके वाक्ये 'राजा राजसूयेन स्वाराज्यकामो यजेत'- इत्यत्र राजपदवद्ब्राह्मणपदस्य विवक्षितस्वार्थत्वात् ' चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य त्रयो राजन्यस्य द्वौ वैश्यस्य ' इति स्मृतेश्च । अन्यत्राप्युक्तं पारिव्राज्यं प्रकृत्य—

'मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिङ्गधारणम् ॥
बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते ' इति ॥८॥

**यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।**
**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९**
**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।**
**अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १०**
**देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।**
**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११**
**इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः**
**तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ १२**

**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।**
**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३**
**अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।**
**यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४**
**कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।**
**तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५**
**एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।**
**अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥१६**

ननु 'कर्मणा बध्यते जन्तुः' इति कर्मणां बन्धकत्वस्मृतेः कथं मुमुक्षुं मां तत्र नियोजयसीत्याशङ्क्याह—**यज्ञार्थादिति।** यज्ञः परमेश्वराराधनम् । यज देवपूजायामिति धात्वर्थानुगमात् । तदर्थं 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेर्विष्णुर्वा तदाराधनार्थं यत्कर्म ततोऽन्यत्र कर्मणि स्वर्गाद्यर्थे प्रवृत्तोऽयं लोकः कर्मबन्धनः कर्मणा बध्यते न त्वीश्वराराधनार्थेन, अतस्तदर्थमीश्वराराधनार्थं कर्म वर्णाश्रमोचितं हे कौन्तेय, मुक्तसङ्गः फलाभिलाषशून्यः सन् समाचर सम्यक्कुरु ॥ ९ ॥ एतदेवार्थवादेन द्रढयति--**सहेति** । यज्ञैः सहेति सहयज्ञाः । 'वोपसर्जनस्य'इति पक्षे सादेशाभावः। कर्माधिकृता इति यावत् । प्रजास्त्रैवर्णिका अनेन यज्ञेन प्रसविष्यध्वं प्रसवो वृद्धिस्तां लभध्वम् । एष यज्ञो वो युष्माकमिष्टकामधुक् इष्टार्थपूरकोऽस्तु ॥ १० ॥ इष्टार्थपूरकत्वमेवाह । **देवानिति**—भावयत तर्पयत । अनेन देवतापूजात्मकेन यज्ञेन वः युष्मान् भावयन्तु वृष्ट्यादिदानेन परस्परं भावयन्तो देवाश्च यूयं च श्रेयः परं प्राप्स्यथ ॥ ११ ॥ किं च इष्टान् पुत्रपश्वादीन् वः युष्मभ्यं एभ्यो देवेभ्यस्तद्दत्तानेव व्रीहिपश्वाज्यादीन् अप्रदाय अदत्त्वा देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मकं यागं नित्यनैमित्तिकरूपं वैश्वदेवाग्निहोत्रजातेष्ट्यादिरूपमकृत्वेत्यर्थः । अदत्त्वा यो भुङ्क्ते स स्तेन एव ॥ १२ ॥ ये तु यज्ञशिष्टाशिनः वैश्वदेवादिशेषान्नभोजनशीलाः सन्तः ऋणापाकरणात् ते मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः प्रमादकृतैर्विहिताकरणनिमित्तैः पञ्चसूनानिमित्तैर्वा । ये त्वात्मकारणात् स्वार्थमेव पचन्ति न तु पञ्चमहायज्ञार्थं ते पापाः स्वयं पापरूपा एव सन्तः पापमेव भुञ्जते तथा च स्मृतिः—

'कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी ।
पञ्चसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विन्दति' इति
'पञ्चसूनाकृतं पापं पञ्चयज्ञैर्व्यपोहति' इति च ।

श्रुतिश्च—'इदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते स य एतदुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्तते मिश्रं ह्येतत्' इति। मन्त्रवर्णोऽपि–'मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य । नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी' इति ॥ १३ ॥ जगच्चक्रप्रवृत्तिहेतुत्वादपि कर्म कर्तव्यमित्याह—**अन्नादिति** । अन्नाद्रेतोरूपेण परिणतात् भूतानि प्राणिशरीराणि भवन्ति । अन्नं च पर्जन्यात् । एतत्प्रसिद्धमेव–'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः ।'

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः' इति स्मृतेः ।

यज्ञो देवताराधनजो धर्मः कर्मभ्यो यागहोमदानादिभ्यः समुद्भवतीति कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मोद्भवं वेदोद्भवं वेद एव धर्मे प्रमाणं न तु पाखण्डादिप्रणीतागमः। ब्रह्म वेदोऽपि अक्षरसमुद्भवम् । 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः' इत्यादिश्रुतेः । साक्षात्परमेश्वरादेवोत्पन्नोऽतो न तत्र भ्रमविप्रलंभकत्वादिदोषाक्रान्तपाखण्डादिवाक्यवदप्रामाण्यशङ्काऽस्तीति भावः । यस्मादेवं तस्मात्सर्वस्मिन् देशे काले च वर्तमानं ब्रह्म वेदः । एतेन वेदस्य नित्यत्वं शब्दस्य विभुत्वं च दर्शितम् । नित्यं नियमेन यज्ञे प्रतिष्ठितं तात्पर्येण पर्यवसन्नम् ॥ १५ ॥ भवत्वेवं ततः किं फलितमित्यत आह—**एवमिति** । भूतानामादौ वेदाधिगमस्ततः कर्मानुष्ठानं ततो देवानां तृप्तिस्ततो वृष्टिस्ततोऽन्नं ततो भूतानि तेषां वेदाधिगम इत्येवंरूपं चक्रमिव चक्रं निरन्तरमावर्तमानं जगद्यात्रानिर्वाहकं नानुवर्तयति नानुतिष्ठति सः अघायुः पापजीवनः इन्द्रियारामो न तु धर्माराम आत्मारामो वा मोघं व्यर्थं दंशमशकादिवत् जीवति । यस्त्वेतदनुवर्तयति स जगदुपकारको धन्य इति भावः । तथा च श्रुतिः–'अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत् पितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजामिच्छति तेन पितॄणामथ यन्मनुष्यान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनुष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वयांस्यापिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोकः' इति ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २०
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५

एवमीश्वरेण वेदयज्ञपूर्वकं जगच्चक्रं प्रवर्तितमज्ञैरधिकृतैरनुवर्तितव्यमित्युक्तम् । अस्यानुवर्तने च महान् प्रत्यवाय उक्तः। स ब्रह्मविदमपि स्पृशेदिति संभाविताशङ्कां परिहरति-**यस्त्विति** । आत्मन्येव रतिः प्रीतिर्यस्य न तु स्त्र्यादौ स तथा। नत्वात्मनि प्रीतिः प्राणिमात्रस्यानौपाधिकी अस्ति प्रत्युत तदर्थत्वेनैव स्त्र्यादिष्वपि प्रीतिर्भवतीत्यत उक्तमात्मतृप्त इति । आत्मनैव परमानन्दरूपेण तृप्तो न मिष्टान्नादिना । ननु मन्दाग्निरपि स्त्र्यादौ न रमते, नापि मिष्टान्नेन तृप्यति अत उक्तमात्मन्येव च सन्तुष्ट इति । मन्दाग्निर्हि धातुवृद्धिं जाठरोद्दीपनं च कामयमान औषधाद्यर्थमितस्ततो धावति न त्वात्मन्येव तुष्यति । विद्वांस्तु रतितृप्तितुष्टीरात्मनैवानुभवति । न स्त्र्यन्नधनादिभिरिति तस्य कार्यं कर्तव्यं किमपि नास्ति । क्रियाप्राप्यस्य कस्याचिदप्यर्थस्याभावात् ॥ १७ ॥ एतदेवाह-**नैवेति** । तस्यात्मरतेः कृतेन कर्मणा अर्थः प्रयोजनं नास्ति, स्वर्गादौ लिप्साभावात् मोक्षस्य चाक्रियासाध्यत्वात् । 'नास्त्यकृतः कृतेन' इति श्रुतेः । अकृतो मोक्षः कृतेन कर्मणा नास्तीति श्रुत्यर्थः । अकृतेन विरुद्धकर्मणाऽपि अर्थो नरकादिरस्य नास्ति । अत्र कृताकृतशब्दौ मित्रामित्रादवत्परस्परविरुद्धार्थवाचितया पुण्यपापवचनौ ये तु अकृतेनेति भावे निष्ठा । नित्याकरणात् गर्हितत्वरूपो वा प्रत्यवायप्राप्तिरूपो वा कश्चनार्थो विदुषो नास्तीति व्याचक्षते । तेषामप्यभावात् । भावोत्पत्तेरनभ्युपगमान्नित्यानां काले यदन्यदविहितं क्रियते तत एव प्रत्यवायोत्पादो वक्तव्य इति घट्टकुट्यां प्रभातवृत्तान्त आपद्यते। अत्रोपपत्तिमाह- **न चेति** । चो हेतौ । यस्मात् आत्मरतेः सर्वभूतेषु चेतनाचेतनेषु उत्तममध्यमाधमेषु कश्चिदपि अर्थव्यपाश्रयः सुखभोगात्मकप्रयोजनाभिसंबन्धो नास्ति । आत्मरतित्वादेव निष्कामत्वाद्विदुषः पुण्यपापफलसंबन्धो नास्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ यस्मान्निष्कामस्य कर्मलेपो नास्ति तस्मात्त्वमपि असक्तः फलासक्तिशून्यः सततं सर्वदा कार्यमवश्यकर्तव्यं कर्म नित्यनैमित्तिकं समाचर । हि यस्मात् असक्तः कर्माचरन् परं मोक्षं सत्त्वशुद्धिद्वारेणाप्नोति ॥ १९ ॥ अत्र शिष्टाचारं प्रमाणयति-**कर्मणेति** । कर्मणैव सह संसिद्धिं श्रवणादिसाध्यां ज्ञाननिष्ठां गन्तुमास्थिताः प्रवृत्ताः जनकादयस्त्वादृशाः क्षत्रियाः न तु संन्यासेन । ननु शुद्धचित्तस्य मम नास्ति कर्मापेक्षेत्याशङ्क्याह-**लोकेति** । लोकस्य संग्रहः स्वधर्मे प्रवर्तनम् । ननु स्वप्रयोजनाभावेऽपि केवलं लोकसंग्रहार्थं चेत्कर्म कर्तव्यं तदा विदुषां ब्राह्मणानामपि संन्यासो न स्यात् यतोनेव संन्यासधर्मान् ग्राहयितुं तेषां संन्यास इति चेदर्जुनेऽपि न तद्दण्डवारितमास्ति । ननु क्षत्रियस्य संन्यासेऽधिकारो नास्तीति चेत् लिङ्गधारणेऽधिकाराभावेऽपि भरतऋषभादिवद्विक्षेपकर्मत्यागमात्रेऽधिकारात् वार्तिके--'सर्वाधिकारविच्छेदि ज्ञानं चेदभ्युपेयते। कुतोऽधिकारनियमो व्युत्थाने क्रियते बलात्' इति विद्वत्संन्यासे क्षत्रियादेरप्यधिकारस्य साधितत्वात् । अतो लोकसंग्रहो न मुख्यं कर्म प्रयोजनमिति चेत्सत्यम् । 'न मे पार्थास्ति कर्तव्यम्' इति स्वदृष्टान्तेनाधिकारिकत्वादर्जुन एवैवं नियोज्यते न क्षत्रियमात्रमिति तुष्यतु भवान् ॥२०॥ कर्मणि वर्ते एव अहं कर्म करोम्येवेत्यर्थः ॥ २२ ॥ यद्यहं कर्मणि न वर्तेयं तर्हि मनुष्याः ममैव वर्त्मानुवर्तन्ते अनुवर्तेरन् कर्म न कुर्वीरन्नित्यर्थः । अतन्द्रितोऽनलसः सर्वशः सर्वप्रकारैः ॥ २३ ॥ ततश्च किमित्यत आह-**उत्सीदेयुरिति** । यद्यदाचरतीत्यादेरपरा योजना न केवलं लोकसंग्रहं पश्यन् कर्तुमर्हसि अपि तु श्रेष्ठाचारत्वादपीत्याह--- **यद्यदिति** । तथा च मम श्रेष्ठस्य यादृश आचारस्तादृश एव मदनुवर्तिना त्वयाऽनुष्ठेयः न स्वातन्त्र्येणान्य इत्यर्थः । कीदृशस्तवाचारो यो मयाऽनुवर्तनीय इत्याकांक्षायां न मे पार्थेत्यादिभिस्त्रिभिः श्लोकैस्तत्प्रदर्शनमिति **मधुसूदनश्रीपादाः** ॥ २४ ॥ यदि मादृश एव त्वं कृतार्थोऽसि तथाऽपि परानुग्रहार्थं कर्माणि कुर्वित्याह---**सक्ता इति**। कर्मणि कर्मफले । कुर्वन्ति कर्माणीति शेषः । असक्त इति च्छेदः ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥२६
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते॥२७
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८
प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०

विद्वान् अज्ञानां कर्मस्वासक्तानां बुद्धिभेदं बुद्धेश्चालनं न जनयेत् नोत्पादयेत् किंतु तान् सर्वाणि कर्माणि जोषयेत्सेवयेत् । कथम् । युक्त आदृतो भूत्वा समाचरन् ॥ २६ ॥ अविद्वान् कथं कर्मसु सज्जत इत्यत आह—**प्रकृतेरिति** । प्रकृतेः पारमेश्वर्याः सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिकायाः 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' इति श्रुतिप्रसिद्धायाः शक्तेर्गुणैः कार्यकारणसंघातात्मकैः क्रियमाणानि कर्माणि अहङ्कारेण स्वस्मिन्नध्यस्तेन विमूढः तदीयान् कर्तृत्वादीनात्मधर्मत्वेन पश्यन् आत्मनश्च असङ्गानन्दसंविद्रूपतामपश्यन् आत्मा अहङ्कारेण विमूढश्चासावात्मा चेति विग्रहः । अहं कर्माणि कर्मणां कर्तेति मन्यते कर्त्रध्यासेन । कर्ताऽहमिति तृन्प्रत्ययस्तेन 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इति षष्ठीनिषेधः । अन्यथा तृच्प्रत्यये कर्मणां कर्ताहमिति षष्ठ्या भाव्यम् ॥ २७ ॥ एवं सक्तस्य कर्माचरणं प्रदर्श्यासक्तस्य तत्प्रदर्शयति—**तत्त्वविदिति** । गुणकर्मविभागयोः गुणविभागस्य कर्मविभागस्य च तत्त्वविदिति **भाष्यम्** । नाहं गुणात्मक इति गुणेभ्य आत्मनो विभागः । नाहं कर्मात्मक इति कर्मभ्यश्चात्मनो विभागः । तयोर्गुणकर्मविभागयोस्तत्त्वं वेत्तीति, **श्रीधरः** । **मधुसूदनस्तु** गुणाः देहेन्द्रियान्तःकरणानि अहंकारास्पदानि कर्माणि च तेषां व्यापारभूतानि ममकारास्पदानि गुणकर्मेति द्वन्द्वैकवद्भावः । विभज्यते सर्वेषां जडानां भासकत्वेन पृथक् भवतीति विभागः स्वप्रकाशरूपोऽसंग आत्मा गुणकर्म च विभागश्चेति द्वन्द्वः । तयोर्जडाजडयोस्तत्त्वं यो वेत्ति सः गुणाः करणात्मकाः गुणेषु विषयेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते कर्तृत्वाभिनिवेशं न करोतीत्यर्थः । गुणविभागस्य कर्मविभागस्य च तत्त्वविदिति पक्षे गुणकर्मणोरित्येव सिद्धे विभागपदं व्यर्थमिति । यद्वा । यस्तत्त्ववित् सः 'गुणाः गुणेषु वर्तन्ते' इति मत्वा गुणविभागे कर्मविभागे च न सज्जते इति योजना । गुणानां सत्त्वरजस्तमसां विभागो बुद्ध्यहङ्कारज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियविषयरूपेण विभज्यावस्थानं तस्मिन्न सज्जते इदमहमिति न मन्यते । तथाहि । शरीरे गौरेऽहं गौरोऽस्मि, हस्ताभ्यामात्ते मयेदमात्तमिति, चक्षुषा दृष्टे मयेदं दृष्टमिति अहङ्कारेणाभिमते ममेदमित्यभिमन्यते । बुद्धौ विक्रियमाणायामहं सुखीति च सर्वेषु बुद्ध्यादिषु विभज्य गृह्यमाणेष्वपि प्रत्येकं प्रत्यक्त्वमध्यस्याहमिदमिति ममेदं कर्मेति च मन्यते। एतेन कर्मविभागोऽप्यावश्यकत्वेन व्याख्यातः । अन्यथा चिदात्मन्येवादानादिकर्तृत्वं दुःखादिमत्त्वं चापतति । अयं च कर्मविभागः श्रुत्याऽपि दर्शितः । 'अन्धो मणिमविन्दत् तमनङ्गुलिरावयदग्रीवः प्रत्यमुञ्चत्तमजिह्वो असश्चत' इति । 'अन्धः स्वयंप्रकाशदृहीनोऽपि चक्षुरादिर्मणिं रूपादिकं विषयमविन्दत्प्रकाशयति । अनङ्गुलिः काष्ठलोष्टादिवत् जडत्वात् स्वयं कर्म कर्तुमशक्तोऽपि पाण्यादिः आवयत् आसीव्यत् विषयं उपादत्ते । अग्रीवः छिन्नशिरस्कवन्निर्जीवोऽहङ्कारस्तं प्रत्यमुञ्चत् ग्रीवायां धारयति मयेदं लब्धमिति मन्यते । अजिह्वो धीधातुः जडत्वात्स्वयं स्वगतसुखदुःखयोः पट इव स्वगतरूपादेः प्रकाशने असमर्थोऽपि अहं सुखी दुःखीति चानुभवति। तथा च आत्मानात्मनोर्याथात्म्यज्ञो व्यावृत्तेष्वहङ्कारादिषु तत्कर्मसु चाभिमानादिषु कुसुमेषु सूत्रमिवानुवर्तमानमात्मानं तेभ्यः पृथग्भूतं जानन् गुणा धीचक्षुरादयो गुणेषु दुःखरूपादिषु वर्तन्ते न त्वात्मेति मत्वा न सज्जतेऽहमेव हस्तादिसङ्घातरूपो ममैवेदमादानादिकं कर्मेति न सक्तो भवतीत्यर्थः ॥ २८ ॥ एवं सक्तासक्तयोः कर्माणि विभज्य सक्तकर्मानुवादपूर्वकं न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानामित्युपक्रान्तमुपसंहरति—**प्रकृतेरिति** । गुणैरहङ्कारादिभिः स्वस्मिन्नध्यस्तैः संमूढः एकीभावेन अभेदाध्यासेन मूढास्तु प्रकृतेः प्रकृतिसंबन्धिषु गुणेषु देहादिषु कर्मसु गमनादिषु च सज्जन्ते । अहमयं ब्राह्मणो ममैवेदं यज्ञादिकं कर्मेति सज्जन्ते सक्ता भवन्ति । तान् मूढत्वात् अकृत्स्नविदः आत्मज्ञानहीनान् आत्मविद्धि कृत्स्नवित् । 'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' इति श्रुतेः। मन्दान् शास्त्रार्थग्रहणासमर्थान् कृत्स्नवित् आत्मवित्न विचालयेत् कर्मनिष्ठातो न प्रच्यावयेत् तेषामुभयभ्रष्टत्वापत्तेः। प्रकृतेर्गुणैः संमूढाः गुणानां कर्मसु सज्जन्त इति **प्राचां** योजना ॥ २९ ॥ **मयीति** । त्वं तु अज्ञो मुमुक्षुश्च मयि सर्वान्तर्यामिणि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य समर्प्य अध्यात्मचेतसा आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तं शास्त्रमध्यात्मं तत्र प्रवणेन चेतसा शाकपार्थिवादिवन्मध्यमपदलोपी समासः आत्मानात्मविवेकवतेत्यर्थः। ईश्वरप्रेरितोऽहं करोमीत्यनया बुद्ध्या निराशीः फलमनिच्छन् निर्ममो लब्धे ममत्वाभिमान-

**ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।**
**श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥ ३१**
**ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।**
**सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२**
**सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।**
**प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ ३३**
**इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।**
**तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४**

**श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।**
**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५**

**अर्जुन उवाच ।**

**अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।**
**अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६**

**श्रीभगवानुवाच ।**

**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।**
**महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७**

शून्यश्च भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरो विशोकः सन् ॥ ३० ॥ **ये म** इति । येऽन्येऽपि त्वादृशाः मे मम मतं असक्त्या कर्मानुष्ठानं अनुतिष्ठन्ति अनुवर्तन्ते मानवाः श्रद्धावन्तः अनसूयन्तः अत्र दोषमपश्यन्तः तेऽपि स्वकर्मभिर्धर्माधर्माख्यैः मुच्यन्ते ॥ ३१ ॥ विपक्षे दोषमाह—**ये त्विति** । सर्वशब्द ईश्वरवाची । 'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः' इति निर्वचनात् । तस्य ज्ञाने विषये विशेषेण मूढान् पारोक्ष्येणापि ते ईश्वरमजानन्तो देहमात्रनिष्ठास्तान् नष्टान् स्वर्गापवर्गभ्रष्टान् अचेतसः विवेकशून्यान् ॥ ३२ ॥ ननु ते चेत्तव मतं नानुतिष्ठन्ति । तर्हि कथं तवान्तर्यामित्वमित्यत आह—**सदृशमिति** । स्वस्याः प्रकृतेः स्वकीयस्य प्राग्भवीयधर्माधर्मसंस्कारस्य सदृशमनुरूपं ज्ञानवानपि चेष्टते किमु मूर्खः । 'पश्वादिभिश्चाविशेषात्' इतिन्यायात् । तस्मात्प्रकृतिं यान्ति अनुसरन्ति भूतानि प्राणिनस्तत्र मम वाऽन्यस्य वा निग्रहः किं करिष्यति, न किमपि । अहमपि पूर्वकर्मापेक्षयैव तान् प्रवर्तयामीति भावः ॥ ३३ ॥ एवं तर्हि पुरुषस्य स्वातन्त्र्याभावाद्विधिनिषेधशास्त्रं व्यर्थमित्याशंक्याह—**इन्द्रियस्येति** । इन्द्रियस्येन्द्रियस्येति द्विवचनं वीप्सायां प्रतीन्द्रियं स्वे स्वेऽर्थे शब्दादौ वचनादौ च विषये रागद्वेषौ अनुकूले रागः प्रतिकूले द्वेषश्च व्यवस्थितौ नित्यसंबद्धौ तत्र तयोर्वशं नागच्छेदिति शास्त्रस्याभ्यनुज्ञा पुरुषस्य च तदनुष्ठाने स्वातन्त्र्यमस्ति । हि यतः तौ रागद्वेषावेवास्य प्राणिनः परिपन्थिनौ विरोधिनौ दृष्टद्वारेण प्रवर्तकत्वात् । न तु प्रकृत्यनुसारी ईश्वरोऽस्य परिपन्थी । तस्य वैषम्यादिदोषापत्तेः । अयं भावः—यथा ह्यस्तेनेन स्वाज्ञोल्लङ्घनजेनापराधेन कुपितो राजाऽपराधिनं हि निगडादौ निग्रहीतुं स्वीयान् भटान् प्रवर्तयति स एवाद्यतनेन दानमानेन प्रसादितः एनं तेषामेव भटानामाधिपत्ये नियुङ्क्ते । एवं पूर्वकर्मानुसारी ईश्वरो रागादिद्वारा पुरुषं बाधमानोऽपि विधिप्रतिषेधशास्त्रानुसारिणा तेनैव भक्तिध्यानप्रणिधानेनावर्जितः एनं रागादिजये नियुङ्क्ते तस्माद्विधिप्रतिषेधशास्त्रस्य नानर्थक्यं पुरुषस्य स्वातन्त्र्यसत्त्वात् नापीश्वरे वैषम्यादिकं प्राणिकर्मायत्तत्वादिति ॥ ३४ ॥

यस्मादेवं तस्मात् श्रेयान् प्रशस्ततरः स्वधर्मः स्वस्य वर्णाश्रमानुरूप्येण ईश्वरेण विहितत्वात् विगुणो हिंसादिमिश्रोऽपि किञ्चिदङ्गहीनोऽपि परधर्मात् हिंसादिदोषरहितपरधर्मापेक्षया स्वनुष्ठितात् सर्वाङ्गोपसंहारेण सम्यगनुष्ठितादपि स एव श्रेयान् । स्वधर्मे युद्धादौ निधनं मरणमपि श्रेयः । विहितत्वात् । परस्य धर्मो भैक्षचर्यादिर्भयावहः । क्षत्रियस्य तन्निषिद्धत्वात् । तस्मात्स्वतन्त्रेण त्वया स्वधर्म एवानुष्ठेय इति भावः ॥ ३५ ॥ ईश्वरो धर्माधर्मौ रागद्वेषौ वा पुरुषस्य प्रवर्तकौ भवतः इत्यात्मनोऽस्वातन्त्र्यं मन्वानोऽर्जुन उवाच—**अथ केनेति** । केन ईश्वरादीनामन्यतमेनान्येन वा प्रयुक्तः प्रवर्तितः सन्नयं पुरुषः पापमनिष्टं चरति करोति । अनिच्छन्नित्यनेन रागद्वेषयोः प्रवर्तकत्वं निरस्तम् । सति हि रागे इच्छा भवति । अत इच्छाया अभावाद्रागाभावः । रागस्याप्रवर्तकत्वे तन्मूलभूतसंस्कारहेतवोर्धर्माधर्मयोरप्रवर्तकत्वं ततश्च तत्सापेक्षस्य ईश्वरस्यापीति सर्वेषामाक्षेपः तस्मान्मुख्यं प्रवर्तकं यत्तद्वाच्यमित्यर्थः । **बलादिव नियोजितः** विष्टिगृहीत इवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥ अत्रोत्तरं काममय एवायं पुरुष इत्यादिश्रुतिसिद्धं भगवानुवाच—**काम एष इति** । एष प्रसिद्धः कामः । 'सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीय' इति श्रुतेरिदं मे भूयादिदं मे भूयादिति तीव्राभिलाषहेतुभूतश्चेतसोऽनवस्थितत्वापादको वृत्तिविशेषः । स च चेतोरूप एव । 'कामः संकल्पः' इत्युपक्रम्य 'एतत्सर्वं मनः' इत्युपसंहारात् स एष कामः केनचिन्निमित्तेन प्रतिहतः क्रोधरूपेण परिणमतेऽतः क्रोधोऽभिज्वलनात्माप्येष एव । तमेनमिह शरीरेऽन्तःस्थितं वैरिणं विद्धि । कुतो वैरी । यतः **रजोगुणसमुद्भवः ।** रजो रञ्जनात्मकः प्राकृतो गुणस्तस्य गुणौ कार्यभूतौ तृष्णासङ्गौ तावेव उद्भवो यस्य सः । रजःकार्यत्वात् दुःखैकफलोऽयमतो वैरी । यद्वा । रजोगुणस्य लोभप्रवृत्त्यादिलक्षणस्य समुद्भवो यस्मात् । ननु विषयाभिलाषात्मकः कामो विषयार्पणेन शाम्यति । विषयस्य दौर्लभ्यनिश्चये स्वत एव वा निवर्तते अन्ध इव रूपदर्शनाभिलाषादित्याशङ्क्याह—**महाशनो**

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४०
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२

**महापाप्मेति** । महद्दातुमपारणीयमशनमस्य स तथा । यथोक्तम्-

' न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते' इति ।
' यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ' इति ।

तथा **महापाप्मा** अत्युग्रः । स हि सहस्रशः प्रबोधितोऽपि न निवर्तते । तद्वदयमपि दुश्चिकित्स्यः । महाशनत्वाच्चायं वैरी दानसाध्यो नापि साममेदसाध्यः अत्युग्रत्वात् । अतो हन्तव्य एवेति ॥ ३७ ॥ अस्य वैरित्वमेव विवृणोति- **धूमेनेत्यादिना** । उल्बेन गर्भवेष्टनेन जरायुणा । तेन कामेन इदं वक्ष्यमाणं ज्ञानमावृतम् । आवरणीयस्य त्रैविध्यात्तदनुगुणं दृष्टान्तत्रयं ज्ञेयम् ॥ ३८ ॥ **आवृतमिति** । ज्ञानमन्तःकरणसत्त्वम् । ' ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव ' इति श्रुतेः । एतेन कामेन रजोगुणात्मकेन आवृतं ज्ञानिनः अन्तःकरणविशिष्टस्य प्रमातुर्नित्यवैरिणा कामरूपेण दुष्पूरेण पूरयितुमयोग्येन । अयं हि पूर्यमाणोऽनर्थानेव प्रसवेत् । अनलेन अथापि पूर्यते चेत् अनलः नास्त्यलं पर्याप्तिर्यस्य स तथा तेनानलेन । न ह्यनलः काष्ठैस्तर्पयितुं शक्यः किं तु वर्धत एव तद्वदयमपीत्यर्थः । अयं भावः-अन्तःकरणसत्त्वं हि वह्निवत् प्रकाशात्मकं तत्सहजेन कामेन वह्निरिव धूमेनावृतं चेत् प्रमातारमनर्थे पातयति । अन्यथा तदेव स्वभावशुद्धत्वाद्विवेकवैराग्योपगं भूत्वा तमुद्धरेत् । अतोऽयं कामो ज्ञानिनो नित्यवैरीति॥ ३९॥किञ्च- **इन्द्रियाणीति।** अयमर्थः- इन्द्रियमनोबुद्धयो हि कामेनाधिष्ठिता बाह्यार्थप्रवणा भवन्ति । तैश्च तथाभूतैरयं कामो ज्ञानं चिदाकाशरूपमादर्शतलप्रख्यं, यत्र योगिनो व्यवहितं विप्रकृष्टमतीतमनागतं वा पश्यन्ति । **यथोक्तमाचार्यैः** ' विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं पश्यन्त्यात्मनि' इति। निजान्तर्गतं शरीरान्तर्गतमात्मनि हार्दाकाशाख्ये ब्रह्मणि । तत् मलेनादर्शमिवावृत्य देहिनं देहाभिमानिनं विशेषेण मोहयति । विशब्दाद्देहाभिमानशून्यं योगिनमपि व्युत्थानावस्थायां किंचिन्मोहयतीति गम्यत इति । अक्षरयोजना स्पष्टा ॥ ४० ॥ **तस्मादिति** । यस्मादिन्द्रियाण्यस्याधिष्ठानं सामन्तस्येव गिरिदुर्गादिकं तस्मात्तान्येव नियम्य वशीकृत्य एनं कामं हि निश्चयेन प्रजहि प्रकर्षेण नाशय । गिरिदुर्गादीन् स्वायत्तीकृत्येव तत्स्थं सामन्तं घ्नन्ति राजानस्तद्वत् । हन्तव्यत्वे हेतुः पाप्मानमत्युग्रं,तत्रापि हेतुः **ज्ञानविज्ञाननाशनमिति** । ज्ञानस्य शास्त्राचार्योपदेशजस्य परोक्षस्य विज्ञानस्य निदिध्यासनपरिपाकजस्यापरोक्षस्य च नाशनम् ॥ ४१ ॥ न केवलं बाह्येन्द्रियजयेनैव कृतार्थत्वं किं तु मनोबुद्ध्योरपि जयः कर्तव्यः कामस्य समूलोच्छेदाय। त्रिप्राकारदुर्गस्थस्य सामन्तस्येवाभ्यन्तरप्राकारद्वयजयेन । अतो मनोबुद्ध्योर्जयार्थं योगं दर्शयति- **इन्द्रियाणीति।** अत्र परत्वं सूक्ष्मत्वेन कारणत्वेन वा बोद्धव्यम् । इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि पराणि स्वविषयेभ्यः पृथिव्यादिस्वाश्रयसहितेभ्यो गन्धादिभ्यो वित्तपुत्रशरीरेभ्यश्च तेषां तत्कारणत्वात् तथा च कौषीतकिनः समामनन्ति ब्राह्मणे-'प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः ' इति । व्युच्चरन्तीत्यनुषज्यते । प्राणेभ्य इन्द्रियेभ्यो देवास्तदधिष्ठात्र्यो देवता उत्पद्यन्ते । देवेभ्यश्च लोका भूतभौतिका उत्पद्यन्त इति श्रुत्यर्थः । **इन्द्रियेभ्यः परं मनः** । ' मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति ' इति श्रुतेरिन्द्रियाणां मनोविकारत्वात् । तेन बाह्यार्थेभ्य इन्द्रियाण्याकृष्य मनसि प्रविलापनीयानीति दर्शितम् । केवलं परत्वमात्रप्रतिपादने प्रयोजनाभावात् । **मनसस्तु परा बुद्धिः** । ' तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः ' इति श्रुतेः । मनसः प्रविलापनं तत्कारणे बुद्धौ कर्तव्यमित्यर्थः । समष्टिबुद्धेरप्यत्रैवान्तर्भावः । **यो बुद्धेः परतस्तु सः** । यस्तु तुशब्दो भास्यवर्गाद्बुद्ध्यादेर्भासकस्य ज्ञानस्य वैलक्षण्यं गमयति । यो बुद्धेरपि परतः स ज्ञानपदाभिधेयः कामेन उल्बेन गर्भ इव आवृत इति । व्यवहितेन संबंधः । तथा च श्रुतिः—

' यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ' इति

एतदुक्तं भवति—वागादिबाह्येन्द्रियव्यापारमुत्सृज्य मनोमात्रेणावतिष्ठेत । मनोऽपि विषयविकल्पाभिमुखं ज्ञानात्मशब्दोदितायां बुद्धौ धारयेत् । तामपि महत्यात्मनि समष्टिबुद्धौ धारयेत् । तत् तं महान्तमात्मानं शान्ते निष्कले परस्मिन् ज्योतिषि प्रत्यगात्मनि धारयेदिति ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना । जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ पर्वणि तु सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १
एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५

---

योगफलमाह–एवमिति । आत्मानं मनः हार्दाकाशेऽपि तत्स्थान्नित्यान् कामान् कामयानं, श्रूयते हि दहरविद्यायां हार्दाकाशं प्रकृत्य–'–यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दते' इति तत्रत्यानां कामानां सत्त्वं, तेषां च सत्यत्वं 'त इमे सत्याः कामाः' इति श्रुतेः । आत्मानं मनः आत्मना मनसैव बुद्ध्यैव वा संस्तभ्य निर्वृत्तिकं कृत्वा बुद्धेः परं परमात्मानं बुद्ध्वा समूलघातं कामरूपं शत्रुं शातयितारं जहि नाशय । हे महाबाहो इति संबोधयंस्तन्नाशे तव सामर्थ्यमस्तीति दर्शयति । अयमर्थः––यावत्कामम्रूलस्याज्ञानस्योच्छेद आत्मतत्त्वज्ञानेन क्रियते तावत्पर्यन्तं कामस्य निर्मूलोच्छेदो न भवतीति बुद्धेः परं बुद्ध्वा कामो नाशनीयः । तस्मिंश्च नष्टे ससारानर्थोच्छेदो भवतीति । दुरासदं परबोधं विना दुःखेनापि नाशयितुमशक्यम् ।

उपायः कर्मनिष्ठाऽत्र प्राधान्येनोपसंहृता ॥
उपेया ज्ञाननिष्ठा तु तद्गुणत्वेन कीर्तिता ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

### २८

अध्यायद्वयोक्तेऽर्थेऽप्रामाण्यशङ्का माभूदिति विद्यावंशसंप्रदायमात्मनश्च भ्रमविप्रलंभकत्वादिनिरासायेश्वरत्वं सर्वज्ञत्वं च दर्शयति-इममित्यादिना। इमं सांख्ययोगं कर्मयोगरूपोपायसहितं ससंन्यासमिति भाष्यम् । इमं सन्ध्योपासनादिनिर्विकल्पकसमाध्यनुष्ठानान्तं कर्मयोगं ज्ञाननिष्ठोपसर्जनं पारित्रा-ज्यानधिकारिणां राज्ञामेव योग्यं विवस्वते सूर्याय मण्डलाभिमानिने सर्वेषां क्षत्रियाणामादिभूतायाहमादित्यान्तर्यामी 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः । प्रोक्तवान् पुरा अव्ययमविच्छिन्नसंप्रदायं तेनानादित्वमपि। मनवे स्वपुत्राय । विवस्वान् प्राह इक्ष्वाकवे मनुः स्वपुत्रायाब्रवीत् ॥१॥ एवमिति । एवं परंपराप्राप्तमिक्ष्वाकोर्निमिनाभागादिक्रमेण राजर्षयो जनकाजातशत्रुकेकयप्रभृतयो राजानः, ऋषयश्च सनकवसिष्ठाद्याः सूक्ष्मार्थदर्शिनस्ते,राजान एव ऋषय इति वा अविदुर्ज्ञातवन्तः । 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' इति लङो झेर्जुस् । नष्टः अदर्शनं गतः॥२॥ स इति। अद्य संप्रदायविच्छेदे सति। भक्तः शरणागतः। सखा प्रीतिविषयः । रहस्यं गोप्यमभक्तादिभ्यो न देयमन्यथा निर्वीर्या विद्या भवेदित्यर्थः तथा च मंत्रवर्णः—

'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ॥
असूयकायानृजवेऽयताय
न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्' इति ॥३॥

भगवद्देहस्य वसुदेवादुत्पत्तिं मन्वानोऽर्जुन उवाच— अपरमिति । अपरं अर्वाक्कालिकं परं बहुकालिकं विजानीयाम् । यद्यपि शब्दादयमर्थो ज्ञातस्तथाऽपि विरुद्धस्य वाक्यस्याबोधकत्वात्कथमेतद्विजानीयामित्युक्तम्। पदयोजना स्पष्टा ॥ ४ ॥ स्वदेहस्याजत्वं साधयितुं स्वस्य सर्वज्ञत्वं तावदाह—बहूनीति । स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ ५ ॥

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६**
**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ७**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८**
**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९**
**वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।**
**बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १०**

किं तर्हि योगिनां सर्वज्ञत्वप्रसिद्धेस्त्वं जातिस्मरो जीवोऽसीत्याशङ्क्याह—**अज इति** । देहान्निष्कृष्टस्याजत्वाव्ययत्वे न त्वेवाहं जातु नासमित्यत्र साधिते, इह तु देहविशिष्टस्यैव ते उच्येते । ईश्वरोऽपीत्यनेन देहान्निष्कृष्टस्यास्मदादेरपीश्वरत्वं तत्त्वमस्यहंब्रह्मास्मीत्यादिश्रुतिप्रसिद्धमतो देहविशिष्टस्यैवाजत्वनित्यत्वे दृढीक्रियेते ऽन्यथानीश्वरत्वप्रसंगात् । न ह्यादित्यान्तर्यामिणः परमेश्वरस्य हिरण्यश्मश्रुत्वादिविशिष्टो देहो जन्मव्ययवानिति वक्तुं शक्यम् । अकर्मजत्वात् । कर्मफलस्य हि पराकाष्ठा हैरण्यगर्भ शरीरप्राप्तिः । न च ' पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत अत्यातिष्ठेयं सर्वाणि भूतानि अहमेवेदं सर्वं स्यामिति स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञक्रतुमपश्यत्' इत्यादिना **शतपथे** नारायणाख्यस्य परमात्मनः ।

' सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्' इति ।
'पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि'

इति च **पुरुषसूक्त**प्रतिपाद्यस्य सर्वाणि भूतान्यतिक्रम्य स्थितस्येश्वरस्यापि शरीरं पञ्चरात्राख्यकर्मविशेषफलमिति श्रूयत इति वाच्यम् । तत्र नारायणशब्देन हिरण्यगर्भस्यैव विवक्षितत्वात् । न हि परमेश्वरस्य पूर्णकामस्य सर्वानतिक्रम्य स्थितस्य पुनरत्यतिष्ठेयं सर्वाणि भूतानीति कामना भवति । ननु परमेश्वरेऽपि कामना दृष्टा ' सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय'इति इति चेत् श्लाघनीयप्रज्ञो देवानां प्रियो यत ' आप्तकामस्य का स्पृहा ' इति श्रुतेः ' लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ' इति न्यायाच्च निस्पृहस्य लीलयैव ब्रह्माण्डकोटीः सृजतो भगवतो राजगोपालस्य कर्मकिंकरेण कर्मणा सार्वात्म्यं प्रार्थयता साम्यमापादयति । तस्मान्न कर्मफलं भगवतः शरीरमत एव न भौतिकं विराट्सूत्रात्मातिरिक्तस्य भौतिकस्याभावात् । तस्मायुक्तम**जोऽपि सन्निति** । ननु तर्हि भगवच्छरीरस्य किमुपादानमविद्येति चेन्न। परमेश्वरे तदभावात् । जीवाविद्या चेन्न। शुक्तिरजतादेरिव तुच्छत्वापत्तेः। चिन्मात्रं चेन्न। चितः साकारत्वायोगात् तथात्वे वा तस्यातीन्द्रियत्वापत्तिः । तस्मात्किमालम्बो भगवद्देहो देवकीगर्भप्रवेशजननबाल्यकौमारपौगण्डयौवनादिप्रतीतिविषय इति चेच्छृणु-**प्रकृतिं स्वमाधिष्ठाय संभवाम्यात्ममाययेति**। अयमर्थः-जीवात्मानो ह्यनात्मभूतां प्रकृतिं तेजोबन्नात्मिकां पञ्चभूतात्मिकां वा अधिष्ठाय संभवन्ति जन्मादींल्लभन्ते । अहं तु स्वां प्रत्यगनन्यां प्रकृतिं प्रत्यक्चैतन्यमेवेत्यर्थः । तदेवाधिष्ठाय न तूपादानान्तरं, आत्ममायया स्वीयमायया संभवामि । यथा कश्चिन्मायावी स्वयं स्वस्थानादप्रच्युतस्वभावोऽप्यदृश्यो भूत्वा स्थूलसूक्ष्मभूतान्यनुपादायैव केवलया मायया द्वितीयं मायाविनं स्वसदृशमेव सूत्रमार्गेण गगनमारोहन्तं सृजति। एवमहं कूटस्थचिन्मात्रो ग्राह्यः स्वमायया चिन्मयमात्मनः शरीरं सृजामि तस्य बाल्याद्यवस्थाश्च सूत्रारोहणवद्दर्शयामि। एतावांस्तु विशेषः—लौकिकमायावी मायामुपसंहरन् द्वितीयं मायाविनमप्युपसंहरति । अहं तु तामनुपसंहरन् स्वविग्रहमपि नोपसंहरामीति । एवं हि सति हिरण्यश्मश्रुत्वादिलक्षणविग्रहयोगिनश्चैतन्यस्य ' अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ' इत्यादिन्यायासिद्धं वियदाद्युपादानत्वलक्षणं सर्वेश्वरत्वं युज्यते नान्यथेति । तस्मात्सिद्धं परमेश्वरस्य मायामयं शरीरं नित्यमित्येकेनैव देहेन विवस्वन्तमुपदिश्य त्वामप्युपदिशामीति। अन्यत्रापि 'नित्यैव सा जगन्मूर्तिः ' इति सावधारणं प्रतिज्ञायते—

' देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ' इति ।

नित्याया अप्याविर्भावापेक्षया सूर्यस्येव बाल्यादिकमुत्पत्त्याद्युपगम्यते । **भाष्ये** तु स्वां प्रकृतिं वैष्णवीं त्रिगुणात्मिकां मायां अधिष्ठाय वशीकृत्य आत्ममायया संभवामि देहवान् जात इवात्मनो मायया न परमार्थतो लोकवदिति व्याख्यातम् ॥ ६ ॥ कदा संभवसीत्यपेक्षायामाह—**यदेति** । ग्लानिर्ह्रास अभ्युत्थानं वृद्धिः॥ ७ ॥ किमर्थमात्मानं मायया सृजसीत्यत आह—**परित्राणायेति।** दुष्कृतां दुष्टं कर्म कुर्वतां पापिनां, संभवामि आविर्भवामि ॥ ८ ॥ जन्म मायामयं, कर्म साधुत्राणं, दिव्यं अप्राकृतं यो वेत्ति स त्यक्त्वा देहं पुनः जन्म न प्राप्नोति, किंतु मामेति मामेव प्राप्नोति । एतेन भगवतो जन्मानि कर्माणि च भगवत्प्राप्तिकामेन गेयानीति दर्शितम् ॥ ९ ॥ एतस्यापि भगवत्प्राप्तेर्द्वारमाह-**वीतेति । रागो**-विषयेषु प्रीतिः । **भयं** स्वोच्छेदाशंका । **क्रोधः**-स्वपरपीडाहेतु-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११
काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥ १२
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५
किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७

रभिज्वलनम् । ते त्रयो वीताः येभ्यस्ते वीतरागभयक्रोधाः अत एव **मन्मयाः** मदेकप्रधानाः । किं जारिणी यथा जारमपि भर्तारं चाश्रिता योगक्षेमार्थं तद्वन्नेत्याह-**मामुपाश्रिताः**। ज्ञानतपसा ज्ञानमयं तप आलोचनं मम जन्मकर्मणोः स्वरूपस्य च निरन्तरं चिन्तनम् । 'यस्य ज्ञानमयं तपः' इति श्रुतिप्रसिद्धं ज्ञानतपः तेन पूताः सन्तो मद्भावं मत्तादात्म्यं प्राप्ता इत्यर्थः ॥ १० ॥ ननु साध्वसाध्वोस्त्राणविनाशौ कुर्वतस्तव वैषम्यनैर्घृण्ये स्तोऽन्तः किं त्वास्मदादितुल्यस्य जन्मकर्मस्वरूपाणां चिन्तनेनेत्याशंक्याह **—ये यथेति** । ये मनुष्याः मां सर्वज्ञमीश्वरं यथा येन प्रकारेण शत्रुत्वेन मित्रत्वेन वा प्रपद्यन्ते प्राप्नुवन्ति । तांस्तेनैव प्रकारेणाहमपि भजामि अनुसरामि । ये तु मम वर्त्म भक्तिध्यानप्रणिधानात्मकमनुवर्तन्ते तान् ममात्मभूतांस्तथैव सर्वशः सर्वैः प्रकारैरनुवर्तेऽहमिति योजना । ततश्च मद्बिंबभूते प्राणिजाते यथा यः प्रीतिं द्वेषं वा करोति तस्मिन् प्रतिबिम्बभूतेऽहमपि तथैव प्रीतिं द्वेषं च करोमि । बिम्बपूजापरिभवौ प्रतिबिम्बे एव संक्रामतोऽतो न मम वैषम्यनैर्घृण्ये स्तः। तस्मात् श्रेयोर्थिना सर्वस्य कल्याणायैव यतितव्यमिति भावः । **भाष्ये** तु ये यथा येन प्रकारेण येन प्रयोजनेन आर्ता जिज्ञासवोऽर्थार्थिनो ज्ञानिनो वा प्रतिपद्यन्ते तांस्तथैव पीडापरिहारेण ज्ञानदानेन अर्थदानेन मोक्षदानेन वाऽनुगृह्णामि । सर्वथा ते ममैव वर्त्मानुवर्तन्त इति अन्यदेवताभक्ता इति चैतद्व्याचक्ष्यते ॥ ११ ॥ **काङ्क्षन्त इति** । हि यस्मात् मानुषे लोके कर्मसिद्धिः काम्यकर्मफलं पुत्रपश्वादिकं क्षिप्रं भवति न तु निष्कामकर्मजा चित्तशुद्धिः । अतो ये कर्मणां सिद्धिं फलं इहैव क्षिप्रं काङ्क्षन्तः कांक्षमाणाः देवताः इन्द्रादीन् यजन्ते तेऽपि ममैव वर्त्मानुवर्तन्त इति पूर्वेणान्वयः । वक्ष्यति च-'येऽप्यन्यदेवताभक्ताः'इत्यादि ॥ १२ ॥ अन्यदेवताभक्ता अपि कस्मात्पुनः कारणात्त्वैव वर्त्मानुवर्तन्ते नान्यस्येत्यत आह-**चातुर्वर्ण्यमिति** । चतुर्णां वर्णानां हितं चातुर्वर्ण्यं,गुणाश्च कर्माणि चेति गुणकर्म । द्वन्द्वैकवद्भावः । कर्माणि अग्निहोत्रादीनि,गुणाश्च द्रव्यदेवतादिरूपाः विभागशः साधारणासाधारणविभागेन । तथा हि । दानजपादिकं सर्वसाधारणम् । अग्निहोत्रादिकं त्रैवर्णिकस्यैव न शूद्रस्य । राजसूयादिकं राज्ञ एव नेतरेषामिति विभागो दृश्यते । यतश्चातुर्वर्ण्यं गुणकर्म मया सृष्टं ततोऽन्यदेवतानामपि मदुत्थत्वात्पुत्रप्रीत्या पितुरिव तत्प्रीत्या ममैव तृप्तिरस्तीत्यर्थः। यद्वा । गुणविभागशः कर्मविभागश इति योज्यम् । तथाहि । सत्त्वप्रधाना ब्राह्मणास्तेषां कर्म शमदमादिकम् । सत्त्वोपसर्जनरजःप्रधानाः क्षत्रियास्तेषां कर्म शौर्यादि । तमउपसर्जनरजःप्रधाना वैश्यास्तेषां कर्म कृष्यादि । रजउपसर्जनतमःप्रधानाः शूद्रास्तेषां कर्म शुश्रूषैव, इति गुणकर्मविभागो दृश्यते तदा चातुर्वर्ण्यमिति स्वार्थे ष्यञ्। चत्वारो वर्णाः गुणकर्मविभागशो मया सृष्टा इत्यर्थः । अन्यदेवताभक्ता अपि मदुक्तकर्मकारित्वान्मद्भक्ता एवेति भावः । ननु यद्येवं त्वं स्वसन्ततितर्पणेन स्वाज्ञाकरणेन प्रीयसे तदर्थं च त्वया चातुर्वर्ण्यं सृष्टं तर्हि महान् संसारी त्वमसीत्याशङ्क्याह-**तस्येति** । कर्तारं मायायोगात् वस्तुतोऽकर्तारं अत एवाव्ययमविकारिणम् ॥ १३ ॥ ननु कर्तुरपि कथमकर्तृत्वमत आह-**न मामिति** । कर्मलेपोऽपि कुतो नास्तीत्यत आह-**न मे इति** । यः कर्तृत्वाभिमानी स लिप्यते यस्तु फलेच्छुः स एवात्मनः कर्तृत्वं मनुते इति फलेच्छाभावादकर्ता अकर्तृत्वाच्च न लिप्यतेऽयं इति मां योऽभिजानाति स कर्मफलस्पृहात्यागात् कर्मभिर्न बध्यते ॥ १४ ॥ एतदेव शिष्टाचारप्रदर्शनपूर्वकं ग्राहयति-**एवं ज्ञात्वेति** । पूर्वतरं वेदोक्तत्वान्न त्वधुना केनचित्कल्पितमित्यर्थः । पूर्वतरं प्रथमतरं कृतमत्यावश्यकत्वादिति वार्थः ॥ १५ ॥ आवश्यकत्वेऽपि न कर्मणो गतानुगतिकतयाऽनुष्ठानं कर्तव्यं किंतु 'ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीत'इति वचनात्कर्माश्रितं किंचिद्विशेषं ज्ञापयितुमुपोद्घातयति-**किं कर्मेति** । यतः कर्माकर्मणी कवीनामपि दुर्निरूपे तत्तस्मात्ते तुभ्यं कर्म अकर्म चाकारप्रश्लेषेण ग्राह्यम्। ते उभे प्रवक्ष्यामि यत् द्वयं ज्ञात्वाऽशुभात्संसारात् मोक्ष्यसे ॥ १६ ॥ एतज्ज्ञानमावश्यकमित्याह-**कर्मण इति** । तत्त्वं बोद्धव्यमस्तीति स्थलत्रयेऽपि तत्त्व-

**कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्माणि च कर्म यः । स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८**

मस्तीति पदद्वयाध्याहारः कर्मणः शास्त्रविहितस्य। विकर्मणः प्रतिषिद्धस्य अकर्मणस्तूष्णींभावस्य गहना। कर्मण इत्यत्र कर्मण इति त्रितयोपलक्षणं, कर्मविकर्माकर्मणां गतिर्याथात्म्यं तत्त्वं गहनम् ॥१७॥ यत्कर्मादितत्त्वं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञातं तदाह—**कर्मणीति**। कर्मणि कर्माकर्मविकर्मात्मके देहेन्द्रियादिव्यापारे अविद्यया प्रत्यगात्मनि आरोपिते सति तत्र **अकर्म** कर्माभावं नौस्थेन तीरतरौ चलने आरोपिते सति तत्त्वबुद्ध्या तत्र चलनाभावमिव **यः पश्येत्** । तथा 'चल गुणवृत्तम्' इति न्यायेन त्रिगुणात्मकेषु देहेन्द्रियादिषु नित्यकर्मवत्सु यश्चन्द्रतारकादौ गत्यभावमिव, तूष्णीम्भूतोऽहमस्मि न किञ्चित्करोमीत्यध्यस्ते **अकर्माणि** कर्माभावे **कर्म** ताञ्चिग्रहाख्यप्रयत्नरूपं यः पश्यति स मनुष्येषु बुद्धिमान् तत्त्वदर्शी । आत्मनि भ्रान्तिजनितव्यापारस्य अनात्मनि च तादृशनिर्व्यापारत्वस्य बाधात् । स एव च युक्तो योगी कृत्स्नकर्मकृच्च । कर्मयोगफलस्य तत्त्वज्ञानस्य, प्राप्तत्वादिति स्तुतिमात्रम् । आत्मनोऽकर्तृत्वं संघातस्यैव कर्तृत्वमिति भावयता कर्माणि कर्तव्यानीत्यर्थः । यद्यप्येतद्बहुधा प्रपञ्चितं 'अव्यक्तोऽयम्' इत्यादौ तथापि तत्त्वस्य दुर्ज्ञेयत्वात्पुनः पुनरुच्यत इति **प्राञ्चः** । यत्तु कर्माणि नित्ये परमेश्वरार्थेऽनुष्ठीयमाने बन्धहेतुत्वाभावादकर्मेदमिति यः पश्येत्तथाऽकर्माणि नित्यकर्माकरणे प्रत्यवायहेतुत्वेन कर्मेदमिति च यः पश्येत्स बुद्धिमानिति तदसंगतमेव । नित्यकर्माणि अकर्मेदमिति ज्ञानस्याशुभमोक्षहेतुत्वाभावान्मिथ्याज्ञानत्वेन तस्यैवाशुभत्वाच्च । न चैतादृशं मिथ्याज्ञानं बोद्धव्यं तत्त्वं,नाप्येतादृशज्ञाने बुद्धिमत्त्वादिस्तुत्युपपत्तिरिति दिक् । येतु—कर्मणि ज्ञानकर्मणि दृश्ये जडे सद्रूपेण स्फुरणरूपेण वाऽनुस्यूतं सर्वभ्रमाधिष्ठानं अकर्म अवेद्यं स्वप्रकाशचैतन्यं परमार्थदृष्ट्या यः पश्येत्, तथा अकर्माणि स्वप्रकाशे दृग्वस्तुनि कल्पितं कर्म दृश्यं मायामयं न परमार्थ सदिति यः पश्यति स बुद्धिमानिति परमार्थदर्शित्वाद्वास्तवैरेव गुणैः स्तूयत इत्यपि व्याचख्युः तदप्यसंगतमेव । कर्म कुरु कर्म प्रवक्ष्यामीत्यनुष्ठेयकर्मप्रस्तावे तत्त्वज्ञानानवसरात् । नापि 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इति पारिभाषिक्या कर्मसंज्ञया दृश्यस्य कर्मशब्दार्थत्वं ग्रहीतुं शक्यम् । तस्या घुटिभादिसंज्ञानामिवागमार्थनिर्णयानर्हत्वादिति संक्षेपः । वस्तुतस्तु—कर्मणो हीति श्लोके कर्मविकर्माकर्मणां गतिशब्दितं पर्यवसानं गहनत्वाद्बोद्धव्यमित्युपक्षिप्तं । तद्व्याख्यानं कर्मण्यकर्म यः पश्येत्स मनुष्येषु बुद्धिमानिति । तथा हि । कर्माणि कर्माकर्मविकर्माख्ये अकर्म तद्वैपरीत्यं शास्त्रतो दृश्यते । यथा क्रतुः कर्माणि श्रद्धाहीनस्य कृतोऽप्यकृत एव भवतीत्यकर्माणि पर्यवस्यति । दाम्भिकस्य तु विकर्माणि पर्यवस्यति । यथोक्तम्—

'अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ' इति ।

'चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥ मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः" इति च ।

एवमौदासीन्यमकर्मापि शक्तस्यार्तपरित्राणाभावाद्विकर्माणि पर्यवस्यति । दीक्षितस्य भगवद्ध्यानाद्यासक्तस्य वा स्वकाले पञ्चयज्ञाद्यकरणं 'दीक्षितो न ददाति' इत्यादिवचनात् 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' इत्यादिवचनाच्च कर्मण्येव पर्यवस्यति । नित्यकर्मकाले प्रत्यवायहेतोरन्यस्याविहितस्याकरणात् । एवं विकर्मापि हिंसा 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इति वचनाद्यज्ञे कर्मैव भवति सैव वृथा नष्टे पशौ न कर्म । विध्यर्थानिष्पत्तेः । नापि विकर्म कामकारेणाकृतत्वात् । किंतु पारिशेषात् कृताऽप्यकृतैवेत्यकर्माणि पर्यवस्यति । एवं स्तेनप्रमोचनं तत्सयूथ्यानां कर्मापि राज्ञो विकर्म । 'स्तेनः प्रमुक्तो राजनि पापं मार्ष्टि' इति वचनात् तदेव यतीनामुपेक्षणीयत्वादकर्म । एवं हिंसाफलके सत्यादौ दानफलकेऽनृतादौ च विकर्मत्वकर्मत्वे बोध्ये । तस्मात्कर्माकर्मविकर्माख्ये कर्माणि अकर्म तद्वैपरीत्यं यः पश्येत् स कार्याकार्यविभागज्ञो बोद्धव्यानामेषां प्रबोधात् बुद्धिमानित्युच्यते । तथा किं कर्मेति श्लोके यत्र कवीनामपि मोहोऽस्ति,ययोश्च ज्ञानमशुभमोक्षहेतुस्ते कर्माकर्मणी प्रवक्ष्यामीत्युपक्षिप्तं तद्व्याख्यानमकर्माणि च कर्म यः पश्येत्स युक्त इति । चकारो दर्शनद्वयसमुच्चयार्थः । तेन यो बुद्धिमान्युक्तश्च स एव कृत्स्नकर्मकृत् न त्वेकैक इत्यपि ज्ञेयम् । तथाहि अकर्माणि स्पन्दशून्ये कूटस्थे वस्तुनि कर्म सस्पन्दं बाह्यं वियदादि आभ्यन्तरं प्रमात्रादिकं चाधाराधेयभावेन वा, उपादानोपादेयभावेन वा, अधिष्ठानाध्यस्तभावेन वा, पश्यन्तः शास्त्रविदः कर्माणि कुर्वन्ति । तत्राद्यः सांख्यः असङ्गे मयि सङ्घातधर्म एव सन् कर्त्रादिरविवेकात् स्फटिके लौहित्यमिव भातीति मन्यते । द्वितीयस्तु कनककुण्डलवत् ब्रह्मोद्भवं सर्वं ब्रह्मैवेति कर्म तत्साधनादिकं अहं च ब्रह्मैवेति भावयन् करोति । एतौ युक्तावप्यतिबुद्धिमानप्ययुक्तः करोति तस्य सर्वं असदेव भवति न त्वशुभमोक्षाय । 'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके यजति ददाति तपस्तप्यतेऽपि बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति' इति श्रुतेः । यस्तु युक्तोऽपि निर्बुद्धित्वादकार्यमपि करोति

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २०
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१

स प्रत्यवेति । पापाश्लेषनिमित्तस्यापरोक्षज्ञानस्याभावात् । अनयोश्चाविद्याविद्याशब्दितयोः कर्मपरोक्षज्ञानयोः समुच्चयः श्रूयते 'विद्यां चाविद्यां च' इति मन्त्रे । यद्वा । द्विविधं कर्माणि कर्मदर्शनं परोक्षमपरोक्षं च । तत्राद्यवान् ज्ञानकर्मसमुच्चयानुष्ठाता बुद्धिमानुच्यते । अपरोक्षमपि द्विविधं, उपास्यसाक्षात्काररूपं तत्त्वसाक्षात्काररूपं च । तत्राद्यमपि व्याकृताव्याकृतरूपोपास्यभेदेन द्विविधम् । तत्रापि व्याकृतं सूत्रं कार्यम् । तद्दर्शी विगतदेहाहङ्कारत्वात् 'योगशास्त्रे विदेह उच्यते । अव्याकृतं कारणं तद्दर्शी प्रकृतिलय उच्यते । अनयोरुपासनयोः संभवासंभवसंज्ञयोः समुच्चयो विधीयते 'अन्यदेवाहुः संभवात्' इत्यादिना । सोऽयं युक्त इत्युच्यते । अस्याप्यग्रे कर्तव्यमवशिष्टमस्तीति नायमपि कृत्स्नकर्मकृत् । किंतु यस्य कर्मबाधेनाकर्मदर्शनं मुख्यमस्ति स एव कृतकृत्यत्वान्मुख्यः कृत्स्नकर्मकृदिति । एतेष्वाद्यो मनुष्येषु देहाभिमानिष्वेव बुद्धिमानित्यकान्तदर्शित्वादकविरेव । मध्यमौ कान्तदर्शिनावपि तत्त्वविषये मूढत्वात् कवयोऽप्यत्र मोहिता इत्युक्तौ । एतयोर्व्यवधानेनाशुभान्मुक्तिः । उत्तमस्तु जीवन्नेवाशुभान्मुक्त इति श्लोकार्थः प्रतिभाति । 'व्याख्यातुरपि मे नास्ति भाष्यकारेण तुल्यता । गुहावद्योतिनोऽप्यस्ति किं दीपस्यार्कतुल्यता' । यद्वा । कर्माकर्मणो वक्तव्यत्वेन बोद्धव्यत्वेन चोपक्षिप्यात्र तयोर्लक्षणप्रदर्शनमुचितमितो यदकर्मणा विशेषितं तदेव कर्म नान्यदिति कर्मलक्षणम् यच्च कर्मणा विशेषितं तदेवाकर्मेत्यकर्मलक्षणमिति व्याख्येयम् । अक्षरार्थस्तु —कर्म यज्ञादिकं ससाधनं तत्राकर्म स्पन्दशून्यं कूटस्थं ब्रह्म यः पश्येत् कर्मतदङ्गेषु ब्रह्मदृष्टिमध्यस्येत् ।

'अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्' ॥

इत्युक्तप्रकारेण । अन्यथा यत्कृतं तद्वृथा चेष्टारूपमेवातो गहना कर्मणो गतिः । किं तदकर्म यत्कर्मण्यध्यस्यत इत्याकाङ्क्षायां यत्रैतत्कर्म पुण्यपापात्मकं दृश्यते । 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' इति तत्फलं च सुखदुःखादिकं अहं सुखी अहं दुःखीति स प्रत्यक्चेतनोऽकर्म तत्रैवेदं कर्म अस्पन्दे स्पन्दात्मकमसर्पे सर्प इवाध्यस्तमिति यः पश्येदिति । अयं भावः । —यथा रज्ज्वामध्यस्तं सर्पं पश्यन्नायं सर्पो रज्जुरियमिति वाक्यात्तस्य रज्जुत्वं विक्षेपप्राबल्यादप्रतिपद्यमानो नरः सर्पमिमं रज्जुदृष्ट्योपास्वेति नियोज्यते । स चोपासनादार्ढ्ये सर्पं विस्मृत्य रज्जुतत्त्वमेव विन्दति । यस्तु वाक्यादेव रज्जुतत्त्वं विन्दति न तस्य प्रत्ययावृत्तिलक्षणया उपास्त्या प्रयोजनमस्ति । एवमकर्मण्यध्यस्तं कर्त्रादि तत्त्वमसीतिवाक्याद्बाधित्वाऽकर्मप्रतिपत्तिर्भवति शुद्धसत्त्वस्य । अन्यस्य तु कर्त्रादीनेवाकर्मदृष्ट्या उपासीनस्य भावनादार्ढ्यात्कर्त्रादिरूपतिरोधानेनाकर्मतत्त्वप्रतिपत्तिरिति । यद्वा । अर्मर्णाव अकर्मण्यपि विकर्मसहिते अकर्मदृष्टिर्माभूदित्याशंक्याह—**कर्मणीति** । विहिताकरणे प्रतिषिद्धाचरणे च कर्मदृष्टिरेव भवेत् । अकर्मतो बिभ्यत् कर्म ब्रह्मदृष्ट्या कुर्यान्न त्वकर्मापि तादृशदृष्ट्या कुर्यादित्यर्थः ॥ १८
अविदुषां कर्मण्यकर्मभावनां द्रढयितुं विदुषां कर्मदर्शनं स्तौति—**यस्य सर्वे समारंभाः** इत्यादिभिः षड्भिः यस्य विदुषः सर्वे समारभ्यन्त इति समारम्भाः कर्माणि । कामेन फलेच्छया, संकल्पेन अहमिदं करोमीत्यभिमानेन च वर्जिताः तं ज्ञानाग्निना कर्मादावकर्मादिदर्शनेन दग्धानि अङ्कुरीभावाच्च्यावितानि कर्माणि शुभाशुभानि येन तं पण्डितं बुधा आहुः ॥ १९ ॥ ननु प्रायश्चित्तेनेव ज्ञानाग्निना पूर्वकर्मदाहेऽपि क्रियमाणं तत्फलाय भवेदित्यत आह—**त्यक्त्वेति** । आत्मलाभेन नित्यतृप्तत्वात् फलासंगं, त्यक्त्वा निराश्रयत्वात् । अहङ्काराद्याश्रयेण हि कर्म क्रियते । निराश्रयो निरहङ्कारो यस्मात् ततः कर्मसंगं अहं करोमीत्यभिमानं च त्यक्त्वा कर्मणि लौकिके वैदिके वा अभितः सर्वाङ्गोपसंहारेण प्रवृत्तोऽपि स नैव किंचित्करोति । अतोऽस्य क्रियमाणमपि कर्म न फलाय प्रभवतीत्यर्थः ॥ २० ॥
नन्वेतस्माद्गौणात्कर्मकरणादकरणं मुख्यमेव तद्वरमित्याशंक्य गृहस्थस्य तत्प्रत्यवायावहमिति व्यतिरेकमुखेनाह—
**निराशीरिति** । यो निष्परिग्रहः स्त्र्यादिपरिग्रहरहितः संन्यासी स चेन्निराशीर्योगैश्वर्यमप्यनिच्छन् यतं चित्तं बुद्धिः आत्मा च देहेंद्रियसंघातो येन स **यतचित्तात्मा** । समाधिकाले निरुद्धबाह्याभ्यन्तरवृत्तिरित्यर्थः । स व्युत्थानकाले शारीरं शरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं भिक्षाटनादि । तदपि केवलं कर्तृत्वाभिमानशून्यं पराध्यारोपितकर्तृत्वेन कुर्वन्नपि किल्बिषं 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्' इतियावज्जीवाधिकारचोदिताग्निहोत्राद्यकरणजं प्रत्यवायं नाप्नोति विधितस्तेषां त्यागात् । यस्तु—सपरिग्रहः स निराशीरपि यतचित्तात्माऽपि केवलमपि शारीरं कर्म कुर्वन् विहिताकरणात्किल्बिषं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ॥ २१ ॥

**यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ।**
**समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते॥२२**
**गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।**
**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३**
**ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।**
**ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४**
**दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।**
**ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५**
**श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।**
**शब्दादीन्विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६**

ननु सपरिग्रहः कुटुंबभरणव्यग्रतया कथं वित्तव्ययायाससाध्यान्यग्निहोत्रादीन्यनुतिष्ठेदित्याशंक्याह—**यदृच्छेति** । यदृच्छया अप्रार्थितोपनतो लाभो यदृच्छालाभस्तेन सन्तुष्टः । तथा हि । ऋतामृताभ्यां जीवनं ब्राह्मणस्य विधाय व्याख्यातम् । 'ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं स्यादयाचितम्' इति । **द्वन्द्वातीतः** बहुलाभेऽलाभे वा सुखदुःखाद्यतीतः । **विमत्सरः** परस्य लाभं दृष्ट्वा संतापहीनः । **समः** यदृच्छालाभेनैवेष्टिपशुचातुर्मास्यादेर्नित्यकर्मणः सिद्धौ असिद्धौ वा समो निर्विकार एवंभूत इष्ट्यादीनि कृत्वाऽपि तत्फलेन स्वर्गादिना न निबध्यते । अपिशब्दात्तज्जेन प्रत्यवायेन न निबध्यते । बन्धहेतोः कर्मणस्तत्त्वज्ञानेनैव दाहात् । तथा च स्मृतिः—

'न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ' इति ।

भाष्ये त्वयं श्लोकः संन्यासिपरत्वेनैव व्याख्यातः ॥ २२ ॥ 'त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गम्' इत्यादिना श्लोकत्रयेण विद्वान् कर्माणि कुर्वन्नपि न करोति अतो न लिप्यते लेपाभावाच्च न बध्यत इत्युक्तम् । तत्किं कर्मणां फलदानशक्तिप्रतिबन्धो वा ज्ञानेन क्रियते उत निरन्वयोच्छेद एवेत्याशंक्याद्ये मुक्तस्यापि पुनः संसारप्रसक्तिं पश्यन् द्वितीयमभ्युपगच्छति-**गतसंगस्येति** । यतो विद्वान् गतसंगः कर्तृत्वाभिमानशून्योऽतो न करोतीत्युक्तम् । यतो **मुक्तः** फलकामनामुक्तः अतो न लिप्यत इत्युक्तम् । यतो यज्ञायैव यज्ञेश्वरप्रीत्यर्थमेवाचरति न फलान्तरार्थं,प्राप्याभावात् । अतस्तामेवोत्पाद्य कृतार्थैः कर्मभिर्न बध्यत इत्युक्तम् । यतोऽयं ज्ञाने सम्यग्दर्शनेऽवस्थितचेताः प्रतिष्ठितप्रज्ञः अत ईश्वरप्रीतिफलस्य ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिरूपस्यापि प्रागेव लाभादस्य गतसंगस्य मुक्तस्य यज्ञाय कर्माचरतो ज्ञानावस्थितस्य सर्वं कर्म क्रियमाणादिकं सर्वप्रकारेण निष्प्रयोजनं सत्समग्रं अग्रेण फलेन वासनया वा सह समग्रं प्रकर्षेण निरन्वयं विलीयते नश्यत्यतो न कदाचिदपि प्रादुर्भवति । अयं च क्रियमाणकर्मप्रलयो विद्वद्दृष्ट्यैव । स्वाभाविकस्य तेषां फलजननसामर्थ्यस्य वह्न्यौष्ण्यवदप्रत्याख्येयत्वात् । अत एव ज्ञानेन पूर्वकर्मणां दाह उत्तरेषामश्लेषश्च श्रूयते न तूत्तरेषामपि दाहः । ' तद्यथैषीकतूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते ' इति । 'तं विदित्वा न कर्मणा लिप्यते पापकेन' इति च । 'तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्' इति । विदुषो धनस्येव कर्मणामप्यन्यत्र गमनदर्शनान्न तेषां वस्तुवृत्त्या प्रलयोऽस्तीति ध्येयम् ॥ २३ ॥ कुतो विदुषां कर्माणि प्रविलीयन्त इत्याशंक्याह—**ब्रह्मार्पणमिति** । यतस्ते विद्वांसः सविकल्पसमाधौ सर्वं जगत्प्रत्यक्चितिशक्तिनिर्मितं पश्यन्ति । तथा च श्रुतिः— 'किं कारणम्' इत्युपक्रम्य कालः स्वभाव इति कालादीनि लोकदृष्ट्याऽनेकानि कारणान्युपक्षिप्य कारणं निर्णीय'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' इति समाधिना दर्शयति । तथाच समाधिना सर्वस्य ब्रह्मणि कल्पितत्वं पश्यतां तेषां यदर्पणं अर्पणसाधनं मन्त्रजुह्वादि तत् ब्रह्मैव । एवशब्दः सर्वत्रानुषञ्जनीयः । यदर्पणीयं हविस्तदपि ब्रह्मैव । यत् हुतं हवनक्रियाहुतं तर्पितं देवब्राह्मणादि वा तदपि ब्रह्मैव । यदग्नौ हुतं तदपि ब्रह्मण्येव हुतम् । अत्र ब्रह्मणीति पदमध्याहर्तव्यम् । यत् यजमानेन हुतं तद्ब्रह्मणैव हुतम् । यत्तेन कर्मणा गन्तव्यं प्राप्तव्यं फलं तदपि ब्रह्मैव । किं बहुना । यत्किंचित्तस्य कर्म शयनासनादिकं तत्सर्वं ब्रह्मैव । तत्र कारणं **समाधिना** समाधिजेनात्मसाक्षात्कारेण । यतः सर्वमस्य ब्रह्मात्मकं ब्रह्म च प्रत्यगनन्यत् अतः प्रदेयस्य फलस्याभावात् कर्माणि प्रविलीयन्ते दाह्याभावाद्दहन इवेति भावः । यत्तु-कर्माणि तदङ्गेषु च नामादिष्विव ब्रह्मदृष्टिरत्र विधीयत इति व्याख्यानं तत् उपक्रमादिविरोधाद्ब्रह्मविद्यायाः प्रकृतत्वाच्चासंगतमिति भाष्ये एव निरस्तम् । या हि ब्रह्मविदां कर्माङ्गेषु तात्त्विकी ब्रह्मदृष्टिः कीर्तिता सा स्थितप्रज्ञलक्षणवदब्रह्मविदामनुष्ठानायैव फलतो भवतीति न तत्र तस्यास्तात्पर्यं वर्णनीयमिति दिक् ॥ २४ ॥ एवं सम्यग्दर्शनस्य यज्ञत्वं संपाद्य तत्स्तुत्यर्थं यज्ञान्तराण्युपक्षिपति—**दैवमेवेत्यादिना** । दैवं देवताप्रधानमेव दर्शपूर्णमासादियज्ञं नान्यं एके योगिनः कर्मयोगिनः पर्युपासते । अपरे तु ब्रह्मैव सत्यज्ञानानन्तानन्दात्मकमखण्डैकरसं वस्तु तदेव ज्ञातं सत्सर्वकर्मदग्धृत्वादग्निरिवाग्निर्ब्रह्माग्निस्तत्र यज्ञं जीवम् । यज्ञशब्दस्यात्मनामसु पाठात् । सोपाधिं यज्ञेनैव आत्मनैव निरुपाधिकेन रूपेण जुह्वति घटाकाशमिव महाकाशे उपाधिप्रहाणेन प्रविलापयन्ति सोऽयं ज्ञानयज्ञो मुख्यः ॥ २५ ॥ यज्ञान्तरमाह—**श्रोत्रादीनीति** । तत्र कश्चिद्ब्राह्य-

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८
अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३०

माभ्यन्तरं वा विशेषमुपादाय तत्र चेतसो नियमनं क्रियते। ते च संयमाः अनेकविषयत्वादनेके पृथक्फलाश्च । तथा च योगसूत्रकृता प्रोक्तम्-' भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् चंद्रे ताराव्यूहज्ञानं कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः' इत्यादि । त एवाग्नय इन्द्रियेन्धनसंहारहेतुत्वात् । तेषु संयमाग्निषु श्रोत्रादीनि जुह्वति प्रक्षिपन्ति। तत्र श्रोत्रं अनाहते ध्वनौ संनियम्य हंसोपनिषदुक्तरीत्या घण्टानादादीन् दशनादाननुभवन्ति । न हि तत्र सान्निध्ये चेतसि शब्दान्तरग्रहणं तदा भवति सोऽयं श्रोत्रस्य संयमाग्नौ होमो बोध्यः । एवमन्यत्रापि तद्द्वारा च निष्कलं तत्त्वं प्रतिपद्यन्ते । तथाऽन्ये विषयेभ्यः प्रत्याहृतकरणाः धारणाध्यानसमाध्यात्मकं मनसः संयमं एकत्र मूलाधाराद्यन्यतमचक्रे कर्तुमशक्ताः समनस्केन्द्रियेषु विषयवियोगाद्दग्धेन्धनानलवत्स्वयं विलीनेषु येषां समाधिबुद्धिस्तैरिन्द्रियेषु विषया एवोपसंहृता न त्विन्द्रियादीनि मनआदिषु पूर्वोक्तरीत्या उपसंहृतानि । तानेतानिंद्रियचिन्तकान् प्रकृत्योक्तं **वायवीये**—' दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तींद्रियचिन्तकाः ' इति ॥ २६ ॥ इतो विशिष्टं योगान्तरमाह—**सर्वाणीति** । इन्द्रियाणां कर्माणि शब्दादिग्रहणानि । **प्राणकर्माणि** आकुञ्चनप्रसारणश्वासप्रश्वासादीनि । **अपरे** योगिनः आत्मनि बुद्धौ संयमः स एव योगोऽग्निश्च तस्मिन् ज्ञानेन देहेन्द्रियप्राणमनोव्यतिरिक्तात्मज्ञानेन दीपिते प्रकाशिते **जुह्वति** प्रविलापयन्ति। इन्द्रिययोगिनां हि सुप्तावित्र प्राणोऽनुपसंहृत एवास्ते । तत्सहचरस्य मनसोऽनुपसंहारात् । बुद्धियोगिनां तु मनसोऽप्युपसंहारात्तदायत्तस्य प्राणस्याप्युपसंहारो भवतीति विशेषः । एतेषामपि बुद्धौ बोद्धव्याभावात्पूर्ववल्लीनायां समाधिबुद्धिरस्ति न त्वेतैर्बुद्धेरन्यत्वेन आत्मा ज्ञातो नापि तस्मिन् बुद्धिरुपसंहृता । अत एवैतान् प्रकृत्योक्तं वायवीये—' बौद्धा दशसहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः' इति। **बौद्धा** बुद्धौ लीनाः दशसहस्राणि मन्वन्तराणीत्यनुषङ्गात् ॥ २७ ॥ एवं यज्ञपञ्चकं श्लोकत्रयेणोक्तम् । अथैकेनैव श्लोकेन पञ्चयज्ञानाह—**द्रव्येति** । द्रव्यसाध्याः वापीकूपारामाः तीर्थे बहिर्वेदिकादानं श्रौतयज्ञानां प्रागेव ग्रहणात् त एव यज्ञा येषां ते द्रव्ययज्ञाः । तथा तपः कृच्छ्रचान्द्रायणमासोपवासादि तदेव यज्ञस्थानीयं येषां ते तपोयज्ञाः। तथा योगयज्ञाः संगफलत्यागपूर्वकं सन्ध्योपासनादिनिर्विकल्पसमाध्यन्तानां कर्मणामनुष्ठानं तृतीयाध्यायोक्तं योगः स एव यज्ञो येषां ते योगयज्ञाः । यद्वा । यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिरूपोऽष्टांगोपेतो ' **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** ' इति सूत्रितो योग एव यज्ञो येषां ते इति । तथा स्वाध्याययज्ञाः नित्यं वेदाध्ययनरतास्ते स्वाध्याययज्ञाः ज्ञानं स्वाध्यायार्थस्य पूर्वोत्तरमीमांसाविचारः स एव यज्ञो येषाम् स्वाध्याययज्ञा ज्ञानयज्ञाश्चेति **स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः** इति समासः । यतयो यतनशीलाः संशितव्रताः सम्यक् शितं तीक्ष्णं व्रतं अहिंसादिकं येषां ते इति **सर्वेषां** विशेषणम् ॥ २८ ॥ एकादशं यज्ञमाह—**अपाने इति** । **अपरे** अपाने अपानवृत्तौ जुह्वति प्रक्षिपन्ति प्राणं प्राणवृत्तिं पूरकाख्यं प्राणायामं कुर्वन्तीत्यर्थः । तथा प्राणे च अपानं प्रक्षिपन्ति रेचकाख्यं प्राणायामं कुर्वन्तीत्यर्थः । प्राणापानगती रुद्ध्वा मुखनासिकाभ्यां वायोर्निर्गमनं प्राणस्य गतिः तद्विपर्ययेणाधोगमनमपानस्य गतिः । ते प्राणापानगती एते निरुध्य प्राणायामपरायणाः प्राणायामतत्पराः कुम्भकाख्यं प्राणायामं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ २९ ॥ द्वादशं यज्ञमाह—**अपरे इति**। नियतो निगृहीत आहारो विषयभोगो यैस्ते नियताहारा वैराग्यादिमन्तः प्राणान् । अत्र समनस्कानीन्द्रियाणि प्राणशब्देन गृह्यन्ते । तान् प्राणेषु मनश्चित्ताहंकारेष्वन्तःकरणवृत्तिभेदेषु । । बुद्धेः प्रागुक्तत्वादग्रहणम् । जुह्वति प्रविलापयन्ति । इन्द्रियाणि सङ्कल्पात्मके मनसि संहृत्य मनोऽपि स्मरणात्मके चित्ते संहृत्य तदपि अहङ्कारे संहरन्ति । स चाभिमानरूपोऽहङ्कारोऽभिमन्तव्याभावात्स्वयमेव दग्धेन्धनानलवद्विलीयते । तत्र येषां समाधिबुद्धिरस्ति ते आभिमानिका बुद्धियोगिभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो निकृष्टाः । अत एव एतान् प्रकृत्योक्तं वायवीये । ' सहस्रं त्वाभिमानिकाः ' इति । सहस्रं मन्वन्तराणि इत्यनुषङ्गः । भौतिकस्तु योगोऽत्र नोक्तः । यदनुष्ठातॄन्प्रकृत्य तत्रैवोक्तं-' भौतिकास्तु शतं पूर्णम् ' इति । अत्रापि शतं मन्वन्तराणीत्यनुषञ्जनीयम् । सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञलब्धारो यज्ञेन क्षपितं कल्मषं येषां ते तथाविधा भवन्ति । सर्वे यज्ञाः कल्मषक्षयायैव भवन्ति । न पुनः साक्षान्मोक्षायेत्यर्थः ॥ ३० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ३१
एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे
श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥३८
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ३९
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ४०
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१
तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२

सर्वेषामेतेषां मध्येऽन्यतममप्यनुष्ठातुमशक्तं प्रति प्राह— **यज्ञेति** । यज्ञाः पञ्चमहायज्ञास्तेभ्यः शिष्टमवशिष्टमन्नममृताख्यं ये भुञ्जते तेऽपि चित्तशुद्धिद्वारा सनातनं ब्रह्म यान्ति प्राप्नुवन्ति । अयज्ञस्य पूर्वोक्तेषु द्वादशस्वन्यतमो वा नित्याः पञ्च वा यस्य यज्ञा न सन्ति स अयज्ञस्तस्य अयमपि लोको नास्ति, अन्यः परलोक आत्मलोको वा कुतो भवेन्न कुतश्चिदित्यर्थः ॥ ३१ ॥ **एवमिति** । ब्रह्मणो वेदस्य मुखे द्वारे वेदद्वारेणैव वितता विस्तारिताः । गुरुभिरुपदिष्टा इत्यर्थः। कर्मजान् कायिकवाचिकमानसिककर्मजान् । न तु नैष्कर्म्यरूपान् । एवं ज्ञात्वा अस्मादशुभात् मोक्ष्यसे तत्त्वज्ञानोत्पत्तिद्वारेणेत्यर्थः ॥ ३२ ॥ यदर्थमेते यज्ञा उपन्यस्तास्तं ज्ञानयज्ञं स्तौति—**श्रेयानिति** । द्रव्यं बाह्यमाभ्यन्तरं च देहेन्द्रियादि तत्साध्यात् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञो निःशेषवाङ्मनःकायप्रवृत्त्युपरमात्मकः श्रेयान् प्रशस्ततरः । ईयसुन्प्रत्ययेन तेषामपि प्रशस्ततरत्वं द्योत्यते । तत्र हेतुः— **सर्वमिति** । कर्म कर्मफलं सर्वमखिलं सर्वाङ्गोपसंहारयुक्तं ज्ञाने परिसमाप्यते अन्तर्भवति । ' यथा कृतायाविजिताया धरेयाः संयन्त्येवमेवैनं सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद ' इति ॥३३॥ **तद्विद्धीति** ज्ञानिनः ग्रन्थज्ञाः तत्त्वदर्शिनो अनुभववन्तः । ज्ञानं ब्रह्म । स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ ३४ ॥ **यज्ज्ञात्वेति** । यत् चिन्मात्रस्वरूपं ब्रह्म ज्ञात्वा एवमिदानीमिव पुनर्मोहं न यास्यसि । अथो अपि च येन ज्ञानेन भूतानि ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानि आत्मनि मयि त्वंपदलक्ष्यार्थादनन्यभूते परमेश्वरे द्रक्ष्यसि । 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इति प्रतीचोऽन्यस्य द्रष्टुर्निषेधात् । भाष्ये तु साक्षादात्मनि मत्स्थानीमानीति द्रक्ष्यसि । अथो अपि मयि वासुदेवे परमेश्वरे चात्मनीति क्षेत्रज्ञेश्वरैकत्वं सर्वोपनिषत्प्रसिद्धं द्रक्ष्यसीत्यर्थ इति '॥ ३५ ॥ **अपि चेदिति** । वृजिनं वृजिनार्णवम् । धर्मोऽपीह मुमुक्षोः पापमित्युच्यते ॥३६॥ **यथेति** । एधांसि काष्ठानि । कर्माणि प्रारब्धादन्यानि ॥ ३७ ॥ **न हीति** । योगेन निष्कामकर्मानुष्ठानेन समाधियोगेन वा संसिद्धः संस्कृतो योग्यतामापन्नः । **कालेनेति** चिरप्रयत्नसाध्यत्वं ज्ञानस्योच्यते ॥ ३८ ॥ श्रद्धावान् ज्ञानं लभते । श्रद्धावानपि मन्दप्रयत्नो माभूदत आह—**तत्पर इति** । तत्परोऽप्यजितेन्द्रियो माभूदत आह— **संयतेन्द्रिय इति** । परां शान्तिं विदेहकैवल्यं, अचिरेण प्रारब्धकर्मसमाप्तौ सत्याम् ॥ ३९ ॥ **अज्ञ इति** । अज्ञः सुखेन चिकित्सितुं शक्यः अश्रद्दधानो यत्नेन । संशयात्मा त्वसाध्य एव । यतो मित्रादिष्वपि संशयं कुर्वतोऽस्यायं लोकोऽपि नास्ति । नापि परः। वेदवाक्येऽपि संशयात् । अत एव सर्वदा संशयाकुलत्वात्सुखमपि तस्य नास्ति । तस्मात्संशयो न कर्तव्यः ॥ ४० ॥ किंच-**योगेति** । योगेन कर्मण्यकर्मदर्शनात्मकेन संन्यस्तानि फलतः स्वरूपतो वा त्यक्तानि कर्माणि येन तं योगसंन्यस्तकर्माणम् । ज्ञानेन सम्यग्दर्शनेन सम्यक् छिन्नाः संशयाः-आत्मा देहोऽन्यो वा, अन्योऽपि विभुरविभुर्वा । विभुरपि कर्ताऽकर्ता वा, अकर्ताप्येकोऽनेको वा, एकोऽपि सगुणो निर्गुणो वेत्येवमादयः यस्य स ज्ञानसंछिन्नसंशयस्तं आत्मवन्तं शमदमादिपरं कर्माणि कृतानि न निबध्नन्ति हे धनञ्जय ॥ ४१ ॥ **तस्मादिति** । हृत्स्थं बुद्धिस्थम् । ज्ञानासिना ज्ञानखड्गेन । योगं सम्यग्दर्शनोपायं निष्कामकर्म आतिष्ठ कुरु । उत्तिष्ठ । युद्धायेति शेषः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे यज्ञविभागयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पर्वणि तु अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

**अर्जुन उवाच ।**
**संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।**
**यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १**
**श्रीभगवानुवाच ।**
**संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।**
**तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २**
**ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।**
**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३**
**सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।**
**एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४**

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकंठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पर्वणि त्वष्टाविंशोऽध्यायः २८ ॥

२९

तृतीयेऽध्याये '**लोकेऽस्मिन् द्विविधा** निष्ठा' इति विभिन्नाधिकारिकं निष्ठाद्वयं प्रस्तुत्य '**कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते**' इत्यादिना कर्मनिष्ठाया ज्ञाननिष्ठांगत्वेन भूयसा निर्बन्धेनानुष्ठेयत्वमुक्तं '**कर्मण्येवाधिकारस्ते**' इत्यादिना। चतुर्थे तूत्पन्नसम्यग्दर्शनैः कृतमपि कर्माकृतमेव भवति ज्ञानेन कर्तृत्वादिबाधात्। अतस्तैर्वृथाचेष्टारूपं कर्म वा कर्तव्यं संन्यासो वा कर्तव्य इत्यनास्थया प्रोक्तम्। अथेदानीं पञ्चमषष्ठयोरज्ञानिना ज्ञानार्थिना वैराग्योत्पत्तेः प्राक्कर्मैवानुष्ठेयम्। संपन्ने तु वैराग्ये दृष्टविक्षेपनिवृत्त्यर्थं कर्मसंन्यासं कृत्वा ज्ञानोत्पत्त्यर्थं योगोऽनुष्ठेय इत्युच्यते। तत्र चतुर्थे-'**त्यक्तसर्वपरिग्रहः**' इति संन्यासो '**योगमातिष्ठ**' इति कर्मयोगश्चैकं मां प्रति विहितः। न चैतयोः स्थितिगतिवद्युगपदेकेन मयाऽनुष्ठानं कर्तुं शक्यते। परस्परविरुद्धत्वादिति मन्वानोऽर्जुन उवाच—**संन्यासमिति** हे कृष्ण पापकर्षण, मे मह्यं ज्ञानार्थिने संन्यासं कर्मयोगं चेति द्वयं परस्परविरुद्धं कथं शंससि कथयसि। पुनरित्यनेन प्रागपि त्वया वेदकर्त्रा इदं द्वयं विहितमस्तीति गम्यते। तथा च श्रुतिस्मृती भवतः—'एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति'। 'संसारमेवं निःसारं दृष्ट्वा सारदिदृक्षया ॥ प्रव्रजन्त्यकृतोद्वाहाः परं वैराग्यमास्थिताः' इति च। तथा 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन' इति। ''महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः' इति च। ब्राह्मी ब्रह्मदर्शनयोग्या। अत एतयोः श्रुतिविहितत्वेन प्रशस्तयोर्मध्ये एकं श्रेयः प्रशस्ततरं यत्तन्मे सुनिश्चितं ब्रूहीति प्रश्नः ॥ १ ॥ अस्योत्तरं भगवानुवाच—**संन्यास इति**। **निःश्रेयसकरौ** ज्ञानोत्पत्तिहेतुतया। तथापि कर्मसंन्यासादविरक्तकृतात् **कर्मयोग एव विशिष्यते** चित्तशुद्धिद्वारा वैराग्यादिहेतुत्वात् ॥ २ ॥ ननु प्रत्यक्षः कर्मयोगिनां विक्षेपः संन्यासिनां तु स नास्तीति कथमुच्यते '**कर्मयोगो विशिष्यते**' इत्याशंक्याह—**ज्ञेय इति**। यो रागद्वेषरहितः स कर्मसु स्वरूपतस्त्यक्तेष्वत्यक्तेषु वा नित्यं संन्यास्येव। एतेन साधनभूतयोः सांख्ययोगयोः रागद्वेषराहित्यकृतं साम्यमुक्तम्। फलभूतयोस्तु सर्वविकल्पराहित्यरूपसाम्यमनन्तरश्लोकाभ्यामुच्यते। तथापि चित्तस्वाभाव्यात्कदाचित्संन्यासिनो रागोदये पाताशङ्काऽस्ति। नेतरस्येति स एव श्रेयानिति भावः। यद्यप्येवं तथाऽपि हि प्रसिद्धं निर्द्वन्द्वो द्वन्द्वं सत्यानृतयोरात्मानात्मनोर्मिथुनं परस्पराध्यासस्तद्रहितः सांख्यो रागाद्युदयहेतोरज्ञानस्यात्यन्तोच्छेदात्। सुखं कर्मकरणायासं विनाऽपि बन्धात् संसारात् केवलज्ञानेनैव मुच्यते न कर्माप्यपेक्षते। यद्वा निर्द्वन्द्वो 'द्वद्वं वै मिथुनं तस्माद्द्वन्द्वान्मिथुनं प्रजायते' इति श्रुतेर्द्वन्द्वं स्त्रीपुंसयोर्मिथुनं तद्रहितः स्त्र्यादित्यागी संन्यासी अनायासेन मुच्यते। रागादिजयस्योभयत्र तुल्यत्वात् अत्र च कुटुम्बभरणवैयग्र्याभावात्सुखं मुच्यते इत्यर्थः ॥ ३ ॥ नन्वेकत्र पाताशंका एकत्र कर्मश्रमस्तदनयोः पथोः कतरः श्रेयानित्याशंक्य द्वयोरपि फलतः साम्यमित्याह—**सांख्ययोगाविति**। सांख्यं समित्येकीभावे इति **यास्कः**। एकीभावेनात्मानन्यत्वेन ख्यायते प्रकाश्यते वस्तुस्वरूपमनयेति संख्या। स्थूलसूक्ष्मकारणप्रपञ्चस्य निर्विकल्पे प्रत्यगात्मनि प्रविलापनेनोदिता चेतोवृत्तिस्तत्साधनभूतोऽयं **सांख्यः संन्यासः**। स च दारादिबुद्ध्यन्तानां पदार्थानामात्मन्येकीभावेन न्यसनं त्यागः प्रविलापनम्। तथा योगोऽप्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनादिनिर्विकल्पसमाध्यन्तमनुष्ठानम्। तत्र मुख्यस्य योगस्य लक्षणं-'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७
नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्र-
न्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ ८

इति । वृत्तयश्च-' प्रमाण-विपर्यय-विकल्प—निद्रा—स्मृतयः' इति पञ्च । तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः **प्रमाणानि**। तेषु प्रत्यक्षमिन्द्रियं तज्जा वृत्तिः शुक्त्यादिविषयं याथार्थ्येन ज्ञानम् । **विपर्ययस्तु** तत्रैव रजतादिविषयं भ्रान्तिरूपं ज्ञानम् । संशयोऽपि इयं शुक्तिर्वा रजतं वेति अनिर्धारितान्यतरकोटिकं ज्ञानं स विपर्यय एवान्तर्भवति । **विकल्पस्तु** शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यः । यथा पुरुषस्य चैतन्यं वन्ध्यापुत्र इति । नहि पुरुषचैतन्यतत्संबन्धानां पृथक्त्वमस्ति किंतु चैतन्यमेव हि शब्दत्रयेणोच्यते । नापि वंध्यासुतस्य स्वरूपमस्त्यथापि शब्देनाभिलप्यते। सोऽयं विकल्पः शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यः एकस्मिन्ननेकबुद्धिरसति च सद्बुद्धिरिति । **निद्रास्मृती** लोकप्रसिद्धे । एतासां निरोधेऽपि निर्विकल्पः प्रत्यगात्मैवावशिष्यते । तावेतौ फलभूतौ सांख्ययोगौ । साधनभूतौ तावेव संन्यासकर्मयोगाख्यौ । तत्रान्त्ययोः साम्यं '**ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी**' इत्यनेन सूचितम् । आद्ययोस्त्वैक्यमवोच्यते—**आस्थितः** अनुतिष्ठन् फलं निर्विकल्पात्मनाऽवस्थितिरूपम् ॥ ४ ॥ योगैर्योगिभिः । अर्श आद्यच्प्रत्ययान्तोऽयं योगशब्दः । स्थानं मोक्षाख्यं एकमभिन्नम् । स्पष्टा योजना श्लोकद्वयस्य ॥ ५ ॥ नन्वेवं निर्विकल्पस्थानप्राप्तये द्वौ मार्गावुक्तौ स्यातां तच्च 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति श्रुतिविरुद्धमित्याशंक्याह—**संन्यासस्त्विति** । संन्यासो नैष्कर्म्यं **अयोगतो** योगं विना आप्तुं दुःखं हे महाबाहो । अयमर्थः—निर्विकल्पकसमाधिरपि तत्त्वमसीत्येतद्वाक्यार्थप्रतिपत्त्युपायभूत एव न स्वतः पुरुषार्थ इति द्वितीयमार्गस्याभावान्नोदाहृतश्रुतिविरोधः । 'शान्तो दान्त उपरतास्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' इति श्रुत्यैव शमादिवत्समाधेरप्यात्मदर्शनार्थत्वस्य दर्शितत्वात् । तथा च समाहितपदं वार्तिककारैर्व्याख्यातम् ।

'स्वातंत्र्यं येषु कर्तुः स्यात्करणाकरणं प्रति ।
तान्येव तु निषिद्धानि कर्माणीह शमादिभिः'

शमादिश्रुत्या—

'अस्वातंत्र्यं तु येषु स्यात्करणाकरणं प्रति ।
समाहितोक्त्याथेदानीं तन्निरोधो विधीयते'

अस्वातंत्र्यं गुरूपदेशापेक्षत्वं येषु मानमेयव्यवहारनिरोधेषु ।

पिंडीकृत्येन्द्रियग्रामं बुद्धावारोप्य निश्चलम् ।
विषयांस्तत्स्मृतीस्त्यक्त्वा तिष्ठेच्चिदनुरोधतः ।
एषोऽभ्युपायः सर्वत्र वेदान्तेषु प्रतिष्ठितः ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थज्ञानोत्पत्त्यर्थमादरात्' इति ।

एवं व्यतिरेकमुक्त्वाऽन्वयमाह—**योगयुक्त इति** । मुनिः संन्यासी नचिरेण शीघ्रमेव ब्रह्माधिगच्छति वाक्यश्रवणमात्रेण नतु केवलसंन्यासी। यथोक्तम्-'न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति' इति ॥ ६ ॥ **योगेति** । योगेन निर्विकल्पसमाधिना युक्तो योगयुक्तः । अत एव विशुद्धात्मा वृत्तिसारूप्यदोषेण हीन आत्मा प्रत्यक्चेतनो यस्य । निर्विकल्पावस्थायां केवल एव चेतनोऽस्ति नान्यदित्युक्तम्—'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं वृत्तिसारूप्यमितरत्र' इति । तदा—वृत्त्यभावे । इतरत्र—वृत्तिकाले इति सौत्रपदद्वयार्थः । अत्र हेतुः—यतोऽयं विजितात्मा विजितचित्तो जितेन्द्रियश्च। एवं शुद्धस्त्वंपदार्थ उक्तस्तस्य तत्पदार्थाभेदमाह-**सर्वभूतात्मेति**। सर्वेषां भूतानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानां वियदादीनां च चेतनाचेतनानामात्मभूतः उपादानत्वेन स्वरूपभूतः कनकमिव कुण्डलादीनां स्वरूपभूतं कारणानन्यत्वात्कार्यस्य। सर्वभूतात्मभूत आत्मा प्रत्यक्चेतनो यस्य स सर्वभूतात्मभूतात्मा । यत्तु सर्वेषां भूतानामात्मभूत आत्मा यस्येति **भाष्यं** सर्वभूतात्मेत्येतावतैवार्थलाभादात्मभूत इत्यधिकमिति **दूषितं** स्वयं च सर्वभूत आत्मभूतश्चात्मा यस्येति विग्रहो दर्शितः । तत्र संकोचे कारणाभावात्सर्वपदेनैव चिज्जडयोर्ग्रहे परस्याप्यात्मभूतेत्याधिक्यमेव । सर्वभूतश्चेतनाचेतनप्रपञ्चभूत आत्मा यस्येति तत्रापीष्टार्थलाभात् सर्वं च आत्मानश्च तद्भूत आत्मा यस्येति विगृह्य सर्वात्मभूतात्मेत्येतावतैव सिद्धे प्रथमभूतपदस्य वैयर्थ्यं च **भाष्यमते** ब्रह्मादीनां प्रत्यग्भूत आत्मा यस्येति श्रुत्यैव जीवेशाभेद उच्यते । परस्य तु उपादानत्वलिङ्गेन जडसाधारण्येन जीवस्य ब्रह्माभेदोऽवगम्यत इति विद्वद्भिरविनयः क्षन्तव्यः । यतोऽयं सर्वेषां प्रत्यगात्मा अतोऽहमिव सोऽपि कुर्वन्नपि न लिप्यते, असंगात्मज्ञानात् । कर्त्रादेर्बाधितत्वाच्च । व्युत्थाने तत्प्रतीतावप्युत्खातदंष्ट्रोरगवदबाधकत्वाच्चेत्यर्थः ॥ ७ ॥ न लिप्यत इत्येतदुपपादयति—**नैवेति द्वाभ्याम्** । तत्त्ववित् अहं नैव किंचित्करोमीति

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन् निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १०
कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ११
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२
सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४
नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५

मन्येत मन्यते । तत्र हेतुः—**इन्द्रियाणि** । उपलक्षणमिदं प्राणादेरपि । इन्द्रियादय इन्द्रियार्थेषु स्वेषु विषयेषु वर्तन्ते इति धारयन् निश्चिन्वन्न त्वहं विषयेषु वर्ते इति मन्यते धारयन्निति हेतौ शतृप्रत्ययः । अत्र दर्शनादयः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणां व्यापाराः गमन–विसर्ग–प्रलपन–ग्रहणानि कर्मेन्द्रियाणाम् । तानि चानन्दस्योपलक्षणानि । श्वसन्निति प्राणस्य, स्वपन्निति बुद्धेः, उन्मेषणनिमेषणे कूर्माख्यप्राणस्येति विभागः । क्रमस्त्वविवक्षितः । एतानि कुर्वन्नप्यभिमानाभावान्न लिप्यते इत्यर्थः ॥ ८ ॥ **ब्रह्मणीति** । यतो विद्वानसंगत्वात् कुर्वन्नपि न लिप्यते तस्मादविद्वानपि ब्रह्मणि सर्वान्तर्यामिणि कर्माण्याधाय अयमेव कारयिता न त्वहं कर्तेति समर्प्य यः कर्माणि करोति सः पापेन न लिप्यतेऽम्भसा पद्मपत्रमिव ॥१०॥ **कायेनेति** । **केवलैरिति** विपरिणामेन सर्वत्र संबन्धनीयम् । केवलेन कायेन अहमयं ब्राह्मणो युवेत्यात्माध्यासशून्येन । एवमन्यत्रापि संगं त्यक्त्वा देहादिभ्यो विविक्तेऽप्यात्मनि तार्किकादिवदहं करोमीत्यभिनिवेशं त्यक्त्वा **योगिनः कर्म कुर्वन्ति** । आत्मशुद्धये चित्तशुद्ध्यर्थं तस्मात्त्वापि तत्रैवाधिकारोऽस्तीति तदेव त्वं कुरु ॥ ११ ॥ किंच **युक्त इति** । युक्तो ब्रह्मण्याधाय कर्माणीत्यादिना उक्तलक्षणः कर्मणां फलं त्यक्त्वा ईश्वरे समर्प्य शान्तिं कैवल्यं नैष्ठिकीं सत्त्वशुद्ध्यादिक्रमप्राप्तब्रह्मनिष्ठाफलभूतां प्राप्नोति । अयुक्तस्तद्विपरीतः कामकारेण स्वैरवृत्त्या फले सक्तः सन् नितरां बध्यते ॥ १२ ॥ एवमविद्वान् फलासक्त्यनासक्तिवशात् कर्मभिर्बध्यते न बध्यते चेत्युक्तम् । विद्वांस्तु तद्विपरीत इत्याह—**सर्वकर्माणीति** । वशी जितचित्तः समाधिस्थो योगी नवद्वारे नवैव पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि षष्ठः प्राणस्तेनैव तत्प्रवर्त्यानां कर्मेन्द्रियाणां संग्रहः । बुद्ध्यहङ्कारचित्तानीति नव । एतानि द्वाराण्येव पुरपतेर्जीवस्य भोगार्थं विषयप्रवेशस्थानानि यस्मिन्नवद्वारे शरीराख्ये पुरे विचित्रवासनाकल्पितानन्तविषयवति अनेकैः कर्मसाचिवैरधिष्ठिते सुखदुःखादिनानापण्यवति मनसा सर्वद्वारोद्घाटनकुञ्चिकया सह सर्वाणि कर्माणि पुरपतिरिव राजकार्याणि संन्यस्य सुखं निर्विकल्पसंविन्मात्ररूपेणास्ते । कर्माणि क्षेत्रस्यैव धर्मो न त्वात्मन इति क्षेत्रे त्यक्तुं शक्यान्येव । तथाच श्रुतिः—'शरीरे पाप्मनो हित्वा' इति । 'यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ते विहाय रोगं तन्वाऽस्वायाम्' इति च । देही सन् देहाभिमानकाले । व्युत्थानेऽपीत्यर्थः । तदापि नैव कुर्वन्नास्ते नापि कारयन्नास्ते राजेवामात्येषु निहितभारः । समाधौ क्षेत्रेण सहात्मनः संबन्धाभावदर्शनात् । यद्वा । नवद्वाराणि चक्षुःश्रोत्रनासाबिलद्वन्द्वानि षट्, सप्तमं मुखं अधस्तने द्वे इति । अस्मिन्पक्षे इन्द्रियाणि परिचारिका बुद्धिरमात्योऽहंकारो युवराज इत्यादिकमूह्यम् । विदुषः कर्मसम्बन्ध एव नास्ति । दूरे तत्फलासक्त्यनासक्ती इति भावः ॥१३॥ नन्वेवं भृत्यवत्कर्तृत्वं स्वामिवत्कारयितृत्वं वाऽस्य मास्तु । अयस्कान्तवदविकारस्यैव सतः कर्त्रादिधर्मकाहंकारादिप्रवर्तकत्वमस्त्वित्याशंक्याह—**न कर्तृत्वमिति** । कर्तृत्वमहंकारस्य । कर्माणि इन्द्रियाणां वचनादानादीनि श्रवणदर्शनादीनि च । लोकस्य लोक्यते प्रकाश्यते इति लोको जडवर्गः प्रभुश्चिदात्मा सूर्य इवास्मदादीनां प्रकाशकोऽपि न कर्मादौ प्रवर्तकस्तद्वत् । अस्य कर्मफलसंयोगं वा न सृजति किंतु यो यादृक् यस्य स्वभावः स तथा प्रवर्तते । यथा सूर्येऽभ्युदिते कमलानां विकसनं कुमुदानामुन्मुद्रणं चेति । तद्वदेवात्मनि प्रकाशमाने घटादयो न चेष्टन्ते मनुष्यादयस्तु चेष्टन्ते । नत्वात्मा कस्यचित्प्रवर्तको निवर्तको वा । लोहायस्कान्तयोरिव सत्यानृतयोरात्मानात्मनोः सम्बन्धाभावादिति भावः ॥१४॥ ननु 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते' इति श्रुत्या परमेश्वरे कारयितृत्वं बोध्यते । तत्कथमुच्यते 'स्वभावस्तु प्रवर्तते' इति तत्राह—**नादत्त इति** । कस्यचित्कर्तुः पापं अयं नादत्ते नापि सुकृतम् । कारयितृत्वाभावात् । यतो विभुर्व्यापकः । निष्क्रिय इति यावत् । सक्रियो ह्यन्यं प्रवर्तयति तदीयं पापं पुण्यं वा लभते । अयं तु न तथा किं तु सूर्यवत् प्रकाशत एव न तु स्वप्रकाश्यानां कर्त्रादीनां कर्मणा सम्बध्यते इति भावः । कारयितृत्वमप्यस्य सत्तामात्रेण सूर्यवत् । यथा घटः

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७
विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः १९
न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २०
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२

'प्रकाशते सविता प्रकाशयतीति नोदाहृतश्रुतिविरोधः । कथं तर्हि ईश्वराराधनार्थं कर्माणि कुर्वन्ति तदकरणाच्च बिभ्यतीत्याशंक्याह—अज्ञानेनेति । यथा हि महाराजस्य सार्वभौमस्याहं सर्वेश्वरो निर्वृतोऽस्मीति ज्ञानं अज्ञानेन सौषुप्तेनावृतं चेत्स तत्र विविधानि परचक्रादीनि महान्ति संकटशतानि पश्यति । अहो अहं दीनोऽस्मि दुःख्यस्मीति च मुह्यति । तद्वदेते जन्तवः स्वस्याहं ब्रह्मास्मीति प्रमाणेन ब्रह्मभावमजानन्त ईश्वरादात्मानं पृथङ्मन्यमाना ईशात्मनोः सेव्यसेवकभावं च पश्यन्तो मुह्यन्ति । तथा च श्रुतिः—' अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमिति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्'इति । एष ह्येवेति श्रुतिरपि भ्रान्तजनव्यवहारविषयैवेति भावः ॥ १५ ॥ तदात्मन आवरकमज्ञानं येषां ज्ञानेन ब्रह्मास्मीति प्रमाणजेन नाशितं तेषां तज्ज्ञानं कर्तृ आदित्यवदादित्यो यथा कृत्स्नं दृश्यं प्रकाशयति तद्वत्परं परमार्थवस्तु प्रकाशयति । अज्ञानजानर्थनिवृत्त्यर्थं ज्ञानमेष्टव्यमिति भावः ॥१६॥ तद्बुद्धय इति । यत् परं ब्रह्म प्रशान्तं तत्रैव बुद्धिः अस्ति ब्रह्मेति निश्चयो येषामापाततः श्रुत्यर्थविदां ते तद्बुद्धयः । तदेव आत्मा प्रत्यक्तत्त्वं येषां श्रवणमननात्मकविचारेण प्रमाणप्रमेयगतासंभावनाविहीनानां ते तदात्मानः। तत्रैव निष्ठा विजातीयवृत्त्यनन्तरितसजातीयवृत्तिप्रवाहो येषां देहादावनात्मनि आत्मधीरूपविपरीतभावनारहितानां ते तन्निष्ठाः । तदेव परं अयनं अज्ञानरूपोपाधिनिरासेन प्राप्यं येषामखण्डानन्दमयानां ते तत्परायणाः। अपुनरावृत्तिं मोक्षं गच्छन्ति। यतः ज्ञानेन निर्धूतं कल्मषं मूलाज्ञानं संसारबीजभूतं येषां ते ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥ एतेषां जगति दृष्टिमाह—विद्येति । उत्तमब्राह्मणे चण्डालादौ वा समं ब्रह्मैव सद्रूपेण स्फुरणरूपेण च भासमानं द्रष्टुं शीलं येषां ते समदर्शिनः यथोक्तम्—'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् '
इति। चराचरं जगद्ब्रह्मदृष्ट्यैव पश्यन्तीत्यर्थः॥१८॥ननु 'समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः'इति तुल्यश्रुतशीलाय ब्राह्मणद्वयाय विषमां पूजां प्रयुञ्जानतः । तथा अतुल्यश्रुतशीलाय ब्राह्मणद्वयाय समां पूजां प्रयुञ्जानतश्चाभोज्यान्नत्वं गौतमेन स्मर्यते तत्कथं ब्राह्मणचण्डालयोः समदर्शित्वं युक्तमित्याशंक्याह इहैवेति। येषां मनः सर्वभूतेषु साम्ये ब्रह्मभावे स्थितं।निश्चलं तैरिहैव जीवद्भिरेव सर्गो जन्म जितो वशीकृतः । हि यस्मान्निर्दोषं समं सर्वत्राविषमं ब्रह्मास्ति। यथा हिरण्मययोर्देवतातत्पीठयोः स्वर्णदृक् साम्यं पश्यति पूजकस्तु आकारदृक् तारतम्यं पश्यति तद्वत् । पूजा स्मृतिर्भ्रान्तिकृततारतम्यविषया । साम्यदृष्टिस्तु तत्त्वविषयेति भावः । यस्मादेवं ते साम्यं पश्यन्ति तस्माद्ब्रह्मणि अखण्डैकरसे ते द्रष्टारः स्थिता एकीभावेन समाप्तिं गताः ॥ १९ ॥ न प्रहृष्येदिति । यस्मान्निर्दोषं समं ब्रह्म तस्मात् प्रियं पुत्रादि प्राप्य न प्रहृष्येत् । अप्रियं शत्रुं दुःखदं प्राप्य नोद्विजेत् । बुद्धस्थितिरबुद्धेनानुष्ठेयेति ज्ञापयितुमुभयत्र लिङ्प्रयोगः । स्थिरबुद्धिः प्रत्यगद्वैते श्रुतियुक्तिभ्यां स्थिरीकृतप्रज्ञः । असंमूढो ध्यानजसाक्षात्कारेण निर्गतमोहः। अत एव ब्रह्मवित् ब्रह्मभावस्य लब्धा । ब्रह्मभावं गत इत्यर्थः। ब्रह्मण्येव प्रत्यगद्वये व्युत्थानावस्थायामपि स्थितः । सर्वं ब्रह्मैवेति पश्यन्नित्यर्थः ॥ २० ॥ नन्वननुभूतात्मसुखेच्छया प्रसिद्धं बाह्यं सुखं त्यक्तुमशक्यमतो न प्रहृष्येदित्यसङ्गतमत आह—बाह्येति । बहिर्भवाः बाह्याः स्पर्शा विषयेन्द्रियसम्बन्धास्तेषु । असक्तात्मा अनासक्तचित्तः सन्नात्मनि प्रत्यगद्वयानन्दे सुषुप्तिकाले स्थित्वा 'यत्सुखं विन्दति लभते स तदेव सुखम् । विधेयापेक्षं पुंस्त्वम् । कस्तत्सुखं यो ब्रह्मयोगे ब्रह्मणि योगः समाधिस्तत्र युक्तो योजित आत्मा बुद्धिर्येन स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा । ब्रह्मविदित्यर्थः । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ' इति श्रुतेः । ब्रह्मयोगयुक्तात्मा तदेव सुखं विन्दतीति वक्तव्ये ब्रह्मविदेव तत्सुखमिति तस्य सुखाभिन्नत्वविवक्षया इदमुक्तम् । ननूभयत्र एकमेव सुखं चेत्कः सुप्तसमाधिस्थयोर्विशेष इत्याशंक्याह—सुखमिति । अक्षय्यं सुखं मोक्षस्तमश्नुते व्याप्नोति द्वैतादर्शनस्य तुल्यत्वादुभयत्रैकमेव सुखं तथापि योगी मूलाविद्याया नष्टत्वादक्षय्यं सुखमश्नुते न सुप्तः । अविद्यानुच्छेदात् । तथा च मोक्षसुखस्य मुख्यस्याप्यनुभूतत्वात्तदर्थं बाह्यं सुखं त्यक्तुं शक्यमित्यर्थः ॥२१
ननु सुषुप्तितुल्यस्य मोक्षसुखस्यार्थे कः प्राप्तमेव बाह्यं दिव्य-

**शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।**
**कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ २३**
**योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः।**
**स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४**
**लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।**
**छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५**
**कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।**
**अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६**
**स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।**
**प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ२७**

स्त्र्यन्नपानगीतवाद्यादिसुखं त्यजेदित्याशंक्य बाह्यसुखमनित्यत्वान्निन्दति-**ये हीति**। संस्पर्शजा विषयसम्बन्धजाः। दुःखयोनित्वे हेतुः-**आद्यन्तवन्त इति** । जाते पुत्रे यत्सुखं तत्तस्मिन्नष्टे नश्यति दुःखं च महत्प्रयच्छतीति तेषु भोगेषु बुधः परिपाकदर्शी न रमते ॥ २२ ॥ कः पुनर्मुख्यः सुखीत्याह-**शक्नोतीति**। इहैव जीवत्येव देहे प्राक्शरीरविमोक्षणात् यावद्देहपातं मया कामक्रोधौ जितावितिविस्रंभो न कर्तव्य इत्यर्थः । श्रुते दृष्टे अनुमिते वा विषये यो गर्धस्तृष्णारूपोऽतृप्तिश्च स कामः क्रोधस्तादृशे एव विषये द्वेषस्तौ कामक्रोधौ उद्भवो यस्य वेगस्य स रोमाञ्चहृष्टनेत्रवक्त्रलिङ्गोऽन्तःकरणप्रक्षोभरूपः कामोद्भवो वेगः। गात्रप्रकंपप्रस्वेदसंदष्टौष्ठपुटरक्तनेत्रादिलिंगः क्रोधोद्भवो वेगस्तं कामक्रोधोद्भवं वेगं सोढुं यः शक्नोति स एव युक्तो योगी मुख्यः सुखी च नान्यः ॥ २३ ॥ कोऽसौ योगी यो मुख्यः सुखीत्युक्तं तत्राह—**य इति**। **सुखं** विषयसंगजा प्रीतिः। **आरामः** प्रीतिहेतुः स्त्र्यादिभिः सह क्रीडा। **ज्योतिः** क्रीडोपकरणानां प्रकाशः। तदेतत्त्रयं यस्यान्तरेव सोऽन्तःसुखोऽन्तरारामोऽन्तर्ज्योतिश्च न त्विन्द्रियद्वारकमिति एवशब्दार्थः। य एवंभूतः स योगी किमतो यदेवं ब्रह्मनिर्वाणं गत्यप्राप्यपरमानन्दं ब्रह्म इहैवाधिगच्छति। यतो ब्रह्मभूतो जीवन्नेव ब्रह्मदर्शने ब्रह्मभावं गतः ॥ २४ ॥ **लभन्ते इति** । ऋषयः सम्यग्दर्शिनः। छिन्नद्वैधाश्छिन्नसंशयाः यतात्मानो जितचित्ताः ॥ २५ ॥ किंच **कामेति**। अभितो जीवतां मृतानां च विदितात्मनां ज्ञातात्मतत्त्वानाम् ॥ २६ ॥ एवं सम्यग्दर्शननिष्ठानां सद्योमुक्तिरुक्ता। कर्मयोगश्च संगफलत्यागेन ईश्वरप्रीत्यर्थमनुष्ठितः सत्त्वशुद्धिज्ञानप्राप्तिद्वारेण मोक्षाय भवतीत्यप्युक्तम्। अथेदानीं सम्यग्दर्शनस्यान्तरङ्गसाधनं ध्यानयोगं विस्तरेण वक्ष्यामीति तत्सूत्रभूतांस्त्रीन् श्लोकानुपदिशति-**स्पर्शानिति**। अत्रोत्तरार्धेन प्राणायाम उक्तः। स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यानिति प्रत्याहार उक्तः। भ्रुवोरन्तरे चक्षुः कृत्वेति धारणा उक्ता। विगतेच्छाभयक्रोध इति साधनभूताः फलभूताश्च द्विविधा यमा नियमाश्चोक्ताः । यतेन्द्रिय इति वितर्काख्यः संप्रज्ञातः, यतमान इति विचाराख्यः, यतबुद्धिरित्यानन्दास्मिताख्यौ, मोक्षपरायण इत्यसंप्रज्ञात उक्तः। शेषेण योगफलमिति विभागः । पाठक्रममननुरुध्यार्थक्रमेणाक्षरार्थः स्पष्टीक्रियते-तत्र विगतेच्छो विगतभयो विगतक्रोध इति संबन्धः । यो हि इच्छावान् स इष्टसिद्ध्यर्थं हिंसानृतस्तेयस्त्रीपरिग्रहानिच्छेदतो विगतेच्छपदेन तद्विपर्ययान् 'हिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' इतिसूत्रोक्तान्यमान् लक्षयति । तथा भयं स्वोच्छेदशंका तया शुद्धिम्रो न 'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः' इति सूत्रोक्तान्नियमान् स्वीकर्तुमिच्छेदतो विगतभय इत्यनेन तेषां ग्रहणम्। तथा क्रोधाक्रान्तो मैत्र्यादीन् भावयितुमशक्तश्चित्तप्रसादनं कर्तुं न शक्नोति तच्च 'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' इति सूत्रितम्। तत्र विगतक्रोधः शान्तप्रकृतिस्त्वात्सुखितेषु मैत्रीं परस्येष्टेन ममैवेष्टमिदं जातमिति भावयेत् तथा दुःखितेषु करुणां पुण्यवत्सु मुदितां पापवत्सूपेक्षां च भावयेत्। न चैतेन प्रसादनेन विना चित्तादर्शस्य नैर्मल्यं भवति। एवं साधनावस्थायां यमनियमचित्तप्रसादनानां सिद्ध्यर्थं विगतेच्छाभयक्रोधत्वमीप्सितम्। एवं फलावस्थायामपि तदीप्सितम्। तथाहि । संप्रज्ञातसमाधिफलभूतायां मधुमत्यां योगभूमौ स्थितं योगिनं प्रति स्त्रियः कामा उपतिष्ठन्ते तत्रापि विगतेच्छत्वमिष्टम्। तथाहि 'स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात्' इति सूत्रम्। स्थानिनो देवास्तैरुपनिमन्त्रणे इहास्यतां इमे रम्यावसथा इमारम्या रामा इमानि जरामरणहराणि रसायनानि इमे वयं किंकराः स्वपुण्यार्जितमिदं स्थानं त्वया भुज्यतामिति प्रार्थनायां क्रियमाणायां सङ्गो लिप्सा तत्र न कर्तव्या। नापि तल्लाभेनात्मनो महाभागत्वं देवप्रार्थ्यत्वं मत्वा गर्वोऽपि कर्तव्यस्तयोः संगस्मययोरनिष्टहेतुत्वादिति सूत्रार्थः । तथा भयमपि द्विविधं योगान्तरायजं वितर्कजं च। तत्राद्यम्-'व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः' 'दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसहभुवः' इतिसूत्राभ्यामुक्तं, स्त्यानमकर्मण्यता। अविरतिर्वैराग्यम्। अङ्गमेजयत्वं कम्पवायुः। वितर्का हिंसादयस्तज्जं च भयम्। आद्यस्य निवारणमीश्वरप्रणिधानेन। तथा च सूत्रितम्-'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च' इति। तत ईश्वरप्रणिधानात् । द्वितीयस्य

**यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः । विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८**

प्रतिपक्षभावनेन । तथाच सूत्रितम्–'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्' इति 'वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहमूला मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्' इति च। आदिपदादनृतस्तेयादयः। हिंसादयः प्रत्येकं कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधाः । तेऽपि प्रत्येकं लोभादिमूलकत्वेन त्रिविधाः । तेऽपि मृदुमध्यमाधिमात्रभेदेन प्रत्येकं त्रिविधाः । ते च मूलभूता वितर्कास्त्रयश्चत्वारः पञ्च अधिका वा त्रिस्त्रिगुणिता एकाशीतिरष्टोत्तरशतं पञ्चत्रिंशदधिकं शतं अधिका वा भवन्ति । शाखाप्रशाखाभेदेनानन्ताश्च । दुःखरूपं अज्ञानरूपं च अनन्तफलं येषां ते दुःखाज्ञानानन्तफला इत्यनया प्रतिपक्षभावनया ते निवर्तनीया इति । एवं यमनियमचित्तप्रसाधनप्रतिपक्षभावनैर्निरन्तरायं मृदूकृतचित्तो योगी विविक्ते देशे 'आसीनः संभवात्' इति न्यायेन स्थिरसुखमासनमभ्यासीत तत्र देशासने श्रूयेते—

'समे शुचौ शर्करवन्हिवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः। मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहा निवाताश्रयणे प्रयोजयेत्। त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य। ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि' इति। चक्षुरित्यत्र विसर्गलोपश्छान्दसः। त्रिरुन्नतं कटिवक्षकन्धराप्रदेशेषून्नतम्। ततो जितासनः प्राणायाममभ्यसेत् तेन हि मन्दगतौ प्राणे सति तदनुसारि मनोऽपि चाञ्चल्यं त्यजति । नो चेद्वायुविक्षेपेण विक्षिप्यते। तत्र प्राणजयप्रमाणम् 'प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत' । इति श्रुत्युक्तमेव संगृह्णाति ।' प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ' इति । प्राणापानौ समौ तुल्यौ ऊर्ध्वाधोगतिविच्छेदेन नासाभ्यन्तरचारिणौ कुम्भकेन कृत्वा ततो बाह्यान् बहिर्भवान् स्पर्शान् विषयसम्बन्धान् इन्द्रियद्वारा नित्यमन्तर्बुद्धौ क्रियमाणान् योगीन्द्रियाणां प्रत्याहरणेन तान् बहिरेव कुर्यात्। ततो विषयेभ्यो व्यावृत्तेषु करणेषु स्वप्नकाले इवान्तर्मनोमात्रेणावतिष्ठते इत्यर्थः। इमं प्रत्याहारं कर्तुमशक्तस्याविरक्तस्य का गतिरित्यत आह–**चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोरिति** । चशब्दो वाऽर्थे । चक्षुरेव वा भ्रुवोरन्तरे कुर्यात् खेचरीं मुद्रामभ्यसेदित्यर्थः। सा चोक्ता योगसारे–'लम्बिकोर्ध्वस्थिते गर्ते जिह्वां व्यावृत्य धारयेत्।

दृढासनाश्चिरं तिष्ठेन्मुद्रैषा खेचरी मता ।

भ्रूमध्यदृष्टिरप्येषा महादेवेन कीर्तिता 'इति ।

य एवं सर्वोऽपि बाह्ये विषये सूर्यादौ संयमो यथोक्तप्रत्याहारमनुष्ठातुमशक्तान् प्रत्येवोपदिश्यत इति ज्ञेयम् ॥ २७ ॥

**यतेन्द्रियेति** । यस्मिन् कस्मिंश्चित्स्थूले विषये सूर्ये तद्रश्मिषु वा विष्णुप्रतिमायां वाऽनाहतध्वनौ वाऽन्यत्र वा चक्षुराद्यन्यतमद्वारा मनो धारयेत्। तच्च मनस्तद्विषयाकारतां प्राप्तं तत्रैव स्थिराभ्यासेन विश्रान्तं स्वदेहमपि न पश्यति सेयं महाविदेहा नाम धारणा । अस्यां सिद्धायामिन्द्रियगणः स्वं स्वं विषयं न तु गृह्णाति । सोऽयं बहिर्विषयप्रत्याहारः पूर्वोक्तस्त्वान्तर इति भेदः । अत एव तयोस्तुल्यफलत्वं सूत्रितम् । 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्' इति । ततः अभ्यन्तरप्रत्याहारात् । तथा बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा तत्संयमात्प्रकाशावरणक्षय इति । यदा चित्तं देहमविस्मृत्यैव हठेन पुरःस्थितमूर्त्याद्याकारं क्रियते तदा सा चित्तस्य मूर्त्याकारतारूपा वृत्तिः कल्पिता । यदा तु निरवशेषेण देहं विस्मृत्य चेतः केवलं ध्येयाकारमात्रं भवति तदा सा महाविदेहा नाम धारणा । तस्या अपि फलं तदेव तत्संयमात्तस्यां चेतसो निग्रहात् प्रकाशावरणक्षयो भवति सोऽयं बाह्यविषयः समाधिः । वितर्काख्यो द्विविधः सवितर्कनिर्वितर्कभेदात् । तत्राद्यस्य लक्षणं सूत्रितम्–'शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का' इति। सवितर्का नाम समापत्तिः समाधिरित्यर्थः । यदा विष्णुप्रतिमादौ पूर्वापरानुसन्धानेन शब्दार्थोल्लेखेन च भावना प्रवर्तते तदा सवितर्का समापत्तिः । अस्मिन्नेवालम्बने पूर्वापरानुसन्धानेन शब्दार्थोल्लेखनमन्तरेण भावना प्रवर्तते तदा निर्वितर्का नाम समापत्तिः । तथा च सूत्रम्–'स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का'। स्मृतेः शब्दार्थस्मरणस्य परिशुद्धौ वर्जने सति भावयितुः स्वरूपेण शून्या तदाऽहमिदं भावयामीत्येवमाकारा वृत्तिरपि भावयितुर्नास्तीवेति भाति । यतोऽर्थमात्रनिर्भासा ध्येयार्थमात्रमस्यां भासते न त्वन्यदिति सूत्रार्थः । अस्यां सिद्धायां योगी जितेन्द्रिय इत्युच्यते । **जितमना इति** आभ्यन्तरप्रत्याहारपूर्वकं यदा मनःकल्पिते सूक्ष्मे विषये पूर्ववत् शब्दार्थोल्लेखपूर्वकं तद्वर्जं च मनसो भावना प्रवर्तते तदा ते उभे समापत्ती सविचारनिर्विचाराख्ये भवतः । तथा च सूत्रम्–' एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ' इति । अत्र सूक्ष्मविषयेतिग्रहणात्पूर्वस्यां स्थूलविषयत्वं गम्यते । एतयैव द्विविधवितर्कसमापत्त्यैव निर्विचारसमापत्तौ दृढायां योगी जितमना इत्युच्यते । यदा पुनश्चेतसो मूर्त्याकारतां परित्यज्य सत्त्वोद्रेकात् समष्टिमनोमयविषया अहमेवेदं सर्वोऽस्मीत्येवमाकारा भावना प्रवर्तते सोऽयं सानन्दः समाधिः । यदा तु तामपि भावनां परित्यज्य विषयवेदनमन्तरेणास्मी-

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति २९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु संन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ पर्वणि तु एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

श्रीभगवानुवाच ।
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः १

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २

त्येतावन्मात्राकारा भावना प्रवर्तते साऽस्मिता । अस्मिताहङ्कारयोर्भेदस्तु क्रमेण विषयवैमुख्यतदाभिमुख्यमात्रकृतः । यथैक एव पूर्वाभिमुखः पश्चिमाभिमुखश्चेति तद्वत् । अस्यामवस्थायां योगी बुद्धितो विविक्तस्य त्वंपदार्थस्य साक्षात्काराज्जितबुद्धिरित्युच्यते । तदेतदुक्तं-**यतेन्द्रियमनोबुद्धिरिति** । एतान्येव साधनानि गुणपर्वाण्युच्यन्ते । तथा च सूत्रम्-' विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ' इति । तत्र **विशेषाः** स्थूलभूतानि एकादशेन्द्रियाणि च । **अविशेषाः** पञ्च तन्मात्राणि अहङ्कारश्च । लिङ्गमात्रं महत्तत्वम् । अलिङ्गं प्रधानं, तत्र विशेषादविशेषं प्रविविक्षतो योगिनो दैनंदिनलयाभ्यासात्समनस्कानीन्द्रियाणि लीयन्ते स लयः । बहिर्मुखान्येव वा भवन्ति स विक्षेपः । एवं अविशेषेभ्यो लिङ्गमात्रं विविक्षतोऽपि लयविक्षेपौ स्तः । लिङ्गमात्रात्परं पुरुषं प्रविविक्षतोऽपि तौ स्तः । तावेतौ लयविक्षेपौ हेयौ श्रूयेते-' लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम् । यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्' इति । एतेषु त्रिषु लीनेष्वाद्यः सुप्त एव । द्वितीयो विगलितदेहाहङ्कारत्वाद्विदेहसंज्ञः । तृतीयः प्रकृतिलय इति । एतयोः समाधिर्गौणः । अत एव सूत्रितम्—' भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्' इति । भवप्रत्ययो जन्मान्तरहेतुरेषां समाधिर्भवति । यद्वा । जन्मान्तरे एतेषां जन्मनैव समाधिसिद्धः पक्षिणामाकाशगमनासिद्धिवद्भवतीति सूत्रार्थः । सर्वथाऽपि तेषां सद्योमुक्तिर्नास्तीति सिद्धम् । यदा तु अस्मितामात्रस्यापि निर्विकल्पे चिन्मात्रे लयो भवति तदाऽयं विद्वान्कैवल्यं धर्ममेव समाध्याख्यमनुभवति । यमाधिकृत्य श्रूयते-' क्षणमेकं क्रतुशतस्य चतुःसप्तत्या यत्फलं तदवाप्नोति' इति । अयमेव मोक्षाख्यः । परमयनं प्रेष्ठं स्थानं यस्य स मुनिर्मोक्षपरायण इत्युच्यते । यतोऽस्यामेवावस्थायां योगी जीवन्मुक्त इत्युच्यते । विगतेच्छाभयक्रोध इति पादः प्रागेव व्याख्यातः । य एवंभूतः स सदा मुक्तः बन्धप्रतीतिकालेऽपि स मुक्त एवास्ति । अज्ञानमात्रव्यवधानान्मुक्तेः ।

एतेनाहंकारादेर्बन्धस्य कालत्रयेऽपि असत्त्वोक्त्या मिथ्यात्वं दर्शितम् ॥ २८ ॥ एवं समाहितचित्तेन किं विज्ञेयमित्युच्यते-**भोक्तारमिति** । सोपाधिकेन रूपेण यज्ञानां तपसां च कर्तृरूपेण देवतारूपेण च भोक्तारम् । तथा सर्वेषां भूतानां हिरण्यगर्भादीनामपि महान्तं व्यापकमीश्वरमीशितारमन्तर्यामिणम् । सुहृदं सर्वभूतानां प्राणिनां प्रत्युपकारनिरपेक्षतयोपकारिणं सर्वप्रत्ययसाक्षिणं नारायणं मां प्रत्यगभेदेन ज्ञात्वा साक्षात्कृत्य तद्भावं प्राप्य शान्तिमनुपाध्यवस्थां निरुपाख्यां कैवल्यसंज्ञां ऋच्छति प्राप्नोति । एवं च सोपाधिब्रह्मभावप्राप्तिपूर्वकैव निरुपाधिप्राप्तिरिति गम्यते यथोक्तं वार्तिकसारे—

सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते ॥
सोपाधिकः स्यात् सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः ॥
जक्षन् क्रीडन् रतिं प्राप्त इति सोपाधिकस्य तु ॥
छान्दोग्ये सर्वकामाप्तिः सार्वात्म्यात्स्पष्टमीरिता ॥
अहमन्नं तथाऽन्नादः श्लोककार्यप्यहो अहम् ॥ '
इति तत्त्वविदः सामगाने सर्वात्मता श्रुता ॥
' अत्रापि चक्रदृष्टान्तात् सोपाधिस्तत्त्वविच्छ्रुतः ।
अपूर्वानपराद्युक्त्या श्रोष्यते निरुपाधिकः ॥ ' इति

॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे श्रीमद्भगवद्गीतार्थप्रकाशे पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ पर्वणि ॥ २९ ॥

—३०—

पूर्वाध्यायान्ते सूत्रितं ध्यानयोगं विवरीतुमिच्छंस्तत्राधिकारहेतुत्वात्कर्मयोगं तावत्स्तौति द्वाभ्याम्-**अनाश्रित इति** । यः कर्मणां फलमनाश्रितोऽनपेक्षमाणः कार्यमवश्यकर्तव्यं नित्यं कर्म करोति स एव फलसंकल्पत्यागात् संन्यासी च योगी च भवति । न तु निरग्नियों विधितः श्रौतस्मार्तकर्मत्यागी। स एव संन्यासी नापि अक्रियस्त्यक्तवाङ्मनःकायक्रिय एव वा योगीति॥१॥ केन साम्येनायं संन्यासी योगी चेति स्तूयते अत आह—**यमिति** । यो हि

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४
उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५
बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवाऽऽत्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६
जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८
सुहृन्मित्रार्युदासीन-मध्यस्थ-द्वेष्य-बन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९
योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १०
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११

त्यक्तसर्वसंकल्पः स संन्यासी तादृशश्च ध्यानयोगी अतो न तयोर्भेदः ' निःसंकल्पस्तटस्थस्थिरेद्देतन्मोक्षलक्षणम् ' इति मैत्रायणीयोपनिषच्छ्रुतस्य मोक्षलक्षणस्य निःसंकल्पत्वस्योभयत्रापि तुल्यत्वात् । अतोऽयमपि कर्मयोगी फलसंकल्पत्यागान्निःसंकल्पत्वसाम्यात् संन्यासी योगी च भवतीति स्तूयत इत्यर्थः । योगाधिकारसिद्धये निष्कामकर्माण्यनुष्ठेयानीति श्लोकद्वयतात्पर्यार्थः ॥ २ ॥ तत्र कर्मानुष्ठानस्यावधिमाह— **आरुरुक्षोरिति** । यावद्धि योगं यमनियमाद्यष्टाङ्गोपेतमत्यौत्कण्ठ्यादारोढुमिच्छति तावत्कर्माण्यनुतिष्ठेत् तस्यारुरुक्षोर्मुनेरारुरुक्षाकारणं तीव्रवैराग्योत्पादनद्वारा कर्म भवति तस्यैव योगारूढस्य योगानुष्ठाने प्रवृत्तस्य विक्षेपासहस्य योगारोहे कर्मणां शमः संन्यासः कारणमुच्यते । नहि कर्मसु व्यापृतोऽनन्यचित्ततया योगमनुष्ठातुमीष्टे ॥ ३ ॥ ननु योगपदेन मुख्यया वृत्त्या निर्बीजः समाधिरुच्यते तमारूढस्य कर्मणां त्यागः स्वतःसिद्धत्वादविधेय इत्याशंक्य प्रकृते योगारूढपदस्यार्थमाह-**यदा हीति** । इन्द्रियार्थेषु शब्दादिषु रमणीयेषु कर्मसु च तत्प्राप्तिसाधनेषु तद्दर्शनमनु न सज्जते वैराग्यदार्ढ्यात्सक्तो न भवति । नापि मनसा इदं मे भूयादेतदर्थमहमिदं कर्म कुर्यामिति संकल्पयति । तादृशश्च सर्वसंकल्पसंन्यासी यदा भवति तदा योगारूढ इत्युच्यते । यथा तीव्रबुभुक्षयोपेतोऽन्यत्र नीरागो व्यासंगान्तरं त्यक्त्वा भोजनारूढ एव भवति तथा तीव्रारुरुक्षावान् सर्वत्र वीतरागस्त्यक्तसर्वकर्मा योगारूढ एव भवति तावत् कर्माणि कर्तव्यानि ततः परं त्याज्यानीत्यर्थः ॥४॥ **उद्धरेदिति** । एवं क्रमेण कर्मद्वारा चित्तशुद्धिं सम्पाद्य योगारूढोऽभ्यासवैराग्यबलेनात्मानमुद्धरेत् । हि यस्मादात्मैवात्मनो बन्धुर्न पुत्रादय उद्धर्तुं क्षमाः । आत्मैव रिपुरात्मनः न त्वन्ये शत्रवः संसारे मज्जयितुमेनं क्षमा इत्यर्थः ॥५॥ आत्मा मनः आत्मना मनसा अनात्मनोऽजितचेतसः आत्मा मन एव शत्रुः ॥६॥ मनसो जये फलमाह—**जितात्मन इति** । शीतोष्णादिषु प्राप्तेषु जितात्मनो निर्विकाराचित्तस्यात्मा चित्तं परमुत्कर्षेण समाहितः समाधिं प्राप्तो भवति । अतः समाधिसिद्ध्यर्थं मनो जेतव्यमेवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ समाधिसिद्धेरपि किं फलमत आह—**ज्ञानेति । ज्ञानं** शास्त्रोपदेशजा बुद्धिः । **विज्ञानं** शास्त्रार्थध्यानजः प्रमारूपोऽनुभवस्ताभ्यां तृप्तः संजातालंप्रत्यय आत्मा चित्तं यस्य स **ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा** । यतस्तृप्तात्माऽतः कूटस्थोऽप्रकंप्यः संसारतापानास्कन्दितो भवतीति समाधिफलम् । अस्य लोकप्रसिद्धं लक्षणमाह—**विजितेन्द्रिय इति । समलोष्टाश्मकांचन इत्येवं**विधो योगी स **युक्तः** प्राप्तयोग इत्युच्यते विद्वद्भिः ॥ ८ ॥ समत्वमेव स्तौति—**सुहृदिति । सुहृत्** प्रत्युपकारमनपेक्ष्योपकर्ता । **मित्रं** स्नेहवान् । **अरिः** शत्रुः, **उदासीन** उभयत्र पक्षपातशून्यः । **मध्यस्थ** उभयहितैषी । **द्वेष्य** आत्मनोऽप्रियः । **बंधुः** संबंधी । तेषु साधुषु पुण्यकृत्सु पापेषु पापाचारेषु कस्य किं कर्मेत्यनालोचयन् तेषु सर्वेषु यः समबुद्धिः स विशिष्यते ॥ ९ ॥ **योगीति** । योगी योगाभ्यासपरो रहसि एकान्ते स्थितः सन् आत्मानं बुद्धिं युञ्जीत समादध्यात् सततमिति नैरन्तर्यमुक्तम् । निराशीर्योगसिद्धेरन्यदप्रार्थयानस्तदेकनिष्ठ इति यावत् तेन सत्कार उक्तः । **एकाकी** असहायः, संन्यासीत्यर्थः । यतौ स्थिरीकृतौ चित्तं मन आत्मा सेन्द्रियं शरीरं येन स **यतचित्तात्मा** । तथा **अपरिग्रहः** एकाकित्वेऽपि कन्थापुस्तकादिबहुपरिग्रहशून्यः ॥ १० ॥ योगं युंजीतेत्युक्तं तत्कथमित्याकांक्षायां तदंगान्यासनादीन्याह—**शुचौ देशे इत्यादिना** । शुचौ स्वभावतः संस्कारतो वा पुण्ये देशे स्थाने प्रतिष्ठाप्य सुस्थितं कृत्वा स्थिरं निश्चलं आस्तेऽस्मिन्नित्यासनं स्थंडिलं निश्चलमित्यनेन मृन्मयमेव स्थण्डिलं न तु काष्ठमयं पीठम् । **आसनमिति** परासनव्यावृत्त्यर्थं **नात्युच्छ्रितं** नात्युच्चं **नातिनीचं** चैलाजिनकुशा उत्तरे उपर्युपरि यस्य **तच्चैलाजिनकुशोत्तरं** अजिनादुपरि चैलं, कुशेभ्य उपरि अजिनं, स्थण्डिलस्योपरि कुशाः इत्यर्थः ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४
युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५
नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७
यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति २०

---

**प्रतिष्ठाप्य** किं कुर्यादिति तत्राह—**तत्रेति** । तत्रासने पद्मस्वस्तिकाद्यन्यतमेनासनेनोपविश्य । यताः निगृहीताश्चित्तस्य क्रिया विषयाणां स्मरणानि इंद्रियक्रियास्तेषां ग्रहणं येनासौ **यतचित्तेंद्रियक्रियः** । अत एव मनो बाह्याभ्यन्तरविषयानुपरक्ततया एकं ध्येयमेव प्रत्यक्तत्वमग्रे यस्य स्फुरति नान्यत् तदेकाग्रं वृत्त्यन्तरानन्तरितब्रह्मैकाकारवृत्तिप्रवाहि कृत्वा **आत्मविशुद्धये** चित्तशुद्ध्यर्थं योगं वृत्तिप्रवाहस्यापि निरोधं युञ्ज्यादनुतिष्ठेच्चित्तस्य स्थैर्यतापादनेन ॥ १२ ॥ आसन उपविश्येत्युक्तं तत्कथमित्यत आह—**सममिति** । कायः शरीरमध्यं शिरो ग्रीवा च कायशिरोग्रीवं समं मूलाधारमारभ्य मूर्धान्तं अवक्रं अचलं निष्कम्पं धारयन् स्थिरो भूत्वा सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वमिति नासिकाग्रवीक्षणं न विधीयते किंतु निमीलने लयभयमुन्मीलने विक्षेपभयमतो दिशोऽपि स्त्र्यादिविक्षेपकविषयदर्शनभयादनवलोकयन्नर्धोन्मीलितनेत्र आसीतेति उत्तरेणान्वयः ॥ १३ ॥ एवमासने उपविष्टेन यत्कर्तव्यं तदाह—**प्रशान्तात्मेति** । योगयुक्तो योगी **ब्रह्मचारिव्रते** भैक्षचर्यायां **स्थितः** संन्यासीत्यर्थः **मच्चित्तो** मयि परमे चित्तं यस्य स एवंभूतो मय्येव मनः **संयम्य मत्परः आसीत** स प्रशान्तात्मा भूत्वा **विगतभीर्भ**वतीति योजना । भवति हि कश्चिदात्मनोऽन्यमीश्वरं मत्वा तच्चित्तस्तमेवाराध्यत्वेनाभिगतस्तत्रैव च मनसः संयमं करोति, न तु स तत्परस्तमेव परमपुरुषार्थतया प्राप्यत्वेन मन्यते, किंतु तत्प्रीत्यान्यदेव फलं कामयते । अयं तु मच्चित्तो मय्येव मनः संयम्य मत्परो मामेव सर्वान्तरं प्रत्यगद्वयं कामयत इति । यतो मत्परोऽत एव प्रशान्तात्मा प्रकर्षेण बाह्याभ्यन्तरविषयत्यागेन समाधिसुखास्वादत्यागेन च शान्त उपरतः आत्मा चित्तं यस्य सोऽस्मिमात्रावशेषो विगतभीर्भवति । इयमेवावस्था सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिरिति ब्रह्मसाक्षात्कार इति च विकल्प्यते । सर्वथा तस्यां सिद्धायां पुरुषः परमपुरुषार्थभाग्भवति ॥ १४ ॥ अस्याः फलमाह—**युञ्जन्निति** । एवमनेन प्रकारेण सदा निरन्तरं दीर्घकालं चात्मानं मनो युञ्जन् समादधानो योगी नियतं ख्यातिफलादपि निगृहीतं मानसं येन स **नियतमानसः** शान्तिं परमवैराग्यबलात् ख्यातिमपि निरुध्य निर्विकल्पं पदं निर्वाणं मोक्षस्तदेव परमा निष्ठा यस्याः शान्तेस्तां मत्संस्थां मय्येव संस्था एकीभावेनावस्थानं समाप्तिर्वा यस्यास्ताम**धिगच्छति** प्राप्नोति । ख्यातिफलं च **सूत्रकृता** दर्शितं 'प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघसमाधिः' इति, 'तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्' इति, 'सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रात्सर्वज्ञातृत्वं सर्वभावाधिष्ठातृत्वं च' इति सूत्रत्रयेण । प्रसंख्याने ध्याने । अकुसीदस्य वणिज इव फलानिच्छोः सर्वथा विवेकख्यातिरेव भवति तस्याश्च फलं धर्ममेघः समाधिः स च प्रागेव व्याख्यातः । तद्वैराग्यं परं परसंज्ञं पुरुषख्यातेः फलम् । तस्य लक्षणं गुणेषु दिव्यादिव्यविषयेषु वैतृष्ण्यम् । एतस्यैव हि नान्तरीयकं फलं कैवल्यमिति योगा वदन्ति । तृतीयसूत्रोक्तं फलं सार्वज्ञ्यादिकं त्वभिप्रेत्य श्रूयते—'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः' इत्यादिकम् ॥ १५ ॥ एवं योगाभ्यासनिष्ठस्याहारादिनियममाह द्वाभ्याम्—**नात्यश्नत इति** । एकान्तमतिशयेन जाग्रत इत्यत्राप्यतिशब्दो योज्यः ॥१६॥ युक्ताः परिमिता आहारादयो यस्य स तथा ॥ १७ ॥ निर्वाणपरमां शान्तिं प्राप्तस्य लक्षणान्याह—**यदेत्यादिभिः** षड्भिः । **विनियतं** विशेषेण एकाग्रताभूमेरपि निरुद्धमात्मनि प्रत्यगात्मन्येवावतिष्ठते न त्वस्मितादिरूपेण उद्रिच्यते तदा योगी सर्वेभ्यो जाग्रत्स्वप्नसबीजसमाधिप्रपञ्चस्थितेभ्यः । ल्यब्लोपे पञ्चमी । सार्वात्म्यप्राप्त्यैव तान् प्राप्य तेषु निःस्पृहो भवति तदा युक्तो निर्विकल्पक इत्युच्यते ॥ १८ ॥ एकाग्रतावस्थायां योगिचित्तस्योपमामाह—**यथेति** । **नेंगते** न चलति तद्वत् यतं च तच्चित्तं च यतचित्तं तस्य एकाग्रतां प्राप्तं चित्तं निवातप्रदीपवन्न चलतीत्यर्थः । आत्मनो योगं समाधिं युञ्जतोऽनुतिष्ठतः ॥ १९ ॥ **यत्रेति** । एवं चित्तमेकाग्रीभूतं सत् योगसेवया निरुद्धं यत्र यस्यामवस्थायामुपरमते विलीनं

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा २३

सङ्कल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६

भवति, यत्र वा आत्मना चित्तेनात्मानं निर्विकल्पं पश्यन्नात्मनि तुष्यति न बाह्यार्थे तुष्टिं भजते ॥ २० ॥ किंच—**सुखमिति** । आत्यन्तिकमनन्तं यत्सुखं तत्केवलं बुद्धिग्राह्यं सौषुप्तसुखवद्यतोऽतीन्द्रियमिंद्रियागोचरं यत्र सुखे स्थितोऽयं न वेत्ति वेद्याभावान्न किंचिदनुभवति नापि तत्त्वतश्चलति । बुद्धितादात्म्याध्यासकाले चलतीवेति भाति परन्तु तत्त्वतो न चलति । तथा च श्रुतिः—'ध्यायतीव लेलायतीव' इतीवशब्दं प्रयुञ्जाना ध्यानादेस्तात्त्विकत्वं दर्शयति । बुद्धौ ध्यायन्त्यां ध्यायतीवेति लेलायन्त्यां लेलायतीवेति श्रुत्यर्थः । यद्वा । तत् सुखं यत्रायं न चैव वेत्ति किमपि नैवानुभवति यत्रेत्यादि भिन्नं वाक्यम् ॥ २१ ॥ दुःखेन शस्त्रपातादिलक्षणेन गुरुणा महता ॥ २२ ॥ **तमिति** । यत्रोपरमते चित्तमित्यादिना उक्तलक्षणं तं दुःखसंयोगस्याप्यन्तःकरणसम्बन्धस्य वियोगमेव सन्तं विरुद्धलक्षणया योगसंज्ञितं विद्यात् । योगफलमुपसंहृत्य पुनर्निश्चयानिर्वेदयोः साधनत्वविधानपूर्वकं तमेव शतकृत्वोऽपि पथ्यं वादितव्यमिति न्यायेन विधत्ते—**स इत्यादिना** । स योगो निश्चयेनाध्यवसायेनानिर्विण्णं निर्वेदरहितं चेतो यस्य तेन योक्तव्योऽभ्यसनीयः । यद्वा 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्' इति श्रुतिविहितं श्रुत्यन्तरदृष्टं श्रद्धावित्तपदोपेतं शमादिषट्कमत्र क्रमतो विधीयते । तत्र निश्चयेनेति गुरुवेदवाक्यादौ फलावश्यंभावनिश्चयलक्षणा श्रद्धा अत्र निश्चयपदेन गृह्यते । तथा निर्विण्णचेतसेति वैराग्येण द्वन्द्वसहिष्णुत्वलक्षणा तितिक्षा विधीयते इति ज्ञेयम् ॥ २३ ॥ अथ शमदमोपरमसमाधानानि क्रमेण श्लोकद्वयेन विधत्ते—**संकल्पेति** । संकल्प इदं मे भूयादिति चेतोवृत्तिस्तत उद्भवो येषां तान् कामान् काम्यमानान् विषयानशेषतो वासनोच्छेदपूर्वकं संकल्पनिरोधेन त्यक्त्वा । एतेनान्तरिन्द्रियनिग्रहलक्षणः शम उक्तः । बाह्येन्द्रियनिग्रहलक्षणं दममाह—**मनसैवेति** । विषयदोषदर्शिना मनसैव सर्वतः सर्वप्रकारेण श्रोत्रादिकमिन्द्रियग्रामं समन्ततः सर्वेभ्यो विषयेभ्यो विनियम्य उपरमेदित्युत्तरेणान्वयः ॥ २४ ॥ **शनैः शनैरिति** । भूमिकाजयक्रमेण

दिव्यादिव्यविषयेभ्य उपरमेत् व्यावृत्तो भवेत् । कथम् । धृतिगृहीतया बुद्ध्येति । धृतिः—

'धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी'

इत्युक्तलक्षणा । तया गृहीतया वशीकृतया बुद्ध्या उपरमेत् । तथा एवमुपरतं मनः आत्मनि स्वरूपे संस्था स्थितिर्यस्य न तु दृश्ये द्रष्टरि वा तत्तथा आत्मैकाकारमेकाग्रमित्यर्थः । द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थं 'सर्वार्थतैकार्थतयोः क्षयोदयौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः' इति सूत्रितामैकाग्र्यं प्रापयेत् । सूत्रार्थस्तु अहमिदं पश्यामीत्यनुभवे हि द्रष्टा दृश्यं दर्शनं च भासते । तत्र दर्शनभानमप्रत्याख्येयमतो द्रष्टरि दृश्ये चोपरक्तं चित्तं सर्वार्थमिति । ननु दर्शनोपरक्तताऽपि सर्वार्थतायां गणिता । तदभावे चित्तस्य नाशापत्तेः । द्रष्टृदृश्योपरागाभावे तु एकार्थं तदुच्यते यथा स्वप्ने । तत्र हि दृश्यं नास्तीति पामराणामपि प्रसिद्धम् । द्रष्टाऽपि नास्ति । तदा इन्द्रियाणामभावात् । 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्ता' इति श्रुत्यैव भोक्तृत्वस्येन्द्रियसन्नियोगशिष्टत्वात् । किंच द्रष्टृदृश्यवासनावासितं चित्रपटसदृशमेकं मन एवास्ति । तच्च स्वयंज्योतिषा पुरुषेण भास्यमानं जाग्रद्वत्स्वप्नेऽपि द्रष्टृदृश्योपरागं प्रकाशयति । तद्वासनावासितत्वात् । एवं सति यदा सर्वार्थतायाः क्षयः एकार्थताया उदयश्च तदा चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामो भवतीति । तदेवमात्मसंस्थं मनः कृत्वेति संप्रज्ञातसमाधिरुक्तः । तत्रापि पूर्वाभ्यासवशाच्चित्तस्य द्रष्टृदृश्योपरागो वासनामयो भातीति तन्निवारणेन असंप्रज्ञातसमाधिमाह—**न किंचिदपि चिन्तयेदिति** । ध्यातृध्यानध्येयविभागमपि न स्मरेत् किंतु अखण्डैकरससंविदात्मना सुषुप्तवत्तिष्ठेदित्यर्थः ॥ २५ ॥ शनैःशनैरित्येतं श्लोकं व्याचष्टे—**यतो यत इति त्रिभिः** । यतो यतो हेतोर्यं यं विषयं प्रहर्तुं मनो निश्चरति बहिर्गच्छति ततस्ततस्तत्र तत्र दोषदर्शनेन ततस्ततो विषयात् एतन्मनो नियम्य प्रत्याहृत्य आत्मनि स्वरूपे एव वशं नयेत् पर्यवस्थापयेत् । एतेन पूर्वार्धं व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

**प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।**
**उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७**
**युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः ।**
**सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८**

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९**
**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।**
**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३०**

एवमात्मवशे मनसि किं स्यादित्याशंक्याह—**प्रशान्तेति** । हि यस्मात् एनं प्रशान्तमनसं प्रकर्षेण उपरतचेतसं योगिनं एकाग्रताभूमौ उत्तमं सुखं संप्रज्ञातसमाधिफलभूतं उपैति । भौतिकानां बाह्यानां मानोरथिकानामान्तराणां च विषयाणां त्यागात् शान्तरजसं प्रक्षीणमोहादिक्लेशं ब्रह्मभूतं सद्वस्तुरूपम् । अकल्मषं धर्माधर्मवर्जितम् । यथोक्तं **योगभाष्ये**—'यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति कर्मबन्धनानि श्लथयति निरोधमभिमुखीकरोति क्षिणोति च क्लेशान् स संप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते' इति । एतेनात्मसंस्थं मनः कृत्वेति व्याख्यातम् ॥२७॥ अस्य फलमाह—**युञ्जन्निति** । एवमनेन प्रकारेण योगी आत्मानं मनो युञ्जन् समादधानः विगतकल्मषो निरस्ताविद्यादिक्लेशः सुखेन अनायासेन ब्रह्मसंस्पर्शं निर्विशेषं ब्रह्मणा ऐक्यं त्रिविधोपाधिप्रविलयात् अश्नुते प्राप्नोति । कीदृशं ब्रह्मसंस्पर्शम् । अत्यन्तं अन्तो द्रष्टृदृश्यभावेन परिच्छेदस्तमतिक्रान्तं निर्विशेषं सुखं परमानन्दैकरूपम् । एतेन न किंचिदपि चिंतयेदिति चतुर्थपादो व्याख्यातः ॥ २८ ॥ द्विविधस्यापि योगस्य फलमाह—**सर्वेति** ।

'सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते ।
सोपाधिकः स्यात्सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः ।'

इति वार्तिकोक्तरीत्या संप्रज्ञाते आत्मनः सार्वात्म्यमनुभवन्योगी सर्वेषु भूतेषु उपादानतया स्थितं आत्मानं ईक्षते पश्यति।तथा असंप्रज्ञाते सर्वाणि भूतानि ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानि आत्मन्येकतां गतानि रज्ज्वामिवाध्यस्तसर्पदण्डधारादीनि तद्वत्पश्यति । योगयुक्तात्मा योगेन समाहितचित्तः । अस्यैव व्युत्थानावस्थामाह—**सर्वत्रेति** । सर्वेषु ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु विषमेषु भूतेषु समं निर्विशेषं ब्रह्मात्मैकत्वविषयं दर्शनं यस्य स सर्वत्रसमदर्शनः । तथा च श्रुतयः-

'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।'

'सर्वस्यात्मा भवति'। 'ब्रह्म दाशा ब्रह्म दासा ब्रह्मेमे कितवा उत'। 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इत्याद्य एतमर्थं प्रतिपादयन्ति । यत्तु यो योगयुक्तात्मा यो वा सर्वत्र समदर्शनः स आत्मानमीक्षत इति योगिसमदर्शिना वाऽऽत्मेक्षणाधिकारिणावुक्तौ । यथा हि चित्तवृत्तिनिरोधः साक्षिसाक्षात्कारहेतुस्तथा जडविवेकेन सर्वानुस्यूतचैतन्यपृथक्करणमपि नावश्यं योग एवापेक्षित इति तन्न । 'समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' । 'ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः' इत्यादिश्रुतिभिः समाधिध्यानापरपर्याययोगस्यैवात्मदर्शनहेतुत्वप्रतिपादनात् । 'तत्कारणं सांख्ययोगाभिपन्नं विद्ययेतां योगविधिं च कृत्स्नम्' इति लिंगाच्च ज्ञानयोगयोः समुच्चयावगमात् । न च श्रौतं यौक्तिकविवेकमात्राज्जडाजडयोर्देहात्मनोः पृथक्करणं संभवति । सोपाधिकस्य भ्रमस्य उपाधिनिवृत्तिमन्तरेण निवृत्त्यसंभवात् । आदर्शाद्यनिवृत्तावपि प्रतिबिम्बादिभ्रमनिवृत्त्यापत्तेः । अत एवाधिष्ठानज्ञानदार्ढ्ये सति तत्र कल्पितस्य चित्तस्य तद्दृश्यस्य चादर्शनमनायासेनैवोपपद्यत इति निरस्तम् । योगं विनाऽधिष्ठानज्ञानस्यैवासंभवात् । यदाह **दक्षः** ।

'स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि यथा घटम्' इति ।

यत्तूक्तं भगवत्पूज्यपादैः—'ब्रह्मविदः क्वापि योगापेक्षां न व्युत्पादयांबभूवुः' इति । तद्यथातो ब्रह्मजिज्ञासा इत्यत्राथशब्दसूचितमुमुक्षुविशेषणभूतसाधनचतुष्टयान्तर्गतं शमाद्युपेयसमाधिमदृष्ट्वोक्तमिति न दोषः । द्वौ क्रमाविति वसिष्ठवाक्यतात्पर्यं तु परस्परनिरपेक्षमार्गद्वयोपगमे 'नान्यः पन्था' इति श्रुतिबाधापत्त्या प्रतिपत्तिक्रमभेदमात्रपरतया प्रागेव वर्णितमिति दिक् । किञ्च योगप्रकरणे योगानपेक्षमार्गान्तरप्रतिपादनमसंगतं । न च तत्सूचकोऽत्र कश्चिच्छब्दो वर्तते । संभवति वा उक्तयुक्तेरतो यो वा समदर्शन इति वापदाध्याहारोऽप्यप्रकृत इति दिक् ॥२९॥ अस्यात्मैकत्वदर्शनस्यापि फलमाह—**यो मामिति** । सर्वत्रास्मच्छब्दः प्रत्यगात्मपरः यो योगी आत्मानं सर्वत्र पश्यति सर्वं चात्मनि पश्यति तस्य योगिनः ज्ञात आत्मा न प्रणश्यति अदर्शनं न गच्छति ज्ञात आत्मा न पुनस्तिरोभवति । सकृन्नष्टस्य मूलाज्ञानस्य बीजाभावेन पुनरुदयासंभवादित्यर्थः । ननु कार्यकारणसङ्घाताभिमानिना शुक्तिरूप्यवद्ब्रह्मण्यध्यस्तेन तदभिमानत्यागपूर्वकं ज्ञातं स्वाधिष्ठानभूतं ब्रह्म मा तिरोधायि बुद्धेस्तत्त्वपक्षपातित्वात् । ब्रह्मदृष्ट्या तु मुक्तजीवस्य निरन्वयोच्छेदो भवतीत्याशंक्याह—**स च मे न प्रणश्यतीति** । स च विद्वान्मे मम प्रणश्यति न तिरोभवति मदभिन्नत्वात् । भवेदेतदेवं यदि जीवो मयि अध्यस्तो वा मम विकारो वा भवेत् तदा निर-

**सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।**
**सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१**
**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२**
**अर्जुन उवाच ।**
**योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।**
**एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥**
**चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।**
**तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४**
**श्रीभगवानुवाच ।**
**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।**
**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५**
**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।**
**वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६**
**अर्जुन उवाच ।**
**अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।**
**अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति३७**
**कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।**
**अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८**
**एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।**
**त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते॥ ३९**
**श्रीभगवानुवाच ।**
**पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।**
**न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४०**
**प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।**
**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१**

न्वयोच्छेदं प्राप्नुयात् । अहमेव तु सः। 'तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादिशास्त्रात् तस्मान्मुक्तमुक्तः स च मे न प्रणश्यति इति ॥ ३० ॥ यस्मात्सर्वात्मैकत्वदर्शी अहमेव अतो नास्य मोक्षः प्रतिबध्यत इत्याह-**सर्वभूतेति** । सर्वोपादानतया सर्वेषु भूतेषु सत्तारूपेण स्फुरणरूपेण च स्थितं मां परमात्मानमेकत्वं जीवब्रह्मणोरैक्यमास्थितः सन् भजति निर्विकल्पेन समाधिना सेवते स योगी व्युत्थानदशायां प्रारब्धकर्मवशात् बाधितानुवृत्त्या देहमारूढः सर्वथा सर्वप्रकारेण याज्ञवल्क्यादिवत्कर्मत्यागेन वा वसिष्ठजनकादिवद्विहितकर्मणा वा दत्तात्रेयादिवन्निषिद्धकर्मणा वा वर्तमानोऽपि व्यवहरन्नपि मय्येव वर्तते न मत्तश्च्युतो भवति । यतो देवेभ्योऽपि नास्य भयमिति श्रूयते–'तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति' इति च । नेत्यव्ययमप्यर्थे । देवा अपि तस्य ब्रह्मविदः अभूत्यै अनैश्वर्याय न ईशते न समर्था भवन्ति यतोऽयमेषामात्मेति श्रुत्यर्थः । स न पुनः संसारी पूर्ववद्भवतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ यद्यपि निषिद्धकर्मणाऽप्यात्मविन्न बध्यते । तथापि शीलवानेव योगी श्रेष्ठ इत्याह—**आत्मौपम्येनेति** । यथा स्वस्य सुखमिष्टं दुःखमनिष्टं तद्वत्परस्यापीति बुद्ध्या योऽन्यस्मै दुःखं न प्रयच्छति सोऽहिंसकः परमयोगी मत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ साम्ययोगमशक्यं मन्वान उपायान्तरबुभुत्सयाऽर्जुन उवाच-**योऽयमिति** । योऽयं योगस्त्वया साम्येन प्रोक्तोऽहिंसाप्राधान्येन संन्यासपूर्वकतया वर्णितः । हे मधुसूदन, तस्य योगस्य सर्ववृत्तिनिरोधरूपस्य स्थिरां स्थितिं न पश्यामि । मनसश्चञ्चलत्वादिति शेषः ॥ ३३ ॥ एतदेवोपपादयति–**चञ्चलं हीति** । प्रमाथि बहुदस्युवदेकस्य प्रमथनशीलम् ॥ ३४ ॥ मनसो दुर्ग्रहत्वमभ्युपेत्य भगवानुवाच यद्यप्येवं तथाऽप्यभ्यासवैराग्याभ्यां समुच्चिताभ्यां दुर्निग्रहमपि मनो निगृह्यते ॥ **तत्राभ्यासो** नाम कस्यांचिच्चित्तभूमौ समानप्रत्ययावृत्तिः । **वैराग्यं** तु दृष्टादृष्टेष्टभोगेषु ससाधनेषु दोषदर्शनेन वैतृष्ण्यम् । तत्र यथा कैदारिकः केदारेषु कुल्याजलं संचारयन्नेकस्य द्वारं पिधायापरस्योद्घाटयति तद्वद्वैराग्येण विषयस्रोतः खिलीक्रियते अभ्यासेन कल्याणस्रोत उद्घाट्यत इति द्वयोरप्यावश्यकत्वम् । तथा च सूत्रम्–'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः' इति ॥ ३५ ॥ असंयतात्मना अजितचित्तेन वश्यात्मना जितचित्तेन उपायतोऽभ्यासवैराग्यरूपात् ॥ ३६ ॥ मनसो दुर्निग्रहत्वाद्योगसिद्धौ विघ्नं पश्यन्नर्जुन उवाच । हे कृष्ण, 'योगात्कर्मयोगाच्चलितमानसस्त्यक्तकर्मा संन्यासीत्यर्थः । श्रद्धयोपेतो योगमार्गं प्रविष्टोऽपि अयतिः आयुषोऽल्पत्वाद्वा वैराग्यदौर्बल्याद्वा अल्पप्रयत्नः । अलवणा यवागूरितिवदत्राल्पार्थे नञ् । स कदाचित् योगसंसिद्धिं योगफलं सम्यक्दर्शनमप्राप्य मृतश्चेत् कां गतिं गच्छति ॥ ३७ ॥ कच्चिदिति कच्चिन्नोभयविभ्रष्टः कर्ममार्गाद्योगमार्गाच्च विभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव पूर्वमपरं वा मेघसंघमप्राप्य मध्ये एव नश्यति । तद्वत् अप्रतिष्ठो निराश्रयः । हे महाबाहो, **विमूढो ब्रह्मणः पथि** ब्रह्मप्राप्तिमार्गे ॥ ३८ ॥ एतत् एतं स्पष्टमन्यत् ॥ ३९ ॥ अत्रोत्तरं भगवानुवाच—**पार्थेति** । हे तातेति वात्सल्यात्सम्बोधयति । तस्येह विनाशो नीचयोनिप्राप्तिः । अमुत्र विनाशो नरकप्राप्तिस्तदुभयमपि न जायते । हि यतः कल्याणकृच्छुभकृत् दुर्गतिं नैव प्राप्नोति ॥ ४० ॥ इहामुत्र च तस्य महत्त्वमेवास्तीत्याह-**प्राप्येति** । उषित्वा

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगात् संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५
तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ४६
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥४७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु अध्यात्मयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ पर्वणि तु त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

श्रीभगवानुवाच ।
मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः । असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १

वासं कृत्वा शाश्वतीः समाः नित्यान् वत्सरान्योगभ्रष्टो रागी चेदल्पकालाभ्यस्तयोगश्चेत् श्रीमतां गेहे जायते । तत्रापि श्रीमानधो गच्छतीत्याशंक्य शुचीनामित्युक्तम् । शुचयो हि सत्कार्येष्वेव श्रियमुपयुञ्जानाः पूर्वापेक्षया महत्तरं स्थानमासादयन्तीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ स योगी विरक्तश्चिराभ्यस्तयोगो वा चेत्तस्य गतिमाह—**अथवेति** ॥ ४२ ॥ तत्र द्विविधेऽपि जन्मनि पौर्वदेहिकं पूर्वदेहप्राप्तं बुद्धिसंयोगम् । यावती च योगभूमिः पूर्वजन्मनि जिता । तत्र च यावान्बुद्धिलाभो जातस्तावन्तं बुद्धिसंयोगं पूर्वाभ्यासादल्पेनैवाभ्यासेन लभते । तस्मादपि भूयस्यां बह्वयां संसिद्धौ ऊर्ध्वभूमिलाभार्थमित्यर्थः । यतते यत्नं करोति ॥ ४३ ॥ कुतो यततेऽशिक्षितोपीत्यत आह—**पूर्वेति** । अवशोऽपि प्रह्लादादिवत्पित्रादिभिरन्यथा नीयमानोऽपि तेनैव पूर्वाभ्यासेन बलवता ह्रियते योगप्रवणः क्रियते । यतो योगस्य जिज्ञासुर्ज्ञानमात्रमिच्छन्यो भवति सोऽपि शब्दब्रह्म कर्मकाडं वेदमप्यतिक्रम्य वर्तते किंपुनः पित्राद्याज्ञाम् । इत्थं पूर्वाभ्यासबलं यन्महान्तमपि पित्रादियत्नं वृथा करोतीत्यर्थः॥४४॥ एवं योगभ्रष्टगतिमुक्त्वा यो विषयैर्ह्रियमाणोऽपि प्रयत्नेन योगमेवाभ्यसितुं प्रवर्तते तस्य गतिमाह—**प्रयत्नादिति** । प्रयत्नात्प्रकृष्टात् हठात् वायुनिरोधादिरूपात् खेचर्यादिमुद्राविशेषाभ्यासाद्यो यतमानः संशुद्धकिल्बिषो निष्पापो भवति। यदाह मनुः—'प्राणायामैर्दहेद्देनः' इति। हठयोगानां सर्वेषां पापनिवृत्त्युपयोगित्वं न तत्त्वसाक्षात्कारे साक्षात्साधनत्वमित्यर्थः।अत एव सः अनेकैर्जन्मभिः संसिद्धः प्राप्तयोगो भूत्वा ततः परां गतिं मोक्षं याति। एतेन **चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोरिति** पञ्चमान्ते यत्सूत्रितं तद्व्याख्यातम् ॥ ४५ ॥

एवं योगिनं स्तौति—**तपस्विभ्य इति** । तपस्विनोऽत्र कृच्छ्रचान्द्रायणमासोपवासादिकर्तारः । ज्ञानिनश्च शास्त्रीयपाण्डित्यवन्तः । कर्मिणोऽग्निहोत्राद्यनुष्ठातारः तेभ्यः सर्वेभ्यो योगी यतोऽधिको मतस्तस्माद्योगी भवार्जुन॥४६॥ समाप्तः कर्मप्रधानस्त्वंपदार्थविवेकः । अतः परमुपासनाप्राधान्येन तत्पदार्थं निरूपयितुकामस्तदुपासनां महाफलत्वेन स्तौति—**योगिनामिति।दैवमेवापरे यज्ञमित्यादिना** चतुर्थाध्यायप्रोक्ता द्वादशयोगास्तद्वतां योगिनां सर्वेषां मध्ये यो मद्गतेन मयि वासुदेवे समर्पितेनान्तरात्मना चित्तेन श्रद्धावान् सन् मां भजते स मे मम युक्ततमोऽतिशयेन युक्तः श्लाघ्यो मतोऽभिप्रेतः । तस्मान्मद्भक्तो भवेति भावः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरनीलकण्ठकृतौ भारत० भीष्मपर्वणि भगवद्गीता० षष्ठोऽध्यायः । त्वंपदार्थविवेकश्च समाप्तिमगमत् ॥ ६ ॥ पर्वणि ॥ ३० ॥

३१

पूर्वाध्यायान्ते यो मां भजते स मे युक्ततमो मत इत्युक्तम् । तत्र कीदृशं पूर्वोक्तनिष्कामकर्मयोगापेक्षया विलक्षणं तव भजनं केन वा गुणेन पूर्वयोगापेक्षया तस्य युक्ततमत्वमित्येतामर्जुनस्याशंकां स्वयमेव परिहरन् भगवानुवाच—**मयीति**।कश्चिद्राजाश्रयो धनमानासक्तमना भवति । अयं तु मदाश्रयेण मामेव परमपुरुषार्थभूतं प्राप्तुमिच्छन्नित्यर्थः । ईदृशो योगं युञ्जन् समाधिमनुतिष्ठन् । त्वंपदार्थविवेककाले यद्यपि सार्वज्ञ्यमस्ति सर्वभूतस्थमात्मानमित्यादिवचनात्तथापि स्वस्मादन्य ईश्वरोऽस्ति नवेति पातञ्जलकापिलयोस्तार्किकमीमांसकयोर्वा सेश्वरानीश्वरयोर्मतभेदा-

**ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।**
**यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २**
**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।**
**यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३**
**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।**
**अहङ्कार इतीयं मेऽभिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४**
**अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।**
**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५**
**एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।**
**अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६**
**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।**
**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७**
**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ।**
**प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८**

त्संशयः । कारणाज्ञानाच्चासमग्रं तत्सार्वज्ञ्यमिति मत्वा आह—**असंशयं समग्रमिति** । मां तत्पदार्थमीश्वरं यथा ज्ञास्यसि तत् तं प्रकारं शृणु । अत्र वक्ष्यमाणरीत्या सर्वं ब्रह्म वासुदेवात्मकमिति भजने वैलक्षण्यं कारणज्ञातृत्वमस्य योगिनः पूर्वयोग्यपेक्षयाऽऽधिक्यमिति भावः ॥ १ ॥ एतदेवाह—**ज्ञानमिति** । ज्ञानं शुद्धप्रज्ञानघनं ब्रह्म । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इति श्रुतेः । तं तुभ्यमहं वक्ष्यामि अशेषतः साधनकलापसहितम् । किं वचनमात्रजेन परोक्षज्ञानेन शब्दस्य स्वविषये परोक्षज्ञानजनकत्वनियमादित्याशंक्याह—**सविज्ञानं** अनुभवसहितं 'दशमस्त्वमसि' इत्यादौ शब्दादप्यपरोक्षज्ञानोत्पत्तिदर्शनात् । 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातम्' इत्येकविज्ञानात्सर्वविज्ञानप्रतिज्ञां श्रौतीमेव वर्णयति—**यज्ज्ञात्वेति** । जगत्कारणमधिष्ठानस्य ज्ञानरूपस्य ब्रह्मणो ज्ञाने संशयोच्छेदात्सर्वस्यात्ममात्रत्वेन ज्ञातव्यानवशेषो युक्त इत्यर्थः ॥२॥ एतदेव ज्ञानं दौर्लभ्यप्रदर्शनेन स्तौति—**मनुष्याणामिति** । यततां यतमानानाम् ॥ ३ ॥ एवमेकविज्ञानात्सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय तदुपपत्तये सर्वस्य जडाजडप्रपञ्चस्य ज्ञानात्मकब्रह्मप्रभवत्वमाह त्रिभिः—**भूमिरिति** । अत्र भूम्यादिपदैस्तत्तत्कारणान्येव गृह्यन्ते, प्रकृतिरित्यधिकारात् । स्थूलभूम्यादेश्च विकृतिमात्रत्वात् । तथा च भूमिरिति गन्धतन्मात्रम् । आप इति रसतन्मात्रम् । अनल इति रूपतन्मात्रम् । वायुरिति स्पर्शतन्मात्रम् । खमिति शब्दतन्मात्रम् । मन इति तत्कारणमहंकारः । बुद्धिरिति समष्टिबुद्धिर्महत्तत्त्वम् । अहंकरोत्यनयेत्यहंकारो मूलप्रकृतिः । करणे घञो दुर्लभत्वेऽप्यगत्या बाहुलकात्तद्बोध्यम् । इयं मे मत्तोऽभिन्नाऽपृथक्सिद्धा शुक्तिशकलादिव रजतं अष्टधा अष्टप्रकारा प्रकृतिर्जडप्रपञ्चोपादानभूता । यद्वा । नात्राव्यक्तमहदहङ्कारपञ्चतन्मात्राण्येवाष्टौ सांख्याभिमता एव प्रकृतयो ग्राह्या इति नियमोऽस्ति । 'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इति मनस इन्द्रियान्तरप्रकृतित्वश्रवणेन सन्तु नवापि प्रकृतयः । तथाचैवं योज्यम् । इयं मे मद्भिन्ना प्रकृतिरव्याकृताख्या भूम्यादिभेदेनाष्टधेति मूलप्रकृतेरत्र भूम्यादिभिः सह पाठाज्जन्यत्वमवगम्यते न सांख्यानामिवाजन्यत्वम् ।

'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम' इति ।

'अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्कले प्रविलीयते' इति च ।

तस्या अपि 'प्रभवप्रलययोः' स्मरणात् ॥ ४ ॥ एवं क्षेत्रात्मिकां प्रकृतिमुक्त्वा क्षेत्रज्ञात्मिकां तामाह—**अपरेयमिति** । इयं प्रागुक्ता साऽपरा अश्रेष्ठा जडत्वात् । इतस्तु विलक्षणामन्यां परां चेतनत्वेन मदनन्यत्वादुत्कृष्टां मे मत्संबंधिनीं प्रकृतिं जीवभूतां प्राणधारणनिमित्तभूतां क्षेत्रज्ञाख्यां विद्धि जानीहि । हे महाबाहो, यया प्रकृत्याऽन्तःप्रविष्टयेदं जगत्स्थावरजङ्गमशरीरात्मकं धार्यते ॥ ५ ॥ **एतदिति** । एते परापरे क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपे प्रकृती योनिरुत्पत्तिलयस्थानं येषां भूतानां तान्येतद्योनीनि भूतानि चतुर्विधानीत्येतदुपधारय सम्यग्जानीहि । किं पातञ्जलानामिव एते प्रकृती ईश्वरादन्ये इत्याशंक्याह—**अहमिति** । कृत्स्नस्य स्वस्वप्रकृतिसहितस्य जगतो जडाजडरूपस्य प्रभवः प्रभवत्यस्मादिति प्रभव उत्पत्तिकारणम् । तथा प्रलीयतेऽस्मिन्निति प्रलयः लयस्थानं च । अतस्ते उभे अपि प्रकृती मत्तो नातिरिच्येते ॥ ६ ॥ एवमेकविज्ञानात्सर्वविज्ञानं प्रकृतमात्मनो जगदुपादानत्वेनोपपाद्य तत एवात्मनो निर्विकारत्वहाने प्राप्ते आह—**मत्त इति** । कारणान्मृदादेः परं पृथग्भूतं घटादि व्यवहारे तयोर्भेदानुभवात् । परतरं तु गवाश्वादि मृदनुपादानकत्वात् । एवं ब्रह्मणः परतरं तदनुपादानकं किंचिदपि नास्ति । हे धनञ्जय, एवं प्रपञ्चे ब्रह्माव्यतिरेकं प्रदर्श्य ब्रह्मणि प्रपञ्चव्यतिरेकं सदृष्टान्तमाह—**मयीति** । मयि सद्रूपेण स्फुरणरूपेण च सूत्रवत्सर्वत्रानुस्यूते । यदिदं सर्वं मणिगणवत्परस्परव्यावृत्तं तत्प्रोतम् । तेन व्यावृत्तेभ्योऽनुवृत्तं भिन्नमिति न्यायेन प्रपञ्चातीतोऽहमतो न मम विकारित्वमित्यर्थः ॥ ७ ॥ नन्वेवं प्रपञ्चपरमात्मनोर्मणिसूत्रवदुपादानोपादेयभावोऽपि न स्यात् । न ह्युपादानं चाननुवृत्तं चेति घटते मृद्घटादावदर्शनादित्याशङ्क्य स्वप्नमायेन्द्रजालरज्जुरगतुल्यत्वं प्रपञ्चस्योपपाद्योभयमप्यविरुद्धमित्युपदिष्टं चेदयमकस्मादुद्विग्नो भविष्यतीति

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १०
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४

मत्वा दृष्टान्तैरेवानुवृत्तिं व्यावृत्तिं चिज्जडयोर्दर्शयति-**रस इति** । यथा रसोऽप्सु एकमप्यपरमाणुमपरित्यज्यानुस्यूतो दृश्यतेऽतो रसरूपे मयि आपः प्रोताः, एवं प्रभायां चन्द्रादयः प्रोताः प्रणवे सर्वे वेदाः प्रोताः । 'तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णा' इति वाङ्मात्रे प्रणवानुस्यूतिश्रवणात् । संतृण्णानि संग्रथितानि । एवमाकाशे शब्दः सारभूतस्तस्मिन्मयि खं प्रोतम् । सर्वपुरुषेषु सारं पौरुषं शौर्यधैर्यादिरूपं तत्र पुरुषाः प्रोताः । एवमग्रेऽपि द्रष्टव्यम् ॥८॥ **पुण्य इति** । रसादिष्वपि द्रष्टव्यम् । अपुण्यस्य सर्वस्याविद्यामात्रविलसितत्वात् विभावसौ वन्हौ तेजः दहनशक्तिः । जीवन्त्यनेनेति जीवनमन्नं विराजं तत्र हि सर्वाणि भूतानि प्रोतानि । अन्ये तु जीवनमायुरिति व्याचक्षते-**तपश्चेति** । तपो धर्मस्तद्रूपे मयि तपस्विनः प्रोताः ॥९॥ बीजं कारणं सर्वभूतानां पिण्डब्रह्माण्डात्मकानां बीजे मयि पिण्डादिकं प्रोतं कनके कुण्डलादिवत् । सनातनं नित्यं बीजान्तरादनुत्पन्नम् । बुद्धिरूपे मयि बुद्धिमन्तः प्रोताः । तेजः प्रागल्भ्यं तद्रूपे मयि प्रगल्भाः प्रोताः ॥१०॥ बलरूपे मयि बलवन्तः प्रोताः **कामरागविवर्जितं** कामस्तृष्णा रागो रञ्जना तौ हि आवियकौ अतो निरविद्यस्य बलं तद्वर्जितम् एवं धर्माविरुद्धकामरूपे मयि ईदृशाः कामवन्तः प्रोताः ॥ ११ ॥ सात्त्विका धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यादयः राजसा लोभप्रवृत्त्यादयः तामसा निद्रालस्यादयः तान्सर्वान्मत्त एव स्वतन्मात्रादिरूपात्सूत्रात्मनो निर्गता इति विद्धि । नन्वेवं तव सर्वजगदात्मनो विकारित्वापत्त्या कौटस्थ्यहानिरित्याशंक्याह—**न त्वहं तेषु ते मयीति** । येष्वनृतजडरूपेष्वबाद्यः प्रोतास्तेषु सूत्रावयवभूतेषु रसादिष्वबाधितात्मचिन्मात्ररूपो घटशरावोदञ्चनादाविव मृदास्मि । अनृतस्यास्य सत्तास्फुरणे एव स्वकीये प्रयच्छामि न त्वनृतात्मा भवामीत्यर्थः । ते तु मय्येवाध्यस्ता मदनन्याः यथा रज्ज्वामध्यस्ताः सर्पादयो रज्ज्वनन्याः । 'तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः' इति न्यायात् । अनन्यत्वं व्यतिरेकेणाभावः । न खल्वनन्यत्वमित्यभेदं ब्रूमः किंतु भेदं निषेधामः । कुतः। आरंभणशब्दात् ।

'वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयम्' इति विकारस्य वागालम्बनत्वेन स्वप्नमायेन्द्रजालिकविषयसाम्यश्रुतेः । न ह्यात्मनो विचित्रप्रपञ्चात्मत्वे ते मयीत्यंशाविरोधेऽपि **न त्वहं तेष्वित्यंशे** विरोधपरिहारो युज्यते । कार्यस्य कारणात्मकत्वावश्यंभावात् । तस्माद्विवर्तवादाश्रयेणैव ब्रह्मणो जगदुपादानत्वकूटस्थत्वे निर्वहत इति साधूक्तं **न त्वहं तेषु ते मयीति** ॥ १२ ॥ कथं तर्हि स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चबाधेन जना आत्मानं नावगच्छन्तीत्याशंक्याह-**त्रिभिरिति** । एभिः पूर्वोक्तैस्त्रिभिस्त्रिविधैर्भावैः प्रकाशप्रवृत्तिनियमात्मैर्गुणमयैः सत्त्वरजस्तमोगुणविकारैरिदं चराचरं प्राणिजातं जगच्छब्दवाच्यं मोहितं सदेभ्यो गुणेभ्यः परं मां न जानाति । यथा रज्ज्वां सर्पभ्रमेण व्याकुलः सर्पात्परां रज्जुं न जानाति तद्वत् । परत्वे हेतुः—**अव्ययम्** । एते भावाः परिणामित्वात् व्ययवन्तः । अहं तु तद्विपरीतः साक्षी इत्यव्ययः ॥ १३ ॥ देवस्य जीवरूपेण लीलया क्रीडतो मम संबन्धिनीयं दैवी हि प्रसिद्धा पिण्डब्रह्माण्डरूपेण विततैषा मम चिन्मात्रस्य माया मामहं न जानामीति साक्षिप्रत्यक्षत्वेनापलापानर्हाऽनृतस्य प्रपञ्चस्येन्द्रजालादेरिव प्रकाशिका गुणमयी सत्त्वरजस्तमोगुणमयी दुरत्यया दुरतिक्रमा ये मामेव सर्वभूतस्थं भगवन्तं वासुदेवं प्रपद्यन्ते विषयीकुर्वन्ति त एवैतां मायां तरन्ति । अधिष्ठानज्ञानेनैव समूलस्य भ्रमस्योच्छेदो भवति नतु ज्ञानान्तरेण वा शरीरनिरोधेन वेत्यर्थः । अयमर्थः-जीवेश्वरविभागशून्ये शुद्धचिन्मात्रे कल्पितो मायादर्पणश्चित्प्रतिबिम्बरूपं जीवं वशीकृत्य बिम्बचैतन्यमनुरुध्य प्रचलति । अयस्कान्तमनुरुध्येव लोहशलाका । इदमेव ईश्वराधीनत्वं मायायाः । ईश्वरस्य च मायाद्वारा सर्वस्रष्टृत्वमपि । तथा च श्रुतिः-'तस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः' इति । तथा चैकैव माया जीवेश्वरयोरुपाधिर्दर्पण इव बिम्बप्रतिबिम्बयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावानाक्रान्तमुभयानुस्यूतं शुद्धचिन्मात्रमन्यत्तृतीयं मुक्तप्राप्यम् । जीवेश्वरौ चोपाधिपक्षपातदशायामल्पज्ञत्वसर्वज्ञत्वशास्यत्वशासितृत्वादिभावं भजेते । तावेव तदभावे

**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।**
**माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५**
**चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।**
**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६**
**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।**
**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥१७**
**उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।**
**आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्**
**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।**
**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९**
**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।**
**तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥ २०**
**यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति**
**तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥२१**
**स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।**
**लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हितान्२२**
**अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।**
**देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥२३**

उपाधिप्रचारदर्शिनावुदासीनस्वेधरूपतया जीवसाक्षीश्वरसाक्षीति शब्दाभ्यां व्यवह्रियेते । एवं च जीव ईश्वराराधनावाप्तप्रत्यक्तत्त्वज्ञानेन मायायां नष्टायां तत्कार्यस्यापि नाशेन साक्ष्याभावात्साक्षित्वमपि परित्यज्य बिम्बप्रतिबिम्बानुस्यूतं शुद्धं तृतीयं चैतन्यं प्राप्नोतीति तदिदमुक्तं दैवी मायेति । मम मायेति चैकस्या एव जीवेश्वरसम्बन्धित्वं जीवस्येश्वरभजनेन मायातरणमिति च॥१४॥ कुतस्तर्हि सर्वे त्वां प्रपद्य मायां न तरन्तीत्याशङ्क्याह—**न मामिति** । यतो दुष्कृतिनोऽतश्चित्तशुद्ध्यभावान्मूढा आत्मानात्मविवेकहीनाः । अत एव नराधमा मां न प्रपद्यन्ते । कुतो दुष्कृतिनः यतो माययाऽपहृतं तिरस्कृतं ज्ञानमखण्डसंविद्रूपं ब्रह्म येषां ते अपहृतज्ञानाः। एतेन मायाया आवरणशक्तिरुक्ता । किञ्च आसुरं असुराणां विरोचनादीनां भावं चित्ताभिप्रायम् 'आत्मैवेहमह्य्य' इत्यादिना श्रुतं देहेन्द्रियसङ्घात एव सम्यक् सन्तर्पणीय इत्येवंविधमाश्रिताः । एतेन मायाया विक्षेपशक्तिरुक्ता। तदेवं मायया स्वरूपानन्दमावृत्य देहात्मभ्रमे जनिते सति तदभिमानाद्देहादिपुष्ट्यर्थं दुष्कृतं कुर्वन्ति तेन च मूढाः सन्तो नराधमा मां न प्रपद्यन्ते । सर्वानर्थमूलं मायैवेत्यर्थः ॥१५॥ ये तु सत्यपि देहाद्यध्यासे मत्तो बिभ्यति मत्प्रीत्यर्थं सुकृतमेवाचरन्ति। तेऽपि चतुर्विधा न केवलं सर्वे मदेककामा इत्याशयेनाह— **चतुर्विधा इति** । आर्तः पीडितः पीडापरिहारार्थी । जिज्ञासुः स्वाज्ञाननाशार्थी । अर्थार्थी धनार्थी । ज्ञानी चेति चतुर्विधा मां भजन्ते ॥ १६ ॥ किं सर्वेऽपि समा एते सुकृतिन इति साधारण्येन विशेषणादत आह—**तेषामिति** । तेषां मध्ये ज्ञानी विशिष्यते यतो नित्ययुक्तः । आर्तादयो हि कामिनः कामपूर्तौ न मद्भजने युक्ता भवन्ति । अयं तु नित्ययुक्त एकभक्तिश्चैकभावेन भजनं करोति। तथा हि । 'आर्ता रोगिणः सूर्यं भजन्ते। जिज्ञासवः सरस्वतीम् । अर्थार्थिनः कुबेरादीन्' इति तेषां तत्तत्कामार्थित्वेनानेकभक्तित्वं दृश्यते । तस्य नित्ययुक्तत्वे च हेतुः—हि यतः ज्ञानिनोऽहमत्यर्थं प्रिय आत्मत्वादेव आत्मा च प्रियः निरुपाधिप्रेमगोचरत्वात् । 'तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादान्तरं यदयमात्मा' इति श्रुतेश्च । स च ज्ञानी मम प्रियो भक्तानां दुर्लभत्वादिति भावः ॥ १७ ॥ **उदारा इति** । सर्वऽप्येते उदारा उत्कृष्टा एव । ज्ञानी तु ममात्मैवेति मम मतं निश्चितम् । हि यतः स युक्तात्मा अहमेव भगवान्वासुदेव इत्यभेदेन मयि समाहितचित्तो मामेवानुत्तमां श्रेष्ठां गतिमास्थितो न तु मत्तोऽन्यदारोग्यादिकं कामयानो मद्भक्तिं करोति । किं तर्हि मत्प्राप्त्यर्थमेव मां भजत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ किंच । वासुदेवः सर्वमिति ज्ञानवान् यो बहूनां जन्मनामन्ते चरमजन्मनि मां प्रपद्यते सम्यग्दर्शनेनापरोक्षीकरोति स महात्मा ब्रह्मभूतः सुदुर्लभ इति योजना ॥ १९ ॥ अन्ये तु तैस्तैः कामैः पुत्रपश्वादिविषयैः हृतज्ञानाः हृतं दूरीकृतं ज्ञानं विवेको येषां ते अन्यदेवताः अहमेतस्या आराधनेनेदं फलमवाप्नवानीति भेदबुद्ध्या प्रपद्यन्ते इन्द्रादीन् तं तं नियमं चतुर्दश्युपवासादिकमास्थाय । स्वया प्रकृत्या वक्ष्यमाणविधया दैव्या आसुर्या वा नियताः निगृहीताः ॥ २० ॥ किंच । यो यो भक्तः सात्त्विको राजसस्तामसो वा यां यां तनुं तादृशीमेव देवादिरूपां यक्षरक्षोरूपां भूतप्रेतरूपां वा मूर्तिं श्रद्धया तादृश्यैवार्चितुमिच्छति। तस्य तस्य भक्तस्य तामेव श्रद्धां सात्त्विकीं राजसीं तामसीं वाऽहं सर्वेश्वरोऽचलां विदधामि ॥२१॥ततश्च स तया श्रद्धया युक्तः सन् तस्या मूर्तेराराधनं ससाधनं वशीकरणमीहते इच्छति । ततश्च कामान्विषयान् लभते मयैव विहितानाज्ञापितान् हितान् ईप्सितान् एतेन सर्वासां देवतानां स्वाज्ञावशवर्तित्वं दर्शितम् ॥ २२ ॥ **अल्पमेधसामिति** । 'अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोति अन्यन्मनुतेऽन्यद्विजानाति तदल्पम्' इति श्रुतेः । द्वैतमल्पं तत्रैव मेधा येषां ते । बाह्यार्थाभिलाषिणामित्यर्थः । तेषां तत्फलमन्तवत् सर्वस्य बाह्यार्थस्यान्तवत्त्वादेव । तुशब्दोऽभेदेनेश्वरभक्तेभ्यो विभेदार्थः। यतो देवयजो देवान्यजन्ते

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योग मायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥ २७
येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ पर्वणि तु एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इति देवयजस्ते देवानन्तयुक्तानेव यान्ति । एवं यक्षरक्षोभक्ता यक्षादीनेव यान्ति । भूतप्रेतभक्ताश्च भूतादीनेवेत्यपि द्रष्टव्यम् । मद्भक्तास्तु-**मामेवानन्तं** यान्ति अतस्तेऽनन्तफलभाज इत्यर्थः ॥ २३ ॥ एवं तर्हि कुतस्त्वामेव सर्वे न प्रतिपद्यन्त इत्याशंक्याज्ञानादित्याह—**अव्यक्तमिति** । अव्यक्तं सर्वोपाधिशून्यत्वेनास्पष्टमपि वासुदेवशरीरेण व्यक्तिमापन्नं अस्मदादिवच्छरीराभिमानिनं मामबुद्धयो मन्यन्ते । यतो मम परं भावं परत्वमुत्कृष्टत्वमजानन्तः । उत्कृष्टत्वमेव विशिनष्टि—**अव्ययं** न व्येतीत्यव्ययमविनाशिनं अनुत्तमं यस्मादन्यदुत्कृष्टं च नास्ति निरतिशयमखण्डैश्वर्यरूपमित्यर्थः ॥२४॥ कुतस्त्वद्विषयमज्ञानं लोकस्येत्यत आह-**नाहमिति** । हे योग योगिन्, अर्शआद्यच्प्रत्ययान्तोऽयं योगशब्दः । अहं तत्पदार्थः सर्वस्य योगिनस्त्वंपदार्थमात्राभिज्ञस्य न प्रकाशोऽस्मि । तत्र हेतुः—**मायासमावृत इति** । **भाष्ये** तु योगो युक्तिर्गुणानां घटनं सैव योगमाया चित्तसमाधिर्वा योगो भगवतस्तत्कृता मायेति भगवत्संकल्पवशवर्तिनी मायेत्यर्थः। उत्तरार्धः स्पष्टार्थः ॥२५॥ ननु त्वदभिन्नं लोकं त्वन्माया मोहयति चेत्त्वन्माया त्वां कुतो न मोहयतीत्यत आह—**वेदाहमिति** । सत्यं । सत्यपि लोकस्य मम चाभेदे औपाधिकभेदस्य सत्त्वादुपाधिधर्माभिमानित्वाल्लोको मूढः । तदभावाच्चाहं सर्वज्ञ इति विशेषः । अक्षरार्थः स्पष्टः ॥ २६ ॥ केन पुनर्निमित्तेनातीतादीनि भूतानि न जानन्तीत्याशङ्क्याह—**इच्छेति** । इच्छा रागः द्वेषस्ताभ्यां समुत्थितो द्वन्द्वमोहः । शोभनाशोभनसत्यासत्यनित्यानित्यात्मसु विपर्ययः । अशोभने शोभनबुद्धिः । शोभने वा अशोभनबुद्धिरित्येवंरूपस्तेन । हे भारत, भरतान्वय, सर्वभूतानि सर्गे सृष्टिविषये मोहं आविवेकं यान्ति हे परंतप । अयं भावः-यो हि सृष्टेरुपादानं स्वरूपं च तत्त्वतो जानाति स ब्रह्मवित् सर्वज्ञत्वादतीतादीन् जानाति । सृष्टौ च सर्वेषां मोहोऽस्ति अशोभने स्त्र्यादौ शोभनाध्यासात् । असत्ये प्रपञ्चे सत्यत्वाध्यासात् । सत्ये चात्मनोऽसत्त्वेऽसत्यत्वाध्यासात् । अनित्ये स्वर्गादौ नित्यत्वाध्यासात् । अनात्मनि देहादावात्माध्यासात् । अतो विपर्ययेण सृष्टिज्ञानं प्रतिबद्धं तेन च सार्वज्ञ्यं न जायतेऽस्मदादीनामिति ॥ २७ ॥ केषां तर्हि सार्वज्ञ्यं भवतीत्याशंक्याह—**येषां त्विति द्वाभ्याम्** । येषां पुनर्जनानां पुण्यकर्मणां पापं अन्तगतं अन्तं नाशं प्राप्तम् । 'द्वितीयाश्रिता-'इति समासः । ते द्वन्द्वमोह उक्तलक्षणस्तेन निर्मुक्ताः सन्तः प्रथमं दृढव्रताः शमदमादिदार्ढ्यभाजो भूत्वा मां भजन्ते ॥ २८ ॥ ततश्च जरामरणयोः प्रवाहादात्मनो मोक्षाय मामाश्रित्य मयि समाहितचेतसो भूत्वा ये यतन्ति यतन्ते ज्ञानलाभाय वेदान्तश्रवणादौ ते तत् सर्ववेदान्तप्रसिद्धं कृत्स्नं ब्रह्म विदुः । विराडाद्युपासका अकृत्स्नब्रह्मविदः । सूत्रकारणयोर्निष्कलस्य चाज्ञानात् । श्रीगोपालबालोपासकास्तु तत्पदलक्ष्यकृत्स्नब्रह्मविदोऽतस्तेऽध्यात्मादिकं कात्स्न्येन जानन्ति सर्वविदो भवन्तीत्यर्थः । अनेन 'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यत् ज्ञातव्यमवशिष्यते' इत्येकविज्ञानात्सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा या पूर्वं कृता तस्या उपसंहारो दर्शितः । अध्यात्मं आत्मनि शरीरे स्थितं प्रत्यगात्मविषयं वस्तु शुद्धं त्वंपदार्थमित्यर्थः । कर्म च तत्त्वंपदार्थज्ञानयोः साधनं श्रवणादिकं सर्वं विदुः ॥ २९ ॥ एवं तत्पदार्थविवेकं सद्योमुक्तिहेतुं समाप्य तत्प्राप्त्युपायभूतान्युपासनानि क्रममुक्तिफलानि विस्तरेण वक्तुकामः संक्षेपेण सूत्रयति—**साधिभूतेति** । अधिभूतं च आधिदैवं च ताभ्यां सहितं साधिभूताधिदैवं तथाऽधियज्ञेन सहितं साधियज्ञं च मां ये विदुः उपासते ते युक्तचेतसः । यतो नित्यं समाहितचित्तास्ततो मां प्रयाणकालेऽपि सर्वजनव्यामोहके विदुरेव । भावनादार्ढ्यान्मरणकालेऽपि तस्य ज्ञानस्य प्रमोषो न भवत्यतो भगवति नैरंतर्येण दृढा भावना कर्तव्येति भावः । अधिभूतादिपदार्थं तु भगवानेव व्याख्यास्यतीति नोक्तवंतो वयम् ॥३०॥ इति श्रीमहा० भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ प० ॥ ३१ ॥

# ३२

अर्जुन उवाच ।
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥ २
श्रीभगवानुवाच ।
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥५

३२

पूर्वस्मिन्नध्याये मायोपहितं ब्रह्म जगत्कारणमुक्तम् । तत्र उत्तमानामनुपाधिब्रह्मप्रतिपत्तावुपलक्षणं मध्यमानामुपास्यं चेति मत्वा प्रतिपत्तव्यं ब्रह्म । तद्विषय एकः उपासनाविषयाश्च षट् । एवं सप्त प्रश्नविषयास्ते ब्रह्म तद्विदुरित्यध्यायान्ते सार्धश्लोकेन भगवता सूत्रितास्तद्वृत्तिरूपोऽयमध्याय आरभ्यते । तत्र सूत्रितानां ब्रह्मादिशब्दानामर्थं बुभुत्सुरर्जुन उवाच-**किं तत्कृत्स्नं ब्रह्मेति** प्रथमः प्रश्नः । शेषः स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ १ ॥ **अधियज्ञः कथं कोऽत्र** क इति स्वरूपप्रश्नः । कथं ज्ञेय इति पदापकर्षेण तत्रादुपासनाप्रकारप्रश्नश्चेति द्वयं मिलित्वा एक एव प्रश्नः । शेषं स्पष्टम् ॥ २ ॥ क्रमेणैषां प्रश्नानामुत्तरमाह—**अक्षरमित्यादिभिस्त्रिभिः** । तत्र किं तद्ब्रह्मेत्यस्योत्तरमक्षरं परमं ब्रह्मेति । यत् परममक्षरं तद्ब्रह्मेति योजना । अक्षरशब्दस्य वर्णेषु रूढत्वात् । 'ओमित्येतदक्षरम्' इत्यादिश्रुतौ 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इति स्मृतौ च दर्शनेनात्रापि प्रणवस्याक्षरशब्देन ग्रहणे परममिति विशेषणं प्रणवस्य परब्रह्मत्वासंभवात् । अतश्च 'एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' इति श्रुतिप्रसिद्धमखण्डैकरसं वस्तु अक्षरशब्दितं तद्ब्रह्मेति प्राञ्चः । यद्वा । अक्षरशब्देन जीवः 'कूटस्थोऽक्षर उच्यते' 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः' इति गीतासु । 'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः' इति श्रुतौ च कूटस्थपदेनामृतपदेन च विशेषितस्याक्षरपदस्य जीववाचित्वदर्शनात् । अमृतोऽक्षरमित्यपेक्षिते उत्वाभावश्छांदसः । यथा चाक्षरं जीवाख्यं परमं ब्रह्म । परमामिति विशेषणेन सोपाधिकस्य पूर्वाध्यायोक्तस्य व्यावृत्तिः । नहि जीवस्य सोपाधिकस्य ब्रह्मभावः सम्भवति व्यावर्तकोपाधौ मायादर्पणे जाग्रति तयोरभेदायोगात् । 'किं तद्ब्रह्म' इति प्रश्ने परमामिति विशेषणाभावेऽपि 'ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नम्' इति प्रश्नोत्थापके सूत्रे परमत्ववाचिना कृत्स्नपदेन ब्रह्मणो विशेषितत्वादुत्तरेऽपि ब्रह्मण एव परमामिति विशेषणं युज्यत एव । प्रश्नेऽपि तच्छब्देन कृत्स्नत्वस्यैव ग्रहात् । ततश्च किं तत् कृत्स्नं ब्रह्मेति प्रश्ने यदक्षरं जीवाख्यं तदेवापेतोपाधिसंबंधं सत् कृत्स्नं ब्रह्मेति तत्त्वमसीति महावाक्यार्थः प्रतीचो ब्रह्मभावः प्रतिपादितो भवतीति हृद्यम् । तथा स्वोऽनागन्तुको भावः स्वरूपं स्वभावः शुद्धस्त्वंपदार्थः सोध्यात्ममुच्यते । **भाष्ये तु** तस्यैव पदस्य ब्रह्मणः प्रतिदेहं प्रत्यगात्मभावः स्वो भावः स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते अध्यात्मशब्देनाभिधीयत इति । **विसर्गो** देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मको यागः स कर्मसंज्ञितः । तमेव विशिनष्टि—**भूतेति** । भूतानां भावः सात्त्विकादिः स्वभावः उद्भवश्च तयोः कारणाद्भूतभावोद्भवकरः । तथा हि । 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' इति कर्मानुसारित्वं भावस्य स्मर्यते । तथा उद्भवोऽपि कर्मत एव स्मर्यते—

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः' इति ॥ ३ ॥

**क्षरो भावो** जनिमद्वस्तु कर्मफलभूतं तत्साधनभूतं च तदधिभूतमित्युच्यते । अधिदैवतं पुरुषः सर्वासु पूर्षु वसतीति सर्वकरणानुग्राहकः सकलदेवतात्मा हिरण्यगर्भः । **अधियज्ञो** यज्ञाभिमानी विष्णुरन्तर्यामी सोऽहमेव देह्यस्मि अत्रास्मिन्देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥ अत्र षट्प्रश्नोत्तरेषु **प्रथमे**—जीवस्य ब्रह्मभाव उक्तः तं जानतां प्रयाणमेव नास्ति । 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयंते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति' इति श्रुतेः । **द्वितीये**—शुद्धस्त्वंपदार्थ उक्तस्तज्ज्ञानस्यापि वस्तुतत्त्वविषयत्वान्न तत्र भावनापेक्षाऽस्तीति न भावनाफलभूतकाले तत्प्रत्ययोऽपेक्ष्यते । **तृतीयचतुर्थयोस्तु**—कर्म तत्साधनभूतं च जन्यं वस्तूक्तम् । तत्रापि न भावनापेक्षाऽस्ति अन्तकाले प्रबलेनैव कर्मणा चित्तस्यावरोधात्तत्साधनफलभूतस्यैव स्मरणावश्यंभावेन तत्र भावनाया वैयर्थ्यात् । परिशेषादन्त्ययोरेव कार्यकारणब्रह्मणोः सोपाधिकनिरुपाधिकयोरन्यतरस्य

**यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।**
**तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६**
**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।**
**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७**
**अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।**
**परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८**

भावना सुदृढा चेदन्तकाले तत्प्रत्ययोऽवश्यंभावीति तयोरन्यतररूपं परमात्मानं स्मरन् यः कलेवरं मुञ्चन्नर्चिरादिमार्गेण प्रयाति स ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रमेण मद्भावं मोक्षं यातीत्याह—**अन्तकाले चेति** । स्पष्टा योजना । **नास्त्यत्र संशय इति** । सोपाधिकब्रह्मोपास्तिं प्रकृत्य 'शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वगन्या उत्क्रमणे भवंति' इति तदुपासकस्य गतिपूर्वकस्यामृतत्वस्य श्रवणात् । यस्तु शुद्धत्वंपदार्थरूपमध्यात्मवस्तुमात्रं वेद असौ ब्रह्मात्मैक्यज्ञानाभावान्न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीत्येतद्वाक्यविषयो न भवति । किंतु शतं चैका चेत्येतस्यैव विषयः । ननु तस्यानुपासकत्वात्कथमेतदिति चेन्न । 'न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति'इतिन्यायेन तस्योभयभ्रष्टत्वासंभवात् । कठवल्लीषु निष्कलप्रत्यगात्मविदं केवलयोगिनं प्रकृत्य शतं चैका चेत्याम्नानाच्च ।

'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः
ते ब्रह्म लोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे' ।

इति श्रुतेर्निश्चितार्थानां शोधितत्वंपदार्थानामेव क्रममुक्तिरवगम्यते । न चात्र सुनिश्चितार्था इत्यनेन ब्रह्मात्मैक्यनिश्चयवन्तो ग्रहीतुं शक्याः । तेषां गत्यभावस्य प्रोक्तत्वात् । नाप्युपासकाः असम्भवात् । उपासना हि नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिः । यथा शालग्रामे विष्णुबुद्धिरेवं सूत्रविराडन्तर्यामिष्वात्मबुद्धिरिति न तद्वन्तः सुनिश्चितार्था इति वक्तुं शक्यम् । तस्मादध्यात्मविदो ब्रह्मात्मैक्यानवगमादनुपासकत्वेनान्त्यप्रत्ययाभावेऽप्यर्चिरादिगतिप्राप्तिरस्तीति सर्वमनवद्यम् ॥५॥ न केवलं कार्यकारणब्रह्मणोरेव भावनान्त्यप्रत्ययवशात्तद्भावप्राप्तिहेतुरपि तु कीटस्य जीवत एव भावनाबलाद्भाव्यवस्तुभावप्राप्तिर्दृश्यते। नन्दिकेश्वरस्य च स्मर्यते 'स हि महादेवं भावयंस्तत्सारूप्यं देहान्तरं विनैव प्राप्तः'इति योगशास्त्रेऽपि प्रसिद्धम् । तत्र किमु वक्तव्यमन्तप्रत्ययवशाद्देहान्तरे भाव्यभावप्राप्तिरस्तीति मत्वा तमेवार्थमन्यत्रापि दर्शयति—**यं यमिति** । तद्भावभावितः भाव्याकारवासनया रञ्जित इत्यर्थः ॥ ६ ॥ यस्मादेवं तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर अन्तकाले मत्स्मृत्या मद्भावप्राप्त्यर्थम् । युध्य चेति चकारात्कर्मोपास्त्योः समुच्चयोऽवगम्यते । ज्ञानकर्मसमुच्चयकर्तरीव तदुभयानुष्ठातर्येकस्मिन्नेवाधिकारिणि कर्तृत्वाकर्तृत्वप्रत्ययकृतविरोधाभावात् । मयि अर्पिते मदेकनिष्ठतां नीते मनोबुद्धी येन स मय्यर्पितमनोबुद्धिस्त्वं असंशयं मामेवैष्यसि प्राप्स्यसि अन्तकाले स्मरणेनेति शेषः ॥ ७ ॥ एतदेव श्लोकत्रयेण विवृणोति—**अभ्यासेति** । अभ्यासयोगयुक्तेन 'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः' इति सूत्रितोऽभ्यासः । तत्र ध्येये वस्तुनि चित्तस्य स्थिरीकरणार्थो यत्नः । स च विजातीयप्रत्ययानन्तरितसजातीयप्रत्ययप्रवाहीकरणरूपः सोऽऽभ्यासः । तत्र भाव्यो विषयः सिद्धः विष्णुप्रतिमादिर्विराडादिर्वा । असिद्धस्तु मानसप्रतिमादिः । तत्रासिद्धे मनसः प्रतिमाकारतासम्पादने तत्र स्थैर्यसम्पादने चेति विषयभेदाद्द्विगुणो यत्नः कर्तव्यो भवति । सिद्धे तु चित्तस्थिरीकरणार्थ एक एव यत्नः । तत्र यथा स्वतः स्वच्छः स्फटिको जपाकुसुमोपरागाल्लोहितः स्फटिक इति तत्र लौहित्याध्यासः । तत्प्राबल्यात्तत्रैव स्फटिकधीप्रमोषे पद्मरागत्वाध्यासः । पद्मरागेऽपि चन्द्रिकायामिन्द्रनीलत्वाध्यासस्तत्रैव तदानीमेव किञ्चिद्दूरस्थे निहीनोपलत्वाध्यास इत्युत्तरोत्तराध्यासक्रमेण शुद्ध एक एव स्फटिकः पञ्चविधो भवति । एवं स्वतःशुद्धं चैतन्यं मायोपरागात्तदेवेश्वरः । मायाप्राबल्ये तस्यैवेश्वरत्वांशप्रमोषे तत्रैव सूत्रात्माध्यासः । सूत्रेऽप्यज्ञानदार्ढ्याद्विराडध्यासः । अत एव विराडेकदेशेषु शरीरादिषु आत्मत्वभ्रमः । तत्र यथा घटान्तर्गतः प्रदीपो घटमात्रं भासयति घटच्छिद्रात् बहिर्गतः किञ्चित्स्वप्रभया संसृष्टं विषयमवभासयति । सर्वात्मना घटाद्बहिर्गतस्तु कृत्स्नं भवनोदरवर्तिपदार्थजातं प्रकाशयति । तद्वद्देहान्तर्गता चितिर्देहमात्रं भासयति । देहच्छिद्राच्चक्षुरादेर्बहिर्गता सती तत्सन्निकृष्टं कंचिद्विषयं रूपादिकमवभासयति । सर्वात्मना गुरूक्तयुक्त्या देहकृतपरिच्छेदाभिमाने त्यक्ते त्वपरिच्छिन्ना सती कृत्स्नं विराडात्मानमवभासयति । यथोक्तं बाह्यग्रंथेष्वपि—

'मणि-हुतवह-तारा-सोम-सूर्यादयोऽपि
क्षितिविषयमिहाल्पं बाह्यमुद्योतयन्ति ।
सहजलयसमुत्थं द्योतयेज्ज्योतिरन्त-
स्त्रिभुवनमपि सूक्ष्मस्थूलभेदक्रमेण' इति ।

सहजलयसमुत्थं सहजः स्वाभाविको देहकृतपरिच्छेदाभिमानस्तस्य लयमात्रादेव उत्थितं क्रमेण संकल्पक्रमेण सद्यःक्षणमात्राभिनिर्वृत्त्वात्सर्वस्य प्राक्संकल्पादसत्त्वात् । तथा च श्रुतिः—'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पा-

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १०
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११

देवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति ' इति । 'दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः ' **इत्यक्षपादसूत्राच्च** । दोषा रागादयः तदेवं प्रकाशमाने विराजि ' अहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः ' इति शास्त्रप्रामाण्यादुपासकेन गृहीतोऽहंग्रहो यद्यपि वस्तुतत्त्वापेक्षया भ्रान्तिरूपस्तथाऽपि स्वाभाविकाद्देहाहंग्रहात्सत्यरूपः । यथा स्फटिके हीनोपलत्वग्रहापेक्षया इन्द्रनीलत्वग्रहस्तद्वत् । यथा च स्फटिके प्रणिधीयमानं चक्षुरुत्तरोत्तरपाटवविवृद्धाविन्द्रनीलत्वं बाधित्वा पद्मरागत्वं तद्बाधेन लोहितस्फटिकत्वं तद्बाधेन शुद्धत्वं चावगच्छति । एवं गुरूक्तयुक्त्या प्रत्यगात्मनि प्रणिधीयमानं मनोऽस्य बाह्यं बाह्यं रूपमपोह्य आन्तरे आन्तरे अवतिष्ठते । चरमं विशुद्धं रूपं प्राप्य तु स्वयमेव विलीयते । यथोक्तम् । 'येन त्यजसि तत्त्यज' इति येन मनसा त्यजसि विराडादिभावं तदपि मनस्त्यजेत्यर्थः । तदेवं व्यवहारापेक्षया सिद्धेषु विराट्सूत्रान्तर्यामिषु मनसः स्थिरीकरणार्थो यत्नोऽभ्यासस्तत्फलभूतो योगः । समाधिर्ध्येयवस्तुन्येव चेतसः स्थैर्यं तेन गुणेन युक्तं यच्चेतस्तेन नान्यगामिना अनन्यगामिना । नञर्थेतिवत्समासः । तेन चेतसा परमं सर्वोत्कृष्टं पुरुषं निरस्ताशेषदोषम् । यत्सर्वेषा पुरस्तात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुष इति निर्वचनात् । दिव्यं द्योतमानमनुचिन्तयन्नहमेव भगवान्सर्वात्मा वासुदेव इति सततमाचार्योपदेशमनुध्यायन् तमेव नदीसमुद्रन्यायेन याति हे पार्थ । तथाच च श्रुतिः —

' यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ' ॥

इति परात्सूत्रात्परं अन्तर्यामिणम् ॥ ८ ॥ तदेवमुपासनायाः स्वरूपमुक्त्वा उपास्यस्य स्वरूपमाह—**कविमिति** । कविं क्रान्तदर्शनं सर्वज्ञं, पुराणं चिरन्तनम्, अनुशासितारं जगतोऽन्तर्यामिणं, अणोः सूक्ष्मादप्याकाशादेरणीयांसं सूक्ष्मतरं योऽनुस्मरेत् अनुचिन्तयेत् । सर्वस्य कर्मफलस्य धातारं विभागेन प्रदातारम् । अचिन्त्यरूपं नास्य रूपं विद्यमानमपि केनचिच्चिन्तयितुं शक्यम् । आदित्यवर्णं आदित्यस्येव नित्यप्रकाशरूपो वर्णो दीप्यमानता यस्य तं आदित्यवर्णम् । सर्वजगदवभासकमित्यर्थः । तमसो देहेन्द्रियादावनात्मन्यात्माभिमानरूपाविद्यातः परस्तात् पराचीनं । सति देहाभिमाने न प्रकाशते, योगयुक्त्या त्यक्ते तु तस्मिन् स्वयमेव प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ९ ॥ उपासनायाः फलमाह—**प्रयाणेति** । प्रयाणकाले मनसाऽचलेन वृत्त्यन्तरवर्जितेन । भक्त्या भगवति वासुदेवे आराध्यत्वबुद्ध्या युक्तो योगबलेन योगो मनःप्राणेन्द्रियक्रियानिरोधो हृदयपुण्डरीके तेषां वशीकरणमित्यर्थः । तस्यैव बलेन च युक्तो भूमिकाजयक्रमेण प्रागेव मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तस्थानेष्वारोहावरोहक्रमेण सञ्चारितपवनोऽन्तकाले भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रे प्राणमावेश्य सुषुम्नया नाड्या मूलाधारादुत्थापनपूर्वकं सम्यक् निवेश्य स्थापयित्वा । स्थापनप्रयोजनं तु अन्यविस्मरणपूर्वकं दिव्यपुरुषाचिन्तनम् । तच्च भ्रूमध्यादुपर्युन्नीयमाने वायौ मनो मूर्च्छामापद्यत इति तस्यामवस्थायां न भवतीत्यन्त्यप्रत्ययस्तत्रैव संपाद्यस्ततोऽर्चिरादिमार्गपर्वणा अमानवस्य पुरुषस्य स्थानविशेषप्रापकस्य प्राप्यस्थानस्य च तस्मिन्नेव स्मरणं कर्तव्यम् । तद्वासनावासितं मनो भ्रूमध्याद्योगिना ऊर्ध्वया नाड्या उत्क्षिप्ते प्राणे मुक्तेपुवद्ब्रह्माण्डखर्परं भित्त्वा प्रचलिते सति लब्धवृत्तिकं भूत्वा पूर्वसंस्कारप्राबल्याद्योगमाहात्म्याच्च दिव्योपाध्युपेतमर्चिरादिपर्वदेवताभिरभिपूज्यमानमुत्तरोत्तरं स्थानं प्रत्यतिवाह्यमानममानवेन च पुरुषेण सङ्गच्छमानं तेन च यथाभिलषितं स्थानं प्रापितमात्मानं पश्यति । तदिदमुक्तं भ्रुवोर्मध्ये सम्यक् प्राणमावेश्येति । स एवं कृत्वा योगी कविं पुराणमित्युक्तलक्षणं परं पुरुषं हिरण्यगर्भाख्यं सर्वस्य भूतजातस्य जनयितारं नारायणादिशब्दप्रतिपाद्यमुपैति समीपे प्राप्नोति । तल्लोकं प्राप्नोतीत्यर्थः । न हि पौराणिकानामिव वैदिकानां मते ब्रह्मविष्णुरुद्रलोकानामुपर्युपरिकल्पनाऽस्ति । किं तर्हि सर्वे हिरण्यगर्भलोकाख्ये सत्यलोक एवान्तर्भवन्ति । ' परा हि सोपासनकर्मार्जितिर्हिरण्यगर्भप्राप्त्यन्ता ' इति **बृहदारण्यके** । तद्भाष्यादौ च स्पष्टम् ॥ १० ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्येत्युक्तं तत्किं कृत्वा कर्तव्यं, तत्कृत्वा च किं कर्तव्यमित्येतद्द्वयं वदिष्यंस्तत्र प्रती-

**सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।**
**मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥**
**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।**
**यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३**
**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।**
**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४**
**मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।**
**नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५**
**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।**
**मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६**
**सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः**
**रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७**
**अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।**
**रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८**

कत्वेन चिन्त्यं प्रणवं तावद्वाच्यवाचकयोरभेदविवक्षया स्तौति–यदक्षरं प्रणवाख्यं वाचकं वेदविदो वेदादौ वदन्ति। यद्वा यदक्षरं ब्रह्म तद्वाच्यम् । 'एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम् ' इत्येवंलक्षणं वा वेदविद उपनिषद्विदो वदन्ति । यच्च यतयो विशन्ति ब्रह्मप्रतीकत्वेन शरणीकुर्वन्ति । पक्षे सम्यग्दर्शने सति सरित्सागरन्यायेन यत्प्रविशन्ति यतयः । यदक्षरमिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्तीति पक्षद्वयेऽपि समानम् । तत्ते पदं वर्णत्रयात्मकं पदनीयं वा स्थानं विष्णोः परमं पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये। अयं च वाच्यवाचकयोरभेदः श्रुतिच्छायया गम्यते। ' अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात् ' इति सर्वधर्मातीतं ब्रह्म प्रकृत्य—

" सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।'इत्योङ्कारेणोपसंहारात्। तत्फलं च प्रतीकभावात्। ओङ्कारं प्रतीकत्वेन प्रकल्प्य तद्द्वारा शुद्धं शबलं वा ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं तथा च श्रुत्यन्तरे—' एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः ' इत्युपक्रम्य ' तस्मादेवंविद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति'इति दृष्टम्। आयतनं शालग्रामवत् प्रतीकं तेन॥ ११॥ भ्रुवोर्मध्ये कथं प्राणमावेशयेदित्यत आह—**सर्वेति** । सर्वाणि शब्दादिविषयग्रहणद्वाराणीन्द्रियाणि संयम्य निगृह्य तथा हृदि मनोऽपि निरुध्य तेषां कञ्चुकभूतं प्राणं मूर्द्धन्यनाड्या सुषुम्नाख्यया मूर्ध्नि भ्रुवोर्मध्ये आधाय कथं योगधारणां योगशास्त्रोक्तां धारणां मनसो देशविशेषनिबन्धनीमास्थितः अनुतिष्ठन् सन् ॥ १२ ॥ मूर्ध्नि प्राणमाधाय किं कुर्यादत आह–ओङ्काररूपं एकाक्षरं एकं च तदक्षरं च वर्णो ब्रह्म च तद्व्याहरन् उच्चरन् मां च ब्रह्मभूतं अनुस्मरन् यो हि देवदत्तं स्मृत्वा तन्नाम व्याहरति तस्मै देवदत्तोऽभिमुखो भवत्येवं ब्रह्मणो नामोच्चारणेन सन्निहिततरं व्यापकं ब्रह्म साधकस्य सन्निधीयते सन्निहिते च ब्रह्मणि यो देहं त्यजन् म्रियमाणः प्रयाति ऊर्ध्वनाड्या उत्क्रामति स परमां गतिं सन्निकृष्टब्रह्मरूपां याति । ब्रह्मैव प्रकृत्य श्रूयते–'एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परम आनंदः' इति । तामेव गतिं शुद्धं ब्रह्मैव प्राप्नोति ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा ॥ १३ ॥ इयं गतिरतीव दुर्लभेति मा मंस्था इत्याह–**अनन्येति** । नास्ति अन्यत्र चेतो यस्यासौ अनन्यचेता इत्यनेन स्मरणे आदर उच्यते । सततमिति नैरन्तर्यम् । **यो मां स्मरति नित्यशः** । इति दीर्घकालत्वं यावज्जीवं स्मरतीत्यर्थः । **तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य** नित्ये योगिनामावश्यके युक्ताहारविहारादौ यमनियमादौ च युक्तस्यावहितस्य योगिनः योगमनुतिष्ठतः ॥ १४ ॥ त्वल्लाभेऽपि किं स्यादत आह–**मामिति।** मामुपेत्य पुनर्द्वितीयवारं जन्म नाप्नुवन्ति । यज्जन्मदुःखानामालयभूतं मूढदृष्ट्या किञ्चित्सुखालयत्वेऽपि अशाश्वतं नश्वरं तुच्छमित्यर्थः । के नाप्नुवन्ति । महात्मानो योगेन जितचित्ताः । अत एव परमां संसिद्धिं मोक्षं गताः । अगता अपि प्रत्यासन्नत्वाद्गता एव । तथा ब्रह्मलोकगतान् प्रकृत्य स्मर्यते ' ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसञ्चरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ' इति प्रतिसञ्चरे बाह्ये प्रलये परस्य चतुर्मुखस्य अन्ते नाशे ॥ १५॥ त्वदलाभेऽपि किं स्यादत आह—**आब्रह्मेति** । आब्रह्मभुवनात् ब्रह्मलोकमभिव्याप्य ब्रह्मलोकेन सहैवेत्यर्थः लोकाः पुनरावर्तिनः पुनरावृत्तिस्वभावाः हे अर्जुन, शेषं स्पष्टम् । अत्रेयं व्यवस्था । ये क्रममुक्तिफलाभिर्दहरादिविद्याभिर्ब्रह्मलोकं गतास्ते तत्रैव ज्ञानं प्राप्य ब्रह्मणा सह मुच्यन्ते । ये तु पञ्चाग्निविद्याभिर्ब्रह्मलोकं गतास्तेऽनुपासितपरमेश्वराः पुनरावर्तन्त इति ॥ १६ ॥ आवृत्तिभाजां कालपरिच्छेदमाह--**सहस्रेति** । युगशब्दोऽत्रचतुर्युगपर्यायः। ' चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिनमुच्यते ' इति पुराणान्तरदर्शनात् सहस्रं चतुर्युगानि पर्यन्तोऽवसानं यस्य चतुर्युगसहस्रं ब्रह्मणो दिनं रात्रिरपि तावतीत्याह—**रात्रिमिति** । अत्रापि चतुर्युगसहस्राणां अन्ते भवति तां चतुर्युगसहस्रान्ताम् । ते प्रसिद्धा अहोरात्रविदो जना विदुः ॥ १७ ॥ किं ब्रह्मणोऽह्नि जायते किं वा रात्रावित्यत आह—**अव्यक्तादिति**। अत्र दैनंदिनसृष्टिप्रलययोः प्रकृतत्वादव्यक्तशब्देन

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९
परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो ऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २०
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥२२
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥ २६
नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७

नाव्याकृतं वियदादिकारणमिह ग्राह्यं, तदा आकाशादीनां सत्त्वात् । किं तर्हि प्रजापतेः स्वापावस्थैवेहाव्यक्तशब्दार्थः । अयं भावः—प्रजापतेः स्वापकाले तत्कल्पितः स्थावरजंगमप्रपंचः सर्वोऽपि तदीयेऽज्ञानेऽव्याकृताख्ये लीयते रात्र्यागमे। तथा दिवसागमे पुनस्तत एव यथापूर्वमाविर्भवति । एवं दृष्टिसृष्टिन्यायेनास्मत्कल्पितोऽप्ययं वियदादिप्रपंचोऽस्मत्सुषुप्तौ लीयते अस्मत्प्रबोधे यथापूर्वं प्रादुर्भवतीति ॥ १८ ॥ कृतहानाकृताभ्यागमदोषापनुत्तये, बन्धमोक्षशास्त्रप्रवृत्तिसाफल्याय च अविद्यादिवशादवशोऽयं भूतग्रामः पुनःपुनर्भूत्वा पुनः पुनः प्रलीयत इत्याह वैराग्योत्पादनार्थम्-**भूतग्राम इति** । अहरागमे भूत्वा भूत्वा रात्र्यागमे प्रलीयत इति योजना । स एव भूत्वा प्रलीयते नान्योऽभिनवो भवतीत्यर्थः । कुतः यतोऽवशः अविद्याकामकर्माधीनस्तस्मात्सर्वानर्थबीजभूताया अविद्याया विद्यया उच्छेदे जन्ममरणप्रवाहविच्छेदायावश्यं यतितव्यमित्यर्थः ।। १९ ॥ एवं ब्रह्मभुवनान्तानामावृत्तिं व्याख्याय यत्प्राप्तानामावृत्तिं व्याख्याय यत्प्राप्तानामावृत्तिर्नास्ति तदक्षरं परमं ब्रह्मेत्युपक्रान्तं वस्तु लक्षयति-**परस्तस्मादिति** त्रिभिः। पर इति । तस्मादव्यक्तात् भूतग्रामबीजभूतादविद्यालक्षणादनृतात् अन्योऽत्यंतविलक्षणो भावः सत्ता । तुशब्दात्परामिमतं सत्तासामान्यं वारयति । तस्य सामान्यादिभ्यो व्यावृत्तत्वात्। अस्य च सर्वानुगतत्वात् सनातनो नित्यैकरूपः । उपाधिमान् हि उपाधिविक्रियया नित्यं विक्रीयत इव भाति । अयं त्वनुपाधित्वान्नित्यैकरूप एव यः स भावः सर्वेषु भूतेषु वियदादिषु नश्यत्सु न विनश्यति केवलसत्तारूपत्वात् । एतेन तस्य कालत्रयाबाध्यत्वं नित्यत्वं चोक्तम् ॥ २० ॥ अव्यक्तो न व्यज्यत इति दृश्यत्वं निरस्तम् । अक्षरोऽश्नुते व्याप्नोतीति त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वमुक्तम् । तं भावं परमां गतिम् । ब्रह्मलोकान्ता गतिरपरमा । कार्यत्वात् । इयं तु परमा । कार्यकारणातीतत्वात् । आहुः । 'एषाऽस्य परमा गतिः' इत्यादयः श्रुतयः । यं भावं प्राप्य न निवर्तन्ते पुनः संसारे न पतन्ति तदिति विधेयापेक्षं क्लीबत्वम्।स एव मम विष्णोः 'परममुपाध्यस्पृष्टं धाम, प्रकाशः' 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इति श्रुतिप्रसिद्धं निष्कलं ब्रह्म ॥ २१ ॥ एवं ज्ञेयं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मोक्त्वा जगत्कारणमुपासनीयमितोऽन्यदित्याह-**पुरुष इति** । तुशब्दः पूर्ववैलक्षण्यद्योतनार्थः हे पार्थ, योऽयं भक्त्या आराधनेन उपासनेनेति यावत् कीदृश्या अनन्यया नास्त्यन्यो यस्यां सा तया उपास्योपासकभेदमन्तरेण अहंग्रहरूपयेत्यर्थः । तया भक्त्या यो लभ्यः स परः पूर्वोक्तादव्यावृत्तादननुगतादक्षरादन्यः कारणात्मेति यावत् । लभ्यत्वादेवास्यान्यत्वमपि न ह्यात्मा च लभ्यश्चेति युज्यते । अस्य कारणत्वमेवाह-**यस्येति** । यस्य पुरुषस्यान्तःस्थानि बीजे द्रुम इव सर्वाणि वियदादीनि स्थावरजंगमानि च येन च इदं सर्वं ततं व्याप्तमुपादानत्वात् स भक्त्या लभ्यत इति योजना ॥२२॥ पूर्वोक्तानामोंकारद्वारा सगुणब्रह्मविदां क्रममुक्तिभाजाम् ब्रह्मप्रतिपत्तये उत्तरो मार्गो वक्तव्य इत्यत आह—**यत्रेति** । आवृत्तिमार्गोपन्यासोऽनावृत्तिमार्गस्तुत्यर्थः । **योगिन इति** । योगिनः कर्मिणश्चोच्यन्ते तेषां यथायोगं मार्गद्वयविभागः । शेषं स्पष्टम् ॥ २३ ॥ तत्र उपासकानां देवयानं पन्थानमाह—**अग्निरिति** । अग्निर्ज्योतिरित्यर्चिरभिमानिनी देवता लक्ष्यते । एवं अहरित्यहरभिमानिनी । एवं शुक्लपक्षस्य षण्मासंमितोत्तरायणस्य चाभिमानिन्यौ देवते एव । एतच्चान्यासामप्युपलक्षणम् । तत्र प्रयाता उत्क्रांता ब्रह्म कार्यं ब्रह्म तद्द्वारा परं च गच्छन्ति । ब्रह्मविदो ब्रह्मोपासका जनाः ॥ २४ ॥ एतेन च धूमो रात्रिरित्येषोऽपि धूमादिमार्गः कर्मिणामपक्वयोगिनां चोचित आवृत्तिफलश्च व्याख्यातः ॥ २५ ॥ उक्तौ मार्गावुपसंहरति—**शुक्लेति** । शुक्ला ज्ञानहेतुत्वादर्चिरादिगतिः तदभावात्कृष्णा धूमादिगतिः एकया शुक्लया अन्यया कृष्णया ॥२६॥ एते सृती मार्गौ आवृत्त्यनावृत्तिफले जानन् योगी न मुह्यति । योगभ्रष्टोऽयतिरल्पप्रयत्नश्च

**वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव**
**दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।**
**अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा**
**योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८**

**इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पर्वणि तु द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥**

# ३३

**श्रीभगवानुवाच ।**
**इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।**
**ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १**
**राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।**
**प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २**
**अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।**
**अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३**

योगी न भवति कश्चन कोऽपि। यस्मादेवं तस्मात्सर्वोष्वित्यादि स्पष्टम् ॥ २७ ॥ पुनः श्रद्धाभिवृद्धये योगं स्तौति— **वेदेष्विति** । वेदेषु सम्यगधीतेषु यज्ञेषु तपःसु च सम्यगनुष्ठितेषु दानेषु च सम्यग्दत्तेषु यत्पुण्यं तत्फलं चेति पुण्यफलं सर्वेषु समुच्चितेषु यत्प्रदिष्टं शास्त्रेषु तत्सर्वं योगी **अत्येति** । अतिक्रामति कार्यब्रह्मलोकं प्राप्नोतीत्यर्थः । किं कृत्वा इदं पूर्वोक्तमुपासनं विदित्वा ज्ञात्वाऽनुष्ठाय च ततश्च किमित्यत आह— यत्स्थानं निर्विशेषं ब्रह्म उपैति प्राप्नोति च क्रमेणेत्यर्थः । आद्यं न तु केनचिन्निर्मितं तदनेनाध्यायेन ध्येयस्तत्पदार्थो व्याख्यातः । अग्रिमेऽध्याये ज्ञेयं ब्रह्म व्याख्यास्यति ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे गीतार्थ० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पर्व० ॥ ३२ ॥

३३

पूर्वाध्याये किं तद्ब्रह्मेत्यादिसप्तप्रश्नयामक्षरं ब्रह्म परममित्यादिना संक्षिप्य व्याख्यातायां तज्ज्ञानस्य पृथक्प्रयोजनाकांक्षायां कर्मविद आधिभौतिकं धूमादिमार्गप्राप्यं स्थानमिति निरूपणेन प्राप्यप्रापकादिविभागो दर्शितः। तेन कर्माधिभूते व्याख्याते । तथा सूत्रान्तर्यामिणोरुपासकस्यार्चिरादिमार्गेण क्रममुक्तिस्थानप्राप्तिरित्युक्तं तेनाधिदैवाधियज्ञौ व्याख्यातौ । ओमित्येकाक्षरमित्यादिना अन्तकाले कथं ज्ञेयोऽसीत्यस्योत्तरं व्याख्यातम् । तदेवं ध्येयब्रह्मविद्या साङ्गा निरूपिता । परिशिष्टमाद्यं ज्ञेयब्रह्मविषयं प्रश्नद्वयं **किं तद्ब्रह्म किमध्यात्ममिति** । तद्विवरणाय नवमोऽध्याय आरभ्यते । न केवलमर्चिरादिगतिप्राप्या कालान्तर एव मुक्तिरस्ति किंत्विहैव सद्यो मुक्तिरस्तीति विशेषं वक्तुं श्रीभगवानुवाच—**इदं तु ते इति** । इदं वक्ष्यमाणं तु पूर्वस्माद्ध्येयाद्विलक्षणं ज्ञेयं ते तुभ्यं गुह्यतममतिगोप्यं प्रवक्ष्यामि। अनसूयवे असूया गुणेषु दोषाविष्करण तद्रहिताय । ज्ञानं ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं ब्रह्म। विज्ञानेनानुभवेन सहितं नतु केवलं पारोक्ष्येण । यत् ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षात्कृत्य अशुभात्संसारान्मोक्ष्यसे । अत्र यत्सप्तमादौ 'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः' इति प्रतिज्ञातं यस्य च विज्ञानाय शाखाचन्द्रन्यायेनोपलक्षणीभूतं जगत्कारणं ब्रह्म तत्रैव निरूपितम् । यद्विज्ञानेऽधिकारसंपत्त्यर्थं तस्यैव सगुणस्योपासनमुक्तं तादिह सर्वशेषीभूतं ब्रह्म वक्तव्यमिति तथैव प्रतिजानीते वचनमात्रेणैवात्रापरोक्षं ज्ञानं जायत इति । तच्च तत्रैव व्युत्पादितं न विस्मर्तव्यम् ॥ १ ॥ एतदेव स्तौति—**राजविद्येति** । विद्यानां राजा इति राजविद्या अध्यात्मविद्या । गुह्यानां राजा इति **राजगुह्यम्** 'राजदन्तादिषु परम्' इत्युपसर्जनस्य परनिपातः । पवित्रं पावनम् । उत्तमं पूर्वापरदुरितनाशैकहेतुत्वात् प्रायश्चित्ताद्यपेक्षया श्रेष्ठम् । प्रत्यक्षावगमं प्रत्यक्षं नित्यापरोक्षं यत्प्रत्यगात्मवस्तु तदेव याथात्म्येनावगम्यतेऽनेनेति प्रत्यक्षावगमम् । प्रत्यक्षेण सुखादिवदवगमो यस्येति वा । अस्मिन्पक्षे विज्ञानसहितमिति विशेषणस्य श्लोकान्तरस्थत्वान्न तैः पौनरुक्त्यदोषः । तर्ह्यपूर्वत्वाभावान्निष्फलं स्यादत आह— **धर्म्यं** धर्मादनपेतम् । तथा हि क्षणमपि प्रत्यगात्माकारवृत्तौ सत्यां श्रूयते—'क्षणमेकं क्रतुशतस्य चतुःसप्तत्या यत्फलं तदवाप्नोति' इति । तर्हि दुःसाध्यं स्यान्नेत्याह— **सुसुखं कर्तुमिति** । कर्तुं सम्पादयितुं आविष्कर्तुं सुसुखं अनायाससाध्यं अज्ञानापनयमात्रसिद्धत्वात् । तर्हि आह विनाशिफलं चेत् अव्ययं, वस्तुमात्रविषयत्वादनन्तफलं न कर्मफलवन्नश्यति ॥ २ ॥ तर्हि कुत एतज्ज्ञानं सर्वे न सम्पादयन्तीत्याह-**अश्रद्दधाना इति** । स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ ३

**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।**
**मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४**
**न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।**
**भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५**
**यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।**
**तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६**

एवं स्तुत्याऽभिमुखीकृत्य यद्वक्तव्यं तदाह—**मयेति** । मया इदं सर्वं जगत् ततं व्याप्तं उपादानत्वात् कनकेनेव कुण्डलादीनि । ननु प्रागेवैतदुक्तं 'अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा' इति । तथा च 'राजविद्या' इत्यादिस्तुतिरस्थाने एव कृता स्यात् । व्यक्तव्यविशेषाभावादिति चेत् । अत्र ब्रूमः । यथा 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति' इति ज्ञेयस्य ब्रह्मणो लक्षणं जगज्जन्मादिहेतुत्वमुक्त्वा तस्यानुगममन्नादिशब्दशब्दितेषु विराडादिषु दर्शयति —'अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणाद्ध्येव' इत्यादिना । तस्य निर्णयवाक्यं तु—'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' इति । 'सैषा भार्गवी वारुणी विद्या' इति तत्रैव विद्यायाः पर्यवसानाभिधानात् । एवमिहापि सप्तमे 'भूमिरापोऽनलो वायुः' इत्यादिना सर्वभूतात्मकस्य विराजो जगज्जन्मादिहेतुत्वं प्रदर्श्य पश्चात् 'अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा' इत्यनेन मायाशबलेऽपि तत्प्रदर्श्येदानीं शुद्धे प्रत्यगात्मन्येव तद्दर्शयति स्थूलारुंधतीन्यायेन प्रतिपत्तिसौकर्यार्थमिति गम्यते । राजविद्येत्यादिना स्तुतत्वात् । यथा कश्चिद्दुर्लक्ष्यां सूक्ष्मामरुन्धतीं दिदर्शयिषुस्तत्समीपस्थां स्थूलां तारामरुन्धतीति ग्राहयति, प्रतिपद्यते चानेनैव क्रमेण प्रतिपत्ता, एवमिहापि कार्यकारणप्रतिपत्तिद्वारा अकार्यकारणस्य शुद्धस्य प्रतिपत्तिर्युक्ता । अत एव **भगवान् भाष्यकारो** मया ततमिदं सर्वमित्यत्र मया मम यः परो भावस्तेन ततं व्याप्तमिति व्याचख्यौ । न त्वहं सर्वस्य जगतः प्रभव इत्यत्र मम यः परो भावः स सर्वस्य जगतः प्रभव इति । स च भगवतः कारणात्मनः परो भावः परमानंद एव तेनैव चेदं ततम् । आनन्दाद्ध्येवेत्युदाहृतश्रुतेस्तस्यैव जगदुपादानत्वेन तदीयसत्तास्फूर्तिभ्यां जगतो व्याप्तत्वात् । अत एवाव्यक्तमूर्तिनेति विशेषणम् । मायाशबलं हि कारणं बुद्धिग्राह्यत्वात्करणगोचरः, शुद्धं हि बुद्धेः परत्वात्करणागोचर इति । किंभूताकारेणानन्दः परिणमत इत्यत आह—**मत्स्थानीति** । मयि प्रत्यगानन्दे रज्ज्वां स्रक्सर्पदण्डधारादय इव सर्वभूतानि स्थितान्यतो मत्स्थानीत्युपचारादुच्यन्ते अधिष्ठानाध्यस्तयोर्वास्तवसम्बन्धायोगात् । एतदेवाह—**न चेति** । न चाहं परमानन्दस्तेषु भूतेष्ववस्थितोऽस्मि घटादाविव मृत् । अपरिणामित्वादेव ॥ ४ ॥ एवमभ्युपगतमानन्दस्य जगद्विवर्ताधिष्ठानत्वं तदप्यपवदति-**न च मत्स्थानीति** । अयं भावः-

'अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणम् ।
अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्मकारणमुच्यते ॥'

इति वार्तिकोक्तेरज्ञानमेव जगत्कारणं तच्च तुच्छम् । अहं चासङ्गः । ततश्च तुच्छतरेण तत्कार्येण भूतसङ्घेन न ममासङ्गस्याधाराधेयभावसम्बन्धोऽनिर्वचनीयोऽप्यस्ति । आवृतं हि रज्ज्वादिकमनिर्वचनीयेन सर्पादिना सम्बध्यते । अहं तु सर्वदाऽनावृतः साक्षिरूपत्वात्तत्संबन्धशून्य इति न च मत्स्थानि भूतानीत्युक्तमिति । ननु साक्षिणस्तव ब्रह्मणो युवा सुखी चेति प्रतीच्येव भूतसंबन्धानुभवात्कथं न च मत्स्थानीत्युक्तिरित्याशंक्याह—**पश्य मे योगमैश्वरमिति** । मे मम भूतैः सह योगं युक्तिघटनां पश्य । ऐश्वरं ईश्वरेण मायाविना निर्मितं गगने गन्धर्वनगरमिव । अत एव मम कारणशरीरस्यात्मा प्रत्यगानन्दो भूतभृदपि भूतस्थो, न चकारोऽप्यर्थेऽभिन्नक्रमश्च । खमिव गन्धर्वनगरभृदपि तत्स्थं न तस्य तदाकारेण परिणामासम्भवात् । एवंरूपोऽपि परानन्दरूपो ममात्मा स भूतभावनः भूतानां वृद्धिकरः । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इत्यादिश्रुतिभ्यः। आकाशे अव्याकृताख्ये स्वाधिष्ठानभूत आनन्दोऽनुस्यूतो न स्यात्तर्हि प्राणापानक्रियां कश्चिदपि न कुर्यात् । कारणगतं जाड्यं कार्येऽपि स्यात् । आकाशे आनन्दानुबन्धे तु कारणस्य चेतनत्वात्कार्यमपि चेतनावत्स्यादिति श्रुत्यर्थः । **बृहदारण्यकेऽपि** । 'यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे। यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाश एव तदोतं च प्रोतं च' इति मायाविनि सर्वस्योतप्रोतत्वमुक्त्वा 'कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्च' इत्यस्योत्तरं 'एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्च' इत्यस्थूलादिलक्षणस्याक्षरस्याकाशाधारत्वमुक्तम् । तस्मायुक्तमुक्तमाकाशशरीरेण भगवता कारणोपाधिनिष्कृष्टचिन्मात्राभिप्रायेण **ममात्मा भूतभावन** इति ॥ ५ ॥ श्लोकद्वयोक्तेऽर्थे दृष्टान्तमाह—**यथेति** । यथा लोके आकाशे स्थितो नित्यं सदा वायुः सर्वत्रगः परिमाणतश्च महान् । तथा सर्वाणि भूतानि सर्वगते मयि असंश्लेषेणैव स्थितानीत्येवमुपधारयेति **प्राञ्चः** । 'किं तद्ब्रह्म' इति प्रश्नस्योत्तरमुक्तं 'अक्षरं परमं ब्रह्म' इति । अक्षरसंज्ञं शुद्धस्त्वंपदार्थ एव निरूपा-

**सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।**
**कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥ ७**
**प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।**
**भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥ ८**
**न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।**
**उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥ ९**
**मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।**
**हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥ १०**
**अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।**
**परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ ११**
**मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।**
**राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥१२**
**महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।**
**भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥ १३**
**सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।**
**नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥१४**
**ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।**
**एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ १५**

र्धिकं ब्रह्मेत्युक्तम्। तत्र निरुपाधिकं ब्रह्म श्लोकद्वयेन व्याख्यातम्। इदानीं तस्य क्षराख्येन जीवेनाभेदं सदृष्टान्तमाह—**यथेति**। वायुः सूत्रात्मा। 'वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्' इति श्रुतेः। सर्वत्रग इति समष्टिलिङ्गत्वात्तस्य सर्वगतत्वम्। महानिति बाह्यवायुव्यावृत्त्यर्थम्। स यथा आकाशस्थितः अव्याकृताकाशे स्वकारणे स्थितः। नित्यमिति कालत्रयेऽपि तस्याकाशसंबन्धः उक्तः। सर्वाणि भूतानि उपाधिनिष्कृष्टस्वंपदार्थरूपी चेतनवर्गः। बहुत्वं लोकाभिप्रायेण। यथा कार्यं सर्वमुत्पत्तेः प्राक् नाशादूर्ध्वं मध्ये च स्वकारण एवाभेदेन तिष्ठति। एवं सर्वोऽपि जीववर्ग उपाध्युत्पत्तेः प्राक् तन्नाशादूर्ध्वं मध्ये वा घटाकाशो महाकाशादिव परस्माद्ब्रह्मणः कालत्रयेऽपि नातिरिच्यत इत्यर्थः। एतेन जीवब्रह्माभेदकथनेन स्वभावोऽध्यात्ममुच्यत इति यत्प्रागुक्तं ब्रह्मैव जीव इति तद्विवृतम्॥ ६॥ नन्वेवमुपाधिरहितस्यैव ब्रह्मणि लयश्चेदुपाधेः का गतिरित्याशङ्क्याह—**सर्वेति**। सर्वाणि भूतानि स्थावरजङ्गमशरीराणि मामिकां मम मायाविनः प्रकृतिं त्रिगुणात्मिकामपरां सूक्ष्मभूतात्मिकां यान्ति प्रविशन्ति। कदा यान्ति कल्पक्षये। पुनश्च तान्येव भूतानि प्रकृतौ सुप्तानिव संस्कारात्मना स्थितानि एकतां गतानि कल्पादौ विसृजामि विविधरूपेण सृजाम्यहं कारणात्मा मायावी॥ ७॥ एतदेवाह—**प्रकृतिमिति**। एवमविद्यालक्षणां स्वां प्रकृतिमवष्टभ्य आश्रित्य तां विना केवलस्य स्रष्टृत्वासंभवात् इमं भूतग्रामं पुनः पुनर्विविधं सृजामि किंभूतं प्रकृतेर्वशात् स्वभाववशात् अवशं रागद्वेषाद्यधीनम्॥ ८॥ ननु विषमां सृष्टिं कुर्वतस्तव वैषम्यनैर्घृण्ये स्यातामत आह—**न चेति**। तानि विषमसृष्टिरूपाणि कर्माणि मां न निबध्नन्ति। तत्र हेतुः—**उदासीनवदासीनमिति**। यथा पर्जन्यो बीजविशेषेषु रागं केषुचिद्द्वेषं चाकृत्वा उदासीनः सन् वर्षति एवमीश्वरोऽपि पुण्यवत्सु रागं पापिषु द्वेषं चाकुर्वन् जगत्सृजति। तत्तदसाधारणकर्मबीजवशात्ते विभिन्नं फलं प्राप्नुवन्तीति नेश्वरवैषम्यादीत्यर्थः॥९॥ ननु विसृजामि उदासीनवदासीनमिति परस्परविरुद्धमुच्यत इत्याशङ्क्याह—**मयेति**। मया कूटस्थेन अध्यक्षेण अयस्कान्तकल्पेन प्रवर्तकेन प्रकृतिश्चराचरं जगत् सूयते उत्पादयति। अनेन अध्यक्षत्वेनैव हेतुना हे कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते जन्माद्यवस्थासु भ्रमति। अयस्कान्तवदहमुदासीनश्च सृष्टिप्रवर्तकश्च भवामीति भावः। तथा च **मन्त्रवर्णः**—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'॥ इति एकस्यैव देवस्य सर्वाध्यक्षत्वं साक्षित्वं च प्रतिपादयति॥१०॥ एवंभूतं मां संमूढाः अवजानन्ति। यतो मानुषीं तनुं आश्रितं मनुष्यदेहेन व्यवहरन्तम्। मम परं प्रकृष्टं भावं तत्त्वं अजानन्तः भूतानां महेश्वरं मामवजानन्तीति सम्बन्धः॥ ११॥ मदवज्ञानाच्च ते मोघाशाः वृथैव आशा आशिषो येषां ते मोघाशाः। तथा मोघकर्माणः निष्फलयोगाः। मोघज्ञानाः निष्फलज्ञानाः यतो विचेतसः निर्विवेकाः। यतो राक्षसीमासुरीं च रजस्तमःप्रधानां मोहिनीं मोहकरीं प्रकृतिं श्रिताः। छिन्धि भिन्धि पिब खाद परस्वमपहरेत्येवंशीलाः क्रूरकर्माणो भवन्तीत्यर्थः॥ १२॥ तथा ये महात्मानः अक्षुद्रचित्ताः। तु पूर्वेभ्योऽत्यन्तं विलक्षणाः मां भजन्ति। यतो दैवीं प्रकृतिं सत्त्वप्रधानां आश्रिताः अनन्यमनसः एकाग्रचेतसः। किं गतानुगतिकतया दंभेन वा भजन्ति। न। किं तर्हि मां भूतादिं सर्वभूतकारणमव्ययं ज्ञात्वा मत्वा भजन्ति॥ १३॥ भजनस्वरूपमाह—**सततमिति**। यतन्तः इन्द्रियोपसंहारशमदमादिषु प्रयतमानाः दृढान्यहिंसादीनि व्रतानि येषां ते दृढव्रताः नमस्यन्तश्च मां हृदयेशयं प्रतिमादिरूपं वा भक्त्या नित्ययुक्ताः नित्यमवहिताः सन्त उपासते॥ १४॥ ज्ञानयज्ञेन निर्विकल्पसमाधिना **पातञ्जलाः**। एकत्वेन अहमेव भगवान्वासुदेव **इत्यभेदेनौपनिषदाः**। पृथक्त्वेन अयमीश्वरो मम स्वामीति बुद्ध्या **प्राकृताः**। अन्ये पुनर्बहुधा बहुप्रकारं विश्वतोमुखं सर्वात्मकं ब्रह्मरुद्रादिरूपं यत्किंचिद्दृष्टं तद्भगवत्स्वरूपमेव, यच्छ्रुत

**अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।**
**मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६**

**पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।**
**वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७**

**गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।**
**प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८**

**तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।**
**अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९**

**त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा**
**यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।**
**ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-**
**मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २०**

**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं**
**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।**
**एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना**
**गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१**

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।**
**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२**

**येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः ।**
**तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३**

**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।**
**न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४**

**यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।**
**भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्**

तन्नामैव, यद्दत्तं भुक्तं वा तत्तदर्पितमेवेत्येवं विश्वतोमुखं यथा स्यात्तथा मां उपासते ॥ १५ ॥ इदमेवोपासनं विवृणोति-**अहमिति** । **क्रतुः** सङ्कल्पो देवताध्यानरूपः । **यज्ञः** श्रौतः स्मार्तश्च देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागः । **स्वधा** पितृणामन्नम् । **औषधं** मनुष्याणामन्नम् । **मन्त्रो** येन दीयते सः । **आज्यं** हविः । **अग्निः** । **हुतं** प्रक्षेपक्रिया । इद सर्वं यस्मादहमेवातस्तेषां विश्वतोमुखमुपासनं युक्ततरमित्यर्थः ॥ १६ ॥ धाता कर्मफलानां विधर्ता, वेद्यं वेदितव्यं ब्रह्म । पवित्रं पावनं तप आदिकम् ॥१७॥ गतिर्मुक्तप्राप्यं स्थानम् । भर्ता कर्मफलदानेन पोषकः । प्रभुः अन्तर्यामी । साक्षी कृताकृतावेक्षकः । निवसन्त्यस्मिन्निति निवास आश्रयो यजमानादिः । शरणं रक्षकः । सुहृदुपकारमनपेक्ष्य उपकर्ता । प्रभव उत्पत्तिस्थानम् । प्रलयो लयस्थानम् । स्थानं स्थितिस्थानम् । निधानं कर्मफलसमर्पणस्थानं कालान्तरे फलप्रसवार्थम् । बीजं प्ररोहकारणं प्ररोहधर्मिणाम् । अव्ययं यावत्संसारभावित्वात् ॥ १८ ॥ अहं तपामि आदित्यो भूत्वा । अहं वर्षं वृष्टिः तां निगृह्णामि अष्टसु मासेषु कैश्चिद्रश्मिभिः । उत्सृजामि च चतुर्षु मासेषु कैश्चिदिति । अमृतं जीवनम् । मृत्युर्मरणम् । अमृतं देवान्नं वा । सत् साधु, असत् असाधु, एतत्सर्वमहमेव । अतस्तेषां विश्वतोमुखं मम भजनं कुर्वतां सर्वरूपेणाहमनुग्रहं करोमीति भावः ॥ १९ ॥ ये पुनरुक्तेषु प्रकारेष्वन्यतमेनापि मां न भजन्ते ते केवलकर्मठाः कां गतिं प्राप्नुवन्तीति शृणु-**त्रैविद्या इति** । तिस्रः ऋग्यजुःसामरूपाः विद्या येषां ते त्रिविद्याः त एव त्रैविद्याः सोमपाः सोमपायिनो याज्ञिका यज्ञैर्मामिष्ट्वा स्वर्गतिं फलं प्रार्थयन्ते । दिव्यान् अप्राकृतान् सङ्कल्पमात्रोपनतान् दुःखासंभिन्नान् ॥ २० ॥ त्रयी वेदत्रयी तस्यामुक्तं धर्मं त्रयीधर्मं काम्ययज्ञं कामकामाः विषयकामुकाः गतागतं यातायातं सातत्येन लभन्ते । तथा च श्रुतिः—

'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यान्ति' इति

अष्टादश षोडशर्त्विजः यजमानः पत्नी चेति द्वौ ॥ २१ ॥ एवं कर्मिणामावृत्तिं फलं चोक्त्वा भक्तानामपि मद्भजनेनैव सर्वसिद्धिरित्याह-**अनन्या इति** । नास्ति अन्य उपास्यो येषां अहमेव भगवान्वासुदेव इति अभेदेन चिन्तयन्त इत्यर्थः । ये जनाः पर्युपासते परितः साकल्येन कार्त्स्न्येनाद्वैतदृष्ट्येत्यर्थः । उपासते तेषां नित्याभियुक्तानां सतताभियोगिनाम् । **योगः**-अप्राप्तस्य अन्नादेर्योगभूमिकाया वा प्रापणम् । **क्षेमः**-तस्यैव प्राप्तस्य संरक्षणं तद्द्वयं अहमेव वहामि निर्वहामि । तैरन्नाद्यर्थं वा योगभूमिषूर्ध्वोर्ध्वभूमिलाभार्थं वा चिन्ता न कर्तव्येत्यर्थः । अनन्यचेतसां तेषां मदभिन्नत्वात्सर्वं सेत्स्यतीत्यर्थः । तथा चोक्तं-'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इति ॥ २२ ॥ अविधिपूर्वकं विधिरभेदबुद्धिस्तद्राहित्यादविधिपूर्वकत्वं तदीयभजनस्य ॥ २३ ॥ हि यतः सर्वयज्ञानामहमेव सर्वदेवतारूपेण भोक्ता प्रभुः फलदाता च । एवं ह्यसति ते मां प्रत्यगभिन्नं तत्त्वेन याथातथ्येन न जानन्ति अतश्च्यवन्ति ज्ञाननिष्ठामलब्ध्वा संसारगर्ते पतन्ति ॥ २४ ॥ सर्वे भक्ता यथा भजनं प्राप्नुवन्ति स्वाराध्यसान्निध्यमित्याह-**यान्तीति** । भूतार्थमिज्या येषां ते भूतेज्याः ॥२५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि २८
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ ३१
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९ ॥ पर्वणि तु त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३ ॥

मद्भक्तिरतिसुकरा देवतान्तरभक्तिस्तु बहुवित्तव्ययायाससाध्येत्याशयेनाह—**पत्रमिति** । भक्तिरेव केवलं ममापेक्षिता नान्यदिति भावः। भक्त्युपहृतं भक्त्या समर्पितम् ॥ २६ ॥ अतः सर्वं मदर्पणं कुर्वित्याह—**यदिति** । यत्करोषि गमनादिकं तद्भगवत एव प्रदक्षिणादिकं करोमीति मत्प्रीत्यर्थमेव तदर्पणं कुर्विति। एवं वचनादिष्वपि नामकीर्तनादिदृष्ट्या ऊह्यम् ॥ २७ ॥ एवं कुर्वतः फलमाह—**शुभाशुभेति** । शुभाशुभफलैः इष्टानिष्टफलैः कर्मरूपैर्बन्धनैः एवं कुर्वन् त्वं मोक्ष्यसे भगवदर्पणबुद्ध्या यत्किंचित्कर्म कुर्वतः कर्मलेपो नास्तीत्यर्थः । अयमेवोक्तलक्षणः कर्मफलसंन्यासरूपो मार्गस्तत्र युक्तात्मा समाहितचित्तः सन् विमुक्तः कर्मबन्धनैर्विमुक्तः सन् मां सर्वेषां प्रत्यगात्मानं उपैष्यसि ॥ २८ ॥ यतो भक्तानेवानुगृह्णाति नेतरानित्यतो रागद्वेषवान् भगवानित्यत आह—**समोऽहमिति** । यथाऽग्निः रागादिशून्योऽपि समीपस्थानामेव शीतं नाशयति न दूरस्थानां तद्वत्सर्वत्र समोऽप्यहं शरणागतानामेव बन्धं नाशयामि नान्येषामित्यर्थः । अतो मम न रागद्वेषाविति भावः । मयि ते तेषु चाप्यहं भक्ता अनन्यशरणतया मय्येव वर्तन्ते अहमपि तेष्वेव वर्ते । अभक्तचित्तानां रागाद्याक्रान्तत्वेन तत्र मम विशेषतोऽभिव्यक्तिर्नास्तीति भावः ॥ २९ ॥ भक्तेर्माहात्म्यमाह—**अपि चेदिति** । अत्यन्तपापिष्ठोऽपि मां यद्यनन्यचेताः सन् भजते तथापि स साधुरेव मन्तव्यः। हि यतः स सम्यग्व्यवसितः सम्यग्वृत्तः ॥ ३० ॥ सम्यग्व्यवसितत्वादेव क्षिप्रं शीघ्रं धर्मात्मा भवति । शान्तिं च शश्वन्निगच्छति प्राप्नोति । हे कौन्तेय, त्वमेव मदाज्ञया प्रतिजानीहि प्रतिज्ञां कुरु मे मम भगवतो हरेर्भक्तो न नश्यतीति॥३१॥ किंच हे पार्थ, हि प्रसिद्धं मां व्यपाश्रित्य आश्रित्य येऽत्यन्तं पापयोनयः. स्त्र्यादयस्तेऽपि परां गतिं यान्ति ॥३२॥ ब्राह्मणादयः पुनः पुण्याः मदाश्रयेण परां गतिं यान्तीत्यत्र किं चित्रम् । अतस्त्वं इमं मर्त्यलोकं अनित्यं नश्वरं असुखं सुखलेशहीनं प्राप्य मां परमात्मानं भजस्व । लोकान्तरे भजनं न भविष्यतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—' इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदवेदीन्महती विनष्टिः ' इति ॥ ३३ ॥ भजनप्रकारं दर्शयति—**मन्मना इति** । मय्येव मनो यस्य न पुत्रादौ स मन्मनाः । ममैव भक्तो न राजादेर्धनाद्यर्थं स मद्भक्तः । मद्याजी मदर्थमेव यजते न स्वर्गाद्यर्थं स मद्याजी तादृशो भव । मामेव नमस्कुरु शरणं व्रज । न त्वन्यान् । एवमनेन प्रकारेण युक्त्वा योगं कृत्वा मामेवात्मानं सर्वान्तरं एष्यसि प्राप्स्यसि । अभेदेन घटाकाश इव महाकाशम् । यतो मत्परायणः अहमेव सर्वोपाधिशून्यश्चिदात्मा परं सर्वोत्कृष्टं अयनं प्राप्यं यस्य स मत्परायणः । तथा च श्रूयते-

'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽ-
स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ' इति

॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे गी० नवमोऽध्यायः ॥९॥ पर्वणि तु ॥३३॥

# ३४

श्रीभगवानुवाच ।
भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५
महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः६
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७

३४

**सप्तमे** त्वंपदवाच्योऽर्थो निरूपितः, तदुपासनाच्च क्रममुक्तिरित्य**ष्टमे** प्रोक्तं, **नवमे** तत्पदलक्ष्यार्थ उक्तस्तत्प्राप्तये च विश्वतोमुखं सर्वत्र भगवद्भावभावनात्मकं भगवद्भजनमुक्तम् । तद्रागद्वेषकलुषितमनसामशक्यमिति मन्वानो भगवांस्तत्सिद्धये स्वविभूतीः केषुचिदेव पदार्थेषु भगवद्बुद्धिविधानार्थास्तावद्दर्शयति **दशमे** । तत्फलभूतं विश्वतोमुखस्योपासनं तेन च विश्वरूपदर्शनमे**काद**शे। **द्वादशे** पुनस्तत्पदलक्ष्यस्याव्यक्तस्योपासनं तदुपासकलक्षणानि चोक्त्वा उपासनाकाण्डं तत्पदार्थशोधनार्थं समापयिष्यति । तत्र वात्सल्यात्स्वयमेव श्रीभगवानुवाच—**भूय एवेति** । हे **महाबाहो**, भूयः प्रागुक्तमपि पुनर्मे परमं निरातिशयवस्तुनः प्रकाशकं वचः शृणु। प्रीयमाणाय अमृतपानादिवन्मद्वचनात्प्रीतिमनुभवते वक्ष्यामि। हितकाम्यया तव हितेच्छया॥१॥ दुर्ज्ञेयत्वाच्च मत्स्वरूपस्याहं त्वां ब्रवीमीत्याह—**न मे इति**। प्रभवं प्रकृष्टं भवं ऐश्वर्यं वियदादिसृष्टिसामर्थ्यं न विदुः। तत्र हेतुः—**अहमिति** । अयं भावः—देहोत्पत्त्यनंतरं हि देवादीनां बुद्ध्यादिलाभो न चार्वाचीनैर्बुद्ध्यादिभिः स्वोत्पत्तिप्राक्कालीनोऽर्थः परिच्छेत्तुं शक्यत इति । पदार्थः स्पष्टः ॥ २ ॥ कस्तर्हि त्वां वेत्तीत्यत आह—**य इति** । यः असंमूढः स मां वेत्ति स एव च सर्वपापैः प्रमुच्यत इति संबंधः। जडाजडयोर्बुद्ध्यात्मनोरैकीभावेनान्योन्याध्यासलक्षणेन मूढः संमूढस्तद्विपरीतोऽसंमूढस्तत्त्वज्ञानेन बाधिताध्यासः स एवात्मवित्त्वादितरस्य जानिमनुभवन् मां प्रत्यगात्मानं लोकमहेश्वरमनादिं आदिः कारणं तच्छून्यमत एवाजमजातं वेत्ति स सर्वैः कृतैः क्रियमाणैर्वा पापैः प्रमुच्यते मर्त्येषु मध्ये॥ ३॥ मम महेश्वरत्वादेव मत्तो बुद्ध्यादयो भवन्तीत्याह-**बुद्धिरिति**। **बुद्धिः**अन्तःकरणस्य सूक्ष्मार्थावबोधने सामर्थ्यम् । **ज्ञानं** आत्मानात्मादिपदार्थावबोधः । **असंमोहः** प्रत्युत्पन्नेषु बोद्धव्येष्वव्याकुलतया विवेकपूर्विका प्रतिपत्तिः। **क्षमा** आक्रुष्टस्य ताडितस्य वा अविकृतचित्तता। **सत्यं** प्रमाणेनावगतस्यार्थस्य यथार्थत्वेन भाषणम्। **दमो** बाह्येन्द्रियनियमः । **शमो** मनोनिग्रहः । **सुखमा**ह्लादः । **दुःखं** तापः । **भव** उत्पत्तिः । **भावः** सत्ता । **अभाव**स्तद्विपर्ययः । **भयं** त्रासः । **अभयमेव च** तद्विपरीतम् ॥४॥ **अहिंसा** प्राणिनामपीडा । **समता** मित्रामित्रादौ समचित्तता । **तुष्टिः** सन्तोषो लब्धे पर्याप्तबुद्धिः । **तपः** इन्द्रियसंयमपूर्वकं शरीरपीडनम् । **दानं** यथाशक्ति संविभागः। **यशो** धर्मनिमित्ता कीर्तिः। **अयशो**ऽधर्मनिमित्ता अकीर्तिः । एते बुद्ध्यादयो विंशतिभावा मत्त एव प्राणिनां भवन्ति । पृथग्विधाः प्रत्येकं नानाप्रकाराः तत उत्तमगुणलाभायाहमेव त्वया शरणीकरणीय इति भावः ॥ ५ ॥ एतदेव शिष्टाचारप्रदर्शनेन द्रढयति—**महर्षय इति** । सप्त भृग्वाद्याश्चत्वारः सनकादयश्च पूर्वे प्रसिद्धा महर्षय इति संबन्धः । तथा मनवश्चतुर्दश प्रसिद्धाः । ते सर्वे मानसा हिरण्यगर्भरूपस्य मम मनस एवोद्भूता अयोनिजा जाता उत्पन्नाः । इमाः प्रजाश्चतुर्विधा अयं लोकश्च तदाधारभूतः तदुभयं येषां यत्संबंधि संततिर्येषां सन्तातिरित्यर्थः । यद्वा। येषामिति षष्ठी पञ्चम्यर्थे । येभ्य इमाः प्रजा अयं लोकश्च जाता इत्यर्थः। तेऽपि मद्भावा मय्येव भावो मनो येषां ते । प्रसिद्धमहिमानोऽप्येते यतो मामेवोपासतेऽतस्त्वमपि मामुपास्स्वेति भावः ॥ ६ ॥ उपास्तावधिकारिणमाह—**एतामिति** । एतां वक्ष्यमाणां विभूतिं योगं च विश्वतोमुखे भगवति मनःसमाधानं यस्तत्त्वतो वेत्ति सम्यगनुष्ठातुं ज्ञातुं च समर्थो भवति सोऽविकम्पेनाचलेन निर्विकल्पकेन **षष्ठाध्यायोक्तेन योगेन** । मद्विषयेण समाधिना युज्यते। ततश्च कृतकृत्यो भवति ।नात्र संशय इति प्रवृत्त्यतिशयार्थमुच्यते । भगवद्वचसि संशयासंभवात् ॥ ७ ॥

**अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।**
**इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८**
**मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९**
**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।**
**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १०**
**तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ।**
**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११**

**अर्जुन उवाच ।**

**परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।**
**पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२**
**आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।**
**असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥१३**
**सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।**
**न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः १४**
**स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।**
**भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५**
**वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।**
**याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥**
**कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।**
**केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥१७**
**विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।**
**भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् १८**

**श्रीभगवानुवाच ।**

**हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।**
**प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९**

उपासनास्वरूपमाह द्वाभ्यां-**अहमिति** । बुधा मां प्रत्यगात्मानमिति मत्वा भजन्ते इति कथं अहमेव सर्वस्य जगतः प्रभव उत्पत्तिः । मत्तो मदनुग्रहं प्राप्यैव सर्वं बुद्ध्यादिकं स्वस्वकार्याय प्रवर्तते । अहमेव जगतः कर्तान्तर्यामी चेत्यहंग्रहेणात्मानमुपासीतेति भावः । भावसमन्विताः भावनायुक्ताः एतच्चोत्तरार्थम् ॥ ८ ॥ एवं ध्यानं भावनाप्रकारमुक्त्वा व्युत्थाने तमाह—**मच्चित्ता इति** । अहमेव चित्ते येषां ते मच्चित्ताः । तथाऽहमेव गतो विद्यमानो येषु ते मद्गतास्तथाविधाः प्राणा इन्द्रियाणि येषां ते **मद्गतप्राणाः** । चित्तेनेन्द्रियैर्वा यद्गृह्यते तत्सर्वं प्रत्यगात्मा वासुदेव इति भावयन्त इत्यर्थः । इममेवार्थं परस्परं बोधयन्तः श्रुतियुक्तिप्रदर्शनेन समानानां समुदायं ज्ञापयन्तः कथयन्तश्च शिष्यान्प्रति तुष्यन्ति । तेनैव ज्ञानेन न तु मिष्टान्नादिना रमन्ति च तत्रैव, न तु स्त्र्यादावित्यर्थः ॥ ९ ॥ उपासनायाः फलमाह—**तेषामिति** । सततयुक्तानां नित्योत्साहवतां प्रीतिः प्रेमा तत्पूर्वकं भजतां सेवमानानां तेभ्यो ददामि तं बुद्धियोगं ज्ञानरूपं योगं समाधिं ज्ञाननिष्ठामित्यर्थः । तां ददामि येन यया निष्ठया ते मामुपयान्ति समुद्रमिव नद्योऽभेदेन प्रविशन्ति ॥ १० ॥ किंच तेषां भक्तानामुपर्यनुकंपार्थं न स्वप्रयोजनसिद्ध्यर्थं राजवत् । बुद्धियोगप्रदानेनाज्ञानजमविवेकादुत्थितं मिथ्याप्रत्ययलक्षणं मोहान्धकारं तमोनामकं सर्वानर्थनिदानमूलाज्ञाननाशेन नाशयामि । आत्मभावस्थः आत्मनो भावोऽन्तःकरणगृहं तत्स्थः । ज्ञानरूपेण दीपेन । भास्वता प्रबलेन । अयं भावः–तत्त्वमसीतिवाक्यजा ब्रह्माकारान्तःकरणवृत्तिः स्वोत्पत्तये श्रवणमननध्यानानि शमादीनि कर्माणि चापेक्षते । यथा दीपः स्वोत्पत्तये तैलवर्त्यग्न्यादीन् । उत्पन्ना तु तमोनाशेन स्वविषयप्रकाशनार्थं प्रत्ययावृत्तिलक्षणं प्रसंख्यानं च कर्मभिरुपकारं वा नापेक्षते । न हि ज्ञाते घटे तदाकारप्रत्ययावृत्तिर्वा कर्मापेक्षा वा तज्ज्ञानदार्ढ्यायापेक्षते प्रमाणव्याप्तिमात्रसापेक्षत्वाज्ज्ञानस्य । तस्माद्ये उत्पन्नज्ञानानामपि प्रसंख्यानापेक्षां कर्मभिरुपकारापेक्षां च वदन्ति ते बलादेव मोक्षस्य कृतकतामनित्यतां च प्रार्थयन्त इति दिक् ॥ ११ ॥ एवमेतां विभूतिं योगं चेत्यादिना विभूतिज्ञानस्य फलोदर्कं श्रुत्वा तत्प्राप्त्युत्सुकः प्रथमं स्तुत्या भगवन्तमार्जवयन्नर्जुन उवाच—**परमिति** । परं ब्रह्म न त्वपरमुपास्यम् । 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ' इति श्रुतेः । परं धाम ज्योतिर्न त्वपरं वृत्तिरूपं ज्ञानम् । एतस्य ' ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव'इति श्रुतेर्वृत्तिरूपत्वात् । परमं पवित्रं न तु तीर्थादिवदपरमं भवान् । तत्र मानमाह—**पुरुषमिति** सार्धेन । पुरुषं देहान्तरस्थं शाश्वतं नित्यं, दिव्यं दिवि हार्दाकाशे आविर्भूतं आदिदेवं सूत्रात्मनोऽप्याद्यं अत एव अजं विभुं व्यापकं त्वां ऋषय आहुरिति संबन्धः ॥ १२ ॥ व्यक्तिं प्रभवम् ॥ १४ ॥ हे भूतभावन भूतानां भावक, ॥ १५ ॥ एवं स्तुत्वात्मनो बुभुत्सितमाह—**वक्तुमिति** ॥ १६ ॥ योगं ऐश्वर्यं तद्वन् हे योगिन्, त्वां कथं चर्मचक्षुषा विद्यां न कथमपीति विश्वरूपदर्शनस्य दौर्लभ्यं मन्वानः कतिपयेष्वेव स्थानेषु भगवन्तं चिन्तयिष्यामि विश्वरूपदर्शनेऽधिकारासिद्ध्यर्थमित्याशयेनाह—**केष्विति** ॥ १७ ॥ योगं वैश्वरूप्यं विभूतिं ध्यानालम्बनं अमृतममृतस्य मोक्षस्य साधनम् ॥ १८ ॥ अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच–**हन्तेति** । हन्त इदानीं, हन्तेत्यनुमतौ वा । दिव्याः पुराणान्तरेष्वपि श्रेष्ठत्वेन प्रसिद्धा या आत्मविभूतयस्ताः कथयामीति योजना । **प्राधान्यत इति** । योगोपकारित्वेन विभू-

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २०
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥२२
रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥२३
पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः॥ २४
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥२५
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥२६
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७
आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः॥२८
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९
प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥३०
पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥३१
सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२
अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः॥३३

तय इह प्राधान्येन, योगस्तु संक्षेपेणैवोच्यते, तस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । अन्यथा योगं विभूतिं च कथयेति पृष्टे विभूतिमात्रकथनेनानवहितवक्तृत्वं भगवतः स्यात् । नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे विभूतीनामिति विपरिणामेनानुषञ्जनीयम् ॥ १९ ॥ संक्षेपेण योगमाह—अहमिति । हे गुडाकेश हे जितनिद्र, घनकेशेति वा । अहं वासुदेव आत्मा अन्तर्यात्मा व्यापकः। अत एव सर्वेषां भूतानामाशय एकीभावस्थानं जलानामिव कासारो जलाशयस्तद्वदहं सर्वभूताशयः स्थितोऽचलः । 'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इति वार्तिकेन पक्षे विसर्गलोपः । भाष्ये तु— सर्वेषां भूतानामाशयेऽन्तर्हृदि स्थित इति व्याख्यातम् । सर्वभूताशयत्वादेवाहं आदिर्जन्मकारणम् । मध्यं स्थितिकारणम् । भूतानामन्तो लयस्थानम् । सर्वमिदं ब्रह्माण्डं मय्येवास्तीति भावः॥२०॥योगमुक्त्वा विभूतीराह— **आदित्यानामित्यादिना** यावदध्यायसमाप्ति । आदित्यानां द्वादशानां मध्ये विष्णुनामाऽऽदित्योऽहं,वामनावतारो वा। ज्योतिषामग्न्यादीनां मध्ये रविरंशुमान् अत्यन्तं प्रतपनशीलो निदाघमध्याह्ने तीव्रातपवान् रविरहमेवेत्यर्थः । मरुतां सप्तसप्तकानां मध्ये मरीचिरहम् । नक्षत्राणां ताराणाम् । अत्र प्रायेण निर्धारणे षष्ठी । भूतानामस्मि चेतनेत्यादौ सम्बन्धेऽपि । शशी चन्द्रमाः ॥२१॥ सामवेदो गानेन रमणीयत्वात्, वासवो देवराजत्वात्, मन इन्द्रियान्तरप्रवर्तकत्वात् चेतना धीवृत्तिः । चिदभिव्यक्तिहेतुत्वात्, एते वेदादीनां मध्ये श्रेष्ठाः ॥२२॥ रुद्राणामेकादशानां । वसूनामष्टानाम् । शिखराणि रत्नविशेषास्तद्वतां मध्ये मेरुरहम् ॥ २३ ॥ पुरोधसां पुरोहितानां बृहस्पतिं देवराजपुरोहितत्वात् । सेनानीनां सेनापतीनां स्कन्दः कार्तिकेयः । सरसां जलाशयानाम् ॥२४॥ एकमक्षरं ओङ्काराख्यं, जपयज्ञो हिंसाशून्यत्वात् । स्थावराणां स्थितिमताम् ॥ २५ ॥ अमृतोद्भवं अमृतमथनावसरे उद्भवो यस्य तम् ॥ २७ ॥ प्रजनोऽपत्यजनयिता कन्दर्पः कामः न तु वृथामैथुनरूपः ॥ २८ ॥ नागानां सर्पावान्तरभेदानाम् । यादसां जलचराणां, संयमतां नियमनकर्तॄणाम् ॥ २९ ॥ कलयतां गणनं कुर्वताम् ॥ ३० ॥ पवतां पावयितॄणां वेगवतां वा। रामो दाशरथिः। रामादीनां परमेश्वराणामपि विभूतिमध्ये गणनं ध्यानार्थम् । झषाणां मत्स्यादीनां मकरो जातिभेदः । स्रोतसां नदीनाम् ॥ ३१ ॥ सर्गाणां भौतिकानां भूतानामादिरन्त इति प्रागेवोक्तत्वात् । विद्यानां चतुर्दशसङ्ख्यानां मध्ये अध्यात्मविद्या, बन्धच्छेदहेतुत्वात् । प्रवदतां प्रवक्तृद्वारेण वदनभेदा एव वादजल्पवितण्डा इह गृह्यन्ते । तेषां मध्ये वादस्तत्त्वनिर्णयार्थत्वादहम् ॥ ३२ ॥ अक्षराणां मध्ये अकारः । 'अकारो वै सर्वा वाक्' इति श्रुतेः । सामासिकस्य समाससमुदायस्य मध्येऽहं द्वन्द्वोऽस्मि, उभयपदार्थप्रधानत्वादिति **प्राञ्चः** । समं एकत्रासनं समासो विदुषां वा, गुरुशिष्याणां वा, मन्त्रार्थकथनार्थं वा, एकत्रावस्थानम् । तत्र विदितमर्थजातं सामासिकम् । चातुरर्थिकष्ठक् । 'ठस्येकः' इतीकादेशः । 'यस्येति च'इत्यलोपः। तस्य मध्ये द्वन्द्वो रहस्योऽर्थोऽहम्। 'द्वन्द्वं रहस्य–' इति सूत्रे द्वन्द्वशब्दस्य रहस्यवाचित्वं शाब्दिकप्रसिद्धम् । 'अक्षयः क्षयहीनः कालः क्षणादिः परो वा ईश्वरः कालस्यापि कालोऽस्मि । धाता कर्मफलप्रदः विश्वतोमुखः सर्वप्राणितृप्त्या तृप्यामीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा
बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥३७
दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्॥३८
यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ३९
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४०
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥ ४१
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥४२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु विभूतियोगो नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पर्वणि तु चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

अर्जुन उवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् । यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १

सर्वहरः प्रलयकालिको मृत्युरस्मि । भविष्यतां भाविकल्याणानामुद्भव ऐश्वर्योत्कर्षोऽहं कीर्त्यादिसप्तकमप्यहं यासां संश्रयमात्रेण मनुष्येषु कृतार्थताबुद्धिर्भवति ॥ ३४ ॥ बृहत्साम 'त्वामिद्धि हवामहे' इत्यस्यामृचि गीयमानं सामपृष्ठ्यस्तोत्रे विनियुक्तमिन्द्रदेवत्यं तत् साम्नां मध्येऽहमस्मि । छन्दसां मध्ये गायत्री। द्विजत्वसंपादना-सोमाहरणाच्च श्रेष्ठाऽहमस्मि । कुसुमाकरो वसन्तः ॥ ३५ ॥ व्यवसायो निश्चय उद्यमो वा ॥ ३६ ॥ वृष्णीनां यादवानाम् । उशना शुक्रः ॥ ३७ ॥ दमयतां राजादीनां दमनसाधनं दण्डोऽहमस्मि । जिगीषतां जेतुमिच्छतां जयसाधनं नीतिरस्मि । मौनं वाचो निग्रहः ॥ ३८ ॥ सर्वभूतानां बीजमित्यनेन सर्वभूतानि मद्विभूतिरिति दर्शितम्। तदेवोपपादयति—**न तदस्तीति** । मया विना भूतं किमपि नास्ति उपादेयस्योपादानमन्तरेण स्थित्यसम्भवात् ॥ ३९ ॥ नान्तोऽस्तीति उद्देशत एकदेशेन विभूतेर्विस्तरो विस्तारो मया प्रोक्तः ॥ ४० ॥ सर्वभूतानां बीजमहमित्युक्त्या स्वस्य सार्वात्म्योक्तेः सर्वं स्वविभूतिरित्युक्तमेव । तथापि तद्ग्रहणाशक्तं प्रति प्राह—**यद्यदिति** । यद्यत्सत्त्वं प्राणिविभूतिमदैश्वर्ययुक्तं श्रीर्लक्ष्मीः शोभा वा तद्युक्तं ऊर्जितं बलाद्यतिशययुक्तं तत्तत्सर्वं मम तेजसश्चिच्छक्तेरंशसम्भवं अंशात्संभूतं त्वमवगच्छ जानीहि । लोके यदतिरमणीयं तद्भगवतो रूपमिति ध्यायेदित्यर्थः ॥ ४१ ॥ उत्तमाधिकारिणमुद्दिश्याह—**अथवेति** । मूढान्प्रत्येतदुक्तं त्वं तु एतावदेव विद्धि एकांशेन एकदेशेनाहमिदं विष्टभ्य व्याप्य स्थितोऽस्मि । 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति श्रुतेः । तस्मात्परिच्छिन्नं दर्शनं त्यक्त्वा सर्वत्र ब्रह्मबुद्धिमेव कुर्वित्याशयः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे श्रीमद्गीतार्थप्र० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पर्वणि तु ॥ ३४ ॥

३५

पूर्वस्मिन्नध्याये योगो विभूतिश्च व्याख्येयत्वेन प्रतिज्ञातो 'एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति' इति । आत्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन भूयः कथयेतीतरेण च श्रोतव्यत्वेन प्रार्थितो । तत्राहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित इति सङ्क्षेपेण योगो भगवतः सर्वभूताधारत्वलक्षण उक्तः । प्राग्विभूतिकथनात् । तदन्ते च 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' इति कुसूलेन धान्यमिव मयेदं जगद्विष्टब्धमित्युक्त्या स एव स्मारितस्तदेव भगवतः सर्वभूताधारत्वं साक्षात्कर्तुकामोऽर्जुन उवाच—**मदनुग्रहायेति** । मयि अनुग्रहोऽनुकम्पा तदर्थं मदनुग्रहाय परमं सद्यः शोकमोहनिवर्तकत्वेनोत्कृष्टं गुह्यं गोप्यं । अध्यात्मसंज्ञितमात्मानात्मविवेकार्थं शास्त्रमध्यात्मं तत्संज्ञितम् । यत्त्वया वचः 'अशोच्यानन्वशोचः' इत्यादिना षष्ठाध्यायपर्यन्तं त्वंपदार्थशुद्धिप्रधानं 'नायं हन्ति न हन्यते' इत्यात्मनोऽकर्तृत्वाभोक्तृत्वप्रतिपादकं तेन मम मोहः अविवेकोऽयं विशेषेण गतो नष्टः । अत्र प्रथमे पादेऽक्षराधिक्यमार्षम् ॥१॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४
श्रीभगवानुवाच ।
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५
पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १०
दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः

---

**भवेति** । तथा सप्तमाध्यायमारभ्य दशमपर्यन्तं त्वया भूतानां भवाप्ययावप्युक्तौ । 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते' इति । तावपि मया विस्तरशस्त्वत्तः श्रुतौ। हे कमलपत्राक्ष, अव्ययं माहात्म्यमपि । 'न च मां तानि कर्माणि लिम्पन्ति' इति विषमसृष्टिकर्तुरपि वैषम्यनैर्घृण्यदोषो नास्ति जगत्कर्तुरपि विकारगन्धो नास्तीत्येवमादिरूपतत्पदार्थशुद्धिप्रधानं श्रुतमित्यनुषङ्गः ॥ २ ॥ **एवमिति** । यच्च त्वं 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' इति आत्मानं जगदाधारमात्थ तदपि इत्थमेव न ममात्रासंभावनाऽस्ति । हे परमेश्वर, ते तव रूपं ऐश्वरमीश्वरस्येदं विश्वात्मकं मायामयमित्यर्थः । हे पुरुषोत्तम, क्षराक्षरातीत, विश्वरूपं मायामयम् । वास्तवं तु रूपं मायातीतमित्यैश्वरमिति पुरुषोत्तमेति च पदाभ्यां लभ्यते । तथा च वक्ष्यति—

'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं मां ज्ञातुमर्हसि' इति

उक्तं च । शुद्धं रूपमभिप्रेत्य—'अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्' इति ॥ ३ ॥ **मन्यस इति** । हे योगेश्वर, योगिनां योगानामीश्वर, तद्रूपं यदि मया द्रष्टुं शक्यमिति मन्यसे । यदि मयि तद्दर्शनाधिकारं पश्यसि ततर्हि मे मह्यमव्ययं मायामयमात्मानं दर्शय । मायामयत्वादेवास्याव्ययत्वम् । मायायां हि सर्वं सर्वात्मकं सर्वदाऽस्तीति प्रसिद्धम् । यथोक्तं वसिष्ठेन—

'वर्तमानमतीतं च भविष्यत्स्थूलमण्वपि ।
तथा दूरमदूरं च निमेषः कल्प इत्यपि ॥
चिदात्मनि स्थितान्येव पश्य मायाविजृंभितम्' इति ।

नाहि मरुमरीचिसरसी क्रमशः शुष्यति । अतो मायामयत्वादेवास्यैश्वरस्य रूपस्याप्यव्ययत्वम् ॥ ४ ॥ एवं प्रार्थितः सन् भगवानुवाच—**पश्येति, शतश इत्यादिना** । अनन्तानीत्युक्तं नानावर्णानि नानाकृतीनि च ॥ ५ ॥ दिव्यानि तावदाह—**पश्यादित्यानिति** । अदृष्टपूर्वाण्याश्चर्याण्यद्भुतानि चतुर्मुखपञ्चमुखषण्मुखादीनि ॥ ६ ॥ हे गुडाकेश जितनिद्र, इह मम देहे एकस्थमेकस्मिन्नेवावयवे नखाग्रमात्रे स्थितं कृत्स्नं वर्तमानं जगत् पश्य यच्चान्यत् अतीतमनागतं विप्रकृष्टं व्यवहितं स्थूलं सूक्ष्मं वा तत्सर्वमिह पश्य ॥ ७ ॥ यत्तूक्तं—'मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुम्' इति तत्राह—**न त्विति** । शक्यसे शक्नोषि । पदविकरणव्यत्यय आर्षः । अनेनैव प्राकृतेन दिव्यमप्राकृतं ऐश्वरमीश्वरसंबन्धिनं योगं विश्वाश्रयत्वलक्षणं सामर्थ्यम् ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा भगवानर्जुनाय दिव्यं रूपं दर्शितवान् । स च दृष्ट्वा विस्मयाविष्टो भगवन्तं विज्ञापितवानितीमं वृत्तान्तमेवमुक्त्वेत्यादिषड्भिः श्लोकैर्धृतराष्ट्रं प्रति संजय उवाच—**एवमुक्त्वेत्यादि** । ततः दिव्यचक्षुःप्रदानानन्तरं,राजन् हे धृतराष्ट्र, महांश्चासौ योगेश्वरश्चेति विग्रहः। महतो योगस्य वा ईश्वरः । परमं दिव्यं रूपं ऐश्वरं मायाविसंबन्धि नतु मायातीतं दर्शयामास ॥ ९ ॥ तदेव रूपं विशिनष्टि द्वाभ्यां-**अनेकेत्यादिना** । अनेकान्यनन्तानि वक्त्राणि नयनानि च यस्मिन् तदनेकवक्त्रनयनम्। अनेकान्यद्भुतानि दर्शनानि यस्मिंस्तदनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकानि दिव्यान्याभरणानि यस्मिन् । दिव्यान्यनेकानि च उद्यतानि आयुधानि चक्रादीनि यस्मिन् ॥ १० ॥ विश्वतोमुखमिति पूर्वोक्तस्य एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखमित्यस्यायं परामर्शः । अनन्तं सर्वतः परिच्छेदरहितम् ॥ ११ ॥ दिवि अन्तरिक्षे भाः दीप्तिः भासः दीप्तेः अभूतोपमेयं निरुपमतामेव तस्य दीप्तेर्दर्शयति 'उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहौ' इत्यादिवत् ॥ १२ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४

अर्जुन उवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६
किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २०

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्येति यत्प्राक् भगवता उक्तं तदप्यपश्यदित्याह—तत्रेति । अनेकधा प्रविभक्तमित्येतद्वर्षासूत्थिततिन्तिणीबीजे सूक्ष्मरूपेण तरुर्दृश्यते तद्वन्माभूदिति दर्शयितुं सावकाशं अनेकधा विभागयुक्तं विविक्तमपश्यत् । एकस्थं एकावयवस्थम् । अयमर्थः—यदा भगवतश्चतुर्भुजं रूपं चिन्त्यते तत्र च चेतसि लब्धपदे सति क्रमशस्तदीयावयवांस्त्यक्त्वा मुखे स्मिते वा पदनखे वा चित्तं ध्रियते । तत्रापि लब्धपदे तस्मिंस्तदपि त्यक्त्वा विश्वरूपमारोहति । दिव्यं चक्षुरपि एवं सूक्ष्मतामापादितं मन एव । 'मनोऽस्य दैवं चक्षुः स एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान्पश्यन् रमते' इति श्रुतेः । कामान् विषयान् एतान् हार्दाकाशाख्यसगुणब्रह्मगतानिति श्रुतिपदयोरर्थः । यथोक्तं श्रीभागवते—

'तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत्' इति ।

तत्र मूर्तौ एकत्र अंगे । व्योम्नि कारणे। मदारोहो निर्विकल्पे ब्रह्मण्यारूढः । तदिदमुक्तं देवदेवस्य शरीरे कृत्स्नं जगदेकस्थं पाण्डवोऽपश्यदिति ॥ १३ ॥ हृष्टरोमा रोमाञ्चितगात्रः ॥ १४ ॥ देवानादित्यादीन् भूतविशेषाश्चतुर्विधा जरायुजादयस्तेषां संघान् समूहान् ब्रह्माणं चतुर्मुखं ईशं ईशितारं कमलासनस्थमित्यनेन दूरदर्शनमुक्तम् । उरगान् पातालस्थाननन्तादीन् दिव्यान् कैलासादौ स्थितान् वासुकिप्रमुखान् एतेन व्यवहितदर्शनमुक्तम् ॥ १५ ॥ अनेके अनन्ताः बाहवः उदराणि वक्त्राणि नेत्राणि च यस्मिंस्तदनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं सर्वतश्चतुर्दिक्षु उपर्यधश्च अनन्तमपरिच्छिन्नं रूपमस्य तम् । अनन्तत्वमेवाह—नान्तमिति । दीर्घरज्ज्वा इव तवाद्यन्तौ दैशिकौ न स्त इत्यर्थः ॥ १६ ॥ किरीटगदाचक्रधारिणं, दीप्तिमत्त्वादेव दुर्निरीक्ष्यं द्रष्टुमशक्यं समन्तात्सर्वतो ये दीप्ता अनला अर्काश्च तद्वत् द्युतिर्यस्य तं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमित्येकं पदमत एवाप्रमेयं द्रष्टुमशक्यपरिच्छेदम् ॥ १७ ॥ एवं तव योगैश्वर्यदर्शनात्त्वामेवमवैमीति वदन्नप्रमेयत्वमेव विवृणोति—त्वमिति । परममक्षरमस्थूलादिलक्षणं, 'अक्षरं ब्रह्म परमम्' इत्यत्र प्रागुक्तं निष्कलं ब्रह्म तदेव त्वमसि । एतेन सगुणरूपस्य निर्गुणज्ञापकत्वमुक्तं, शाखाग्रस्येव चन्द्रज्ञापकत्वं अत एव वेदितव्यं वेदान्तप्रमाणेन ज्ञातुं योग्यं न तूपासनीयम्। सगुणं ब्रह्मापि त्वमेवेत्याह—त्वमस्येति । निधानं लयस्थानं, एतेन कारणत्वमुक्तम् । अव्ययः अमृतः देवत्वात् । शाश्वतस्य वैदिकस्य धर्मस्य गोप्तेत्यनेन कार्यब्रह्मभूतहिरण्यगर्भरूपत्वमुक्तम् । सनातनश्चिरन्तनोऽनादिपुरुषो जीवात्मा सोऽपि त्वमेव मे मम मतः । एवं विश्वरूपदर्शने जीवब्रह्मणोरैक्यं शाखया चन्द्र इवाधिगम्यत इत्युक्तम् ॥ १८ ॥ एतदेवाह—अनादीति । देशतः कालतश्चादिमध्यान्तहीनत्वादनादिमध्यान्तम् । दीप्तो हुताशो वक्त्रे यस्येति भास्वरदन्तत्वं व्यज्यते । स्वतेजसा चैतन्यज्योतिषा इदं विश्वं विश्वरूपं तपन्तं प्रकाशयन्तम् । अनादित्वादिसर्वविशेषणविशिष्टं विश्वं तपिकर्मीभूतं तापयन्तं त्वां परज्योतीरूपं पश्यामि जानामि । चित्रपटस्थानीयं विश्वरूपं सकलकारकात्मकधीवासनोपेतं येन ज्योतिषा प्रकाशते तदेव त्वमसीति जानामीति भावः ॥ १९ ॥ एवं स्वयंकृतविश्वरूपदर्शनेन कृतकृत्यो भूत्वा तदुपसंहारमिच्छन् स्तौति—

अमी हि त्वाऽसुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥२१
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२
रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् २३
नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४
दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७
यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९
लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३०

**द्यावापृथिव्योरिति** । हे महात्मन्, हि प्रत्यक्षं त्वया एकेन इदं द्यावापृथिव्योरन्तरं मध्यं सर्वाः दिशश्च व्याप्ताः । अतस्त्वेदं अद्भुतं उग्रं रूपं दृष्ट्वा लोकत्रयं प्रकर्षेण व्यथितं, अतःपरमिदमुपसंहरेत्यभिप्रायः ॥ २० ॥ व्यथामेवाह— **अमीति** । हि यतः अमी त्वा त्वां असुरसङ्घाः असुरांशा दुर्योधनादयः त्वां पतङ्गाः पावकमिव अदृष्टप्रेरिताः विशन्ति मरणायेत्यर्थः । केचिद्भीताः प्राञ्जलयो बद्धाञ्जलयो गृणन्ति स्तुवन्ति ॥ २१ ॥ किञ्च । ये त्वदनुगृहीताः रुद्रादयस्तेऽपि विस्मिताः सन्तः सर्वे त्वां वीक्षन्त इत्याह— **रुद्रादित्या इति** । साध्याः विश्वे च देवगणविशेषौ- रुद्रादित्यवज्ज्ञेयौ। ऊष्मपाः पितरः। गन्धर्वाणां यक्षाणामसुराणां सिद्धानां जातिभेदानां सङ्घाः समूहाः । शेषं स्पष्टम् ॥ २२ ॥ पुनर्लोकानामात्मनश्च व्यथामाह—**रूपमिति** । महत् आदिमध्यान्तहीनम् । हे महाबाहो, ते तव करालं महारूपं दृष्ट्वा लोका व्यथितास्तथाऽहं च व्यथित इति योजना ॥ २३ ॥ करालत्वप्रपञ्चनेन स्वव्यथामेवाह—**नभ इति** । नभःस्पृशं व्योमव्यापिनं, दीप्तमभिज्वाज्वल्यमानं, व्यात्ताननं विस्तारितमुखं, दीप्तविशालनेत्रं रक्तनेत्रमित्यर्थः। हि प्रत्यक्षं त्वा त्वां दृष्ट्वा प्रव्यथितान्तरात्मा प्रकर्षेण व्यथितचित्तो धृतिं धैर्यं न विन्दामि न लभे शमं च शान्तिं स्वास्थ्यं च न लभे । हे विष्णो व्यापक, भयानकं त्वदाक्रान्तं देशं त्यक्त्वाऽन्यत्र गन्तुमशक्यं तव व्यापकत्वादिति भावः ॥ २४ ॥ कालानलः प्रलयाग्निस्तत्तुल्यानि । प्रसीद प्रसन्नः सुखदो भवेत्यर्थः ॥ २५ ॥ अमी त्वां विशन्तीत्यग्रिमश्लोकोदपकृष्यते ॥ २६ ॥ ते भीष्मादयः उत्तमाङ्गैः शिरोभिः । अयं भावः—धृतराष्ट्रस्य पुत्राः पापिष्ठाः भवन्तमेव त्रैलोक्यशरीरं विशन्ति पापानुरूपं तस्य पायुस्थानास्थितान् नरकानेव गच्छन्तीति तत्र त्वां विशन्तीत्येवोक्तम् । भीष्मादयस्तु भक्ता यतोऽग्निर्ब्राह्मणा वेदाश्च प्रसूतास्तद्भगवतो मुखं प्रविशन्तीति वैषम्यगतिसूचनार्थं त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्रा विशन्ति भीष्मादयस्ते वक्त्राणि विशन्तीति विभागदर्शनं युक्तमिति ॥ २७ ॥ इदमेव सदृष्टान्तमाह—**यथेति** । तव वक्त्राणि विशन्तीति सम्बन्धः । अभिविज्वलन्ति सर्वतः जाज्वल्यमानानि॥२८॥ बुद्धिपूर्वकमेव ते वक्त्राणि प्रविशन्तीति सदृष्टान्तमाह— **यथा प्रदीप्तमिति** ॥ २९ ॥ ये च पतन्तस्तांस्त्वं करुणावानपि न वारयसि प्रत्युत ग्रसितुमिच्छस्येवेत्याह— **लेलिह्यसे** । भूयो भूयोऽतिशयेन वाऽऽस्वादयसि कीदृशस्त्वं समन्ताज्ज्वलद्भिर्वदनैर्लोकान् समग्रान् ग्रसमानः । एवं निर्घृणस्यापि तव तेजो न हीयते प्रत्युत वर्धत एवे-

अमी च त्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥

—भीष्मपर्व अ. ३५ पृ. १०८

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१
श्रीभगवानुवाच।
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वा+ न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युद्ध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४
सञ्जय उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५
अर्जुन उवाच ।
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ ३६
कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७

त्याह—**तेजोभिरिति** । हे विष्णो व्यापनशील, समग्रं जगत् तेजोभिरापूर्य तव उग्राः स्प्रष्टुमशक्या भासो दीप्तयः प्रतपन्तीति योजना । पदार्थः स्पष्टः ॥ ३० ॥ एवं दीप्त्याऽऽकुलीभूतोऽर्जुनो भगवानयमिति विस्मृत्याह—**आख्याहीति** । एवमुग्ररूपः क्रूरकर्मा भवान् कोऽसीत्याख्याहि अमुकोऽस्मीति कथय । प्रसीद शान्तो भव । त्वामहं विज्ञातुमिच्छामि यतस्तव प्रवृत्तिं चेष्टां न जानामि ॥ ३१ ॥ एवमर्जुनेन प्रार्थितो भगवानुवाच—**कालं इति**। इहास्मिन्संग्रामे लोकान्समाहर्तुं भक्षितुं प्रवृत्तः प्रवृद्धो महान् लोकक्षयकृत् कालो नाम परमेश्वरोऽस्मि यस्मादेवं तस्मात् ऋतेऽपि त्वा त्वां विनाऽपि सर्वे न भविष्यन्ति मरिष्यन्ति। के ते सर्वे ये प्रत्यनीकेषु शत्रुसैन्येषु योधाः शूरा भीष्मादयोऽवस्थितास्ते ॥ ३२ ॥ **तस्मादिति** । यस्मात्त्वां विनाऽप्येते मरिष्यन्ति तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ युद्धाय । शेषं स्पष्टम् ॥ ३३ ॥ मा व्यथिष्ठाः एते महान्तः कथं हन्तुं शक्या इत्याकुलीभावं मागा इत्यर्थः । जेतासि जेष्यसि सपत्नान् शत्रून् ॥ ३४॥ भगवतैवमुक्ते सति पश्चात्किं वृत्तमित्यपेक्षायां सञ्जय उवाच । अत्र कृताञ्जलित्वादिना चिह्नेन भगवद्वाक्योल्लङ्घनं किरीटी न करिष्यतीति सूच्यते । सगद्गदं भयहर्षाद्यावेशेन गद्गदेन कण्ठकम्पनेन सह वर्तत इति सगद्गदं यथा भवति तथा आह उक्तवान् । भीतभीतोऽत्यन्तं भीतः सन्नाहेति सम्बन्धः । अत्र आहेति पदच्छेदे पुनरर्जुन उवाचेति पुनरुक्तं स्यात् । अतः प्रणम्य अर्जुन उवाचेत्येव सम्बन्धो नतु प्रणम्य आहेति । का तर्हि आहेति क्रियाया गतिः । नेयं क्रिया, किन्तु आहेति प्रसिद्धयर्थमव्ययमित्यदोषः ॥ ३५ ॥ एकादशभिः श्लोकैरर्जुन उवाच—**स्थाने इति** । हे हृषीकेश सर्वेन्द्रियप्रवर्तक अन्तर्यामिन्,तव प्रकीर्त्या नामसङ्कीर्तनेन जगत्प्रहृष्यति यत्तत् स्थाने युक्तम्। स्थाने इत्ययमव्ययं युक्तमित्यर्थे । यत्तव प्रकीर्त्या जगदनुरज्यते तदपि स्थाने युक्तम्। यत्तव प्रकीर्त्या रक्षांसि भीतानि सन्ति दिशो द्रवन्ति प्रपलायन्ते तदपि स्थाने युक्तम्। यच्च त्वां सर्वे सिद्धसंघाः कपिलादीनां समुदाया नमस्यन्ति तदपि स्थाने । **अयं श्लोको रक्षोघ्नमंत्रत्वेन मंत्रशास्त्रे प्रसिद्धः** । स च नारायणाष्टाक्षरसुदर्शनास्त्रमन्त्राभ्यां संपुटितो ज्ञेय इति रहस्यम् ॥ ३६ ॥ कुतो मां सिद्धसंघा नमस्यन्ति यतस्तेऽप्यहमिव ब्रह्माण्डशतानि स्रष्टुमर्हन्तीत्यत आह—**कस्मादिति**। हे महात्मन्,कस्माद्धेतोस्ते त्वां न नमेरन्नपि तु नमेरन्नेव। तत्र हेतुः—गरीयसे। तेऽपि गुरवस्त्वमपि गुरुस्तथाऽपि त्वमतिशयितो गुरुरसीत्यर्थः । कुतो ममैवातिशयस्तेषां मम च समानेऽपि सत्यसंकल्पत्वादौ सत्यतश्चाह—ब्रह्मणो हिरण्यगर्भस्यापि आदिकर्त्रे पितामहाय पञ्चमहाभूतसृष्टिद्वारा ब्रह्माणं सृजते इत्यर्थः । **'जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च' इति** न्यायेन नित्यसिद्धेश्वरस्य तवाज्ञया ते सर्वेऽप्यैश्वर्यभाजो भवन्ति । न तु त्वत्समास्ते । अत एव हे अनन्त हे देवानां ईश, जगन्निवास जगतामालयभूत, त्वमक्षरं शुद्धं ब्रह्म कीदृशमक्षरं यत् सदसत्तत्परं सच्च असच्च सदसती ताभ्यां परं च सदसत्तत्परं कार्यं कारणं तदुभयातीतं चेति त्रिविधमित्यर्थः ॥ ३७ ॥ + 'त्वाम्' इत्यपि पाठः ।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४०

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात् प्रणयेन वाऽपि ॥ ४१

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२

पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७

पुनरपि स्तौति—**त्वमिति** । आदिदेवो जगतः स्रष्टृत्वात् । पुरुषः सर्वशरीरशायी । पुराणः शरीरनाशादिनाऽप्यविनश्यन् । विश्वस्यास्य त्वं परं निधानं निधीयतेऽस्मिन्निति लयस्थानम् । सांख्यानां जडां प्रकृतिं वारयति । वेत्ता ज्ञाता । वेद्यं तद्दृश्यं च त्वमेव । परं वेत्तृवेद्याभ्यामन्यत् धाम चैतन्यं, त्वया विश्वं ततं व्याप्तं स्वसत्तास्फूर्तिभ्यां हे अनन्तरूप, त्रिविधपरिच्छेदशून्यस्वरूप ॥ ३८ ॥ सर्वदेवतात्मत्वेन स्तौति—**वायुरिति** । प्रजापतिर्दक्षादिश्चतुर्मुखो वा प्रपितामहश्चतुर्मुखपिता ॥ ३९ ॥ हे अनन्तवीर्य, यतः सर्वं समाप्नोषि एकीभावेनासमन्ताद्व्याप्नोषि ततो हेतोः सर्व इति तव नाम । पुरस्तात्कर्मणामादौ । पृष्ठतस्तेषां समाप्तौ । सर्वतो मध्येऽपि ते नमोऽस्तु ॥४०॥ एवं स्तुत्वा स्वापराधान् क्षमापयते—**सखेतीति** । अयं मम सखा इति मत्वा प्रसभं स्वोत्कर्षाविष्करणपूर्वकं यत् मया उक्तं हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति । इति शब्देन सन्धिरार्षः । पुनः उक्तं तवेदमेवंविधं महिमानं माहात्म्यं अजानता कदाचित्प्रमादाच्चित्तविक्षेपात् कदाचित्प्रणयेन स्नेहेन च ॥ ४१ ॥ तथा यच्च अवहासार्थं विहारादिष्वसत्कृतोऽसि परिभूतोऽसि । एको वा सखीनां वियोगकाले वा तत्समक्षं सखिजनसमक्षं वाऽसत्कृतोऽसि तत्क्षामये क्षमापये । यतस्त्वमप्रमेयोऽचिन्त्यस्वभावः करुणापरः । यतः शत्रुभ्योऽपि शिशुपालादिभ्य उत्तमां गतिं दत्तवानसीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ अप्रमेयत्वमेवाह—**पिताऽसीति** । यतस्त्वमस्माकं पिताऽसि अतोऽस्माभिः शिशुभिः कृता अपराधास्त्वया क्षन्तव्या एवेति भावः ॥ ४३ ॥ एतदेवाह—**तस्मादिति** । यस्मात्त्वं पिता गुरुश्च तस्मात्कायं शरीरं प्रणिधाय भूमौ कृत्वा दण्डवत्प्रणम्य त्वां प्रसादये । ईड्यं स्तुत्यं स्पष्टमन्यत् ॥ ४४ ॥ एवं स्तुत्वा स्वेष्टं प्रार्थयते अदृष्टपूर्वमिति । हे देव कदाचिदपि पूर्वं न दृष्टं तादृशमदृष्टपूर्वं तव रूपं दृष्ट्वा हृषित उत्फुल्लोऽस्मि । तथा विकरालरूपदर्शनेन भयेन च मे मम मनः प्रव्यथितं अतस्तदेव धारणाविषयभूतं रूपं मे मह्यं दर्शय ॥ ४५ ॥ तदेव रूपमाह—**किरीटिनमिति** । एतेनार्जुनस्य चक्रगदाकिरीटोपेतं चतुर्भुजं भगवतो रूपं धारणाविषय इति दर्शितम् । हे सहस्रबाहो, हे विश्वमूर्ते, सहस्रबाहुत्वादिकमुपसंहृत्य तेनैव रूपेण भव प्रकटो भव ॥ ४६ ॥ एवमर्जुनेन प्रार्थितस्तं स्तुवन् भगवानुवाच—**मयेति त्रिभिः** । हे अर्जुन, प्रसन्नेन मया तव तुभ्यमिदं परं रूपं दर्शितम् । आत्म-

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९

सञ्जय उवाच।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५०

अर्जुन उवाच।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१

श्रीभगवानुवाच।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पर्वणि तु पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

---

योगात्स्वसामर्थ्यात् करुणया। न तु तव दर्शनेऽधिकारोऽस्ति तथा च प्रागुक्तम्—'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इति। तेजोमयं चिद्रूपं दिव्यं विश्वं विश्वात्मकं आद्यमनादि अनन्तं च यत् रूपं त्वदन्येन कदाचिदपि न पूर्वं दृष्टं दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥ योगैकगम्यमेतत्कर्मिणां दुष्प्रापमित्याह—**न वेदेति**। वेदानां यज्ञानां चाध्ययनैरधिगमैः न च दानैर्न च क्रियाभिः स्मृत्युक्ताभिरापूर्तादिभिर्वापीकूपारामादिभिस्तपोभिः कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैः उग्रैर्मासोपवासाद्यैः नृलोके एवंरूपोऽहं द्रष्टुं न शक्यः। शेरुत्वाभाव आर्षः। त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥ इदमतिदुर्लभदर्शनं रूपं दृष्ट्वाऽपि चेद्व्यथसे तर्हि उपसंहरामीदमित्याशयेनाह—**मा ते इति**। ममेदं ईदृक् घोरं रूपं दृष्ट्वा ते तव व्यथा माभूदिति शेषः। विमूढभावो मोहश्च ते माभूत्। व्यपेतभीर्निर्भयः प्रीतमनाश्च पुनस्त्वं भूत्वा तदेव यत्त्वया द्रष्टुं प्रार्थितं मे ममेदं रूपं प्रपश्य ॥ ४९ ॥ सञ्जय उवाच—**इतीति**। वासुदेवोऽर्जुनं प्रति इति पूर्वोक्तरीत्या उक्त्वा यथा पूर्वमासीत्तथा स्वकं मानुषं रूपं भूयः पुनर्दर्शयामास। यदर्जुनेन प्रार्थितं चतुर्भुजं धारणाविषयं रूपं तदपि तिरोदधे इत्यर्थः। तथा महात्मा व्यापकोऽपि सन् सौम्यवपुरनुग्रदेहो भूत्वा भीतमेनमाश्वासयामास च ॥५०॥ ततो निर्भयः सन्नर्जुन उवाच—**दृष्ट्वेति**। सचेता अव्याकुलः प्रकृतिं गतः स्वास्थ्यं प्राप्तः संवृत्तो जातोऽस्मि ॥५१॥ अस्य विश्वरूपदर्शनस्य दौर्लभ्यं दर्शयन् श्रीभगवानुवाच—

**सुदुर्दर्शमिति**। दर्शनकाङ्क्षिणः दर्शनं काङ्क्षन्ते एव न तु लभन्ते ॥ ५२ ॥ नाहमिति। न वेदयज्ञाध्ययनैरित्यनेनोक्त एवार्थः पुनरुच्यते विश्वरूपदर्शनस्यातिदौर्लभ्यसूचनाय। स्पष्टार्थश्च श्लोकः ॥ ५३ ॥ कथं तर्हि द्रष्टुं शक्यस्त्वमत आह—**भक्त्येति**। भक्त्या आराधनेन अनन्यया अव्यभिचरितया अखण्डयेत्यर्थः। अहमेवंविधो ज्ञातुं शक्यस्त्वंपदार्थशोधकशास्त्रतः। द्रष्टुं शक्यो ध्यानतः। तत्त्वेन याथात्म्येन प्रवेष्टुं शक्यस्तत्त्वमसिवाक्यार्थजज्ञानतः। हे परं अज्ञानशत्रुं तापयतीति परंतप ॥५४॥ शास्त्रसर्वस्वं संगृह्णाति **मत्कर्मकृदिति**। मदर्थमेव कर्माणि करोतीति मत्कर्मकृत् अहमेव परमो निष्कलः प्राप्यो यस्येति स मत्परमः। एतेन कृत्स्नः कर्मयोगो ध्यानयोगश्च त्वंपदार्थशोधक उक्तः। मम भक्त आराधनकृदित्युपासनाकाण्डार्थसंग्रहः। सङ्गवर्जित इत्यनेन एकतो भगवद्ध्याननिष्ठ इत्युक्तम्। निर्वैर इति विश्वं भगवदात्मना पश्येदित्युक्तम्। अन्यथा भेदबुद्धिमतो निर्वैरत्वासम्भवात्। एवंभूतो यः स मां तत्पदलक्ष्यार्थभूतमखण्डानन्दैकघनमेति प्राप्नोति प्रत्यगभेदेन हे पाण्डव विशुद्धवंशज, त्वमेवैतज्ज्ञातुं शक्नोषीति भावः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहा० भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे गी० एकादशोऽध्यायः ॥११॥ पर्वणि० ॥ ३५ ॥

## ३६

अर्जुन उवाच ।
एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १
श्रीभगवानुवाच ।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३

३६

सममारभ्यैतावता ग्रन्थेन तत्पदवाच्यार्थो निरूपितः । इदानीं तत्पदार्थशोधनमुपासनाकाण्डं च समापयिष्यन्निहार्थतः प्राधान्येन तत्पदलक्ष्यमर्थं तद्विदां लक्षणानि च प्रदर्श्यन्ते । शब्दतस्तु लौकिकबुद्ध्यनुसारेण तत्पदवाच्यस्यैवोपासनादिकं प्रपञ्च्यते । तत्र पूर्वाध्यायान्ते मत्कर्मकृन्मत्परम इत्यादिना स्वभजनमुक्तम् । तत्र मच्छब्दार्थः किं सगुणमुत निर्गुणं ब्रह्म । उभयत्राप्यस्मच्छब्दस्य पूर्वं प्रयोगदर्शनात्संदिहानः पृच्छति—**एवमिति** । एवमित्यव्यवहितं मत्कर्मकृदित्यादिनोक्तं प्रकारं परामृशति । अनेन प्रकारेण ये सततयुक्ता नित्यं समाहितचित्ता भक्ताः सगुणवेदिनस्त्वां पर्युपासते । ये चाप्यक्षरमस्थूलादिलक्षणमव्यक्तं बुद्ध्याद्यगोचरमुपासते । तेषां मध्ये योगवित्तमाः के कतरे इत्यर्थः ॥ १ ॥ निर्गुणस्य दुष्प्रापत्वोक्त्यैव श्रेष्ठत्वं सूचयन् सगुणप्राशस्त्यं च शब्दतो दर्शयन् श्रीभगवानुवाच—**मयीति** । मयि सगुणे ब्रह्मणि मन आवेश्य प्रवेश्य ये नित्ययुक्ताः सदोद्युक्ताः मां परमेश्वरमुपासते चिन्तयन्ति । श्रद्धया आस्तिक्यबुद्ध्या परया सात्त्विक्या अवश्यं परमात्माऽयमाराधितोऽस्मांस्तारयिष्यतीत्येवं निश्चयरूपया श्रद्धया उपेतास्ते मे मम 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इति ज्ञानिनमात्मत्वेनैव पश्यतो मूर्खेष्वपि कारुण्यात्पक्षपातवतः सर्वज्ञस्य युक्ततमा मताः ॥ २ ॥ एवमुपासकान् स्तुत्वा अव्यक्तविदां ज्ञानिनां दौर्लभ्यं श्लोकत्रयेणाह—**ये त्विति** । तुशब्दः सगुणाद्वैलक्षण्यार्थः । अक्षरं 'एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' इत्यादिश्रुत्या सर्वधर्मशून्यं निरूपितम् । अत एवानिर्देश्यं निर्देष्टुमशक्यं वाचा अव्यक्तं च वाचामगोचरत्वाद्बुद्धेरप्यविषय इत्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति । ब्रह्मणो वाङ्मनसातीतत्वं दर्शयति । पर्युपासते सर्वप्रकारेणोपासते उपासनमिहानात्मनामदर्शनमेव । यथोक्तम्—'अनात्मादर्शनेनैव परात्मानमुपास्महे' इति । ननु तर्ह्येवंविधस्य शून्यकल्पस्य सत्त्वे किं मानमत आह—**सर्वत्रगमिति** । सत्तारूपेण स्फुरणरूपेण च सर्वत्रगतम् । यत्सत्तया सर्वं सत्तावद्भवति कथं तस्यासत्त्वं वाच्यमिति भावः । नन्वेवं तार्किकाभिमतं सत्तासामान्यमुक्तं स्यात् तद्धि घटः सन् पटः सन्निति सर्वत्रानुगतं दृश्यत इत्याशङ्क्याह—**अचिन्त्यमिति** । सत्तासामान्यं हि प्रत्यक्षम् । तदपि ब्रह्मसत्तानुवेधेनैवात्मानं लभते न स्वतःसिद्धं सामान्यं सत् जातिः सती घटत्वं सदितिप्रत्ययात् । सामान्यस्य सदिति प्रत्ययागोचरत्वे तु तस्यासत्त्वापत्त्या पदार्थत्वमेव न स्यात् । तस्मात्सर्वाधिष्ठानभूतं ब्रह्म रूपादिहीनत्वाच्चिन्तयितुमशक्यम् । दूरे तस्य सर्वगतत्वेन प्रत्यक्षगोचरत्वमित्यर्थः । ननु सत्सदितिप्रत्ययस्यान्यथाप्युपपत्तौ सत्तासामान्यवादिनं प्रति तेनाधिष्ठानभूतं ब्रह्म न साधयितुं शक्यमत आह—**कूटस्थमिति** । वस्तुतो सदपि सदिवावभासमानं कूटं यथा कूटकार्षापणं कूटतुलेति तद्वत्कूटः अहंकारः प्रतीच्यभेदेन भासमानत्वे सति कादाचित्कत्वाद्यो यदभेदेन कदाचिद्भाति स तत्र मिथ्याकल्पितो यथा रज्जूरगस्तथा चायमहंकारो मिथ्यात्वात् कूटसंज्ञस्तत्र तिष्ठति । तद्भासकत्वेनेति कूटस्थं चैतन्यं अहमनुभवे ह्यहंकारो दृश्यतया भाति । तद्भासकं च चैतन्यं ततोऽन्यत् यथा घटभासकोऽर्को घटादन्यस्तद्वत् । एतेन नित्यापरोक्षत्वं ब्रह्मणः साधितम् । नन्वहमनुभव एवात्मविषयोऽतोऽहमर्थ एवात्मा न ततोऽन्य आत्माऽस्तीत्याशङ्क्याह—**अचलमिति** । अहमर्थो हि सुखी दुःखी परिणाम्याविर्भावतिरोभावशीलश्चातश्चलः । आत्मा तु न तथा । तस्य तथात्वेऽनिर्मोक्षापत्तेः वन्ह्यौष्ण्यवद्दुःखादिधर्मिण आत्यन्तिकदुःखनाशस्य मोक्षस्य धर्मिनाशमन्तरेणासंभवात् । घटे यावद्रूपनाशादर्शनात् । आत्मनस्तिरोभावे च जगदान्ध्यं प्रसज्येत सुषुप्तावपि तत्रत्यसुखाज्ञानसाक्षित्वेनाविर्भूतस्वरूप एवात्माऽस्ति । अन्यथा सुप्तोत्थितस्य सुखमहमस्वाप्समिति परामर्शायोगात् । ननु सुषुप्तौ सत्यप्यात्मा न प्रकाशते तत्प्रकाशकस्य मनःसंयोगस्याभावात् । कर्त्रा व्याप्रियमाणं हि करणं क्रियां साधयति न च सुषुप्तौ करणव्यापारोऽस्ति । तस्माद्यस्तवास्यस्तक्षेवात्मा सुषुप्तौ ज्ञानादिगुणहीनोऽ-

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८

प्रकाशमानोऽस्त्येवेत्याशंक्याह—**ध्रुवमिति** । नन्वात्मा किं सत्तामात्रेणायस्कान्तवत्करणानि प्रवर्तयति उत व्यापाराविष्टः सन् । नाद्यः । इष्टापत्तेः । त्वन्मते च आत्मनः कर्तृत्वासिद्धेः । नान्त्यः अनित्यत्वापत्तेः । व्यापारो हि स्पन्दः। स च परिच्छिन्नस्यैव युज्यते न विभोः। विभुत्वहाने चाणुत्वानभ्युपगमात् । मध्यमपरिमाणत्वे घटादिवदनित्यतापत्तिः । तस्माद्ध्रुवमप्रच्युतस्वभावमक्षरमित्यर्थः ॥ ३ ॥ एवंविधमक्षरं कथमुपासनीयमित्यत आह—**संनियम्येति** । सर्वत्र काले सर्वदा । एतेन ध्यानस्य नैरन्तर्यमुक्तम् । इन्द्रियग्रामं समनस्कानीन्द्रियाणि संनियम्य एकीभावेनात्मनि वशे कृत्वा । स्वकारणे प्रविलाप्येत्यर्थः। समा चाञ्चल्यहीना बुद्धिर्येषां ते समबुद्धयो ये भवन्ति तेऽपि मामेव निर्विकल्पं परं ब्रह्म परां काष्ठां प्राप्नुवन्ति । श्रुतिश्च—

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्' इति ।

सर्वभूतहिते रता इत्यनेन सर्वभूताभयदानेन संन्यासोऽपि ध्यानाङ्गमिति विधीयते ॥४॥ अस्या गतेर्दुष्प्रापत्वमाह—**क्लेश इति** । यद्यपि सगुणविदामधिकः क्लेशोऽस्त्येव । तथापि ते सालम्बना ध्यायन्ति सोपानारोहक्रमेण परां काष्ठां प्रविशन्ति । येषां तु निरालम्बं ध्यानमाकाशयुद्धसमं तेषां निर्विषये चेतःस्थिरीकरणेऽधिकतरः क्लेशोऽस्ति । तत्र क्रमिकध्यानप्रयोगः शुद्धे चिन्मात्रे विश्वरूपं मायया ऽध्यस्तं तत्र च केवलमातिवाहिकं कृत्स्नं जडमाधिभौतिकमध्यस्तम् । यथोक्तं वसिष्ठेन—

'आतिवाहिक एवायं त्वादृशौश्चित्तदेहकः ।
आधिभौतिकया बुद्ध्या गृहीतश्चिरभावनात्' इति ।

अतिक्रम्य पाषाणादीन् वहति इष्टदेशं नयत्यभिमानिनमित्यातिवाहि सर्वत्राप्रतिहतगतिकं भूतसूक्ष्मं तेन निर्वृत्त आतिवाहिकोऽयं कृत्स्नः प्रपञ्चो यतश्चित्तदेहकः चित्तमेव देहः स्वरूपमस्येति स्वप्नतुल्य एव सन् चिरंभावनात् वज्रपञ्जरवत् काठिन्येनोपेत आधिभौतिकया स्थूलभूतप्रभवया बुद्ध्या गृहीत इति श्लोकार्थः । एवं च यथा तीव्राभिनिवेशेन निरीक्ष्यमाणो रज्जूरगः स्वयं शाम्यति तदधिष्ठानभूता रज्जुश्चाविर्भवति । तथा वस्तुतश्चिद्रूपायामपि माधवादिमूर्तौ जाड्यमध्यस्तं तामेवाभिनिवेशेन चिरकालं चर्मचक्षुषैव पश्यतस्तस्या मूर्तेर्जाड्यं तिरोधीयते चैतन्यमाविर्भवति अत एव बाणादयः स्वाराध्यैः सार्धं स्वामिभृत्यन्यायेन व्यवहरन्तीति सर्वत्रोपाख्यायते । एवमचेतनाया मूर्तेरपि तत्त्वं विश्वरूपमेवेति मूर्तिमेवात्यादरेण पश्यंस्तस्यास्तत्त्वं विश्वरूपमवगच्छति यदपश्यदर्जुनो वासुदेवदेहे एतदेव वितर्कजं प्रत्यक्षं प्रकृत्योक्तं भगवता **योगभाष्यकारेण बादरायणेन**—'तत्परं प्रत्यक्षं तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्' इति । स्थूलालंबनः समाधिर्वितर्कः विश्वरूपस्याप्यस्मितामात्रेऽध्यासात्तस्यावलोकनेऽस्मितामात्रमवशिष्यते।अस्मिताया अपि शुद्धायां चितावध्यस्तत्वात्तस्यामपि समाहिते मनसि सहैव मनसाऽस्मिता तिरोधीयते शुद्धा चितिरेवावशिष्यते इति । एवं व्यक्तासक्ताः सोपानारोहक्रमेण परां काष्ठां प्रतिपद्यन्ते। ये तु अव्यक्तासक्ताः पक्षिवदकस्मादूर्ध्वं पदमारुरुक्षन्ति ते लयेन विक्षेपेण च भृशं बाध्यन्ते लयमेव च कदाचित्समाधित्वेनाभ्युपगच्छन्तीति तेषां पराभवसंभावनाऽप्यस्तीत्यत उक्तं—'**क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसामिति**। हि यस्मादव्यक्ता निरालंबना गतिः पदप्राप्तिर्देहवद्भिर्देहाभिमानिभिर्दुःखं यथा स्यात्तथा अवाप्यते न तु सा सुखप्राप्येति भावः ॥ ५ ॥ नन्वव्यक्तासक्तचेतसां क्लेशाधिक्येऽपि क्लेशान्ते सद्यः कैवल्यसिद्धिरस्तीति किं विलंबसाध्येन व्यक्तभावनेनेत्याशंक्याह—**ये त्विति** द्वाभ्याम्। सर्वाणि नित्यनैमित्तिकस्वाभाविकादीनि संन्यस्य समर्प्य मत्परा अहमेव परः सर्वकर्मभिः प्राप्यो येषां ते मत्परा मद्ध्यानपरा वा । अनन्येन भेदशून्येन अहमेव भगवान्वासुदेव इति परमेश्वरेऽहंग्रहलक्षणेन योगेन चेतःसमाधानेन मां ध्यायन्त उपासते तत्रैव ध्याने स्थैर्यं लभन्ते ॥ ६ ॥ तेषां ध्यायिनां नचिरात् शीघ्रमेवाहं समुद्धर्ता समुद्धरणकर्ता। यतस्ते मयि सगुणे विश्वरूपे आवेशितचेतसो भवन्ति अतो व्यक्तासक्ता अपि शीघ्रमेव परं पदमारोढुमर्हा इति नाव्यक्तेऽत्यन्ताभिनिवेष्टव्यमिति भावः ॥ ७ ॥ यस्मादेवं तस्मान्मय्येव विश्वरूपे ईश्वरे मनः संकल्पविकल्पात्मकमाधत्स्व स्थापय । मय्येवाध्यवसायं कुर्वतीं बुद्धिं निवेशय तत्फलं च । निवसिष्यसि निवत्स्यसि

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १०
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् १२

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ १४
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः १६

निश्चयेन मदात्मना मयि वासं करिष्यसि । अतः शरीरपातादूर्ध्वं न संशयः कर्तव्यः ॥ ८ ॥ विश्वरूपधारणायामशक्तं प्रति प्राह—अथेति । मयि विश्वेश्वरे विश्वरूपे अथ यदि चित्तं समाधातुं निवेशितुमचलं धारयितुं न शक्नोषि ततस्तदभ्यासयोगेन चित्तस्यैकस्मिन्नाभ्यन्तरे बाह्ये वा प्रतिमादावालंबने सर्वतः समाहृत्य पुनः पुनः स्थापनमभ्यासस्तत्पूर्वको योगः समाधानलक्षणस्तेनाभ्यासयोगेन मां विश्वरूपमाप्तुं प्राप्तुमिच्छ प्रार्थयस्व हे धनंजय ॥९॥ अभ्यासेऽपीति । अभ्यासे पूर्वश्लोकोक्ते । मत्कर्म—

' श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् '

इति नवविधभजनात्मकं भगवत्प्रीत्यर्थं कर्म मत्कर्मशब्दितं तदेव परममावश्यकं यस्य तादृशो भव। कर्माणि श्रवणादीनि सिद्धिं सत्त्वशुद्धिम् ॥ १० ॥ मद्योगं श्रवणादौ निष्ठां, तर्हि पूर्वोक्तं श्रौतस्मार्तसर्वकर्मफलत्यागं कुर्वित्यर्थः । यतात्मवान् यतश्च नियमादिमांश्च आत्मवान् जितचित्तश्चेति यतात्मवान् ॥ ११ ॥ इममेव त्यागं सर्वपुरुषार्थमूलत्वात्स्तौति—श्रेयो हीति । अभ्यासाच्चिदिध्यासनात् ज्ञानं श्रवणमननजं परोक्षं श्रेयः । ज्ञानादपि ध्यानं विष्णोः श्रवणकीर्तनादि विशिष्यते । ततोऽपि कर्मफलत्यागः श्रेयान् । यस्मादनन्तरमव्यवधानेन शान्तिर्मोक्षोऽस्ति चित्तशुद्ध्याद्युत्पादनद्वारेण । अत्र बाह्यं साधनं सुकरत्वात्पूर्वं पूर्वापेक्षया प्रशस्तमित्युच्यते तत्रैव प्रवृत्त्यतिशयाय । यद्वा । श्रवणाद्यभ्यासात् तज्जं ज्ञानं तत्त्वनिश्चयात्मकं श्रेयः । ततोऽपि ज्ञातस्यार्थस्य साक्षात्कारार्थं ध्यानं श्रेयः । ततोऽपि कर्मफलत्यागः । योगी हि सर्वकर्मत्यागी 'प्रजहाति यदा कामान्' इति प्रोक्तः। अयमपि कर्मफलत्यागेन कामान् जहात्येवेति तेन सम इति स्तूयते ॥ १२ ॥ परमप्रकृतस्याक्षरस्योपासकं स्तौति तद्गुणकथने हि साधकानां तेषु गुणेष्वादरो भविष्यतीति बुद्ध्याऽऽह—अद्वेष्टेति। अद्वेष्टा चेदुदासीनः स्यादित्याह । मैत्रः मित्रमेव मैत्रो न तूदासीनः कदाचिदपि । नन्वन्यस्मिन् शत्रौ सति कथं मैत्रत्वं स्यात्तत्राह—करुण इति । दुःखदातारमपि करुणया न बाधितुमीष्टे अपि तु त्रातुमेवेच्छति। एतेन सर्वभूताभयप्रदः संन्यासी उक्तः । अत एव तस्य निर्मम इति विशेषणं युज्यते । मुख्यमक्षरविदो लक्षणं निरहंकार इति । अहंकारो हि सर्वानर्थनिदानं स एव निर्गतो यस्मात् स निरहंकारः। अत एव समे दुःखसुखे यस्य । ' तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ' इति श्रुतेः । क्षमी क्षमावान् परिभवप्राप्तावपि स्वस्थचित्तः । अन्योऽपि मुमुक्षुरेतान् धर्माननुतिष्ठेदित्यर्थः ॥ १३ ॥ संतुष्टो यदृच्छालाभेनैव संजातालंप्रत्ययः । सततं सर्वदा । योगी श्रवणादौ समाहितचित्तः। यतात्मा संयतशरीरेन्द्रियादिसंघातः । दृढः स्थिर आत्मतत्त्वविषये निश्चयो यस्य स दृढनिश्चयोऽसंभावनाशून्यो दृढश्रद्धावान् । मयि निर्गुणे ब्रह्मण्यर्पिते निहिते प्रविलापिते वा मनः संकल्पादिरूपं बुद्धिरध्यवसायस्ते उभे येन स मय्यर्पितमनोबुद्धिः । एतादृशो यो मे मम भक्तः स मे मम प्रियः आत्मत्वादेव स परमप्रेमास्पदं 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इत्युक्तम् । एतेन पूर्वश्लोकोक्ताया निरहंकारतायाः साधनान्युक्तानि ॥ १४ ॥ स च निरहंकारो द्विविधः। समाधिस्थो व्युत्थितश्च । तयोर्लक्षणं क्रमेणाह द्वाभ्यां—यस्मादिति । यस्मात् समाधिस्थत्वेन काष्ठसमाल्लोको नोद्विजते न त्रस्यति। लोकादपि यो निर्मनस्कत्वान्नोद्विजते। अत एव हर्षं इष्टलाभे सति मनस उत्फुल्लता । अमर्षः असहिष्णुता । भयमात्मोच्छेदशंका । उद्वेगस्तत्कृतैव व्याकुलता। एतैर्निर्मनस्कत्वादेव स्वयमेव मुक्तस्त्यक्तः। न त्वेतान् स्वयं त्यक्तुं यतते साधकवत्। ईदृशो यो मद्भक्तः स च मे प्रियः॥१५॥ अस्यैव व्युत्थानावस्थामाह—अनपेक्ष इति। सुखप्राप्तौ दुःखहाने वा तत्साधने वा लिप्साशून्योऽनपेक्षः। शुचिः बाह्याभ्यन्तरशौचवान् पुण्यापुण्याभ्यामलिप्तो वा । दक्षः भगवद्भजनादावनलसः । उदासीनो मानापमानादौ समवृत्तिः। अत एव गता व्यथा चेतःपीडा यस्य स गतव्यथः। सर्वारंभपरित्यागी संन्यासित्वादेव यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः १९
ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः २०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ पर्वणि तु षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

[ अत्र क्षिप्तोऽयं टीकाया अभावात् ।
अर्जुन उवाच ।
प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ १ ]

श्रीभगवानुवाच ·
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १

एतमेव श्लोकं व्याचष्टे त्रिभिः श्लोकैः—**यो नेति**। इष्टलाभे सति न हृष्यति । अनिष्टप्राप्तौ न द्वेष्टि । इष्टवियोगे सति न शोचति । इष्टसंयोगमनिष्टपरिहारं वा न काङ्क्षति। अनपेक्षत्वात्। शुभं कल्याणं पुण्यं च अशुभममङ्गलं पापं च ते उभे परित्यक्तुं शीलमस्य स शुभाशुभपरित्यागी॥ एतेन शुचित्वं व्याख्यातम् । भक्तिमान् भक्तौ सततोद्युक्त इति दक्ष इत्यर्थः ॥ १७ ॥ उदासीनत्वं व्याचष्टे—**सम इति** । गतव्यथत्वमुपपादयति— **सङ्गविवर्जित इति** । सङ्गी हि व्यथते न तु तद्वर्जित इत्यर्थः ॥ १८ ॥ सर्वारंभपरित्यागीत्येतद्व्याचष्टे—**तुल्येति** । शिष्टेषु विगीतो न स्यामिति वा लोकेषु प्रख्यातः स्यामिति वा इदं मे भूयादिति वा कामयमानः किंचिदारभते न त्वयं, तुल्यनिन्दास्तुतित्वात्संतुष्टत्वाच्च। मौनी संन्यासी अत एवानिकेतो गृहशून्यः कुटीमपि वासार्थं नारभते। यतः स्थिरमतिः स्थितप्रज्ञो भक्तिमान्योगी मे मम प्रियो नरः पुरुषः ॥ १९ ॥ मुक्तलक्षणान्येव मुमुक्षोः साधनत्वेन विधत्ते—**ये त्विति** । ये मुमुक्षवः तु पूर्वोक्तमुक्तापेक्षया विलक्षणाः इदमद्वेष्टा सर्वभूतानामित्यादिना ग्रन्थेन प्रतिपादितं धर्मजातं तदेवामृतस्य मोक्षस्य साधनत्वादमृतं धर्मामृतं यथोक्तमुक्तानातिक्रमेण पर्युपासते साकल्येनानुतिष्ठन्ति। श्रद्दधानाः श्रद्धायुक्ताः मत्परमाः अहमेव भगवान्वासुदेवोऽक्षराख्यः सर्वविशेषरहितः परमानन्दरूपः परमः पर्यन्तिकः प्राप्यो येषां ते मत्परमाः भक्ताः शान्तिदान्त्यादिमन्तो मद्भजनशीलास्तेऽतीव मे मम प्रियाः ज्ञानी तु भगवत आत्मैव परिशेषादतीव प्रियत्वं भक्तेष्वेव पर्यवसन्नं यो मुक्तानां स्वाभाविको धर्मः स मुमुक्षुणा यत्नतोऽनुष्ठेय इत्यर्थः ।

यथोक्तं वार्तिके—
'उत्पन्नात्मप्रबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः ।
अयत्नतो भवन्त्येव न तु साधनरूपिणः ' इति ।
समाप्त उपासनाप्रधानस्तत्पदार्थविवेकः । अतःपरं वाक्यार्थविचारो जीवब्रह्माभेदप्रतिपादको भविष्यति ॥ २० ॥ इति श्रीमहा० भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे श्रीमद्गीतार्थ० द्वादशोऽध्यायः॥१२॥ समाप्तश्चायमुपासनाकाण्डः ॥ पर्वणि ३६ ॥

३७

ननु ' अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ' इति **द्वितीये** त्वंपदार्थस्वरूपमुक्तम् । तथा **द्वादशे** 'ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते । सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ' इति तत्पदार्थस्वरूपमुक्तम् । न च तयोर्भेदः संभवति। लक्षणैक्यात्। लक्षणं हि तयोरव्यक्तत्वमचिन्त्यत्वमचलत्वं सर्वगतत्वं चेत्यादि समानम् । न च द्वयोः सर्वगतत्वं संभवति अन्योन्यव्यावृत्तत्वेनासर्वगतत्वापत्तेः। नच लक्षणभेदाभावेऽपि तत्तदात्मगतविशेषाः सन्ति ये मुक्तात्मनां जीवेशयोश्चान्योन्यं भेदमावहन्ति स्वात्मानं च स्वाश्रयात्स्वयमेव व्यावर्तयन्तीति वाच्यं, विशेषाणां सत्त्वे प्रमाणाभावात् । ननु मा सन्तु विशेषाः बन्धमोक्षादिव्यवस्थान्यथानुपपत्त्या तु निर्विशेषेष्वपि पुरुषेषु भेदः सिध्यति। यथोक्तं सांख्यवृद्धैः—'जन्ममरणकारणानां प्रति नियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव'इति। जन्मादिव्यवस्थातो युगपत्प्रवृत्त्यदर्शनात् सात्त्विकराजसादिभेदाच्च न पुरुषैक्यमित्यर्थ इति चेन्न। व्यापकानेकात्मवादे भोगसांकर्यप्रसङ्गात् । न

**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ २**
**तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्।**
**स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥ ३**

क्षेत्रज्ञान्तःकरणे सुखादिरूपेण परिणते तत्प्रतिसंवेदी एक एव चेतन इति नियन्तुं शक्यं, सर्वेषां साक्षिध्याविशेषेण प्रतिसंवेदनापत्तेरवर्जनीयत्वात्। श्रोत्रस्यैकस्यापि कर्णशष्कुलीरूपोपाधिभेदादिवान्तःकरणरूपोपाधिभेदादेकस्याप्यात्मनः शब्दग्रहण्यवस्थावजन्मादिव्यवस्थाऽपि सेत्स्यतीति न पुरुषबहुत्वं वक्तव्यम्। ततश्च जीवेशयोर्लक्षणैक्यादभेदे सिद्धे किमुत्तरग्रन्थेन तत्प्रतिपादनार्थेनेति चेत्सत्यम्। 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति श्रुतेर्विद्यावस्थायां भेदाभावेऽप्यविद्यावस्थायां 'अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानाम्'। 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते' इति व्यवहारदशायां शास्यशासितृभावेन कर्तृकारयितृभावेन च प्रसक्तस्य जीवेश्वरयोर्भेदस्य निरासार्थत्वादुत्तरग्रन्थस्यारम्भ उपपद्यते। तत्रानुपदोक्तेन तत्पदार्थेन सहास्याभेदं वक्तुं योग्यतायै भास्यभासकभावेन क्षेत्रात्क्षेत्रज्ञस्य कुम्भाद्भास्वत इव विवेकं दर्शयति—**इदमिति**। इदमनात्मत्वेन भास्यं घटाद्यहङ्कारान्तं शरीरं विशरणधर्मि हे कौन्तेय, क्षेत्रं क्षिणोत्यात्मानमविद्यया त्रायते च विद्ययेति क्षेत्रं कर्मबीजप्ररोहस्थानं क्षेत्रशब्देनोच्यते। एतद्यो वेत्ति भासयति तं चिदात्मानं क्षेत्रज्ञ इत्यन्वर्थसंज्ञं प्राहुः। के प्राहुः तद्विदः क्षेत्रक्षेत्रज्ञविदः एतेन गच्छामि पश्यामि भुञ्जे इत्यनुभवाद्देहेन्द्रियाहङ्काराः प्रतीतितो भासककोटिनिविष्टा इव भान्ति तथाऽपि तेषां तत्त्वतो भास्यत्वलक्षणोऽनात्मभावः सिद्धः॥ १॥ तमेवंलक्षणमुपाधितो निष्कृष्टं क्षेत्रज्ञं चाक्षेत्रमपि मां परमेश्वरमेव उभयरूपेण सन्तं विद्धि। 'तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मि' 'ब्रह्मैवेदं सर्वम् सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इति श्रवणात्। यस्मादुभयात्माऽहं तस्मात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्यज्ज्ञानं क्षेत्रस्य बाध्यत्वेन क्षेत्रज्ञस्य सर्वबाधावधिभूतत्वेन च यज्ज्ञानमापरोक्ष्येण तत्त्वनिश्चयस्तदेव ज्ञानं मम मद्विषयं सम्यग्ज्ञानं एतयोरेव ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमिति मतं निश्चितं ब्रह्मविद्भिः 'नेह नानास्ति किञ्चन' इति क्षेत्रस्य बाधात् 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इति क्षेत्रज्ञादन्यस्य द्रष्टुर्निषेधाच्च। यद्यपि सर्वस्य ब्रह्माभिन्नत्वाद्यत्किञ्चिदपि ज्ञानं तत्सर्वं ब्रह्मविषयमेव भवति। तथापि रज्जुं सर्पात्मना पश्यतो न तु रज्जुविषयं सर्पविषयं वा सम्यग्ज्ञानमस्ति। नापि तस्य ज्ञानस्य रज्जुव्यतिरेकेण विषयान्तरं वास्तवमस्ति। किंतु यदा सर्पबाधेन रज्जुतत्त्वमधिगच्छति तदैव सर्पं मिथ्यायामिति सम्यग्जानाति रज्जुं च। तद्वदिहाप्युभयविदेव सम्यग्ज्ञानीत्यर्थः। न ह्यन्यतरस्य तत्त्वे ज्ञाते कृतकृत्यताऽस्ति। नहि सांख्यो निर्विशेषात्मविदपि प्रपञ्चमबाधमानः शून्यवादी वा प्रपञ्चं तुच्छत्वेन पश्यन्नधिष्ठानं ब्रह्म नास्तीति ब्रुवाणः कृतकृत्यो भवतीति वक्तुं युक्तम्। अतो द्वयोरपि तत्त्वं बोध्यमेव॥ २॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञपदे विवरीतुमारभते—**तदिति**। यच्चेदं क्षेत्रं निर्दिष्टं तत् यादृक् यादृशं स्वकीयैर्धर्मैरस्ति। यद्विकारि ये च तस्य विकाराः यतश्च यत् यस्माद्विकाराद्यजायत इति प्रश्नः। तत्पूर्वोक्तं क्षेत्रं यच्च यत्स्वरूपं यादृक् यत्प्रकारकं यद्विकारि ये च तस्य विकाराः यतश्च क्षेत्रावयवाज्जायते तत् शृणु। तथा स च क्षेत्रज्ञः यो यत्स्वरूपः यत्प्रभावश्च तदपि मत्तः शृणु॥ ३॥

**ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।**
**ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥ ४**
**महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।**
**इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥ ५**

वक्ष्यमाणेऽर्थे प्रमाणमाह—**ऋषिभिरिति**। ऋषिभिर्वसिष्ठाद्यैर्बहुधा गीतं **योगवासिष्ठादौ** प्रतिपादितम्। छन्दोभिर्वेदैर्मन्त्रैर्वा पृथक् प्रतिशाखमनेकप्रकारं गीतम्। **ब्रह्मसूत्रपदैः** ब्रह्मणः सूचकानि पदानि समुच्चित्य वाक्यभावमापन्नानि तैर्ब्रह्मसूचकैर्ब्राह्मणवाक्यैस्तत्त्वमसीत्याद्यैरित्यर्थः। **हेतुमद्भिः** 'अन्नेन सोम्य शुङ्गेनापोमूलमन्विच्छ अद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः' इत्यादिना कार्यलिङ्गान्यनुमानानि ब्रह्माधिगमाय प्रदर्शयन्तो हेतवस्तद्वद्भिः। विनिश्चितैरसकृदभ्यासेन सकलशंकापंकक्षालनेन निश्चितार्थैः क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्वरूपमेतैः सर्वैर्यद्गीतं तत् शृणु इति पूर्वेण सम्बन्धः॥ ४॥ तत्र यच्च यादृक् च यद्विकारि चेत्येतद्व्याचष्टे—**महाभूतानीति**। चकारो भिन्नक्रमो बुद्धिश्चेति बुद्धिपदादुपरि द्रष्टव्यः। यत्क्षेत्रं शरीराख्यमुक्तं तदव्यक्तमेव। 'शरीरं रथमेव तु' इति श्रुतौ अव्यक्तपदेन तस्यैव ग्रहणात्। क्षेत्रस्वरूपमुक्त्वा तत्प्रकारमाह—**महाभूतान्यहंकारो बुद्धिश्चेति** सप्तप्रकारैरंकुरितम्। महाभूतशब्देन पञ्चतन्मात्रा उच्यन्ते। अहंकारो बुद्धिरिति महत्तत्त्वमुच्यते। स्वप्ने हि एतान्येव करणानि भासन्ते तत्प्रकारक एव भूतिगण इति तावत्प्रकारकमेव क्षेत्रमित्युक्तम्। यद्विकारीत्यस्योत्तरमाह—**इन्द्रियाणीति**। इन्द्रियाणि दशैकं चेत्येकादश। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुरसनघ्राणानि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानि मनश्चेत्येकादश। इन्द्रियाणां गोचरा विषयाः स्थूला विय-

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-दुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १०
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत् परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२

दादयः पञ्च अयं षोडशको विकार एव। एतान्येव सांख्यैश्चतुर्विंशतितत्त्वानि गण्यन्ते। एतावांस्त्वस्माकं विशेषः। तैः स्वतन्त्रा सत्या च प्रकृतिरुच्यते अस्माभिर्मायारूपा मिथ्या ईश्वराधीना चोच्यत इति। तथा च श्रुतिः—

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इति। तस्मात्सांख्यप्रक्रियाऽत्र भगवताऽऽश्रितेति न भ्रमितव्यम् ॥ ५ ॥ यतश्च विकाराद्यज्जायत इत्युक्तं तदाह—**इच्छेति**। इच्छा सुखे तत्साधने वा स्पृहारूपा चित्तवृत्तिरिदं मे भूयादिति सा काम इति राग इति चोच्यते। द्वेषो दुःखे तत्साधने चेदं मे माभूदिति स्पृहाविरोधिनी चेतोवृत्तिः। सुखदुःखे प्रसिद्धे। सङ्घातः 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति श्रुतेरिन्द्रियमनश्चिदात्मनामेकलोलीभावरूपो भोक्ता। चेतना या पूर्वोक्ता बुद्धिः सैव शुद्धा सत्त्वमयत्वाद्विमलादर्शवच्चित्प्रतिबिम्बग्राहिणी तप्तायःपिण्डे वह्नित्वमिव स्वयमचेतनापि चेतनात्वं प्राप्ता यया व्याप्तः स्थूलपिण्डोऽपि चेतन एव प्रतीयते सेयं चेतना मनःसंज्ञिता। सैव इच्छादिरूपा परिणमते। तथा च श्रुतिः—'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव' इति कामादीनां मनोवृत्तित्वमाह। एतत्क्षेत्रमव्यक्ताख्यं सविकारं विकारेण महदादिना तद्विकारेण चेच्छादिना सहितमुदाहृतमुक्तम्। नन्विच्छादयोऽहंप्रत्ययविषयस्यात्मनो धर्मा इति **काणादा** वदन्ति। सत्यमेव वदन्ति ते परंतु सोऽस्माकं मुख्य आत्मैव न भवति। तस्य शुद्धायां चिति अभेदेनाध्यस्तत्वादिति प्रागेवोक्तम्। अतः क्षेत्रान्तर्गतस्याहमर्थस्य दृश्यस्य तादृशा एव दृश्या इच्छादयो धर्माः सन्तु न नः किञ्चिच्छिन्नम्। आत्मनोऽसंगत्वमहङ्कारस्यानृतत्वं चानुभवसिद्धं श्रुती अप्यनुवदतः—'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' इति 'अनृतेन हि प्रत्यूढाः' इति ॥ ६ ॥ इदानीं ज्ञानसाधनानि विधत्ते—**अमानित्वमिति**। अमानित्वादयोऽपि चेतोवृत्तिविशेषा दृश्यत्वाच्च तत्क्षेत्रविकारा एव सन्तः सत्त्वगुणकार्यत्वात् ज्ञानस्य साधनभूता अप्युपचाराज्ज्ञानपदवाच्या भवन्ति। 'एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम्' इत्युपसंहारात्। तत्र विद्यमानैरविद्यमानैर्वा गुणैरात्मनः श्लाघित्वं **मानित्वम्**। लाभपूजाख्यात्यर्थं स्वधर्मस्य प्रकटीकरणं **दंभित्वम्**। कायवाङ्मनोभिः प्राणिनां पीडनं **हिंसा**। तेषां वर्जनममानित्वमदंभित्वमहिंसा च। परेणापकृतेऽपि चित्तस्य निर्विकारत्वं **क्षान्तिः**। आर्जवम**कौटिल्यम्**। आचार्योपासनं स्पष्टम्। **शौचं** मृज्जलाभ्यां बाह्यं। भावशुद्धिरान्तरम्। **स्थैर्यं** मोक्षसाधने प्रवृत्तस्य विघ्नसद्भावेऽपि तदगणनम्। **आत्मविनिग्रहो** देहेन्द्रियादिप्रचारसंकोचः ॥७॥ इन्द्रियार्थेषु दृष्टेषु आनुश्रविकेषु वा शब्दादिषु वैराग्यं रागाभावः। अनहंकारो दर्पराहित्यं, अयोगव्यवच्छेदार्थ एवकारः। समुच्चयार्थश्चकारः। जन्मादिषु यज्जायमानं दुःखं परस्य व्यथादोषाश्च दैन्यादयस्तेषामनुदर्शनम् ॥८॥ **असक्तिरिति**। सक्तिः पुत्रादौ ममतामात्रम्। अभिष्वंगस्तेन सह तादात्म्याभिमानोऽयमेवाहमिति च। पुत्रादेः सुखेऽहमेव सुखी तस्य दुःखेऽहमेव दुःखीति संगाभिष्वङ्गौ तद्वर्जनमित्यर्थः। समचित्तत्वं हर्षविषादराहित्यम्। कुत्र इष्टानिष्टोपपत्तिषु इष्टप्राप्तौ हर्षाभावोऽनिष्टप्राप्तौ विषादाभावः ॥ ९ ॥ मयीति श्लोकः स्पष्टार्थः ॥१०॥ अध्यात्मशास्त्रजे ज्ञाने निष्ठावहमध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्। तत्त्वज्ञानस्यार्थः प्रयोजनमविद्यानिवृत्तिरानन्दावाप्तिश्च तयोर्दर्शनम्। एतदमानित्वादितत्त्वज्ञानार्थदर्शनान्तं विंशकं ज्ञानं ज्ञानसाधनमिति प्रोक्तं वेदेषु। अज्ञानं ज्ञानविरोधि इतोऽन्यथा यत्तत् मानित्वादिकमित्यर्थः। तस्मात्तत्परित्यागेनामानित्वादिकमेवोपादेयमिति भावः ॥ ११ ॥ एवं क्षेत्रं व्याख्याय स च यो यत्प्रभावश्चेत्युक्तं क्षेत्रज्ञस्वरूपं तस्य मायिकं प्रभावं व्याचष्टे—**ज्ञेयमिति**। एतैर्ज्ञानसाधनैर्यत् ज्ञेयं तत्प्रवक्ष्यामि। यज्ज्ञेयं ज्ञात्वा अमृतं मोक्षमश्नुते प्राप्नोति। तस्य स्वरूपं तावदाह—**अनादिमदिति**। आदिमदव्यक्तं 'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नम्' इति तदुत्पत्तिस्मरणात्। तदन्यदनादिमत्। अनादीत्येतावत्युक्ते प्रवाहनित्यत्वमव्यक्तादीनामप्यस्तीति तेषामप्यनादिताशंकां प्राप्तायां तत्प्रतिषेधार्थमनादिमदित्युक्तम्। यद्वा। आदिमच्च ततः परं च आदिमत्परे कार्यकारणे ताभ्यामन्यदनादिमत्परमिति। अत एव परं निर्विशेषं न त्वपरं सविशेषम्। ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यम्। न सत्

**सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।**
**सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३**

प्रधानपरमाण्वादिवत् सदिति नोच्यते । नाप्यसत् शून्यवदसदपि नोच्यते । तथा च श्रुतिः 'नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्' इति। असच्छब्दितस्य शून्यस्य सच्छब्दितस्य प्रधानस्य रजःशब्दितानां परमाणूनां परव्योमशब्दितस्यास्मदभिमतस्याव्यक्तस्यापि सृष्टेः प्राक् निषेधं दर्शयति ॥ १२ ॥ एवं स च यश्चेत्येतत् क्षेत्रज्ञस्वरूपमपास्तसमस्तविशेषमुपपाद्य यत्प्रभाव इति प्रतिज्ञातं तस्य प्रभावं विश्वरूपत्वलक्षणमुपपादयति—**सर्वत इति** । सर्वतः सर्वासु दिक्षु अन्तर्बहिश्च पाणयः पादाश्चास्य सन्तीति सर्वतःपाणिपादम् । एवं सर्वतः अक्षीणि शिरांसि मुखानि च यस्य तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमत् श्रवणवत् । लोके सर्वमावृत्य व्याप्य तिष्ठति। यथा स्वप्नदृक् तैजसो वासनामयेनैव पाणिपादादिना स्वाप्नं प्रपञ्चमनुभवति। तस्य च जाग्रत्काले उपाधिभूतं पिण्डगतमेव पाणिपादादिकं तदेव स्थूलप्रपञ्चानुभवसंस्काराधानद्वारा वासनामयस्य प्रपञ्चस्य कारणम् । वासनामयश्च स्थूलप्रपञ्चस्य कारणमिति बीजांकुरन्यायेनानयोरन्योन्यस्मिन्नन्योन्यसद्भावोऽन्योन्यकारणत्वं चास्तीति । एवं सकलप्राणिधीवासनोपरक्ताज्ञानोपाधिकं चैतन्यं सकलप्राणिधीवासनामयं समष्टिसूक्ष्मप्रपञ्चमवभासयति । अस्य चोपाधिभूतं ब्रह्माण्डगतसकलप्राणिपाणिपादादिकमेव । एवं च पूर्ववत् स्थूलसूक्ष्मयोरपि समष्टिप्रपञ्चयोरन्योन्यं बीजांकुरन्यायेन कार्यकारणभावमन्योन्यस्यान्योन्यस्मिन्सद्भावं चाभिप्रेत्योक्तं भगवता भाष्यकारेण 'सकलप्राणिकरणोपाधिद्वारेण क्षेत्रज्ञब्रह्मणोऽस्तित्वं प्रतिपाद्यते' इति । कार्यद्वारा कारणास्तित्वसिद्धौ च कारणाभावोऽप्यपोद्यते 'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते' इति। ननु 'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम' इति न्यायेन व्यर्थस्तर्हि कारणोपन्यास इति चेन्न। तं विना शुद्धाधिगमायोगात् शाखाचन्द्रन्यायेन हि सगुणं निर्गुणस्य वस्तुनो ज्ञापकम् । यथोक्तं भाष्ये–उपाधिकृतमिथ्यारूपमप्यस्तित्वाधिगमाय ज्ञेयधर्मवत् परिकल्प्योच्यते सर्वतःपाणिपादमित्यादि । तथा हि संप्रदायविदां वचनम् 'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते' इति ॥१३॥ ननु यूपाहवनीयादिवदलौकिकमपि ब्रह्म कार्यकारणप्रपञ्चविशिष्टं चित्रमेव सर्वतःपाणिपादं तदित्यादिना शास्त्रेण कार्यशेषतया समर्थ्यते । न च वाच्यं उपासनापरं शास्त्रं न ब्रह्मणो वैचित्र्यं प्रतिपादयितुमीष्टे इति। देवताधिकरणन्यायेन देवताविग्रहादिवत्तद्वैचित्र्यस्याप्यवान्तरतात्पर्यविषयतया सिद्धेः। न च देवताविग्रहादेर्व्यावहारिकमेव सत्त्वं न पारमार्थिकं ब्रह्मज्ञानेन तस्य बाधादिति वाच्यं, सत्ताद्वैविध्यस्याप्रसिद्धेः । तस्मात्सर्वतः पाणिपादत्वादिकं ब्रह्मणो वास्तवमेवेति नापवादमर्हतीत्याशंक्याह–**सर्वेन्द्रियेति** । सर्वाण्यान्तराणि बाह्यानि चेन्द्रियाणि मनोबुद्ध्यहंकारचित्ताख्यानि श्रोत्रादीनि चेति ग्राहकमात्रं संगृहीतम् । गुणाश्च विषयास्तेन ग्राह्यमात्रं गृह्यते समस्तग्राह्यग्राहकवदाभासते न तु ग्राह्यग्राहकस्वरूपं विचित्रं यथा जलसूर्योऽधःस्थ इव कम्पत इवाभासते न तु वस्तुतोऽधःस्थः कम्पते वा तद्वदात्मनो ग्राह्यग्राहकाकारत्वं मिथ्येत्यर्थः । कुत एतत् । यतः सर्वेन्द्रियविवर्जितं, इन्द्रियेति गुणानामप्युपलक्षणम् । नहि ब्रह्मणि किंचित् ग्राह्यं रूपादि ग्राहकं वा मनआदि वर्तते । 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् ।' 'अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः '। 'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्' इत्यादिशास्त्रात्, तस्मान्न प्रपञ्चविशिष्टं विचित्रं ब्रह्म । कथं तर्हि सर्वं ब्रह्मेति शास्त्रमित्याशंक्याह—**असक्तं सर्वभृच्चैवेति** । अत्र सर्वभृदिति सर्वाधारत्वोक्त्या सर्वस्मात्पृथग्भूतमित्युक्तम् । सर्वस्य ब्रह्मणा सहाधाराधेयभावोऽपि किं घटरूपयोरिव समवायसंबन्धेन, कुण्डबदरयोरिव संयोगसंबन्धेन वेत्याशंक्य संबन्धं विनैव सर्वभृत्त्वं ब्रह्मण इत्याह—**असक्तमिति** । ननु व्याहतमेतदसक्तमिति सर्वभृदिति चेति । नैष दोषः । न ह्यूषरभूमिर्मरीचिकोदकेन संसक्ता अथ च तदाधारभूताऽपि भवति तद्वदेतद्द्रष्टव्यमिति । नन्वेवं प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वमापततीति । तथा च कर्मोपास्तिविधय उपरुध्येरन् । न । ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानेन यावद्द्वैतं न बाध्यते तावत्क्रियाकारकादिसर्वव्यवहारस्य सत्यत्वोपगमात् 'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' इति श्रुत्याऽपि प्राणोपलक्षितस्य कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्य व्यावहारिकं सत्यत्वमुक्त्वा ततोऽप्यधिकं परमार्थसत्यं ब्रह्म दर्शितम्। सत्यत्वं चाबाध्यत्वं तत्किंचित्कालं प्राणानामस्ति ब्रह्मणस्तु सार्वत्रिकमिति यथा भूपतीनां भूपतिरित्युक्ते ऐश्वर्याल्पत्वभूयस्त्वकृतो भेदः स्पष्ट एवमिहापि द्रष्टव्यं तस्माद्ब्रह्मणः सविशेषत्वं निष्कलात्मबोधात् प्रागेव न तूर्ध्वमित्यवश्यं तत्त्वज्ञानेन बाधितुं शक्यमित्यनुपाधिकं ब्रह्म न केनचित्कार्यशेषतां नेतुं शक्यम्। तदधिगमे क्रियाकारकादिद्वैतोपमर्दादुपास्योपासकोपासनाभेदस्य बाधितत्वात् । तस्माद्युक्तमुक्तमुपाधिकृतं रूपं मिथ्येति । किंच निर्गुणं गुणभोक्तृ च । ग्राह्यग्राहकसंबंधशून्यमपि ग्राहकेषु बुद्ध्यादिषु ग्राह्यसंबंधात्सुखाद्याकारेण परिणतेषु सत्सु केवलं तत्प्रकाश-

**सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।**
**असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४**

**बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।**
**सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १५**
**अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।**
**भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६**
**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।**
**ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७**

कत्वमात्रेण गुणभोक्तृत्वमप्यस्य चिदाभासरूपस्योपपद्यते । यथा प्रतिबिम्बरूपे स्वावुपाधिगतं चलनादिकम् । तथा च श्रुतिः—'ध्यायतीव लेलायतीव' इति। बुद्धौ ध्यायन्त्यां तत्र प्रविष्टश्चिदाभासो ध्यायतीव विषयान् । बुद्धौ लेलायन्त्यां विषयप्रदेशं गच्छन्त्यां सोऽपि लेलायतीव नतु स्वतो ध्यायति लेलायति वेति प्रतिपादयति । एतेन 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' इत्यपि ब्रह्मण उपाधिगुणानुगुण्यभजनशक्तिमत्त्वेनैव व्याख्येयम् । अयमपादोऽपि पादे जववति जववान् भवतीति । अन्धो मणिमविन्ददित्यादिकं वचनजातं चात्रानुसन्धेयम् । तस्मायुक्तमुक्तं निर्गुणं गुणभोक्तृ चेति । **भाष्ये** तु ' निर्गुणं सत्त्वादिगुणरहितमपि तेषां गुणानां सुखदुःखमोहात्मकत्वेन परिणतानां भोक्तृ च उपलब्धृ च ' इति व्याख्यातम् ॥ १४ ॥ नन्वसक्तमसंबद्धं चेत्कथमुपलब्धं स्यादित्याशंक्याह—**बहिरिति** । भूतानां प्राणिनामेकादशेन्द्रियाणि स्थूलभूतानि च केवलविकारत्वेन व्यवहितत्वात् बहिरित्युच्यन्ते । महदहंकारपञ्चतन्मात्राव्यक्तानि प्रकृतिरूपत्वेन संनिहितत्वादन्तरित्युच्यन्ते चराचरमिति । उभयनिकृष्टाश्चराचरोपश्युपलक्षिता अवधिभूताः पुरुषाश्चरमचरं चेत्यनेनोच्यन्ते । तत्र चराचरं ज्ञेयमिति सामानाधिकरण्यात् पुरुषाणां ज्ञेयब्रह्मभाव उक्तः । बहिरन्तश्च ज्ञेयमिति षोडशसु विकारेष्वष्टासु प्रकृतिषु च ज्ञेयस्य संबन्ध उक्तः। स च संबन्धो**'यादृशो यक्षस्तादृशो बलिः'**इति न्यायेनाध्यस्तप्रकृतिविकृतिनिरूपितत्वेनाध्यस्त एव । एवं च पुरुषस्योपलब्धिमात्रशरीरस्य गुणैः सहाध्यासिकसंबन्धसत्त्वात् गुणोपलब्धृत्वं युज्यते। यथा प्रकाशमात्रस्वरूपस्य रवेः प्रकाश्यसंबन्धापेक्षं प्रकाशयितृत्वं तद्वदित्यर्थः । ननु नित्यापरोक्षः पुरुषप्रकृतिविकारसंबद्धश्च तर्हि कुतो न सर्वैर्गृह्यत इत्याशंक्याह सूक्ष्मत्वात् दुर्लक्षत्वात्तज्ज्ञेयं अविज्ञेयं दुर्विज्ञेयम् । यथा जपाकुसुमोपहितस्य स्फटिकस्य शौक्ल्यं सन्निहितमपि रूपान्तरविक्षेपेण तिरोहितं सन्न गृह्यते । एवं नित्यापरोक्षमप्यसंगं ब्रह्मोपाध्युपधानाद्विविक्ततया न ग्रहीतुं शक्यं किंत्वौपाधिकधर्मोपेतमेव गृह्यते मूढैः । विद्वद्भिस्तूपाधिप्रविलापनेन सुग्रहमित्याशयः । एतदेवाह—**दूरस्थं चान्तिके च तदिति**। यथा मूढो जलसूर्यं बिंबसूर्याद्दूरस्थं मन्यते । विद्वांस्तु उपाधिप्रतिहतनयनरश्मीनामुपर्युत्प्लुत्य गतानां बिंबग्राहित्वं स्पष्टम् । बिम्बस्याधस्थत्वग्रहणं तु पूर्वप्रवृत्ताधोमुखवृत्तिसंस्कारापेक्षमिति जानन् बिंबदेशे एव प्रतिबिंबं पश्यति । बिंबे एव जलस्थत्वमध्यस्यते न तु जले प्रतिबिंब इति उपाधौ धर्म्यध्यासकल्पनातो विषयस्योपाधिसंसर्गमात्राध्यासकल्पने लाघवात् । एवं बिंबभूतं ब्रह्म प्रतिबिंबभूताज्जीवान्मूढानां विप्रकृष्टं विदुषां त्वत्यन्तं संनिकृष्टमिति ॥ १५ ॥ एतदेवोपपादयत्यर्धेन—**अविभक्तं चेति** ।

' एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् '

इति श्रुतेर्भूतेषु कार्यकारणसंघातापन्नेषु जलपात्रेषु चन्द्रस्येव ब्रह्मणः प्रतिबिंबा जीवास्ते चोक्तरीत्या बिम्बादनन्या इति तद्रूपेण भूतेष्वविभक्तं च विभागमप्राप्तमपि ज्ञेयवस्तु मूढदृष्ट्या विभक्तमिव दूरदेशस्थमिव चाद्विभिन्नमिव च स्थितम् । एवं तर्हि चन्द्रादुदपात्राणामिव भूतानां पृथक्सत्त्वापत्तिरित्याशंक्याह—**भूतभर्तृ चेति** । अधिष्ठानत्वेन सर्वाणि भूतानि धारयतीति न ततस्तेषां पृथक्सत्ताऽस्ति रज्जुत इव तदध्यस्तानां सर्पदण्डधारादीनामित्यर्थः । एतदेवाह—**ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च** । यथा रज्जुस्तत्त्वज्ञानदशायां सर्पादीन् ग्रसति अज्ञानदशायां च तानेव प्रसूते तद्वत् ज्ञातं ब्रह्म सर्वभूतानि ग्रसिष्णु ग्रसनशीलमज्ञातं च । सर्वभूतानां प्रभविष्णु उत्पादनशीलम् ॥ १६ ॥ एवं ज्ञेयस्य तटस्थलक्षणमुक्त्वा स्वरूपलक्षणमाह—**ज्योतिषामिति** । ज्योतिषां बाह्यानामादित्यादीनामान्तराणां च बुद्ध्यादीनामितरावभासकानामपि तज्ज्ञेयं ब्रह्म ज्योतिरवभासकं चैतन्यज्योतिषो जडज्योतिरवभासकत्वोपपत्तेः। तथा च श्रुतयः—' येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः । ' ' तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इत्याद्याः । वक्ष्यति च ' यदादित्यगतं तेजः ' इत्यादि तमसोऽज्ञानात् भूतग्रामप्रसवहेतोः परं दूरस्थं तदुच्यते । ननु यथा चान्द्रस्य ज्योतिषोऽवभासकं तत्सजातीयं सौरं ज्योतिरिति ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धम् । एवं सौरादिज्योतिषामप्यवभासकं किंचित्तत्सजातीयं ज्योतिरलौकिकं स्यादित्याशंक्याह—**ज्ञानमिति** । केवलज्ञप्तिमात्रशरीरं यज्ज्योतिर्न तु भौतिकं तदेव ज्ञेयं वस्तु आवृतत्वात् ज्ञानेन प्राप्तुमिष्टतमम्। कुतस्तर्हि तज्ज्ञानमत आह—**ज्ञानगम्यमिति** । यतस्तज्ज्ञानेनामानित्वादिना ज्ञानसाधनेन गम्यं प्राप्यम् । किं तर्हि ग्रामान्तरवद्देशव्यवहितं वा बाल्ययौवनाद्यवस्थानतरवत् कालव्यवहितं वा तत्प्राप्य-

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २०
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१

मस्तीत्यत आह-हृदि सर्वस्य धिष्ठितमिति । स्वात्मभूतमेव तदन्तर्दृष्टीनां सम्यक् प्रकाशत इत्यर्थः ॥ १७ ॥ उक्तमर्थजातमुपसंहरति—इतीति । क्षेत्रं महाभूतादिधृत्यन्तम् । ज्ञानं ज्ञानसाधनममानित्वादि तत्त्वज्ञानार्थदर्शनान्तम् । ज्ञेयमनादिमत्परमित्यादि धिष्ठितमित्यन्तं श्रुतिभ्यः स्मृतिभ्यश्च समासतः संक्षेपत उक्तम् । मद्भक्त एतत्त्रयं विज्ञाय मद्भावाय ब्रह्मभावायोपपद्यते, युक्तो भवति । भक्त्यैव प्राप्यं ब्रह्म यत्प्राप्य ब्रह्मैव भवति तथा च श्रुतिः —

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ' इति ।

'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति च ॥ १८ ॥ एवं क्षेत्रं शरीराख्यमव्यक्तमुक्तं तत्प्रकाराश्च महदादयस्त्रयोविंशतिस्तद्विकारा इच्छादयो ज्ञानाज्ञानशब्दिता अमानित्वमानित्वादयः । पुरुषश्च उक्तः । इदानीं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्मध्ये यस्माद्यज्जायते तच्च क्षेत्रज्ञस्य प्रभावश्चेति द्वयं वक्तव्यं तत्राद्यं विवृणोति त्रिभिः—प्रकृतिमिति । संसमाध्यायेऽष्टधा या प्रकृतिरपरा उक्ता साऽत्र प्रकृतिः । या तु जीवभूता परा प्रकृतिरुक्ता साऽत्र पुरुषशब्देनोच्यते । एतौ हि संपृक्तौ संसारं जनयतः वियोगश्च तयोर्मोक्षः । तत्र तावुभावप्यनादी विद्धि । तयोरादिमत्त्वे संसारस्याकास्मिकत्वापातात् कृतहानाकृताभ्यागमप्रसंगश्चेत्यन्यत्र विस्तरः । विकारान् इच्छादीन् गुणान् बुद्धीन्द्रियादींश्च प्रकृतिसंभवान् विद्धि ॥ १९ ॥ उभयोरपि संसारं प्रति कारणत्वे द्वारमाह—कार्येति । कार्यं शरीरं तदारंभकाणि भूतानि विषयाश्च । कारणं त्रयोदशेन्द्रियाणि तदाश्रिताश्च सुखदुःखमोहात्मका गुणाश्च । करणेतिपाठेऽपि स एवार्थः । एतयोः कार्यकारणयोः कर्तृत्वे निमित्ते सति कर्तृत्वेनेत्यर्थः । हेतुः संसारस्य कारणं प्रकृतिर्भवति । तथा पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वेन संसारस्य हेतुरिति । यदि हि कार्यकारणसुखदुःखस्वरूपहेतुफलात्मना प्रकृतिर्न परिणमेत तदा पुरुषः किमुपलभेत अनुपलब्ध्वा वा कथं संसारी स्यात् । अनुपलब्धृका वा प्रकृतिः कुत्रोपयुज्येत । तस्मादुपलभ्योपलब्धृसंयोगः संसारकारणमिति यथाभाष्यं व्याख्यातम् । यद्वा । पुरुषस्य कार्यत्वे कारणत्वे कर्तृत्वे च प्रकृतिरेव पुरुषतादात्म्यं प्राप्ता हेतुर्भवति । वह्नितादात्म्यं प्राप्तं लोहं दहेश्चतुष्कोणत्वादाविव हेतुर्भवति । तथा प्रकृतेः सुखदुःखभोक्तृत्वे स्वच्छायाप्रदानेन पुरुषः कारणम् । वह्निरिव लोहस्य स्वच्छायाप्रदानेन दग्धृत्वे । तथा हि कार्यत्वादयः प्राकृतदेहेन्द्रियबुद्धिधर्माः सन्तश्चिदात्मन्यारोप्यन्ते गौरोऽहं मनुष्यपुत्रोऽहं काणोऽहं खञ्जोऽहं करोम्यहमकार्षमहमिति । तथा चिच्छायापन्ना बुद्धिश्चेतयाम्यहं सुखदुःखादीनुपलभे इति मन्यते । सोऽयं प्रकृतिपुरुषयोरन्योन्यधर्माध्यासः संसारस्य कारणमित्युपपादितं भवति । सांख्याभिमतं पुरुषस्य भोक्तृत्वमपि निरस्तं भवति । अन्यथा प्रकृतिः कर्त्री पुरुषो भोक्तेति कर्तृत्वभोक्तृत्वयोर्वैयधिकरण्यमापद्येत । न च भोक्तुः पुरुषस्य निर्विकारत्वमपि वक्तुं शक्यमित्यन्यत्र विस्तरः । ' द्वंद्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते ' इति त्वप्रत्ययस्य पूर्वाभ्यामपि सम्बन्धे कार्यत्वं कारणत्वं कर्तृत्वं चेति विग्रहः । द्वन्द्वैकवद्भावश्च ' प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ' इत्यादिवत् ॥ २० ॥ ननु यथा बौद्धं कर्तृत्वं पुंस्यारोप्यते एवं पौंस्नं भोक्तृत्वं बुद्धावस्त्वित्येतं भ्रमं वारयति-पुरुष इति । हि प्रसिद्धं प्रकृतिस्थः देहेन्द्रियमनःसंघातमध्यारूढस्तत्तादात्म्यं गत इत्यर्थः । प्रकृतिजान् सुखदुःखमोहात्मकान् गुणान् भुङ्क्ते उपलभते । यदा तु सुप्तिसमाधिमूर्च्छादौ प्रकृतिस्थत्वं नास्ति तदा न सुखादीनुपलभते । तेनोपाधिगतान्येव सुखादीनि तदभावे न प्रतीयन्त इति सिद्धम् । श्रुतिरपि 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ' इतीन्द्रियमनोयोगादेवात्मनि भोक्तृत्वं दर्शयन्ती शुद्धस्य केवलस्य भोक्तृत्वं नास्तीति दर्शयति । कुतस्तर्ह्यभोक्तुरप्यस्य प्राकृतो बन्ध इति तत्राह—कारणमिति । अस्य पुरुषस्य सदसद्योनिजन्मसु । तत्र सद्योनिजन्मानो देवाः । असद्योनिजन्मभाजस्तिर्यञ्चः स्थावराश्च । सदसद्योनिजन्मानो मनुष्याः । एतेषु त्रिष्वपि जन्मसु प्राप्येषु अस्य पुंसो गुणसङ्गः सुखादिष्वभिष्वङ्गः कारणं हेतुः । तथा हि । सात्त्विका देवा भवन्ति,राजसा मनुष्यास्तामसाश्च पशवस्तेषां तत्तद्योनिप्राप्तौ तद्गुणप्राधान्यमेव कारणम् । वक्ष्यति च—' ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः ' इत्यादि । यद्वा । प्रकृतिस्थो विद्वानविद्वान्वा गुणान्भुङ्क्ते पश्वादिभिश्चाविशेषादिति न्यायात् । तर्हि विद्वानिवाविद्वानपि कुतो न मुच्यते अविद्वानिव विद्वान्वा कुतो न बध्यते इत्याशंक्याह —कारणमिति । गुणेषु देहेन्द्रियविषयेषु सङ्गः अहमिदं

**उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।**
**परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥२२**
**य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।**
**सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते॥२३**

**ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।**
**अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४**
**अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।**
**तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५**

ममेदमित्यभिनिवेशः स एव जन्मकारणम् । विदुषां तु तदभावान्न जन्म । समानेऽपि देहसम्बन्धे यदा यक्षो देहाभिमानं धत्ते तदा स एव देहपीडया पीड्यते नतु देहपतिर्जीवः । यदा त्वयं देहाभिमानं धत्ते तदा नेतर इति प्रसिद्धम् । सङ्गस्य बन्धकत्वं नतु सांनिध्यमात्रं बन्धकम् । अतो विद्वदविदुषोः समानेऽपि देहसम्बन्धे सङ्गतदभावकृतो महान् विशेष इति भावः ॥ २१ ॥ स च यो यत्प्रभावश्चेति क्षेत्रज्ञतत्प्रभावौ व्याख्येयत्वेन प्रतिज्ञातौ तत्र क्षेत्रज्ञः प्रागेव वर्णितस्तस्येदानीं प्रभावमाह—**उपद्रष्टेति** । तत्र पूर्वं गुणसङ्गो जन्मकारणमित्युक्तम् । तत्र सङ्गश्चतुर्विधः पुरुषापलापेन गुणमात्रप्राधान्येन वा तमन्तर्भाव्य गुणप्राधान्येन वा, गुणानां समप्राधान्येन वा, अप्राधान्येन वेति । तत्राद्ये देहेन्द्रियमनआदिरूपं गुणसंघातमेव आत्मत्वेन पश्यन् भोक्ता भवति यथा **चार्वाकादिः** । द्वितीये गुणानां प्राधान्यादात्मनि वास्तवकर्तृत्वाद्यभिमानेन कर्मफलानां भर्ता सञ्चेता भवति। यथा **तार्किकादिः** । तृतीये गुणानां समप्राधान्येन गुणगतमपि भोक्तृत्वमसङ्गेऽप्यात्मनि वस्त्रे भल्लातकाङ्कवदनुमन्यते यथा **सांख्यः** ; चतुर्थे सर्वथाऽपि गुणधर्माणामात्मनि संक्रममपश्यन्नुदासीनबोधरूपत्वेन गुणप्रचारदर्शी उपद्रष्टा भवति यथाऽस्माकं साक्षी । एतेषु चतुर्ष्वपि गुणसङ्गिरूपद्रष्टोत्तमः । अनुमन्ता मध्यमः । भर्ता अधमः । भोक्ता अधमाधमः । स एव गुणान्वशीकृत्य यदा क्रीडति तदा महेश्वर इत्युच्यते । यः सर्गस्थित्यन्तकर्ता प्रभुर्जगदन्तर्यामी स एव गुणानपहाय स्थितः परमात्मेति चाप्युक्तो भवति । यद्यप्युपद्रष्टाऽपि गुणानपहाय तत्साक्षित्वेन स्थितो भवति तथापि तस्यैव संघातोपहितस्य संघातान्तरप्रचारदर्शित्वाभावादयं सकलसंघातप्रचारदर्शीति सर्वोत्कृष्टत्वात्परमोऽयमात्मा । तमेनं वक्ष्यति—

‘ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः’ इति ॥

एतावपि गुणसङ्गिनौ एवमेक एव देहेऽस्मिन्विद्यमानःपरो गुणातीतः स्वात्मनि गुणान्प्रविलाप्य स्थितोऽखण्डैकरस आत्मा गुणसङ्गेन षड्विधो भवति । अयमेवास्य प्रभावः । तत्र अनुमन्तृभर्तृभोक्तृभिस्त्रिभी रूपैरयं बध्यते । उपद्रष्टृमहेश्वरपरमात्मरूपैस्तु नित्यमुक्त एक एवेति ज्ञेयम् । अत्र भाष्यार्थोऽप्यनुसन्धेयो विस्तरभयात्तु न प्रदर्शितः ॥ २२ ॥ एवं यथोक्तलक्षणात्मज्ञाने फलमाह—**एवमिति** । गुणैः स्वविकारैः सर्वथा विहितेन निषिद्धेन वा कर्मणा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते पुनर्जन्म न लभते मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥२३॥ एवंविधात्मदर्शनेऽधिकारिभेदेनोपायविकल्पानाह—**ध्यानेनेति** । अत्र ये आत्मानं विविदिषन्ति ते निष्कामकर्मणा परमेश्वरमाराधयन्ति ते **कर्मयोगिनः** । तत एवोत्पन्नविविदिषा वेदान्तश्रवणे प्रवर्तन्ते । ततः प्रमाणगतासम्भावनानिवृत्तौ सत्यां तस्यैवार्थस्य मनने प्रवर्तन्ते प्रमेयगतासंभावनानिवृत्त्यर्थं ते **सांख्याः** । ततः प्रमाणप्रमेयगतासंभावनाया निवृत्त्यनन्तरमनात्मनि देहादावात्मबुद्धिरूपाया विपरीतभावनाया निवृत्त्यर्थं निदिध्यासनं विजातीयप्रत्ययतिरस्कारपूर्वकसजातीयप्रत्ययप्रवाहीकरणलक्षणं कर्तुं प्रवर्तन्ते ततस्तत्परिपाके आत्मनि बुद्धिवृत्तौ आत्मानं परमेश्वरं पश्यन्ति ते **ध्यायिनः** । तत्र ये कर्मसांख्ययोर्निष्णातास्ते ध्यानेनात्मनि देहे आत्मानं परमेश्वरं आत्मना बुद्ध्या पश्यन्ति । अन्ये त्वकृतकर्माणः सांख्येन योगेन विचारात्मकेन योगेन ध्यानद्वारा पश्यन्ति । अन्ये पुनः कर्मयोगेनैव पूर्वोक्तलक्षणेन सांख्या ध्यानद्वारा पश्यन्तीति साधनत्रयस्य समुच्चयो न तु विकल्पः ॥ २४ ॥ पक्षान्तरमाह—**अन्ये त्विति** । अन्ये ऊहापोहकौशलहीनाः । तुशब्देन पूर्वोक्तेभ्यो विलक्षणाः एवं पूर्वोक्तप्रकारमजानन्तोऽन्येभ्यः आचार्येभ्यः श्रुत्वा आत्मनो निर्विशेषब्रह्मचैतन्यरूपत्वं तदुपासनमार्गं चाधिगत्य उपासते यथोक्तप्रकारेण ध्यायन्ति तेऽपि च मृत्युं संसारं तरन्त्येव । अपिशब्दात्पूर्वश्लोकोक्तास्तरन्तीत्यत्र किमाश्चर्यमिति गम्यते । एवशब्दात्तेषां मुख्यक्रमाभावेऽपि तरणे संशयो नास्ति । यतस्ते **श्रुतिपरायणाः** श्रुतिः श्रवणं तदेव परं अयनं मोक्षसाधनं येषां ते तथा । ध्याने प्रवृत्त्यतिशयान्न तेषां चित्तशुद्ध्यर्थं कर्मापेक्षा। वेदोक्तत्वे दृढनिश्चयाच्चासंभावनानिवृत्त्यर्थं श्रवणमननापेक्षेति भावः । अयं च ब्रह्मसाक्षात्कारः संवादिभ्रमरूप इति केचित् । प्रमारूप इत्यन्ये । तथाहि । यथा कश्चिन्मणिप्रभां मणिबुद्ध्या पश्यन् भ्रान्त एव तथाऽपि तद्ग्रहणकाले मणिं लभतेऽतः स संवादिभ्रमः । एवं त्वंपदार्थे तत्पदार्थ-

**यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६**

**समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।**
**विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति २७**

**समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।**
**न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम्**

मणिप्रभामूतं तत्पदार्थबुद्ध्या भावयन् व्यवहारतो भ्रान्त एव तथाऽपि तत्साक्षात्कारकाले तदनन्यस्य तत्पदार्थस्य साक्षात्कारोऽपि संवादिभ्रमन्यायेन जायते इति । तथा च **वसिष्ठः—**

'असत्ये सत्यता साधो शाश्वती परिदृश्यते ।
शून्येन ध्यानयोगेन शाश्वतं प्राप्यते पदम्' इति ।

व्यवहारतो निर्विशेषस्वरूपत्वेनासत्ये आत्मनि तत्र निर्विशेषत्वभावनं शून्यो निर्विषयोऽयं ध्यानयोगो योषित्यग्निध्यानवत् तथाऽपि तेन शाश्वती सत्यता प्राप्यते दृश्यत इति वसिष्ठवाक्यार्थः । **कल्पद्रुमाचार्यास्तु—**'वेदान्तवाक्यजध्यानभावनाजाऽपरोक्षधीः । मूलप्रमाणदार्ढ्येन भ्रमत्वं प्रतिपद्यते' इति प्राहुः ॥ २५ ॥ पूर्वं कार्यकारणकर्तृत्वे इत्यत्र चिदचितोः पुंप्रकृत्योरन्योन्यधर्माध्यास उक्तस्तस्यैव गुणसंगरूपस्य कारणं गुणसंगोऽस्येति नानाजन्महेतुत्वं चोक्तं तद्विशदयति—**यावदिति** । सत्त्वं जीवरूपं, गुणसंगोऽत्र रूपाद्यासक्तिर्न किंतु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः संयोगोऽन्योन्यस्मिन्नन्योन्यात्मकताध्यासलक्षणो बोध्यः । शेषं स्पष्टम् ॥ २६ तन्नाशोपायमाह—**सममिति** । सममपरिणामिनं कूटस्थं नित्यं सर्वेषु भूतेषु देहाद्याकारेण परिणतेषु तिष्ठन्तम् । एतेन देह एव तदधिगमस्थानमित्युक्तम् । परमेश्वरमन्तर्यामिणं सर्गस्थित्यन्तकर्तारम । अत एवान्तर्मुखदृष्ट्या विनश्यत्सु तेषु भूतेषु रज्जूरगादिवत्कल्पितत्वाददर्शनं गच्छत्सु विभुत्वादात्मत्वान्नित्यदृग्रूपत्वाच्चाविनश्यन्तं सर्वास्वप्यवस्थास्वदर्शनमगच्छन्तं यः पश्यति स एव पश्यति । अन्येऽन्धा इत्यर्थः ॥ २७ ॥ दर्शनफलमाह—**सममिति** । स्वदेहे इव सर्वत्र देहमात्रे समवस्थितं सम्यगवस्थितमीश्वरं समं समतया पश्यन् हि यतः स सर्वाभेददर्शी आत्मना देहादिना आत्मानं ईश्वरं न हिनस्ति । नानायोनिसंकटेषु पातनेन न पीडयति । किंतु ततः परां गतिं मोक्षं याति । यद्वा । ऐकात्म्यदर्शित्वात्स्वात्मानमिवान्यमपि न हिनस्ति । सर्वत्र दयालुर्भवतीति भावः । ततश्च परां गतिं याति ॥ २८ ॥ ननु विषमस्वभावानि भूतानि कः समबुद्ध्या पश्यत्याग्निमिव शीतबुद्ध्येत्याशंक्याह—**प्रकृत्यैवेति** ।

**प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।**
**यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति २९**

**यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।**
**तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३०**

**अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ।**
**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ३१**

सर्वशः सर्वप्रकारेण कर्माणि वाङ्मनःकायैरारब्धानि प्रकृत्यैव क्रियमाणानीति यः पश्यति तथा आत्मानं चाकर्तारं यः पश्यति पूर्वोक्तरीत्या स एव सर्वत्र समं पश्यतीति पूर्वेणान्वयः ॥ २९ ॥ ननु कथं प्रकृतेरेव कर्तृत्वं न त्वात्मन इत्याशंक्याह—**यदेति** । भूतानां वियदादीनां जरायुजादीनां च पृथग्भावं नानाभावेनावस्थानं परिदृश्यमानामद यदा एकस्थं एकस्मिन्नात्मनि स्थितं रज्ज्वां सर्पादिवत् कनके वा कुण्डलादिवत् विलीनं शास्त्राचार्योपदेशमनु पश्यति । तत एवैकस्मात् विस्तारं च भूतपृथग्भावस्य व्युत्थानावस्थामनु स्वप्नादिवत् पश्यति । तदा ब्रह्म संपद्यते ब्रह्मैव भवति । अयं भावः—कर्तृत्वं हि क्रियावत्त्वं क्रिया च परिस्पन्दः स च परिच्छिन्नस्य पृथग्भूतस्य प्राकृतस्य बुद्ध्यादेरेव संभवति न तु व्यापकस्य सर्वभूतपृथग्भावग्रासिष्णोरात्मन इति ॥ ३० ॥ नन्वात्मनो विभुत्वेन रूपेण कर्तृत्वं मास्वीकारि देहाद्यवच्छिन्नेन तु रूपेण तद्वक्तव्यमन्यथाऽनुभवविरोधादित्याशंक्याह—**अनादित्वादिति** । अयं सर्वेषां प्राणिनां नित्यापरोक्षः परमो देहादिभ्योऽपरमेभ्य आत्मभ्योऽन्यः कोशपञ्चकातीत आत्मा परमात्मा । अव्ययः न व्येति परिच्छिद्यते देशतः कालतो वस्तुतश्चेत्यव्ययः । अव्ययत्वे हेतुः—**अनादित्वादिति** । यद्धि आदिमदाकाशादि तद्व्येति न त्वयं व्येति अनादित्वात् । नन्वनादिभावस्यानन्त्यनियमेनात्मनः कालतः परिच्छेदो माऽस्तु । तथा देशतः परिच्छिन्नस्य नाशावश्यंभावादनादित्वायोगाच्च देशतोऽपि परिच्छेदो ब्रह्मणो माऽस्तु । ननु परमाणुवद्भविष्यतीति चेन्न । दशदिगवच्छेद्यप्रदेशभेदवतो द्रव्यस्य निरवयवत्वरूपाणुत्वासिद्धेः । न हि परमाणोः पूर्वदिगवच्छिन्नो भागः पश्चिमया व्यवच्छेत्तुं शक्यते अनुभवविरोधात् । देशतः परिच्छेदाभावादेव सजातीयविजातीयवस्तुसद्भावकृतः परिच्छेदोऽपि मास्तु । तथापि विचित्रशक्तियुक्तस्याभिनवप्रपञ्चरचनापटीयसः परस्य सर्वेश्वरत्वसर्वज्ञत्वादिगुणयुक्तस्य स्वगतभेदोऽवश्यंभावी स्वशक्तिमायावच्छिन्नेन रूपेण जगत्कर्तृत्वं देहावच्छेदेनाग्निहोत्रादिकर्तृत्वं चावश्यं वक्तव्यमित्याशंक्याह—**निर्गुणत्वादिति** ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ३२
यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ पर्वणि तु सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

श्रीभगवानुवाच ।
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः १

यो हि गुणवानाकाशादिः स संयोगं विभागं वोपाधिं प्राप्य स्वगुणं शब्दमाविष्करोति नतु स्वस्मिन्नसन्तं स्पर्शं केनाचिदपि उपाधिना दर्शयितुमीष्टे । एवं आत्मा सर्वगुणहीनः सत्यप्यवच्छेदलाभे कर्तृत्वादिकं गुणमाविष्कर्तुं न समर्थ इति। फलितमाह—**शरीरस्थोऽपीति** । स्पष्टार्थमेतत् ॥३१॥ निर्गुणत्वान्न करोतीति सिद्धं, असंगत्वान्नोपलिप्यत इत्याह—**यथेति** । यथा आकाशो धूमादिना न लिप्यते सौक्ष्म्यादसंगस्वभावत्वात् । एवमात्मा पुण्यपापादिना नोपलिप्यत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ न करोति न लिप्यत इति द्वयमपि दृष्टान्तान्तरेण प्रतिपादयति—**यथेति** । यथा सूर्यः स्वसत्तामात्रेण विश्वं प्रकाशयति नतु व्यापाराविष्टतया कुविन्द इव पटम् । यथा चैष प्रकाशधर्मैर्दुर्गन्धादिभिर्न लिप्यते एवमयं क्षेत्री क्षेत्रज्ञः सूर्यवदेक एव सन्ननेकधाभूतं क्षेत्रं महाभूतानीत्यादिना चतुर्विंशतितत्त्वात्मकमिच्छाद्वेषादिविकारयुक्तमुक्तं तत्स्वसत्तामात्रेण प्रकाशयति । हे भारत, नतु व्यापाराविष्टतया तत्सम्पादयति । तद्धर्मैर्वा पुण्यपापादिभिर्न लिप्यते । सूर्यदृष्टान्तेनैकत्वमकर्तृत्वप्रयुक्तमलेपत्वं च दर्शितम् । तथा च श्रुतयः—

> ' यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वा-
> नपो भिन्ना बहुरूपोऽनुगच्छन् ।
> उपाधिना क्रियते भेदरूपो
> देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा ' ॥
> 'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
> र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
> एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
> न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ' इति ॥

॥ ३३ ॥ अध्यायार्थं कृत्स्नमुपसंहरति—**क्षेत्रेति** । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः पूर्वोक्तयोरेवमुक्तरीत्या अन्तरं भेदं जडत्वाजडत्वकर्तृत्वाकर्तृत्वविकारित्वाविकारित्वकृतं वैलक्षण्यं ज्ञानचक्षुः शास्त्राचार्योपदेशात्मप्रत्ययजनितेन ज्ञानचक्षुषा ये विदुस्ते परं मोक्षं यान्ति प्राप्नुवन्ति । किं सांख्यानामिवास्माकमपि गुणपुरुषान्तरज्ञानादेव कैवल्यमुच्यते इत्याशंक्याह—**भूतप्रकृतिमोक्षमिति** । भूतानां वियदादीनां प्रकृतिरुपादानं त्रिगुणात्मिका अविद्या तस्या विद्यया मोक्षं निरन्वयोच्छेदं च ये विदुस्त एव परं यान्ति नतु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरन्तरमात्रविद इत्यर्थः । यद्येका सत्या विम्बी च प्रकृतिस्तर्हि विभूनामलिप्तदृशां बहूनां पुरुषाणां मुक्तानामपि तद्दर्शनमपरिहार्यं तथा च तेषामपि बन्धप्रसक्तिः । यदि तु मिथ्या तर्हि यस्यैवात्मसाक्षात्कारो जातस्तद्दृष्ट्या सर्वथैव रज्जूरगवद्बाधिता कालत्रयेऽपि नास्ति । इतरेषां त्वनादिरनन्तास्त्येवेति वक्तुं शक्यम् । तस्मान्न प्रकृतिपुरुषान्तरज्ञानमात्रात्कैवल्यं किंतु प्रकृतिबाधेन पुरुषज्ञानात् सर्पबाधेन रज्जुदर्शनात् भयनिवृत्तिवद्बन्धनिवृत्तिरिति सिद्धम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे गीता० त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ पर्वणि तु ॥ ३७ ॥

### ३८

पूर्वाध्यायान्ते भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुस्ते परं यान्तीत्युक्तं तत्र का वा भूतप्रकृतिः किमाश्रयेण तस्या भूतजनकत्वं कथं वा बन्धकत्वं कथं च ततो मोक्षः किंच मुक्तानां लक्षणमित्येतदर्थजातं विवरीतुं चतुर्दशोऽध्याय आरभ्यते । तत्र रुच्युत्पादनार्थं परं ज्ञानं स्तुवन् श्रीभगवानुवाच—**परमिति** । परं सर्वोत्कृष्टं ब्रह्मविषयत्वात् ज्ञानं भूयः पुनः असकृदुक्तमपि प्रवक्ष्यामि । किं तत्स्वरूपं आह । ज्ञानानाममानित्वा-

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ ६
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८
सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९

दीनां यज्ञादीनां ज्ञानसाधनानां मध्ये यदुत्तमं मोक्षफलत्वादन्तरङ्गं तदेव तत् । अहं घटं जानामीत्यत्राहमर्थस्य घटाकारवृत्तेर्घटस्य च ज्ञानमस्तीति विषयभेदात् ज्ञानत्रयमस्ति । तत्राद्यद्वयं नान्तरीयकं, यच्च उत्तमं चरमं घटप्रकाशफलरूपं ज्ञानं तदेव परं श्रेष्ठमित्यर्थः । यथोक्तं वार्तिककारैः—

'परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता ।
संवित्सैवेह मेयोऽर्थो वेदान्तोक्तिप्रमाणतः ' इति ।

यत् ज्ञानं ज्ञात्वा वेदान्तवाक्यजन्यया धीवृत्त्या अपरोक्षीकृत्य परां सिद्धिं मोक्षमितः संसारात् संसारं विहाय गताः ॥ १ ॥ इदं ज्ञानं विषयविषयिरूपविकल्पविनिर्मुक्तमुपाश्रित्य मम ईश्वरस्य साधर्म्यं सर्वात्मत्वं सर्वनियन्तृत्वं सर्वभावाधिष्ठातृत्वमित्यादिधर्मसाम्यं साधर्म्यमागताः । तथा च श्रुतयः—'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः' 'स न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयान्' इति ज्ञानफलमीश्वरसाधर्म्यप्राप्तिमाहुः । किञ्च भुशुण्डिप्रभृतयो ज्ञानबलादेव सर्गेऽपि न जायन्ते, प्रलयकाले च तत्तद्भूतभावं गच्छन्तो न प्रलयाग्न्यादिभिर्व्यथन्ते व्यथां प्राप्नुवन्ति । इदं श्लोकद्वयं भाष्ये वक्ष्यमाणज्ञानस्तुत्यर्थत्वेनैव व्याख्यातम् । तज्ज्ञानमुपाश्रित्य ज्ञानसाधनमनुष्ठायेति पदार्थः । शेषं स्पष्टम् ॥२॥ अथेदानीं का वा भूतप्रकृतिः किमाश्रयेण तस्या भूतजनकत्वं तदाह—ममेति । मम शुद्धचिन्मात्रस्य योनिः प्रवेशस्थानं, महद्ब्रह्म महत्तत्त्वस्य प्रथमकार्यस्य ब्रह्म बृंहकं कारणमव्यक्ताव्याकृतापरपर्यायं त्रिगुणात्मकं मायाख्यं तस्मिन् गर्भं स्वप्रतिबिम्बरूपं दधामि अर्पयामि अहं चिदात्मा ततो मत्प्रतिबिम्बगर्भिता या माया ततः सर्वेषां भूतानां भवनधर्माणां महदादीनां हिरण्यगर्भादीनां च सम्भव उत्पत्तिर्भवति । हे भारत, एतेन चित्प्रतिबिम्बसापेक्षत्वोपपादनेन प्रकृतेः सांख्याभिमतं स्वातन्त्र्यं निरस्तम् ॥ ३ ॥ किञ्च सर्वेषु भूतेषु योनिषु उपादानभूतेषु पृथिव्यामोषधय इव या मूर्तयः शरीराणि सुरनरतिर्यक्स्थावरात्मकानि चतुर्विधानि संभवन्ति तासां मूर्तीनां ब्रह्ममहत्पूर्वोक्तं महतो ब्रह्म ब्रह्ममहत् । राजदन्तादित्वादुपसर्जनस्य परनिपातः । मायैव योनिरित्यर्थः । अहं तु तासां बीजप्रदः पिता तास्वपि स्वप्रतिबिम्बस्यार्पयिता । यथा पुरुषो भार्यायामनुशयिसंपृक्तं रेतो निषिञ्चति ततो भार्यातः पिण्डोत्पत्तिः रेतोंशतस्तत्र चैतन्योत्पत्तिरिति चैतन्यविशिष्टस्य पिण्डस्य पिताऽहं माता च मायेत्यर्थः ॥ ४ ॥ एवमीश्वराश्रयेण प्रकृतिर्भूतानि सृजतीत्युक्तम् । इदानीं सा कथंभूता निबध्नातीति तदुच्यते—सत्त्वमिति । प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था । ततः सकाशात्परस्पराङ्गाङ्गिभावेन वैषम्येणोद्रिच्यमानाः प्रकृतिसम्भवा इत्युच्यन्ते नतु प्रकृतितो वैशेषिकाणामिव द्रव्याद्गुणा अन्ये एते हे महाबाहो, देहे अव्ययमविकारिणमपि देहिनं स्थूणायां वत्समिव रशनाभूता गुणा निबध्नन्ति ॥ ५ ॥ तत्र कः केन सङ्गेन बध्नातीत्युच्यते—तत्रेति । तत्र तेषु गुणेषु सत्त्वं निर्मलत्वाद्दुःखमोहाख्यमलराहित्यात् प्रकाशकमालोकवत्सर्वार्थावद्योतकं, यतोऽनामयं रजस्तमोभ्यामनभिभूतं, तत्सुखसङ्गेन ज्ञानसङ्गेन च चरमविषया तिरोहितस्वरूपज्ञानानन्दमहं सुख्यहं ज्ञानीत्यभिमानेनान्तःकरणवृत्तिधर्मयोः सुखज्ञानयोरात्मन्यारोपेण बध्नाति । हे अनघ, अव्यसनिन् ॥६॥ रजोगुणो रागो रञ्जना तदात्मकं विद्धि । तृष्णा प्राप्यमाणेष्वप्यर्थेष्वतृप्तिः । संगः प्राप्ते विषये मनसः प्रीतिलक्षणः संश्लेषस्तयोः समुद्भवं निदानभूतं तद्रजो हे कौन्तेय, कर्मसंगेन दृष्टादृष्टार्थेषु कर्मसु संगस्तत्परता तेन निबध्नाति देहिनं देहाभिमानिनम् ॥ ७ ॥ तमोगुणः तु पूर्वाभ्यां विलक्षणः अज्ञानं मायाया आवरणशक्तिस्तत उद्भूतमज्ञानजं विद्धि । अतः सर्वेषां देहिनां मोहनं भ्रान्तिहेतुः । प्रमादोऽनवहितत्वं स च सत्त्वकार्यप्रकाशविरोधी । आलस्यं जडता, तच्च रजःकार्यप्रवृत्तिविरोधि । उभयकार्यनिरोधिनी तमोगुणालम्बना वृत्तिर्निद्रा ताभिस्तत्तमो नितरां बध्नाति हे भारत, देहिनमित्यनुवर्तते ॥ ८ ॥ सत्त्वमुत्कृष्टं सत् सुखदुःखकारणमभिभूय संजयति संश्ले-

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १०
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥ १४
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६

सत्त्वात् संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८
नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९
गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्म-मृत्यु-जरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २०

अर्जुन उवाच ।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते ॥ २१

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२

---

जनयति एवमुत्तरत्रापि । ज्ञानं प्रकाशमावृत्य प्रमादे अवश्यकर्तव्यस्याकरणे ॥ ९ ॥ सत्त्वादयः कदा स्वस्वकार्ये प्रभवन्तीत्याशंक्येतरेतरयोरभिभवे सतीत्याह—**रज इति** । रजस्तमसी अभिभूय सत्त्वं भवति वर्धते । एवं रजोऽपि सत्त्वतमसी अभिभूय भवति । तथा तमोऽपि सत्त्वरजसी अभिभूय भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥ तत्तद्गुणोद्भवालिंगान्याह त्रिभिः—**सर्वेति** । अस्मिन्देहे यदा सर्वेषु द्वारेषु बाह्याभ्यन्तरविषयोपलब्धिसाधनेषु बाह्याभ्यन्तरकरणेषु । प्रकाशः स्वस्वविषयावरणविरोधी परिणामविशेषो जायते । तेन च ज्ञानं शब्दादिविषयस्य याथात्म्येन प्रकाशो यदा जायते तदा सत्त्वं विवृद्धमिति विद्याज्जानीयात् । उत अपि सुखादिलिङ्गेनापि जानीयादित्यर्थः ॥ ११ ॥ **लोभः** प्राप्ताधिके गर्धः । **प्रवृत्तिः** अग्निहोत्रादौ । **आरम्भो** गृहादेः । **कर्मणामशमः** सतामसतां वा कार्याणामनुपरमः । **स्पृहा** दृष्टे परधनादावुपादित्सा । रजसि विवृद्धे सति एतानि लिंगानि जायन्ते हे भरतर्षभ ॥ १२ ॥ सत्यपि बोधके गुर्वादावप्रकाशः सत्त्वकार्यप्रकाशानुदयः । **अप्रवृत्तिः** सत्यपि प्रवृत्तिनिमित्ते रजःकार्यप्रवृत्त्यनुदयः । **प्रमादः** कार्याकार्यविवेकराहित्यम् । **मोहो** निद्रालस्यादिरूपः ॥ १३ ॥ प्रलयं मरणम् । उत्तमविदां हिरण्यगर्भाद्युपासकानां देवानां वा लोकान् । अमलान् निर्दुःखान् ॥ १४ ॥ **कर्मसङ्गिषु** श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठातृषु मनुष्येषु । **मूढयोनिषु** तिर्यक्स्थावरचाण्डालादिषु ॥ १५ ॥ **सुकृतस्य सात्त्विकस्य** कर्मणः फलं निर्मलं दुःखाज्ञानमलशून्यं सात्त्विकं ज्ञानवैराग्यादिकम् । रजसो राजसस्य कर्मणः फलं दुःखम् । तमसस्तामसस्य कर्मणः फलमज्ञानम् । सात्त्विकादिकर्मलक्षणं च 'नियतं संगरहितम्' इत्यादिनाऽष्टादशे वक्ष्यति ॥ १६ ॥ एतादृशफलवैचित्र्ये पूर्वोक्तमेव हेतुमाह—**सत्त्वादिति** ॥ १७ ॥ यतः सत्त्वादिभ्यो ज्ञानादीनि जायन्तेऽतः सत्त्वादिवृद्धिकाले प्रलयं गच्छन्तः क्रमेणोत्तममध्यमाधमासु योनिषु जायन्त इत्याह—**ऊर्ध्वमिति** । ऊर्ध्वं देवभावे । मध्ये मानुषभावे । अधो नरकादिषु स्थावरभावे । जघन्यं निंद्यं यद् गुणवृत्तं निद्रालस्यप्रमादादि तत्स्थास्तामसाः ॥ १८ ॥ कथं प्रकृतिः पुरुषं बध्नातीत्यस्योत्तरमुक्तम् । कथं वा ततोऽस्य मुक्तिरित्यस्योत्तरमाह—**नान्यमिति** । गुणेभ्यः कार्यकारणविषयाकारपरिणतेभ्योऽन्यं दृशिमात्रमात्मानं द्रष्टा जीवः कर्तारं नानुपश्यति विवेकमनु न पश्यति। किन्तु गुणा एव कर्तार इत्येव पश्यति न त्वहं कर्तेति । तथा गुणेभ्यः परं गुणव्यापारसाक्षिभूतं मां यदा वेत्ति तदा स वेदिता मद्भावं ब्रह्मभावं गच्छति अन्यदा तु गुणभावं गतो भवति ॥ १९ ॥ कथं त्वद्भावं गच्छतीति तत्राह—**गुणानिति**। एतान् गुणान् महदादित्रयोविंशतिविकारात्मना परिणतान् देहसमुद्भवान् स्थूलदेहस्य समुद्भवो येभ्यस्तानतीत्य जीवन्नेवातिक्रम्य निर्विकल्पकसमाध्यभ्यासेन बाधित्वाऽमृतं मोक्षमश्नुते प्राप्नोति । एतेनानन्दावाप्तिर्गुणात्ययप्रयोजनमुक्तम् । यतो मुक्तो जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तः साक्षिति तु अनर्थनिवृत्तिरुक्ता ॥२०॥ प्रकृतितो मुक्तिप्रकारे उक्तेऽथ मुक्तलक्षणानि पृच्छन्नर्जुन उवाच—**कैरिति** । कैर्लिङ्गैश्चिह्नैस्त्रीन् गुणानेतान् व्याख्याताननतीतो भवति पुमान् हे प्रभो, स च किमाचारः कोऽस्याचारः कथं केन च प्रकारेणैतांस्त्रीन्गुणानतिक्रम्य वर्तते ॥ २१ ॥ तत्राद्यस्योत्तरमाह—**प्रकाशमिति** । प्रकाशप्रवृत्तिमोहाः सत्त्वरजस्तमसां कार्याणि । व्युत्थानाव-

**उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।**
**गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३**
**समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।**
**तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ २४**
**मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।**
**सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५**
**मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।**
**स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६**
**ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ।**
**शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च २७**

स्थायां तानि सम्यक्प्रवृत्तानि । सामान्ये नपुंसकम् । तानि संप्रवृत्तान् न द्वेष्टि । नापि समाध्यवस्थायां तानि निवृत्तानि सन्ति काङ्क्षति । सोऽयं नित्यसमाधिस्थो ब्रह्मविद्वरिष्ठः यं प्रकृत्य **श्रीभागवते** स्मर्यते—'देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति' इति । अत्र **वासिष्ठे** सप्तयोगभूमय उक्ताः—

' ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा ।
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ' इति ॥

तत्र यथोक्ता साधनसंपत् मुमुक्षान्ता **प्रथमा** । श्रवणमननाख्यविचारात्मिका **द्वितीया** । निदिध्यासनरूपा **तृतीया** । एताः साधनभूमयः । सत्त्वापत्तिर्ब्रह्मसाक्षात्काररूपा **चतुर्थी** फलभूता । यस्यां योगी कृतार्थोऽपि जीवन्मुक्तिसुखं पुष्कलं नानुभवति । परास्तिस्रो जीवन्मुक्तत्वान्तरभेदाः । तत्रापि **पञ्चम्यां** भूमौ स्वयं स्थितः स्वयमेव व्युत्तिष्ठति । **षष्ठ्यां** परप्रयत्नेन सप्तम्यां तु न स्वतः परतो वा व्युत्तिष्ठति । सोऽयं नित्यसमाधिस्थः प्रकाशमित्यनेन श्लोकेनोक्तः ॥ २२ ॥ अथ **षष्ठ्यां** पदार्थाभावन्यां गतो ब्रह्मविद्वरीयानुच्यते—**उदासीनवदिति** । योऽयं समाधावुदासीन इवास्ते व्युत्थाने किमपि प्रयोजनमपश्यन् । इदं मम कर्तव्यमस्तीति वासनाशून्यत्वात् । य आस्ते एव नतु परप्रयत्नमन्तरेण कदाचिदपि गुणैर्विचाल्यते । परेण व्युत्थापितोऽपि गुणान् पश्यन् गुणा वर्तन्त इत्येव ज्ञात्वा योऽवतिष्ठति । स्तब्ध एव वर्तते नतु गुणकृतैरिष्टानिष्टस्पर्शैरिङ्गते चलति । अयमर्थः—यथा कश्चिद्भुञ्जानो रसनामौढ्यात् स्वयं शाकादिरसं न विन्दति । परेण ज्ञापितोऽपि कश्चिद्रसविशेषमुपलभ्यापि तत्रोदासीन एवास्ते । झटित्येव विशेषदर्शनस्य तिरोधानात् । न तत्कृतं सुखं दुःखं वा पश्यति तद्वदयं ज्ञेयः ॥ २३ ॥ अथ **पञ्चम्यां** भूमावसंसक्तिनामिकायां स्थितो ब्रह्मविद्वर उच्यते—**समेति** । समाधौ समे दुःखसुखे यस्य स समदुःखसुखः । स्वस्थः स्वेनैव स्वेच्छयैव तिष्ठतीति स्वस्थः । यदा तु न समाधाविच्छा तदा स्वयमेव व्युत्तिष्ठतीति भावः । सोऽपि व्युत्थानावस्थायां **समलोष्टाश्मकाञ्चनो** विरक्त इत्यर्थः । **तुल्यप्रियाप्रियः तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिश्च** प्रियाप्रिययोर्निन्दास्तुत्योश्च प्राप्तौ तुल्यो हर्षविषादशून्यः । अत्र हेतुः—**धीर इति** । यथा कश्चिच्छूरस्तीव्रप्रहारवेदनार्तोऽपि न व्यामुह्यति धैर्याद्वेदनां चानुभवति । तद्वदयं हर्षविषादावनुभवन्नपि धैर्यान्न चलति । पूर्वस्य तु जातायामपि वेदनायां हर्षाद्युदय एव नास्ति । तत्पूर्वस्य तु वेदनैव नास्तीति भेदः । एतेन श्लोकत्रयेण सर्वेषां जीवन्मुक्तानां समाधौ लिङ्गानि तत्संवेद्यान्याचाराश्च परसंवेद्यानि लिङ्गान्युक्तानि ॥ २४ ॥ अथ चतुर्थ्यां भूमौ सत्त्वापत्तिसंज्ञायां स्थितस्य योगिनः समाधिसुखाभावेन स्वसंवेद्यलिङ्गाभावात्तत्त्वनिश्चयेन द्वैतस्य बाधाल्लिंगमाचारश्च परसंवेद्य एव तदाह—**मानेति** । यथा हि परीक्षकः कूटकार्षापणस्य लाभे विनाशे वा हर्षविषादशून्यो न च तल्लाभार्थं यत्नमारभते । मूढस्तु ताभ्यां बाध्यते तल्लाभार्थं यत्नं चारभते । एवं विद्वान् द्वैतं मरुमरीचिकाह्रदसमानं पश्यन् तत्र मानापमानयोर्वा मित्रारिपक्षयोर्वा तुल्य एव न त्वन्यतरलाभाय परिहाराय वा यत्नमारभते अतो गुणातीत इत्युच्यते । सर्वत्र पदार्थः स्पष्टः ॥ २५ ॥ अथ कथं त्रीन् गुणानतिवर्तत इत्यस्योत्तरं विवक्षन् साधनभूतासु तिसृषु भूमिषु तृतीयां तनुमानसामाह—**मां चेति** । यत्र साधको मां प्रत्यगात्मानं, चकारस्त्वर्थे । पूर्वभूमिस्थापेक्षयाऽस्य वैलक्षण्यं द्योतयति । **अव्यभिचारेण** वृत्त्यन्तरानन्तरितेन **भक्तियोगेन** मयि भगवति तैलधारावदविच्छिन्नवृत्तिप्रवाहिमनःप्रणिधानरूपेण योगेन **सेवते** ध्यायति, स एवं सूक्ष्मीकृतचित्त एतान् गुणान् समतीत्य ध्यानपरिपाकान्ते सत्त्वमपि बाधित्वा ब्रह्मभूयाय ब्रह्मभावाय कल्पते योग्यो भवति। 'भुवो भावे' इति भवतेर्भावे क्यप् ॥ २६ ॥ विषयप्रदर्शनद्वारा विचारणाख्यां द्वितीयां भूमिमाह—**ब्रह्मणो हीति** । ब्रह्मणो वेदस्य प्रतिष्ठा तात्पर्येण पर्यवसानस्थानमहमेव । अमृतस्य कर्मब्रह्मोभयदर्शनद्वाराऽमृतसाधनस्य अव्ययस्य अनादित्वादनन्तत्वाच्चापौरुषेयत्वेनाप्रामाण्यशंकाकलंकशून्यस्य स्वतःप्रमाणभूतस्येत्यर्थः । एतेनोपक्रमोपसंहारादिपर्यालोचनया वेदाविरुद्धतर्कोपकरणया कृत्स्नस्य वेदस्य तात्पर्यं मद्दर्शन-

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ पर्वणि तु अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

श्रीभगवानुवाच ।

**ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।**
**छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् १**

**अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा**
**गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।**
**अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि**
**कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २**

कामेन निर्णेतव्यमिति विचारणाख्या द्वितीया भूमिरुक्ता । हेतुफलोपदर्शनमुखेन शुभेच्छाख्यां प्रथमां भूमिमाह— **शाश्वतस्येति**। काम्यधर्मवत्फलदानेन नाशाभावात् भगवत्यर्पितो नित्यो धर्मः शाश्वतः । विविदिषादिपारंपर्येण मोक्षाख्यशाश्वतफलहेतुत्वात् । शाश्वतस्य च धर्मस्य प्रतिष्ठा परमं प्राप्यं फलमहमेव । तथा ऐकान्तिकं विषयसंगजन्यसुखव्यभिचारि स्वरूपभूतं मोक्षसुखं तस्यापि प्रतिष्ठा पराकाष्ठा अहमेव । एवं निष्कामधर्मेण विशुद्धचित्तस्यैकान्तिकसुखेच्छा भवति सेयं शुभेच्छाख्या प्रथमा भूमिः। अत्र परां परां भूमिमारोढुमशक्तस्य पूर्वा पूर्वा भूमिरुपादिश्यते । यथा ध्यानेनात्मनि पश्यन्तीत्यत्र निदिध्यासनाशक्तस्य सांख्यनामा विचारस्तत्राप्यशक्तस्य कर्मयोग उपादिश्यते तद्वत् ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ पर्वणि तु ॥३८॥

३९

पूर्वाध्यायान्ते सुखस्यैकान्तिकस्य प्रतिष्ठा परा काष्ठाऽहमित्युक्तं तत्र किंलक्षणं तत्सुखं केन वा आवृतं केन वा साधनेनास्यावरणभङ्गः केन वाऽधिकारिणा तत्प्राप्यमित्यादि वर्णयितुं पञ्चदशोऽध्याय आरभ्यते-**ऊर्ध्वमूलमिति** । ' आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ' इति श्रुतिप्रसिद्धं मानुषानन्दमारभ्योत्तरोत्तरशतगुणवृद्धानन्दसोपानपङ्क्तेरुपरि स्थितं परमानन्दाद्वयं वस्तु ऊर्ध्वं तदेव मूलं मूलकारणमस्य संसाराश्वत्थस्य तमूर्ध्वमूलम् । अधःशाखं ऊर्ध्वादधोधःसोपानस्थानीयाः शाखा इव शाखाः अव्यक्तमहदहंकारपञ्चतन्मात्राषोडशविकारहिरण्यगर्भविराट्प्रजापतिसुरगन्धर्वासुरनरतिर्यक्स्थावररूपा यस्य सोऽधःशाखस्तम्। न श्वोऽपि स्थातुं योग्यमनृतत्वादश्वत्थं संसारवृक्षम् । तथाऽप्यव्ययं मूढानामनाद्यनन्तं प्राहुर्वेदाः । ' ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः' इत्यादयः। छन्दांसि वेदास्तदुपलक्षिता यज्ञादयस्त एव पर्णानि पर्णसंघातवत् शोभाहेतवो यस्य तरोस्तमश्वत्थं यो वेद मिथ्यात्वेन स एव वेदवित् विदितवेद्य इत्यर्थः।अत्राश्वत्थरूपकेण संसारो वर्ण्यते ॥ १ ॥ **अधश्च** मानुषेभ्यस्तिर्यक्स्थावरादयोऽर्वाचयन्ताः। **ऊर्ध्वं** च मानुषेभ्य एवोपरि च गन्धर्वयक्षादिर्हिरण्यगर्भपर्यन्तं प्रसृताः प्रसरं प्राप्तास्तस्य शाखाः । **गुणैः** सत्त्वादिभिः प्रकर्षेण वृद्धाः गुणप्रवृद्धाः । **विषया** एव रञ्जकतया कोमलपल्लवरूपाणि प्रवालानि यासां ताः । संसारवृक्षस्योपरि मूलं ब्रह्म उक्तम् अधश्च इह मनुष्यलोके च तस्य मूलानि वासनारूपाण्यवान्तरमूलान्यनुसन्ततानि प्रवाहनित्यानि । यतः कर्मानुबन्धीनि कर्मैव धर्माधर्माख्यमनुबन्धः पश्चाद्भावि येषां तानि कर्मानुबन्धीनि। वासनाभ्यः कर्माणि कर्मभ्यो वासना इत्यनवरतसन्तानोऽयं वृक्ष इत्यर्थः ॥ २ ॥ ननु श्वोऽपि स्थातुमनर्हश्चाव्ययश्चेत्युक्ते प्रतिक्षणविनाशिविज्ञानसन्तानरूपो वा ग्रीष्मादिवत्प्रवाहनित्यो वाऽयं संसारस्तर्हि दुरुच्छेद्यो वासनानां कर्मणां च बीजाङ्कुरवदन्योन्यजन्महेतुत्वस्यावर्जनीयत्वादित्याशङ्क्य सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयोऽयमित्येतं पक्षमाश्रित्य परिहरति— **न रूपमिति** । रज्जूरगस्येवास्य रूपं सम्यग्दृशा वीक्ष्यमाणं सन्नोपलभ्यते । इह जीवत्येव देहे । यथा पूर्वमज्ञानदशायां तथा नोपलभ्यते ज्ञानदशायाम् । तेनास्य मृषात्वमनुभवैकवेद्यमित्युक्तम् । एतेनानुपलभ्यरूपत्ववचनेन स्वप्रकाशानां विज्ञानानां रूपवतां बीजादीनां च सादृश्यस्य व्यावृत्तिः । तर्हि शशविषाणवत्तुच्छ एवायं स्यादित्यत आह—**नान्तो न चादिरिति**। उपादानस्य मूलाज्ञानस्याद्यन्तशून्यत्वादयमप्याद्यन्तशून्य इत्यर्थः । तर्ह्यात्मवदपरिहार्यः स्यादित्याशंक्याह—**न च संप्रतिष्ठा** । अस्य प्रतिष्ठाख्यं लयस्थानं वृक्षस्य भूमिरिव नास्ति । न चायं ब्रह्मणो विकारो येन तत्रैव लीयेत । न चेष्टापत्तिः । ब्रह्मणः कौटस्थ्यभंगापत्तेः । किं तर्हि तुच्छमज्ञानमस्योपादानं तस्मिंश्च ज्ञानेन विनष्टे समूलस्यास्योच्छेदो भवत्यज्ञानस्य

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५
न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६

च तुच्छत्वम् । 'तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्' इत्यादि श्रुत्या । तत्कार्यस्य रज्जूरगादेः प्रलये तदनुपलंभस्यानुभवेन च सिद्धम् । तस्मादस्य प्रतिष्ठा नोपलभ्यत इति युक्तमेवोक्तम्। तमेनमश्वत्थं वासनानां दार्ढ्यात् सुविरूढमूलं दृढतरमूलमप्यसङ्गशस्त्रेण सङ्गो देहादितादात्म्यबुद्धिस्तद्वर्जनमसङ्गः स एव शस्त्रं तेन दृढेन परिपक्केन छित्त्वा। ततः पदं तत्परिमार्गितव्यमित्युत्तरेणान्वयः । यद्यपि स्थूलसूक्ष्मयोः संसारयोरसङ्गः सुषुप्तौ स्वयमेव जायते तेन तन्मूलवासनाभिरप्यात्मनोऽसङ्गोऽनुमीयते तथापि वासनामूलस्याज्ञानस्य ज्ञानेनानुच्छेदात्तासङ्गधीर्दृढा भवति। तस्मान्निर्विकल्पसमाध्यभ्यासेन कारणशरीरस्याप्यसङ्गः साध्यः । तेन चासंगशस्त्रेणास्य च्छेदो मूलोच्छेदो लवणोदकवद्रज्जूरगवद्वा प्रविलापनरूपः कर्तव्यः । न तु सांख्यानामिव स्वरूपेण सतः परिवर्जनमात्रम् ॥ ३ ॥ तमिममश्वत्थं छित्त्वा किं कर्तव्यमत आह—तत इति । न केवलं निर्विकल्पसमाधिना तदसङ्गमात्रेण कृतार्थता किं तर्हि ततोऽसङ्गानन्तरं तत् श्रुतिप्रसिद्धं पदं पदनीयं ब्रह्म परिमार्गितव्यं श्रुतियुक्तिबलेनाहमेव ब्रह्मास्मीति ज्ञातव्यम् । यस्मिन्पदे निर्विकल्पे गताः प्राप्ताः सन्तो न निवर्तन्ति न पुनर्निवर्तन्ते । तमेव प्रत्यगानन्दमाद्यं पुरुषं पुरि शरीरे शयानमहमपि प्रपद्ये शरणागतोऽस्मीति भावयेत् । भगवत एव वा इदं वचनं लोकशिक्षार्थं वर्त एव च कर्मणीतिवत् । कोऽसौ पुरुषः यतः पुराणी आद्या प्रवृत्तिः । 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्येवंरूपा प्रसृता अस्मास्वपि प्रवृत्ता । यतो वयमपि इदानीं कामयामहे धनादिना वयं भूयांसः स्याम प्रजया प्रजायेमहीति चेति । येनेयं प्रवृत्तिर्दर्शिता तत्प्रणामेनैव सा निवर्तिष्यत इत्यर्थः ॥ ४ ॥ एवमैकान्तिकस्य सुखस्याच्छादकं संसाराश्वत्थं तच्छेदकमसङ्गास्त्रं चोक्त्वा तस्य सुखस्य प्राप्तावधिकारिणं तस्य स्वरूपं चाह द्वाभ्याम्—निर्मानेति । मानो दर्पः । मोहो विपर्ययस्ताभ्यां रहिताः निर्मानमोहाः । जितः सङ्गः कर्ताहमित्यभिमानो दोषो रागादिश्च यैस्ते जितसङ्गदोषाः । अध्यात्मं आत्मनि नित्याः निष्ठावन्तः आत्मध्यानपरा इति यावत् । विनिवृत्तकामाः त्यक्तसर्वपरिग्रहाः । द्वन्द्वैः सुखदुःखेत्युपलक्षणं शीतोष्णादीनामपि तैर्विमुक्ताः तितिक्षावन्त इत्यर्थः । अमूढाः विद्ययाऽविद्यानाशं कृतवन्तः । तत्पदं अव्ययं अपुनरावृत्तिं गच्छन्ति ॥ ५ ॥ ननु यदि तदूर्ध्वं पदं गच्छन्ति तर्हि ततः पातोऽप्यवश्यंभावी 'पतनान्ताः समुच्छ्रयाः' इति न्यायात् । ततश्च यस्मिन् गता न निवर्तन्तीत्यनुपपन्नमित्याशङ्क्य तस्य पदस्य स्वरूपमाह—न तदिति । तत्पदं सूर्यो न भासयति रूपादिहीनत्वेन चक्षुरयोग्यत्वात् । एतेन सर्वेषां बाह्येन्द्रियाणां निवृत्तिः । यद्धि रूपवच्चक्षुर्योग्यं तत्सूर्येण चक्षुरनुग्राहकेण भास्यं इदं तु न तथेत्यर्थः । न शशाङ्कश्चन्द्रोऽपि भासयति यन्मनोग्राह्यं वस्तु तच्चन्द्रेण मनोनुग्राहकेण भास्यं इदं तु न तथा । 'यन्मनसा न मनुते' इति श्रुत्याऽस्य मनोग्राह्यत्वनिषेधात् । नापि पावको भासयति । यद्धि वाचा ग्राह्यं तत्तदनुग्राहकेण पावकेन भास्यं इदं तु न तथा । 'यद्वाचाऽनभ्युदितम्' इति श्रुत्याऽस्य वाग्गोचरत्वनिषेधात् । 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' इत्यादिश्रुत्यन्तरं च । यतश्चक्षुर्मनोवाचामगम्यं तेन स्थूलसूक्ष्मकारणप्रपञ्चातीतं प्रत्यगद्वयम् । 'नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं अस्थूलमनणु' इत्यादिश्रुतिभिः सर्वविशेषरहितं यत्प्रतिपादितं तत् मम परमं धाम वृत्तिरूपज्ञानादपरमादन्यज्ज्योतिश्चिन्मात्रं ममेति सम्बन्धो राहोः शिर इतिवदुपचारात् । मदाभिन्नं ज्योतिः स्वयंप्रकाशमित्यर्थः । अत एव यद्गत्वा प्राप्य ज्ञात्वेत्यर्थः । न निवर्तन्ते निवृत्तिकारणस्य मूलाज्ञानस्याभावात् । एवं व्याख्याने हि 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति' इति श्रुत्यर्थानुगमो दृश्यते । अदृश्ये इति दृग्योग्यत्वेन सूर्यभास्यत्वं पर्युदस्यते । अनात्म्ये आत्मनो मनसो योग्यं आत्म्यं तदन्यत्र अनात्म्ये इति मनसोऽप्ययोग्यत्वेन चन्द्रमोभास्यत्वं निरस्यते । अनिलयने निलीयतेऽस्मिन्सर्वं स्थूलं सूक्ष्ममिति निलयनं कारणं तद्भिन्ने अत एवानिरुक्ते निर्वचनायोग्ये वाचामगोचर इत्यर्थः । तेन पावकाप्रकाश्ये इति सिद्धम् । ये तु सूर्याप्रकाश्यमर्चिरादिमार्गगम्यं सत्यलोकादप्युपरितनमप्राकृतं

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९
उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १०
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् १२

वैष्णवं पदं नित्यं देशान्तरेऽस्ति तद्गत्वा पुनर्न निवर्तन्त इति व्याचक्षते । तेषां ' न रूपमस्येह तथोपलभ्यते ' इति दृश्यस्य तुच्छत्वादेव तादृशस्यापि तुच्छत्वमपरिहार्यं दृश्यत्वाविशेषात् । तस्माद्यथोक्त एव श्लोकार्थः ॥६॥ ननु यदि सूर्याद्यभास्यज्योतीरूपस्त्वं क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धीति स्वस्यैव क्षेत्रज्ञत्वं ब्रूषे तर्हि क्षेत्रज्ञस्य सतस्तव घटादिप्रकाशे किमिति सूर्याद्यपेक्षा दृश्यते । न हि स्वयं ज्योतीरूपः स्वविषयावभासने ज्योतिरन्तरमपेक्षते दीपादिष्वदर्शनादित्याशङ्क्याह त्रिभिः—**ममैवेति** । यद्यस्मादीश्वरो जगत्स्रष्टा शरीरं अवाप्नोति ' स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः ।' ' तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ' इत्यादिश्रुतिभ्यः ईश्वर एव शरीरधारी तथा यद्यस्माद्धेतोः। अपिशब्दोऽवधारणार्थो चः समुच्चयार्थे । 'कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत् ' इति श्रुतेः । प्राणधारणनोपाधिना ईश्वर एव च उत्क्रामति। ततो हेतुद्वयाज्जीवलोके संसारे यो जीवभूतः प्राणी स सनातनः। सर्वदैकरूपोऽहमेवेति वक्तव्ये ' यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवैतस्मादात्मनः सर्व एत आत्मानो व्युच्चरन्ति ' इति वह्निविस्फुलिङ्गन्यायेन ' स ममैवांशः ' इत्यंशांशिभावोक्तिः । यद्यपि वह्नौ भेदः परिमाणं च स्वगतं न दृश्यते तथापि तूपाधिगतमेव तदुभयं तत्राप्युपचर्यते अयमग्निरस्मादग्नेर्भिन्नः । अयमस्य स्फुलिङ्गः अयमस्मादल्पः इति एवम् ' अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम् ।' इति श्रुतेश्चतुर्विधपरिमाणशून्ये ब्रह्मणि ममैवांश इत्यंशांशिभावेन भेदोऽल्पत्वमहत्त्वे चोपचारादौपाधिके ध्येये। तथा च श्रुतिः--' बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः ' इति । ' समः प्लुषिणा समो मशकेन समो नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः ' इति च । तथा च विस्फुलिङ्गा वह्निरेव नतु वन्ह्यंशः । एवं जीवोऽपि ब्रह्मैव नतु ब्रह्मांशः । ' ब्रह्म दाशा ब्रह्म दासा ब्रह्मेमे कितवा उत ' इति दाशादिष्वपि पिण्डेषु गोत्वस्येव कार्त्स्न्येन एकैकस्मिन् ब्रह्मभावपरिसमाप्तिदर्शनात् निरंशेऽशांशिकल्पनाया अयोग्यत्वाच्च । स एवं जीवभूत ईश्वरो ममैवांश इवांशो रूपभेदो मनः षष्ठं येषु तानि मनसा सह षडिन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि इन्द्रियाणां प्रकृतिः स्वभावो विषयप्रावण्यं तत्र स्थितानि । कर्षति सुप्तिप्रलयसमाधिकालेषु सङ्कोचयति ॥ ७ ॥ तथैतान्येव आशयात् स्वलयस्थानात् गृहीत्वा संयाति विषयदेशं प्रति गच्छति प्रबोधसर्गव्युत्थानकालेषु । तत्र दृष्टान्तः—वायुर्गन्धानिवाशयात् । गन्धाश्रयात् पुष्पात् ॥८॥ कानि तानि मनःषष्ठानि । तानि गृहीत्वा गत्वा चायं किं करोतीत्यत आह—**श्रोत्रमिति** । अधिष्ठाय व्यापारवन्ति कृत्वा विषयान् शब्दादीनुपसेवते प्रकाशयति । यथा दीपः स्वस्य वृत्तिलाभाय तैलवर्त्याद्यपेक्षमाणोऽपि स्वविषयावभासने स्वयमेव प्रभुः । एवं जीवोऽपि घटाकारत्वलाभाय मनःषष्ठानीन्द्रियाणि सूर्यादींश्चापेक्षते तथाऽपि घटावभासं स्वयमेव करोति नेतराणि इन्द्रियसूर्यादीनि स्वभास्यत्वात् तैलवर्त्यादिवदित्याशयः ॥ ९ ॥ तमेवंभूतं मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्राणं चाधिष्ठाय तेषामुत्क्रमणेनोत्क्रमन्तं तेषां स्थित्या स्थितं तेषां भोगेन भुञ्जानं तेषां सत्त्वरजस्तमोगुणयुक्तत्वेन गुणान्वितं घटसूर्यमिव घटाकाशमिव वा घटगमनादिना गमनादिमन्तं स्वतस्तूत्क्रमणादिशून्यमपि विमूढास्तात्त्विकरूपं नानुपश्यन्ति । ज्ञानचक्षुषस्तु पश्यन्ति उपाधेरेवोत्क्रमणादिकं न तूपहितस्यात्मन इति जानन्त्येवेत्यर्थः ॥१०॥ यतन्तो यत्नशीला योगिनश्च। एनं आत्मनि बुद्धावस्थितं विभुमुत्क्रान्त्यादिहीनमसङ्गं पश्यन्ति । यतन्तोऽपि अकृतात्मानः ये यज्ञादिभिरशोधितचित्ताः एनं न पश्यन्ति। यतः अचेतसः अनिर्जितचित्ताः। पाषाणतुल्या इत्यर्थः॥ ११॥ कथं तर्हि सूर्यादीनामपि भासकत्वं लोके दृश्यते तदपि मदावेशादेवेत्याह—**यदादित्येति** । अत्राप्यादित्यादिपदैः करणाधिष्ठात्र्यो देवतास्तदधिष्ठेयानि करणानि च तन्त्रेणैव गृह्यन्ते। यदादित्यादिषु बाह्यकारणाधिष्ठातृषु तत्तदधिष्ठेयेषु बाह्यकारणेषु च गतं विद्यमानं तेजो विषयप्रकाशनसामर्थ्यं सर्वं जगद्भासयते तत्तेजो मामकं मदीयं विद्धि । ' येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः ' ' येन चक्षूंषि पश्यन्ति ' इत्यादिश्रुतिभ्यः । एवं मनश्चन्द्रमसोर्यदान्तरप्रपञ्चप्रकाशनसामर्थ्यं तदपि मामकमेव । तथा यद्वागग्न्योरव्याकृतादिवि-

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४
सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २०

षयप्रकाशनसामर्थ्यं तदपि मामकमेवेत्यर्थः । अक्षरयोजना स्पष्टा ॥ १२ ॥ न केवलमादित्यादिगतं प्रकाशनसामर्थ्यं मामकमपि तु पृथिव्यादिगतं भूतधारणव्यापनसामर्थ्यमपि मदीयमेवेत्याह—**गामिति** । गां पृथिवीमाविश्य तां पृथिवीं दृढां कृत्वा भूतान्यहमेव धारयामि ओजसा बलेन । अन्यथा पृथिवी सिकतामुष्टिवद्विशीर्येत । तथा च मन्त्रवर्णः—'येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा' इति । 'स दाधार पृथिवीम्' इति च । तथाऽहमेव सोमो रसात्मको जलात्मकः । 'रसो जलं रसो हर्षः' **इत्यनेकार्थमञ्जरी** । जलमयो भूत्वा सर्वा ओषधीः पुष्णामि च रसवतीः पुष्टाश्च करोमि । सोमो हि स्वात्मरसानुप्रवेशेन सर्वा ओषधीः पुष्णातीति प्रसिद्धम् ॥ १३ ॥ अहं वैश्वानरसंज्ञ उदरस्थोऽग्निर्भूत्वा प्राणिनां सर्वेषां देहमाश्रितः सन् प्राणापानाभ्यां वायुभ्यां समायुक्तः समुद्दीपितश्चतुर्विधमन्नमदनीयं **भक्ष्यं** दन्तव्यापारापेक्षमपूपादि । **भोज्यं** तदनपेक्षं पायसादि । **लेह्यं** गुडशर्करादि । **चोष्यं** निश्चोष्य त्यज्यमानमिक्षुदण्डादि । एतेन सर्वत्र सर्वा शक्तिर्या दृश्यते सा मदीयैवेति भावः । तदेवं भोक्ता वैश्वानरोऽग्निर्भोज्यमन्नं सोमस्तदेवमुभयमग्नीषोमौ सर्वमिति पश्यतोऽन्नदोषलेपो न भवतीत्यपि द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥ किंच सर्वस्य प्राणिजातस्याहं हृदि संनिविष्ट आत्मेत्यर्थः । अतो मत्त आत्मनस्तेषां स्मृतिर्ज्ञानं च पुण्यवताम् । पापिनां तु तयोरपोहनं विस्मरणमज्ञानं च भवति । तथा च सर्वैर्वेदैः कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डात्मकैरहमेव परमात्मा वेद्यो वेदान्तकृत् वेदान्तोक्तविद्यासंप्रदायकृत् वेदवित् वेदार्थविच्चाहमेव । एतेन वेदान्तविद्वेदविच्च सार्वभूतैरित्युक्तं भवति ॥ १५ ॥ सर्वशास्त्रहृदयं संक्षिपति—**द्वाविमाविति** । लोके प्रसिद्धौ इमौ द्वावेव पुरुषौ । क्षरो विनाशी स च सर्वाणि भूतानि प्राणन्ति कर्मक्षये सुप्तिप्रलयकैवल्यादावुपाधिनाशमनु विनाशिशीलो जीवो ब्रह्मप्रतिबिम्बभूतो जलार्कोपमः । 'प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति' इति श्रुतेः । कूटस्थो निर्विकारो मायोपाधिरक्षरः । तदुपाधेरकर्मजत्वेन नाशासंभवात् । उपाधिदोषेणावशीकृतत्वाच्चासौ न क्षरति स्वरूपान्न च्यवत इत्यक्षरः ॥ १६ ॥ एताभ्यां कार्यकारणोपाधिभ्यामन्यो निरुपाधिरुत्तमः पुरुषः योऽसौ परमात्मेत्युदाहृतः शास्त्रे । योऽसौ मायया ईश्वरो भूत्वा लोकत्रयमुत्तममध्यमाधमशरीररूपमाविश्य प्रविश्य धारयति शरीरत्रयम् । अथापि अव्ययः सर्वज्ञत्वेन ईश्वरधर्मेण अल्पज्ञत्वेन जीवधर्मेण वा न व्येति वर्धते क्षीयते वेत्यर्थः ॥ १७ ॥ **यस्मादिति** । क्षरमुपाधिमक्षरं चोपाधिमतीतोऽतिक्रम्य स्थितोऽहमतोऽक्षरादपि चेति चशब्दात् क्षरादपि उत्तमः उत्कृष्टतमः । जडात्क्षररूपादुपाधेरुत्कृष्टस्तदुपहितो जीवश्चेतनत्वात् । ततोऽप्युत्कृष्टतरो मायोपाधिः स्वतन्त्रत्वात् । ततोऽप्युत्कृष्टतमोऽनुपाधिरनागन्तुकरूपत्वात् । अक्षरार्थः स्पष्टः ॥ १८ ॥ एतद्विज्ञानफलमपि भक्तिरेवेत्याह—**यो मामिति** । असंमूढः मम पुरुषोत्तमत्वे संशयविपर्यासादिहीनः स एव सर्ववित् । यतो मां पुरुषोत्तमं जानाति तत्फलं च मां सर्वभावेन सर्वात्मना सर्वैः प्रकारैर्भजति ॥ १९ ॥ अस्मिन्नध्याये भगवत्तत्त्वज्ञानस्य मोक्षफलत्वमुक्त्वाऽथेदानीं तत्स्तौति—**इतीति** । इति एतद् गुह्यतममत्यन्तरहस्यं शास्त्रम् । यद्यपि इयमष्टादशाध्यायी कृत्स्ना शास्त्रं तथाऽप्यस्मिन्नध्याये कृत्स्नस्य शास्त्रार्थस्य प्रदर्शनादयमपि शास्त्रम् । अत्र हि कार्यकारणविभागः संसारवृक्षस्यानित्यत्वं भगवतो विभूतयो 'यस्तं वेद स वेदवित्' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इत्यादिना सर्वः शास्त्रार्थो दर्शितोऽस्ति । इदं मयोक्तं हे अनघ निर्व्यसन, एतत् रहस्यं बुद्ध्वा बुद्धिमान् ज्ञानी स्यात् आत्मविद्भवेत् तावता कृतकृत्यः । सर्वं हि कृत्यं परमात्मावगतिपर्यन्तं तत्रैव कृत्स्नपुरुषार्थसमाप्तेः । चात्प्राप्तप्रापणीयश्च स्यात् भवति नातःपरं कर्तव्यमवशिष्यते इत्यर्थः ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
पर्वणि तु ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

श्रीभगवानुवाच ।
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४
दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ७

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे गीता० पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पर्वणि ॥ ३९ ॥

४०

नवमेऽध्याये राक्षसी, आसुरी, दैवी चेति तिस्रः संपद उक्तास्तासु राक्षसीमासुर्यामेवान्तर्भाव्य द्वे एव संपदावत्र व्युत्पाद्येते । 'द्वया ह प्राजापत्या, देवाश्चासुराश्च' इति श्रुतौ अभयसत्त्वशुद्ध्यादिधीवृत्तयो देवाः दम्भदर्पादिधीवृत्तयोऽसुरा इति द्वैराश्यस्यैव दर्शनात् । पूर्वाध्यायान्ते 'इदमुक्तं मयाऽनघ' इत्यर्जुनं संबोधयताऽनघत्वं दैवसम्पत्तिमत्त्वं तद्विपर्ययस्त्वासुरी सम्पदिति दर्शयितुं श्रीभगवानुवाच-**अभयमिति**। **अभयं** स्वोच्छेदवुद्ध्यभावः। **सत्त्वसंशुद्धि**श्चित्तनैर्मल्यम् । **ज्ञानं** श्रवणादिजन्यम् । **योगो** ज्ञातेऽर्थे चित्तप्रणिधानं,तयोर्व्यवस्थितिर्निष्ठा। एषा मुख्या दैवी सम्पत् । **दानं** यथाशक्ति संविभागोऽन्नादीनाम् । **दमो** बाह्येन्द्रियनियमः। **यज्ञः** श्रौतस्मार्तादिः। **स्वाध्यायो** वेदाध्ययनम् । **तपो** वक्ष्यमाणलक्षणं शारीरादि त्रिविधम् । **आर्जव**मृजुत्वं सर्वदा ॥ १ ॥ किंच **अहिंसा** प्राणिपीडावर्जनम्। **सत्यं** अप्रियानृतवर्जनं यथाभूतार्थभाषणम् । **अक्रोधः** परैराकुष्टस्याभिहतस्य वा प्राप्तस्य क्रोधस्योपशमनम् । **त्यागः** सर्वकर्मसंन्यासः । पूर्वं दानस्योक्तत्वात् । **शान्ति**रन्तःकरणस्योपरमः । पैशुनं परदोषप्रकाशनं **अपैशुनं** तद्वर्जनम् । **दया** दुःखितेषु भूतेषु कृपा । **अलोलुप्त्व**मिन्द्रियाणां विषयसंनिधावप्यविक्रिया । **मार्दवं** मृदुता । **ह्री**र्लज्जा । **अचापलं** असति प्रयोजने वाक्पाणिपादादीनामव्यापारयितृत्वम् ॥ २ ॥ किंच **तेजः** प्रागल्भ्यं न तूग्रता । **क्षमा** आकुष्टस्य ताडितस्य वान्तर्विक्रियानुत्पत्तिः । उत्पन्नाया विक्रियायाः प्रशमनमक्रोधः इत्युक्तम् । **धृति**र्देहेन्द्रियेष्ववसादं प्राप्तेषु तस्य प्रतिषेधकोऽन्तःकरणवृत्तिविशेषो येनोत्तम्भितानि देहादीनि नावसीदन्ति । **शौचं** द्विविधं मृज्जलाभ्यां बाह्यमान्तरं मनोबुद्ध्योर्नैर्मल्यम् । **माया** रागादिकालुष्याभावः । **अद्रोहः** परजिघांसाया अभावः । **नातिमानिता** अत्यन्तं मानराहित्यम् । एतानि अभयादीनि दैवीं सत्त्वप्रधानां सम्पदमभिलक्ष्य जातस्य स्वभावतो भवन्ति हे भारत ॥ ३ ॥ अथेदानीं रजस्तमोमयीं आसुरीं सम्पदुच्यते—**दंभ इति**। **दंभो** धर्मध्वजित्वम् । **दर्पः** धनाभिजननिमित्त उत्सेकः । **अभिमान** आत्मनि पूज्यताबुद्धिः । **क्रोधः** प्रसिद्धः। **पारुष्यं** निष्ठुरभाषणम् । **अज्ञान**मविवेकजनितो मिथ्याप्रत्ययः। एतेन आसुरीं संपदमभिलक्ष्य जातस्य भवन्ति हे पार्थ ॥ ४ ॥ अनयोः संपदोः कार्यमाह—**दैवीति** । दैवी पूर्वोक्ता । अर्जुनस्य शङ्का किमहमासुर्यां संपदि जातोऽस्मीति तामपनुदति—**मा शुच इति** ॥ ५ ॥ द्वौ द्विसंख्यौ भूतसर्गौ भूतानां स्वभावौ मे मद्वचनाच्छृणु ॥ ६ ॥ **प्रवृत्तिं** विधिवाक्यं **निवृत्तिं** निषेधवाक्यं न विदुः । धर्माधर्मयोरिष्टानिष्टहेतुत्वज्ञानरहिता इत्यर्थः ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भ-मान-मदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १०
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ १२
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी १४
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः १५
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धन-मान-मदान्विताः
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥२०
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्२१

असत्यं सत्यवर्जितं जगत्प्राणिजातम् । तथाऽप्रतिष्ठं धर्माधर्माख्या प्रतिष्ठा आश्रयस्तच्छून्यम् । अनीश्वरमनियन्तृकं आहुः । **अपरस्परसंभूतं** 'अपरस्पराः क्रियासातत्ये' इति सुट् । बीजांकुरवत् परस्परकारणीभूतानां धर्माधर्मतद्वासनानां यत्सातत्यं तस्मात्सम्भूतं, किमन्यल्लोकेऽस्ति न किञ्चिदपि धर्माद्यपेक्षया उत्पद्यते किंतु सर्वं **कामहैतुकं** स्त्रीपुंसयोर्मिथुनीभावः **काम**स्तदुत्थमेव । स्वभावादेव जंतुर्जायते न त्वदृष्टादित्यर्थः ॥ ८ ॥ एतामनुपदोक्तां लौकायतिकानामभिप्रेतां दृष्टिमवष्टभ्य तामाश्रित्य **नष्टात्मानः** कामादिवशेन नष्टधैर्याः । यतोऽल्पे क्षुद्रे दृष्टसुखे एव बुद्धिर्येषां **तेऽल्पबुद्धयः** । **अहिताः** हिंस्राः ॥ ९ ॥ असद्ग्राहान् वश्याकर्षणनिध्यञ्जनकायसिद्ध्यादिसाधनेषु असत्सु असमीचीनेषु ग्राहा निर्बन्धाः अत्यन्ताभिनिवेशास्तान् गृहीत्वा अशुचीनि मद्यमांसादिसापेक्षाणि व्रतानि नियमविशेषा येषां ते तथाभूताः सन्तः कुमार्गप्रवर्तनेन प्रवर्तन्ते जगतः क्षयायेति सम्बन्धः ॥ १० ॥ चिन्तां योगक्षेमविषयां प्रलयान्तां मरणावधिं, एतावत् देह **एवात्मा, कामभोग एव पुरुषार्थः इतोऽन्यन्नास्ति इति** निश्चिताः निश्चयवन्तः । तथा च **बार्हस्पत्यं सूत्रम्**—'चैतन्यविशिष्टः कामः पुरुषः' 'काम एवैकः पुरुषार्थः' इति च ॥ ११ ॥ अन्यायेन परवञ्चनादिना अर्थसञ्चयान् धनराशीन् ईहन्ते लिप्सन्ते ॥ १२ ॥ आशापाशान् विवृणोति—**इदमद्येति** ॥१३॥ क्रोधपरायणत्वं कामपरायणत्वं च पूर्वोत्तराभ्यामर्धाभ्यामाह—**असाविति** । **ईश्वरः** समर्थः सर्वेषां निग्रहे । **सिद्धः** लब्धाखिलभोगसाधनः । **बलवान्** विषयोपभोगे समर्थः । अत एव सुखी ॥ १४ ॥

**आढ्यो** धनी । **अभिजनवान्** कुलीनः । अज्ञानेन अविवेकेन मोहिताः विविधं भ्रमं प्रापिताः ॥ १५ ॥ अनेकं नास्ति एकं चिन्तनीयं यस्य तत् अनेकं बहुषु विषयेषु पूर्वोक्तेषु लग्नं चित्तं येषां ते अनेकचित्तास्ते च ते विभ्रान्ताश्च किमिदमादौ साधनीयमिदमादौ साधनीयमिति विशेषेण भ्रान्त्याकुला अनेकचित्तविभ्रान्ताः। **मोहः** असत्स्वपि सद्बुद्धिस्तदेव जालं तेन सम्यगावृताः। **प्रसक्ताः** प्रकर्षेण लग्नाः । अशुचौ विण्मूत्रादिमये ॥१६॥ आत्मनैवात्मानं महान्तं मन्यन्ते ते **आत्मसंभाविताः** । **स्तब्धाः** अप्रणताः । धनान्निमित्तो मानो गर्वो, मद उन्मत्तता । ताभ्यामान्विताः धनमानमदान्विताः । नामयज्ञैर्नाममात्रैर्यज्ञैः दंभेन धर्मध्वजितया अविधिपूर्वकं यथोक्तधनज्ञानस्वयमृत्विक्पत्न्यादिशुद्धिरहितं यजन्ते ॥ १७ ॥ **अहंकारोऽहमेव** सर्वश्रेष्ठ इति बुद्धिः । **बलं** शारीरं धनाभिजननिमित्तं च । **दर्पं** परावज्ञाम् । **कामं** क्रोधं च संश्रिताः । मां सर्वदेहेषु प्रविष्टं, आत्मदेहे स्वदेहशोषणेन 'कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्' इति वक्ष्यमाणदिशा परदेहे च हिंसादिना प्रद्विषन्तः । अभ्यसूयकाः सर्वत्र गुणेषु वेदोक्तेषु शमादिषु अशक्तत्वादिलक्षणं दोषमारोपयन्तः ॥ १८ ॥ तेषां फलमाह—**तानिति** । सर्वभूतसमोऽप्यहं तान् वेदोक्तशासनातिगान् भूतद्रोहकर्तॄन् । अहमन्तरात्मा न तु तटस्थो येन मम वैषम्यं स्यात् । पूर्वसंस्कारात्ते तथैव पापं कुर्वन्ति तदनुरूपं फलं च प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ आसुरयोनिप्राप्तेरपि फलमाह—**आसुरीमिति** । अधमां नारकीं, तिर्यक्स्थावरादिरूपां वा ॥२०॥ संक्षेपमासुर्याः संपत्तेराह—**त्रिविधमिति** ॥ २१॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् २२
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥२३
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ पर्वणि तु चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

अर्जुन उवाच।
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १

श्रीभगवानुवाच।
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु २

कामादित्रयत्यागे किं स्यादत आह—**एतैरिति**। तमोद्वारैः तमसो नरकस्य दुःखमोहात्मकस्य द्वारभूतैर्विमुक्तः सन्। आत्मनः श्रेयः कल्याणं भगवदाराधनादिकं आचरति। ततः परां गतिं मोक्षं याति। तस्मात्कामादित्रयं त्यजेदिति ॥ २२ ॥ न केवलं काष्ठतपस्विवत् कामादित्यागमात्रेणोच्छास्त्रवर्ती सिद्ध्यतीत्याह—**य इति**। शास्त्रविधिं शास्त्रेण इष्टसाधनतयाऽनिष्टसाधनतया च ज्ञापितम्। 'ब्राह्मणो यजेत' 'न सुरां पिबेत्' इत्यादिना विहितं निषिद्धं च उत्सृज्य विहितमकरणेन निषिद्धमाचरणेन च उत्सृज्य यो वर्तते कामकारत इच्छया सः सिद्धिं चित्तशुद्धिं सुखं वैराग्यादिजनितां तृप्तिं परां गतिं मोक्षं च नावाप्नोति ॥ २३ ॥ यस्माच्छास्त्रातिगः शुद्ध्यादिकं त्रयं नाप्नोति, तस्मात्ते तव शुद्ध्यादिकामस्य शास्त्रमेव प्रमाणं किं कार्यं किं न कार्यमित्यस्यां व्यवस्थायाम्। एवं ज्ञात्वा शास्त्रं इदं कर्तव्यमिदं न कर्तव्यमिति शासनं वेदाज्ञारूपम्, विधानं च तदुल्लङ्घने प्रतिसमाधानम्। अग्निहोत्राद्यकरणेऽयं दोषस्तत्परिहारार्थमिदं कृच्छ्रादिकं प्रायश्चित्तम्। ब्रह्महत्यादिकरणेऽयं दोषस्तत्परिहारार्थमिदमश्वमेधादि अन्यद्वा प्रायश्चित्तम्। शास्त्रं च विधानं च ताभ्यामुक्तं कर्म इह मनुष्यलोके कर्तुमर्हसि। लोकान्तरे कर्मस्वनधिकारं दर्शयितुमिहेत्युक्तम्। तदेवं शास्त्रानुवर्तिन एव चित्तशुद्ध्यादिकं नान्यस्येति सिद्धम् ॥२४॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ पर्वणि तु ॥४०॥

४१

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' इति प्रश्नबीजमुपलभ्यार्जुन उवाच—**य इति**। ये पुरुषाः शास्त्रविधिं, शास्त्रपदेनात्र श्रुतिसदाचारकुलाचारा गृह्यन्ते। सर्वेषां तेषां धर्मे प्रमाणत्वात्। तत्र योऽधिगतो विधिर्विधेयं तदुत्सृज्य सर्वात्मना परित्यज्य यजन्ते पूजयन्ति तातकूपादीन् मत्पित्रा कृतोऽयं कूपो गङ्गाशतादप्यधिकोऽत्रैव स्नानपानावगाहनपरिचर्याप्रदक्षिणप्रक्रमणरूपादेतत्सेवनादहमिष्टं फलमवश्यं प्राप्स्यामीति तत्र दृढतरया श्रद्धयाऽन्विताः सन्तस्तेषां निष्ठा इयं का कीदृशी किं सत्त्वं सात्त्विकी वा पित्र्ये कूपे श्रद्धाधिक्यदर्शनात्। किं रजः राजसी वा तेषां निष्ठा शास्त्रातिक्रमेण कामकाररूपत्वात्। आहो इति प्रश्ने। किं तमः तामसी वा सा निष्ठा रङ्गे रजतधीरिवाशास्त्रीयाया अल्पे महत्त्वबुद्धेर्विपर्यासरूपाया दर्शनात्। यदपि तु भाष्ये वृद्धव्यवहारदर्शनादेव श्रद्दधानतया देवादीन्यजन्त इत्युक्तं, तत्राप्यविगीत एव वृद्धव्यवहारो ग्राह्यः। अविगीतेऽस्मिंस्तामसत्वादिशङ्काया अयोगात् ॥ १ ॥ एवं सामान्यतः पृष्टे सामान्यमेवोत्तरं श्रीभगवानुवाच—**त्रिविधेति**। स्वभावः प्राग्भवीयौ धर्माधर्मौ ततो जाता स्वभावजा यदि प्राग्भवे सात्त्विको देवतापूजादिधर्मोऽनेनानुष्ठितस्तर्हि तस्य शुद्धसात्त्विक्येव श्रद्धा भवति। यदि राजसो यक्षादिपूजारूपस्तर्हि राजस्येव। यदि तामसो भूतप्रेतादिपूजारूपस्तर्हि तामसी श्रद्धा भवति। एवं त्रिविधा श्रद्धा देहिनां देहाभिमानवतां भवति। तां मया व्याख्यास्यमानां शृणु ॥ २ ॥

**सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।**
**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३**
**यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।**
**प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४**
**अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।**
**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५**
**कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।**
**मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६**
**आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।**
**यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७**
**आयुः-सत्त्व-बलारोग्य-सुख-प्रीतिविवर्धनाः ।**
**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या**
**आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८**
**कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्ष-विदाहिनः ।**
**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९**
**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।**
**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १०**
**अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।**
**यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ११**
**अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।**
**इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२**

ननु 'श्रद्धान्वितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत' इति श्रद्धाया आत्मदर्शनसाधनेष्वन्तरङ्गत्वमुच्यते कथं तस्या राजसत्वं तामसत्वं चोच्यत इत्यत आह—**सत्त्वेति** । प्राक्कर्मसंस्काररूपेणं यादृशं बुद्धिसत्त्वं सात्त्विकं राजसं वा तदनुरूपैव सात्त्विकयादिरूपा देवतादिपूजासु फलावश्यंभावनिश्चयात्मिका श्रद्धाऽपि भवति । तथाऽयं पुरुषोऽपि श्रद्धामयः श्रद्धाप्रधानो यो यच्छ्रद्धो यो यया श्रद्धयोपेतः स एव स इति सात्त्विक्या श्रद्धया उपेतः सात्त्विक एव, राजस्या राजसस्तामस्यां तामस इति। एवं सति यदि तातकूपभक्तः पूर्वपुण्यवशात्तातं देववन्मन्यते । तर्हि तं सात्त्विकं **पुण्डरीकमिव** देवा अनुगृह्णन्ति नित्यकर्मत्यागनिमित्तमपि दोषमस्यापनुदन्ति । यदि त्वेनं मन्त्रादिना सिद्धं पूर्ववासनावशाद्यक्षादिरूपं मन्यते तदा तं राजसं राजसा यक्षा एवानुगृह्णन्ति । नास्य कामकारवतो नित्यकर्मत्यागजं दोषमपनेतुमर्हन्ति । नहि देवतापराधी यक्षैस्त्रातुं शक्यते । यदि त्वयं प्रेतः पिता मत्कुटुंबं माबाधिष्टेति सर्वं धर्मं त्यक्त्वा पुनरस्य प्रियं कूपं पूजयामीति मन्यते तदा तं पितरि प्रेतत्वबुद्धियोगाद्विपर्यस्तं तामसं प्रेता एवानुगृह्णन्ति क्षुद्रभोगैर्देवाश्च नरके पातयन्ति ॥ ३॥ कुत एतदेवं कल्प्यते यस्मात्सात्त्विकादयो देवादीनेव यजन्ते इत्याह—**यजन्त इति** । यजन्ते पूजयन्ति ॥ ४ ॥ सात्त्विकानां दौर्लभ्यमभिप्रेत्याह **अशास्त्रेति। शास्त्रं** वेदादि । तद्विरोधिना कौलिकाद्यागमेन विहितं घोरं स्वमांसहोमेन ब्राह्मणलोहितादिना वा देवतासंतर्पणाद्यात्मकं ये जनास्तपस्तप्यन्ते तानासुरनिश्चयान्विद्धीति द्वयोः संबंधः । **दंभो** धर्मध्वजित्वं, **अहंकारः** स्वस्मिन् पूज्यताबुद्धिस्ताभ्यां संयुक्ताः । **कामरागो** विषयाभिलाषः, **बलं** साहसेनापि विषयसाधने उत्साहस्ताभ्यामन्विताः ॥ ५ ॥ **कर्शयन्तः** कृशं कुर्वन्तः भूतग्रामं करणसमूहं, अचेतसो मूढाः, मां चान्तःशरीरस्थं भोक्तृरूपेण शरीरान्तःस्थं मां परमेश्वरं वा भोग्यस्य शरीरस्य कृशीकरणेन मदाज्ञालङ्घनेन वा कृशीकुर्वन्तः। तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥ अत्र सात्त्विकानां श्रद्धाराध्याहारयज्ञतपोदानानां परिग्रहार्थं राजसतामसानां वर्जनार्थं च तेषां प्रत्येकं त्रैविध्यं विधीयते । तत्रापि श्रद्धात्रैविध्यमाराध्यत्रैविध्यं च प्रागेवोक्तम् । आहारादीनां त्रैविध्यं प्रतिज्ञापूर्वकमाह—**आहारस्त्विति** । आह्रियत इत्याहारोऽन्नं, अतःपरं प्रायेण पदार्थः स्पष्टः । तथापि क्वचित्क्वचित्किंचिद्व्याख्यायते ॥७॥ **आयुर्जीवनम्** । **सत्त्वमुत्साहः** । **बलं** शक्तिः। **आरोग्यं** रोगराहित्यम्। **सुखं** चित्तप्रसादः। **प्रीतिः** अभिरुचिः । एतेषां विवर्धनाः वृद्धिकराः ते आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। **रस्याः** रसोपेताः । स्निग्धाः स्नेहवन्तः । **स्थिराः** देहे रसांशेन चिरकालस्थायिनः । **हृद्याः** दृष्टमात्रा एव हृदयप्रियाः । **आहाराः** घृतक्षीरसितादयः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥ **कट्विति** । अतिशब्दः सर्वत्र संबध्यते अतिकटु **निंबादि। अत्यम्लातिलवणा**त्युष्णाः प्रसिद्धाः । अतितीक्ष्णो **मरीचादिः** । अतिरूक्षः स्नेहशून्यः **कंगुकोद्रवादिः** । अतिविदाही **राजिकादिः**। **दुःखं** तात्कालिकी पीडा। **शोकः** पश्चाद्भावि दौर्मनस्यम्। **आमयो** धातुवैषम्यापादनेन रोगस्तत्प्रदाः ॥ ९ ॥ **यातयामं** प्रहरात्प्राक् कृतं शीतलतां गतमित्यर्थः । यातयामं अर्धपक्वं निर्वीर्यस्य गतरसेनैवोक्तत्वात् इति **भाष्यम्** । **गतरसं** रसविमुक्तम् । **पूति** दुर्गंधि । **पर्युषितं** पक्वं सद्रात्र्यन्तरितम् । उच्छिष्टं भुक्तावशिष्टम् । **अमेध्यं** यज्ञानर्हम् । **भोजनमन्नं तामसप्रियम्** ॥ १० ॥ यज्ञत्रैविध्यमाह—**अफलेति** । विधिदृष्टः आवश्यकतया विहितः । यष्टव्यमेव नतु यज्ञाद्दृष्टमदृष्टं वा फलं प्राप्तव्यमिति **मनः समाधाय समाहितं कृत्वा यो यज्ञ इज्यते स सात्त्विकः** ॥११॥ राजसं यज्ञमाह—**अभिसंधायेति** ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३
देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७
सत्कार-मान-पूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २०
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२
ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ-दान-तपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञ-तपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥

विधिहीनं शास्त्रोक्तविधिहीनं असृष्टं न दत्तमन्नं यस्मिन् तं असृष्टान्नम् ॥ १३ ॥ **देवाः** विष्ण्वाद्याः । **द्विजाः** ब्राह्मणाः । **गुरवो** मातृपित्राचार्यादयः । **प्राज्ञाः** ब्रह्मनिष्ठाः तेषां पूजनम् । **आर्जवम**कौटिल्यम् ॥ १४ ॥ प्रियं च तत् हितं च प्रियहितं श्रवणकाले परिणामे च सुखदमित्यर्थः ॥ १५ ॥ **मनःप्रसादः** राग-द्वेषादिराहित्यम् । **सौम्यत्वं** परहितैषित्वम् । **मौनं** वाक्संयमः । **आत्मविनिग्रहो** मनोनिरोधः । भाव-शुद्धिः परैर्व्यवहारकाले मायाराहित्यम् । इति एवंप्रकारं अन्यद्दयादिकं एतन्मानसं तप उच्यते ॥ १६ ॥ त्रिविधं कायिकवाचिकमानसभेदेन । युक्तैः अवहितैः ॥ १७ ॥ **सत्कारः** लोके साधुरयमिति वाक्पूजा । **मानः** अभ्युत्थानाभिवादनादिकायिकी पूजा । पूजा लाभादि । एतदर्थं दम्भेन च यत्तपः क्रियते तद्राजसं चलं विनाशि अध्रुवं अनिश्चितफलम् ॥ १८ ॥ **मूढग्राहेण** अविवेककृतेन दुराग्रहेण **आत्मनः** शरीरस्य उत्सादनार्थं विनाशार्थम् ॥१९॥ दातव्यमेवेति बुद्ध्या यद्दानं प्रदेयद्रव्यं दीयते नतु फलमुद्दिश्य दीयते कस्मै अनुपकारिणे प्रत्युपकारासमर्थाय । **देशे** कुरुक्षेत्रादौ । **काले** संक्रान्त्यादौ यद्दीयते तत्सात्त्विकमिति सम्बन्धः । यच्च पात्रे दानं समर्पणं तदपि सात्त्विकमिति योजना । अत्र आद्यो दानशब्दः कर्मणि व्युत्पन्नः प्रदेयद्रव्यवाची कर्मभूतः तत्संयोगात्सम्प्रदाने चतुर्थ्यपेक्षा । द्वितीयस्तु भावव्युत्पन्नस्त्यागमात्रवाची न तेन तत्र पात्रभूते पुंसि न चतुर्थ्यपेक्षा । 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इति हि पारिभाषिक्याः सम्प्रदानसंज्ञाया अत्र कर्मविभक्त्यभावेनाप्रवृत्तेः तेन पात्रे इति चतुर्थ्यर्थे सप्तमीति वा पात्रशब्दस्य चतुर्थीयमिति वा कल्पनं व्यर्थमेव । दानशब्दस्यावृत्त्या च देशकालानुपकारित्वविशिष्टं दानमित्येका कोटिः । पात्रे दानमित्यपरा । उभयसमुच्चये तु महान् गुण इति भावः ॥ २० ॥ **परिक्लिष्टं** कथमेतावद्द्रव्यव्ययः कर्तव्य इत्याकुलतायुक्तं यथा स्यात्तथा दीयते इति क्रियाविशेषणम् ॥२१॥ **असत्कृतं** प्रियभाषणपादप्रक्षालनादिपूजासत्कारस्तद्रहितम् । **अवज्ञातं** पात्रपरिभवयुक्तम् । **दानं** प्रदेयं हिरण्यादि ॥ २२ ॥ अदृष्टार्थानां यज्ञदानतपःप्रभृतीनां वैकल्यशङ्कायां साद्गुण्यसिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तमुपदिश्यते— **ॐतत्सदिति** । ओमिति तदिति सदिति च त्रिविधस्त्रिप्रकारोऽयं ब्रह्मणो निर्देशो नाम्नां पाठः । यथा सहस्रनाम्नां पाठे सहस्रं नामानि एवमस्मिन्नपि नामपाठे त्रीण्येव नामानीत्यर्थः । 'ओमिति ब्रह्म' इति **तैत्तिरीयके** । 'तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति' इत्यै**तरेयके** । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इति **छान्दोग्ये** च एतेषां शब्दानां ब्रह्मनामत्वप्रसिद्धेः । तेन नामत्रयेण ब्राह्मणादयो विहिताः पुरा सर्गादौ ब्राह्मणाः एतन्नामत्रयोच्चारणसामर्थ्येनैव विधात्रा विप्रादयो विहिताः । प्रकाशिता इत्यर्थः ॥२३॥ यस्मादेतन्नामत्रयपूर्वकं एतेषां विधानं सर्गादौ दृष्टं तस्मात्त्रिष्वेतेषु नामसु ओमित्येकमेव नाम उदाहृत्य ब्रह्मवादिनां वैदिकानां विधानोक्ताः वेदोक्ताः यज्ञादयः क्रियाः सततं प्रवर्तन्ते । तथा च श्रुतिः—'ओमिति ब्रह्मा प्रसौति, ओमिति शस्त्राणि शंसन्ति, ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति, ओमिति सामानि गायन्ति' इति यज्ञे सर्वेषामृत्विजां क्रिया ओङ्कारपूर्विका इत्येतद्दर्शयति ॥२४॥ ओमितिनाम्नः काम्याकाम्यकर्मसाधारण्येन यज्ञादौ विनियोगमुक्त्वा तदिति नाम्नो निष्कामेषु मुमुक्षुकर्मसु विनियोगं दर्शयति—**तदिति** । मोक्षकाङ्क्षिभिः फलं अनभिसन्धाय

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पर्वणि तु एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

अर्जुन उवाच ।
संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १

श्रीभगवानुवाच ।
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २

र्विविधाः यज्ञतपःक्रियाः दानक्रियाश्च क्रियन्ते इति योजना । ननु फलं चेन्नाभिसन्धीयते तर्हि किमभिसन्धाय क्रियन्त इत्याकाङ्क्षायामाह— तदिति । क्रियन्ते इति सर्वाः क्रियास्तदिति ब्रह्मेति क्रियन्ते । यथा ब्रह्मवादिभिः—

'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना' ॥

इत्युक्तदिशा सर्वाः ससाधनफलाः क्रियाः 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' इति बुद्ध्या क्रियन्ते तथा मुमुक्षुभिरपीत्यर्थः । यदेव हि मुक्तानां स्वाभाविकं शीलं तदेव मुमुक्षूणां शास्त्रेण विधीयत इति प्रसिद्धेः । फलमनभिसन्धायेति सान्निध्यात्तदिती- त्यत्रापि सामर्थ्यादभिसन्धायेति लभ्यते । तेन फलमनभिसन्धाय तदित्यभिसन्धाय क्रियाः प्रवर्तन्त इत्यन्वयोऽपि सुलभ एव । तदिति ब्रह्माभिधानमुच्चार्येति भाष्येऽपि उदाहृत्येति पूर्वश्लोकोक्तक्रियानुवृत्त्या योजनमस्मदुक्ताभिप्रायेणैव व्याख्येयम् । उच्चारणस्यापि ब्रह्मानुसन्धानार्थत्वादिति दिक् ॥ २५ ॥ ओंतच्छब्दयोर्विनियोगमुक्त्वा सच्छब्दस्य विनियोगमाह द्वाभ्यां—**सद्भावे इति** । सद्भावे अस्तित्वे **साधुभावे** समीचीनत्वे सच्छब्दः । सदिदं कर्मेति प्रशस्ते कर्मणि सत्सत्त्वं वेदोक्तत्वादस्त्येनेति सच्छब्दः प्रयुज्यते आस्तिकैः ॥ २६ ॥ किंच यज्ञादौ स्थितिर्निष्ठा सदिति समीचीनेति उच्यते तदर्थः सच्छब्दार्थो ब्रह्म । तदर्थीयं तदर्थं कृतं तदर्थीयं परमेश्वरप्राप्त्यर्थं कृतं कर्म सदित्येव समीचीनमित्येवाभिधीयते लोके । तदेवं असात्त्विकं विगुणं वा यज्ञादिकं श्रद्धापूर्वकं ब्रह्मणोऽभिधानत्रयोच्चारणेन सात्त्विकं सद्गुणं च संपादितं भवति ॥२७॥ सर्वत्र श्रद्धैव साद्गुण्यहेतुरिति व्यतिरेकमुखेनाह—**अश्रद्धयेति**—हुतं होमः, दत्तं दानं, तपस्तप्तमनुष्ठितं कृतमश्रद्धया विहितं भगवन्नामस्मरणमपि यच्चान्यत्तत्सर्वमसत्

अभावभूतमित्युच्यते । पार्थ, अत एव तत् प्रेत्य मृत्वा परलोके नोपयुज्यते इहास्मिन् लोके वा नो नैवोपयुज्यते । तस्मात् श्रद्धैव सात्त्विकी मातेव सुखकामैः शरणीकरणीयेति भावः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे श्रीमद्भगवद्गीता० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पर्वणि तु ॥ ४१ ॥

### ४२

अस्यामष्टादशाध्याय्यां **प्रथमे** उपोद्घातितानां **द्वितीये** सूत्रितानां शेषैर्व्युत्पादितानामर्थानां कार्त्स्न्येनोपसंहारार्थोऽयमन्तिमोऽध्याय आरभ्यते । तत्र पूर्वाध्यायान्तेऽश्रद्धया कृतं सर्वं व्यर्थमित्युक्तं तत्र फलावश्यंभावनिश्चयः **श्रद्धा** । सा च फलवतां कर्मणामेवाङ्गं नतु कर्मविरहरूपस्य संन्यासस्य भावरूपफलवर्जितस्य । अभावाद्भावोत्पत्तेरयोगात् । तस्माच्छ्रद्धासापेक्षकर्मापेक्षया श्रद्धानपेक्षः संन्यासः श्रेयान् । न चास्यैवंरूपस्य श्रद्धात्रैविध्यप्रयुक्तं सात्त्विकादिभेदेन त्रैविध्यं सम्भवति येन फले तारतम्यं स्यात् तत्फलस्य दृष्टविक्षेपनिवृत्तिरूपस्य सर्वत्र तुल्यत्वात् । स च संन्यासो यदि कर्मत्याग एव तर्हि सिद्धं नः समीहितम् । यदि तु तौ भिन्नौ तर्हि तयोर्वैलक्षण्यं विचार्यमित्याशयेनार्जुन उवाच—**संन्यासस्येति** । हे महाबाहो, हे हृषीकेश, हे केशिनिषूदन, इति बहुकृत्वः सम्बोधयन् जिज्ञासितेऽर्थेऽत्यादरं दर्शयति । संन्यासस्य तत्त्वं याथात्म्यं त्यागात्पृथग्भूतं वेदितुमिच्छामि, त्यागस्य याथात्म्यं संन्यासात्पृथग्भूतं वेदितुमिच्छामीति चकारेणानुवर्त्यते ॥ १ ॥ अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच—**काम्यानामिति** । काम्यानां रागतः प्राप्तानां पुत्रकामेष्ट्यादीनाम् । ननु फलस्य कामनाविषयत्वात् सर्वस्य कर्मणः फलवत्त्वानियमात् सर्वं कर्म काम्यमेवेति नित्यादीनामपि मुमुक्षोस्त्यागः स्यादिति सिद्धं नः

**त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।**
**यज्ञ-दान-तपः-कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३**
**निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।**
**त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४**
**यज्ञ-दान-तपः-कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।**
**यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५**
**एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।**
**कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६**
**नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।**
**मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७**

समीहितमित्याशंक्याह—**सर्वेति ।** सर्वेषां नित्यनैमीत्तिककाम्यानां कर्मणां फलत्यागमेव त्यागं विचक्षणाः प्राहुर्न स्वरूपतस्त्यागं प्राहुः । अतो न त्वदिष्टः संन्यासः सिद्ध्यतीत्यर्थः । अयमाशयः—यद्यपि संन्यासत्यागशब्दौ निवृत्तिमेव ब्रूतः तथापि सा वैराग्याद्वा, कायक्लेशभयाद्वा, मौढ्याद्वा भवतीति तत्कारणानां सात्त्विकादिभेदेन भिन्नत्वात्तस्या अपि सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रैविध्यं त्रिविधश्रद्धाप्रधानत्वं च दुर्वारम् । न चाविरक्तो श्रद्धानश्च त्यक्तकर्माऽपि दृष्टविक्षेपहीनो दृश्यते । यथोक्तम् **वार्तिकाचार्यैः**—

'प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः ।
संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसन्दूषिताशयाः' इति ॥

तस्मादविरक्तकृतसंन्यासापेक्षया निष्कामकर्माचरणमेव श्रेयः इत्याशयेन भगवता काम्यकर्मत्यागः संन्यासत्वेन नित्यादिकर्मणां फलानभिसन्धानं च त्यागत्वेन स्तूयत इति । तस्मादश्रद्धया कृतः संन्यासोऽप्यसन्नेवेति संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानमिति स्मृतं स्वफलं दातुं न समर्थः इति युक्तमुक्तं भगवता अश्रद्धया कृतं सर्वं व्यर्थमिति । यत्तु—नित्यानामेव विविदिषायोगात्काम्यानां स्वरूपतोऽपि त्यागः पूर्वार्धस्यार्थः । सर्वेषां कर्मणां फलतस्त्याग इत्युत्तरार्धार्थ इति व्याख्यानं पक्षद्वयप्रदर्शनपरं तदग्रिमेण श्लोकेन पौनरुक्त्यमावहतीत्युपेक्षितम् ॥ २ ॥ इदमेव पक्षद्वयमाह—**त्याज्यमिति ।** एके मुख्या मनीषिणो मनोनिग्रहसमर्थाः परमात्मन्युत्पन्नविविदिषाणां पुरुषाणां दोषवत् रागादयो यथा त्याज्यास्तद्वत् कर्म त्याज्यमिति प्राहुः । अपरे तु विविदिषार्थिना यज्ञादिकं न त्याज्यमिति वा प्राहुरित्यनुवर्तते । तथा च द्विविधाः श्रुतय उपलभ्यन्ते—'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' इत्याद्याः । अविद्वद्विषयमेवैतत्पक्षद्वयं, विदुषां तु कर्मसु प्रवृत्तिकारणस्याज्ञानस्य नष्टत्वात्स्वतःसिद्ध एव त्याग इति न तान्प्रति कर्मविधिर्वा तत्त्यागविधिर्वा प्रवर्तते । यथोक्तम् । 'न कर्माणि त्यजेद्योगी कर्मभिस्त्यज्यते ह्यसौ' इति ॥ ३ ॥ **निश्चयमिति ।** तत्र कर्मणां त्यागात्यागविषये विप्रतिपत्तौ सत्यां प्रथमोपात्ते त्यागे विषये मे मद्वचनान्निश्चयं शृणु । हि यस्मात् हे पुरुषव्याघ्र, त्यागस्त्रिविधः सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रिप्रकारः परिकीर्तितः **शास्त्रे ।** दृढवैराग्यपूर्वकः कर्मसंन्यासः **सात्त्विकः ।** आयासभयात्त्यागो **राजसः ।** मौढ्यात्त्यागः **तामस** इति । तस्माद्गहनत्वात्त्यागो निश्चयेन विचारणीय इत्यर्थः ॥ ४ ॥ **सूचीकटाहन्यायेन** त्यागस्वरूपकथनात्प्राक् परमतमत्यागपक्षमुपन्यस्यति—**यज्ञेति ।** यज्ञादिकं कर्म न त्याज्यं किन्तु कार्यमेव विशिष्टगृहीतेनेव पुंसा अवश्यमनुष्ठेयमेव । तदकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । चकारो हेत्वर्थः । यस्माद्यज्ञो दानं तपश्चैव मनीषिणां निष्कामानां दम्भादिरहितानां पावनानि चित्तशोधकानि । तथा च श्रुतिः—'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति । **प्रथमस्तप एव ।** **द्वितीयो** ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी । **तृतीयः** सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति' इति यज्ञादीनां गृहस्थधर्माणां तपसो वनस्थधर्मस्याचार्यकुलवासस्य ब्रह्मचारिधर्मस्य च पावनत्वं दर्शयति । अत्रापि यज्ञदानशब्देन गृहस्थधर्मा ज्ञेयास्तप इति वानप्रस्थधर्माः, परिशेषात् कर्मेति ब्रह्मचारिधर्माश्च ज्ञेयाः ॥ ५ ॥ एवमत्यागपक्षमुक्त्वा औत्सुक्यात्प्रथमं स्वाभिमतं त्यागात्यागसमुच्चयपक्षं दर्शयति—**एतानीति ।** तुशब्दः पूर्वोपन्यस्तात्पक्षाद्वैलक्षण्यं दर्शयति । अपिशब्द एवशब्दार्थः । एतान्येव कर्माणि यज्ञदानतपांसि सङ्गं त्यक्त्वा अहमेतेषां कर्ता मयाऽवश्यमेतानि कर्तव्यानीत्यभिमानं वयोवर्णाश्रमाध्यासनिमित्तं त्यक्त्वा एतैः कृतैरहं स्वर्गं वा चित्तशुद्धिं वा ज्ञानं वा प्राप्स्यामीति फलानि च त्यक्त्वा, चकारादेषामकरणे मम प्रत्यवायो भविष्यतीत्येतमप्यभिसन्धिं त्यक्त्वा ब्रह्मनिष्ठेनेवासङ्गस्वभावेन पुरुषेण कर्तव्यानि । इति एवं प्रकारं मे मम मतमुत्तमं पूर्वमतात् श्रेष्ठम् । तत्र हि कर्तृत्वाभिमानरूपेण सङ्गेन प्रत्यवायोत्पादभयाच्च कर्मानुष्ठानं विहितं, अत्र तु तदभावादसङ्गत्वांशेन कर्मणां त्यागः स्वरूपेणात्याग इति भेदः ॥ ६ ॥ प्राक्प्रतिज्ञातं त्यागत्रैविध्यमाह—**नियतस्येति ।** तु शब्दः पूर्वोक्तपक्षद्वयवैलक्षण्यार्थः । यस्मादधिकृतस्य मुमुक्षोर्नियतस्यावश्यानुष्ठेयस्य कर्मणः संन्यासः स्वरूपेण त्यागो नोपपद्यते न युज्यते अज्ञस्य शुद्ध्यपेक्षत्वात् । एवं सति यो मोहादज्ञानात्तस्य नियतस्य कर्मणः परित्यागः स तामसः

**दुःखमित्येव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ९
न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०**

परिकीर्तितः। आवश्यकं च त्यज्यते चेति विप्रतिषेधात् ॥७॥ एवं तामसं त्यागमुक्त्वा राजसं त्यागमाह—**दुःखमिति** । यो दुःखरूपमेवेदं कर्मेति मत्वा कायक्लेशभयात् त्यजेत् स पुमान् तस्मादेव हेतोः राजसं रजोगुणनिर्वृत्तं त्यागं कृत्वा त्यागफलं चित्तशुद्धिद्वारा मोक्षं नैव लभेत् लभेत ॥ ८ ॥ एवं द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां तामसराजसौ मुख्यावेव त्यागावुक्तौ। तामसराजसयोरमुख्यत्यागयोरसंभवस्य भयवर्तव मोहात्तस्य परित्याग इति कायक्लेशभयात्त्यजेदिति च सूचनात् । न ह्येवं संभवति। मूढश्च करोति चेति विप्रतिषेधात् । यदि करोति नैव मूढो, यदि मूढस्तर्हि नैव करोति । एवं यदि कायक्लेशाद्बिभेति नैव करोति । यदि करोति नैव कायक्लेशाद्बिभेति । तस्मात्करोति च कायक्लेशाद्बिभेति चेति विप्रतिषिद्धम् । अतस्तामसराजसयोरमुख्यत्यागयोरसंभवात्तौ नैवोक्तौ । सात्त्विकस्त्वमुख्यत्यागः संभवति । यथा स्फटिके जपाकुसुमाश्रितं लौहित्यं विवेकिनां प्रतीतित एवास्ति न वस्तुत एवमात्मनि ईश्वराधीने विवेकिनां कर्तृत्वं प्रतीतित एवास्ति न वस्तुत इति वक्तुं शक्यम्। एवं च कर्तृत्वाभिनिवेशशून्यः पुमान् प्रतीतितः करोत्येव न वस्तुत इति संभवत्यमुख्योऽपि सात्त्विकस्त्याग इति तमेव मुख्यत्यागेऽधिकारहेतुं प्रथममाह—**कार्यमिति** । कार्यं कर्तव्यमित्येव यत्कर्म नियतं नित्यं क्रियते । हे अर्जुन, संगं फलं च त्यक्त्वेत्यवधारणं प्रागुक्तस्यात्यागपक्षस्य व्यावृत्त्यर्थम् । स एवंभूतस्त्यागः सात्त्विको मतो वेदे दृष्टः । तथा च श्रुतिः—

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' इति ।

ईशा ईशेन परमेश्वरेण सर्वकार्यकरणकर्त्रात्मप्रवर्तकेन इदं जगत्स्थावरजंगमं जगत्यां ब्रह्माण्डे स्थितं वास्यमाच्छादितं व्याप्तम् । येन हेतुना सर्वं तदधीनं तेन कारणेन त्यक्तेन त्यागेन कर्तृत्वभोक्तृत्वाभिमानवर्जनेन भुञ्जीथाः विषयान्भुङ्क्ष्व. मा गृधः गर्धं माकार्षीः। कस्यस्विद्धनं न कस्यापि तत्र स्वामित्वमस्तीति वृथैव तत्र गर्ध इत्यर्थः । एवं कर्माण्यपि यज्ञादीनि कर्तृत्वाभिमानं त्यक्त्वा कुर्वतस्तव कर्मलेपो न भविष्यति । एतद्व्यतिरेकेण तवोपायान्तरं च नास्तीत्यग्रिममन्त्रेण प्रदर्श्यते—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' इति ।

इदमेव मुख्यं स्वमतं भगवता प्रदर्शितमेतान्यपि तु'कर्माणीति श्लोके । ननु नित्यानां फलमेव नास्ति किं त्यक्तव्यमिति चेत् । इत एव भगवद्वचनात्तेषामपि फलमस्तीति जानीहि। निष्फलस्य वेदेनानुष्ठापनासंभवात् । तथा **चापस्तम्बः**—'तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते छायागंध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते' इति आनुषंगिकं फलं नित्यानां दर्शयति । 'अकरणे प्रत्यवायस्मृत्याऽपि तेषां प्रत्यवायपरिहारः फलमिति प्रदर्श्यते । 'धर्मेण पापमपनुदति' इत्यादिना च नित्येष्वपि कर्मसु फलं दृश्यते । तदेव वक्तव्यमिति न कोऽपि दोषः ॥ ९ ॥ एवं मुख्यं सात्त्विकत्यागमुक्त्वाऽमुख्यं तमाह—**न द्वेष्टीति** । सत्त्वेन सम्यगाविष्टो व्याप्तस्त्यागी मुख्यः सात्त्विकस्त्यागी संन्यासीत्यर्थः । अकुशलमसुखप्रदं कर्म त्रिषवणस्नानचतुर्गुणशौचभिक्षाटनादिप्रयासरूपं न द्वेष्टि । **कुशले** मिष्टान्नभिक्षादौ नानुषज्जते न संगं काकवत्प्रीतिं करोति । यद्वा । कर्मकुशले सेवादिकमकुशले शिष्यादौ न सज्जते तत्राकुशलं वा तं न द्वेष्टि । एतेन रागद्वेषशून्यत्वमस्य दर्शितम् । तदपि कुत इत्यपेक्षायामाह—**मेधावीति** । ऊहापोहकुशलतया नित्यानित्यवस्तुविवेचनादौ प्रज्ञावान् अत एव च्छिन्नसंशयः किं कर्माण्येव मुक्तिसाधनानि उत संन्यास एवेति विचिकित्सारहितः । एवं च त्यागीत्यनेन यज्ञो दानं तपः कर्म न त्याज्यमित्युक्तादत्यागाद्व्यावृत्तिः । मेधावीत्यनेन मोहात्तस्य परित्याग इत्युक्तात्तामसत्यागाद्व्यावृत्तिः । पूर्वार्धेन रागद्वेषाभावप्रतिपादनेन कायक्लेशभयात्त्यजेदित्युक्ताद्राजसत्यागाद्व्यावृत्तिः। छिन्नसंशय इत्यनेन कार्यमित्येव यत्कर्मेत्युक्तादमुख्यसात्त्विकत्यागाद्व्यावृत्तिः । न ह्यसौ कर्मणां तुच्छत्वं संन्यासस्य महाभाग्यत्वं च तत्त्वतो वेद । वेद चेत्क्षणमपि कर्मसु न तिष्ठेत् । न हि दाहोपशमार्थी निकटस्थं जान्हवीमहाह्रदं जानन् ग्रीष्मोष्मप्रतप्तगाथसि पल्वले क्षणमपि रमेत । संशयच्छेदेऽपि हेतुः—**सत्त्वसमाविष्ट इति** । यतः सत्त्वेनैव कर्त्रा सम्यगाविष्टोऽयं न त्वयं सत्त्वमाश्रित इति महान्विशेषः । एवं च पूर्वश्लोकोक्तस्य सात्त्विकत्यागरूपस्य कर्मयोगस्य फलभूतोऽयं मुख्यः संन्यासो विविदिषूणामनुष्ठेयो 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' । 'एतमेव प्रवाजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति' इति श्रुतिप्रसिद्धः । **भाष्ये** तु-ननु कर्मपरित्यागस्त्रिविधः संन्यास इति च प्रकृतस्तत्र तामसो राजसश्चोक्तस्त्यागः कथमिह संगफलत्यागस्तृतीयत्वेनोच्यते । यथा त्रयो ब्राह्मणा आग-

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥

तास्तत्र षडंगविदौ द्वौ क्षत्रियस्तृतीय इति तद्वत् । नैष दोषः त्यागसामान्येन स्तुत्यर्थत्वात् । अस्ति कर्मसंन्यासस्य फलाभिसन्धित्यागस्य च त्यागत्वं सामान्यं, तत्र राजसतामसत्त्वेन कर्मत्यागनिन्दया कर्मफलाभिसन्धित्यागः सात्त्विकत्वेन स्तूयते स त्यागः सात्त्विको मत इति ग्रन्थेन त्यागत्रैविध्यं समाधायैवं संगफलत्यागपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानेनैव विशुद्धान्तःकरणस्यात्मज्ञानाभिमुखस्य तन्निष्ठाक्रमकथनार्थोऽयं श्लोक' इत्युक्तम् । तथैव श्लोकं व्याख्याय 'पूर्वोक्तस्य कर्मयोगस्य प्रयोजनमनेन श्लोकेनोक्तम्' इत्युपसंहृतम् । अन्ये तु फलाभिसन्धिविशिष्टस्य कर्मणस्त्यागस्त्रिविधः विशेषणाभावाद्विशेष्याभावादुभयाभावाच्च । आद्योऽत्रैव विधित्सितो द्वितीयस्तु तामसराजसभेदेन द्विविधोऽप्यत्रैव निन्दितः । तृतीयस्तु कर्मानधिकारिणा विविदिषुणा विदुषा च कर्तुं योग्यो द्विविधः । तत्रान्त्यः स्थितप्रज्ञलक्षणादौ प्राग्व्याख्यातः । आद्यस्तु नैष्कर्म्यसिद्धिं परमामित्यत्र वक्ष्यते । तत्र भाष्ये तिस्रस्त्यागविधाः प्रतिज्ञाय द्वे यथावत्प्रदर्श्य तृतीयाऽपि केनचित्सामान्येन प्रतिपादिता । अत्र तु एकस्यां द्वयोरन्तर्भावं कृत्वा द्वे एव विधे उपपाद्य तृतीया प्रदेशान्तरे प्रक्षिप्तेति प्रकृते प्रतिज्ञाया अनिर्वाह इति विशेषः ॥ १० ॥ अमुख्यमेव सात्त्विकं त्यागमनूद्य तत्प्रयोजनमाह द्वाभ्याम्—न हीति । देहभृता देहाभिमानिना हि यस्मादशेषतः कर्माणि त्यक्तुं न शक्यं अशक्यं प्राणयात्रालोपप्रसंगात् । तस्मादाधिकृतः सन् यः कर्मफलत्यागशीलः । तुरवधारणार्थे । स एव त्यागीत्युच्यते । यस्त्वशेषतःकर्माणि त्यक्तुं शक्नोति परमार्थदर्शी स मुख्यस्त्यागीत्यर्थः ॥ ११ ॥ एवंभूतस्य त्यागस्य फलमाह—अनिष्टमिति । अनिष्टं नरकतिर्यगादिरूपम् । इष्टं देवतादिरूपम् । मिश्रं मानुषभाव इति कर्मणः कर्मजातीयस्य फलं त्रिविधं प्रेत्य मरणानन्तरमत्यागिनां पूर्वोक्तमुख्यसंन्यासहीनानां भवति । मुख्यसंन्यासिनां तु न क्वचित्तद्भवति तेषां कर्तृत्वाभिमानाभावात् । अन्ये तु गौणसंन्यासिनामेवायं कर्मालेप इत्याहुः । तथा च व्याख्यातं 'कार्यमित्येव यत्कर्म' इत्यत्र । अन्यथा संन्यासिनां गौणसंन्यासिनां च विशेषो न स्यात् । न चैवं मुख्यसंन्यासिनां गौणसंन्यासिनां चाविशेषापत्तिरिति वाच्यं उभयेषामुत्तरकर्माश्लेषसाम्येऽपि पूर्वकर्मदाहादाहकृतस्य विशेषस्य

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४

सत्त्वात् । गौणसंन्यासिनां जन्मान्तरादिकमपि पूर्वकर्मभिरेव भविष्यति । आत्मतत्त्वोक्तात्रनिदर्शनेन योगभ्रष्टगतिवन्नान्तरीयकं वा स्त तु तस्य प्रधानं फलं स्वर्गादि भवितुमर्हत्यनुद्दिष्टत्वादिति ॥ १२ ॥ नन्वात्मनः कर्मालेपनिमित्तं यदकर्तृत्वानुसन्धानं तत्किं योषिदामित्यादिवदाहार्यमुत वास्तवमेव सदाविधाय्यकर्तृत्वेनाकृतामीति शास्त्रदृष्ट्या कर्तृत्वातिरोधानेनाकर्तृत्वमेव भाव्यते इत्याशंक्याभित्वेन दृष्टायां योषिति दग्धृत्वादर्शनेनेव कल्पितेनाकर्तृत्वेन वास्तवस्य कर्मालेपस्यासंभवादाद्यं निरस्य द्वितीयमुपपादयिष्यन् पीठिकामारचयति—पञ्चेति । हे महाबाहो, सर्वकर्मणां सिद्धये इमानि वक्ष्यमाणानि पञ्च कारणानि निर्वर्तकानि मे मद्वचनान्निबोध बुध्यस्व । स्ववचने विश्वासोत्पादनार्थं कारणानां समूलत्वमाह—सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानीति । सम्यग्विविच्य ख्यायन्ते प्रकटीक्रियन्ते तत्त्वान्यात्मानात्मपदार्थरूपाणि यस्मिंस्तत्सांख्यं वेदान्तशास्त्रम् । तदेव विशिनष्टि—कृतान्ते कृतस्य कर्मणोऽन्तः परिसमाप्तिर्यस्मिन् । 'सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते' इत्यात्मज्ञाने सति सर्वकर्मणां समाप्तिदर्शनात् तस्मिन्सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि ॥१३॥ तान्येव पञ्च गणयति—अधिष्ठानमिति । अधिष्ठानमिच्छाद्वेषसुखदुःखज्ञानादीनामभिव्यक्तेराश्रयो देहः । तस्यानात्मत्वं चार्वाकव्यतिरिक्तसमस्तवादिसिद्धम् । तथा कर्ता बुद्धिविशिष्टश्चिदाभासः प्रमाता नामाहंप्रत्ययविषयोऽहङ्कारस्तथेत्यनेन तद्वदेवानात्मत्वेन ज्ञेय इत्युक्त दृष्टस्येव सुप्तौ प्रलये च तस्याप्युत्पत्तिविनाशयोर्दर्शनात् । एतच्च विशेषणनाशाद्विशिष्टनाशं विशेषणोत्पत्त्या च विशिष्टोत्पत्तिमभिप्रेत्य श्रूयते—'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति' इति । 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेतस्मादात्मनः सर्व एव आत्मानो व्युच्चरन्ति' इति च विशिष्टस्य चानतिरेकादर्शनादनात्मत्वं सिद्धम् । करणं च शब्दाद्युपलब्धिसाधनम् । पृथग्विधं द्वादशविधं पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च । तथा विविधाश्च पृथक्चेष्टा वायवीयाः प्राणनादिरूपाः । दैवं पुण्यपापरूपं तत्तत्करणानुग्राहकसूर्यादिदेवतारूपं पञ्चमं पञ्चानां पूरणम् ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते १७
ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः ॥ १८

शरीरेति । न्याय्यं धर्म्यं शास्त्रीयं, विपरीतं अन्याय्यमधर्म्यमशास्त्रीयम् । ननु शरीरादिभिस्त्रिभिरारभ्यते पञ्चैते तस्य हेतव इति च विप्रतिषिद्धमुच्यते । नैष दोषः । अत्रापि शरीरपदेनाधिष्ठानस्य नरपदेन कर्तुर्वाङ्मन इति करणस्यारभत इति चेष्टानां न्याय्यमिति धर्माधर्मरूपस्य दैवस्य च संग्रहात् । सर्वेषु कर्मसु पञ्चानां समानेऽप्युपयोगे विधिप्रतिषेधलक्षणं त्रिविधमेव कर्म शास्त्रे प्रसिद्धमिति । इदं शारीरं कर्मेदं मानसमिदं वाचिकमिति व्यपदेशो देहादीनां प्राधान्यापेक्ष इति न कश्चिद्विरोधः ॥ १५ ॥ एतत्प्रतिपादनफलं कर्तृत्वस्यारोपितत्वसिद्धिरकर्तृत्वस्य स्वाभाविकत्वसिद्धिश्चेति द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां दर्शयति—तत्रेति । तत्र तस्मिन्कर्मणि एवमुक्तरीत्या पञ्चभिर्निर्वर्त्ये सति । केवलं त्वकर्तारमप्यात्मानं चेतनम् । 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' इति श्रुतेः । अधिष्ठानादिपञ्चकप्रचारदर्शिनमुदासीनमपि यः कर्तारं कर्तृत्वाश्रयं पश्यति स दुर्मतिः पापाभिभूतमतिर्न पश्यत्यन्ध एव सः । अदर्शने हेतुः—अकृतबुद्धित्वादिति । शास्त्राचार्योपदेशशमदमादिसंस्कृता बुद्धिर्यस्य स कृतबुद्धिस्तद्विपरीतोऽकृतबुद्धिस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् । यथा स्वमुखस्योदपात्रसंसर्गित्वं पश्यता जलचाञ्चल्यमपि तत्रारोप्यत एवमात्मनो बुद्धिसंसृष्टत्वं पश्यता बुद्धिधर्मः कर्तृत्वादिरप्यात्मन्यारोप्यत इति भावः ॥ १६ ॥ द्वितीयं प्रयोजनमाह—यस्येति । यस्य प्रमातुर्भावः प्रत्ययमात्रस्वरूप आत्मा नाहंकृतः अहमिव कृतोऽहङ्कारतादात्म्यं प्रापितोऽहंकृतस्तथा न । यस्य बुद्धिर्न लिप्यते आत्मभावेन रञ्जिता न भवति । यस्य बुद्धेर्व्यतिरिक्तमात्मानं पश्यतो बुद्धिधर्माः कर्तृत्वादयो नात्मनि प्रतीयन्त इति कर्त्रात्मवादितार्किकनिरासः । यस्य च आत्मधर्माश्चैतन्यादयो बुद्धौ न संसृज्यन्त इति बुद्धिमेव चेतनां वदतो बौद्धस्य निरासः । चिदचितोरन्योन्यस्मिन्नन्योन्यधर्माध्यासो बाध्यत इति दुःखादिसंसर्गनिषेधेन भोक्तृत्वाभावो दर्शितः । 'हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' इति तु स्तुतिमात्रं, कर्तृत्वस्यैव बाधेन हन्तृत्वायोगात् । दग्धपटवत्कर्तृत्वानुवृत्तावपि हननक्रियायां प्रवर्तकस्य रागद्वेषादेरभावाच्च । एतेनात्मनस्तात्त्विकमकर्तृत्वं भावयता कृतं कर्मातात्त्विककर्तृत्वाभिमाननिमित्तं स्वफलं प्रसोतुं नार्हतीति दर्शितम् । न हि रज्जुसर्पे रज्जुबुद्धिं कृत्वा प्रहरतः सर्पक्षोभजं दंशनादि फलं भवति । सर्पे तु तथा कुर्वतस्तद्भवत्येव तद्वदिदमपि ज्ञेयम् ॥ १७ ॥ समाप्तः सात्त्विकत्यागोपपादनोपयोगी आत्मनोऽकर्तृत्वोपपादनप्रकारः । अत्राह सांख्य—यदुक्तं 'पञ्चैते तस्य हेतव' इति यच्चोक्तं 'न हन्ति' इति तन्मृष्यामहे । न ह्यपरिणामी चेतनः परिस्पन्दात्मकस्य कायिकादिभेदेन त्रिविधस्य कर्मणः कर्ता भवतीति वक्तुं युज्यते । यत्तु न निबध्यत इति भोक्तृत्वमुक्तमपि प्रत्याख्यातं तन्न मृष्यामहे । नहि कुलालादयः स्वप्रयुक्ता एव घटादीन्निर्वर्तयन्ति किन्तु भोक्तृपुरुषप्रयुक्ताः । अन्यथा भोक्तृणामभावे व्यर्थैव तत्प्रवृत्तिरित्यापतति । एवं प्रधानमात्राभूताः कर्त्रादयः पुरुषस्य भोगापवर्गसाधनप्रयुक्ताः सर्वाणि कर्माणि निर्वर्तयन्ति । तस्मात्पुरुषस्य भोक्तृस्वभावत्वादकर्तृत्वानुसन्धानपूर्वकमपि कृतं कर्म भोक्त्राऽवश्यमेव भोक्तव्यमिति सात्त्विकत्यागेऽपि कर्मालेपवचनमसङ्गतमिति । अत्र प्रतिविधत्ते—ज्ञानं ज्ञेयमिति । ज्ञानं ज्ञायते प्रकाश्यते वस्तुतत्त्वमनेनेति प्रत्यक्षादिप्रमाणजन्यो घटादिप्रकाशः स च वर्तमानोऽतीतो वा । ज्ञेयं बोधविषयो घटादिः । परिज्ञाता विषयी साभासधीरूपो यो भोक्तेत्युच्यते । एवं रूपप्रकारत्रयवती त्रिविधा कर्मणां चोदना । त्रयं समुच्चितं सत्कर्मणि प्रवर्तकमित्यर्थः । सत्यपि ज्ञेये ज्ञातरि वा ज्ञाने प्रवृत्त्यनुपपत्तेः । ज्ञाने ज्ञातरि च सति देशकालव्यवहिते ज्ञेये प्रवृत्त्यनुपपत्तेः । सत्यपि संस्कारात्मके ज्ञाने ज्ञेये च सन्निहिते तथाऽपि सुषुप्तौ प्रमात्रभावात् प्रवृत्त्यदर्शनादेतत्त्रयं त्रिदण्डविष्टंभवदन्योन्यापेक्षं सत् हानोपादानोपेक्षाबुद्धिरूपं कार्यं जनयित्वा हानाद्यनुकूले व्यापारे प्रवर्तयतीति कर्तृपदाभिधेयमित्यर्थः । चोदनेति कर्तरि नन्द्यादिल्युप्रत्ययान्तत्वेन चोदनाशब्दः कर्तृवाची । लिङ्गं त्वविवक्षितम् । 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' इति वा । तथा करणं इन्द्रियम् । कर्म तेन यत्क्रियमाणं विषयग्रहणं, कर्ता पूर्वोक्त एव परिज्ञाता । एतत्त्रयं समुदितं सत् कर्मसंग्रहः कर्मण ईप्सिततमस्य भोग्यस्य संग्रहः संगृह्यतेऽस्मिन्निति संश्लेषस्थानं भोक्तेत्यर्थः । सत्यपि भोक्तरि करणे च क्रियां विना भोगासम्भवात् क्रियायाश्चाश्रयं विना स्वरूपालाभादाश्रयस्य करणं विना भोक्तृत्वाद्यकर्तृत्वानुपपत्तेश्चैतत्त्रयं मिलितं सत् भोक्तेत्युच्यत इत्यर्थः ।

**ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।**
**प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९**
**सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।**
**अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०**
**पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ।**
**वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१**
**यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।**
**अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२**
**नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।**
**अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३**

तथा च श्रुतिः —'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति। इन्द्रियं प्रसिद्धम्। मन इत्यनेन बुद्धिरेव गृह्यते, युक्तमिन्द्रियद्वारा मतेर्भोग्येन सह सम्बन्धक्रिया। इन्द्रियं च मनश्च युक्तं चेति विग्रहे इन्द्रियमनोयुक्तमिति द्वन्द्वैकवद्भावः। एतत्रयं भोक्ता आत्मेत्याहुर्मनीषिण इति श्रुत्यर्थः। एवं हि श्रुतिस्मृत्योर्व्याख्याने तयोर्मूलमूलिभावो युज्यते नान्यथा। तथा च कर्तृवत् भोक्तुरप्यनात्मगणपातितत्वाद्भोक्तृत्वं भोगकर्तृत्वमिति निर्वचनाद्यः कर्ता स एव भोक्तेति प्रतिपादनादहमकर्ताऽभोक्तेति चानुसन्धानपूर्वकं कर्माणि कुर्वतः कर्तृत्वभोक्तृत्वकृतः कर्मलेपो नास्तीति सिद्धम्। **भाष्यस्य** चायमेवार्थः। ये तु—करणं क्रियायाः साधकतमं दशविधं बाह्यं मनोबुद्धिरूपमान्तरं कर्म कर्तुरीप्सिततमं क्रियया व्याप्यमानमुत्पाद्यमाप्यं विकार्यं संस्कार्यं चेति चतुर्विधम्। कर्ता कारकान्तरप्रयोजकश्चिदचिद्ग्रन्थिः। एतत्रयं कर्मसंग्रहः कर्माश्रयः कर्तेत्यर्थः। तथा ज्ञानं विषयप्रकाशनशक्तिः। ज्ञेयं विषयः। परिज्ञाता ज्ञानाश्रयो भोक्ता। एतत्रयं कर्माणि प्रवर्तकमिति व्याचक्षते। तेषामप्यात्मा न कर्ता, नापि सांख्यानामिव भोक्तृत्वेन प्रकृतेः प्रवर्तक इत्येवाशयः। तथापि क्रियया व्याप्यमानस्य वक्ष्यमाणसात्त्विकादिभेदानर्हस्य घटादिरूपस्य कर्मणः कर्तृकोटौ प्रवेशायोगः। तस्य क्रियाश्रयत्वमात्रविवक्षायां प्रकृते तत्कथनानुपयोगश्च स्पष्टः। तथाऽस्माकं तु घटादिव्यापकक्रियायाः कर्मशब्दवाच्यत्वं मुख्यम्। कर्तृकोटिप्रवेशश्च क्रियाक्रियावतोर्धर्मधर्मिणोरभेदापेक्षया युज्यते। तथा ज्ञानं प्रकाशनक्रियेति मते क्रियारूपेऽस्मिन् प्रवर्तकज्ञानान्तरस्यापेक्षेति तत्र तत्रान्यस्यान्यस्यापेक्षेत्यनवस्था दुर्निवारा ॥ १८ ॥ पूर्वश्लोकोक्ते ज्ञानादिषट्के परिज्ञाता कर्ता चैक एवेति परिशिष्टाः पञ्च तेषां सर्वेषां प्राकृतत्वेन त्रिगुणात्मत्वे प्राप्ते ज्ञेयकरणयोर्जडयोर्घटकुठारकल्पयोः परिसंख्यार्थं त्रयाणामेव प्रत्येकं त्रिविधत्वं विवरीतुं प्रतिजानीते—**ज्ञानमिति**। ज्ञानं, कर्म, कर्ता चेति त्रयमेव गुणभेदतस्त्रिधा नतु ज्ञेयकरणे। गुणसंख्याने कापिले शास्त्रे यद्यपि तत्रैकस्यां प्रमदायां भर्तुः सुखं जायते तं प्रति तस्याः सत्त्वोद्भूतत्वात्। तामविन्दतश्चैत्रस्य दुःखं जायते तं प्रति तस्या रजउद्भूतत्वात्। तस्यामेव सपत्न्या द्वेषस्तां प्रति तस्यास्तमउद्भूतत्वात्। 'प्रमदयैव सर्वे भावा व्याख्याताः' इति कापिलानां ज्ञेयकरणयोरपि त्रैविध्यं प्रसिद्धम्। तथापि प्रमदादय एकस्यैव पुंसो निमित्तभेदेन प्रीतिदुःखद्वेषविषया अपि भवन्तीति पूर्वोक्तव्यवस्थाया निर्मूलत्वात्। प्रीत्यादीनां कर्तृसमवायितया प्रतीयमानानामालंबनभूतायाः प्रमदायाः प्रीत्याद्यात्मकत्वं कल्पयितुं न शक्यत इति न भगवता तयोस्त्रिविधत्वं व्याख्यायते। अक्षरार्थः स्पष्टः ॥ १९ ॥ एवं ज्ञानादित्रयस्य त्रैविध्यं वक्तुं प्रतिज्ञाय ज्ञानत्रैविध्यं तावदाह—**सर्वभूतेष्विति**। यथा कटककुण्डलादिषु व्यावर्तमानेषु तत्त्वविदेकं काञ्चनमेवेदमिति पश्यति। एवं येन ज्ञानेन सर्वभूतेषु विभक्तेषु नानानामरूपभेदभिन्नेष्वव्ययमपरिणामिनमेकं भावं चिन्मात्ररूपमीक्षते 'सर्वं ब्रह्मैवेदम्' इति पश्यति। तज्ज्ञानं सात्त्विकं विद्धि। ऐकात्म्यज्ञानमेव सात्त्विकमित्यर्थः ॥ २० ॥ भेदज्ञाने राजसत्वमाह—**पृथक्त्वेनेति**। यत्पृथक्त्वेन भिन्नत्वेन ज्ञानं तद्राजसमिति सम्बन्धः। पृथक्त्वेनेत्येतद्विवृणोति—सर्वेषु भूतेषु पाञ्चभौतिकत्वेनाविशिष्टेषु नानाभावान् सुरनरतिर्यक्स्थावरत्वभेदेन नानात्वानि बहुवचनमत्यन्तभेदप्रदर्शनार्थं पृथग्विधान् एकजातीयेष्वपि नरादिषु प्रत्येकं विभिन्नप्रकारान् यज्ज्ञानं वेत्ति विषयीकरोतीति। येन ज्ञानेन वेत्तीति वक्तव्ये एधांसि पचन्तीतिवत् यज्ज्ञानं वेत्तीति करणे कर्तृत्वोपचारो बोध्यः। तेनात्मनां परस्परभेदस्तेषामीश्वराद्भेदस्तेभ्य ईश्वरादन्योन्यतश्च जडवर्गस्य भेद इत्यनौपाधिकभेदपञ्चकज्ञानं कुतार्किकाणां राजसमेवेत्यभिप्रायः ॥ २१ ॥ यत्तु—ज्ञानमेकस्मिन्कार्ये देहे प्रतिमादौ वा कृत्स्नवत्परिपूर्णवदेतावानेवात्मा ईश्वरो वेति सक्तमभिनिवेशयुक्तम्। अहैतुकं निरुपपत्तिकम्। अतत्त्वार्थवत् परमार्थावलम्बनशून्यम्। अल्पं तुच्छविषयत्वादल्पफलत्वाच्च। यदेवंभूतं ज्ञानं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥ अथ कर्मत्रैविध्यमाह—**नियतमित्यादिना**। नियतं नित्यं सङ्गरहितमभिमानवर्जितं। राग इष्टे प्रीतिर्द्वेषोऽनिष्टेऽप्रीतिस्ताभ्यां कृतमिष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारार्थं कृतं रागद्वेषतः कृतं तदन्यदरागद्वेषतः कृतं निष्काममित्यर्थः। फल्गु च लीयते चेति फलं क्रियया प्राप्यमनात्मवस्तु 'तदन्यदफलमनागन्तुकं परिपूर्णमविनाशि

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५
मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः २७
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैकृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥ २८
बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय॥ २९
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥ ३१
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥
धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी
यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी३४
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ३५
सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥ ३६

आत्मतत्त्वं तत्प्रेप्सुना कृतं 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इति श्रुत्या आत्मलाभार्थं यज्ञादेर्विनियोगात् तत्कर्म सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥ यत्तु—कामेप्सुना फलार्थिना साहङ्कारेण यद्यपि सात्त्विकोऽप्यनात्मवित्साहङ्कारस्तथाप्यहमेव कर्मकुशलो महान् श्रोत्रिय इत्यभिमानोऽहङ्कारस्तद्वता साहङ्कारेण। वाशब्दश्चार्थे । क्रियते बहुलायासमतिश्रमकरं तत्कर्म राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥ अनुबध्यतेऽनेनेत्यनुबन्धः फलम् । क्षयं शक्तरर्थानां च नाशम् । हिंसां परपीडाम् । पौरुषं स्वसामर्थ्यम् । अनपेक्ष्यानालोच्य केवलं मोहादविवेकतो यदारभ्यते कर्म तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २५ ॥ कर्तृत्रैविध्यमाह—**मुक्तेत्यादिना** । मुक्तसङ्गस्त्यक्ताभिनिवेशः । **अनहंवादी** पूर्वोक्ताहङ्कारोक्तिरहितः । **धृतिः** धैर्यम् । **उत्साहः** साधयिष्याम्येवेति बुद्धिनिश्चयः । ताभ्यां समन्वितः सिद्ध्यसिद्ध्योः कर्मण आरब्धस्येति शेषः । **निर्विकारो** हर्षविषादशून्यः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥ **रागी** विषयलोलुपः । अत एव कर्मणः फलं प्रेप्सतीति कर्मफलप्रेप्सुः । **लुब्धः** परद्रव्यादौ सञ्जाततृष्णस्तीर्थादौ वा द्रव्यापरित्यागी । हिंसात्मकः परपीडाकरस्वभावः । अशुचिर्बाह्यान्तःशौचवर्जित इष्टानिष्टप्राप्तौ हर्षशोकान्वितश्च यः कर्ता स राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥ **अयुक्तो**ऽनवहितः । **प्राकृतो**ऽत्यन्तमसंस्कृतबुद्धिर्बालसमः। स्तब्धो दण्डवन्न नमति कस्मैचित् । **शठः** शक्तिगूहनकारी । **नैकृतिको** वञ्चकः परावमानी वा । **अलसः** अप्रवृत्तिशीलः कर्तव्येष्वपि । **विषादी** सर्वदा अवसन्नस्वभावः । **दीर्घसूत्री** चिरकारी । एकाहसाध्यं कार्यं मासेनापि न करोतीत्यर्थः । य एवंभूतः स कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥ बुद्धिधृती त्रैविध्येन व्याख्यातुमाह—**बुद्धेरिति**। तत्र बुद्धिविशिष्टश्चिदाभासः कर्ता ज्ञानं च प्रागुक्तम् । अत्र तु केवला बुद्धिर्वृत्तिमती तदीयवृत्त्यन्तरोपलक्षणार्थं तद्वृत्तिविशेषो धृतिश्च त्रैविध्येन कथ्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥ प्रवृत्तिनिवृत्ती शास्त्रविहितप्रतिषिद्धविषये 'यजेत स्वर्गकामः' 'न सुरां पिबेत्' इत्यादिरूपे । **कार्यं** कृतिसाध्यं स्वर्गादि । **अकार्यं** नित्यासिद्धं तेन नित्यानित्यवस्तुनी उक्ते । भयाभये कार्याकार्यनिमित्ते । बन्धं मोक्षं च या वेत्ति यया वेत्तीति पूर्ववत् करणे कर्तृत्वोपचारः । बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥ अयथावत् संदेहास्पदत्वेन । स्पष्टमन्यत् ॥ ३१ ॥ **अधर्ममिति १** विपरीतग्राहिणी बुद्धिस्तामसीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ यया धृत्या अव्यभिचारिण्या समाध्यनुगतया मनःप्राणेन्द्रियाणां क्रियाश्चेष्टाः सङ्कल्पं श्वासप्रश्वासौ शब्दादिग्रहणं च योगेन चित्तवृत्तिनिरोधेन ऐकाग्र्येण वा संयतास्तास्तथैव निरोधावस्थायामैकाग्र्यावस्थायां वा धारयते चिरमवस्थापयति सा धृतिः पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥ यया धृत्या धर्मादीन् धारयतेऽनुरोध्यतया निश्चिनोति प्रसङ्गेन धर्मादेः सम्बन्धेन फलाकाङ्क्षी च भवति पुरुषो धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥ **स्वप्नं** निद्राम् । **भयं** त्रासम् । **शोकं** प्रसिद्धम् । **विषादं** विषण्णताम् । **मदम**शास्त्रीयविषयसेवया चित्तस्य विवशत्वम् । एतान् विमुञ्चति धारयत्येव यया धृत्या सा धृतिः पार्थ, तामसी ॥ ३५ ॥ गुणभेदेन क्रियाणां कारकाणां च त्रैविध्यमुक्तम् । तत्फलस्य सुखस्य त्रैविध्यमाह—**सुखं त्वित्यादिना ।** अभ्यासात्पौनःपुन्येन सेवनात् यत्र सात्त्विके राजसे तामसे वा सुखे रमते रतिं प्राप्नोति । यया रत्या दुःखस्य पुत्रशोकादेरप्यन्तमवसानं निगच्छति निश्चयेन प्राप्नोति । तत्सुखं त्रिविधं शृणु । यदा त्वयमप्यर्थः सात्त्विकसुखस्यैव-

**यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।**
**तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७**

**विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।**
**परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८**

**यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।**
**निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९**

**न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।**
**सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४०**

**ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणां च परंतप ।**
**कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१**

**शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।**
**ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२**

लक्षणार्थस्तदा यत्र समाधिसुखे अभ्यासाद्रमते नतु विषयसुख इव रागात् दुःखान्तं मोक्षं च निगच्छतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ यत्तत्प्रसिद्धं सर्वप्राणिप्रेमास्पदम् अग्रे समारंभकाले मनःप्राणेन्द्रियस्पंदनिरोधेन यज्ञे संज्ञप्यमानस्य पशोरिव जायमानम् । विषमिवातितीव्रवेदनाकरम् । परिणामे सात्त्विक्या धृत्या निरुद्धासु मनआदिक्रियासु अमृतोपममत्याह्लादकरम् । आत्मनः स्वस्यैव बुद्धेः प्रसादो नैर्मल्यं रजस्तमोमलराहित्यं तस्मादाविर्भूतं न तु विषयसंगजं निद्रालस्यादिजं वा तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तम् ॥ ३७ ॥ राजसं सुखमाह— **विषयेति** । अग्रे भोगकाले । परिणामे विषमिव वियोगकाले । इहामुत्र च दुःखप्रदत्वात् ॥ ३८ ॥ अग्रे आरंभे अनुबन्धे परिणामे । मोहनं मोहकरं । आत्मनो बुद्धेः यतो निद्रादिजम् ॥ ३९ ॥ प्रकरणार्थमुपसंहरत्यनुक्तमपि संगृह्णन् न तदस्तीति । सत्त्वं प्राणिजातम् । इदमुपलक्षणं जडस्यापि । सर्वस्य त्रिगुणविकारत्वात् । प्रकृतिजैर्जन्मान्तरीयधर्माधर्मसंस्कारजैर्मायाप्रभवैर्वा । शेषं स्पष्टम् ॥ ४० ॥ एवं पञ्चदशे संसाराश्वत्थमसंगशस्त्रेण छित्त्वा परं पदं मार्गितव्यमित्युक्तं तत्रात्मनोऽसङ्गत्वोपपादनाय क्रियाकारकफललक्षणस्य कृत्स्नस्य संसारस्य त्रिगुणात्मकत्वमुक्तम् । न ह्यात्मानात्मनोर्गुणातीतगुणात्मकयोः संगः संभवति । न ह्याकाशान्तर्वर्तिपृथिव्यादिगुणेन गन्धादिनाऽऽकाशः संसृज्यते तद्वदित्युक्तम् । समासः शास्त्रार्थः ।

अथेदानीं सर्वगीताशास्त्रार्थमुपसंहर्तुमसंगशस्त्रास्त्युपायं च प्रदर्शयितुं प्रकरणान्तरमारभते—**ब्राह्मणेत्यादिना** । शूद्राणामसमासकरणं वेदानधिकारात् प्रविभक्तान्यसंकीर्णानि । तत्र हेतुमाह-स्वभावप्रभवैर्गुणैः **स्वभाव** ईश्वरस्य प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका सैव **प्रभवो** हेतुर्येषां गुणानां ते स्वभावप्रभवास्तैः । यद्वा । ब्राह्मणस्वभावस्य सत्त्वगुण एव प्रभवः शान्तत्वात् । क्षत्रियस्वभावस्य सत्त्वोपसर्जनं रजः ईश्वरस्वभावत्वात् । वैश्यस्वभावस्य तमउपसर्जनं रजः कृष्यादिस्वभावत्वात् । शूद्रस्वभावस्य रजउपसर्जनं तमः शुश्रूषास्वभावत्वात् । अथवा । स्वभावः प्राग्भवीयः संस्कारस्तत्प्रभवैर्नतु जातिमात्रप्रभवैः पक्षिणामाकाशगमनवत् । अत एव जात्यन्तरव्यावृत्तानां धर्माणां शमादिषु पाठो न दृश्यते । न हि शूद्राद्व्यावृत्तं त्रैवर्णिकानामध्ययनादिकं वा इतरद्व्यावृत्तं ब्राह्मणानामध्यापनादिकं वेह पठ्यते । किंतु सर्वे सर्वजातीयानां साधारणा धर्माः शमादयो दृश्यन्ते । यथा हि द्रोणादिषु ब्राह्मणेष्वपि शौर्यादिकं, भरतादिषु क्षत्रियेष्वपि शमादिकं दृष्टं, एवमितरत्र । तस्माद्यस्मिन्कस्मिंश्चिद्वर्णे शमादयो दृश्यन्ते स शूद्रोऽप्येतैर्लक्षणैर्ब्राह्मण एव ज्ञातव्यः । यत्र च ब्राह्मणेऽपि शूद्रधर्मा दृश्यन्ते स शूद्र एव । तथारण्यके सर्पभूतं नहुषं प्रति युधिष्ठिरवाक्यम्—

' सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यते यत्र नागेंद्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ' ।

तथा—

' यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ' इति ।

जातिधर्मास्तु मनुना दर्शिताः—

' अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥
प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिं च क्षत्रियस्य समादिशत् ॥
पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥
एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ' इति ।

तस्मात् शमादयो यत्राब्राह्मणे ब्राह्मणे वा दृश्यन्ते स एव ब्राह्मण इत्यत्र विवक्षितम् । ' स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते परम् ' इत्यत्र तु मनूक्तान्यध्यापनादीन्येव स्वकर्माणि ग्राह्याणि न तु शमदमादीनि । नहि ज्ञानविज्ञानवतोऽन्या संसिद्धिर्लब्धव्याऽस्ति । तस्माच्छमदमादयो ब्रह्मिष्ठस्यैव ब्राह्मणस्य लक्षणमिति दिक् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणकर्माण्याह— **शम इति** । अन्तःकरणनिग्रहः **शमः** । बाह्येंद्रियनिग्रहो **दमः** । **तपः** पूर्वोक्तं शारीरादिभेदेन त्रिविधम् । **शौचं** बाह्यं मृज्जलाभ्यामाभ्यन्तरं भावशुद्धिः । क्षान्तिः **क्षमा** । आर्जवमकौटिल्यम् । ज्ञानं शास्त्रीयं कर्म ब्रह्मविषयम् । **विज्ञानं**

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३
कृषि-गोरक्ष-वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ ४६
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ ४८
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥४९
सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५०
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥५१

तदनुष्ठानानुभवात्मकम् । आस्तिक्यं श्रद्धा । एतन्नवकं ब्रह्मकर्म ब्राह्मणत्वजात्यभिव्यञ्जकं कर्म । स्वभावजं प्राचीनधर्मसंस्कारजम् ॥ ४२ ॥ **शौर्यं** पराक्रमः । **तेजः** प्रागल्भ्यम् । **धृतिः** धैर्यम् । **दाक्ष्यं** युद्धे कौशलमुत्साहो वा । **दानमौदार्यम्** । **ईश्वरभावः** उन्मार्गवर्तिनां नियमनशक्तिः । एतत्क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥ वैश्यशूद्रयोः कर्माण्याह—**कृषीति** । स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ ४४ ॥ कर्मप्रविभागफलमाह—**स्वे स्वे इति** । स्वे स्वे मन्वादिभिरुक्तेऽध्यापनादावसाधारणे शमदमादौ साधारणे च कर्मण्यभिरतो निष्ठावान् संसिद्धिं ज्ञानयोग्यतां लभते नरः । एतदेव विवरीतुं प्रतिजानीते—**स्वेति** । सिद्धिं वक्ष्यमाणां मुख्यसंन्यासलक्षणां नैष्कर्म्यसिद्धिं यथा येन प्रकारेण ॥ ४५ ॥ तमेव प्रकारमाह—**यत इति** । प्रवृत्तिः कायवाङ्मनोनिर्वर्त्या चेष्टा । यतो हेतोरन्तर्यामिणः । 'येन वागभ्युद्यते' इत्यादिश्रुतेः । येन इदं सर्वं दृश्यं ततं व्याप्तमुपादानत्वात् स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य संतर्प्य सिद्धिं मोक्षं विन्दति लभते मानवः । मनुष्याधिकारिकत्वाच्छास्त्रस्य परमेश्वरे नित्यकर्मणामर्पणमेव मोक्षद्वारमित्यर्थः ॥ ४६ ॥ स्वकर्मणेति विशेषणस्य फलमाह—**श्रेयानिति** । स्वधर्मो **विगुणः** किञ्चिदङ्गहीनोऽपि श्रेयान् प्रशस्यतरः । किमपेक्ष्य श्रेयान् । परधर्मात्स्वनुष्ठितात् सम्यग्विहितादपि । उक्तं च—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' इति । स्वभावनियतं पूर्वोक्तात्रिविधस्वभावाज्जातं कर्म कुर्वन् किल्बिषं दोषं नाप्नोति । विषकृमेर्विषमिव न दोषकरम् । तस्मात्तव भैक्ष्यं हिंसाशून्यमपि न युक्तं किन्तु हिंसायुक्तोऽपि स्वधर्म एव प्रशस्यतरः । धर्मत्वेन विहितेऽस्मिन्नग्नीषोमीयपश्वालम्भे इव कृते सति न किल्बिषप्रसङ्गोऽस्तीत्यर्थः ॥ ४७ ॥ किञ्च सहजं स्वाभाविकं क्षात्रं कर्म सदोषं हिंसामिश्रमपि न त्यजेत् । हि यस्मात्सर्वारम्भाः सर्वाणि कर्माणि दोषेण हिंसादिना आवृता एव । यस्माच्च परधर्मो भयावहस्तस्मात्स्वकर्म न त्यजेदित्यर्थः ॥ ४८ ॥ स्वकर्मणामीश्वरे समर्पणं कर्तव्यमित्युक्त्वाऽनन्तरश्लोकद्वयेन स्वकर्मणामावश्यकत्वमुक्त्वा तेषां परमेश्वरेऽर्पणेन किं फलं स्यादित्यत आह—**असक्तेति** । संन्यासेन—

'कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः' ॥

—इति पूर्वोक्तेनामुख्यसात्त्विकत्यागेन । असक्तबुद्धिः पुत्रदारादिषु सक्तिपदेष्वासक्तिवर्जिता बुद्धिर्यस्य सोऽसक्तबुद्धिर्विरक्त इत्यर्थः । अत एव जितात्मा शान्तचित्तः विगतस्पृहः विशेषेण गता स्पृहा तृष्णा यस्य तादृशो भूत्वा नैष्कर्म्यसिद्धिं कार्त्स्न्येन स्वरूपतः कर्मत्यागलक्षणां पारिव्राज्यसिद्धिं परमां पूर्वोक्तां मुख्यत्यागापेक्षयाऽतिश्रेष्ठां न द्वेष्ट्यकुशलं कर्मेति श्लोके व्याख्यातां अधिगच्छति प्राप्नोति ॥ ४९ ॥ स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दतीत्येतत्प्रतिज्ञातमुपपादितम् । इदानीं नैष्कर्म्यसिद्धिं प्राप्तोऽपि परिव्राड् वशीकारसंज्ञवैराग्यवान् यथा ब्रह्म प्राप्नोति तथा वक्तुं प्रतिजानीते—**सिद्धिमिति** । सिद्धिं नैष्कर्म्यसिद्धिं निबोध बुध्यस्व मे मद्वचनात्समासेन संक्षेपेणैव हे कौन्तेय, या यत्प्राप्यं ब्रह्म । विधेयापेक्षं स्त्रीत्वम् । ज्ञानस्य परा निष्ठा यदपेक्षयाऽन्यज्ज्ञेयमान्तरतरं नास्तीत्यर्थः ॥५०॥ तमेव ब्रह्मप्राप्तिप्रकारमाह त्रिभिः—**बुद्ध्येति** । बुद्ध्या वेदान्तश्रवणमननपरिपाकोत्थयाऽहंब्रह्मास्मीति परोक्षनिश्चयरूपया विशुद्धया सर्वभूतेषु मैत्र्यादिभावनया सम्यग्विशोधितया । धृत्या धैर्येण योगक्षेमादिनिमित्तवैयग्र्यराहित्येन । आत्मानं देहेन्द्रियसङ्घातं नियम्य दृढासनो भूत्वेत्यर्थः । चकारात्प्राणं च नियम्य शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा तत इन्द्रियाणि प्रत्याहृत्येत्यर्थः । प्रत्याहृतकरणोऽप्यन्तर्मनसैव विषयान्स्मरति तत्परित्यागमाह—**रागद्वेषौ व्युदस्य चेति** । संकल्पं त्यक्त्वेत्यर्थः । स हि विषयं परिकल्प्य तत्र रागं जनयतीति प्रसिद्धम् । यथा **चाक्षपादाचार्यसूत्रम्**—'दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः' इति । दोषो रागादिः चकारादयमहमस्मीत्येतमपि भावं व्युदस्येति

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५

ज्ञेयम् । ततो ब्रह्मभूयाय ब्रह्मभावाय तं प्राप्तुं कल्पते योग्यो भवतीति तृतीयेन सम्बन्धः ॥५१॥ केन साधनजातेनैवंभूतो भवतीत्यत आह—विविक्तेति । यतत्त्वच्छब्दाध्याहारेण योज्यं, नित्यमिति सर्वत्र सम्बन्धनीयम् । यो नित्यं विविक्तसेवी एकान्तशीली । लघ्वाशी मिताशनशीलश्च । तथा नित्यं वैराग्यं रागाभावं समुपाश्रितश्च । तथा नित्यं ध्यानयोगः षष्ठाध्यायोक्तस्तत्परश्च यो नित्यं भवति स यतवाक्कायमानसो भवति । यतकाय आसनदार्ढ्येन । यतवाग् विषयेभ्य इन्द्रियाणां प्रत्याहरणेन । यतमानस सर्वसङ्कल्पत्यागेन । अत्र चतुर्भिः साधनैर्यतवाक्कायमानसत्वं साध्यम् । नित्यं विविक्तसेवादिशीलः सन् यतवाक्कायमानसो भूत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पत इत्युत्तरेणान्वयः ॥ ५२ ॥ एवं यतवाक्कायमानसस्य योगिनो योगजाः सिद्धय उपतिष्ठन्ति ताश्च श्रुतौ दर्शिताः—

'पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तत्र रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ' इति ॥

तथा— 'यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ '

इति च । संविभाति संकल्पयति, लोकं लोचनीयमतीतानागतमर्थजातं, कामान् काम्यमानान् विषयान् जयते उपलभते इति श्रुतिपदानामर्थः । तथा —

'नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ' इति ॥

प्रज्ञानेन शास्त्राचार्योपदेशजेन ज्ञानेन दुश्चरितादिसेवनाद्विरक्तः शान्तो जितचित्तः समाहितो निरुद्धचित्तः तत्प्रशान्तमानसो योगैश्वर्यासक्तचित्तः एनमात्मानं न प्राप्नुयादिति श्रुत्यर्थः । तदिदमाह—अहङ्कारमिति । यदा तु योगी यतमानसोऽस्मितामात्रप्रत्ययो भवति तदा सैवास्मितावस्थितिर्विषयाभिमुखाऽहङ्कार इत्युच्यते, विषयविमुखा त्वस्मितेति ततस्तमहङ्कारं निगृह्णीयात् । तदनिग्रहे योगी बलं सत्यसङ्कल्पत्वादिसामर्थ्यमात्मनः पश्यन् दर्पं करोति न मत्तुल्योऽन्योऽस्तीति मन्यते । ततश्च दृप्तो धर्ममतिक्रामतीत्यापस्तम्बवचनाद्दिव्यान्कामानिच्छति । तत्र केनचिन्निमित्तेन कामप्रतिबन्धे सति क्रोधवान्भवति । ततः परोत्सादनाय भूयांसं शिष्यादिपरिग्रहं करोति ततः नश्यतीति । तस्मात्सर्वानर्थमूलभूतमहङ्कारमेव विमुच्य तत इतरान् सर्वान् विमुञ्चति । अहङ्काराविमोकेऽपि निर्ममत्वं तत्प्रदर्शितेषु विषयेषु ममताशून्यत्वे सत्यहङ्कारः शिथिलीभूतो विषयवैमुख्यं प्राप्य स्वकारणेऽस्मितायां विलीयते । ततः शान्तोऽस्मिताया अपि प्रलयात्सिन्धौ नाभिवदुपरतो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥ अथैवं शान्तस्य केवलस्य योगिनो व्युत्थानावस्थामाह—ब्रह्मभूत इति । यो हि सौ लये वा निपतितो योगी व्युत्थाय जडदेहस्तमोग्रस्तचित्त इव तन्द्रालुस्तिष्ठति । ब्रह्मभूतस्तु प्रसन्नात्मा प्रसन्नचेताः लघुशरीरः अमृतेनेव समाधिसुखेन तृप्तस्तदेकप्रवणो न शोचति नष्टम् । नाप्यप्राप्तं काङ्क्षति दारादिकं, सर्वेषु भूतेषु चतुर्विधेषु समः ब्रह्मैवेदं सर्वमितिबुद्ध्या वैषम्यवर्जितः सन् परां मद्भक्तिं द्वैतदृष्टिविवर्जितां भावनां लभते । पातञ्जलयोगी तु न युञ्जाने परां दृष्टिं लभते भेददर्शित्वात् । अयं च भक्तः श्रीभागवते दर्शितः—

'सर्वभूतेषु येनैकं भगवद्भावमीक्षते ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ' इति ।

सोऽयं चतुर्थो भक्तो 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ' इति भगवताऽपि दर्शितः ॥ ५४ ॥ अस्या अद्वैतात्मतत्त्वज्ञानलक्षणाया भक्तेः फलमाह—भक्त्येति । मा उक्तविधया भक्त्या ज्ञानी अभितः साकल्येन जानाति । साकल्यमेवाह—यावानिति । किमहमणुपरिमाणो वा देहसंमितो वा तार्किकाणामिवाकाशवत्सकलमूर्तद्रव्यसंयोगित्वलक्षणविभुत्वाश्रयो वा सप्रपञ्चाद्वैतवादिनामिव स्वगतभेदवान्वाऽखण्डैकरसो वेति परिमाणतस्तत्त्वतो मा तत्पदार्थं जानाति । तथा यश्चास्मीति । देहेन्द्रियप्राणमनसामन्यतमः कियत्कालस्थायी वा क्षणिकविज्ञानरूपो वा शून्यं वा, कर्ता भोक्ता वा, जडो वा, अजडरूपो वा, चिद्रूपो भोक्ता वा, कर्तृत्वभोक्तृत्ववर्जित आनन्दघनो वेति तत्त्वतः सर्वसंशयराहित्येन मामजममरमभयमशोकं जानाति । तथा च श्रुतिः—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ' इति

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ६०
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१

आत्मदर्शने सति सर्वसंशयोच्छेदं दर्शयति । एवं 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत' इत्युक्तेः सर्वक्षेत्रेष्वेकं मां विभुं सच्चिदानन्दघनं तत्त्वतो ज्ञात्वा सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं याथात्म्येन ज्ञात्वा साक्षात्कृत्य ततो व्याप्तो ब्रह्मभावं गतो भवतीत्यर्थः । 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः । यद्वा तत इति कारणब्रह्मभावापत्तिः सार्वात्म्यरूपा प्रथममुक्ता । 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' 'स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्' इत्यादिश्रुतिभ्यो मुक्तानां सार्वात्म्यावगमात् ततमं ततत्तमं, एकस्तकारश्छान्दस्यां प्रक्रियायां लुप्तो द्रष्टव्य इति **श्रुतिभाष्यम्** । अनन्तरं कारणभावापत्तेरनुपदमेव तत् ब्रह्म तच्छब्दाभिधेयम् 'तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति' इति श्रुतेः । शुद्धं ब्रह्म विशते दर्पणापाये प्रतिबिम्बो बिम्बमिव प्रविशति। कार्योपाधीनां जीवानां कारणोपाधीश्वरप्राप्तिद्वारैव निष्कलब्रह्मप्राप्तिरित्यावेदितं प्रागेव । यद्वा मां ज्ञात्वा तद्विशते इत्येतावतैव ज्ञानप्रवेशयोः पौर्वापर्ये सिद्धे तदनन्तरमिति पदेन तच्छब्देन बुद्धिस्थं देहं परामृश्य तत्पातानन्तरमिति व्याख्येयम् । यतो जातेऽपि तत्त्वज्ञाने यावद्देहपातं प्रारब्धकर्मणां प्रतिबन्धाद्विदेहकैवल्यं न प्राप्यते । अन्यथा ज्ञानसमकालमेव देहपातापत्तिः स्यात्। 'विमुक्तश्च विमुच्यते' 'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः' इति मुक्तस्य मुक्तिं निवृत्तायाश्च मायायाः पुनर्निवृत्तिं वदज्जीवन्मुक्तिशास्त्रं बाधितं स्यात् । यथा तार्किकाणां नष्टेऽपि समवायिकारणे पटादिकं क्षणमात्रमवतिष्ठते एवमस्माकमप्यनादिकालाया देहाद्युपादानभूताया अविद्याया विनाशेऽपि किञ्चित्कालं देहादिप्रतिभानं युज्यते । ईदृशमेव जीवन्मुक्तमपेक्ष्य भगवता उक्तम्—'उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' इति । स्थितप्रज्ञलक्षणस्मृतिरपि तल्लक्षणाभिधित्सयैव प्रवृत्ते इति दिक् ॥ ५५ ॥ ननु 'तद्यथेषीकतूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति पूर्वकर्मणां ज्ञानेन प्रायश्चित्तेनेव सत्यपि नाशश्रवणे ज्ञानोत्तरकालीनानां कर्मणां नाशाभावाज्ज्ञानोत्तरमपि देहधारणे स्वाभाविकानां कर्मणां वर्जनस्यासंभवादवश्यं ज्ञानिनोऽपि बन्धः स्यादित्याशङ्क्याह-**सर्वकर्माणी**ति । मद्व्यपाश्रयोऽहमेव प्रज्ञानघनः प्रत्यगात्मा व्यपाश्रय आश्रयो यस्य स मद्व्यपाश्रयो ज्ञानी । सर्वकर्माणि विहितानि निषिद्धानि वा सदाऽसकृत् कुर्वाणोऽपि मत्प्रसादान्मदनुग्रहाच्छाश्वतं नित्यं अव्ययं परमसर्वोत्कृष्टं पदं पदनीयं मोक्षमवाप्नोति । ननु ज्ञानोत्तरमपि क्रियमाणैः कर्मभिर्बध्यते । 'तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्' इति । 'न ह वा एवंविदि किंचन रज आध्वंसते' 'तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेन' इत्यादिशास्त्रेण तत्त्वज्ञानिनः कर्मालेपश्रवणात् ॥ ५६ ॥ एवं वर्णाश्रमादिधर्मपुरस्कारेण ससाधना सफला च ब्रह्मविद्या निरूपिता । अस्याः प्राप्तये पुनः साधनत्वेन भक्तिमेव विधत्ते—**चेतसेति** । चेतसा विवेकबुद्ध्या सर्वाणि कर्माणि नित्यनैमित्तिकानि मयि भगवति वासुदेवे संन्यस्य 'यत्करोषि यदश्नासि' इत्युक्तरीत्या समर्प्य मत्परः अहमेव परः प्राप्यो यस्य नतु मद्भक्त्या अर्थादीन् प्रार्थयानः । बुद्धियोगं पूर्वोक्तं सिद्ध्यसिद्ध्योः समत्वलक्षणं बन्धहेतोरपि कर्मणो मोक्षहेतुत्वसंपादकं उपाश्रित्य आश्रित्य मच्चित्तः मदेकशरणः सततं सर्वदा भव ॥ ५७ ॥ एतस्य भक्तियोगस्य करणे गुणमकरणे दोषं चाह—**मच्चित्त इति** । दुर्गाणि आध्यात्मिकाधिलौकिकादीनि संकटानि । अहंकारात्स्वपाण्डित्याभिमानात् न श्रोष्यसि मद्वाक्यं तर्हि विनङ्क्ष्यसि पुरुषार्थशून्यो भविष्यसि ॥ ५८ ॥ स्वतन्त्रोऽहं त्वदुक्तं न करिष्यामीत्याशंक्याह-**यदिति**। यत् यदि अहङ्कारं गर्वमाश्रित्य न योत्स्ये युद्धं न करिष्ये इति मन्यसे एष ते तव व्यवसायो निश्चयो मिथ्या । यतः प्रकृतिः क्षात्रस्वभावस्त्वां नियोक्ष्यति । 'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति' इति चोक्तम् ॥५९॥ 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' इत्येतदेव व्याचष्टे—**स्वभावजेनेति** । स्वभावजेन पूर्वोक्तेन शौर्यादिना अवशोऽपि परवश एव तत्करिष्यसि ॥६०॥ कोऽसौ परो यद्वशोऽहमस्मीत्यत आह—**ईश्वर इति** । ईश्वर ईशनशीलोऽन्तर्यामी पृथिव्यादीनामस्माकं च सर्वभूतानां सर्वप्राणिनां हृद्देशे बुद्धिगुहायां सर्वप्राणिप्रवर्तकस्तिष्ठति ।

**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।**
**तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्**
**इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।**
**विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३**
**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।**
**इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ६४**
**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।**
**मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ ६५**
**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ६६**

र्वादृशः । सर्वभूतानि भ्रामयन् ऊर्ध्वाधोमार्गेषु संचारयन् काष्ठपुत्तिका इव सूत्रधारः यन्त्रारूढानि यन्त्रमिव यन्त्रं उत्क्रमणादिसाधनं सर्वप्राणात्मकं लिङ्गं तदारूढानि मायया स्वशक्त्या भ्रामयन्निति संबंधः । हे अर्जुन शुक्र विशुद्धान्तःकरण, परेश्वरोऽसीति भावः । अत्राहंकारपूर्वकं यः कर्म करोति यश्च ईश्वरपरवशोऽहं करोमीतिबुद्ध्या करोति तयोरत्यन्तवैलक्षण्यप्रदर्शनार्थो मन्त्रो भाष्ये उदाहृतः—'अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः' इति भारद्वाजार्षं 'अहश्च कृष्णमहरर्जुनं चेत्य ग्निमारुतस्य प्रतिपत्' इति ब्राह्मणेन आग्निमारुते शस्त्रे विनियुक्ता प्रथमैयमृक् । यस्मिन् दिवसे सोमः सूयते यागार्थं तदेव जन्मसाफल्यदिनं मुख्यमहःशब्दवाच्यम् । अन्यत्तु दिनमदिनमेव निष्फलत्वात् । तथा च स्मृतिः—

'दशभिर्जन्मभिर्विद्वा आधानं शतजन्मभिः ।
सहस्रैर्जन्मभिः सोमं ब्राह्मण्यं पातुमर्हति '

इति सोमयागस्य दौर्लभ्यं दर्शयति । तदयमहःशब्दः कालवचनोऽपि सौम्ये कर्मणि वर्तते । यथा दर्शपौर्णमासशब्दो । तत्रैवं सति अहः यागः कृष्णं अविदुषा कृतमप्रकाशमिव भवति । तथाऽहरर्जुनं स्वच्छं तदेव विदुषा कृतं प्रकाशरूपमिव भवति । ते एते उभे अपि विद्वदविद्वत्कृते अहनी रजसी प्रवृत्तिरूपत्वाद्रजोगुणकार्ये अपि वेद्याभिर्वेद्याभिः कर्माङ्गावबद्धोपासनारूपा वा परमेश्वरे सर्वकर्मार्पणरूपा वा अहंकरोमीत्यभिमानरूपा वा विद्या विज्ञानानि ताभिर्विवर्तेते वैपरीत्येन वर्तेते सोपासनं कर्म श्वेतं परमात्मतत्त्वप्रकाशकं बन्धविच्छेदहेतुः। मूढकृतं कर्म कृष्णं स्वरूपावरकं बन्धहेतुरित्यर्थः । तदेव भगवान् पार्थ अर्जुनेति संबोधयन् एतस्य स्वच्छान्तःकरणत्वद्योतनेन शुक्रे धर्मेऽधिकारं दर्शयति ॥ ६१ ॥ तमेव ईश्वरं सर्वभावेन सर्वात्मना शरणमाश्रयं गच्छ आश्रय। तत्प्रसादात् तदनुग्रहात्परां शान्तिं उपरतिं समाधिमिति यावत् । तथा च सूत्रम्—'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्' इति । स्थानं च परं विष्णोः पदं मोक्षं शाश्वतं नित्यं प्राप्स्यसि ॥ ६२ ॥ सर्वगीतार्थमुपसंहरति—**इतीति** । इति एवंप्रकारं ते तुभ्यं मया सर्वज्ञेन परमकारुणिकेन ज्ञानं आख्यातम् । गुह्यान्मंत्रतन्त्ररसायनरूपाद् गुह्यतरं अतिशयितं रहस्यम् । एतद्यथोक्तं शास्त्रार्थजातं विमृश्य सम्यगालोच्य **यथेच्छसि तथा कुरु** ॥ ६३ ॥ एवं यथेष्टकरणमभ्यनुज्ञायाप्यतिवात्सल्यात् श्लोकद्वयेनैव कृत्स्नं शास्त्रार्थमुपदेक्ष्यंस्तद्ग्रहणे ऐकाग्र्यमस्य संपादयितुमाह—**सर्वेति** । सर्वेभ्यो गुह्येभ्यः अतिशयितं गुह्यं सर्वगुह्यतमं भूयः पुनरसकृदुक्तमपि मे मम वचनं शृणु । परमं परमार्थविषयत्वात् न लोभान्नापि भयात्त्वां वक्ष्यामि। किं तर्हि मे मम इष्टोऽसि परमाप्तोऽसि इति हेतोः दृढं अतिशयितं ते तव हितं यतस्ततो वक्ष्यामि । तव इष्टत्वात् वियायाश्च हितत्वात्तद्वचनं आप्ते त्वयि अवश्यं वक्तव्यमिति भावः ॥ ६४॥ तदेव गुह्यतमं हितमाह—**मन्मना इति** । अहं प्रत्यगात्मानन्दैकघनः परिपूर्णस्तदाकारं मनो यस्य स मन्मनाः भव । एतेन ब्रह्मात्माभेदोऽपि साक्षात्करणीय इत्युत्तरपदार्थ उक्तः । कथमेवंविधा ज्ञाननिष्ठा लभ्यतेऽत आह—**मद्भक्तो भव** । एतेन भगवदुपासनात्मको मध्यमपदार्थ उक्तः । कथमल्पपुण्यस्य भक्तिरुदेष्यतीत्यत आह—**मद्याजी** भगवदर्थकर्मकरणशीलो **भव** । एतेन कर्मप्रधान आद्यपदार्थो विवृतः । ननु यस्य भगवद्याजित्वं न संभवति दारिद्र्यात्स्थ्याद्यभावाद्वा तस्य भगवद्भक्तिर्दौर्लभ्यात्तदाकारा चेतोवृत्तिर्दुर्लभतरेत्याशंक्याह—**मां नमस्कुरु** । प्राकृतभक्त्यैव प्रतिमादौ भगवन्तं सर्वोपचारसमर्पणेन नमस्कारादिना सम्यगाराधयेत्यर्थः । तथा चाश्वलायनो नमस्कारस्यैव यज्ञत्वमुदाहरति—'यो नमसा स्वध्वरः' इति । 'यज्ञो वै नमः इति हि ब्राह्मणं भवति' इति च । एवंमुक्तस्य सोपानत्रयारूढस्य फलमाह—**मामिति** । मामेव तत्पदार्थं सर्वजगत्कारणं सर्वेश्वरं सर्वशक्तिमखंडैकरसं त्वं एष्यसि प्राप्स्यसि । बिम्ब इव प्रतिबिम्बं, घटाकाश इव महाकाशम् । अस्मिन्नर्थे शपथं करोति । ते तव पुरः सत्यं अबाधितार्थभूतं प्रतिजाने प्रतिज्ञां करोमि मामेवैष्यसीति । प्रियोऽसि मे यतस्त्वं मे मम प्रियोऽसि। अतः प्रतारणानर्हे त्वयि सत्यमेवाहं ब्रवीमीत्यर्थः ॥ ६५ ॥ एवं नमनयजनभजनमननक्रमेण सांख्यनिष्ठा उक्ता या पूर्वं ध्यानेनात्मनि पश्यन्तीत्यनेन श्लोकेन दर्शिता । इदानीं 'अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते । तेऽपि चातितरन्त्येव

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ ६७
य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७०
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥

मृत्युं श्रुतिपरायणाः ' इति केवलोपास्तिनिष्ठा योगाख्योक्ता तामाह-सर्वेति। सर्वेषां वर्णानामाश्रमाणां देहेन्द्रियबुद्धीनां च धर्मानग्निहोत्रादीन् सुखदुःखादांश्च त्यक्त्वा मामेकं सर्वेश्वरं सर्वसाक्षिं सोपाधिं निरुपाधिं वाऽखण्डैकरसमानन्दघनं परमात्मानं,शरणं शृणाति हिनस्त्यविद्यादीन्,क्लेशादीन् शरणमाश्रयः परायणं गच्छ प्राप्नुहि। मदेकशरणो भवेत्यर्थः। अत्र अन्नं भुक्त्वैव तृप्यति नतु जलमात्रं पीत्वेतिवत् हेतुत्वं क्त्वाप्रत्ययार्थः । सर्वधर्मपरित्यागेन मां शरणं व्रजेत्यर्थः । यथोक्तम्—' अनात्मदर्शनेनैव परात्मानमुपास्महे ' इति । एतस्य भगवच्छरणीकरणस्य फलमाह—अहं त्वेति । अहं प्रत्यगात्मा सूर्याद्यन्तर्यामी नारायणः । सकलपाप्मविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञातः सन् त्वा त्वां,सर्वपापेभ्यः सञ्चितक्रियमाणेभ्यो गोत्रवधादिजेभ्यो मोक्षयिष्यामि। मा शुचः शोकं माकार्षीः । तथा हि । तत्त्वज्ञानफलं पापास्पर्शः शोकतरणं च सर्वश्रुतिस्मृतिप्रसिद्धं, आदित्यान्तर्वर्तिनं नारायणं प्रकृत्य च्छान्दोग्ये श्रूयते—' स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद।' 'तरति शोकमात्मवित्' 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इति। उदितः ऊर्ध्वमितो गतः पापान्युत्क्रम्य गतो निष्पाप इति श्रुतिपदार्थः वर्णाश्रमधर्मसंन्यासपूर्वकं षष्ठाध्यायेनोक्तेन योगेन देहादीनां धर्मांश्च त्यक्त्वा निर्विकल्पमात्मानं साक्षात्कुर्वतो न कर्मलेप इत्यर्थः ॥ ६६ ॥ एवं श्लोकद्वयेन 'ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्' इति सांख्ययोगौ द्वितीयाध्याये दर्शितावुपसंहृत्य विद्यासम्प्रदायविधिमाह—इदमिति। अतपस्काय तप आलोचनं तद्रहिताय। अयत्नशीलायेत्यर्थः । अभक्ताय श्रद्धाहीनाय। अशुश्रूषवे गुरुसेवामकुर्वते । मां परमात्मानं योऽभ्यसूयति मदीयगुणासहिष्णुतया मयि दोषारोपपरो भवति तस्मै । नञः प्रत्येकं संबद्धत्वादेतेषां विशेषणानामन्यतमाभावेऽपि कदाचन महत्यपि संकटे इदं न वाच्यं नोपदेष्टव्यम्। अत्र—

' विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम ।
गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय
न मां ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ' ॥

इति श्रवणादसूयारहितायार्जवोपेतायाभ्यासशीलाय गुरुपरमेश्वराराधनपराय च एतद्रहस्यं देयं नान्यस्मै इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ एवं सम्प्रदायविधिमुक्त्वा सम्प्रदायकर्तुः फलमाह—य इदमिति । इदं परमं गुह्यं यो भक्तिहीनो मानपूजार्थी सन् मद्भक्तेष्वभिधास्यति सोऽपि तत एव पुण्यान्मयि परमेश्वरे चिदेकरसे परां भक्तिमद्वैतलक्षणामुपासनां कृत्वा तत्रादरं प्राप्य तामनुष्ठाय च मामेवैष्यति मुक्तिं प्राप्स्यतीत्यर्थः । असंशयः संशयोऽत्र नास्ति । स्मर्यते हि अजामिलादीनां भक्तिगन्धहीनानामपि पुत्रसंकेतितेन नारायणेति नाम्ना स्नेहवशादाहूयतां तावन्मात्रतुष्टेन भगवता सद्गतिर्दत्ता किमु वक्तव्यं यो वाचा एतावच्छास्त्ररहस्यं प्रतिपादयति । तस्य भक्तिलाभादिक्रमेण कृतकृत्यत्वं भविष्यतीति ॥ ६८ ॥ ननु अश्रद्धया कृतं सर्वं व्यर्थमिति त्वयैवोक्तं कथमभक्तस्याप्येतच्छास्त्राभिधानतो भक्त्यादिलाभः सम्भवेदित्याशंक्याह—न चेति । तस्मादेतच्छास्त्रप्रवर्तकादन्यो मनुष्येषु मे मम प्रियकृत्तमो न च कश्चिदस्ति, इयमेव मम महती वाचिकी भक्तिस्तां कृत्वा सोपानारोहक्रमेण मे मम प्रियतरो भविता भविष्यति । ' अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ' इति । न च भुवि एतस्मादन्यत्परमार्थसाधनमस्तीति भावः । अक्षरार्थः स्पष्टः ॥ ६९ ॥ अध्यापकस्य फलमुक्त्वाऽध्येतुः फलमाह—अध्येष्यते चेति । ज्ञानयज्ञेन निर्विकल्पसमाधिना इष्टः पूजितः स हि धर्ममेघनामा पुष्कलपुण्यवृष्टिकरस्तद्वत्तस्य शास्त्रस्याध्ययनमपीत्यर्थः । इति मे मम सर्वेश्वरस्य मतिः । तेनात्र स्तुतिमात्रमेतदिति न मन्तव्यं किंतु भूतार्थवाद एवायमिति भावः ॥ ७० ॥ प्रवक्तुरध्येतुश्च फलमुक्त्वा श्रोतुरपि फलमाह—श्रद्धावानिति । शृणुयादपि अक्षरश्रवणं कुर्यादपि किमु वक्तव्यमादरेणार्थग्रहणं यः कुर्यात्स उक्तं फलं प्राप्नुयादिति स्पष्टार्थः श्लोकः । तथा चोक्तं श्रीभागवते—

' वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं, पृच्छकं, श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ' इति॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ ७२

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३

सञ्जय उवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ७५
राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः

सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञोऽपि भगवाँल्लोकशिक्षार्थं शिष्यस्य ज्ञानं जातं न वेति पृच्छति । अन्यथा पुनः पुनः स्वयमेत्य उपदेशं कृतवता ऋभुणा निदाघ इव मयाऽयं शतकृत्वोऽप्युपदेशेन कृतार्थः कर्तव्य इत्याशयेनाह— **कच्चिदिति** । कच्चिदिति कामप्रवेदने । हे पार्थ, एतत्त्वया एकाग्रेण चेतसा श्रोतव्यं शब्दतोऽर्थतश्च बोद्धव्यमिति मम कामोऽस्ति । ततस्त्वां पृच्छामि किमिदं त्वया श्रुतमिति । श्रुतवतोऽपि तव अज्ञानकृतः संमोहो विपर्ययः अनात्मन्यात्मधीरूपः स्वधर्मे युद्धे चाधर्मधीरूपः इति स द्विविधोऽपि नष्टः कच्चित् । मच्छ्रमसाफल्यमिच्छुस्त्वामहं पृच्छामीत्यर्थः ॥ ७२ ॥ एवं पृष्टः स्वस्य कृतकृत्यतां ज्ञापयन्नर्जुन उवाच 'नष्टो मोहः' इति । **मोहः** पूर्वोक्तो द्विविधोऽपि नष्टः । **स्मृतिः** अयमहमस्मि परं ब्रह्मेत्यात्मानुसन्धानरूपा आत्मतत्त्वविषया लब्धा । यस्या लाभेन सर्वहृदयग्रन्थीनां 'यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः' इत्यत्रोदाहृतानां चिज्जडैक्यभ्रमप्रभवानां विमोक्षो भवति तथा च श्रूयते—'स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विमोक्षः' इति । त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत स्मृतिर्लब्धेति सम्बन्धः । स्थितोऽस्मि त्वच्छासने इति शेषः । गतसंदेहः नष्टसंदेहः इत्यनेनानात्मन्यात्मधीरूपो मोहो नष्ट इति दर्शितम् । करिष्ये वचनं तवेत्यनेन स्वधर्मे युद्धे चाधर्मधीरूपोऽपि मोहो नष्ट इति दर्शितम् ॥ ७३ ॥ समाप्तः शास्त्रार्थः । इदानीं कथाप्रबन्धमेवानुवर्तयन् सञ्जय उवाच—**इतीति** । अद्भुतं चेतसो विस्मयकरं रोमहर्षणं रोमाञ्चोद्भेदजनकम् । शेषं स्पष्टम् ॥ ७४ ॥ कथमयं त्वया दूरस्थयोरपि वासुदेवार्जुनयोः संवादः श्रुत इत्यत आह—**व्यासप्रसादादिति** । भगवता व्यासेन दिव्यं चक्षुःश्रोत्रादिकं मह्यं दत्तं येनाहं व्यवहितं विप्रकृष्टं वा सर्वं करतलामलकवद्विजानामि । अतो व्यासप्रसादादेतच्छास्त्रं परं गुह्यं गोप्यं अहं श्रुतवान् । योगं च 'पश्य मे योगमैश्वरम्' इति प्रतिज्ञापूर्वकं प्रदर्शितं वैश्वरूप्यं तमपि दृष्टवानिति शेषः । स्वयं कथयत इत्युक्ते 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' इति श्रुतेः स्वनिःश्वसितं वेदं शिष्याचार्यपरंपरया कथयत इत्यव्याप्ति । तदर्थं साक्षात्कथयतः इति । सृष्ट्यादौ ब्रह्माणं प्रति इदानीमर्जुनं प्रति साक्षात्कथयतः श्रुतवानहमित्यर्थः । तेन भगवदनुग्रहपात्रतया ब्रह्मणा समत्वं स्वस्य द्योत्यते । अत्र एतद्योगमित्यभेदेनान्वये तु गुह्यपदापेक्षया एतद्योगमिति पुन्नपुंसकलिङ्गयोरपि सामानाधिकरण्यं शक्यं च यत्किञ्चिदश्नताऽपि क्षुदुपहन्तुमित्यादाविव पूर्वप्रवृत्तलिङ्गसंस्कारप्राबल्यादुत्तरत्र भिन्नलिङ्गविशेष्यलाभेऽपि पूर्वसंस्कारो न निवर्तत इति सामानाधिकरण्यं विलिङ्गयोरपि वक्तुं शक्यमिति ज्ञेयम् ७५ केशवार्जुनसंवादश्रवणजं विश्वरूपाख्ययोगदर्शनजं चाह्लादं क्रमेण श्लोकद्वयेनाह—**राजन्निति** । हे राजन् हे धृतराष्ट्र, पुण्यं पुण्यकरं पापहरं चेत्यर्थात् संस्मृत्य संस्मृत्येति संभ्रमे द्विरुक्तिः । शेषं स्पष्टार्थम् ॥ ७६ ॥ **तच्चेति** । रूपं विश्वरूपं एतद्दर्शने हि 'ब्रह्माणमीशम्' इति देशतो विप्रकृष्टं 'वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति' इति कालतो व्यवहितं भीष्मादिक्षयं च करतलामलकवद्दृष्टवान् । तच्च जगतो मिथ्यात्वमन्तरेण न संभवतीति प्रतिपादितं **वेदान्तकतके**—

' अतीतानागतं वस्तु वीक्ष्यते करबिल्ववत् ।
योगी संकल्पमात्रोत्थमिति शास्त्रेषु डिण्डिमः ॥ १ ॥
मायायां सर्वदा सर्वं सर्वावस्थमिदं जगत् ।
अस्तीति तदुपाधिश्चित्सार्वात्म्यात्सर्वमीक्षते ॥ २ ॥
आरंभपरिणामाभ्यां स्वेन रूपेण यन्न सत् ।
अतीतानागतं वस्तु योगी तद्वीक्षतां कथम् ॥ ३ ॥
संकल्पमात्रभातं वस्त्वतीतादि यदीष्यते ।
नष्टस्त्रीदर्शनाभं तत्स्याद्योगिज्ञानमप्रमा ॥ ४ ॥
योगिसंकल्पमात्रेण तस्योत्पत्तिर्यदीष्यते ।
ईशसंकल्पमात्रेण सर्वोत्पत्तिस्तदेष्यताम् ॥ ५ ॥
आरंभे परिणामे वा देशकालाद्यतिक्रमः ।
नैव दृष्टः क्वचित्सोऽयं स्वप्नमायादिषु स्फुटः ॥ ६ ॥
युगपद्गृह्यते कुंभो नानादेशस्थयोगिभिः ।
जलसूर्य इवास्माभिस्तेनासौ कल्पितः स्फुटम् ॥ ७ ॥
योगिभिर्गृह्यमाणत्वाद्घटः सर्वत्र सर्वदा ।
सन्नेवास्तीति चेत्कार्यं कथमीदृग्विधं भवेत् ॥ ८ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ पर्वणि तु द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

समाप्तं भगवद्गीतापर्व ।

## भगवद्गीता-प्रशंसा ।

*वैशंपायन उवाच ।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ १ ॥
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥ २ ॥
गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते ।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३ ॥
षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत्सप्तषष्टिं तु सञ्जयः ॥ ४ ॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ।
भारतामृतसर्वस्वं गीताया मथितस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥ ५ ॥

---

व्यावृत्तं हीष्यते कार्यं युगपद्भिन्नदेशता ।
चेत्कल्पना विनास्येश्च दृष्टान्तस्तत्र नास्ति वः ॥ ९ ॥
तस्मात्ताणुभिरारब्धाभित्तिवन्नापि गव्यवत् ।
प्रकृतेः परिणामो वा जगत्किंत्विन्द्रजालवत् ॥ १० ॥
सत्यं बद्धदृशामिन्द्रजालं विश्वं परागृदृशाम् ।
आधिष्ठानात्ते शुद्धदृशां नास्त्येव तद्द्वयम्' इति ॥११॥

स्पष्टार्थो मूलश्लोकः ॥ ७७ ॥ यस्मादनन्तैश्वर्यो भगवांस्तदनुगृहीतोऽर्जुनश्च युधिष्ठिरपक्षेऽस्ति अतस्त्वया जयाशा कार्येत्याह--यत्रेति । यत्र पक्षे ध्रुवेति सर्वत्र संबध्यते श्रीर्दिव्यसभादिशोभा । विजयः प्रसिद्धः । भूतिरैश्वर्यं सर्वनियन्तृत्वम् । नीतिर्नयश्च । एतत्सर्वं तत्र तस्मिन्पक्षे ध्रुवमिति मम मतिः । अतः पाण्डवैः सह सन्धिरेव कर्तव्य इति भावः ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविंदसूरिसूनोः श्रीनीलकंठसूरिवर्यस्य कृतौ भारतभावदीपे भीष्मपर्वणि गीतार्थप्रकाशे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८ ॥
पर्वणि तु ॥ ४२ ॥

* इयं किल भगवद्गीता-प्रशंसाऽग्रिमाध्यायादौ स्थिताऽपीहौचित्यमालक्ष्यास्माभिः संगृहीता ।

# ४३
## भीष्मवधपर्व ४

वैशम्पायन उवाच ।
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसङ्ग्रहैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ १
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥ २
गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते ।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३
षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत्सप्तषष्टिं तु सञ्जयः ॥ ४
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ।
भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥ ५
सञ्जय उवाच ।
ततो धनञ्जयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् ।
पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ ६
पाण्डवाः सोमकाश्चैव ये चैषामनुयायिनः ।
दध्मुश्च मुदिताः शङ्खान् वीराः सागरसम्भवान् ॥ ७
ततो भेर्यश्च पेश्यश्च क्रकचा गोविषाणिकाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त ततः शब्दो महानभूत् ॥ ८
तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनाधिप ।
सिद्धचारणसङ्घाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥ ९
ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥ १०
ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते ।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ११
विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् ।
अवरुह्य रथात्क्षिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ १२
पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ १३
तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ १४
वासुदेवश्च भगवान् पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ।
तथा मुख्याश्च राजानस्तच्चित्ता जग्मुरुत्सुकाः ॥ १५
अर्जुन उवाच ।
किं ते व्यवसितं राजन् यदस्मानपहाय वै ।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ १६
भीमसेन उवाच ।
क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः ।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातॄनुत्सृज्य पार्थिव ॥ १७
नकुल उवाच ।
एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत ।
भीर्मे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान् क्व नु ॥ १८
सहदेव उवाच ।
अस्मिन् रणसमूहे वै वर्तमाने महाभये ।
उत्सृज्य क्व नु गन्ताऽसि शत्रूनभिमुखो नृप ॥ १९
सञ्जय उवाच ।
एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः ।
नोवाच वाग्यतः किञ्चिद्गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥ २०
तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥ २१
एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च ।
अनुमान्य गुरून् सर्वान् योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः ॥ २२
श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः ।
युध्यते स भवेद्व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः ॥ २३

### ४३

गीता सुगीता कर्तव्या इत्यादयः सार्धाः पञ्च श्लोका गौडैर्न पठ्यन्ते ॥ १ ॥ एवं गीतान्ते मन्मना भवेत्यादिना निष्कामानामात्मनिष्ठानामैवैष्यसीत्यात्मप्राप्तिश्च तत्फलभूता दर्शिता । सकामानां त्वर्थाधीना कामसिद्धिः । अर्थश्च सतामपि पाण्डवानामिव गुरुवधानृताद्याश्रयेणैव सिद्ध्यति सोऽपि बलवदनुग्रहात् । अन्येषां तु कौरवाणामिव साध्यमानो निरन्वयोच्छेदाय भवतीति दर्शयिष्यन् युद्धप्रधानं ग्रन्थं सौप्तिकपर्वान्तमारभतेऽर्थस्यानर्थहेतुत्वं विवरीतुं ततो धनञ्जयं दृष्ट्वेति । ततः अर्जुनस्य करिष्ये वचनं तवेत्येवं रूपप्रतिज्ञानंतरं धनञ्जयं युद्धार्थं सन्नद्धं दृष्ट्वेत्यर्थः ॥ ६ ॥ भेर्यो बृहत्यो ढक्काः । पेश्यः काहलाः । क्रकचा जयमंगलाः । गोविषाणिका गवादिशृंगजाणि । सहसा युगपदेव अभ्यहन्यन्त अवाद्यन्त ॥ ८ ॥ वरायुधं धनुःश्रेष्ठं अवरुह्य अवतीर्य ॥ १२ ॥ येन विजयार्थेन प्रयोजनेन स्वयं युधिष्ठिरः संग्रामे दृढबुद्धिस्तत्सिद्ध्यर्थं अभिप्रेक्ष्य आलोच्य प्रथमं पितामहं प्रति प्रययौ रिपुवाहिनीं प्रविश्येति शेषः ॥ १३ ॥ गौतमं कृपम् ॥ २२ ॥ पुराकल्पे प्राचीनशास्त्रे ॥ २३ ॥

अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युध्येन्महत्तरैः।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम ॥ २४
एवं ब्रुवति कृष्णेऽत्र धार्तराष्ट्रचमूं प्रति।
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन् ॥
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
मिथः संकथयाञ्चक्रुर्नेशो हि कुलपांसनः ॥ २६
व्यक्तं भीत इवाभ्येति राजाऽसौ भीष्ममन्तिकम्।
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः ॥ २७
धनञ्जये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे।
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम् ॥ २८
न नूनं क्षत्रियकुले जातः संप्रथिते भुवि।
यथाऽस्य हृदयं भीतमल्पसत्त्वस्य संयुगे ॥ २९
ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान्।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह ॥ ३०
व्यनिन्दंश्च तथा सर्वे योधास्तव विशांपते।
युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन हि ॥ ३१
ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम्।
निःशब्दमभवत्तूर्णं पुनरेव विशांपते ॥ ३२
किं नु वक्ष्यति राजाऽसौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥ ३३
विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत्।
उभयोः सेनयो राजन् युधिष्ठिरकृते तदा ॥ ३४
सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम्।
भीष्ममेवाभ्ययात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३५
तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ३६

युधिष्ठिर उवाच।

आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह।
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥ ३७

भीष्म उवाच।

यद्येवं नाभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत ॥ ३८
प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव।
यत्तेऽभिलषितं चान्यत्तदवाप्नुहि संयुगे ॥ ३९
व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकाङ्क्षसि।
एवंगते महाराज न तवास्ति पराजयः ॥ ४०
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ४१
अतस्त्वां क्लीबवद्वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन।
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ४२

युधिष्ठिर उवाच।

मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम नित्यशः।
युध्यस्व कौरवस्यार्थे ममैष सततं वरः ॥ ४३

भीष्म उवाच।

राजन्किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ४४

युधिष्ठिर उवाच।

कथं जयेयं सङ्ग्रामे भवन्तमपराजितम्।
एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि ॥ ४५

भीष्म उवाच।

नैनं पश्यामि कौन्तेय यो मां युध्यन्तमाहवे।
विजयेत् पुमान् कश्चित्साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४६

युधिष्ठिर उवाच।

हन्त पृच्छामि तस्मात्त्वां पितामह नमोऽस्तु ते।
वधोपायं ब्रवीहि त्वमात्मनः समरे परैः ॥ ४७

भीष्म उवाच।

न स्म तं तात पश्यामि समरे यो जयेत माम्।
न तावन्मृत्युकालोऽपि पुनरागमनं कुरु ॥ ४८

सञ्जय उवाच।

ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन।
शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्य च ॥ ४९
प्रायात् पुनर्महाबाहुराचार्यस्य रथं प्रति।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह ॥ ५०
स द्रोणमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ५१
आमन्त्रये त्वां भगवन् योत्स्ये विगतकल्मषः।
कथं जये रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥ ५२

---

मिथोऽन्योन्यं एषो हीति सुलोपाभाव आर्षः ॥ २६ ॥ व्यक्तं नियतं भीष्मस्य अन्तिकं समीपम् ॥ २७॥ धिक्कृत्वा धिक्कृत्य असमास आर्षः धिगित्यकरोदिति वा ॥ ३२॥ विवक्षितं वक्तुमिष्टम् ॥ ३३॥ पराभावाय पराकृतो निरस्तो भावः सत्ता यत्र सः तस्मै मरणायेत्यर्थः। पराभावश्चासावभावश्चेति विग्रहेऽपि स एवार्थः ॥ ३८ ॥ एवंगते ईदृगाचरणवति त्वयि ॥ ४० ॥ क्लीबवत् स्वोक्तस्य वरस्य युद्धादन्यदिति स्वेनैव संकोचनात्कातरवत् भृतः पोषितः युद्धात्प्रातिभट्यात् ॥ ४२॥ साह्यं साहाय्यम् ॥ ४४ ॥ श्रेयः प्रपश्यसि यदि वक्तुं योग्यमिति मन्यसे तर्हि वदेत्यर्थः ॥ ४५ ॥ तावत् संप्रति ॥ ४८ ॥ आत्मनिःश्रेयसं स्वाहितसाधनम् ॥ ५१ ॥ अहं रिपून् कथं जये तत्त्वं विगतकल्मषः सन्कथयेति शेषः।

द्रोण उवाच ।
यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ५३
तद्युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयाऽनघ ।
अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि ॥ ५४
करवाणि च ते कामं ब्रूहि त्वमभिकाङ्क्षितम् ।
एवंगते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ५५
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ५६
अतोऽस्म्येतत्क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ।
योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया ५७

युधिष्ठिर उवाच ।
जयमाशास्व मे ब्रह्मन् मन्त्रयस्व च मद्धितम् ।
युध्यस्व कौरवस्यार्थे वर एष वृतो मया ॥ ५८

द्रोण उवाच ।
ध्रुवस्ते विजयो राजन् यस्य मन्त्री हरिस्तव ।
अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून् विमोक्ष्यसे ॥५९
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।
युध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु यन्मेऽभिकाङ्क्षितम् ।
कथं जयेयं सङ्ग्रामे भवन्तमपराजितम् ॥ ६१

द्रोण उवाच ।
न तेऽस्ति विजयस्तावद्यावद्युद्ध्याम्यहं रणे ।
ममाशु निधने राजन् यतस्व सह सोदरैः ॥ ६२

युधिष्ठिर उवाच ।
हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदात्मनः ।
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते ६३

द्रोण उवाच ।
न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद्रणे स्थितम् ।
युध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम् ॥ ६४
ऋते प्रायगतं राजन्न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
हन्यान्मां युधि योधानां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६५
शस्त्रं चाहं रणे जह्यां श्रुत्वा तु महदप्रियम् ।
श्रद्धेयवाक्यात्पुरुषादेतत्सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६६

सञ्जय उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः ।
अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥ ६७
सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
उवाच दुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ६८
अनुमानये त्वां योत्स्येऽहं गुरो विगतकल्मषः ।
जयेयं च रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥ ६९

कृप उवाच ।
यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ७०
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ७१
तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः ।
अतस्त्वां क्लीबवद्ब्रूयां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ७२

युधिष्ठिर उवाच ।
हन्त पृच्छामि ते तस्मादाचार्य शृणु मे वचः ।
इत्युक्त्वा व्यथितो राजा नावाच गतचेतनः ७३

सञ्जय उवाच ।
तं गौतमः प्रत्युवाच विज्ञायास्य विवक्षितम् ।
अवध्योऽहं महीपाल युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ७४
प्रीतस्तेऽभिगमेनाहं जयं तव नराधिप ।
आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७५
एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य विशांपते ।
अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥ ७६
स शल्यमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ७७
अनुमानये त्वां दुर्धर्ष योत्स्ये विगतकल्मषः ।
जयेयं तु परान् राजन्ननुज्ञातस्त्वया रिपून् ॥ ७८

शल्य उवाच ।
यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय वै रणे ॥ ७९
तुष्टोऽस्मि पूजितश्चास्मि यत्काङ्क्षसि तदस्तु ते ।
अनुजानामि चैव त्वां युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ८०
ब्रूहि चैव परं वीर केनार्थः किं ददामि ते ।
एवंगते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ८१
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ८२

॥ ५२ ॥ ध्रुवोऽवश्यंभावी अभिजानामि अनुजानामि विमोक्ष्यसे शत्रून् जीवितादिति शेषः ॥५९॥ हंत विषादे ॥ ६३ ॥ प्रायगतं मरणाय नियतं अचेतनं योगबलेन त्यक्तदेहं योधानां मध्ये कश्चिदिति शेषः ॥ ६५ ॥ जह्यां त्यजेयं श्रद्धेयवाक्यात् आदेयवचनात् ॥ ६६ ॥ परान् प्रकृष्टान् ॥ ७८ ॥

करिष्यामि हि ते कामं भागिनेय यथेप्सितम् ।
ब्रवीम्यतः क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ८३

युधिष्ठिर उवाच ।

मंत्रयस्व महाराज नित्यं मद्धितमुत्तमम् ।
कामं युद्ध्य परस्यार्थे वरमेतं वृणोम्यहम् ॥ ८४

शल्य उवाच ।

किमत्र ब्रूहि साह्यं ते करोमि नृपसत्तम ।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ८५

युधिष्ठिर उवाच ।

स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥ ८६

शल्य उवाच ।

सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम् ।
गच्छ युध्यस्व विश्रब्धः प्रतिजाने वचस्तव ८७

सञ्जय उवाच ।

अनुमान्याथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम् ।
निर्जगाम महासैन्याद्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ८८
वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम वै ।
तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥ ८९
श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात्किल न योत्स्यसे ।
अस्मान्वरय राधेय यावद्भीष्मो न हन्यते ॥ ९०
हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगं ।
धार्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत्समम् ९१

कर्ण उवाच ।

न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणं ॥ ९२

सञ्जय उवाच ।

तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत ।
युधिष्ठिरपुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः ॥ ९३
अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत्पाण्डवाग्रजः ।
योऽस्मान्वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ९४
अथ तान् समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत् ।
प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ९५
अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान् ।
युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ ९६

युधिष्ठिर उवाच ।

एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् ।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥ ९७
वृणोमि त्वां महाबाहो युद्ध्यस्व मम कारणात् ।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ९८
भजस्वास्मान् राजपुत्र भजमानान्महाद्युते ।
न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ९९

सञ्जय उवाच ।

ततो युयुत्सुः कौरव्यान् परित्यज्य सुतांस्तव ।
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम्
ततो युधिष्ठिरो राजा संप्रहृष्टः सहानुजः ।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत्कनकोज्ज्वम् ॥ १०१
प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान् पुरुषर्षभाः ।
ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ १०२
अवादयन् दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
सिंहनादांश्च विविधान्विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥ १०३
रथस्थान् पुरुषव्याघ्रान् पाण्डवान् प्रेक्ष्य पार्थिवाः
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा ॥ १०४
गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान्मानयतां च तान् ।
दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥ १०५
सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् ।
दयां च ज्ञातिषु परां कथयांचक्रिरे नृपाः ॥ १०६
साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः ।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षणाः १०७
म्लेच्छाश्चार्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा ।
वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०८
ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्च सहस्रशः ।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान् दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः १०९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मादिसम्मानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इदं वक्ष्यमाणवचनं युधिष्ठिरं प्रत्यब्रवीत् ॥ ९५ ॥ भवतः भवत्संबंधी मिषत इति पाठे पश्यतस्तवेति शेषः ॥ ९६ ॥ तंतुः संततिः, पिंडः पितृमज्ञः, अन्ये सर्वे मरिष्यंतीति भावः ॥ ९८ ॥ भजस्वेति । अभजमानः सर्वोऽपि धृतराष्ट्रपुत्रो न भविष्यति मरिष्यतीत्यर्थः ॥ ९९ ॥ पुष्करान् दीर्घकहालान् एवपुष्करानिति पाठे मुरजान् ॥ १०३ ॥ गौरवं मान्यत्वम् ॥ १०५ ॥ सौहृदं मैत्रीं कृपां स्नेहं दयां परदुःखप्रहाणेच्छाम् ॥ १०६ ॥ कीर्तिमतां पांडवानां स्तुतिसंहिता वाच इति संबंधः ॥ १०७ ॥ आर्याः कुलीनाः वृत्तं चरितम् । ' मदप्रमदपीडादेर्वागभंगं गद्गदं विदुः ' ॥१०८॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

धृतराष्ट्र उवाच ।
एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवा नु किं ॥ १
सञ्जय उवाच ।
भ्रातृभिः सहितो राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥ २
तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः ।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः ।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः ॥ ४
उभयोः सेनयोर्राजंस्ततस्तेऽस्मान् समाद्रवन् ।
वयं तान् प्रतिनर्दंतस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ५
महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये
समागमे पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः ।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः
प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ ६
नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलाना-
मभ्यागतानामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां
वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ७
तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद्गोवृषो यथा ॥ ८
शंखदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम् ।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत् ॥ ९
हयानां हेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः ।
सर्वानभ्यभवच्छब्दान् भीमस्य नदतः स्वनः १०
तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः ।
जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम् ॥ ११
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
शब्देन तस्य वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ १२
दर्शयन् घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन् ।
विभीषयंस्तव सुतान् भीमसेनः समभ्ययात् १३
तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १४
दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मुखो दुःशलः शलः ।
दुःशासनश्चातिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृपः ॥ १५
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् १६
महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः ।
आददानाश्च नाराचान्निर्मुक्ताशीविषोपमान् १७
अथ ते द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १८
धार्तराष्ट्रान् प्रतिययुरर्दयन्तः शितैः शरैः ।
वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥ १९
तस्मिन् प्रथमसङ्ग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने ।
तावकानां परेषां च नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः २०
लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ ।
निमित्तवेधिनां चैव शरानुत्सृजतां भृशम् ॥ २१
नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा ।
विनिश्चेरुः शरा दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात् २२
सर्वे त्वन्ये महीपालाः प्रेक्षका इव भारत ।
ददृशुर्दर्शनीयं तं भीमं ज्ञातिसमागमम् ॥ २३
ततस्ते जातसंरम्भाः परस्परकृतागसः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन् व्यायच्छन्त महारथाः २४
कुरुपाण्डवसेने ते हस्त्यश्वरथसंकुले ।
शुशुभाते रणेऽतीव पटे चित्रार्पिते इव ॥ २५
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात् २६
युधिष्ठिरेण चादिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः ।
विनदन्तः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीम् ॥ २७

---

४४

एवमिति । एवं व्यूढेष्वित्यादिर्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रममित्यंतस्य सर्वातिशायी भीष्मस्य पराक्रम इति तात्पर्यार्थः ॥ १ ॥ क्ष्वेडाः सिंहनादाः मृदंगाः मर्दलाः मुरजाः क्षुद्रमर्दलाः ॥ ४ ॥ समाद्रवन् अन्योन्यं संगता अभूवन् ॥ ५ ॥ महान् समुच्छ्रयः संप्रहारो यत्र ॥ ६ ॥ गोवृषो बलीवर्दश्रेष्ठः ॥८॥ अभ्यभूत् अभिभूतवान् ॥९॥ सैन्याः सेनामुख्याः ॥ ११ ॥ नादयन् नादं कुर्वन् ॥१३॥ सोदर्याः राजानुजाः ॥ १४ ॥ निर्मुक्ताः मुक्तकंचुकाश्चाशीविषा उपमा येषां तान् ॥ १७ ॥ भीमः भयंकराः ज्यानां तलानां च निःस्वना ये तैः ॥ २० ॥ लाघवं क्षिप्रहस्तता निमित्तं लक्ष्यम् ॥२१॥ भीमं भयंकरम् ॥२३॥ जातसंरंभाश्चिरसंभृतकोपाः कृतागसः कृतापराधाः भीमोऽपि बाल्ये धार्तराष्ट्रान् मर्दयन्कृतापराधोस्तीत्युक्तं परस्परेति व्यायच्छंत व्यायामं चक्रुः ॥ २४ ॥ पटे इति सप्तम्यंतम् ॥ २५ ॥

उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः ।
अन्तर्धीयत चादित्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः २८
प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्तिनामपि ।
नात्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समदृश्यत ॥ २९
तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ।
अतिसर्वाण्यनीकानि पिता तेऽभिव्यरोचत ३०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि युद्धारम्भे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४ ॥

## ४५

सञ्जय उवाच ।
पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशाम्पते ।
प्रावर्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १
कुरूणां सृञ्जयानां च जिगीषूणां परस्परम् ।
सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीं च नादयन् ॥ २
आसीत्किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह ।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्जताम् ॥ ३
तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ ।
पत्तीनां पादशब्दश्च वाजिनां च महास्वनः ॥ ४
तोत्राङ्कुशनिपातश्च आयुधानां च निःस्वनः ।
घण्टाशब्दश्च नागानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ ५
तस्मिन् समुदिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
बभूव रथनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ ६
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्वे एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ७
अथ शान्तनवो राजन्नभ्यधावद्धनञ्जयम् ।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं कालदण्डोपमं रणे ॥ ८
अर्जुनोऽपि धनुर्गृह्य गाण्डीवं लोकविश्रुतम् ।
अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि ॥ ९
तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थं विद्ध्वा नाकम्पयद्बली ॥ १०
तथैव पाण्डवो राजन् भीष्मं नाकम्पयद्युधि ।
सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ११
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम्॥१२
आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम् ।
तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ॥ १३
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ ।
अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बलमयोधयत ॥ १४
ततः कोसलराजाऽसावभिमन्योर्विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत् १५
सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥ १६
अथापराभ्यां भल्लाभ्यां शिताभ्यामरिमर्दनः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ॥ १७
अन्योन्यं च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम् ।
मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम् ॥ १८
भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत् ।
तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ॥ १९
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे ।
तौ वीक्ष्य तु महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ २०
विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत ।
दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम् ॥ २१
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः ।
तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम् ॥ २२

---

अन्तर्धीयत अंतर्हितः । अभभाव आर्षः । सैन्येन सेनाभवेन ॥ २८ ॥ अति अतिक्रम्य ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

पूर्वाह्णे इति । तस्याह्नः पूर्वाह्णे पूर्वभागे ॥१॥ सृंजयानां पाञ्चालभेदानाम् ॥ २ ॥ तलं ज्याघातवारणम् ॥ ३ ॥ तोत्रं गजदमनं वेणुकाख्यं वेणुवृन्तसमाकारम् ॥५॥ रणमूर्धनि रणाङ्गणे ॥ ९ ॥ महेष्वासः महानिष्वासो धनुर्यस्य ॥११॥ आनर्च्छतुः पीडितवन्तौ तक्षमाणौ तनूकुर्वाणौ ॥ १३ ॥ पुष्पैः शबलौ विचित्रौ किंशुकौ पलाशौ ॥१४ ॥ शिताभ्यां तीक्ष्णाभ्यां ध्वजं चिच्छेदेत्यन्वयः । एकेन पार्ष्णिं पृष्ठगोपं एकेन सारथिमिति च ॥ १७ ॥ कृतिनौ युद्धकुशलौ ॥ २० ॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ २३
पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे ।
तुरङ्गांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैवाभ्यपातयत् ॥ २४
दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम् ।
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥ २५
सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महारणे ।
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥ २६
तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ ।
त्रासयेतां शरैर्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २७
युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात् ।
तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष ॥ २८
तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्बलवत्तरम् ॥ २९
ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ३०
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत ।
तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ॥ ३१
त्रिधा चिच्छेद समरे पाञ्चाल्यस्य तु कार्मुकम् ।
शरं चैव महाघोरं कालदण्डमिवापरम् ॥ ३२
प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत ।
अथान्यद्धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश ॥ ३३
द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम् ॥ ३४
सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि ।
प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३५
तस्य वै दक्षिणं वीरो निर्बिभेद रणे भुजम् ।
सौमदत्तिस्तथा शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत् ॥ ३६
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं विशांपते ।
दृप्तयोः समरे पूर्वं वृत्रवासवयोरिव ॥ ३७
बाह्लीकं तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशांपते ।
अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः ॥ ३८
बाह्लीकस्तु रणे राजन् धृष्टकेतुममर्षणः ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छन् सिंहनादमथानदत् ॥ ३९
चेदिराजस्तु संक्रुद्धो बाह्लीकं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ४०

तौ तत्र समरे क्रुद्धौ नर्दन्तौ च पुनः पुनः ।
समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकबुधाविव ॥ ४१
राक्षसं रौद्रकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः ।
अलम्बुषं प्रत्युदियाद्बलं शक्र इवाहवे ॥ ४२
घटोत्कचस्ततः क्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ।
नवत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्दारयामास भारत ॥ ४३
अलम्बुषस्तु समरे भैमसेनिं महाबलम् ।
बहुधा दारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४४
व्यभ्राजेतां ततस्तौ तु संयुगे शरविक्षतौ ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४५
शिखण्डी समरे राजन् द्रौणिमभ्युद्ययौ बली ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमुपस्थितम् ४६
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विद्ध्वा ह्यकम्पयत् ।
शिखण्ड्यपि ततो राजन् द्रोणपुत्रमताडयत् ४७
सायकेन सुपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
तौ जघ्नतुस्तदाऽन्योन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे ॥ ४८
भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः ।
अभ्ययात्त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ४९
विराटो भगदत्तं तु शरवर्षेण भारत ।
अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाचलम् ॥ ५०
भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम् ।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ५१
बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ ।
तं कृपः शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥ ५२
गौतमं कैकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याऽभ्यपूरयत् ।
तावन्योन्यं हयान् हत्वा धनुश्छित्वा च भारत ५३
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ।
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥ ५४
द्रुपदस्तु ततो राजन् सैन्धवं वै जयद्रथम् ।
अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परन्तपः ॥ ५५
ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः ।
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥ ५६
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ।
ईक्षणप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥ ५७
विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम् ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५८

क्षुद्रकाणां बाणविशेषाणाम् ॥ २३ ॥ परासुकरणं मारणसाधनम् ॥ ३१ ॥ रभसं सत्वरम् ॥ ३५ ॥ वीरः शङ्खः जत्रुदेशे अंससन्धौ ॥३६॥ धृष्टकेतुः शिशुपालसुतः ॥३८॥

समीयतुः अन्योन्यस्पर्धया संमिलितौ ॥४१॥ सन्नतपर्वभिः लक्षितग्रन्थिभिः ॥४४॥ सुपीतेन मधु पायितेन तीक्ष्णेन सूक्ष्मधारेण यतो निशितेन शाणोल्लीढेन मृधे संग्रामे॥४८॥ वृष्ट्या इवेत्यसंधिरार्षः ॥ ५० ॥

विकर्णः सुतसोमं तु विद्ध्वा नाकम्पयच्छरैः।
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५९
सुशर्माणं नरव्याघ्रश्चेकितानो महारथः।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ६०
सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम्।
महता शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ६१
चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे।
प्राच्छादयत्तमिषुभिर्महामेघ इवाचलम् ॥ ६२
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी।
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तः सिंह इव द्विपम् ॥ ६३
यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः।
व्यदारयत सङ्ग्रामे मघवानिव दानवम् ॥ ६४
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे।
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६५
सुदक्षिणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम्।
श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥ ६६
सुदक्षिणस्तु समरे साहदेविं महारथम्।
विद्ध्वा नाकम्पयत वै मैनाकमिव पर्वतम् ॥ ६७
श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम्।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्दारयन्निव सर्वशः ॥ ६८
इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिन्दमम्।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परन्तपः ॥ ६९
आर्जुनिस्तस्य समरे हयान् हत्वा महारथः।
ननाद बलवन्नादं तत्सैन्यं प्रत्यपूरयत् ॥ ७०
श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान्।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ७१
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम्।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ७२
तत्राद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम्।
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७३
अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत्।
कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७४
कुन्तिभोजसुतश्चापि विन्दं विव्याध सायकैः।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७५
केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान्पञ्च मारिष।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७६
वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम्।
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥ ७७
उत्तरश्चापि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः।
चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८
तथैव शरवर्षेण उलूकं समविद्ध्यत।
उलूकश्चापि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥ ७९
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं विशांपते।
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ॥ ८०
एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम्।
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥ ८१
मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम्।
तत उन्मत्तवद्राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ८२
गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ।
अश्वोऽश्वं समभिप्रायात्पदातिश्च पदातिनम् ८३
ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत।
शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥ ८४
तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः।
प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥ ८५
ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चापि मारिष।
अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८६
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते रथवारणपत्तयः।
सादिनश्च नरव्याघ्र युध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

तुभ्यं तव सुतसोम भमसानम् ॥ ५८ ॥ चेकितानो यादवः ॥ ६० ॥ इरावानर्जुनपुत्रः ॥ ६९ ॥ गदाग्रेण गदामुखेन ॥ ७१ ॥ संससज्जतुः संसक्तावभूताम् ॥ ७२ ॥ तयोर्द्वंद्वयोः ॥ ७३ ॥ ते एव द्वंद्वे द्वाभ्यामाह-अनुविंद इति ॥ ७४ ॥ द्वंद्वं द्वयोर्द्वयोर्युद्धम् ॥ ८१ ॥ विपरीतं अतीतक्रमम् ॥ ८६ ॥
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

सञ्जय उवाच ।
राजञ्शतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम् ।
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ १
न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्रमौरसम् ।
न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥ २
न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा ।
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह ३
रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन् रथैः ।
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥ ४
रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः ।
सङ्गतैः सहिताः केचित्परस्परजिघांसवः ॥ ५
न शेकुश्चलितुं केचित्सन्निपत्य रथा रथैः ।
प्रभिन्नास्तु महाकायाः सन्निपत्य गजा गजैः ॥ ६
बहुधाऽदारयन् क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम् ।
सतोरणपताकैश्च वारणा वरवारणैः ॥ ७
अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः ।
दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥ ८
अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः ।
अप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां संमुखाभिमुखा ययुः ॥९
प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित्तत्र महागजाः ।
क्रौंचवन्निनदं कृत्वा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥१०
सम्यक्प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः ॥ ११
प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ।
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान् रवान् १२
गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः ।
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥ १३
गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥ १४
प्रगृहीतैः सुसंरब्धा द्रवमाणास्ततस्ततः ।
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥ १५
राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः ।
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥१६
अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः ।
संजज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ १७
गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः ।
दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः॥१८
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् ।
शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥ १९
हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः ।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिविद्रुताः ॥ २०
तैर्विमुक्ता महाप्रासा जांबूनदविभूषणाः ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः संपेतुर्भुजगोपमाः॥२१
अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान् ।
शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः ॥ २२
बहूनपि हयारोहान् भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
रथी जघान संप्राप्य बाणगोचरमागतान् ॥ २३
नवमेघप्रतीकाशाश्चाक्षिप्य तुरगान् गजाः ।
पादैरेव विमृद्नन्ति मत्ताः कनकभूषणाः ॥ २४

---

४६

**राजन्निति** । निर्मर्यादं अपेतव्यवहारं प्रयुद्धानि युद्धं कृतवान्ति ॥ १ ॥ जज्ञे ज्ञातवान् तत्र काले स्वस्रीयो भागिनेयः ॥ २ ॥ आविष्टा इव भूतादिना गृहीता इव ॥ ३ ॥ युगानि अश्वस्कन्धार्पितानि दारूणि ॥ ४ ॥ रथेषा रथदंडः कूबरो युगकीलः संगतैः संमुखागतैः सहिता मिलिताः ॥ ५ ॥ संनिपत्य मिलित्वा प्रभिन्नाश्चोतन्मदाः ॥ ६ ॥ विषाणैर्दन्तैः। तोरणानि चतुःस्तंभमंडपाकारस्य गजपल्याणस्य 'अंबारी' इति भाषया प्रसिद्धस्य द्वाराणि पताकाश्च तत्रैव स्तंभशेखरस्थाः ॥ ७ ॥ अभिनीताः सुशिक्षिताः अप्रभिन्नाः अनुद्भिन्नमदाः संमुखाभिमुखाः अन्योन्यसंमुखा इत्यर्थः ॥ ९ ॥ प्रणीताः प्रयुक्ताः ऋष्टयो हस्तक्षेप्याः क्षुद्रभल्लाः विंध्याटव्यां **कर्कोडीति** प्रसिद्धाः तोमरा दीर्घदंडा भल्लाः नाराचा महाशल्या विस्तीर्णफलकाः शराः ॥ ११ ॥ परश्वधैः कुठारैः ॥१३ ॥ भिन्दिपालैः परशवैः महाराष्ट्राणां **'गोफण'** इति प्रसिद्धैः। परिघैर्दण्डैः निस्त्रिंशैः खड्गैः ॥१४ द्रवमाणा धावन्तः ॥ १५ ॥ अवक्षिप्तावधूतानां अधोमुखं पातितानां परेषां मर्मसु पततामसीनामिति संबंधः ॥१७॥ रुग्णस्तीव्राघातार्तः भिन्नो निकृत्तांगः अवभिन्नः क्षतांगः ॥ १८ ॥ प्रेतानां नारकाणाम् ॥ १९ ॥ हयैः करणभूतैः चामरापीडश्चामरकलापास्तद्धारिभिः अत एव हंसैरिव अभिविद्रुताः संमुखमुपागताः ॥ २० ॥ प्रासा हस्तक्षेप्या भल्लाः सैंतीति प्रसिद्धाः कुन्ता इत्यपरे । आशुगाः शीघ्रगाः ॥ २१ ॥ अग्र्यजवैरुत्तमवेगैः ॥ २२ ॥ भल्लैर्दीर्घफलकैर्बाणैः ॥ २३ ॥

पात्यमानेषु कुंभेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः ।
प्रासैर्विनिहताः केचिद्विनेदुः परमातुराः ॥ २५
साश्वारोहान् हयान् कांश्चिदुन्मथ्य वरवारणाः ।
सहसा चिक्षिपुस्तत्र संकुले भैरवे सति ॥ २६
साश्वारोहान् विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान् गजाः ।
रथौघानभिमृद्नन्तः सध्वजानभिचक्रमुः ॥ २७
पुंस्त्वादतिमदत्वाच्च केचित्तत्र महागजाः ।
साश्वारोहान् हयान् जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥
अश्वारोहैश्च समरे हस्तिसादिभिरेव च ।
प्रतिमानेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वभि च वारणान् ॥
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः संपेतुर्भुजगोपमाः ॥
नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः ॥ ३०
महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशांपते ।
द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि ॥ ३१
विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजग्मुः परान् रणे ।
अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ॥ ३२
विदर्शयन्तः संपेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः ।
केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान् करैः ॥
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः सर्वशब्दगाः ।
शंकुभिर्दारिताः केचित् संभिन्नाश्च परश्वधैः ॥
हस्तिभिर्मृदिताः केचित् क्षुण्णाश्चान्ये तुरंगमैः ।
रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ३५
व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान् ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄंश्च सह बन्धुभिः ॥ ३६
मातुलान् भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे ।
विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ॥ ३७
बाहुभिश्चापरे छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः ।
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥ ३८
तृषा परिगताः केचिदल्पसत्त्वा विशांपते ।
भूमौ निपतिताः संख्ये मृगयांचक्रिरे जलम् ३९
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत ।
व्यनिन्दन्भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च संगतान् ॥ ४०
अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम् ।
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ॥ ४१
तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम् ।
आदश्य दशनैश्चापि क्रोधात्स्वदशनच्छदम् ॥ ४२
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ति च परस्परम् ।
अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्ता व्रणपीडिताः ॥ ४३
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्त्वा महाबलाः ।
अन्ये च विरथाः शूरा रथमन्यस्य संयुगे ॥ ४४
प्रार्थयाना निपतिताः संक्षुण्णा वरवारणैः ।
अशोभन्त महाराज सपुष्पा इव किंशुकाः ॥ ४५
संबभूवुरनीकेषु बहवो भैरवस्वनाः ।
वर्तमाने महाभीमे तस्मिन् वीरवरक्षये ॥ ४६
निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
स्वस्रीयो मातुलं चापि स्वस्रीयं चापि मातुलः ४७
सखा सखायं च तथा सम्बन्धी बान्धवं तथा ।
एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥ ४८
वर्तमाने तथा तस्मिन्निर्मर्यादे भयानके ।
भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥ ४९
केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ ।
राजतेन महाबाहुरुच्छ्रितेन महारथे ॥
बभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

---

सहसा बलेन अतर्कितं वा सति विद्यमाने ॥ २६ ॥ अभिचक्रमुः अभितो बभ्रमुः ॥ २७ ॥ पुंस्त्वाद्वीर्यवत्त्वात् अतिमदत्वादुद्धतमदत्वात् ॥ २८ ॥ प्रतिमानेषु ललाटेषु गात्रेषु अङ्गेषु वारणानभि गजानामभितः षष्ठ्यर्थे द्वितीया। आशुगा बाणाः अश्वारोहादिभिः प्रक्षिप्ता इति शेषः ॥ २९ ॥ शक्त्यः शक्तयः कृत्वा लोहदंडास्त एव महोल्काप्रतिमा इत्युत्तरेण संबंधः ॥ ३० ॥ द्वीपी चित्रव्याघ्रः ॥ ३१ ॥ विकोशैः प्रयोगकाले। 'अभीतस्याभिमुख्येन सर्पणं स्यादभिप्लुतम् । तदेव स्यादभिक्रुद्धमोष्ठदंशादिसंयुतं । वामपक्षाश्रितं यानमेकपार्श्वावदारितम्' ॥ ३२ ॥ चर्म प्रहारवारणं 'ढाल' इति प्रसिद्धं भाषायाम् । आक्षिप्याकृष्य ॥ ३३ ॥ सर्वशब्दगाः सर्वेषामाक्षेप्तॄणां शब्दमनुगच्छंति ते तथा । शंकुभिः कीलैः कण्टकदण्डादिगतैः ॥ ३४ ॥ व्याक्रोशन्त व्याक्रोशं कृतवंतः बन्धुभिः सखिभिः ॥ ३६ ॥ भग्नसक्था भग्नोरवः ॥ ३७ ॥ तृषा पिपासया अल्पसत्त्वा धैर्यवर्जिताः मृगयांचक्रिरे याचंते ॥ ३९ ॥ स्वदनच्छदमोष्ठम् ॥ ४२ ॥ निष्कूजा निःशब्दाः रथमन्यस्य गन्तुं प्रार्थयाना मध्येमार्गं निपतिता इति योज्यम् ॥ ४४ ॥ केतुनेति सार्धः । अत्र चन्द्रकेत्वोर्मेरुरथभीष्मयोश्चोपमोपमेयभावः भीष्मस्य रुक्मरथत्वात् ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

# ४७

सञ्जय उवाच ।
गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे ।
वर्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये ॥ १
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः ।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ॥ २
एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभः ।
पाण्डवानामनीकानि विजगाहे महारथः ॥ ३
चेदिकाशिकरूषेषु पञ्चालेषु च भारत ।
भीष्मस्य बहुधा तालश्चलत्केतुरदृश्यत ॥ ४
स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान् ।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५
नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ ।
भृशमार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्मणि ताडिताः ॥ ६
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद्भीष्मरथं प्रति ॥ ७
जाम्बूनदविचित्रेण कर्णिकारेण केतुना ।
अभ्यवर्तत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥ ८
स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा ।
भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चानुरथैः सह ॥ ९
कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः ।
*विद्ध्वा नवभिरानर्च्छच्छिताग्रैः प्रपितामहम् १०
पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक् प्रणिहितेन च ।
ध्वजमेकेन विव्याध जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ११
दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना ।
जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नतपर्वणा ॥ १२
धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम् ।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः १३
जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः ।
तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ॥ १४
लब्धलक्षतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः ।
सत्त्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनञ्जयम् ॥ १५
तस्य लाघवमार्गस्थमलातसदृशप्रभम् ।
दिशः पर्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥ १६
तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः ।
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा ॥ १७
ध्वजं चास्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥ १८
तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिष ।
विद्ध्वा नाकम्पयत्कार्ष्णिं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १९
स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्चरथान् प्रति ॥ २०
ततस्तेषां सहस्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः ।
ननाद बलवान् कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजन् शरान् ।
तत्रास्य सुमहद्राजन् बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥ २२
पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान् ।
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युतान् शरान् ॥
ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः ।
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २४
स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः ।
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥ २५
तं तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥ २६
अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च ।
प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन् महाबलः ॥ २७
ततः शरसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः ।
अवाकिरदमेयात्मा तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २८
ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ।
रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥ २९
विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशांपते ॥ ३०
तेषां जवेनापततां भीष्मः शान्तनवो रणे ।
पाञ्चाल्यं त्रिभिरानर्च्छत्सात्यकिं नवभिः शरैः ॥
पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा ॥ ३२
जाम्बूनदमयः श्रीमान् केसरी स नरोत्तम ।
पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात् ॥ ३३

४७

गतेति । गतोऽतीतः पूर्वाह्णस्य भूयिष्ठो भागो यस्मिन्नहनि ॥ १ ॥ नृत्यतो नृत्यमिव कुर्वतः ॥ ६ ॥ पिशंगैः पिङ्गलैः ॥ ७ ॥ कर्णिकारेण कर्णिकारद्रुमोपमेन ॥ ८ ॥ अनुरथैः पार्ष्णिगोपादिभिः ॥ ९ ॥ पूर्णायतविसृष्टेन आकर्णाकृष्टत्यक्तेन प्रणिहितेन प्रेरितेन ॥ ११ ॥ कार्तस्वरं सुवर्णं तान् सर्वान् ॥ १३ ॥ कार्ष्णिः अभिमन्योः सत्त्ववन्तं बलवन्तम् ॥ १५ ॥ अलातसदृशप्रभं भ्राम्यमाणोल्मुकसमं मण्डलाकारमित्यर्थः ॥ १६ ॥ पुत्रेणोत्तरेण ॥ ३० ॥ केसरी सिंहः ॥ ३३ ॥ * भित्त्वेति पाठान्तरम् ।

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा भीष्मं शान्तनवं रणे ।
कृपमेकेन विव्याध कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४
प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना ।
अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः ॥ ३५
तस्य वारणराजस्य जवेनापततो रथे ।
शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं शरैः ॥ ३६
तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः ।
पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान् ॥ ३७
स हताश्वे रथे तिष्ठन् मद्राधिपतिरायसीम् ।
उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम् ॥ ३८
तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः ।
स पपात गजस्कन्धात्प्रमुक्ताङ्कुशतोमरः†॥३९
असिमादाय शल्योऽपि अवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाथ महाकरम् ॥ ४०
भिन्नमर्मा शरशतैश्छिन्नहस्तः स वारणः ।
भीममार्तस्वरं कृत्वा पपात च ममार च ॥ ४१
एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ ४२
उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा ।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम्[1] ४३
श्वेतः क्रोधात् प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव ।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ ४४
अभ्यधावज्जिघांसन् वै शल्यं मद्राधिपं बली ।
महता रथवंशेन समन्तात् परिवारितः ॥ ४५
मुञ्चन् बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ ४६
तावकानां रथाः सप्त समन्तात् पर्यवारयन् ।
मद्रराजमभीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ ४७
बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजन् शल्यपुत्रः प्रतापवान्॥४८
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कांबोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ४९
नानावर्णविचित्राणि धनूंषि च महात्मनाम् ।
विस्फारितानि दृश्यन्ते तोयदेष्विव विद्युतः ॥५०
ते तु बाणमयं वर्षं श्वेतमूर्ध्न्यपातयन् ।
निदाघान्तेऽनिलोद्भूता मेघा इव नगे जलम् ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः ।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ममर्द पृतनापतिः ॥ ५२
निकृत्तान्येव तानि स्म समदृश्यन्त भारत ।
ततस्ते तु निमेषार्धात् प्रत्यपद्यन् धनूंषि च ॥ ५३
सप्त चैव पृषत्कांश्च श्वेतस्योपर्यपातयन् ।
ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सप्तभिराशुगैः ।
निचकर्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम् ॥
ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः ।
रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान् रवान् ॥ ५५
अन्वयुर्भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति ।
ततस्ता ज्वलिताः सप्त महेन्द्राशनिनिःस्वनाः ॥
अप्राप्ताः सप्तभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमास्त्रवित् ।
ततः समादाय शरं सर्वकायविदारणम् ॥ ५७
प्राहिणोद्भरतश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति ।
तस्य देहे निपतितो बाणो वज्रातिगो महान्॥५८
ततो रुक्मरथो राजन् सायकेन दृढाहतः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत् ॥ ५९
तं विसंज्ञं विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः ।
अपोवाह न संभ्रान्तः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ६०
ततोऽन्यान् षट् समादाय श्वेतो हेमविभूषितान्।
तेषां षण्णां महाबाहुर्ध्वजशीर्षाण्यपातयत् ॥ ६१
हयांश्च तेषां निर्भिद्य सारथींश्च परंतप ।
शरैश्चैतान् समाकीर्य प्रायाच्छल्यरथं प्रति ॥ ६२
ततो हलहलाशब्दस्तव सैन्येषु भारत ।
दृष्ट्वा सेनापतिं तूर्णं यान्तं शल्यरथं प्रति ॥ ६३
ततो भीष्मं पुरस्कृत्य तव पुत्रो महाबलः ।
वृतस्तु सर्वसैन्येन प्रायाच्छ्वेतरथं प्रति ॥ ६४
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मद्रराजममोचयत् ।
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६५
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ॥ ६६

प्रगृहीताग्रहस्तेन कुंडलीकृतशुण्डाग्रेण ॥ ३५ ॥ तस्य वेगमिति संबन्धः । रथे रथोपरि ॥ ३६ ॥ तस्य शल्यस्य बृहतः पुष्टान् साधुवाहिनः सम्यगूहनशीलान् ॥ ३७ ॥ तमः मोहं प्रमुक्तं हस्ताद्गलितमंकुशादिकं यस्य ॥ ३९ ॥ हतं शक्तिप्रहारेण । वैराटिः शङ्खः ॥ ४३ ॥ † प्रमुक्तांशुकतोमर इति पाठः ।

1 त्रिचत्वारिंशच्छ्लोकस्योत्तरार्धमारभ्य ऊनपञ्चाशदध्यायस्य पञ्चविंशतिश्लोकपूर्वार्धपर्यन्तं ग्रन्थः प्रक्षिप्तोऽस्तीति भाति । कुतः । त्रिचत्वारिंशच्छ्लोकस्य पूर्वार्धस्थवैराटिपदस्य शङ्ख इति नीलकण्ठैर्व्याख्यातत्वात् । तथा च श्वेतस्य पूर्वं कुत्राप्यश्रवणात् । श्वेतशङ्खयुद्धस्थश्लोकानां बहुधा साम्यात् । प्रथमदिनावहारस्य द्विरुक्तत्वाच्च ।

कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते । एतेषु नरसिंहेषु चेदिमत्स्येषु चैव ह ।
ववर्ष शरवर्षाणि कुरुवृद्धः पितामहः ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतयुद्धे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

धृतराष्ट्र उवाच ।
एवं श्वेते महेष्वासे प्राप्ते शल्यरथं प्रति ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च किमकुर्वत सञ्जय ॥ १
भीष्मः शान्तनवः किं वा तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।
सञ्जय उवाच ।
राजन् शतसहस्राणि ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ २
श्वेतं सेनापतिं शूरं पुरस्कृत्य महारथाः ।
राज्ञो बलं दर्शयन्तस्तव पुत्रस्य भारत ॥ ३
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य त्रातुमैच्छन्महारथाः ।
अभ्यवर्तन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ४
जिघांसन्तं युधां श्रेष्ठं तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि महावैशसमच्युत* ॥ ५
तावकानां परेषां च यथा युद्धमवर्तत ।
तत्राकरोद्रथोपस्थान् शून्यान् शान्तनवो बहून् ॥
तत्राद्भुतं महच्चक्रे शरैरार्छद्रथोत्तमान् ।
समावृणोच्छरैरर्कमर्कतुल्यप्रतापवान् ॥ ७
नुदन् समन्तात् समरे रविरुद्यन् यथा तमः ।
तेनाजौ प्रेषिता राजन् शराः शतसहस्रशः ॥ ८
क्षत्रियान्तकराः संख्ये महावेगा महाबलाः ।
शिरांसि पातयामासुर्वीराणां शतशो रणे ॥ ९
गजान् कण्टकसन्नाहान् वज्रेणेव शिलोच्चयान् ।
रथा रथेषु संसक्ता व्यदृश्यन्त विशांपते ॥ १०
एके रथं पर्यवहंस्तुरगाः सतुरङ्गमम् ।
युवानं निहतं वीरं लम्बमानं सकार्मुकम् ॥ ११
उदीर्णाश्च हया राजन् वहन्तस्तत्र तत्र ह ।
बद्धखड्गनिषङ्गाश्च विध्वस्तशिरसो हताः ॥१२
शतशः पतिता भूमौ वीरशय्यासु शेरते ।
परस्परेण धावन्तः पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ १३
उत्थाय च प्रधावन्तो द्वन्द्वयुद्धमवाप्नुवन् ।
पीडिताः पुनरन्योन्यं लुठन्तो रणमूर्धनि ॥ १४
सचापाः सनिषङ्गाश्च जातरूपपरिष्कृताः ।
विस्रब्धहतवीराश्च शतशः परिपीडिताः ॥ १५
तेन तेनाभ्यधावन्त विसृजन्तश्च भारत ।
मत्तो गजः पर्यवर्तद्धयांश्च हतसादिनः ॥ १६
सरथा रथिनश्चापि विमृद्नन्तः समन्ततः ।
स्यन्दनादपतत्कश्चिन्निहतोऽन्येन सायकैः ॥ १७
हतसारथिरप्युच्चैः पपात काष्ठवद्रथः ।
युध्यमानस्य संग्रामे व्यूढे रजसि चोत्थिते ॥ १८
धनुःकूजितविज्ञानं तत्रासीत प्रतियुद्ध्यतः ।
गात्रस्पर्शेन योधानां व्यज्ञासीत परिपन्थिनम् ॥१९
युद्ध्यमानं शरै राजन् सिञ्जिनीध्वजिनीरवात् ।
अन्योन्यं वीरसंशब्दो नाश्रूयत भटैः कृतः ॥ २०
शब्दायमाने संग्रामे पटहे कर्णदारिणि ।
युद्ध्यमानस्य संग्रामे कुर्वतः पौरुषं स्वकम् ॥ २१
नाश्रौषं नाम गोत्राणि कीर्तनं च परस्परम् ।
भीष्मचापच्युतैर्बाणैरार्तानां युध्यतां मृधे ॥ २२
परस्परेषां वीराणां मनांसि समकम्पयन् ।
तस्मिन्नत्याकुले युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ २३
पिता पुत्रं च समरे नाभिजानाति कश्चन ।
चक्रे भग्ने युगे छिन्ने एकधुर्ये हये हतः ॥ २४
आक्षिप्तः स्यन्दनाद्वीरः ससारथिरजिह्मगैः ।
एवं च समरे सर्वे वीराश्च विरथीकृताः ॥ २५
तेन तेन स्म दृश्यन्ते धावमानाः समन्ततः ।
गजो हतः शिरश्छिन्नं मर्म भिन्नं हयो हतः २६
अहतः कोऽपि नैवासीद्भीष्मे निघ्नति शात्रवान् ।
श्वेतः कुरूणामकरोत् क्षयं तस्मिन् महाहवे २७
राजपुत्रान् रथोदारानवधीच्छतसंघशः ।
चिच्छेद रथिनां बाणैः शिरांसि भरतर्षभ ॥ २८

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥ * अद्भुतम् इति पाठः

४८
एवमिति ॥ १ ॥

साङ्गदा बाहवश्चैव धनूंषि च समन्ततः ।
रथेषां रथचक्राणि तूर्णाराणि युगानि च ॥ २९
छत्राणि च महार्हाणि पताकाश्च विशांपते ।
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्चैव भारत ॥ ३०
वारणाः शतशश्चैव हताः श्वेतेन भारत ।
वयं श्वेतभयाद्भीता विहाय रथसत्तमम् ॥ ३१
अपयातास्तथा पश्चाद्विभुं पश्याम धृष्णवः ।
शरपातमतिक्रम्य कुरवः कुरुनन्दन ॥ ३२
भीष्मं शान्तनवं युद्धे स्थिताः पश्याम सर्वशः ।
अदीनो दीनसमये भीष्मोऽस्माकं महाहवे ॥ ३३
एकस्तस्थौ नरव्याघ्रो गिरिर्मेरुरिवाचलः ।
आददान इव प्राणान् सविता शिशिरात्यये ३४
गभस्तिभिरिवादित्यस्तस्थौ शरमरीचिमान् ।
स मुमोच महेष्वासः शरसङ्घाननेकशः ॥ ३५
निघ्नन्नमित्रान् समरे वज्रपाणिरिवासुरान् ।
ते वध्यमाना भीष्मेण प्रजहुस्तं महाबलम् ॥ ३६
स्वयूथादिव ते यूथान्मुक्तं भूमिषु दारुणम् ।
तमेवमुपलक्ष्यैको हृष्टः पुष्टः परंतप ॥ ३७
दुर्योधनप्रिये युक्तः पाण्डवान् परिशोचयन् ।
जीवितं दुस्त्यजं त्यक्त्वा भयं च सुमहाहवे ३८
पातयामास सैन्यानि पाण्डवानां विशांपते ।
प्रहरन्तमनीकानि पिता देवव्रतस्तव ॥ ३९
दृष्ट्वा सेनापतिं भीष्मस्त्वरितः श्वेतमभ्ययात् ।
स भीष्मं शरजालेन महता समवाकिरत् ४०
श्वेतं चापि तथा भीष्मः शरौघैः समवाकिरत् ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ ॥ ४१
व्याघ्राविव सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य ततस्तौ पुरुषर्षभौ ॥ ४२
भीष्मः श्वेतश्च युयुधे परस्परवधैषिणौ ।
एकाह्ना निर्दहेद्भीष्मः पाण्डवानामनीकिनीम् ४३
शरैः परमसंक्रुद्धो यदि श्वेतो न पालयेत् ।
पितामहं ततो दृष्ट्वा श्वेतेन विमुखीकृतम् ॥ ४४
प्रहर्षं पाण्डवा जग्मुः पुत्रस्ते विमनाऽभवत् ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः ॥ ४५
ससैन्यः पाण्डवानीकमभ्यद्रवत संयुगे ।
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विशांपतिः ४६
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण नोदिताः ।
दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः ॥ ४७
पाण्डवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे ।
श्वेतो गाङ्गेयमुत्सृज्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ४८
नाशयामास वेगेन वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
द्रावयित्वा चमूं राजन् वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ४९
आपतत्सहसा भूयो यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ।
तौ तत्रोपगतौ राजन् शरदीप्तौ महाबलौ ॥ ५०
अयुध्येतां महात्मानौ यथोभौ वृत्रवासवौ ।
अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ ॥ ५१
निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः ।
पराक्रमं ततस्तस्य पराक्रम्य पराक्रमी ॥ ५२
तरसा वारयामास मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।
श्वेतः शान्तनवं भूयः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३
विव्याध पञ्चविंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ।
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शान्तनवस्तदा ५४
स विद्धस्तेन बलवान्नाकम्पत यथाऽचलः ।
वैराटिः समरे क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ॥ ५५
आजघान ततो भीष्मं श्वेतः क्षत्रियनन्दनः ।
संप्रहस्य ततः श्वेतः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ५६
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य नवभिर्दशधा शरैः ।
संधाय विशिखं चैव शरं लोमप्रवाहिनम् ॥ ५७
उन्ममाथ ततस्तालं ध्वजशीर्षं महात्मनः ।
केतुं निपतितं दृष्ट्वा भीष्मस्य तनयास्तव ॥ ५८
हतं भीष्मममन्यन्त श्वेतस्य वशमागतम् ।
पाण्डवाश्चापि संहृष्टा दध्मुः शङ्खान्मुदा युताः ५९
भीष्मस्य पतितं केतुं दृष्ट्वा तालं महात्मनः ।
ततो दुर्योधनः क्रोधात् स्वमनीकमनोदयत् ॥ ६०
यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समन्ततः ।
मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति ६१
भीष्मः शान्तनवः शूरस्तथा सत्यं ब्रवीमि वः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ॥ ६२
बलेन चतुरङ्गेण गाङ्गेयमन्वपालयन् ।
बाह्लीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत ॥ ६३
जलसन्धो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले परिवार्य समन्ततः ॥ ६४
शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन् ।
तान् क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः ६५
अवारयदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
स निवार्य तु तान् सर्वान् केसरी कुञ्जरानिव ६६
महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीष्मः शान्तनवो युधि ६७
श्वेतं विव्याध राजेन्द्र कङ्कपत्रैः शितैः शरैः ।
ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिरायसैः ६८
विव्याध समरे राजन् सर्वलोकस्य पश्यतः ।
ततः प्रव्यथितो राजा भीष्मं दृष्ट्वा निवारितम् ६९

प्रवीरं सर्वलोकस्य श्वेतेन युधि वै तदा ।
निष्ठानकश्च सुमहांस्तव सैन्यस्य चाभवत् ॥ ७०
तं वीरं वारितं दृष्ट्वा श्वेतेन शरविक्षतम् ।
हतं श्वेतेन मन्यन्ते श्वेतस्य वशमागतम् ॥ ७१
ततः क्रोधवशं प्राप्तः पिता देवव्रतस्तव ।
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा तां च सेनां निवारिताम् ७२
श्वेतं प्रति महाराज व्यसृजत् सायकान् बहून् ।
तानावार्य रणे श्वेतो भीष्मस्य रथिनां वरः॥७३
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पुनरेव पितुस्तव ।
उत्सृज्य कार्मुकं राजन् गाङ्गेयः क्रोधमूर्च्छितः ७४
अन्यत् कार्मुकमादाय विपुलं बलवत्तरम्
तत्र संधाय विपुलान् भल्लान् सप्त शिलाशितान् ॥
चतुर्भिश्च जघानाश्वान् श्वेतस्य पृतनापतेः ।
ध्वजं द्वाभ्यां तु चिच्छेद सप्तमेन च सारथेः॥७६
शिरश्चिच्छेद भल्लेन सङ्क्रुद्धो लघुविक्रमः ।
हताश्वसूतात् स रथादवप्लुत्य महाबलः ॥ ७७
अमर्षवशमापन्नो व्याकुलः समपद्यत ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पितामहः ॥ ७८
ताडयामास निशितैः शरसङ्घैः समन्ततः ।
स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः॥७९
स्वरथे धनुरुत्सृज्य शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ।
ततः शक्तिं रणे श्वेतो जग्राहोग्रां महाभयाम्॥८०
कालदण्डोपमां घोरां मृत्योर्जिह्वामिव श्वसन् ।
अब्रवीच्च तदा श्वेतो भीष्मं शान्तनवं रणे ॥ ८१
तिष्ठेदानीं सुसंरब्धः पश्य मां पुरुषो भव ।
एवमुक्त्वा महेष्वासो भीष्मं युधि पराक्रमी॥८२
ततः शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुजगोपमाम् ।
पाण्डवार्थे पराक्रान्तस्तवानर्थं चिकीर्षुकः ॥ ८३
हाहाकारो महानासीत् पुत्राणां ते विशांपते ।
दृष्ट्वा शक्तिं महाघोरां मृत्योर्दण्डसमप्रभाम् ॥८४
श्वेतस्य करनिर्मुक्तां निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।
अपतत् सहसा राजन् महोल्केव नभस्तलात् ८५
ज्वलन्तीमन्तरिक्षे तां ज्वालाभिरिव संवृताम् ।
असंभ्रान्तस्तदा राजन् पिता देवव्रतस्तव ॥ ८६
अष्टभिर्नवभिर्भीष्मः शक्तिं चिच्छेद पत्रिभिः ।
उत्कृष्टहेमविकृतां निकृतां निशितैः शरैः ॥ ८७
उच्चुक्रुशुस्ततः सर्वे तावकां भरतर्षभ ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः॥८८
कालोपहतचेतास्तु कर्तव्यं नाभ्यजानत ।
क्रोधसंमूर्च्छितो राजन् वैराटिः प्रहसन्निव॥ ८९
गदां जग्राह संहृष्टो भीष्मस्य निधनं प्रति ।
क्रोधेन रक्तनयनो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ९०
भीष्मं समभिदुद्राव जलौघ इव पर्वतम् ।
तस्य वेगमसंवार्यं मत्वा भीष्मः प्रतापवान्॥९१
प्रहारविप्रमोक्षार्थं सहसा धरणीं गतः ।
श्वेतः क्रोधसमाविष्टो भ्रामयित्वा तु तां गदाम्॥
रथे भीष्मस्य चिक्षेप यथा देवो धनेश्वरः ।
तया भीष्मनिपातिन्या स रथो भस्मसात्कृतः९३
सध्वजः सह सूतेन साश्वः सयुगबन्धुरः ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः ॥ ९४
अभ्यधावन्त सहिताः शल्यप्रभृतयो रथाः ।
ततोऽन्यं रथमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः॥ ९५
शनकैरभ्ययाच्छ्वेतं गाङ्गेयः प्रहसन्निव ।
एतस्मिन्नन्तरे भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम्॥९६
आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसंभवाम् ।
भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्नं कुरुष्व वै॥९७
एष ह्यस्य जये कालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदूतेन भाषितम् ॥ ९८
संप्रहृष्टमना भूत्वा वधे तस्य मनो दधे ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पदातिनम् ॥ ९९
सहितास्त्वभ्यवर्तन्त परीप्सन्तो महारथाः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १००
कैकेयो धृष्टकेतुश्च अभिमन्युश्च वीर्यवान् ।
एतानापततः सर्वान् द्रोणशल्यकृपैः सह ॥ १
अवारयदमेयात्मा वारिवेगानिवाचलः ।
स निरुद्धेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ २
श्वेतः खड्गमथाकृष्य भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं त्वरमाणः पितामहः ॥ ३
देवदूतवचः श्रुत्वा वधे तस्य मनो दधे ।
ततः प्रचरमाणस्तु पिता देवव्रतस्तव ॥ ४
अन्यत् कार्मुकमादाय त्वरमाणो महारथः ।
क्षणेन सज्यमकरोच्छक्रचापसमप्रभम् ॥ ५
पिता ते भरतश्रेष्ठ श्वेतं दृष्ट्वा महारथैः ।
वृतं तं मनुजव्याघ्रैर्भीमसेनपुरोगमैः ॥ ६
अभ्यवर्तत गाङ्गेयः श्वेतं सेनापतिं द्रुतम् ।
आपतन्तं ततो भीष्मो भीमसेनं प्रतापवान् ॥ ७
आजघ्ने विशिखैः षष्ट्या सेनान्यं स महारथः ।
अभिमन्युं च समरे पिता देवव्रतस्तव ॥ ८
आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः सन्नतपर्वभिः ।
सात्यकिं च शतेनाजौ भरतानां पितामहः ॥ ९

धृष्टद्युम्नं च विंशत्या कैकेयं चापि पञ्चभिः ।
तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पिता देवव्रतस्तव॥११०
वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाभिदुद्रुवे ।
ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ ११
विकृष्य बलवान् भीष्मः समाधत्त दुरासदम् ।
ब्रह्मास्त्रेण सुसंयुक्तं तं शरं लोमवाहिनम् ॥ १२
ददृशुर्देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः॥१३
जगाम धरणीं बाणो महाशनिरिव ज्वलन् ।
अस्तं गच्छन् यथादित्यः प्रभामादाय सत्वरः १४
एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह ।
तं भीष्मेण नरव्याघ्रं तथा विनिहतं युधि ॥ १५
प्रपतन्तमपश्याम गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ।
अशोचन् पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः १६
प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चापि सर्वशः ।
ततो दुःशासनो राजन् श्वेतं दृष्ट्वा निपातितम्१७
वादित्रनिनदैर्घोरैर्नृत्यति स्म समन्ततः ।
तस्मिन् हते महेष्वासे भीष्मेणाहवशोभिना ॥ १८
प्रावेपन्त महेष्वासाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ।
ततो धनञ्जयो राजन् वार्ष्णेयश्चापि सर्वशः॥ १९
अवहारं शनैश्चक्रुर्निहते वाहिनीपतौ ।
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत॥ १२०
तावकानां परेषां च नर्दतां च मुहुर्मुहुः ।
पार्था विमनसो भूत्वा न्यवर्तन्त महारथाः ।
चिन्तयन्तो वधं घोरं द्वैरथेन परंतपाः ॥ १२१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतवधे
अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८ ॥

## ४९

धृतराष्ट्र उवाच ।

श्वेते[१] सेनापतौ तात संग्रामे निहते परैः ।
किमकुर्वन्महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥१
सेनापतिं समाकर्ण्य श्वेतं युधि निपातितम् ।
तदर्थं यततां चापि परेषां प्रपलायिनाम् ॥ २
मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं संजय शृण्वतः ।
प्रत्युपायं चिन्तयन्तः* सज्जनाः प्रस्रवन्ति मे॥३
स हि वीरोऽनुरक्तश्च वृद्धः कुरुपतिस्तदा ।
कृतं वैरं सदा तेन पितुः पुत्रेण धीमता ॥ ४
तस्योद्वेगभयाच्चापि संश्रितः पांडवान् पुरा ।
सर्वं बलं परित्यज्य दुर्गं संश्रित्य तिष्ठति ॥ ५
पाण्डवानां प्रतापेन दुर्गं देशं निवेश्य च ।
सपत्नान् सततं बाधन्नार्यवृत्तिमनुष्ठितः ॥ ६
आश्चर्यं वै सदा तेषां पुरा राज्ञां सुदुर्मतिः ।
ततो युधिष्ठिरे भक्तः कथं सञ्जय सूदितः ॥ ७
प्रक्षिप्तः संमतः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधमः ।
न युद्धं रोचयेद्भीष्मो न चाचार्यः कथंचन ॥ ८
न कृपो न च गान्धारी नाहं सञ्जय रोचये ।
न वासुदेवो वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ ९
न भीमो नार्जुनश्चैव न यमौ पुरुषर्षभौ ।
वार्यमाणो मया नित्यं गान्धार्या विदुरेण च॥१०
जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना ।
दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि सञ्जय ॥ ११
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत् ।
दुःशासनस्य च तथा पाण्डवानन्वचिन्तयत्॥१२
तस्याहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु सञ्जय ।
श्वेतस्य च विनाशेन भीष्मस्य विजयेन च ॥ १३
संक्रुद्धः कृष्णसहितः पार्थः किमकरोद्युधि ।
अर्जुनाद्धि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥ १४
स हि शूरश्च कौन्तेयः क्षिप्रकारी धनञ्जयः ।
मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां प्रमथिष्यति ॥ १५
ऐन्द्रिमिन्द्रानुजसमं महेन्द्रसदृशं बले ।
अमोघक्रोधसंकल्पं दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥ १६
तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः ।
इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन् समितिंजयः ॥ १७
वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः ।
स खड्गाक्षेपहस्तस्तु घोषं चक्रे महारथः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

४९

श्वेते इति१ *'चिन्तयतो लज्जां प्राप्नोति मे न हि'इति पा०

स सञ्जय महाप्राज्ञो द्रुपदस्यात्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नः किमकरोच्छ्वेते युधि निपातिते ॥ १९
पुरा चैवापराधेन वधेन च चमूपतेः ।
मन्ये मनः प्रजज्वाल पाण्डवानां महात्मनाम् २०
तेषां क्रोधं चिन्तयंस्तु अहःसु च निशासु च ।
न शान्तिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि ।
कथं चाभून्महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व सञ्जय ॥ २१

सञ्जय उवाच ।

शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवापनयनो महान् ।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ २२
गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृङ्मतिस्तव ।
संदीप्ते भवने यद्वत्कूपस्य खननं तथा ॥ २३
गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे ।
तावकानां परेषां च पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २४
श्वेतं तु निहतं दृष्ट्वा विराटस्य चमूपतिम् ।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥
शङ्खः क्रोधात् प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव ।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ २६
अभ्यधावज्जिघांसन् वै शल्यं मद्राधिपं युधि ।
महता रथसङ्घेन समन्तात् परिरक्षितः ॥ २७
सृजन् बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ २८
तावकानां रथाः सप्त समन्तात् पर्यवारयन् ।
मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ २९
बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजन् पुत्रः शल्यस्य मानितः ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कांबोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ३१
नानाधातुविचित्राणि कार्मुकाणि महात्मनाम् ।
विस्फारितान्यदृश्यन्त तोयदेष्विव विद्युतः ॥ ३२
ते तु बाणमयं वर्षं शङ्खमूर्ध्नि न्यपातयन् ।
निदाघान्तेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम् ३३
ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः ।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ननर्द पृतनापतिः ॥ ३४
ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा ।
तालमात्रं धनुर्गृह्य शङ्खमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३५

तमुद्यन्तमुदीक्ष्याथ महेष्वासं महाबलम् ।
संत्रस्ता पाण्डवी सेना वातवेगहतेव नौः ॥ ३६
ततोऽर्जुनः संत्वरितः शङ्खस्यासीत् पुरःसरः ।
भीष्माद्रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत ॥ ३७
हाहाकारो महानासीद्योधानां युधि युध्यताम् ।
तेजस्तेजसि संपृक्तमित्येवं विस्मयं ययुः ॥ ३८
अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात् ।
शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद्भरतर्षभ ॥ ३९
स हताश्वाद्रथात् तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः ।
बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शान्तिमविन्दत ॥ ४०
ततो भीष्मरथात् तूर्णमुत्पतन्ति पतत्रिणः ।
यैरन्तरिक्षं भूमिश्च सर्वतः समवस्तृता ॥ ४१
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान् ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः ॥४२
उत्सृज्य समरे राजन् पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।
अभ्यद्रवत पाञ्चाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम् ॥ ४३
प्रियं संबन्धिनं राजन् शरानवकिरन् बहून् ।
अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥ ४४
शरदग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह ।
अत्यतिष्ठद्रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ४५
मध्यंदिने यथाऽऽदित्यं तपन्तमिव तेजसा ।
न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुम्
वीक्षांचक्रुः समन्तात् ते पाण्डवा भयपीडिताः ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥४७
सा तु यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरपीडिता ।
सिंहेनेव विनिर्भिन्ना शुक्ला गौरिव गोपतेः ॥४८
हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते ।
हाहाकारो महानासीत् पाण्डुसैन्येषु भारत ॥४९
ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ५०
शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्यादिश्य भारत ॥ ५१
ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः ।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५२
भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे ।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि शङ्खयुद्धे प्रथमदिवसावहारे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

---

एकायनीकुर्वन् एकमार्गाः कुर्वन् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

सञ्जय उवाच ।

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ ।
भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥ १
धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः ॥ २
शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीद्राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥ ३
कृष्ण पश्य महेष्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवानलम् ॥ ४
कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवानलम् ॥ ५
एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम् ।
दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम् ॥ ६
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च संयुगे ।
वरुणः पाशभृच्चापि कुबेरो वा गदाधरः ॥ ७
न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः ।
सोऽहमेवंगते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवे ॥ ८
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य केशव ।
वनं यास्यामि वार्ष्णेय श्रेयो मे तत्र जीवितुम् ९
न त्वेतान् पृथिवीपालान् दातुं भीष्माय मृत्यवे ।
क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित् १०
यथाऽनलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः ।
विनाशायोपगच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः ११
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः ॥ १२
मत्कृते भ्रातृहार्देन राज्याद्भ्रष्टास्तथा सुखात् ।
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ॥ १३
जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ।
न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव ॥ १४
रथान् मे बहुसाहस्रान् दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ।
घातयत्यनिशं भीष्मः प्रवराणां प्रहारिणाम् ॥ १५
किं नु कृत्वा हितं मे स्याद्ब्रूहि माधव माचिरम् ।
मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम् ॥ १६
एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येव महाभुजः ।
केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १७
गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः ।
करोत्यसुकरं कर्म रथाश्वनरदन्तिषु ॥ १८
नालमेष क्षयं कर्तुं परसैन्यस्य मारिष ।
आर्जवेनैव युद्धेन वीर वर्षशतैरपि ॥ १९
एकोऽस्त्रवित्सखा तेऽयं सोऽप्यस्मान्समुपेक्षते ।
निर्दह्यमानान् भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २०
दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
धक्ष्यन्ति क्षत्रियान् सर्वान् प्रयुक्तानि पुनः पुनः ॥
कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः ।
क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥ २२
स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथम् ।
भीष्मं यः शमयेत्सङ्ख्ये दावाग्निं जलदो यथा २३
तव प्रसादाद्गोविन्द पाण्डवा निहतद्विषः ।
स्वराज्यमनुसंप्राप्ता मोदिष्यन्ते सबान्धवाः ॥ २४
एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्यायन्नास्ते महामनाः ।
चिरमन्तर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः ।
शोकार्तं तमथो ज्ञात्वा दुःखोपहतचेतसम् ॥ २५
अब्रवीत् तत्र गोविन्दो हर्षयन् सर्वपाण्डवान् ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २६
यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकेषु धन्विनः ।
अहं च प्रियकृद्राजन् सात्यकिश्च महायशाः ॥ २७
विराटद्रुपदौ चेमौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम ॥ २८
त्वत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशांपते ।
एष ते पार्षतो नित्यं हितकामः प्रिये रतः ॥ २९
सैनापत्यमनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
शिखण्डी च महाबाहो भीष्मस्य निधनं किल ३०
एतच्छ्रुत्वा ततो धर्मो धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
अब्रवीत् समितौ तस्यां वासुदेवस्य शृण्वतः ३१
धृष्टद्युम्न निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि मारिष ।
नातिक्रम्यं भवेत् तच्च वचनं मम भाषितम् ॥ ३२
भवान् सेनापतिर्मह्यं वासुदेवेन संमितः ।
कार्तिकेयो यथा नित्यं देवानामभवत् पुरा ॥ ३३
तथा त्वमपि पाण्डूनां सेनानीः पुरुषर्षभ ।
स त्वं पुरुषशार्दूल विक्रम्य जहि कौरवान् ॥ ३४

---

५०

कृतेऽवहारे इति ॥ १ ॥ कक्षं तृणम् ॥ ४ ॥ अप्लवे उडुपशून्ये ॥ ८ ॥ आर्जवेन अकुटिलेन दिव्यास्त्रमाया- हीनेन ॥ १९ ॥ अन्तर्मनाः विमनाः ॥ २५ ॥ निधनं निधनहेतुः ॥ ३० ॥ भाषितमुक्तम् ॥ ३२ ॥ मह्यं मम ॥ ३३ ॥

अहं च तेऽनुयास्यामि भीमः कृष्णश्च मारिष ।
माद्रीपुत्रौ च सहितौ द्रौपदेयाश्च दंशिताः ॥ ३५
ये चान्ये पृथिवीपालाः प्रधानाः पुरुषर्षभ ।
तत उद्धर्षयन् सर्वान् धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत ॥ ३६
अहं द्रोणान्तकः पार्थ विहितः शंभुना पुरा ।
रणे भीष्मं कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथम् ॥ ३७
सर्वानद्य रणे दृप्तान् प्रतियोत्स्यामि पार्थिव ।
अथोत्क्रुष्टं महेष्वासैः पाण्डवैर्युद्धदुर्मदैः ॥ ३८
समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने ।
तमब्रवीत् ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम् ॥ ३९
व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः ।
यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत् ॥ ४०
तं यथावत् प्रतिव्यूहं परानीकविनाशनम् ।
अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥ ४१
यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता यथा ।
प्रभाते सर्वसैन्यानामग्रे चक्रे धनंजयम् ॥ ४२
आदित्यपथगः केतुस्तस्याद्भुतमनोरमः ।
शासनात् पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ ४३
इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलङ्कृतः ।
आकाशग इवाकाशे गन्धर्वनगरोपमः ॥ ४४
नृत्यमान इवाभाति रथचर्यासु मारिष ।
तेन रत्नवता पार्थः स च गाण्डीवधन्वना ॥ ४५
बभूव परमोपेतः सुमेरुरिव भानुना ।
शिरोऽभूद्द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः ४६
कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ ।
दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह ॥ ४७
अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ ।
पटच्चरैश्च पौण्ड्रैश्च राजन् पौरवकैस्तथा ॥ ४८
निषादैः सहितश्चापि पृष्ठमासीद्युधिष्ठिरः ।
पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४९
द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः ।
पिशाचा दारदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह ५०
मारुता धेनुकाश्चैव तङ्गणाः परतङ्गणाः ।
बाह्लिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत ॥
एते जनपदा राजन् दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ।
अग्निवेशास्तु हुण्डाश्च मालवा दानभारयः ॥ ५२
शबरा उद्भसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ।
नकुलः सहदेवश्च वामं पक्षं समाश्रिताः ॥ ५३
रथानामयुतं पक्षौ शिरस्तु नियुतं तथा ।
पृष्ठमर्बुदमेवासीत् सहस्राणि च विंशतिः ॥ ५४
ग्रीवायां नियुतं चापि सहस्राणि च सप्ततिः ।
पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः ॥ ५५
जग्मुः परिवृता राजंश्चलन्त इव पर्वताः ।
जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥ ५६
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥ ५७
सूर्योदयं त इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महान्ति च ।
श्वेतच्छत्राण्यशोभन्त वारणेषु रथेषु च ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौञ्चव्यूहनिर्माणे
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

संजय उवाच ।
क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव ।
रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनामिततेजसा ॥ १
आचार्यमुपसङ्गम्य कृपं शल्यं च पार्थिव ।
सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च ॥ २
दुःशासनादीन् भ्रातॄंश्च सर्वानेव च भारत ।
अन्यांश्च सुबहून् शूरान् युद्धाय समुपागतान् ॥ ३

---

आकाशग इव पक्षीव ॥ ४४ ॥ रथचर्यासु रथवर्त्मसु ॥ ४५ ॥ परमोपेतः परा उत्कृष्टा चासौ मा लक्ष्मीश्चेति परमा तया उपेतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

५१

क्रौञ्चमिति ॥ १ ॥

प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४
एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः ।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः ५
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तमिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ ६
संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकुरास्तथा ।
आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७
शत्रुंजयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च ।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥ ८
चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः ॥ ९
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष ।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधकम् ॥१०
भीष्मः सैन्येन महता समन्तात् परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥ ११
तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशांपते ॥ १२
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥१३
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।
शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४
ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चाम्बष्ठकोसलैः ॥ १५
दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिषः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन् ॥
सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थितौ ॥१८
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥१९
पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् नानादेश्या जनेश्वराः ।
केतुमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥
ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत ।
दध्मुः शङ्खान् मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन्२१
तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पेश्यश्च विविधाः परैः ।
आनकाश्चाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् २३
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥ २४
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ २५
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६
काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २७
पाञ्चाल्याश्च महेष्वासा द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान् सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८
स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥ २९
एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः ।
पुनर्युद्धाय सज्जग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि कौरवव्यूहरचनायां एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

धृतराष्ट्र उवाच ।

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १

सञ्जय उवाच ।

* समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धरुचिरध्वजम् ।
अपारमिव संदृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥ २

अपर्याप्तमपरिमेयम् ॥६॥ अभिभवत्यभिभूः क्विप् ॥२०॥ इति श्रीमहा०भीष्म०नैल०भारत० एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

५२

एवमिति ॥ १ ॥ * तथा इतिपाठः ।

तेषां मध्ये स्थितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत्तावकान् सर्वान् युद्ध्यध्वमिति दंशिताः ३
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्वे पवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ४
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५
मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुङ्खाः सुतेजसः ।
सन्निपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥ ६
तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः ।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥ ७
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८
पतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभिभूः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ९
अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन् वीरसमागमे ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ १०
सादिनो ध्वजिनश्चैव हतप्रवरवाजिनः ।
विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ११
अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीत् क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः १२
पष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥ १३
पष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥ १४
पञ्चालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।
सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन १५
तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनञ्जय ।
पष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ १६
पवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् ।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर ॥ १७
चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥ १८
महता मेघनादेन रथेनामिततेजसा ।
विनिघ्नन् कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ॥ १९
प्रायाच्छरणदः शीघ्रं सुहृदां हर्षवर्धनः ।
तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २०
त्रासयन्तं रणे शूरान् मर्दयन्तं च सायकैः ।
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः ॥ २१

सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् २२
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति ।
ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः ॥ २३
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समाचिनोत् ।
द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः ॥ २४
दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः ।
सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ २५
विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन् विव्याध पाण्डवम् ।
स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः २६
न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाचलः ।
स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः २७
द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णं च त्रिभिः शरैः
शल्यं चैव त्रिभिर्बाणै राजानं चैव पञ्चभिः २८
प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ ।
तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २९
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ३०
अभ्यवर्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ।
भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो राजन् विव्याध पाण्डवम्
अशीत्या निशितैर्बाणैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः ।
तेषां तु निनदं श्रुत्वा सहितानां प्रहृष्टवत् ॥ ३२
प्रविवेश ततो मध्यं नरसिंहः प्रतापवान् ।
तेषां महारथानां स मध्यं प्राप्य धनञ्जयः ॥ ३३
चिक्रीड धनुषा राजँल्लक्ष्यं कृत्वा महारथान् ।
ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः ॥ ३४
पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे ।
पष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ॥ ३५
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति ।
त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे ३६
त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशांपते ।
न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम ॥ ३७
स तथा कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फाल्गुनः ।
पवमुक्तस्ततो राजन् पिता देवव्रतस्तव ॥ ३८
धिक् क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात् पार्थरथं प्रति
उभौ श्वेतहयौ राजन् संसक्तौ प्रेक्ष्य पार्थिवाः ३९
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान् दध्मुश्च मारिष ।
द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः ॥ ४०

व्यतिकरो मेलकः समागम इत्यर्थः ॥ १० ॥ दृढधन्वना भीष्मेण ॥ १५ ॥ यत्तः यत्नवान् ॥ १६ ॥

परिवार्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष ।
तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ ४१
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानर्च्छन्नवभिः शरैः ॥ ४२
तमर्जुनः प्रत्यविध्यद्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ॥ ४३
अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्यावारयद्दिशः ।
शरजालं ततस्तत्तु शरजालेन मारिष ॥ ४४
वारयामास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ ॥ ४५
निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि सङ्घशः ॥४६
शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः ।
तथैवार्जुनमुक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥ ४७
गाङ्गेयशरनुन्नानि प्रापतन्त महीतले ।
अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छच्छितैः शरैः ४८
भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध निशितैः शरैः ।
अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ ॥
रथेषां रथचक्रे च चिक्रीडतुररिन्दमौ ।
ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ५०
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीष्मचापच्युतैस्तैस्तु निर्विद्धो मधुसूदनः ॥ ५१
विरराज रणे राजन् सपुष्प इव किंशुकः ।
ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ॥
सारथिं कुरुवृद्धस्य निर्बिभेद शितैः शरैः ।
यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति ॥५३
न शक्नुतां तदाऽन्योन्यमभिसन्धातुमाहवे ।
तौ मण्डलानि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात् ।
अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम् ॥ ५५
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः ।
उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शंखशब्दं च चक्रतुः ॥ ५६
तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ ।
तयोः शंखनिनादेन रथनेमिस्वनेन च ॥ ५७
दारिता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ।
नोभयोरन्तरं कश्चिद्ददृशे भरतर्षभ ॥ ५८
बलिनौ युद्धदुर्धर्षावन्योन्यसदृशावुभौ ।
चिन्हमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः ॥
तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिह्नमात्रेण जज्ञिरे ।
तयोर्नृवरयोर्दृष्ट्वा तादृशं तं पराक्रमम् ॥ ६०
विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे ।
न तयोर्विवरं कश्चिद्रणे पश्यति भारत ॥ ६१
धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद्वृजिनं क्वचित् ॥
उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः ॥ ६२
प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे ।
तत्र देवाः सगन्धर्वाश्चारणाश्चर्षिभिः सह ॥ ६३
अन्योन्यं प्रत्यभाषन्त तयोर्दृष्ट्वा पराक्रमम् ।
न शक्यौ युधि संरब्धौ जेतुमेतौ कथञ्चन ॥ ६४
सदेवासुरगन्धर्वैर्लोकैरपि महारथौ ।
आश्चर्यभूतं लोकेषु युद्धमेतन्महाद्भुतम् ॥ ६५
नैतादृशानि युद्धानि भविष्यन्ति कथञ्चन ।
न हि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ॥
सधनुः सरथः साश्वः प्रवपन् सायकान् रणे ।
तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ॥ ६७
न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम् ।
आलोकादपि युद्धं हि सममेतद्भविष्यति ॥ ६८
इति स्म वाचोऽश्रूयन्त प्रोच्चरन्त्यस्ततस्ततः ।
गाङ्गेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशांपते ॥ ६९
त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ७०
शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः ।
शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥ ७१
उभयोः सेनयोः शूरा न्यकृन्तन्त परस्परम् ।
वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन् युद्धे सुदारुणे ।
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन् महानासीत्समागमः ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनयुद्धे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अन्तरं छिद्रं तर्कयन्तौ चिन्तयन्तौ ॥ ५५ ॥ अन्तरमार्गस्थौ छिद्रान्वेषणपरौ ॥ ५६ ॥ चिह्नं ध्वजः ॥ ५९ ॥ आलोकात् आसंसारस्थितेः ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चापि पार्षतः ।
उभौ समीयतुर्यत्तौ तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १
दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादिति मे मतिः ।
यत्र शान्तनवो भीष्मो नातरद्युधि पाण्डवम् ॥ २
भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्याल्लोकांश्चराचरान् ।
स कथं पाण्डवं युद्धे नातरत् सञ्जयौजसा ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत्सुदारुणम् ।
न शक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ४
द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५
तथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ६
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान् ।
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ८
आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया ।
शक्राशनिसमस्पर्शं कालदण्डमिवापरम् ॥ ९
हाहाकारो महानासीत् सर्वसैन्येषु भारत ।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे ॥ १०
तत्राद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम् ।
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ११
तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः ।
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥ १२
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥
धृष्टद्युम्नेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ १३
ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम् ।
द्रोणस्य निधनाकांक्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥ १४
तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम् ।
त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥ १५
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥ १६
शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १७
स च्छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः ।
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥ १८
सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद्द्रोणजिघांसया ।
तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ॥ १९
लाघवाद्व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम् ।
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम् ॥ २०
भल्लान् सुनिशितान् पीतान् रुक्मपुंखान् सुदारुणान् ।
ते तस्य कवचं भित्त्वाऽपपुः शोणितमाहवे ॥ २१
अथान्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२
रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ ।
वसन्तसमये राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २३
अमर्षितस्ततो राजन् पराक्रम्य चमूमुखे ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २४
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाचलम् ॥ २५
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २६
पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च ।
ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथाच्छिनत् ॥ २७
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवारोहत् ख्यापयन् पौरुषं महत् ॥ २८
तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९
ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत् ।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ ३०
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकाङ्क्षया ।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ३१
तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ।
लाघवं चास्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥ ३२
यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम् ।
न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ ३३
निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
न्यवारयच्छरौघांस्तांश्चर्मणा कृतहस्तवत् ॥ ३४

---

५३

कथमिति ॥ १ ॥ नातरत् न लङ्घितवान् ॥ ३ ॥ नीडात् स्थानात् ॥ ५ ॥ व्यंसयामास संसक्ताऽपि यथा न भवति तथा वञ्चयति स्म ॥ २० ॥ पीतान् पायितजलान् ॥ २१ ॥

ततो भीमो महाबाहुः सहसाऽभ्यपतद्बली ।
साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ ३५
स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन् विव्याध सप्तभिः ।
पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत् तदा ॥ ३६
ततो दुर्योधनो राजन् भानुमन्तमचोदयत् ।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ ३७
ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर ।
भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ३८
पाञ्चाल्यमथ सन्त्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥ ३९
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात् ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ४०
कलिङ्गानां च समरे भीमस्य च महात्मनः ।
जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयावहम् ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृष्टद्युम्नद्रोणयुद्धे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

धृतराष्ट्र उवाच ।
तथा प्रतिसमादिष्टः कालिङ्गो वाहिनीपतिः ।
कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥ १
चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
योधयामास समरे कालिङ्गः सह सेनया ॥ २
सञ्जय उवाच ।
पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः ।
महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद्भीमरथं प्रति ॥ ३
तामापतन्तीं महतीं कलिङ्गानां महाचमूम् ।
रथाश्वनागकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥ ४
भीमसेनः कलिङ्गानामाच्छेद्भारत वाहिनीम् ।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः ॥ ५
ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह ।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु ॥ ६
रथैरनेकसाहस्रैः कलिङ्गानां नराधिप ।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान् ॥ ७
भीमसेनं रणे राजन् समन्तात् पर्यवारयत् ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपदानुगाः ॥ ८
अभ्यधावन्त समरे निषादान् सह राजभिः ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ ९
न प्राजानन्त योधाः स्वान् परस्परजिघांसया ।
घोरमासीत्ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः ॥ १०
यथेन्द्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया ।
तस्य सैन्यस्य सङ्ग्रामे युध्यमानस्य भारत ॥ ११
बभूव सुमहान् शब्दः सागरस्येव गर्जतः ।
अन्योन्यं स्म तदा योधा विकर्षन्तो विशांपते ॥
महीं चक्रुश्चितां सर्वां शशलोहितसन्निभाम् ।
योधांश्च स्वान् परान्वापि नाभ्यजानन् जिघांसया
स्वानप्याददते स्वाश्च शूराः परमदुर्जयाः ।
विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह ॥ १४
कलिङ्गैः सह चेदीनां निषादैश्च विशांपते ।
कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः ॥ १५
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः ।
सर्वैः कलिङ्गैरासन्नः सन्निवृत्तेषु चेदिषु ॥ १६
स्वबाहुबलमास्थाय संन्यवर्तत पाण्डवः ।
न चचाल रथोपस्थाद्भीमसेनो महाबलः ॥ १७
शितैरवाकिरद्बाणैः कलिङ्गानां वरूथिनीम् ।
कालिंगस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः ॥ १८
शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ।
ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन् रुचिरं धनुः १९
योधयामास कालिङ्गं स्वबाहुबलमाश्रितः ।
शक्रदेवस्तु समरे विसृजन् सायकान् बहून् ॥ २०
अश्वान् जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः ।
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेनमरिन्दमम् ॥ २१
शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरवाकिरन् शितैः ।
भीमस्योपरि राजेन्द्र शक्रदेवो महाबलः ॥ २२
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा ।
हताश्वे तु रथे तिष्ठन् भीमसेनो महाबलः ॥ २३
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।
स तया निहतो राजन् कालिङ्गतनयो रथात् २४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

तथेति ॥ १ ॥

विरथः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ।
हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कलिङ्गानां जनाधिपः ॥ २५
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ।
ततो भीमो महावेगां त्यक्त्वा गुर्वीं महागदाम् ।
निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षुः कर्म दारुणम् ।
चर्म चाप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ ॥ २७
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ।
कालिंगस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य च २८
प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय वधाकांक्षी जनेश्वर ॥ २९
तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् ।
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥
उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ।
कालिंगोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे ॥ ३१
तोमरान् प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ।
तानप्राप्तान् महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः ॥ ३२
चिच्छेद सहसा राजन्नसंभ्रान्तो वरासिना ।
निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ३३
भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत्पुरुषर्षभः ।
भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण च्छादयन् ॥ ३४
ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ।
न च तं मम्रृषे भीमः सिंहनादं महाहवे ॥ ३५
ततः शब्देन महता विननाद महास्वनः ।
तेन नादेन वित्रस्ता कालिंगानां वरूथिनी ॥ ३६
न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ।
ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनम् ॥ ३७
सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ।
आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष ॥ ३८
ततो मुमोच कालिङ्गः शक्तिं तामकरोद्द्विधा ।
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाच्छिनत् ॥ ३९
सोऽन्तरायुधिनं हत्वा राजपुत्रमरिन्दमः ।
गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्यासिमपातयत् ॥ ४०
छिन्नस्कन्धः स विनदन् पपात गजयूथपः ।
आरुग्णः सिन्धुवेगेन सानुमानिव पर्वतः ॥ ४१
ततस्तस्मादवप्लुत्य गजाद्भारत भारतः ।
खड्गपाणिरदीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः ॥ ४२
स चचार बहून्मार्गानभितः पातयन् गजान् ।
अग्निचक्रमिवाविद्धं सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ ४३
अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः ।
पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन् शोणितोक्षितः ॥
श्येनवद्व्यचरद्भीमो रणेऽरिषु बलोत्कटः ।
छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाबलः ॥
खड्गेन शितधारेण संयुगे गजयोधिनाम् ।
पदातिरेकः संक्रुद्धः शत्रूणां भयवर्धनः ॥ ४६
संमोहयामास स तान् कालान्तकयमोपमः ।
मूढाश्च ते तमेवाजौ विनदन्तः समाद्रवन् ॥ ४७
सासिमुत्तमवेगेन विचरन्तं महारणे ।
निकृत्य रथिनां चाजौ रथेषाश्च युगानि च ॥ ४८
जघान रथिनश्चापि बलवान् रिपुमर्दनः ।
भीमसेनश्चरन् मार्गान् सुबहून प्रत्यदृश्यत ॥ ४९
भ्रान्तमाविद्धमुद्भ्रान्तमाप्लुतं प्रसृतं प्लुतम् ।
संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास पाण्डवः ॥ ५०
केचिदग्रासिना छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना ।
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ५१
छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुंभास्तथा परे ।
वियोधाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः ॥
निपेतुरुर्व्यां च तथा विनदन्तो महारवान् ।
छिन्नांश्च तोमरान् राजन् महामात्रशिरांसि च ॥
परिस्तोमान्विचित्रांश्च कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः ।
ग्रैवेयाण्यथ शक्तीश्च पताकाः कणपांस्तथा ॥ ५४
तूणीरानथ यन्त्राणि विचित्राणि धनूंषि च ।
भिन्दिपालानि शुभ्राणि तोत्राणि चाङ्कुशैः सह
घण्टाश्च विविधा राजन् हेमगर्भान् त्सरूनपि ।
पततः पातितांश्चैव पश्यामः सह सादिभिः ॥
छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चापि वारणैः ।
आसीद्भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव ॥ ५७
विमृद्यैवं महानागान् ममर्दान्यान्महाबलः ।
अश्वारोहवरांश्चैव पातयामास संयुगे ॥ ५८

---

भानुमन्तं कलिङ्गात्मजम् ॥ ३४ ॥ अन्तरायुधिनं गजारूढयोधम् ॥ ४० ॥ आविद्धं भ्रामितम् ॥ ४३ ॥ कालान्तकयमोपमः प्रलयकालीननाशकयमतुल्यः ॥ ४७ ॥ भ्रान्तमित्यादि भ्रान्तं मण्डलाकृति तदेव क्रमोपेतमाविद्धं भ्रान्तमेवोन्नतिसहितमुद्भ्रान्तं आप्लुतं केवलमुत्प्लवनं प्रसृतं सर्वासु दिक्षु प्रसरणं प्लुतमेकस्यां दिशि सम्पातं वेगं समुदीर्णं सैर्वान् प्रति समुद्यमम् ॥ ५० ॥ तोमरान्बाणविशेषान् । महामात्रो हस्तिपकः ॥ ५३ ॥ कणपान् मुद्गरान् ॥ ५४ ॥ यन्त्राणि सारिप्रमृतीनि तोत्राणि कर्णमूलतोदनानि ॥ ५५ ॥ गात्रावरैर्गात्रैः पूर्वकायैः अवरैरधःकायैः । 'द्वौ पूर्वपश्चाजङ्घादिदेशौ गात्रावरौ क्रमात्' इति कोशः ॥ ५७ ॥

तद्घोरमभवद्युद्धं तस्य तेषां च भारत ।
खलीनान्यथ योक्त्राणि कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः
परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महाधनाः ।
कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च ६०
तत्र तत्रापविद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे ।
प्रासैर्यन्त्रैर्विचित्रैश्च शस्त्रैश्च विमलैस्तथा ॥ ६१
स चक्रे वसुधां कीर्णां शबलैः कुसुमैरिव ।
आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥६२
पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः ।
मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥ ६३
मार्गांश्च चरतश्चित्रं व्यस्मयन्त रणे जनाः ।
स जघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत्॥
खड्गेनान्यांश्च चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन् ।
ऊरुवेगेन चाप्यन्यान् पातयामास भूतले ॥ ६५
अपरे चैनमालोक्य भयात् पञ्चत्वमागताः ।
एवं सा बहुला सेना कलिङ्गानां तरस्विनाम् ॥
परिवार्य रणे भीष्मं भीमसेनमुपाद्रवत् ।
ततः कलिङ्गसैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ ॥ ६७
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात् ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कालिङ्गो नवभिः शरैः ॥
भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
कालिङ्गबाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥
भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवेधितः ।
अथाशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ७०
भीमं संपादयामास रथेन रथसारथिः ।
तमारुह्य रथं तूर्णं कौंतेयः शत्रुसूदनः ॥ ७१
कालिङ्गमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
ततः श्रुतायुर्बलवान् भीमाय निशितान् शरान् ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
स कार्मुकवरोत्सृष्टैर्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ७३
समाहतो महाराज कालिङ्गेन महात्मना ।
संचुक्रुशे भृशं भीमो दण्डाहत इवोरगः ॥ ७४
क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद्बलिनां वरः ।
कालिङ्गमवधीत्पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ७५
क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिंगस्य महाबलौ ।
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ७६
ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः ।
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद्यमसादनम् ॥ ७७
ततः कलिङ्गाः संक्रुद्धा भीमसेनममर्षणम् ।
अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ७८
ततः शक्तिगदाखड्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
कालिंगाश्च ततो राजन् भीमसेनमवाकिरन् ॥
संनिवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
गदामादाय तरसा संनिपत्य महाबलः ॥ ८०
भीमः सप्त शतान् वीराननयद्यमसादनम् ।
पुनश्चैव द्विसाहस्रान् कलिङ्गानरिमर्दनः ॥ ८१
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाभवत् ।
एवं स तान्यनीकानि कलिङ्गानां पुनः पुनः ॥८२
बिभेद समरे तूर्णं प्रेक्ष्य भीष्मं महारथम् ।
हतारोहाश्च मातङ्गाः पाण्डवेन कृता रणे ॥ ८३
विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥
ततो भीमो महाबाहुः खड्गहस्तो महाभुजः ।
संप्रहृष्टो महाघोषं शङ्खं प्राध्मापयद्बली ॥ ८५
सर्वकालिंगसैन्यानां मनांसि समकंपयत् ।
मोहश्चापि कालिंगानामाविवेश परंतप ॥ ८६
प्राकंपन्त च सैन्यानि वाहनानि च सर्वशः ।
भीमेन समरे राजन् गजेन्द्रेणेव सर्वशः ॥ ८७
मार्गान् बहून् विचरता धावता च ततस्ततः ।
मुहुरुत्पतता चैव संमोहः समपद्यत ॥ ८८
भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत ।
क्षोभ्यमाणमसंबाधं ग्राहेणेव महत्सरः ॥ ८९
त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाद्भुतकर्मणा ।
पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च सङ्घशः ॥ ९०
सर्वकालिंगयोधेषु पाण्डूनां ध्वजिनीपतिः ।
अब्रवीत्स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥
सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखण्डिप्रमुखा गणाः ।
भीममेवाभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥ ९२
धर्मराजश्च तान् सर्वानुपजग्राह पाण्डवः ।
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥ ९३
एवं संनोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः ।
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ ९४
न हि पञ्चालराजस्य लोके कश्चन विद्यते ।
भीमसात्यकयोरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥ ९५
सोऽपश्यच्च कलिङ्गेषु चरन्तमरिसूदनः ।
भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥ ९६

खलीनानि अश्वस्य निवेश्यानि 'कडिआळी' इति प्रसिद्धानि । कक्ष्या गजमध्यबन्धनम् ॥५९॥ आस्तरणानि पर्याच्छादनानि ॥ ६० ॥ अपविद्धानि पतितानि ॥ ६१ ॥ अशोको विशोकः ॥ ७० ॥

ननर्द बहुधा राजन् हृष्टश्चासीत् परंतपः।
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥ ९७
स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते।
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥ ९८
धृष्टद्युम्नस्तु तं दृष्ट्वा कलिङ्गैः समभिद्रुतम्।
भीमसेनममेयात्मा त्राणायाजौ समभ्ययात् ९९
तौ दूरात् सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ।
कालिङ्गान् समरे वीरौ योधयंतौ मनस्विनौ १००
स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः।
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ १०१
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः।
आस्थितो रौद्रमात्मानं कलिङ्गानन्ववैक्षत ॥ २
कलिङ्गप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमाम्।
रुधिरस्यन्दिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीम् ॥ ३
अन्तरेण कलिङ्गानां पाण्डवानां च वाहिनीम्।
तां सन्ततार दुस्तारां भीमसेनो महाबलः ॥ ४
भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप।
कालोऽयं भीमरूपेण कलिङ्गैः सह युध्यते ॥ ५
ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे।
अभ्ययात्त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः ॥ ६
तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ७
परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे।
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्छुरोजसा ॥ ८
प्रत्यविध्यत तान् सर्वान् पिता देवव्रतस्तव।
यतमानान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ९
ततः शरसहस्रेण संनिवार्य महारथान्।
हयान् काञ्चनसंनाहान् भीमस्य न्यहनच्छरैः ॥
हताश्वे स रथे तिष्ठन् भीमसेनः प्रतापवान्।
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ ११
अप्राप्तामथ तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव।
त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत ॥ १२
ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान् गदाम्।
भीमसेनस्ततस्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ ॥ १३
सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया।
गाङ्गेयसारथिं तूर्णं पातयामास सायकैः ॥ १४
भीष्मस्तु निहते तस्मिन् सारथौ रथिनां वरः।
वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात् ॥ १५
भीमसेनस्ततो राजन्नपयाते महाव्रते।
प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन् कक्षमिवैधितः ॥ १६
स हत्वा सर्वकालिङ्गान् सेनामध्ये व्यतिष्ठत।
नैनमभ्युत्सहन् केचित्तावका भरतर्षभ ॥ १७
धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः।
पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम् ॥ १८
संपूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ।
धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकिम् ॥ १९
अथाब्रवीद्भीमसेनं सात्यकिः सत्यविक्रमः।
प्रहर्षयन् यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ १२०
दिष्ट्या कलिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान्।
शक्रदेवश्च कालिंगः कलिंगाश्च मृधे हताः ॥ २१
स्वबाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः।
महापुरुषभूयिष्ठो वीरयोधनिषेवितः ॥ २२
महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वया।
एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिन्दम ॥ २३
रथाद्रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम्।
ततः स्वरथमास्थाय पुनरेव महारथः।
तावकानवधीत् क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत् १२४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसे कलिङ्गराजवधे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

---

पारावताश्वस्य मर्कटतिन्दुकसमानवर्णाश्वस्य। 'पारावतः कलरवे शैले मर्कटतिन्दुके' इति विश्वः ॥ ९८ ॥ आनर्च्छुः आच्छादितवन्तः ॥ ८ ॥ वातायमानैः इतस्ततो धावद्भिः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

# ५५

सञ्जय उवाच ।
गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये ॥ १
द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना ।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः ॥ २
स लोकविदितानश्वान्निजघान महाबलः ।
द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः ॥ ३
ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः ।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः ॥ ४
धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत ।
सौभद्रोऽभ्यपतत्तूर्णं विकिरन्निशितान् शरान् ॥५
स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ६
आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा ।
शल्योऽथ दशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः ॥ ७
लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम् ।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ८
दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा ।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ ।
शरैः पञ्चाशता राजन् क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत १०
लक्ष्मणोऽपि पुनस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा ।
मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ ११
तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥ १२
तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ १३
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् ।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात् तत्र प्रजेश्वरः ॥ १४
संनिवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः ।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १५
स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः ।
न स्म प्रव्यथते राजन् कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ १६
सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनञ्जयः ।
अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥ १७
ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम् १८
उद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथपत्तिभिः ।
दिवाकररथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥ १९
तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च ।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ २०
प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ।
कुरूणां चानयस्तीव्रः समदृश्यत दारुणः ॥ २१
नाप्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः ।
प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शरसङ्घैः किरीटिनः ॥ २२
सादितरथनागाश्च हताश्वा रथिनो रणे ।
विप्रद्रुतरथाः केचिद्दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥ २३
विरथा रथिनश्चान्ये धावमानाः समन्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः साङ्गदैर्भुजैः ॥ २४
हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दन्तिनः ।
अर्जुनस्य भयाद्राजन् समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥ २५
रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनसायकैः २६
सगदानुद्यतान् बाहून् सखड्गांश्च विशांपते ।
सप्रासांश्च सतूणीरान् सशरान् सशरासनान् २७
साङ्कुशान् सपताकांश्च तत्र तत्रार्जुनो नृणाम् ।
निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं वपुरधारयत् ॥ २८
परिघाणां प्रदीप्तानां मुद्गराणां च मारिष ।
प्रासानां भिन्दिपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे
परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत ।
वर्मणां चापविद्धानां काञ्चनानां च भूमिप ३०
ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः ।
छत्राणां हेमदण्डानां चामराणां च भारत ॥ ३१
प्रतोदानां च योक्त्राणां कशानां चैव मारिष ।
राशयः स्मात्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ३२
नासीत्तत्र पुमान् कश्चित्तव सैन्यस्य भारत ।
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात् कथञ्चन ॥ ३३
यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशांपते ।
स संख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ३४
तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ ३५
तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव ।
अब्रवीत् समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥ ३६

५५
गतेति ॥ १ ॥

एष पाण्डुसुतो वीर कृष्णेन सहितो बली ।
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद्धनञ्जयः ॥ ३७
न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथञ्चन ।
यथाऽस्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ ३८
न निवर्तयितुं चापि शक्येयं महती चमूः ।
अन्योन्यप्रेक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३९
एष चास्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान् प्रतिपद्यते ।
चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥ ४०
तत्रावहारं संप्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ ।
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथञ्चन
एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥ ४२
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत् सन्ध्याकाले च वर्तति ४३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसावहारे
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

सञ्जय उवाच ।
प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत ॥ १
गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा ।
पुत्राणां ते जयाकाङ्क्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २
गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव ।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ ।
त्रैगर्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुगे ॥ ४
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥ ५
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां सन्निवेशिताः ।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥ ६
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ ७
मागधाश्च कलिङ्गाश्च दासेरकगणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ८
कारूषाश्च विकुञ्जाश्च मुण्डाः कुण्डीवृषास्तथा ।
बृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः ॥ ९
व्यूढं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं सव्यसाची परंतपः ।
धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे ॥ १०
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहं तमतिदारुणम् ।
दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत ॥ ११
नानाशस्त्रौघसम्पन्नैर्नानादेश्यैर्नृपैर्वृतः ।
तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ १२
तदनन्तरमेवासीन्नीलो नीलायुधैः सह ।
नीलादनन्तरश्चैव धृष्टकेतुर्महाबलः ॥ १३
चेदिकाशिकरूषैश्च पौरवैरपि संवृतः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥ १४
मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत ।
तत्रैव धर्मराजोऽपि गजानीकेन संवृतः ॥ १५
ततस्तु सात्यकी राजन् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
अभिमन्युस्ततः शूर इरावांश्च ततः परम् ॥ १६
भैमसेनिस्ततो राजन् केकयाश्च महारथाः ।
ततोऽभूद्द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ॥ १७
सर्वस्य जगतो गोप्ता गोप्ता यस्य जनार्दनः ।
एवमेतं महाव्यूहं प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ॥ १८
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः ।
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ १९
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ।
हयौघाश्च रथौघाश्च तत्र तत्र विशांपते ॥ २०
संपतन्तो व्यदृश्यन्त निघ्नन्तस्ते परस्परम् ।
धावतां च रथौघानां निघ्नतां च पृथक् पृथक् २१

---

यथा कुर्याद्धनञ्जयः धनञ्जयोऽग्निरर्जुनो वा स यथा कुर्यादित्यसाधारण्योक्तिः॥३७॥ अन्योन्यप्रेक्षया परस्परभङ्गदर्शनेन ॥ ३९ ॥ वर्तति वर्तमाने ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

प्रभातायामिति ॥ १ ॥

बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः। क्ष्वेलस्फूर्जन्नरवीराणां निघ्नतामितरेतरम्॥
संग्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत॥ २२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे परस्परव्यूहरचनायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

## ५७

सञ्जय उवाच।
ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेषु परेषु च।
धनञ्जयो रथानीकमवधीत्तव भारत॥ १
शरैरतिरथो युद्धे दारयन् रथयूथपान्।
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये॥ २
धार्तराष्ट्रा रणे यत्नात् पाण्डवान् प्रत्ययोधयन्।
प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ ३
एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां वरूथिनीम्।
बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चाभज्यन्त संयुगे॥ ४
द्रवद्भिरथ भग्नैश्च परिवर्तद्भिरेव च।
पाण्डवैः कौरवेयैश्च न प्राज्ञायत किञ्चन॥ ५
उदतिष्ठद्रजो भौमं छादयानं दिवाकरम्।
न दिशः प्रदिशो वाऽपि तत्र हन्युः कथं नराः॥ ६
अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे।
वर्तते च तथा युद्धं तत्र तत्र विशाम्पते॥ ७
न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथञ्चन।
रक्षितः सत्यसन्धेन भारद्वाजेन संयुगे॥ ८
तथैव पाण्डवानां च रक्षितः सव्यसाचिना।
नाभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः॥ ९
सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः।
उभयोः सेनयो राजन् व्यतिषक्तरथद्विपाः॥ १०
हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म महाहवे।
ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च प्रासैरपि च संयुगे॥ ११
रथी रथिनमासाद्य शरैः कनकभूषणैः।
पातयामास समरे तस्मिन्नतिभयङ्करे॥ १२
गजारोहा गजारोहान्नाराचशरतोमरैः।
संसक्तान् पातयामासुस्तव तेषां च सर्वशः॥ १३
कश्चिदुत्पत्य समरे वरवारणमास्थितः।
केशपक्षे परामृश्य जहार समरे शिरः॥ १४
अन्ये द्विरददन्ताग्रनिर्भिन्नहृदया रणे।
वेमुश्च रुधिरं वीरा निःश्वसन्तः समन्ततः॥ १५
कश्चित्करिविषाणस्थो वीरो रणविशारदः।
प्रावेपच्छक्तिनिर्भिन्नो गजशिक्षाविवेदिना॥ १६
पत्तिसङ्घा रणे पत्तीन् भिन्दिपालपरश्वधैः।
न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः॥ १७
रथी च समरे राजन्नासाद्य गजयूथपम्।
सगजं पातयामास गजी च रथिनां वरम्॥ १८
रथिनं च हयारोहः प्रासेन भरतर्षभ।
पातयामास समरे रथी च हयसादिनम्॥ १९
पदाती रथिनं संख्ये रथी चापि पदातिनम्।
न्यपातयच्छितैः शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि॥ २०
गजारोहा हयारोहान् पातयाञ्चक्रिरे तदा।
हयारोहा गजस्थांश्च तदद्भुतमिवाभवत्॥ २१
गजारोहवरैश्चापि तत्र तत्र पदातयः।
पातिताः समदृश्यन्त तैश्चापि गजयोधिनः॥ २२
पत्तिसङ्घा हयारोहैः सादिसङ्घाश्च पत्तिभिः।
पात्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः॥ २३
ध्वजैस्तत्रापविद्धैश्च कार्मुकैस्तोमरैस्तथा।
प्रासैस्तथा गदाभिश्च परिघैः कम्पनैस्तथा॥ २४
शक्तिभिः कवचैश्चित्रैः कणपैरङ्कुशैरपि।
निस्त्रिंशैर्विमलैश्चापि स्वर्णपुङ्खैः शरैस्तथा॥ २५
परिस्तोमैः कुथाभिश्च कम्बलैश्च महाधनैः।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामैरिव चित्रिता॥ २६

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

५७

तत इति॥ १॥ मृत्युं कृत्वा निवर्तनं मृत्युरेव निवर्तनहेतुर्नान्य इत्यर्थः॥ ३॥ अनुमानेन ध्वजादिचिह्नेन संज्ञाभिः सङ्केतैश्च॥ ७॥ परिस्तोमैश्चित्रकम्बलैः कुथाभिः स्तोमैः क्षुद्रैः कम्बलैः राङ्कवैः महाधनैर्महामूल्यैः स्रग्दामैः स्रग्-चितैर्दामभिः अनेन स्रजां बाहुल्यं दैर्घ्यं च दर्शितम्॥ २६॥

नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २७
प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः ।
दिशश्च विमलाः सर्वाः सम्बभूवुर्जनेश्वर ॥ २८
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥ २९
तस्मिन् युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रत्यदृश्यन्त रथिनो धावमानाः समन्ततः ॥ ३०
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौबलिः ॥ ३१
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः ।
पाण्डवानामनीकानि बभञ्जुः स्म पुनः पुनः ३२
तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत ॥ ३३
तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान् सर्वराजभिः ।
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥ ३४
तथा ते समरेऽन्योन्यं निघ्नन्तः क्षत्रियर्षभाः ।
रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥ ३५
विनिर्जित्य रिपून् वीराः सेनयोरुभयोरपि ।
व्यदृश्यन्त महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥ ३६
ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे महत्या सेनया सह ।
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिन्दमौ ॥ ३८
किरीटी च ययौ क्रुद्धः समन्तात्पार्थिवोत्तमान् ।
आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम् ॥ ३९
ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः ।
तावकानां परेषां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे संकुलयुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

सञ्जय उवाच ।
ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १
अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत ।
शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥ २
शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह ।
प्रासान् परश्वधांश्चैव मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३
चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवायतिम् ॥४
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ।
तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ॥ ५
देव-दानव-गन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साधु साध्विति राजेन्द्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥
सात्यकिश्चाभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ ।
गान्धारान् समरे शूरान् जग्मतुः सहसौबलान्॥
तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् ।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥
सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयावहे ।
अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ९
तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीम् ।
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १०
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम् ।
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ११
ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मिषतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ १२
तत्रासीत् सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत् सुदारुणम् ॥ १३
कुर्वाणौ सुमहत् कर्म भीमसेनघटोत्कचौ ।
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावप्यवारयत् ॥ १४
तत्राद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम् ।
अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत ॥ १५
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम् ।
हृद्यविध्यत्पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ १६
ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ १७

महामात्राः प्रधानाः॥३६॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७ ॥

५८

'ततस्ते इति' ॥ १ ॥ कोष्ठकीकृत्य वेष्टयित्वा ॥ २ ॥

तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः ।
अपोवाह रणाद्राजंस्ततः सैन्यमभज्यत ॥ १८
ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः ।
निघ्नन् भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥ १९
पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः ॥२०
जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः ।
द्रवमाणं तु तत् सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ॥ २१
नाशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
वार्यमाणं च भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २२
विद्रवत्येव तत् सैन्यं पश्यतोर्द्रोणभीष्मयोः ।
ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः ॥ २३
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ ।
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥ २४
शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ ।
अमावास्यां गतौ यद्वत्सोमसूर्यौ नभस्तले ॥ २५
अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तव सैन्यं विशांपते ।
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥ २६
वध्यमानं ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे ।
दुद्राव कौरवं सैन्यं विषादभयकंपितम् ॥ २७
द्रवतस्तान् समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥ २८
ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशांपते ।
न्यवर्तयत तत् सैन्यं द्रवमाणं समंततः ॥ २९
यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत ।
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥ ३०
तान्निवृत्तान् समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरे जनाः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन् लज्जया चावतस्थिरे ॥३१
पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद्विशांपते ।
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥ ३२
सन्निवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
अब्रवीत् त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः ३३
पितामह निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि भारत ।
नानुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥ ३४
द्रोणे चास्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने ।
कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद्वरूथिनी ॥ ३५
न पाण्डवान् प्रतिबलांस्तव मन्ये कथञ्चन ।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ३६
अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह ।
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥ ३७
सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन्पूर्वमेव समागमे ।
न योत्स्ये पाण्डवान्संख्ये नापि पार्षतसात्यकी ॥
श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च ।
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥ ३९
यदि नाहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे ।
विक्रमेणानुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ ॥ ४०
एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन् वै मुहुर्मुहुः ।
अब्रवीत्तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ४१
बहुशोऽसि मया राजंस्तथ्यमुक्तो हितं वचः ।
अजय्याः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ४२
यत्तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम ।
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः ४३
अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान् सह बन्धुभिः ।
सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ४४
एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर ।
दध्मुः शङ्खान् मुदा युक्ता भेरीः सजघ्निरे भृशम्
पाण्डवा हि ततो राजन् श्रुत्वा तं निनदं महत् ।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च मुरजांश्चाप्यनादयन् ४६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

धृतराष्ट्र उवाच ।
प्रतिज्ञाते ततस्तस्मिन् युद्धे भीष्मेण दारुणे ।
क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः ॥
भीष्मः किमकरोत् तत्र पाण्डवेयेषु भारत ।
पितामहे वा पञ्चालास्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २

चिन्तयानः अभावयिष्यामिति शेषः ॥३९॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नै० भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८

५९

प्रतिज्ञाते इति ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच ।

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चापि दिवाकरे ३
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ॥ ४
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रैश्च सर्वशः ॥ ५
प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात्तव भारत ॥ ६
धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाभिहन्यताम् ।
महान् समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥ ७
तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव
स्थिरोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दोऽश्रूयत सर्वशः ॥ ८
काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च ।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूत्स्वनः ॥ ९
पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः ।
व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०
हृतोत्तमाङ्गाः केचित्तु तथैवोद्यतकार्मुकाः ।
प्रगृहीतायुधाश्चापि तस्थुः पुरुषसत्तमाः ॥ ११
प्रावर्तत महावेगा नदी रुधिरवाहिनी ।
मातङ्गाङ्गशिला रौद्रा मांसशोणितकर्दमा ॥ १२
वराश्वनरनागानां शरीरप्रभवा तदा ।
परलोकार्णवमुखी गृध्रगोमायुमोदिनी ॥ १३
न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप ।
यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत १४
नासीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः ।
गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरिशृङ्गैरिवावृतः ॥ १५
विकीर्णैः कवचैश्चित्रैः शिरस्त्राणैश्च मारिष ।
शुशुभे तद्रणस्थानं शरदीव नभस्तलम् ॥ १६
विनिर्भिन्नाः शरैः केचिदन्त्रापीडप्रकर्षिणः ।
अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दर्पिताः ॥ १७
तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल ।
मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे ॥ १८
अथाभ्येहि त्वमागच्छ किं भीतोऽसि क यास्यसि
स्थितोऽहं समरे मा भैरिति चान्ये विचुक्रुशुः ॥
तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव २०
शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्य भरतर्षभ ॥ २१
स नृत्यन्वै रथोपस्थे दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
अलातचक्रवद्राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते ॥ २२
तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त लाघवात् ॥ २३
मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्र स्म मेनिरे ।
पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः २४
उदीच्यां चैवमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो ।
एवं स समरे शूरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत ॥ २५
न चैवं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुम् ।
विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान्बहून् २६
कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानं च वाहिनीम् ।
व्याक्रोशन्त रणे तत्र नरा बहुविधा बहु ॥ २७
अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव ।
शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः २८
भीष्माग्निमभिसंक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः ।
न हि मोघः शरः कश्चिदासीद्भीष्मस्य संयुगे २९
नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः ।
भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुक्तेन पतत्रिणा ॥ ३०
गजकण्टकसंनद्धं वज्रेणेव शिलोच्चयम् ।
द्वौ त्रीनपि गजारोहान्पिण्डितान्वर्मितानपि ॥ ३१
नाराचेन सुमुक्तेन निजघान पिता तव ।
यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन ३२
मुहूर्तदृष्टः स मया पतितो भुवि दृश्यते ।
एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः ॥ ३३
भीष्मेणातुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा ।
प्राकम्पत महासेना शरवर्षेण तापिता ॥ ३४
पश्यतो वासुदेवस्य पार्थस्याथ शिखण्डिनः ।
वर्तमानाऽपि ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ३५
नाशक्नुवन् वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।
महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ ३६
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।
आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ॥ ३७
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।
जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ ३८
प्रियं सखायं चाक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ।
विमुच्य कवचान्यन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ३९
विमुक्तकेशा धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त भारत ।
तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथयूथपम् ॥ ४०

पिण्डितान् एकस्थान् वर्मितान्कवचिनः ॥ ३१ ॥ आक्रन्दे युद्धे ॥ ३९ ॥

ददर्श पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ४१
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।
अयं स कालः संप्राप्तः पार्थ यस्तेऽभिकाङ्क्षितः
प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।
यत्त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे ॥ ४३
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
सानुबन्धान् हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे
इति तत् कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिंदम ।
बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं ततस्ततः ॥४५
द्रवतश्च महीपालान् पश्य यौधिष्ठिरे बले ।
दृष्ट्वा हि भीष्मं समरे व्यात्ताननमिवान्तकम् ४६
भयार्ताः प्रपलायन्ते सिंहात् क्षुद्रमृगा इव ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनञ्जयः ॥ ४७
नोदयाश्वान् यतो भीष्मो विगाह्यैतद्बलार्णवम् ।
पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ४८

सञ्जय उवाच ।

ततोऽश्वान् रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ।
यतो भीष्मरथो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ४९
ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ॥ ५०
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठ सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५१
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ।
शरवर्षेण महता संछन्नो न प्रकाशते ॥ ५२
वासुदेवस्त्वसंभ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् ।
चोदयामास तानश्वान् विचितान् भीष्मसायकैः
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा त्रिभिः शरैः ॥
स छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ।
निमिषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ॥ ५५
विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
अथास्य तदपि क्रुद्धश्छिच्छेद धनुरर्जुनः ॥ ५६
तस्य तत् पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ।
साधु पार्थ महाबाहो साधु भो पाण्डुनन्दन ॥५७
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं महत् कर्म धनञ्जय ।
प्रीतोऽस्मि सुभृशं पुत्र कुरु युद्धं मया सह ॥ ५८
इति पार्थं प्रशस्याथ प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ।
मुमोच समरे वीरः शरान् पार्थरथं प्रति ॥ ५९
अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान् कुर्वन् शरांस्तस्य मण्डलान्याचरल्लघु ६०
तथा भीष्मस्तु सुदृढं वासुदेवधनञ्जयौ ।
विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत ॥ ६१
शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ६२
पुनश्चापि सुसंरब्धः शरैः शतसहस्रशः ।
कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्मोऽथावारयद्दिशः ६३
वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः ।
मुहुरभ्यर्दयन् भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ६४
ततस्तु कृष्णः समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम् ।
संप्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ॥ ६५
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ॥ ६६
वरान् वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥ ६७
अमृष्यमाणो भगवान् केशवः परवीरहा ।
अचिन्तयदमेयात्मा नास्ति यौधिष्ठिरं बलम् ॥६८
एकाह्ना हि रणे भीष्मो नाशयेद्देवदानवान् ।
किं नु पाण्डुसुतान् युद्धे सबलान् सपदानुगान् ॥
द्रवते च महासैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान् वीक्ष्य सोमकान् ७०
प्राद्रवन्ति रणे दृष्ट्वा हर्षयन्तः पितामहम् ।
सोऽहं भीष्मं निहत्याद्य पाण्डवार्थाय दंशितः ॥
भारमेतं विनेष्यामि पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानोऽपि संयुगे ॥७२
कर्तव्यं नाभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात् ।
तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान् पार्थरथं प्रति ॥ ७३

तेषां बहुत्वात्तु भृशं शराणां
दिशश्च सर्वाः पिहिता बभूवुः ।
न चान्तरिक्षं न दिशो न भूमि-
र्न भास्करोऽदृश्यत रश्मिमाली ॥ ७४
ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा
दिशश्च सर्वाः क्षुभिता बभूवुः ।
द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च
भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च ॥ ७५
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा
विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे
वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ ७६

किरीटिनं त्वरमाणाऽभिसस्रु-
निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः ।
तं वाजिनागरथौघजालै-
रनेकसाहस्रशतैर्ददर्श ॥ ७७

किरीटिनं संपरिवार्यमाणं
शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च ।
ततस्तु दृष्ट्वाऽर्जुनवासुदेवौ
पदातिनागाश्वरथैः समन्तात् ॥ ७८

अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ
शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम् ।
स तान्यनीकानि महाधनुष्मान्
शिनिप्रवीरः सहसाऽभिपत्य ॥ ७९

चकार साहाय्यमथार्जुनस्य
विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य ।
विशीर्णनागाश्वरथध्वजौघं
भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम् ॥ ८०

युधिष्ठिरानीकमभिद्रवन्तं
प्रोवाच संदृश्य शिनिप्रवीरः ।
क क्षत्रिया यास्यथ नैष धर्मः
सतां पुरस्तात् कथितः पुराणैः ॥ ८१

मा स्वां प्रतिज्ञां त्यजत प्रवीराः
स्वं वीरधर्मं परिपालयध्वम् ।
तान्वासवानन्तरजो निशम्य
नरेन्द्रमुख्यान् द्रवतः समन्तात् ॥ ८२

पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च
भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम् ।
अमृष्यमाणः स ततो महात्मा
यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता ॥ ८३

उवाच शैनेयमभिप्रशंसन्
दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान् ।
ये यान्ति ते यान्तु शिनिप्रवीर
येऽपि स्थिताः सात्वत तेऽपि यान्तु ॥ ८४

भीष्मं रथात् पश्य निपात्यमानं
द्रोणं च संख्ये सगणं मयाऽद्य ।
न मे रथी सात्वत कौरवाणां
क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित् ॥ ८५

तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं
प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य ।
निहत्य भीष्मं सगणं तथाऽऽजौ
द्रोणं च शैनेय रथप्रवीरौ ॥ ८६

प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य
राज्ञश्च भीमस्य तथाऽश्विनोश्च ।
निहत्य सर्वान् धृतराष्ट्रपुत्रां-
स्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः ॥ ८७

राज्येन राजानमजातशत्रुं
सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः ।
ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः
सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम् ॥ ८८

क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं
रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान् ।
संकम्पयन् गां चरणैर्महात्मा
वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम् ॥ ८९

मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं
सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम् ।
सोऽभिद्रवन् भीष्ममनीकमध्ये
क्रुद्धो महेन्द्रावरजः प्रमाथी ॥ ९०

व्यालम्बिपीतान्तपटश्चकाशे
घनो यथा खे तडितावनद्धः ।
सुदर्शनं चास्य रराज शौरे-
स्तच्चक्रपद्मं सुभुजोरुनालम् ॥ ९१

यथादिपद्मं तरुणार्कवर्णं
रराज नारायणनाभिजातम् ।
तत्कृष्णकोपोदयसूर्यबुद्धं
क्षुरान्ततीक्ष्णाग्रसुजातपत्रम् ॥ ९२

तस्यैव देहोरुसरः प्ररूढं
रराज नारायणबाहुनालम् ।
तमात्तचक्रं प्रणदन्तमुच्चैः
क्रुद्धं महेन्द्रावरजं समीक्ष्य ॥ ९३

सर्वाणि भूतानि भृशं विनेदुः
क्षयं कुरूणामिव चिन्तयित्वा ।
स वासुदेवः प्रगृहीतचक्रः
संवर्तयिष्यन्निव सर्वलोकम् ॥ ९४

अभ्युत्पतन् लोकगुरुर्बभासे
भूतानि धक्ष्यन्निव धूमकेतुः ।
तमाद्रवन्तं प्रगृहीतचक्रं
दृष्ट्वा देवं शान्तनवस्तदानीम् ॥ ९५

---

समुदीर्यमाणं वर्धमानप्रयत्नम् ॥ ८३ ॥ अश्विनोराश्विपुत्रयोर्नकुलसहदेवयोः ॥ ८७ ॥

असंभ्रमं तद्विचकर्ष दोर्भ्यां
महाधनुर्गाण्डिवतुल्यघोषम् ।
उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं
गोविन्दमाजावविमूढचेताः ॥ ९६

एह्येहि देवेश जगन्निवास
नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे ।
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ
रथोत्तमात् सर्वशरण्यसंख्ये ॥ ९७

त्वया हतस्यापि ममाद्य कृष्ण
श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके ।
संभावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ
लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात् ॥ ९८

रथादवप्लुत्य ततस्त्वराधान्
पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम् ।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं
बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः ॥ ९९

निगृह्यमाणश्च तदाऽऽदिदेवो
भृशं सरोषः किल चात्मयोगी ।
आदाय वेगेन जगाम विष्णु-
र्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥ १००

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ
भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम् ।
बलान्निजग्राह हरिं किरीटी
पदेऽथ राजन् दशमे कथञ्चित् ॥ १

अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं
प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली ।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति
गतिर्भवान् केशव पाण्डवानाम् ॥ २

न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं
पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च ।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां
त्वयाऽहमिन्द्रानुजसंप्रयुक्तः ॥ ३

ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य
जनार्दनः प्रीतमना निशम्य ।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य
रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥ ४

स तानभीषून् पुनराददानः
प्रगृह्य शङ्खं द्विषतां निहन्ता ।
विनादयामास ततो दिशश्च
स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥ ५

व्याविद्धनिष्काङ्गदकुण्डलं तं
रजोविकीर्णाञ्चितपक्ष्मनेत्रम् ।
विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशङ्खं
विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥ ६

मृदङ्गभेरीपणवप्रणादा
नेमिस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च ।
ससिंहनादाश्च बभूवुरुग्राः
सर्वेष्वनीकेषु ततः कुरूणाम् ॥ ७

गाण्डीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो
जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च ।
जग्मुश्च बाणा विमलाः प्रसन्नाः
सर्वा दिशः पाण्डवचापमुक्ताः ॥ ८

तं कौरवाणामधिपो जवेन
भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्धम् ।
अभ्युद्ययावुद्यतबाणपाणिः
कक्षं दिधक्षन्निव धूमकेतुः ॥ ९

अथार्जुनाय प्रजिघाय भल्लान्
भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान् ।
दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं
शल्यो गदां शान्तनवश्च शक्तिम् ॥ ११०

स सप्तभिः सप्तशरप्रवेकान्
संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् ।
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं
क्षुरेण तत्तोमरमुन्ममाथ ॥ ११

ततः शुभामापततीं स शक्तिं
विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम् ।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां
द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥ १२

ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य
चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत्सुघोरं
प्रादुश्चकाराद्भुतमन्तरिक्षे ॥ १३

तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा
सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान् ।
शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णै-
र्निवारयामास किरीटमाली ॥ १४

प्रजिघाय प्रेषयामास ॥ ११० ॥ शरप्रवेकान् बाणश्रेष्ठान् ॥ ११ ॥

शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता
रथान् ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून्।
निकृत्य देहान्विविशुः परेषां
नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥ ११५

ततो दिशः सोऽनुदिशश्च पार्थः
शरैः सुधारैः समरे वितत्य।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां
किरीटमाली व्यथयाञ्चकार ॥ १६

तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते
शङ्खस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिःस्वनेन
बभूवुरुग्राश्वरथप्रणादाः ॥ १७

गाण्डीवशब्दं तमथो विदित्वा
विराटराजप्रमुखाः प्रवीराः।
पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीर-
स्तं देशमाजग्मुरदीनसत्त्वाः ॥ १८

सर्वाणि सैन्यानि तु तावकानि
यतो यतो गाण्डिवजः प्रणादः।
ततस्ततः सन्नतिमेव जग्मु-
र्न तं प्रतीपोऽभिससार कश्चित् ॥ १९

तस्मिन् सुघोरे नृपसंप्रहारे
हताः प्रवीराः सरथाश्वसूताः।
गजाश्च नाराचनिपाततप्ता
महापताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः ॥ १२०

परीतसत्त्वाः सहसा निपेतुः
किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः।
दृढं हताः पत्रिभिरुग्रवेगैः
पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः ॥ २१

निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला
ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु।
पदातिसङ्घाश्च रथाश्च संख्ये
हयाश्च नागाश्च धनञ्जयेन ॥ २२

बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्त्वा
विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम्।
ऐन्द्रेण तेनास्त्रवरेण राजन्
महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥ २३

ततः शरौघैर्निशितैः किरीटिना
नृदेहशस्त्रक्षतलोहितोदा।
नदी सुघोरा नरमेदफेना
प्रवर्तिता तत्र रणाजिरे वै ॥ २४

वेगेन साऽतीव पृथुप्रवाहा
परेतनागाश्वशरीररोधा।
नरेन्द्रमज्जोच्छ्रितमांसपङ्का
प्रभूतरक्षोगणभूतसेविता ॥ २५

शिरःकपालाकुलकेशशाद्वला
शरीरसङ्घातसहस्रवाहिनी।
विशीर्णनानाकवचोर्मिसंकुला
नराश्वनागास्थिनिकृत्तशर्करा ॥ २६

श्व-कङ्क-शालावृक-गृध्र-काकैः
क्रव्यादसङ्घैश्च तरक्षुभिश्च।
उपेतकूलां ददृशुर्मनुष्याः
क्रूरां महावैतरणीप्रकाशाम् ॥ २७

प्रवर्तितामर्जुनबाणसङ्घै-
र्मेदोवसासृक्प्रवहां सुभीमाम्।
हतप्रवीरां च तथैव दृष्ट्वा
सेनां कुरूणामथ फाल्गुनेन ॥ २८

ते चेदि-पाञ्चाल-करूष-मत्स्याः
पार्थाश्च सर्वे सहिताः प्रणेदुः।
जयप्रगल्भाः पुरुषप्रवीराः
संत्रासयन्तः कुरुवीरयोधान् ॥ २९

हतप्रवीराणि बलानि दृष्ट्वा
किरीटिना शत्रुभयावहेन।
वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां
सिंहो मृगाणामिव यूथसङ्घान् ॥ १३०

विनेदतुस्तावतिहर्षयुक्तौ
गाण्डीवधन्वा च जनार्दनश्च।
ततो रविं संवृतरश्मिजालं
दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ॥ ३१

तदैन्द्रमस्त्रं विततं च घोर-
मसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पम्।
अथापयानं कुरवः सभीष्माः
सद्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च ॥ ३२

चक्रुर्निशां सन्धिगतां समीक्ष्य
विभावसोर्लोहितरागयुक्ताम्।
अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके
विजित्य शत्रूंश्च धनञ्जयोऽपि ॥ ३३

ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च
समाप्तकर्मा शिबिरं निशायाम्।
ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां
निशामुखे घोरतमः प्रणादः ॥ ३४

रणे रथानामयुतं निहत्य
हता गजाः सप्तशतार्जुनेन ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे
निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ ३५
महत् कृतं कर्म धनञ्जयेन
कर्तुं यथा नार्हति कश्चिदन्यः ।
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा
तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ॥ ३६
द्रोणः कृपः सैन्धवबाल्हिकौ च
भूरिश्रवाः शल्यशलौ च राजन् ।
अन्ये च योधाः शतशः समेताः
क्रुद्धेन पार्थेन रणस्य मध्ये ॥ ३७
स्वबाहुवीर्येण जिताः सभीष्माः
किरीटिना लोकमहारथेन ।
इति ब्रुवन्तः शिबिराणि जग्मुः
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥ ३८
उल्कासहस्रैश्च सुसंप्रदीप्तै-
र्विभ्राजमानैश्च तथा प्रदीपैः ।
किरीटिवित्रासितसर्वयोधा
चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम् ॥ १३९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

सञ्जय उवाच ।
व्युष्टां निशां भारत भारताना-
मनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा ।
ययौ सपत्नान् प्रतिजातकोपो
वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ॥ १
तं द्रोण-दुर्योधन-बाल्हिकाश्च
तथैव दुर्मर्षण-चित्रसेनौ ।
जयद्रथश्चातिबलो बलौघै-
र्नृपास्तथाऽन्ये प्रययुः समन्तात् ॥ २
स तैर्महद्भिश्च महारथैश्च
तेजस्विभिर्वीर्यवद्भिश्च राजन् ।
रराज राजा स तु राजमुख्यै-
र्वृतः स देवैरिव वज्रपाणिः ॥ ३
तस्मिन्ननीकप्रमुखे विषक्ता
दोधूयमानाश्च महापताकाः ।
सुरक्तपीतासितपाण्डुराभा
महागजस्कन्धगता विरेजुः ॥ ४
सा वाहिनी शान्तनवेन गुप्ता
महारथैर्वारणवाजिभिश्च ।
बभौ सविद्युत्स्तनयित्नुकल्पा
जलागमे द्यौरिव जातमेघा ॥ ५
ततो रणायाभिमुखी प्रयाता
प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता ।
सेना महोग्रा सहसा कुरूणां
वेगो यथा भीम इवापगायाः ॥ ६
तं व्यालनानाविधगूढसारं
गजाश्वपादातरथौघपक्षम् ।
व्यूहं महामेघसमं महात्मा
ददर्श दूरात् कपिराजकेतुः ॥ ७
विनिर्ययौ केतुमता रथेन
नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ।
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा
वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम् ॥ ८
सूपस्करं सोत्तरबन्धुरेषं
यत्तं यदूनामृषभेण संख्ये ।
कपिध्वजं प्रेक्ष्य विषेदुराजौ
सहैव पुत्रैस्तव कौरवेयाः ॥ ९
प्रकर्षता गुप्तमुदायुधेन
किरीटिना लोकमहारथेन ।
तं व्यूहराजं ददृशुस्त्वदीया-
श्चतुश्चतुर्व्यालसहस्रकर्णम् ॥ १०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

व्युष्टामिति । व्युष्टां प्रभाताम् ॥१॥ व्यालो व्यूहविशेषस्तेन नानाविधं गूढसारं च ॥ ७ ॥ सूपस्करं सुचक्रं सोत्तरबन्धुरेषं उत्तरेणाच्छादनेन बन्धुरा रम्या ईषा तत्सहितम् ॥ ९ ॥ चतुश्चतुरावृत्त व्यालानां गजानां सहस्रं कर्णेषु विदिग्भागेषु यस्य तम् ॥ १० ॥

यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा
व्यूहः कृतः कौरवसत्तमेन ।
तथा न भूतो भुवि मानुषेषु
न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च ॥ ११

ततो यथादेशमुपेत्य तस्थुः
पाञ्चालमुख्याः सह चेदिमुख्यैः ।
ततः समादेशसमाहतानि
भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ ॥ १२

शङ्खस्वनास्तूर्यरवस्वनाश्च
सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः ।
ततः सबाणानि महास्वनानि
विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः ॥ १३

क्षणेन भेरीपणवप्रणादा-
नन्तर्दधुः शङ्खमहास्वनाश्च ।
तच्छङ्खशब्दावृतमन्तरिक्ष-
मुद्धूतभौमद्रुतरेणुजालम् ॥ १४

महावितानावततप्रकाश-
मालोक्य वीराः सहसाऽभिपेतुः ।
रथी रथेनाभिहतः ससूतः
पपात साश्वः सरथः सकेतुः ॥ १५

गजो गजेनाभिहतः पपात
पदातिना चाभिहतः पदातिः ।
आवर्तमानान्यभिवर्तमानै-
र्घोरीकृतान्यद्भुतदर्शनानि ॥ १६

प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि
सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः ।
सुवर्णतारागणभूषितानि
सूर्यप्रभाभानि शरावराणि ॥ १७

विदार्यमाणानि परश्वधैश्च
प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम् ।
गजैर्विषाणैर्वरहस्तरुग्णाः
केचित्ससूता रथिनः प्रपेतुः ॥ १८

गजर्षभाश्चापि रथर्षभेण
निपातिता बाणहताः पृथिव्याम् ।
गजौघवेगोद्धतसादितानां
श्रुत्वा विषेदुः सहसा मनुष्याः ॥ १९

आर्तस्वनं सादिपदातियूनां
विषाणगात्रावरताडितानाम् ।
संभ्रान्तनागाश्वरथे मुहूर्ते
महाक्षये सादिपदातियूनाम् ॥ २

महारथैः संपरिवार्यमाणो
ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम् ।
तं पञ्चतालोच्छ्रिततालकेतुः
सदश्ववेगाद्भुतवीर्ययानः ॥ २

महास्त्रबाणाशनिदीप्तिमन्तं
किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत् ।
तथैव शक्रप्रतिमप्रभाव-
मिन्द्रात्मजं द्रोणमुखा विसस्रुः ॥ २

कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च
दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् ।
ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य
सर्वास्त्रवित् काञ्चनचित्रवर्मा ॥ २

जवेन शूरोऽभिससार सर्वा-
स्तानर्जुनस्यात्मसुतोऽभिमन्युः ।
तेषां महास्त्राणि महारथाना-
मसह्यकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः ॥ २

बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली
सदोगतः सन् भगवानिवाग्निः ।
ततः स तूर्णं रुधिरोदफेनां
कृत्वा नदीमाशु रणे रिपूणाम् ॥ २

जगाम सौभद्रमतीत्य भीष्मो
महारथं पार्थमदीनसत्त्वः ।
ततः प्रहस्याद्भुतविक्रमेण
गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन ॥ २

विपाठजालेन महास्त्रजालं
विनाशयामास किरीटमाली ।
तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणा-
मसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ॥ २

भीष्मं महात्माऽभिववर्ष तूर्णं
शरौघजालैर्विमलैश्च भल्लैः ।
तथैव भीष्माहतमन्तरिक्षे
महास्त्रजालं कपिराजकेतोः ॥ २

शरावराणि कवचानि ॥ १७ ॥

विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया
दिवाकरेणेव तमोभिभूतम् ।
एवंविधं कार्मुकभीमनाद-
मदीनवत्सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् ।
ददर्श लोकः कुरुसृञ्जयाश्च
तद्द्वैरथं भीष्मधनञ्जयाभ्याम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनद्वैरथे
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

सञ्जय उवाच ।
द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष ।
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन् ॥ १
संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः ।
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥ २
नातिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे ।
बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नास्त्रे नापि च लाघवे ॥ ३
तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिन्दमम् ।
दृष्ट्वा पार्थः सुसंयत्तं सिंहनादमथानदत् ॥ ४
पीडयानं तु तत् सैन्यं पौत्रं तव विशांपते ।
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ५
ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत् ।
प्रत्युद्ययौ स सौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥ ६
तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम् ।
व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः ॥ ७
स द्रौणिमिषुणैकेन विद्ध्वा शल्यं च पञ्चभिः ।
ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टाभिश्चिच्छिदे ततः ॥ ८
रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना ।
शितेनोरगसंकाशां पत्रिणाऽपजहार ताम् ॥ ९
शल्यस्य च महावेगानस्यतः समरे शरान् ।
निवार्यार्जुनदायादो जघान चतुरो हयान् ॥ १०
भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः ।
नाभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलोदयम् ॥ ११
ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ १२
धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि ।
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥ १३
तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ ।
ददर्श राजन् पाञ्चाल्यः सेनापतिररिन्दम ॥ १४
स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ।
वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः ॥ १५
धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धो नोदयित्वा च वाहिनीम् ।
ययौ तं मद्रकानीकं केकयांश्च परंतप ॥ १६
तेन कीर्तिमता गुप्तमनीकं दृढधन्वना ।
संरब्धरथनागाश्वं योत्स्यमानमशोभत ॥ १७
सोऽर्जुनप्रमुखे यान्तं पाञ्चालकुलवर्धनः ।
त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १८
ततः स मद्रकान् हत्वा दशैव दशभिः शरैः ।
पृष्ठरक्षं जघानाशु भल्लेन कृतवर्मणः ॥ १९
दमनं चापि दायादं पौरवस्य महात्मनः ।
जघान विमलाग्रेण नाराचेन परंतपः ॥ २०
ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ।
अविध्यत्त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चास्य सारथिम् ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्तास्य कार्मुकम् ॥ २२
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समार्पयत् ।
अश्वांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन् ददर्श भरतर्षभ ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥
स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पदातिस्तूर्णमानर्च्छद्रथस्थं पुरुषर्षभः ॥ २५
तं महौघमिवायान्तं खात् पतन्तमिवोरगम् ।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम् ॥
दीप्यमानमिवादित्यं मत्तवारणविक्रमम् ।
अपश्यन् पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २७
तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः ।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः ॥ २८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

द्रौणिरिति । सांयमनेः शलस्य पुत्रः ॥ १ ॥

बाणवेगमतीतस्य तथाऽभ्याशमुपेयुषः ।
त्वरन्सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥२९
तस्य राजन् स निस्त्रिंशं सुप्रभं च शरावरम् ।
हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद्भुवि ॥ ३०
तं निहत्य गदाग्रेण स लेभे परमां मुदम् ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥३१
तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे ।
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥३२
ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥ ३३
तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ ।
ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा ॥ ३४
ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा ।
आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३५
तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः ।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थयुद्धदिवसे सांयमनिपुत्रवधे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

धृतराष्ट्र उवाच ।
दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय ।
यत् सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन बाध्यते ॥ १
नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि ।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान् ॥२
हीनान् पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय ।
पातितान् पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥ ३
युध्यमानान् यथाशक्ति घटमानान् जयं प्रति ।
पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयन्ते नैव मामकाः ॥
सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च ।
श्रोष्यामि सततं तात दुःसहानि बहूनि च ॥ ५
तमुपायं न पश्यामि जीयेरन् येन पाण्डवाः ।
मामका विजयं युद्धे प्राप्नुयुर्येन सञ्जय ॥ ६
सञ्जय उवाच ।
क्षयं मनुष्यदेहानां गजवाजिरथक्षयम् ।
शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवैवापनयो महान् ॥ ७
धृष्टद्युम्नस्तु शल्येन पीडितो नवभिः शरैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो मद्राधिपतिमायसैः ॥ ८
तत्राद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम् ।
न्यवारयत यस्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम् ॥ ९
नान्तरं दृश्यते तत्र तयोश्च रथिनोस्तदा ।
मुहूर्तमिव तद्युद्धं तयोः सममिवाभवत् ॥ १०
ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ११
अथैनं शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ।
गिरिं जलागमे यद्वज्जलदा जलवृष्टिभिः ॥ १२
अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति ॥ १३
ततो मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्यातिकोपनः ।
आर्तायनिममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः ॥१४
ततस्तु तावका राजन् परीप्सन्तोऽर्जुनिं रणे ।
मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्यावतस्थिरे ॥ १५
दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती ।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥ १६
सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत ।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥ १७
तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८
धार्तराष्ट्रान् दशरथान् दशैव प्रत्यवारयन् ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशांपते ॥ १९
अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः ।
ते वै समेयुः सङ्ग्रामे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ २०
तस्मिन् दशरथे क्रुद्धे वर्तमाने महाभये ।
तावकानां परेषां वा प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥ २१
शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिनर्दन्तः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २२
ते तदा जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योन्यं जिघांसवः ।
अन्योन्यमभिमर्दन्तः स्पर्धमानाः परस्परम् ॥ २३

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

दैवमेवेति ॥ १ ॥

अन्योन्यस्पर्धया राजन् ज्ञातयः सङ्गता मिथः ।
महास्त्राणि विसृजन्तः समापेतुरमर्षिणः ॥ २४
दुर्योधनस्तु सङ्क्रुद्धो धृष्टद्युम्नं महारणे ।
विव्याध निशितैर्बाणैश्चतुर्भिः समरे द्रुतम् ॥ २५
दुर्मर्षणश्च विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहश्चापि सप्तभिः ॥ २६
विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।
तान् प्रत्यविध्यद्राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापनः ॥ २७
एकैकं पञ्चविंशत्या दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
सत्यव्रतं च समरे पुरुमित्रं च भारत ॥ २८
अभिमन्युरविध्यत् तु दशभिर्दशभिः शरैः ।
माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ ॥ २९
अविध्येतां शरैस्तीक्ष्णैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ ३०
शरैर्बहुभिरानर्छत् कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः॥३१
अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
विधित्सुः कलहस्यान्तं गदां जग्राह पाण्डवः३२
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पुत्रास्ते प्राद्रवन् भयात् ॥ ३३
दुर्योधनस्तु सङ्क्रुद्धो मागधं समचोदयत् ।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ३४
गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः ।
मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ३५
आपतन्तं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः ।
गदापाणिरवारोहद्रथात् सिंह इवोन्नदन् ॥ ३६
अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अभ्यधावद्गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः॥३७
स गजान् गदया निघ्नन् व्यचरत् समरे बली ।
भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः ॥ ३८
तस्य नादेन महता मनोहृदयकम्पिना ।
व्यत्यचेष्टन्त संहत्य गजा भीमस्य गर्जतः ॥ ३९
ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४०
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान् ।
अभ्यवर्षन्त धावन्तो मेघा इव गिरीन् यथा ॥४१
क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैश्चाञ्जलिकैः शितैः ।
व्यहरन्नुत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम् ॥ ४२
शिरोभिः प्रपतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः ।
अश्मवृष्टिरिवाभाति पाणिभिश्च सहाङ्कुशैः॥ ४३
हृतोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः ।
अदृश्यन्ताचलाग्रेषु द्रुमा भग्नशिखा इव ॥ ४४
धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान् ।
पततः पात्यमानांश्च पार्षतेन महात्मना ॥ ४५
मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम् ।
प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ४६
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य मागधस्य महागजम् ।
जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ॥ ४७
तस्यावर्जितनागस्य कार्ष्णिः परपुरञ्जयः ।
राज्ञो रजतपुङ्खेन भल्लेनापाहरच्छिरः ॥ ४८
विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः ।
व्यचरत्समरे मृद्नन् गजानिन्द्रो गिरीनिव॥४९
एकप्रहारनिहतान् भीमसेनेन दन्तिनः ।
अपश्याम रणे तस्मिन् गिरीन्वज्रहतानिव ॥ ५०
भग्नदन्तान् भग्नकटान् भग्नसक्थांश्च वारणान् ।
भग्नपृष्ठत्रिकानन्यान्निहतान् पर्वतोपमान् ॥ ५१
नदतः सीदतश्चान्यान् विमुखान् समरे गतान् ।
विद्रुतान् भयसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान् ५२
भीमसेनस्य मार्गेषु पतितान् पर्वतोपमान् ।
अपश्यं निहतान्नागान् राजन्निष्ठीवतोऽपरान्॥५३
वमन्तो रुधिरं चान्ये भिन्नकुम्भा महागजाः ।
विह्वलन्तो गता भूमिं शैला इव धरातले ॥ ५४
मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः ।
व्यचरत् समरे भीमो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ५५
गजानां रुधिराक्लिष्टां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
घोरः प्रतिभयश्चासीत्पिनाकीव पिनाकधृक् ५६
संमथ्यमानाः क्रुद्धेन भीमसेनेन दन्तिनः ।
सहसा प्राद्रवन् क्लिष्टा मृद्नन्तस्तव वाहिनीम्॥
तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः ।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवामराः ॥ ५८
शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः ।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥ ५९
व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत ।
अपश्याम रणे भीमं नृत्यन्तमिव शंकरम् ॥ ६०
यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम्॥६१
विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ ६२
यथा पशूनां संघातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत् ।
तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत् ॥
गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन् कुञ्जरास्तव ६४

महावात इवाभ्राणि विधमित्वा स वारणान् । अतिष्ठत्तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥ ६५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसे भीमयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

संजय उवाच ।
हते तस्मिन्गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १
ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन् भीमसेनं नदन्तं भैरवान् रवान् ॥ २
तं बलौघमपर्यन्तं देवैरपि सुदुःसहम् ।
आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥ ३
रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनादितम् ।
अनन्तरथपादातं *नरेन्द्रस्तिमितह्रदम् ॥ ४
तं भीमसेनः समरे महोदधिमिवापरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यं वेलेव समवारयत् ॥ ५
तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः ।
भीमसेनस्य समरे राजन् कर्मातिमानुषम् ॥ ६
उदीर्णान्पार्थिवान्सर्वान्साश्वान्सरथकुञ्जरान् ।
असंभ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत् ॥ ७
स संवार्य बलौघांस्तान् गदया रथिनां वरः ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाचलः ॥ ८
तस्मिन्सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे ।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ९
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च शिखण्डी चापराजितः ।
न प्राजहन् भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥ १०
ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अधावत्तावकान् योधान् दण्डपाणिरिवान्तकः॥
पोथयन् रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाभिभूः ।
कर्षयन् रथवृन्दानि बाहुवेगेन पाण्डवः ॥ १२
विनिघ्नन् व्यचरत्संख्ये युगान्ते कालवद्विभुः ।
ऊरुवेगेन संकर्षन् रथजालानि पाण्डवः ॥ १३
बलानि संममर्दाशु नड्वलानीव कुञ्जरः ।
मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥१४
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः ।
गदया व्यधमत्सर्वान्वातो वृक्षानिवौजसा ॥१५
भीमसेनो महाबाहुस्तव पुत्रस्य वै बले ।
साऽपि मज्जान्त्रमांसैः प्रदिग्धा रुधिरेण च ॥
अदृश्यत महारौद्री गदा नागाश्वपातनी ।
तत्र तत्र हतैश्चापि मनुष्य-गज-वाजिभिः १७
रणाङ्गणं समभवन्मृत्योरावाससंनिभम् ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ १८
यमदण्डोपमामुग्रामिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
ददृशुर्भीमसेनस्य रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १९
आविध्यतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
बभौ रूपं महाघोरं कालस्येव युगक्षये ॥ २०
तं तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः ।
दृष्ट्वा मृत्युमिवायान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥२१
यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥ २२
प्रदारयन्तं सैन्यानि बलेनामितविक्रमम् ।
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् २३
तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीतमहागदम् ।
दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥ २४
महता रथघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ।
छादयन् शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २५
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षितः॥ २६
तस्मिन्क्षणे सात्यकिः सत्यसन्धः
शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत्पितामहम् ।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
संकम्पयंस्तव पुत्रस्य सैन्यम् ॥ २७

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥ * रजसा सर्वतो वृतमिति पा०

६३
हते तस्मिन्निति ॥ १ ॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैः
शरान् वपन्तं निशितान् सुपुङ्खान्।
नाशक्नुवन् धारयितुं तदानीं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥ २८
अविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राक्षसोऽसौ तदानीम्।
शरैश्चतुर्भिः प्रतिविद्ध्य तं च
नप्ता शिनेरभ्यपतद्रथेन । २९
अन्वागतं वृष्णिवरं निशाम्य
तं शत्रुमध्ये परिवर्तमानम् ।
प्रद्रावयन्तं कुरुपुङ्गवांश्च
पुनः पुनश्च प्रणदन्तमाजौ ॥ ३०
योधास्त्वदीयाः शरवर्षैरवर्षन्
मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः ।
तथाऽपि तं धारयितुं न शेकु-
र्मध्यन्दिने सूर्यमिवातपन्तम् ॥ ३१
न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसी-
दृते राजन्सोमदत्तस्य पुत्रात् ।
स हैं समादाय धनुर्महात्मा
भूरिश्रवा भारत सौमदत्तिः ॥ ३२
दृष्ट्वा रथान् स्वान्व्यपनीयमानान्
प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सात्यकिभूरिश्रवःसमागमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

सञ्जय उवाच ।
ततो भूरिश्रवा राजन्सात्यकिं नवभिः शरैः ।
प्राविध्यद्भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १
कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अवारयदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ३
तं चैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे ।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात्सुमहौजसः ॥४
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत ।
दुर्योधनमुखान् सर्वान् पुत्रांस्ते पर्यवारयत् ॥ ५
रथैरनेकसाहस्रैः क्रोधामर्षसमन्वितः ।
नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम् ॥ ६
विव्याध विशिखैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
दुर्योधनश्च समरे भीमसेनं महारथम् ॥ ७
आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्नवभिः शितैः ।
ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः ॥ ८
आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत् ।
एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्राः समागताः ॥ ९
मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि ।
मनोरथद्रुमोऽस्माकं चिन्तितो बहुवार्षिकः ॥ १०
सफलः सूत चाद्येह योऽहं पश्यामि सोदरान् ।
यत्राशोकसमुत्क्षिप्ता रेणवो रथनेमिभिः ॥ ११
प्रयास्यन्त्यन्तरिक्षं हि शरवृन्दैर्दिगन्तरे ।
तत्र तिष्ठति सन्नद्धः स्वयं राजा सुयोधनः ॥ १२
भ्रातरश्चास्य सन्नद्धाः कुलपुत्रा मदोत्कटाः ।
एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः ॥ १३
तस्मान्ममाश्वान् संग्रामे यत्तः संयच्छ सारथे ।
एवमुक्त्वा ततः पार्थस्तव पुत्रं विशांपते ॥ १४
विव्याध +निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः ।
नन्दकं च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ १५
तं तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम् ।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत ॥ १६
भीमस्य च रणे राजन् धनुश्चिच्छेद भास्वरम् ।
मुष्टिदेशे भृशं तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैर्हसन्निव ॥ १७
समरे प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकं तु वृकोदरः ।
पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना १८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४
ततइति ॥ १ ॥ + दशभिस्तीक्ष्णैरिति पा०

अमृष्यमाणः संरब्धो धनुर्दिव्यं परामृशत् ।
पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ ॥ १९
समादधत्सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम् ।
तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम् ॥ २०
सोपविद्ध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्च्छितः ।
अन्यत्कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम् ॥ २१
सन्दधे विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम् ।
तेनाजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ २२
स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत् ।
स निषण्णो रथोपस्थे मूर्छामभिजगाम ह ॥ २३
तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः २४
ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम् ।
पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥ २५
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः॥२६
शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद्रणात् २७
प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश ।
सेनापतिः सुषेणश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥ २८
उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः ।
दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ॥ २९
विसृजन्तो बहून् बाणान् क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ३०
पुत्रांस्तु तव संप्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः ।
सृक्किणी विलिहन्वीरः पशुमध्ये यथा वृकः ३१
अभिपत्य महाबाहुर्गरुत्मानिव वेगितः ।
सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ३२
संप्रहस्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः ।
जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद्यमसादनम् ॥ ३३
सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे ।
उग्रस्य सशिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि ॥ ३४
पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिम् ३५
निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः ।
भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव ॥ ३६
पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद्यमसादनम् ।
ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ॥ ३७
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद्यमसादनम् ।
पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ॥ ३८
शेषा येऽन्येऽभवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः ।
विप्रद्रुता दिशो राजन् वध्यमाना महात्मना ३९
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव महारथान् ।
एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान्महारथान् ४०
यथा प्राग्र्यान् यथा ज्येष्ठान् यथा शूरांश्च सङ्गतान् ।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत माचिरम् ॥ ४१
एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम् ॥ ४२
भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशांपते ।
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ४३
आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलीमुखैः ।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥
अभिमन्युमुखास्तत्तु नामृष्यन्त महारथाः ।
भीमस्याच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ४५
त एनं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् ।
गजं च शरवृष्ट्या तु बिभिदुस्ते समन्ततः ॥ ४६
स शस्त्रवृष्ट्याऽभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः ।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ॥४७
सञ्जातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद्रणे ।
गभस्तिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ४८
सञ्चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः ।
अभ्यधावत तान् सर्वान् कालोत्सृष्ट इवान्तकः
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम् ।
तस्य तत्सुमहद्रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ॥ ५०
असह्यं मन्यमानाश्च नातिप्रमनसोऽभवन् ।
ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ ५१
आजघान महाराज शरेणानतपर्वणा ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ॥ ५२
मूर्च्छयाऽभिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत् ।
तांस्तु भीतान् समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्च्छितम्
ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान् ।
ततो घटोत्कचो राजन् प्रेक्ष्य भीमं तथागतम् ५४
संक्रुद्धो राक्षसो घोरस्तत्रैवान्तरधीयत ।
स कृत्वा दारुणां मायां भीरूणां भयवर्धिनीम् ५५
अदृश्यत निमेषार्धाद्घोररूपं समास्थितः ।
ऐरावणं समारूढः स वै मायाकृतं स्वयम् ॥ ५६
तस्य चान्येऽपि दिङ्नागा बभूवुरनुयायिनः ।
अञ्जनो वामनश्चैव महापद्मश्च सुप्रभः ॥ ५७

सुतेजनैर्बाणैरिति शेषः ॥ ४७ ॥

अथ एते महानागा राक्षसैः समधिष्ठिताः ।
महाकायास्त्रिधा राजन् प्रस्रवन्तो मदं बहु ॥ ५८
तेजोवीर्यबलोपेता महाबलपराक्रमाः ।
घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं तदा ५९
सगजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परंतपः ।
ते चान्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महाबलैः ६०
परिपेतुः सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम् ।
भगदत्तस्य तं नागं विषाणैरभ्यपीडयन् ॥ ६१
स पीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शराहतः ।
अनदत्सुमहानादमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ६२
तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिःस्वनम् ।
श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद्द्रोणं राजानं च सुयोधनम्
एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना ।
भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते ॥ ६४
राक्षसश्च महाकायः स च राजाऽतिकोपनः ।
एतौ समेतौ समरे कालमृत्युसमावुभौ ॥ ६५
श्रूयते चैव हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः ।
हस्तिनश्चैव सुमहान् भीतस्य रुदितध्वनिः ॥ ६६
तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम् ।
अरक्ष्यमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान् विमोक्ष्यति ६७
ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रयामहे ।
महान् हि वर्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः ६८
भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः ।
युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत ॥ ६९
भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः ।
द्रोणभीष्मौ पुरस्कृत्य भगदत्तपरीप्सया ॥ ७०
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत् ।
तान् प्रयातान् समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ७१
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् ।
तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ७२
ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव ।
तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः ७३
भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत ।
न रोचते मे सङ्ग्रामो हैडिम्बेन दुरात्मना ॥ ७४
बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च सांप्रतम् ।
नैष शक्यो युधा जेतुमपि वज्रभृता स्वयम् ७५
लब्धलक्षः प्रहारी च वयं च श्रान्तवाहनाः ।
पञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः ॥ ७६
तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ७७
पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः ।
उपायेनापयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः ॥ ७८
कौरवेषु निवृत्तेषु पाण्डवा जितकाशिनः ।
सिंहनादान् भृशं चक्रुः शङ्खान् दध्मुश्च भारत
एवं तदभवद्युद्धं दिवसं भरतर्षभ ।
पाण्डवानां कुरूणां च पुरस्कृत्य घटोत्कचम् ८०
कौरवास्तु ततो राजन् प्रययुः शिबिरं स्वकम् ।
व्रीडमाना निशाकाले पाण्डवेयैः पराजिताः ८१
शरविक्षतगात्रास्तु पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
युद्धे सुमनसो भूत्वा जग्मुः स्वशिबिरं प्रति ८२
पुरस्कृत्य महाराज भीमसेनघटोत्कचौ ।
पूजयन्तस्तदाऽन्योन्यं मुदा परमया युताः ॥ ८३
नदन्तो विविधान्नादांस्तूर्यस्वनविमिश्रितान् ।
सिंहनादांश्च कुर्वन्तो विमिश्रान् शङ्खनिःस्वनैः ८४
विनदन्तो महात्मानः कम्पयन्तश्च मेदिनीम् ।
घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ॥ ८५
प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परंतप ।
दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च ॥ ८६
मुहूर्तं चिन्तयामास बाष्पशोकसमाकुलः ।
ततः कृत्वा विधिं सर्वं शिबिरस्य यथाविधि ॥
प्रदध्यौ शोकसंतप्तो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ ८७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसावहारे
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

घट्टयन्तः स्पृशन्तः ॥ ८५ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

धृतराष्ट्र उवाच ।

भयं मे सुमहज्जातं विस्मयश्चैव सञ्जय ।
श्रुत्वा पाण्डुकुमाराणां कर्म देवैः सुदुष्करम् ॥ १
पुत्राणां च पराभावं श्रुत्वा सञ्जय सर्वशः ।
चिन्ता मे महती सूत भविष्यति कथं त्विति २
ध्रुवं विदुरवाक्यानि धक्ष्यन्ति हृदयं मम ।
यथा हि दृश्यते सर्वं दैवयोगेन सञ्जय ॥ ३
यत्र भीष्ममुखान् सर्वान् शस्त्रज्ञान् योधसत्तमान्
पाण्डवानामनीकेषु योधयन्ति प्रहारिणः ॥ ४
केनावध्या महात्मानः पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
केन दत्तवरास्तात किं वा ज्ञानं विदन्ति ते ॥ ५
येन क्षयं न गच्छन्ति दिवि तारागणा इव ।
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं सैन्यं तु पाण्डवैः ॥ ६
मय्येव दण्डः पतति दैवात्परमदारुणः ।
यथाऽवध्याः पाण्डुसुता यथा वध्याश्च मे सुताः ७
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व याथातथ्येन सञ्जय ।
न हि पारं प्रपश्यामि दुःखस्यास्य कथञ्चन ॥ ८
समुद्रस्येव महतो भुजाभ्यां प्रतरन्नरः ।
पुत्राणां व्यसनं मन्ये ध्रुवं प्राप्तं सुदारुणम् ॥ ९
घातयिष्यति मे सर्वान् पुत्रान् भीमो न संशयः
न हि पश्यामि तं वीरं यो मे रक्षेत्सुतान् रणे १०
ध्रुवं विनाशः संप्राप्तः पुत्राणां मम सञ्जय ।
तस्मान्मे कारणं सूत शक्तिं चैव विशेषतः ॥ ११
पृच्छतो वै यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ।
दुर्योधनश्च यच्चक्रे दृष्ट्वा स्वान् विमुखान् रणे १२
भीष्मद्रोणौ कृपश्चैव सौबलश्च जयद्रथः ।
द्रौणिर्वाऽपि महेष्वासो विकर्णो वा महाबलः १३
निश्चयो वाऽपि कस्तेषां तदा ह्यासीन्महात्मनाम्
विमुखेषु महाप्राज्ञ मम पुत्रेषु सञ्जय ॥ १४

सञ्जय उवाच ।

शृणु राजन्नवहितः श्रुत्वा चैवावधारय ।
नैव मन्त्रकृतं किञ्चिन्नैव मायां तथाविधाम्. १५
न वै विभीषिकां काञ्चिद्राजन् कुर्वन्ति पाण्डवाः
युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमन्तश्च संयुगे ॥ १६
धर्मेण सर्वकार्याणि जीवितादीनि भारत ।
आरभन्ते सदा पार्थाः प्रार्थयाना महद्यशः ॥ १७
न ते युद्धान्निवर्तन्ते धर्मोपेता महाबलाः ।
श्रिया परमया युक्ता यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १८
तेनावध्या रणे पार्था जययुक्ताश्च पार्थिव ।
तव पुत्रा दुरात्मानः पापेष्वभिरताः सदा ॥ १९
निष्ठुरा हीनकर्माणस्तेन हीयन्ति संयुगे ।
सुबहूनि नृशंसानि पुत्रैस्तव जनेश्वर ॥ २०
निकृतानीह पाण्डूनां नीचैरिव यथा नरैः ।
सर्वं च तदनादृत्य पुत्राणां तव किल्बिषम् ॥ २१
सापह्नवाः सदैवासन् पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
न चैतान् बहु मन्यन्ते पुत्रास्तव विशांपते ॥ २२
तस्य पापस्य सततं क्रियमाणस्य कर्मणः ।
सांप्रतं सुमहद्घोरं फलं प्राप्तं जनेश्वर ॥ २३
स त्वं भुङ्क्ष्व महाराज सपुत्रः ससुहृज्जनः ।
नावबुध्यसि यद्राजन् वार्यमाणः सुहृज्जनैः ॥ २४
विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
तथा मया चाप्यसकृद्वार्यमाणो न बुध्यसे ॥ २५
वाक्यं हितं च पथ्यं च मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
पुत्राणां मतमास्थाय जितान्मन्यसि पाण्डवान्॥
शृणु भूयो यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति ॥ २७
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिंदम ।
दुर्योधनेन संपृष्ट एतमर्थं पितामहः ॥ २८
दृष्ट्वा भ्रातॄन् रणे सर्वान्निर्जितांस्तु महारथान्।
शोकसंमूढहृदयो निशाकाले स्म कौरवः ॥ २९
पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह ।
यदब्रवीत् सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥ ३०

दुर्योधन उवाच ।

द्रोणश्च त्वं च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः कांबोजश्च सुदक्षिणः ॥३१
भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः॥ ३२
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ।
पाण्डवानां समस्ताश्च नातिष्ठन्त पराक्रमे ॥ ३३
तत्र मे संशयो जातस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।
यं समाश्रित्य कौन्तेया जयन्त्यस्मान् क्षणे क्षणे॥

६५

भयमिति ॥ १ ॥ सापह्नवाः अपरिख्यातकिल्बिषाः ॥ २२ ॥ मन्यसि मन्यसे ॥ २६ ॥

भीष्म उवाच ।

शृणु राजन् वचो मह्यं यथा वक्ष्यामि कौरव ।
बहुशश्च मयोक्तोऽसि न च मे तत्त्वया कृतम्॥ ३५
क्रियतां पाण्डवैः सार्धं शमो भरतसत्तम ।
एतत् क्षेममहं मन्ये पृथिव्यास्तव वा विभो ॥ ३६
भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीं राजन् भ्रातृभिः सहितः सुखी।
दुर्हृदस्तापयन् सर्वान्नन्दयंश्चापि बान्धवान्॥ ३७
न च मे क्रोशतस्तात श्रुतवानसि वै पुरा ।
तदिदं समनुप्राप्तं यत् पाण्डूनवमन्यसे॥ ३८
यश्च हेतुरवध्यत्वे तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
तं शृणुष्व महाबाहो मम कीर्तयतः प्रभो ॥ ३९
नास्ति लोकेषु तद्भूतं भविता नो भविष्यति ।
यो जयेत् पाण्डवान् सर्वान्पालिताञ्छार्ङ्गधन्वना
यत्तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथातथम् ॥ ४१
पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः ।
पितामहमुपासेदुः पर्वते गन्धमादने ॥ ४२
तेषां मध्ये समासीनः प्रजापतिरपश्यत ।
विमानं प्रज्वलद्भासा स्थितं प्रवरमम्बरे ॥ ४३
ध्यानेनावेद्य तद्ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् ।
नमश्चकार हृष्टात्मा पुरुषं परमेश्वरम् ॥ ४४
ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम्॥४५
यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥ ४६
विश्वावसुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो
विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च ।
विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्मा-
द्योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥ ४७
जय विश्व महादेव जय लोकहिते रत ।
जय योगीश्वर विभो जय योगपरावर ॥ ४८
पद्मगर्भ विशालाक्ष जय लोकेश्वरेश्वर ।
भूतभव्यभवन्नाथ जय सौम्यात्मजात्मज ॥ ४९
असङ्ख्येयगुणाधार जय सर्वपरायण ।
नारायण सुदुष्पार जय शार्ङ्गधनुर्धर ॥ ५०
जय सर्वगुणोपेत विश्वमूर्ते निरामय ।
विश्वेश्वरमहाबाहो जय लोकार्थतत्पर ॥ ५१
महोरगवराहाद्य हरिकेश विभो जय ।
हरिवास दिशामीश विश्ववासामिताव्यय॥ ५२
व्यक्ताव्यक्तामितस्थान नियतेन्द्रिय सत्क्रिय ।
असङ्ख्येयात्मभावज्ञ जय गम्भीरकामद ॥ ५३
अनन्त विदितब्रह्मन् नित्यभूतविभावन ।
कृतकार्य कृतप्रज्ञ धर्मज्ञ विजयावह ॥ ५४
गुह्यात्मन्सर्वयोगात्मन् स्फुटसंभूतसंभव ।
भूताद्य लोकतत्त्वेश जय भूतविभावन ॥ ५५
आत्मयोने महाभाग कल्पसंक्षेपतत्पर ।
उद्भावन मनोभाव जय ब्रह्मजनप्रिय ॥ ५६
निसर्गसर्गनिरत कामेश परमेश्वर ।
अमृतोद्भव सद्भाव मुक्तात्मन् विजयप्रद ॥ ५७
प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल ।
आत्मभूत महाभूत सत्त्वात्मन् जय सर्वदा ॥ ५८
पादौ तव धरा देवी दिशो बाहू दिवं शिरः ।
मूर्तिस्तेऽहं सुराः कायश्चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ॥
बलं तपश्च सत्यं च कर्म धर्मात्मकं तव ।
तेजोऽग्निः पवनः श्वास आपस्ते स्वेदसंभवाः ६०
अश्विनौ श्रवणौ नित्यं देवी जिह्वा सरस्वती ।
वेदाः संस्कारनिष्ठा हि त्वयीदं जगदाश्रितम् ६१
न संख्यानं परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् ।
न बलं योगयोगीश जानीमस्ते न संभवम् ॥६२
त्वद्भक्तिनिरता देव नियमैस्त्वां समाश्रिताः ।
अर्चयामः सदा विष्णो परमेशं महेश्वरम् ॥ ६३
ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ६४
एवमादि मया सृष्टं पृथिव्यां त्वत्प्रसादजम् ।
पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःखप्रणाशन ॥ ६५
त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वं नेता त्वं जगद्गुरुः ।
त्वत्प्रसादेन देवेश सुखिनो विबुधाः सदा ॥ ६६
पृथिवी निर्भया देव त्वत्प्रसादात्सदाऽभवत् ।
तस्माद्भव विशालाक्ष यदुवंशविवर्धनः ॥ ६७
धर्मसंस्थापनार्थाय दैत्यानां च वधाय च ।
जगतो धारणार्थाय विज्ञाप्यं कुरु मे विभो ॥
यत्तत्परमकं गुह्यं त्वत्प्रसादादिदं विभो ।
वासुदेव तदेतत्ते मयोद्गीतं यथातथम् ॥ ६९
सृष्ट्वा संकर्षणं देवं स्वयमात्मानमात्मना ।
कृष्ण त्वमात्मनास्राक्षीः प्रद्युम्नं चात्मसंभवम् ७०
प्रद्युम्नादनिरुद्धं त्वं यं विदुर्विष्णुमव्ययम् ।
अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम् ॥

वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवास्मि विनिर्मितः ।
विभज्य भागशोऽऽत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥
तत्रासुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै ।
धर्मं प्राप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यसि तत्त्वतः ॥
त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चामितविक्रम ।
तैस्तैर्हि नामभिर्युक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥ ७४
स्थिताश्च सर्वे त्वयि भूतसंघाः
कृत्वाऽऽश्रयं त्वां वरदं सुबाहो ।
अनादिमध्यान्तमपारयोगं
लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥ ७५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

भीष्म उवाच ।

ततः स भगवान् देवो लोकानामीश्वरेश्वरः ।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगंभीरया गिरा ॥ १
विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत्तवेप्सितम् ।
तथा तद्भवितेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २
ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः ।
कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाब्रुवन् ॥ ३
को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद्विभो ।
वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिः श्रोतुमिच्छाम तं वयम् ॥
एवमुक्तस्तु भगवान् प्रत्युवाच पितामहः ।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान्सर्वान् मधुरया गिरा ॥ ५
यत्तत्परं भविष्यं च भवितव्यं च यत्परम् ।
भूतात्मा च प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ॥ ६
तेनास्मि कृतसंवादः प्रसन्नेन सुरर्षभाः ।
जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः ॥ ७
मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः ।
असुराणां वधार्थाय संभवस्व महीतले ॥ ८
संग्रामे निहता ये ते दैत्य-दानव-राक्षसाः ।
त इमे नृषु संभूता घोररूपा महाबलाः ॥ ९
तेषां वधार्थं भगवान्नरेण सहितो वशी ।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले ॥ १०
नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके संभूतावमितद्युती ॥ ११
अजेयौ समरे यत्तौ सहितैरमरैरपि ।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ॥ १२
तस्याहमग्रजः पुत्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः ।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १३
तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित्सुरसत्तमाः ।
नावज्ञेयो महावीर्यः शंख-चक्र-गदाधरः ॥ १४
एतत् परमकं गुह्यमेतत् परमकं पदम् ।
एतत् परमकं ब्रह्म एतत् परमकं यशः ॥ १५
एतदक्षरमव्यक्तमेतद्वै शाश्वतं महः ।
यत्तत्पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥ १६
एतत्परमकं तेज एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥ १७
तस्मात्सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चामितविक्रमः ।
नावज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः ॥ १८
यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात्स मन्दधीः ।
हृषीकेशमवज्ञानात्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ १९
योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम् ।
अवमन्येद्वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः ॥ २०
देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम् ।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः ॥ २१
किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयंकरम् ।
अवजानन्महात्मानं घोरे तमसि मज्जति ॥ २२
एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः ।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः ॥ २३

भीष्म उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवान्देवान्सर्षिगणान् पुरा ।
विसृज्य सर्वभूतात्मा जगाम भवनं स्वकम् ॥ २४
ततो देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च ।
कथां तां ब्रह्मणा गीतां श्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः ॥
एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

तत इति ॥ १ ॥

रामस्य जामदग्न्यस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
व्यास-नारदयोश्चापि संकाशाद्भरतर्षभ ॥ २७
एतमर्थं च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम् ।
वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम् ॥ २८
यस्य चैवात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।
कथं न वासुदेवोऽयमर्च्यश्चेज्यश्च मानवैः ॥ २९
वारितोऽसि मया तात मुनिभिर्वेदपारगैः ।
मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धन्विना ॥ ३०
मा पाण्डवैः सार्धमिति तत्त्वं मोहान्न बुध्यसे ।
मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चासि तमोवृतः ॥
यस्माद्द्विषसि गोविन्दं पाण्डवं तं धनञ्जयम् ।
नरनारायणौ देवौ कोऽन्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥
तस्माद्ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः ।
सर्वलोकमयो नित्यः शास्ता धात्रीधरो ध्रुवः ॥
यो धारयति लोकांस्त्रींश्चराचरगुरुः प्रभुः ।
योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥ ३४
राजन् सर्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः ।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३५
तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनात्ममयेन च ।
धृताः पाण्डुसुता राजन् जयश्चैषां भविष्यति ॥
श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पाण्डवानां दधाति यः ।
बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥ ३७
स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः ।
वासुदेव इति ज्ञेयो यन्मां पृच्छसि भारत ॥ ३८
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ३९
द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन वै ॥ ४०
स एष सर्वं सुरमर्त्यलोकं
समुद्रकक्ष्यान्तरितां पुरीं च ।
युगे युगे मानुषं चैव वासं
पुनः पुनः सृजते वासुदेवः ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

दुर्योधन उवाच ।
वासुदेवो महद्भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते ।
तस्यागमं प्रतिष्ठां च ज्ञातुमिच्छे पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद्दृश्यते भरतर्षभ ॥ २
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत् ।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।
स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥
अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ।
सर्वतेजोमयो देवो योगात्सुष्वाप तत्र ह ॥ ५
मुखतः सोऽग्निमसृजत् प्राणाद्वायुमथापि च ।
सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥ ६
एष लोकान् ससर्जादौ देवांश्च ऋषिभिः सह ।
निधनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥ ७
एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः ।
एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयंप्रभुः ॥ ८
भूतं भव्यं भविष्यच्च पूर्वमेतदकल्पयत् ।
उभे सन्ध्ये दिशः खं च नियमांश्च जनार्दनः ॥ ९
ऋषींश्चैव हि गोविन्दस्तपश्चैवाभ्यकल्पयत् ।
स्रष्टारं जगतश्चापि महात्मा प्रभुरव्ययः ॥ १०
अग्रजं सर्वभूतानां सङ्कर्षणमकल्पयत् ।
तस्मान्नारायणो जज्ञे देवदेवः सनातनः ॥ ११
नाभौ पद्मं बभूवास्य सर्वलोकस्य संभवात् ।
तस्मात्पितामहो जातस्तस्माज्जातास्त्विमाः प्रजाः
शेषं चाकल्पयद्देवमनन्तं विश्वरूपिणम् ।
यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम् १३
ध्यानयोगेन विप्राश्च तं विदन्ति महौजसम् ।
कर्णस्रोतोभवं चापि मधुं नाम महासुरम् ॥ १४

---

कृतलक्षणैः स्वस्वगुणप्रख्यातैः ३९ सात्वताः पञ्चरात्रागमविधिना पूजकास्तदीयं सात्वतम् ॥४०॥ कक्ष्या काञ्ची,पुरीं द्वारकाम् ॥४१॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६८

वासुदेव इति ॥ १ ॥ निधनं मरणं मृत्युं मरणप्रयोजनं प्रभव उत्पत्तिहेतुः अप्ययः प्रलयहेतुः ॥ ७ ॥ कर्णात्स्रवतीति कर्णस्रोतः कर्णमलम् ॥ १४ ॥

तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम् ।
ब्रह्मणोऽपचितिं यान्तं जघान पुरुषोत्तमः ॥ १५
तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः ।
मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥ १६
वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभुः ।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः १७
परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ।
मुखतः सोऽसृजद्विप्रान् बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा
वैश्यांश्चाप्यूरुतो राजन् शूद्रान्वै पादतस्तथा
तपसा नियतो देवो निधानं सर्वदेहिनाम् ॥ १९
ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च ।
योगभूतं परिचरन् केशवं महदाप्नुयात् ॥ २०
केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः ।
एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥ २१
एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम् ।
कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाक्षया जिताः २२
यश्चैवैनं भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत् ।
सदा नरः पठंश्चेदं स्वस्तिमान् स सुखी भवेत् २३
ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः ।
भये महति मग्नांश्च पाति नित्यं जनार्दनः ॥ २४
स तं युधिष्ठिरो ज्ञात्वा याथातथ्येन भारत ।
सर्वात्मना महात्मानं केशवं जगदीश्वरम्
प्रपन्नः शरणं राजन् योगानां प्रभुमीश्वरम् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

भीष्म उवाच ।
शृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतं स्तवं मम ।
ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितो भुवि ॥ १
साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः ।
लोकभावनभावज्ञ इति त्वां नारदोऽब्रवीत् ॥ २
भूतं भव्यं भविष्यं च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह ।
यज्ञं त्वां चैव यज्ञानां तपश्च तपसामपि ॥ ३
देवानामपि देवं च त्वामाह भगवान् भृगुः ।
पुराणं चैव परमं विष्णो रूपं तवेति च ॥ ४
वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रं स्थापयिता तथा ।
देव देवोऽसि देवानामिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ५
पूर्वे प्रजानिसर्गे च दक्षमाहुः प्रजापतिम् ।
स्रष्टारं सर्वलोकानामङ्गिरास्त्वां तथाऽब्रवीत् ६
अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम् ।
देवास्त्वत्संभवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत् ७
शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा ।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ८
एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नराः ।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चासि सत्तमः ॥ ९
राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥ १०
इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान् पुरुषोत्तमः ।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः ॥ ११
एष ते विस्तरस्तात सङ्क्षेपश्च प्रकीर्तितः ।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम् ॥ १२
सञ्जय उवाच ।
पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव
केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान् ॥ १३
तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
माहात्म्यं ते श्रुतं राजन् केशवस्य महात्मनः ॥१४
नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं पृच्छसे नृप ।
यदर्थं नृषु संभूतौ नरनारायणावृषी ॥ १५
अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेष्वपराजितौ ।
यथा च पाण्डवा राजन्नवध्या युधि कस्यचित्॥
प्रीतिमान् हि दृढं कृष्णः पाण्डवेषु यशस्विषु ।
तस्माद्ब्रवीमि राजेन्द्र शमो भवतु पाण्डवैः ॥ १७
पृथिवीं भुङ्क्ष्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी ।
नरनारायणौ देवाववज्ञाय न शिष्यसि ॥ १८

ब्रह्मणः सकाशादपचितिं सत्कारं यातुं प्राप्तुम् । यान्तमिति' पाठे ब्रह्मणः अपचितिं क्षयं कर्तुमिति शेषः। यान्तं धावन्तम् ॥ १५ ॥' इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

'शृण्विति'। इदमिति सामान्ये नपुंसकम् ॥ १ ॥ इति

एवमुक्त्वा तव पिता तूष्णीमासीद्विशांपते ।
व्यसर्जयच्च राजानं शयनं च विवेश ह ॥ १९
राजा च शिबिरं प्रायात् प्रणिपत्य महात्मने ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे रात्रिं तां भरतर्षभ ॥ २०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

विश्वोपाख्यानं समाप्तम् ।

## ६९

सञ्जय उवाच ।
व्युषितायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे ।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥ १
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः ।
ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥ २
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ।
व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः संप्रहृष्टाः प्रहारिणः॥ ३
अरक्षन् मकरव्यूहं भीष्मो राजन् समन्ततः ।
तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन् व्यूहमात्मनः ॥ ४
स निर्ययौ महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः ॥ ५
इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागमवस्थिताः ।
रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥ ६
तान् दृष्ट्वाऽभ्युद्यतान् संख्ये पाण्डवा हि यशस्विनः
श्येनेन व्यूहराजेन तेनाजय्येन संयुगे ॥ ७
अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः ।
नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ८
शीर्षे तस्याभवद्वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विधुन्वन् गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत्तदा॥ ९
अक्षौहिण्या समं तत्र वामपक्षोऽभवत्तदा ।
महात्मा द्रुपदः श्रीमान् सह पुत्रेण संयुगे ॥ १०
दक्षिणश्चाभवत्पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चापि वीर्यवान् ॥ ११
पृष्ठे समभवच्छ्रीमान् स्वयं राजा युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभ्यां सहितो वीरो यमाभ्यां चारुविक्रमः॥
प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तदा ।
भीष्ममासाद्य सङ्ग्रामे च्छादयामास सायकैः १३
ततो भीष्मो महास्त्राणि पातयामास भारत ।
मोहयन् पाण्डुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे ॥ १४
संमुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि ॥ १५
प्रतिसंवार्य चास्त्राणि भीष्ममुक्तानि संयुगे ।
स्वेनानीकेन हृष्टेन युद्धाय समुपस्थितः ॥ १६
ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत ।
पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वरः ॥ १७
भ्रातॄणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः ।
आचार्य सततं हि त्वं हितकामो ममानघ ॥ १८
वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम्।
देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ॥ १९
किमु पाण्डुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
स तथा कुरु भद्रं ते यथा वध्यन्ति पाण्डवाः२०
एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष ।
अभिनत् पाण्डवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः२१
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत ।
तयोः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ २२
शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव ॥ २३
भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत ।
संरक्षन् सात्यकिं राजन् द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात्
ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष ।
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयांचक्रिरे शरैः ॥ २५
तत्राभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान् ॥२६
द्रोणभीष्मौ तु संक्रुद्धावापतन्तौ महाबलौ ।
प्रत्युद्ययौ शिखण्डी तु महेष्वासो महाहवे॥ २७
प्रगृह्य बलवद्वीरो धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं छादयानो दिवाकरम् ॥ २८

---

श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

व्युषितायामिति ॥ १ ॥

शिखण्डिनं समासाद्य भरतानां पितामहः ।
अवर्जयत सङ्ग्रामं स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मरन् ॥ २९
ततो द्रोणो महाराज अभ्यद्रवत तं रणे ।
रक्षमाणस्तदा भीष्मं तव पुत्रेण चोदितः ॥ ३०
शिखण्डी तु समासाद्य द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ।
अवर्जयत संत्रस्तो युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥३१
ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशांपते ।
जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद्यशः ॥ ३२
तथैव पाण्डवा राजन् पुरस्कृत्य धनञ्जयम् ।
भीष्ममेवाभ्यवर्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम्॥ ३३
तद्युद्धमभवद्घोरं देवानां दानवैरिव ।
जयमाकाङ्क्षतां सङ्ख्ये यशश्च सुमहाद्भुतम् ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धारम्भे
ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## ७०

सञ्जय उवाच ।
अकरोत्तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
भीमसेनभयादिच्छन् पुत्रांस्तारयितुं तव ॥ १
पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥ २
तस्मिन्नाकुलसङ्ग्रामे वर्तमाने महाभये ।
अभवत्तुमुलः शब्दः संस्पृशन् गगनं महत् ॥ ३
नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं समपद्यत ॥ ४
युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥ ५
शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशे बभूव भरतर्षभ ॥ ६
कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च ।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥ ७
विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चान्यैरभवच्छादिता मही ॥ ८
कवचोपहितैर्गात्रैर्हस्तैश्च समलङ्कृतैः ।
मुखैश्च चन्द्रसंकाशै रक्तान्तनयनैः शुभैः ॥ ९
गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैश्च भूपते ।
आसीत् सर्वा समास्तीर्णा मुहूर्तेन वसुंधरा ॥१०
रजोमेघैश्च तुमुलैः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिभिः ।
आयुधानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥
स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ।
प्रावर्तत कुरूणां च पाण्डवानां च भारत ॥ १२
तस्मिन् महाभये घोरे तुमुले लोमहर्षणे ।
ववृषुः शरवर्षाणि क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ १३
आक्रोशन् कुञ्जरास्तत्र शरवर्षप्रतापिताः ।
तावकानां परेषां च संयुगे भरतर्षभ ॥ १४
संरब्धानां च वीराणां धीराणाममितौजसाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन ॥ १५
उत्थितेषु कबन्धेषु सर्वतः शोणितोदके ।
समरे पर्यधावन्त नृपा रिपुवधोद्यताः॥ १६
शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः ।
निजघ्नुः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ॥१७
बभ्रमुः कुञ्जराश्चात्र शरैर्विद्धा निरंकुशाः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १८
उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः ।
तावकानां परेषां च योधा भरतसत्तम ॥ १९
बाहानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
गदानां परिघाणां च हस्तानां चोरुभिः सह ॥
पादानां भूषणानां च केयूराणां च सङ्घशः ।
राशयस्तत्र दृश्यन्ते भीष्मभीमसमागमे ॥ २१
अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां चानिवर्तिनाम् ।
सङ्घाताः स्म प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र विशांपते ॥ २२
गदाभिरसिभिः प्रासैर्बाणैश्च नतपर्वभिः ।
जघ्नुः परस्परं तत्र क्षत्रियाः काल आगते ॥ २३
अपरे बाहुभिर्वीरा नियुद्धकुशला युधि ।
बहुधा समसज्जन्त आयसैः परिघैरिव ॥ २४
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव तलैश्चैव विशांपते ।
अन्योन्यं जघ्निरे वीरास्तावकाः पाण्डवैः सह ॥

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

अकरोदिति ॥ १ ॥

पतितैः पात्यमानैश्च विचेष्टद्भिश्च भूतले ।
घोरमायोधनं जज्ञे तत्र तत्र जनेश्वर ॥ २६
विरथा रथिनश्चात्र निस्त्रिंशवरधारिणः ।
अन्योन्यमभिधावन्तः परस्परवधैषिणः ॥ २७
ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गैर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं पाण्डवानभ्यवर्तत ॥ २८
तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
भीष्ममभ्यद्रवन् क्रुद्धास्ततो युद्धमवर्तत ॥ २९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

सञ्जय उवाच ।
दृष्ट्वा भीष्मेण संसक्तान् भ्रातॄनन्यांश्च पार्थिवान् ।
समभ्यधावद्गाङ्गेयमुद्यतास्त्रो धनञ्जयः ॥ १
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं धनुषो गाण्डिवस्य च ।
ध्वजं च दृष्ट्वा पार्थस्य सर्वान्नो भयमाविशत् ॥ २
सिंहलाङ्गूलमाकाशे ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
असज्जमानं वृक्षेषु धूमकेतुमिवोत्थितम् ॥ ३
बहुवर्णं विचित्रं च दिव्यं वानरलक्षणम् ।
अपश्याम महाराज ध्वजं गाण्डीवधन्वनः ॥ ४
विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाम्बरे ।
ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महामृधे ॥ ५
अशुश्रुम भृशं चास्य शक्रस्येवाभिगर्जतः ।
सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम् ॥ ६
चण्डवातो यथा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।
दिशः संप्लावयन्सर्वाः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ७
समभ्यधावद्गाङ्गेयं भैरवास्त्रो धनञ्जयः ।
दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोऽस्त्रमोहिताः
कांदिग्भूताः श्रान्तपत्रा हताश्वा हतचेतसः ।
अन्योन्यमभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ ॥ ९
भीष्ममेवाभ्यलीयन्त सह सर्वैस्तवात्मजैः ।
तेषामार्तायनमभूद्भीष्मः शान्तनवो रणे ॥ १०
समुत्पतन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा ।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥ ११
श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
सर्वसैन्यानि भीतानि व्यवालीयन्त भारत ॥ १२
अथ काम्बोजजैरश्वैर्महद्भिः शीघ्रगामिभिः ।
गोपानां बहुसाहस्रैर्बलैर्गोपायनैर्वृतः ॥ १३
मद्रसौवीरगान्धारैस्त्रैगर्तैश्च विशांपते ।
सर्वकालिङ्गमुख्यैश्च कलिङ्गाधिपतिर्वृतः ॥ १४
नानानरगणौघैश्च दुःशासनपुरःसरः ।
जयद्रथश्च नृपतिः सहितः सर्वराजभिः ॥ १५
हयारोहवराश्चैव तव पुत्रेण चोदिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सौबलं पर्यवारयन् ॥ १६
ततस्ते सहिताः सर्वे विभक्तरथवाहनाः ।
अर्जुनं समरे जघ्नुस्तावका भरतर्षभ ॥ १७
रथिभिर्वारणैरश्वैः पादातैश्च समीरितम् ।
घोरमायोधनं चक्रे महाभ्रसदृशं रजः ॥ १८
तोमरप्रासनाराचगजाश्वरथयोधिनाम् ।
बलेन महता भीष्मः समसज्जत्किरीटिना ॥ १९
आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः ।
अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना ॥ २०
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत ।
विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ॥ २१
मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशांपते ।
द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २२
द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना ।
कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टद्युम्नमभिद्रुतौ ॥ २३
एवं प्रव्रजिताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च ।
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः ॥ २४
निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसाऽऽवृताः ।
प्रादुरासन् महोल्काश्च सनिर्घाता विशांपते ॥ २५
प्रादुर्भूतो महावातः पांसुवर्षं पपात च ।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥ २६
प्रमोहः सर्वसत्त्वानामतीव समपद्यत ।
रजसा चाभिभूतानामस्त्रजालैश्च तुद्यताम् ॥ २७

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ स्तनयित्नुर्गर्जितम् ॥ ७ ॥

वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम् ।
सङ्घातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत ॥ २८
प्रकाशं चक्रुराकाशमुद्यतानि भुजोत्तमैः ।
नक्षत्रविमलाभानि शस्त्राणि भरतर्षभ ॥ २९
आर्षभाणि विचित्राणि रुक्मजालावृतानि च ।
संपेतुर्दिक्षु सर्वासु चर्माणि भरतर्षभ ॥ ३०
सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्यमानानि सर्वशः ।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च ३१
भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः ।
हताश्वाः पृथिवीं जग्मुस्तत्र तत्र महारथाः ॥ ३२
परिपेतुर्हयाश्चात्र केचिच्छस्त्रकृतव्रणाः ।
रथान् विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु ॥ ३३
शराहता भिन्नदेहा बद्धयोक्त्रा हयोत्तमाः ।
युगानि पर्यकर्षन्त तत्र तत्र स्म भारत ॥ ३४
अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः ।
एकेन बलिना राजन् वारणेन विमर्दिताः ॥ ३५
गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे ।
सन्निपाते बलौघानां वीतमाददिरे गजाः ॥ ३६
सतोमरैर्महामात्रैर्निपतद्भिर्गतासुभिः ।
बभूवायोधनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः ॥ ३७
सन्निपाते बलौघानां प्रेषितैर्वरवारणैः ।
निपेतुर्युधि संभग्नाः सयोधाः सध्वजा गजाः ३८
नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे ।
व्यदृश्यन्त महाराज संभग्ना रथकूबराः ॥ ३९
विशीर्णरथसङ्घाश्च केशेष्वाक्षिप्य दन्तिभिः ।
द्रुमशाखा इवाविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ४०
रथेषु च रथान् युद्धे संसक्तान् वरवारणाः ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः सर्वशब्दगाः ४१
तेषां तथा कर्षतां तु गजानां रूपमाबभौ ।
सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥ ४२
एवं संछादितं तत्र बभूवायोधनं महत् ।
सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

## ७२

सञ्जय उवाच ।
शिखण्डी सह मत्स्येन विराटेन विशांपते ।
भीष्ममाशु महेष्वासमाससाद सुदुर्जयम् ॥ १
द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासं महाबलम् ।
राज्ञश्चान्यान् रणे शूरान् बहूनार्च्छद्धनञ्जयः ॥ २
सैन्धवं च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान् भूमिपर्षभ ३
पुत्रं च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःसहं चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ ४
सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ ॥ ५
युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः ।
समवर्तत सङ्ग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव ॥ ६
माद्रीपुत्रस्तु नकुलः शूरसंक्रन्दनो युधि ।
त्रिगर्तानां बलैः सार्धं समसज्जत पाण्डवः ॥ ७
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः समरे शाल्वकेकयान् ।
सात्यकिश्चेकितानश्च सौभद्रश्च महारथः ॥ ८
धृष्टकेतुश्च समरे राक्षसश्च घटोत्कचः ।
पुत्राणां ते रथानीकं प्रत्युद्याताः सुदुर्जयाः ॥ ९
सेनापतिरमेयात्मा धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
द्रोणेन समरे राजन् समियायोग्रकर्मणा ॥ १०
एवमेते महेष्वासास्तावकाः पाण्डवैः सह ।
समेत्य समरे शूराः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ११
मध्यंदिनगते सूर्ये नभस्याकुलतां गते ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च निजघ्नुरितरेतरम् ॥ १२
ध्वजिनो हेमचित्राङ्गा विचरन्तो रणाजिरे ।
सपताका रथा रेजुर्वैयाघ्रपरिवारणाः ॥ १३

---

वीतमाददिरे प्रतिगजं मृद्नन्तो निर्वीर्यमपि गजं जगृहुः मत्तगजबुद्ध्येति भावः । 'वीतमसारगजे' इति मेदिनी ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

७२

शिखण्डीति ॥ १ ॥ शूरसंक्रन्दनः शूराणां रोदकः शूरेन्द्रो वा ॥ ७ ॥

समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम् ॥ १४
तत्राद्भुतमपश्याम संप्रहारं सुदारुणम् ।
यदकुर्वन् रणे शूराः सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ १५
नैव खं न दिशो राजन्न सूर्यं शत्रुतापन ।
विदिशो वाऽपि पश्यामः शरैर्मुक्तैः समन्ततः१६
शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथाऽस्यताम् ।
निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाः प्रभाः
कवचानां विचित्राणां भूषणानां प्रभास्तथा ।
खं दिशः प्रदिशश्चैव भासयामासुरोजसा ॥ १८
वपुर्भिश्च नरेन्द्राणां चन्द्रसूर्यसमप्रभैः ।
विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणाङ्गणम् ॥ १९
रथसङ्घा नरव्याघ्राः समायान्तश्च संयुगे ।
विरेजुः समरे राजन् ग्रहा इव नभस्तले ॥ २०
भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलम् ।
अवारयत संक्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ २१
ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अभ्यघ्नन् समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः ॥ २२
तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशां प्रेषयामास भारत ॥ २३
तामापतन्तीं सहसा रुक्मदण्डां दुरासदाम् ।
चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥ २५
सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे ।
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥ २६
शरैर्बहुभिरानर्छत् पितरं ते जनेश्वर ।
ततः संधाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम् ॥ २७
वार्ष्णेयस्य रथाद्भीष्मः पातयामास सारथिम् ।
तस्याश्वाः प्रद्रुता राजन्निहते रथसारथौ ॥ २८
तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य निःस्वनस्तुमुलोऽभवत्२९
हाहाकारश्च संजज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अभ्यद्रवत गृह्णीत हयान्यच्छत धावत ॥ ३०
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति ।
एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवस्तदा॥३१
न्यहनत् पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा ।
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ३२
स्थिरां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाभिदुद्रुवुः ।
धृष्टद्युम्नमुखाश्चापि पार्थाः शान्तनवं रणे ॥ ३३
अभ्यधावन् जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
तथैव कौरवा राजन् भीष्मद्रोणपुरोगमाः ॥ ३४
अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्तत ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

सञ्जय उवाच ।
विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्च्छन्महारथम् ।
विव्याध तुरगांश्चास्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः ॥ १
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शान्तनवः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः कृतहस्तो महाबलः ॥ २
द्रौणिर्गाण्डीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः ।
अविध्यदिषुभिः षड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे ॥ ३
कार्मुकं तस्य चिच्छेद फाल्गुनः परवीरहा ।
अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः ॥ ४
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगवान् क्रोधमूर्छितः ।
अमृष्यमाणः पार्थेन कार्मुकच्छेदमाहवे ॥ ५
अविध्यत्फाल्गुनं राजन्नवत्या निशितैः शरैः ।
वासुदेवं च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः ॥ ६
ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कृष्णेन सह फाल्गुनः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पुनःपुनः॥७
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ।
गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान् सन्नतपर्वणः ॥ ८
जीवितान्तकरान् घोरान् समादत्त शिलीमुखान् ।
तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद्द्रौणिं बलवतां वरः ॥ ९

---

ओजसा स्वप्रभावेण ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

७३

विराट इति ॥ १ ॥

तस्य ते कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ॥
तथैव च शरान् द्रौणिः प्रविमुञ्चन्नविह्वलः ।
तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन् महाव्रतम् ॥११
तस्य तत् सुमहत् कर्म शशंसुः कुरुसत्तमाः ।
यत् कृष्णाभ्यां समेताभ्यामभ्यापतत संयुगे॥ १२
स हि नित्यमनीकेषु युध्यतेऽभयमास्थितः ।
अस्त्रग्रामं ससंहारं द्रोणात् प्राप्य सुदुर्लभम् ॥१३
ममैष आचार्यसुतो द्रोणस्यापि प्रियः सुतः ।
ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च ॥ १४
समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः ।
कृपां चक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति ॥ १५
द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
युयुधे तावकान्निघ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १६
दुर्योधनस्तु दशभिर्गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भीमसेनं महेष्वासं रुक्मपुङ्खैः समार्पयत् ॥ १७
भीमसेनः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ।
चित्रं कार्मुकमादत्त शरांश्च निशितान् दश १८
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्वेगवद्भिरजिह्मगैः ।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रः कुरुराजं महोरसि ॥ १९
तस्य काञ्चनसूत्रस्थः शरैः संछादितो मणिः ।
रराजोरसि खे सूर्यो ग्रहैरिव समावृतः ॥ २०
पुत्रस्तु तव तेजस्वी भीमसेनेन ताडितः ।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं मदोत्कटः ॥ २१
ततः शरैर्महाराज रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥२२
तौ युध्यमानौ समरे भृशमन्योन्यविक्षतौ ।
पुत्रौ ते देवसङ्काशौ व्यरोचेतां महाबलौ ॥ २३
चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः॥ २४
सत्यव्रतं च सप्तत्या विद्ध्वा शक्रसमो युधि ।
नृत्यन्निव रणे वीर आर्तिं नः समजीजनत् ॥२५
तं प्रत्यविध्यद्दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः ।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥ २६
स विद्धो विक्षरन् रक्तं शत्रुसंवारणं महत् ।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः॥२७
भित्त्वा चास्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् ।
ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ॥ २८
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ।
तांश्च सर्वान् शरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित्॥२९
तस्य दृष्ट्वा तु तत् कर्म परिवव्रुः सुतास्तव ।
दहन्तं समरे सैन्यं वने कक्षं यथोल्बणम् ॥ ३०
अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकम् ।
अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि नाशयन् ॥ ३१
तत्तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशांपते ।
लक्ष्मणोऽभ्यपतत्तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे ॥ ३२
अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
विव्याध निशितैः षड्भिः सारथिं च त्रिभिः शरैः
तथैव लक्ष्मणो राजन् सौभद्रं निशितैः शरैः ।
अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३४
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः ।
अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥ ३५
हताश्वे तु रथे तिष्ठँल्लक्ष्मणः परवीरहा ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ३६
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम् ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम्॥३७
ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा ।
अपोवाह रथेनाजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३८
ततः समाकुले तस्मिन् वर्तमाने महाभये ।
अभ्यद्रवन् जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥ ३९
तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः ।
जुह्वन्तः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ४०
मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥४१
ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ ४२
हतैरश्वैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः ।
रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥४३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

सात्वतीपुत्रं अभिमन्युम् ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

## ७४.

सञ्जय उवाच ।

अथ राजन् महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
विकृष्य चापं समरे भारसाहमनुत्तमम् ॥ १
प्राभुञ्चत्पुङ्खसंयुक्तान् शरानाशीविषोपमान् ।
प्रगाढं लघु चित्रं च दर्शयन् हस्तलाघवम् ॥२
तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः ।
आददानस्य भूयश्च संदधानस्य चापरान् ॥ ३
क्षिपतश्च परांस्तस्य रणे शत्रून्विनिघ्नतः ।
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥ ४
तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः ।
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥ ५
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान् सात्यकिः सत्यविक्रमः।
जघान परमेष्वासो दिव्येनास्त्रेण वीर्यवान् ॥ ६
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥ ७
स हि संदृश्य सेनां ते युयुधानेन पातिताम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ८
इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
सृष्टवान् वज्रसङ्काशान् शरानाशीविषोपमान् ॥
सहस्रशो महाराज दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
शरांस्तान्मृत्युसंस्पर्शान्सात्यकेश्च पदानुगाः॥१०
न विषेहुस्तदा राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
विहाय सात्यकिं राजन् समरे युद्धदुर्मदम् ॥११
तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः ।
महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ १२
समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे ।
ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे ॥ १३
भो भो कौरवदायाद सहास्माभिर्महाबल ।
एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥ १४
अस्मान्वा त्वं पराजित्य यशः प्राप्नुहि संयुगे ।
वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं धास्यामहे पितुः ॥
एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः ।
वीर्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान् दृष्ट्वा समवस्थितान् ॥
साध्विदं कथ्यते वीरा यद्येवं मतिरद्य वः ।
युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥
एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः ।
महता शरवर्षेण अभ्यधावन्नरिन्दमम् ॥ १८
सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १९
तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन् ।
प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ २०
तैस्तु मुक्तान् शरान् घोरान् यमदण्डाशनिप्रभान्।
असंप्राप्तानसंभ्रान्तश्चिच्छेदाशु महारथः ॥ २१
तत्राद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् ।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत् ॥ २२
विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन्महारथाः ।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥ २३
सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत ।
चिच्छेद समरे राजन् युध्यमानो महारथैः ॥ २४
अथैषां छिन्नधनुषां शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद समरे राजन् शिरांसि भरतर्षभ ॥ २५
ते हता न्यपतन् राजन् वज्रभग्ना इव द्रुमाः ।
तान् दृष्ट्वा निहतान्वीरो रणे पुत्रान्महाबलान् ॥
वार्ष्णेयो विनदन् राजन् भूरिश्रवसमभ्ययात् ।
रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबलौ ॥ २७
तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः ।
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥ २८
प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ ।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २९
ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
भीमसेनस्त्वरन् राजन् रथमारोपयत्तदा ॥ ३०
तवापि तनयो राजन् भूरिश्रवसमाहवे ।
आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ३१
तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम् ।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ३२
लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥ ३३
ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे ।
संप्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥ ३४
ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥ ३५

७४
अथेति ॥ १ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति ।
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥ ३६
अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः॥३७
पाण्डवानां कुरूणां च परस्परसमागमे ।
ते सेने ‡भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनम् ॥ ३८
ततः स्वशिबिरं गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत ।
पाण्डवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि॥ ३९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसावहारे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## ७५

सञ्जय उवाच ।
ते विश्रम्य ततो राजन् सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १
तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम्॥ २
संनह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत ।
शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत ।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम् ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः ॥ ५
शिरोऽभूद्द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ॥ ६
तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ७
सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः ।
पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः ॥ ८
धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः ।
केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः ॥ ९
धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान् ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे ॥१०
पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान् महारथः ।
कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः॥११
शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली ।
इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥ १२
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥ १३
कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ।
समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्छत्रैः शस्त्रैश्च विमलैः शितैः॥१४
व्यूढं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
क्रौञ्चेन महता राजन् प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥ १५
तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर+ ॥ १६
कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरबाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १७
ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष ।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १८
प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः ।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥ १९
स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥ २०
तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत॥ २१
श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥ २२
ततो युद्धाय सञ्जग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥ २३
प्रतीयू रथिनो नागा नागाश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहान् रथारोहा रथिनश्चापि सादिनः॥ २४
सादिनश्च हयान् राजन् रथिनश्च महारणे ।
हस्त्यारोहान् हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा॥२५
रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चापि पत्तिभिः ।
अन्योन्यं समरे राजन् प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ‡ भयसंविग्ने इति पाठः ।

७५

ते इति ॥ १ ॥ + चक्षुरास्तां जनेश्वर इति पाठः ।

भीमसेनार्जुनयमैर्गुप्ता चान्यैर्महारथैः ।
शुशुभे पाण्डवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥ २७
तथा भीष्म-कृप-द्रोण-शल्य-दुर्योधनादिभिः ।
तवापि च बभौ सेना ग्रहैर्द्यौरिव संवृता ॥ २८
भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥ २९
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ।
विव्याध समरश्लाघी मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥३०
दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ३१
स सङ्गृह्य स्वयं वाहान् भारद्वाजः प्रतापवान् ।
व्यधमत् पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवानलः ३२
ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमाः ।
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपराऽभवन् ॥ ३३
तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम् ।
मुह्यते तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना ॥ ३४
अभिद्येतां *ततो व्यूहौ तस्मिन् वीरवरक्षये ।
आसीद्व्यतिकरो घोरस्तव तेषां च भारत ॥ ३५
तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह ।
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥ ३६
प्रतिसंवार्य चास्त्राणि तेऽन्योन्यस्य विशांपते ।
युयुधुः पाण्डवाश्चैव कौरवाश्च महाबलाः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसयुद्धारम्भे
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

धृतराष्ट्र उवाच ।
एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं पुरा ।
व्यूढमेवं यथाशास्त्रममोघं चैव सञ्जय ॥ १
हृष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामं च नः सदा ।
प्रह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद्दृष्टविक्रमम् ॥ २
नातिवृद्धमबालं च न कृशं न च पीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारयोधमनामयम् ॥ ३
आत्तसन्नाहशस्त्रं च बहुशस्त्रपरिग्रहम् ।
असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम् ॥ ४
प्रासर्ष्टितोमरेष्वाजौ परिघेष्वायसेषु च ।
भिन्दिपालेषु शक्तीषु मुसलेषु च सर्वशः ॥ ५
कम्पनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः ।
क्षेपणीयेषु चित्रेषु मुष्टियुद्धेषु च क्षमम् ॥ ६
अपरोक्षं च विद्यासु व्यायामे च कृतश्रमम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम् ॥ ७
आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ८
नागाश्वरथयानेषु बहुशः सुपरीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ९
न गोष्ठ्या नोपकारेण न च बन्धुनिमित्ततः ।
न सौहृदबलैर्वापि नाकुलीनपरिग्रहैः ॥ १०
समृद्धजनमार्यं च तुष्टसम्बन्धिबान्धवम् ।
कृतोपकारभूयिष्ठं यशस्वि च मनस्वि च ॥ ११
स्वजनैस्तु नरैर्मुख्यैर्बहुशो दृष्टकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं लोकविश्रुतम् ॥ १२
बहुभिः क्षत्रियैर्गुप्तं पृथिव्यां लोकसंमतैः ।
अस्मानभिगतैः कामात् सबलैः सपदानुगैः १३
महोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैर्नागैश्च संवृतम् ॥ १४
नानायोधजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्राससमाकुलम् ॥ १५
ध्वजभूषणसंबाधं रत्नपट्टसुसञ्चितम् ।
परिधावद्भिरश्वैश्च वायुवेगविकम्पितम् ॥ १६
अपारमिव गर्जन्तं सागरप्रतिमं महत् ।
द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं गुप्तं च कृतवर्मणा ॥ १७
कृपदुःशासनाभ्यां च जयद्रथमुखैस्तथा ।
भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाल्हिकैः ॥ १८

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ततः सेने इति पाठः ।

७६

एवमिति ॥ १ ॥ नः अस्मात् अभिकामं आकाङ्क्षमाणं प्रह्वं प्रणतम् ॥ २ ॥ लघुवृत्तं शीघ्रकारि आयतप्रायं प्रांशुबहुलम् ॥ ३ ॥ आरोहे हस्त्यादीनां पर्यवस्कन्दे हस्त्यादिभ्योऽवतरणे ॥ ८ ॥ मनस्वि साहङ्कारम् ॥ ११ ॥ अपक्षैः पक्षशून्यैः तथाऽपि गत्या पक्षिसदृशैः ॥ १४ ॥

गुप्तं प्रवीरैर्लोकैश्च सारवद्भिर्महात्मभिः ।
यदहन्यत सङ्ग्रामे दैवमत्र पुरातनम् ॥ १९
नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवन्तो हि मानुषाः ।
ऋषयो वा महाभागाः पुराणा भुवि सञ्जय॥२०
ईदृशोऽपि बलौघस्तु संयुक्तः शस्त्रसंपदा ।
वध्यते यत्र सङ्ग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २१
विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति हि सञ्जय ।
यत्रेदृशं बलं घोरं ×पाण्डवान्नातरद्रणे ॥ २२
पाण्डवार्थाय नियतं देवास्तत्र समागताः ।
युध्यन्ते मामकं सैन्यं यथाऽवध्यत सञ्जय ॥ २३
उक्तो हि विदुरेणाहं हितं पथ्यं च नित्यशः ।
न च जग्राह तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ २४
तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
आसीद्यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५
अथवा भाव्यमेवं हि सञ्जयैतेन सर्वथा ।
पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा नैतदन्यथा ॥ २६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

सञ्जय उवाच ।
आत्मदोषात्त्वया राजन् प्राप्तं व्यसनमीदृशम् ।
न हि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ॥ १
यानि त्वं दृष्टवान् राजन् धर्मसङ्करकारिते ।
तव दोषात् पुरा वृत्तं द्यूतमेव विशांपते ॥ २
तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः ।
त्वमेवाद्य फलं भुङ्क्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना॥ ३
आत्मनैव कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते ।
इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥ ४
तस्माद्राजन् स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं शंसतो मे नराधिप ॥ ५
भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्त्वा महाचमूम् ।
आससाद ततो वीरः सर्वान् दुर्योधनानुजान् ६
दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम् ।
+जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम् ॥ ७
चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च ।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् समीपस्थान् महारथान् ८
धार्तराष्ट्रान् सुसंक्रुद्धान् दृष्ट्वा भीमो महारथः ।
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥ ९
अथालोक्य प्रविष्टं तमूचुस्ते सर्व एव तु ।
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥ १०
स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः ।
प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥ ११
संप्राप्य मध्यं सैन्यस्य न भीः पाण्डवमाविशत् ।
यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य दानवान् ॥ १२
ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो ।
उद्यतानि शरैस्तीव्रैस्तमेकं परिवव्रिरे ॥ १३
स तेषां प्रवरान् योधान् हस्त्यश्वरथसादिनः ।
जघान समरे शूरो धार्तराष्ट्रानचिन्तयन् ॥ १४
तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम् ।
समस्तानां वधे राजन् मतिं चक्रे महामनाः १५
ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः ।
जघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघं महार्णवम् ॥ १६
भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः ।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ १७
निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः ।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥ १८
दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥ १९
अपृच्छद्बाष्पसंरुद्धां निःश्वसन् वाचमीरयन् ।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः २०
विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः ।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः पराक्रमी २१
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद्बलमहार्णवम् ।
मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः २२

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मप० नैलकण्ठीये भा०भा० षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ × नावधीद्युधि पाण्डवानिति पा०

७७.
आत्मदोषादिति ॥ १ ॥ + जयसेनमिति पाठः ।

प्रतिपालय मां सूत नियम्याश्वान् मुहूर्तकम् ।
यावदेतान्निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः ॥ २३
ततो दृष्ट्वा प्रधावन्तं गदाहस्तं महाबलम् ।
सर्वेषामेव सैन्यानां संहर्षः समजायत ॥ २४
तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
भित्त्वा राजन् महाव्यूहं प्रविवेश वृकोदरः २५
विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽथ पार्षतः ।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥ २६
न हि मे जीवितेनापि विद्यतेऽद्य प्रयोजनम् ।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ २७
यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति ।
एकायनगते भीमे मयि चावस्थिते युधि ॥ २८
अस्वस्ति तस्य कुर्वन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ।
यः सहायान् परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहम् ॥
मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः ।
भक्तोऽस्मान् भक्तिमांश्चाहं तमप्यरिनिषूदनम् ३०
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः ।
निघ्नन्तं मां रिपून् पश्य दानवानिव वासवम् ३१
एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत ।
भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः ॥ ३२
स ददर्श तदा भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम् ।
वातो वृक्षानिव बलात् प्रभञ्जन्तं रणे रिपून् ३३
ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा ।
पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥ ३४
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे तव सैन्यस्य मारिष ।
वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥ ३५
ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परन्तप ॥ ३६
अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं
समन्ततः पाण्डवं लोकवीरः ।
सैन्येन घोरेण सुसंहितेन
दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम् ॥ ३७
अथोपगच्छच्छरविक्षताङ्गं
पदातिनं क्रोधविषं वमन्तम् ।
आश्वासयन् पार्षतो भीमसेनं
गदाहस्तं कालमिवान्तकाले ॥ ३८
विशल्यमेनं च चकार तूर्ण-
मारोपयच्चात्मरथे महात्मा ।
भृशं परिष्वज्य च भीमसेन-
माश्वासयामास स शत्रुमध्ये ॥ ३९
भ्रातॄनथोपेत्य तवापि पुत्र-
स्तस्मिन्विमर्दे महति प्रवृत्ते ।
अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः
समागतो भीमसेनेन सार्धम् ॥ ४०
तं याम सर्वे महता बलेन
मा वो रिपुः प्रार्थयतामनीकम् ।
श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणा
ज्येष्ठाज्ञया नोदिता धार्तराष्ट्राः ॥ ४१
वधाय निष्पेतुरुदायुधास्ते
युगक्षये केतवो यद्वदुग्राः ।
प्रगृह्य चास्त्राणि धनूंषि वीरा
ज्यां नेमिघोषैः प्रविकम्पयन्तः ॥ ४२
शरैरवर्षन् द्रुपदस्य पुत्रं
यथाऽम्बुदा भूधरं वारिजालैः ।
निहत्य तांश्चापि शरैः सुतीक्ष्णै-
र्न विव्यथे समरे चित्रयोधी ॥ ४३
समभ्युदीर्णांश्च तवात्मजांस्तथा
निशाम्य वीरानभितः स्थितान् रणे ।
जिघांसुरुग्रं द्रुपदात्मजो युवा
प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ॥ ४४
क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन्
दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः ।
ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः
प्रमोहनास्त्राहतबुद्धिसत्त्वाः ॥ ४५
प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे
सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् ।
परीतकालानिव नष्टसंज्ञान्
मोहोपेतांस्तव पुत्रान्निशम्य ॥ ४६
एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः ॥ ४७
सोऽतिविद्धस्ततो राजन् रणे द्रोणेन पार्थिवः ।
अपायाद्द्रुपदो राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४८
जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ४९
अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ॥ ५०
ततो द्रोणो महाराज त्वरितोऽभ्याययौ रणात् ।
तत्रापश्यन्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५१
धृष्टद्युम्नं च भीमं च विचरन्तौ महारणे ।
मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत् स महारथः ॥ ५२

ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यनाशयत् ।
अथ प्रत्यागतप्राणास्तव पुत्रा महारथाः ॥ ५३
पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीमपार्षतौ ।
ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान् ५४
गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि ।
सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः ॥ ५५
प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु न हि शुद्ध्यति मे मनः ।
त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्तयोधिनः ५६
बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः ।
मध्यन्दिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि ॥ ५७
केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥ ५८
ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुखमरिन्दमाः ।
बिभिदुर्धार्तराष्ट्राणां तद्रथानीकमाहवे ॥ ५९
तान्प्रयातान्महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥ ६०
न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ।
मदमूर्च्छान्वितात्मा वै प्रमदेवाध्वनि स्थिता ६१
तेऽभिजाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥ ६२
तौ च दृष्ट्वा महेष्वासावभिमन्युपुरोगमान् ।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ६३
दृष्ट्वा तु सहसा यान्तं पाञ्चाल्यो गुरुमात्मनः ।
नाशंसत वधं वीरः पुत्राणां तव भारत ॥ ६४
ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरम् ।
अभ्यधावत सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम् ॥ ६५
तस्याभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥ ६६
अन्यांश्च शतशो बाणान् प्रेषयामास पार्षते ।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन् ॥ ६७
अथान्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः
तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदामित्रकर्शनः ।
हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६९
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत ।
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ७०
हताश्वात् स रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ×
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥ ७१
ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ७२
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेनामिततेजसा ।
नाशक्नुवन् वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ॥ ७३
वध्यमानं तु तत्सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवार्णवः ॥ ७४
तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे तावकं बलम् ।
दृष्ट्वाऽऽचार्यं सुसंक्रुद्धं पतन्तं रिपुवाहिनीम् ॥
×चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे द्रोणपराक्रमे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

सञ्जय उवाच ।
ततो दुर्योधनो राजा मोहात् प्रत्यागतस्तदा ।
शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥ १
एकीभूतास्ततश्चैव तव पुत्रा महारथाः ।
समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥ २
भीमसेनोऽपि समरे संप्राप्य स्वरथं पुनः ।
समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवात्मजः ॥ ३
प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।
सज्जं शरासनं संख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम् ॥ ४
ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम् ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥ ५
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना ।
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनाक्षिप्य† कार्मुकम् ॥ ६
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स तत्र शुशुभे राजा शिखरैर्गिरिराडिव ॥ ७

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ × चुक्रुशुः इति पाठः ।

७८
तत इति ॥ १ ॥ † वेगादाकृष्य इति पाठः ।

तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम् ।
दुर्योधनानुजाः सर्वे शूराः संत्यक्तजीविताः ॥ ८
संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्मणः ।
निश्चयं परमं कृत्वा निग्रहीतुं प्रचक्रमुः ॥ ९
तानापतत एवाजौ भीमसेनो महाबलः ।
प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रतिगजानिव ॥ १०
भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समार्पयत् ।
चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः ॥ ११
तथेतरांस्तव सुतांस्ताडयामास भारत ।
शरैर्बहुविधैः संख्ये रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥ १२
ततः संस्थाप्य समरे तान्यनीकानि सर्वशः ।
अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः ॥ १३
प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः ।
प्रतिजग्मुर्महाराज तव पुत्रान् महाबलान् ॥ १४
दृष्ट्वा रथस्थांस्तान् शूरान् सूर्याग्निसमतेजसः ।
सर्वानेव महेष्वासान् भ्राजमानान् श्रिया वृतान्
महाहवे दीप्यमानान् सुवर्णमुकुटोज्ज्वलान् ।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥ १६
तान्नामृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति ।
अन्वीय च पुनः सर्वांस्तव पुत्रानपीडयत् ॥ १७
अथाभिमन्युं समरे भीमसेनेन सङ्गतम् ।
पार्षतेन च संप्रेक्ष्य तव सैन्ये महारथाः ॥ १८
दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः ।
भृशमश्वैः प्रजवितैः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥ १९
अपराह्णे महाराज प्रावर्तत महारणः ।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत ॥ २०
अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान् हत्वा महाहवे ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्+ ॥ २१
हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः ।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भारत ॥ २२
स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुलवर्धनौ ।
आर्जुनिः शरजालेन च्छादयामास भारत ॥ २३
चित्रसेनो विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः ।
विव्यधे तेन चाकम्पत् कार्ष्णिर्मेरुरिव स्थितः २४
दुःशासनस्तु समरे केकयान् पञ्च मारिष ।
योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५
द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्योधनमवारयन् ।
शरैराशीविषाकारैः पुत्रं तव विशांपते ॥ २६
पुत्रोऽपि तव दुर्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान् रणे ।
सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक् पृथक् ॥ २७
तैश्चापि विद्धः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः ।
गिरिः प्रस्रवणैर्यद्वद्गैरिकादिविमिश्रितैः ॥ २८
भीष्मोऽपि समरे राजन् पाण्डवानामनीकिनीम्
कालयामास बलवान् पालः पशुगणानिव ॥ २९
ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद्विशांपते ।
दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्यारीन् विनिघ्नतः॥३०
उत्तस्थुः समरे तत्र कबन्धानि समन्ततः ।
कुरूणां चैव सैन्येषु पाण्डवानां च भारत ॥ ३१
शोणितोदं शरावर्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् ।
रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥ ३२
छिन्नहस्ता विकवचा विदेहाश्च नरोत्तमाः
दृश्यन्ते पतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३
निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥ ३४
तत्राद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत ।
न तत्रासीत् पुमान् कश्चिद्यो युद्धं नाभिकाङ्क्षति
एवं युयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद्यशः ।
तावकाः पाण्डवैः सार्धमाकाङ्क्षन्तो जयं युधि३६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

सञ्जय उवाच ।
ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
सङ्ग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥ १
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम् ।
भीमसेनः सुसङ्क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ २

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ + समाचिनोदिति पाठः ।

७९

तत इति ॥ १ ॥

अयं स कालः संप्राप्तो वर्षपूगाभिवाञ्छितः ।
अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि मोत्सृजसे रणम् ३
अद्य कुन्त्याः परिक्लेशं वनवासं च कृत्स्नशः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणेष्यामि हते त्वयि ॥ ४
यत्पुरा मत्सरी भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे ।
तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम् ५
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च यत्पुरा ।
अचिन्त्य पाण्डवान् कामाद्यथेष्टं कृतवानसि ॥ ६
याचमानं च यन्मोहाद्दाशार्हमवमन्यसे ।
उलूकस्य समादेशं यद्ददासि च हृष्टवत् ॥ ७
तेन त्वां निहनिष्यामि सानुबन्धं सबान्धवम् ।
समीकरिष्ये तत्पापं यत्पुरा कृतवानसि ॥ ८
एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चासकृत् ।
समाधत्त शरान् घोरान्महाशनिसमप्रभान् ॥ ९
षड्विंशतिमसंक्रुद्धो मुमोचाशु सुयोधने ।
ज्वलिताग्निशिखाकारान् वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥
ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे
चतुर्भिरश्वान् जवनाननयद्यमसादनम् ॥ ११
द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दनः ।
छत्रं चिच्छेद समरे राज्ञस्तस्य नरोत्तम ॥ १२
षड्भिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम् ।
छित्वा तं च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः १३
रथाच्च स ध्वजः श्रीमान्नानारत्नविभूषितात् ।
पपात सहसा भूमौ विद्युज्जलधरादिव ॥ १४
ज्वलन्तं सूर्यसङ्काशं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ १५
अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ।
आजघान रणे वीरं स्मयन्निव महारथः ॥ १६
ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः ।
दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ १७
कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम् ।
आरोपयद्रथं राजन् दुर्योधनममर्षणम् ॥ १८
स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे ।
निषसाद रथोपस्थे राजन् दुर्योधनस्तदा ॥ १९
परिवार्य ततो भीमं हन्तुकामो जयद्रथः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ॥ २०
धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान् ।
केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन् ॥ २१
चित्रसेनः सुचित्रश्च चित्राङ्गश्चित्रदर्शनः ।
चारुचित्रः सुचारुश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ २२
अष्टावेते महेष्वासाः सुकुमारा यशस्विनः ।
अभिमन्युरथं राजन् समन्तात् पर्यवारयन् ॥ २३
आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महामनाः ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः शितैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४
वज्रमृत्युप्रतीकाशैर्विचित्रायुधनिःसृतैः ।
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम् ॥ २५
ववृषुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाम्बुदाः ।
स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ २६
अभिमन्युर्महाराज तावकान् समकम्पयत् ।
यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान् ॥ २७
विकर्णस्य ततो भल्लान् प्रेषयामास भारत ।
चतुर्दश रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ॥ २८
स तैर्विकर्णस्य रथात् पातयामास वीर्यवान् ।
ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाहवे ॥ २९
पुनश्चान्यान्शरान्पीतानकुण्ठाग्रान् शिलाशितान्
प्रेषयामास संक्रुद्धो विकर्णाय महाबलः ॥ ३०
ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः ।
भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ३१
ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले ।
विकर्णरुधिरक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥ ३२
विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवान्ये सहोदराः ।
अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान् रथान् ॥ ३३
अभियात्वा तथैवान्यान् रथांस्तान् सूर्यवर्चसः ।
अविध्यन् समरेऽन्योन्यं संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥ ३४
दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३५
अश्वान् जांबूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान् वातरंहसः ।
जघान षड्भिरासाद्य सारथिं चाभ्यपातयत् ॥ ३६
स हताश्वे रथे तिष्ठन् श्रुतकर्मा महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव ॥
सा दुर्मुखस्य विमलं वर्म भित्त्वा यशस्विनः ।
विदार्य प्राविशद्भूमिं दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ ३८
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महारथः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ३९
श्रुतकीर्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव ।
अभ्ययात् समरे राजन् हन्तुकामो यशस्विनम् ४०
तस्य विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महास्वनम् ।
चिच्छेद समरे तूर्णं जयत्सेनः सुतस्तव ॥ ४१
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत ।
तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ॥ ४२
अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवच्च नदन्मुहुः ।
शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ४३

विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः ।
ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः ॥ ४४
अथान्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥४५
तथा तस्मिन् वर्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके ।
चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्च्छितः ॥
अथान्यद्धनुरादाय भारसाहमनुत्तमम् ।
समादत्त शरान् घोरान् शतानीको महाबलः ॥
तिष्ठ तिष्ठेति चामन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः ।
मुमोचास्मै शिताग्बाणान् ज्वलितान्पन्नगानिव॥
ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष ।
चिच्छेद समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः ॥
अश्वान् मनोजवांस्तस्य कर्बुरान् वातरंहसः ।
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान् द्वादशभिः शरैः ॥
अथापरेण भल्लेन सुयुक्तेनाशुपातिना ।
दुष्कर्णं सुदृढं क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम् ॥ ५१
स पपात ततो भूमौ वज्राहत इव द्रुमः ।
दुष्कर्णं व्यथितं दृष्ट्वा पञ्च राजन्महारथाः ॥ ५२
जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्यवारयन् ।
छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम् ॥ ५३
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः केकयाः पञ्च सोदराः ।
तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः ॥ ५४
प्रत्युद्ययुर्महाराज गजानिव महागजाः ।
दुर्मुखो दुर्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा ॥ ५५
शत्रुञ्जयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धा यशस्विनः ।
प्रत्युद्याता महाराज केकयान् भ्रातरः समम् ॥५६
रथैर्नगरसंकाशैर्हयैर्युक्तैर्मनोजवैः ।
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतैः ॥ ५७
वरचापधरा वीरा विचित्रकवचध्वजाः ।
विविशुस्ते परं सैन्यं सिंहा इव वनाद्वनम् ॥ ५८
तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ५९
अन्योन्यागस्कृतां राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥ ६०
रथिनः सादिनश्चाथ व्यकीर्यन्त सहस्रशः ।
ततः शान्तनवः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६१
नाशयामास सेनां तां भीष्मस्तेषां महात्मनाम् ।
पञ्चालानां च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥६२
एवं भित्त्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ॥ ६३
धर्मराजोऽपि संप्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय प्रहृष्टः शिबिरं ययौ ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसावहारे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

सञ्जय उवाच ।
अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः ।
जग्मुः स्वशिबिराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ १
विश्रम्य च यथान्यायं पूजयित्वा परस्परम् ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त भूयो युद्धचिकीर्षया ॥ २
ततस्तव सुतो राजंश्चिन्तयाऽभिपरिप्लुतः ।
विस्रवच्छोणिताक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम् ॥३
सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि
व्यूढानि सम्यग्बहुलध्वजानि ।
विदार्य हत्वा च निपीड्य शूरा-
स्ते पाण्डवानां त्वरिता *महारथाः॥४
संमोह्य सर्वान् युधि कीर्तिमन्तो
व्यूहं च तं मकरं वज्रकल्पम् ।
प्रविश्य भीमेन रणे हतोऽस्मि
घोरैः शरैर्मृत्युदण्डप्रकाशैः ॥ ५
क्रुद्धं तमुद्वीक्ष्य भयेन राजन्
संमूर्च्छितो न लभे शान्तिमद्य ।
इच्छे प्रसादात्तव सत्यसन्ध
प्राप्तुं जयं पाण्डवेयांश्च हन्तुम् ॥ ६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०
अथेति ॥ १ ॥ * रथौघाः इति पाठः ।

तेनैवमुक्तः प्रहसन्महात्मा
दुर्योधनं मन्युगतं विदित्वा ।
तं प्रत्युवाचाविमना मनस्वी
गङ्गासुतः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ७
परेण यत्नेन विगाह्य सेनां
सर्वात्मनाऽहं तव राजपुत्र ।
इच्छामि दातुं विजयं सुखं च
न चात्मानं छादयेऽहं त्वदर्थे ॥ ८
एते तु रौद्रा बहवो महारथा
यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः ।
ये पाण्डवानां समरे सहाया
जितक्लमा रोषविषं वमन्ति ॥ ९
ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं
वीर्योद्धताः कृतवैरास्त्वया च ।
अहं सेनां प्रतियोत्स्यामि राजन्
सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर ॥ १०
रणे तवार्थाय महानुभाव
न जीवितं रक्ष्यतमं ममाद्य ।
सर्वांस्तवार्थाय सदेवदैत्यान्
घोरान् दहेयं किमु शत्रुसेनाम् ॥ ११
तान् पाण्डवान् योधयिष्यामि राजन्
प्रियं च ते सर्वमहं करिष्ये ।
श्रुत्वैव चैतद्वचनं तदानीं
दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥ १२
सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो
निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान् ।
तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्रुतं
गजाश्वपादातरथायुतानि ॥ १३
प्रहर्षयुक्तानि तु तानि राजन्
महान्ति नानाविधशस्त्रवन्ति ।
स्थितानि नागाश्वपदातिमन्ति
विरेजुराजौ तव राजन् बलानि ॥ १४
शस्त्रास्त्रविद्भिर्नरवीरयोधै-
रधिष्ठिताः सैन्यगणास्त्वदीयाः ।
रथौघपादातगजाश्वसङ्घैः
प्रयाद्भिराजौ विधिवत्प्रणुन्नैः ॥ १५
समुद्धतं वै तरुणार्कवर्णं
रजो बभौ छादयत्सूर्यरश्मीन् ।
रेजुः पताका रथदन्तिसंस्था
वातेरिता भ्राम्यमाणाः समन्तात् ॥ १६
नानारङ्गाः समरे तत्र राजन्
मेघैर्युता विद्युतः खे यथैव ।
वृन्दैः स्थिताश्चापि सुसंप्रयुक्ता-
श्चकाशिरे दन्तिगणाः समन्तात् ॥ १७
धनूंषि विस्फारयतां नृपाणां
बभूव शब्दस्तुमुलोऽतिघोरः ।
विमथ्यतो देवमहासुरौघ-
र्यथाऽर्णवस्यादियुगे तदानीम् ॥ १८
तदुग्रनादं बहुरूपवर्णं
तवात्मजानां *समुदीर्णमेवम् ।
बभूव सैन्यं रिपुसैन्यहन्तृ
युगान्तमेघौघनिभं तदानीम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

सञ्जय उवाच ।

अथात्मजं तव पुनर्गाङ्गेयो ध्यानमास्थितम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठः संप्रहर्षकरं वचः ॥ १
अहं द्रोणश्च शल्यश्च कृतवर्मा च सात्वतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च +भगदत्तोऽथ सौबलः ॥ २
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।
त्रिगर्तराजो बलवान् मागधश्च सुदुर्जयः ॥ ३
बृहद्बलश्च कौसल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
रथाश्च बहुसाहस्राः शोभनाश्च महाध्वजाः ॥ ४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * समुदीर्णवर्णम् इति पा०

८१

अथेति ॥ १ ॥ + सोमदत्तोऽथ सैन्धवैः इति पाठः ।

देशजाश्च हया राजन् स्वारूढा हयसादिभिः ।
गजेन्द्राश्च मदोद्वृत्ताः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥ ५
पादाताश्च तथा शूरा नानाप्रहरणध्वजाः ।
नानादेशसमुत्पन्नास्त्वदर्थे योद्धुमुद्यताः ॥ ६
एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ।
देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः ॥ ७
अवश्यं हि मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा ।
अशक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ८
वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः ।
सर्वथाऽहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव ॥ ९
पाण्डवांश्च रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः ।
एवमुक्त्वा ददावस्मै विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ १०
ओषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाभवत्तदा ।
ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान् ॥ ११
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः ।
मण्डलं मनुजश्रेष्ठ नानाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १२
संपूर्णं योधमुख्यैश्च तथा दन्तिपदातिभिः ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् परिवारितम् ॥ १३
अश्ववृन्दैर्महद्भिश्च ऋष्टितोमरधारिभिः ।
नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाश्वा रथे रथे ॥ १४
अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः ।
एवं व्यूढं महाराज तव सैन्यं महारथैः ॥ १५
स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम् ।
दशाश्वानां सहस्राणि दन्तिनां च तथैव च ॥ १६
रथानामयुतं चापि पुत्राश्च तव दंशिताः ।
चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन् पितामहम् ॥ १७
रक्ष्यमाणः स तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥ १८
दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः ।
व्यराजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ १९
ततः शब्दो महानासीत् पुत्राणां तव भारत ।
रथघोषश्च विपुलो वादित्राणां च निःस्वनः ॥ २०
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूढः प्रत्यङ्मुखो युधि ।
मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातनः ॥ २१
सर्वतः शुशुभे राजन् रणेऽरीणां दुरासदः ।
मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम् ॥ २२
स्वयं युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूहमथाकरोत् ।
तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः ॥ २३
रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथानदन् ।
बिभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २४
इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः ।
भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रौणिश्चापि शिखण्डिनम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा पार्षतं समुपाद्रवत् ।
नकुलः सहदेवश्च मद्रराजानमीयतुः ॥ २६
विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ ।
सर्वे नृपास्तु समरे धनञ्जयमयोधयन् ॥ २७
भीमसेनो रणे यान्तं हार्दिक्यं समवारयत् ।
चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभुः ॥ २८
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् ।
प्राग्ज्योतिषं महेष्वासो हैडिम्बो राक्षसोत्तमः ॥ २९
अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।
अलम्बुषस्तदा राजन् सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३०
ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत् ।
भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ॥ ३१
श्रुतायुषं च राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
चेकितानश्च समरे कृपमेवान्वयोधयत् ॥ ३२
शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम् ।
ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३३
शक्ति-तोमर-नाराच-गदा-परिघपाणयः ।
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥ ३४
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३५
युद्धाभिकामान् शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥ ३६
अद्यैतान् पातयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३७
एतदुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान् प्रति ॥ ३८
तेऽपि तं परमेष्वासाः शरवर्षैरपूरयन् ।
तडागं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ३९
हाहाकारो महानासीत् तव सैन्ये विशांपते ।
छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥ ४०
देवा देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च सहोरगैः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथागतौ ॥ ४१
ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदैरयत् ।
तत्राद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम् ॥ ४२
शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत् ।
न च तत्राप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद्विशांपते ॥ ४३
तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा ।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चान्यान्पार्थो विव्याध मारिष ।
ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः ।
अगाधे मज्जमानानां भीष्मः पोतोऽभवत्तदा ॥ ४५

आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् । संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

सञ्जय उवाच ।
तथा प्रवृत्ते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि ।
भग्नेषु चापि वीरेषु पाण्डवेन महात्मना ॥ १
क्षुभ्यमाणे बले तूर्णं सागरप्रतिमे तव ।
प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥ २
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वांस्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३
तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४
एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५
तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥ ६
बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥ ७
ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः ॥ ८
महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनातिविराजता ॥ ९
समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम् ।
अभवत्तुमुलो नादो भयाद्दृष्ट्वा किरीटिनम् ॥ १०
अभीषुहस्तं कृष्णं च दृष्ट्वाऽऽदित्यमिवापरम् ।
मध्यंदिनगतं संख्ये न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ११
तथा शान्तनवं भीष्मं श्वेताश्वं श्वेतकार्मुकम् ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं श्वेतं ग्रहमिवोदितम् ॥ १२
स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः सुमहात्मभिः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च तथान्यैश्च महारथैः ॥ १३
भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा ।
ध्वजं चास्य शरेणाजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे
तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनीपतिः ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम् ॥ १५
शरांश्चाशीविषाकारान् ज्वलितान् पन्नगानिव ।
द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ॥
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य पञ्चभिः ।
धनुरेकेषुणाऽविध्यत्तत्राक्रुध्यद्द्विजर्षभः ॥ १७
तस्य द्रोणोऽवधीदश्वान् शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥ १८
स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः ॥ १९
ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥ २०
भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् ।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वरः ॥ २१
स तस्य हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणितमाहवे ।
जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रच्छदः ॥ २२
स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशराहतः ।
धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥ २३
हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् ।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ २४
भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम् ।
दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५
शिखण्डी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः ॥ २६
स बभौ रथशार्दूलो ललाटे संस्थितैस्त्रिभिः ।
शिखरैः काञ्चनमयैर्मेरुस्त्रिभिरिवोच्छ्रितैः ॥ २७
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमेषार्धाच्छिखण्डिनः ।
ध्वजं सूतमथो राजंस्तुरगानायुधानि च ॥ २८
शरैर्बहुभिराच्छिद्य पातयामास संयुगे
स हताश्वादवप्लुत्य रथाद्वै रथिनां वरः ॥ २९
खड्गमादाय सुशितं विमलं च शरावरम् ।
श्येनवद्व्यचरत्क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

८२

तथेति ॥ १ ॥

सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे ।
नान्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३१
ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ।
प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३२
तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम् ।
असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनां वरः ॥
ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम् ।
चर्मांच्छिनदसिं चास्य खण्डयामास संयुगे ॥
शितैस्तु बहुशो राजन् तं च विव्याध पत्रिभिः ।
शिखण्डी तु ततः खड्गं खण्डितं तेन सायकैः ॥
आविध्य व्यसृजत्तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ।
तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम् ॥ ३६
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः ॥ ३७
शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताड्यमानः शितैः शरैः ।
आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः ॥ ३८
सात्यकिश्चापि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलंबुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः ॥ ३९
राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत ।
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः ॥ ४०
मायां च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत् ।
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम् ॥ ४१
असंभ्रमस्तु समरे वध्यमानः शितैः शरैः ।
ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत ॥ ४२
विजयाद्यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना ।
तदस्त्रं भस्मसात् कृत्वा मायां तां राक्षसीं तदा॥
अलंबुषं शरैरन्यैरभ्याकिरत सर्वतः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४४
तत् तथा पीडितं तेन माधवेन यशस्विना ।
प्रदुद्राव भयाद्रक्षस्त्यक्त्वा सात्यकिमाहवे ॥ ४५
तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि ।
शैनेयः प्राणदज्जित्वा योधानां तव पश्यताम्॥४६
न्यहनत्तावकांश्चापि सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
निशितैर्बहुभिर्बाणैस्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः ॥ ४७
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्यात्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नो महाराज पुत्रं तव जनेश्वरम् ॥ ४८
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स च्छाद्यमानो विशिखैर्धृष्टद्युम्नेन भारत ॥ ४९
विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो जनेश्वर ।
धृष्टद्युम्नं च समरे तूर्णं विव्याध पत्रिभिः ॥ ५०
षष्ट्या च त्रिंशता चैव तदद्भुतमिवाभवत् ।
तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष॥ ५१
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महाबलः ।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः॥ ५२
स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद्बली ।
पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत् पार्षतं प्रति ॥ ५३
शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः ।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत् स्वकम् ॥ ५४
ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा ।
न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ५५
कृतवर्मा रणे भीमं शरैरार्छन्महारथः ।
प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा ॥ ५६
ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परन्तपः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् कृतवर्मणे ॥ ५७
तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः ।
नाकम्पत महाराज भीमं चार्छच्छितैः शरैः॥ ५८
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महारथः ।
सारथिं पातयामास सध्वजं सुपरिष्कृतम् ॥ ५९
शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत् परवीरहा ।
शकलीकृतसर्वाङ्गो हताश्वः प्रत्यदृश्यत ॥ ६०
हताश्वश्च ततस्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ ।
स्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ६१
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
निजघान च संक्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः॥ ६२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वैरथे
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

# ८३

धृतराष्ट्र उवाच ।
बहूनि हि विचित्राणि द्वैरथानि स्म सञ्जय ।
पाण्डूनां मामकैः सार्धमश्रौषं तव जल्पतः ॥ १
न चैव मामकं किंचिद्धृष्टं शंससि सञ्जय ।
नित्यं पाण्डुसुतान् हृष्टानभग्नान् संप्रशंससि ॥ २
जीयमानान् विमनसो मामकान् विगतौजसः ।
वदसे संयुगे सूत दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
यथाशक्ति यथोत्साहं युद्धे चेष्टन्ति तावकाः ।
दर्शयानाः परं शक्त्या पौरुषं पुरुषर्षभ ॥ ४
गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम् ।
महोदधेर्गुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥ ५
तथा तत् पौरुषं राजंस्तावकानां परन्तप ।
प्राप्य पाण्डुसुतान् वीरान् व्यर्थं भवति संयुगे ६
घटमानान् यथाशक्ति कुर्वाणान् कर्म दुष्करम् ।
न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान् गन्तुमर्हसि ॥ ७
तवापराधात् सुमहान् सपुत्रस्य विशांपते ।
पृथिव्याः प्रक्षयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८
आत्मदोषात् समुत्पन्नं शोचितुं नार्हसे नृप ।
न हि रक्षन्ति राजानः सर्वथाऽत्रापि जीवितम् ९
युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः ।
चमूं विगाह्य युध्यन्ते नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥ १०
पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः ।
तं त्वमेकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम् ॥ ११
आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥ १२
तेषां प्रववृते युद्धं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ ॥ १३
विव्याध निशितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
तावेनं प्रत्यविध्येतां समरे चित्रयोधिनौ ॥ १४
युध्यतां हि तथा राजन् विशेषो न व्यदृश्यत ।
यततां शत्रुनाशाय कृतप्रतिकृतैषिणाम् ॥ १५
इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहाननयद्यमसादनम् ॥ १६
भल्लाभ्यां च सुतीक्ष्णाभ्यां धनुः केतुं च मारिष ।
चिच्छेद समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १७
त्यक्त्वाऽनुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः ।
धनुर्गृहीत्वा परमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ १८
तावेकस्थौ रणे वीरावावन्त्यौ रथिनां वरौ ।
शरान् मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि ॥ १९
ताभ्यां मुक्ता महावेगाः शराः काञ्चनभूषणाः ।
दिवाकरपथं प्राप्य च्छादयामासुरम्बरम् ॥ २०
इरावांस्तु रणे क्रुद्धो भ्रातरौ तौ महारथौ ।
ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाप्यपातयत् ॥ २१
तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गतसत्त्वे तु सारथौ ।
रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥ २२
तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः ।
पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं व्यधमत्तव वाहिनीम् ॥ २३
सा वध्यमाना समरे धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
वेगान् बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥ २४
हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत् ।
रथेनादित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः ॥ २५
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः
यथा वज्रधरः पूर्वं सङ्ग्रामे तारकामये ॥ २६
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च समागताः ।
विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः ॥ २७
यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान् ।
तथैव समरे राजा द्रावयामास पाण्डवान् ॥ २८
तेन विद्राव्यमाणास्ते पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ।
त्रातारं नाभ्यगच्छन्त स्वेष्वनीकेषु भारत ॥ २९
भैमसेनिं रथस्थं तु तत्रापश्याम भारत ।
शेषा विमनसो भूत्वा प्राद्रवन्त महारथाः ॥ ३०
निवृत्तेषु तु पाण्डूनां पुनः सैन्येषु भारत ।
आसीन्निष्ठानको घोरस्तव सैन्यस्य संयुगे ॥ ३१
घटोत्कचस्ततो राजन् भगदत्तं महारणे ।
शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाम्बुदः ॥ ३२
निहत्य तान् शरान् राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान्
भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ३३
स ताड्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
न विव्यथे राक्षसेन्द्रो भिद्यमान इवाचलः ॥ ३४
तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरांश्च चतुर्दश ।
प्रेषयामास समरे तांश्चिच्छेद स राक्षसः ॥ ३५

८३

बहूनीति ॥ १ ॥ नागराजः कौरव्यस्तस्य सुता उलूपी तस्यां सुत इरावान् ॥२३॥ निष्ठानकः सव्यथः शब्दः॥ ३१॥

स तांश्छित्वा महाबाहुस्तोमरान्निशितैः शरैः ।
भगदत्तं च विव्याध सप्तत्या कङ्कपत्रिभिः ॥ ३६
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा प्रहसन्निव भारत ।
तस्याश्वांश्चतुरः सङ्ख्ये पातयामास सायकैः ॥३७
स हताश्वे रथे तिष्ठन् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ३८
तामापन्ततीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिनीम् ।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम् ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिंबः प्राद्रवद्भयात् ।
यथेन्द्रस्य रणात्पूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः ॥ ४०
तं विजित्य रणे शूरं विक्रान्तं ख्यातपौरुषम् ।
अजेयं समरे वीरं यमेन वरुणेन च ॥ ४१
पाण्डवीं समरे सेनां संममर्द स कुञ्जरः ।
यथा वनगजो राजन् मृद्नंश्चरति पद्मिनीम् ॥४२
मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां समसज्जत ।
स्वस्त्रीयौ छादयांचक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ ॥४३
सहदेवस्तु समरे मातुलं दृश्य संगतम् ।
अवारयच्छरौघेण मेघो यद्वद्दिवाकरम् ॥ ४४
छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपतरोऽभवत् ।
तयोश्चाप्यभवत्प्रीतिरतुला मातृकारणात् ॥ ४५
ततः प्रहस्य समरे नकुलस्य महारथः ।
अश्वान्वै चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥४६
प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ॥ ४७
आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः ।
एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ॥ ४८
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामासतुः क्षणात् ।
स च्छाद्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४९
स्वस्त्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाकम्पत यथाऽचलः ।
प्रहसन्निव तां चापि शस्त्रवृष्टिं जघान ह ॥ ५०
सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्गृह्य वीर्यवान् ।
मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत ॥ ५१
स शरः प्रेषितस्तेन गरुडानिलवेगवान् ।
मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ५२
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः ।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥ ५३
तं विसंज्ञं निपतितं सूतः संप्रेक्ष्य संयुगे ।
अपोवाह रथेनाजौ यमाभ्यामभिपीडितम् ॥ ५४
दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखम् ।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५५
निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
दध्मतुर्मुदितौ शंखौ सिंहनादं च नेदतुः ॥ ५६
अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशांपते ।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवामरौ ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

सञ्जय उवाच ।
ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः ॥ १
अभ्यधावत्ततो राजा श्रुतायुषमरिंदमम् ।
विनिघ्नन् सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २
स संवार्य रणे राजा प्रेषितान् धर्मसूनुना ।
शरान् सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समार्पयत् ॥३
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥ ४
पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना ।
रणे वराहकर्णेन राजानं हृद्यविध्यत ॥
अथापरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः ।
रथश्रेष्ठो रथात् तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥६
केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः ।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन् विव्याध सप्तभिः
ततः क्रोधात् प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथा युगान्ते भूतानि दिधक्षुरिव पावकः ॥ ८
क्रुद्धं तु पाण्डवं दृष्ट्वा देव-गन्धर्व-राक्षसाः ।
प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाप्यभूज्जगत् ॥ ९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

८४

तत इति ॥ १ ॥

सर्वेषां चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम् ।
त्रींल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै ॥ १०
ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत् ।
लोकानां नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥ ११
स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
दधारात्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ १२
ततः सैन्यानि सर्वाणि तावकानि विशांपते ।
निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥ १३
स तु धैर्येण तं कोपं सन्निवार्य महायशाः ।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महाधनुः ॥ १४
अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे ।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १५
सत्वरं च रणे राजन् तस्य वाहान् महात्मनः ।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः ॥ १६
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम् ।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥ १७
तस्मिन् जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे ।
दुर्योधनबलं राजन् सर्वमासीत् पराङ्मुखम् ॥ १८
एतत् कृत्वा महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥ १९
चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥ २०
सन्निवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि ।
चेकितानं रणे यत्तं राजन् विव्याध पत्रिभिः ॥ २१
अथापरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं चास्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत् ॥ २२
अश्वांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
सोऽवप्लुत्य रथात्तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ॥ २३
स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः ।
गौतमस्य हयान् हत्वा सारथिं च न्यपातयत् ॥ २४
भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश ।
शरास्ते सात्वतं भित्त्वा प्राविशन् धरणीतलम् ॥ २५
चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम् ।
गौतमस्य वधाकाङ्क्षी वृत्रस्येव पुरन्दरः ॥ २६
तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥ २७
चेकितानस्ततः खड्गं क्रोधादुद्धृत्य भारत ।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥ २८
गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्यासिं सुसंयतः ।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत् ॥ २९
तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं सन्ततक्षतुः ।
निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ॥ ३१
मूर्छयाऽभिपरीताङ्गौ व्यायामेन तु मोहितौ ।
ततोऽभ्यधावद्वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ॥ ३२
चेकितानं तथाभूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदः ।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३३
तथैव शकुनिः शूरः स्यालस्तव विशांपते ।
आरोपयद्रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम् ॥ ३४
सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः ।
नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन् विव्याध वक्षसि ३५
सौमदत्तिरुरस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत ।
मध्यंदिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥ ३६
भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम् ।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥ ३७
विरथं तं समालोक्य हताश्वं हतसारथिम् ।
महता शरवर्षेण छादयामास संयुगे ॥ ३८
स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः ।
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ॥ ३९
चित्रसेनो विकर्णश्च राजन् दुर्मर्षणस्तथा ।
रथिनो हेमसन्नाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥ ४०
अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत ।
शरीरस्य यथा राजन् वात-पित्त-कफैस्त्रिभिः ४१
विरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन् महाहवे ।
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन् भीमवचस्तदा ॥ ४२
ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः ।
संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥ ४३
प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम् ॥ ४४
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः ॥ ४५
एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय ॥ ४६
एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनामितौजसा ।
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ ४७
निष्टानको महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ।
यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान् प्रति ॥ ४८

करकर्षः शिशुपालपुत्रः ॥ ३२ ॥

समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान् भीष्मरक्षिणः ।
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ४९
जानामि त्वां युधां श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम् ।
अनयस्याद्य संप्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ५०
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ।
एवं सञ्जल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः ५१
श्रुत्वाऽपि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः ।
न चैनमब्रवीत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ५२
अभिगम्यार्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥ ५३
परिवार्यार्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः ।
शरैः संछादयामास मेघैरिव दिवाकरम् ॥ ५४
ततः प्रवृत्तः सुमहान् सङ्ग्रामः शोणितोदकः ।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ५५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे सुशर्मार्जुनसमागमे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

सञ्जय उवाच ।

स ताड्यमानस्तु शरैर्धनञ्जयः
पदा हतो नाग इव श्वसन् बली ।
बाणेन बाणेन महारथानां
चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य ॥
सञ्छिद्य चापानि च तानि राज्ञां
तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन ।
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा
निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः ॥
निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धा-
स्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन् ।
विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा
गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः ॥
महीं गताः पार्थबलाभिभूता
विचित्ररूपा युगपद्विनेशुः ।
दृष्ट्वा हतांस्तान् युधि राजपुत्रां-
स्त्रिगर्तराजः प्रययौ रथेन ॥
तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा
द्वात्रिंशदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम् ।
तथैव ते तं परिवार्य पार्थं
विकृष्य चापानि महारवाणि ॥
अवीवृषन् बाणमहौघवृष्ट्या
यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः ।
संपीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या
धनञ्जयस्तान् युधि जातरोषः ॥
षष्ट्या शरैः संयति तैलधौतै-
र्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् ।
रथांश्च तांस्तानवजित्य संख्ये
धनञ्जयः प्रीतमना यशस्वी ॥ ७
अथात्वरद्भीष्मवधाय जिष्णु-
र्बलानि राजन् समरे निहत्य ।
त्रिगर्तराजो निहतान् समीक्ष्य
महात्मना तानथ बन्धुवर्गान् ॥ ८
रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्तान्
जगाम पार्थं त्वरितो वधाय ।
अभिद्रुतं चास्त्रभृतां वरिष्ठं
धनञ्जयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः ॥ ९
अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता
रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य ।
पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य
त्रिगर्तराज्ञा सहितान्नृवीरान् ॥ १०
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्
गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः ।
भीष्मं यियासुर्युधि संददर्श
दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः ॥ ११
संवारयिष्णूनभिवारयित्वा
मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः ।
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो
जयद्रथादींश्च नृपान् महौजाः ॥ १२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

स इति ॥ १ ॥

ययौ ततो भीमबलो मनस्वी
गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः ।
युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्मा
समाययौ त्वरितो जातकोपः ॥ १३
मद्राधिपं समभित्यज्य संख्ये
स्वभागमाप्तं तमनन्तकीर्तिः ।
सार्धं स माद्रीसुतभीमसेनै-
र्भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय ॥ १४
तैः संप्रयुक्तैः स महारथाग्र्यै-
र्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी ।
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा
समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः ॥ १५
अथैत्य राजा युधि सत्यसंन्धो
जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी ।
चिच्छेद चापानि महारथानां
प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥ १६
युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च
पार्थं कृष्णं युधि सञ्जातकोपः ।
दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा
जघान बाणैरनलप्रकाशैः ॥ १७
कृपेण शल्येन शलेन चैव
तथा विभो चित्रसेनेन चाजौ ।
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपै-
र्देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः ॥ १८
छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा
शिखण्डिनं प्रेक्ष्य च जातकोपः ।
अजातशत्रुः समरे महात्मा
शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम् १९
उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मा-
महं हनिष्यामि महाव्रतं तम् ।
भीष्मं शरौघैर्विमलार्कवर्णैः
सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ २०
त्वया च नैनां सफलां करोषि
देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे ।
मिथ्याप्रतिज्ञो भव माऽत्र वीर
रक्ष स्वधर्मं स्वकुलं यशश्च ॥ २१
प्रेक्षस्व भीष्मं युधि भीमवेगं
सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसङ्घान् ।
शरौघजालैरतितिग्मवेगैः
कालं यथा कालकृतं क्षणेन ॥ २२
निकृत्तचापः समरेऽनपेक्षः
पराजितः शान्तनवेन चाजौ ।
विहाय बन्धूनथ सोदरांश्च
क यास्यसे नानुरूपं तवेदम् ॥ २३
दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं
भग्नं च सैन्यं द्रवमाणमेवम् ।
भीतोऽसि नूनं द्रुपदस्य पुत्र
तथा हि ते मुखवर्णोऽप्रहृष्टः ॥ २४
अज्ञायमाने त्वं धनञ्जयेऽपि
महाहवे संप्रसक्ते नृवीरे ।
कथं हि भीष्मात्प्रथितः पृथिव्यां
भयं त्वमद्य प्रकरोषि वीर ॥ २५
स धर्मराजस्य वचो निशम्य
रूक्षाक्षरं विप्रलापानुबद्धम् ।
प्रत्यादेशं मन्यमानो महात्मा
प्रतत्वरे भीष्मवधाय राजन् ॥ २६
तमापतन्तं महता जवेन
शिखण्डिनं भीष्ममभिद्रवन्तम् ।
निवारयामास हि शल्य एन-
मस्त्रेण घोरेण सुदुर्जयेन ॥ २७
स चापि दृष्ट्वा समुदीर्यमाण-
मस्त्रं युगान्ताग्निसमप्रकाशम् ।
न संमुमोह द्रुपदस्य पुत्रो
राजन् महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥ २८
तस्थौ च तत्रैव महाधनुष्मान्
शरैस्तदस्त्रं प्रतिबाधमानः ।
अथाददे वारुणमन्यदस्त्रं
शिखण्ड्यथोग्रं प्रतिघातमस्य ॥ २९
तदस्त्रमस्त्रेण विदार्यमाणं
खस्थाः सुरा ददृशुः पार्थिवाश्च ।
भीष्मस्तु राजन् समरे महात्मा
धनुश्च चित्रं ध्वजमेव चापि ॥ ३०
छित्त्वाऽनदत् पाण्डुसुतस्य वीरो
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ।
ततः समुत्सृज्य धनुः सबाणं
युधिष्ठिरं वीक्ष्य भयाभिभूतम् ॥ ३१

---

अज्ञायमाने पश्चात्स्थिते ॥ २५ ॥ प्रत्यादेशं भर्त्सनम् ॥ २६ ॥

गदां प्रगृह्याभिपपात संख्ये
जयद्रथं भीमसेनः पदातिः ।
तमापतन्तं सहसा जवेन
जयद्रथं सगदं भीमसेनम् ॥ ३२
विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पैः
शितैः शरैः पञ्चशतैः समन्तात् ।
अचिन्तयित्वा स शरांस्तरस्वी
वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः ॥ ३३
जघान वाहान् समरे समन्तात्
पारावतान् सिन्धुराजस्य संख्ये ।
ततोऽभिवीक्ष्याप्रतिमप्रभाव-
स्तवात्मजस्त्वरमाणो रथेन ॥ ३४
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तुं
समुद्यतास्त्रो सुरराजकल्पः ।
भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य
प्रत्युद्ययौ गदया तर्जयानः ॥ ३५
समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां
दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात् ।
विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं
पातं गदायाः परिहर्तुकामाः ॥ ३६
अपक्रान्तास्तुमुले संप्रमर्दे
सुदारुणे भारत मोहनीये ।
अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो
महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ॥ ३७
रथं स्वमुत्सृज्य पदातिराजौ
प्रगृह्य खड्गं विपुलं च चर्म ।
अवप्लुतः सिंह इवाचलाग्रा-
ज्जगामान्यं भूमिपं भूमिदेशम् ॥ ३८
गदाऽपि सा प्राप्य रथं सुचित्रं
साश्वं ससूतं विनिहत्य संख्ये ।
जगाम भूमिं ज्वलिता महोल्का
भ्रष्टाम्बराद्गामिव संपतन्ती ॥ ३९
आश्चर्यभूतं सुमहत्त्वदीया
दृष्ट्वैव तद्भारत संप्रहृष्टाः ।
सर्वे विनेदुः सहिताः समन्तात्
पुपूजिरे तव पुत्रस्य शौर्यम् ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## ८६

सञ्जय उवाच ।

विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम् ।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥ १
तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले सङ्कुले भृशम् ।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् २
ततः सरथनागाश्वाः समकम्पन्त सृञ्जयाः ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ३
युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ४
ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन् पाण्डवो युधि ।
भीष्मं संछादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ५
तेन सम्यक् प्रणीतानि शरजालानि मारिष ।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६
तथैव शरजालानि भीष्मेणास्तानि मारिष ।
आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ७
निमेषार्धेन कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥ ८
ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः
नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम् ९
असंप्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः ।
चिच्छेद समरे राजन्भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम्
तं तु छित्त्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसंमितं
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान् काञ्चनभूषणान्
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥ १२

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

विरथमिति ॥ १ ॥

यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा ।
शरैः संछादयामास भीष्मः परपुरञ्जयः १३
तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ ।
जगाम परमां चिन्तां भीष्मस्य वधकाङ्क्षया
ततो युधिष्ठिरो वश्यान् राज्ञस्तान्समचोदयत
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् १५
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितं
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥ १६
स समन्तात् परिवृतः पिता देवव्रतस्तव ।
चिक्रीड धनुषा राजन् पातयानो महारथान्
तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि ।
मृगमध्यं प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने १८
तर्जयानं रणे वीरांस्त्रासयानं च सायकैः ।
दृष्ट्वा त्रेसुर्महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥ १९
रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् ।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः २०
शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे
तालेभ्यः परिपक्वानि फलानि कुशलो नरः ।
पतद्भिश्च महराज शिरोभिर्धरणीतले ।
बभूव तुमुलः शब्दः पततामश्मनामिव २२
तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान्२३
भिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम् ।
एकमेकं समाहूय युद्धायैवावतस्थिरे ॥ २४
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम्।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् २५
अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे ।
प्रययौ सृञ्जयान्क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखंडिनः
सृञ्जयास्तु ततो दृष्ट्वा हृष्टा भीष्मं महारणे ।
सिंहनादांश्च विविधांश्चक्रुः शङ्खविमिश्रितान्
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
पश्चिमां दिशमासाद्य स्थिते सवितरि प्रभो॥
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः२९
शस्त्रैश्च बहुभी राजन् जघ्नतुस्तावकान् रणे ।
ते हन्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ॥ ३०
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा न त्यजन्ति स्म संयुगं
यथोत्साहं तु समरे निजघ्नुस्तावका रणे॥३१
तत्राक्रन्दो महानासीत्तावकानां महात्मनां ।
वध्यतां समरे राजन् पार्षतेन महात्मना ३२

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ
तौ तस्य तुरगान् हत्वा त्वरमाणौ महारथौ
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम् । ३४
अवप्लुत्याथ पाञ्चाल्यो रथात् तूर्णं महाबलः॥
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः॥३५
ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः ।
आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परंतपौ,३६
तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष ।
विन्दानुविन्दौ समरे परिवार्यावतस्थिवान्।
अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवासुरान् ॥
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत् तव ।
व्यधमत् सर्वपञ्चालांस्तूलराशिमिवानलः ॥
दुर्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तव विशांपते ।
परिवार्य रणे भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥
ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे।
अब्रवीत् तावकान् सर्वांस्त्वरध्वमिति भारत
युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम् ।
अस्तं गिरिमथारूढे अप्रकाशति भास्करे४२
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
गोमायुगणसंकीर्णा क्षणेन क्षणदामुखे ॥ ४३
शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे भूतसङ्घैः समाकुलम्४४
राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथान्ये पिशिताशिनः
समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः४५
अर्जुनोथ सुशर्मादीन् राज्ञस्तान् सपदानुगान्
विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति४६
युधिष्ठिरोपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तथा
ययौ स्वशिबिरं राजा निशायां सेनया वृतः
भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान् रथान्
अवजित्य ततः संख्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति४८
दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे ।
भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिबिरं प्रति४९
द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः
परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिबिरं प्रति॥५०
तथैव सात्यकी राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
परिवार्य रणे योधान् ययतुः शिबिरं प्रति५१
एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह ।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परंतप ॥ ५२

ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा।
न्यवसन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥५३
रक्षां कृत्वा ततः शूरा न्यस्य गुल्मान्यथाविधि
अपनीय च शल्यानि स्नात्वा च विविधैर्जलैः॥
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयन्तश्च बन्दिभिः।
गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ५५
मुहूर्तादिव तत् सर्वमभवत्स्वर्गसन्निभम् ।
न हि युद्धकथां काश्चित्तत्राकुर्वन् महारथाः ५६
ते प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्तजने नृप ।
हस्त्यश्वबहुले रात्रौ प्रेक्षणीये बभूवतुः ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवसयुद्धावहारे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

सञ्जय उवाच।
परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १
ततः शब्दो महानासीत् सैन्ययोरुभयोर्नृप।
निर्गच्छमानयोः संख्ये सागरप्रतिमो महान्२
ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै नृप॥ ३
एकीभूताः सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचमूम् ।
व्यूहाय विदधू राजन् पाण्डवान् प्रति दंशिताः
भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशांपते।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥ ५
अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥
ततोऽनन्तरमेवासीद्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥
पुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥ ७
द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान् ।
मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशांपते ॥ ८
प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः ॥ ९
बृहद्बलात् ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः॥१०
द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्तादनु भारत ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम्॥ ११
तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा ।
द्रौणेरनन्तरं प्रायात् सोदर्यैः परिवारितः ॥१२
दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥ १३
रेजुस्तत्र पताकाश्च श्वेतच्छत्राणि वा विभो।
अङ्गदान्यत्र चित्राणि महार्हाणि धनूंषि च १४
तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत् तूर्णं पार्षतं पृतनापतिम् ॥
पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम् ।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम् ॥
ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम् ।
शृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम् ॥ १७
शृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः ।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः ॥ १८
ताभ्यां बभौ नरश्रेष्ठः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
अथोत्तरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः ।
व्यूह तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥२०
अभिमन्युस्ततः पश्चाद्विराटश्च महारथः ।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥२१
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
अतिष्ठन् समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः २२
भेरीशब्दैश्च विमलैर्विमिश्रैः शङ्खनिःस्वनैः ।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैर्नादिताः सर्वतो दिशः
ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम् ।
नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७
परिणाम्येति । परिणाम्य गमयित्वा ॥ १ ॥ शृङ्गाटकम् चतुष्पथाकारम् ॥ १७ ॥ शृङ्गाभ्यां शृङ्गयोः ॥१८॥

नामभिस्ते मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम् ।
युद्धाय समवर्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥ २५
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥२६
नाराचा निशिताः सङ्ख्ये संपतन्ति स्म भारत
व्यात्ताननाभयकरा उरगा इव सङ्घशः॥२७
निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः
अम्बुदेभ्यो यथा राजन्भ्राजमानाःशतह्रदाः
गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषितैः ।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः ॥
निस्त्रिंशाश्च व्यदृश्यन्त विमलाम्बरसंनिभाः
आर्षभाणि विचित्राणि शतचन्द्राणि भारत ॥
अशोभन्त रणे राजन् पात्यमानानि सर्वशः
तेऽन्योन्यं समरे सेने युध्यमाने नराधिप ॥
अशोभेतां यथा देवदैत्यसेने समुद्यते ।
अभ्यद्रवन्त समरे तेऽन्योन्यं वै समन्ततः३२
रथास्तु रथिभिस्तूर्णं प्रेषिताः परमाहवे ।
युगैर्युगानि संश्लिष्य युयुधुः पार्थिवर्षभाः ॥
दंतिनां युध्यमानानां संघर्षात् पावकोऽभवत्
दन्तेषु भरतश्रेष्ठ सधूमः सर्वतोदिशम् ॥ ३४
प्रासैरभिहताः केचिद्गजयोधाः समन्ततः ।
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गान्नगा इव ॥
पादाताश्चाप्यदृश्यन्त निघ्नन्तोऽथ परस्परम्।
चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः ॥ ३६
अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः।
अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥३७
ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन्।
अभ्यागमद्रणे पार्थान् धनुःशब्देन मोहयन् ॥
पाण्डवानां रथाश्चापि नदन्तो भैरवं स्वनम्
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३९
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धारंभे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

संजय उवाच ।
भीष्मं तु संमरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम्१
ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात्
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥ २
स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान्सहसृञ्जयान्
पञ्चालांश्च महेष्वासान् पातयामास सायकैः
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह
भीष्ममेवाभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयं४
स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शांतनवो युधि
चिच्छेद सहसा राजन्बाहूनथ शिरांसि च
विरथान् रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम्६
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान्शयानान् पर्वतोपमान्
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान्७
न तत्रासीत् पुमान्कश्चित्पाण्डवानां विशांपते
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद्भीमसेनान्महाबलात्॥ ८
स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे।
ततो निष्टानको घोरो भीष्मभीमसमागमे॥९
बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः ।
तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथानदन्॥१०
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥ ११
भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः
प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन् द्रवमाणे समन्ततः १२
सुनाभस्य शरेणाशु शिरश्चिच्छेद भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥ १३
हते तस्मिन् महाराज तव पुत्रे महारथे ।
नामृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सम संयुगे१४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

भीष्ममिति ॥ १ ॥

आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः ।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः
पाण्डवं चित्रसन्नाहा विचित्रकवचध्वजाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः ॥१६
महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥ १७
आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चापि पञ्चभिः।
नवत्या कुण्डधारश्च विशालाक्षश्च पञ्चभिः ॥१८
अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्भीमसेनं महाबलम् ॥ १९
रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समार्पयत् ।
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥ २०
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ।
शिरश्चिच्छेद समरे शरेणानतपर्वणा ॥ २१
अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे ।
पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥
अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः ॥
ततः पुनरमेयात्मा प्रसंधाय शिलीमुखम् ।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥ २४
स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम् ।
यथा नरं निहत्याशु भुजगः कालचोदितः ॥२५
विशालाक्षशिरश्छित्वा पातयामास भूतले।
त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन् क्लेशं पुरातनम्
महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विव्याध समरे राजन् स हतो न्यपतद्भुवि ॥
आदित्यकेतोः केतुं च छित्वा बाणेन संयुगे ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत २८
बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणानतपर्वणा ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९
प्रदुद्रुवुस्ततस्तेऽन्ये पुत्रास्तव विशांपते ।
मन्यमाना हि तत्सत्यं सभायां तस्य भाषितं
ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः ।
अब्रवीत्तावकान्योधान्भीमोऽयं युधि वध्यतां
एवमेते महेष्वासाः पुत्रास्तव विशांपते ।
भ्रातॄन्संदृश्य निहतान् प्रास्मरंस्ते हि तद्वचः
यदुक्तवान्महाप्राज्ञः क्षत्ता हितमनामयम् ।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दिव्यदर्शिनः ॥ ३३
लोभमोहसमाविष्टः पुत्रप्रीत्या जनाधिप ।
न बुध्यसे पुरा यत्तत्तथ्यमुक्तं वचो महत् ३४
तथैव च वधार्थाय पुत्राणां पाण्डवो बली ।
नूनं जातो महाबाहुर्यथा हन्ति स्म कौरवान्
ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो विललाप सुदुःखितः
निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि ।
यतमानास्तथाऽन्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः
भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्माननुपेक्षते ।
सोऽहं कुपथमारूढः पश्य दैवमिदं मम ॥ ३८
एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्साश्रुलोचनः ३९
उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च ।
गान्धार्या च यशस्विन्या तत्त्वं तात न बुद्धवान्
समयश्च मया पूर्वं कृतो व शत्रुकर्शन ।
नाहं युधि नियोक्तव्यो नाप्याचार्यः कथञ्चन
यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे।
हनिष्यति रणे नित्यं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ४२
स त्वं राजन्स्थिरो भूत्वा रणे कृत्वा दृढां मतिं
योधयस्व रणे पार्थान् स्वर्गं कृत्वा परायणम्
न शक्याः पाण्डवा जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः
तस्माद्युद्धे स्थिरां कृत्वा मतिं युद्ध्यस्व भारत

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सुनाभादिधृतराष्ट्रपुत्रवधे
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## ८९

धृतराष्ट्र उवाच ।

दृष्ट्वा मे निहतान्पुत्रान्बहूनेकेन सञ्जय ।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥ १
अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति सञ्जय ।
मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम्
यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत ।
यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ३
सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ।
अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनां ४
अन्येषां चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम ।
यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ ५
न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत ।
वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ६
गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया ।
नाबुध्यत पुरा मोहात्तस्य प्राप्तमिदं फलम् ७
यद्भीमसेनः समरे पुत्रान्मम विचेतसः ।
अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् ॥ ८

सञ्जय उवाच ।

इदं तत् समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम् ।
न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हितं तदा ९
निवारय सुतान्द्यूतात्पाण्डवान् मा द्रुहेति च
सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत्तदेव च ॥ १०
न शुश्रूषसि यद्वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधुभाषितम् ॥ ११
विदुरद्रोणभीष्माणां तथाऽन्येषां हितैषिणां ।
अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः
तदेतत् समनुप्राप्तं पूर्वमेव विशांपते ।
तस्मात् त्वं शृणु तत्त्वेन यथा युद्धमवर्तत १३
मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत
लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः शृणु १४
ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात्
संरब्धान्यभ्यवर्तन्त भीष्ममेव जिघांसया ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥
विराटो द्रुपदश्चैव सहिताः सर्वसोमकैः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम् १७
केकया धृष्टकेतुश्च कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥
अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान्
दुर्योधनसमादिष्टान् राज्ञः सर्वान्समभ्ययुः
अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः ।
भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेऽभ्यधावन्त कौरवान्
त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि ।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥ २१
द्रोणस्तु रथिनः श्रेष्ठान्सोमकान्सृञ्जयैः सह ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम् ॥
तत्राक्रन्दो महानासीत् सृञ्जयानां महात्मनां
वध्यतां समरे राजन् भारद्वाजेन धन्विना ।
द्रोणेन निहतास्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे ।
विचेष्टन्तो ह्यदृश्यन्त व्याधिक्लिष्टा नरा इव
कूजतां क्रन्दतां चैव स्तनतां चैव भारत ।
अनिशं शुश्रुवे शब्दः क्षुत्क्लिष्टानां नृणामिव ।
तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः ।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवापरः २६
वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे ।
प्रावर्तत नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी २७
स संग्रामो महाराज घोररूपोऽभवन्महान् ।
कुरूणां पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः २८
ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः ।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे २९
तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः ।
पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः ॥ ३०
छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष
क्रौञ्चवद्व्यनदन् भीताः पृथिवीमधिशेरते ३१
नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ ।
ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः
वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतद्भिस्तुरगै राजन् समास्तीर्यत मेदिनी ३३
निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः ।
हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥ ३४
अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः ।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशांपते ॥ ३५

८९

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ कूजतां अव्यक्तं ध्वनतां स्तनतां उच्चैः शब्दायमानानाम् ॥ २५ ॥

रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैर्निकृत्तैश्च महायुधैः ।
चामरैर्व्यजनैश्चैव छत्रैश्च सुमहाप्रभैः ॥ ३६
हारैर्निष्कैः सकेयूरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैरपविद्धैश्च पताकाभिश्च सर्वशः ॥ ३७
अनुकर्षैः शुभै राजन् योक्त्रैश्चैव सरश्मिभिः ।
संकीर्णा वसुधा भाति वसन्ते कुसुमैरिव ॥ ३८
एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डूनामपि भारत ।
क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे ॥ ३९
अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि ।
तथेतरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## ९०

सञ्जय उवाच ।
वर्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये ।
शकुनिः सौबलः श्रीमान्पांडवान्समुपाद्रवत्
तथैव सात्वतो राजन् हार्दिक्यः परवीरहा ।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानां वरूथिनीम् ॥ २
ततः कांबोजमुख्यानां नदीजानां च वाजिनां
आरट्टानां महीजानां सिन्धुजानां च सर्वशः
वनायुजानां शुभ्राणां तथा पर्वतवासिनाम् ।
वाजिनां बहुभिः सङ्ख्ये समंतात्परिवारयन् ॥
ये चापरे तित्तिरिजा जवना वातरंहसः ।
सुवर्णालंकृतैरेतैर्वर्मवद्भिः सुकल्पितैः ॥ ५
हयैर्वातजवैर्मुख्यैः पाण्डवस्य सुतो बली ।
अभ्यवर्तत तत् सैन्यं हृष्टरूपः परंतपः ॥ ६
अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान् ।
सुषायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ७
ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना ।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ८
भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम्
एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः ॥ ९
स नागलोके संवृद्धो मात्रा च परिरक्षितः ।
पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद् दुरात्मना ॥ १०
रूपवान् बलसंपन्नो गुणवान् सत्यविक्रमः ।
इन्द्रलोकं जगामाशु श्रुत्वा तत्रार्जुनं गतम् ११
सोऽभिगम्य महाबाहुः पितरं सत्यविक्रमः ।
अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृताञ्जलिः ॥ १२
न्यवेदयत चात्मानमर्जुनस्य महात्मनः ।
इरावानस्मि भद्रं ते पुत्रश्चाहं तव प्रभो ॥ १३
मातुः समागमो यश्च तत्सर्वं प्रत्यवेदयत ।
तच्च सर्वं यथावृत्तमनुसस्मार पाण्डवः ॥ १४
परिष्वज्य सुतं चापि आत्मनः सदृशं गुणैः ।
प्रीतिमानानयत् पार्थो देवराजनिवेशने ॥ १५
सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप ।
प्रीतिपूर्वं महाबाहुः स्वकार्यं प्रति भारत ॥ १६
युद्धकाले त्वयाऽस्माकं साह्यं देयमिति प्रभो
बाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल इहागतः ॥ १७
कामवर्णजवैरश्वैर्बहुभिः संवृतो नृप ।
ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः
उत्पेतुः सहसा राजन् हंसा इव महोदधौ ।
ते त्वदीयान् समासाद्य हयसंघान्मनोजवान्
क्रोडैः क्रोडानभिघ्नन्तो घोणाभिश्च परस्परम्
निपेतुः सहसा राजन् सुवेगाभिहता भुवि २०
निपतद्भिस्तथा तैश्च हयसंघैः परस्परम् ।
शुश्रुवे दारुणः शब्दः सुपर्णपतने यथा ॥ २१
तथैव तावका राजन् समेत्यान्योन्यमाहवे ।
परस्परवधं घोरं चक्रुस्ते हयसादिनः ॥ २२

---

निष्कैरुरोभूषणैः ॥ ३७ ॥ योक्त्रैरीषायोजनरज्जुभिः रश्मिभिरश्वबंधनरज्जुभिः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

वर्तमान इति ॥ १ ॥ वाजिनां वेगवतां वाजिनामश्वानां बहुभिर्गणैः परिवारयन्निति गणशब्दाध्याहारेण द्वयोः संबंधः ॥ ३ ॥ पाण्डवस्यार्जुनस्य सुत इरावान् ॥ ६ नागराजस्य ऐरावतस्य ॥ ७ ॥ पितृव्येण अश्वसेनेन ॥ १० साह्यं साहाय्यम् ॥ १७ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने सङ्कुले तुमुले भृशम्।
उभयोरपि संशान्ता हयसङ्घाः समन्ततः
प्रक्षीणसायकाः शूरा निहताश्वाः श्रमातुराः
विलयं समनुप्राप्तास्तक्षमाणाः परस्परम्॥२४
ततः क्षीणे हयानीके किञ्चिच्छेषे च भारत।
सौबलस्यानुजाः शूरा निर्गता रणमूर्धनि २५
वायुवेगसमस्पर्शान् जवे वायुसमांश्च ते।
आरुह्य बलसंपन्नान्वयःस्थांस्तुरगोत्तमान् २६
गजो गवाक्षो वृषभश्चर्मवानार्जवः शुकः।
षडेते बलसंपन्ना निर्ययुर्महतो बलात्॥ २७
वार्यमाणाः शकुनिना तैश्च योधैर्महाबलैः।
सन्नद्धा युद्धकुशला रौद्ररूपा महाबलाः॥२८
तदनीकं महाबाहो भित्त्वा परमदुर्जयम्।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः॥२९
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः।
तान् प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान्
अब्रवीत्समरे योधान् विचित्रान्दारुणायुधान्
यथैते धार्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः३१
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम्।
बाढमित्येवमुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः॥
जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्जयं समरे परैः।
तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम्॥३३
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्यात्मजा रणे।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन्॥ ३४
ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम्।
ते शूराः पर्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ३५
इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः।
स्रवता रुधिरेणाक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः॥३६
उरस्योऽपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद्राजन्न विव्यथे॥३७
इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः॥
मोहयामास समरे विद्ध्वा परपुरञ्जयः॥ ३८
प्रासानुत्कृष्य तरसा स्वशरीरादरिन्दमः।
तैरेव ताडयामास सुबलस्यात्मजान् रणे ३९
विकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम्।
पदातिर्द्रुतमागच्छज्जिघांसुः सौबलान् युधि॥
ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः॥४१

इरावानपि खड्गेन दर्शयन् पाणिलाघवम्।
अभ्यवर्तत तान् सर्वान् सौबलान् बलदर्पितः
लाघवेनाथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
अन्तरं नाभ्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगैर्हयैः॥
भूमिष्ठमथ तं संख्ये संप्रदृश्य ततः पुनः।
परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः॥ ४४
अथाभ्याशगतानां स खड्गेनामित्रकर्शनः।
असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत॥
आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि विभूषितान्।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा मृता भूमौ गतासवः॥
वृषभस्तु महाराज बहुधा विपरिक्षतः।
अमुच्यत महारौद्रात्तस्माद्वीरावकर्तनात्॥
तान्सर्वान्पतितान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम्४८॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिन्दमम्।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै॥ ४९
पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली।
मायावी विप्रियं कर्तुमकार्षीन्मे बलक्षयम्॥
त्वं च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः।
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि॥ ५१
बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः।
प्रययौ सिंहनादेन यत्रार्जुनसुतो युवा॥ ५२
आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः।
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तैः स्वैरनीकैः समावृतः ५३
हतशेषैर्महाराज द्विसाहस्रैर्हयोत्तमैः।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम्॥५४
इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी।
हन्तुकामममित्रघ्नो राक्षसं प्रत्यवारयत्॥ ५५
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः।
त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे॥ ५६
तेन मायामयाः सृष्टा हयास्तावन्त एव हि।
स्वारूढा राक्षसैर्घोरैः शूलपट्टिशधारिभिः ५७
ते संरब्धाः समागम्य द्विसाहस्राः प्रहारिणः।
अचिराद्गमयामासुः प्रेतलोकं परस्परम्॥ ५८
तस्मिंस्तु निहते सैन्ये तावुभौ युद्धदुर्मदौ।
संग्रामे समतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवौ॥ ५९
आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम्।
इरावानथ संरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः॥ ६०

---

असिहस्तो दक्षिणबाहुविभ्रान्तच्छेदः। अपहस्तो वामबाहुविभ्रांतच्छेदः॥४५॥

समभ्याशगतस्याजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः ।
चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च सत्वरम्६१
स निकृत्तं धनुर्दृष्ट्वा खं जवेन समाविशत् ।
इरावन्तमभिक्रुद्धं मोहयन्निव मायया ॥ ६२
ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य इरावानपि राक्षसम् ।
विमोहयित्वा मायाभिस्तस्य गात्राणि सायकैः
चिच्छेद सर्वमर्मज्ञः कामरूपो दुरासदः ।
तथा स राक्षसश्रेष्ठः शरैः कृत्तः पुनः पुनः६४
संबभूव महाराज समवाप च यौवनम् ।
माया हि सहजा तेषां वयो रूपं च कामजम्
एवं तद्राक्षसस्याङ्गं छिन्नं छिन्नं बभूव ह ।
इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम्॥६६
परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः ।
स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इरावता॥६७
राक्षसोऽप्यनदद्घोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत्।
परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव बहु शोणितम् ॥६८
ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगं च संयुगे।
आर्ष्यशृङ्गिस्तथा दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ६९
कृत्वा घोरं महद्रूपं ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
अर्जुनस्य सुतं वीरमिरावन्तं यशस्विनम्॥७०
संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम् ।
तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य दुरात्मनः
इरावानपि संक्रुद्धो मायां स्रष्टुं प्रचक्रमे ।
तस्य क्रोधाभिभूतस्य समरेष्वनिवर्तिनः ७२
योऽन्वयो मातृकस्तस्य स एनमभिपेदिवान्।
स नागैर्बहुभी राजन्निरावान् संवृतो रणे७३
दधार सुमहद्रूपमनन्त इव भोगवान् ।
ततो बहुविधैर्नागैश्छादयामास राक्षसम्७४
छाद्यमानस्तु नागैः स ध्यात्वा राक्षसपुङ्गवः
सौपर्णं रूपमास्थाय भक्षयामास पन्नगान् ७५
मायया भक्षिते तस्मिन्नन्वये तस्य मातृके ।
विमोहितमिरावन्तं न्यहनद्राक्षसोऽसिना ॥
सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम् ।
इरावतः शिरो रक्षः पातयामास भूतले॥७७

तस्मिंस्तु निहते वीरे राक्षसेनार्जुनात्मजे ।
विशोकाः समपद्यन्त धार्तराष्ट्राः सराजकाः
तस्मिन् महति संग्रामे तादृशे भैरवे पुनः ।
महान् व्यतिकरो घोरः सेनयोः समपद्यत७९
गजा हयाः पदाताश्च विमिश्रा दन्तिभिर्हताः
रथाश्वा दन्तिनश्चैव पत्तिभिस्तत्र सूदिताः८०
तथा पत्तिरथौघाश्च हयाश्च बहवो रणे ।
रथिभिर्निहता राजंस्तव तेषां च संकुले८१
अजानन्नर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसम् ।
जघान समरे शूरान् राजस्तान् भीष्मरक्षिणः
तथैव तावका राजन् सृञ्जयाश्च सहस्रशः ।
जुह्वतः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ८३
मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त समवेताः परस्परम् ॥
तथा मर्मातिगैर्भीष्मो निजघान महारथान् ।
कम्पयन् समरे सेनां पाण्डवानां परंतपः ८५
तेन यौधिष्ठिरे सैन्ये बहवो मानवा हताः ।
दन्तिनः सादिनश्चैव रथिनोऽथ हयास्तथा ॥
तत्र भारत भीष्मस्य रणे दृष्ट्वा पराक्रमम् ।
अत्यद्भुतमपश्याम शक्रस्येव पराक्रमम् ॥ ८७
तथैव भीमसेनस्य पार्षतस्य च भारत ।
रौद्रमासीद्रणे युद्धं सात्यकस्य च धन्विनः ८८

दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रान्तं
पाण्डवान् भयमाविशत् ।
एक एव रणे शक्तो
निहन्तुं सर्वसैनिकान् ॥ ८९

किं पुनः पृथिवीशूरैर्योधव्रातैः समावृतः ।
इत्यब्रुवन्महाराज रणे द्रोणेन पीडिताः ॥९०
वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे भरतर्षभ ।
उभयोः सेनयोः शूरा नामृष्यन्त परस्परम्॥
आविष्टा इव युध्यन्ते रक्षोभूता महाबलाः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च संरब्धास्तात धन्विनः
न स्म पश्यामहे कञ्चित्प्राणान्यः परिरक्षति।
संग्रामे दैत्यसङ्काशे तस्मिन् वीरवरक्षये॥९३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि इरावद्वधे
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

आविष्टाः ग्रहाद्याविष्टाः ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

## ९१

धृतराष्ट्र उवाच ।
इरावन्तं तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः ।
संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १
सञ्जय उवाच ।
इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः ।
व्यनदत् सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २
नदतस्तस्य शब्देन पृथिवी सागराम्बरा ।
सपर्वतवना राजंश्चचाल सुभृशं तदा ॥ ३
अन्तरिक्षं दिशश्चैव सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
तं श्रुत्वा सुमहानादं तव सैन्यस्य भारत ॥ ४
ऊरुस्तंभः समभवद्वेपथुः स्वेद एव च ।
सर्व एव महाराज तावका दीनचेतसः ॥ ५
सर्वतः समचेष्टन्त सिंहभीता गजा इव ।
नर्दित्वा सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः ॥ ६
ज्वलितं शूलमुद्यम्य रूपं कृत्वा विभीषणम् ।
नानारूपप्रहरणैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः ॥ ७
आजघान सुसंक्रुद्धः कालान्तकयमोपमः ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सङ्क्रुद्धं भीमदर्शनम् ॥ ८
स्वबलं च भयात्तस्य प्रायशो विमुखीकृतम् ।
ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ ९
प्रगृह्य विपुलं चापं सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
पृष्ठतोऽनुययौ चैनं स्रवद्भिः पर्वतोपमैः ॥ १०
कुञ्जरैर्दशसाहस्रैर्वङ्गानामधिपः स्वयम् ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य गजानीकेन संवृतम् ॥ ११
पुत्रं तव महाराज चुकोप स निशाचरः ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १२
राक्षसानां च राजेन्द्र दुर्योधनबलस्य च ।
गजानीकं च संप्रेक्ष्य मेघवृन्दमिवोदितम् १३
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा राक्षसाः शस्त्रपाणयः ।
नदन्तो विविधान्नादान्मेघा इव सविद्युतः ॥
शरशक्त्यृष्टिनाराचैर्निघ्नन्तो गजयोधिनः ।
भिन्दिपालैस्तथा शूलैर्मुद्गरैः सपरश्वधैः ॥ १५
पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च निजघ्नुस्ते महागजान् ।
भिन्नकुंभान्विरुधिरान्भिन्नगात्रांश्च वारणान् ।
अपश्याम महाराज वध्यमानान्निशाचरैः ।
तेषु प्रक्षीयमाणेषु भग्नेषु गजयोधिषु ॥ १७
दुर्योधनो महाराज राक्षसान् समुपाद्रवत् ।
अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १८
मुमोच निशितान् बाणान् राक्षसेषु परंतप ।
जघान च महेष्वासः प्रधानांस्तत्र राक्षसान् ।
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम् ॥ २०
शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान महाबलः ।
ततः पुनरमेयात्मा शरवर्षं दुरासदम् ॥ २१
मुमोच भरतश्रेष्ठो निशाचरबलं प्रति ।
तत्तु दृष्ट्वा महत्कर्म पुत्रस्य तव मारिष ॥ २२
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः ।
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् २४
अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिन्दमम् ।
तमापतन्तमुद्वीक्ष्य कालसृष्टमिवान्तकम् ॥ २४
न विव्यथे महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अथैनमब्रवीत् क्रुद्धः क्रूरः संरक्तलोचनः ॥ २५
अद्यानृण्यं गमिष्यामि पितॄणां मातुरेव च ।
ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः २६
यच्च ते पाण्डवा राजंश्छलद्यूते पराजिताः ।
यच्चैव द्रौपदी कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ॥ २७
सभामानीय दुर्बुद्धे बहुधा क्लेशिता त्वया ।
तव च प्रियकामेन आश्रमस्था दुरात्मना २८
सैन्धवेन परामृष्टा परिभूय पितॄन् मम ।
एतेषामपमानानामन्येषां च कुलाधम ॥ २९
अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ।
एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद्विस्फार्य कार्मुकम्
संदश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शरवर्षेण महता दुर्योधनमवाकिरत ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्धे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

९१

इरावन्तमिति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

## ९२

सञ्जय उवाच ।

ततस्तद्बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि ।
दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः ॥ १
ततः क्रोधसमाविष्टो निःश्वसन्निव पन्नगः ।
संशयं परमं प्राप्तः पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ २
मुमोच निशितांस्तीक्ष्णा-
न्नाराचान् पञ्चविंशतिम् ।
तेऽपतन्सहसा राजं-
स्तस्मिन् राक्षसपुङ्गवे ॥ ३
आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गन्धमादने ।
स तैर्विद्धः स्रवन् रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ४
दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः ।
जग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारिणीम् ॥
संप्रदीप्तां महोल्काभामशनिं ज्वलितामिव ।
समुद्यच्छन् महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव ॥ ६
तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वङ्गानामधिपस्त्वरन् ।
कुञ्जरं गिरिसङ्काशं राक्षसं प्रत्यचोदयत् ॥ ७
स नागप्रवरेणाजौ बलिना शीघ्रगामिना ।
यतो दुर्योधनरथस्तं मार्गं प्रत्यवर्तत ॥ ८
रथं च वारयामास कुञ्जरेण सुतस्य ते ।
मार्गमावारितं दृष्ट्वा राज्ञा वङ्गेन धीमता ॥ ९
घटोत्कचो महाराज क्रोधसंरक्तलोचनः ।
उद्यतां तां महाशक्तिं तस्मिंश्चिक्षेप वारणे ॥
स तयाऽभिहतो राजंस्तेन बाहुप्रमुक्तया ।
सञ्जातरुधिरोत्पीडः पपात च ममार च ॥ ११
पतत्यथ गजे चापि वङ्गानामीश्वरो बली ।
जवेन समभिद्रुत्य जगाम धरणीतलम् ॥ १२
दुर्योधनोऽपि संप्रेक्ष्य पतितं वरवारणम् ।
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा जगाम परमां व्यथाम् ॥ १३
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य आत्मनश्चाभिमानिताम् ।
प्राप्तेऽपक्रमणे राजा तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥
संधाय च शितं बाणं कालाग्निसमतेजसम् ।
मुमोच परमक्रुद्धस्तस्मिन् घोरे निशाचरे ॥ १५
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य बाणमिन्द्राशनिप्रभम् ।
लाघवान्मोचयामास महात्मा वै घटोत्कचः ॥
भूयश्च विननादोग्रं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
त्रासयामास सैन्यानि युगान्ते जलदो यथा ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं
तस्य भीमस्य रक्षसः ।
आचार्यमुपसङ्गम्य
भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ १८
यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः ।
हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह ॥ १९
नैष शक्यो हि सङ्ग्रामे जेतुं भूतेन केनचित् ।
तत्र गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ २०
अभिद्रुतो महाभागो राक्षसेन महात्मना ।
एतद्धि वः परं कृत्यं सर्वेषां नः परंतपाः ॥ २१
पितामहवचः श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ।
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र कौरवः ॥ २२
द्रोणश्च सोमदत्तश्च
बाह्लीकोऽथ जयद्रथः ।
कृपो भूरिश्रवाः शल्य
आवन्त्यः स बृहद्बलः ॥ २३
अश्वत्थामा विकर्णश्च
चित्रसेनो विविंशतिः ।
रथाश्चानेकसाहस्रा
ये तेषामनुयायिनः ॥ २४
अभिद्रुतं परीप्सन्तः पुत्रं दुर्योधनं तव ।
तदनीकमनाधृष्यं पालितं तु महारथैः ॥ २५
आततायिनमायान्तं प्रेक्ष्य राक्षससत्तमः ।
नाकम्पत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ॥ २६
प्रगृह्य विपुलं चापं ज्ञातिभिः परिवारितः ।
शूलमुद्गरहस्तैश्च नानाप्रहरणैरपि ॥ २७
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
राक्षसानां च मुख्यस्य दुर्योधनबलस्य च ॥
धनुषां कूजतां शब्दः सर्वतस्तुमुलो रणे ।
अश्रूयत महाराज वंशानां दह्यतामिव ॥ २९
अस्त्राणां पात्यमानानां कवचेषु शरीरिणाम् ।
शब्दः समभवद्राजन् गिरीणामिव भिद्यताम् ॥
वीरबाहुविसृष्टानां तोमराणां विशांपते ।
रूपमासीद्वियत्स्थानां सर्पाणामिव सर्पताम् ॥
ततः परमसंक्रुद्धो विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
राक्षसेन्द्रो महाबाहुर्विनदन् भैरवं रवम् ॥ ३२



तत इति ॥ १ ॥

आचार्यस्यार्धचन्द्रेण क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम्
सोमदत्तस्य भल्लेन ध्वजं चोन्मथ्य चानदत्
बाह्लीकं च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे।
कृपमेकेन विव्याध चित्रसेनं त्रिभिः शरैः ३४
पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च।
जत्रुदेशे समासाद्य विकर्णं समताडयत् ३५
न्यषीदत् स्वरथोपस्थे शोणितेन परिप्लुतः।
ततः पुनरमेयात्मा नाराचान् दश पञ्च च ॥
भूरिश्रवसि संक्रुद्धः प्राहिणोद्भरतर्षभ।
ते वर्म भित्त्वा तस्याशु विविशुर्धरणीतलम्
विविंशतेश्च द्रौणेश्च यन्तारौ समताडयत्।
तौ पेततू रथोपस्थे रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्
सिन्धुराज्ञोऽर्धचन्द्रेण वाराहं स्वर्णभूषितम्।
उन्ममाथ महाराज द्वितीयेनाच्छिनद्धनुः ३९
चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः।
जघान चतुरो वाहान् क्रोधसंरक्तलोचनः ४०
पूर्णायतविसृष्टेन पीतेन निशितेन च।
निर्बिभेद महाराज राजपुत्रं बृहद्बलम् ॥ ४१
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्
भृशं क्रोधेन चाविष्टो रथस्थो राक्षसाधिपः
चिक्षेप निशितांस्तीक्ष्णा-
ञ्छरानाशीविषोपमान्।
बिभिदुस्ते महाराज
शल्यं युद्धविशारदम् ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्धे
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

सञ्जय उवाच।
विमुखीकृत्य सर्वांस्तु तावकान् युधि राक्षसः
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनमुपाद्रवत् ॥ १
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य राजानं प्रति वेगितम्।
अभ्यधावन् जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः
तमेकमभ्यधावन्त नदन्तः सिंहसङ्घवत् ॥ ३
अथैनं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवाकिरन्।
पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकाः ४
स गाढविद्धो व्यथितस्तोत्रार्दित इव द्विपः।
उत्पपात तदाऽऽकाशं समन्ताद्वैनतेयवत् ५
व्यनदत् सुमहानादं जीमूत इव शारदः।
दिशः खं विदिशश्चैव नादयन् भैरवस्वनः ६
राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः
उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिंदमम् ॥ ७
युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः।
यथाऽस्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवं स्वनम् ८
अतिभारं च पश्यामि तस्मिन् राक्षसपुङ्गवे।
पितामहश्च संक्रुद्धः पञ्चालान् हन्तुमुद्यतः ९
तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् १०
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम्।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः ॥ ११
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन् सर्वपार्थिवान्।
वेगेन महता राजन् पर्वकाले यथोदधिः १२
तमन्वगात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः॥
अभिमन्युमुखाश्चैव द्रौपदेया महारथाः।
क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्रधर्मा तथैव च १४
अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमाश्रितः।
महता रथवंशेन हैडिम्बं पर्यवारयन् ॥ १५
कुञ्जरैश्च सदा मत्तैः षट्सहस्रैः प्रहारिभिः।
अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम्
सिंहनादेन महता नेमिघोषेण चैव हि।
खुरशब्दनिपातैश्च कम्पयन्तो वसुंधराम् १७
तेषामापततां श्रुत्वा शब्दं तं तावकं बलम्।
भीमसेनभयोद्विग्नं विवर्णवदनं तथा ॥ १८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३
विमुखीकृत्येति ॥ १ ॥

परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तत्र तेषां महात्मनाम् १९
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः
अन्योन्यमभिधावन्तः संप्रहारं प्रचक्रिरे ।
व्यतिषक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम् २१
हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह
अन्योन्यं समरे राजन्प्रार्थयानाः समभ्ययुः ।
सहसा चाभवत्तीव्रं सन्निपातान्महद्रजः ।
गजाश्वरथपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम् ॥ २३
धूम्रारुणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत् ।
नैव स्वे न परे राजन् समजानन् परस्परम्२४
पिता पुत्रं न जानीते पुत्रो वा पितरं तथा ।
निर्मर्यादे तथाभूते वैशसे लोमहर्षणे ॥ २५
शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां च गर्जताम् ।
सुमहानभवच्छब्दः प्रेतानामिव भारत ॥ २६
गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।
प्रावर्तत नदी तत्र केशशैवलशाद्वला ॥ २७
नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां पततां रणे ।
शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दः पततामश्मनामिव २८
विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च छिन्नगात्रैश्च वारणैः ।
अश्वैः संभिन्नदेहैश्च संकीर्णाऽभूद्वसुंधरा २९
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः
अन्योन्यमभिधावन्तः संप्रहारार्थमुद्यताः ३०
हया हयान् समासाद्य प्रेषिता हयसादिभिः
समाहत्य रणेऽन्योन्यं निपेतुर्गतजीविताः ३१
नरा नरान् समासाद्य क्रोधरक्तेक्षणा भृशम्
उरांस्युरोभिरन्योन्यं समाश्लिष्य निजघ्निरे
प्रेषिताश्च महामात्रैर्वारणाः परवारणैः ।
अभ्यघ्नन्त विषाणाग्रैर्वारणानेव संयुगे ॥ ३३
ते जातरुधिरोत्पीडाः पताकाभिरलङ्कृताः ।
संसक्ताः प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ३४
केचिद्भिन्ना विषाणाग्रैर्भिन्नकुंभाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त गर्जमाना घना इव ॥
केचिद्धस्तैर्द्विधा छिन्नै-
श्छिन्नगात्रास्तथाऽपरे ।
निपेतुस्तुमुले तस्मि-
श्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३६
पार्श्वैस्तु दारितैरन्ये वारणैर्वरवारणाः ।
मुमुचुः शोणितं भूरि धातूनिव महीधराः ३७
नाराचैर्निहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः
विनदन्तोऽभ्यधावन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥
केचित् क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः
रथान् हयान् पदातींश्च ममृदुः शतशो रणे ३९
तथा हया हयारोहैस्ताडिताः प्रासतोमरैः ।
तेन तेनाभ्यवर्तन्त कुर्वन्तो व्याकुला दिशः
रथिनो रथिभिः सार्धं कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
परां शक्तिं समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत्
स्वयंवर इवामर्दे प्रजह्रुरितरेतरम् ।
प्रार्थयाना यशो राजन्स्वर्गं वा युद्धशालिनः
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
धार्तराष्ट्रं महत् सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम्४२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

## ९४

सञ्जय उवाच ।
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ १
प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥ २
अर्धचन्द्रं च सन्धाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम्
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः ३
तदन्तरं च संप्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः ।
प्रसंदधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम्॥४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४
स्वसैन्यमिति ॥ १ ॥

तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत् ।
स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥
समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।
तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ॥ ६
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः ।
अभिमन्युमुखाश्चापि पाण्डवानां महारथाः ७
समभ्यधावन्क्रोशन्तो राजानं जातसंभ्रमाः
संप्रेक्ष्यैतान्संपततः संक्रुद्धाञ्जातसंभ्रमान् ८
भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान्
क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ ९
संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।
एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः
भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन् ।
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः
नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा सौमदत्तिपुरोगमाः १२
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम्
कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन्
ते विंशतिपदं गत्वा संप्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः १५
एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत्
भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः १७
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।
त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः
स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत ।
प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १९
गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ २०
तावापतन्तौ संप्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् २१
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाचलः ।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥ २२
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् २३
तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः २४
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः
भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।
नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन्
सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः ।
तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीड्यमानं महारथम् २७

अभिमन्युप्रभृतयः
पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यधावन् परीप्सन्तः
प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ २८

अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात्
स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः ।
स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा
यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम्
विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयंकरम् ३१
येन लोकत्रयं क्रोधात् त्रासितं स्वेन तेजसा ।
तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुक्तेन पतत्रिणा ॥ ३२
संजातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः
स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥

दध्रे नीलविनाशाय
मतिं मतिमतां वरः ।
ततः संधाय विमलान्
भल्लान् कर्मारमार्जितान् ॥ ३४

जघान चतुरो वाहान् पातयामास च ध्वजम्
सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ॥ ३५
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्
मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ३६
घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो भ्रातृभिः परिवारितः
अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ३७
तथेतरे चाभ्यधावन् राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ३८
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन् ।
निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान् भीमदर्शनान्
येऽभवन्नग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः ।
विमुखांश्चैव तान् दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः
अक्रुध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः ।
प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥
मोहयन्समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः ।
ततस्ते तावकाः सर्वे मायया विमुखीकृताः ॥

अन्योन्यं समपश्यन्त निकृत्ता मेदिनीतले
विचेष्टमानाः कृपणाः शोणितेन परिप्लुताः ॥
द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।
प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाः स्म कौरवाः
विध्वस्ता रथिनः सर्वे राजानश्च निपातिताः
हयाश्चैव हयारोहाः संनिकृत्ताः सहस्रशः ४५
तद्दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिबिरं प्रति ।
मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ४६
युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे
घटोत्कचप्रयुक्तेति नातिष्ठन्त विमोहिताः ४७
नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः ।
तांश्च प्रद्रवतो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पाण्डवाः ॥
घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान् प्रचक्रिरे ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः समन्तान्नेदिरे भृशम् ॥
एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमयुद्धदिवसे घटोत्कचयुद्धे चतुरधिकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## ९५

सञ्जय उवाच ।
तस्मिन् महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा
गाङ्गेयमुपसङ्गम्य विनयेनाभिवाद्य च ॥ १
तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।
घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥ २
कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
अब्रवीच्च तदा राजन् भीष्मं कुरुपितामहम् ॥
भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।
पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥
एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।
निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परंतप ॥ ५
सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।
घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ६
तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवानलः ।
तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात् परंतप ॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह ।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शांतनवोऽब्रवीत्
शृणु राजन् मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परंतप ॥ १०
आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिंदम ।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदाऽनघ ॥
अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्छति ॥ १२
अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्त्वतः
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथाः ॥
तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः ।
त्वदर्थे प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥
रौद्रे तस्मिन् राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान्
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः १५
भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि ।
एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाब्रवीत् १६
समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः
गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १८
तव दिव्यानि चास्त्राणि विक्रमश्च परंतप ।
समागमश्च बहुभिः पुराभूदमरैः सह ॥ १९
त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेनोच्छ्रितो राजन् जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २१
तमाद्रवन्तं संप्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥

द्रोणादींश्चापश्यंतेति संबंधः ४४ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ९४

९५

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ अनुशयः पश्चात्तापः ॥ १५ ॥

भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत ॥ २३
चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुप्रतीकेन तांश्चापि भगदत्तोऽभ्युपाद्रवत् ॥
ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ २५
प्रयुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः ।
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २६
प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
परस्परं समासाद्य संनिपेतुरभीतवत् ॥ २७
मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे ।
बिभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २८
हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः ।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥
पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥
रथिनश्च रथै राजन् कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान् सिंहनादान्विनेदिरे ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत् ॥ ३२
कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम् ।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः ॥ ३३
किरञ्छरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः ।
ऐरावतस्थो मघवान् वारिधारा इवानघ ॥ ३४
स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः ।
पर्वतं वारिधाराभिस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ३५
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान् परःशतान् ।
निजघान महेष्वासः संरब्धः शरवृष्टिभिः ॥
तान् दृष्ट्वा निहतान् क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान् ।
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥ ३७
स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा ।
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिंदमम् ॥ ३८
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यवर्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३९
केकयाश्चाभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ ४०
चेदिपश्चित्रकेतुश्च संरब्धाः सर्व एव ते ।
उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ।
तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात् पर्यवारयन् ।
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः ॥ ४२
संजातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाद्रिराट् ।
दशार्णाधिपतिश्चापि गजं भूमिधरोपमम् ॥ ४३
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् ।
तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ॥ ४४
दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम् ।
वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ॥
साधु साध्विति सैन्यानि
पाण्डवेयान्यपूजयन् ।
ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्ध-
स्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ४६
प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम ।
वर्म मुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ॥ ४७
विदार्य प्राविशन् क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः ।
स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥ ४८
उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः ।
स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन्भैरवं रवम् ॥ ४९
संमर्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तस्मिन्पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवावतस्थिरे ।
ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ॥ ५१
किरन्तो विविधान् बाणान्
शस्त्राणि विविधानि च ।
तेषामापततां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ॥
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद्गतसाध्वसः ।
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥ ५३
अङ्कुशाङ्गुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
तस्मिन् क्षणे समभवत्सांवर्तक इवानलः ॥ ५४
रथसङ्घांस्तथा नागान् हयांश्च हयसादिभिः ।
पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५
अमृद्नात्समरे नागः संप्रधावंस्ततस्ततः ।
तेन संलोड्यमानं तु पाण्डवानां बलं महत् ।
संचुकोच महाराज चर्मेवाग्नौ समाहितम् ।
भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥ ५७
घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् ।
विकटः परुषो राजन् दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ।
रूपं विभीषणं कृत्वा रोषेण प्रज्वलन्निव ।
जग्राह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥ ५९
नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः ।
स विस्फुलिङ्गमालाभिः समंतात्परिवेष्टितः ।
तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः ।
चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम् ॥ ६१
चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान् ।
उत्पपात द्विधा छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम्

महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता ।
शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृत्तं च पार्थिवः ॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं
जग्राहाग्निशिखोपमाम् ।
चिक्षेप तां राक्षसस्य
तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ६४
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव ।
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ६५
बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत ।
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाभवत् ६६
तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा ।
दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चापि विस्मिताः
पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः ।
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन्
तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् ।
नामृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ६९
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ।
तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ७०
विसृजन् विमलांस्तीक्ष्णान्
नाराचान् ज्वलनप्रभान् ।
भीममेकेन विव्याध
राक्षसं नवभिः शरैः ॥ ७१
अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान्पञ्चभिस्तथा ।
पूर्णायतविसृष्टेन शरेणानतपर्वणा ॥ ७२
बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाहवे ।
पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ७३
द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत् ।
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥
ध्वजं केसरिणं चास्य
चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
निर्बिभेद त्रिभिश्चान्यैः
सारथिं चास्य पत्रिभिः ॥ ७५
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७६
ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः ।
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ७७
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ।
तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७८
एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
आजगाम महाराज निघ्नन् शत्रून् समन्ततः ॥
यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ ।
प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥
दृष्ट्वा च पाण्डवो भ्रातॄन्युध्यमानान्महारथान्
त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्रायुध्यत्किरञ्छरान् ८१
ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः ।
सेनामचोदयत् क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥
तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः ॥ ८३
भगदत्तश्च समरे तेन नागेन भारत ।
विमृद्नन्पाण्डवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ८४
तदाऽऽसीत्सुमहद्युद्धं भगदत्तस्य मारिष ।
पञ्चालैः पाण्डवैश्चैव केकयैश्चोद्यतायुधैः ८५
भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ ।
अश्रावयद्यथावृत्तमिरावद्वधमुत्तमम् ॥ ८६

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

## ९६

सञ्जय उवाच ।
पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनञ्जयः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्पन्नगो यथा १
अब्रवीत्समरे राजन्वासुदेवमिदं वचः ।
इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा ॥ २
कुरूणां पाण्डवानां च क्षयं घोरं महामतिः ।
स ततो निवारितवान्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ३

प्रचस्कन्द अवततार ॥ ७७ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५ ॥

९६
पुत्रमिति ॥ १ ॥

अन्ये च बहवो वीराः
संग्रामे मधुसूदन ।
निहताः कौरवैः संख्ये
तथाऽस्माभिश्च कौरवाः ॥ ४
अर्थहेतोर्नरश्रेष्ठो क्रियते कर्म कुत्सितम् ।
धिगर्थान्यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसंक्षयः ५
अधनस्य मृतं श्रेयो,
न च ज्ञातिवधाद्धनम् ।
किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण
हत्वा ज्ञातीन् समागतान् ॥ ६
दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ७
इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन ।
कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम् ॥
राज्यार्धं पञ्च वा ग्रामान्
नाकार्षीत् स च दुर्मतिः ।
दृष्ट्वा हि क्षत्रियान् शूरान्
शयानान् धरणीतले ॥ ९
निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्
अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे १०
युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ।
सञ्चोदय हयान् शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ११
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।
नायं यापयितुं कालो विद्यते माधव क्वचित्
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
चोदयामास तानश्वान्पाण्डुरान् वातरंहसः
अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १४
अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥
ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा १६
ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १७
हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवस्थितः ॥ १८
शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १९
भीमसेनस्तु संप्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव २०
पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः ।
प्रावृषीव महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ २१
स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशांपते ।
सृक्किणी संलिहन्वीरः शार्दूल इव दर्पितः २२
व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्गतजीवितः ॥ २३
अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु ।
अपातयत्कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा २४
ततः सु[illegible]शितान्पीतान्समादत्त शिलीमुखान्
ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥
प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् २६
अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् २७
प्रपतन्त स्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ ।
वसन्ते पुष्पशबलाश्चूताः प्रपतिता इव ॥ २८
ततः प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे ।
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥
द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
यथाद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः
तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥
यथा गोवृषभो वर्षं संधारयति खात्पतत्
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत ॥ ३२
अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
यत्पुत्रांस्तेऽवधीत्संख्ये द्रोणं चैव न्यवारयत्
पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडार्जुनपूर्वजः ।
मृगेष्विव महाराज चरन् व्याघ्रो महाबलः
यथा हि पशुमध्यस्थो दारयेत पशून् वृकः ।
वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥ ३५
गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथाः ।
पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम् ॥ ३६
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे ।
प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३७
अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम् ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं वारयामास सायकैः ३८
विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णमम्बष्ठो वसुधाधिपः ३९
असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः ।
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः ४०
आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवाद्व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा ४१

व्यसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा ।
साधु साध्विति सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशांपते
धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन् ।
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ४३
तत्राक्रन्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
निघ्नतां दृढमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥
अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वाक्षिप्य मानिनः
नखदन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ४५
तलैश्चैवाथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः ।
विवरं प्राप्य चान्योन्यमभयन्यमसादनम् ४६
न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
व्याकुलीकृतसर्वांगा युयुधुस्तत्र मानवाः ४७
रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष
हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ४८
जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशिताः शराः ।
तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ४९
हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् जातरूपपरिष्कृतान्
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनां
सुवर्णविकृतप्रासान् पट्टिशान्हेमभूषितान् ।
जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः ॥
सुसन्नाहाश्च पतिता मुसलानि गुरूणि च ।
परिघान्पट्टिशांश्चैव भिन्दिपालांश्च मारिष ॥
पतितान्विविधांश्चापांश्चित्रान्हेमपरिष्कृतान् ।
कुथा बहुविधाकाराश्चामरान् व्यजनानि च ॥
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः ॥
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।
गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ५५
तथैवाश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा ।
संछन्ना वसुधा राजन् पर्वतैरिव सर्वशः ॥ ५६
समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिश्च मारिष ।
शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥
विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही ॥ ५९
सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ६०
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
पातितैर्ऋषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ६१
कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः ।
रेराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवानलैः ॥
विप्रविद्धैः कलापैश्च पतितैश्च शरासनैः ।
विप्रकीर्णैः शरैश्चैव रुक्मपुङ्खैः समन्ततः ॥ ६३
रथैश्च सर्वतो भग्नैः किङ्किणीजालभूषितैः ।
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः
अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि ।
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥ ६५
स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही ।
नानारूपैरलङ्कारैः प्रमदेवाभ्यलङ्कृता ॥ ६६
दन्तिभिश्चापरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ६७
विबभौ तद्रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाचलैः ।
नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनां ॥
वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ।
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः
विपाटितविचित्राभिः कुथाभिरङ्कुशैस्तथा
ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ॥ ७०
यन्त्रैश्च बहुधाच्छिन्नैस्तोमरैश्चापि काञ्चनैः ।
अश्वानां रेणुकपिलै रुक्मच्छन्नैरुरश्छदैः ॥ ७१
सादिनां भुजगैश्छिन्नैः पतितैः साङ्गदैस्तथा
प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिस्तथर्ष्टिभिः ॥
उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः ।
विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥ ७३
अश्वास्तरपरिस्तोमै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥ ७४
छत्रैस्तथाऽपविद्धैश्च चामरैर्व्यजनैरपि ।
पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ७५
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलङ्कृतैः ।
अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ॥ ७६
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवासीद्वसुन्धरा ।
एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत ॥ ७७
परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे ।
तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥ ७८
रात्रिः समभवत्तत्र नापश्याम ततोऽनुगान् ।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ७९

अपाविद्धानि पतितानि ॥ ४८ ॥

रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये । अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥ ८०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

## ९७

सञ्जय उवाच ।
ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः॥
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः॥ १॥
समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम् ॥
कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति
ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम् ॥ ३
द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे
न पार्थान् प्रतिबाधन्ते न जाने तच्च कारणं॥
अवध्यमानास्ते चापि क्षपयन्ति बलं मम ।
सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे॥
निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्दैवतैरपि ।
सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे ॥ ६
तमब्रवीन्महाराजं सूतपुत्रो नराधिपम् ।
कर्ण उवाच ।
मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव ॥७
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात् ।
निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत॥८
अहं पार्थान् हनिष्यामि सहितान् सर्वसोमकैः
पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप॥
पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति व
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान्महारथान् ॥
अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः
स कथं पाण्डवान्युद्धे जेष्यते तात संगतान्
सत्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति
अनुमान्य गुरुं वृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत॥ १२
न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान्पश्य पांडवान्
मयैकेन रणे राजन् ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ १३

एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीद्भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥ १४
अनुयात्रं यथा सर्वं सज्जीभवति सर्वशः ।
दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥ १५
एवमुक्त्वा ततो राजन् कर्णमाह जनेश्वरः
अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदां वरम् ॥
आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिन्दम ।
अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे १७
निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशांपते ।
सहितो भ्रातृभिस्तैस्तु देवैरिव शतक्रतुः १८
ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा १९
अङ्गदी बद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्नृप ।
धार्तराष्ट्रो महाराज विबभौ स पथि व्रजन्
भण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च ।
अनुलिप्तः परार्ध्येन चन्दनेन सुगन्धिना २१
अरजोम्बरसंवीतः सिंहखेलगतिर्नृप ।
शुशुभे विमलार्चिष्मान्नभसीव दिवाकरः २२
तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिबिरं प्रति ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥
भ्रातरश्च महेष्वासास्त्रिदशा इव वासवम् ।
हयानन्ये समारुह्य गजानन्ये च भारत २४
रथानन्ये नरश्रेष्ठं परिवव्रुः समन्ततः ।
आत्तशस्त्राश्च सुहृदो रक्षणार्थं महीपतेः ॥ २५
प्रादुर्बभूवुः सहिताः शक्रस्येवामरा दिवि ।
स पूज्यमानः कुरुभिः कौरवाणां महाबलः
प्रययौ सदनं राजा गाङ्गेयस्य यशस्विनः ।
अन्वीयमानः सततं सोदरैः परिवारितः २७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

९७

तत इति ॥१॥ हयं हययानं रथमिति यावत् ॥१९॥ भण्डीपुष्पं मञ्जिष्ठापुष्पम् ॥ २१ ॥ अन्वीयमानः अनुगम्यमानः ॥ २७ ॥

दक्षिणं दक्षिणः काले संभृत्य स्वभुजं तदा ।
हस्तिहस्तोपमं शैक्षं* सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ २८
प्रगृह्यमाणानञ्जलीन्नृणामुद्यतान् सर्वतो दिशः ।
शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥
संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः ।
पूजयानश्च तान् सर्वान् सर्वलोकेश्वरेश्वरः ३०
प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचितैः ।
परिवव्रुर्महाराजं प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३१
स तैः परिवृतो राजा प्रदीपैः काञ्चनैर्ज्वलन्
शुशुभे चन्द्रमा युक्तो दीप्तैरिव महाग्रहैः ३२
काञ्चनोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
प्रोत्साहयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतो दिशम्
संप्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम्
अवतीर्य हयाच्चापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वरः ॥
अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने ।
काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ ३५
उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचन
त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ३६
उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ।
किमु पाण्डुसुतान् वीरान् ससुहृद्गणबांधव
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो ।
जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान्
अहं सर्वान्महाराज निहनिष्यामि सोमकान्
पञ्चालान् केकयैः सार्धं करूषांश्चेति भारत
त्वद्वचः सत्यमेवास्तु
जहि पार्थान् समागतान् ।
सोमकांश्च महेष्वासान्
सत्यवाग्भव भारत ॥ ४०
दयया यदि वा राजन् द्वेष्यभावान्मम प्रभो
मन्दभाग्यतया वापि मम रक्षसि पाण्डवान्
अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
स जेष्यति रणे पार्थान् ससुहृद्गणबांधवान्४२
स एवमुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं सत्यपराक्रमम् ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मं प्रति दुर्योधनवाक्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः॥ ९७

## ९८

सञ्जय उवाच ।
वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण
सोऽतिविद्धो महामनाः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो
नोवाचाप्रियमण्वपि ॥ १
स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया
उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ।
सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः ॥ ३
अब्रवीत् तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः ।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम् ।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया ५
यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत्
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६
यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा ।
अमोचयत्पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७
द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो ।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८
यच्च नः सहितान् सर्वान्
विराटनगरे तदा ।
एक एव समुद्यातः
पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥
द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे
वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् १०
तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथापि च ।
गोग्रहे जितवान्पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ११

दक्षिणं स्वभुजं संभृत्य समुद्धृत्य शैक्षं शस्त्रादिशिक्षासंपन्नम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

* पीनम्, सौम्यम् इति च पाठान्तरे ।

९८

वाक्शल्यैरिति ॥ १ ॥ पर्याप्तं प्राप्तम् ॥ ५ ॥

विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम् ।
उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १२
निवातकवचान् युद्धे वासवेनापि दुर्जयान्
जितवान् समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् १३
को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा ।
यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शङ्खचक्रगदाधरः॥ १४
वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः ।
सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥ १५
उक्तोऽसि बहुशो राजन्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ।
त्वं तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन
मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान्
वृक्षान् पश्यति काञ्चनान् ।
तथा त्वमपि गान्धारे
विपरीतानि पश्यसि ॥ १७
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ।
युध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव १८
अहं तु सोमकान् सर्वान्
पञ्चालांश्च समागतान् ।
निहनिष्ये नरव्याघ्र
वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥ १९
तैर्वाऽहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् ।
तान् वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव
पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना
शिखण्डी राजवेश्मनि ।
वरदानात् पुमान् जातः
सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २१
तमहं न हनिष्यामि
प्राणत्यागेऽपि भारत ।
याऽसौ प्राङ्निर्मिता धात्रा
सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २२
सुखं स्वपिहि गान्धारे
श्वोऽपि कर्ता महारणम् ।
यं जनाः कथयिष्यन्ति
यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥ २३
एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम्॥
आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनं।
प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयङ्करः ॥ २५
प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव।
प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्नृपः २६
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान्
दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु ।
मन्यमानः स तं राजन् प्रत्यादेशमिवात्मनः
निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम् ।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे॥
इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम्।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥३०
दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाभिचोदय ॥
इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चागमः
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम् ।
स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात् पार्थांश्च संयुगे
अब्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनं
स्त्रीपूर्वको ह्यसौ राजंस्तस्माद्वर्ज्यो मया रणे
लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान् पुरा
नैव चाहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन ।
हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३६
अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः
उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखण्डिनी॥
कन्या भूत्वा पुमान् जातः
स च मां योधयिष्यति ।
तस्याहं प्रमुखे बाणा-
न्नमुञ्चेयं कथञ्चन ॥ ३८
युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः
सर्वानन्यान् हनिष्यामि संप्राप्तान् रणमूर्धनि
एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् ।
तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम् ॥
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं महाहवे ।
मा वृकेणेव गाङ्गेयं घातयेम शिखण्डिना ४१
मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः
यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन् गुप्ते ध्रुवो जयः
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा ।
सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन् ॥ ४३
पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा ।
कंपयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पांडवान्

महाजनं जनसमूहं क्षयं गृहम् ॥ २५ ॥ प्रत्यादेशं निराकरणम् ॥२८॥ निर्वेदं खेदम् ॥२९॥ उद्योगे युद्धात्प्राक् ॥३७॥

ते रथैः सुप्रसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः ।
परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवास्थिताः ॥
यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् ।
सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥
ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् ।
सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम्४७
गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ।
रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथाऽस्माभिर्विवर्जितः॥
यथा भीष्मं न नो हन्याद्दुःशासन तथा कुरु।
भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव ४९
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ।
भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम् ॥ ५०
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह ।
शिखण्डिनं नरव्याघ्रं भीष्मस्य प्रमुखे नृप ।
स्थापयस्वाद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताहमित्युत ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

## ९९

सञ्जय उवाच ।
ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया।
व्यूहं चाव्यूहत महत् सर्वतोभद्रमात्मनः ॥ १
कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः ।
शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः२
भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ३
द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः
अश्वत्थामा सोमदत्तश्चावन्त्यौ च महारथौ ।
महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन्॥५
दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः ।
व्यूहमध्ये स्थितो राजन् पांडवान् प्रति भारत
अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः ।
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ७
एवं च तं तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः॥
सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाग्नयः ॥ ८
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि ॥ ९
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥१०
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः ।
शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः ॥
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान्
स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥
अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः ।
युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान् ॥
केकया भ्रातरश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयम् ॥
पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः
तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः ॥
अभ्युद्ययू रणे पार्थान् भीष्मं कृत्वाऽग्रतो नृप
तथैव पाण्डवा राजन् भीमसेनपुरोगमाः १६
भीष्मं योद्धुमभीप्सन्तः
संग्रामे विजयैषिणः ।
क्ष्वेडाः किलकिलाः शङ्खान्
क्रकचान् गोविषाणिकाः ॥ १७
भेरी-मृदङ्ग-पणवान्नादयन्तश्च पुष्करान् ।
पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान्
भेरी-मृदङ्ग-शङ्खानां दुन्दुभीनां च निःस्वनः
उत्कृष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः ॥१९
वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः ।
सहसैवाभिसंक्रुद्धास्तदासीत् तुमुलं महत्२०
ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः संप्रहारं प्रचक्रिरे।
ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥ २१
पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः ।
सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत २२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

९९
तत इति ॥१॥

ववुश्च वातास्तुमुलाः शंसन्तः सुमहद्भयम् ।
घोरांश्च घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे
वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् ।
दिशः प्रज्वलिता राजन् पांसुवर्षं पपात च
रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च ।
रुदतां वाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् २५
सुस्रुवुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशांपते ।
अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २६
रक्षसां पुरुषादानां नदतां भैरवान् रवान् ।
संपतन्तश्च दृश्यन्ते गोमायुबलवायसाः २७
श्वानश्च विविधैर्नादैर्वाशन्तस्तत्र मारिष ।
ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहत्य दिवाकरम्
निपेतुः सहसा भूमौ वेदयन्त्यो महद्भयम् २८

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये
ततस्तयोः पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः ।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः
प्रकम्पितानीव वनानि वायुना २९

नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलाना-
मभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां
वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ३०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि परस्परव्यूहरचनायामुत्पातदर्शने ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

## १००

सञ्जय उवाच ।
अभिमन्यू रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्योधनबलं महत् ॥ १
विकिरन् शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदः ।
न शेकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदनम् ॥ २
शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम् ।
निवारयितुमप्याजौ त्वदीयाः कुरुनन्दन ३
तेन मुक्ता रणे राजन् शराः शत्रुनिबर्हणाः ।
क्षत्रियाननयन् शूरान्प्रेतराजनिवेशनम् ॥ ४

यमदण्डोपमान् घोरान्
ज्वलिताशीविषोपमान् ।
सौभद्रः समरे क्रुद्धः
प्रेषयामास सायकान्

सरथान् रथिनस्तूर्णं हयांश्चैव ससादिनः ।
गजारोहांश्च सगजान्दारयामास फाल्गुनिः

तस्य तत् कुर्वतः कर्म
महत् सङ्ख्ये महीभृतः ।
पूजयांचक्रिरे हृष्टाः
प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥ ७

तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयामास भारत ।
तूलराशीनिवाकाशे मारुतः सर्वतो दिशम् ८
तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्के मग्ना इव द्विपाः

विद्राव्य सर्वसैन्यानि
तावकानि नरोत्तम ।
अभिमन्युः स्थितो राजन्
विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १०

न चैनं तावका राजन्
विषेहुररिघातिनम्
प्रदीप्तं पावकं यद्वत्
पतङ्गाः कालचोदिताः ॥ ११

प्रहरन् सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः ।
अदृश्यत महेष्वासः सवज्र इव वासवः १२
हेमपृष्ठं धनुश्चास्य ददृशे विचरद्दिशः ।
तोयदेषु यथा राजन् राजमाना शतह्रदा १३
शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे
वनात् फुल्लद्रुमाद्राजन्भ्रमराणामिव व्रजाः ॥

बलवायसाः बलोदग्राः काकाः ॥ २७ ॥ महासमुच्छ्रये महति युद्धे । 'युद्धे समुच्छ्रयः पुमान्' इति मेदिनी ॥ २९ ॥ अभ्यायतीनामभिमुखमागच्छन्तीनाम् ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

१००

अभिमन्युरिति ॥ १ ॥

तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन ददृशुर्नान्तरं जनाः १५
मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च सबृहद्बलम् ।
सैन्धवं च महेष्वासो व्यचरल्लघु सुष्ठु च १६
मण्डलीकृतमेवास्य धनुः पश्याम भारत ।
सूर्यमण्डलसङ्काशं दहतस्तव वाहिनीम् १७
तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपन्तं तरस्विनम् ।
द्विफाल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥
तेनार्दिता महाराज भारती सा महाचमूः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ १९
द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान्
नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः २०
तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २१
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ २२
दुर्योधनस्तदा राजन्नार्ष्यश्रृङ्गिमभाषत
एष कार्ष्णिर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः॥
चमूं द्रावयते क्रोधाद्वृत्रो देवचमूमिव ।
तस्य चान्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठं सर्वविद्यासु पारगम् ।
स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे ॥
वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
स एवमुक्तो बलवान् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्
प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।
नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ २७

तस्य शब्देन महता
पाण्डवानां बलं महत् ।
प्राचलत् सर्वतो राजन्
वातोद्धूत इवार्णवः ॥ २८

बहवश्च महाराज तस्य नादेन भीषिताः
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य निपेतुर्धरणीतले २९
कार्ष्णिश्चापि मुदा युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे तद्रक्षः समुपाद्रवत् ॥ ३०
ततः स राक्षसः क्रुद्धः संप्राप्यैवार्जुनिं रणे ।
नातिदूरे स्थितां तस्य द्रावयामास वै चमूम्
तां वध्यमानां च तथा पाण्डवानां महाचमूम्
प्रत्युद्ययौ रणे रक्षो देवसेनां यथा बलः ३२

विमर्दः सुमहानासीत्तस्य सैन्यस्य मारिष ।
रक्षसा घोररूपेण वध्यमानस्य संयुग ॥ ३३
ततः शरसहस्रैस्तां पाण्डवानां महाचमूम् ।
व्यद्रावयद्रणे रक्षो दर्शयन् स्वपराक्रमम् ३४
सा वध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी
रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥ ३५

प्रमृद्य च रणे सेनां
पद्मिनीं वारणो यथा ।
ततोऽभिदुद्राव रणे
द्रौपदेयान् महाबलान् ॥ ३६

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च रविं यथा ॥
वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥३८
प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो बिभेद निशितैः शरैः ।
सर्वपारशवैस्तूर्णैरकुण्ठाग्रैर्महाबलः ॥ ३९
स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः ।
मरीचिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान्
विषक्तैः स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
आर्ष्यश्रृङ्गिर्बभौ राजन् दीप्तश्रृङ्ग इवाचलः ४१
ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीयविभूषितैः ॥ ४२
स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव ।
अलम्बुषो भृशं राजन्नागेन्द्र इव चुक्रुधे ॥ ४३
सोऽतिविद्धो महाराज मुहूर्तमथ मारिष ।
प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः ॥ ४४
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः ।
चिच्छेद सायकांस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूंषि च॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्मयन्निव ।
अलम्बुषो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः ॥ ४६
त्वरमाणः सुसंरब्धो हयांस्तेषां महात्मनाम् ।
जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथींश्च महाबलः ४७
बिभेद च सुसंरब्धः पुनश्चैनान्सुसंशितैः ।
शरैर्बहुविधाकारैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८
विरथांश्च महेष्वासान् कृत्वा तत्र स राक्षसः
अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः ॥४९
तानार्दितान् रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना ।
दृष्ट्वाऽर्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत् ५०

लघु सुष्ठु च शीघ्रं शोभनं च यथा स्यात्तथा ॥ १६ ॥ आर्ष्यश्रृंगिमलंबुषम् ॥ २३ ॥ सर्वपारशवैः सर्वलोहमयैः ॥ ३९ ॥ संस्यूतो ग्रथितः ॥ ४० ॥

तयोः समभवद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः ॥
तौ समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परम् ।
महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ ५२
परस्परमवेक्षेतां कालानलसमौ
तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ५३
यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोः पुरा ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषाभिमन्युसमागमे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## १०१

धृतराष्ट्र उवाच ।
आर्जुनिं समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथान् ।
अलम्बुषः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥ १
आर्ष्यशृङ्गिं कथं चैव सौभद्रः परवीरहा ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन यथावृत्तं स्म संयुगे ॥ २
धनञ्जयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संयुगे ।
भीमो वा रथिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः
नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः ।
एतदाचक्ष्व मे सत्यं कुशलो ह्यसि सञ्जय॥४
सञ्जय उवाच ।
हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम् ।
यथाऽभूद्राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष ५
अर्जुनश्च यथा संख्ये भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च रणे चक्रुः पराक्रमम् ॥ ६
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ।
अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत्
अलम्बुषस्तु समरे अभिमन्युं महारथम् ।
विनद्य सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ ८
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ९
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौ१०
रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ ।
मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रश्चैव फाल्गुनिः
ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैःसायकैस्त्रिभिः
आर्ष्यशृङ्गिं रणे विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः
अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः।
हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्विपम् १३
ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः ।
अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत॥१४
अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ।
बिभेद निशितैर्बाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि॥१५
ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्मसु ।
स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः १६
पुष्पितैः किंशुकै राजन् संस्तीर्ण इव पर्वतः ।
सन्धारयाणश्च शरान् हेमपुङ्खान् महाबलः ॥
विबभौ राक्षसश्रेष्ठः सज्वाल इव पर्वतः ।
ततः क्रुद्धो महाराज आर्ष्यशृङ्गिरमर्षणः ॥१८
महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिं छादयामास पत्रिभिः ।
तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः
अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।
तथैवार्जुनिना मुक्ताः शराः कनकभूषणाः २०
अलम्बुषं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।
सौभद्रस्तु रणे रक्षः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१
चक्रे विमुखमासाद्य मयं शक्र इवाहवे ।
विमुखं च रणे रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा२२
प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनाम् ।
ततस्ते तमसा सर्वे हृताश्चासन् महीपते॥२३
नाभिमन्युमपश्यन्त नैव स्वान्न परान् रणे।
अभिमन्युश्च तद्दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ॥ २४
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः ।
ततः प्रकाशमभवज्जगत् सर्वं महीपते ॥ २५
तां चाभिजघ्निवान्मायां राक्षसस्य दुरात्मनः
संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तमः॥२६
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।
बह्वीस्तथान्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ॥

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

आर्जुनिमिति ॥ १ ॥

सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः।
हतमायं ततो रक्षो वध्यमानं च सायकैः २८
रथं तत्रैव सन्त्यज्य प्राद्रवन् महतो भयात्।
तस्मिन् विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे
आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं संममर्द ह ।
मदान्धो गन्धनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव॥
ततः शान्तनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाऽभिविद्रुतं
महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्यवारयत् ॥ ३१
कोष्ठीकृत्य च तं वीरं धार्तराष्ट्रा महारथाः।
एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढैः॥ ३२
स तेषां रथिनां वीरः पितृतुल्यपराक्रमः।
सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥ ३३
उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च ।
रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४
ततो धनञ्जयो वीरो विनिघ्नंस्तव सैनिकान्
आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥ ३५
तथैव समरे राजन्पिता देवव्रतस्तव ।
आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम्॥
ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव जनेश्वर।
परिवव्रू रणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः ॥ ३७
तथैव पाण्डवा राजन् परिवार्य धनञ्जयम्।
रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥ ३८
शारद्वतस्ततो राजन्
भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम्।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या
सायकानां समाचिनोत् ॥ ३९
प्रत्युद्गम्याथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः
पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल इव कुञ्जरम् ४०
गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः
हृदि विव्याध संक्रुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ४१
शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान्।
गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम् ४२
तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम्।
द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः॥
समुत्सृज्याथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरः।
अभ्यद्रवद्रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ४४
तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत।
अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ४५
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम्
द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चार्पयत्
स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः।
निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः ४७
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समार्पयत् ४८
शैनेयं स तु निर्भिद्य प्राविशद्धरणीतलम्।
वसन्तकाले बलवान्बिलं सर्पशिशुर्यथा ४९
अथापरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम्।
चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह ५०
पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत।
निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम्
सात्यकोऽपि महाराज शरजालं निहत्य तत्
द्रौणिमभ्यकिरत्तूर्णं शरजालैरनेकधा ॥ ५२
तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा।
विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ॥ ५३
शराणां च सहस्रेण पुनरेव समुद्यतः।
सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः॥
दृष्ट्वा पुत्रं च तं ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम्।
अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ५५
विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे।
परीप्सन्स्वसुतं राजन् वार्ष्णेयेनाभिपीडितम्
सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम्।
द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः॥
तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः।
अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः ५८
ततो द्रोणश्च पार्थश्च समेयातां महामृधे।
यथा बुधश्च शुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषाभिमन्युयुद्धे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१०२

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं द्रोणो महेष्वासः पाण्डवश्च धनञ्जयः
समीयतू रणे यत्तौ तावुभौ पुरुषर्षभौ ॥
प्रियो हि पाण्डवो नित्यं
भारद्वाजस्य धीमतः ।
आचार्यश्च रणे नित्यं
प्रियः पार्थस्य सञ्जय ॥
तावुभौ रथिनौ संख्ये
हृष्टौ सिंहाविवोत्कटौ ।
कथं समीयतुर्यत्तौ
भारद्वाजधनञ्जयौ ॥
सञ्जय उवाच ।
न द्रोणः समरे पार्थं जानीते प्रियमात्मनः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥ ४
न क्षत्रिया रणे राजन्वर्जयन्ति परस्परम् ।
निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ५
रणे भारत पार्थेन
द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः ।
नाचिन्तयच्च तान्बाणान्
पार्थचापच्युतान्युधि ॥ ६
शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे
स प्रजज्वाल रोषेण गहनेऽग्निरिवोर्जितः ७
ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास राजेन्द्र नाचिरादेव भारत ॥ ८
ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
द्रोणस्य समरे राजन्पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥
त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
छादयामास समरे पार्थं बाणैरयोमुखैः ॥ १०
ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ११
ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो
फलभारनतं यद्वत्स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः ॥ १२
अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः ।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
पार्थमेवाभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥ १४
मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति ।
शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षैः समन्ततः ॥ १५
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाचलः ।
तत्राद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् १६
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव १७
कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः ।
अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान्प्रति भारत ॥
मुमोचास्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ।
प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम्
पातयन्वै तरुगणान्विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् ।
ततो द्रोणोऽभिवीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम्
शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह
द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप २१
प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश ।
ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ॥
निरुत्साहान् रणे चक्रे
विमुखान् विपराक्रमान् ।
ततो दुर्योधनश्चैव
कृपश्च रथिनां वरः ॥ २३
अश्वत्थामा तथा शल्यः
काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
बाल्हिकः सह बाल्हिकैः ॥ २४
महता रथवंशेन पार्थस्यावारयन्दिशः ।
तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ॥ २५
गजानीकेन भीमस्य तावावारयतां दिशः ।
भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशांपते ॥२६
शरौघैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् ।
भीष्मस्तु सहितः संख्ये धार्तराष्ट्रैः ससैनिकैः ॥
युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ।
आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः २८
लेलिहन्सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने ।
भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे॥ २९
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत् ।
तमुद्वीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः॥ ३०

१०२
कथमिति ॥ १

तं निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः।
सुशर्मणो रणे योधान्प्राहिणोद्यमसादनम् ३
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये।
व्यद्रवन्त रणे राजन् भये जाते महारथाः ४
उत्सृज्य तुरगान् केचि-
द्रथान् केचिच्च मारिष।
गजानन्ये समुत्सृज्य
प्राद्रवन्त दिशो दश॥ ५
अपरे तु तदाऽऽदाय वाजिनागरथान् रणे।
त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशांपते ६
पादाताश्चापि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे।
निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ७
वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा।
तथाऽन्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ८
तद्बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः॥ ९
सर्वोद्योगेन महता धनञ्जयमुपाद्रवत्।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते १०
स एकः समरे तस्थौ
किरन् बहुविधान् शरान्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः
शेषा हि प्रद्रुता नराः॥ ११
तथैव पाण्डवा राजन् सर्वोद्योगेन दंशिताः
प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत॥
ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः।
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः
ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानां वरूथिनी
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः॥ १४
एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः।
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे १५
सात्यकिः कृतवर्माणं विध्वा पञ्चभिराशुगैः।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान् सहस्रशः॥
तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चास्य पञ्चभिः
भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीकं प्रपितामहम्।
विद्ध्वा नदन्महानादं शार्दूल इव कानने १८
आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान् सहस्रशः॥
चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम्।
समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम्
यथा दिवि महाघोरौ राजन्बुधशनैश्चरौ।
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः
ननाद बलवान्नादं सौभद्रः परवीरहा।
हताश्वात्तु रथात् तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते।
द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा शरैः सन्नतपर्वभिः २३
सारथिं चास्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी
पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन्।
भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम् २५
व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
ससंभ्रमो महाराज संशयं परमं गतः॥ २६
अवप्लुत्य ततो वाहाद्बाह्लीकः पुरुषोत्तमः।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे॥ २७
सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम्॥ २८
स विध्वा भारतं षष्ट्या
निशितैर्लोमवाहिभिः।
नृत्यन्निव रथोपस्थे
विधुन्वानो महद्धनुः॥ २९
तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाथ पितामहः।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम्॥
तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम्
व्यंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः॥
अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा।
न्यपतद्धरणीपृष्ठे महोल्केव महाप्रभा॥ ३२
वार्ष्णेयस्तु ततो राजन्
स्वां शक्तिं कनकप्रभाम्।
वेगवद्गृह्य चिक्षेप
पितामहरथं प्रति॥ ३३
वार्ष्णेयभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे।
अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ३४
तामापतन्तीं सहसा
द्विधा चिच्छेद भारतः।
क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां
सा व्यशीर्यत मेदिनीम्॥ ३५

तेन तेन पथा॥ ७॥ महामात्रौ श्रेष्ठौ॥ २०॥ भारतं भीष्मं लोमवाहिभिः लोमच्छेदकैः॥ २९॥ मेदिनीं प्राप्येति शेषः॥ ३५

छित्वा शक्तिं तु गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्शत्रुकर्शनः ॥ ३६

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजाः
परिवव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात् ॥ ३७
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च समरे विजयैषिणाम् ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि वार्ष्णेययुद्धे
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

## १०५

सञ्जय उवाच ।
दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम् ।
यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम् १
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत ।
एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शूरनिषूदनः ॥२
छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः॥३
रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः
निहन्यात् समरे यत्तान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम् ।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः
स भवान् सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम् ।
समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु ॥ ६
स एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ७
ततः शतसहस्राणां हयानां सुबलात्मजः ।
विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥ ८
दर्पितानां सुवेशानां बलस्थानां पताकिनाम्
शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥ ९
नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम् ।
न्यवारयन्नरश्रेष्ठान् परिवार्य समन्ततः ॥ १०
ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम्
अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे ॥११
तैः प्रविष्टैर्महावेगैर्गरुत्मद्भिरिवाहवे ।
खुराहता धरा राजंश्चकम्पे च ननाद च॥१२
खुरशब्दश्च सुमहान् वाजिनां शुश्रुवे तदा ।
महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ १३
उत्पतद्भिश्च तैस्तत्र समुद्भूतं महद्रजः ।
दिवाकररथं प्राप्य छादयामास भास्करम् ॥
वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभिता पाण्डवी चमूः॥
निपतद्भिर्महावेगैर्हंसैरिव महत् सरः ॥ १५
हेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ।
ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम् ।
उद्वृत्तस्य महाराज प्रावृट्कालेऽतिपूर्यतः १७
पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः ।
ततस्ते रथिनो राजन् शरैः सन्नतपर्वभिः १८
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि शरेण हयसादिनां ।
ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥१९
नागैरिव महानागा यथावद्गिरिगह्वरे ।
तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ।
अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥ २१
अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः ।
ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निषूदिताः२२
पतिताः पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।
वध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः २३
यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ।
पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महामृधे ॥
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे ।।
ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम्॥

माधवः सात्यकिः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

१०५

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ तत इति । सैन्येनेति पूर्वस्मादनुकृष्यते हयानां सैन्येन परिवार्य न्यवारयदिति तृतीयेनान्वयः ॥८॥

अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः ।
एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे
पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो ।
तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम् ॥ २७
त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः ।
पुत्रस्य तव तद्वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान्
स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
तदाऽपतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्बलम् ॥२९
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ।
मद्रराजं च समरे धर्मराजो महारथः ॥ ३०
दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे ।
नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्मगैः ॥ ३१
मद्रराजोऽपि तान्सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः
युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः
माद्रीपुत्रौ च संभ्रान्तौ
द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ।
ततो भीमो महाबाहु-
र्दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ ३३
मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरमामित्रजित् ॥ ३४
ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५ ॥

## १०६

सञ्जय उवाच ।
ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः ।
आजघान रणे पार्थान् सहसेनान्समन्ततः॥१
भीमं द्वादशभिर्विद्ध्वा
सात्यकिं नवभिः शरैः ।
नकुलं च त्रिभिर्विद्ध्वा
सहदेवं च सप्तभिः ॥ २
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा ननाद सुमहाबलः ॥ ३
तं द्वादशार्धैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः ।
धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥ ४
युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत्पितामहम् ।
द्रोणस्तु सात्यकिं विद्ध्वा भीमसेनमविध्यत ५
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः ।
तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः६
तोत्रैरिव महानागं
द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् ।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः
प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ७
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
संग्रामे नाजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः
तथैवान्ये महीपाला नानादेशसमागताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ॥ ९
तथैव पाण्डवा राजन् परिवव्रुः पितामहम् ।
स समन्तात् परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥१०
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन्परान् ।
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ११
शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्नि-
र्ददाह क्षत्रियर्षभान् ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभि-
र्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ॥ १२
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् ।
अपातयद्ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥ १३
मुण्डतालवनानीव
चकार स रथव्रजान् ।
निर्मनुष्यान् रथान् राजन्
गजानश्वांश्च संयुगे ॥ १४
अकरोत् स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

१०६

तत इति ॥ १ ॥ द्वादशार्धैः द्वादशसंख्यैः ॥४॥

निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत ।
अमोघा ह्यपतन् बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ १६
नासज्जन्त तनुत्रेषु
भीष्मचापच्युताः शराः ।
हतवीरान् रथान् राजन्
संयुक्तान् जवनैर्हयैः ॥ १७
अपश्याम महाराज ह्रियमाणान् रणाजिरे ।
चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश १८
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १९
संग्रामे भीष्ममासाद्य
व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
निमग्नाः परलोकाय
सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २०
भग्नाक्षोपस्करान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः २१
सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः ।
शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशांपते॥ २२
गदाभिर्भिन्दिपालैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः ।
अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष ॥ २३
बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः
शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तलत्रैरङ्गुलित्रैश्च
ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २४
चापैश्च बहुधा छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी
हतारोहा गजा राजन्हयाश्च हयसादिनः २५
न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
यतमानाश्च ते वीरा द्रवमाणान्महारथान्॥
नाशक्नुवन् वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान्
महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ २७
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।
आविद्धरथनागाश्वं पतितध्वजसङ्कुलम् २८
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।
जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ २९
प्रियं सखायं चाक्रन्दे सखा दैवबलात् कृतः
विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः
प्रकीर्य केशान् धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः
तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकूबरम् ३१
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ३२

उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।
अयं स कालः संप्राप्तः पार्थ यः काङ्क्षितस्तव
प्रहरास्मिन्नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।
यत्पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे ३४
विराटनगरे तात सञ्जयस्य समीपतः ।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्
सानुबन्धान् हनिष्यामि
ये मां योत्स्यन्ति सङ्गरे ।
इति तत्कुरु कौन्तेय
सत्यं वाक्यमरिन्दम ॥ ३६
क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ।
इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥ ३६
अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।
अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम्
दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ।
चोदयाश्वान्यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव
पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
स चाश्वान् रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः
यतो भीष्मस्ततो राजन्
दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ।
ततस्तत् पुनरावृत्तं
युधिष्ठिरबलं महत् ॥ ४१
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ।
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ४२
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ।
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ४३
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ।
वासुदेवस्त्वसंभ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः ४४
चोदयामास तानश्वान्विनुन्नान्भीष्मसायकैः
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ४५
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा शितैः शरैः
स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ४६
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ।
चकर्ष च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ४७
अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ।
तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः
गाङ्गेयस्त्वब्रवीत् पार्थं धन्विश्रेष्ठमरिन्दम ।
साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च
समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
मुमोच समरे भीष्मः शरान् पार्थरथं प्रति ५०

अदर्शयद्वासुदेवो
हययाने परं बलम् ।
मोघान् कुर्वन् शरांस्तस्य
मण्डलानि निदर्शयन् ॥ ५१
शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥
वासुदेवस्तु संप्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ।
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ५३
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ।
वरान्वरान् विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ।
नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५५
उत्सृज्य रजतप्रख्यान् हयान्पार्थस्य मारिष ।
वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात् ॥
अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली ।
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ५७
दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः ।
क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥
ग्रसन्त इव चेतांसि तावकानां महाहवे ।
दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यतमन्तिके ५९
हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत् ।
अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा ॥ ६०
पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः ।
शुशुभे विद्रवन् भीष्मं विद्युन्माली यथाऽम्बुदः ॥
स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् ।
अभिदुद्राव वेगेन विनदन्यादवर्षभः ॥ ६२
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे ।
असंभ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद्धनुः ६३
उवाच चैव गोविन्दमसंभ्रान्तेन चेतसा ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ६४
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ६५
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
संभावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ ।
अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ६७
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ।
निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥
जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।
पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ६९
निजग्राह हृषीकेशं कथञ्चिद्दशमे पदे ।
तत एवमुवाचार्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ॥ ७०
निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः प्रणयात्सखा ।
निवर्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि ॥ ७१
यत्त्वया कथितं पूर्वं
न योत्स्यामीति केशव ।
मिथ्यावादीति लोकास्त्वां
कथयिष्यन्ति माधव ॥ ७२
ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम् ।
शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च ॥ ७३
अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन ।
अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महारथम् ॥ ७४
तारापतिमिवापूर्णमन्तकाले यदृच्छया ।
माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः
न किञ्चिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः ।
तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः
ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाऽचलौ ।
प्राणानादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तव ७७
गभस्तिभिरिवादित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये ।
यथा कुरूणां सैन्यानि बभञ्जुर्युधि पाण्डवाः
तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ।
हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
मध्यंगतमिवादित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ॥ ८०
ते वध्यमाना भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः ।
कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुषविक्रमम् ८१
वीक्षां चक्रुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ।
तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत
त्रातारं नाध्यगच्छन्त
गावः पङ्कगता इव ।
पिपीलिका इव क्षुण्णा
दुर्बला बलिना रणे ॥ ८३
महारथं भारतदुष्प्रकम्पं
शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।
भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते
शरार्चिषं सूर्यमिवातपन्तम् ॥ ८४

[illegible] ॥ ६१ ॥ सर्वतः इहामुत्र च ॥ ६६ ॥ अन्वक्पश्चाद्भागे ॥ ६७ ॥ आपूर्णं कलाभिरिति शेषः ॥ ७५ ॥

विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेना-
मस्तं जगामाथ सहस्ररश्मिः ।
ततो बलानां श्रमकर्शितानां
मनोऽवहारं प्रति संबभूव ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## १०७

सञ्जय उवाच ।
युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
सन्ध्या समभवद्घोरा नापश्याम ततो रणम्
ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां संदृश्य भारत
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम्
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ३
सोमकांश्च जितान् दृष्ट्वा
निरुत्साहान् महारथान् ।
चिन्तयित्वा ततो राजा
अवहारमरोचयत् ॥ ४
ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत् तदा ॥ ५
ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः ।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ६
भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः
नालभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः
भीष्मोऽपि समरे जित्वा
पाण्डवान् सहसृञ्जयान् ।
पूज्यमानस्तव सुतै-
र्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८
न्यविशत् कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः ।
ततो रात्रिः समभवत् सर्वभूतप्रमोहिनी ९
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे
पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा
मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १०
आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः ।
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ११
ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे ॥ १२
कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम्
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३
न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् १४
यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः
तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान्
गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ।
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट्
वरुणः पाशभृच्चापि सगदो वा धनेश्वरः ।
न तु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥
सोऽहमेवंगते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे ।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे
वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम् ।
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा
यथा प्रज्वलितं वह्निं
पतङ्गः समभिद्रवन् ।
एकतो मृत्युमभ्येति
तथाऽहं भीष्ममीयिवान् ॥ २०
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय
राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे शूराः
सायकैर्भृशपीडिताः ॥ २१
मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यभ्रष्टा वनं गताः ।
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन २२

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

युध्यतामिति ॥१॥ एकत इति द्वितीयांतार्थेः । एकं केवलं मृत्युमेवाभ्येतीत्यर्थः २० ॥

जीवितं बहु मन्येऽहं
जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ।
जीवितस्याद्य शेषेण
चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ २३
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव ।
स्वधर्मस्याविरोधेन हितं व्याहर केशव॥ २४
एवं श्रुत्वा वचस्तस्य
कारुण्याद्बहुविस्तरम् ।
प्रत्युवाच ततः कृष्णः
सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥ २५
धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर ।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः२६
अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ ।
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ
मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव
त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे ॥
हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः
यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव ।
हन्ताऽस्म्येकरथेनाद्य कुरुवृद्धं पितामहम्॥३०
पश्य मे विक्रमं राजन् महेन्द्रस्येव संयुगे ।
विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात्
यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते ॥ ३२
तव भ्राता मम सखा संबन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते
एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् ।
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम् ॥ ३४
स मां नियुङ्क्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहं
प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः ॥ ३५
घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य संनिधौ
परिरक्ष्यमिदं तावद्वचः पार्थस्य धीमतः ॥३६
अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः ।
अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे३७
स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम् ।
अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ३८
त्रिदशान् वा समु[द्यु]क्तान् सहितान्दैत्यदानवैः
निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप॥
विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः ।

भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नावबुध्यते४०
युधिष्ठिर उवाच ।
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
सर्वे ह्येते न पर्याप्तास्तव वेगविधारणे ॥ ४१
नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद्यथेप्सितम् ।
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान् पक्षे व्यवस्थितः॥
सेन्द्रानपि रणे देवान् जयेयं जयतां वर ।
त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथम्
न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् ।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥
समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे ।
मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥
दुर्योधनार्थे योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो ।
स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव
तस्माद्देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः ।
भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥ ४७
तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम् ।
न चिरात् सर्वे वार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवं
स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्मान् जनार्दन
यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्ताऽस्मि संयुगे
स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः
बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयं॥
तं चेत्पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव ।
पितुः पितरमिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥
सञ्जय उवाच ।
ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम् ।
रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम्५२
देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् ।
गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः ॥५३
वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः ।
ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम् ॥५४
गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत ।
स वो दास्यति मन्त्रं यं तेन योत्स्यामहे परान्
एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम्
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान्॥
विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति ।
प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रणिपेदिरे॥
पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभम् ।
प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ५८

अथेदानीम् ॥ २३ ॥ विपरीतः क्षुद्रेषु पराक्रमी गतसत्त्वो गतबुद्धिः ॥ ४०

तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनञ्जय ॥ ५९
स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ।
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम्
सर्वात्मनाऽपि कर्ताऽस्मि
यदपि स्यात् सुदुष्करम् ।
तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं
प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ॥ ६१
उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः ।
कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥ ६२
प्रजानां संशयो न स्यात् कथं तन्मे वद प्रभो
भवान् हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥
भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम् ।
न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥
मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा ।
आददानं सन्दधानं विकर्षन्तं धनुर्न च ॥६५
पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिवापरम् ।
रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥ ६६
कोऽथ वोत्सहते जेतुं त्वां पुमान् भरतर्षभ
वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥ ६७
क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम ।
यया युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम॥
मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह ।
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डुपूर्वजः
न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे ।
जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७०
निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः ।
क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ७१
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम् ।
एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेव विधीयताम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥७३
भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा७४
न भवान् समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।

भीष्म उवाच ।

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ॥
नाहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः॥ ७६
ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः
निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥ ७७
द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि ।
स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रिणि७८
अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ।
इमं मे शृणु राजेन्द्र संकल्पं पूर्वचिन्तितम् ॥
अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कदाचन ।
य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ८०
शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समितिञ्जयः
यथाऽभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात्पुंस्त्वं समागतः८१
जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम् ।
अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ८२
मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः ।
अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन् स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ॥
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथञ्चन ।
तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनञ्जयः ८४
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद्भरतर्षभ ।
न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद्यः समुद्यतम्
ऋते कृष्णान्महाभागात्पाण्डवाद्वा धनञ्जयात्
एष तस्मात् पुरोधाय कञ्चिदन्यं ममाग्रतः ॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।
मां पातयतु बीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम् ८७
एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत ।
संग्रामे धार्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान्समागतान्

सञ्जय उवाच ।

ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था
जग्मुः स्वशिबिरं प्रति ।
अभिवाद्य महात्मानं
भीष्मं कुरुपितामहम् ॥
तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते ।
अर्जुनो दुःखसन्तप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ९०
गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता ।
पितामहेन संग्रामे कथं योद्धाऽस्मि माधव ॥
क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः ।
पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥ ९२
यस्याहमधिरुह्याङ्कं बालः किल गदाग्रज ।
तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥

परुषीकृतः रूक्षीकृतः ॥ ९२ ॥

नाहं तातस्तव पितुस्ततातोऽस्मि तव भारत
इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स वध्यः कथं मया
काम वध्यतु सैन्यं मे
नाहं योत्स्ये महात्मना।
जयो वाऽस्तु वधो वा मे
कथं वा कृष्ण मन्यसे॥

+वासुदेव उवाच।

प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे।
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ९६
पातयैनं रथात् पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम्।
नाहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति॥
दृष्टमेतत् पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम्।
यद्दृष्टं हि पुरा पार्थ तत्तथा न तदन्यथा ९८
न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवान्तकम्
त्वदन्यः शक्नुयाद्योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम्॥
जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा
शृणु चेदं वचो मम।
यथोवाच पुरा शक्रं
महाबुद्धिर्बृहस्पतिः॥ १००
ज्यायांसमपि चेद्वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्।
आततायिनमायान्तं हन्याद्घातकमात्मनः॥
शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चानसूयुभिः॥

अर्जुन उवाच।

शिखण्डी निधनं कृष्ण
भीष्मस्य भविता ध्रुवम्।
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः
पाञ्चाल्यं विनिवर्तते॥ १०३
ते वयं प्रमुखे तस्य
पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
गाङ्गेयं पातयिष्याम
उपायेनेति मे मतिः॥ १०४
अहमन्यान् महेष्वासान्
वारयिष्यामि सायकैः।
शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं
भीष्ममेवाभियोधयेत॥ १०५
श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य
नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
कन्या ह्येषा पुरा भूत्वा
पुरुषः समपद्यत॥ १०६
इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः।
अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः।
शयनानि यथास्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः १०७

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसावहारोत्तरमन्त्रे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥

## १०८

धृतराष्ट्र उवाच।

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यवर्तत संयुगे।
पाण्डवांश्च कथं भीष्मस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय १

सञ्जय उवाच।

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च॥ २
*ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि
कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद्विशां पते
चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयौ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान्॥ ५
सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात्पञ्चालैरभिरक्षितः॥ ६
ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः
प्रययौ सिंहनादेन नादयन्भरतर्षभ॥ ७

युद्धदुर्मदं युद्धोत्सुकम्॥ ९७॥ गमिष्यति यमक्षयं भीष्म इति शेषः॥ ९८॥ आततायिनमित्यस्य घातकमिति विशेषणमन्येभ्य आततायिभ्यो व्यवच्छेदायोक्तम्॥१०१॥ निधनं निधनहेतुः॥१०३॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

* 'मायमानेषु शङ्खेषु' इति पाठान्तरम्।

१०८

कथमिति॥ १॥

+ 'कामं वध्यतु' इत्यादिश्लोकानंतरम्—
"कथमस्मद्विधः कृष्ण जानन् धर्मं सनातनम्।
न्यस्तशस्त्रे च वृद्धे च प्रहरेद्धि पितामहम्॥
इति श्लोकः पुस्तकान्तरे दृश्यते। स च ज्यायानिति भाति।

विराटस्तु ततः पश्चात्स्वेन सैन्येन संवृतः।
द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८
केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्।
जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत ९
एवं व्यूह्य महासैन्यं
पाण्डवास्तव वाहिनीम्।
अभ्यद्रवन्त सङ्ग्रामे
त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥
तथैव कुरवो राजन्
भीष्मं कृत्वा महारथम्।
अग्रतः सर्वसैन्यानां
प्रययुः पाण्डवान् प्रति ॥
पुत्रैस्तव दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः।
ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चास्य महाबलः ॥
भगदत्तस्ततः पश्चाद्गजानीकेन संवृतः।
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥ १३
काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात्सुदक्षिणः
मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्बलः ॥ १४
तथैवान्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः।
जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत १५
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मःशान्तनवो युधि
आसुरानकरोद्व्यूहान्पैशाचानथ राक्षसान्१६
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
अन्योन्यं निघ्नतां राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम्१७
अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः
पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त
किरन्तो विविधान् शरान् ॥ १८
तत्र भारत भीमेन ताडितास्तावकाः शरैः।
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः।
तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा २०
ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ।
नाशक्नुवन् वारयितुं पाण्डवानां महद्बलम्२१
ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः।
सुसंप्राप्तं दश दिशः काल्यमानं महारथैः॥२२
त्रातारं नाध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ।
वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः॥

धृतराष्ट्र उवाच।

पीड्यमानं बलं दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी।
यदकार्षीद्रणे क्रुद्धस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २५
कथं वा पाण्डवान्युद्धे प्रत्युद्यातः परंतपः।
विनिघ्नन् सोमकान् वीरस्तदाचक्ष्व ममानघ

सञ्जय उवाच

आचक्षे ते महाराज यदकार्षीत् पिता तव।
पीडिते तव पुत्रस्य सैन्ये पाण्डवसृञ्जयैः ॥२६
प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
अभ्यवर्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्२७
तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम्।
नामृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः२८
स पाण्डवान्महेष्वासः पञ्चालांश्चैव सृञ्जयान्
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥२९
अभ्यवर्षत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः।
स पाण्डवानां प्रवरान् पञ्च राजन् महारथान्
आत्तशस्त्रो रणे यत्नाद्वारयामास सायकैः।
नानाशस्त्रास्त्रवर्षैस्तान् वीर्यामर्षप्रवेरितैः ॥३१
निजघ्ने समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वं चामितं बहु।
रथिनोऽपातयद्राजन् रथेभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ३२
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यः पादातांश्च समागतान्।
गजारोहान् गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः ३३
तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम्।
पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवासुराः॥३४
शक्राशनिसमस्पर्शान्विमुञ्चन्निशिताञ्छरान्
दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं सन्धारयन् वपुः३५
मण्डलीभूतमेवास्य नित्यं धनुरदृश्यत।
सङ्ग्रामे युध्यमानस्य शक्रचापोपमं महत् ३६
तद्दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशांपते।
विस्मयं परमं गत्वा पितामहमपूजयन्
पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव३८
युध्यमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवामराः।
न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवान्तकम्३९
दशमेऽहनि संप्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः।
अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ४०
तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्याविध्यत्स्तनान्तरे
आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवान्तकम्४१
स तेनातिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनं
अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत्४२

काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथंचन
यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव हि त्वं शिखण्डिनी
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्छितः ।
उवाचैनं तथा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ४४
जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयंकर
मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ४५
दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं मया च बहुशः श्रुतः ।
जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याहं त्वया सह
पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम ।
अद्य त्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ४६
ध्रुवं च त्वां हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः
एतच्छ्रुत्वा च मद्वाक्यं यत्कृत्यं तत् समाचर
काममभ्यस वा मा वा न मे जीवन् प्रमोक्ष्यसे
सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोऽयं समितिंजय॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
अविध्यत रणे भीष्मं प्रणुन्नं वाक्यसायकैः ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः ।
कालोऽयमिति संचिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत
अहं त्वामनुयास्यामि परान्विद्रावयन् शरैः ।
अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥
न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः ।
तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद्भीष्ममभिद्रव॥ ५३
अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष ।
अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह
नावहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे ।
तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥५५
अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल ।
वारयन् रथिनः सर्वान्साधयस्व पितामहम्॥
द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाथ सुयोधनम् ।
चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ५७
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
भगदत्तं तथा शूरं
मागधं च महाबलम् ॥ ५८
सौमदत्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम् ।
त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥ ५९
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ।
कुरूंश्च सहितान्सर्वान् युध्यमानान्महाबलान्
निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ६०

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मशिखण्डिसमागमे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

## १०९

धृतराष्ट्र उवाच ।

कथं शिखंडी गाङ्गेयमभ्यधावत् पितामहम्
पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् १
केऽरक्षन् पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधाः
त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महारथाः
कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन् दशमेऽहनि
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ३
न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिना
कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाऽशीर्यतास्यतः ४

सञ्जय उवाच ।

नाशीर्यत धनुश्चास्य रथः भग्नो न चाप्यभूत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ ५
निघ्नतः समरे शत्रून् शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ॥ ६
तथा दन्तिगणा राजन् हयाश्चैव सुसज्जिताः
अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥७
यथा तिज्ञं कौरव्य स चापि समितिंजयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समिति क्षयम् ८

कामं स्वच्छन्दं अभ्यस प्रक्षिप ॥ ४३ ॥ सुदृष्टः क्रियतां न पुनर्द्रक्ष्यसि लोकमिमिमात भावः ॥४६॥ साधयस्व स्वाकुरु जहि वा ॥५५॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

कथमिति ॥ १ ॥ समितिंजयः संग्रामजित् समिति युद्धे ॥ ८ ॥

युध्यमानं महेष्वासं
विनिघ्नन्तं परान् शरैः ।
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं
सर्वे ते नाभ्यवारयन् ॥ ९
दशमेऽहनि संप्रामे ततस्तां रिपुवाहिनीम् ।
कीर्यमाणां शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
न हि भीष्मं महेष्वासं
पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अशक्नुवैन्रणे जेतुं
पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ ११
अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनञ्जयः ।
त्रासयन्रथिनः सर्वान् बीभत्सुरपराजितः १२
सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन्मुहुः ।
शरौघान् विसृजन् पार्थो व्यचरत् कालवद्रणे
तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
सिंहस्येव मृगा राजन् व्यद्रवन्त महाभयात्
जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा
त्वत्सैन्यं चाभिपीडितम् ।
दुर्योधनस्ततो भीष्म-
मब्रवीद्भृशपीडितः ॥ १५
एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दहते मामकान्सर्वान् कृष्णवर्त्मेव काननम्
पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः ।
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे १७
यथा पशुगणान् पालः सङ्कालयति कानने ।
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १८
धनञ्जयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः ।
भीमोऽप्येष दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे २१
वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः ।
नान्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम ।
पर्याप्तस्तु भवान् शीघ्रं पीडितानां गतिर्भव ॥

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः
तव संधारयन् पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः ।
दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशांपते
पूर्वकाले तव मया प्रतिज्ञातं महाबल ।
हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम्
संग्रामाद्व्यपयातव्यमेतत्कर्म ममाह्निकम् ।
इति तत्कृतवांश्चाहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २७
अद्य चापि महत् कर्म
प्रकरिष्ये महाबल ।
अहं वाऽद्य हतः शेष्ये
हनिष्ये वाऽद्य पाण्डवान् ॥ २८
अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं तव ।
भर्तृपिण्डकृतं राजन्निहतः पृतनामुखे ॥ २९
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान् प्रवपञ्छरैः ।
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम्
अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
आशीविषमिव क्रुद्धं पाण्डवाः प्रत्यवारयन्
दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयन् शक्तिमात्मनः
राजन् शतसहस्राणि सोऽवधीत्कुरुनन्दन ॥
पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः ।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांशुभिः ३३
हत्वा दश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
सारोहाणां महाराज हयानां चायुतं तथा ॥
पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥
न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम्
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ३६
ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः
वधायाभ्यद्रवन् भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥
संयुद्ध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवावृतः ३८
पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं
समन्तात् पर्यवारयन् ।
महत्या सेनया सार्धं
ततो युद्धमवर्तत ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

द्रवते द्रावयति ॥ २० ॥ गतिं धाम आश्रयमिति यावत् स्थाने अवस्थाने ॥ २२ ॥ आह्निकं दिवसकार्यम् ॥ २७ ॥ शेष्ये स्वप्स्यामि ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## ११०.

सञ्जय उवाच ।

अर्जुनस्तु रणे राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम्
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् १
न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथञ्चन
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् २
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ३
धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् सौभद्रश्च महारथः ।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्
विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान् ।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशांपते ॥ ६
समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
प्रत्युद्ययुस्तावकाश्च समेतांस्तान्महारथान् ७
यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु ।
चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ८
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा ।
धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ९
त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् ।
भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् १०
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् ।
तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान् बहून् ॥
विकर्णो वारयामास
इच्छन् भीष्मस्य जीवितम् ।
सहदेवं तथा राजन्
यान्तं भीष्मरथं प्रति ॥ १२
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम् ॥ १३
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्बली ।
सात्यकिं समरे यान्तं तव पुत्रो न्यवारयत्
अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति ।
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥
विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥
तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणं
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १७
अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश १८
दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे ।
अन्ये च तावका योधाः
पाण्डवानां महारथान् ॥ १९
भीष्मस्याभिमुखान्यातान्वारयामासुराहवे ।
धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशंस्तु पुनः पुनः २०
अभ्यद्रवत संरब्धो भीष्ममेकं महारथः ।
एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दन ॥ २१
अभ्यद्रवत माभैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः ।
अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ॥ २२
किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः
इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः २३
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ।
आगच्छमानान् समरे वार्योघान् प्रलयानिव
अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः ।
दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ॥
भीष्मस्य जीविताकाङ्क्षी धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति २६
अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान् महारथाः ।
तत्राद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशांपते ॥ २७
दुःशासनरथं प्राप्य यत् पार्थो नात्यवर्तत ।
यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् २८
तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् ।
उभौ तौ रथिनां श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयौ २९
उभौ चन्द्रार्कसदृशौ
कान्त्या दीप्त्या च भारत ।
तथा तौ जातसंरम्भा-
वन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३०
समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा ।
दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः
वासुदेवं च विंशत्या ताडयामास संयुगे ।
ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम्
दुःशासनं शतेनाजौ नाराचानां समार्पयत्
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥

११०

अर्जुन इति ।। १ ।। रभसं कृतोत्साहम् ।। १८ ।। ~ ।। २७ ।।

प्रलयानिव प्रलयकालीनानिव ।। २४ ।। अद्भुतं अभूतपूर्वम्

दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३४
ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे ।
यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यर्थमुच्छ्रितैः ॥ ३५
सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना ।
व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ३६
दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः ।
पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुः पूर्णं निशाकरम् ३७
पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशांपते ।
विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ३८
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा रथं चास्य त्रिभिः शरैः
आजघान ततः पश्चात् पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः
अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ४०
तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः ।
अप्रैषीद्विशिखान्घोरान्यमदण्डोपमान्बहून् ॥
अप्राप्तानेव तान्बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२
पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत् तनयस्तव ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान् संधाय कार्मुके ॥
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः ४४
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत ।
पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥ ४५
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत् ।
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ४६
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशांपते ।
अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४७
शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रं पुरंदरः ।
निर्बिभेद महाकायो विव्यथे नैव चार्जुनः ४८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासनसमागमे
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## १११

सञ्जय उवाच ।
सात्यकिं दंशितं युद्धे भैष्मायाभ्युद्यतं रणे
आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १
माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।
आजघान रणे राजन् प्रहसन्निव भारत ॥ २
तथैव राक्षसो राजन् माधवं नवभिः शरैः ।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३
शैनेयः शरसङ्घं तु प्रेषयामास संयुगे ।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४
ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च
माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा ।
धार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च ॥६
भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः ।
ताडयामास समरे तोत्रैरिव महागजम् ॥ ७
विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः ।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान् संनतपर्वणः ॥
तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः
चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९
अथान्यद्धनुरादाय वेगवत् परवीरहा ।
भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः १०
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन्
शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम् ॥ ११
यमदण्डोपमां घोरां चिक्षेप परमाहवे ।
तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम् ॥
सात्यकिः समरे राजन्त्रिधा चिच्छेद सायकैः
ततः पपात सहसा महोल्केव हतप्रभा ॥ १३
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशांपते ।
महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १४

अप्रैषीत् उपसर्गात्पूर्वोऽडागमस्तु च्छांदसः एवमन्यत्रापि ॥ ४१ ॥ द्वीप आश्रयः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

१११

सात्यकिमिति ॥ १ ॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम्।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातॄन् सर्वानुवाच ह॥
तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि
न जीवन् प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद्रथव्रजात्
तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्बलम्।
तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः॥१७
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाभ्युद्यतं रणे।
काम्बोजराजो बलवान् वारयामास संयुगे॥
आर्जुनिं नृपतिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः।
पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन्विव्याध तं नृप॥१९
सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं चास्य नवभिरिच्छन्भीष्मस्य जीवितं
तद्युद्धमासीत् सुमहत्तयोस्तत्र समागमे।
यदाऽभ्यधावद्गाङ्गेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः॥
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम्।
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ॥
अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समियाद्रथसत्तमः।
ततः प्रववृते युद्धं तयोस्तस्य च भारत॥ २३
विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परंतप।
यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् २४
द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा।
गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौ॥ २५
अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध बहुभिः शरैः
विराटद्रुपदौ वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ २६
तत्राद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत्।
यद्द्रौणिसायकान् घोरान् प्रत्यवारयतां युधि
सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात्।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् २८
कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम्।
आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः॥२९
तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम्
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः॥ ३१

आजघानोरसि क्रुद्ध
इच्छन् भीष्मस्य जीवितम्।
तथैव पाण्डवो राज-
न्छारद्वतममर्षणम्॥ ३२

आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकांक्षया।
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं भयावहम्॥ ३३

नकुलं तु रणे क्रुद्धो
विकर्णः शत्रुतापनः।
विव्याध सायकैः षष्ट्या
रक्षन् भीष्मं महाबलम्॥ ३४

नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ३५
तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परंतपौ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ३६
घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम्।
दुर्मुखः समरे प्रायाद्भीष्महेतोः पराक्रमी॥
हैडिम्बस्तु रणे राजन् दुर्मुखं शत्रुतापनम्।
आजघानोरसि क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा॥३८
भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः।
षष्ट्या वीरो नदन् हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि
धृष्टद्युम्नं तथा यान्तं भीष्मस्य वधकांक्षिणम्।
हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः॥४०
हार्दिक्यः पार्षतं चापि विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः
पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥
आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम्।
तं चैव पार्षतो राजन् हार्दिक्यं नवभिः शरैः।
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः।
तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महाहवे॥ ४३
अन्योन्यातिशये युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः।
भीमसेनं तथा यान्तं भीष्मं प्रति महारथम्॥
भूरिश्रवाभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे॥४५
नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे।
उरःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान्॥४६
स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम
तौ शरान् सूर्यसङ्काशान् कर्मारपरिमार्जितान्
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ।
भीमो भीष्मवधाकाङ्क्षी सौमदत्तिं महारथं
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम्
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे॥ ४९
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम्।
भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत्॥
द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम्।
श्रुत्वा प्रभद्रका राजन् समकम्पन्त मारिष॥
सा सेना महती राजन् पाण्डुपुत्रस्य संयुगे।
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात्पदम्॥

चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर।
चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५३
भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनः पराक्रमी।
चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ॥
तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत्।
तद्युद्धमासीत् सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ॥ ५५
अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत।
विमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्द ह ॥ ५६
दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत्
कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत
सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव वाहिनी।
लोड्यते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## ११२

सञ्जय उवाच।
अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १
विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूथिनीम्।
पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥ २
निमित्तानि निमित्तज्ञः
सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान्।
प्रतपन्तमनीकानि
द्रोणः पुत्रमभाषत ॥ ३
अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः।
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ४
उत्पतन्ति हि मे बाणा धनुः प्रस्फुरतीव च।
योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः ॥ ५
दिक्ष्वशान्तानि घोराणि
व्याहरन्ति मृगद्विजाः।
नीचैर्गृध्रा निलीयन्ते
भारतानां चमूं प्रति ॥ ६
नष्टप्रभ इवादित्यः सर्वतो लोहिता दिशः।
रसते व्यथते भूमिः कम्पतीव च सर्वशः ॥ ७
कङ्कगृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः।
शिवाश्चैवाशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद्भयम्
पपात महती चोल्का
मध्येनादित्यमण्डलात्।
सकबन्धश्च परिघो
भानुमावृत्य तिष्ठति ॥
परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत्।
वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् १०
देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः।
कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च
अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम्।
अवाक्शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः
वपूंषि च नरेन्द्राणां विगताभानि लक्षये।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः
सेनयोरुभयोश्चापि
समन्ताच्छ्रूयते महान्।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो
गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥ १४
ध्रुवमास्थाय बीभत्सु-
रुत्तमास्त्राणि संयुगे।
अपास्यान्यान् रणे योधा-
नभ्येष्यति पितामहम् ॥ १५
हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः।
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम्
तं चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम्।
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्यायोधनं गतः ॥

---

लोड्यते आकुलीक्रियते ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

अशोत ॥ १ ॥ घोराणि भयङ्कराणि अशान्तानि अनुपरतानि ॥ ६ ॥ रसते शब्दायते व्यथते बिभेतीव कम्पत इव च ॥ ७ ॥ अलक्ष्माणं प्रचण्डलक्षणेलक्षितं अवाक्शिरा अधोमुखकोटिद्वयः ॥ १२ ॥

अब्रवीच्च पुरा भीष्मो
नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा
दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥ १८
अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः ।
न चामङ्गलिके तस्मिन् प्रहरेदापगासुतः ॥ १९
एतद्विचिन्तयानस्य मज्ञा सीदति मे भृशम् ।
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २०
युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चार्जुनसङ्गतः
मम चास्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् २१
मनस्वी बलवान् शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२
अजेयः समरे चापि देवैरपि सवासवैः ।
बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः २३
विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
तस्य मार्गं परिहरन् द्रुतं गच्छ यतव्रत २४
पश्याद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत् ।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च
कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च
प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः
शक्तयश्च कनकोज्ज्वलाः ।
वैजयन्त्यश्च नागानां
संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ २७
नायं संरक्षितुं कालः प्राणान् पुत्रोपजीविभिः
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च २८
रथनागहयावर्तां महाघोरां सुदुर्गमाम् ।
रथेन संग्रामनदीं तरत्येष कपिध्वजः ॥ २९
ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
इहैव दृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३०
भीमसेनश्च बलवान् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ।
तस्यैष मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति *भारतीम् ॥
एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
दारयन् सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥
एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना ।
महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव महाजलम् ॥ ३४
हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे ।
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥
दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्यामिततेजसः ।
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ ३६
सात्यकिश्चाभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥ ३७
उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्गतः ।
एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीय इव फाल्गुनः ॥
उत्तमास्त्राणि चाधत्स्व गृहीत्वा च महद्धनुः
पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥
को हि नेच्छेत्प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः
क्षत्रधर्मं तु संप्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम् ॥
एष चातिरणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् ।
युद्धेषु सदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्रोणाश्वत्थामसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## ११३

सञ्जय उवाच ।
भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः १
चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः ।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २
महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
भीष्मस्य समरे राजन् प्रार्थयाना महद्यशः ३

आस्थाय आलंब्य १५ अस्त्रसमारंभः उद्यममात्रं न तु पूर्ववदस्त्राणामुपस्थितिः २१॥ हे पुत्र उपजीविभिरनुगतैः ॥२८॥ पार्थे युधिष्ठिरे ॥३०॥ तस्य धर्मस्य मन्युर्दैन्यं भारतीं सेनामिति शेषः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

†'प्रज्ञा' 'मनः' इति च पाठान्तरे *वाहिनीम् इति पाठान्तरम्

११३

भगदत्त इति ॥ १ ॥

शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥४
चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयन् ॥५
सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ।
स तान् सर्वान् महाराज
राजमानान् पृथक् पृथक् ॥ ७
प्रवीरान् सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान् महारथान्
जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥ ८
सप्तभिः शल्यमाविध्यत् कृतवर्माणमष्टभिः ।
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥९
अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत्
दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः ।
विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥११
विद्ध्वा भीमोऽनदद्धृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः
अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥१२
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः ।
स विद्धो दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपः १३
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे ॥ १४
सैन्धवस्य तथाश्वांश्च सारथिं च त्रिभिः शरैः
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥
हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
शरांश्चिक्षेप निशितान् भीमसेनस्य संयुगे ॥
तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिष
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः १७
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥ १८
अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः ।
महारथान् शरैर्विद्ध्वा वारयित्वा च मारिष
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः ।
तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् २०
स सन्धाय शरांस्तीक्ष्णान्
कर्मारपरिमार्जितान् ।
भीमं विव्याध समरे
तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २१
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥
दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् ।
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिंदमाः २३
स च तान् प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः
तं शल्यो नवभिर्भित्त्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं चास्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि॥
विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान्
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥२६
तथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
ताडयामास समरे सिंहवच्चिननाद च ॥ २७
ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम्
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन्॥२८
सोऽतिविद्धो महेष्वासो
भीमसेनो न विव्यथे ।
पर्वतो वारिधाराभि-
र्वर्षमाणैरिवाम्बुदैः ॥ २९
स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः ।
मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा महायशाः ३०
कृपं च नवभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा समंततः ।
प्राग्ज्योतिषं शतैराजौ
राजन् विव्याध सायकैः ॥ ३१
ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥३२
तथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परंतपः ॥ ३३
भीमस्तु समरे विद्ध्वा शल्यं नवभिरायसैः ।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीन्रथान्
तेऽपि तं समरे राजन् विव्यधुर्निशितैः शरैः
स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः ।
मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान् विचचार गतव्यथः

कर्मारं शस्त्रोल्लेखनयंत्रम् ॥२१ सात्वतस्य कृतवर्मणः ॥ ३२ ॥ मत्वा तृणेन तांस्तुल्यानिति तुल्यशब्दोपादानान्न द्वितीया चतुर्थ्यौ किंतु तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यामिति तृतीया ॥ ३६ ॥

ते चापि रथिनां श्रेष्ठा
भीमाय निशितान् शरान् ।
प्रेषयामासुरव्यग्राः
शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७
तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते ॥३८
तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे ३९
अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥ ४०
तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणानिलात्मजः ।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत्
स बिभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महारथः ॥ ४२
शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।
तथेतरान् शरान् घोरान् शरैः सन्नतपर्वभिः
भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत्
तांश्च सर्वान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत
ततो धनञ्जयस्तत्र वर्तमाने महारणे ।
आजगाम रथेनाजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ४५
निघ्नन्तं समरे शत्रून्योधयानं च सायकैः ।
तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ
न शशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः ।
अथार्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान्॥४७
भीष्मस्य निधनाकाङ्क्षी पुरस्कृत्य शिखण्डिनं
आससाद रणे वीरांस्तावकान् दश भारत ॥
ये स्म भीमं रणे राजन् योधयन्तो व्यवस्थिताः
बीभत्सुस्तानथाविध्यद्भीमस्य प्रियकाम्यया ॥
ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ५०
सुशर्मन् गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः
जहि पाण्डुसुतावेतौ धनञ्जयवृकोदरौ ॥ ५१
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य त्रैगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
अभिद्रुत्य रणे भीममर्जुनं चैव धन्विनौ ॥ ५२
रथैरनेकसाहस्रैः समंतात् पर्यवारयत् ।
ततः प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमपराक्रमे
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

## ११४

सञ्जय उवाच ।
अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम् ।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १
सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ।
प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम् ॥
चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च ।
दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ ॥३
एकैकं त्रिभिरानर्च्छत् कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
शरैरतिरथो युद्धे पीडयन् वाहिनीं तव ॥ ४
जयद्रथो रणे पार्थं विद्ध्वा भारत सायकैः ।
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥५
शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः ।
विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः ॥६
चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशांपते ।
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः ७
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष ।
तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥८
अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्बलम् ।
सुशर्माऽपि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः ॥ ९
ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद्बलम् ।
अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ १०
विव्यधुर्निशितैर्बाणै रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।
तेषां च रथिनां मध्ये कौन्तेयौ भरतर्षभौ ११
क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम्
आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव मदोत्कटौ
छित्त्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे ।
पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम्

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकंठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

११४
अर्जुन इति ॥ १ ॥

रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः।
गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महाहवे १४
रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निषूदिताः।
दृश्यन्ते बहवो राजन् वेपमानाः समंततः१५
हतैर्गजपदात्यौघैर्वाजिभिश्च निषूदितैः।
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥१६
छत्रैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः।
अंकुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत ॥ १७
केयूरैरङ्गदैर्हारै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा।
उष्णीषैर्ऋष्टिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि ॥ १८
तत्र तत्रापविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः।
ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी १९
तत्राद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम्।
शरैः संवार्य तान् वीरान् यज्जघान महाबलः
पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम्।
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः ॥२१
कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाजहुः संयुगं तदा
ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः।
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे २३
ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च।
धनञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः ॥२४
ततस्तान् शरजालेन सन्निवार्य महारथान्।
पार्थः समन्तात् समरे प्रेषयामास मृत्यवे२५
शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः।
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः सन्नतपर्वभिः २६
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं च पञ्चभिः
अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि॥
अथान्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम्।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥२९
ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः।
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ ३०

यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ३१
जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३२
तं भीमो दशभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ३३
उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः।
मागधोऽपसृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥
द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः।
विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिरायसैः॥
तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे।
विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत॥
अर्जुनस्तु सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः।
व्यधमत्तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथाऽनिलः
ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः।
समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३८
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
अभ्यद्रवन्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम्
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम्।
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महारथात् ४०
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनं
अयोधयन् रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयैः॥
तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम्।
शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे
ततः प्रववृते युद्धं कौरवाणां भयावहम्।
तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति॥
तावकानां जये भीष्मो ग्लह आसीद्विशांपते।
तत्र हि द्यूतमासक्तं विजयायेतराय वा ॥ ४४
धृष्टद्युम्नस्तु राजेन्द्र सर्वसैन्यान्यचोदयत्।
अभ्यद्रवत गांगेयं मा भैष्ट रथसत्तमाः ॥ ४५
सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी।
भीष्मं समभ्ययात् तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे
भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम्
आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमार्जुनपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥

बर्हिणवाजानां मयूरपिच्छवतां बाणानाम् ॥ २४ ॥ मागधो जयत्सेनः ॥ ३० ॥ अपसृतः पलायितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

# ११५.

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं शान्तनवो भीष्मो दशमेऽहनि सञ्जय ।
अयुध्यत महावीर्यैः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ १
कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान् प्रत्यवारयन् ।
आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याहवशोभिनः
सञ्जय उवाच ।
कुरवः पाण्डवैः सार्धं यद्युध्यन्त भारत ।
यथा च तदभूद्युद्धं तत्तु वक्ष्यामि सांप्रतम् ३
गमिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिना ।
अहन्यहनि संक्रुद्धास्तावकानां महारथाः ४
यथाप्रतिज्ञं कौरव्यः स चापि समितिंजयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समिति क्षयम् ५
कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं परंतप ।
अर्जुनं च सपाञ्चाल्यं संशयो विजयेऽभवत् ६
दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे ।
अवर्तत महारौद्रः सततं समिति क्षयः ॥ ७
तस्मिन्नयुतशो राजन् भूयशश्च परंतपः ।
भीष्मः शान्तनवो योधाञ्जघान परमास्त्रवित्
येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव ।
ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्तिनः ९
दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीं
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परंतप ॥ १०
स क्षिप्रं वधमान्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखो रणे ।
न हन्यां मानवश्रेष्ठान् संग्रामे सुबहूनिति ११
चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत्॥
युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
शृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥
निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनानेन भारत।
घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून् प्राणिनो रणे ॥
तस्मात् पार्थं पुरोधाय पञ्चालान् सृंजयांस्तथा
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम्
तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
भीष्मं प्रति ययौ राजा संग्रामे सह सृंजयैः॥
धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम्
अभिद्रवध्वं युध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
रक्षिताः सत्यसन्धेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना॥
अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः।
भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥
मा वो भीष्माद्भयं किंचि-
दस्त्वद्य युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनं
ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्छिताः॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥
ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सह पुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३
दुःशासनश्च बलवान् सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयांचक्रिरे तदा ॥२४
ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान्
योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५
चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ॥
ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्
द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।
अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् २७
विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद परंतप ॥ २८
मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् २९
अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
द्रौणिं प्रति ययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोदरैः
कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिंदमः ।
प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३१
शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम्।
राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२
तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
संप्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३
तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे३४

११५
कथमिति ॥ १ ॥ निरविद्यत निर्वेदं जगाम ॥१०॥ निर्विण्णो विरक्तः ॥ १४ ॥ ब्रह्मलोकपराः बृहत्त्वान्महान्तं लोकं प्रति यतमानाः ॥ २१ ॥

ततस्तेषां प्रतप्तानामन्योन्यमभिधावताम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥३५
शङ्खदुन्दुभिघोषश्च वारणानां च बृंहितैः ।
सिंहनादश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥३६
सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा ।
वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७
रजोमेघास्तु सञ्जज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः ।
धनुषां चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥३८
बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः ॥
रथघोषश्च सञ्जज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥ ३९
प्रासशक्त्यृष्टिसङ्घैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् ।
निष्प्रकाशमिवाकाशं सेनयोः समपद्यत ४०
अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे ।
कुञ्जरान् कुञ्जरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ४१
तत्रासीत् सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥४२
तयोः समागमो घोरो बभूव युधि संगतः ।
अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे४३

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपदेशे
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## ११६

सञ्जय उवाच ।
अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।
महत्या सेनया युक्तं भीष्महेतोः पराक्रमी १
दुर्योधनो रणे कार्ष्णिं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः २
तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरां स्वसामिव
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशांपते ।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४
तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥५
पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।
दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥ ६
तद्युद्धमभवद्घोरं चित्ररूपं च भारत ।
इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७
भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च।
युयुधाते रणे वीरौ सौभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥ ८
सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परंतपः ॥ ९
शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत ।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः ॥१०
अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः ॥१२
पौरवो धृष्टकेतुं च शरैराच्छाद्य संयुगे ।
बहुधा दारयांचक्रे महेष्वासं महारथः ॥ १३
तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः ।
त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाशु महाभुजः ॥
पौरवस्तु धनुश्छित्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः१५
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः
आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः१६
तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ ।
महता शरवर्षेण परस्परमविध्यताम् ॥ १७
अन्योन्यस्य धनुश्छित्वा हयान्हत्वा च भारत
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ॥ १८
आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते ।
तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ १९
प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ ।
वासितासंगमे यत्तौ सिंहाविव महावने २०
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥ २१
पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना ।
ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६
अभिमन्युरिति ॥ १ ॥

चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम् ।
आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना २३
तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे ।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिंदमौ ॥ २४
ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव ।
जयत्सेनो रथेनाजावपोवाह रणाजिरात् २५
धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
अपोवाह रणे क्रुद्धः सहदेवः पराक्रमी ॥ २६
चित्रसेनः सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः २७
सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशांपते ।
दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः २८
चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिंशता नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥
भीष्मस्य समरे राजन्यशो मानं च वर्धयन् ।
सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत् ॥ ३०
पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्यायोधनं प्रति
आर्जुनिं कोसलेंद्रस्तु विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सौभद्रः कोसलेन्द्रं तु विव्याधाष्टभिरायसैः
नाकंपयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः ।
कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः
आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ॥
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः
तयोर्युद्धं समभवद्भीष्महेतोः परंतप ॥ ३५
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः ।
यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत् ॥ ३६
भीमसेनो गजानीकं योधयन् बह्वशोभत ।
यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन् पर्वतोत्तमान् ३७
ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसन्निभाः ।
निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥
गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ३९
युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे ।
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास संगतम् ४०
मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।
पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥
विराटं सैन्धवो राजा विद्ध्वा सन्नतपर्वभिः ।
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत् ४२
विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः ।
त्रिंशद्भिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ४३
चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ ।
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ४४
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे ।
महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४५
ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः ।
छित्त्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ४६
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥
ताञ्छराञ्छरघातेन चिच्छेद स महारथः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत् पञ्च सायकान्
ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ४९
तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् ।
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ५०
सा छिन्ना बहुधा राजन् द्रोणचापच्युतैः शरैः
चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ५१
गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुतापनः ।
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारसवीं शुभाम्
तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५३
एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्षतयोरभूत् ।
भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥
अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन्निशितैः शरैः ।
अभ्यद्रवत संयत्तो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ५५
प्रत्युद्ययौ च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ५६
तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसंनिभम् ।
परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्यपद्यत ॥ ५७
ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५८
अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः ।
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५९
शिखंडिनं च कौंतेयो याहि याहीत्यचोदयत्
भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाब्रवीत्

चित्रसेन इति । पाण्डवपक्षीयः सुशर्माऽयमपरो वार्धक्षेमिर्नतु त्रैगर्तः ॥ २७ ॥ समुदयं संग्रामम् । 'भवेत्समुदयः संघे संयुगे च समुद्गमे' इति मेदिनी ॥ ४५ ॥

प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पांडवं पाण्डुपूर्वज
प्रययौ त्वरितो राजन् द्रुपदस्य रथं प्रति ६१
ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद्द्रुतम् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥ ६२
ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि ।
समभ्यधावन् क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ६३
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाभ्राणि मारुतः
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम्
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
शरसङ्घमहाज्वालः क्षत्रियान् समरेऽदहत्
यथाऽग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि
दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन् ॥ ६७
सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान्
न्यवारयत तत् सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ६८
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः सन्नतपर्वभिः ।
नादयन् स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे
पातयन् रथिनो राजन् हयांश्च सह सादिभिः
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥७०
निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजानश्वांश्च संयुगे
चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥७१
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
निशम्य सर्वतो राजन्समकम्पन्त सैनिकाः॥
अमोघा न्यपतन् बाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर ।
नासज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः॥
निर्मनुष्यान् रथान् राजन् सुयुक्तान् जवनैर्हयैः
वातायमानानद्राक्षं ह्रियमाणान् विशांपते ॥
चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः॥
अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥
जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवान्तकम्
न तत्रासीद्रणे राजन् सोमकानां महारथः ॥
यः संप्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे
तांश्च सर्वान् रणे योधान् प्रेतराजपुरं प्रति
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम्।
न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ॥ ७९
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम्॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

## ११७

संजय उवाच ।
शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम् ।
दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे ॥ १
शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ।
संप्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ २
स्त्रीत्वं तस्य स्मरन् राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः
नाजघान रणे भीष्मः स च तन्नावबुद्धवान्॥
अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत ।
अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम् ॥४
किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम्।
न ह्यन्यमनुपश्यामि कश्चिद्यौधिष्ठिरे बले ॥
यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोद्धुमिहाहवे ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत ॥ ७
अचिन्तयित्वा तान् बाणान्
पिता देवव्रतस्तव ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं
वारयामास सायकैः ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७
शिखण्डीति ॥ १ ॥ विवक्षया विचारेण संशयेन वा ॥ ५ ॥

तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः ।
अप्रैषीत् स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ९
तथैव पाण्डवा राजन् सैन्येन महता वृताः ।
भीष्मं संछादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् १०
स समन्तात् परिवृतो भारतो भरतर्षभ ।
निर्ददाह रणे शूरान् वने वह्निरिव ज्वलन् ११
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
अयोधयच्च यत् पार्थं जुगोप च पितामहम् १२
कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः ।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः १३
यदेकः समरे पार्थान् सार्जुनान् समयोधयत् ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्बणम् १४
दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः ।
सादिनश्च महेष्वासा हस्तिनश्च महाबलाः १५
विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्वसुधातले ।
शरातुरास्तथैवान्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥
यथाग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुल्बणम्
तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन् ॥
तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः ।
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाभ्युद्यातुं कथञ्चन १८
ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात् कृष्णसारथेः ।
स हि तं समरे राजन्निर्जित्य विजयोऽर्जुनः
भीष्ममेवाभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः ॥
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः ।
अर्जुनस्तु रणे राजन् योधयन् संव्यराजत २१

शिखण्डी तु रणे राजन
विव्याधैव पितामहम् ।
शरैरशनिसंस्पर्शै-
स्तथा सर्पविषोपमैः ॥ २२

न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।
स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान् बाणान् जगृहे तदा
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः
तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।

भीष्मं दहन्तं सैन्यानि
पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २५

ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे २६

भीष्मो वः समरे सर्वान्
पालयिष्यति धर्मवित् ।
ते भयं सुमहत्त्यक्त्वा
पाण्डवान् प्रति युध्यत ॥ २७

हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन् ।
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च २८
त्रिदशाऽपि समुद्युक्ता नालं भीष्मं समासितुम्
किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूता महाबलाः
तस्माद्द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे
अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम्
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः ।
तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः
सर्वे योधाः सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः
ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दासेरकगणाश्च ह ३२
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे ।
बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ३३
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।

शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च
अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ३४

अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम् ।

*शलभा इव राजेन्द्र
पार्थमप्रतिमं रणे ।
एतान् सर्वान् सहानीकान्
महाराज महारथान् ॥ ३५

दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसंधाय धनञ्जयः
स तैरस्त्रैर्महावेगैर्ददाह सुमहाबलः ॥ ३६
शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः ।
तस्य बाणसहस्राणि सृजतो दृढधन्विनः ३७
दीप्यमानमिवाकाशे गाण्डीवं समदृश्यत ।
ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः ३८
नाभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम् ।
सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ३९
सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः ।
ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृताऽऽसीद्वसुन्धरा ४०
विद्रवद्भिश्च बहुधा बलै राज्ञां समन्ततः ।
अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम्

---

उल्बणमुग्रम् ॥१४॥ भारतमहामात्रं भरतवंशश्रेष्ठम्॥१८॥ शर्म सुखहेतुत्वात् वर्म रक्षाहेतुत्वात् ॥ २८ ॥ समासितुं उपसर्पितुं नाशयितुं वा मर्त्यभूताः मर्त्यस्वरूपाः ॥ २९ ॥

* एतदर्धमधिकं भाति ।

दुःशासनाय सुबहून् प्रेषयामास सायकान् ।
ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ४२
धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः ।
हयांश्चास्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत्
विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान् प्रभुः
आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ४४
कृपं विकर्णं शल्यं च विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ४५
एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष ।
दुःशासनोऽथ विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥
संप्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥ ४७
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ।
तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव ॥ ४८
अन्यानपि महाराज तापयामास पार्थिवान्
पराङ्मुखीकृत्य तथा शरवर्षैर्महारथान् ४९
प्रावर्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।
मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥
गजाश्च रथसङ्घाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
रथाश्च निहता नागैर्हयाश्चैव पदातिभिः ५१
अंतराच्छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च
निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्वरथयोधिनाम् ५२
छन्नमायोधनं राजन् कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥ ५३
रथनेमिनिकृत्तैश्च गजैश्चैवावपोथितैः ।
पादाताश्चाप्यधावन्त साश्वाश्च हययोधिनः
गजाश्च रथयोधाश्च परिपेतुः समन्ततः ।
विकीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ५५
तद्गजाश्वरथौघानां रुधिरेण समुक्षितम् ।
छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव शारदम् ॥ ५६
श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृका गोमायुभिः सह
प्रणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ५७
ववुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥ ५८
काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः
धूयमाना व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ५९
श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः ।
विकीर्णाः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥
सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः
क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ६१
समन्ततश्च दृश्यन्ते पतिता धरणीतले ।
ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ॥
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम्
तं शिखण्डी रणे यान्तमभ्यद्रवत दंशितः ६३
ततः समाहरद्भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम् ।
त्वरितः पाण्डवो राजन् मध्यमः श्वेतवाहनः
निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम्

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

## ११८

संजय उवाच ।
समं व्यूढेष्वनीकेषु भूयिष्ठेष्वनिवर्तिनः ।
ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥ १
न ह्यनीकमनीकेन समसज्जत सङ्कुले ।
रथा न रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः
अश्वा नाश्वैरयुध्यन्त गजा न गजयोधिभिः
उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते तत्र भारत ॥ ३
महान् व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ।
नरनागगणेष्वेवं विकीर्णेषु च सर्वशः ॥ ४
क्षये तस्मिन् महारौद्रे निर्विशेषमजायत ।
ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥ ५
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान्
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन्

महाधना बहुमूल्याः ॥५९॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

११८

सममिति ॥ १ ॥ व्यतिकरः क्षोभः ॥ ४ ॥

सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः ।
भ्राम्यते बहुधा राजन्मारुतेनेव नौर्जले ॥ ७
यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति
तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना ।
नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ९
मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः ।
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः १०
पेतुरार्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः ।
आनद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥
छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये ॥ १२
भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये
ते पराक्रान्तमालोक्य राजन् युधि पितामहं
अभ्यवर्तन्त ते पुत्राः सर्वे सैन्यपुरस्कृताः ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम्
पाण्डवानभ्यवर्तन्त तस्मिन् वीरवरक्षये ।
पांडवाऽपि महाराज स्मरंतो विविधान्बहून्
क्लेशान् कृतान् सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप
भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः
तावकास्तव पुत्रांश्च योधयन्ति प्रहृष्टवत् ।
सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ॥ १७
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह ।
सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते ॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः
वध्यमानस्ततो राजन् पिता शान्तनवस्तव
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् ।
तस्य कीर्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता २०
संप्रदत्तास्त्रशिक्षा वै परानीकविनाशनी ।
स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन् परबलक्षयम् ॥
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भीष्मो दश सहस्राणि जघान परवीरहा २२
तस्मिस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ ।
भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पञ्चालेषु च संयुगे २३
गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः ।
हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः २४
नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ।
दन्तिनां च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः २५
शिक्षाबलेन निहतं पित्रा तव विशांपते ।
ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् २६

विराटस्य प्रियो भ्राता
शतानीको निपातितः ।
शतानीकं च समरे
हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ २७
सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैरपातयत् ।
उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनञ्जयम्
ये च केचन पार्थानामभियाता धनञ्जयम् ।
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम्
एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ ३०
स कृत्वा सुमहत् कर्म तस्मिंन्वै दशमेऽहनि
सेनयोरन्तरे तिष्ठन् प्रगृहीतशरासनः ॥ ३१
न चैनं पार्थिवाः केचि-
च्छक्ता राजन्निरीक्षितुम् ।
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे
तपन्तं भास्करं दिवि ॥ ३२
यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे ।
तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत
तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः ।
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ३४
एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः ।
सन्निहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ३५
बलात् संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः ।
न हि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ।
ततस्तस्मिन्क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः ।
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ३७
स चापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान्
शरव्रातैः शरव्रातान् बहुधा विदुधाव तान्
ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३९
यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह ।
सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः
द्रौपदेयाः शिखण्डी च
कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
सुशर्मा च विराटश्च
पाण्डवेया महाबलाः ॥ ४१
एते चान्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः।
समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे४२
ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥

ततोऽस्यानुचरान् हत्वा
सर्वान् रणविशारदः ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः ॥४४
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥४५
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाजौ रक्षिता दृढधन्वना ।
अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ।
ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः ॥ ४७
बहुधा भीष्ममानर्छुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः ।
विधूय तान् बाणगणान्ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम्
चक्रे शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ४९

नाभिसन्धत्त पाञ्चाल्ये
स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मृत्य
भीष्मो बाणान् शिखण्डिने ॥
जघान द्रुपदानीके रथान् सप्त महारथः ।
ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत्तदा ५१
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ।
ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परन्तप ॥ ५२
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ५३
ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।
किरीटी भीष्ममानर्छत्पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपराक्रमे
अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## ११९

सञ्जय उवाच ।
एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः १
शतघ्नीभिः सुघोराभिः परिघैश्च परश्वधैः ।
मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीयैश्च सर्वशः ॥ २
शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः ३
अताडयन् रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः ।
स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ४
न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।
सन्दीप्तशरचापाग्निरस्त्रप्रसृतमारुतः ॥ ५
नेमिनिर्ह्रादसन्तापो महास्त्रोदयपावकः ।
चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥ ६
युगान्ताग्निसमप्रख्यः परेषां समपद्यत ।
विवृत्त्य रथसङ्घानामन्तरेण विनिःसृतः ॥ ७
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ।
ततः पञ्चालराजं च धृष्टकेतुमचिन्त्य च ८
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशांपते ।

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनञ्जयम्
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरणभेदिभिः ॥ १०
षडेतानिशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः ।
तस्य ते निशितान्बाणान्सन्निवार्य महारथाः
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा ।
शिखण्डी तु महाबाणान् यान्मुमोच महारथः
न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः
ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाभ्यधावत
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत्
भीष्मस्य धनुषश्छेदं नामृष्यन्त महारथाः ॥
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च १५
सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः ।
तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥
अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्तश्च पाण्डवम् ।
तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति १७

अदीनात्मा अक्षीणस्वभावः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९.
एवमिति ॥१॥ मर्मावरणं वर्म देहचर्म वा ॥१०॥

उद्धूतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये ।
प्रतानयत गृहीत विद्धयध्वंमवकर्तत ॥ १८
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥
अभ्यधावन् परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २०
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कच ।
अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्छिताः २१
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः ।
तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२
संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव ।
शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना
अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे ।
सारथिं दशभिश्चास्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम् ।
तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः
एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनःपुनः ।
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परन्तपः ॥
स छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम् ॥
तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव २८
समादत्त शितान् भल्लान् पञ्च पाण्डवनन्दनः ।
तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम् ।
सा पपात तथा च्छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना
मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा ।
छिन्नां तां शक्तिमालोक्य
भीष्मः क्रोधसमन्वितः ॥ ३१
अचिन्तयद्रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः ।
शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान्३२
यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः ।
कारणद्वयमास्थाय नाहं योत्स्यामि पाण्डवान्
अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः
पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहम् ३४
स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा ।
तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवात्मनः३५
एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्यामिततेजसः ।
ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन् ३६
यत्ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम् ।
तत्कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्तय ॥ ३७
अस्य वाक्यस्य निधने
प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः ।
अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः ३८
देवदुन्दुभयश्चैव संप्रणेदुर्महास्वनाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष ३९
न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां संवदतां नृप ।
ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥
संभ्रमश्च महानासीत् त्रिदशानां विशांपते ।
पतिष्यति रथाद्भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा ४१
इति देवगणानां च वाक्यं श्रुत्वा महातपाः ।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नान्यवर्तत
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः ।
शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम् ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः ।
स तेनाभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ॥
नाकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाचलः ।
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ४६
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ।
एवमन्यैरपि भृशं विद्ध्यमानः सहस्रशः॥४७
तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः ।
तैश्च मुक्ताञ्छरान् भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः
निवारयामास शरैः समं सन्नतपर्वभिः ।
शिखण्डी तु रणे बाणान् यान्मुमोच महारथः
न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः
ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाभ्यधर्तत ५०
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत्
अथैनं नवभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ५१
सारथिं विशिखैश्चास्य दशभिः समकम्पयत् ।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम्
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरघातयत् ।
निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे ॥ ५३
एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ ।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नात्यवर्तत ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत५५

आत्तमात्तं गृहीतं गृहीतम् ॥२६॥ व्यवसितं निश्चितम् ॥३७॥ निधने समाप्तौ ॥३८॥ मुनितेजसा व्यासप्रभावेण ॥४०॥

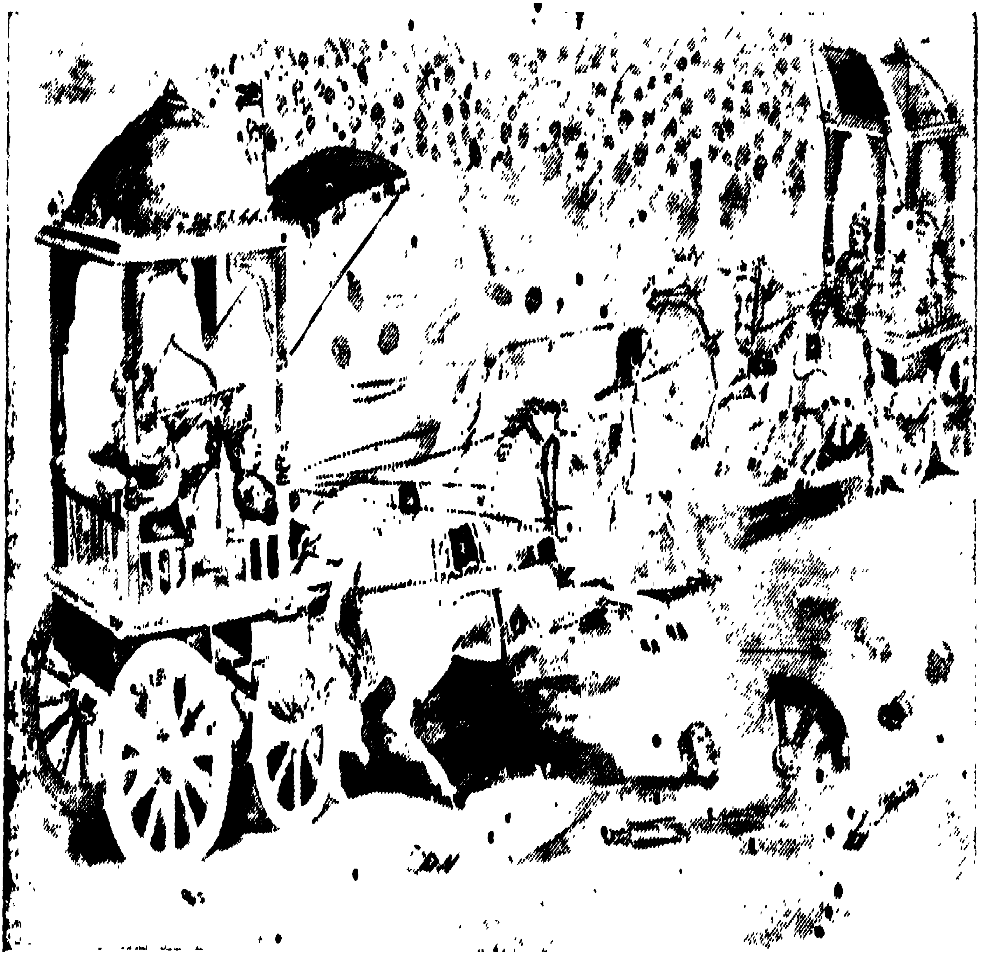

[ भीष्म उवाच-- ]

मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः।
वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ६२

भीष्म. अ. ११९ पृ. २८५

एष पार्थो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः।
शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाभ्यर्हयन्रणे ॥ ५६
न चैष समरे शक्यो जेतुं वज्रभृता अपि।
न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ५७
मां चापि शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्या महारथाः
एवं तयोः संवदतोः फाल्गुनो निशितैः शरैः
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संयुगे
ततो दुःशासनं भूयः स्मयमान इवाब्रवीत् ॥
अतिविद्धः शितैर्बाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना।
वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि ॥६०

मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना
नेमे बाणाः शिखण्डिनः।
निकृन्तमाना मर्माणि
दृढावरणभेदिनः ॥ ६१

मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः।
वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥ ६२
मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः
नाशयन्तीव मे प्राणान् यमदूता इवाहिताः
गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखण्डिनः।
भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्बणाः
समाविशन्ति मर्माणि नेमे बाणाः शिखण्डिनः
अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः
कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमां सेगवा इव।
सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ६६

वीरं गाण्डीवधन्वान-
मृते जिष्णुं कपिध्वजम्।
इति ब्रुवञ्छान्तनवो
दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ६७
शक्तिं भीष्मः स पार्थाय
ततश्चिक्षेप भारत।
तामस्य विशिखैश्छित्त्वा
त्रिधा त्रिभिरपातयत् ॥ ६८

पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत।
चर्माथादत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ६९
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा।
तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत्सायकैस्तथा ॥

रथादनवरूढस्य
तदद्भुतमिवाभवत्।
ततो युधिष्ठिरो राजा
स्वान्यनीकान्यचोदयत् ॥ ७१

अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि।
अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः ७२
पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैश्च तथा शितैः।
वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ॥ ७३
सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत्तदा।
तथैव तव पुत्राश्च तद्भीष्मजयैषिणः ॥ ७४
तमेकमभ्यरक्षन्त सिंहनादांश्च चक्रिरे।
तत्रासीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ७५
दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे।
आसीद्गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ॥ ७६
सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम्।
असौम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ताऽभवत्तदा
समं च विषमं चैव न प्राज्ञायत किंचन।
योधानामयुतं हत्वा तस्मिन् स दशमेऽहनि
अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु।
ततः सेनामुखे तस्मिन् स्थितः पार्थो धनुर्धरः
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम्
वयं श्वेतहयाद्भीताः कुन्तीपुत्राद्धनंजयात् ८०

पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः
प्राद्रवाम रणे तदा।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः
प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ८१

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः
शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह
सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः।
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना८३
ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः।
परिकाल्य कुरून् सर्वान् शरवर्षैरवाकिरन्

निपातयत गृह्णीत
युध्यध्वमवकृन्तत।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो
राजन् भीष्मरथं प्रति ॥ ८५

अव्यवच्छिन्नाः सन्तताः॥ ६१ ॥ 'माघमा कर्कटी प्रोक्ता तदपत्यं तु सेगवा'। यथा माघमां कर्कटीं मातरं सेगवास्तदपत्यानि कृंतंति उदरस्थान्यपत्यानि पृष्ठं विदार्य बाहिर्निर्गच्छंति तद्वदित्यर्थः। तेन प्राणापहारि वेदनाजनकत्वं बाणानां नेदं शिखंडिबाणेषु संभवति तेषां मदंगे पुष्पतुल्यत्वात्॥ ६६॥ अग्रे तेषां मृत्योरिति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। मृत्यवे इत्यर्थः॥ ७०॥

निहत्य समरे राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ।
न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे ह्यङ्गुलमन्तरम् ८६
एवंभूतस्तव पिता
शरैर्विशकलीकृतः ।
शिताग्रैः फाल्गुनेनाजौ
प्राक्शिराः प्रापतद्रथात् ॥ ८७
किंचिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम् ।
हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानां च भारत
पतमाने रथाद्भीष्मे बभूव सुमहास्वनः ।
संपतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम् ८९
सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन् हृदयानि नः ।
स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ ९०
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।
धरणीं न स पस्पर्श शरसङ्घैः समावृतः ९१
शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम् ।
रथात्प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत्
अभ्यवर्षच्च पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी ।
पतन् स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥
संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं संचिन्त्य भारत
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः
कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कालकर्ता नरव्याघ्रः संप्राप्ते दक्षिणायने ९५
स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेय-
स्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ।
*धारयामास च प्राणान्
पतितोऽपि महीतले ॥ ९६
उत्तरायणमन्विच्छन् भीष्मः कुरुपितामहः ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ९७
महर्षीन् हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै ।
ततः संपातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः
आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९९
ते तु भीष्मं समासाद्य ऋषयो हंसरूपिणः ।
अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् १००
ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्
गाङ्गेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् १०१
इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः ।
भीष्मः कथं महात्मा सन्संस्थाता दक्षिणायने
इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशं
संप्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥
तानब्रवीच्छान्तनवो नाहं गन्ता कथंचन ।
दक्षिणावर्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम्
गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम्
उदगायन आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः
धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकाङ्क्षया ॥
ऐश्वर्यभूतः प्राणानामुत्सर्गो हि यतो मम ॥
तस्मात्प्राणान् धारयिष्ये मुमूर्षुरुदगायने ।
यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ॥
छन्दतो मृत्युरित्येवं तस्य चास्तु वरस्तथा
धारयिष्ये ततः प्राणानुत्सर्गे नियते सति ॥
इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसान्स शेते शरतल्पगः ।
एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि ॥
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
तस्मिन्हते महासत्त्वे भरतानां पितामहे ११०
न किंचित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
संमोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत् तदा १११
कृपदुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः ।
विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन्विगतेन्द्रियाः ॥
दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः ।
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाभ्यधावन्त पाण्डवान्॥
अवध्ये शान्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि ।
अभावः सहसा राजन् कुरुराजस्य तर्कितः॥
हतप्रवीरास्तु वयं
निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।
कर्तव्यं नाभिजानीमो
निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ ११५
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम्
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान् शूराः परिघबाहवः॥
सोमकाश्च सपञ्चालाः प्राहृष्यन्त जनेश्वर ।
ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु स महाबलः ॥ ११७
आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च ।
सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये निहते विभौ ॥
संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समंततः
प्राक्रोशन्प्राद्रवंश्चान्ये जग्मुर्मोहं तथापरे ११९

कालं मृत्युम् ॥९५॥ दक्षिणेन दक्षिणमार्गस्थं भास्करं च दृष्ट्वेत्यन्वयः ॥ १०१ ॥ संस्थाता मरिष्यति ॥ १०२ ॥ ऐश्वर्येण स्वसामर्थ्येन भूतः प्राप्तः स्वच्छंदमृत्युत्वात् ॥ १०६ ॥ *'धारयिष्याम्यहं प्राणान्' इति पाठः ।

क्षत्रं चान्येऽभ्यनिन्दन्त
भीष्मं चान्येऽभ्यपूजयन् ।
ऋषयः पितरश्चैव
प्रशशंसुर्महाव्रतम् ॥ २०
भरतानां च ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे ।
महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान् ॥ २१
जपन् शान्तनवो धीमान्
कालाकाङ्क्षी स्थितोऽभवत् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मनिपातने
ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## १२०

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथमासंस्तदा योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ १
तदैव निहतान् मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः ।
न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणित्वाद्द्रुपदात्मजम् ॥ २
ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत् प्रभविष्यति ।
अद्याहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः ॥ ३
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥ ४
यदन्यन्निहतेनाजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।
चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥ ५
पुनःपुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा ॥ ६
स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
सञ्जय उवाच ।
सायाह्ने निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान् विषादयन् ।
पञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ७
स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ॥ ८
भीष्मे रथात् प्रपतिते प्रच्युते धरणीतले ।
हाहेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ॥ ९
सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिञ्जये ।
सेनयोरुभयो राजन् क्षत्रियान् भयमाविशत् ॥
भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् ।
कुरवः पर्यवर्तन्त पाण्डवाश्च विशांपते ॥ ११
खं तमः संवृतमभूदासीद्भानुर्गतप्रभः ।
ररास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥ १२
अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ह्ययं ब्रह्मविदां वरः ।
इत्यभाषन्त भूतानि शयानं पुरुषर्षभम् ॥ १३
अयं पितरमाज्ञाय कामार्तं शन्तनुं पुरा ।
ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥ १४
इति स्म शरतल्पस्थं भरतानां महत्तमम् ।
ऋषयस्त्वभ्यभाषन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥
हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे ।
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिष ॥ १६
विषण्णवदनाश्चासन् हतश्रीकाश्च भारत ।
अतिष्ठन् व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ।
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।
सर्वे दध्मुर्महाशंखान् हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १८
हर्षात् तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चानघ ।
अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥ १९
विक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् ।
निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् ॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

**कथमिति** ॥ १ ॥ सीमावृक्षे इति । ननु कौरवाणां तावद्भीष्मे सेनापतौ पतिते भयमुचितं प्रधानविनाशे जयाशाविच्छेदात् । पाण्डवानां तु कथं भयमग्रे तेषां हर्षस्य कथनात् । उच्यते । पाण्डवानामपि महद्भयमुपपद्यत एव सन्धिवाञ्छाविच्छेदात् । अयं भावः । उभयोः सीमास्थानीयो भीष्मो जीवन्नस्माकं सन्धिं करिष्यति । तेन च पुत्रसुहृद्विनाशधनव्ययप्रत्यवाया न भविष्यन्ति । हते त्वेतस्मिन्सुतरां संध्याशाविच्छेद एव जात इति पुत्रसुहृद्विनाशादिप्रयुक्तं भयं युज्यत इति तस्माद्युक्तमुक्तं सेनयोरुभयोरिति । हर्षकथनं त्वापाततो ज्ञेयम् ॥ १० ॥ पर्यवर्तंत परिवृत्तवंतः ॥ ११ ॥ व्रीडिताः व्रीडावन्तः व्रीडा चान्यतः ह्रीश्चाकार्यकरणात् ॥ १७ ॥

संमोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत् ततः ।
कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः २१
तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे ।
हाहाभूतमभूत् सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥ २२
दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥२३
भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनानीकेन दंशितः।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं स विषादयन्॥२४
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्यवारयन् ।
दुःशासनं महाराज किमयं वक्ष्यतीति च २५
ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः ।
द्रोणस्तत्राप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥ २६
स संज्ञामुपलभ्याशु भारद्वाजः प्रतापवान् ।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष
विनिवृत्तान् कुरून् दृष्ट्वा
पाण्डवाऽपि स्वसैनिकान् ।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात् पर्यवारयन् ॥
निवृत्तेषु च सैन्येषु पारंपर्येण सर्वशः ।
निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः २९
व्युपरम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः ।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवामराः ॥ ३०
ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम् ।
अभिवाद्यावतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह
अथ पाण्डून् कुरूंश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान्
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा
स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः
तुष्यामि दर्शनाच्चाहं युष्माकममरोपमाः ३३
अभिमन्त्र्याथ तानेवं
शिरसा लम्बताऽब्रवीत् ।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थ-
मुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३४
ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च ।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत्तानि पितामहः
अथाब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान्नृपान् ।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः॥
ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् ।
धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३७
धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते ।
दीयतामुपधानं वै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥ ३८
सञ्जय उवाच ।
समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ३९
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर ।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह४०
तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते ।
उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥ ४१
शयनस्यानुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे ।
त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्
क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः ।
फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत्
गृह्यानुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान् संनतपर्वणः ।
अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ४४
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः ।
अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना
अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् ।
उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्धनञ्जयम् ॥ ४६
प्राह सर्वान् समुद्वीक्ष्य भरतान् भारतं प्रति ।
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ४७
शयनस्यानुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ४८
एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता ।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै ४९
एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान्५०
पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाभिसंधितम् ।
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः
ये तदा मां गमिष्यन्ति
ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
दिशं वैश्रवणाक्रान्तां
यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२
नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान् सुहृदः सुप्रियानिव
परिखाः खन्यतामत्र ममावसदने नृपाः ।
उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ५४

पारंपर्येण क्रमेण ॥ २९ ॥ उपधानं उपबर्हम् ॥ ३४ ॥ इह वीरशय्यायाम् ॥ ३८ ॥ व्यवसायमुचितोद्योगम् ॥ ४३ ॥ अन्वगृह्णात् अवतष्टम्भे ॥ ४५ ॥ उपहितं उपधानीयं दत्तम् ॥ ४८ ॥ पाण्डवानभिसंस्थितान् पाण्डवानां समीपवर्तिनः ॥ ५० ॥ ममावसदने मन्निवासस्थाने ॥ ५४ ॥

उपारमध्वं संग्रामाद्वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः ।
सञ्जय उवाच ।
उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।
तान्दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥ ५६
धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां
पूजयित्वा चिकित्सकाः ।
एवंगते मयेदानीं
वैद्यैः कार्यमिहास्ति किम् ॥ ५७
क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥ ५८
एभिरेव शरैश्चाहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ५९
वैद्यान् विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ।
ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ६०
स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्यामिततेजसः ।
उपधानं ततो दत्त्वा पितुस्ते मनुजेश्वराः ६१
सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः ।
उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥ ६२
तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं
कृत्वा च त्रिः प्रदक्षिणम् ।
विधाय रक्षां भीष्मस्य
सर्व एव समन्ततः ॥ ६३
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
निवेशायाभ्युपागच्छन्सायाह्ने रुधिरोक्षिताः
निविष्टान्पाण्डवांश्चैव प्रीयमाणान्महारथान्
भीष्मस्य पतने हृष्टानुपगम्य महाबलः ॥ ६५
उवाच माधवः काले
धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
दिष्ट्या जयसि कौरव्य
दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ॥ ६६
अवध्यो मानुषैरेव सत्यसन्धो महारथः ।
अथवा दैवतैः सार्धं सर्वशास्त्रस्य पारगः ६७
त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा ।
एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ६८
तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात् तव पराजयः ।
त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ६
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव ।
रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चापि हिते रतः
सर्वथा त्वां समासाद्य नाश्चर्यमिति मे मतिः
एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः ।
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥ ७१

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपधानदाने विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

## १२१

सञ्जय उवाच ।
व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन् पितामहम्
तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तम ।
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् २
कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः ।
अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ३
स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ४
तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनर्तकाः ।
शिल्पिनश्च तथाऽऽजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम्
उपारम्य च युद्धेभ्यः सन्नाहान्विप्रमुच्य ते ।
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः
अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिंदमम् ।
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ७
सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवादित्यमण्डलम्

---

चक्षुषा हन्तीति तथा तं दृष्टिमात्रेण हननक्षमम् ॥ ६८ ॥
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

१२१
व्युष्टायामिति ॥ १ ॥ पृथग्जनाः प्राकृता जना भूतानि प्राणिनो गंधर्वादीनि वा तमोनुदं सूर्यम् ॥ ४ ॥

विबभौ च नृणां सा गङ्गासुतमुपासताम् ।
देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ९
भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ ।
अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १०
शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसंपातमूर्छितः ।
पानीयमिति संप्रेक्ष्य राज्ञस्तान् प्रत्यभाषत ॥
ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रुः समन्ततः ।
भक्ष्यानुच्चावचांस्तत्र वारिकुम्भांश्च शीतलान्
उपानीतं तु पानीयं
दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् ।
नाद्यातीता मया शक्या
भोगाः केचन मानुषाः ॥ १३
अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम्
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥
एवमुक्त्वा शान्तनवो
निन्दन् वाक्येन पार्थिवान् ।
अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामी-
त्यभ्यभाषत भारत ॥ १५
अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् ।
अतिष्ठत्प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाब्रवीत्
तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितम् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनंजयम्
दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः ।
मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति ॥ १८
वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छापो ममार्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि
अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि सर्वे श्रुत्वा च पार्थिवाः ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः ।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २२
सन्धाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः ।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः २३
अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा
शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ।
अतर्पयत् ततः पार्थः शीतया जलधारया॥२५
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम् ।
कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः ॥२६
विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः ।
तत्कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥
संप्रावेपन्त कुरवो
गावः शीतार्दिता इव ।
विस्मयाच्चोत्तरीयाणि
व्याविध्यन् सर्वतो नृपाः ॥ २८
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
तृप्तः शान्तनवश्चापि राजन् बीभत्सुमब्रवीत्
सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव ।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ॥३०
कथितो नारदेनासि पूर्वर्षिरमितद्युते ।
वासुदेवसहायस्त्वं महत् कर्म करिष्यसि ३१
यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम् ।
विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ३२
धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृषु ३३
मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः ।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्
आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो
गिरीणां हिमवान् वरः ।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः
श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ॥ ३५
न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं
मयोच्यमानं विदुरेण चैव ।
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन
मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम् ॥ ३६
परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो
दुर्योधनो न च तच्छ्रद्दधाति ।
स शेष्यते वै निहतश्चिराय
शास्त्रातिगो भीमबलाभिभूतः ॥ ३७
एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो
दुर्योधनो दीनमना बभूव ।
तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य
निबोध राजन् भव वीतमन्युः ॥ ३८
दृष्टं दुर्योधनैतत् ते यथा पार्थेन धीमता ।
जलस्य धारा जनिता शीतस्यामृतगन्धिनः

परिदूयन्ते परितप्यन्ते ॥ १८ ॥ विकुर्वतो विशेषेण कुर्वतः ॥ २६ ॥ व्याविध्यन्भ्रामितवन्तः ॥ २८ ॥ निधनं निधनहेतुः तद्विदो देवरहस्यज्ञाः ॥ ३२ ॥ जगति भूलोके ॥ ३४ ॥

प्रशमे हि कृतो यत्नः
सुमहान् सुचिरं मया ।
न चैव शकितः कर्तुं
कर्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३८

सञ्जय उवाच ।

इत्युक्तवति गाङ्गेये अभिवाद्योपमन्त्र्य च ।
राधेयो रथमारुह्य प्रायात् तव सुतं प्रति॥३९

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे
द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## श्रवणमाहिमा

वैशंपायन उवाच ।

इत्येतद्बहुवृत्तान्तं भीष्मपर्वाखिलं मया ॥
शृण्वते ते महाराज प्रोक्तं पापहरं शुभम् ॥ १ ॥
यः श्रावयेत् सदा राजन् ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥
श्रद्धावन्तश्च ये चापि श्रोष्यन्ति मनुजा भुवि॥२॥
विधूय सर्वपापानि विहायान्ते कलेवरम् ॥
प्रयान्ति तत् पदं विष्णोर्यत् प्राप्य न निवर्तते ॥३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भारतं भरतर्षभ ॥
शृणुयात् सिद्धिमन्विच्छन्निह वाऽमुत्र मानवः ॥४॥
भोजनं भोजयेद्विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् ॥
भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दद्यात् पानीयमुत्तमम्॥५ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य
कृतौ+ भारतभावदीपे द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

समाप्तो भीष्मपर्वार्थप्रकाशः ।

* अयं श्लोकपञ्चकात्मको ग्रंथो गणपत्र कृष्णाजीपुस्तके नास्ति ।

\+ श्वेतोपाख्यानसमाप्त्यनंतरग्रंथप्रभृत्यापर्वसमाप्ति लिखिता टीका अन्यैव न चतुर्धरप्रणीता। टीकान्तरपुस्तकेषूपलंभाभावादस्याभावाचेति केषांचिन्मतम् ।

अतःपरं द्रोणपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितः ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते ×भीष्मपर्व समाप्तम् ॥

× यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे—
षष्ठमेतत्समाख्यातं भारते पर्व विस्तृतम् ।
अध्यायानां शतं प्रोक्तं तथा सप्तदशापरे ॥
पञ्च श्लोकसहस्राणि संख्यायाष्टौ शतानि च
श्लोकाश्च चतुराशीतिरस्मिन्पर्वणि कीर्तिताः
इत्युक्तम् । तथापि प्रायः संप्रति भीष्मपर्वाध्यायसंख्या १२२ श्लोकसंख्या च ५८६९ दृश्यते । तदेतन्न्यूनाधिक्यं लेखकप्रमादजमिति ध्येयमिति शिवम् ।

इति श्रीकेळवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचन्द्रशास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यामारण्यकं पर्व समाप्तम् । भारती जयतु ॥ शाके १८५२

# Shriman MAHABHARATAM

## Part IV

## VII Dronaparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nilkantha.

**Edited by**

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1853.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

ॐ

# श्रीमन्महाभारतम् ।

## चतुर्थभागे–द्रोणपर्व ।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित–भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम् ।


तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी' इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५३] प्रथमं संस्करणम् । [ख्रिस्ताब्दाः १९३१

॥ श्रीभारती विजयते ॥

# प्रास्ताविकम्।

## -३-

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रिधा॥
इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत्संप्रकाशितम्॥

अहो प्रेक्षावत्प्रमुखाः पाठकमहाभागाः! महाभारतस्यास्यैव जयेति प्राचीनमपरं नामासीदिति नारायणं नमस्कृत्येत्यादिश्लोकतः सुस्पष्टमवगम्यते। अत्रैतद्विचार्यं जयशब्दस्य कोऽर्थ इति। तत्र जयब्दस्यानेके अर्था व्याकरणकोषादिभिर्वक्तुं शक्याः, परं न तैर्यौगिकैरर्थैर्मनः समाहितं भवति। अतः अन्य एव कश्चन रूढार्थः स्याज्जयशब्दस्येत्यनुमीयते। इत्थं हि विचार्यमाणे ज्योतिःशास्त्रसिद्धान्तमनुसृत्य १८ दशसंख्याबोधकः शब्दो जय इति ज्ञायते। तथाहि—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज झ, ञ, एतेषां व्यञ्जनानां क्रमेण १-२-३-४-५-६-७-८-९-० इति संज्ञाः। तथा च ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, एतेषामक्षराणामपि ता एव संज्ञाः। एवं य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, ज्ञ, एतेषामपि ताः संज्ञाः। प, फ, ब, भ, म, एतेषां पञ्चानामक्षराणां १-२-३-४-५ एताः संज्ञाः प्रोक्ता ज्योतिर्वित्तमैः। अनया रीत्या जकारोऽष्टसंख्याबोधको यकारश्च प्रथमसंख्याबोधको भवति। ततः 'अङ्कानां वामतो गतिः' इति नियमेन जयशब्दस्याष्टादश इति तावदर्थः सिध्यति। जयशब्दस्यायमेवार्थः समीचीनतर इति भाति। प्रमाणान्तरसद्भावात्। तानि प्रमाणानि यथा—ग्रन्थेऽस्मिन्पर्वाणि खल्वष्टादश, संग्रामश्चाप्यष्टादशदिनात्मकोऽभूत्। महाभारते सैन्यमप्यष्टादशाक्षौहिणीसंख्यम्। भगवद्गीताया अध्याया अष्टादशैव। अतो ग्रन्थस्वरूपबोधकोऽयं जयशब्दोऽष्टादशसंख्यापरपर्यायभूत इति निश्चप्रचम्।

इमं ग्रंथराजं भगवान्वेदव्यासस्त्रिभिर्वर्षैः समपूरयत्। संकल्पितं ग्रन्थमिमं लिखितुं समीचीनो लेखकः श्रीगणराज आसीत्। गणाधीशेनाप्रतिहतो वाक्प्रसरश्चेदहं लिखेयमिति भाषितो भगवान्व्यासोऽप्यभाणीत्—'अज्ञात्वा मा लिख क्वचित्' इति। गणपतिना तत्स्वीकृते, लेखनसमये व्यासो मध्ये मध्ये कानिचन् कूटान्यररचत्। यदर्थचिन्तने व्यग्रे गणनाथे भूयसः श्लोकान् रचयितुं व्यासोऽवसरमासादितवान्। एतानि कूटान्यस्मिन् महाभारतेऽष्टौ सहस्राण्यष्टौ शतानि च वर्तन्ते, यानि व्यासः शुकश्च निः-

संदिग्धमवेदीत् । सञ्जयोऽपि वेत्ति वा न वेति ।

एतेषां कूटश्लोकानां गूढार्थत्वे आदिपर्वण्युक्तम्—

तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने ।
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात्प्रश्रितस्य च ॥

अथ प्रियपाठकमहाभागानां कृते नीलकण्ठीव्याख्यासहिताः केचन कूटश्लोका उदाहरणत्वेन प्रदर्शयामः—

अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
केशशूलाः स्त्रियो राजन्भविष्यन्ति युगक्षये ॥

—वनपर्व अध्याय १८८, पृ० ३०३

अस्यार्थः—"अट्टमन्नं शिवो वेदो ब्राह्मणाश्च चतुष्पथाः । केशो भगं समाख्यातं तद्विक्रयं विदुः इति पूर्वेषां व्याख्यासंक्षेपः । विस्तरस्तु यथा—अट्टमन्नं तदेव २ दुःखदं येषां ते अट्टशूलाः क्षुद्व्याधिग्रस्ता इत्यर्थः । शिवाः सर्वपुरुषप्रार्थनीयतया कल्याणवत्यः शूलाः पण्यास्त्रियो येषु ते शिवशूलाः । विट—वाराङ्गनापूर्णाश्चतुष्पथा इत्यर्थः । स्त्रियः पाणिग्रहणवत्योऽपि केशोपलक्षितं सौभाग्यं लज्जामूलं शीलं शूलमिव दुःखदं त्याज्यं च यासां ताः केशशूलाः । भर्तृद्वेषिण्यस्त्यक्तलज्जाश्चेत्यर्थः ।

नदीज लंकेशवनारिकेतुर्नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः ।
एषोऽङ्गनावेषधरः किरीटी जित्वाऽव यं नेष्यति चाद्य गा वः

—विराटपर्व ३९ श्लो० १० पृ० ५७

अस्यार्थः—हे नदीज गाङ्गेय हे भीष्म । लङ्केशस्य रावणस्य वनं, तस्यारिर्नाशको हनूमान् सः केतुर्ध्वजो यस्य सः लङ्केशवनारिकेतुः । नगो वृक्षस्तदाह्वयो वृक्षनामा । नामेति वितर्के निश्चितं वा अर्जुन इत्यर्थः । 'शैलवृक्षौ नगावगौ' इत्यमरः । नगारिरिन्द्रस्तस्य सूनुः एष अङ्गनावेषधरः किरीटी, एतन्नामा । यं जित्वा वः युष्माकं गाः धेनूः नेष्यति तं दुर्योधनमव पालयेत्यर्थः । अस्मिन् श्लोके आपाततो नदीजलं, केशव, नारिकेतुः, वयम् । गावः इत्याकारकाणि पदान्यवभासन्ते । परं तानि प्रामादिकानि ।

गोकर्णा सुमुखीकृतेन इषुणा गोपुत्रसंप्रेषिता
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोऽसुप्रभम्
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै
गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम्

—कर्णपर्व अ० ९० श्लो० ४२ पृ० १७९

अस्यार्थः—गोकर्णा मुकुटं जहारेत्यन्वयः । अर्जुनस्य मुकुटहरणमपि महत्कर्मेति सूचयन्मुकुटं विशिनष्टि—गवि चक्षुषि कर्णौ यस्याः सा गोकर्णा चक्षुःश्रवाः सर्पिणी अर्जुनेन खाण्डवे निहता सती इह निमित्तभूता तस्य मुकुटमेव जहार हृतवती न तु शिरः । कथं

हताया हननिमित्तत्वमत आह—'सुमुखीकृतेन इषुणा गोपुत्रसंप्रेषिता' संधिरविवक्षितत्वान्न भवति । शोभनं पुत्रजीवनकरं मुखं यस्याः सा सुमुखी । सा हि पुत्रं निगीर्य दह्यमाना-त्खाण्डवादुत्पतन्ती शिरोदेशेऽर्जुनेन छिन्ना सती स्वयं मृता पुत्रं च रक्षितवतीत्यादिपर्व-ण्युपाख्यायते । कृतेन स्वयं निर्मितेन पुत्रेण त्रातेन इषुणा इषुभावं गतेन । 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेरिष्वाकारपुत्ररूपेण संपन्ना सती गोमतो रश्मिमतोऽर्कस्य पुत्रेण कर्णेन प्रेषिता । किं कृत्वा मुकुटं जहारेत्यत आह—' सुव्यक्तगोऽसुप्रभं गोगतकं दृष्ट्वा' इति । सुव्यक्ताः अतिशयेनाविर्भूताः गावो रश्मयस्तेज इति यावत् । सुव्यक्तैर्गोभिरसुभिश्च प्रकर्षेण भासमानं निरतिशयतेजोबलमर्जुनम् । गोगतकं, गोशब्देन हयरश्मीनां प्रदेशो लक्ष्यते । तत्र गतं विद्यमानं कं शिरो यस्य तम् । अर्जुनस्य ग्रीवादेशं कर्णेन लक्षीकृतं विज्ञाय भगवता स्वभारेण अश्वेषु जानुभ्यामवनीं गमितेषु रश्मिभिः समसूत्रदेशेऽर्जुनस्य शिरो दृष्ट्वाऽपि वेगातिशयात्स्वयं नीचीभवितु-मशक्ता सती तद्देशस्थं मुकुटं जहारेत्यर्थः । 'गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितम्'इति—गौः पृथिवी तया शब्द्यते गोशब्दा अदितिः । 'इयं वा अदितिः' इति पृथिव्या अदितेर्निर्देशात् । तस्या आत्मजस्येन्द्रस्य भूषणं सुविहितं वेधसेति शेषः । वै निश्चितं प्रसिद्धं वा । 'गोशब्द-गोपूरि' इति। गोभिः रश्मिभिः शब्द्यते रश्मिमानिति कथ्यते इति सूर्यः तस्यैव भुवनगर्भव्यापिनो गावः किरणास्तैर्भुवनं पूरयितुं शीलमस्य तत्तथा । सूर्यसमप्रभमित्यर्थः । ननु चेतनाधि-ष्ठितो बाणः पुनरेत्यार्जुनं कुतो न हतवानित्यत आह—'गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम्'इति। गोकर्णं सर्पं पुनरर्जुनं हन्तुमिच्छन्तमसनेन बाणक्षेपेण मर्दयति यः स तथा-भूतोऽर्जुनश्च तमेव सर्पमनवाप्य मृत्योर्वशं न ययौ" । अलमतिविस्तरेण। एतादृशानि परः-शतानि कूटान्यस्मिन्ग्रन्थे विराजन्ते । तत्र तत्र विवृतानि च तानि चतुर्धरवंशावतंसेन श्रीनीलकण्ठपण्डितेन ।

महाभारताख्योऽयं रसुशाखी त्रिभिः स्कन्धैर्विभक्त इति वक्तुं शक्यते । तत्र प्रथमः स्कन्ध आदित आरभ्योद्योगपर्वान्तः । द्वितीयस्तावद्भीष्मपर्वारभ्य स्त्रीपर्वान्तः । तृतीयश्च शान्तिपर्वारभ्य स्वर्गारोहणपर्वान्तः । आहत्य त्रिषु स्कन्धेषु परमकारुणिकेन भग-वता पाराशर्येण चतुर्दशविद्यानां रहस्यान्येकत्र मन्दमध्यममतीननुग्रहीतुं सुलभतया प्रकटी-कृतानि ।

अयि महामहिमशालिन उत्थानैकदृष्टयः सांप्रतं यद्भारतीययुद्धशास्त्रस्य गाढाज्ञानं प्रसृतं तद्भारतसदृशमहाग्रन्थानामुपेक्षामूलमेव, योऽयं भारतीयानां सर्वैः प्रकारैर्विनिपातः प्रतिक्षणं संजायते तत्र भारतादिग्रन्थानां सूक्ष्मदृशाऽध्ययनाध्यापन एव मुख्यः प्रतीकारोपायः। यथा मेषसमूहस्थितस्य सिंहशावकस्य परिचयवशादहमप्येतेषां मेषाणामन्यतम इति बुद्धिर्भवति, तथैवास्माकमवस्था समजनि । अतः सिंहशिशुं प्रतिबोधयितुं यथा तत्सजातीयदर्शनमलं भवति तथैवास्मत्सजातीया ये पूर्वजास्तेषां पराक्रमः, विद्याः, शीलादि यथावज्ज्ञातं चेत्स्या-

न्मनस्यस्माकमहो वयमपि पुरुषसिंहा एवेति । अतः प्राचीनभारतादिग्रन्थानामध्ययनेनास्माभिः पूर्वा पराक्रमप्रणाली, क्षात्रं तेजः, विशेषतो भारतीयं युद्धशास्त्रं च प्रयत्नाज्ज्ञातव्यम् । यस्मिन्युद्धशास्त्रे एते विषया वरीवर्तन्ते—गदायुद्धप्रकाराः, विविधानि शरासनानि, शराणां तारतम्यम्, अस्त्राणि, व्यूहाः, मायाबलेनैच्छिकं रूपं धृत्वा शत्रुसंहरणम्, उत्तमाश्ववर्णनम्, रथगतयः, शस्त्राणां नामानि; रूपाणि च, सैनिकानां समयाः, देशविशेषेण सेनानां बलाबलनिश्चयः, चमूपतिः, चतुरङ्गसैन्ये यथायथं व्यवस्था, अक्षौहिणीपरिमाणम्, धर्माधर्मयुद्धे, सूतविद्या, युद्धे गजानां महत्त्वम्, शिबिररचना, युद्धारम्भावसानिकानि दूतपरीक्षा, परिखा, प्राकारः, *शतघ्न्यः, सर्वाभिसारः, शकटादियुद्धसामग्री, इत्यादयः ।

अयि ! पण्डितगणवरेण्याः सकलमहीमण्डलमण्डनायमानाः असकृदगण्यपुण्यसमयसमस्तनिर्धूतकलिकल्मषाः पदवाक्यप्रमाणप्रमाणितशेमुषीकाः सहृदयाः ! अद्य खलु महाभारतस्य नीलकण्ठकृतटीकासमन्वितस्य द्रोण–कर्ण–शल्य–सौप्तिक–स्त्रीपर्वात्मकोऽयं चतुर्थो भागो भवन्नयनसरणिमुपयातीत्येतन्नः परमं प्रमोदस्थानम् । पूर्वतनविभागवदस्मिंश्चतुर्थे विभागे सर्वाः सुविधा अवलोक्येरन् भवद्भिः । स एष श्रीमतामनुग्रहस्य परिपाकः। इतःपरमवशिष्टं भागद्वयमप्यचिरादेव भावत्ककरकमलयोः प्राप्नुयादिति द्रढीयानस्माकं विश्वासः स खलु भवदाशीःसम्पदमनुबध्नाति । अतोऽत्र कर्मणि श्रीमद्भिर्यथारुचि, यथाशक्ति च साहाय्यकरणभारेणाधरीक्रियतामस्मन्मूर्धेति विज्ञाप्य विरमति—

मार्गशीर्षपूर्णिमा
शालिवाहनशाकीये १८५३ वत्सरे

विद्वद्विधेयः
किञ्जवडेकरोपाह्वो रामचन्द्रशास्त्री
पुण्यपत्तनस्थभारतीभुवननिवासी

---

* एकाघातेन शतं प्राणिनां हन्ति इति शतघ्नी ।

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## द्रोणपर्व ।

—७—

### विषयानुक्रमणिका ।


अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

( १ ) द्रोणाभिषेकपर्व १–२६

१ ५३ भीष्महननानन्तरं धृतराष्ट्रादयः किमकार्षुरिति जनमेजयप्रश्ने वैशंपायनस्योत्तरम्—निशि शिबिराद्धास्तिनापुरमागतं सञ्जयं प्रति विलापपूर्वकं भीष्मं संशोच्य कुरवः किमकार्षुरिति धृतराष्ट्रप्रश्नः । सञ्जयस्योत्तरम्-स्वधर्ममनुसरन्तो राजानो भीष्माय शरैरुपधानादिकं प्रकल्प्य वाद्यघोषे प्रवृत्ते युद्धस्थानमाजग्मुः । भीष्मरहितानामागतानां कौरवाणां भीष्मसादृश्येन कर्णं स्मृतवतां कर्ण कर्णेत्याक्रोशः । 'अर्धरथः कर्णः' इत्यादिभीष्मोक्त्यनुवादपूर्वकं कर्णकृतयुद्धत्यागादिप्रतिज्ञानुवादः कौरवकृतः । पुनर्धार्तराष्ट्रकृतं कर्णस्मरणादि कथयन्तं सञ्जयं प्रति धृतराष्ट्रवाक्यम् ... ... ... ३

२ ३७ भीष्मं हतं श्रुत्वा आगत्य भीष्मप्रशंसादिकं कुर्वति कर्णे कौरवा आक्रोशपूर्वकमश्रु मुमुचुः । कर्णः कौरवान् पहसन्भवत्सु तिष्ठत्सु कथं भीष्मो निपातित इत्याद्युक्त्वा 'समाहितं चात्मनि भारमीदृशम्' इत्याद्युवाच। कर्णो युधिष्ठिरादीनामजय्यत्वादि कथयित्वा स्वसारथिं प्रति 'मित्रद्रोहो न मर्षणीयः' इत्याद्यभिधाय शत्रून्हत्वा दुर्योधनाय राज्यं दास्यामीत्युवाच । सूतं प्रति 'निबध्यतां मे कवचम्' इत्यादिना युद्धसामग्रीसज्जीकरणपूर्वकं रथसज्जीकरणमादिश्य रथमारुह्य भीष्मं प्रति जगाम कर्णः ... ... ... ५

३ २५ कर्णः शरतल्पस्थं भीष्मं दृष्ट्वा रथादवतीर्य तत्समीपं गत्वा स्तुतिभिस्तं प्रसादयामास। 'अद्यप्रभृति संक्रुद्धाः' इत्यादिनाऽर्जुनं प्रशस्य तं जेतुं त्वां विना कः समर्थ इत्याद्यभिधाय 'तमद्याहं पाण्डवम्' इत्यादिनाऽऽत्मशूरत्वं ख्यापयति स्म कर्णः ... ... ६

४ १८ एवं प्रलपन्तं कर्णं प्रति देशाकालानुगुणं वदन् भीष्मस्तत्कृतनग्नजिदादिपराजयकथनपूर्वकं 'दुर्योधनवत् त्वमपि कौरवाणां गतिर्भव' 'गच्छ शत्रुभिः सह युद्ध्यस्व' इत्याद्याह । भीष्मवचनं श्रुत्वा तस्य चरणावभिवाद्य चा-

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | गतं कर्णं कौरवाः सिंहनादादिना समपूजयन् ... ... | ७ |
| ५ | २१ | कर्णं दृष्ट्वा दुर्योधने त्वया सनाथमेतद्बलमित्युक्तवति तं प्रोत्साहयन् कर्णो वयं तव वचः श्रोतुकामा इत्युवाच। दुर्योधनोऽपि सेनापतौ भीष्मे दिवं गते मामकेषु सर्वेष्वन्यं सेनापतिं पश्येति कर्णमुवाच। कर्णः सर्वेषां राज्ञां सेनापतित्वे योग्यतामुद्भाव्य सर्वयोधानामाचार्यो द्रोणः सेनापतिः कर्तव्य इत्याह ... ... | ८ |
| ६ | १३ | कर्णोपदेशाद्दुर्योधनो द्रोणं गत्वा तदुत्साहजनकानि वाक्यान्युक्त्वा त्वयि सेनापतावहं युधिष्ठिरं जेष्यामीत्युवाच। दुर्योधनोक्तं श्रुत्वा सर्वे द्रोणं प्रति जयेत्युचुः... ... ... | ९ |
| ७ | ५४ | द्रोणः स्वगुणान् ख्यापयन् पाण्डवान् योधयिष्यामीत्युक्त्वा मद्वधार्थं सृष्टं धृष्टद्युम्नं न हनिष्यामीति चाभिधाय सर्वान् सोमकान् नाशयन् सैन्यानि योधयिष्यामीत्युवाच। दुर्योधनेन सैनापत्येऽभिषिक्तो द्रोणः सैन्यं व्यूह्य युद्धार्थं निर्जगाम। तमनु सैन्धवादयस्तद्दक्षिणपार्श्वादौ स्थिताः सन्तो निर्ययुः। सर्वधन्विनामग्रे प्रस्थितं कर्णं दृष्ट्वा सर्वे योधाः 'पाण्डवा रणे न स्थास्यन्ति' इत्यादिवचनेन तं संमानयामासुः। द्रोणेन शकटव्यूहे रचिते धर्मराजः क्रौञ्चव्यूहं चकार। तदग्रे कृष्णार्जुनयोरवस्थानम्। अत्रैव कर्णार्जुनौ परस्परं ददृशतुः **एकादशदिवसयुद्धम्।** ततो द्रोणागमनानन्तरं योधानामार्तनादो विविधाश्चोत्पाता उत्पन्नास्तदनु युद्धारम्भश्च संजात इति सञ्जयः प्राह। द्रोणेन विक्षोभ्यमाणा सा पाण्डवानां महती चमूरपि व्यशीर्यतेति कथनम्। ततो याज्ञसेनेर्धृष्टद्युम्नस्य द्रोणेन साकं संग्रामः ... ... | १० |
| ८ | ३६ | घ्नन्तं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरवाक्यादर्जुनादिषु युद्ध्यत्सु पुनरपि स क्रुधा युयुधे। द्रोणः स्वनाम श्रावयन्नात्मनो रौद्रं रूपं कृत्वा सकुञ्जरपत्त्यश्वान् पञ्चालाञ्जघान। क्रमेण द्रोणः पाण्डवैः सह तुमुलं युद्धं कुर्वन् याज्ञसेनिना पातितः स्वर्गं जगाम। आचार्ये युधि निहते सति भूतानां धिगिति शब्दः समभवत् पाण्डवानां च हर्षः | १२ |
| ९ | ४५ | द्रोणनिधनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य तद्गुणानुवर्णनपूर्वकं शोचनम् | १३ |
| १० | ७७ | द्रोणमरणश्रवणमूर्छितस्य धृतराष्ट्रस्य परिचारकादिभिर्जलसेचनादिना समुद्बोधनम्। पुनः पृच्छन् धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरादीनां घटोत्कचान्तानां प्रशंसापूर्वकमेकैकमुद्दिश्य 'कस्तं द्रोणादवारयत्' इत्याद्युवाच। कृष्णव्यपाश्रयात्पाण्डवानामजेयत्वं श्रुत्वा तस्य दिव्यानि कर्माण्यभिधातुं प्रतिजज्ञे ... ... | १६ |
| ११ | ५१ | धृतराष्ट्रः प्रसङ्गाद्भक्त्युद्रेकेण केशिवधमारभ्य पारिजातहरणान्तं श्रीकृष्णचरित्रं कथयति स्म। धृतराष्ट्रेण बहुधा विचिन्त्य सञ्जयं प्रति युद्धकथनचोदना | १८ |
| १२ | ३१ | श्रीकृष्णस्यार्जुनेन सहैकात्मतादिकथनम्। द्रोणचोदितेन दुर्योधनेन युधिष्ठिरस्य जीवग्राहं ग्रहणवरणम्। एतदभिप्रायजिज्ञासया द्रोणेन पृष्टो दुर्योधनः पुनर्द्यूतक्रीडाकरणादिरूपं स्वाभिप्रायमाविश्चकार। द्रोणेनार्जुनासान्नि- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ध्याने तद्ग्रहणे प्रतिज्ञाते युधिष्ठिरं धृतमिव मत्वा दुर्योधनेन सैन्येषु तदुद्घोषणम् ... | १९ |
| १३ | २९ | अर्जुनेन द्रोणप्रतिज्ञाभीतस्य युधिष्ठिरस्य समाश्वासनम्। उभयोः सैन्ययोरुपगतयोर्युद्धे प्रसक्ते बाणैः पाण्डवांस्त्रासयतो द्रोणस्य स्वरूपवर्णनम् ... ... | २० |
| १४ | ८७ | तुमुलं युद्धं कुर्वन्तं द्रोणं प्रति युधिष्ठिरादिष्वागतेषु तान् प्रति कुरुसेनानामागमनम्।शकुनिसहदेवप्रभृतीनां चेकितानानुविन्दान्तानां द्वन्द्वयुद्धवर्णनम् । पौरवसौभद्रयोर्युद्ध्यतोः सौभद्रेण पराभूतं पौरवं दृष्ट्वा आगतेन जयद्रथेन सह स युयुधे। जयद्रथेनाच्छिन्नखड्गेऽभिमन्यौ स्वरथमारुह्य नदति सति तं प्रति शल्यः शक्तिं चिक्षेप । अभिमन्युरुत्प्लुत्य तां शक्तिं गृहीत्वा प्रक्षिप्तया तयैव शल्यसारथिं जघान । तद्दृष्ट्वा विराटादयस्तं प्रशशंसुः... | ...२३ |
| १५ | ३७ | शल्यसौभद्रयोर्युद्धं कथंकारमभूदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्--गदां गृहीत्वा रथादवप्लुत्याभिधावन्तं शल्यं प्रति गदाहस्तो भीम आगत्य गदाग्रहणपूर्वकं शल्यमाह्वयन्तमभिमन्यु निवारयामास। गदायुद्धं कुर्वतोर्भीमशल्ययोः परस्पराघातेन पतितयोः सतोर्मूर्छितं शल्यं गृहीत्वा कृतवर्माऽपययौ । गदाहस्तस्य भीमस्य संदर्शनेन हर्षितैः पाण्डवैरर्द्यमानानां कौरवाणां पलायनम्... | ...२४ |
| १६ | ५४ | वृषसेने रथिनः पातयति सति तेन सह युद्ध्यतः शतानीकस्य साहाय्यार्थं द्रौपदेयेष्वागतेषूभयोः सेनयोस्तुमुलं युद्धम् । युधिष्ठिरं प्रति गच्छन्द्रोणो मध्येमार्गं पाञ्चालेन कुमारेण निवारितः शिखण्डिप्रभृतीन्प्रति बाणान्मुमोच। युधिष्ठिरपरीप्सया विराटादिषु बाणान्प्रक्षिपत्सु द्रोणः सिंहसेनव्याघ्रदत्तयोः शिरसी छित्त्वा युधिष्ठिररथसमीपे तस्थौ । पाण्डवसेनानामार्तनादं श्रुत्वाऽऽगतेऽर्जुने बाणैर्दिश आच्छादयति द्रोणादयोऽवहारं चक्रुः | २६ |

## (२) संशप्तकवधपर्व २६–५३

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १७ | ४९ | उभयसेनानां स्वस्वशिबिरगमनानन्तरमर्जुनसान्निध्यौ युधिष्ठिरग्रहणमशक्यमतः कश्चिदाहूयार्जुनं प्रकर्षत्विति द्रोणवचनम्। द्रोणवाक्यं निशम्य त्रिगर्तादयस्तदङ्गीकृत्यार्जुनवधार्थं शपथं कृत्वा तमाह्वयामासुर्युद्धाय। संशप्तकैराहूतस्यार्जुनस्य युधिष्ठिररक्षणे सत्यजितं नियोज्य तान्प्रति युद्धाय गमनम्। युधिष्ठिरानुज्ञयाऽर्जुने संशप्तकान्प्रति गते दुर्योधनसैन्यानि जहृषुः। ... | २७ |

### द्वादशदिवसयुद्धम् ।

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १८ | ३१ | अर्धचंद्राकारं व्यूहं रचयतां त्रिगर्तादीनां हर्षं विलोक्य फाल्गुनेन शंखे वादिते त्रिगर्तसैन्यानां त्रासः । संशप्तकार्जुनयोर्मिथो महति युद्धे प्रवृत्तेऽर्जुनबाणप्रहारेण सुधन्वनो नाशे पलायमाना त्रिगर्तसेना तद्वाक्यात्पराववृते ... ... ... | २८ |
| १९ | ३९ | पुनरागतांस्त्रिगर्तान्दृष्ट्वाऽर्जुनेन प्रेरिते श्रीकृष्णे तान्प्रति रथं नीतवता पुनस्तैः सह युद्धम्। दुःखितस्य श्रीकृष्णस्य वाक्यादर्जुनो वायव्यास्त्रेण ताञ्जघान। एतदन्तरे द्रोणो युधिष्ठिरग्रहणार्थं यत्नमकरोत ... ... | ३० |
| २० | ६३ | प्रभातायां रात्र्यां द्रोणेन रचितं | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | सुपर्णव्यूहं दृष्ट्वा युधिष्ठिरोऽर्धमण्डलव्यूहं रचयामास। कौरवव्यूहं दृष्ट्वा 'यथा ब्राह्मणस्य वशं नाहमियां तथा नीतिर्विधीयताम्' इत्याद्युक्तवन्तं युधिष्ठिरमाश्वास्य धृष्टद्युम्नो द्रोणमुपाद्रवत्। तत्र धृष्टद्युम्नदुर्मुखयोर्युद्धे प्रवृत्ते द्रोणः पुनरपि निर्मर्यादं युद्धं कृत्वा युधिष्ठिरमधावत् ... ... | ३२ |
| २१ | ६५ | युधिष्ठिरं जिघृक्षोर्द्रोणस्य सत्यजिता निरोधः। द्रोणेन वृकेण सह सत्यजिति निहते तेन सार्कं युधिष्ठिररक्षणार्थमागतानां पञ्चालादीनां युद्धम्। द्रोणो युद्धार्थमागतं विराटभ्रातरं शतानीकं हत्वा मत्स्यादीञ्जित्वा च पाण्डवसैन्यं नाशयञ्शोणितनदीं प्रावर्तयत्। बाणांस्त्यजत्सु शिखण्डिप्रभृतिषु द्रोणेन जितेषु युधिष्ठिरे च पलायमाने स पाञ्चाल्यं राजपुत्रं जघान | ३४ |
| २२ | ३० | द्रोणपराक्रमहृष्टेन दुर्योधनेन कर्णं संबोध्य भीमसेनाद्यवज्ञाने कृते कर्णेन भीमादीनां प्रशंसनपूर्वकं तदनवज्ञत्वकथनम्। पुनर्निवृत्य रुद्ध्यमानान्भीमादीन् दृष्ट्वा दुर्योधनः कर्णवाक्याद्द्रोणरथं जगाम ... ... | ३५ |
| २३ | ९८ | पाण्डवानां रथहयध्वजजिज्ञासोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयकृतं तत्कथनम्। भीष्मादीनां शिखण्डिप्रभृतीनां च पाण्ड्यद्रोणसाहितानां रथादिचिह्नान्यभिधाय युधिष्ठिरादीनां धनुर्लक्षणानि कथयति स्म सञ्जयः... ... | ३८ |
| २४ | २० | धृतराष्ट्रेण पुत्रान्प्रति शोचनपूर्वकं सञ्जयं प्रति युद्धकथनचोदना ... ... | ३९ |
| २५ | ६५ | भीमदुर्मर्षणप्रभृतिघटोत्कचालम्बुषान्तानां द्वन्द्वशो युद्धं कथयन् सञ्जयस्तत्प्रशशंस ... | ४१ |
| २६ | ६८ | गजानीकैः सहागतस्य दुर्योधनस्य बाणैर्नागान्तकं पीडयता भीमेन सह युद्धम्। दुर्योधनसाहाय्यार्थमागतेऽङ्गराजे गजसहितेन भीमेन हते कौरवसैन्यस्य पलायनम्। सैन्यभङ्गं दृष्ट्वा, आगतस्य भगदत्तस्य हस्तिना व्याकुलीकृते भीमेऽपयाते तं हतं मत्वा युधिष्ठिराद्य आगत्य बाणान्ववृषुः। सात्यकिं प्रति भगदत्तेन प्रेरितो हस्ती यदा तद्रथं चिक्षेप तदा तस्मिन्पलायिते पाण्डवसैन्येषु च भग्नेषु पुनर्भगदत्तं प्रति भीमस्यागमनम्। भगदत्तेन रुचिपर्वणि हते तं प्रत्यागतान्सौभद्रादीन् क्षिपंस्तद्धस्ती पाण्डवांस्त्रासयामास ... ... ... | ४४ |
| २७ | ३१ | गजशब्दं श्रुत्वाऽर्जुनेन प्रेरितः श्रीकृष्णो भगदत्तयुद्धस्थाने यावद्रथं प्रेरयति तावत्संशप्तकास्तमाह्वयन्ति स्म। उभयकार्यप्रसङ्गव्याकुलोऽर्जुनः परावृत्य संशप्तकैःसह तुमुलं युद्धं कुर्वन्सहस्रशस्तान्हत्वा भगदत्ताय याहीत्युवाच श्रीकृष्णम् ... | ४५ |
| २८ | ३० | द्रोणानीकं प्रति रथं प्रेरयति श्रीकृष्णे मध्य आगतं सुशर्माणं दृष्ट्वाऽर्जुनप्रेरणया रथं पुनः परावर्तयति च सुशर्मप्रभृतिभिः पुनरर्जुनस्य युद्धम्। सुशर्माणं मोहयित्वा कौरवान् प्रत्यागत्य भगदत्तसमीपं गतस्यार्जुनस्य तेन सह युद्धम्। अर्जुनकृष्णयोर्नाशार्थं भगदत्तेन प्रेरितो हस्ती यदा पाण्डवगजादीन्नाशयामास, तदा चुक्रोधार्जुनः ... | ४६ |
| २९ | ५१ | क्रुद्धोऽर्जुनः किमकरोदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने भगदत्तार्जुनयोर्युद्धं कथयति स्म सञ्जयः। उभयोर्युद्ध्यमा- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | नयोर्भगदत्तेन प्रेरितं वैष्णवास्त्रं श्रीकृष्णो वक्षसि दधार। तद्दृष्ट्वाऽर्जुनेनाक्षिप्तः श्रीकृष्णो वैष्णवास्त्रवृत्तान्तमकथयत्। कृष्णवाक्याद्बाणवृष्टिं कुर्वन्नर्जुनो बाणेन हस्तिनं निपात्यापरेण बाणेन हृदि भगदत्तं विव्याध, स च विभिन्नहृदयो गतासुः पपात ... ... | ४८ |
| ३० | ४२ | गांधारराजसुताभ्यां युध्यमानोऽर्जुनः पञ्चशतगान्धारवीरान्नाशयित्वा वृषकाचलावप्यनाशयत्। वृषकाचलौ हतौ दृष्ट्वा शकुनिना माययोत्पाद्य प्रेषितान्खरोष्ट्रादीन् जघानार्जुनः। मायाविना शकुनिना युध्यमानेऽर्जुने, तद्भयात्पलायिते शकुनौ कौरवसैन्यं भग्नमभूत्। सञ्जयः कौरवाणामसामर्थ्यं कथयन्नर्जुनपराक्रमप्रशंसापूर्वकं युद्धभूमिशोभां वर्णयति स्म ... ... ... | ४९ |
| ३१ | २९ | भग्नसैन्यस्यावस्थानविषयके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। द्रोणमुद्दिश्योभयसेनयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते तद्युद्धं सञ्जयः प्रशशंस। कौरवसैन्यनाशार्थमागते नीलेऽश्वत्थाम्ना हते पाण्डवसैन्यानां स्वजीवितचिन्ता ... ... | ५० |
| ३२ | ८० | द्रोणकर्णौ प्रति बाणान्वर्षन्भीमो युगपद्द्रोणादिभिस्त्यक्तान् बाणान्निवार्य तान्प्रति बाणांस्तत्याज। भीमरक्षणार्थं युधिष्ठिरेण सैन्ये प्रेषिते सात्यकिप्रभृतिभिर्द्रोणादीनां निर्मर्यादं युद्धमवर्तत। सेनापतिवाक्यादागतं पाण्डवसैन्यं निवार्य नाशयति द्रोणेऽर्जुनः संशप्तकान्विजित्य तमभ्यगात्। कौरवसैन्यं नाशयत्यर्जुने आर्तस्य तस्य सैन्यस्य कर्ण कर्णेत्याद्याक्रोशं श्रुत्वा कर्णः संमुखमाजगाम। कर्णार्जुनयोर्युद्ध्यमानयोरर्जुनः शत्रुञ्जयादींस्त्रीन् कर्णभ्रातॄञ्जघान। भीमश्च पञ्चदश तत्पक्षीयाञ्जघान। धृष्टद्युम्नेन चन्द्रवर्मबृहत्क्षत्रयोर्हतयोः सतोः कर्णसाहाय्यार्थमागतैर्दुर्योधनादिभिर्धृष्टद्युम्नादीनां संकुलं युद्धम्। ततो भृशलुलिते बले दिवाकरमस्तंगिरिमास्थितं दृष्ट्वा शिबिराय प्रयाते। अत्रैव द्वादशदिनयुद्धं समाप्तम् ... ... | ५२ |

## ( ३ ) अभिमन्युवधपर्व ५३–९५

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३३ | २८ | अवहारानन्तरं प्रभाते युधिष्ठिरस्याग्रहणाद्दुर्मनायमानं दुर्योधनं प्रति द्रोणेनार्जुननिस्सारणपूर्वकं कस्यचिन्महारथस्य हननप्रतिज्ञा। सञ्जयेन धृतराष्ट्रं प्रति संक्षेपतोऽभिमन्युवधकथनम्। पुनर्विस्तारेणाभिमन्युविक्रीडितशुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्तत्कथयितुं प्रतिजज्ञे ... ... | ५४ |
| ३४ | २५ | क्रमेण पाण्डवाननुवर्ण्याभिमन्युं वर्णयन् सञ्जयो धृतराष्ट्रेण पुनः पृष्ट उत्तरं वदन् द्रोणस्य चक्रव्यूहनिर्माणमभिवदति स्म... | ५५ |
| ३५ | ३१ | चक्रव्यूहभेदनार्थं युधिष्ठिरेणोक्तेऽभिमन्यौ 'प्रवेशं जानामि न निर्गमम्' इत्युक्तवति तं प्रति युधिष्ठिरभीमौ 'त्वं द्वारं जनय वयमनुयास्यामः' इत्यूचतुः। तच्छ्रुत्वा शत्रुक्षयकरणं प्रतिज्ञातवन्तमभिमन्युं युधिष्ठिरः प्रोत्साहयति स्म ... ... | ५६ |

### त्रयोदशदिवसयुद्धम्।

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३६ | ४५ | व्यूहं भेत्तुमुद्यतोऽभिमन्युः 'अतिभारोऽयमायुष्मन्' इत्याद्युक्तवन्तं स्वसारथिं प्रति 'सारथे को न्वयं द्रोणः' इत्याद्युक्त्वा द्रोणानीकं याहीत्युवाच। अभियान्तमभिमन्युं प्रति द्रोणादिष्वा- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | गतेषूभयोः सैन्ययोस्तुमुलं युद्धम्। पश्यतो द्रोणस्य व्यूहं भित्त्वा प्रविष्टोऽभिमन्युः कौरवसैन्यं ममन्थ ... ... ... | ५८ |
| ३७ | ३७ | भग्नां चमूं दृष्ट्वाऽऽगतं दुर्योधनमन्वागतेषु द्रोणादिष्वभिमन्युः कौरवसेनां प्रति शरान्प्रक्षिपन्नश्मकेश्वरं जघान। पुनः कर्णादिभिर्युद्ध्यमानः सुषेणादींस्त्रीन् हत्वा शल्यं मोहयति स्म ... | ५९ |
| ३८ | २४ | मोहितं शल्यं दृष्ट्वाऽऽगतं तद्भ्रातरं हत्वा तत्सैन्यं मर्दयति स्माभिमन्युः। ... ... | ६० |
| ३९ | ३१ | युद्ध्यमानमभिमन्युं दृष्ट्वा हर्षेण कृपं प्रत्युक्तं द्रोणवाक्यं श्रुत्वा दुर्योधनेन कर्णं प्रत्युक्तं वाक्यमाकर्ण्य दुःशासनोऽभिमन्युवधप्रतिज्ञां कृत्वा सौभद्रमभ्ययात्। अभिमन्युदुःशासनयुद्धम् ... | ६१ |
| ४० | ३७ | 'दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे' इत्याद्युक्तवताऽभिमन्युना सह दुःशासनस्य युद्धे प्रसक्तेऽभिमन्युबाणेन मूर्छितं दुःशासनं सारथिरपोवाह। पाण्डवसैनिकेषु द्रोणानीकं प्रति गतेष्वभिमन्युकर्णयोर्युद्धे प्रसक्तेऽभिमन्युना व्याकुलीकृतं कर्णं दृष्ट्वा तद्भ्राता आजगाम ... ... | ६३ |
| ४१ | २६ | कर्णभ्रातुः शिरश्छित्त्वा कर्णं विमुखीकृत्य कौरवसैन्यं बभञ्जाभिमन्युः ... ... ... | ६४ |
| ४२ | २२ | सञ्जयेन धृतराष्ट्रं प्रति अभिमन्युमनुगतानां पाण्डवानां जयद्रथेन निरोधकथनम्। तथा जयद्रथस्य रुद्रात् पाण्डवनिरोधनरूपवरलाभकथनम् ... ... | ६४ |
| ४३ | १९ | पाण्डवसेनां रुन्धञ्जयद्रथो यो यो व्यूहं भेत्तुं यत्नमकरोत्तं तं रुरोध ... ... ... | ६५ |
| ४४ | २१ | अभिमन्युः कौरवसेनां विलोड्य तुमुलं युद्धं कुर्वन्वसातीयं जघान ... ... ... | ६६ |
| ४५ | ३० | सत्यश्रवसमाक्षिप्य बलं विलोडयत्यभिमन्यौ युद्धार्थमागतः शल्यपुत्रो रुक्मरथस्तेनाहन्यत। रुक्मरथवयस्याञ्शतं राजपुत्रान् निहत्याभिमन्युना विलोड्यमानं स्वबलं दृष्ट्वाऽऽगतो दुर्योधनस्तच्छरताडितो विमुखो बभूव... | ६७ |
| ४६ | २७ | स्वबलं भग्नमवलोक्यागतेषु द्रोणादिषु युद्ध्यमानोऽभिमन्युर्दुर्योधनपुत्रं लक्ष्मणं क्राथपुत्रं च जघान ... ... ... ... | ६८ |
| ४७ | २४ | द्रोणादिभिः सह विपुलं युद्धं कुर्वन्नभिमन्युर्वृन्दारकं बृहद्बलं चावधीत् ... ... ... | ६९ |
| ४८ | ४१ | कर्णेन सह युद्ध्यमानोऽभिमन्युस्तस्य षट् सचिवान् हत्वाऽश्वकेत्वादीञ्जघान। युद्ध्यमानं दौःशासनिं शल्यं च विमुखीकृत्य शत्रुञ्जयादीन्पञ्च हत्वा सौबलं बाणैर्विव्याध। अभिमन्युवधोपायं चिन्तयितुं शकुनौ दुर्योधनं प्रति वदति सति कर्णो द्रोणं प्रत्युवाच। द्रोणेनाभिमन्युप्रशंसापूर्वकं कथितं तद्वधोपायमवलम्ब्य, प्रथमं कर्णेन तस्य धनुषि छिन्ने भोजोऽश्वानवधीत्;कृपश्च पार्ष्णिसारथिं जघान। ततः खड्गचर्मणी गृहीत्वा विचरत्यभिमन्यौ द्रोणः खड्गं कर्णश्च चर्म चिच्छेद। ततश्चक्रं गृहीत्वा द्रोणमभ्यधावदभिमन्युः ... ... ... | ७१ |
| ४९ | ३९ | बहुभी राजाभिर्मिलित्वा चक्रे छिन्नेऽभिमन्युर्गदां गृहीत्वा तयाऽश्वत्थाम्नो रथादीन् प्रमथ्य कालिकेयादींश्च हत्वा दौःशासनिं विरथं चकार। सगदेन दौःशासनिना सह गदायुद्धं कुर्वत्यभिमन्यावुभयोरपि परस्परगदा- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | घातात्पतितयोः प्रथममुत्थितो दौःशासनिरुत्तिष्ठन्तमभिमन्युं मूर्ध्न्यताडयत्। दौःशासनिना ताडितोऽभिमन्युर्गतचेताः पपात। पतितेऽभिमन्यौ शोकाकुलं स्वबलं तत्पराक्रमवर्णनपुरःसरमाश्वासयामास युधिष्ठिरः... | ७२ |
| ५० | १५ | अभिमन्युहननानन्तरं शरपीडितानां कौरवाणां शिबिरगमनमभिधाय युद्धभूमिं वर्णयामास सञ्जयः। अत्र त्रयोदशदिनयुद्धं समाप्तम् ... ... ... ... | ७३ |
| ५१ | २१ | अभिमन्युमुद्दिश्य युधिष्ठिरस्य विलापः ... ... | ७४ |
| ५२ | ४५ | विलपन्तं युधिष्ठिरमालक्ष्यागतेन द्वैपायनेन कृतं तत्प्रबोधनम्। युधिष्ठिरेण–'कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः। हरत्यमरसङ्काश तन्मे ब्रूहि पितामह' इति प्रश्ने कृते तदुत्तरं वदन्व्यासोऽकम्पनराजवृत्तान्तमभिधातुमुपचक्रमे–"युद्धे शत्रुभिर्हतं पुत्रमुद्दिश्य शोचन्तमकम्पनमवेक्ष्यागतं नारदं प्रति तेन मृत्युस्वरूपे पृष्टे तदुत्तरमाह नारदः। असंहृतं जगद्दृष्ट्वा रुष्टस्य ब्रह्मण इन्द्रियेभ्य उत्पन्नेनाग्निना जगति दह्यमाने तद्रिरक्षया आगतं शिवं प्रति 'किं कुर्मः' इत्यादि स उवाच ... ... ... | ७६ |
| ५३ | २३ | ब्रह्मणाग्न्युत्पत्तिकारणे कथिते शिवप्रार्थनयाऽग्निं शमयति तस्मिंस्तादिन्द्रियेभ्यो निर्गता स्त्री विस्मिता सती दक्षिणां दिशमाशिश्रिये। तां 'मृत्यो' इत्याहूय प्रजासंहारं कर्तुमाज्ञापयति ब्रह्माणि रुदत्यास्तस्या अश्रूण्यञ्जलौ धृत्वा पुनस्तामनुनयाति स्म पितामहः ... ... ... | ७७ |
| ५४ | ५८ | प्रजासंहारकातरा मृत्युर्विनयपूर्वकं धेनुकाश्रमं गन्तुं प्रार्थयती प्रजापतिप्रसादनानन्तरं धेनुकाश्रमादौ गत्वा परमं तपश्चचार। तपसा तुष्टः प्रजापतिः संहारमनिच्छन्तीं तां प्रति तत्प्रकारमुपादिशति स्म, सा च तमङ्गीचकार। एवं मृत्यूपाख्यानं कथयित्वाऽकम्पनं परिसान्त्व्य नारदो जगाम।" भगवान्व्यास इममितिहासमुक्त्वा युधिष्ठिरं युद्धार्थमुद्योजयति स्म... | ...८० |
| ५५ | ५० | पुनः प्राचीनराजचरितशुश्रूषोर्युधिष्ठिरस्य प्रश्ने व्यासस्तत्कथयन्नादौ शैब्यपुत्रस्य सृञ्जयस्य चरितमभिदधाति स्म—"नारदपर्वताभ्यां सहासीने सृञ्जये वराभिलाषेण समीपागतां तत्कन्यां दृष्ट्वा पर्वतेन कस्येयमिति सवितर्कं पृष्टः स ममेयमित्याह। तदवसरे भार्यार्थं कन्यां याचितवति नारदे राजा तद्दानमङ्गीचकार। नारदपर्वतयोः परस्परं शापं दत्वा तत्रैव स्थितयोः सतोः सृञ्जयेन पुत्रकामनया पूजितानां ब्राह्मणानुज्ञया नारदवरदानात्तस्य स्वर्णष्ठीविपुत्रलाभः। पुत्रमूलिकां राजसंपत्तिं दृष्ट्वा चौरैर्हतस्य स्वर्णष्ठीविनो नाशे कृते विलपन्तं सृञ्जयं प्रति शोकापनयार्थमुक्तिः— नारदकथितो मरुत्तवृत्तान्तः | ८२ |
| ५६ | १२ | सुहोत्रराजोदन्तः ... ... | ८२ |
| ५७ | १२ | पौरवराजकथा ... ... ... | ८३ |
| ५८ | १५ | शिबिराजाख्यानम् ... ... | ८४ |
| ५९ | २५ | रामस्य दाशरथेर्वृत्तम् ... | ८५ |
| ६० | १४ | भगीरथचरित्रम् ... ... | ८६ |
| ६१ | १२ | दिलीपस्यैलविलस्य प्रभावः | ८६ |
| ६२ | २० | मान्धातृचरिताभिधानम् ... | ८७ |
| ६३ | ११ | ययातिप्रवृत्तिः ... ... ... | ८८ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ६४ | १७ | नारदेन सृञ्जयं प्रत्यम्बरीषविभवाभिधानम् ... ... | ८९ |
| ६५ | १२ | शशबिन्दुयशोऽनुवर्णनम् ... | ८९ |
| ६६ | २१ | गयराजगुणानुवर्णनम् ... | ९० |
| ६७ | २१ | रन्तिदेवकथासंकीर्तनम् ... | ९१ |
| ६८ | १७ | भरतवार्ताकथनम् ... ... | ९२ |
| ६९ | ३३ | पृथुराजोदन्तनिर्वचनम् ... | ९३ |
| ७० | २५ | परशुरामप्रभावसंकीर्तनम् ... | ९४ |
| ७१ | २६ | एतच्छ्रुत्वा तूष्णींभूतः सृञ्जयो वरं वृणीष्वेति नारदेनोक्त एतेनैव प्रीतोऽहमित्याद्युवाच। मृतं पुत्रं ददानीत्युक्तवति नारदे तत्कालाविर्भूतस्य पुत्रस्य संगेन प्रीतिमानभूत् सञ्जयः।" अभिमन्युना प्राप्तांल्लोकान्कथयित्वा युधिष्ठिरमाश्वास्योपदिश्य चान्तर्दधे व्यासः... ... ... | ९५ |


## (४) प्रतिज्ञापर्व ९६–११५


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ७२ | ८८ | संशप्तकान्हत्वा शिबिरमागच्छन्नर्जुनः श्रीकृष्णं प्रत्यात्मनि कानि दुश्चिन्हानि कथयंस्तेनाश्वासितः शिबिरं प्रविवेश। शिबिरस्थान् सर्वान्निरुत्साहान्दृष्ट्वा सौभद्रमपश्यन् विषण्णोऽर्जुनस्तद्वधमाशंकमानः "स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये" इत्यादि विललाप। पुत्रशोकार्दितोऽर्जुनः श्रीकृष्णेन 'सर्वेषामेष वै पन्था:' इत्यादिनाऽऽश्वासितस्तद्वधवृत्तान्तशुश्रूषुः पाण्डवानधिचक्षेप ... ... ... | ९८ |
| ७३ | ५३ | अभिमन्युवधवृत्तान्तं कथयन्युधिष्ठिरः स्वीयानां द्रोणनिवारणासामर्थ्यमभिधायास्मद्वाक्याद्व्यूहं प्रविष्टमभिमन्युमनुप्रविशत्स्वस्मासु जयद्रथेन रुद्रवरप्रभावाद्वारितेषु द्रोणादयः सप्त महारथा मिलित्वा तमभ्यघ्नन्निति कथयति स्म। युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वा हा पुत्रेत्यादि वदन् मूर्छां प्राप्य पुनर्लब्धसंज्ञोऽर्जुनः शपथकरणपूर्वकं जयद्रथवधं प्रतिजज्ञे, श्रीकृष्णोऽपि पाञ्चजन्यं दध्मौ ... ... ... | १०० |
| ७४ | ३१ | अर्जुनप्रतिज्ञां श्रुत्वा भीतो जयद्रथः सभामागत्य तां कथयित्वाऽऽत्मरक्षां प्रार्थयन्गन्तुमियेष। दुर्योधनेनाश्वासितो जयद्रथस्तेन सह द्रोणं प्रति गतस्तेनाप्याश्वासितो निर्भयो बभूव कौरवसैन्यानि च जहृषुः...... | १०२ |
| ७५ | ३१ | श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति 'भ्रातॄणां मतमाज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम्। सैन्धवं चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम्' इत्याद्युक्त्वा कौरवाणां सिंहनादादिकथनपूर्वकं द्रोणकृताश्वासनं कर्णादीनामविपह्यत्वं चाह... ... ... | १०३ |
| ७६ | २७ | अर्जुनः स्वपराक्रमं कथयन् पुनः प्रतिज्ञां विधाय गाण्डिवादिकं प्रशंसन् रथसज्जीकरणाद्यर्थं कृष्णमादिदेश ... ... ... | १०४ |
| ७७ | २६ | रात्रौ निर्निद्रौ क्रुद्धौ वासुदेवार्जुनौ ज्ञात्वा देवेषु चिन्तयत्सु रूक्षवातादीनि दुर्निमित्तान्यभूवन्। सुभद्राश्वासनार्थमर्जुनेन प्रेरितः श्रीकृष्णस्तद्गृहं गत्वा तां समाश्वासयामास ... ... ... ... | १०५ |
| ७८ | ४४ | विलपन्ती सुभद्रा भीमबलाद्याक्षेपपूर्वकं स्नुषामुद्दिश्य विलपन्ती सती पुत्रस्योत्तमलोकप्राप्तिमाशास्ते स्म। वैराटीसहिताया द्रौपद्या आगताया दर्शनेन मूर्छितां सुभद्रामाश्वास्य श्रीकृष्णोऽर्जुनसमीपमाजगाम ... ... | १०७ |
| ७९ | ४४ | श्रीकृष्णेन रात्रावर्जुनेन त्र्यम्बकाय बलिप्रदापनम्। कृष्णदारुकसंभाषणम् ... ... ... | १०८ |
| ८० | ६५ | स्वप्रतिज्ञां स्मरन् शोकसन्तप्तोऽर्जुनः स्वप्ने स्वसमीपागतस्य कृष्ण | |

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

स्योपदेशेन शिवं मनसा चिन्तयामास। कृष्णार्जुनौ हिमालयैकदेशगमनानन्तरं पर्वतशृङ्गे ध्यानस्थं शंकरं दृष्ट्वा प्रणामपूर्वकं स्तुत्वा पुनरस्त्रप्राप्तये प्रसादयामासतुः ... ... ... ... १११

८१ २५ अर्जुनेन पाशुपतास्त्रे प्रार्थिते शिववाक्याद्धनुर्बाणानयनार्थं तन्निर्दिष्टं सरः प्रति कृष्णार्जुनौ जग्मतुः। सरसि गतौ कृष्णार्जुनौ प्रथमं नागरूपौ पश्चाच्छिन्नप्रभावाद्धनुर्बाणौ गृहीत्वा शिवाय ददतुः। ततो महादेवादर्जुनस्य पाशुपतास्त्रलाभपूर्वकं वरलाभानन्तरं कृष्णार्जुनौ स्वशिबिरमाजग्मतुः... ... ... ११२

८२ ३४ प्रातर्मागधादिभिर्बोधितो युधिष्ठिर आवश्यकं कृत्वा स्नातोऽग्न्यगारं प्रविश्य होमं विधाय ब्राह्मणेभ्यः काञ्चनादीनि ददौ। ब्राह्मकक्षायामासन उपविश्य भूषणग्रहणादिकं युधिष्ठिरो यावत्करोति तावद्द्वारपालेन कृष्णागमने निवेदिते तमानाययामास ... ... ... ... ११३

८३ २८ कृष्णयुधिष्ठिरयोः परस्परं कुशलप्रश्नानन्तरं विराटादिष्वागतेषु तत्समक्षमुभयोरुक्तिप्रत्युक्ती ११४

८४ ३५ सभायामागतो युधिष्ठिरेणालिङ्गितोऽर्जुनः स्वप्ने शिवदर्शनपूर्वकं पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तिवृत्तान्तं कथयामास। युधिष्ठिरानुज्ञया सर्वेषु युद्धार्थं निर्गतेषु सात्यकिकृष्णयोरर्जुनेन सह तद्गृहमागतयोः सतोः कृष्णेन सज्जीकृते रथे त्रिष्वप्यारूढेषु शुभनिमित्तानि दृष्टवताऽर्जुनेन प्रेरितः सात्यकिर्युधिष्ठिररक्षणार्थं गच्छति स्म ... ... ... ११५

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

(५) जयद्रथवधपर्व ११६-२३७

८५ ५४ धृतराष्ट्रेण सञ्जयं प्रति पुत्रान्प्रतिशोचनपूर्वकमभिमन्युनिधनानन्तरीयकयुद्धकथनचोदना ११८

८६ २३ सञ्जयेन धृतराष्ट्रोपालम्भनपूर्वकं युद्धकथनोपक्रमः ... ११८

८७ ३४ स्वसेनां व्यूहितुं द्रोणे प्रवृत्ते सति उभयसैन्येषु परस्परं प्रति गर्जनादि कुर्वत्सु द्रोणो जयद्रथमाश्वासयामास। द्रोणेन रचितं शकट-चक्र-पद्म-सूच्याख्यव्यूहचतुष्टयात्मकं महाव्यूहं दृष्ट्वा कौरवादयो हृष्टा बभूवुः ... १२०

८८ २९ युद्धभूमावर्जुने आगच्छति शतानीकधृष्टद्युम्नौ व्यूहं रचयामासतुः। सर्वसेनाग्रे दुर्मर्षणे स्वशौर्यगर्भं वाक्यं ब्रुवति कृष्णार्जुनाभ्यां शङ्खवादने कृते तद्ध्वनिश्रवणेन कौरवाणां त्रासादि ... १२१

८९ ३२ अर्जुनवाक्याच्छ्रीकृष्णेन तद्रथे दुर्मर्षणसमीपं नीते युद्धमारभमाणोऽर्जुनः स्वबाणावच्छिन्नैः शत्रुशिरोभिः पृथ्वीमाच्छादयामास। भयेन सर्वत्रार्जुनमेव पश्यतां तद्बाणपीडितानां तं द्रष्टुमसमर्थानां कौरवाणां पलायनम् ... ... ...१२२

९० ३४ भग्ने सैन्ये के वीरा धनञ्जयं प्रत्युदीयुरिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयोऽर्जुनं प्रति दुःशासनगमनादि कथयति स्म। दुःशासनेन सहार्जुनस्तुमुलं युद्धं कुर्वन् गजादींश्छित्त्वा सैन्यानि पातयन्युद्धभूमिं यावच्छोभयति तावत्तद्भया दुःशासनो द्रोणसमीपं जगाम ... ... १२३

९१ ४४ द्रोणानीकं प्रति गतोऽर्जुनो द्रोणं प्रति विनयपूर्वकं 'शिवेन ध्याहि माम्' इत्यादि वदन् 'मामजित्वा न बीभत्सो' इत्यादिना तेनो-

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | त रितस्तेन सह महद्युद्धं चकार। उभयोर्युद्ध्यमानयोः श्रीकृष्णवाक्यादर्जुनो द्रोणं प्रदक्षिणीकृत्य युधामन्यूत्तमौजोभ्यामनुगम्यमानो जयकृतवर्मादिभिर्महद्युद्धं चकार ... ... | १२५ |
| ९२ | ७६ | पुनरग्रे गच्छन्नर्जुनोऽश्वादीन् पातयन्युद्ध्यमानं द्रोणं परित्यज्य कृतवर्मादीन् प्रति गतःकृतवर्मणा युयुधे । श्रीकृष्णवाक्यात्कृतवर्माणं मोहयित्वाऽर्जुने काम्बोजान्प्रति गते युधामन्यूत्तमौजसौ कृतवर्मणा युयुधाते । पुनरग्रे गच्छन्नर्जुनः श्रुतायुधेन युद्ध्यमानस्तस्याश्वान्सारथिं च जघान । अयुद्ध्यमाने श्रीकृष्णे श्रुतायुधेन परित्यक्ता वरुणदत्ता गदा परावृत्ता सती तमेव जघान । श्रुतायुधे हते हाहाकृत्वा कौरवसैन्ये पलायमाने आगत्य युद्ध्यमानं काम्बोजपुत्रं सुदक्षिणं जघानार्जुनः ... ... ... | १२७ |
| ९३ | ५७ | आगतया कौरवसेनया सह युद्ध्यमानोऽर्जुनो युद्ध्यमानानामभीषाहादीनां शिरोभिर्महीं तस्तार । अर्जुनस्य श्रुतायुरच्युतायुभ्यां महति युद्धे प्रसक्ते श्रुतायुषा परिक्षिप्तेन तोमरेण मोहितमर्जुनं प्रत्यच्युतायुः शूलं चिक्षेप । श्रीकृष्णेन प्रत्याश्वासितोऽर्जुनः श्रुतायुरच्युतायुभ्यां महद्युद्धं कुर्वन्तौ जघान । पुनरग्रे गच्छन्नर्जुनो युद्धार्थमागतौ तत्पुत्रौ नियतायुर्दीर्घायुषौ हत्वा हतैः सैन्यैः पृथ्वीं तस्तार । बाणान्वर्षन्तो यवनपारदादीन् हत्वाऽर्जुनो रुधिरनदीं प्रावर्तयत् । पुनः सेनां प्रविशन्नर्जुनो युद्धार्थमागताभ्यां श्रुतायुरम्बष्ठाभ्यां सह युद्ध्यमानः सन्नुभौ जघान ... ... ... | १३० |
| ९४ | ७६ | सुदक्षिणादिषु हतेषु दुर्योधनो द्रोणमागत्याक्षेपपूर्वकमुवाच । दुर्योधनवाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनस्याजेयत्वकथनादिपूर्वकं व्यूहमुखे संप्राप्तां पाण्डववाहिनीं त्यक्त्वा नाहमर्जुनेन योत्स्ये, त्वमेव गत्वा तेन सह युद्ध्यस्वेत्याद्युवाच द्रोणः । अर्जुनेन सह युद्धार्थे स्वस्यासामर्थ्यमुद्भावयति दुर्योधने कवचबन्धनं प्रतिज्ञाय तद्वृत्तान्तकथनपूर्वकं तत्प्राप्तिपरंपरां कथयित्वा दुर्योधनशरीरे तत्कवचं बबन्ध द्रोणः । कवचं बद्ध्वा द्रोणेन प्रेरितो दुर्योधनोऽर्जुनसमीपं जगाम ... ... | १३२ |
| ९५ | ५१ | कुरुपाण्डवसेनयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते धृष्टद्युम्नद्रोणयोर्युद्ध्यमानयोर्धृष्टद्युम्नः कौरवसेनां द्रोणः पाण्डवसेनां च मोहयति स्म। भीमनिवारणार्थं विविंशतिप्रभृतिषु यत्नं कुर्वत्सु बाल्हीकराजद्रौपदेयादयो द्वन्द्वशो युयुधिरे। कृपादीनां जयद्रथरक्षित्वकथनम् | १३४ |
| ९६ | ३१ | सञ्जय उभययुद्धकथनं प्रतिज्ञाय विन्दानुविन्दविराटप्रभृतीनां द्वन्द्वशो युद्धं कथयामास... | १३५ |
| ९७ | ३६ | जलसन्धादीनां भीमादिभिर्युद्धेप्रवृत्ते धृष्टद्युम्नो द्रोणमधावत्। द्रोणेन सह युद्ध्यमानो धृष्टद्युम्नो द्रोणरथेन सह स्वरथं संयोज्य खड्गं गृहीत्वा द्रोणरथस्य युगमारुरोह। धृष्टद्युम्नस्य खड्गं छित्त्वाऽश्वादींश्च विद्ध्वा तद्धननार्थं द्रोणेन प्रेरितं बाणं सात्यकिश्चिच्छेद ... ... | १३६ |
| ९८ | ५७ | सात्यकिद्रोणयोर्युद्धशुश्रूषया धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्य तत्कथनम् । क्रुद्धं द्रोणमागतं दृष्ट्वा सात्यकिः स्वसूतं प्रेरयित्वा तत्समीपमाज | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | गाम। उभयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते तद्दर्शनार्थमन्येषां योधानां युद्धादुपरमो ब्रह्मादीनामागमनं च। सात्यकिना धनुषां शते छिन्ने द्रोणो मनसा तं प्रशशंस। क्रुद्धस्य द्रोणस्य सात्यकिना सह दिव्यास्त्रयुद्धे प्रवृत्ते सर्वेषु विषण्णेषु युधिष्ठिरादयः सात्यकिरक्षार्थं यत्नं चक्रुः दुःशासनादयश्च द्रोणरक्षार्थम् ... | १३८ |
| ९९ | ६३ | अवतरति दिवसकरे जयद्रथवधार्थमर्जुनवासुदेवयोर्गच्छतोरागताभ्यामावन्त्याभ्यां विन्दानुविन्दाभ्यां सह युद्ध्यमानोऽर्जुनो द्वावपि जघान। जयद्रथं दूरस्थं दृष्ट्वा हयानां विशल्यकरणाद्यर्थमर्जुनेन प्रार्थितः श्रीकृष्णस्तदङ्गीचकार। 'अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि' इति प्रतिज्ञाय रथादवरूढमर्जुनं प्रति कौरवयोधेषु बाणान्वर्षत्सु तान्सर्वांन्स्वभुजबलेन निवारयामास। 'अश्वानां पानादियोग्यं जलमत्र नास्ति' इति श्रीकृष्णेनाभिहितोऽर्जुनो बाणेन मेदिनीं भित्त्वा सरो निर्ममे तत्परितः शरगृहं च चकार ... ... | १४० |
| १०० | ३७ | अदृष्टपूर्वं सरो दृष्ट्वा सिद्धादिषु साधुवादं वदत्सु बाणान्वर्षन्तः सर्वे राजानोऽर्जुनमव्यथितं दृष्ट्वा प्रशशंसुः। श्रीकृष्णेन विशल्यकरणपूर्वकं जलपानादि कारयित्वा योजितेष्वश्वेषु पुना रथमारूह्य यान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कौरवा विमनस्काः सन्तो 'धिगस्मान्' इत्याद्यूचुः। दुर्योधनं निन्दत्सु कौरवसैन्येष्वश्वान्प्रेरयित्वा श्रीकृष्णेन पाञ्चजन्ये वादितेऽर्जुनं प्रति दुर्योधनादय आजग्मुः ... ... | १४२ |
| १०१ | ४२ | श्रान्तानामपि कौरवबलानां धैर्येणार्जुनसमीपं गतानां पुनरनिवर्तनं कृष्णार्जुनौ दृष्टवतामन्येषां जयद्रथजीवितनिराशत्वं चाह सञ्जयः। जयद्रथं दृष्ट्वा कृष्णार्जुनयोर्नदतोः सतोस्तौ प्रत्यागतं दुर्योधनं दृष्ट्वा कौरवसैन्यानि जहृषुः .. ... | १४३ |
| १०२ | ३८ | दुर्योधनं दृष्ट्वा तन्निन्दापूर्वकं 'यथाऽयं जीवितं जह्यात्तथा कुरु' इति श्रीकृष्णवाक्येऽर्जुनेनाङ्गीकृते तौ दुर्योधनं प्रति रथं प्रेषयामासतुः। निर्भयमर्जुनसमीपं गतं दुर्योधनं दृष्ट्वाऽऽलपतां सैन्यानां तत्कृतमाश्वासनमर्जुनं प्रति तस्य प्रौढिवादश्च ... | १४५ |
| १०३ | ४९ | दुर्योधनार्जुनयोः परस्परं बाणप्रहारे प्रवृत्तेऽर्जुनबाणानां नैष्फल्यं दृष्ट्वा कृष्णेन पृष्टः स द्रोणदत्ताभेद्यकवचवृत्तान्तं कथयति स्म। स्वबाणानां नैष्फल्यं दृष्ट्वार्जुनः कवचानावृतं दुर्योधनाङ्गं निर्णीय तस्य हयान्हत्वा हस्तावापं च छित्त्वा हस्ततलयोर्नखमांसान्तरे च विव्याध। तथा विद्धे दुर्योधने पलायनपरे सतितद्रक्षिभिरावृतोऽर्जुनस्तत्सैन्यं नाशयति स्म। आगच्छन्तमर्जुनं दृष्ट्वा जयद्रथरक्षिणः सिंहनादादिकं चक्रुः ... ... ... | १४६ |
| १०४ | ३५ | कौरववीरेष्वर्जुनं प्रत्यागतेषु भूरिश्रवःप्रभृतिभिः शङ्खवादने कृते कृष्णार्जुनावपि शङ्खवादनं चक्रुः। दुर्योधन-द्रौणि-कर्णादिभिरर्जुनस्य तुमुलं युद्धम् ... | १४७ |
| १०५ | ३८ | ध्वजानां विशेषज्ञानार्थं धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयोऽर्जुनादीनां ध्वजलक्षणानि कथयित्वा धृतराष्ट्रक्षेमपूर्वकमर्जुनं प्रशशंस ... | १४९ |
| १०६ | ४७ | " पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं | |

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

"किमकुर्वत" इति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । द्रोणादिभिः पञ्चालानां तुमुले युद्धे प्रवृत्ते बृहत्क्षत्रक्षेमधूर्त्यादीनां युद्धं; तत्र विशेषेण द्रोणयुधिष्ठिरयोर्युद्ध्यमानयोर्विरथो युधिष्ठिरः सहदेवरथमारुह्यापायात् ... १५०

१०७ ३९ बृहत्क्षत्रक्षेमधूर्त्योर्युद्ध्यमानयोर्बृहत्क्षत्रः क्षेमधूर्तिं जघान । धृष्टकेतुवीरधन्वनोर्युद्ध्यमानयोर्धृष्टकेतुःशक्त्या वीरधन्वानं जघान।सहदेवदुर्मुखयोर्युद्धं कुर्वतोर्विरथे दुर्मुखे निरमित्ररथारूढे सति सहदेवो निरमित्रं हतवान्। सात्यकिव्याघ्रदत्तयोर्युद्धे सात्यकिना व्याघ्रदत्ते हते तं प्रति मागधा आजग्मुः । मागधैः सह युद्धं कुर्वता सात्यकिना सैन्ये विद्राविते तं प्रति द्रोण आजगाम १५१

१०८ ४४ द्रौपदेयैः सौमदत्ते युद्धे प्रसक्ते साहदेविः सौमदत्तिं जघान । भीमालम्बुषयोर्युद्धे प्रवृत्ते मायया शस्त्रवृष्टिं कुर्वन्नलम्बुषो भीमप्रेरितेन त्वाष्ट्रास्त्रेण पीडितः पलायनं चकार ... १५३

१०९ ३७ अलम्बुषघटोत्कचयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते भीमादिष्वागतेषु सर्वैः सह युद्धं कुर्वन्तमलम्बुषं घटोत्कचो न्यवधीत् । तस्मिन्हते पाण्डवाः सिंहनादादि कृत्वा घटोत्कचं संमानयामासुः १५४

११० १०३ सात्यकिर्द्रोणं कथं न्यवारयदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्य तत्कथनम् । द्रोणसात्यक्योर्युद्ध्यमानयोः सात्यकिं विषण्णं दृष्ट्वा कौरवा हर्षेण सिंहवद्व्यनदन् । कौरवनादं श्रुत्वा युधिष्ठिरः सैन्यं धृष्टद्युम्नं च संप्रेर्य सात्यकिरक्षणार्थमाययौ । द्रोणस्तैः सह युद्धं कुर्वन्पञ्चालादीञ्जिगाय । एतदन्तरे पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा गाण्डीवशब्दमशृण्वन्व्याकुलो युधिष्ठिरः सात्यकिं प्रति तत्प्रशंसादिपूर्वकमर्जुनसाहाय्यार्थं प्रेरयति स्म ... ... १५७

१११ ५१ अर्जुनं प्रति गच्छेति युधिष्ठिरचोदितेन सात्यकिना तं प्रति स्वस्यार्जुनेन तद्रक्षणाय नियोगाभिधानपूर्वकं स्वेन तस्यापरित्याज्यत्वकथनम् । युधिष्ठिरेण भीमादिभिः स्वस्य रक्षणकथनपूर्वकं पुनः सात्यकेरर्जुनं प्रति गमने नियोजनम् ... १५९

११२ ८० युधिष्ठिरोक्तं श्रुत्वा चिन्तयन्सात्यकिरर्जुनसमीपगमनं प्रतिज्ञाय कौरवसैन्यमारणं तदन्तर्गतकिरातादिमारणं च प्रतिज्ञाय रथसज्जीकरणमभिदधाति स्म । सज्जीकृतं रथमारूढः सात्यकिः सहागच्छन्तं भीमं परावर्त्य कौरवसैन्यं प्रविवेश ... १६२

११३ ६७ सात्यकौ गते धृष्टद्युम्नादयो द्रोणं प्रति जग्मुः । कौरवसैन्यनाशनपूर्वकमर्जुनं जिगमिषुः सात्यकिः द्रोणेन वारितः संस्तेन सह युयुधे । द्रोणेन सक्रोधमुक्तः सात्यकिर्विनयेनार्जुनकृतिमवलम्ब्य द्रोणं प्रदक्षिणीकृत्य स्वसारथिं प्रेरयन्भारतीं सेनां प्रविवेश। प्रविष्टः सात्यकिरागतेन कृतवर्मणा युद्ध्यमानस्तं बाणैराच्छाद्य तत्सारथिं हत्वा काम्बोजसैन्यं जगाम । सात्यकिं प्रति जिगमिषुं द्रोणं पाण्डवसेना निवारयामास ... ... १६४

११४ १०३ सञ्जयं प्रति धृतराष्ट्रो विस्मयपूर्वकं वदन्नर्जुनसात्यक्योः प्रशंसारूपं वाक्यमुक्त्वा तावुभौ सेनाप्रविष्टौ दृष्ट्वा दुर्योधनः किमकरोदिति पप्रच्छ । पुनर्धृतराष्ट्रः

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

पुत्राणां शोकं संभावयन्नर्जुनसात्यक्योः सेनाप्रवेशेनानुतप्यमानः सन् द्रोणयुद्धं जयद्रथवधवृत्तान्तं च शुश्रूषुः पृच्छति स्म। आगतैर्भीमादिभिः सह युद्ध्यमानः कृतवर्मा शिखण्डिना युद्धं कुर्वंस्तं बाणैर्मोहयामास। शिखण्डिनं मोहितं दृष्ट्वा कौरवेषु कृतवर्माणं पूजयत्सु शिखण्डिसारथिस्तमपोवाह। कृतवर्मणा पराजिताः पाण्डवसैनिका विमुखाः समपद्यन्त ... ... १६७

११५ ६२ कौरवाणां निनादं श्रुत्वा सात्यकिः कृतवर्माणमेत्य युद्ध्यमानस्तं विरथं कृत्वा सारथिं प्रेरयंस्त्रिगर्तसैन्यसमीपं जगाम। त्रिगर्तैःसह युद्धं कुर्वतः सात्यकेर्बाणप्रहारैः पीडिते गजसैन्ये पलायिते तं प्रति जलसन्धे आजगाम। जलसन्धेन सह युद्ध्यमानः सात्यकिस्तस्य बाहुद्वयं छित्त्वा शिरश्चिच्छेद। जलसन्धे हते भग्नं सैन्यं दृष्ट्वा कौरवसहितो द्रोणः सात्यकिमाजगाम ... १६९

११६ ४६ द्रोणादिषु सप्तसु महारथेषु युगपद्बाणान्वर्षत्सु तान्प्रति सात्यकिर्बाणान्ववर्ष। सात्यकिर्दुर्योधनेन युद्धं कुर्वंस्तस्य सारथिं जघान। ततस्तस्मिंश्चित्रसेनरथमारुह्य पलायिते आर्तनादं श्रुत्वा कृतवर्मा पुनराजगाम। सात्यकिः कृतवर्मणा युद्धं कुर्वंस्तं विजित्यार्जुनदर्शनार्थं गच्छति स्म...१७१

११७ ३६ सात्यकिना सैन्ये पीड्यमाने द्रोणः सात्यकिं प्रति बाणान्समवाकिरत्। सात्यकिना द्रोणस्य सारथौ हते विद्रवन्तं तद्रथं प्रति सैन्ये गते स व्यूहद्वारमागत्य तस्थौ ... ... १७२

११८ १८ द्रोणादीञ्जित्वा सात्यकिः सैन्यमध्ये गच्छन् सुदर्शनेन युयुधे। सात्यकिः सुदर्शनस्य हयादीन्निहत्य तं च हत्वाऽर्जुनमार्गेणाजगाम ... ... १७३

११९ ५१ सात्यकिः स्वसारथिं प्रत्यर्जुनहतसैन्यं दर्शयित्वा दुर्योधनादीन्प्रति रथं नेतुमाज्ञापयन् प्रथमं मुण्डनाशार्थं तान् प्रत्यश्वान् प्रेरयेत्याज्ञापयति स्म। रथे प्रेरिते यवनैः सह युद्ध्यमानः सात्यकिस्तान् हत्वा काम्बोजादीन् जघान ... ... १७५

१२० ४७ अर्जुनसमीपं गच्छन् सात्यकिर्मध्ये दुर्योधनादिभिर्वारितस्तैः सह तुमुलं युद्धं कुर्वन् दुर्योधनस्य सारथिं जघान। हतसारथौ दुर्योधने पलायिते तमनु तत्सैन्येऽपि द्रुते सात्यकिरर्जुनरथं जगाम ... ... १७६

१२१ ५८ यान्तं सात्यकिं दृष्ट्वा मत्पुत्राः किमकुर्वतेति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयः 'शृणुष्वावहितो भूत्वा' इत्याद्युवाच। आगतैर्दुर्योधनादिभिः सह युद्धं कुर्वन्सात्यकिस्तद्बलं नाशयन्हस्त्यश्वादीञ्जघान। दुःशासनप्रेरितैः पाषाणयोधिभिः पार्वतीयैर्युद्धं कुर्वन्सात्यकिस्तान्हतवान्। कौरवबलस्यार्तध्वनिं श्रुत्वा यावद्द्रोणस्तत्सारथिश्च मिथः संवदतस्तावद्भीमं कौरवबलं द्रोणरथं प्रत्यायथौ ... १७८

१२२ ७३ आगते सैन्ये दुःशासनरथं दृष्ट्वा दुःशासनं प्रत्याक्षेपवचनपूर्वकं पाण्डवैः शमकरणार्थं वदन्तं द्रोणं प्रत्युत्तरमदत्वा स सात्यकिं जगाम। पाण्डवसैन्ये प्रविष्टो द्रोणो युद्धार्थमागतं पञ्चालपुत्रं वीरकेतुं जघान, तद्दृष्ट्वा आगतांस्तद्भ्रातॄंश्चित्रकेतुप्रभृतीनपि जघान। पञ्चालान् हतान् दृष्ट्वा

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | आगतस्य धृष्टद्युम्नस्य द्रोणेन सह महति युद्धे प्रवृत्ते द्रोणबाणेन सूते हते धृष्टद्युम्ने च पलायिते द्रोणः पुनर्व्यूहद्वारमाययौ | १८१ |
| १२३ | ३७ | सात्यकिं प्रति गते दुःशासने उभयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते दुःशासनसाहाय्यार्थं त्रिगर्ता आजग्मुः। आगतैस्त्रिगर्तैः सह युद्ध्यमानः सात्यकिस्तदीयान्पञ्चशतवीरान्निहत्य गच्छन्मध्ये निवारयन्तं दुःशासनमपि जित्वाऽर्जुनरथं प्रति जगाम ... | १८२ |
| १२४ | ४८ | किं मत्सेनायां सात्यकेर्निवारयिता कोऽपि नास्तीत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। सेनासमूहं द्रोणव्यूहं च प्रशस्य सेनासंबन्धिनं तुमुलं शब्दं च शंसन् भीमादीनामाक्रन्दनमाह सञ्जयः। अर्जुनसात्यक्योः सुखेन जयद्रथसमीपगमनार्थं युधिष्ठिरादिभिः प्रेरितायां पाण्डवसेनायां कौरवबलं नाशयन्त्यां दुर्योधन आजगाम। भीमादिभिः सह युद्ध्यमानस्य दुर्योधनस्य युधिष्ठिरेण सह युद्धे प्रसक्ते युधिष्ठिरं प्रत्यागतैः पञ्चालैः सह द्रोणस्य संकुलं युद्धम् ... | १८३ |
| १२५ | ७८ | पराक्रमं प्रकाशयन्युद्धार्थमागतं बृहत्क्षत्रं हत्वा शिशुपालपुत्रं धृष्टकेतुं जघान। द्रोणो धृष्टकेतौ हते आगतं तत्पुत्रं हत्वा जारासंधिं च निहत्य पाण्डवसैन्यं यावन्नाशयति तावत्पञ्चालादयस्तमाजग्मुः। द्रोणेन चेदिश्रेष्ठेषु हतेषु भीतानां पञ्चालानां द्रोणप्रशंसारूपं वाक्यं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा तं प्रत्याजगाम। क्षत्रधर्मणि हते कम्पमानेषु पञ्चालेषु चेकितानेन सह युद्ध्यमानेन द्रोणेन तत्सारथौ हते तद्धयेषु त्वपलायमानेषु द्रुपदस्तमाजगाम | १८६ |
| १२६ | ४९ | व्यूहं भित्त्वा पार्थेषु प्राग्रेषु शरणमपश्यंश्चिन्तयानो युधिष्ठिरो गाण्डीवशब्दमशृण्वन् सात्यकिं चापश्यन् भीमसमीपमागत्य 'यः सदेवान्सगन्धर्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत्। तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते' इत्युवाच। सान्त्वनं कुर्वन्तं भीमं युधिष्ठिरोऽर्जुनं हतमाशङ्क्य तत्समीपगमनार्थं प्रेरयित्वा सात्यक्यर्जुनौ दृष्ट्वा संविदं कुर्वित्याह | १८८ |
| १२७ | ७४ | युधिष्ठिरमनुनीय तद्वाक्यमङ्गीकृत्यार्जुनसमीपं गच्छन् भीमो धृष्टद्युम्नं तद्रक्षार्थमादिश्य निर्जगाम। पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा पुनर्युधिष्ठिरेण प्रेरितः पञ्चालादिभिरनुगम्यमानो भीमो मध्ये प्राप्तान्दुःशलादीनतीत्य द्रोणसमीपं गतो गजानीकमवधीत्। अर्जुनसरणिमालम्ब्य गच्छेति द्रोणेनोक्तो भीमस्तदनङ्गीकुर्वन् गदया तद्रथं चूर्णयामास अन्यं रथमास्थाय द्रोणे व्यूहद्वारि स्थिते दुःशलादिभिर्युद्ध्यमानो भीमो वृन्दारकादींस्त्वत्पुत्रान् हत्वा सिंहनादादिकं चकार ... ... | १९० |
| १२८ | ५६ | द्रोणे निवारयितुमिच्छति स भीमो गदया युद्ध्यमानः कौरवान् विद्राव्य चमूं प्रविष्टः सन्द्रोणेन महद्युद्धमकरोत्। द्रोणस्य रथं क्षिप्त्वा व्यूहं प्रविष्टो भीमो भोजानीकं प्रमथ्य दरदादीनतीत्य गच्छन् सात्यक्यर्जुनौ दृष्ट्वा सिंहनादं चकार। भीमनादं श्रुत्वा कृष्णार्जुनसात्यकिष्वपि नदत्सु स वेषां शब्दं श्रुत्वा युधिष्ठिरो हृष्टः सन् मनसा भीमादीन्प्रशशंस | १९२ |
| १२९ | ३९ | नर्दन्तं भीमं के पर्यवारयन्निति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | गमनमार्गं रुन्धता कर्णेन सह तुमुले युद्धे प्रसक्ते भीमस्तस्य सारथ्यादीन् हत्वा तं निर्जित्य सिंहनादं चकार।तच्छ्रवणाद्युधिष्ठिरो जहर्ष... ... ... | १९३ |
| १३० | ४४ | दुर्योधनेन शीघ्रमागत्याक्षिप्तो द्रोणो द्यूताद्यनुवादपूर्वकं तं तिरस्कृत्य जयद्रथरक्षणार्थं गच्छेत्यादिदेश । द्रोणेनादिष्टो दुर्योधनो युधामन्यूत्तमौजोभ्यां युद्ध्यमानस्ताभ्यां विरथीकृतो गदया तयोरपि रथौ भङ्क्त्वा शल्यरथमारुरोह। तावप्यन्यरथारूढावर्जुनं जग्मतुः | १९५ |
| १३१ | ५८ | कर्णे भीमं प्रति पुनरागते तद्युद्धश्रवणार्थं धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । कर्णं त्यक्त्वाऽर्जुनं गन्तुकामो भीम आक्षेपयुक्तं तदाह्वानमसहमानः कर्णेन युद्धं कुर्वंस्तत्सारथ्यादीन्हत्वा तं पराजिग्ये... ... ... ... | १९६ |
| १३२ | ४३ | विमुखं कर्णं दृष्ट्वा दुर्योधनः किमब्रवीदित्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । रथान्तरमारुह्य पुनरागतस्य कर्णस्य भीमेन सह तुमुले युद्धे प्रसक्ते द्यूतादिसंभवान् क्लेशान्स्मृत्वा सक्रोधो भीमः कर्णं प्रत्यधावत् । कर्णभीमौ परस्परपराक्रमप्रदर्शनपूर्वकमुभावप्युभयसैन्यं व्यनाशयताम्... ... ... ... | १९८ |
| १३३ | ४५ | भीमयुद्धश्रवणेन विस्मितो धृतराष्ट्रः कर्णपराजयं श्रुत्वाऽनुतप्तो दुर्योधनमाक्षिपन्भीमकर्णयोर्युद्धं शुश्रूषुः प्रश्नं चकार। नपुः कर्णभीमयोर्युद्ध्यमानयोर्भीमेन कर्णस्य सारथ्यादिहनने कृते विरथःस मुमोह। मोहिते कर्णे दुर्योधनेन प्रेरितः स्वभ्राता दुर्जयो भीमेन युद्ध्यमानस्तेन हतः | १९९ |
| १३४ | ३५ | रथान्तरमारुह्य पुनरागतं कर्णं युद्ध्यमानो भीमो विरथं चकार। दुर्योधनप्रेरणया आगतेन तद्भ्रात्रा दुर्मुखेन युद्धं कुर्वन् भीमस्तं जघान । हतं दुर्मुखं प्रदक्षिणीकृत्य कर्णस्तद्रथमारुह्य शोचन् भीमबाणपीडितो रणादपायात् ... ... ... | २०० |
| १३५ | ४० | कर्णपलायनं श्रुत्वाऽनुतप्यमानं दुर्योधनोक्तकर्णप्रशंसादिस्मरणपूर्वकं भीमं स्तुत्वा दुर्योधनं निन्दन्तं धृतराष्ट्रं सञ्जयो भर्त्सयांचक्रे। कर्णेऽपयाते आगतान्दुर्मर्षणादीन्पञ्च दुर्योधनभ्रातॄन् पुनरागतस्य कर्णस्य समक्षं भीमो जघान ... ... | २०२ |
| १३६ | ४० | दुर्मर्षणादिहननेनाधिकं क्रुद्धः कर्णो भीमेन सह तुमुलं युद्धं कुर्वंस्तद्भयात्पुनः पलायनं चक्रे। कर्णेऽपयाते दुर्योधनेन प्रेषितांश्चित्रोपचित्रादीन् षट् स्वभ्रातॄन् भीम एकैकेन बाणेन जघ्निवान्। तान्निहतान्दृष्ट्वा पुनरागते कर्णे पुनरुभयोर्युद्धे प्रसक्ते भीमपराक्रमदर्शनेन कौरवा विमनसोऽभूवन् ... ... | २०३ |
| १३७ | ५३ | भीमज्यातलनिःस्वनं श्रुत्वा क्रुद्धः कर्णः पुनर्युयुधे। तुमुलशब्दं श्रुतवता दुर्योधनेन सेनया सह प्रेषितेषु सप्तसु भ्रातृषु सर्वे कर्णरक्षणार्थं यत्नं चक्रुः। भीमसेनः कर्णसमक्षं शत्रुञ्जयादीन् सप्त दुर्योधनभ्रातॄन् हत्वा तन्मध्ये हतं विकर्णमनुशोचन् सिंहनादं चकार। तं श्रुत्वा युधिष्ठिरस्तुतोष। एकत्रिंशद्भ्रातृहननानन्तरं विदुरवाक्यं स्मृतवतो दुर्योधनस्य मूकीभावं कथयित्वा दुर्योधनादीन्निन्दन् धृतराष्ट्रमाचिक्षेप सञ्जयः ... ... | २०५ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १३८ | २८ | पुनः शोकसंतप्ते धृतराष्ट्रे पृच्छति सञ्जयः कर्णभीमयोर्युद्धं शशंस। भीमबाणपीडिते सैन्ये पलायमाने योधा बाणपातमतिक्रम्य युद्धदर्शनार्थं तस्थुः। सञ्जयो रुधिरनदीप्रवहणं हतैर्मनुष्यादिभिर्युद्धभूमिशोभां चारणादीनां हर्षं च कथयति स्म ... | २०६ |
| १३९ | १२४ | कर्णभीमयोः पुनर्युद्धे प्रवृत्ते भीमबाणप्रहारेण मोहितः कर्णः संज्ञां लब्ध्वा पुनर्युयुधे । बाणवर्षणेनाकाशं छादयित्वा नादं कुर्वन्तावुभौ प्रति देवर्ष्यादयः पुष्पवृष्ट्यादि चक्रुः। कर्णेन भीमस्य धनुरादिषु छिन्नेषु भीमत्यक्तां शक्तिं चिच्छेद कर्णः। भीमः खड्गप्रक्षेपेण कर्णस्य धनुश्छित्त्वा विशस्त्रो मृतहस्त्यादींस्तं प्रति क्षिपन्नर्जुनप्रतिज्ञां स्मृत्वा तं न जघान । कर्णोऽपि कुन्तीवाक्यं स्मृत्वा तं न जघान । धनुष्कोट्या कर्णेन स्पृष्टस्य भीमस्य तस्य च परस्पराधिक्षेपपूर्वकमुक्तिप्रत्युक्ती। भीमस्य बाहुयुद्धविषयकं मतमाज्ञाय युद्धान्निवृत्तं विकत्थमानं कर्णं प्रत्यर्जुने बाणान्क्षिपति तद्बाणपीडितः सोऽपयांचक्रे। कर्णं प्रत्यर्जुनमुक्तान्बाणांश्छिन्दन्द्रोणपुत्रोऽर्जुनबाणपीडितः स सैन्यमध्यं प्रविवेश | २१० |
| १४० | २५ | विलापपूर्वकं सात्यकियुद्धशुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। सैन्यमध्यं प्रविशन्ननिवार्यः सात्यकिरागतेनालम्बुषेण युद्धं कुर्वंस्तं जघान। दुःशासनमग्रतः कृत्वा आगतान्दुर्योधनभ्रातॄन्निवार्य गच्छन्तं सात्यकिं दृष्ट्वाऽर्जुनो जहर्ष ... ... | २११ |
| १४१ | ३७ | दुःशासनरथं प्रति गच्छन्सात्यकिस्त्रिगर्तराजप्रभृतिभिर्निवारितस्ताञ्जित्वा भारतीं सेनां प्रविवेश। युद्धविशारदः सात्यकिः शूरसेनसेनां जित्वा कलिङ्गसैन्यं जिगाय। सात्यकिं दृष्ट्वा तं प्रशंसन्तं श्रीकृष्णं प्रति तत्कृतयुधिष्ठिरत्यागेन दुःखितस्यार्जुनस्योक्तिः ... ... | २१२ |
| १४२ | ७२ | आगच्छन्तं सात्यकिं प्रति भूरिश्रवस्यागते उभयोरुत्तरप्रत्युत्तरपूर्वकं युद्धं कर्तुं प्रवृत्तयोस्तत्सर्वे सैनिका ददृशुः। परस्परं हयनाशनेन विरथावुभावसियुद्धं कुर्वन्तौ परस्परमसिचर्मणी छित्त्वा बाहुयुद्धं चक्रतुः । कृष्णार्जुनयोः पश्यतोर्भूरिश्रवसा सात्यकावास्फाल्य भूमौ पातिते एनं रक्षेत्युवाचार्जुनं कृष्णः । उरसि पादप्रहारं कृत्वा केशान् धृत्वा शिरश्छेत्तुं प्रवृत्तस्य भूरिश्रवसः सासिं बाहुं श्रीकृष्णवाक्यादर्जुनश्चिच्छेद ... ... | २१५ |
| १४३ | ५२ | भूरिश्रवा अर्जुनं निन्दंस्तस्य प्रत्युत्तरं श्रुत्वा प्रायोपवेशनं चकार। निन्दां कुर्वतः कौरवान्प्रत्याक्षेपवाक्यं वदन्नर्जुनो भूरिश्रवस उत्तमलोकप्राप्तिमाशास्ते स्म श्रीकृष्णश्च स्वसारूप्यप्राप्तिमनुजज्ञे। उत्थितः सात्यकिः कृष्णादिभिर्वार्यमाणोऽपि भूरिश्रवसः शिरश्चिच्छेद । देवेषु भूरिश्रवसं स्तुवत्सु सात्यकिं निन्दन्तः कौरवाः सात्यकिवाक्यं श्रुत्वा निरुत्तरबभूवुः | २१७ |
| १४४ | २९ | द्रोणादिभिरनिगृहीतः सात्यकिर्भूरिश्रवसा कथं निगृहीत इति धृतराष्ट्रप्रश्ने सात्यकिभूरिश्रवसोरुत्पत्तिं कथयन्सञ्जयः शिनिपर्यन्तं चन्द्रवंशपरंपरामाह। देवक्यर्थं स्वयंवरे वसुदेवार्थं शिनिना देवक्यां हृतायां तदस | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | हमानो युद्ध्यमानः सोमदत्तस्तेन पराभूतो महादेवं प्रसाद्य तस्माच्छिनिपुत्रहन्तारं भूरिश्रवसं पुत्रमवाप । भूरिश्रवसोर्जन्म कथयित्वा सात्यकेरजेयत्वं कथयन् वृष्णीन् प्रशशंस सञ्जयः ... | २१८ |
| १४५ | ९८ | पुनर्युद्धवृत्तान्तं शुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । अश्वप्रेषणार्थं श्रीकृष्णं प्रेरयत्यर्जुने तन्निवारणार्थं दुर्योधनादय आजग्मुः । जयद्रथवधोद्यतमर्जुनं दृष्ट्वा सैन्धवरक्षणार्थं वदन्तं दुर्योधनमाश्वासयति स्म कर्णः । कौरवसैन्यं निघ्नन्नर्जुनो दुर्योधनादिभिर्वारितोऽश्वत्थामप्रभृतिभिर्युद्धं कुर्वन्कर्णं विरथं चकार, स च द्रौणिं रथमारुरोह । पुनः कर्णादिभिरर्जुनस्य संकुलं युद्धम् ... ... | २२१ |
| १४६ | १४४ | गाण्डीवशब्दं श्रुत्वा क्षुब्धे कौरवसैन्येऽर्जुन ऐन्द्रास्त्रेण कौरवसैन्यं नाशयञ्शोणितनदीं प्रावर्तयत् । अर्जुनः कौरवमहारथानतिक्रम्य द्रौण्यादीन्प्रति बाणान्वर्षञ्जयद्रथेन युद्ध्यमानस्तत्सारथिं नाशयामास । सूर्याच्छादनार्थं तमः सृष्ट्वा 'पश्य सिन्धुपतिं वीरम्' इत्याद्युक्तवति श्रीकृष्णेऽऽर्जुनः कृपादीन्प्रति बाणवर्षं कृत्वा जयद्रथमधावत् । अर्जुनमुक्तशरजालेन जयद्रथरक्षिषु पलायमानेषु पुनरर्जुनः कृपादीन् व्याकुलीकृत्य जयद्रथं हन्तुमस्त्रं जग्राह । श्रीकृष्णकथितं जयद्रथवृत्तान्तं श्रुत्वाऽर्जुनो बाणेन जयद्रथशिरश्छित्त्वा बाणैरूर्ध्वमुत्क्षिपंस्तत्पितुरुत्सङ्गे तत्पातयामास । उत्सङ्गादधः पतिते शिरसि तत्पितुः शिरोऽपि शतधा बिभेद । तदर्जुनस्य कर्म दृष्ट्वा सैन्येषु विस्मितेषु कृष्णस्तत्तमः सञ्जहार । जयद्रथनाशं दृष्ट्वा दुर्योधनादिषु दुःखितेषु वासुदेवादीनां शंखशब्दं श्रुत्वा युधिष्ठिरो जहर्ष, सोमकाश्च द्रोणेन सह युयुधिरे ... | २२५ |
| १४७ | ९२ | जयद्रथे हते मामकाः किमकुर्वतेति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । जयद्रथे हते कृपद्रौणिभ्यामर्जुनस्य युद्धे प्रसक्ते बाणप्रहारेण मूर्छितं कृपं दृष्ट्वा विलपन्तमर्जुनं प्रति कर्ण आद्रवत् । कर्णं प्रति पाञ्चाल्याभ्यां सह सात्यकावागतेऽर्जुनकृष्णयोरुक्तिप्रत्युक्ती । सात्यकिकर्णयोर्युद्धं शुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने तदुत्तरं वदन्सञ्जयः श्रीकृष्णार्जुनौ प्रशशंस । विरथसात्यकिदर्शनानन्तरं श्रीकृष्णेन शंखे वादिते तद्ध्वनिं श्रुत्वा दारुकेणानीतं रथमारुह्य सात्यकिः कर्णं प्रति जगाम । कर्णसात्यक्योस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते सात्यकिना विरथीकृतं कर्णं दृष्ट्वा वृषसेनादय आययुर्विह्वलः कर्णश्च दुर्योधनरथमारुरोह । सात्यकिर्द्रौणिप्रभृतीन्विजित्य दारुकभ्रात्रा आनीतमन्यं रथमारुह्य कौरवसैन्यं प्रत्युपाद्रवत् । कर्णोऽपि रथान्तरमारुह्य रिपुसैन्यं प्रत्यधावत् ... ... | २२८ |
| १४८ | ४८ | भीमः किमकार्षीदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने भीमयुद्धवृत्तान्तं सञ्जयः कथयति स्म । भीमेन निवेदितं कर्णवाग्बाणप्रहारादि श्रुत्वाऽर्जुनेन कर्णसमीपे तत्सुतवधे प्रतिज्ञाते रथिनस्तुमुलं शब्दं चक्रुः । अस्तंगते सूर्येऽर्जुनं प्रशंसंस्तेन च स्तुतः श्रीकृष्णस्तस्मै तद्धतसैन्यानि युद्धभूमिं च प्रदर्श्य शङ्खं वादयित्वा युधिष्ठिरमागत्य जयद्रथवधं कथयति स्म ... | २३० |

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

१४९ ६२ पादवन्दनपूर्वकं 'दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र' इत्याद्युक्तवति श्रीकृष्णे युधिष्ठिरो रथादवप्लुत्योभावालिङ्ग्य 'प्रियमेतदुपश्रुत्य' इत्याद्युक्त्वा श्रीकृष्णं तुष्टाव। तौ च तं तुष्टुवतुः। अभिवन्दनं कुर्वन्तौ सात्यकिभीमौ प्रति 'दिष्ट्या पश्यामि वाम्' इत्याद्युवाच युधिष्ठिरः ... २३३

१५० ३६ सैन्धवे निहते शोचन्दुर्योधनो मनसाऽर्जुनं प्रशस्य कौरवान्प्रति विलापवाक्यमुक्त्वा द्रोणं प्रत्यप्युवाच ... ... २३४

१५१ ४१ दुर्योधनेनोक्तो द्रोणः किमब्रवीदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जय उत्तरं जगाद। दुर्योधनोक्तं श्रुत्वा दुःखितो द्रोणो द्यूताद्यनुवादपूर्वकं तं प्रत्याक्षेपवाक्यान्युक्त्वा 'नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम्' इत्यादि प्रतिजज्ञे। अश्वत्थामानं प्रति वक्तव्यं संदेशं दुर्योधनं प्रत्युक्त्वा पाण्डवसृञ्जयाञ्जगाम द्रोणः ... २३६

१५२ ३६ पुनर्युद्धोद्योगं कुर्वन्दुर्योधनः कर्णं प्रति द्रोणनिन्दारूपं वाक्यमब्रवीत्। परं कर्णो द्रोणस्य निर्दोषत्वं कथयित्वा येनास्मत्पौरुषं नाशितं तद्दैवस्य कर्मेत्याद्युवाच। ततस्तावकानां परेषां च पुनर्युद्धारंभ इति सञ्जयः प्राह अत्र चतुर्दशदिवसयुद्धं समाप्तम्। अतःपरं रात्रियुद्धम् ... २३७

## (६) घटोत्कचवधपर्व २३७–२९६

### रात्रियुद्धम्

१५३ ४४ पञ्चालैः कौरवाणां युद्धे प्रसक्ते जयद्रथवधसंतप्तो दुर्योधनः पाण्डवसैन्यमवजगाहे। भीमादीन्प्रति बाणान्वर्षन्दुर्योधनो युधिष्ठिरेण युयुधे। युधिष्ठिरबाणेन दुर्योधनस्य मूर्छा। अथ द्रोणसाहाय्येन प्रमुदिते दुर्योधने पुनश्चासीत्संग्रामः इत्याद्युवाच सञ्जयः ... ... ३९२

१५४ ४१ कुपित आचार्यो यदा पाण्डून् प्राविशत्तदा पाण्डवास्तं कथं पर्यवारयन्? इत्यादिप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। सायाह्ने द्रोणं प्रत्यर्जुनादिषु गतेषु रात्रावुभयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते द्रोणः पाण्डवसैन्यं विमुखं चकार ... २४०

१५५ ४६ तस्मिन्प्रविष्टे दुर्धर्षे इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। द्रोणं प्रति पाण्डवेषु गतेषु स केकयादीन्हत्वा सैन्यानि नाशयञ्शिबिराजं जघान। युद्ध्यमानो भीमो मुष्टिना कलिङ्गसुतान्हत्वा कौरवसैन्यं नाशयन्युद्धार्थमागतौ दुर्मुखदुष्कर्णौ दुर्योधनभ्रातरौ जघान ... २४२

१५६ १९० पुत्रशोकसंतप्ते क्रुद्धे सोमदत्ते सात्यकिं प्रत्यागत्याधिक्षेपवाक्यमुक्त्वा तद्वधार्थं शपथं चकार। सोमदत्तसाहाय्यार्थं दुर्योधनादिष्वागतेषु सात्यकिसाहाय्यार्थं ससैन्ये धृष्टद्युम्ने चागते उभयोस्तुमुलं युद्धम्। सात्यकिबाणप्रहारेण सोमदत्ते मोहिते तत्सारथिनापवाहिते सात्यकिं प्रत्यायान्तं द्रोणं युधिष्ठिराद्य आजग्मुः। द्रोणे बाणान्वर्षति विद्रुतं सैन्यं दृष्ट्वाऽर्जुने आगते पाण्डवैः सार्धं तुमुले युद्धे प्रवृत्ते पञ्चालादय आजग्मुः। सात्यकिं प्रत्यायान्तमश्वत्थामानं प्रत्यागतस्य घटोत्कचस्य युद्धं दृष्ट्वा सकर्णाः कौरवाः प्रदुद्रुवुः। द्रौणिघटोत्कचयोर्युद्धे प्रसक्ते युद्ध्यमानं घटोत्कचपुत्रं द्रौणिर्जघान। पुत्रवधं दृष्ट्वा आग-

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | तस्य शोकसन्तप्तस्य घटोत्कचस्याश्वत्थाम्ना सहोक्तिप्रत्युक्ती। द्रौणिं प्रति सक्रोधवाक्यमुक्त्वा तेन सह युद्ध्यमानस्य मायाविनो घटोत्कचस्य युद्धं दृष्ट्वा दुर्योधनो निषसाद। अश्वत्थाम्ना समाश्वासितस्य दुर्योधनस्य प्रेरणया शकुनिः ससैन्यः पाण्डवानगाम। द्रौणिघटोत्कचयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते घटोत्कचप्रेरिते राक्षसैः सह युद्धं कुर्वन्द्रौणिरद्भुतं पराक्रमं प्रकटयति स्म। द्रौणिं प्रति घटोत्कचेन प्रेरिता अशनिर्द्रौणिनोत्प्लुत्य गृहीत्वा प्रक्षिप्ता, सैव घटोत्कचरथं नाशयामास। विरथे घटोत्कचे धृष्टद्युम्नरथमारूढे उभयोर्बाणान्वर्षतोद्रौणी राक्षसादीन् पातयन् युद्धभूमिं शोभयित्वा शोणितनदीं प्रावर्तयत्। भीमादीन्प्रति बाणान् वर्षन्नश्वत्थामा द्रुपदपुत्रान् सुरथादीञ्श्रुताह्वयादीनन्यांश्च जघान। अश्वत्थाम्ना घटोत्कचे पराजिते धृष्टद्युम्नादिषु च विमुखेषु सिद्धादयोऽश्वत्थामानं प्रशशंसुः... | २४७ |
| १५७ | ४९ | द्रुपदपुत्रादीनां नाशं दृष्ट्वा युधिष्ठिरादिषु संकुलं युद्धं कुर्वत्सु सात्यक्यादीनां बाणैः सोमदत्तो मोहितोऽभूत्। सोमदत्तं मोहितं दृष्ट्वाऽऽगतेन बाल्हीकेन सह युद्धं कुर्वन्भीमस्तं जघान। नागदत्तप्रभृतिभिर्दशभिर्दुर्योधनभ्रातृभिर्युध्यमानो भीमस्ताञ्जघान। सैन्यानि नाशयतो युधिष्ठिरस्य द्रोणेन सह युद्धे प्रवृत्ते सैनिकास्तत्प्रशशंसुः। युधिष्ठिरं विमुच्य पञ्चालान् गच्छन्तं द्रोणं प्रत्यागतयोर्भीमार्जुनयोर्बाणैर्व्यथिता कौरवसेना व्यशीर्यत ... | २४९ |
| १५८ | ७० | दुर्योधनेन युद्धकरणार्थं प्रार्थितः कर्णस्तमाश्वासयति स्म। कर्णवाक्यं श्रुत्वा तन्निर्भर्त्सनां कुर्वन्तं कृपं प्रति कर्णः स्वप्रागल्भ्यं प्रकाशयन्नुवाच। पुनः स्वाक्षेपपूर्वकं पाण्डवान्प्रशंसन्तं कृपं कौरवप्रशंसापूर्वकमधिचिक्षेप कर्णः ... ... ... ... ... | २५१ |
| १५९ | १०० | कृपाधिक्षेपेण क्रुद्धं कर्णाधिक्षेपं कुर्वन्तमश्वत्थामानं दुर्योधनो निवारयति स्म। कर्णाश्वत्थाम्नोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं दुर्योधनेन प्रार्थितोऽश्वत्थामा प्रससाद। युद्धार्थमागतस्य कर्णस्य पाण्डवैः सह युद्ध्यमानस्य पराक्रमं दृष्ट्वा तुष्टो दुर्योधनोऽश्वत्थामानं प्रति कर्णं प्रशंसन्नुवाच। कर्णरक्षणार्थमश्वत्थामप्रभृतिष्वागतेषु सत्सु पञ्चालैः सहार्जुने चागत उभयोस्तुमुलं युद्धम्। अर्जुनेन धनुरादि छित्त्वा विरथीकृते कर्णे कृपरथमारूढे सैन्ये च पलायमाने तदाश्वासनं कृत्वाऽऽत्मश्लाघापूर्वकं युद्धार्थं गच्छन्तं दुर्योधनं कृपप्रेरितोऽश्वत्थामा निवारयति स्म। दुर्योधनोऽश्वत्थामानं प्रति सखेदवाक्यमुक्त्वा पाण्डवसेनानाशार्थं प्रेरयंस्तं प्रशशंस ... | २५४ |
| १६० | ६० | पाण्डवसेनां नाशयितुं यत्नं कुर्वतोऽश्वत्थाम्नो दुर्योधनमधिक्षिप्य केकयपञ्चालादिभिः सह युद्धकरणं प्रतिज्ञातवतस्तैः सह तुमुलं युद्धम्। द्रवतः पञ्चालादीन्दृष्ट्वा आगतस्य धृष्टद्युम्नस्याश्वत्थाम्ना सह सक्रोधोक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं तुमुलं युद्धम्। उभयोर्युद्धदर्शने हृष्टेषु सैन्येष्वश्वत्थामा धृष्टद्युम्नस्य ध्वजादिकं छित्त्वा ननाद .... ... | २५६ |
| १६१ | १९ | अश्वत्थामानं प्रत्यागतानां | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | युधिष्ठिरादीनां दुर्योधनादिभिः सह युद्धे प्रवृत्ते भीमार्जुनाभ्याममम्बष्ठादिषु हतेषु द्रोणे च पश्चालान् प्रति भीमार्जुनभयेन कौरवसैन्यं पलायति स्म ... | २५७ |
| १६२ | ५५ | सोमदत्तेन सह तुमुलं युद्ध्यमानः सात्यकिर्बाणेन तं जघान, तं दृष्ट्वा कौरवयोधा आजग्मुः । द्रोणयुधिष्ठिरयोस्तुमुले युद्धे प्रसक्ते युधिष्ठिरः श्रीकृष्णवाक्यात्स्थानान्तरं जगाम ... | २५९ |
| १६३ | ३८ | रात्रियुद्धवृत्तान्तं कथयन्तं सञ्जयं प्रति 'कथं प्रकाशस्तेषां वा' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने स कौरवव्यूहरचनाकथनपूर्वकं दीपादीनां व्यवस्थामाह ... ... | २६१ |
| १६४ | ३६ | सर्वत्र दीपप्रकाशे सति परस्परवधेच्छया आगतेषु योधेषु दीपादिभिः शोभितायां युद्धभूमावर्जुनः कौरवसैन्यं व्यधमत् । 'तस्मिन्प्रविष्टे' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । दुर्योधनेन द्रोणरक्षणार्थं भ्रातृप्रभृतिषु प्रेरितेषूभयोस्तुमुलं युद्धम्... | २६२ |
| १६५ | ४१ | द्रोणसमीपगमनार्थं युधिष्ठिरेण सैन्ये प्रेरिते योद्धॄणां परस्परं द्वन्द्वशो युद्धे प्रवृत्ते कृतवर्मशरैः पीडितस्य युधिष्ठिरस्य रणादपयानम् ... ... ... ... | २६४ |
| १६६ | ६७ | भूरिसात्यक्योस्तुमुलं युद्ध्यमानयोः सात्यकिः शक्त्या भूरिं जघान, तं हतं दृष्ट्वा आगच्छतोऽश्वत्थाम्नो घटोत्कचेन युद्धे प्रसक्ते तच्छराहतोऽश्वत्थामा मुमोह । पुनर्लब्धसंज्ञस्य द्रौणेः शराघातेन विमूढे घटोत्कचे सारथिनाऽपवाहिते भीमदुर्योधनयोस्तुमुले युद्धे प्रसक्ते भीमगदया चूर्णितरथो दुर्योधनो नन्दकरथमारुरोह । .... ... | २६६ |
| १६७ | ५० | सहदेवकर्णयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते कर्णेन पराजितस्तद्वाक्शल्यपीडितः सहदेवो जनमेजयरथमारुरोह। विराटशल्ययोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते शल्येन विरथीकृतं दृष्ट्वा आगतं शतानीकं तद्भ्रातरं शल्यो जघान । शतानीकरथमारुह्य युद्ध्यमाने विराटे शल्यबाणपीडिते युद्धादपयाते कृष्णार्जुनौ शल्यसमीपमाजग्मतुः । अलम्बुषार्जुनयोर्युद्धे प्रसक्तेऽर्जुनोऽलम्बुषं विजित्य द्रोणान्तिकं जगाम... | २६८ |
| १६८ | ४७ | शतानीकचित्रसेनयोर्युद्धे प्रवृत्ते विरथश्चित्रसेनो हार्दिक्यरथमारुरोह । द्रुपदवृषसेनयोर्युद्धे प्रवृत्ते वृषसेनबाणप्रहारेण मोहिते द्रुपदे तत्सारथिनाऽपवाहिते पाण्डवसैन्यं निर्जित्य वृषसेनो युधिष्ठिरं जगाम । प्रतिविन्ध्यदुःशासनयोर्युद्ध्यमानयोर्दुःशासनेन विरथीकृतं प्रतिविन्ध्यं दृष्ट्वा तद्भ्रातर आजग्मुः | २६९ |
| १६९ | ५० | नकुलसौबलयोर्युद्ध्यमानयोर्नकुलबाणपीडिते सौबलेऽपयाते नकुलो द्रोणसमीपमाजगाम । शिखण्डिकृपयोस्तद्रक्षणार्थमागतयोरुभयसैन्ययोश्च तुमुलं युद्धम् ... ... | २७१ |
| १७० | ७० | धृष्टद्युम्नद्रोणयोर्युद्धे प्रवृत्ते द्रोणरक्षणार्थमागतैः कर्णादिभिर्धृष्टद्युम्नस्य युद्धम् । द्रुमसेनेन युद्ध्यमानो धृष्टद्युम्नस्तं हत्वा कर्णादिभिर्युयुधे, तदा तं प्रति सात्यकिराजगाम । सात्यकिना सह तुमुलं युद्धं कुर्वतो गाण्डीवध्वानिं श्रुतवतः कर्णस्य वाक्याद्दुर्योधनेन प्रेरितः शकुनिः ससैन्योऽर्जुनं प्रति जगाम। शकुनौ प्रयाते कर्णादयो बाणान्वर्षन्तः सात्यकिमावव्रुः ... ... ... | २७३ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १७१ | ५४ | कर्णादिभिर्युद्ध्यमानः सात्यकिर्यावत्कौरवबलं नाशयति तावदागतो दुर्योधनो युद्धं कुर्वंस्तेन विरथीकृतः कृतवर्मरथमारुरोह। शकुनिधनञ्जययोर्युद्ध्यमानयोः स्वबाणच्छिन्नसैन्यभुजादिभिर्भूमिमाच्छादयता धनञ्जयेन विरथीकृते शकुनावुलूकरथमारूढे सैन्यं सर्वा दिशः प्रदुद्राव। धृष्टद्युम्नद्रोणयोर्युद्धे प्रवृत्ते धृष्टद्युम्नो द्रोणं निवार्य तत्सेनां व्यधमत्, तदा पाण्डवसैन्यानि शङ्खान्दध्मुः ... ... | २७५ |
| १७२ | ४१ | स्वबलं विद्रुतं दृष्ट्वा क्रुद्धेन दुर्योधनेन प्रेरितौ द्रोणकर्णौ पाण्डवान्प्रत्याजग्मतुः, द्रोणादिषु सात्यकिं प्रति बाणान्वर्षत्सु द्रोणं प्रत्यागतेषु पञ्चालादिषु तेन भग्नेषु दीनमनाः श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति वदति स्म। पलायमानां स्वसेनां यावत्कृष्णार्जुनावाश्वासयतस्तावदागच्छन्तं भीमं दृष्ट्वा उभावपि द्रोणकर्णौ न जग्मतुस्तदाऽऽश्वस्ता युधिष्ठिरादयोऽप्याजग्मुः। ततः पुनरुभयोः सेनयोः संकुलं युद्धम् ... ... ... | २७६ |
| १७३ | ६८ | धृष्टद्युम्नकर्णयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते कर्णेन पराजितं धृष्टद्युम्नं दृष्ट्वा आगताः पञ्चालादयो द्रोणकर्णाभ्यां पीडिताः प्रदुद्रुवुः। स्वसैन्यं विद्रुतं दृष्टवतो युधिष्ठिरस्य 'पश्य कर्णं महेष्वासम्' इत्यादि वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनः श्रीकृष्णं प्रति ' भीतः कुन्तीसुतो राजा ' इत्याद्युवाच। कर्णं प्रति घटोत्कचप्रेषणार्थं श्रीकृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनस्तमाजुहाव। कर्णं प्रति गमनार्थं कृष्णार्जुनाभ्यां प्रेरितो घटोत्कच उभावाश्वास्य कर्णं प्रति जगाम ... ... ... | २७८ |
| १७४ | ४५ | कर्णसमीपे राक्षसं दृष्ट्वा दुर्योधनो यावद्दुःशासनं प्रेरयति तावत्पाण्डवान्हन्तुं प्रार्थयमानो जाटासुरिरलम्बुषो दुर्योधनवाक्याद्घटोत्कचं जगाम। कर्णालम्बुषाभ्यां युद्धं कुर्वन्घटोत्कचोऽलम्बुषं हत्वा दुर्योधनं प्रति ' एष ते निहतो बन्धुः ' इत्याद्युक्त्वा कर्णं जगाम ... ... | २८० |
| १७५ | ११४ | कर्णघटोत्कचयोर्युद्धं शुश्रूषोर्धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयो घटोत्कचरूपादि वर्णयन् कर्णं प्रति तस्य गमनमाह। आगतेन घटोत्कचेन सह तुमुलं युद्धं कुर्वन्कर्णस्तस्य प्रगल्भवाक्यानि श्रुत्वा पुनर्युद्ध्यमानस्तत्सेनां नाशयन् दुर्निरीक्ष्यः शुशुभे। मायानिर्मितं रथमारुह्यागते घटोत्कचे नानारूपाणि धृत्वा तुमुलं युद्धं कुर्वति कर्णः स्वास्त्रेण तस्य मायां नाशयति स्म, स च पुनरन्तर्दधे | २८३ |
| १७६ | २२ | एतदन्तरे अलायुध आगत्य 'विदितं ते महाराज ' इत्याद्युक्त्वा दुर्योधनेनानुमोदितो भीमेन सह युद्धार्थं गच्छति स्म, तदा घटोत्कचसदृशः स बभौ ... | २८४ |
| १७७ | ४७ | राक्षसं दृष्ट्वा हृष्टेषु कौरवेषु कर्णघटोत्कचयोर्युद्ध्यमानयोरार्तं कर्णं दृष्ट्वा दुर्योधनेन प्रेरितोऽलायुधो घटोत्कचं जगाम। अलायुधघटोत्कचयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते घटोत्कचसाहाय्यार्थमागतस्य भीमस्यालायुधेन सह तुमुलं युद्धम्। उभयोर्घोरं युद्धं दृष्टवता श्रीकृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनो यथायथं सैनिकान्योजयति स्म पुनरलायुधभीमौ तुमुलं युयुधाते ... ... ... ... ... | २८५ |
| १७८ | ४० | अलायुधग्रस्तं भीमं दृष्टवता श्रीकृष्णेन प्रेरितो घटोत्कचोऽला- | |

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

युधेन युयुधे । अलायुधसैन्येन सह सात्यक्यादिषु युद्ध्यमानेषु तेन सह तुमुलं युद्धं कुर्वन्घटोत्कचोऽलायुधं हत्वा तच्छिरो दुर्योधनसमीपे चिक्षेप । अलायुधं हतं दृष्ट्वा पञ्चालादिषु सिंहवन्नदत्सु दुर्योधन उद्विविजे ... २८७

१७९ ६४ पञ्चालादिभिर्युद्धं कुर्वता कर्णेन स्वबलं भग्नं दृष्ट्वा आगतो 'घटोत्कचस्तेन सह तुमुलं युद्धं कृत्वाऽन्तर्दधे । ततो मदीयैः किं कृतमिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयो 'घटोत्कचनाशार्थं कौरवा मन्त्रयामासुः' इत्याह । घटोत्कचस्य मायायुद्धं दृष्ट्वा दुर्योधनादिषु भीतेषु सैन्ये च भग्ने सत्यपि कर्णो धैर्येणामोहितस्तस्थौ।'घटोत्कचं हन्तुं शक्तिं प्रेरय' इत्यतिनिर्बन्धपूर्वकं कौरवैः प्रेरितः कर्णस्तं प्रतीन्द्रदत्तां शक्तिं चिक्षेप । शक्त्या हतो घटोत्कचः पतन्स्वदेहेन कौरवाणामेकामक्षौहिणीं सेनां नाशयति स्म । ... ... २९०

१८० ३३ घटोत्कचे हते पाण्डवेषु शोचत्सु हृष्टं श्रीकृष्णमालोक्यार्जुनस्तं प्रति 'अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन' इत्याद्युवाच । श्रीकृष्णो हर्षकारणं कथयञ्शक्तिसहितस्य कर्णस्याजेयत्वं तत्पराक्रमं च कथयित्वा तद्वधोपायादिकमाचख्यौ ... ... २९१

१८१ ३३ जरासन्धादयः कथं हता इत्याद्यर्जुनप्रश्ने श्रीकृष्णो 'युष्माकं जयोपकाराय' इत्याद्युक्त्वा जरासन्धादिपराक्रममाख्यातवान् ... ... २९२

१८२ ४७ 'कर्णोऽर्जुनं परित्यज्य घटोत्कचे कथं शक्तिं मुमोच' इति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । प्रतिदिनं रात्रावस्माभिरर्जुने शक्तिप्रक्षेपार्थं प्रेरितः कर्णस्तत्क्षेपं निश्चित्य प्रातर्युद्धार्थं गतः संस्तद्विस्मरणमवाप । 'सति प्रत्यये कर्णेनार्जुनं प्रति शक्तिः कथं न मुक्ता' इति सात्यकिना पृष्टः श्रीकृष्णो दुःशासनादिभिः प्रेरितोऽपि कर्णो मया मोहितत्वान्न चिक्षेप इत्याद्याह ... २९४

१८३ ६७ 'कृष्णेऽर्जुने वा शक्तिः कथं न त्यक्ता' इति पुनर्धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयः शक्तित्यागविषये सर्वेषां विस्मृतिरित्याद्याह । अनुतप्तस्य धृतराष्ट्रस्य युद्धशुश्रूषया पुनः प्रश्ने सञ्जयस्योत्तरकथनम् । कर्णपराक्रमभयात्कौरवसैन्यनिवारणार्थं भीममादिश्य दुःखितं युधिष्ठिरं श्रीकृष्ण आश्वासयामास । कृष्णेनाश्वासितोऽपि घटोत्कचवधेनाभिमन्युवधस्मरणेन चानुतप्यमानो युधिष्ठिरो द्रोणकर्णयोर्वधविषये तं प्रत्युक्त्वा कर्णं हन्तुं स्वयं निर्जगाम । कर्णेन सह योद्धुं गच्छन्तं युधिष्ठिरं दृष्ट्वा श्रीकृष्णेन प्रेरितेऽर्जुने तमनुधावति व्यास आगत्य युधिष्ठिरमाश्वासयति स्म ... ... २९६

( ७ ) द्रोणवधपर्व २९६-३१४

१८४ ५६ व्यासोपदेशात्कर्णवधान्निवृत्तस्य द्रोणवधार्थं धृष्टद्युम्नमादिशतो युधिष्ठिरस्य प्रेरणया द्रोणवधार्थं निर्गतेषु पाण्डवसैन्येषूभयसेनयोस्तुमुलं युद्धम् । रात्रियुद्धेन श्रान्ता निद्राव्याकुलाः सैनिका अर्जुनेन दत्तानुज्ञाः शयनं कुर्वन्तस्तमाशिषाऽभ्यनन्दन् । सर्वेषां निद्रास्थानवर्णनपूर्वकं चन्द्रोदयं वर्णयति स्म सञ्जयः ... २९८

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १८५ | ३७ | अधिक्षिपन्तं दुर्योधनं प्रति क्रुद्धो द्रोणोऽर्जुनं प्रशंसन्नुवाच। अर्जुनप्रशंसया क्रुद्धं विकत्थनवाक्यानि वदन्तं दुर्योधनं प्रत्युपहासपूर्वकं भर्त्सनरूपं द्रोणवाक्यम् ... | २९९ |
| १८६ | ६१ | रात्रिविशेषेऽरुणोदयसमये सर्वेषां जयाद्यनन्तरं द्वैधीभूतं सैन्यमालोक्य द्रोणकर्णयोरपसव्यकरणार्थं कृष्णेन प्रेरितो भीमेन च तथैवानुमोदितोऽर्जुनस्तावतिचक्राम। दुर्योधनादिभिरर्जुनस्य युद्धे प्रवृत्ते द्रोणदर्शनेन त्रस्ते पाण्डवसैन्ये आगतयोर्विराटद्रुपदयोर्द्रोणेन सह युद्धम्। द्रोणं दृष्ट्वा तद्वधार्थं धृष्टद्युम्नेन शपथे कृते भीमेन सक्रोधमुक्तः स तेन सह द्रोणेन युद्धं कर्तुं जगाम ... ... ... | ३०२ |
| | | **पञ्चदशदिवसयुद्धम्।** | |
| १८७ | ५५ | सूर्योदये युद्धप्रवृत्तौ दुर्योधनकर्णद्रोणदुःशासनादिषु चतुर्षु चतुर्भिः पाण्डवैर्युद्ध्यमानेषु नकुलदुर्योधनयोर्युद्धम् ... | ३०३ |
| १८८ | ५४ | सहदेवदुःशासनयोर्भीमकर्णयोश्च युद्धम्। द्रोणार्जुनयोर्युद्ध्यमानयोस्तद्दर्शनार्थं देवेष्वागतेषु सिद्धादिषु च विस्मितेषूभयोरुभौ प्रति ब्रह्मास्त्रप्रक्षेपः ... | ३०५ |
| १८९ | ६६ | दुःशासनधृष्टद्युम्नयोर्युद्ध्यमानयोर्दुःशासनं पराजित्य द्रोणं प्रति गच्छन्तं धृष्टद्युम्नं प्रति युद्धार्थमागतस्य कृतवर्मणस्तेन तत्सहोदराभ्यां च सह छलादिरहितं तुमुलं युद्धम्। युद्धार्थं सङ्गतयोर्दुर्योधनसात्यक्योः संवदतोः प्रियवाक्यानि वदन्तं दुर्योधनं प्रति 'एवं वृत्तं सदा क्षात्रम्' इत्याद्युवाच सात्यकिः। दुर्योधनसात्यक्योस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते दुर्योधनसाहाय्यार्थमागतेन कर्णेन सह भीमस्य युद्धम्। युधिष्ठिरप्रेरिताः सैनिका द्रोणं प्रत्यागत्य युयुधिरे ... ... ... | ३०८ |
| १९० | ५९ | पञ्चालैः सह द्रोणस्य युद्धे प्रवृत्ते द्रोणबाणपीडितांस्तान् दृष्ट्वा श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति 'नैष युद्धेन संग्रामे' इत्याद्युवाच। श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा भीमो मालवेन्द्रगजमश्वत्थामनामानं हत्वा द्रोणस्याग्रे 'अश्वत्थामा हतः' इत्याह। भीमवाक्येन क्रुद्धं युद्ध्यमानं द्रोणं प्रति विश्वामित्रादय आगत्य 'अधर्मतः कृतं युद्धम्' इत्याद्यूचुः। ऋषिवाक्यं भीमवाक्यं च श्रुत्वा सत्यवादित्वविश्वासात्स्वपुत्रं हतं वाऽहतं वेति युधिष्ठिरं प्रति पप्रच्छ। श्रीकृष्णवाक्याद्भीमवाक्याच्च युधिष्ठिरेणोक्तमश्वत्थामा हत इति व्यक्तं गज इत्यव्यक्तं च वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो विषण्णोऽभूत् ... | ३०९ |
| १९१ | ५३ | विषण्णेन द्रोणेन सह धृष्टद्युम्नस्य तुमुले युद्धे प्रसक्ते धृष्टद्युम्नहननार्थं द्रोणेन प्रेषितं बाणं सात्यकिश्छित्वा धृष्टद्युम्नं मोचयतिस्म ... ... | ३११ |
| १९२ | ८४ | आगतैर्दुर्योधनादिभिः सात्यकेर्युद्धे प्रसक्ते युधिष्ठिरः 'स्वसेनां प्रति अभिद्रवत संयत्ताः' इत्याद्युवाच। युद्धार्थं प्रवृत्ते द्रोणे भूकम्पादिषु दुर्निमित्तेषु जातेषु भीमप्रोत्साहितेन धृष्टद्युम्नेन सह युद्ध्यमानं द्रोणं प्रति भीमो 'यदि नाम न युद्ध्येरन्' इत्याद्युवाच। भीमवाक्यं श्रुत्वा कर्णादीनाहूयास्त्राणि त्यक्त्वा रथोपस्थ उपविश्य सर्वभूतेभ्योऽभयं दत्वा योगधारणां चकार द्रोणः। योगधारणया ब्रह्मलोकं गतस्य द्रोणस्य धृष्टद्युम्नेन शिरसि छिन्ने | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कौरवेषु पलायमानेषु पाण्डवेषु च सिंहवन्नदत्सु भीमस्तं प्रशशंस ... ... ... | ३१४ |
| | | **( ८ ) नारायणास्त्रमोक्षपर्व** | **३१४–३४३** |
| १९३ | ७० | द्रोणे हते पलायमानेषु शकुनिकर्णादिषु बलं भग्नं दृष्ट्वाऽश्वत्थामा तद्विषये दुर्योधनं पप्रच्छ। पितृवधकथनार्थं दुर्योधनेन प्रेरितः कृपोऽश्वत्थामानं प्रति द्रोणवधवृत्तान्तं कथयति स्म, स च चुक्रोध तच्छ्रुत्वा ... | ३१६ |
| १९४ | १५ | द्रोणं प्रशंसन्धृतराष्ट्रो धृष्टद्युम्नेनाधर्महतं पितरं श्रुत्वाऽश्वत्थामा किमब्रवीदिति पप्रच्छ सञ्जयं प्रति ... ... | ३१७ |
| १९५ | ५० | शोचन्पितृवधेनाश्वत्थामा युधिष्ठिरविषये दुर्योधनसमीपे शपथं कृत्वाऽऽत्मानं श्लाघयन्नारायणास्त्रप्राप्तिवृत्तान्तं कथयित्वा तत्प्रयुयोज ... ... | ३१९ |
| १९६ | ५४ | अश्वत्थाम्ना नारायणास्त्रे प्रमुक्ते दुर्निमित्तान्यभूवन् । धृष्टद्युम्नं रक्षितुं पाण्डवाः किं मन्त्रयामासुरित्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । कुरुसेनारवश्रवणभीतेन युधिष्ठिरेण पलायितसेनाप्रतिनिवर्तकप्रश्ने अर्जुनेन तत्कथनपूर्वकं द्रोणवधोपेक्षणादात्मोपालम्भः ... | ३२१ |
| १९७ | ४४ | साधिक्षेपमश्वत्थामतो युधिष्ठिरं भीषयन्तं पार्थं प्रति भीमेन सामर्षमात्मबलवर्णनादिपूर्वकं स्वेनाश्वत्थामादिविजयप्रतिज्ञानम् । धृष्टद्युम्नेनाप्यर्जुनं प्रति सक्रोधं क्षात्रधर्मादिकथनपूर्वकं स्वकृतद्रोणवधस्य धार्मिकत्वकथनम् ... ... | ३२२ |
| १९८ | ६८ | क्षत्रधर्मनिन्दापूर्वकं धृतराष्ट्रे पृच्छति सञ्जय आह। धृष्टद्युम्नवाक्यं श्रुत्वा सर्वेषु तूष्णीं भूतेष्वर्जुने च क्रुद्धे धृष्टद्युम्नं निनिन्द सात्यकिः । सात्यकिमाक्षिप्य कौरवनिन्दावाक्यं वदति धृष्टद्युम्ने स गदामादाय तं गच्छति स्म। श्रीकृष्णप्रेरितेन भीमेन निवारितं सात्यकिं प्रति सहदेवः सविनयमुवाच । सात्यकिं क्षमापयन्तं भीमं प्रति सोपहासं वाक्यं वदति धृष्टद्युम्ने कृष्णयुधिष्ठिरावुभावपि निवारयतुः | ३२४ |
| १९९ | ६३ | सैन्यनाशपूर्वकं दुर्योधनसमीपे पुनः प्रतिज्ञां कुर्वत्यश्वत्थाम्नि कुरुपाण्डवसेनयोः समागमं कथयन्सञ्जयो नारायणास्त्रप्रभावं कथयति स्म । द्रोणमारणरुष्टेनाश्वत्थाम्ना वैरिसेनायां नारायणास्त्रप्रयोगः । अस्त्रतेजसा पीड्यमानानां कृष्णवचनाद्यानावरोहणशस्त्रन्यासादिनाऽऽत्मरक्षणम् । भीमे एकस्मिन्नेव शस्त्रधारणपूर्वकं प्रतियुद्ध्यमाने सति तन्मस्तकेऽस्त्रस्य प्रज्वलनम् ... | ३२६ |
| २०० | १३२ | नारायणास्त्रेणावेष्टितं दृष्ट्वा कृष्णार्जुनाभ्यां हस्ततः शस्त्रापकर्षणपूर्वकं रथादपकृष्टे तस्मिन्नस्त्रस्य प्रशमनम् । सञ्जयेन दुर्योधनाश्वत्थाम्नोरुक्तिप्रत्युक्तिकथनानन्तरं 'तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रौणिः किमकरोत् ?' इति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । धृष्टद्युम्नाश्वत्थाम्नोर्युद्ध्यमानयोर्धृष्टद्युम्नं पीडितं दृष्ट्वाऽऽगतः सात्यकिः कृपादिभिर्युद्धं कुर्वन्नश्वत्थामसहितान्सर्वान्विरथांश्चकार । रथान्तरमारुह्यागतेनाश्वत्थाम्ना सर्वपञ्चालवधं प्रतिज्ञाय बाणेन विद्धः सात्यकिर्मुमोह, तं च रणादपोवाह सारथिः । द्रौणिबाणप्रहारेण मूर्छितं धृष्टद्युम्नमालो- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | क्यागतैरर्जुनादिभिस्तस्य युद्धम्। पौरवादीनां नाशं दृष्ट्वा क्रुद्धस्य भीमस्याश्वत्थाम्ना युद्धं कुर्वतस्तद्बाणप्रहारेण हयेषु प्रद्रुतेषु तदपयानं दृष्ट्वा पञ्चालादयोऽपि प्रदुद्रुवुः ... | ३३० |
| २०१ | १०० | नारायणास्त्रे विफलीकृते पुनरश्वत्थाम्नाऽऽग्नेयप्रयोगः। तदपि पार्थेन व्यर्थीकृते दूयमानेन द्रौणिना शस्त्रन्यासपूर्वकं रणाङ्गणान्निर्गमनम्। निर्गच्छता च तेन यदृच्छासमागतं व्यासं प्रति निजास्त्रवैफल्यकारणप्रश्नः। व्यासेन कृष्णार्जुनयोर्नरनारायणात्मकथनप्रसङ्गेन शतरुद्रीयकथनपूर्वकं तं प्रत्युपदेशः। व्यासवाक्यं श्रुत्वा द्रौणिना सेनावहारे कृते पाण्डवा अपि स्वसैन्यान्यवजन्हुः। इति पञ्चदशदिनयुद्धम् | ३३५ |
| २०२ | १५८ | द्रोणे हते मामकाः पाण्डवाश्च किमकुर्वन्निति धृतराष्ट्रेण पृष्टः सञ्जय आह। यदृच्छागतं व्यासं प्रत्यर्जुनो 'युद्धे योऽयं मदग्रे शूलहस्तोऽतितेजस्वी पुरुषो गच्छन्दृश्यते स कः' इति पप्रच्छ। तदुत्तरं वदन्व्यासो महादेवस्वरूपं तत्पारिषदानां नामानि महादेवस्य स्तोत्रं च कथयित्वा त्रिपुरजयवृत्तान्तं कथयति स्म। पार्वती स्वाङ्के बालं धृत्वा कोऽयमिति देवान्पप्रच्छ, तदाऽसूयया तं प्रति वज्रं प्रहरिष्यत इन्द्रस्य बाहू स्तंभयामास प्रभुः। इन्द्रमोचनार्थं ब्रह्मणा स्तुतो महादेवः प्रससाद। पशुपतिप्रभृतीनां नाम्नां निर्वचनान्यभिधाय महादेवस्तवश्रवणादिफलं च कथयित्वा व्यासो जगाम। सञ्जयकथितो द्रोणपर्वकथोपसंहारस्तच्छ्रवणफलकथनं, भविष्यत्पर्वसंसूचनपूर्विका द्रोणपर्वसमाप्तिश्च ... ... ... | ३४२ |

॥ समाप्तेयं द्रोणपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

॥ शुभं भवतु ॥

ॐ

# ॥ द्रोणपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

# द्रोणपर्व-७

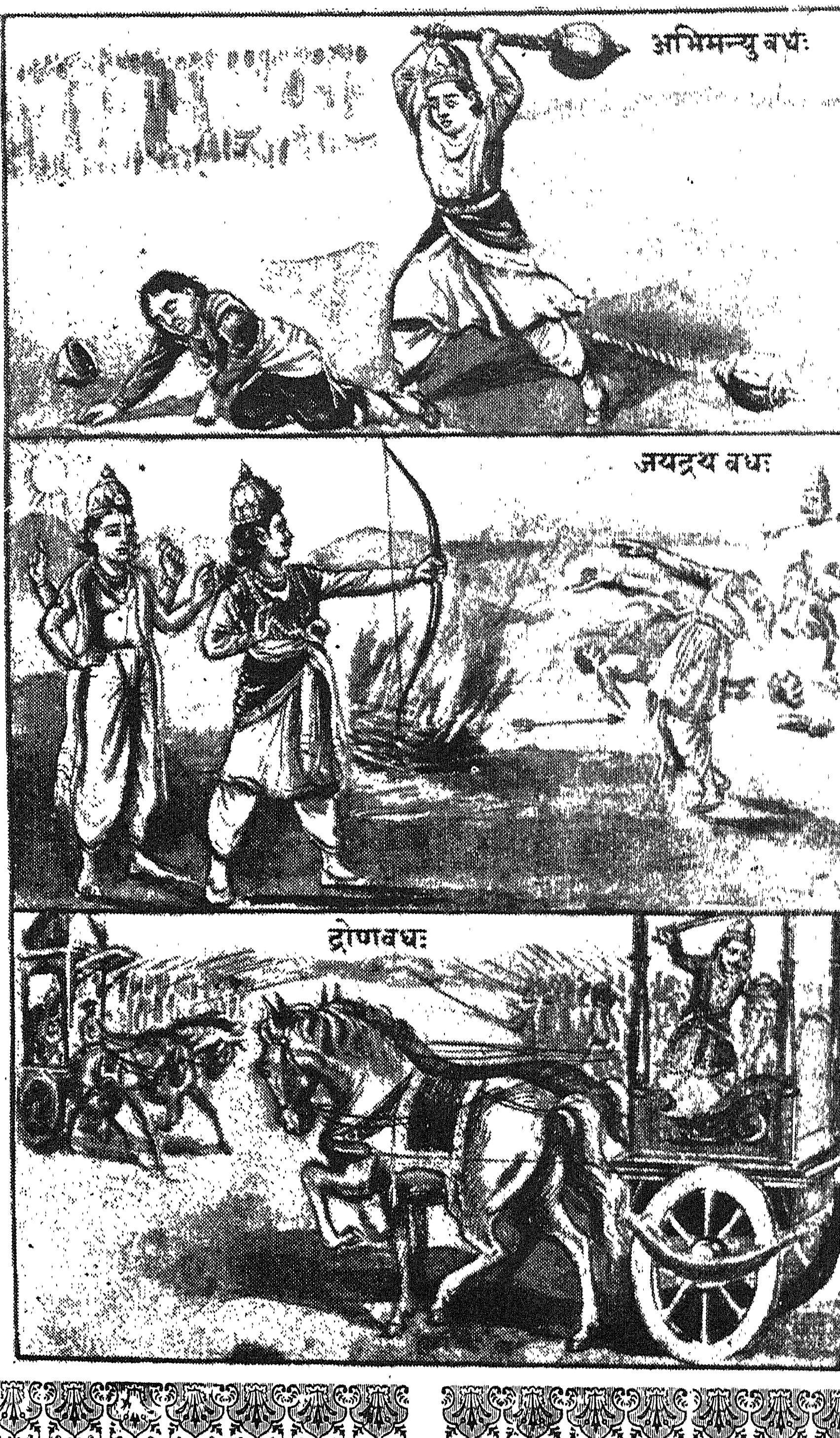

ॐ

# ॥ महाभारतम् ॥

## द्रोणपर्व ।

—७—

### द्रोणाभिषेकपर्व १

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १**

जनमेजय उवाच ।
तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना१
धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥ २
*तस्य पुत्रो हि भगवान्
भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान्
पाण्डवान् राज्यमिच्छति ॥ ३
तस्मिन् हते तु भगवन् केतौ सर्वधनुष्मताम्
यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४
वैशम्पायन उवाच ।
निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः
तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत्
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा
शिबिरात् सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम्
आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥
श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।
पुत्राणां जयमाकाङ्क्षन् विललापातुरो यथा ८
धृतराष्ट्र उवाच ।
संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम्
किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ९
तस्मिन् विनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि ।
किं नु स्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे
तदुदीर्णं महत् सैन्यं त्रैलोक्यस्यापि सञ्जय ।
भयमुत्पादयेत् तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम्
को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः
यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये १२

---

### नीलकण्ठी टीका—

**प्रणम्य परमात्मानं प्राचीनाचार्यवर्त्मना ।**
**द्रोणपर्वणि संक्षेपाद्भावदीपो वितन्यते ॥ १**

पूर्वास्मिन् पर्वणि विश्वरूपप्रदर्शनं तद्विदां चार्चिरादिमार्गापेक्षा च भीष्मकृतकालप्रतीक्षया दर्शिता । तत्रैव निष्कलं रूपं ' तमेव शरणं गच्छ '। ' तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये '। ' उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः ' इत्यादिना उक्तम् । तदधिगमवतां च नास्ति तन्मार्गापेक्षेति द्रोणनिर्वाणनिदर्शनेन दर्शयिष्यन् द्रोणपर्व समारभते- **तमप्रतिमसत्त्वौज इत्यादिना** । तत्राख्यायिका योधोत्साहार्था महतामपि मृत्युरस्तीत्यादिना जगदनित्यत्वप्रदर्शनार्था च । तत्र **सत्त्वं** धैर्यं महत्यपि दुःखकारणे वैकल्यराहित्यम् । **ओजो** मानसं बलम् । **बलं** शरीरदार्ढ्यम् । **वीर्यमुत्साहादिहेतुः । पराक्रमः** पराभिभवसामर्थ्यम् ॥ १ ॥ केतौ चिन्हभूते । एवंभूतो धनुर्धरो न भवतीत्यन्येषामभिज्ञापके ॥ ४ ॥ **चिन्ता** ध्येयविषये मनोवृत्तिप्रवाहः । **शोक** इष्टस्य पुनः पुनर्मनसि निवेशनम् ॥ ५ ॥ दुःखं दुःखहेतुम् ॥ ६ ॥ शिबिरात्तद्वतः कुरुक्षेत्रात् । पृच्छेर्द्विकर्मत्वात् पुत्राणां जयं अन्वपृच्छतेति सम्बन्धः ॥७॥ *'यस्य' इति पाठान्तरम्

देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।
किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १३

सञ्जय उवाच ।

शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।
यत् ते पुत्रास्तदाऽकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १४
निहते तु तदा भीष्मे
राजन् सत्यपराक्रमे ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च
प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५
विस्मिताश्च प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशम्य ते ।
स्वधर्मं *निन्दमानास्ते प्रणिपत्य महात्मने १६
शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायामितकर्मणे ।
सोपधानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७
विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम्
अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्
क्रोधसंरक्तनयनाः समवेक्ष्य परस्परम् ।
पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः
ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां निनदेन च ।
तावकानामनीकानि परेषां च विनिर्ययुः २०
व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते।
अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥ २१
अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः ।
निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वराः ॥
मोहात् तव सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च।
कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः
अजावय इवागोपा वने श्वापदसङ्कुले ।
भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २४
पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी ।
द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना २५
विपन्नसस्येव मही वाक्चैवासंस्कृता तथा ।
आसुरीव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ २६
विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥ २७

शरभाहतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।
भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥ २८
विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता २९.
सा तदासीद्भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३०
तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः
पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ३१
कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवातिथिम् ३२
बन्धुमापद्गतस्येव तमेवोपागमन्मनः ।
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥
राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
स हि नायुध्यत तदा दशाहानि महायशाः
सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम्
भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥
रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसंमतः ।
सासुरानपि देवेशान् रणे यो योद्धुमुत्सहेत्॥
स तु तेनैव कोपेन राजन् गाङ्गेयमुक्तवान् ।
त्वयि जीवति कौरव्य नाहं योत्स्ये कदाचन
त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ३९
पाण्डवैर्वा हते भीष्मे
त्वयि स्वर्गमुपेयुषि ।
हन्तास्म्येकरथेनैव
कृत्स्नान् यान् मन्यसे रथान्॥ ४०
एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशाः ।
नायुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव संमते॥ ४१
भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत।
जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२

---

प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् एके पराजयं प्राप्ताः स्म इति अन्ये जयं प्राप्स्यन्त इति च ध्यानं कृतवन्तः ॥ १५ ॥ विस्मिता गुरुवधेऽपि दोषाभावात् । प्रहृष्टा महाफलत्वाद्युद्धमरणस्य ॥ १६ ॥ अर्यम्णि सूर्ये व्यावृत्ते अपराह्णावलम्बिनि ॥ २१ ॥ मोहाज्जयाशारूपात् शान्तनवस्य वधादिति परेषां बलवत्त्वात् । मृत्युसाद्भूता मृत्युवशाः मृत्युनहूता इत्यपि पाठः ॥ २३ ॥ द्यौरिव निःश्रीका खमिव शून्या ॥ २५ ॥ विपन्नसस्येव निःसारा । असंस्कृता वाग्यथा कर्तव्ये असमर्था आसुरीव सेना व्याकुला । इवशब्दो वाक्यालंकारे ॥ २६ ॥ विधवेव निरलंकारा शुष्कतोयेव निरुपयोगा वृकैरिव निरुद्धा आसन्नमरणा पृषती चित्रमृगी ॥ २७ ॥ विष्वग्वाता अनेकदिग्वाता ॥ २९ ॥ तस्यां सेनायाम् ॥ ३१ ॥ रोचमानं विद्योतमानमिव भास्यमिति शेषः ॥३२॥ *'निन्दमानाः' 'विद्यमानाः' इति पाठान्तरे

तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्यसन्धे महौजसि ।
त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥
तावकास्तव पुत्राश्च
सहिताः सर्वराजभिः ।
हा कर्ण इति चाक्रन्दन्
कालोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ४४
एवं ते स्म हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥
जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।
अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ४६
स हि शक्तो रणे राजं-
स्त्रातुमस्मान् महाभयात् ।
त्रिदशानिव गोविन्दः
सततं सुमहाभयात् ॥ ४७
वैशम्पायन उवाच ।
तथा तु सञ्जयं कर्णं कीर्तयन्तं पुनः पुनः ।
आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
यत् तद्वैकर्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा ।
अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९
अपि तन्न मृषाकार्षीत्
कच्चित् सत्यपराक्रमः ।
संभ्रान्तानां तदार्तानां
त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ॥ ५०
अपि तत् पूरयांचक्रे धनुर्धरवरो युधि ।
यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपाकृतम् ५१
तत् खण्डं पूरयन् कर्णः परेषामादधद्भयम् ।
स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके सञ्जय कथ्यते ॥
आर्तानां बान्धवानां च क्रन्दतां च विशेषतः
परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च शर्म च ।
कृतवान् मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ५३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

सञ्जय उवाच ।
हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा
भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम् ।
सोदर्यवद्व्यसनात् सूतपुत्रः
सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् १
श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं
निपातितं शान्तनवं महारथम् ।
अथोपयायात् सहसाऽरिकर्षणो
धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप ॥ २
हते तु भीष्मे रथसत्तमे परै-
र्निमज्जतीं नावमिवार्णवे कुरून् ।
पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात् ततः
संतारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ ३
कर्ण उवाच ।
यस्मिन् धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः
सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे ।
अस्त्राणि दिव्यान्यथ संनतिर्ह्रीः
प्रिया च वागनसूया च भीष्मे ॥ ४
सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके
सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म ।
स चेत्प्रशान्तः परवीरहन्ता
मन्ये हतानेव च सर्ववीरान् ॥ ५

---

आक्रन्दन्नाहूतवन्तः कालोऽयं त्वत्पराक्रमस्येति शेषः ॥४४॥ जामदग्न्येन अभ्यनुज्ञातं शिक्षितं नः अस्मत्सम्बंधिनाम् ॥४६॥ तनुत्यजं देहव्ययेनाप्यस्मद्धितैषिणम् । अपश्यत यग ति शेषः ॥ ४९ ॥ तत् अस्मदीयानां चिन्तित ०॥ भीष्मे विनिहते सति तत् तदा यदपाकृ नं तत्पूरयांचक्रे अपीत्यन्वयः ॥ ५१ ॥ खण्डं रिक्तम् ॥ ५२ ॥ कृतवानेवति शेषः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वाणि टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

हतमिति । विदित्वा चारमुखात् उपयायादित्यपकृष्यते ॥ १ ॥ श्रुत्वा योधमुखात् अच्युतं अस्खलितव्रतादिम् ॥ २ ॥ चन्द्रमसि लक्ष्मेव यस्मिन् धृत्यादिकं सनातनं सार्वकालिकमिति द्वयोरन्वयः ॥४॥

नेह ध्रुवं किंचन जातु विद्यते
लोके ह्यस्मिन् कर्मणोऽनित्ययोगात्
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीतार्य महाव्रते हते ॥ ६
वसुप्रभावे वसुवीर्यसंभवे
गते वसूनेव वसुन्धराधिपे ।
वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा
कुरूंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम्

सञ्जय उवाच।

महाप्रभावे वरदे निपातिते
लोकेश्वरे शास्तरि चामितौजसि ।
पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः
कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्तयन् ॥ ८
इदं च राधेयवचो निशम्य
सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह ।
परस्परं चुक्रुशुरार्तिजं मुहु-
स्तदाश्रु नेत्रैर्मुमुचुश्च शब्दवत् ॥ ९
प्रवर्तमाने तु पुनर्महाहवे
विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः ।
अथाब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो
रथर्षभान् सर्वमहारथर्षभः ॥ १०
जगत्यनित्ये सततं प्रधावति
प्रचिन्तयन्नस्थिरमद्य लक्षये ।
भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे
गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११
निपातिते शान्तनवे महारथे
दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा ।
न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं
गिरिप्रवोढारमिवानिलं द्रुमाः १२
हतप्रधानं त्विदमार्तरूपं
परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै ।
मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे
बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३

समाहितं चात्मनि भारमीदृशं
जगत् तथा नित्यमिदं च लक्षये ।
निपातितं चाहवशौण्डमाहवे
कथं नु कुर्यामहमीदृशे भयम् ॥ १४
अहं तु तान् कुरुवृषभानजिह्मगैः
प्रवेशयन् यमसदनं चरन् रणे ।
यशः परं जगति विभाव्य वर्तिता
परैर्हतो भुवि शयिताऽथवा पुनः १५
युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्त्ववान्
वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः ।
तथाऽर्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा
न तद्बलं सुजयमिहामरैरपि ॥ १६
यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले
ससात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः ।
न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवा-
न्निवर्तते मृत्युमुखान्न चासुभृत् १७
तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते
बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः ।
मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं
स्वरक्षणे चाचलवद्व्यवस्थितम् ॥ १८
एवं चैषां बाधमानः प्रभावं
गत्वैवाहं ताञ्जयाम्यद्य सूत ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
भग्ने सैन्ये यः समेयात् स मित्रम् १९
कर्तास्म्येतत् सत्पुरुषार्यकर्म
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् ।
सर्वान् सङ्ख्ये शत्रुसङ्घान् हनिष्ये
हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २०
संप्राक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे
पराहते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि सूत
तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून् विजेष्ये २१

---

महाव्रते दृढब्रह्मचर्ये हते सति श्वः सूर्योदयो भविष्यतीति कस्य निश्चयः स्यात्। मृत्युजयिनोऽपि मृत्युश्चेत् काऽस्माकं जीविताशेत्यर्थः ॥ ६ ॥ वसुवीर्यसंभवे वसूनामिव वीर्यं यस्य शान्तनोस्तस्मात् संभवो जन्म यस्य॥ ७॥ इदं यस्मिन् धृतिरित्यादिपूर्वोक्तमवज्ञेयं वचनम्॥ ९॥ प्रधावति मृत्यवे स्थिरं न किमपीति लक्षये ॥ ११ ॥ प्रवेशयन् प्रापयन् प्रवेरयन्निति पाठेऽपि स एवार्थः। विभाव्य प्रकाश्य वर्तिता स्थाता ॥ १५ धृतिमतिसत्यसत्त्ववान् नित्ययोगे मतुप् ॥ १६ ॥ तद्बलं अभ्युपेयिवान् कापुरुषो न निवर्तते। तत्र दृष्टान्तः। **मृत्युमुखादिति**। लुप्तोपमेयम्। असुभृत्प्राणी ॥ १७॥ नाहं कापुरुष इत्याह—**तप इति**॥ १८॥ एवं मनस्यनुकूले सति एषां शत्रूणां गत्वैव गमनानन्तरं तान् शत्रून् ॥ १९॥ सत्पुरुषाणां योग्यमार्यकर्म श्रेष्ठकार्यम्॥ २०॥ संप्राक्रुष्टे येन केनापि रक्ष रक्षेत्युक्ते सति मया कृत्यं कार्यं युद्धमिति शेषः ॥ २१ ॥

कुरून् रक्षन् पाण्डुपुत्रान् जिघांसं-
स्त्यक्त्वा प्राणान् घोररूपे रणेऽस्मिन् ।
सर्वान् सङ्ख्ये शत्रुसङ्घान्निहत्य
दास्याम्यहं धार्तराष्ट्राय राज्यम् ॥२२
निबध्यतां मे कवचं विचित्रं
हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
शिरस्त्राणं चार्कसमानभासं
धनुः शरांश्चाग्निविषाहिकल्पान् ॥२३
उपासङ्गान् षोडश योजयन्तु
धनूंषि दिव्यानि तथाऽऽहरन्तु ।
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः
शङ्खं च जाम्बूनदचित्रनालम् ॥ २४
इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां
ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्कम् ।
श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्यानयन्तु
चित्रां मालां चारुबद्धां सलाजाम् २५
अश्वानग्र्यान् पाण्डुराभ्रप्रकाशान्
पुष्टान् स्नातान् मन्त्रपूताभिरद्भिः ।
तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेतान्
शीघ्राञ्शीघ्रं सूतपुत्रानयस्व ॥ २६
रथं चाग्र्यं हेममालावनद्धं
रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः ।
द्रव्यैर्युक्तं संप्रहारोपपन्नै-
र्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्तयस्व ॥ २७
चित्राणि चापानि च वेगवन्ति
ज्याश्चोत्तमाः संनहनोपपन्नाः ।
तूणांश्च पूर्णान्महतः शराणा-
मासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८
प्रायात्रिकं चानयताशु सर्वं
दध्ना पूर्णं वीर कांस्यं च हैमम् ।
आनीय मालामवबध्य चाङ्गे
प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः ॥ २९
प्रयाहि सूताशु यतः किरीटी
वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च ।
तान् वा हनिष्यामि समेत्य सङ्ख्ये
भीष्माय गच्छामि हतो द्विषद्भिः ३०
यस्मिन् राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः
समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च
मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१
तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाऽप्रमत्तः समरे किरीटिनम् ।
तथाऽपि हन्ताऽस्मि समेत्य सङ्ख्ये
यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय ॥३२
न त्वेवाहं न गमिष्यामि तेषां
मध्ये शूराणां तत्र चाहं ब्रवीमि ।
मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये
पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥ ३३

सञ्जय उवाच ।

समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं
सकूबरं हेमपरिष्कृतं शुभम् ।
पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमै-
र्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥ ३४
संपूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा
रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः ।
ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा
यत्रावसानं भरतर्षभस्य ॥ ३५
वरूथिना महता सध्वजेन
सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना ।
सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो
मेघस्वनेनार्क इवामितौजाः ॥ ३६
हुताशनाभः स हुताशनप्रभे
शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
स्थितो रराजाधिरथिर्महारथः
स्वयं विमाने सुरराडिवास्थितः ॥३७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

शुभ्रमुद्दीप्तम् ॥ २३ ॥ उपासंगान् शरपूर्णांस्तूणान् ॥२४॥ नागकक्ष्यां शृंखलां जैत्रं जयख्यापकम् । इंदीवराङ्कं कमलचिह्नम् ॥ २५ ॥ तप्तैरारोपितवर्णकैर्भांडैरलंकारैः ॥ २६ ॥ संप्रहारोपपन्नैर्युद्धोचितैः आवर्तयस्व आनय ॥ २७ ॥ गात्रावरणानि कवचानि ॥ २८ ॥ प्रायात्रिकं प्रयात्रा युद्धार्थं प्रयाणं तत्राहम् ॥ २९ ॥ भीष्माय कर्मणि चतुर्थी ॥ ३० ॥ यमाय यमं द्रष्टुम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

सञ्जय उवाच ।
शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम् ।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥ १
दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रान्तकं गुरुम् ।
दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ॥ २
जयाशा तव पुत्राणां संभग्ना शर्म वर्म च ।
अपाराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम् ॥ ३
स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिप्लुतम् ।
महेन्द्रेणेव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम् ॥ ४
नभश्च्युतमिवादित्यं पतितं धरणीतले ।
शतक्रतुमिवाचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम् ॥ ५
मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम् ।
ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ॥ ६
धनञ्जयशरैर्व्याप्तं पितरं ते महाव्रतम् ।
तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ७
भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः ।
अवतीर्य रथादार्तो बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ॥ ८
अभिवाद्याञ्जलिं बद्ध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ।
कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत
पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चावलोकय ।
न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित् समश्नुते ॥ १०
यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ।
कोशसंचयने मन्त्रे व्यूहे प्रहरणेषु च ॥ ११
नाहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव ।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद्भयात्
योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यति ।
अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयम्
पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ।
अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः
कुरवः सन्त्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवासुराः ।
अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः १५
त्रासयिष्यति बाणानां
कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।
समिद्धोऽग्निर्यथा वीर
महाज्वालो द्रुमान् दहेत् ॥
धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यंति तथा बाणाः किरीटिनः
येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ वने ॥ १७
तेन तेन प्रदहतो भूरिगुल्मतृणद्रुमान् ।
यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक् पार्थो न संशयः
यथा वायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ।
नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाण्डिवस्य च ॥
श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यंति भारत
कपिध्वजस्योत्पततो रथस्यामित्रकर्षिणः २०
शब्दं सोढुं न शक्ष्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः
को ह्यर्जुनं योधयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
अमानुषैश्च संग्रामस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥
तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
कोऽन्यःशक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया
जितो येन रणे रामो भवता वीर्यशालिना ।
क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥ २४
तमद्याहं पाण्डवं युद्धशौण्ड-
ममृष्यमाणो भवता चानुशिष्टः ।
आशीविषं दृष्टिहरं सुघोरं
शूरं शक्ष्याम्यस्त्रबलान्निहन्तुम् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

३

**शरतल्पे इति** ॥ १ ॥ ककुदं श्रेष्ठम् ॥ ६ ॥ रसतः शब्दं कुर्वतः ॥ १९ ॥ अमानुषैर्निवातकवचादिभिः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

# ४

सञ्जय उवाच ।

तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत् प्रीतमानसः ॥
समुद्र इव सिंधूनां ज्योतिषामिव भास्करः ।
सत्यस्य च यथा सन्तो बीजानामिव चोर्वरा
पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव ।
बान्धवास्त्वानुजीवन्तु सहस्राक्षमिवामराः॥
मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्धनः ।
कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम्
स्वबाहुबलवीर्येण धार्तराष्ट्रजयैषिणा ।
कर्ण राजपुरं गत्वा
काम्बोजा निर्जितास्त्वया ॥ ५
गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः ।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया
हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः ।
दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥
उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः
कलिङ्गान्ध्राश्च संयुगे ।
निषादाश्च त्रिगर्ताश्च
बाल्हीकाश्च जितास्त्वया ॥ ८
तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा ।
बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसा॥
यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलबान्धवः ।
तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥
शिवेनाभिवदामि त्वां गच्छ युद्ध्यस्व शत्रुभिः
अनुशाधि कुरून् सङ्ख्ये धत्स्व दुर्योधने जयं
भवान् पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा
तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥
यौनात् संबन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सतां
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१३
स सत्यसङ्गतो† भूत्वा ममेदमिति निश्चितः ।
कुरूणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥
निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च ।
ययौ वैकर्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥
सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत्।
व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत् समबृंहयत् १६
हृषिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७
कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् ।
क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि ।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥१८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णाश्वासे
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

# ५

सञ्जय उवाच ।

रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १
सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम् ।
अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत् संप्रधार्यताम्॥

कर्ण उवाच ।

ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप ।
यथा चार्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३
ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर ।
नान्याय्यं हि भवान् वाक्यं
ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४

दुर्योधन उवाच ।

भीष्मः सेनाप्रणेतासीद्वयसा विक्रमेण च
श्रुतेन चोपसंपन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा ॥ ५
तेनातियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान्मम ।
सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्मो महात्मना

---

४

**तस्येति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

† 'सत्यसंगरः' इति पाठान्तरम् ।

५

**रथस्थमिति** ॥१॥ अर्थपतिः प्रधानस्वामी ॥ ३ ॥

तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्याश्रिते दिवम् ।
कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७
न विना नायकं सेना मुहूर्तमपि तिष्ठति ।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥ ८
यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चासारथिर्यथा ।
द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९
अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति
अनायका तथा सेना सर्वान् दोषान्समर्छति
स भवान् वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥
यं हि सेनाप्रणेतारं भवान् वक्ष्यति संयुगे ।
तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः॥

कर्ण उवाच ।

सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
सेनापतित्वमर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥
कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।
युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥
युगपन्न तु ते शक्याः कर्तुं सर्वे पुरःसराः
एक एव तु कर्तव्यो यस्मिन् वैशेषिका गुणाः
अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव
अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥
को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे ।
सेनापतिःस्यादन्योस्माच्छुक्रांगिरसदर्शनात्
न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत
द्रोणं यः समरे यान्तमनुयास्यति संयुगे ॥
एष सेनाप्रणेतॄणामेष शस्त्रभृतामपि ।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन् गुरुस्तव ॥२०
एवं दुर्योधनाचार्य-
माशु सेनापतिं कुरु ।
जिगीषन्तो सुरान् संख्ये
कार्तिकेयमिवामराः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

सञ्जय उवाच ।

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १

दुर्योधन उवाच ।

वर्णश्रैष्ठ्यात्कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया
वीर्याद्दाक्ष्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् २
तपसा च कृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्वगुणैरपि ।
युक्तो भवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते
स भवान् पातु नः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः
भवन्नेत्राः पराञ्जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४
रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५
वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
पितॄणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाम्बुराट्
नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः
श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥ ७
अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु तेऽनघ
ताभिः शत्रून् प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव
प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः
अनुयास्यामहे त्वाजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥९
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः
अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नार्जुनः प्रहरिष्यति १०
ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम्।
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान् सेनापतिर्यदि ११

---

नेता कर्णधारः ॥ ८ ॥ अदेशिकोऽग्रेसररहितः ॥ १० ॥ संहननं शरीरम् ॥ १४ ॥ शुक्रांगिरसदर्शनात् शुक्रबृहस्पतितुल्यात् ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

कर्णस्येति ॥ १ ॥ भवान्नेत्रं नेता येषां ते ॥ ४ ॥ धर्मेन्द्रो यमः । अंबुराट् वरुणः॥६॥ पावकिः स्कन्दः ॥९॥

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवात्मजम् ॥ १२
सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम्
दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः ।
दुर्योधनं ततो राजन् द्रोणो वचनमब्रवीत्१३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रोत्साहने
षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

## ७

द्रोण उवाच ।
वेदं षडङ्गं वेदाहमर्थविद्यां च मानवीम् ।
त्रैय्यम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च॥
ये चाप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकांक्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान्
योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥ २
पार्षतं तु रणे राजन्न हनिष्ये कथंचन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३
योधयिष्यामि सैन्यानि
नाशयन् सर्वसोमकान् ।
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः
सञ्जय उवाच ।
स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः ।
द्रोणं तव सुतो राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥
अथाभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः ।
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः
ततो वादित्रघोषेण शंखानां च महास्वनैः ।
प्रादुरासीत् कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥
ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च ।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधबन्दिनाम् ॥ ८
जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां +सुभगानर्तितैस्तथा ।
सत्कृत्य विधिना द्रोणं
मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ ९
सञ्जय उवाच ।
सैनापत्यं तु संप्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥
सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवात्मजाः ।
दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥
प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः
कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥
तेषां प्रपक्षाः कांबोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ १४
मद्रास्त्रिगर्ताःसांबष्ठाःप्रतीच्योदीच्यमालवाः
शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥
सौवीराः कितवाः प्राच्या
दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तवात्मजं पुरस्कृत्य
सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६
हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तव सुतैः सह ।
प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत् ॥ १७
ययौ वैकर्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम्।
तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन्
हस्तिकक्ष्यो महाकेतुर्बभौ सूर्यसमद्युतिः ।
न भीष्मव्यसनं कश्चिद्दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९
विशोकाश्चाभवन् सर्वे राजानः कुरुभिः सह
हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राजल्पन्त वेगतः ॥
न हि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पांडवाः
कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान् सवासवान्
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना॥
तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ।
एवं ब्रुवन्तस्तेन्योन्यं हृष्टरूपा विशांपते ॥ २३
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ।
अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षष्ठोऽध्यायः॥६ ॥
+ सूतानां नर्तितैः इति पाठः ।

७
वेदमिति॥१॥ सुभगानर्तितैः सौभाग्यवतीनृत्यैः॥९॥

परेषां क्रौञ्च एवासीद्व्यूहो राजन्महात्मनाम्
प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ २५
व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ ।
वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनञ्जयौ २६
ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्यपथगः केतुः पार्थस्यामिततेजसः ॥
दीपयामास तत् सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुन्धराम्
दीप्यन् दृश्येत हि तथा केतुः सवत्र धीमतः
योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम्॥
वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ।
चत्वार्येतानि तेजांसि वहन् श्वेतहयो रथः ॥
परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम् ।
एवं तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ॥
तावकानां मुखे कर्णः परेषां च धनञ्जयः ।
ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥ ३२
अवेक्षेतां तदाऽन्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ ।
ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ३३
आर्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत ।
ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत् सदिवाकरम् ३४
वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ।
ववर्ष द्यौरनभ्रापि मांसास्थिरुधिराण्युत ३५
गृध्राः श्येना बकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः
उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन्नृप ॥ ३६
गोमायवश्च प्राक्रोशन् भयदान्दारुणान् रवान्
अकार्षुरपसव्यं च बहुशः पृतनां तव ॥ ३७
चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम्
अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ३८
उल्का ज्वलन्ती संग्रामे पुच्छेनावृत्य सर्वशः
परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥
भास्करस्याभवद्राजन् प्रयाते वाहिनीपतौ ।
एते चान्ये च बहवः प्रादुरासन् सुदारुणाः ४०
उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः
ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥४१
कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनापूरयज्जगत् ।
ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह
अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाद्युतिः ॥
वेगेनाभ्यद्रवत्सेनां किरन् शरशतैः शितैः ।
द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ४४
प्रत्यगृह्णंस्तदा राजञ्छरवर्षैः पृथक् पृथक् ।
विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥
व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ।
बहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥
अपीडयत् क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ४७
पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ४८
अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।
द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः ॥ ४९
सन्निवार्य ततः सर्वान् कुरूनप्यवधीद्बली ।
संयम्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाहवे ॥
स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपाद्रवत् ।
स बाणवर्षं सुमहदसृजत् पार्षतं प्रति ॥ ५१
मघवान् समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव ।
ते कम्प्यमाना द्रोणेन बाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ५२
पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
तथा पर्यचरद्द्रोणः पाण्डवानां बले बली ।
अलातचक्रवद्राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५३
खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या
चलदनिलपताकं ह्लादनं वल्गिताश्वम् ।
स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शात्रवाणां
रथवरमधिरूढः संजहारारिसेनाम्+ ॥५४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

आदित्यपथगः आकाशगः ॥२७॥ ह्लादनं योद्धुरानंदजननं ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

+ पद्यस्यास्य मालिनीवृत्तम् । महाभारते क्वाचित्कमिदम् ।

## ८

सञ्जय उवाच ।

तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् १
ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनञ्जयौ ।
अब्रवीत् सर्वतो यत्तैः कुंभयोनिर्निवार्यताम् २
तत्रैनमर्जुनश्चैव* पार्षतश्च सहानुगः ।
प्रत्यगृह्णात् ततः सर्वे समापेतुर्महारथाः ३
केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ।
युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्यात्मजास्तथा
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः ।
चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५

ये चान्ये पार्थिवा राजन्
पाण्डवस्यानुयायिनः ।
कुलवीर्यानुरूपाणि
चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६

संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे ।
व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद्भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ७
स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः ।
व्यधमत् पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ८
रथानश्वान्नरान्नागानभिधावन्नितस्ततः ।
चचारोन्मत्तवद्द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ९
तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः
आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम् ।
दृष्ट्वा संप्राद्रवन् योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः
तेषां प्राद्रवतां भीमः पुनरावर्ततामपि ।
पश्यतां तिष्ठतां चासीच्छब्दः परमदारुणः ॥
शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३

ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन् युधि
अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् १४
स तथा तेष्वनीकेषु पाण्डुपुत्रस्य मारिष ।
कालवद्व्यचरद्द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५
उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान् बाहूनपि सुभूषणान्
कृत्वा शून्यान् रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथान्
तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन वा विभो ।
प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव
द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषणेन च ।
धनुःशब्देन चाकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥
अथास्य धनुषो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्वरथपत्तिषु १९
तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् ।
द्रोणमासादयांचक्रुः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥
तान् सकुञ्जरपत्त्यश्वान् प्राहिणोद्यमसादनम् ।
चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम्
तन्वता परमास्त्राणि शरान् सततमस्यता ।
द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥ २२
पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः ।
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चरन् केतुरदृश्यत ॥ २३

सकेकयानां प्रवरांश्च पञ्च
पञ्चालराजं च शरैः प्रमथ्य ।
युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो
द्रोणोऽभ्ययात् कार्मुकबाणपाणिः २४

तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च
शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च ।
शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च
दृष्ट्वा नदन्तो व्यकिरञ्छरौघैः ॥ २५

तेषामथ द्रोणधनुर्विमुक्ताः
पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः ।
भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयूनां
जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥२६

सा योधसङ्घैश्च रथैश्च भूमिः
शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव
समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७

शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं
सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् ।
अन्यांश्च वीरान् समरे ममर्द
द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८

---

८

तथेति ॥ १ ॥ भीमः शब्दः इति सम्बन्धः ॥ १२ ॥ * धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः इति पाठः ।

एतानि चान्यानि च कौरवेन्द्र
कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा ।
प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो
द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन् २९
एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः ।
पाण्डवानां रणे योधान् पार्षतेन निपातितः
अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम्
निहत्य पश्चाद्धृतिमानगच्छत् परमां गतिम् ॥
पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः ।
हतो रुक्मरथो राजन् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्
ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत ।
सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥
द्यां धरां खं दिशो वापि प्रदिशश्चानुनादयन्
अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद्भृशम्
देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चास्य बान्धवाः ।
ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५
पांडवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान् प्रचक्रिरे
सिंहनादेन महता समकम्पत मेदिनी ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणवधश्रवणे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

धृतराष्ट्र उवाच ।
किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवसृञ्जयाः
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १
रथभङ्गो बभूवास्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः ।
प्रमत्तो वाऽभवद्द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् २
कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम् ।
किरन्तमिषुसङ्घातान् रुक्मपुंखाननेकशः ३
क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥ ४
पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद्दिव्यास्त्रधरमच्युतम् ।
कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम् ॥ ५
व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः ।
यद्द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ६
अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत् प्रतिष्ठितम्
तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम्॥७
श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम् ।
जातरूपपरिष्कारं नाद्य शोकमुपाददे ॥ ८
न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय ।
यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ९
दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् ।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ १०
यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते ।
ब्राह्मे दैवे तथेष्वस्त्रे यमुपासन् गुणार्थिनः॥११
ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हृतः ।
शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥१२
पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम् ।
दुष्टानां प्रतिषेद्धासीद्धार्मिकाणां च रक्षिता
योऽहासीत् कृपणस्यार्थे प्राणानपि परंतपः ।
मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥
बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ।
ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः
रथे वातजवायुक्ताः
सर्वशस्त्रातिगा रणे ।
बलिनो ह्रेषिणो दान्ताः
सैन्धवाः साधुवाहिनः ॥ १६
दृढाः संग्राममध्येषु ×कच्चिदासन्न विह्वलाः ।
करिणां बृंहतां युद्धे शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः १७
ज्याक्षेपशरवर्षाणां
शस्त्राणां च सहिष्णवः ।
आशंसन्तः पराञ्जेतुं
जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

**किं कुर्वाणमिति** ॥ १ ॥ अस्यतः शरानिति शेषः ॥ २ ॥ इष्वस्त्रधराचार्यं धनुर्धराचार्यम् ॥ ७ ॥ अश्मसारो लोहम् ॥ १० ॥ विसर्पणं क्षेपणम् ॥ ११ ॥ बलिनस्तेजस्विनः ॥१६॥ × केचिदा० इति पा०

हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः ।
ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहताः॥ १९
कथं नाभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ।
जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ २०
भारद्वाजः किमकरोद्युधि सत्यपराक्रमः ।
विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥
स सत्यसन्धो बलवान् द्रोणः किमकरोद्युधि ।
दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् २२
के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ।
ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् ।
उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥ २४
पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।
नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः २५
ततो द्रोणं समारोहत् पार्षतः पापकर्मकृत् ।
न ह्यहं परिपश्यामि वधे कञ्चन शुष्मिणः २६
　धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्
　　पाल्यमानात् किरीटिना ।
　तैर्वृतः सर्वतः शूरः
　　पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥　　२७
केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः ।
व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ॥ २८
　कर्मण्यसुकरे सक्तं
　　जघानेति मतिर्मम ।
　योऽधीत्य चतुरो वेदान्
　　साङ्गानाख्यानपञ्चमान् ॥　　२९
ब्राह्मणानां प्रतिष्ठासीत् स्रोतसामिव सागरः
क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत् परंतपः॥ ३०
स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान् ।
अमर्षिणा मर्षितवान् क्लिश्यमानान्सदा मया
　अनर्हमाणान् कौन्तेयान्
　　कर्मणस्तस्य तत् फलम् ।
　यस्य कर्मानुजीवन्ति
　　लोके सर्वधनुर्भृतः ॥
स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् ।
दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ३३
स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः ।
क्षिप्रहस्तश्च बलवान् दृढधन्वाऽरिमर्दनः ३४
न यस्य विजयाकांक्षी विषयं प्राप्य जीवति ।
यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥
ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम् ।
अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ३६
नाहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।
कथं सञ्जय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३७
पश्यतां पुरुषेन्द्राणां समरे पार्षतोऽवधीत् ।
के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात्
के नु पश्चादवर्तन्त गच्छतो दुर्गमां गतिम् ॥
केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः
　पुरस्तात् के च वीरस्य
　　युध्यमानस्य संयुगे ।
　के च तस्मिंस्तनूंस्त्यक्त्वा
　　प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥　　४०
द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम्
कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन् रणे
रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चिन्नैनं हतः परैः ।
न स पृष्ठमरेस्त्रासाद्रणे शौर्यात् प्रदर्शयेत् ॥
परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥
पराक्रमेद्यथाशक्त्या तच्च तस्मिन् प्रतिष्ठितम्
मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ॥
भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रशोके
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

महामात्रं प्रधानम् ॥ २२ ॥ पाञ्चाल्यप्रग्रहः पाञ्चाल्यः प्रग्रहो बन्धनरज्जुर्यस्य ॥ २५ ॥ शुष्मिणस्तेजस्विनः ॥ २६ ॥ अपसदोऽधमः ॥ २७ ॥ आख्यानं पुराणभारतादि ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

वैशम्पायन उवाच ।

एतत् पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनार्दितो भृशम्
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत् क्षितौ
तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः ।
जलेनात्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना २
पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३
उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः ४
आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ५
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ६

धृतराष्ट्र उवाच ।

यः स उद्यन्निवादित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः
अजातशत्रुमायान्तं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥ ८
वासितासंगमे यद्वदजय्यं प्रति यूथपैः ।
निजघान रणे वीरान् वीरः पुरुषसत्तमः ॥ ९
यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान् सत्यसंगरः १०
चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् ।
दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन्॥ ११
के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् ।
समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥
तरसैवाभिपद्याथ यो वै द्रोणमुपाद्रवत् ।
यः करोति महत् कर्म शत्रूणां वै महाबलः १२
महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले ।
तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् १३
यदाऽऽयाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनीं सृजन् १४
विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव ।
अवस्फूर्जन् दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥
चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
स नेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः १६
रोषनिर्जितजीमूतो मनोभिप्रायशीघ्रगः ।
मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥
संप्लावयन् दिशः सर्वा मानवैरास्तरन् महीम्
भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधनपुरोगमान् ॥
युद्धेऽभ्यषिञ्चद्विजयो
गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
गाण्डीवं धारयन् धीमान्
कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २०
इषुसंबाधमाकाशं कुर्वन् कपिवरध्वजः ।
यदायात् कथमासीत्तु तदा पार्थं समीक्षताम्
कच्चिद्गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम् ।
यद्वः सभैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२
कच्चिन्नापानुदत् प्राणानिषुभिर्वो धनञ्जयः
वातो वेगादिवाविध्यन्मेघान् शरगणैर्नृपान्
को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति
यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥ २४
यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद्भयम् ।
के तत्र नाजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन् भयात्
के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन्
अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनञ्जयम् ॥
न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः
गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिःस्वनम्
विष्वक्सेनो यस्य यन्ता
यस्य योद्धा धनञ्जयः ।
अशक्यः स रथो जेतुं
मन्ये देवासुरैरपि ॥ २८
सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
मेधावी निपुणो धीमान् युधि सत्यपराक्रमः॥
आरावं विपुलं कुर्वन् व्यथयन् सर्वसैनिकान्
यदाऽऽयान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन्
आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाभ्ययात् ।
कदनं करिष्यन् शत्रूणां ×तेजसा दुर्जयो युधि
आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ३२

१०

**एतदिति** ॥ १ ॥ सः प्रसिद्धः तमजातशत्रुं आयान्तं दृष्ट्वा द्रोणात् कः अवारयदित्यन्वयः । सार्धश्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ ७ ॥ यदा अयात् यदा च दुर्योधनपुरोगमान् गार्ध्रपत्रैरभ्यषिञ्चत्तदा वो मनः कीदृशमभूदिति षष्ठेनान्वयः ॥ १३ ॥ × श्वताश्वो दु० इति पाठः ।

यस्तु सौवीरराजस्य
प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
आदत्त महिषीं भोजां
काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३३
सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे ३४
बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥ ३५
धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रकर्मणि ।
पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ३६
वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥ ३७
सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चास्त्रमनुत्तमम् ।
सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे
तमेवंगुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ।
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥
पञ्चालेषूत्तमं वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् ।
नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥ ४०
युक्तं धनञ्जयहिते ममानर्थार्थमुत्थितम् ।
यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ४१
महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान् के शूराः समवारयन्
एकोपसृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः
धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥
योऽवधीत् केतुमान् वीरो
राजपुत्रं दुरासदम् ।
अपरान्तगिरिद्वारे
द्रोणात् कस्तं न्यवारयत् ॥ ४४
स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् ।
शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ४५
देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन्
यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात्
यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च सर्वदा ॥
वासुदेवसमं वीर्ये धनञ्जयसमं बले ।
तेजसाऽऽदित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मतौ ४८
अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवान्तकम्
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः समवारयन्

तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा ।
यदाभ्यधावद्वै द्रोणं तदासीद्वो मनः कथम् ५०
द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः ।
यद्द्रोणमाद्रवन् संख्ये के शूरास्तान्यवारयन्
एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः
अस्त्रार्थमवसन् भीष्मे बिभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥
क्षत्रंजयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः ।
धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान् द्रोणाद्वारयन्
शताद्विशिष्टं यं युद्धे सममन्यन्त वृष्णयः ।
चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणाद्वारयत् ॥
वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद्युधि ।
अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥
भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः
इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्तवर्मायुधध्वजाः ५६
मातृष्वसुः सुता वीराः
पाण्डवानां जयार्थिनः ।
तान् द्रोणं हन्तुमायातान्
के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७
यं योधयन्तो राजानो नाजयन् वारणावते ।
षण्मासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधांपतिं
धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं महाबलम् ।
द्रोणात् कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ।
यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम्
समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनापाहरद्रथात् ६०
धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥ ६१
निर्दहन्तं रणे योधान् दारयन्तं च सर्वतः ।
द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥
उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्यास्त्रवित्तमम् ।
शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणादवारयन् ६३
य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत् समवेष्टयत् ।
महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६४
दशाश्वमेधानाजह्रे स्वन्नपानाप्तदक्षिणान् ।
निरर्गलान्सर्वमेधान् पुत्रवत् पालयन् प्रजाः*
गङ्गास्रोतसि यावत्यः सिकता अप्यशेषतः
तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ६६
न पूर्वे नापरे चक्रुरिदं केचन मानवाः ।
इतीदं चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७

युयुधाने सात्यकौ ॥ ३४ ॥ सात्वते सात्यकौ ॥ ३८ ॥

*'विसृष्टा दक्षिणा यस्य गङ्गाजलमवारयत्' इत्यधिकं क्वचित्

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु
न तं स्थास्नुचारिषु ।
जातं चापि जनिष्यन्तं
द्वितीयं चापि सांप्रतम् ॥ ६८
अन्यमौशीनराच्छैब्याङ्कुरो वोढारमित्युत ।
गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः
तस्य नप्तारमायान्तं शैब्यं कः समवारयत् ।
द्रोणायाभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवान्तकम्
विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्यामित्रघातिनः
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥
सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः ।
मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद्भयम्
पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् ।
घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥
एते चान्ये च बहवो येषामर्थाय सञ्जय ।
त्यक्तारः संयुगे प्राणान् किं तेषामजितं युधि
येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः
लोकानां गुरुरत्यर्थं
लोकनाथः सनातनः ।
नारायणो रणे नाथो
दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥ ७६
यस्य दिव्यानि कर्माणि
प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि
भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ॥ ७७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

धृतराष्ट्र उवाच ।
शृणु दिव्यानि कर्माणि
वासुदेवस्य सञ्जय ।
कृतवान्यानि गोविन्दो
यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १
संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना ।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु सञ्जय २
उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे ।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३
दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम् ।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ४
प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् ।
मुरुं चान्तकसङ्काशमवधीत् पुष्करेक्षणः ॥ ५
तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः ।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥ ६
सुनामा रणविक्रान्तः
समग्राक्षौहिणीपतिः ।
भोजराजस्य मध्यस्थो
भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनामित्रघातिना ।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ८
दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः ।
आराधितः सदारेण स चास्मै प्रददौ वरान् ९
तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे ।
निर्जित्य पृथिवीपालानावहत् पुष्करेक्षणः ॥
अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव
रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥ ११
जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् १२
चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
अर्घे विवदमानं च जघान पशुवत् तदा ॥१३
सौभं दैत्यपुरं खस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् ।
समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः १४

---

स्थास्नुचारिषु स्थावरजङ्गमात्मकेषु समित्यस्य व्यवहितेन पश्याम इत्यनेन सम्बन्धः ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

११

शृण्विति ॥ १ ॥ हयराजं केशिनम् ॥ ३ ॥ विक्रमेणैव अस्त्रं विना ॥ ६ ॥ परेण भीमेन ॥ १२ ॥

अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च
मागधान् काशिकोसलान् ।
वात्स्यगार्ग्यकरूपांश्च
पौण्ड्रांश्चाप्यजयद्रणे ॥ १५
आवन्त्यान् दाक्षिणात्यांश्च
पार्वतीयान् दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान्
पिशाचांश्च समुद्गलान् ॥ १६
काम्बोजान् वाटधानांश्च
चोलान् पाण्ड्यांश्च सञ्जय ।
त्रिगर्तान् मालवांश्चैव
दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥ १७

नानादिग्भ्यश्च संप्राप्तान् खशांश्चैव शकांस्तथा
जितवान् पुण्डरीकाक्षो यवनं च सहानुगम्
प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिषेवितम् ।
जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा १९
युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् ।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् २०
खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम् ।
आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१
वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२
तच्च मर्षितवान् शक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
राज्ञां चाप्यजितं कञ्चित् कृष्णेनेह न शुश्रुम
यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय ।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति ॥
यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम् ।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम् २५
नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य सञ्जय ॥२६
तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
अगावहो निरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः २७
उल्मुको निशठश्चैव झिल्लीबभ्रुश्च वीर्यवान् ।
पृथुश्च विपृथुश्चैव शमीकोऽथारिमेजयः ॥ २८
एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
कथञ्चित् पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना ।
ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥ ३०
नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥३१

यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः ।
अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय सञ्जय
स यदा तात संनह्येत् पाण्डवार्थाय सञ्जय ।
न तदा प्रतिसंयोद्धा भविता तत्र कश्चन ३३
यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम पाण्डवान् ।
वार्ष्णेयोऽर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम्
ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन् रणे ।
कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात् स मेदिनीम्
यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ॥
न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः ।
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्तत ॥ ३७
अर्जुनः केशवस्यात्मा
कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः ।
अर्जुने विजयो नित्यं
कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ॥ ३८
सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः ।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ३९
मोहाद्दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह केशवम्
मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥ ४०
न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् ।
पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ॥ ४१
एकात्मानौ द्विधाभूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि ।
मनसाऽपि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥
नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः ।
युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ॥
भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः
न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥ ४४
न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते
लोकसंभावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि सञ्जय
यां तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ४६
अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन ह ।
मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ॥ ४७
पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत ।
अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः॥ ४८
यस्य कोपान्महात्मानौ
भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो
न धर्मो मामकान् प्रति ॥ ४९

क्रूरः सर्वविनाशाय कालोऽसौ नातिवर्तते ।
अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः
अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैवादिति मतिर्मम ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे संप्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ५१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

सञ्जय उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
यथा स न्यपतद्द्रोणः सूदितः पाण्डुसृञ्जयैः १
सेनापतित्वं संप्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् २
यत् कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् ।
सैनापत्येन यद्राजन् मामद्य कृतवानसि ॥ ३
सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत ।
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि
ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः ।
संमन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ५
ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् ।
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहानय ॥ ६
ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः ।
सेनां प्रहर्षयन् सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७
धन्यः कुन्तीसुतो राजन् यस्य ग्रहणमिच्छसि
न वधार्थं सुदुर्धर्ष वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८
किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य काङ्क्षसे ।
नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥
आहोस्वित् धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते
यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चात्मनः
अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान् ।
*राज्यं संप्रति दत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि
धन्यः कुन्तीसुतो राजा
सुजातं चास्य धीमतः ।
अजातशत्रुता सत्या
तस्य यत्स्निह्यते भवान् ॥ १२
द्रोणेन चैवमुक्तस्य
तव पुत्रस्य भारत ।
सहसा निःसृतो भावो
योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥ १३
नाकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि ।
तस्मात्तव सुतो राजन् प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्
वधे कुन्तिसुतस्याजौ नाचार्य विजयो मम ।
हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान् हि नो ध्रुवं
न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि ।
य एव तेषां शेषः स्यात्स एवास्मान्न शेषयेत्
सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते ।
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥
सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति ।
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित्
तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित्
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान्
द्रोण उवाच ।
न चेद्युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि ।
मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥२०
न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि ।
प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१
असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि ।
तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह ॥ २२
अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान्
अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नामर्षयाम्यहम् ॥२३
स चापक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते ।
अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१२

हन्तेति ॥ १ ॥ एतां वधरूपां क्रियां मत्तो नाशंससि न संभावयसि ॥९॥ सुजातं शोभनं जन्म ॥१२॥ व्यक्तं नियतम् ॥ १८ ॥ आमर्षयामि उत्सहे ॥ २१ ॥ मत्पूर्वः अहं पूर्वो गुरुर्यस्य एकायनगतः जयमरणान्यतरनिश्चयवान् ॥ २२

* 'राज्यांशं प्रति' इति पाठः साधुः ।

ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ ।
एतेन चाप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥ २५
अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् ।
आनयिष्यामि ते राजन् वशमद्य न संशयः॥
यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥ २७
फाल्गुनस्य समीपे तु न हि शक्यो युधिष्ठिरः
ग्रहीतुं समरे राजन् सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥२८

सञ्जय उवाच ।
सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥
पाण्डवेयेषु साक्षेपं द्रोणं जानाति ते सुतः ।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः॥३०
ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत् ।
सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितमरिंदम ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रतिज्ञायां
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

सञ्जय उवाच ।
सान्तरे तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम्॥
सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाहुशब्दांश्च कृत्स्नशः ।
तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत ॥ २
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् ।
ततः सर्वान् समानाय्य भ्रातॄनन्यांश्च सर्वशः
अब्रवीद्धर्मराजस्तु धनञ्जयमिदं वचः ।
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितम्॥
यथा तन्न भवेत् सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम्
सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनामित्रकर्षिणा ॥
तत्रान्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् ।
स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम्॥ ६
यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ।

अर्जुन उवाच ।
यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन ॥
तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः ।
अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८
प्रतीपो नाहमाचार्ये भवेयं वै कथञ्चन ।
त्वां निगृह्याहवे राज्यं धार्तराष्ट्रोऽयमिच्छति
न स तं जीवलोकेऽस्मिन्
कामं प्राप्येत् कथञ्चन ।
प्रपतेत् द्यौः सनक्षत्रा
पृथिवी शकली भवेत् ॥ १०
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम्
यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम् ॥
विष्णुर्वा सहितो देवै-
र्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे ।
मयि जीवति राजेन्द्र
न भयं कर्तुमर्हसि ॥ १२
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात् सर्वशस्त्रभृतामपि ।
अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम्॥
न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम् ।
न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥

सञ्जय उवाच ।
ततः शंखाश्च भेर्यश्च मृदंगाश्चानकैः सह ।
प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक्सुभैरवः ॥ १६
श्रुत्वा शंखस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः।
त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥
ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत
शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे ॥

बहुलीकृतः प्रतिज्ञां न त्यजेदिति बहुषु प्रकाशितः ॥३०॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

१३

सान्तरे इति ॥ १ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि॥
यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।
न शेकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम्॥
तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
न शेकुः पांडवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना
आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्षमाणे परस्परम्।
संप्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते॥ २२
ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता।
वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत् पृतनामुखे ॥
तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः २४
तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम्
त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम्
मध्यं दिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः ।
यथा दृश्येत घर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥
न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत।
वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवः ॥२७
मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान्
धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥ २८
स दिशः सर्वतो रुध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः ।
पार्षतो यत्र*तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम्२९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृतयुधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

सञ्जय उवाच ।
ततः स पाण्डवानीके जनयन्सुमहद्भयम्
व्यचरत पृतनां द्रोणो दहन् कक्षमिवानलः
निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम्
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २
सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याशुकारिणः
ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाशनेः ३
रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान् पदातिनः
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः संमृद्नंति स्म सायकाः
नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।
अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषामावहद्भयम् ॥ ५
विचरन् स तदा राजन्
सेनां संक्षोभयन् प्रभुः ।
वर्धयामास संत्रासं
शात्रवाणाममानुषम् ॥ ६
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
भ्रमद्रथाम्बुदे चास्मिन् दृश्यते स्म पुनः पुनः
स वीरः सत्यवान् प्राज्ञो
धर्मनित्यः सदा पुनः ।
युगान्तकालवद्धोरां
रौद्रां प्रावर्तयन्नदीम् ॥ ८
अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम्
शोणितोदां रथावर्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ।
कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् १०
मेदोमज्जास्थिसिकतामुष्णीषचयफेनिलाम् ।
संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम्११
नरनागाश्वकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् ।
शरीरदारुसंघट्टां रथकच्छपसंकुलाम् ॥ १२
उत्तमाङ्गैः पङ्कजिनीं निस्त्रिंशझषसंकुलाम् ।
रथनागह्रदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३
महारथशतावर्तां भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥
शरीरशतसम्बाधां गृध्रकङ्कनिषेविताम् ।
महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसादनम् १५
शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिषेविताम्
छिन्नक्षत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् १६

संप्रसुप्ते कृतपत्रसंकोचे ।। २२ ॥ वरूथिना रथेन ।। २३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ * 'तत्रैनामभिनत्' इति पाठः ।

१४

तत इति ।। १ ।। शुचिसंक्षये ग्रीष्मान्ते ।। ५ ।। प्राणिन एव वाजिनः पक्षिणः ।। १६ ।।

चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् ।
बकगृध्रसृगालानां घोरसंघैर्निषेविताम् १७
निहतान् प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे
वहन्ती पितृलोकाय शतशो राजसत्तमम् ॥
शरीरशतसंबाधां केशशैवलशाड्वलाम् ।
नदीं प्रावर्तयद्राजन् भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥
तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः२०
तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः ।
सर्वतः प्रत्यगृण्हन्त तदभूल्लोमहर्षणम् ॥ २१
शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥
तस्य माद्रीसुतः केतुं
धनुः सूतं हयानपि ।
नातिक्रुद्धः शरैश्छित्त्वा
षष्ट्या विव्याध सौबलम् ॥ २३
सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
स तस्य गदया राजन् रथात् सूतमपातयत्
ततस्तौ विरथौ राजन् गदाहस्तौ महाबलौ ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सश्रृङ्गाविव पर्वतौ २५
द्रोणः पाञ्चालराजानं विद्ध्वा दशभिराशुगैः
बहुभिस्तेन चाभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः
विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः
विद्ध्वा नाकम्पयद्वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् २७
विविंशतस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् २८
स तन्न ममृषे वीरः
शत्रोर्विक्रममाहवे ।
ततोऽस्य गदया दान्तान्
हयान् सर्वानपातयत् ॥ २९
हताश्वात् सरथाद्राजन् गृह्य चर्म महाबलः ।
अभ्यायाद्भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ३०
शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः
विव्याध प्रहसन् बाणैर्लालयन् कोपयन्निव
तस्याश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्
धृष्टकेतुः कृपेणास्तान्
छित्त्वा बहुविधाञ्छरान् ।
कृपं विव्याध सप्तत्या
लक्ष्म चास्याहरत्त्रिभिः ॥ ३३
तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत् ।
विव्याध चरणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ३४
सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव
तं भोजः सप्तसप्तत्या विद्ध्वाशु निशितैः शरैः
नाकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाचलम् ३६
सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत् ।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ॥
वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत् ।
सह मत्स्यैर्महावीर्यस्तदद्भुतमिवाभवत् ३८
तत् पौरुषमभूत् तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् ।
यत् सैन्यं वारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन सङ्गतः ।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ॥ ४०
भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः ।
सनियंतृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ४१
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम् ।
आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणानतपर्वणा ॥ ४२
युद्धं योधवरौ लोके सौमदत्तिशिखण्डिनौ ।
भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ४३
भूरिश्रवा रणे राजन् याज्ञसेनिं महारथम् ।
महता सायकौघेन छादयामास वीर्यवान् ॥
शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशांपते ।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ४५
राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालंबुषावुभौ ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ ॥ ४६
मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम् ।
अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥
चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चातिभैरवम् ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४८
लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद्भृशम् ।
यथा विष्णुः पुरा राजन् हिरण्याक्षेण संयुगे
ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
रथेनाभ्यपतद्राजन् सौभद्रं पौरवो नदन्॥ ५०
ततोऽभ्ययात् सत्वरितो युद्धाकांक्षी महाबलः
तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युरारिन्दमः ॥ ५१

अभ्यस्तो विद्धः ॥ २६ ॥

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् ।
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ५२
सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः
ततः प्रहर्षयन् सेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
समादत्तार्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ५४
तं तु सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बबर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६
स तेनानेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
भ्रान्तासिना चरन्मार्गान्दर्शयन्वीर्यमात्मनः
भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।
चर्मनिस्त्रिंशयो राजन्निर्विशेषमदृश्यत ॥ ५८
स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन् ।
पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥ ५९
जघानास्य पदा सूत-
मसिना पातयद्ध्वजम् ।
विक्षोभ्याम्भोनिधिं तार्क्ष्य-
स्तं नागमिव चाक्षिपत् ॥ ६०
तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१
तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
पौरवं पातितं दृष्ट्वा नामृष्यत जयद्रथः ॥ ६२
स बर्हिबर्हावततं किंकिणीशतजालवत् ।
चर्म चादाय खड्गं च नदन् पर्यपतद्रथात् ६३
ततः सैन्धवमालोक्य
कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
उत्पपात रथात् तूर्णं
श्येनवन्निपपात च ॥ ६४
प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्छत्रुभिः संप्रचोदितान् ।
चिच्छेद चासिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च
स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाथ पुनर्बली ॥ ६६
वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ससाराभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ६७
तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
हृष्टवत्संप्रजह्राते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६८
संपातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
न तयोरन्तरं कश्चिद्ददर्श नरसिंहयोः ॥ ६९
अवक्षेपोऽसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥ ७०
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥७१
ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ७२
रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे ।
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः ॥
भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४
तं कार्ष्णिं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समंततः ७५
ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
ननादार्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥७६
सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
तापयामास तत् सैन्यं भुवनं भास्करो यथा॥
तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम्
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव
तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाकरोदसिम् ।
वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥
तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चामिततेजसः ।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथानदन् ८०
ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम् ८१
सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥८२
ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ
यमौ च द्रौपदेयाश्च
साधु साध्विति चुक्रुशुः ।
बाणशब्दाश्च विविधाः
सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥ ८४
प्रादुरासन् हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
तन्नामृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ८५
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ८६

उद्बबर्ह उच्चकर्ष शरावरं चर्म ॥ ५६ ॥

तेषां च प्रियमन्विच्छन् सूतस्य च पराभवम्। आर्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

धृतराष्ट्र उवाच।
बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय।
त्वयोक्तानि निशम्याहं स्पृहयामि सचक्षुषाम्
आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम्॥२
न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम्।
तस्मादार्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३
सञ्जय उवाच।
सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदां
समुत्क्षिप्य नदन् क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात्
तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवान्तकम्।
जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५
सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम्।
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ॥
वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान्।
शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥
तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम्।
ससाराभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ८
ततस्तूर्यनिनादाश्च शंखानां च सहस्रशः।
सिंहनादाश्च संजज्ञुर्भेरीणां च महास्वनाः॥ ९
पश्यतां शतशो ह्यासी-
दन्योन्यमभिधावताम्।
पाण्डवानां कुरूणां च साधु
साध्विति निःस्वनः॥ १०
न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे॥ ११
तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः।
सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात्

पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षणी ।
प्रजज्वाल तदा विद्धा भीमेन महती गदा ॥
तथैव चरतो मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः।
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा ॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥ १५
मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ १६
ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा।
साग्निज्वाला महारौद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥
तथैव भीमसेनस्य द्विषताऽभिहता गदा
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाबभौ ॥ १८
गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत ।
व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः ॥
तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा ।
तापयामास तत् सैन्यं महोल्का पतती यथा
ते गदे गदिनां श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम्।
श्वसन्त्यौ नागकन्येव ससृजाते विभावसुम्
नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ।
तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्र्याभ्यां परस्परम् ॥
ततो गदाग्राभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ।
ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविव पुष्पितौ॥
शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥
गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
नाकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाचलः ॥
तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः ।
धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाहतः २६

---

पराभवं प्रेक्ष्येति शेषः ॥८७॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥

१५

बहूनीति ॥ १ ॥ व इवार्थे ॥ २१ ॥

आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७
अथाप्लुत्य पदान्यष्टौ सन्निपत्य गजाविव ।
सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥
तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ ।
युगपत्पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव॥२९
ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः
शल्यमभ्यपतत् तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३०
दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाऽभिनिपीडितम् ।
विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतम्॥
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे ।
अपोवाह रणात् तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥
क्षीबवद्विह्वलो वीरो निमेषात्पुनरुत्थितः ।
भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥
ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम् ॥
सनागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥
ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः
भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव॥
निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः
व्यरोचन्त रणे राजन् दीप्यमाना इवाग्नयः॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान् दध्मुश्च हर्षिताः
भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चानकैः सह ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

सञ्जय उवाच ।

तद्बलं सुमहद्दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान्
दधारैको रणे राजन् वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥
शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे ।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् ॥
तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः ।
भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥ ३
तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा ।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४
हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः ।
अपातयद्रणे राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ॥५
दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥६
नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात् ।
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ७
तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्त्वा केतुमपातयत् ।
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥
कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा ।
तान्नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥
छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान् महारथान् ॥
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वतान् जलदा इव ॥
तान् पाण्डवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः
तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥
एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपाण्डवाः ।
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥ १३
तेषां ददृशिरे कोपाद्वपूंष्यमिततेजसाम् ।
युयुत्सूनामिवाकाशे पतत्त्रिवरभोगिनाम् ॥
भीम-कर्ण-कृप-द्रोण-द्रौणि-पार्षत-सात्यकैः
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः १५
तदासीत् तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ।
महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः १६
ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धूतार्णवनिःस्वनम् ।
त्वदीयमवधीत् सैन्यं संप्रद्रुतमहारथम् ॥ १७

---

'क्षीबवन्मत्तवत्' ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

तादिति । अस्त्रमायया अस्त्रकौशलेन ॥ १ ॥ 'कथं युयुधिरे' इत्यस्योत्तरं 'एवं युयुधिरे' इति ॥१३
पतत्त्रिवरभोगिनामिव पतत्त्रिवरो गरुडः। भोगिनः सर्पाः१४

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥
ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः ।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् १९
तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत्
चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः।
दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥
द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा
कुमारेण द्विजर्षभम् ।
सिंहनादरवो ह्यासीत्
साधु साध्विति भाषितम् ॥ २२
कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन्मुहुः २३
संवार्य चरणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः ।
शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४
तं शूरमार्यव्रतिनं मंत्रास्त्रेषु कृतश्रमम्× ।
चक्ररक्षं परामृद्नात् कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥ २५
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां
सर्वाः प्रविचरन् दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्ताऽऽसी-
द्भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६
शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम्
नकुलं पञ्चभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २७
युधिष्ठिरं द्वादशभि-
र्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
सात्यकिं पञ्चभिर्विद्ध्वा
मत्स्यं च दशभिः शरैः ॥ २८
व्यक्षोभयद्रणे योधान् यथा मुख्यमभिद्रवन् ।
अभ्यवर्तत संप्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥२९
युगन्धरस्ततो राजन् भारद्वाजं महारथम् ।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धतमिवार्णवम् ३०
युधिष्ठिरं स विद्ध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् । ३१
ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिबिः
व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान्
एते चान्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान् बहून्

व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो
द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।
पञ्चाशता शितै राजं-
स्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३४
त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विद्ध्वा महारथम् ।
प्राहसत् सहसा हृष्टस्त्रासयन् वै महारथान्॥
ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ३६
ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात् सकुण्डलम्
व्याघ्रदत्तस्य चाक्रम्य भल्लाभ्यामाहरद्बली ॥
तान् प्रमृज्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान्
युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवान्तकः ॥
ततोऽभवन्महाशब्दो राजन् यौधिष्ठिरे बले
हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥३९
अब्रुवन् सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम्
अद्य राजा धार्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति
अस्मिन् महूर्ते द्रोणस्तु पांडवं गृह्य हर्षितः ।
आगमिष्यति नो नूनं धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥
एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥
शोणितोदां रथावर्तां कृत्वा विशसने नदीम्
शूरास्थिचयसंकीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥
तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ।
नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून् विद्राव्य पाण्डवः॥
ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान् संदधानस्य चानिशं
नान्तरं ददृशे कश्चित् कौन्तेयस्य यशस्विनः॥
न दिशो नान्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी
अदृश्यन्त महाराज बाणभूता इवाभवन् ॥
नादृश्यत तदा राजंस्तत्र किंचन संयुगे ।
बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥
सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते ।
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ ४९
ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।
तान् विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान्
स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।
ततोऽभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पाण्डुसृञ्जयाः॥

द्रुतेन पलायितेन ॥ १८ ॥ विशसने युद्धे ॥ ४३ ॥ + मन्त्रास्त्रकृतनिश्चयामिति पाठः ।

पञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ।
एवं स्वशिबिरं प्रायाज्जित्वा शत्रून् धनञ्जयः॥
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै स केशवः ॥

*मसारगल्वर्कसुवर्णरूपै-
वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।
चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे
नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## समाप्तं द्रोणाभिषेकपर्व ॥

## संशप्तकवधपर्व २

### १७

सञ्जय उवाच ।
ते सेने शिबिरं गत्वा न्यविशेतां विशांपते
यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मं च सर्वशः १
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ २
उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये ।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः॥३
इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।
मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ४
अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने ।
तत एष्यति ते राजन् वशमेष युधिष्ठिरः॥ ५
कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु ।
तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथंचन ॥६
एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप ।
ग्रहीष्यामि चमूं भित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः
अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् ।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम्
एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९
यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्तमपि पाण्डवः ।
अथापयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते १०
सञ्जय उवाच ।
द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्ताधिपतिस्तदा
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥

वयं विनिकृता राजन् सदा गाण्डीवधन्वना
अनागःस्वपि चागस्तत्कृतमस्मासु तेन वै ॥
ते वयं स्मरमाणास्तान्
विनिकारान् पृथग्विधान् ।
क्रोधाग्निना दह्यमाना
नशेमहि सदा निशि ॥ १३
स नो दिष्ट्यास्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
कर्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् १४
भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकं च यशस्करम्
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यायोधनाद्बहिः १५
अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्ताऽथ वा पुनः ।
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति
एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत ।
सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च १७
सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च ।
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८
मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ॥
मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि ।
रथानामयुतेनैव सोऽगमद्भ्रातृभिः सह २०
नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् २१
ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् ।
जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च

मसार इन्द्रनीलः गल्वर्कः पद्मरागः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
* सुसार इति पाठः ।

१७
**ते सेने इति** ॥ १ ॥ योगेन उपायेन ॥ ५ ॥

ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः २३
यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः
कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
योक्ष्यमाणास्तदाऽऽत्मानं
यशसा विजयेन च ॥ २४
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।
प्राप्यान् लोकान् सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च
निष्कान् दत्त्वा पृथक् पृथक् ।
गाश्च वासांसि च पुनः
समाभाष्य परस्परम् ॥ २६
प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम् ।
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः
शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे ।
सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे २८
ये वै लोकाश्चाव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम्
मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च २९
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।
शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः
अगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि ।
अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि
स्वभार्यामृतुकालेषु मोहाद्वै नाभिगच्छताम् ।
श्राद्धमैथुनिकानां च ये चाप्यात्मापहारिणां
न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम्
नास्तिकानां च ये लोका
येऽग्निमातृपितृत्यजाम् ।
तानाप्नुयामहे लोकान्
ये च पापकृतामपि ॥ ३४
यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्तेम धनञ्जयम् ।
तेन चाभ्यर्दितास्त्रासाद्भवेम हि पराङ्मुखाः
यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
इष्टाँल्लोकान् प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ३६

एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति
आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः+ पार्थः परपुरञ्जयः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८
आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ३९
एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽह्वयते रणे ।
वधाय सगणस्यास्य मामनुज्ञातुमर्हसि ४०
नैतच्छक्नोमि संसोढु-
माह्वानं पुरुषर्षभ ।
सत्यं ते प्रतिजानामि
हतान् विद्धि परान् युधि ॥ ४१
युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद्द्रोणस्य चिकीर्षितम् ।
यथा तदनृतं तस्य भवेत् तत्त्वं समाचर ॥४२
द्रोणो हि बलवान् शूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः
प्रतिज्ञातं च तेनैतद्ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३
अर्जुन उवाच ।
अयं वै सत्यजिद्राज-
न्नद्य त्वां रक्षिता युधि ।
ध्रियमाणे च पाञ्चाल्ये
नाचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४
हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो ।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथञ्चन ॥ ४५
सञ्जय उवाच ।
अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्चास्य योजिताः॥
विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्तान् प्रत्ययाद्बली ।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥
ततो दौर्योधनं सैन्यं मुदा परमया युतम् ।
ऋतेऽर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥
ततोऽन्योन्येन ते सैन्ये समाजग्मतुरोजसा ।
गङ्गासरय्वौ वेगेन प्रावृषीवोल्बणोदके ॥४९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धनञ्जययाने
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

लोक्याः पुण्यलोकार्हाः ॥ २४ ॥ ब्रह्मचर्यं वेदव्रताचरणं श्रुतिर्वेदाध्ययनं ते एव मुखं प्रधानं येषु तैः कर्मभिरिति शेषः ॥२५॥ आत्मापहारिणां स्वजातिगोपकानाम् ॥३२॥ श्रुतं प्रतिज्ञातम् ॥ ३३ ॥ अपदान्तरमव्यवहितम् ॥ ३८॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ + ' नरव्याघ्रः इति पाठः '

## १८

सञ्जय उवाच ।

ततः संशप्तका राजन् समे देशे व्यवस्थिताः
व्यूह्यानीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः॥१
ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष ।
उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥ २
स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत्
आवृतत्वाच्च लोकस्य नासीत् तत्र प्रतिस्वनः
सोऽतीव संप्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनञ्जयः ।
किंचिदभ्युत्स्मयन् कृष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥
पश्यैतान् देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे ।
भ्रातॄंस्त्रैगर्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥ ५
अथवा हर्षकालोऽयं
त्रैगर्तानामसंशयम् ।
कुनरैर्दुरवापान् हि
लोकान् प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६
एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम्
स देवदत्तमादाय शंखं हेमपरिष्कृतम् ।
दध्मौ वेगेन महता घोषेणापूरयन् दिशः ॥ ८
तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
विचेष्टाऽवस्थिता संख्ये ह्यश्मसारमयी यथा
वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः
विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुस्रुवुः ॥ १०
उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम्
युगपत् पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥
तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः ।
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाशु पराक्रमी ॥
ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्राविध्यन्त ततःपार्थस्तानविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः
एकैकस्तु ततः पार्थं
राजन् विव्याध पञ्चभिः ।
स च तान् प्रतिविव्याध
द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥ १४
भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सह केशवम् ।
आपूरयन् शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः॥
ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति ।
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने ॥१६
ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः ।
अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम्॥
तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवोत्थितः ॥
हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः ।
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत्॥ १९
ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् ।
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत् ॥ २०
तांस्तु सर्वान् पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः ।
प्रत्यविध्यद्ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान् ॥
सुधन्वनो धनुश्छित्त्वा हयांश्चास्यावधीच्छरैः
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत्॥
तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः
व्यद्रवन्त भयाद्भीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥
ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम्
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥
ततो भग्ने बले तस्मिन् विप्रलीने समन्ततः ।
सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्तान् भयमाविशत्॥
ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव ॥ २६
ततस्त्रिगर्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
अलं द्रुतेन वः शूरानभयं कर्तुमर्हथ ॥ २७
शप्त्वाथ शपथान् घोरान्सर्वसैन्यस्य पश्यतः
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः
नावहास्याः कथं लोके कर्मणानेन संयुगे ।
भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम् ॥
एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः ।
शंखांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥
ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः ।
नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि सुधन्ववधे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

१८

तत इति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

सञ्जय उवाच ।

दृष्ट्वा तु संनिवृत्तांस्तान् संशप्तकगणान् पुनः
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १
चोदयाश्वान् हृषीकेश संशप्तकगणान् प्रति ।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः
पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च ।
अद्यैतान् पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव
ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तं ।
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥ ४
स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा ।
उह्यमानमिवाकाशे विमानं× पाण्डुरैर्हयैः ५
मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च ।
यथा शक्ररथो राजन् युद्धे देवासुरे पुरा ६
अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ७
अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ ।
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८
क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः ।
गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥ ९
बद्ध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम् ।
देवदत्तं महाशंखं पूरयामास पाण्डवः ॥ १०
अथास्त्रमरिसंघघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः ।
ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन् पृथक् पृथक् ॥
आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः ।
अन्योन्येनार्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जघ्निरे
अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ
इति ब्रुवाणाः संमूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥
मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् ।
अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः
ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् ।
कृत्वा तदस्त्रं तान् वीराननयद्यमसादनम् ॥
अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान्मालवानपि ।
मावेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चार्दयच्छरैः ॥
ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः
व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥
न ध्वजो नार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥ १८
ततस्ते लब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा
भेरी-मृदङ्ग-शङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥ २०
ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत्
क्वासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन्
तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः ।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२
ततः संशप्तकव्रातान् साश्वद्विपरथायुधान् ।
उवाह भगवान् वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥
उह्यमानास्तु ते राजन् बह्वशोभन्त वायुना ।
प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥
तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥
शिरांसि भल्लैरहरद्बाहूनपि च सायुधान् ।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरून् शरैरुर्व्यामपातयत् ॥

पृष्ठच्छिन्नान् विचरणान्
बाहुपार्श्वेक्षणाकुलान् ।
नानाङ्गावयवैर्हीनां-
श्चकारारीन् धनञ्जयः ॥ २७

गन्धर्वनगराकारान्
विधिवत्कल्पितान् रथान् ।
शरैर्विशकलीकुर्व-
श्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥ २८

मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे ।
छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित्क्वचित्
सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकांकुशध्वजाः
पेतुः शक्राशनिहता द्रुमवन्त इवाचलाः ॥
चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा ।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ ॥
विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः ॥ ३२
तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि ।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ ॥ ३३
रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।
मही चाप्यभवद्दुर्गा कबन्धशतसंकुला ॥ ३४

१९

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ सोत्तरायुधिनः उपरिगतैर्योधैः सहिताः ॥ ३० ॥ ×आकाशं विमानैरिति पाठः ।

तद्बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे ।
आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून्
ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः ।
तमेवाभिमुखाः क्षीणाःशक्रस्यातिथितां गताः
सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः ।
आस्तीर्णा संबभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि ।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥
तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदासीत् तुमुलं महत् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुनसंशप्तकयुद्धे
ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

सञ्जय उवाच ।
परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः
×उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् १
विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह ।
निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥
व्यूढानीकस्ततो द्रोणः
पाण्डवानां महाचमूम् ।
अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ
धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३
व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा ।
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः ।
मुखं त्वासीत् सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ।
चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद्गौतमश्चास्यतां वरः ॥
भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान् ।
कलिंगाः सिंहलाः प्राच्याः
शूराभीरा दशेरकाः ॥ ६
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये ।
ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७
गजाश्वरथपत्त्योघास्तस्थुः परमदंशिताः ।
भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च बाल्हिकः
अक्षौहिण्या वृता वीरा
दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ९
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः
पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाःपौण्ड्रमद्रकाः
गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः
पार्वतीया वसातयः ।
पुच्छे वैकर्तनः कर्णः
सपुत्रज्ञातिबान्धवः ॥ ११
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया ।
जयद्रथो भीमरथः संपातिर्ऋषभो जयः १२
भूमिंजयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः ।
वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपरिष्कृताः ॥ १३
व्यूहस्योरसि ते राजन् स्थिता युद्धविशारदाः
द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ॥
वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ।
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥
सविद्युत्स्तनिता मेघाः
सर्वादिग्भ्य इवोष्णगे ।
तस्य प्राग्ज्योतिषो मध्ये
विधिवत् कल्पितं गजम् ॥ १६
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ।
माल्यदामवता राजन् श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥
कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ॥
अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात् पर्वतो महान् ।
नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामूनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ × उक्तस्त्वाहं रा० इति पाठः

२०

**परिणाम्येति** ॥ १ ॥ उष्णगे धर्मालये ॥ १६ ॥ पौर्णमास्यां कृत्तिकायोगयुक्तेन इन्दुना शारदपूर्णचन्द्रेणेत्यर्थः ॥ १८ ॥

समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।
ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत्
ब्राह्मणस्य वशं नाहमियामद्य यथा प्रभो ।
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥

धृष्टद्युम्न उवाच ।

द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम्॥२२
मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि ।
न हि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथंचन॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा किरन् बाणान्
द्रुपदस्य सुतो बली ।
पारावतसवर्णाश्वः
स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४

अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्षणेनैवाभवद्द्रोणो नातिहृष्टमना इव ॥ २५
तं तु संप्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत्॥२६
स संप्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत ।
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत २७
पार्षतः शरजालेन क्षिप्रं प्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८
द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवात्मजः ।
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् २९
तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः

अनिलेन यथाऽभ्राणि
विच्छिन्नानि समन्ततः ।
तथा पार्थस्य सैन्यानि
विच्छिन्नानि क्वचित् क्वचित् ३१

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्तत ॥ ३२
नैव स्वेन परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत् समवर्तत ॥ ३३
चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु ।
तेषामादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥
तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे ॥ ३५

नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् ।
रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ३६
समुच्छ्रितपताकानां गजानां परमद्विपैः ।
क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ॥ ३७
तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसङ्घातसङ्घर्षात् सधूमोऽग्निरजायत॥
विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाम्बुदाः ३९
विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।
संबभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव शारदी ४०
तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरऋष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव संप्लवे ४१
तोमराभिहताः केचिद्बाणैश्च परमद्विपाः ।
वित्रेसुः सर्वनागानां शब्दमेवापरेऽव्रजन् ४२
विषाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३
प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमांकुशैः ४४
महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः ।
गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ४५
निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
छिन्नाभ्राणीव संपेतुः संप्रविश्य परस्परम् ४६
हतान् परिवहन्तश्च पतितान् पतितायुधान्
दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ४७
ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
पेतुरार्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ४८
तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः ।
आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ४९
सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।
मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ५०
गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।
रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णांकुशतोमराः ॥
क्रौञ्चवद्विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः
परान् स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश
गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता ।
बभूव पृथिवी राजन् मांसशोणितकर्दमा ५२
प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः ।
सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ५३

अनिष्टदर्शनं समृत्युहेतुत्वात् ॥ २५ ॥ भृशायस्तोऽतिप्रयत्नवान् ॥ २९ ॥ एकचराः द्वीपान्तरदर्शनासहाः ॥४७ ॥

रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः ५५
जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
इत्यासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ५६
आगुल्फेभ्योऽवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः ।
दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ५७
शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च
छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ५८
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा रथनेमिभिः ५९
सगजौघमहावेगः परासुनरशैवलः ।
रथौघतुमुलावर्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥ ६०
तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः ।
×अवगाह्याथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ६१
शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वञ्चितलक्ष्मसु ।
न तेष्वचित्ततां लेभे कश्चिदाहतलक्षणः ६२
वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान् द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

सञ्जय उवाच ।
ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वाऽन्तिकमुपागतम्
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १
ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे बले ।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम् २
दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित् सत्यविक्रमः
युधिष्ठिरमभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥ ३
तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते महाबलौ ।
विक्षोभयन्तौ तत् सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ४
ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित्सत्यविक्रमः
अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन् ॥ ५
तथास्य सारथेः पञ्च शरान् सर्पविषोपमान्
अमुञ्चदन्तकप्रख्यान् संमुमोहास्य सारथिः ६
अथास्य सहसाऽविध्यद्धयान् दशभिराशुगैः
दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी ७
मण्डलं तु समावृत्य विचरन् पृतनामुखे ।
ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्यामित्रकर्षणः
द्रोणस्तु तत्समालोक्य चरितं तस्य संयुगे ।
मनसा चिन्तयामास प्राप्तकालमरिन्दमः ९
ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वास्य सशरं धनुः
स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत् प्रतापवान् ।
द्रोणमभ्यहनद्राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ११
दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाहवे ।
वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्यो द्रोणमार्दयत् ॥ १२
संछाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् ।
चुक्रुशुः पाण्डवा राजन् वस्त्राणि दुधुवुश्च ह
वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे
विव्याध बलवान् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्॥
द्रोणस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः ।
वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी १५
ततः सत्यजितश्चापं छित्त्वा द्रोणो वृकस्य च
षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद्वृकम्
अथान्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजं
स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनार्दितो मृधे।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान्
हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी
अवाकिरत् ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः १९
तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत्

---

अचित्ततां मोहं आहतलक्षणो ध्वस्तचिन्हः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २०॥
× अवगाह्याप्यमज्जन्तो वैरमोहमिति पाठः ।

२१

तत इति ॥ १ ॥

स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः॥
तस्मिन् हते महामात्रे पञ्चालानां महारथे ।
अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात् त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥
पञ्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः
युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥
ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवानलः ॥
निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः ।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥
सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विद्ध्वाऽनदद् भृशम् ॥
क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।
अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७
तस्य नानदतो द्रोणः
शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
क्षुरेणापाहरत् तूर्णं
ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८
मत्स्याञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्
करूषान् केकयानपि ।
पञ्चालान् सृञ्जयान् पाण्डून्
भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २९
तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं वीरं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ ३०
उत्तमं ह्याददानस्य
धनुरस्याशुकारिणः ।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान्
दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ ३१
नागानश्वान् पदातींश्च रथिनो गजसादिनः
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः
नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये ।
अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषां भयमादधत् ॥ ३३
सर्वा दिशः समचरत् सैन्यं विक्षोभयन्निव ।
बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः ॥
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्यामिततेजसः॥
शोभमानां ध्वजे चास्य वेदीमद्राक्ष्म भारत।
हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे भृशम् ॥
द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत् ।
यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥
स शूरः सत्यवाक् प्राज्ञो
बलवान् सत्यविक्रमः ।
महानुभावः कल्पान्ते
रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥ ३८
कवचोर्मिध्वजावर्तां मर्त्यकूलापहारिणीम् ।
गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥
वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम् ।
चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४०
शरौघिणीं धनुःस्रोतां बाहुपन्नगसंकुलाम् ।
रणभूमिवहां तीव्रां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ॥४१
मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम्
उष्णीषफेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ४२
वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् ।
हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम्
क्रूरां शरीरसंघट्टां सादिनक्रां दुरत्ययाम् ।
द्रोणः प्रावर्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥
क्रव्यादगणसंजुष्टां श्वसृगालगणायुताम् ।
निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समंततः ॥
तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥
ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन्
गभस्तिभिरिवादित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥
तं तु शूरं महेष्वासं तावकाभ्युद्यतायुधाः ।
राजानो राजपुत्राश्च समंतात् पर्यवारयन् ॥
शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभिः ॥
उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः ।
सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाऽष्टभिः
युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः।
धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥
ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२
ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत् ।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां
सर्वाः प्रावेनरन् दिशः ।
त्राता ह्यभवदन्येषां
न त्रातव्यः कथञ्चन ॥ ५४

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसं।
वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद्यमसादनम् ॥ ५५
अशीत्या क्षत्रवर्माणं षड्विंशत्या सुदक्षिणम्।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६
युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिं
विद्ध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥
ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात्॥
तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत्
स हतः प्रापतद्भूमौ रथाज्ज्योतिरिवाम्बरात्॥
तस्मिन् हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे।
हतद्रोणं हतद्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान्

तांस्तथा भृशसंरब्धान्
पञ्चालान् मत्स्यकेकयान्।
सृञ्जयान् पाण्डवांश्चैव
द्रोणो व्यक्षोभयद्बली ॥ ६१
सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ
वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम् ॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान्।
सर्वान् द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः
तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे।
पाण्डवेयान् रणे जघ्नुर्द्रवमाणान् समन्ततः ॥
ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

धृतराष्ट्र उवाच।
भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे।
पञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्तत ॥ १
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम्
असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥ २
स हि वीरोन्नतः शूरो
यो भग्नेषु निवर्तते।
अहो नासीत् पुमान् कश्चिद्
दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥ ३
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम्।
त्यजन्तमाहवे प्राणान् सन्नद्धं चित्रयोधिनम्
महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतां भयवर्धनम्।
कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५
भारद्वाजं तथाऽनीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम्।
के शूराः संन्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ६

सञ्जय उवाच।
तान् दृष्ट्वा चलितान् संख्ये
प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः।
पञ्चालान् पाण्डवान् मत्स्यान्
सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥ ७
द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणाशुहारिणा।
सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान्यथा प्लवान्
कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च।
रथद्विपनरांश्चैव सर्वतः समवारयन्। ९
तान् पश्यन् सैन्यमध्यस्थो
राजा स्वजनसंवृतः।
दुर्योधनोऽब्रवीत् कर्णं
प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥ १०

दुर्योधन उवाच।
पश्य राधेय पञ्चालान् प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः
सिंहेनेव मृगान् वन्यांस्त्रासितान् दृढधन्वना
नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः।
यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः १२
अर्द्यमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना।
पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्ततः १३

उभयत्र विद्धेति शेषः ॥ ५५ ॥ पाञ्चाल्यो नाम्ना ॥५८॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकविंशोऽध्यायः
॥ २१ ॥

२२

भारद्वाजेति ॥ १ ॥

संनिरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना ।
एतेऽन्ये मण्डलीभूताः पावकेनेव कुञ्जराः १४
भ्रमरैरेव चाविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।
अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः १५
एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवसृञ्जयैः ।
मदीयैरावृतो योधैः कर्ण नन्दयतीव माम् १६
व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः ।
निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः

कर्ण उवाच ।

नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत् ।
न चेमान् पुरुषव्याघ्र सिंहनादान् सहिष्यति
न चापि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः १९
विषाग्निद्यूतसंक्लेशान् वनवासं च पाण्डवाः
स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः
निवृत्तो हि महाबाहु-
रमितौजा वृकोदरः ।
वरान् वरान् हि कौन्तेयो
रथोदारान् हनिष्यति ॥ २१
असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः ।
आयसेन च दण्डेन व्रातान् व्रातान्हनिष्यति
तमेनमनुवर्तन्ते
सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः
पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३
शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः ।
विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥
ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ २५
एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् ।
अरक्षमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥ २६
असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चापि वारणे ।
अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् २७
शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् २८

सञ्जय उवाच ।

राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः
भ्रातृभिः सहितो राजन् प्रायाद्द्रोणरथं प्रति
तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम्
पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

धृतराष्ट्र उवाच ।

सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि सञ्जय ।
ये द्रोणमभ्यवर्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः १

सञ्जय उवाच ।

ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् ।
रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः संन्यवर्तत ॥ २
सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन् हयान्
पर्यवर्तत दुर्धर्षः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ३
पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो न्यवर्तत ४
पितरं तु परिप्रेप्सुः
क्षत्रधर्मा यतव्रतः ।
सिद्धिं चास्य परां कांक्षन्
शोणाश्वः संन्यवर्तत ॥ ५
पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान्
मल्लिकाक्षान् स्वलंकृतान् ।
शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु
स्वयं प्रत्वरयन् ययौ ॥ ६

---

कोको वृकः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

सर्वेषामिति । रथचिन्हानि रथशब्दो हयोपलक्षणम् । रथान् हयान् चिन्हानि ध्वजांश्चेत्यर्थः ॥ १ ॥ व्यायच्छन्तं निवर्तमानम् ॥ २ ॥ 'सितनीलारुणो वर्णः सारंगसदृशश्च सः' ३ 'पारावतकपोताभः सितनीलसमन्वयात्' ॥ ४ ॥ शोणः कोकनदच्छविः ॥ ५ ॥ मल्लिकाक्षान्निर्मलेक्षणान् ॥ ६ ॥

दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः
वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः ॥ ७
कृष्णास्तु मेघसङ्काशा अवहन्सामोजसम् ।
दुर्धर्षायाभिसन्धाय क्रुद्धं युद्धाय भारत ॥ ८
तथा तित्तिरिकल्माषा हया वातसमा जवे
अवहंस्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥ ९
दन्तवर्णास्तु राजानं कालवाला युधिष्ठिरम्
भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन् वातरंहसः ॥ १०
हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे ।
अभ्यवर्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥

राज्ञस्त्वनन्तरो राजा
पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत् ।
जातरूपमयच्छत्रः
सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥ १२

ललामैर्हरिभिर्युक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि ।
राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत ॥
तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः
केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥
स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः
तं तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥
वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्यामित्रघातिनः।
हारिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥ १६
पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् ।
इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १७
जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः ।
ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः ।
आमपात्रनिकाशास्तु पाञ्चाल्यममितौजसम्
दत्तास्तुंबुरुणा दिव्याः शिखण्डिनमुदावहन् ।
तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः
तेषां तु षट् सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः ।
पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ॥ २१
आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला हयाः
धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ॥ २२
काम्बोजैः शबलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः ।
बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः ॥ २३

पलालधूमसंकाशाः
सैन्धवाः शीघ्रमावहन् ।
मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा
बाल्हिजाताः स्वलंकृताः ॥ २४

शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेवमुदावहन् ।
रुक्मभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः
क्षमावन्तोऽवहन् संख्ये सेनाबिन्दुमरिंदमम्
युवानमवहन् युद्धे क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमाः ॥
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम् ।
श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः
यन्तुः प्रेष्यकरा राजन् राजपुत्रमुदावहन् ॥
सुतसोमं तु यः सौम्यं पार्थः पुत्रमजीजनत् ।
माषपुष्पसवर्णास्तमवहन् वाजिनो रणे २८

सहस्रसोमप्रतिमो बभूव
पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाम्नि ।
तस्मिञ्जातः सोमसङ्क्रन्दमध्ये
यस्मात्तस्मात्सुतसोमोऽभवत्सः २९

नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः
आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ३०

---

'महाललाटजघनस्कन्धवक्षोजवा हयाः ॥
दीर्घग्रीवायता ह्रस्वमुष्काः काम्बोजकाः स्मृताः'
शुकपत्रपरिच्छदाः शुकपत्राभरोमाणः ॥ ७ ॥ दन्तवर्णाः गजदन्तगौराः ॥ १० ॥
'श्वेतं ललाटमध्यस्थं तारारूपं हयस्य यत् ।
ललामं चापि तत्प्राहुर्ललामाश्वस्तदन्वितः ॥
सकेसराणि रोमाणि सुवर्णाभानि यस्य तु ।
हरिः स वर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेयसन्निभः' ॥ १३ ॥
पाटलिपुष्पाणां समवर्णाः श्वेतरक्ताः ॥ १५ ॥ विराटराजस्य पुत्रमुत्तरम् ॥ १७ ॥ आमपात्रनिकाशाः मलिनश्वेताः ॥ १९ ॥ सारंगशबलाः सारंगा एव अन्तरे बिन्दुचिताः ॥ २२ ॥
पलालधूमसंकाशाः विशदनीलाः ।
'दीर्घग्रीवा मुखालंबमेहनाः पृथुलोचनाः ।
महान्तस्तनुरोमाणो बलिनः सैन्धवा हयाः' ।
पद्मवर्णाः—
'सितरक्तसमायोगात्पद्मवर्णः प्रकीर्त्यते ।
काम्बोजसमसंस्थाना बाल्हिजाताश्च वाजिनः ।
विशेषः पुनरेतेषां दीर्घपृष्ठाङ्गतोच्यते' ॥ २४ ॥
कौशेयसदृशाः सितपीताः ॥ २५ ॥ क्षमावन्तो विनीताः ।
'सितलोमकेसराढ्याः कृष्णत्वग्गुह्यलोचनाद्यखुराः ।
ये स्युर्मुनिभिर्वाहा निर्दिष्टाः क्रौञ्चवर्णास्ते' ॥ २६ ॥
प्रेष्यकराः इच्छानुविधायिनः ॥ २७ ॥ माषपुष्पसवर्णाः आपाण्डुपीताः ॥ २८ ॥ सहस्रसोमप्रतिमः सोमसहस्रसमः सौम्यतम इत्यर्थः । तस्मिन् उदयेन्दुनाम्नि उदयेन्दुपर्याये पुरे शक्रप्रस्थ एव । सोमसंक्रन्दः सोमाभिषवणं तस्य मध्ये तदधिकृत्य तत्पेनेनेत्यर्थः । तस्माद्धेतोः ॥ २९ ॥ शालपुष्पनिभा रक्तपीताः ॥ ३० ॥

काञ्चनापीडहेतैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसंनिभाः ।
द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ ३१
श्रुतकीर्तिं श्रुतानिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः ।
ऊहुः पार्थसमं युद्धे चाषपत्रनिभा हयाः ॥
यमाहुरध्यर्धगुणं कृष्णात् पार्थाच्च संयुगे ।
अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन् रणे॥३३
एकस्तु धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः
तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन् रणे॥३४
पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धक्षेमिं तरस्विनम् ।
ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः कृष्णाः स्वलंकृताः॥
कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुरश्छदैः ।
सौचित्तिमवहन् युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः
रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः ।
सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन्॥
रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः।
काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥
अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् ।
तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥
यः स पांचालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत् ।
पारावतसवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ४०
तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रःकाश्यस्य चाभिभूः
युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेममालिभिः ।
भीषयन्तो द्विषत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥४२
प्रभद्रकास्तु काम्बोजाःषट्सहस्राण्युदायुधाः
नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हेमवर्णरथध्वजाः ॥ ४३
शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून् विततकार्मुकाः।
समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥४४
बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५
इन्द्रायुधसवर्णैस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः ।
आयात सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः

अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारका चित्रिता इव ।
राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन्
कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः
जारासंधिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन्४८
ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः।
जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ४९
शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्गतराजयः ।
पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन्॥५०
पञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः
तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः५१
माषवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः ।
दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन् द्रुतम् ॥
शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः ।
पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन्॥५३
रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः ।
वल्गन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥५४
हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः।
सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन्५५
इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसंनिभाः।
काये चित्रान्तराश्चित्रा चित्रायुधमुदावहन्५६
बिभ्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा हयाः।
कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन्५७
शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जांबूनदस्रजः
युद्धे सत्यधृतिं क्षैमिमवहन् प्रांशवः शुभाः५८
एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्तत॥५९
समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम् ।
अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन्॥६०
नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः ।
शैब्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्याऽवहन् हयाः
कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः ।
रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ६२

---

योक्त्रैराबन्धैः । मयूरग्रीवो मरकतविशेषः ॥ ३१ ॥ पिशङ्गाः कपिलाः ३३ पलालकाण्डो निष्फलव्रीहिदण्डस्तद्वर्णा इति पूर्वेणान्वयः ॥३५॥ रुक्मपीठेन रुक्मवर्णेन पीठेन पृष्ठेनावकीर्णा व्याप्ताः ॥३७॥ हेमपृष्ठाः श्वेता एव ॥ ३८ ॥ अरुणा अव्यक्तरागाः ॥ ३९ ॥ धृष्टद्युम्नस्य पुनर्वचनं द्रोणहन्तृत्वदृढीकरणार्थम् ॥ ४० ॥ बभ्रुकौशेयवर्णाः पिङ्गगौराः ४५॥ इन्द्रायुधसवर्णैस्त्रिवर्णैः ॥४६॥अन्तरिक्षसवर्णा नीलाः ॥४७॥ कर्बुराश्चित्राः ॥ ४८ ॥ शशलोहितवर्णाः सितारुणाः ५० माषवर्णाः मलिनश्यामाः ॥ ५२ ॥ भद्रकाः शोभनशिरसः शरकाण्डनिभाः सितगौराः ॥ ५३ ॥ रासभारुणवर्णा अरुणमलिनाः मूषिकप्रभा मलिनश्वेताः ॥ ५४ ॥ कालकाः कृष्णप्रस्तकाः ॥ ५५ ॥ चित्रान्तरा विचित्रावकाशाः । चित्रा अद्भुतदर्शनाः ॥ ५६ ॥ चक्रवाकोदरा ईषच्छ्वेताः ॥ ५७ ॥ कलायपुष्पवर्णाः मिश्रश्यामाः ॥ ६२ ॥

थं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् ।
तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णाऽवहन् हयाः ॥
चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् ।
ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥
एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥ ६५
नानारूपैः रत्नचित्रैर्वरूथरथकार्मुकैः ।
वाजिध्वजपताकाभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥
ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ।
ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७
योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः ।
श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयाऽवहन्
केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे ।
भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च बन्धुषु ॥
भीष्मादवाप्य चास्त्राणि
द्रोणाद्रामात् कृपात् तथा ।
अस्त्रैः समत्वं संप्राप्य
रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥ ७०
इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां जेतुं च मेदिनीम् ।
निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ॥
वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः ।
ससागरध्वजः पाण्ड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥
वैडूर्यजालसंछन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।
दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद्बली ॥
आटरूषकवर्णाभा हयाः पाण्ड्यानुयायिनाम्
अवहन् रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ७४
नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः ।
रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७५
भारतानां समेताना-
मुत्सृज्यैको मतानि यः ।
गतो युधिष्ठिरं भक्त्या
त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम् ॥ ७६
लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमरट्टजाः ।
महासत्त्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम्
सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् ।
राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ७८

वर्णैरुच्चावचैरन्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः ।
संन्यवर्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥ ७९
ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥
अत्यरोचत तान् सर्वान् धृष्टद्युम्नः समागतान्
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत
अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः कृष्णाजिनोत्तरः
कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः ॥ ८२
ध्वजं तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम् ।
भ्राजमानं महासिंहं राजन्तं दृष्टवानहम् ८३
ध्वजं तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः ।
दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम् ॥
मृदङ्गौ चात्र विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ
यन्त्रेणाहन्यमानौ च सुस्वनौ हर्षवर्धनौ ॥
शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महाध्वजम् ।
अपश्याम रथेऽत्युग्रं भीषयाणमवस्थितम् ॥ ८६
हंसस्तु राजतः श्रीमान् ध्वजे घंटापताकवान्
सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां शोकवर्धनः ॥ ८७
पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥ ८८
अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः ।
रथे ध्वजवरो राजंस्तप्तचामीकरोज्ज्वलः ॥
घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत ।
अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥
माहेन्द्रं च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभून्नृप ॥ ९१
त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् ।
तद्दिव्यमजरं चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः ॥
वैष्णवं नकुलायाथ सहदेवाय चाश्विजम् ।
घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम्
रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव च ।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत ॥ ९४
रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं लेभे यद्रौहिणीसुतः ।
तत् तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ९५
एते चान्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः ।
तत्रादृश्यन्त शूराणां द्विषतां शोकवर्धनाः ९६

---

पटच्चराणामसुरविशेषाणां हन्तारं समुद्राधिपम् ॥ ६३ ॥ योधा युद्धक्षमाः भद्रकाराः शोभनक्रियाः शरदण्डः शरप्रकाण्ड इव अनुदण्डिः पृष्ठवंशो येषां सितगौरपृष्ठा इत्यर्थः ॥ ६८ ॥ कपाटे नगरविशेषे ॥ ६९ ॥ आटरूषकवर्णाभाः आटरूषकस्य वासकस्य कुसुमं तद्वर्णसदृशवर्णाः ॥ ७४ ॥ यो बृहन्तः ॥ ७६ ॥ हया अवहन् इति पूर्वस्मादनुकृष्यते ॥ ७७ ॥ सुवर्णवर्णा इति पूर्वोत्तरान्वयि ॥ ७८ ॥ नन्दोपनन्दकौ नाम्ना ॥ ८४ ॥

तद्भूद्धजसंबाधमकापुरुषसेवितम् ।
द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवार्पितम्९७
शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा ।
द्रोणमाद्रवतां राजन् स्वयंवर इवाहवे ॥ ९८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि हयध्वजादिकथने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

धृतराष्ट्र उवाच ।
व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय ।
आहवे ये न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ १
संप्रयुक्तः किलैवायं दिष्टैर्भवति पूरुषः ।
तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः
दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी
अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥३
स एव महतीं सेनां समावर्तयदाहवे ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाभवत् ॥ ४
युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
स तथा कृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति॥
द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६
अद्य मे केकया लब्धाःकाशिकाःकोसलाश्च ये
*चेदयश्चापरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः॥ ७
पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा ।
इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा॥८
तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।
निहतः पार्षतेनाजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥ ९
मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम्
सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरुपेयिवान्१०
समनुप्राप्तकृच्छ्रोऽहं मोहं परममागतः ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाहं जीवितुमुत्सहे
यन्मां क्षत्ताऽब्रवीत्तात प्रपश्यन् पुत्रगृद्धिनम्
दुर्योधनेन तत् सर्वं प्राप्तं सूत मया सह ॥ १२
नृशंसं तु परं नु स्यात्त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि।
पुत्रशेषं चिकीर्षेयं कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३
यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः ।
सोऽस्माच्च हीयते लोकात्
क्षुद्रभावं च गच्छति ॥ १४
अद्य चाप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥
कथं स्यादवशेषो हि धुर्ययोरभ्यतीतयोः ।
यौ नित्यमुपजीवामः क्षमिणौ पुरुषर्षभौ ॥
व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
केऽयुध्यन् के व्यपाकुर्वन्
के क्षुद्राः प्राद्रवन् भयात् ॥ १७
धनञ्जयं च मे शंस यद्यच्चक्रे रथर्षभः ।
तस्माद्भयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात्
यथाऽऽसीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेयेषु सञ्जय ।
मम सैन्यावशेषस्य सन्निपातः सुदारुणः॥१९
कथं च वो मनस्तात निवृत्तेष्वभवत् तदा ।
मामकानां च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः२३
१ अर्धमिति पाठः । * चेदीनां चाधमपरे इत पाठः ।

२४

**व्यथयेयुरिति** ॥१॥ संप्रयुक्तः संबद्धः भवति उत्पद्यते तस्मिन् दिष्ट एव ॥ २ ॥ अत्रोदाहरणमाह **दीर्घमिति** ॥ ३ ॥ मम पुत्रस्य यदभवद्राज्यं अर्थात्तदपि दैवसंयोगादित्यनुषङ्गः ॥४॥ दुर्योधनं त्यक्त्वा यदि पुत्रशेषं चिकीर्षेयं तत्परं केवलं नृशंसं स्यात्कृत्स्नं मरणं तु न भवेदित्यन्वयः ॥ १३ ॥ भ्रातृव्यादमित्रात् ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः२४

# २५

सञ्जय उवाच ।

महद्भैरवमासीन्नः सन्निवृत्तेषु पाण्डुषु ।
दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाम्बुदैः ॥१
तैश्चोद्धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव ।
ततो हतममंस्याम द्रोणं दृष्टिपथे हते ॥ २
तांस्तु शूरान् महेष्वासान् क्रूरं कर्म चिकीर्षतः
दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत् ॥ ३
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः।
वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम्
ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत् सुतस्तव ।
आराद्दृष्ट्वा किरन् बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितं
तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाहवे ।
तं च भीमोऽतुदद्बाणैस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत्
त ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः।
राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन् परान्युधि
कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशांपते ।
पर्यवारयदायान्तं शूरं समरशोभिनम् ॥ ८
तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।
कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९
सैन्धवः क्षत्रवर्माणमायान्तं निशितैः शरैः।
उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥
क्षत्रवर्मा सिन्धुपतेश्छित्त्वा केतनकार्मुके ।
नाराचैर्दशभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥११
अथान्यद्धनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत् ।
विव्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥
युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम् ।
सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥
सुबाहोः सधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ
राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराट् समवारयत् ॥१५
तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत् ।
मद्रेशस्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विद्ध्वाऽनदद्भृशम् ॥
तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त च कार्मुकम्।
क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः
तथैव राजा बाह्लीको राजानं द्रुपदं शरैः ।
आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं वृद्धयोः सह सेनयोः ।
यथा महायूथपयोर्द्विपयोः संप्रभिन्नयोः ॥ १९
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम्॥
तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् ।
मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥
नाकुलिं तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः ।
अस्यन्तमिषुजालानि यान्तं द्रोणादवारयत्॥
ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः।
चक्रे विबाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३
सुतसोमं तु विक्रान्तमायान्तं तं शरौघिणम्।
द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत् ॥
सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः।
विविंशतिं शरैर्भित्त्वा नाभ्यवर्तत दंशितः२५
अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः ।
षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद्यमसादनम् ॥
श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं न्यवारयत् ॥२७
तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ।
पितृणामर्थसिद्ध्यर्थं चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ २८
तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन्
मार्गणैः समवारयत् ॥ २९
तं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः
सिंहलांगूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम्३०
प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नरर्षभः ।
द्रौणायनिं द्रौपदेयाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥
आर्जुनिं श्रुतकीर्तिं तु द्रौपदेयं महारथम् ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दौःशासनिरवारयत्
तस्य कृष्णसमः कार्ष्णिस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः
धनुर्ध्वजं च सूतं च
छित्त्वा द्रोणान्तिकं ययौ ॥ ३३
यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः ।
तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३४

---

२५

**महदिति** । भीरोर्भावो भैरवं भयमिति यावत् ॥ १ ॥ उत्पिञ्जलकमत्यन्ताकुलम् ॥ २१ ॥ भूतकर्मा-सभापतिरिति द्विनामा ॥२२॥ भीमरथो राजभ्राता॥२६॥

स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्त्वा लक्ष्म च भारत ।
लक्ष्मणे शरजालानि विसृजन् बह्वशोभत ॥
विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम् ।
पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥ ३६
ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत् ।
विधूय तद्बाणजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३७
अङ्गदोऽभिमुखं वीरमुत्तमौजसमाहवे ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत् ॥
स संप्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रीतिवर्धनः ॥
दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥
स दुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाभ्यताडयत् ।
तस्य तद्विबभौ वक्त्रं सनालमिव पङ्कजम् ॥ ४१
कर्णस्तु केकयान् भ्रातॄन्
पञ्च लोहितकध्वजान् ।
द्रोणायाभिमुखं यातान् शरवर्षैरवारयत् ४२
ते चैनं भृशसंतप्ताः शरवर्षैरवाकिरन् ।
स च तांश्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥
नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसंवृताः ।
साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः ॥ ४४
पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च ह ।
नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन् प्रत्यवारयन् ॥
तद्युद्धमभवद्घोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् ।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथर्क्षमहिषर्षभैः ॥ ४६
क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तु भ्रातरौ सात्वतं युधि ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततक्षतुः ॥
तयोस्तस्य च तद्युद्धमत्यद्भुतमिवाभवत् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने
राजानं तु तथाऽम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् ।
चेदिराजः शरानस्यन् क्रुद्धो द्रोणादवारयत्
ततोऽम्बष्ठोऽस्थिभेदिन्या निरभिद्यच्छलाकया
स त्यक्त्वा सशरं चापं रथाद्भूमिमुपागमत् ॥
वार्धक्षेमिं तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः ।
अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्बाणैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१
युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ ।
ते युद्धासक्तमनसो नान्यां बुबुधिरे क्रियाम् ॥
सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् ।
पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥
स सौमदत्तेस्त्वरितश्छित्त्वेष्वसनकेतने ।
पुनः पताकां सूतं च छत्रं चापातयद्रथात् ॥
अथाप्लुत्य रथात्तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त वरासिना ॥ ५५
रथं च स्वं समास्थाय
धनुरादाय चापरम् ।
स्वयं यच्छन् हयान् राजन्
व्यधमत् पाण्डवीं चमूम् ॥ ५६
पाण्ड्यमिन्द्रमिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम् ।
समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७
गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोघनोपलैः ।
कडङ्गरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
पांसुवाय्वग्निसलिलैर्भस्मलोष्टतृणद्रुमैः ॥ ५९
आतुदन् प्ररुजन् भञ्ज-
न्निघ्नन् विद्रावयन् क्षिपन् ।
सेनां विभीषयन्नाया-
द्द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ६०
तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।
राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलंबुषः ॥
तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
तादृग्यादृक् पुरावृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥
एवं द्वन्द्वशतान्यासन् रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च संकुले ॥
नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याभावभावे तु प्रसक्तानां यथाऽभवत् ॥
इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ६५

**इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥**

शलाकया शङ्कुना ॥ ५० ॥ अयोघना लगुडाः कडङ्गरैर्दण्डैः ॥ ५८ ॥ आतुदन् व्यथयन् । प्ररुजन् विध्यन् । भञ्जन् आमर्दयन् । निघ्नन् मारयन् । विद्रावयन् पलाययन् । क्षिपन् प्रेरयन् ॥ ६० ॥ अभावभावे मारणे रक्षणे च ॥ ६४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

धृतराष्ट्र उवाच ।

तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः १
किमर्जुनश्चाप्यकरोत् संशप्तकबलं प्रति ।
संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥ २

सञ्जय उवाच ।

तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥३
स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः ।
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ४
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चान्वितः ।
अभिनत् कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष ॥ ५
ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् ।
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ६
विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ७
स तेषु विसृजन्बाणान् भीमो नागेष्वशोभत ।
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ८
ते भीमबाणाभिहताः संस्यूता विबभुर्गजाः ।
गभस्तिभिरिवार्कस्य
व्योम्नि नानाबलाहकाः ॥ ९
तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम् ।
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ।
ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः ।
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥
स शराचितसर्वाङ्गः
क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ।
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव ॥ १२
तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम् ।
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः
दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः ॥
तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
कुंभान्तरे भीमसेनो नाराचेनार्दयद्भृशम् ॥
तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद्धरणीतले ।
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाचलः ॥१६

तस्यावर्जितनागस्य
म्लेच्छस्याधः पतिष्यतः ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥
तस्मिन्निपतिते वीरे संप्राद्रवत सा चमूः ।
संभ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातीनवमृद्नती ॥१८
तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समंततः ।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥
येन नागेन मघवानजयद्दैत्यदानवान् ।
तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २०
स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् ।
चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥२१
व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम् ।
वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥ २२
पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावं-
स्तस्य गात्रेष्वलीयत ।
जानन्नञ्जलिकावेधं नापाक्रामत पाण्डवः ॥
गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाताडयन्मुहुः ।
लालयामास तं नागं वधाकाङ्क्षिणमव्ययम् ॥
कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाभ्रमत् ।
नागायुतबलः श्रीमान्
कालयानो वृकोदरम् ॥ २५
भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः
सुप्रतीकाग्रतोऽभवत् ।
भीमं करेणावनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥
ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत ।
करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा व्यमोचयत् ॥
पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः ।
यावत्प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥ २८
भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो
विनिःसृत्यापयाज्जवात् ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ।
अहो धिङ्निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ।
तेन नागेन सन्त्रस्ता पाण्डवानामनीकिनी ॥
सहसाऽभ्यद्रवद्राजन् यत्र तस्थौ वृकोदरः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम्

२६

तेष्विति ॥ १ ॥ आवर्जितः पतनप्रवणो नागो यस्य ॥ १७ ॥ संहतेन सङ्कुचितेन ॥ २१ ॥

भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् ।
तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परंतपाः ॥३२
अवाकिरन् शरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः
सविघातं पृषत्कानामङ्कुशेन समाहरन् ॥
गजेन पाण्डुपञ्चालान् व्यधमत् पर्वतेश्वरः ।
तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥
तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशांपते ।
ततो राजा दशार्णानां
प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥ ३५
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाशुगामिना ॥
तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥ ३६
सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।
प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्यापसृत्य च ॥
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत् ।
तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ॥३८
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ।
व्यवाच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ।
स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतो वृतः ॥४०
पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ।
मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ।
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा
परिगृह्य महागजम् ॥ ४२
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ।
शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ।
अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।
बृहतः सैन्धवानश्वान् समुत्थाप्याथ सारथिः
तस्थौ सात्यकिमासाद्य संप्लुतस्तं रथं प्रति ।
स तु लब्ध्वान्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात्
निश्चक्राम ततः सर्वान् परिचिक्षेप पार्थिवान्
ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ४६
तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ।
ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥
ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ।
तेषां प्रद्रवतां भीमः पञ्चालानामितस्ततः ॥
गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान् समजायत ।
भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ।
तस्याभिद्रवतो वाहान् हस्तमुक्तेन वारिणा ॥
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्ते पार्थमहरंस्ततः ।
ततस्तमभ्ययात् तूर्णं रुचिपर्वा कृती सुतः ५१
समभ्यञ्छरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसन्निभः ।
ततः स रुचिपर्वाणं शरेणानतपर्वणा ॥ ५०
सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः ॥
चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चार्दयन् द्विपम् ।
त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान्
विनदन्तो जिघांसवः ।
ततः पार्ष्ण्यङ्कुशाङ्गुष्ठैः
कृतिना चोदितो द्विपः ॥ ५५
प्रसारितकरः प्रायात् स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम्
सोऽधिष्ठाय पदा वाहान् युयुत्सोः सूतमारुजत्
युयुत्सुस्तु रथाद्राजन्नपाक्रामत् त्वरान्वितः ।
ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम् ॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान् विनदन्तो जिघांसवः ।
पुत्रस्तु तव संभ्रान्तः सौभद्रस्याप्लुतो रथम् ॥
स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः ।
बभौ रश्मीनिवादित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥
तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥६०
सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥
नियन्तुःशिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोऽरिशरार्दितः
परिचिक्षेप तान्नागः स रिपून् सव्यदक्षिणम्
गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान् वने ।
आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥६३
क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।
बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ६४
स नागराजः प्रवराङ्कुशाहतः
पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप ।
भयं तदा रिपुषु समादधद्भृशं
वणिग्जनानां क्षुभितो यथार्णवः ६५

तिर्यग्यातेन पार्श्वतोगामिना ॥ ३६ ॥ व्यवच्छिद्य विद्ध्वा ॥ ३९ ॥ पर्यवर्तत भ्रान्तवान् ॥ ४२ ॥ समुत्थाप्य स्थिरीकृत्य ॥ ४४ ॥ सुपर्वा शोभनाङ्गसन्धिः ॥ ५३ ॥

ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवै-
र्भयाद्द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः ।
क्षितिं वियद् द्यां विदिशो दिशस्तथा
समावृणोत् पार्थिव संयुगे ततः॥६६
स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो
भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम् ।
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे
विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥ ६७
भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः
समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।
तमेकनागं गणशो यथा गजान्
समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ॥६८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

सञ्जय उवाच ।
यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रणे ॥ १
रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम्
भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥२
यथा प्राग्ज्योतिषो राजा
गजेन मधुसूदन ।
त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो
ध्रुवं तस्यैष निःस्वनः॥ ३
इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः ।
प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥
स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽप्रतिगजो युधि ।
सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः॥५
सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चानघ ।
स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति ॥ ६
न चावाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति
शक्तस्तं प्रतिबाधितुम् ।
त्वरमाणस्ततो याहि
यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः ॥ ७
दृप्तं संख्ये द्विपबलाद्वयसा चापि विस्मितम्
अथैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥
वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः ।
दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९
तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः ।
संशप्तकाः समारोहन् सहस्राणि चतुर्दश ॥
दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्तानां महारथाः ।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चानुगाः
दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष ।
आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥ १२
किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदिति चिन्तयन् ।
इह वा विनिवर्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥
तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह ।
अभवद्भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४
स संनिवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः ।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे॥१५
साहि दुर्योधनस्यासीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६
स तु दोलायमानोऽभूद्द्वैधीभावेन पाण्डवः ।
वधेन तु नराग्र्याणामकरोत् तां मृषा तदा॥
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तकमहारथाः ॥ १८
नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः ।
न हया न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः
तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः ।
ततस्तान् प्रायशः पार्थो
ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ २०
शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चापतन् क्षितौ

वियदाकाशं द्यां स्वर्गं ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षड्विंशोऽध्यायः॥ २६ ॥

२७

यदिति ॥ १ ॥ विकुर्वाणे विविधाः क्रिया कुर्वाणे ॥ २ ॥ अप्रतिगज इति छेदः ॥ ५ ॥ सहः सोढा पचाद्यच् ॥ ६ ॥ विस्मितं रूढाहङ्कारम् ॥ ८ ॥ समारोहन् संवृतवन्तः ॥ १० ॥

द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः॥
वि विद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः।
सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् ॥
सर्ष्टिप्रासासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः ।
विच्छिन्ना बाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना
बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष।
संछिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे॥
जज्वालालङ्कृता सेना
पत्रिभिः प्राणिभोजनैः ।
नानारूपैस्तदाऽमित्रान्
क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥ २६
क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
धनञ्जयं भूतगणाः साधु साध्वित्यपूजयन्२७
दृष्ट्वा तत् कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह २८
कर्मैतत् पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च ।
दुष्करं समरे यत् ते कृतमद्येति मे मतिः॥२९
युगपच्चैव संग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः ।
पातिता एव मे दृष्टाः संशप्तकमहारथाः ॥ ३०
संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः
भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संशप्तकवधे
सप्तावंशोऽध्यायः ॥२७॥

## २८

सञ्जय उवाच।
यियासतस्ततः कृष्णः
पार्थस्याश्वान्मनोजवान् ।
संप्रैषीद्धेमसंछन्नान्
द्रोणानीकाय संत्वरन् ॥ १
तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं
स्वान् भ्रातॄन् द्रोणतापितान् ।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं
युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ २
ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः ।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयतेऽच्युत
दीर्यते चोत्तरेणैव तत् सैन्यं मधुसूदन ।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम् ॥ ४
किं नु संशप्तकान् हन्मि
स्वान् रक्षाम्यहितार्दितान् ।
इति मे त्वं मतं वेत्सि
तत्र किं सुकृतं भवेत् । ५
एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यंदनं प्रत्यवर्तयत् ।
येन त्रिगर्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ६
ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
ध्वजं धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ७
त्रिगर्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः ।
साश्वं ससूतं त्वरितः पार्थः प्रैषीद्यमक्षयम् ८
ततो भुजगसंकाशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् ।
चिक्षेपार्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ९
शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्तयत् १०
तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ११
ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान् ।
आयाद्विनिघ्नन् कौरव्यान् दहन्कक्षमिवानलः
तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
नाशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥
संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः ।
सुपर्णपातवद्राजन्नायात् प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥
यत्तदानामयज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् ।
धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम् ॥ १५

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तविंशोऽध्यायः
॥ २७ ॥

२८
यियासत इति ॥ १ ॥ भूरिवर्षमिति वासवविशेषणम् ॥ ११ ॥

तदेव तव पुत्रस्य राजन् दुर्द्यूतदेविनः ।
कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६
तथा विक्षोभ्यमाणा सा पार्थेन तव वाहिनी
व्यशीर्यत महाराज नौरिवासाद्य पर्वतम् ॥
ततो दशसहस्राणि न्यवर्तन्त धनुष्मताम् ।
मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये १८
व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः ।
आर्च्छत् पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि
यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः ।
मृद्नीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नाच्चमूं तव
तस्मिन् प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।
तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१
तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद्धनञ्जयः ।
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥ २२
कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च ।
सङ्ग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३
ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४
स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः ।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् २५
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवारयन् ।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष २६
ततस्तु शरजालेन महताऽभ्यवकीर्य तौ ।
चोदयामास तं नागं वधायाच्युतपार्थयोः ॥
तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥
संप्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम् ।
सारोहं मृत्युसात् कर्तुं स्मरन् धर्मं धनञ्जयः
स तु नागो द्विपरथान् हयांश्चामृद्य मारिष ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

## २९

धृतराष्ट्र उवाच ।
तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः ।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम्
सञ्जय उवाच ।
प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ
मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥२
तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो ।
गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः
अथ कार्ष्णायसैर्बाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः ।
अविध्यद्देवकीपुत्रं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४
अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः ।
निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा परिवारं निहत्य च
लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६
सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णां-
स्तोमरान् वै चतुर्दश ।
अप्रेषयत् सव्यसाची
द्विधैकैकमथाच्छिनत् ॥ ७
ततो नागस्य तद्वर्म व्यधमत् पाकशासनिः ।
शरजालेन महता तद्व्यशीर्यत भूतले ॥ ८
शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमर्दितः ।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ९
ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं
हेमदण्डामयस्मयीम्
व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥
ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्त्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन् पर्वतेश्वरम् ॥
सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः ।
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥
व्यसृजत्तोमरान् मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च
तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्तितम् ॥ १३

---

आयच्छद्गृहीतवान् यदेवार्जुनस्य धनुर्भरतानां क्षेमकरमासी-त्तदेव त्वत्पुत्रनिमित्तं क्षत्रक्षयकरमभवदिति वाक्यार्थः॥१६॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

तथा क्रुद्ध इति ॥ १ ॥

परिवृत्तं किरीटं तद्यमयच्चैव पाण्डवः ।
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥
एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ।
अभ्यवर्षत् स गोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा
तूणीरान् सन्निकृत्य च ।
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥
विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् ।
अभिमंत्र्यांकुशं क्रुद्धो व्यसृजत् पाण्डवोरसि
विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै ।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थं संच्छाद्य केशवः ॥
वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि ।
पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वर्तुकुसुमोत्कटा ॥
ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा ।
तया पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥२०
शुशुभेऽभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसन्निभः ।
ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत २१
अयुध्यमानस्तुरगान् संयन्तास्मीति चानघ
इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि
यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते
सबाणः सधनुश्चाहं ससुरासुरमानुषान् ।
शक्तो लोकानिमान् जेतुं तच्चापि विदितं तव
ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचार्थवद्वचः ।
शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरा वृत्तं यथाऽनघ ॥ २५
चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः ।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥
एका मूर्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता ।
अपरा पश्यति जगत् कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥
अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकम् ॥
याऽसौ वर्षसहस्रान्ते
मूर्तिरुत्तिष्ठते मम ।
वरार्हेभ्यो वरान् श्रेष्ठां-
स्तस्मिन् काले ददाति सा ॥ २९
तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३०
देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥
एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥ ३२
अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्षमे ।
नरकस्याभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्वधिष्यति ॥ ३३
अनेनास्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ३४
तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी ।
स चाप्यासीद्दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥
तस्मात् प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम्
नास्यावध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष
तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामितम् ।
विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥३७
वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् ।
यथाऽहं जघ्निवान् पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥
एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना ।
भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥
ततः पार्थो महाबाहुरसंभ्रान्तो महामनाः ।
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥४०
स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवाचलम् ।
अभ्यगात् सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥
स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः ।
न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥
स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ
नदन्नार्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ४३
ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥ ४४
वलीसंछन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः ।
अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय बद्धपट्टो ह्यसौ नृपः ॥
देववाक्यात् प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः ।
छिन्नमात्रेंऽशुके तस्मिन् रुद्धनेत्रो बभूव सः ॥
तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् ।
ततश्चन्द्रार्धबिम्बेन बाणेन नतपर्वणा ॥ ४७
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ।
स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥
शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह ।
शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम् ।
नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९

एका मूर्तिर्बदरिकाश्रमे नारायणरूपा अपरा परमात्मरूपा २७ अपरा क्षेत्रज्ञरूपा अपरा जलशायिनी ॥२८॥ व्यपनामितं स्वार्थे णिच् । व्यपनीतामित्यर्थः॥३७॥ योषिता भागुरिमते टाप् ॥ ४२ ॥

स हेममाली तपनीयभाण्डात्
पपात नागाद्गिरिसन्निकाशात् ।
सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो
महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥ ५०

निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं
सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे ।
ततोऽपरांस्तव जयकाङ्क्षिणो नरान्
बभञ्ज वायुर्बलवान् द्रुमानिव

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तवधे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

सञ्जय उवाच ।
प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् ।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १
ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ ।
अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २
तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३
वृषकस्य हयान् सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् ।
तिलशो व्यधमत् पार्थः सौबलस्य शितैः शरैः
ततोऽर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि ।
गान्धारानाकुलांश्चक्रे सौबलप्रमुखान् पुनः ५

ततः पञ्चशतान् वीरान्
गान्धारानुद्यतायुधान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय
क्रुद्धो बाणैर्धनञ्जयः ॥ ६

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवतीर्य महाभुजः ।
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ ।
शरवर्षेण बीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८
स्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ
भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव ॥ ९
लब्धलक्षौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः ।
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा
तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ ।
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणाऽर्जुन
तौ रथात् सिंहसंकाशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ
राजन् संपेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२
तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद्बन्धुजनप्रियौ ।
यशो दशदिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥
दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशांपते ॥ १४
निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
कृष्णौ संमोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥
लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
गदापरिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥ १६
सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः ।
क्षुराः क्षुरप्रनालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः

चक्राणि विशिखाः प्रासा
विविधान्यायुधानि च ।
प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः
प्रदिग्भ्यश्चार्जुनं प्रति ॥ १८

खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचित्रकाः ।
ऋक्षाः शालावृका गृध्राः कपयश्च सरीसृपाः
विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति
संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥
ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः ।
विरुवन्तो महारावान् विनेशुः सर्वतो हताः
ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति ।
तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन्
तत् तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे ।
उत्तमास्त्रेण महता ज्यौतिषेणार्जुनोऽवधीत् ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

**प्रियमिति** ॥ १ ॥ वर्षशब्दोयमृतुवचनः । निदाघर्तुसंबन्धिनावित्यर्थः । घर्मांशुभिस्तीक्ष्णकिरणैः ॥१०॥ कम्पना यष्टयः । क्षुराः क्षुराकृतिफलकाः । क्षुरप्रास्तूरमध्यफलकाः । नालीका नलिकया क्षेप्याः । वत्सदन्ता गोपोतकदन्ताकारफलकाः । अस्थिसन्धयोऽस्थिमयफलकाः ॥१७॥ विशिखाः फणित्राकारफलकाः ॥ १८ ॥ सृमरा गवयाः चित्रको व्याघ्रभेदः शालावृकाः श्वानः ॥ १९ ॥

हते तस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरासन् भयानकाः
अंभसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथार्जुनः ॥
प्रायुंक्तांभस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोषितम्।
एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः
जघानास्त्रबलेनाशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।
×तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः
अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा ।
ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छ्रैष्ठ्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।
सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी ॥
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवासाद्य पर्वतम् ।
द्रोणमेवान्वपद्यन्त केचित् तत्र नरर्षभाः॥३०
केचिद्दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना।
नापश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसावृते ॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निःस्वनम्
गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्यास्पृशाद्दिवं
ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥
सुयुद्धं चार्जुनस्यासीदहं तु द्रोणमन्वियाम् ।
यौधिष्ठिराण्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाभ्राणि मारुतः॥
तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिदवारयन् ॥
ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम्।
स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७
तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
शलभा इव संपेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥
तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः॥
न च द्वितीयं व्यसृजत् कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
पृथगेकशरा रुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥४०
हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः
शराभिसृष्टैश्च हयैर्निपातितैः ।
तदाऽश्वगोमायुबलाभिनादितं
विचित्रमायोधशिरो बभूव तत् ॥४१
पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्
तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः ।
स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जना-
स्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

धृतराष्ट्र उवाच ।
तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।
चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः
अनीकानां प्रभग्नानामवस्थानमपश्यताम् ।
दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २
सञ्जय उवाच ।
तथापि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशांपते ।
यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः ॥३
समुद्यतेषु चास्त्रेषु संप्राप्ते च युधिष्ठिरे ।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत् ॥ ४
अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः ।
सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥
द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समचोदयन् ।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून् सर्वानचोदयन्
द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति चापरे ।
कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ ७
यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् ।
तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ ८
तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति ।
वीराः समासदन् वीरान् कुर्वन्तो भैरवं रवम्

एनम् अर्जुनम् ॥ ३१ ॥ शराभिसृष्टैर्बाणाभिहतैः । आयोधशिरो रणाङ्गनम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ × तथेति पाठः

३१

तेष्विति ॥ १ ॥ अन्तरं छिद्रं प्रापतन् सृतवन्तः ॥ ५ ॥ समासदन् प्रतिगतवन्तः ॥ ९ ॥

अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः ।
अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥
ते त्वमर्षवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः ।
त्यक्त्वा प्राणान्न्यवर्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे
अयसामिव संपातः शिलानामिव चाभवत् ।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२
न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम्
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३
प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन् वीरावसादने ।
निवर्तता बलौघेन महता भारपीडिता ॥ १४
घूर्णतोपि बलौघस्य दिवं स्तब्ध्वेव निःस्वनः
अजातशत्रोस्तत्सैन्यमाविवेश सुभैरवः ॥ १५
समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्नानि शितैः शरैः ॥
तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाद्भुतकर्मणा ।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥
तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा ।
नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः
ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम्
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन् कक्षमिवानलः ॥
तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत
नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा ।
मयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाशु माम् ॥
तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः
तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः
धनुर्ध्वजं च छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत ॥
स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत
द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत पतत्रिवत्
तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात् सकुण्डलम्
भल्लेनापाहरद्द्रौणिः स्मयमान इवानघ ॥ २५
संपूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
प्रांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतद्भुवि ॥ २६
ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥ २७
अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः ।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति* मारिष
दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली ।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

## ३२

सञ्जय उवाच ।
प्रतिघातं तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः ।
सोऽभ्याहनद्गुरुं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः
तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः ।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्माण्याशु जघान ह॥ २
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत् ।
कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥
षड्भिर्दुर्योधनो राजा
तत एनमथाकिरत् ।
भीमसेनोऽपि तान् सर्वान्
प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥ ४
द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः ॥५
आरावं तुमुलं कुर्व-
न्नभ्यवर्तत तान् रणे× ।
तस्मिन् संत्यजति प्राणान्
मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६

---

न्यवर्तन्त भयेभ्यो निवृत्ताः ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥* इवेति पाठः ।

३२

प्रतिघातमिति ॥ १ ॥ मृत्युसाधारणीकृते मरणतुल्यावस्थाङ्गमिते ॥ ६ ॥ × 'तद्रणे' इति पाठः ।

अजातशत्रुस्तान् योधान्
भीमं त्रातेत्यचोदयत् ।
ते ययुर्भीमसेनस्य
समीपममितौजसः ॥ ७

युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ॥८
महेष्वासवरैर्गुप्ता द्रोणानीकं बिभित्सवः ।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥ ९
तान् प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः
महारथानतिबलान् वीरान् समरयोधिनः ॥
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान् पाण्डवा ययुः
सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान्
आसीच्छक्त्यसिसंपातो युद्धमासीत्परश्वधैः
प्रकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम् ॥ १२
कुञ्जराणां च संपाते युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
अपतत्कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः
नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष ।
तत्रान्यस्य च संमर्दे पतितस्य विवर्मणः ॥ १४
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ।
अपरांश्चापरेऽमृद्नन् वारणाः पतितान्नरान् ॥

विषाणैश्चावनिं गत्वा
व्यभिन्दन् रथिनो बहून् ।
नरान्त्रैः केचिदपरे
विषाणालग्नसंश्रयैः ॥ १६

बभ्रमुः समरे नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् ।
कार्ष्णायसतनुत्राणान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥
पतितान् पोथयांचक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव ।
गृध्रपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥
ह्रीमन्तः कालसंपर्कात् सुदुःखान्यनुशेरते ।
हन्ति स्मात्र पिता पुत्रं रथेनाभ्येत्य संयुगे ॥
पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्तत ।
रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम्
युगार्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ॥
सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम्
गजेनाक्षिप्य बलिना रथः संचूर्णितः क्षितौ ।
रथिना ताडितो नागो नाराचेनापतत् क्षितौ
सारोहश्चापतद्वाजी गजेनाभ्याहतो भृशम् ।
निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्तत सुदारुणम् ॥ २३
हा तात हा पुत्र सखे क्वासि तिष्ठ क्व धावसि
प्रहराहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ॥ २४
इत्येवमुच्चरन्ति स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ।
नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥
उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरून् कश्मलमाविशत्
चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥
अतीतेषु पथे काले जहार गदया शिरः ।
आसीत् केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम्
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ।
तत्राच्छिद्यत शूरस्य सखड्गो बाहुरुद्यतः ॥२८
सधनुश्चापरस्यापि सशरः सांकुशस्तथा ।
आक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथान्यो विमुखोऽद्रवत्

अन्यः प्राप्तस्य चान्यस्य
शिरः कायादपाहरत् ।

सशब्दमद्रवच्चान्यः
शब्दादन्योऽत्रसद्भृशम् ॥ ३०

स्वानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः
गिरिशृंगोपमश्चात्र नाराचेन निपातितः ॥
मातङ्गो न्यपतद्भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ।
तथैव रथिनं नागः क्षरन् गिरिरिवारुजन् ॥
अभ्यातिष्ठत् पदा भूमौ सहाश्वं सहसारथिम्
शूरान् प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान् रुधिरोक्षितान्
बहूनप्याविशन्मोहो भीरून् हृदयदुर्बलान् ।
सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३४
सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्तत ।
ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन्
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान्
कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥
सरो हंसा इवापेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ।
गृह्णीताद्रवतान्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ।
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः

---

कटुकस्य परुषस्योदयो यत्र ॥१२॥ अवनिं गत्वा अभिहत्य विषाणालग्नसंश्रयैः दन्तलग्नैकदेशैः ॥ १६ ॥ गृध्रपक्षाधिवासांसि गृध्रपक्षास्तरणानि ॥१८॥ समसज्जत घनतामगमत् ॥ २५ ॥ अतीतः इषुपथः शरावकाशो यत्र ॥२७॥ अद्वीपे निराश्रये द्वीपमाश्रयम् ॥२८॥ आक्रोशत् आहूतवान् ॥२९॥ क्षरन्मदमिति शेषः । रथिनं तथैव सहाश्वं सहसारथिं अर्थाद्रथं च पदा आरुजन् भूमौ अभ्यतिष्ठदित्यन्वयः ॥ ३२ ॥ विभीता अभीताः ॥ ३७ ॥ दुर्धर्षस्य द्रोणस्य ॥ ३८ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
शल्यश्चैतान्यवारयन् ।
ते त्वार्यधर्मसंरब्धा
दुर्निवारा दुरासदाः ॥ ३९
शरार्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विसृजञ्शतशः शरान्
चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत् कदनं महत् ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ॥
वज्रसंह्रादसंकाशस्त्रासयन् मानवान् बहून्
एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान्बहून्
अभ्ययात्तत्र यत्रासौ
द्रोणः पाण्डून् प्रमर्दति ।
ताञ्छरौघान्महावर्तान्
शोणितोदान् महाह्रदान् ॥ ४३
तीर्णः संशप्तकान् हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः
तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥४४
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ।
संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्यास्त्रगभस्तिभिः ॥
सपाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् ।
प्रददाह कुरून् सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ॥ ४६
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ।
तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥ ४७
ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः
केचिदार्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८
पार्थबाणहताः केचि-
न्निपेतुर्विगतासवः ।
तेषामुत्पतितान् कांश्चित्
पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥ ४९
न जघानार्जुनो योधान् योधव्रतमनुस्मरन् ।
ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः
कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः ।
तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम्
माभैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम् ।
स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२
प्रादुश्चक्रे तदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ५३
शरौघाञ्छरजालेन विदुधाव धनञ्जयः ।
तथैवाधिरथिस्तस्य बाणाञ्ज्वलिततेजसः
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद्विसृजन् शरान् ।
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ५५
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥
अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥
तेषां त्रयाणां चापानि
चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
ते निकृत्तायुधाः शूरा
निर्विषा भुजगा इव ॥ ५७
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवानदन्
ता भुजाग्रैर्महावेगा निसृष्टा भुजगोपमाः ॥
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति
ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः
ननाद बलवान् कर्णः पार्थाय विसृजञ्छरान्
अर्जुनश्चापि राधेयं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः ।
ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् ॥
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ॥
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ।
ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥
वरासिना कर्णपक्षान् जघान दश पञ्च च ।
पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ॥ ६४
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः ।
धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चादाय भास्वरम् ॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधम् ।
ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकं
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन् रणे ।
शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या
विद्ध्वा सिंह इवानदन्× ।
भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां
छित्त्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः
निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात् ।
पत्त्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोऽपरे ॥
कर्णमेवाभ्यधावन्त त्रास्यमानाः प्रहारिणः ।
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ७१
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे ।
एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ७२

आर्यधर्मेण संरब्धाः क्रोधमाः ॥ ३९ ॥ विदुधाव खण्डितवान् ॥ ५४ ॥ × अनददिति पाठः ।

तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद्रणः
पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपत्तिभिः ७३
रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः ।
अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ७४
संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः ।
एवं सुकलिलं युद्धमासीत्क्रव्यादहर्षणम् ।
महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ७५
ततो हता नररथवाजिकुञ्जरै-
रनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः ।
गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा
हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥ ७६
रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया
हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।
निरस्तजिह्वादशनेक्षणाः क्षितौ
क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७
तथा परैर्बहुकरणैर्वरायुधै-
र्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।
विपोथिता हयगजपादताडिता
भृशाकुला रथमुखनेमिभिः क्षताः ७८
प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां
जनक्षये वर्तति तत्र दारुणे ।
महाबलास्ते कुपिताः परस्परं
निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७९
ततो बले भृशलुलिते परस्परं
निरीक्षमाणे रुधिरौघसंप्लुते ।
दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनै-
रुभे प्रयाते शिबिराय भारत ॥ ८०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वितीयदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ समाप्तं संशप्तकवधपर्व ॥

## अभिमन्युवधपर्व ३

### ३३

सञ्जय उवाच ।
पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनामितौजसा ।
द्रोणे च मोघसंकल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे १
सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः
रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश
अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य संमते ।
लब्धलक्षैः शरैर्भिन्ना भृशावहसिता रणे ३
श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्यामितान् गुणान्
केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ४
अभिशस्ता इवाभूवन् ध्यानमूकत्वमास्थिताः
ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत्
प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः ।
शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः
नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम ।
तथा हि नाग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम्
इच्छतस्तेन मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः ।
जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ८
वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि ।
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथञ्चन ९
ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन्
भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम् ।
नार्हसे मां तथा ज्ञातुं
घटमानं तव प्रिये ॥ १०
ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
नालं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना
विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथार्जुनः
तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यंबकात् प्रभोः ॥

---

प्राणांस्त्यक्त्वा युद्ध्यतामिति शेषः ॥ ७३ ॥ अभीतानां अभिमुखागतानां भयहीनानां वा॥ ७५ ॥ बहुकरणैरनेकप्रक्रियैः रथमुखानां रथमुख्यानां नेमिभिश्च क्रान्ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

पूर्वमिति ॥ १ ॥ रजस्वला धूलिव्याप्ताः ॥ २ ॥ विकृतवान् अन्यथा कृतवान् ॥ ९ ॥

सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
*अद्यैकं प्रवरं कञ्चित् पातयिष्ये महारथम्
तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि
योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् १४
न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किञ्चन
तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १५
द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः ।
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥
ततोऽर्जुनस्याथ परैः
सार्धं समभवद्रणः ।
तादृशो यादृशो नान्यः
श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित् ॥ १७
तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन् व्यरोचत
चरन्मध्यंदिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १८
तं चाभिमन्युर्वचनात् पितुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
बिभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १९
स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान् सहस्रशः
षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशं गतः ॥
सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान् परन्तपः ।
वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्शिताः ।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१
धृतराष्ट्र उवाच ।
पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाप्राप्तयौवनम् ।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः २२
दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः ।
यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥
बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् ।
कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि गावल्गणे कथम् २४
बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणामितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥
सञ्जय उवाच ।
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र
सौभद्रस्य निपातनम् ।
तत् ते कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि
शृणु राजन् समाहितः ॥ २६
विक्रीडितं कुमारेण यथानीकं बिभित्सता
आरुग्णाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि विप्लवे
दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे ।
वनौकसामिवारण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् २८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

सञ्जय उवाच ।
समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः ।
सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः
सत्त्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया
नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् २
सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः ।
सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः
युगान्ते चान्तको राजन्
जामदग्न्यश्च वीर्यवान् ।
रथस्थो भीमसेनश्च
कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥ ४
प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।
उपमां नाधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ
गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः ।
नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि षट्
श्रुत-गांभीर्य-माधुर्य-सत्य-रूप-पराक्रमैः ।
सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाश्विनोः ॥

---

कलाभिः सहितं सकलम् । इतोऽस्मत्तः ततोऽन्यतः ।।१५।। षट्सु द्रोण-द्रौणि-कृप-कर्ण-भोज-शल्येषु ॥ २० ॥ धर्मकर्तृभिर्मन्वादिभिः २३॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ *अथैषां प्रवरं वीर मिति पाठः

३४

समर इति ॥ १ ॥ कीर्तिः साधुतयान्यैः कथनम् । यशः परचित्तचमत्कृतो गुणौघः॥२॥ नैभृत्यं कृतकर्तव्याप्रकाशनम् । अप्रातिरूप्यं सौन्दर्यम् ॥ ६ ॥ प्रमुखऽग्रे

# चक्रव्यूहः ।

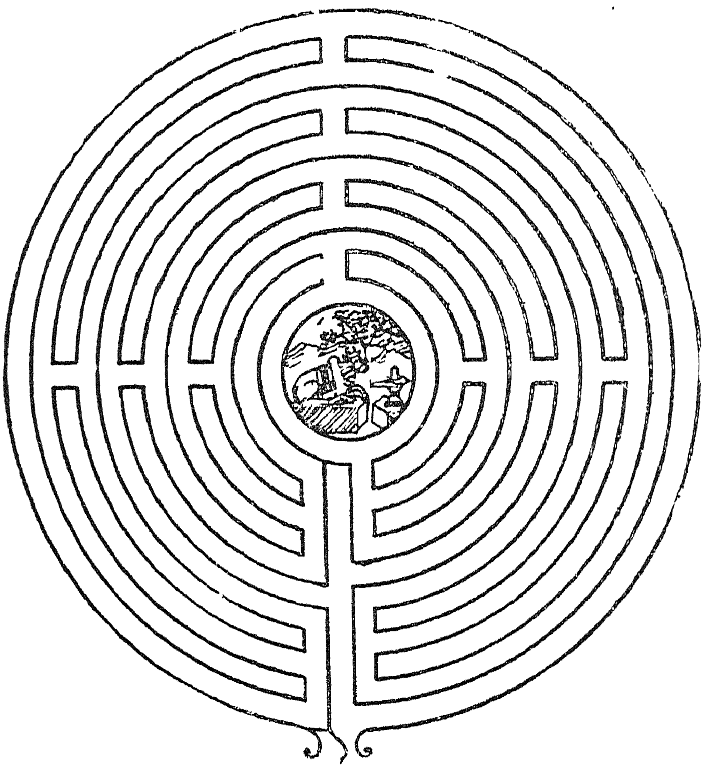

चक्रव्यूहचित्रमिदं महाराष्ट्रदेशे सुप्रथितमिति कृत्वा
विचारार्थं केवलं प्रदर्शितम् । तत्सम्यगसम्य-
ग्वेति सुधीभिर्निर्णेयम् ।

—संपादकः

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः
पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था
दृश्यन्ते गुणसञ्चयाः ॥ ८
युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९
धनञ्जयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन कथमायोधने हतः
सञ्जय उवाच ।
स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम्
महान्तं बन्धुनाशं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥
चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभिकल्पितः ।
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः
आरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
संघातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत् तदा १४
कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ।
रक्ताम्बरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥१५
सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः
सहिताः पर्यधावन्त कार्ष्णिं प्रति युयुत्सवः।
तेषां दशसहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥ १७
पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः॥
अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च
अन्योन्यस्य हिते रताः ।
दुर्योधनस्तु राजेन्द्र
सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ १९
कर्ण-दुःशासन-कृपैर्वृतो राजा महारथैः ।
देवराजोपमः श्रीमाञ्छ्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥
चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायकः
सिन्धुराजस्तथाऽतिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाचलः।
सिन्धुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः
सुतास्तव महाराज
त्रिंशत्त्रिदशसन्निभाः ।
गान्धारराजः कितवः
शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्२५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि चक्रव्यूहनिर्माणे
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

# ३५

सञ्जय उवाच ।
तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् ।
पार्थाः समभ्यवर्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः॥२
आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् ।
चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥३
युधामन्युश्च विक्रान्तः
शिखण्डी चापराजितः ।
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो
विराटश्च महारथः ॥ ४
द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् ।
केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥५
एते चान्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः
समभ्यधावन् सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ६
समीपे वर्तमानांस्तान्
भारद्वाजोऽतिवीर्यवान् ।
असंभ्रान्तः शरौघेण
महता समवारयत् ॥ ७

सैन्यस्य नायको द्रोणः । अवस्थितेतिच्छन्दोनुरोधाद्विसर्गलोपः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

तदनीकमिति ॥ १ ॥

महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम् ।
द्रोणं ते नाभ्यवर्तन्त वेलामिव जलाशयाः ८
पीड्यमानाः शरै राजन्द्रोणचापविनिःसृतैः
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः
तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम् ।
यदेनं नाभ्यवर्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह १०
तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥
अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।
अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत ॥१२
वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चामितौजसम् ।
अब्रवीत् परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥ १३
एत्य नो नार्जुनो गर्हेद्यथा तात तथा कुरु ।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथञ्चन ॥ १४
त्वं वाऽर्जुनो वा कृष्णो वा
भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा ।
चक्रव्यूहं महाबाहो
पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १५
अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि ।
पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥
धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् ।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥

अभिमन्युरुवाच ।

द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि ।
पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥
उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने ।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्यांचिदापदि ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
वयं त्वानुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि
धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे ।
प्रणिधायानुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः

भीम उवाच ।

अहं त्वाऽनुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः
पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः
सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः ।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान् वरान्

अभिमन्युरुवाच ।

अहमेतत् प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं× जातवेदसम् ॥
तत्कर्माद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः ।
मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे ॥
शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि संघशः
द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया
नाहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाद्य मुच्यते ॥
यदि चैकरथेनाहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् ।
न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् ।
यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥
रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैर्महाबलैः ।
साध्यरुद्रमरुत्तुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥२०

सञ्जय उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् ॥
सुमित्राश्वान् रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युप्रतिज्ञायां
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

सञ्जय उवाच ।

सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः । अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १

---

मातुलानां सात्यकिप्रभृतीनाम् ॥ १६ ॥ योग उपायो युक्तिर्वा ॥ १९ ॥ प्रणिधाय प्रविश्य ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

सौभद्र इति ॥ १ ॥

× ज्वलन्तमिति पाठः ।

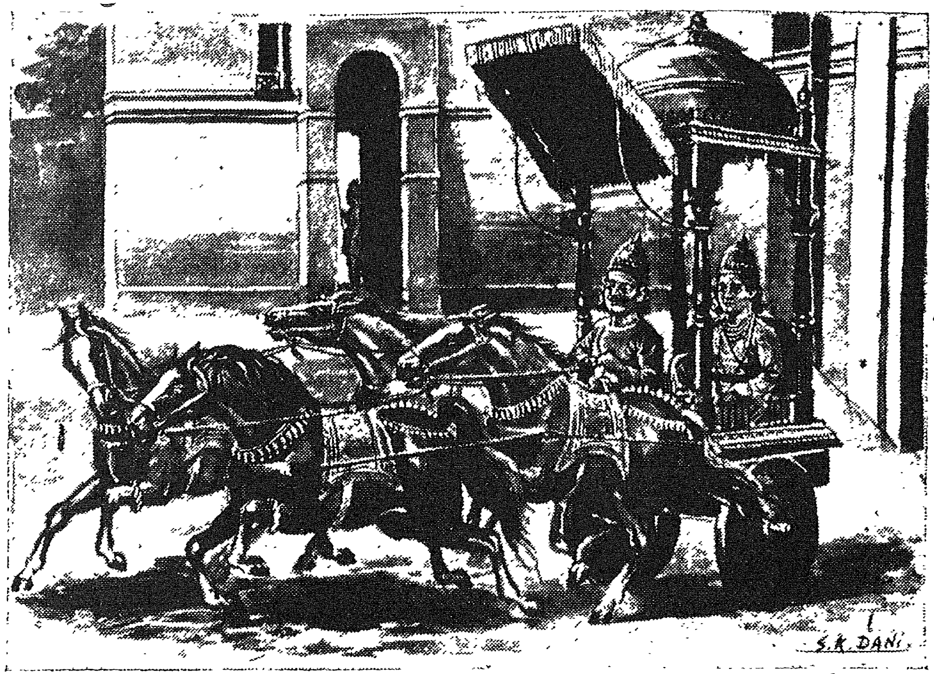


सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ॥
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥

—द्रोणपर्व, अ. ३६ पृ. ५६

तेन सञ्चोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २
अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः।
संप्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ३
आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः ।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चायुद्धविशारदः ॥ ४
ततोऽभिमन्युः प्रहसन् सारथिं वाक्यमब्रवीत्
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा॥५
ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम् ।
अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् ।
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६
न ममैतद्द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् ।
अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥
पितरं चार्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति ।
अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८
याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम्
ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान्॥९
नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ।
ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः॥
द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगपराक्रमम् ।
तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः।
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः॥
स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः
सुवर्णवर्मार्जुनिरर्जुनाद्वरः ।
युयुत्सया द्रोणमुखान् महारथान्
समासदत्सिंहशिशुर्यथा द्विपान् ॥
ते विंशतिपदे यत्ताः संप्रहारं प्रचक्रिरे।
आसीद्गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधाविव ॥ १३
शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन् प्रावर्तत सुदारुणः॥ १४
प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयंकरे।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः
तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान्महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ १६
नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्कुष्टगर्जितैः ।
हुंकारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥
घोरैर्हलहलाशब्दैर्मा गास्तिष्ठेहि मामिति ।
असावहममुत्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८
बृंहितैः सिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि ।
सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९
तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन् मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः
ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैःशरैः।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥२१
ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः ।
सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाध्वरे॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणान्सशरासनसायकान्।
सासिचर्माङ्कुशाभीषून् सतोमरपरश्वधान् ॥
सगदायोगुडप्रासान् सर्ष्टितोमरपट्टिशान् ।
सभिन्दिपालपरिघान् सशक्तिवरकम्पनान् ॥
सप्रतोदमहाशंखान् सकुन्तान् सकचग्रहान्।
समुद्गरक्षेपणीयान् सपाशपरिघोपलान् ॥२५
सकेयूराङ्गदान् बाहून् हृद्यगन्धानुलेपनान् ।
सञ्चिच्छेदार्जुनिस्तूर्णं त्वदीयानां सहस्रशः॥
तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः ।
पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥ २७
सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः।
संदष्टौष्ठपुटैः क्रोधात् क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥
स चारुमुकुटोष्णीषैर्मणिरत्नविभूषितैः ।
विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥ २९
हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
द्विषच्छिरोभिःपृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः
गन्धर्वनगराकारान्
विधिवत् कल्पितान् रथान्
वीषामुखान् त्रिवेणून्
न्यस्तदण्डकबन्धुरान् ॥ ३१
विजंघाकूबरांस्तत्र विनेमिदशनानपि ।
विचक्रोपस्करोपस्थान् भग्नोपकरणानपि ॥
प्रपातितोपस्तरणान् हतयोधान् सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन् दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥
पुनर्द्विपान् द्विपारोहान्वैजयन्त्यंकुशध्वजान्
तूणान् वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयांश्च सकंबलान्

---

विंशतिरिति व्यूहपर्यायः । तदुक्तम्—
'विंशत्यंगतया व्यूहो विंशतिर्व्यपदिश्यते' इति ।
विंशतेः पदे रक्षणे ।

'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः॥१३॥ क्ष्वेडितं ध्वनिविशेषः । उत्क्रुष्टमाह्वानं गर्जितं हन्यन्तां हन्यन्तामिति वचः ॥ १७ ॥ कचग्रहांकुशः ॥२५॥ उपस्थो रथक्रोडः ॥ ३२ ॥

घण्टाः शुण्डाविषाणाग्रान्
छत्रमालाः पदानुगान् ।
शरैर्निशितधाराग्रैः
शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५
वनायुजान् पार्वतीयान्
काम्बोजानथ बाल्हिकान् ।
स्थिरवालधिकर्णाक्षान्
जवनान् साधुवाहिनः ॥ ३६
आरूढान् शिक्षितैर्योधैः
शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभिः ।
विध्वस्तचामरमुखान्
विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥ ३७
निरस्तजिह्वानयनान्निष्कीर्णान्त्रयकृद्धनान् ।
हतारोहांश्छिन्नघण्टान् क्रव्यादगणमोदकान् ।
निकृत्तचर्मकवचान् शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।
निपातयन्नश्ववरांस्तावकान् स व्यरोचत ॥
एको विष्णुरिवाचिन्त्यं
कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तथा निर्मथितं तेन
त्र्यङ्गं तव बलं महत् ॥ ४०
यथाऽसुरबलं घोरं त्र्यम्बकेन महौजसा ।
कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ॥ ४१
अभिनच्च पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः ।
एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवासुरीं चमूम् ।
त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥
गोत्रनामभिरन्योन्यं
क्रन्दन्तो जीवितैषिणः ।
हतान् पुत्रान् पितॄन् भ्रातॄन्
बंधून् संबन्धिनस्तथा ॥ ४५
प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

सञ्जय उवाच ।
तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणामितौजसा ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥
ततो राजानमावृत्तं
सौभद्रं प्रति संयुगे ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान्
परीप्सध्वं नराधिपम् ॥ २
पुराभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३
ततः कृतज्ञा बलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।
त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥
द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ५
पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्छरान्
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६
संमोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।
आस्याद्ग्रासमिवाक्षिप्तं ममृषे नार्जुनात्मजः ७
ताञ्छरौघेण महता साश्वसूतान् महारथान् ।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथानदत् ॥ ८
तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवामिषैषिणः
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि सङ्घशः
तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११
ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥ १२

---

यकृत्कालखंडम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

तामिति ॥ १ ॥ त्रास्यमानाः पालयिष्यन्तः ॥४॥

समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम् ।
दधारैकोऽर्जुनिर्बाणैर्वेलेव भरतर्षभ ॥ १३
शूराणां युध्यमानानां
निघ्नतामितरेतरम् ।
अभिमन्योः परेषां च
नासीत्कश्चित् पराङ्मुखः ॥ १४
तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयंकरे ।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५
दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६
विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ।
बृहद्बलस्तथाष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः
स तु तान् प्रति विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥
ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवात्मजैः
विदर्शयन् वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥
गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः ।
दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्
तस्याभिमन्युर्दशभिर्हयान् सूतं ध्वजं शरैः ॥
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां
स्मयमानोऽभ्यपातयत् ।
ततस्तस्मिन् हते वीरे
सौभद्रेणाश्मकेश्वरे ॥ २३
सञ्चचाल बलं सर्वं पलायनपरायणम् ।
ततः कर्णःकृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः
वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५
वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः ।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६
सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः
शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥ २७
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाशुगः ।
प्राविशद्धरणीं वेगाद्वल्मीकमिव पन्नगः ॥ २८
स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ।
संचचाल रणे कर्णः क्षितिकंपे यथाऽचलः ॥
तथाऽन्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥
कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः
स शराचितसर्वांगः क्रुद्धः शक्रात्मजात्मजः
विचरन् ददृशे सैन्ये पाशहस्त इवान्तकः ॥
शल्यं च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् ।
उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥
ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः
शल्यो राजन् रथोपस्थे निषसाद मुमोह च
तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना ।
संप्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥
संप्रेक्ष्य तं महाबाहुं रुक्मपुंखैः समावृतम् ।
त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ।
स तु रणयशसाऽभिपूज्यमानः
पितृसुरचारणसिद्धयक्षसङ्घैः ।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घै-
रतिविबभौ हुतभुग्यथाऽऽज्यसिक्तः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

धृतराष्ट्र उवाच ।
तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः ।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन्

सञ्जय उवाच ।
शृणु राजन् कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् ।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् २

---

पर्यस्तमुत्क्रान्तमर्यादम् ॥ १३ ॥ शिक्षौरसकृतमभ्यासकृतं निसर्गभवं च ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

तथेति ॥ १ ॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा
सौभद्रेणाशुगै रणे ।
शल्यादवरजः क्रुद्धः
किरन् बाणान् समभ्ययात् ॥ ३
स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम्
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ४
तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान्
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च । ५
चक्रे युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः ।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ॥ ६
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन ।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः
वायुनेव महाशैलः संभग्नोऽमिततेजसा ॥
अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन् सर्वतो दिशः
आर्जुनेः कर्म तद्दृष्ट्वा संप्रणेदुः समन्ततः ।
नादन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ९
शल्यभ्रातर्यथारुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः ।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम्
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये बलोत्कटाः ११
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च ।
हुंकारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् ।
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन्मोक्ष्यसे जीवितादिति
तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा
सौभद्रः प्रहसन्निव ।
यो योऽस्मै प्राहरत् पूर्वं
तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १४
संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥ १५
वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् ।
अदर्शयत तत्कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥
दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः ।
संदधद्विसृजंश्चेषून्निर्विशेषमदृश्यत ॥ १७
चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद्दिक्ष्वदृश्यत ।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा १८
ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः ।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः १९
ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत्प्रियदर्शनः ।
संमिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाप्ययुध्यत २०
मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत ।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्छरदीव दिवाकरः २१
शरान् विचित्रान् सुबहून्
रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
मुमोच शतशः क्रुद्धो
गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२
क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः ।
नाराचैरर्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३
अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः ।
ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

## ३९

धृतराष्ट्र उवाच ।
द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च सञ्जय ।
मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् १
विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः ।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह
सञ्जय उवाच ।
हन्त ते संप्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम् ।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत् तुमुलो रणः

तल्पं रथगतशय्याम् ॥५॥ अधिवासो निवास ॥ १० ॥
अविशेषवत्तुल्यमित्यर्थः॥ १६॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि
टीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

द्वैधीति ॥ १ ॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः
कृतोत्साहानरिन्दमान् ।
रथस्थो रथिनः सर्वा-
स्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४
द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम् ।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ५
नानानृपान्नृपसुतान् सैन्यानि विविधानि च
अलातचक्रवत्सर्वाश्चरन् बाणैः समार्पयत् ६
निघ्नन्नमित्रान् सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान्
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७
तद्दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यामितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ८
अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९
घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥१०
एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा
नंदयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम्
नकुलं सहदेवं च
भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बंधून् सम्बन्धिनश्चान्यान्
मध्यस्थान् सुहृदस्तथा ॥ १२
नास्य युद्धे समं मन्ये कञ्चिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति
द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥
अथ दुर्योधनः कर्ण-
मब्रवीद्बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं
तांस्तथाऽन्यान् महारथान् ॥ १५
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहेच्छति १६
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।
किमङ्ग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः१७
अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम्
संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसंभावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम्
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः
दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत् कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१
अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम्
ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
उत्क्रुश्य चाब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥
श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥
तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं
पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः
क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५
तस्मादस्मिन् हते शत्रौ हताःसर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥
एवमुक्त्वाऽनदद्राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥
तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिन्दमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत्
दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९
तौ मण्डलानि चित्राणि
रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुध्येतां
रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३०
अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां
क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रु-
र्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥३१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

अङ्गेत्यसूयायाम् ॥ १७ ॥ धर्मिणामिति सोल्लुंठम् ॥ १८ ॥ आत्मसंभावितोऽहमेवेति संभावनामारूढः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

सञ्जय उवाच ।

शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन् धीमान्
दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम्
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २
यत्सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्यात्मनो बलम्॥
तत्त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।
परवित्तापहारस्य क्रोधस्याप्रशमस्य च ॥ ५
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्याहितस्य च
पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम्॥
तत्त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद्वै महात्मनाम् ।
स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः
अद्याहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८
अमर्षितायाः कृष्णायाः कांक्षितस्य च मे पितुः
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणं।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम्॥
संदधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ।
तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२
शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत्।
सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ।
पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम्
पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथानदन् ।
वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः।
अपश्यन् स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम्
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृञ्जयाः ।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं बिभित्सवः
ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह॥
जयमाकांक्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयङ्करे ॥ २२
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।
पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥
प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ।
अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।
ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत् तव ।
तस्य चानुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।
अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः॥
अविध्यत्त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः
तं तथा नाशकत् कश्चिद्द्रोणाद्वारयितुं रथी॥
आरुजन्तं रथव्रातान् वज्रहस्तात्मजात्मजम्।
ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन्।
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान्
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत्।
स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः॥
समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।
ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत्।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३२
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ।
कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान् सन्नतपर्वणः
असंभ्रान्तश्च तान्सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः
ततो मुहूर्तात् कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान्॥

---

४०

शरेति ॥ १ ॥ अत्याहितस्य जीवानपेक्षकर्मणः साहसस्येति यावत् ॥ ६ ॥

सध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत्।
ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६
सौभद्रमभ्ययात् तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम्।
तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः।
वादित्राणि च संजघ्नुः सौभद्रं चापि तुष्टुवुः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

सञ्जय उवाच।
सोऽतिगर्जन् धनुष्पाणि-
ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं
रथान्तरमवापतत् ॥ १
सोऽविध्यद्दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम्।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥
पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
दृष्ट्वार्दितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिता भवन् ।
तस्याभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद्भुवि ॥
कर्णिकारमिवाधूतं वातेनापतितं नगात्।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन् कर्णो व्यथां ययौ
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे ॥ ६
ततस्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत्।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा महारथः ॥
कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८
शलभैरिव चाकाशे धाराभिरिव चावृते।
अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किंचन ॥९
तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः
अन्यत्र सैन्धवाद्राजन्न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥
सौभद्रस्तु ततः शंखं प्रध्माप्य पुरुषर्षभः।
शीघ्रमभ्यपतत् सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥
स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्
मध्यं भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत* १२
रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः।
संप्रविश्याकरोद्भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥
सौभद्रचापप्रभवै-
र्निकृत्ताः परमेषुभिः।
स्वानेवाभिमुखान् घ्नन्तः
प्राद्रवन् जीवितार्थिनः ॥ १४
ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः
निघ्नन्तो रथनागाश्वान् जग्मुराशु वसुंधराम्
सायुधाः साङ्गुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥
शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सहस्रशः
सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९
निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशांपते।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनासीत् सुदारुणा ॥
वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम्।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥
स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत्।
सौभद्रश्चाद्रवत् सेनां घ्नन् वराश्वरथद्विपान्
कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥
विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चापि भारत।
तं तदा नानुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते
आददानं गजाश्वानां नृणां चायूंषि भारत।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यंदिने यथा ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टिकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * 'प्रववर्तत' इति पाठान्तरम्।

४१

स इति ॥ १ ॥

अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान्। स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

धृतराष्ट्र उवाच।
बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम्।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १
गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः।
अपि यौधिष्ठिरात् सैन्यात् कश्चिदन्वपतद्बली
सञ्जय उवाच।
युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ ३
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे।
तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥४
अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः
तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाभवन्
ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलम्।
जामाता तव तेजस्वी संस्तंभयिषुराद्रवत् ॥
सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान् सह सैन्यानवारयत् ॥
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन्।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत् प्रवणादिव कुञ्जरः ॥ ८
धृतराष्ट्र उवाच।
अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाहितम्।
यदेकः पाण्डवान् क्रुद्धान् पुत्रप्रेप्सूनवारयत्॥
अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्र्यं महात्मनः ॥
किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो तपः।
सिंधुराजो हि येनैकः पाण्डवान् समवारयत्
सञ्जय उवाच।
द्रौपदीहरणे यत्तद्भीमसेनेन निर्जितः।
मानात् स तप्तवान् राजा वरार्थी सुमहत् तपः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सः
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ॥
देवमाराधयच्छर्वं गृणन् ब्रह्म सनातनम्।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम्
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाह हरः सिंधुपतेः सुतम्।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि
एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥
पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान्।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥ १७
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत्।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनञ्जयम् ॥
वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान्
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाऽबुध्यत पार्थिवः
स तेन वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम्
तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान् भयमाविशत्
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥
दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम्।
उत्क्रुश्याभ्यद्रवन् राजन्येन यौधिष्ठिरं बलम्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

**बालमिति** ॥ १ ॥ प्रवणान्निम्नप्रदेशं प्राप्य ॥ ८ ॥ बलं सामर्थ्यम् शौर्यमुत्साहः। वीर्यं प्रभावम् ॥ १० ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

सञ्जय उवाच ।

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र
सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।
शृणु तत् सर्वमाख्यास्ये
यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १

तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥
गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।
तस्याभ्यशोभयत्केतुर्वाराहो राजतो महान्
श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाम्बरे ॥
मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तमयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम्
स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून् ।
तत् खण्डं पूरयामास यद्व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६
स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम्
केकयान् पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९
अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम् ॥
चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान्
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण
सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं
तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११
तत् तस्य लाघवं ज्ञात्वा
भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च
क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२
सोऽन्यदादाय बलवान्
सज्जं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्यापातयत् केतुं
धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३
स हताश्वादवप्लुत्य छिन्नधन्वा रथोत्तमात्
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥
ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः
साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत् कर्म
प्रेक्ष्याश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५
संक्रुद्धान् पाण्डवानेको यद्दधारास्त्रतेजसा ।
तदस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥
सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः
यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥
यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः ।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥१९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

सञ्जय उवाच ।

सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १
प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्यसन्धो दुरासदः
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २

---

४३

**यदिति** ॥ १ ॥ वरूथं रथवेष्टनम् ॥ ५ ॥ आदिश्य एष च्छिनद्मीत्युद्दिश्य ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

**सैन्धवेनेति** ॥ १ ॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।
यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३
तेषां तस्य च संमर्दो दारुणः समपद्यत ।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४
रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथार्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम्
तस्य विव्याध बलवान् शरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६
तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारयद्रथम् ।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चुक्रुशुः
तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आराद्‌आयान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद्द्रुतम्
सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत्
अब्रवीच्च न मे जीवन् जीवतो युधि मोक्ष्यसे
तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ
वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥११
विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२
तेषां शरान् सेष्वसनान्
शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि
क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३
सखड्गाः साङ्गुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः
अपश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाध्वजैः ।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६
अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः ।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाऽभवन्मही ॥
निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८
दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९
काञ्चनं यद्यदस्यासीद्वर्म चाभरणानि च ।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् २०
तं तदा नाशकत् कश्चि-
च्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम् ।
आददानं शरैर्योधान्
मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

सञ्जय उवाच ।
आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः ।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इवागते १
स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली ।
अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत २
प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः ।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ३
सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः ।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४
अहं पूर्वमहं पूर्व-
मिति क्षत्रियपुङ्गवाः ।
स्पर्धमानाः समाजग्मु-
र्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५
क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्राह तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ६
ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५
आददान इति ॥ १ ॥

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ८
अथ रुक्मरथो नाम
मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन् सेना-
मत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९
अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः १०
एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ११
सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणै-
र्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ
सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२
स तस्येष्वसनं छित्त्वा
फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु
क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३
दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना १४
संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः १५
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् १६
शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७
छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः १९
ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव २०
स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्त्रैर्गज इवार्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद्रथमायां च भारत २१
अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुंबुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् २२
एकधा शतधा राजन् दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत्संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् २३
रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः ।
बिभेद शतधा राजन् शरीराणि महीक्षिताम्
प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषितानि शितैः शरैः
राजन् प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः २५
धनूंष्यश्वान्नियन्तॄंश्च
ध्वजान् बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणै-
स्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ २६
चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत्सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७
क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्
सुकुमारान् सुखोचितान् ।
एकेन निहतान् दृष्ट्वा
भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८
रथिनः कुञ्जरानश्वान्
पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्र-
मुपायात्तममर्षितः ॥ २९
तयोः क्षणमिवापूर्णः
संग्रामः समपद्यत ।
अथाभवत्ते विमुखः
पुत्रः शरशताहतः ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

धृतराष्ट्र उवाच ।
यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह । संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १

आयच्छत्प्रयुक्तवान् रथमायां दुर्लक्ष्यां रथशिक्षाम् ॥ १६ ॥
फलोपगः फलोन्मुखः ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि
टीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५ ॥

४६

यथेति ॥ १ ॥

अश्रद्धेयमिवाश्चर्यं सौभद्रस्याथ विक्रमम् ।
किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः
दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ३

सञ्जय उवाच ।

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ४
हतान् भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान्
सुहृत्संबन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मु-
स्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५
तान् प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः ।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माऽथ सौबलः ६
अभ्यधावन्सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम् ।
ते तु पौत्रेण ते राजन् प्रायशो विमुखीकृताः
एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः ।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात्
तमन्वगेवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत ।
अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः ॥ ९
तं तेऽभिषिषिचुर्बाणै-
र्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः ।
स तु तान् प्रममाथैको
विष्वग्वातो यथाम्बुदान् ॥ १०
पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ११
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम्
लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् १३
संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहत इवोरगः ।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४
सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि ।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम्
एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभम् ॥ १६
स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
सुनसं सुभ्रुकेशान्तं शिरोऽहार्षीत् सकुण्डलम्
लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ।
तांस्तु विद्ध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः
वेगेनाभ्यपतत्क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम् ।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।
तत्प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद्विशां पते ॥ २२
ततस्तत्कुञ्जरानीकं व्यधमद्धृष्टमार्जुनिः ।
यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदान् शतशोऽम्बरे ॥
ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
अथेतरे सन्निवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४
परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ।
तान्निवार्यार्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत् ॥ २५
शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ॥
सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वानपातयत् ।
कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन्हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन् ।

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणवधे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

---

प्रतिपत्तिं प्रतिविधानम् ॥ ३ ॥ विष्वग्वातोऽशेषन्दिग्वातः ॥ १० ॥ केशान्तं केशैर्मनोहरं 'अन्तः प्रान्तेऽन्तिके मध्ये स्वरूपे च मनोहरे' इत्यभिधानात् ॥ १७ ॥ धृष्टं प्रगल्भम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## ४७

धृतराष्ट्र उवाच ।
तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १
आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाकाशे के शूराः समवारयन् ॥
सञ्जय उवाच ।
अभिमन्युः प्रविश्यैतां-
स्तावकान्निशितैः शरैः ।
अकरोत् पार्थिवान् सर्वान्
विमुखान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३
तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च स बृहद्बलः
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥
दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५
सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षन् शरांबुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः
तांस्तु सर्वान् महेष्वासान्
सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टंभयद्रणे बाणैः
सौभद्रः परवीरहा ॥ ७
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यद्विंशत्या च बृहद्बलम्
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥
पातयित्वा कृपस्याश्वां-
स्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥
अथैनं दशभिर्बाणैः
प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ११
ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्बली ॥
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३
स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥
षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः
उग्रैर्नाकम्पयद्विद्ध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५
स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुंखैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥
तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाऽष्टौ च परीप्सन् पितरं रणे
कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान् कृतवर्मा च विंशतिम्
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत् कृपः शारद्वतो दश ॥
तांस्तु प्रत्यवधीत् सर्वान् दशभिर्दशभिः शरैः
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥
तं कोसलानामधिपः
कर्णिनाऽताडयद्धृदि ।
स तस्याश्वान् ध्वजं चापं
सूतं चापातयत् क्षितौ ॥ २०
अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम्
स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत्
बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम्
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम्
तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे ।
व्यष्टंभयन्महेष्वासो योधांस्तव शरांबुभिः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

सञ्जय उवाच ।
स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः । शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत् कोपयन् भृशम्

४७
**तथेति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८
**सकर्णमिति** ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः ।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २
कर्णं चाप्यकरोत्क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३
तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४
अथ कर्णस्य सचिवान् षट् शूरांश्चित्रयोधिनः ।
साश्वसूतध्वजरथान् सौभद्रो निजघान ह ॥ ५
तथेतरान् महेष्वासान् दशभिर्दशभिः शरैः ।
प्रत्यविध्यदसंभ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६
मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७
मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजन् शरान् ॥ ८
तस्य दौःशासनिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम् ॥ ९
ततो दौःशासनिं कार्ष्णि-
र्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद्रक्तनयनो
वाक्यमुच्चैरथाब्रवीत् ॥ १०
पिता तवाहवं त्यक्त्वा
गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे
योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११
एतावदुक्त्वा वचनं
कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जास्मै
तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३
तद्वदसंभ्रान्तवद्राजं-
स्तदद्भुतमिवाभवत् ।
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा
हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ १४
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोपाक्रामद्रथान्तरम् ।
शत्रुञ्जयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५
सूर्यभासं च पञ्चैतान्
हत्वा विव्याध सौबलम् ।
तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा
दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ १६
सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।
अथाब्रवीत् पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७
पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत ॥ १८
अस्ति वाऽस्यान्तरं किञ्चित्
कुमारस्याथ पश्यत ।
अण्वप्यस्यान्तरं ह्यद्य
चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९
शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ।
धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २०
संदधानस्य विशिखान् शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।
आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे ॥ २२
अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।
अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः ॥ २४
स्थातव्यमिति तिष्ठामि
पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
तेजस्विनः कुमारस्य
शराः परमदारुणाः ॥ २५
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।
तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६
अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः ।
उपदिष्टा मया चास्य पितुः कवचधारणा ॥ २७
तामेष निखिलां वेत्ति
ध्रुवं परपुरञ्जयः ।
शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं
ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥ २८
अभीषूंश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥ २९
अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु ।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ३०
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन् ॥ ३१

अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ।
अश्वानस्यावधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी
शेषास्तु छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ।
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।
सच्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ३४
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।
मार्गैः सकौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ३५
आर्जुनिर्व्यचरद्व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ।
मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६
विव्यधुस्तं महेष्वासं
समरे छिद्रदर्शिनः ।
तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ
खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।
राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ३८
व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः
सोऽन्तरिक्षात् पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य
द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३९
स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो-
बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः
स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४०
स्रुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो
भ्रुकुटिपुटाकुटिलोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्यु-
र्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ४१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

सञ्जय उवाच ।
विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १
मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि २
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा ।
महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम्
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ।
स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव ।
अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥ ५
तस्याश्वान् गदया हत्वा
तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
शराचिताङ्गः सौभद्रः
श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥ ६
ततः सुबलदायादं
कालिकेयमपोथयत् ।
जघान चास्यानुचरान्
गान्धारान् सप्तसप्ततिम् ॥ ७
पुनश्चैव वसातीयान् जघान रथिनो दश ।
केकयानां रथान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान्
दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत् ।
ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ १०
भ्रातृव्यौ संप्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।
तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ ।
दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः १२
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।
गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः १३
विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४

कौशिकं सर्वतोभद्रम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

४९

विष्णोरिति ॥ १ ॥

क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥
तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये
विमृद्य नगशृङ्गाणि सन्निवृत्तमिवानिलम् ।
अस्तंगतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम् ॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥
आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशांपते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥
अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाम्बरात् ॥
द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥
तस्मिन् विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३
रुक्मपुङ्खैश्च संपूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाम्बरोत्तमैः ॥
तथाश्वनरनागानामलंकारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६
चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः
विविधैश्चायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत ॥
वाजिभिश्चापि निर्जीवैः
श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः
सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८

साङ्कुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ ३०
पदातिसङ्घैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाऽभवन्मही ॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाभवद्व्यथा
अभिमन्यौ हते राजन् शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
संप्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥३३
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥
स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥
इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन् दुःखमपानुदत् ॥
युद्धे ह्याशीविषाकारान्
राजपुत्रान् रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य सङ्ग्रामे
पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७
हत्वा दश सहस्राणि कौसल्यं च महारथम्
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवं
रथाश्वनरमातङ्गान्
विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामा-
दशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृतां लोकान्
शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## ५०

सञ्जय उवाच ।
वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।
निवेशायाभ्युपायामः सायान्हे रुधिरोक्षिताः
निरीक्षमाणास्तु वयं परे चायोधनं शनैः ।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः २

उपप्लुतं राहुग्रस्तम् ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

---

५०

वयं त्विति ॥ १ ॥ समाक्षिपन् संहरन् समानयन्निकतां नयन् ॥ ४ ॥

ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः
शिवारुतैः सन्धिरवर्तताद्भुतः ।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे
विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ३
वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां
विभूषणानां च समाक्षिपन् प्रभाः ।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव
प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥ ४
महाभ्रकूटाचलशृङ्गसन्निभै-
र्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः ।
स वैजयन्त्यंकुशवर्मयन्तृभि-
र्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः ॥ ५
हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करै-
र्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः ।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः
पुरैरिवामित्रहतैर्नराधिप ॥ ६
रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः
प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः ।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनै-
र्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥ ७
प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा
विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः ।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा
क्षितावनाथा इव शेरते हताः ८
अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा
बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः ।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः
पिशाचसङ्घाश्च सुदारुणा रणे ॥९
त्वचो विनिर्भिद्य पिबन् वसामसृक्
तथैव मज्जाः पिशितानि चाश्नुवन् ।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च
प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥ १०
शरीरसङ्घातवहा ह्यसृग्जला
रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा
प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा
प्रवर्तिता योधवरैस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं
भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२
पिबन्ति चाश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः
पिशाचसंघास्तु नदन्ति भैरवाः ।
सुनन्दिताः प्राणभृतां क्षयङ्कराः
समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥ १३
तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं
निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् ।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः
समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥ १४
अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं
निपातितं शक्रसमं महाबलम् ।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना
व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् १५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

सञ्जय उवाच ।

हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे ।
विमुक्तरथसन्नाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः १
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २
तता युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३
द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यामिव केसरी

पत्तयः पादरक्षाः उपस्करा उपकरणानि ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चाशतमोऽध्यायः ॥५०॥

५१

हते इति ॥ १ ॥ असम्बाधमप्रतिघातम् ॥ ४ ॥

यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५
अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः
स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो
द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः
प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७
कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम्
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ८
किंस्विद्वयमपेतार्थमक्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनञ्जयौ ॥ ९
अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
प्रियकामो जयाकांक्षी कृतवानिदमप्रियम् १०
न लुब्धो बुध्यते दोषाँ-
ल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते ।
मधुलिप्सुर्हि नापश्यं
प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११
यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः
कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव संबाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३
नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनु शयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा
अलुब्धो मतिमान् ह्रीमान्
क्षमावान् रूपवान् बली ।
वपुष्मान् मानकृद्वीरः
प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५
यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः
निवातकवचान् जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान्
महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली
भयं तु सुमहत् प्राप्तं धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात् क्रुद्धः कौरवान् शोषयिष्यति
क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च
स्वपक्षक्षयकारकः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा
शोचन् हास्यति जीवितम् ॥ २०
न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं
न चामरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं
निपातितं देववरात्मजात्मजम् २१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

सञ्जय उवाच ।
अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १
अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २
अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ३
बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४
मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन् सैन्धवेन निवारिताः

---

असमञ्जसमयुक्तरूपम् ॥ ९ ॥ संबाधे गहने ॥ १३ ॥ एनं अभिमन्युम् । अनु चेन्न महीं शयीमहि तदा क्रोधदीप्तस्य बीभत्सोः कृपणेनावसन्नेन चक्षुषा दग्धा भवेमहीत्यन्वयः ॥ १४ ॥ वपुष्मांस्तेजस्वी ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

अथैनं विलपन्तं तमित्यादेः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रामादित्यन्तस्य ग्रन्थस्य तात्पर्यं 'ह्यस्तनोद्यतनो वाऽपि कामरोगादिरूपधृत् । स्वदोषःपुरुषं हन्ति न शत्रारिपुमृत्यवः' इति ॥१॥ द्वारं सञ्जनयस्वेति मया उक्त इति सम्बन्धः । निवारिताः तमनुप्रविशन्त इति शेषः ॥ ५ ॥

ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवासमं युद्धमीदृशं यत् कृतं परैः ॥ ६
तेनास्मि भृशसंतप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ७

सञ्जय उवाच ।

तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान् व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः

व्यास उवाच ।

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९
स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून् हत्वा बहून् रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १०
अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान् मृत्युर्हरति भारत ॥ ११

युधिष्ठिर उवाच ।

इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः १२
नागायुतबलाश्चान्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः १३
नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित्
विक्रमेणोपसंपन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १४
जेतव्यमिति चान्योन्यं
येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः
शेरते विगतायुषः ॥ १५
मृता इति च शब्दोऽयं वर्तते च ततोऽर्थवत्
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः
निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशंगताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः १७
अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः
हरत्यमरसङ्काश तन्मे ब्रूहि पितामह ।

सञ्जय उवाच ।

तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः १९

व्यास उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २०
स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः २१
तदहं संप्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात् स्नेहबन्धनसंश्रयात्
समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥
पवित्रमरिसंघघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४
श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः ।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा २५
पुरा कृतयुगे तात आसीद्राजा ह्यकम्पनः ।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६
तस्य पुत्रो हरिर्नाम
नारायणसमो बले ।
श्रीमान् कृतास्त्रो मेधावी
युधि शक्रोपमो बली ॥ २७
स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि ।
व्यस्यन् बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च
स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः ।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर २९
स राजा प्रेतकृत्यानि
तस्य कृत्वा शुचान्वितः ।
शोचन्नहानि रात्रौ च
नालभत् सुखमात्मनः ॥ ३०
तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम्
आजगामाथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ३१
स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत् तदा ३२
तस्य सर्वं समाचष्ट यथा वृत्तं नरेश्वरः ।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ३३
मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः ।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥

---

विधिः स्वकर्म, स एव मृत्युः ॥ ११ ॥ **अथेति** । विगतायुष इति शब्देन देहवियोगे पुरुषस्य पारतंत्र्यं प्रतीयते ॥ १५ ॥ मृता इति शब्देन धात्वर्थानुगमात् । प्राणत्यागे पुरुषस्यास्वातन्त्र्यं प्रतीयते । ततः पुरुषं किमन्यो मारयति । उत स्वयमेव स्वात्मानं मारयतीति प्रश्नार्थः ॥ १६ ॥ कस्य मृत्युः क इति शेषः । अन्तिमपक्षे कुतो हेतोः पुमान् स्वयं स्वस्य मृत्युर्भवतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

क एष मृत्युर्भगवन् किंवीर्यबलपौरुषः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ३५
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ३६

नारद उवाच ।

शृणु राजन् महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम्
यथा वृत्तं श्रुतं चैव मयाऽपि वसुधाधिप ३७
प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः ।
असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव ।
चिन्तयन्न ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ३९
तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता

ततो दिवं भुवं चैव
ज्वालामालासमाकुलम् ।
चराचरं जगत् सर्वं
ददाह भगवान् प्रभुः ॥ ४१
ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ४२
ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः ।
जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३
तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया
अब्रवीत् परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥
किं कुर्म कामं कामार्ह
कामाज्जातोऽसि पुत्रक ।
करिष्यामि प्रियं सर्वं
ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

स्थाणुरुवाच ।

प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः
तास्तवेह पुनः क्रोधात् प्रजा दह्यन्ति सर्वशः
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन् प्रभो २

ब्रह्मोवाच ।

संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति ।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत्
इयं हि मां ×महादेवी भारार्ता समचूचुदत्
संहारार्थं महादेव भारेणाभिहता सती ४
ततोऽहं नाधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा ।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५

रुद्र उवाच ।

संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप ।
मा प्रजाः स्थावराश्चैव जङ्गमाश्च व्यनीनशः
तव प्रसादाद्भगवन्निदं वर्तेत्त्रिधा जगत् ।
अनागतमतीतं च यच्च संप्रति वर्तते ॥ ७
भगवन् क्रोधसंदीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत् ।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ८
पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोलपाः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९
तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसीद भगवन् स त्वं रोषो न स्याद्वरो मम
सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन ।
तस्मान्निवर्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम्
तत् पश्य देव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया ।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्तेरंस्तथा कुरु ॥ १२

---

खेभ्यः श्रोत्रादिच्छिद्रेभ्यः ॥ ४० ॥ इति श्रीम० द्रोण० टीकायां द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२ × 'सदा देवी' इति पाठः।

५३

**प्रजेति** ॥ १ ॥ कारुण्यं जातमिति शेषः ॥ २ ॥ अप्रमेयस्यानन्तस्य जगत इति शेषः । आर्हेस्यस्येति वाऽर्थः ॥५॥ संहारार्थं मा रुषः रोषं मा कार्षीः । किं तु प्रसीदस्व ॥ ६ ॥ **तवेति** अनागतादिप्रकारत्रययुक्तं सर्वदैव जगदस्तु न त्वस्य निरन्वयोच्छेदः कार्य इत्याशयः ॥ ७ ॥ तव रोषो न स्यादिति मम मह्यं वरोऽस्त्विति योजना ॥ १० ॥ उत्सन्नजननाः प्रक्षीणसन्तानाः ॥ १२ ॥

अभावं नेह गच्छेयु-
रुत्सन्नजननाः प्रजाः ।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि
त्वया लोकेषु लोककृत् ॥ १३
मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्माद्देवं ब्रवीम्यहम् १४
नारद उवाच ।
श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे ।
तेजः सन्धारयामास पुनरेवान्तरात्मनि ॥
ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥
उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना ।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा
सा निःसृत्य तथा खेभ्यो
दक्षिणां दिशमाश्रिता ।
स्मयमाना च साऽवेक्ष्य
देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥ १९
तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः ।
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति
त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम ।
तस्मात् संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपंडिताः
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि
एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥
दध्यौ चात्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम् ।
पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः
सर्वभूतहितार्थाय तां चाप्यनुनयत् तदा ॥२३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

नारद उवाच ।
विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम्
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवावर्जिता पुनः ॥
मृत्युरुवाच ।
त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर ।
क्रूरं कर्माहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २
बिभेम्यहमधर्माद्धि
प्रसीद भगवन् प्रभो ।
प्रियान् पुत्रान् वयस्यांश्च
भ्रातॄन् मातॄः पितॄन् पतीन् ॥ ३
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेभ्यो बिभेम्यहम्
कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥
तेभ्योऽहं भगवन्भीता शरणं त्वाऽहमागता
यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५
कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोद्ग्रनखेन च ।
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥
इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर ।
प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन् प्रभो ॥ ७
त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम् ॥
तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाराधने रता ॥ ८
न हि शक्ष्यामि× देवेश
प्राणान् प्राणभृतां प्रियान् ।
हर्तुं विलपमानाना-
मधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९

---

आदीति । मां लोकसन्ताने नियोज्य कथं लोकान् नाशयसीत्यर्थः १३ प्रवृत्तं कर्म सृष्टिहेतुं निवृत्तं कर्म मोक्षहेतुं कथयामास ॥१६॥ गोभ्य इन्द्रियच्छिद्रेभ्यः ॥ १७ ॥ देवौ ब्रह्मरुद्रौ ॥ १९ ॥ देवो ब्रह्मा मरणं मृत्प्राणवियोगस्तमन्यस्येच्छतीति मृत्युरित्यर्थः । इति आहेति शेषः ॥२०॥ रुषो रोषात् ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

विनीयेति । लतेवेति त्वदेकशरण्यत्वे दृष्टान्तः ॥१॥ प्रियादीन् घ्नन्तीमिति शेषः । तत्संबन्धिनः अपध्यास्यन्ति । परानिष्टचिन्तनमपध्यानं मृतेषु मया मारितेषु लोकेषु सत्सु मे माम् ॥ ४ ॥ यमः शास्ता मृत्युः प्राणवियोगकर्त्री देवता ॥ ५ ॥ उदग्रनखेन अञ्जलिना विनयोपेता शरणागताऽस्मीत्यर्थः ॥ ६ ॥ × पश्यामीति पाठः ।

ब्रह्मोवाच ।

मृत्यो संकल्पिताऽसि त्वं प्रजासंहारहेतुना
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा
भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
भवत्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥

नारद उवाच ।

एवमुक्ताऽभवत् प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाकरोद्बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥
तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ॥
प्रसादं चागमत्क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥१३
स्मयमानश्च देवेशो लोकान् सर्वानवेक्ष्य च ।
लोकास्त्वासन् यथापूर्वं दृष्टास्तेनापमन्युना
निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्यापि जगामाथ समीपात्तस्य धीमतः
अपसृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥
सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥

पञ्च चाब्दानि कारुण्यात्
प्रजानां तु हितैषिणी ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः
प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सा ॥ १८

ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥
ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम्
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च साऽनयत् ।
धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥ २२
पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥ २३
ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
तस्थौ चाश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥
पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुराऽयजन् ।
तत्राङ्गुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥२५
पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
अपाकर्षत स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥ २६

अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥
ततस्तामब्रवीत् प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः
सौम्येन मनसा राजन् प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥
मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसी ह ।
ततोऽब्रवीत् पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥
नाहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाक्रोशतीस्तथा
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥
अधर्मभयभीताऽस्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाभयमव्यय ॥
आर्ता चानागसी नारी याचामि भव मे गतिः
तामब्रवीत् ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥
अधर्मो नास्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथञ्चन ॥
तस्मात् संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः
धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥
लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥३५

यथा त्वमेनसा मुक्ता
विरजाः ख्यातिमेष्यसि ।
सैवमुक्ता महाराज
कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥ ३६
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं
प्रसाद्य शिरसा तदा ।
यद्येवमेतत् कर्तव्यं
मया न स्याद्विना प्रभो ॥ ३७
तवाज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता
यत् ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या
द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥ ३८
अह्रीश्चान्योन्यपरुषा
देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः ।

ब्रह्मोवाच ।

तथा भविष्यते मृत्यो
साधु संहर भोः प्रजाः ।
अधर्मस्तेन भविता
नापध्यास्याम्यहं शुभे ॥ ३९

अपमन्युना गतामर्षेणेत्यर्थः ॥१४॥ अप्रतिश्रुत्यानङ्गीकृत्य ॥ १६ ॥ पद्मं शतं कोट्यो वर्षाणि तानि षोडश पञ्च च ॥ १७ ॥ अन्योन्यपरुषा वागिति शेषः ॥ ३९ ॥

यान्यश्रुबिन्दुनिकरे ममासं-
स्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः ।
ते मारयिष्यन्ति नरान् गतासू-
न्नाधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ४०

नाधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै
त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा ।
धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री
तस्मात् प्राणान् सर्वथेमान्नियच्छ ॥

सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ
सन्त्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् ।
एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो
मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यत्यधर्मः ४२

तेनात्मानं पावयस्वात्मना त्वं
पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् ।
तस्मात् कामं रोषमप्यागतं त्वं
सन्त्यज्यान्तः संहरस्वेति जीवान् ॥

नारद उवाच ।

सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशा-
च्छापाद्भीता बाढमित्यब्रवीत् तम् ।
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले
कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ४४

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः ।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्

सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
गत्वा वृत्ताः सन्निवृत्तास्तथैव ।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
वृत्ता देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥ ४६

वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ ।
नो वा वृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्
प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥ ४७

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टा-
स्तस्मात् पुत्रं मा शुचो राजसिंह ।
स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो
नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ४८

त्यक्त्वा दुःखं सङ्गतः पुण्यकृद्भि-
रेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम् ।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्
स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ४९

आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति ।
तस्मान्मृतान्नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम् ।
इत्थं सृष्टिं देवकॢप्तां विदित्वा
पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५०

द्वैपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वाऽर्थवद्वाक्यं नारदेन प्रकाशितम् ।
उवाचाकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥
व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम ।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये
तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः ।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ५३
पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च ।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ५४
एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः ।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम्
संप्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः ।
अभिमन्युः परान् हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम्
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः

---

प्रायणान्ते आयुष्यकर्मणोऽवसाने ॥४५॥ **सर्वे इति**। देवा इन्द्रियाणि प्राणिभिः जीवैः सह गत्वा तत्रैव परलोके वृत्ता वृत्तवन्तः । पुनर्भूत्वा सन्निवृत्ता भवन्ति । मर्त्यभावार्था एव देवा इन्द्रादयः । मर्त्यवदेव गत्वा वृत्ता भवन्ति । न तु निवृत्ता भवन्ति मर्त्यभावाय कर्म देवा एव निवर्तन्ते । न त्वाजानदेवास्तेषां क्रममुक्तियोग्यत्वादिति भावः ॥ ४६ ॥ प्राणवायोरेव गत्यागती तदुपहिते प्राणिनि उपचर्यैते न तु प्राणेभ्यो निष्क्रष्टस्य तस्य ते स्त इत्याह-**वायुरिति**। प्राणिनश्चेतनस्य देहानेव भिनत्ति न तु तं यतोऽसौ सर्वगः। अत एवावृत्त्यादिरहितश्चेति भावः ॥ ४७ ॥ **सर्वे देवा इति**। मर्त्यत्वं मरणधर्मत्वं ब्रह्मादीनामपि स्वाभाविकमस्त्यतोऽनर्थकः शोक इत्यर्थः ॥४८॥ स्वयमेव स्वस्यैव मृत्युः । अथापि जनानां प्राणहरा मृत्युर्जनाऽन्येति कल्पना कृता अनभिज्ञैरिति शेषः ॥ ४९ ॥ एतदेवाह-**आत्मानमिति** नष्टात् जातमिति शेषः ॥ ५० ॥

विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ।
तस्मात् परां धृतिं कृत्वा
भ्रातृभिः सह पाण्डव ।
अप्रमत्तः सुसंनद्धः
शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

सञ्जय उवाच ।
श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च ।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाब्रवीत् ॥ १
युधिष्ठिर उवाच ।
गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः ।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः २
भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय ।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ३
कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ४
व्यास उवाच ।
शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः ।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ५
तौ कदाचिद्गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया ।
विधिवच्चार्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम्
तं कदाचित्सुखासीनं
ताभ्यां सह शुचिस्मिता ।
दुहिताभ्यागमत् कन्या
सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७
तयाऽभिवादितः कन्या-
मभ्यनन्दद्यथाविधि ।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भि-
रिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८
तां निरीक्ष्याब्रवीद्वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसंमता ॥ ९
उताहो भाः स्विदर्कस्य
ज्वलनस्य शिखा त्वियम् ।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः
सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १०
एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
ममेयं भगवन् कन्या मत्तो वरमभीप्सति ११
नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृपः १२
ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत ॥ १३
हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।
यस्माद्वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया
एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः ।
मनोवाग्बुद्धिसंभाषा दत्ता चोदकपूर्वकम् १५
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् ।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

**श्रुत्वेति** ॥ १ ॥ ननु मृत्योः स्वाभाविकत्वेऽपि गुणवत्पुरुषवियोगो दुःखायेत्येवेत्याशंक्य 'दुःखे दुःखाधिकान् पश्येत्तेन शोकोऽपनयिते' इत्युक्तेः । शोकापनोदार्थं अतीतान् गुणवत्तरान् पृच्छति-**गुरव इति** । सति शोभने स्थाने सत्यलोकादौ पुण्यकर्माणो गुरवो वसन्तीति शेषः । अवादिनः मौनिनः ॥ २ ॥ गुणवत्तरत्वबुभुत्सया तेषां कर्माणि पृच्छति-**भूय इति** ॥ ३ ॥ तत्सलिङ्गाभिस्तस्य अनुरूपाभिः अभितः पार्श्वतः ॥ ८ ॥ **हृदयनेति** । मदवज्ञानान्मानुषीवरणाच्च स्वर्गतिस्ते प्रतिबद्धेत्यर्थः ॥ १४ ॥ **मनोवागिति** । वरलक्षणं वरणं वरः कन्यापरिग्रहस्तस्य लक्षणं साधकं प्रथितं सप्तविधं प्रसिद्धम् । तत्र वरस्य मनोवचोभ्यां दातुर्बुद्ध्या उभयोः संभाषया लौकिकं वरवध्वोः सन्धानमुदकपूर्वकं दानेन पाणिग्रहणेन च मंत्रवद्वैदिकं संधानं भवति । एषा षड्विधाऽपि मुख्या निष्ठा न भवति । किं तु सप्तमैव निश्चिता निष्ठा । 'पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे' इति वचनात् । सप्तमोद्देशेन भार्यात्वं भवति न ततः प्रागिति भावः ॥ १५ ॥

अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं ह्यात्तवानसि ।
तस्मात्त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना
अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा ।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः
तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित् पुत्रमीप्सवः
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥
तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत्
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम्
यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिन्दमम् ।
यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥
सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाभवत् कृतम् ।
तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४
कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम्
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥
शय्यासनानि यानानि
स्थाली पिठरभाजनम् ।
तस्य राज्ञोऽपि यद्वेश्म
बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६
सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।
अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम्
संभूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।
केचित्तत्राब्रुवन् राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥
सोऽस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे
ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम्
राजपुत्रं तथा जह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् ।
गृह्यैनमनुपायज्ञा नीत्वाऽरण्यमचेतसः ॥ ३०
हत्वा विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद्वरदं वसु ॥ ३१
दस्यवश्च तदाऽन्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ॥
असंभाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।

तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३
विललाप सुदुःखार्तो बहुधा करुणं नृपः ।
विलपन्तं निशम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य सन्निधौ ।
उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥
सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर ।
कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।
आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७
संवर्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद्धनं स भगवान् प्रभुः ॥
हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः सवैः ।
यस्य सेन्द्राऽमरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः॥३९
देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चासन् परिच्छदाः
यस्य सर्वं तदा ह्यन्नं मनोभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः
पयो,दधि,घृतं,क्षौद्रं, भक्ष्यं,भोज्यं च शोभनम्
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान् वेदपारगान् ।
"मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् गृहे॥ ४३
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वे देवाः सभासदः।"
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसंपदः ॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक् कॢप्तैर्दिवौकसः
ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम्
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥
तत् सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाःकृत्वा निरामयाः
श्रद्दधानो जितान् लोकान्
गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।
सप्रजः सनृपामात्यः
सदारापत्यबान्धवः ॥ ४८
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९

---

द्विजैरुक्तो नारदस्तथेत्युक्त्वा सृञ्जयमब्रवीदित्यन्वयः॥ २१ ॥ यस्य मूत्रादिकं काञ्चनं तं पुत्रं वव्रे इति सम्बन्धः ॥ २२ ॥ क्लेदः श्लेष्मादिः ॥२३॥ सुवर्णष्ठीविरित्यनेन गण्डूषादिकमपि काञ्चनं भवतीति सूचितम् ॥ २४ ॥ चिकीर्षितुमपकारं कर्तुम्। कृ हिंसायामित्यस्य रूपम्॥२८॥ सवैः यज्ञैः ॥३९॥

चतुर्भद्रतरः धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि चत्वारि भद्राणि । धर्मार्थकामबलानीत्यन्ये । 'वित्तं दानसमेतं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यं। भोगः संगविहीनो दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्' इति वा। त्वया त्वत्तः ॥४९ ॥

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

नारद उवाच ।

सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १

यः प्राप्य राज्यं धर्मेण
ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान्* ।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः
पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥ २

प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः ।
एतत्सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्धनागमम् ३

धर्मेणाराधयन्देवान् बाणैः शत्रून् जयंस्तथा
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत ४

यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम्
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ५

हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः
स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा ।
ग्राहान् कर्कटकांश्चैव
मत्स्यांश्च विविधान् बहून् ॥ ६

कामान् वर्षति पर्जन्यो
×रूपाणि विविधानि च ।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि
वाप्यश्च क्रोशसंमिताः ॥ ७

सहस्रं वामनान् कुब्जा-
न्नक्रान् मकरकच्छपान् ।
सौवर्णान् विहितान् दृष्ट्वा
ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८

तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ९

सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥ १०

काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ११

पुत्रान् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

नारद उवाच ।

राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत १

तस्याश्वमेधे राजर्षे-
र्देशाद्देशात् समीयुषाम् ।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां
नासीत् संख्या विपश्चिताम् ॥ २

---

तुभ्यं तव । मरुत्तास्त्वं निर्गुणस्त्वत्तोऽपि निर्गुणस्त्वत्पुत्र इति न तदर्थं शोको युक्त इति भावः । अयज्वानमदाक्षिण्यं पुत्रमभिलक्ष्य माऽनुतप्यथाः । हे श्वैत्य श्वित्यपुत्र इति व्याहरन्नारदः सृञ्जयं प्रतीति व्यासवाक्यम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ऋत्विङ्मन्त्रि पुरोहितान् इति पाठः ।

५६

**सुहोत्रमिति** ॥ १ ॥ हैरण्या हिरण्मयाः ग्राहादयोऽपि वाहिन्यो नद्यः स्वैरिण्यः सर्वजनोपयोग्याः ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

**राजानमिति**॥ १ ॥ ×रूप्याणि विविधानि च इति पाठः।

वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः ।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ३
नट-नर्तक-गन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः ।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः
यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत्
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ५
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा ।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः
धूर्युजाश्वगजारूढाः स्वगृहक्षेत्रगोशताः ।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमाली महात्मनाम्
गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत् ।
हेमशृंग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः
दासीदासखरोष्ट्राश्च प्रादादाजाविकं बहु ।
रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान्
तस्मिन् संविततेे यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः
अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः ।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्यासन्सार्वकामिकाः‡
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

नारद उवाच ।
शिबिमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत् पर्यवेष्टयत् ॥ १
साद्रिद्वीपार्णववनां
रथघोषेण नादयन् ।
स शिबिर्वै रिपून्नित्यं
मुख्यान्निघ्नन् सपत्नजित् ॥ २
तेन यज्ञैर्बहुविधै-
रिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः ।
स राजा वीर्यवान् धीमा-
नवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां संमतः सोऽभवद्युधि ।
अयजच्चाश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ४
निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोजाविभिस्तथा ५
विविधां पृथिवीं पुण्यां
शिबिर्ब्राह्मणसात् करोत् ।
यावत्यो वर्षतो धारा
यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च
तावतीरददद्गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे ७
नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः ।
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम् ८
तस्यासन् विविधा यज्ञाः
सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः ।
शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः ।
तस्यासन् यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ११

---

पूर्णकैः स्वर्णचूडैः डाङ्कुलता इति दाक्षिणात्यप्रसिद्धैः । वर्धमानकैः आरार्तिकहस्तैः ॥ ४॥ धूर्युजा रथाः ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७

‡ 'अङ्गस्य यजमानस्य अपि विष्णुपदे वयम् । अमायादिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः । देवमानुषगन्धर्वाश्चात्यरोचन्त दक्षिणाः ' इति पाठान्तरम् ।

५८

शिबिमिति । पर्यवेष्टयत् स्वाधीनामकरोत् ॥ १ ॥ त्रैकालिकेषु राजसु तदन्यं राजानं तस्य शिबेः धुरः कार्यभारस्य यन्तारं वोढारं प्रजापतिः स्रष्टा स्वसृष्टौ नाध्यगच्छत् ॥ ८ ॥

पिबत स्नात खादध्वमिति यद्रोचते जनाः ।
यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२
अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः ।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३
एतान् लब्ध्वा वरानिष्टान्
शिबिः काले दिवं गतः ।
स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

नारद उवाच ।
रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥
असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि ।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः ॥ २
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः ।
जघान च जनस्थाने राक्षसान् मनुजर्षभः ॥ ३
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश ।
तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४
जहार भार्यां वैदेहीं संमोह्यैनं सहानुजम् ।
तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।
सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७
व्याप्य कृत्स्नं जगत्कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विविधं राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं सजारूथ्यमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १०
क्षुत्पिपासेऽजयद्रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११
अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ।
पृथिव्यां सहवासोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥
नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ।
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति
पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदनर्थाश्च नाभवन् ॥ १४
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।
वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च ।
अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६
नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनोऽदहत् ।
अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवंस्तदा ॥
शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाऽभवन् ।
स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ।
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।
सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्य-
स्तदा *श्राद्धान्यकारयन् ।
श्यामो युवा लोहिताक्षो
मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २०
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१

ददतो राज्ञो वित्तादिकमक्षयमस्त्विति रुद्रो वरं ददाविति सम्बन्धः ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

५९

**राममिति** । प्रजानां पुत्रवत्प्रियोऽभूदित्यर्थः ॥ १ ॥ पृथिव्यां मानुषाणां प्रत्यक्षा देवादयो विचरन्ति पुण्यातिशयात् ॥ १२ ॥ प्राणो बलम् । प्राणादयश्च तदन्यथा प्राणान्यथा भावेन नाहीयन्त । अतिश्वासा निश्वासाद्यो रोगा नाभवन्नित्यर्थः ॥ १३ ॥ निष्पूर्तं तटाकारामादि । हुतं इष्टम् ॥ १६ ॥ * श्राद्धानि कुर्वते इति पाठः ।

सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत्।
रामो रामो राम इति प्रजानामभवत् कथा॥
रामाद्रामं जगद्भूद्रामे राज्यं प्रशासति ।
चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः

आत्मानं संप्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाष्टधा ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया २४
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

नारद उवाच ।
भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥
यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ॥
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३
सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः ।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम्॥
तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् ।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्यांके निषसाद ह ॥ ५
तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाभवत् पुरा ।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत् तदा ॥ ६
तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥७
भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८
तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलङ्कृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥
यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम्
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राददद्वशी ॥ १०
नादेयं ब्राह्मणस्यासीद्यस्य यत्स्यात् प्रियं धनं
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥
येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविहपादपाः ।
तेनावस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम्
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

---

राममभिरामम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

**भगीरथमिति**। चयनैः काञ्चनैः चिता स्वर्णेष्टकमयैः क्रत्वर्थस्थंडिलैर्व्याप्ता चयनैरिष्टिकासोपानैर्वा, कूलद्वये उद्गमात्संगमपर्यंतं निचितेति वाऽर्थः ॥ १ ॥ राज्ञश्च राजपुत्रांश्चातिक्रम्येति शेषः । ब्राह्मणेभ्यः अमन्यत दत्तवान् ॥ २ ॥ येन हेतुना उपह्वरे समीपे भूयसीर्दक्षिणा ददत् राजा आस्ते तेन हेतुना गङ्गा जनौघभारेण आक्रान्ता वेत्रयष्टिवत्तीरप्रदेशे नतिं प्राप्ता सती अतिव्यथिताऽतस्तस्याङ्के निषसाद ह दक्षिणाभारेण तत्प्रदेशेऽवनते प्रवाहाम्बु राज्ञोङ्कपर्यन्तमागतामित्यर्थः ॥ ५ ॥ तथा तेन प्रकारेण गङ्गा ऊरुं भारमश्नुत इति वा राज्ञ ऊरुमश्नुते इति वा योगात् उर्वशी अभवत् । द्वितीयपक्षे पृषोदरादित्वादादेर्ह्रस्वत्वम् । पुत्रत्वं नरकात्त्राणकर्तृत्वम् ॥ ६ ॥ वशी योगी योगप्रभावात् यो यत्र देशे यत् इच्छेत् स तत्र प्राप्नुयादित्यर्थः ॥ १० ॥ **येनेति**। पादपा मरीचिपा ऋषयः येन कारणेन यदर्थं यातौ उदितौ मखौ कर्मयज्ञयोगयज्ञौ मुखे प्रातिद्वारभूतौ ययोस्तौ मखमुखौ सूर्यतदन्तर्यामिणौ । अवस्थातुमुपस्थातुमिच्छन्ति तेनैव प्रयोजनेन तं भगीरथमवस्थातुमिच्छन्ति तत्र हेतुद्वयम्। गत्वा राजमितीश्वरमिति च गच्छतीति गत्वा त्रिजगती तस्यां राजत इति गत्वा राजः सूर्यः नृपश्च ईश्वरः ईशनशीलस्तदन्तर्यामी नृपश्च । अयं भावः—यत्सूर्यदर्शनेन फलं पापनाशादि तदस्य दर्शनेन भवति यच्च सूर्यान्तर्यामिणः उपासनेन फलं सत्यसङ्कल्पत्वादि तदस्योपासनेन भवतीति मरीचिपादीनामयमेव द्रष्टव्य उपास्यश्च जात इति ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

नारद उवाच ।

दिलीपं चेदैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ।
तन्त्रज्ञानार्थसंपन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ॥ १
य इमां वसुसंपूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २
दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ।
सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभवत् सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥
रसानां चाभवन्कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चासान्हिरण्मयाः ॥ ५
चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।
नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट्सहस्राणि सप्तधा ॥
यत्र वीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशीलिनम् ॥ ७
रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शेरते ।
तदेतदद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥ ८
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।
राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥
येऽपश्यन्भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।
पंच शब्दा न जीर्यंति खट्वांगस्य निवेशने ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

नारद उवाच ।

मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १
यं देवावश्विनौ गर्भात् पितुः पूर्वं चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन् राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ।
धूमं दृष्ट्वाऽगमत् सत्रं पृषदाज्यमवाप सः ।
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३
गर्भाद्धि जन्हतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ ।
तं दृष्ट्वा पितुरुत्संगे शयानं देववर्चसम् ॥ ४

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

**दिलीपमिति** ॥१॥ तंत्रे क्रिया सार्धश्लोकः ॥ २ ॥ पन्था हिरण्मयः हिरण्मय्यः स्रुचो भवन्तीति विधिमार्गस्तत आरभ्य प्रवृत्त इत्यर्थः । धर्मे निमित्ते पुण्योपस्त्यर्थमिव देवास्तमलं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥ रागखाण्डवं गुडोदनं पर्पटिकेति वैदर्भाः ॥८॥ अप्सु न परिपेततुः न ममज्जतुः ॥९॥ खट्वांग इति ऐलविलस्य दिलीपस्यैव नामान्तरम् ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

**मान्धातेति** ॥ १ ॥

अन्योन्यमब्रुवन् देवाः कमयं धास्यतीति वै।
मामेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः॥
ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य
प्रादुरासीत् पयोऽमृतम्।
मां धास्यतीति कारुण्या-
द्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत्॥ ९
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याद्भुतं कृतम्
ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः॥
तस्यास्ये यौवनाश्वस्य
पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत्।
अपिबत् पाणिमिन्द्रस्य
स चाप्यह्नाऽभ्यवर्धत॥
सोऽभवद्द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान्।
इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत्
धर्मात्मा धृतिमान् वीरः
सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।
जनमेजयं सुधन्वानं
गयं पूरुं बृहद्रथम्॥ १०
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत्
उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति॥
तत् सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।
सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च॥ १२
अददद्रोहितान्मत्स्यान्
ब्राह्मणेभ्यो विशांपते।
हैरण्यान् योजनोत्सेधा-
नायतान् शतयोजनम्॥ १३
बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान्
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः॥
भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः।
घृतह्रदा सूपपङ्का दधिफेना गुडोदकाः॥ १५
रुरुधुः पर्वतान्नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः।
देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः॥
विप्रास्तत्रागताश्चासन् वेदवेदाङ्गपारगाः।
ब्राह्मणा ऋषयश्चापि नासंस्तत्राविपश्चितः॥
समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामास्तं तदा नृपः
गतः पुण्यकृतां लोकान्
व्याप्य स्वयशसा दिशः।
स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया॥ १९
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन्॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

## ६३

नारद उवाच।
ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च॥ १
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः २
अब्राह्मणानां यद्वित्तं पृथिव्यामस्ति किञ्चन
तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत्
सरस्वती पुण्यतमा नदीनां
तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे
घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय॥ ४

---

द्वादशसमो द्वादशवार्षिकः शय इतिपाठे द्वादशहस्तः व्यजीजयद्विजितवान्॥ ९॥ रोहितान् लोहितान् लोहितभूप्रदेशान् पद्मरागखनिमतो वा मत्स्यान् देशविशेषान् हैरण्यान् स्वर्णाकरयुक्तान् जनोत्सेधान् जनेषु उत्सेध उच्छ्रायो येषां तान् मत्स्यदेशोत्पन्ने हि नद्यावद्यापि परंपरया पूर्वापरौ समुद्रौ गच्छत इति तेषामुच्छ्रितत्वं प्रसिद्धम्॥ १३॥ अतिरिक्तमवशिष्टं भुञ्जानो जन एव हीयते न त्वन्नमित्यर्थः॥ १४॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

६३

**ययातिमिति**॥ १॥ प्राज्यदक्षिणैः बहुदक्षिणैः॥ २॥ अब्राह्मणानां ब्राह्मणद्वेषिणां म्लेच्छानामिति यावत् परिसंख्याय अपहृत्य॥ ३॥

व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् ।
चतुर्धा व्यभजत् सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम्
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः
देवारण्येषु सर्वेषु विजहारामरोपमः ।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ७
यदा नाभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित्
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम्
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ९
एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च ।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः १०
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

नारद उवाच ।
नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत्
जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाशिवा गिरः
बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च ।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान् गतव्यथः
त एनं मुक्तसन्नाहाः प्रार्थयन् जीवितैषिणः ।
शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति वादिनः ४
स तु तान् वशगान् कृत्वा
जित्वा चेमां वसुंधराम् ।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथा शास्त्रं तथाऽनघ ॥ ५
बुभुजुः सर्वसंपन्नमन्नमन्ये जनाः सदा ।
तस्मिन् यज्ञे तु विप्रेन्द्राः संतृप्ताः परमार्चिताः
मोदकान् पूरिकापूपान्
स्वादुपूर्णाश्च शष्कुलीः ।
करंभान् पृथुमृद्वीका
अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७
सूपान् मैरेयकापूपान् रागखाण्डवपानकान्
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ८
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च ।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ९
मादनीयानि पापानि
विदित्वा चात्मनः सुखम् ।
अपिबन्त यथाकामं
पानपा गीतवादितैः ॥ १०
तत्र स्म गाथा गायन्ति
क्षीबा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता
ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११
तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दश प्रयुतयाजिनाम् १२
हिरण्यकवचान् सर्वान्
श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान्
सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ॥
सदण्डकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ १५

---

चतुर्भ्यः ऋत्विग्भ्यः प्राची दिग्घोतुर्दक्षिणाध्वर्योरित्यादि श्रुतेः ॥ ५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

**नाभागमिति** ॥ १ ॥ मादनीयानि मदकराणि सुरादीनि पापानि पापहेतूनीति ज्ञात्वाऽपि सुखलिप्सवः पिबन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥ अत्यकालयद्दातुं निष्कासितवान् । जिता राजान एव सोपस्करदक्षिणात्वेन दत्ताः । तेषां राज्यानि ते राजानश्च ब्राह्मणसात्कृता इत्यर्थः ॥ १२ ॥

यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

नारद उवाच ।
शशिबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः १
तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं×तनयाऽभवन्
ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ३
हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शशिबिन्दवः
तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५
राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा
नागे नागे शतं रथाः ॥ ६
रथे रथे शतं चाश्वा बलिनो हेममालिनः ।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ७
एतद्धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे ।
शशबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ८
वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे ।
ते तथैव पुनश्चान्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ९
भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः
तस्याश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश १०
तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम् ।
शशिबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

नारद उवाच ।
गयं चामूर्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥१
तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात् ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २
गुरूणां च प्रसादेन
वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाविहिंस्यान्यान्
धनमिच्छामि चाक्षयम् ॥ ३

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ × विसर्गलोपे संधिरार्षः ।

६५

शशिबिंदुमिति ॥ १ ॥ त्रयोदशात्र निचयाः शिष्टाः ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

गयमिति स्पष्टार्थः ॥ १ ॥

विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भव- [illegible]त्यश्नः ।
अनन्यासु सवर्णासु [illegible]न्म च मे भवेत् ॥ ४
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चास्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥
तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत्सर्वं धर्मेणारीनजीजयत् ॥
स दर्शपौर्णमासीभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च ।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चावाप्तदक्षिणैः ॥ ७
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सरान् शतम् ।
गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाप्ययुतानि षट्
उत्थायोत्थाय स प्रादात् परिसंवत्सरान् शतं
नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥
सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम्
विप्रेभ्यः प्राददद्राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥
जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
गयस्यासन् समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥
सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३
स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु [illegible]दाव [illegible] च येऽवसन् ॥
भूतग्रामाश्च विविधाः
संतृप्ता यज्ञसंपदा ।
गयस्य सदृशो यज्ञो
नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥ १५
षट्त्रिंशद्योजनायामा त्रिंशद्योजनमायता ।
पश्चात् पुरश्चतुर्विंशद्वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥
गयस्य यजमानस्य
मुक्ता वज्रमणिस्तृता ।
प्रादात् स ब्राह्मणेभ्योऽथ
वासांस्याभरणानि च ॥ १७
यथोक्ता दक्षिणाश्चान्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः
यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८
कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥
यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
वटश्चाक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २०
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

नारद उवाच ।
सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः
गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषकाः
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २
न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३
उपस्थिताश्च पशवः स्वयं यं शंसितव्रतम् ।
बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत् सत्रयाजिनम्
नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः ।
तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत् पुरा ॥ ५
ब्राह्मणेभ्योऽददन्निष्कान्सौवर्णान्स प्रभावतः
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते
तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादा-
न्निष्कान्निष्कान् सहस्रशः ।
ततः पुनः समाश्वास्य
निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ७
अल्पं दत्तं मयाऽद्येति
निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः
कोऽन्यस्तत् संप्रदास्यति ॥ ८

---

नक्षत्रविहिता दक्षिणाः ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७
सांकृतिमिति ॥ १ ॥

द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत्।
भविष्यति न सन्देह एवं राजाऽददद्वसु ॥ ९
सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान्।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥
अध्यर्धमासमददद्ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ११
ऋषिभ्यःकरकान् कुंभान् स्थालीःपिठरमेव च
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥
वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि च
सर्वं सौवर्णमेवासीद्रन्तिदेवस्य धीमतः ॥
तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥
नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥१५
व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः
सांकृत रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः॥
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा ।
रन्तिदेवस्य यत्किंचित् सौवर्णमभवत् तदा॥
तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः॥
कव्यानि पितरःकाले सर्वकामान् द्विजोत्तमाः
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया॥२०
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन्२१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

नारद उवाच ।
दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान् यः शिशुर्वने
हिमावदातान् यः सिंहान्नखदंष्ट्रायुधान् बली
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥
क्रूरांश्चोग्रतरान् व्याघ्रान्
दमित्वा चाकरोद्वशे ।
मनःशिला इव शिलाः
संयुक्ता जतुराशिभिः ॥ ३
व्यालादींश्चातिबलवान् सुप्रतीकान् गजानपि
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखान् शुष्कास्यानकरोद्वशे॥
महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह ।
सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद्बलात् ॥
बलिनः सृमरान् खड्गान्
नानासत्त्वानि चाप्युत ।
कृच्छ्रप्राणं वने बद्ध्वा
दमयित्वाऽप्यवासृजत् ॥ ६
तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य कर्मणा ।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि॥
सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनुवीर्यवान् ।
त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान्
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥ १०

---

पारिभाषिकं निष्कमाह-**सहस्रश इति** ॥ १० ॥ अध्यर्धमासं पक्षे पक्षे इत्यर्थः । शतं समा इति वाक्यशेषात् ॥ ११ ॥ वस्वोकसारा सलोप आर्षः । कनकमयानि ओकांसि सारो यस्याः सा तथा ॥१६॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

**दौष्यन्तिमिति** ॥१॥ **क्रूरानिति** । यथा मनःशिलामयाः शिलाः जतुराशिभिर्लाक्षापुंजैर्युक्तास्तत्सदृशान् रक्तबिन्दुयुक्तान् रक्तपीतवर्णान् व्याघ्रविशेषान् वशेऽकरोदित्यर्थः ॥ ३ ॥ कृच्छ्रप्राणं संकटगतं यथा स्यात्तथा बद्ध्वा ॥ ६ ॥ मा विजीजहि मा हिंसीः ॥ ७ ॥

इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा
तर्पयित्वा द्विजान् धनैः।
सहस्रं यत्र पद्मानां
कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः।
यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः
अलंकृतान्भ्राजमानान् सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३
हैरण्यानश्वान् द्विरदान्
रथानुष्ट्रानजाविकम्।
दासीदासं धनं धान्यं
गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥ १४
ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि
विविधांश्च परिच्छदान्।
कोटीशतायुतांश्चैव
ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५
चक्रवर्ता ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया॥१६
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

नारद उवाच।
पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यमभ्यषिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥
यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत्
पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन्।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुक्
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४
आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥
फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च।
तेषामासीत्तदाहारो निराहाराश्च नाभवन्
अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७
प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत्तदा।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥
तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ९
तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च १०
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन्।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः
देह्यस्मभ्यं महाराज
प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान्।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्ती-
र्वर्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२
तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो
गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः।
शरांश्चाप्रतिमान् घोरां-
श्चिन्तयित्वाऽब्रवीन्महीम् ॥ १३
एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः काङ्क्षितं पयः।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम्
वसुधोवाच।
दुहितृत्वेन मां वीर संकल्पयितुमर्हसि।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥
ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥ १६

---

व्यामो हस्तचतुष्टयम्। परिणाहेनदैर्घ्येण ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

**पृथुमिति** ॥ १ ॥ प्रथिता पृथ्वी अनेनेति पृथुरित्यर्थः ॥ २ ॥ तेषां दर्भाणामेव चीराणि वल्कलानि यैः प्रजाः संवीताः तान्येव परिधानीयानि शयनानि चेत्यर्थः ॥ ५ ॥ ध्वजभङ्गस्तोरणादिना ॥ ९ ॥

साऽतिष्ठद्वत्सला वत्सं
दोग्धृपात्राणि चेच्छती ।
वत्सोऽभूत् पुष्पितः शालः
प्लक्षो दोग्धाऽभवत् तदा ॥ १७

छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् ।
उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा ।
दोग्धा चासीत्तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम्
असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा ।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीद्वत्सश्चासीद्विरोचनः
कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले ।
स्वायंभुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाऽभवत् पृथुः
अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुंधरा ।
धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः॥
सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्लिष्टकर्मभिः ॥
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट्
अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् ।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चासीद्वृषध्वजः ॥
पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन्
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः
स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम् ।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धाऽन्तकस्तदा

एवं निकायैस्तैर्दुग्धा
पयोऽभीष्टं हि सा विराट् ।
यैर्वर्तयन्ति ते ह्यद्य
पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७

यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
संतर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥
हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि
तान् ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे२९
षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ
इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ३१
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः॥ ३२
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## ७०

नारद उवाच ।
रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति॥१
यस्मादयमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चासीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम्
यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् ।
ततोऽवधीत् कार्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३
क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाऽजयत्४
ब्रह्मद्विषां चाथ तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यान्निजग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥ ५
सहस्रं मुसलेनाहन् सहस्रमसिनाऽवधीत् ।
उद्बन्धनात् सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६
दन्तान् भंक्त्वा सहस्रस्य कर्णान्नासान्यकृतन्त
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७

---

**दोग्धेति**। चाद्वत्सोऽपि देव एव । प्रियं दुग्धं पात्रमप्यर्थान्मन एवेति कल्प्यम् । ग्रन्थान्तराद्वा वत्सपात्रे ज्ञेये । एवमन्यत्रापि ॥ १९ ॥ विराट् पृथिवी॥ २४ ॥ पार्थिवाः पृथ्वीसम्बन्धिपदार्थाः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

ये मृतास्तेऽतीता ये वर्तमानास्तेऽपि मरिष्यन्त्येवेत्याह **राम इति** ॥ १ ॥ यो रामः इमां पृथ्वीं सुखामनुपद्रवां कुर्वन् आद्यमादियुगविहितं धर्ममनुपर्येति स्म अनुप्रवर्तितवानित्यर्थः ॥ २ ॥ क्षत्रियैः कार्तवीर्यपुत्रैः अब्रुवन्नविकत्थयन् ॥३॥ मृत्योर्मृत्युमवधीकृत्य॥४॥ तस्मिस्तन्मध्ये एव दन्तक्रूरं तद्देशाधिपतिम् ॥५॥ उद्बन्धनाद्वृक्षशाखावलम्बनात् ॥ ६ ॥

शिष्टान् बद्ध्वा च हत्वा वै
तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च ।
गुणावतीमुत्तरेण
खाण्डवाद्दक्षिणेन च ।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः॥ ८
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९
निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः परशुना तदा ।
न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः॥
भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमाः
ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान्॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च
विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् ।
रक्षोवाहान् वीतिहोत्रां-
स्त्रिगर्तान् मार्तिकावतान् ॥ १२
शिबीनन्यांश्च राजन्यान्
देशान् देशान् सहस्रशः ।
निजघान शितैर्बाणै-
र्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३
कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।
इंद्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः१५
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम्
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः संपूर्णां च महीमिमाम्
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।
ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान् हेमभूषणान् ॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २०
सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः ।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया ॥
स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिं
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् २२
अध्यावसद्गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।
एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।
त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव॥२४
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

व्यास उवाच ।
पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम्
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः १
तमब्रवीत् तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥ २
आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा॥३
एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम्।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम्
विस्मयेन हृते शोके तमसीवार्कतेजसा ।
विपाप्मास्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम्
नारद उवाच ।
दिष्ट्याऽपहृतशोकस्त्वं
वृणीष्वेह यदिच्छसि ।
तत् तत् प्रपत्स्यसे सर्वं
न मृषावादिनो वयम् ॥ ६

---

तैराश्रमवासिभिः ॥ १० ॥ अष्टनलेत्यत्र नलशब्दश्चतुर्हस्तवचनः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१

पुण्यमाख्यानमिति ॥ १ ॥ विस्मयेन पुण्याख्यानश्रवणजनितचित्तविस्तारेण ॥ ४ ॥

सृञ्जय उवाच ।
एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान् मम ।
प्रसन्नो यस्य भगवान्न तस्यास्तीह दुर्लभम् ७
नारद उवाच ।
मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा ।
उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत्प्रोक्षितं यथा
व्यास उवाच ।
प्रादुरासीत् ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः ।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९
ततः संगम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १०
अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः ।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः
शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्यारीन्सहस्रशः
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः १२
ब्रह्मचर्येण यान् कांश्चित्
प्रज्ञया च श्रुतेन च ।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति
तांस्ते पुत्रोऽक्षयान् गतः ॥ १३
विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः
स्वर्गमीहन्ति नित्यशः
न तु स्वर्गादयं लोकः
काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥ १४
तस्मात् स्वर्गगतं पुत्र-
मर्जुनस्य हतं रणे ।
न चेहानयितुं शक्यं
किञ्चिदप्राप्यमीहितम् ॥ १५
यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः
प्रयान्ति यां चोत्तमयज्विनो जनाः
तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यां तथा
तामक्षयां ते तनयो गतो गतिम् १६
अन्तात् पुनर्भावगतो विराजते
राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः ।
तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां
गतोऽभिमन्युर्न स शोकमर्हति १७
एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा
जह्यरीन् धैर्यमाप्नुहि ।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ
शोचतो हि महाराज अघमेवाभिवर्धते ।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद्बुधः १९
प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन् ।
एतद्बुद्ध्वा बुधाः शोकं
न शोकः शोक उच्यते ॥ २०
एवं विद्वन् समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः ।
श्रुतस्ते संभवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च २१
सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः ।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं संजीवितं पुनः २२
एवं विद्वन्महाराज मा शुचः साधयाम्यहम्
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत २३
वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे ।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम् ।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसंपदम्
संपूज्य मनसा विद्वान्
विशोकोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
पुनश्चाचिन्तयद्दीनः
किंस्विद्वक्ष्ये धनञ्जयम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

॥ समाप्तमभिमन्युवधपर्व ॥

---

प्रतीतः प्रीतः ॥ ७ ॥ सान्नाहिकः युद्धोद्यतः ॥ ११ ॥ अप्राप्यमीहितमीप्सितं किञ्चिदपि न शक्यं न सुलभम् ॥ १५ ॥ अन्तान्मरणात् भावगतः संपत्प्राप्तः । द्विजोचितां द्विजैरभिमताम् ॥ १७ ॥ अघं दुःखम् ॥ १९ ॥ अभिमानं मानातिशयम् । चिन्तयन्नभिलषन् शोकं न कुर्वन्तीति शेषः । न शोकः शोक उच्यते किं त्वात्मैव शोक इत्यर्थः ॥ २० ॥ सृञ्जयस्य पुत्रमुद्दिश्य चञ्चला विभूतयश्च श्रुता इति शेषानुषङ्गः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

# प्रतिज्ञापर्व ४

## ७२

सञ्जय उवाच ।
तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान्
संध्याकाल उपस्थिते ॥ १
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ ।
हत्वा संशप्तकव्रातान् दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः
प्रायात्स शिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम्
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत
किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्च सज्जति केशव ।
स्पन्दन्ति चाप्यनिष्टानि
गात्रं सीदति चाप्युत ॥ ४
अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति।
भुवि ये दिक्षु चाप्युग्रा
उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५
बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम×६
वासुदेव उवाच ।
व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति
मा शुचः किंचिदेवान्यत् तत्रानिष्टं भविष्यति
सञ्जय उवाच ।
ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ८
ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम् ।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ९
ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा ।
बीभत्सुरब्रवीत् कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १०
नदन्ति नाद्य तूर्याणि मंगल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः सह
वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममानीकेषु बन्दिनः
योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः
कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति माम्
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव १४
न हि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम्
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद १५
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत
न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव १६
सञ्जय उवाच ।
एवं संकथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम्
ददृशाते भृशास्वस्थान् पाण्डवान्नष्टचेतसः
दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८
मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ
मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्ताऽस्ति विना सौभद्रमर्भकं
न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकाद्विनिर्गमः
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः
भित्त्वाऽनीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥
लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाद्रिषु ।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३
सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम् ।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४
सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं
कोऽवधीत् कालमोहितः ॥ २५
सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः ।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः २६
वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्
मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् ।
मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमिवोद्गतम् ॥
स्मिताभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम्

७२

**तस्मिन्निति** ॥ १ ॥ श्लिष्टमनुबद्धम् ॥ ५॥ आडम्बरैस्तूर्यरवैः ॥ ११ ॥ × मम गुरोः-ज्येष्ठभ्रातुर्युधिष्ठिरस्येत्यर्थः ॥

कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसंभ्रमम् ॥ ३२
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्
रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥ ३३
मयाध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च॥३४
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्
सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम्॥३५
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम्३६
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे
रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम्॥३७
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे
अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥ ३८
नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे
सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः॥३९
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।
शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥४०
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः।
यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूत-मागध-बन्दिभिः
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः।
छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं शुभम्॥ ४२
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।
हा पुत्रकावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात्
सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः४४
स्वभाभिर्मोहिता रम्या त्वयाऽत्यर्थं विराजते
नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम्४५
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।
एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।
कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।
स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम्
पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः
इत्येवं विलपन्मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।
अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च५१
सुभद्रायां च संभूतो न चैवं वक्तुमर्हति ।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।
कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः॥५३
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपन् शरान्
यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याभिनन्दति
उपायान्तं रिपून् हत्वा
सोऽद्य मां किं न पश्यति ।
नूनं स पातितः शेते
धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५
शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ।
सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥५६
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनंक्ष्यति
सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ५७
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं त्वहम्
वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।
दृप्तानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः५९
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् ।
अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः६०
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम्
किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ६१
सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते ।
आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम्
इति तान् परिभाषन् वै वैश्यापुत्रो महामतिः
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।
किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम॥६४
†अधाक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान्

सञ्जय उवाच ।

पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम्
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम्
सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥

यथेति कथमर्थे ॥ ४४ ॥ यदि मे पिता स्यात्तदा मे त्राणं स्यादित्यन्वयः ॥ ५० ॥ † अधक्ष्यामिति पाठः

एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्
विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८
ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।
गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ६९
एतच्च सर्ववीराणां कांक्षितं भरतर्षभ ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद७०
स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान्
वीरैराकांक्षितं मृत्युं संप्राप्तोऽभिमुखं रणे७१
मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः ।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः७२
इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम ।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव॥७३
एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद ।
विदितं *वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ७४
एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातॄन्सर्वान् पार्थः सगद्गदान्
स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः
अभिमन्युर्यथावृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा७६
सनागस्यन्दनहयान् द्रक्ष्यध्वं निहतान् मया
संग्रामे सानुबन्धांस्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः ॥
कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम्
सौभद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणाऽपि समागतः
यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान् रक्षणे मम ।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया गुप्तो भवेत् ततः
कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम्॥
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः८०
अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः
यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः८१
आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान् ।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान्॥
आहोस्विद्भूषणार्थाय वर्म शस्त्रायुधानि वः ।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम्॥ ८३
एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान्
न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुं
तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५
न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात्
सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
बहुमानात् प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः॥८७
ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत्॥८८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

युधिष्ठिर उवाच ।
त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत् तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १
व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे॥ २
स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
अस्मानभिजगामाशु पीडयन्निशितैः शरैः ३
ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत् कुत एव तु ॥४
वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो
स तथा नोदितोऽस्माभिः
सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं
वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६
स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत्तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७
तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८
ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समवारयत ॥ ९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * भगवद्गीतादिप्रसंगादिदिति भावः ।

७३

त्वयीति ॥ १ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च
कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन्॥ १०
परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः।
यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ११
ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम्
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् १२
स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम्।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च॥१३
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चालक्षितान् बहून्।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह १४
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान्।
एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम्॥ १५
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान्।
ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेण भाषितं
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद्भुवि।
विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम्॥ १७
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन् परस्परम्।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्च्छितः
कम्पमानो ज्वरेणेव
निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य
श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान्॥ १९
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत्*।

अर्जुन उवाच।

सत्यं वः प्रतिजानामि
श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्।
न चेद्वधभयाद्भीतो
धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति॥ २०
न चास्मान् शरणं गच्छेत्
कृष्णं वा पुरुषोत्तमम्।
भवन्तं वा महाराज
श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्॥ २१
धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम्।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्
रक्षमाणाश्च तं सङ्ख्ये
ये मां योत्स्यन्ति केचन।
अपि द्रोणकृपौ राजन्
छादयिष्यामि ताञ्छरैः॥ २३
यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः।
मा स्म पुण्यकृतां लोकान्प्राप्नुयां शूरसंमतान्
ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम्
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा॥ २५
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम्
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि
पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाश्नताम्
तानह्नायाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम्
वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम्॥
अवमन्यमानो यान् याति
वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च
पादेनाग्निं च या भवेत्॥ ३०
याऽप्सु श्लेष्म पुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम्
नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः
आत्मापहारिणां या च
या च मिथ्याभिशंसिनाम्।
भृत्यैः संदिश्यमानानां
पुत्रदाराश्रितैस्तथा॥ ३३
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम्।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम्
संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतं
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणं
अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद्वृषलीपतये तथा॥ ३६
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम्॥
भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम्
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ३८

---

कौसल्यो बृहद्बलः॥ १०॥ भुक्तपूर्वामन्योपभुक्तां विन्दतां स्वीकुर्वताम्॥ २७॥ आत्मापहारिणाम् आत्मानमन्यथा प्रकाशयतां मिथ्याभिशंसिनां असद्दोषोक्त्या परान् दूषयतां संदिश्यमानानां नियुज्यमानानाम्॥ ३३॥ वृषला शूद्रा कन्याभावे रजस्वला वा॥ ३६॥ * त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः इति पाठान्तरम्।

ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि
शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः
एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते ।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम्
दिवामैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते ।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ४१
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम्
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः४३
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद्ददाति न ।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम्
धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम्
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम्
इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव संप्रवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ४७
असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा
पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मा-
त्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ।
यदि विशति रसातलं तदग्र्यं
वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते
भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता
एवमुक्त्वा विचिक्षेप
गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य
धनुःशब्दोऽस्पृशद्दिवम् ॥ ५०
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ५१
स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना
भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।
जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरं
प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ॥ ५२
ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् सहस्रशः ।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ५३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

## ७४

सञ्जय उवाच ।
श्रुत्वा तु तं महाशब्दं
पाण्डूनां जयगृद्धिनाम् ।
चारैः प्रवेदिते तत्र
समुत्थाय जयद्रथः ॥ १
शोकसंमूढहृदयो दुःखेनाभिपरिप्लुतः ।
मज्जमान इवागाधे विपुले शोकसागरे ॥ २
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन् बहु
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयन् ॥ ३
अभिमन्योः पितुर्भीतः
सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् ।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे
जातः शक्रेण कामिना ॥ ४
स निनीषति दुर्बुद्धि-
र्मां किलैकं यमक्षयम् ।
तत् स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि
स्वगृहं जीवितेप्सया ॥ ५

---

तदपि तेऽपालयिर्थः ॥ ४८ ॥ दितेरिति कार्ये कारणो-पचाराद्दैत्यानामित्यर्थः ॥ ४९ ॥ शब्दं शब्दान्तरम्॥५०॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ किलेत्यरुचौ ॥ ५ ॥

अथवास्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते संदत्त ममाभयम् ६
द्रोण-दुर्योधन-कृपाः कर्ण-मद्रेश-बाल्हिकाः।
दुःशासनाद्यः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम्
किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः
प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः

वधो नूनं प्रतिज्ञातो
मम गाण्डीवधन्वना।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति
शोककाले स्म पाण्डवाः॥ १०

तन्न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं कुत एव नराधिपाः ११
तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः

एवं विलपमानं तं
भयाद्याकुलचेतसम्।
आत्मकार्यगरीयस्त्वा-
द्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ १३

न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि १४
अहं वैकर्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः।*
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह १६

दुःशासनः सुबाहुश्च
कालिङ्गश्चाप्युदायुधः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः॥ १७
एते चान्ये च बहवो
नानाजनपदेश्वराः।
ससैन्यास्त्वाभियास्यन्ति
व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ १८

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव

अक्षौहिण्यो दशैका च
मदीयास्तव रक्षणे।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं
सैन्धव व्येतु ते भयम्॥ २०

सञ्जय उवाच।

एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् २१
उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशांपते।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा॥ २२
निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने।
मम ब्रवीतु भगवान् विशेषं फाल्गुनस्य च॥
विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः
अर्जुनस्यात्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे॥२४

द्रोण उवाच।

स ममाचार्यकं तात
तव चैवार्जुनस्य च।
योगाद्दुःखोषितत्वाच्च
तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः॥ २५

न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात् कथञ्चन
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः
न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति
तस्माद्युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ॥ २८
अधीत्य विधिवद्वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः॥ २९

दुर्लभं मानुषैर्मन्दै-
र्महाभाग्यमवाप्यतु।
भुजवीर्यार्जितान् लोकान्
दिव्यान् प्राप्स्यस्यनुत्तमान्॥ ३०

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम्॥

पर्यायेण वयं सर्वे
कालेन बलिना हताः।
परलोकं गमिष्यामः
स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः॥ ३२
तपस्तप्त्वा तु यान् लोकान्
प्राप्नुवन्ति तपस्विनः।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः
क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान्॥ ३३

अक्षौहिण्य इति प्रत्यक्षौहिणीशेषमादायोक्तम्॥२०॥ उपसंग्रहणं पादाभिवन्दनम्॥ २२॥ निमित्ते लक्ष्यभेदने॥२३॥ योगादभ्यासात्॥२५॥ * 'एतेषां नरदेवानां मत्तमातङ्गगामिनाम्। संघातमुपयातानामपि बिभ्येत्पुरन्दरः' इत्यधिकम्।

एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः
अपानुदद्भयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥ ३९
ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाप्यासीद्विशांपते ।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## ७५

सञ्जय उवाच ।
प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनंजयमभाषत ॥ १
भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम्
असंमन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं तु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि॥ ३
धार्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४
त्वया वै संप्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ५
तेन शब्देन वित्रस्ता
धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः।
नाकस्मात् सिंहनादोऽय-
मिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६
सुमहाञ्शब्दसंपातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा
ध्रुवमार्तो धनञ्जयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधा-
दिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८
तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ९
ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन्सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः
अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात्सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः
स मन्त्रकाले संमन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीं क्रियां
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२
मामसौ पुत्र हन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम॥
तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः
ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः ।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम्
अथ रक्षा न मे संख्ये
क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन्
गमिष्यामि गृहान् प्रति ॥ १६
एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवान्वपद्यत॥१७
तमार्तमभिसंप्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चात्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान्॥१८
नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्यास्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे॥१९
वासुदेवसहायस्य
गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्ठेत्
साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २०
महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः२१
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२
समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् हन्यादिति मतिर्मम

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

७५

**प्रतिज्ञात इति** ॥ १ ॥ अशब्दो निषेधे अज्ञात्वेत्यर्थः ॥ २ ॥ विधीयतां रक्षेति परतः सम्बध्यते ॥ १५ ॥

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४
स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोऽर्जुन
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः
कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६
शकटः पद्मकश्चार्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूची पार्श्वे जयद्रथः॥ २७
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः
धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे॥२८
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः।
एतानजित्वा षड्रथान्नैव प्राप्यो जयद्रथः॥२९
तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा॥
भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

अर्जुन उवाच।
षड्रथान् धार्तराष्ट्रस्य
मन्यसे यान् बलाधिकान्।
तेषां वाय ममार्धेन
न तुल्यामिति मे मतिः ॥ १
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २
द्रोणस्य मिषतश्चाहं सगणस्य विलप्यतः।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले३
यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥ ४
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः।
द्यौर्वियत् पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः५
ग्रामारण्यानि भूतानि
स्थावराणि चराणि च।
त्रातारः सिन्धुराजस्य
भवन्ति मधुसूदन ॥ ६
तथापि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टाऽसि रणे मया।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ७
यस्य गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८
तस्मिन् ×द्यूतमिदं बद्धं
मन्यते स सुयोधनः।
तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं
भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥ ९
द्रष्टाऽसि श्वो महेष्वासा-
न्नाराचैस्तिग्मतेजितैः।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रै-
र्दार्यमाणान्मया युधि ॥ १०
नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम्।
पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः
गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे।
नृनागाश्वान् विदेहासून् कर्तारश्च सहस्रशः
यमात् कुबेराद्वरुणादिन्द्राद्रुद्राच्च यन्मया।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद्द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥१३
ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि
हन्यमानानि संयुगे।
मया द्रष्टाऽसि सर्वेषां
सैन्धवस्याभिरक्षिणाम् ॥ १४
शरवेगसमुत्कृत्तै
राज्ञां केशव मूर्धभिः।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं
द्रष्टाऽसि श्वो मया युधि ॥ १५

---

संविधानं प्रतिविधानम् ॥ २५ ॥ पद्मव्यूहः पश्चार्धे पश्चाद्भागे यस्य सूची सूचीमुखो व्यूहः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

७६

षड्रथानिति ॥ १ ॥ तस्मिन् द्रोणे द्यूतं युद्धद्यूतम्। बद्धामिव बद्धं एकान्तजयेन स्थिरीकृतम् ९ × युद्धमति पाठः

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि
द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।
सुहृदो नन्दयिष्यामि
प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६
ब्रह्मागस्कृत् कुसम्बन्धी
पापदेशसमुद्भवः ।
मया सैन्धवको राजा
हतः स्वान् शोचयिष्यति ॥ १७
सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे ।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम्
तथा प्रभाते कर्ताऽस्मि यथा कृष्ण सुयोधनः
नान्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि १९
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया
तव प्रसादाद्भगवन् किं नावाप्तं रणे मम ।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन्मां विगर्हसे२१
यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम्
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन२२
मावमंस्था ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम्
मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनञ्जयम्२३
*तथाभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम्॥२४
ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः ।
श्रीर्ध्रुवाऽपि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः२५
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना
संदिदेशार्जुनो नर्दन् वासविः केशवं प्रभुम्
यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम
तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वण्यर्जुनवाक्ये
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

सञ्जय उवाच ।
तां निशां दुःखशोकार्तौ
निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
निद्रां नैवोपलेभाते
वासुदेवधनञ्जयौ ॥
नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद्भविष्यति
ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिघः समदृश्यत ॥
शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४
चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
प्रतिस्रोतःप्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥
रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६
वाहनानि शकृन्मूत्रे
मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
तान् दृष्ट्वा दारुणान् सर्वा-
नुत्पाताँल्लोमहर्षणान् ॥ ७
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः
अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत् पाकशासनिः
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह॥९
स्नुषां चास्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो
ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम्॥
वासुदेव उवाच ।
मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता
कुले जातस्य धीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ॥
सदृशं मरणं ह्येतत् तव पुत्रस्य मा शुचः ॥१३
दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम्

न जीयेयं न केनापि जितोऽस्मि ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

तामिति ॥ १ ॥ * 'यथाभियाय' इति पाठः ।

जित्वा सुबहुशः शत्रून्
प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
गतः पुण्यकृतां लोकान्
सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयाऽपि च ।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः
वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा ।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम्*
प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः
अस्यावलपस्य फल ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८
व्युष्टायां तु वरारोहे
रजन्यां पापकर्मकृत् ।
न हि मोक्ष्यति पार्थात् स
प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९
श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम्
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं विशोका भव मा रुदः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः
व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत् ।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२
अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् ।
सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः
आश्वासयन्स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम्
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि
यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम्
यदि च मनुजपन्नगाःपिशाचा
रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च ।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं
न स भविता सह तैरपि प्रभाते २६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्वासने
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

सञ्जय उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य
केशवस्य महात्मनः ।
सुभद्रा पुत्रशोकार्ता
विललाप सुदुःखिता ॥ १
हा पुत्र मम मन्दायाः
कथमेत्यासि संयुगम् ।
निधनं प्राप्तवांस्तात
पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २
कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् ।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥ ३
नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम् ।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम् ॥ ४
चारूपचितसर्वांगं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् ।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम्
शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् ।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ६
योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे
योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूत-मागध-वन्दिभिः।
सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते ८
पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो ।
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत् ॥ ९
अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम्
विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥
धिग्बलं भीमसेनस्य
धिक्पार्थस्य धनुष्मताम् ।
धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां
पञ्चालानां च धिग्बलम् ॥ १२

---

अवलेपस्यापराधस्य ॥१८॥ अभियान्ति रक्षिष्यन्ति॥२६॥ इति श्री० द्रो० टी० सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७ *'स्वाध्याययुक्तं ब्राह्मणी याचितारं, गौर्वोढारं, क्षिप्रगन्तारमश्वा । दासं शूद्रा, कर्मकारं तु वैश्या, शूरं सूते त्वादृशा राजपुत्री' इत्यधिकम्

७८

एतदिति ॥ १ ॥

धिक्केकयांस्तथा चेदीन्
मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान् ।
ये त्वां रणगतं वीरं
न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३

अद्य पश्यामि पृथिवीं
शून्यामिव हतत्विषम् ।
अभिमन्युमपश्यन्ती
शोकव्याकुललोचना ॥ १४

स्वस्रीयं वासुदेवस्य
पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वाऽतिरथं वीरं
द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५

एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाशु मे।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने १६
हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे ।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् १७
इमां ते तरुणीं भार्यां तवाधिभिरभिप्लुताम्
कथं संधारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम्
अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने १९

नूनं गतिः कृतान्तस्य
प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
यत्र त्वं केशवे नाथे
संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २०

यज्वनां दानशीलानां
ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
चरितब्रह्मचर्याणां
पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २१

कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि २२
या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्
हत्वाऽरीन्निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज
गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
नैवेशिकं चाभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥

ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो
निधिं निदधतां च या ।
या चापि न्यस्तदण्डानां
तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५

ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः ।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक
राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती ।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक २८
व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक २९
कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च ।
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा ।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ३१

ऋतुकाले स्वकां भार्यां
गच्छतां या मनीषिणाम् ।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां
तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२

साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः ।
नारुंतुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ३३

मधुमांसनिवृत्तानां
मदाद्दम्भात्तथाऽनृतात् ।
परोपतापत्यक्तानां
तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४

ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक
एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम्
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटिसहितां तदा ३६

ताः प्रकामं रुदित्वा च
विलप्य च सुदुःखिताः ।
उन्मत्तवत्तदा राजन्
विसंज्ञा न्यपतन् क्षितौ ॥ ३७

सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः
सिक्त्वांभसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम् ।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ३९

---

नैवेशिकं सोपकरणं गृहम् नैवेशिकायेति पाठे गृहाश्रमोन्मुखाय विद्याव्रतस्नाताय । अभिमतं विवाहोपयुक्तम् ॥ २४ ॥
न्यस्तदण्डानां निरस्ताभिमानानां ' दण्डोऽस्त्री लगुडे पुमान् ' इत्युपक्रम्य ' दमे यमेऽभिमाने च ' इति मेदिनी ॥२५॥
एकपत्न्यः पतिव्रताः ॥ २६ ॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं
पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां
गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४०
ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः
कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२
एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम्
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ४३
ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम्
विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

सञ्जय उवाच ।
ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाऽम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे
संतस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः २
अलंचकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।
ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम्
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ।
सुप्यतां पार्थ भद्रं ते
कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान्
गोप्तॄंश्चात्तायुधान्नरान् ॥ ६
दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिबिरं स्वकम् ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन्
पार्थाय सर्वं भगवान् शोकदुःखापहं विधिम्
व्यदधात् पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ८
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियंकरः ९
न पाण्डवानां शिबिरे
कश्चित् सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं
ह्याविवेश विशांपते ॥ १०
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् १२
कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः सताम्
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयन्नर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनञ्जयः ।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥
तस्मिन् हि विजयः कृत्स्नः
पाण्डवेन समाहितः ।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चि-
द्यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन्
एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९

तत इति ॥ १ ॥ लाजैरक्षतैः ॥ २ ॥ तस्मै त्र्यम्बकाय ॥ ५ ॥ पार्थाय तादर्थ्ये चतुर्थी । तेजः प्रतापः ॥ ८ ॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं
पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां
गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४०
ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः
कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान्यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२
एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम्
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ४३
ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान्कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम्
विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

सञ्जय उवाच ।
ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाऽम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे
संतस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः २
अलंचकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।
ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम्
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ।
सुप्यतां पार्थ भद्रं ते
कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान्
गोप्तॄंश्चात्तायुधान्नरान् ॥ ६
दारुकानुगतः श्रीमान्विवेश शिबिरं स्वकम् ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन्
पार्थाय सर्वं भगवान् शोकदुःखापहं विधिम्
व्यदधात्पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ८
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियंकरः ९
न पाण्डवानां शिबिरे
कश्चित् सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं
ह्याविवेश विशांपते ॥ १०
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् १२
कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः सताम्
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनञ्जयः ।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥
तस्मिन्हि विजयः कृत्स्नः
पाण्डवेन समाहितः ।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चि-
द्यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन्
एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९

तत इति ॥ १ ॥ लाजैरक्षतैः ॥ २ ॥ तस्मै त्र्यम्बकाय ॥ ५ ॥ पार्थाय तादर्थ्ये चतुर्थी । तेजः प्रतापः ॥ ८ ॥

## ८०

सञ्जय उवाच ।
कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाचिन्त्यविक्रमः १
तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम् ।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः २
प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः ।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३
प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ
न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात् तदा॥
ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्चयम् ।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५
मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ
किमर्थं च विषादस्ते तद्ब्रूहि द्विपदां वर ।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः
यत्तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८
शोचन्नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान् ।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः ।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १०
मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता ।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव॥
मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत ।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ १२
दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥१३
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः ।
कथं शक्येत संद्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः॥
प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव ।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः१५
दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद्ब्रवीम्यहम् १६
शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखःसमवस्थितः
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती१८
पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान् मृधे दैत्यान् जघ्ने देवो महेश्वरः ॥
यदि तद्विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथ ।
अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २०
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनञ्जय ।
ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत्
ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनञ्जयः।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम्२२
ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् २३
पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम्
वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५
प्रेक्षमाणो बहून् भावान् जगामाद्भुतदर्शनान्
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतं
कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम्
सदा पुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम्
पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् २९
हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ३०
स्निग्धांजनचयाकारं संप्राप्तः कालपर्वतम् ।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ३१

---

८०

**कुन्तीपुत्रस्त्विति** ॥ १ ॥ परेऽवश्यंभाविनि विधौ विधाने नियच्छति प्रवर्तयति ॥६॥ न शोच्यं शोको नाचरणीयः ॥ ७ ॥ कार्यं कृत्यं कार्यं करणीयं भवेत् इत्यन्वयः ॥ ८ ॥ दुःखोपायस्य दुःखद्वारस्य प्रतिज्ञायाः विकांक्षा विसंवादः परिवर्तते प्रतिभाति ॥ १६ ॥ प्रणिहितः समाहितमनाः ॥ २३ ॥

कृच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्तत ।
तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।
अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥ २१
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥
यथा जयद्रथं पार्थो
न हन्यादिति संयुगे ।
अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा
रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।
एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥
सोऽपि तं नोत्सहेताजौ
हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।
सोऽहं श्वस्तत् करिष्यामि
यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ॥ २५
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।
न हि दारानमित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात् ।
अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक ॥ २७
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं
भविता न च तत् तथा ।
अहं विजित्य तान् सर्वान्
सहसा सहयद्विपान् ॥ २८
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान्
श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे
धनञ्जयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।
श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।
श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।
श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः
यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥
इति संकल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्धं ममार्जुनः
यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम्
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः ।
गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान्
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
स्थानं च कल्पयित्वाऽथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ।
छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् ।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८
युक्तान् वाजिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ दारुक
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥३९
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।
एकाह्नाऽहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥४०
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे॥४१
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।
यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
आशंसे सारथे तत्र भविताऽस्य ध्रुवो जयः॥४२

दारुक उवाच ।

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान्॥४३
एवं चैतत् करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि॥४४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसंभाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

---

सहसा बलेन ॥ २८ ॥ अनु अनुगतः ॥ ३३ ॥ आर्षभेण ऋषभस्वरप्रकारेण ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

सञ्जय उवाच।

कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाचिन्त्यविक्रमः १
तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः २
प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३
प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ
न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात् तदा॥
ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्चयम्।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५
मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ
किमर्थं च विषादस्ते तद्ब्रूहि द्विपदां वर।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः
यत्तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८
शोचन्नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान्।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः ।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १०
मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव॥
मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः॥ १२
दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥१३
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः ।
कथं शक्येत संद्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः॥
प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः१५
दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्तते।
द्रुतं च याति सविता तत एतद्ब्रवीम्यहम् १६
शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः।
संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती१८
पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम्।
येन सर्वान् मृधे दैत्यान् जघ्ने देवो महेश्वरः॥
यदि तद्विदितं तेऽद्य श्वो हन्ताऽसि जयद्रथ।
अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २०
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनञ्जय ।
ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत्
ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनञ्जयः।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम्२२
ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् २३
पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम्।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम्
वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे॥ २५
प्रेक्षमाणो बहून् भावान् जगामाद्भुतदर्शनान्
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतं
कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम्।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम्
सदा पुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम्।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम्
पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम्।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् २९
हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान्।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ३०
स्निग्धांजनचयाकारं संप्राप्तः कालपर्वतम्।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ३१

---

८०

**कुन्तीपुत्रस्त्विति** ॥ १ ॥ परेऽवश्यंभाविनि विधौ विधाने नियच्छति प्रवर्तयति ॥६॥ न शोच्यं शोको नाचरणीयः ॥ ७ ॥ कार्यं कृत्यं कार्यं करणीयं भवेत् इत्यन्वयः ॥ ८ ॥ दुःखोपायस्य दुःखद्वारस्य प्रतिज्ञायाः विकांक्षा विसंवादः परिवर्तते प्रतिभाति ॥ १६ ॥ प्रणिहितः समाहितमनाः ॥ २३ ॥

स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ३२
वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम्
तस्मिन् शैले व्रजन् पार्थः
सकृष्णः समवैक्षत ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां
हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४
चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं
पृथिवीं पुरमालिनीम् ।
समुद्रांश्चाद्भुताकारा-
नपश्यद्बहुलाकरान् ॥ ३५
वियद्द्यां पृथिवीं चैव
तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन
क्षिप्तो बाण इवाभ्यगात् ॥ ३६
ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥
समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्वृषभध्वजम् ३८
सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम्
नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसङ्घैश्च भास्वरैः ४०
गीतवादित्रसन्नादै-
र्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्कृष्टैः
पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१
स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ४२
वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम्
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम्
लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम्
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम्
स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ४५
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम्
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६
कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः॥
यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ॥
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम्॥४८
अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत ।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम्४९
ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५०
स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यतां
येन कार्येण संप्राप्तौ युवां तत्साधयामि किम्
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत् सर्वं प्रददानि वाम्
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ सर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ
कृष्णार्जुनावूचतुः ।
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५
महादेवाय भीमाय त्र्यंबकाय च शान्तये ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ५६
कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा५७
विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते ।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे५८

---

अथर्वणस्य मुनेः ॥ ३२ ॥ तथा च व्रजन् विष्णुपदमाकाशमभ्यगादित्यन्वयः ॥ ३६ ॥ **लास्यं** नृत्यम्। वल्गितमितस्ततः प्रचारः । **आस्फोटितं** भुजाडम्बरः उत्कृष्टमुच्चैः स्वनितम्॥४१॥ लोकानामादिमुपादानम्। विश्वं जगत्कर्म प्राप्यं यस्य। ईशानमप्रतिहतेच्छम् । अव्ययमविकारम् । मनसः परमं प्रवृत्तिनिवृत्तिकारणम्। योनिमुत्पत्तिस्थानं च । ज्योतिषां तेजसां निधिमधिष्ठानम्॥ ४४ ॥ परां मूलभूतां प्रकृतिं प्रधानं साधनं सिद्धेर्निधानम्॥ ४५॥ योगानां योगदर्शिनां परं धाम परमाश्रयम्। दृष्टं साक्षाद्भूतं ब्रह्मतत्त्वं तद्विदां निधिं रहस्यम् ॥ ४६ ॥ काल इव कोपो यस्य शक्रस्य गुणा ऐश्वर्यादयः सूर्यस्य गुणाः प्रतापादयः। तेषामुदयो यस्मात् ॥ ४७ ॥ कारणात्मानं कारणैकस्वभावम् ॥ ४८ ॥ भवः सर्वप्रभुत्वात् । शर्वः संहरणात् ॥ ५५ ॥ शान्तिः शमप्रधानत्वात् ॥ ५६ ॥ हविष्यः हविष्ययोग्यत्वात्। सत्याय सदैकस्वभावत्वात्। विभुर्व्यापकत्वात् ॥ ५७ ॥ व्याधाय मृगहननात्। द्विरुक्तिर्द्विस्तथाकरणात् । अनान्प्राणिनः पराजयतीति अनपराजित्सर्वभूतोत्तमत्वात् । नीलशिखण्डो नीलकेशत्वात् ॥ ५८ ॥

होत्रे पोत्रे त्रिनेत्राय ह्याधाय वसुरेतसे ।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ५९
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ६०
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ६१
ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शंकराय शिवाय च ।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥६२
नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो
सञ्जय उवाच ।
एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः ।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने
अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

सञ्जय उवाच ।
ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम्
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १
तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना ।
ददर्श त्र्यंबकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २
ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शंकरम् ॥ ३
ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा ।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४
स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम्
येन कामेन संप्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥५
सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
तत्र मे तद्धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६
येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥७
तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ८
निर्दिष्टं यद्वृषाङ्केण पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।
तौ जग्मतुरसंभ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९
ततस्तौ तत् सरो गत्वा सूर्यमण्डलसंनिभम्
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १०
द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसं वरम् ।
वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥११
ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्यांभः कृताञ्जली ।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् १२
गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद्ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥१३
ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद्द्वंद्वं समपद्यत ॥ १४
तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५
ततः पार्श्वाद्वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्तत ।
पिंगाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नीललोहितः १६
स तद्गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
विचकर्षाथ विधिवत्सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७
तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च
स्थानं चालक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं
जग्राहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १८

---

दीक्षितः भावेन हवनशीलत्वात् वसुरेता अग्नौ रेतःक्षेपणात् ॥ ५९ ॥ मुंडो दीक्षितत्वात् । ब्रह्मचारी रेतोविधारणात् ॥ ६० ॥ भूतानां प्राणिनां प्रमथादीनाम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मवक्त्रो वेदपूर्णमुखत्वात् सर्वः सर्वस्वरूपत्वात् शिवो मोक्षहेतुत्वात् । वाचस्पतिर्वाङ्मयप्रवर्तनात् ॥ ६२ ॥ सहस्रभुजाय मृत्यवे च मन्यवे इति पाठः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

**तत इति** ॥ १ ॥ आत्मना सुकृतं सूपकल्पितम् २॥ द्वन्द्वं युगलम् ॥ १४ ॥ नीललोहितः भगवतोऽपरा तनुः ॥ १६ ॥ स्थानं स्थापनकम् ॥ १७ ॥ जग्राह मनसि कृतवान् ॥ १८ ॥

स सरस्येव तं बाणं मुमोचातिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन् सरसि तद्धनुः॥
ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शंकरस्य च ॥ २०
मनसा चिन्तयामास तन्मे संपद्यतामिति ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्वरं भवः ॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ।
ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत ।
ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥
अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन् भवेनार्जुनकेशवौ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥
तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिना ।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जंभस्य वधकांक्षिणौ

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

सञ्जय उवाच ।
तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा ।
साऽत्यगाद्रजनी राजन्नथ राजाऽन्वबुध्यत ।
पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः ।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २
नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः ।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३
मृदंगा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः ।
आडम्बराश्च शंखाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यान्यपि भारत ।
वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधुशिक्षिताः
स मेघसमनिर्घोषो महान् शब्दोऽस्पृशद्दिवम्
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६
प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे ।
उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७
ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे
भद्रासने सूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु ।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ९
उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन स सुगन्धिना१०
राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम्
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११
हरिणा चन्दनेनाङ्ग-
मुपलिप्य महाभुजः ।
स्रग्वी चाक्लिष्टवसनः
प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ १२
जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः ।
तत्राग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३
समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा ।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात् ततः॥
द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद्ब्राह्मणर्षभान् ॥ १५
दान्तान् वेदव्रतस्नातान् स्नातानवभृथेषु च ।
सहस्रानुचरान् सौरान् सहस्रं चाष्ट चापरान्
अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः ।
तान् द्विजान् मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमंगलैः
प्रादात् काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः
अलंकृतं चाश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः१८

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

८२

**तयोरिति**: ॥ १ ॥ मधुपर्किकाः मांगल्योपस्थापकाः पाणिस्वनिका हस्तेन तालस्वनं कुर्वते । मधुपर्किकाः मधुपर्कसमये पठन्त इति **देवबोध** ॥२॥ रक्तकण्ठिनो रञ्जकस्वराः ॥३॥ **झर्झरा** झिल्लिकाः **भेर्यो** बृहड्ढक्काः **पणवा** मुरजाः **आनकाः** पटहाः । **गोमुखाः** त्रागडाः । आडम्बराश्च क्षुद्रपटहाः ।दुन्दुभ्यो ढक्काः ॥ ४ ॥ भद्रासने चतुःसमासने ॥ ९ ॥ कषायेण सर्वौषध्यादिकल्केन ॥ १० ॥ अक्लिष्टमनुपहतं वसनं यस्य ॥ १२ ॥ दीप्तं ज्वलदग्निम् ॥ १३ ॥ सौरान् सूर्योपासकान् ॥ १६ ॥

तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः
सवत्साः पाण्डुनन्दनः ।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा
दत्वा तेभ्यः प्रदक्षिणम् ॥ १९
स्वस्तिकान् वर्धमानांश्च
नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान् ॥
माल्यं च जलकुंभांश्च
ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २०
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा ।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम्
मङ्गल्यान् पक्षिणश्चैव
यच्चान्यदपि पूजितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो
बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२
ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् ।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४
तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः
मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् २६
चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः ।
दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥२७
संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च बन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः २८
ततो मुहूर्तादासीत्तु स्यन्दनानां स्वनो महान्
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् २९
ह्रादेन गजघण्टानां शंखानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ३०
ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः
शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥३१
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः सन्नद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।
सोऽब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ३३
अर्घ्यं चैवासनं चास्मै दीयतां परमार्चितम् ।
ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ।
पूजयामास विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥३४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

## ८३

सञ्जय उवाच ।
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम्
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १
सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित्ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत
वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरम् ।
ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३
अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम्
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम् ।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम्
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम्
युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६
एते चान्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चासने शुभे ॥ ७

---

प्रदक्षिणं कृत्वेति शेषः ॥ १९ ॥ स्वस्तिकानालिङ्गनानि वर्धमानान् शरावान् नन्द्यावर्तान् संपुटिताद्यर्घपात्राणि॥२० रुचकं मातुलुङ्गकम् ॥ २१ ॥ विश्वकर्मकृतं विश्वकर्मप्रणीतेन विधिना निर्मितम् ॥२४॥ वन्द्यमानः स्तूयमानः स्तुत्यर्थस्य वदे रूपम् ॥२८॥ शुद्धान्तं कक्ष्याभ्यन्तरम् ॥३१॥ स्वागतेनाप्रतिबद्धागमनेन ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

८३

तत इति ॥ १ ॥

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८
ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥
एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः ।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च
त्वं हि राज्यविनाशं च
द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् ।
क्लेशांश्च विविधान् कृष्ण
सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११
त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२
स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम ।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता
स भवांस्तारयत्वस्माद्दुःखामर्षमहार्णवात् ।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥
न हि तत् कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः ।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥
यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन ।
तथैवास्मान् महाबाहो वृजिनात्त्रातुमर्हसि ॥
त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान् पाण्डवान् कुरुसागरे
समुद्धर प्लवो भूत्वा शंख-चक्र-गदाधर॥१७
नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन ।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम१८
नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् ।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत् सत्यं कुरु माधव॥१९
इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि ।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥

वासुदेव उवाच ।

सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः ।
शरासनधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः ॥ २१
वीर्यवानस्त्रसंपन्नः पराक्रान्तो महाबलः ।
युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम्
स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः ।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान् द्विषतस्ते हनिष्यति
अहं च तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः
धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम्
अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम् ।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥
तस्याद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चान्ये पुरुषादकाः
यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाऽप्यसौ
राजधानीं यमस्याद्य हतः प्राप्स्यति संकुले
निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति ।
विशोको विज्वरो राजन् भव भूतिपुरस्कृतः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

सञ्जय उवाच ।

तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः ।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १
तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याग्रतः स्थितम्
तमुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥२
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत
व्यक्तमर्जुनसंग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् ।
यादृग्रूपा च ते छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥४
तमब्रवीत् ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५

---

निराक्रियामपसारणम् ॥ ११ ॥ यात्रा स्थितिः ॥ १२ ॥ वृजिनात् व्यसनात् ॥ १६ ॥ सनातन अनादिनिधन विशातन संहर्तः कृष्ण संसारकर्षक पुरुषोत्तम परात्मन् ॥ १८ ॥ युद्धशौण्डः युद्धप्रवीणः॥२२॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

८४

तथेति ॥ १ ॥

ततस्तत्कथयामास यथा दृष्टं धनञ्जयः।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ६
ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ७
अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना।
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ८
अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ९
रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् १०
तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत्
रथं रथवरस्याजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११
स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ॥ १२
ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥ १३
तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत्।
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४
तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः।
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ॥ १५
जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम्।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा १६
स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः।
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान् मेराविव दिवाकरः
अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ।
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ॥ १८
अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन्रश्मिविदां वरः
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ॥ १९
स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः।
सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा शशी
सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा।
सहाम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ॥ २१
ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः।
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ॥ २२
सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् २३
तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः।
ववौ संहर्षयन् पार्थं
द्विषतश्चापि शोषयन्।
ततस्तस्मिन् क्षणे राजन्
विविधानि शुभानि च ॥ २४
प्रादुरासन्निमित्तानि
विजयाय बहूनि च।
पाण्डवानां त्वदीयानां
विपरीतानि मारिष ॥ २५
दृष्ट्वाऽर्जुनो निमित्तानि
विजयाय प्रदक्षिणम्।
युयुधानं महेष्वास-
मिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६
युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः
यथा हीमानि लिंगानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८
यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम।
तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९
स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ३०
न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत्
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१
त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२
मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया
न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ३४
एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा।
तथेत्युक्त्वाऽगमत् तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ३५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥
॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ॥

शिशुर्दिवसकृत् बालः सूर्यः सज्जपुरःसरः सामग्रीसमग्रः ॥ १२ ॥ मेरावुदयाद्रौ मनोनुकूलार्थेषु सुखसंवेदनं भवति ॥ १७ ॥ प्रयतो मन्दः ॥ २३ ॥ प्रदक्षिणं छन्दोनुवर्तिनम् ॥ २६ ॥ अपेक्षा अनुरोधः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

ततस्तत्कथयामास यथा दृष्टं धनञ्जयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ६
ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन्७
अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ८
अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ९
रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम्१०
तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत्
रथं रथवरस्याजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११
स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ॥ १२
ततः पुरुषशार्दूलः सज्जः सज्जपुरःसरः ।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥१३
तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ।
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४
तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम्॥१५
जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा १६
स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ।
विबभौ विमलोर्चिष्मान् मेराविव दिवाकरः
अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ।
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ॥ १८
अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन्रश्मिविदां वरः
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः॥ १९
स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ।
सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा शशी
सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ।
सहाम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये॥२१
ततो वादित्रनिर्घोषैर्मांगल्यैश्च स्तवैः शुभैः ।
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ॥ २२
सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् २३
तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ।
ववौ संहर्षयन् पार्थं
द्विषतश्चापि शोषयन् ।
ततस्तस्मिन् क्षणे राजन्
विविधानि शुभानि च ॥ २४
प्रादुरासन्निमित्तानि
विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां
विपरीतानि मारिष ॥ २५
दृष्ट्वाऽर्जुनो निमित्तानि
विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वास-
मिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६
युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः
यथा हीमानि लिंगानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः
थियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८
यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९
स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ३०
न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत्
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१
त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२
मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया
न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ३४
एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वाऽगमत् तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः३५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥
॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ॥

शिशुर्दिवसकृत् बालः सूर्यः सज्जपुरःसरः सामग्रीसमग्रः ॥ १२ ॥ मेरावुदयाद्रौ मनोनुकूलार्थेषु सुखसंवेदनं भवति ॥ १७ ॥ प्रयतो मन्दः ॥२३ ॥ प्रदक्षिणं छन्दोनुवर्तिनम् ॥ २६ ॥ अपेक्षा अनुरोधः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि
विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं
भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव
पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो
द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २८
एतेषां मतमादाय यदि वर्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः २९
श्लक्ष्णा मधुरसंभाषा
ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः
सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३०
धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१
अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही॥ ३२
नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति
पाण्डवा धर्मवर्त्मनि ।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात
येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३३
शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः
द्रोणस्याथ विकर्णस्य बाल्हीकस्य कृपस्य च
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम्
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते॥
कं वा त्वं मन्यसे तेषां
यस्तान् ब्रूयादतोऽन्यथा ।
कृष्णो न धर्मं संजह्यात्
सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६
मयाऽपि चोक्तास्ते वीरा
वचनं धर्मसंहितम् ।
नान्यथा प्रकरिष्यन्ति
धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३७
इत्यहं विलपन् सूत
बहुशः पुत्रमुक्तवान् ।
न च मे श्रुतवान् मूढो
मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ३८

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः ।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापराजितः ।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ
मन्त्री च मधुसूदनः ।
क एतान् जातु युध्येत
लोकेऽस्मिन् वै जिजीविषुः ॥ ४२
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्
प्रसहेद्वा परान् मम ।
अन्यो दुर्योधनात् कर्णा-
च्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥ ४३
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम् ।
येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः
सन्नद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः
तेषामथ विलापानां नायं दुर्योधनः स्मरेत् ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै
तेषां विदुरवाक्यानां मुक्तानां दीर्घदर्शनात्
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः
सेनां दृष्ट्वाऽभिभूतां मे शैनेयेनार्जुनेन च॥ ४७
शून्यान् दृष्ट्वा रथोपस्थान्
मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः
हिमात्यये यथा कक्षं
शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८
अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं कुशलो ह्यसि सञ्जय४९
यदुपायात सायाह्ने
कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् ।
अभिमन्यौ हते तात
कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५०
न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः
अपकृत्य महत्तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः५१
किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत्
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥५२
सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम सञ्जय ।
यद्वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्यापनयैर्भृशम्॥ ५३

---

श्लक्ष्णा ऋजवः ॥ ३० ॥ साधने स्वीकरणे ॥ ३२ ॥ दीर्घदर्शनादनागतानुसन्धानात् ॥ ४६ ॥ यद्यदा उपायात यूयमिति शेषः ॥ ५० ॥ महदत्यर्थम् ॥ ५१ ॥ तेषां मध्ये ॥ ५२ ॥

# जयद्रथवधपर्व ५

## ८५

धृतराष्ट्र उवाच ।
श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः
अभिमन्यौ हते तत्र के वाऽयुध्यन्त मामकाः
जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः
कथं तत्किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः
पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३
कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद्धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः ॥ ४
किं नु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानद्य श्रुतो मे नाभिनन्दनम् ५
बभूवुर्ये मनोग्राह्याः
शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।
न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते
सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६
स्तुवतां नाद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिबिरे मम ।
सूतमागधसङ्घानां नर्तकानां च सर्वशः ॥ ७
शब्देन नादिताऽभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम्
निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य सञ्जय ।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ९
तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये १०
विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ११
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या
यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं
पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२
वितण्डालापसंलापैर्द्रुतवादित्रवादितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम्
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा पुरा १४
द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्तकाश्च ये ।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः १५
विन्दानुविन्दयोः सायं
शिबिरे यो महाध्वनिः ॥ १६
श्रूयते सोऽद्य न तथा
केकयानां च वेश्मसु ।
नित्यं प्रमुदितानां च
तालगीतस्वनो महान् ॥ १७
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।
सप्ततंतून् वितन्वाना याजका यमुपासते १८
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।
ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः १९
द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम्
नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः
वादित्रनादितानां च
सोऽद्य न श्रूयते महान् ।
यदा प्रभृत्युपप्लव्या-
च्छान्तिमिच्छन् जनार्दनः ॥ २१
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा २२
वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः
शमं चेद्याचमानं त्वं
प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
हितार्थमभिजल्पन्तं
न तवास्ति रणे जयः ॥ २४
प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत २५
ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः

---

८५

**श्वोभूते इति** ॥ १ ॥ पुत्रपरिद्यूनं पुत्रवधदुःखितम् ॥ ४ ॥ यत्रेति तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥ स्वपक्षस्थापनहीनः प्रतिपक्षे प्रतिक्षेपो **वितंडा,आलापो** भाषणम् , **संलापो** मिथोभाषणम् ॥ १३ ॥ गणानां सङ्घानाम् ॥ १८ ॥ तीर्थेन निदानेन उपायेन वा । कालप्राप्तं समयोचितम् ॥२३॥ अनुनेयानि अनुकूलानि ॥ २५ ॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि
विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं
भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव
पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो
द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २८
एतेषां मतमादाय यदि वर्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः २९
श्लक्ष्णा मधुरसंभाषा
ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः
सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३०
धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१
अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही॥ ३२
नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति
पाण्डवा धर्मवर्त्मनि ।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात
येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३३
शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः
द्रोणस्याथ विकर्णस्य बाल्हीकस्य कृपस्य च
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम्
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते॥
कं वा त्वं मन्यसे तेषां
यस्तान् ब्रूयादतोऽन्यथा ।
कृष्णो न धर्मं सञ्जह्यात्
सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६
मयाऽपि चोक्तास्ते वीरा
वचनं धर्मसंहितम् ।
नान्यथा प्रकरिष्यन्ति
धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३७
इत्यहं विलपन् सूत
बहुशः पुत्रमुक्तवान् ।
न च मे श्रुतवान् मूढो
मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ३८

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः ।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापराजितः ।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ
मन्त्री च मधुसूदनः ।
क एतान् जातु युध्येत
लोकेऽस्मिन् वै जिजीविषुः ॥ ४२
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्
प्रसहेद्वा परान् मम ।
अन्यो दुर्योधनात् कर्णा-
च्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥ ४३
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम् ।
येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः
सन्नद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः
तेषामथ विलापानां नायं दुर्योधनः स्मरेत् ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै
तेषां विदुरवाक्यानां मुक्तानां दीर्घदर्शिनात्
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः
सेनां दृष्ट्वाऽभिभूता मे शैनेयेनार्जुनेन च॥ ४७
शून्यान् दृष्ट्वा रथोपस्थान्
मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः
हिमात्यये यथा कक्षं
शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८
अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं कुशलो ह्यसि सञ्जय४९
यदुपायात सायाह्ने
कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् ।
अभिमन्यौ हते तात
कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५०
न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः
अपकृत्य महत्तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः५१
किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत्
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥५२
सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम सञ्जय ।
यद्वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्यापनयैर्भृशम्॥ ५३

श्लक्ष्णा ऋजवः ॥ ३० ॥ साधने स्वीकरणे ॥ ३२ ॥ दीर्घदर्शनादनागतानुसन्धानात् ॥ ४६ ॥ यद्यदा उपायात यूयमिति शेषः ॥ ५० ॥ महदलमर्थम् ॥ ५१ ॥ तेषां मध्ये ॥ ५२ ॥

लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः। राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः।
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## ८६

सञ्जय उवाच।

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् १
गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृगयं तव।
विलापो निष्फलो राजन्मा शुचो भरतर्षभ २
अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत् पुरातनम् ॥ ३
यदि त्वं हि पुरा द्यूतात् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्
निवर्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ४
युद्धकाले पुनः प्राप्ते
तदैव भवता यदि।
निवार्तिताः स्युः संरब्धा
न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५
दुर्योधनं चाविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत्॥
न ते बुद्धिव्यभीचार-
मुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे
ये चान्येऽपि नराधिपाः ॥ ७
स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत्॥८
त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम्
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चान्वगा मतम्॥ ९
तत्ते विलपितं सर्वं मया राजन्निशामितम्।
अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु॥१०
नामन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः
अजानात् स यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम्
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥
परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे।
तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक
पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदाऽनघ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः॥
पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा
ततश्चाप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः१५
तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम्।
यत्पित्र्याद्भ्रंशिता राज्यात्त्वयेहामिषगृद्धिना
यत्पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान् गर्हयसे नृप।
बहुधा व्याहरन् दोषान्न तदद्योपपद्यते॥१७
न हि रक्षन्ति राजानो युद्ध्यन्तो जीवितं रणे
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः॥
यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ
रक्षेरन् को नु तां युद्ध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः१९
येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः
को हि तान् विषहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः२१
यावत्तु शक्यते कर्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत् कुर्वंति कौरवाः॥२२
यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसंकटम्।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं शृणु तत्त्वतः॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सञ्जयवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

---

रागो मात्सर्यं 'रागस्तु मात्सर्ये लोहितादिषु' इति **मेदिनी** ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

**हंतेति** ॥ १ ॥ ते तव बुद्धेर्व्यभिचारं वैषम्यं उपलप्स्यन्त्यनुभविष्यन्ति ॥ ७ ॥ मन्यते बहुमन्यते ॥ ११ ॥ अपवृत्तं सांशयिकं यद्येवं न करिष्यति तर्हि ॥ १४ ॥ अन्तरज्ञैरवसरवेदिभिः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

सञ्जय उवाच ।
तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद्व्यूहितुं ततः
शूराणां गर्जतां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम्
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम्॥२
विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन् क्वेदानीं स धनञ्जयः
विकोशान् सुत्सरूनन्ये
कृतधारान् समाहितान् ।
पीतानाकाशसंकाशा-
नसीन् केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४
चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च
धनुर्मार्गांश्च शिक्षया ।
संग्राममनसः शूरा
दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५
सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः
समुत्क्षिप्य गदाश्चान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम्
अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः ।
चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ७
नानाप्रहरणैश्चान्ये विचित्रस्रगलङ्कृताः ।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८
क्वार्जुनः क्व स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा ॥ ९
ततः शंखमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम्
इतस्ततस्तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः १०
तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु ।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत्॥ ११
त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः ।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा १२
शतं चाश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट् ।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश॥१३
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः ।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत १४
तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव

एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः
संप्रायात् सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः॥१६
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः
चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः१७
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैकसप्त साहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः॥
मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम्
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्यमानो व्यवस्थितः॥
ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ
दीर्घो द्वादश गव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः॥२२
नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्वगजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् २३
पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः॥२५
अनन्तरं च कांबोजो जलसन्धश्च मारिष ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६
ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम्॥
तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः२८
शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम्२९
श्वेतवर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः
पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन्
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥

---

८७

तस्यामिति ॥ १ ॥ पीतान् पायितोदकान् ॥४॥ क्व चेति चकार इत्यर्थे इत्याह्वयन्त इत्यन्वयः ॥ ९ ॥ त्रिमात्रासु त्रिसंख्यासु तिसृष्वित्यर्थः ॥ १४ ॥ पश्चार्धे पश्चाद्भागे पञ्चगव्यूतिः चक्रशकटः चक्रगर्भः शकटः २२॥

सशैलसागरवनां
नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद्व्यूहः क्षितिं सर्वा-
मिति भूतानि मेनिरे ॥

बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं
प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।
अहितहृदयभेदनं महद्वै
शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा॥ ३४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

सञ्जय उवाच ।
ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदंगेषु नदत्सु च ॥ १
अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने
प्रध्मापितेषु शंखेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥ २
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।
रौद्रे मुहूर्ते संप्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३
बलानां वायसानां च पुरस्तात् सव्यसाचिनः
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४
मृगाश्च घोरसंनादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५
सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते॥
विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करकर्षिणः
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७
नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९
अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत्
अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम्।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥११
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाश्मनि ॥ १२
तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकांक्षिणः ।
युध्यामि संहतानेतान् यशो मानं च वर्धयन्
एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन् महेष्वासो व्यवस्थितः॥
ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः
शूलपाणिरिवाक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्प्रधक्ष्यन्वै पुनः प्रजाः
क्रोधामर्षबलोद्भूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतं
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वंगदश्चारुकुण्डलः ॥
रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
विधुन्वन् गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः
सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः ।
व्यवस्थाप्य रथं राज-
ञ्शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २०
अथ कृष्णोऽप्यसंभ्रान्तः पार्थेन सह मारिष
प्राध्मापयत्पाञ्चजन्यं शंखप्रवरमोजसा ॥२१
तयोः शंखप्रणादेन तव सैन्ये विशांपते ।
आसन् संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः२२
यथा त्रस्यन्ति भूतानि
सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
तथा शंखप्रणादेन
वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३

---

अद्भुतानुरूपमाश्चर्यरूपमेतत्समययोग्यं च ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

**तत इति** ॥ १ ॥ अभिहारयत्सु सन्नह्यमानेषु अभियुज्यमानेषु वा प्रहरत्स्विति केचित् ॥ ३ ॥ शतैःशतैर्दशसहस्रैः ॥ ९ ॥ जयो नाम्ना ॥ १७ ॥

प्रसुस्नुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद्बलम् ॥ २४
सीदन्ति स्म नरा राजन् शंखशब्देन मारिष
विसंज्ञाश्चाभवन्केचित् केचिद्राजन् वितत्रसुः
ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
अकरोद्व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान्
ततः शंखाश्च भेर्यश्च मृदंगाश्चानकैः सह ।
पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७
नानावादित्रसंन्हादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः
सिंहनादैः समुत्कुष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत् पाकशासनिः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशे अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८ ॥

## ८९

अर्जुन उवाच ।
चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः
एतद्भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम्
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २
स संप्रहारस्तुमुलः संप्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३
ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥४
ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन् बाणजालैस्तत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥५
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थःकायेभ्योऽपाहरच्छरैः
उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः संदष्टौष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुंडलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७
पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समंततः ।
विनिकर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे८
तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः॥९
शिरसां पततां राजन् शब्दोऽभूद्वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव॥१०
ततः कबन्धं किञ्चित्तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किंचित् खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति
पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः१२
हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत१३
अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत्॥१४
अन्योन्यमपि चाजघ्नुरात्मानमपि चापरे ।
पार्थभूतममन्यन्त जगत् कालेन मोहिताः १५
निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराःकीर्तयन्तः स्वबांधवान्
सभिंदिपालाःसप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
महाभुजगसंकाशा बाहवः परिघोपमाः ॥१८
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संवेष्टन्ति च सर्वशः ।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः१९
यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः ।
तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति २०
नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा ।
न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददर्शोऽन्तरमण्वपि॥२१

समाधूतैः सञ्चालितैः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

चोदयाश्वानिति ॥ १॥ निर्व्यूहो यूपिका आयुधविशेषः ॥ १७ ॥ प्रतिसंचरते प्रत्युद्गच्छति ॥ २० ॥

यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् ।
लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः॥
हस्तिनं हस्तियन्तार-
मश्वमाश्विकमेव च ।
अभिनत् फाल्गुनो बाणै
रथिनं च ससारथिम् ॥ २३
आवर्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किञ्चिन्न निहन्ति सः॥
यथोदयन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः ।
तथाऽर्जुनो गजानीकमवधीत् कङ्कपत्रिभिः ॥
हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः२६
यथा मध्यन्दिने सूर्यो
दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
तथा धनञ्जयः क्रुद्धो
दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७
तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परंतप ।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ २८
मारुतेनेव महता
मेघानीकं व्यदीर्यत ।
प्रकाल्यमानं तत् सैन्यं
नाशकत् प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९
प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चार्जुनार्दिताः॥३१
पार्ष्ण्यङ्गुष्ठांकुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
शरैः संमोहिताश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययुः ॥
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा३२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे
एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## ९०

धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिन् प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥ १
आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तं प्राकारमकुतोभयम् २
सञ्जय उवाच ।
तथाऽर्जुनेन संभग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३
पाकशासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः।
न तत्र कश्चित्संग्रामे शशाकार्जुनमीक्षितुम्४
ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यं तथागतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात्
स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६
नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत्
ह्रादेन गजघण्टानां शंखानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम्॥८
भूर्दिशश्चान्तरिक्षं च शब्देनासीत् समावृतम्
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९
तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्ण-
मङ्कुशैरभिचोदितान् ।
व्यालम्बहस्तान् संरब्धान्
सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १०
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः ।
गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः॥११
महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम् ।
किरीटी तद्गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा१२

---

यत्तस्य अवहितस्य ॥२२॥ द्रुतं विद्रुतम् । आविग्नं भीतम् । ॥ २८ ॥ साधुवाहितैः सुष्ठुव्यापारितैः ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

**तस्मिन्निति** ॥ १ ॥ पलायने कृतः क्षणोऽवसरो येन ॥ ३ ॥ प्रतिभयो भयंकरः दारुणः क्रूरः ॥ ९ ॥

काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये ।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरंजयः ॥ १३
खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्कृष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥१४
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥
ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णै-
र्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः
सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७
आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ १८
अपरे दन्तवेष्टेषु कुंभेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १९
गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
च्छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥
सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥२१
यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥२२
केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः ॥
मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २५
न संदधन्न चाकर्षन्न विमुञ्चन्न चोद्वहन् ।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन् पार्थः स्म दृश्यते ॥
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ २८
सचापाः सांगुलित्राणाः
सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना
हेमाभरणभूषिताः ॥ २९
सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३०
चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२
एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।
संप्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३
ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकांक्षन् शकटव्यूहमभ्यगात् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

संजय उवाच ।
दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत्
स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम्
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत्
शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम्
भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४
अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयाऽनघ ॥
तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५

---

काष्ठातीतोऽतिक्रान्तदिङ्नियमः ॥ १३ ॥ दन्तवेष्टेषु दन्तमूलेषु कटेषु काटेषु ॥ १९ ॥ निवेदनमुपाहारम् २१॥ यन्त्रबद्धा यन्त्रैरालिखिताः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

दुःशासनेति ॥ १ ॥

तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः
एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिम् ॥
ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्यावार्य सायकैः
द्रोणमभ्यद्रवद्बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९
विव्याध चरणे द्रोणमनुमान्य विशांपते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥१०
तस्येषूनिषुभिश्छित्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥
इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥
द्रोणः शरैरसंभ्रान्तो
ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् ।
विव्याध च हयानस्य
ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३
अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्धनुः १४
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
मुमोच षट्शतान् बाणान् गृहीत्वैकमिव द्रुतं
पुनः सप्तशतानन्यान् सहस्रं चानिवर्तिनः ।
चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन् द्रोणस्य तां चमूं
तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः १७
विसूताश्वध्वजाः पेतुः
सञ्छिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः
सहसा शरपीडिताः ॥ १८
चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् १९
पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २०
रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः
तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं
कुरुप्रवीरान् युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः
प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन् ॥ २२
अथात्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् २३
स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः
द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चास्य त्रिभिः शरैः
विशेषयिष्यन् शिष्यं च
द्रोणो राजन् पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे
निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६
प्रसक्तान् पततोऽद्राक्षम
भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवास्य
धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २७
तेऽभ्ययुः समरे राजन् वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २८
तद्दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् २९
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत्
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।
पार्थश्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद्विसृजञ्शरान् ३२
ततोऽब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे ॥ ३३
अर्जुन उवाच ।
गुरुर्भवान्न मे शत्रुः
शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके
यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३४
सञ्जय उवाच ।
एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ३५
तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम्

---

गिर्यग्राम्बुदवेश्मनां वज्रानिलहुताशनैः चूर्णिताक्षिप्तदग्धानाम् इति यथासंख्यनान्वयः ॥१९॥ कार्यवत्तां कृत्यबाहुल्यम् ॥२९॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥ ३७
तेषां दश सहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥
मावेल्लका ललित्थाश्च
केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः
काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३९
कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसंमताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति४०
पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान् सन्नद्धं चित्रयोधिनम्
गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥
जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितं

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

## ९२

सञ्जय उवाच ।
सन्निरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १
किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान्
स रश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत् सैन्यं
देहं व्याधिगणो यथा ॥ २
अश्वो विद्धो रथश्छिन्नःसारोहःपातितो गजः
छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः॥
विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्तानि समंततः ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४
तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः ।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत्॥
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसंगरः॥
अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥
तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८
*तस्याशुक्षिप्तान् भल्लान्हि भल्लैः सन्नतपर्वभिः
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥९
तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि ।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद्यदर्जुनः ॥ १०
क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११
अर्जुनः शरवर्षं तद्ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान्निशातयन्१२
द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः॥१३
पार्थस्तु प्रहसन् धीमानाचार्यं सशरौघिणम्
विसृजन्तं शितान् बाणानवारयत तं युधि१४
अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम्१५
वर्जयन्निशितान्बाणान्द्रोणचापविनिःसृतान्
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत्
सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम्
अभ्ययाद्वर्जयन् द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् १७
ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् ।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रो दशभिः कंकपत्रिभिः ॥
तमर्जुनः शतेनाजौ राजन् विव्याध पत्रिणां
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् १९

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * तस्याशु क्षिपतो भल्लान् इति पाठः ।

९२

**सन्निरुद्ध इति** ॥ १ ॥ तेषां संयच्छतां विधारयताम् ॥ ५ ॥ आचार्यकं शिक्षाम् ॥ १० ॥

भोजस्तु प्रहसन् पार्थं वासुदेवं च माधवम् ।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्२०
तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसन्निभैः२१
अथान्यद्धनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥
पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥२३
दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो
न नः कालात्ययो भवेत् ।
ततः कृष्णोऽब्रवीत् पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम्
कुरु संबन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय॥२५
ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वाऽर्जुनः शरैः ।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीं
अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
विधुन्वन्सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥ २८
तावविध्यत्ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् २९
तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ३०
सञ्चिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ।
अथान्यद्धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ।
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः
तेनान्तरेण बीभत्सुर्विवेशामित्रवाहिनीम् ।
न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा॥३३
धार्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ ।
अनीकान्यर्दयन् युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः३४
नावधीत् कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः ।
तं दृष्ट्वा तु तथा यान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद्धनुः ।
स पार्थं त्रिभिरानर्छत् सप्तत्या च जनार्दनम्
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् ।
ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम्॥
आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।
स तन्न ममृषे राजन् पाण्डवेयस्य विक्रमम्॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् ।
तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ।
अथान्यद्धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्छितः॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥४१
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ।
अश्वांश्चास्यावधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः४२
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः
हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः४३
अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।
तस्य माताऽब्रवीद्राजन् वरुणं पुत्रकारणात् ॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।
वरुणस्त्वब्रवीत् प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम्
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनावध्यो भविष्यति ।
नास्ति चाप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथञ्चन४७
सर्वेणावश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ।
दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥४८
अस्त्रस्यास्य प्रभावाद्धि व्येतु ते मानसो ज्वरः
इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद्गदां मन्त्रपुरस्कृताम्॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः ।
उवाच चैनं भगवान् पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५०
अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ५१
न चाकरोत् स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ५२
प्रतिजग्राह तां कृष्णः
पीनेनांसेन वीर्यवान् ।
नाकम्पयत शौरिं सा
विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ५३
प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।
जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४
हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत ।
गदां निवर्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ५५
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।
स्वेनास्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ५६

रथेषुभिः अदूरस्थायिभिर्बाणैः ॥ २८ ॥ कृत्या आभिचारदेवता ५४

अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाथ तस्मात्तमवधीद्गदा ॥५७
यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम्५८
पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः॥ ५९
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ६०
ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१
तस्य पार्थः शरान् सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम्॥
सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे
अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः६३
वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां
तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा
सिंहनादमथानदत् ॥ ६५
सर्वपारशवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
स घण्टां प्राहिणोद्घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने
सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम्
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले६७
शक्त्या त्वभिहतो गाढं
मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
समाश्वास्य महातेजाः
सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ६८
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः
रथं चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसंकल्पविक्रमम्॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ।
स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१
पपाताभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ।
गिरेः शिखरजः श्रीमान् सुशाखः सुप्रतिष्ठितः
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये।
शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः
महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः॥
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः।
धारयन्नग्निसंकाशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम्
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम्७६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

सञ्जय उवाच ।
हते सुदक्षिणे राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव१
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजन् शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥ २
तेषां षष्टिशतानन्यान्
प्रामथ्नात् पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते
व्याघ्रात् क्षुद्रमृगा इव ॥ ३
ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान् युधि४
तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चापि धनञ्जयः५
शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा६
अभ्रच्छायेव चैवासीत् ध्वांक्षगृध्रबलैर्युधि ।
तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनञ्जयमयुध्यताम् ॥ ७

---

ध्वजः शक्रध्वजः ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३

हते इति ॥ १ ॥

बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ
कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि
सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९
तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटाकं जलदौ यथा ॥१०
श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन् केशवं रणे ॥ १२
एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥
क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनञ्जयम्१५
कृष्णश्च भृशसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत्सु हृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम्॥
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७
स चक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १८
प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९
संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन् सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम्

ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ
ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः
पार्थबाणविदारिताः ॥ २२

प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव
योधयन् वै महारथान् ॥ २३
तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४
श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत्समुद्रस्येव शोषणम् २५

तयोः पदानुगान् हत्वा
पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद्भारतीं सेनां
निघ्नन् पार्थो वरान् वरान् ॥ २६

श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम्
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत २७
पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान्बाणान्पितृव्यसनकर्शितौ

तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
प्रैषयत् परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९
लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाशक्नुवन्वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३०
अंगास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।

क्रुद्धाः सहस्रशो राजन्
शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥ ३१

दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च
कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२

तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो
बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३

तैः शिरोभिर्मही कीर्णा
बाहुभिश्च सहाङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४

बाहवो विशिखैश्छिन्नाः
शिरांस्युन्मथितानि च ।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥३५

शरैः सहस्रशो विद्धा
द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव३६

निहताः शेरते स्मान्ये
बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः॥३७

---

विचेरुरित्यत्र ताभ्यां मुक्तांश्च सायकानिति प्रथमान्ततयाऽनुपठ्यते ॥ २२ ॥

नानावेषधरा राजन् नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणानुलिप्ताङ्गा
भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८
शोणितं निर्वमन्ति स्म
द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः
चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव मम्रृदुर्गजाः ४०
सान्तरायुधिनश्चैव द्विपांस्तीक्ष्णविषोपमाः ।
विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः॥ ४१
यवनाः पारदाश्चैव
शकाश्च सह बाल्हिकैः ।
काकवर्णा दुराचाराः
स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२
द्राविडास्तत्र युध्यन्ते
मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः
कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३
दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः ।
ते न शक्याः स्म संख्यातुं
व्राताः शतसहस्रशः ॥ ४४
अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः ।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः
तेषामपि ससर्जाशु शरवृष्टिं धनञ्जयः ।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवायतिः
अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः ।
मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान्
म्लेच्छानशातयत्सर्वान् समेतानस्त्रतेजसा ।
शरैश्च शतशो विद्धास्ते संघा गिरिचारिणः
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ४८
गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितै शरैः
बकाः कंका वृका भूमावपिबन् रुधिरं मुदा ।
पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ॥४९
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम्५०
छिन्नाङ्गुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसन्निभां
प्राकरोद्गजसंबाधां नदीमुत्तरशोणिताम्५१
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।
यथास्थलं च निम्नं च न स्याद्वर्षति वासवे ॥
तथासीत् पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता।
षट्सहस्रान्हयान्वीरान् पुनर्दशशतान् वरान्
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय
क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
शरैः सहस्रशो विद्धा
विधिवत्कल्पिता द्विपाः ॥ ५४
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।
सवाजिरथमातङ्गान्निघ्नन् व्यचरदर्जुनः ॥ ५५
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृदून्नलवनं यथा ।
भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः५७
शरार्चिरदहत् क्रुद्धः
पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः ।
शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान्
मानवैः संस्तरन् महीम् ॥ ५८
प्रानृत्यदिव संबाधे चापहस्तो धनञ्जयः ।
वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम्॥५९
प्राविशद्भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनञ्जयः ।
तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत्॥६०
तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयान् शीघ्रं यतमानस्य मारिष ६१
धनुश्चास्यापरैश्छित्त्वा शरैः पार्थो विचक्रमे।
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।
ततः संप्रहरन् वीरो गदामुद्यम्य भारत॥ ६३
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ।
गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोम्बष्ठं प्रति भारत
ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।
अथापरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ६६
अचूर्णयत् तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्यान्यां च महागदाम्
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।
तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥

गोयोनिप्रभवा नन्दिन्यां जाताः॥४३॥सृष्टिः संसृष्टिः॥४६॥ जटिलाननान् जटिलानि रूढश्मश्रूण्याननानि येषाम्॥४७॥प्रच्छन्नेन प्रच्छादनेन कृतो रचितः संक्रमो यस्याम् ॥४९॥ उत्तरशोणितां शोणितप्रधानाम् ॥५१॥ हयान् अश्वारोहान् ॥५३ ॥

चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा
स पपात हतो राजन् वसुधामनुनादयन्॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः।
रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवावृतः॥५७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

## ९४

सञ्जय उवाच।
ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम्
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन् सुदक्षिणे
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समंततः।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात्॥ ३
त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत्।
गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम्॥४
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किंनु कार्यमनन्तरम्।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिन् जनक्षये
यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः
असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः।
सेनाकक्षं दहति मे वन्हिः कक्षमिवोत्थितः
अतिक्रान्ते हि कौन्तेये
भित्त्वा सैन्यं परंतप।
जयद्रथस्य गोप्तारः
संशयं परमं गताः॥ ८
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद्ब्रह्मविदां वर।
नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवं धनञ्जयः ९
योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते
सर्वं ह्यद्यातुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम॥ १०
जानामि त्वां महाभाग
पाण्डवानां हिते रतम्।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन्
कार्यवत्तां विचिन्तयन्॥ ११
यथाशक्ति च ते ब्रह्मन्
वर्तये वृत्तिमुत्तमाम्।
प्रीणामि च यथाशक्ति
तच्च त्वं नावबुध्यसे॥ १२
अस्मान्न त्वं सदा भक्ता-
निच्छस्यमितविक्रम।
पाण्डवान् सततं प्रीणा-
स्यस्माकं विप्रिये रतान्॥ १३
अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः।
न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरं
नादास्यच्चेद्वरं मह्यं भवान् पाण्डवनिग्रहे।
नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान्॥
मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्दत्तश्च मृत्यवे॥
यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येतापि हि मानवः।
नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताजौ जयद्रथः१७
स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः।
मम चार्तप्रलापानां मा क्रुधः पाहि सैन्धवम्
द्रोण उवाच।
नाभ्यसूयामि ते वाक्य-
मश्वत्थाम्नाऽसि मे समः।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि
तज्जुषस्व विशांपते॥ १९
सारथिः प्रवरः कृष्णः
शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः।
अल्पं च विवरं कृत्वा
तूर्णं याति धनञ्जयः॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

९४

तत इति॥ १॥ आतुरमनत्राधितम्॥ १०॥ नावबुध्यसे न स्मरसि॥ १२॥ नेच्छसि नानुरुध्यसे १३॥

किं न पश्यसि बाणौघान्
क्रोशमात्रे किरीटिनः ।
पश्चाद्रथस्य पतितान्
क्षिप्तान्शीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१
न चाहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसाऽन्वितः ।
सेनामुखे च पार्थानामेतद्बलमुपास्थितम् ॥ २२
युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३
धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे नृप ।
तस्माद्व्यूहमुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनं
तुल्याभिजनकर्माणं
शत्रुमेकं सहायवान् ।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं
त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५
राजा शूरः कृती दक्षो नेतुं परपुरञ्जयः ।
वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २६
दुर्योधन उवाच ।
कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम्
धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥
अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः ।
नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥ २८
येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः ।
अस्त्रप्रतापेन जितौ श्रुतायुश्च निबर्हितः ॥ २९
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चायुतशो हताः
तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम् ।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥
क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाद्य संयुगे ।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद्रक्ष मद्यशः ॥ ३२
द्रोण उवाच ।
सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः ।
अहं तु तत्करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ३३
अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः ।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥
एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् ।
यथा न बाणा नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे
यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।
योधयन्ति त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते भयं
न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृद्रणे
शरानर्पयितुं कश्चित् कवचे तव शक्ष्यति ३७
स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वाऽसौ विसहिष्यति
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः स्पृष्ट्वाम्भो वर्म भास्वरम्
आबबन्धाद्भुततमं जपन्मन्त्रं यथाविधि ॥
रणे तस्मिन् सुमहति विजयस्य सुतस्य ते ।
विसिस्मापयिषुर्लोकान् विद्यया ब्रह्मवित्तमः
द्रोण उवाच ।
करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म* ब्रह्मा चापि द्विजातयः
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत
ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥
स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥
स्वाहा स्वधा शची चैव
स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
लक्ष्मीररुन्धती चैव
कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४
असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥
धाता विधाता लोकेशो
दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छंतु
कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥ ४६
विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः
अधस्ताद्धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप ।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥
गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९
हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद्भीता महासुरात् ॥
देवा ऊचुः ।
प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम ।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥

---

च्चो यदर्थे । यदि धनञ्जयेनोत्सृष्टः प्रमुखे वर्तते तर्हि युधिष्ठिरो मे ग्राह्य इत्यन्वयः ॥ २४ ॥ ते त्वां ॥ ३५ ॥ चत्वार ऐरावतवामनाञ्जनसार्वभौमाः ॥ ४७ ॥ * ' ब्रह्मा स्वस्ति कुर्वन्तु ब्राह्मणाः ' इति पाठः ।

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान्
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान् सुरसत्तमान्
रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥
त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्यानुज्ञां महेश्वरात्
स तस्यैव प्रसादाद्वो हन्यादेव रिपुर्बली ।
नागत्वा शंकरस्थानं भगवान् दृश्यते हरः ॥
दृष्ट्वा ज्ञेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
यत्रास्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ।
ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मंदरम् ॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सोऽब्रवीत् स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहं
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ।
मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥

शर्व उवाच ।

विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः
अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसां
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ॥
बधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर ।
वधायासुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥ ६३

द्रोण उवाच ।

इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्वर्म तन्मन्त्रमेव च ।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद्वृत्रचमूं प्रति ॥ ६४
नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे ।
न संधिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु ॥
ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम् ।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददौ ॥
अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः
बृहस्पतिरथोवाच आग्निवेश्याय धीमते ॥
अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते ।
तवाद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम् ।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९
ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत ।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥
यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये ।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥
बद्ध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥
स सन्नद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना ।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्तानां प्रहारिणाम्
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम्
अश्वानां नियुतेनैव तथाऽन्यैश्च महारथैः ॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति ।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥
ततः शब्दो महानासीत् सैन्यानां तव भारत
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥७६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## ९५

सञ्जय उवाच ।

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे ।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १
जवेनाभ्यद्रवद्द्रोणं महता निःस्वनेन च ।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥२

अनुज्ञां वरम् ॥ ५४ ॥ हन्याद्धन्तुमर्हति ॥ ५५ ॥ मानसेन मनसोच्चारणीयेन ॥ ६३ ॥ ब्रह्मसूत्रेण ब्रह्मणा सूचितेनोपदेशेन ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

९५

प्रविष्टयोरिति ॥ १ ॥

तद्युद्धमभवत् तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम्।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम्
राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ्न च श्रुतं
यादृङ्मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशांपते॥ ४
धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन्॥
वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
पार्षतप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः॥
महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते॥ ७
समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम्।
जाह्नवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके॥ ८
नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान्॥
भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान्।
अभ्यवर्षं महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम्॥
समुद्रमिव घर्मान्ते विशन् घोरो महानिलः
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः
तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन्।
बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव
वारयामास तान् द्रोणो
जलौघमचलो यथा।
पाण्डवान् समरे क्रुद्धान्
पञ्चालांश्च सकेकयान्॥ १३
अथापरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः।
महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन्॥
ततो रणे नरव्याघ्र पार्षतः पाण्डवैः सह।
सञ्जघानासकृद्द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम्॥
यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्षत॥ १६
सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः॥१७
शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत् सर्वतो दिशम्
निघ्नन् रथवराश्वौघान् प्लावयामास वाहिनीं
यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः॥ १९
तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत॥ २०
भोजमेकेऽभ्यवर्तन्त जलसन्धं तथाऽपरे।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवापरे ययुः॥ २१
संघट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः२२
धार्तराष्ट्रास्तथा भूना वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव॥
कालः स्म ग्रसते योधान्
धृष्टद्युम्नेन मोहितान्।
सङ्ग्रामे तुमुले तस्मि-
न्निति संमेनिरे जनाः॥ २४
कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्ष-व्याधि-तस्करैः।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी २५
अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा॥२६
त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान् व्यधमच्छरैः
मृदूनतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः २८
रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशांपते।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः॥ २९
पाण्डवानां तु सैन्येषु
नास्ति कश्चित् स भारत।
दधार यो रणे बाणान्
द्रोणचापच्युतान् प्रभो॥ ३०
तत् पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम्।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत॥ ३१
तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव।
अभवत् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना३२
बाध्यमानेषु सैन्येषु
द्रोण-पार्षतसायकैः।
त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या
युध्यन्ते सर्वतोमुखाः॥ ३३
तावकानां परेषां च
युध्यतां भरतर्षभ।
नासीत् कश्चिन्महाराज
योऽत्याक्षीत् संयुगं भयात्। ३४
भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन्।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः॥ ३५

हिमात्यये शिशिरे सेनाग्रे प्रधाने सेने॥ ७॥ प्लावयामास विद्रावितवान्॥ १८॥ अपाकर्षत व्यावर्तितवान्॥ १९॥ संघट्टयति संमलयति॥ २२॥

विन्दानुविन्दावावंत्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान्
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः॥ ३६
बाल्हीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत्॥३७
शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत्॥
अजातशत्रुं कौन्तेयं
ज्वलन्तमिव पावकम्।
मद्राणामीश्वरः शल्यो
राजा राजानमावृणोत्॥ ३९
दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः।
सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि॥४०
स्वकेनाहमनीकेन सन्नद्धः कवचावृतः।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम्॥ ४१
शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत्।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
विराटं मत्स्यमार्च्छताम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ
मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ॥ ४३
शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम्।
बाल्हीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत्॥
धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः।
आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत्॥४५
घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम्।
अलायुधोऽद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे॥ ४६
अलंबुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत्॥ ४७
सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत् सर्वसैन्यस्य भारत।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः॥ ४८
तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन् सूतपुत्रश्च वामतः ४९
पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् सौमदत्तिपुरोगमाः।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः॥ ५०
नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः॥ ५१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

## ९६

सञ्जय उवाच।
राजन् संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत॥ १
भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम्।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः
रक्षमाणः स्वकं व्यूहं
द्रोणोऽपि सह सैनिकैः।
अयोधयद्रणे पार्थान्
प्रार्थमानो महद्यशः॥ ३
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ॥ ४
विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ॥
तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम्।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने
बाल्हीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः
बाल्हीको याज्ञसेनिं तु हेमपुंखैः शिलाशितैः
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः॥ ८
तद्युद्धमभवद्घोरं शरशक्तिसमाकुलम्।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम्॥ ९
ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा।
अभवत् संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन॥१०
शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम्।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा११

---

काश्यस्य काशिराजस्य॥३८॥ आवन्त्योऽन्यः॥४५॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥९५

९६

राजन्निति॥ १॥

बाल्हीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महारथान्
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन् रणे॥१२
अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद्देहवतां वर ॥ १३
वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः॥ १४
सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना।
ईषन्मूर्च्छां जगामाशु सात्यकिः सत्यविक्रमः
समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः॥
तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ१७
अलंबुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः॥
कुन्तिभोजं ततो रक्षो विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
अनदद्भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १९
ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजंभौ यथा पुरा॥ २०
शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैरार्दयतां भृशम् २१
तुमुलः स महान् राजन् प्रावर्तत जनक्षयः ।
त्वया संजनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः॥
रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
य इमां पृथिवीं राजन् दग्धुं सर्वां समुद्यतः
शकुनिः पांडुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
न स्म जानाति कर्तव्यं युद्धे किंचित्पराक्रमं
विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५
स वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
संप्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः॥ २६
घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
अभ्ययाद्रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् २७
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८
ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे ।
विद्ध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः
ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
यथा पूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३०
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः
अयोधयन् भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ३१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

## ९७

सञ्जय उवाच ।
तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधाभूतान् पांडवाः समुपाद्रवन्
जलसन्धं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २
किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३
ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम्
संक्षये तु तथाभूते वर्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥ ५
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
यदक्षिपत् पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाभवत् ६
पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः
विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ८
तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ९

---

हुताशनः प्रावर्ततेत्यनुषज्यते ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

९७

तथेति ॥ १ ॥

कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः
असिवर्माणि चापानि
शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां
संप्रहारे महात्मनाम् ॥ ११
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ १२
गृध्राः कङ्का बकाः श्येना
वायसा जम्बुकास्तथा ।
बहुशः पिशिताशाश्च
तत्रादृश्यन्त मारिष ॥ १३
भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चापि शोणितम्
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप १४
आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः १५
कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा १६
असिमार्गान् बहुविधान्
विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः
शूल-तोमर-पट्टिशैः ॥ १७
गदाभिः परिघैश्चान्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः १८
रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः १९
क्षीबा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः
उच्चुक्रुशुरथान्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २०
वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशांपते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् २१
ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२
पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणाविमिश्रिताः ।
हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः २३
धृष्टद्युम्नस्तु संप्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्माऽऽददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् २५
अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसन्नहनेषु च ।
जघानार्धेषु चाश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन्
खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शान्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् २७
यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥
ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः २९
हयांश्चैव चतुःषष्ट्या
शराणां जघ्निवान् बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां
तथा तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३०
अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम्
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ३१
तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ३२
सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः
सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत्
ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृञ्जयान्
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे
ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः ।
सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ३६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे
सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

---

कुञ्जराश्वनरानिति काकाक्षिवदुभयत्र यथाविभक्ति संबध्यते ॥ १० ॥ युगसन्नहनेषु युगबन्धेषु ॥ २६ ॥ अवाक्षिपन् अपनीतवन्तः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

## ९८

धृतराष्ट्र उवाच ।
बाणे तस्मिन्निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥ १
अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद्युधि ॥ २
सञ्जय उवाच ।
संप्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः
तीक्ष्णधारेषुदशनः सितनाराचदंष्ट्रवान् ३
संरंभामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन् ।
नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४
उत्पतद्भिरिवाकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम् ।
रुक्मपुंखाञ्छरानस्यन्युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५
शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम् ।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७
दृष्ट्वैवाभिपतन्तं तं शूरः परपुरंजयः ।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥ ८
एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवास्थितम् ।
आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् १०
ततो रजतसंकाशा माधवस्य हयोत्तमाः ॥
द्रोणस्याभिमुखाः शीघ्रमगच्छन् वातरंहसः
ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परंतपौ ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२
इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३
मेघाविवातपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥
इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवान्येषां शूराणामभवत्तदा ॥ १५
अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥
नान्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।
इषूणां संनिपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।
नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।
तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥
अजस्रं शैलशृंगाणां वज्रेणाहन्यतामिव ।
उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाश्वास्तौ च सारथी
रुक्मपुंखैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।
निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशांपते ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत्सुदारुणः
उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ २२
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।
स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।
गर्जितोत्क्रुष्टसन्नादाः शंखदुन्दुभिनिःस्वनाः
उपारमन्महाराज व्याजहार न कश्चन ।
तूष्णींभूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन्
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।
रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥
अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।
हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनां
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।
मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ॥
वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्धसु ॥ ३०
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ॥
अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः
तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥
विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥

---

९८

**बाणे इति** ॥ १ ॥ कार्मुकाकर्ष एव विक्षेप आसारप्रसाधनं यस्य ॥ ६ ॥ अन्तरमवच्छेदः ॥ १७ ॥ रथवाहिन्यो रथसेनाः ॥ २८ ॥ वैजयन्तीविलक्षणाभिः पताकाभिः परिस्तोमैर्वर्णकम्बलैः अङ्गकम्बलैः सूक्ष्मकम्बलैः २९॥ ऐरावतमिंद्रधनुः 'ऐरावतोभ्रमातङ्गैः' इत्युपक्रम्य ' नपुंसकं महेन्द्रस्य ऋजुर्दीर्घशरासने ' इति **मेदिनी** ॥ ३१ ॥ उष्णस्य पर्याये अपगमे वागुराः जालानि समूहा इति यावत् ॥ ३२ ॥

सिद्धचारणसङ्घाश्च विद्याधरमहोरगाः ॥
गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥ ३४
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ॥
हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५
अन्योन्यमभिविध्येतां
शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।
ततो द्रोणस्य दाशार्हः
शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।
निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ३७
सज्यं चकार तदपि
चिच्छेदास्य च सात्यकिः ।
ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो
धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८
सज्यं सज्यं धनुश्चास्य
चिच्छेद निशितैः शरैः ।
एवमेकशतं छिन्नं
धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९
न चान्तरं तयोर्दृष्टं
सन्धाने छेदनेऽपि च ।
ततोऽस्य संयुगे द्रोणो
दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ ४०
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।
एतदस्त्रबलं रामे कार्तवीर्ये धनञ्जये ॥ ४१
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
तं चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम्
लाघवं वासवस्येव संप्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
तुतोषास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः
न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।
देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशांपते ४४
सिद्धचारणसङ्घाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो
योधयामास भारत ।
तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः
प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥ ४६
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरसमं रणे ॥ ४७
युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ।
यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवास्यति सात्यकिः
तमाचार्योऽथ संभ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः
ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ४९
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।
तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५०
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।
हाहाकारो महानासीद्दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ
न विचेरुस्तदाकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ।
अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्तदथ भास्करः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।
धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा
दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ५५
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।
ततो युद्धमभूद्राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।
सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्तत ५७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे
अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

---

प्रत्यागतं निवर्तनं आक्षेपः प्रहरणम् ॥ ३४॥ आलक्षयामासुर्लक्षितवन्तः ॥ ४४ ॥ विदुर्नेत्यनुषज्यते ॥ ४५ ॥ योगेन युक्त्या ॥४८॥ न यावदभ्यपद्येतां यावदेवन पराभूते व्यावर्तन्मध्यान्हतः परावृत्तोऽभूत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

# ९९

सञ्जय उवाच ।

विवर्तमाने त्वादित्ये तत्रास्तशिखरं प्रति
रजसा कीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे १
तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः २
तथा तेषु विपक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३
रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४
यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशांपते ॥ ५
रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान्
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ६
ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसन्निभाः
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ७
वैणवाश्चायसाश्चोग्रा
ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं
प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८
रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान्
रथे क्रोशमतिक्रांते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान्
तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाहिभिः
तदागच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयन् जगत्
न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशांपते ।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ११
नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२
प्रविश्य तु रणे राजन् केशवः परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत १३
ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥
क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥
हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्च्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम्
तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम् ।
शराणां च शतेनाश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥
तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः १९
ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम् ।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥
तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः ।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ
अथान्ये धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा ।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२
तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनंजयः २३
तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः
जघानाश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ
ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरप्रेण न्यकृन्तत
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः २५
विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान्
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः॥ २६
अभ्यवर्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ।
गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः॥ २७
अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् ।
स्पृष्ट्वा नाकम्पयत् क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम्॥
तस्यार्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः
निचकर्त स संछिन्नः पपाताद्रिचयो यथा२९
ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन् पदानुगाः
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान्
तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये
तयोः सेनामतिक्रम्य कृच्छ्रादिव धनंजयः ।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥
तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन् पुनः ।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ३३
श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवं
सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४

---

९९

विवर्तमाने इति ।। १ ।। स्नायुनद्धाः सूक्ष्मचर्मग्रथिताः ।। ७ ।। क्रोशं क्रोशमुद्दिश्य ।। ९ ।। सूतौ सारथी पार्ष्णी पृष्ठरक्षौ।।२४।। अद्रिचयो गिरिशृङ्गम्।।२९।।

तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन् पुरुषर्षभः ।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ३५
शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः।
किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते३६
ब्रूहि कृष्ण यथा तत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा
भवन्नेत्रा रणे शत्रून् विजेष्यन्तीह पाण्डवाः
मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं निबोध मे ।
हयान् विमुच्य हि सुखं विशल्यान्कुरु माधव
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम्॥३९

अर्जुन उवाच ।

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम्॥ ४०

सञ्जय उवाच ।

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसंभ्रान्तो धनञ्जयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः
तमभ्यधावन्क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकांक्षिणः।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनञ्जयम्॥
तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान्॥
शस्त्राणि च विचित्राणि
क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैः पार्थं
मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४
अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः४५
तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत ।
यत्क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत्॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७
तत्रान्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशांपते ।
संघर्षेण महार्चिष्मान् पावकः समजायत४८
तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः
हयैर्नागैश्च संभिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्षणैः ॥ ४९
संरब्धैश्चारिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५०
शरोर्मिणं ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ५१
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च ।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्त्रिभिः समवारयत्५३

धृतराष्ट्र उवाच ।

अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे ।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः॥५४

सञ्जय उवाच ।

सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा॥
स पार्थः पार्थिवान् सर्वान्
भूमिस्थोऽपि रथस्थितान्
एको निवारयामास
लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६
ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
असंभ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ५७
उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेऽर्जुन ।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम्॥५८
इदमस्तीत्यसंभ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम्५९
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नांभः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६०
कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१
शरवंशं शरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
शरवेश्माकरोत् पार्थस्त्वष्टेवाद्भुतकर्मकृत् ६२
ततः प्रहस्य गोविन्दः
साधु साध्वित्यथाब्रवीत् ।
शरवेश्मनि पार्थेन
कृते तस्मिन् महात्मना ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

---

प्रगाढानां व्यवगाढानाम् ॥ ४८ ॥ शरा एवोर्मयो वेगा यस्य । 'ऊर्मिः स्त्रीपुंसयोर्वीच्यां प्रकाशे वेगभङ्गयोः' इति **मेदिनी** ॥ ५१॥ रथा एवोर्मयो भङ्गा यत्र ॥५२॥ वेलाभूतो मर्यादारूपः ॥ ५३ ॥ अलं पर्याप्तम् ॥ ५८ ॥ अभिहत्य खात्वा वाजिपानमश्वपानीयम् ॥ ५९ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णमित्यादि योग्यतया वर्णनम् ॥ ६० ॥ वंशः शालाधारकाष्ठं स्थूणा मध्यस्तंभः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनशततमोऽध्यायः॥ ९९ ॥

१००

सञ्जय उवाच ।
सलिले जनिते तस्मिन् कौन्तेयेन महात्मना
निस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि १
वासुदेवो रथात् तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः ।
मोचयामास तुरगान् वितुन्नान् कङ्कपत्रिभिः
अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् ।
सिद्धचारणसङ्घानां सैनिकानां च सर्वशः ३
पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः ।
नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४
आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नासंभ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५
व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः
न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥
स तानि शरजालानि गदाः प्रासांश्च वीर्यवान्
आगतानग्रसत् पार्थः सरितः सागरो यथा॥
अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्तान् शरोत्तमान्
तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन् महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥
किमद्भुततमं लोके भविताऽप्यथवा ह्यभूत् ।
यदश्वान् पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥
भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥
अथ स्मयन् हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥ १२ ॥
उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशांपते
तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान्
सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥
शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां
परिमृज्य च तान् हयान् ।
उपावर्त्य यथान्यायं
पाययामास वारि सः ॥
स ताँल्लब्धोदकान् स्नातान्
जग्धान्नान् विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः
पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥
स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥
रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥
विनिःश्वसन्तस्ते राजन् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन् पृथक्
तत्सैन्यं सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाक्रन्दन्नैतदस्तीति चाब्रुवन् ।
सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ ॥
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥
क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परंतपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ।
तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा
तदाऽन्ये सैनिकाऽब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥
रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४
तत्र केचिन्मिथो राजन् समभाषन्त भूमिपाः
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद्दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५
सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥
विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ॥
इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवंत्यन्ये च भारत ॥२७
सिंधुराजस्य यत्कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत् करोतु वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।
ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति
विवर्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं
सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाशक्नुवन् वारयितुं
योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३०
विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान् सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत्

१००

सलिले इति ॥ १॥ पुरुषानति पुरुषेभ्योऽतिशयः । असंभ्रमत् उपसर्गात्पूर्वमाषोंऽट् ॥ ५॥ विदधतुर्दर्शितवन्तौ ॥ ११ ॥ उपावर्तयत् परिलोडितवान् ॥ १३ ॥ श्रमं मनःकायखेदं ग्लानिं बलापचयं वमथुं फेनोद्गमम् ॥ १४ ॥

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत्
कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन् पृष्ठतः शराः ॥
तूर्णात् तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन् वातरंहसः ॥
ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥३४
सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनोऽन्वयात्पार्थं त्वरमाणो महाहवे
वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन्
दिवाकरेऽथ रजसा
सर्वतः संवृते भृशम् ॥
शरार्ताश्च रणे योधाः
शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## १०१

सञ्जय उवाच ।
स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप ।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥
सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन्धनञ्जयम् ॥
ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः ।
तेऽद्यापि न निवर्तन्ते सिन्धवः सागरादिव
असन्तस्तु न्यवर्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः ।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम् ।
तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ।
मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत्
विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधा-
द्द्रोणानीकात् सुदुर्भिदात्
अदृश्येतां महात्मानौ
कालसूर्याविवोदितौ ॥
अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसंकटात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥८
विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शा-
न्मकरास्याज्झषाविव ॥
अक्षोभयेतां सेनां तौ
समुद्रं मकराविव ॥९॥
तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम्
तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती
नाशशंसुर्महाराज सिंधुराजस्य जीवितम् ॥
आशा बलवती राजन् सिन्धुराजस्य जीविते
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो
तामाशां विफलीकृत्य संतीर्णौ तौ परंतपौ
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम्
अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे
मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनञ्जयौ ॥ १५
असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसंप्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥
यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम्
इति कृष्णौ महाबाहू मिथः कथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥
अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्तमरिन्दमौ ॥
व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ

---

प्रावहन् अत्यक्रामन् ॥ ३३ ॥ धिष्ठितं किंचिद्वास्थितम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

**स्रंसन्त इति** ॥ १ ॥ अमर्षश्चिरानुबद्धः कोपः ३॥ प्रभाकरौ चन्द्रादित्यौ ॥ ५ ॥ मरुधन्वानं मरुस्थलम् १९

तथाहि मुखवर्णोऽयमनयोरेति मेनिरे।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ
विक्रोशन्ति स्म सर्वशः ॥ २१
द्रोणादाशीविषाकारा-
ज्ज्वलितादिव पावकात्।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च
भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२
विमुक्तौ सागरप्रख्याद्द्रोणानीकादरिंदमौ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥
अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात्
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे।
उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाचलौ
द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसंकटात्
अयःशरोग्रमकरात् क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद्गदानिस्त्रिंशविद्युतः।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥
बाहुभ्यामिव संतीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः
तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥
इति कृष्णौ महेष्वासौ यशस्वौ लोकविश्रुतौ
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥
जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम्
यथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरेति मेनिरे।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१
लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥
शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः।
तयोरासीत् प्रभा राजन् सूर्यपावकयोरिव ॥
हर्ष एव तयोरासीद्द्रोणानीकप्रमुक्तयोः।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥
तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्तमानमिवान्तिके
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषम्
तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनंजयौ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥
द्रोणेनाबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः।
ययावेकरथेनाजौ हयसंस्कारवित् प्रभो ॥ ३७
कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८
ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत्।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनंजयम् ॥ ३९
सिंहनादरवाश्चासन् शंखशब्दविमिश्रिताः।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥
ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः
ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१
दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम्
अब्रवीदर्जुनं राजन् प्राप्तकालमिदं वचः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमे
एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## १०२

वासुदेव उवाच।
दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनंजय।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥
दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान्

द्रोण एव ग्राहो यस्मिन् ह्रद इव ह्रदस्तस्मात् द्रोणानीकादित्यर्थः ॥ २६ ॥ द्रोणास्त्राण्येव मेघः ॥ २७ ॥ सिंधुः षष्ठो यासां ताश्च शतद्रुविपाशेरावतीचन्द्रभागावितस्ताः ॥ एता हि नितान्तदुस्तराः समुद्रगा इति सरितां विशेषणं महानदीत्वद्योतनार्थम् ॥ २८ ॥ प्रशस्तौ प्रकृष्टतमौ द्रोणास्त्रबलवारणविषयादतिशयनात् ॥ २९ ॥ अग्रतः प्रमुखे ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१०२

दुर्योधनमिति। नास्तीत्यर्जुनोत्तेजनम् ॥ १ ॥

तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४
अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसंभृतम् ।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५
सोऽयं प्राप्तस्तवाक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगं
दिष्ट्या त्विदानीं संप्राप्त एष ते बाणगोचरं
यथाऽयं जीवितं जह्यात् तथा कुरु धनञ्जय ॥
ऐश्वर्यमदसंमूढो नैष दुःखमुपेयिवान् ।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८
त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९
स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम्
जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः॥ १०
एष ह्यनर्थं सततं पराक्रान्तस्तवानघ ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥
बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येतेन मानद ।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥
तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामरूपिणम् ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन्
निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रमस्
दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्तते ।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः

दिष्ट्या जानाति संग्रामे
योद्धव्यं हि त्वया सह ।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ
सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥ १६

तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्तराष्ट्रं कुलाधमम् ।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जंभो देवासुरे मृधे ॥ १७
अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदं
वैरस्यास्यास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनः

सञ्जय उवाच ।

तं तथेत्यब्रवीत् पार्थः कृत्यरूपमिदं मम ।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९
येनैतद्दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम् ।
अप्यस्य युधि विक्रम्य छिन्द्यां मूर्धानमाहवे॥
अपि तस्य ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे २१
इत्येवंवादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान्हयोत्तमान्
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम्॥

तयोः समीपं संप्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥ २३
तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
यदर्जुन हृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत्॥२४
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशांपते ।
महानादो ह्यभूत्तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५
तस्मिन् जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति ।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६
आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना ।
संरम्भमगमद्भूयः स च तस्मिन् परंतपः ॥ २७
तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनञ्जयौ ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समंततः २८
दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष ।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चांबुजोत्तमौ॥३०
तौ हृष्टरूपौ संप्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ३१
शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते ।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२
तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः
जनस्य सन्निनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत्
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे॥
इत्युक्त्वा सैनिकान्सर्वान् जयापेक्षी नराधिपः
पार्थमाभाष्य संरंभादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५
पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च
तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना
यद्बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च ।
तत्कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥

आक्षेपं शरगोचरम् ॥ ६ ॥ कार्यस्य जयद्रथवधरूपस्य १५॥ कृत्यरूपमत्यन्तकरणीयम् ॥ १९ ॥ पदं प्रतिपदम् ॥ २१ ॥

अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते । स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ३८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## १०३

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वाऽर्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १
वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्त्वा भूमावपातयत् २
तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुंखैः शिलाशितैः ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणि ॥३
तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च ।
प्राहिणोन्निशितान्बाणांस्ते चाभ्रश्यंत वर्मणः
अष्टाविंशांस्तु तान् बाणा-
नस्तान् विप्रेक्ष्य निष्फलान् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नः
कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५
अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम् ।
त्वया संप्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः॥
कच्चिद्गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७
न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः
तव चैवास्य शत्रोश्च तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ८
विस्मयो मे महान्पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान्
व्यर्थान्निपतितान्संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९
वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः ।
शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ काऽद्य विडम्बना
अर्जुन उवाच ।
द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता
अभेद्या हि ममास्त्राणामेषा कवचधारणा ११
अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि ।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात्॥
न शक्यमेतत्कवचं बाणैर्भेत्तुं कथञ्चन ।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि १३
जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम्
यद्वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्तते ॥ १४
तथा भविष्यद्यच्चैव तत्सर्वं विदितं तव ।
न त्विदं वेद वै कश्चिद्यथा त्वं मधुसूदन॥ १५
एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् ।
तिष्ठत्यभीतवत्संख्ये बिभ्रत्कवचधारणाम् ॥
यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद्वेत्ति माधव ।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् १७
पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन ।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितम् १८
इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम् ।
तस्माद्बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरंदरः ॥ १९
पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम् ।
दैवं यद्यस्य वर्मैतद्ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम्॥ २०
नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया ।
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वाऽर्जुनो बाणानभिमन्त्र्य व्यकर्षयत्
मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना ।
विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥
तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना
तान्निकृत्तानिषून् दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना २३
न्यवेदयत् केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः ।
नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन २४
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम ।
ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः २५
अविध्यत रणे राजञ्छरैराशीविषोपमैः ।
भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६

---

स्वामिसत्कारो वीरप्रधानोऽयमिति यदन्यैः सत्कारणं तेन युक्तानि योग्यतां गतानि ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

१०३

**एवमिति** । एवमीदृशप्रभावम् ॥ १ ॥ युक्तामन्यप्रयुक्ताम् ॥१७॥ ससंग्रहं सोपदेशम् । दैवं देवैः कृतम् २०॥

शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।
चक्रुर्वादित्रनिनदान् सिंहनादरवांस्तथा २७
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन्।
नापश्यच्च ततोऽस्यांगं यन्न स्याद्वर्मरक्षितम्
ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः ।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥
धनुरस्याच्छिनत्तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान्
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥३०
दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतं
आविद्धयद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥३१
प्रयत्नज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः ।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२
तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः ।
समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशरार्दितम् ॥
तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः ।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३४
अथ नार्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३५
ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम्
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥
ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम् ।
स रथस्तंभितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥
ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत्
धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्मास्यामि चांबुजम्
ततो विस्फार्य बलवद्गांडीवं जघ्निवान् रिपून्
महता शरवर्षेण तलशब्देन चार्जुनः ॥ ३९
पाञ्चजन्यं च बलवान् दध्मौ तारेण केशवः।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मांतः प्रस्विन्नवदनो भृशम्॥
तस्य शंखस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च ।
निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः
तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाम्बुदः ॥
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥
ते दृष्ट्वा सहसा पार्थे गोप्तारः सैन्धवस्य तु ।
चक्रुर्नादान् महेष्वासाः कंपयन्तो वसुन्धराम्
बाणशब्दरवांश्चोग्रान्विमिश्राञ्शंखनिःस्वनैः
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४४
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितं
प्रदध्मतुः शंखवरौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४५
तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुंधरा ।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशांपते ॥
स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४७
तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
संभ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥
अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

## १०४

सञ्जय उवाच ।
तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ
प्रागत्वरन् जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान्॥
सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः ।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः
रुक्मपुंखैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते ।
कूजद्भिरतुलान्नादान् कोपितैरुरगैरिव ॥ ३
भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः ।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४

---

निर्देहान् निकृत्तावयवान् ॥ २९ ॥ नखमांसान्तरे इषुभिः आविध्यदिति पूर्वेणान्वयः सन्धिरार्षः ॥ ३२ ॥ क्रोशमात्रे सैन्धवतोऽर्थात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

१०४

तावका इति । प्रागग्र एव समीक्ष्येत्यन्वयः ॥ १॥ वैयाघ्रैर्व्याघ्रचर्मचित्रैः ॥ २ ॥

ते पिबन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः ।
व्यराजयन् दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥५
ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः ।
समावृण्वन्दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः
कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान्महारथान्
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश
आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः ।
पार्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८
कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९
ते प्रगृह्य महाशंखान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ।
पूरयन्तो दिवं राजन् पृथिवीं च ससागराम्
तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥ ११
देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः ।
शब्दस्तु देवदत्तस्य धनञ्जयसमीरितः ॥ १२
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत्
तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५
मृदंगेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः ।
महारथाः समाहूता दुर्योधनहितैषिणः ॥ १६
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः ।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः॥
अमर्षिता महाशंखान् दध्मुर्वीरा महारथाः ।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥
बभूव तव तत्सैन्यं शंखशब्दसमीरितम् ।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥
तत् प्रविद्धमिवाकाशं शूरैः शंखविनादितम्।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २०

स शब्दः सुमहान् राजन्
दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
त्रासयामास तत् सैन्यं
युगान्त इव संभृतः ॥ २१
ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२
ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥
तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४
कर्णं च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान्
गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विव्याध पांडवम्
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुंखैः शिलाशितैः ॥
कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥ २७
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।
ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत्
वासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥
प्रत्यविध्यत्स तान्सर्वान्दर्शयन्पाणिलाघवम्
कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत
सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाष्टभिः
गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥ ३२
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत्
भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ॥
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीन् श्वेतवाहनः
प्रत्यषेधद्द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

---

कौलूतकाः कुलूतदेशजाः पार्वतीयसमानलक्षणाः ॥ ७ ॥ **आजानेयैरिति** । 'गुडगन्धाः काये ये सुलक्षणाः कान्तितो जितक्रोधाः । सारयुता जितेन्द्रियाः क्षुत्तृडाहितं चापि नो दुःखम्। जानन्त्याजानेया निर्दिष्टा वाजिनो धीरैः। वाहास्तु पार्वतीया बलान्विता स्निग्धकेशाश्च । वृत्तखुरा दृढपादा महाजवास्तेति विख्याताः' ॥ नदीजैर्नदी रिजैः । 'अश्वाः सकर्णिकाराः क्वचन नदीतीरजाः समुद्दिष्टाः । पूर्वार्धे रूद्याः पश्चार्धे चानताः किंचित्' ॥ ८ ॥ **विद्धमाक्षिप्तम्** ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

## १०५

धृतराष्ट्र उवाच ।
ध्वजान्बहुविधाकारान्भ्राजमानानति श्रिया
पार्थानां मामकानां च तान्ममाचक्ष्व सञ्जय ।
सञ्जय उवाच ।
ध्वजान्बहुविधाकारान्शृणु तेषां महात्मनां
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २
तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ।
काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥
अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः ।
ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समंततः
नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः
पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥
नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रंगमध्ये विलासिकाः
इंद्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।
सिंहलांगूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८
धनञ्जयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।
स वानरवरो राजन् पताकाभिरलंकृतः॥९॥
त्रासयामास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः
तथैव सिंहलांगूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥१०॥
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।
काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम्
हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाधिरथेर्ध्वजः ॥
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।
पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।
आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः
गोवृषो गौतमस्यासीत् कृपस्य सुपरिष्कृतः
स तेन भ्राजते राजन् गोवृषेण महारथः ॥
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद्गोवृषेण विराजता ।
मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥
व्याहरिष्यन्निवातिष्ठत् सेनाग्रमुपशोभयन् ।
तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥१७
यथा स्कंदस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता ।
मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम्
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ।
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता ।
वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ।
ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः ।
शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ।
सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥२२
ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र प्रदृश्यते ।
स यूपः काञ्चनो राजन् सौमदत्तेर्विराजते ॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ।
शलस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ।
केतुः काञ्चनचित्रांगैर्मयूरैरुपशोभितः ॥
स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ॥२५॥
यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ।
नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥
किंकिणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे ।
व्यभ्राजत भृशं राजन् पुत्रस्तव विशांपते ॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ॥
नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसन्निभाः
दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ॥२९
अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वन्हिना ।
ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ।
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परंतपाः
तथैव धनुरायच्छत् पार्थः शत्रुविनाशनः॥३१
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद्राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
तवापराधाद्राजानो निहता बहुशो युधि ॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः
तेषामासीद्व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥३३

---

१०५

**ध्वजानिति** ॥ १ ॥ रूपमाकारः ॥ २ ॥ ध्वजाग्रं ध्वजमुख्यं काञ्चनं काञ्चनमयम् ॥ ११ ॥ स्रग्वी स्रग्विणी ॥ १३ ॥ व्याहरिष्यन् वदिष्यन् ॥ १७ ॥ अलोहितार्कोभोऽनुपरक्तस्फटिकवर्णः । 'अर्कोऽर्कपर्णे स्फटिके' इति **मेदिनी** ॥ २१ ॥ हिमवानिव वन्हिनेति तत्र किल पराशरेण वन्हिः स्थापितः ॥ ३० ॥ व्यतिक्षेपः अन्योन्याभिघातः ॥ ३३ ॥

दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।
तत्राद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ३४
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।
अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः
जिगीषुस्तान्नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।
तत्रार्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ३६
अदृश्यांस्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रुतापनः
ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समंततः ।
संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ।
महानासीत् समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

## १०६

धृतराष्ट्र उवाच ।
अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत सञ्जय १
सञ्जय उवाच ।
अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ २
पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः
अभ्यमुञ्चन्त गर्जतः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३
ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्तताद्भुतः ।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ४
सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह
तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन्
द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ६
तमभ्ययाद्बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन्निशितान् बाणान्महेन्द्राशनिसन्निभान्
तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन्निशितान्बाणान् शतशोऽथ सहस्रशः
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद्द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥९
तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम्
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात्
युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम् ।
सहानीक ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान्
नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यगच्छत् समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो
सहदेवं तथा यान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३
सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन् वै मुहुर्मुहुः
द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान् मुञ्चतः सायकोत्तमान्
संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत
भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः ।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृङ्गिर्महारथः ॥ १६
तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७
ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत ॥ १८
तं द्रोणं पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे ।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना १९
भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत्
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम्
ताञ्शरान् द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः ।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे ।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥ २३

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

१०६

**अर्जुने इति** ॥ १ ॥ कम्पयन्तो भुवमिति शेषः ६॥ सौमदत्तिः शलः ॥ १५ ॥

अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४
केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम् ।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना २५
स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्यक्त्वा तत्कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे २६
आददेऽन्यद्धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम् ।
ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान् सहस्रशः
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
छित्त्वा तु ताञ्शरान् राजन्क्रोधसंरक्तलोचनः
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम्
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥
समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली ।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ ३०
शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे ।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाब्रुवन्
सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ३२
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा ।
तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशांपते ॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
तदस्त्रं भस्मसात् कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम्
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत्समुद्यतम्
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
विद्ध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥३८
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद्धनुः ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ३७
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष ।
तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥
गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धश्चिक्षेप च परंतप ।
ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ३९
सङ्घर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले ।
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ।
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयान् जघ्ने शरोत्तमैः ।
चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ४१
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चार्दयत्त्रिभिः ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः॥ ४२
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ ।
विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून्सर्वसैन्यानि वा विभो
मुञ्चन्निषुगणांस्तीक्ष्णान् लघुहस्तो दृढव्रतः॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ।
तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनामित्रघातिना ॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ॥
हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष
इत्यासीत्सुमहाञ्छब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत
ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## १०७

सञ्जय उवाच ।
बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥
बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा
नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन्
द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २
क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३

---

हतो राजेति अमन्यन्तेत्यनुषङ्गः॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

बृहत्क्षत्रमिति ॥ १ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥
अथान्यद्धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम्
तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम्
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाम्बरात्
तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाऽभ्यपतत् सैन्यं तावकं पार्थकारणात्
धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥
तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १०
तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११
गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२
तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशांपते ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥
वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥
तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६
तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशं
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥
तस्मिन्विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे ।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥
सहदेवे ततः षष्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत्
ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे ॥
माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः ।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥
तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१
दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः ।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥
अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुंडलं
क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद्धनुः ।
सहदेवो रणे छित्त्वा तं च विव्याध पञ्चभिः
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा
आरुरोह रथं राजन्निरमित्रस्य भारत ॥ २५
सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६
स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥
तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥
हाहाकारो महानासीत्त्रिगर्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९
नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्ताज्जितवान् लोके तदद्भुतमिवाभवत् ॥
सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥
तान्निवार्य शरान् शूरः शैनेयः कृतहस्तवत्
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२
कुमारे निहते तस्मिन् मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ३३
विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान् मुद्गरान्मुसलानपि
अयोधयन् रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
तांस्तु सर्वान् स बलवान् सात्यकिर्युद्धदुर्मदः
नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।
मागधान् द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः ॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।
नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः
विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।
भज्यमानं बलं राजन् सात्वतेन महात्मना ॥
नाभ्यवर्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।
ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## १०८

सञ्जय उवाच ।
द्रौपदेयान्महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशाः
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥
ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किंचन ॥
नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां वि व्याऽनदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः
तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४
स तान् प्रति महाराज पञ्च चिक्षेप सायकान्
एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५
ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मना ।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम्॥६
आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७
भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥

यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य
छित्त्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाथ यन्तारं
रथनीडादपाहरत् ॥ ९

साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम्
क्षुरप्रेण शिरो राजन्निचकर्त महात्मनः ॥१०
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत्तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥
सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन् प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥
अलंबुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥
संप्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥ १४
आर्ष्यशृंगिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः।
विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रममर्षणम्॥
तद्रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत्ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
भैमान् परिजघानाशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥
पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः॥
निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलंबुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २०
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥
स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन् भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।
तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली ।
परोक्षं मम तद्वृत्तं यद्भ्राता मे हतस्त्वया॥
एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत्॥ २५
भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२६
स वध्यमानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसाऽगमत्॥
उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
अणुर्बृहत्पुनः स्थूलो नादान्मुञ्चन्निवाम्बुदः॥
उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समंततः ।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९
शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टीर्वज्राणि चैव ह ।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥
जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् रणमूर्धनि ।
तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः॥
हयाश्च बहवो राजन् पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः
शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम्
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४

---

१०८

द्रौपदेयानिति ॥ १ ॥ बृहत् बृहन् ॥ २८ ॥ ऋष्टीः ऋष्टयः ॥ ३१ ॥

नदीं प्रावर्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ॥
तं तथा समरे राजन् विचरन्तमभीतवत् ।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमं
तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत ।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान् रोमहर्षणः ॥३७
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः ।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥
ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः ।
संदधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥
ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् समंततः ।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ४०
तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे ।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥
स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः ।
संत्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥
तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेंद्रे महात्मना
अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशं
अपूजयन् मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम् ।
प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥४४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलंबुषपराजये
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

## १०९

सञ्जय उवाच ।
अलंबुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत् ।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः
तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः ।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥२
अलंबुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत् ।
तयोर्युद्धं समभवद्रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो ।
घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनांतरे
अलंबुषमथो विद्ध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।
तथैवालंबुषो राजन् हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५
विद्ध्वा विद्ध्वाऽनदद्धृष्टः पूरयन् खं समंततः
तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् ।
मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ७
मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।
यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप ॥
तां तामलम्बुषो राजन्माययैव निजघ्निवान् ।
तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाऽक्रुध्यन्त पाण्डवाः ।
त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ ११
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११
सर्वतो व्यकिरन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।
स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ॥ १२
तस्माद्रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।
स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह
तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ॥
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६
नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः
हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।
तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुन्धरा ॥१८
सपर्वतवना राजन् सपादपजलाशया ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

**अलंबुषमिति** ॥ १ ॥ रक्षोग्रामणिमुख्ययोः रक्षःपतिप्रधानयोः ॥ ३ ॥

प्रतिविद्ध्याथ तान्सर्वान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः २०
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विद्ध्याथ सप्तभिः ।
सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं
रुक्मपुंखान् शिलाशितान्
ते शरा नतपर्वाणो
विविशू राक्षसं तदा ॥ २२
रुषिताः पन्नगा यद्वद्गिरिशृङ्गं महाबलाः ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्समंतान्निशिताञ्शरान्
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।
स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नान्वपद्यत ।
ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥२५
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायास्य मनो दधे ।
वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेंद्ररथं प्रति ॥ २६
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।
रथाद्रथमाभेद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् २७
उद्बबर्ह रथाच्चापि पन्नगं गरुडो यथा ॥
समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविद्ध्य च पुनः पुनः
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाश्मनि ।
बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च २९
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत् ।
स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः ।
ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन्निशाचरे ३१
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्याद्रुधुवुश्च ह ।
तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥३२
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३
जनाश्च तद्ददृशिरे रक्षःकौतूहलान्विताः ॥
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ ३४
घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ ३५
स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवै-
र्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा
ह्यलम्बुषं पक्वमलम्बुषं यथा ॥ ३६
ततो निनादः सुमहान्समुत्थितः
सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवा-
स्ततो ध्वनिर्भुवनमथास्पृशद्भृशम् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## ११०

धृतराष्ट्र उवाच ।
भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् ।
सञ्जयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १
सञ्जय उवाच ।
शृणु राजन् महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः २
वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत्स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम्
तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्
द्रोणोऽपि युधि विक्रांतो युयुधानं समाहितः
अविध्यत्पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुंखैः शरैः शितैः ५
ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्ययुर्धरणीं राजन् श्वसन्त *इव पन्नगाः६
दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यन्नाराचैरग्निसन्निभैः ७

---

मर्त्यधर्मं मरणयोग्यताम् ॥ २५ ॥ आक्षिपत् गृहीतवान् ॥ २७ ॥ आविध्य भ्रामयित्वा ॥ २८ ॥ विस्फारितानि पृथग्भूतानि सर्वांगानि यस्य ॥ ३० ॥ भुवनं स्वर्लोकम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

११०

भारद्वाजमिति ॥ १ ॥ * वल्मीकमिवेति पाठः ।

भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८
ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शरेणानतपर्वणा ९
स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नान्वपद्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशांपते ॥
विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप ।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान्
तं तु संप्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशांपते ।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १२
तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम्
युधिष्ठिरोऽब्रवीद्राजा सर्वसैन्यानि भारत १३
एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा १४
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते ॥
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः १५
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत ।
न पश्यसि भयं द्रोणाद्घोरं नः समुपस्थितम् ॥
असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे ।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥
तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः ।
त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥ १८
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः ।
सात्यकिं मोक्षयस्वाद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥
एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥
तत्रारावो महानासीद्द्रोणमेकं युयुत्सताम् ।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः
ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्षञ् शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥
स्मयन्नेव तु तान्वीरान्द्रोणः प्रत्यग्रहीत्स्वयं
अतिथीनागतान् यद्वत् सलिलेनासनेन च ॥
तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः ।
आतिथेयं गृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥
भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् २६

वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥
द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः
गभस्तय इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८
तस्मिन्द्रोणेन निहताः पंचालाः पञ्चविंशतिः
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य संमताः ॥
पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च ।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान् वरान्
केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समंततः ।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवान्तकः

पञ्चालान् सृञ्जयान् मत्स्यान्
केकयांश्च नराधिप ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः
शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२

तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवारण्ये व्याप्तानां धूमकेतुना ॥
तत्र देवाः सगंधर्वाः पितरश्चाब्रुवन्नृप ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः
तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान् रणे ।
न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥
वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये ।
अशृणोत् सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनं
पूरितो वासुदेवेन शंखराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याभिरक्षिषु ॥
नदत्सु धार्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रनष्टे समंततः ॥
कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शंखराट् ३९
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ।
एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१

युधिष्ठिर उवाच ।

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः
सांपराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥
सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयन् शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके

तस्मिन्नवसरे ॥ २९ ॥ कृत्यस्य जयद्रथवधस्य अनन्तरापेक्षी अविघ्नाकाङ्क्षी ॥ ४१ ॥ यः स धर्मो मैत्रीलक्षणः सांपराये आपत्काले ॥ ४२ ॥

यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः ॥
स कार्ये सांपराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम्
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥
सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥
स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे ।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयंकरः ।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति
यो हि शैनेय मित्रार्थे
युध्यमानस्त्यजेत्तनुम् ।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो
यो दद्यात् स समो भवेत् ॥ ४९
श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि
एवं त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो
एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयंकरः ।
रणे सन्त्यजति प्राणान् द्वितीयस्त्वं च सात्यके
विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः ।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥
ईदृशे तु परामर्शे वर्तमानस्य माधव ।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते
श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः ।
मम सञ्जनयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५५
लघुहस्तश्चित्रयोधी तथा लघुपराक्रमः ।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥
महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः ।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥
शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे
युयुधानः सहायो मे प्रमाथिष्यति कौरवान्
अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद्यदि केशवः ।
रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः
गदो वा सारणो वापि
साम्बो वा सह वृष्णिभिः ।
सहायार्थं महाराज
संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ६०
तथाप्यहं नरव्याघ्रं
शैनेयं सत्यविक्रमम् ।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि
नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६१
इति द्वैतवने तात मामुवाच धनंजयः ।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि
तस्य त्वमेवं संकल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि ।
धनञ्जयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥
यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति ।
तत्राहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ६४
न तत्सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् ।
यथा त्वमस्मान् भजसे वर्तमानानुपप्लवे॥६५
सोऽभिजात्या च भक्त्या च
सख्यस्याचार्यकस्य च ।
सौहृदस्य च वीर्यस्य
कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च ।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७
सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः ।
पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ६८
सुमहान्निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति ।
स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९
भीमसेनो वयं चैव
संयत्ताः सहसैनिकाः ।
द्रोणमावारयिष्यामो
यदि त्वां प्रति यास्यति ॥
पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे ।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम्
महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु ।
धार्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह ।
सैन्यं रजःसमुद्धूतमेतत् संपरिवर्तते ॥ ७३
संवृतः सिंधुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः ।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥
नैतद्बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः ।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे संत्यक्तजीविताः
शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम् ।
पश्यैतद्धार्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ७६

---

वयस्यस्य स्निग्धस्य सहायार्थे सहायप्रयोजनम् ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतो दृढनिश्चयः ॥ ४८ ॥ उपप्लवे विमर्दे ॥ ६५ ॥ सख्यादेरनुरूपमित्यनेनान्वयः ॥ ६६ ॥ सत्यस्यांगीकारस्य अनुकम्पार्थमर्जुनानुपालननिमितम् ॥ ६७ ॥

शृणु दुंदुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान्।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७
नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कंपयतां महीम् ॥
पुरस्तात्सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ७९
अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम्।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ८०
सर्वथाऽहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम्
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्तते ॥ ८२
तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा नवा
कुरूणां चापि तत्सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम्
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४
न हि मे वर्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन।
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ॥
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथाऽसौ चरति द्विजः
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥
महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद।
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ॥ ८७
अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे।
नाहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम्
स हि शक्तो रणे तात
त्रीन् लोकानपि सङ्गतान्।
विजेतु पुरुषव्याघ्रः
सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ८९
किं पुनर्धार्तराष्ट्रस्य बलमेतत् सुदुर्बलम्।
अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ९०
प्रजह्यात् समरे प्राणां-
स्तस्माद्विन्दामि कश्मलम्।
तस्य त्वं पदवीं गच्छ
गच्छेयुस्त्वादृशा यथा
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभिनोदितः।
रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ ॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः।
अस्त्रे नारायणसमः संकर्षणसमो बले ॥ ९३
वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि।
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ९४
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते।
नाशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव
तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत्कुरुष्व महाबल।
संभावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः
नान्यथा तां महाबाहो संप्रकर्तुमिहार्हसि।
परित्यज्य प्रियान् प्राणान्रणे चर विभीतवत्
न हि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम्
अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः।
तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः।
कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् १००
मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम्।
वासुदेवमतं चैव मम चैवार्जुनस्य च ॥ १०१
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनञ्जयः।
एतद्वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥ २
प्रविशैतद्बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः।
प्रविश्य च यथान्यायं संगम्य च महारथैः।
यथाहमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय १०३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

महार्थं महान्तमर्थं लघुसंयुक्तमविलम्बसंपन्नम् ॥ ८७ ॥ वीरतायामुत्साहकारणत्वे ॥ ९४ ॥ संभावनाऽस्तिताज्ञानं कुलशीलश्रुतादिषु ॥ ९६ ॥ विभीतवदभीतः ॥९७ ॥ अनवस्थानमस्थैर्यम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## १११

सञ्जय उवाच ।

प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम्
धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् २
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाऽच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम्
एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य संमतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ४
न मे धनञ्जयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथञ्चन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे ॥ ५
लोकत्रये योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत्सुदुर्बलम् ॥ ६
सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समंततः ।
विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ७
कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनञ्जयम् ।
हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ८
अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद्वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः॥
दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥
अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम्
त्वयि चाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥
जानीषे हि रणे द्रोणं कुरुषु श्रेष्ठसंमतम् ।
प्रतिज्ञातं हि तेनेदं पश्यमानेन वै प्रभो ॥१३
ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥
एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥
जयद्रथं च हत्वाऽहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद्द्रोणो निगृह्णीयाद्रणे बलात् ।
निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत्
एवंगते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत् पुनः ॥
सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद्युधिष्ठिरम् ।
स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोऽर्थं च रक्ष राजानमाहवे २०
स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना
भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो २१
तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे
नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो
मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः
सोऽहं संभावनां चैतामाचार्यवचनं च तत्
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ॥
आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद्यथा शकुनिना शिशुः ।
यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथार्जुनः
कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि
यः प्रतीयाद्रणे द्रोणं यावद्गच्छामि पाण्डवम्
मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसंभवम्॥ २७
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।
ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च
ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन्
रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्
उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा॥ ३०
सराक्षसगणा राजन् सकिन्नरमहोरगा ।
जंगमाः स्थावराः सर्वे नालं पार्थस्य संयुगे॥
एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनञ्जये ॥
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ

१११

**प्रीतियुक्तमिति** ॥१॥ संमतमनुरक्तं॥४॥ अभिपरीतो न्नितः ॥१०॥ एवमदृश्यामपि कार्यगतौ समाधाय निक्षिप्य ॥१५॥ एवंगते ग्रहणं प्राप्ते ॥१८॥ व्यक्तं कदाचित्॥१९॥ तस्य निक्षेपणस्य फलं साध्यं हि यस्मात् ॥ २२ ॥ यावद्गच्छामि गमिष्यामि अर्जुनसंभवमर्जुनविषयम् ॥ २७ ॥

न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते ॥
दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ॥ ३३
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ।
मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ।
आचार्यो हि भृशं राजन्निग्रहे तव गृध्यति ॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्यां कर्तुं च भारत ।
कुरुष्वाद्यात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि
यस्याहं प्रत्ययात् पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति
न ह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥
क्वचिद्यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ३८
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन्प्रशाधि मां

युधिष्ठिर उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ।
करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम् ।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनञ्जयः ॥
आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति ।
विचार्यैतत्स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचय ॥ ४२
स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनञ्जयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥
पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ।
केकया भ्रातरः पंच राक्षसश्च घटोत्कचः ।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥
धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः ।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ।
न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति ।
धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परंतपः ॥ ४८
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ।
यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत्क्रामेत् तत्र कथञ्चन ।
एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥
कवची स शरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः
विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि संभ्रमम्
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥५१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## ११२

सञ्जय उवाच ।

धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः
स पार्थाद्भयमाशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥१
अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात् पश्यन् विशेषतः
ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥
निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ३
कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशांपते
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥
न हि मे पाण्डवात् कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते
यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ५
तस्याहं पदवीं यास्ये संदेशात्तव मानद ।
त्वत्कृते न च मे किंचिदकर्तव्यं कथंचन ॥ ६
यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७
प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुंगव ॥

---

दैवममानुषतां योगमभिज्ञानम् ॥ ३३ ॥ क्वचित् कस्मिंश्चित् अनिक्षिप्येत्यन्वयः ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा निश्चित्य ॥ ३९ ॥ आतिष्ठ प्रक्रमस्व ॥ ४३ ॥ मातुलः पुरुजित् ॥ ४६ ॥ मयि मामधिकृत्य संभ्रममुद्वेगम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

धर्मराजस्येति ॥ १ ॥

तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुंगव ॥ ९
द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवार्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्रासौ राजन् राजा जयद्रथः
यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात्
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११
इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशांपते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥
त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम्
आसैन्धववधाद्राजन् सुदृढेनान्तरात्मना ॥
अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु यथा राजन् को न युध्येत मादृशः
अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ।
हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५
इष्वस्त्रवरसंबाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ।
यदेतत्कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः
नागा मेघनिभा राजन् क्षरन्त इव तोयदाः ।
नैते जातु निवर्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन् पराजयः
अथ यान् रथिनो राजन् सहस्रमनुपश्यसि ॥
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशांपते ॥ २०
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१
खड्गप्रहरणे युक्ताः संपाते चासिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥
नित्यं हि समरे राजन् विजिगीषंति मानवान्
कर्णेन विहिता राजन् दुःशासनमनुव्रताः ॥
एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान् प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ।
तस्यैव वचनाद्राजन् निवृत्ताः श्वेतवाहनात्
ते न क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः
मदर्थेऽधिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ।
एतान् प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥

प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः
यांस्त्वेतानपरान्राजन्नागान्सप्त शतानिमान्
प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान्
किरातैः समधिष्ठितान् ।
किरातराजो यान् प्रादा-
द्द्विरदान् सव्यसाचिनः ॥ २८
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छन् जीवितमात्मनः
आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥
त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ।
एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाग्नियोनयः ।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना
मदर्थमद्य संयत्ता
दुर्योधनवशानुगाः ।
एतान् हत्वा शरै राजन्
किरातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ३२
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ।
ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४
लब्धरक्षा रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।
उत्तरात् पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिराश्रिताः ॥
कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः ।
सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः ॥
अनेकयोनयश्चान्ये तथा मानुषयोनयः ।
अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते ॥ ३७
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम्
एतद्दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् ।
सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ॥
कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः ।
ते तु सर्वेऽद्य संप्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः
तेन संभाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः
ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः

---

आसैन्धववधात् सैन्धववधात्प्रागेव ॥ १३ ॥ हलादितो-मरान्तमर्शआद्यजन्तम् ॥ १५॥ साहस्रं सहस्रप्रतिमम् ॥१६॥ एते नागाः ॥ १७ ॥ संपाते विहरणे ॥ २२ ॥ तदा दिग्विजये ॥ २९ ॥ अञ्जनस्य अरुणोपवाह्यस्य ।

' स्निग्धनीलाम्बुदप्रख्या बलिनो विपुलैः करैः ।
सुविभक्तमहाशीर्षाः करिणोऽञ्जनवंशजाः ' ॥ ३३ ॥
उत्तरात्पर्वताच्च हिमाचलादागतैरर्थात् ॥ ३५ ॥ तेन दुर्योधनेन संभाविताः संवर्धिताः ॥ ४१ ॥

एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः ।
अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत ॥
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः ।
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥४५
तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ।
तस्मात् सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च
रथे कुर्वन्तु मे राजन् यथावद्रथकल्पकाः ।
अस्मिंस्तु किल संमर्दे ग्राह्यं विविधमायुधं
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ।
काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः
नानाशस्त्रसमावायैर्विविधायुधयोधिभिः ।
किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनाहितैषिभिः ।
शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ५०
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः ।
तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ५१
समेष्यामि रणे राजन्बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ।
तस्माद्वै वाजिनो मुख्या विश्रुताःशुभलक्षणाः
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ।

सञ्जय उवाच ।

तस्य सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च ५३
रथे चास्थापयद्राजा शस्त्राणि विविधानि च
ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदश्वांश्चतुरो जनाः
रसवत्पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ।
पीतोपवृत्तान्स्नातांश्च जग्धान्नान्समलंकृताम्
विनीतशल्यांस्तुरगां-
श्चतुरो हेममालिनः ।
तान्युक्तान् रुक्मवर्णाभान्
विनीताञ्शीघ्रगामिनः ॥ ५६
संहृष्टमनसोऽव्यग्रान् विधिवत्कल्पितान्रथे
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७
संवृते केतकैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥

दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा
न्यवेदयद्रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६०
ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ
आशीर्वादैः परिष्वक्तःसात्यकिः श्रीमतां वरः
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महताऽन्वितः
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६४
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः
कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः
कन्याभिश्चाभिनन्दितः ॥ ६५
युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६
ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टा वातरंहसः॥
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैन्धवाः
तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात्सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरं
तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिन्दमौ
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ६९
सन्नद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याब्रवीद्वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७०
त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम्
आयत्यां च तदात्वे च
श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।
जानीषे मम वीर्यं त्वं
तव चाहमरिन्दम ॥ ७२
तस्माद्भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम्
तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ७४
गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम
यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥

तानुद्दिष्टान् ॥ ४६ ॥ पंचगुणः पंचगुणसामग्रीकः ॥ ४८ ॥ नानाशस्त्राणां समावायः समूहो येषु ॥ ४९ ॥ पीताः पायितपेयाः ॥ ५३ ॥ महाध्वजेनेति विशेषणे तृतीया ॥ ५७ ॥ केतकैः कुन्दघटितशलाकाभिः ॥ ५८ ॥ स्वर्णनिष्कान् दीनारान् ॥ ६१ ॥ आयत्यामुत्तरकाले तदात्वे तत्क्षणे ॥ ७२ ॥

निमित्तानि च धन्यानि
यथा भीम वदन्ति माम् ।
निहते सैन्धवे पापे
पाण्डवेन महात्मना ॥ ७६
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्
एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः
संप्रैक्षत्तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ७८
तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ।
भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पत ॥ ७९
ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः॥
दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## ११३

सञ्जय उवाच ।
प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः ॥ १
प्रायाद्द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥ २
प्राक्रोशत्पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥
इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान् समभिद्रुताः॥
ततः शब्दो महानासीद्युयुधानरथं प्रति ।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी
सात्वतेन महाराज शतधाऽभिव्यशीर्यत ।
तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पुत्रो महारथः
सप्तवीरान् महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् ।
अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ८
शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान्यमक्षयम् ।
शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्रिणाम् ९
द्विपारोहान्द्विपांश्चैव हयारोहान्हयांस्तथा
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव १०
तं तथाऽद्भुतकर्माणं शरसंपातवर्षिणम् ।
न केचनाभ्यधावन् वै सात्यकिं तव सैनिकाः
ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम्
तमेकं बहुधाऽपश्यन् मोहितास्तस्य तेजसा
रथैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥ १३
चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशांपते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजङ्गाभोगसन्निभैः ॥
ऊरुभिः पृथिवी च्छन्ना मनुजानां नराधिप ।
शशाङ्कसन्निभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६
पतितैर्ऋषभाक्षाणां ×सा बभावति मेदिनी ।
गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः॥१७
रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।
तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरंगमाः ।
गतसत्त्वा महीं प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना१९
नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम्
ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनञ्जयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः २१
भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः
न न्यवर्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः॥२२
निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

प्रयाते इति ॥ १ ॥ ईशो रुद्रः ॥ १० ॥ ऋषभस्येवाक्षीणि येषाम् ॥ १६ ॥ × बभौ भारत इति पाठः ।

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन् विव्याध सप्तभिः
हेमपुंखैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः २४
तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत्
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥२५
सिंहनादं ततः कृत्वा
द्रोणं विव्याध सात्यकिः।
दशभिः सायकैश्चान्यैः
षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६
युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः।
एकेन सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्२७
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष।
तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः २८
त्वरन् प्राच्छादयद्बाणैः शलभानामिव व्रजैः।
तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः॥२९
आच्छादयदसंभ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह।
तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा
युध्यमानं च मां हित्वा
प्रदक्षिणमवर्तत।
त्वं हि मे युध्यतो नाद्य
जीवन् यास्यासि माधव॥ ३१
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद्द्रुतम्
सात्यकिरुवाच।
धनञ्जयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात्॥३२
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन्
न मे कालात्ययो भवेत्।
आचार्यानुगतो मार्गः
शिष्यैरन्वास्यते सदा॥ ३३
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः॥
सञ्जय उवाच।
एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन्॥३४
प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत्।
द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे॥३५
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम्।
एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम्
अस्यानन्तरतस्त्वेतद्दाक्षिणात्यं महद्बलम्।
तदनन्तरमेतच्च बाल्हिकानां महद्बलम्॥ ३७
बाल्हिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद्बलम्
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे
अन्योन्यं समुपाश्रित्य
न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम्।
एतदन्तरमासाद्य
चोदयाश्वान् प्रहृष्टवत्॥ ३९
मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे।
बाल्हिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः
दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः।
हस्त्यश्वरथसंबाधं यच्चानीकं विलोक्यते ४१
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम्।
एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन्४२
मध्यतो याहि यत्रोग्रं
कर्णस्य च महद्बलम्।
तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो
विकिरन् विशिखान् बहून्॥ ४३
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम्।
कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः॥
प्राविशद्भारतीं सेनामपर्यन्तां च सात्यकिः
प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च॥ ४५
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत्।
तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान्
ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः॥ ४७
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे
स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे।
स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानिलसन्निभम्
आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्यकिं
स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः॥
स पुंखपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः।
अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत् परमास्त्रवित्॥
सं मार्गणगणं राजन् कृतवर्मा शरासनम्।
विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमं
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे।
ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः।
ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः
व्यसृजद्विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः।
सरथं कृतवर्माणं समंतात् पर्यवारयत्॥ ५५

त्वं हि त्वमपि॥ ३१॥ भिन्नानि पृथग्भूतानि॥ ४८॥

अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥
सञ्जय उवाच ।
आत्मापराधात् संभूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद्वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ४७
पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः
सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान् राज-
न्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥ ४८
सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह
स महद्व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥
याचितोऽसि पुरा राजन्
दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान् कामं
त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥ ५०
तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति
आर्तप्रलापांश्च बहून्मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२
सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ५३
आत्मापराधात् सुमहान्प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः
नैनं दुर्योधने दोषं कर्तुमर्हसि मानद ॥ ५४
न हि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ५५
तस्मादवस्थितो भूत्वा
ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं
घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६
प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ५७
आगच्छतस्तान् सहसा
क्रुद्धरूपान् सहानुगान् ।
दधारैको रणे पाण्डून्
कृतवर्मा महारथः ॥ ५८
यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत्
तत्राद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नातिचक्रमुराहवे ६०
ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमाशुगैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन् सर्वपाण्डवान् ॥
सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ६२
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥ ६३
विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखंडी चैव हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ।
कृतवर्मा ततो राजन् सर्वतस्तान् महारथान्
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः
धनुर्ध्वजं चास्य तदा रथाद्भूमावपातयत् ६६
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः
स गाढविद्धो बलवान् हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥
भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान् राजन् कृतवर्माणमार्दयन्
तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ७०
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ७१
चिक्षेप च रथात्तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ७२
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।
तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम्
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो
निजघान द्विधा तदा ।
सा छिन्ना पतिता भूमौ
शक्तिः कनकभूषणा ॥ ७४
द्योतयन्ती दिशो राजन्महोल्केव नभश्च्युता
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम्
ततोऽन्यद्धनुरादाय वेगवत् सुमहास्वनम्
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥
अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥

---

निर्गुणतां गुणवैषम्यं द्वैधीभावमनिश्चयम् ॥ ५१ ॥ सुमहान् विपुल इति पर्यायाभ्यां महत्त्वोद्रेकः ॥ ५४ ॥ निर्णयं नियतस्वभावम् ॥ ५६ ॥ सर्वतः सर्वान् ॥ ६५ ॥ द्विधा स्थानद्वये ॥ ७४ ॥

भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे
ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान् सर्वान् प्रत्यविध्यत
त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान्महारथान्
तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः
शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः ॥ ८१
शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥
भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ८३
स तस्य सशरं चापं छित्वा राजन् महानसिः
अभ्यगाद्धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवांबरात्
एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः ।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे॥ ८५
अथान्यद्धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद्धनुः ।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥
विव्याध पाण्डवान् युद्धे
त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
शिखण्डिनं च विव्याध
त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ ८७
धनुरन्यत् समादाय शिखण्डी तु महायशाः
अवारयत् कूर्मनखैराशुगैर्हार्दिकात्मजम् ८८
ततः क्रुद्धो रणे राजन् हृदिकस्यात्मसंभवः।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ८९
भीष्मस्य समरे राजन् मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन् बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ९०

तौ दिशां गजसंकाशौ ज्वलिताविव पावकौ
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिन्दमौ ॥ ९१
विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे संदधानौ च सायकान्
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्करौ
तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥
कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम् ।
विद्ध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ॥
तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्याद्धुवुश्च ह ॥
शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितं
अपोवाह रणाद्यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥
सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनं
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ९८
तत्राद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः ।
यदेकः समरे पार्थान् वारयामास सानुगान्
पार्थाञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्
पञ्चालान् सृञ्जयानपि ।
केकयांश्च महावीर्यान्
कृतवर्मा महारथः ॥ १००
ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥ १
जित्वा पांडुसुतान् युद्धे भीमसेनपुरोगमान्
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद्विधूम इव पावकः ॥ २
ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः ।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

## ११५

सञ्जय उवाच ।
श्रृणुष्वैकमना राजन्
यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन्
हार्दिक्येन महात्मना ॥ १

कूर्मनखैः कूर्मनखाकृतिफलकैः ॥ ८८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥

११५

श्रृणुष्वेति । हार्दिक्येन तावकैरन्यैश्च द्राव्यमाणे इत्युत्तरश्लोकेन सहान्वयः ॥ १ ॥

लज्जयाऽवनते चापि प्रहृष्टैश्चापि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत् पांडूनामगाधे गाधमिच्छताम्
श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन् कृतवर्माणमभ्ययात् ॥
उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥ ४
कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमार्षितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति
एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ६
कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत्सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुध्यत्स सात्यकिः
अथाशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ८
ते तस्य जघ्निरे वाहान् भल्लेनास्याच्छिनद्धनुः
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ९
ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः
सेनामस्यार्दयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १०
अभज्यताथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात्स त्वरितः सात्यकिःसत्यविक्रमः
शृणु राजन् यदकरोत् तव सैन्येषु वीर्यवान्
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥
पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसंभ्रमम् ॥ १३
दृष्ट्वा तु तव तत् सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसंपूर्णमब्रवीत् सारथिं पुनः ॥ १४
यदेतन्मेघसंकाशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत् कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १६
राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः
त्रिगर्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥
मामेवाभिमुखा वीरा
योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ।
अत्र मां प्रापय क्षिप्र-
मश्वांश्चोदय सारथे ॥ १८
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः
ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।
तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः ॥
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।
आपतन्तं रणे तं तु शंखवर्णैर्हयोत्तमैः ॥२१
परिवव्रुस्ततः शूरा
गजानीकेन सर्वतः ।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान्
सायकान् लघुवेधिनः ॥ २२
सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥
वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।
प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥
शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥
संभिन्नमर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकंबलाः
रुवन्तो विविधान्नादान् जलदोपमनिःस्वनाः
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक् तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥
बभ्रमुश्चस्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथाऽपरे ।
एवं तत् कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥
शरैरग्न्यर्कसंकाशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।
तस्मिन्हते गजानीके जलसन्धो महाबलः
यत्तः संप्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।
रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयांगदः शुचिः ॥ ३१
कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः
शिरसा धारयन् दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम्
उरसा धारयन्निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ।
चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन् गजमूर्धनि ॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ।
तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् ॥
नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः
अक्रुध्यत रणे राजन् जलसंधो महाबलः ।
ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ३६
आविध्यत शिनेः पौत्रं जलसन्धो महोरसि ।
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ।
सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥

पिंडिका गण्डाः ॥ २५ ॥ कण्ठसूत्रं हारम् ॥ ३३ ॥

आविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसन्धेन वीर्यवान्
नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
अचिन्तयन् वै स शरान्नात्यर्थं सम्भ्रमाद्बली
धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह ।
एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसन्धं महोरसि ॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ ४२
जलसंधस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः
जलसंधस्तु तत्त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥
तोमरं व्यसृजत्तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥
अभ्यगाद्धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।
निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसन्धमताडयत् ।
प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसन्धो महाबलः ४६
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह
शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम्
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८
अथान्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ॥
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम्
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसन्धं शरेण ह
ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥
सात्यकिर्जलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।
तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ५१
वसुन्धरधराद्भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ॥
तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥५३
द्विरदं जलसन्धस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ।
जलसन्धं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद्विशांपते ॥
रुधिरेणावसिक्तांगो जलसन्धस्य कुञ्जरः ५५
विलम्बमानमवहत् संश्लिष्टं परमासनम् ।
शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम्
घोरमार्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष
जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ॥
विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।
तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ६०
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ॥
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसन्धवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## ११६

सञ्जय उवाच ॥
ते किरन्तः शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १
तं द्रोणः सप्त सप्तत्या जघान निशितैः शरैः
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः २
विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा
दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ४
दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम् ॥
अपीडयद्रणे राजञ्शूराश्चान्ये महारथाः ॥

---

ततो ग्रहणानन्तरं आविध्य भ्रामयित्वा ॥ ४७ ॥ वसुंधराधरात् पर्वतात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६

ते किरन्त इति ॥ १ ॥

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः।
तान् प्रत्यविध्यद्वार्ष्णेयः पृथक् पृथगजिह्मगैः
भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः ॥
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम् ॥
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८
ततो रुक्मांगदं चापं विधुन्वानो महारथः।
अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम्
राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम्।
शरैरभ्याहनद्गाढं ततो युद्धमभूत्तयोः॥ १०

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान्
संदधानौ च सायकान्।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं
चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ११

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत।
अस्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२
सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव।
शातकुंभमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥
माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत्।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥
नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम्।
अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह
सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना।
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत्।
पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः।
सात्यकिं शरवर्षेण छादयामासुरोजसा।
स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥१९
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः।
प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम्।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २१
हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥२२
एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम्।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३
स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः।
प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः।
हाहाभूतं जगच्चासीद् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा।
तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥ २६
अभ्ययात् सहसा तत्र यत्रास्ते माधवः प्रभुः।
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः॥
भर्त्सयन् सारथिं चाग्रे याहि याहीति सत्वरं
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम्
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ॥
कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम्।
ततः प्रजविताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च।
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम्।
ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ।
कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चास्य पञ्चभिः
चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः॥ ३३

अविध्यत् साधुदान्तान् वै
सैन्धवान् सात्वतस्य हि।
रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं
महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३४

रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुंखैरवारयत्।
ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान् कृतवर्मणे
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनञ्जयम्।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः

समकम्पत दुर्धर्षः
क्षितिकंपे यथाऽचलः।
त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याश्वान्
सप्तभिः सारथिं तथा ॥ ३७

विव्याध निशितैस्तूर्णंसात्यकिः सत्यविक्रमः
सुवर्णपुंखं विशिखं समाधाय च सात्यकिः
व्यसृजत्तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम्।
सोऽविध्यत् कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः॥
जांबूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत्।
अभ्यगाद्धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४०
संजातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिरर्दितः।
सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत् स्यन्दनोत्तमात्

चन्दनो रक्तचन्दनः ॥ १२ ॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥
सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥
खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम् ॥
समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद्धनुः
तस्थौ स तत्र बलवान्वारयन्युधि पांडवान् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

## ११७

सञ्जय उवाच ।
कालयमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १
स संप्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २
ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३
तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४
ततोऽस्य बाणानपरानिंद्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ।
तान्द्रोणचापनिर्मुक्तान्
दाशार्हः पततः शरान्
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुंखाभ्यां
चिच्छेद परमास्त्रवित्
तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशांपते ।
प्रहस्य सहसाऽविध्यत्त्रिंशता शिनिपुंगवम् ॥
पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८
समुत्पतन्ति वल्मीकाद्यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद्राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९
तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥
लाघवाद्द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ।
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥१३
सप्तत्या सारथिं विद्ध्वा
तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः
ध्वजमेकेन चिच्छेद
माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४
अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो
धनुस्त्यक्त्वा महारथः
गदां जग्राह महतीं
भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६
तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७
अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः
स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९
ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीं
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २०
अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ।

---

दंष्ट्राश्चतस्रो यस्य स्युर्दशनेभ्यः समुच्छ्रिताः। सिंहदंष्ट्रः स गदितश्चतुर्दंष्ट्रश्च सूरिभिः॥४२॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७

कालयमानेष्विति ॥ १ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्विव्याध पत्रिणा
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ ॥
द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिं
मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४
चकार सात्यकी राजन् सूतकर्मातिमानुषम्
अयोधयच्च यद्द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम् ॥ २५
ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद्ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशांपते ॥
तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत ।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥
निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत सात्यकिर्भृशम् ।
सायकान् व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति
ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वान् व्यद्रावयद्बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥
स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान्
अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावत ।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥
ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥
तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान्संख्ये सात्वतेन शरार्दितान्
प्रभग्नं पुनरेवासीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३
व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥
पाण्डुपाञ्चालसंभिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान्
शैनेये नाकरोद्यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥ ३५
निवार्य पाण्डुपञ्चालान् द्रोणाग्निः प्रदहन्निव
तस्थौ क्रोधेध्मसंदीप्तः कालसूर्य इवोद्यतः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

## ११८

सञ्जय उवाच ।
द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीर-
स्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान् ।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे
शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥ १
निमित्तमात्रं वयमद्य सूत
दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम् ।
हतान्निहन्मेह नरर्षभेण
वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २
तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा
महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा ।
किरन् समन्तात् सहसा शरान् बली
समापतच्छ्येन इवामिषं यथा ॥ ३
तं यान्तमश्वैः शशिशंखवर्णै-
र्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् ।
नाशक्नुवन् वारयितुं समन्ता-
दादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥ ४
असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं
दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५
अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं
न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ६
तयोरभूद्भारत संप्रहारः
सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन् ।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च
वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७

रथशक्त्या केतकपत्राकारमुखया शक्त्या ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

११८

द्रोणमिति ॥ १ ॥

शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत
सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्छिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८
तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः
सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सायकान्।
द्विधा त्रिधा तानकरोत् सुदर्शनः
शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९
तान् वीक्ष्य बाणान्निहतांस्तदानीं
सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः
शरानमुञ्चत्तपनीयचित्रान् ॥ १०
पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः।
विव्याध देहावरणं विभिद्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११
तथैव तस्यावनिपालपुत्रः
सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशां-
श्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२
तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णै-
र्हयान्निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३
अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन ।
सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः
क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥ १४
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य
बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन्॥ १५
निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा
रराज राजन् सुरराजकल्पः ॥ १६
ततो ययावर्जुन एव येन
निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँ-
ल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७
तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्य-
मपूजयन् योधवराः समेताः ।
प्रवर्तमानानिषुगोचरेऽरीन्
ददाह बाणैर्हुतभुग्यथैव ॥ १८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शनवधे
अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## ११९

सञ्जय उवाच ।
ततः स सात्यकिर्धीमान्महात्मा वृष्णिपुङ्गवः
सुदर्शनं निहत्याजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १
रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम् ।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम् ।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम्
जलसन्धबलेनाजौ पुरुषादैरिवावृतम् ॥ ४
अतोऽन्यत् पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव ।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाश्वानसंभ्रमम् ५
हस्तप्राप्तमहं मन्ये सांप्रतं सव्यसाचिनम् ।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६
हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् ।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे ।
पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् ।
द्रवते तद्यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥ ९

अग्र्यं प्रधानं कर्म ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

तत इति ॥ १ ॥

रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे ।
कौशेयारुणसङ्काशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १०
अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः
यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै ।
अनस्तंगत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः १२
शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ १३
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १४
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ।
मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः
एतान् सरथनागाश्वान्निहत्याजौ सपत्तिनः
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७

सूत उवाच ।

न संभ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम।
यद्यपि स्यात्तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः
द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः
कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा ।
तथापि संभ्रमो न स्या-
त्त्वामाश्रित्य महाभुज ॥ १९
त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन ।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः
न च मे संभ्रमः कश्चिद्भूतपूर्वः कथञ्चन ॥ २२
किमुतैतत् समासाद्य धीरसंयुगगोष्पदम् ।
आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनञ्जयम्
केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ २४
के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम्
दृष्ट्वा विक्रमसंपन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे २५
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज ।

सात्यकिरुवाच ।

मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह
अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम्
अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत् २८
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा संतप्स्यति सुयोधनः
अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥
अद्य मद्बाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥
अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान्
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ३२
मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः ।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा संतप्स्यति सुयोधनः ॥
अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान् ।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ३४
अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा सन्तप्स्यति महामृधे
अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ३६
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधुवाहिनः
शशाङ्कसन्निकाशान्वै वाजिनो व्यनुदद्भृशम् ।
ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ३८
प्रापयन् यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः ।
सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ।
तेषामिषूनथास्त्राणि वेगवान्नतपर्वभिः ॥ ४०
अच्छिनत् सात्यकी राजन्नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः
रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४१
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि ।
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समंततः

---

विश्रम्भयन् आश्वासयन् ॥ १३ ॥ पारयिष्यामि समापयिष्यामि ॥ २७ ॥ श्वेताश्वस्य सकाशे कृतमभ्यस्तं मार्गमस्त्रशिक्षामाचार्यस्य द्रोणस्य दर्शयिष्यामीत्यन्वयः । अथवा आचार्यस्य विद्योपदेष्टुः श्वेताश्वस्य दर्शयिष्यामीति सामान्यकर्मकम् ॥ ३० ॥ द्विरर्जुनं द्वावर्जुनौ यत्र **नैरुक्तो वर्णागमः** ॥ ३४ ॥ शैक्यायसानि शोणितायोमयानि ॥ ४२

भित्त्वा देहांस्तथा तेषां
शरा जग्मुर्महीतलम् ।
ते हन्यमाना वीरेण
म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ।
सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ४४
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः
काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशांपते
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ४६
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् ।
दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ४७
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥४८
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम् ।
वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुंधराम् ।
अल्पावशिष्टाः संभग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयंतस्तुरङ्गमान्
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् ।
काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत॥
यवनानां च तत्सैन्यं शकानां च महद्बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत्
तत्तस्य समरे कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरकृतं पुरा ॥ ५४
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयांचक्रिरे भृशम्।
तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशांपते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये
एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## १२०

सञ्जय उवाच ।
जित्वा यवनकाम्बोजान्युयुधानस्ततोऽर्जुनं
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १
चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत्॥ २
स रथेन चरन्मार्गान् धनुरभ्रामयद्भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३
रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृङ्गमिवाबभौ ॥ ४
सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्कररश्मिवान्।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५
वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः६
मत्तद्विरदसंकाशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७
व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन्
द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम्
जलसन्धार्णवं तीर्त्वा
काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं
तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥ ९
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः
दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १०
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।
अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।
तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥

सुपूर्णायतमुक्तैराकर्णज्योत्सृष्टैः अव्यवच्छिन्नपिण्डितैः अनवच्छिन्नसंहतैः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

जित्वेति ॥ १ ॥

शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव ।
इदमेतत्समुद्भूतं धार्तराष्ट्रस्य यद्बलम् ॥ १४
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।
नादयन् वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे १५
पृथिवीं चान्तरिक्षं च कम्पयन् सागरानपि ।
एतद्बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥ १६
पौर्णमास्यामिवोद्भूतं वेलेव मकरालयम् ।
पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे १७
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।
निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८
मच्छरैरग्निसंकाशैर्विद्धदेहान् सहस्रशः ।
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः २०
तानेवं ब्रुवतो वीरान् सात्यकिर्निशितैः शरैः
जघान त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुःशतान्
स संप्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः ॥ २२
मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः २३
प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असंभ्रमन् महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥ २४
आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद्दृष्टवानहम् ।
न मोघः सायकः कश्चित्सात्यकेरभवत्प्रभो
रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः ।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २६
संभ्रान्तनरनागाश्वमावर्तत मुहुर्मुहुः ।
तत् सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः २७
बभ्राम तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।
पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥ २८
अविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः ।
न तादृक्कदनं राजन् कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥
यादृक् क्षयमनीकानामकरोत् सात्यकिर्नृप ।
अत्यर्जुनं शिनेःपौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥ ३०
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं संप्रदर्शयन् ।
ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टाभिरेव च
दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् ।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ३३
दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम्
उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ।
गाढविद्धानरीन्कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः
शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ।
सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ।
अथान्यद्धनुरादाय श्यालस्तव विशांपते ॥ ३८

अष्टाभिः सात्यकिं विद्ध्वा
पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
दुःशासनश्च दशभि-
र्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३९

दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध सात्यकिं
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम्
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिं
तान्सर्वान्सहिताञ्शूरान्यतमानान्महारथान्
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः
ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥
आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि ।
पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत संगरात् ।
ततस्तव सुतो राजन् सैनिकाश्च विशांपते ॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन् ।
विद्रुतं तत्र तत् सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः
विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति
तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम् ।
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

# १२१

धृतराष्ट्र उवाच ।
संप्रमृद्य महत् सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत सञ्जय ॥
कथं वैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम् ।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २
किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः
कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र सञ्जय ।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥
अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम्
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५
विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति ।
यत्रावध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६
एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य सञ्जय ।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥
निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
यथा पशुगणान् सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान् मम ॥
कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत्पुरुषर्षभः ॥ ९
नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ।
यादृशं कृतवान् युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥
सञ्जय उवाच ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत
ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तका मिथः ।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥
त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शककाम्बोजबाल्हीका यवनाः पारदास्तथा
कुलिंदास्तंगणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पार्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।
युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनां
शूराः पञ्चाशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन् ।
ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥ १६
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः१७
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।
तांश्च सञ्चोदयन् सर्वान्घ्नतैनमिति भारत१८
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९
यदेको बहुभिः सार्धमसंभ्रान्तमयुध्यत ।
अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद्बलम् ॥
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः
तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः २२
वर्मभिश्च तथानीकैर्व्यवकीर्णा वसुंधरा ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ।
गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः॥२४
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५
ऐरावतकुले चैव तथाऽन्येषु कुलेषु च ।
जाता दन्तिवरा राजन् शेरते बहवो हताः

---

१२१

**संप्रमृद्येति** ॥ १॥ दुर्योधनस्य कृतेन कर्मणा ॥११॥ मतिं कृत्वेत्यन्वयः ॥ १२ ॥ वामनस्य यमोपवाह्यस्य ।
'चन्द्राःकान्तशिरोग्रीवा नीचस्कन्धा मनस्विनः ।
व्यूढोरस्काः सुनिश्चिन्ता वामनान्वयजा गजाः ' ॥
सुप्रतीकस्य ईशोपवाह्यस्य ।
'सुविभक्तमहाशीर्षा जीमूतसदृशप्रभाः ।
प्रभूतहस्ता बलिनः सुप्रतीककुलोद्भवाः ' ॥
महापद्मस्य कुमुदस्य कुले ॥
'चंडाः समायतस्कन्धाः सुबद्धा बलिनोऽपि च ।
महापद्मान्वयभवा गजयुद्धप्रिया गजाः ' ॥२५॥
'श्वेतवालनखाः शूराः श्वेतत्वक्का महाबलाः ।
उदग्रा वर्ष्मवन्तश्च गजा ऐरावतोद्भवाः ' ॥
अन्येषु कुलेषु पुंडरीकपुष्पदन्तसार्वभौमीयेषु ।
'स्थिराः स्थूलशिरोदन्तानिःशंका बलिनोऽपि च ॥
शुक्लवर्णनखाः शूराः पुंडरीकोद्भवा गजाः ।
श्यामत्वग्दशनाश्चंडा लम्बोष्ठाश्चारुदर्शनाः ॥
पीनायताननकराः पुष्पदंतोद्भवा गजाः ॥
मंडलाकृतयः शूराः सुवर्माणः सुदर्शनाः ।
पीनायतास्याः पीताभाः सार्वभौमकुलोद्भवाः ' ॥२६॥

वनायुजान् पार्वतीयान्
काम्बोजान् बाल्हिकानपि ।
तथा हयवरान् राज-
न्निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७
नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुःशासनोऽब्रवीत्
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥
तांश्चातिभग्नान् संप्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान् पार्वतीयानचोदयत्
अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं हतैनं युद्धकामुकम् ॥ ३१
तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ॥
अभिद्रवत माभैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः
ते पार्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥
ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४
क्षेपणीयैस्तथाऽप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५
तेषामापततामेव
शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसन्धाय
निशितान् प्राहिणोच्छरान् ॥ ३६
तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसङ्काशैर्नाराचैः शिनिपुंगवः ॥
तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥
ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन्निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९
पुनर्दशशताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम्
पाषाणयोधिनः शूरान् यतमानानवस्थितान्
न्यवधीद्बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१
ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः ॥
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तंगणाः खसाः
लंपाकाश्च कुलिंदाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥
अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः
शब्देन प्राद्रवन् संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥४४
अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्य-गज-वाजिनः ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५
हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तदा ॥ ४६
ततः शब्दः समभवत्तव सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यंतारमब्रवीत् ।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥
दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९
पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः ।
तथाहि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥
विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च ।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान्५१
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥
सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समंततः ।
पश्य योधान् रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः
इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः
अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिन्दम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः
तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन् बहुविधान् रथान्
ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥
यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्तत ।
ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
एकाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

---

क्षेपणीयैः शस्त्रैः ॥ ३५ ॥ व्यात्तमुखा म्लेच्छविशेषाः४२॥ अद्रीणां प्रस्तराणाम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

# १२२

सञ्जय उवाच ।

दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत्
दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः।
कच्चित्क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥
राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः।
किमर्थं द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥
'दासी जितासि द्यूते त्वं यथाकामचरी भव॥
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव
न सन्ति पतयः सर्वे तेद्य षण्ढतिलैः समाः'
दुःशासनैवं कस्मात्त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे
न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान्दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः
अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत् पुरा ।

क्व ते मानश्च दर्पश्च
क्व ते वीर्यं क्व गर्जितम् ।
आशीविषसमान् पार्थान्
कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ९

शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ।
ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥
स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥१२

कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे
भीतो भीते व्यपाश्रये ।
एकेन सात्वतेनाद्य
युध्यमानस्य तेन वै ॥ १३

पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्तते ।
यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव॥
यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि
युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे
त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश

पृथिव्यां धावमानस्य
नान्यत् पश्यामि जीवनम् ।
यदि तावत्कृता बुद्धिः
पलायनपरायणा ॥ १७

पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम् ।
यावत्फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसन्निभाः ।
नाविशन्ति शरीरं ते तावत्संशाम्य पाण्डवैः
यावत्ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ।
नाक्षिपंति महात्मानस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः
यावन्न क्रुध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत्संशाम्य पाण्डवैः
यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥
सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत्संशाम्य पाण्डवैः
पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणासौ सुयोधनः ॥

अजेयाः पाण्डवाः संख्ये
सौम्य संशाम्य तैः सह ।
न च तत्कृतवान्मन्द-
स्तव भ्राता सुयोधनः ॥ २३

स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः
तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम्

तच्चाप्यवितथं तस्य
तत्तथैव भविष्यति ।
किं भीमस्य न जानासि
विक्रमं त्वं सुबालिश ॥ २५

यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना ।
गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः २६
त्वया हीनं बलं ह्येतद्विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम्
एवमुक्तस्तव सुतो नाब्रवीत्किञ्चिदप्यसौ ।
श्रुतं चाश्रुतवत्कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः
सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम्
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् २९

१२२

दुःशासनरथमिति ॥ १ ॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः
पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो
जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३०
प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम्
द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः
ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत्३२
तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान्वीरकेतुः समभ्ययात्
स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः
तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद्द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्तत ३५
सन्निरुद्धं रणे द्रोणं पञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः ३६
ते शरैरग्निसंकाशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन्
निहत्य तान् बाणगणैर्द्रोणो राजन्समंततः ।
महाजलधरान् व्योम्नि मातरिश्वेव चाबभौ
ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसन्निभम् ।
संदधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९
स भित्त्वा तु शरो राजन्पाञ्चालकुलनन्दनम्
अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव
ततोऽपतद्रथात्तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ४१
तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समंतात्पर्यवारयन् ॥
चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ४३
अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः ।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ४४
स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः ।
क्रोधमाहारयत्तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५
ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत् ।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ४६
कर्तव्यं नाभ्यजानन् वै कुमारा राजसत्तम ।
तान् विमूढान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे ।
अथापरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः४८
पुष्पाणीव विचिन्वन्हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत
ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन् सुवर्चसः
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः ।
तान्निहत्य रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान्
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
पञ्चालान्निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान्महारथान्
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२
ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप ।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ५३
स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना ।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्च्छितः
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ५५
स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ५६
तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी ।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान्
अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ५८
हर्तुमिच्छन् शिरः कायात्क्रोधसंरक्तलोचनः
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ५९
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया ।
शरैर्वैतस्तिकै राजन्विव्याधासन्नवेधिभिः ॥
योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः
द्रोणस्य विहिता राजन्यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत्
स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः६२
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद्धनुः ॥ ६३
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥
तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकांक्षिणोरासीच्छक्रप्रल्हादयोरिव
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६
मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ६७
छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम्
तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥ ६८
क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तव सैनिकाः
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥ ६९

वशमेष्यति नो राजन् पञ्चाला इति चुक्रुशुः
द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ७०
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव।
ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा।
अयोधयद्रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२
विजित्य पांडुपञ्चालान्भारद्वाजः प्रतापवान्
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितो भवदरिन्दमः ॥
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ७३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## १२३

सञ्जय उवाच।
ततो दुःशासनो राजन् शैनेयं समुपाद्रवत
किरञ्शतसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् १
स विद्ध्वा सात्यकिं षष्ट्या
तथा षोडशभिः शरैः।
नाकम्पयत्स्थितं युद्धे
मैनाकमिव पर्वतम्॥ २
तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद्भृशम्।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३
सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन्सायकान्बहून्।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन्वै दिशो दश ॥ ४
तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः॥५
ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः।
प्राद्रवन्समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः॥ ६
तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव।
तस्थौ व्यपेतभी राजन्सात्यकिं चार्दयच्छरैः
चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः
सात्यकिं च शतेनाजौ विद्ध्वा नादं मुमोच सः
ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः॥ ९
स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद्भृशम्।
सशङ्कं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया॥ १०
त्वरन्समावृणोद्बाणैर्दुःशासनममित्रजित्।
दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम्
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति।
तेऽगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः१२
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः।
ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन्॥ १३
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः
तेषां प्रपततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम्॥ १४
योधान्पञ्चशतान्मुख्यानग्यानीके व्यपोथयत
तेऽपतन्निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद्रुमाः।
नागैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशांपते॥१६
हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः।
ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः॥१८
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः।
ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ १९
भयात्पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः।
हत्वा पञ्चशतान्योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥
प्रायात्स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति।
तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः।
स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः।
सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत॥२३
दुःशासनस्त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः
शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४
धनुश्चास्य रणे छित्त्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ।
ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

१२३
ततो दुःशासन इति ॥ १ ॥

सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।
तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः
चिच्छेद शतधा राजन्निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।
अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७
सात्यकिं च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननर्द ह
सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः॥ २९
सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाष्टभिः।
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत
सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनांतरे
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः॥ ३१
ततोऽस्य वाहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ।
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः॥ ३२
धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ।
ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित्
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णै-
स्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
स च्छिन्नधन्वा विरथो
हताश्वो हतसारथिः
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः ।
तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत ॥ ३५
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ।
भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत ॥ ३६
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ।
ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो
जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनञ्जयः॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

## १२४

धृतराष्ट्र उवाच ।
किं तस्यां मम सेनायां नासन्केचिन्महारथाः
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाघ्नन्नाप्यवारयन्
एको हि समरे कर्म कृतवान् सत्यविक्रमः ।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २
अथवा शून्यमासीत्तद्येन यातः स सात्यकिः
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः॥३
यत्कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे ।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि संजय ॥ ४
अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः ।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥
न सन्ति तस्मात् पुत्रा मे यथा सञ्जय भाषसे।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नात सत्यविक्रमः
कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम् ।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ७
सञ्जय उवाच ।
राजन्सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान्
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥
आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नाभूल्लोके समः कश्चित्समूह इति मे मतिः ॥
तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः ।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥
न च वै तादृशो व्यूह आसीत्कश्चिद्विशांपते
यादृग्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥
चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
रणेऽभवद्बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥
पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन्नरोत्तम ।
त्वद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च
संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्रासीत्सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४
अथाक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

१२४

किं तस्यामिति ॥ १ ॥

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥
तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ।
ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा ।
भीमसेनेन ते राजन्पाञ्चाल्येन च नोदिताः
आजघ्नुः कौरवान्सङ्ख्ये
त्यक्त्वाऽसूनात्मनः प्रियान् ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे
शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥ २०
स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाभ्यनन्दन्त जीवितम्
तथैव तावका राजन्प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे ।
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥ २२
जित्वा सर्वाणि सैन्यानि
प्रायात्सात्यकिरर्जुनम् ।
कवचानां प्रभास्तत्र
सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३
दृष्टीः सङ्ख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समंततः
तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम्
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद्बलम् ।
स सन्निपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥
अभवत्सर्वभूतानामभावकरणो महान् ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम्
कच्चिद्दुर्योधनः सूत नाकार्षीत्पृष्ठतो रणम् ।
एकस्य च बहूनां च सन्निपातो महाहवे ॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे ।
सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः
एको बहून्समासाद्य कच्चिन्नासीत्पराङ्मुखः

सञ्जय उवाच ।

राजन्संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत॥२९
एकस्य बहुभिः सार्धं शृणुष्व गदतो मम ।
दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३०
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्प्रतिलोडिता ।
ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ ३१
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।
स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम्
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः ।
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम्
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः
शतशश्चापरान्योधान्सद्विपांश्च रथान् रणे ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
न संदधन्विमुञ्चन्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥
अदृश्यत रिपून्निघ्नञ्छिक्षयाऽस्त्रबलेन च ।
तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्हेमपृष्ठं महद्धनुः ॥ ३६
अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद्धनुः
तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे ।
विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः
वर्म चाशु समासाद्य
ते भित्त्वा क्षितिमाविशन् ।
ततः प्रमुदिताः पार्थाः
परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३९
यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥४०
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥ ४१
प्रत्युद्ययुः समुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ।
तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पाण्डवं
चण्डवातोद्धुतान्मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा
तत्र राजन्महानासीत्संग्रामो लोमहर्षणः ॥
पाण्डवानां महाबाहो तावकानां च संयुगे ।
रुद्रस्याक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥
ततः शब्दो महानासीत्पुनर्येन धनञ्जयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥
अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम्
मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे॥ ४६
द्रोणस्यापि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे ।
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

---

लक्ष्म्येति विशेषणे तृतीया॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४ ॥

# १२५

सञ्जय उवाच ।

अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १
शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत्पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥२
तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुंखैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसंभवः ॥ ३
वरान्वरान्हि योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
आक्रीडत रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान्
तमभ्ययाद्बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां नृपपञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥ ५

विमुञ्चन्विशिखांस्तीक्ष्णा-
नाचार्यं भृशमार्दयत् ।
महामेघो यथा वर्षं
विमुञ्चन्गन्धमादने ॥ ६
तस्य द्रोणो महाराज
स्वर्णपुंखाञ्छिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः
सायकान्दश पञ्च च ॥ ७
तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान्
क्रुद्धाशीविषसन्निभान् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणै-
र्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः ।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ सन्नतपर्वणः ॥ ९
तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान्
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥ १०
ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ११
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् ।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् १२
कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥ १३
ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत ।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः
तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम्
कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।
तथाऽत्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे
सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे॥
द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः
सारथिं चास्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥
द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
असृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति
व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।
अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्रिभिः २०

सूतं चैकेन बाणेन
रथनीडादपातयत् ।
द्वाभ्यां ध्वजं च छत्रं च
छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ २१

ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः ।
हृद्यविध्यद्बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत् २२
बृहत्क्षत्रे हते राजन् केकयानां महारथे ।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् २३

सारथे याहि यत्रैष
द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।
विनिघ्नन् केकयान् सर्वान्
पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥ २४

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम्
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः २५
धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
वधायाभ्यद्रवद्द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् २६

सोऽविध्यत तदा द्रोणं
षष्ट्या साश्वरथध्वजम् ।
पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः
सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः २८
अथान्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः २९

---

१२५
अपराह्ण इति ॥ १ ॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥३०
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ३१
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम् ।
तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम्
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ३३
सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष ।
गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम्३४

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः ।
तोमरं व्यसृजद्वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम्
तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥
ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ३७
स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः
अभ्यगाद्धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा ३८
पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः ।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ३९
निहते चेदिराजे तु तत् खण्डं पित्र्यमाविशत्
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ४०
तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ४१
तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
जरासन्धसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ४२

स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे ।
अदृश्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ४३
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः
छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासन्धिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनाम्

यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथाऽन्तकः
ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान् समावृणोत्
ते तु नामाङ्किता बाणा
द्रोणेनास्ताः शिलाशिताः ।
नरान्नागान् हयांश्चैव
निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८
ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव
ततो निष्ठानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५०
प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः ।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः ॥ ५१
मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ५२
चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ५३

ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
हत द्रोणं हत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ५४
यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५
यतमानांस्तु तान्वीरान्भारद्वाजः शिलीमुखैः
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान् विशेषतः ।
तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः

प्राक्रोशन् भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथा रूपाणि मारिष॥
ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान्॥
धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परंतपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनापि निर्दहेत्॥६०
द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ६१
यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन् सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥

क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः ।
स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः॥ ६४
अन्यत्कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ।
तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ।
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥

निष्ठानकः कष्टस्वनः ॥ ५० ॥ ऊरुग्राहः ऊरुस्तम्भः ॥ ५२ ॥

स भिन्नहृदयो बाहान्यपतन्मेदिनीतले ।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६७
अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः।
स द्रोणं दशभिर्विद्ध्वा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे
चतुर्भिः सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत्त्रिभिः।
तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥
समरे शरसंवाता भारद्वाजेन मारिष ।
चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥७१
तान् समेतान् रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान्
समन्ताद्द्रावयन् द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥
आकर्णपलितः श्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३
अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७४
ततोऽब्रवीन्महाबाहु-
द्रुपदो बुद्धिमान्नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान् हन्ति
व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७५
कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान्
पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद्विनिहताः
समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६
शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥
एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः
पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## १२६

सञ्जय उवाच ।
व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः॥
वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २
द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३
नापश्यच्छरणं किञ्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥४
ततो वीक्ष्य दिशःसर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया
युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥५
सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गांडीवस्य च निर्घोषमशृण्वन् व्यथितेन्द्रियः
अपश्यन् सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम्
चिन्तयाऽभिपरीतांगो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
नाध्यगच्छत्तदा शान्तिं तावपश्यन्नरोत्तमौ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वाद्धर्मराजो महामनाः ८
अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ।
पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ९
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयंकरः।
तदिदं ह्येकमेवासीद्द्विधा जातं ममाद्य वै ॥
सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनञ्जयः।
सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम्
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम्।
करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ।
भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम्
लोकापवादभीरुत्वात्सोऽहं पार्थं वृकोदरम्

---

आकर्णमुपागतं पलितं केशादेः शौक्ल्यं यस्य वयसा काल-
पिण्डसंयोगेन अशीतिपञ्चकः चतुःशताब्दः अशीतिकापर
इति पाठे अतिवृद्धतमः ॥७३॥ इति श्रीमहाभारते द्रोण-
पर्वणि टीकायां पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

१२६

व्यूहेष्विति ॥ १ ॥ वानरर्षभलक्षणं वानरप्रधानं ध्वजं वरवानरकेतनमिति पाठो वा ॥ ५ ॥ सत्यो दृढ-प्रतिज्ञः ॥ १० ॥

पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।
यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥१६
स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥
असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता॥
प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।
न चाप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम्
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१
यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः
इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।
सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ
कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥२४
अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगं
ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥२६
यन्तारमब्रवीद्राजा भीमं प्रति नयस्व माम् ।
धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥२७
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ।
भीमसेनमनुज्ञाप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ २८
कश्मलं प्राविशद्राजा बहु तत्र समादिशत् ।
स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥
अब्रवीद्वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यः सदेवान्सगन्धर्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत्
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते ।
ततोऽब्रवीद्धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ।
पुराऽतिदुःखदीर्णानां भवान् गतिरभूद्धि नः
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते
न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।
तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥३४
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।
यथा शंखस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य *श्रूयते
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनञ्जयः ॥ ३६
तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः॥
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद्भारतीं चमूम् ॥
तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः॥
व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥४०
तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिन्दमम् ।
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात्
वर्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलं
तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ॥ ४३
तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ।
पार्थे तस्मिन्हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥४४
सहायो नास्य वै कश्चित्तेन विन्दामि कश्मलं
तस्मिन्कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥
न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परंतप ।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनञ्जयः
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ।
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ।
दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ
सात्वतं चैव सात्यकिम् ।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं
सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९

---

सात्यकिं प्रति प्रतिविधानं कृतमित्यन्वयः २६ चकोरनेत्रो रक्तान्तायतनयनः ताम्रास्यो रक्तगौरमुखः ४० * निःस्वनः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## १२७

भीमसेन उवाच ।

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥
आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः
समेत्य तान्नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम्

सञ्जय उवाच ।

एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम्
धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः । ३
धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः ।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते ।
न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ॥५
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः ।
एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥
प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशंकया ॥ ७
यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे ।
तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाविचारयन्
नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥ १०
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ॥

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पांडवम्
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः ।
परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः
कृत्वा प्रदक्षिणान्विप्रानार्चितांस्तुष्टमानसान्
आलभ्य मंगलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु ।
द्विगुणद्राविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥१४
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः
पश्यन्नेवात्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम्
अनुलोमानिलैश्चाशु प्रदर्शितजयोदयः ॥
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ।
साङ्गदी सतलत्राणः सरथी रथिनां वरः ।
तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्धिमत् ॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।
पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥
×कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवांबुदः ।
प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥१९
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशांपते ।
तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।
एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम्
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शंखराट् ।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत्सव्यसाचिनि ॥ २२
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ।
आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः
स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः २४
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनञ्जयदिदृक्षया ।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात्
गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः
ततः पाण्डुसुतो राजन् भीमसेनः प्रतापवान्
बद्धगोधांगुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।
ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियंकरः

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

१२७

**ब्रह्मेति** ॥ १ ॥ संविदं ज्ञापनम् ॥ २ ॥ आत्ययिकं अतिशयितं हिशब्दोभिमुखीकरणे एवमनंतरोक्तम् ॥ ६ ॥ ' अनलो गोहिरण्यं च दूर्वागोरोचनामृतम् अक्षतं दधि चेत्यष्टौ मंगलानि प्रचक्षते '॥१४॥ विजयोत्पादसूचितः सूचितविजयोत्पादः ॥ १५ ॥ आर्या मान्या मातेति यावत् निदर्शनं निमित्तं ॥२३॥ मुह्यंति मोहेनाक्रियंते ॥ २५ ॥ × कण्ठसूत्रेणेति पाठः ।

आहत्य दुन्दुभिं भीमः
शंखं प्रध्माप्य चासकृत् ।
विनद्य सिंहनादेन
ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः ॥ २८
तेन शब्देन वीराणां
पातयित्वा मनांस्युत ।
दर्शयन् घोरमात्मान-
ममित्रान् सहसाऽभ्ययात् ॥ २९
तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः ।
विशोकेनाभिसंपन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३०
आरुजान्विरुजन् पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना
संप्रकर्षन् विकर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१
तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ३२
तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् ।
दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखौ दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥
वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥
तैः समन्तादृतः शूरैः समरेषु महारथः ।
तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७
ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन्
छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥
स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९
सोऽचिरेणैव कालेन तद्गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत् पवनात्मजः
त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन् द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान्
पुनश्चातीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ४२
ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवादित्यो विबभौ तेन पाण्डवः
स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फाल्गुनो यथा
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥
भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ ४५
यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥
अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥
तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद्बलम्
तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः
पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम्
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥
अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते ।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम् ।
अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदंडमिवांतकः
द्रोणाय व्यसृजद्राजन् स रथादवपुप्लुवे ।
साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयत्तदा ॥
प्रामृद्नाच्च बहून्योधान् वायुर्वृक्षानिवौजसा
तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४
अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः ।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी ।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥
ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः ।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥
ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत्
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पांडुनंदनम्
आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम् ।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत्
अथान्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनं
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ ६०
ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत् पुनः
अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
त्रिभिस्त्रीनवधीद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥
वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन् ॥

आरुजन् कृंतन् विरुजन्विध्यन् विकर्षन् अत्यर्थं कर्षन् संप्रकर्षन् सम्यक्प्रकर्षेण विलिखन् विकर्षन् विक्षिपन् ॥ ३१ ॥

ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि ।
मेघा इवातपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥
स तद्बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाचलः ।
प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा
विंदानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम्
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६६
ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥६७
सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत पाण्डुनंदनः
ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशांपते ॥ ६९
प्राद्रवन् सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ।
अनुयायाच्च कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ७०
विव्याध समरे राजन् कौरवेयान् समन्ततः
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ७१
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान्
तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ।
तलशब्दं च सुमहत् कृत्वा भीमो महाबलः
भीषयित्वा रथानीकं
हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि
द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

## १२८

सञ्जय उवाच ।
समुत्तीर्णं रथानीकं पाण्डवं विहसन् रणे
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १
पिबन्निव शरौघांस्तान् द्रोणचापपरिच्युतान्
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान्मोहयन् बलमायया २
तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३
स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उद्यच्छन् स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन्
अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् ।
इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
प्रामथ्नात्सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ५
घोषेण महता राजन् पूरयन्तीव मेदिनीम् ।
ज्वलंती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान्
तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोऽभिसंवृताम्
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान्
तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष ।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८
ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव
स तान् विद्राव्य कौन्तेयः
संख्येऽमित्रान् दुरासदान् ।
सुपर्ण इव वेगेन
पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ १०
तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥
भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः
अकरोत्सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥
तद्युद्धमासीत् सुमहद्घोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः
यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः ।
निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात्
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ
वेगमास्थाय बलवान् मनोनिलगरुत्मताम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

१२८

**समुत्तीर्णमिति** ॥ १ ॥ बलमायया बलाविष्करणेन ॥ २ ॥

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया ।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् १७
स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष ।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः १८
द्रोणस्तु सत्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः ॥ १९
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा ।
गत्वा वेगात् पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु२०
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः ।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया २१
व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः ।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः २२
तस्मिन् क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत्
भीमसेनस्य कौरव्यस्तदद्भुतमिवाभवत् २३
ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् २४
स मृद्नन्क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः
आगच्छद्दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव

भोजानीकं समासाद्य
हार्दिक्येनाभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य तरसा वीर-
स्तदप्यतिबलोऽभ्ययात् ॥ २६

संत्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत् सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान्
भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम्
तथा म्लेच्छगणानन्यान्बहून्युद्धविशारदान्
सात्यकिं चैव संप्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा २९
भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनंजयम् ।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान् पाण्डुनन्दनः
सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् ।
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ३२
तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३
तौ श्रुत्वा युगपद्वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ३४
ततः पार्थो महानादं मुञ्चन्वै माधवश्च ह
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ३५
भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३६
विशोकश्चाभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः
धनंजयस्य समरे जयमाशास्तवान्विभुः ३७
तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः३८
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।
दत्ता भीम त्वया संवित्कृतं गुरुवचस्तथा३९
न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टासि पाण्डव
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनंजयः

दिष्ट्या च कुशली वीरः
सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ
वासुदेवधनंजयौ ॥ ४१
येन शक्रं रणे जित्वा
तर्पितो हव्यवाहनः ।
स हन्ता द्विषतां संख्ये
दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४२
यस्य बाहुबलं सर्वे
वयमाश्रित्य जीविताः ।
स हन्ता रिपुसैन्यानां
दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४३

निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः ।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति

कौरवान् सहितान् सर्वान्
गोग्रहार्थे समागतान् ।
योऽजयन्मत्स्यनगरे
दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५

कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे ।
योऽवधीद्भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति

गन्धर्वराजं बलिनं
दुर्योधनकृते च वै ।
जितवान् योऽस्त्रवीर्येण
दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४७

किरीटमाली बलवाञ्छ्वेताश्वः कृष्णसारथिः
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तश्चिकीर्षन् कर्म दुष्करम् ।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः ॥
कच्चित्स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनंजयः ।
कच्चित्तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् ।
कच्चित्सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥

नन्दयिष्यत्यमित्रान्हि फाल्गुनेन निपातितः
कच्चिद्दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम्
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति।
दृष्ट्वा विनिहतान्भ्रातॄन् भीमसेनेन संयुगे।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति॥
दृष्ट्वा चान्यान्महायोधान्
पातितान् धरणीतले।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः
पश्चात्तापं गमिष्यति॥ ५४
कच्चिद्भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति॥
शेषस्य रक्षणार्थं च सन्धास्यति सुयोधनः ५५
एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा।
कृपयाऽभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत॥ ५६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥

## १२९

धृतराष्ट्र उवाच।
निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम्
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन्॥१
न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कञ्चन।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे॥ २
गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह सञ्जय।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्
रथं रथेन यो हन्यात् कुञ्जरं कुञ्जरेण च।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरन्दरः॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्रान् जिघांसतः।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः॥
भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान्।
प्रधक्षतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः॥ ६
काल्यमानांस्तु पुत्रान् मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन्॥
न मेऽर्जुनाद्भयं तादृक्कृष्णान्नापि च सात्वतात्
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद्भयं मम॥ ८
भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान्दिधक्षतः।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय॥ ९
सञ्जय उवाच।
तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम्।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्बली॥ १०
व्याक्षिपन् सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः।
कर्णः सुयुद्धमाकांक्षन् दर्शयिष्यन्बलं मृधे॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः।
भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम्
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपास्य शिलाशितान्।
तान्प्रत्यगृह्णात्कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान्
ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे॥ १४
रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम्
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे॥
खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः।
पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः॥
समरे सर्वयोधानां
धनूंष्यभ्यपतन्क्षितौ।
शस्त्राणि न्यपतन् दोर्भ्यः
केषांचिच्चासवोऽद्रवन्॥ १७
वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च॥
प्रादुरासन्निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत।
गृध्रकङ्कबलैश्चासीदन्तरिक्षं समावृतम्॥ १९
तस्मिन्स्तुमुले राजन् कर्णभीमसमागमे।
ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत्
विव्याध चास्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः
प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद्रणे॥ २१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥

१२९

निनदन्तमिति॥ १॥ युयुत्समानस्य व्यापारयतः॥३॥ सावेगं सत्वरम्॥१२॥ संरुद्धामेकतामापन्नाम्॥१६॥

सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः
तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत्
असंप्राप्तांश्च तान् भीमः सायकैर्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन्पाणिलाघवम्
तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः ।
संछाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः ।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥
अथान्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥
तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीन् शरान्नतपर्वणः ।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७
तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा ।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृंगो भरतर्षभ ॥ २८
सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः ।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकधातवः ॥
किंचिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः ।
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥
चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना ।
धनुर्ज्यामच्छिनत्तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥
हताश्वात्तु रथात्कर्णः समाप्लुत्य विशांपते ।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३
निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद बलवान्नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४
तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ३५
समन्ताच्छंखनिनदं पाण्डुसेनाऽकरोत्तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन्भृशम्
स शंखबाणनिनदैर्हर्षाद्राजा स्ववाहिनीम् ।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥
गाण्डीवं व्याक्षिपत्पार्थः
कृष्णोऽप्यब्जमवादयत् ।
तमन्तर्धाय निनदं
भीमस्य नदतो ध्वनिः
अश्रूयत तदा राजन्
सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८
ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

## १३०

सञ्जय उवाच ।
तस्मिन्विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहुकृत्यं विचिन्तयन् ।
स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परया युतः ॥ २
तूर्णमभ्यद्रवद्द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ।
उवाच चैनं पुत्रस्ते संरंभाद्रक्तलोचनः ॥ ३
ससंभ्रममिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः ।
अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥४
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः
संप्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः
व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः
यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां
व्यतिक्रान्तोऽसि मानद ।
आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्
समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च ।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८
कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९

व्यायच्छतां प्रहरताम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१२९॥

१३०
तस्मिन्निति ॥ १ ॥ संरंभात्प्रणयक्रोधात् ॥ ३ ॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः
एवंगते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत्ते विवक्षितम्
यद्गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद॥ ११
यत्कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम्।
तत्संविधीयतां क्षिप्रं साधु सञ्चिन्त्य नो द्विज

द्रोण उवाच।

चिन्त्यं बहुविधं तात यत्कृत्यं तच्छृणुष्व मे
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः
यावत्तेषां भयं पश्चात्तावदेषां पुरःसरम्।
तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनञ्जयौ॥ १४
सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम्॥
स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनञ्जयात
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ॥
संप्राप्तं तदिदं द्यूतं यत्तच्छकुनिबुद्धिजम्।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ।
यान्स्म तान्ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि

अक्षान् स मन्यमानः प्राक्
शरास्ते हि दुरासदाः
यत्र ते बहवस्तात
कौरवेया व्यवस्थिताः॥ १९

सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान्विशांपते।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः।
सैन्धवे तु महत् द्यूतं समासक्तं परैः सह।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत्कर्तुमर्हथ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ॥
यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम्
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः॥

इहैव त्वहमासिष्ये
प्रेषयिष्यामि चापरान्।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान्
सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः॥ २४

ततो दुर्योधनोऽगच्छत्तूर्णमाचार्यशासनात्।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः॥ २५
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ॥
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम्
यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया॥२७

पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ
प्रविष्टौ तव वाहिनीम्।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ
कुरुराजो ददर्श ह॥ २८

ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत्संख्यमुत्तमम्
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली
तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि॥२९
तमविध्यद्युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः।
विंशत्या सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्
दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाऽच्छिनत्
एकेन कार्मुकं चास्य चकर्त तनयस्तव॥ ३२
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत्।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्
युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे।
व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे॥
तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः।
अविध्यत्सारथिं चास्य प्राहिणोद्यमसादनम्
दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः
जघान चतुरोऽस्याश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी
उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन्॥
सरथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्भुवि।
हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा।
युधामन्योर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे॥
हताश्वसूतात्स रथादवतीर्य नराधिपः।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ४०
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद्युधामन्यूत्तमौजसौ॥
ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी।
संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप॥
भंक्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परंतपः॥ ४३

---

तान् प्रसिद्धान् यानक्षान् अक्षान् मन्यमानः प्रागग्लहते स्म इत्यन्वयः॥ १८॥ यत्र सभायां तेऽमी॥ १९॥ दुरोदरं द्यूतकारिणम्॥ २०॥

पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ । रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

## १३१

सञ्जय उवाच ।

वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १
राधेयो भीममानर्च्छद्युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च संप्रयुद्धौ महाबलौ
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥
पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः॥४
भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५
भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नान्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात्
भयाद्यस्य महाबाहो न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन्नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताहवे ॥ ७
ब्रह्मण्यं वीर्यसंपन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ८
यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युद्ध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९
भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन्
भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन् वैरं पुरा कृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११
आशास्ते च सदा सूतपुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान्पाण्डवानिति
जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३
यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् १४
अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना १५
योऽजयत्पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् १६
यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७
यथा तयोर्युद्धमभूद्यश्चासीद्विजयी तयोः ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय १८

सञ्जय उवाच ।

भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनञ्जयौ १९
तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् २०
फुल्लता पङ्कजेनेव वक्रेण विहसन् बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा २१

कर्ण उवाच ।

भीमाहितैस्तव रणः स्वप्नेऽपि न विभावितः
तद्दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया २२
कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर २३
भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद्युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४
अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

१३१

**वर्तमान इति** ॥ १ ॥ पूर्वमुद्योगे दर्शितमुद्भावितं भ्रातृत्वं कुंत्या वाक्यं च चतुर्णामवध्यत्वलक्षणं चानुस्मरन्नित्यन्वयः ॥ १० ॥ अभितः संमुखे ॥ २३ ॥

विधित्सुः कलहस्यान्तं
जिघांसुः कर्णमक्षिणोत् ।
हत्वा तस्यानुगांस्तं च
हन्तुकामो महाबलः ॥ २६
तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परन्तपः ।
अमर्षात्पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष२७
तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत्परमास्त्रवित् २८
स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्बली २९
युध्यमानं तु संरम्भाद्भीमसेनं हसन्निव ।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम् ।
तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ३१
तं भीमसेनः संप्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्
पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ३३
कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः
संछन्नान्वातरंहसः ।
हयान् विव्याध भीमस्य
पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३४
ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन्निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५
सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः३६
तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत्कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाप्यहनत्पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ३७
ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान्
समाश्लिष्यदसंभ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ३८
स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद्भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥
ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान्
अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ४१
मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्वं वैरमनुस्मरन् ४२
तं भीमसेनो नामृष्यदवमानममर्षणः ।
स तस्मै व्यसृजत्तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥ ४३
ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ४४
हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ४५
कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन्व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ४६
तस्य तानशनिप्रख्यानिषून्समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसंप्राप्तान् वृकोदरः ४७
पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिन्दमः ॥ ४८
तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ४९
हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान्
कर्णचापच्युताञ्छरान् ।
दधार समरे वीरः
स्वरश्मीनिव रश्मिवान् ॥ ५०
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ५१
तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे
नामृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ५२
स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३
पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ५४
पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ५५
जघान चतुरश्चाश्वान् सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि
ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः ।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ५७
स वैक्लव्यं महत्प्राप्य छिन्नधन्वा शराहतः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ५८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये
एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

शरानिति शेषः। आचिन्त्य-अविगणय्येत्यर्थः३८इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः१३१

# १३२

धृतराष्ट्र उवाच ।
स्वयं शिष्यो महेशस्य
भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान् कर्ण-
स्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥ १
तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया २
यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम सञ्जय ।
तं भीमाद्विमुखं दृष्ट्वा किंनु दुर्योधनोऽब्रवीत्
कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत्ततः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ४
सञ्जय उवाच ।
रथमन्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ५
क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशांपते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ६
चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ७
पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ८
संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षां चक्राते दहन्ताविव लोचनैः
क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ १०
व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११
ततो भीमः स्मरन्क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिन्दमः ॥ १२
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवात्मजैः
सततं च परिक्लेशान्सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥
दग्धुमैच्छश्च यः कुन्तीमपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।
परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत
'पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥'
समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव
यच्चापि तान् प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः
परुषाण्युक्तवान् कर्णः सभायां सन्निधौ तव
तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान्समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः १९
बाल्यात्प्रभृति चारिघ्नः
स्वानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा
जीवितेन वृकोदरः ॥ २०
ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात्
स सायकमयैर्जालै-
र्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतै-
र्भानोः प्राच्छादयत्प्रभाम् ॥ २२
ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः
व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः २३
महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥
स तोत्त्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसंभ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५
तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम्
ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७
तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः
अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः २९
ऋक्षवर्णान्हयान्ककैर्मिश्रान्मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद्बलम् ३०

१३२
स्वयमिति ॥१॥ ककैः श्वेतैरश्वैः ॥ ३० ॥

ते हया बह्वशोभन्त
मिश्रिता वातरंहसः ।
सितासिता महाराज
यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१
संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ ।
संत्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः
यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः ।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३३
समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः ।
नालक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४
तयोः प्रैक्षन्त संमर्दं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्रस्य विशांपते ॥
छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥
तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥
सुवर्णविकृतान्बाणान्विमुंचन्तावरिन्दमौ ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो
ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन् गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे
संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिंदमम् ।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥ ४१
तत्राधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः ।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्व-नर-द्विपाः ॥ ४१
पतद्भिः पतितैश्चान्यैर्गतासुभिरनेकशः ।
कृतो राजन्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥
मनुष्याश्व-गजानां च शरीरैर्गतजीवितैः ।
क्षणेन भूमिः संजज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

## १३३

धृतराष्ट्र उवाच ।
अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत्कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १
त्रिदशानपि वा युक्तान्सर्वशस्त्रधरान्युधि ।
वारयेद्यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुषान् ॥ २
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत्संयुगे पार्थं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३
कथं च युद्धं संभूतं तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाऽजय एव च॥४
कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सगोविंदान्ससात्वतान्
श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद्भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६
विनष्टान्कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
न हि कर्णो महेष्वासान्पार्थाञ्जेष्यति सञ्जय ।
कृतवान्यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८
अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः ।
न च तद्बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९
धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते ॥ १०
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनां
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥
पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः
शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥ १३
तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम्
तस्मान्मे सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥१५

---

समाजं रङ्गं एकस्यैव कस्यचित् नान्यस्य ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

१३३

अत्यद्भुतमिति ॥ १ ॥ प्राणदुरोदरे प्राणद्यूते ॥४॥

सञ्जय उवाच ।

श्रृणु राजन्यथावृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६
राजन्वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिंदमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः॥
महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुंभपरिष्कृतैः ।
अहनद्भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८
तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत्क्षितौ ॥
स कांक्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २०
प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयः सन्धाय च महाबलः
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव ।
शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम् ॥
ननाद सुमहानादं बलवान्सूतनन्दनः ।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन्
तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः
छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभां
मार्गमाण इव प्राणान्सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५
प्राहिणोत्कृतसंरंभः शरान्बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुंखाञ्शिलाधौतान् यमदण्डोपमान्मृधे
कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत्सायकांस्तदा ॥
तान्पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणेन निर्मुक्तान्नव राजन्महाशरान् ॥ २८
छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत्
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे
शार्दूलाविव चान्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जतां
अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ ।
महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ ।
प्रहसन्तौ तथाऽन्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः॥
शंखशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ।
तस्य भीमःपुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष
शंखवर्णांश्च तानश्वान्बाणैर्निन्ये यमक्षयम्
सारथिं च तथाप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥
ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् ।
स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७
वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाथ दुर्जयम् ।
'गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः३८
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।'
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवात्मजः ३९
अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।
स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४०
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् ।
स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ४२
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।
स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥
समाचिनोद्बाणगणैः
शतघ्नीभिश्च शङ्कुभिः ।
तथाऽप्यतिरथः कर्णो
भिद्यमानोऽस्य सायकैः ॥ ४४
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

## १३४

सञ्जय उवाच ।

सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः । रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १

---

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वणि टीकायां त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

१३४

स इति ॥ १ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २
अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ३
तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ४
कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजंस्तनान्तरे ।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५
सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ६
सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना
सृक्किणी लेलिहन्वीरः क्रोधरक्तान्तलोचनः
ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम् ८
स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः ।
अगच्छद्दारयन् भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः९
ततो भीमो महाबाहुः
क्रोधसंरक्तलोचनः ।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं
गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १०
प्राहिणोत्सूतपुत्राय षडस्राम् अविचारयन् ।
तया जघानाधिरथेः सदश्वान्साधुवाहिनः
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ १२
ध्वजमाधिरथेश्छित्त्वा सूतमभ्यहनच्छरैः ।
हताश्वसूतमुत्सृज्य सरथं पतितध्वजम् १३
विस्फारयन्धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः ।
तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद्रिपुम् ।
विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे॥१५
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् ।
'एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥१६
तं रथेन नरश्रेष्ठं संपादय महारथम् ।'
ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः १७
त्वरमाणोऽभ्ययात्कर्णं भीमं चावारयच्छरैः
दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् १८
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत्सृक्किणी परिसंलिहन् ॥
ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः ।
तस्मिन्क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः २०
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
ततस्तमेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते२१
आस्थितः प्रबभौ राजन् दीप्यमान इवांशुमान्
शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम्२२
दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत ।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम्
दीर्घमुष्णं श्वसन्वीरो
न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ।
तस्मिंस्तु विवरे राजन्
नाराचान्गार्ध्रवाससः ॥ २४
प्राहिणोत्सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश ।
अपिबन्सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः २६
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः
प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ॥
तं प्रत्यविध्यद्राधेयो जांबूनदविभूषितैः२८
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।
ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः२९
प्राविशन्मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।
ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम्
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांशवः ॥
स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।
स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्रिभिः३२
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ।
स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ३३
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।
भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम्३४
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

सुष्ठु पर्णानां पत्राणां वेगो येषाम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

# १३५

धृतराष्ट्र उवाच ।

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ।
यत्राधिरथिरायत्तो नातरत्पाण्डवं रणे ॥ १
कर्णः पार्थान्सगोविंदान् जेतुमुत्सहते रणे ।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन २
इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः ।
कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ३
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ।
वसुषेणसहायं मां नालं देवापि संयुगे ॥ ४
किं नु पांडुसुता राजन् गतसत्वा विचेतसः
तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥
युद्धात्कर्णमपक्रान्तं किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥ ६
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः ।
अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च संगताः ॥
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय ।
तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम्
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः ।
किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ॥ ९
बलसंरंभवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे ।
कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितम् ॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः ।
योऽजयत्समरे कर्णं पुरंदर इवासुरम् ॥ ११
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे ।
द्रोणं यः संप्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम्
भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः ।
को हि संजय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेतापि मानवः ॥ १४
न भीमसेनं संप्राप्य निवर्तेत कदाचन ।
पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ॥ १५
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन्विमोहिताः ।
यत्तत्सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६
उक्तं संरंभिणोऽग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ।
तन्नूनमभिसञ्चिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद्भीमादुपारमत् ।
यश्च संजय दुर्बुद्धिरब्रवीत्समितौ मुहुः ॥ १८
कर्णो दुःशासनोऽहं च
जेष्यामो युधि पाण्डवान् ।
स नूनं विरथं दृष्ट्वा
कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः
दृष्ट्वा भ्रातॄन्हतान्संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ।
को हि जीवितमन्विच्छन्प्रतीपं पांडवं व्रजेत्
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात्कालमिव स्थितं
वडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ॥
न भीममुखसंप्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम ।
न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम्

सञ्जय उवाच ।

यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥
स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम्
स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥
यत्तु कुत्सयसे योधान्युध्यमानान्महाबलान् ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८
दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पंच भारत
दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसन्नाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥
ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥
आगच्छतस्तान्सहसा कुमारान्देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२
तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरोगमान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥

---

१३५

दैवमिति ॥ १ ॥ यमः संयमनव्यापारः कालः कलनव्यापारः अन्तको मारणव्यापारः तदुपमम् ॥ ९ ॥

विसृजन्विशिखांस्तीक्ष्णान्
स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात्तूर्णं
वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४
कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन् भीमसेनं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
तान्बाणैः पञ्चविंशत्या
साश्वान् राजन्नरर्षभान् ।
ससूतान् भीमधनुषो
भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६
प्रापतन्स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥
तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवात्मजान् ॥
स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९
तं भीमसेनः संरंभात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे
पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

## १३६

सञ्जय उवाच ।
तवात्मजांस्तु पतितान्
दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो
निर्विण्णोऽभूत्स जीवितात् ॥ १
आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २
भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान स संभ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥
अविचिन्त्याथ तान् बाणान्
कर्णेनास्तान् वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं
शतेनानतपर्वणाम् ॥ ५
पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६
अथान्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परंतपः ॥ ७
तस्य भीमो हयान्हत्वा विनिहत्य च सारथिं
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८
इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत् पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९
अवारोहद्रथात्तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद्रुषा ॥
तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम् ।
शरैरवारयद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ११
ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकांक्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२
तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पाटयामास सायकैः ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥
ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १५
ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम्
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥
स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः ।
पुनरेवाभवत्कर्णो भीमसेनात्पराङ्मुखः ॥ १७

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५ ॥

१३६

**तवेति** ॥ १॥ प्रतिकृते प्रतिकर्मणि कृते सतीत्यन्वयः ॥ ८ ॥ अवारोहत् अवातरत्॥ १० ॥

तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् ।
कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥
त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।
ततस्तव सुता राजञ्छ्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे
विसृजन्तः शिलीमुखान् ।
चित्रोपचित्रश्चित्राक्ष-
श्चारुचित्रः शरासनः ॥ २०
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।
तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः ॥ २१
एकैकेन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन्भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥
दृष्ट्वा विनिहतान्पुत्रांस्तव राजन्महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥
रथं चान्यं समास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥
तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः
षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत्कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥
सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ ॥ २७
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ
तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरधारासृजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥
वारणाविव चान्योन्यं विषाणाभ्यामरिंदमौ
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः
नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् ।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथिषूत्तमौ
वृषाविवाथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥
परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥
ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन्धनुः
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५
स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः ।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६
ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत ।
पाण्डवो व्यकिरत्कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥
तत्रापश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम् ।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत्कर्णं छादयञ्शरैः ॥
स नंदयन् रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥
विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे
षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

## १३७

सञ्जय उवाच ।
भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनं
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥
सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् ।
पुत्रांस्तव ददर्शाथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २
तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात्
स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन् रश्मीनिव दिवाकरः
किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥५

---

चित्रोपचित्रः चित्रश्चासावुपचित्रश्चेति चित्रोपचित्रः ॥२०॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्त्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

१३७

भीमसेनस्येति ॥ १ ॥

ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमं
कर्णचापच्युता बाणाः संपतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥
चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद्युगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नधिरथेः शराः ॥
खं पूरयन्महावेगात् खगमान् गृध्रवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान्मुमोचाधिरथिः शरान्
तमन्तकमिवायस्त-
मापतन्तं वृकोदरम् ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य
विव्याध निशितैः शरैः ॥ १०
तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान्व्यवारयत वीर्यवान् ॥
ततो विधम्याधिरथेः शरजालानि पाण्डवः
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः
यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः ।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥१३
दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत ।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च संप्रहृष्टाश्च चारणाः ॥
भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः ।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ
* कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन्महारथाः ।
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथानदन् ॥
तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन्दुर्योधनस्त्वरन् ।
राज्ञः सराजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः ।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात्॥
पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९
दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत ।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥
ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥
तेऽपीडयन् भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ।
प्रजासंहरणे राजन्सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२
ततो वेगेन कौंतेयः पीडयित्वा शरासनम्
मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त संधाय सायकान् ।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान्प्रभुः
निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव ।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५
ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुंखाः शिलाशिताः
तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः ।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥
शोणिता दिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः॥
ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥२९
शत्रुञ्जयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः ।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥
पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः ।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद्विकर्णं पाण्डवः प्रियम्
प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे ।
विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया॥
त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन् ।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः॥
विशेषतो हि नृपतेस्तथाऽस्माकं हिते रतः ।
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि हतः शेते महाद्युतिः
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोःसमः ।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद्युद्धं हि निष्ठुरं

सञ्जय उवाच ।

तान्निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः ।
सिंहनादरवं घोरमसृजत्पाण्डुनन्दनः ॥ ३६
स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत ।
आचख्याविव तद्युद्धं विजयं चात्मनो महत्॥
तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः ।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८
ततो हृष्टमना राजन्वादित्राणां महास्वनैः ।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥
हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे ।
अभ्ययात्समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥४०
एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान् ।
हतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद्वचः॥
तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः ।
इति सञ्चिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥४२

कृतसंज्ञो गृहीतसंकेतः ॥ ४० ॥ निःश्रेयसं निश्चितं श्रेयःसाधनम् ॥ ४२ ॥ * कुरुपाण्डवपक्षस्थाः इति पाठः ।

यद्द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव ।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशांपते ॥ ४४
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् ॥
यच्च षण्ढतिलादीनि परुषाणि तवात्मजैः ।
श्रावितास्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः ॥ ४६
तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितं
उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥
विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुंक्ष्व फलोदयम् ॥
त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना ।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥
तस्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवापनयो महान् ।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५०
हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
प्रवराश्चात्मजानां ते सुताश्चान्ये महारथाः ॥
यानन्यान् ददर्श भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥
त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

## १३८

धृतराष्ट्र उवाच ।
महानपनयः सूत ममैवात्र विशेषतः ।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये सञ्जय शोचतः ॥ १
यद्गतं तद्गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि सञ्जय ॥२
यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममापनयसंभवः ।
वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय
सञ्जय उवाच ।
कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥
भीमनामांकिताबाणाःस्वर्णपुंखाःशिलाशिताः
विविशुः कर्णमासाद्य छिन्दन्त इव जीवितं
तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः ।
छादयांचक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६
तयोः शरैर्महाराज संपतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥
भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिन्दम ।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८
वारणैः पतितै राजन्वाजिभिश्च नरैः सह ।
अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९
ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन्
ततो व्युदस्तं तत्सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम्
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः
ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्व-रथ-वारणाः ।
उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन्दिशः
नूनं पार्थार्थमेवास्मान्मोहयन्ति दिवौकसः ।
यत्कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥ १३
एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः ।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥
ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे ।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥१५
वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा ।
संवृत्ता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥१६

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

१३८

महानिति ॥ १ ॥ सागरोत्तरः महत्तरः ॥ ७ ॥
शरैर्व्युदस्तमाक्षिप्तं प्रोत्सारितं दूरमपसारितम् ॥ ११ ॥

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्व-रथ-भूषणैः।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः॥ १७
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः॥ १८
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः।
प्रास-तोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः॥ १९
सुवर्णविकृतैश्चापि गदा-मुसल-पट्टिशैः।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी।
कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा॥ २१
वलयैरपविद्धैश्च तथैवाङ्गुलिवेष्टकैः।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष॥
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि॥ २३
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः॥
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुंधरा॥ २४
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः॥
अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम्॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत।
अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे॥ २६
आसीद्भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम्।
निपातितध्वजरथं हतवाजि-नर-द्विपम् २७
गजाभ्यां संप्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा।
मेघजालनिभं सैन्यमासीत्तव नराधिप॥२८
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३८॥

## १३९

संजय उवाच।
ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च॥१
वध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः॥२
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष॥३
स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद्भुवि।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात्।
अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः॥५
पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान्॥
ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः॥
ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन्वै यथा पुरा॥
सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना
रथकूबरमालंब्य न्यमीलयत लोचने॥ ९
स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परंतपः।
रुधिरोक्षितसर्वांगः क्रोधमाहारयत्परम्॥
ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति॥ ११
तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम्
अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत॥
ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन्॥ १३
कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः॥
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतप॥ १४
तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ।
जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतुराहवे॥ १५
तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम्।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे॥ १६
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ।
ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा।
तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः॥ १८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३८॥

१३९

तत इति॥ १॥

अन्यत्कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम्।
तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः १९
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि।
सप्तमं चाष्टमं चैव नवमं दशमं तथा॥ २०
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथापि च।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः॥ २१
तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथापि वा।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि॥
निमेषार्धात्ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत।
दृष्ट्वा स कुरु-सौवीर-सिन्धुवीरबलक्षयम्॥२३
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम्।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून्प्रेक्ष्य सर्वशः॥२४
सूतपुत्रस्य संरंभाद्दीप्तं वपुरजायत।
स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा।
ततः क्रुद्धः शरानस्यन्सूतपुत्रो व्यरोचत॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः।
मरीचिविकचस्येव राजन् भानुमतो वपुः॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम्।
कराभ्यामाददानस्य संदधानस्य चाशुगान्
कर्षतो मुञ्चतो बाणान्नान्तरं ददृशे रणे।
अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम्॥२९
कर्णस्यासीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः।
स्वर्णपुंखाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः
ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ३१
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः।
बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन् क्रौञ्चा इवाम्बरे
गार्ध्रपत्राञ्शिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान्
महावेगान्प्रदीप्ताग्रान्मुमोचाधिरथिः शरान्
ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः३४
अजस्रमपतन्बाणा भीमसेनरथं प्रति।
ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः
चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ३६
एको दीर्घ इवात्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ३७
कर्णः प्राच्छादयत्क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः

तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम्।
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ३८
तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम्।
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत्
रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद्विशांपते।
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम् ४०
तस्माच्छराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाम्बरम्।
सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत४२
ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः
कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे॥ ४४
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत्संवृता व्रजैः।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किञ्चन।
स भीमं छादयन्बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ४६
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः।
तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ४७
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम्।
अन्योन्यशरसंस्पर्शात्तयोर्मनुजसिंहयोः ४८
आकाशे भरतश्रेष्ठ
पावकः समजायत।
तथा कर्णः शितान् बाणान्
कर्मारपरिमार्जितान्॥ ४९
सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकाङ्क्षया।
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ५०
विशेषयन्सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत्।
पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ५१
अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः।
ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत्तयोः ५२
तलशब्दश्च सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ५३
योधा व्युपारमन्युद्धाद्दिदृक्षन्तः पराक्रमम्।
कर्णपाण्डवयो राजन् परस्परवधैषिणोः ५४
देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधु साध्वित्यपूजयन्
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा॥ ५५
ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम्५६

उपारोहत्सन्निकर्षमगात्॥ ४७॥ वायुभूतानि वातोद्धूतान्यतिवेगवन्ति वा॥ ४८॥

कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून्महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान् रणे
तावद्भिरथ तान् भीमो
व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान् सूतपुत्रस्य
तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८
ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम्
मुमोचाधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवापरम् ५९
तमापतन्तं चिच्छेद
राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन्
पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६०
पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत्
युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः सन्नतपर्वभिः६२
रश्मीन्योक्त्राणि चाश्वानां
क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे ।
तस्याश्वांश्च पुनर्हत्वा
सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३
सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः६४
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत्
स विधन्वा महाबाहुरथ शक्तिं परामृशत्६५
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।
तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम्
आपतन्तीं महोल्काभां
चिच्छेद दशभिः शरैः ।
साऽपतद्दशधा छिन्ना
कर्णस्य निशितैः शरैः ॥ ६७
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।
स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ६८
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।
तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ६९
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत ।
स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति ।
स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्त्वा महानसिः
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाम्बरात्
ततः प्रहस्याधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ७२
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ।
व्यायच्छत्स शरान्कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ।
स वध्यमानो बलवान् कर्णचापच्युतैः शरैः
वैहायसं प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ।
स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ७५
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।
तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम्॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले ।
तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ७७
यदियेष रथात्कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम ।
स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन्७८
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।
तद्विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात्७९
संरम्भात्पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम्
तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ८०
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।
तयोरासीत्संप्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।
क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥
दृष्ट्वाऽर्जुनहतान्नागान् पतितान् पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥
हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकांक्षी राधेयं नाभ्यहारयत्
व्यवस्थानमथाकाङ्क्षन्धनञ्जयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरञ्जयः ॥ ८५
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।
तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत्कुञ्जरं पुनः ॥
हस्त्यंगान्यथ कर्णाय प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ।
चक्राण्यश्वांस्तथा चान्यद्यद्यत्पश्यति भूतले
तत्तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः
भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत्सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९
शक्तोऽपि नावधीत्कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः
रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना

वैहायसमाकाशम् ॥ ७५ ॥ लयमङ्गसंकोचम् ॥ ७६ ॥ तद्रथादिसाधनम् ॥ ८८ ॥ वज्रगर्भामन्तार्वीहितांगुष्ठाम् ॥ ८९ ॥ समर्थः समीचीनार्थो धर्मापेक्षीति यावत् ॥९०॥

तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः
मूर्च्छयाऽभिपरीताङ्गमकरोत्सूतनन्दनः ॥९१
व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन्
धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत्
धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्धन्यताडयत्
ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः ।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥
पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥
यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥
मूल-पुष्प-फलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥
क्व युद्धं क्व मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥
सूदान् भृत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन्भृशं
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥
मुनिर्भूत्वाऽथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥
फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथाऽतिथिपूजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥
कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशांपते
तानि सर्वाणि चाप्येव रूक्षाण्यश्रावयद्भृशम्
अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद्धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥ ३
योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥ ४
गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ
तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे ।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय
किं ते युद्धेन बालक ॥ ५
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणं
उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥
जितस्त्वमसकृद्दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥
मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसंभव ।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु ।
भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥
विरराम रणात्तस्मात्पश्यतां सर्वधन्विनाम्
एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकत्थयत्
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य
पार्थस्य च महात्मनः ।
ततो राजञ्छिलाधौता-
ञ्शरान् शाखामृगध्वजः ॥ ११
प्राहिणोत्सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ।
ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः
गांडीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन्
स भुजङ्गैरिवाविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥१३
भीमसेनादपासेधत्सूतपुत्रं धनञ्जयः ।
स छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः॥ १४
कर्णो भीमादपायासीद्रथेन महता द्रुतम् ।
भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥
अन्वयाद्भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम्
ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनञ्जयः ॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः
स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन् भुजगोत्तमम्
नाराचोऽभ्यपतत्कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः
तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥
धनञ्जयभयात्कर्णमुज्जिहीर्षन्महारथः ।
ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत्
स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसङ्कुलम्॥ २०
तूर्णमभ्याविशद्द्रौणिर्धनञ्जयशरार्दितः ।
ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली
धनञ्जयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात् ॥
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः संत्रासयन्बलम् ।
विदार्य देहान्नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥ २४
पाकशासनिरायत्तः पार्थः स निजघान ह ॥

---

तूबरको पुंश्चिन्हरहितः षंढ इति यावत् 'तूबरोऽश्मश्रुपुरुषे' इत्युपक्रम्य 'पुरुषव्यञ्जनत्यक्ते' इति **मेदिनी** । **औदरिको बह्वाशी** ॥९५॥ व्रतेषु नियमेषु आगंतुकेषु ॥९७॥ संलीनं संकुचितांगम् ॥ १०३ ॥ व्यकत्थयत् भर्त्सितवान् ॥११०॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे
एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

## १४०

धृतराष्ट्र उवाच ।
अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जय ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम्
धनञ्जयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् ।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि ॥ २
ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः ।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च
तदाप्रभृति मां शोको
दहत्यग्निरिवाशयम् ।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि
भूमिपालान् ससैन्धवान् ॥ ४
अप्रियं सुमहत्कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात् ५
अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति सञ्जय सैन्धवः
युद्धं तु तद्यथावृत्तं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ६
यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चासकृत्
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ७
तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् ।
धनञ्जयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ८
सञ्जय उवाच ।
तथा तु वैकर्तनपीडितं तं
भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् ।
समीक्ष्य राजन्नरवीरमध्ये
शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन ॥ ९
नदन्यथा वज्रधरस्तपान्ते
ज्वलन्यथा जलदान्ते च सूर्यः ।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् १०
तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशै-
रायोधने वीरतरं नदन्तम् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः
सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम् ॥ ११
अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्य-
मवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥ १२
तयोरभूद्भारत संप्रहारो
यथाविधो नैव बभूव कश्चित् ।
प्रेक्षन्त एवाहवशोभिनौ तौ
योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३
आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राजवरः प्रसह्य ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि १४
पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विदार्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५
तैः कायमस्याग्न्यनिलप्रभावै-
र्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशा-
नश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६
तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भि-
रश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७
अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन कालानलसन्निभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकोनचत्वारिंश-दधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

१४०

अहन्यहनीति॥१॥ प्रेक्षन्तः प्रेक्षकाः बभूवेत्येतद्बहुवचनतया परिणतमनुषज्यते॥१३॥ प्रसह्य अनादृत्य॥१४॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी ।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः
सैन्यानि राजंस्तव सन्निवार्य ॥ १९
अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य
तथाऽरिमध्ये परिवर्तमानम् ।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि
पुनः पुनर्वायुमिवाभ्रपूगान् ॥ २०
ततोऽवहन्सैन्धवाः साधु दान्ता
गो-क्षीर-कुन्देन्दु-हिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावतताः सदश्वा
यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१
अथात्मजास्ते सहिताभिपेतु-
रन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः ।
कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं
दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२
ते सर्वतः संपरिवार्य संख्ये
शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान्प्रवरः सात्वतानां
न्यवारयद्बाणजालेन वीरः ॥ २३
निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती
नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्याभिजघान वाहा-
नुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४
ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये
कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

## १४१

सञ्जय उवाच ।
तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनञ्जयजयैषिणम् ॥ १
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २
अथैनं रथवंशेन सर्वतः सन्निवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ३
अजयद्राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान्महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून्सात्यकिः सत्यविक्रमः
संप्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असि-शक्ति-गदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥५
तत्राद्भुतमपश्याम
शैनेयचरितं रणे ।
प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा
प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥ ६
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं
प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाचरच्छूरो
यथा रथशतं तथा ॥ ७
तद्दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त सन्तप्ताः स्वजनं प्रति ८
तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः ९
तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तादिव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः १०
तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम्
अथ पार्थं महाबाहुर्धनञ्जयमुपासदत् ॥ ११
तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् १२
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः १३
एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः
एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः
एष द्रोणं तथा भोजं
कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः
फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १६

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चत्वारिंसदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

१४१

तमिति । त्वरणीयेषु कृत्येषु ॥ १ ॥

धर्मराजप्रियान्वेषी
हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च
फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १७
कृत्वा सुदुष्करं कर्म
सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन्
पाण्डवाभ्येति सात्यकिः १८
बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान् पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः॥
यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथञ्चन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः॥
कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो मध्याद्गवामिव ।
निहत्य बहुलाःसेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः
एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसन्निभैः ।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः
एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे ।
निहत्य जलसन्धं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः
रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम् ।
तृणवन्न्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः॥
ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत्
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः
न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव ।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा
एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः॥ २८
राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९
सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः ।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः
जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः ।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च सांप्रतम् ॥
परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता च माधव ।
न च भूरिश्रवा श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥
अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे ।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिःसत्यविक्रमः
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः ।
अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥३४
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान्सात्यकिर्भवेत्।
व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥
आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत सात्यकिम् ।
ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम् ॥
नित्यमाशंसते द्रोणः
कच्चित् स्यात्कुशली नृपः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

## १४२

सञ्जय उवाच ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधाद्भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत्
तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम् ।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे ।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणं
अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम्
नंदयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥
अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले ।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ॥
अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

१४२
तमिति ॥ १ ॥ उतात्यर्थम् ॥ २ ॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः ।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥
चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः ।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८
अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत ।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९
अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे ।
यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥
अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव ।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम्
अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे
मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे ।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥
युयुधानस्तु तं राजन्प्रत्युवाच हसन्निव ।
कौरवेय न संत्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४
नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम्
स मां निहन्यात्संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधं
समास्तु शाश्वतीर्हन्याद्यो मां हन्याद्धि संयुगे
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत्समाचर ॥
शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते ।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥
चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव ।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकाङ्क्षिणी॥
नाहत्वाऽहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम ।
अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे ।
समेतौ तौ महेष्वासौ
शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ २०
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ ।
भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिंदमौ ॥ २१
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम् ।
सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः ।
दशभिःसात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान्॥
मुमोच निशितान्बाणान्
जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ।
तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णा-
नन्तरिक्षे विशांपते ॥ २५
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः प्रभो ।
तौ पृथक् शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्
निर्भिन्दंतौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितं
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ ।
एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २८
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ ।
तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ* ॥ २९
यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं सञ्जगर्जतुः ।
सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम्
हृष्टवद्धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् ।
संप्रैक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधांपती ॥
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ ।
अन्योन्यस्य हयान्हत्वा धनुषी विनिकृत्य च
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।
आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा
समरे तौ विचेरतुः ।
चरन्तौ विविधान्मार्गान्
मण्डलानि च भागशः ॥ ३४
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
संपातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥
असिभ्यां संप्रजह्राते परस्परमरिंदमौ ।
उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा ।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥
मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४०

शाश्वतीः समाः सर्वकालम् । तुरवधारणे नित्यमेव असौ हन्यात् । जय एव तस्येत्यर्थः ॥ १६ ॥ * ब्राह्मणसमूहपुरस्कृता-वित्यर्थः ।

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१
तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२
तयोर्नृवरयो राजन्समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३
द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्रावबन्धैश्च शिरोभ्यां चावघातनैः ॥
पादावकर्षसन्धानैस्तोमरांकुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसंप्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६
द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥
क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने
ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं
रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम् ॥ ४८
प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥
परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं संप्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकांक्षी समायान्तं नैतत्सममिवार्जुन ॥
ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याभ्याहनद्राजन्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥
रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन्समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ५२
अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्
परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवान्तेवासिनं वीरं पालयार्जुन सात्यकिम्
न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥
अथाब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥
महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।

सञ्जय उवाच ।

इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनञ्जये॥५७
हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद्भुवि ॥
स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठः सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९
अथ कोशाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे
मूर्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥
ततोऽस्य छेत्तुमारब्धः
शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
तावत्क्षणात्सात्वतोऽपि
शिरः संभ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१
यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत ।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥
तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
वासुदेवस्ततो राजन्भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥
असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे ।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम्
एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः ।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६
विकर्षन्सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे ।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥
प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम्
महाद्विपमिवारण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८
एवं तु मनसा राजन्पार्थः संपूज्य कौरवम् ।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९
सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम् ।
एतत्त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ७०
इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन्वासुदेवस्य पाण्डवः ।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥

---

भुजाघातो भुजस्फोटः,निग्रहो हस्तधारणं,प्रग्रहो गलहस्तकः ॥ ४२ ॥ भुजयोक्त्रावबन्धैर्बाहुपाशवेष्टनैः,अवघातनैस्ताडनैः ॥ ४४ ॥ पादशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते । पादावकर्षैश्चरणावकर्षणैः, पादसंधानैश्चरणच्छंदितकैः, तोमरैरातिस्फोटनैः, अंकुशैरवलुञ्चनैः, पादोदरविबन्धैः पादाभ्यामुदरकोडीकरणैः, उद्भ्रमणैः परिवर्तनैः ॥ ४५ ॥ गतैर्गमनैः, प्रत्यागतैरावर्तनैः, आक्षेपैरास्फालनैः, पातनैर्भूमिप्रापणैः, उत्थानैः उत्पतनैः, संप्लुतैः विस्फारानुबन्धैः ॥४६॥ सममनुरूपम् ॥५०॥ अभ्यहनदास्फालितवान् ॥५१ ॥ कुलाल एव कौलालः ॥६२॥ न हन्याद्धन्तुं न शक्नोति द्वितीय इव शब्द एवार्थे कर्षत्येवेत्यन्वयः ॥ ६८ ॥

पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता। सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

## १४३

सञ्जय उवाच।

स बाहुर्न्यपतद्भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः ॥ १
प्रहरिष्यन्हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना।
वेगेन न्यपतद्भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥ २
स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद्गर्हयामास पांडवम्

भूरिश्रवा उवाच।

नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः ४
किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे
इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा ॥ ६
ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥ ७
'न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥' ८
इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम्।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम् ॥ ९
आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनञ्जय।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि ॥ १०
येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥
कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२
इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया।
वासुदेवमतं नूनं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ १३
को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युद्ध्यते।
ईदृशं व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखा भवेत् १४
व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः
एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत्।

अर्जुन उवाच।

व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः
अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम्१७
संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
न चाधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥१८
युद्ध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून्
स्वैः स्वैः परिवृता नराः।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रै-
स्तथा संबन्धिबान्धवैः ॥ १९
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः।
स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धिमेव च
अस्मदर्थे च युद्ध्यन्तं
त्यक्त्वा प्राणान्सुदुस्त्यजान्।
मम बाहुं रणे राजन्
दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१
न चात्मा रक्षितव्यो वै राजन् रणगतेन हि
यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप॥
तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे।
यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे॥२३
ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत्।
रक्षितश्च मया यस्मात्तस्मात्क्रुध्यसि किं मयि

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

१४३

**स इति** ॥ १ ॥ विषक्तस्य अन्यासक्तस्य ॥ ४ ॥ येषु येषु सत्स्वसत्सु वा यत्र यत्र शुभेऽशुभे वा कर्मणि ॥ ११ ॥

यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह सङ्गतम् ।
अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः २५
कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चारोहतः स्वयम् ।
धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युध्यतः सह शत्रुभिः ॥२६
एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गंभीरे सैन्यसागरे ॥ २७
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च सङ्गमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः संभविष्यति २८
बहुभिः सह संगम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः
ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् ।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम्३०
यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे
तथा कृच्छ्गतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति
त्वं वै विगर्हयात्मानमात्मानं यो न रक्षसि ।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत्॥३३
शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान्प्राणेष्वथाजुहोत्॥
सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः
ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनञ्जयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६
निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किंचिदप्रियं
ततः प्रशस्यमानश्च नाहृष्यद्यूपकेतनः॥ ३७
तांस्तथा वादिनो राजन्पुत्रांस्तव धनञ्जयः ।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम्॥
असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः३९
मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम्
न शक्यो मामको हंतुं यो मे स्याद्बाणगोचरे
यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ ४१
आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ४२
न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को न पूजयेत्
एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम्
एतत्पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ४५

अर्जुन उवाच ।

या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ४६
मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृतांल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा

वासुदेव उवाच ।

ये लोका मम विमलाः सकृद्विभाता
ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः ।
तान् क्षिप्रं व्रज सततानिहोत्रयाजिन्
मत्तुल्यो भव गरुडोत्तमाङ्गयानः॥४८

सञ्जय उवाच ।

उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः
निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ५०
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः॥
वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ५२
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत्तं धृतव्रतम्५३
प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः५४
नाभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५
सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम्॥५६
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः
पक्षवादांश्च सुबहून्प्रावदंस्तव सैनिकाः ॥५७
न वार्ष्णेयस्यापराधो भवितव्यं हि तत्तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणां

---

प्रायं आमरणानशनं, उपाविशत् प्रारब्धवान् ॥ ३३ ॥ प्राणानसून् प्राणेषु वायुषु अजुहोदाहितवान् ॥ ३४ ॥ प्रसन्नमकल्मषम् ॥ ३५ ॥ दक्षिणं कृत्तमात्मनः पाणिं अस्यार्जुनस्य समीपे प्राहिणोत् प्रहितवान् ॥ ४४ ॥ सकृद्विभाताः सहप्रकाशाः गरुडस्योत्तमाङ्गेन पृष्ठेन यानं यस्य ॥ ४८ ॥ प्रसक्तमन्यासक्तम् ॥ ५० ॥

हन्तव्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे॥
सात्यकिरुवाच।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमास्थिताः॥ ६०
यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविना कृतः।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क वो गतः॥
मया त्वेतत्प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन्हन्यात्पदा रुषा
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः।
चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः॥ ६३
मन्यध्वं मृत इत्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम्।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः६४
यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता।
सखड्गोऽस्य हतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः॥
भवितव्यं हि यद्भावि दैवं चेष्टयतीव च।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन्किमत्राधर्मचेष्टितम्
अपि चायं पुरा गीतः
श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति
यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम॥ ६७
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत्॥
सञ्जय उवाच।
एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः।
न स्म किंचिदभाषन्त मनसा समपूजयन्६९
मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु
यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च।
मुनेरिवारण्यगतस्य तस्य
न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत्॥ ७०
सुनीलकेशं वरदस्य तस्य
शूरस्य पारावतलोहिताक्षम्।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं
न्यस्तं हविर्धानमिवान्तरेण॥ ७१
स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो
महाहवे देहवरं विसृज्य।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो
व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी॥ ७२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४३॥

## १४४

धृतराष्ट्र उवाच।
अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे १
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः॥२
सञ्जय उवाच।
शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप॥ ३
अत्रेः पुत्रोऽभवत्सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत्पुरूरवाः॥४
पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसंमतः॥ ५
ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत्सुतः।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः॥ ६
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसंमतः।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः॥ ७
धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप॥ ८
एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः।
दुहितुः स्वयंवरे राजन्सर्वक्षत्रसमागमे॥ ९

---

क्षेपे निंदायां जीवन्निति द्वितीयार्थे प्रथमा॥ ६२॥ इवेत्येवार्थे दैवमेव चेष्टयतीत्यन्वयः॥ ६६॥ वरदस्यार्थितार्थप्रदातुः हविर्धानमन्तरेण हविर्गृहस्य मध्ये॥ ७१॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४३॥

१४४

अजित इति॥ १॥

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै।
निर्जित्य पार्थिवान्सर्वान् रथमारोपयच्छिनिः
तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ।
नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप॥११
तयोर्युद्धमभूद्राजन्दिनार्धं चित्रमद्भुतम्।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभः॥ १२
शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः॥ १३
मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः॥१४
तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः॥ १५
तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः॥१६
पुत्रमिच्छामि भगवन्यो निपात्य शिनेः सुतम्
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे १७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव।
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत॥
स तेन वरदानेन लब्धवान्भूरिदक्षिणम्।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् १९
पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत्।
एतत्ते कथितं राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि
न हि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः।
लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः २१
देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः॥ २२
न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किञ्चन प्रभो।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ॥ २३
न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः २४
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे।
ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः२५
एतेषां रक्षितारश्च
ये स्युः कस्यांचिदापदि।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता
ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः॥ २६
समर्थान्नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाविकत्थनाः
तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते।
अपि मेरुं वहेत्कश्चित्तरेद्वा मकरालयम् २८
न तु वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव ह्यपनयो महान्॥ २९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४४॥

## १४५

धृतराष्ट्र उवाच।
तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय॥ १
सञ्जय उवाच।
भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत॥ २
चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः
श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते॥ ३
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ४

---

परपरिग्रहाः पराधीनाः ॥ २२ ॥चक्रं प्रतापः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

१४५

**तदवस्थ इति** ॥ १ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष स जयद्रथस्त्रिषु धर्मेषु वर्तते इति श्रूयते के पुनस्ते त्रयो धर्माः। अत्रोच्यते-यदि युध्यमानो हन्यते तदा तूर्णं स्वर्गप्राप्तिरेव तस्य धर्मः। अथ पलायमानो हन्यते तदा नरकप्राप्तिरेव तस्य धर्मः। अथ मद्भयात्स्वदेशं गच्छति तदा यशःशरीरनाश एव तस्य धर्मः। यावदसौ युद्धाभिमुखः प्रथमधर्मे तिष्ठति तावदेव हन्तुमुचितः अतः। शीघ्रमश्वांश्चोदयेति ॥ ३ ॥

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेना महारथैः ॥ ५
यथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद्वचः
चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम्
ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान्
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७
तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन्
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ९
समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम्
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां संप्रेक्षन्निर्दहन्निव१०
ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत्
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११
अयं स वैकर्तन युद्धकालो
विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन् ।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन
जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२
अल्पावशेषो दिवसो नृवीर
विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति१३
सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम्
अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन्वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः
विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् ।
वसुन्धरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम्
दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान् रणे १७
नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना ।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८
कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः ।
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात्सैन्धवकं नृपम्१९
रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना ।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनञ्जयः ॥ २०
द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च ।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः

युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः ।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद २२
स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः ।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे ।
एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥२४
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम् ।
दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना २५
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः ।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे संप्रति मानद२६
नाङ्गमिङ्गति किञ्चिन्मे सन्तप्तस्य महेषुभिः ।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम
यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैंधवम्
न हि मे युध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान्
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनञ्जयः
यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकाङ्क्षिणा॥
तत्करिष्यामि कौरव्य 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः'
सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ३०
त्वत्प्रियार्थं महाराज 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः' ।
अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः
त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः' ।
अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम् ।
कर्णकौरवयोरेवं रणे संभाषमाणयोः ॥३३
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम् ।
चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम्
भुजान्परिघसंकाशान्हस्तिहस्तोपमान् रणे ।
शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः
हस्तिहस्तान्हयग्रीवान् रथाक्षांश्च समन्ततः।
शोणिताक्तान्हयारोहान्गृहीतप्रासतोमरान्
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ।
हयान्वारणमुख्यांश्च प्रापतन्त समंततः ॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि
चामराणि शिरांसि च ।
कक्षमग्निरिवोद्धतः
प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥ ३८
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।
हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९

हयज्ञः हयहृदयज्ञः ॥ ७ ॥ आशुगैः मारुतैः ॥ ८ ॥ उपहतो मोहितः विपरीतोऽन्यथाभूतप्रकृतिः ॥ १७ ॥ दृढलक्ष्येण दृढप्रहारेण ॥ २५ ॥ प्रतिष्ठितो अधीनः ॥ ३० ॥

आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।
बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।
तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसंपदा ॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥ ४२
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
सन्नद्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन्किरीटिनं
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम्
सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे
ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान्
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति
ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥
द्विधा त्रिधाऽष्टधैकैकं
छित्त्वा विव्याध तान् रथान् ।
सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु
दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ४८
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।
स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः॥
अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।
अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५०
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
विस्फारयंतश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान्
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात्तनयस्य ते ।
ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत् ।
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः
त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥
विधुन्वतश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥ ५६
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः ।
त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवांबुभिः

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन्व्यदर्शयन्
धनञ्जयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः ।
हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥ ५९
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।
तं कर्णः संयुगे राजन्प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६०
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ।
तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ॥
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः ।
तान्कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः
तद्युद्धमभवद्राजन्कर्णस्य बहुभिः सह ।
तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६४
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन् रथान्पर्यवारयत् ।
फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥६५
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ।
रुधिरोक्षितसर्वांगः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥६६
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः ॥६७
ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनांतरे
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ६८
अथान्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥
तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् ।
व्यधमत्सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥
छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे ।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन् पाणिलाघवम्
वधार्थं चास्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनञ्जयः ॥
तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स छिन्नः प्रापतद्भुवि
कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनं
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ७४
तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ७५
अदृश्यौ च शरौघैस्तौ
निघ्नन्तावितरेतरम् ।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं
कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥ ७६

इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा
युध्यतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्टु च ॥
प्रेक्षणीयौ चाभवतां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्ध-चारण-पन्नगैः ७८
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।
ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥
यत्नाद्रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान् वृषः ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ८१
अनयत्प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥८२
छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ।
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥८३
मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।
तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ।
मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत्त्रिंशता शरैः॥ ८५
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनञ्जयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६
चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक् पृथङ्महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ
तथैव तान्प्रत्यविध्यत्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८८
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थो ननाद ह ॥
ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनञ्जयम् ॥ ९०
अथार्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं
प्रादुश्चक्रे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं
रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१
ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
सुदारुणे भारत मोहनीये ।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः
किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान् ॥९२
राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां
स्मरन्क्लेशान् द्वादशवर्षवृत्तान् ।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा
सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३
प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं
मृतेषु देहेष्वपतन्वयांसि ।
यत्पिङ्गलज्येन किरीटमाली
क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४
ततः किरीटी महता महायशाः
शरासनेनास्य शराननीकजित् ।
हयप्रवेकोत्तमनागघूर्णितान्
कुरुप्रवीरानिषुभिर्न्यपातयत् ॥ ९५
गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मया-
नसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः
प्रगृह्य पार्थं सहसाऽभिदुद्रुवुः ॥ ९६
ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं मह-
न्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम् ।
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन्भृशं ययौ
दहंस्त्वदीयान् यमराष्ट्रवर्धनः ॥ ९७
स तानुदीर्णान्सरथान्सवारणा-
न्पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः ।
विपन्नसर्वायुधजीवितान् रणे
चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ९८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५ ॥

युध्यतां प्रेक्षणीयावित्यन्वयः ॥७७॥ प्राप्य युद्धमिति शेषः ॥ ९२ ॥ आस्य समंततः क्षिप्त्वा ॥ ९५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

## १४६

सञ्जय उवाच ।

श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य
विस्पष्टमुत्कृष्टमिवान्तकस्य
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं
विकृष्यमाणस्य धनञ्जयेन ॥ १
त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद्बलं नृप ।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितराङ्कितम् ॥ २
प्रलीनमीनमकरं सागराभं इवाभवत् ।
स रणे व्यचरत्पार्थः प्रेक्षमाणो धनञ्जयः॥
युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् ।
आददानं महाराज संदधानं च पाण्डवम्॥४
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात्
ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन्सर्वभारतान् ।
ततः शराः प्रादुरासन्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः।
आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरश्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७
नभोऽभवत्तद्दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् ।
ततः शस्त्रान्धकारं तत्कौरवैः समुदीरितम्८
अशक्यं मनसाऽप्यन्यैः पाण्डवः संभ्रमन्निव
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ९
नैशं तमोऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः
ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः१०
आक्षिपत्पल्वलांबूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।
ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः
समाप्लवन् द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांशवः
अथापरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत्
य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः १३
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम्।
एवं स मृद्नन् शत्रूणां जीवितानि यशांसि च
पार्थश्चचार संग्रामे
मृत्युर्विग्रहवानिव ।
सकिरीटानि वक्त्राणि
सांगदान् विपुलान् भुजान् ॥ १५
सकुण्डलयुगान्कर्णान्केषांचिदहरच्छरैः ।
सतोमरान् गजस्थानां सप्रासान्हयसादिनाम्
सचर्मणः पदातीनां रथीनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान्नियंतृणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः १७
प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान्बभौ तत्र धनञ्जयः ।
सविस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः
तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥ १९
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनञ्जयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् २०
निरीक्षितुं न शेकुस्ते
यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं
प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥ २१
दीप्तोग्रसंभृतशरः किरीटी विरराज ह ।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वांबुदो महान्
महास्त्रसंप्लवे तस्मिञ्जिष्णुना संप्रवर्तिते ।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३
उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः ।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यंगुलीकृतैः २४
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः ।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथान्यैः कृत्तसन्धिभिः
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः २६
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत् ।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् २७
आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराऽभ्यर्दयतः पशून् ।
गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः २८
क्वचिद्बभौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।
विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥२९
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसंकीर्णा तत्र तत्र समाचिता ३०
विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।
मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ३१
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् ।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णकोडास्थिसंकटाम् ३२
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम्
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ३३

रथोडुपशताकीर्णां हयसंघातरोधसम् ।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् ।
बलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ३५
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् ।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ३६
गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ३७
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम् ।
तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद्रणाजिरे ।
तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।
ततो रथवरान् राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ४०
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम्
प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः
संग्रामे संप्रपश्यामो हंसपंक्तिमिवाम्बरे ४२
विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः ।
दर्शयन् रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ४३
स तान् रथवरान् राजन्नत्याक्रामत्तदार्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया ।
विसृजन्दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ४४
सरथो व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।
भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५
अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
आददानं महेष्वासं संदधानं च सायकम् ॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नानुपश्याम वै तदा ।
तथा सर्वा दिशो राजन्सर्वांश्च रथिनो रणे
कदंबीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ।
विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम्
सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः संप्रेक्ष्य पांडवं
न्यवर्तन्त रणाद्वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥
यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे
तस्य तस्यान्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन्प्रभो
कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्र्यंशुसन्निभैः ॥
एवं तत्तव राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा ।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥
द्रौणिं पञ्चाशताऽविध्यद्वृषसेनं त्रिभिः शरैः
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥
शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥
सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥५५
स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान् ।
क्रुद्धाशीविषसंकाशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥
आकर्णपूर्णाञ्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
त्रिभिस्तु विद्ध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनं
अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यत् ध्वजं चैकेन पत्रिणा
स विक्षिप्यार्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान्
युगपत्तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ।
सारथेश्च शिरः कायात् ध्वजं च समलंकृतम्
स छिन्नयष्टिः सुमहान् धनञ्जयशराहतः ।
वराहः सिंधुराजस्य पपाताग्निशिखोपमः ॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे
अब्रवीत्पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥
एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थवीरैर्महारथैः ।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥
एताननिर्जित्य रणे षड्रथान्पुरुषर्षभ ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन
योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति ।
अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट्
हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो ।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन
तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयाऽस्य कुरुसत्तम ।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः
एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत
ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः
सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप ।
ते प्रहृष्टा रणे राजन्नापश्यन्सैनिका रविम् ॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः
वीक्ष्यमाणे ततस्तस्मिन्सिन्धुराजे दिवाकरं

---

कदंबीकृत्य कदंबकुसुमानीव कृत्वा ॥ ४८ ॥

पुनरेवाब्रवीत्कृष्णो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम्
भयं हि विप्रमुच्यैतत्त्वत्तो भरतसत्तम ।
अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः
छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः
इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥
न्यवधीत्तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसन्निभैः ।
कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत् ।
वृषसेनं तथाऽष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥
तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान्पाण्डुनन्दनः ।
गाढं विद्धा शरै राजन् जयद्रथमुपाद्रवत् ॥
तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम् ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७
ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः ।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥
संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः ।
अक्रुध्यत्स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥ ७९
ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः ।
व्यसृजत्पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥
ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन् रणे तव ।
प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाप्यधावताम्
तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् ।
तादृङ्न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः
द्विपान्द्विपगतांश्चैव हयान्हयगतानपि ।
तथा सरथिनश्चैव न्यहन् रुद्रः पशूनिव ॥ ८३
न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप ।
गजो वाजी नरो वापि यो न पार्थशराहतः
रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः ।
कश्मलं प्राविशन्घोरं नान्वजानन्परस्परम्
ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ ८६
तस्मिन्महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये ।
रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८७
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
अशाम्यत्तद्रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते ।
मत्ता वेगवता राजंस्तावकानां रणाङ्गने ॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः
हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप ।
प्रदुद्रुवुर्भयाद्राजन्धनञ्जयशराहताः ॥ ९१
मुक्तकेशा विकवचाः
क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः ।
प्रापलायन्त संत्रस्ता-
स्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२
ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित्तत्राभवन् भुवि ।
हतानां चापरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥
एवं तव बलं राजन्द्रावयित्वा धनञ्जयः ।
न्यवधीत्सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः
द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम् ।
छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥
न गृह्णन्नक्षिपन् राजन्मुञ्चन्नापि च संदधत् ।
अदृश्यतार्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात्कथञ्चन ।
धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते स्मास्यतः सदा ।
सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥
कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह ।
शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८
गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥
एवं तान्व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् ।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसन्निभम् ॥
इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् ।
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥
वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत्कुरुनन्दनः ।
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ २
तस्मिन्सन्धीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि ।
अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥ ३
अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ।
धनञ्जय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः
अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।
शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥ ५
वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान्सुतम् ॥
जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाशरीरिणी ।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥
तवात्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥
क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥

शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुश्चालक्षितो भुवि
एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिंदमः
ज्ञातीन्सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ।
संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्यापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः
एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथं
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥
सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम्
समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥ १४
तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनास्त्रेण रिपुहन्घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥ १५
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वास्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥१६
अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः
यथा चेदं न जानीयात्स राजा तपसि स्थितः
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥ १८
न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किंचन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन्
इंद्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥
सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥
स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम्
तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥ २३
शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान्
ततः सुमहदाश्चर्यं तत्रापश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिरो यद्यहरत्ततः ॥ २५
एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
सन्ध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष
उपासीनस्य तस्याथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥
तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिन्दम ॥ २८
कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत्सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम्
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्यापि शतधा मूर्धाऽगच्छदरिन्दम ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम्
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥ ३१
ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना
तमस्तद्वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ ३२
पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ ३३
एवं स निहतो राजन्पार्थेनामिततेजसा ।
अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः
हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप ।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवञ्जये ॥
ततो जयद्रथे राजन्हते पार्थेन केशवः।
दध्मौ शंखं महाबाहुरर्जुनश्च परंतपः ॥ ३६
भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रांतः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक्
श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥
ततो वादित्रघोषेण स्वान्योधान्पर्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ३९
ततः प्रववृते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः
ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च
अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥
अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान् रथसत्तमान्
अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥
स देवशत्रूनिव देवराजः
किरीटमाली व्यधमत्समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः
पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥ १४४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे
षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

# १४७

धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिन्विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १
सञ्जय उवाच ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत ।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥ २
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ।
द्रौणिश्चाभ्यद्रवद्राजन्रथमास्थाय फाल्गुनम्
तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४
स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः ।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद्रथिनां वरः ॥ ५
*सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च ।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत्॥ ७
ते चापि भृशमभ्यघ्नन्विशिखाः पार्थचोदिताः
बहुत्वात्तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम्
अथ शारद्वतो राजन्कौन्तेयशरपीडितः ।
अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९
विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम् ।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत्
तस्मिन् भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि ।
अश्वत्थामाप्यपायासीत्पाण्डवेयाद्रथान्तरम्
दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम् ।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥ १२
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत् ।
पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान्
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने ।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम्
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ १५
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः ।
ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः ।
अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥
अवसीदन् रथोपस्थे प्राणान्पीडयतीव मे ।
पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै ।
शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम् ।
उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥
प्रयच्छन्तीह ये कामान्देवत्वमुपयान्ति ते ।
ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः ।
तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम् ।
यत्तत्पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत्कृपः ॥ २४
न कथञ्चन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति ।
तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥
नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता ।
नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ॥ २६
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम् ।
तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत् ।
तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव
सहसा समुपाद्रवन् ।
उपायान्तं तु राधेयं
दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९
प्रहसन्देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ।
एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति

---

१४७

**तस्मिन्विनिहते वीर** इत्यादे 'राजन्कर्मस्थिते नरे' इत्यन्तस्य ग्रन्थस्य पुरुषेण यत्नः कार्यः फलं तु दैवाधीनमिति तात्पर्यार्थः॥१॥ अजिघांसुः हन्तुमनिच्छन् । आचार्यकं गुरोः संमानम् ॥६॥ तमेवाह-**अस्त्रैरिति**। मन्दवेगान् अत्यनाकृष्टचापत्वादल्पवेगान् ॥ ७ ॥ ते चापि ते बाणास्तथापि ॥ ८ ॥ अवासीदत् अवसन्नः ॥ ९ ॥ भर्तारं सारथेरेव ॥ १० ॥ इदं कुलक्षयगुरुद्रोहादिकम् ॥ १३ ॥ शरतल्पगतं शरपञ्जरगतम् ॥ १६ अभ्यस्तः असकृन्निहतः दशधर्मगतेन दुरवस्थागतेन। शोचयति शोकं कारयति। एष द्रोणः। भूयोऽधिकं पुत्रवधात् ॥ २० ॥ यथागतं यं प्रकारं प्राप्तं उपाकृत्य अधीत्य ॥ २१ ॥ उपाकुर्वन् आध्यापयन् ॥ २४ ॥ * स जिघांसुरिति पाठः ।

न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे ।
यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वान् जनार्दन ॥
न सौमदत्तिपदवीं गमयेत्सात्यकिं वृषः ।
एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः ।
अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव३३
किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः ।
न च तावत्क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ३४
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी
त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५
अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथातथा ।
अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ३७
सात्यकिश्चापि विरथः कंसमारूढवान् रथम्
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व सञ्जय

सञ्जय उवाच ।

हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः३९
पूर्वमेव हि कृष्णस्य
मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः
सात्यकिः सौमदत्तिना ॥ ४०
अतीतानागते राजन्स हि वेत्ति जनार्दनः ।
ततः सूतं समाहूय दारुकं संदिदेश ह ॥ ४१
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन्महाबलः ।
न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः४२
मानवा वाऽपि जेतारः
कृष्णयोः सन्ति केचन ।
पितामहपुरोगाश्च
देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत्तथा ।
सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं रणे ॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाथ माधवः ।
दारुकोऽवेत्य संदेशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम्
रथमन्वानयत्तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ।
स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसन्निभम्
कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ ४७
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ४८
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन्सायकान्बहून् ।
चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ४९
धनञ्जयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।
राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन्५०
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।
नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरं न च राक्षसम् ॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।
उपारमत तत्सैन्यं सरथाश्व-नर-द्विपम्॥५२
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म संमूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३
तयोर्नृवरयो राजन्सारथ्यं दारुकस्य च ।
गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः सन्निवर्तनैः ॥ ५४
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः
नभस्तलगताश्चैव देव-गन्धर्व-दानवाः ॥५५
अतीवावहिता द्रष्टुं
कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ
शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ ५६
कर्णश्चामरसंकाशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ५७
प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसन्धयोः ॥
कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिन्दम ।
तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुध्यत
महता शरवर्षेण गजं प्रति गजो यथा ।
तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ
अन्योन्यं सन्ततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।
ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः॥

वृषः कर्णः ॥ ३२ ॥ वासवी शक्तिरिति शेषः ॥ ३५ ॥ यथा प्रयाति तथा प्रयात्विति योज्यं ज्ञास्यामि ज्ञापयिष्यामि यत्र काले ॥ ३६ ॥ वर्तयिष्यामि कथयिष्यामि ॥ ३९ ॥ पूर्वं पूर्वेद्युः ॥ ४० ॥ कल्यं प्रातः ॥ ४२ ॥ आर्षभेण स्वार्थे तद्धितः । ऋषभस्वरेण ऋषभपुरोद्भवेनेति प्राञ्चः ॥४५॥ काश्यपेयस्य दारुकस्य ॥५५॥

बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिन्दम।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ६३
अश्वांश्च चतुरः श्वेतान्निजघान शितैः शरैः।
छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ६४
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः।
ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन्॥ ६६
ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन।
तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ६७
हाहाकारस्ततो राजन्सर्वसैन्येष्वभून्महान्।
कर्णोऽपि विरथो राजन्सात्वतेन कृतः शरैः॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन्।
मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात्प्रभृति सौहृदम्
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन्।
तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव॥७०
दुःशासनमुखान्वीरान्नावधीत्सात्यकिर्वशी
रक्षन्प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुराकृताम्७१
विरथान्विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत्।
भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ७२
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः।
वधे त्वकुर्वन्यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा७३
नाशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः।
द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवान्ये महारथाः ७४
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः।
कांक्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम्॥
कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः
जितवान्सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव॥
कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते॥

धृतराष्ट्र उवाच।

अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः
विरथं कृतवान्कर्णं वासुदेवसमो युधि॥७८
दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः।
कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुं
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय॥ ८०

सञ्जय उवाच।

शृणु राजन्यथावृत्तं रथमन्यं महामतिः।
दारुकस्यानुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम्
आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः सन्नद्धकूबरम्।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम्॥
अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः।
सैन्धवैरिन्दुसंकाशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः॥
चित्रकाञ्चनसन्नाहैर्वाजिमुख्यैर्विशांपते।
घण्टाजालाकुलरवं शक्ति-तोमरविद्युतम्॥
युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः।
रथं संपादयामास मेघगंभीरनिःस्वनम्॥
तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत्।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम्
कर्णस्यापि रथं राजञ्शंख-गोक्षीरपाण्डुरैः।
चित्रकाञ्चनसन्नाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः॥ ८७
हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम्।
अग्र्यं रथं सुयंतारं बहुशस्त्रपरिच्छदम्॥ ८८
उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्रिपून्।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि
भूयश्चापि निबोधेमं तवापनयजं क्षयम्।
एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम्।
शतशो निहताः शूराः सात्वतेनार्जुनेन च॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन्दुर्मन्त्रिते तव॥९२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे
सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४७॥

---

अनुद्यूते पुनर्द्यूते॥ ७३॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४७॥

## १४८

धृतराष्ट्र उवाच ।
तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च सञ्जय ।
किं वै भीमस्तदाऽकार्षीत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय
सञ्जय उवाच ।
विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥२
पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥
इति मामब्रवीत्कर्णः पश्यतस्ते धनञ्जय ।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत
एतद्व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया ।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५
तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम ।
यथा भवति तत्सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥ ६
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः ।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत्कर्णं किंचिदभ्येत्य संयुगे
कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्रात्मसंस्तुत ।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत्त्वां वक्ष्यामि सांप्रतम् ॥
द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ ।
तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः
मुमूर्षुर्युयुधानेन
विरथो विकलेन्द्रियः ।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा
जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥ १०
यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम् ।
कथञ्चिद्विरथं कृत्वा यत्त्वं रूक्षमभाषथाः ॥
अधर्मस्त्वेष सुमहा-
ननार्यचरितं च तत् ।
नारिं जित्वाऽतिकत्थन्ते
न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥
न च कञ्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः
त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत्तद्वदसि सूतज ॥ १३
बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।
युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४
यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत्सत्यं वचस्तव ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे ।
न च त्वां परुषं किञ्चिदुक्तवान्पाण्डुनन्दनः
यस्मात्तु बहु रूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः ।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥
तस्मादस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥
तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सभृत्य-सुत-बान्धवः
कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत् ते भयमागतम् १९
हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।
ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः
तांश्च सर्वान्हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे ।
त्वां च मूढा कृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥ २१
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम्
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥२२
महान्सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ।
तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥ २३
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् ।
ततो राजन्हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम्
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं
परिष्वज्यैनमब्रवीत् ।
'दिष्ट्या संपादिता जिष्णो
प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः
धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत ॥ २६
सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा
न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन्पुरुषं क्वचित्
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् ।
महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात्
ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाभ्यवर्तन्त दंशिताः
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।
नेदृशं शक्नुयात्कश्चिद्रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३०
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ।
एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम्'
तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात्तव माधव॥३२

---

१४८

तथेति ॥ १ ॥ वृषसेनं ते तव पुत्रमिति शेषः। बुद्धिमोहेन बुद्धिविभ्रमेण ॥ २० ॥

प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ।
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां
संप्राप्स्यति युधिष्ठिरः ।
तव प्रभावो वार्ष्णेय
तवैव विजयः प्रभो ।
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ।
एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन्हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद्यशः॥
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः।
विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्व-रथ-द्विपाः।
संछिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः॥
ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः॥
तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः।
वाहनैरायुधैश्चैव संपूर्णां पश्य मेदिनीम्॥
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः ।
अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥
अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा ।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे ।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः
प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च ।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा ।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः॥ ४७
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी ।
पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः॥
पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम्
इमांश्च गिरिकूटाभान्नागानैरावतोपमान्॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः ।
दरीमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्रवान्॥
तांश्च बाणहतान्वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ ।
हयांश्च पतितान्पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान्
गन्धर्वनगराकारान् रथांश्च निहतेश्वरान् ।
छिन्नध्वजपताकाक्षान्विचक्रान्हतसारथीन्।
निकृत्तकूबरयुगान्भग्नेषान्बन्धुरान्प्रभो ।
पश्य पार्थ हयान्भूमौ विमानोपमदर्शनान्॥
पत्तींश्च निहतान्वीर शतशोऽथ सहस्रशः ।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान्
महीमालिङ्ग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान्
पश्य योधान्महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान्
निपातितद्विप-रथ-वाजिसंकुल-
मसृग्वसा-पिशितसमृद्धकर्दमम् ।
निशाचर-श्व-वृक-पिशाचमोदनं
महीतलं नरवर पश्य दुर्दृशम् ॥ ५६
इदं महत्त्वय्युपपद्यते प्रभो
रणाजिरे कर्म यशोभिवर्धनम् ।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे
महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान् ॥ ५७
सञ्जय उवाच ।
एवं संदर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने ।
स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत्
स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा
जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा ।
अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं
निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

## १४९

सञ्जय उवाच ।

ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ १
दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥
स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरंजयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥
पर्यष्वजत्तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४
अब्रवीद्वासुदेवं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
'प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५
नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ
दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः
कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥
किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः
न तेषां दुष्कृतं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।
त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून्
स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च
त्वां चैवास्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः
सुरैरिवासुरवधे शक्रं शक्रानुजाहवे ।
असंभाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।
बाल्यात्प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम्
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च
तदैवाज्ञासिषं शत्रून्हतान्प्राप्तां च मेदिनीम्
त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ॥
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १६
एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत्प्राप्तं नरोत्तम ॥
स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित्
पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥
अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते
परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।
प्रपद्यतस्तत्परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१
गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥
परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर ।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३
त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव ।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन्पृथुलोचन ॥ २४

---

### १४९

**तत इति** ॥ १ ॥ गुप्तेन अर्जुनेनेति शेषः ॥ ८ ॥ **एकार्णवमिति** । त्वत्प्रसादात् त्वदीक्षावशात् प्राप्तमभिव्यक्तनामरूपत्वमिति शेषः ॥ १७ ॥ यत्परं मायातोऽपीति शेषः । अत एव पुराणं नित्यसिद्धम् । पुरुषं सर्वासु पूर्षु शयानम्। पराणां हिरण्यगर्भादीनामपि परमं मा बुद्धिस्ततोऽपि परं बुद्धेरविषयमित्यर्थः । तत्परमं सर्वोत्कृष्टमात्मानं प्रपद्यतः प्रपन्नस्य परा भूतिर्महदैश्वर्यं 'एषाऽस्य परमा संपत्'इति श्रुतिप्रसिद्धं प्रत्यक्षतो विधीयते स्वसंवेद्यं भवति ॥ २१ ॥ चतुरश्चत्वारः ॥ २२ ॥ परा उत्कृष्टा मा संपत् ब्रह्मलोकोरुभोग्यामित्यर्थः । तत्परं सर्वोत्कृष्टमात्मा स चासावीशश्चेति समासः । सकलभोग्यस्वरूपोऽप्यच्युतस्वभाव इत्यर्थः । परेशः मायाशबलः स चासावीशश्चेति शाबल्यं प्राप्तोऽप्यविकृतः । एवं तिर्यङ्नरत्वरूपजीवत्वंप्राप्तोऽप्यविकृत इति तिर्यगीशनरेश्वरपदयोरर्थः । एतदेवाभ्यासेन द्रढयति। सर्वं वियदादि जडं ईश्वरा भोक्तारो जीवाः ईश्वरेशो जीवानां नियन्ता तेषामीशः जगज्जीवेश्वराणामपि सत्तास्फूर्तिप्रदः अत एव पुरुषोत्तमः विराडादिभ्यः शुद्धचिन्मात्रस्तुरीय इत्यर्थः ॥ २३ ॥ कं त्वमेवंविधं पुरुषोत्तमं नमस्करोषीत्याशंक्याह–**त्वमिति** । हे ईशेश रुद्राद्याराध्य। ईश्वरा राजानस्तेषामपीशानो धर्मः। 'तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः' इति श्रुतेस्तस्यापि प्रभो 'धर्मस्य प्रभुरच्युतः' इति **स्मृतेः** । सर्वस्य स्वातिरिक्तस्य प्रभवाप्यय उत्पत्तिप्रलयाधिष्ठानभूत अत एव सर्वात्मन् ॥ २४॥

धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः ।
धनञ्जयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५
मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवानघ ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान्मुनिः ॥
असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः ।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम्
त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत्तपः
त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाग्र्यं कारणं जगतस्तथा ।
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः ।
अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते ॥
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ।
भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥
अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम्
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३१
ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम् ।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥ ३२
एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च ।
अतीतभूतभव्यानां संख्याताऽत्र न विद्यते ॥
सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः ।
यैस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः' ॥३४
इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः ।
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥
'भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च ।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥
अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः ।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहन् जिष्णुर्जयद्रथम्
कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासंभ्रमेऽपि च ।
शीघ्रताऽमोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित्
तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः ।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत्'
ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशांपते
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥ ४०
'अतीव सुमहत्कर्म कृतवानसि फाल्गुन ।
असह्यं चाविषह्यं च दैवैरपि सवासवैः ॥
दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि
हतारिश्चासि शत्रुहन् ।
दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं
कृता हत्वा जयद्रथम् ॥' ४२

एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः ।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥४३
एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम्
'तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः
उत्तीर्णं चापि सुमहद्धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५
हन्यन्ते निहताश्चैव विनंक्ष्यन्ति च भारत ।
तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ ४६
त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥
तव क्रोधहतः पूर्वं दैवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥
दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुघातिनाम् ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव
राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः
सौख्यानि विविधानि च ।
अचिरात्तस्य नश्यन्ति
येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥ ५०
विनष्टान्कौरवान्मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परंतप' ॥ ५१
ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥
क्षितावास्तां महेष्वासौ
पाञ्चाल्यपरिवारितौ
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ
प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ ॥ ५३
अभ्यनन्दत कौन्तेय-
स्तावुभौ भीमसात्यकी ।
'दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ
विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥ ५४
द्रोणग्राहदुराधर्षा-
द्धार्दिक्यमकरालयात् ।
दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये
पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ ५५
युवां विजयिनौ चापि
दिष्ट्या पश्यामि संयुगे ।
दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये
हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ५६

सखा वयस्यः। हितः प्रियकृत्। गोप्ता दुःखनिवारकः॥२५॥उत्तीर्णं लंघितम्॥४५॥ चक्षुर्हणं क्रोधदृष्टिमात्रेण हन्तारम् ४७

दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो
रणे नीतः पराभवम् ।
विमुखश्च कृतः शल्यो
युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७

दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात्पुनरागतौ
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ५८

मम वाक्यकरौ वीरौ
मम गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ
दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९

समरश्लाघिनौ वीरौ
समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव
दिष्ट्या पश्यामि वामहम्' ॥ ६०

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन्
युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ
हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१

ततः प्रमुदितं सर्वं
बलमासीद्विशाम्पते ।
पाण्डवानां रणे हृष्टं
युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४९ ॥

## १५०

सञ्जय उवाच ।
सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः ।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये १
दुर्मना निःश्वसन् दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽर्तिं परामगात्॥
दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत् ।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ३
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः
अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ४
न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ५
निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान्मम महारथान्
अवधीत्सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत्
सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद्बलम् ।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरंदरः ७
यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ८
यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम्
तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ९
एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद्द्रोणमीक्षितुम् ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १०
ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् ।
परान्विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान्निमज्जतः ११

दुर्योधन उवाच ।
पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत्
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम्
तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते१३
अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् ।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम्
ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६
सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम्
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

१५०

सैन्धवे इति ॥ १ ॥ आर्तिमिति च्छेदः ॥ २ ॥
प्रलुब्धः प्रकृष्टो लुब्धकस्तद्वद्वञ्चकत्वात् ॥ १३ ॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम्
कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः।
विवरं नाशकद्दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९
योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम्
शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् २०
तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम्।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित्
जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम्
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् २२
काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथाऽलम्बुषमेव च।
अन्यान्बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम
व्यायच्छन्तो हताः शूरा
मदर्थे येऽपराङ्मुखाः।
यतमानाः परं शक्त्या
विजेतुमहितान्मम ॥ २४
तेषां गत्वाहमानृण्यमद्य शक्त्या परंतप।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २५
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६
निहत्य तान् रणे सर्वान्
पञ्चालान् पाण्डवैः सह।
शान्तिं लब्धाऽस्मि तेषां वा
रणे गन्ता सलोकताम् ॥ २७
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥
न हीदानीं सहाया मे
परीप्सन्त्यनुपस्कृताः।
श्रेयो हि पाण्डून्मन्यन्ते
न तथाऽस्मान्महाभुज ॥ २९
स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसन्धेन संयुगे।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ३०
अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः।
कर्णमेव तु पश्यामि संप्रत्यस्मज्जयैषिणम् ३१
यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति
तादृग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः
हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान्।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः
सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना
न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान्।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

## १५१

धृतराष्ट्र उवाच।
सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा १
दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि।
किमुक्तवान्परं तस्मै तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २
सञ्जय उवाच।
निष्टानको महानासीत्सैन्यानां तव भारत
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३
मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ४
द्रोणस्तु तद्वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः।
मुहूर्तमिव तद्ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥
द्रोण उवाच।
दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥

धर्मापचायिनः धर्मक्षेपकस्य ॥१८॥ आचार्यः पाण्डुपुत्राणामित्युपालम्भः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१
सिन्धुराज इति ॥ १ ॥ निष्टानकः सव्यथः शब्दः ॥ ३ ॥

एतेनैवार्जुनं ज्ञातु-
मलं कौरव संयुगे ।
यच्छिखण्ड्यवधीद्भीष्मं
पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः ।
तदैवाज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८
यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि ।
तस्मिन्निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९
यां स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि
अक्षान्न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः

त एते घ्नन्ति नस्तात
विशिखाः पार्थचोदिताः ।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं
विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११

यास्ता विजयतश्चापि विदुरस्य महात्मनः
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत् ।
तस्यावमानाद्वाक्यस्य दुर्योधन कृते तव ॥
योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम्
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो न चिरादिव ॥
यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभां
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम्
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् ।
नोचेत्पापं परे लोके त्वमच्छेथास्ततोऽधिकं
यच्च तान्पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य ह
प्राव्राजयस्तदारण्ये रौरवाजिनवाससः ॥
पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा ।
द्रुह्येत्को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः
पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह ।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य संमते कुरुसंसदि ॥ १९
दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः ।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाऽभ्यस्तः पुनः पुनः
यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम् ।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः
कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत्
युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते ।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥
मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
आशंसत परित्राणमर्जुनात्स महीपतिः ॥ २४
ततस्तस्मिन्परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात्
न किञ्चिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः
मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे
पश्याम्यहत्वा पञ्चालान्सह तेन शिखण्डिना
तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत
सौवर्णं सत्यसन्धस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन्युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम्
मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥
कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नागात्सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहं
यत्रापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धराऽस्तीति तदाऽहं चिन्तये नृप
इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥
नाहत्वा सर्वपञ्चालान्कवचस्य विमोक्षणम्
कर्ताऽस्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥
राजन् ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता
यच्च पित्राऽनुशिष्टोऽसि तद्वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चार्जवे च स्थिरो भव ॥
धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥

चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या
विप्राः पूज्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं
ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३८

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः ॥
त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः

---

इयं सेना नास्तीत्यस्य नष्टेत्यर्थः ॥ ८ ॥ ग्लहते पातयति ॥ १० ॥ **नोचेदिति** । परलोकेऽधिकः पापिनां क्लेश इह त्वल्पेनैव भोगेन निस्तार इति भावः ॥ १६ ॥ अभ्यस्त आवर्तितः ॥ २० ॥

एवमुक्त्वा ततः प्राया-
द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान्।
मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि
नक्षत्राणामिवांशुमान्॥ ४१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये
एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५१॥

## १५२

सञ्जय उवाच।
ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे॥ १
अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव।
'पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम्
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः
पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः।
मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह।
कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः॥
पश्य राधेय पृथ्वीशान्
पृथिव्यां पातितान्बहून्।
पार्थेन निहतान्संख्ये
महेन्द्रोपमविक्रमान्॥ ८
अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः
भिन्द्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः॥
दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः
ततोऽस्य दत्तवान्द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन्॥ १०
अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परंतपः।
प्रादात्किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि॥
यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान्प्रति।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः॥
जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान्प्रति
मयाऽनार्येण संरुद्धो द्रोणात्प्राप्याभयं सखे
अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम्'
कर्ण उवाच।
आचार्यं मा विगर्हस्व
शक्त्याऽसौ युध्यते द्विजः।
यथाबलं यथोत्साहं
त्यक्त्वा जीवितमात्मनः॥ १५
यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः।
नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथंचन
कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम्॥
कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान्॥
प्रवर्षन्निशितान्बाणान् बाहुद्रविणदर्पितः।
यदर्जुनोऽभ्ययाद्द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत्॥
आचार्यः स्थविरो राजन्
शीघ्रयाने तथाऽक्षमः।
बाहुव्यायामचेष्टाया-
मशक्तस्तु नराधिप॥ २०
तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना॥
अजय्यान्पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः॥ २२
दैवादिष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित्
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम्।
परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे॥
हत्वाऽस्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात्करोति नः
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकपंचाशदधिक-
शततमोऽध्यायः॥ १५१॥

१५२

तत इति॥ १॥ अन्यथाभावः पराजयो दैवादिष्टः। नतु द्रोणापराधज इति भावः॥ २३॥

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत्कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥
यत्कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत्कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥
निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं तत्तद्दैवेन विनिपातितम् ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति॥ ३०
न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥
दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥३२
बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ ३३
तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत्कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥

सञ्जय उवाच ।

एवं संभाषमाणानां बहु तत्तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथ-द्विपम् ।
तावकानां परैः सार्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारंभे
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

॥ समाप्तं जयद्रथवधपर्व ॥

## घटोत्कचवधपर्व ६

## १५३

सञ्जय उवाच ।

तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥
पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २
शूराः शूरैः समागम्य शर-तोमर-शक्तिभिः
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम्॥
रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम् ।
प्रावर्तत महद्युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४
वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम् ।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः॥
हयारोहान्हयारोहाः प्रास-शक्ति-परश्वधैः
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥६
पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यमार्दयन् राजन्नित्यं यत्ताः पराक्रमे॥
गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष ।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान्कुरुभिः सह
तेऽन्योन्यं समरे योधाः शर-शक्ति-परश्वधैः
प्रेषयन्परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९
शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तंगतेऽपि च
तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद्बलम् ॥

---

दैवोपसृष्टो दुर्दैवग्रस्तः ॥२६॥ दैवमविगणय्य यत्नमेवातिष्ठे-त्याह-**युध्यस्वेति**। सुदृढोद्यमाद्दैवमपि मार्गेणानुकूलेन यास्यतीत्यर्थः॥३०॥तेषां जयहेतुः सुकृतं तव वा पराजयहेतुः दुष्कृतं नास्तीत्याह-**न तेषामिति** ॥३१॥ **दैवमिति**। अनन्यकर्म दैवमपि स्वकृतमेव न त्वन्यदस्ति ह्यस्तनो दोषोऽद्यतनेन गुणविशेषेण निराकर्तुं शक्यः। एवं दैवमपि-यत्नेन बाधितुं शक्यमित्यर्थः ॥ ३२ ॥ देवानामिन्द्रिया-णामध्यक्षभूतं विज्ञानं दैवं धीबलमित्यर्थः पौरुषं शारीरं बलम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

१५३

तदुदीर्णमित्यारभ्य रात्रियुद्धे जयद्रथवधात्क्रोधहर्षाविवशाः कौरवपाण्डवा इवान्येऽपि निर्मर्यादं प्रवर्तन्ते इति प्रदर्शनार्थम् ॥ १ ॥

सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति सञ्चिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम्
नादयन् रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥
स सन्निपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत्सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥१४
यथा मध्यंदिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥
न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥
पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन्पाण्डुसैनिकाः ।
न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥
यादृशं कृतवान् राजा पुत्रस्तव विशांपते ।
पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्फुल्लपङ्कजा ।
क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ।
पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत२१
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।
स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनं
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ।
सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः
घटोत्कचं च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत्
शतशश्चापरान्योधान्सद्विपांश्च महारणे ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः
तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।
तं तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७
नाशकन्वीक्षितुं राजन्पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः
ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥
अभ्यधावत्कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।
तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिंदमा ॥

स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा
इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान्नृप ॥ ३१
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ।
धनुश्च पुनरन्येन चकर्तास्य महारथः ॥ ३२
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम्
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत ।
तस्य तान्निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ॥

भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठ-
स्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।
विव्याध चैनं दशभिः
सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥ ३५
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे
संलग्नाः क्षितिमाविशन् ।
ततः परिवृता योधाः
परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६

वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरंदरम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥ ३७

हा हतोऽसीति राजान-
मुक्त्वाऽमुञ्चद्युधिष्ठिरः ।
स तेनाकर्णमुक्तेन
विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८

निषसाद रथोपस्थे भृशं संमूढचेतनः ।
ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद्रवो महान्
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ४०
अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ।
हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ।
प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः
तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्कुरुसत्तमम् ।
चण्डवातोद्धुतान्मेघान्निघ्नन् रश्मिमुचो यथा

गोत्रं पित्रादि नाम शैनेय सात्यके इत्यादि कुलं पांच्यपांचाल्येत्यादि ॥ ८ ॥ भ्रातरं दुर्योधनम् ॥ १६ ॥ सम्यगस्तैः दृढं प्रक्षिप्तैः ॥ २५ ॥ वृत्रहत्यै इति वध्यस्तुत्यै ॥ ३७ ॥ बाणशब्दरवः बाणशब्दसहितो रवः प्राणिशब्दः ॥ ४० ॥ रश्मिमुचः सूर्यः इगुपधलक्षणकप्रत्ययान्तः शब्दः बहुवचनमेवैतत्प्रलयसूचकमिति वा ॥ ४३ ॥

ततो राजन्महानासीत्संग्रामो भूरिवर्धनः । तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

# १५४

धृतराष्ट्र उवाच ।
यत्तदा प्राविशत्पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतं
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम् ।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे ।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥
के चास्य पृष्ठतोऽन्वासन्
वीरा वीरस्य योधिनः ।
के पुरस्तादवर्तन्त
रथिनस्तस्य शत्रवः ॥ ४
मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम् ।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन् स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६
निर्दहन् सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ७
सञ्जय उवाच ।
सायान्हे सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम्
तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः ।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥
तथैव नकुलो धीमान्सहदेवश्च दुर्जयः ।
धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि
द्रुपदश्च तथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन्द्रोणमेवाभ्यवर्तत ।
द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम् ।
प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्
तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः १४
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् ।
तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥ १५
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी ।
योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी
कुञ्जराश्वमनुष्याणां
प्राणान्तकरणी तदा ।
तस्यां रजन्यां घोरायां
नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७
न्यवेदयन्भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।
उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम्
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः
ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान्
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चापि तुरङ्गाणां च हेषितैः २०
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
ततः समभवद्युद्धं सन्ध्यायामतिदारुणम् २१
द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानां च सर्वशः ।
तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन २२
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।
नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम्
नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः
रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ २४
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् ।
मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥ २५
फेत्कारैर्हेषितैः शब्दैः सर्वमेवाकुलं बभौ ।
नैव स्वे न परे राजन्प्राज्ञायन्त तमोवृते २६
उन्मत्तमिव तत्सर्वं बभूव रजनीमुखे ।
भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रणाशितम्

---

भूरिवर्धनः बहुच्छेदनः ॥४४॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

१५४

यत्तदेति । शास्त्रातिगं शास्त्रमाज्ञा ॥ १ ॥ धूमकेतुरग्निः ॥ ७ ॥ संन्यवर्तन्त संमुखं नितरामवर्तन्त ॥ १५ ॥

शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ।
ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता
द्यौरिवासीत्सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ।
गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला २९
वारणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्कुष्टनादिता
तत्राभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ३०
समावृणवन्दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः
सा निशीथे महाराज सेनाऽदृश्यत भारती
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता ।
तत्र नागा रथाश्चैव जांबूनदविभूषिताः ३२
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।
ऋष्टि-शक्ति-गदा-बाण-मुसल-प्रास-पट्टिशाः
संपतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः ।
दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥
शरधाराख्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम्
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८
द्रोणमभ्यद्रवन् क्रुद्धाः
सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।
ये ये प्रमुखतो राज-
न्नावर्तन्त महारथाः ॥ ३९
तान्सर्वान्विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम्
तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ४०
पदातिहयसङ्घानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ४१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

## १५५

धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिन्प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा
दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत्प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत २
निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।
यदाभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ३
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ४
के च तं वरदं वीर-
मन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन्
वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५
के पुरस्तादवर्तन्त
निघ्नन्तः शात्रवान् रणे ।
मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान्
भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६
शिशिरे कंपमाना वै कृशा गाव इव प्रभो ।
प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः ।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ७
सर्वेषु योधेषु च सङ्गतेषु
रात्रौ समेतेषु महारथेषु ।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु
के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ८
हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान्युद्धेषु मामकान् ९
तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत्का मतिस्तदा ॥
प्रहृष्टांश्चाप्युदग्रांश्च संतुष्टांश्चैव पाण्डवान् ।
शंससीहाप्रहृष्टांश्च विप्रहृष्टांश्चैव मामकान् ११
कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् ।
प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥ १२
सञ्जय उवाच ।
रात्रियुद्धे तदा राजन्वर्तमाने सुदारुणे ।
द्रोणमभ्यद्रवन्सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः १३

---

तमोऽभ्यगात्ताद्यमिति शेषः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४

१५५

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ गावः गाः ॥ ७ ॥

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्
संप्रैषयत्प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १४
तस्य प्रमुखतो राजन् येऽवर्तन्त महारथाः ।
तान्सर्वान्प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥
प्रमथ्नन्तं तदा वीरान्भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान्१६
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारशवैः शितैः ॥
तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत्।
तस्य द्रोणो हयान्हत्वा सारथिं च महात्मनः
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्॥
ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत्
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद्रिपून् ॥ २०
कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे ।
पूर्वं पितृवधात्क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१
स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः
विशोकं त्रिभिराजघ्ने ध्वजमेकेन पत्रिणा
कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः ।
रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाऽभिजघान ह ॥ २२
तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा ।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन्वै पृथक्पृथक्
तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त परंतप ।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५
ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः ।
ध्रुवं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् २६
स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाऽभिहतोऽपतत् ।
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः २७
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत् ।
जयरातमथाक्षिप्य नदन्सव्येन पाणिना॥२८
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः ।
कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत्
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन्पाण्डुनन्दनः ।
कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः॥ ३०
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना ।
एतत्कृत्वा महत्कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ३१
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम् ।
तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवान्तकं
न्यवारयन्महाबाहुं तव पुत्रा विशांपते ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥३३
दुर्मदस्तु ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे ।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥३४
दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावचक्रमे ।
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५
संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम् ।
यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ३६
ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम्॥३७
ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च
कृपस्य सोमदत्तस्य बाल्हीकस्य च पाण्डवः
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम् ।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिंदमः ॥ ३९
ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ४०
ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन् ।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥४१
एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः ।
विसंज्ञा वाहयन्वाहान्न च द्वौ सह धावतः॥

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे
सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः ।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो
युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली ॥ ४३
ततो यमौ द्रुपद-विराट-केकया
युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः ।
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते
यथाऽन्धके प्रतिनिहते हरं सुराः४४
ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा
रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना ।
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा
युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥४५
ततोऽभवत्तिमिरघनैरिवावृते
महाभये भयदमतीव दारुणम् ।
निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं
महात्मनां नृपवरयुद्धमद्भुतम् ॥ ४६

कमलविबुद्धलोचनो विलसत्पद्मनेत्रः॥ ४३ ॥ गुरुणा द्रोणेन ॥ ४५ ॥ तिमिराण्येव घनास्तैः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

## १५६

सञ्जय उवाच ।

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत्
क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः ।
तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः॥
पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके ।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥ ३
द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत॥ ४
कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे ।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि ॥ ५
कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे ।
अद्य च्छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा
शपे सात्वतपुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च ।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनं
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् ।
न हन्यान्नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥ ८
एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः ।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च॥९
ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः ।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत् १०
कौरवेय न मे त्रासः कथंचिदपि विद्यते ।
त्वया सार्धमथान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ॥
यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि ।
तथापि न व्यथा काचित्त्वयि स्यान्मम कौरव
युद्धसारेण वाक्येन असतां संमतेन च ।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया॥
यदि तेऽस्ति युयुत्साऽद्य मया सह नराधिप
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते ॥१४
हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः ।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥ १५
त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम्
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः१६
यस्मिन्दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे१७
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा ।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि१८
शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह ।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः
अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि
एवमाभाष्य चान्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ॥
प्रवृत्तौ शरसंपातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ ।
ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥२१
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समंततः ।
शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः ।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ २३
साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समंतात्पर्यरक्षत ॥ २४
रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिं
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा सन्नतपर्वभिः ॥ २५
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ।
चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः २६

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

१५६

**प्राय इति** ॥ १ ॥ पतनीयं पातहेतुः पापम् ॥ ५ ॥ तारेणोच्चस्वरेण ॥९॥ **दानम्**-स्वद्रव्यस्य परस्वत्वापादनम् । **दमो**-मनसो यथेष्टं विनियोगयोग्यता । **शौचम्**-सङ्करवर्जनम् । **अहिंसा**—सर्वभूतानामनभिद्रोहः । **ह्रीः**—अकर्तव्यान्निवर्तको धर्मः । **क्षमा**-अपकारिण्यकोपः ॥१७॥ कृष्णचरणैः कृष्णयोश्चरणैः ॥ १९ ॥

आसीद्राजन्बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत्कुरुपुङ्गवम् ।
सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ।
तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः
अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महारथम् ।
तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ३०
अभ्यद्रवत्ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३१
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् ।
ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ३२
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकाङ्क्षया ।
ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम्
सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा ।
सहदेवं तथाऽष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम्
द्रौपदेयान्महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः ३६
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे ।
अन्यांश्च सैनिकान्विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत्
ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्राद्रवन्वै भयाद्राजन् सार्तनादा दिशो दश
काल्यमानं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः
किंचिदागतसंरंभो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद्द्रुतम् ॥
दृष्ट्वा *द्रोणस्तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत्सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ४०
ततो युद्धमभूद्भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन्सर्वतः परिवारितः ॥ ४१
व्यधमत्पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवानलः ।
तं ज्वलन्तमिवादित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ४२
राजन्नानिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ४३
दहन्तमहितान्सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।
यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः
तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिं
एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।
संप्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ४६
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।
ततो रजत-गोक्षीर-कुन्देन्दुसदृशप्रभान् ४७
चोदयामास दाशार्हो हयान्द्रोणरथं प्रति ।
भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनं
स्वसारथिमुवाचेदं
द्रोणानीकाय मां वह ।
सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा
विशोको वाहयद्धयान् ॥ ४९
पृष्ठतः सत्यसन्धस्य जिष्णोर्भरतसत्तम ।
तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः
अन्वगच्छन्महाराज केकयाश्च महारथाः ५१
ततो राजन्नभूद्घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥ ५२
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ५३
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद्राजन् सात्यकिश्च महाबलः
चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥ ५४
आसीद्राजन्बलौघानां तदाऽन्योन्यमभिघ्नताम्
सौमदत्तिवधात्क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ५५
द्रौणिरभ्यद्रवद्राजन्वधाय कृतनिश्चयः ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ५६
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ।
कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ।
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वांतरान्तरम् ।
विक्षिप्तयन्त्रसन्नाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ५८
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वारणैः ।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम् ।
लोहितार्द्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ६०
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् ।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः ।
तमुद्यतमहाचापं निशाम्य व्यथिता नृपाः ६२

कार्ष्णायसं तीक्ष्णलोहमयम् ॥ ५७ ॥ न हयैर्नापि वारणैर्गजैः किं तु पिशाचैः ॥ ५९ ॥

* द्रोणमित्यपि पाठः । तदा द्रोणमभिधावन्तं बीभत्सुं दृष्ट्वा यौधिष्ठिरं बलं तत्सैन्यं प्रति पुनः संन्यवर्तत इति संबंधः ।

युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम्॥ ६३
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् ।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम्॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवान्तकम्॥
वीक्ष्य दीप्तमिवायान्तं रिपुविक्षोभकारिणम्
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ६६
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ६७
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ६८
ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः ।
सन्ध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ

आयसानि च चक्राणि
भुशुण्ड्यः प्रास-तोमराः ।
पतन्त्यविरताः शूलाः
शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७०

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥
विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान्घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन्
भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्च्छिताः ।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम्

विविशुर्धरणीं शीघ्रा
रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो
लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ७५

घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः ।
घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ७६
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ७७
अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ।
वेगेन महता गच्छद्विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।
घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥

द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः
स्वर्भानुरिव भास्करम् ।
घटोत्कचसुतः श्रीमान्
भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८०

रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ।
पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः ।
अश्वत्थामा त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः ।
द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम्
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाऽकरोत्
गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ८५

भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि
द्रौणिनाभ्याहताऽपतत् ।
ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य
कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६

ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।
ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि८७
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।
सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ८८
महीगत इवात्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।
तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥
जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् ।
अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम्९०
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात्प्रज्वलिताङ्गदः
प्राह वाक्यमसंभ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम्
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम्

घटोत्कच उवाच ।

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ९२
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा

अश्वत्थामोवाच ।

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ॥

न हि पुत्रेण हैडिम्बे
पिता न्याय्यः प्रबाधितुम्× ।
कामं खलु न रोषो मे
हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४

गच्छ वत्सेति पुत्रेणेति च भीमसेनसम्बन्धात् ॥ ९३ ॥ × प्रबाधितुं मनःखेदमुत्पादयितुम् ।

युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् ।
ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम्॥ ६३
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् ।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम्॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवान्तकम्॥
वीक्ष्य दीप्तमिवायान्तं रिपुविक्षोभकारिणम्
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ६६
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी ।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ६७
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ६८
ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः ।
सन्ध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ
आयसानि च चक्राणि
भुशुण्ड्यः प्रास-तोमराः ।
पतन्त्यविरताः शूलाः
शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७०
तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम्॥
विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः ।
विससर्ज शरान्घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन्
भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्छिताः ।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम्
विविशुर्धरणीं शीघ्रा
रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो
लघुहस्तः प्रतापवान्॥ ७५
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः ।
घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ७६
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् ।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ७७
अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया ।
वेगेन महता गच्छद्विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि ।
घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम्॥

द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः
स्वर्भानुरिव भास्करम् ।
घटोत्कचसुतः श्रीमान्
भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८०
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ।
पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः ।
अश्वत्थामा त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः ।
द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम्
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाऽकरोत्
गदां हेमाङ्गदां राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ८५
भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि
द्रौणिनाभ्याहताऽपतत् ।
ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य
कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६
ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।
ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि८७
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।
सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ८८
महीगत इवात्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।
तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥
जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् ।
अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम्९०
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात्प्रज्वलिताङ्गदः
प्राह वाक्यमसंभ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम्
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम्

घटोत्कच उवाच ।

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ९२
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा

अश्वत्थामोवाच ।

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ॥
न हि पुत्रेण हैडिम्बे
पिता न्याय्यः प्रबाधितुम्× ।
कामं खलु न रोषो मे
हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४

गच्छ वत्सेति पुत्रेणेति च भीमसेनसम्बन्धात् ॥ ९३ ॥ × प्रबाधितुं मनःखेदमुत्पादयितुम् ।

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥
स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥२९
भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः
ततोऽन्यद्द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवांबुदः
ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुंखाञ्छत्रुघ्नान् खचरान् खचरं प्रति ॥
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥
विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतरथद्विपान्
ददाह भगवान्वन्हिर्भूतानीव युगक्षये ॥ ३४
स दग्ध्वाऽक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे नृप
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥
युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः ।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाहितान् ॥
ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम्
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम्
घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याथ राक्षसाः
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः
व्यात्तानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशं
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥
हन्तुमभ्यद्रवन्द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः ।
शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान्

खड्गान् गदाभिन्दिपालान्
मुसलानि परश्वधान् ।
प्रासानसींस्तोमरांश्च
कणपान्कम्पनाञ्छितान् ॥ ४१

स्थूलान् भुशुण्ड्यश्मगदा-
स्थूणान् कार्ष्णायसांस्तथा ।
मुद्गरांश्च महाघोरान्
समरे शत्रुदारणान् ॥ ४२

द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः
तच्छस्त्रवर्षं सुमहद्द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
पतमानं समीक्ष्याथ योधास्ते व्यथिताऽभवन्

द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद्वर्षं घोरमुच्छ्रितम् ।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः
ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुंखैर्महामनाः ।
निजघ्ने राक्षसान्द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥

ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा
द्रोणपुत्रेण ताडिताः ।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन्द्रौणिं
जिघांसन्तो महाबलाः ॥ ४८

तत्राद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ ४९
यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद्द्रौणिर्महास्त्रवित्
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥
स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे ।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥ ५१
तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥ ५२
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद्द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद्वीराद्राक्षसेन्द्रान्महाबलात्
स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥ ५४
स्वं सूतमब्रवीत्क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ।
स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥ ५५
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ।
स विनद्य महानादं सिंहवद्भीमविक्रमः ॥ ५६
चिक्षेपाविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ५७
तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे ॥
साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साऽशनिर्भृशदारुणा
द्रौणेस्तत्कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥६०
धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप ।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम् ।
मुमोच निशितान्बाणान्पुनर्द्रौणेर्महोरसि ६१

शारद्वती कृपी । खचरान्बाणान् । खचरं राक्षसम् ॥ ३२ ॥ वसुरुल्बणः अग्निः प्रलयकालिकः ॥ १३६ ॥

धृष्टद्युम्नस्त्वसंभ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान्
सुवर्णपुंखान्विशिखान्द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ६२
ततो मुमोच नाराचान्द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥
अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ ६४
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ६५
ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ६६
तत्राद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ ६७
निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ६८
मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥ ६९
प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥ १७०
निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ७१
क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥
प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥ ७३
कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।
शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम्
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसंभवाम् ।
शोणितौघमहाघोरां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम्
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदातिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥ ७८
निहत्य राक्षसान्बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥
स नाराचगणैः पार्थान्द्रौणिर्विद्ध्वा महाबलः
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥ १८०
पुनः शत्रुञ्जयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान्
श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम्
जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष ।
कुन्तिभोजसुतांश्चासौ दशभिर्दश जघ्निवान्
अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः सन्धायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥ ८४
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ।
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवीपते ।
तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः १८६
द्रौणेः सकाशाद्राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम्
ततः पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥ ८७
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥ ८८

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहै-
हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही कृताऽभू-
द्गिरिशिखरैरिव दुर्गमाऽतिरौद्रा ॥
तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसंघा
नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणि-
मपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥ १९०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

## १५७

सञ्जय उवाच ।

द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुंतिभोजसुतांस्तथा
द्रोणपुत्रेण निहतान् राक्षसांश्च सहस्रशः॥ १
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २
सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥ ३
ततः समभवद्युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकांक्षिणाम्
तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
दशभिःसात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः
सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ६
वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ७
शक्त्या चैन विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।
सात्वतोऽप्यग्निसंकाशं मुमोच शरमुत्तमम्९
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।
युगपत्पेततुर्वीरे घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १०
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।
व्यामोहिते तु तनये बाल्हीकस्तमुपाद्रवत्॥
विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।
भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाल्हीकं नवभिःशरैः
प्रपीडयन्महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।
*प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि
निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम् ।
स तथाऽभिहतो भीमश्चकंपे च मुमोह च १४
प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह ।
सा पांडवेन प्रहिता बाल्हीकस्य शिरोऽहरत्
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट्।
तस्मिन्विनिहते वीरे बाल्हीके पुरुषर्षभ
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेः समाः।
नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि
तान्दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान्॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।
ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः ।
नाराचैर्दशभिर्भीमस्तां निहत्य तवात्मजान्॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ।
ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः॥
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद्बली ।
ततः सप्त रथान्वीरः स्यालानां तव भारत॥
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।
अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।
स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाचलः ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिरथान्बली ।
तान् दृष्ट्वा निहतान्वीरान्विचेलुर्नृपसत्तमाः॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत्
मिषतः कुंभयोनेस्तु पुत्राणां तव चानघ ॥
अम्बष्ठान्मालवाञ्शूरांस्त्रिगर्तान्स शिबीनपि
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः

अभीषाहाञ्शूरसेनान्
बाह्लीकान् सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा
चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९

यौधेयान्मालवान्राजन्मद्रकाणां गणा युधि
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान्बाणैर्युधिष्ठिरः॥
हताहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ३१
सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ३२
द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान्
तस्मिन्विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ३४

१५७

द्रुपदस्येति ॥ १ ॥ * प्रातिपेयः प्रतीपपुत्रः ।

चिक्षेप परमक्रुद्धो
जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।
क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि
तानि चास्त्राणि धर्मजः ॥ ३५
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन्
सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसंभवः
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७
पतिः कुरूणां गजसिंहगामी
विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकारास्त्रमहीनतेजा
माहेन्द्रमन्यत्स जघान तेन ॥ ३८
विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९
ततो नाज्ञासिषं किञ्चिद्घोरेण तमसाऽऽवृते
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ४०
ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१

ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ४२
ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम्
व्यधमत्क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥
ते हन्यमाना द्रोणेन
पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य
पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम्
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ४५
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम्
केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः
ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ ४८
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

## १५८

सञ्जय उवाच ।
उदीर्यमाणं तद्दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत्
अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान्योधान्महारथान् २
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान्समन्तात्संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ३
एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ४
कर्ण उवाच ।
परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरंदरः ।

तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम्
सत्यं ते प्रतिजानामि
समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान्
पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६
जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव
सर्वेषामेव पार्थानां
फाल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्यामोघां विमोक्ष्यामि
शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८

पतिः कुरूणां युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

१५८
उदीर्यमाणं तद्दृष्ट्वेति तथा परुषितं दृष्ट्वेति च स्पष्टार्थावध्यायौ ॥ १ ॥

तस्मिन्हते महेष्वासे
भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति
वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९
मयि जीवति कौरव्य
विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे
सहितान्सर्वपाण्डवान् ॥ १०
पंचालान्केकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान्
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम्

सञ्जय उवाच ।

एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२
शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति
बहुशः कत्थसे कर्ण कौरवस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद्दृश्यते फलमेव वा१४
समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन १५
ह्रियमाणे तदा कर्ण
गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदाऽयुध्यन्त सैन्यानि
त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः ॥ १६
विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः॥
एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान्सर्वपाण्डवान् ॥
अब्रुवन्कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहुसूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद्यस्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥
गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाफलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते
तावद्गर्जस्व राधेय यावत्पार्थं न पश्यसि ।
आरात्पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥
त्वमनासाद्य तान्बाणान्
फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य
दुर्लभं गर्जितं तव ॥ २२
बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा
वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फाल्गुनः शूरः
कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३
तोषितो येन रुद्रोऽपि
कः पार्थं प्रतिघातयेत् ।
एवं संरुषितस्तेन
तदा शारद्वतेन ह ॥ २४
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् ॥
शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ।
दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥२६
तत्तद्विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ।
यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ।
व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ
सकृष्णान् सहसात्वतान् ।
गर्जामि यद्यहं विप्र
तव किं तत्र नश्यति ॥ २९
वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जंति पंडिताः
सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम॥३१
पश्य त्वं गर्जितस्यास्य
फलं मे विप्र सानुगान्
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ
सहकृष्णान् ससात्वतान् ॥ ३२
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम्

कृप उवाच ।

मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज३३
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पांडवम्
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३४
देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥
ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।
संबन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ।
चंद्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः ॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः ।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥४०

येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः ।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः ।
चंद्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥
एते चान्ये च बहवो गणाः पाण्डुसुतस्य वै ।
कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगाद्विपम् ।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥
युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६
कथं तान्संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् ।
महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह ।

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् ।
सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्पाण्डवान्प्रति यद्वचः ॥
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ।
अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥
सदैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः ।
तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज ।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥
हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चास्य सोदराः ।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥
तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा ।
अयत्नात्कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥
सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः ।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५

त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चापि संयुगे ।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६
यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज ।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥
यच्चापि पाण्डवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद्ब्रुवतो द्विज ।
दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च ।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ।
जयेदेतान्नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥
शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः ।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ६२
एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः
जयमाकांक्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥
दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि ।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥
विकर्णश्चित्रसेनश्च बाल्हीकोऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसन्धः सुदक्षिणः ॥ ६५
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥
निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ६७
यांश्च तांस्तौषि सततं दुर्योधनरिपून्द्विज ।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह
प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥
यस्तान्बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे
दुर्योधनहितार्थाय 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः' ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

## १५९

सञ्जय उवाच ।

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् । खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद्द्रुतम् ॥ १

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

१५९

तथेति ॥ १ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात्

अश्वत्थामोवाच ।

यदर्जुनगुणांस्तथ्यान्कीर्तयानं नराधम ।
शूरं द्वेषात्सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् ।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद्गणयन्मृधे ॥ ४
क ते वीर्यं क चास्त्राणि यं त्वां निर्जित्य संयुगे
गाण्डीवधन्वा हतवान्प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥
येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा ।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ॥६
यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे ।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥
कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥९

सञ्जय उवाच ।

तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः ॥ १०

कर्ण उवाच ।

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ११

अश्वत्थामोवाच ।

तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥

दुर्योधन उवाच ।

अश्वत्थामन्प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद ।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रं कथंचन ॥ १३
त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले ।
महत्कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ १४
एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः ।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समंततः॥

सञ्जय उवाच ।

प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः ॥ १६
ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः ।
सौम्यस्वभावाद्राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥

कृप उवाच ।

तवैतत्क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते
दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥

सञ्जय उवाच ।

ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः
कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान्
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः ।
ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम् ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्पञ्चालाश्च यशस्विनः
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन् ।
अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन्पुरुषाधम ।
अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन् ॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः ।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ २६
घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन् ।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः ।
तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महारथान्
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत ।
दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ।
सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः ॥
वारयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।
ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ॥ ३१
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥
शरवर्षं तु तत्कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् ।
शरवर्षेण महता समंताद्व्यकिरत्प्रभो ॥ ३३
तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥
तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् ।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति परे युधि ॥३५

कंचिद्धनुर्धरं न गणयान्नित्यन्वयः ॥ ४ ॥

निवार्य च शरौघांस्तान्पार्थिवानां महारथः
युगेष्वीषासु च्छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥
आत्मनामांकितान्घोरान्
राधेयः प्राहिणोच्छरान् ।
ततस्ते व्याकुलीभूता
राजानः कर्णपीडिताः ॥ ३७
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।
हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा
तत्र तत्राभ्यवेक्षाम संघान्कर्णेन ताडितान् ॥
शिरोभिः पतितै राजन्बाहुभिश्च समंततः ॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनां
हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४०
बभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ।
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमं
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ।
युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः॥
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम्
कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥
दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता ।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥
तद्यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम् ।
न हन्यात्पांडवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयतां
ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव।
बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः॥ ४७
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं शतक्रतुः ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम्
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत् किमुत्तरम् ।
यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः॥ ४९
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम् ।
स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम्॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।

सञ्जय उवाच ।

आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा
असंभ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद्धनञ्जयम् ।
तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥ ५२
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।
स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः॥
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।
तस्य तल्लाघवं पार्थो नामृष्यत महाबलः॥५४
तस्मै बाणाञ्शिलाधौतान्
प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत्सूतपुत्राय
त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५
विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान्॥
सव्ये भुजाग्रे बलवान्नाराचेन हसन्निव॥ ५६
तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥ ५७
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत्।
शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥ ५८
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनञ्जयः ।
तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥ ५९
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
तदद्भुतं महद्युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ६०
क्रुद्धयोर्वाशिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।
ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः
अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम् ॥ ६२
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ६३
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥ ६४
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।
स तुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् ।
राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६
धनञ्जयशरैस्तुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दिश ।
द्रवतस्तान्समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।
अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः
एष पार्थवधायाहं
स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान्हनिष्यामि
सपञ्चालान्ससोमकान् ॥ ६९
अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये
अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवायतीः

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः
जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात्॥
न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ७६
एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्च्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति७७
यावन्नः पश्यमानानां प्राणान्पार्थेन संगतः ।
न जह्यात्पुरुषव्याघ्रस्तावद्वारय कौरवम् ७८
यावत्फाल्गुनबाणानां गोचरं नाद्य गच्छति
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद्वारय संयुगे॥७९
यावत्पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसन्निभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद्युद्धान्निवार्यताम्
अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थं यात्यसहायवान्॥
दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः॥८२
मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत॥८३
मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम्
न हि ते संभ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन॥ ८५
दुर्योधन उवाच ।
आचार्यः पाण्डुपुत्रान्वै पुत्रवत्परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम॥८६
मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत्
धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥
को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि
शत्रून्न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद्गौतमीसुतः॥
अश्वत्थामन्प्रसीदस्व नाशयैतान्ममाहितान् ।
तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः॥
पञ्चालान्सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान्
वयं शेषान्हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः९१
एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥
तान्वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना
अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिंदम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात्तवेदं कर्म मारिष॥
त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति
करिष्यसि जगत्सर्वमपञ्चालं किलोद्यतः९५
एवं सिद्धाऽब्रुवन्वाचो भविष्यति च तत्तथा
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान्
न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः
किमु पार्थाः सपञ्चालाः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते
न त्वां समर्थाः संग्रामे
पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद्योधयितुं वीर
सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९८
गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत्
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ९९
शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

१६०

सञ्जय उवाच।
दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः।
चकारारिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा।
प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः॥ १
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव।
प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह।
शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत्
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च।
निमेषात्पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ४
ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात्कुरूद्वह।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे॥ ५
युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या
तेषां चास्मान्युयुत्सताम्।
तेजस्तेजः समासाद्य
प्रशमं यातु भारत॥ ६
अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ७
आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पांडुनन्दनाः
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत८
त्वं तु लुब्धतमो राजन्निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वाभिशंकी मानी च ततोऽस्मानभिशंकसे
मन्ये त्वं कुत्सितो राजन्पापात्मा पापपूरुषः
अन्यानपि स नः क्षुद्र शंकसे पापभावितः
अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ११
योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं
जेष्यामि च वरान्वरान्।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि
सोमकैः केकयैस्तथा॥ १२
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम।
अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः
अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् १४
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः।
आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः १५
दृष्ट्वा विनिहतान्संख्ये
पञ्चालान्सोमकैः सह।
ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति
तान्हनिष्यामि भारत॥ १६
न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः।
एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव॥१७
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन्सर्वधन्विनः।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः॥
ततोऽब्रवीत्सकैकेयान्
पञ्चालान् गौतमीसुतः।
प्रहरध्वमितः सर्वे
मम गात्रे महारथाः॥ १९
स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम्
एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् २०
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव।
तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् २१
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो।
ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरान्पञ्चालान्सहसोमकान्
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्रणे।
ततः काञ्चनचित्राणां सजलांबुदनादिनाम्२४
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम्।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः २५
द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं
दृष्ट्वा योधान्निपातितान्।
आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे
किमन्यैर्निहतैस्तव॥ २६
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः
ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ॥ २८
ते तु पंक्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम्।
सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः

१६०

दुर्योधनेनेति॥ १॥ त्वं त्विति। निकृतिर्वंचनं तज्ज्ञत्वादस्मानप्यात्मवत्पश्यसीत्यर्थः॥ ९॥

मानी द्रौणिरसंभ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ।
धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ३१
यावत्त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।
द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।
स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः३३
द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा ।
न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते
ततस्त्वाऽहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे
इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ३६
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम्
यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ।
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे
यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।
इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ४०
छादयामास च शरैर्निःश्वसन्पन्नगो यथा ।
स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।
नाकंपत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः॥४२
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।
तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥ ४३
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥
द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा संपूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥
शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं च दिशस्तथा।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत्कृत्वा शरैस्तमः४६
नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७
अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
संपूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ४८
तौ प्रवृद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९
सिंहनादरवाश्चासन्दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः॥
तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमपि तद्युद्धं समरूपं तदाऽभवत् ॥ ५१
ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद्रणे ।
पञ्चालांश्चैव तान्सर्वान्बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ।
ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ५४
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत्कर्म वासवस्येव संयुगे ।
शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः ५५
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन्वै महारथान्
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः॥५६
नाशयामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः
ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृञ्जयैः ॥
अगच्छन्द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः ।
स जित्वा समरे शत्रून्द्रोणपुत्रो महारथः
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ।
स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः५९
संपूज्यमानो युधि कौरवेयै-
र्निर्जित्य संख्येऽरिगणान्सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्
यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य वै ६०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

## १६१

सञ्जय उवाच ।

ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १
ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात्पाण्डवान्संख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥२
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ।
अंबष्ठान्मालवान्वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि॥३
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः
अभीषाहाञ्छूरसेनान्क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान्
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम्
यौधेयानद्रिजान् राजन्मद्रकान्मालवानपि
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः
प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विश्शृङ्गा इव पर्वताः ।
निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७
रराज वसुधाऽऽकीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ।
क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ॥८
द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ।
हत प्रहरताभीता विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति
द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे॥ १०
व्यधमत्तान्महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः ।
ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन्भयात्
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम्॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत् ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥ १३
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम्
तौ तथा सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः१४
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः ।
तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः॥ १५
महत्या सेनया राजन् जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।
ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।
द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च॥१७
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।
सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दार्यमाणा महाचमूः१८
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत्सर्वतोमुखी ।
उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः१९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

## १६२

सञ्जय उवाच ।

सोमदत्तं तु संप्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह
न ह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात्सूत सत्यमेतद्वचो मम ॥ २
ततः संप्रैषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान्
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान्सर्वशब्दातिगान् रणे ॥ ३
तेऽवहन् युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन्पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसंभ्रान्तो न्यवर्तत ॥ ५

---

१६१

**तत इति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

१६२

**सोमदत्त**मित्यध्यायः स्पष्टार्थः ॥ १ ॥

विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा॥ ६
असंभ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ७
सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवं
सात्यकिश्चापि तं राजन्नाविध्यत्सायकैःशितैः
तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥
रुधिरोक्षितसर्वांगौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १०
रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हितावास्तां वृष्टिमन्ताविवांबुदौ ॥
शरसंभिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ
सुवर्णपुंखैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन्प्रावृषीव वनस्पती १३
संप्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥
ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः १५
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः १६
अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत १७
ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
बाह्लीकस्य रणे राजन्सात्यकिः प्रहसन्निव१८
सोमदत्तस्त्वसंभ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम्
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत्
सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २०
अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद्बहुधा राजन्भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् २१
अथान्यद्धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः
सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत
दशभिः सात्वतस्यार्थे
भीमोऽहन्बाह्लिकात्मजम् ।
सोमदत्तोऽप्यसंभ्रान्तो
भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४
ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि २५
तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः २६
स पपात द्विधा छिन्न
आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव मह—
च्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७
ततस्तु सात्यकी राजन्सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः२८
ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान् ।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९
सारथेश्च शिरः कायाद्भल्लेन नतपर्वणा ।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥ ३०
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मुमोच सात्वतो राजन्स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम्
स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः ।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत
सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३
तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः ।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४
छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः ।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम्
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ३६
सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७
ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः
सोऽतिविद्धो महाबाहुः
सृक्किणी परिसंलिहन् ।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद
ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९

---

बाल्हीकस्य सोमदत्तस्य ।। १८ ।।

स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४०
ततः शरसहस्रेण द्रोणं विद्याध पार्थिवः ।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१
ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४२
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद्द्विजसत्तमः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत्
असंभ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान् ।
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तंभयामास भारत ॥ ४४
चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः
ततोऽन्यद्धनुरादत्त द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ४५
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ४६
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु
उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद्भरतसत्तम ॥ ४७
यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ।
नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥ ४८
योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥
राजा राज्ञा हि योद्धव्यो
नाराज्ञा युद्धमिष्यते ।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय
हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥ ५०
यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनञ्जयः ।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ५१
वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥
प्रायाद्द्रुतममित्रघ्नो
यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान्योधा-
न्व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५३
रथघोषेण महता नादयन्वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन्वै दिशो दश ५४
भीमस्य निघ्नतः शत्रून्
पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः ।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान्
व्यधमद्रजनीमुखे ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

## १६३

सञ्जय उवाच ।
वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे ।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १
नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्ववृधे महत् ॥ २
नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् ।
द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ३
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम
वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ४
तमसा संवृते चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ।
ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।
महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ६
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेना गोपाश्च भारत
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७
धृतराष्ट्र उवाच ।
तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्निहतौजसाम्
अन्धे तमसि मग्नानामासीत्किं वो मनस्तदा
कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः
बभूव लोके तमसा तथा सञ्जय संवृते ॥ ९

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

१६३

**वर्तमान इति** ॥ १ ॥ अन्धे आन्ध्यहेतौ ॥ ७ ॥ वो युष्मत्सम्बन्धिनां मनः किं किंविधं,कातरं धृष्टं वेत्यर्थः ८

सञ्जय उवाच ।

ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै
सेनागोप्तॄनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १०
द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्य-
स्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्
राजाऽभ्ययाद्गोपयन्वै निशायाम् ११
उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्
दुर्योधनः पार्थिवसांत्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि
गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान्प्रदीपान् १२
ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन
ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा
विद्याधराश्चाप्सरसां गणाश्च ॥ १३
नागाः सयक्षोरगकिन्नराश्च
हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।
दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तोऽ-
दृश्यन्त दीपाः ससुगंधितैलाः ॥ १४
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां
सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।
सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता
व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् १५
महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः
शस्त्रैश्च दीप्तैरपि संपतद्भिः ।
रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु
प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥ १६
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः
कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा
व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु १७
सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः
पदातिभिः पावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां
यथाऽन्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १८
प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां
द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन्समन्तात् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा
मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १९
जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव
निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य
प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २०
गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा
रथेषु शक्तयश्च विवर्तमानाः ।
प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढ
पुनः पुनः सञ्जनयन्ति दीपान् ॥ २१
छत्राणि वालव्यजनानि खड्गा
दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला
व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२
शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं
दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत् ।
प्रकाशितं चाभरणप्रभाभि-
र्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २३
पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि
वीरावधूतानि तनुच्छदानि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र
तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥ २४
प्रकम्पितानामभिघातवेगै-
रभिघ्नतां चापततां जवेन ।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां
वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २५
महावने दारुमये प्रदीप्ते
यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत् ।
तथा तदाऽऽसीद्ध्वजिनी प्रदीप्ता
महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६
तत्संप्रदीप्तं बलमस्मदीयं
निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा-
नचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् २७
गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा
रथे रथे चैव दश प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये
ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २८

---

**तत इति** । द्रोण इत्यपकृष्यते। केषां सैन्यानां व्यूहमित्यध्याहृत्य योज्यम्॥१०॥ देवर्षीति भुवि पदातिभिर्दीपेषु गृहीतेषु दिविस्था देवा अपि दीपाञ्जगृहुर्युद्धोत्सवप्रेक्षकाः ॥१३॥ दिग्दैवतेभ्य इत्यंतरिक्षस्थानामपि देवानामागमनमुक्तम्। १४॥

सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये
पश्चात्पुरस्ताच्च समन्ततश्च ।
मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ता
व्यदीपयन्पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २९
मध्ये तथाऽन्ये ज्वलिताग्निहस्ताः
सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा
विमिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३०
व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्ता-
स्तथा बलं पाण्डवेयाभिगुप्तम् ।
तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं
बलं तवासीद्बलवद्बलेन ॥ ३१
भाः कुर्वता भानुमता शतेन
दिवाकरेणाग्निरिवाभिगुप्तः ।
तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं
सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ३२
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं
बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् ।
तेन प्रकाशेन दिवं गतेन
संबोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः
समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ।
तद्देवगन्धर्वसमाकुलं च
यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ॥ ३४
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भि-
रायोधनं दिव्यकल्पं बभूव ।
रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं
संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥ ३५
महद्बलं व्यूढरथाश्वनागं
सुरासुरव्यूहसमं बभूव ।
तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं
महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं
निशि प्रवृत्तं रथदुर्दिनं तत् ।
तस्मिन्महाग्निप्रतिमो महात्मा
संतापयन्पाण्डवान्विप्रमुख्यः ॥ ३७
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथार्को
वर्षात्यये तद्वद्भून्नरेन्द्र ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

## १६४

सञ्जय उवाच ।
प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसावृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १
ते समेत्य रणे राजन् शस्त्रप्रासासिधारिणः
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २
प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समंततः ।
रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिक्तैः ३
देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः ।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४
उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुंधरा ॥ ५
व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समंततः
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाबभुः ॥ ६
असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक्
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः
रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः ।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

१६४
**प्रकाशिते इति** ॥ १ ॥ लोकानामभावे प्रलये इव ॥ ५ ॥ तुरगास्तुरगसादिनः ॥ ७ ॥

चतुरङ्गस्य सैन्यस्य संपातश्च महानभूत् ।
ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम्
व्यधमत्त्वरया युक्तः क्षपयन्सर्वपार्थिवान् ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

तस्मिन्प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम्
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः ।
किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥ ११
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ।
के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिंदमाः ॥ १२
द्रोणं च केऽभ्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः
के पृष्ठतश्चाप्यभवन्वीरा वीरान्विनिघ्नतः ।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे
यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् १५
यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥
अव्यग्रानेव हि परान्कथयस्यपराजितान् ।
हृष्टानुदीर्णान्संग्रामे न तथा सूत मामकान्
हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान्

सञ्जय उवाच ।

द्रोणस्य मतमाज्ञाय
योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज
वश्यान् भ्रातॄनुवाच ह ॥ १९
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः २०
द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा
त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान्पुत्रस्ते समचोदयत् २२
आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पांडवाः
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे २३
द्रोणो हि बलवान् युद्धे
क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् ।
निर्जयेत्त्रिदशान् युद्धे
किमु पार्थान्ससोमकान् ॥ २४
ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चालाद्धृष्टद्युम्नान्महारथात् २५
पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन ।
यो योधयेद्रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः* ॥२६
तस्मात्सर्वात्मना मन्ये
भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
सुगुप्तः पाण्डवान् हन्यात्
सृञ्जयांश्च ससोमकान् ॥ २७
सृञ्जयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः २८
तथाऽर्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः
शेषांश्च पाण्डवान् योधाः
प्रसभं हीनतेजसः ।
सोऽयं मम जयो व्यक्तो
दीर्घकालं भविष्यति ॥ ३०
तस्माद्रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम् ।
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥३१
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे
ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम ॥ ३२
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ।
अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः ॥
नानाशस्त्रसमावापैरन्योन्यं समपीडयन् ।
द्रौणिः पाञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृञ्जयान्
छादयांचक्रिरे संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ।
नैवास्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम् ३६
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद्रौद्रं भयानकम् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ * पुमानिति पाठः ।

# १६५

सञ्जय उवाच।
वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशांपते।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १
अब्रवीत्पाण्डवांश्चैव
पञ्चालांश्चैव सोमकान्।
अभिद्रवत संयात
द्रोणमेव जिघांसया॥ २
राज्ञस्ते वचनाद्राजन्पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान्३
तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ४
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत्।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम्५
शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः।
अभ्ययात्कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि
सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम्।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास पाण्डवम्
भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम्
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत्॥
नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम्।
शकुनिः सौबलो राजन्वारयामास सत्वरः
शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम्।
कृपः शारद्वतो राजन्वारयामास संयुगे॥
प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत्॥
भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम्।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत्॥
द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम्।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम्॥ १३
विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत॥ १४
शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे।
चित्रसेनो रुरोधाशु शरैर्द्रोणपरीप्सया॥१५
अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम्।
अलंबुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत्॥
तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत्॥
तथान्यान्पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान्
तावका रथिनो राजन्वारयामासुरोजसा॥
गजारोहा गजैस्तूर्णं सन्निपत्य महामृधे।
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः॥
निशीथे तुरगा राजन्द्रावयन्तः परस्परम्।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः॥
सादिनः सादिभिः सार्धं
प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः।
समागच्छन्महाराज
विनदन्तः पृथक् पृथक्॥ २१
नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम्।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे॥ २२
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम्॥ २३
युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः॥
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः॥
अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥
माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा
हस्तावापं निकृत्य च।
प्राहिणोन्निशितान्बाणान्
पञ्च राजञ्छिलाशितान्॥ २८
ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम्।
प्राविशन्धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम्
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः
तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम्
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः॥ ३१

---

१६५

वर्तमाने इति॥ १॥ भैमसेनिं घटोत्कचम्॥१२॥ माधवः कृतवर्मा॥ २७॥

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्धरणीतलम् ॥
एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद्युधिष्ठिरम् ॥३४
ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गं चर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥
तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
अप्रैषीत्समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥
तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव
ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चास्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥
हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाम्बरात्
स च्छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः
अपायासीद्रणात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४०
कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयानं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

## १६६

सञ्जय उवाच ।
भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत्प्रयाणादिव कुञ्जरम् ॥ १
अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत्तस्य शोणितम्
तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैराविध्यत भुजान्तरे ॥
तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद्विस्फार्य कार्मुके ॥
तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥
तावन्योन्यं शरै राजन्संछाद्य समवस्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद्युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६
ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७
अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत्समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९
स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशांपते
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १०
छिन्नधन्वा महाराज
सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
प्रजहार महावेगां
शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११
स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो
निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाकाशा-
द्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२
तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३
तिष्ठ तिष्ठेति चाभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः १४
तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

१६६

**भूरिरिति** । प्रयाणाद्यानस्थानात् । प्रवणादिति पाठे प्रवणं प्रकृष्टं वनं जलम् ॥ १ ॥ तस्य सात्यकेः । तस्य तस्माद्धृदयात् ॥ २ ॥ लोहिताङ्गः कुजः । यदृच्छया दैवेनेत्यभूतोपमा ॥ १२ ॥ महिषमसुरम् ॥ १६ ॥

युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा
द्रौणिमभ्यद्रवत्क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी।
रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्धटोत्कचः॥ १८
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः।
शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः॥१९
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन्।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः॥ २०
समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिंदमम्।
स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि॥ २१
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललतो यथा।
ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान्॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाभ्यवीवृषत्।
तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम्॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः।
सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः॥
व्यधमत्सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः।
ततोन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत्
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः।
ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम्।
स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत्।
ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे॥ २९
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रल्हादयोरिव।
ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः।
स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः।
स मोहमनुसंप्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः॥
ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशांपते॥
तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः॥
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम्।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम्॥
स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः
विवेश वसुधामुग्रः सपुंखः पृथिवीपते॥
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्
राक्षसेन्द्रः सुबलवान्द्रौणिना रणशालिना
दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं
सारथिस्तु रणाजिरात्।
द्रौणेः सकाशात्संभ्रान्त-
स्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः॥ ३९
तथा तु समरे विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचं।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः॥ ४०
पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत।
वपुषाऽतिप्रजज्वाल मध्यान्ह इव भास्करः
भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः
तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत
तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ॥
अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ४५
तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा
ध्वजं च दशभिः शरैः।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं
नवत्या नतपर्वणाम्॥ ४६
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम्।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः।
अपीडयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥
तान्निहत्य शरान्भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान्।
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्॥
दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत
अथान्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः॥
तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत्।
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा॥
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत्
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः॥

श्वाविच्छल्यकः शललतः शल्लीभिः॥ २२॥

स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारसवीं शुभाम् ॥
मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव
सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम्
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः
ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम्
चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ॥
ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दास्य रथं पुनः ॥
पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद्भीतः प्रणश्य च ।
आरुरोह रथं चान्यं नन्दकस्य महात्मनः ॥
ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ।
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन्निशि कौरवान् ॥
तावकाः सैनिकाश्चापि मेनिरे निहतं नृपम्
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समंततः ६०
तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम्
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन् महात्मनः
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम्
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६२

पञ्चालाः केकया मत्स्याः
सृञ्जयाश्च विशांपते ।
सर्वोद्योगेनाभिजग्मु-
र्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं द्रोणस्याथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ६४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

## १६७

सञ्जय उवाच ।
सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशांपते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १
सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २
तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत्
ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ४
तस्य कर्णो हयान्हत्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ५
विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत्प्रहसन्निव ॥ ६
अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७
तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टंभयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ८
गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः
ससंभ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् १०
रथचक्रं प्रगृह्याजौ मुमोचाधिरथं प्रति ।
तदाऽपतद्वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥११
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत्सूतनन्दनः ।
तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना १२
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यंगानि तथाश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान्बहून् ॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान्व्यधमच्छरैः ।
स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ।
तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद्भरतर्षभ ॥ १५
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सहदेवं विशांपते ।
मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह

---

प्रणश्य निलीनो भूत्वा ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

१६७

सहदेवमथायान्तमिति शतानीकमिति । चाध्यायौ स्पष्टार्थौ ॥ १ ॥

सहशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशंकिथाः ।
अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन्भूयोऽब्रवीद्वचः ॥ १७
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह ।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥
एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात्पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव
वधं प्राप्तं तु माद्रेयं
नावधीत्समरेऽरिहा ।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन्
सत्यसन्धो महायशाः ॥ २०
सहदेवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्शरतप्तश्च जीविताग्निरविद्यत २१
आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः २२
विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम्
तयोः समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद्राजन् जंभवासवयोः पुरा २४
मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् २५
प्रतिविव्याध तं राजन्नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २६
तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥
हताश्वात्तु रथात्तूर्ण-
मवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं
विमुञ्चंश्च शिताञ्छरान् ॥ २८
शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९
शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम्
तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ३१
ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ३२
ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम्
सोऽतिविद्धो महाराज
रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाविशत्तीव्रं
विराटो भरतर्षभ ॥ ३४
सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत३५
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना ।
तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनञ्जयौ
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः
तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राक्षसेन्द्रो ह्यलंबुषः
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ।
तुरङ्गमुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ॥ ३८
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९
रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ४०
स बभौ राक्षसो राजन्भिन्नाञ्जनचयोपमः ।
रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ४१
किरन्बाणगणान् राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि
अतितीव्रं महद्युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२
द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत ।
गृध्र-काक-बलोलूक-कङ्क-गोमायुहर्षणम् ४३
तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत् ।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥
सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् ।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥
पुनः सज्यं कृतं चापं
तदप्यस्य द्विधाऽच्छिनत् ।
विरथस्योद्यतं खड्गं
शरेणास्य द्विधाऽकरोत् ॥ ४६
अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ ।
पार्थोऽविध्यद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद्भयात्
तं विजित्यार्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ ।
किरञ्शरगणान् राजन्नरवारणवाजिषु ॥४८
वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना ।
संप्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणां ते विशांपते ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलंबुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

## १६८

सञ्जय उवाच ।
शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव ।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १
नाकुलिश्चित्रसेनं तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः
स तु तं प्रति विव्याध दशभिर्निशितैः शरैः
चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ३
नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्मसन्नतपर्वभिः ।
गात्रात्संच्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥
सोपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप ।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः
ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६
स छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः ।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम् ॥
ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः ॥
शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष ।
जघान चतुरो वाहान्सारथिं च नरोत्तमः ॥
अवप्लुत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः ।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद्बली ॥
तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम् ॥
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥
द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा ॥१३
यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् ।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ
वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे ॥
तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे ।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे
वृषसेनस्ततो राजन्
द्रुपदं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या
पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९
ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन्विबभौ तदा ।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवांबुदः ॥ २०
द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम्।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम्
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतं शितं दृढम् ॥
कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं सन्निरीक्ष्य च
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन्सर्वसोमकान् ॥
हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम् ।
कश्मलं प्राविशद्राजा वृषसेनशराहतः ॥२४
सारथिस्तमपोवाह स्मरन्सारथिचेष्टितम् ।
तस्मिन्प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
संप्राद्रवत्तदा राजन्निशीथे भैरवे सति ॥२६
प्रदीपैरपरित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः ।
व्यराजत मही राजन् वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः
तथाऽङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुंधरा ।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥
ततः कर्णसुतात्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः ।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥
तेनार्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः ।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

१६८

शतानीकमिति ॥ १ ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ ३१
तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥
स विजित्य रणे शूरान्सोमकानां महारथान्
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥
प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् ।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥
तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह ।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥
प्रतिविंध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥
सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ।
विरराज महाबाहुः सश्टङ्ग इव पर्वतः ॥ ३७
दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः ।
नवभिः सायकैर्विद्धा पुनर्विव्याध सप्तभिः
तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान्कर्म दुष्करम् ।
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥
सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत् ।
रथं च तिलशो राजन् व्यधमत्तस्य धन्विनः
पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन्योक्त्राणि च प्रभो
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः ।
अयोधयत्तव सुतं किरञ्शरशतान्बहून् ॥
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव ।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः ।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥ ४४
आप्लुतः सततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम् ।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४५
ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव ।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे शतानीकादियुद्धे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

## १६९

सञ्जय उवाच ।
नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव ।
अभ्ययात्सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत
कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥
यथैव नकुलो राजन् शरवर्षाण्यमुञ्चत ।
तथैव सौबलश्चापि शिक्षां संदर्शयन्युधि ॥
तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव ॥
रुक्मपुंखैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ ५
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे ॥
तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा ।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ॥
सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन्विवृतलोचनौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम् ॥ ८
स्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव ।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह ॥ ९
नकुलस्तु भृशं विद्धः स्यालेन तव धन्विना ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत् ॥
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम् ।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः ।
अभ्ययात्सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः ॥
संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे ॥ १३

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

१६९

नकुलमिति ॥ १ ॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत्तदा ।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥
विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च ।
ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥
श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा ।
सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्
ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामुकः कामिनीं यथा
तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा स्यालं तवानघ ॥
अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ।
ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः
निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः ।
अब्रवीत्सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः ।
प्रायात्तेन तदा राजन् यत्र द्रोणो व्यवस्थितः
शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशांपते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत्सवेगितः ॥
गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिंदमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥
तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥
महद्युद्धं तयोरासीद्घोररूपं भयानकम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शंबरामरराजयोः ॥ २४
शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
मेघाविव तपापाये वीरौ समरदुर्मदौ ॥ २५
प्रकृत्या घोररूपं तदासीद्घोरतरं पुनः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥
कालरात्रिनिभा ह्यासीद्घोररूपा भयानका ।
शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा ।
तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम्
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम् ।
तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः
साऽपतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा ।
अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ३०
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम्
स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ३१
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः ।
सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ।
विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ३३
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ।
तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ ३४
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ।
रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम्
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव ।
द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशांपते
अन्योन्यमभितो राजन् क्रूरमायोधनं बभौ
पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ३७
अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाङ्गना ।
रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥ ३८
अगृह्णन्बहवो राजञ्शलभान्वायसा इव ।
तथा गजान्प्रभिन्नांश्च संप्रभिन्ना महागजाः
तस्मिन्नेव पदे यत्ता
निगृह्णन्ति स्म भारत ।
सादी सादिनमासाद्य
पत्तयश्च पदातिनम् ॥ ४०
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः
धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ॥ ४१
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि
दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ४२
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः
सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥ ४३
दिवसप्रतिमा राजन्बभूव रणमूर्धनि ।
आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः ।
दिवं च पृथिवीं चैव दिशश्च प्रदिशस्तथा ४५
रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः
अस्त्राणां कवचानां च मणीनां च महात्मनाम्
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ।
तस्मिन्कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे ॥
न किंचिद्विदुरात्मानमयमस्मीति भारत ।
अवधीत्समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४८

---

**ऊरू इति** । मण्डलं चरतः शकुनेर्द्वावूरू एकेनैव बाणेन बिभेद ॥ १५ ॥ यथा खे श्येनं पक्षाभ्यां सहितं वामदक्षिणगामिनं पातयेदेवमिति लुप्तोपमा । व्याधेन बाणेन विध्यत्यनेनेति व्याधो बाणः ॥ १६ ॥ परिक्लिश्य क्लेशेन ध्वजयष्टिं श्रित इति शेषः ॥ १७ ॥ **रथिन इति** । प्रद्रुता रथिनो वेगवत्तरं रथमारुह्य तत्पातिमगृह्णन् शलभानिव वायसा इति उत्तरेण सह योज्यम् । रथं रथान् रथिनो रथपत्तीनिति वा ॥ ३८ ॥

पुत्रश्च पितरं मोहात्सखायं च सखा तथा। स्वे स्वान्परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम्।
स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् निर्मर्यादमभूद्युद्धं रात्रौ भीरुभयानकम् ५०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६९॥

## १७०

सञ्जय उवाच।
तस्मिन्स्तुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्तत॥ १
संदधानो धनुःश्रेष्ठं ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः।
अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् २
धृष्टद्युम्नमथायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ३
तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम्।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे॥ ४
बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव५
ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च॥ ६
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे
चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम् ७
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं संदश्य दशनच्छदम्॥८
ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
आददेऽन्यद्धनुः श्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया
विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात्परवीरहा।
द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजत्सायकं ततः
स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे।
भासयामास तत्सैन्यं दिवाकर इवोदितः॥
तं तु दृष्ट्वा शरं घोरं देव-गन्धर्व-मानवाः।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन् द्रोणायेत्यब्रुवन्वचः
तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति।
कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत्१३
स च्छिन्नो बहुधा राजन् सूतपुत्रेण धन्विना
निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा १४
धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः १५
शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः॥
पाञ्चाल्यं त्वरयाऽविध्यन्सर्व एव महारथाः
स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणस्यार्थे महाहवे १७
सर्वानसंभ्रमाद्राजन्
प्रत्यविद्ध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च
विव्याध च तवात्मजम्॥ १८
ते भित्त्वा धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः १९
द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन्विव्याध पत्रिणा।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्
स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि२१
भल्लेनान्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम्।
निचकर्त शिरः कायाद्द्रुमसेनस्य वीर्यवान्
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ संदष्टौष्ठपुटं रणे।
महावातसमुद्भूतं पक्वं तालफलं यथा॥ २३
तान्स विद्ध्वा पुनर्योधान्
वीरः सुनिशितैः शरैः।
राधेयस्याच्छिनद्भल्लैः
कार्मुकं चित्रयोधिनः॥ २४
न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा।
निकर्तनमिवात्युग्रं लांगूलस्य महाहरिः २५
सोऽन्यद्धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् २६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामूनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६९॥

१७०
तस्मिन्निति॥ १॥ हरिः सिंहः॥ २५॥

दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षडृषर्षभाः।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥
षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम्
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥ २८
एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान्
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत २९
तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम्।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ३०
तं सात्यकिर्महाराज
विव्याध दशभिः शरैः।
पश्यतां सर्ववीराणां
मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३१
स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः
आसीत्समागमो राजन् बलिवासवयोरिव
त्रासयन् रथघोषेण क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत
कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत३४
विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविद्ध्यत ॥ ३५
तथैव युद्ध्यमानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद्युद्धमभवत्समम् ॥ ३६
तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समंतान्निशितैः शरैः
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो
अविद्ध्यत्सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनांतरे ॥
तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशांपते।
न्यपतत्स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥
ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम्।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥
पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः
स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः।
स हस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयंकरे।
युयुधानमविध्येतां समंतान्निशितैः शरैः ॥
वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन्वीरवरक्षये।

अतीव शुश्रुवे राजन् गाण्डीवस्य महास्वनः
श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनं
सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥४५
एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान्।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान्
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७
करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः
एषा विदार्यते राजन्बहुधा भारती चमूः ॥
विप्रकीर्णान्यनेकानि
न हि तिष्ठन्ति कर्हिचित्।
वातेनेव समुद्धूत-
मभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे
द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः
विद्धानां शतशो राजन्
श्रूयते निःस्वनो महान्।
शृणु दुन्दुभिनिर्घोष-
मर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे।
हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥
शृणु शब्दान्बहुविधा-
नर्जुनस्य रथं प्रति।
अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं
सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ ५३
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान्।
एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन संगतः ॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः।
सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत्।
सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णि पार्षतौ।
सव्यसाची पुरोभ्येति द्रोणानीकाय भारत
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः।
तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥ ५८
यावत्पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतं
ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशं

षडृषर्षभाः दुर्योधन-दुःशासन-द्रोण-कर्ण-शल्य-शकुनयः २७॥औपयिकं युक्तम्॥४८॥ इह सात्यकिरूपं लक्ष्यं लभ्यते चेत् अयं वशीक्रियते चेदित्यर्थः ॥ ५४ ॥ सात्यकिधृष्टद्युम्नौ पाण्डवसेनायां सारभूतावभिमन्युवद्बहुभिर्मिलित्वा हन्तव्यावित्याह—सात्यकिमित्यादिना ॥ ५५ ॥

यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः ।
तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया॥६०
कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् ।
यथेन्द्रः समरे राजन्प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥
वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम् ।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनञ्जयम् ॥ ६२
दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुःप्रधर्षणः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥
जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल ।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं तथैव च ॥ ६४
देवानामिव देवेन्द्र जयाशा त्वयि मे स्थिता
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥

एवमुक्तो ययौ पार्थान्पुत्रेण तव सौबलः ।
महत्या सेनया सार्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान्
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६७
प्रयाते सौबले राजन्पाण्डवानामनीकिनीम्
बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥
अभ्ययात्त्वरितो युद्धे किरञ्शरशतान्बहून्
तथैव पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥
भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
महद्युद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य निशि भारत ।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण पञ्चालैश्च सहाद्भुतम् ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

## १७१

सञ्जय उवाच ।
ततस्ते प्राद्रवन्सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः ।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १
ते रथैः कल्पितै राजन्हेमरूप्यविभूषितैः ।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥ २
अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः ।
सिंहनादांस्ततश्चक्रुस्तर्जयन्ति स्म सात्यकिम्
तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमं
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥
तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन्विशिखान्बहून् ॥
तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
हस्तिहस्तान्हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान्
क्षुरप्रैश्छादयामास¶ तावकानां स माधवः॥
पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत ।
बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८
एतेषां युयुधानेन युध्यतां युधि भारत ।

बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव ॥९
तेन शब्देन महता पूरिताऽभूद्वसुन्धरा ।
रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा॥ १०
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम् ।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ॥
सुतस्तवाब्रवीद्राजन् सारथिं रथिनां वरः ।
यत्रैष शब्दस्तत्राश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः १२
तेन संचोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान् ।
सूतः संचोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत् ॥ १४
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५
दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः ।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः ॥ १६
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ ।
पञ्चालानां च सर्वेषां भरतानां च दारुणम्

---

माधवो मधुवंशजः सात्यकिः ॥ ६० ॥ पावकिः स्कन्दः ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ¶ शातयामासेति पाठः

१७१

तत इति ॥ १ ॥

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम् ।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत
ततोऽस्य वाहान्समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च रथात्तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठन्पुत्रस्तव विशांपते ।
मुमोच निशितान्बाणान् शैनेयस्य रथं प्रति
शरान्पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् ।
चिच्छेद समरे राजन्प्रेषितांस्तनयेन ते २१
अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ।
चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः २२
विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३
दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् ।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशांपते ॥
शकुनिश्चार्जुनं राजन्परिवार्य समंततः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चापि सहस्रशः ॥ २५
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत् ।
ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति
अर्जुनं योधयंति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः
तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन्विपुलं क्षयम् ।
ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा २८
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ।
पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम् ॥ २९
तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
अथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ३०
निवार्य तान्बाणगणैर्युधि राजन्धनञ्जयः ।
जघान तावकान्योधान्वज्रपाणिरिवासुरान्
भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे ।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः
शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसैश्चारुकुण्डलैः ।
संदष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्धृतलोचनैः ॥ ३३
निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियंवदैः ।
पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पर्वतैर्विबभौ मही ३४
कृत्वा तत्कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः ।
विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ३५
अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः ।
उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ३६
ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् ।
अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैश्छिन्नद्रणे ॥ ३७
निन्ये च चतुरो वाहान्यमस्य सदनं प्रति ।
ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ॥ ३८
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशांपते ।
तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥ ३९
पार्थं सिषिचतुर्बाणै-
र्गिरिं मेघाविवाम्बुभिः ।
तौ तु विद्ध्वा महाराज
पाण्डवो निशितैः शरैः ॥ ४०
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ।
अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समंततः
विच्छिन्नानि तथा राजन्
बलान्यासन् विशांपते ।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ
वध्यमानं तदा निशि ॥ ४२
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्ष्यमाणं भयार्दितम्
उत्सृज्य वाहान्समरे चोदयन्तस्तथा परे ४३
संभ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणे
विजित्य समरे योधांस्तावकान् भरतर्षभ ॥
दध्मतुर्मुदितौ शंखौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ।
तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ४६
आददेऽन्यद्धनुः शूरो वेगवत्सारवत्तरम् ।
धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन्विव्याध संयुगे ।
तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८
व्यधमत्कौरवीं सेना-
मासुरीं मघवानिव ।
वध्यमाने बले तस्मिं-
स्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४९
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ॥ ५०
यथा वैतरणी राजन् यमराजपुरं प्रति ।
द्रावयित्वा तु तत्सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्
अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ।
अथ दध्मुर्महाशंखान्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः
सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ।
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशांपते ५४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

## १७२

सञ्जय उवाच ।

विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशांपते ॥१
अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम्
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् २
भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां संप्रवर्तितः
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ३
निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम्
भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ४
यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि
आवां पाण्डुसुतान्संख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥ ५
तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसंमतम् ।
नाकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम् ॥
यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ७
वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ ॥ ८
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
शैनेयप्रमुखान्पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ॥ ९
तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः ।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥
अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम्
अविध्यत्त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ११
कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः ।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः ॥ १२
एते कौरव संक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन् ।
दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम्
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः
तत्र द्रोणोऽहरत्प्राणान्क्षत्रियाणां विशांपते ॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः ॥
द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशांपते ॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम् ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ॥
भागिनेयान् वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः ॥ १७
अपरे मोहिता मोहात्तमेवाभिमुखा ययुः ।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं गताः परे
सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना
निशि संप्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ २०
तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥
द्रवमाणं तु तत्सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन्किरन्तौ सायकान्बहून्
पञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम्२३
द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी
पञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥
एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ॥ २५
वार्यमाणाऽपि कौन्तेय पृतना नावतिष्ठते ॥
तां तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ।
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः
तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

१७२

**विद्रुतमिति** ॥ १ ॥ घट्टितौ मर्दितौ ॥ ८ ॥ संक्रंदे युद्धे ॥ १३ ॥ सात्यकी इति द्वितीयान्तम् ॥ २४ ॥

एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ
उपेक्षितौ तव बलैर्नाशयेतां निशामिमाम् ॥
तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः ।
आयाद्वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ।
वृकोदरमथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद्राजन्हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३०
एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
अभ्यवर्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ ॥ ३१
एतेन सहितो युद्ध्य पञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन
ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥

सञ्जय उवाच ।

ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान्ममृदतुर्युधि ॥ ३४
स संप्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयाविवृद्धयोः ॥३५
तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तव वाहिनी
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥ ३६
रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे ।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥
अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाहवे ॥ ३८
निःशब्दमासीत्सहसा पुनः शब्दो महानभूत्
क्रुद्धानां युध्यमानानां जीयतां जयतामपि ॥
यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम ।
तत्र तत्र स्म शूरास्ते निपतन्ति पतङ्गवत् ॥
तथा संयुध्यमानानां विगाढासीन्महानिशा
पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

## १७३

सञ्जय उवाच ।

ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा ।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १
प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष ।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्
तावन्योन्यं शरैः संख्ये संछाद्य सुमहारथैः ।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥ ३
ततः पञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
सारथिं चतुरश्चाश्वान्कर्णो विव्याध सायकैः
कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५
धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत्
विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्वपद्यत ॥ ७
आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ ८
कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम् ।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाम्बुजम् ॥९
दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः ॥
सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः ।
प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥
कर्णस्यापि रथे वाहान्-
न्यान् सूतोऽभ्ययोजयत् ।
शङ्खवर्णान्महावेगान्
सैन्धवान्साधुवाहिनः ॥ १२
लब्धलक्षस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान्
अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलम् ॥ १३
सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः
संप्राद्रवत्सुसंत्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी १४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

१७३

तत इति ॥ १ ॥ आयस्तः प्रयत्नवान् ॥ १३ ॥

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १५
धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे ।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम्
ऊरू चिच्छेद चान्यस्य गजस्थस्य विशांपते
वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च मारिष १७
नाज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः ।
संछिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे
ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ।
तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १९
अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् ।
कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥
तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत ।
अभ्यद्रवद्द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् २१
अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसंमूढा विचेतसः
नाशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना २२
कर्णेनाभ्याहता राजन्पञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्ष्यमाणाः प्रदुद्रुवुः
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम्
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत्
पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम्
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम्
कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् २६
यथा विसृजतश्चास्य संदधानस्य चाशुगान्
पश्यामि नान्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम्
यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत्कुरुष्व धनञ्जय ॥ २८
एवमुक्तो महाराज
पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् ।
भीतः कुन्तीसुतो राजा
राधेयस्याद्य विक्रमात् ॥ २९
एवंगते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान् व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी
द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ३१
पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान् रथोदारान्किरन्तं निशितैः शरैः
नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ३३
स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३४
श्रीवासुदेव उवाच ।
पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३५
नैतस्यान्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनञ्जय
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात्
न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३७
दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी
त्वदर्थं हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च ।
घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ३९
स हि भीमेन बलिना
जातः सुरपराक्रमः ।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि
राक्षसान्यासुराणि च ॥ ४०
सततं चानुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नात्र संशयः ॥
एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः ।
आजुहावाथ तद्रक्षस्तच्चासीत्प्रादुरग्रतः ४२
कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशांपते ।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ॥
ततस्तं मेघसंकाशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम्
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ४४
श्रीवासुदेव उवाच ।
घटोत्कच विजानीहि
यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं
तव नान्यस्य कस्यचित् ॥ ४५
स भवान्मज्जमानानां
बन्धूनां त्वं प्लवो भव ।
विविधानि तवास्त्राणि
सन्ति माया च राक्षसी ॥+ ४६
पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी ।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ॥

अतिभयात्तृणचलनमात्रेणापि कर्णं प्राप्तं मेनिरे ॥ १९ ॥ + मायाश्च राक्षसीरित्यपि पाठः ।

एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रमः ।
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥
किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः ।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥
निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवार्दिता मृगाः
एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे ।
निषेद्धा विद्यते नान्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥
स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः ।
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च
एतदर्थं हि हैडिंबे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ।
कथं नस्तारयेद्दुःखात्स त्वं तारय बान्धवान्
इच्छन्ति पितरः पुत्रान् स्वार्थहेतोर्घटोत्कच
इहलोकात्परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः
तव ह्यत्र बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः ।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥ ५५
पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परंतप ॥ ५६
रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः
बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ५७
जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥

सञ्जय उवाच ।
केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसं
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिंदमम् ॥
घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥
तद्भवान्यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥
जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान् ।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥
घटोत्कच उवाच ।
अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालं च भारत
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनां
अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि ।
यं जनाः संप्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥
न चात्र शूरान्मोक्ष्यामि न भीतान्न कृतांजलीं
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिर्वरवीरहा †
अभ्ययात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजम् ।
प्रहसन्पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥
तयोः समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रल्हादयोरिव ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचप्रोत्साहने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७३ ॥

## १७४

सञ्जय उवाच ।
दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन्सूतपुत्ररथं प्रति ।
आयान्तं तु तथायुक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥१
अब्रवीत्तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः ।
एतद्रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २
अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम् ।
वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।
रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥

मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति
एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ॥ ५
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ।
दुर्योधन तवामित्रान्प्रख्यातान् युद्धदुर्मदान्
पाण्डवान् हन्तुमिच्छामि
त्वयाऽऽज्ञप्तः सहानुगान् ।
जटासुरो मम पिता
रक्षसां ग्रामणीः पुरा ॥ ७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७३॥ † हैडिंबिः परवीरहा इति पाठः।

१७४

दृष्ट्वेति॥ १ ॥

प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।
तस्यापचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ॥
शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८
तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ॥
त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचं
राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुषसंभवम् ॥ १०
पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम्
वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥ ११
तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम्
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥
अलंबुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव॥
ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्पयत् ॥
विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिं महाबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम्
तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥
घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः
अलंबुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥
तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चातिदारुणम् ॥
ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूनन्यान्सहस्रशः ।
अलंबुषं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाचलम् ॥
ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चान्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१
जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाऽभ्यहनद्दृढम् ॥
मुष्टिनाऽभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान्
ततः स परिघाभेन द्विट्सङ्घघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥
तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले
जाटासुरिर्मोक्षयित्वा
आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥
अलंबुषोऽपि विक्षिप्य
समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषा-
न्निष्पिपेष च भूतले ॥ २७
तयोः समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम्
विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ २९
पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ३०
पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥
भृशं चित्रमयुध्येतामलंबुषघटोत्कचौ ।
परिघैश्च गदाभिश्च प्रास-मुद्गर-पट्टिशैः ॥३२
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं विजघ्नतुः ।
हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां च पदातिभिः
युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ।
ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया॥
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च ।
गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥
उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे ।
ततो घटोत्कचः खड्गमुद्धृत्याद्भुतदर्शनम् ॥
रौद्रस्य कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनं
स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चातिभैरवम् ॥ ३७
निचकर्त महाराज शत्रोरमितविक्रमः ।
शिरस्तच्चापि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ॥
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति ।
अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः
शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्धजम्
प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४०
अब्रवीच्च ततो राजन्दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः
पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः
'स्वधर्ममर्थं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम्'
तिष्ठस्व तावत्सुप्रीतो यावत्कर्णं वधाम्यहम्
एवमुक्त्वा ततः प्रायात्कर्णं प्रति नरेश्वर ।
किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान् रुषितो रणमूर्धनि

अपचितिं निष्कृतिम् ॥ ८ ॥ निष्ठां नाशम् ॥ ४२ ॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् । विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलंबुषवधे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

## १७५

धृतराष्ट्र उवाच ।

यत्तद्वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत्कथम् ॥ १
कीदृशं चाभवद्रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः ।
रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च ॥
किंप्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा ।
कीदृशं वर्म चैवास्य शिरस्त्राणं च कीदृशम्
पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ।

सञ्जय उवाच ।

लोहिताक्षो महाकाय-
स्ताम्रास्यो निम्नितोदरः
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः
शंकुकर्णो महाहनुः ।
आकर्णदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान्
सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः
नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयंकरः
महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः ।
विकृतः परुषस्पर्शो विकचोद्बद्धपिण्डकः ॥
स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान्
तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ॥ ८
उरसा धारयन्निष्कमग्निमालां यथाऽचलः ।
तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥ ९
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत ।
कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम्
धारयन्विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम् ।
किंकिणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम् ।
सर्वायुधवरोपेतमास्थितं ध्वजमालिनम् ॥ १२
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगंभीरनिःस्वनम् ।
मत्तमातङ्गसंकाशा लोहिताक्षा विभीषणाः
§कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः ।
वहन्तो राक्षसं घोरं वालवन्तो जितश्रमाः
विपुलाभिः सटाभिस्ते हेषमाणा मुहुर्मुहुः ।
राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुंडलः
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः सञ्जग्राह हयान् रणे
स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥ १६
संसक्त इव चाभ्रेण
यथाऽद्रिर्महता महान् ।
दिवःस्पृक् सुमहान्केतुः
स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः ॥ १७
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ।
वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम्
रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन्दिशः
तस्यां वीरापहारिण्यां
निशायां कर्णमभ्ययात् ।
तस्य विक्षिपतश्चापं
रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ २०
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

१७५

**यदिति** ॥ १ ॥ वर्ष्मेति पाठे शरीरम् ॥ ३ ॥ निम्नितोदरः निम्नितं पृष्ठवंशसंलग्नमशनहीनस्येवोदरं यस्येत्यर्थः ॥ ४ ॥ करालवान् उन्नतदन्तचतुष्कः ॥ ५ ॥ विकचश्चासावुद्बद्धः पिण्डो दृढाङ्गःको मूर्धा यस्य स विकचोद्बद्धपिण्डकः । पाठान्तरे विकटे विकृते उद्वृद्धे दृढे पिण्डके जङ्घोर्ध्वप्रदेशौ यस्य स विकटोद्वृद्धपिण्डकः ॥ ७ ॥ स्थूलस्फिक् शिथिलोपचयः स्फिक्प्रदेशे एव शिथिलः श्लथ उपचयो वृद्धिर्यस्य । पाठान्तरे शिखिलः शिखावान् उपचयो ललाटप्रान्तो यस्येत्यर्थः । अङ्गदीतिसाहचर्याद्धस्ताभरणी कटकमुद्रिकादिमान् ॥ ८ ॥ नल्वो हस्तचतुःशतम् ॥ १२ ॥ वालाः स्कन्धवालाः केसराणीति यावत् ॥ १४ ॥ किष्कुर्हस्तस्तन्मितः परीणाहो विस्तारो यस्य अरत्निर्निरष्टमांशः करः ॥ १९ ॥ § कालवर्णसमायुक्ता इति पाठः ।

समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः।
समापतन्तं संप्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥
उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत्।
ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात्
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभमिवर्षभः।
स सन्निपातस्तुमुलस्तयोरासीद्विशांपते॥ २४
कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव।
तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरिषुभिर्नतपर्वभिः ॥ २६
न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥

रथशक्तिभिरन्योन्यं
विशिखैश्च ततक्षतुः।
सञ्छिन्दन्तौ च गात्राणि
संदधानौ च सायकान् ॥ २८

दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः
तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ॥
विभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ
तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम्
नाकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती।
तत्प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन्कर्णराक्षसयोर्मृधे।
तस्य संदधतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चासक्तमस्यतः॥
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाऽभवन्
घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥
ततः प्रादुष्करोद्दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः।
कर्णेन संधितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः॥
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ३५
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः।
तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥३६
भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम्
घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥३७
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम्।
ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत्समन्ततः ॥

अर्धरात्रेऽधिकबलै-
र्विमुक्ता रक्षसां बलैः।
आयसानि च चक्राणि
भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥ ३९

पतन्त्यविरलाःशूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा
तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥ ४०
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः।
तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम्
मायायां तु प्रहीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥
विससर्ज शरान् घोरान्सूतपुत्रं त आविशन्
ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे।
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः।
सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान्॥
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः।
घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥४५
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम्।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥
चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया।
प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः ॥ ४७
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि।
घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम्।
कर्णं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम्
सूतपुत्रस्त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः।
घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥ ५०

क्षिप्ता भ्राम्य शरैः साऽपि
कर्णेनाभ्याहताऽपतत्।
ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य
कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ५१

प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात्।
ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः।
तस्य सर्वान्हयान् हत्वा संछिद्य शतधा रथम्
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
न चास्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम्

रथशक्तिभिः रथाक्षमात्रैरिति प्रागुक्तेः, रथाक्षतुल्यैरित्यर्थः।'रथः स्यन्दनदेहयोः' इति कोशाद्देहानुकूलशक्तिमद्भिरिति वा ॥ २८ ॥ तस्य घटोत्कचस्य आसक्तमन्योन्यसंसक्तं यथा स्यात्तथा शरानस्यतः। आशक्तामिति पाठे यावच्छक्ति आर्षोऽच्प्रत्ययः समासान्तः ॥ ३२ ॥

सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललितो यथा।
न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम्
दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम्।
स तु कर्णस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन्॥
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत्।
सोऽयोधयत्तदा कर्णं मायया लाघवेन च॥

अलक्ष्यमाणानि दिवि
शरजालानि चापतन्।
भैमसेनिर्महामायो
मायया कुरुसत्तम॥ ५८

विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत।
स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च
अग्रसत्सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया।
पुनश्चापि महाकायः संछिन्नः शतधा रणे॥
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद्व्यदृश्यत।
तं हतं मन्यमानाः स्म प्राणदन्कुरुपुङ्गवाः॥
अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत।
पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः॥
व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः।
अङ्गुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः॥
सागरोर्मिरिवोद्भूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत।
वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत॥
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः।
सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते॥
क्षितिं खं च दिशश्चैव माययाऽभ्येत्य दंशितः
गत्वा कर्णरथाभ्याशं व्यचरत्कुण्डलाननः
प्राह वाक्यमसंभ्रान्तः सूतपुत्रं विशांपते।
तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन्सूतपुत्र गमिष्यसि॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम्॥
उत्पपातान्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम्
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी॥ ६९
रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद्घटोत्कचः।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः॥ ७०
शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरात्प्राप्तामशातयत्।
दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ॥ ७१
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः
सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः॥
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान्।
तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम्॥ ७३
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे।
स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत्॥
ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत्।
अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः॥
व्यधमत्कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः।
स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः
जघानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम्।
ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः॥ ७८
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम्।
स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम्॥७९
घटोत्कचमसंभ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम्।
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः॥ ८०
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा।
नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः॥ ८१
वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम्।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम्
घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः
ननाद भैरवं नादं भीषयन्सर्वपार्थिवान् ८३
भूयश्चाञ्जलिकेनाथ स मार्गणगणं महत्।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः
अथान्यद्धनुरादाय दृढं भारसहं महत्।
विचकर्ष बलात्कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्॥
ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान्
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खेचरान् राक्षसान्प्रति
तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम्।
सिंहेनेवार्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम्८७
विधम्य राक्षसान्बाणैः साश्वसूतगजान्विभुः
ददाह भगवान्वह्निर्भूतानीव युगक्षये॥ ८८
स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ८९
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः
ऋते घटोत्कचाद्राजन्
राक्षसेन्द्रान्महाबलात्।
भीमवीर्यबलोपेतात्
क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव॥ ९१

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां
पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन्
सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥ ९२
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ९३
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ।
स सूतमब्रवीत्क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ॥ ९४
स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशांपते ॥ ९५
स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ९६
द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम् ।
आयसीं निचितां शूलैः कदम्बमिव केसरैः
तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य महद्धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपुप्लुवे॥
साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा
विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः
कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् १००
एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान्सूतपुत्रः परंतप ॥ १
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत्तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥ २
स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ ३
एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः
निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असंभ्रान्तस्तदा कर्णस्तद्रक्षः प्रत्ययुध्यत ५
ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो महारथान्
ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः
स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः
नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८
राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च ।
शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ९
ते कर्णं क्षपयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् ।
अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयांचक्रिरे तदा ॥
उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः ।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध सायकैः ११
प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण राक्षसीम् ।
आजघान हयानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः १२
ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः १३
स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत १४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

## १७६

सञ्जय उवाच ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १
महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः
नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः
किर्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च सखा तदा ।
स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४
विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ।
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ॥ ५
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धलालसः ।
विदितं ते महराज यथा भीमेन राक्षसाः

उल्काभ्यां सर्जरसमिश्रोमुल्काभ्यां ततो हि दीप्तस्य सर्जरसस्य कणाः सस्नेहत्वात्सार्चिष एव पतन्तीति प्रसिद्धम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

१७६

तस्मिंस्तथेति । स्पष्टार्थोऽध्यायः ॥ १ ॥

हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः
परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा
किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह।
तमहं सगणं राजन्सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८
हैडिंबिं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम्
अद्य कुन्तीसुतान्सर्वान्वासुदेवपुरोगमान् ॥९
हत्वा संभक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह।
निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान्
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा।
प्रतिगृह्याब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः११
त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान्
न हि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः
एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः।
अभ्ययात्त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः १३
दीप्यमानेन वपुषा रथेनादित्यवर्चसा ।
तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥
तस्याप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥
तस्यापि तुरगाःशीघ्रा हस्तिकायाःखरस्वनाः
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः॥
तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः ।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥
तस्याप्यक्षसमा बाणा
रुक्मपुङ्खाःशिलाशिताः
सोऽपि वीरो महाबाहु-
र्यथैव स घटोत्कचः ॥
तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो
बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य
श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ॥१९
दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली
बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च
शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ २०
रथेन तेनानलवर्चसा तदा
विद्रावयन्पाण्डववाहिनीं ताम् ।
रराज संख्ये परिवर्तमानो
विद्युन्माली मेघ इवान्तरिक्षे ॥ २१
ते चापि सर्वप्रवरा नरेन्द्रा
महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च ।
हर्षान्विता युयुधुस्तस्य राजन्
समंततः पाण्डवयोधवीराः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

## १७७

सञ्जय उवाच ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।
हर्षमाहारयांचक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १
तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः ।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवार्णवम् ॥२
पुनर्जातमिवात्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाभ्यपूजयन्॥
तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥ ४
उपप्रैक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः।
तथैव तावका राजन्वीक्षमाणास्ततस्ततः ॥
चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः।
तत्कर्म दृष्ट्वा संभ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे॥
सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।
तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते॥७
दुर्योधनस्तु संप्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ८
एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः।
कुरुते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९
पश्यैतान्पार्थिवान्शूरान्निहतान् भैमसेनिना
नानाशस्त्रैरभिहतान्पादपानिव दन्तिना ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

१७७
तमिति ॥ १ ॥ इदमस्मत्सैन्यम् ॥ ६ ॥

तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवानुमते वीर तं विक्रम्य निवर्हय ॥ ११
पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलं समाश्रित्य कर्षयत्यरिकर्शन ॥ १२
एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसो भीमविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥
ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः ॥ १४
तयोः समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः ।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥१५
राक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः ॥
अभ्यद्रवद्भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६
तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम् ।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥१७
रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः ।
किरञ्छरौघान्प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदाऽलायुधः प्रभो ।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥
तं भीमः सहसाऽभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २०
तथैवालायुधो राजञ्शिलाधौतैरजिह्मगैः ।
अभ्यवर्षन्त कौन्तेयं पुनः पुनररिंदम ॥ २१
तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन् ।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः॥
स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः ।
पञ्चभिः पञ्चभिःसर्वांस्तानविध्यच्छितैःशरैः
ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः ।
विनेदुस्तुमुलान्नादान्दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥
तांस्त्रास्यमानान्भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम्
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५
तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः ।
अलायुधस्तु तानस्तान् भीमेन विशिखान्रणे
चिच्छेद कांश्चित्समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत्
स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा ।
तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् ।
स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥

तानप्यस्याकरोन्मोघान्राक्षसो निशितैः शरैः
ते चापि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः॥
शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान् ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः ।
तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ॥ ३२
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशं गतम्
पदमस्यानुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।
नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ३५
इतरान् राक्षसान् घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव
त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ।
एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥३७
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान् रणे ।
अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्
हयांश्चास्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह ।
ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम्
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ।
तद्दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत् ।
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं नररक्षसोः ॥ ४३
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम् ।
गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥
रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥ ४५
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ॥
तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ।
तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ॥
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बिं पर्यचोदयत् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

१७८

सञ्जय उवाच ।

संदृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात्
वासुदेवोऽब्रवीद्राजन् घटोत्कचमिदं वचः
पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २
स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम्
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात्कर्णं वधिष्यसि
स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान्
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥
तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ।
अलायुधस्य चैवोग्रं हैडिम्बेश्चापि भारत ॥
अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान् भीमदर्शनान्
वेगेनापततः शूरान्प्रगृहीतशरासनान् ॥ ६
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥
सर्वांश्च समरे राजन्किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान्
कर्णश्च समरे राजन् व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखंड्यादीन्पञ्चालानां महारथान्
तान्वध्यमानान्दृष्ट्वाऽथ भीमो भीमपराक्रमः
अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विशिखान्प्रकिरन् रणे
ततस्तेऽप्यcraftयुर्हत्वा राक्षसान्यत्र सूतजः ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ११
ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु ।
अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिंदमम् ।
परिघेणातिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥१२
स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः ।
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तंभयत वीर्यवान् ॥१३
ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम्
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ।
सा हयांश्च रथं चास्य सारथिं च महास्वना
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥
स भग्नहयचक्राक्षाद्विशीर्णध्वजकूबरात् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम्
स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्विभ्राजितं चासीत्तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥
ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः ।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्रासीच्च महाहवे ॥ १८
तां प्रेक्ष्य महतीं मायां
राक्षसो राक्षसस्य च ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बि-
स्तां मायां माययाऽवधीत् ॥ १९
सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ २०
अश्मवर्षं स तं घोरं शरवर्षेण वीर्यवान् ।
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥
ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम् ।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥ २२
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः ।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः ।
अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ॥ २३
उत्पाटितैर्महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः ।
शमीपीलुकदंबैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४
इङ्गुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः ।
पलाशैश्चारिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥ २५
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
विपुलैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥
तेषां शब्दो महानासीद्वज्राणां भिद्यतामिव
युद्धं समभवद्धोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७
हरीन्द्रयोर्यथाराजन्वालिसुग्रीवयोः ‡पुरा ।
तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा ।
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥
तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥
तौ खिन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावतिवृष्टाविवांबुदौ ॥३०
अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम्
बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्तास्य शिरो महत्
सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितं
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२
हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिंदमम् ।
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान्विनेदिरे

१७८

**संदृश्येति** ॥ १ ॥ हरीन्द्रयोः सिंहमुख्ययोः ॥ २८ ॥ ‡ हरीन्द्रयोः कपिमुख्ययोरित्यर्थः ।

ततो भेरीसहस्राणि शंखानामयुतानि च ।
अवादयन्पाण्डवेया राक्षसे निहते युधि ॥
अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा ।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद्दीपमालिनी
अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः ।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥ ३६
अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम् ।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७
तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि ।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ३८
ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः ।
जीवितं चिरकालं हि भ्रातॄणां चाप्यमन्यत
स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै ।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ४०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधवधे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

## १७९

सञ्जय उवाच ।
निहत्यालायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः
ननाद विविधान्नादान्वाहिन्याः प्रमुखे तव
तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत्सुदारुणम् २
अलायुधविषक्तं तु भैमसेनिं महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान्समुपाद्रवत् ३
दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४
ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ५
तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप
तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ७
ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान्वै
धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः ।
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च
संग्राममेघः स बभूव राजन् ॥ ८
तदद्भुतं शैल इवाप्रकम्पो
वर्षं महाशैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र
वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९
ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः
शितैः शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः ।
शत्रून् व्यपोहत्समरे महात्मा
वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १०
संछिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचि-
त्केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः ।
केचिद्विसूताविह याश्च केचि-
द्वैकर्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११
अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये
यौधिष्ठिरं ते बलमभ्यपद्यन् ।
तान्प्रेक्ष्य भग्नान्विमुखीकृतांश्च
घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२
आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं
रथोत्तमं सिंहवत्संननाद ।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि
विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३
तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च
नालीकदण्डासनवत्सदन्तैः ।
वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैः
क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

१७९

**निहत्येति** ॥ १ ॥ केतुशृंगं ' ध्वजशिखरम् शृंगं प्रभुत्वे शिखरे ' इति मेदिनी ॥ ८ ॥

तद्बाणधारावृतमन्तरिक्षं
तिर्यग्गताभिः समरे रराज ।
सुवर्णपुंखज्वलितप्रभाभि-
र्विचित्रपुष्पाभिरिव स्रजाभिः ॥ १५
समाहितावप्रतिमप्रभावा-
वन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चि-
द्ददर्श तस्मिन्समरे विशेषम् ॥ १६
अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं
बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं
दिवीव राह्वंशुमतोः प्रमत्तम् ॥ १७
सञ्जय उवाच ।
घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८
तेनास्त्रेणावधीत्तस्य रथं सहयसारथिम् ।
विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत १९
धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।
मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय २०
सञ्जय उवाच ।
अन्तर्हितं राक्षसेन्द्रं विदित्वा
संप्राक्रोशन्कुरवः सर्व एव ।
कथं नायं राक्षसः कूटयोधी
हन्यात्कर्णं समरेऽदृश्यमानः ॥ २१
ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी
सर्वा दिशः प्रावृणोद्बाणजालैः ।
न वै किञ्चित्प्रापतत्तत्र भूतं
तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२
नैवाददानो न च संदधानो
न चेषुधीः स्पृश्यमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद्वै लाघवात्सूतपुत्रः
सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् २३
ततो मायां दारुणामन्तरिक्षे-
घोरां भीमां विहितां राक्षसेन ।
अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशां
देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् २४
ततस्तस्यां विद्युतः प्रादुरास-
न्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चास्याः प्रादुरासीत्सुघोरः
सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥ २५
ततः शराः प्रापतन् रुक्मपुङ्खाः
शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि ।
परश्वधास्तैलधौताश्च खङ्गाः
प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥ २६
मयूखिनः परिघा लोहबद्धा
गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः ।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः
शतघ्न्यश्च प्रादुरासन्समन्तात् ॥ २७
महाशिलाश्चापतंस्तत्र तत्र
सहस्रशः साशनयश्च वज्राः ।
चक्राणि चानेकशतक्षुराणि
प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८
तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां
प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं
कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९
शराहतानां पततां हयानां
वज्राहतानां च तथा गजानाम् ।
शिलाहतानां च महारथानां
महान्निनादः पततां बभूव ॥ ३०
सुभीमनानाविधशस्त्रपातै-
र्घटोत्कचेनाभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं वै बलमार्तरूप-
मावर्तमानं ददृशे भ्रमत्तत् ॥ ३१
हाहाकृतं संपरिवर्तमानं
संलीयमानं च विषण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावात्पुरुषप्रवीराः
पराङ्मुखा नो बभूवुस्तदानीम् ३२
तां राक्षसीं भीमरूपां सुघोरां
वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम् ।
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्
महद्भयं तव पुत्रान्विवेश ॥ ३३
शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः
सुभीमनादाः शतशो नदन्तीः ।
रक्षोगणान्नर्दतश्चापि वीक्ष्य
नरेन्द्रयोधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४

तिर्यग्गताभिरिषुपंक्तिभिरिति शेषः ॥१५॥ प्रतिपन्नं कर्तव्यत्वेन ज्ञातमनुष्ठितं च ॥ २० ॥ अदृश्यत् अदृश्यत ॥ २३ ॥

ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा
विभीषणाः शैलनिकाशकायाः ।
नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता
मेघा व्यमुञ्चन्निव वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलै-
र्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः
शतघ्निचक्रैर्मथिताश्च पेतुः ॥ ३६

शूला भुशुंड्योऽश्मगुडाः शतघ्न्यः
स्थूलाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः ।
तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं
ततो रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ३७

विकीर्णान्त्रा विहतैरुत्तमाङ्गैः
संभग्नाङ्गाः शिश्यिरे तत्र शूराः ।
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापि भग्नाः
संचूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ३८

एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्त-
स्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः ।
मायाः सृष्टास्तत्र घटोत्कचेन
नामुञ्चन्वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९

तस्मिन् घोरे कुरुवीरावमर्दे
कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ।
ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त
प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ४०

पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति
सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।
तथा तेषां मज्जतां भारतानां
तस्मिन् द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१

तस्मिन् संक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकानां प्रविभागे प्रकाशे
नाज्ञायन्ते कुरवो नेतरे च ॥ ४२

निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे
सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं
कर्णं स्मैकं तत्र राजन्नपश्यन् ॥ ४३

ततो बाणैरावृणोदन्तरिक्षं
दिव्यां मायां योधयन् राक्षसस्य ।
ह्रीमान्कुर्वन् दुष्करं चार्यकर्म
नैवामुह्यत्संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४

ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं
राजन्सर्वे सैन्धवा बाह्लिकाश्च ।
असंमोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये
संपश्यन्तो विजयं राक्षसस्य ॥ ४५

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी
समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्
गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६

ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने
नैवामुह्यच्चिन्तयन्प्राप्तकालम् ॥ ४७

ततोऽब्रुवन् कुरवः सर्व एव
कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ।
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं
नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ॥ ४८

करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ
तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे ।
यो नः संग्रामाद्घोररूपाद्विमुच्ये-
त्स नः पार्थान् सबलान् योधयेत ॥

तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं
शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन ।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा
रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः ॥ ५०

स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे
दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च ।
महच्छ्रुत्वा निनदं कौरवाणां
मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१

स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी
नामर्षयन्प्रतिघातं रणेऽसौ ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां
समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२

याऽसौ राजन्निहिता वर्षपूगान्
वधायाजौ सत्कृता फाल्गुनस्य ।
यां वै प्रादात्सूतपुत्राय शक्रः
शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ५३

उरसा हार्दबलेन ॥ ४३ ॥

तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां
पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम् ।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां
वैकर्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ ५४
तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं
दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् ।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्
कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम्
दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां
नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र ।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्
सनिर्घाता चाशनिर्गां जगाम ॥ ५६
सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती
भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य ।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां
नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥ ५७
स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगै-
र्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च ।
नदन्नादान्विविधान्भैरवांश्च
प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या॥
इदं चान्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं
चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय ।
तस्मिन्काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा
बभौ राजञ्शैलमेघप्रकाशः ॥ ५९
ततोऽन्तरिक्षादपतद्गतासुः
स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः ।
अवाक्शिराः स्तब्धगात्रो विजिह्वो
घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ६०
स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा
भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात ।
हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेश-
मपोथयत्स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१
पतद्रक्षः स्वेन कायेन तूर्ण-
मतिप्रमाणेन विवर्धता च ।
प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां गतासु-
रक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२
ततो मिश्राः प्राणदन्सिंहनादै-
र्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चानकाश्च ।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च
दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन्कौरवेयाः ॥ ६३
ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो
यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः ।
अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं
हृष्टश्चापि प्राविशत्तत्स्वसैन्यम् ६४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

## १८०

सञ्जय उवाच ।
हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतम्
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः
वासुदेवस्तु हर्षेण महताऽभिपरिप्लुतः ।
ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनम् २
स विनद्य महानादमभीषून्सन्नियम्य च ।
ननर्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३
ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चासकृत्
रथोपस्थगतो धीमान्प्राणदत्पुनरच्युतः ॥ ४
प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः ।
अर्जुनोऽथाब्रवीद्राजन्नातिहृष्टमना इव ॥ ५
अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन ।
शोकस्थाने तु संप्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥६
विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम्
वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात् ७
नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन ।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८
यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिंदम ।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामूनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

१८०

**हैडिम्बिमिति** ॥ १ ॥ धैर्यस्य वैकृतमस्मत्पक्षक्षयेण तव हर्षोऽस्मद्धैर्यविनाशक इत्यर्थः ॥ ९ ॥

समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम् ।
तथैतदद्य मन्येऽहं तव कर्म जनार्दन ॥ १०

श्रीवासुदेव उवाच ।

अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनञ्जय ।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११
शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते ।
कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय॥१२
शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह
य एनमभितस्तिष्ठेत्कार्तिकेयमिवाहवे ॥ १३

दिष्ट्याऽपनीतकवचो
दिष्ट्याऽपहृतकुण्डलः ।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्ति-
रमोघाऽस्य घटोत्कचे ॥ १४

यदि हि स्यात्सकवचस्तथैव स्यात्सकुण्डलः
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद्रणे१५
वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः।
यमो वा नोत्सहेत्कर्णं रणे प्रतिसमासितुम्॥
गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाहं सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथायुक्तं नरर्षभम् १७
त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः ।
विहीनकवचश्चायं कृतः परपुरञ्जयः ॥ १८
उत्कृत्य कवचं यस्मात्कुण्डले विमले च ते।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः॥
आशीविष इव क्रुद्धो जृंभितो मन्त्रतेजसा ।
तथाऽद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवानलः
यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना ।
वासवेन महाबाहो क्षिप्ता याऽसौ घटोत्कचे
कुण्डलाभ्यां निमायाथ दिव्येन कवचेन च ।
तां प्राप्यामन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे२२
एवं गतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन केनचित्
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चानघ॥२३
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः ।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः
युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः ।
केसरीव वने नर्दन्मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५
विमदान् रथशार्दूलान्कुरुते रणमूर्धनि ।
मध्यंगत इवादित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुं
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः ।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७
तपान्ते जलदो यद्वच्छरधाराः क्षरन्मुहुः ।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥
त्रिदशैरपि चास्यद्भिः शरवर्षं समन्ततः ।
अशक्यस्तदयं जेतुं स्रवद्भिर्मांसशोणितम् ॥
कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव ।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥

एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय
छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् ।
कृच्छ्रे प्राप्तं रथचक्रे विमग्ने
हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य ॥३१
न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्य-
मप्येकवीरो बलभित्सवज्रः ।
जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा
महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ ३२
एकैकशो निहताः सर्व एते
योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ।
अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा
हिडिम्ब-किर्मीर-बकप्रधानाः
अलायुधः परचक्रावमर्दी-
घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे श्रीकृष्णहर्षे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

## १८१

अर्जुन उवाच ।

कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन । जरासन्धप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १

---

कुण्डलाभ्यां निमाय विनिमयं कृत्वा ॥ २२ ॥ वृषो धर्मप्रधानः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

१८१

कथमिति । योगैरुपायैः ॥ १ ॥

श्रीवासुदेव उवाच ।

जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयङ्कराः २
दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान् ।
तेऽस्मास्तु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान्
ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः
धार्तराष्ट्रचमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४
सूतपुत्रो जरासन्धश्चेदिराजो निषादजः ।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ५
योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनञ्जय
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि॥ ६
एकैको हि पृथक् तेषां समस्तां सुरवाहिनीम्
योधयेत् समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम्॥
जरासन्धो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः ।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै सर्वघातिनीम् ८
सीमन्तमिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् ।
अदृश्यत पतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽशनिः
तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः ।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत्॥१०
अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि ।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान्११
तत्र सा राक्षसी घोरा जरानाम्नी सुविक्रमा
संदधे सा हि सञ्जातं जरासन्धमरिंदमम् ॥

द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्या-
मर्धदेहः पृथक् पृथक् ।
जरया सन्धितो यस्मा-
ज्जरासन्धस्ततोऽभवत् ॥ १३

सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी १४
विनाभूतः स गदया जरासन्धो महामृधे ।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनञ्जय ॥ १५
यदि हि स्याद्गदापाणिर्जरासन्धः प्रतापवान्
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥
त्वद्धितार्थं च नैषादिरङ्गुष्ठेन वियोजितः ।
द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥
स तु बद्धाङ्गुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवापरः ॥१८
एकलव्यं हि साङ्गुष्ठमशक्ता देवदानवाः ।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित्
किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुं
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम्
त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि ।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥
स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वसुरासुरैः ।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम्
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया
हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ॥
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ॥ २३
हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः ॥
हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः
यदि ह्येनं नाहनिष्यत्कर्णः शक्त्या महामृधे
मया वध्योऽभविष्यत्स भैमसेनिर्घटोत्कचः
मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः ।
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः
व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ ।
ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया ।
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे ।
न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि ।
सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ॥
तस्यापि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पांडव
वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ॥ ३२
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश
लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः॥ ३३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

---

सगदया गदासहितया राक्षस्या विनाभूतः। अयं भावः- गदयैव स दुर्जयः कदाचिज्जितश्चेत्पुना राक्षस्या संधातुं शक्य इत्युभयनाशेन जरासन्धो नष्ट इति ॥ १५ ॥ व्यंसिता व्यर्था कृता शक्तिरिति शेषः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

## १८२

धृतराष्ट्र उवाच ।

एकवीरवधेऽमोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा ।
कस्मात्सर्वान्समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥
तस्मिन्हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः ।
एकवीरवधे कस्माद्युद्धेन जयमादधे ॥ २
आहूतो न निवर्तेयमिति तस्य महाव्रतम् ।
स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३
ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया ।
जघान न वृषः कस्मात्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥
नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः ।
शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥
या ह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम् ।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥
कुण्येर्यथा हस्तगतं ह्रियेत्फलं* बलीयसा ।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥

यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतो-
स्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः ।
मन्ये विद्वन्वासुदेवस्य तद्व-
द्युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८
घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं
परो लाभः स भवेत्पाण्डवानाम् ।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्या-
त्तथापि कृत्यं शक्तिनाशात्कृतं स्यात् ॥
इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्विचिन्त्य
घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे ।
अघातयद्वासुदेवो नृसिंहः
प्रियं कुर्वन्पाण्डवानां हितं च ॥ १०

सञ्जय उवाच ।

एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥
घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विघातार्थं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह ।
न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥
साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि ।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥
तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव ।
जयत्यभिमुखः शत्रून्पार्थः कृष्णेन पालितः ॥
स विशेषात्त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम् ।
हन्यात्क्षिप्रं हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः ।
यस्यैष समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥
स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
न मुक्तवान्कथं सूतताममोघां धनञ्जये ॥ १८
तवापि समतिक्रान्तमेतद्भावलगणे कथम् ।
एतमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नावबोधितः ॥ १९

सञ्जय उवाच ।

दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च ।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥
श्वः सर्वसैन्यानुत्सृज्य जहि कर्ण धनञ्जयम् ।
प्रेष्यवत्पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥
अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमं ततः ।
स्थापयेद्यदि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो हि हन्यताम् ॥
कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः ।
शाखा इवेतरे पार्थाः पञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥
कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पांडवाः ।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥

तस्मात्पर्णानि शाखाश्च
स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां
मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २५

हन्याद्यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् ।
कृत्स्ना वसुमती राजन्वशे तस्य न संशयः ॥

यदि हि स निहतः शयीत भूमौ
यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा ।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा
गिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ॥ २७

सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे
अप्रमेये हृषीकेश युद्धकालेऽप्यमुह्यत ॥ २८
अर्जुनं चापि राधेयात्सदा रक्षति केशवः
न ह्येनमैच्छत्प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥ २९

---

१८२

एकवीरवधे इति॥१॥ एतत्प्रकृतशक्त्यार्जुनहननम्॥११॥ एष कृत्स्नः जयं प्रति अर्जुनस्येत्यर्थः१७ *बिल्वमिति पा०

अन्यांश्चास्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः ।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो
यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात्कृष्णो महामनाः ।
आत्मानं स कथं राजन्न रक्षेत्पुरुषोत्तमः॥३१
परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिंदमम् ।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम्
सञ्जय उवाच ।
ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः
पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३
अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चामितविक्रमा ।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तु सा॥३४
श्रीवासुदेव उवाच ।
दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः ।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः॥ ३५
' कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम ।
नान्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर॥
ऋते महारथात्कर्ण कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ।
स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः॥३७
तस्मिन्विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह।
भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥
तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव ।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गांडीवधन्वनः॥
अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर ।
ततो नावासृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने४०
फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशं
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर
घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव ।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनञ्जयम्
न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे
त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद्भवेदन्यत्सुदुर्लभम्।
नेच्छेयं सात्वताहं तद्विना पार्थं धनञ्जयम् ॥
अतः प्रहर्षः सुमहान्युयुधानाद्य मेऽभवत् ।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥ ४५
अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः ।
न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम्॥
सञ्जय उवाच ।
इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः ।
धनञ्जयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

## १८३

धृतराष्ट्र उवाच ।
कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च।
अपनीतं महत्तात तव चैव विशेषतः ॥ १
यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ २
सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वाऽपि सञ्जय३
सञ्जय उवाच ।
संग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशांपते
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ।
' प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायार्जुनाय वा।
शक्तिरेषा हि मोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः'
ततः प्रभातसमये राजन्कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः
दैवमेव परं मन्ये यत्कर्णो हस्तसंस्थया ।
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम्॥७
तस्य हस्तस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान्८
कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो देवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो९

निरग्नयोऽग्निं विना मुखहीना इवेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ अहमेवेत्यादिग्रन्थो भगवतो भक्तपक्षपातित्वप्रदर्शनार्थो न केवलमर्जुनार्थ इति भावः ॥ ४० ॥ हिते आमुष्मिके श्रेयसि प्रिये ऐहिके कल्याणे ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

१८३

**कर्णेति** । महज्जयालम्बनममोघशक्तिरूपमिति शेषः । अपनीतं नाशितम् । महदपनीतमन्याय इति वा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।
दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्ध्या केशवस्य च ।
गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम्
कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः ।
तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११
भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बे निहते तदा
ये च तेऽभ्यद्रवन्द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः
सृञ्जयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन्कथं रणम् ॥
सौमदत्तेर्वधाद्द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम्
जृंभमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययौ द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः१५
आचार्यं ये च तेऽरक्षन् दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणि-कर्ण-कृपास्तात ते वाऽकुर्वन्किमाहवे
भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समाच्छेन्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥
सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षितः सुसंक्रुद्धा रणं चक्रुः कथं निशि॥१८
सञ्जय उवाच ।
हते घटोत्कचे राजन्कर्णेन निशि राक्षसे
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः
अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः ।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्॥
हैडिंबेश्चैव घातेन मोहो मामाविशन्महान् ।
एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत्२२
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद्घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्॥
तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते॥२४
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ।
उत्तिष्ठ राजन्युद्ध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो२५
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ।
श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत्
विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः
ब्रह्महत्या फलं तस्य यः कृतं नाऽवबुध्यते ।
अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना
बालेनापि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन ।
अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः
उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद्धनञ्जयः ॥
गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः
पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना
आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान् प्रभो ।
मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२
स्वभावाद्या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन ।
सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥
भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः
पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥
निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत्सैन्यप्रमर्दितम् ।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत्
अनादृत्य बलं बाह्वो-
भीमसेनस्य माधव ।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य
विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥ ३७
एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः ।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा :नर्दन्ति संयुगे ॥
कथं वाऽस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन
हैडिंबिः प्राप्तवान्मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥
कदर्थी कृत्य नः सर्वान्पश्यतः सव्यसाचिनः
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥
यदाऽभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः ।
नासीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥
निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना ।
निमित्तमभवद्द्रोणः स पुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२
उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् ।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥
व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् ।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥
तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युद्ध्यपातयन् ।
अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नातिप्रियं मम ।
यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत्कर्तुं हि पांडवैः

दुष्प्रणीतेन दुर्नयेन ॥ ११ ॥ एतत्सैन्यप्रमर्दितम्-एतयोः सैन्याभ्यां प्रमर्दितमिति विग्रहः ॥ ३६ ॥

कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः।
एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥
एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः।
यत्र वध्यो भवेद्द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः॥
तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम्।
अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः॥
ततो यास्याम्यहं वीरः स्वयं कर्णजिघांसया
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः॥
एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः
स विस्फार्य महच्चापं शंखं प्रध्माप्य भैरवम्
ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः।
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः
वृतः शिखण्डी त्वरितो
राजानं पृष्ठतोऽन्वयात्।
ततो भेरीः समाजघ्नुः
शंखान्दध्मुश्च दंशिताः॥ ५३
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः।
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनञ्जयम् ॥
'एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते' ॥
एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत्।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः॥ ५६
तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघांसया।
शोकोपहतसंकल्पं दह्यमानमिवाग्निना॥
अभिगम्याब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
व्यास उवाच।
कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः
सव्यसाचिवधाकांक्षी
शक्तिं रक्षितवान् हि सः।
न चागाद्द्वैरथं जिष्णु-
र्दिष्ट्या तेन महारणे॥ ५९
सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः
वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः॥
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर।
ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम॥ ६१
दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद।
वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ
तवैव कारणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे।
मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः
कौरवान्समरे राजन्प्रतियुध्यस्व भारत।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति॥
नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेवानुचिन्तय।
आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव
सेवेथाः परमप्रीतो 'यतो धर्मस्ततो जयः'।
इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८३॥

समाप्तं घटोत्कचवधपर्व ६

## द्रोणवधपर्व ७

### १८४

सञ्जय उवाच।
व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः।
स्वयं कर्णवधाद्वीरो निवृत्तो भरतर्षभ॥ १
घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम्।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८३॥

१८४
व्यासेनैवमिति ततो दुर्योधन इति चाध्यायौ स्पष्टार्थौ॥ १॥

दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव ।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुंभयोनिं निवारय ॥ ३
त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात्
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥
अभिद्रव रणे हृष्टो मा च ते भीः कथंचन ।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुंभयोनिं समंततः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनञ्जयः ७
अभिद्रवन्तु वेगेन कुंभयोनिवधेप्सया ।
तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ॥ ८
पदाताश्च रणे द्रोणं पातयन्तु महारथम् ।
तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुंभयोनिवधेप्सया ।
आगच्छतस्तान्सहसा सर्वोद्योगेन पांडवान्
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान्
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्ध इच्छन्द्रोणस्य जीवितम्
ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम्१२
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।
निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे॥
नाभ्यपद्यन्त समरे काश्चिच्चेष्टां महारथाः ।
त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका१४
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः।
सर्वे ह्यासन्निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः॥
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ।
ते तदा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः १७
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ।
अस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रांधाः शेरते जनाः
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत ।
निद्रान्धा नो बुबुधिरे काश्चिच्चेष्टां नराधिप
तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम् ।
स्वप्नायमानांस्त्वपरे परानतिविचेतसः ॥ २०
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि ।
नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रांधास्ते महारणे
अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः॥
संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते तथा परान्
जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥
हन्यमानमथात्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम्
तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः सन्नादयन् दिशः
श्रान्ता भवन्तो निद्रांधाः सर्व एव सवाहनाः
तमसा च वृते सैन्ये रजसा बहुलेन च॥ २६
ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २७
ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः।
संसाधयिष्यथान्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः
तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशांपते ।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चान्योन्यमब्रुवन्॥
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तथा दुर्योधनेति च ।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ३०
तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत॥ ३१
तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥
तत्संपूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत।
मुहूर्तमस्वपन् राजन् श्रान्तानि भरतर्षभ॥३३
सा तु संप्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ।
त्वयि वेदास्तथाऽस्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघ ३५
यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते।
मनसश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥३६
इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन्विशांपते ॥
अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे ।
गजस्कन्धगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ३८
सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक् पृथक्
गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलां
सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले ।
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः४१
स मां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विक्षतां महीम्
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः॥

सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः ।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ ।
युद्धाद्विरम्य सुषुपुः श्रमेण महताऽन्विताः॥४३
तत्तथा निद्रया भग्नमबोधं प्रास्वपद्बलम् ।
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाद्भुतं
ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः
परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां
कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ ४५
ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता॥४६
दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः
किरणकेसरभासुरपिञ्जरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः
समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७
हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः
स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।
नववधूस्मितचारुमनोहरः
प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ॥ ४८
ततो मुहूर्ताद्भगवान्पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिःप्रभां प्रभुः
अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥
उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा
ततो मुहूर्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥५२
प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन्नक्तञ्चरास्ततः ॥ ५३
बोध्यमानं तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः
बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ५४
यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत्
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः॥५५
ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशांपते ।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

## १८५

सञ्जय उवाच ।
ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याब्रवीदिदम्
अमर्षवशमापन्नो जनयन्हर्षतेजसी ॥ १
दुर्योधन उवाच ।
न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः॥ २
यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया ।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः३
सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च ।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः॥ ४
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि
ब्राह्मादीनि च यानि ह ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति
भवत्येव विशेषतः ॥ ५
न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्धराः ।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥६
ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान् द्विजोत्तम ।
सर्वास्त्रविद्भवान्हन्याद्दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः॥ ७
स भवान्मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान्विशेषतः ।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यतां

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

१८५

तत इति ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते ।
समन्युरब्रवीद्राजन्दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९
स्थविरः सन्परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे ।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना॥१०
अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः ।
यद्भवान्मन्यते चापि शुभं वा यदि वाऽशुभम्
तद्वै कर्तास्मि कौरव्य वचनात्तव नान्यथा ।
निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रमम्
विमोक्ष्ये कवचं राजन्सत्येनायुधमालभे ।
मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं शान्तमाहवे ॥ १३
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव ।
तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम् ।
खाण्डवेयेन भगवान्प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः॥१५
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना ।
यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चान्ये बलगर्विताः
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं तव ।
गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना ।
निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा॥१८
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ।
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम्१९
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम्
प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथाबलमिदं तव ॥ २०
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशांपते ।

सञ्जय उवाच ।

तं तदाऽभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा॥२१
द्रोणं तव सुतो राजन्पुनरेवेदमब्रवीत् ।
अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे॥ २२
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये
द्विधा कृत्वाऽद्य भारतीम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा
भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत्
को हि गांडीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा
अक्षयं क्षपयेत्कश्चित्क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ।
तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः॥२५
नासुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ।
मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान्को व्रजेद्गृहान् ।
त्वं तु सर्वाभिशंकित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि ।
गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरं
त्वमप्याशंसये योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ।
इमान्कि क्षत्रियान्सर्वान्घातयिष्यस्यनागसः
त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् ।
एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३०
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे ।
एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत्कितवः शठः॥
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान्
त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥ ३२
असकृच्छून्यवन्मोहाद्धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
'अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे३३
पाण्डुपुत्रान्हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः ।'
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ३४
अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाक् भव तैः सह।
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः ॥
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ।
दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम्॥३६
कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम्
इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा॥ ३७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनभाषणे
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

## १८६

सञ्जय उवाच ।

त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशांपते १
अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः ।
अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् २
प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनारुणीकृतम् ।
तापनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलम् ॥३

ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययाना-
न्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः ।
दिवाकरस्याभिमुखं जपन्तः
सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ॥ ४

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान्
अभ्यद्रवत्सपञ्चालान्दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५
द्वैधीकृतान्कुरून् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान्सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥
स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनञ्जयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ७
अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ।
आजिशीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह

भीमसेन उवाच ।

अर्जुनार्जुन बीभत्सो शृणुष्वैतद्वचो मम ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥
अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे ।
असंभावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥
सत्य-श्री-धर्म-यशसां वीर्येणानृण्यमाप्नुहि ।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यमिमान्कुरु ॥

सञ्जय उवाच ।

स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च
कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात्पर्यवारयत् ॥
तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥
नाशक्नुवन्वारयितुं वर्धमानमिवानलम् ।
अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ।
तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः ॥
कदर्थी कृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः
सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
उद्धूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् ।
न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ।
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाभवत् ।
नैव ते न वयं राजन्प्राज्ञासिष्म परस्परम् ॥
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः
विरथा रथिनो राजन्समासाद्य परस्परम् ॥
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च ।
हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ॥
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः
हतान् गजान्समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः
गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ।
ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ॥
आतिष्ठ बाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्
तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु ॥
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशांपते
भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा
द्रोणं दृष्ट्वा परे त्रेसुश्चेलुर्मम्लुश्च भारत ।
आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥
नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा ।
केचिदासन्निरुत्साहाः केचित्क्रुद्धा मनस्विनः
विस्मिताश्चाभवन्केचित् केचिदासन्नमर्षिताः
हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नराधिपाः ॥ २८
अपरे दशनैरोष्ठान् दशनक्रोधमूर्छिताः ।
व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चापरे भुजान् ॥
अन्ये चान्वपतन्द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः
पञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥

---

१८६

त्रिभागमात्रशेषायां मुहूर्तत्रयावशिष्टायाम् । तत्र सूर्योदयोत्तरं त्रयोदश्यां द्रोणस्य नाशः । त्रयोदश्यां शुक्लायां युद्धारंभस्य ‘ हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशीम् । प्रवृत्तं भारतं युद्धम् ’—इति भारत-सावित्र्यामुक्तस्य चोपपत्तिः सिद्ध्यति ॥ १ ॥

समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ।
ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रति ययू रणे३१
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ।
द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशांपते ॥ ३२
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ।
तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणांस्ते हता न्यपतन्भुवि
ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकैकेयसृञ्जयान्
मत्स्यांश्चैवाजयत्कृत्स्नान्
भारद्वाजो महारथान् ।
ततस्तु द्रुपदः क्रोधा-
च्छरवर्षमवासृजत् ॥ ३५
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ।
तं निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६
तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ ।
द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि
द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ ।
ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां
चिच्छेद धनुषी तयोः ।
ततो विराटः कुपितः
समरे तोमरान्दश ॥ ३९
दश चिक्षेप च शरान्द्रोणस्य वधकांक्षया ।
शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम्
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां
क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ।
ततो भल्लैः सुनिशितै-
श्छित्त्वा तांस्तोमरान्दश ॥ ४१
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे ।
हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ॥ ४३
तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च ।
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ४४

द्रोणस्य कर्म तद्दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥
इष्टापूर्तात्तथा क्षात्राद्ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
द्रोणो यस्याद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत्
इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद्द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा
पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्पाण्डवैः सह
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥
सोदर्याश्च यथा मुख्यास्तेऽरक्षन्द्रोणमाहवे ।
रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम्
तत्राक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५०
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः ॥

भीमसेन उवाच ।

द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम् ।
पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान्कः परिपालयेत्॥५२
विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि ।
एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ।
पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीं
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम्
इत्युक्त्वा प्राविशत्क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् ।
धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम्
आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं महत् ।
नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७
यथा सूर्योदये राजन्समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ।
संसक्तान्येव चादृश्यन् रथवृन्दानि मारिष
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणां
केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चान्यैरुपद्रुताः ॥
विमुखाः पृष्ठतश्चान्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे।
तथा संसक्तयुद्धं तदभवद्भृशदारुणम् ।
अथ संध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥

---

शशाप शपथं कृतवान् ॥४५॥ इष्टापूर्तात्तथा क्षात्रादिति।इष्टं यागहोमादि। आपूर्तं क्षेत्रारामादि।क्षात्रं द्रुपदकुलोत्पन्नत्वात्। ब्राह्मण्यं याजोपयाजयोर्ब्राह्मणयोस्तपसा ब्राह्मणरूपादग्नेश्च जातत्वात्। एतत्सर्वं तस्य नश्यतु। यस्य शत्रुर्द्रोणो न मुच्येत मरणं न प्राप्नुयात्। यं वा मां वा द्रोणो यदि पराभवेदिति ॥ ४६ ॥ अवस्थितमारिमुक्ताविधं शपथं शापित्वाऽपि कः परिपालयेत्कस्तद्धननं न कुर्यादपि तु सर्वोऽपि तद्धननं कुर्यादेवेति सार्धः श्लोकः॥५२॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

## १८७

सञ्जय उवाच ।
ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।
सन्ध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १
उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे ।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २
द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन्संसक्तानि पुरोदयात्।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥
रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चापि कुञ्जराः ।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः
रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन् रणे॥
ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन्
शंखभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम् ।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजतां
शब्दः समभवद्राजन्दिविस्पृग्भरतर्षभ ।
द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम्
क्रोशतां गर्जतां चैव तदासीत्तुमुलं महत् ॥
विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा ।
नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥
भूमावश्रूयत महांस्तदाऽऽसीत्कृपणं महत् ।
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदान्तिनाम्
तेषु सर्वेष्वनीकेषु
व्यतिषक्तेष्वनेकशः ।
स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे स्वांश्च
स्वान् परेषां परे परान् ॥ १२
वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च ।
राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥
उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः ।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव
अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः ।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत्सुदारुणम् ॥ १५
गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् ।
शस्त्रमत्स्यसुसंपूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥
आर्तनादस्वनवतीं पताकाशस्त्रफेनिलाम् ।
नदीं प्रावर्तयन्वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥
शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन्गजवाजिनः॥
बाहुभिः कवचैश्चित्रैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः
युद्धोपकरणैश्चान्यैस्तत्र तत्र चकाशिरे ॥ १९
क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं भूतैरर्धभूतैरपि ।
नासीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ २०
मज्जत्सु चक्रेषु रथान्सत्त्वमास्थाय वाजिनः।
कथंचिद्वहन् श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः
कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः ।
विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारतातुरम् ॥
बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ ।
तावेवास्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

१८७

**ते तथैवेति** । सहस्रांशुं विकीर्णकरसहस्रं उदेष्यन्तमित्यर्थः । आदित्यं सूर्यम् ॥ १ ॥ स्वे कौरवाः स्वान् स्वभृत्यान्परे पाण्डवाः स्वान् स्वभृत्यान् । स्वे इत्यनुवर्तते । परेषां पाण्डवानां स्वान् स्वे कौरवाः । परेषां पाण्डवानां परान् कौरवान् परे पाण्डवा जघ्नुरित्यन्वयः । परेषामित्युभयत्र संबध्यते । स्वपरविभागो वक्तुः संजयस्यानुरोधात् ॥ १२ ॥ **वीरेति** । निज्यन्ते प्रक्षाल्यन्ते वासांसि येषु ते प्रदेशा नेजनानि तेषु यथा वाससां राशयो भवन्त्येवमुद्यतानां प्रतिकूलं पिष्टानां च खड्गानां राशयः प्रत्यदृश्यन्त । निज्यतां क्षालनैः उद्यम्योद्यम्य शिलायां स्फाल्यमानानाम् । श्लोकद्वयम् ॥१३॥ अर्धासिभिरेकधारैः १५॥ निलयनमाश्रयः आर्तायनमार्तानां भयवारणं स्वीयानां शत्रूणां तु तावेव मृत्युकरावित्यर्थः ॥ २३ ॥

तावेवान्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ।
आविग्नमभवत्सर्वं कौरवाणां महद्बलम् ॥
पञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अन्तकाक्रीडसदृशं भीरूणां भयवर्धनम्॥ २५
पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते महति क्षये ।
न तत्र कर्णं द्रोणं वा नार्जुनं न युधिष्ठिरम्॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिं
न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥
न कृपं मद्रराजं च कृतवर्माणमेव च ।
न चान्यान्नैव चात्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा ॥ २८
पश्याम राजन्संसक्तान्सैन्येन रजसा वृतान्
संभ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते॥२९
द्वितीयामिव संप्राप्तामन्यन्त निशां तदा ।
न ज्ञायन्ते कौरवेया न पञ्चाला न पाण्डवाः
न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा
हस्तसंस्पर्शमापन्नान्परानप्यथवा स्वकान् ३१
न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः ।
उद्धूतत्वात्तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ॥
प्राशाम्यत रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च
तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ॥
पारिजातवनानीव व्यरोचन् रुधिरोक्षिताः॥
ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ।
दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत३५
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ।
तद्घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६
रथर्षभाणामुग्राणां सन्निपातममानुषम् ।
रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथसंकुलम् ॥ ३७
अपश्यन् रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनां
यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः॥३८
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ।
ते रथान्सूर्यसङ्काशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ३९
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः ।
योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथाऽन्योन्यं मत्ता गजवृषा इव॥
न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते ।
यत्र सर्वे न युगपद्व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४२
बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥
नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः॥४४
विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४५
शून्यैश्चैव नगाकारैर्हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४६
वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलङ्कृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः॥४७
छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च सुसुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः॥४८
उरस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४९
ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः ।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च ॥ ५०
अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम् ।
किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥ ५१
अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा ।
नामृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः॥५२
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम् ।
ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम्॥५३
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित् ।
स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन्॥५४
विमुखं नकुलश्चक्रे तत्सैन्याः समपूजयन् ।
तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव ।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितं च तत्॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

---

चतुरश्चत्वारः भ्रात्रा दुःशासनेन ॥३५॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८७॥

## १८८

सञ्जय उवाच ।

ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १
तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्शनः ।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत्
नैनं दुःशासनः सूतं नापि कश्चन सैनिकः ।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात्सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३
यदा त्वसंगृहीतत्वात्प्रयान्त्यश्वा यथासुखम्
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ॥ ४
स हयान्सन्निगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघुचित्रं च सुष्ठु च ॥ ५
तदस्यापूजयन् कर्म स्वे परे चापि संयुगे ।
हतसूतरथेनाजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥ ६
सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ।
पीड्यमानाः शरैश्चाशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७
स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम् ।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत् ॥ ८
छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवाप तत् ॥ ९
वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः ।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्बाह्वोरुरसि चानदत् ॥ १०
स निवृत्तस्ततः कर्णः संघट्टित इवोरगः ।
भीममावारयामास विकिरन्निशिताञ्छरान्
ततोऽभूत्तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ ॥ १२
वेगेन महताऽन्योन्यं संरब्धावभिपेततुः ।
अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः १३
विच्छिन्नशरपातत्वाद्गदायुद्धमवर्तत ।
गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम् ॥ १४
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान्
अवासृजद्रथे तां तु बिभेद गदया गदाम् ।
ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाधिरथेर्गदाम् १६
तां गदां बहुभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुप्रवेजितैः ।
प्रत्यविध्यत्पुनश्चान्यैः सा भीमं पुनराव्रजत् ॥
व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता ।
तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः
पपात सारथिश्चास्य मुमोह च गदाहतः ।
स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजत्क्रोधमूर्च्छितः
तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः ॥
चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत ॥ २०
ध्वजं शरासनं चैव शरावापञ्च भारत ।
कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ २१
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः ।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी
स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याप्लुतो रथम् ।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिंदमः ॥ २३
तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि ॥
लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्च रणेन च ।
मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च
उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २६
विचित्रान्पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७
पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः ।
तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ॥ २८
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ।
यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥
तत्तत्प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः ।
यदा द्रोणो न शक्नोति पांडवं स्म विशेषितुं
ततः प्रादुश्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः ।
ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात्तज्जघान धनञ्जयः ।
अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत् ।
यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ॥
तस्य तस्य विघाताय तत्तद्धि कुरुतेऽर्जुनः ।
स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत् ।
मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामाधि भारत ।

---

१८८
तत इति ॥ १ ॥

तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परंतपः ।
वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम्
यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् ।
ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः
ऋषयः सिद्धसङ्घाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ।
तदप्सरोभिराकीर्णं यक्ष-गन्धर्वसंकुलम् ॥
श्रीमदाकाशमभवद्भूयो मेघाकुलं यथा ।
तत्र स्मान्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः
द्रोण-पार्थस्तवोपेता व्यश्रूयन्त नराधिप ।
विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश
अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः ।
नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम् ॥
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥
अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाप्यति पांडवः ।
नानयोरन्तरं शक्यं द्रष्टुमन्येन केनचित् ॥
यदि रुद्रो द्विधा कृत्य युध्येतात्मानमात्मना
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥ ४४
ज्ञानमेकस्थमाचार्ये, ज्ञानं योगश्च पाण्डवे ।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये, बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥
नेमौ शक्यौ महेष्वासौ युद्धे क्षपयितुं परैः ।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत्
इत्यब्रुवन्महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः
ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः।
संतापयन् रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥
ततश्चचाल पृथिवी सपर्वत-वन द्रुमा ।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चापि चुक्षुभुः
ततस्त्रासो महानासीत्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥
ततः पार्थोऽप्यसंभ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान्
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥
यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा ।
ततः संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥
नाज्ञायत ततः किञ्चित्पुनरेव विशांपते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥ ५२
शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाम्बरे ।
नापतच्च ततः कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

## १८९

सञ्जय उवाच ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये ।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १
स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः ।
अमर्षात्तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २
क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः ।
नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३
दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः
नाशकत्प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४
स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः ।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाभ्ययाद्रणे ॥
अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम् ।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन् ॥ ६

**ज्ञानमेकस्थमिति** । आचार्यो ज्ञानस्य शौर्यस्य चावधिरित्यर्थः । अर्जुनस्तु योगेन बलेन चाधिकः । कृष्णसारथिगाण्डीवदिव्यरथध्वजबुद्ध्यादिभिर्यौवनेन च युक्तत्वात् । तथा च योगबलाभ्यामाचार्यसाम्यं प्राप्त इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ पारमवधिः आर्षं क्लीबत्वम् । अन्यतरेणेति शेषः । गम्यते प्राप्यते अन्योन्ययुद्धे । ततस्तदा संकुलयुद्धमनियतयोधं युद्धम् ॥ ५२ ॥ नापतत् बाणैरन्तरिक्षस्य पूरितत्वादिति भावः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

१८९

**तस्मिन्निति** ॥ १ ॥ त्रयो धृष्टद्युम्नोऽन्यौ द्वौ च ॥ ६ ॥

तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम्
संप्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः ।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥
शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन् स्वर्गपुरस्कृताः
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥ ९
शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप ।
धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम् ।
न तत्रासीदधर्मिष्ठ-
मशस्तं युद्धमेव च ।
नात्र कर्णी न नालीको
न लिप्तो न च बस्तिकः
न सूची कपिशो नैव न गवास्थिर्गजास्थिजः
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥
ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन्
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह
धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा
तव राजन् रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान्वीरा-
ञ्छीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५
निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव १६
द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं
रथाभ्यां रथपुङ्गवौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं
धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७
दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम्
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥
दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान्
तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाभ्यवर्तत १९
तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् २०
बाल्यवृत्तानि सर्वाणि
प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च
स्मयमानौ पुनः पुनः ॥ २१
अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत
प्रियं सखायं सततं गर्हयन् वृत्तमात्मनः २२
धिक् क्रोधं धिक्सखे लोभं
धिङ्मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं
धिगस्तु बलमौरसम् ॥ २३
यत्र मामभिसंधत्से त्वां चाहं शिनिपुङ्गव ।
त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाहं च सदा तव
स्मरामि तानि सर्वाणि
बाल्यवृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि
सांप्रतं नो रणाजिरे ॥ २५
किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाद्य सात्वत
तं तथावादिनं तत्र सात्यकिः प्रत्यभाषत २६
प्रहसन्विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित्
नेयं सभा राजपुत्र नाचार्यस्य निवेशनम् २७
यत्र क्रीडितमस्माभि-
स्तदा राजन्समागतैः ।
दुर्योधन उवाच ।
क्व सा क्रीडा गताऽस्माकं
बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ॥ २८
क्व च युद्धमिदं भूयः 'कालो हि दुरतिक्रमः' ।
किंनु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ।
यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात्समागताः ।
सञ्जय उवाच ।
तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत्

---

शुक्लः शुद्धोऽभिजनो वंशो येषां ते स्वयंशोधितकर्माणश्च ॥ १० ॥ अशस्तमप्रशस्यम् । प्रशस्यत्वमाह- **नात्रेति** । कर्णी विलोमकंटकद्वययुक्तः। स हि उद्ध्रियमाणोऽन्त्राण्युद्धरति। नालीकः अल्पत्वाद्देहमग्नः सन् दुरुद्धरः।न लिप्तो विषेणेति शेषः। बस्तिकः शल्यदण्डसन्धौ शिथिलस्तस्योद्धरणे शल्यं बस्तिमध्ये मज्जति दण्डमात्रं निःसरति [ अन्ये बस्तक इति पठित्वा शृङ्गघटित इति व्याचख्युः] ॥ ११॥ सूचीकर्णिसजातीयो बहुकण्टकः [ कपिशस्तुल्यो मर्कटास्थिमयो वेति प्राञ्चः ] कार्ष्णायसमयः सद्यद्दढेऽप्याघातेऽन्तर्बहुप्रविशति । 'कपिशस्त्रिषु श्यामे' इति **मेदिनी** । गवास्थिजो गजास्थिजस्तन्मयफलकश्च बाणो विषलिप्तवज्ज्ञेयः । श्लिष्टो द्विशल्यः क्षतद्वयकरत्वाद्धेयः । पूतिर्मलिनशल्यः सोऽपि क्षतपोषकश्चर्चितो वा । जिह्मगोऽन्यल्लक्ष्यत्वेन प्रदर्श्यान्यत्र पातितः ॥ १२ ॥

एवं वृत्तं सदा क्षात्रं
युध्यन्तीह गुरूनपि ।
यदि तेऽहं प्रियो राजन्
जहि मां मा चिरं कृथाः ॥ ३१
त्वत्कृते सुकृतांल्लोकान् गच्छेयं भरतर्षभ ।
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत्क्षिप्रं मयि दर्शय ३२
नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ।
इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः
अभ्ययात्तूर्णमव्यग्रो दयां नाकुरुतात्मनि ।
तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात्तवात्मजः ३४
शरैश्चावाकिरद्राजञ्शैनेयं तनयस्तव ।
ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ॥ ३५
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ३६
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत्कुपितो दशभिः शरैः ।
तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत्तथैवावाकिरच्छरैः
पञ्चाशता पुनश्चाजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ।
सात्यकिं तु रणे राजन्प्रहसंस्तनयस्तव ३८
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशता शरैः ।
ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाऽच्छिनत्
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् ।
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते ॥
तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया ।
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥
सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥
तस्य संदधतश्चेषुं
संहितेषुं च कार्मुकम् ।
आच्छिनत्सात्यकिस्तूर्णं
शरैश्चैवाप्यवीविधत ॥ ४३
स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरे
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥
समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात्
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥४५
तथैव सात्यकिर्बाणान्दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं विसृजन् राजंस्तत्संकुलमवर्तत ॥ ४६
तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरिषु ।
अग्नेरिव महाकक्षैः शब्दः समभवन्महान् ॥
तयोः शरसहस्रैश्च संछन्नं वसुधातलम् ।
अगम्यरूपं च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८
तत्राप्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४९
न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन्सायकान्बहून्
तस्य कर्णः शितान्बाणान्प्रतिहन्य हसन्निव
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाभ्यहनच्छरैः॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः ।
ध्वजं धनुश्च सूतं च संममर्दाहवे रिपोः ॥
रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः ।
भग्नचक्रे रथेऽतिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥ ५३
एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः ।
एकचक्रमिवार्कस्य रथं सप्त हया यथा ॥ ५४
अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत ।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥५५
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत्॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रान्मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान्
ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः ।
किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥
तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ॥ ५९
जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ ।
जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥
हता वा देवसाद्भूत्वा
लोकान्प्राप्स्यथ पुष्कलान् ।
ते राज्ञा चोदिता वीरा
योत्स्यमाना महारथाः ॥ ६१
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ।
पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः
भीमसेनपुरोगाश्चाप्येकतः पर्यवारयन् ।
आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः
यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनञ्जयम् ।
अभिद्रवार्जुन क्षिप्रं कुरून्द्रोणादपानुद ॥ ६४
तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षणम् ।
कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ॥
पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
ममर्दुस्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

## १९०

सञ्जय उवाच ।
पञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत्कदनं महत्
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥
द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
नात्रसन्त रणे द्रोणात्सत्त्ववन्तो महारथाः ॥
युध्यमाना महाराज पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा
द्रोणमेवाभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥ ३
तेषां तु च्छाद्यमानानां पञ्चालानां समन्ततः
अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥ ४
वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान्भयमाविशत्
दृष्ट्वाऽश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि ।
पाण्डवेया महाराज नाशशंसुर्जयं तदा ॥ ६
कच्चिद्द्रोणो न नः सर्वान् क्षपयेत्परमास्त्रवित्
समिद्धः शिशिरापाये दहन्कक्षमिवानलः ॥
न चैनं संयुगे कश्चित्समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥
त्रस्तान्कुन्तीसुतान्दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान्
मतिमाञ्छ्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत्॥
नैष युद्धे न संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन ।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥
न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पांडवाः
यथा न संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ।
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ।
एतन्नारोचयद्राजन् कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥
अन्ये त्वरोचयन्सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ।
ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम्
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ १५

भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह १६
अश्वत्थामेति हि गजः
ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तं भीमो
मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥ १७
भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत्परमाप्रियम्
मनसा सन्नगात्रोऽभूद्यथा सैकतमम्भसि॥१८
शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत १९
स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत्
अनुचिन्त्यात्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः॥२०
स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः ।
अवाकिरत्सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम्
तं विंशतिसहस्राणि पञ्चालानां नरर्षभाः २१
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः
शरैस्तैराचितं द्रोणं नापश्याम महारथम् ।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशांपते ॥
विधूय तान्बाणगणान्पञ्चालानां महारथः ।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परंतपः ॥
वधाय तेषां शूराणां पञ्चालानाममर्षितः ।
ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन्सर्वसैनिकान्
शिरांस्यपातयच्चापि पञ्चालानां महामृधे ।
तथैव परिघाकारान्बाहून्कनकभूषणान् ॥
ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः ।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥
कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥
हत्वा विंशतिसाहस्रान्पञ्चालानां रथव्रजान्
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामूननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

१९०
पञ्चालानामिति ॥ १ ॥

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥
पुनः पञ्चशतान्मत्स्यान् षट्सहस्रांश्च सृञ्जयान्
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः ॥
क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागतास्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥
विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः
सिकताः पृश्नयो गर्गा
बालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव
सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः ॥ ३४

त एनमब्रुवन्सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥
न्यस्यायुधं रणे द्रोण समीक्षास्मानवस्थितान्
नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहार्हसि ॥ ३६
वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ३७
त्यजायुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते ।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥
ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥ ३९
न्यस्यायुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः
मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज॥ ४०

इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत्
धृष्टद्युम्नं च संप्रेक्ष्य रणे स विमनाऽभवत् ४१
संदिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२
स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम्
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ४३
तस्मात्तं परिपप्रच्छ
नान्यं कञ्चिद्द्विजर्षभः ।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा
बाल्यात्प्रभृति पाण्डवे ॥ ४४

ततो निष्पाण्डवामुर्वीं
करिष्यन्तं युधां पतिम्
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं
गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥ ४५
यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः ।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति४६
स भवांस्त्रातु नो द्रोणा-
त्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः ।
अनृतं जीवितस्यार्थे
वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः ।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः॥४९
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम्॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाहवादिति ।
नूनं नाश्रद्धद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥ ५१
स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम् ५२
त्वयोक्तो नैव युध्येत
जातु राजन्द्विजर्षभः ।
सत्यवान् हि त्रिलोकेऽस्मिन्
भवान् ख्यातो जनाधिप ॥ ५३

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५४
तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः* ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५५
तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रितः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम्
युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः
पुत्रव्यसनसन्तप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥
आगस्कृतमिवात्मानं पाण्डवानां महात्मनां
ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतं
विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाशक्नुवद्राजन्यथापूर्वमरिंदमः ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

* एतदग्रे 'अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह' इत्यधिकं क्वचित् ।

## १९१

सञ्जय उवाच ।
तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात्
स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरं चाशीविषोपमम् ॥ ३
संदधे कार्मुके तस्मि-
स्ततस्तमनलोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो
महाज्वालमिवानलम् ॥ ४
तस्य रूपं शरस्यासीद्धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।
द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः॥५
पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः ।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः॥६
तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वाऽमन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥ ७
ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे ।
न चास्यास्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः
तस्य त्वहानि चत्वारि
क्षपा चैकाऽस्यतो गता ।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन
क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥ ९
स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चार्दितः ।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः
उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि ऋषिवाक्यप्रचोदितः
तेजसा पूर्यमाणश्च युयुधे न यथा पुरा ॥ ११
भूयश्चान्यत्समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान् धृष्टद्युम्नमयोधयत्॥१२
ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३
शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाप्यपातयत्
धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत्पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे १५
सोऽतिविद्धो महेष्वासोऽसंभ्रान्त इव संयुगे
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य पुनर्धनुः॥ १६
यच्चास्य बाणविकृतं धनूंषि च विशांपते ।
सर्वं चिच्छेद दुर्धर्षो गदां खड्गं च वर्जयन् ॥
धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
जीवितान्तकरः क्रुद्धः क्रुद्धरूपः* परंतपः १८
धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याश्वान् स्वरथाश्वैर्महारथः
व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन्॥ १९
ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्च भरतर्षभ ॥ २०
यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे ।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ २१
ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः॥२२
स छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो
निकृत्तध्वजसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य
गदां वीरः परामृशत् ॥ २३
तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः
क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः
क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४
तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत्॥ २५
असंशयं तथाभूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः २६
ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् २७
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥ २८
सोऽतिष्ठद्युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाश्वानां तत्सैन्याः समपूजयन्
तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नापश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ३०
क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवामिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१

---

१९१
तं दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ * शिलाधौतैः परंतपः इति पाठान्तरम् ।

तस्य पारावतानश्वान्रथशक्त्या पराभिनत्
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान्विवर्जयन्
ते हता न्यपतन् भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशांपते ॥
तान्हयान्निहतान् दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः
नामृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ३४
विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वरः ।
द्रोणमभ्यपतद्राजन् वैनतेय इवोरगम् ॥ ३५
तस्य रूपं बभौ राजन् भारद्वाजं जिघांसतः
यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥
स तदा विविधान्मार्गान्प्रवरांश्चैकविंशतिम्
दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन् रणे†॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ३८
संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ।
भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया
दर्शयन् व्यचरद्युद्धे
द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ।
चरतस्तस्य तान् मार्गान्
विचित्रान् खड्गचर्मिणः ॥ ४०
व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः ।
ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥ ४१
चर्म खड्गं च संबाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ।
ये तु वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः

ऋते शारद्वतात्पार्थाद्द्रौणेर्वैकर्तनात्तथा ४३
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत ।
अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसंमतम् ॥ ४४
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसंमितम्
तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ ४६
चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च भारत ४७
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनञ्जयौ ।
अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधु साध्विति
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम्
अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥
धनञ्जयस्ततः कृष्णमब्रवीत्पश्य केशव ।
आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन्मधूद्वहः ५०
आनंदयति मां भूयः सात्यकिः परवीरहा ।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम्
यच्छिक्षयाऽनुद्धतः सन्रणे चरति सात्यकिः
महारथानुपक्रीडन् वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥
तमेते प्रतिनन्दन्ति
सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः ।
अजय्यं समरे दृष्ट्वा
साधु साध्विति सात्यकिम् ॥
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ५३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे
एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९१ ॥

---

खड्गं चर्म च धारयन् भ्रान्तादित्रयोदशविधं संचरणं दर्शयामासेति संबंधः ।
'मण्डलाकारतः खड्गभ्रामणं **भ्रान्त**मुच्यते ॥
तदेव बाहुमुद्यम्य कृत**मुद्भ्रान्त**मीरितम् ॥ १ ॥
भ्रामणं स्वस्य परितः खड्गस्या**विद्ध**मुच्यते ॥
परप्रयुक्तशस्त्रस्य वारणार्थमिदं त्रयम् ॥ २ ॥
शत्रोराक्रमणार्थाय गमनं **त्वाप्लुतं** मतम् ॥
खड्गस्याग्रेण तद्देहस्पर्शनं **प्रसृतं** मतम् ॥ ३ ॥
वंचयित्वा रिपौ शस्त्रपातनं गदितं **सृतम्** ॥
**परिवृत्तं** भवेच्छत्रोर्वामदक्षिणभागतः ॥ ४ ॥
पश्चात्पदापसरणं **निवृत्तं** संप्रचक्षते ॥ ३८ ॥
अन्योन्यताडनं प्राहुः **संपात**मुभयोरपि ॥ ५ ॥
आधिक्यमात्मनो यत्तत्स**मुदीर्ण**मुदीरितम् ॥
अङ्गप्रत्यङ्गदेशेषु भ्रामणं **भारतं** स्मृतम् ॥ ६ ॥
विचित्रखड्गसंचारदर्शनं **कौशिकं** स्मृतम् ॥
निलीय चर्मणि क्षेपो यदसेः **सात्वतं** हि तत्' ७।३९
संबाधे रणसंकटे वैतस्तिकाः वितस्तिप्रमाणाः ॥ ४२ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥ † अयं श्लोकश्चतुर्धरसंमतो न भवति **त्रयोदशविधं संचरणमिति** कण्ठतस्तैरुक्तत्वात्। मिश्राणां तु संमतोऽस्ति। तैरेकविंशतिमिति प्रतीकमुपादायावान्तरभेदकल्पनयोक्तसंख्यापूरणेन व्याख्यातत्वात्।

## १९२

सञ्जय उवाच ।

सात्वतस्य तु तत्कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः।
शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १
कृपकर्णौ च समरे पुत्राश्च तव मारिष ।
शैनेयं त्वरयाऽभ्येत्य विनिघ्नन्निशितैः शरैः
युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
भीमसेनश्च बलवान्सात्यकिं पर्यवारयन् ३
कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः ।
दुर्योधनादयस्ते च शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४
तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम्
वारयामास शैनेयो योधयंस्तान्महारथान् ५
तेषामस्त्राणि दिव्यानि
संहितानि महात्मनाम् ।
वारयामास विधिव-
द्दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥ ६
क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन् राजसमागमे ।
रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तान्पशून्पुरा ७
हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
छत्राणां चापविद्धानां चामराणां च सञ्चयैः
राशयः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे ।
भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः ॥ ९
सादिभिश्च हतैः शूरैः संकीर्णा वसुधाऽभवत्
बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम १०
चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे ।
वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥११
अब्रवीत्क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभिद्रवत संयत्ताः कुंभयोनिं महारथाः १२
एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन सङ्गतः ।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने १३
यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्तेऽस्य महारणे
अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धो घातयिष्यति पार्षतः ॥
ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुंभसंभवम्
युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः ।
तान्समापततः सर्वान् भारद्वाजो महारथः
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः ।
प्रयाते सत्यसन्धे तु समकम्पत मेदिनी ॥
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम्
पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत
दीपयन्ती उभे सेने शंसन्तीव महद्भयम् ।
जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥
रथाः स्वनन्ति चात्यर्थं हयाश्चाश्रूण्यवासृजन्
हतौजा इव चाप्यासीद्भारद्वाजो महारथः
प्रास्फुरन्नयनं चास्य वामबाहुस्तथैव च ।
विमनाश्चाभवद्युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥ २१
ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति ।
सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २२
ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याभिसंवृतः ।
निर्दहन् क्षत्रियव्रातान्द्रोणः पर्यचरद्रणे ॥
हत्वा विंशतिसाहस्रान् क्षत्रियानरिमर्दनः ।
दशायुतानि कल्पिणामवधीद्विशिखैः शितैः
सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समाश्रितः ॥
पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली ।
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात्
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसंप्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥
न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग्वधायैव त्वयि भारः समाहितः
स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः ।
अभिपत्यादंदे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥ २९
संरब्धश्च शरानस्यन्द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३०
तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ
उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः
स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः
सवसातीञ्शिबींश्चैव बाल्हीकान्कौरवानपि
रक्षिष्यमाणान्संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् गभस्तिभिरिवांशुमान् ।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः

---

१९२

सात्वतस्येति ॥१॥ एषो हीति सन्धिरार्षः॥१३॥

ब्रह्मवादानां वेदतुल्यानां वचनानाम् । द्वितीयार्थे षष्ठी श्रुत्वेति शेषः ॥ २२ ॥

तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा
विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः ।
मर्माण्यभ्यहनद्भूयः
स व्यथां परमामगात् ॥ ३७

ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथं
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३८

यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः ॥
स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥
अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥

श्वपाकवन्म्लेच्छगणान्
हत्वा चान्यान्पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद्ब्रह्मन्-
पुत्र–दार–धनेप्सया ॥ ३९

एकस्यार्थे बहून्हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यया ।
स्वकर्मस्थान्विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥
यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।
स चाद्य पतितः शेते पृष्ठेनावेदितस्तव ॥ ४१
धर्मराजस्य तद्वाक्यं नाभिशङ्कितुमर्हसि ।

एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा
हातुकामोऽभ्यभाषत ।
कर्ण कर्ण महेष्वास
कृप दुर्योधनेति च ॥ ४३
संग्रामे क्रियतां यत्नो
ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु
शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥ ४४

इति तत्र महाराज प्राक्रोशद्द्रौणिमेव च ।
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।

तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्
सशरं तद्धनुर्घोरं संन्यस्याथ रथे ततः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥

हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशं गतम् ॥ ४८

हाहाकारं भृशं चक्रु-
रहो धिगिति चाब्रुवन् ।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य
परमं साङ्ख्यमास्थितः ॥ ४९

तथोक्त्वा योगमास्थाय
ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
पुराणं पुरुषं विष्णुं
जगाम मनसा परम् ॥ ५०

मुखं किञ्चित्समुन्नाम्य
विष्टभ्य उरमग्रतः ।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो
निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥ ५१

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः
स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ५२
दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात्सद्भिर्दुराक्रमां
द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्तस्मिंस्तथागते
एकाग्रमिव चासीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः
समपद्यत चार्काभे भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४

निमेषमात्रेण च तत्
ज्योतिरन्तरधीयत ।
आसीत्किलकिलाशब्दः
प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥ ५५

ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ।
वयमेव तदाऽद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥५६
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनंजयः पार्थो भारद्वाजस्य चात्मजः ॥

वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
अन्ये तु सर्वे नापश्यन्भारद्वाजस्य धीमतः ॥
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।
ब्रह्मलोकं महद्दिव्यं देवगुह्यं हि तत्परम् ॥
गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।
नापश्यन्गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥
आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिंदमम् ।
वितुन्नाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ।
तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ॥

---

**मुखमिति** । उरं उरः अग्रतः अवरहनोरग्रेण विष्टभ्य हृदि धारणं विषयाणां स्मरणं निक्षिप्य निरस्य अत एव सत्त्वस्थः रजस्तमोमलशून्ये शुद्धे सत्त्वे स्फटिककल्पे स्थितः । तत्र स्थितो भूत्वा ओमित्यनेन प्रतीकेन एकाक्षरं वासुदेवाख्यं ब्रह्म स्मरित्वा स्मृत्वा तद्बलेनाचार्यो दिवमाक्रामदिति सार्धद्वयोः संबंधः ॥ ५१ ॥

किञ्चिदब्रुवतः कायाद्विचकर्तासिना शिरः
हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥६३
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन्खड्गमाहवे ।
आकर्णपलितश्यामो 'वयसाऽशीतिपञ्चकः'
त्वत्कृते व्यचरत्सङ्ख्ये स तु षोडशवर्षवत् ।
उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज ।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह
उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत् ।
क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥
धृष्टद्युम्नोऽवधीद्द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।
शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमथापतत् ॥
लोहिताङ्ग इवादित्यो दुर्धर्षः समपद्यत ।
एवं तं निहतं सङ्ख्ये ददृशे सैनिको जनः ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन्भारद्वाजशिरोऽहरत् ।
तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥
ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन्भारद्वाजस्य तावकाः
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥
द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ।
अहमेव तदाऽद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥७२
ऋषेः प्रसादात्कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च
विधूमामिह संयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिं
हते द्रोणे निरुत्साहाः कुरुपाण्डवसृञ्जयाः
अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत ।
निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाभवन् ।
पराजयमथावाप्य परत्र च महद्भयम् ॥ ७६
उभयेनैव ते हीना नाविंदन् धृतिमात्मनः ।
अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः
नान्वगच्छन्महाराज कबन्धायुतसंकुले ।
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ॥
बाणशंखरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।

भीमसेनस्ततो राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् ।
अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥
भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वज्यामि पार्षत
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१
एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः ।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥
तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन्विशांपते
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि
द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

समाप्तं द्रोणवधपर्व ।

## नारायणास्त्रमोक्षपर्व ८

### १९३

सञ्जय उवाच ।
ततो द्रोणे हते राजन्कुरवः शस्त्रपीडिताः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥
उदीर्णांश्च परान्दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः ।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन्विशांपते ॥
विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन् ।
रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश ॥
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥

---

अशीतीनां पञ्चकमस्यास्तीति विग्रहः । चतुःशतवार्षिक इत्यर्थः । यद्वा तत्तत्कालोचितस्य पुरुषायुषस्य विंशत्याधिकस्य भागत्रयोनवयस्क इत्यर्थः ॥६४॥ परत्र च महद्भयमिति पलायनस्य परलोकविरुद्धत्वात् ॥ ७६ ॥ उभयेन लोकद्वयेन हीना रहिताः ॥ ७७ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः १९२॥

१९३

तत इति ॥ १ ॥

स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात्तनयस्तव
क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत।
आदित्येनेव संतप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥
भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् ।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम् ॥
अमर्षणीयं तद्दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् ।
त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन्भयात्॥
गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह ।
हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत्सहितो रथैः ॥
वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।
परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥१०
रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्षमाणोऽपयाद्भयात्
हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपताकिभिः ।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत्कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥
भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टवाल्हिकैः ।
कृतवर्मा वृतो राजन्प्रायात्सुजवनैर्हयैः ॥
पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन्भयार्दितः ।
उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥
दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः ।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥
रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रं च दन्तिनाम् ।
वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥
गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः ।
दुर्योधनो महाराज प्रायात्तत्र महारथः ॥१७
संशप्तकगणान्गृह्य हतशेषान्किरीटिना ।
सुशर्मा प्राद्रवद्राजन् दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥
गजान्रथान्समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः ।
प्राद्रवन् सर्वतः सङ्ख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥
त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान् ।
पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन्कुरवस्तदा ॥ २०
चोदयन्तश्च सैन्यानि स्वस्त्रीयांश्च तथाऽपरे ।
सम्बन्धिनस्तथाऽन्ये च प्राद्रवन्त दिशो दश
प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः ।
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः
उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो ।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन्सैनिका भरतर्षभ २३
तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे ।
धुर्यानुन्मुच्य च रथाद्धतसूतान्स्वलंकृतान् ।
अधिरुह्य हयान्योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥
द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि ।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात्२५
तस्यासीत्सुमहद्युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः ।
प्रभद्रकैश्च पाञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६
हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः ।
कथञ्चित्सङ्कटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः॥ २७
द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् ।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् २८
किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत ।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥२९
त्वं चापि न यथा पूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप ।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिव ॥ ३०
अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाऽद्रवत्तदा ।
कच्चित्क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥
कस्मिन्निदं हते राजन् रथसिंहे बलं तव ।
एतामवस्थां संप्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव॥ ३२
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम्
घोरमप्रियमाख्यातुं नाशक्नोत्पार्थिवर्षभः॥३३
भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे ।
बाष्पेणापिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥
ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् ।
शंसात्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ३५
अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन्पुनः पुनः ।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥

कृप उवाच ।

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् ।
प्रावर्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ३७
ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ३८
वर्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे ।
धार्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत ३९
ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः ।
व्यहनच्छात्रवान् भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः

पाण्डवाः केकया मत्स्याः
पञ्चालाश्च विशेषतः ।
सङ्ख्ये द्रोणरथं प्राप्य
व्यनशन्कालचोदिताः ॥ ४१

सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम्
द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ४२

आकर्णपलितःश्यामो 'वयसाऽशीतिपञ्चकः'
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३
क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाऽभवन् ॥
तेषु किञ्चित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ४५
स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां
शररश्मिः प्रतापवान् ।
मध्यं गत इवादित्यो
दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताऽभवत् ॥ ४६
ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता ।
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ४७
तान् दृष्ट्वा पीडितान्बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः ।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ४८
नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः
अपि वृत्रहणा सङ्ख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९
ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ५०
अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥
एतन्नारोचयद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ५२
भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत् पितरं तव ।
अश्वत्थामा हत इति तं नाबुध्यत ते पिता ॥
स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत ।
हतं वाप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः
तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ५५
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः ।
उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५६
यस्यार्थे शस्त्रमादत्से
यमवेक्ष्य च जीवसि ।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं
सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ५७
शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा ५८
जानन्नप्यनृतस्याथ दोषान्स द्विजसत्तमम् ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५९
स त्वां निहतमाक्रन्दे श्रुत्वा संतापतापितः
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा
तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुरमचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ६१
तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः ।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत्
ततोऽस्य केशान्सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन्
तथैव चार्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत् ॥ ६४
उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः पुनः ।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीरिति धर्मवित्
तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च ।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥ ६६
सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः ।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥
सञ्जय उवाच ।
तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहत इवोरगः ॥ ६८
ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष
यथेन्धनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः ६९
तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत् ।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा ७०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामक्रोधे
त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

## १९४

धृतराष्ट्र उवाच ।
अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन सञ्जय ।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् १
मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान् ।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितम् २

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

१९४

अधर्मेणेति ॥ १ ॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं
धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं
सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ ३
*येन रामादवाप्येह
धनुर्वेदं महात्मना ।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि
पुत्राय गुणकाङ्क्षिणा ॥ ४
एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम्
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नान्यं कथञ्चन ५
आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम्
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय वा
स शिष्यः प्राप्य तत्सर्वं सविशेषं च सञ्जय।
शूरः शारद्वतीपुत्रः सङ्ख्ये द्रोणादनन्तरः ॥७
रामस्य तु समः शस्त्रे पुरंदरसमो युधि ।
कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ८
महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाऽग्निसमो युवा ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाशीविषोपमः ९
स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाक्रन्दे चरन् क्रुद्ध इवान्तकः
अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता ।
यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः
वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः ।
महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत्
धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना ।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत्
तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणादीर्घदर्शिना ।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

## १९५

सञ्जय उवाच ।
छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
बाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १
तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत ।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये २
अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः ।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ३
पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः॥
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं मम ॥ ४
अनार्यं सुनृशंसं च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् ।
युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ ॥ ५
द्वयमेतद्भवेद्राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते ।
न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत्
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः
गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ७
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः।
यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन्केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति
मयि जीवति यत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ९
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्
कामात्क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद्बाल्येन वा पुनः
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ।
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ॥ ११
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ।
तस्यानुबन्धं द्रष्टाऽसौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम्
अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः
यो ह्यसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

१९५

छद्मनेति ॥ १ ॥ धर्मध्वजवता दांभिकेन तत् अनृतवचनरूपं पापम् ॥ ४ ॥ अनार्यं नीचयोग्यं कर्म धर्मपुत्रस्येत्युपालंभः ॥ ५ ॥ बाल्येन चापलेन ॥ १० ॥ विधर्मकाणि धर्मविरुद्धानि ॥ ११ ॥ अनुबन्धं फलम् ॥ १२ ॥ पाण्डवश्च अनुबन्धं द्रष्टेत्यनुषज्यते ॥ १३ ॥

तस्याद्य धर्मराजस्य
भूमिः पास्यति शोणितम् ।
शपे सत्येन कौरव्य
इष्टापूर्तेन चैव ह ॥ १४
अहत्वा सर्वपञ्चालान्
जीवेयं न कथञ्चन ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि
पञ्चालानामहं वधे ॥ १५
धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताऽहं पापकारिणम् ।
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६
पञ्चालानां वधं कृत्वा
शान्तिं लब्धास्मि कौरव ।
यदर्थं पुरुषव्याघ्र
पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ॥ १७
प्रेत्य चेह च संप्राप्ता-
स्त्रायन्ते महतो भयात् ।
पित्रा तु मम साऽवस्था
प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥ १८
मयि शैलप्रतीकाशे
पुत्रे शिष्ये च जीवति ।
धिङ्ममास्त्राणि दिव्यानि
धिग्बाहू धिक् पराक्रमम् ॥ १९
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ।
स तथाऽहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम ॥
परलोकगतस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः ।
आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित्स्तुतिरात्मनः
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ।
अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः
मृद्नतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।
न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः
अद्य शक्ता रणे जेतुं
रथस्थं मां नरर्षभाः ।
मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्-
न्नर्जुनाद्वाऽस्त्रवित्कचित् ॥ २४
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान्
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५

भृशमिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान्
अद्य सर्वा दिशो राजन्धाराभिरिव संकुलाः
आवृताः पत्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह
विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।
शत्रून्निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥
न हि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः
न पार्षतो दुरात्माऽसौ
न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य
सकल्पं सनिवर्तनम् ॥ ३०
नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१
तं स्वयं प्रतिगृह्याथ भगवान्स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२
अथैनमब्रवीद्राजन् भगवान्देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नान्यः कश्चिद्युधि नरःक्वचित्
न त्विदं सहसा ब्रह्मन्प्रयोक्तव्यं कथञ्चन ।
न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्तते ॥ ३४
न चैतच्छक्यते ज्ञातुं केन वध्येदिति प्रभो ।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत्प्रयोजयेत् ॥
अथ संख्ये रथस्यैव शस्त्राणां च विसर्जनम् ।
प्रयाचतां च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ३६
एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परंतप ।
सर्वथा पीडितो हिंस्यादवध्यान्पीडयन् रणे
तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः ।
त्वं वधिष्यसि सर्वाणि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः
अनेनास्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि ।
एवमुक्त्वा स भगवान् दिवमाचक्रमे प्रभुः॥३९
एतन्नारायणादस्त्रं तत्प्राप्तं पितृबन्धुना ।
तेनाहं पाण्डवांश्चैव पञ्चालान्मत्स्यकेकयान्
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान् ।
यथायथाऽहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ॥
निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत ।
यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ॥ ४२

---

मयूखानां मयूखवताम् ॥ २५ ॥ कल्पः प्रयोगः निवर्तनमुपसंहारः ॥ ३० ॥ ब्रह्मरूपो वेदरूपः वैदिकैर्मन्त्रैःस्तुतवानित्यर्थः । उपस्थित इति तदन्यस्योपहारस्य तदानभिभावो दर्शितः ॥ ३१ ॥ रथस्यैव विसर्जनम् शस्त्राणामपि विसर्जनं च प्रयाचतां मा वधीरिति याचमानानां शरणस्य गमनं त्वमेव शरणं न इति कीर्तनं च ॥ ३६ ॥ पीडितः पीडितं शस्त्रान्तरेण बाधितं पुंस्त्वमार्षम् ॥ ३७ ॥ पितृबन्धुना मया ॥ ४० ॥

अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान् ।
परश्वधांश्च निशितानुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ४३
सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान्
मित्र-ब्रह्म-गुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः ।
पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥
तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी ।
ततः सर्वे महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ४६
भेरीश्चाभ्यहनन्हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः ।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥ ४७
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत्
तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम्
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताश्चाप्यमन्त्रयन्
तथोक्त्वा द्रोणपुत्रस्तु वार्युपस्पृश्य भारत ४९
प्रादुश्चकार तद्दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ५०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

## १९६

सञ्जय उवाच ।
प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो ।
आवात्सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् १
चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः २
शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे ॥ ३
तमसा चावकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत् ।
संपतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत्
देवदानवगन्धर्वास्त्रस्तास्त्वासन्विशांपते ।
कथंकथाऽभवत्तीव्रा दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥ ५
व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चासन्विशांपते
तद्दृष्ट्वा घोररूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ६
धृतराष्ट्र उवाच ।
निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे ।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥ ७
कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे ।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय
सञ्जय उवाच ।
प्रागेव विद्रुतान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वाऽर्जुनमथाब्रवीत् ९
युधिष्ठिर उवाच ।
आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १०
नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनञ्जय ।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन्कुरवो रणात्
केचिद्भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः॥
भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुह्यान्यान्विचेतसः ।
भीताः पादैर्हयान्केचित्त्वरयन्तः स्वयं रथान्
भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यन्त समन्ततः ।
रथान्विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः
हयपृष्ठगताश्चान्ये कृष्यन्तेऽर्धच्युतासनाः ।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः
शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद्दिशो दश ।
विशस्त्रकवचाश्चान्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः
संछिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः ।
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात्१७
नाभिजानंति चान्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः
पुत्रान्पितॄन्सखीन्भ्रातॄन्समारोप्य दृढक्षतान्

जाल्मको मूर्खः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

१९६

प्रादुरिति । सपृषतः सजलबिन्दुः अनभ्रे अप्रावृषि काले ॥ १ ॥ कथंकथा कथं कर्तव्यं कथं कर्तव्यमित्येवं शब्दः ॥५॥ रक्षणे मंत्रः क आसीदिति संबंधः ॥८॥ भग्ननीडैरिति । स्पार्हैरिति पाठेऽतिस्पृहणीयैः ॥१३॥

जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।
अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम्
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।
हयानां ह्रेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम्
रथनेमिस्वनैश्चात्र विमिश्रः श्रूयते महान् ।
एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।
य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन् ग्रसेदिति मतिर्मम।
मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥ २३
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ।
प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४
धनञ्जय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ।
क एष कौरवान्दीर्णानवस्थाप्य महारथः ॥
निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ।

अर्जुन उवाच ।

उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे वीर्यमास्थिताः
धमन्ति कौरवाः शंखान्यस्य वीर्यं समाश्रिताः
यत्र ते संशयो राजन्न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि ।
ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥२८
व्याघ्रास्यमुग्रकर्माणं कुरूणामभयङ्करम् ।
यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम्॥
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति
जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा ॥
ह्रेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः
तच्छ्रुत्वाऽन्तर्हितं भूतं नाम तस्याकरोत्तदा
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव ।
यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा ॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ।
गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ॥
तन्न जातु क्षमेद्द्रौणिर्जानन्पौरुषमात्मनः ।
उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान्कृतः ।
चिरं स्थास्यति चाकीर्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे
रामे वालिवधाद्यद्वदेवं द्रोणे निपातिते ।
सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः ॥
नायं वदति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि ।
स सत्यकञ्चुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम्३७
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ।
ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥
आसीत्सुविह्वलो राजन्यथा दृष्टस्त्वया विभुः
स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः ।
न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥

रक्षत्विदानीं सामात्यो
यदि शक्तोऽसि पार्षतम् ।
ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण
क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥ ४१

सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ।
सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ।
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे॥
विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ॥
यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान्
पितेव नित्यं सौहार्दात्पितेवं हि च धर्मतः ।
सोल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद्घातितो गुरुः
धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशांपते ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥
संप्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः ।
अवृणीत सदा पुत्रान्मामेवाभ्यधिकं गुरुः ॥
अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाहवे हतः
न त्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥
तस्याचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लुब्धबुद्धिभिः
अहो बत महत्पापं कृतं कर्म सुदारुणम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधुघातितः ॥
पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्दाराञ्जीवितं चैव वासविः ।
त्यजेत्सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः॥
स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः ।
तस्मादवाक्शिरा राजन्प्राप्तोस्मि नरकं प्रभो
ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् ।
घातयित्वाऽद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितं

---

यस्मिञ्जातेति । दशशतमित्यनेन सर्वगोधनं ददाविति ज्ञेयम् । अन्यथा एकधेन्वर्थं द्रुपदं प्रति द्रोणगमनस्यासंभवः । यद्वा भाविनीं संपदमभिलक्ष्यैतद्दानं द्रष्टव्यम् पुत्रोत्पत्तिकाले तस्य निर्धनत्वोक्तेः ॥२९॥ सत्यं कञ्चुकं सत्याभासमनृतम् ॥ ३७ ॥ सौहार्दाद्धर्मतो गुरुत्वाद्वा द्विगुणः पितुरित्यर्थः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

## १९७

संजय उवाच ।
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः
अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनंजयम् ॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत ।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥ २
मुनिर्यथाऽरण्यगतो भाषते धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः॥
क्षतत्राता क्षताज्जीवन् क्षंता स्त्रीष्वपि साधुषु
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः
स भवान् क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः ।
अविपश्चिद्यथा वाचं व्याहरन्नाद्य शोभसे ॥
पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः ।
न चाति वर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः॥६
न पूजयेत्त्वां को न्वद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम् ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकांक्षसे ॥ ७
दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते ।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत
यत्तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः ।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥
वनं प्रव्राजिताश्चास्म वल्कलाजिनवाससः।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥
एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयाऽनघ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११
तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाऽद्य सहितस्त्वया ।
सानुबन्धान्हनिष्यामि क्षुद्रान् राज्यहरानहं
त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम्
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥
धर्ममान्विच्छसि ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते ।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृंतसि
वपन् व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन ।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितं
अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन्न बुद्ध्यसे ।
यत्त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान्न प्रशंससि ॥
वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि ।
यः कलां षोडशीं पूर्णां धनंजय न तेऽर्हति ॥
स्वयमेवात्मनो दोषान् ब्रुवाणः किन्न लज्जसे
दारयेयं महीं क्रोधाद्विकिरेयं च पर्वतान् ॥
आविध्यैतां गदां गुर्वीं
भीमां काञ्चनमालिनीम् ।
गिरिप्रकाशान् क्षितिजान्
भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १९
द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान्देवान्समागतान् ।
सराक्षसगणान्पार्थ सासुरोरगमानवान् २०
स त्वमेवंविधं जानन् भ्रातरं मां नरर्षभ ।
द्रोणपुत्राद्भयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम ॥ २१
अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे २२
ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाब्रवीत् ।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् ॥ २३
धृष्टद्युम्न उवाच ।
बीभत्सो विप्रकर्माणि
विदितानि मनीषिणाम् ।
याजनाध्यापने दानं
तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४
षष्ठमध्ययनं नाम, तेषां कस्मिन्प्रतिष्ठितः।
हतो द्रोणो मया ह्येवं किं मां पार्थ विगर्हसे
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् २६
तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम् ।
माययैव निहन्याद्यो न युक्तं पार्थ तत्र किम्
तस्मिंस्तथा मया शस्ते
यदि द्रौणायनी रुषा ।
कुरुते भैरवं नादं
तत्र किं मम हीयते ॥ २८

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६॥

१९७
**अर्जुनस्येति** सांगावेदाइतिचाध्यायौ स्पष्टार्थौ ॥१॥

न चाद्भुतमिदं मन्ये यद्द्रौणिर्युद्धसंज्ञया ।
घातयिष्यति कौरव्यान्परित्रातुमशक्नुवन् ॥
यच्च मां धार्मिको भूत्वा
ब्रवीषि गुरुघातिनम् ।
तदर्थमहमुत्पन्नः
पाञ्चाल्यस्य सुतोऽनलात् ॥ ३०
यस्य कार्यमकार्यं वा
युध्यतः स्यात्समं रणे ।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः
क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥ ३१
यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद्ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्च्छितः
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तमः ॥ ३२
विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम्
जानन्धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ३३
नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः
तन्मामभिनन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे ॥
कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम् ।
भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम्
योऽसौ ममैव नान्यस्य
बान्धवान् युधि जघ्निवान् ।
छित्त्वाऽपि तस्य मूर्धानं
नैवास्मि विगतज्वरः ॥ ३६
तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया ।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७
अथावधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन ।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः
स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव ।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा
पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः ।
मया शत्रौ हते कस्मात्पापे धर्मं न मन्यसे ॥
संबन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि ।
स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥
क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन ।
द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नान्येन हेतुना ४२
कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम् ।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः
नानृती पाण्डवो ज्येष्ठो
नाहं वाऽधार्मिकोऽर्जुन ।
शिष्यद्रोही हतः पापो
युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

## १९८

धृतराष्ट्र उवाच ।
साङ्गा वेदा यथान्यायं
येनाधीता महात्मना ।
यस्मिन्साक्षाद्धनुर्वेदो
ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १
यस्य प्रसादात्कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः ।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ २
तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा ।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ३
नामर्षं तत्र कुर्वन्ति
धिक्क्षात्रं धिगमर्षिताम् ।
पार्थाः सर्वे च राजानः
पृथिव्यां ये धनुर्धराः ॥ ४
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं
तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ।
सञ्जय उवाच ।
श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य
ता वाचः क्रूरकर्मणः ॥ ५
तूष्णीं बभूवू राजानः
सर्व एव विशांपते ।
अर्जुनस्तु कटाक्षेण
जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥ ६
स बाष्पमतिनिःश्वस्य
धिग्धिगित्येव चाब्रवीत् ।
युधिष्ठिरश्च भीमश्च
यमौ कृष्णस्तथाऽपरे ॥ ७

---

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

१९८

साङ्गा इति ॥ १ ॥

आसन् सुव्रीडिता राजन्
सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम् ।
'नेहास्ति पुरुषः कश्चि-
द्य इमं पापपूरुषम् ॥ ८
भाषमाणमकल्याणं
शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ।
एते त्वां पाण्डवाः सर्वे
कुत्सयन्ति विवित्सया ॥ ९
कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव ।
एतत्कृत्वा महत्पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः
न लज्जसे कथं वक्तुं
समितिं प्राप्य शोभनाम् ।
कथं च शतधा जिह्वा
न ते मूर्धा च दीर्यते ॥ ११
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे ।
वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चांधकवृष्णिभिः
यत्कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि ।
अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् १३
वध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता
कस्त्वेतद्व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम ॥ १४
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः ।
सप्तावरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः
यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम्
उक्तवांश्चापि यत्पार्थं भीष्मं प्रति नरर्षभ ॥
तथाऽन्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना ।
तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥
नान्यः पाञ्चाल्यपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत्
स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्यांतकरः किल
शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः
पञ्चालाश्चलिता धर्मात्क्षुद्रा मित्र-गुरुद्रुहः १९
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः
पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।
त्वां च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते ॥ २१
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ।
पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥ २२
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे ।
तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥ २३
तव चापि सहिष्येऽहं गदापाताननेकशः' ।
सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ।

धृष्टद्युम्न उवाच ।
श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥
सदाऽनार्योऽशुभः साधुं
पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ।
क्षमा प्रशस्यते लोके
न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥ २६
क्षमावन्तं हि पापात्मा
जितोऽयमिति मन्यते ।
स त्वं क्षुद्रसमाचारो
नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि
यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया
वार्यमाणेन हि हत-
स्ततः पापतरं नु किम् ।
गाहमानो मया द्रोणो
दिव्येनास्त्रेण संयुगे ॥ २९
विसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ।
अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम्
छिन्नबाहुं परैर्हन्यात्सात्यके स कथं वदेत् ।
निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान्
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ।
त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ३२
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ।
यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ।
स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत्स्वयम्
वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात्त्वं परुषाण्यथ ।
कर्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाहं वृष्णिकुलाधम
पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद ।
जोषमास्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥
अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमर्हसि ।
अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद्भूयः परुषमीदृशम् ॥
गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम्
न चैवं मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥ ३८
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ।
वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाऽधर्मेण सात्यके ।
प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाऽधर्मेण बालिश ।
अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परैरितः ॥ ४१

अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः
इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः ४२
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ।
एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ॥ ४३
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत ।
दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाऽधर्मश्च दुर्विदः॥४४
युध्यस्व कौरवैः सार्धं
मा गाः पितृनिवेशनम् ।

सञ्जय उवाच ।

एवमादीनि वाक्यानि
क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५
श्रावितः सात्यकिः श्रीमा-
नाकम्पित इवाभवत् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः
सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ॥ ४६
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥
न त्वां वक्ष्यामि परुषं
हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ।
तमापतन्तं सहसा
महाबलममर्षणम् ॥ ४८
पाञ्चाल्यायाभिसंक्रुद्धमन्तकायान्तकोपमम् ।
चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ४९
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ।
द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली
प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ।
स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ।
अवरुह्य रथात्तूर्णं ध्रियमाणं बलीयसा ॥ ५२
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशांपते
अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ५३
परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष ।
तथैवान्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ५४
कृष्णस्य च तथाऽस्मत्तो
मित्रमन्यन्न विद्यते ।
पञ्चालानां च वार्ष्णेय
समुद्रान्तां विचिन्वताम् ॥ ५५
नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ।
स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान्
भवन्तश्च यथाऽस्माकं भवतां च तथा वयम्
स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ५७
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्
प्रशाम्य शिनिपुङ्गव ।
पार्षतस्य क्षम त्वं वै
क्षमतां पार्षतश्च ते ॥ ५८
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत् ।
प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥५९
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम्॥
आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः ।
यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय
जीवितं चास्य संयुगे ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं
कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२
सुमहत्पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः
अथवा फाल्गुनः सर्वान्वारयिष्यति संयुगे
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ।
मन्यते च्छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ६४
उत्सृजैनमहं चैन-
मेष वा मां हनिष्यति ।
शृण्वन्पाञ्चालवाक्यानि
सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन् ॥ ६५
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ
त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ६७
निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ ।
युयुत्सूनपराञ्संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः॥६८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामष्टनवत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

# १९९

सञ्जय उवाच ।
ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवान्तकः॥ १
ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम् ।
अश्वकिंपुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥ २
क्रव्यादपक्षिसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् ।
निहत्य शात्रवान् भल्लैः सोऽचिनोद्देहपर्वतम्
ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४
यस्माद्युध्यन्तमाचार्यं धर्मकञ्चुकमास्थितः ।
मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ५
तस्मात्संपश्यतस्तस्य
द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान् हन्ताऽस्मि
जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु ॥ ६
सर्वानेतान् हनिष्यामि
यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि
परिवर्तय वाहिनीम् ॥ ७
तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु
वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता
व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८
ततः समागमो राजन्कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९
संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च॥
तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्विशांपते॥११
यथा शिलोच्चये शैलः सागरैः सागरो यथा।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन्कुरुपाण्डवाः
ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः १३
यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः ।
अभवत्तव सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४
प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसन्धाय पाण्डूनां पञ्चालानां च वाहिनीं
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः
पाण्डवान्क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव
ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन्महाहवे ।
मुहूर्ताद्भास्करस्येव लोके राजन् गभस्तयः॥
तथाऽपरे द्योतमाना ज्योतींषीवामलाम्बरे ।
प्रादुरासन्महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः॥
चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः ।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मंडलानीव भास्वतः
शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ ।
दृष्ट्वाऽन्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपञ्चालसृञ्जयाः
यथायथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथातथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१
वध्यमानास्तदाऽस्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२
यथा हि शिशिरापाये दहेत्कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो॥
आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो ।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४
द्रवमाणं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम्॥
धृष्टद्युम्न पलायस्व
सह पाञ्चालसेनया ।
सात्यके त्वं च गच्छस्व
वृष्ण्यन्धकवृतो महान् ॥ २६
वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमं
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुतात्मनः ॥
संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान् ब्रवीमि वः
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥
भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे ।
विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे
कामः संपद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः
येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः ।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः ॥

१९९

तत इति ॥ १ ॥

येनाविष्टवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती॥
जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनः।
कवचेन तथा गुप्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च॥
येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः
येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः।
निवार्यमाणेनास्माभिरनुगन्तुं तदेषिताः॥
योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम्
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः॥
एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत्॥
शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिषेधे महात्मना॥
द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान्॥
यथायथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति
तथातथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः॥
निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान्॥
यस्त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसापीह केचन।
निहनिष्यति तान्सर्वान् रसातलगतानपि॥
ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत।
ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च॥
तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पांडवः
भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन्वचः॥ ४४
न कथंचन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित्
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः॥
गदयाऽप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे।
कालवत्प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन्॥
न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते॥
पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ।
समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ४९
नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह।
शक्रो यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः
अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वारणे॥
यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते।
अद्यैतत्प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु
अर्जुनार्जुन बीभत्सो
न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया।
शशाङ्कस्येव ते पङ्को
नैर्मल्यं पातयिष्यति॥ ५२

अर्जुन उवाच।

भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च
एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम्॥
एवमुक्तस्ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिंदमम्।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा॥ ५४
स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः।
निमेषमात्रेणासाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत्
ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तमभिभाष्य च।
अवाकिरत्प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः॥
पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्वमद्भिर्ज्वलनं रणे।
अवकीर्णोऽभवत्पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः
तस्य रूपमभूद्राजन्भीमसेनस्य संयुगे।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये॥ ५८
तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन्प्रतिसमस्यति।
अवर्धत महाराज यथाग्निरनिलोद्धतः॥ ५९
विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम्।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत्॥
ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले।
अवारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः॥
तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च।
तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथापतत्॥ ६२
हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तथा॥ ६३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९९॥

---

अस्माभिरस्मदीयैर्विदुरादिभिर्निवार्यमाणेन निषिध्यमानेनापि तद्वनमनुगन्तुं प्रवेष्टुं एषिता अनुमता नतु प्रतिषिद्धा इत्यर्थः ॥ ३५॥ सौहृदं कुर्वाण इति सानुशयम्॥ ३६॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९९

## २००

सञ्जय उवाच ।
भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वाऽस्त्रेण धनञ्जयः ।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥
नालक्षयत तत् कश्चिद्वारुणास्त्रेण संवृतम् ।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः ॥
साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः ।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः
यथा रात्रिक्षये राजन् ज्योतींष्यस्तागिरिं प्रति
समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४
स हि भीमो रथश्चास्य हयाः सूतश्च मारिष
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताऽभवन् ॥
यथा जग्ध्वा जगत्कृत्स्नं समये सचराचरम्
गच्छेद्वह्निर्विभोरास्यं तथाऽस्त्रं भीममावृणोत्
सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद्यथा चाग्निं दिवाकरः
तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवम् ॥
विकीर्णमस्त्रं तद्दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥
सर्वसैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान्महारथान् ॥
अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतां ततः॥ १०
ततस्तद्द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसंभवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ माययाऽविशतां तथा
न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहत्सोऽस्त्रजोऽनलः
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥
ततश्चकृषतुर्भीमं
सर्वशस्त्रायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं
नरनारायणौ बलात् ॥ १३
आकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद्घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४
तमब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्तसे ॥
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६
रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्व एव हि तावकाः
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय रथात्तूर्णमपाक्रम ॥
एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिमवर्तयत् ।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम्
यदाऽपकृष्टः स रथान्न्यासितश्चायुधं भुवि ।
ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशान्तं शत्रुतापनम्
सञ्जय उवाच ।
तस्मिन्प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च ॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥
व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत ।
बभौ भीमो निशापाये धीमान्सूर्य इवोदितः
हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत ।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥ २३
व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा ।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत् ॥ २४
अश्वत्थामन्पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत्प्रयोजय ।
अवस्थिता हि पञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः ॥
अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष ।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥
नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते ।
आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः ॥
एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् ।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप
पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान्मृत्युर्न निर्जयः
विजिताश्चारयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः
दुर्योधन उवाच ।
आचार्यपुत्र यद्येतद्द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते ।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥ ३०
त्वयि शस्त्राणि दिव्यानि
त्र्यम्बके चामितौजसि ।
इच्छतो न हि ते मुच्येत
संक्रुद्धो हि पुरंदरः ॥ ३१
धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते ।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत्पुनः

२००

भीमसेनमिति ॥ १ ॥

दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान् ।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३

सञ्जय उवाच ।

जानन्पितुः स निधनं सिंहलाङ्गूलकेतनः।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम्
अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ ।
पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५
धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् ज्वलन्तमिव पावकम्
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन्विव्याध पत्रिणाम्
सारथिं चास्य विंशत्या
स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
हयांश्च चतुरोऽविध्य-
चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ ३७
विद्ध्वा विद्ध्वाऽनदद्द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम्
आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ३८
पार्षतस्तु बली राजन्कृतास्त्रः कृतनिश्चयः ।
द्रौणिमेवाभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥
तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ४१
द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां
क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य
द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२
व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चानुचरान्सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः
ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशांपते ।
संभ्रान्तरूपमार्तं च न परस्परमैक्षत ॥ ४४
दृष्ट्वा तु विमुखान्योधान्धृष्टद्युम्नं च पीडितम्
शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५
अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६
विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ४७
स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् ।
हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम्
एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः ।
शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ ४९
एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः ।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत्

दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
कृतवर्माऽथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः
ततः स सात्यकी राजन्सर्वानेव महारथान्
विरथान्विमुखांश्चैव क्षणेनैवाकरोन्नृप ॥ ५३
अश्वत्थामा तु संप्राप्य चेतनां भरतर्षभ ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः
अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परंतपः ।
सात्यकिं वारयामास किरञ्शरशतान्बहून्॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे ।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः ॥ ५६
ततस्ते पाण्डवा राजन् दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम्
शंखशब्दान्भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥
एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान्महारथान् ५८
अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः
पञ्चायुतानि चाश्वानां शकुनेर्निजघान ह५९
ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान् ।
सात्यकिं प्रतिसंक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ६०
पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः ।
अदारयत्क्रूरतरैः पुनः पुनररिंदम ॥ ६१
सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥
शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि
न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च॥
शपेऽऽत्मनाऽहं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपञ्चालान्यदि शान्तिमहं लभे ॥
यद्बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद्बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान्
एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत्सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः६६
स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम्
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन्बिलमिवोरगः
स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ॥ ६८
सीदन् रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ॥ ६९
अथान्येन सुपुङ्खेन शरेणानतपर्वणा ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परंतपः ॥ ७०

स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससादाथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम्
तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम् ।
जवेनाभ्यद्रवञ्शूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः ७२
किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ॥ ७३
एते हाहाकृताः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन्
ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन्सर्वतः समम् ७५
आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः
चिच्छेद युगपद्द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान्
सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ७७
ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः
युगपच्च पृथक्चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ७८
युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ७९

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान
द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भि-
र्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवं च ॥८०
सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भि-
र्द्वाभ्यां विद्ध्वा कार्मुकं च ध्वजं च ।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा
द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१
तस्यास्यतस्तान्निशितान्पीतधारान्
द्रौणेः शरान्पृष्ठतश्चाग्रतश्च ।
धरा वियद्द्यौः प्रदिशो दिशश्च
छन्ना बाणैरभवन्घोररूपैः ॥ ८२
आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः
सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्य-
स्त्रिभिः शरैर्युगपत्संचकर्त ॥ ८३
स पौरवं रथशक्त्या निहत्य
छित्त्वा रथं तिलशश्चास्य बाणैः ।
छित्त्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ
भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ८४
युवानमिन्दीवरदामवर्णं
चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य
बाणैस्त्वरावान्प्रज्वलिताग्निकल्पै-
र्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ८५
मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम् ।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ८६
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत्परम् ।
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः ८७
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परंतपः ।
ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ८८
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः ।
ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ८९
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा
तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः
तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ

अवर्षतां शरवर्षं
वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ।
भीमनामाङ्किता बाणाः
स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ९२

द्रौणिं संछादयामासुर्घनौघा इव भास्करम् ।
तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः सन्नतपर्वभिः ॥ ३
अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः ।
स छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना
न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान्
नाराचान्दश संप्रैषीद्यमदण्डनिभाञ्छितान्
ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष ॥ ९६
निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः
सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पांडवेन महात्मना
ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने ।
स मुहूर्तात्पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप
क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः ।
दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥
वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति ।
तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम्
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत ।
भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयत्

तूर्णं प्रासृजदुग्राणि
शरवर्षाणि पाण्डवः ।
ततो द्रौणिर्महाराज
छित्त्वाऽस्य विशिखैर्धनुः ॥ १०२

आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे ।
जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्षिणौ ॥
अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ।
तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥
अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम्
भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्तिकात्
शरद्यहर्मध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥ ७
आददानस्य विशिखान्संदधानस्य चाशुगान्
विकर्षतो मुञ्चतश्च नान्तरं ददृशुर्जनाः ॥ ८
अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् ।
द्रौणेरासीन्महाराज बाणान्विसृजतस्तदा
धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः
आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवायतीः ॥
ते तु द्रौणिविनिर्मुक्ताः शरा हेमविभूषिताः
अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥
तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
बलं वीर्यं प्रभावं च व्यवसायं च भारत ॥१२
तां स मेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः ।
जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥
द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥ १४
तद्रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महारणे ।
विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवापरम् ॥
तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः
संछादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥
तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष ।
वायुरप्यन्तरा राजन्नाशक्नोत्प्रतिसर्पितुम् ॥
तथा द्रौणिर्महाराज शरान्हेमविभूषितान् ।
तैलधौतान्प्रसन्नाग्रान्प्राहिणोद्वधकाङ्क्षया ॥
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन्द्रोणसुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः ।
व्यसृजद्बलवान् क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥
ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम् ।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित्
शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः सङ्ख्ये पराभिनत् ।
स छिन्नधन्वा बलवान् रथशक्तिं सुदारुणाम्
वेगेनाविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति ।
तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम्
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः
ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम्
ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा ।
सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः
व्यामोहमगमद्राजन्रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्
ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम्
तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥ २८
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः ।
ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः संप्राद्रवन्दिशः
तान्प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरान्
अभ्यवर्तत वेगेन कालयन्पाण्डुवाहिनीम् ।
ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण पार्थिवाः ॥
द्रोणपुत्रभयाद्राजन्दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामपराक्रमे
द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायां द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

## २०१

सञ्जय उवाच ।

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १
ततस्ते सैनिका राजन्नैव तत्रावतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन च ॥
एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च संधाय कौरवान्संन्यवर्तत ॥ ३
ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।
सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥
या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर्द्वेषोऽस्मासु च यच्च ते
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत् सर्वं मयि दर्शय
स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः
कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम् ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम्
दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्वृत्तस्य संयुगे ७

धृतराष्ट्र उवाच ।

आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि सञ्जय।
प्रीतिर्धनञ्जये चास्य प्रियश्चापि महात्मनः ८
न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात्स कौन्तेयः सखायं रूक्षमुक्तवान्

सञ्जय उवाच ।

युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे ।
इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १०
धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते ।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ११
अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो ।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत १२
तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान् ।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥ १३
एवमुक्तः श्वसन् क्रोधान्महेष्वासतमो नृप ।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा गिरा १४
द्रौणिश्चुकोप पार्थाय
कृष्णाय च विशेषतः ।
स तु यत्तो रथे स्थित्वा
वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे ।
दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याचार्यनन्दनः १६
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम्
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा १७
ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत ।
पावकार्चिः परीतं तत्पार्थमेवाभिपुप्लुवे ॥
उल्काश्च गगनात्पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे ।
तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम्॥ १९
रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरतिसङ्गताः ।
ववुश्चाशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च
वायसाश्चापि चाक्रन्दन्दिक्षु सर्वासु भैरवम्
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥
पक्षिणः पशवो गावो विनेदुश्चापि सुव्रताः ।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥
भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम् ।
त्रैलोक्यमभिसंतप्तं ज्वराविष्टमिवाभवत् २३
अस्त्रतेजोभिसंतप्ता नागा भूमिशयास्तथा ।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥
जलजानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत।
न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः २२
दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद्भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः
उच्चावचानि पेतुर्वै गरुडानिलरंहसैः ॥ २३
तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः ।
प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः २७
दह्यमाना महाभागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
नदन्तो भैरवान्नादाञ्जलदोपमानिःस्वनान् २८

---

२०१

यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयं जगदिति स्मृतौ दार्ष्टान्तिकं जगतो विष्णुमयत्वं पूर्वयोः पर्वणोर्विष्णोर्विश्वरूपप्रकाशनेन व्याख्यातम् । अथ दृष्टान्तीकृतं विष्णोः शिवमयत्वं व्याचिख्यासुः शतरुद्रियमारभते-तदुपोद्घातत्वेनाश्वत्थाम्नाभिभवं तावद्दर्शयति-**तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वेत्यादिना** ॥ १ ॥ ततस्ते तव ॥ २ ॥ सोमकावयवैः सोमकानामवयवरूपैर्माण्डलिकैः ॥ ३ ॥ उद्वृत्तस्य उच्छास्त्रवर्तिनः ॥ ७ ॥ युवराजे चेदिपतौ ॥ १० ॥ अन्तर्भेदे हृदयवैक्लव्ये । दुःखं पुत्रवधादिजम् ॥ १२ ॥ अश्लीलं जुगुप्सितम् । अप्रियं परुषम् ॥ १३ ॥ प्रयतात्मानो योगिनोऽपि समाधिच्युता बभूवुरित्यर्थः ॥ २२ ॥ आवर्तितदिवाकरं विश्वं सर्वं भ्रमतीवेत्यमन्यतेत्यर्थः ॥ २३ ॥

अपरे प्रद्रुता नागा भयत्रस्ता विशांपते ।
त्रेसुर्दिशो यथा पूर्वं वने दावाग्निसंवृताः २९
द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष ।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि भारत ३०
अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः ।
तत् सैन्यं भयसंविग्नं ददाह युधि भारत ३१
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ।
दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ३२
प्रहृष्टास्तावका राजन्सिंहनादान्विनेदिरे ।
ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टा-
स्तावका जितकाशिनः ।
कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन्
सव्यसाची च पाण्डवः ॥ ३४
तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे ।
नैव नस्तादृशं राजन्दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ३५
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा ।
अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३६
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ।
ततो मुहूर्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह३७
प्रववौ चानिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः
तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम्
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ।
ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ
सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ।
ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाक्षतावुभौ
सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ सरथो युक्तस्तावकानां भयंकरः ॥
ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ४२
हताविति तयोरासीत्सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाऽभ्यागतौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ॥
तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान्पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशं
विमुक्तौ च महात्मानौ
दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास
किं त्वेतदिति मारिष ॥ ४५
चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाभवत्ततः ॥

[ सञ्जय उवाच । ]

ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा
रथात्प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग्धिक्सर्वमिदं मिथ्ये-
त्युक्त्वा संप्राद्रवद्रणात् ॥ ४७
ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम्
वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ॥
तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वहम् ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥
भो भो माया यदृच्छा वा
न विद्मः किमिदं भवेत् ।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या
मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ५०
अधरोत्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः ।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ 'कालो हि दुरतिक्रमः'
नासुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः
न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथंचन ॥ ५२
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तु-
मेतदस्त्रं मयेरितम् ।
तदिदं केवलं हत्वा
शान्तमक्षौहिणीं ज्वलत् ॥ ५३
सर्वघाति मया मुक्तमस्त्रं परमदारुणम् ।
केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नावधीत्केशवार्जुनौ॥
एतत्प्रब्रूहि भगन्मया पृष्टो यथातथम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वमेतन्महामुने ॥ ५५

व्यास उवाच ।

महान्तमेवमर्थं मां यं त्वं पृच्छसि विस्मयात्
तं प्रवक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु
योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत्
स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमास्थितः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसन्निभः ५८

---

त्रेसुः शब्दं चक्रुः । यथा वने इति सम्बन्धः ॥ २९ ॥ युगान्ते प्रलये । संवर्तकः संहारकः ॥ ३२ ॥ तमोनुदौ चन्द्रसूर्यौ ॥ ४० ॥ तयोर्विषये ॥ ४३ ॥ वेदानां व्यासं आवासस्थानमभेदेन विभाजकम् । सरस्वत्या अज्ञोपवेदस्मृत्यादिरूपाया आवासम् । व्यासमिति पाठे विस्तारम् ॥४८॥ कुरवो धृतराष्ट्राद्यास्तेषां कुलोद्वहम् ॥ ४९ ॥ मायानष्टयोरप्यनष्टत्वेन दर्शनम् । यदृच्छा अस्त्रशक्तेरनियमः ॥ ५० ॥ अधरोत्तरं विपरीतम्॥५१॥ शिशिरं गिरिं हिमाचलम्॥५८॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
अशोषयत्तदाऽऽत्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः
अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत्पुनर्महत् ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥६०
स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाऽभवत् ।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम्
ददर्श भृशदुर्धर्षं सर्वदेवैरभिष्टुतम् ।
अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ॥ ६२
रुद्रमीशानवृषभं हरं शंभुं कपर्दिनम् ।
चेकितानं परां योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥

दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं
महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् ।
दिव्यं चापमिषुधी चाददानं
हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ६४
पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं
परश्वधिं गदिनं चायतासिम् ।
शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं
व्याघ्राजिनं परिघिणं दण्डपाणिम् ॥
शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं
विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसङ्घैः ।
एकीभूतं तपसां सन्निधानं
वयोतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६
जलं दिशं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ
तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च ।
नालं द्रष्टुं यं जना भिन्नवृत्ता
ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६७
यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः
क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः ।
तं निष्पतन्तं तपसा धर्ममीड्यं
तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श ।

दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः
संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ ६८
अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम्
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसंभवम्
वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।
क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥ ७०
अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् ।
अभिवाद्याथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने ।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

त्वत्संभूता भूतकृतो वरेण्य
गोप्तारोऽस्य भुवनस्यादिदेव ।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्
पुरा पुराणीं तव देवसृष्टिम् ॥ ७२
सुरासुरान्नागरक्षःपिशाचा-
न्नरान्सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् ।
पृथग्विधान्भूतसङ्घांश्च विश्वां- *
स्त्वत्संभूतान्विद्म सर्वांस्तथैव ।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं
पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम्॥७३
रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः
स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी ।
कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च
त्वत्संभूतं स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥७४
अद्भ्यः स्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं
ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः ।
एवं विद्वान्प्रभवं चाप्ययं च
मत्वा भूतानां तव सायुज्यमेति ७५
दिव्यामृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ
वाचा शाखाः पिप्पलाः सप्त गोपाः
दशाप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति
त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यः परो हि ॥

ब्रह्मभूतो ब्रह्मवदत्यन्तं निर्लेपः । ईश्वरं निमित्तं योनिमुपादानम् । पतिं पालयितारम् ॥ ६१ ॥ ईशानानां ब्रह्मादीनामपि वृषभं श्रेष्ठं कपर्दिनं जटाजूटवन्तं चेकितानं चेतयन्तम् । परां प्रकृष्टां योनिमधिष्ठानं तिष्ठतः स्थावरस्य, गच्छतो जंगमस्य ॥ ६३ ॥ दुर्वारणं दुर्निषेधं दुर्दृशं विरूपाक्षम्। तिग्ममन्युं तीव्रकोपं दुष्टेषु। प्रचेतसं उदारचित्तं साधुषु ॥ ६४ ॥ परश्वधिनं परश्वधवन्तम् ॥ ६५ ॥ वयोतिगैर्वृद्धैः ॥६३॥ जगत्प्रमिमाणं परिमापयंतं कालम् । यं भिन्नवृत्ता दुराचाराः द्रष्टुं नालम् । यतो ब्रह्मद्विषघ्नम् । अमृतस्य मोक्षस्य योनिं कारणम् ॥ ६७ ॥ ददर्श वासुदेव इत्युत्तरेण संबंधः ॥ ६८ ॥ भूतकृतः प्रजापतयः हे वरेण्य मोक्षकामैर्वरणीय ॥ ७२ ॥ ऐंद्रं इंद्रदैवत्यं कर्म तुभ्यं त्वदर्थमेव सर्वेषां देवानां नाम्ना त्वमेव तर्पणीय इत्यर्थः ॥ ७३ ॥ आकाश इति लुप्तविभक्तिकम् । स्वाद्यं रसः ब्रह्म वेदाः यज्ञाश्च स्थास्नु स्थावरं चरिष्णु जङ्गमम् ॥ ७४ ॥ अद्भ्यः समुद्रेभ्यः स्तोकाः वर्षबिन्दवः संक्षये प्रलये एकार्णवे सायुज्यं ऐक्यम् ॥७५॥ रूपं ज्योतिरिति द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां सर्वस्य ब्रह्मप्रभवत्वं ब्रह्मप्रलयत्वं चोक्तम् । इह सर्वस्मादन्यद्ब्रह्मणो रूपं विविनक्ति **दिव्येति** । दिवि हार्दाकाशे भवौ दिव्यौ शुद्धाशुद्ध-

* जगदुदरवासिन इत्यर्थः ।

भूतं भव्यं भविता चाप्यधृष्यं
त्वत्संभूता भुवनानीह विश्वा ।
भक्तं च मां भजमानं भजस्व
मा रीरिषो मामहिताहितेन ॥ ७७
आत्मानं त्वामात्मनो न व्यबोधं
विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम् ।
अस्तौषं त्वां तव संमानमिच्छन्
विचिन्वन्वै सदृशं देववर्य ।
सुदुर्लभान्देहि वरान्ममेष्टा-
नभिष्टुतः प्रविकार्षीश्च मायाम् ७८
व्यास उवाच ।
तस्मै वरानचिंत्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृत्
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ७९
श्रीभगवानुवाच ।
मत्प्रसादान्मनुष्येषु देव-गन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ८०
न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः
न कश्चित्त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति॥
न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना ।
न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च॥८३
कश्चित्तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात्कथञ्चन ।
अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः॥
एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद्विद्धि शौरिणा ।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ८५
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६
तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी ।
लोकयात्राविधानार्थं सञ्जायेते युगे युगे ॥८७
तथैव कर्मणा कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च ।
तेजो मन्युं च विप्रंस्त्वं जातो रौद्रो महामते
स भवान्देववत्प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत् ।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥
शुभ्रमत्र हविः कृत्वा महापुरुषविग्रहम् ।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥ ९०
स तथा पूज्यमानस्ते
पूर्वदेहेऽप्यतूतुषत् ।
पुष्कलांश्च वरान्प्रादा-
त्तव विद्वन् हृदि स्थितान् ॥ ९१
जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः ।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां युगे युगे

---

सत्त्वप्रधानायां मूलप्रकृतौ मायाविद्याख्यायां चित्प्रतिबिम्बाविति यावत् । तौ च तावावृतौ दिव्यावृतौ ईश्वरजीवौ । अथापि मानसौ मनस्येव शास्तृशास्यभावेनाभिव्यक्तौ द्वौ सुपर्णौ पक्षिवदुपाध्यसंगिनौ तयोरधिष्ठेयाः सप्त पिप्पला अश्वत्थाः । वाचा शाखाः वाङ्मात्रेण शाखावत् । खे आकाशे शेरते ते शाखाः। 'शाखाः खशयाः' इति **यास्कः** 'वाचारंभणं विकारः' इति श्रुतेरनृता इत्यर्थः । महदहंकारपञ्चतन्मात्राख्याः प्रकृतीमानसौ प्रागुक्तौ । ताभ्यां सहैकादश । तथा दश इन्द्रियाणि तेषामेकादशानां गोप्तारः गोप्तेति पाठे एकवचनमार्षम् । तानि हि संसाराश्वत्थमूला वासना वर्धयन्ति । के ते दश ये पुरं पाञ्चभौतिकं शरीरं धारयन्ति तेभ्यश्च षड्विंशतेरन्यः परमात्मा सप्तविंशस्त्वमसीत्यर्थः ।। ७६ ।। **भूतमिति** । संभूता संभूतानि । विश्वा विश्वानि । उभयत्र सुपश्छान्दसोऽड्डादेशः । भजस्व इष्टकामपूरणेन पालय। मा रीरिषः मा हिंसीः मां केन अहिताहितेन अहितानां कामादीनां आहितं आधानं मच्चेतसि प्रवेशनं तेनेत्यर्थः ।। ७७ ॥ **आत्मानमिति** आत्मनो जीवस्य आत्मानं निरुपाधिस्वरूपं प्रत्यञ्चमत एवानन्यबोधं नास्ति अन्योऽहंकारादिर्बोधो यस्मिंस्तमनन्यबोधमनन्यभावमिति पाठेऽपि स एवार्थः । एतादृशं त्वां विद्वान् शुक्रं उपाध्यसंपर्कान्निरवद्यं ब्रह्म गच्छति प्राप्नोति उपाधिप्रहाणेन । अहं तु अहंकारविशिष्टस्तव शंभोः संमानमर्चनं कर्तुमिच्छंस्त्वामस्तौषं स्तुतवानस्मि । कीदृशं सदृशं स्तुतियोग्यं त्वां विचिन्वन् अन्वेषयन् । स्वरूपामिति पाठे स्वधर्मरूपं स्वधर्मप्राप्यं हे देववर्य ईशस्यापि त्वं दुराधिगम इत्यर्थः । मायां च प्रविकार्षीः प्रकर्षेण विकृतवानसि । तां मामुद्दिश्य मा प्रविकार्षीरित्यनुषङ्गेणान्वयः ।। ७८ ॥ अर्हते योग्याय ऋषिणा नारायणेन संस्तुतः ।। ७९ ॥ वियोनिजाः सिंहव्याघ्रादयः ॥ ८२ त्रसेन जंगमेन ॥ ८३ ॥ गत्वा प्राप्य ॥ ८४ ॥ पूर्वदेवानां ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मध्ये एतौ विष्णुरूपिणावृषी नरनारायणौ परमोचितौ अत्यन्ततपःसंपन्नौ ।। ८७ ॥ देववत् नारायणवत् अवाकर्षः अवमतं कृशं कृतवानसि आत्मानं शरीरम् ॥ ८९ ॥ शुभ्रं दीप्तिमत् ।। ९० ॥ तयोर्नरनारायणयोः। अथापि तव तयोश्च विशेषहेतुं शृणु इत्याह—**ताभ्यामिति** । लिंगे सूक्ष्मशरीरे। अर्चायां प्रतिमायाम्। अयं भावः—'चतुर्णां सन्निधानेन यत्फलं तद-

सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा
लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम् ।
आत्मयोगाश्च तस्मिन् वै
शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः ॥ ९३
एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत्॥९४
स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसंभवः ।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ९५
सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः ।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः॥

सञ्जय उवाच ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः ।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९९
हृष्टरोमा च वश्यात्मा सोऽभिवाद्य महर्षये ।
वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत् ॥ ९८
ततः प्रत्यवहारोऽभूत्पाण्डवानां विशांपते ।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते
युद्धं कृत्वा दिनान्पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीं
ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये शतरुद्रीये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

## २०२

धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥
सञ्जय उवाच ।
तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ २
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम् ।
यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३
अर्जुन उवाच ।
संग्रामे न्यहनं शत्रूञ्शरौघैर्विमलैरहम् ।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४
ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते ।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने॥
तेन भग्नानरीन्सर्वान्मद्भग्नान्मन्यते जनः ।
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम्॥
भगवंस्तन्ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः ।
शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥ ७
न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥
व्यास उवाच ।
प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम् ।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शंकरम् ।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १०

---

शाश्वतम् । द्वयोस्तु सन्निधानेन शाश्वतं प्राप्यते पदम्' इति **दक्षस्मृतेः** । प्रतिमायां शिवार्चकस्य आत्ममनइंद्रियविषयाणां चतुर्णां सान्निध्यमस्ति । लिंगे तदर्चकस्य तु आत्ममनसोर्द्वयोरेव सान्निध्यमस्तीति तयोरर्चकत्वसाम्येऽपि प्रकारभेदात्फलभेदभागितेति ॥९२॥ लिंगार्चनादेव सर्वं ब्रह्मेति जानातीत्याह-**सर्वेति** । ज्ञात्वा शास्त्रात् पूर्वं ज्ञात्वा पश्चादनुभवेनापि जानातीत्यर्थः । अत एव कृष्णे आत्मयोगाख्यं जीवब्रह्मैक्यविज्ञानं शास्त्रयोगाख्यं परोक्षज्ञानं च तत्कारणीभूतं पुष्कलमस्तीत्याह-**आत्मेति** ॥९३॥कृष्णः भक्तानां सहेतुकं संसारं कर्षतीति योगात्स एवाराध्यः९५॥ महर्षये व्यासाय॥ ९९ ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि टीकायामेकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

२०२

**तस्मिन्निति** । तदेवं विष्णोः शिवमयत्वं व्याख्याय विष्णुत्राणात्तन्मयस्य जगतस्त्राणमपि शैवमेव कर्मेत्युक्तम् । तस्मिन्नित्यत आरभ्य पर्वसमाप्तिपर्यन्तस्य ग्रन्थस्य तात्पर्यमपि भूभारावतारहेतुरपि शिव एवेति ॥ १ ॥ यदृच्छया दैवेन॥ ३ ॥ न्यहनं शत्रूनित्यत्र निघ्नतः शत्रूनिति पाठे शरौघैः शत्रून्निघ्नत ममाग्रतो यान्तं पुरुषमहं लक्षये इत्यन्वयः ॥ ४ ॥ प्रजानां सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वेन पतीनां ब्रह्मविष्णुरुद्राणां प्रथमं प्रथयितारं कारणमित्यर्थः। तैजसं स्वार्थे तद्धितः चिन्मात्ररूपं पुरुषं सर्वपूर्षु शरीरगुहासु शयानमत एव प्रभुमन्तर्यामित्वेन शास्तारं भुवनं द्यौः भूः पृथिवी भुवमन्तरिक्षं त्रैलोक्यशरीरमित्यर्थः । देवं द्योतमानं सर्वलोकेश्वरम् । प्रभुमिति राजवद्बहिः स्थित्वापि नियमयन्तमित्यर्थः ॥ ९ ॥ ईशानमनन्याधिपतिं वरदं श्रेष्ठानामपि खण्डयितारं भुवनेश्वरं भुवनव्यापिनम् ॥१०॥

महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम् ।
त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥
महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम् ।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥
जगद्योनिं जगद्बीजं जयिनं जगतो गतिम् ।
विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं यशस्विनम्
विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम् ।
शंभुं स्वयंभुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥
योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ।
सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५
लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम् ।
शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥
शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम् ।
सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्म-मृत्यु-जरातिगम् १७
ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम् ।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान्वरान्॥
तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः
महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथाऽपरे।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥२०
ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः ।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः
तस्मिन्घोरे सदा पार्थ संग्रामे रोमहर्षणे ।
द्रौणि-कर्ण-कृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः॥
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसाऽपि प्रधर्षयेत्।
ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपान्महेश्वरात् ॥२३

स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते ।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२४
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥
तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि
ये चान्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः
ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७
इहलोके सुखं प्राप्य ते यांति परमां गतिम् ।
नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९
याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शंकराय च
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥३०
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च ।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ ३१
बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥
गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे ।
हिरण्यबाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ॥
पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः ॥३४
वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ॥
बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे ।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३६

---

जटिलं शिखिनमिति रूपभेदाभिप्रायेण विशेषणद्वयं योज्यम् ॥ ११ ॥ जगत्प्रीतिं जगदानन्दकरम् । अधीश्वरमीश्वरादप्यधिकं निरुपाधिचिन्मात्रमित्यर्थः ॥ १२ ॥ जगद्योनिं जगद्बीजमिति जगतां मातृपितृरूपम् ॥ १३ ॥ विश्वनरं विश्वस्य नेतारम् भूतस्य भव्यस्य भवस्य वर्तमानस्य चोद्भवम् ॥ १४ ॥ योगं कर्मयोगादिरूपम् । योगेश्वरं योगिनामीशं योगानां फलप्रदं वा सर्वं सर्वात्मकम् ॥१५ सुदुर्जयम् अत्यन्तं दुष्प्रापमनधिकारिभिः ॥ १७ ॥ ज्ञानात्मानं ज्ञानस्वरूपं ज्ञानगम्यं पराविद्याप्राप्यं ज्ञानश्रेष्ठं चिन्मात्ररूपत्वेनैव प्रशस्यतमम् । अत एव सुदुर्विदमविषयत्वाद्दुर्ज्ञेयम् ॥ १८ ॥ पारिषदा गणाः ॥ १९ ॥ प्रधर्षयेत् अभिभवेत् ॥ २३ ॥ भक्ताः भजन्त इति भक्ताः ॥ २७ ॥ नमस्करणं प्रह्वीभावस्तं कुरुष्व । शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय कनिष्ठाय सूक्ष्मायेति प्राञ्चः।कनी दीप्तौ दीप्ततमाय ॥ २८ ॥ हर्यक्षः पिंगाक्षः कुबेरः ॥ २९ ॥ याम्याय यामकर्त्रे कालाय । अव्यक्तकेशाय अव्यक्तं मायाशबलं केशवद्रश्मिमात्रं यस्य । सद्वृत्ते भक्ते शंकराय सुखकराय ॥ ३० ॥ मुण्डाय यजमानमूर्तित्वात् । कृशाय तपोनिष्ठत्वात् उत्तारणाय संसारादिति शेषः।रंहसे वेगवते ॥३१ सर्वे अयाः शुभावहा विधयः प्रियाः यस्य । तस्मै सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे सोमाय वाससः सोमदैवत्यत्वात् उष्णीषिणे शिरोवेष्टनवते मीढुषे वृष्टिकर्त्रे ॥ ३२ ॥ गिरिशाय पर्वतशायिने । चीरं वल्कलं हिरण्यबाहवे सुवर्णालंकृतभुजाय ॥ ३३ ॥ वृक्षैर्वृश्चनयोग्यैर्देहैरावृतकायाय आच्छादितस्वरूपाय मध्यमाय अन्तर्यामिणे स्रुवहस्ताय अध्वर्यवे भार्गवाय रामाय॥ ३५॥ मुंजो वल्कलं तृणतन्तवो वा तन्मयवाससे ॥ ३६ ॥

सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ।
शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् ।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ॥
कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३९
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४०
महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ४१
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम्
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ।
नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ॥
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने ।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ४४
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः ।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने ।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने
नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः ।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७
मातॄणां पतये चैव गणानां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ४८
अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ।
कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः
तानि ते कीर्तयिष्यामि
यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
न सुरा नासुरा लोके
न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः ।
दक्षस्य यजमानस्य विधिवत्संभृतं पुरा ५२
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत्तदा ।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ५३
ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ ५४
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः ।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५
आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकंपे च वसुन्धरा ।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः
अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः
जघ्निवान्सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः
चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च ।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ५८
पूषाणमभ्यद्रवत शंकरः प्रहसन्निव ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान् वै व्यशातयत् ॥
ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते ।
पुनश्च संदधे दीप्तान्देवानां निशिताञ्शरान्

---

अव्यग्रमनाकुलम् ॥ ३८ ॥ कपर्दिनं जटाजूटवन्तम् । वृषावर्तं वृषाणां श्रेष्ठानां ब्रह्मादीनामावर्तयितारम् । तानपि भ्रामयन्तं माययेत्यर्थः । वृषनाभं सर्वलोकाश्रयत्वेन प्रशस्ततमगर्भम् । वृषध्वजं* नन्दिवाहनम् । वृषदर्पं वृषः समर्थस्त्रैलोक्यसंहारक्षमो दर्पोऽहंकारो यस्य तम् । वृषस्य धर्मस्य पतिम् । तत्फलप्रदातृत्वेन वृषो धर्म एव परात्परस्यो विश्ववपुषः शृंगभूत उच्चतरो यस्य तम् । अत एव वृषर्षभं वृषाणां फलवर्षिणामिन्द्रादीनामृषभं श्रेष्ठम् ॥ ३९ ॥ वृषो बलीवर्दोऽङ्के ध्वजे यस्य तं वृषाङ्कम् । वृषभोदारं वृषभेषु धर्मेण भासमानेषु उदारं बहुफलप्रदम् । अत एव वृषभं वृषेण धर्मेण निमित्तेन भानं साक्षात्कारो यस्य तं वृषभं योगधर्मैकगम्यम् । वृषभेक्षणं स्पष्टार्थम् । वृषायुधं श्रेष्ठप्रहरणम् । वृषो विष्णुः शरो यस्य तं वृषशरम् । वृषभूतं धर्मैकवपुषम् । वृषस्य दक्षयज्ञस्येश्वरं नियन्तारम् ॥ ४० ॥ महदनेककोटिब्रह्माण्डाश्रयभूतमुदरं यस्य तं महोदरम् । महाकायं त्रैलोक्यशरीरं द्वीपिचर्मनिवासिनं व्याघ्रचर्मणा नितरां छादितम् ॥ ४१ ॥ खड्गधरं खड्गमात्रधरम् ॥ ४२ ॥ सुधन्विने शोभना धन्विनो धनुर्धराः पार्षदा अस्य सन्ति तस्मै । स्वयमपि धनुर्धराय । अत एव प्रियधन्वाय धनुःप्रियाय । धन्वधनुःप्रेरकत्वेनास्यास्तीति तस्मै बाणाय ॥ ४४ ॥ धन्वन्तराय धनुषि अन्तरे मध्येऽस्तीति धन्वन्तरं मौर्वी तद्रूपाय । सन्धिरार्षः । धनुषे धनुःस्वरूपाय । धन्वाचार्याय धनुर्वेदगुरवे ॥ ४५ ॥ भगघ्नाय भगनेत्रभिदे ॥ ४७ ॥ गुहागताः पातालगता अपीत्यर्थः । न सुखमेधन्तीत्युक्तं तदेवाह-**दक्षस्येत्यादिना** ॥ ५२ ॥ तमसा संवृता न प्राकाशन्त न प्राज्ञायन्त ॥ ५७॥ चक्रुर्ऋषय इति संबन्धः ॥ ५८ ॥ पूषाणं पूषणम् ॥ ५९ ॥ नता लीनाः सन्तः निश्चक्रमुर्यज्ञदेशादपक्रान्ताः देवानां लीनानामपि वधायेति शेषः ॥ ६० ॥ * गत्यर्थध्वजते रूपम् ।

सधूमान्सस्फुलिङ्गांश्च
विद्युत्तोयदसन्निभान् ।
तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे
प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ६१
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन्
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ ६२
तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः सन्धितस्तदा ।
भग्नाश्चापि सुरा आसन् भीताश्चाद्यापि तं प्रति
असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ६४
सौवर्णं कमलाक्षस्य
तारकाक्षस्य राजतम् ।
तृतीयं तु पुरं तेषां
विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ६५
न शक्तस्तानि मघवान् भेत्तुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः॥ ६६
ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः ।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः ॥ ६७
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात्ते वरदर्पिताः ।
त्वदृते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथञ्चन ॥ ६८
हन्तुं दैत्यान्महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विषः
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु॥ ६९
निपातयिष्यसे चैतानसुरान् भुवनेश्वर ।
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया
गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः ७१
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक्
अणी कृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम्॥ ७३
योक्त्राङ्गानि च सत्त्वानि
कृत्वा शर्वः प्रतापवान् ।
वेदान् कृत्वाऽथ चतुर-
श्चतुरश्वान्महेश्वरः ॥ ७४
उपवेदान् खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः ।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः ॥
कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम् ।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिं
विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च ।
वायुं कृत्वाऽथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम्
विद्युत्कृत्वाऽथ निश्राणं मेरुं कृत्वाथ वै ध्वजं।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥७८
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः ।
असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ७९
स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ८०
अतिष्ठत्स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् ।
यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च८१
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ।
पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम्॥
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ।
पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम्॥

---

तं शरान्मुञ्चन्तमिति शेषः ॥ ६१ ॥ अतिकोपेन अतिक्रान्तकोपेन शान्तेनेत्यर्थः । ततःप्रभृति पूर्वं भग्नाः सन्तोऽद्यापि भीताः सन्तीत्यर्थः ॥ ६३ ॥ वंशध्वजौ अल्पौ ध्वजौ पार्श्वद्वयस्थौ । महाध्वजस्तु मेरुरिति वक्ष्यते ॥ ७१ ॥ अणी युगान्तबन्धने द्वौ नागौ । यूपं युगं अवनाहं त्रिवेणुयुगबन्धनरज्जुम् ॥ ७३ ॥ योक्त्राणि । अङ्गानि चाकर्षादीनि । सत्त्वानि सरीसृपपर्वतादीनि च ७४ उपवेदान् आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्ववेदपश्चिमाम्नायान् । खलीनान् कडीयाळीतिप्रसिद्धान् ।गायत्रीसावित्र्यौ प्रग्रहं रश्मीन् ॥ ७५ ॥ वाजाभ्यां पक्षाभ्यां पक्षयोरित्यर्थः ॥ ७७ ॥ विद्युत् विद्युतं निश्राणं निशितम् ॥ ७८॥ स्थानं स्थीयतेऽस्मिन्निति योगाद्व्यूहम् ॥ ८० ॥ स्थाणुरचलः समेतानि [illegible]तानि ॥८१॥ त्रिपर्वणा त्रीणि विष्णुवायुवैवस्वता- [illegible] पर्वाणि यस्य तेन। त्रिशल्येन गार्ह-पत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयरूपाग्नित्रयशल्येन ॥ ८२ ॥पुराणीत्यादिसार्धः । पूर्वं दक्षयज्ञविध्वंसनमुक्तं तस्य तात्पर्यम्-ईश्वरेऽनर्पितो यज्ञो विध्वंसते । ततश्च यज्ञकर्ता ऋत्विजश्च नश्यंतीत्युक्तं तेनेश्वरप्रीत्यर्थं कर्माणि कार्याणीति दर्शितम् । ततस्त्रिपुरवध उक्तस्तस्य तात्पर्यं स्थूलसूक्ष्मकारणानि त्रीणि शरीराणि पुराणि क्रमाद्बहुप्रीत्यल्पसुखकरत्वाभ्यां मोहमयत्वेन च सौवर्णराजतायसानि । कामादयोऽसुराः शमादयो देवास्तेषां प्रीतिकरो रुद्र आत्मा शरीरं पृथिव्याख्यं रथमास्थाय तस्य चालके चन्द्रसूर्याख्ये मनश्चक्षुषी चक्रे । वेदाश्च गम्यस्थानप्रापकत्वेन हयाः शरो विष्ण्वधिष्ठिता सूक्ष्मबुद्धिस्तदैकाग्र्येण शरीरत्रयभेदे तुर्ये ब्रह्मणि साक्षात्कृते सति कामादयो नश्यन्ति फलभूताश्च शमादयो वर्धन्ते । तेषु च वर्धमानेषु रुद्रो बालवद्रागद्वेषशून्यो ब्रह्मविद्यापरनाम्न्या उमाया वशगो भवतीत्येतदत्र प्रदर्श्यते ॥ ८३ ॥

बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान्
अस्सूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्यास्तंभयत्प्रभुः८५
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः ।
ततः स स्तंभितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः॥८६
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् ।
ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा॥
किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् ।
बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्माभिरभिलक्षितः॥ ८८
तस्मात्त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयं
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरंदराः॥८९
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
ध्यात्वा स शंभुं भगवान्बालं चामिततेजसम्
उवाच भगवान्ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान्हरः ॥
तस्मात्परतरं नान्यत्किंचिदस्ति महेश्वरात्
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः॥
स पार्वत्याः कृते शर्वः कृतवान्बालरूपताम्।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥
स एष भगवान्देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
न संबुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ।
अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम्॥
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ।

ब्रह्मोवाच ।

त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणं
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥
भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै॥

व्यास उवाच ।

पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाकरोत् ॥
ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः १००

तेषां प्रसन्नो भगवान्सपत्नीको वृषध्वजः ।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ १
स वै रुद्रः स च शिवः
सोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित् ।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च
सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥ २
स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः ।
स चंद्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः
स कालः सोऽन्तको मृत्युः
स यमो रात्र्यहानि तु ।
मासार्धमासा ऋतवः
सन्ध्ये संवत्सरश्च सः ॥ ४
धाता च स विधाता च
विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
सर्वासां देवतानां च
धारयत्यवपुर्वपुः ॥ ५
सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः ।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा ॥
द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ।
घोरा चान्या शिवा चान्या
ते तनू बहुधा पुनः ॥ ७
घोरा तु यातुधानस्य
सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः ।
सौम्या तु पुनरेवास्य
आपो ज्योतींषि चंद्रमाः ॥ ८
वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः
यदत्र परमं गुह्यं स वै देवो महेश्वरः ॥ ९
ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः ।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन ।
सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान्वै सर्वपापसमन्वितान् ११
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान्
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाक्षिपते पुनः ।
सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते १३

---

असूयतश्च शक्रस्येत्यादितात्पर्यं–ब्रह्मभूतं द्विषन्तः कर्मठास्तेन योगमहिम्ना निर्जिताः सन्तस्तमेव शरणं गच्छन्तीति ॥८५॥ गतिः पालकः । परायणं लयस्थानम् ॥९६॥ भव उत्पत्तिकारणम् ॥९७॥ ईशः शिक्षकः। नाथः नायकः । पतिः पालकः ॥ ९८ ॥ स वै रुद्र इत्यादिना पुनरेव सार्वात्म्यमुच्यते ॥ १०२ ॥

स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते ११४
महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः ।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम् ।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत्तोयमयं हविः
एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः ।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥
अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च
नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मणस्तथा
वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम् ।
नाम्ना चानन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः१२०
सकामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नोति वै महत्
ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।

प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत्२२
सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः २३
दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथा स्थितम् ।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः २४
ऋषयश्चैव देवाश्च
गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म
तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥ २५
पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥ २६
यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवस्थितम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः २७
एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते
सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
क्रोधाद्यश्चाविशल्लोकां-
स्तस्मात्सर्व इति स्मृतः ॥ २८

---

द्वे तनू इत्युक्ते तनू पुनर्व्याख्याति-**तस्य देवस्येति** । वडवामुखाख्या घोरा तनुः ॥ १६ ॥ **एष चैवेति** । अघोरा श्मशानाख्या काशी 'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी ' इति लिंगादपापस्य ब्रह्मणः प्रकाशकत्वात् । एतच्चान्यत्राप्यविमुक्ताख्यां तामेव प्रकृत्याऽऽम्नातम् । अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति । तस्मादविमुक्तमेव निषेवेताविमुक्तं न विमुञ्चेदिति । तत्र श्मशाने काश्यां एनं रुद्रं जना उपासकाः यजन्ति आराधयन्ति । एतदपि तत्रैव श्रुतम् । य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्त उपास्यः सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति। वीरस्थाने वीराणां षड्वर्गजयिनां संन्यासिनां स्थाने अविमुक्ते। यथोक्तं यतीन्प्रकृत्य स्मृतिषु-

' अष्टौ मासान् विहारः स्याद्वार्षिकांश्चतुरो वसेत् ।
अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारो नैव विद्यते ' इति ।

न चात्र श्मशानशब्दार्थो लोकप्रसिद्धो ग्रहीतुं युक्तः। तस्याशुचित्वेन यागभूमित्वासंभवेन यजन्त्येनं जनास्तत्रेति वाक्यशेषविरोधात्। न च वीरस्थाने इत्युक्तेरसुराणां निन्द्यमार्गजुषां तदपि यजनस्थानमिति वाच्यम् । आनुशासनिके उमामहेश्वरसंवादे श्मशानसदृशं पवित्रं स्थानं त्रैलोक्ये नास्तीति महेश्वरवचसैव स्थापितत्वात् तस्मान्महाश्मशानमिति लोकप्रसिद्धेः पवित्रं देवयजनस्थानं श्मशानाख्यं [illegible]स्यैव । अत्रैव संवर्तादीनामज्ञातवासो जाबालादौ [illegible] दानधर्मेषु मैत्रेयभिक्षायामाश्वमेधिके संवर्तमरु-

त्तीये चोपबृंहित इति सर्वमनवद्यम् ॥ १७ ॥ **अस्येति** । चादघोराणि ॥ १८ ॥ निरुच्यन्ते—

'ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते ।
महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः ।'

इत्येवंजातीयकैः श्लोकैर्व्याख्यायन्ते ॥ १९ ॥ शतरुद्रियं 'नमस्ते रुद्रमन्यवे' इति याजुषः प्रपाठकः। उपस्थानं रुद्रोपस्थानमंत्रभूतम् ॥ १२० ॥ कामानां दिव्यानां मानुषाणां च स प्रभुर्दाता विभुर्व्यापकः । विश्वं व्याप्नोति कनककुण्डलवत् । न त्वाकाशवद्विभुमात्रं नापि प्रधानवत् ॥२१॥ यतः प्रभुरीश्वरश्चेतन इति यावत्। ज्येष्ठं प्रशस्ततमं त्रिविधपरिच्छेदशून्यं भूतं नित्यसिद्धम्। एष एव प्रथमः प्रजापतिः२२ पशून् जीवान् अत्र पाति पालयति । पिबति सादरं पश्यति शोषयति चेत्यर्थानभिप्रेत्य उत्यन्तस्य पातेः पतिशब्द उत्पन्नस्तेन पशुपतिशब्दस्याप्यर्थत्रयमित्यग्रे विज्ञेयम् ॥२३॥ ब्रह्मचर्येण दिव्यत्वात् । यथास्थितत्वाच्च लिंगमित्यप्यस्य नाम । आलिंगत्ययं प्रपञ्चं सत्तास्फूर्तिप्रदानेनालिंगत्येनं प्रपञ्चः प्रलीयमान इति हेतोरयं लिङ्गपदवाच्यः दिव्यत्वादसङ्गत्वाद्यथास्थितत्वात्कूटस्थत्वाच्च प्रधानादन्यत्वमित्यर्थः । महयन् पूजयन् स चासौ ईश्वरश्चेति महेश्वरः ॥ २४ ॥ लिङ्गयति सर्वान्कामान् गमयति । अतः सर्वोत्कृष्टत्वादूर्ध्वमूर्धत्वाच्च ऋष्यादीनामर्च्यं लिंगति भक्तसमर्पितं पत्रपुष्पादि गच्छति प्राप्नोतीत्यनेन हेतुना लिङ्गमित्युत्तरस्यार्थः ॥ २५ ॥ भवं वर्तमानम् ॥ २७ ॥ एकमक्ष्यस्य वह्निमयं जाज्वलदत्यन्तं दीप्तमास्ते यत्र प्रविष्टं सर्वं तत्ता-

धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते ।
विश्वेदेवाश्च यत्तस्मिन्विश्वरूपस्ततः स्मृतः
तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः ।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः
स मेधयति यन्नित्यं
सर्वार्थान्सर्वकर्मसु ।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां
तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥ ३१
सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा
सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
यच्च विश्वं महत् पाति
महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ३२
महत्पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत्
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः
सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः ।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः ।
भव एव ततो यस्माद्भूतभव्यभवोद्भवः ॥ ३५
कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते ।
स देवदेवो भगवान्कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः ॥
ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च ।
निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धर इति स्मृतः ॥
निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद्देवो महेश्वरः
ललाटे नेत्रमसृजत्तेन त्र्यक्षः स उच्यते ३८
विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह ।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोपानः शरीरिषु ३९
पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ४०
ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमार्धं च शिवा तनुः ।
आत्मनोऽर्धं तथा चाग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते
तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराऽग्निरुच्यते४२
ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा याऽस्य तनुस्तया ।
याऽस्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः

---

दात्म्यं प्राप्नोतीत्यनेन सरत्येनं भूतानीति वा सरत्ययं सर्वाणि भूतान्यनन्तलोचनत्वादिति वा सर्वः। ज्वल-न्नित्यस्यैव विवरणं-**क्रोधादिति** । शर्व इति तालव्यादिपाठेऽपि श्रृणोति हिनस्तीति शर्व इति निर्वचनम्॥२८॥ धूम्रा क्रोधवती जटिः स्वरूपमस्येति विग्रहे वर्णलोपाद्धू-र्जटिरित्याह-**धूम्रेति** । रूपशब्दो देववाचीत्यभिप्रेत्याह-**विश्वे इति** ॥ २९ ॥ त्रैलोक्यं भजते पालयतीति त्र्यंबक इत्याह-**तिस्र इति** ॥ ३० ॥ **समेधयतीति** यस्माद्धनादिवर्धनेन लोकानां शिवंकरस्तस्माच्छिव इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ महान्ति पुरुषभेदेन बहुत्वाद्विभुत्वाद्वा व्यापकाख्यानि देवशब्दितानीन्द्रियाण्यस्येति वा महतो विश्वस्य देवो राजा वा महादेव इत्यभिप्रेत्याह-**सहस्रेति** ॥३२॥ स ईक्षां चक्रे स प्राणमसृजत्प्राणाच्छ्रद्धामित्यादिना श्रुतौ ईक्षणकर्ता ईश्वरो महानुक्तः । प्राणो जीवोपाधिस्तेन जीव उक्तः। श्रद्धादिकं जीवस्य लिङ्गशरीरं चरमं कार्यम् । तत्र महत् ईशात्प्रागुपाध्यसृष्टेन रूपेण तत उपहितेन साक्षि-रूपेण तदुपाध्यभिमानिना कर्त्रादिरूपेण चास्थितोऽपि स्थितलिङ्गः अविक्रियस्वरूपतया तिष्ठतीति योगात् स्थाणुरित्युच्यत इत्याह-**महदिति** ॥ ३३ ॥ सूर्याचन्द्रमसोरित्यग्नेरप्युपलक्षणम्-रुचो दीप्तयः त्र्यक्षे सूर्य-चन्द्राग्निनेत्रे व्योम्नि केशा रश्मयो यस्येति विग्रहः ॥३४॥ शरीरेषु विषमैर्देशविधैर्रूपैस्तिष्ठतीति विषमस्थः प्राणिनां देहाभिमानिनां सर्वेषां समः प्रियत्वात् न ह्यात्मनि कदा-चिदप्यप्रियत्वं कस्यापि दृष्टं स एष शिव एव वायुरूपी प्राणापानादिभेदेन विषमस्थेषु पुण्यपापिषु शरीरिषु जीवेषु स्थितः सर्वसम इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ विग्रहं प्रतिमाम् ॥४०॥ऊरुभ्यामित्यादिश्लोकत्रयेण पुनस्तनूद्वयं विभजते-**ऊरुभ्यामिति** । तत्राद्यश्लोकेऽग्निरिति भोक्ता सोम इति च भोग्यमुच्यते । अत्र मुखबाहूरुपादेभ्यो जाताश्चत्वारो वर्णाः कर्मफलभूतवृष्ट्यादिद्वारेण समस्तप्राणि-कल्याणकरत्वाद्रुद्रस्य शिवा तनूरित्युच्यते । तत्र ऊरुशब्देन तदारभ्याधस्तनः प्रदेश उच्यते। तत्रार्धमाग्नेयं परिशेषादर्धं सोमः वैश्यो भोक्ता शूद्रो भोज्य इत्यर्थः।आत्मनो रुद्रस्य तथा च ऊरुभ्यामुपरि अर्धं शिरोभागो ब्राह्मणोऽग्निर्भोक्ता परिशेषादर्धं बाहुभागः क्षत्रियः सोमो भोज्यं तथा पुनर-प्येतदुच्यते अर्धमाग्नेयमर्धं सोम इति तेन ब्रह्मक्षत्रे भोक्तारौ वैश्यशूद्रौ भोज्यौ तथा च भोक्ता भोज्यं रक्ष्यं भोज्येन च भोक्ता वर्धनीय इति तथा च चातुर्वर्ण्यं त्रैलोक्यस्थितिहेतुत्वादात्मनो रुद्रस्य शिवा तनुरित्यर्थः ॥४१॥**तैजसीति** 'न ह वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येत-देवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति' इति श्रुतेर्देवानां भोग्या सोमरूपास्य शिवा तनुः स्वर्गेऽस्ति तथा भुवि मानुषेषु घोरा भोक्त्री जठराग्निरूपा सर्वानर्थनिदानभूताऽस्तीति भावः ॥ ४२ ॥ **ब्रह्मचर्यमिति** । एष मानुषः तया तन्वा ब्रह्मचर्यं चरति याऽस्य शिवा तनूर्दैवी संपत् शमदमादिरूपा सर्वानर्थनिदानं घोरतरा कामक्रोधादिरूपा याऽस्य शिवस्य मूर्तिस्तया स

यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ४४
एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः ।
संग्रामे शात्रवान्निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक्
सिन्धुराजवधार्थाय प्रतिज्ञाते त्वयाऽनघ ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि ४६
एष वै भगवान्देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः ।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम्
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम्४८
सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ ४९
चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा ।
विजित्य शत्रून्सर्वान्स रुद्रलोके महीयते ५०
चरितं महात्मनो नित्यं
सांग्रामिकमिदं स्मृतम् ।
पठन्वै शतरुद्रीयं
शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥ ५१

भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु च यः सदा ।
वरान्कामान्स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ५२
गच्छ युध्यस्व कौन्तेय न तवास्ति पराजयः
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वस्थो हि जनार्दनः

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा ।
जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिंदम ॥ ५४
युद्धं कृत्वा महद्घोरं पञ्चाहानि महाबलः ।
ब्राह्मणो निहतो राजन् ब्रह्मलोकमवाप्तवान्
स्वधीते यत्फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्र महद्यशः ॥ ५६
य इदं पठते पर्व शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ५७
यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं
घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते
पुत्रान्पौत्रान्नित्यमिष्टांस्तथैव ॥ १५८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि
द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

समाप्तं नारायणास्त्रमोक्षपर्व ।

---

सर्वानत्ति क्रोधाद्याविष्टो हि पित्रादीनपि हिनस्तीति प्रसिद्धम् ॥ ४३ ॥ एवमस्यैव कारयितृत्वादयमेवाराध्यो ऽस्माद्भेतव्यमित्याशयेनाह- **यन्निर्दहतीति**। निर्दहत्य- ग्निवत् तीक्ष्णः शस्त्रवत् उग्रो यमवत् प्रतापवान् कालवच्च भूत्वा सर्वान् रोदयति रुणद्धि वा सर्वग्रासित्वाद्रुद्र इत्युच्यते अयमेव भयकृद्भयनाशनश्चेत्याराधनीयो न तु हेलनीय इति भावः ॥ ४४ ॥ चतुर्विधं शुद्धशबलसूत्रविराड्भेदेन भगवद्रूपस्य चातुर्विध्यात्स्तोत्रमप्यस्य चतुर्विधम् ॥ ५० ॥

**इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसगोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ+ भारतभावदीपे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥**

---

+ अत्रारंभप्रभृतिद्वितीयाध्यायपर्यन्तं मध्ये षोडशराजकीये जयद्रथवधसमाप्त्यनन्तरमापर्वसमाप्ति च चतुर्धर- व्याख्याऽन्यत्र सर्वत्र मिश्रव्याख्या ज्ञेया ॥

## श्रवणमहिमा ।

स्वधीयते यत्फलं वेदे
तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां
युक्तमत्र महद्यशः ॥ १ ॥

य इदं पठते पर्व
शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः
कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥ २ ॥

यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं
घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते
पुत्रान्पौत्रान्नित्यमिष्टांस्तथैव ३॥

## अस्यानन्तरं कर्णपर्व भविष्यति

तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

वैशंपायन उवाच—ततो द्रोणे हते राजन्दुर्योधनमुखा नृपाः ।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपाद्रवन् ॥ १

## ॥ इति श्रीमहाभारते *द्रोणपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे—

अत्राध्यायशतं प्रोक्तं तथाऽध्यायाश्च सप्ततिः ।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा नव शतानि च ॥
श्लोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ।
पाराशर्येण मुनिना सञ्चिन्त्य द्रोणपर्वणि ॥

इत्युक्तम् । तथापि प्रायः संप्रति द्रोणपर्वाध्यायसंख्या २०२, श्लोकसंख्या च ९६४४ दृश्यते । तदेतद्व्यासोक्ताध्यायश्लोकसंख्याविसंवादित्वं पूर्वलेखकादिप्रमादादेवेत्यूह्यमिति सर्वं शिवम् ।

इति श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचन्द्रशास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यां द्रोणपर्व समाप्तम् । भारती जयतु । शके १८५३

# Shriman
# MAHĀBHĀRATAM
## Part IV
## VIII Karnaparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nīlkantha.

***Edited by***

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1853.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

# श्रीमन्महाभारतम् ।

## चतुर्थभागे–कर्णपर्व ।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
### भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम् ।

तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५३] प्रथमं संस्करणम् । [ खिस्ताब्दाः १९३१

|| श्रीभारती जयतु ||

# || महाभारतम् ||

## कर्णपर्व ।

## —८—

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | (१) कर्णपर्व १–१९६ | |
| १ | २४ | 'ततो द्रोणे हते' इत्यादिना कर्णस्य सैनापत्याभिषेकानन्तरं विनिर्गतेषु कौरवेषु पाण्डवकौरवयोर्दिनद्वयं यावद्युद्धे प्रवृत्तेऽर्जुनेन कर्णो हत इत्यादिकमाचष्टे जनमेजयं वैशम्पायनः। कर्णं हतं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः कथं प्राणानधारयदित्यादिको जनमेजयप्रश्नः | २ |
| २ | २५ | वैशम्पायनस्योत्तरम्—कर्णहननानन्तरं सञ्जयो धृतराष्ट्रं प्रत्यागत्य कुशलप्रश्नपूर्वकं तं तिरश्चकार । भीष्मादीनां मरणेन विलपतो धृतराष्ट्रस्य नारायणास्त्रनिवारणानन्तरं मदीयैः किं कृतमिति पृच्छतः सञ्जयेन सहोक्तिप्रत्युक्ती ... ... | ३ |
| ३ | २१ | द्रोणे हते शोचतो योधानाश्वास्य दुर्योधनेन सैनापत्येऽभिषिक्तः कर्णो युद्धं कुर्वन्नर्जुनेन निपातित इत्याह सञ्जयः ... | ४ |
| ४ | १६ | कर्णवधश्रवणेन धृतराष्ट्रस्य वैषादिकमाह वैशम्पायनः । सञ्जयधृतराष्ट्रयोरुक्तिप्रत्युक्ती .. | ५ |
| ५ | ६० | 'के जीवन्ति के च मृताः' इति धृतराष्ट्रप्रश्ने मृतानां भीष्मादीनां नामानि निगदन्नानाविधोपमानेन कर्णनिधनमाह सञ्जयः | ७ |
| ६ | ३९ | हतानां पाण्डवसम्बन्धिनां नामान्याख्याहीति धृतराष्ट्रप्रश्ने तान्याह सञ्जयः ... | ८ |
| ७ | २८ | के जीवन्तीति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयेन कथिताञ्जीवतो द्रोणपुत्रादीञ्श्रुत्वा स मुमोह ... | १० |
| ८ | ३१ | कर्णवधमसंभावितं मन्यमानो धृतराष्ट्रश्चिन्तातुरो विललापेत्याह वैशम्पायनो जनमेजयप्रश्नानुरोधेन ... ... | १२ |
| ९ | ९७ | सञ्जयेन समाश्वासितोऽपि धृतराष्ट्रः पुनर्विलप्य कर्णप्रशंसापूर्वकं तद्वधमविश्वसन् कर्णवधं दृष्ट्वा दुर्योधनः किञ्चिदब्रवीदित्यादि पप्रच्छ ... ... | १५ |
| १० | २६ | द्रोणहननाद्यनन्तरं दुर्योधनोऽवहारं कृत्वा शिबिरमागत्य राज्ञां मतानि जिज्ञासुस्तान्पप्रच्छेत्याह सञ्जयः। राज्ञामिङ्गितादिना युद्धाभिप्रायं बुद्ध्वाऽश्वत्थामा कर्णं सैनापत्येऽभिषेक्तुं दुर्योधनं प्रत्युवाच। अश्वत्थामवाक्याद्दुर्योधनेनाभिषेकार्थं प्रार्थितः कर्णस्तदङ्गीचकार । ततो दुर्यो- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | धनकृतं कर्णाभिषेकं कथयित्वा तत्कालिकीं कर्णस्य सभां वर्णयति स्म सञ्जयः ... ... | १७ |
| ११ | ४३ | सैनापत्यं प्राप्य कर्णः किमकरोदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम् । कर्णमतेन तव पुत्रेषु योगमाज्ञापयत्सु कर्णो मकरव्यूहं रचयामास । तं दृष्ट्वा युधिष्ठिरेण प्रेरितोऽर्जुनोऽप्यर्धचन्द्रव्यूहमरीरचत्तदोभये सैनिकाः शंखादीन्वादयामासुः ... ... | १८ |
| | | **षोडशदिवसयुद्धम् ।** | |
| १२ | ४५ | उभयसैन्ययोर्युद्धारंभे गजारूढयोर्भीमक्षेमधूर्त्योर्युद्ध्यमानयोर्भीमः क्षेमधूर्तिं जघान ... | २० |
| १३ | ३९ | कर्णस्य पाण्डवानां च परस्परसैन्यनाशने प्रसक्ते कर्णादीन्प्रति नकुलादिषु चागतेषु कैकेयाभ्यां विन्दानुविन्दाभ्यां सह युद्धं कुर्वन्सात्यकिस्तौ जघान ... | २१ |
| १४ | ३९ | श्रुतकर्माभिसाराधिपतिचित्रसेनयोर्युद्धे प्रवृत्ते श्रुतकर्मा चित्रसेनं जघान । प्रतिविन्ध्यचित्रसेनयोर्युद्ध्यमानयोः प्रतिविन्ध्यश्चित्रं धृतराष्ट्रपौत्रमवधीत् । चित्रे हते प्रतिविन्ध्यं प्रति तावकेषु सर्वेषु गतेषु द्रौणिर्भीममाजगाम ... ... ... | २३ |
| १५ | ४४ | द्रौणिभीमयोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्ते सिद्धादिषु प्रशंसत्सु परस्परबाणप्रहारेण मूर्छितावुभावुभयसारथी रणादपोहतुः ... | २४ |
| १६ | ५१ | अर्जुनादियुद्धशुश्रूषया धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्तत्कथयन् प्रतिजज्ञे । संशप्तकान्नाशयन्तमर्जुनं सिद्धादिषु स्तुवत्सु श्रीकृष्णार्जुनप्रशंसारूपामशरीरिणीं वाणीं [illegible] कृत्वाऽश्वत्थामा [illegible]ति स्म । अश्वत्थाम्नो युद्धार्थमाह्वानं श्रुत्वाऽर्जुनेनोक्तः श्रीकृष्णोऽश्वत्थामानं प्रति स्थिरो भव युद्ध्यस्वेत्याद्याह । केशवार्जुनौ बाणैराच्छाद्य सिंहवन्नदतोऽश्वत्थाम्नो बाणगणं छित्त्वा पुनः संशप्तकैर्युद्ध्यमानमर्जुनं प्रति स पुनर्बाणान्ववर्ष, ततः संशप्तकांस्त्यक्त्वाऽर्जुनो द्रौणिं पुनरभ्ययात् ... ... ... | २६ |
| १७ | २६ | अश्वत्थाम्ना युद्धं कुर्वन्नर्जुनः साश्वध्वजं तमाच्छाद्य संशप्तकान्गत्वा तेषां धनुरादींश्चिच्छेद । पुनरागत्य युद्ध्यमानस्य द्रौणेः पराक्रमं दृष्ट्वा श्रीकृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनस्तद्रश्मींश्चिच्छेद, ततो भ्रान्तानश्वान्स्वयमेव निवार्य कर्णसैन्यं प्राविशद्द्रौणिः । पुनरर्जुनः संशप्तकानगच्छत् ... ... | २८ |
| १८ | २५ | उत्तरतः पाण्डुसेनाध्वानिं श्रुत्वा श्रीकृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनस्तत्र गतो मागधराजेन दण्डधारेण तुमुलं युद्धं कुर्वंस्तं जघान । दण्डधारं हतं दृष्ट्वा आगतं तद्भ्रातरं दण्डमप्यर्धचन्द्रेण बाणेनावधीदर्जुनस्तदा सैनिकास्तं प्रशशंसुः ... ... ... | २९ |
| १९ | ५८ | अर्जुनः पुनः संशप्तकान् प्राप्य तैः सह मन्दमन्दं युद्धं कुर्वञ्श्रीकृष्णप्रेरणया सत्वरं तान् हत्वा दुर्योधनसैन्यमागतः पाण्ड्येनाभ्यर्दितं तत् सैन्यं ददर्श ... | ३२ |
| २० | ५१ | पाण्डवयुद्धशुश्रूषया धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्तत्पराक्रमवर्णनपूर्वकं तद्युद्धं वर्णयति स्म । पाण्ड्यपराक्रमं दृष्ट्वा आगतस्याश्वत्थाम्नस्तेन सह युद्धम् । अश्वत्थामा पाण्ड्यस्य केतुं छित्त्वा सारथ्यादीन्हत्वा तदनुचरैर्युद्ध्यमानस्तं जघान ... ... ... | ३४ |
| २१ | ४० | पाण्ड्ये हतेऽर्जुनः किमकरो- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्तत्कथयति स्म। कर्णेन हन्यमानां सेनां विलोक्य श्रीकृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनस्तत्समीपमाजगाम। ततस्तस्य पाण्डवानां च तुमुलं युद्धमभूत्। कर्णं प्रत्यागतानां पाञ्चालराजादीनां संकुलं युद्धम् ... | ३६ |
| २२ | ३० | धृष्टद्युम्नं प्रति प्राच्यादिष्वागतेषु तत्साहाय्यं कर्तुं पाण्डुपञ्चालेषु चागतेषूभयोः संकुलं युद्धम् ... ... ... | ३७ |
| २३ | २२ | सहदेवं प्रत्यागतो दुःशासनस्तेन सह युद्धं कुर्वंस्तद्बाणेन मोहितः सूतेनापवाहितस्तदा सहदेवः कौरवसैन्यं ममर्द... | ३८ |
| २४ | ७८ | नकुलं प्रत्यागते कर्णे उभयोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं तुमुलं युद्धं कुर्वन्तौ द्वावपि परस्परसैन्यं हत्वा द्रावयतः स्म। कर्णेन सारथ्यादिहननपूर्वकं पराजित्य वशीकृतोऽपि नकुलः कुन्तीवाक्यं स्मृत्वा विसर्जितस्तेन सव्रीडः स युधिष्ठिररथमारुरोह। पञ्चालान्प्रविश्य गजानां नाशादि कुर्वतः कर्णस्य बाणप्रहारेण पीडितानां योधानां महान्व्यतिकरः संवृत्तः ... ... ... ... ... | ४० |
| २५ | ४३ | युयुत्सूलूकयोर्युद्धे प्रवृत्ते उलूकोऽश्वादिहननपूर्वकं युयुत्सुं निर्जित्य पञ्चालादीञ्जगाम। शतानीकश्रुतकर्मणोः शकुनिसुतसोमयोश्च युद्धम् ... | ४२ |
| २६ | ३८ | कृष्णधृष्टद्युम्नसमागमे योधेष्वार्तवाक्यं ब्रुवत्सु कृपबाणप्रहारेण मोहितं धृष्टद्युम्नं तस्य सभयं वाक्यं श्रुत्वा तत्सारथिरपोवाह। शिखण्डिकृतवर्मणोर्युद्धे प्रवृत्ते कृतवर्मबाणाभिघातेन मोहितं शिखण्डिनं तत्सारथिरपोवाह | ४३ |
| २७ | ४२ | आगतैस्त्रिगर्तादिभिर्युद्धं कुर्वन्नर्जुनः शत्रुञ्जयादीञ्जघान। पुनः संशप्तकैरावृतोऽर्जुन ऐन्द्रास्त्रेण तेषां धनादींश्छित्वा तान्पराजिग्ये ... ... ... | ४४ |
| २८ | ४९ | युधिष्ठिरदुर्योधनयोर्युद्ध्यमानयोर्युधिष्ठिरेण विरथीकृतं दुर्योधनं दृष्ट्वा कर्णादिष्वागतेषु युधिष्ठिरसहाय्यार्थं पाण्डवादिषु चागतेषु सैन्यद्वयस्य द्वन्द्वयुद्धपूर्वकं संकुलं युद्धम् ... ... | ४६ |
| २९ | ३६ | युधिष्ठिरदुर्योधनयोर्युद्धं श्रोतुं धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्योत्तरकथनम्। रथान्तरमारुह्यागत्य युद्धं कुर्वन्दुर्योधनो युधिष्ठिरशक्तिप्रहारेण मुमोह। मुग्धं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमेन प्रतिबोधितो युधिष्ठिरस्तद्वधान्निववृते, ततः कृतवर्मभीमौ सङ्गमतुः ... | ४७ |
| ३० | ४४ | कर्णं पुरस्कृत्य युद्ध्यमानेषु कौरवेषु सात्यकिं प्रत्यागतेषु सत्सु तेन सह कर्णस्य युद्धम्। केशवार्जुनयोः कौरवबलमागतयोः सतोरागते च दुर्योधनेऽर्जुनस्तदादीनां धनुरादीनि चिच्छेद। सात्यकिं हित्वाऽर्जुनं प्रतिगच्छन्तं कर्णं प्रति सात्यकिप्रभृतिषु बाणान्वर्षत्सु तान्निवार्य पाण्डवीं सेनां नाशयति स्म कर्णः। अर्जुनास्त्रप्रतापेन मोहितेषु कौरवसैन्येष्वपयातेषु पाण्डवाः स्वशिबिरं जग्मुः। अत्र षोडशदिवसयुद्धं समाप्तम् ... | ४९ |
| ३१ | ४३ | धृतराष्ट्रोऽर्जुनं प्रशस्य दुर्योधनः किमकरोदिति पप्रच्छ, सञ्जयश्च तद्वक्तुमुपचक्रमे-शिबिरं गत्वा कौरवेषु विचारयत्सु 'श्वोऽर्जुनसङ्कल्पं हन्ता' इति | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | कर्णस्य सक्रोधं वाक्यं श्रुत्वा दुर्योधनेनानुज्ञाताः सर्वे योधाः स्वस्वभवनानि गत्वा प्रातर्युद्धाय निर्जग्मुः। कर्णयुद्धविषये प्रश्नं कृत्वा दुर्योधनं निन्दन्तं धृतराष्ट्रं प्रति तन्निन्दारूपं सञ्जयवाक्यम्। कर्णोऽर्जुनवधप्रतिज्ञापूर्वकमात्मानं श्लाघयञ्शल्यं सारथ्यकर्मणि नियोक्तुं दुर्योधनं प्रति प्रार्थयित्वाऽऽत्मानं शल्यं च प्रशशंस। कर्णवाक्यं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदुक्तमङ्गीचकार ... ... ... ... | ५१ |
| ३२ | ६६ | दुर्योधनः शल्यसमीपं गत्वा सविनयं कर्णस्य सारथ्यं भवान्करोत्वित्याह। दुर्योधनवाक्येन क्रुद्धः शल्य आत्मानं श्लाघयन् 'कथं युनक्षि सारथ्ये' इत्याद्युक्त्वा सभाया निर्जगाम, क्रोधात्सभाया निर्गच्छन्दुर्योधनेन गृहीतः शल्यो विनयपूर्विकां 'भवानधिकः कृष्णात्' इत्यादिकां तद्वाणीं श्रुत्वा हृष्टः सन् कर्णसारथ्यं स्वीकृत्य स्वसमयमाह, दुर्योधनश्च तदङ्गीचकार | ५४ |
| ३३ | ६३ | पुनर्दुर्योधनो 'यथा पुरा वृत्तमिदम्' इत्याद्युक्त्वा त्रिपुरवधाख्यानं कथयति स्म। युद्धे निर्जितास्तारकासुरपुत्रास्ताराक्ष-कमलाक्ष-विद्युन्मालिनामानोऽवध्यत्वसम्पादनार्थं तपश्चेरुः। तपसा तुष्टेन ब्रह्मणा तैः प्रार्थितमवध्यत्वमनङ्गीकृत्य वरान्तरं याचध्वमित्युक्तास्ते त्रीणि पुराण्ययाचन्त, येषु स्थित्वा महीं विचरिष्याम इत्याद्याहुश्च। ब्रह्मणा तथेत्यङ्गीकृते प्रार्थितेन मयेन निर्मितानि काञ्चन-रौप्य-कार्ष्णायसमयानि त्रीणि पुराण्यवाप्य तारकाक्षपुत्रेण हरिणा तपसा ब्रह्मणः सम्पादितामामृतवापीं च प्रापुः। पुराण्यास्थाय लोकान्बाधमानेषु तेषु तन्नाशोपायजिज्ञासवो देवा ब्रह्मसमीपं प्राप्य तेन सह महादेवं प्रति गत्वा स्तुत्या तं प्रसादयामासुः ... ... ... ... | ५६ |
| ३४ | ६२ | प्रसन्नेन महादेवेनाभये दत्ते ब्रह्मा त्रिपुरवधं प्रार्थयामास। महादेवेन मत्तेजोऽर्धं गृहीत्वा यूयमेवैकमत्येन तान्हतेत्यादिष्टैर्देवैस्तदनङ्गीकृत्यास्मत्तेजोर्धसहायेन भवानेवैतान्हन्त्विति प्रार्थितः स तदङ्गीचकार। रथादिकल्पनार्थमाज्ञप्तैर्देवैः कल्पितं रथमारूढः सिद्धादिभिः स्तुतः शिवः कः सारथिर्भवेदित्याद्याह। देवैः प्रार्थितेन ब्रह्मणा सारथ्येऽङ्गीकृते महादेवो रथमारुह्य देवानाश्वास्य त्रिपुरवधार्थं निर्जगाम। गवादीनां खुरद्वैधीभावेऽश्वानां स्तनाभावे च कारणं कथयित्वा त्रिपुरवधप्रकारं चाभिधाय प्रकृतिमापन्नानां देवानां स्वस्थानगमनमभ्यधाद्दुर्योधनः। शिवस्य सारथ्यं यथा ब्रह्मणा कृतं तथा त्वमपि कर्णस्य सारथ्यं कुर्वित्युक्त्वा पुनर्दुर्योधनः शल्यं प्रति परशुराम-वृत्तान्तं कथयति स्म-जामदग्न्यो रामोऽस्त्रप्राप्त्यर्थं तपः कुर्वंस्तुष्टेन महादेवेनाज्ञप्तः पुनस्तपश्चकार। पुनस्तत्तपसा तुष्टेन महादेवेन दैत्याञ्जहीत्याज्ञप्तः स तैः सह युद्धं कृत्वा तान्हतवान्, दैत्यैः क्षतगात्रो महादेवस्पर्शेन निर्व्रणोऽभूच्च। ततस्तस्मै शिवो वरदानपूर्वकमस्त्राण्यदात्स च लब्धास्त्रः शिवं प्रणम्य तदनुज्ञया जगाम। ततो दुर्योधनः कर्णं प्रशंसन् रामेण दत्तास्त्रस्तच्छिष्य इत्याह शल्यं प्रति | ६१ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३५ | ४८ | दृष्टान्तपूर्वकं सारथ्यकरणार्थं प्रार्थयन्तं दुर्योधनं प्रति 'मयाऽप्येतन्नरश्रेष्ठ' इत्याद्युवाच शल्यः। कर्णशल्यौ प्रशंसन्तं दुर्योधनं प्रति शल्यो 'यन्मां ब्रवीषि गान्धारे' इत्याद्युवाच। शल्योक्तिमङ्गीकृत्यागतस्य दुर्योधनस्यालिङ्गनपूर्वकं कर्णेन सह संभाषणम्। कर्णप्रेरणया पुनरागतं दुर्योधनं शल्य आलिङ्गनपूर्वकं 'एवं चेन्मन्यसे' इत्याद्युवाच। कर्णशल्ययोरुक्तिप्रत्युक्ती ... | ६३ |
| ३६ | ३३ | कर्णं प्रति शल्यप्रशंसारूपं वाक्यमुक्त्वा हयसंयमनार्थं शल्यं प्रेरयति दुर्योधने शल्यकर्णौ रथमारुरुहतुः। रथारूढे कर्णेऽश्वान्प्रेषयितुं प्रेरयति शल्यः पाण्डवान्प्रशशंस ... ... | ६४ |
| | | **सप्तदशदिवसयुद्धम्।** | |
| ३७ | ४५ | कर्णं दृष्ट्वा हृष्टानां कौरवाणां दुन्दुभिनिर्घोषादिकं कथयित्वा युद्धार्थं निर्गमसमये संजातानि दुर्निमित्तान्याह सञ्जयः। शल्यं संबोध्य कौरवान्प्रति किञ्चिदुक्त्वा तं प्रत्यप्यात्मानं श्लाघयन्नुवाच कर्णः। अवहासपूर्वकं प्रत्युत्तरं भाषमाणः शल्योऽर्जुनं प्रशस्य कर्णनिर्भर्त्सनं कुर्वन् परुषं कर्णवाक्यं श्रुत्वा निरुत्तरो बभूव। ततः कर्णः शल्यसारथिर्धनञ्जयध्वजिनीं प्रति गत्वा धनञ्जयं पर्यपृच्छत् ... ... | ६७ |
| ३८ | २६ | कर्णस्य पाण्डवानुद्दिश्य प्रत्येकविषयं प्रश्नमाख्याति स्म सञ्जयः। 'यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम्। तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति' इत्यादि कर्णवाक्यं श्रुत्वा दुर्योधनादयो जहृषुः ... ... | ६८ |
| ३९ | ३५ | 'मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम्। प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनञ्जयम्' इत्यादिना शल्येन कर्णभर्त्सने कृते उभयोरुक्तिप्रत्युक्ती ... | ६९ |
| ४० | ५६ | क्रुद्धः कर्णः शल्यं निर्भर्त्स्यात्मश्लाघां कुर्वन् मद्रदेशोद्भवान् विनिन्द्य पुनः शल्यं निनिन्द | ७१ |
| ४१ | ८७ | कर्णवाक्यं श्रुत्वा निदर्शनं कथयञ्शल्यः प्रथमं कर्णमधिक्षिप्यात्मनः श्रैष्ठ्यं प्रकाश्य हंसकाकीयोपाख्यानमाह। समुद्रतीरे वसतो धनिकस्य कुमारैः पालितः काकस्तेषामुच्छिष्टभक्षणेन मत्तः सन्नितरान्पक्षिणोऽधिचिक्षेप। ते कुमाराः कदाचित्तत्रागतान्हंसान् दृष्ट्वा काकं प्रति 'भवानेव विशिष्टो हि' इत्याद्यूचुः। कुमारवाक्येनोत्पतनार्थं हंसानाह्वयन्तं काकं प्रति ते स्वस्वरूपं कथयित्वा गतिप्रकारं पप्रच्छुः। निजोड्डीनादिगतीः कथयित्वाऽऽत्मश्लाघां कुर्वन्तं काकं प्रति तन्मध्यवर्ती कश्चिद्धंसः 'शतमेकं च पातानां' इत्याद्युवाच। स्पर्धयोत्पततोः काकहंसयोः समुद्रमतिक्रामन्तं हंसं दृष्ट्वा भयेन समुद्रमध्ये पतन्तं काकं प्रति हंसस्य सोपहासं वाक्यम्। आर्तः काको जलं स्पृशन्नात्मरक्षार्थं सभयं यावत्प्रार्थयति तावत्तं पृष्ठे धृत्वोत्पतनप्रदेशे निक्षिप्य हंसो यथेष्टं देशं जगाम। एतद्दृष्टान्तेन कर्णमधिक्षिप्य पुनरुत्तरगोग्रहणादिवृत्तान्तमनूद्य तिरश्चकार ... | ७५ |
| ४२ | ५० | शल्यवाक्यं श्रुत्वा विकत्थमानः कर्णः परशुरामदत्तशापकारणादि कथयित्वा भीमादिपराजयमिच्छंश्चक्रपातरूपब्राह्मणशापान्तरादिकं शशंस... | ७७ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ४३ | ९ | कर्णस्य शल्याधिक्षेपरूपं वाक्यम् ... ... | ७८ |
| ४४ | ४७ | शल्यवाक्यं श्रुत्वा द्विगुणं परुषं वदन् कर्णो वाहीकादिदेशनिन्दाविषये धृतराष्ट्रब्राह्मणसंवादरूपमितिहासं कथयञ्शल्यं तिरश्चकार । 'वाहीकेष्वविनीतेषु' इत्यारभ्य 'वसातिसिन्धुसौवीरा' इति 'प्रायोऽतिकुत्सिताः' इत्यन्तेन पुनर्वाहीकाञ्चिनिन्द ... ... | ८० |
| ४५ | ४८ | पुनर्वदन्कर्णः स्वगृहागतब्राह्मणमुखाच्छ्रुतानां वाहीकादिदेशानां निन्दां कुर्वन्यत्र देशे दस्युभिर्हृतायाः सत्याः शापात्सर्वा बन्धक्य इत्याद्याह स्म । अन्येतिहासमिषेण शल्यं तिरस्कुर्वन् कल्माषपादसरसि निमज्जतो राक्षसस्य वाक्यमभिदधाति स्म । पुनः प्रशंसापूर्वकं मद्रदेशं निन्दति कर्ण शल्योऽङ्गदेशनिन्दापूर्वकं तं तिरश्चकार । दुर्योधने सखिभावेनाञ्जलिकर्मणाकर्णं शल्यं च निवारयत्युभयोस्तूष्णीं स्थितयोः कर्णः प्रहस्याश्वान्प्रेषयितुं शल्यमचोदयत ... ... ... | ८३ |
| ४६ | ८७ | सञ्जयेन कर्णस्य पाण्डवव्यूहदर्शनादौ कथिते व्यूहरचनादिप्रकारे धृतराष्ट्रेण पृष्टे स तं कथयति स्म । सेनामुखं दृष्ट्वा युधिष्ठिरेणोक्तोऽर्जुनस्तदुक्तमङ्गीचकार । कर्णादिभिर्योद्धुमर्जुनादिषु युधिष्ठिरेणाज्ञप्तेष्वर्जुनस्तदनुरोधेन सर्वानादिश्य स्वयं चमूमुखं जगाम । अर्जुनरथं दृष्ट्वा 'अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः । दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव' इत्याद्युक्त्वा दुर्निमित्तानि कथयित्वाऽर्जुनं प्रशंसन्तं शल्यं प्रति क्रुद्धस्य कर्णस्य वाक्यम् । शल्योऽर्जुनस्याजेयत्वं कथयित्वा भीमादीन्प्रशशंस ... ... | ८६ |
| ४७ | २३ | कर्णार्जुनयोः सविस्तरयुद्धश्रवणार्थं धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयोऽर्जुनकृतव्यूहरचनादिकं कथयति स्म । संशप्तकैरर्जुनस्य कौरवैः पाञ्चाल्यादीनां च दारुणं युद्धम् ... ... ... | ८६ |
| ४८ | ६७ | कर्णयुद्धं श्रोतुं धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयः पञ्चालान्प्रति कर्णस्य गमनं शशंस । पाञ्चालैर्युद्ध्यमानः कर्णो भानुदेवादीन्पञ्च जघान । कर्णरक्षकेषु तत्पुत्रेषु सुषेणादिषु युद्ध्यमानेषु कर्णेन सह युद्धार्थं भीमाद्यागमनम् । सुषेणादिभिर्युद्धं कुर्वन्भीमो भानुसेनं कर्णपुत्रं जघान । वृषसेनसात्यक्योर्युद्ध्यमानयोः सात्यकिना विरथीकृतो दुःशासनेनापवाहितो वृषसेनः पुनरागत्य द्रौपदेयादिभिः सह युयुधे ... | ८८ |
| ४९ | ९२ | कर्णो युधिष्ठिरमागत्य द्रविडादिसैन्यं नाशयति स्म । 'कर्ण कर्ण वृथादृष्टे' इत्यादि सक्रोधमुक्त्वा युद्धं कुर्वतो युधिष्ठिरस्य बाणप्रहारेण कर्णो मुमोह । पुनर्युधिष्ठिरकर्णयोर्युद्धे प्रवृत्ते युधिष्ठिरसाहाय्यार्थमागतैः सात्यक्यादिभिर्युयुधे कर्णः । भयेन पराङ्मुखं युधिष्ठिरं ग्रहीतुमिच्छन्तं कर्णं शल्यो निवारयामास । युधिष्ठिरं प्रागल्भ्येनाधिक्षिप्य युद्ध्यमाने कर्णे पाण्डवसैन्ये पराङ्मुखे कौरवा जहृषुः । युधिष्ठिराज्ञया पुनर्भीमादिष्वागतेषूभयोः सैन्ययोः संकुलं युद्धम् ... ... ... | ९१ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ५० | ४९ | आगच्छता भीमादीन्दृष्ट्वा कौरवसैन्ये पलायमाने भीमो युधिष्ठिररक्षार्थं सात्यक्यादीनादिश्य कर्णं प्रत्याजगाम। आगच्छन्तं भीमं दृष्ट्वा तत्प्रशंसागर्भं वाक्यं ब्रुवतः शल्यस्य कर्णस्य चोक्तिप्रत्युक्ती। भीमकर्णयोस्तुमुलं युद्ध्यमानयोर्भीमबाणप्रहारेण मूर्छितं कर्णं गृहीत्वा शल्योऽपययौ ... | ... ९३ |
| ५१ | ८० | कर्णापयानं श्रुत्वा विस्मयपूर्वकमपयाते कर्णे दुर्योधनः किमकरोदिति पृच्छति धृतराष्ट्रे सञ्जयस्योत्तरम्। दुर्योधनाज्ञया आगतैस्तद्भ्रातृभिः श्रुतर्वप्रभृतिभिर्युद्ध्यमानो भीमस्तेषां मध्ये विवित्सुप्रभृतीञ्जघान। हतांस्तान्दृष्ट्वा आगतेन कर्णेन युद्धं कुर्वंस्तेन विरथीकृतो गदायुद्धं कुर्वन्सैन्यं ममर्द। अन्यं रथमास्थायागतस्य भीमस्य कर्णस्य च तुमुले युद्धे प्रवृत्ते उभे सेने अपि संकुलं युयुधाते ... | ... ९५ |
| ५२ | ४२ | सञ्जयः परस्परवधैषिणां सैन्यानां युद्धं कथयित्वा हतसैन्यादिभिर्युद्धभूमिशोभां वर्णयन् परस्परभीतानां सैन्यानां पलायनं कथयञ्शोणितनद्यादिकमाह स्म ... ... ... | ९७ |
| ५३ | ४६ | गाण्डीवशब्दश्रवणाद्युक्त्वा संशप्तकैरर्जुनस्य युद्धं वर्णयति स्म सञ्जयः। संशप्तकानां पराक्रमं दृष्ट्वा श्रीकृष्णं प्रत्यभिधायार्जुनो देवदत्तं दध्मौ श्रीकृष्णश्च पाञ्चजन्यम्। उभयोः शङ्खशब्देन भीतान्योधान्नागपाशेन पादबन्धनपूर्वकं नाशयामासार्जुनः। सुशर्मप्रयुक्तः सौपर्णास्त्रेण मुक्तबन्धेषु योधेष्वस्त्रवृष्टिं कुर्वत्सु सुशर्मबाणप्रहारेण मोहितोऽप्यर्जुनो लब्धसंज्ञः सन्नैन्द्रास्त्रेण तान्नाशयामास ... | ... ९८ |
| ५४ | ४६ | सैन्यं विद्रुतं दृष्ट्वा आगतानां कृपादीनां युद्धे प्रवृत्ते शिखण्डिकृपौ युयुधाते। कृपेण पराभूतं शिखण्डिनं दृष्ट्वाऽऽगच्छन्तं धृष्टद्युम्नं कृतवर्मा निवारयामास। आगच्छत्सु युधिष्ठिरादिषु द्रौणिप्रभृतिभिर्निवारितेषु पुनः शिखण्डिकृपयोर्युद्ध्यमानयोः कृपपराक्रमदर्शनेन शिखण्ड्यपययौ। सुकेतुकृपयोर्युद्ध्यमानयोः कृपः सुकेतुं जघान। धृष्टद्युम्नकृतवर्मणोर्युद्ध्यमानयोर्धृष्टद्युम्नः कृतवर्माणं पराजिग्ये ... | ९९ |
| ५५ | ३९ | युधिष्ठिरं प्रत्यागत्याश्वत्थाम्ना बाणैराकाशे आच्छादिते तत्पराक्रमं दृष्ट्वा आगतैः सात्यक्यादिभिस्तस्य महद्युद्धम्। "नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता। यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि" इत्याद्युक्तवन्तं युधिष्ठिरं प्रत्यनुक्त्वैव बाणान्वर्षत्यश्वत्थाम्नि स रणादपायांचक्रे ... | ... १०१ |
| ५६ | १४७ | भीमादीनावृत्य तेषां समक्षं कर्णेन चेदिराजप्रभृतिषु हतेषु भीमः कर्णं विहाय कौरवसेनां नाशयितुं जगाम। दुर्योधनेन बाणैर्नकुलसहदेवावाच्छादितौ दृष्ट्वाऽऽगतेन धृष्टद्युम्नेन तस्य धनुरादिषु छिन्नेषु तं तद्भ्रातरो ररक्षुर्दण्डधारश्च तमपाहरत। कर्णः सात्यकिं जित्वा धृष्टद्युम्नमागत्य पञ्चालैः सह युद्धं कुर्वञ्जिष्णवादीञ्जघान। पञ्चालान्हतवन्तं कर्णं दृष्ट्वा आगतैर्युधिष्ठिरादिभिः सह स युयुधे। भीमे कौरवसेनां नाशयति ते सर्वे निरुत्साहा बभूवुः। कर्णपराक्रमदर्शनानन्त- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | रमर्जुनप्रेरितेन श्रीकृष्णेन रथे प्रेषिते सेनां नाशयन्तं तं प्रति दुर्योधनः संशप्तकान्प्रेषयामास । अर्जुनः संशप्तकैर्युद्धं कुर्वंस्तेषां दशसहस्रान्पार्थिवान्हत्वा यावत्काम्बोजबलं नाशयति तावदश्वत्थामा आजगाम । अर्जुनकृष्णयोर्बाणैराच्छादितयोरर्जुनस्य शैथिल्यं दृष्ट्वा श्रीकृष्णेन सक्रोधमुक्तः स द्रौणिं धनुरादिच्छेदनपूर्वकं विसंज्ञं चकार, ततस्तं च तत्सारथिरपोवाह । प्रहारैर्गाढं व्यथितो युधिष्ठिरः क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ ... | १०५ |
| ५७ | १७ | दुर्योधनवाक्याद्धृष्टेषु योधेषु तत्समक्षमश्वत्थामा धृष्टद्युम्नं नाशयितुं प्रतिजज्ञे ... ... | १०६ |
| ५८ | ५२ | द्रवन्तीं सेनां दृष्ट्वा 'न च पश्यामि दाशार्हं धर्मराजम्' इत्याद्युक्तवतोऽर्जुनस्य प्रेरणया श्रीकृष्णो युधिष्ठिरसमीपगमनार्थं रथं प्रेषयति स्म । युधिष्ठिरादीन् दृष्ट्वाऽर्जुनं प्रत्याह श्रीकृष्णः | १०८ |
| ५९ | ६७ | कुरुसृञ्जयादीनां संकुलयुद्धे प्रवृत्ते धृष्टद्युम्नसात्यक्योः कर्णेन सह युद्ध्यमानयोरागतस्य क्रुद्धस्याश्वत्थाम्नो धृष्टद्युम्नस्य चोक्तिप्रत्युक्ती । श्रीकृष्णप्रेरणया धृष्टद्युम्नं रक्षितुं बाणान्वर्षन्तमर्जुनं प्रत्यश्वत्थाम्न आगमनम् । अर्जुनाश्वत्थाम्नोर्युद्ध्यमानयोरर्जुनबाणप्रहारेण मुग्धं द्रौणिं गृहीत्वा तत्सारथिरपययौ ... ... | ११० |
| ६० | ९२ | श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति युधिष्ठिरनाशार्थं दुर्योधनादीनां चेष्टादिकमभिधाय कर्णकृतपाण्डवसेनानाशादिकथनपूर्वकं कर्णेन सह युद्धं कर्तुं प्रेरयति स्म । भीमेन कृतं धार्तराष्ट्रसेनाविद्रावणादिकं गजादीनां नाशादिकं च कथयति श्रीकृष्णेऽर्जुनोऽपि भीमस्य तत्कर्म दृष्ट्वा शत्रुसेनां नाशयितुं प्रववृते ... ... | ११२ |
| ६१ | ६१ | मदीये सैन्ये द्रवति कुरवः किमकुर्वन्निति धृतराष्ट्रप्रश्ने भीमं प्रति कर्णस्यागमनादिकं शशंस सञ्जयः । कर्णादीन्प्रति शिखण्डिप्रभृतिष्वागतेषु कर्णशिखण्डिनोर्धृष्टद्युम्नदुःशासनयोश्च युद्धे प्रवृत्ते धृष्टद्युम्नरक्षणार्थं पञ्चालानां गमनादि । नकुलवृषसेनयोर्युद्धं तथा सहदेवोलूकयोर्युद्ध्यमानयोः सहदेवकृतमुलूकस्याश्वनाशनं च । सात्यकिशकुन्योर्युद्ध्यमानयोः सात्यकिना विरथीकृतः शकुनिरपयानं चक्रे । भीमदुर्योधनयोर्युद्ध्यमानयोर्भीमेन विरथीकृतो दुर्योधनस्तत्समीपादपययौ । युधामन्युकृपयोर्युद्ध्यमानयोः कृपेण हतसूतो युधामन्युरपायात् । हार्दिक्योत्तमौजसोर्युद्धे प्रवृत्ते हार्दिक्येन मूर्छां प्रापितमुत्तमौजसं तत्सारथिरपवाहयामास । दुर्योधनं विजित्य गजानीकं निघ्नति भीमे तद्भयाद्गजानां पलायनादि ... | ११५ |
| ६२ | ३४ | अर्जुनगमनानन्तरमुभयसेनयोः संकुले युद्धे प्रवृत्ते सहदेवास्त्रविद्धं दुर्योधनं दृष्टवतः कर्णस्यास्त्रत्यागादि । कर्णयुधिष्ठिरयोर्युद्धं कुर्वतोः कर्णेनोरसि विद्धे युधिष्ठिरे सूतं प्रति याहीत्युक्तवति पञ्चालादय आगत्य धार्तराष्ट्रान्निवारयामासुः ... | ११६ |
| ६३ | ३७ | केकयैः सह युद्धं कुर्वन्कर्णस्तेषां पञ्चशतं वीरान्हत्वैकरथेन युधिष्ठिरं प्रत्याजगाम । कर्णबाणेन विरथौ युधिष्ठिरनकुलौ सहदेवरथारूढौ दृष्टवतः कृपा- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | विघ्नस्य शल्यस्य कर्णं प्रति वचनम्। अर्जुनेन युद्धं कर्तुं तथा भीमग्रस्तं दुर्योधनं मोचयितुं शल्येन प्रेरिते कर्णे भीमं प्रति गते युधिष्ठिरो जवनैरश्वैः सहदेवेन सहापायात्। भीमसाहाय्यार्थं युधिष्ठिरेण प्रेरितौ नकुलसहदेवौ भीमं प्रति जग्मतुः.. | ११७ |
| ६४ | ७० | आगतेनाश्वत्थाम्ना युद्धं कुर्वन्नर्जुनस्तस्याश्वान् हत्वा कौरवबलं नाशयति स्म। पुनरागतोऽश्वत्थामाऽर्जुनेन हतसूतोऽपि स्वयमेव रश्मीन् गृहीत्वा यदा युयुधे तदाऽर्जुनोऽपि रश्मींश्छित्वा तमपीडयत्। पाण्डवभयात्सैन्यं पलायमानं दृष्टवतो दुर्योधनस्य वाक्यं श्रुत्वा कर्णः शल्यं प्रति स्वपराक्रमप्रशंसावाक्यमुक्त्वा भार्गवास्त्रेण पञ्चालान्नाशयामास | ११९ |
| ६५ | २३ | भार्गवास्त्रभीतं स्वबलं दृष्टवता श्रीकृष्णेन बोधितोऽर्जुनो युधिष्ठिरं द्रष्टुं निर्गतः स्वसैन्यमवलोकयन्भीममागत्य 'अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत्कथञ्चन' इति तद्वाक्यं श्रुत्वा युधिष्ठिरं प्रति गन्तुं श्रीकृष्णं प्रेरयामास। एवमर्जुनप्रेरितः श्रीकृष्णो युधिष्ठिरं प्रति जगाम। स्वपादवन्दनं कुर्वतोः कृष्णार्जुनयोः कर्णं हतं मत्वा तावभ्यनन्दद्युधिष्ठिरः ... ... | १२१ |
| ६६ | ४८ | युधिष्ठिरो 'हतः कर्ण' इत्याद्युक्त्वा कर्णपराक्रमं वर्णयन् 'स कथं हतस्त्वया' इत्यादि पृष्ट्वा चिन्ताक्रान्तः कर्णकृतपराजयप्रयुक्तं खेदमुद्भाव्य कर्णमरणं निश्चित्य कर्णप्रतिज्ञाकथनपूर्वकं पुनः 'स कथं त्वया हतः' इत्याद्युवाच | १२३ |
| ६७ | २३ | युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनोऽश्वत्थाम्ना सह कृतं युद्धं कर्णादीनां पराक्रमं च कथयन्कर्णं हन्तुं प्रतिजज्ञे ... ... ... | १२४ |
| ६८ | ३० | जीवन्तं कर्णं श्रुत्वा क्रुद्धो युधिष्ठिरोऽर्जुनं तिरस्कुर्वंस्तज्जन्मकालभवामाकाशवाणीमनूद्य धिक् ते गाण्डीवादिकमित्युवाच ... ... ... ... | १२६ |
| ६९ | ८८ | युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वा तं हन्तुमसिं गृह्णन्तमर्जुनं दृष्ट्वा तं प्रति श्रीकृष्णः 'इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया' इत्याद्युवाच। अन्यस्मै देहि गाण्डीवमित्यादिना स्वव्रतं कथयन्तमर्जुनं धिक्कृत्य तस्मै धर्मरहस्यं कथयञ्श्रीकृष्णः सत्यानृताभ्यां पुण्यपापविषये बलाकोपाख्यानं कौशिकोपाख्यानं चाकथयत्। धर्मपदार्थमुपदिशन्तं श्रीकृष्णं प्रशंसन्नर्जुनो 'मम व्रतं जानासि' इत्याद्युवाच। अर्जुनप्रतिज्ञारक्षणार्थमुपायं ब्रुवञ्श्रीकृष्णो 'मानार्हं प्रति त्वमित्युक्ते तस्य मरणम्' इत्याद्युपदिदेश ... ... ... ... | १३० |
| ७० | ६० | श्रीकृष्णवाक्यं प्रशस्य युधिष्ठिरं भर्त्सयन्भीमं च प्रशंसन् पुनः परुषवाक्यानि श्रावयित्वाऽनुतप्तोऽर्जुनः पुनरसिं जग्राह। किमिदमित्यादिकृष्णप्रश्नानन्तरम् 'अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव' इत्याद्युक्तवन्तमर्जुनं प्रति जीवतोऽप्यात्मवधोपायं कथयञ्श्रीकृष्ण आत्मप्रशंसां कुरु इत्याद्याह। कृष्णोपदेशेनात्मश्लाघां कृत्वा कर्णवधं प्रतिज्ञाय शस्त्राणि परित्यज्य प्राञ्जलिः सन् युधिष्ठिरं प्रति प्रसीद राजन्नित्याद्युवाच। अर्जुनं प्रति सखेदवाक्यान्युक्त्वा वनाय गन्तुमुद्यन्तं युधिष्ठिरं | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | प्रति श्रीकृष्णः प्रणामपूर्वकं विनयवाक्यान्युक्त्वा कर्णवधार्थं प्रतिजज्ञे। युधिष्ठिरः प्रणतं कृष्णमुत्थाप्यानुनयवाक्यान्यब्रवीत् ... ... ... | १३३ |
| ७१ | ४० | श्रीकृष्णोपदेशात्पादौ गृहीत्वा प्रसीदेत्यादि वदन्नर्जुनो युधिष्ठिरेणोत्थापनालिङ्गनपूर्वकमनुनीतस्तत्समीपे पुनः कर्णवधं प्रतिजज्ञे। श्रीकृष्णवाक्यात्पुनः पादग्रहणादि कुर्वन्तमर्जुनमुत्थाप्य युधिष्ठिरो युद्धार्थमनुज्ञां दत्त्वाऽऽशिषस्तस्मै ददौ ... | १३४ |
| ७२ | ४० | रथसज्जीकरणार्थं प्रेरितेन श्रीकृष्णेन सज्जीकृते रथ आरुह्य गच्छन्नर्जुनः स्वशरीरे स्वेदं दृष्ट्वा चिन्तयामास। चिन्तयन्तमर्जुनं प्रशस्य कर्णमपि प्रशंसन्नेवंविधमप्येनं जहीत्युवाच ... ... | १३६ |
| ७३ | १२५ | पुनरर्जुनं प्रति वदञ्श्रीकृष्णो भीष्मयुद्धादिकमनूद्य तं प्रशंसन्कर्णनिन्दां विधाय पुनरभिमन्युवधार्थमुपदिश्य कर्णार्णवात्पञ्चालानुद्धरेत्याद्याह स्म.. | १४० |
| ७४ | ५८ | कृष्णवाक्येन विशोको हृष्टश्चार्जुनः कर्णवधं प्रतिज्ञाय सक्रोधवाक्यान्युक्त्वाऽऽत्मानं श्लाघयन्भीमं मुमोचयिषुः कर्णशिरो जिहीर्षुश्च प्रययौ ... | १४२ |
| ७५ | १७ | कर्णयुद्धश्रवणार्थे धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयः पाण्डवसेनासमृद्धिं वर्णयित्वा संकुलं युद्धं वर्णयामास ... ... ... ... | १४३ |
| ७६ | ४० | कौरवबलैर्युद्धं कुर्वन्भीमः सारथिं प्रति स्वस्य स्वपरज्ञानाभावं कथयित्वा युधिष्ठिरार्जुनयोरदर्शनप्रयुक्तं दुःखं प्रकाशयन्युद्धसामग्रीशेषं च पप्रच्छ। विशोकाख्यसारथिभीमयोः संवादः ... ... ... ... | १४५ |
| ७७ | ७९ | रथप्रेषणार्थमर्जुनेन प्रेरितः श्रीकृष्णो यत्र भीमस्तत्र गच्छामीत्युवाच। कुरुसैन्यमध्ये प्रविश्य युद्धं कुर्वतोऽर्जुनस्य भयात्कौरवसैन्ये पलायिते स सूतानीकं प्रति जगाम। अर्जुनागमनं श्रुत्वा कौरवसैन्यं मर्दयति भीमे तं प्रति दुर्योधनप्रेरितानि सैन्यान्यावव्रुः। भीमनाशितसैन्यसंख्यां कथयन्सञ्जयस्तत्कृतां शोणितनदीं वर्णयामास। भीमस्य कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनेन प्रेरितः शकुनिस्तेन सह युद्धं कुर्वंस्तद्बाणेन मूर्छितो धृतराष्ट्रपुत्रेणापवाहितः। तस्मिन्निर्जिते दुर्योधनोऽप्यपयानं चक्रे, तं दृष्ट्वा कुरुसैन्यमपि व्यद्रवत् ... ... ... ... | १४८ |
| ७८ | ६४ | भग्नेषु सैन्येषु दुर्योधनादयः किमब्रुवन्निति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। सोमकैः सह युद्धं कुर्वन्कर्णः पञ्चालान्प्रति गन्तुं शल्यं संप्रेर्य रथध्वनिना सर्वान् संत्रास्य पाण्डवसैन्यं नाशयति स्म। आगताञ्शिखण्डिसात्यकिप्रभृतीन् विमुखीकृत्य पञ्चालादिभिर्युद्ध्यमानस्य कर्णस्य पराक्रमं देवादयः प्रशशंसुः। पाण्डवसेनाभङ्गं दृष्टवतां दुर्योधनादीनां हर्षं तत्कृतपाण्डवसैन्यनाशनं च कथयति स्म सञ्जयः ... | १५० |
| ७९ | ९५ | सञ्जयो रणेऽर्जुनप्रवर्तितां शोणितनदीमवर्णयत्। कर्णस्य रथकेतुं दृष्ट्वा श्रीकृष्णं प्रति 'एष केतू रणे पार्थ' इत्याद्युवाचार्जुनः। कर्णसमीपगमनार्थं कृष्णप्रेरितरथोऽर्जुनः कौरवसेनां निर्जयन्नभ्ययात्। अर्जुनरथकेतुं दृष्ट्वा शल्यः कर्णं प्रति 'अयं स रथ आयाति' इत्याद्युक्त्वाऽर्जुनं प्रति गन्तुं प्रशंसापूर्वकं तं प्रति प्रो- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | त्साहयामास। आत्मश्लाघां कुर्वन्कर्णोऽर्जुनस्याजेयत्वविषयकं शल्यवाक्यं श्रुत्वा खाण्डवदाहाद्यनुवादपूर्वकमर्जुनं कृष्णं च प्रशस्य 'एतौ च हत्वा' इत्याद्युवाच। अर्जुनः कर्णप्रेरणया वारयितुमागतैः कौरवैः सह युद्धं कुर्वन्नश्वत्थामप्रभृतिभिः संकुलं युद्धं चकार। शिखण्डिप्रभृतयश्च युयुधिरे ... ... | १५४ |
| ८० | ३२ | सैन्यसागरमध्यस्थं भीममुज्जिहीर्षुणाऽर्जुनेन कृतं सैन्यनाशादिकं हतसैन्यादिभिर्युद्धभूमिशोभादिकं च कथयति स्म सञ्जयः। कुरुषु भग्नेष्वर्जुनो भीमेन सह संमंत्र्य तदनुज्ञां गृहीत्वाऽग्रे जगाम ... ... ... | १५५ |
| ८१ | ५७ | आवरीतुमागतान्संशप्तकान्नवतिवीरान्निहत्यार्जुनो गजयोधिभिर्म्लेच्छैः सह युयुधे। अर्जुनसाहाय्यार्थमागतो भीमो गदया कौरवसैन्यं नाशयन्गजानीकं जघान। अर्जुनबाणपीडितानार्तनादं कृत्वा पलायमानान्कौरवानाश्वास्य कर्णः पञ्चालाञ्जगाम ... ... ... | १५६ |
| ८२ | ३६ | पञ्चालादिभिर्युद्धं कुर्वतः कर्णस्य पुत्रे प्रसेने सात्यकिना हते क्रुद्धः स धृष्टद्युम्नपुत्रं जघान। धृष्टद्युम्नपुत्रं हतं दृष्ट्वा श्रीकृष्णं प्रेरयन्नर्जुनः कर्णसमीपं जगाम, तमनु भीमसेनोऽपि। उत्तमौजःप्रभृतिभिः कर्णस्य कृपादिभिः सात्यकेर्दुःशासनेन भीमस्य च युद्धम् ... ... ... | १५८ |
| ८३ | ५२ | सञ्जयकृतं दुःशासनभीमयोर्युद्धवर्णनम्। दुःशासनेन प्रेषितां शक्तिं निहन्तुं भीमेन प्रेषिता गदा तच्छक्तिं भङ्क्त्वा तं मूर्ध्नि ताडयामास। पुनर्भीमप्रेषितया गदया ताडितो दुःशासनो विह्वलः सन्भूमौ पपात। पतितं दुःशासनं दृष्ट्वा पञ्चालादिषु सिंहवन्नदत्सु भीमो रथादवप्लुत्य, द्रौपदीकेशग्रहणादिकं स्मृत्वा क्रुद्धः सन् कर्णादीनाह्वयन् 'निहन्मि दुःशासनमद्य' इत्याद्युवाच। भीमो दुःशासनं प्रत्याक्षेपवाक्यान्युक्त्वा तद्वक्षः पाटयित्वा पूर्वप्रतिज्ञातं तद्रुधिरपानमकरोत्। गतासुं दुःशासनं प्रति क्रोधवाक्यानि ब्रुवन्तं भीमं राक्षसं मत्वा कौरवसैन्यानि पलायनं चक्रुः। भीमो दुःशासनं हत्वा प्रमाणकोट्यां कालकूटभक्षणादिकमनूद्य कौरवानधिक्षिप्य कृष्णार्जुनसमीपे पूर्वसभायां कृतायाः प्रतिज्ञायाः सत्यत्वं कथयामास.. | १६१ |
| ८४ | ४२ | आवृण्वानान्निषङ्गिप्रभृतीन्दश धृतराष्ट्रपुत्रानवधीद्भीमः। भीमपराक्रमं दृष्ट्वा भीतं कर्णं प्रत्युपदिशतः शल्यस्य वाक्यं श्रुत्वा क्रुद्धो वृषसेनो युद्धार्थं भीमं प्रति जगाम। नकुलवृषसेनयोर्युध्यमानयोर्विरथे नकुले भीमरथारूढे उभाभ्यां सह वृषसेनस्य युद्धम्। वृषसेनेन युद्धं कर्तुमर्जुनं प्रति भीमस्योक्तिः ... ... | १६२ |
| ८५ | ३९ | उभयसैन्ययोस्तुमुले युद्धे प्रवृत्तेऽर्जुनादीन्वृषसेने बाणान्वर्षति पीडितान्नकुलादीन्दृष्ट्वा धावताऽर्जुनेन सह तस्य युद्धम्। क्रुद्धोऽर्जुनो दुर्योधनादिसहितं कर्णं प्रति "भवत्समक्षमेनं हनिष्यामि" इत्याद्युक्त्वा कर्णादिषु पश्यत्सु वृषसेनं जघान। पुत्रवधं दृष्ट्वाऽभितप्तः कर्णः कृष्णार्जुनौ प्रत्यधावत् ... | १६५ |
| ८६ | २३ | आगच्छन्तं कर्णं दृष्ट्वा श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति 'अयं सरथ आ- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | याति' इत्याद्युक्त्वा कर्णेन सह युद्धं कर्तुं तं प्रशशंस। कर्णस्य वधं प्रतिज्ञाय तं प्रति गन्तुमर्जुनेन प्रेरितः कृष्णो हयान्संचोद्य क्षणेन तत्समीपमाजगाम ... | १६६ |
| ८७ | ११७ | पुत्रवधाभितप्तः कर्णोऽर्जुनमाहूय तदभिमुखं ययावित्याह सञ्जयः। कर्णार्जुनसमागमं दृष्ट्वा सैन्यानां विस्मयादिकमुभयसैन्ययोर्वाद्यवादनं कर्णार्जुनयो रूपं पराक्रममुभयोः साहाय्यार्थमुभयसैन्ययोरागमनं चाह सञ्जयः। कर्णार्जुनसमागमदर्शनार्थमागतानां देवादीनां पक्षप्रतिपक्षभावे सतीन्द्रसूर्ययोर्विवादः। उभयोः समागमे त्रिलोक्याः कम्पादिकं दृष्ट्वा देवेषूभयोर्जयसाम्यार्थं ब्रह्माणं प्रति प्रार्थयत्सु सत्स्विन्द्रेणार्जुनजये प्रार्थिते ब्रह्मेशानावर्जुनस्य विजयध्रौव्यमभिधाय कृष्णार्जुनौ प्रशशंसतुः। इन्द्रवाक्यश्रवणेन सर्वभूतानां विस्मयादिकं, कर्णार्जुनध्वजवर्णनपूर्वकं मिथो युद्धं चाभ्यधात्सञ्जयः। कर्णेन, मयि हते त्वं किं करिष्यसीति पृष्टः शल्यः कृष्णार्जुनवधं प्रतिजज्ञे। एवमेवार्जुनेन श्रीकृष्णः पृष्टः। ततः 'पतेद्दिवाकरः स्थानात्' इत्यादिवाक्यं वदति श्रीकृष्णेऽर्जुन आत्मानं श्लाघयामास ... | १६९ |
| ८८ | ३४ | युद्धदर्शनार्थं देवनागासुरादिष्वागतेषूभयसैन्ययोर्वादित्रादीनि वादयतोः कर्णार्जुनौ स्वस्वास्त्रैर्दिगादिकं प्रावृणुताम्। बाणान्वर्षतां दुर्योधनादीनां धनुरादिष्वर्जुनेन छिन्नेष्वश्वत्थामा दुर्योधनं प्रति पाण्डवैः शमं कुर्वित्युवाच। दुर्योधनोऽश्वत्थामवाक्यमङ्गीकृत्य कर्णं प्रशंसन्सैन्यमादिदेश ... ... | १७१ |
| ८९ | ९७ | सञ्जयः कर्णार्जुनयोः समागमं, तत्काले तयो रूपादिकमुभयपक्षपातिनां वाक्यानि, तयोर्युद्धारंभं च कथयामास। पञ्चालादिभिर्युद्धं कुर्वतः कर्णस्य पराक्रमं दृष्ट्वा पूर्वं सभायामुक्तं कर्णवाक्यं स्मृत्वा भीमे 'एनं जहि' इत्युक्तवति श्रीकृष्णोऽपि तथैवाब्रवीत्। अर्जुनेन श्रीकृष्णमामन्त्र्य प्रयुक्ते ब्रह्मास्त्रे कर्णेन निवारिते सति क्रुद्धेन भीमेन प्रेरितोऽर्जुनस्तेन सह तुमुलं युद्धमकरोत्। अर्जुनबाणपीडितेषु कौरवेष्वर्जुनं हन्तुं प्रेरयत्सूभयोः परस्परं प्रति बाणान्वर्षतोः सतोरर्जुनास्त्रभयात्कर्णं त्यक्त्वा कौरवाः पलायनं चक्रुः ... ... | १७७ |
| ९० | ११६ | सञ्जयः कौरवप्रयाणमुभयोर्मध्ये कचित्कस्यचिदाधिक्यमाकाशस्थितैः कृतमुभयोः प्रशंसनं चाचकथत्। अर्जुनेन कृतवैरोऽश्वसेननामा नागः पातालादागत्य कर्णेनाज्ञातस्तत्तूणीरे तस्थौ। शराभितप्तः कर्णोऽर्जुनवधार्थं बहुदिनपर्यन्तं पूजितं सर्पमुखमश्वसेनेन कृतप्रवेशं बाणं धनुषि संदधे। कर्णस्य धनुषि प्रविष्टं नागं दृष्ट्वा देवादिषु हाहाकारं कुर्वत्सु 'हतोऽसि फाल्गुन' इत्युक्त्वा तं बाणं मुमोच कर्णः। कर्णसन्धितं बाणं दृष्ट्वा पूर्वमेव श्रीकृष्णेन पृथिव्यां रथे मज्जिते सति स बाणोऽर्जुनस्य किरीटं चिच्छेद। पुनरागतोऽश्वसेनस्तूणं प्रविशन्कर्णेन प्रत्याख्यातः स्वयमेव घोरं रूपं कृत्वार्जुनं हन्तुं प्रययौ। आगच्छन्तं नागं दृष्ट्वा तन्नाशं कर्तुमादिशता | |

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

कृष्णेन तत्प्रत्यभिज्ञायां दत्तायामश्वसेनं नाशयति स्मार्जुनः। कर्णार्जुनयोः परस्परं बाणान्वर्षतोर्बाणप्रहारेण मोहितं कर्णं प्रति बाणांस्त्यक्तुमनिच्छन्नप्यर्जुनः श्रीकृष्णवाक्यात्पुनर्बाणान्ववर्ष। धैर्यं धृत्वा बाणान्वर्षतः कर्णस्य भार्गवशापादस्त्रविस्मरणमभूद्ब्राह्मणशापाद्रथचक्रं च भूमौ ममज्ज। पुनरर्जुने बाणान्वर्षति चक्रमुद्दिधीर्षुः कर्णो युद्धधर्मं कथयन्मुहूर्तं प्रतिपालयेति तमुवाच ... ... ... ... १८३

९१ ६७ श्रीकृष्णः परुषवाक्यानि वदन्यदा द्रौपदीवस्त्रहरणाद्यनूद्य 'क्व ते धर्मस्तदा गतः' इत्याद्युक्तवांस्तदा सलज्जः कर्णो निरुत्तरो बभूव। त्वरां कर्तुं श्रीकृष्णे प्रेरयति पुनरुभयोर्युद्धे प्रवृत्ते मोहितमर्जुनं दृष्ट्वा चक्रोद्धारणार्थं यत्नं कुर्वति कर्णे लब्धसंज्ञोऽर्जुनस्तस्य रथध्वजं चिच्छेद। कर्णवधार्थमर्जुनेन धनुषि संहितस्य शरस्य प्रभामर्जुनशपथं चाकथयंस्तेन कृतं कर्णशिरश्छेदनं, पाण्डवानां शङ्खादिवादनं, छिन्नमस्तकस्य कर्णशरीरस्य शोभां चाभ्यधात्सञ्जयः। कर्णे हते शल्ये च प्रतिनिवृत्ते कौरवाः पलायनं चक्रुः ...१८६

९२ १५ सञ्जयः शल्यस्य गमनं दुर्योधनादीनां शोकादिकं भीमादीनां नादेन रोदस्योः कम्पनं दुःखितदुर्योधननिकटे शल्यवाक्यं च कथयति स्म ...१८७

९३ ६० कर्णार्जुनयुद्धे कुरुसृञ्जयानां रूपं कीदृगिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयः कुरुपाण्डवयोर्बलक्षयं कथयति स्म। कर्णे हते कौरवबले पलायमाने शोकाकुलो दुर्योधनः शल्यं प्रति प्रागल्भ्यगर्भं वाक्यमुवाच। भीमो गदायुद्धं कुर्वन्गदया पञ्चविंशतिसहस्रं सैनिकाञ्जघान। आयान्तमर्जुनं दृष्ट्वा कौरवेषु पलायमानेषु संकुलयुद्धे च प्रवृत्ते स्वसैन्यं भज्यमानं दृष्ट्वा पाण्डवैः सह युद्ध्यमानो दुर्योधनो योधान्प्रत्युवाच ... ... ... ... १८९

९४ ६८ दुर्योधनेन परावर्त्यमानं सैन्यं दृष्ट्वा शल्यस्तं प्रति वदन्बलक्षयादिकं कथयित्वा हतैर्नरादिभिरगम्यरूपां पृथ्वीं वर्णयित्वा युद्धावहारं कुर्वित्याह। द्रौणिप्रभृतिभिर्दुर्योधनस्याश्वासने कृतेऽर्जुनभीतानां कौरवाणां शिबिरगमनादि। सञ्जयो मृतस्य कर्णस्य शरीरप्रभां कथयित्वा तं प्रशंसन् नद्यादीनां प्रस्रवणाभावादिकं कृष्णार्जुनयोः शङ्खध्वानिं तयो रूपं च वर्णयामास ... ... ... ... १९२

९५ १८ अर्जुनभयात्कौरवसैन्येषु पलायमानेषु तद्दिवसीययुद्धावहारे कृते कृपवर्मादयः स्वस्वशिबिराणि जग्मुः ... १९३

९६ ६५ हृष्टः श्रीकृष्णोऽर्जुनं प्रति 'हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनञ्जय' इत्याद्युक्त्वा सैनिकान्प्रति च 'परानाभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वम्' इत्याद्युक्त्वा युधिष्ठिरं प्रति गत्वा अर्जुनेन सह तत्पादवन्दनं कृत्वा च कर्णवधादिवृत्तान्तं कथयति स्म। हृष्टो युधिष्ठिरः श्रीकृष्णं प्रति 'त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानाहनच्च तम्' इत्याद्युक्त्वा कृष्णार्जुनौ स्तुत्वा च युद्धभूमिदर्शनार्थं जगाम। रणे शयानं कर्णं दृष्ट्वा श्रीकृष्णं प्रति 'अद्य राजाऽस्मि गोविन्द'

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | इत्याद्युवाच युधिष्ठिरः। हृष्टा नकुलादयः कृष्णार्जुनौ स्तुत्वा स्वस्वशिबिराणि जग्मुः। जनमेजयं प्रति वैशम्पायनः कर्णनिधनप्रयुक्तं धृतराष्ट्रविलापादिकं, कर्णार्जुनयुद्धश्रवणफलं, कर्णपर्वश्रवणफलं च कथयामास | ...१९६ |

॥ समाप्तेयं कर्णपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

॥ शुभं भवतु ॥

ॐ

# कर्णपर्व-८

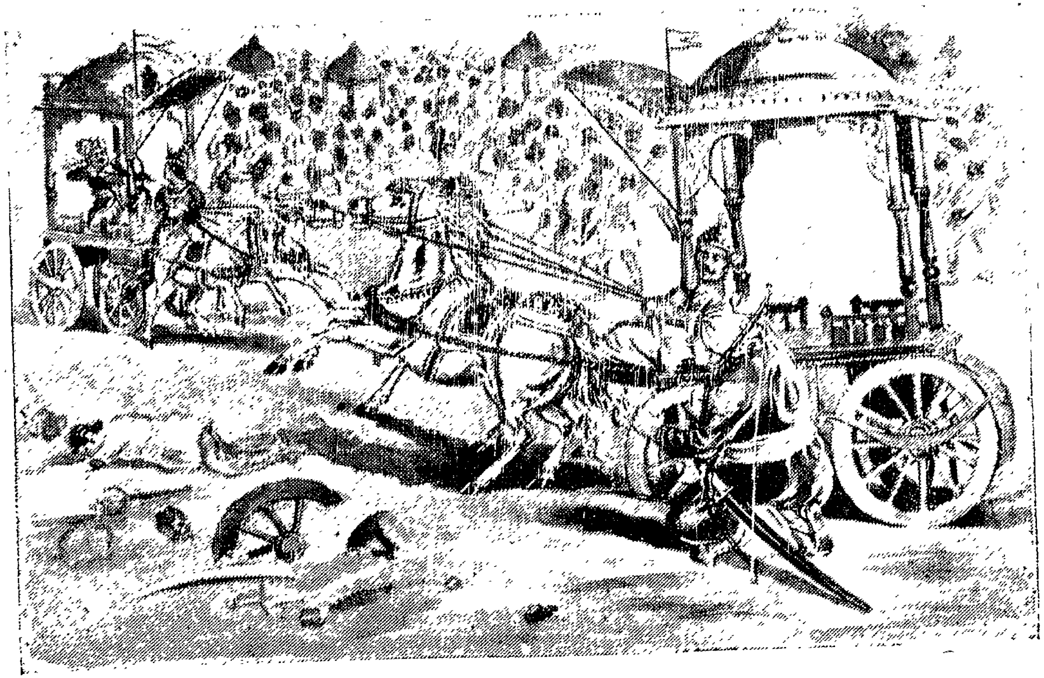

# ॥ महाभारतम् ॥

## कर्णपर्व ।

**-८-**

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥**

वैशम्पायन उवाच ।

ततो द्रोणे हते राजन् दुर्योधनमुखा नृपाः
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन् ॥ १
ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः ।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम् ॥ २
ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसंमितैः ॥
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे
ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन्सुखम्
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः
विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः ।
दुःशासनश्च शकुनिः सौबलश्च महाबलः ॥ ५
उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने ।
चिन्तयन्तः परिक्लेशान् पांडवानां महात्मनां
यत्तद्द्यूते परिक्लिष्टा कृष्णा चानायिता सभां
तत्स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः ७

---

### नीलकण्ठी टीका--

१

**नरनारायणौ नत्वा प्राचीनाचार्यवर्त्मना ।**
**कर्णपर्वार्थविद्योती भावदीपो वितन्यते ॥१॥**

ननु विराटादिपर्वचतुष्टयतात्पर्यं क्रमेणार्थलाभानामर्थः सेवया नीत्या कपटपूर्वकेण कुलवृद्धवधेन नृशंसानृतपूर्वकेण महागुरुवधेन च सिद्धयतीत्युक्तम्।तावतैवार्थनिरूपणं समाप्तम् अतः परं काममोक्षावेव निरूपणीयाविति कर्णपर्वादित्रयं नारंभणीयमिति चेत् सत्यम् । यथा धर्माथौं निरूपितौ एवं धर्माभासोऽर्थाभासश्च निरूपणीयः परिहाराय । एवमधर्मानर्थौ अधर्माभासानर्थाभासौ च निरूपणीयौ हानायोपादानाय च तदर्थमुत्तरग्रंथः काममोक्षयोः प्रागावश्यकः । तत्र चोरेभ्यः कार्पटिकमार्गमुपादिशतः सत्यवादिनः सत्यवदनं धर्माभासः। एवमविचार्य घ्राणचक्षुषं राक्षसं घ्नतो व्याधस्य हिंस्रत्वमधर्माभासः । तथा शोकहेतुना कुलक्षयेण प्राप्तोऽर्थोऽर्थाभासः । सुप्तानां हननमधर्मः । तत्कृतोऽश्वत्थाम्नोऽभिभवोऽनर्थः। शरणागतस्वसैनिकत्राणार्थमन्यायेनापि कृतो ब्रह्मवधो न इतरब्रह्मवधवदनर्थः । अपि त्वनर्थाभास एव । न च तेन ब्रह्महा भवेदित्याततायिवधे दोषाभावस्मरणात् । इत्येषामर्थानां निरूपणार्थं उत्तरः संदर्भः । आख्यायिका तु सुखप्रतिपत्त्यर्था । तस्मादिदमपि पर्वत्रयमावश्यकमेव । **ततो द्रोणे हते राजन्निति** ॥ १ ॥ कश्मलाभिहतौजसः तीव्रशोकाभिघातजन्यामोहेन निरस्तसामर्थ्याः। शारद्वतीसुतम् द्रौणिम् ॥ २ ॥ समाश्वस्य सावधाना भूत्वा रात्र्यागमे प्रदोषकाले ॥ ३ ॥ पृथ्वीशाः राजानः क्षयं भूतं भाविनं च चिन्तयन्तः परामृशन्तः ॥ ४ ॥

तथा तु संचिन्तयतां
तान् क्लेशान् द्यूतकारितान् ।
दुःखेन क्षणदा राजन्
जगामाब्दशतोपमा ॥ ८
ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदिष्टेन कर्मणा ॥ ९
ते कृत्वाऽवश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः॥१०
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान् दधिपात्रघृताक्षतैः११
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः।
वन्द्यमाना जयाशीर्भिः सूत-मागध-बन्दिभिः
तथैव पाण्डवा राजन् कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
शिबिरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः १३
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥
तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन् बभूवाद्भुतदर्शनम् १५
ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः

ततस्तु सञ्जयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् ।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७

जनमेजय उवाच ।

आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम्
आजगाम परामार्तिं वृद्धो राजाऽम्बिकासुतः
स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९
यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः
तस्मिन् हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत्
दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः २१
तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन् बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२
तथैव चान्यान्सुहृदः
पुत्रान् पौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात्प्राणां-
स्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत्॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वाणि जनमेजयवाक्यं नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।

हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १
स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम्॥२
स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम्।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ३

संपूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे॥ ४
सञ्जयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान्
स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यति ५
हितान्युक्तानि विदुर-द्रोण-गाङ्गेय-केशवैः।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम्

---

क्लेशान् कचग्रहणादीन् क्षणदा रात्रिः ॥ ८ ॥ आवश्यकं नित्यकृत्यम् ॥ ९॥ योगं संनहनम् ॥१०॥ निष्कैः सुवर्णहारैः महाधनैः बहुमूल्यैः वन्द्यमानाः स्तूयमानाः सूताः वंशानुक्रमाविदः मागधाः पाणिस्वानिकाः बन्दिनः स्तुतिपाठकाः ॥ १२ ॥ वृषः कर्णः । पश्यताम् अनादरे षष्ठी ॥१६॥ सममन्यत सम्यगवधृतवान्॥२०॥ दुर्मरं दुःखेनापि मर्तुमशक्यं स्वेच्छया॥२१॥ तत् मरणं दुष्करं मन्ये ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

**हते इति** ॥ १ ॥ क्षयं गृहम् ॥ २ ॥ हा कष्टमिति खेदातिशयसूचकं वाक्यमुक्त्वा पश्चाद्वचनं वक्तव्यमाददे ॥ ४ ॥ आस्ते तिष्ठति ॥ ५ ॥

राम-नारद-कण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले ।
न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ७
सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान्भीष्मद्रोणमुखान् परैः
निहतान्युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम्
तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत् ९
धृतराष्ट्र उवाच ।
आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति सञ्जय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः १०
यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव तु ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसंभवः ११
तं हतं यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः १२
भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महाहवे ।
साक्षाद्रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥
यस्य प्रसादात्कौन्तेया राजपुत्रा महारथाः ।
महारथत्वं संप्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसन्धं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥
ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे ।
तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः
त्रैलोक्ये यस्य चास्त्रेषु न पुमान्विद्यते समः
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥

संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ॥
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः १८
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ।
विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नाञ्शोकसागरे ॥
प्लवमानान् हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे।
दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः २०
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ।
मत्पुत्रस्य च शेषस्य तथाऽन्येषां च सञ्जय ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत्कथम् ।
एतत्सर्वं यथावृत्तं तथा गावल्गणे मम ॥ २२
आचक्ष्व पांडवेयानां मामकानां च विक्रमम्
सञ्जय उवाच ।
तवापराधाद्यद्वृत्तं कौरवेयेषु मारिष ॥
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः
यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति ॥
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद्व्यथते बुधः
धृतराष्ट्र उवाच ।
न व्यथाऽभ्यधिका काचिद्विद्यते मम सञ्जय
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

सञ्जय उवाच ।
हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः ॥
बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥ १

अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशांपते ।
अवेक्षमाणाः शोकार्ता नाभ्यभाषन् परस्परम् ॥ २

दंशितानां सन्नद्धानाम् वसुसंभवः वसूनामंशेभ्यः संभूतः ११भार्गवः रामः यस्मै भीष्माय धनुर्वेदे उपाकृतः स्वीकृतः शिष्यत्वेन ॥१३॥ यस्य द्रोणस्य ॥ १४ ॥ सत्यसन्धमवितथप्रतिज्ञम्॥१५॥ चतुर्विधे मुक्तं बाणादि अमुक्तं खड्गादि यन्त्रमुक्तं गोलादि मुक्तामुक्तं सोपसंहारमस्त्रम् ॥ १६ ॥ गमिते सति किमकुर्वतेत्युत्तरेण संबंधः ॥ १७ ॥ निमग्नानपि प्लवमानान् जीवितेप्सया चेष्टां कुर्वाणान् इत्युत्तरत्र संबंधः ॥ १९ ॥ दिष्टे दैवोपाहृते अभाविनः सुखस्य प्राप्तौ भाविनो दुःखस्य प्राप्तौ वा बुधो न व्यथते । तद्विपर्यये वा न हृष्यतीत्यर्थः ॥ २४ ॥ दिष्टं **अवश्यंभावि** ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

**हते इति** । अस्वस्थमुखाः दीनवदनाः ॥ १ ॥

तान् दृष्ट्वा व्यथिताकारान्
सैन्यानि तव भारत ।
ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त
दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३

शस्त्राण्येषां तु राजेन्द्र शोणिताक्तानि सर्वशः
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि
तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥
तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् ।
बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥
भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ७
तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः
जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे
भवेत्किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः
पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १०

यस्य वै युधि संत्रासात्
कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
निवर्तते सदा मन्दः
सिंहात् क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११

येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२

येन दिव्यास्त्रविच्छूरो
मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या
निहतो भैरवं नदन् ॥ १३

तस्य दुर्वारवीर्यस्य सत्यसन्धस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४
द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पश्यन्तु पाण्डुपुत्रास्ते विष्णुवासवयोरिव १५

सर्व एव भवन्तश्च
शक्ताः प्रत्येकशोऽपि वा ।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं
ससैन्यान् किमु संहताः ॥
वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च
द्रक्ष्यथाद्य परस्परम् ॥ १६

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा
तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥
सैनापत्यमथावाप्य कर्णो राजन्महारथः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥

स सृञ्जयानां सर्वेषां
पञ्चालानां च मारिष ।
केकयानां विदेहानां
चकार कदनं महत् ॥ १९

तस्येषुधाराः शतशः
प्रादुरासञ्छरासनात् ।
अग्रे पुंखेषु संसक्ता
यथा भ्रमरपङ्क्तयः ॥ २०

स पीडयित्वा पञ्चालान्
पाण्डवांश्च तरस्विनः ।
हत्वा सहस्रशो योधान्
अर्जुनेन निपातितः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्यं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

ऊर्ध्वमूर्ध्वगमनमेव न त्वधोवस्थानम् ॥ ३ ॥ हस्तस्थानां भ्रंशोऽरिष्टसूचक उक्त एवं बद्धानां बन्धशैथिल्यमपीत्याह-**तानीति** । दिविस्थितानि पतमानानि नक्षत्राणीव अधोमुखान्यदृश्यन्तेत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्तिमितं स्तब्धं यतो गतसत्त्वमुद्विग्नचित्तम् ॥ ६ ॥ वध्यन्ति वध्यन्ते परैरिति-शेषः ॥ ८ ॥ किमत्र चित्रं क्षणं पाण्डवैर्जितं चेन्नैतदाश्चर्यम् ॥ ९ ॥ अस्माकमसकृज्जयो जात इत्याह-**पश्यध्वमित्यादिना** ॥ १० ॥ तां द्रोणवधप्रसिद्धाम् ॥ १२ ॥ द्रविणं बलम् ॥ १४ ॥ द्रक्ष्यथ दर्शयिष्यथ ॥ १६ ॥ अग्रे पुंखेषु संसक्ताः प्रेर्यमाणस्य शरस्याग्रेण पुंखेन संसक्ता इषुधाराः पूर्वोत्तरेषु सन्धानादविच्छिन्नप्रवाहा इत्यर्थः ॥ २० ॥ पीडयित्वा हत्वेत्यनेककर्तृकेऽपि क्त्वाप्रत्ययश्छान्दसः अन्येऽभ्योऽपि दृश्यन्ते इति क्वनिवन्तं वा शब्दद्वयं दृशिग्रहणादाद्ये तुगपि । पीडयन् निघ्नन्निति वाऽर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
शोकस्यान्तमपश्यन्वै हतं मेने सुयोधनम् १
विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः ।
तस्मिन्निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे ॥ २
आर्तनादो महानासीत् स्त्रीणां भरतसत्तम ।
स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः ।
रुरुदुर्दुःखशोकार्ता भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ४
राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च
ततस्ताः सञ्जयो राजन्समाश्वासयदातुराः ।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम्
समाश्वस्तास्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः ।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥ ७
राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवं
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां
ताश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः ।
उन्मत्त इव राजेन्द्र
स्थितस्तूष्णीं विशांपते ॥ ९
ततो ध्यात्वा चिरं कालं
निःश्वस्य च पुनः पुनः ।
स्वान् पुत्रान् गर्हयामास
बहु मेने च पाण्डवान् ॥ १०
गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च ।
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥
संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत सञ्जयम् ॥ १२
यत्त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं सञ्जय तन्मया ।
कच्चिद्दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥
जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः ।
ब्रूहि सञ्जय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥
एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतो राजानं जनमेजय ।
हतो वैकर्तनो राजन्सह पुत्रैर्महारथः ॥ १५
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः ।
दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना ।
पीतं च रुधिरं कोपाद्भीमसेनेन संयुगे ॥ १६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोको नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

वैशम्पायन उवाच ।
इति श्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
अब्रवीत्सञ्जयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥ १
दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्यादीर्घजीविनः ।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति
तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के च जीवन्ति के मृताः
सञ्जय उवाच ।
हतः शान्तनवो राजन् दुराधर्षः प्रतापवान्
हत्वा पण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४

---

४

**एतदिति** ॥ १ ॥ विह्वलः चलनासमर्थः काष्ठवत्पतितः ॥ २ ॥ अन्तःपुराणि स्त्रियः ॥ ५ ॥ **कदल्य इव** वेपमाना आसन्निति शेषः ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा मनसैवात्मप्रत्ययेन दुःखवतीर्ज्ञात्वा ॥९॥ 'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्' इति मनसि निधायाह-**यत्त्वयेति** ॥ १३ ॥ **जये इति** । इष्टवियोगमात्रेण दशरथादिर्मृतः । अस्य तु जये नैराश्यमधिकं मरणकारणमस्तीति भावः । उक्तां संक्षेपेण । पुनर्ब्रूहि विस्तरेण ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

**इतीति** ॥ १ ॥ दुष्प्रणीतेन दुर्नयेन अदीर्घजीविनोऽल्पायुषः मयैव दुर्नीत्या पुत्रो मरणोन्मुखः कृत इति भावः ॥ २ ॥ हत्वा निघ्नन् ॥ ४ ॥

तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान्
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद्रुक्मरथो हतः ॥ ५
हतशेषस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्तनो हतः ॥
विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥
तथा पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान्
घोररूपान् परिक्लेशान् दुर्योधनकृतान्बहून् ।
प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥
सिंधुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानिह ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥
अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैः शरैः
अर्जुनेन हतो राजन्महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२
तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः
तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः
द्रौपदेयेन सङ्गम्य गमितो यमसादनम् ॥ १४
किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम्
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥
भगदत्तो महीपालः क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥१६
तथा कौरवदायादो न्यस्तशस्त्रो महायशाः
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि॥
श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरंधरः ।
चरन्नभीतवत्संख्ये निहतः सव्यसाचिना ॥
तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥
यस्य राजन् गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना
कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुमतान्परान् ।
सौभद्रेणेह विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥
बहुशो योधयित्वा तु भीमसेनं महारथम् ।
मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्धनः ।
असि-चर्मधरः श्रीमान्सौभद्रेण निपातितः॥
समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥
नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः
शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन् भ्राता मातुलजो युधि
राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ
भगदत्तसुतो राजन् कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता संख्ये नकुलेन निपातितः ॥
पितामहस्तव तथा बाह्लीकः सह बाह्लिकैः
निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥ ३०
जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासन्धिर्महाबलः ।
मागधो निहतः संख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥
पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन् दुःसहश्च महारथः ।
गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥
दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम्३३
उभौ कलिङ्गवृषकौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ ।
कृत्वा चासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥
सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान् ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥
तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान् ।
समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥
वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः
अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः।
शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः॥
गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः ।
तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना॥
श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥
स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ।
त्वदर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना॥
उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।
शाल्वराजो महाबाहुर्भीमसेनेन पातितः ४२

निहत्यैव दुर्धर्ष इत्यन्वयः । जात इति शेषः ॥ ५ ॥
हतो गतः परलोकमिति शेषः। एवमग्रेऽपि योज्यम्॥ ६
अपावृत्तकवीराः अपगतं आवृत्तकं कुत्सितं संग्रामात्पराव-
र्तनं येषां ते संशप्तकसहचरा गोपालकाः ॥ ३९ ॥

ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ४३
तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशांपते ।
निहतो गदया राजन् भीमसेनेन संयुगे ४४
तथा राजन्महेष्वासो जलसन्धो महाबलः
सुमहत्कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ४५
अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान् ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ४६
राधेयः सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना
मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः
मावेल्लकास्तुण्डिकेराः
सावित्रीपुत्रकाश्च ये ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च
दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४९
पत्तीनां निहताः सङ्घा हयानां प्रयुतानि च
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ५०
सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः
कालेन महताऽऽयस्ताः कुशलैर्ये च वर्धिताः
ते हताः समरे राजन् पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
अन्ये तथाऽमितबलाः परस्परवधैषिणः ॥५२
एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे ।
हताः सहस्रशो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि
एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे ।
महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ५४
यथा कृष्णेन नरको मुरुश्च नरकारिणा ।
कार्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण यथा हतः ५५
सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः ।
रणे कृत्वा महद्युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनम् ५६
यथा स्कन्देन महिषो यथा रुद्रेण चान्धकः ।
तथाऽर्जुनेन स हतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥ ५७
सामात्यबान्धवो राजन् कर्णः प्रहरतां वरः
जयाशा धार्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥
तीर्णस्तत्पाण्डवो राजन् यत्पुरा नावबुध्यसे
उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकाङ्क्षिभिः ॥
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम् ।
पुत्राणां राज्यकामानां
त्वया राजन् हितैषिणा ।
अहितान्येव चीर्णानि
तेषां तत्फलमागतम् ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

धृतराष्ट्र उवाच ।
आख्याता मामकास्तात
निहता युधि पाण्डवैः ।
हतांश्च पाण्डवेयानां
मामकैर्ब्रूहि सञ्जय ॥ १
सञ्जय उवाच ।
कुन्तयो युधि विक्रान्ता महासत्त्वा महाबलाः
सानुबन्धाः सहामात्या गाङ्गेयेन निपातिताः
नारायणा बलभद्राः *शूराश्च शतशोऽपरे ।
अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ३
समः किरीटिना संख्ये वीर्येण च बलेन च
सत्यजित्सत्यसन्धेन द्रोणेन निहतो युधि ४
पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः
द्रोणेन सह संगम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५
तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६

---

खरबन्धुरयानवान् खरं तीक्ष्णं बन्धुरं रम्यं यानं विद्यते यस्य । खरैर्गर्दभैर्बन्धुरं यानमस्यास्तीति सः । गर्दभसंयुतरथवान् वा ॥ ४६ ॥ कृष्णेन नरकारिणा नरको मुरुश्च यथेत्यन्वयः ॥ ५५ ॥ कर्णस्तथा हत इत्यनुकृष्यते ॥५७ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ *बङ्गाश्च इति पाठः ।

६

आख्याता इति ॥ १ ॥

यो बाल एव समरे संमितः सव्यसाचिना
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥ ७
परेषां कदनं कृत्वा महारथविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ॥ ८
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ।
कृतं तं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ९
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान्रणे ।
सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥
अम्बष्ठस्य सुतः श्रीमान्मित्रहेतोः पराक्रमन् ।
आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्योधनसुतं रणे ११
सुमहत्कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।
बृहन्तः सुमहेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः १२
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।
मणिमान् दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ॥
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन युधि पातितौ ।
अंशुमान् भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ॥
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।
सामुद्रश्चित्रसेनश्च सह पुत्रेण भारत ॥ १५
समुद्रसेनेन बलाद्गमितो यमसादनम् ।
अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥
अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् ।
चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा च कदनं महत् ॥
चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे ।
वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः १८
कैकेयेन च विक्रम्य भ्राता भ्रात्रा निपातितः
जनमेजयो गदायोधी पार्वतीयः प्रतापवान्
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ।
रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव२०
द्रोणेन युगपद्राजन् दिवं संप्रापितौ शरैः ।
नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशांपते
कृत्वा नसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः
संग्रामनिर्जिताँल्लोकान् गमितौ द्रोणसायकैः

अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः२३
वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे ।
अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान्
निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः ।
मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत २५
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ।
शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः२६
लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ।
सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महारथौ २७
प्रचरन्तौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे ।
वार्धक्षेमिर्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥ २८
आयुधक्षयमासाद्य प्रशान्तिं परमां गतः ।
सेनाबिन्दुसुतः श्रेष्ठः शस्त्रवान् प्रवरो युधि
बाह्लिकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः ।
धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥ ३०
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ।
तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे ३१
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम्
सेनाबिन्दुः कुरुश्रेष्ठः कृत्वा कदनमाहवे ३२
पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः ।
निहत्य शात्रवान्संख्ये द्रोणेन निहतो युधि ।
तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान्
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ३४
श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ३५
तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित्
भीष्मेण निहतो राजञ्शेतेऽद्य परवीरहा ॥
विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः ।
कुर्वन्तौ सुमहत्कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ३७
वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ३८
एते चान्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः
हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

षड्भिः द्रोण-द्रौणि-शल्य-कर्ण-कृप-कृतवर्मभिः परमकै रथैः महामात्रैः मुख्यैः अशक्नुवद्भिरेकैकश्येन हन्तुमिति शेषः ॥ ८॥ रोचमानौ एकनामानौ भ्रातरौ ॥ २० ॥इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

धृतराष्ट्र उवाच ।
मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेकस्य सञ्जय
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति १
तौ हि वीरौ महेष्वासौ
मदर्थे कुरुसत्तमौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा
नार्थो वै जीवितेऽसति ॥ २
न च शोचामि राधेयं हतमाहवशोभनम् ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतम् ३
हतप्रवरसैन्यं मे यथा शंससि सञ्जय ।
अहतानपि मे शंस केऽत्र जीवन्ति के च न ४
एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः ।
येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ५
सञ्जय उवाच ।
यस्मिन्महास्त्राणि समर्पितानि
चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि ।
दिव्यानि राजन्विहितानि चैव
द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥ ६
महारथः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः ।
स वीर्यवान् द्रोणपुत्रस्तरस्वी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ७
आनर्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ
महारथः सात्वतानां वरिष्ठः ।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ८
आर्तायनिः समरे दुष्प्रकम्प्यः
सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम् ।
यः स्वस्त्रीयान्पाण्डवेयान्विसृज्य
सत्यां वाचं स्वां चिकीर्षुस्तरस्वी ९
तेजोवधं सूतपुत्रस्य संख्ये
प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात् ।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः
शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे १०
आजानेयैः सैन्धवैः पार्वतीयै-
र्नदीजकाम्बोजवनायुजैश्च ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ११
शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्
महाबाहुर्बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद्भारसाहं
व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥ १२
महारथः केकयराजपुत्रः
सदश्वयुक्तं च पताकिनं च ।
रथं समारुह्य कुरुप्रवीर
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १३
तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं
रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः ।
व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्र
व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे १४
दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये
व्यवस्थितः सिंह इवावभासे ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन
व्यवस्थितः समरे योत्स्यमानः १५

---

७

**मामकस्येति** । हतोत्सेकस्य केदारान्प्रति प्रापितोदकस्य क्षुद्रसरस इवावशेषं न पश्यामि । ककुदे प्रधानपुरुषसमूहे भीष्मद्रोणकर्णरूपे मृदिते नाशिते सति ।। १ ॥ असति तुच्छे ।।२।। शतं शतं सहस्रदशकम् । आर्षो विभक्तिव्यत्ययः । कुञ्जराणामयुतेन तुल्यं बाह्वोर्बलं यस्य तस्यापि वधेन मृष्यामीति न अपि तु मृष्याम्येव । मृत्युजयिनो भीष्मस्य क्षात्रब्राह्मोभयबलवतो द्रोणस्य च वधं कुर्वतां परेषां कर्णवधस्येषत्करत्वादिति भावः ।। ३ ।। मृताः मृतप्रायाः ॥ ५ ।। चित्राणि अनेकनानायुधप्रसवक्षमाणि शुभ्राणि दीप्तिमन्ति चतुर्विधानि दृढदूरसूक्ष्मशब्दवेधीनि विहितानि धनुर्वेदोदितानि । चित्रशुभ्रदिव्यविहितान्येव वा चतुर्विधानि । अत्र विहितानि कृत्रिमाणीति प्राञ्चः । अस्त्रान्तरानिवर्त्यमाग्नेयादि नतिमन्त्रनिवर्त्यं नारायणास्त्रादि प्रयोक्त्रैकनिवर्त्यं ब्रह्मशिर आदि । सर्वथाऽप्यनिवर्त्यं पाशुपतादि । एवं चतुर्विधानि वीरे निहितानि समर्पितानि ॥६॥ कृतिमान् अवंध्ययत्नः ॥ ७ ॥ आर्तायनिः शल्यः स्वस्त्रीयान् भागिनेयान् । उभयोरेव भागिनेयत्वेऽपि लिंगसमवायात्सर्वेषां भागिनेयत्वम् ॥ ९ ॥

स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो
रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो
मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ १६
तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणि-
स्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं
हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १७
ह्रीनिषेवो भारत राजपुत्र
उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः ।
जारासन्धिः प्रथमश्चादृढश्च
चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ॥ १८
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च
व्यवस्थिताः सहसैन्या नराग्र्याः ।
कैतव्यानामधिपः शूरमानी
रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ॥ १९
रथी हयी नागपत्तिप्रयायी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ।
वीरः श्रुतायुश्च धृतायुधश्च
चित्राङ्गदश्चित्रसेनश्च वीरः ॥ २०
व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्र्याः
प्रहारिणो मानिनः सत्यसन्धाः ।
कर्णात्मजः सत्यसन्धो महात्मा
व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ॥ २१
अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ
व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
महद्बलं दुर्भिदमल्पवीर्यैः
समन्वितौ योद्धुकामौ त्वदर्थे ॥ २२
एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्
योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये
यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय ॥२३

धृतराष्ट्र उवाच ।

आख्याता जीवमाना ये परे सैन्या यथायथं
इतीदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥२४

वैशम्पायन उवाच ।

एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किंचिच्छेषं स्वकं बलम्
श्रुत्वा व्यामोहमागच्छ-
च्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ।
मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि
मुहूर्तं तिष्ठ सञ्जय ॥ २६
व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
मनो मुह्यति चाङ्गानि न च शक्नोमि धारितुं
इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
भ्रान्तचित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्यं नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

जनमेजय उवाच ।

श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान्
नरेन्द्रः किञ्चिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत्
प्राप्तवान्परमं दुःखं
पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन् यदुक्तवान् काले
तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ २

---

क्षणभोजी शीघ्रभोजी ॥ १८ ॥ नागपत्तिप्रयायी नागैः पत्तिभिश्च प्रयातुं शीलमस्य । नागरथप्रयायीति पाठान्तरम् ॥२० सैन्याः सेनामर्हन्ति ते राजानः । यथायथं पक्षद्वयेऽपि जीवमाना आख्याताः इदं भाविजयपराजयादिकं इत्यनेन पक्षद्वयबलतोलनेन व्यक्तं स्पष्टमभिगच्छामि जानामि अर्थाभिपत्तितः फलोपपत्तितः तेन जयो मदीयानां नास्तीति निश्चिनोमीति भावः ॥ २४ ॥ अङ्गानि चक्षुरादीनि मनश्च मुह्यति ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

श्रुत्वेति ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसंमोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ॥ ३
चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ।
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४
दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युतेः ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयांभसः ॥
महीवियद्दिगम्बूनां सर्वनाशामिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥६
सञ्चिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति संचिन्त्य कर्णस्य समरे वधम्
प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति विनाशनम्
शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशये ॥
विस्रस्ताङ्गः श्वसन् दीनो
हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः ।
विललाप महाराज
धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९
धृतराष्ट्र उवाच ।
सञ्जयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः ।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन् ॥ १०
वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्तते ।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥ ११
यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च ।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे ॥ १२
यमाश्रित्य महाबाहुं विद्विषां जयकांक्षया ।
दुर्योधनोऽकरोद्वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥ १३
स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे ।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १४
यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनञ्जयम् ।
न वृष्णीन्सहितानन्यान्स्वबाहुबलदर्पितः ॥
शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।
अहं दिव्याद्रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥
इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम् ।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम् ॥१७
योऽजयत्सर्वकाम्बोजा-
नावन्त्यान् केकयैः सह ।
गान्धारान् मद्रकान्मत्स्यां-
स्त्रिगर्तांस्तंगणाञ्शकान् ॥ १८
पञ्चालांश्च विदेहांश्च
कुलिन्दान् काशिकोसलान् ।
सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च
निषादान् पुण्ड्रचीरकान् ॥ १९
वत्सान्कलिंगांस्तरलानश्मकानृषिकानपि ।
जित्वैतान्समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥
शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः ॥
दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित् ।
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः
वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो वरेष्वपि ॥
तृतीयमन्यं लोकेषु वृषं नैवानुशुश्रुम ।
उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः॥
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।
योजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं
कृत्स्नामुर्वीमथाजयत् ।
यं लब्ध्वा मागधो राजा
सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः ॥ २६
अरौत्सीत्पार्थिवं क्षत्रमृते यादवकौरवान् ।
तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्ना नौरिव सागरे
तं वृषं निहतं श्रुत्वा द्वैरथे रथिनां वरम्॥२८
शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा ।
ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि सञ्जय ॥ २९
वज्राद्दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम् ।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम्

---

भार्गवस्य रामस्य शुक्रस्य वा ॥ ४ ॥ कर्णस्य वधं संचिन्त्य मनस्यालोच्य इदं कृत्स्नं जगत्स्वसैन्यं वा नास्तीति संचिन्त्य निश्चित्य विललापेति तृतीयेन संबंधः ॥ ७ ॥ प्राणिनामवध्यात्कर्णादन्येषां तृणतुल्यानां मन्दत्वादल्पवीर्यत्वात् इति अनेनैव प्रकारेण विनाशनं स्यादपीति हेतोराशये चेतसि धम्यमान इव विस्रस्ताङ्गः यथा भ्राष्ट्रे धम्यमानः पाषाणादिः शीर्यते तद्वद्विशीर्ण इत्यर्थः ॥ ८ ॥ न निवर्तते इति छेदः ॥ ११ ॥ अवाचीनं चिन्तयाऽधोमुखम् ॥ १७ ॥ जलवर्षित्वाद्देवेषु महेन्द्रो वृषः । धनवर्षित्वान्मनुष्येषु कर्णो वृषः ॥ २३ ॥ तृतीयमेवमभितो वृष्टिकर्तारं वृषम् ॥ २४ ॥ अजित इति छेदः। योजितो नियोजितो मयेति वा ॥२५॥ **यमिति।** मागधोऽप्यस्यैव बलेन बलवानिति भावः॥ २६ ॥ अप्लवः नौकाहीनः ॥२९॥

को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात्सूत जीवितम्। विषमग्निं प्रपातं च पर्वताग्रादहं वृणे।
न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि सञ्जय॥ ३१

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽ-
ष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

९

सञ्जय उवाच।

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च।
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम्
श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव।
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः॥

धृतराष्ट्र उवाच।

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे॥३
हत्वा युधिष्ठिरानीकं पञ्चालानां रथव्रजान्
प्रताप्य शरवर्षेण दिशः सर्वा महारथः॥ ४
मोहयित्वा रणे पार्थान् वज्रहस्त इवासुरान्
स कथं निहतः शेते वायुरुग्ण इव द्रुमः॥ ५
शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव।
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते॥
कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य च
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य सञ्जय॥ ७
वज्रसारमयं नूनं हृदयं दुर्भिदं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते॥ ८
आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवामीह सुदुःखितः॥
धिग्जीवितमिदं चैव सुहृद्धीनस्य सञ्जय।
अद्य चाहं दशामेतां गतः सञ्जय गर्हिताम्॥
कृपणं वर्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः
अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः॥
परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम्।
दुःखात्सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि सञ्जय॥
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः।
नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि॥ १३
स हि पार्थं महानासीत्पुत्राणां मम सञ्जय।
युद्धे हि निहतः शूरो विसृजन्सायकान् बहून्
को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम्।
रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत्सायकार्दितः॥ १५
पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद्विदारितम्।
स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन् रुधिरोक्षितः॥
मातङ्ग इव मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः।
यो बलं धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम्
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम्।
स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः॥
शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः।
पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम्॥
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः।
अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत्तु जायते।
अहो नु बलवद्दैवं 'कालश्च दुरतिक्रमः'।
पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः॥
कच्चिद्विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम।
कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे२२॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

९

**श्रियेति**॥ १॥ दुःखात् भीष्मद्रोणवधजात् दुःखं च व्यसनं च तदुभयं दुःखं कर्णवधजम्। व्यसनं शेषनाशजम्॥ १२॥ तदेवाह-**भीष्मेत्यादिना**॥ १३॥ पार्थं पारप्रदं नौकास्थानीयम्॥ १४॥ प्रतिमानं ध्वजभूतम्॥ १८॥ यथा पङ्गोरध्वगमनं दुर्घटमेवं दुर्योधनस्याकूतमभिप्रायो दुर्घटः। तृषितस्य विप्रुषो जलबिन्दवो यथा तृष्णोपशमाय न भवन्ति। एवं दुर्योधनचेष्टितमपीष्टसिद्ध्यर्थं न पर्याप्तमित्यर्थः॥ १९॥ दीनपौरुषः नष्टपराक्रमः॥ २१॥

कच्चिन्न निहतः शूरो यथाऽन्ये क्षत्रियर्षभाः।
युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा ॥
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम् ।
शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना ॥
पानीयं याचितःपार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलं
जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च ॥
अब्रवीत्स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः।
प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु वः ॥
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुंक्ष्व पाण्डुसुतैः सह ।
अकुर्वन्वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः ॥२७
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः ।
अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च सञ्जय ॥ २८
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः ।
यथा हि शकुनिं गृह्य छित्वा पक्षौ च सञ्जय
विसर्जयन्ति संहृष्टास्ताडयमानाः कुमारकाः
लूनपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते ॥ ३०
तथाऽहमपि संप्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः ।
क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः

वैशम्पायन उवाच ।

इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः।
प्रोवाच सञ्जयं भूयः शोकव्याकुलमानसः ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

योऽजयत्सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान्केकयैः सह
गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं योऽजयत्पृथिवीं प्रभुः ।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः
तस्मिन् हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना
के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥
कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे।
उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो निपातितः
भीष्ममप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥३७
तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः॥३८
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन सञ्जय ।
अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः।। ३९
अश्रौषमहमेतद्वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद्वज्रभृत्स्वयम्
न्यायेन युध्यमानौ हि तद्वै सत्यं ब्रवीमि ते ।
कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत् ।
यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणां
प्रायच्छद्द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरंदरः ।
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः
अशेत निहतः पत्री चन्दनेष्वरिसूदनः ।
भीष्मद्रोणमुखान्वीरान्योऽवमन्ये महारथान्
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत ।
यश्च द्रोणमुखान् दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत्कार्मुकं शितैः ।
यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥ ४६
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत् ।
सहदेवं च निर्जित्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४७
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद्धर्मचिन्तया ।
यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥

घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं
शक्रशक्त्या निजघ्निवान् ।
एतांश्च दिवसान्यस्य
युद्धे भीतो धनञ्जयः ।। ४९

नागमद्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे ।
संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदाऽन्यतः
एतान्हत्वा हनिष्यामि पश्चाद्वैकर्तनं रणे।
इति व्यपदिशन् पार्थो वर्जयन् सूतजं रणे ॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा ।
रथभङ्गो न चेत्तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः ।
को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद्धनुः

विमुञ्चन्तं शरान् घोरान्
दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
जेतुं पुरुषशार्दूलं
शार्दूलमिव वेगिनम् ॥ ५४

ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वाऽपि महीं गतः
अस्त्राणि वा प्रनष्टानि यथा शंससि मे हतं

---

अन्ये क्षुद्राः ॥ २३ ॥ ताड्यमानाः ताडयन्तः ॥ ३० ॥ अप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डिना प्रतियुद्धमनङ्गीकुर्वाणम् ॥ ३७ ॥ द्रौपदिना द्रुपदपुत्रेण धृष्टद्युम्नेन ॥ ३८ ॥

कुण्डलाभ्यां सकवचाभ्यामर्थे तादर्थ्ये चतुर्थी ॥ ४३ ॥ अवमन्ये अवमेने ॥ ४४ ॥ रथेति। रथभंगाद्यभावे तस्य मृत्युर्न भवेदिति भावः ॥ ५२ ॥

न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने ।
न हन्मि फाल्गुनं यावत्तावत्पादौ न धावये
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः ।
यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत्पुरुषर्षभः ।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः ॥
मम पुत्रः सभां भार्यां
पाण्डूनां नीतवान्बलात् ।
तत्रापि च सभामध्ये
पाण्डवानां च पश्यताम् ।
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत्कुरुसन्निधौ ।
न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः
उपतिष्ठस्व भर्तारमन्यं वा वरवर्णिनि ।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाः संश्रावयन् रुषा
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः ।
यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः
न हनिष्यति कौन्तेयान्पक्षपातात्सुयोधन ।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः
किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः ।
यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन्पार्थानवैक्षत ।
यस्य नासीद्भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि सञ्जय ।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः ॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किंपुनस्तात पाण्डवैः ।
न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वाऽपि गृह्णतः
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित्प्रमुखतोऽर्हति ।
अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः ।
येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत ।
स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम् ॥
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः ।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥७२
जयतः पाण्डवान् दृष्ट्वा
किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा
वृषसेनं च संयुगे ॥ ७३
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः ।
पराङ्मुखांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥
विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः
अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत्
स्वयं वैरं महत्कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ७७
रुधिरे पीयमाने च किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
सह गान्धारराजेन सभायां यदभाषत ॥
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन् किमब्रवीत्
द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पांडवान्
शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।
कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥
हतं वैकर्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः ।
युवा रूपेण संपन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत सञ्जय ।
आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ॥
कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।
मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समिति शोभनः
दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः ।
किमभाषत सौवीरो मद्राणामधिपो बली ॥
दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वारणदुर्जयाः ।
ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त सञ्जय ॥ ८६
द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे ।
के वा मुखमनीकानामासन् सञ्जय भागशः
मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥

---

प्रतीपं प्रातिभटयेन अभिधावद्भिः सर्वदिग्भ्यः समागतैः ॥ ६८ ॥ आधिरथेः अधिरथपुत्रस्य । सोमसूर्यसाहचर्यात् प्रकर्षेण भातीति योगाच्च प्रभो वह्निः तेषां त्रयाणामंशुभिर्मयूखैः ॥ ६९ ॥ मंदो दुर्योधनः ॥ ७० ॥ प्राङ्मुखानिति पाठे निवर्तितमुखान् । प्रत्यङ्मुखाः कौरवाः यदि पलायन्ते तदा प्राङ्मुखा एव भवन्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥ अनेयः अशिक्षणीयः यतोऽभिमानी विद्वत्त्वाभिमानी अत एव दुर्बुद्धिः हितमजानन् ॥ ७५ ॥ प्रधने रणे ॥ ७७ ॥ कानि वाक्यानीति शेषः ॥ ८६ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः ।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ८९
के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः ॥
पाण्डवाश्च स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदाः
स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ९२
मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य सञ्जय
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ९३
तौ हि वीरौ महेष्वासौ
मदर्थे त्यक्तजीवितौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा
को न्वर्थो जीवितेन मे ॥ ९४
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णं च पाण्डवैः ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः ९५
द्रोणे हते च यद्वृत्तं कौरवाणां परैः सह ।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ९६
यथा कर्णश्च कौन्तेयैः
सह युद्धमयोजयत् ।
तथा च द्विषतां हन्ता
रणे शान्तस्तदुच्यताम् ॥ ९७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

सञ्जय उवाच ।
हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत ।
कृते च मोघसङ्कल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १
द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे ।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद्भ्रातृभिर्वृतः २
तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥ ३
स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत ४
लब्धलक्षैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा ।
संध्याकालं समासाद्य प्रत्यहारमकारयत् ५
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां
प्रविश्य शिबिरं स्वकम् ।
कुरवः सुहितं मन्त्रं
मन्त्रयांचक्रिरे मिथः ॥ ६
पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः
ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना ।
तानाभाष्य महेष्वासान् प्राप्तकालमभाषत
मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम् ।
एवं गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः ९
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः ।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा १०
तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम्
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ११
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे
रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः
लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः

---

प्रत्युदीयुः कथमिति शेषः॥ ९१ ॥ हतोत्सेधस्य विनष्टोत्कर्षस्य ॥ ९३ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

**हते द्रोण इति** ॥ १ ॥ स्वबलं प्रतिविद्रुतं द्रवन्तं दृष्ट्वा ॥ ३ ॥ लब्धलक्षैः प्राप्तजयैः व्यायच्छद्भिः यतमानैः प्रत्यहारं प्रत्यवहारं प्रत्याहारमिति वा पाठः ॥५॥ पर्यंकेष्वेव वरासनेषु ॥ ७ ॥ साम्ना प्रियवचसा परमवल्गुनाऽतिमधुरेण ॥ ८ ॥ कार्यतरं आवश्यकतरं यत्कार्यं कर्तव्यं परं मतं संमतं तत् प्रब्रूत ॥ ९ ॥ चेष्टाः शौर्याभिनयरूपाः भुजास्फालनाद्याः ॥ १० ॥ निशाम्य आलोच्य वर्चसं छान्दसष्टच् ॥ ११ ॥ रागः स्वामिभक्तिः योगो देशकालादिसंपत्तिः । दाक्ष्यं बलम् । नयो नीतिः ॥ १२ ॥

नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥
सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते ।
ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ॥ १५
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत ।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून्
एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून् १७
एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तवात्मजः ।
आशां बहुमतीं चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा१८
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत
ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वाऽस्य तद्वचः
प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम्२०
स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ २१
कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः
श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत्तव रोचते ।
भवान्प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः २३
भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम ।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः २४
वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनञ्जये
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात्तव२५
पितामहत्वं संप्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे ।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु ॥
न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे२७
हते तस्मिन्महेष्वासे शरतल्पगते तथा ।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत्पुरःसरः ॥
तेनापि रक्षिताः पार्थाः
शिष्यत्वादिति मे मतिः ।
स चापि निहतो वृद्धो
धृष्टद्युम्नेन सत्वरम् ॥ २९

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्यां नमितविक्रम
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन्
भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः ।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम् ३१
स भवान् धुर्यवत्संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति ।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना ॥
देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः
तथा भवानिमां सेनां धार्तराष्ट्रीं बिभर्तु वै ॥
जहि शत्रुगणान्सर्वान्महेन्द्रो दानवानिव ।
अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः
द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षैतां महाचमूम् ३५
भवत्यवस्थिते यत्ते
पाण्डवा मन्दचेतसः ।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः
पञ्चालाः सृञ्जयाश्च ह ॥ ३६
यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन् स्वेन तेजसा
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून्प्रतापय ॥३७

सञ्जय उवाच ।

आशा बलवती राजन्पुत्रस्य तव याऽभवत्
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्
तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाऽब्रवीत्
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाऽग्रे संयुयुत्सति॥

कर्ण उवाच।

उक्तमेतन्मया पूर्वं
गान्धारे तव सन्निधौ ।
जेष्यामि पाण्डवान्सर्वान्
सपुत्रान् सजनार्दनान् ॥ ४०
सेनापतिर्भविष्यामि
तवाहं नात्र संशयः ।
स्थिरो भव महाराज
जितान् विद्धि च पाण्डवान् ॥ ४१

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः४२

---

सर्वार्थैः रागादिभिः सुनीतैः दैवमनुलोम्यतेऽनुकूलं क्रियते । न केवलं रागाद्यपेक्षया दैवस्य प्राबल्यमपि तु दैवापेक्षयाऽपि सुप्रणीता रागादयः प्रबला इत्यर्थः ॥ १५ ॥ बहुमतीं बाहुल्यवतीं आतिशयितामिति यावत् ॥ १८ ॥ शुभं वचः श्रुत्वा मनः समवस्थाप्य समाधायाब्रवीदिति द्वयोः संबन्धः ॥ २० ॥ ताभ्यां सकाशात् द्रविणवत्तरः ॥ २४ ॥ ताभ्यामपि नमितः सम्यक्ज्ञातो विक्रमो यस्य ॥ ३० ॥ विहितं त्वयेति शेषः ॥ ३१ ॥ सैन्यान्ये सेनानीत्वे सैनापत्ये ॥ ३२ ॥ कर्णमेवं तदाऽब्रवीत् दुर्योधन इति शेषः । न संयुयुत्सति युद्धेच्छामपि न करिष्यति किं पुनर्युद्धमिति भावः ॥ ३९ ॥

सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः ।
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः
शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥
तोयपूर्णविषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः ।
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना संभारैश्च सुसंभृतैः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च संमताः
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ ४७
ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च
वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा
जय पार्थान्सगोविंदान्सानुगांस्तान्महामृधे
इति तं बन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥
जहि पार्थान्सपाञ्चालान्राधेय विजयाय नः
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥
न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः ।
उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥
न हि पार्थाः सपाञ्चालाः
स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः
आत्तशस्त्रस्य समरे
महेन्द्रस्येव दानवाः ॥ ५२
अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः
अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ५३
सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव ।
अमन्यत तदाऽऽत्मानं कृतार्थं कालचोदितः
कर्णोऽपि राजन्संप्राप्य सैनापत्यमरिन्दमः
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ५५
तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

धृतराष्ट्र उवाच ।
सैनापत्यं तु संप्राप्य कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः॥
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा
अकरोत्किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय॥२
सञ्जय उवाच ।
कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥ ३
महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः
कल्पतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम्
सन्नह्यतां नराणां च वाजिनां च विशांपते ॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम्
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः
ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्ष्येण केतुना ॥ ७
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिंकिणीशक्तिशूलतोमरधारिणा
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥ ९
ध्मापयन् वारिजं राजन् हेमजालविभूषितम्
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्१०
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम् ।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो निघ्नन् दुरासदम्

---

शातकुम्भमयैः सौवर्णैर्माहेयैर्महीमयैश्च कुंभैः ॥ ४४ ॥ विषाणैः द्विपस्य गजस्य दन्तमयैः पात्रैः खड्गस्य गण्डकस्य महर्षभस्य गवयस्य च शृङ्गैः। 'विषाणं दन्तशृङ्गयोः' इति विश्वः। द्विपखड्गमहर्षभैर्यैरिति तद्धितलोप आर्षः ॥ ४५ ॥ न हीति। शराणां दर्शनेऽपि नालं किमुत स्पर्शे इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

सैनेति ॥१॥ नन्दितूर्यं आनन्दवाद्यम् ॥३॥ कल्पतां संनह्यमानानां वरूथिनां रथगुप्तिमताम् । सन्नह्यतां नराणां सन्नह्यमानानां गजादीनां च शब्दो बभूवेति द्वयोः सम्बन्धः ॥ ५ ॥ श्वेतेत्यादि विशेषणद्वयं रथेनेत्यस्य ॥ ७ ॥ अभिपताकेन वायोः प्रातिकूल्यादभिमुखपताकेन। एतत्पराजयसूचकम्॥९॥ निघ्नन् निघ्नन्तं घ्नन्तमिति वा पाठः ॥११॥

न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥
ततस्तु त्वरयन् योधाञ्शंखशब्देन मारिष ।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद्बलम् ॥
व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः ।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया
मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन्व्यवस्थितः
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥
द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः ।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥
वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः ।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः ॥१७॥
पादे तु दक्षिणे राजन् गौतमः सत्यविक्रमः
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥
अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९
दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः ।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः ॥
पुच्छेह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा
चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥
तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२
पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे ।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥
हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम
एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते ।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ २५ ॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ।
तं हत्वाऽद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि

भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥
वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः ।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३०
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥
शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नं च भारत ॥
एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥
दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान्पाण्डवान्मेने धार्तराष्ट्रः सबान्धवः
तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्तराष्ट्रान्हतान्मेने सकर्णान्वै जनाधिपः ॥
ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभिः ।
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥
सेनयोरुभयो राजन् प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥
हयहेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनाश्चोग्राः संबभूवुर्जनाधिप ॥ ३८
न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥
उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले ।
योद्धुकामे स्थिते राजन् हन्तुमन्योन्यमोजसा
तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वाऽन्योन्यं व्यवस्थितौ
अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥
नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तेषां पक्षैः प्रपक्षैश्च निर्जग्मुस्ते युयुत्सवः ॥
ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

अनुपादे पादस्थानस्यापि पश्चाद्भागे ॥१९॥ दक्षिणे अनुपादे ॥२०॥ व्यूह रचय ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

सञ्जय उवाच ।

ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ संप्रजह्राते देवासुरसमप्रभे ॥ १
ततो नररथाश्वेभैः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः ।
संप्रहारान्भृशं चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् २
पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम्
अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः ।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम्॥
व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः ।
बाहवः पातिता रेजुर्धरण्यां सायुधाङ्गदैः॥५
तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्ताङ्गुलितलैस्तथा
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव ॥ ६
द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा॥
गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि ।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८
रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन्परमसंकुले ॥९
रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥
रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥११
रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२
तथा तस्मिन्बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह॥
वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः
व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः
आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।
समानमृत्यवो राजन्नात्यजन्त परस्परम् ॥
कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः ।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः १८
अथापरे पुनः शूरा-
श्चेदिपञ्चालकेकयाः ।
कारूषाः कोसलाः काञ्च्या
मागधाश्चापि दुद्रुवुः ॥ १९
तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः ।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥
तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः ।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात्त्वदीयान्नागधूर्गतः ॥
स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत्कल्पितो बभौ
उदयाग्र्याद्रिभवनं यथाऽभ्युदितभास्करम्२२
तस्यायसं वर्म वरं वररत्नविभूषितम् ।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम्
स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः ।
शरन्मध्यंदिनार्काभस्तेजसा व्यदहद्रिपून् ॥
तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात्क्षेमधूर्तिर्द्विपस्थितः ।
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम् ॥ २५
तयोः समभवद्युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः ।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ २६
संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम् ।
बलवत्सूर्यरश्म्याभैर्भित्त्वाऽन्योन्यं विनेदतुः
व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम् ॥ २८

---

१२

**ते सेने इति** । प्रगृह्यत्वाभावश्छान्दसः ॥ १ ॥ देहानां पाप्मनामसूनां च नाशनान् ॥ २ ॥ पूर्णचन्द्रार्काणां कान्तिभिः समैः पद्मानां गन्धतः समैः तस्तरुः आस्तीर्णवन्तः ॥ ३ ॥ व्यायताः पुष्टाः आयताः दीर्घाः ॥ ५ ॥ प्रहितैः निरस्तैः ओहाक् त्यागे ॥ ६ ॥ आपीडिनः भूषावन्तः नाना पृथक् विविधरागाणि वसनानि येषां ते विरागवसनाः ॥१६॥ महामात्ररथैरिति पाठे श्रेष्ठरथैः गजधूर्गतः गजस्कंधगतः ॥ २१ ॥ उदयाग्र्याद्रिभवनं अग्राद्रीत्यग्रशब्दस्य पूर्वनिपात आर्षः । उदयनामा अग्राद्रिः पूर्वपर्वतः स एव भवनमिति वा । उदयाग्रात्रिभवनमिति पाठे उदयाचलस्याग्रे शृंगे अत्रेरर्कभूतस्य भवनम् ॥ २२ ॥ शारदस्य शरदा उपलक्षितस्य ॥ २३ ॥ चारुमौलिः रम्यकिरीटः ॥ २४ ॥ द्विपास्थितो द्विपारूढः प्रमनाः प्रकृष्टमनाः । प्रमनस्तरं प्रसन्नतरमनसम् ॥ २५ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्वाणशब्दैस्तु सर्वतः ।
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः २९
समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ ३०

तावन्योन्यस्य धनुषी
छित्त्वाऽन्योन्यं विनेदतुः ।
शक्तितोमरवर्षेण
प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः ॥ ३१

क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे ।
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन् ॥ ३२
स भीमसेनः शुशुभे तोमरै रङ्गमाश्रितैः ।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् ॥ ३३
ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम् ।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान् ॥

ततः कुलूताधिपति-
श्चापमानस्य सायकैः ।
दशभिस्तोमरं भित्त्वा
षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥ ३५

अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम्
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन्पाण्डवः शरैः ॥ ३६
स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे ।
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद्वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥
तमभ्यधावद्द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट् ॥
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवांबुदः ॥ ३८
सन्निवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्तिः प्रतापवान्
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ॥
ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा ।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत् ४०
ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्तिः पराभिनत् ॥
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ४१
स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत ।
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम्
तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत् ।
तस्मात्प्रमथितान्नागात् क्षेमधूर्तिमवप्लुतम् ॥
उद्यतायुधमायान्तं गदयाऽहन् वृकोदरः ।
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम्
वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ।
तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम् ॥
प्राद्रवद्व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि क्षेमधूर्तिवधे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

सञ्जय उवाच ।

ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीं
जघान समरे शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १ ॥
तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः २
कर्णोऽपि राजन्समरे व्यहनत्पाण्डवीं चमूम्
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥३
तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः ।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ ४
वध्यमाने बले तस्मिन्सूतपुत्रेण मारिष ।
नकुलोऽभ्यद्रवत्तूर्णं सूतपुत्रं महारणे ॥ ५

भीमसेनस्तथा द्रौणिं
कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ
सात्यकिः समवारयत् ॥ ६

---

विनेदतुः सन्निहितौ बभूवतुः ववृषतुरित्यर्थः ॥ ३१ ॥ अपरैः तोमरैरेव ॥ ३२ ॥ स भीमसेनः मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् यथा मेघान्तर्हितस्य सूर्यस्य मरीचयः रश्मि-[illegible] सर्वतः प्रचरंति एवं रश्मिस्थानीयास्तोमराः ॥३३॥ [illegible] ऋजुगतिम् ॥ ३४ ॥ गृह्यमाणः निगृह्यमाणः [illegible] ॥ ३७ ॥ आमित्रं शत्रुसंबंधिनम् । सामित्र-मिति पाठान्तरम् ॥ ४० ॥ अहन् हतवान् हतः गदया शकलीकृतः । अत एव अभितो द्विपं द्विपस्याभितः पपात ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

तत इति ॥ १ ॥ द्रौणिमभ्यद्रवत् ॥ ६ ॥

श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः ।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम् ॥
दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
संशप्तकगणान् क्रुद्धो ह्यभ्यधावद्धनंजयः ॥
धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम् ॥
श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान् ॥१०
कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता ।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत
तावेनं भ्रातरौ वीरौ
जघ्नतुर्हृदये भृशम् ।
विषाणाभ्यां यथा नागौ
प्रतिनागं महावने ॥ १२
शरसंभिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन्विव्यधतुः शरैः
तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन् सर्वतोदिशः ।
छादयञ्छरवर्षेण वारयामास भारत ॥ १४
वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः ।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः ॥ १५
तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे१६
अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान्
सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्टु च ॥
ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः संपेतुः स्वर्णभूषणाः
बाणान्धकारमभवत्तयो राजन्महामृधे ।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः
ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः ।
धनुरन्यत्समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे २०
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् ।
अपतत्तच्छिरो राजन् कुण्डलोपचितं महत्
शम्बरस्य शिरो यद्व-
न्निहतस्य महारणे ।
शोचयन्केकयान्सर्वा-
नगामाशु वसुन्धराम् ॥ २२

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः ।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत् २३
स षष्ट्या सात्यकिं विद्धा
स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ननाद बलवन्नादं
तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४
सात्यकिं च ततस्तूर्णं केकयानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २५
स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यविक्रमः
रराज समरे राजन् सपुष्प इव किंशुकः २६
सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव २७
तावन्योन्यस्य समरे संछिद्य धनुषी शुभे ।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ २८
विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे ।
शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥
विरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥
मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे ।
अन्योन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे ॥ ३१
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः
सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः
चर्म छित्त्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च ।
तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ३४
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयाऽन्वितः ।
सवर्मा केकयो राजन्द्विधा छिन्नो महारणे
निपपात महेष्वासो वज्राहत इवाचलः ।
तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ॥ ३६
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परंतपः ।
ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः
केकयानां महत्सैन्यं व्यधमत्सात्यकिः शरैः
सा वध्यमाना समरे केकयानां महाचमूः ।
तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥३८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

कृपेण युयुधे इति शेषः॥९॥ माद्रीपुत्रः सुतं तवेत्यस्य व्याख्या दुःशासनमिति ॥१०॥ लघु शीघ्रं सुष्टु शोभनम्॥ १७ ॥ उपचितमलङ्कृतम्॥२१॥ अपहस्तेन तिर्यक्हस्तेन॥३५॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नै० भा० त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

## १४

सञ्जय उवाच ।
श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम् ।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः
अभिसारस्तु तं राजन्नवभिर्नतपर्वभिः ।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥
श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥ ३
सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना
मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः ।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम्
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ७
स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा ।
युवेव समरेऽशोभद्गोष्ठीमध्ये स्वलंकृतः ॥ ८
श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
श्रुतकर्माऽपि समरे नाराचेन समर्पितः ।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥ १०
ततः स रुधिराक्ताङ्गो रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः ॥
श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम्
अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः
छादयन्समरे राजन् विव्याध च सुपत्रिभिः
ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत्
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतलम्
राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारं तु मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥
ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना ।
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः ॥
तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये
द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥
प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणाऽपि च
तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २१
प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा
तस्य भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणै-
रथैनं स हि जघ्निवान् ॥ २२
ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम्
प्राहिणोत्तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥
तामापन्ततीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव
सा पपात द्विधा छिन्ना
प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।
युगान्ते सर्वभूतानि
त्रासयन्ती यथाऽशनिः ॥ २५
शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम्
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम्
सा जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे ।
रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २७
एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम्
तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन्महामनाः
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥
समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिता भासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥ ३०

१४

**श्रुतकर्मेति** ॥१॥ अभिसारोऽभिसाराधिपतिश्चित्रसेनः । आहत्य संताड्य ॥ २ ॥ मूर्छां अर्धनिद्रां कश्मलं अचित्तलम् ॥ ४ ॥ एनं श्रुतकर्माणम् ॥ ५ ॥ तं श्रुतकर्माणम् ॥ ६॥ **स शरैरिति**। गोष्ठी गोयूथः षाण्डो महोक्षः । स यथा शृङ्गादौ अलंकृत एवं स शरैरलंकृत इत्यर्थः ॥ ८ ॥ कृतच्छविः आहितशोभः ॥ ११ ॥ सुपत्रिभिः शोभनपुंखवद्भिर्नाराचानां शतैः ॥ १३ ॥ प्रेतराट् यमः ॥ १७ ॥ दावो दावाग्निस्तेन दग्धाः १८॥ स्वर्णघण्टां सुवर्णमयघण्टान्विताम् ॥ २३ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकांक्षया ॥ ३१
स तस्य गात्रावरणं भित्त्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ ३२
स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसंनिभौ ॥
चित्रं संप्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समंततः ॥
सृजन्तो विविधान्बाणान्
शतघ्नीश्च सकिंकिणीः ।
तमवच्छादयामासुः
सूर्यमभ्रगणा इव ॥ ३५
तान्विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत्तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३६
ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्रकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ३७
विप्रद्रुते बले तस्मिन्वध्यमाने समंततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात्तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥
ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चित्रवधे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

संजय उवाच ।
भीमसेनं ततो द्रौणी राजन्विव्याध पत्रिणा
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १
अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः ।
सर्वमर्माणि संप्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥२
भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः
रराज समरे राजन् रश्मिवानिव भास्करः
ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४
शरैः शरांस्ततो द्रौणिः
संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्याहनद्राज-
न्नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५
ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पाण्डवः
यथा शृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥ ६
तता द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥
ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥८
ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम् ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥९
तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥
तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथवर्यगतौ वीरौ शुशुभाते बलोत्कटौ ॥११
आदित्याविव संदीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः
ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत् ॥ १३ ॥
व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयंकरौ ॥ १४
अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समंततः ।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥
चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिंदमौ ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव ॥ १६
अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम् ॥१७
किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम् ।
न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥
प्रतिचक्रे ततो राजन् पाण्डवोऽप्यपसव्यतः
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ॥ १९
बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
चरित्वा विविधान्मार्गान् मंडलस्थानमेव च

---

गात्रावरणं कवचम् ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥

१५

भीमेति ॥ १ ॥ खड्गो गण्डकः ॥ ६ ॥ कृतप्रतिकृते अन्योन्यास्त्रप्रतिघाते ॥ १३ ॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् २१
ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे ।
ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः ।
ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्तत ॥ २३
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत् ।
ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यां तु भारत
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तव सैन्यं समंततः
बाणसंघैर्वृतं घोरमाकाशं समपद्यत ॥ २५
उल्कापातावृतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप
बाणाभिघातात्संजज्ञे तत्र भारत पावकः ॥
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद्वाहिनीद्वयम्
तत्र सिद्धा महाराज संपतन्तोऽब्रुवन्वचः ॥
युद्धानामति सर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो ।
सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं
नेदृशं च पुनर्युद्धं भविष्यति कदाचन ।
अहो ज्ञानेन संपन्नावुभौ ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥२९
अहो शौर्येण संपन्नावुभौ चोग्रपराक्रमौ ।
अहो भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता ॥
अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः ।
स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ
रुद्रौ द्वाविव संभूतौ यथा द्वाविव भास्करौ
यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥
इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥
प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन्
तौ शूरौ समरे राजन् परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥
क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात्प्रस्फुरिताधरौ
क्रोधात्संदष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥ ३७
अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥
तावन्योन्यं ध्वजं विद्ध्वा
सारथिं च महारणे
अन्योन्यस्य हयान्विद्ध्वा
बिभिदाते परस्परम्
ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे ।
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥
तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे ।
आजघ्नतुः समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥
तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ ।
निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा ॥ ४२
ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम् ।
अपोवाह रणाद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥
तथैव पाण्डवं राजन् विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ४४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामभीमसेनयोर्युद्धे
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

धृतराष्ट्र उवाच ।
यथा संशप्तकैः सार्धमर्जुनस्याभवद्रणः ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद्ब्रवीहि मे १
अश्वत्थाम्नस्तु यद्युद्धमर्जुनस्य च सञ्जय ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद्ब्रवीहि मे ॥
सञ्जय उवाच ।
शृणु राजन्यथा वृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम ।
वीराणां शत्रुभिः सार्धं देहपाप्मासुनाशनम् ३

ईषतुः इच्छां चक्रतुः॥२२॥ उल्कानामन्योन्याभिमुखं पातास्तैराकृतमिवेति लुप्तोपमा ॥२६॥ तथैव दशनच्छदौ क्रोधात्संदष्टौ ॥३७॥ तौ बाणौ भृशाहताविति हेतोः शराभ्यां [illegible]भ्यां तयोः तदीययो रथयोरुपस्थे मुख्यदेशे रथनीड इति यावत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

यथेति ॥ १ ॥

पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसन्निभम् ।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ॥ ४
शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनञ्जयः ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ॥ ५
सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव ।
सुवृत्तानायतान् पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान् ॥
सायुधान्सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसन्निभान् ।
बाहून् क्षुरैरमित्राणां चिच्छेद समरेऽर्जुनः ॥
धुर्यान् धुर्यतरान्सूतान्
ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीन् सरत्नानसकृ-
द्भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ८
रथान् द्विपान् हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि ।
शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन् यमक्षयम् ॥ ९
तं प्रवीराः सुसंरब्धा नर्दमाना इवर्षभाः ।
वासितार्थमिव क्रुद्धमभिद्रुत्य मदोत्कटाः ॥
निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृंगैरिवर्षभाः ।
तस्य तेषां च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ ११
त्रैलोक्यविजये यद्वद्दैत्यानां सह वज्रिणा ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ॥
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विद्ध्वा प्राणाञ्जहार सः ॥
छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान् हतयोधान्ससारथीन् ।
विद्ध्वस्तायुधतूणीरान्समुन्मथितकेतनान् ।
संछिन्नयोक्त्ररश्मीकान् विवरूथान्विकूबरान् ।
विस्रस्तबन्धुरयुगान् विस्रस्ताक्षप्रमण्डलान् ।
रथान्विशकलीकुर्वन् महाभ्राणीव मारुतः
विस्मापयन्प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम् ।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः ॥
सिद्धदेवर्षिसंघाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥
केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाक्यशरीरिणी ।
चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ ।
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ ।
इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥ २०
अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद्रणे ।
अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्छरान् ॥
सेषुणा पाणिनाऽऽहूय प्रहसन् द्रौणिरब्रवीत्
यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥
ततः सर्वात्मना त्वद्य युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ।
एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥ २३
बहु मेनेऽर्जुनोऽऽत्मानमिति चाह जनार्दनम् ।
संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव ।
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे
एवमुक्तोऽवहत्पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके
जैत्रेण विधिनाऽऽहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥
तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन् स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च
निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि
कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां
स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ॥ २८
यामभ्यर्थयसे मोहा-
द्दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन् युध्यस्व
स्थिरो भूत्वाऽद्य पाण्डवम् ॥ २९
इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः
तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् ।
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥
सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ
त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥

---

सरत्नान् रत्नाङ्गुलीयकादियुक्तान् सरत्नीनिति पाठे रत्निः कूर्परादाकनिष्ठान्तः करः तत्सहितान्पाणीन् ॥८॥ सुसंरब्धा इत्यत्र सुसंमर्दा इति पाठे शोभनः स्वर्गदः संमर्दो येषां तथाभूताः । वासिता पुष्पवती गौस्तदर्थम् ॥ १० ॥ **छिन्नेति** । त्रिवेणुः उभयतः काष्ठद्वयसहितो धूर्दण्डः अक्षश्चक्राधारदण्डः ॥ १३ ॥ योक्त्राणि बन्धनरज्जवः । रश्मयः प्रग्रहाः । विवरूथान् रथगुप्तिरहितान् कूबरः त्रिवेणोरग्रभागः ॥ १४ ॥ बंधुरं रथतलः युगं धूरग्रकाष्ठं अक्षप्रमण्डलं रथनीडाक्षयोः सन्धानकाष्ठजातं विशकलीकुर्वन् विशेषेण शकली कुर्वन् ॥ १५ ॥ चन्द्रादीनां कान्त्यादीन् यथासंख्यं बिभ्रतुः ॥ १८ ॥ अमित्रघ्नाः कराः कराकारसमग्रफलकं येषां तान् अमित्रघ्नकरान् ॥ २१ ॥ अर्हं पूजयितुं योग्यम् ॥ २२ ॥ अनन्तरं प्रथमम् ॥२५॥

ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम्
इषुधेर्धनुषश्चैव ज्यायाश्चैवाथ मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥३४
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३५
शरजालेन महता विद्ध्वा माधवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम् ॥
तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत्
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति ॥
वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रावेश्य शरवेश्मनि ।
एषोऽस्मि हन्मि संकल्पं शिक्षया च बलेन च
अश्वत्थाम्नः शरानस्तान्
छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा ।
व्यधमद्भरतश्रेष्ठो
नीहारमिव मारुतः ॥ ३९
ततः संशप्तकान् भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥
ये ये ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपास्तदा जनाः ।
ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेऽऽत्मानमात्मना॥
ते गाण्डीवप्रमुक्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान् घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान्रणे
भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदवर्षिणां
यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥
पश्चात्तु शैलवत्पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥ ४४
गन्धर्वनगराकारान् रथांश्चैव सुकल्पितान् ।
विनीतैर्जवनैर्युक्तानास्थितान् युद्धदुर्मदैः ॥४५
शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
स्वलंकृतानश्वसादीन् पत्तींश्चाहन् धनञ्जयः ॥
धनञ्जययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीक्ष्णैः शरगभस्तिभिः
पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसन्निभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन्वज्रीव पर्वतम् ॥४८
तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुरागमद्योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥
ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ५०
अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा
पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपांक्तेयानिव त्यक्त्वा
दाता पांक्तेयमर्थिनम् ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामार्जुनसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

सञ्जय उवाच ।
ततः समभवद्युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव १
सन्तापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव
ततोऽविध्यद्भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम्
स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः ३
अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नाऽर्दितौ भृशम्॥
स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः

---

आयस्तः यत्नवान् ॥ ३३ ॥ इषुधिप्रभृतिभ्यः शराः पेतुः लोमभ्योऽपि वर्मभ्योऽपि च पेतुस्तत्र हेतुः ब्रह्मवादिनः योगबलवत इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ महत् शैलं शिलासमूहो यस्मिन् तं महाशैलं पर्वतमिव ॥ ४८ ॥ पांडवेऽस्त्राणीत्यत्र काण्डकोशानिति पाठे बाणानां कोशभूतानिषङ्गान् न्यवेदयत् ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

**तत इति** । नक्षत्रमभितः नक्षत्रं लक्षीकृत्य ॥ १ ॥ विमार्गस्थौ वक्रातिचारगौ ॥२॥ कृष्णौ कृष्णार्जुनौ आसतुः दीपयांचक्रतुः ॥ ४ ॥

ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्र-
मवासृजद्वासुदेवेऽभिभूते ।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत् पृषत्कै-
र्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥ ५

स केशवं चार्जुनं चातितेजा
विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा ।
बाणैः सुयुक्तैरतितीव्रवेगै-
र्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत ॥ ६

द्रौणेरिषूनर्जुनः सन्निवार्य
व्यायच्छतस्ताद्द्विगुणैः सुपुङ्खैः ।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीर-
मावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत् ॥ ७

धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः
पाणीन् भुजान् पाणिगतं च शस्त्रम् ।
छत्राणि केतूंस्तुरगान् रथेषां
वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥ ८

चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि
प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव ।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तै-
र्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम् ९

सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः
समास्थिता यत्नकृतैर्नृवीरैः ।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्ता-
स्तैरेव सार्धं नृवरा निपेतुः ॥ १०

पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि
किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि ।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरकर्तितानि
प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ११

अथ द्विपैर्देवरिपुद्विपाभै-
र्देवारिदर्पापहमत्युदग्रम् ।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा
जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ १२

तेषां द्विपानां निचकर्त पार्थो
वर्माणि चर्माणि करान्नियन्तॄन् ।
ध्वजान्पताकाश्च ततः प्रपेतु-
र्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ १३

तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं
बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः ।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालै-
र्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम् ॥ १४

ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य
द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ
ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते ॥ १५

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीया-
नभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुंखैः १६

नाप्याददत्संदधच्चैव मुञ्चन्
बाणान्रथेऽदृश्यत सव्यसाची ।
रथांश्च नागांस्तुरगान्पदातीन्
संस्यूतदेहान्ददृशुर्हतांश्च ॥ १७

संधाय नाराचवरान्दशाशु
द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज ।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्
पञ्चाच्युतं निर्विभिदुः सुपुंखाः ॥ १८

तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्या-
वसृक् स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ ।
समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ
हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥ १९

अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः
प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् ।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं
कष्टो भवेद्व्याधिरिवाक्रियावान् २०

तथेति चोक्त्वाऽच्युतमप्रमादी
द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष ।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ
वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू २१

---

सर्वतोधारं सर्वतोऽस्त्रधारावर्षकं वज्रकल्पैः अमोघैः अग्निकल्पैः दाहकैः वैवस्वतदण्डकल्पैः प्राणहरैः ॥ ५ ॥ व्यायच्छतो यतमानस्य आर्च्छत् गतवान् ॥ ७ ॥ सुकल्पिताः सुसन्नद्धाः यत्नकृतैः कृतयत्नैः तैरेव बाणैरेव॥१०॥ देवरिपुश्चासौ द्विपश्चेति गजासुरतुल्यैरित्यर्थः ॥ १२ ॥ करान् शुण्डाः ॥ १३ ॥ तमश्वत्थामानं तान् तदन्यान् तैः कृतं बाणान्धकारं कृत्वा छित्वा कृतौ छेदने ॥ १६ ॥ संस्यूताः अन्योन्यं संघट्टवन्तः ॥ १७ ॥ समाप्तविद्येन समग्रधनुर्वेदविदा ॥ १९ ॥ अक्रियावान् प्रतीकाररहितः ॥ २० ॥

गाण्डीवमुक्तैः कुपितोऽविकर्णै-
द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद ।
छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्य-
न्ते तं रणाद्दूहुरतीव दूरम् ॥ २२
स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गै-
द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः ।
इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं
पार्थेन सार्धं मतिमान्विमृश्य ।
जानञ्जयं नियतं वृष्णिवीरे
धनञ्जये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ २३
नियम्य स हयान् द्रौणिः
समाश्वास्य च मारिष ।
रथाश्वनरसंबाधं
कर्णस्य प्राविशद्बलम् ॥ २४
प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते २५
संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना २६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामपराजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

सञ्जय उवाच ।
अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् १
निवर्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान् गरुडानिलरंहसः ॥ २
मागधोप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ॥ ३
एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत् पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति
स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहे
ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो
महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ५
सुकल्पितं दानवनागसन्निभं
महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान्सहस्रशः
समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥ ६
रथानधिष्ठाय सवाजिसारथी-
न्नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण
द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत् ७
नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणा-
न्निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह ।
व्यपोथयद्दन्तिवरेण शुष्मिणा
स शब्दवत्स्थूलनलं यथा तथा ॥ ८
अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने
मृदङ्गभेरीबहुशंखनादिते ।
रथाश्वमातङ्गसहस्रसंकुले
रथोत्तमेनाभ्यपतद्द्विपोत्तमम् ॥ ९
ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमै-
र्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभि-
स्ततो ननाद प्रजहास चासकृत्॥१०

---

अविकर्णैः अविकर्णतुल्याग्रैः ॥ २२ ॥ अंगिरसां अंगिरोगोत्राणां मध्ये ॥ २३ ॥ ओघनादिना जलौघवन्नादवता ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारतेकर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

**अथेति** । उत्तरेण उत्तरतः । वध्यतां वध्यमानानाम् ॥ १ ॥ अनवरः अहीनः ॥ ३ ॥ अंकुशग्रहे अंकुशधारणे हस्तियुद्धे इत्यर्थः । ग्रहे आदित्यादिग्रहसमूहे युद्धपरिग्रहे च अप्रसह्यः । विकचः कचोपलक्षितशिरोरहितः केतुरूपः ग्रह इव । विकचो विस्तीर्णो ग्रहो धूमकेतुरूपी उत्पातग्रह ॥ ५ ॥ दानवनागसन्निभं गजासुरोपमं गजमित्यर्थात् समास्थितः स हन्तीत्यन्वयः ॥ ६ ॥ रथान् पादैरधिष्ठाय आक्रम्य ममृदे मर्दयामासेत्युत्तरार्थस्यानुकर्षः । एवं करेण शुण्डया नरादीनपोथयदिति । एवं द्विपो हन्ति रथादीनित्यर्थात् ॥ ७ ॥ शुष्मिणा बलवता स्थूलं सुषिरं नलं तृणविशेषम्॥८॥ संकुले रणदेशे इति सामर्थ्यात् ज्ञेयम्॥९॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं
चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन्सह पादगोप्तृ-
स्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः ११
ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना
घनाघनेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं
धनञ्जयं चाभिजघान तोमरैः ॥ १२
अथास्य बाहू द्विपहस्तसन्निभौ
शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः ।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डव-
स्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत् १३
स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः
समाचितः काञ्चनवर्मभृद्द्विपः ।
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा
दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः १४
स वेदनार्तोऽम्बुदनिस्वनो नदं-
श्चरन् भ्रमन् प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत्
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा
यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा ॥ १५
हिमावदातेन सुवर्णमालिना
हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना ।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रज-
ज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनञ्जयम् ॥ १६
सतोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभि-
र्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः ।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयं-
स्ततोऽस्य बाहू निचकर्त पाण्डवः
क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ
शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ ।
गजात्पतन्तौ युगपद्विरेजतु-
र्यथाऽद्रिशृङ्गाद्रुचिरौ महोरगौ १८
तथाऽर्धचन्द्रेण हतं किरीटिना
पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात्
स शोणितार्द्रो निपतन्विरेजे
दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम्
अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसन्निभं
दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्
हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥ २०
ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा
जिगीषवः संयति सव्यसाचिना ।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ
ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम् ॥ २१
गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च संघशः
परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहिता
भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥ २२
अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः
पुरंदरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः
स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः
न चेदरक्षिष्य इमं जनं भया-
द्द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम् ।
तथा भविष्यद्द्विषतां प्रमोदनं
यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४
इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीडिता
निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः ।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं
जगाम संशप्तकसंघहा पुनः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

सगुणेषुकार्मुकं मौर्वीबाणसहितं धनुः । नियंतॄन् नियन्तारम् ॥ ११ ॥ 'घनाघनो घातुकमत्तदन्तिनोः' इति **विश्वः** ॥ १२ ॥ सहैव युगपत् ॥ १३ ॥ चरन् गच्छन् भ्रमन् भ्रान्तिं प्राप्नुवन् अत एव प्रस्खलितान्तरः मध्ये स्खलन्नित्यर्थः । सनियन्तृकः महामात्रसहितः पपात तथा पातयोग्यं यथा स्यात्तथा रुग्णः पीडितो यथैवंभूतः पपातेति पृथगन्वयः ॥ १५ ॥ इन्द्रावरजं विष्णुं कृष्णमित्यर्थः। धनञ्जयं च जिघांसुर्दण्ड आव्रजत् दन्तिना सहेति शेषः ॥ १६ ॥ नर्दयन् शब्दं कारयन् ॥ १७॥ अस्तात् अस्ताचलात् ॥ १९ ॥ गजोत्तमाः महागजारूढाः तौ दण्डधारतद्भ्रात्रोर्द्विपौ साध्यक्षौ कृतौ छिन्नौ तथा तेऽपि कृताः छिन्नाः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

# १९

सञ्जय उवाच ।
प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान्बहून् ।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १
पार्थबाणहता राजन्नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २
धुर्यान् धुर्यगतान्सूतान्
ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीन्पाणिगतं शस्त्रं
बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम्
वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ५
तेषां तस्य च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा६
तमविध्यत्त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ७
तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन् ।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ८
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वानाहितानहनद्बहून् ॥ ९
छिन्नत्रिवेणुसङ्घातान्
हताश्वान् पार्ष्णिसारथीन् ।
विस्रस्तहस्ततूणीरान्
विचक्ररथकेतनान् ॥ १०
संछिन्नरश्मियोक्त्राक्षान् व्यनुकर्षयुगान्रथान्
विध्वस्तसर्वसन्नाहान् बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा
ते रथास्तत्र विध्वस्ताः
परार्ध्या भान्त्यनेकशः
धनिनामिव वेश्मानि
हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः
द्विपाः संभिन्नवर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रपाताग्निभिर्यथा १३
सारोहास्तुरगाः पेतु-
र्बहवोऽर्जुनताडिताः ।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा
रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः ॥ १४
नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥ १५
अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः ।
शरैर्निजघ्निवान्पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥
महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः ।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥
विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥
अथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन् ।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः१९
उह्यमाना रथाश्वैस्तैः पत्तयश्च जिघांसवः ।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम्
तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २१
साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसंप्लवम् ।
सहसा सन्तितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥
अथाब्रवीद्वासुदेवः पार्थं किं क्रीडसेऽनघ ।
संशप्तकान् प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर २३
तथेत्युक्त्वाऽर्जुनः कृष्णं शिष्टान्संशप्तकांस्तदा
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद्दैत्यानिन्द्र इवावधीत्
आददन्संदधन्नेषून् दृष्टः कैश्चिद्रणेऽर्जुनः
विमुञ्चन्वा शराञ्शीघ्रं दृश्यतेऽवहितैरपि ॥
आश्चर्यमिति गोविन्दः सममन्यत भारत ।
हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन्

---

१९

**प्रत्येति** ॥ १ ॥ धुर्यान् श्रेष्ठान् धुर्यगतान् वाहान् वाहादीन् अमित्रवीराणां चिच्छेदेति द्वयोः सम्बन्धः ३॥ वासितार्थे स्त्रीनिमित्तम् । 'वासिताकरिणी**नार्यो**र्वासितं सुरभीकृते' इति **विश्वः** । यथा स्वयंवरस्थां स्त्रियं प्राप्तुं वृषभाश्च अवृषभाश्च तेषां यूथं वृषभाद्वृषभं श्रेष्ठाश्रेष्ठयोधकुलं अहंपूर्विकया निपतति एवं युद्धेऽर्जुनं प्राप्तुं राजान इत्यर्थः। वासितं अतिश्रेष्ठं राज्यादिकं वा वस्तु ॥ ५ ॥ तस्य उग्रायुधसुतस्य अपाहरदर्जुन इति शेषः ॥ ७ ॥ उष्णगे ग्रीष्मे गते सति प्रावृषीत्यर्थः । उष्णो ग्रीष्मो गतोऽतीतो यत्र स उष्णगः कालविशेष इति विग्रहः ॥ ८ ॥ अस्तैः क्षितैः ॥ ९ ॥ अनुकर्षः रथाधस्थं दारु ॥ ११ ॥ निर्जिह्वांत्राः निर्गताः जिह्वाः अंत्राणि च येषां ते ॥ १४ ॥

ततः संग्रामभूमिं च वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविंदः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥
एष पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान्
पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम्
महतां चापविद्धानि कलापानिषुधींस्तथा
जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान् विमुक्तानिव पन्नगान्
आकीर्णांस्तोमरांश्चापि
विचित्रान् हेमभूषितान् ।
चर्माणि चापविद्धानि ।
रुक्मपृष्ठानि भारत ॥ ३१
सुवर्णविकृतान्प्रासान् शक्तीः कनकभूषिताः
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ३२
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषितान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान् ॥
परिघान्भिंदिपालांश्च भुशुण्डीः कुणपानपि
अयस्कुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ।
गजवाजिरथैः क्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः
मनुष्य-गज-वाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७
शरीरैर्बहुधा छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्नसंवृता रणभूमयः ॥ ३८
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः ।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९
साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलङ्कृतैः
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥
बद्धचूडामणिवरैः
शिरोभिश्च सकुण्डलैः
रथांश्च बहुधा भग्नान्
हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ ४१
अश्वांश्च बहुधा पश्य
शोणितेन परिप्लुतान् ।
अनुकर्षानुपासङ्गान्
पताका विविधान् ध्वजान् ॥ ४२
योधानां च महाशङ्खान्
पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान् ।
निरस्तजिह्वान्मातङ्गान्
शयानान्पर्वतोपमान् ॥ ४३
वैजयन्तीर्विचित्राश्च
हतांश्च गजयोधिनः
वारणानां परिस्तोमान्
संयुक्तानेककम्बलान् ॥ ४४
विपाटितविचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः
वैदूर्यमणिदण्डांश्च
पतितांश्चाङ्कुशान् भुवि ।
अश्वानां च युगापीडान्
रत्नचित्रानुरश्छदान् ॥ ४६
विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु
सुवर्णविकृताः कुथाः ।
विचित्रान्मणिचित्रांश्च
जातरूपपरिष्कृतान् ॥ ४७
अश्वास्तरपरिस्तोमान्
राङ्कवान्पतितान्भुवि
चूडामणीन्नरेन्द्राणां
विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥ ४८
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च
चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ४९
कॢप्तश्मश्रुभिराकीर्णा पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम् ।
कुमुदोत्पलपद्मानां खण्डैः फुल्लं यथा सरः
तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदोत्पलसन्निभैः ।
तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ५१
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम् ।
एतत्तवैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ॥ ५२
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत्कृतमाहवे ।
एवं तां दर्शयन् कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ५४
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् ।
प्रविश्य तद्बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥ ५५

कलापान् अलंकारान् ॥ २९ ॥ आकीर्णान् सर्वतो विक्षिप्तान् ॥ ३१ ॥ वाजीनां शरीरैरिति सम्बन्धः दैर्घ्यमार्षम् ॥ ३७ ॥

पाण्ड्येनाभ्यर्दितं सैन्यं
त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः।
स हि नानाविधैर्बाणै-
रिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥ ५६
न्यहनद्द्विषतां पूगान्
गतासूनन्तको यथा ।
गजवाजिमनुष्याणां
शरीराणि शितैः शरैः ॥ ५७
भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो
विदेहासूनपातयत् ।
शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि
नानाशस्त्राणि सायकैः
छित्त्वा तानवधीच्छत्रून्
पाण्ड्यः शक्र इवासुरान् ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

## २०

धृतराष्ट्र उवाच ।
प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया सञ्जय कीर्तितम्
तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम्
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २
सञ्जय उवाच ।
भीष्म-द्रोण-कृप-द्रौणि-कर्णार्जुन-जनार्दनान्
समाप्तविद्यान्धनुषि श्रेष्ठान्यान्मन्यसे रथान्
यो ह्याक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान्महारथान्
न मेने चात्मना तुल्यं कञ्चिदेव नरेश्वरम् ४
तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्या-
मात्मनो यो न मृष्यते ।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च
न्यूनतां नैच्छतात्मनि ॥ ५
स पाण्ड्यो नृपतिः श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः
कर्णस्यानीकमहनत् पराभूत इवान्तकः ॥ ६
तदुदीर्णरथाश्वं च पत्तिप्रवरसंकुलम् ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात्
व्यश्वसूतध्वजरथान्
विप्रविद्धायुधद्विपान् ।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो
वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ॥ ८
द्विरदान् द्विरदारोहान्विपताकायुधध्वजान्
सपादरक्षानहनद्वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा ॥ ९
सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि ।
पुलिन्द-खस-बाह्लीक-निषादान्ध्रक-कुन्तलान्
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च
शूरान् संग्रामकर्कशान् ।
विशस्त्रकवचान्बाणैः
कृत्वा चैवाकरोद्व्यसून् ॥ ११
चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे ।
दृष्ट्वा द्रौणिरसंभ्रान्तमसंभ्रान्तस्ततोऽभ्ययात्
आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत् ।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयत् १३
राजन् कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत ।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष ॥ १४
मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद्धनुः
दोर्भ्यां विस्फारयन् भासि महाजलदवद्भृशम्
शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः ।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥ १६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

प्रोक्त इति ॥ १ ॥ पराभूतः प्रकोपितः ॥ ६ ॥ स पांड्यः व्यसूनकरोदिति द्वयोः संबन्धः ॥ १० ॥ मुष्टिश्लिष्टायतज्यं मुष्टिदेशे श्लिष्टा च आयता च ज्या यस्य तत्तथा। एकस्मिन्नेव क्षणे यद्धनुर्मण्डलाकारं चिपिटाकारं च दृश्यत इति भावः ॥ १५ ॥ वर्षतः मत् मत्तः ॥ १६ ॥

रथ-द्विरद-पत्त्यश्वानेकः प्रमथसे बहून्।
मृगसङ्घानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः १७
महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन्।
*वर्षाते सस्यहा मेघो भासि न्हादीव पार्थिव
संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णा-
स्तूणादाशीविषोपमान्।
मयैवैकेन युध्यस्व
त्र्यम्बकेनान्धको यथा॥ १९
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः २०
मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः।
स्मयन्नभ्यहनद्द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः॥
ततोऽपरान्सुतीक्ष्णाग्रा-
न्नाराचान्मर्मभेदिनः।
गत्या दशम्या संयुक्ता-
नश्वत्थामाऽप्यवासृजत्॥ २२
ताञ्शरानच्छिनत् पाण्ड्यो
नवभिर्निशितैः शरैः।
चतुर्भिरर्दयच्चाश्वा-
नाशु ते व्यसवोऽभवन्॥ २३
अथ द्रोणसुतस्येषूं-
स्ताञ्छित्त्वा निशितैः शरैः।
धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्य-
श्चिच्छेदादित्यतेजसः॥ २४
दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा।
प्रेक्ष्य चाशु रथे युक्तान्नरैरन्यान्हयोत्तमान्२५
ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः।
इषुसंबाधमाकाशमकरोद्दिश एव च॥ २६
ततस्तानस्यतः सर्वान्
द्रौणेर्बाणान्महात्मनः।
जानानोऽप्यक्षयान्पाण्ड्योऽ-
शातयत्पुरुषर्षभः॥ २७
प्रयुक्तांस्तान्प्रयत्नेन छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः।
चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः २८
अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः।
प्रास्यद्द्रोणसुतो बाणान् वृष्टिं पूषानुजो यथा
अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम्।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष॥ ३०
तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम्।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन्॥
पर्जन्य इव घर्मान्ते वृष्ट्या साद्रिद्रुमां महीम्
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्या व्यवीवृषत्
द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां
बाणवृष्टिं सुदुःसहाम्।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य
मुदा पाण्ड्यानिलोऽनुदत्॥ ३३
तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम्।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्त्वाऽश्वांश्चतुरोऽहनत्
सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम्।
धनुश्छित्त्वाऽर्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद्रथम्
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य छित्त्वा सर्वायुधानि च
प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया ३६
एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत्।
द्रावयामास स तदा पाण्डवानां महद्बलम्
विरथान् रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत।
गजान्बहुभिरानर्छच्छरैः सन्नतपर्वभिः॥ ३८
अथ द्रौणिर्महेष्वासः पाण्ड्यं शत्रुनिबर्हणम्।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं नाहनद्युद्धकाङ्क्षया॥ ३९

---

प्रमथसे प्रमथ्नासि॥ १७॥ सस्यहा अतिवृष्ट्या धान्यहा न्हादी गर्जन्॥१८॥ ताडितः द्रौणिना मलयवत् कृत्रिमो ध्वजो यस्य मलयध्वज इति प्रवीरस्यैव नामान्तरं वा॥ २०॥ गत्या दशम्या

'उन्मुख्यभिमुखी तिर्यङ्मन्दा गोमूत्रिका ध्रुवा।
स्खलिता यमकाक्रान्ता क्रुष्टेत्यतिक्रुष्टतीर्विदुः॥'

शिरोहृदयपार्श्वदेशस्पृशास्तिस्रः। मंदा-ईषाद्भिन्नत्वक्। गोमूत्रिका—कवचनिकृन्तनी सव्यापसव्यगामिनी। ध्रुवा-नियमेन लक्ष्यभेदिनी। स्खलिता-लक्ष्यच्युता। यमकाक्रान्ता-लक्ष्यं भित्त्वाऽसकृन्निर्गता। क्रुष्टा-लक्ष्यैकदेशस्य बाह्वादेर्हन्त्रीति नव गतयः। दशमी गतिस्तु—शिरसा सह दूरपातिनी अतिक्रुष्टा नाम। तया गत्या प्रक्षिप्तानपि शरान् नवसंख्याकान् नवभिः शरैः अच्छिनदिति संबन्धः॥२२॥ पूषानुजः पर्जन्यः। पूषात्मज इति पाठेऽपि स एवार्थः। वृष्टेः सूर्यप्रभवत्वदर्शनात्॥ २९॥ अष्टवृषभवाह्यानि अष्टौ शकटानि यदायुधसंभारं ऊहुः वहन्ति तत्सर्वं अह्नोऽष्टमभागेन यामार्धेन क्षीणमित्यर्थः ३०

* वर्षान्ते सस्यगां सूर्यो भाभिरादीपयन्निव इति पाठः।

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पित-
स्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली ।
तमाद्रवद्द्रौणिशराहतस्त्वरन्
जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम् ॥
तं वारणं वारणयुद्धकोविदो
द्विपोत्तमं पर्वतसानुसन्निभम् ।
समभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वर-
न्यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा ॥ ४१
स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं
बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः ।
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन् गजं
गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन् ४२
मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलङ्कृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन्
पराहनद्द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥ ४३
तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं
भृशातिपातात्पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं
यथाद्रिशृङ्गं धरणीतले तथा ॥ ४४
ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना
पादाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समाददे चान्तकदण्डसन्निभा-
निषूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥ ४५
द्विपस्य पादाग्रकरान्स पञ्चभि-
र्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः
स पाण्ड्यराजाऽनुचरान्महारथान्
सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषणौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ
विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४७
शिरश्च तत्पूर्णशशिप्रभाननं
सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितावपि भ्राजति तत्सकुण्डलं
विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ४८
स तु द्विपः पञ्चभिरुत्तमेषुभिः
कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः ।
कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता
यथा हविस्तद्दशदैवतं तथा ॥ ४९
स पादशो राक्षसभोजनान्बहून्
प्रदाय पाण्ड्योऽश्व-मनुष्य-कुञ्जरान्
स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रिय-
स्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहतः ५०
समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः
समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः ।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा
जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः ५१

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

धृतराष्ट्र उवाच ।

पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि सञ्जय । एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च ॥ १

हतेश्वरो यः कश्चित् तं पाण्ड्यम् ॥ ४० ॥ मलयध्वजः पांड्यस्तं यदृच्छयागतं वारणं समभ्यतिष्ठत् ॥ ४१ ॥ बलेन अस्त्रसर्गे य उत्तमो यत्नस्तेन मन्युना च तैः परिपीडयन् अंकुशेन कोपयन् अद्रिपतिर्मलयस्तस्येश्वरः पांड्यः ॥४२॥ द्रौणेः वरांगभूषणं किरीटं तोमरेण पराहनत्॥४३॥ इषून् समाददे द्रौणिरिति शेषः४५ चतुरश्चतुरंशः एवं स गजो दशधा भक्तो यथा दशहविर्यामिष्टौ पिष्टपिण्डो दशधा क्रियते तथेत्यर्थः ॥४९॥ पांड्योऽश्वादीन् पादशः प्रदाय खंडयित्वा प्रशान्तः द्रौणिबाणैरिति शेषः । यथा स्वधां प्रेतशरीररूपं हविः प्राप्य पितृप्रियो ज्वलनः श्मशानाग्निः जलेन शाम्यति तद्वदित्यर्थः ॥ ५० ॥ समाप्तविद्यं सम्यगाप्तविद्यं समाप्तकर्माणं कृतकृत्यम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

पाण्ड्य इति ॥ १ ॥

समाप्तविद्यो बलवान्
युक्तो वीरः स पाण्डवः ।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः
शङ्करेण महात्मना ॥ २
तस्मान्महद्भयं तीव्रममित्रघ्नाद्धनञ्जयात् ।
स यत्तत्राकरोत्पार्थस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३
सञ्जय उवाच ।
हते पांड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम्
पश्यामि नाहं राजानमपयातांश्च पाण्डवान्
निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ।
अश्वत्थाम्नश्च सङ्कल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः
तथाऽश्व-रथ-नागानां कृतं च कदनं महत् ।
सर्वमाख्यातवान्वीरो वासुदेवः किरीटिने ६
एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम् ।
वाहयाश्वान् हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः
ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना ।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत्समागमः ॥ ८
ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ९
ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः १०
धनूंषि बाणान्परिघानसि-पट्टिश-तोमरान्
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान्
गदाः प्रासान् शितान् कुन्तान्
भिन्दिपालान्महांकुशान् ।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः
परस्परजिघांसया ॥ १२
बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत्
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान्
तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम् ।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः १४
ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत्
तालशब्दांश्च विविधा-
ञ्शूराणां चाभिगर्जताम् ।
श्रुत्वा तत्र भृशं त्रेसुः
पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥ १६
तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान् १७
पञ्च पञ्चालवीराणां रथान्दश च पञ्च च ।
साश्वसूतध्वजान्कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् १८
योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे
शीघ्रास्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः १९
ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन्
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥
द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य
राधेयो धनुरुत्तमम् ।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः
शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥ २१
चर्मवर्माणि संछिन्नान्यपतन्भुवि देहिनाम् ।
विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्रिणः २२
वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः ।
मौर्व्या तलत्रे न्यहनत्कशया वाजिनो यथा
पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शरगोचरमागतान् ।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव २४
ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः २५
तेषु व्यायच्छमानेषु कुरु-पञ्चाल-पाण्डुषु ।
प्रियानसून्रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥
सुसन्नद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः ।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः २७
समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः ।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥ २८
ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चान्योन्यताडिताः
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥
दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसंनिभैः ।
जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः
परश्वधैश्चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखर-प्रास-तोमरैः ॥

---

अनुज्ञातः त्वमजय्यो भविष्यसीत्यनुगृहीतः ॥ २ ॥ राजानं युधिष्ठिरम् ॥ ४ ॥ भ्रातुः युधिष्ठिरस्य ॥ ७ ॥ द्यां स्वर्गं वियत् अन्तरिक्षम् ॥ १३ ॥ अण्डजैर्जलपक्षिभिः सारसादिभिः आकीर्णां व्याप्ताम् ॥ २० ॥ अवस्कन्द्य निपत्य उन्मथ्य मार्गादन्यत्र दूरे इत्यर्थः ॥२१॥ असुमथनैः असवः प्राणा उन्मथ्यन्तेभिस्तैः मौर्व्यच्युतैः शरैर्बाणैः तलत्रे ज्याघातवारणस्थाने न्यहनत् यथा ते शरं सन्धातुं न शक्नुवन्ति तथा चकारेत्यर्थः ॥ २३ ॥ व्यायच्छमानेषु यतमानेषु ॥ २६ ॥ विमस्तिष्केक्षणायुधाः मस्तिष्कं शिरोभागस्थमांसपिण्डः ॥२९॥ परश्वधैः ततक्षुः पट्टिशैरसिभिश्च चिच्छिदुः शक्तिभिर्बिभिदुः भिन्दिपालैश्चिक्षिपुः नखरैः संचकर्तुः प्रासतोमरैर्जघ्नुः ॥ ३१ ॥

ततश्चुच्छिदुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा।
ससृजुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा रणमहार्णवे ॥ ३२
पेतुरन्योन्यनिहता ह्यसवो रुधिरोक्षिताः।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥ ३३
रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३४
ध्वजाः शिरांसि छत्राणि
द्विपहस्ता नृणां भुजाः।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च
च्छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥ ३५
नरांश्च नागान्सरथान् हयान्ममृदुराहवे।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः
सपताका ध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः।
पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा
हताश्च हन्यमानाश्च
पतिताश्चैव सर्वशः।
अश्वारोहाः समासाद्य
त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥ ३८
सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते।
मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः
हतानां वदनान्यासन् गात्राणि च महाहवे
रूपाण्यत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप।
समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

सञ्जय उवाच।
हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः
मेकलाः कोशला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३
शर-तोमर-नाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥ ४
तान्संमिमर्दिषून्नागान् पार्ष्ण्यङ्गुष्ठांकुशैर्भृशम्
चोदितान्पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत् ॥
एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत।
द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्शरैः॥
प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम्।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः
तान्नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः।
वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ८
सात्यकिश्च शिखण्डी च
चेकितानश्च वीर्यवान्।
समन्तात्सिषिचुर्वीरा
मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥ ९
ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा
नरानश्वान् रथानपि।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः
पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ १०
बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥
प्रमुखे वर्तमानं तु द्विपमङ्गस्य सात्यकिः।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्माण्यपातयत् ॥
तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः।
नाराचेनाहनद्वक्षः सात्यकिः सोऽपतद्भुवि ॥
पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम्।
सहदेवः प्रयत्नास्तैर्नाराचैरहनत्त्रिभिः ॥ १४
विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम्।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात्

---

सुरसं स्निग्धं प्रकृत्ताश्छिन्नाश्चन्दना रक्तचन्दनाः ॥ ३३ ॥ समाप्लुत्य संमुखमुत्प्लुत्य ॥ ३७ ॥ पद्मानीव वदनानि स्रज इव गात्राणि ॥ ३९ ॥ समुन्नानि क्षारक्लिन्नानि मलिनानि ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

हस्तिभिरिति ॥ १ ॥ पार्ष्णिः पादस्य पश्चाद्भागः अंगुष्ठः प्रसिद्धः। अंकुशः प्रतोदः पार्ष्ण्यंकुशः अंगुष्ठांकुशश्चेति द्वौ केवलांकुशश्च तैः ॥ ५ ॥ प्रच्छाद्यमानं धृष्टद्युम्नम् ॥ ७॥ आवर्जितः प्रहारवञ्चनेन रक्षितः कायो येन तस्य ॥ १३॥

सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत्।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम्॥
दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान्।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत्
तथाऽर्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना॥
अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः॥
चलत्पताकैः सुमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः॥२०
मेकलोत्कलकालिङ्गा निषधास्ताम्रलिप्तकाः
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः॥
तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः।
परिपेतुः सुसंरब्धाः पाण्डु-पञ्चाल-सोमकाः
ततस्तदभवद्युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः।
नागानां प्रास्फुटन् कुम्भा
मर्माणि विविधानि च।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां
नाराचैर्भूषणानि च॥ २४
तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः।
सहदेवो जघानाशु तेऽपतन् सह सादिभिः
अञ्जोगतिभिरायस्य प्रयत्नाद्धनुरुत्तमम्।
नाराचैरहनन्नागान्नकुलः कुलनन्दनः॥ २६
ततः पाञ्चालशैनेयौ
द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः।
शिखण्डी च महानागान्
सिषिचुः शरवृष्टिभिः॥ २७
ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः॥ २८
एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम्॥
तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः३०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

## २३

सञ्जय उवाच।
सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम्।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात्
तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह॥ २
ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ३
सहदेवस्ततो राज-
न्नाराचेन तवात्मजम्।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या
सारथिं च त्रिभिः शरैः॥ ४
दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन्महाहवे।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ५
सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे।
आविध्य प्रासृजत्तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति॥ ६
समार्गणगुणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात्७
अथान्यद्धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान्।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः॥ ८
तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम्।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ९
ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः।
धनुश्चान्यत्समादाय शरं जग्राह वीर्यवान्॥
तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव॥ ११
ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत॥ १२
ताञ्छरान्समरे राजन् वेगेनापततो बहून्।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत १३

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

२३

सहेति॥ १॥ आदुधुवुः भ्रामितवन्तः॥ २॥

संनिवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् ।
अथास्मै सुबहून्बाणान्प्रेषयामास संयुगे १४
तान्बाणांस्तव पुत्रोऽपि
छित्त्वैकैकं त्रिभिः शरैः ।
ननाद सुमहानादं
दारयाणो वसुन्धराम् ॥ १५
ततो दुःशासनो राजन्
विद्ध्वा पाण्डुसुतं रणे ।
सारथिं नवभिर्बाणै-
र्माद्रेयस्य समार्पयत् ॥ १६
ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ॥
विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् ।
स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत्
प्राविशद्धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ।
ततः संमुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः ॥ १९
मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम्
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः
पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः ॥ २१
पिपीलिकपुटं राजन्यथा मृद्नन्नरो रुषा ।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत २२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सहदेव-दुःशासनयुद्धे
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

सञ्जय उवाच ।
नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन्वारयामास वै रुषा १
नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्यचक्षुषा २
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम् ।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ३
त्वद्दोषात् कुरवः क्षीणाः
समासाद्य परस्परम् ।
त्वामद्य समरे हत्वा
कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ४
एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः ।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥ ५
प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम् ।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ६
अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ७
इत्युक्त्वा प्राहरत्तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः ।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः
नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत ।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ९
तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा
स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
त्रिंशता परमेष्वासः
शरैः पाण्डवमर्दयत् ॥ १०
ते तस्य कवचं भित्त्वा
पपुः शोणितमाहवे ।
आशीविषा यथा नागा
भित्त्वा गां सलिलं पपुः ॥ ११
अथान्यद्धनुरादाय
हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
कर्णं विव्याध सप्तत्या
सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ १२
ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः ।
आजघ्ने प्रहसन्वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥ १४
कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष ।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥१५
अथान्यद्धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १६
तत्रस्थैरथ तैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यरोचयत ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन्प्रभाम्
नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥

---

पिपीलिकपुटं पिपीलिकावासपटलम् ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नै०भा० त्रयोविंशोऽध्यायः २३॥

२३

नकुलमिति । रभसं रणोत्सुकम् ॥ १ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् ।
नकुलस्य ततो बाणैः समन्ताच्छादयद्दिशः॥
संछाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः ।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥२०
ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते
खद्योतानामिव व्रातैः संपतद्भिर्यथा नभः ॥
तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा ।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद्विशांपते ॥२२
ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः ।
श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव
बाणजालावृते व्योम्नि छादिते च दिवाकरे।
न स्म संपतते भूम्यां किंचिदप्यन्तरिक्षगम्॥
निरुद्धे तत्र मार्गे च शरसंघैः समन्ततः ।
व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ॥
कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः ।
अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्ता भृशार्दिताः॥
नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव ।
व्यशीर्यत दिशो राजन्वातनुन्ना इवाम्बुदाः॥
ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः ।
शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥ २८
प्रोत्सारितजने तस्मिन् कर्णपाण्डवयोः शरैः
अविध्येतां महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः
विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि ।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥३०
नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः ।
सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाऽम्बरे ॥ ३१
तथैव सूतपुत्रेण प्रेषिताः परमाहवे ।
पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥
शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन ।
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव ॥
ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः ।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः॥
सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न चकार व्यथां राजन् भास्करो जलदैर्यथा
ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष ।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३६
एकच्छायमभूत्सर्वं तस्य बाणैर्महात्मनः ।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे संपतद्भिः शरोत्तमैः ॥
ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ३८
ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ३९
अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः
पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष ॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च ।
हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशांपते ॥
अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः ।
तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ॥ ४२
व्यहनत्सायकै राजन्सुतीक्ष्णैर्भारसाधनैः ।
व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
आर्पयद्बहुभिः कर्णो न चैनं समपीडयत् ।
स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ॥
प्राद्रवत्सहसा राजन्नकुलो व्याकुलेन्द्रियः ।
तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन्वै पुनः पुनः ॥ ४६
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत ।
ततः स शुशुभे राजन्कण्ठासक्तमहाधनुः ॥
परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद्व्योम्नि चन्द्रमाः।
यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥
तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि ।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८
मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पांडव
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव
गृहं वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ
एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥
वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद्धर्मवित्तदा ।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत्
विसृष्टः पाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ५२
आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः ।
निःश्वसन् दुःखसन्तप्तः कुंभस्थ इव पन्नगः५३
तं विजित्याथ कर्णोऽपि
पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
रथेनातिपताकेन
चन्द्रवर्णहयेन च ॥ ५४
तत्राक्रन्दो महानासीत्पाण्डवानां विशांपते
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पञ्चालानां रथव्रजान्
तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः ।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद्विचरन्प्रभुः ॥ ५६
भग्नचक्रै रथैः कैश्चिच्छिन्नध्वजपताकिभिः ।
हताश्वैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष ॥ ५७
ह्रियमाणानपश्याम पञ्चालानां रथव्रजान् ।
तत्र तत्र च संभ्रान्ता विचेरुरथ कुञ्जराः ॥

दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने ।
भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः ॥
छिन्नगात्रावराश्चैव छिन्नवालधयोऽपरे ।
छिन्नाभ्राणीव संपेतुर्हन्यमाना महात्मना ॥
अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः ।
तमेवाभिमुखं जग्मुः शलभा इव पावकम् ॥
अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः ।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः ॥
उरश्छदैर्वियुक्तांश्च वालबन्धैश्च वाजिनः ।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥
हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान् ।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥ ६४
निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः ।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान् हयोत्तमान्
प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत ।
हयसादीनपश्याम कञ्चुकोष्णीषधारिणः ॥
निहतान्वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत ।
नागाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ६७
रथान् हेमपरिष्कारान्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम् ॥
भग्नाक्षकूबरान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
विपताकध्वजांश्चान्याञ्छिन्नेषादण्डबन्धुरान्
विहतान् रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः ।
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान्विशांपते ॥ ७०
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान् सशस्त्रांश्च हतान्बहून्
तारकाजालसंछन्नान्वरघण्टाविशोभितान् ॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान्
वारणाननुपश्याम धावमानान्समन्ततः ॥७२
शिरांसि बाहूनूरूंश्च छिन्नानन्यांस्तथैव च
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः ॥ ७३
महान्व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत ।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः ॥
ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥
तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम् ।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम्
हतशेषास्तु ये वीराः पञ्चालानां महारथाः ।
तान्प्रभग्नान् द्रुतान्वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान्
तापयामास तान्बाणैः सूतपुत्रो महाबलः ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः ॥ ७८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## २५

सञ्जय उवाच ।

युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत् ।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
युयुत्सुश्च ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा ।
उलूकं ताडयामास वज्रेणेव महाबलम् ॥ २
उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ताडयामास कर्णिना
तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम् ।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४
शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ
सारथिं त्रिभिरानर्छत्तं च भूयो व्यविध्यत
उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनं
स छिन्नयष्टिः सुमहाञ्शीर्यमाणो महाध्वजः
पपात प्रमुखे राजन् युयुत्सोः काञ्चनध्वजः
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः ।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८
उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९
तच्छिन्नमपतद्भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा ।
तारारूपं यथा चित्रं निपपात महीतले ॥ १०
जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद्रथान्तरम्

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

युयुत्सुमिति ॥ १ ॥

तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ ।
पाञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन्निशितैः शरैः
शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसंभ्रमः ॥ १३
हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महारथः ।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥१४
सा कृत्वा स्यंदनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन्
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १५
तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ ।
व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥
पुत्रस्तु तव संभ्रान्तो विविंशो रथमारुहत् ।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः
सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥
सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १९

तान्शरान्शकुनिस्तूर्णं
चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः ।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च
जितकाशी च संयुगे ॥ २०

निवार्य समरे चापि शरांस्तान्निशितैः शरैः ।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥
तस्याश्वान् केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥
हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिष ।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद्भूमावतिष्ठत ॥ २३

व्यसृजत्सायकांश्चैव
स्वर्णपुंखाञ्शिलाशितान् ।
छादयामास समरे
तव स्यालस्य तं रथम् ॥ २४

शलभानामिव व्रातान्शरव्रातान्महारथः ।
रथोपगान्समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौबलः ॥

प्रममाथ शरांस्तस्य
शरव्रातैर्महायशाः ।
तत्रातुष्यन्त योधाश्च
सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ॥ २६

सुतसोमस्य तत् कर्म दृष्ट्वा श्रद्धेयमद्भुतम् ।
रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥
तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
व्यहनत्कार्मुकं राजंस्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥
स छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत्
वैडूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम् ॥२९
भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम्
कालदण्डोपमं मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥
सोऽचरत्सहसा खड्गी मण्डलानि सहस्रशः
चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥३१
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम्
संपातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥ ३२
सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान् ।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥
ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा ।
प्राहिणोत्सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान्
चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥३५
तस्य सञ्चरतो राजन् मण्डलावर्तने तदा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥

स छिन्नः सहसा भूमौ
निपपात महानसिः ।
अर्धमस्य स्थितं हस्ते
त्सरोस्तत्र भारत ॥ ३७

छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट्
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥
तच्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥ ३९
सुतसोमस्ततोऽगच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम् ।
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत्सुदुर्जयम् ॥
अभ्ययात्पांडवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान् बहून्
तत्र नादो महानासीत्पाण्डवानां विशांपते
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत् ।
तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना ।
यथा दैत्यचमूं राजन् देवराजो ममर्द ह ।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥

---

मण्डलानि भ्रान्तमुद्भ्रान्तमित्यादीन्मार्गान् अनुलोमविलोमभेदेन द्विगुणतया चतुर्दश ॥ ३१ ॥ मण्डलानां आवर्तने अनुलोमविलोमाभ्यासे ॥ ३६ ॥ अस्य असेः त्सरोः शोभनमुष्टेः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सुतसोमसौबलयुद्धे
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

सञ्जय उवाच ।
धृष्टद्युम्नं कृपो राजन् वारयामास संयुगे ।
यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद्युधि ॥ १
निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा ।
पदात्पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत ॥ २
गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥ ३
तत्रावोचन्विमनसो रथिनः सादिनस्तथा ।
द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥
शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः ॥
अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥
अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात्
अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान्न नो हन्यात्समागतान्
यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम् ।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः ७
आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि
अस्त्रवान्वीर्यसंपन्नः क्रोधेन च समन्वितः ८
पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते ।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ९
व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे ।
विनिःश्वस्य ततः क्रोधात्कृपः शारद्वतो नृप
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु ।
स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ११
कर्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महताऽऽवृतः
तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित् क्षेमं तु पार्षत१२
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित् ।
दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन्मर्मभेदिनः १३
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः ।
व्यावर्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवार्णवात् ॥ १४
अवध्यं ब्राह्मण मन्ये येन ते विक्रमो हतः ।
धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद्वचः ॥ १५
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे ॥ १६
वर्जयन् ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः ।
अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे १७
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः ।
ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन् हयान्
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः ।
प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ १९
किरञ्शतशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा ।
शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिंदमः ॥ २०
पार्षतं त्रासयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा ।
शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम्२१
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः ।
शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम्
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत् ।
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः
धनुरेकेन चिच्छेद हसन् राजन्महारथः ।
अथान्यद्धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो
हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ।
ततोऽस्य नवतिं बाणान्
रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ॥ २५
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः ।
वितथांस्तान्समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम्
अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम् ॥ २७
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत्
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः २८
ववाम रुधिरं गात्रैः कुंभवक्त्रादिवोदकम् ।
रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा त्वराजत २९

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

**धृष्टेति** । शरभोऽष्टपादः सिंहघाती पशुपक्षिशरीरो नृसिंहवत् दृब्यात्मा॥१॥वर्मणः वर्म प्राप्य अभ्रश्यन्त भ्रष्टाः वर्म न चिच्छिदुरित्यर्थः ॥ २६ ॥ ववाम वान्तवान्॥२९॥

वर्षेण क्लेदितो राजन् यथा गैरिकपर्वतः।
अथान्यद्धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः॥ ३०
शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत्
स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान्पादपो यथा।
तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ
अन्योन्यशृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव।
अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः।
कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ३४
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः
ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ३५
जीवितान्तकरं घोरं
व्यसृजत्त्वरयाऽन्वितः।
स तेनाभिहतो राजन्
मूर्च्छामाशु समाविशत्॥ ३६
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः
अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ३७
हार्दिक्यशरसंतप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो।
व्यद्रवत्पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः ३८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

## २७

सञ्जय उवाच।
श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम्
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः १
प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्तास्तं शिबयः कौरवैः सह।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत् २
सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः श्रुतंजयः।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत॥ ३
त्रिगर्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः॥ ४
व्यसृजन्त शरव्रातान् किरन्तोऽर्जुनमाहवे।
अभ्यवर्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम् ५
ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः।
अगच्छन् विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः ६
ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम् ७
सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम्
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रसेनस्तु सप्तभिः ८
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः
शत्रुंजयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः ९
स विद्धो बहुभिः संख्ये
प्रतिविव्याध तान्नृपान्।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विद्ध्वा
सत्यसेनं त्रिभिः शरैः॥ १०
शत्रुंजयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाऽष्टभिः।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभिः शरैः॥ ११
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाऽष्टभिः।
शत्रुञ्जयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम् १३
तथेतरान्महाराज यतमानान्महारथान्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत्॥ १४
सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत्।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च १५
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा १६
माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे।
प्रतोदः प्रापतद्धस्तादृश्मयश्च विशांपते १७
वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह १८
प्रापयाश्वान्महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् १९

---

पार्षतं शिखण्डिनम्॥ ३४॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

२७

श्वेतेति॥ १॥

प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा ।
वाहयामास तानश्वान्सत्यसेनरथं प्रति ॥
विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः ।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः ।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त पृतनान्तरे ॥ २२
तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत् ।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥
ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान्बली ।
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः ।
मित्रसेनस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः ॥ २५
सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत् ।
ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश ।
अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः ।
ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्विशांपते ॥
ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह
कूबराणां वरूथानां पृषत्कानां च संयुगे ॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह
गदानां परिघानां च शक्ति-तोमर-पट्टिशैः ॥
शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत ।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशांपते ।
सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे ।
सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले ।
गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥ ३६
निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः ।
हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही ॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः ।
नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥
निघ्नतः शात्रवान् भल्लै-
र्हस्त्यश्वं चास्यतो महत् ।
स्वानुगा इव सीदन्ति
रथचक्राणि मारिष ।
चरतस्तस्य संग्रामे
तस्मिँल्लोहितकर्दमे ।
सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ।
वध्यमानं तु तत्सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत ।
ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः
संशप्तकगणान्बहून् ।
विरराज तदा पार्थो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संशप्तकजये
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

सञ्जय उवाच ।
युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान् बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥
तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।
स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत्

ध्वजादीनां शब्दोऽश्रूयतेति षष्ठेनान्वयः ॥ २९ ॥ हस्त्यश्वं चास्यतः छिंदतः स्वानुगा इव यथा स्वस्मिन् नष्टेऽनुचराः सीदन्त्येवं रथानां मङ्गं दृष्ट्वा चक्राणि नश्यन्ति अक्षभंगादिति भावः। स्वानुकारिवेति पाठे चिन्तयेत्युच्चारः ॥ ३९ ॥ सीदमानानि पङ्कमज्जनात् ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

२८

युधिष्ठिरमिति ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजन्
स्वर्णपुङ्खाञ्छिलीमुखान्
दुर्योधनाय चिक्षेप
त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ४
चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात्सारथेश्च समाक्षिपत् ॥
षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥ ६
पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद्भृशम् ।
हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ॥ ७
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥८
अभ्यवर्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम् ।
अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम्
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्तत ।
ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥
ततः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन्महीपते ।
यत्राभ्यगच्छन् समरे पञ्चालाः कौरवैः सह
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः
द्वंद्वान्यासन्महाराज
प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि
शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ १३
ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ॥ १४
अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
न हि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन १५
मुहूर्तमेव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्तत ॥ १६
रथी नागं समासाद्य दारयन्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास कालाय शरैः सन्नतपर्वभिः १७
नागा हयान्समासाद्य विक्षिपन्तो बहून् रणे
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥ १८
हयारोहाश्च बहवः परिवार्य हयोत्तमान् ।
तलशब्दरवांश्चक्रुः संपतन्तस्ततस्ततः १९
धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान्महागजान्
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥ २०
विद्राव्य च बहूनश्वान्नागा राजन्मदोत्कटाः
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ २१
साश्वारोहांश्च तुरगान् विषाणैर्विव्यधू रुषा
अपरे चिक्षिपुर्वेगात् प्रगृह्यातिबलास्तदा २२
पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २३
पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमववव्रू रणाजिरे ॥ २४
निमित्तं मन्यमानास्तु परिणाम्य महागजाः
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च २५
तांस्तु तत्र प्रसक्तान्वै परिवार्य पदातयः ।
हस्त्यारोहान्निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः
अपरे हस्तिभिर्हस्तैः खं विक्षिप्ता महाहवे ।
निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं विद्धाः सुशिक्षितैः
अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः ।
सेनान्तरं समासाद्य केचित्तत्र महागजैः ॥
क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥
पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशांपते ।
शरीराण्यतिविद्धानि तत्र तत्र रणाजिरे ॥
प्रतिमानेषु कुंभेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः
निगृह्य च गजाः केचित् पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः
रथाश्वसादिभिस्तत्र संभिन्ना न्यपतन्भुवि ॥
सहयाः सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे ।
भूमावमृदनन्वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥
तथा सावरणान्कांश्चित्तत्र तत्र विशांपते ।
रथान्नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥
व्याक्षिपन्सहसा तत्र घोररूपे भयानके ।
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले ।
योधा योधान्समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन्युधि
केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिक्षिपुर्बिभिदुश्च ह
उद्यम्य च भुजानन्ये निक्षिप्य च महीतले
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः
पततश्चापरो राजन्विजहारासिना शिरः ॥

आभरणं अवव्रुः अवगत्य वृतवन्तः॥२४॥ निमित्तं जयहेतुं महान्तो गजा येषां ते महागजाः गजारोहाः जगृहुः हस्तिभिर्ग्राहयामासुः। परिणाम्य हस्तिनमिति शेषः । बिभिदुश्च शत्रून् गजैरेव॥ २५॥ प्रतिमानेषु गजदन्तान्तरालेषु प्रासैः कुंभेषु तोमरैर्दन्तवेष्टेषु शक्तिभिश्च निगृहीताः । 'प्रतिमानं प्रतिच्छाया गजदन्तान्तरालयोः' इति मेदिनी ॥ ३१ ॥

जीवतश्च तथैवाऽन्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत्
मुष्टियुद्धं महच्चासीद्योधानां तत्र भारत ॥
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।
समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथाऽपरः ॥
जहार समरे प्राणान्नानाशस्त्रैरनेकधा ।
संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥ ४१
कबन्धान्युत्थितानि स्युः
शतशोऽथ सहस्रशः ।
शोणितैः सिच्यमानानि
शस्त्राणि कवचानि च ॥ ४२
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।
एवमेतन्महद्युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥ ४३
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।
नैव स्वे न परे राजन् विज्ञायन्ते शरातुराः ॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।
स्वान् स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान्
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।
रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥ ४६
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७
क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।
पञ्चालानहनत्कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनञ्जयः ॥ ४८
भीमसेनः कुरून् राजन् हस्त्यनीकं च सर्वशः
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये कांक्षतां विपुलं यशः ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

धृतराष्ट्र उवाच ।
अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च
त्वत्तोऽहं संजयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम्
यथा त्वं मे कथयसे यथा युद्धमवर्तत ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः
दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥
अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय॥ ४
सञ्जय उवाच ।
संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशांपते ॥ ५
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा।
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः॥७
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।
स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यंदनमुत्तमम्॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।
तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ ११
ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥१२
तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥
अथान्यद्धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम् ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥
सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

अतीति ॥१ विरथः कृत इत्युक्तं तत्र युद्धे धर्मपुत्रः कथं तं विरथं चक्रे तस्य तं च नृपतिर्दुर्योधनः कथमयुद्ध्यत इति शेषः ॥ ३ ॥ अपविद्ध्य त्यक्त्वा ॥ १३ ॥

जीवतश्च तथैवाऽन्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत्
मुष्टियुद्धं महच्चासीद्योधानां तत्र भारत ॥
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।
समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथाऽपरः ॥
जहार समरे प्राणान्नानाशस्त्रैरनेकधा ।
संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥ ४१
कबन्धान्युत्थितानि स्युः
शतशोऽथ सहस्रशः ।
शोणितैः सिच्यमानानि
शस्त्राणि कवचानि च ॥ ४२
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।
एवमेतन्महद्युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥ ४३
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।
नैव स्वे न परे राजन् विज्ञायन्ते शरातुराः ॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।
स्वान् स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान्
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।
रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥ ४६
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७
क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।
पञ्चालानहनत्कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनञ्जयः ॥ ४८
भीमसेनः कुरून् राजन् हस्त्यनीकं च सर्वशः
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये कांक्षतां विपुलं यशः ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

धृतराष्ट्र उवाच ।
अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च
त्वत्तोऽहं संजयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम्
यथा त्वं मे कथयसे यथा युद्धमवर्तत ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः
दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥
अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय॥ ४
सञ्जय उवाच ।
संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशांपते ॥ ५
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा।
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः॥७
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।
स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यंदनमुत्तमम्॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।
तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ ११
ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥१२
तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥
अथान्यद्धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम् ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥
सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

अतीति ॥१ विरथः कृत इत्युक्तं तत्र युद्धे धर्मपुत्रः कथं तं विरथं चक्रे तस्य तं च नृपतिर्दुर्योधनः कथमयुद्ध्यत इति शेषः ॥ ३ ॥ अपविद्ध्य त्यक्त्वा ॥ १३ ॥

अथ तव नरदेव सैनिका-
स्तव च सुताः सुरसूनुसन्निभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे
कुरुवृषभाः शिनिपुत्रमभ्ययुः ॥ ७
तदतिरुधिरभीममावभौ
पुरुषवराश्व-रथ-द्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं
बलमसुरामरसैन्यसप्रभम् ॥ ८
सुरपतिसमविक्रमस्तत-
स्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै
रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ९
तमपि सरथवाजिसारथिं
शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् ।
भुजगविषसमप्रभै रणे
पुरुषवरं समवास्तृणोत्तदा ॥ १०
शिनिवृषभशरैर्निपीडितं
तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं
द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११
तदुदधिनिभमाद्रवद्बलं
त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतमुखैस्तदाऽभवत्
पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥ १२
अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ
भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं
तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३
जलदनिनदनिःस्वनं रथं
पवनविधूतपताककेतनम् ।
सितहयमुपयान्तमन्तिकं
कृतमनसो ददृशुस्तदाऽरयः ॥ १४
अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः
शरसम्बाधमकरोत्खं दिशः प्रदिशस्तथा १५
रथान्विमानप्रतिमान्मज्जयन्सायुधध्वजान् ।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत्
गजान् गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान् ।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम्
तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम् ।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन् बाणैरजिह्मगैः
तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान्केतुं च सायकैः ।
हत्वा सप्तभिरेकेन छत्रं चिच्छेद पत्रिणा १९
नवमं च समाधाय व्यसृजत्प्राणघातिनम् ।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाऽच्छिनत्॥
ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः
कृपस्यापि तद्वत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः २१
हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा
ध्वजं चाश्वांस्तदाऽवधीत् ।
दुःशासनस्येष्वसनं
छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥ २२
अथ सात्यकिमुत्सृज्य
त्वरन्कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः ।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या
कृष्णं पार्थं पुनः पुनः ॥ २३
न ग्लानिरासीत्कर्णस्य
क्षिपतः सायकान् बहून् ।
रणे विनिघ्नतः शत्रून्
क्रुद्धस्येव शतक्रतोः ॥ २४
अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥ २५
ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन् ।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च ।
चेदिकारूपमत्स्यानां केकयानां च यद्बलम् ॥
चेकितानश्च बलवान् धर्मराजश्च सुव्रतः ।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः २८
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः
तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भङ्क्त्वे मारुतः ३०
रथिनः समहामात्रान् गजानश्वान्ससादिनः
पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन् कर्णो व्यदृश्यत
तद्वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा ।
विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत्पराङ्मुखम् ॥
अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन्
दिशं खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः
मुसलानीव संपेतुः परिघा इव चेषवः ।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे

लवणजलः क्षारसमुद्रः ॥ ८ ॥ त्रिदशवरावरजोपमं विष्णुतुल्यम् ॥ ९ ॥ सृतावागतौ ॥ १३ ॥

तैर्वध्यमानं तत् सैन्यं सपत्त्यश्व-रथ-द्विपम्
निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च ॥
निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्व-नर-द्विपाः।
हन्यमानाः शरैरार्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥
त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम्
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥
तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः।
न किंचित्प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाऽशुभं
ते त्रस्यन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥
कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन्दिनक्षये।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥ ४१
कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते।
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रायुञ्जन्त नरेश्वराः
ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः।
निशायां शिबिरं गत्वा न्यवसन्त नरेश्वराः
ततो रक्षः पिशाचाश्च श्वापदाश्चैव संघशः।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभम् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि प्रथमे युद्धदिवसे
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

धृतराष्ट्र उवाच।
स्वेन च्छन्देन नः सर्वानवधीद्व्यक्तमर्जुनः।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः
पार्थश्चैकोऽहरद्भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत्।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे बलिभृतो नृपान्
एको निवातकवचानहनद्दिव्यकार्मुकः।
एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत् ॥ ३
एको ह्यरक्षद्भरतानेको भवमतोषयत्।
तेनैकेन जिताः सर्वे महीपा ह्युग्रतेजसा ॥ ४
न ते निंद्याः प्रशस्यास्ते यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत्
ततो दुर्योधनः सूत पश्चात्किमकरोत्तदा ॥५
सञ्जय उवाच।
हतप्रहतविध्वस्ता विवर्मायुधवाहनाः।
दीनस्वरा दूयमाना मानिनः शत्रुनिर्जिताः
शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः ॥
तानब्रवीत्ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्॥
करं करेण निष्पीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम्।
यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा।
संबोधयति चाप्येनं यथा कालमधोक्षजः॥
सहसाऽस्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः।
श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा
सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान्।
तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे
स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ११
सुखोषितास्तां रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः।
तेऽपश्यन्विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम् ॥
प्रयत्नात्कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनोमते।
अथ प्रतीपकर्तारं प्रवीरं परवीरहा ॥ १३
सस्मार वृषभस्कंधं कर्णं दुर्योधनस्तदा।
पुरंदरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले॥ १४

---

निष्कैवल्यं निश्चितं कैवल्यं मरणं यस्मिन् तत्तथा ॥ ३६ ॥ प्रत्यपद्यत प्रविष्टः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकंठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

**स्वेनेति**। स्वेन च्छन्देन इच्छया आततायिनः शस्त्रपाणेः ॥ १ ॥ भद्रां सुभद्रां बलिभृतः करदान् ॥ २ ॥ अरक्षत् घोषयात्रायां भरतान् दुर्योधनादीन् ॥ ४ ॥ ते अस्मदीयाः न निंद्याः तेशब्दस्याभ्यासाद्वाक्यत्रयमिदम्। तथा दुर्योधनोऽपि न निन्द्यः अपि तु ततः विस्तृतः तादृशं शत्रुं प्राप्य ख्यातिं गत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ हताः ताडिताः प्रहताश्छिन्नावयवाः विध्वस्ताः वाहनेभ्योऽधःपातिताः ॥ ६ ॥ सहसा अकस्मात् ॥ १० ॥ मते स्थितेनेति शेषः। प्रतीपकर्तारं शत्रूणां छेत्तारं प्रवीरं प्रकृष्टं वीरम् ॥ १३ ॥

कार्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राज्ञोऽगमन्मनः ।
सर्वेषां चैव सैन्यानां कर्णमेवागमन्मनः ।
सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

ततो दुर्योधनः सूत पश्चात्किमकरोत्तदा
यद्वोऽगमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥
अप्यपश्यत राधेयं शीतार्त इव भास्करम् ।
कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः ॥
कथं वैकर्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत सञ्जय ।
कथं च पाण्डवाः सर्वे युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥
कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात्पार्थान्ससृंजयान्
कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि ॥
तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥
दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम् ।
पराक्रान्तान्पाण्डुसुतान् दृष्ट्वा चापि महारथः
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सपुत्रान्सहकेशवान् ॥
अहो बत महद्दुःखं यत्र पाण्डुसुताश्रणे ।
नातरद्रभसः कर्णो 'दैवं नूनं परायणम्' ॥२३
अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा संप्रति वर्तते ।
अहो तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम्
सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि सञ्जय ।
सौबलं च तदा तात नीतिमानिति मन्यते
कर्णश्च रभसो नित्य राजा तं चाप्यनुव्रतः ।
यदेवं वर्तमानेषु महायुद्धेषु सञ्जय ॥ २६
अश्रौषं निहतान्पुत्रान्नित्यमेव विनिर्जितान् ।
न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते 'दैवं तु बलवत्तरम्' ।

सञ्जय उवाच ।

राजन्पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय
अतिक्रान्तं हि यत्कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः
तच्चास्य न भवेत्कार्यं चिन्तया च विनश्यति
तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता ।
न कृतं यत्त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥
उक्तोऽसि बहुधा राजन् मा युध्यस्वेति पांडवैः
गृह्णीषे न च तन्मोहाद्वचनं च विशांपते ॥३१
त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पांडुषु
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥
तत्त्विदानीमतिक्रान्तं मा शुचो भरतर्षभ ।
शृणु सर्वं यथावृत्तं घोरं वैशसमुच्यते ॥ ३३
प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात्
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ३४

कर्ण उवाच ।

अद्य राजन्समेष्यामि पांडवेन यशस्विना
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति
बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत ।
नाभूत्समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च३६
इदं तु मे यथाप्रज्ञं शृणु वाक्यं विशांपते ।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥
हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन्मयि चावस्थिते युधि ।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम्
ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर ।
आयुधानां च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च
कार्यस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने ।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः
प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत
निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः॥
सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः ।
इन्द्रार्थं प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
येन दैत्यगणान्राजञ्जितवान्वै शतक्रतुः ।
यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश
तद्भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसंमतम् ।
तद्दिव्यं भार्गवो मह्यमदद्धनुरुत्तमम् ॥ ४४
तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम् ।
यथेन्द्रः समरे सर्वान् दैतेयान्वै समागतान् ॥

---

आत्ययिकेषु प्राणसंकटेषु ॥ १५॥ अप्यपश्यत अपिः प्रश्ने ॥ १६ ॥ मत्तः कर्णाश्रयेण मूढः भाविनाशानवधानात् ॥२०॥ निष्ठा विपाकः ॥ २४ ॥ कर्णश्च नीतिमानिति मन्यत इति पूर्वेणान्वयः ॥२६॥ स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते सेनां मृद्नन्तीत्यर्थः॥ निमित्तानि द्यूतादीनि धर्मिष्ठानीति सोपालंभं विरुद्धानीत्यर्थः ॥२८॥ कार्यं राज्यलाभाख्यं दूरप्राप्तं अत्यन्तदुर्लभं यत् यतः विजानताऽपि त्वया प्राप्ताप्राप्तविचारणं युक्तायुक्तपरीक्षणं न कृतमित्यन्वयः ॥३०॥ शक्रशक्तीति स्वस्य अर्जुनवधे सामर्थ्याभावं द्योतयति ॥ ३८ ॥ श्रेयस्करं आत्मत्राणकरं वीर्यं समानमिति शेषः ॥ ३९ ॥ कार्यस्य कर्तव्यस्य परकीयस्य भेदे विनाशे लाघवे शैघ्र्ये सौष्ठवे कौशले ॥ ४० ॥ प्राणे शारीरबले । शौर्ये मानसबले । विज्ञाने अस्त्रशिक्षायां । विक्रमे फलोपधानेऽस्त्राणां निमित्तज्ञानयोगे लक्ष्यसंबन्धावधारणे ॥ ४१ ॥ महामात्रं श्रेष्ठम् । विजयाख्यं नाम प्रसिद्धम् ॥ ४२ ॥

धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात्तद्विशिष्यते ।
त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता॥
धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः
तद्रामो ह्यददन्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम्
अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम्
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम् ॥ ४८
सपर्वतवनद्वीपा हतवीरा ससागरा ।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव ॥४९
नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा
न हि मां समरे सोढुं
संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा ।
अवश्यं तु मया वाच्यं
येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात् ॥ ५१
ज्या तस्य धनुषो दिव्या
तथाऽक्षय्ये महेषुधी ।
सारथिस्तस्य गोविन्दो
मम तादृङ्न विद्यते ॥ ५२
तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि
विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम् ॥
तत्राहमधिकः पार्थाद्धनुषा तेन पार्थिव ।
येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे
रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः ।
अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः ॥
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः ।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान् वानरो विस्मयंकरः
कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति ।
एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम्
अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः
सारथ्यं यदि मे कुर्याद्ध्रुवस्ते विजयो भवेत्॥
तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः ।
नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे ॥
रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः
आयान्तु पश्चात्सततं मामेव भरतर्षभ ॥ ६०
एवमभ्यधिकः पार्थाद्भविष्यामि गुणैरहम् ।
शल्योऽप्यभ्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहं
यथाऽश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा ।
तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः ॥
बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन ।
तथाऽस्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः
तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन ।
सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद्भविष्यति रथो मम
एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात् ।
भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥६५
समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः ।
एतत्कृतं महाराज त्वयेच्छामि परंतप ॥६६
क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम्
एवं कृते कृतं सह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ३७
ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत्करिष्यामि भारत
सर्वथा पाण्डवान्संख्ये विजेष्ये वै समागतान्
न हि मे समरे शक्ताः समुद्यातुं सुरासुराः ।
किमु पाण्डुसुता राजन् रणे मानुषयोनयः ॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना ।
संपूज्य संप्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥

दुर्योधन उवाच ।

एवमेतत्करिष्यामि
यथा त्वं कर्ण मन्यसे ।
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः
स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥ ७१
नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते ।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान्
अभिगम्याब्रवीद्राजा मद्रराजमिदं वचः ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

सिद्धिर्मोक्षः आत्मवतो जितचित्तस्य॥५०॥शल्यः कृष्णतुल्यः बाणशकटबहुलतया बाणानामक्षय्यत्वं ज्ञेयम् । एवं बह्वश्वत्वेन दिव्याश्वजय इत्याह-**अयमित्यादिना** ॥ ५८ ॥ भवे भवेयम् । भवेदिति पाठः प्रामादिकः ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

# ३२

सञ्जय उवाच ।

पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम् ।
विनयेनोपसंगम्य प्रणयाद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १
सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन ।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयंकर ॥ २
श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर ।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरये स्वयम्
तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह ।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥ ४
तस्मात्पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात्कर्तुमर्हसि ॥ ५
त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते ।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीताऽन्यो न विद्यते
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि ।
स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥
यथा च सर्वथाऽऽपत्सु वार्ष्णेयः पाति पांडवं
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ ८
भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो
भवान् भोजश्च वीर्यवान् ।
शकुनिः सौबलो द्रौणि-
रहमेव च नो बलम् ॥ ९
एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते ।
न च भागोत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शत्रवः
वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ छलेन निहतौ युधि
कृत्वा नसुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ ।
तथाऽन्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥
अस्मदीयाश्च बहवः
स्वर्गायोपगता रणे ।
त्यक्त्वा प्राणान् यथाशक्ति
चेष्टां कृत्वा च पुष्कलाम् ।
तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप ।
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत सांप्रतम् ॥ १४
बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत्कुरु पार्थिव ॥ १५
हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो ।
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥
भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः ।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे ॥
तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन
पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव ॥
तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव ।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत् ॥
पूर्वं नः समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून् ।
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥
कृष्णेन सहितः पार्थो धार्तराष्ट्रीं महाचमूम्
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन् दृश्यते युधि ॥२२
भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते ।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥ २३
अरुणेन यथा सार्धं तमः सूर्यो व्यपोहति ।
तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥२४
उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ ।
कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥
सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाःससृञ्जयाः
रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् ।
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥
यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवं
तथा भवान्परित्रातु कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ २८
त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते ।
किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशंकीर्वचो मम

सञ्जय उवाच ।

दुर्योधनवचः श्रुत्वा
शल्यः क्रोधसमन्वितः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा
धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ॥ ३०
क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः ।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३१

---

३२

**पुत्र इति ।** विनयेन नत्वा प्रणयात् प्रकृष्टात् न्यायात् युक्तियुक्त इत्यर्थः ॥ १ ॥ अभीषूणां हयरश्मीनाम् ॥ ६ ॥ त्रातु त्रायताम् ॥ २८ ॥

शल्य उवाच ।

अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशंकसे ।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति
अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि ।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥
आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥
अथवाऽप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनंदन ।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥
यथाभिमानं कौरव्य निधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्तेत मा मां त्वमभिशंकिथाः ॥
युधि वाऽप्यवमानो मे न कर्तव्यः कथञ्चन
पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननोपमौ ॥ ३७
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान्
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम् ।
दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान् ॥
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ।
तं मामेवंविधं राजन् समर्थमरिनिग्रहे ॥ ४०
कस्माद्युनंक्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे ।
न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥
न हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे
यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम्
वशे पापीयसो धत्ते तत्पापमधरोत्तरम् ।
ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात् क्षत्रं च बाहुतः
ऊरुभ्यामसृजद्वैश्यान् शूद्रान्पद्भ्यामिति श्रुतिः
तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥
अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत ।
गोप्तारः संगृहीतारो दातारः क्षत्रियाः स्मृताः
याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः ।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्राह्मणा भुवि ॥
कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः
ब्रह्म-क्षत्र-विशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः
ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः ।
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥
अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः ।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च बंदिनां
सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ५०

अवमानमहं प्राप्य
न योत्स्यामि कथञ्चन ।
आपृच्छे त्वाऽद्य गान्धारे
गमिष्यामि गृहाय वै ॥ ५१

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः
उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥५२
प्रणयाद्बहुमानाच्च तन्निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम्
यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तन्निबोध जनेश्वर ॥

न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो
न शंके त्वां च पार्थिव ।
न हि मद्रेश्वरो राजा
कुर्याद्यदनृतं भवेत् ॥ ५५

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम
शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले
यदेतद्व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थं यद्यदुच्यते ॥ ५८
न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान्
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥
मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनञ्जयात्
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते ॥
कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥
यथाऽश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥

शल्य उवाच ।

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव
विशिष्टं देवकीपुत्रात्प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥

---

विश्रब्धं निःशङ्कं यथा स्यात्तथा ॥ ३२ ॥ निधाय त्वत्कृतमपमानमिति शेषः । प्रवर्तेत त्यक्तुमिति शेषः ॥ ३६ ॥ अधुरि नीचे कर्मणि ॥ ४१ ॥ पापीयसः नीचयोनेः प्रेष्यत्वं दासत्वं कर्तुमिति शेषः ॥ ४२ ॥ वशे आज्ञायाम् ।अधरोत्तरं नीचोच्चयोर्वैपरीत्यकरणजं महत्पापम् ॥ ४३ ॥ **ऋतमिति** । ऋतमेव अयनं आश्रयो येषां ते ऋतायनास्तेषां गोत्रापत्यमार्तायनिस्त्वम् ॥ ५६ ॥ मद्रेश्वरेत्यस्योत्पत्तिदेशजत्वाद्विशेषेण तद्गुणाभिज्ञत्वं सूच्यते ॥ ६२ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे
समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य सन्निधौ ॥

सञ्जय उवाच ।
तथेति राजन्पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत ।
अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥ ६६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्ये
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## ३३

दुर्योधन उवाच ।
भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरावृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥ १
यदुक्तवान् पितुर्मह्यं मार्कण्डेयो महानृषिः ।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥ २
निबोध मनसा चात्र न ते कार्या विचारणा
देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ।
बभूव प्रथमो राजन् संग्रामस्तारकामयः ॥ ३
निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम्
निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः ।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।
तपसा कर्षयामासुर्देहान् स्वान् शत्रुतापन ॥
दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना ।
तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥७
अवध्यत्वं च ते राजन् सर्वभूतस्य सर्वदा ।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥
तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमितोऽसुराः
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं संप्ररोचते ।
ततस्ते सहिता राजन् संप्रधार्यासकृत्प्रभुम्
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदमथाब्रुवन् ।
अस्मभ्यं त्वं वरं देव संप्रयच्छ पितामह ॥
वयं पुराणि त्रीण्येव
समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेऽस्मि-
स्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः ॥ १२
ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥
एवमस्त्विति तान् देवः
प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ।
ते तु लब्धवराः प्रीताः
संप्रधार्य परस्परम् ॥
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम् ।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १६
ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान्पुराणि च ।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा
काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥ १८
एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम् ।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम् ॥ १९
गृहप्रवरसंबाधमसंबाधमहापथम् ।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम् ॥
पुरेषु चाभवन् राजन् राजानो वै पृथक् पृथक्
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥
राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम्
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रींल्लोकानस्त्रतेजसा २२

---

वाच उत्सृजेयं ताः अनेन क्षन्तव्या इति भावः ॥ ६५ ॥
इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकंठीये भारतभावदीपे
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

भूय इति ॥ १ ॥ पितुः पुरतः मह्यं मम ॥ २ ॥ तारकामयः तारकासुर एव आमयो रोगवत्पराभवहेतुर्यत्र स तथा ॥ ३ ॥ दमेन बाह्येन्द्रियजयेन तपसा चित्तस्यैकाग्र्येण नियमेन शौचादिना समाधिना अभ्युत्थानेन ॥७ चक्रस्थं आज्ञावशं यथेष्टसञ्चारीत्यर्थः । चक्रस्थमित्यत्र तृतीयमिति पाठः प्रामादिकः ॥ १८ ॥

आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः ।
तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च २३
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः
मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा २४
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः ।
सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः ॥ २५
तमाश्रित्य हिते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः ।
यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा ।
तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः २७
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत्पितामहः ।
संतुष्टमवृणोद्देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः ।
स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो
येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥ ३०
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ।
तां प्राप्यते पुनस्तांस्तु लोकान्सर्वान्बबाधिरे
महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः ।
न तेषामभवद्राजन् क्षयो युद्धे कदाचन ३२
ततस्ते लोभमोहाभ्या-
मभिभूता विचेतसः ।
निर्ह्रीकाः संस्थिताः सर्वे
स्थापिताः समलूलुपन् ॥ ३३
विद्राव्य सगणान् देवांस्तत्र तत्र तदा तदा ।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ३४
देवोद्यानानि सर्वाणि
प्रियाणि च दिवौकसाम् ।
ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्
रम्याञ्जनपदांस्तथा ॥ ३५
व्यनाशयन्नमर्यादा दानवा दुष्टचारिणः ।
पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्वृतः ३६
पुराण्यायोधयां चक्रे वज्रपातैः समंततः ।
नाशकत्तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरंदरः ३७
पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप ।
तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ॥
तैरेव विबुधैः सार्धं पितामहमरिंदम ।
जगामाथ तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ३९
ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः संप्रणम्य च
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ४०
श्रुत्वा तद्भगवान्देवो
देवानिदमुवाच ह ।
ममापि सोऽपराध्नोति
यो युष्माकमसौम्यकृत् ॥ ४१
असुरा हि दुरात्मानः सर्वे एव सुरद्विषः ।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान् पीडयन्त्युत
अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः ।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम्
एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा
न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा पुरः ४४
ते यूयं स्थाणुमीशानं
जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः
स तान् हन्ता सुरेतरान् ॥ ४५
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा शक्रपुरोगमाः
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ४६
तपोनियममास्थाय गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम्
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः
तुष्टुवुर्वाग्भिरुग्राभिर्भयेष्वभयदं नृप ।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ४८
तपोविशेषैर्विविधै-
र्योगं यो वेद चात्मनः ।
यः सांख्यमात्मनो वेत्ति
यस्य चात्मा वशे सदा ॥ ४९
तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् ।
अनन्यसदृशं लोके भगवन्तमकल्मषम् ॥ ५०
एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥
परस्परस्य चापश्यन् सर्वे परमविस्मिताः ।
सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः पतिम् ॥ ५२

---

आदित्या देवाः॥ ४५ ॥ उग्राभिः रक्षोघ्नीभिः आप्तं व्याप्तं आत्मना अनौपाधिकेन ॥४८॥ आत्मनः मनसः योगं सर्ववृत्तिनिरोधम् । सांख्यं सम्यक्ख्यापनं आत्मनो जडवर्गात्पृथग्ग्रहणं आत्मा मनः वशे आज्ञायाम्॥४९॥भगवन्तं षड्विधैश्वर्यवन्तम्। एकमपि ते'तं यथायथोपासते' इति श्रुतेर्यथाभावनं शिवविष्णुरुद्रादिवेषेण नानारूपमकल्पयन् । आत्मनः चित्तस्य प्रतिरूपाणि संकल्पानुसारीणि प्रतिबिम्बानि वा परस्परस्य चेति ईश्वरस्वरूपे सर्वे आत्मानं परांश्चापश्यन्निति सार्धश्लोकः एकं वाक्यम् ॥ ५१॥

देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ।
तान्स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः
ब्रूत ब्रूतेति भगवान् स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
त्र्यंबकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः ५४
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन्वचः
नमो देवाधिदेवाय धन्विने वनमालिने ५५
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यते ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शंभवे५६
विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ।
अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ५७
अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च ।
दुर्वारणाय क्राथाय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥ ५८
ईशानायाप्रमेयाय नियंत्रे चर्मवाससे ।
तपोरताय पिंगाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥ ५९
कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्संघघातिने ६०
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ६१
नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान् भजस्व नः ॥
ततः प्रसन्नो भगवान् स्वागतेनाभिनन्द्य च ।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः६३

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

दुर्योधन उवाच ।
पितृदेवर्षिसंघेभ्योऽभये दत्ते महात्मना ।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः १
तवातिसर्गाद्देवेश प्राजापत्यमिदं पदम् ।
मयाऽधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान्वरः
तानतिक्रान्तमर्यादान् नान्यः संहर्तुमर्हति ।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ३
स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम्
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शङ्कर ॥ ४
त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं सुखमैधत मानद ।
शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥
स्थाणुरुवाच ।
हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः
न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुरद्विषः ॥
ते यूयं संहताः सर्वे मदीयेनार्धतेजसाः ।
जयध्वं युधि ताञ्छत्रून् संहता हि महाबलाः
देवा ऊचुः ।
अस्मत्तेजोबलं यावत्तावद्द्विगुणमाहवे ।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते॥
स्थाणुरुवाच ।
वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः
मम तेजोबलार्धेन सर्वान्निघ्नत शात्रवान् ॥
देवा ऊचुः ।
बिभर्तुं भवतोऽर्धं तु न शक्ष्यामो महेश्वर ।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥
स्थाणुरुवाच ।
यदि शक्तिर्न वः काचिद्बिभर्तुं मामकं बलम्
अहमेतान् हनिष्यामि युष्मत्तेजोर्धबृंहितः॥
ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम ।
अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाऽभ्यधिकोऽभवत्
स तु देवो बलेनासीत्सर्वेभ्यो बलवत्तरः ।
महादेव इति ख्यातस्ततःप्रभृति शंकरः ॥
ततोऽब्रवीन्महादेवो
धनुर्बाणधरो ह्यहम् ।
हनिष्यामि रथेनाजौ
तान् रिपून्वो दिवौकसः ॥ १४

---

ईड्यते ईड्यमानाय कर्मणीदमपौरुषम् ॥ ५६ ॥ क्रथनाय हिंस्राय ॥ ५८ ॥ भजस्व इष्टैः कामैः पूरयस्व ॥ ६२ ॥ व्येतु व्यपगच्छतु ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

पितृेति । अभये इति च्छेदः ॥ १ ॥ वधे निमित्ते प्रत्यरिः प्रतिकूलः शत्रुः ॥ ३ ॥ ऐधत अवर्धत ते प्रसिद्धा वयं शरणं गतास्त्वामिति शेषः ॥ ५॥ संहताः एकीभूताः यूयम् ॥७॥ तेषां तेजोऽस्मत्तेजस्तो द्विगुणं दृष्टमेवेत्यर्थः॥८॥ अर्धं तेजसः ॥ १२ ॥ महता सर्वातिशायिना बलेन दीव्यति प्रकाशते इति महादेवः ॥ १४ ॥

ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च।
पश्यध्वं यावदद्यैतान् पातयामि महीतले ॥

देवा ऊचुः।

मूर्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः
रथं ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम्॥१६
तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम्।
ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन्॥
विष्णुं सोमं हुताशं च तस्येषुं समकल्पयन्।
शृंगमग्निर्बभूवास्य भल्लः सोमो विशांपते।१८
कुड्मलश्चाभवद्विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा।
रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम्॥
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा।
मंदरः पर्वतश्चाक्षो जंघा तस्य महानदी ॥२०
दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य तु।
ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥ २१
कूबरश्च रथस्यासीद्वासुकिर्भुजगोत्तमः।
अपस्करमधिष्ठाने हिमवान् विन्ध्यपर्वतः।
उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रुः सुरोत्तमाः॥
समुद्रमक्षमसृजन्दानवालयमुत्तमम्।
सप्तर्षिमण्डलं चैव रथस्यासीत्परिष्करः॥
गंगा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च।
उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः
अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा।
अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः॥
धर्मार्थकामं संयुक्तं त्रिवेणुं दारु बन्धुरम्।
ओषधीर्वीरुधश्चैव घण्टाः पुष्पफलोपगाः॥
सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते रात्र्यहनी शुभे ॥२७
दश नागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखांस्तदा।
योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसंतो महोरगान्
द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान्।
कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनंजयौ ॥ २९
इतरे चाभवन्नागा हयानां बालबन्धनाः।
दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम्॥
सन्ध्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं सन्नतिमेव च
ग्रह-नक्षत्र-ताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ३१
सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतींल्लोकेश्वरान् हयान्।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम्
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांस्तत्र कण्टकान्
धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः
अधिष्ठानं मनश्चासीत्परिरथ्या सरस्वती।
नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः॥
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन्।
वषट्कारः प्रतोदोऽभूद्गायत्री शीर्षबन्धना॥
यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः।
संवत्सरो धनुस्तद्वै सावित्री ज्या महास्वना
दिव्यं च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम्।
अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रबहिष्कृतम्॥
ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान् कनकपर्वतः।
पताकाश्चाभवन्मेघास्तडिद्भिः समलङ्कृताः॥

---

मूर्तीस्तेजोमात्राः समाधाय एकीकृत्य॥ १६ ॥ विहितं अपूर्वं ज्ञापितं यथा तथैव विश्वकर्मणा कृतम् ॥ १७ ॥ शृङ्गं शृङ्गाकारखटिकायुक्तं कांडम्। भल्लः शल्यः कुड्मलस्तस्याग्रभागस्तस्यैव तीक्ष्णभागः।' सोमः शल्यो विष्णुस्तेजनम्' इति श्रुतेः॥ १८ ॥ अक्षश्चक्राधारदंडः। जंघा अक्षाधारकाष्ठं महानदी गंगा ॥ २०॥ ईषा युगाक्षसंधानं त्रिवेणुमयं काष्ठं युगः धुर्ययोजनदंडः॥ २१ कूबरः युगंधरः अपस्करं पश्चात्काष्ठं भुजगोत्तमः शेषः। अधिष्ठाने चक्रे अधिष्ठाने चक्राधारौ 'अधिष्ठानं पुरे चक्रे प्रभावेऽध्यासनेऽपि च' इति **मेदिनी** ॥ २२ ॥ अक्षं बन्धनपाशसमुदायः। समुद्रः जलमयत्वेन चिक्कणत्वात्। परिष्करः चक्ररक्षादिः ॥ २३॥ सिन्धुर्यमुनाख्या नदी तिसृभिस्त्रिवेणुस्थानीयाभिः सहितमाकाशं धुरं धूर्भागः उपस्करः बन्धादिसामग्री ॥ २४ ॥ अनुकर्षं रथावःस्थितं दारु वरूथं रथगुप्तिम् ॥ २५ ॥ धर्मादयास्त्रिवेणुसदृशा बंधुरं रथतल्पम् ॥ २६ ॥ पूर्वं हिमवद्विन्ध्यपर्वतौ चक्रत्वेनोक्तौ अत्र सूर्यचन्द्रौ चक्रत्वेन दृष्टावतश्चतुश्चक्रो रथ इति गम्यते। अतः समुद्रोऽप्यक्षान्तरमिति ऋजुरेवार्थः। पूर्वः पक्षः पूर्वाङ्गं रात्रिः। अपरः पक्षोऽपराङ्गं अहः ॥ २७॥ द्यां द्वितीयं युगं चतुश्चक्रत्वाद्रथस्य संवर्तकबलाहकान् युगचर्माणि धुर्यस्कन्धयुगयोरन्तरस्थानि काशिपूनि ॥२९॥ बालबन्धनाः अश्वकेसरबन्धनाः॥३०॥ नभस्तलं चर्मरथस्य बाह्यमावरणं तच्च सन्ध्यादिभिर्ग्रहादिभिश्च चित्रम् ॥ ३१॥ सिनीवालीं पूर्वामावास्यां अनुमतिं पूर्वपौर्णमासीम्। कुहूमुत्तरामावास्यां राकामुत्तरां पौर्णमासीम् ॥ ३२ ॥ रोहकान् सिनीवाल्याद्यधिष्ठातॄन् पित्रादीन् कण्टकान् प्रकीलकान् धर्मादयस्तत्र कण्टकेषु रश्मयः ३३॥ मनः अधिष्ठानं रथाधारभूः। मनोमयो रथ इत्यर्थः। परिरथ्या प्रचारमार्गः। सरस्वती वाग्देवी कल्पितः शब्दमात्रशरीर इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अध्वर्यूणामृत्विजां मध्ये स्थिताः पावकाः धिष्ण्यगाः ॥ ३९ ॥

रेजुरध्वर्युमध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः
क्लृप्तं तु तं रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताऽभवन्
सर्वलोकस्य तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिष ।
युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महात्मने ॥ ४०
एवं तस्मिन्महाराज कल्पिते रथसत्तमे ।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विषताममिमर्दने ॥ ४१
स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छंकरो रथे
ध्वजयष्टिं वियत्कृत्वा स्थापयामास गोवृषं
ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः ।
परिस्कन्दा रथस्यासन् सर्वतो दिशमुद्यताः
अथर्वांगिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥
इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः ।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिताः
स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च ।
ओंकारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत्
विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥४७
कालो हि भगवान् रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः
तस्माद्रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषो जरा
इषुश्चाप्यभवद्विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च ।
अग्नीषोमौ जगत्कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत्
विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥
तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः
भृग्वंगिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥
स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासाऽभयंकरः
आदित्यायुतसंकाशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन्
दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान्नरान्
प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः ।
विभाति भगवान् स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥
तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत्
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५५
दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची स शरासनी ।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसंभवम्
तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयांचक्रिरे प्रभो
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥
तमास्थाय महादेवस्त्रासयन्दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कंपयन्निव मेदिनीम् ॥
तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥
ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च बन्दिभिः
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी
हसन्निवाब्रवीद्देवान्सारथिः को भविष्यति
तमब्रुवन् देवगणा यं भवान्संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥
तानब्रवीत्पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं सञ्चिन्त्य मा चिरं
एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन्
यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः
रथश्च विहितोऽस्माभि-
र्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं च न जानीमः
कः स्यात्तस्मिन् रथोत्तमे ॥ ६६
तस्माद्विधीयतां कश्चित्सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्तुमर्हसि नो विभो ॥
एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितकर्ताऽस्मि भवतामिति तत्कर्तुमर्हसि ॥
स देव युक्तो रथसत्तमो नो
दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा
विभीषयन् दानवानुद्यतोऽसौ ॥ ६९
तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या
धरा सशैला च रथो महात्मनः ।
नक्षत्रवंशानुगतो वरूथी
हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥७०
तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ॥

---

गोवृषं ध्वजत्वेन स्थापयामास ॥ ४२ ॥ परिस्कन्दाः पार्श्वगोपाः ॥ ४३ ॥ छायां पूर्वोक्तां सावित्रीं शब्दब्रह्मरूपत्वादात्मनस्तुल्याम् ॥ ४७ ॥ धनुर्ज्या कालरात्रिरूपा तस्याः संस्पर्शं न विषेहुः न सेहिरे तेऽसुराः ॥ ५० ॥ तिग्ममन्युं तीक्ष्णसंकल्पम् ॥ ५१ ॥ अभयमिति च्छेदः सन्धिरार्षः ॥५२॥ तै रथादिभूतैः आत्मगुणैः आत्मनो भोक्तुर्गुणभूतैर्भोग्यैः ॥५४॥ बाणमादाय स्थितं तं दृष्ट्वा देवास्तस्यानुकूलं जयावहं श्वसनं कल्पयांचक्रिरे इत्यन्वयः ॥ ५६ ॥

कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ।
त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम्
त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो
स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान् हयान् ॥
जयाय त्रिदिवेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम् ।
इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम्
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतं
पितामह उवाच ।
नात्र किञ्चिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः ।
ततः स भगवान् देवो लोकस्रष्टा पितामहः
सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः ।
तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते
शिरोभिरगमन् भूमिं ते हया वातरंहसः ।
आरुह्य भगवान्देवो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥
अभीषून् हि प्रतोदं च संजग्राह पितामहः ।
तत उत्थाय भगवांस्तान् हयाननिलोपमान्
बभाषे च तदा स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः ।
ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्निसंभवम् ॥
आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन्परान् ।
तमारूढं तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥ ८०
गंधर्वा देवसंघाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥
प्रदीपयन् रथे तस्थौ
त्रीँल्लोकान् स्वेन तेजसा ।
ततो भूयोऽब्रवीद्देवो
देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ८२
न हन्यादिति कर्तव्यो न शोको वः कथञ्चन
हतानित्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥
ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन् ।
न च तद्वचनं मिथ्या यदाऽऽह भगवान् प्रभुः
इति सञ्चिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन् ।
ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥८५
रथेन महता राजन्नुपमा नास्ति यस्य ह ।
स्वैश्च पारिषदैर्देवः पूज्यमानो महायशाः ८६
नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्षैर्दुरासदैः ।
धावमानैः समंताच्च तर्जमानैः परस्परम् ८७
ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः ।
आशंसुर्वै जना देवा महादेवस्य सर्वशः ८८
एवं प्रयाते देवेशे लोकानामभयङ्करे ।
तुष्टमासीज्जगत्सर्वं देवताश्च नरोत्तम ॥ ८९

ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः ।
तेजश्चास्मै वर्धयन्तो राजन्नासन्पुनः पुनः९०
गन्धर्वाणां सहस्राणि
प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
वादयन्ति प्रयाणेऽस्य
वाद्यानि विविधानि च ॥ ९१
ततोऽधिरूढे वरदे
प्रयाते चासुरान्प्रति ।
साधु साध्विति विश्वेशः
स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ९२
याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः ।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान्रणे९३
ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
येन तत्त्रिपुरं राजन् दैत्यदानवरक्षितम् ९४
पिबद्भिरिव चाकाशं तैर्हयैर्लोकपूजितैः ।
जगाम भगवान् क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम्
प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे ।
ननाद सुमहानादं वृषभः पूरयन्दिशः ॥ ९६
वृषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत् ।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः ॥ ९७
अपरेऽवस्थितास्तत्र युद्धायाभिमुखास्तदा ।
ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोधमूर्छितः ॥
त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते ।
निमित्तानि च घोराणि तत्र सन्दधतः शरम्
तस्मिन्सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः
स रथो धनुषः क्षोभादतीव ह्यवसीदति १००
ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद्विनिःसृतः
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम् १०१
सीदमाने रथे चैव नर्दमानेषु शत्रुषु ।
स संभ्रमात्तु भगवान्नादं चक्रे महाबलः ॥ २
वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद ।
तदा स भगवान् रुद्रो निरैक्षद्दानवं पुरम् ३
वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम ।
स्तनांस्तदाऽशातयत खुरांश्चैव द्विधाऽकरोत्
ततःप्रभृति भद्रं ते गवां द्वैधीकृताः खुराः ।
हयानां च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन्५
पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा ।
अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम्
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ।
तस्मिन् स्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ७

पुराणि तानि कालेन जग्मुरेकत्वतां तदा ।
एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते ॥ ८
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ९
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महेश्वरम् ।
ततोऽग्रतः प्रादुरभूत्त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान्
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ।
स तद्विकृष्य भगवान् दिव्यं लोकेश्वरो धनुः
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।
उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिंस्त्रिपुरवरे तदा १२
महानार्तस्वरो ह्यासी-
त्पुराणां पततां भुवि ।
तान् सोऽसुरगणान् दग्ध्वा
प्राक्षिपत्पश्चिमार्णवे ॥ ११३
एवं तु त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा १४
स चात्मक्रोधजो वह्नि-
र्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोका-
निति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ॥ १५
ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्त्रयर्षयः
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥
तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रयत्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः १७
एवं स भगवान् देवो लोकस्रष्टा महेश्वरः ।
देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम्
यथैव भगवान् ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र रुद्रस्य परमोऽव्ययः १९
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ।
संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः २०
त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा
युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमो नये ।
तस्माच्छक्तो भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान्
यथा शल्याद्य कर्णोऽयं
श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
प्रमथ्य हन्यात्कौन्तेयं
तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥ २३
त्वयि मद्रेशराज्याशा जीविताशा तथैव च
विजयश्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः २४
त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः ।
विजयश्चैव संग्रामे संयच्छाद्य हयोत्तमान् २५
इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे ।
पितुर्मम सकाशे यद्ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् २६
श्रुत्वा चैतद्वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम् ।
कुरु शल्य विनिश्चित्य माभूदत्र विचारणा २७
भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महायशाः ।
तस्य रामेतिविख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः
स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान् भवम्
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः २९
तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च ।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ३०

महेश्वर उवाच ।

राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम्
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ३१
दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ३२
इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना ।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥
यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे ।
तदा शुश्रूषवेऽस्त्राणि भवान्मे दातुमर्हति ३४

दुर्योधन उवाच ।

ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च ।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥ १३५
आराधयितवान् शर्वं बहून्वर्षगणांस्तदा ।
प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः॥ ३६
अब्रवीत्तस्य बहुशो गुणान्देव्याः समीपतः ।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥ ३७
एवं तस्य गुणान्प्रीतो बहुशोऽकथयत्प्रभुः ।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदन ॥ ३८
एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या ह्यासन्महाबलाः।
तैस्तदा दर्पमोहाद्यैरबाध्यन्त दिवौकसः॥ ३९
ततः संभूय विबुधास्तान् हन्तुं कृतनिश्चयाः
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान्॥ ४०
अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमुमापतिम् ।
प्रासादयंस्तदा भक्त्या जहि शत्रुगणानिति॥
प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शंकरः॥४२
रिपून् भार्गव देवानां जहि सर्वान्समागतान्
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च४३

एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यंबकं वरदं प्रभुम् ।

राम उवाच ।

का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे४४
निहन्तुं दानवान्सर्वान् कृतास्त्रान् युद्धदुर्मदान्

महेश्वर उवाच ।

गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान्
विजित्य च रिपून्सर्वान्
गुणान्प्राप्स्यसि पुष्कलान् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं
प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥ ४६
रामः कृतस्वस्त्ययनः
प्रययौ दानवान्प्रति ।
अब्रवीद्देवशत्रूंस्तान्
महादर्पबलान्वितान् ॥ ४७
मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः ।
प्रेषितो देवदेवेन वो विजेतुं महासुराः ॥ ४८
इत्युक्ता भार्गवेणाथ दैत्या युद्धं प्रचक्रमुः ।
स तान्निहत्य समरे दैत्यान् भार्गवनन्दनः ॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः ।
स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ५०
संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ।
प्रीतश्च भगवान्देवः कर्मणा तेन तस्य वै॥ ५१
वरान् प्रादाद्बहुविधान् भार्गवाय महात्मने ।
उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥ ५२
निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याऽभवद्रुजा ।
तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥ ५३
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि
मत्सकाशाद्यथेप्सितम् ।

दुर्योधन उवाच ।

ततोऽस्त्राणि समस्तानि
वरांश्च मनसेप्सितान् ॥ ५४
लब्ध्वा बहुविधान्रामः प्रणम्य शिरसा भवं
अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः॥५५
एवमेतत्पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः ।
भार्गवोऽपि ददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने५६
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
वृजिनं हि भवेत्किञ्चिद्यदि कर्णस्य पार्थिव॥
नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद्भृगुनन्दनः
नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथञ्चन॥ ५८
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम् ।
विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मतिर्मम ॥ ५९
सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः ।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥ ६०
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ।
यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ६१
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
न त्वेष प्राकृतः कश्चित् कर्णो वैकर्तनो वृषः॥
महात्मा ह्येष राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान्

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

दुर्योधन उवाच ।

एवं स भगवान् देवः सर्वलोकपितामहः।
सारथ्यमकरोत्तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद्रथी ॥ १
रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्तव्यो रथसारथिः
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि
यथा देवगणैस्तत्र वृतो यत्नात्पितामहः ।
तथास्माभिर्भवान् यत्नात्कर्णादभ्यधिको वृतः
यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः ।
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ॥ ४
नियच्छ तुरगान् युद्धे राधेयस्य महाद्युते ।

शल्य उवाच ।

मयाऽप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशो नरसिंहयोः ॥ ५

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

**एवमिति** ॥ १ ॥ नरसिंहयोः कृष्णार्जुनयोः अतस्तयोः साम्यं मम कीर्तिकरमेवेति भावः । सुरसिंहयोरिति पाठे रुद्रपितामहयोः ॥ ५ ॥

कथ्यमानं श्रुतं दिव्यमाख्यानमतिमानुषम् ।
यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः ६
यथाऽसुराश्च निहता इषुणैकेन भारत ।
कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत्पुरा ह्यभूत्७
यथा पितामहो जज्ञे भगवान्सारथिस्तदा ।
अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः ८
एतदर्थं विदित्वापि सारथ्यमुपजग्मिवान् ।
स्वयंभूरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत ॥ ९
यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथञ्चन ।
दृष्ट्वा पार्थं हि निहतं स्वयं योत्स्यति केशवः
शङ्ख-चक्र-गदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम् ।
न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः
स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव ।

सञ्जय उवाच ।

तं तथा भाषमाणं तु मद्रराजमरिंदमः॥१२
प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव ।
माऽवमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्तनं रणे १३
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ।
यस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥
पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः
मायाशतानि कुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः ।
न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथञ्चन १६
एतांश्च दिवसान्सर्वान् भयेन महता वृतः ।
भीमसेनश्च बलवान् धनुष्कोट्याऽभिचोदितः
उक्तश्च संज्ञया राजन् मूढ औदरिको यथा ।
माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥
कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतौ युधि मारिष ।
येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः
निर्जित्य समरे शूरो विरथश्च बलात्कृतः ।
सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ २०
असकृन्निर्जिताः संख्ये स्मयमानेन संयुगे ।
तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम्
यो हन्यात्समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरंदरम् ।
त्वं च सर्वास्त्रविद्वीरः सर्वविद्यास्त्रपारगः॥
बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन
त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविषह्यः पराक्रमे ॥
ततस्त्वमुच्यसे राजञ्शल्य इत्यरिसूदन ।
तव बाहुबलं प्राप्य न शेकुः सर्वसात्वताः ॥
तव बाहुबलाद्राजन् किं तु कृष्णो बलाधिकः
यथा हि कृष्णेन बलं धार्यं वै फाल्गुने हते ॥
तथा कर्णात्ययीभावे त्वया धार्यं महद्बलम् ।
किमर्थं समरे सैन्यं वासुदेवो न्यवारयत् ॥
किमर्थं च भवान् सैन्यं न हनिष्यति मारिष
त्वत्कृते पदवीं गन्तुमिच्छेयं युधि मारिष ।
सोदराणां च वीराणां सर्वेषां च महीक्षितां

शल्य उवाच ।

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि
एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे
समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य सन्निधौ ॥

सञ्जय उवाच ।

तथेति राजन्पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष ।
अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य सन्निधौ ॥३१
सारथ्यस्याभ्युपगमाच्छल्येनाश्वासितस्तदा
दुर्योधनस्तदा हृष्टः कर्णं तमभिषस्वजे ॥ ३२
अब्रवीच्च पुनः कर्णं स्तूयमानः सुतस्तव ।
जहि पार्थान्रणे सर्वान्महेन्द्रो दानवानिव ॥
स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने ।
कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत ॥ ३४
नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते ।
राजन्मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै ॥ ३५
ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम्
पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा ।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते ॥
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि
कर्णो हत्वेतरान्सर्वान् फाल्गुनं हन्तुमिच्छति
तस्याभीषुग्रहे राजन् प्रयाचे त्वां पुनः पुनः ।
पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय ॥ ३९

सञ्जय उवाच ।

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत्
दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा ॥ ४०

---

**किमर्थमिति** । सारथ्यमात्रं प्रतिज्ञाय प्रातिभव्यं चेत्कृष्णः कुर्यात्तर्हि त्वं युध्यन् तद्वन्मिथ्याप्रतिज्ञो न भविष्यसीति भावः ॥ २६ ॥ पदवीमातृण्यम् ॥ २७ ॥

शल्य उवाच।
एवं चेन्मन्यसे राजन् गान्धारे प्रियदर्शन।
तस्मात्ते यत्प्रियं किञ्चित्तत्सर्वं करवाण्यहम्
यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित्
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यं परंतप॥
यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये।
मम तत् क्षमतां सर्वं भवान्कर्णश्च सर्वशः॥
कर्ण उवाच।
ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः॥
शल्य उवाच।
आत्मनिन्दात्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम्॥ ४५
यत्तु विद्वन्प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव।
आत्मनस्तव संयुक्तं तन्निबोध यथातथम्॥
अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत्प्रभो
अप्रमादात्प्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः॥
ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ।
वाहयिष्यामि तुरगान् विज्वरो भव सूतज ४८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्यस्वीकारे
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

## ३६

दुर्योधन उवाच।
अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः
यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम्
योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थानभिभविष्यति॥ ३
सञ्जय उवाच।
ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम्।
उवाच राजन्संग्रामेऽध्युषिते पर्युपस्थिते॥
कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान्॥
त्वयाऽभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनञ्जयम्
इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत।
शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाऽब्रवीत्
त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत्त्वरन्।
ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम्॥ ७
विधिवत्कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत्
तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि
संपादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा।
कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम्
समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत्।
ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत्॥ १०
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम्।
ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम्॥
अध्यतिष्ठद्यथाऽम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः।
तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ॥१२
अभ्राजेतां यथा मेघे सूर्याग्नी सहितौ दिवि।
संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी
स्तूयमानाविवाध्वरे।
स शल्यसंगृहीताश्वे
रथे कर्णः स्थितो बभौ॥ १४
धनुर्विस्फारयन् घोरं परिवेषीव भास्करः।
आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान्॥
प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ इवांशुमान्।
तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम् १६
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत्।
अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे॥

---

वक्ष्ये वोढास्मि॥ ४२॥ आत्मनिन्दापरस्तवावपि श्रेयसां निन्द्यौ किमुतात्मपूजापरनिंदे तदुभयमहं करोमीति भावः॥ ४५॥ अप्रमादोऽवधानं प्रयोगः अश्वप्रेरणम्। ज्ञानं आंगामिदोषावेक्षणम् विद्या तत्परिहारज्ञानं चिकित्सनं दोषपरिहारसामर्थ्यम्॥ ४७॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

३६

अयमिति॥ १॥ हरिहयैः इन्द्रतुरगैर्युक्तं रथम्॥ २॥ अभ्युषिते प्रातःकाले॥ ४॥

कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
मनोगतं मम ह्यासीद्भीष्मद्रोणौ महारथौ १८
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम् ।
ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे १९
तत् कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ।
गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनञ्जयम्
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ।
जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ ॥ २१
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि
कुरु सर्वाणि भस्मसात् ।
ततस्तूर्यसहस्राणि
भेरीणामयुतानि च ॥ २२
वाद्यमानान्यराजन्त मेघशब्दो यथा दिवि ।
प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ॥ २३
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ।
चोदयाश्वान्महाबाहो यावद्धन्मि धनञ्जयम्
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम्
अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनञ्जयः ॥ २५
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ।
अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान्परमतेजनान् ।
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ॥

शल्य उवाच ।
सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥ २७
सर्वास्त्रज्ञान्महेष्वासान्
सर्वानेव महाबलान् ।
अनिवर्तिनो महाभागा-
नजय्यान्सत्यविक्रमान् ॥ २८
अपि सन्तनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः ।
यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि
यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे ३०
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि ।
यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा ३१
शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्बरे ।
अस्यतः क्षिण्वतश्चारीन्
लघुहस्तान्दुरासदान् ।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं
तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ३२
सञ्जय उवाच ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
याहीत्येवाब्रवीत्कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसंवादे
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

सञ्जय उवाच ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम् ।
चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ १
ततो दुन्दुभिनिर्घोषैर्भेरीणां निनदेन च ।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम् ।
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च ॥ ३
चचाल पृथिवी राजन् ववाश च सुविस्तरम्
निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात्सप्त महाग्रहाः
उल्कापाताश्च संजज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च ।
शुष्काशन्यश्च संपेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः ॥ ५
मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव ।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम् ॥ ६
प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि ।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद्भयानकम् ॥ ७
जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशांपते ८
एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः ।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः ९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६॥

३७

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ तरस्विनां अश्वादीनाम् ॥२॥ ववाश शब्दं चकार । ररासेतिपाठेऽपि स एवार्थः। निःसरन्तो युद्धार्थमिति शेषः । सूर्यात्सूर्यमारभ्य सूर्यादयोऽन्योन्यं युध्यन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥

न च तान् गणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
निर्जितान्पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः१०

ततो रथस्थः परवीरहन्ता
भीष्म-द्रोणावतिवीर्यौ समीक्ष्य ।
समुज्ज्वलन् भास्करपावकाभो
वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप ॥ ११

स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं
पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य ।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः
क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च ॥ १२

नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः
क्रुद्धाद्बिभेम्यायुधवान्रथस्थः ।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखान् शयाना-
नतीव मां †ह्यस्थिरता जहाति ॥ १३

महेन्द्र-विष्णुप्रतिमावनिन्दितौ
रथाश्व-नागप्रवरप्रमाथिनौ ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परै-
स्ततो न मेऽप्यस्ति रणेऽद्य साध्वसम्

समीक्ष्य संख्येऽतिबलान्नराधिपान्
ससूत-मातङ्ग-रथान्परैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान्रणेऽवधी-
न्महास्त्रविद्ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः ॥ १५

स संस्मरन् द्रोणमहं महाहवे
ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद्रणेऽर्जुनं
समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ १६

शिक्षा प्रसादश्च बलं धृतिश्च
द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा
सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ १७

नेह ध्रुवं किञ्चिदपि प्रचिन्तयन्
विद्यां लोके कर्मणो दैवयोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते १८

न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः
क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं
तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ १९

हुताशनादित्यसमानतेजसं
पराक्रमे विष्णु-पुरंदरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनोः सदा समं
न चैनमस्त्रं तदुपास्त दुःसहम् ॥ २०

संप्राक्रुष्टे रुदितस्त्री-कुमारे
पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य
प्रयाहि तस्माद्द्विषतामनीकम् ॥ २१

यत्र राजा पाण्डवः सत्यसन्धो
व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च
यमौ च कस्तान् विषहेन्मदन्यः २२

तस्मात्क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि
रणे पञ्चालान्पाण्डवान्सृञ्जयांश्च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय २३

नत्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये
तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम्॥

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते
नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य ।
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान्
दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥ २५

---

भीष्मद्रोणौ अतिक्रान्तं वीर्यं ययोस्तावतिवीर्यौ समीक्ष्य स्वकृत्यमालोच्य जगादेत्युत्तरेणान्वयः ॥ ११ ॥ आभाष्य भो शल्य इति संबोध्य ॥ १२ ॥ अस्थिरता जहातीत्यचंचलोऽस्मीत्यर्थः ॥ १३॥ ततोऽपि मेऽद्य साध्वसं भयं नास्तीति योजना ॥ १४ ॥ आतुरान् आसन्नमृत्यून् ॥ १७ ॥ विद्यां जानीयां भावं श्वोऽहं स्थास्यामीति निश्चयम् ॥ १८ ॥ अस्त्रादीनि मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं नालमिति सम्बन्धः ॥ १९ ॥ उशनोः उशनसोः उपास्त उपातिष्ठत त्रातुमिति शेषः । अस्त्रं अस्त्रादि ॥ २० ॥ संप्राक्रुष्टे सम्यगाक्रोशवति पराभूते निरस्ते धार्तराष्ट्रे धृतराष्ट्रपुत्रसम्बन्धिनि पौरुषे यत्ने २१ ॥ द्रोणपथा द्रोणपथेन ॥ २३ ॥ तेषां भीष्मादीनां मध्ये न गमिष्यामीति न अपि तु गमिष्याम्येवेत्यर्थः । संग्रामात्पलायने हि मित्रस्य दुर्योधनस्य द्रोहः कृतः स्यात्तच्चासह्यम् ॥ २४ ॥ जीवितान्ते आयुषः समाप्तौ । प्रमोक्षो मृत्युनिवर्तनम् ॥ २५ ॥ † सा स्थिरता इति पाठः ।

कल्याणवृत्तः सततं हि राजा
वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत् ।
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि
प्रियान् भोगान् दुस्त्यजं जीवितं च

वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं
हैमं त्रिकोशं रजतत्रिवेणुम् ।
रथप्रवर्हं तुरगप्रवर्है-
र्युक्तं प्रादान्मह्यमिमं हि रामः ॥ २७

धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य
ध्वजान् गदाः सायकांश्चोग्ररूपान् ।
असिं च दीप्तं परमायुधं च
शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ २८

पताकिनं वज्रनिपातनिःस्वनं
सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् ।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं
रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ २९

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाऽप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् ।
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य
यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ३०

यम-वरुण-कुबेर-वासवा वा
यदि युगपत्सगणा महाहवे ।
जुगुपिषव इहाद्य पाण्डवं
किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥

सञ्जय उवाच ।

इति रणरभसस्य कत्थत-
स्तदुत निशम्य वचः स मद्रराट् ।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्
प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम् ३२

शल्य उवाच ।

विरम विरम कर्ण कत्थना-
दतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान् ।
क्व च हि नरवरो धनञ्जयः
क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥ ३३

यदुसदनमुपेन्द्रपालितं
त्रिदशमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत्
पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥ ३४

त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं
क इह पुमान् भवमाह्वयेद्युधि ।
मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात्
सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥ ३५

असुर-सुर-महोरगान्नरान्
गरुड-पिशाच-सयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्
स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥ ३६

स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः
स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः ।
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधा
कुरुषु बहून्विनिहत्य तानरीन् ॥ ३७

प्रथममपि पलायिते त्वयि
प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः
खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ३८

समुदितबलवाहनाः पुनः
पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः
किमु न जितः स तदा त्वयाऽर्जुनः

इदमपरमुपस्थितं पुन-
स्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात्पलायसे
समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥ ४०

सञ्जय उवाच ।

इति बहु परुषं प्रभाषति
प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।
भृशमभिरुषितः परंतपः
कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ४१

कर्ण उवाच ।

भवतु भवतु किं विकत्थसे
ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम् ।
यदि स जयति मामिहाहवे
तत इदमस्तु सुकत्थितं तव ॥ ४२

---

वैयाघ्रचर्माणं व्याघ्रचर्मपरिक्षृतम् ॥ २७ ॥ अप्रमत्त इति च्छेदः । भीष्ममुखः भीष्माभिमुखः ॥ ३० ॥ जुगुपिषवः गोप्तुमिच्छवः ३१ ॥ रणरभसस्य रणोत्कटस्य ॥ ३२ ॥ अतिरभसोऽपि त्वमतिवाचं स्वसामर्थ्यादधिकाम् ॥ ३३ ॥ पुरुषवरस्य कृष्णस्यावरजां कनीयसीं सुभद्राम् ॥ ३४ ॥ स्मरसीति विषमं छन्दः ॥ ३७ ॥ खचरगणान् गन्धर्वान् ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच ।
एवमस्त्वित मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान्
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया
स रथः प्रययौ शत्रून् श्वेताश्वः शल्यसारथिः
निघ्नन्नमित्रान्समरे तमो घ्नन्सविता यथा ४४
ततः प्रायात्प्रीतिमान्वै रथेन
वैयाघ्रेण श्वेतयुजाऽथ कर्णः ।
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां
धनञ्जयं त्वरया पर्यपृच्छत् ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

सञ्जय उवाच ।
प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन्वाहिनीं तव ।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान्पर्यपृच्छत ॥ १
यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम् ।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥ २
न चेत्तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः ।
शकटं रत्नसंपूर्णं यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ ३
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यकं कांस्यदोहनम् ४
शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने ।
तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥ ५
युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ६
अन्यं वाऽस्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम्
तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ७
श्यामानां निष्ककण्ठीनां
गीतवाद्यविपश्चिताम् ।
न चेत्तदभिमन्येत
पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ८
तस्मै दद्याञ्शतं नागान्
शतं ग्रामाञ्शतं रथान् ।
सुवर्णस्य च मुख्यस्य
हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥ ९
ऋद्ध्या गुणैः सुदान्तांश्च
धुर्यवाहान्सुशिक्षितान् ।
तथा सुवर्णशृङ्गीणां
गोधेनूनां चतुःशतम् ॥ १०
दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ११
अन्यदस्मै वरं दद्यां श्वेतान् पञ्चशतान् हयान्
हेमभाण्डपरिच्छन्नान्सुमृष्टमणिभूषणान् ॥ १२
सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान् ।
रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलङ्कृतम्
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १४
अन्यदस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट् ।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान् हेममालिनः
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान् हस्तिशिक्षकैः
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १६
अन्यदस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश ।
सुस्फीतान् धनसंयुक्तान् प्रत्यासन्नवनोदकान्
अकुतोभयान् सुसंपन्नान् राजभोज्यांश्चतुर्दश
दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ १८
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत्स्वयम्

---

श्वेतयुजा श्वेताश्वयुजा ४५ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

**प्रयाणे इति** ॥ १ ॥ अभिमन्येत अल्पमित्यवजानीत ॥ ३ ॥ अञ्जनकेशीभिः कृष्णकेशीभिरश्वतरीभिर्युवतीभिर्वा युक्तम् ॥ ६ ॥ हस्तिषड्गवं हस्तिषट्कं 'हस्तिषड्गवमिच्छन्ति वीराः षट्के च दन्तिनाम्' इति **प्राञ्चः**। अन्यं वा सौवर्णरथमिति शेषः। हस्तितुल्याः षट् गाव उक्षाणो यस्मिन् तं षट् हस्तिन एव गोवत् वोढारो यस्य तादृशम् ॥ ७ ॥ श्यामानां अप्रजातानां निष्कमुरोभूषणम् ॥ ८ ॥ शतं शतान् दशसहस्राणि ॥ ९ ॥ ऋद्ध्या पुष्ट्या। सुदान्तान् विनीतान्। धुर्यवाहान् रथोद्वहनक्षमान् ॥ १० ॥ भाण्डमाभरणम् १२ ॥ अपरान्तेषु पश्चिमकच्छेषु ॥ १६ ॥ प्रत्यग्रवयसां अभिनवयौवनानाम् ॥ १८ ॥

पुत्र-दारान्विहारांश्च यदन्यद्वित्तमस्ति मे ।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद्यच्च मनसेच्छति ।
हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात्केशवार्जुनौ ॥२१
एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन् युधि
दध्मौ सागरसंभूतं सुस्वरं शंखमुत्तमम् ॥२२
ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु ।
दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत ॥
ततो दुंदुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः ।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः
प्रादुरासीत्तदा राजन्सैन्येषु पुरुषर्षभ ।
योधानां संप्रहृष्टानां तथा समभवत्स्वनः ॥
तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम् ।
विकत्थमानं च तदा राधेयमरिकर्षणम् ।
मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ २६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णावलेपे
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

शल्य उवाच ।
मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनञ्जयम् ॥१
बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा ।
अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनञ्जयम् ॥ २
परान्सृजसि यद्वित्तं किंचित्त्वं बहु मूढवत् ।
अपात्रदाने ये दोषास्तान्मोहान्नावबुध्यसे ॥३
यत्त्वं प्रेरयसे वित्तं बहु तेन खलु त्वया ।
शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥ ४
यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहाद्वृथैव तत् ।
न हि शुश्रुम संमर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ
अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो न हि सन्ति ते ।
ये त्वां निवारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥
कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्कोऽस्यसंशयं
बह्वबद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ ७
समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलां
गिर्यग्राद्वा निपतनं तादृक् तव चिकीर्षितम्
सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः
धनञ्जयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि ॥ ९
हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया
श्रद्धस्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा

कर्ण उवाच ।
स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे ।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥
न मामस्मादभिप्रायात्कश्चिदद्य निवर्तयेत् ।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथञ्चन ॥

सञ्जय उवाच ।
इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ १३

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता
ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः ।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः शिताग्रा-
स्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात् ॥१४
यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः
प्रतापयन् पृतनां सव्यसाची ।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कै-
स्तदा पश्चात्तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ १५

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो
यथा कश्चित्प्रार्थयतेऽपहर्तुम् ।
तद्वन्मोहाद् द्योतमानं रथस्थं
संप्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥ १६

---

प्लवमानं प्रयान्तम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

**मा सूतेति** ॥ १ ॥ वसु वित्तं द्रष्टासि द्रक्ष्यसि ॥२॥ परान्सृजसि वृथा त्यजसि ॥ ३ ॥ अबद्धमनर्थकम् अकर्णीयं अनाकर्णनीयम् ॥ ७ ॥ सहितो युध्यस्व न त्वेकाकी ९॥ एवं श्रद्धस्व यदि जिजीविषा तेऽस्ति अन्यथा मरिष्यसि ॥ १० ॥

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं
सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम् ।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं
युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ १७
क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं
बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी ।
समाह्वयेत्तद्वदेतत्तवाद्य
समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ १८
मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं
महावीर्यं केसरिणं यथैव ।
वने शृगालः पिशितेन तृप्तो
मा पार्थमासाद्य विनंक्ष्यसि त्वम् ॥
ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम् ।
शशको ह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥२०
बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात्काष्ठेन विध्यसि
महाविषं पूर्णकोपं यत्पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥
सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे ।
शृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम्
सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम् ।
भोगी वा ह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥
सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम् ।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः सन् तितीर्षसि ॥
ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृङ्गं प्रहारिणम् ।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥
महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
*कामतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ २६
यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥
शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत्सिंहं न पश्यति
तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यन् शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥ २९
व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं
यावत्कृष्णौ न पश्यसि ।
समास्थितावेकरथे
सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३०
यावद्गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥
रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥
नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनञ्जयः
वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात्क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥३३
यथाखुः स्याद्बिडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥
यथाऽनृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ३५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्याधिक्षेपे
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

सञ्जय उवाच ।
अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥
कर्ण उवाच ।
गुणान् गुणवतां शल्य गुणवान्वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणं
अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान्
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः
तथा कृष्णस्य माहात्म्य-
मृषभस्य महीक्षिताम् ।
यथाऽहं शल्य जानामि
न त्वं जानासि तत्तथा ॥ ४

---

भोगी सर्पः । पाते पतनार्थम् ॥ २३ ॥ झषैर्मीनैरासमंतायुतं झषायुतम् । अप्लवः बाहुभ्यामित्यर्थः ॥२४॥ दुन्दुभिग्रीवं दुन्दुभिस्वनकण्ठम् ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * बाणतोयामिति पाठः ।

४०

अधीति । वाक्शल्यत्वादेवायं शल्यनामेति निश्चिन्वन् ॥ १ ॥

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे ।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम्॥
अस्ति वाऽयमिषुः शल्य सुपुंखो रक्तभोजनः
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ६
शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः समाः ।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसंघहा ॥ ७
घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः ।
निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम्
तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन् फाल्गुनादृते ।
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्सत्यं चापि शृणुष्व मे
तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनञ्जयौ ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत्कर्म सदृशं मम ॥ १०
सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥
उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति ।
तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे ।
पितृष्वसा मातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया ।
अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपिध्वजौ
भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम ।
त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥
भयावदीर्णः संत्रासादबद्धं बहु भाषसे ।
संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवं
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥ १७
सुहृद्भूत्वा रिपुः किं मां
कृष्णाभ्यां भीषयिष्यसि ।
तौ वा मामद्य हन्तारौ
हनिष्ये वापि तावहम् ॥ १८
नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलं
वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्स्व कुदेशज ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः
या गाथाः संप्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद्राजसन्निधौ ।
श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम्
मित्रध्रुङ्मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः
मद्रके सङ्गतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥२३
दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः
यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतं
पिता पुत्रश्च माता च
श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता
नप्ताऽन्ये ते च बान्धवाः ॥ २५
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च संगतं
पुंभिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा
पीत्वा सीधु सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसंति च
गायन्ति चाप्यबद्धानि प्रवर्तन्ते च कामतः
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत्
मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याता शुभकर्मसु ।
नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेण समाचरेत् ॥
मद्रके संगतं नास्ति मद्रको हि सदा मलः ।
मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥३०
राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत् ।
शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम्
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ।
यथैव संगतं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥ ३२
मद्रके संगतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम्
आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया ॥
इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च ।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते३४

---

आहेयः सर्पमयः ॥ ७ ॥ नास्येयं न क्षिपेयम् ॥ ९ ॥ सुजातं शोभनं जन्म ॥१३॥ प्रोतौ एक सूत्रे मणी इव प्रेमसंबद्धौ ॥ १४ ॥ त्रासजननमिति समुदायापेक्षया सामान्येन निर्देशः ॥ १५ ॥ जोषं तूष्णीं आस्स्व तिष्ठ । क्रीडागताः लीलया आगताः ॥ २० ॥ मद्रकेषु कुत्सितेषु मद्रदेशेषु ॥ २१ ॥ अनृतेन चरतीत्यानृतिकः । यावदन्त्यं अन्त्यजपर्यन्तं मरणावधीति वा ॥ २४ ॥ पुंभिः पुरुषैः विमिश्राः संगताः इच्छया मैथुनिनः अज्ञातवत् ज्ञाता अप्यविगीता इत्यर्थः ॥ २६ ॥ येषां मद्रकाणां सक्तुमिश्रितमत्स्याशिनां सीधु मद्यम् ॥ २७ ॥ मद्रकेषु संसृष्टं नष्टं एवं गान्धारकेषु शौचं नष्टं भवेत् ॥ ३० ॥ राजा याजको यस्य तस्मिन्याज्ये हविर्नष्टं भवेत् ॥३१ ॥ **यथैवेति**।यथा मद्रकैः संगतं कृत्वा पतति यथा वा मद्रके सङ्गतं नास्ति हे वृश्चिक तथा ते विषं हतमित्युत्तरेण सम्बन्धः । यद्येतत्सत्यं तर्हि तव विषं नश्यत्विति मन्त्रेण सर्वथा विषं नश्यतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ मयेत्यात्मानुभवसिद्धमिदमिति द्योतयति ॥ ३३ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व
श्रृणु चात्रोत्तरं वचः ।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति
स्त्रियो या मद्यमोहिताः ॥ ३५
मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामवराश्च ताः ॥
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥३६
यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः ।
तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि ।
सुवीरकं याच्यमाना मद्रिका कर्षति स्फिचौ
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम् ।
'मा मां सुवीरकं कश्चिद्याचतां दयितं मम ॥
पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम्' ।
गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रिकाः कम्बलावृताः
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम ।
एवमादि मयाऽन्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद्बहु ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु ।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरा धर्मं विद्युःकथं त्विह
पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः ।
एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम्
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः ।
आयुधानां सांपराये यन्मुच्येयमहं ततः॥४४
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः।
सोयं प्रियः सखा चास्मि धार्तराष्ट्रस्य धीमतः
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु ।
व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ॥
यथा चामित्रवत्सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्तसे ।
कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि
संग्रामाद्विमुखः कर्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः ।
सारङ्ग इव घर्मार्तः कामं विलप शुष्य च॥४८
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः ।
तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ॥
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे ।
तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थं द्विषतामपि ॥ ५०
विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम् ।
न तद्भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ॥ ५१
यो मामस्मादभिप्रायाद्वारयेदिति मे मतिः।
एवं विद्वञ्जोषमास्स्व त्रासात्किं बहु भाषसे॥
न त्वां हत्वा प्रदास्यामि
क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम ।
मित्रप्रतीक्षया शल्य
धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ॥ ५३
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि ।
पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ॥५४
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।
श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुरुदेशज ५५
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ
एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशांपते ।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहि याहीत्यसंभ्रमम्५६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णमद्राधिपसंवादे
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

सञ्जय उवाच ।
मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः
शल्योऽब्रवीत्पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः॥१
जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः॥२

---

यथाकामं वरयन्ति ताः असंयता इति च्छेदः । तासां पुत्रः संकरजात इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ प्रमेहन्ति मूत्रयन्ते दशेरकाः गर्दभाः ॥ ३७ ॥ सुवीरकं काञ्जिकम् । स्फिचौ कटिप्रोथौ ॥ ३८ ॥ निर्ह्रीकाः निर्लज्जाः ॥ ४० ॥ घस्मराः बहुभक्षकाः ॥४१॥ वक्तव्येषु गर्हणीयेषु ॥४२॥ सांपराये समूहे संग्रामे इत्यर्थः । मुच्येयं जीवितामिति शेषः ॥ ४४ उपहितः उपजप्तः ॥ ४६ ॥ तेषां धार्तराष्ट्राणाम् ॥ ५० ॥ हत्वा अर्जुनेन घातयित्वा । मित्रप्रतीक्षया मित्रकार्यावेक्षणेन चात् दुर्योधनस्य तयोरेवोभयोः ॥ ५३॥ अपवादो निन्दा तितिक्षा च तैस्त्रिभिर्हेतुभिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

मारिष हे राजन् ॥ १ ॥

यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष।
तथाऽद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया
इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीन कुलपांसन ॥४
नाहमात्मनि किंचिद्वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम्॥
अवश्यं तु मया वाच्यं
बुद्ध्यता त्वद्धिताहितम्।
विशेषतो रथस्थेन
राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ६
समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम्।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥७॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम्।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना॥९॥
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः।
वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान्
यज्वा दानपतिः क्षान्तः
स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः।
बहुपुत्रः प्रियापत्यः
सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ११
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः।
पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनां
काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः।
तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः
मांसोदनं, दधि, क्षीरं, पायसं, मधुसर्पिषी।
स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः
सदृशान्पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चाधिचिक्षिपे ॥
अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः।
कुमारकास्तदा हंसान् दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन्१६
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहंगम।
प्रतार्यमाणस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥१७
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद्दर्पाच्च मन्यते।
तान्सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम्।
तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥१९
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम्।
तच्छ्रुत्वा प्राहसन्हंसा ये तत्रासन्समागताः
भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः।
इदमूचुः स्म चक्रांगा वचः काकं विहंगमाः
हंसा ऊचुः।
वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः॥
कथं हंसं नु बलिनं चक्रांगं दूरपातिनम्।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते२३
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत्
अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात्
काक उवाच।
शतमेकं च पातानां पतिताऽस्मि न संशयः
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा २५
उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च।
निडीनमथ संडीनं तिर्यक्डीनगतानि च २६
विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम्।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम् २७

---

वृषः महोक्षः॥३॥आयुधस्यास्ति न वेति ज्ञानं परिज्ञानं रुतं जयपराजयसूचकम्। अतिभारो दुर्वहत्वम्॥८॥ निमित्तानि दिव्यान्तरिक्षभौमानि ग्रहाद्यानुकूल्यप्रातिकूल्यादीनि ॥९॥ निदर्शनं दृष्टान्तम्॥१०॥ अतिपातिनः गत्यतिशयगामिनः ॥१५॥ चक्राङ्गाः मानसचारिणः॥१६॥ पतत्रिभ्योऽन्यभ्यः प्रतार्यमाणोऽन्यथा प्रत्याय्यमानः ॥ १७ ॥ श्रेष्ठभाक् श्रेष्ठं अङ्गं भजते । १८ ॥ पतावः गच्छावः ॥ २० ॥ दूरपातेन दूरगमनेन ॥ २२ ॥ पतिता पतिष्यसि कत्थनः गुणश्लाघी ॥ २४ ॥ पतितास्मि पतिष्यामि । २५ ॥ पातानां शतमेकं गणयति—उड्डीनमित्यादिना।
'उड्डीनमूर्ध्वगमनमवडीनमधोगतिः ॥
प्रडीनं सर्वतोयानं डीनं गमनमात्रकम्।
निडीनं शनकैर्यानं संडीनं ललितं गतम् ॥
तिर्यग्डीनं गतं प्राहुस्तिरःप्रचरणं बुधाः।
तान्याद्यभिदभिन्नानि चत्वारि प्रतिजानते' ॥
तानि तिर्यक्डीनानि ॥ २६ ॥
' विडम्बितं विडीनं स्यात्परिडीनं तु सर्वतः ।
पश्चाद्गतिः पराडीनं स्वर्गगं तु सुडीनकम् ॥
आभिमुख्येन गमनमभिडीनं प्रचक्षते ॥
यानं महाडीनमाहुः पवित्रामूर्जितां गतिम् ॥
निर्डीनं निश्चलं यानं प्रचण्डमतिडीनकम्' ।
विडम्बितं मल्लवदुड्डीयोड्डीय गमनम् ॥ २७ ॥

अवडीनं प्रडीनं च संडीनं डीनडीनकम् ।
संडीनोड्डीनडीनं च पुनर्डीनविडीनकम् ॥२८
संपातं समुदीषं च ततोऽन्यद्व्यतिरिक्तकम् ।
गतागतप्रतिगतं बह्वीश्च निकुलीनकाः ॥ २९
कर्ताऽस्मि मिषतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलं
तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहायसम् ३०
प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम्
ते वै ध्रुवं विनिश्चित्य पतध्वं न मया सह ३१
पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये ।
एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहंगमः ॥ ३२
उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे ।

हंस उवाच ।

शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम्
एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहंगमाः ।
तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन
पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे ।
अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन्समागताः
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् ।
एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिपतिष्यति ॥ ३६
हंसस्य पतितं काको बलवानाशु विक्रमः ।
प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ।
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च ।
पतिता वाऽथ चक्राङ्गः पतिता वाऽथ वायसः
विसिस्मापयिषुः पातै-
राचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः ।
अथ काकस्य चित्राणि
पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९

दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका
विनेदुरधिकैः स्वरैः ।
हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च४०
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च ।
वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च
कुर्वाणा विविधान् रावा-
नाशंसन्तो जयं तथा ॥
हंसस्तु मृदुनैकेन
विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष ।
अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥४३
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते
अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापतत्पश्चिमां दिशम्
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम् ।
ततो भीः प्राविशत्काकं तदा तत्र विचेतसम्
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम् ।
निपतेयं क नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे
अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः ।
महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते
गांभीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज ।
दिगंबरांभसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः ४८
विदूरपातात्तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः ।
अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद्व्यपसर्पितुम् ।
अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥
यावद्गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन्
ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा

---

अवरोहोऽवडीनं स्यात् प्रडीनं चित्रमुच्यते ।
गत्या ललितया पूर्वमुपक्रम्य समंततः ॥
परिक्रम्य प्रपतनं संडीनं डीनडीनकम् ।
संडीनोड्डीनडीनं स्यात्तद्वेवोर्ध्वप्रकल्पनात् ॥
गतौ गत्यन्तरोद्भेदो भवेड्डीनविडीनकम् ॥ २८ ॥
[१]क्षणात्संगत्य निष्क्रम्य पक्षसंपातमुच्यते ।
ऊर्ध्वाधोगतिसंभेदः समुदीषं प्रचक्षते ॥
संकल्प्य पक्षगमनमुच्यते व्यतिरिक्तकम् ।
षड्विंशतिरमी भेदाः पातानामिह दर्शिताः ।
महाडीनं विहायैषां पातानां त्रिविधा गतिः ॥
गतं तत्र यथोद्दिष्टमागतं पुनरागमः ।
प्रत्यावृत्तिः प्रतिगतिरिति षट्सप्ततिः स्मृताः ॥
तेषां निपाताः कथ्यन्ते प्रत्येकं पञ्चविंशतिः ॥'
निकुलीनकाः निपाताः ॥ २९ ॥ मिषतां पश्यताम् ॥ ३० ॥ केन पातेन पतध्वं नेति शिरश्चालनेन किं न पतध्वमपि तु पतध्वमेवेति काकूक्त्या परिहासः । संपतध्वमिति वा पाठः ॥ ३१ ॥ एकं मुख्यम् ॥ ३४ ॥ एकेन पातेन ॥ ३६ ॥ इदमब्रुवन्काका इत्यर्थात् ॥ ४३ ॥ नभसः आकाशात् ॥ ४७ ॥ गांभीर्यात् गहनत्वाद्दिगम्बरांभसः । दिश एवाम्बरमावरणं यस्य तादृशमंभो यस्येत्याकाशोपमा समुद्रस्य सम्बन्धिनस्तोयस्य ॥ ४८ ॥ अपसर्पितुं त्यक्त्वा गंतुं दयावशत्वान्नाशकत् ॥ ५० ॥ मामनुलक्ष्येति शेषः ॥ ५१ ॥

तं तथा ह्रीयमानं तु हंसो दृष्ट्वाऽब्रवीदिदम् ।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन्सत्पुरुषव्रतम् ॥ ६२

हंस उवाच ।

बहूनि पतितानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः ।
पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ५३
किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि सांप्रतम्
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः
प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते वर्तसि वायस ।
एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालये ॥

शल्य उवाच ।

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च जलं तदा
दृष्टो हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत् ॥
अपश्यन्नंभसः पारं निपतंश्च श्रमान्वितः ।
पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदिदम् ॥
वयं काकाः कुतो नाम चरामः काकवाशिकाः
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम् ॥
स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च महार्णवे ।
काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निपपात ह५९
सागरांभसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम् ।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह ॥
शतमेकं च पातानां पताम्यहमनुस्मर ।
श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषितवानसि
स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्याधिको मया ।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे ६२
प्रत्युवाच ततः काकः सीदमान इदं वचः ।
उपरिष्टं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसादयन्॥ ६३

काक उवाच ।

उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽत्मानं सुपर्णवत् ।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः६४
प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम्।
यद्यहं स्वस्तिमान् हंस स्व देशं प्राप्नुयां विभो
न कञ्चिदवमन्येऽहमापदो मां समुद्धर ।
तमेवंवादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम् ॥ ६६
काक काकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे ।
कृपयाऽऽदाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम्६७
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः ।
आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम् ॥
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः ।
संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरं

गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः ।
एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः॥
बलं वीर्यं महत्कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः ।
उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा॥
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्तराष्ट्रैर्न संशयः ।
सदृशान् श्रेयसश्चापि सर्वान्कर्णावमन्यसे७२
द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा॥ ७३

यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च
निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
सृगाला इव सिंहेन
क त वीर्यमभूत्तदा ॥ ७४

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः७५
तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून् समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥
हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान्रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत् ७७
पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ७८
सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
अवध्यौ वदतः कृष्णौ सन्निधौ च महीक्षितां

कियत्तत्तत्प्रवक्ष्यामि
येन येन धनञ्जयः ।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो
भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा ॥ ८०

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ ।
पुत्रं च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रं च पाण्डवम्॥८१
यथाश्रयत चक्राङ्गं वायसो बुद्धिमास्थितः ।
तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥
यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैवं वादिष्यसि॥ ८३
यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति ।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ८४
देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ ।
तौ मावमंस्था मौर्ख्यात्त्वं खद्योत इव रोचनौ
सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत्तद्वदर्जुनकेशवौ ।
प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु

दुष्टात्मन्निति कर्णसंबोधनम् ॥५६॥ काकवाशिकाः काका इति वाशन्तः शब्दं कुर्वन्तः॥५८॥ त्मानम् आत्मानम्॥६४॥

एवं विद्वन् मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ । नृसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे हंसकाकीयोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

सञ्जय उवाच ।
मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा
वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः ।
उवाच शल्यं विदितं ममैत-
द्यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥ १
शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य
बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य ।
अहं विजानामि यथावदद्य
परोक्षभूतं तव तत्तु शल्य ॥ २
तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ
व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ ।
संतापयत्यभ्यधिकं नु रामा-
च्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥ ३
अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाऽहं
रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः ।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो
हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥ ४
कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य
प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम् ।
ममोरुमेत्य प्रविभेद कीटः
सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥ ५
ऊरुप्रभेदाच्च महान्बभूव
शरीरतो मे घनशोणितौघः ।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलिवानहं
ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ६
स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै
न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति ।
तस्मै तदाऽऽत्मानमहं यथाव-
दाख्यातवान्सूत इत्येव शल्य ॥ ७
स मां निशम्याथ महातपस्वी
संशप्तवान् रोषपरीतचेताः ।
सूतोपधावाप्तमिदं तवास्त्रं
न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ८
अन्यत्र तस्मात्तव मृत्युकाला-
दब्राह्मणे ब्रह्म न हि ध्रुवं स्यात् ।
तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्र-
मस्मिन्संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥ ९
योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः
प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः ।
सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान्
प्रतापिता बलवान्वै विमर्दः ॥ १०
शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं
तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम् ।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं
धनञ्जयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥ ११
अस्त्रं ततोऽन्यत्प्रतिपन्नमद्य
येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान् ।
प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं
तमुग्रधन्वानमामितौजसं च ॥ १२
क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं
धनञ्जयं संयुगेऽहं हनिष्ये ।
अपां पतिर्वेगवानप्रमेयो
निमज्जयिष्यन्बहुलाः प्रजाश्च ॥ १३
महावेगं संकुरुते समुद्रो
वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम् ।
प्रमुञ्चन्तं बाणसङ्घानमेया-
न्मर्मच्छिदो वीरहणः सुपुत्रान् ॥१४

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

**मद्रेति** ॥ १ ॥ चेलिवान् चलितवान् ॥ ६ ॥ सूतोपधौ सूतत्वपिधाननिमित्तं कर्मकाले स्वप्रतिज्ञारक्षणकाले ॥ ८ ॥ पर्याप्तं समाप्तं विस्मृतमित्यर्थः ॥ ९ ॥ अस्त्रं ततो रामदत्तादस्त्रादन्यत्प्रतिपन्नं प्राप्तं अहिबाणाख्यमित्यर्थः ॥१२॥

कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे
ज्यां कर्षतामुत्तममद्य लोके ।
एवं बलेनातिबलं महास्त्रं
समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ॥ १५
शरौघिणं पार्थिवान्मज्जयन्तं
वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये ।
अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ १६
सुरासुरान् युधि वै यो जयेत
तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम् ।
अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो
ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ॥ १७
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य संख्ये
बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम् ।
सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं
दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥ १८
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं
धनञ्जयं छादयिष्यामि बाणैः ।
वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं
तेजस्विनं लोकमिदं दहन्तम् ॥ १९
पर्जन्यभूतः शरवर्षैर्यथाग्निं
तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ।
आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं
सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥ २०
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं
कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः ।
प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं
प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥ २१
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो
धनञ्जयं क्रुद्धममृष्यमाणम् ।
विशारदं रथमार्गेषु शक्तं
धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥ २२
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां
धनञ्जयं संयुगे संसहिष्ये ।
अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ २३
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये
तेन प्रयोद्धाऽस्मि समेत्य संख्ये ।
यः सर्वभूतानि सदैवतानि
प्रस्थेऽजयत्खाण्डवे सव्यसाची २४
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन
युयुत्सेद्वै मानुषो मादृतेऽन्यः ।
मानी कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो
दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥ २५
तस्याहमद्यातिरथस्य काया-
च्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।
योत्स्याम्येनं शल्य धनञ्जयं वै
मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥ २६
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो
युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् ।
तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य
ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् २७
किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता
ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य ।
अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि
क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान् २८
हन्यामहं त्वादृशानां शतानि
क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् ।
अवोचस्त्वं पाण्डवार्थेऽप्रियाणि
प्रधर्षयन्मां मूढवत्पापकर्मन् ॥ २९
†मयाऽऽर्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं
मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम् ।
कालस्त्वयं प्रत्युपयात दारुणो
दुर्योधनो युद्धमुपागमद्यत् ॥ ३०
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकांक्षमाण-
स्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति ।
मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा
संत्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा ॥ ३१

मे मां प्रति एष्यति ॥ १७ ॥ अस्त्रैरस्त्रतुल्यैः ॥ १८ ॥ खाण्डवे खाण्डवदाहे ॥२४॥ आर्जवे कर्तव्ये सति ॥३० ॥ अहं सिद्धिं कांक्षमाणोऽस्मि त्वं तु तन्मन्यसे यत्र ऐकान्त्यं सख्यं नास्ति।असत्पक्षीयोऽप्यन्यत्र स्नेहवानसीत्यर्थः। तदेवाह—मित्रमिति । मिन्दयति मेदयति वा स्नेहार्थान्मिन्देर्मिदेर्वा मित्रमिति रूपम् । नन्दतेरित्यत्र मदतेरिति पाठः । मदी हर्षे इत्यस्य वा रूपं मादयति तर्पयतीति वा मादयतेर्मित्रं मिदतेस्त्राणार्थस्य वा मिदेरिदं रूपम् । नन्दयतेः प्रीयतेः सन्त्रायतेर्वाऽर्थे वर्तमानस्य मिदेर्मित्रमिति वाऽर्थः । मिनुते मानं करोति सर्वं हितमस्य संगृह्णातीति वा मोदतेऽस्य सुखेनेति वा मित्रमित्येतेऽर्था मयि सन्तीत्यर्थः॥३१॥ † मय्यार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वम् इति पाठः ।

ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति
तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा ।
शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा
श्रृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा ॥ ३२
उपसर्गाद्बहुधा सूदतेश्च
प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् ।
दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं
यशोऽर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ॥ ३३
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ
योत्स्ये यत्नात्कर्म तत्पश्य मेऽद्य ।
अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि
ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि ३४
आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं
द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः ।
अस्त्रं ब्राह्मं मनसा युध्यजेयं*
क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय ।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे
न चेत्पतेद्विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥ ३५
वैवस्वताद्दण्डहस्ताद्वरुणाद्वापि पाशिनः ।
सगदाद्वा धनपतेः सवज्राद्वापि वासवात् ।
अन्यस्मादपि कस्माच्चिदमित्रादाततायिनः
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः
तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ३७
सह युद्धं हि मे ताभ्यां सांपराये भविष्यति ।
कदाचिद्विजयस्याहमस्त्रहेतोररट्नृप ॥ ३८
अज्ञानाद्धि क्षिपन्बाणान्
घोररूपान् भयानकान् ।
होमधेन्वा वत्समस्य
प्रमत्त इषुणाऽहनम् ॥ ३९
चरन्तं विजने शल्य ततोऽनुव्याजहार माम्
यस्मात्त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ॥
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत्
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ४१
तस्माद्बिभेमि बलवद्ब्राह्मणव्याहृतादहम् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥
अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान्
प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ४३
ईषादन्तान् सप्तशतान् दासीदासशतानि च
ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ॥
कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
आहरं न लभे तस्मात्प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥
ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किञ्चन ।
तत्सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति
ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः ।
व्याहृतं यन्मया सूत तत्तथा न तदन्यथा ४७
अनृतोक्तं प्रजां हन्यात्ततः पापमवाप्नुयाम् ।
तस्माद्धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ४८
मा त्वं ब्रह्म गतिं हिंस्याः
प्रायश्चित्तं कृतं त्वया ।
मद्वाक्यं नानृतं लोके
कश्चित्कुर्यात्समाप्नुहि ॥ ४९
इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया ।
जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं श्रृणु

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

**शत्रुरिति** । शदेः शातनार्थात् शास्तेः शासनार्थात् श्यतेस्तनूकरणार्थात् श्रृणातेर्हिंसार्थात् श्वसतेरुच्छ्वासार्थादन्तर्भावितण्यर्थात् सीदतेः सूदतेर्वा दन्त्यस्थाने तालव्यस्योपसर्जनात् शत्रुरिति शब्द उत्पन्नस्तदर्थश्च सर्वं त्वय्यस्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ दुर्योधनस्य तव मम च प्रीतिर्जयलाभेन यशसश्च प्राप्तिर्ब्रयाणामपि ईश्वरप्रीतिः स्वधर्माचरणेनेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ **अस्त्राणीति** । कालेऽस्त्रं न प्रतिभास्यतीति पूर्वमुक्त्वापि आवेशात्स्वस्य विद्यमानामस्त्रसंपदमभिप्रेत्याह–ब्राह्माणि ब्रह्मशिर आदीनि दिव्यानि ऐन्द्रवारुणगान्धर्वादीनि मानुषाणि भौमानि दिव्यधनुरादीनि ३४॥**अस्त्रमिति**। यत् यदि हि प्रसिद्धं क्षेप्स्ये तर्हि नैव मुच्येत शत्रुः परंतु यदि चक्रं विषमेन पतेदित्ययमपि द्वितीयो दोषो दर्शितः ॥३५॥ समाप्नुहि शापमनुभवस्वेत्यर्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

* संजयन्वै इति पाठः ।

## ४३

सञ्जय उवाच ।
ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिन्दमः ।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥ १
यत्त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि ।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा विभीषयितुमाहवे
यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः
तथापि मे भयं न स्यात्किमु पार्थात्सकेशवात्
नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथञ्चन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे
नीचस्य बलमेतावत्पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तो मद्गुणान् वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥ ५
न हि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथाऽऽत्मनः
सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि ।
कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं शल्य जीवसि सांप्रतम्
राज्ञश्च धार्तराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम् ।
मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम्
कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं तव ।
ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयमहं परान् ।
मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि सांप्रतम्

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

शल्य उवाच ।
ननु प्रलापाः कर्णैते यान् ब्रवीषि परान्प्रति
ऋते कर्णसहस्रेण शक्या जेतुं परे युधि ॥ १
सञ्जय उवाच ।
तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा ।
परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥ २
कर्ण उवाच ।
इदं तु ते त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
संनिधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम्
देशांश्च विविधांश्चित्रान्पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान्
ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥४
तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद्द्विजोत्तमः ।
वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन्वाक्यमब्रवीत्
बहिष्कृता हिमवता गङ्गया च बहिष्कृताः
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥ ६
पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां
नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान् धर्मबाह्यानशुची-
न्वाहीकानपि वर्जयेत् ॥ ७
गोवर्धनो नाम वटः सुभद्रं नाम चत्वरम् ।
एतद्राजकुलद्वारमाकुमारात्स्मराम्यहम् ॥ ८
कार्येणात्यर्थगूढेन वाहीकेषूषितं मया ।
तत एषां समाचारः संवासाद्विदितो मम ॥
शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा ।
जर्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितं

---

४३

**तत इति** । ततः अनन्तरं शल्येन वक्तव्यं वचः संनिवार्य स्वयमेवाहेत्यर्थः ॥ १ ॥ सखिभावः सारथ्येनोपकारकर्तृत्वं सौहार्दं मदीया क्षमा मित्रस्य दुर्योधनस्य भावः इष्टसिद्धिः हेतुरित्यर्थः ॥ ७ ॥ एतदेव त्रयं व्याचष्टे राज्ञश्चेत्यादिना ॥ ८ ॥ **कृत इति** । शल्यसहस्रतुल्योऽहमेवास्मीत्यर्थः ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

**नन्विति** । कर्णसहस्रेण विनाऽपि परे जेतुं शक्याः मयेति शेषः । कर्णसहस्रतुल्योऽहमेक एवास्मीति भावः ॥ १ ॥ भूयः द्विगुणं अधिकगुणम् ॥ २ ॥ पञ्चानां वक्ष्यमाणानां सिन्धुः षष्ठो यासां अन्तरमवकाशमाश्रिताः ॥७॥ गोवर्धनः गवां छेदनस्थानं सुभद्रं चत्वरं सुराभाण्डाश्रयभूतम् । एतदुभयं राजकुलस्य राजगृहद्वारस्योपलक्षणम् ॥८॥ वृत्तं चरित्रम् ॥ १० ॥

धाना गौड्यासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥
गायन्त्यथ च नृत्यन्ति
स्त्रियो मत्ता विवाससः ।
नगरागारवप्रेषु
बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२
मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः ।
अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ॥
आहुरन्योन्यसूक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः ।
हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृहतेति च ॥ १४
आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यंति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः
तासां किलावलिप्तानां निवसन्कुरुजाङ्गले ॥
कश्चिद्वाहीकदुष्टानां नातिहृष्टमना जगौ ।
सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी
मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले ।
शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम्
गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि
स्थूलशंखाः शुभाः स्त्रियः ।
मनःशिलोज्ज्वलापांग्यो
गौर्यस्त्रिककुदांजनाः ॥ १८
कम्बलाजिनसंवीताः क्रन्दन्त्यः प्रियदर्शनाः
मृदङ्गानकशंखानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥
खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् ।
शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥ २०
अपूपान्सक्तुपिण्डांश्च
प्राश्नन्तो मथितान्वितान् ।
पथि सुप्रबला भूत्वा
कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥ २१
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः ।
एवं शीलेषु व्रात्येषु वाहीकेषु दुरात्मसु ॥२२
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्तमपि मानवः ।
ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाहीका मोघचारिणः
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान्
वाहीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत् ।
तत्र स्म राक्षसी गाति सदा कृष्णचतुर्दशीम्
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिं
कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले
गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवं
गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृताः
पलाण्डुगंडूषयुतान् खादन्ती चैडकान्बहून्
वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम् ॥
ऐडं च ये न खादन्ति
तेषां जन्म निरर्थकम् ।
इति गायन्ति ये मत्ताः
सीधुना शाकलाश्च ये ॥ २९
सबालवृद्धाः क्रन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत् ।
इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते३०
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान् ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।
पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ३१
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा ।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः
आरट्टा नाम ते देशा
नष्टधर्मा न तान्व्रजेत् ।
व्रात्यानां दासमीयानां
वाहीकानामयज्वनाम् ॥ ३३
न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा ।
तेषां प्रनष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ॥
ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि ।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ३५
सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः ।
आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ३६

---

धाना भ्रष्टयवाः गौड्यासवं सुराविशेषम् । वाट्यं यवान्नं क्रीतान्नं वा । 'वाटो वृत्तौ च मार्गे च वरण्डेऽङ्गागान्नभेदयोः' इति विश्वः । स्वार्थे ष्यञ् आशिनः भक्षणशीलाः ॥ ११ ॥ वप्रेषु प्राकाराभित्तिषु ॥ १२ ॥ अवगीतैः भगलिङ्गादिविगीतशब्दैः । अनावृताः स्वपरपुरुषविवेकहीनाः कामचाराः यथेष्टचारिण्यः ॥ १३ ॥ सूक्तानि विनोदवचनानि हेहते भोलिङ्गताडिते इत्याक्रोशे द्वित्वं संधिश्छान्दसः । स्वामिहते भर्तृहते इति च तद्वत् ॥ १४ ॥ पर्वसु उत्सवदिनेषु आक्रोशन्त्यः गालयन्त्यः तासां पतिरिति शेषः ॥ १५ ॥ खरादियानैः ॥ २० ॥ मथितं तक्रम् ॥२१॥ भूयसः बहून् ॥ २२ ॥ वहो वृषभः तस्येदं ववपर्व वाहं तत्रोचिताः वाहेयिकाः गाथाः गीतीः ॥ २६ ॥ खादन्ती बलिरूपान् एडकान्मेषान् वाराहं विड्वराहजम् ॥ २८ ॥ शाकलाः शाकलपुरवासिनः ॥२९ गिरेः हिमाद्रेः ॥ ३२ ॥ व्रात्यानां उपनयनादिसंस्कारहीनानां दासमीयानां दसमदेशोद्भवानाम् । दासं गृहशूद्रं मिमते मानयन्ति मैथुनार्थिन्यस्ताः दासम्यः तज्जानां दासमीयानां वा ॥ ३३ ॥ कुण्डेषु महोदरपात्रेषु ॥ ३५ ॥

तद्विकारांश्च वाहीकाः
खादन्ति च पिबन्ति च ।
पुत्रसंकरिणो जाल्माः
सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥ ३७
आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता
हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते
यदन्योऽप्युक्तवान्मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।
युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥
तद्वद्भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ।
पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात्
आरट्टा नाम वाहीका
न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ।
वहिश्च नाम हीकश्च
विपाशायां पिशाचकौ ॥ ४१
तयोरपत्यं वाहीका
नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ।
ते कथं विविधान् धर्मान्
ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥ ४२
कारस्करान्माहिषकान्
कालिङ्गान्केरलांस्तथा ।
कर्कोटकान् वीरकांश्च
दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४३
इति तीर्थानुसर्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥ ४४
आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् ।
ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ४५
वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च ।
व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ४६
प्रस्थला मद्रगान्धारा
आरट्टा नामतः खशाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा
इति प्रायोऽतिकुत्सिताः ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

कर्ण उवाच ।
हन्त शल्य विजानीहि
हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक्
त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ १
ब्राह्मणः किल नो गेहमध्यगच्छत्पुराऽतिथिः
आचारं तत्र संप्रेक्ष्य प्रीतो वचनमब्रवीत् २
मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥ ३
न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वे हि तेऽब्रुवन् धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥ ४
अटता तु ततो देशान्नानाधर्मसमाकुलान् ।
आगच्छता महाराज वाहीकेषु निशामितम्
तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः
वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः ६
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते ७

---

सर्वमन्नमदनीयं क्षीरं च भोजनं येषां ते ॥ ३७ ॥ युगन्धरे नगरे औष्ट्रादिकमपि क्षीरं पीयते भक्ष्याभक्ष्यविवेकाभावात्तत्रावश्यमभक्ष्यभक्षणं आपतत्येव एवमच्युतस्थले नगरे उषितस्यागम्यागमनमवश्यं भावि तादृशानामेव तत्र सत्त्वात् ॥ ३९ ॥ भूतिलये हि चण्डालब्राह्मणसाधारण एको जलाशयस्तत्र च स्नातः कथं स्वर्गं गच्छेन्न कथंचिदित्यर्थः ४०॥ द्व्यहमित्येकरात्रवासे न दोष इत्यर्थः ॥ ४१॥ कारस्कराद्या देशाः ॥ ४३ ॥ एकरात्रशयी एकरात्रशायिनं ब्राह्मणमिति द्वितीयार्थे प्रथमा ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

**हंतेति** ॥१॥ इमाः अनुभूतपूर्वाः प्रजाः केनच्च केनापि अर्थकामादिना निमित्तेन धर्मेण सह न विरुध्यंते न केनचिद्धर्मेण इति पाठे केनाप्यधर्मेणैता न विरुध्यंते न कंचिदप्यधर्मं कृत्वा शास्त्रेण विरुध्यंते इत्यर्थः ॥ ४ ॥ निशामितं श्रुतम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणो भूत्वेत्यादि तज्जातीयकर्माचरणनिबन्धनम् ॥ ६ ॥

भवन्त्येककुले विप्राः प्रसृष्टाः कामचारिणः
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः ८
एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकम् ।
कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः ९
हन्त शल्य विजानीहि
हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदप्यन्योऽब्रवीद्वाक्यं
वाहीकानां च कुत्सितम् ॥ १०
सती पुरा हृता काचिदारट्टात्किल दस्युभिः
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत्ततः ॥ ११
बालां बन्धुमतीं यन्मा-
मधर्मेणोपगच्छथ ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति
बन्धक्यो वै कुलस्य च ॥ १२
न चैवास्मात्प्रमोक्षध्वं घोरात्पापान्नराधमाः
तस्मात्तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः १३
कुरवः सहपञ्चालाः
शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः ।
कोसलाः काशपौण्ड्राश्च
कालिङ्गा मागधास्तथा ॥ १४
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् ।
नानादेशेष्वसन्तश्च प्रायो वा ह्यनयादृते १५
आमत्स्येभ्यः कुरुपञ्चालदेश्या
आनैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः ।
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो
मद्रादृते पाञ्चनदांश्च जिह्मान् ॥ १६
एवं विद्वान् धर्मकथासु राजं-
स्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयः ।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा
षड्भागहर्ता शुभदुष्कृतस्य ॥ १७
अथवा दुष्कृतस्य त्वं
हर्ता तेषामरक्षिता ।
रक्षिता पुण्यभाग्राजा
प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक् ॥ १८
पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते ।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः १९
व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम् ।
ब्रह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः
इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः ।
स्वधर्मस्थेषु वर्षेषु सोऽप्येतान्नाभ्यपूजयत् २१
हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते।
कल्माषपादः सरसि निमज्जन्राक्षसोऽब्रवीत्
क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं
ब्राह्मणस्याश्रुतं मलम् ।
मलं पृथिव्यां वाहीकाः
स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम्॥ २३
निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद्राजा निशाचरम्।
अपृच्छत्तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे२४
मानुषाणां मलं म्लेच्छा
म्लेच्छानामौष्ट्रिका मलम् ।
औष्ट्रिकाणां मलं षण्ढाः
षण्ढानां राजयाजकाः ॥ २५
राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम्।
तद्भवेद्वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ २६
इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च ।
राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धवचनोत्तरम्॥२७

---

कुले एक एव विप्रो भवत्यन्ये भ्रातरः प्रसृष्टाः संकीर्णक्रिया इत्यर्थः ॥ ८ ॥ तत्र वाहीकेषु धर्मसंकरकारको विपर्ययः श्रुत इति लिङ्गं विपरिणेयम्। विपर्ययो विहितवैपरीत्यम् ॥ ९ ॥ बंधक्यो वेश्याः पंचमे व्यभिचारे बंधक्यः॥ १२ ॥ **न चैवेति** । उत्तरत्रेदं बंधकीत्वं सर्वत्रानुवर्तिष्यते यस्मात् मातुर्धनं दुहिता हराति पितुः पुत्र इति नियमात् । यद्यपि पुत्री पुत्रश्च द्वावपि जारजौ तथापि पितृत्व इव मातृत्वे विसंवादाभावात् दौहित्र एव रिक्थहारी भवति न पुत्र इति भावः । यतस्ते भगिनीष्वेवापत्यानि जनयन्ति न स्वदारेष्वतस्तेषां भागिनेया भागहरा इति व्याख्यानं प्राचाम् १३ असन्तश्चासन्तश्च वर्तन्ते परंतु वाह्यनयादृते वाहीकनीतिं विना तत्र केवलमसन्त एव वर्तन्त इत्यर्थः ॥ १५ ॥ पूज्यमाने प्रशस्यमाने ॥ १९ ॥ कृते कृतयुगेऽपि धर्मे वाहीकानामिति शेषः । स वाहीकस्त्वम् ॥ २० ॥ नाभ्यपूजयत् न प्रशंसितवान् ॥२१॥ म्लेच्छाः पापरताः धर्माधर्मविचारहीनाः ' म्लेच्छः पापरते जातिभेदे स्यादपभाषणे ' इति **विश्वः**। 'उष्ट्रिका मृत्तिकाभाण्डभेदेऽपि करभस्त्रियाम्'इति **विश्वः**। औष्ट्रिकः स्नेहभाण्डजीवी तैलिक इत्यर्थः । षण्ढा वर्षवराः राजयाजकाः क्षत्रियस्य याज्यास्तेषामपि याज्याः। राजपुरोहितयाज्या वा ॥ २५ ॥ रक्षोपसृष्टेषु रक्षसा उपद्रुतेषु राक्षसं रक्षसां नाशकामिदं राक्षसम् ॥ २७ ॥

ब्राह्मं पाञ्चालाः कौरवेयास्तु धर्म्यं
सत्यं मत्स्या शूरसेनाश्च यज्ञम्।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः
स्तेना वाहीकाः संकरा वै सुराष्ट्राः॥
कृतघ्नता परवित्तापहारो
मद्यपानं गुरुदारावमर्दः ॥
वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या
बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः॥ २९
येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्मो
ह्यारट्टानां पञ्चनदान् धिगस्तु ।
आपाञ्चाल्येभ्यः कुरवो नैमिषाश्च
मत्स्याश्चैतेऽप्यथ जानन्ति धर्मम् ।
अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च
शिष्टान् धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः॥३०
प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः ।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥ ३१
प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान्बली ।
उदीचीं भगवान्सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥
तथा रक्षःपिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम् ।
गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम्॥ ३३
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः
इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ॥
अर्धोक्ताः कुरुपञ्चालाः
शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः
पार्वतीयाश्च विषमा
यथैव शिवयस्तथा ॥ ३५

सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः ।
म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः
प्रतिरब्धास्तु वाहीका न च केचन मद्रकाः ।
स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं वक्तुमर्हसि ।
पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते॥३७
सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो
भ्रूणहत्या परवित्तापहारः ।
येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्म
आरट्टजान् पञ्चनदान् धिगस्तु ॥३८
एतज्ज्ञात्वा जोषमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः
मा त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥

शल्य उवाच ।

आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः ।
अङ्गे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ४०
रथातिरथसंख्यायां यत्त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत् ।
तान्विदित्वात्मनो दोषान्निर्मन्युर्भव मा क्रुधः
'सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः
रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह ।
अन्योन्यमवरक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः॥ ४३
परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा ।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति।
सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः ।
दुर्मनुष्यान्निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः॥
न कर्ण देशसामान्यात् सर्वः पापं निषेवते ।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः'

---

ब्राह्मं वेदसमूहं धर्म्यं धर्मादनपेतं कर्म मानयन्तीति शेषः । प्राच्या दासाः शूद्रधर्माणः दाशा इति पाठे मत्स्यजीविनः वृषं धर्मं लान्ति आददते ते वृषलाः । धर्मसंग्रहपराः धर्मद्रोहिण इति वा ॥ २८ ॥ बहिर्गेहं रात्रिचर्याप्रच्छन्नं चौर्यपारदार्यादि ॥ २९ ॥ आपाञ्चाल्येभ्यः धर्मज्ञाः उदीच्याद्यास्तु स्वयं धर्मस्वरूपमजानन्तोऽपि शिष्टानुगामिन इत्यर्थः । आरट्टास्तूभयभ्रष्टा इति भावः ॥ ३० ॥ प्राचीमित्यत्र जातवेद इत्यनेनाग्नेयीसहिता प्राची देवानामाश्रयः । दक्षिणा पितॄणां तत्रैव श्राद्धादिधर्मो दृश्यते ॥ ३१ ॥ एवं प्रतीचीं वरुणः । उदीचीं सोम इति कुबेरेशानयोर्ग्रहणम् । परिशेषान्नैर्ऋत्यां वायव्यां च वाहीकाश्रयायां नैर्ऋतास्त्वादृशा वातूलाश्च सन्तीत्यर्थः॥३२॥ **तथा रक्ष इति**। हिमवतोऽप्यप्रशस्यजनाश्रयत्वमुक्तम्। गन्धमादनस्तु भोगलोलुपानां गुह्यकादीनामाश्रयः ॥ ३३ ॥ एवमपि सवाहीकान्सनैर्ऋतान् देशान् विष्णुः पाति पर्जन्यवत् न देशान्तरेष्विव वाहीकेषु विशेषतो देवतानुग्रहो दृश्यत इत्यभिप्रायः । अत एव तेषां मौढ्यं वर्णयति—**इङ्गितज्ञाश्चेति** ॥ ३४ ॥ विषमाः दुःखसाध्याः ॥ ३५ ॥ सर्वं जानन्तोऽपि यवना म्लेच्छाश्च स्वसंज्ञायां स्वीयैः कृतो यो धर्मसङ्केतस्तत्रैव नियताः वैदिकं धर्मं न मानयन्तीत्यर्थः । इतरे त्वनुक्तं हितं नावबुध्यन्ते ॥ ३६ ॥ प्रतिरब्धाः हितवादिनि प्रतिकूलाः गुरुद्रोहिण इत्यर्थः । तादृशश्च त्वं हितोपदेष्टारं मां निन्दसीत्यर्थः ॥ ३७ ॥ प्रतीपं प्रतिकूलं तेजोवधाख्यम् ॥ ३९ ॥ **देवा अपीति** । वृत्तेन देवानप्यतिक्रामन्तीत्यर्थः ॥४६॥

सञ्जय उवाच
ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत्
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥
ततो निवारितः कर्णो धार्तराष्ट्रेण मारिष ।
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह
शल्योऽप्यभिमुखः परान् ॥
ततः प्रहस्य राधेयः
पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

सञ्जय उवाच
ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम् ।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम्
प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च ।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम्
वेपमान इव क्रोधाद्युद्धशौण्डः परन्तपः ।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद्भरतर्षभ ॥ ३
व्यधमत्पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।
युधिष्ठिरं चाभ्यहनदपसव्यं चकार ह ॥ ४
धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं सञ्जय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान् ।
धृष्टद्युम्नमुखान्सर्वान्भीमसेनाभिरक्षितान् ५
सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि ।
के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य सञ्जय ६
प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः ।
कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान्
कथं चैव महद्युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
क्व च बीभत्सुरभवद्यत्कर्णोऽयाद्युधिष्ठिरम् ८
को ह्यर्जुनस्य सान्निध्ये
शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् ।
सर्वभूतानि यो ह्येकः
खाण्डवे जितवान्पुरा ।
कस्तमन्यस्तु राधेयात्प्रतियुद्ध्येज्जिजीविषुः ।
सञ्जय उवाच ।
शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथागतः ।
परिवार्य नृपं स्वं स्वं सङ्ग्रामश्चाभवद्यथा १०
कृपः शारद्वतो राजन् मागधाश्च तरस्विनः
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः ।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् १२
गान्धारिभिरसंभ्रान्तैः पार्वतीयैश्च दुर्जयैः ।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः १३
चतुर्विंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम् ।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन्
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः ।
तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह
निदेशात्सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम्
मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः ।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन्वाहिनीमुखम्
रक्षमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः ।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः संप्रकर्षन्नशोभत ॥ १८
अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः १९
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः
तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः २०
चित्राश्वैश्चित्रसन्नाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ।
रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः २१
अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ।
अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः ॥
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः
शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः ।
अन्वयुस्तद्रथानीकं
क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २३

---

स्वांजल्यकेन स्वस्य अञ्जलिकर्मणा ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

तत इति ॥ १ ॥

ते ध्वजैर्वैजयन्तीभि-
र्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।
सादिभिश्चास्थिता रेजु-
र्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः २५
सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलङ्कृतैः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः २६
बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् २७
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
हस्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः २८
ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २९
पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते ॥ ३०

तदेतद्वै समालोक्य
प्रत्यमित्रं महद्बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मां-
स्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३१

एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।
यथा भवानाह तथा तत्सर्वं न तदन्यथा ३२
यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

तस्मात्त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् ।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ३४
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥

द्रौपदेया धार्तराष्ट्रान्
शिष्टान्सह शिखण्डिना ।
ते ते च तांस्तानहिता-
नस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥ ३६

सञ्जय उवाच ।

इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनञ्जयः ।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम्
अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मेन्दुः सवितां गतः ।
तस्माद्यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः
ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान् क्रमशो योऽवहत्पुरा ।
तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ३९
अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वाऽत्यद्भुतदर्शनम् ।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ४०
अयं सरथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः
दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥
निघ्नन्नमित्रान् कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि
श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ४२
ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ४३
चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी ।
प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ४४
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम्
पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥ ४५
कबन्धं मेघसंकाशं भानुमावृत्य संस्थितम् ।
पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ४६
बलिभिर्दृप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ।
पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान्सहस्रशः ४७
स्थितानभिमुखान् घोरानन्योन्यमभिभाषतः
रञ्जिताश्चामरा युक्तास्तव कर्ण महारथे ॥ ४८
प्रवराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ।
सवेपथून् हयान्पश्य महाकायान्महाजवान्
प्लवमानान्दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ।
ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ॥

---

**अग्निरिति** । योऽयं वैश्वानरो विश्वस्य नेता अग्निः स ब्रह्मा ब्राह्मणः प्रजापतिमुखोद्भवत्वसाम्यात् स एव इन्दुः उनत्तीति व्युत्पत्तेर्जलाधीशः सोमरसश्च स एव सवितामश्वत्वं गतः । 'वारुणो वा अश्वः' इति श्रुतेः । सोमोऽप्यश्वत्वेन स्तूयते 'अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिप' इत्यादौ अत्यं अश्वं कलशे द्रोणकलशे क्षिपोऽङ्गुलयः । तस्मै देवा ब्राह्मणाश्च विदुः स एक एव देवश्चतुर्धाऽऽस्थानं व्यूहाख्यं रथं वाहयतीत्यर्थः । ब्रह्मेद्ध इति पाठे ब्रह्मणा वेदेन इद्धः स्तुत्या प्रदीप्तः । स एवाश्वत्वं गत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ एवमश्वान्स्तुत्वा रथं स्तौति-**ब्रह्मेति** ॥ ३९ ॥ अयं सरथः कौन्तेय आयात इति द्वयोः सम्बन्धः ॥ ४१ ॥ शब्दो रथस्येति शेषः ॥ ४२ प्रवातीत्यादिपराजयलक्षणमाह तेजोभङ्गार्थमेव॥४४॥कबंधं केतुं मृगादिभिरादित्यावेक्षणं क्रियमाणं मृत्युसूचकम् ॥ ४६ ॥ चामराः रथेऽवलंबन्तो रथाक्षचक्रयोः सङ्घर्षजैः स्फुलिंगैर्ज्वलन्तीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः
शंखानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः ।
बाणशब्दान्बहुविधान्नराश्वगजवाजिनाम् ॥
ज्यातलत्रेषु शब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम्
हेमरूप्यप्रसृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः
सहेमचन्द्रताराकाः पताकाः किंकिणीयुताः
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामन्य इवाम्बुदे ।
ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः
विभ्राजन्ति रथे कर्ण विमाने दैवते यथा ।
सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम्
पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् ।
प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥ ५७
एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो द्विषतामघवर्धनः ॥ ५८
एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शंखः कृष्णस्य धीमतः ।
अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः
एष शार्ङ्गगदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् ।
वाहयन्नेति तुरगान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥६०
एतत्कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः
विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनां
एते सुपरिघाकाराः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः
निरस्तनेत्रजिह्वाश्च वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणाश्च शेरते
एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः ।
संछिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रचरन्त्यद्रयो यथा ॥
गन्धर्वनगराकारा रथा हतनरेश्वराः ।
विमानानीव पुण्यानि स्वर्गिणां निपतन्त्यमी
व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना ।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥
घ्नन्त्येते पार्थिवान्वीराः
पाण्डवाः समभिद्रुताः ।
नागाश्वरथपत्त्योघां-
स्तावकान्समभिघ्नतः ॥ ६८

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते
अद्य द्रक्ष्यसि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्
निघ्नन्तं शात्रवान्संख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि
अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परंतपौ ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ ॥
सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो
गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् ।
तं चेद्धन्तासि राधेय
त्वं नो राजा भविष्यसि ॥ ७२
एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः ।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली ॥
इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना ।
पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः ॥
एष सूर्य इवांभोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे ॥

शल्य उवाच ।

वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम्
को वाऽनिलं निगृह्णीयात्पिबेद्वा को महार्णवं
ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि विग्रहम् ।
न हि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः
अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव
न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम् ॥
बाहुभ्यामुद्धरेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥
पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् ।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवापरम् ॥
अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन् ।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान्
एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
तिष्ठत्यसुकरः संख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥ ८२
एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ८३
अमी स्थिता द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव ।
व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि
एते द्रुपदपुत्राश्च
धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
स्फीताः सत्यजितो वीरा-
स्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ८५

ज्यातलत्रेषु कर्णानिति पाठे कर्णो वाद्यविशेषः। तेषां ध्वनीन्। शिल्पिनो रञ्जकाः॥५३॥ अघवर्धनः दुःखस्य वर्धयिता ॥५८

असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः
युयुत्सुरुपयात्यस्मान् क्रुद्धान्तकसमः पुरः ॥
इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः ।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद्द्रुतम् ॥ ८७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## ४७

धृतराष्ट्र उवाच ।
तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च सञ्जय ।
संशप्तकान् कथं पार्थो गतः कर्णश्च पांडवान् ।
एतद्विस्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि ।
न हि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान्रणे
सञ्जय उवाच ।
तदास्थितमवज्ञाय प्रत्यमित्रबलं महत् ।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३
तत्सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद्बलम् ॥ ४
पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।
पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥
पार्षतं जुगुपुः सर्वे द्रौपदेया युयुत्सवः ।
दिव्यवर्मायुधधराः शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ६
सानुगा दीप्तवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव ।
अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तकान्रणे ॥ ७
क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव
व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः ।
अथ संशप्तकाः पार्थ-
मभ्यधावन्वधैषिणः ॥ ८
विजये धृतसंकल्पा मृत्युं कृत्वानिवर्तनम् ।
तन्नराश्वौघबहुलं मत्तनागरथाकुलम् ॥ ९
पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत् ।
स संप्रहारस्तुमुलस्तेषामासीत्किरीटिना १०
तस्यैव नः श्रुतो यादृङ्निवातकवचैः सह ।
रथानश्वान् ध्वजान्नागान्पत्तीन्रणगतानपि ॥
इषून् धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् ।
सायुधानुद्यतान्बाहून्विविधान्यायुधानि च
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः
तस्मिन्सैन्यमहावर्ते पातालतलसन्निभे ॥ १३
निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तकास्तथा ।
स पुनस्तानरीन्हत्वा पुनरुत्तरतोऽवधीत् १४
दक्षिणेन च पश्चाच्च क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
अथ पञ्चालचेदीनां सृञ्जयानां च मारिष १५
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत् परमदारुणः ।
कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः १६
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः ।
कोसलैः काश्य-मत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि
शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः ।
तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ १८
क्षत्र-विट्-शूद्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम्
दुर्योधनोऽथ सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ ॥ १९
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः ।
पाण्डवैः सह पाञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरोऽभ्यपालयत् ।
कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम्
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान् युधिष्ठिरमपीडयत् ।
विवस्त्रायुधदेहासून् कृत्वा शत्रून्सहस्रशः २२
युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत्
एवं मारिष संग्रामो नर-वाजि-गजक्षयः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च देवासुरसमोऽभवत् २३

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

तयोरिति ॥ १ ॥ क्षत्र-विट्-शूद्रवीराणामित्यनेन ब्राह्मणादृते युद्धं सर्वेषां श्रेयस्करमित्यर्थः ॥ १९ ॥ युक्त्वा योजयित्वा ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

# ४८

धृतराष्ट्र उवाच ।

यत्तत्प्रविश्य पार्थानां सैन्यं कुर्वञ्जनक्षयम्
कर्णो राजानमभ्येत्य तन्ममाचक्ष्व सञ्जय १
के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन्
कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २

सञ्जय उवाच ।

धृष्टद्युम्नमुखान् पार्थान्
दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान् ।
समभ्यधावत्त्वरितः
पञ्चालाञ्छत्रुकर्षिणः ॥ ३
तं तूर्णमभिधावन्तं पञ्चाला जितकाशिनः ।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम् ॥ ४
ततः शङ्खसहस्राणां निःस्वनो हृदयङ्गमः ।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥ ५
नानाबाणनिपाताश्च द्विपाश्व-रथ-निःस्वनः
सिंहनादश्च वीराणामभवद्दारुणस्तदा ॥ ६
साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम् ।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं विघूर्णिता ७
इति भूतानि तं शब्दं
मेनिरे ते च विव्यथुः ।
यानि चाप्यल्पसत्त्वानि
प्रायस्तानि मृतानि च ॥ ८
अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् ।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ९
स पाण्डवबलं कर्णः प्रविश्य विसृजञ्छरान्
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत्सप्तसप्ततिम् ॥ १०
ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः ।
अवधीत्पञ्चविंशत्या पञ्चालान् पञ्चविंशतिम्
सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः ।
चेदिकानवधीद्वीरः शतशोऽथ सहस्रशः १२
तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ १३
ततः सन्धाय विशिखान्पञ्च भारत दुःसहान्
पञ्चालानवधीत्पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः १४
भानुदेवं चित्रसेनं सेनाबिन्दुं च भारत ।
तपनं शूरसेनं च पञ्चालानहनद्रणे ॥ १५

पञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः ।
हाहाकारो महानासीत्पञ्चालानां महाहवे ॥
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथा दश ।
पुनरेव च तान् कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥
चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम्
पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः ।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ १९
धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः ।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः
चेदिकेकयपञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः ।
समभ्यधावन् राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम्
त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च ।
अभ्यवर्षन्विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥
पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः ।
त्वदीयाश्चापरे राजन्वीरा वीरानवारयन् २३
सुषेणो भीमसेनस्य छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम्
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह
अथान्यद्धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः ।
सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद्धनुः
विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः
भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम् ।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ २७
क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् ।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ २८
हत्वा कर्णसुतं भीम-
स्तावकान्पुनरार्दयत् ।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा
चापौ तावप्यथार्दयत् ॥ २९
दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ ३०
सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम् ।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ३१
अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम् ।
सुषेणायासृजद्भीमस्तमप्यस्याच्छिनद्वृषः ३२

४८

यत्तदिति । अभ्येत्य यदकरोत्तन्ममाचक्ष्वेत्यन्वयः ॥ १ ॥ विमर्दन्तं विमृद्नन्तम् ॥ २२ ॥

पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः ।
पुत्रं परीप्सन्विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥
सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम् ॥
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥
नकुलस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा भारसहैर्दृढैः।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ३५
तं सुषेणो महाराज विद्ध्वा दशभिराशुगैः
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥
अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः ।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ३७
स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा ।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा।
अथान्यद्धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥३९
आविध्यकुन्नलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः ।
तद्युद्धं सुमहद्घोरमासीद्देवासुरोपमम् ॥ ४०
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति ।
सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः ।
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥
अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात्पुनरुत्थितः ।
स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥ ४३
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात् ।
तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः॥
वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ।
दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम् ।
अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥४६
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं चतुःषष्ट्या सहदेवं च पञ्चभिः॥४७
नकुलं त्रिशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः।
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥
एतांश्चान्यांश्च राजेंद्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः।
अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशांपते ॥
कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत् ।

दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥ ५०
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् ।
स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः॥
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन्बलम्
धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद्दशभिः शरैः ॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः ।
भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥
नकुलस्त्रिशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः ।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥
एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन्महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥ ५५
तान्सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
रथेनानुचरन्वीरः प्रत्यविध्यदरिंदमः ॥ ५६
तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः ।
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५७
न ह्याददानं ददृशुः संदधानं च सायकान् ।
विमुञ्चन्तं च संरंभादपश्यन्त हतानरीन् ॥
द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णानि शितैः शरैः ।
अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन्देशे बभौ वियत् ॥
नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान् ।
यैर्विद्धः प्रत्यविद्ध्यत्तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः ॥
शतैश्च दशभिश्चैतान् पुनर्विद्ध्वा ननाद च ।
साश्वसूतरथाश्छन्नास्ततस्ते विवरं ददुः ॥
तान्प्रमथ्य महेष्वासान् राधेयः शरवृष्टिभिः।
गजानीकमसम्बाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः ॥
स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्तिनाम् ।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्यार्छद्युधिष्ठिरम्
ततस्ते पांडवा राजञ्छिखंडी चससात्यकिः
राधेयात्परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन्६४
तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे ।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः६५
नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्विशांपते ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणामभिगर्जताम् ६६
ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ६७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

विवरम् अन्तरं ददुः प्रसृता इत्यर्थः ॥ ६१ ॥ इति श्री-महाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

# ४९

सञ्जय उवाच ।
विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत्
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥ १
नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः ।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसंभ्रमात् २
निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः ।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः ॥ ३
द्राविडास्तु निषादास्तु
पुनः सात्यकिचोदिताः ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः
पत्तयः कर्णमाहवे ॥ ४
ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ५
एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसा पूरयन्दिशः ॥ ६
अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव
स तान्प्रमृद्याभ्यपतत्पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा
स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपञ्चालकेकयैः ।
नाशकत्तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ९
ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १०
कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ११
तथास्मान्बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ।
यद्बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु १२
तत्सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे १३
एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥ १४
तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिन्दमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥ १५
सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष ।
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः १६
ज्वालामालापरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्यदृश्यत
युगान्ते दग्धुकामस्य संवर्ताग्नेरिवापरः १७
ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् ।
समाधत्त शितं बाणं गिरीणामपि दारणम्
ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम् ।
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया १९
स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥
स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै ।
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने २१
गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत्
राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥
ततो हाहाकृतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
विवर्णमुखभूयिष्ठं कर्णं दृष्ट्वा तथागतम् ॥ २३
सिंहनादश्च संजज्ञे क्ष्वेलाः किलकिलास्तथा
पाण्डवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥
प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव ।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥ २५
स हेमविकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत् ।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः २६
ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे २७
तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः ।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू २८
युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्ध्यत्त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् २९
शल्यं नवत्या विव्याध
त्रिसप्तत्या च सूतजम् ।
तांस्तस्य गोप्तॄन्विव्याध
त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ३०

---

४९

विदार्येति ॥ १ ॥

ततः प्रहस्याधिरथि-
विधुन्वानः स कार्मुकम् ।
भित्त्वा भल्लेन राजानं
विद्ध्वा षष्ट्याऽनदत्तदा ॥ ३१

ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ३२
सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः॥
यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः।
कारूषा मत्स्यशेषाश्च केकयाः काशिकोसलाः
एते च त्वरिता वीरा वसुषेणमताडयन्।
जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध सायकैः
वाराहकर्णनाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः।
वत्सदन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥ ३६
नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथहस्त्यश्वसादिभिः।
सर्वतोऽभ्यद्रवत्कर्णं परिवार्य जिघांसया
स पाण्डवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः।
उदीरयन् ब्राह्ममस्त्रं शरैरापूरयन्दिशः ॥ ३८
ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्णपावकः।
निर्दहन्पाण्डववनं वीरः पर्यचरद्रणे ॥ ३९
स सन्धाय महास्त्राणि महेष्वासो महामनाः
प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरैश्चिच्छेद कार्मुकम् ४०
ततः सन्धाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम्।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः॥
तद्वर्म हेमविकृतं रत्नचित्रं बभौ पतत्।
सविद्युदभ्रं सवितुः श्लिष्टं वातहतं यथा ४२
तदङ्गात्पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टं वर्म व्यरोचत ।
रत्नैरलङ्कृतं चित्रैर्व्यभ्रं निशि यथा नभः ४३
छिन्नवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः।
ततः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति
तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः
सा छिन्ना भूमिमगमन्महेष्वासस्य सायकैः
ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वा नदन्मुदा ॥
उद्भिन्नरुधिरः कर्णः
क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।

ध्वजं चिच्छेद भल्लेन
त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ४७
इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत्
कालवालास्तु ये पार्थं दन्तवर्णाऽवहन्हयाः॥
तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद्राजा पराङ्मुखः।
एवं पार्थोऽभ्युपायात्स निहतः पार्ष्णिसारथिः
अशक्नुवन्प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः।
अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ५०
वज्रच्छत्रांकुशैर्मत्स्यैर्ध्वजकूर्माम्बुजादिभिः।
लक्षणैरुपपन्नेन पाण्डुना पाण्डुनन्दनम् ॥ ५१
पवित्रीकर्तुमात्मानं
स्कन्धे संस्पृश्य पाणिना।
ग्रहीतुमिच्छन्स बलात्
कुन्तीवाक्यं च सोऽस्मरत् ॥ ५२
तं शल्यः प्राह मा कर्ण
गृहीथाः पार्थिवोत्तमम्।
गृहीतमात्रो हत्वा त्वां
मा करिष्यति भस्मसात् ॥ ५३
अब्रवीत्प्रहसन्राजन् कुत्सयन्निव पाण्डवम्।
कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ५४
प्रजह्यात्समरं भीतः प्राणान्रक्षन्महाहवे।
न भवान् क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः॥
ब्राह्मे बले भवान् युक्तः
स्वाध्याये यज्ञकर्मणि।
मा स्म युद्ध्यस्व कौन्तेय
मा स्म वीरान्समासदः ॥ ५६
मा चैतानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् ॥
वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः
मादृशान्विब्रुवन्युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे।
स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥
न हि त्वां समरे राजन् हन्यात्कर्णः कथञ्चन
एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः५९
न्यहनत्पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम्।
ततोपायाद्द्रुतं राजन्व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ६०
अथापयातं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम्।
चेदिपाण्डवपञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम्

कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात्
भेरीशङ्खमृदंगानां कार्मुकाणां च निःस्वनः ॥
बभूव धार्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा ।
युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ६४
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान्कर्णविक्रमम् ।
काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ६५
स्वान् योधानब्रवीत्क्रुद्धो
निघ्नतैतान् किमासत ।
ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञाताः
पाण्डवानां महारथाः ॥ ६६
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ।
अभवत्तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥
रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ।
उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥ ६८
इति ब्रुवाणा ह्यन्योन्यं जघ्नुर्योधा महारणे ।
अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥ ६९
समावृतैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ।
विपताकध्वजच्छत्रा ह्यश्वसूतायुधा रणे ॥
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः
क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः ।
प्रवणादिव शैलानां
शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥ ७१
सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ।
छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः ॥ ७२
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ।
विप्रविद्धायुधाश्चैव विरथाश्च रथैर्हताः ॥७३
प्रतिवीरैश्च संमर्दे पत्तिसंघाः सहस्रशः ।
विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥
शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संवृता मही ।
यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं शुश्रुवुर्जनाः
विमानैरप्सरःसङ्घैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
हतानभिमुखान्वीरान् वीरैः शतसहस्रशः ॥
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति
विमानेष्वप्सरोगणाः ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं
प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ॥ ७७
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।
रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥
पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः ।
एवं प्रवृत्ते संग्रामे गज-वाजि-नरक्षये ॥ ७९
सैन्येन रजसा वृत्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान् ।
कचाकचि युद्धमासीद्दन्तादन्ति नखानखि
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मासुनाशनम् ।
तथा वर्तति संग्रामे गज-वाजि-नरक्षये॥८१
नराश्वनागदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा ।
गजाश्वनरदेहान्सा व्युवाह पतितान्बहून् ॥
नराश्व-गजसम्बाधे नराश्व-गज-सादिनाम्।
लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्दमा ॥
नराश्वगजदेहानां वहन्ती भीरुभीषणा ।
तस्याः पारमपारं च व्रजन्ति विजयैषिणः ॥
गाधेन चोत्प्लवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्य चापरे।
ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ॥
सस्नुस्तस्यां पपुश्चास्यां मम्लुश्च भरतर्षभ ।
रथानश्वान्नरान्नागानायुधाभरणानि च ॥
वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान् हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहितं
लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरक्तेन शब्देन च विसर्पता ॥ ८८
विषादः सुमहानासीत्प्रायः सैन्यस्य भारत
तत्तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥ ८९
भूयः समाद्रवन्वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा
तेषामापततां वेगमविषह्यं निरीक्ष्य च ॥ ९०
पुत्राणां ते महासैन्यमासीद्राजन् पराङ्मुखं
तत्प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥९१
विध्वस्तवर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ।
व्यद्रवत्तावकं सैन्यं लोड्यमानं समंततः ।
सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥९२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

सञ्जय उवाच ।
तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम्
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥ १
योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद्भरतर्षभ ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन्यवर्तत ॥ २
ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन्रणे ॥ ३
कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान्सराजकान्
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ॥ ४
एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
हंसवर्णान्हयानश्यान्प्रैषीद्यत्र वृकोदरः ॥ ५
ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ६
दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ७
सोऽब्रवीत्सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥
संशयान्महतो मुक्तं कथञ्चित्प्रेक्षतो मम ।
अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ।
अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत
हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ११
राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै ।
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति ।
सिंहनादेन महता सर्वाः सन्नादयन्दिशः ॥
दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम्
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥ १४
शल्य उवाच ।
पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम् ।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवं
ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन ।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे ॥
त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे
बिभर्ति सदृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥

सञ्जय उवाच ।
इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप ।
अभ्यवर्तत वै कर्णं क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥
अथागतं तु संप्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
अब्रवीद्वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १९
यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर ।
भीमसेनं प्रति विभो तत्सत्यं नात्र संशयः
एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः ।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥
अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा ।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः ।
सोऽद्य संग्रामशिरसि सन्नद्धः क्रोधमूर्छितः
किंकरोद्यतदण्डेन मृत्युनाऽपि व्रजेद्रणम् ।
चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः॥२४
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद्धनञ्जयः ।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद्भीमसमागमात् ॥
निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते ।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं संप्रधारय ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः ॥
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम् ।
अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनं
यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात्प्रभृति हृद्गतः ॥
स वै संपत्स्यते कर्ण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ॥ ३०
हन्ताऽहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्याद्धनञ्जयः ।
युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥
सञ्जय उवाच ।
ततः प्रायाद्रथेनाशु शल्यस्तत्र विशांपते ।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम्
ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः ।
उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥ ३३
भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तस्य सैन्यं दुरासदम् ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद्बली ३४



**तानिति** ॥ १ ॥ किं करोद्यतदण्डेन करेणोद्यतो दण्डो येन तेन मृत्युना समः । किंशब्द उपमार्थे ॥ २४ ॥

स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशांपते।
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे॥
ततो मुहूर्ताद्राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत्।
समापतन्तं संप्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृषः॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत्॥ ३७
स विद्धः सूतपुत्रेण च्छादयामास पत्रिभिः॥
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः॥
तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः॥
राजन्मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी॥ ४१
तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत्।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ ४२
ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्च्छितः।
संरंभामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया॥ ४३
स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम्।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत्॥
विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया॥४५
स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः।
अदारयद्रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम्॥ ४६
स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः॥ ४७
ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम्।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम्॥४८
ततः पराजिते कर्णे धार्तराष्ट्रीं महाचमूम्।
व्यद्रावयद्भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान् पुरा॥४९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णापयाने
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

## ५१

धृतराष्ट्र उवाच
सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः॥१॥
कर्णो ह्येको रणे हन्ता पाण्डवान्सृञ्जयैः सह।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः॥ २
पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
ततः परं किमकरोत्पुत्रो दुर्योधनो मम॥ ३
सञ्जय उवाच।
विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान्समभाषत॥ ४
शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे॥ ५
ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा॥६
श्रुतर्वा दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ ७
दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ।
धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च जलसन्धः शलः सहः॥ ८
एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः।
भीमसेनं समासाद्य समन्तात्पर्यवारयन्॥ ९
ते व्यमुञ्चञ्छरव्रातान्नानालिंगान्समन्ततः।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः॥ २०
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप।
रथैः पञ्चदशैः सार्धं पञ्चाशदहनद्रथान्॥११
विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः।
भीमसेनो महाराज तत्पपात हतं भुवि॥१२
सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तथा।
तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो॥ १३
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम्।
ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे।
जहार समरे प्राणान् भीमो भीमपराक्रमः।
तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ॥१५
विकटश्च सहश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप।
ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम्॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि।
हाहाकारस्ततस्तीव्रः संबभूव जनेश्वर॥ १७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

५१
सुदुष्करमिति॥ १॥

वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु ।
तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥ १८
नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद्यमसादनम् ।
ततस्ते प्राद्रवन् भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।
पुत्रांस्ते निहतान्दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥ २०
हंसवर्णान् हयान्भूयः प्रैषयद्यत्र पाण्डवः ।
ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥२१
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ।
स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशांपते ॥२२
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।
दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥
आसीद्बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति ।
ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम् ।
ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः २५
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः संनतपर्वभिः ।
आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥२६
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः ।
ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन्
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् ।
भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम्
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः ।
ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् २९
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च
ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम् ।
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ३१
कर्णस्य निधनाकांक्षी चिक्षेपातिबलो नदन्
तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३२
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः ।
ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ३३
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम् ।
ततो युद्धमभूद्घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३४
हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।
ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः
आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः
घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम् ।

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकैः
प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नगः ।
स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ३८
संचचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ३९
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत्
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाऽहनत् ॥ ४०
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ।
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा
ततो मुहूर्ताद्राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ ४२
विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः ।
गदां गृह्य महाबाहुरपतत्स्यन्दनोत्तमात् ४३
अवप्लुत्य च वेगेन तव सैन्यं विशांपते ।
व्यधमद्गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ४४
नागान्सप्तशतान्राजन्नीषादन्तान्प्रहारिणः ।
व्यधमत्सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परंतपः ४५
दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान्नागानवधीद्बली ४६
ततस्ते प्राद्रवन्भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४७

तान् स सप्तशतान्नागान्
सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने
वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ४८

ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान्पुनः ।
पोथयामास कौन्तेयो द्विपञ्चाशदरिंदमः
तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् ।
न्यहनत्पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम्
प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना ।
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्नावाहितं यथा ५१
ते भीमभयसंत्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दिश ५२
रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्रादिनश्चर्मवर्मिणः ।
भीममभ्यद्रवन्घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ५३

तान्स पञ्चशतान्वीरान्-
सपताकध्वजायुधान् ।
पोथयामास गदया
भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ५४

हरीन्द्रयोः वानरेन्द्रयोर्वालिसुग्रीवयोरित्यर्थः ॥ ३५ ॥

ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसंमताः ।
त्रिसाहस्राभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥
प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदाऽरिहा ।
विविधान्विचरन्मार्गान् गदया समपोथयत् ॥
तेषामासीन्महाञ्छब्दस्ताडितानां च सर्वशः ।
अश्मभिर्विध्यमानानां नगानामिव भारत ॥
एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान् हयोत्तमान् ।
हत्वाऽन्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात्
कर्णोऽपि समरे राजन् धर्मपुत्रमरिंदमम् ।
स शरैश्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥
ततः स प्रद्रुतः संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः ।
अन्वधावत्किरन्बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥६०
राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसी ।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥
सन्निवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः ।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥
भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः ।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥६३
अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम् ।
तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥
विसृजन्तौ शरान्दीप्तान्
विभ्राजेतां मनस्विनौ ।
ताभ्यां वियति राजेन्द्र
विततं भीमदर्शनम् ॥ ६५
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत ।
नैव सूर्यप्रभा राजन्न दिशः प्रदिशस्तथा ६६
प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ।
मध्याह्ने तपतो राजन् भास्करस्य महाप्रभाः
हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपाण्डवयोस्तदा
सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम् ॥
संसक्तान्पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः ।
तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद्विशांपते ६९
उद्धूतानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः ।
ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वाऽन्योन्यं महाहवे ७०
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् ।
ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ७१
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे ७२
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम् ।
आसीन्निनादः सुमहान्बाणौघानां परस्परम्
गर्जतां सागरौघाणां
यथा स्यान्निःस्वनो महान् ।
ते तु सेने समासाद्य
वेगवत्यौ परस्परम् ॥ ७४
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशांपते ॥ ७५
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद्यशः ।
शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः ॥
श्रूयन्ते विविधा राजन्नामान्युद्दिश्य भारत ।
यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा
कर्मतः शीलतो वाऽपि स तच्छ्रावयते युधि ।
तान्दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान्परस्परम् ॥
अभवन्मे मती राजन्नैषामस्तीति जीवितम् ।
तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम् ॥
अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद्भविष्यति ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्कौरवाश्च महारथाः
ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम्

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

सञ्जय उवाच ।
क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥ १
रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः ।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

क्षत्रिया इति ॥ १ ॥

गदानां परिघाणां च
कणपानां च क्षिप्यताम् ।
प्रासानां भिन्दिपालानाम्
भुशुण्डीनां च सर्वशः ॥ ३
संपातं चानुपश्याम संग्रामे भृशदारुणे ।
शलभा इव संपेतुः शरवृष्ट्यः समंततः ॥ ४
नागान्नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम्
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा ॥ ५
पत्तयः पत्तिसंघांश्च हयसंघांश्च पत्तयः ।
पत्तयो रथमातङ्गान् रथा हस्त्यश्वमेव च ॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप ।
वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम्
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा ।
रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी॥
शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा ।
यथा वा वाससी शुक्ले महारजनरञ्जिते ॥ ९
बिभृयाद्युवती श्यामा तद्वदासीद्वसुन्धरा ।
मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव च ॥१०
भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह
कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत ॥
निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनां
चर्मणां सपताकानां सङ्घास्तत्रापतन्भुवि ॥
गजा गजान्समासाद्य विषाणैरार्दयन्नृप ।
विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव ।
यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमंडिताः
तोमरान् सादिभिर्मुक्ता-
न्प्रतीपानास्थितान् बहून् ।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा
बभञ्जुश्चापरे तथा ॥ १५
नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः
हिमागमे यथा राजन् व्यभ्रा इव महीधराः
शरैः कनकपुङ्खैश्च चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः ।
उल्काभिः संप्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥
केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः ।
विनेशुः समरे तस्मिन्पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १८
अपरे प्राद्रवन्नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः ।
प्रतिमानैश्च कुंभैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १९
विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान्रवान् ।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुक्रुशुश्चापरे गजाः ॥ २०
हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः ।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २१
अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले ।
भावान्बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥
नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष ।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥
धावमानान्परांश्चान्ये दृष्ट्वाऽन्ये तत्र भारत ।
गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥
तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥
निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः ।
वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः
ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशांपते।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥
वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम् ।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परं
भौमेन रजसाकीर्णे शस्त्रसंपातसंकुले ।
नैव स्वे न परे राजन् व्यज्ञायन्त तमोवृताः
तथा तदभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
लोहितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत्
शीर्षपाषाणसंछन्नाः केशशैवलशाद्वलाः ।
अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥
मांसशोणितपंकिन्यो घोररूपाः सुदारुणाः
नदीः प्रवर्तयामासुः शोणितौघविवर्धिनीः ॥
भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्धनाः ।
ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम्
अवगाढान्मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन् भयं
क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम् ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समंततः
नृत्यन्ति वै भूतगणाः सुतृप्ता मांसशोणितैः
पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत

वृष्ट्यः वृष्ट्यः ॥ ४ ॥ नगनिभोपमाः नगेषु नितरां भान्ति ते नगनिभाः पर्वतोत्तमास्ते उपमा येषामित्यर्थः ॥ १८ ॥ धनुःशरगदा एव भास्वरत्वादुडुवन्नक्षत्रसदृशीः पान्तीत्युडुपाः धनुरादिवदुडुपाः शोभा यासां ता इति वा । ' उडुपस्तु प्लवे चन्द्रे प्रतापे स्वेदतेजसोः । शोभायां च ' इति विश्वः ॥३१॥ अगणेयानि गणयितुमशक्यानि ॥ ३५ ॥

मेदोमज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव ह ।
धावमानाः स्म दृश्यन्ते काकगृध्रबकास्तथा
शूरास्तु समरे राजन् भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजं
योधव्रतसमाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत्॥
शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले ।
व्यचरन्त रणे शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम्
अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो
श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योधा विशांपते ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्ति-तोमर-पट्टिशैः
वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे ।
व्यषीदत्कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे४२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

सञ्जय उवाच ।
वर्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने ।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥
संशप्तकानां कदनमकरोद्यत्र पाण्डवः ।
कोसलानां तथा राजन्नारायणबलस्य च ॥
संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः ।
अपातयन्पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥
ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन्प्रभुः ।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन्रथिनां वरान्॥
विगाह्य तद्रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम् ॥
स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः ।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ॥६
सुशर्मा तु ततः पार्थं विद्ध्वा दशभिराशुगैः
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद्दक्षिणे भुजे ॥ ७
ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष ।
स वानरवरो राजन्विश्वकर्मकृतो महान्॥८
ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च ।
कपेस्तु निनदं श्रुत्वा संत्रस्ता तव वाहिनी॥
भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत ।
ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टाऽवस्थिता नृप
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम् ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ॥
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव ।
परिवव्रुस्ततः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥१२
निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः ।
ते हयान् रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष ॥
निग्रहीतुमुपाक्रामन् क्रोधाविष्टाः समन्ततः ।
निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥
निगृह्य बलवत्सर्वे सिंहनादमथानदन् ।
अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥ १५
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा ।
केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन् रणमूर्धनि ॥
पातयामास तान्सर्वान्दुष्टहस्तीव हस्तिपान्
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥ १७
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम् ।
रथारूढांस्तु सुबहून्पदातींश्चाप्यपातयत् ॥१८
आसन्नांश्च तथा योधान् शरैरासन्नयोधिभिः
छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत् ॥ १९
पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान्बहून्।
कुर्वाणान्दारुणं कर्म वध्यमानान्सहस्रशः॥
रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥ २१
इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत् ।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी॥
तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी ।
सञ्चचाल महाराज वित्रस्ता चाद्रवद्भृशम्॥
पादबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा ।
नागमस्त्रं महाराज संप्रकीर्य मुहुर्मुहुः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३
वर्तमाने इति ॥ १ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टाश्चाभवन् राजन्नश्मसारमया इव ॥
निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत्पाण्डुनन्दनः ।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥
ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम् ।
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः ॥
ते बद्धाः पादबन्धेन न शेकुश्चेष्टितुं नृप ।
ततस्तानवधीत्पार्थः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२८
सर्वयोधा हि समरे भुजगैर्वेष्टिता भवन् ।
यानुद्दिश्य रणे पार्थः पादबन्धं चकार ह ॥
ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहिनीं
सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥३०
ततः सुपर्णाः संपेतुर्भक्षयन्तो भुजङ्गमान् ।
ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान् खचरान्नृप ॥
बभौ बलं तद्विमुक्तं पादबन्धाद्विशांपते ।
मेघवृन्दाद्यथा मुक्तो भास्करस्तापयन्प्रजाः ॥
विप्रमुक्तास्तु ते योधाः फाल्गुनस्य रथं प्रति।
ससृजुर्बाणसंघांश्च शस्त्रसंघांश्च मारिष ॥ ३३
विविधानि च शस्त्राणि प्रत्यविध्यन्त सर्वशः
तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः ॥
*न्यवधीच्च ततो योधान्वासविः परवीरहा ।
सुशर्मा तु ततो राजन्बाणेनानतपर्वणा ॥ ३५
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे हतः पार्थ इति स्म ह ।
ततः शंखनिनादाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः
नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः ।
ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष ॥
सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त निघ्नन्ति तव वाहिनीम्
हयान् रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥
वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत् ।
संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत ॥
न हि तत्र पुमान्कश्चिद्योऽर्जुनं प्रत्यविध्यत ।
पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव ॥ ४२
हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टं स्म पराक्रमे ।
अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे ॥
व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्
चतुर्दश सहस्राणि यानि शिष्टानि भारत ॥
रथानामयुतं चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः ।
ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ४५
मर्तव्यमिति निश्चित्य जयं वाप्यनिवर्तनम् ।
तत्र युद्धं महच्चासीत्तावकानां विशांपते ।
शूरेण बलिना सार्धं पाण्डवेन किरीटिना४६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

सञ्जय उवाच ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः १
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जह्रुः स्म वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे २
ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ३
कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे ।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ४
शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद्द्विजपुङ्गवम् ॥ ५
कृपस्तु शरवर्षं तद्विनिहत्य महास्त्रवित् ।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः
ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे ।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७
ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः ८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥
* न्यवधीच्च ततो राजन् बाणेनानतपर्वणा । इति पाठान्तरम् ।

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥ ९
तमापतन्तं सहसा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०
तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा ।
निश्चेष्टस्तद्रणे राजञ्छिखण्डी समतिष्ठत ११
कृपेण च्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तमशिखण्डिनम् ।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १२
धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः ॥ १३
युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
सपुत्रं सहसैन्यं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत् १४
नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन् ॥ १५
भीमसेनं करूषांश्च केकयान्सह सृञ्जयैः ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत १६
शिखण्डिनस्ततो बाणान्कृपः शारद्वतो युधि
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष
ताञ्छरान्प्रेषितांस्तेन समन्तात्स्वर्णभूषितान्
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः १८
शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत ।
व्यधमत्सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः १९
स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत् ।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः २०
शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः ।
चित्रकेतुसुतो राजन्सुकेतुस्त्वरितो ययौ २१
विकिरन्ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः ।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति २२
दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम २३
सुकेतुस्तु ततो राजन्
गौतमं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या
पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २४
अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत् २५
गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् २६
स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे ।
भूमिकंपे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम्
चलतस्तस्य कायात्तु
शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं
क्षुरप्रेण त्वपातयत् ॥ २८
तच्छिरः प्रापतद्भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम् ।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात्प्रापतदच्युत ॥
तस्मिन् हते महाराज त्रस्तास्तस्य पुरोगमाः
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ३०
धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः ।
कृतवर्माऽब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥ ३१
तदभूत्तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे ।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ३२
धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन् हृदिकात्मजम्
कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः ।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ३४
सरथश्छादितो राजन् धृष्टद्युम्नो न दृश्यते ।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः
विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः ।
व्यरोचत रणे राजन् धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ३६
ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत्पृतनापतिः ॥ ३७
तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्योऽवारयद्युधि ॥ ३८
दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९
सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद्यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ४०
धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम् ।
कौरवान्समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ४१
ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् ।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्तत ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

सञ्जय उवाच ।
द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् ।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्तत हृष्टवत् ॥ १
किरन्निषुगणान् घोरान्
स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
दर्शयन् विविधान् मार्गान्
शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ॥ २
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ।
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित् ॥ ३
द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किंचन ।
बाणभूतमभूत्सर्वमायोधनशिरो महत् ॥ ४
बाणजालं दिवि च्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥ ५
तेन च्छन्ने नभो राजन्बाणजालेन भास्वता ।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६
तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे ।
न स्म संपतते भूतं किंचिदेवान्तरिक्षगम् ७
सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः ।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ८
लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदीक्षितुम् ।
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम् ।
वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः १०
सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि संगताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ।
सात्यकिः सप्तविंशत्या
द्रौणिं विद्ध्वा शिलीमुखैः ॥
पुनर्विव्याध नाराचैः
सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२
युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः १४
स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्राविध्यत शिलीमुखैः
श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
तथेतरांस्ततः शूरान्द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत्
श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः
अथान्यद्धनुरादाय श्रुतिकीर्तिर्महारथः १८
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा
विव्याधान्यैः शितैः शरैः ।
ततो द्रौणिर्महाराज
शरवर्षेण मारिष ॥ १९
छादयामास तत् सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।
ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् २०
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन्विव्याध च शरैस्त्रिभिः
ततो धर्मसुतो राजन्प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः २१
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे ॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन
धनुश्छित्त्वाऽनदद्भृशम् ।
छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः
शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ २३
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद्द्रुतम् ।
अथान्यद्धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान्२४
शैनेयं शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ॥
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ।
युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम्२६
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।
आगच्छमानांस्तान्दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान्परंतपः २७
प्रहसन्प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ।
ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः २८
द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने ।
तद्बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् २९
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् ।
दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ३०
निहतान्मेनिरे सर्वान्पाण्डून् द्रोणसुतेन वै ।
युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणशिष्यो महारथः ॥

अब्रवीद्द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः ।
नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ३२
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि ।
ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ३३
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान्ब्राह्मणब्रुवः ।
मिषतस्ते महाबाहो युधि जेष्यामि कौरवान्
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् ।
एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ३५
युक्तं तत्त्वं च संचिन्त्य नोत्तरं किञ्चिदब्रवीत्
अनुक्त्वा च ततः किंचिच्छरवर्षेण पांडवम्
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष३७
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् ।
अपयाते ततस्तस्मिन् धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ३८
द्रोणपुत्रस्ततो राजन्प्रत्यगात्स महामनाः ।
ततो युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ३९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पार्थापयाने
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

सञ्जय उवाच ।
भीमसेनं च पाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम् ।
वैकर्तनः स्वयं रुद्ध्वा वारयामास सायकैः
ततस्तु चेदिकारूषान्सृञ्जयांश्च महारथान् ।
कर्णो जघान समरे भीमसेनस्य पश्यतः २
भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम् ।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ३
सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान्केकयांस्तथा ।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान्निजघान सहस्रशः ४
संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः ।
पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५
ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः ।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ६
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः ।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥७
ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप ।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ८
नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः
जघान समरे राजन् सहदेवश्च पञ्चभिः ९
तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
ततो पराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत ।
यमयोः सहसा राजन्विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥
तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे ।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि १२
ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि ।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाऽचलम् १३
ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः ।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः१४
धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत ।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ।
आच्छादयन्दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवो यथा
बाणभूते ततस्तस्मिन्संछन्ने च नभस्तले १६
यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम् ।
पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः १७
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे ।
ततः सेनापती राजन्पाण्डवस्य महारथः १८
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।
माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः ।
तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २०
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन् पुरुषर्षभः ।
ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २१

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

भीमसेनमिति ॥ १ ॥

विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं
षष्ट्या पञ्चभिरेव च ।
तथाऽस्य सशरं चापं
हस्तावापं च मारिष ॥ २२
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ।
प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद्रुधिरेक्षणः ॥ २४
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ।
स पञ्चदश नाराचान् श्वसतः पन्नगानिव ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत ।
ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः
विविशुर्वसुधां वेगात्कङ्कबर्हिणवाससः ।
सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत
वसन्तकाले सुमहान् प्रफुल्ल इव किंशुकः ।
स छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ २८
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥
सायकैर्दशभी राजन् भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।
तस्य तेऽशोभयन्वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ॥
प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद्भ्रमरा मधुलिप्सवः ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।
ततो दुर्योधनस्याश्वान् हत्वा सूतं च पञ्चभिः
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ।
रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ।
तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥ ३५
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ ।
तमारोप्य रथे राजन्दण्डधारो जनाधिपः ॥
अपाहरदसंभ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ।
कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे ।
तं पृष्ठतोऽभ्ययात्तूर्णं शैनेयो वितुदञ्छरैः ॥
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः
स भारत महानासीद्योधानां सुमहात्मनाम्
कर्णपार्षतयोर्मध्ये
त्वदीयानां महारणः ।

न पाण्डवानां नास्माकं
योधः कश्चित्पराङ्मुखः ॥ ४०
प्रत्यदृश्यत्ततः कर्णः पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
तस्मिन् क्षणे नरश्रेष्ठ गज-वाजि-जनक्षयः ॥
प्रादुरासीदुभयतो राजन्मध्यगतेऽहनि ।
पञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः
ते सर्वेऽभ्यद्रवन्कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ।
तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान्मनस्विनः
विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान् ।
व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम् ॥
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।
ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥ ४५
सृजन्तं सायकान् क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम्
युध्यमानांस्तु तान्शूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान्॥
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः
अथापरान्महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥४७
जघान बहुसाहस्रान् योधान्युद्धविशारदान्
जिष्णुं च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥
दण्डं च राजन्समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम्
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम् ॥
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ।
तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥ ५०
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत्
तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥
सर्वतोऽभ्यद्रवन् भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम्
निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः ॥ ५२
कुर्वन्तो विविधान्नादान्वज्रनुन्ना इवाचलाः
गज-वाजि-मनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥
रथैश्चाधिरथेर्मार्गे
समास्तीर्यत मेदिनी ।
नैवं भीष्मो न च द्रोणो
नान्ये युधि च तावकाः ॥ ५४
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ।
सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥ ५५
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत् ।
मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ॥
पञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत्
यथा मृगगणांस्त्रस्तान्सिंहो द्रावयते दिशः
पञ्चालानां रथव्रातान्
कर्णो व्यद्रावयत्तथा ।
सिंहास्यं च यथा प्राप्य
न जीवन्ति मृगाः क्वचित् ॥ ५८

तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः ।
वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः
कर्णाग्निना वने तद्वद्दग्धा भारत सृञ्जयाः ।
कर्णेन चेदिकैकेयपाञ्चालेषु च भारत ॥ ६०
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसंमताः ।
मम चासीन्मती राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्
नैकोप्याधिरथेर्जीवन्पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि
पञ्चालान्व्यधमत्संख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः ॥
पञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥
धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष ।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥ ६४
शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा ।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६५
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नश्च संयुगे ।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥ ६६
तांस्तत्राधिरथिः संख्ये चेदिपाञ्चालपांडवान्
एको बहूनभ्यपतद्गरुत्मान्पन्नगानिव ॥ ६७
तैः कर्णस्याभवद्युद्धं घोररूपं विशांपते ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥६८
तान् समेतान्महेष्वासान् शरवर्षौघवर्षिणः ।
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥६९
भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह ।

सर्वतोऽभ्यहनत्क्रुद्धो
यमदण्डनिभैः शरैः ।
बाह्लीकान्केकयान्मत्स्यान्
वासात्यान्मद्रसैन्धवान् ॥ ७०

एकः संख्ये महेष्वासो योधयन्बह्वशोभत ।
तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ॥
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ।
वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।
सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पातितायुधाः ॥
ते क्षताः समदृश्यन्त भीमभीता गतासवः ।
रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाऽभवत्
तत्स्तम्भितमिवातिष्ठद्भीमसेनभयार्दितम् ॥
दुर्योधनबलं सर्वं निरुत्साहं कृतव्रणम् ।
निश्चेष्टं तुमुलं दीनं बभौ तस्मिन्महारणे ॥७६
प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात्सागरो नृप ।
तद्वत्तव बलं तद्वै निश्चलं समवस्थितम् ॥
मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात्प्रत्यवरोपितम् ।
अभवत्तव पुत्रस्य तत्सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥
तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥ ७९
जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।
सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥
भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्तौ विरेजतुः ।
वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥ ८१
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान्बहून् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥
प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन ।
एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः ॥
अपारयन्तो मद्बाणान्सिंहशब्दं मृगा इव ।
दीर्यते च महत्सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥
हस्तिकक्षो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥
न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः ।
जानीते हि भवान् कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥
तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम् ।
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम् ८७
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव॥
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव ।
ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः ८९
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ ।
केशवप्रेरितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः ॥ ९०
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत ।
मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो वानरध्वजः ९१

चलत्पताकस्तां सेनां
विमानं द्यामिवाविशत् ।
तौ विदार्य महासेनां
प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥ ९२

क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ विभ्राजेतां महाद्युती ।
युद्धशौण्डौ समाहूतावागतौ तौ रणाध्वरम्
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ
क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ योगवन्तौ बभूवतुः ९४
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महावने ।
विगाह्य तु रथानीकमश्वसङ्घांश्च फाल्गुनः ९५
व्यचरत्पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः ।
तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ९६

संशप्तकगणान्भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत् ।
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ९७
चतुर्दशसहस्रैस्तु
तुरगाणां महाहवे ।
द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां
पदातीनां च धन्विनाम् ॥ ९८
शूराणां लब्धलक्षाणां
विदितानां समन्ततः ।
अभ्यवर्तन्त कौन्तेयं
छादयन्तो महारथाः ॥ ९९
शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम् ।
स च्छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः १००
दर्शयन् रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः ।
निघ्नन्संशप्तकान्पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् १
ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः ।
निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना २
किरीटिभुजनिर्मुक्तैः संपतद्भिर्महाशरैः ।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥ ३
रुक्मपुङ्खान्प्रसन्नाग्राञ्छरान्सन्नतपर्वणः ।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ४
मही वियद्दिशः सर्वाः
समुद्रा गिरयोऽपि वा ।
स्फुटन्तीति जना जज्ञुः
पार्थस्य तलनिःस्वनात् ॥ ५
हत्वा दशसहस्राणि पार्थिवानां महारथः ।
संशप्तकानां कौन्तेयः प्रत्यक्षं त्वरितोऽभ्ययात्
प्रत्यक्षं च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम्
प्रममाथ बलं बाणैर्दानवानिव वासवः ॥ ७
प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम् ।
शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत
अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन् भुवि ।
विष्वग्वाताभिसंभग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः
हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान्निघ्नन्तमर्जुनम् ।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याऽभ्यवीवृषत् १०
तस्यास्यतोऽर्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसन्निभौ
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः ११
स पपात ततो वाहात्स्वलोहितपरिस्रवः ।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् १२
सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम् ।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम् ॥ १३
काञ्चनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा ।
ततोऽभवत्पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥१४
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युध्यताम् ।
एकेषुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः ॥ १५
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद्विशांपते ।
रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥ १६
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥
तस्मिन्प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना ।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥
विधुन्वानो महच्चापं
कार्तस्वरविभूषितम् ।
आददानः शरान् घोरान्
स्वरश्मीनिव भास्करः ॥ १९
क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किंकरदण्डभृत्
ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि सङ्घशः ।
तैर्विसृष्टैर्महाराज व्यद्रवत्पाण्डवी चमूः २१
स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशांपते ।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष २२
तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
सञ्छादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनञ्जयौ २३
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैरश्वत्थामा प्रतापवान् ।
निश्चेष्टौ तावुभौ युद्धे कृत्वा माधवपाण्डवौ ॥
हाहाकृतमभूत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा ।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः २५
सिद्धचारणसंघाश्च संपेतुस्ते समन्ततः ।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च
न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः ।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः ॥
द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे ।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य निनदो यथा ॥
ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः ।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साऽभवत्२९
स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः ।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्षन्तं द्रोणजं ततः ॥ ३०
विक्रमं विहतं मेने आत्मनः स महायशाः ।
तस्यास्य समरे राजन्वपुरासीत्सुदुर्दृशम् ॥ ३१

किं करदंडं बिभर्ति किंकरनामानं वा दंडं बिभर्ति सः ॥ १२० ॥

द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥ ३२
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत्
स रोषान्निःश्वसन् राजन्निर्दहन्निव चक्षुषा॥
द्रौणिं ह्यपश्यत्संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।
ततः क्रुद्धोऽब्रवीत्कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा३४
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत३५
कच्चिद्वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव।
कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन
कच्चित्कुशलिनो बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे॥३७
गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम्॥
एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत्॥
ध्वजं छत्रं पताकाश्च रथं शक्तिं गदां तथा।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥४०
स मूर्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम्४१
अपोवाह रणात्सूतो रक्षमाणो धनंजयः
एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः॥४२
न्यहनत्तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः।
पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य भारत ४३
एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन् दुर्मन्त्रिते तव४४
संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः।
वसुषेणश्च पञ्चालान् क्षणेन व्यधमद्रणे ४५
वर्तमाने तथा रौद्रे राजन्वीरवरक्षये।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः४६
युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः।
क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तमः ॥१४७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

## ५७

सञ्जय उवाच।
दुर्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ।
अब्रवीन्मद्रराजं च तथैवान्यांश्च पार्थिवान्॥
यदृच्छयैतत्संप्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम्२
सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युध्यतां युधि
इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ३
हत्वा च पाण्डवान्युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ
निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ४
दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः।
हृष्टा नादानुदक्रोशन्वादित्राणि च सर्वशः५
ततः प्रमुदिते तस्मिन् दुर्योधनबले तदा।
हर्षयंस्तावकान्योधान् द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ६
प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवतां चापि पश्यताम्
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ७
स तेनाहममर्षेण मित्रार्थं चापि पार्थिवाः।
सत्यं वः प्रतिजानामि तद्वाक्यं मे निबोधत
धृष्टद्युम्नमहत्वाऽहं न विमोक्ष्यामि दंशनम्।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥९
अर्जुनो भीमसेनश्च योधो यो रक्षिता रणे।
धृष्टद्युम्नस्य तं संख्ये निहनिष्यामि सायकैः॥
एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारती चमूः।
अभ्यद्रवत कौन्तेयांस्तथा ते चापि पाण्डवाः
स संनिपातो रथयूथपानां
बभूव राजन्नतिभीमरूपः।
जनक्षयः कालयुगान्तकल्पः
प्रावर्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम्॥ १२
ततः प्रवृत्ते युधि संप्रहारे
भूतानि सर्वाणि सदैवतानि।
आसन्समेतानि सहाप्सरोभि-
र्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान्॥ १३

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

५७

दुर्योधन इति॥ १॥ पांडवा अपि कौरवान्-भ्यद्रवंतेति शेषः ॥११॥ कालयुगान्तः महाप्रलयः ॥१२॥

दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धै-
र्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान् ।
रणे स्वकर्मोद्वहतः प्रवीरा-
नवाकिरन्नप्सरसः प्रहृष्टाः ॥ १४
समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान्
सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान् ।
निषेव्यमाणास्त्वनिलेन योधाः
परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः ॥ १५
सा दिव्यमाल्यैरवकीर्यमाणा
सुवर्णपुङ्खैश्च शरैर्विचित्रैः ।
नक्षत्रसङ्घैरिव चित्रिता द्यौः
क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा ॥ १६
ततोऽन्तरिक्षादपि साधुवादै-
र्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः ।
ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः
समाकुलः सोऽभवत्संप्रहारः १७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामप्रतिज्ञायां
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

सञ्जय उवाच
एवमेष महानासीत्संग्रामः पृथिवीक्षिताम्
क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे १
द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान्महारथान्
अब्रवीदर्जुनो राजन्वासुदेवमिदं वचः ॥ २
पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम्
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान् ३
न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते ४
त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन ।
न च मां धार्तराष्ट्रेषु कश्चिद्युध्यति संयुगे ॥
तस्मात्त्वं मत्प्रियं कुर्वन्याहि यत्र युधिष्ठिरः ।
दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥ ६
पुनर्योद्धाऽस्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे ।
ततः प्रायाद्रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः ७
यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः ।
अयुध्यंस्तावकैः सार्धं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविंदः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥
पश्य पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान् ॥
पश्य भारत चापानि
रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
मृतानामपविद्धानि
कलापांश्च महाधनान् ॥ ११
जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान् निर्मुक्तान्पन्नगानिव
हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान्
जातरूपपरिष्कृतान् ।
वर्माणि चापविद्धानि
रुक्मगर्भाणि भारत ॥ १३
सुवर्णविकृतान् प्रासान् शक्तीः कनकभूषणाः
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः १४
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषणान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान्
अयःकुन्तांश्च पतितान्
मुसलानि गुरूणि च ।
शतघ्नीः पश्य चित्राश्च
विपुलान्परिघांस्तथा ॥ १६
चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे ।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥

---

स्वकर्म आभिमुख्येन प्रहारसहनादि उद्वहतो निर्वोढॄन् ॥१४॥ समीरणः सिषेवेत्यन्वयः । परस्परं घ्नन्ति ते परस्परघ्ना मारिता इत्यर्थः ॥१५॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७॥

५८

एवमिति ॥ १ ॥

जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः।
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान्॥ १८
गज-वाजि-रथक्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः
मनुष्य-हय-नागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः १९
परिघैरायसैर्घोरैरयस्कुन्तैः परश्वधैः।
शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः॥
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः।
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः २१
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी।
साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलङ्कृतैः॥
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम्।
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः २३
पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुन्धरा।
कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः।
रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान्
वाजिनश्च हतान्पश्य
निष्कीर्णान्त्रान् शराहतान्।
अनुकर्षानुपासङ्गान्
पताका विविधध्वजान्॥ २६
रथिनां च महाशंखान्
पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्।
निरस्तजिह्वान् मातङ्गान्
शयानान् पर्वतोपमान्॥ २७
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजवाजिनः।
वारणानां परिस्तोमांस्तथैवाजिनकम्बलान्॥
विपाटितविचित्रांश्च
रूप्यचित्रान् कुथाङ्कुशान्।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टा
महद्भिः पतितैर्गजैः॥ २५
वैदूर्यदण्डांश्च शुभान्
पतितानङ्कुशान्भुवि।
बद्धाः सादिभुजाग्रेषु
सुवर्णविकृताः कशाः॥ ३०
विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान्।
अश्वास्तरपरिस्तोमान्राङ्कवान्पतितान् भुवि
चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च॥

चन्द्र-नक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलङ्कृतैः॥
वदनैः पश्य संछन्नां महीं शोणितकर्दमाम्।
सजीवांश्चापरान्पश्य कूजमानान्समंततः॥
उपास्यमानान् बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशांपते
ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः ३५
व्युत्क्रान्तानपरान्योधां-
श्छादयित्वा तरस्विनः।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति
जयगृद्धाः प्रमन्यवः॥ ३६
अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम्
जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन
सन्निवृत्ताश्च ते शूरास्तान्वै दृष्ट्वा विचेतसः
जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति
क्रोशमानाः परस्परम्।
जलं पीत्वा मृतान्पश्य
पिबतोऽन्यांश्च मारिष॥ ३९
परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान्बान्धवप्रियाः
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे४०
तथा पराम्नरश्रेष्ठ सन्दष्टौष्ठपुटान्पुनः।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान्समन्ततः॥ ४१
एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः।
अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे॥ ४२
याहि याहीति गोविन्दं मुहुर्मुहुरचोदयत्।
तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः
त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम्।
पश्य पांडव राजानमुपयातांश्च पार्थिवान्
कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम्।
असौ भीमो महेष्वासः सन्निवृत्तो रणं प्रति
तमेते विनिवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
पञ्चालसृञ्जयानां च पाण्डवानां च ये मुखम्
निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत्।
कौरवान्द्रवतो ह्येष कर्णो रोधय तेऽर्जुन॥
अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः।
असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः
तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः।
अनुप्रयाति संग्रामे हतान्पश्य च सृञ्जयान्॥

किंकिणिनः किंकिणीमन्तः व्रीह्यादित्वादिनिः॥ २५॥ प्रकीर्णकान् चामरान् 'प्रकीर्णकं चामरे स्याद्विस्तरे ना तुरंगमे' इति मेदिनी॥ २७॥

सर्वमाह सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने।
ततो राजन्महाघोरः प्रादुरासीन्महारणः ॥
सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन्समागमे।
उभयोः सेनयो राजन् मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते।
तावकानां परेषां च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥५२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वासुदेववाक्ये
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

सञ्जय उवाच।
ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥
ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः॥ २
तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके।
संशप्तकेषु शूरेषु किंचिच्छिष्टेषु भारत ॥ ३
धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः।
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४
आगच्छमानांस्तान्संख्ये प्रहृष्टान्विजयैषिणः
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥ ५
समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः।
यथाचलं समासाद्य वार्योघाः सर्वतोदिशम्
तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः।
धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥ ७
ताडयामास समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
विजयं च धनुःश्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ॥
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान्
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः ॥९
ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महात्मनः।
शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ
तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः।
अथान्यद्धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः सन्नतपर्वभिः।
तथैव राजन्कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ॥
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः।
द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः
तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥
तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशांपते।
चिच्छेद शतधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत्
दृष्ट्वा विनिहतं बाणं शरैः कर्णो विशांपते।
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयत् ॥
विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः।
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमपरिष्कृतैः ॥ १७
ततो युद्धं महाराज चक्षुःश्रोत्रभयानकम्।
आसीद्घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥
सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षोऽभ्यजायत।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप ॥ १९
एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात्सुमहाबलम्।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ २०
अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरंजयः।
तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥
इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥ २२
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः।
यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥
स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु।
जवेनाभ्याययौ द्रौणिं कालः कालमिव क्षये
द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम्।
क्रोधेन निःश्वसन्वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥
तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरंभं जग्मतुः परम्।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

५९

ततः पुनः समाजग्मुरिति ॥ १ ॥

धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशांपते ।
पञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे
पापं हि यत्त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम्
अद्य त्वां तप्स्यते तद्वै यथा न कुशलं तथा ॥
अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे ।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे ।
यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे
न हनिष्यामि विक्रमात् ।
एवमुक्त्वा महाराज
सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३
निशितेनातिबाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः ।
ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥
आच्छादयद्दिशो राजन् धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समंततः
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः ।
तथैव पार्षतो राजन् द्रौणिमाहवशोभिनम्
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान्सह पाण्डवैः
द्रौपदेयान्युधामन्युं सात्यकिं च महारथम् ।
एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः॥३८
धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥
वेगवान्समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजं
हयान्सूतं रथं चैव निमेषाद्व्यधमच्छरैः ।
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ।
द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४३
धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम् ।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ॥ ४४
नाशकद्भरतश्रेष्ठ
यतमानो महारथः ।
तस्यान्तमिषुभी राजन्
यदा द्रौणिर्न जग्मिवान् ॥ ४५
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः
पार्षतं त्वरितोऽन्वगात् ।
आसीदाप्लवतो वेग-
स्तस्य राजन्महात्मनः ॥ ४६
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः ॥
तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन ।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥४९
एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रैषयत्तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥ ५०
ते हयाश्चन्द्रसंकाशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥
दृष्ट्वाऽऽयातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन्महाबलः ॥ ५२
विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर ।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः॥
ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम् ।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः॥
स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रौणपुत्रः प्रतापवान् ।
उत्सृज्य समरे राजन्पाञ्चाल्यममितौजसम्
रथमारुरुहे वीरो धनञ्जयशरार्दितः ।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप ।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥५७
अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥
क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसंमितम्
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥५९
ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः ।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥ ६०
निषसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ ।
ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद्विजयं धनुः
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ६२
विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः ।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात्॥
अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जितकाशिभिः ।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥

वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः
सिंहनादांश्च चक्रुस्ते दृष्ट्वा संख्ये तदद्भुतम् ॥
एवं कृत्वाऽब्रवीत्पार्थो वासुदेवं धनञ्जयः ।
याहि संशप्तकान् कृष्ण कार्यमेतत्परं मम ॥
ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम्
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्रौण्यपयाने
ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

सञ्जय उवाच ।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत् ।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥१
एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥ २
तं चानुयान्ति संरब्धाः पञ्चाला युद्धदुर्मदाः
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ३
एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥
जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली ।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥५॥
एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः ।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥ ६
पश्य सात्वतभीमाभ्यां
निरुद्धाधिष्ठिताः पुनः ।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः
शक्राग्निभ्यामिवासकृत् ॥ ७
एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम्
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥
नदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान्
बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥
मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हुतमग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥१०
यथाविधमनीकं तु धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव ।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत संप्राप्तो बाणगोचरम्
दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघान् शीघ्रमस्यतः ।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद्रणे ॥१२
दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् १३
कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः ।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥१४॥
राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे ।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥ १५
तस्यैभिर्युध्यमानस्य संग्रामे संशितात्मनः ।
अन्यैरपि च पार्थस्य कृतं कर्म महारथैः ॥ १६
उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तमः ।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः॥
कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः ।
संशयं समनुप्राप्तः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः १८
न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद्भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥ १९
नर्दतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिंदमः ।
धमतां च महाशंखान्संग्रामे जितकाशिनाम्
युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ ।
संचोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान्महाबलान्
स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थपाशुपतेन च ।
प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः ।

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

**एतस्मिन्निति** ॥ १ ॥ नरोत्तमं वदान्यं रत्नोत्तममिति पाठे काञ्चनं तद्धि उत्कृष्टानां मध्येऽप्युत्तमम् ॥ ६ ॥ जिहीर्षवो युधिष्ठिरं हर्तुमिच्छन्तः निरुद्धाः सन्तोऽपि अधिष्ठिताः ॥ ७ ॥ तस्य युधिष्ठिरस्य कर्म कर्तव्यं पराजयाख्यम् एभिर्दुर्योधनादिभिः कृतं निष्पादितम् ॥ १६ ॥ तत्र हेतुः ब्राह्मे बले क्षमायां क्षात्रे बले निष्ठुरत्वे ॥ १७ ॥ हत नाशयतेति कर्णश्चोदयतीति सम्बन्धः ॥ २१ ॥ स्थूणाकर्णो गन्धर्वस्तस्यास्त्रं स्थूणाकर्णं गान्धर्वम् इन्द्रजालमयं तत् ॥ २२ ॥

आतुरो हि कृतो राजा संनिषेव्यश्च भारत।
यथैनमनुवर्तन्ते पञ्चालाः सह पाण्डवैः ॥२३
त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः
न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो।
पञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत॥
एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम्।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः २७
एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः॥
एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहताः शरैः।
आर्तनादान्विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश
रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव समन्ततः।
द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ३०
हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ३१
असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति।
किरञ्शरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम्
एतान्पश्य च पञ्चालान्
द्राव्यमाणान्महारथान्।
शक्रेणेव यथा दैत्यान्
हन्यमानान्महाहवे॥ ३३
एष कर्णो रणे जित्वा पञ्चालान्पांडुसृञ्जयान्
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः३४
पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन्साधु शोभते।
शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसंघैः समावृतः३५
एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
त्रासयन्तो रणे पाण्डून्सृञ्जयांश्च समन्ततः॥
एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद३७
अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः॥
तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः।
एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान्॥
पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम्।
उदयं पर्वतं यद्वच्छशाङ्केनाभिशोभितम् ॥४०

पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्नि च्छत्रेण भारत।
ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना॥४१
एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशांपते।
उत्तमं जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ४२
पश्य ह्येनं महाबाहो विधुन्वानं महद्धनुः।
शरांश्चाशीविषाकारान्विसृजन्तं महारणे॥
असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम्।
प्रार्थयन्समरे पार्थ त्वया सह परंतप ४४
वधाय चात्मनोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा
कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत। ४५
रिरक्षिषुः सुसंवृत्तो धार्तराष्ट्रो निवर्तते।
सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतां च प्रयत्नतः४६
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता।
अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्यमानयोः ४७
देवासुरे पार्थमृधे देवदानवयोरिव।
पश्यन्तु कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम्॥
त्वां च दृष्ट्वाऽतिसंरब्धं कर्णं च भरतर्षभ।
असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते॥४९
आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे।
प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम्॥५०
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम्।
पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम॥
शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम्
पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा॥
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च।
अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते॥
द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं संनिषूदय।
निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम्॥
सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना।
उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ॥ ५५
असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति।
केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति॥ ५६
समुपैष्यति पञ्चालानिति मन्ये परंतप।
आचचक्षे प्रियं पार्थ तवेदं भरतर्षभ॥ ५७
राजाऽसौ कुशली श्रीमान्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः
असौ भीमो महाबाहुः सन्निवृत्तश्चमूमुखे॥

निषेव्यः चिकित्सकैराराध्यः संनिषण्ण इति पाठे अवसन्नः ॥२३॥ हास्तिकक्ष्यां केतुमिति सम्बन्धः ॥ ३१ ॥ छत्रेणोपलक्षितः ॥ ४१ ॥ प्रार्थयन्युद्धमिति शेषः ॥४४॥ युवयोः कर्णार्जुनयोः ॥ ४७ ॥

वृतः सृञ्जयसैन्येन शैनेयेन च भारत।
वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः॥
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः।
सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा विक्षरद्व्रणा॥
विप्रधावति वेगेन भीमस्याभिहता शरैः।
विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता॥ ६६
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना।
निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम्।
आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम्।
पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः॥
पताका विप्रकीर्यन्ते च्छत्राण्येतानि चार्जुन।
सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः॥
केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते।
रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः॥
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः।
निर्मनुष्यान् गजानश्वान्रथांश्चैव धनञ्जय॥६६
समाद्रवन्ति पञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः।
विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात्॥
बलं परेषां दुर्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम।
एते नर्दन्ति पञ्चाला ध्मापयन्ति च वारिजान्
अभिद्रवन्ति च रणे
मृद्नन्तः सायकैः परान्।
पश्यस्वैषां च माहात्म्यं
पञ्चाला हि पराक्रमात्॥ ६९
धार्तराष्ट्रान्विनिघ्नन्ति
क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान्।
शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां
सायुधानां निरायुधाः॥ ७०
तेनैवैतानमोघास्त्रा निघ्नन्ति च नदन्ति च।
शिरांस्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च
रथ-नाग-हया वीरा यशस्याः सर्व एव च।
सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः॥ ७२
पञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः।
सुभृशं च पराक्रान्ताः पञ्चालानां निवारणे
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः।
भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान् धार्तराष्ट्रान्महारथान्
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून् सहस्रशः।
पञ्चालेष्वभिभूतेषु द्विषद्भिरपभीर्नदन्॥ ७५
शत्रुपक्षमवस्कन्द्य शरानस्यति मारुतिः।
विषण्णभूयिष्ठतरा धार्तराष्ट्री महाचमूः॥ ७६
रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः।
पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि धराभृताम्।
भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः सन्नतपर्वभिः॥
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः
अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम्
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः।
एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ८०
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः
सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः॥
तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः।
हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान्प्रहारिणः ८२
पश्य नीलाम्बुदनिभान्महामात्रैरधिष्ठितान्।
शक्तितोमरसङ्घातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम्॥ ८३
सप्त सप्त च नागांस्तान्वैजयन्तीश्च सध्वजाः
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते
दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः।
न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा॥
पुरन्दरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ।
अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः
क्रुद्धेन भीमसेनेन नरसिंहेन वारिताः॥ ८६
न शक्नुवन्ति वै पार्थं पार्थिवाः समुदीक्षितुम्
मध्यंदिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः॥ ८७
एते भीमस्य संत्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः।
शरैः संत्रासिताः संख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित्

सञ्जय उवाच।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्वासुदेवाद्धनञ्जयः।
भीमसेनेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम्॥८९
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहितान्निशितैः शरैः।
ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ९०
प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा
पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः सन्नतपर्वभिः।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ९२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे
षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

## ६१

धृतराष्ट्र उवाच ।
निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे ।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः १
द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे* मुहुर्मुहुः ।
किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २
सञ्जय उवाच ।
दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन्भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३
तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात्पराङ्मुखम् ।
यत्नेन महता राजन्पर्यवस्थापयद्बली ॥ ४
व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान् युद्धदुर्मदान्
प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं
पाण्डवानां महारथाः ।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ
विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥ ६
भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः ।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान् सर्वे चापि प्रभद्रकाः ७
जिघांसन्तो नरव्याघ्राः
समन्तात् तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः
समरे जितकाशिनः ॥ ८
तथैव तावका राजन्पाण्डवानामनीकिनीम्
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः
रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १०
शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम्११
नकुलो वृषसेनं तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः ।
उलूकं समरे राजन् सहदेवः समभ्ययात्॥१२
सात्यकिः शकुनिं चापि
द्रौपदेयाश्च कौरवान् ।
अर्जुनं च रणे यत्तो
द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३
युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद्रणे ।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४
भीमसेनः कुरून् सर्वान् पुत्रांश्च तव मारिष ।
सहानीकान्महाबाहुरेक एव न्यवारयत् १५
शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥
प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात् प्रस्फुरिताधरः ।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत्
धारयंस्तु स तान्बाणाञ्शिखण्डी बह्वशोभत
राजतः पर्वतो यद्वत्त्रिभिः शृङ्गैरिवोत्थितैः ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे ।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥
तस्य कर्णो हयान् हत्वा
सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य
क्षुरप्रेण महारथः ॥ २०
हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः २१
तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ॥
कर्णचापच्युतान्बाणान्वर्जयंस्तु नरोत्तमः ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः २३
ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत्
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः १४
धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे
तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा ॥ २६
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत २७
आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशांपते २८
अथापरैः सप्तदशैर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् २९
ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ३०
अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ३१

६१
निवृत्त इति ॥ १ ॥ * निराक्रन्दे इति पाठः ।

तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा
विक्रमं सुमहात्मनः।
व्यस्मयन्त रणे योधाः
सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः॥ ३२
धृष्टद्युम्नं न पश्याम घटमानं महाबलम्।
दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महागजम्॥ ३३
ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव॥ ३४
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह।
घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परंतप ३५
नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः।
पितुः समीपे तिष्ठन्वै त्रिभिरन्यैरविध्यत ३६
नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम्॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः
ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी
स दृष्ट्वा प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः।
निवारयामास बलादनुसृत्य विशांपते ४०
निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान् ययौ।
कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु॥ ४१
जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष।
उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः॥ ४२
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान्।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ४३
उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशांपते।
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ४४
सात्यकिः शकुनिं विद्ध्वा
विंशत्या निशितैः शरैः।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन
सौबलस्य हसन्निव॥ ४५
सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन् प्रतापवान्।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम्
तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ४७
अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम्
ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ॥ ४८
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः।
अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद्युद्धशालिनः ४९
सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीं
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत॥ ५०
शैनेयशरसंछन्नं तव सैन्यं विशांपते।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ५१
भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे।
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ५२
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः।
ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात्
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत्।
तत्र नादो महानासीद्भीमसेनं जिघांसताम्॥
युधामन्युः कृपं विद्ध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे
अथान्यद्धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ५५
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत्क्षितौ।
ततोऽपायाद्रथेनैव युधामन्युर्महारथः॥ ५६
उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम्।
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्येव पर्वतम्॥
तद्युद्धमासीत्सुमहद्घोररूपं परंतप।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशांपते॥ ५८
कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे।
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत्॥
सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम्।
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत्॥ ६०
दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम्
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत्॥ ६१
ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम्।
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत् ६२
तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोदरः।
दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत्॥ ६३
गजैर्गजानभ्यहनद्वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।
ततोऽन्तरिक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम्॥
छादयामास समरे गजान्निघ्नन् वृकोदरः।
ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः॥ ६५
व्यधमत्तरसा भीमो मेघसङ्घानिवानिलः।
सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः॥
रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः।
ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन्विदुद्रुवुः॥
केचिद्भिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन् भुवि।
पतितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूषितैः॥ ६८
अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः।
दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ६९
रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः।
ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा॥

दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः।
केचिद्वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः ७१
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः।
महाभुजगसङ्काशौ चन्दनागुरुरूषितौ ॥ ७२
अपश्यं भीमसेनस्य धातुर्विक्षिपतो भुजौ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाऽशनिसमस्वनम्
विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम्।
भीमसेनस्य तत् कर्म राजन्नेकस्य धीमतः।
निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ७४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

सञ्जय उवाच।
ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते।
तिष्ठन्रथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ॥ १
तद्बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे।
व्यक्षोभयदुदीर्णार्श्वं महोदधिमिवानिलः २
दुर्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने।
अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः ३
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम्।
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम्
अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत ५
ततोऽधावन्त कौरव्या
जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम्।
दुष्टभावान्परान्ज्ञात्वा
समवेता महारथाः॥ ६
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ७
अक्षौहिण्या परिवृता-
स्तेऽभ्यधावन् युधिष्ठिरम्।
भीमसेनश्च समरे
मृद्नंस्तव महारथान्॥ ८
अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं शत्रुभिर्वृतम्।
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्कर्णो वैकर्तनो नृप
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान्।
शरौघान्विसृजन्तस्ते प्रेरयन्तश्च तोमरान् ॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि राधेयं प्रतिवीक्षितुम्।
तांश्च सर्वान्महेष्वासान्सर्वशस्त्रास्त्रपारगः॥
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत्।
दुर्योधनं च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदीरयन्।
आविध्यत्तूर्णमभ्येत्य सहदेवः प्रतापवान्।
स विद्धः सहदेवेन रराजाचलसन्निभः॥ १३
प्रभिन्न इव मातङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः
दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः॥ १४
अभ्यधावद्दृढं क्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः।
दुर्योधनं तथा दृष्ट्वा शीघ्रमस्त्रमुदैरयत॥ १५
तेन यौधिष्ठिरं सैन्यमवधीत्पार्षतं तथा।
ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना॥
सहसा प्राद्रवद्राजन् सूतपुत्रशरार्दितम्।
विविधा विशिखास्तत्र संपतन्तः परस्परम्
फलैः पुंखान्समाजग्मुः सूतपुत्रधनुश्च्युताः।
अन्तरिक्षे शरौघाणां पततां च परस्परम्॥
संघर्षेण महाराज पावकः समजायत।
ततो दश दिशः कर्णः शलभैरिव यायिभिः
अभ्यघ्नंस्तरसा राजञ्शरैः परशरीरगैः।
रक्तचन्दनसंदिग्धौ मणिहेमविभूषितौ॥ २०
बाहू व्यत्यक्षिपत्कर्णः परमास्त्रं विदर्शयन्।
ततः सर्वा दिशो राजन्सायकैर्विप्रमोहयन्॥
अपीडयद्भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
ततः क्रुद्धो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥२२
निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः समार्पयत्।
बाणान्धकारमभवत्तद्युद्धं घोरदर्शनम्॥ २३
हाहाकारो महानासीत्तावकानां विशांपते।
वध्यमाने तदा सैन्ये धर्मपुत्रेण मारिष॥ २४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
एकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

६२

तत इति॥ १ ॥

सायकैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः
भल्लैरनेकैर्विविधैः शक्तयृष्टिमुसलैरपि ॥ २५
यत्र यत्र स धर्मात्मा दुष्टां दृष्टिं व्यसर्जयत् ।
तत्र तत्र व्यशीर्यन्त तावका भरतर्षभ ॥ २६
कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे ॥ २७
अमर्षी क्रोधनश्चैव रोषप्रस्फुरिताननः ।
सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमभिद्रवत् ॥ २८
युधिष्ठिरश्चापि †स तं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः।
प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥
उरस्यविध्यद्राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम् ।
स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥
उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत् ।
अक्रोशन्त ततः सर्वे धार्तराष्ट्राः सराजकाः
गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः ।
ततः शताः सप्तदश केकयानां प्रहारिणाम् ॥
पञ्चालैः सहिता राजन् धार्तराष्ट्रान्व्यवारयन्
तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये ॥ ३३
दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

सञ्जय उवाच ।
कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान्
व्यधमत्परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान् ॥ १
तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे ।
रथान् पञ्चशतान्कर्णः प्राहिणोद्यमसादनम् २
अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः ।
भीमसेनमुपागच्छन्कर्णबाणप्रपीडिताः ॥ ३
रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा ।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ४
सेनानिवेशमाच्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम् ।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥ ५
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया ।
सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ ६
तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥७
चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परंतपौ ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति॥
तौ पृथक् शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम् ।
नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ ॥ ९
तथैव तौ प्रत्यविध्यत्सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिन्दमौ
दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान् ।
युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान्हयोत्तमान्
ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत् ।
कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥
तथैव नकुलस्यापि हयान्हत्वा प्रतापवान् ।
ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥
तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ ।
भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा ॥ १४
तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा ।
अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकंपया ॥ १५
योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह ।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः ॥ १६
क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैरारिभिस्तथा॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि ।
एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे ॥ १८
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत् ।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
प्रहस्य समरे कर्णश्चकार विमुखं शरैः ।
ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह ॥ २०
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम् ।
यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ † शतमिति पाठः ।

६३

कर्ण इति ॥ १ ॥

तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम्
शंखयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः
श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह।
असौ निघ्नन्रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः ॥२३
सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे।
पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ ॥२४
उत्तरं चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः।
धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दक्षिणम् ॥
भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते।
यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम्
तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा
पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम् ॥२७
यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान्भवेत्
परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम्।
किं नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरं
इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते।
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे ॥२९॥
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः।
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान्।
मद्रराजप्रणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ॥ ३१ ॥
गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवश्च मारिष ॥ ३२
ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः।
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥
अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम्।
अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः
सोऽब्रवीद्भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ।
अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम्
जीमूत इव नर्दस्तु युध्यते स वृकोदरः।
ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ॥३६
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ।
तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ।
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ ३७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मापयाने
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

सञ्जय उवाच।
द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः।
अपतत्सहसा राजन्यत्र पार्थो व्यवस्थितः
तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान्।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम् ॥२
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
अर्जुनं वासुदेवं च छादयामास सायकैः ॥ ३
अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा ॥४
अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत ॥५
यद्यद्धि व्याक्षिपद्युद्धे पाण्डवोऽस्त्रजिघांसया
तत्तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत ॥६
अस्त्रयुद्धे ततो राजन्वर्तमाने महाभये।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम्
स दिशः प्रदिशश्चैव च्छादयित्वा ह्यजिह्मगैः
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद्दक्षिणे भुजे ॥ ८
ततोऽर्जुनो हयान्हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम् ९
सर्वलोकवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम्।
सरथान्रथिनः सर्वान्पार्थचापच्युतैः शरैः १०
द्रौणेरपहतान्संख्ये ददृशुः स च तां तथा।
प्रावर्तयन्महाघोरां नदीं परवहां तदा ॥ ११
तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे।
अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः ॥ १२
रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ॥ १३

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

**द्रौणिरिति** ॥१॥ द्रौणेः संबंधिनो रथिनः शरैरपहतान्ददृशुरित्युत्तरश्लोकेन सम्बन्धः। लोका इति शेषः॥१०॥

पार्थेन समरे राजन् कृतो घोरो जनक्षयः।
निहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः॥
हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः।
तद्दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः १७
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान्
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः
भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम्।
सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत १८

गाण्डीवधन्वा प्रसभं
शरवर्षैरुदारधीः।
संछाद्य समरे द्रौणिं
चिच्छेदास्य च कार्मुकम्॥१९॥

स छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने॥
तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम्।
चिच्छेद सहसा राजन्प्रहसन्निव पाण्डवः॥
स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः।
विकीर्णः पर्वतो राजन् यथा वज्रेण ताडितः॥
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् २३

तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य
पार्थो राजन् गाण्डिवमाददे सः।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत्तरस्वी
वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम्॥ २४
विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं
पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य
द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः॥२५॥
विगाह्य तां पाण्डवबाणवृष्टिं
शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य।
शतेन कृष्णं सहसाऽभ्यविद्ध्य-
त्त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम्॥२६
ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन
गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्या-
मवाकिरत् पश्यतां तावकानाम्॥२७

स विद्ध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्॥२८

स संगृह्य स्वयं वाहान्
कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः।
तत्राद्भुतमपश्याम
द्रौणेराशु पराक्रमम्॥२९॥

प्रायच्छत्तुरगान्यच्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत्।
तदस्य समरे राजन् सर्वे योधा अपूजयन्॥
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः॥
प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा
तव सैन्यं समाद्रवन्।
समन्तान्निशितान् बाणान्
विमुञ्चन्तो जयैषिणः॥३३॥

पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः।
पुनः पुनरथो वीरैः संयुगे जितकाशिभिः ३४
पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम्
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च विशांपते ३५
वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर।
न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः॥
ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः।
अभवद्व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद्बलम्॥३७
तिष्ठ तिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः।
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः
अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः॥ ३९
ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत्प्रणयादिव।
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम्॥
त्वयि तिष्ठति संत्रासात्पलायनपरायणा।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिंदम॥४१
सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः
एतच्छ्रुत्वाऽपि राधेयो दुर्योधनवचो महान्
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव॥४३
पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर।
अद्य हन्मि रणे सर्वान्पञ्चालान्पाण्डुभिः सह
वाहयाश्वान्नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः।
एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान्॥
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम्।
सज्यं कृत्वा महाराज संगृह्य च पुनः पुनः४६

सन्निवार्य च योधान्स सत्येन शपथेन च ।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ४७
ततो राजन्सहस्त्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन्महामृधे
ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किञ्चन॥
हाहाकारो महानासीत्पञ्चालानां विशांपते।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे॥५०
निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः ॥ ५१
प्राकम्पत मही राजन्निहतैस्तैः समन्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत्पाण्डवानां महद्बलम् ॥
कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहन् शत्रून्नरव्याघ्र शुशुभे स परंतपः ॥ ५३
ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह ॥
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः॥५४
चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः ।
तेषां तु क्रोशतामासीद्भीतानां रणमूर्धनि ॥
धावतां च ततो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः।
आर्तनादो महांस्तत्र भूतानामिव संप्लवे ॥
वध्यमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥
ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥५८
प्रेतराजपुरे यद्वत् प्रेतराजं विचेतसः ।
श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥
अथाब्रवीद्वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥
पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम्
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥ ६१
सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥
अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान्प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णं प्रति पलायितुम् ॥
जीवन्प्राप्नोति पुरुषः संख्ये जयपराजयौ ।
मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम् ।
धनञ्जयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिंदमम् ॥ ६५
कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षितः ।
तं दृष्ट्वाश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि॥
एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद्द्रष्टुमिच्छन् युधिष्ठिरम्
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशांपते ॥६७
ततो धनञ्जयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात्केशवाज्ञया ॥ ६८
गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया ।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत्तत्र चाग्रजम् ॥
युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत ।
दुःसहं वज्रिणा संख्ये पराजित्य गुरोः सुतम्

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मराजशोधने
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

सञ्जय उवाच ।
द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा
कृत्वा महद्दुष्करं शूरकर्म ।
आलोकयामास ततः स्वसैन्यं
धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ १
अयुध्यमानान्पृतनामुखस्थान्
शूरः शूरान् हर्षयन्सव्यसाची ।
पूर्वप्रहारैर्मथितान् प्रशंसन्
स्थितान्महात्मा स्वरथाननेकान् ॥ २
अपश्यमानस्तु किरीटमाली
युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम् ।
उवाच भीमं तरसाऽभ्युपेत्य
राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा ॥ ३

---

कर्णं प्रति लक्षीकृत्य पलायितुं न पश्यामि निषिद्धत्वात् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५

द्रौणिमिति । ततोग्रधन्वा विस्तारितोग्रचापः ॥१॥ अनेकान् बहून् ॥ २ ॥ उवाच तं पप्रच्छ ॥ ३ ॥

भीमसेन उवाच ।

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत्कथञ्चन ॥ ४

अर्जुन उवाच ।

तस्माद्भवान् शीघ्रमितः प्रयातु
राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य ।
नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः
कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ ॥ ५
यः संप्रहारैर्निशितैः पृषत्कै-
र्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी ।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो
द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत् ॥
स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः
संख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः ।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम
स्थास्याम्यहं शत्रुगणान्निरुध्य ॥ ७

भीमसेन उवाच

त्वमेव जानीहि महानुभाव
राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य ।
अहं हि यद्यर्जुन यास्यमित्रा
वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥ ८
ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं
संशप्तकाः प्रत्यनीकस्थिता मे ।
एतानहत्वाऽद्य मया न शक्य-
मितोपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात् ॥ ९
अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः
स्ववीर्यमासाद्य कुरुप्रवीर ।
संशप्तकान् प्रतियोत्स्यामि संख्ये
सर्वानहं याहि धनञ्जय त्वम् ॥ १०
तद्भीमसेनस्य वचो निशम्य
सुदुष्करं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
संशप्तकानीकमसह्यमेकः
सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥ ११
उवाच नारायणमप्रमेयं
कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य ।
श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्त्व-
स्तदाहवे सत्यवचो महात्मा ।
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन्
प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ १२

अर्जुन उवाच ।

चोदयाश्वान् हृषीकेश विहायैतद्बलार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव १३

सञ्जय उवाच

ततो हयान्सर्वदाशार्हमुख्यः
प्रचोदयन् भीममुवाच चेदम्
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम
यास्याम्यहं जहि पार्थारिसंघान् १४
ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन्वाजिभिर्गरुडोपमैः १५
प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिंदमम् ।
संदिश्य चैतं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम्
ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ
राजानमासाद्य शयानमेकम्
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्मा-
द्ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ १७
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं
क्षेमिणं पुरुषर्षभम्
मुदाभ्युपगतौ कृष्णा-
वश्विनाविव वासवम् ॥ १८
तावभ्यनन्दद्राजाऽपि विवस्वानश्विनाविव
हते महासुरे जंभे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥१९
मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परंतपः ॥ २०

सञ्जय उवाच

अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ
शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ
युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥ २१
महासत्त्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ
हतमाधिरथिं मेने संख्ये गाण्डीवधन्वना २२

---

गोष्ठात् स्थानात् ॥ ९ ॥ भ्रातुर्वचः श्रुत्वा तदेव सत्यं वचो नारायणं प्रति कपिध्वज उवाचेत्यन्वयः ॥ १२ ॥ प्रत्यनीके शत्रुसैन्यसमीपे ॥ १६ ॥

तावभ्यनन्दत् कौन्तेयः
साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नं
पूजयन् भरतर्षभ ॥ २३

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरं प्रति कृष्णार्जुनागमे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५ ॥

## ६६

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनञ्जय ।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः ।
आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च ।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ३
अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्र सुदुर्जयम् ।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम्
त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे ।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥ ५
दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम् ।
अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ६
अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च ।
पातालमिव गंभीरं सुहृदां नन्दिवर्धनम् ॥ ७
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे ।
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वाऽसुरमिवामरौ
घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ ।
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ९
तेन केतुश्च मे च्छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी
हतवाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥१०
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः ।
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥
एताञ्जित्वा महावीर्यः
कर्णः शत्रुगणान् बहून् ।
जितवान्मां महाबाहो
यतमानो महारणे ॥ १२
अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान्बहु ।
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः ॥ १३
भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनञ्जय ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन नाहं तत् सोढुमुत्सहे ॥
त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद्भीतो धनञ्जय ।
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित्
तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनञ्जय ।
आत्मनो मरणं यातो वाध्रीणस इव द्विपः
तस्यायमगमत्कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम् ।
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत्
जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम् ।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १८
यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद्भीतो धनञ्जय ।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम्
सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना ।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन् विसर्जितः
को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत्पुनः
ममैवं धिक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना ॥२१
न प्राप्तपूर्वं यद्भीष्मात्कृपाद्द्रोणाच्च संयुगे ।
तत् प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥२२
स त्वां पृच्छामि कौन्तेय
यथाऽद्य कुशलं तथा ।
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन
यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २३

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

**स्वागतमिति**। भो अच्युतार्जुनौ युवयोर्दर्शनं मे गाढम् प्रियम्। कुशलमिति पाठे युवयोः कुशलं यत्तन्मे गाढं प्रियमिति योज्यम् ॥१॥ अरिष्टाभ्यां शुभाभ्याम् ॥ २ ॥ अनुज्ञातं अनुगृहीतम् ॥४॥ अनलानिलयोरिति क्रमात्तेजोबलाभ्याम्॥७॥ मरणे उपस्थिते सति यातः पलायितोऽस्मि वाध्रीणसः मेषविशेषः यस्य नासापुटयोर्वध्रीसदृशं चर्म भवति द्विपः द्वाभ्यां वक्त्रकर्णाभ्यां पिबतीति । द्विज इति पाठे ' कृष्णग्रीवो रक्तशिराः श्वेतपक्षो विहंगमः । स वै वाध्रीणसः प्रोक्तो याज्ञिकैः पितृकर्मणि' इति प्राञ्चः १६

शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे ।
रामतुल्यस्तथाऽस्त्रेण स कथं वै निषूदितः॥२४
महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २५
पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण विशांपते ।
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया २६
धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदाऽर्जुन ।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥
स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः ।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया
युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम्
त्वया पुरुषशार्दूल सिंहेनेव यथा रुरोः ॥२९

यः पर्युपासीत् प्रदिशो दिशश्च
त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन् ।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं
स ह्रीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः ॥३०
त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः
कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा ।
प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं
त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३१ ॥
यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे
सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः
स शूरमानी समरे समेत्य
कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ ॥३२
रौक्मं वरं हस्तिगजाश्वयुक्तं
रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे ।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापः
कच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे ॥ ३३
योऽसौ सदा शूरमदेन मत्तो
विकत्थते संसदि कौरवाणाम् ।
प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य
कच्चित्स पापो निहतस्त्वयाऽद्य ३४
कच्चित्समागम्य धनुःप्रयुक्तै-
स्त्वत्प्रेषितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः ।
शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः
कच्चिद्भग्नौ धार्तराष्ट्रस्य बाहू ॥ ३५
योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये
दुर्योधनं हर्षयन्दर्पपूर्णः ।
अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहा-
त्कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ३६
नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचि-
द्यावत्स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः ।
व्रतं तस्यैतत् सर्वदा शक्रसूनो
कच्चित्त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः ३७
योऽसौ कृष्णामब्रवीद्दुष्टबुद्धिः
कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये ।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे
सुदुर्बलान्पतितान्हीनसत्त्वान् ॥ ३८
योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे
नाहं हत्वा सह कृष्णेन पार्थम् ।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः
कच्चिच्छेते शरसंभिन्नगात्रः ॥ ३९
कच्चित्संग्रामो विदितो वै तवायं
समागमे सृञ्जयकौरवाणाम् ।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं
कच्चित्त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा ४०
कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धे-
र्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः ।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं
कायात्प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ४१
यत्तन्मया बाणसमर्पितेन
ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर ।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य
ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४२
यद्दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मा-
नुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित्त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य
भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य ॥ ४३
यो नः पुरा षण्ढतिलानवोच-
त्सभामध्ये कौरवाणां समक्षम् ।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य संख्ये
त्वया हतः सूतपुत्रो ह्यमर्षी ॥ ४४
यः सूतपुत्रः प्रहसन् दुरात्मा
पुराऽब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनी-
मपीह कच्चित्स हतस्त्वयाऽद्य ४५

अयं सूतपुत्रः ॥ ३१ ॥ विहङ्गैर्बाणैः ॥ ३५ ॥ बाणेभ्यः समर्पितेन कर्णबाणैरत्यन्तं प्रविद्धेनेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमः पृथिव्यां
पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः ।
संख्यायमानोऽर्धरथः स कच्चि-
त्त्वया हतोऽद्याधिरथिर्महात्मन् ४६
अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं
हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम ।
हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण
इति ब्रुवन् प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन ॥
ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य
कथं त्वया निहतः सूतपुत्रः ।
अनुध्याये त्वां सततं प्रवीर
वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रः ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

सञ्जय उवाच ।
तद्धर्मशीलस्य वचो निशम्य
राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा ।
उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं
युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १
अर्जुन उवाच ।
संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य
सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् ।
आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन्
द्रौणिः पुरस्तात्सहसाऽभ्यतिष्ठत् २
दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव
समस्तसेनावरणेऽभ्यतिष्ठन् ।
तेषामहं पञ्च शतानि हत्वा
ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३
स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः
समभ्ययात्सिंहमिव द्विपेन्द्रः ।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां
महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥ ४
ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य
आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम् ।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कै-
र्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः ॥ ५
अष्टागवामष्टशतानि बाणान्
मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य ।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणै-
र्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥ ६

ततोऽपरान्बाणसङ्घाननेका-
नाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।
ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नै-
स्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ७

नैवाददानं न च संदधानं
जानीमहे कतरेणास्यतीति ।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन
स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत ॥ ८

तस्याततं मण्डलमेव सज्यं
प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः ।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः
शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ॥ ९

अहं हि तं त्रिशता वज्रकल्पैः
समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ।
क्षणात् श्वावित्समरूपो बभूव
समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः ॥ १०

स विक्षरन्रुधिरं सर्वगात्रै
रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाऽभिभूतान्सैनिकानां प्रबर्हा-
नसौ प्रपश्यन्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ११

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

**तद्धर्मेति** ॥ १ ॥ खगमान् बाणान् ॥ २ ॥ वध्यतां वध्यमानानां कौरवाणां उज्जिहीर्षां उद्धर्तुमिच्छामकार्षीत् ॥ ४ ॥ अष्टौ गावो यस्मिन् तदष्टागवं शकटं तेषामष्टागवामष्ट अष्टसंख्यानि शकटानि। लुब्भावः आर्षः। शतानि बाणान् अनेकशतसंख्यान्वहन्ति ॥ ६ ॥

ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं
वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य
कर्णस्त्वरन्मामुपायात्प्रमाथी ॥ १२
तान्सूदयित्वाऽहमपास्य कर्णं
द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाऽभियातः ।
सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं
दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव ॥ १३
मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य
प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् ।
रथांस्तु तान्सप्तशतान्निमग्नां-
स्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म १४
न चाप्यभूत्क्लान्तमनाः स राजन्
यावन्नास्मान्दृष्टवान् सूतपुत्रः ।
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेत-
मश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च ॥ १५
मन्ये कालमपयानस्य राजन्
क्रूरात्कर्णात्तेऽहमचिन्त्यकर्मन् ।
मया कर्णस्यास्त्रमिदं पुरस्ता-
द्युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम् ॥ १६
न ह्यन्ययोद्धा विद्यते सृञ्जयानां
महारथं योऽद्य सहेत कर्णम् ।
शैनेयो मे सात्यकिश्चक्ररक्षौ
धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन् ॥ १७

युधामन्युश्चोत्तमौजाश्च शूरौ
पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ ।
रथप्रवीरेण महानुभाव
द्विषत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण ॥ १८
समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये
वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य ।
योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्र-
मस्मिन्संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य १९
आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं
मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय ।
महर्षभस्येव मुखं प्रपन्नाः
प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति ॥ २०
षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः
स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः ।
कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्
सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ॥ २१
प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या
कष्टा याता तामहं राजसिंह ।
आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे
पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥ २२
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह
सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

सञ्जय उवाच ।
श्रुत्वा कर्णं कल्पमुदारवीर्यं
क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः ।
धनञ्जयं वाक्यमुवाच चेदं
युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १
विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया-
तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु ।

भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं
यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम् ॥ २
स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया
गर्भं समाविश्य यथा न साधु ।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं
यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

श्रुत्वा कर्णमिति । स्पष्टार्थोऽष्टषष्टितमः ॥ १ ॥

यत्तद्वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं
कर्ण हन्ताऽस्म्येकरथेन सत्यम् ।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः
कर्णाद्भीतो भीमसेनं विहाय ॥ ४

इदं यदि द्वैतवनेऽप्यवक्षः
कर्ण योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति ।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे
कृत्यान्युपैष्याम तथैव पार्थ ॥ ५

मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य
न वै कृतं तच्च तथैव वीर ।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मा-
त्समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्टाः ६

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि
यियासवो बहुकल्याणमिष्टम् ।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र
फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः ७

प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण
संच्छादितं गरलमिवाशनेन ।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं
राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम् ८

त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं
त्वामन्वजीविष्म धनञ्जयाशया ।
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं
तन्नः सर्वान्नरके त्वं न्यमज्जः ॥ ९

यत्तत्पृथां वागुवाचान्तरिक्षे
सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धौ ।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं
सर्वान् शूरान् शात्रवाञ्जेष्यतीति १०

अयं जेता खाण्डवे देवसङ्घान्
सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः ।
अयं जेता मद्र-कलिङ्ग-केकया-
नयं कुरून्राजमध्ये निहन्ता ॥ ११

अस्मात्परो नो भविता धनुर्धरो
नैनं भूतं किञ्चन जातु जेता ।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्या-
द्वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः
स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः ।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या
शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः ॥ १३

तुल्यो महात्मा तव कुन्तिपुत्रो
जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय
ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता १४

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि
तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच ।
एवंविधं तच्च नाभूत्तथा च
देवाऽपि नूनमनृतं वदन्ति ॥ १५

तथा परेषामृषिसत्तमानां
श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम् ।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य
न त्वां जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् १६

पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन
न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति ।
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य
मौर्ख्यात्तु तन्नावबुद्धं मयाऽऽसीत्१७

तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं
यच्छत्रुवर्गं नरकं प्रविष्टः ।
तदैव वाच्योऽस्मि ननु त्वयाऽहं
न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथञ्चित ॥ १८

ततो नाहं सृञ्जयान्केकयांश्च
समानयेयं सुहृदो रणाय ।
एवं गते किञ्च मयाऽद्य शक्यं
कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ॥ १९

तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य
ये वापि मां योद्धुकामाः समेताः ।
धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण
योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ॥ २०

मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये
ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः ।
यदि स्म जीवेत स भवेन्निहन्ता
महारथानां प्रवरो रथोत्तमः ।
तवाभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ
न चास्मि गन्ता समरे पराभवम् ॥

अथापि जीवेत्समरे घटोत्कच-
स्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः ।
मम ह्यभाग्यानि पुरा कृतानि
पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ॥ २२

तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं
ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना ।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं
यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः २३
आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षे-
त्स बान्धवः स्नेहयुक्तं सुहृच्च ।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति
धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥ २४
त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं
शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् ।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं
धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम् ॥ २५
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं
कर्णाद्भीतो ह्यपयातोऽसि पार्थ ।
धनुश्च तत् केशवाय प्रयच्छ
यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य २६
तदा हनिष्यत्केशवः कर्णमुग्रं
मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ।
राधेयमेतं यदि नाद्य शक्त-
श्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय ॥ २७
प्रयच्छान्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य
त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको वा नरेन्द्रः
अस्मान्नैवं पुत्रदारैर्विहीना-
न्सुखाद्भ्रष्टान् राज्यनाशाच्च भूयः ॥
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे
पापैर्जुष्टे नरके पाण्डवेय ।
मासेऽपतिष्यः पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे
न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः २९
तत्ते श्रेयो राजपुत्राभविष्य-
न्न चेत्संग्रामादपयानं दुरात्मन् ।
धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्य-
मसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक्ते ।
धिक्ते केतुं केसरिणः सुतस्य
कृशानुदत्तं च रथं च धिक्ते ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरक्रोधवाक्ये
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

सञ्जय उवाच ।
युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् १
तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत २
न हि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद्धनञ्जय
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ३
अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः
स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले च संप्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ५
न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात्किं वा ते चित्तविभ्रमः
कस्माद्भवान्महाखड्गं
परिगृह्णाति सत्वरः ।
तत्त्वां पृच्छामि कौन्तेय
किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ७
परामृशासि यत्क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ।
एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ८
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्
अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योभिचोदयेत्
भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम ।
तदुक्तं मम चानेन राज्ञाऽमितपराक्रम ॥ १०
समक्षं तव गोविन्द न तत्क्षन्तुमिहोत्सहे ।
तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम्

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९
युधिष्ठिरेणेति ॥ १ ॥

प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम् ।
एतदर्थं मया खङ्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ १२
सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः
विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन
किं वा त्वं मन्यसे प्राप्त-
मस्मिन्काल उपस्थिते ।
त्वमस्य जगतस्तात
वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥ १४
तत्तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान्
सञ्जय उवाच ।
धिग्धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत्पुनः
कृष्ण उवाच ।
'इदानीं पार्थ जानामि
न वृद्धाः सेवितास्त्वया ।
काले न पुरुषव्याघ्र
संरंभं यद्भवानगात् ॥ १६
न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनञ्जय ।
यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः १७
अकार्याणां क्रियाणां च
संयोगं यः करोति वै ।
कार्याणामक्रियाणां च
स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १८
अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः ।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम्
अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये ।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु २०
न हि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथंचन ।
श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ २१
अविज्ञानाद्भवान्यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित् ।
प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे
प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम ।
अनृतां वा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात्कथञ्चन २३
स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम् ।
हन्याद्भवान्नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव २४
अयुध्यमानस्य वधस्तथाऽशत्रोश्च मानद ।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः ॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च ।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव २६
त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा ।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात्कर्म व्यवस्यसि
स गुरुं पार्थ कस्मात्त्वं
हन्तुकामोऽभिधावसि ।
असंप्रधार्य धर्माणां
गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ २८
इदं धर्मरहस्यं च
तव वक्ष्यामि पाण्डव ।
यद्ब्रूयात्तव भीष्मो हि
पाण्डवो वा युधिष्ठिरः ॥ २९
विदुरो वा तथा क्षत्ता
कुन्ती वाऽपि यशस्विनी ।
तत् ते वक्ष्यामि तत्त्वेन
निबोधैतद्धनञ्जय ॥ ३०
सत्यस्य वदिता साधुर्न सत्याद्विद्यते परम्
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३१
भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
यत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥
विवाहकाले रतिसंप्रयोगे
प्राणात्यये सर्वधनापहारे ।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ३३
सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
तत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ।
तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम् ॥
भवेत्सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम् ।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्
किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः ।
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ३६

भवान्यत्संरंभं अगात् तत्काले न अकाले इत्यर्थः ॥ १६ ॥ कर्तुमयोग्यानां कर्मणां संयोगं कर्तुं योग्यानामपि अक्रियाणां निषिद्धक्रियाणां संयोगं यः करोति स पुरुषाधम इत्याह—**अकार्याणामिति** ॥ १८ ॥ उपस्थिताः शिष्यैरनुसृताः गुरवः ॥ १९ ॥ सुखं अनधीत्येत्यर्थः । श्रुतेन शास्त्रेण ॥ २१ ॥ यत् भवान् धर्मं रक्षति तदवज्ञानात् अधर्ममेव धर्मं मनुषे इत्यर्थः । यतः प्राणिनां वधं दोषकरं इत्येतन्नावबुध्यसे ॥ २२ ॥ अशत्रोः अशातनीयस्य अवध्यस्य ॥ २५ ॥ सत्यं तत्त्वेन याथातथ्येन सुदुर्ज्ञेयं पश्य । क्वचित्सत्यमप्यधर्माय भवतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ यस्य येन हेतुना सत्यमेव सत्यतया अनुष्ठितं तादृशमेव पश्यति सत्यवादितया अनेन हेतुना बालः अज्ञः ॥ ३४ ॥

किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः ।
सुमहत्प्राप्नुयात्पापमापगास्विव कौशिकः'

अर्जुन उवाच ।

आचक्ष्व भगवन्नेतद्यथा विन्द्याम्यहं तथा ।
बलाकस्यानुसंबन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥

वासुदेव उवाच ।

'पुरा व्याधोऽभवत्कश्चिद्बलाको नाम भारत
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान् हन्ति न कामतः
वृद्धौ च मातापितरौ
बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान् ।
स्वधर्मनिरतो नित्यं
सत्यवागनसूयकः ॥ ४०
स कदाचिन्मृगं लिप्सु-
र्नाभ्यविन्दन्मृगं क्वचित् ।
अपः पिबन्तं ददृशे
श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ४१
अदृष्टपूर्वमपि तत्सत्त्वं तेन हतं तदा ।
अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ४२
अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम् ।
विमानमगमत्स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ४३
तद्भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन ।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयंभुवा ॥
तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम् ।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ४५
कौशिकोऽप्यभवद्विप्रस्तपस्वीनो बहुश्रुतः ।
नदीनां सङ्गमे ग्रामाददूरात्स किलावसत् ॥
सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद्व्रतम्
सत्यवादीति विख्यातः स तदाऽसीद्धनञ्जय
अथ दस्युभयात्केचित्तदा तद्वनमाविशन् ।
तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तानमार्गन्त यत्नतः ॥
अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम्
कतमेन पथा याता भगवन्बहवो जनाः ॥४९
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान् वेत्थ शंस नः ।
स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥
बहुवृक्षलतागुल्म-
मेतद्वनमुपाश्रिताः ।
इति तान् ख्यापयामास
तेभ्यस्तत्त्वं स कौशिकः ॥ ५१
ततस्ते तान्समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः ।
तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥
गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः ।
यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित्
वृद्धानपृष्ट्वा संदेहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति ।
तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥
दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति ।
श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥५२
तत्ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते ।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५६
यत्स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।
अहिंसार्थाय हिंस्राणां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥
धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥
येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो
धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित् ।
अकूजनेन मोक्षं वा
नानुकूजेत्कथंचन ॥ ५९
अवश्यं कूजितव्ये वा शंकेरन्नप्यकूजतः ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ॥६०
यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत्
न तत्फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ६१

---

तपस्विनः तपस्विनामिनः श्रेष्ठः॥४६॥ श्वभ्रमिव नरकमिव अपृष्ट्वा प्रश्नमकृत्वार्हति तत्र धर्माधर्मयोस्तत्त्वे निश्चेतव्ये लक्षणस्य उद्देशः—वचनं भविष्यति ॥५४॥ क्वचित्तर्केणापि धर्मस्वरूपं निर्णयमित्याह--**दुष्करमिति** ॥ ५५ ॥ न प्रत्यसूयामि न दूषयामि अनुमानतोऽपि धर्मो ज्ञेय इत्याशयेनाह-**न चेति** । लक्षणोद्देशमाह-**प्रभवेति**॥ ५६ ॥ अहिंसैव धारणाद्धर्म इत्याह—**हिंसार्थायेति** ॥ ५७ ॥ न्यायेन 'संतोषं जनयेत्प्राज्ञस्तदेवेश्वरपूजनम्' इत्यादिवाक्यावष्टंभेन अन्योन्यसुखहेतुत्वात्पारदार्यादिकमपि धर्म इति वदन्तो धर्मापहारमिच्छन्ति ते अकूजनेन वेदशब्दराहित्येन तद्विरुद्धं धर्मं मोक्षं वा वेदबाह्यमिच्छन्ति तान्प्रति नानुकूजेत् तैः सह संवादमपि न कुर्यादसंभाष्यास्ते तेन वेदाविरोधे सति यदन्यस्य सुखकरं तद्धर्म इत्यर्थः ५९॥ यत्र तु धर्मसंदेहे वेदशब्दो नास्ति नापि लौकिकी युक्तिरस्ति । तत्र किं कर्तव्यमित्याशंक्याह—**अवश्यमिति**। यत्र ब्राह्मणः स्तेनत्वेन ज्ञातः तत्रेतरेषां स्तेनोऽयमस्ति नो वेति संशये पक्षद्वयेऽपि हिंसाप्राप्तौ मौनमेवाश्रयेत् । मौनेनाप्यासिद्धौ अनृतमपि वदेदित्यर्थः ॥ ६० ॥ **य इति** । कार्येभ्यः यत्किंचित्कार्यं मनस्युद्दिश्य व्रतं कृत्वा तस्य व्रतस्य नाना अन्येन प्रकारेणोपपादनं करोति स दांभिको व्रतफलं नाप्नोतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये ।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥
अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः ।
यः स्तेनैः सह संबंधान्मुच्यते शपथैरपि ॥६३
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ।
न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन ॥
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् ।
तस्माद्धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृतभाग्भवेत् ॥
एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि ।
यथाधर्मं यथाबुद्धि मयाद्य वै हितार्थिना ॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः ।

अर्जुन उवाच ।

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ।
हितं चैव यथाऽस्माकं तथैतद्वचनं तव ।
भवान्मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च
गतिश्च परमा कृष्ण त्वमेव च परायणम् ।
न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित्
तस्माद्भवान्परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम् ।६९
अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
अस्मिंस्तु मम संकल्पे ब्रूहि किंचिदनुग्रहम् ।
इदं वा परमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥७१
जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं
यो मां ब्रूयात्कश्चन मानुषेषु ।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ
त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः ॥
हन्यामहं केशव तं प्रसह्य
भीमो हन्यात्तूवरकेति चोक्तः ।
तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं
धनुर्देहीत्यसकृद्वृष्णिवीर ॥ ७३
तं हन्यां चेत्केशव जीवलोके
स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम् ।
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो
वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः ॥ ७४
यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ
भवेत्सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत् पाण्डवोऽहं च कृष्ण
तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम् ॥ ७५

वासुदेव उवाच ।

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च
कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसङ्घैः ।
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर
शरैर्भृशं ताडितो युध्यमानः ॥ ७६
अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो
दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् ।
अकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये
कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत्सः ॥७७
जानाति तं पाण्डव एष चापि
पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः ।
ततस्त्वमुक्तो भृशरोषितेन
राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ ॥ ७८
नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये
कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् ।
तस्मिन् हते कुरवो निर्जिताः स्यु-
रेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥ ७९
ततो वधं नार्हति धर्मपुत्र-
स्त्वया प्रतिज्ञाऽर्जुन पालनीया ।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि
तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥ ८०
यदा मानं लभते माननार्ह-
स्तदा स वै जीवति जीवलोके ।
यदाऽवमानं लभते महान्तं
तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ८१
संमानितः पार्थिवोऽयं सदैव
त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम् ।
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरै-
स्तस्यापमानं कलया प्रयुंक्ष्व ॥ ८२
त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥८३
एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह ॥ ८४

---

तेभ्यः स्तेनेभ्यः ॥ ६४॥ पीडयेत् नरकं प्रापयेत् ॥ ६५ ॥ अविदितमिति च्छेदः ॥ ६९ ॥ अनुग्रहं अवधेन प्रतिज्ञारक्षणम् ॥ ७१ ॥ तूवरकः बहुभोजनः ॥ ७३ ॥ तं हन्यामिति । स्थाता नन्न स्थास्ये एनसा मुक्तोऽपि कृतप्रायश्चित्तोऽपि न स्थास्ये इत्यर्थः । किं कृत्वा राज्ञो वधं ध्यात्वा ॥ ७४ ॥ समक्षं आवयोरिति शेषः ॥ ७८ ॥ कर्णे पणीकृते द्यूतं युद्धरूपम् ॥ ७९ ॥ अत्रभवन्तं मान्यं त्वमिति ब्रूहि तावतैव तद्वधः कृतो भवतीत्यर्थः ॥ ८३ ॥ एवं पूज्यावमानरूपं संयोगं आत्मनानुष्ठितं कुरुष्व ॥ ८४ ॥

अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ८५
अवधेन वधः प्रोक्तो यद्गुरुस्त्वमिति प्रभुः
तद्ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ८६
वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराज-
स्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चा-
त्समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम्
भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु
कुर्याद्राजा धर्ममवेक्ष्य चापि।
मुक्तोऽनृताद्भ्रातृवधाच्च पार्थ
हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ८८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे
ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## ७०

सञ्जय उवाच।
इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन
पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत्।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराज-
मनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १
अर्जुन उवाच।
'मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व
यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद्वै।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय
यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २
काले हि शत्रून् परिपीड्य संख्ये
हत्वा च शूरान् पृथिवीपतींस्तान्।
रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान्
सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान्॥ ३
यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं
हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम्।
काम्बोजानामयुतं पार्वतीयान्
मृगान्सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥ ४
सुदुष्करं कर्म करोति वीरः
कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित्।
रथादवप्लुत्य गदां परामृशं-
स्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान्रणे ॥ ५
वरासिना वाजिरथाश्वकुञ्जरां-
स्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन्।
प्रगृह्य पद्भ्यामहितान्निहन्ति
पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ६
महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः
प्रसह्य हन्ता द्विषतामनीकिनीम्।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे
न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ७
महारथान्नागवरान्हयांश्च
पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः
स मामुपालब्धुमरिन्दमोऽर्हति ॥ ८
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्
सदामदान्नीलबलाहकोपमान्।
निहन्ति यः शत्रुगणाननेकान्
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ९
स युक्तमास्थाय रथं हि काले
धनुर्विधुन्वञ्शरपूर्णमुष्टिः।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो
महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥ १०

तत्र मानमाह-**अथर्वेति** ॥ ८५ ॥ यत् गुरुस्त्वमिति प्रोक्तस्तदवधेन सत्रपातनमन्तरेणैव वधः वधकरं भवतीत्यर्थः ॥ ८६ ॥ अयुक्तमेवं त्वत्तो वधं वेत्स्यते अनेनाहं हत इति ज्ञास्यतीत्यर्थः। समं वैषम्यपरिहारं ॥ ८७ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

**इत्येवमिति** ॥ १ ॥ व्याहर व्याहरस्व वचनम् । क्रोशमात्रे न तिष्ठसे अपि तु ततोऽपि दूरे इत्यर्थः ॥ २ ॥

शतान्यष्टौ वारणानामवश्यं
विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः ।
भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः
स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः ॥ ११

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां
क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति ।
त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च
*त्वमेव मां वेत्थ यथाऽबलोहम्॥ १२

यतेह नित्यं तव कर्तुमिष्टं
दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च ।
एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि
त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किञ्चित् १३

मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो
महारथान्प्रतिहन्मि त्वदर्थे ।
तेनाभिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि
त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किञ्चित्

प्रोक्तः स्वयं सत्यसन्धेन मृत्यु-
स्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे ।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा
मयाऽभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥ १५

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं
यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्ट-
मस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥

अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः
श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद्यान् ।
तान्नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टां-
स्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ १७

सुखं त्वत्तो नाभिजानीम किञ्चि-
द्यतस्त्वमक्षैर्देवितुं संप्रवृत्तः ।
स्वयं कृत्वा व्यसनं पाण्डव त्व-
मस्मांस्तीव्राः श्रावयस्यद्य वाचः १८

शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना
छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती ।
त्वया हि तत् कर्म कृतं नृशंसं
यस्माद्दोषः कौरवाणां वधश्च ॥ १९

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या
नष्टाः प्राच्या दाक्षिणात्या विशस्ताः
कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भि-
स्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे ॥ २०

त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाश-
स्त्वत्संभवं नो व्यसनं नरेन्द्र ।
माऽस्मान् क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुदंस्त्वं
भूयो राजन्कोपयेस्त्वल्पभाग्यः' २१

सञ्जय उवाच ।

एता वाचः परुषाः सव्यसाची
स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वा तु रूक्षाः ।
बभूवासौ विमना धर्मभीरुः
कृत्वा प्राज्ञः पातकं किञ्चिदेवम् २२

तदानुतेपे सुरराजपुत्रो
विनिःश्वसंश्चासिमथोद्बबर्ह ।
तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवा-
न्विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिम्

ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वच-
स्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये ।
इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन
सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत् २४

अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव
प्रसह्य येनाहितमाचरं वै ।
निशम्य तत् पार्थवचोऽब्रवीदिदं
धनञ्जयं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ २५

राजानमेनं त्वमितीदमुक्त्वा
किं कश्मलं प्राविशः पार्थ घोरम् ।
त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न
नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन् २६

धर्मात्मानं भ्रातरं ज्येष्ठमद्य
खड्गेन चैनं यदि हन्या नृवीर ।
धर्माद्भीतस्तत्कथं नाम ते स्या-
त्किंचोत्तरं वा करिष्यस्त्वमेव २७

सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ
विशेषतोऽज्ञैः प्रोच्यमानं निबोध ।
हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं
वधाद्भ्रातुर्नरकं चातिघोरम् ॥ २८

सत्यसन्धेन भीष्मेण ॥ १५ ॥ अनुतेपे अनुतापं प्राप्तवान् उद्बबर्ह कोशान्निष्कासितवान् ॥ २३ ॥ आत्मनः स्तवादात्महत्या परहत्यास्य कुत्सनादित्यध्यायतात्पर्यम् ॥ २८ ॥ * त्वमेव मां वेत्सि यथाविधोऽहम् इति पाठः ।

ब्रवीहि वाचाऽद्य गुणानिहात्मन-
स्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ ।
तथाऽस्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य तद्वचो
धनञ्जयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥ २९
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं
शृणुष्व राजन्निति शक्रसूनुः ।
'न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते
धनुर्धरो देवमृते पिनाकिनम् ॥ ३०
अहं हि तेनानुमतो महात्मना
क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ।
मया हि राजन्सदिगीश्वरा दिशो
विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे ३१
स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः
सभा च दिव्या भवतो ममौजसा ।
पाणौ पृषत्का निशिता ममैव
धनुश्च सज्यं विततं सबाणम् ॥ ३२
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ।
हता उदीच्या निहताः प्रतीच्याः
प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ताः
संशप्तकानां किञ्चिदेवास्ति शिष्टं
सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्धम् ।
शेते मया निहता भारतीयं
चमू राजन्देवचमूप्रकाशा ॥ ३४
ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रै-
स्तस्माल्लोकानेष करोमि भस्म ।
जैत्रं रथं भीममास्थाय कृष्ण
यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३५
राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं
कर्णं रणे नाशयिताऽस्मि बाणैः' ।
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ ३६
'अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री
कुन्ती वाऽथो वा मया तेन वापि ।
सत्यं वदाम्यद्य न कर्णमाजौ
शरैरहत्वा कवचं विमोक्ष्ये ॥' ३७
सञ्जय उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य
कोशे च खड्गं विनिधाय तूर्णम् ३८

स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी
युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच ।
प्रसीद राजन् क्षम यन्मयोक्तं
काले भवान्वेत्स्यति तन्नमस्ते ३९
प्रसाद्य राजानममित्रसाहं
स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः ।
नेदं चिरात्क्षिप्रमिदं भविष्य-
त्यावर्तते साध्वभियामि चैनम् ४०
याम्येष भीमं समरात्प्रमोक्तुं
सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम्
तव प्रियार्थं मम जीवितं हि
ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ४१
इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ
समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी ।
एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो
भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य ॥ ४२
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच
पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः ।
'कृतं मया पार्थ यथा न साधु
येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ॥ ४३
तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य
कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ।
पापस्य पापव्यसनान्वितस्य
विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥ ४४
वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव
किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम् ।
गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः
सुखं भवान्वर्ततां मद्विहीनः ॥ ४५
योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा
क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम् ।
न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं
पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य ॥ ४६
भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन
न कार्यमद्यावमतस्य वीर' ।
इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात
राजा ततस्तच्छयनं विहाय ॥ ४७
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय
तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ ४८
राजन्विदितमेतद्वै यथा गाण्डीवधन्वनः।
प्रतिज्ञा सत्यसन्धस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता
ब्रूयाद्य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत ४९

वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके
त्वया चोक्तोऽयमद्दिशम्।
ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां
पार्थेन प्रतिरक्षता ॥ ५०
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते।
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ॥ ५१
तस्मात्त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः
व्यतिक्रममिमं राजन्सत्यसंरक्षणं प्रति ५५
शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि।
क्षन्तुमर्हसि मे राजन्प्रणतस्याभियाचतः ॥
राधेयस्याद्य पापस्य
भूमिः पास्यति शोणितम्।
सत्यं ते प्रतिजानामि
हतं विद्ध्यद्य सूतजम् ॥ ५४
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम्
इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः
ससंभ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा।
कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ॥
एवमेव यथाऽऽत्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव
मोचिता व्यसनाद्घोराद्वयमद्य त्वयाऽच्युत
भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात्
घोराद्द्य समुत्तीर्णा-
वुभावज्ञानमोहितौ।
त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य
दुःखशोकार्णवाद्वयम्।
समुत्तीर्णाः सहामात्याः
सनाथाः स्म त्वयाऽच्युत ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

सञ्जय उवाच।
धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः।
पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः
*इति स्म कृष्णवचनात्
प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम्।
बभूव विमनाः पार्थः
किञ्चित्कृत्वेव पातकम् ॥ २
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम्।
कथं नाम भवेदेतद्यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ॥ ३
असिना तीक्ष्णधारेण
हन्या धर्मे व्यवस्थितम्।
त्वमित्युक्त्वाऽथ राजान-
मेवं कश्मलमाविशः ॥ ४
हत्वा तु नृपतिं पार्थ
आकरिष्यः किमुत्तरम्।
एवं हि दुर्विदो धर्मो
मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ५
स भवान् धर्मभीरुत्वाद्ध्रुवमैष्यन्महत्तमः।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ६
स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं
राजानं धर्मसंहितम्।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठ-
मेतदत्र मतं मम ॥ ७
प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ८
हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ९
एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति १०

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१

धर्मराजस्येति। स्पष्टार्थः ॥१॥

* इति स्मेत्यारभ्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधादित्यन्तं श्लोकपञ्चकं क्षिप्तम्। पार्थं प्रोवाचेत्यस्य ततोऽब्रवीदित्यनेन पौनरुक्तेः, क्वचित्पुस्तकान्तरेष्वनुपलंभाच्च, पूर्वमेव राजान-मेनं त्वमितीदमित्यादिश्लोकैरेवैतदर्थस्य क्रोडीकाराच्च।

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥ ११
उवाच भरतश्रेष्ठ प्रसीदेति पुनः पुनः ।
क्षमस्व राजन् यत् प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा
दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥ १३ ॥
उत्थाप्य भ्रातरं राजा धर्मराजो धनञ्जयम् ।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः १४
रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती ।
कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः १५
तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः ।
अब्रवीत्तं महेष्वासं धर्मराजो धनञ्जयम् ॥१६
कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ।
सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम्
न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे ॥
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम
एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ॥२०॥
सत्येन ते शपे राजन्प्रसादेन तथैव च ।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥ २१
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥२२
एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः ।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः २३
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः।
एवमुक्तोऽब्रवीत्पार्थं केशवो राजसत्तम २४
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम् ।
एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥
कथं भवान्रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम ।
भूयश्चोवाच मतिमान् माधवो धर्मनन्दनम्॥
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सांत्वयितुमर्हसि ।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः॥२७
श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् ।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥

दिष्ट्याऽसि राजन्न हतो
दिष्ट्या न ग्रहणं गतः ।
परिसान्त्वय बीभत्सुं
जयमाशाधि चानघ ॥ २९

युधिष्ठिर उवाच ।

एह्येहि पार्थ बीभत्सो
मां परिष्वज्य पाण्डव ।
वक्तव्यमुक्तोऽस्मि हितं
त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ ३०
अहं त्वामनुजानामि
जहि कर्णं धनञ्जय ।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ
यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥ ३१

सञ्जय उवाच ।

ततो धनञ्जयो राजञ्शिरसा प्रणतस्तदा।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष
तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम्
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ ३३
धनञ्जय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया ।
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम्

अर्जुन उवाच

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः ।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥
येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् ।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम्
अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते ।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते॥३७
नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात्।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ३८

सञ्जय उवाच ।

इति ब्रुवाणं सुमनाः किरीटिनं
युधिष्ठिरः प्राह वचो बृहत्तरम् ।
यशोऽक्षयं जीवितमीप्सितं ते
जयं सदा वीर्यमरिक्षयं तदा ॥ ३९
प्रयाहि वृद्धिं च दिशन्तु देवता
यथाऽहमिच्छामि तवास्तु तत्तथा ॥
प्रयाहि शीघ्रं जहि कर्णमाहवे
पुरन्दरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

पर्वादितः श्लोकाः ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

## ७२

सञ्जय उवाच ।
प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ १
कल्पतां मे रथो भूयो युज्यंतां च हयोत्तमाः
आयुधानि च सर्वाणि सज्जन्तां मे महारथे॥
उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्चाश्वसादिभिः।
रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः॥
प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया ।
एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ॥ ४
उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाऽब्रवीत्
अर्जुनो भरतश्रेष्ठ श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५
आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम ॥
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥ ६
सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः ।
युक्तं तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना ॥ ७
आपृच्छ्य धर्मराजानं
ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
सुमङ्गलस्वस्त्ययन-
मारुरोह रथोत्तमम् ॥ ८
तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
आशिषोऽयुङ्क्त स ततः प्रायात्कर्णरथं प्रति९
तमायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत ।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥१०
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन्समन्ततः ।
चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर ॥ ११
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम् ।
बहवः पक्षिणो राजन्पुन्नामानः शुभाः शिवाः
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे ।
कङ्का गृध्रा बकाः श्येना वायसाश्च विशांपते
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भयानकाः।
निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति ।
प्रयातस्याथ पार्थस्य महान् स्वेदो व्यजायत
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति ।
ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः ॥
दृष्ट्वा पार्थं तथाऽऽयान्तं चिन्तापरिगतं तदा
वासुदेव उवाच ।
गांडीवधन्वन्संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः
न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते १७
दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ।
त्वां प्राप्य समरे शूरं ते गताः परमां गतिम्
को हि द्रोणं च भीष्मं च
भगदत्तं च मारिष
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ
काम्बोजं च सुदक्षिणम्
श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च ।
प्रत्युद्गम्य भवेत्क्षेमी यो न स्यात्त्वमिव प्रभो
तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च ।
असंमोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संनतिः ॥
वेधः पातश्च लक्षेषु योगश्चैव तथाऽर्जुन ।
भवान्देवान्सगंधर्वान् हन्यात्सह चराचरान्
पृथिव्यां तु रणे पार्थ
न योद्धा त्वत्समः पुमान् ।
धनुर्ग्राहा हि ये केचित्
क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ २३
आदेवात्त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि च
ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गांडीवं च महद्धनुः
येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः
अवश्यं तु मया वाच्यं यत्पथ्यं तव पाण्डव
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम् ।
कर्णो हि बलवान्दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः ॥
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः
बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव २७
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम्
परमं यत्नमास्थाय त्वया वध्यो महाहवे ॥२८
तेजसा वन्हिसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥२९
अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः ।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः ॥३०

७२

**प्रसाद्येति** ॥ १ ॥ अष्टरत्निरित्यस्य विवरणं महाबाहुर्व्यूढोरस्क इति। तथाहि सर्वस्य पुरुषस्य व्याममात्रं दैर्घ्यं तच्च पञ्चहस्तं विंशत्यधिकशताङ्गुलं रत्निस्त्वेकाविंशत्यंगुलः । अष्टानां रत्नीनां अष्टषष्ट्यधिकं शतं अंगुलानि च भवन्ति आजानुबाहुपुरुषस्य व्यामं अष्टरत्निमितं भवति अष्टाचत्वारिंशदङ्गुला तत्र वृद्धिः तत्रापि पञ्चमांशेन वक्षसि विशालता शेषं अंसादारभ्य बाह्वोर्वृद्धिरिति ज्ञेयम् ॥ ३० ॥

सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः ।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ३१
सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम्
देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम् ।
अशक्यः स रथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥
दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं
दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे
हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ॥३४
तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
निष्कालिकं कालवशं नयाद्य ।
तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥ ३५

जानामि ते पार्थ वीर्यं यथाव-
द्दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च ।
सदाऽवजानाति हि पाण्डुपुत्रा-
नसौ दर्पात्सूतपुत्रो दुरात्मा ॥ ३६
आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः ।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनञ्जय ॥
खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम् ।
दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनञ्जय ॥ ३८
अहं त्वामनुजानामि वीर्येण च बलेन च ।
जहि कर्णं रणे शूरं मातङ्गमिव केसरी ॥ ३९
यस्य वीर्येण वीर्यं ते धार्तराष्ट्रोऽवमन्यते ।
तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्तनं जहि ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

सञ्जय उवाच ।
ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
कृतसंकल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥ १
अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥
भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह
अन्योन्यं समरं प्राप्य किंचिच्छेषा विशांपते
भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः ।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥
एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः ।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पांडवाश्च व्यवस्थिताः
पञ्चालैः पांडवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह ।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६
को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे ।
अन्यत्र पाण्डवान्युद्धे त्वया गुप्तान्महारथान्
शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान् ।
त्रीन् लोकान्समरे युक्तान्किं पुनः कौरवं बलम्
भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद्वासवोपमः ॥९

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयाऽनघ ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुं
तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे ।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ
को हि शक्तो रणे पार्थ भारतानां महारथौ
भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥
को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम्
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च ॥१३
सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम् ।
वीरान् कृतास्त्रान् समरे सर्वानेवानिवर्तिनः
अक्षौहिणीपतीनुग्रान्संहतान् युद्धदुर्मदान् ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥ १५
श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥
गोवासदासमीयानां
वसातीनां च भारत ।
प्राच्यानां वाटधानानां
भोजानां चाभिमानिनाम् ॥ १७

---

निष्कालिकं निर्गतः कालयिता जेतास्येति तम् ॥ ३५ ॥
इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

७३

तत इति ॥ १ ॥

उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत॥१८
उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः॥
आन्ध्रकाश्च पुलिंदाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः॥
संरंभिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परंतप।
धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद्बलम्॥२२
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात्को नु मानवः
तत्सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम्॥२३
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो।
मागधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः॥२४
अद्य सप्तैव चाहानि हतः संख्येऽभिमन्युना।
ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम्॥
जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम्।
ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात्
तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पांडव कौरवाः
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः।
तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः॥२८
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि
शरजालानि मारिष।
स चेदिकाशिपञ्चालान्
करूषान्मत्स्यकेकयान्॥ २९
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत्परमास्त्रवित्।
तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः॥
पूर्णमाकाशमभवद्रुक्मपुंखैरजिह्मगैः।
हन्याद्रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना॥ ३१
लक्षं नरद्विपान्हत्वा समेतान्समहाबलान्।
गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान्
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजत्।
दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम्
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्च गजवाजिनः
दर्शयित्वाऽऽत्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत्
विनिघ्नन्पृथिवीपालांश्चेदिपञ्चालकेकयान्॥
अदहत्पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसंकुलाम्।
मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम्॥
तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम्।
पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः॥
न शेकुः सृञ्जया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः।
विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम्॥३८
सर्वोद्यमेन महता पाण्डवान्समभिद्रवत्।
स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान्सृञ्जयानपि॥३९
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः।
तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम्
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः सन्नतपर्वभिः।
स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः॥४१
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम्।
द्रोणः पञ्चदिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम्
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान्।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः॥ ४३
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत्प्रजाः।
दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान्
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम्।
यदि वाऽद्य भवान्युद्धे सूतपुत्रमुखान्रथान्॥४५
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनंक्ष्यत
भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम्॥४६
ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनञ्जयः।
एवं वा को रणे कुर्यात्त्वदन्यः क्षत्रियो युधि
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति।
निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान्
निहतः सैन्धवो राजा त्वयाऽस्त्रबलतेजसा।
आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः
अनाश्चर्यं हि तत्त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः।
त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाहादिति भारत॥
नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः
सेयं पार्थचमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ५१
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ।
शीर्णप्रवरयोधाऽद्य हतवाजिरथद्विपा॥ ५२
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती।
विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम॥५३

---

यदि त्वं त्राता न भवेस्तर्हि तद्धार्तराष्ट्रं बलं कोऽनुप्रतीयादिति संबंधः॥ २३॥ **त्वां हीति**। क्षणेन सर्वं भस्मीकर्तुं समर्थं त्वां प्राप्य एकाहान्नश्यमानं क्षत्रं युक्तं बलवत्तरं मन्येयं जानीयां क्षणेन नाश्यमपि पूर्णैकाहपर्यंतं स्थायित्वादिति भावः। सार्धः॥ ५०॥

आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ।
तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः ५४
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ।
तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ॥
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ।
साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ५६
प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुंधराम् ।
एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ॥
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव हरिर्यथा ।
अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ।
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥५८
यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात्
अत्यन्तापचितान्बन्धून्मानयन्मातृबांधवान्
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ६०
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान्न जिघांससि६१
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान्प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः ॥६२
एतत्ते सुकृतं कर्म नात्र किंचन युज्यते ।
वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥
दहने यत्सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः ॥६४
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा
कर्णो वै मूलमित्युत ।
कर्णाद्धि मन्यते त्राणं
नित्यमेव सुयोधनः ॥ ६५
ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ।
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ६६
कर्णः पार्थान् रणे सर्वान्विजेष्यति न संशयः
कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ६७
रोचितो भवता सार्धं जानताऽपि बलं तव
कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान्समागतान्
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ।
प्रोत्साहयन्दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम्६९
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ।
यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ।
यच्च तद्धार्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ॥ ७१
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ।
द्रोणद्रौणिकृपान्वीरान्कर्षयन्तं नरर्षभान्७२
निर्मनुष्यांश्च मातंगान्विरथांश्च महारथान् ।
व्यश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तीन्व्यायुधजीविनः
कुर्वन्तमृषभस्कंधं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ७४
मनुष्यवाजिमातङ्गान्प्राहिण्वन्तं यमक्षयम् ।
शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्तमिव वाहिनीम् ॥
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ।
यत्तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो
अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ।
सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः॥
निःश्वसन्क्रोधसंदीप्तो विमुखःसायकार्दितः
अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते॥
तस्थौ सुविह्वलः संख्ये प्रहारजनितश्रमः ।
अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ॥
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम्
ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ॥८१
तं चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहरञ्छरवृष्टिभिः ।
तस्मिन्विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत्
प्राहसत्स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः
प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः
पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ।
एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासभूता निवेशनम्॥
प्रविशारालपक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ।
न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन ॥
दासभार्या च पाञ्चालि स्वयं दासी च शोभने
अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः
सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते ।
पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समं
अन्योन्यं समुदीक्षन्ते धार्तराष्ट्रस्य तेजसा ।
व्यक्तं षण्ढतिला ह्येते न पुरेव निमज्जिताः ॥
प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम्
इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ॥ ८९
पापः पापवचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत ।
अद्य पापस्य तद्वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ॥
शमयन्तु शिलाधौता-
स्त्वयास्ता जीवितच्छिदः ।
यानि चान्यानि दुष्टात्मा
पापानि कृतवांस्त्वयि ॥ ९१

तान्यद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव।
गाण्डीवप्रहितान्घोरानद्य गात्रैःस्पृशञ्छरान्
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः॥
सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः॥
त्वयाऽस्तास्तस्य वर्माणि
भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम् ।
उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता
मर्म भित्त्वा महाशराः ॥ ९४
अद्य कर्णं महावेगाः
प्रेषयन्तु यमक्षयम् ।
अद्य हाहाकृता दीना
विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः ॥ ९५
प्रपतन्तं रथात्कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः।
अद्य शोणितसंमग्नं शयानं पतितं भुवि ।
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः
हस्तिकक्षो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया।
प्रकम्पमानः पततु भूमावपि रथध्वजः ॥ ९७
त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम् ।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम्
त्वं चेत्कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
प्रतिज्ञावारणार्थाय निहनिष्यसि सायकैः॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान्।
स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद
ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया ।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः
एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः॥ १०२
पञ्चालान् द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ।
धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम्॥
नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।
सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशं गतान्
अभ्याहतानां कर्णेन पञ्चालानामसौ रणे।
श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परंतप॥
न त्वेव भीताः पञ्चालाः
कथंचित्स्युः पराङ्मुखाः।
न हि मृत्युं महेष्वासा
गणयन्ति महारणे ॥
य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत्।
तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मान्नासन्पराङ्मुखाः
ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः ।
यस्त्वेकः सर्वपञ्चालानहन्यहनि नाशयन्॥
कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे ।
तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सल॥
तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम्।
निर्दहन्तं च समरे दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ११०
ते नित्यमुदिता जेतुं
मृधे शत्रूनरिंदम।
न जात्वाधिरथेर्भीताः
पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः॥ १११
तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम्।
आदत्तासूञ्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः॥
एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम्
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथाकृतान् ११३
तांस्तथाऽभिमुखान्वीरा-
न्मित्रार्थे त्यक्तजीवितान्।
क्षयं नयति राधेयः
पञ्चालाञ्छतशो रणे॥ ११४
तद्भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि १५
अस्त्रं हि रामात्कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात्।
यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते॥ १६
तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम्।
समावृत्य महासेनां ज्वलन्तं स्वेन तेजसा॥
एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्ति स्म तावकान्
एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत।
कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः १९
एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः।
सृञ्जयैर्योधयन्कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः॥
पाण्डवान्सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः२१
नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहम्।
तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि॥
त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान्
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते २४

एतत्कृत्वा महत्कर्म हत्वा कर्णं महारथम् । कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥ १२५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णवाक्ये
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

## ७४

सञ्जय उवाच ।
स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम् ।
विशोकः संप्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १
ततो ज्यामभिमृज्याशु
व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।
दध्रे कर्णविनाशाय
केशवं चाभ्यभाषत ॥ २
त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम ।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं लोके भूतभविष्यकृत्
त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण
त्रीन्लोकान्वै समागतान् ।
प्रापयेयं परं लोकं
किमु कर्णं महाहवे ॥ ४
पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन ।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥५
भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण सर्वशः
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव यथाऽशनिम् ६
अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम् ।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥
अद्य कृष्ण विकर्णा मे
कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे ।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो
मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८
अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते ।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत्॥९
अद्य राज्यात्सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात्तथा पुरात्
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥
गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम् ।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥
यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत्
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ।
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः ॥१२
अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥
अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वरः
अद्यासौ सौबलः कृष्ण
ग्लहाञ्जानातु वै शरान् ।
दुरोदरं च गाण्डीवं
मण्डलं च रथं प्रति ॥ १५
अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम् ।
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः
अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया ।
सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥ १७
अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम् ।
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद्भ्रंशयिष्यति
यस्य चैतद्व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः ।
पादौ न धावये तावद्यावद्धन्यां न फाल्गुनम्
मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन ।
पातयिष्ये रथात्कायं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम्
'अपतिर्ह्यसि कृष्णे'-ति सूतपुत्रो यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान् गुणान्
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः
आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितं
मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः ।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिं

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

स केशवस्येति ॥ १ ॥ ज्वलन्तं पुंस्त्वमार्षम् ॥६ स्मरतां स्मरतु ॥ १४ ॥ मंडलं द्यूते शारीस्थापनपट्टं दुरोदरं पाशम् ॥ १५ ॥

अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत्
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन्पाण्डवान्प्रति ॥
ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥ २९
अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत्
धृतराष्ट्रसुतान्कर्णः श्लाघमानोऽत्मनो गुणान्।
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः
उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति ।
हन्ताहं पाण्डवान्सर्वान्सपुत्रानिति योऽब्रवीत्
तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम्
यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान् दुरात्मवान्
हत्वाऽहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरं
शरान्नानाविधान्मुक्त्वा
त्रासयिष्यामि शात्रवान्।
आकर्णमुक्तैरिषुभि-
र्यमराष्ट्रविवर्धनैः ॥ ३१
भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः।
तत्राहं वै महासंख्ये संपन्नं युद्धदुर्मदम् ॥ ३२
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः।
अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव
अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचतां
हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने ।
अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥३५
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम् ॥
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विचरिष्यन्ति केशव
अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन ॥ ३८
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनां
अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च क्षुरैश्च मधुसूदन ॥ ३९
रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः
अद्य राजा महत्कृच्छ्रं सन्त्यक्ष्यति युधिष्ठिरः
संतापं मानसं वीरश्चिरसंभृतमात्मनः ।
अद्य केशव राधेयमहं हत्वा सबान्धवम् ॥
नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अद्याहमनुगान् कृष्ण कर्णस्य कृपणान् युधि ॥
हन्ता ज्वलनसंकाशैः शरैः सर्पविषोपमैः ।
अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः ॥ ४३
संस्तरिष्यामि गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः
अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन ॥४४
प्रमथिष्यामि गात्राणि
शिरांसि च शितैः शरैः ।
अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च
भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम् ॥ ४५
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि ।
अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ॥
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गांडिवस्य च
अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ॥
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ।
अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः ॥
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि
मम चैव कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ॥
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ।
अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ॥
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य
यमयोः सात्यकस्य च ।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां
पञ्चालानां च माधव ॥ ५१
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे ।
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ॥ ५२
युध्यन्तं कौरवान्संख्ये घातयन्तं च सूतजम्
भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ५३
धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके
पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावां-
स्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति
अहं धनुष्मान्ससुरासुरांश्च
सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि ।
स्वबाहुवीर्याद्गमये पराभवं
मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः ॥ ५५
शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः
सर्वान्कुरून्बाह्लिकांश्चाभिहत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्नि-
स्तथा दहेयं सगणान्प्रसह्य ॥ ५६
पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते
धनुश्च दिव्यं विततं सबाणम् ।
*पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ५७

* रथध्वजचिन्हाङ्कितौ पादावित्यर्थः ।

इत्येवमुक्त्वाऽर्जुन एकवीरः
क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः ।
भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः
कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ५८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## ७५

धृतराष्ट्र उवाच ।
समागमे पाण्डवसृञ्जयानां
महाभये मामकानामगाधे ।
धनञ्जये तात रणाय याते
कर्णेन तद्युद्धमथोऽत्र कीदृक् ॥ १
सञ्जय उवाच ।
तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि
रणे समृद्धानि समागतानि ।
गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि
नादैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥ २
महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं
वादित्रनेमीतलशब्दवच्च ।
हिरण्यचित्रायुधविद्युतं च
शरासिनाराचमहास्त्रधारम् ॥ ३
तद्भीमवेगं रुधिरौघवाहि
खड्गाकुलं क्षत्रियजीवघाति ।
अनार्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं
बभूव तत्संहरणं प्रजानाम् ॥ ४
एकं रथं संपरिवार्य मृत्युं
नयन्त्यनेके च रथाः समेताः ।
एकस्तथैकं रथिनं रथाग्र्यां-
स्तथा रथश्चापि रथाननेकान् ॥ ५
रथं ससूतं सहयं च कश्चि-
त्कश्चिद्रथी मृत्युवशं निनाय ।
निनाय चाप्येकगजेन कश्चि-
द्रथान्बहून् मृत्युवशे तथाऽश्वान् ६
रथान्ससुतान् सहयान्गजांश्च
सर्वानरीन्मृत्युवशं शरौघैः ।
निन्ये हयांश्चैव तथा ससादीन्
पदातिसङ्घांश्च तथैव पार्थः ॥ ७
कृपः शिखण्डी च रणे समेतौ
दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् ।
श्रुतस्तथा द्रोणपुत्रेण सार्धं
युधामन्युश्चित्रसेनेन सार्धम् ॥ ८
कर्णस्य पुत्रं तु रथी सुषेणं
समागतं सृञ्जयश्चोत्तमौजाः ।
गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्तो
महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत् ॥ ९
शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं
युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः ।
समार्पयत्कर्णपुत्रश्च शूरः
पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥ १०
रथर्षभः कृतवर्माणमार्छ-
न्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी ।
पञ्चालानामधिपो याज्ञसेनिः
सेनापतिः कर्णमार्छत्ससैन्यम् ॥ ११
दुःशासनो भारत भारती च
संशप्तकानां पृतना समृद्धा ।
भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं
भीमं समार्छत्तमसह्यवेगम् ॥ १२
कर्णात्मजं तत्र जघान वीर-
स्तथाऽच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य ।
तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ
निनादयद्गां निनदेन खं च ॥ १३

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

७५

**समागमे इति** । समागमे कर्णेन सह कीदृग्युद्धमभूदिति शेषः ॥१॥ पांचालेयं पांचालीतनयं नाकुलिम् ॥१०॥

सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां
विलोक्य कर्णोऽथ तदार्तरूपः ।
क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजं च
बाणैः सुधारैर्निशितैरकृन्तत ॥ १४
स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कै-
र्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण ।
पार्ष्णिग्रहांश्चैव कृपस्य हत्वा
शिखण्डिवाहं स ततोऽध्यरोहत् १५

कृपं तु दृष्ट्वा विरथं रथस्थो
नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी ।
तं द्रौणिरावार्य रथं कृपस्य
समुज्जह्रे पङ्कगतां यथा गाम् ॥ १६
हिरण्यवर्मा निशितैः पृषत्कै-
स्तवात्मजानामनिलात्मजो वै ।
अतापयत्सैन्यमतीव भीमः
काले शुचौ मध्यगतो यथाऽर्कः १७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलद्वन्द्वयुद्धे
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

सञ्जय उवाच ।
अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे
द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः ।
महारणे सारथिमित्युवाच
भीमश्चमूं वाहय धार्तराष्ट्रीम् ॥ १
त्वं सारथे याहि जवेन वाहै-
र्नयाम्येतान्धार्तराष्ट्रान् यमाय ।
सञ्चोदितो भीमसेनेन चैवं
स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् ॥ २
प्रायात्ततः सत्वरमुग्रवेगो
यतो भीमस्तद्बलं गन्तुमैच्छत् ।
ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः
प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात् ॥ ३
भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं
समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः ।
ततः शरानापततो महात्मा
चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ४
ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा
द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ।
ततो राजन्नागरथाश्वयूनां
भीमाहतानां वरराजमध्ये ॥ ५
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र
वज्राहतानामिव पर्वतानाम् ।

ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या
निर्भिद्यतो भीमशरप्रवेकैः ॥ ६
भीमं समन्तात्समरेऽभ्यरोहन्
वृक्षं शकुन्ता इव पुष्पहेतोः ।
ततोऽभियाते तव सैन्ये स भीमः
प्रादुश्चक्रे वेगमनन्तवेगः ॥ ७
यथाऽन्तकाले क्षपयन्दिधक्षु-
र्भूतान्तकृत्काल इवात्तदण्डः ।
तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं
नाशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः ॥ ८
व्यात्ताननस्यापततो यथैव
कालस्य काले हरतः प्रजा वै ।
ततो बलं भारत भारतानां
प्रदह्यमानं समरे महात्मना ॥ ९
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं
महानिलेनाभ्रगणा यथैव ।
ततो धीमान्सारथिमब्रवीद्बली
स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः॥ १०
सूताभिजानीहि स्वकान्परान्वा
रथान् ध्वजांश्चापततः समेतान् ।
युध्यन् ह्यहं नाभिजानामि किञ्चि-
न्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः ११

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

अथेति ॥ १ ॥

अरीन्विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो
रथो ध्वजाग्राणि धुनोति मे भृशम्
राजाऽऽतुरो नागमद्यात्किरीटी
बहूनि दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत ॥
एतद्दुःखं सारथे धर्मराजो
यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये ।
नैनं जीवं नाद्य जानाम्यजीवं
बीभत्सुं वा तन्ममाद्यातिदुःखम् १३
सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं
विनाशयिष्ये परमप्रतीतः ।
एतन्निहत्याजिमध्ये समेतं
प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाऽद्य १४
सर्वांस्तूणान्सायकानामवेक्ष्य
किं शिष्टं स्यात्सायकानां रथे मे ।
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां
ज्ञात्वा व्यक्तं तत्समाचक्ष्व सूत १५

विशोक उवाच ।

षण्मार्गणानामयुतानि वीर
क्षुराश्च भल्लाश्च तथाऽयुताख्याः ।
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर
त्रीण्येव च प्रदराणां स्म पार्थ ॥ १६
अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं
न यद्वहेच्छकटं षड्गवीयम् ।
एतद्विद्वन्मुञ्च सहस्रशोऽपि
गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥ १७
प्रासाश्च मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च
मा भैषीस्त्वं संक्षयादायुधानाम्॥१८

भीमसेन उवाच ।

सूताद्यैनं पश्य भीमप्रयुक्तैः
संछिन्दद्भिः पार्थिवानां सुवेगैः ।
छन्नं बाणैराहवं घोररूपं
नष्टादित्यं मृत्युलोकेन तुल्यम् ॥ १९
अद्यैतद्वै विदितं पार्थिवानां
भविष्यति ह्याकुमारं च सूत ।
निमग्नो वा समरे भीमसेन
एकः कुरून्वा समरे व्यजैषीत् ॥ २०
सर्वे संख्ये कुरवो निष्पतन्तु
मां वा लोकाः कीर्तयन्त्वाकुमारम्
सर्वानेकस्तानहं पातयिष्ये
ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु ॥ २१
आशास्तारः कर्म चाप्युत्तमं ये
तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु ।
आयात्विहाद्यार्जुनः शत्रुघाती
शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥ २२
ईक्षस्वैतां भारतीं दीर्यमाणा-
मेते कस्माद्विद्रवन्ते नरेन्द्राः ।
व्यक्तं धीमान्सव्यसाची नराग्र्यः
सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः ॥ २३
पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक
नागान् हयान्पत्तिसंघांश्च संख्ये ।
रथान्विकीर्णाञ्शरशक्तिताडितान्
पश्यस्वतान् रथिनश्चैव सूत ॥ २४
आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं
सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना ।
धनञ्जयस्याशनितुल्यवेगै-
र्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिजालैः ॥ २५
एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः
पदातिसङ्घानतिमर्दयन्तः ।
संमुह्यमानाः कौरवाः सर्व एव
द्रवन्ति नागा इव दाहभीताः ॥ २६
हाहाकृताश्चैव रणे विशोक
मुञ्चन्ति नादान्विपुलान्गजेन्द्राः ॥

विशोक उवाच ।

किं भीम नैनं त्वमिहाश्रृणोषि
विस्फारितं गाण्डिवस्यातिघोरम् ।
क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽद्य
कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ विनष्टौ ॥ २८
सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः
कपिर्ह्यसौ दृश्यते हस्तिसैन्ये ।
नीलाद्धनाद्विद्युतमुच्चरन्तीं
तथा पश्य विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम् ॥
कपिर्ह्यसौ वीक्षते सर्वतो वै
ध्वजाग्रमारुह्य धनञ्जयस्य ।
वित्रासयन् रिपुसङ्घान्विमर्दे
बिभेम्यस्मादात्मनैवाभिवीक्ष्य ॥ ३०

प्रदरा बाणविशेषाः ॥ १६ ॥

विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं
विचित्रमेतच्च धनञ्जयस्य ।
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो
विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥ ३१

पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं
पश्यस्व शङ्खं देवदत्तं सुघोषम् ।
अभीषुहस्तस्य जनार्दनस्य
विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥ ३२

रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं
पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य ।
चक्रं यशोवर्धनं केशवस्य
सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर ॥ ३३

महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः
करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः ।
किरीटिना तेन पुनः ससादिनः
शरैर्निकृत्ताः कुलिशैरिवाद्रयः ॥ ३४

तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं
महार्हमेतं द्विजराजवर्णम् ।
कौन्तेय पश्योरसि कौस्तुभं च
जाज्वल्यमानं विजयां स्रजं च ॥ ३५

ध्रुवं रथाग्र्यः समुपैति पार्थो
विद्रावयन्सैन्यमिदं परेषाम् ।
सिताभ्रवर्णैरसितप्रयुक्तै-
र्हयैर्महार्हैं रथिनां वरिष्ठः ॥ ३६

रथान् हयान्पत्तिगणांश्च सायकै-
र्विदारितान्पश्य पतन्त्यमी यथा ।
तवानुजेनामरराजतेजसा
महावनानीव सुपर्णवायुना ॥ ३७

चतुःशतान्पश्य रथानिमान्हतान्
सवाजिसूतान्समरे किरीटिना ।
महेषुभिः सप्तशतानि दन्तिनां
पदातिसादींश्च रथाननेकशः ॥ ३८

अयं समभ्येति तवान्तिकं बली
निघ्नन् कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः ।
समृद्धकामोऽसिहतास्तवाहिता
बलं तवायुश्च चिराय वर्धताम् ॥ ३९

भीमसेन उवाच ।
ददानि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश
प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः ।
दासीशतं चापि रथांश्च विंशतिं
यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि भीमसेनविशोकसंवादे
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

सञ्जय उवाच ।
श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे ।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं नोदय वाजिनः
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविंदोऽर्जुनमब्रवीत
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः

तं यान्तमश्वैर्हिमशङ्खवर्णैः
सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः ।
जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं
जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम् ॥ ३

रथाश्वमातङ्गपदातिसंघा
बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च ।
संनादयन्तो वसुधां दिशश्च
क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ॥ ४

तेषां च पार्थस्य च मारिषासी-
द्देहासुपाप्मक्षपणं सुयुद्धम् ।
त्रैलोक्यहेतोरसुरैर्यथासी-
द्देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ॥ ५

तैरस्तमुच्चावचमायुधं त-
देकः प्रचिच्छेद किरीटमाली ।
क्षुरार्धचन्द्रैर्निशितैश्च भल्लैः
शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून् ॥ ६

---

असितप्रयुक्तैः कृष्णप्रयुक्तैः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

श्रुत्वेति ॥ १ ॥

छत्राणि वालव्यजनानि केतू-
नश्वान्रथान्पत्तिगणान्द्विपांश्च ।
ते पेतुरुर्व्यां बहुधा विरूपा
वातप्रणुन्नानि यथा वनानि ॥ ७
सुवर्णजालावतता महागजाः
सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः समाचिता-
श्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाऽचलाः ८
विदार्य नागाश्वरथान् धनञ्जयः
शरोत्तमैर्वासववज्रसन्निभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा
यथा मरुत्वान् बलभेदने पुरा ॥ ९
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिंदमः ।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा ॥ १०
तं दृष्ट्वास्तावका राजन्रथपत्तिसमन्विताः ।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥
तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत् ।
सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः
ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम्॥
तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
अर्जुनो व्यधमत्सैन्यं महावातो घनानिव ॥
तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिणः ।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः॥
ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥ १६
ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः ।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः १७
तेषां चतुःशतान्वीरान्यतमानान्महारथान् ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥ १८
ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश १९
तेषां शब्दो महानासीद्द्रवतां वाहिनीमुखे ।
महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्यतः २०
तां तु सेनां भृशं विद्ध्वा
द्रावयित्वाऽर्जुनः शरैः ।
प्रायादभिमुखः पार्थः
सूतानीकं हि मारिष ॥ २१
तस्य शब्दो महानासीत्परानभिमुखस्य वै ।
गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥ २२
तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः ।
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥ २३
श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान् ।
त्यक्त्वा प्राणान्महाराज सेनां तव ममर्द ह
स वायुवीर्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे ।
वायुवद्व्यचरद्भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५
तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशांपते ।
व्यभ्रश्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥
तां तु सेनां तदा भीमो
दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
शरैरवचकर्तोग्रैः
प्रेषयिष्यन् यमक्षयम्॥ २७
तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वाऽतिमानुषम् ।
व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये २८
तथाऽर्दितान्भीमबलान् भीमसेनेन भारत ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २९
सैनिकांश्च महेष्वासान् योधांश्च भरतर्षभ ।
समादिशद्रणे सर्वान्हत भीममिति स्म ह ॥
तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः ।
प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः३१
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः ।
गजाश्च बहुला राजन्नराश्च जयगृद्धिनः ॥३२
रथे स्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम् ।
स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन्समन्ततः ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
परिवेषी यथा सोमः परिपूर्णो विराजते ३४
स रराज तथा संख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः ।
निर्विशेषो महाराज यथा हि विजयस्तथा ॥
तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन् ।
क्रोधरक्तेक्षणाः शूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥
तां विदार्य महासेनां शरैः सन्नतपर्वभिः ।
निश्चक्राम रणाद्भीमो मत्स्यो जालादिवांभसि
हत्वा दशसहस्राणि गजानामनिवर्तिनाम्
नृणां शतसहस्रे द्वे द्वे शते चैव भारत ॥ ३८
पञ्च चाश्वसहस्राणि
रथानां शतमेव च ।
हत्वा प्रास्यन्दयद्भीमो
नदीं शोणितवाहिनीम् ॥ ३९
शोणितोदां रथावर्तां
हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
नरमीनाश्वनक्रान्तां
केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४०

संच्छिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नापहारिणीम् ।
ऊरुग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमावृताम् ४१
धनुःकाशां शरावापां गदापरिघकेतनाम् ।
हंसछत्रध्वजोपेतामुष्णीषवरफेनिलाम् ॥ ४२
हारपद्माकरां चैव भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
आर्यवृत्तवतीं संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ४३
योधग्राहवतीं संख्ये वहन्तीं पितृसादनम् ।
क्षणेन पुरुषव्याघ्रः प्रावर्तयत निम्नगाम् ॥ ४४
यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तथा दुस्तरणीं घोरां भीरूणां भयवर्धनीम्
यतो यतः पाण्डवेयः प्रविष्टो रथसत्तमः ।
ततस्ततो घातयत योधाञ्शतसहस्रशः ॥ ४६
एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥
जहि मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम्
ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान् ।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ४९
स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् ।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ५०
संन्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः ।
शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे
प्रेषयामास नाराचान्
रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
वर्म भित्त्वा तु ते घोराः
पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५२
न्यमज्जन्त महाराज
कङ्कबर्हिणवाससः ।
सोऽतिविद्धो रणे भीमः
शरं रुक्मविभूषितम् ॥ ५३
प्रेषयामास स रुषा सौबलं प्रति भारत ।
तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः ५४
चिच्छेद सप्तधा राजन् कृतहस्तो महाबलः ।
तस्मिन्निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशांपते
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् ॥
अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।
तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः सन्नतपर्वभिः ५७
द्वाभ्यां स सारथिं ह्याच्छेद्भीमं सप्तभिरेव च।
ध्वजमेकेन चिच्छेद द्वाभ्यां छत्रं विशांपते ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान्विव्याध सुबलात्मजः ।
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला ६०
निपपात रणे तूर्णं सौबलस्य महात्मनः ।
ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम् ६१
भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशांपते ।
सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः
निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता ।
अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्तराष्ट्रैः समन्ततः ६३
न तु तं ममृषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम् ।
अन्यद्गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महाबलः ६४
मुहूर्तादिव राजेन्द्र
च्छादयामास सायकैः ।
सौबलस्य बलं संख्ये
त्यक्त्वाऽऽत्मानं महाबलः ॥ ६५
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशांपते ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ६६
हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्
शरैश्च बहुधा राजन् भीममाच्छेत्समन्ततः ।
प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ६८
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ६९
निपपात तदा भूमौ किंचित्प्राणो नराधिपः
ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशांपते ७०
अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ।
रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ॥
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये ।
सौबले निर्जिते राजन्भीमसेनेन धन्विना
भयेन महताऽऽविष्टः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षो मातुलं प्रति ७३
पराङ्मुखं तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत ।
विप्रजग्मुः समुत्सृज्य द्वैरथानि समन्ततः ७४
तान् दृष्ट्वा विद्रुतान्सर्वान्
धार्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् ।
जवेनाभ्यापतद्भीमः
किरञ्शरशतान्बहून् ॥ ७५
ते वध्यमाना भीमेन धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः
कर्णमासाद्य समरे स्थिता राजन् समन्ततः
स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽभूत्सुमहाबलः ।
भिन्ननौका यथा राजन्द्वीपमासाद्य निर्वृताः॥

भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ।
तथा कर्णं समासाद्य तावकाः पुरुषर्षभ ७८
समाश्वस्ताः स्थिता राजन्संप्रहृष्टाः परस्परम्
समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शकुनिपराजये
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

धृतराष्ट्र उवाच ।
ततो भग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्किं नु सौबलो वापि सञ्जय
कर्णो वा जयतां श्रेष्ठो
योधा वा मामका युधि ।
कृपो वा कृतवर्मा वा
द्रौणिर्दुःशासनोऽपि वा ॥ २
अत्यद्भुतमहं मन्ये पाण्डवेयस्य विक्रमम् ।
यदेकः समरे सर्वान् योधयामास मामकान्
यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि ।
कुरूणामथ सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः ॥ ४
शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च सञ्जय ।
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा ॥ ५
राधेयो वाप्याधिरथिः कर्णः किमकरोद्युधि
पुत्रा वा मम दुर्धर्षा राजानो वा महारथाः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ६
सञ्जय उवाच ।
अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
जघान सोमकान्सर्वान्भीमसेनस्य पश्यतः ७
भीमोऽप्यतिबलं सैन्यं धार्तराष्ट्रं व्यपोथयत्
अथ कर्णोऽब्रवीच्छल्यं पञ्चालान्प्रापयस्व माम्
द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।
यन्तारमब्रवीत्कर्णः पञ्चालानेव मां वह ॥ ९
मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान्महाजवान्
प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान्करूषांश्च महाबलः ॥
प्रविश्य च महत्सैन्यं शल्यः परबलार्दनः ।
न्ययच्छत्तुरगान् हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ११
तं रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन्विशांपते
ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १३
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्ण आकर्णनिःसृतैः ।
जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः १४
तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमपराजितम् ।
परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः १५
तं शिखण्डी च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः १६
परिवव्रुर्जिघांसन्तो
राधेयं शरवृष्टिभिः ।
सात्यकिस्तु तदा कर्णं
विंशत्या निशितैः शरैः ॥ १७
अताडयद्रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च सप्तभिः ॥
द्रौपदेयाश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ।
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥
भीमसेनस्तु राधेयं नवत्या नतपर्वणाम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबलः २०
अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपद्धनुरुत्तमम् ।
मुमोच निशितान्बाणान् पीडयन्सुमहाबलः
तान्प्रत्यविध्यद्राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
सात्यकेस्तु धनुश्छित्त्वा ध्वजं च भरतर्षभ ॥
तं तथा नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमसेनं ततः क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः
सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परन्तपः २४
विरथान्द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८
तत इति ॥ १ ॥

विमुखीकृत्य तान्सर्वाञ्शरैः सन्नतपर्वभिः
पञ्चालानहनच्छूरांश्चेदीनां च महारथान् २६
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशांपते।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्पयन्॥ २७
ताञ्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः।
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशांपते॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव।
एतदत्यद्भुतं कर्म दृष्टवानस्मि भारत॥ २९
यदेकः समरे शूरान्सूतपुत्रः प्रतापवान्।
यतमानान्परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः
पाण्डवेयान्महाराज शरैर्वारितवान् रणे।
तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः॥३१
तुतुषुर्देवताः सर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः।
अपूजयन्महेष्वासा धार्तराष्ट्रा नरोत्तमम्॥
कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम्।
ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम्॥
कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान्
ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महारथम्।
तत्राक्रन्दो महानासीत्पञ्चालानां महारणे॥
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः।
तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः॥
कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः।
तत्राद्भुतं पुनश्चक्रे राधेयः शत्रुकर्शनः॥ ३७
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम्।
यथौघः* पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते॥ ३८
तथा तत्पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते।
कर्णोऽपि समरे राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्
दहंस्तस्थौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम्।
शिरांसि च महाराज कर्णांश्चैव सकुण्डलान्

बाहूंश्च वीरो वीराणां
 चिच्छेद लघु चेषुभिः।
हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान्
 ध्वजाञ्शक्तीर्हयान् गजान्॥ ४१

रथांश्च विविधान्राजन्पताका व्यजनानि च
अक्षं च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च
चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः।
तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः॥ ४३
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा।
विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः॥ ४४

* ओघो जलौघ इत्यर्थः।

रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन।
नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम्
घोरे शरान्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृम्भिते।
राधेयचापनिर्मुक्तैः शरैः काञ्चनभूषणैः॥ ४६
संछादिता महाराज पाण्डवानां महारथाः
ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनःपुनः॥ ४७
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः।
मृगसङ्घान् यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने॥
पञ्चालानां रथश्रेष्ठान्द्रावयञ्शात्रवांस्तथा।
कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन्सुमहायशाः॥
कालयामास तत्सैन्यं यथा पशुगणान् वृकः
दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखीं
तत्राजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान्रवान्।
दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः॥
वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः।
पञ्चालापि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः
न्यवर्तन्त यथा शूरं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।
तान्निवृत्तान्रणे शूरान्राधेयः शत्रुतापनः॥ ५३
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः।
तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः॥
निहताः सायकैः क्रोधाच्चेदयश्च परंशताः॥
कृत्वा शून्यान्रथोपस्थान्वाजिपृष्ठांश्च भारत

निर्मनुष्यान् गजस्कन्धान्
 पादातांश्चैव विद्रुतान्।
आदित्य इव मध्याह्ने
 दुर्निरीक्ष्यः परंतपः॥ ५७

कालान्तकवपुः शूरः सूतपुत्रोऽभ्यराजत।
एवमेतन्महाराज नरवाजिरथद्विपान्॥
हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसूदनः
यथा भूतगणान्हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः॥
तथा स सोमकान्हत्वा तस्थावेको महारथः
तत्राद्भुतमपश्याम पञ्चालानां पराक्रमम्॥
वध्यमानाऽपि यत्कर्णं नाजहू रणमूर्धनि।
राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्च महाबलः।
न्यहनन्पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः॥
कर्णपुत्रौ तु राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ।
निजघ्नाते बलं क्रुद्धौ पाण्डवानामितस्ततः॥
तत्र युद्धं महच्चासीत्क्रूरं विशसनं महत्।
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ॥

द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम् । एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानां ततस्ततः ।
तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

सञ्जय उवाच ।
अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम् ।
सूतपुत्रं च संक्रुद्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥ १
शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिपङ्किलाम् ।
मनुष्यशीर्षपाषाणां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ॥ २
शूरास्थिचयसंकीर्णां काकगृध्रानुनादिताम् ।
छत्रहंसप्लवोपेतां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥ ३
हारपद्माकरवतीमुष्णीषवरफेनिलाम् ।
धनुःशरध्वजोपेतां नरक्षुद्रकपालिनीम् ॥ ४
चर्मवर्मभ्रमोपेतां रथोडुपसमाकुलाम् ।
जयैषिणां च सुतरां भीरूणां च सुदुस्तराम् ।
नदीं प्रावर्तयित्वा च बीभत्सुः परवीरहा ।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभः ॥ ६
अर्जुन उवाच ।
एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते ।
भीमसेनादयश्चैते योधयन्ति महारथम् ॥ ७
एते द्रवन्ति पञ्चालाः कर्णत्रस्ता जनार्दन ।
एष दुर्योधनो राजा श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥८
कर्णेन भग्नान्पञ्चालान् द्रावयन्बहु शोभते ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ९
एते रक्षन्ति राजानं
सूतपुत्रेण रक्षिताः ।
अवध्यमानास्तेऽस्माभि-
र्घातयिष्यन्ति सोमकान् ॥ १०
एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः ।
सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन् बहु शोभते ॥ ११
तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम् ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन ॥ १२
राधेयो ह्यन्यथा पार्थान्सृञ्जयांश्च महारथान्
निःशेषान्समरे कुर्यात्पश्यतां नो जनार्दन ॥

ततः प्रायाद्रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम्
कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥
प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः ।
आश्वासयन्रथेनैव पाण्डुसैन्यानि सर्वशः ॥
रथघोषः स संग्रामे पाण्डवेयस्य संबभौ ।
वासवाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष १६
महता रथघोषेण पाण्डवः सत्यविक्रमः ।
अभ्ययादप्रमेयात्मा निर्जयंस्तव वाहिनीम् ॥
तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्
मद्रराजोऽब्रवीत्कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः १८
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः
निघ्नन्नमित्रान्समरे यं कर्ण परिपृच्छसि १९
एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन्गाण्डिवं धनुः
तं हनिष्यसि चेदद्य तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥
धनुर्ज्या चन्द्रताराङ्का पताकाकिङ्किणीयुता
पश्य कर्णार्जुनस्यैषा सौदामन्यम्बरे यथा २१
एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षमाणः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो वीराणां भयवर्धनः २२
एतच्चक्रं गदा शङ्खः शार्ङ्गं कृष्णस्य च प्रभो ।
दृश्यते पाण्डवरथे वाहयानस्य वाजिनः २३
एतत्कूजति गाण्डीवं
विसृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता
घ्नन्त्यमित्रान्शिताः शराः ॥ २४
विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम्
एते परिघसङ्काशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्धता रणशूराणां पात्यन्ते सायुधा भुजाः

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९ ॥
अर्जुन इति ॥ १ ॥

निरस्तजिह्वा नेत्रान्ता
वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च
क्षितौ क्षीणा विशेरते ॥ २७
एते पर्वतश्रृङ्गाणां तुल्या हैमवता गजाः ।
संछिन्नकुम्भाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा २८
गन्धर्वनगराकारा यथा वा ते नरेश्वराः ।
विमानादिव पुण्यान्ते स्वर्गिणो निपतन्त्यमी
व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना ।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ३०
त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन्वरान्रथान् ।
असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारत ३१
एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निघ्नतः शात्रवान्बहून् ३२
वर्जयन्सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनञ्जयः ।
त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥
न ह्यवस्थास्यते पार्थो युयुत्सुः केनचित्सह ।
त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ३४
विरथं धर्मराजं तु दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम् ।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्
द्रौपदेयान् युधामन्युमुत्तमौजसमेव च ।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ३६
सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परंतपः ।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वपार्थिवान्
त्वरितोऽभिपतत्यस्मां-
स्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम् ।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं
नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः ॥ ३८
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिं-
स्त्वत्तो ह्यन्यं धनुर्धरम् ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं
यो वेलामिव धारयेत् ॥ ३९
न चास्य रक्षां पश्यामि पार्श्वतो न च पृष्ठतः
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः
त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे ।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ४१
समानो ह्यसि भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपेण च ।
सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महारणे ४२
लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा ।
वनस्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनञ्जयम् ४३
एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः ४४
द्रवतामथ तेषां तु नान्योऽस्ति युधि मानवः
भयहा यो भवेद्वीरस्त्वामृते सूतनन्दन ।
एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ४५
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकाङ्क्षिणः ।
वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया
गान्धाराश्च यया धृत्या
जिताः संख्ये सुदुर्जयाः ।
तां धृतिं कुरु राधेय
ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ॥ ४७
वासुदेवं च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना ।
प्रत्युद्याहि महाबाहो पौरुषे महति स्थितः ४८

कर्ण उवाच ।

प्रकृतिस्थोऽसि मे शल्य इदानीं संमतस्तथा
प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धनञ्जयात्
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य
शिक्षितस्य च पश्य मे ।
एकोऽद्य निहनिष्यामि
पाण्डवानां महाचमूम् ॥ ५०
कृष्णौ च पुरुषव्याघ्र ततः सत्यं ब्रवीमि ते ।
नाहत्वा युधि तौ वीरौ व्यपयास्ये कथञ्चन
शिश्ये वा निहतस्ताभ्या-
मनित्यो हि रणे जयः ।
कृतार्थोऽद्य भविष्यामि
हत्वा वाऽप्यथवा हतः ॥ ५२

शल्य उवाच ।

अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे
महारथाः कर्ण रथप्रवीरम् ।
एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं
विजेतुमेनं क इहोत्सहेत ॥ ५३

कर्ण उवाच ।

नैतादृशो जातु बभूव लोके
रथोत्तमो यावदुपश्रुतं नः ।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं
महाहवे पश्य च पौरुषं मे ॥ ५४
रणे चरत्येष रथप्रवीरः
सितैर्हयैः कौरवराजपुत्रः ।
स वाऽद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेत-
त्कर्णस्यान्तादेतदन्तास्तु सर्वे ॥ ५५

अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्ता-
ववेपमानौ जातकिणौ बृहन्तौ ।
दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः ५६
गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रा-
नेकं यथा तान्प्रति योज्य चाशु ।
ते क्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः
कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम्॥
अतोषयत्खाण्डवे यो हुताशं
कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी ।
लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा
धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची ५८
श्वेताश्वयुक्तं च सुघोषमुग्रं
रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः ।
महेषुधी चाक्षये दिव्यरूपे
शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात्॥
तथेन्द्रलोके निजघान दैत्यान-
संख्येयान् कालकेयांश्च सर्वान् ।
लेभे शङ्खं देवदत्तं स्म तत्र
को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम्
महादेवं तोषयामास योऽस्त्रैः
साक्षात्सुयुद्धेन महानुभावः ।
लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं
त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम् ॥ ६१
पृथक्पृथग्लोकपालाः समेता
ददुर्महास्त्राण्यप्रमेयाणि संख्ये ।
यैस्ताञ्जघानाशु रणे नृसिंहः
सकालकेयानसुरान्समेतान् ॥ ६२
तथा विराटस्य पुरे समेता-
न्सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा ।
जहार तद्गोधनमाजिमध्ये
वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः ॥ ६३
तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं
कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम् ।
तमाह्वयन्साहसमुत्तमं वै
जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य ॥ ६४
अनन्तवीर्येण च केशवेन
नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तः ।
वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या
वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः ॥ ६५
महात्मनः शङ्खचक्रासिपाणे-
र्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य ।
भयं न मे जायते साध्वसं च
दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ६६
अतीव पार्थो युधि कार्मुकिभ्यो
नारायणश्चाप्रतिचक्रयुद्धे ।
एवंविधौ पाण्डववासुदेवौ
चलेत्स्वदेशाद्धिमवान्न कृष्णौ ॥ ६७
उभौ हि शूरौ बलिनौ दृढायुधौ
महारथौ संहननोपपन्नौ ।
एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ
कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तौ तु शल्य॥
मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य
मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य ।
नैतच्चिरादाशु भविष्यतीद-
मत्यद्भुतं चित्रमतुल्यरूपम् ॥ ६९
एतौ च हत्वा युधि पातयिष्ये
मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य ।
इति ब्रुवञ्शल्यमामित्रहन्ता
कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद ॥ ७०
अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः
समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम् ।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ
तथैव गान्धारपतिं सहानुजम् ७१
गुरोः सुतं चावरजं तथाऽऽत्मनः
पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान् ।
निरुध्यताभिद्रवताच्युतार्जुनौ
श्रमेण संयोजयताशु सर्वशः ॥ ७२
यथा भवद्भिर्भृशविक्षितावुभौ
सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः ।
तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं
जिघांसवो वीरतराः समाययुः ७३
शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा
धनञ्जयं कर्णनिदेशकारिणः ।
नदीनदं भूरिजलो महार्णवो
यथा तथा तान् समरेऽर्जुनोऽग्रसत्
न संदधानो न तथा शरोत्तमान्
प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते ।
धनञ्जयास्तैस्तु शरैर्विदारिता
हता निपेतुर्नर-वाजि-कुञ्जराः ॥ ७५

शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं
युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम् ।
न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं
यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः ७६
शरोत्तमान्संप्रहितान्महारथै-
श्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः ।
भूयश्च तानहनद्बाणसङ्घान्
गाण्डीवधन्वायतपूर्णमण्डलम् ॥ ७७
यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगः
सुखं विवस्वान् हरते जलौघान् ।
तथाऽर्जुनो बाणगणान्निरस्य
ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र ॥ ७८
तमभ्यधावद्विसृजन्कृपः शरां-
स्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम् ।
महारथो द्रोणसुतश्च सायकै-
रवाकिरंस्तोयधरा यथाऽचलम् ७९
जिघांसुभिस्तान् कुशलः शरोत्तमान्
महाहवे संप्रहितान्प्रयत्नतः ।
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन्
पराभिनद्वक्षसि चेषुभिस्त्रिभिः ॥ ८०
स गाण्डिवव्यायतपूर्णमण्डल-
स्तपन् रिपूनर्जुनभास्करो बभौ ।
शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो
यथैव सूर्यः परिवेषवांस्तथा ॥ ८१
अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनञ्जयं
पराभिनद्द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः ।
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिं ततः
शरैश्च नाराचवरैरवाकिरत् ॥ ८२
तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं
त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण ।
हयांश्चतुर्भिश्च पुनस्त्रिभिर्ध्वजं
धनञ्जयो द्रौणिरथादपातयत् ॥ ८३
स रोषपूर्णो मणिवज्रहाटकै-
रलङ्कृतं तक्षकभोगवर्चसम् ।
महाधनं कार्मुकमन्यदाददे
यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तटात् ॥ ८४
स्वमायुधं चोपनिकीर्य भूतले
धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः ।
समार्दयत्तावजितौ नरोत्तमौ
शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ८५
कृपश्च भोजश्च तवात्मजश्च ते
शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम् ।
महारथाः संयुगमूर्धनि स्थिता-
स्तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ॥ ८६
कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं
हयान् ध्वजान्सारथिमेव पत्रिभिः ।
समार्पयद्बाहुसहस्रविक्रम-
स्तथा यथा वज्रधरः पुरा बलेः ८७
स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो
ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे ।
कृतः कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो
यथाऽऽपगेयः प्रथमं किरीटिना॥८८
शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य
ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः ।
जघान चाश्वान्कृतवर्मणः शुभान्
ध्वजं च चिच्छेद ततः प्रतापवान्॥
स वाजिसूतेष्वसनान्सकेतनान्
जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः ।
ततः प्रकीर्णं सुमहद्बलं तव
प्रदारितं सेतुरिवांभसा यथा ॥ ९०
ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशव-
श्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान् ।
ततः प्रयातं त्वरितं धनञ्जयं
शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ॥ ९१
समन्वधावन्पुनरुत्थितैर्ध्वजै
रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः ।
अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्
धनञ्जयस्याभिमुखं महारथाः ॥ ९२
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरै-
र्विदारयन्तो व्यनदन्सुभैरवम् ।
ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं
शरैस्तदाञ्जोगतिभिः सुतेजनैः ॥ ९३
कुरुप्रवीराः सह सृञ्जयैर्यथा-
ऽसुराः पुरा देवगणैस्तथाऽऽहवे ।
जयेप्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः
पतन्ति नागाश्वरथाः परन्तप ॥ ९४

---

शुचिशुक्रयोः आषाढज्येष्ठयोर्मध्येगतः ॥ ७८ ॥ आयुधं आयुधजातम् । उपनिकीर्य निषङ्गकोशादिभ्यो निष्काश्य भूतले भूतलतुल्ये हताश्वसारथौ ध्वजस्य रथस्योपस्थे ॥ ८५ ॥

जगर्जुरुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः
शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक्।
शरान्धकारे तु महात्मभिः कृते
महामृधे योधवरैः परस्परम्।
चतुर्दिशो वै विदिशश्च पार्थिव
प्रभा च सूर्यस्य तमोवृताऽभवत् ९५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

सञ्जय उवाच।
राजन् कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम्।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनंजयः ॥ १
विमृद्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान् धनंजयः २
ततोऽस्याम्बरमाश्रित्य शरजालानि भागशः
अदृश्यन्त तथाऽन्ये च निजघ्नुस्तव वाहिनीम्
स पक्षिसंघाचरितमाकाशं पूरयञ्शरैः।
धनंजयो महाबाहुः कुरूणामन्तकोऽभवत् ४
ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि।
गात्राणि प्राच्छिनत्पार्थः शिरांसि च चकर्त ह
छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः।
पातितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत्समावृता ६
धनंजयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वरथद्विपैः।
संछिन्नभिन्नविध्वस्तैर्व्यङ्गाङ्गावयवैः स्तृता॥७
सुदुर्गमा सुविषमा घोराऽत्यर्थं सुदुर्दृशा।
रणभूमिरभूद्राजन्महावैतरणी यथा ॥ ८
ईषाचक्राक्षभल्लैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम्।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैस्तीर्णाऽभवन्मही ॥ ९
सुवर्णवर्णसंनाहैर्योधैः कनकभूषणैः।
आस्थिताः कृतवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः
क्रुद्धाः क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यङ्गुष्ठप्रचोदिताः।
चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः किरीटिना ११
पर्यस्तानीव शृङ्गाणि समृद्धानि महागिरेः।
धनंजयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः ॥१२
समन्ताज्जलदप्रख्यान्वारणान्मदवर्षिणः।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान् भिन्दन्निवांशुमान्
हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ॥ १४
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत्फाल्गुनेन वै।
व्यस्फारयद्वै गाण्डीवं सुमहद्भैरवारवम् ॥ १५
घोरवज्रविनिष्पेषं स्तनयित्नुरिवाम्बरे।
ततः प्रादीर्यत चमूर्धनंजयशराहता ॥ १६
महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे।
नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीवचोदिताः
अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन्
महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा १८
तथा तव महासैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम्।
संपिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरीटिना १९
कृतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः।
महावने मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा २१
कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना।
उत्सृज्य च महाबाहुं भीमसेनं तथा रणे २१
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत्पराङ्मुखम्।
ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ॥ २२
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत।
समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम्
भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद्धनंजयः ॥२४
नादयन् रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत।
ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः ॥ २५
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनंजयः।
ते तमभ्यर्दयन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् २६
आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत।
अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ॥ २७
नियुक्तान्हि स तान्मेने यमायाशु किरीटिना
ततस्ते प्राद्रवञ्शूराः पराङ्मुखरथेऽर्जुने २८

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

राजन्निति ॥१॥ विनिर्दहन्नित्यत्राडभाव आर्षः १८

तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् २९
अथान्यैर्दशभिर्भल्लैः शिरांस्येषामपातयत् ।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले ॥ ३०
तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः ।
तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश कौरवान् ॥ ३१
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुङ्खैर्हत्वा प्रायादमित्रहा ३२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

सञ्जय उवाच ।

तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम् ।
युद्धायाभ्यद्रवन्वीराः कुरूणां नवती रथाः १
कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम् ।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥ २
कृष्णः श्वेतान्महावेगानश्वान्काञ्चनभूषणान्
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान्प्रैषीत्कर्णरथं प्रति ॥ ३
ततः कर्णरथं यान्तमरिघ्नं तं धनञ्जयम् ।
बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥ ४
त्वरमाणांस्तु तान्सर्वान्ससूतेष्वसनध्वजान्
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ५
तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना ।
सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात्पुण्यक्षये तथा
ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तमम् ।
निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्तन्त फाल्गुनम् ७
तदायस्तमनुष्याश्वमुदीर्णवरवारणम् ।
पुत्राणां ते महासैन्यं समरौत्सीद्धनञ्जयम् ॥८
शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः ।
प्राच्छादयन्महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ९
तामन्तरिक्षे विततां शस्त्रवृष्टिं समन्ततः ।
व्यधमत्पाण्डवो बाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥
ततो म्लेच्छाः स्थिता मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः
पार्श्वतो व्यहनन्पार्थं तव पुत्रस्य शासनात्
कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरप्रासशक्तिभिः ॥
मुसलैर्भिन्दिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् १२
तां शस्त्रवृष्टिमतुलां द्विपहस्तैः प्रवेरिताम् ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्धचन्द्रैश्च फाल्गुनः ॥
अथ तान् द्विरदान्सर्वान्नानालिङ्गैः शरोत्तमैः
सपताकध्वजारोहान् गिरीन् वज्रैरिवाहनत्
ते हेमपुङ्खैरिषुभि-
रर्दिता हेममालिनः ।
हताः पेतुर्महानागाः
साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥ १५
ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद्विशांपते ।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम् ॥
कुञ्जराश्च हता राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश
रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा
गन्धर्वनगराकारा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥
अश्वारोहा महाराज धावमाना इतस्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः १९
तस्मिन् क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥
यत्सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद्युधि ।
ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ ॥
दृष्ट्वा परिवृतं राजन्भीमसेनः किरीटिनम् २१
हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान्कतिचिद्रथान् ।
जवेनाभ्यद्रवद्राजन् धनञ्जयरथं प्रति ॥ २२
ततस्तत् प्राद्रवत्सैन्यं हतभूयिष्ठमातुरम् ।
दृष्ट्वाऽर्जुनं तदा भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥
हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान् ।
भीमो व्यधमदश्रान्तो गदापाणिर्महाहवे ॥
कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोजनाम् ।
प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥ २५

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

तमिति ॥ १ ॥

ततो गदां नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत्
सा जघान बहूनश्वानश्वारोहांश्च मारिष ॥
कार्ष्णायसतनुत्राणान्नरानश्वांश्च पाण्डवः ।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन्हताः ॥
दन्तैर्दशन्तो वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः ।
भग्नमूर्धास्थिचरणाः क्रव्यादगणभोजनाः ॥
असृङ्मांसवसाभिश्च तृप्तिमभ्यागता गदा ।
अस्थीन्यप्यश्नती तस्थौ कालरात्रीव दुर्दशा ॥
सहस्राणि दशाश्वानां हत्वा पत्तींश्च भूयसा
भीमोऽभ्यधावत्संक्रुद्धो गदापाणिरितस्ततः
गदापाणिं ततो भीमं दृष्ट्वा भारत तावकाः ।
मेनिरे समनुप्राप्तं कालदण्डोद्यतं यमम् ॥ ३१
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः ।
प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा ॥
विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम् ॥
गजान्सकङ्कटान्मत्तान्सारोहान्सपताकिनः
पततः समपश्याम सपक्षान्पर्वतानिव ॥ ३४
हत्वा तु तद्गजानीकं भीमसेनो महाबलः ।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात् ॥
हतं पराङ्मुखप्रायं निरुत्साहं परं बलम् ।
व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥
विलम्बमानं तत्सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम् ।
दृष्ट्वा प्राच्छादयद्बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥ ३७
नराश्वरथमातङ्गा युधि गाण्डीवधन्वना ।
शरव्रातैश्चिता रेजुः कदम्बा इव केसरैः ॥
ततः कुरूणामभवदार्तनादो महानृप ।
नराश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥ ३९
हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम् ।
अलातचक्रवत्सैन्यं तदाऽभ्रमत तावकम् ॥
ततस्तद्युद्धमभवत्कुरूणां सुमहद्बलैः ।
न ह्यत्रासीदनिर्भिन्नो रथः सादी हयो गजः ॥
आदीप्तमिव तत्सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
आसीत्सुशोणितक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ।
तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम् ॥
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ।
अविषह्यं तु पार्थस्य शरसंपातमाहवे ।
मत्वा न्यवर्तन्कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना
ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः ।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥
अभ्यद्रवत तान्पार्थः किरञ्शरशतान्बहून् ।
हर्षयन्पाण्डवान्योधान् भीमसेनपुरोगमान् ॥
पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति ।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा ॥
कुरवो हि महाराज निर्विषाः पन्नगा इव ।
कर्णमेवोपलीयन्त भयाद्गाण्डीवधन्वनः ॥४८
यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि मारिष
धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि यानि च ॥
तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप ।
उपालीयन्त संत्रासात्पाण्डवस्य महात्मनः
तान्शोणितपरिक्लिन्नान्
विषमस्थान् शरातुरान् ।
मा भैष्टेत्यब्रवीत्कर्णो
ह्यभीतो मामितेति च ॥ ५१
संभग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात्पार्थेन तावकम् ।
धनुर्विस्फारयन्कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया ५२
तान्प्रद्रुतान्कुरून्दृष्ट्वा कर्णः शस्त्रभृतां वरः ।
सञ्चिन्तयित्वा पार्थस्य वधे दध्रे मनः श्वसन्
विस्फार्य सुमहच्चापं ततश्चाधिरथिर्वृषः ।
पञ्चालान्पुनराधावत् पश्यतः सव्यसाचिनः
ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः ।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥ ५५
ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष ।
व्ययोजयन्त पञ्चालान्प्राणैः प्राणभृतां वर
तत्र शब्दो महानासीत्पञ्चालानां महामते ।
वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

# ८२

सञ्जय उवाच ।
ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु
वरूथिना श्वेतहयेन राजन् ।
पाञ्चालपुत्रान् व्यधमत्सूतपुत्रो
महेषुभिर्वात इवाभ्रसङ्घान् ॥ १
सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य
जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य ।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लै-
रवाकिरद्धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥ २
धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भि-
र्जघानाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये
हत्वा चाश्वान् सात्यकेः सूतपुत्रः
कैकेयपुत्रं न्यवधीद्विशोकम् ॥ ३
तमभ्यधावन्निहते कुमारे
कैकेयसेनापतिरुग्रकर्मा ।
शरैर्विधुन्वन् भृशमुग्रवेगैः
कर्णात्मजं चाप्यहनत्प्रसेनम् ॥ ४
तस्यार्धचन्द्रैस्त्रिभिरुच्चकर्त
प्रहस्य बाहू च शिरश्च कर्णः ।
स स्यन्दनाद्गामगमद्गतासुः
परश्वधैः शाल इवावरुग्णः ॥ ५
हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः
शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः ।
प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः
शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥ ६
पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः
कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः ।
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन्स
व्यवासृजद्बाणममित्रसाहम् ॥ ७
तमस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी
त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम् ।
शिखण्डिनः कार्मुकं च ध्वजं च
छित्त्वा क्षुराभ्यां न्यपतत्सुजातः ८
शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो
धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त ।
तथाऽभिनत्सुतसोमं शरेण
सुसंशितेनाधिरथिर्महात्मा ॥ ९
अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः ।
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ
कर्णं जहीत्यब्रवीद्राजसिंह ॥ १०
ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो
रथं रथेनाधिरथेर्जगाम ।
भये तेषां त्राणमिच्छन्सुबाहु-
रभ्याहतानां रथयूथपेन ॥ ११
विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं
ज्यया समाहत्य तले भृशं च ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
जघान नागाश्वरथध्वजांश्च १२
प्रतिश्रुतः प्राहरदन्तरिक्षे
गुहा गिरीणामपतन्वयांसि ।
यन्मण्डलज्येन विजृम्भमाणो
रौद्रे मुहूर्तेऽभ्यपतत्किरीटी ॥ १३
तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन
पृष्ठे रक्षन्पाण्डवमेकवीरः ।
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां
कर्णाय यातावरिभिर्विषक्तौ ॥ १४
तत्रान्तरे सुमहान्सूतपुत्र-
श्चक्रे युद्धं सोमकान्संप्रगृह्य
रथाश्वमातङ्गगणाञ्जघान
प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च ॥ १५
तमुत्तमौजा जनमेजयश्च
क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च ।
कर्णं बिभेदुः सहिताः पृषत्कैः
संनर्दमानाः सह पार्षतेन ॥ १६
ते पञ्च पञ्चालरथप्रवीरा
वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः ।
तस्माद्रथाच्च्यावयितुं न शेकु-
र्धैर्यात्कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः ॥ १७

---

८२

तत इति ॥ १ ॥ अञ्जोगतिभिः पूर्णायतोत्सृष्टैः ॥ ६ ॥ प्रतिश्रुतः प्रतिस्वनः ॥ १३ ॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतां-
स्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान्पञ्चभिस्त्वभ्यहनत्पृषत्कैः
कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८
तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च
ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात्पृथिवी विशीर्णे-
त्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९
स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना
भृशायतेनाधिरथिः शरान्सृजन् ॥
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो
यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २०
शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिन-
च्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगै-
स्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥
पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते
महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना
यथेन्द्रियार्थाऽऽत्मवता पराजिताः ॥
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे
विपन्ननावो वणिजो यथाऽर्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः
सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् २३
ततः शिनीनामृषभः शितैः शरै-
र्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून्बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयै-
स्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥२४
कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो
दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५
समाततेनेष्वसनेन कूजता
भृशायतेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः
शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः ॥ २६
पुनः समास्थाय रथान् सुदंशिताः
शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः ।
समेत्य पञ्चालमहारथा रणे
मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७
ततोऽभवद्युद्धमतीव दारुणं
तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा
यथा सुराणामसुरैः पुराऽभवत् ॥ २८
रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा ।
भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः ।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलु-
र्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा २९
तथागतं भीममभीस्तवात्मजः
ससार राजावरजः किरञ्शरैः ।
तमभ्यधावत्त्वरितो वृकोदरो
महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३०
ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं
प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयो-
रुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१
शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनै-
र्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम् ।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे
महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२
तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्
धनुःक्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा
शिरश्च कायात्प्रजहार सारथेः ॥३३
स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत् ।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत् ॥ ३४
ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं
सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम् ।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं
मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम् ॥ ३५
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो
निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत् ।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः
पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतां-
स्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान्पञ्चभिस्त्वभ्यहनत्पृषत्कैः
कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८
तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च
ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात्पृथिवी विशीर्णे-
त्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९
स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना
भृशायतेनाधिरथिः शरान्सृजन् ॥
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो
यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २०
शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिन-
च्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगै-
स्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥
पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते
महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना
यथेन्द्रियार्थाऽऽत्मवता पराजिताः ॥
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे
विपन्ननावो वणिजो यथाऽर्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः
सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् २३
ततः शिनीनामृषभः शितैः शरै-
र्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून्बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयै-
स्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥२४
कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो
दिग्भीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५
समाततेनेष्वसनेन कूजता
भृशायतेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः
शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः॥ २६
पुनः समास्थाय रथान्सुदंशिताः
शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः ।
समेत्य पञ्चालमहारथा रणे
मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७
ततोऽभवद्युद्धमतीव दारुणं
तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा
यथा सुराणामसुरैः पुराऽभवत् ॥ २८
रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा ।
भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः ।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलु-
र्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा २९
तथागतं भीममभीस्तवात्मजः
ससार राजावरजः किरञ्शरैः ।
तमभ्यधावत्त्वरितो वृकोदरो
महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३०
ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं
प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयो-
रुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१
शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनै-
र्निजघ्नतुस्ताावितरेतरं भृशम् ।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे
महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२
तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्
धनुःक्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा
शिरश्च कायात्प्रजहार सारथेः ॥३३
स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत् ।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत् ॥ ३४
ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं
सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम् ।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं
मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम् ॥ ३५
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो
निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत् ।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः
पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतां-
स्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान्पञ्चभिस्त्वभ्यहनत्पृषत्कैः
कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८
तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च
ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात्पृथिवी विशीर्णे-
त्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९
स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना
भृशायतेनाधिरथिः शरान्सृजन् ॥
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो
यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २०
शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिन-
च्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगै-
स्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥
पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते
महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना
यथेन्द्रियार्थाऽऽत्मवता पराजिताः ॥
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे
विपन्ननावो वणिजो यथाऽर्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः
सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् २३
ततः शिनीनामृषभः शितैः शरै-
र्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून्बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयै-
स्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥२४
कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो
दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५
समाततेनेष्वसनेन कूजता
भृशायतेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः
शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः॥ २६
पुनः समास्थाय रथान्सुदंशिताः
शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः ।
समेत्य पञ्चालमहारथा रणे
मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७
ततोऽभवद्युद्धमतीव दारुणं
तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा
यथा सुराणामसुरैः पुराऽभवत् ॥ २८
रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा ।
भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः ।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलु-
र्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा २९
तथागतं भीममभीस्तवात्मजः
ससार राजावरजः किरञ्शरैः ।
तमभ्यधावत्त्वरितो वृकोदरो
महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३०
ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं
प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयो-
रुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१
शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनै-
र्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम् ।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे
महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२
तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्
धनुःक्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा
शिरश्च कायात्प्रजहार सारथेः ॥३३
स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत् ।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत् ॥ ३४
ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं
सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम् ।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं
मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम् ॥ ३५
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो
निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत् ।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः
पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

# ८३

सञ्जय उवाच ।

तत्राकरोद्दुष्करं राजपुत्रो
दुःशासनस्तुमुलं युद्ध्यमानः ।
चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण
षष्ट्या शरैः सारथिमप्यविध्यत् ॥ १
स तत्कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी
विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः ।
ततोऽभिनद्बहुभिः क्षिप्रमेव
वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा २
ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी
शक्तिं चोग्रां प्राहिणोत्ते सुताय ।
तामापतन्तीं सहसाऽतिघोरां
दृष्ट्वा सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम् ३
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्महात्मा
चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः ।
दृष्ट्वा तु तत् कर्म कृतं सुदुष्करं
प्रापूजयन्सर्वयोधाः प्रहृष्टाः ॥ ४
अथाशु भीमं च शरेण भूयो
गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः ।
चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै
भृशं प्रजज्वाल रुषाऽभिवीक्ष्य ॥ ५
विद्धोऽस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य
सहस्व भूयोऽपि गदाप्रहारम् ।
उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोऽथ भीमो
जग्राह तां भीमगदां वधाय ॥ ६
उवाच चाद्याहमहं दुरात्मन्
पास्यामि ते शोणितमाजिमध्ये ।
अथैवमुक्तस्तनयस्तवोग्रां
शक्तिं वेगात्प्राहिणोन्मृत्युरूपाम् ॥७
आविध्य भीमोऽपि गदां सुघोरां
विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्तिः ।
सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य
पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि ८
स विक्षरन्नाग इव प्रभिन्नो
गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद्वै
तयाऽहरद्दश धन्वन्तराणि
दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य ९
तया हतः पतितो वेपमानो
दुःशासनो गदया वेगवत्या ।
विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रक्
विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः १०
हयाः ससूता निहता नरेन्द्र
चूर्णीकृतश्चास्य रथः पतन्त्या ।
दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे
हृष्टाः पञ्चालाः सिंहनादानमुञ्चन् ११
तं पातयित्वाऽथ वृकोदरोऽथ
जगर्ज हर्षेण विनादयन् दिशः ।
नादेन तेनाखिलपार्श्ववर्तिनो
मूर्छाकुलाः पतितास्त्वाजमीढ १२
भीमोऽपि वेगादवतीर्य यानाद्-
दुःशासनं वेगवानभ्यधावत् ।
ततः स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी
सापत्नकं यत् प्रयुक्तं सुतैस्ते ॥ १३
तस्मिन्सुघोरे तुमुले वर्तमाने
प्रधानभूयिष्ठतरैः समन्तात् ।
दुःशासनं तत्र समीक्ष्य राजन्
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ १४
स्मृत्वाऽथ केशग्रहणं च देव्या
वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः ।
अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया
दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य १५
जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन
आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः ।
तत्राह कर्णं च सुयोधनं च
कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥ १६
निहन्मि दुःशासनमद्य पापं
संरक्ष्यतामद्य समस्तयोधाः ।
इत्येवमुक्त्वा सहसाऽभ्यधाव-
न्निहन्तुकामोऽतिबलस्तरस्वी ॥ १७

---

८३

तत्रेति ॥ १ ॥

तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो
महागजं केसरिको यथैव ।
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः
सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम् ॥ १८

रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ
यत्नेन तस्मिन्प्रणिधाय चक्षुः ।
असिं समुद्यम्य सितं सुधारं
कण्ठे पदाऽऽक्रम्य च वेपमानम् १९

उवाच तद्गौरिति यद्ब्रुवाणो
हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम् ।
ये राजसूयावभृथे पवित्रा
जाताः कचा याज्ञसेन्या दुरात्मन्

ते पाणिना कतरेणावकृष्टा-
स्तद्ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः ।
श्रुत्वा तु तद्भीमवचः सुघोरं
दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य २१

जज्वाल भीमं स तदा स्मयेन
संशृण्वतां कौरवसोमकानाम् ।
उक्तस्तदाऽऽजौ स तथा सरोषं
जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः ॥ २२

'अयं करिकराकारः पीनस्तनविमर्दनः ।
गोसहस्रप्रदाता च क्षत्रियान्तकरः करः २३

अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः
पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकं च सभासदाम्'

एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य
ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः ।
भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्या-
मुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान् ॥ २५

उवाच यस्यास्ति बलं स रक्ष-
त्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः ।
दुःशासनं जीवितं प्रोत्सृजन्त-
माक्षिप्य योधांस्तरसा महाबलः

एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण
उत्पाटयामास भुजं महात्मा ।
दुःशासनं तेन स वीरमध्ये
जघान वज्राशनिसन्निभेन ॥ २७

उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमा-
वथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
ततो निपात्यास्य शिरोपकृत्य
तेनासिना तव पुत्रस्य राजन् ॥ २८

सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान् प्रतिज्ञां
भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः
क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम् २९

'स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा
माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य ।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य पाना-
त्पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात् ३०

अन्यानि पानानि च यानि लोके
सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः ।
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं
ममाद्य चास्याहितलोहितस्य '॥ ३१

अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा
दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः ।
गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं
'किं वा कुर्यां मृत्युना रक्षितोऽसि'

एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्त-
मास्वाद्यमानं तमतिप्रहृष्टम् ।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं
भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः ॥ ३३

ये चापि नासन् व्यथिता मनुष्या-
स्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रम् ।
भयाच्च संचुक्रुशुरस्वरैस्ते
निमीलिताक्षा ददृशुः समन्ततः ३४

तं तत्र भीमं ददृशुः समन्ता-
द्दौःशासनं तद्रुधिरं पिबन्तम् ।
सर्वेऽपलायन्त भयाभिपन्ना
न वै मनुष्योऽयमिति ब्रुवाणाः ३५

तस्मिन् कृते भीमसेनेन रूपे
दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम् ।
संप्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं
भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ३६

युधामन्युं प्रद्रुतं चित्रसेनं
सहानीकस्त्वभ्ययाद्राजपुत्रः।
विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कै-
र्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः॥ ३७
संक्रान्तभोग इव लेलिहानो
महोरगः क्रोधविषं सिसृक्षुः।
निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्य-
त्त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भिः॥
ततः सुपुङ्खेन सुयन्त्रितेन
सुसंशिताग्रेण शरेण शूरः।
आकर्णमुक्तेन समाहितेन
युधामन्युस्तस्य शिरो जहार॥ ३९
तस्मिन् हते भ्रातरि चित्रसेने
क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः।
व्यद्रावयत्पाण्डवानामनीकं
प्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः॥ ४०
भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम्
पूरयित्वाऽञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः
शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत्।
एष ते रुधिरं कण्ठात्पिबामि पुरुषाधम ४२
ब्रूहीदानीं तु संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति।
ये तदाऽस्मान्प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति
तान्वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति।
प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम्४४
दंशनं चाहिभिः कृष्णैर्दाहं च जतुवेश्मनि।
द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या॥ ४५
द्रौपद्याः केशपक्षस्य ग्रहणं च सुदारुणम्।
इष्वस्त्राणि च संग्रामेष्वसुखानि च वेश्मनि॥
विराटभवने यश्च क्लेशोऽस्माकं पृथग्विधः।
शकुनेर्धार्तराष्ट्रस्य राधेयस्य च मन्त्रिते ४७
अनुभूतानि दुःखानि तेषां हेतुस्त्वमेव हि।
दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन
धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात्सपुत्रस्य सदा वयम्
इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः।
पुनराह महाराज स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ ४९
असृग्दिग्धो विस्रवल्लोहितास्यः
क्रुद्धोऽत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी।
दुःशासने यद्रणे संश्रुतं मे
तद्वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ॥ ५०
अत्रैव दास्याम्यपरं द्वितीयं
दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य।
शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः।
शान्तिं लप्स्ये कौरवाणां समक्षम्॥
एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो
ननाद चोच्चै रुधिरार्द्रगात्रः।
ननर्द चैवातिबलो महात्मा
वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः॥ ५२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनवधे
त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

## ८४

सञ्जय उवाच।
दुःशासने तु निहते तव पुत्रा महारथाः।
महाक्रोधविषा वीराः समरेष्वपलायिनः॥
दश राजन्महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्छरैः
निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्धरः॥
अलोलुपः सहः षण्ढो वातवेगसुवर्चसौ।
एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः॥
भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन्।
स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात्तैर्महारथैः॥
भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ
तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारतान्॥ ५
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुंखैः पार्थो निन्ये यमक्षयम्
हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव॥ ६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

८४
दुःशासने इति॥ १॥

पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम् ।
ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महद्भयम् ॥ ७
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव ।
तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः
उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिंदमम् ।
मा व्यथां कुरु राधेय नैवं त्वय्युपपद्यते ॥९
एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः ॥
दुर्योधनश्च संमूढो भ्रातृव्यसनकर्शितः
दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना ।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः ॥ ११
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः ।
कृपप्रभृतयश्चैते हतशेषाः सहोदराः ॥ १२
पाण्डवा लब्धलक्षाश्च धनंजयपुरोगमाः ।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः
स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषेण समास्थितः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनंजयम् ॥ १४
भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समाहितः
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम् ॥
जये स्याद्विपुला कीर्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये ।
वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव ॥ १६
त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः ।
हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम्

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधाव-
द्वस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तम् ।
वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं
गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान् ॥ १८
तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो
रोषादमित्रं प्रतुदन्पृषत्कैः ।
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं
पुरा जिघांसुर्मघवेव जम्भम् ॥ १९
ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकम्बुकं
चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण ।
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं
भल्लेन जाम्बूनदचित्रनद्धम् ॥ २०
अथान्यदादाय धनुः स शीघ्रं
कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत् ।
दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोऽपि
कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः ॥ २१
शराभिघाताच्च रुषा च राजन्
स्वया च भासाऽस्त्रसमीरणाच्च ।
जज्वाल कर्णस्य सुतोऽतिमात्र-
मिद्धो यथाऽऽज्याहुतिभिर्हुताशः ॥
कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्
सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः ।
वनायुजान् वै नकुलस्य शुभ्रा-
नुदग्रगान् हेमजालावनद्धान् ॥ २२
ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम् ।
आकाशसंकाशमसिं प्रगृह्य
दोधूयमानः खगवच्चचार ॥ २४
ततोऽन्तरिक्षे च रथाश्वनागं
चिच्छेद तूर्णं नकुलश्चित्रयोधी ।
ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता
यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा ॥ २५
द्विसाहस्राः पातिता युद्धशौण्डा
नानादेश्याः सुभृताः सत्यसन्धाः ।
एकेन संख्ये नकुलेन कृत्ता
जयेप्सुनाऽनुत्तमचन्दनाङ्गाः ॥ २६
तमापतन्तं नकुलं सोऽभिपत्य
समन्ततः सायकैः प्रत्यविद्ध्यत् ।
स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कै-
र्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः ॥२७
महाभये रक्ष्यमाणो महात्मा
भ्रात्रा भीमेनाकरोत्तत्र भीमम् ।
तं कर्णपुत्रो व्यधमन्तमेकं
नराश्वमातङ्गरथाननेकान् ॥ २८
क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कै-
र्विव्याध वीरं नकुलं सरोषः ।
स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी
महाहवे वृषसेनेन राजन् ॥ २९
क्रुद्धेन धावन्समरे जिघांसुः
कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः ।
वितत्य पक्षौ सहसा पतन्तं
श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ ॥ ३०
अवाकिरद्वृषसेनस्ततस्तं
शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम् ।
स तान्मोघांस्तस्य कुर्वञ्शरौघान्
चचार मार्गान्नकुलश्चित्ररूपान् ॥ ३१
अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र
खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य ।
महेषुभिर्व्यधमत्कर्णपुत्रो
महाहवे चर्मसहस्रतारम् ॥ ३२

तं चायसं निशितं तीक्ष्णधारं
विकोशमुग्रं गुरुभारसाहम् ।
द्विषच्छरीरान्तकरं सुघोर-
माधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥ ३३
क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाह-
श्चकर्त खड्गं निशितैः सुवेगैः ।
पुनश्च दीप्तैर्निशितैः पृषत्कैः
स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविध्यत् ॥ ३४
कृत्वा तु तद्दुष्करमार्यजुष्ट-
मन्यैर्नरैः कर्म रणे महात्मा ।
ययौ रथं भीमसेनस्य राजन्
शराभितप्तो नकुलस्त्वरावान् ॥ ३५
स भीमसेनस्य रथं हताश्वो
माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः ।
आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं
संप्रेक्ष्यमाणस्य धनञ्जयस्य ॥ ३६
ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा
ववर्ष ताविषुजालेन वीरः ।
महारथावेकरथे समेतौ
शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ ॥ ३७
तस्मिन्रथे निहते पाण्डवस्य
क्षिप्रं च खड्गे विशिखैर्निकृत्ते ।
अन्ये च संहत्य कुरुप्रवीरा-
स्ततो न्यघ्नञ्शरवर्षैरुपेत्य ॥ ३८
तौ पाण्डवेयौ परितः समेतान्
संहूयमानाविव हव्यवाहौ ।
भीमार्जुनौ वृषसेनाय क्रुद्धौ
ववर्षतुः शरवर्षं सुघोरम् ॥ ३९
अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनं च
पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम् ।
अयं च नो बाधते कर्णपुत्र-
स्तस्माद्भवान्प्रत्युपयातु कार्णिम् ॥
स तन्निशम्यैव वचः किरीटी
रथं समासाद्य वृकोदरस्य ।
अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीर-
मुपागतं शातय शीघ्रमेनम् ॥ ४१
इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी
भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये ।
कपिध्वजं केशवसंगृहीतं
प्रैषीदुदग्रो वृषसेनाय वाहम् ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनयुद्धे नकुलपराजये
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

सञ्जय उवाच ।
नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं
विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम् ।
पवनधुतपताकाह्लादिनो वल्गिताश्वा
वरपुरुषनियुक्तास्ते रथैः शीघ्रमीयुः
द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा
द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः
द्विरदरथनराश्वान्सूदयन्तस्त्वदीयान्
भुजगपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः
अथ तव रथमुख्यास्तान्प्रतीयुस्त्वरन्तः
कृपहृदिकसुतौ च द्रौणिदुर्योधनौ च
शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च
द्विरदजलदघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च
तव नृपरथिवीरास्तान्दशैकं च वीरा-
न्नवरशरवराग्रैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन्
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयु-
र्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिंदाः
सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा
रणाभिकामैः कृतिभिः समास्थिताः
सुवर्णजालैर्वितता बभुर्गजा-
स्तथा यथा खे जलदाः सविद्युतः ५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

नकुलमिति ॥ १ ॥

कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः
कृपंससूताश्वमपीडयद्भृशम् ।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः
सहैव नागेन पपात भूतले ॥ ६

कुलिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरै-
र्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः ।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दत-
स्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्
ततः कुलिन्देषु हतेषु तेष्वथ
प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः ।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसंभवान्
परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः ॥ ८
अथाभवद्युद्धमतीव दारुणं
पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः ।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधै-
र्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम् ॥ ९
रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः
परस्परं विप्रहताः पतन् क्षितौ ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः
समाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः ॥१०
ततः शतानीकमतान् महागजां-
स्तथा रथान्पत्तिगणांश्च तान् बहून्
जघान भोजस्तु हयानथापतन्
क्षणाद्विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः ॥ ११
अथापरे द्रौणिहता महाद्विपा-
स्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः ।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवो निपातिता-
स्तथा यथा वज्रहता महाचलाः ॥
कुलिन्दराजावरजादनन्तरः
स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत् ।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः
शितैः शरीरं व्यहनद्द्विपं च तम् ॥१३
स नागराजः सह राजसूनुना
पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन् ।
महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे
यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा ॥ १४
कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः
क्राथं ससूताश्वरथं व्यपोथयत् ।
ततोऽपतत्क्राथशराभिघातितः
सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः ॥१५

रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः
क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः ।
सवाजिसूतेष्वसनध्वजस्तथा
यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥ १६
वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं
भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत् ।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो
द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत् ॥ १७
स नागराजः सनियन्तृकोऽपत-
त्तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम् ।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः
पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥ १८
विषाणगात्रावरयोधपातिना
गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः ।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं
ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्
ततः शतानीकहता महागजा
हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः ।
सुपर्णवातप्रहता यथोरगा-
स्तथागता गां विवशा विचूर्णिताः
ततोऽभ्यविद्ध्यद्बहुभिः शितैः शरैः
कलिङ्गपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन् ।
ततोऽस्य कोपाद्विचकर्त नाकुलिः
शिरः क्षुरेणाम्बुजसन्निभाननम् ॥२१
ततः शतानीकमविध्यदायसै-
स्त्रिभिः शरैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः ।
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभि-
र्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः ॥ २२
तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः
समीक्ष्य हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन् ।
पराक्रमज्ञास्तु धनञ्जयस्य ये
हुतोऽयमग्नाविति ते तु मेनिरे ॥२३
ततः किरीटी परवीरघाती
हताश्वमालोक्य नरप्रवीरः ।
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये
समक्षि्य कृष्णं भृशविक्षतं च ॥ २४
समभ्यधावद्वृषसेनमाहवे
स सूतजस्य प्रमुखे स्थितस्तदा ।
तमापतन्तं नरवीरमुग्रं
महाहवे बाणसहस्रधारिणम् ॥ २५

अभ्यापतत्कर्णसुतो महारथं
यथा महेन्द्रं नमुचिः पुरा तथा ।
ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं
शितेन विद्ध्वा युधि कर्णपुत्रः ॥२६
ननाद नादं सुमहानुभावो
विद्ध्वेव शक्रं नमुचिः स वीरः ।
पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रै-
र्बाणैराविद्ध्यद्भुजमूले तु सव्ये ॥ २७
तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्
पुनश्च पार्थं दशभिर्जघान ।
पूर्वं यथा वृषसेनप्रयुक्तै-
रभ्याहतः श्वेतहयः शरैस्तैः ॥ २८
संरम्भमीषद्गमितो वधाय
कर्णात्मजस्याथ मनः प्रदध्रे ।
ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात्
कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे ॥२९
मुमोच तूर्णं विशिखान्महात्मा
वधे धृतः कर्णसुतस्य संख्ये ।
आरक्तनेत्रोऽन्तकशत्रुहन्ता
उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा ॥ ३०
दुर्योधनं द्रौणिमुखांश्च सर्वा-
नहं रणे वृषसेनं तमुग्रम् ।
संपश्यतः कर्ण तवाद्य संख्ये
नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः ॥३१
ऊनं च तावद्धि जना वदन्ति
सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ ।
एको रथो मद्विहीनस्तरस्वी
अहं हनिष्ये भवतां समक्षम् ॥ ३२
संरक्ष्यतां रथसंस्थाः सुतोऽय-
महं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम् ।
पश्चाद्वधिष्ये त्वामपि संप्रमूढ-
महं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये ॥ ३३
तमद्य मूलं कलहस्य संख्ये
दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ।
त्वामद्य हन्ताऽस्मि रणे प्रसह्य
अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः ॥ ३४
दुर्योधनस्याधमपूरुषस्य
यस्यानयादेष महान् क्षयोऽभवत् ।
स एवमुक्त्वा विनिमृज्य चापं
लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ ॥ ३५
ससर्ज बाणान्विशिखान्महात्मा
वधाय राजन् कर्णसुतस्य संख्ये ।
विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कै-
र्मर्मस्वशङ्कं प्रहसन्किरीटी ॥ ३६
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च
क्षुरैश्चतुर्भिर्निशितैः शिरश्च ।
स पार्थबाणाभिहतः पपात
रथाद्विबाहुर्विशिरा धरायाम् ॥ ३७
सुपुष्पितो वृक्षवरोऽतिकायो
वातेरितः शाल इवाद्रिशृङ्गात् ।
संप्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं
रथात्सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ॥ ३८
रथं रथेनाशु जगाम रोषात्
किरीटिनः पुत्रवधाभितप्तः ।
ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य
कर्णो हतं श्वेतहयेन संख्ये ।
संरम्भमागम्य परं महात्मा
कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनवधे
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

## ८६

सञ्जय उवाच ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं दुर्निवारं सुरैरपि ॥ १
अर्जुनं प्राह दाशार्हः प्रहस्य पुरुषर्षभः ।
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः शल्यसारथिः

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६
तमायान्तमिति ॥ १ ॥

येन ते सह योद्धव्यं स्थिरो भव धनञ्जय ।
पश्य चैनं समायुक्तं रथं कर्णस्य पाण्डव ३
श्वेतवाजिसमायुक्तं युक्तं राधासुतेन च ।
नानापताकाकलिलं किङ्किणीजालमालिनम्
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ।
ध्वजं च पश्य कर्णस्य नागकक्षं महात्मनः ५
आखण्डलधनुःप्रख्यमुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
पश्य कर्णं समायान्तं धार्तराष्ट्रप्रियैषिणम् ६
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ।
एष मद्रेश्वरो राजा रथाग्रे पर्यवस्थितः ॥ ७
नियच्छति हयानस्य राधेयस्यामितौजसः ।
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दं च दारुणम् ८
सिंहनादांश्च विविधाञ्शृणु पाण्डव सर्वतः
अन्तर्धाय महाशब्दान् कर्णेनामिततेजसा ९
दोधूयमानस्य भृशं धनुषः शृणु निःस्वनम् ।
एते दीर्यन्ति सगणाः पञ्चालानां महारथाः
दृष्ट्वा केसरिणं क्रुद्धं मृगा इव महावने ।
सर्वयत्नेन कौन्तेय हन्तुमर्हसि सूतजम् ॥ ११
न हि कर्णशरानन्यः सोढुमुत्सहते नरः ।
सदेवासुरगन्धर्वांस्त्रीँल्लोकान्सचराचरान् १२
त्वं हि जेतुं रणे शक्तस्तथैव विदितं मम ।
भीममुग्रं महात्मानं त्र्यक्षं शर्वं कपर्दिनम् १३
न शक्ता द्रष्टुमीशानं किं पुनर्योधितुं प्रभुम् ।
त्वया साक्षान्महादेवः सर्वभूतशिवः शिवः
युद्धेनाराधितः स्थाणुर्देवाश्च वरदास्तव ।
तस्य पार्थ प्रसादेन देवदेवस्य शूलिनः ॥ १५
जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा ।
श्रेयस्तेऽस्तु सदा पार्थ युद्धे जयमवाप्नुहि १६

अर्जुन उवाच ।

ध्रुव एव जयः कृष्ण मम नास्त्यत्र संशयः ।
सर्वलोकगुरुर्यस्त्वं तुष्टोऽसि मधुसूदन ॥ १७
चोदयाश्वान् हृषीकेश रथं मम महारथ ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्यति फाल्गुनः ॥
अद्य कर्णं हतं पश्य मच्छरैः शकलीकृतम् ।
मां वा द्रक्ष्यसि गोविन्द कर्णेन निहतं शरैः
उपस्थितमिदं घोरं युद्धं त्रैलोक्यमोहनम् ।
यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥
एवं ब्रुवंस्तदा पार्थः कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
प्रत्युद्ययौ रथेनाशु गजं प्रतिगजो यथा २१
पुनरप्याह तेजस्वी पार्थः कृष्णमरिंदम ।
चोदयाश्वान् हृषीकेश कालोऽयमतिवर्तते ॥
एवमुक्तस्तदा तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ २२
जयेन संपूज्य स पाण्डवं तदा
प्रचोदयामास हयान्मनोजवान् ।
स पाण्डुपुत्रस्य रथो मनोजवः
क्षणेन कर्णस्य रथाग्रतोऽभवत् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे वासुदेववाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

सञ्जय उवाच ।

वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः ।
पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत् १
रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुम् ।
युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनञ्जयम् ॥ २
तौ रथौ सूर्यसङ्काशौ वैयाघ्रपरिवारितौ ।
समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥ ३
श्वेताश्वौ पुरुषौ दिव्यावास्थितावरिमर्दनौ ।
शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि
तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वसैन्यानि मारिष
त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ५
रथज्यातलनिर्ह्रादैर्बाणसिंहरवैस्तथा ।
तौ रथावभ्यधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम्
ध्वजौ च दृष्ट्वा संसक्तौ विस्मयः समपद्यत ।
हस्तिकक्षं च कर्णस्य वानरं च किरीटिनः
तौ रथौ संप्रसक्तौ तु दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७

वृषसेनमिति ॥ १ ॥

दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः सहस्रशः।
चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैवावधूननम् ॥ ९
आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः
कर्णं प्रहर्षयिष्यन्तः शङ्खान् दध्मुश्च सर्वशः॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनञ्जयम्।
तूर्यशंखनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत
बाहुशब्दैश्च शूराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥ १२
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ
प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिध्वजायुतौ ॥ १३
वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शंखशोभितौ
तूणीरवरसंपन्नौ द्वावप्येतौ सुदर्शनौ ॥ १४
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ समदौ गोवृषाविव।
चापविद्युद्ध्वजोपेतौ शस्त्रसंपत्तियोधिनौ॥
चामरव्यजनोपेतौ श्वेतच्छत्रोपशोभितौ ।
कृष्णशल्यरथोपेतौ तुल्यरूपौ महारथौ ॥ १६
सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ रक्ताक्षौ हेममालिनौ
सिंहस्कन्धप्रतीकाशौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ
अन्योन्यवधमिच्छन्तावन्योन्यजयकांक्षिणौ
अन्योन्यमभिधावन्तौ गोष्ठे गोवृषभाविव।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ सुसंरब्धाविवाचलौ ॥
आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ ।
इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्यचन्द्रसमप्रभौ ॥ १९
महाग्रहाविव क्रुद्धौ युगान्ताय समुत्थितौ।
देवगर्भौ देवबलौ देवतुल्यौ च रूपतः ॥ २०
यदृच्छया समायातौ सूर्याचन्द्रमसौ यथा।
बलिनौ समरे दृप्तौ नानाशस्त्रधरौ युधि ॥
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ शार्दूलाविव धिष्ठितौ।
बभूव परमो हर्षस्तावकानां विशांपते ॥ २२
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत।
समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनञ्जयौ ॥ २३
उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ।
उभौ च बाहुशब्देन नादयन्तौ नभस्तलम्॥
उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च।
उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः॥
कार्तवीर्यसमौ चोभौ तथा दाशरथेः समौ।
विष्णुवीर्यसमौ चोभौ तथा भवसमौ युधि
उभौ श्वेतहयौ राजन् रथप्रवरवाहिनौ।
सारथी प्रवरौ चैव तयोरास्तां महारणे॥

ततो दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥२८
तव पुत्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ।
परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनम् ॥२९
तथैव पाण्डवा दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ ३०
तावकानां रणे कर्णो ग्लहो ह्यासीद्विशांपते
तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवत्तदा ॥
त एव सभ्यास्तत्रासन् प्रेक्षकाश्चाभवन् स्म ते
तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥३२
ताभ्यां द्यूतं समासक्तं विजयायेतराय च।
अस्माकं पाण्डवानां च स्थितानां रणमूर्धनि
तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ
अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यवधकांक्षिणौ
तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रवृत्राविव प्रभो।
भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥३५
ततोऽन्तरिक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ।
मिथो भेदाश्च भूतानामासन्कर्णार्जुनान्तरे॥
व्यश्रूयन्त मिथो भिन्नाः
सर्वलोकास्तु मारिष।
देव-दानव-गन्धर्वाः
पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३७
प्रतिपक्षग्रहं चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे।
द्यौरासीत्सूतपुत्रस्य पक्षे मातेव धिष्ठिता ॥
भूमिर्धनञ्जयस्यासीन्मातेव जयकाङ्क्षिणी।
गिरयः सागराश्चैव नद्यश्च सजलास्तथा॥
वृक्षाश्चौषधयश्चैव व्याश्रयन्त परस्परम्*।
असुरा यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परंतप ॥ ४०
ते कर्णं समपद्यन्त हृष्टरूपाः समन्ततः।
मुनयश्चारणाः सिद्धा वैनतेया वयांसि च ॥
रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः।
सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥४२
वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षको मणिकस्तथा।
सर्पाश्चैव तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः॥
विषवन्तो महाराज नागाश्चार्जुनतोऽभवन्
ऐरावताः सौरभेया वैशालेयाश्च भोगिनः॥
एतेऽभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पाश्च कर्णतः।
ईहामृगा व्यालमृगा मांगल्याश्च मृगद्विजाः

व्यालमृगाः शशमृगाः॥ ४५ ॥ * किरीटिनम् इति पाठः।

पार्थस्य विजये राजन् सर्वे एवाभिसंस्तुताः
वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वेऽश्विनौ तथा
अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोऽथ दिशो दश ।
धनञ्जयस्य ते पक्षे आदित्याः कर्णतोऽभवन्
विशः शूद्राश्च सूताश्च ये च संकरजातयः ॥
सर्वशस्ते महाराज राधेयमभजंस्तदा ॥ ४८
देवास्तु पितृभिः सार्धं सगणाः सपदानुगाः
यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोऽर्जुनः ॥ ४९
ब्रह्मक्षत्रं च यज्ञाश्च दक्षिणाश्चार्जुनं श्रिताः ।
प्रेताश्चैव पिशाचाश्च क्रव्यादाश्च मृगाण्डजाः
राक्षसाः सह यादोभिः श्वसृगालाश्च कर्णतः
देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोऽभवन् ॥
तुम्बुरुप्रमुखा राजन् गन्धर्वाश्च यतोऽर्जुनः
प्रालेयाः सहमौनेया गन्धर्वाप्सरसां गणाः
ईहामृगाः पक्षिगणा द्विपाश्वरथपत्तिभिः ।
उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः ॥
दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम् ।
देवदानवगन्धर्वा नागयक्षाः पतत्रिणः ॥ ५४
महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः ।
तपोविद्यास्तथौषध्यो नानारूपबलान्विताः
अन्तरिक्षे महाराज विनदन्तोऽवतस्थिरे ।
ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं प्रजापतिभिरेव च ॥
भवश्चैव स्थितो याने दिव्यं तं देशमागमत् ।
समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ ॥
अर्जुनो जयतां कर्णमिति शक्रोऽब्रवीत्तदा ।
जयतामर्जुनं कर्ण इति सूर्योऽभ्यभाषत ॥ ५८
हत्वाऽर्जुनं मम सुतः कर्णो जयतु संयुगे ।
हत्वा कर्णं जयत्वद्य मम पुत्रो धनञ्जयः ॥ ५९
इति सूर्यस्य चैवासीद्विवादो वासवस्य च ।
पक्षसंस्थितयोस्तत्र तयोर्विबुधसिंहयोः ।
द्वैपक्ष्यमासीद्देवानामसुराणां च भारत ॥६०
समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ ।
अकम्पन्त त्रयो लोकाः सहदेवर्षिचारणाः ॥
सर्वे देवगणाश्चैव सर्वभूतानि यानि च ।
यतः पार्थस्ततो देवा यतः कर्णस्ततोऽसुराः
रथयूथपयोः पक्षौ कुरुपाण्डववीरयोः ।
दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयंभुवमचोदयन्६३
कोऽनयोर्विजयी देव कुरुपाण्डवयोधयोः ।
समोऽस्तु विजयो देव एतयोर्नरसिंहयोः ॥

कर्णार्जुनविवादेन सर्वं संशयितं जगत् ।
स्वयंभो ब्रूहि नस्तथ्यमेतयोर्विजयं प्रभो ॥ ६५
स्वयंभो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः
तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम् ॥ ६६
व्यज्ञापयत देवेशमिदं मतिमतां वरः ।
पूर्वं भगवता प्रोक्तं कृष्णयोर्विजयो ध्रुवः ॥
तत्तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन्मम ।
ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम्६८
विजयो ध्रुवमेवास्य विजयस्य महात्मनः ।
खाण्डवे येन हुतभुक्तोषितः सव्यसाचिना ॥
स्वर्गं च समनुप्राप्य साहाय्यं शक्र ते कृतम्
कर्णश्च दानवः पक्ष अतः कार्यः पराजयः ॥
एवं कृते भवेत्कार्यं देवानामेव निश्चितम् ।
आत्मकार्यं च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर ॥७१
महात्मा फाल्गुनश्चापि सत्यधर्मरतः सदा ।
विजयस्तस्य नियतं जायते नात्र संशयः ॥
तोषितो भगवान् येन महात्मा वृषभध्वजः ।
कथं वा तस्य न जयो जायते शतलोचन ॥
यस्य चक्रे स्वयं विष्णुः सारथ्यं जगतः प्रभुः
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रोऽथ तपोधनः॥
बिभर्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः ।
पार्थः सर्वगुणोपेतो देवकार्यमिदं यतः ॥ ७५
क्लिश्यन्ते पाण्डवा नित्यं वनवासादिभिर्भृशं
संपन्नस्तपसा चैव पर्याप्तः पुरुषर्षभः ॥ ७६
अतिक्रमेच्च माहात्म्याद्दिष्टमप्यर्थपर्ययम् ।
अतिक्रान्ते च लोकानामभावो नियतं भवेत्
न विद्यते व्यवस्थानं क्रुद्धयोः कृष्णयोः क्वचित्
स्रष्टारौ जगतश्चैव सततं पुरुषर्षभौ ॥ ७८
नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
अनियम्यौ नियन्तारावेतौ तस्मात्परन्तपौ॥
नैतयोस्तु समः कश्चिद्दिवि वा मानुषेषु वा ।
अनुगम्यास्त्रयो लोकाः सह देवर्षिचारणैः ॥
सर्वदेवगणाश्चापि सर्वभूतानि यानि च ।
अनयोस्तु प्रभावेन वर्तते निखिलं जगत् ॥
कर्णो लोकानयं मुख्यानाप्नोतु पुरुषर्षभः ।
कर्णो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः
वसूनां समलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात् ।
सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोकमवाप्नुयात्

दिष्टमपि दैवविहितमपि ॥७७॥ व्यवस्थानं मर्यादा ॥७८॥

इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोऽब्रवीद्वचः ।
आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनम् ८४
श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम् ।
तत्तथा नान्यथा तद्धि तिष्ठध्वं विगतज्वराः
इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष ।
विस्मितान्यभवन्राजन् पूजयांचक्रिरे तदा
व्यसृजंश्च सुगन्धीनि पुष्पवर्षाणि हर्षिताः ।
नानारूपाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥
दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः ।
देव-दानव-गन्धर्वाः सर्व एवाचतस्थिरे ८८
रथौ तयोः श्वेतहयौ दिव्यौ युक्तौ महात्मनोः
यौ तौ कर्णार्जुनौ राजन् प्रहृष्टौ व्यवतिष्ठतां
समागता लोकवीराः
शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ
कर्णशल्यौ च भारत ॥ ९०
तद्भीरुसंत्रासकरं युद्धं समभवत्तदा ।
अन्योन्यस्पर्धिनोरुग्रं शक्रशम्बरयोरिव ॥९१
तयोर्ध्वजौ वीतमलौ शुशुभाते रथे स्थितौ।
राहुकेतू यथाऽऽकाशे उदितौ जगतः क्षये ॥
कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारमयी दृढा ।
पुरन्दरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या विराजते ॥
कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवान्तकः
दंष्ट्राभिर्भीषयन् भाभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा॥
युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गांडीवधन्वनः
कर्णध्वजमुपातिष्ठत्स्वस्थानाद्वेगवान्कपिः ॥
उत्पपात महावेगः कक्ष्यामभ्याहनत्तदा ।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥ ९६
सा किङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमायसी
अभ्यद्रवत्सुसंरब्धा हस्तिकक्ष्याऽथ तं कपिम्
तयोर्घोरतरे युद्धे द्वैरथे द्यूत आहिते ।
प्राकुर्वतां ध्वजौ युद्धं पूर्वं पूर्वतरं तदा ॥ ९८
हया हयानभ्यहेषन् स्पर्धमानाः परस्परम् ।
अविध्यत् पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः
शल्यश्च पुण्डरीकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत ।
तत्राजयद्वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ॥ १००

कर्णं चाप्यजयद्दृष्ट्या कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अथाब्रवीत्सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम्॥
यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित्।
किं करिष्यसि संग्रामे शल्य सत्यमथोच्यतां

शल्य उवाच ।

यदि कर्ण रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः ।
उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवपाण्डवौ ॥ ३

सञ्जय उवाच ।

एवमेव तु गोविन्दमर्जुनः प्रत्यभाषत ।
तं प्रहस्याब्रवीत्कृष्णः सत्यं पार्थमिदं वचः॥
'पतेद्दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः ।
शैत्यमग्निरियान्न त्वां हन्यात्कर्णो धनञ्जय ॥
यदि चैतत्कथञ्चित्स्याल्लोकपर्यासनं भवेत्।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे' ॥
इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन् कपिकेतनः।
अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥
'मम तावदपर्याप्तौ कर्णशल्यौ जनार्दन ।
सपताकध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ॥ ८
सच्छत्रकवचं चैव सशक्तिशरकार्मुकम् ।
द्रष्टास्यद्य रणे कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥ ९
अद्यैव सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम् ।
सञ्चूर्णितमिवारण्ये पादपं दन्तिना यथा ॥
अद्य राधेयभार्याणां वैधव्यं समुपस्थितम्।
ध्रुवं स्वप्नेष्वनिष्टानि ताभिर्दृष्टानि माधव ॥
द्रष्टासि ध्रुवमद्यैव विधवाः कर्णयोषितः ।
न हि मे शाम्यते मन्युर्यदनेन पुरा कृतम्॥१२
कृष्णां समागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घदर्शिना ।
अस्मांस्तथाऽवहसता क्षिपता च पुनः पुनः
अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया ।
वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥ १४
अद्य ता मधुरा वाचः श्रोताऽसि मधुसूदन ।
दिष्ट्या जयसि वार्ष्णेय इति कर्णे निपातिते
अद्याभिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यसि ।
कुन्तीं पितृष्वसारं च प्रहृष्टः सञ्जनार्दन ॥
अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव
वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं च पाण्डवं '

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसमागमे द्वैरथे
सप्ताशीतितमोऽध्याय ॥८७॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

सञ्जय उवाच ।

तद्देवनागासुरसिद्धयक्षै-
गन्धर्वरक्षोप्सरसां च सङ्घैः ।
ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं
बभौ वियद्विस्मयनीयरूपम् ॥ १

नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञै-
र्वादित्र-गीत-स्तुति-नृत्य-हासैः ।
सर्वेऽन्तरिक्षं ददृशुर्मनुष्याः
खस्थाश्च तद्विस्मयनीयरूपम् ॥ २

ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा
वादित्रशङ्खस्वनसिंहनादैः ।
विनादयन्तो वसुधां दिशश्च
स्वनेन सर्वान् द्विषतो निजघ्नुः ॥ ३

नराश्वमातङ्गरथैः समाकुलं
शरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम् ।
अभीरुजुष्टं हतदेहसंकुलं
रणाजिरं लोहितमाबभौ तदा ॥ ४

बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां
यथा सुराणामसुरैः सहाभवत् ।
तथा प्रवृत्ते तुमुले सुदारुणे
धनञ्जयस्याधिरथेश्च सायकैः ॥ ५

दिशश्च सैन्यं च शितैरजिह्मगैः
परस्परं प्रावृणुतां सुदंशितैः ।
ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः
कृतेऽन्धकारे ददृशुर्न किञ्चन ॥ ६

भयातुरा एकरथौ समाश्रयं-
स्ततोऽभवत्त्वद्भुतमेव सर्वतः ।
ततोऽस्त्रमस्त्रेण परस्परं तौ
विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ॥ ७

घनान्धकारे वितते तमोनुदौ
यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः ।
न चाभिसर्तव्यमिति प्रचोदिताः
परे त्वदीयाश्च तथाऽवतस्थिरे ॥ ८

महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः
सुरासुराः शम्बरवासवाविव ।
मृदङ्ग-भेरी-पणवानकस्वनैः
ससिंहनादैर्नदतुर्नरोत्तमौ ॥ ९

शशाङ्कसूर्याविव मेघनिःस्वनै-
र्विरेजतुस्तौ पुरुषर्षभौ तदा ।
महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ
सुवर्चसौ बाणसहस्रदीधिती ॥ १०

दिधक्षमाणौ सचराचरं जग-
द्युगान्तसूर्याविव दुःसहौ रणे ।
उभावजेयावहितान्तकावुभा-
वुभौ जिघांसू कृतिनौ परस्परम् ११

महाहवे वीतभयौ समीयतु-
र्महेन्द्रजम्भाविव कर्णपाण्डवौ ।
ततो महास्त्राणि महाधनुर्धरौ
विमुञ्चमानाविषुभिर्भयानकैः ॥ १२

नराश्वनागानमितान्निजघ्नतुः
परस्परं चापि महारथौ नृप ।
ततो विसस्रुः पुनरर्दिता नरा
नरोत्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः १३

सनागपत्त्यश्वरथा दिशो दश
तथा यथा सिंहहता वनौकसः ।
ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः
कृपेण शारद्वतसूनुना सह ॥ १४

महारथाः पञ्च धनञ्जयाच्युतौ
शरैः शरीरार्तिकरैरताडयन् ।
धनूंषि तेषामिषुधीन् ध्वजान्हयान्
रथांश्च सूतांश्च धनञ्जयः शरैः ॥ १५

समं प्रमथ्याशु परान्समन्ततः
शरोत्तमैर्द्वादशभिश्च सूतजम् ।
अथाभ्यधावंस्त्वरिताः शतं रथाः
शतं गजाश्चार्जुनमाततायिनः ॥ १६

शकास्तुषारा यवनाश्च सादिनः
सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः ।
वरायुधान्पाणिगतैः शरैः सह
क्षुरैर्न्यकृन्तत्प्रपतन् शिरांसि च १७

---

८८

तादिति ॥१॥ द्विषतः शत्रून् ॥३॥ एकौ मुख्यौ रथौ रथिनौ कर्णार्जुनौ एकौ च तौ रथौ चेति विग्रहः ॥ ७ ॥ तमोनुदौ सूर्यचंद्रौ न च अभिसर्तव्यं नापयातव्यमिति नियमेन प्रचोदिताः प्रेरिताः ॥ ८ ॥ विसस्रुः विप्रद्रुताः ॥ १३ ॥ पंचैवावशिष्टा इत्याह—तत इति ॥ १४ ॥

हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतो
धनञ्जयः शत्रुगणान् क्षितौ क्षिणोत्।
ततोऽन्तरिक्षे सुरतूर्यनिःस्वनाः
ससाधुवादा हृषितैः समीरिताः १८
निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः
सुगन्धिगन्धाः पवनेरिताः शुभाः ।
तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं
समीक्ष्य भूतानि विसिस्मियुस्तदा॥
तवात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां
न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ
अथाब्रवीद्द्रोणसुतस्तवात्मजं
करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन् २०
प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवै-
रलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम् ।
हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवि-
त्तथैव भीष्मप्रमुखा महारथाः॥ २१
अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः
प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम्।
धनञ्जयः शाम्यति वारितो मया
जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ॥२२
युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा
वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ।
त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे
प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव २३
व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि बान्धवा
निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः।
न चेद्वचः श्रोष्यसि मे नराधिप
ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि॥ २४
इदं च दृष्टं जगता सह त्वया
कृतं यदेकेन किरीटमालिना।
यथा न कुर्याद्बलभिन्न चान्तको
न चापि धाता भगवान्न यक्षराट् २५
अतोऽपि भूयान् स्वगुणैर्धनञ्जयो
न चातिवर्तिष्यति मे वचोऽखिलम्

तवानुयात्रां च सदा करिष्यति
प्रसीद राजेन्द्र शमं त्वमाप्नुहि ॥ २६
ममापि मानः परमः सदा त्वयि
ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदात्।
निवारयिष्यामि च कर्णमप्यहं
यदा भवान्सप्रणयो भविष्यति २७
वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणा-
स्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम् ॥
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं
तदस्ति सर्वं तव पाण्डवेषु॥ २८
निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः
पुनश्च साम्ना समवाप्नुहि प्रभो।
त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतां गते
हितं कृतं स्याज्जगतस्त्वयाऽतुलम् ॥
स एवमुक्तः सुहृदा वचो हितं
विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाऽब्रवीत्
यथा भवानाह सखे तथैव त
न्ममापि विज्ञापयतो वचः शृणु ३०
निहत्य दुःशासनमुक्तवान्वचः
प्रसह्य शार्दूलवदेष दुर्मतिः।
वृकोदरस्तद्धृदये मम स्थितं
न तत्परोक्षं भवतः कुतः शमः ॥ ३१
न चापि कर्णं प्रसहेद्रणेऽर्जुनो
महागिरिं मेरुमिवोग्रमारुतः।
न चाश्वासिष्यन्ति पृथात्मजा मयि
प्रसह्य वैरं बहुशो विचिन्त्य ॥ ३२
न चापि कर्ण गुरुपुत्रसंयुगा-
दुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत।
श्रमेण युक्तो महताऽद्य फाल्गुन-
स्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति ॥ ३३
तमेवमुक्त्वाऽप्यनुनीय चासकृ-
त्तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान्
समाहिताभिद्रवताहितान्मम
सबाणहस्ताः किमु जोषमासत ३४

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामवाक्ये
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

निसर्गत इति सहजमित्रत्वोपपादनम् साम्ना प्रीत्या । प्रसन्ने राज्यार्धदानेन हितं अर्जुनकोपशमनेनेति चतुर्थापक्षोऽपि विवृतः ॥ २९ ॥ वचः दुर्योधनस्य हतस्य शिरः पदा ताडयिष्यामीत्येवंरूपम्॥ ३१ ॥ यथाऽर्जुनः कर्णं न प्रसहे- तदपि भवतः परोक्षं नेति पूर्वेणान्वयः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टा- शीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## ८९

सञ्जय उवाच ।

तौ शङ्खभेरीनिनदे समृद्धे
समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ ।
वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च
दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन् ॥ १

यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ
प्रवृद्धदन्ताविव वासितार्थे ।
तथा समाजग्मतुरुग्रवीर्यौ
धनञ्जयश्चाधिरथिश्च वीरौ ॥ २

बलाहकेनेव महाबलाहको
यदृच्छया वा गिरिणा यथा गिरिः ।
तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिःस्वनैः
समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ ॥ ३

प्रवृद्धशृङ्गद्रुमवीरुदोषधी
प्रवृद्धनानाविधनिर्झरौकसौ ।
यथाऽचलौ वा चलितौ महाबलौ
तथा महास्त्रैरितरेतरं हतः ॥ ४

स सन्निपातस्तु तयोर्महानभू-
त्सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा ।
शरैर्विनुन्नाङ्गनियन्तृवाहयोः
सुदुःसहोऽन्यैः कटुशोणितोदकः ॥५

प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ
महाह्रदौ पक्षिगणैरिवावृतौ ।
सुसन्निकृष्टावनिलोद्धतौ यथा
तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः ॥६

उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमा-
वुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ ।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकै-
र्महेन्द्रवृत्राविव संप्रजघ्नतुः ॥ ७

सनागपत्त्यश्वरथे शुभे बले
विचित्रवर्माभरणाम्बरायुधे
चकम्पतुर्विस्मयनीयरूपे
वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे ॥ ८

भुजाः सवस्त्राङ्गुलयः समुच्छ्रिताः
ससिंहनादैर्हृषितैर्दिदृक्षुभिः ।
यदर्जुनो मत्त इव द्विपो द्विपं
समभ्ययादाधिरथिं जिघांसया ॥ ९

उदक्रोशन्सोमकास्तत्र पार्थं
पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण
श्रद्धां च राज्याद्धृतराष्ट्रसूनोः ॥ १०

तथाऽस्माकं बहवस्तत्र योधाः
कर्णं तथा याहि याहीत्यवोचन् ।
जह्यर्जुनं कर्ण शरैः सुतीक्ष्णैः
पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः ॥ ११

तथा कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं
महेषुभिर्दशभिः प्रत्यविध्यत ।
तं चार्जुनः प्रत्यविध्यच्छिताग्रैः
कक्षान्तरे दशभिः संप्रहस्य ॥ १२

परस्परं तौ विशिखैः सुपुंखै-
स्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च ।
परस्परं तौ विभिदुर्विमर्दे
सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ ॥ १३

ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा
भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य ।
नाराचनालीकवराहकर्णान्
क्षुरांस्तथा साञ्जलिकार्धचन्द्रान् ॥१४

ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्
पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः ।
अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते
विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम् १५

यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षं
कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः ।
तान्सायकैर्ग्रसते सूतपुत्रः
क्षिप्तान् क्षिप्तान् पाण्डवस्याशु संघान्

ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं
मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः ।
भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं
प्रावृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः ॥ १७

---

८९

वासिते ॥ १ ॥ केतार्थं स्थानार्थं नीडे पक्षिगणा इव देहे बाणा लीयंत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ संघान् बाणसंघान ॥ १६ ॥

योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं
प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः ।
शब्दश्च घोरोऽतिबभूव तत्र
यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः ॥ १८

तद्वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं
स वारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे ।
समुत्सृजन् सूतसुतः प्रतापवान्
स तेन वह्निं शमयांबभूव ॥ १९

बलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी
चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः ।
ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः
समन्ततो वै परिवार्य वारिणा ॥ २०

तैश्चातिवेगात्स तथाविधोऽपि
नीतः शमं वह्निरतिप्रचण्डः ।
बलाहकैरेव दिगन्तराणि
व्याप्तानि सर्वाणि यथा नभश्च ॥ २१

तथा च सर्वास्तिमिरेण वै दिशो
मेघैर्वृता न प्रदृश्येत किंचित् ।
अथापोवाह्याभ्रसंघान्समस्तान्
वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात् ॥ २२

ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः
प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावम् ।
गाण्डीवं ज्यां विशिखांश्चानुमंत्र्य
धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ २३

ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्धचन्द्रा
नालीकनाराचवराहकर्णाः ।
गाण्डीवतः प्रादुरासन्सुतीक्ष्णाः
सहस्रशो वज्रसमानवेगाः ॥ २४

ते कर्णमासाद्य महाप्रभावाः
सुतेजना गार्ध्रपत्राः सुवेगाः ।
गात्रेषु सर्वेषु हयेषु चापि
शरासने युगचक्रे ध्वजे च ॥ २५

निर्भिद्य तूर्णं विविशुः सुतीक्ष्णा-
स्तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते ।
शराचिताङ्गो रुधिरार्द्रगात्रः
कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः ॥ २६

दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं
प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा ।
महेन्द्रशस्त्राभिमुखान्विमुक्तां-
श्छित्त्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसंघान् ॥ २७

तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ
जघान संख्ये रथनागपत्तीन् ।
अमृष्यमाणश्च महेन्द्रकर्मा
महारणे भार्गवास्त्रप्रतापात् ॥ २८

पञ्चालानां प्रवरांश्चापि योधान्
क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी ।
वाणैर्विव्याधाहवे सुप्रमुक्तैः
शिलाशितै रुक्मपुंखैः प्रसह्य ॥ २९

तत्पञ्चालाः सोमकाश्चापि राजन्
कर्णेनाजौ पीड्यमानाः शरौघैः ।
क्रोधाविष्टा विव्यधुस्तं समन्ता-
त्तीक्ष्णैर्बाणैः सूतपुत्रं समेताः ॥ ३०

तान् सूतपुत्रो निजघान बाणैः
पञ्चालानां रथनागाश्वसंघान् ।
अभ्यर्दयद्बाणगणैः प्रसह्य
विद्ध्वा हर्षात्संगरे सूतपुत्रः ॥ ३१

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः
कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ।
क्रुद्धेन सिंहेन यथेभयूथा
महावने भीमबलेन तद्वत् ॥ ३२

पञ्चालानां प्रवरान्संनिहत्य
प्रसह्य योधानखिलानदीनः ।
ततः स राजन्विरराज कर्णो
यथाम्बरे भास्कर उग्ररश्मिः ॥ ३३

कर्णस्य मत्वा तु जयं त्वदीयाः
परां मुदं सिंहनादांश्च चक्रुः ।
सर्वे ह्यमन्यन्त भृशाहतौ च
कर्णेन कृष्णाविति कौरवेन्द्र ॥ ३४

तत्तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य
कर्णस्य वीर्यं च परैरसह्यम् ।
दृष्ट्वा च कर्णेन धनञ्जयस्य
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥ ३५

ततस्त्वमर्षी क्रोधसंदीप्तनेत्रो
वातात्मजः पाणिना पाणिमाच्छेत् ।
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्ध-
ममर्षितो निःश्वसञ्जातमन्युः ॥ ३६

कथं नु पापोऽयमपेतधर्मः
सूतात्मजः समरेऽद्य प्रसह्य ।
पञ्चालानां योधमुख्याननेका-
न्निजघ्निवांस्तव जिष्णो समक्षम् ॥ ३७

पूर्वं देवैरजितं कालकेयैः
साक्षात्स्थाणोर्बाहुसंस्पर्शमेत्य ।
कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटि-
न्पञ्चेषुभिर्दशभिः प्रागविद्ध्यत ॥ ३८
त्वया क्षिप्तांश्चाग्रसद्बाणसंघा-
नाश्चर्यमेतत्प्रतिभाति मेऽद्य ।
कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं
यथाब्रवीत्षण्ढतिलान् स्म वाचः ३९
रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः
सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा ।
संस्मृत्य सर्वं तदिहाद्य पापं
जह्याशु कर्णं युधि सव्यसाचिन्॥४०
कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटि-
न्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः ।
यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषी-
र्ग्रासं ददत्खाण्डवे पावकाय ॥ ४१
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्व-
महं चैनं गदया पोथयिष्ये ।
अथाब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थं
दृष्ट्वा रथेषून्प्रतिहन्यमानान् ॥ ४२
अमीमृदत्सर्वथा तेऽद्य कर्णो
ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भो किरीटिन् ।
स वीर किं मुह्यसि नावधत्से
नदन्त्येते कुरवः संप्रहृष्टाः ॥ ४३
कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे
तवास्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम् ।
यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं
युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः ॥ ४४
दंभोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु
तया धृत्या जहि कर्णं त्वमद्य ।
अनेन चास्य क्षुरनेमिनाद्य
संछिन्धि मूर्धानमरेः प्रसह्य ॥ ४५
मया विसृष्टेन सुदर्शनेन
वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः ।
किरातरूपी भगवान्सुधृत्या
त्वया महात्मा परितोषितोऽभूत् ॥
तां त्वं पुनर्वीर धृतिं गृहीत्वा
सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम् ।
ततो महीं सागरमेखलां त्वं
सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम् ॥ ४७
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसङ्घां
यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम् ।
स एवमुक्तोऽतिबलो महात्मा
चकार बुद्धिं हि वधाय सौतेः ॥ ४८
स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां
स्मृत्वा तथाऽऽत्मानमवेक्ष्य सर्वम् ।
इहात्मनश्चागमने विदित्वा
प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥ ४९
प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं
शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः ।
तन्मेऽनुजानातु भवान्सुराश्च
ब्रह्मा भवो वेदविदश्च सर्वे ॥ ५०
इत्युच्य देवं स तु सव्यसाची
नमस्कृत्वा ब्रह्मणे सोऽमितात्मा ।
तदुत्तमं ब्राह्ममसह्यमस्त्रं
प्रादुश्चक्रे मनसा यद्विधेयम् ॥ ५१
तदस्य हत्वा विरराज कर्णो
मुक्त्वा शरान्मेघ इवाम्बुधाराः ।
समीक्ष्य कर्णेन किरीटिनस्तु
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥५२
ततोऽमर्षी बलवान् क्रोधदीप्तो
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्धम् ।
ननु त्वाहुर्वेदितारं महास्त्रं
ब्राह्मं विधेयं परमं जनास्तत ॥ ५३
तस्मादन्यद्योजय सव्यसाचि-
न्निति स्मोक्तो योऽजयत्सव्यसाची ।
ततो दिशः प्रदिशश्चापि सर्वाः
समावृणोत्सायकैर्भूरितेजाः ॥ ५४
गाण्डीवमुक्तैर्भुजगैरिवोग्रै-
र्दिवाकरांशुप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ।
सृष्टास्तु बाणा भरतर्षभेण
शतं शतानीव सुवर्णपुंखाः ॥ ५५
प्राच्छादयन्कर्णरथं क्षणेन
युगान्तवह्न्यर्ककरप्रकाशाः ।
ततश्च शूलानि परश्वधानि
चक्राणि नाराचशतानि चैव ॥ ५६

आत्मनो नरस्य चात् नारायणस्य च इह भूमौ प्रयोजनं भूभारावतरणं विदित्वा स्मृत्वा ॥ ४९ ॥

निश्चक्रुरुघोरतराणि योधा-
स्ततो ह्यहन्यन्त समन्ततोऽपि ।
छिन्नं शिरः कस्यचिदाजिमध्ये
पपात योधस्य परस्य कायात् ॥ ५७
भयेन सोऽप्याशु पपात भूमा-
वन्यः प्रनष्टः पतितं विलोक्य ।
अन्यस्य सासिर्निपपात कृत्तो
योधस्य बाहुः करिहस्ततुल्यः ॥ ५८
अन्यस्य सव्यः सह वर्मणा च
क्षुरप्रकृत्तः पतितो धरण्याम् ।
एवं समस्तानपि योधमुख्या-
न्विध्वंसयामास किरीटमाली ॥ ५९
शरैः शरीरान्तकरैः सुघोरै-
र्दौर्योधनं सैन्यमशेषमेव ।
वैकर्तनेनापि तथाऽऽजिमध्ये
सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः ॥ ६०
ते घोषिणः पाण्डवमभ्युपेयुः
पर्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः ।
ततः स कृष्णं च किरीटिनं च
वृकोदरं चाप्रतिमप्रभावः ॥ ६१
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य
ननाद घोरं महता स्वरेण ।
स कर्णबाणाभिहतः किरीटी
भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च ॥ ६२
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः
शरान्दशाष्टौ च समुद्बबर्ह ।
स केतुमेकेन शरेण विद्ध्वा
शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ॥ ६३
ततः स मुक्तैर्दशभिर्जघान
सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम् ।
स राजपुत्रो विशिरा विबाहु-
र्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः ॥ ६४
हतो रथाग्रादपतत्स रुग्णः
परश्वधैः शाल इवावकृत्तः ।
पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च
द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विद्ध्वा ॥ ६५
चतुःशतान् द्विरदान्सायुधान्वै
हत्वा रथानष्टशताञ्जघान ।
सहस्रशोऽश्वांश्च पुनः स सादी-
नष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान् ॥ ६६

कर्णं ससूतं सरथं सकेतु-
मदृश्यमञ्जोगतिभिः प्रचक्रे ।
अथाक्रोशन् कुरवो वध्यमाना
धनञ्जयेनाधिरथिं समन्तात् ॥ ६७
मुञ्चाभिविध्यार्जुनमाशु कर्ण
बाणैः पुरा हन्ति कुरून्समग्रान् ।
स चोदितः सर्वयत्नेन कर्णो
मुमोच बाणान्सुबहूनभीक्ष्णम् ॥ ६८
ते पाण्डुपञ्चालगणान्निजघ्नु-
र्मर्मच्छिदः शोणितपांसुदिग्धाः ।
तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां
महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ॥ ६९
निजघ्नतुश्चाहितसैन्यमुग्र-
मन्योन्यमप्यस्त्रविदौ महास्त्रैः ।
अथोपयातस्त्वरितो दिदृक्षु-
र्मन्त्रौषधीभिर्निरुजो विशल्यः ॥ ७०
कृत्तः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठै-
र्युधिष्ठिरस्तत्र सुवर्णवर्मा ।
तथोपयातं युधि धर्मराजं
दृष्ट्वा मुदा सर्वभूतान्यनन्दन् ॥ ७१
राहोर्विमुक्तं विमलं समग्रं
चन्द्रं यथैवाभ्युदितं तथैव ।
दृष्ट्वा तु मुख्यावथ युध्यमानौ
दिदृक्षवः शूरवरावरिघ्नौ ॥ ७२
कर्णं च पार्थं च विलोकयन्तः
खस्था महीस्थाश्च जनावतस्थुः ।
स कार्मुकज्यातलसंनिपातः
सुमुक्तबाणस्तुमुलो बभूव ॥ ७३
घ्नतोस्तथाऽन्योन्यमिषुप्रवेकै-
र्धनञ्जयस्याधिरथेश्च तत्र ।
ततो धनुर्ज्या सहसाऽतिकृष्टा
सुघोषमच्छिद्यत पाण्डवस्य ॥ ७४
तस्मिन् क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः
समाचिनोत् क्षुद्रकाणां शतेन ।
निर्मुक्तसर्पप्रतिमैरभीक्ष्णं
तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः ॥ ७५
षष्ट्या बिभेदाशु च वासुदेव-
मनन्तरं फाल्गुनमष्टभिश्च ।
पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद
मरुत्सुतं चायुतशः शराग्र्यैः ॥ ७६

कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च
पार्थानुजान्सोमकान्पातयंश्च ।
प्राच्छादयंस्ते विशिखैः पृषत्कै-
र्जीमूतसंघा नभसीव सूर्यम् ॥ ७७
आगच्छतस्तान्विशिखैरनेकै-
र्व्यध्वंसयत्सूतपुत्रः कृतास्त्रः ।
तैरस्तमस्त्रं विनिहत्य सर्वं
जघान तेषां रथवाजिनागान् ॥ ७८
तथा तु सैन्यप्रवरांश्च राज-
न्नभ्यर्दयन्मार्गणैः सूतपुत्रः ।
ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः
कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ॥ ७९
सिंहेन क्रुद्धेन यथाश्वयूथ्या
महाबला भीमबलेन तद्वत् ।
पुनश्च पाञ्चालवरास्तथाऽन्ये
तदन्तरे कर्णधनञ्जयाभ्याम् ॥ ८०
प्रस्कन्दन्तो बलिना साधुमुक्तैः
कर्णेन बाणैर्निहताः प्रसह्य ।
जयं मत्वा विपुलं वै त्वदीया-
स्तलान्निजघ्नुः सिंहनादांश्च नेदुः ८१
सर्वे ह्यमन्यन्त वशे कृतौ तौ
कर्णेन कृष्णाविति ते विमर्दे ।
ततो धनुर्ज्यामवनाम्य शीघ्रं
शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य ॥ ८२
सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो
रणे पार्थः कौरवान्प्रत्यगृह्णात् ।
ज्यां चानुमृज्याभ्यहनत्तलत्रे
बाणान्धकारं सहसा च चक्रे ॥ ८३
कर्णं च शल्यं च कुरूंश्च सर्वान्
बाणैरविध्यत्प्रसभं किरीटी ।
न पक्षिणो बभ्रमुरन्तरिक्षे
तदा महास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥ ८४
वायुर्वियत्स्थैरीरितो भूतसङ्घै-
रुवाह दिव्यः सुरभिस्तदानीम् ।
शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कै-
र्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत ॥ ८५
ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्विद्ध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविद्ध्यत ।
स पार्थबाणासनवेगमुक्तै-
र्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ८६
विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः
कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः ।
प्रक्रीडमानोऽथ श्मशानमध्ये
रौद्रे मुहूर्ते रुधिरार्द्रगात्रः ॥ ८७
ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं
शरैर्बिभेदाधिरथिर्धनञ्जयम् ।
शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान्
प्रवेशयामास जिघांसयाऽच्युतम् ॥
ते वर्म भित्त्वा पुरुषोत्तमस्य
सुवर्णचित्रा न्यपतन्सुमुक्ताः ।
वेगेन गामाविविशुः सुवेगाः
स्नात्वा च कर्णाभिमुखाः प्रतीयुः ॥
तान्पञ्च भल्लैर्दशभिः सुमुक्तै-
स्त्रिधा त्रिधैकैकमथोच्चकर्त ।
धनञ्जयास्त्रैर्न्यपतन्पृथिव्यां
महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥ ९०
ततः प्रजज्वाल किरीटमाली
क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः ।
तथा विनुन्नाङ्गमवेक्ष्य कृष्णं
सर्वेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः । ९१
स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः
शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः ।
मर्मस्वविध्यत्स चचाल दुःखा-
द्दैवादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः ॥ ९२
ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च
रवेः प्रभा कर्णरथश्च राजन् ।
अदृश्यमासीत्कुपिते धनञ्जये
तुषारनीहारवृतं यथा नभः ॥ ९३
स चक्ररक्षानथ पादरक्षान्
पुरःसरान्पृष्ठगोपांश्च सर्वान् ।
दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नः
समुद्यतान्सरथान्सारभूतान् ॥ ९४
द्विसाहस्रान्समरे सव्यसाची
कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम् ।
क्षणेन सर्वान्सरथाश्वसूता-
न्निनाय राजन्क्षयमेकवीरः ॥ ९५

स्नात्वेत्यनेन पातालगङ्गायास्तलं प्राप्य तदभिघातेन परावृत्ता इत्यर्थः ॥ ८९ ॥ तक्षकपुत्रपक्षा इति ते सर्पबाणाः अश्व-सेनयुक्ताः ॥ ९० ॥

ततोऽपलायन्त विहाय कर्णं
तवात्मजाः कुरवो येऽवशिष्टाः ।
हतानपाकीर्य शरक्षतांश्च
लालप्यमानांस्तनयान् पितॄंश्च ॥ ९६

स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्या
भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः ।
न विव्यथे भारत तत्र कर्णः
प्रहृष्ट एवार्जुनमभ्यधावत् ॥ ९७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे
ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## ९०

सञ्जय उवाच ।
ततः प्रयाताः शरपातमात्र-
मवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः ।
विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ता-
द्धनञ्जयास्त्रं समुदीर्यमाणम् ॥ १

तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो
वियद्गतं घोरतरैः शरैस्तत् ।
क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं
वधाय कर्णस्य महाविमर्दे ॥ २

उदीर्यमाणं स्म कुरून्दहन्तं
सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैर्ममर्द ।
कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं
विस्फारयित्वा विसृजञ्छरौघान् ३

रामादुपात्तेन महामहिम्ना
ह्याथर्वणेनारिविनाशनेन ।
तदर्जुनास्त्रं व्यधमद्दहन्तं
कर्णस्तु बाणैर्निशितैर्महात्मा ॥ ४

ततो विमर्दः सुमहान् बभूव
तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन् ।
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कै-
र्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः ॥ ५

तत्रास्त्रसंघातसमावृतं तदा
बभूव राजंस्तुमुलं स्म सर्वतः ।
तत्कर्णपार्थौ शरवृष्टिसंघै-
र्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ ६

ततो जालं बाणमयं महान्तं
सर्वेऽद्राक्षुः कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यं च भूतं ददृशुस्तदा ते
बाणान्धकारे तुमुलेऽथ किंचित् ॥ ७

तौ सन्दधानावनिशं च राजन्
समस्यन्तौ चापि शराननेकान् ।
संदर्शयेतां युधि मार्गान्विचित्रान्
धनुर्धरौ तौ विविधैः कृतास्त्रैः ॥ ८

तयोरेवं युद्ध्यतोराजिमध्ये
सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित् ।
पार्थः कदाचित्त्वधिकः किरीटी
वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥ ९

दृष्ट्वा तयोस्तं युधि संप्रहारं
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणयोः ।
घोरं तयोर्दुर्विषहं रणेऽन्यै-
र्योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन् १०

ततो भूतान्यन्तरिक्षस्थितानि
तौ कर्णपार्थौ प्रशशंसुर्नरेन्द्र ।
भोः कर्ण साध्वर्जुन साधु चेति
वियत्सु वाणी श्रूयते सर्वतोऽपि ११

तस्मिन्विमर्दे रथवाजिनागै-
स्तदाभिघातैर्दलिते हि भूतले ।
ततस्तु पातालतले शयानो
नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२

राजंस्तदा खाण्डवदाहमुक्तो
विवेश कोपाद्वसुधातले यः ।
अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन
संदृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

तत इति ॥ १ ॥

अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै
पार्थस्य वैरप्रतियातनाय ।
सञ्चिन्त्य तूर्णं प्रविवेश चैव
कर्णस्य राजञ्शररूपधारी ॥ १४

ततोऽस्त्रसंघातसमाकुलं तदा
बभूव जन्यं विततांशुजालम् ।
तत्कर्णपार्थौ शरसङ्घवृष्टिभि-
र्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ १५

तद्बाणजालैकमयं महान्तं
सर्वेऽत्रसन्कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यत्किञ्चिद्ददृशुः संपतद्वै
बाणान्धकारे तुमुलेऽतिमात्रम् ॥ १६

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
त्यक्तप्राणौ रणे वीरौ युद्धश्रममुपागतौ ।
समुत्क्षेपैर्वीक्ष्यमाणौ सिक्तौ चन्दनवारिणा ॥
सवालव्यजनैर्दिव्यैर्दिविस्थैरप्सरोगणैः ।
शक्रसूर्यकराब्जाभ्यां प्रमार्जितमुखावुभौ १८

कर्णोऽथ पार्थं न विशेषयद्यदा
भृशं च पार्थेन शराभितप्तः ।
ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो
दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य ॥ १९

ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः
सुसञ्चितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् ।
रौद्रं शरं सन्नतमुग्रधौतं
पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तम् ॥ २०

सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं
सुवर्णतूणीरशयं महार्चिषम् ।
आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः
पार्थोन्मुखः संदधे चोत्तमौजाः ॥२१

प्रदीप्तमैरावतवंशसंभवं
शिरो जिहीर्षुर्युधि सव्यसाचिनः ।
ततः प्रजज्वाल दिशो नभश्च
उल्काश्च घोराः शतशः प्रपेतुः ॥ २२

तस्मिंस्तु नागे धनुषि प्रयुक्ते
हाहाकृता लोकपालाः सशक्राः ।
न चापि तं बुबुधे सूतपुत्रो
बाणे प्रविष्टं योगबलेन नागम् ॥ २३

दशशतनयनोऽहिं दृश्य बाणे प्रविष्टं
निहत इति सुतो मे स्रस्तगात्रो बभूव
जलजकुसुमयोनिः श्रेष्ठभावो जितात्मा
त्रिदशपतिमवोचन्मा व्यथिष्ठा जये श्रीः

ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा
दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रम् ।
न कर्णग्रीवामिषुरेष लप्स्यते
समीक्ष्य सन्धत्स्व शरं शिरोघ्नम् ॥२५

अथाब्रवीत्क्रोधसंरक्तनेत्रो
मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी ।
न संधत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो
न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति ॥ २६

इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं
प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम् ।
हतोऽसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिप-
न्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितां वृषः ॥ २७

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो
हुताशनार्कप्रतिमः सुघोरः ।
गुणच्युतः कर्णधनुःप्रमुक्तो
वियद्गतः प्राज्वलदन्तरिक्षे ॥ २८

तं प्रेक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु
त्वरान्वितं सत्वरयैव लीलया ।
पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स
प्रावेशयत्पृथिवीं किञ्चिदेव ॥ २९

क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा
हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचिवर्णाः ।
ततोऽन्तरिक्षे सुमहान्निनादः
संपूजनार्थं मधुसूदनस्य ॥ ३०

दिव्याश्च वाचः सहसा बभुवु-
र्दिव्यानि पुष्पाण्यथ सिंहनादाः ।
तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने
रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य ॥ ३१

ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं
तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः ।
अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं
धरावियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥३२

---

बाणजालैकमयं दृष्ट्वेति शेषः ॥ १६ ॥ अथेति । मूर्ध्नः सकाशात् व्यालास्त्रस्य सर्गश्चोत्तमयत्नश्च मन्युश्च तैः प्रयुक्तेन शरेणोत्तमगात्रभूषणमुत्तमाङ्गभूषणं प्रजहारेति द्वयोः संबंधः ॥ ३२ ॥

ह्यालाग्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः
शरेण मूर्ध्नः प्रजहार सूतजः।
दिवाकरेन्दुज्वलनप्रभत्विषं
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितम् ॥ ३३

पुरंदरार्थं तपसा प्रयत्नतः
स्वयं कृतं यद्विभुना स्वयंभुवा।
महार्हरूपं द्विषतां भयंकरं
बिभर्तुरत्यर्थसुखं सुगन्धिनम् ॥ ३४

जिघांसते देवरिपून्सुरेश्वरः
स्वयं ददौ यत्सुमनः किरीटिने।
हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः
पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः ॥ ३५

सुरोत्तमैरप्यविषह्यमर्दितुं
प्रसह्य नागेन जहार यद्वृषः।
स दुष्टभावो वितथप्रतिज्ञः
किरीटमत्यद्भुतमर्जुनस्य ॥ ३६

नागो महार्हं तपनीयचित्रं
पार्थोत्तमाङ्गात्प्रहरत्तरस्वी।
तद्धेमजालावततं सुघोषं
जाज्वल्यमानं निपपात भूमौ ॥ ३७

तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना
प्रदीप्तमर्चिष्मदथो क्षितौ प्रियम्।
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ३८

स वै किरीटं बहुरत्नभूषितं
जहार नागोऽर्जुनमूर्धतो बलात्।
गिरेः सुजाताङ्कुरपुष्पितद्रुमं
महेन्द्रवज्रः शिखरोत्तमं यथा ॥ ३९

मही वियत् द्यौः सलिलं च वायुना
प्रसह्यमुग्रं विनिघूर्णितं यथा।
अतीव शब्दो भुवनेषु वै तदा
जनाऽध्यवस्यन्व्यथिताश्च चस्खलुः

विना किरीटं शुशुभे स पार्थः
श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः।
ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा
स्वमूर्धजानव्यथितस्तदाऽर्जुनः।
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं
शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥ ४१

गोकर्णा सुमुखी कृतेन इषुणा
गोपुत्रसंप्रेषिता
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं
सुव्यक्तगोऽसुप्रभम्
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं
गोशब्दगोपूरि वै
गोकर्णासनमर्दनश्च न यया-
वप्राप्य मृत्योर्वशम्

गोकर्णा मुकुटं जहारेत्यन्वयः। अर्जुनस्य मुकुटहरणमपि महत् कर्मेति सूचयन्मुकुटं विशिनष्टि—गवि चक्षुषि कर्णौ यस्याः सा गोकर्णा चक्षुःश्रवाः सर्पिणी, अर्जुनेन खाण्डवे निहता सती इह निमित्तभूता तस्य मुकुटमेव जहार हृतवती न तु शिरः। कथं हताया हनननिमित्तत्वमत आह—सुमुखीकृतेन इषुणा गोपुत्रसंप्रेषिता संधिरविवक्षितत्वान्न भवति। शोभनं पुत्रजीवनकरं मुखं यस्याः सा सुमुखी। सा हि पुत्रं निगीर्य दह्यमानात् खाण्डवादुत्पतन्ती शिरोदेशे अर्जुनेन छिन्ना सती स्वयं मृता पुत्रं च रक्षितवतीत्यादिपर्वण्युपाख्यायते। कृतेन स्वयं निर्मितेन पुत्रेण त्रातेन इषुणा इषुभावंगतेन। 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इतिश्रुतेरिष्वाकारपुत्ररूपेण संपन्ना सती गोमतो रश्मिमतोऽर्कस्य पुत्रेण कर्णेन प्रेषिता। इषुणेतीत्थंभावे तृतीया। गोपुत्रेति मतुब्लोप आर्षः। किं कृत्वा मुकुटं जहारेत्यत आह—सुव्यक्तगोऽसुप्रभं गोगतकं दृष्ट्वा। सुव्यक्ताः अतिशयेनाविर्भूताः गावो रश्मयस्तेज इति यावत्। सुव्यक्तैर्गोभिरसुभिश्च प्रकर्षेण भासमानं निरातिशयतेजोबलमर्जुनम्। गोगतकं गोशब्देन हयरश्मीनां प्रदेशो लक्ष्यते। तत्र गतं विद्यमानं कं शिरो यस्य तम्। अर्जुनस्य ग्रीवादेशं कर्णेन लक्षीकृतं विज्ञाय भगवता स्वभारेण अश्वेषु जानुभ्यामवनीं गमितेषु रश्मिभिः समसूत्रदेशे अर्जुनस्य शिरो दृष्ट्वाऽपि वेगातिशयात्स्वयं नीचीभवितुमशक्ता सती तद्देशस्थं मुकुटं जहारेत्यर्थः। गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितमिति। गौः पृथिवी तया शब्द्यते गोशब्दा अदितिः। 'इयं वा अदितिः' इति पृथिव्या अदितेर्निर्देशात्। तस्या आत्मजस्येन्द्रस्य भूषणं सुविहितं वेधसेति शेषः। तथा चात्रैवोक्तम्। 'पुरंदरार्थं तपसा प्रयत्नतः स्वयं कृतं यद्विधिना स्वयंभुवा' इति। कीदृशं मुकुटम्। वै निश्चितं प्रसिद्धं वा। गोशब्दगोपूरि गोभिः रश्मिभिः शब्द्यते रश्मिमानिति कथ्यत इति सूर्यः तस्येव भुवनगर्भव्यापिनो गावः किरणास्तैर्भुवनं पूरयितुं शीलमस्य तत्तथा। सूर्यसमप्रभमित्यर्थः। ननु चेतनाधिष्ठितो बाणः पुनरेत्यार्जुनं कुतो न हतवानित्यत आह—गोकर्णासनमर्दनश्च न ययाव

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो
हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः ।
महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन
किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात् ॥ ४३
तं चापि दग्ध्वा तपनीयचित्रं
किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य ।
इयेष गन्तुं पुनरेव तूर्णं
दृष्टश्च कर्णेन ततोऽब्रवीत्तम् ॥ ४४
मुक्तस्त्वयाऽहं त्वसमीक्ष्य कर्ण
शिरो हृतं यन्न मयाऽर्जुनस्य ।
समीक्ष्य मां मुञ्च रणे त्वमाशु
हन्ताऽस्मि शत्रुं तव चात्मनश्च ॥४५
स एवमुक्तो युधि सूतपुत्र-
स्तमब्रवीत्को भवानुग्ररूपः ।
नागोऽब्रवीद्विद्धि कृतागसं मां
पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥ ४६
यदि स्वयं वज्रधरोऽस्य गोप्ता
तथाऽपि याता पितृराजवेश्मनि ।
कर्ण उवाच ।
न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य
बलं समास्थाय जयं बुभूषेत् ॥ ४७
न संदध्यां द्विः शरं चैव नाग
यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम् ।
तमाह कर्णः पुनरेव नागं
तदाऽऽजिमध्ये रविसूनुसत्तमः ॥४८
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभि-
र्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम् ।
इत्येवमुक्तो युधि नागराजः
कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम् ॥४९
स्वयं प्रायात्पार्थवधाय राजन्
कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः ।
ततः कृष्णः पार्थमुवाच संख्ये
महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५०
स एवमुक्तो मधुसूदनेन
गाण्डीवधन्वा रिपुवीर्यसाहः ।
उवाच को ह्येष ममाद्य नागः
स्वयं य आयाद्गरुडस्य वक्त्रम् ॥ ५१
कृष्ण उवाच ।
योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं
सन्तर्पयाणेन धनुर्धरेण ।
वियद्गतो जननीगुप्तदेहो
मत्वैकरूपं निहताऽस्य माता ॥ ५२
स एष तद्वैरमनुस्मरन्वै
त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् ।
नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां
पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥ ५३
सञ्जय उवाच ।
ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषा-
च्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः ।
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं
स च्छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥ ५४
गते च तस्मिन् भुजगे किरीटिना
स्वयं विभुः पार्थिवभूतलादथ ।
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं
रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥ ५५
तस्मिन्मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः
शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः ।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो
धनञ्जयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥ ५६
ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य ।
नाराचमाशीविषतुल्यवेग-
माकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ ५७
स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य
प्राणान्निरस्यन्निव साधु मुक्तः ।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश
वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥ ५८

---

प्राप्य मृत्योर्वशमिति । गोकर्णं सर्पं पुनरर्जुनं हन्तुं इच्छन्तं असनेन बाणक्षेपेण मर्दयति यः स तथाभूतोऽर्जुनश्च तमेव सर्पमनवाप्य मृत्योर्वशं न ययौ । सर्पस्य पुनरागमनं वधश्चात्रैव कीर्त्यते ।
"गौर्नादित्ये बलीवर्दे क्रतुभेदार्षिभेदयोः ।
स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि ।
वृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु' इति कोशः ४२ कर्णेन वाक्यं उक्तः संस्तद्वाक्यमसहन् असहमानः स्वयं प्रायादित्युत्तरेणान्वयः ॥ ४९ ॥ महोल्कामिति पाठे इवेत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ५३ ॥ गते गमिते विभुः समर्थः ॥ ५५ ॥ बर्हिणां बर्हा एव वाजाः पक्षाः संजाता येषां तैर्बर्हिणबर्हवाजितैः ॥ ५६ ॥

ततो वृषो बाणनिपातकोपितो
महोरगो दण्डविघट्टितो यथा।
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्
महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम् ॥५९
जनार्दनं द्वादशभिः पराभिन-
न्नवैर्नवत्या च शरैस्तथाऽर्जुनम्।
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं
विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च ॥६०
तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो
बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित्।
परःशतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रम-
स्तथा यथेन्द्रो बलमोजसा रणे ॥ ६१
ततः शराणां नवतिं तदाऽर्जुनः
ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम्।
तैः पत्रिभिर्विद्धतनुः स विव्यथे
तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः ॥६२
मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम्।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभि-
र्धनंजयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥ ६३
महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः
कृतं यदस्योत्तमवर्म भास्वरम्।
सुदीर्घकालेन ततोऽस्य पाण्डवः
क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ६४
स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः
शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत्।
स विव्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो
यथाऽऽतुरः पित्तकफानिलज्वरैः ॥
महाधनुर्मण्डलनिःसृतैः शितैः
क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च।
ततक्ष कर्णं बहुभिः शरोत्तमै-
र्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥ ६६
दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः
पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः।
बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः
क्षरन्प्रपातैरिव रक्तमंभः ॥ ६७
ततोऽर्जुनः कर्णमवक्रगैर्नवैः
सुवर्णपुंखैः सुदृढैरयस्मयैः।
यमाग्निदण्डप्रतिमैः स्तनान्तरे
पराभिनत्क्रौञ्चमिवाद्रिमग्निजः ॥६८
ततः शरावापमपास्य सूतजो
धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम्।
ततो रथस्थः स मुमोह च स्खलन्
प्रशीर्णमुष्टिः सुभृशाहतः प्रभो ॥ ६९
न चार्जुनस्तं व्यसने तदेषिवा-
न्निहन्तुमार्यः पुरुषव्रते स्थितः।
ततस्तमिन्द्रावरजः सुसंभ्रमा-
दुवाच किं पाण्डव हे प्रमाद्यसे ॥७०
नैवाहितानां सततं विपश्चितः
क्षणं प्रतीक्षन्त्यपि दुर्बलीयसाम्।
विशेषतोऽरीन्व्यसनेषु पण्डितो
निहत्य धर्मं च यशश्च विन्दते ॥ ७१
तदेकवीरं तव चाहितं सदा
त्वरस्व कर्णं सहसाऽभिमर्दितुम्।
पुरा समर्थः समुपैति सूतजो
भिन्धि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः ॥
ततस्तदेवेत्यभिपूज्य सत्वरं
जनार्दनं कर्णमविध्यदर्जुनः।
शरोत्तमैः सर्वकुरूत्तमस्त्वरं-
स्तथा यथा शम्बरहा पुरा बलिम् ॥
साश्वं तु कर्णं सरथं किरीटी
समाचिनोद्भारत वत्सदन्तैः।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः
सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुंखैः ॥ ७४
स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः
समाचितः सोऽधिरथिर्विभाति।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलि-
र्यथाऽचलश्चन्दनकाननायुतः ॥ ७५
शरैः शरीरे बहुभिः समर्पितै-
र्विभाति कर्णः समरे विशांपते।
महीरुहैराचितसानुकन्दरो
यथा गिरीन्द्रः स्फुटकर्णिकारवान् ॥
स बाणसङ्घान् बहुधा व्यवासृजन्
विभाति कर्णः शरजालरश्मिवान्।
स लोहितो रक्तगभस्तिमण्डलो
दिवाकरोऽस्ताभिमुखो यथा तथा ॥

आग्निजः कार्तिकेयः ॥ ६८ ॥ ईषिवान् मनसि कृतवान् ॥ ७० ॥

बाह्वन्तरादाधिरथेर्विमुक्तान्
बाणान्महाहीनिव दीप्यमानान् ।
व्यध्वंसयन्नर्जुनबाहुमुक्ताः
शराः समासाद्य दिशः शिताग्राः ॥
ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं
बाणान्विमुञ्चन् कुपिताहिकल्पान् ।
विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः
कृष्णं च षड्भिः कुपिताहिकल्पैः ॥
ततः किरीटी भृशमुग्रनिःस्वनं
महाशरं सर्पविषानलोपमम् ।
अयस्मयं रौद्रमहास्त्रसंभृतं
महाहवे क्षेप्तुमना महामतिः ॥ ८०
कालो ह्यदृश्यो नृप विप्रकोपा-
न्निदर्शयन्कर्णवधं ब्रुवाणः ।
भूमिस्तु चक्रं ग्रसतीत्यवोच-
त्कर्णस्य तस्मिन्वधकाल आगते ८१
ततस्तदस्त्रं मनसः प्रनष्टं
यद्भार्गवोऽस्मै प्रददौ महात्मा ।
चक्रं च वामं ग्रसते भूमिरस्य
प्राप्ते तस्मिन्वधकाले नृवीर ८२
ततो रथो घूर्णितवान्नरेन्द्र
शापात्तदा ब्राह्मणसत्तमस्य ।
ततश्चक्रमपतत्तस्य भूमौ
स विह्वलः समरे सूतपुत्रः ॥ ८३
सवेदिकश्चैत्य इवातिमात्रः
सुपुष्पितो भूमितले निमग्नः ।
घूर्णे रथे ब्राह्मणस्याभिशापा-
द्रामादुपात्ते त्वविभाति चास्त्रे ८४
छिन्ने शरे सर्पमुखे च घोरे
पार्थेन तस्मिन्विषसाद कर्णः ।
अमृष्यमाणो व्यसनानि तानि
हस्तौ विधुन्वन्स विगर्हमाणः ॥ ८५
धर्मप्रधानं किल पाति धर्म
इत्यब्रुवन् धर्मविदः सदैव ।
वयं च धर्मे प्रयताम नित्यं
चर्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतं च ॥ ८६

स चापि निघ्नाति न पाति भक्तान्
मन्ये न नित्यं परिपाति धर्मः ।
एवं ब्रुवन्प्रस्खलिताश्वसूतो
विचाल्यमानोऽर्जुनबाणपातैः ॥
मर्माभिघाताच्छिथिलः क्रियासु
पुनः पुनर्धर्ममसौ जगर्ह ॥ ८७
ततः शरैर्भीमतरैरविध्यत्त्रिभिराहवे ।
हस्ते कृष्णं तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभिः ॥
ततोऽर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान्
इन्द्राशनिसमान् घोरानसृजत्पावकोपमान्
निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन् पृथिवीतले ।
कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत्
बलेनाथ स संस्तभ्य ब्रह्मास्त्रं समुदैरयत् ।
ऐन्द्रं ततोऽर्जुनश्चापि तं दृष्ट्वाऽभ्युपमन्त्रयत् ९१
गाण्डीवं ज्यां च बाणांश्च सोऽनुमन्त्र्य परंतपः
व्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ ९२
ततस्तेजोमया बाणा रथात्पार्थस्य निःसृताः
प्रादुरासन्महावीर्याः कर्णस्य रथमन्तिकात्
तान् कर्णस्त्वग्रतो न्यस्तान्
मोघांश्चक्रे महारथः ।
ततोऽब्रवीद्वृष्णिवीर-
स्तस्मिन्नस्त्रे विनाशिते ॥ ९४
विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान् ।
ततो ब्रह्मास्त्रमत्युग्रं संमन्त्र्य समयोजयत् ९५
छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः ।
ततः कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः
द्वितीयां च तृतीयां च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा ।
षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीं च तथाऽष्टमीम्
नवमीं दशमीं चास्य तथा चैकादशीं वृषः ।
ज्याशतं शतसंधानः स कर्णो नावबुध्यते ॥
ततो ज्यां विनिधायान्या-
मभिमन्त्र्य च पाण्डवः ।
शरैरवाकिरत्कर्णं
दीप्यमानैरिवाहिभिः ॥ ९९
तस्य ज्याच्छेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् १००

---

काल इति । हे नृप कर्णवधं अभिलक्ष्येति शेष । ब्रुवाणः वक्ता ॥ ८१ ॥ वामं चक्रं ग्रसते नृवीरेत्यत्रास्ति सोर्वीरपति पाठे ग्रसते आत्ति च न तु निर्गाणमुद्गमन्तीत्यर्थः ॥ ८२ ॥ चैत्यः सवेदिको ग्रामसूचको महाद्रुमः ॥ ८४ ॥ अभ्युपमंत्रयत् गाण्डीवमित्युत्तरान्वयि ॥ ९१ ॥ प्रत्यस्यत् प्रतिप्राक्षिपत् ॥ ९६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन्सव्यसाचिनः ।
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात् स्ववीर्यमतिदर्शयन्
ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण च पीडितम्
अभ्यसेत्यब्रवीत्पार्थमातिष्ठास्त्रं व्रजेति च ॥ २
ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम् ।
अश्मसारमयं दिव्यमभिमन्त्र्य परंतपः ॥ ३
रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान् ।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप ४
ततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः ।
चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तुमियेष सः
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना ।
गीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरङ्गुलम् ६
ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः क्रोधादश्रूण्यवर्तयत ।
अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत ॥ ७
भो भो पार्थ महेष्वास मुहूर्तं परिपालय ।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात ॥ ८
सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम ।
पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसन्धिं विसर्जय ॥ ९
न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि ।
ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु
विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव ।
प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ ११
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथाऽर्जुन ।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥ १२
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि
शूराः साधुव्रते स्थिताः ।
त्वं च शूरतमो लोके
साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥ १३
अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः* ।
दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज ।
न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि १५
न वासुदेवात्त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम्
त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः ।
अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्तं क्षम पाण्डव १६

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णरथचक्रग्रसने
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

सञ्जय उवाच ।
तमब्रवीद्वासुदेवो रथस्थो
राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम् ।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम् १
यद्द्रौपदीमेकवस्त्रां सभाया-
मानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च ।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च
न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः ॥ २
यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम् ।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः ३
वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे ।
न प्रयच्छसि यद्राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः ४
यद्भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः ।
आचरत्त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः ५
यद्वारणावते पार्थान्सुप्ताञ्जतुगृहे तदा ।
आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ६
यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थितां
सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः ७
यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम्
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ८
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः
पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम्
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ।
राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवान्

---

अभ्यस पुनः पुनः अस्त्रं आतिष्ठ, व्रज प्रेरयेत्यब्रवीदिति योजना ॥ १०२ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

* तस्मात्क्षम मुहूर्तकम् इति पाठः ।

९१

तमिति ॥ १ ॥

यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः ।
यदाऽभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः ।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ११
यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन ॥ १२
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि ।
नलो ह्यक्षैर्निर्जितः पुष्करेण
पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात् ॥ १३
प्राप्तास्तथा पाण्डवा बाहुवीर्या-
त्सर्वैः समेताः परिवृत्तलोभाः ।
निहत्य शत्रून्समरे प्रवृद्धान्
ससोमका राज्यमवाप्नुयुस्ते ॥ १४
तथा गता धार्तराष्ट्रा विनाशं
धर्माभिगुप्तैः सततं नृसिंहैः ।
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत॥१५
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान्
क्रोधात्प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत १६
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ॥ १७
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ।
एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात्तदार्जुनः ॥ १८
मन्युमभ्याविशद्घोरं स्मृत्वा तत्तु धनञ्जयः ।
तस्य क्रुद्धस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यस्तेजसोर्चिषः
प्रादुरासंस्तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
तत्समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनञ्जयम् ॥
अभ्यवर्षत्पुनर्यत्नमकरोद्रथसर्जने ।
ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ २१
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहार च पाण्डवः ।
ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः २२
मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत्प्रजज्वाल तेजसा ।
वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् २३
जीमूतैश्च दिशः सर्वा-
श्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः ।
पाण्डवेयस्त्वसंभ्रान्तो
वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् ॥ २४
अपोवाह तदाऽभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः ।
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥
आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया ।
योज्यमाने ततस्तस्मिन् बाणे धनुषि पूजिते
चचाल पृथिवी राजन् सशैलवनकानना ।
ववौ सशर्करो वायुर्दिशश्च रजसा वृताः २७
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे सुराणां दिवि भारत ।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ॥ २८
विषादं परमं जग्मुः पाण्डवा दीनचेतसः ।
स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः ॥ २९
भुजान्तरं प्राप्य धनञ्जयस्य
विवेश वल्मीकमिवोरगोत्तमः ।
स गाढविद्धः समरे महात्मा
विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः ३०
चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः
क्षितेः प्रकम्पे च यथाऽचलोत्तमः ।
तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो
रथाङ्गमुर्वीगतमुज्जिहीर्षुः ॥ ३१
रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां
शशाक दैवान्न महाबलोऽपि ।
ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां
जग्राह बाणं यमदण्डकल्पम् ॥ ३२
ततोऽर्जुनः प्राञ्जलिकं महात्मा
ततोऽब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण
न यावदारोहति वै रथं वृषः ॥ ३३
तथैव सम्पूज्य स तद्वचः प्रभो-
स्ततः शरं प्रज्वलितं प्रगृह्य ।
जघान कक्षाममलार्कवर्णां
महारथे रथचक्रे विमग्ने ॥ ३४
तं हस्तिकक्षाप्रवरं च केतुं
सुवर्णमुक्तामणिवज्रपृष्ठम् ।
ज्ञानप्रकर्षोत्तमशिल्पियुक्तैः
कृतं सुरूपं तपनीयचित्रम् ॥ ३५
जयास्पदं तव सैन्यस्य नित्य-
ममित्रवित्रासनमीड्यरूपम् ।
विख्यातमादित्यसमं स्म लोके
त्विषा समं पावक-भानु-चन्द्रैः॥३६
ततः क्षुरप्रेण सुसंशितेन
सुवर्णपुङ्खेन हुताग्निवर्चसा ।
श्रिया ज्वलन्तं ध्वजमुन्ममाथ
महारथस्याधिरथेः किरीटी ॥ ३७

यशश्च दर्पश्च तथा प्रियाणि
सर्वाणि कार्याणि च तेन केतुना।
साकं कुरूणां हृदयानि चापतन्
बभूव हाहेति च निःस्वनो महान्॥३८
दृष्ट्वा ध्वजं पातितमाशुकारिणा
कुरुप्रवीरेण निकृत्तमाहवे।
नाशंसिरे सूतपुत्रस्य सर्वे
जयं तदा भारत ये त्वदीयाः॥ ३९
अथ त्वरन् कर्णवधाय पार्थो
महेन्द्रवज्रानलदण्डसन्निभम्।
आदत्त चाथाञ्जलिकं निषङ्गा-
त्सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम्॥ ४०
मर्मच्छिदं शोणितमांसदिग्धं
वैश्वानरार्कप्रतिमं महार्हम्।
नराश्वनागासुहरं त्र्यरत्निं
षड्वाजमञ्जोगतिमुग्रवेगम्॥ ४१
सहस्रनेत्राशनितुल्यवीर्यं
कालानलं व्यात्तमिवातिघोरम्।
पिनाकनारायणचक्रसन्निभं
भयङ्करं प्राणभृतां विनाशनम्॥ ४२
जग्राह पार्थः स शरं प्रहृष्टो
यो देवसङ्घैरपि दुर्निवार्यः।
संपूजितो यः सततं महात्मा
देवासुरान्यो विजयेन्महेषुः॥ ४३
तं वै प्रमृष्टं प्रसमीक्ष्य युद्धे
चचाल सर्वं सचराचरं जगत्।
स्वस्ति जगत्स्यादृषयः प्रचुक्रुशु-
स्तमुद्यतं प्रेक्ष्य महाहवेषुम्॥ ४४
ततस्तु तं वै शरमप्रमेयं
गाण्डीवधन्वा धनुषि व्ययोजयत्।
युक्त्वा महास्त्रेण परेण चापं
विकृष्य गाण्डीवमुवाच सत्वरम्
अयं महास्त्रप्रहितो महाशरः
शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः।
तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता
मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा॥ ४६
अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः
सुसंश्रितः कर्णमरिं ममोर्जितम्।
इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं
धनञ्जयः कर्णवधाय घोरम्॥ ४७

कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां
दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि।
ब्रुवन् किरीटी तमतिप्रहृष्टो
ह्ययं शरो मे विजयावहोऽस्तु॥ ४८
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः
कर्णं मयास्तो नयतां यमाय।
तेनेषुवर्येण किरीटमाली
प्रहृष्टरूपो विजयावहेन॥ ४९
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण
चक्रे विषक्तं रिपुमाततायी।
तथा विमुक्तो बलिनाऽर्कतेजाः
प्रज्वालयामास दिशो नभश्च।
ततोऽर्जुनस्तस्य शिरो जहार
वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः॥ ५०
शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजं-
स्तदा महास्त्रप्रतिमन्त्रितेन।
पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त
वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः॥ ५१
तत्प्रापतच्चाञ्जलिकेन च्छिन्न-
मपास्य कायो निपपात पश्चात्।
तदुद्यतादित्यसमानतेजसं
शरन्नभोमध्यगभास्करोपमम्॥ ५२
वराङ्गमुर्व्यामपतच्चमूमुखे
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः।
ततोऽस्य देहं सततं सुखोचितं
सुरूपमत्यर्थमुदारकर्मणः॥ ५३
परेण कृच्छ्रेण शिरः समत्यज-
द्गृहं महर्धीव ससङ्गमीश्वरः।
शरैर्विभिन्नं व्यसु तत्सुवर्चसः
पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम्॥ ५४
स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं
गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः।
देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य
तेजः सूर्यं खं वितत्याविवेश॥ ५५
तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः
संदृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे।
ततः शङ्खान् पाण्डवा दध्मुरुच्चै-
र्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन॥ ५६

तथैव कृष्णश्च धनञ्जयश्च
हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ ।
तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं
सैन्यैः सार्धं सिंहनादान्प्रचक्रुः ५७
तूर्याणि सञ्जघ्नुरतीव हृष्टा
वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च ।
संवर्धयन्तश्च नरेन्द्रयोधाः
पार्थं समाजग्मुरतीव हृष्टाः ॥ ५८
बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्य-
न्नन्योन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः ।
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि वा विपन्नं
कृत्तं रथात्सायकैरर्जुनस्य ॥ ५९
महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं
यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम् ।
रराज कर्णस्य शिरो निकृत्त-
मस्तं गतं भास्करस्येव बिम्बम् ६०
शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः ।
विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान्
प्रताप्य सेनामामित्रीं
दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
बलिनाऽर्जुनकालेन
नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ॥ ६२
अस्तं गच्छन्यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति॥
तथा जीवितमादाय कर्णस्येषुर्जगाम सः ।
अपराह्णेऽपराह्णोऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष ६३
छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः ।
उपर्युपरि सैन्यानामस्य शत्रोस्तदञ्जसा ।
शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः सोऽप्यहरद्द्रुतम् ॥
कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराज-
श्छिन्नध्वजेनाथ ययौ रथेन ॥ ६५
हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त
भयार्दिता गाढविद्धाश्च संख्ये ।
अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य
ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम् ६६
सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः
सहस्रपत्रप्रतिमाननं शुभम् ।
सहस्ररश्मिर्दिनसंक्षये यथा
तथाऽपतत्कर्णशिरो वसुंधराम् ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णवधे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

## ९२

सञ्जय उवाच ।
शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे
बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः ।
ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे
रथेन संछिन्नपरिच्छदेन ॥ १
निपातितस्यन्दनवाजिनागं
बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम् ।
दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो
दीनो मुहुर्निःश्वसंश्चार्तरूपः॥ २
कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं
दिदृक्षवः संपरिवार्य तस्थुः ॥ ३
प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मिता-
स्तथा परे शोकहता इवाभवन् ।
परे त्वदीयाश्च परस्परेण
यथायथैषां प्रकृतिस्तथाऽभवन् ॥ ४

---

अपराह्णे दिवसस्य पश्चिमे भागे अपरं चरमं अहः मरणदिनं यस्य ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

९२

शल्य इति । रथेन प्रस्तचक्रेण हेतुना पदानुगे पदचारिणि ॥ १ ॥ प्रहृष्टा अर्जुनादयः वित्रस्ता भरिवः विषण्णाः शत्रवः विस्मिताः प्रेक्षकाः ॥ ४ ॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं
धनञ्जयेनाभिहतं महौजसम् ।
निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवु-
र्हतर्षभा गाव इवाजने वने ॥ ५
भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन
नादं कृत्वा रोदसी कम्पयानः ।
आस्फोटयन्वल्गते नृत्यते च
हते कर्णे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् ॥ ६
तथैव राजन् सोमकाः सृञ्जयाश्च
शङ्खान् दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे ।
परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः
सूतात्मजे वै निहते तदानीम् ॥ ७
कृत्वा विमर्दं महदर्जुनेन
कर्णो हतः केसरिणेव नागः ।
तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण-
वैरस्यान्तं गतवांश्चापि पार्थः ॥ ८
मद्राधिपश्चापि विमूढचेता-
स्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन ।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन्
सबाष्पदुःखाद्वचनं बभाषे ॥ ९
विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं
बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम् ।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भि-
र्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः १०
नैतादृशं भारत युद्धमासी-
द्यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव ।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णा-
वन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ११
दैवं ध्रुवं पार्थवशात्प्रवृत्तं
यत्पाण्डवान्पाति हिनस्ति चास्मान्
तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे
प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः ॥ १२
कुबेरवैवस्वतवासवानां
तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः ।
वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा
तैस्तैस्तु युक्ता विविधैर्गुणौघैः ॥ १३
अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रा-
स्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः ।
तान्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्
पर्याश्वस त्वं न सदाऽस्ति सिद्धिः
एतद्वचो मद्रपतेर्निशम्य
स्वं चाप्यनीतं मनसा निरीक्ष्य ।
दुर्योधनो दीनमना विसंज्ञः
पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यप्रत्यागमने
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

धृतराष्ट्र उवाच ।
तस्मिंस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे
दग्धस्य रौद्रेऽहनि विद्रुतस्य ।
बभूव रूपं कुरुसृञ्जयानां
बलस्य बाणोन्मथितस्य कीदृक् १
सञ्जय उवाच ।
शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो महाक्षयः ।
घोरो मनुष्यदेहानामाजौ च गजवाजिनाम्
यत्र कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ।
तदा तव सुतान्राजन्नाविवेश महद्भयम् ॥ ३
न सन्धातुमनीकानि न चैवाशु पराक्रमे ।
आसीद्बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कर्हिचित् ४
वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवे यथा ।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ५
सूतपुत्रे हते राजन्
वित्रस्ताः शस्त्रविक्षताः ।
अनाथा नाथमिच्छन्तो
मृगाः सिंहैरिवार्दिताः ॥ ६
भग्नशृंगा वृषा यद्वद्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
प्रत्यपायामसायान्हे निर्जिताः सव्यसाचिना

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३
तस्मिन्निति ॥ १ ॥

हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः
सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते दुद्रुवुर्भयात् ॥ ८
विस्रस्तयन्त्रकवचाः कांदिग्भूता विचेतसः ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तो वीक्षमाणा भयार्दिताः
मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ।
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च संभ्रमात्
हयानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ।
आरुह्य जवसंपन्नाः पदातीन्प्रजहुर्भयात् ॥११
कुञ्जरैः स्यन्दनाः क्षुण्णाः सादिनश्च महारथैः
पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भयार्दितैः ॥
व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने ।
सूतपुत्रे हते राजंस्तव योधास्तथाऽभवन् ॥१३
हतारोहा यथा नागाश्छिन्नहस्ता यथा नराः
सर्वे पार्थमयं लोकं संपश्यन्तो भयार्दिताः ॥
संप्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ।
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हाहाकृत्वेदमब्रवीत् ॥
नातिक्रमेच्च मां पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
जघने सर्वसैन्यानां शनैरश्वान्प्रचोदय ॥ १६
युध्यमानं हि कौन्तेयं हनिष्यामि न संशयः
नोत्सहेन्मामतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः
अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम् ।
हन्यां शिष्टांस्तथा शत्रून् कर्णस्यानृण्यमाप्नुयां
तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः ।
सूतो हेमपरिच्छन्नान् शनैरश्वानचोदयत् ॥
रथाश्वनागहीनास्तु पादातास्तव मारिष ।
पञ्चविंशतिसाहस्रा युद्धायैव व्यवस्थिताः ॥
तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
बलेन चतुरङ्गेण संवृत्याजघ्नतुः शरैः ॥ २१
प्रत्ययुध्यन्त समरे भीमसेनं सपार्षतम् ।
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ॥ २२
अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ॥२३
न तान्रथस्थो भूमिष्ठान् धर्मापेक्षी वृकोदरः ।
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यव्यपाश्रयः ॥
जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अवधीत्तावकान्सर्वान् दण्डपाणिरिवान्तकः

पदातिनोऽपि संत्यक्त्वा
प्रियं जीवितमात्मनः ।
भीममभ्यद्रवन्संख्ये
पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २६

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
विनेशुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ॥
श्येनवद्विचरन् भीमो गदाहस्तो महाबलः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानवपोथयत् ॥२८
हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य तस्थौ तत्र महाबलः ॥२९
धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ।
तस्याश्वसादीन्सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः
समभ्यधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमभून्महत् ।
धनञ्जयोऽपि चाभ्येत्य रथानीकं तव प्रभो ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः
कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ॥३३
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात्
विप्रहीणरथाश्चैव शरैश्च परिकर्षिताः ॥ ३४
पञ्चविंशतिसाहस्राः कालमार्छन् पदातयः ।
हत्वा तान् पुरुषव्याघ्रः पञ्चालानां महारथः
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महामनाः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥३६
महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणतापनः ।
पारावतसवर्णाश्वं कोविदारमयध्वजम् ॥३७
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ।
गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ॥
न चिरात्प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी
चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष

हत्वा त्वदीयं सुमहत्-
सैन्यं शंखांस्तथाऽधमन् ।
ते सर्वे तावकान् प्रेक्ष्य
द्रवतोऽपि पराङ्मुखान् ॥ ४०
अभ्यवर्तन्त संरब्धान्
वृषाञ्जित्वा यथा वृषाः ।
सेनावशेषं तं दृष्ट्वा
तव सैन्यस्य पाण्डवः ॥ ४१

व्यवस्थितः सव्यसाची चुक्रोध बलवान्नृप ।
धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥४२
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।
तत एनाञ्शरव्रातैः सहसा समवाकिरत् ॥
तमसा संवृतेनाथ न स्म किंचिद्व्यदृश्यत ।
अन्धकारीकृते लोके रजोभूते महीतले ॥४४
योधाः सर्वे महाराज तावकाः प्राद्रवन्भयात्
संभज्यमाने सैन्ये तु कुरुराजो विशांपते ॥

परानभिमुखांश्चैव सुतस्ते समुपाद्रवत् ।
ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान्
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः ।
त एनमभिगर्जन्तः सहिताः समुपाद्रवन् ॥
नानाशस्त्रभृतः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ।
दुर्योधनोऽप्यसंभ्रान्तस्तान्रणे निशितैः शरैः
तत्रावधीत्ततः क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तत्सैन्यं पाण्डवेयानां योधयामास सर्वतः ॥
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
यदेकः सहितान्सर्वान् रणेऽयुध्यत पाण्डवान्
ततोऽपश्यन्महात्मा स स्वसैन्यं भृशदुःखितं
ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः॥
हर्षयन्निव तान् योधानिदं वचनमब्रवीत् ।
न तं देशं प्रपश्यामि यत्र याता भयार्दिताः॥
गतानां यत्र वै मोक्षः पाण्डवार्तिक गतेन वः
अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥
अद्य सर्वान्हनिष्यामि
ध्रुवो हि विजयो भवेत् ।
विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्
पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ॥　　५६
अनुसृत्य वधिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः ।
सुखं सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम्
मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।
शृणुध्वं क्षत्रियाः सर्वे यावन्तः स्थ समागताः
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तको यमः ।
को नु मूढो न युध्येत मादृशः क्षत्रियव्रतः ॥
द्विषतो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य वशमेष्यथ ।
पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥　　५८
न ह्यधर्मोऽस्ति पापीयान्
क्षत्रियस्य पलायनात् ।
न युद्धधर्माच्छ्रेयो हि
पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ।
अचिरेण हता लोकान्
सद्यो योधाः समश्नुत ॥　　५९
सञ्जय उवाच ।
एवं ब्रुवति पुत्रे ते सैनिका भृशविक्षताः ।
अनवेक्ष्यैव तद्वाक्यं प्राद्रवन्सर्वतो दिशः ६०

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कौरवसैन्यपलायने
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

## ९४

सञ्जय उवाच ।
दृष्ट्वा तु सैन्यं परिवृत्यमानं
पुत्रेण ते मद्रपतिस्तदानीम् ।
संत्रस्तरूपः परिमूढचेता
दुर्योधनं वाक्यमिदं बभाषे ॥　　१
शल्य उवाच ।
पश्येदमुग्रं नरवाजिनागै-
रायोधनं वीरशतैः सुपूर्णम् ।
महीधराभैः पतितैश्च नागैः
सकृत्प्रभिन्नैः शरभिन्नदेहैः ॥　　२
सविह्वलद्भिश्च गतासुभिश्च
प्रध्वस्तवर्मायुधचर्मखड्गैः ।
वज्रापविद्धैरिव चाचलोत्तमै-
र्विभिन्नपाषाणमहाद्रुमौषधैः ॥　　३
प्रविद्धघण्टाङ्कुशतोमरध्वजैः
सहेमजालै रुधिरौघसंप्लुतैः ।
शरावभिन्नैः पतितैस्तुरङ्गमैः
श्वसद्भिरार्तैः क्षतजं वमद्भिः ॥　　४
दीनं स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रै-
र्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः ।
तथापविद्धैर्गजवाजियोधै-
र्बलापविद्धैरथ वीरसंघैः ॥　　५

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥

मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च
नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैः ।
मन्दांशुभिश्चैव मही महाहवे
नूनं यथा वैतरणीव भाति ॥ ६
गजैर्निकृत्तैर्वरहस्तगात्रै-
रुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्याम् ।
विशीर्णदन्तैः क्षतजं वमद्भिः
स्फुरद्भिरार्तैः करुणं नदद्भिः ॥ ७

निकृत्तचक्रेषुयुगैः सयोक्त्रभिः
प्रविद्धतूणीरपताककेतुभिः ।
सुवर्णजालावततैर्भृशाहतै-
र्महारथौघैर्जलदैरिवावृता ॥ ८
यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः
पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः ।
विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधै-
र्वृता प्रशान्तैरिव तावकैर्मही ॥ ९
शरप्रहाराभिहतैर्महाबलै-
रवेक्ष्यमाणैः पतितैः सहस्रशः ।
दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भि-
र्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलप्रदीप्तैः ॥ १०

प्रनष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भि-
र्मही बभूवानुगतैरिवार्चिभिः ।
कर्णार्जुनाभ्यां शरभिन्नगात्रै-
र्हतैः प्रवीरैः कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ११
शरास्तु कर्णार्जुनबाहुमुक्ता
विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान् ।
प्राणान्निरस्याशु महीं प्रतीयु-
र्महोरगा वासमिवाभिनम्राः ॥ १२

हतैर्मनुष्याश्वगजैश्च संख्ये
शरापविद्धैश्च रथैर्नरेन्द्र ।
धनञ्जयस्याधिरथेश्च मार्गणै-
रगम्यरूपा वसुधा बभूव ॥ १३
रथैर्वरेषून्मथितैः सुकल्पैः
सयोधशस्त्रैश्च वरायुधैर्ध्वजैः ।
विशीर्णयोक्त्रैर्विनिकृत्त्य बन्धनै-
र्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः ॥ १४
विमुक्तशस्त्रैश्च तथा व्युपस्करै-
र्हतानुकर्षैर्विनिषङ्गबन्धनैः ।
प्रभग्ननीडैर्मणिहेमभूषितैः
स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः १५

विकृष्यमाणैर्जवनैस्तुरङ्गै-
र्हतेश्वरै राजरथैः सुकल्पितैः ।
मनुष्य-मातङ्ग-रथाश्वराशिभि-
र्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः १६
सहेमपट्टाः परिघाः परश्वधाः
शिताश्च शूला मुसलानि मुद्गराः ।
पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा
गदाश्च जाम्बूनदपट्टनद्धाः ॥ १७

चापानि रुक्माङ्गदभूषणानि
शराश्च कार्तस्वरचित्रपुङ्खाः ।
ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः
प्रासाश्च दण्डैः कनकावभासैः ॥ १८
छत्राणि वालव्यजनानि शङ्खा-
श्छिन्नापविद्धाश्च स्रजो विचित्राः ।
कुथाः पताकाम्बरभूषणानि
किरीटमाला मुकुटाश्च शुभ्राः ॥ १९
प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च राजन्
प्रवालमुक्तातरलाश्च हाराः ।
आपीडकेयूरवराङ्गदानि
ग्रैवेयनिष्काःससुवर्णसूत्राः ॥ २०
मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता
रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि ।
गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि
शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि ॥ २१
देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च
त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चैव ।
स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य
व्याप्याशु लोकान् यशसा गतास्ते
निवर्त दुर्योधन यान्तु सैनिका
व्रजस्व राजञ्शिबिराय मानद ।
दिवाकरोऽप्येष विलम्बते प्रभो
पुनस्त्वमेवात्र नरेन्द्र कारणम् ॥ २३

इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो
दुर्योधनं शोकपरीतचेताः ।
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाण-
मार्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम् ॥ २४
तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः
सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति ।
निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य
ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् २५

नराश्वमातङ्गशरीरजेन
रक्तेन सिक्तां च तथैव भूमिम् ।
रक्ताम्बरस्रक्तपनीययोगा-
न्नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्याम् २६
प्रच्छन्नरूपां रुधिरेण राज-
न्रौद्रे मुहूर्तेऽतिविराजमाने ।
नैवावतस्थुः कुरवः समीक्ष्य
प्रव्राजिता देवलोकाय सर्वे ॥ २७
वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः ।
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राज-
न्दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ २८
गाण्डीवमुक्तैस्तु सुवर्णपुङ्खैः
शिलाशितैः शोणितदिग्धवाजैः ।
शरैश्चिताङ्गो युधि भाति कर्णो
हतोऽपि सन्सूर्य इवांशुमाली ॥ २९
कर्णस्य देहं रुधिरावसिक्तं
भक्तानुकम्पी भगवान्विवस्वान् ।
स्पृष्ट्वांशुभिर्लोहितरक्तरूपः
सिष्णासुरभ्येति परं समुद्रम् ॥ ३०
इतीव सञ्चिन्त्य सुरर्षिसङ्घाः
संप्रस्थिता यान्ति यथा निकेतनम् ॥
सञ्चिन्तयित्वा जनता विसस्रु-
र्यथासुखं खं च महीतलं च ॥ ३१
तदद्भुतं प्राणभृतां भयंकरं
निशाम्य युद्धं कुरुवीरमुख्ययोः ।
धनञ्जयस्याधिरथेश्च विस्मिताः
प्रशंसमानाः प्रययुस्तदा जनाः ॥ ३२
शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षितवाससम् ।
गतासुमपि राधेयं नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ३३
तप्तजाम्बूनदनिभं ज्वलनार्कसमप्रभम् ।
जीवन्तमिव तं शूरं सर्वभूतानि मेनिरे ३४
हतस्यापि महाराज सूतपुत्रस्य संयुगे ।
वित्रेसुः सर्वतो योधाः सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥
हतोऽपि पुरुषव्याघ्र जीववानिव लक्ष्यते ।
नाभवद्विकृतिः काचिद्धतस्यापि महात्मनः
चारुवेषधरं वीरं चारुमौलिशिरोधरम् ।
तन्मुखं सूतपुत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ॥ ३७
नानाभरणवान्राजंस्तप्तजाम्बूनदाङ्गदः ।
हतो वैकर्तनः शेते पादपोऽङ्कुरवानिव ॥
कनकोत्तमसंकाशो ज्वलन्निव विभावसुः ।
स शान्तः पुरुषव्याघ्र पार्थसायकवारिणा ॥
यथा हि ज्वलनो दीप्तो जलमासाद्य शाम्यति
कर्णाग्निः समरे तद्वत्पार्थमेघेन शामितः ॥४०
आहृत्य च यशो दीप्तं सुयुद्धेनात्मनो भुवि ।
विसृज्य शरवर्षाणि प्रताप्य च दिशो दश ॥
सपुत्रः समरे कर्णः स शान्तः पार्थतेजसा ।
प्रताप्य पाण्डवान्सर्वान्पञ्चालांश्चास्त्रतेजसा
वर्षित्वा शरवर्षेण प्रताप्य रिपुवाहिनीम् ।
श्रीमानिव सहस्रांशुर्जगत्सर्वं प्रताप्य च ॥
हतो वैकर्तनः कर्णः सपुत्रः सहवाहनः ।
अर्थिनां पक्षिसंघस्य कल्पवृक्षो निपातितः ॥
ददानीत्येव योऽवोच-
न्न नास्तीत्यर्थितोऽर्थिभिः ।
सद्भिः सदा सत्पुरुषः
स हतो द्वैरथे वृषः ॥ ४५
यस्य ब्राह्मणसात्सर्वं वित्तमासीन्महात्मनः ।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीद्यस्य स्वमपि जीवितम्
सदा स्त्रीणां प्रियो नित्यं दाता चैव महारथः
स वै पार्थास्त्रनिर्दग्धो गतः परमिकां गतिम्
यमाश्रित्याकरोद्वैरं पुत्रस्ते स गतो दिवम् ।
आदाय तव पुत्राणां जयाशां शर्म वर्म च ॥
हते कर्णे सरितो न प्रसस्रु-
र्जगाम चास्तं सविता दिवाकरः ।
ग्रहश्च तिर्यक्ज्वलनार्कवर्णः
सोमस्य पुत्रोऽभ्युदियाय तिर्यक् ॥
नभः पफालेव ननाद चोर्वी
ववुश्च वाताः परुषाः सुघोराः ।
दिशो बभूवुर्ज्वलिता सधूमा
महार्णवाः सस्वनुश्चुक्षुभुश्च ॥ ५०
सकाननाश्चाद्रिचयाश्चकम्पिरे
प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च सर्वे ।
बृहस्पतिः संपरिवार्य रोहिणीं
बभूव चन्द्रार्कसमो विशांपते ॥ ५१
हते तु कर्णे विदिशोऽपि जज्वलु-
स्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः ।
पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा
निशाचराश्चाप्यभवन् प्रहृष्टाः ॥ ५२
शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा
क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत् ।
तदाऽन्तरिक्षे सहसैव शब्दो
बभूव हाहेति सुरैर्विमुक्तः ॥ ५३

सदेवगन्धर्वमनुष्यपूजितं
निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जुनः ।
रराज राजन् परमेण वर्चसा
यथा पुरा वृत्रवधे शतक्रतुः ॥ ५४
ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना
शरन्नभोमध्यदिवाकरार्चिषा ।
पताकिना भीमनिनादकेतुना
हिमेन्दुशङ्खस्फटिकावभासिना ॥५५
महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ
महेन्द्रवीर्यप्रतिमानपौरुषौ ।
सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमै-
रलंकृतावप्रतिमेन रंहसा ॥ ५६
नरोत्तमौ केशवपाण्डुनन्दनौ
तदाहितावग्निदिवाकराविव ।
रणाजिरे वीतभयौ विरेजतुः
समानयानाविव विष्णुवासवौ ॥५७
ततो धनुर्ज्यातलबाणनिःस्वनैः
प्रसह्य कृत्वा च रिपून् हतप्रभान् ।
संछादयित्वा तु कुरून् शरोत्तमैः
कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च ॥ ५८
हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ
मनांस्यरीणामवदारयन्तौ ।
सुवर्णजालावततौ महास्वनौ
हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः ।
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ
वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः ॥ ५९
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवान्वनादयत् ॥
वित्रस्ताश्चाभवन्सर्वे कौरवा राजसत्तम ।
शङ्खशब्देन तेनाथ माधवस्यार्जुनस्य च ॥६१
तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ
वनानि शैलान्सरितो गुहाश्च ।
वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां
युधिष्ठिरं नन्दयतां वरिष्ठौ ॥ ६२
ततः प्रयाताः कुरवो जवेन
श्रुत्वैव शङ्खस्वनमीर्यमाणम् ।
विहाय मद्राधिपतिं पतिं च
दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥ ६३
महाहवे तं बहु रोचमानं
धनञ्जयं भूतगणाः समेताः ।
तदाऽन्वमोदन्त जनार्दनं च
दिवाकरावभ्युदितौ यथैव ॥ ६४
समाचितौ कर्णशरैः परंतपा-
वुभौ व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ ।
तमो निहत्याभ्युदितौ यथामलौ
शशाङ्कसूर्यौ दिवि रश्मिमालिनौ ॥
विहाय तान् बाणगणानथागतौ
सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ ।
सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ
सदस्यहूताविव विष्णुवासवौ ॥ ६६
तौ देव-गन्धर्व-मनुष्य-चारणै-
र्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि ।
जयाभिवृद्ध्या परयाऽभिपूजितौ
हते तु कर्णे परमाहवे तदा ॥ ६७
यथानुरूपं प्रतिपूजितावुभौ
प्रशस्यमानौ स्वकृतैर्गुणौघैः ।
ननन्दतुस्तौ ससुहृद्गणौ तदा
बलं नियम्येव सुरेशकेशवौ ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि रणभूमिवर्णनं नाम
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## ९५

सञ्जय उवाच ।
हते वैकर्तने राजन् कुरवो भयपीडिताः ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वाः पर्यापेतुः सहस्रशः
कर्णं तु निहतं दृष्ट्वा शत्रुभिः परमाहवे ।
भीता दिशो व्यकीर्यन्त तावकाः क्षतविक्षताः
ततोऽवहारं चक्रुस्ते योधाः सर्वे समन्ततः ।
निवार्यमाणाश्चोद्विग्नास्तावका भृशदुःखिताः
तेषां तन्मतमाज्ञाय पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अवहारं ततश्चक्रे शल्यस्यानुमते नृप ॥ ४
कृतवर्मा रथैस्तूर्णं वृतो भारत तावकैः ।
नारायणावशेषैश्च शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ५
गान्धाराणां सहस्रेण शकुनिः परिवारितः ।
हतमाधिरथिं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ६
कृपः शारद्वतो राजन्नागानीकेन भारत ।
महामेघनिभेनाशु शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ७
अश्वत्थामा ततः शूरो विनिःश्वस्य पुनः पुनः
पाण्डवानां जयं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ८
संशप्तकावशिष्टेन बलेन महता वृतः ।
सुशर्मापि ययौ राजन् वीक्षमाणो भयार्दितः
दुर्योधनोऽपि नृपतिर्हतसर्वस्वबान्धवः ।
ययौ शोकसमाविष्टश्चिन्तयन्विमना बहु ॥
छिन्नध्वजेन शल्यस्तु रथेन रथिनां वरः ।
प्रययौ शिबिरायैव वीक्षमाणो दिशो दश ॥ ११
ततोऽपरे सुबहवो भारतानां महारथाः ।
प्राद्रवन्त भयत्रस्ता ह्रियाविष्टा विचेतसः १२
असृक् क्षरन्तः सोद्विग्ना वेपमानास्तथातुराः
कुरवो दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् १३
प्रशंसन्तोऽर्जुनं केचित्केचित्कर्णं महारथाः ।
व्यद्रवन्त दिशो भीताः कुरवः कुरुसत्तम १४
तेषां योधसहस्राणां तावकानां महामृधे ।
नासीत्तत्र पुमान् कश्चिद्यो युद्धाय मनो दधे
हते कर्णे महाराज निराशाः कुरवोऽभवन् ।
जीवितेष्वपि राज्येषु दारेषु च धनेषु च १७
तान्समानीय पुत्रस्ते यत्नेन महता विभुः ।
निवेशाय मनो दध्रे दुःखशोकसमन्वितः १७
तस्याज्ञां शिरसा योधाः परिगृह्य विशांपते
विवर्णवदना राजन्न्यविशन्त महारथाः १८

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शिबिरप्रयाणे
पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५ ॥

## ९६

सञ्जय उवाच ।
तथा निपतिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते ।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद्वचनमब्रवीत् १
हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनञ्जय ।
वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति मानवाः ॥ २
वज्रेण निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा ।
त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः
तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करम् ।
निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः ४
वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम् ।
निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि ५
वर्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः ।
द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः ॥ ६
भृशं तु गाढविद्धत्वान्नाशकत् स्थातुमाहवे ।
ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान्पुरुषर्षभः ७
तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः ।
पर्यावर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम् ॥ ८
एवमुक्त्वाऽर्जुनं कृष्णः सैनिकानिदमब्रवीत्
परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः ९

---

९५

**हत इति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

९६

**तथेति** ॥ १ ॥

धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम् ।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत् ॥ १०
यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै ।
तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः ॥ ११
स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम् ।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम् ॥
शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे ।
अगृह्णीतां च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ ॥
तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः १४
उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिंदमः ।
वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे १५
तत्तस्मै तद्यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः ।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुपुङ्गवः ॥ १६
ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत् ।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः १७

दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च
पाण्डवश्च वृकोदरः ।
त्वं चापि कुशली राजन्
माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८

मुक्ता वीरक्षयादस्मात्संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव ॥

हतो वैकर्तनो राज-
न्सूतपुत्रो महारथः ।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र
दिष्ट्या वर्धसि भारत ॥ २०

यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत्पुरुषाधमः ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम्
शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव ।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुभिः शरैः २२

हतामित्रामिमामुर्वी-
मनुशाधि महाभुज ।
यत्तो भूत्वा सहास्माभि-
र्भुङ्क्ष्व भोगांश्च पुष्कलान् ॥ २३

सञ्जय उवाच ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥

दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र
वाक्यं चेदमुवाच ह ।
नैतच्चित्रं महाबाहो
त्वयि देवकिनन्दन ॥ २५

त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम् ।
न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रसादजम् २६
प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठ साङ्गदं दक्षिणं भुजम् ।
उवाच धर्मभृत्पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ ॥
नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन मे ॥
धर्मात्मानौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥
असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम ।
कथामेतां महाभाग कथयामास तत्त्ववित् ॥
तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोऽयं धनञ्जयः ।
जिगायाभिमुखः शत्रून्न चासीद्विमुखः क्वचित्

जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं
न त्वस्माकं पराजयः ।
यदा त्वं युधि पार्थस्य
सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ३१

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च महात्मा गौतमः कृपः
अन्ये च बहवः शूरा ये च तेषां पदानुगाः ३२
त्वद्बुद्ध्या निहते कर्णे हता गोविन्द सर्वथा ।
इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु रथं हेमविभूषितम् ॥
श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्मनोजवैः ।
आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ३४
प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा ।
कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्त्र्य ततःप्रियम्
आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ ।
स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ३६
यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतोवृतम् ।
चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः ३७
गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यन्ते वै वृतं तदा
संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतम् ।
सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ३९
संजातप्रत्ययोऽतीव वीक्ष्य चैवं पुनः पुनः ।
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ॥ ४०

अद्य राजास्मि गोविन्द
पृथिव्यां भ्रातृभिः सह ।
त्वया नाथेन वीरेण
विदुषा परिपालितः ॥ ४१
हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं
राधेयमतिमानिनम् ।
निराशोऽद्य दुरात्माऽसौ
धार्तराष्ट्रो भविष्यति ॥ ४२

जीविते चैव राज्ये च हते राधात्मजे रणे।
त्वत्प्रसादाद्वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ॥ ४३
दिष्ट्या जयसि गोविन्द
दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च
विजयी पाण्डुनन्दनः॥ ४४
त्रयोदश समास्तीर्णा
जागरेण सुदुःखिताः।
स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ
त्वत्प्रसादान्महाभुज ॥ ४५
एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनम्।
अर्जुनं च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४६
सञ्जय उवाच।
दृष्ट्वा च निहतं कर्णं सपुत्रं पार्थसायकैः।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने च स महीपतिः ४७
समेत्य च महाराज कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ४८
नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः।
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपञ्चालसृञ्जयाः।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ५०
ते वर्धयित्वा नृपतिं
धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
जितकाशिनो लब्धलक्ष्या
युद्धशौण्डाः प्रहारिणः॥ ५१
स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वाग्भिः कृष्णौ परन्तपौ
जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महारथाः॥
एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् किमर्थमनुशोचसि ५३
वैशम्पायन उवाच।
श्रुत्वैतदप्रियं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
पपात भूमौ निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ५४
तथा सा पतिता देवी गान्धारी दीर्घदर्शिनी
शुशोच बहुलालापैः कर्णस्य निधनं युधि ५५
तां पर्यगृह्णाद्विदुरो नृपतिं सञ्जयस्तथा।
पर्याश्वासयतां चैव तावुभावेव भूमिपम् ५६
तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं कुरुयोषितः।
स दैवं परमं मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ५७
परां पीडां समाश्रित्य नष्टचित्तो महातपाः।
चिन्ताशोकपरीतात्मा
न जज्ञे मोहपीडितः।
स समाश्वासितो राजा
तूष्णीमासीद्विचेतनः॥ ५८

॥ श्रवणमहिमा ॥

इमं महायुद्धमखं महात्मनो-
र्धनञ्जयस्याधिरथेश्च यः पठेत्।
स सम्यगिष्टस्य मखस्य यत्फलं
तदाप्नुयात्संश्रवणाच्च भारत ॥ ५९
मखो हि विष्णुर्भगवान्सनातनो
वदन्ति तच्चाग्न्यनिलेन्दुभानवः।
अतोऽनसूयुः शृणुयात् पठेच्च यः
स सर्वलोकानुचरः सुखी भवेत् ६०
तां सर्वदा भक्तिमुपागता नराः
पठन्ति पुण्यां वरसंहितामिमाम्।
धनेन धान्येन यशसा च मानुषा
नन्दन्ति ते नात्र विचारणाऽस्ति ६१
अतोऽनसूयुः शृणुयात्सदा तु वै
नरः स सर्वाणि सुखानि चाप्नुयात्।
विष्णुः स्वयंभूर्भगवान् भवश्च
तुष्यन्ति ते तस्य नरोत्तमस्य ॥ ६२
वेदावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह दृष्टा
रणे बलं क्षत्रियाणां जयो युधि।
धनज्येष्ठाश्चापि भवन्ति वैश्याः
शूद्राऽऽरोग्यं प्राप्नुवन्तीह सर्वे ॥ ६३
तथैव विष्णुर्भगवान्सनातनः
स चात्र देवः परिकीर्त्यते यतः।
ततः स कामान् लभते सुखी नरो
महामुनेस्तस्य वचोऽर्चितं यथा ६४
कपिलानां सवत्सानां वर्षमेकं निरन्तरम्
यो दद्यात्सुकृतं तद्धि श्रवणात्कर्णपर्वणः

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

॥ कर्णपर्व समाप्तम् ॥

अतः परं शल्यपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

जनमेजय उवाच ।

एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ।
अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज १

॥ इति श्रीमहाभारते *कर्णपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे— 'अष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद्भारतचिन्तकैः एकोनसप्ततिः प्रोक्ता अध्यायाः कर्णपर्वणि चत्वार्येव सहस्राणि नवश्लोकशतानि च चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः इत्याद्युक्तम्। तथापि प्रायः संप्रति कर्णपर्वाध्यायसंख्या ९६ श्लोकसंख्या ५०१४ च दृश्यते। तदेतन्न्यूनाधिक्यं लेखकादिप्रमादजमिति ध्येयम् ।

इति श्रीकिंजवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचंद्र-शास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यां कर्णपर्व समाप्तम् । ॥ भारती जयतु ॥ शाकः १८५३

# Shriman

# MAHĀBHĀRATAM

## Part IV

## IX Shalyaparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nīlkantha.

***Edited by***

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1853.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

# श्रीमन्महाभारतम्।

## चतुर्थभागे–शल्यपर्व।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
### भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्।

तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितम्।

[शालिवाहनशकाब्दाः १८५३] प्रथमं संस्करणम्। [ख्रिस्ताब्दाः १९३१]

|| श्रीभारती जयतु ||

# || महाभारतम् ||

## शल्यपर्व ।

### —१—

### विषयानुक्रमणिका ।

ाः विषयः पृष्ठम्

कर्णे निपातितेऽल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वन्निति धृतराष्ट्रप्रश्ने तदुत्तरं वदन्वैशम्पायनो दुर्योधनस्य शिबिरगमनादिकं, शल्यं सेनापतिं कृत्वा युद्धाय निर्गमनं, युधिष्ठिरकृतशल्यवधादिकं च कथयामास। दुःखितः सञ्जयः पुरं प्रविश्य धृतराष्ट्रं प्रत्यनुतापवाक्यानि वदञ्शल्यादीनां दुर्योधनस्य च नाशं कथयंस्तत्पक्ष्याणामश्वत्थामकृपवर्मणां पाण्डवपक्षीयाणां पाण्डवकृष्णसात्यकीनां च शेषमभिदधाति स्म। सञ्जयवाक्येन धृतराष्ट्रादिषु मूर्छितेषु लब्धसंज्ञो धृतराष्ट्रो विदुरं प्रति 'विद्वन्क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ' इत्याद्युक्त्वा पुनर्मुमूर्छ। राजानमातुरं दृष्ट्वा सञ्जयादिषु रुदत्सु पुनर्लब्धसंज्ञस्य धृतराष्ट्रस्य विदुरं प्रति स्त्रीणां विसर्जनार्थमाज्ञाकरणादि ... ... ... ३

दुर्योधनस्य नाशं श्रुत्वा तद्वाक्यं भीष्मादीनां च वधमनूद्य विलपन् धृतराष्ट्रः 'सोऽहं वनं गमिष्यामि' इत्याद्युक्त्वा पुनर्दुर्योधनादिवधमनूद्य विललाप। शोकसंतप्तो विलपन्धृतराष्ट्रः सञ्जयं प्रति पुनः 'को वा मुखमनीकानाम्' इत्यादिकं पप्रच्छ ... ... ५

अ० श्लोकाः विषयः पृष्ठम्

३ ६१ कौरवाणां क्षयं कथयन्सञ्जयः कर्णे हते कौरवाः कर्तव्यमूढाः सन्तः सर्वत्र भीमार्जुनौ पश्यन्तोऽन्योन्यं निघ्नन्तः पलायनपरा बभूवुरित्याद्याह। भीमभयात्सैन्ये द्रवति सति प्रेरितेन सारथिनाऽऽनीतं रथमारुह्य पञ्च—विंशतिसहस्रसंख्यैः पदातिभिः सह भीमादिभिर्योद्धुमाजगाम दुर्योधनः। कौरवसैन्यैः सह युद्ध्यमानयोः पार्षतभीमयोर्भीमो गदामादाय रथादवप्लुत्य पञ्चविंशतिसहस्रवीरान्हत्वाऽन्यानपि जघान। उभयसैन्ययोः संकुलयुद्धे प्रवृत्ते पाण्डवान्योद्धुमाह्वयन्पलायमानं कौरवबलं दुर्योधन आश्वासयामास ... ... ... ... ९

४ ५१ रणभूमौ पतितान्रथादीन् दृष्ट्वा विमुखं दुर्योधनं प्रति कृपाविष्टः कृपोऽर्जुनादीन्प्रशशंस। कृपः पुनः 'क नु ते सूतपुत्रोऽभूत क नु

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | द्रोणः सहानुगः। अहं क च क चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क नु' इत्याद्युक्त्वाऽर्जुनस्याजेयत्वं कथयन्सन्धिकरणमुपदिदेश ... | ९ |
| ५ | ५२ | कृपवाक्यं श्रुत्वा दुःखितो दुर्योधनो 'यत्किञ्चित्सुहृदा वाच्यं तत्सर्वं श्रावितो ह्यहं। कृतं च भवता सर्वं प्राणान्संत्यज्य युद्ध्यता।' इत्याद्युक्त्वा सन्धिमनिच्छन्क्षत्रियस्य युद्धमरणं कीर्त्यावहमिति वदन् भीष्मादिप्राप्तमार्गस्य श्रेयस्त्वं जगाद। एतद्दुर्योधनवाक्यं श्रुत्वा सर्वे क्षत्रियास्तदभिनन्दन्त। ऊनाह्नियोजने गत्वाऽरुणासरस्वत्यां स्नानपानादि विधाय पुनर्युद्धाय सज्जा बभूवुः ... ... ... | १० |
| ६ | ३० | पुनर्युद्धोद्यतेषु योधेषु शल्यसमक्षं 'सेनापतिं कृत्वा योद्धुमर्हसि' इत्याद्युक्तवत्सु दुर्योधनोऽश्वत्थामानं प्रति कः सेनापतिर्भवेदिति पप्रच्छ। शल्यः सेनापतिः कर्तव्य इत्यश्वत्थामवाक्यं श्रुत्वा दुर्योधनेन प्रार्थितः शल्यस्तदङ्गीचकार ... | १२ |
| ७ | ४६ | 'यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ। न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथञ्चन' इत्यादिकं शल्यस्यात्मश्लाघावाक्यं श्रुत्वाऽभिषिक्ते तस्मिंस्तं प्रशंसन्तो योधाः सिंहनादादि चक्रुः। कौरवाणां शब्दं श्रुत्वा युधिष्ठिरं प्रति 'त्वमेवैनं जहि' इत्याद्युक्त्वा श्रीकृष्णः शिबिरं जगाम ... ... ... | १३ |

**अष्टादशदिवसयुद्धम्।**

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ८ | ४१ | प्रभाते दुर्योधनेन प्रेरिता योधा 'न नं एकेन योद्धव्यम्' इत्यादि समयं कृत्वा शल्यं पुरस्कृत्य युद्धाय निर्जग्मुः। शल्यः कथं हत इति धृतराष्ट्रप्रश्ने शल्ययुद्धवृत्तान्तं कथयंस्तत्कृतं सर्वतोभद्रव्यूहं कथयति स्म सञ्जयः। धृष्टद्युम्नादिषु शल्यानीकं प्रति गतेषु सेनावृतो युधिष्ठिरः शल्यं जगामार्जुनादयश्च कृतवर्मादीन्प्रति। कुरुपाण्डवयोरवशिष्टबलशुश्रूषया धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जय उभयोरवशिष्टबलसंख्यां कथयति स्म ... ... ... | १५ |
| ९ | ४७ | कुरुसृञ्जयानां संकुलयुद्धे प्रवृत्ते भीमार्जुनौ योधान्मोहयित्वा शंखवादनादि चक्रतुः, पाण्डवशरपीडिता योधाश्च प्रदुद्रुवुः ... | १६ |
| १० | ६८ | प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शल्यः सारथिं प्रेरयित्वा युधिष्ठिरं प्रति जगाम। युधिष्ठिरं प्रति गच्छन्तं शल्यं दृष्ट्वा योधेषु पुनरागतेषु सत्सु नकुलश्चित्रसेनं जघान। नकुलस्य सुषेणसत्यसेनाभ्यां कर्णपुत्राभ्यां युद्धे प्रवृत्ते नकुलः सत्यसेनं जघान। भ्रातृवधं दृष्ट्वा युद्ध्यमानेन सुषेणेन विरथीकृते नकुले सुतसोमरथमारूढे उभाभ्यां युद्धं कुर्वन् सुषेणो नकुलेन हतः। तत उभयोः संकुलं युद्धम् ... | १८ |
| ११ | ६३ | सञ्जय उभयसेनयोर्युद्धं कथयित्वा पाण्डवान्प्रत्यागत्य युद्धं कुर्वति शल्ये जातानि दुर्निमित्तानि कथयति स्म। शल्ययुधिष्ठिरयोर्युद्धे प्रवृत्ते युधिष्ठिरसाहाय्यार्थं भीमादीनामागमनं शल्यसाहाय्यार्थं कृतवर्मादीनां च। उभयसैन्ययोः संकुलयुद्धे प्रवृत्ते गदया युद्धं कुर्वन्भीमः शल्यस्याश्वान्सारथिं च हतवान्। ... ... ... ... | २० |
| १२ | ६३ | सारथिं पतितं दृष्ट्वा गदां गृहीत्वा भीमेन सह गदायुद्धं कुर्वञ्शल्यो भीमगदाप्रहारपी | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | डितः कृपेणापवाहितः। पाण्डवान्प्रत्यागतेषु कौरवेषु दुर्योधनेन चेकिताने हते पुनः शल्ययुधिष्ठिरयोर्युद्धम्। ... | २२ |
| १३ | ४८ | संजयो युधिष्ठिरे शल्येन पीडिते सात्यक्यादीनामागमनं,भीमादिभिर्युद्धं कुर्वतः शल्यस्य पराक्रमदर्शनेन दुर्योधनस्य पाण्डवपराजयप्रयुक्तं संतोषं च कथयति स्म। ... ... | २४ |
| १४ | ४८ | द्रौण्यर्जुनयोर्युद्धं कथयन्नर्जुनकृतं कौरवबलनाशनादिकं वर्णयामास। द्रौणिः पाञ्चाल्येन सुरथेन युद्धं कुर्वंस्तं हत्वा पुनरर्जुनं प्रति गत्वा तेन सह युयुधे ... ... | २५ |
| १५ | ४३ | सञ्जयो धृष्टद्युम्नदुर्योधनयोर्युद्धं कथयित्वा युधिष्ठिरादिभिर्युद्धं कुर्वतः शल्यस्य सात्यकिना सह युद्धादिकं शशंस | २७ |
| १६ | ६८ | मद्रराजं पुरस्कृत्य पाण्डवान्प्रत्यागतेषु कौरवेषु कृपादीन्प्रत्यर्जुने बाणान्वर्षत्युभयसैन्ययोः संकुलं युद्धम्। शल्यपराक्रमं दृष्ट्वा क्रुद्धो युधिष्ठिरोऽर्जुनादीनाहूय तत्समक्षं शल्यहननादिकं प्रतिजज्ञे। पञ्चालादिषु शङ्खनादनादिकं कुर्वत्सु शल्यं प्रत्यागत्य युधिष्ठिरस्य तुमुलं युद्धम्। भीमदुर्योधनयोर्युद्ध्यमानयोर्भीमेन दुर्योधनं मोहयित्वा तत्सारथौ हते साहाय्यार्थं द्रौण्यादय आजग्मुः। कौरवसैन्यं नाशयता युधिष्ठिरेण शल्यस्याश्वादिषु हतेषु तं गृहीत्वाऽश्वत्थाम्न्यपयाते मुहूर्तेन रथान्तरमारुह्य शल्यः पुनराजगाम ... ... ... | २९ |
| १७ | ९१ | सञ्जयो युधिष्ठिरादिभिः सह शल्यस्य युद्धं वर्णयति स्म। युधिष्ठिरो गोविन्दवाक्यं विचिन्त्य शल्यवधार्थं शक्तिं जग्राह। सञ्जयो युधिष्ठिरगृहीतायाः शक्तेः प्रभावं वर्णयति स्म। शक्तिं प्रक्षिप्य शल्यं हत्वा कौरवसैन्यं नाशयन्युधिष्ठिरो भ्रातृवधं दृष्ट्वाऽऽगतं तद्भ्रातरमपि जघान। शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा पलायमाने कौरवसैन्ये कृतवर्मसात्यक्योर्युद्ध्यमानयोः सात्यकिना विरथीकृतं कृतवर्माणं स्वरथ आरोप्य कृपोऽपययौ। पराङ्मुखं स्वबलं दृष्ट्वा दुर्योधन आगते पुनरागतं कृतवर्माणं युधिष्ठिरबाणपीडितं गृहीत्वाऽश्वत्थाम्न्यपयाते पाण्डवाः शङ्खवादनादि चक्रुः ... | ३३ |
| १८ | ४० | युधिष्ठिरं हन्तुं शल्यानुगेषु सप्तशतवीरेष्वागतेषु युधिष्ठिरं रक्षितुमर्जुनादिषु चागतेषु पञ्चालादयः शल्यबलं नाशयामासुः। बलक्षयं दृष्ट्वा शकुनिना प्रेरिते दुर्योधने युद्धार्थमागते संकुलं युद्धम् ... ... | ३४ |
| १९ | ६९ | शल्ये हते कौरवाणां विमुखत्वादिकं, पाण्डवानामभिगमनादिकं, परस्परालापादिकं च कथयत्सञ्जयः। पलायमानान्योधान्दृष्ट्वा दुर्योधनः सारथिं संप्रेर्यैकविंशतिसहस्रपदातिभिर्भीमं प्रत्याजगाम। भीमेन तावत्सु पदातिषु हतेषु पलायनोद्यतानि सैन्यानि दुर्योधनवाक्येन पराववृतिरे ... ... ... | ३६ |
| २० | २७ | पाण्डवान्प्रत्यागते शाल्वे तद्भयात्सैन्येषु पलायमानेषु कौरवाः शंखादिवादनं चक्रुः। कौरवशंखध्वानिं श्रुत्वा आगतो धृष्टद्युम्नः शाल्वेन युद्धं कुर्वन्यदा तद्गजेनातिपीडितस्तदा भीमादिष्वागतेषु गदया शाल्वगजमनाश- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | यत् । सात्यकिश्च भल्लेन शाल्वं जघान ... ... | ३८ |
| २१ | ३७ | सैन्यभङ्गं दृष्ट्वा आगतं कृतवर्माणं सात्यकिना विरथीकृतं गृहीत्वा कृपोऽपयानं चक्रे । कौरवबले पलायमाने दुर्योधनः पाण्डवान्प्रति जगाम ... | ३९ |
| २२ | ४९ | सञ्जयो युधिष्ठिरादिभिर्दुर्योधनस्य युद्धमश्वत्थामभीमयोः शकुनियुधिष्ठिरयोः कृतवर्मादिभिः सात्यक्यादीनां च युद्धं कथयामास ... ... | ४० |
| २३ | ९२ | सञ्जयः कौरवसैन्यभङ्गं, युधिष्ठिरस्य युद्धं, तत्साहाय्यार्थं शिखण्ड्यादीनामागमनमुभयोः संकुलयुद्धे प्रवृत्ते जातान्दैविकाद्युत्पातांश्च कथयामास । सैनिकान्परावर्त्य युद्धं कुर्वतः शकुनेर्वाणैर्भग्नं स्वबलं दृष्ट्वा युधिष्ठिरेण प्रेरितः सहदेवः शकुनिं प्रति जगाम । शकुनिसैन्यैः सह सहदेवसैन्यानां युद्धे प्रवृत्ते पाण्डवीयां सेनां निघ्नञ्शकुनिर्धृष्टद्युम्नमाजगाम । तत उभयोः संकुलं युद्धं बभूव ... | ४३ |
| २४ | ६६ | पाण्डवबलैः कौरवबले नाश्यमानेऽवशिष्टैः सप्तशताश्वैः सहागतः शकुनिर्योधान्प्रति 'क नु राजा' इत्यादि पृष्ट्वा दुर्योधनं जगाम । दुर्योधनं प्रति शकुनिनोक्तं वाक्यं श्रुत्वाऽऽगतानुद्यतकार्मुकान्योधान्दृष्ट्वाऽर्जुनः श्रीकृष्णं प्रति दुर्योधनादीन्निन्द्न्याहीत्युवाच । अर्जुनो दुर्योधनसैन्यं प्रविश्य बाणैर्दिश आच्छादयंस्तन्नाशयामास ... | ४५ |
| २५ | ६३ | युद्धं कुर्वत्यर्जुने तद्भयात्कौरवसैन्ये पलायमाने धृष्टद्युम्नदुर्योधनयोर्युद्ध्यमानयोर्विरथो दुर्योधनोऽश्वमारुह्यापयानं चकार । भीमयुधिष्ठिरादिषु गजानीकं निघ्नत्सु दुर्योधनमपश्यतां कौरवाणां भाषणानि श्रुत्वाऽश्वत्थामादयः शकुनिं जग्मुः । कौरवबलं नाशयतां धृष्टद्युम्नादीनां संकुले युद्धे प्रवृत्तेऽश्वत्थामादयो दुर्योधनमन्वेषयामासुः ... | ४७ |
| २६ | ४२ | अर्जुनादिषु गजानीकं निघ्नत्सु समागतैर्दुर्मर्षणप्रभृतिभिरेकादशभिर्दुर्योधनभ्रातृभिर्युद्धं कुर्वन्भीमः क्रमेण सर्वानवधीत् । श्रुतवर्मवधानन्तरं कौरवकृतं भीमावरणं, भीमहतानां योधानां संख्यादिकं चाभिदधाति स्म सञ्जयः ... ... ... | ४८ |
| २७ | ५७ | दुर्योधनसुदर्शनयोर्भ्रात्रोरश्वसेनायां स्थितयोर्दुर्योधनं दृष्ट्वाऽर्जुनेन श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा प्रतिवदता, अवशिष्टकौरवबलसंख्यां कथयित्वा तद्वधे प्रतिज्ञाते श्रीकृष्णो रथं प्रेषयामास । सुदर्शनादिभिर्भीमादीनां युद्धे प्रवृत्ते सुशर्मार्जुनयोर्युद्ध्यमानयोरर्जुनः सुशर्माणं तदीयानन्यांश्च जघान । सुदर्शनादिभिर्युद्धं कुर्वन्भीमः सुदर्शनं तत्पदानुगांश्च निजघान ... ... ... ... | ५० |
| २८ | ६८ | सञ्जयः सहदेवं प्रति शकुनेरागमनं, भीमसहदेवाभ्यामुलूकस्य युद्धं, हतसैन्यैर्युद्धभूम्याच्छादनं चाभिदधाति स्म । सहदेवं शकुनिबाणपीडितं दृष्ट्वा कौरवसैन्यं निवारयति भीमे तद्भयाद्द्रवत्सु योधेषु दुर्योधनवाक्यात्प्रत्यागतेषु सत्सूभयोः संकुलं युद्धम् । सहदेवेनोलूके हते विदुरवाक्यं स्मरञ्शकुनिः सहदेवेन युयुधे । भीतं शकुनिं दृष्ट्वा कौरवेषु पलायमानेषु सहदेवो द्यूतवृत्तमनूद्य परुषमुक्त्वा तं ज- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | घात। हतं शकुनिं दृष्टवतां कौरवाणां पलायनं, पाण्डवानां शङ्खवादनादि च ... ... | ५२ |
| | | **(२) ह्रदप्रवेशपर्व ५३–५६** | |
| २९ | १०५ | पाण्डवान्प्रत्यागतं शकुनिसैन्यमर्जुनो नाशयति स्म। दुर्योधनवाक्येनागतेष्ववशिष्टयोधेषु पाण्डवैर्निःशेषं नाशितेषु दुर्योधनो मुग्धः सन्नपयाने बुद्धिं चकार। पाण्डवानां बलशेषजिज्ञासया धृतराष्ट्रस्य प्रश्ने सञ्जयस्तेषामवशिष्टबलं कथयित्वा दुर्योधनस्य ह्रदप्रवेशाभिप्रायं कथयन्राजानं प्रति तदुक्तिं कथयामास। दुर्योधने ह्रदं प्रविष्टे कृपाश्वत्थामकृतवर्माणो मत्तस्तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा भृशं विलप्य प्राद्रवन्। सर्वसैन्यवधानन्तरं योषित्सु विलपन्तीषु दुर्योधनामात्या राजदारान् गृहीत्वा नगरं गन्तुं निर्जग्मुः। सर्वान्विद्रवतो दृष्ट्वा चिन्तातुरो युयुत्सुर्युधिष्ठिरानुज्ञया पूर्वप्रस्थितैः राजदारैः सह हास्तिनपुरं जगाम। विदुरेण पृष्टो युयुत्सुर्दुर्योधनापक्रमणमारभ्य स्वस्य हास्तिनपुरप्रवेशपर्यन्तं वृत्तं कथयति स्म। विदुरो युयुत्सुं प्रति 'प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभो। युधिष्ठिरमनुज्ञाय भीमसेनं तथैव च' इत्याद्युक्त्वा राजगृहं प्रविश्य निरानन्दं शून्यरूपं च तद्दृष्ट्वाऽतिदुःखितः सन् शनैः शनैः श्वासान्मुमोच। युयुत्सुरपि स्वकीयैर्वन्द्यमानोऽपि ताननभिनन्दन्भरतानां क्षयं चिन्तयंस्तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत् ... ... ... ... | ५६ |
| | | **(३) गदापर्व ५७–१२४** | |
| ३० | ६८ | अवशिष्टाः कृतवर्मादयः किमकुर्वन्निति धृतराष्ट्रप्रश्नेऽश्वत्थामादीनां त्रयाणां ह्रदसमीपगमनादिकं युधिष्ठिरादीनां दुर्योधनान्वेषणं चाह स्म सञ्जयः। ह्रदे प्रविष्टं दुर्योधनं प्रति कृपादिष्वागतेषु तस्मिन् 'दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात्पुरुषक्षयात्। पाण्डुकौरवसंमर्दाज्जीवमानान्नरर्षभान्।' इत्याद्युक्तवत्यश्वत्थामा 'उत्तिष्ठ राजन्भद्रं ते' इत्याद्युवाच। एतदन्तरे तस्मिन्ह्रदे जलपानार्थमागता व्याधास्तेषां रहोवचनं श्रुत्वा पाण्डवशिबिरमागत्य भीमसेनं प्रति तं दुर्योधनवृत्तान्तं कथयामासुः। भीमसेनेन कथिततद्वृत्तान्तो युधिष्ठिरो द्वैपायनाभिधं ह्रदं सोदरैः सह जगाम। पाण्डवशब्दं श्रुत्वा कृपादयोऽपि दुर्योधनं विज्ञाप्य ययुः ... ... | ५९ |
| ३१ | ७३ | अपयातेषु कृपादिषु 'पश्येमां धार्तराष्ट्रेण' इत्याद्युक्तवन्तं युधिष्ठिरं प्रति श्रीकृष्णो 'मायाविन इमां मायाम्' इत्यादिना दुर्योधनवधोपायमब्रवीत्। श्रीकृष्णप्रेरणयाऽऽक्षेपवाक्यानि वदन्तं युधिष्ठिरं प्रति 'नैतच्चित्रं महाराज' इत्याद्युत्तरं वदति दुर्योधने पुनरुभयोः संवादः... | ६१ |
| ३२ | ७१ | युधिष्ठिरेणात्यर्थं कृतभर्त्सनो दुर्योधनः किमब्रवीदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने दुर्योधनस्य ह्रदे निमग्नस्य भाषणाद्याह स्म सञ्जयः। दुर्योधनो ह्रदस्थ एव 'यूयं ससुहृदः' इत्याद्युक्त्वा 'अद्य वः सरथान्' इत्यादि विकत्थनं कृत्वा विरराम। 'एकैकेन युद्ध्यस्व, यच्चाभीष्टमायुधं तद् गृहाण' इत्यादि युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वा गदां गृहीत्वा जलादुत्थाय क्रुद्धो दुर्योधनः पाण्डवानुवाच। सञ्जयो | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | गृहीतगदस्य दुर्योधनस्य शोभां कथयन्युधिष्ठिरेण सह तस्योक्तिप्रत्युक्ती अभिधाय, वर्मग्रहणपूर्वकमात्मविकत्थनमाह स्म दुर्योधनस्य ... ... ... | ६४ |
| ३३ | ५८ | युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वा क्रुद्धे श्रीकृष्णे 'यदि नाम ह्ययं युद्धे' इत्याद्युक्तवति भीमः 'अद्य पारं गमिष्यामि' इत्याद्यभिनिवेशपूर्वकमुवाच । श्रीकृष्णेन स्तुतो भीमो युधिष्ठिरं प्रति 'अहमेतेन संगम्य' इत्याद्युवाच । गृहीतगदयोर्भीमदुर्योधनयोः समागमे परस्परमुक्तिप्रत्युक्ती ... | ६६ |
| ३४ | २२ | एतदन्तरे गदायुद्धस्थले आगतो बलरामो युधिष्ठिरादिभिः प्रार्थितः श्रीकृष्णं प्रति स्वस्य युद्धदर्शनाभिप्रायं कथयति स्म । भीमदुर्योधनयोर्युद्धभूमिमागतयोर्युधिष्ठिरादयो बलरामं प्रत्यालिङ्गनपूर्वकं 'पश्य युद्धं महाबाहो' इत्याद्यूचुः ... ... | ६७ |
| ३५ | ९० | बलरामगमनविषये जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्य तत्कथनरूपमुत्तरम् । शमार्थं धृतराष्ट्रं प्रति गत्वा प्रत्यागते श्रीकृष्णे पाण्डवबलविभागं कुर्वति दुर्योधनस्यापि साहाय्यं क्रियतामित्याह बलदेवः । तस्मिन्कृष्णेनानङ्गीकृते क्रुद्धो बलदेवस्तीर्थयात्रागमनं निश्चित्याज्ञप्तैः प्रेष्यैस्तदुपकरणेष्वानीतेषु निर्गतस्तीर्थेषु नानाविधानि द्रव्याणि ददौ । सारस्वतादितीर्थानां गुणोत्पत्तिशुश्रूषया जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनस्तत्कथयितुं प्रतिजज्ञे । प्रभासतीर्थस्नानेन यक्ष्मिणश्चन्द्रस्य शापमोचनादिके कथिते पुनर्जनमेजयेन कथमिति पृष्टस्तद्वृत्तान्तं कथयति स्म वैशम्पायनः । सप्तविंशतिपत्नीषु मध्ये रोहिण्यामासक्तं चन्द्रं दृष्ट्वाऽन्यास्तत्सपत्न्यः स्वपितरं दक्षं प्रति गत्वा तन्निवेदयामासुः । कन्याभिः प्रार्थितेन दक्षेण 'सर्वासु पत्नीषु समं वर्तस्व' इत्याज्ञप्तेऽपि तदकुर्वति चन्द्रे पुनस्तत्पत्नीभिः प्रार्थितो दक्षो रोषाद्यक्ष्माणं ससर्ज, स च सोममाविशत् । यक्ष्मणा क्षीयमाणे चन्द्र ओषधीनां चाभावे देवैः पृष्टः स दक्षशापवृत्तान्तमाचचक्षे । तं वृत्तान्तं श्रुत्वा देवैः प्रार्थितेन दक्षेण कथितं प्रभासतीर्थस्नानं कृत्वा शापान्मुक्तं चन्द्रं प्रति स पुनः 'माऽवमंस्थाः स्त्रियः' इत्याद्युवाच । ततश्चमसोद्भेदतीर्थगमनादिकं शशंस सञ्जयः ... | ७० |
| ३६ | ५४ | ततस्त्रितोदपानतीर्थगमने कथिते तद्वृत्तान्तं श्रोतुं जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनस्तं कथयति स्म । एकत-द्वित-त्रितेषु त्रिषु भ्रातृषु स्वयाज्येभ्यो बहून् पशून् लब्ध्वा प्राच्यां दिशि गच्छत्सु त्रितस्य कर्मठत्वेनोद्विग्नावेकतद्वितौ वृकभयात्कूपपतितं त्रितं त्यक्त्वा ययतुः । कूपमध्ये यज्ञं कुर्वतस्त्रितस्य शब्दं श्रुत्वोद्विग्ना अपि देवा बृहस्पतिवाक्यात्तत्समीपमागत्य कूपात्तमुद्धृत्य वरान्ददुः । अथ स्वं निलयं गतः क्रुद्धस्त्रित उभौ भ्रातरौ शशाप ... ... | ७२ |
| ३७ | ६६ | विनशनादितीर्थप्रभृतिप्राग्दिग्भवबहुतीर्थगमनादिकं शशंस वैशम्पायनः । 'सरस्वती प्राङ्मुखी कथं निवृत्ता' इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनः सरस्वतीवृत्तान्तं कथयित्वा नैमि- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | षीयतीर्थदर्शनकथनानन्तरं सरस्वतीतीर्थान्यवर्णयत् ... | ७४ |
| ३८ | ५९ | 'सप्तसारस्वतं कस्मात्कश्च मङ्कणको मुनिः' इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने सप्तसरस्वतीवृत्तान्तं कथयन्वैशम्पायनः सरस्वत्याः सुप्रभादीनि सप्त नामान्याचख्यौ। पुष्करतीर्थे सत्रं कुर्वतो ब्रह्मणः स्मरणादागतायाः सुप्रभाया नैमिषादिषु स्थितानां काञ्चनाक्ष्यादीनां षण्णां च हिमालये सङ्गमात्सप्तसारस्वतं तीर्थं, तत्र मङ्कणकस्य सिद्धिं चाकथयद्वैशम्पायनः। स्त्रीदर्शनात्स्खलितस्य मङ्कणरेतसः सकाशाद्वायुवेगादिसप्तपुत्रोद्भवः। कुशाविद्धात्करात्प्रस्रुतं शाकरसं दृष्ट्वा हर्षान्नृत्यं कुर्वति मङ्कणके तन्निवारणार्थं देवप्रार्थनया आगतस्य महादेवस्य तस्य चोक्तिप्रत्युक्ती। शिवाङ्गुष्ठात्ताडितान्निर्गतं शुभ्रं भस्म दृष्ट्वा व्रीडितो मङ्कणको महादेवं स्तुत्वा तस्माद्वरदानाद्यवाप ... ... | ७६ |
| ३९ | ३८ | रामस्य सारस्वततीर्थे एकरात्रवासानन्तरं कपालमोचनाख्यौशनसतीर्थगमनं कथयित्वा जनमेजयप्रश्नानुरोधेन कपालमोचननामप्राप्तिकारण—माह वैशम्पायनः। रामस्य रुषङ्गोराश्रमगमनादिकं तत्तनुत्यागवृत्तान्तादिकं चाकथयत् ... ... ... | ७७ |
| ४० | ३२ | आर्ष्टिषेणः कथं तपस्तप्तवानित्यादिके जनमेजयप्रश्ने आर्ष्टिषेणतपोवृत्तान्तमाख्याय सिन्धुद्वीपदेवाप्योर्विश्वामित्रस्य च ब्राह्मणत्वप्राप्तिवृत्तान्तं चाचष्ट वैशम्पायनः ... ... | ७८ |
| ४१ | ४० | बकदाल्भ्यस्याश्रमगमनादिकमुक्त्वा तद्वृत्तान्तं कथयति स्म वैशम्पायनः। पशून्याचितुं धृतराष्ट्रराजं प्रति गतो दाल्भ्यो मृतान्पशून्ददतस्तस्य राज्ञो राज्यं नाशयितुं मृतपशूनां मांसेन होममकरोत्तेन तस्य राज्यं क्षयोन्मुखमभूत्। प्राश्निकैः राज्यनाशकारणे कथिते धृतराष्ट्रेण प्रसादितो दाल्भ्यस्तस्य राज्यं मोचयित्वा पशून्गृहीत्वा नैमिषारण्यं जगाम। तस्मिन्नेव तीर्थेऽसुररक्षार्थं बृहस्पतेस्तपश्चर्यादिकं ययातियज्ञादिकं चाभिधाय वसिष्ठापवाहतीर्थं प्रति रामगमनमकथयद्वैशम्पायनः ... ... | ८० |
| ४२ | ४१ | 'वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ' इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरकथनम्। विश्वामित्रवसिष्ठयोस्तपःस्पर्धाप्रयुक्ते वैरे वसिष्ठानयनार्थं चिन्तयन्विश्वामित्रः सरस्वतीं सस्मार। वसिष्ठानयनार्थं विश्वामित्रेणाज्ञप्ता चिन्तयन्ती सरस्वती वसिष्ठवाक्येन तं वाहयन्ती तेन स्तुता विश्वामित्राश्रममागत्य तस्मायानीतं तं निवेदयति स्म। आनीतं वसिष्ठं हन्तुं खड्गमन्वेषयति विश्वामित्रे सरस्वती तं प्राचीं दिशमपोवाह। वसिष्ठमपवहन्तीं सरस्वतीं प्रति क्रुद्धो विश्वामित्रः 'शोणितं वह' इति शशाप | ८१ |
| ४३ | ४९ | विश्वामित्रशापेन रुधिरं वहन्तीं नदीं दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रश्नमुखेन तस्याः सकाशात्तत्कारणं ज्ञात्वा शापमोचनार्थमाराधितो महादेवस्तस्याः शापं मोचयामास। रुधिरनाशनेन क्षुधितैः राक्षसैः प्रार्थितानां मुनीनां वाक्यात्प्रसन्ना सरस्वती राक्षसानुद्दधार। | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | अत्रैव तीर्थे स्नात्वेन्द्रो ब्रह्महत्याया मुक्तोऽभूत इत्यादिकथनम्। इन्द्रस्य ब्रह्महत्या कथमभूदिति जनमेजयप्रश्ने तत्कारणं कथयन्वैशम्पायनो नमुचिवधाख्यानमाचख्यौ । एतस्मिंस्तीर्थे बलरामागमनादि कथयित्वाऽत्रैव कुमारस्याभिषेकादिकमाख्यातवान्वैशम्पायनः ... ... ... | ८३ |
| ४४ | ५३ | कुमाराभिषेकादिश्रवणार्थं जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्य तत्कथनरूपमुत्तरम्। कार्तिकेयजन्मवृत्तान्तः। कार्तिकेयं दृष्ट्वा महादेवप्रभृतिष्वागतेषु 'कं नु पूर्वमयं बालः' इत्यादिवितर्कं कुर्वाणे महादेवे कुमारश्चतुर्भौ रूपै रुद्रादीन्प्रति जगाम। कुमारस्याधिपत्यं दातुं महादेवादिभिः प्रार्थितो ब्रह्मा चिन्तयन्कुमारं गृहीत्वा तैः सह हिमालयं जगाम ... | ८५ |
| ४५ | ११५ | अभिषेकमहोत्सवेऽभिषेकसामग्रीं गृहीत्वा आगतैर्देवादिभिरभिषिक्ते कुमार ब्रह्मादयस्तस्मै पारिषदान्ददुः। वैशम्पायनोऽन्येषां स्कन्दसैनिकानां तदायुधानां च नामानि कथयित्वाऽभिषेकं दृष्टवतां सैन्यानां नृत्यादिकमाचचक्षे ... ... | ८८ |
| ४६ | १०८ | मातृगणकथनं प्रतिजानानो वैशम्पायनो मातॄणां प्रभावत्यादिनामानि विकृतिरूपादीनि च वर्णयति स्म। इन्द्रेण कृतं शक्त्यस्त्रादिदानं महादेवकृतं सेनादानं विष्ण्वादिकृतं वैजयन्त्यादिदानमभिधाय देवसेनाः प्राप्तवतः स्कन्दस्य प्रभां वर्णयामास वैशम्पायनः। दैत्यान्हन्तुं निर्गतः कार्तिकेयो देवादिभिः स्तुतस्तारकादीञ्जघान। भयात् क्रौञ्चपर्वते निलीनं बाणासुरं ज्ञात्वा शक्तिप्रहारेण क्रौञ्चं भित्त्वा तं जघान । तैजसतीर्थे बलरामगमनाद्यभिधाय तत्रैव वरुणस्याभिषेकमाह वैशम्पायनः ... | ९१ |
| ४७ | ३३ | वरुणाभिषेकं श्रोतुं जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनो वरुणस्य जलाधिपत्याभिषेकवृत्तान्तमब्रवीत् । बलरामस्याग्नितीर्थगमनमाख्यायाग्निनाशविषये जनमेजयप्रश्ने तन्नाशवृत्तान्तमभिधाय ब्रह्मयोनितीर्थवृत्तान्तमाह ... | ९३ |
| ४८ | ६८ | रामस्य बदरपाचनतीर्थगमनमभिधाय तद्वृत्तान्तं कथयन्भारद्वाजसुतायाः श्रुतावत्या भर्तृत्वेनेन्द्रवरणार्थं तपश्चरणमाख्यातवान्वैशम्पायनः। वसिष्ठरूपेणेन्द्रः कन्यासमीपमागत्य तद्वाक्यं श्रुत्वा पञ्च बदराणि पाचयितुं दत्त्वा जगाम। बदराणि पाचयन्ती कन्या बहुभिर्दिनैः सर्वस्मिन्काष्ठभारे दग्धेऽप्यपक्वानि तान्यालोच्य स्वशरीरमग्नौ निधायापचत्। स्वशरीरे दह्यमानेऽप्यविकृतां कन्यामवलोक्य तुष्ट इन्द्रः प्रत्यक्षमागत्य तस्यै वरान्दत्वाऽरुधन्तीवृत्तान्तं कथयित्वा तत्तीर्थवासफलमभिधाय प्रययौ । श्रुतावतीजन्मवृत्तान्तं श्रोतुं जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनस्तं कथयति स्म ... | ९५ |
| ४९ | २४ | रामस्येन्द्रतीर्थगमनमभिधाय रामतीर्थवृत्तान्तमादित्यतीर्थवृत्तान्तं चाह स्म वैशम्पायनः ... ... ... ... | ९६ |
| ५० | ६९ | आदित्यतीर्थे वसन्तं देवलं प्रशस्य तदाश्रमे जैगीषव्यस्यागमनमाचख्यौ। बहूनि वर्षाणि वसन्तमप्यब्रुवन्तं जैगीषव्यमालोक्य चिन्तयन्देवलो जलमानेतुं समुद्रं गतस्तत्रापि तं दृष्ट्वा | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | पुनराश्रममागतस्तत्रापि तं तथैव ददर्श । ततस्तत्परीक्षार्थमुपरितनेषु लोकेषु गच्छन्देवलस्तत्र जैगीषव्यं दृष्ट्वा पुनः पतिव्रतालोकपर्यन्तं गत्वा ततोऽग्रे जैगीषव्योऽन्तर्दधे । ततः प्रश्नमुखेन सिद्धेभ्यो जैगीषव्यस्य ब्रह्मलोकगमनं श्रुत्वा तत्र गन्तुं प्रवृत्तो देवलः सिद्धैर्निवारितः स्वाश्रममाजगाम । तत्रापि दृष्टो जैगीषव्यो देवलेन प्रार्थितस्तस्मै मोक्षधर्मं योगविधिं चोपदिदेश । संन्यासोद्यतदेवलदर्शनेन भूतादीनां रोदनादिकं सोमतीर्थगमनं चाख्यातवान्वैशम्पायनः ... | ९८ |
| ५१ | ५२ | वैशम्पायनो रामस्य सारस्वततीर्थगमनमभिदधाति स्म । 'कथं द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्याम्' इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम् । अत्र तपः कुर्वतो दधीचस्य ऋषेस्तपोभङ्गार्थमिन्द्रेण प्रेषितामलंबुषामप्सरसं दृष्टवतस्तस्य वीर्यं चस्खाल सरस्वत्याम् । तद्रेतस उत्पन्नं पुत्रमादाय दधीचिमागत्य सरस्वती 'ब्रह्मर्षे तव पुत्रोऽयम्' इत्याद्युवाच । पुत्रं लब्धवता दधीचिना स्तुता सरस्वती तस्माद्वराँल्लब्ध्वा पुत्रमादाय प्रययौ । एतदन्तरे देवदानवविरोधे समुत्पन्ने दानववधार्थमस्त्राणि कर्तुमिन्द्रेण देवद्वाराऽस्थिलाभार्थं याचितो दधीचः प्राणान्विसृज्यास्थीनि ददौ । तैरस्थिभिरस्त्राणि विधायेन्द्रो दानवाञ्जघान । कस्मिंश्चित्कालेऽतिक्रान्ते द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां प्रवृत्तेष्वृषिषु गन्तुं प्रवृत्तः सारस्वतो मुनिः सरस्वत्याश्वासितो वेदानधीयानस्तत्रैव तस्थौ । अनावृष्ट्यामतीतायामागतानां वेदाध्यापनाय प्रार्थयतामृषीणां सारस्वतस्य चोक्तिप्रत्युक्ती । सारस्वते तीर्थे स्नानादि विधाय रामो यत्र वृद्धकन्यास्थितिस्तत्तीर्थं जगाम ... ... | १०० |
| ५२ | २९ | 'कथं कुमारी भगवंस्तपोयुक्ता ह्यभूत्पुरा' इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्तद्वृत्तान्तमाख्याय तत्तीर्थवासफलमाह स्म । अत्र दानानि दत्वा ब्राह्मणमुखाच्छल्यहननं श्रुत्वा ततो निर्गतो रामो मुनीन्प्रति कुरुक्षेत्रवृत्तान्तं पप्रच्छ ... ... ... ... | १०१ |
| ५३ | २६ | मुनिभिः कुरुक्षेत्रवृत्तान्ते कथिते 'किमर्थं कुरुणा कृष्टं' इत्यादिके रामेण पृष्टे मुनयस्तदकथयन्–'बहूनि वर्षाणि कर्षतः कुरोरिन्द्रस्य चोक्तिप्रत्युक्ती। देववाक्यादागत्येन्द्रेण 'अलं खेदेन भवतः' इत्याद्युक्त्वा तदङ्गीचकार कुरुः । मुनयः कुरुक्षेत्रमाहात्म्यं कथयित्वा तन्मर्यादादिकमिन्द्रोक्तमाचख्युः ... | १०२ |
| ५४ | ४१ | रामः कुरुक्षेत्रं दृष्ट्वा दानानि दत्वा तत्रस्थमाश्रमं जगाम । आश्रमवृत्तान्तजिज्ञासया रामेण पृष्टा मुनयस्तमूचुः । रामो मित्रावरुणाश्रममागत्य तत्रागतं नारदं प्रति कुरुक्षेत्रयुद्धवृत्तान्तं पप्रच्छ। नारदस्तं वृत्तान्तं कथयन् भीष्मादीनां मरणं कौरवबलात्कृपादीनां त्रयाणामवशेषमुक्त्वा यदीच्छा तर्हि दुर्योधनभीमयोर्युद्धस्थलं व्रजेत्युवाच रामम् । ततो रामोऽनुयायिनो विसृज्य सरस्वतीमाहात्म्यमुक्त्वा गदायुद्धं द्रष्टुमाजगाम ... ... | १०३ |
| ५५ | ५१ | रामसंनिधौ दुर्योधनो भीमेन सह कथमयुद्ध्यताते धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयो रामदर्शनेन दुर्योधन- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | हर्षादिकमाह। युधिष्ठिरं प्रति बलरामेणोक्तं वाक्यं श्रुत्वा सर्वे स्यमन्तकपञ्चकमाययुः। सञ्जयो गदाधारिणोर्दुर्योधनभीमयोः प्रभां, परस्पराह्वानादिकं, तयो रूपं, दुर्योधनवाक्यात्सर्वेषां युद्धदर्शनार्थमुपवेशनं चाह ... | १०५ |
| ५६ | ४६ | उभयोर्वाग्युद्धं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्यानुतापपूर्विकोक्तिः। दुर्योधनेन युद्धार्थमाहूते भीमे सनिर्घातवातादीनि दुर्निमित्तान्यभूवन्। भीमो युधिष्ठिरं प्रति 'नैष शक्तो रणे जेतुम्' इत्याद्युक्त्वा द्रौपदीसभानयनाद्यनूद्य दुर्योधनं प्रति क्रुद्धः सन् 'राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य' इत्याद्युवाच। ततो भीमं प्रति 'किं कत्थितेन बहुना' इत्याद्युक्तं दुर्योधनवाक्यं श्रुत्वा सर्वे प्रशशंसुः ... ... | १०७ |
| ५७ | ७० | सञ्जय उभयोर्युद्धारम्भं मण्डलादिगतीरुभयोस्तुमुलं गदायुद्धं चावर्णयत् ... ... ... | १०९ |
| ५८ | ६२ | अर्जुनेन 'अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः' इत्यादिनोभयोर्बलाबलविषये पृष्टः श्रीकृष्णस्तदाख्याय स्वस्य मायायुद्धाभिप्रायं प्रकाश्य युधिष्ठिरापराधादिदं भयमागतमित्याद्याह। श्रीकृष्णवाक्यादर्जुनः स्ववामोरुताडनेन भीमाय संज्ञां ददाति स्म। उभयोर्मण्डलादिगतिपूर्वकं युद्ध्यमानयोर्भीमेन गदया दुर्योधनस्योरौ भग्ने स पपात। दुर्योधने पतिते उल्कापातादिकं यक्षादीनां महानादं भेर्यादीनां ध्वनिमद्भुतोत्पादर्शनेन पञ्चालादीनामुद्वेगं देवादीनां स्वस्थानगमनादिकं चाह सञ्जयः ... | १११ |
| ५९ | ३१ | दुर्योधनं पतितं दृष्ट्वा पाण्डवेषु हृष्टेषु भीमस्तं प्रति परुषवाक्यान्युक्त्वा पतितस्य तस्य शिरः पादेन समलोडयत्। पुनर्भीमो दुर्योधनं प्रति 'येऽस्मान्पुरोपनृत्यन्त' इत्याद्युक्त्वा युधिष्ठिरादीन्प्रति 'रजस्वलां द्रौपदीमानयन्ये' इत्यादि सहर्षमुवाच। युधिष्ठिरो भीमं प्रति 'गतोऽसि वैरस्यानृण्यम्' इत्याद्युक्त्वाऽनुतप्तः सन्दुर्योधनं प्रति 'तात मन्युर्न ते कार्यः' इत्यादि कथयन् विललाप ... ... ... | ११२ |
| ६० | ४८ | अधर्मेण हतं राजानं दृष्ट्वा रामः किमब्रवीदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्योत्तरम्। राजानं पादेन शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा क्रुद्धो बलरामो भीमं विनिंदँल्लाङ्गलं गृहीत्वाऽभ्यद्रवत्। कृष्णेन बाहुभ्यामावार्य 'आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिः' इत्याद्युक्तो रामस्तं प्रति 'धर्मः सुचरितः सद्भिः' इत्याद्युवाच। क्रोधं निवारयितुं ब्रुवन्तं श्रीकृष्णं प्रति बलरामो 'हत्वाऽधर्मेण राजानम्' इत्याद्युक्त्वा रथमारुह्य द्वारकां जगाम। चिन्तयन्युधिष्ठिरो 'धर्मराज किमर्थं त्वम्' इत्यादिकं श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा राजमूर्ध्नि पादस्पर्शमसहमानो 'न ममैतत्प्रियं कृष्ण' इत्याद्युवाच। युधिष्ठिरोक्ते श्रीकृष्णेनानुमोदिते हृष्टस्य भीमस्योक्तिमन्वमोदत युधिष्ठिरः... ... | ११४ |
| ६१ | ७१ | दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा पाण्डवाः किमकुर्वतेति धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्य तत्कथनम्। पाण्डवेषु हृष्टेषु वीरेषु भीमं प्रशंसत्स्वसदृशं वदतः पञ्चालान्प्रति श्रीकृष्णो दुर्योधननिन्दारूपं वाक्यमुवाच। कृष्णस्याधिक्षेपवाक्यं श्रुत्वोत्थितो दुर्योधनस्तं प्रति 'कंसदासस्य दायाद' इत्यादिकं | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | परुषं वाक्यमुवाच। पुनः 'हतस्त्वमसि गान्धारे' इत्यादि वदन्तं श्रीकृष्णं प्रति 'अधीतं विधिवद्दत्तम्' इत्याद्युक्तवन्तं दुर्योधनं प्रति पुष्पवर्षादिकमभूत्। दुर्योधनपूजां दृष्ट्वा व्रीडिताश्चिन्तयन्तः पाण्डवा 'नैष शक्योऽतिशीघ्रास्त्रः' इत्यादि श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा जहृषुः ... ... | ११७ |
| ६२ | ४५ | निवासार्थं निर्गताः पाण्डवा दुर्योधनशिबिरसमीपमागत्य रथादवतीर्णास्तदा गाण्डीवारोपणपूर्वकं रथादवतरितुं श्रीकृष्णेनाज्ञप्तोऽर्जुनस्तथाऽकरोत्। रथादवतीर्णेऽर्जुने पश्चाच्छ्रीकृष्णे चावतीर्णे यदा ध्वजस्थः कपिरन्तर्दधे तदैव साश्वोऽर्जुनरथो दग्धो भस्मसाद्भूत्। अर्जुनेन रथदाहकारणे पृष्टे श्रीकृष्णस्तदाचख्यौ। युधिष्ठिरकृता कृष्णस्तुतिः। श्रीकृष्णप्रेरणया स्वबन्धुभिः कृष्णेन सात्यकिना च सह शिबिरान्निर्गत्यौघवतीतीरे न्यवसद्युधिष्ठिरः। युधिष्ठिरानुज्ञया गान्धारीसान्त्वनार्थं श्रीकृष्णो हास्तिनपुरं प्रायात्... | ११८ |
| ६३ | ७८ | 'कृष्णः किमर्थं प्रेषितः' इति जनमेजयप्रश्ने तदभिनन्दनपूर्वकमुत्तरमाह वैशम्पायनः—अन्यायहतं दुर्योधनं दृष्ट्वा गान्धारीशापाद्भीतेन युधिष्ठिरेण प्रार्थितः श्रीकृष्णो हास्तिनपुरं गत्वा धृतराष्ट्रसमीपमागत्य सुस्वरं रुरोद। धृतराष्ट्रं गान्धारीं च प्रत्युपदेशवाक्यानि वदन्तं श्रीकृष्णं प्रति गान्धारी 'एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि केशव' इत्याद्युक्त्वा धृतराष्ट्रस्य त्वमेव गतिरित्यभिधाय पुत्रशोकसंतप्ता वाससा मुखं प्रच्छाद्य चिरं रुरोद। ततः श्रीकृष्णो गान्धारीं कारणसंयुक्तैर्वाक्यैः समाश्वास्य धृतराष्ट्रं प्रति द्रौणेर्दुष्टमभिप्रायं निवेद्य हास्तिनपुरान्निर्गत्य शिबिरमाजगाम | १२० |
| ६४ | ४३ | भग्नसक्थो दुर्योधनः किमब्रवीदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने तदुत्तरं कथयन्सञ्जयो दुःखितस्य दुर्योधनस्य विलापवाक्यादिकं ततः पलायमानैर्जनैरश्वत्थामानं प्रति निवेदितं दुर्योधनहननवृत्तान्तं चाकथयत् ... ... | १२२ |
| ६५ | ४६ | दुर्योधनं हतं श्रुत्वाऽश्वत्थामादिषु युद्धभूमिं गतेषु विलापपूर्वकमश्वत्थामा 'न नूनं विद्यते सत्यम्' इत्याद्युवाच दुर्योधनं प्रति। दुर्योधनोऽपि कृपादीन्प्रति 'ईदृशो लोकधर्मोऽयम्' इत्यादि समयोचितमुक्त्वा 'मा भवन्तोऽत्र तप्यन्ताम्' इत्याद्युवाच। दुर्योधनवाक्यं श्रुत्वा क्रुद्धेनाश्वत्थाम्ना कृतां सर्वपञ्चालवधप्रतिज्ञां श्रुतवतो दुर्योधनस्य प्रेरणया आनीतेन जलकुम्भेन कृपाचार्योऽश्वत्थामानं सैनापत्येऽभिषिषेच। अभिषिक्तोऽश्वत्थामा दुर्योधनं परिष्वज्य सिंहनादेन सर्वा दिशो निनादयन्प्रययौ ... ... | १२४ |

॥ समाप्तेयं शल्यपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

॥ शुभं भवतु ॥

ॐ

# ॥ शल्यपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

शल्यपर्व-९

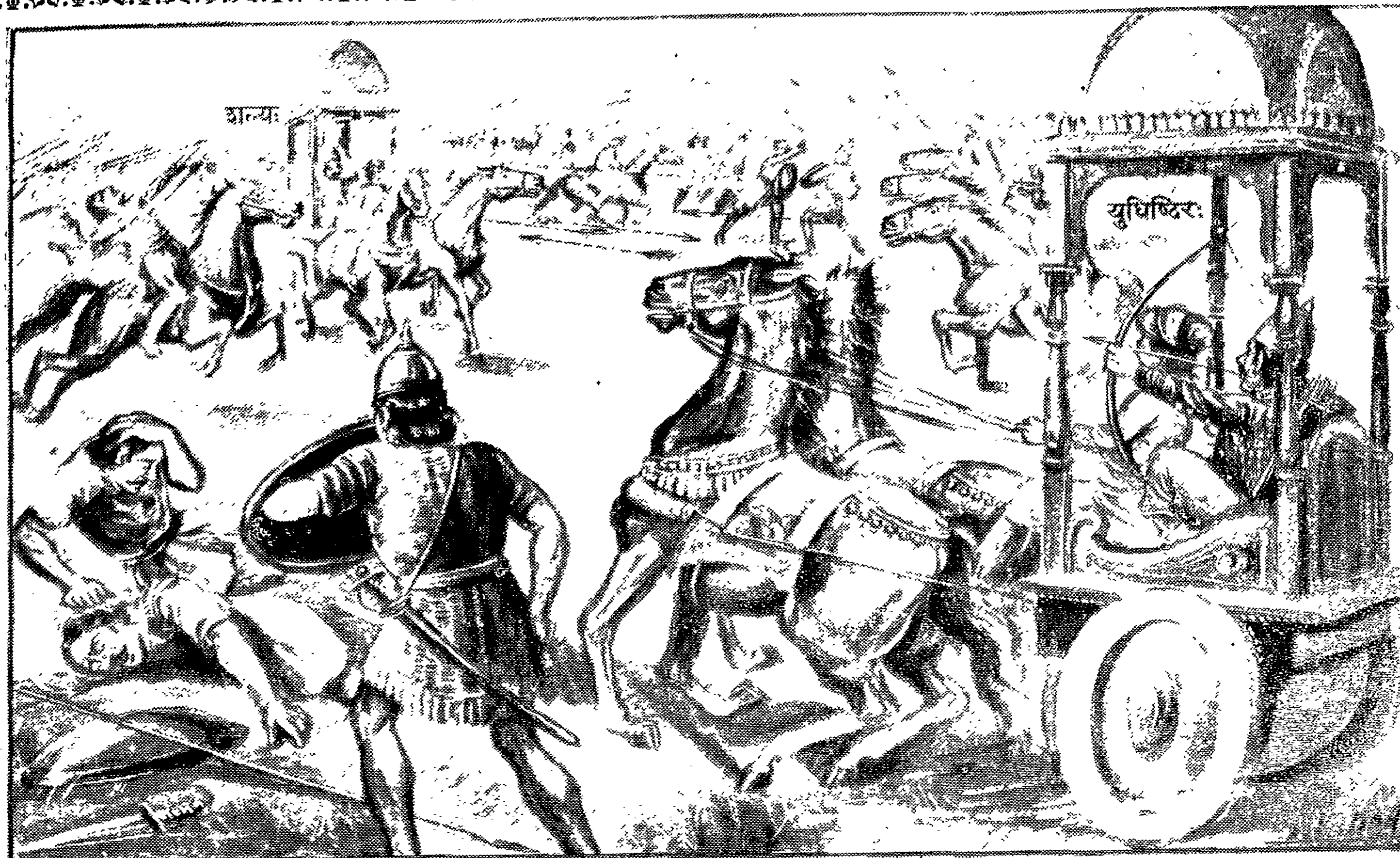

# ॥ महाभारतम् ॥

## शल्यपर्व ।

### —१—

### शल्यवधपर्व १

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥**

जनमेजय उवाच ।
एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ।
अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज १
उदीर्यमाणं च बलं दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
पाण्डवैः प्राप्तकालं च किं प्रापद्यत कौरवः २
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ३
वैशंपायन उवाच ।
ततः कर्णे हते राजन्धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
भृशं शोकार्णवे मग्नो निराशः सर्वतोऽभवत्
हा कर्ण हा कर्ण इति शोचमानः पुनः पुनः ।
कृच्छ्रात्स्वशिबिरं प्राप्तो हतशेषैर्नृपैः सह ५
स समाश्वास्यमानोऽपि
हेतुभिः शास्त्रनिश्चितैः ।
राजभिर्नालभच्छर्म
सूतपुत्रवधं स्मरन् ॥ ६
स दैवं बलवन्मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ।
संग्रामे निश्चयं कृत्वा पुनर्युद्धाय निर्ययौ ७
शल्यं सेनापतिं कृत्वा विधिवद्राजपुङ्गवः ।
रणाय निर्ययौ राजा हतशेषैर्नृपैः सह ॥ ८
ततः सुतुमुलं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
बभूव भरतश्रेष्ठ देवासुररणोपमम् ॥ ९
ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे ।
ससैन्योऽथ स मध्याह्ने धर्मराजेन घातितः ॥
ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात् ।
अपसृत्य ह्रदं घोरं विवेश रिपुजाद्भयात् ११
अथापराह्णे तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः ।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥ १२
तस्मिन्हते महेष्वासे हतशिष्टास्त्रयो रथाः ।
संरंभान्निशि राजेन्द्र जघ्नुःपाञ्चालसोमकान्
ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य सञ्जयः ।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥

---

**नीलकण्ठी टीका—**

१

श्रीगणेशाय नमः । उक्ता संगतिः कर्णपर्वादौ । **एवं निपातित इति**। उद्यमं पलायनं वा चक्रुरिति प्रश्नाभिप्रायः । अल्पाः अवशिष्टा इति च्छेदः। अत्राकारलोप आर्षः ॥१॥ तत्र द्वितीयमेव मत्वाऽऽह-**उदीर्यमाणमिति**। पाण्डवबलस्योत्कर्षं दृष्ट्वा किं प्रापद्यत । पलायनमेवास्य श्रेय इति भावः॥२॥ कृत्स्नसैन्यवधेन दुर्योधनः पलायनमेव कृतवानित्याह-'ततः कर्णे हते' इत्यादिना 'प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात्' इत्यन्तेन ग्रंथेन॥४॥ एवं सर्वान् घातयित्वा पलायने दुर्यशो लब्ध्वापि मरणमेव प्रापेत्याह-**अथेति** । अपराह्णे अहरर्धे ॥ १२ ॥ततः रात्रिवृत्तदर्शनानन्तरम् ॥ १४ ॥

स प्रविश्य पुरीं सूतो
भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः ।
वेपमानस्ततो राज्ञः
प्रविवेश निकेतनम् ॥ १५
रुरोद च नरव्याघ्र हा राजन्निति दुःखितः ।
अहो बत विनष्टाः स्म निधनेन महात्मनः ॥
विधिश्च बलवानत्र पौरुषं तु निरर्थकम् ।
शक्रतुल्यबलाः सर्वे यथाऽवध्यन्त पाण्डवैः ॥
दृष्ट्वैव च पुरे राजञ्जनः सर्वः स सञ्जयम् ।
क्लेशेन महता युक्तं सर्वतो राजसत्तम ॥ १८
रुरोद च भृशोद्विग्नो
हा राजन्निति विस्वरम् ।
आकुमारं नरव्याघ्र
तत्र तत्र समन्ततः ॥ १९
आर्तनादं ततश्चक्रे श्रुत्वा विनिहतं नृपम् ।
धावतश्चाप्यपश्यामस्तत्र तान्पुरुषर्षभान् ॥ २०
नष्टचित्तानिवोन्मत्तान्
शोकेन भृशपीडितान् ।
तथा स विह्वलः सूतः
प्रविश्य नृपतिक्षयम् ॥ २१
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
तथा चासीनमनघं समन्तात्परिवारितम् ॥
स्नुषाभिर्भरतश्रेष्ठ गान्धार्या विदुरेण च ।
तथान्यैश्च सुहृद्भिश्च ज्ञातिभिश्च हितैषिभिः ॥
तमेव चार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति ।
रुदन्नेवाब्रवीद्वाक्यं राजानं जनमेजय ॥ २४
नातिहृष्टमनाः सूतो वाक्यसंदिग्धया गिरा
सञ्जयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ ॥ २५
मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा
उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥ २६
संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह
म्लेच्छाश्च पार्वतीयाश्च यवना विनिपातिताः
प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः
उदीच्याश्च हताः सर्वे प्रतीच्याश्च नरोत्तमाः
राजानो राजपुत्राश्च सर्वे ते निहता नृप ।
दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह ।
भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः ।
धृष्टद्युम्नो महाराज शिखण्डी चापराजितः ॥
उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन्प्रभद्रकः ।
पञ्चालाश्च नरव्याघ्र चेदयश्च निषूदिताः ३१
तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत ।
कर्णपुत्रो हतः शूरो वृषसेनः प्रतापवान् ३२
नरा विनिहताः सर्वे गजाश्च विनिपातिताः
रथिनश्च नरव्याघ्र हयाश्च निहता युधि ॥ ३३
किञ्चिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं प्रभो
पाण्डवानां कुरूणां च समासाद्य परस्परम्
प्रायः स्त्रीशेषमभवज्जगत्कालेन मोहितम् ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो रथाः ॥
ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतां वरः ३६
तथाऽप्येते महाराज रथिनो नृपसत्तम ।
अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर ॥
एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः ।
कालेन निहतं सर्वं जगद्वै भरतर्षभ ॥ ३८
दुर्योधनं वै पुरतः कृत्वा वैरं च भारत ।

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः
निपपात स राजेन्द्रो गतसत्त्वो महीतले ।
तस्मिन्निपतिते भूमौ विदुरोऽपि महायशाः
निपपात महाराज शोकव्यसनकर्षितः ।
गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः ४१
पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचस्तदा ।
निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदाऽसीद्राजमण्डलम्
प्रलापयुक्तं महति चित्रन्यस्तं पटे यथा ।
कृच्छ्रेण तु ततो राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥
शनैरलभत प्राणान्पुत्रव्यसनकर्शितः ।
लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः
उदीक्ष्य च दिशः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत्
विद्वन् क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ ४५
ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः ।
एवमुक्त्वा ततो भूतो विसंज्ञो निपपात ह ॥
तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन
शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि ४७
स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो नराधिपः ।
तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः ॥

जनः रुरोदेति द्वयोरन्वयः ॥ १८ ॥ अपश्यामः अडागमो विसर्गो वा आर्षः । वैशंपायनवाक्यमिदम् ॥ २० ॥ वाक्येन वचनेन संदिग्धया वाक्यसंदिग्धया ॥ २५ ॥

निःश्वसञ्जिह्मग इव कुंभक्षिप्तो विशांपते।
सञ्जयोऽप्यरुदत्तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥ ४९
तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी
ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत् ॥
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठ
मुह्यमानो मुहुर्मुहुः।
गच्छन्तु योषितः सर्वा
गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५१
तथेमे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनो भृशम्।
एवमुक्तस्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भरतर्षभ ५२
विसर्जयामास शनैर्वेपमानः पुनः पुनः।
निश्चक्रमुस्ततः सर्वाः स्त्रियो भरतसत्तम॥५३
सुहृदश्च तथा सर्वे दृष्ट्वा राजानमातुरम्।
ततो नरपतिं तूर्णं लब्धसंज्ञं परंतप ॥ ५४
अवैक्षत्सञ्जयो दीनं रोदमानं भृशातुरम्।
प्राञ्जलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः।
समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण च॥ ५५

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रप्रमोहे
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच।
विसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
विललाप महाराज दुःखाद्दुःखान्तरं गतः॥१
सधूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन्पुनः पुनः।
विचिन्त्य च महाराज वचनं चेदमब्रवीत्॥२
धृतराष्ट्र उवाच।
अहो बत महद्दुःखं यदहं पाण्डवान् रणे।
क्षेमिणश्चाव्ययांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै॥
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम।
यच्छ्रुत्वा निहतान्पुत्रान्दीर्यते न सहस्रधा ॥
चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च सञ्जय
हतान्पुत्रानशेषेण दीर्यते मे भृशं मनः ॥ ५
अनेत्रत्वाद्यदेतेषां न मे रूपनिदर्शनम्।
पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता ॥ ६
बालभावमतिक्रम्य यौवनस्थांश्च तानहम्।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तदाऽनघ ॥
तानद्य निहताञ्श्रुत्वा हतैश्वर्यान्हतौजसः।
न लभेयं क्वचिच्छान्तिं पुत्राधिभिरभिप्लुतः॥
एह्येहि पुत्र राजेन्द्र
ममानाथस्य सांप्रतम्।
त्वया हीनो महाबाहो
कां नु यास्याम्यहं गतिम्॥ ९
कथं त्वं पृथिवीपालां-
स्त्यक्त्वा तात समागतान्।
शेषे विनिहतो भूमौ
प्राकृतः कुनृपो यथा ॥ १०
गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा।
अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क नु यास्यसि
सा कृपा सा च ते प्रीतिः
सा च राजन्सुमानिता।
कथं विनिहतः पार्थैः
संयुगेष्वपराजितः ॥ १२
को नु मामुत्थितं वीर तात तातेति वक्ष्यति।
महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत् १३
परिष्वज्य च मां कण्ठे स्नेहेन क्लिन्नलोचनः।
अनुशाधीति कौरव्य तत्साधु वद मे वचः॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

२

**विसृष्टास्विति** ॥ १ ॥ सधूममिव अत्युष्णमित्यर्थः ॥ २ ॥ पाण्डवाः क्षेमिण इत्येकं दुःखं स्वीयाश्च सर्वे निहता इत्यपरं ते द्वे आह द्वाभ्याम् **अहो इति** ॥ ३ ॥ वयः एतावत्कालपर्यन्तं प्रौढत्वम् ॥ ५ ॥ प्राकृतो नीचः। कुनृपः कुत्सितान्नरान्पातीति नीचपरिजन इत्यर्थः ॥ १० ॥ तत्प्रागुक्तं साधु यथा स्यात्तथा मे मां प्रति वद पुनरिति शेषः ॥ १४ ॥

ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक ।
भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा ॥
भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च बाह्लिकः ॥
अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महाबलः ।
बृहद्बलश्च काशीशः शकुनिश्चापि सौबलः ॥
म्लेच्छाश्च शतसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह।
सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ॥
भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च शतायुश्चापि वीर्यवान् ॥
जलसन्धोऽथार्ष्यश्रृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः
अलंबुषो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः ॥ २०
एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम ।
मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च
तेषां मध्ये स्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः
योधयिष्याम्यहं पार्थान्पञ्चालांश्चैव सर्वशः॥
चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे ।
सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचं
एकोऽप्येषां महाराज समर्थः सन्निवारणे ।
समरे पाण्डवेयानां संक्रुद्धो ह्यभिधावताम् ॥
किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पाण्डवैः।
अथवा सर्व एवैते पाण्डवस्यानुयायिभिः२५
योत्स्यन्ते सह राजेन्द्र हनिष्यन्ति च तान्मृधे
कर्ण एको मया सार्धं निहनिष्यति पाण्डवान्
ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने
यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः॥ २७
न स संनह्यते राजन्निति मामब्रवीद्वचः ।
तस्याथ वदतः सूत बहुशो मम सन्निधौ॥२८
शक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान्पाण्डवान् रणे
तेषां मध्ये स्थिता यत्र हन्यन्ते मम पुत्रकाः
व्यायच्छमानाः समरे किमन्यद्भागधेयतः ।
भीष्मश्च निहतो यत्र लोकनाथः प्रतापवान्
शिखण्डिनं समासाद्य मृगेन्द्र इव जंबुकम् ।
द्रोणश्च ब्राह्मणो यत्र सर्वशस्त्रास्त्रपारगः॥ ३१
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद्भागधेयतः ।
कर्णश्च निहतः संख्ये दिव्यास्त्रज्ञो महाबलः
भूरिश्रवा हतो यत्र सोमदत्तश्च संयुगे ।
बाह्लिकश्च महाराज किमन्यद्भागधेयतः ॥३३
भगदत्तो हतो यत्र गजयुद्धविशारदः ।
जयद्रथश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३४
सुदक्षिणो हतो यत्र जलसन्धश्च पौरवः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च किमन्यद्भागधेयतः॥ ३५
महाबलस्तथा पाण्ड्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद्भागधेयतः३६
बृहद्बलो हतो यत्र मागधश्च महाबलः ।
उग्रायुधश्च विक्रान्तः प्रतिमानं धनुष्मताम्॥
आवन्त्यो निहतो यत्र त्रैगर्तश्च जनाधिपः ।
संशप्तकाश्च निहताः किमन्यद्भागधेयतः ३८
अलम्बुषस्तथा राजन् राक्षसश्चाप्यलायुधः
आर्ष्यश्रृङ्गिश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ३९
नारायणा हता यत्र गोपाला युद्धदुर्मदाः
म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः किमन्यद्भागधेयतः ॥
शकुनिः सौबलो यत्र कैतव्यश्च महाबलः।
निहतः सबलो वीरः किमन्यद्भागधेयतः ॥
एते चान्ये च बहवः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ४२
निहता बहवो यत्र किमन्यद्भागधेयतः ।
यत्र शूरा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः
बहवो निहताः सूत महेन्द्रसमविक्रमाः ।
नानादेशसमावृत्ताः क्षत्रिया यत्र सञ्जय ४४
निहताः समरे सर्वे किमन्यद्भागधेयतः ।
पुत्राश्च मे विनिहताः पौत्राश्चैव महाबलाः
वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद्भागधेयतः ।
भागधेयसमायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः ॥४६
यस्तु भाग्यसमायुक्तः स शुभं प्राप्नुयान्नरः ॥
अहं वियुक्तस्तैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह सञ्जय ॥ ४७
कथमद्य भविष्यामि वृद्धः शत्रुवशं गतः ।
नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो ॥ ४८
सोऽहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ।
न हि मेऽन्यद्भवेच्छ्रेयो वनाभ्युपगमादृते ४९
इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य सञ्जय ।
दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि ५०
दुःशासनो विविंशश्च विकर्णश्च महाबलः ।
कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येऽहं शब्दमुत्तमम् ॥
एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम ।
असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधेन च ॥ ५२

प्रतिमानं केतुभूतम् ॥ ३७ ॥

दुःखशोकाभिसन्तप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः
वैशम्पायन उवाच ।
एवं वृद्धश्च सन्तप्तः पार्थिवो हतबान्धवः॥
मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ।
विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
दीर्घमुष्णं स निःश्वस्य
चिन्तयित्वा पराभवम् ।
दुःखेन महता राज-
न्सन्तप्तो भरतर्षभः ॥ ५५
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ।
धृतराष्ट्र उवाच ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा सूतपुत्रं च घातितं
सेनापतिं प्रणेतारं किमकुर्वत मामकाः ।
यं यं सेनाप्रणेतारं युधि कुर्वन्ति मामकाः ॥
अचिरेणैव कालेन तं तं निघ्नन्ति पाण्डवाः ।
रणमूर्ध्नि हतो भीष्मः पश्यतां वः किरीटिना
एवमेव हतो द्रोणः सर्वेषामेव पश्यताम् ।
एवमेव हतः कर्णः सूतपुत्रः प्रतापवान् ५९
स राजकानां सर्वेषां पश्यतां वः किरीटिना
पूर्वमेवाहमुक्तो वै विदुरेण महात्मना ॥ ६०
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति ।
केचिन्न सम्यक्पश्यन्ति मूढाः सम्यगवेक्ष्य च
तदिदं मम मूढस्य तथाभूतं वचः स्म तत् ।
यदब्रवीत्स धर्मात्मा विदुरो दीर्घदर्शिवान्
तत्तथा समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ ६२
दैवोपहतचित्तेन यन्मया न कृतं पुरा ।
अनयस्य फलं तस्य ब्रूहि गावल्गणे पुनः ६३
को वा मुखमनीकानामासीत्कर्णे निपातिते
अर्जुनं वासुदेवं च को वा प्रत्युद्ययौ रथी ६४
केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं मद्रराजस्य संयुगे ।
वामं च योद्धुकामस्य के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥
कथं च वः समेतानां मद्रराजो महारथः ।
निहतः पाण्डवैः संख्ये पुत्रो वा मम सञ्जय ॥
ब्रूहि सर्वं यथातत्त्वं भरतानां महाक्षयम् ।
यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥
पञ्चालाश्च यथा सर्वे निहताः सपदानुगाः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः
पाण्डवाश्च यथा मुक्तास्तथोभौ माधवौ युधि
कृपश्च कृतवर्मा च भारद्वाजस्य चात्मजः ६९
यद्यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तं च साम्प्रतम् ।
अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि सञ्जय

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

सञ्जय उवाच ।
शृणु राजन्नवहितो यथावृत्तो महान् क्षयः
कुरूणां पाण्डवानां च समासाद्य परस्परम्
निहते सूतपुत्रे तु पाण्डवेन महात्मना ।
विद्रुतेषु च सैन्येषु समानीतेषु चासकृत् ॥ २
घोरे मनुष्यदेहानामाजौ नरवरक्षये ।
यत्तत्कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ॥ ३
तदा तव सुतान् राजन्प्राविशत्सुमहद्भयम् ।
न सन्धातुमनीकानि न चैवाथ पराक्रमे ॥ ४
आसीद्बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कस्यचित् ।
वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवा इव॥५
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ।
सूतपुत्रे हते राजन्वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥ ६
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव
भग्नशृङ्गा इव वृषाः शीर्णदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ७
प्रत्युपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः

---

सम्यगवेक्ष्य निपुणं विभाव्यापि मूढास्तथाभूतं तद्वचः केचिन्न पश्यन्तीत्युत्तरेण सम्बन्धः॥६१॥ तथाभूतं यथार्थम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

शृण्विति ॥ १ ॥ समानीतेषु युद्धोन्मुखीकृतेषु ॥२॥

सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते प्राद्रवंस्ततः ।
विध्वस्तकवचाः सर्वे कांदिशीका विचेतसः
अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो
वीक्षमाणा भयाद्दिशः ।
मामेव नूनं बीभत्सु-
र्मामेव च वृकोदरः ॥ १०
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च भारत ।
अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ११
आरुह्य जवसंपन्नाः पादातान्प्रजहुर्भयात् ।
कुञ्जरैः स्यन्दना भग्नाः सादिनश्च महारथैः ॥
पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भृशं हताः ।
व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने ॥
तथा त्वदीया निहते सूतपुत्रे तदाऽभवन् ।
हतारोहास्तथा नागाश्छिन्नहस्तास्तथाऽपरे
सर्वं पार्थमयं लोकमपश्यन्वै भयार्दिताः ।
तान्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हाहाकृत्वैवमब्रवीत् ।
नातिक्रमिष्यते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्
जघने युद्ध्यमानं मां तूर्णमश्वान्प्रचोदय ।
समरे युद्ध्यमानं हि कौन्तेयो मां धनञ्जयः १७
नोत्सहेताप्यतिक्रान्तुं वेलामिव महार्णवः ।
अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम् ॥
निहत्य शिष्टाञ्शत्रूंश्च कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम्
तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः॥१९
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ।
गजाश्वरथहीनास्तु पादाताश्चैव मारिष ॥२०
पञ्चविंशतिसाहस्राः प्राद्रवञ्शनकैरिव ।
तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः
बलेन चतुरङ्गेण परिक्षिप्याहनच्छरैः ।
प्रत्ययुध्यंस्तु ते सर्वे भीमसेनं सपार्षतम्॥ २२
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ।
अक्रुद्ध्यत रणे भीमस्तैर्मृधे प्रत्यवस्थितैः॥ २३
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ।
नतान् रथस्थो भूमिष्ठान्धर्मापेक्षी वृकोदरः॥
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यमुपाश्रितः ।
जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् २५
न्यवधीत्तावकान्सर्वान्दण्डपाणिरिवान्तकः
पदातयो हि संरब्धास्त्यक्तजीवितबान्धवाः
भीममभ्यद्रवन्संख्ये पतङ्गा इव पावकम् ।
आसाद्य भीमसेनं ते संरब्धा युद्धदुर्मदाः२७
विनेदुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ।
श्येनवच्चचरन्भीमः खड्गेन गदया तथा ॥ २८
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानां व्यपोथयत् ।
हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः २९
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य पुनस्तस्थौ महाबलः ।
धनञ्जयो रथानीकमन्वपद्यत वीर्यवान् ॥ ३०
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम्॥
तस्याश्ववाहान्सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः
तमन्वधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमवर्तत ॥ ३२
ततो धनञ्जयो राजन् रथानीकमगाहत ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपन्धनुः
कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ।
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात्
विप्रहीनरथाश्वाश्च शरैश्च परिवारिताः
पञ्चविंशतिसाहस्राः पार्थमार्छन् पदातयः ३५
हत्वा तत्पुरुषानीकं पञ्चालानां महारथः
भीमसेनं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत॥ ३६
महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणमर्दनः ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महायशाः ३७
पारावतसवर्णाश्वं कोविदारवरध्वजम् ।
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ३८
गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ।
अचिरात्प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी॥
चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष
हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शङ्खानथाधमन्
ते सर्वे तावकान्प्रेक्ष्य द्रवतो वै पराङ्मुखान्
अभ्यधावन्त निघ्नन्तो वृषाञ्जित्वा वृषा इव ॥
सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव पुत्रस्य पाण्डवः ।
अवस्थितं सव्यसाची चुक्रोध बलवन्नृप ॥ ४२
तत एनं शरै राजन्सहसा समवाकिरत् ।
रजसा चोद्गतेनाथ न स्म किंचन दृश्यते ॥
अन्धकारीकृते लोके शरीभूते महीतले ।
दिशः सर्वा महाराज तावकाः प्राद्रवन् भयात्
भज्यमानेषु सर्वेषु कुरुराजो विशांपते ।
परेषामात्मनश्चैव सैन्ये ते समुपाद्रवत् ॥ ४५
ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान्
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः ॥ ४६

जघने अन्ते आर्णपणेन युध्यन्तामित्यर्थः ॥ १७ ॥

त एनमभिगर्जन्तं सहिताः समुपाद्रवन् ।
नानाशस्त्रसृजः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ॥
दुर्योधनोऽप्यसंभ्रान्तस्तानरीन् व्यधमच्छरैः
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ॥ ४८
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरतिवर्तितुम् ।
नातिदूरापयातं च कृतबुद्धिः पलायने ॥ ४९
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमपश्यद्भृशविक्षतम् ।
ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः
हर्षयन्निव तान् योधांस्ततो वचनमब्रवीत् ।
न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च॥
यत्र यातान्न वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः
स्वल्पं चैव बलं तेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो
ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।
विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्
पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ॥ ५३
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे वधः ।
सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम्
मृतो दुःखं न जानीते
प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।
शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे
यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ५५
द्विषतो भीमसेनस्य वशमेष्यथ विद्रुताः ।
पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥
नान्यत्कर्मास्ति पापीयःक्षत्रियस्य पलायनात्
न युद्धधर्माच्छ्रेयान्हि पन्थाःस्वर्गस्य कौरवाः
सुचिरेणार्जिताँल्लोकान्सद्यो युद्धात्समश्नुते
तस्य तद्वचनं राज्ञः पूजयित्वा महारथाः ॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त क्षत्रियाः पाण्डवान्प्रति ।
पराजयममृष्यन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ॥५९
ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव सुदारुणम् ।
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ॥६०
युधिष्ठिरपुरोगांश्च सर्वसैन्येन पाण्डवान् ।
अन्वधावन्महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कौरवसैन्यापयाने
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

सञ्जय उवाच ।
पतितान्रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम्
रणे च निहतान्नागान् दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष ॥
आयोधनं चातिघोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभम् ।
अप्रख्यातिं गतानां तु राज्ञां शतसहस्रशः २
विमुखे तव पुत्रे तु शोकोपहतचेतसि ।
भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम् ३
ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत ।
बलानां मथ्यमानानां श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ४
अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विक्षतं प्रेक्ष्य संयुगे ।
कृपाविष्टः कृपो राजन्वयःशीलसमन्वितः ५
अब्रवीत्तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपम्
दुर्योधनं मन्युवशाद्वाक्यं वाक्यविशारदः ६
दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव
श्रुत्वा कुरु महाराज यदि ते रोचतेऽनघ ७
न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पन्था राजेन्द्र विद्यते
यं समाश्रित्य युद्ध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥
पुत्रो भ्राता पिता चैव
स्वस्रीयो मातुलस्तथा ।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव
योद्ध्या वै क्षत्रजीविना ॥ ९
वधे चैव परो धर्मस्तथाऽधर्मः पलायने ।
ते स्म घोरां समापन्ना जीविकां जीवितार्थिनः

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

पतितानिति ॥ १ ॥ अप्रख्यातिमिति पाठेऽपि तुल्योऽर्थः ॥ २ ॥ भृशेत्यत्र दृशेति पाठे दृशा दृङ्मात्रेण ॥ ३ ॥ मन्युवशाद्दुर्योधनस्य दैन्यवशात् ॥ ६ ॥

तदत्र प्रतिवक्ष्यामि किञ्चिदेव हितं वचः।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे ११
जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ।
लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे॥ १२
येषु भारं समासाद्य राज्ये मतिमकुर्महि।
ते सन्त्यज्य तनूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिं
वयं त्विह विना भूता गुणवद्भिर्महारथैः।
कृपणं वर्तयिष्याम पातयित्वा नृपान्बहून्॥
सर्वैरथ च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः।
कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि दुरासदः॥ १५
इन्द्रकार्मुकतुल्याभमिन्द्रकेतुमिवोच्छ्रितम्।
वानरं केतुमासाद्य सञ्चचाल महाचमूः १६

सिंहनादाच्च भीमस्य
पाञ्चजन्यस्वनेन च।
गाण्डीवस्य च निर्घोषा-
त्संहृष्यन्ति मनांसि नः॥ १७

चरन्तीव महाविद्युन्मुष्णन्ती नयनप्रभाम्।
अलातमिव चाविद्धं गाण्डीवं समदृश्यत १८
जाम्बूनदविचित्रं च धूयमानं महद्धनुः।
दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव॥ १९
श्वेताश्च वेगसम्पन्नाः शशिकाशसमप्रभाः।
पिबन्त इव चाकाशं रथे युक्तास्तु वाजिनः
उह्यमानाश्च कृष्णेन वायुनेव बलाहकाः।
जाम्बूनदविचित्राङ्गा वहन्ते चार्जुनं रणे॥ २१
तावकं तद्बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविशारदः।
गहनं शिशिरे कक्षं ददाहाग्निरिवोल्बणः २२
गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम्।
धनञ्जयमपश्याम चतुर्दंष्ट्रमिव द्विपम्॥ २३
विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान्
धनञ्जयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम्॥ २४
त्रासयन्तं तथा योधान्धनुर्घोषेण पाण्डवम्।
भूय एनमपश्याम सिंहं मृगगणानिव॥ २५
सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम्।
आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विचेरतुः॥
अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत।
संग्रामस्यातिघोरस्य वध्यतां चाभितो युधि
वायुनेव विधूतानि तव सैन्यानि सर्वतः।
शरदंभोदजालानि व्यशीर्यन्त समन्ततः २८
तां नावमिव पर्यस्तां वातधूतां महार्णवे।
तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत्
क्व नु ते सूतपुत्रोऽभूत्क्व नु द्रोणः सहानुगः।
अहं क्व च क्व चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क्व नु
दुःशासनश्च ते भ्राता भ्रातृभिः सहितः क्व नु
बाणगोचरसंप्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम्॥ ३१
सम्बन्धिनस्ते भ्रातॄंश्च सहायान्मातुलांस्तथा
सर्वान्विक्रम्य मिषतो लोकमाक्रम्य मूर्धनि
जयद्रथो हतो राजन्किं नु शेषमुपास्महे।
को हीह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पाण्डवम्

तस्य चास्त्राणि दिव्यानि
विविधानि महात्मनः।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो
धैर्याणि हरते हि नः॥ ३४

नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका।
नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलतां गता ३५
ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः।
चरिष्यति महाबाहुः कक्षेष्वग्निरिव ज्वलन्
सात्यकेश्चैव यो वेगो भीमसेनस्य चोभयोः।
दारयेच्च गिरीन्सर्वान् शोषयेच्चैव सागरान्
उवाच वाक्यं यद्भीमः सभामध्ये विशांपते
कृतं तत्सफलं तेन भूयश्चैव करिष्यति॥ ३८
प्रमुखस्थे तदा कर्णे बलं पाण्डवरक्षितम्।
दुरासदं तदा गुप्तं व्यूढं गाण्डीवधन्वना ३९

युष्माभिस्तानि चीर्णानि
यान्यसाधूनि साधुषु।
अकारणकृतान्येव
तेषां वः फलमागतम्॥ ४०

आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः
स ते संशयितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ ४१
रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्।
भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतम्
हीयमानेन वै सन्धिः पर्येष्टव्यः समेन वा।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः॥ ४३
ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीना स्म बलशक्तितः।
तदत्र पाण्डवैः सार्धं सन्धिं मन्ये क्षमं प्रभो

---

कृष्णो नेत्रं नेता यस्य स तथा॥ १५॥ संहृष्यन्ति संहरिष्यन्ति इडभाव आर्षः। मनांसि आत्मानं संहरिष्यन्ति मूढानि भविष्यन्तीत्यर्थः। संमुह्यन्तीति पाठान्तरम्॥ १७॥ वर्तमानस्य संग्रामस्य अभितो वध्यतां वध्यमानानां च अद्य सप्तदशाहानि जातानीत्यन्वयः जातानीति शेषः॥ २७॥

न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते ।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविन्दते
प्रणिपत्य हि राजानं राज्यं यदि लभेमहि ।
श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन्गन्तुः पराभवम्
वैचित्रवीर्यवचनात्कृपाशीलो युधिष्ठिरः ।
विनियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्दवचनेन च
यद्ब्रूयाद्धि हृषीकेशो राजानमपराजितम् ।
अर्जुनं भीमसेनं च सर्वे कुर्युरसंशयम् ॥ ४८

नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु ।
धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः
एतत्क्षेममहं मन्ये न च पार्थैश्च विग्रहम् ।
न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात्
पथ्यं राजन्ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि
इति वृद्धो विलप्यैतत्कृपः शारद्वतो वचः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शुशोच च मुमोह च

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कृपवाक्ये
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना ।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद्विशांपते
ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा धार्तराष्ट्रो महामनाः।
कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परंतपः ॥ २
यत्किंचित्सुहृदा वाच्यं तत्सर्वं श्रावितो ह्यहं
कृतं च भवता सर्वं प्राणान्संत्यज्य युध्यता
गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः ।
पाण्डवैरतितेजोभिर्लोकस्त्वामनुदृष्टवान् ॥
सुहृदा यदिदं वाक्यं भवता श्रावितो ह्यहम्
न मां प्रीणाति तत्सर्वं मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥
हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमम् ।
उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते ॥
राज्याद्विनिकृतोऽस्माभिः
कथं सोऽस्मासु विश्वसेत् ।
अक्षद्यूते च नृपति-
र्जितोऽस्माभिर्महाधनः ॥ ७
स कथं मम वाक्यानि श्रद्दध्याद्भूय एव तु ।
तथा दौत्येन संप्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः॥
प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्माविचारितम् ।
स च मे वचनं ब्रह्मन्कथमेवाभिमन्यते ॥ ९
विललाप च यत्कृष्णा सभामध्ये समेयुषी ।
न तन्मर्षयते कृष्णो न राज्यहरणं तथा ॥ १०

एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योन्यमभिसंश्रितौ ।
पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत्प्रभो ॥
स्वस्रीयं निहतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः
कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत् ॥
अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः ।
स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः ॥
मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः
प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत् ॥
उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चाबद्धकङ्कटौ* ।
कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ ॥ १५
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह ।
तौ कथं मद्धिते यत्नं कुर्यातां द्विजसत्तम ॥
दुःशासनेन यत्कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ।
परिक्लिष्टा सभामध्ये सर्वलोकस्य पश्यतः ॥
तथा विवसनां दीनां स्मरन्त्यद्यापि पाण्डवाः
न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते परंतपाः ॥
यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता
स्थण्डिले नित्यदा शेते यावद्वैरस्य यातनम्
उग्रं तेपे तपः कृष्णा भर्तॄणामर्थसिद्धये ।
निक्षिप्य मानं दर्पं च वासुदेवसहोदरा ॥२०
कृष्णायाः प्रेष्यवद्भूत्वा शुश्रूषां कुरुते सदा ।
इति सर्वं समुन्नद्धं न निर्वाति कथञ्चन ॥२१

---

असंशयं गतवैरमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः॥४

५

एवमुक्तस्ततो राजेति स्पष्टार्थः ॥ १ ॥ * उरश्छदः कङ्कटक इत्यमरः तनुत्रमित्यर्थः ।

अभिमन्योर्विनाशेन स सन्धेयः कथं मया ।
कथं च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बरां
पाण्डवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथम्
उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा
युधिष्ठिरं कथं पश्चा-
दनुयास्यामि दासवत् ।
कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान्
दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ॥ २४
कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम्
नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया
न तु सन्धिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथञ्चन ।
सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परंतप ॥ २६
नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः
इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः ॥ २७
प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः
शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम् ।
भृत्या मे सुभृतास्तात
दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः ॥ २८
नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पाण्डवान्वक्तुमीदृशम् ।
जितानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम् ॥
भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया
पितॄणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः ॥
न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः ।
इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा
गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम् ।
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥ ३२
अरण्ये यो विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः ।
क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ३३
कृपणं विलपन्नार्तो जरयाऽभिपरिप्लुतः ।
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः ॥
त्यक्त्वा तु विविधान् भोगान्
प्राप्तानां परमां गतिम् ।
अपीदानीं सुयुद्धेन
गच्छेयं यत्सलोकताम् ॥ ३५
शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
धीमतां सत्यसन्धानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम्
शस्त्रावभृथपूतानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे ।
मुदा नूनं प्रपश्यन्ति युद्धे ह्यप्सरसां गणाः ॥
पश्यन्ति नूनं पितरः पूजितान्सुरसंसदि ।
अप्सरोभिः परिवृतान्मोदमानांस्त्रिविष्टपे ॥
पन्थानममरैर्यान्तं शूरैश्चैवानिवर्तिभिः ।
अपि तत्संगतं मार्गं वयमध्यारुहेमहि ॥ ३९
पितामहेन वृद्धेन तथाऽऽचार्येण धीमता ।
जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च ॥ ४०
घटमाना मदर्थेऽस्मिन् हताः शूरा जनाधिपाः
शेरते लोहिताक्ताङ्गाः संग्रामे शरविक्षताः ॥
उत्तमास्त्रविदः शूरा
यथोक्तक्रतुयाजिनः ।
त्यक्त्वा प्राणान् यथान्याय-
मिन्द्रसद्मसु धिष्ठिताः ॥ ४२
तैः स्वयं रचितो मार्गो दुर्गमो हि पुनर्भवेत् ।
संपतद्भिर्महावेगैर्यास्यद्भिरिह सद्गतिम् ॥ ४३
ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन् ।
ऋणं तत्प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे ॥
घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान् ।
जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद्ध्रुवम्
कीदृशं च भवेद्राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः ।
सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पाण्डवम्
सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम्
सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥
एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे संपूज्य तद्वचः ।
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः संबभाषिरे
पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ।
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ४९
ततो वाहान्समाश्वास्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ५०
आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे ।
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम्
तव पुत्रकृतोत्साहाः पर्यवर्तन्त ते ततः ।
पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा ।
सर्वे राजन्यवर्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनवाक्ये
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

सञ्जय उवाच ।
अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः
सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥ १
शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः २
सुषेणोऽरिष्टसेनश्च धृतसेनश्च वीर्यवान् ।
जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ३
रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः
नालभन् शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम्
तेऽब्रुवन्सहितास्तत्र राजानं शल्यसन्निधौ ।
कृतयत्ना रणे राजन्सम्पूज्य विधिवत्तदा ५
कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्धुमर्हसि ।
येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम् ॥ ६
ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम्
सर्वयुद्धविभावज्ञमन्तकप्रतिमं युधि ॥ ७
स्वङ्गं प्रच्छन्नशिरसं कम्बुग्रीवं प्रियंवदम् ।
व्याकोशपद्मपत्राक्षं व्याघ्रास्यं मेरुगौरवम् ८
स्थाणोर्वृषस्य सदृशं स्कन्धनेत्रगतिस्वरैः ।
पुष्टश्लिष्टायतभुजं सुविस्तीर्णवरोरसम् ॥ ९
बले जवे च सदृश-
मरुणानुजवातयोः ।
आदित्यस्यार्चिषा तुल्यं
बुद्ध्या चोशनसा समम् ॥ १०
कान्तिरूपमुखैश्वर्यै-
स्त्रिभिश्चन्द्रमसा समम् ।
काञ्चनोपलसंघातैः
सदृशं श्लिष्टसन्धिकम् ॥ १२
सुवृत्तोरुकटीजंघं सुपादं स्वङ्गुलीनखम् ।
स्मृत्वा स्मृत्वैव तु गुणान्धात्रा यत्नाद्विनिर्मितं
सर्वलक्षणसम्पन्नं निपुणं श्रुतिसागरम् ।
जेतारं तरसाऽरीणामजेयमरिभिर्बलात् १३
दशाङ्गं यश्चतुष्पादामिष्वस्त्रं वेद तत्त्वतः ।
साङ्गांस्तु चतुरो वेदान्सम्यगाख्यानपञ्चमान्
आराध्य त्र्यम्बकं यत्नाद्व्रतैरुग्रैर्महातपाः ।
अयोनिजायामुत्पन्नो द्रोणेनायोनिजेन यः ॥
तमप्रतिमकर्माणं रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
पारगं सर्वविद्यानां गुणार्णवमनिन्दितम् १६
तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत् ।
यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान्
गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः ।
भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम
द्रौणिरुवाच ।
अयं कुलेन रूपेण
तेजसा यशसा श्रिया ।
सर्वैर्गुणैः समुदितः
शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ।
भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा
कृतज्ञोऽस्माननुपागतः ।
महासेनो महाबाहु-
र्महासेन इवापरः ॥ २०
एनं सेनापतिं कृत्वा
नृपतिं नृपसत्तम ।
शक्यः प्राप्तुं जयोऽस्माभि-
र्देवैः स्कन्दमिवाजितम् ॥ २१
तथोक्ते द्रोणपुत्रेण सर्व एव नराधिपाः ।
परिवार्य स्थिताः शल्यं जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥
युद्धाय च मतिं चक्रुरावेशं च परं ययुः ।
ततो दुर्योधनो भूमौ स्थित्वा रथवरे स्थितम्
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा द्रोणभीष्मसमं रणे ।
अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल
यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः ।
स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे २५

६

**अथेति** । प्रस्थे शिखरे ॥ १ ॥ ततः तत्र ॥ ३ ॥ सर्वेषां युद्धगतानां विविधानां भावानामभिप्रायाणां ज्ञं सर्वयुद्धविभावज्ञम् ॥ ७ ॥ स्वंगं शोभनांगम् ॥ ८ ॥ स्थाणोः संबन्धिनो वृषस्य ॥ ९ ॥ अर्चिषा ज्योतिषा तुल्यं तुल्यतेजसं अर्चिषा आदित्यस्य तुल्यामिति वा ॥१० दशांगम् । '**व्रतं प्राप्तिर्धृतिः पुष्टिः स्मृतिःक्षेपोऽरिभेदनम् चिकित्सोद्दीपनं कृष्टिरिष्वस्त्रं** स्याद्दशाङ्गकम् ॥ **दीक्षा शिक्षाऽऽत्मरक्षा च एतत्साधनमेव च** ॥ धनुर्वेदस्य **चत्वार** एते **पादाः** प्रकीर्तिताः' ॥ १४ ॥ तुभ्यं तव ॥ १७ ॥ महासेन इव कार्तिकेय इव महती सेना यस्य स महासेनः ॥ २० ॥

रणं याते च भवति
पाण्डवा मन्दचेतसः ।
भविष्यन्ति सहामात्याः
पञ्चालाश्च निरुद्यमाः ॥ २६
दुर्योधनवचः श्रुत्वा
शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो
राजानं राजसन्निधौ ॥ २७
शल्य उवाच ।
यत्तु मां मन्यसे राजन्
कुरुराज करोमि तत् ।
त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं
प्राणा राज्यं धनानि च ॥ २८
दुर्योधन उवाच ।
सैनापत्येन वरये
त्वामहं मातुलातुलम् ।
सोऽस्मान्पाहि युधां श्रेष्ठ
स्कन्दो देवानिवाहवे ॥ २९
अभिषिच्यस्व राजेन्द्र
देवानामिव पावकिः ।
जहि शत्रून् रणे वीर
महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यदुर्योधनसंवादे
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

सञ्जय उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो मद्रराजः प्रतापवान्
दुर्योधनं तदा राजन् वाक्यमेतदुवाच ह ॥
दुर्योधन महाबाहो शृणु वाक्यविदां वर ।
यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ
न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथञ्चन ।
उद्यतां पृथिवीं सर्वांससुरासुरमानवाम् ३
योधयेयं रणमुखे
संक्रुद्धः किमु पाण्डवान् ।
विजेष्यामि रणे पार्थान्
सोमकांश्च समागतान् ॥ ४
अहं सेनाप्रणेता ते भविष्यामि न संशयः ।
तं च व्यूहं विधास्यामि न तरिष्यन्ति यं परे
इति सत्यं ब्रवीम्येष दुर्योधन न संशयः ।
एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा ॥ ६
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम ।
विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशांपते ७
अभिषिक्ते ततस्तस्मिन्सिंहनादो महानभूत् ।
तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत
कृष्टाश्चासंस्तथा योधा मद्रकाश्च महारथाः ।
तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ९
जय राजंश्चिरञ्जीव जहि शत्रून्समागतान् ।
तव बाहुबलं प्राप्य धार्तराष्ट्रा महाबलाः १०
निखिलाः पृथिवीं सर्वां प्रशासन्तु हतद्विषः
त्वं हि शक्तो रणे जेतुं ससुरासुरमानवान् ॥
मर्त्यधर्माण इह तु किमु सृञ्जयसोमकान् ।
एवं संपूज्यमानस्तु मद्राणामधिपो बली १२
हर्षं प्राप तदा वीरो दुरामपकृतात्मभिः ।
शल्य उवाच ।
अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चालान्सह पाण्डवैः
निहनिष्यामि वा राजन्
स्वर्गं यास्यामि वा हतः ।
अद्य पश्यन्तु मां लोका
विचरन्तमभीतवत् ॥ १४
अद्य पाण्डुसुताः सर्वे वासुदेवः ससात्यकिः
पञ्चालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः । १५
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः
विक्रमं मम पश्यन्तु धनुषश्च महद्बलम् ॥ १६

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

**एतच्छ्रुत्वेति** ॥ १ ॥ न तरिष्यन्तीत्यत्र न भविष्यन्तीति पाठे यं प्राप्य न भविष्यन्ति मरिष्यन्तीत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ५ ॥ क्लिष्टरूपः पराजयनिश्चयात् ॥ ७ ॥ कृष्टा आहूताः ॥ ९ ॥ मर्त्यधर्माणः मर्त्यधर्मणः ॥ १२॥

लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुजयोश्च बलं युधि ।
अद्य पश्यन्तु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः
यादृशं मे बलं बाह्वोः सम्पदस्त्रेषु या च मे ।
अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ॥
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः
अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः
द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे ।
विचरिष्ये रणे युध्यन्प्रियार्थं तव कौरव २०

सञ्जय उवाच ।

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद ।
न कर्णं व्यसनं किञ्चिन्मेनिरे तत्र भारत २१
हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः ।
मेनिरे निहतान्पार्थान्मद्रराजवशं गतान् २२
प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ ।
तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साऽभवत्
सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः
वार्ष्णेयमब्रवीद्वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव ।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५
एतज्ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम् ।
भवान्नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम्
तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधिपम् ।
आर्तायनिमहं जाने यथा तत्त्वेन भारत २७
वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः ।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च
यादृग्भीष्मस्तथा द्रोणो यादृक्कर्णश्च संयुगे ।
तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥
युद्ध्यमानस्य तस्याहं चिन्तयानश्च भारत ।
योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥
शिखण्ड्यर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत
धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ३१
मद्रराजो महाराजः
सिंहद्विरदविक्रमः ।
विचरिष्यत्यभीः काले
कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥ ३२
तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३३
स देवलोके कृत्स्नेऽस्मि-
न्नान्यस्त्वत्तः पुमान् भवेत् ।
मद्रराजं रणे क्रुद्धं
यो हन्यात् कुरुनन्दन ॥ ३४
अहन्यहनि युध्यन्तं क्षोभयन्तं बलं तव ।
तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ॥
अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्तराष्ट्रेण सत्कृतः ।
तवैव हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ॥ ३६
तस्मिन्हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम् ॥
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम् ।
जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥
न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥ ३९
द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसंभवम्
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम्
यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव ।
तद्दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥ ४१
एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः
केशवे तु तदा याते धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विसृज्य सर्वान् भ्रातॄंश्च पञ्चालानथ सोमकान्
सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः ।
ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ।
गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ॥ ४५
बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं च मुदितं नृप ।
सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ४६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यसैनापत्याभिषेके
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुजयोश्च बलं युधि ।
अद्य पश्यन्तु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः
यादृशं मे बलं बाह्वोः सम्पदस्त्रेषु या च मे ।
अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ॥
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः
अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः
द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे ।
विचरिष्ये रणे युध्यन्प्रियार्थं तव कौरव २०

सञ्जय उवाच ।

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद ।
न कर्णं व्यसनं किञ्चिन्मेनिरे तत्र भारत २१
हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः ।
मेनिरे निहतान्पार्थान्मद्रराजवशं गतान् २२
प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ ।
तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साऽभवत्
सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः
वार्ष्णेयमब्रवीद्वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव ।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५
एतज्ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम् ।
भवान्नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम्
तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधिपम् ।
आर्तायनिमहं जाने यथा तत्त्वेन भारत २७
वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः ।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च
यादृग्भीष्मस्तथा द्रोणो यादृक्कर्णश्च संयुगे ।
तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥
युद्ध्यमानस्य तस्याहं चिन्तयानश्च भारत ।
योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥
शिखण्ड्यर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत
धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ३१
मद्रराजो महाराजः
सिंहद्विरदविक्रमः ।
विचरिष्यत्यभीः काले
कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥ ३२
तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३३
स देवलोके कृत्स्नेऽस्मि-
न्नान्यस्त्वत्तः पुमान् भवेत् ।
मद्रराजं रणे क्रुद्धं
यो हन्यात् कुरुनन्दन ॥ ३४
अहन्यहनि युध्यन्तं क्षोभयन्तं बलं तव ।
तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ॥
अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्तराष्ट्रेण सत्कृतः ।
तवैव हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ॥ ३६
तस्मिन्हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम् ॥
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम् ।
जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥
न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥ ३९
द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसंभवम्
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम्
यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव ।
तद्दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥ ४१
एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः
केशवे तु तदा याते धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विसृज्य सर्वान्भ्रातॄंश्च पञ्चालानथ सोमकान्
सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः ।
ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ।
गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ॥ ४५
बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं च मुदितं नृप ।
सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ४६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यसैनापत्याभिषेके
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान् युधि
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ॥३३
ससैन्यौ सहसैन्यौ तावुपतस्थतुराहवे ।
तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान् रणे
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे३५
कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पाण्डवेषु च संयुगे ।
सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु सञ्जय ॥ ३६
मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद्बलम् ।

सञ्जय उवाच ।

यथा वयं परे राजन् युद्धाय समुपस्थिताः
यावच्चासीद्बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे ।
एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥ ३८
दश दन्तिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत ॥ ३९
पत्तिकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तवाभवत् ।
रथानां षट्सहस्राणि षट्सहस्राश्च कुञ्जराः ॥
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत ।
एतद्बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे ॥ ४१
एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ ।
एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराजवशे स्थिताः ॥
पाण्डवान्प्रत्युदीयुस्ते जयगृद्धाः प्रमन्यवः ।
तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः ॥
उपयाता नरव्याघ्राः पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
इमे ते च बलौघेन परस्परवधैषिणः ॥ ४४
उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां संध्यां प्रति प्रभो
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥४५

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि व्यूहनिर्माणे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

सञ्जय उवाच ।

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम् ।
सृञ्जयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम् ॥ १
नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः ।
वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम्
गजानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान्
अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले ॥ ३
नागैरभ्याहताः केचित् सरथा रथिनोऽपतन्
व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः
हयौघान्पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः ।
शरैः संप्रेषयामासुः परलोकाय भारत ॥ ५
सादिनः शिक्षिता राजन्परिवार्य महारथान्
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन्प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा
धन्विनः पुरुषाः केचित्परिवार्य महारथान्
एकं बहव आसाद्य प्रययुर्यमसादनम् ॥ ७
नागान् रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः ।
सान्तरायोधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम् ॥ ८
तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान्बहून् ।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः ॥ ९
नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे ।
शक्ति-तोमर-नाराचैर्निजघ्ने तत्र भारत ॥१०
पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः ।
रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥
हयाश्च पर्यधावन्त चामरैरुपशोभिताः ।
हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ॥
तेषां तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशांपते
अशोभत यथा नारी करजैः क्षतविक्षता ॥
वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
पत्तीनां चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥
वादित्राणां च घोषेण शङ्खानां निनदेन च ।
अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥१५
धनुषां कूजमानानां शस्त्रौघानां च दीप्यताम्
कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किञ्चन १६

पत्तिकोटी इति द्विवचनम् ॥४१॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

तत इति ॥ १ ॥

८

सञ्जय उवाच ।

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्सन्नह्यन्तां महारथाः १
राज्ञश्च मतमाज्ञाय समनह्यत सा चमूः ।
अयोजयन् रथांस्तूर्णं पर्यधावंस्तथा परे ॥ २
अकल्प्यन्त च मातङ्गाः समनह्यन्त पत्तयः ॥
रथानास्तरणोपेतांश्चक्रुरन्ये सहस्रशः ॥ ३
वादित्राणां च निनदः प्रादुरासीद्विशांपते ।
आयोधनार्थं योधानां बलानां चाप्युदीर्यताम्
ततो बलानि सर्वाणि सेनाशिष्टानि भारत
प्रस्थितानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
शल्यं सेनापतिं कृत्वा मद्रराजं महारथाः ।
प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः ॥ ६
ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः
अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रुरादृताः
न न एकेन योद्धव्यं कथञ्चिदपि पाण्डवैः ८

यो ह्येकः पाण्डवैर्युध्ये-
द्यो वा युध्यन्तमुत्सृजेत् ।
स पञ्चभिर्भवेद्युक्तः
पातकैश्चोपपातकैः ॥ ९

अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च ह ।
एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः १०
मद्रराजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन् परान् ।
तथैव पाण्डवा राजन् व्यूह्य सैन्यं महारणे ॥

अभ्ययुः कौरवान् राजन्
योत्स्यमानाः समन्ततः ।
तद्बलं भरतश्रेष्ठ
क्षुब्धार्णवसमस्वनम् ॥ १२

समुद्धूतार्णवाकारमुद्धूतरथकुञ्जरम् ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

द्रोणस्य चैव भीष्मस्य राधेयस्य च मे श्रुतं
पातनं शंस मे भूयः शल्यस्याथ सुतस्य मे ।
कथं रणे हतः शल्यो धर्मराजेन सञ्जय ॥ १४
भीमेन च महाबाहुः पुत्रो दुर्योधनो मम ।

सञ्जय उवाच ।

क्षयं मनुष्यदेहानां तथा नागाश्वसंक्षयम् ॥
शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा संग्रामं शंसतो मम
आशा बलवती राजन्पुत्राणां तेऽभवत्तदा
हते द्रोणे च भीष्मे च सूतपुत्रे च पातिते ।
शल्यः पार्थान्रणे सर्वान्निहनिष्यति मारिष ॥
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ।
मद्रराजं च समरे समाश्रित्य महारथम् ॥
नाथवन्तं तदाऽऽत्मानममन्यन्त सुतास्तव ।
यदा कर्णे हते पार्थाः सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
तदा तु तावकान् राजन्नाविवेश महद्भयम् ।
तान्समाश्वास्य योधांस्तु मद्रराजः प्रतापवान्
व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ।
प्रत्युद्ययौ रणे पार्थान्मद्रराजः प्रतापवान् ॥
विधुन्वन्कार्मुकं चित्रं भारघ्नं वेगवत्तरम् ।
रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः ॥२२
तस्य सूतो महाराज रथस्थोऽशोभयद्रथम् ।
स तेन संवृतो वीरो रथेनामित्रकर्षणः ॥ २३
तस्थौ शूरो महाराज पुत्राणां ते भयप्रणुत् ।
प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः ॥
मद्रकैः सहितो वीरैः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः ।
सव्येऽभूत्कृतवर्मा च त्रिगर्तैः परिवारितः ॥
गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह ।
अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत्काम्बोजैः परिवारितः
दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुङ्गवैः ।
हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः ॥
प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः ।
पाण्डवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिंदमाः
त्रिधा भूता महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन् ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः
शल्यस्य वाहिनीं हन्तुमभिदुद्रुवुराहवे ।
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकेन संवृतः ।
शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभः ।
हार्दिक्यं च महेष्वासमर्जुनः शत्रुसैन्यहा ॥
संशप्तकगणांश्चैव वेगितोऽभिविदुद्रुवे ।
गौतमं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः ॥

---

८

व्यतीतायामिति ॥ १ ॥

अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान् युधि
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ॥३३
ससैन्यौ सहसैन्यौ तावुपतस्थतुराहवे ।
तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान् रणे
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे ३५
कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पाण्डवेषु च संयुगे ।
सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु सञ्जय ॥ ३६
मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद्बलम् ।

सञ्जय उवाच ।

यथा वयं परे राजन् युद्धाय समुपस्थिताः
यावच्चासीद्बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे ।
एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥ ३८
दश दन्तिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत ॥ ३९
पत्तिकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तवाभवत् ।
रथानां षट्सहस्राणि षट्सहस्राश्च कुञ्जराः ॥
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत ।
एतद्बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे ॥ ४१
एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ ।
एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराजवशे स्थिताः ॥
पाण्डवान्प्रत्युदीयुस्ते जयगृद्धाः प्रमन्यवः ।
तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः ॥
उपयाता नरव्याघ्राः पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
इमे ते च बलौघेन परस्परवधैषिणः ॥ ४४
उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां संध्यां प्रति प्रभो
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥४५

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि व्यूहनिर्माणे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

सञ्जय उवाच ।

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम् ।
सृञ्जयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम् ॥ १
नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः ।
वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम्
गजानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान्
अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले ॥ ३
नागैरभ्याहताः केचित् सरथा रथिनोऽपतन्
व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः
हयौघान्पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः ।
शरैः संप्रेषयामासुः परलोकाय भारत ॥ ५
सादिनः शिक्षिता राजन्परिवार्य महारथान्
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन्प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा
धन्विनः पुरुषाः केचित्परिवार्य महारथान्
एकं बहव आसाद्य प्रयुर्यमसादनम् ॥ ७
नागान् रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः ।
सान्तरायोधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम् ॥ ८
तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान्बहून् ।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः ॥ ९
नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे ।
शक्ति-तोमर-नाराचैर्निजघ्ने तत्र भारत ॥१०
पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः ।
रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥
हयाश्च पर्यधावन्त चामरैरुपशोभिताः ।
हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ॥
तेषां तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशांपते
अशोभत यथा नारी करजैः क्षतविक्षता ॥
वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
पत्तीनां चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥
वादित्राणां च घोषेण शंखानां निनदेन च ।
अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥१५
धनुषां कूजमानानां शस्त्रौघानां च दीप्यताम्
कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किञ्चन १६

---

पत्तिकोटी इति द्विवचनम् ॥४१॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

तत इति ॥ १ ॥

बहवो बाहवश्छिन्ना नागराजकरोपमाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते वेगं कुर्वन्ति दारुणम् १७
शिरसां च महाराज पततां धरणीतले ।
च्युतानामिव तालेभ्यस्तालानां श्रूयते स्वनः ।
शिरोभिः पतितैर्भाति रुधिरार्द्रैर्वसुन्धरा ।
तपनीयनिभैः काले नलिनैरिव भारत १९
उद्वृत्तनयनैस्तैस्तु गतसत्त्वैः सुविक्षतैः ।
व्यभ्राजत मही राजन्पुण्डरीकैरिवावृता २०
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः सकेयूरैर्महाधनैः ।
पतितैर्भाति राजेन्द्र महाशक्रध्वजैरिव २१
ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां विनिकृत्तैर्महाहवे ।
हस्तिहस्तोपमैरन्यैः संवृतं तद्रणाङ्गनम् ॥ २२
कबन्धशतसंकीर्णं छत्रचामरसंकुलम् ।
सेनावनं तच्छुशुभे वनं पुष्पाचितं यथा २३
तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत् ।
दृश्यन्ते रुधिराक्ताङ्गाः पुष्पिता इव किंशुकाः
मातङ्गाश्चाप्यदृश्यन्त शर-तोमरपीडिताः ।
पतन्तस्तत्र तत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे ॥ २५
गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः ।
व्यदीर्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव २६
ते गजा घनसङ्काशाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
वज्रनुन्ना इव बभुः पर्वता युगसंक्षये ॥ २७
हयानां सादिभिः सार्धं पतितानां महीतले
राशयः स्म प्रदृश्यन्ते गिरिमात्रास्ततस्ततः
सञ्जज्ञे रणभूमौ तु परलोकवहा नदी ।
शोणितोदा रथावर्ता ध्वजवृक्षास्थिशर्करा ॥
भुजनक्रा धनुःस्रोता हस्तिशैला हयोपला ।
मेदोमज्जाकर्दमिनी छत्रहंसा गदोडुपा ॥ ३०
कवचोष्णीषसंछन्ना पताकारुचिरद्रुमा ।
चक्रचक्रावलीजुष्टा त्रिवेणुदण्डकावृता ३१
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धनी ।
प्रावर्तत नदी रौद्रा कुरुसृञ्जयसंकुला ॥ ३२
तां नदीं परलोकाय वहन्तीमतिभैरवाम् ।
तेरुर्वाहननौभिस्तै शूराः परिघबाहवः ३३
वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे विशांपते ।
चतुरङ्गक्षये घोरे पूर्वदेवासुरोपमे ॥ ३४
व्याक्रोशन्बान्धवानन्ये तत्र तत्र परन्तप ।
क्रोशद्भिर्दयितैरन्ये भयार्ता न निवर्तिरे ॥ ३५
निर्मर्यादे तथा युद्धे वर्तमाने भयानके ।
अर्जुनो भीमसेनश्च मोहयांचक्रतुः परान् ३६
सा वध्यमाना महती सेना तव नराधिप ।
अमुह्यत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ ३७
मोहयित्वा च तां सेनां भीमसेनधनञ्जयौ ।
दध्मतुर्वारिजौ तत्र सिंहनादांश्च चक्रतुः ३८
श्रुत्वैव तु महाशब्दं धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धर्मराजं पुरस्कृत्य मद्रराजमभिद्रुतौ ॥ ३९
तत्राश्चर्यमपश्याम घोररूपं विशांपते ।
शल्येन सङ्गताः शूरा यदयुध्यन्त भागशः
माद्रीपुत्रौ तु रभसौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।
अभ्ययातां त्वरायुक्तौ जिगीषन्तौ परन्तप
ततो न्यवर्तत बलं तावकं भरतर्षभ ।
शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥
वध्यमाना चमूः सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव ।
भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना शरवृष्टिभिः ४३
हाहाकारो महाञ्जज्ञे
योधानां तत्र भारत ।
तिष्ठ तिष्ठेति चाप्यासी-
द्द्रावितानां महात्मनाम् ॥ ४४
क्षत्रियाणां सहान्योन्यं
संयुगे जयमिच्छताम् ।
प्राद्रवन्नेव संभग्नाः
पाण्डवैस्तव सैनिकाः ॥ ४५
त्यक्त्वा युद्धे प्रियान्पुत्रान्
भ्रातॄनथ पितामहान् ।
मातुलान्भागिनेयांश्च
वयस्यानपि भारत ॥ ४६
हयान्द्विपांस्त्वरयन्तो योधा जग्मुः समंततः
आत्मत्राणकृतोत्साहास्तावका भरतर्षभ ४७

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

तालानां तालफलानाम् ॥ १८ ॥ न निवर्तिरे न निवर्तिताः ॥३५॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

# १०

सञ्जय उवाच ।
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान् ।
उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान्महाजवान्
एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता ॥ २
अत्र मां प्रापय क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम् ।
न समर्थो हि मे पार्थः स्थातुमद्य पुरो युधि ३
एवमुक्तस्ततः प्रायान्मद्रराजस्य सारथिः ।
यत्र राजा सत्यसन्धो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ४
प्रापतच्च सहसा पाण्डवानां महद्बलम् ।
दधारैको रणे शल्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ५
पाण्डवानां बलौघस्तु शल्यमासाद्य मारिष ।
व्यतिष्ठत तदा युद्धे सिन्धोर्वेग इवाचलम् ६
मद्रराजं तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय धिष्ठितम् ।
कुरवः सन्न्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ७
तेषु राजन्निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः ।
प्रावर्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ८
समार्छच्चित्रसेनं तु नकुलो युद्धदुर्मदः ।
तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ ९
मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ ।
शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे ॥ १०
नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य च ।
उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथचर्याविशारदौ ११
परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ ।
चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ १२
नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेऽच्छिनद्धनुः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥
त्रिभिः शरैरसंभ्रान्तो ललाटे वै समार्पयत् ।
हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे ॥
तथा ध्वजं सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत्
स शत्रुभुजनिर्मुक्तैर्ललाटस्थैस्त्रिभिः शरैः १५
नकुलः शुशुभे राजंस्त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ।
स छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च
रथादवातरद्वीरः शैलाग्रादिव केसरी ।
पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिं समासृजत् १७
नकुलोऽप्यग्रसत्तां वै चर्मणा लघुविक्रमः ।
चित्रसेनरथं प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः १८
आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम् ॥ १९
चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः ।
स पपात रथोपस्थे दिवाकरसमद्युतिः ॥ २०
चित्रसेनं विशस्तं तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः ॥
साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान्
विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तौ विविधाञ्शरान्
ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनां वरम्
जिघांसन्तौ यथा नागं व्याघ्रौ राजन्महावने
तावभ्यधावतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम् ।
शरौघान्सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा
स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पाण्डवः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय रथमारुह्य वेगवान् २५
अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः ।
तस्य तौ भ्रातरौ राजञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
रथं विशकलीकर्तुं समारब्धौ विशांपते ।
ततः प्रहस्य नकुलश्चतुर्भिश्चतुरो रणे ॥ २७
जघान निशितैर्बाणैः सत्यसेनस्य वाजिनः ।
ततः सन्धाय नाराचं रुक्मपुङ्खं शिलाशितम्
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः ।
अथान्यं रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् २९
सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्यधावताम् ।
अविध्यत्तावसम्भ्रान्तौ माद्रीपुत्रः प्रतापवान्
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्धनि
सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महद्धनुः ३१
चिच्छेद प्रहसन्युद्धे क्षुरप्रेण महारथः ।
अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्च्छितः ३२
सुषेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे
सत्यसेनस्य च धनुर्हस्तावापं च मारिष ३३
चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ।
अथान्यद्धनुरादाय वेगघ्नं भारसाधनम् ॥ ३४
शरैः संछादयामास समन्तात्पाण्डुनन्दनम्
सन्निवार्य तु तान्बाणान्नकुलः परवीरहा ३५

---

१०

**तत्प्रभग्नमिति** । अध्यायः स्पष्टार्थः ॥ १ ॥ चित्रसेनः कर्णपुत्रः ॥ ९ ॥

सत्यसेनं सुषेणं च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत ।
तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक् पृथगजिह्मगैः ३६
सारथिं चास्य राजेन्द्र शितैर्विव्यधतुः शरैः
सत्यसेनो रथेषां तु नकुलस्य धनुस्तथा ॥ ३७
पृथक् शराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान्
स रथेऽतिरथस्तिष्ठन् रथशक्तिं परामृशत् ३८
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम्
लेलिहानामिव विभो नागकन्यां महाविषाम्
समुद्यम्य च चिक्षेप सत्यसेनस्य संयुगे ।
सा तस्य हृदयं संख्ये बिभेद च तथा नृप ४०
स पपात रथाद्भूमिं गतसत्त्वोऽल्पचेतनः ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४१
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पादातं पाण्डुनन्दनम् ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् ध्वजं छित्त्वा च पञ्चभिः
त्रिभिर्वै सारथिं हत्वा कर्णपुत्रो ननाद ह ॥
नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महारथम् ॥ ४३
सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन् पितरं रणे ।
ततोऽधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम् ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी ।
अन्यत्कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत् ४५
तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम् ।
परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ ॥ ४६
सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः
सुतसोमं तु विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ४७
ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
शरैस्तस्य दिशः सर्वाश्छादयामास वीर्यवान्
ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्धचन्द्रं सुतेजनम् ।
सुवेगवन्तं चिक्षेप कर्णपुत्राय संयुगे ॥ ४९
तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ५०
स हतः प्रापतद्राजन्नकुलेन महात्मना ।
नदीवेगादिवारुग्णस्तीरजः पादपो महान् ॥
कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम् ।
प्रदुद्राव भयात्सेना तावकी भरतर्षभ ॥ ५२
तां तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान् ।
अपालयद्रणे शूरः सेनापतिररिन्दमः । ५३
विभीस्तस्थौ महाराज
व्यवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
सिंहनादं भृशं कृत्वा
धनुःशब्दं च दारुणम् ॥ ५४
तावकाः समरे राजन् रक्षिता दृढधन्वना ।
प्रत्युद्ययुश्च तांस्ते तु समन्ताद्विगतव्यथाः ॥
मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य समन्ततः ।
स्थिता राजन्महासेना योद्धुकामा समन्ततः
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेवमरिन्दमम् ॥ ५७
परिवार्य रणे वीराः सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
बाणशङ्खरवांस्तीव्रान् क्ष्वेडाश्च विविधा दधुः
तथैव तावकाः सर्वे मद्राधिपतिमञ्जसा ।
परिवार्य सुसंरब्धाः पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ ५९
ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्धनम् ।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीद्विशांपते ।
अभीतानां तथा राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥
ततः कपिध्वजो राजन्हत्वा संशप्तकान् रणे
अभ्यवद्रत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दनः६२
तथैव पाण्डवाः सर्वे
धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
अभ्यधावन्त तां सेनां
विसृजन्तः शिताञ्शरान् ॥ ६३
पाण्डवैरवकीर्णानां
संमोहः समजायत ।
न च जज्ञुरनीकानि
दिशो वा विदिशस्तथा ॥ ६४
आपूर्यमाणा निशितैः शरैः पाण्डवचोदितैः
हतप्रवीरा विध्वस्ता वार्यमाणा समन्ततः ॥
कौरव्यवध्यत चमूः पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ।
तथैव पाण्डवं सैन्यं शरै राजन्समन्ततः ६६
रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः ।
ते सेने भृशसन्तप्ते वध्यमाने परस्परम् ॥ ६७
व्याकुले समपद्येतां वर्षासु सरिताविव ।
आविवेश ततस्तीव्रं तावकानां महद्भयम् ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तथाभूते महाहवे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

सञ्जय उवाच।
तस्मिन्विलुलिते सैन्ये वध्यमाने परस्परम्
द्रवमाणेषु योधेषु विद्रवत्सु च दन्तिषु॥ १
कूजतां स्तनतां चैव पदातीनां महाहवे।
निहतेषु महाराज हयेषु बहुधा तदा॥ २
प्रक्षये दारुणे घोरे संहारे सर्वदेहिनाम्।
नानाशस्त्रसमावाये व्यतिषक्तरथद्विपे॥ ३
हर्षणे युद्धशौण्डानां भीरूणां भयवर्धने।
गाहमानेषु योधेषु परस्परवधैषिषु॥ ४
प्राणादाने महाघोरे वर्तमाने दुरोदरे।
संग्रामे घोररूपे तु यमराष्ट्रविवर्धने॥ ५
पाण्डवास्तावकं सैन्यं व्यधमन्निशितैः शरैः
तथैव तावका योधा जघ्नुः पाण्डवसैनिकान्
तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे भीरुभयावहे।
पूर्वाह्णे चापि संप्राप्ते भास्करोदयनं प्रति॥ ७
लब्धलक्षाः परे राजन् रक्षितास्तु महात्मना
अयोधयंस्तव बलं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥
बलिभिः पाण्डवैर्दृप्तैर्लब्धलक्षैः प्रहारिभिः।
कौरव्यसीदत्पृतना मृगीवाग्निसमाकुला॥९
तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम्।
उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात्पाण्डुसुतान्प्रति
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम्।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः॥
पाण्डवा अपि भूपाल समरे जितकाशिनः।
मद्रराजं समासाद्य बिभिदुर्निशितैः शरैः॥
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महारथः।
अर्दयामास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः॥
प्रादुरासन्निमित्तानि नानारूपाण्यनेकशः।
चचाल शब्दं कुर्वाणा मही चापि सपर्वता
सदण्डशूला दीप्ताग्रा दीर्यमाणाः समन्ततः
उल्का भूमिं दिवः पेतुराहत्य रविमण्डलम्
मृगाश्च महिषाश्चापि पक्षिणश्च विशांपते।
अपसव्यं तदा चक्रुः सेनां ते बहुशो नृप॥
भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ।
चरमं पाण्डुपुत्राणां पुरस्तात्सर्वभूभुजाम्॥
शस्त्राग्रेष्वभवज्ज्वाला नेत्राण्याहत्य वर्षती।
शिरःस्वलीयन्त भृशं काकोलूकाश्च केतुषु
ततस्तद्युद्धमत्युग्रमभवत्सहचारिणाम्।
तथा सर्वाण्यनीकानि सन्निपत्य जनाधिप
अभ्ययुः कौरवा राजन्पाण्डवानामनीकिनीं
शल्यस्तु शरवर्षेण वर्षन्निव सहस्रदृक्॥ २०
अभ्यवर्षत धर्मात्मा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
भीमसेनं शरैश्चापि रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः॥
द्रौपदेयांस्तथा सर्वान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
धृष्टद्युम्नं च शैनेयं शिखण्डिनमथापि च॥
एकैकं दशभिर्बाणैर्विव्याध स महाबलः।
ततोऽसृजद्बाणवर्षं घर्मान्ते मघवानिव॥ २३
ततः प्रभद्रका राजन्सोमकाश्च सहस्रशः।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः
भ्रमराणामिव व्राताः शलभानामिव व्रजाः।
ह्रादिन्य इव मेघेभ्यः शल्यस्य न्यपतञ्शराः
द्विरदास्तुरगाश्चार्ताः पत्तयो रथिनस्तथा।
शल्यस्य बाणैरपतन् बभ्रमुर्व्यनदंस्तथा॥ २६
आविष्ट इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च।
प्राच्छादयदरीन्संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः॥
विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्रादो महाबलः।
सा वध्यमाना शल्येन पाण्डवानामनीकिनी
अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद्युधिष्ठिरम्।
तां संमर्द्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः
बाणवर्षेण महता युधिष्ठिरमताडयत्।
तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः
अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्महाद्विपमिवाङ्कुशैः।
तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम्
स निर्भिद्य महात्मानं वेगेनाभ्यपतच्च गाम्
ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः
पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः।
द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्तायनिं शरैः॥ ३३

---

११

**तस्मिन्निति**॥ १॥ **भृग्विति**। सर्वभूभुजां कृत्स्नपृथ्वीपतिनां पाण्डुपुत्राणां पांडवानां चरमं विलोमगणनया प्रथमं युधिष्ठिरमाभिलक्ष्य शुक्रभौमबुधाः सप्तमस्थाने बलावहाः आसन्। एतच्च सर्वभूभुजामिति फलस्य जनकमित्यर्थः॥ १७॥ आहत्य स्पृष्ट्वा वर्षती भुवि पतन्ती कर्षतीति पाठे आहत्य बलेन कर्षयती॥ १८॥

अभ्यवर्षन्महाराज मेघा इव महीधरम् ।
ततो दृष्ट्वा वार्यमाणं शल्यं पार्थैः समन्ततः ॥
कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धावभ्यधावताम् ।
उलूकश्च महावीर्यः शकुनिश्चापि सौबलः ॥
समागम्याथ शनकैरश्वत्थामा महाबलः ।
तव पुत्राश्च कार्त्स्न्येन जुगुपुः शल्यमाहवे ॥
भीमसेनं त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्मा शिलीमुखैः
बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ३७
धृष्टद्युम्नं ततः क्रुद्धो बाणवर्षैरपीडयत् ।
द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणिरभ्ययात् ॥
दुर्योधनो युधांश्रेष्ठ आहवे केशवार्जुनौ ।
समभ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाप्यहनद्बली ॥ ३९
एवं द्वंद्वशतान्यासंस्त्वदीयानां परैः सह ।
घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशांपते ॥
ऋक्षवर्णाञ्जघानाश्वान्
भोजो भीमस्य संयुगे ।
सोऽवतीर्य रथोपस्था-
द्धताश्वात्पाण्डुनन्दनः ॥ ४१
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदापाणिरयुध्यत ।
प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वान् स मद्रराट् ॥
ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनाऽवधीत्
गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ ४३
असंभ्रान्तमसंभ्रान्तो यत्नवान् यत्नवत्तरम् ।
द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः ॥
अविध्यद्दाचार्यसुतो नातिक्रुद्धो हसन्निव ।
पुनश्च भीमसेनस्य जघानाश्वांस्तथाऽऽहवे ॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं हताश्वः पाण्डुनन्दनः ।
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदां क्रुद्धो महाबलः
पोथयामास तुरगान् रथं च कृतवर्मणः ।
कृतवर्मा त्ववप्लुत्य रथात्तस्मादपाक्रमत् ॥४७
शल्योऽपि राजन्संक्रुद्धो
निघ्नन्सोमकपाण्डवान् ।
पुनरेव शितैर्बाणै-
र्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ४८
तस्य भीमो रणे क्रुद्धः संदश्य दशनच्छदम् ।
विनाशायाभिसन्धाय गदामादाय वीर्यवान्
यमदण्डप्रतीकाशां कालरात्रिमिवोद्यताम् ।
गजवाजिमनुष्याणां देहान्तकरणीमति ॥५०
हेमपट्टपरिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वलितामिव ।
शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रकल्पामयोमयीं
चन्दनागुरुपङ्काक्तां प्रमदामीप्सितामिव ।
वसामेदोपदिग्धाङ्गीं जिह्वां वैवस्वतीमिव ॥
पटुघण्टाशतरवां वासवीमशनीमिव ।
निर्मुक्ताशीविषाकारां पृक्तां गजमदैरपि॥५३
त्रासनीं सर्वभूतानां स्वसैन्यपरिहर्षिणीम् ।
मनुष्यलोके विख्यातां गिरिशृङ्गविदारणीम्
यया कैलासभवने महेश्वरसखं बली ।
आह्वयामास युद्धाय भीमसेनो महाबलः॥५५
यया मायामयान् दृप्तान्सुबहून् धनदालये ।
जघान गुह्यकान् क्रुद्धो नदन्पार्थो महाबलः॥
निवार्यमाणो बहुभिर्द्रौपद्याः प्रियमास्थितः ।
तां वज्रमणिरत्नौघकल्माषां वज्रगौरवाम् ॥
समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यपतद्रणे ।
गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया ॥ ५८
पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान्महाजवान्
ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम्
निचखान नदन्वीरो
वर्म भित्त्वा च सोऽभ्ययात् ।
वृकोदरस्त्वसंभ्रान्त-
स्तमेवोद्धृत्य तोमरम् ॥ ६०
यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि ।
स भिन्नवर्मा रुधिरं वमन्वित्रस्तमानसः॥६१
पपाताभिमुखो दीनो मद्रराजस्त्वपाक्रमत् ।
कृतप्रतिकृतं दृष्ट्वा शल्यो विस्मितमानसः ॥
गदामाश्रित्य धर्मात्मा प्रत्यमित्रमवैक्षत ।
ततः सुमनसः पार्था भीमसेनमपूजयन् ।
ते दृष्ट्वा कर्म संग्रामे घोरमक्लिष्टकर्मणः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि भीमसेनशल्ययुद्धे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

परिक्षिप्तां परिच्छन्नाम् ॥ ५१ ॥ वासवीं ऐन्द्रीम् । रासनी- [illegible] पाठे सन्दवतीम् ॥ ५३ ॥ महेश्वरसखं कुबेरम् ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

# १२

सञ्जय उवाच ।

पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम्
आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः
तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम्
सशृङ्गमिव कैलासं सवज्रमिव वासवम्
सशूलमिव हर्यक्षं वने मत्तमिव द्विपम् ।
जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३
ततः शङ्खप्रणादश्च तूर्याणां च सहस्रशः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां हर्षवर्धनः ॥ ४
प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ
तावकाश्चापरे चैव साधु साध्वित्यपूजयन् ॥
न हि मद्राधिपादन्यो रामाद्वा यदुनन्दनात्
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ६
तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते नान्यो योधो युधि वृकोदरात्
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्तितौ गदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ ॥ ८
मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९
तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्धिनी ।
अग्निज्वालैरिवाबद्धा पट्टैः शल्यस्य सा गदा
तथैव चरतो मार्गान्मण्डलेषु महात्मनः ।
विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा ॥
ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा ।
दह्यमानेव खे राजन्साऽसृजत्पावकार्चिषः ॥
तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा
अङ्गारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३
दन्तैरिव महानागौ शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
तोत्त्रैरिव तदान्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः॥
तौ गदाभिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥
गदया मद्रराजस्य सव्यदक्षिणमाहतः ।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलो यथा ॥
तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः ।
शल्यो न विव्यथे राजन्दन्तिनेव महागिरिः
शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदानिपातसंह्रादो वज्रयोरिव निःस्वनः ॥
निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रितमहागदौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ १९
अथाभ्येत्य पदान्यष्टौ सन्निपातोऽभवत्तयोः
उद्यम्य लोहदण्डाभ्यामतिमानुषकर्मणोः ॥
पोथयन्तौ तदान्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः
क्रियाविशेषं कृतिनौ दर्शयामासतुस्तदा ॥
अथोद्यम्य गदे घोरे सशृङ्गाविव पर्वतौ ।
तावाजघ्नतुरन्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः ॥
क्रियाविशेषकृतिनौ रणभूमितलेऽचलौ ।
तौ परस्परसंरंभाद्गदाभ्यां सुभृशाहतौ ॥ २३
युगपत्पेततुर्वीरावुभाविन्द्रध्वजाविव ।
उभयोः सेनयोर्वीरास्तदा हाहाकृतोऽभवन्
भृशं मर्माण्यभिहतावुभावास्तां सुविह्वलौ ।
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामृषभं रणे ॥ २५
अपोवाह कृपः शल्यं तूर्णमायोधनादथ ।
क्षीबवद्विह्वलत्वात्तु निमेषात्पुनरुत्थितः ॥२६
भीमसेनो गदापाणिः समाह्वयत मद्रपम् ।
ततस्तु तावकाः शूरा नानाशस्त्रसमायुताः ॥
नानावादित्रशब्देन पाण्डुसेनामयोधयन् ।
भुजावुच्छ्रित्य शस्त्रं च शब्देन महता ततः॥
अभ्यद्रवन्महाराज दुर्योधनपुरोगमाः ।
तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ॥
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनपुरोगमान् ।
तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ ३०
प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम् ।
स पपात रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥ ३१
रुधिरौघपरिक्लिन्नः प्रविश्य विपुलं तमः ।
चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवेया महारथाः ॥
असक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः ।
तावकानामनीकेषु पाण्डवा जितकाशिनः ॥
व्यचरन्त महाराज प्रेक्षणीयाः समन्ततः ।
कृपश्च कृतवर्मा च सौबलश्च महारथः ॥ ३४
अयोधयन्धर्मराजं मद्रराजपुरस्कृताः ।
भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम् ॥

१२

पतितमिति ॥ १ ॥ हर्यक्षं रुद्रम् ॥ ३ ॥ शुभ्रैर्दीप्तिमद्भिः ॥ १० ॥

दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ।
त्रिसाहस्रास्तथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः ॥
अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुरस्कृताः ।
विजये धृतसङ्कल्पाः समरे त्यक्तजीविताः ॥
प्राविशंस्तावका राजन् हंसा इव महत्सरः ।
ततो युद्धमभूद्घोरं परस्परवधैषिणाम् ॥ ३८
अन्योन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीतिवर्धनम् ।
तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे राजन्वीरवरक्षये ॥ ३९
अनिलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः ।
श्रवणान्नामधेयानां पाण्डवानां च कीर्तनात्
परस्परं विजानीमो यदयुध्यन्नभीतवत् ।
तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ४१
दिशश्च विमला जाता-
स्तस्मिंस्तमसि नाशिते ।
तथा प्रवृत्ते संग्रामे
घोररूपे भयानके ॥ ४२
तावकानां परेषां च
नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा
प्रार्थयन्तो जयं युधि ॥ ४३
सुयुद्धेन पराक्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः ।
भर्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्यविनिश्चिताः ॥
स्वर्गसंसक्तमनसो योधा युयुधिरे तदा ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः
अन्योन्यमभिगर्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम् ।
हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥ ४६
इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषां च वै बले ।
ततः शल्यो महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ४७
विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो महारथम् ।
तस्य पार्थो महाराज नाराचान्वै चतुर्दश ४८
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव ।
आवार्य पाण्डवं बाणैर्हन्तुकामो महाबलः ४९
विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः कङ्कपत्रिभिः ।
अथ भूयो महाराज शरेणानतपर्वणा ॥५०
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्रराजं महायशाः ॥
विव्याध निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
चन्द्रसेनं च सप्तत्या सूतं च नवभिः शरैः ५२
द्रुमसेनं चतुःषष्ट्या निजघान महारथः ।
चक्ररक्षे हते शल्यः पाण्डवेन महात्मना ५३
निजघान ततो राजंश्चेदीन्वै पञ्चविंशतिम् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या भीमसेनं च पञ्चभिः
माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः
एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम ॥ ५५
संप्रैषयच्छितान्पार्थः शरानाशीविषोपमान् ।
ध्वजाग्रं चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद्रथात् ।
पाण्डुपुत्रेण वै तस्य केतुं छिन्नं महात्मना ५७
निपतन्तमपश्याम गिरिशृङ्गमिवाहतम् ।
ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवं च व्यवस्थितम्
संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह ।
शल्यः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ५९
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
सात्यकिं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ।
ततो बाणमयं जालं विततं पाण्डवोरसि ६१
अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम् ।
तस्य शल्यो रणे क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
दिशः संछादयामास प्रदिशश्च महारथः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा बाणजालेन पीडितः
बभूवाद्भुतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा यथा६३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

संजय उवाच ।

पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष । सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३
पीडिते इति ॥ १ ॥

परिवार्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे ।
तमेकं बहुभिर्दृष्ट्वा पीड्यमानं महारथैः ॥ २
साधुवादो महाञ्जज्ञे सिद्धाश्चासन्प्रहर्षिताः ॥
आश्चर्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि सङ्गताः ३
भीमसेनो रणे शल्यं शल्यभूतं पराक्रमे ।
एकेन विद्ध्वा बाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः
सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया ।
मद्रेश्वरमवाकीर्य सिंहनादमथानदत् ॥ ५

नकुलः पञ्चभिश्चैनं
सहदेवश्च पञ्चभिः ।
विद्ध्वा तं तु पुनस्तूर्णं
ततो विव्याध सप्तभिः ॥ ६

स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः ।
विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगघ्नं भारसाधनम् ७

सात्यकिं पञ्चविंशत्या
शल्यो विव्याध मारिष ।
भीमसेनं तु सप्तत्या
नकुलं सप्तभिस्तथा ॥ ८

ततः सविशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः ।
छित्त्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ९
सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्चसम् ।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत् ॥
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलज्ज्वलनसन्निभैः ।
सारथिं चास्य समरे शरेणानतपर्वणा ॥ ११
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तं वै भूयस्त्रिभिः शरैः ।
भीमसेनस्तु सप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः ॥
धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समार्पयत्
ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः
सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष ॥ १५
धनुश्चिच्छेद समरे सज्यं स सुमहारथः ।
अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १६
साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः ।
स च्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः १७
युधिष्ठिरमथाविध्यद्दशभिर्निशितैः शरैः ।
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते १८
मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः ।
स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद्धनुः १९
भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ।
तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः
तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम् ।
भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम्२१
नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम् ।
धर्मराजः शतघ्नीं च जिघांसुः शल्यमाहवे ॥
तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान् ।
वारयामास समरे शस्त्रसङ्घैः स मद्रराट् ॥
सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम्
प्रहितं भीमसेनेन शरं कनकभूषणम् ॥ २४
द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान् ॥
नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदण्डां भयावहाम् २५
गदां च सहदेवेन शरौघैः समवारयत् ।
शराभ्यां च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च ।
नामृष्यत्तत्र शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे ॥ २७

अथान्यद्धनुरादाय
सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विद्ध्वा
सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ २८

ततः शल्यो रणे राजन्सर्वांस्तान्दशभिः शरैः
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपान्
ते वार्यमाणाः समरे मद्रराज्ञा महारथाः ।
न शेकुः संमुखे स्थातुं तस्य शत्रुनिषूदनाः ३०

ततो दुर्योधनो राजा
दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम् ।
निहतान्पाण्डवान् मेने
पञ्चालानथ सृञ्जयान् ॥ ३१

ततो राजन्महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् ।
संत्यज्य मनसा प्राणान्मद्राधिपमयोधयत्
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
परिवार्य तदा शल्यं समन्ताद्व्यकिरञ्शरैः ॥
स चतुर्भिर्महेष्वासैः पाण्डवानां महारथैः ।
वृतस्तान्योधयामास मद्रराजः प्रतापवान् ॥
तस्य धर्मसुतो राजन् क्षुरप्रेण महाहवे ।
चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिवः ३५

---

तं शल्यमेकं बहुभिः पीड्यमानं दृष्ट्वा सिद्धाः प्रहर्षिता आसन् इति सम्बन्धः ॥ २ ॥ साधुवादो जज्ञे अर्थात्सिद्धानाम् ॥ ३ ॥ सहदेवेन प्रेषितामिति पूर्वस्मात्संबध्यते ॥ २६ ॥ सारथिं च विव्याधेत्युत्तरस्मादपकृष्यते ॥२८॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे चक्ररक्षे महारथे ।
मद्रराजोऽपि बलवान्सैनिकानावृणोच्छरैः
समावृतांस्ततस्तांस्तु
राजन्वीक्ष्य स्वसैनिकान् ।
चिन्तयामास समरे
धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३७
कथं नु समरे शक्यं तन्माधववचो महत् ।
न हि क्रुद्धो रणे राजन् क्षपयेत बलं मम ३८
ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज
मद्रराजं समासेदुः पीडयन्तः समन्ततः ३९
नानाशस्त्रौघबहुलां शस्त्रवृष्टिं समुद्यताम् ।
व्यधमत्समरे राजा महाभ्राणीव मारुतः ४०
ततः कनकपुङ्खां तां शल्यक्षिप्तां वियद्गताम् ।
शरवृष्टिमपश्याम शलभानामिवायतिम् ४१
ते शरा मद्रराजेन प्रेषिता रणमूर्धनि ।
संपतन्तः स्म दृश्यन्ते शलभानां व्रजा इव
मद्रराजधनुर्मुक्तैः शरैः कनकभूषणैः ।
निरन्तरमिवाकाशं संबभूव जनाधिप ४३
न पाण्डवानां नास्माकं तत्र किञ्चिद्व्यदृश्यत
बाणान्धकारे महति कृते तत्र महाहवे ४४
मद्रराजेन बलिना
लाघवाच्छरवृष्टिभिः ।
चाल्यमानं तु तं दृष्ट्वा
पाण्डवानां बलार्णवम् ॥ ४५
विस्मयं परमं जग्मुर्देव-गन्धर्व-दानवाः ।
स तु तान्सर्वतो यत्तान्शरैः संछाद्य मारिष॥
धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।
ते च्छन्नाः समरे तेन पाण्डवानां महारथाः ॥
नाशक्नुवंस्तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम् ।
धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेनमुखा रथाः ॥
न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम् ४८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुद्धे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

सञ्जय उवाच ।
अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः
तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्तानां महारथैः ॥ १
द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः
तथेतरान्महेष्वासान् द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनञ्जयः
भूयश्चैव महाराज शरवर्षैरवाकिरत् ।
शरकण्टकितास्ते तु तावका भरतर्षभ ॥ ३
न जहुः पार्थमासाद्य ताड्यमानाः शितैः शरैः
अर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥ ४
अयोधयन्त समरे परिवार्य महारथाः ।
तैस्तु क्षिप्ताः शरा राजन्कार्तस्वरविभूषिताः
अर्जुनस्य रथोपस्थं पूरयामासुरञ्जसा ।
तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम्
शरैर्वीक्ष्य विनुन्नाङ्गौ प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ।
कूबरं रथचक्राणि ईषा योक्त्राणि वा विभो ७
युगं चैवानुकर्षं च शरभूतमभूत्तदा ।
नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन्नैव च न श्रुतम् ॥ ८
यादृशं तत्र पार्थस्य तावकाः संप्रचक्रिरे ।
स रथः सर्वतो भाति चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः९
उल्काशतैः संप्रदीप्तं विमानमिव भूतले ।
ततोऽर्जुनो महाराज शरैः सन्नतपर्वभिः॥१०
अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ।
ते वध्यमानाः समरे पार्थनामाङ्कितैः शरैः ॥
पार्थभूतममन्यन्त प्रेक्षमाणास्तथाविधम् ।
कोपोद्भूतशरज्वालो धनुःशब्दानिलो महान्
सैन्येन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थपावकः ।
चक्राणां पततां चापि युगानां च धरातले ॥
तूणीराणां पताकानां ध्वजानां च रथैः सह ।
ईषानामनुकर्षाणां त्रिवेणूनां च भारत ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४
अर्जुन इति ॥ १ ॥

अक्षाणामथ योक्राणां
प्रतोदानां च सर्वशः ।
शिरसां पततां चापि
कुण्डलोष्णीषधारिणाम् ॥ १५
भुजानां च महाभाग स्कन्धानां च समन्ततः
छत्राणां व्यजनैः सार्धं मुकुटानां च राशयः
समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु भारत ।
ततः क्रुद्धस्य पार्थस्य रथमार्गे विशांपते १७
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।
भीरूणां त्रासजननी शूराणां हर्षवर्धिनी १८
बभूव भरतश्रेष्ठ रुद्रस्याक्रीडनं यथा ।
हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परंतपः ॥ १९
रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्
यथा हि भगवानग्निर्जगद्दग्ध्वा चराचरम् ॥
विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो धनञ्जयः ।
द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥
रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत् ।
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ तावुभौ धन्विनां वरौ ॥
समीयतुस्तदाऽन्योन्यं परस्परवधैषिणौ ।
तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम् २३
जीमूतयोर्यथा वृष्टिस्तपान्ते भरतर्षभ ।
अन्योन्यस्पर्धिनौ तौ तु शरैः सन्नतपर्वभिः॥
ततक्षतुस्तदाऽन्योन्यं शृङ्गाभ्यां वृषभाविव ।
तयोर्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत् २५
शस्त्राणां सङ्गमश्चैव घोरस्तत्राभवत्पुनः ।
ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः २६
वासुदेवं च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत ।
ततः प्रहर्षाद्बीभत्सुर्व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः २७
मानयित्वा मुहूर्तं तु गुरुपुत्रं महाहवे ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे सव्यसाची परंतपः ॥ २८
मृदुपूर्वं ततश्चैनं पुनः पुनरताडयत् ।
हताश्वे तु रथे तिष्ठन्द्रोणपुत्रस्त्वयस्मयम् २९
मुसलं पाण्डुपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम् ।
तमापतन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम् ॥ ३०
चिच्छेद सप्तधा वीरः पार्थः शत्रुनिबर्हणः ।
स च्छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परमकोपनः ॥
आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम् ।
चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः ३२
तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः ॥
स च्छिन्नः पतितो भूमौ पार्थबाणैर्महाहवे ।
दारयन् पृथिवीन्द्राणां मनांसीव च भारत ॥
ततोऽपरैस्त्रिभिर्भल्लैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः
सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहात्मना ॥
नाकम्पत तदा द्रौणिः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः
सुरथं च ततो राजन् भारद्वाजो महारथम् ॥
अवाकिरच्छरव्रातैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
ततस्तु सुरथोऽप्याजौ पञ्चालानां महारथः ॥
रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत ।
विकर्षन्वै धनुः श्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम् ॥ ३८
ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनमवाकिरत् ।
सुरथं तं ततः क्रुद्धमापतन्तं महारथम् ॥ ३९
चुकोप समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सृक्किणी परिसंलिहन्
उद्वीक्ष्य सुरथं रोषाद्धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
मुमोच तीक्ष्णं नाराचं यमदण्डोपमद्युतिम्॥
स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगितः ।
शक्राशनिरिवोत्सृष्टो विदार्य धरणीतलम् ॥
ततः स पतितो भूमौ नाराचेन समाहतः ॥
वज्रेण च यथा शृङ्गं पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ४३
तस्मिन्विनिहते वीरे द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव रथिनां वरः ॥ ४४
ततः सज्जो महाराज द्रौणिराहवदुर्मदः ।
अर्जुनं योधयामास संशप्तकवृतो रणे ॥ ४५
तत्र युद्धं महच्चासीदर्जुनस्य परैः सह ।
मध्यंदिनगते सूर्ये यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४६
तत्राश्चर्यमपश्याम दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम् ।
यदेको युगपद्वीरान्समयोधयदर्जुनः ॥ ४७
विमर्दः सुमहानासीदेकस्य बहुभिः सह ।
शतक्रतोर्यथा पूर्वं महत्या दैत्यसेनया ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

सञ्जय उवाच ।
दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः
चक्रतुः सुमहद्युद्धं शरशक्तिसमाकुलम् ॥ १
तयोरासन्महाराज शरधाराः सहस्रशः ॥
अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः २
राजा च पार्षतं विद्ध्वा
शरैः पञ्चभिराशुगैः ।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं
पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३
धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान् दृढविक्रमः ।
सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत् ४
पीडितं वीक्ष्य राजानं सोदर्या भरतर्षभ ।
महत्या सेनया सार्धं परिवव्रुः स्म पार्षतम् ॥
स तैः परिवृतः शूरः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम् ।
व्यचरत्समरे राजन् दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ ६
शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमं च महारथम् ।
प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ ७
तत्रापि सुमहद्युद्धं घोररूपं विशांपते ।
प्राणान्सन्त्यजतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने ८
शल्यः सायकवर्षाणि विमुञ्चन्सर्वतोदिशम्
पाण्डवान्पीडयामास ससात्यकिवृकोदरान्
तथा तौ तु यमौ युद्धे यमतुल्यपराक्रमौ ।
योधयामास राजेन्द्र वीर्येणास्त्रबलेन च १०
शल्यसायकनुन्नानां पाण्डवानां महामृधे ।
त्रातारं नाभ्यगच्छन्त केचित्तत्र महारथाः ॥
ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे प्रपीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेन मातुलं मातृनन्दनः ॥ १२
संछाद्य समरे वीरं नकुलः परवीरहा ।
विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे
सर्वपारसवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः ॥ १४
शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्रीयेण महात्मना ॥
नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः ॥ १५
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः
सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन् ॥ १६
तानापतत एवाशु पूरयाणान् रथस्वनैः ।
दिशश्च विदिशश्चैव कम्पयानांश्च मेदिनीम् ॥
प्रतिजग्राह समरे सेनापतिरमित्रजित् ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा भीमसेनं च पञ्चभिः
सात्यकिं च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः ।
ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः १९
मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा मारिष चिच्छिदे ।
तदशीर्यत विच्छिन्नं धनुः शल्यस्य सायकैः
अथान्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः ।
मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः ॥ २१
युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्येनमविध्यताम् ॥ २२
भीमसेनस्तु तं षष्ट्या सात्यकिर्दशभिः शरैः
मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कङ्कपत्रिभिः ॥ २३
मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम्
अथास्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ।
हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५
विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महारथः ।
विशिखानां शतेनैनमाजघान समन्ततः २६
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ भीमसेनं च पाण्डवम्
युधिष्ठिरं च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः
तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त संयुगे २८
अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः
पीडितान्पाण्डवान्दृष्ट्वा मद्रराजवशंगतान् २९
अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं बलात् ।
आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः ॥
प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।
स सन्निपातस्तुमुलो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ३१
सात्यकेश्चैव शूरस्य मद्राणामधिपस्य च ।
यादृशो वै पुरा वृत्तः शम्बरामरराजयोः ३२
सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजमवस्थितम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत्
मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना ।
सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः

१५

दुर्योधन इति ॥ १ ॥

ततः पार्था महेष्वासाः सात्वताभिसृतं नृपम्
अभ्यवर्तन् रथैस्तूर्णं मातुलं वधकाङ्क्षया ३५
तत आसीत्परामर्दस्तुमुलः शोणितोदकः।
शूराणां युध्यमानानां सिंहानामिव नर्दताम्
तेषामासीन्महाराज व्यधिक्षेपः परस्परम्।
सिंहानामामिषेप्सूनां कूजतामिव संयुगे ३७
तेषां बाणसहस्रौघैराकीर्णा वसुधाऽभवत्।
अन्तरिक्षं च सहसा बाणभूतमभूत्तदा ॥ ३८
शरान्धकारं सहसा कृतं तेन समन्ततः।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे शरैर्मुक्तैर्महात्मभिः ॥ ३९
तत्र राजन् शरैर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः।
स्वर्णपुङ्खैः प्रकाशद्भिर्व्यरोचन्त दिशस्तदा ४०
तत्राद्भुतं परं चक्रे शल्यः शत्रुनिबर्हणः।
यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून् ४१
मद्रराजभुजोत्सृष्टैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
संपतद्भिः शरैर्घोरैरवाकीर्यत मेदिनी ॥ ४२
तत्र शल्यरथं राजन्विचरन्तं महाहवे।
अपश्याम यथापूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

सञ्जय उवाच।
ततः सैन्यास्तव विभो मद्रराजपुरस्कृताः।
पुनरभ्यद्रवन्पार्थान् वेगेन महता रणे ॥ १
पीडितास्तावकाः सर्वे प्रधावन्तो रणोत्कटाः
क्षणेन चैव पार्थास्ते बहुत्वात्समलोडयन् २
ते वध्यमानाः समरे पाण्डवा नावतस्थिरे।
निवार्यमाणा भीमेन पश्यतोः कृष्णयोस्तदा
ततो धनञ्जयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः।
अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च ॥ ४
शकुनिं सहदेवस्तु सहसैन्यमवाकिरत्।
नकुलः पार्श्वतः स्थित्वा मद्रराजमवैक्षत ॥ ५
द्रौपदेया नरेन्द्राश्च भूयिष्ठान् समवारयन्।
द्रोणपुत्रं च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत
भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत्।
शल्यं तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ७
ततः समभवत्सैन्यं संसक्तं तत्र तत्र ह।
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ८
तत्र पश्याम्यहं कर्म शल्यस्यातिमहद्रणे।
यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयोधयत् ९
व्यदृश्यत तदा शल्यो युधिष्ठिरसमीपतः।
रणे चन्द्रमसोऽभ्याशे शनैश्चर इव ग्रहः १०
पीडयित्वा तु राजानं शरैराशीविषोपमैः।
अभ्यधावत्पुनर्भीमं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ११
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम्।
अपूजयन्ननीकानि परेषां तावकानि च ॥ १२
पीड्यमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे१३
वध्यमानेष्वनीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः।
अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १४
ततः पौरुषमास्थाय मद्रराजमताडयत्।
जयो वाऽस्तु वधो वाऽस्तु कृतबुद्धिर्महारथः
समाहूयाब्रवीत्सर्वान्
भ्रातॄन् कृष्णं च माधवम्।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च
ये चान्ये पृथिवीक्षितः ॥ १६
कौरवार्थे पराक्रान्ताः संग्रामे निधनं गताः
यथाभागं यथोत्साहं भवन्तः कृतपौरुषाः ॥
भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः
सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकाधिपम्१८
तत्र यन्मानसं मह्यं तत् सर्वं निगदामि वः।
चक्ररक्षाविमौ वीरौ मम माद्रवतीसुतौ १९
अजेयौ वासवेनापि समरे शूरसंमतौ।
साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ २०
मदर्थं प्रतियुद्ध्येतां मानार्हौ सत्यसङ्गरौ।
मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाऽहं भद्रमस्तु वः

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

तत इति ॥ १ ॥

इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत
योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षात्रधर्मेण पार्थिवाः॥
स्वमंशमभिसन्धाय विजयायेतराय च ।
तस्य मेऽप्यधिकं शस्त्रं सर्वोपकरणानि च २३
संसज्जन्तु रथे क्षिप्रं शास्त्रवद्रथयोजकाः ।
शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम् ॥ २४
पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनञ्जयः ।
पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः ॥
एवमभ्यधिकः शल्याद्भविष्यामि महामृधे ।
एवमुक्तास्तथा चक्रुस्तदा राज्ञः प्रियैषिणः २६
ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत्तदा मृधे ।
पञ्चालानां सोमकानां मत्स्यानां च विशेषतः
प्रतिज्ञां तां तदा राजा कृत्वा मद्रेशमभ्ययात्
ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्कलान् २८
अवादयन्त पञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे ।
तेऽभ्यधावन्त संरब्धा मद्रराजं तरस्विनम् ॥
महता हर्षजेनाथ नादेन कुरुपुङ्गवाः ।
ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ॥
तूर्यशब्देन महता नादयन्तश्च मेदिनीम् ।
तान्प्रत्यगृह्णात्पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥
महामेघानिव बहून् शैलावस्तोदयावुभौ ।
शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिंदमम् ॥
ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवा इव ।
तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥ ३३
द्रोणोपदेशान्विविधान्दर्शयानो महामनाः ।
ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ३४
न चास्य विवरं कश्चिद्ददर्श चरतो रणे ।
तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम् ॥
शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवावहे ।
भीमस्तु तव पुत्रेण युद्धशौण्डेन संगतः ॥ ३६
पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पांडवौ
शकुनिप्रमुखान्वीरान् प्रत्यगृह्णन्समन्ततः ॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं पुनरेव जयैषिणाम् ।
तावकानां परेषां च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥
दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा ।
चिच्छेदादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमपरिष्कृतम्
स किंकिणीकजालेन महता चारुदर्शनः ।
पपात रुचिरः संख्ये भीमसेनस्य पश्यतः ॥
पुनश्चास्य धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम् ।
क्षुरेण शितधारेण प्रचकर्त नराधिपः ॥ ४१
स च्छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं तव
बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत्
तस्मिन्मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः ।
यन्तुरेव शिरः कायात्क्षुरप्रेणाहरत्तदा ॥ ४३
हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत ।
व्यद्रवन्त दिशो राजन्हाहाकारस्तदाऽभवत्
तमभ्यधावत् त्राणार्थं द्रोणपुत्रो महारथः ।
कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽपि परीप्सवः ॥
तस्मिन्विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः
गाण्डीवधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः
युधिष्ठिरस्तु मद्रेशमभ्यधावदमर्षितः ।
स्वयं सन्नोदयन्नश्वान् दन्तवर्णान्मनोजवान्
तत्राश्चर्यमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ।
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तो यत्तदा दारुणोऽभवत्
विवृताक्षश्च कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना ।
चिच्छेद योधान्निशितैः शरैः शतसहस्रशः ॥
यां यां प्रत्युद्ययौ सेनां तां तां ज्येष्ठः स पांडवः
शरैरपातयद्राजन् गिरीन्वज्रैरिवोत्तमैः ॥ ५०
साश्वसूतध्वजरथान् रथिनः पातयन्बहून् ।
अक्रीडदेको बलवान्पवनस्तोयदानिव ॥ ५१
साश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तींश्चैव सहस्रधा ।
व्यपोथयत संग्रामे क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५२
शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः ।
अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत् ॥
तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे भीमकर्मणः ।
वित्रेसुस्तावकाः सर्वे शल्यस्त्वेनं समभ्ययात्
ततस्तौ भृशसंक्रुद्धौ प्रध्माय सलिलोद्भवौ ।
समाहूय तदाऽन्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः
शल्यस्तु शरवर्षेण पीडयामास पाण्डवम् ।
मद्रराजं तु कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६
अदृश्येतां तदा राजन्कङ्कपत्रिभिराचितौ ।
उद्भिन्नरुधिरौ शूरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ ॥ ५७
पुष्पितौ शुशुभाते वै वसन्ते किंशुकौ यथा ।
दीप्यमानौ महात्मानौ प्राणद्यूतेन दुर्मदौ ॥
दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यंस्तयोर्जयं
हत्वा मद्राधिपं पार्थो भोक्ष्यतेऽद्य वसुन्धरां
शल्यो वा पाण्डवं हत्वा दद्याद्दुर्योधनाय गां
इतीव निश्चयो नाभूद्योधानां तत्र भारत ॥

प्रदक्षिणमभूत्सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः ।
ततः शरशतं शल्यो मुमोचाथ युधिष्ठिरे ॥
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः
अविध्यत्कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृन्तत ।
अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ॥
द्वाभ्यामतिशिताग्राभ्या-
मुभौ तत्पार्ष्णिसारथी ।
ततोऽस्य दीप्यमानेन
पीतेन निशितेन च ॥ ६४

प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद्ध्वजम् ।
ततः प्रभग्नं तत् सैन्यं दौर्योधनमरिंदम ॥ ६५
ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत्तथा कृतम् ।
आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रुवे ॥६६
मुहूर्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे ।
स्मित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः
विधिवत्कल्पितं शुभ्रं महाम्बुदनिनादिनम् ।
सज्जयन्त्रोपकरणं द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

सञ्जय उवाच ।
अथान्यद्धनुरादाय बलवान्वेगवत्तरम् ।
युधिष्ठिरं मद्रपतिर्भित्त्वा सिंह इवानदत् ॥१
ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभः ॥ २
सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा
भीमसेनं त्रिभिः शरैः ।
सहदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा
युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ३
तांस्तानन्यान्महेष्वासान्
साश्वान्सरथकूबरान् ।
अर्दयामास विशिखै-
रुल्काभिरिव कुञ्जरान् ॥ ४
कुञ्जरान्कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः ।
रथांश्च रथिनः सार्धं जघान रथिनां वरः ॥५
बाहूंश्चिच्छेद तरसा सायुधान्केतनानि च ।
चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥
तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम्
परिवव्रुर्भृशं क्रुद्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥
तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।

समागतं भीमबलेन राज्ञा
पर्याप्तमन्योन्यमथाह्वयन्त ॥ ८
ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र
नरेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम् ।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा
जघ्नुः शरैः पत्त्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ९
संरक्षितो भीमसेनेन राजा
माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन ।
मद्राधिपं पत्त्रिभिरुग्रवेगैः
स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥ १०
ततो रणे तावकानां रथौघाः
समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम् ।
पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा
दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात् ॥ ११
ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे
युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविद्ध्यत् ।
तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कै-
र्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा ॥ १२
आकर्णपूर्णायतसंप्रयुक्तैः
शरैस्तदा संयति तैलधौतैः ।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ
मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च ॥ १३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

अथेति ॥ १ ॥

प्रदक्षिणमभूत्सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः ।
ततः शरशतं शल्यो मुमोचाथ युधिष्ठिरे ॥
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः
अविध्यत्कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृन्तत ।
अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ॥
द्वाभ्यामतिशिताग्राभ्या-
मुभौ तत्पार्ष्णिसारथी ।
ततोऽस्य दीप्यमानेन
पीतेन निशितेन च ॥ ६४

प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद्ध्वजम् ।
ततः प्रभग्नं तत् सैन्यं दौर्योधनमरिंदम ॥ ६५
ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत्तथा कृतम् ।
आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रुवे ॥६६
मुहूर्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे ।
स्मित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः
विधिवत्कल्पितं शुभ्रं महाम्बुदनिनादिनम् ।
सज्जयन्त्रोपकरणं द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

सञ्जय उवाच ।
अथान्यद्धनुरादाय बलवान्वेगवत्तरम् ।
युधिष्ठिरं मद्रपतिर्भित्त्वा सिंह इवानदत् ॥१
ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभः ॥ २
सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा
भीमसेनं त्रिभिः शरैः ।
सहदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा
युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ३
तांस्तानन्यान्महेष्वासान्
साश्वान्सरथकूबरान् ।
अर्दयामास विशिखै-
रुल्काभिरिव कुञ्जरान् ॥ ४
कुञ्जरान्कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः ।
रथांश्च रथिनः सार्धं जघान रथिनां वरः ॥५
बाहूंश्चिच्छेद तरसा सायुधान्केतनानि च ।
चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥
तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम्
परिवव्रुर्भृशं क्रुद्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥
तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
समागतं भीमबलेन राज्ञा
पर्याप्तमन्योन्यमथाह्वयन्त ॥ ८
ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र
नरेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम् ।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा
जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ९
संरक्षितो भीमसेनेन राजा
माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन ।
मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैः
स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥ १०
ततो रणे तावकानां रथौघाः
समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम् ।
पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा
दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात् ॥ ११
ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे
युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविद्ध्यत् ।
तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कै-
र्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा ॥ १२
आकर्णपूर्णायतसंप्रयुक्तैः
शरैस्तदा संयति तैलधौतैः ।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ
मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च ॥ १३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७
अथेति ॥ १ ॥

ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ
महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥ १४
तयोर्धनुर्ज्यातलनिःस्वनो महान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिःस्वनः ।
परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः
प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥ १५
तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ
महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव ।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ
ततक्षतुः संयति जातदर्पौ ॥ १६

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा
युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य ।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं
शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥ १७
ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि
सुसंप्रयुक्तेन शरेण राजन् ।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा
मुदं च लेभे ऋषभः कुरूणाम् ॥ १८
ततो मुहूर्तादिव पार्थिवेन्द्रो
लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः ॥ १९
त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा
शल्यस्य कोपान्नवभिः पृषत्कैः ।
भित्त्वा ह्युरस्तपनीयं च वर्म
जघान षड्भिस्त्वपरैः पृषत्कैः ॥ २०

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं
धनुर्विकृष्य व्यसृजत् पृषत्कान् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञ-
श्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥ २१
नवं ततोऽन्यत्समरे प्रगृह्य
राजा धनुर्घोरतरं महात्मा ।
शल्यं तु विव्याध शरैः समन्ता-
द्यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः ॥ २२
ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कै-
र्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।

निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयो-
र्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥ २३
ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा
क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं
षड्भिः शरैः सोऽभिमुखः पपात २४

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य
शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान् ।
वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा
योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ २५
तथा कृते राजनि भीमसेनो
मद्राधिपस्याथ ततो महात्मा ।
छित्त्वा धनुर्वेगवता शरेण
द्वाभ्याममविध्यत्सुभृशं नरेन्द्रम् ॥ २६
तथापरेणास्य जहार यन्तुः
कायाच्छिरः संहननीयमध्यात् ।
जघान चाश्वांश्चतुरः सुशीघ्रं
तथा भृशं कुपितो भीमसेनः ॥ २७
तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणा-
मेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम् ।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां
माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥ २८
तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं
भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म ।
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा
मद्राधिपश्चर्मसहस्रतारम् ॥ २९
प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा
प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् ।
छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ
युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ३०

तं चापि राजानमथोत्पतन्तं
क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् ।
धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी
शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥ ३१
अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्त-
द्भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः ।
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ
नदन्प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये ॥ ३२

संहननीयो दृढसन्धिको मध्यो यस्य तस्मात्कायात् ॥ २७ ॥

ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ
महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥ १४
तयोर्धनुर्ज्यातलनिःस्वनो महान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिःस्वनः ।
परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः
प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥ १५
तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ
महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव ।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ
ततक्षतुः संयति जातदर्पौ ॥ १६

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा
युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य ।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं
शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥ १७
ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि
सुसंप्रयुक्तेन शरेण राजन् ।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा
मुदं च लेभे ऋषभः कुरूणाम् ॥ १८
ततो मुहूर्तादिव पार्थिवेन्द्रो
लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः ॥ १९
त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा
शल्यस्य कोपान्नवभिः पृषत्कैः ।
भित्त्वा ह्युरस्तपनीयं च वर्म
जघान षड्भिस्त्वपरैः पृषत्कैः ॥ २०

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं
धनुर्विकृष्य व्यसृजत् पृषत्कान् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञ-
श्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥ २१
नवं ततोऽन्यत्समरे प्रगृह्य
राजा धनुर्घोरतरं महात्मा ।
शल्यं तु विव्याध शरैः समन्ता-
द्यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः ॥ २२
ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कै-
र्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयो-
र्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥ २३
ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा
क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं
षड्भिः शरैः सोऽभिमुखः पपात २४

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य
शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान् ।
वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा
योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ २५
तथा कृते राजनि भीमसेनो
मद्राधिपस्याथ ततो महात्मा ।
छित्त्वा धनुर्वेगवता शरेण
द्वाभ्यामविध्यत्सुभृशं नरेन्द्रम् ॥ २६
तथापरेणास्य जहार यन्तुः
कायाच्छिरः संहननीयमध्यात् ।
जघान चाश्वांश्चतुरः सुशीघ्रं
तथा भृशं कुपितो भीमसेनः ॥ २७
तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणा-
मेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम् ।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां
माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥ २८
तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं
भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म ।
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा
मद्राधिपश्चर्मसहस्रतारम् ॥ २९
प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा
प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् ।
छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ
युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ३०

तं चापि राजानमथोत्पतन्तं
क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् ।
धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी
शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥ ३१
अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्त-
द्भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः ।
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ
नदन्प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये ॥ ३२

संहननीयो दृढसन्धिको मध्यो यस्य तस्मात्कायात् ॥ २७ ॥

तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य हृष्टा-
स्ते पाण्डवानां प्रवरा रथौघाः ।
नादं च चक्रुर्भृशमुत्स्मयन्तः
शङ्खांश्च दध्मुः शशिसन्निकाशान् ३३
तेनाथ शब्देन विभीषणेन
तथाभितप्तं बलमप्रधृष्यम् ।
कांदिग्भूतं रुधिरेणोक्षिताङ्गं
विसंज्ञकल्पं च तदा विषण्णम् ३४
स मद्रराजः सहसा विकीर्णो
भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः ।
युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन
सिंहो यथा मृगहेतोः प्रयातः ॥ ३५
स धर्मराजो निहताश्वसूतः
क्रोधेन दीप्तो ज्वलनप्रकाशः ।
दृष्ट्वा च मद्राधिपतिं स्म तूर्णं
समभ्यधावत्तमरिं बलेन ॥ ३६
गोविन्दवाक्यं त्वरितं विचिन्त्य
दध्रे मतिं शल्यविनाशनाय ।
स धर्मराजो निहताश्वसूतो
रथे तिष्ठन् शक्तिमेवाभ्यकांक्षत् ३७
तच्चापि शल्यस्य निशम्य कर्म
महात्मनो भागमथावशिष्टम् ।
कृत्वा मनः शल्यवधे महात्मा
यथोक्तमिन्द्रावरजस्य चक्रे ॥ ३८
स धर्मराजो मणिहेमदण्डां
जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम् ।
नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य
मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत् ॥ ३९
निरीक्षितोऽसौ नरदेव राज्ञा
पूतात्मना निर्हृतकल्मषेण ।
आसीन्न यद्भस्मसान्मद्रराज-
स्तदद्भुतं मे प्रतिभाति राजन् ॥ ४०
ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां
मणिप्रवेकोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम् ।
चिक्षेप वेगात्सुभृशं महात्मा
मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम् ॥ ४१
दीप्तामथैनां प्रहितां बलेन
सविस्फुलिङ्गां सहसा पतन्तीम् ।
प्रैक्षन्त सर्वे कुरवः समेता
दिवो युगान्ते महतीमिवोल्काम् ४२
तां कालरात्रीमिव पाशहस्तां
यमस्य धात्रीमिव चोग्ररूपाम् ।
स ब्रह्मदण्डप्रतिमाममोघां
ससर्ज यत्तो युधि धर्मराजः ॥ ४३
गन्धस्रगग्र्यासनपानभोजनै-
रभ्यर्चितां पाण्डुसुतैः प्रयत्नात् ।
सांवर्तकाग्निप्रतिमां ज्वलन्तीं
कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्राम् ॥ ४४
ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितां तां
त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्ष्याम् ।
भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि
प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम् ॥ ४५
घण्टापताकां मणिवज्रनालां
वैदूर्यचित्रां तपनीयदण्डाम् ।
त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां
ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम् ॥ ४६
बलप्रयत्नादधिरूढवेगां
मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्र्य यत्नात् ।
ससर्ज मार्गेण च तां परेण
वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम् ॥ ४७
हतोऽसि पापेत्यभिगर्जमानो
रुद्रोऽन्धकायान्तकरं यथेषुम् ।
प्रसार्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं
क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः ॥ ४८
तां सर्वशक्त्या प्रहितां सुशक्तिं
युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्यवीर्याम् ।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः
सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥४९
सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्र-
मुरो विशालं च तथैव भित्त्वा ।
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता
यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती ॥ ५०
नासाक्षिकर्णास्यविनिःसृतेन
प्रस्यन्दता च व्रणसंभवेन
संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभू-
त्क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः ॥

कर्म युद्धरूपं अवशिष्टं स्वस्य भागं च निशम्यालोच्य शल्यवधे मनः कृत्वा इंद्रावरजस्य कृष्णस्य यथोक्तं वचनं चक्रे इत्यन्वयः ॥३८॥ अन्तरिक्षादीत्यादिनाऽग्निवायू ॥ ४५ ॥ तोयमिव सुप्रवेशांगां अप्रसक्ता अप्रातिहता नृपतेःशल्यस्य५०

प्रसार्य बाहू च रथाद्गतो गां
संछिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन ।
महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ५२
बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट्
ततो निपातितो भूमाविन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः
स तथा भिन्नसर्वाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः ।
प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः ॥५४
प्रियया कान्तया कान्तः पतमान इवोरसि ।
चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कान्तामिव प्रभुः
सर्वैरङ्गैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव चाभवत् ।
धर्म्यें धर्मात्मना युद्धे निहते धर्मसूनुना ॥५६
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे
शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम्
संशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव विमुञ्चति ।
ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम्५८
व्यधमद्द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान् ।
देहान्सुनिशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयन् क्षणात् ॥
ततः पार्थस्य बाणौघै-
रावृताः सैनिकास्तव ।
निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो
भृशमन्योन्यमर्दिताः ॥ ६०
क्षरन्तो रुधिरं देहैर्विपन्नायुधजीविताः ।
ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा ॥
भ्रातुस्तुल्यो गुणैः सर्वैं रथी पाण्डवमभ्ययात्
विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन् ॥
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः ।
तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव
कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च
ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च६४
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः ।
स कुण्डलं तद्ददृशे पतमानं शिरो रथात् ॥६५
पुण्यक्षयमनुप्राप्य पतन् स्वर्गादिव च्युतः ।
तस्यापकृत्तशीर्षं तु शरीरं पतितं रथात् ॥६६
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं दृष्ट्वा सैन्यमभज्यत ।
विचित्रकवचे तस्मिन्हते मद्रनृपानुजे ॥ ६७
हाहाकारं प्रकुर्वाणाः कुरवोऽभिप्रदुद्रुवुः ।
शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः
वित्रेसुः पाण्डवभयाद्रजोध्वस्तास्तदा भृशं

तांस्तथा भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभ ॥
शिनेर्नप्ता किरन्बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः ।
तमायान्तं महेष्वासं दुष्प्रसह्यं दुरासदम् ॥
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन्प्रत्यगृह्णादभीतवत् ।
तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयौ वरवाजिनौ
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव बलोत्कटौ
इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम् ॥
अर्चिभिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ ।
चापमार्गबलोद्धूतान्मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः
आकाशगानपश्याम
पतङ्गानिव शीघ्रगान् ।
सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा
हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ॥ ७४
चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा ।
तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ॥७५
अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम् ।
तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ॥
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे
ततो रथं युगेषां च छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः
अश्वांस्तस्यावधीत्तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी
ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो ॥ ७८
अपोवाह ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्यवान् ।
मद्रराजे हते राजन्विरथे कृतवर्मणि ॥ ७९
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ।
तत्परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृते ॥८०
बलं तु हतभूयिष्ठं तत्तदासीत्पराङ्मुखम् ।
ततो मुहूर्तात्तेऽपश्यन् रजो भौमं समुत्थितम्
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ ।
ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥
जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत् ।
पाण्डवान्सरथान्दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥
आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत् ।
तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम् ॥
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत
ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥
चतुर्भिर्निजघानाश्वान्पत्रिभिः कृतवर्मणः ।
विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः
अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम्
तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात् ॥

स्वर्गात्स्वर्गसुखात् च्युतो भ्रष्टः अत एव पतन् तस्मादेव ॥६६॥

ततः शारद्वतः षड्भिः
प्रत्यविध्यद्युधिष्ठिरम् ।
विव्याध चाश्वान्निशितै-
स्तस्याष्टाभिः शिलीमुखैः ॥ ८८
एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्तत ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्सह पुत्रस्य भारत ॥ ८९
तस्मिन्महेष्वासधरे विशस्ते
संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन ।
पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः
शंखान्प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम् ॥ ९०
युधिष्ठिरं च प्रशशंसुराजौ
पुरा कृते वृत्रवधे यथेन्द्रम् ।
चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दा-
न्निनादयन्तो वसुधां समेताः ॥ ९१

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधे
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

सञ्जय उवाच ।
शल्येऽथ निहते राजन्मद्रराजपदानुगाः ।
रथाः सप्तशता वीरा निर्ययुर्महतो बलात् १
दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसन्निभम् ॥
छत्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः ॥ २
न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत् ।
दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः ३
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन्बलम्
ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताश्च योधने ॥ ४
धनुःशब्दं महत्कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः
श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम् ५
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः ।
आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः
पूरयन् रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः ।
ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाः सह सोमकैः
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात्पर्यवारयन् ।
ते समन्तात्परिवृताः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ९
क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा
वृक्षानिव महावाताः कंपयन्ति स्म तावकान्
पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी ।
अक्षोभ्यत तदा राजन्पाण्डूनां ध्वजिनी ततः
प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः
बहवश्चुक्रुशुस्तत्र क स राजा युधिष्ठिरः ॥
भ्रातरो वाऽस्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केन च
धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः १३
पञ्चालाश्च महावीर्याः शिखण्डी च महारथः
एवं तान् वादिनः शूरान्द्रौपदेया महारथाः॥
अभ्यघ्नन् युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान् ।
चक्रैर्विमथितैः केचित्केचिच्छिन्नैर्महाध्वजैः
ते दृश्यन्तेऽपि समरे
तावका निहताः परैः ।
आलोक्य पाण्डवान् युद्धे
योधा राजन्समन्ततः ॥ १६
वार्यमाणा ययुर्वेगात्पुत्रेण तव भारत ।
दुर्योधनश्च तान्वीरान्वारयामास सान्त्वयन्
न चास्य शासनं केचित्तत्र चक्रुर्महारथाः ।
ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ॥
दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः ।
किं नः संप्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम्
न युक्तमेतत्समरे त्वयि तिष्ठति भारत ।
सहितैश्चापि योद्धव्यमित्येष समयः कृतः २०
अथ कस्मात्परानेव घ्नतो मर्षयसे नृप ।
दुर्योधन उवाच ।
वार्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम ॥ २१
एते विनिहताः सर्वे
प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम् ।
शकुनिरुवाच ।
न भर्तुः शासनं वीरा
रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

शल्ये इति ॥ १ ॥ प्रस्कन्नाः प्रपन्नाः ॥ २२ ॥

अलं क्रोद्धुमथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम् ।
यामः सर्वे च संभूय सवाजिरथकुञ्जराः २३
परित्रातुं महेष्वासान्मद्रराजपदानुगान् ।
अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप २४
एवं सर्वेऽनुसञ्चिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः ।

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तस्तदा राजा बलेन महता वृतः२५
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥ २६
इत्यासीत्तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ।
पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् २७
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम् ।
ते मुहूर्ताद्रणे वीरा हस्ताहस्ति विशांपते ॥
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ।
ततो नः संप्रयातानां हता मद्रास्तरस्विनः ॥
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्सहिताः परे ।
उत्थितानि कबन्धानि समदृश्यन्त सर्वशः ॥
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम्
रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः ॥ ३१
अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाऽभूद्वसुन्धरा ।
वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्ततस्ततः ॥ ३२
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे ।
भग्नचक्रान् रथान् केचिद्हरंस्तुरगा रणे ३३
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः ।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त योक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः
रथिनः पतमानाश्च दृश्यन्ते स्म नरोत्तमाः ।
गगनात्प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये
निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै ।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥

अभ्यवर्तन्त वेगेन
जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
बाणशब्दरवान् कृत्वा
विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः ॥ ३७

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षाः प्रहारिणः
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान्प्रचुक्रुशुः
ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत् ।
मद्रराजं च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम् ३९
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ।
वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
दिशो भेजेऽथ संभ्रान्तं भ्रामितं दृढधन्विभिः

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

सञ्जय उवाच ।

पातिते युधि दुर्धर्षे मद्रराजे महारथे ।
तावकास्तव पुत्राश्च प्रायशो विमुखाऽभवन्

वणिजो नावि भिन्नायां
यथाऽगाधेऽप्लवेऽर्णवे ।
अपारे पारमिच्छन्तो
हते शूरे महात्मना ।
मद्रराजे महाराज
वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥ २
अनाथा नाथमिच्छन्तो
मृगाः सिंहार्दिता इव ।
वृषा यथा भग्नशृङ्गाः
शीर्णदन्ता यथा गजाः ॥ ३

मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताऽजातशत्रुणा ।
न सन्धातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे ४
आसीद्बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित्
भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत ॥ ५
यद्दुःखं तव योधानां भयं चासीद्विशांपते ।
तद्भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्तत ॥६
निराशाश्च जये तस्मिन् हते शल्ये महारथे ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ताश्च शितैः शरैः
मद्रराजे हते राजन् योधास्ते प्राद्रवन्भयात्
अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ॥८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

पातिते इति ॥ १ ॥

आरुह्य जवसंपन्नाः पादाताः प्राद्रवंस्तथा ।
द्विसाहस्राश्च मातङ्गा गिरिरूपाः प्रहारिणः
संप्राद्रवन् हते शल्ये अंकुशाङ्गुष्ठनोदिताः ।
ते रणाद्भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन्दिशः ॥१०
धावतश्चाप्यपश्याम
श्वसमानान् शराहतान् ।
तान्प्रभग्नान् द्रुतान्दृष्ट्वा
हतोत्साहान्पराजितान् ॥ ११
अभ्यवर्तन्त पञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः ।
बाणशब्दरवाश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥
शङ्खशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत ।
दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम् ॥
अन्योन्यं समभाषन्त पञ्चालाः पाण्डवैः सह
अद्य राजा सत्यधृतिर्हतामित्रो युधिष्ठिरः ॥
अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तया नृपतिश्रियः ।
अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥१५
विह्वलः पतितो भूमौ किल्बिषं प्रतिपद्यताम्
अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम् ॥
अद्यात्मानं च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत् ।
अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं स्मरतां ब्रुवतो हितम् ॥
अद्यप्रभृति पार्थं च प्रेष्यभूत इवाचरन् ।
विजानातु नृपो दुःखं यत्प्राप्तं पाण्डुनन्दनैः
अद्य कृष्णस्य माहात्म्यं विजानातु महीपतिः
अद्यार्जुनधनुर्घोषं घोरं जानातु संयुगे ॥ १९
अस्त्राणां च बलं सर्वं बाह्वोश्च बलमाहवे ।
अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः
हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले ।
यत्कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे तदा ॥ २१
नान्यः कर्ताऽस्ति लोकेऽस्मि-
न्नृते भीमान्महाबलात् ।
अद्य श्रेष्ठस्य जानीतां
पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥ २२
मद्रराजं हतं श्रुत्वा देवैरपि सुदुःसहम् ।
अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ सुदुःसहौ ॥
निहते सौबले वीरे प्रवीरेषु च सर्वशः ।
कथं जयो न तेषां स्याद्येषां योद्धा धनञ्जयः
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपद्यास्तनयाः पञ्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥
शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः
येषां च जगतीनाथो नाथः कृष्णो जनार्दनः
कथं तेषां जयो न स्याद्येषां धर्मो व्यपाश्रयः ।
भीष्मं द्रोणं च कर्णं च मद्रराजानमेव च ॥
तथान्यान्नृपतीन्वीराञ्शतशोऽथ सहस्रशः
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थाद्युधिष्ठिरात्
यस्य नाथो हृषीकेशः सदा सत्ययशोनिधिः
इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता युताः ॥ २९
प्रभग्नांस्तावकान्योधान्संहृष्टाः पृष्ठतोऽन्वयुः
धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥ ३०
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥
तान्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीद्विजयाय च ।
मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ॥
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान्प्रतिपादय ।
जघने युध्यमानं हि कौन्तेयो मां समन्ततः
नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ।
पश्य सैन्यं महत्सूत पांडवैः समभिद्रुतम् ३४
सैन्यरेणुं समुद्भूतं पश्यस्वैनं समन्ततः ।
सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान् भयावहान्
तस्माद्याहि शनैः सूत जघनं परिपालय ।
मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु ॥
पुनरावर्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा ।
तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्यसदृशं वचः ॥
सारथिर्हेमसंछन्नान् शनैरश्वानचोदयत् ।
गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः ॥
एकविंशतिसाहस्राः संयुगायावतस्थिरे ।
नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः ॥ ३९
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद्यशः
तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम् ॥ ४०
संमर्दः सुमहाञ्जज्ञे घोररूपो भयानकः ।
भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥
बलेन चतुरङ्गेण नानादेश्यानवारयत् ।
भीममेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः ॥४२
प्रक्ष्वेड्यास्फोट्य संहृष्टा वीरलोकं यियासवः
आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥
धार्तराष्ट्रा विनेदुर्हि नान्यामकथयन्कथाम् ।
परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः ॥४४
स वध्यमानः समरे पदातिगणसंवृतः ।
न चचाल ततः स्थानान्मैनाक इव पर्वतः ॥
ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम् ।
निग्रहीतुं प्रवृत्ता हि योधांश्चान्यानवारयन् ॥
अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं पदातिः समवस्थितः ॥

जातरूपप्रतिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अवधीत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवान्तकः
विप्रहीणरथाश्वांस्तानवधीत्पुरुषर्षभः ।
एकविंशतिसाहस्रान्पदातीन्समपोथयत ॥४९
हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ५०
पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः
संभग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः ॥
नानाशस्त्रसमायुक्ता नानाकुण्डलधारिणः ।
नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः
पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद्बलम् ।
निकृत्तं विबभौ रौद्रं घोररूपं भयावहम् ॥५३
युधिष्ठिरपुरोगाश्च सहसैन्या महारथाः ।
अभ्यधावन्महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव ॥५४
ते सर्वे तावकान् दृष्ट्वा महेष्वासान्पराङ्मुखान्
नात्यवर्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम् ॥ ५५
तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम् ॥
नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने ।
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद्भृशविक्षतम् ५७
न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ।
यत्र यातान्न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः
अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत्
विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्
पाण्डवाः कृतविप्रियाः ।
अनुसृत्य हनिष्यन्ति
श्रेयान्नः समरे वधः ॥ ६०
शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा ॥
को न मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवम् ।
श्रेयो नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्याभिमुखे स्थितम्
सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम्
मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदाचन ॥ ६३
युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेष सनातनः ।
हत्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत्फलम् ॥
न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः
अचिरेणैव ताँल्लोकान्हतो युद्धे समश्नुते ६५
श्रुत्वा तद्वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः
पुनरेवाभ्यवर्तन्त पाण्डवानाततायिनः ॥ ६६
तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः ६७
धनञ्जयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ।
जवेनाभ्यपतन्हृष्टा यत्ता वै तावकं बलम् ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

सञ्जय उवाच ।
सन्निवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद्बलम् ॥ १
आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम् ।
दृप्तमैरावतप्रख्यममित्रगणमर्दनम् ॥ २
योऽसौ महान्भद्रकुलप्रसूतः
सुपूजितो धार्तराष्ट्रेण नित्यम् ।
सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः
सदोपवाह्यः समरेषु राजन् ॥ ३
तमास्थितो राजवरो बभूव
यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते ।
स तेन नागप्रवरेण राज-
न्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान्समेतान् ॥ ४
सितैः पृषत्कैर्विददार वेगै-
र्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः ।
ततः शरान्वै सृजतो महारणे
योधांश्च राजन्नयतो यमालयम् ॥ ५

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

२०

सन्निवृत्ते इति ॥१॥ पुरा पूर्वं वज्रधरस्य ऐरावणस्थस्य वासवस्य पुरा प्रथमे चमूविमर्दे दैत्या अदैत्या देवाश्च यथा अन्तरं न ददृशुस्तथा स्वे परे च अस्य शाल्वस्यान्तरं न ददृशुरित्यन्वयः । इवशब्दो वाक्यालङ्कारे ॥ ५ ॥

नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा
यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः ।
ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे
दैत्याः पुरा वासवस्येव राजन् ॥ ६

ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च
तमेकनागं ददृशुः समन्तात् ।
सहस्रशो वै विचरन्तमेकं
यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे ॥ ७

संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां
परीतकल्पं विबभौ समन्ततः ।
नैवावतस्थे समरे भृशं भया-
द्विमृद्यमानं तु परस्परं तदा ॥ ८

ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः
सा पाण्डवी तेन नराधिपेन ।
दिशश्चतस्रः सहसा विधाविता
गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती ॥ ९

दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां
सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः ।
अपूजयंस्ते तु नराधिपं तं
दध्मुश्च शङ्खान् शशिसंनिकाशान् ॥

श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां
हर्षाद्विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः ।
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां
पाञ्चालपुत्रो ममृषे न कोपात् ॥ ११

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा
प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय ।
जम्भो यथा शक्रसमागमे वै
नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम् ॥ १२

तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा
पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः ॥
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं
वधाय राजन् द्रुपदात्मजस्य ॥ १३

स तं द्विपेन्द्रं सहसा पतन्त-
मविध्यदग्निप्रतिमैः पृषत्कैः ।
कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भि-
र्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः ॥ १४

ततो परान्पञ्चशतान्महात्मा
नाराचमुख्यान्विससर्ज कुम्भे ।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे
तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे ॥ १५

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं
विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः ।
तोत्राङ्कुशैः प्रेषयामास तूर्णं
पञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥ १६

दृष्ट्वा पतन्तं सहसा तु नागं
धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव ।
गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो
भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः ॥ १७

स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं
साश्वंससूतं सहसा विमृद्य ।
उत्क्षिप्य हस्तेन नदन् महाद्विपो
विपोथयामास वसुन्धरातले ॥ १८

पाञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा
तदार्दितं नागवरेण तेन ।
तमभ्यधावत्सहसा जवेन
भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता १९

शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य
तस्याभितो ह्यापततो गजस्य ।
स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै
चचाल तैर्वार्यमाणाश्च संख्ये ॥ २०

ततः पृषत्कान् प्रववर्ष राजा
सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात् ।
तैराशुगैर्वध्यमाना रथौघाः
प्रदुद्रुवुः सहितास्तत्र तत्र ॥ २१

तत् कर्म शाल्वस्य समीक्ष्य सर्वे
पाञ्चालपुत्रा नृप सृञ्जयाश्च ।
हाहाकारैर्नादयन्ति स्म युद्धे
द्विपं समन्ताद्रुरुधुर्नराग्र्याः ॥ २२

पाञ्चालपुत्रस्त्वरितस्तु शूरो
गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम् ।
ससंभ्रमं भारतशत्रुघाती
जवेन वीरोऽनुससार नागम् ॥ २३

ततस्तु नागं धरणीधराभं
मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम् ।
गदां समाविध्य भृशं जघान
पाञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥ २४

स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य
मुखात्प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन् ।
पपात नागो धरणीधराभः
क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाऽद्रिः॥२५

निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे
हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये ।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो
जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥ २६

हतोत्तमाङ्गो युधि सात्वतेन
पपात भूमौ सह नागराज्ञा ।
यथाऽद्रिशृङ्गं सुमहत्प्रणुन्नं
वज्रेण देवाधिपचोदितेन ॥ २७

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शाल्ववधे
विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

सञ्जय उवाच ।
तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समिति शोभने
तवाभज्यद्बलं वेगाद्वातेनेव महाद्रुमः ॥ १
तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः ।
दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥ २
संनिवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
शैलोपमं स्थिरं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि ३
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्
तत्राश्चर्यमभूद्युद्धं सात्वतस्य परैः सह ।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम् ५
तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे ।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिविस्पृक् सुमहानभूत्
तेन शब्देन वित्रस्ताः पञ्चालान् भरतर्षभ ।
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः ॥ ७
स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम् ।
सप्तभिर्निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥ ८
तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शिताञ्शरान् ।
जवेनाभ्यपतद्धीमान्हार्दिक्यः शिनिपुङ्गवम्
सात्वतौ च महावीर्यौ धन्विनौ रथिनां वरौ
अन्योन्यमभिधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ १०
पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे ॥ ११
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यन्धकमहारथौ ।
अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ ॥ १२
चरन्तौ विविधान्मार्गान्
हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ ।
मुहुरन्तर्दधाते तौ
बाणवृष्ट्या परस्परम् ॥ १३
चापवेगबलोद्धूतान्मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः ।
आकाशे समपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥
तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् १५
स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
अष्टभिः कृतवर्माणमविध्यत्परमेषुभिः ॥ १६
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः ।
सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे ॥
निकृत्तं तद्धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ।
अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः ॥ १८
तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ।
आरोप्य च धनुः शीघ्रं महावीर्यो महाबलः
अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा ।
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात् २०
ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुङ्गवः ।
जघान सूतं चाश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः २१
ततो राजन्महेष्वासः कृतवर्मा महारथः ।
हताश्वसूतं संप्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ २२
रोषेण महताऽऽविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष ।
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् २३
तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ
निर्भिद्य निशितैः शरैः ।
चूर्णितं पातयामास
मोहयन्निव माधवम् ॥ २४

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

तस्मिन्निति ॥ १ ॥ सात्वतं कृतवर्माणम् ॥ ३ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत् ।
युयुधे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः ॥ २५
कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत ।
तस्मिन्सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथीकृते २६
समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद्भयम् ।
पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समजायत २७
हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि ।
हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिन्दम ॥ २८
अभ्यधावत्कृपो राज-
जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ।
तमारोप्य रथोपस्थे
मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९
अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि ।
शैनेयेऽधिष्ठिते राजन्विरथे कृतवर्मणि ॥ ३०
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ।
तत्परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृताः ३१
तावकाः प्रद्रुता राजन्दुर्योधनमृते नृपम् ।
दुर्योधनस्तु संप्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥
जवेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत् ।
पाण्डूंश्च सर्वान्संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥
शिखण्डिनं द्रौपदेयान्पञ्चालानां च ये गणाः
केकयान्सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष ३४
असंभ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत् ।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः ॥ ३५
यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान् ।
तथा दुर्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत्
तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे ।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत ३७

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सात्यकिकृतवर्मयुद्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

सञ्जय उवाच ।
पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः ।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् १
तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही ।
परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान् २
न च सोऽस्ति पुमान्कश्चि-
त्पाण्डवानां बलार्णवे ।
हयो गजो रथो वापि
यः स्याद्बाणैरविक्षतः ॥ ३
यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशांपते ।
स स बाणैश्चितोऽभूद्वै पुत्रेण तव भारत ४
यथा सैन्येन रजसा समुद्धूतेन वाहिनी ।
प्रत्यदृश्यत संछन्ना तथा बाणैर्महात्मनः ५
बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते ।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना ६
तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एको दुर्योधनो ह्यासीत्पुमानिति मतिर्मम ७
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम् ।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त भारत ८
युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ९
नकुलं च चतुःषष्ट्या
धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः ।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च
त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम् ॥ १०
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः ॥
नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः ।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च ॥
सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा ।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्पयन् ।
समन्तात्कीर्यमाणस्तु बाणसंघैर्महात्मभिः ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

पुत्र इति ॥ १ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत्।
युयुधे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः ॥ २५
कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत।
तस्मिन्सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथीकृते २६
समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद्भयम्।
पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समजायत २७
हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि।
हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिन्दम ॥ २८
अभ्यधावत्कृपो राज-
ञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।
तमारोप्य रथोपस्थे
मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९
अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि।
शैनेयेऽधिष्ठिते राजन्विरथे कृतवर्मणि ॥ ३०
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम्।
तत्परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृताः ३१
तावकाः प्रद्रुता राजन्दुर्योधनमृते नृपम्।
दुर्योधनस्तु संप्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥
जवेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत्।
पाण्डूंश्च सर्वान्संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥
शिखण्डिनं द्रौपदेयान्पञ्चालानां च ये गणाः
केकयान्सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष ३४
असंभ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत्।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः ॥ ३५
यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान्।
तथा दुर्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत्
तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत ३७

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सात्यकिकृतवर्मयुद्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

सञ्जय उवाच।
पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् १
तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही।
परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान् २
न च सोऽस्ति पुमान्कश्चि-
त्पाण्डवानां बलार्णवे।
हयो गजो रथो वापि
यः स्याद्बाणैरविक्षतः ॥ ३
यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशांपते।
स स बाणैश्चितोऽभूद्वै पुत्रेण तव भारत ४
यथा सैन्येन रजसा समुद्धूतेन वाहिनी।
प्रत्यदृश्यत संछन्ना तथा बाणैर्महात्मनः ५
बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना ६
तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एको दुर्योधनो ह्यासीत्पुमानिति मतिर्मम ७
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम्।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त भारत ८
युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ९
नकुलं च चतुःषष्ट्या
धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च
त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम् ॥ १०
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष।
तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः॥
नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च ॥
सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्पयन्।
समन्तात्कीर्यमाणस्तु बाणसंघैर्महात्मभिः ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

पुत्र इति ॥ १ ॥

## २३

सञ्जय उवाच ।

वर्तमाने तदा युद्धे घोररूपे भयानके ।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥ १
तांस्तु यत्नेन महता सन्निवार्य महारथान् ।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम्
निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः ।
सन्निवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ३
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ।
परेषां तव सैन्ये वा नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः
अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम् ।
तेषां क्षयो महानासीद्युध्यतामितरेतरम् ५
ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः ।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्तराष्ट्रान्सराजकान्
त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा
रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
चतुर्भिर्निजघानाश्वा-
न्नाराचैः कृतवर्मणः ॥ ७
अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम्
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविद्ध्यद्युधिष्ठिरम्
ततो दुर्योधनो राजा रथान्सप्तशतान् रणे ।
प्रैषयद्यत्र राजाऽसौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९
ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति १०
ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ११
ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथा कृतम् ।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः
रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः ।
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् १३
ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः १४
रथान्सप्तशतान्हत्वा कुरूणामाततायिनाम् ।
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन् १५
तत्र युद्धं महच्चासीत्तव पुत्रस्य पाण्डवैः ।
न च तत्तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् १६
वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः ।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥ १७
विनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः ।
उत्कुष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितैश्चैव धन्विनाम्
अतिप्रवृत्ते युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु ।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥ १९
संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसंभवे ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा २०
निर्मर्यादे महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रादुरासन्विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः
चचाल शब्दं कुर्वाणा
सपर्वतवना मही ।
सदण्डाः सोल्मुका राजन्
कीर्यमाणाः समन्ततः ॥ २२
उल्काः पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम् ।
विष्वग्वाताः प्रादुरासन्नीचैः शर्करवर्षिणः ॥
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुं चास्पृशन्भृशम् ।
एतान् घोराननादृत्य समुत्पातान्सुदारुणान्
पुनर्युद्धाय संयत्ताः क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः ।
रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः ॥ २५
ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ।
युद्ध्यध्वमग्रतो यावत्पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान्
ततो नः संप्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः ।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्त परे तथा २७
अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षा दुरासदाः ।
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन् २८
ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत्पराङ्मुखम् २९
गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ३०
अनीकं दशसाहस्र-
मश्वानां भरतर्षभ ।
आसीद्गान्धारराजस्य
विशालप्रासयोधिनाम् ॥ ३१
बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये ।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ३२

---

२३

वर्तमाने इति ॥ १ ॥

न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
लाघवं सौष्ठवं चापि वीर्यं चापि महात्मनः॥
अतिसर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः ।
धार्तराष्ट्रा हि राजेन्द्र योधास्तु स्वल्पमन्तरम्
अपश्यमाना राजानं पर्यवर्तन्त दंशिताः ।
तेषामापततां घोरस्तुमुलः समपद्यत । १८
क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा स्वनः
समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम् १९
प्रत्युद्ययुर्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः ।
भीमसेनं रणे क्रुद्धो द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥२०
नानाबाणैर्महाराज प्रमुक्तैः सर्वतोदिशम् ।
नाज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशः कुतः
तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २२
त्रासयन्तौ दिशः सर्वा ज्याक्षेपकठिनत्वचौ
शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत् ॥२३
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो
नादं चकार बलवत्सर्वसैन्यानि कोपयन् २४
एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम् ।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान् ॥२५
अथान्यं रथमास्थाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः
ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम् ।
तद्युमद्धभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष ॥ २७
प्रेक्षतां प्रीतिजननं सिद्धचारणसेवितम् ।
उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम् ॥ २८
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः ।
तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे ॥ २९
शरवर्षेण महता समन्तात्पर्यवारयत् ।
तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ ॥ ३०
योधयन्तावपश्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः ॥ ३१
योधयञ्शुशुभे राजन्बलिं शक्र इवाहवे ।
दुर्योधनो धनुश्छित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ३२
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः ।
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम् ॥ ३३
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम्।
तयोर्युद्धं महच्चासीत्संग्रामे भरतर्षभ ॥ ३४
प्रभिन्नयोर्यथासक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः ।
गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान्महाबलान् ३५
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
तस्य तैरभवद्युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः ॥ ३६
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमवर्तत ।
ते च संपीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम्।
स च तान्प्रति संरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे ।
एवं चित्रमभूद्युद्धं तस्य तैः सह भारत ॥ ३८
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो
नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिः सह ।
संकुलं चाभवद्भूयो घोररूपं विशांपते ॥ ४०
इदं चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
युद्धान्यासन्महाराज घोराणि च बहूनि च
ते समासाद्य समरे परस्परमरिन्दमाः ।
व्यनदंश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे ॥ ४२
तेषां पत्रसमुद्भूतं रजस्तीव्रमदृश्यत ।
वातेन चोद्धतं राजन्धावद्भिश्चाश्वसादिभिः
रथनेमिसमुद्भूतं निःश्वासैश्चापि दन्तिनाम् ।
रजःसंध्याभ्रकलिलं दिवाकरपथं ययौ ॥ ४४
रजसा तेन संपृक्तो भास्करो निष्प्रभः कृतः ।
संछादिताऽभवद्भूमिस्ते च शूरा महारथाः॥
मुहूर्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः ।
वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम ॥४६
उपाशाम्यत्ततस्तीव्रं तद्रजो घोरदर्शनम् ।
ततोऽपश्यमहं भूयो द्वन्द्वयुद्धानि भारत ॥४७
यथाप्राणं यथाश्रेष्ठं मध्याह्ने वै सुदारुणम् ।
वर्मणा तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वला प्रभाः
शब्दश्च तुमुलः संख्ये शराणां पततामभूत् ।
महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

सञ्जय उवाच ।
वर्तमाने तदा युद्धे घोररूपे भयानके ।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥ १
तांस्तु यत्नेन महता संनिवार्य महारथान् ।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम्
निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः ।
संनिवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ३
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ।
परेषां तव सैन्ये वा नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः
अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम् ।
तेषां क्षयो महानासीद्युध्यतामितरेतरम् ५
ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः ।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्तराष्ट्रान्सराजकान्
त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा
रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
चतुर्भिर्निजघानाश्वा-
न्नाराचैः कृतवर्मणः ॥ ७
अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम्
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविद्ध्यद्युधिष्ठिरम्
ततो दुर्योधनो राजा रथान्सप्तशतान् रणे ।
प्रैषयद्यत्र राजाऽसौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९
ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति १०
ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ११
ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथा कृतम् ।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः
रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः ।
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् १३
ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः १४
रथान्सप्तशतान्हत्वा कुरूणामाततायिनाम् ।
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन्१५
तत्र युद्धं महच्चासीत्तव पुत्रस्य पाण्डवैः ।
न च तत्तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् १६
वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः ।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥ १७
विनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः ।
उत्कृष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितैश्चैव धन्विनाम्
अतिप्रवृत्ते युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु ।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥ १९
संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसंभवे ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा २०
निर्मर्यादे महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रादुरासन्विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः
चचाल शब्दं कुर्वाणा
सपर्वतवना मही ।
सदण्डाः सोल्मुका राजन्
कीर्यमाणाः समन्ततः ॥ २२
उल्काः पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम् ।
विष्वग्वाताः प्रादुरासन्नीचैः शर्करवर्षिणः ॥
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुं चास्पृशन्भृशम् ।
एतान् घोराननादृत्य समुत्पातान्सुदारुणान्
पुनर्युद्धाय संयत्ताः क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः ।
रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः ॥ २५
ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ।
युद्ध्यध्वमग्रतो यावत्पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान्
ततो नः संप्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः ।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्त परे तथा २७
अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षा दुरासदाः ।
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन् २८
ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत्पराङ्मुखम् २९
गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ३०
अनीकं दशसाहस्र-
मश्वानां भरतर्षभ ।
आसीद्गान्धारराजस्य
विशालप्रासयोधिनाम् ॥ ३१
बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये ।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ३२

२३
वर्तमाने इति ॥ १ ॥

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः ।
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद्बलम् ३३
ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ।
अभ्यनादयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥ ३४
असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः ।
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम्
गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि ।
रथानीकमहं धक्ष्ये पञ्चालसहितोऽनघ ३६
गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया ।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि
ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान् ३८
पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३९
ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य पाण्डवान्
जघान पृष्ठतः सेनां जयगृद्धः प्रतापवान् ४०

अश्वारोहास्तु संरब्धाः
पाण्डवानां तरस्विनाम् ।
प्राविशन्सौबलानीक-
मभ्यतिक्रम्य तान् रथान् ॥ ४१

ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद्बलम् ।
रणमध्ये व्यतिष्ठन्त शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४२
तदुद्यतगदाप्रासमकापुरुषसेवितम् ।
प्रावर्तत महद्युद्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ४३
उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका रथिनोऽभवन्
न हि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत
शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ ।
ज्योतिषामिव संपातमपश्यन्कुरुपाण्डवाः
ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशांपते ।
संपतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत ॥ ४६
प्रासानां पततां राजन् रूपमासीत्समन्ततः
शलभानामिवाकाशे तदा भरतसत्तम ॥ ४७
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥
अन्योन्यं परिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम् ।
आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः
ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्येन रजसा वृते ।
तानपाक्रमतोऽद्राक्षं तस्माद्देशादरिन्दम ५०
अश्वान् राजन्मनुष्यांश्च रजसा संवृते सति ।
भूमौ निपतिताश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु ५१
केशाकेशि समालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं नराः ।
अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः ॥
मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम् ।
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः ५३
भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः ।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः ५४
रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरवकृष्टशिरोरुहैः ।
व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोऽथ सहस्रशः ५५
दूरं न शक्यं तत्रासीद्गन्तुमश्वेन केनचित् ।
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥ ५६
रुधिरोक्षितसन्नाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः ।
नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैषिभिः ॥ ५७
सुसन्निकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः ।
स मुहूर्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशांपते
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः ।
तथैव पाण्डवानीकं रुधिरेण समुक्षितम् ५९
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम् ।
अश्वारोहाश्च पाण्डूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः
सुसन्निकृष्टे संग्रामे भूयिष्ठे त्यक्तजीविताः ।
न हि शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एव महागजैः ६१
रथानेव रथा यान्तु कुञ्जराः कुञ्जरानपि ।
प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः ॥
न पुनः सौबलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति
ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः ६३
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः ।
सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते ॥
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः ॥ ६५

पार्श्वतोऽभ्यहनत्क्रुद्धो
धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम् ।
तत्पुनस्तुमुलं युद्धं
प्राणांस्त्यक्त्वाऽभ्यवर्तत ॥ ६६

तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम् ।
ते चान्योन्यमवैक्षन्त तस्मिन्वीरसमागमे ॥
योधाः पर्यपतन् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः
असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दस्तालानां पततामिव ।
विमुक्तानां शरीराणां छिन्नानां पततां भुवि
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशांपते ।
आसीत्कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः ७०
निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन्पुत्रान्सखीनपि
योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः॥

अन्योन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम्
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति निघ्नन्सहस्रशः ॥ ७२
संघातेनासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥
स्फुरतां प्रतिविष्टानामश्वानां शीघ्रगामिनाम्
स्तनतां च मनुष्याणां सन्नद्धानां विशांपते ॥
शक्त्यृष्टिप्रासशब्दश्च तुमुलः समपद्यत ।
भिन्दतां परमर्माणि राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥
श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासवः
विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्तन्त तावकाः ॥
मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः ।
जघ्नुः परान्स्वकांश्चैव प्राप्तान्प्राप्ताननन्तरान्
बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः ।
भूमावभ्यपतन् राजन् शरवृष्टिभिरावृताः ॥
वृक-गृध्र-शृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि ।
आसीद्बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ७९
नराश्वकायैः संछन्ना भूमिरासीद्विशांपते ।
रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्धिनी ८०
असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः
तावकाः पाण्डवेयाश्च न न्यवर्तन्त भारत८१
प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत्प्राणस्य धारणम् ।
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः
शिरो गृहीत्वा केशेषु कबन्धः स्म प्रदृश्यते ।
उद्यम्य च शितं खड्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ८३
तथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु नराधिप ।
तथा रुधिरगन्धेन योधाः कश्मलमाविशन्
मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद्बलम् ।
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्तत सौबलः ॥ ८५
ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः ८६
कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः ॥ ८७
त्वदीयास्तांस्तु संप्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान्
रथाश्वपत्तिद्विरदाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः ८८
केचित्पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम् ।
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन्
रथेभ्यो रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः ।
विमानेभ्यो दिवो भ्रष्टाःसिद्धाःपुण्यक्षयादिव
एवमन्योन्यमायत्ता योधा जग्मुर्महाहवे ।
पितॄन् भ्रातॄन्वयस्यांश्च पुत्रानपि तथा परे९१
एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम ।
प्रासासिबाणकलिलं वर्तमाने सुदारुणे ९२

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

सञ्जय उवाच ।
तस्मिञ्शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्तत सौबलः ॥ १
स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत्त्वरयन्युधि ।
युद्ध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिंदमाः २
अपृच्छत्क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महाबलः ।
शकुनेस्तद्वचः श्रुत्वा तमूचुर्भरतर्षभ ॥ ३
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महाबलः ।
यत्रैतत्सुमहच्छत्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ ४
यत्र ते सतनुत्राणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः ।
यत्रैष तुमुलः शब्दः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ ५
तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम्
एवमुक्तस्तु तैर्योधैः शकुनिः सौबलस्तदा ॥६
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप ।
सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः ७
ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम् ।
स रथांस्तावकान्सर्वान्हर्षयञ्शकुनिस्ततः ८
दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशांपते ।
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम् ९
जहि राजन् रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया
नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः
हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते
गजानेतान्हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥

२४

तस्मिन्निति ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः ।
जवेनाभ्यपतन्हृष्टाः पाण्डवानामनीकिनीम्
सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान्प्रणेदिरे ॥
ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद्विशांपते ।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः ॥
तान्समीपगतान्दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १५
चोदयाश्वानसंभ्रान्तः प्रविशैतद्बलार्णवम् ।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः ॥
अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन ।
वर्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम् १७
अनंतकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम्
क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम् १८
समुद्रकल्पं च बलं धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
अस्मानासाद्य संजातं गोष्पदोपममच्युत १९
हते भीष्मे तु संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव
न च तत्कृतवान्मूढो धार्तराष्ट्रः सुबालिशः
उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं हितं तथ्यं च माधव ।
तच्चापि नासौ कृतवान्वीतबुद्धिः सुयोधनः ॥
तस्मिंस्तु तुमुले भीष्मे प्रच्युते धरणीतले ।
न जाने कारणं किं तु येन युद्धमवर्तत ॥ २२
मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्तराष्ट्रान्सुबालिशान्
पतिते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः ॥
अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे ।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम्
अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन् सूतपुत्रे च पातिते
सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२५
श्रुतायुषि हते वीरे जलसन्धे च पौरवे ।
श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम् ॥
भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन ।
आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम् ॥
जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे ।
बाह्लिके सोमदत्ते च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥
भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदारुणे ।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम् ॥
दृष्ट्वा विनिहताञ्शूरान् पृथङ्माण्डलिकान्नृपान्
बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम्॥३०
अक्षौहिणीपतीन् दृष्ट्वा भीमसेनविपातितान्
मोहाद्वा यदि वा लोभाच्चैवाशाम्यत वैशसं
को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः ।
निरर्थकं महद्वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात् ॥३२
गुणतोऽभ्यधिकाञ्ज्ञात्वा
बलतः शौर्यतोऽपि वा ।
अमूढः को नु युद्ध्येत
जानन्प्राज्ञो हिताहितम् ॥ ३३
यन्न तस्य मनो ह्यासीत्त्वयोक्तस्य हितं वचः
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात्कथं
येन शान्तनवो वीरो द्रोणो विदुर एव च ।
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजं
मौर्ख्याद्येन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद्वदन्
कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन ॥
तथास्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशांपते ।
नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत
उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना ।
न जीवन्दास्यते भागं धार्तराष्ट्रस्तु मानद ॥
यावत्प्राणा धरिष्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तावद्युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पापकम् ॥
न च युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव ।
इत्यब्रवीत्सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः ॥
तत् सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः ।
यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना ॥ ४२
यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद्यथातथं
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः ॥
उक्तं हि बहुशः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने ।
एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति ॥
तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन ।
क्षयं याता हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम्
सोऽद्य सर्वान् रणे योधान्
निहनिष्यामि माधव ।
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु
शून्ये च शिबिरे कृते ॥ ४६
वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति
तदन्तं हि भवेद्वैरमनुमानेन माधव ॥ ४७
एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन्प्रज्ञया स्वया।
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः ४८

पापकं प्रचरिष्यति आचरिष्यति धार्तराष्ट्र इति शेषः ॥ ४० ॥

तस्माद्याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः
दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे ॥
क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव ।
हत्वैतद्दुर्बलं सैन्यं धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ५०

सञ्जय उवाच ।

अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना
तद्बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद्बलात् ॥
कुन्तखड्गशरैर्घोरं शक्तिकण्टकसंकुलम् ।
गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम् ॥ ५२
हयपत्तिलताकीर्णं गाहमानो महायशाः ।
व्यचरत्तत्र गोविन्दो रथेनातिपताकिना ॥
ते हयाः पाण्डुरा राजन्वहन्तोऽर्जुनमाहवे ।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः ॥
ततः प्रायाद्रथेनाजौ सव्यसाची परंतपः ।
किरञ्शरशतांस्तीक्ष्णान्वारिधारा घनो यथा
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः शराणां नतपर्वणाम्
इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना ॥
असज्जन्तस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन् भुवि ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः
नरान्नागान्समाहत्य हयांश्चापि विशांपते ।
अपतन्त रणे बाणाः पतंगा इव घोषिणः ॥
आसीत्सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशो वा प्रदिशोऽपि वा
सर्वमासीज्जगत्पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥६०
ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः ।
पार्थं न प्रजहुर्घोरा वध्यमानाः शितैः शरैः ॥
शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः ।
ददाह समरे योधान्कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥६२

यथा वनान्ते वनपैर्विसृष्टः
कक्षं दहेत्कृष्णगतिः सुघोषः ।
भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं
भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी ॥ ६३
एवं स नाराचगणप्रतापी
शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः ।
ददाह सर्वां तव पुत्रसेनाः
ममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी ॥ ६४
तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता
नासज्जन्वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः ।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं
नरे हये वा परमद्विपे वा ॥ ६५
अनेकरूपाकृतिभिर्हि बाणै-
र्महारथानीकमनुप्रविश्य ।
स एव एकस्तव पुत्रस्य सेनां
जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः ॥ ६६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## २५

सञ्जय उवाच ।

पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ॥ १
इंद्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान्महौजसः ।
विसृजन् दृश्यते बाणान्धारा मुञ्चन्निवांबुदः
तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना ।
संप्रदुद्राव संग्रामात्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ३
पितॄन् भ्रातॄन्परित्यज्य वयस्यानपि चापरे ।
हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथा परे ॥ ४
भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन्विशांपते ।
अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथान्ये बाणपीडिताः
अक्षता युगपत्केचित्प्राद्रवन् भयपीडिताः ।
केचित्पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठबान्धवाः ॥ ६
विचुक्रुशुः पितॄंस्त्वन्ये सहायानपरे पुनः ।
बान्धवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन्संबन्धिनस्तथा ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

पश्यतामिति ॥ १ ॥

दुद्रुवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशांपते ।
बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः ॥
निःश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः
तानन्ये रथमारोप्य ह्याश्वास्य च मुहूर्तकम्
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे।
तानपास्य गताः केचित्पुनरेव युयुत्सवः ॥१०
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः ।
पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम् ॥
वर्माणि च समारोप्य केचिद्भरतसत्तम ।
समाश्वास्यापरे भ्रातृन्निक्षिप्य शिबिरेऽपि च
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन् ।
सज्जयित्वा रथान्केचिद्यथा मुख्यं विशांपते
आप्लुत्य पाण्डवानीकं
पुनर्युद्धमरोचयन् ।
ते शूराः किंकिणीजालैः
समाच्छन्ना बभासिरे ॥ १४
त्रैलोक्यविजये युक्ता यथा दैतेयदानवाः ।
आगम्य सहसा केचिद्रथैः स्वर्णविभूषितैः ॥
पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन् ।
धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः
नाकुलिस्तु शतानीको रथानीकमयोधयन् ।
पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तावकान्हन्तुमुद्यतः ।
ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप ॥
बाणसंघाननेकान्वै प्रेषयामास भारत ।
धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना ॥१९
नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः ।
वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः ॥२०
अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे ।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥
ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः ।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिन्दमः ॥ २३
दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः ।
तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः ॥ २४
ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः ।
पाण्डवान् रथिनः सर्वान्समन्तात्पर्यवारयन्
ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत ।
अशोभन्त महाराज ग्रहा व्याप्ता घनैरिव ॥
ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्षो महाभुजः ।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥
तैः समंतात्परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमयोधयत् ॥
तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान् ।
पतितान्पात्यमानांश्च निर्भिन्नान्सव्यसाचिना
भीमसेनस्तु तान्दृष्ट्वा नागान्मत्तगजोपमः ।
करेणादाय महतीं गदामभ्यपतद्बली ॥ ३०
अथाप्लुत्य रथात्तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः ।
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम् ॥ ३१
वित्रेसुस्तावकाः सैन्याः शकृन्मूत्रे च सुस्रुवुः ।
आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे ॥ ३२
गदया भीमसेनेन भिन्नकुंभान् रजस्वलान् ।
धावमानानपश्याम कुञ्जरान्पर्वतोपमान् ॥३३
प्राद्रवन्कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः ।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३४
प्रभिन्नकुंभांस्तु बहून्द्रवमाणानितस्ततः ।
पतमानांश्च संप्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पांडवौ
गार्ध्रपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम् ॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम् ।
अपक्रान्ते तव सुते हयपृष्ठं समाश्रिते ॥ ३७
दृष्ट्वा च पाण्डवान्सर्वान्कुञ्जरैः परिवारितान्
धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत् ॥३८
पुत्रः पञ्चालराजस्य जिघांसुः कुञ्जरान् ययौ
अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिंदमम् ॥ ३९
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
अपृच्छन्क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः ॥
ते पश्यमाना राजानं वर्तमाने जनक्षये ।
मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः ॥ ४१
विवर्णवदना भूत्वा पर्यपृच्छन्त ते सुतम् ।
आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः ॥
हित्वा पञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ।
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः ॥४३
दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति ।
युद्ध्यध्वं सहिताः सर्वे किं वो राजा करिष्यति
ते क्षत्रियाः क्षतैर्गात्रैर्हतभूयिष्ठवाहनाः ।
शरैः संपीड्यमानास्तु नातिव्यक्तमथाब्रुवन् ॥
इदं सर्वं बलं हन्मो येन स्म परिवारिताः ।
एते सर्वे गजान्हत्वा उपयान्ति स्म पाण्डवाः
श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः ।
भित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम्

कृपश्च कृतवर्मा च प्रययौ यत्र सौबलः।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः॥
ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः।
आययुः पाण्डवा राजन्विनिघ्नंतः स्म तावकम्
दृष्ट्वा तु तानापततः संप्रहृष्टान्महारथान्।
पराक्रान्तास्ततो वीरा निराशा जीविते तदा
विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत्तावकं बलम्।
परिक्षीणायुधान्दृष्ट्वा तानहं परिवारितान्॥
राजन्बलेन द्व्यंगेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः
आत्मना पञ्चमोऽयुद्ध्यं पाञ्चालस्य बलेन ह
तस्मिन्देशे व्यवस्थाय यत्र शारद्वतः स्थितः।
संप्रद्रुता वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः ५३
धृष्टद्युम्नं महारौद्रं तत्र नाभूद्रणो महान्।
जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात्ततः ५४
अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम्।
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मामभ्यद्रवदाहवे॥ ५५
धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथञ्चिच्छ्रान्तवाहनात्।
पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा ५६
तत्र युद्धमभूद्घोरं मुहूर्तमतिदारुणम्।
सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम्
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्छितं पतितं भुवि।
ततो मुहूर्तादिव तद्गजानीकमवध्यत॥ ५८
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च।
अभिपिष्टैर्महानागैः समन्तात्पर्वतोपमैः॥ ५९
नातिप्रसिद्धेव गतिः पाण्डवानामजायत।
रथमार्गं ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः॥ ६०
पाण्डवानां महाराज व्यपाकर्षन्महागजान्
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥
अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिन्दमम्।
राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम् ६२
परित्यज्य च पाञ्चाल्यं प्रयाता यत्र सौबलः
राज्ञो दर्शनसंविग्ना वर्तमाने जनक्षये॥ ६३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनापयाने
पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

## २६

सञ्जय उवाच।
गजानीके हते तस्मिन्पाण्डुपुत्रेण भारत।
वध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे॥ १
चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिन्दमम्।
दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम् २
समेत्य समरे राजन् हतशेषाः सुतास्तव।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव॥ ३
सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन्
दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिबलो रविः ४
जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा।
दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च॥ ५
श्रुतर्वा च महाबाहुः सर्वे युद्धविशारदाः।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः ६
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतोदिशम्।
ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः ७
मुमोच निशितान्बाणान्पुत्राणां तव मर्मसु।
ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे॥ ८
भीमसेनमुपासेदुः प्रवणादिव कुञ्जरम्।
ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह ९
क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले।
ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना॥ १०
श्रुतान्तमवधीद्भीमस्तव पुत्रं महारथः।
जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव
पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिन्दमः।
स पपात रथाद्राजन् भूमौ तूर्णं ममार च १२
श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम् १३
ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम्।
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्छद्विषाग्निप्रतिमैः शरैः १४

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचविंशोऽध्यायः॥ २५॥

२६

गजानीके इति॥ १॥

ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः
वसन्ते पुष्पशबला निकृत्ता इव किंशुकाः ॥
ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन च परन्तपः ।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १६
स हतः प्रापतद्भूमौ स्वरथाद्रथिनां वरः ।
गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः १७
दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतं तव ।
एकैकं न्यहनत्संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे
तौ शिलीमुखविद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ ।
ततः पतन्तं समरे अभिवीक्ष्य सुतं तव ॥ १९
भल्लेन पातयामास भीमो दुर्विषहं रणे ।
स पपात हतो वाहात्पश्यतां सर्वधन्विनाम्
दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातृन्बहूनेकेन संयुगे ।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात् ॥ २१
विक्षिपन्सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
विसृजन्सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान्बहून्
स तु राजन्धनुश्छित्त्वा
पाण्डवस्य महामृधे ।
अथैनं छिन्नधन्वानं
विंशत्या समवाकिरत् ॥ २३
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ।
अवाकिरत्तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् २४
महदासीत्तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम् ।
यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्युधि ॥ २५
तयोस्तत्र शितैर्मुक्तै-
र्यमदण्डनिभैः शरैः ।
समाच्छन्ना धरा सर्वा
खं दिशो विदिशस्तथा ॥ २६
ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरादाय सायकैः ।
भीमसेनं रणे राजन्बाह्वोरुरसि चार्पयत् २७
सोऽतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना ।
भीमः सञ्चुक्षुभे क्रुद्धः पर्वणीव महोदधिः ॥
ततो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष ।
सारथिं चतुरश्चाश्वाञ्शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥
विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः ।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ३०
श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी ।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत् ३१
क्षुरप्रेण शिरः कायात्पातयामास पाण्डवः
छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मना ३२
पपात कायः स रथाद्वसुधामनुनादयन् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः ॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः ।
तानापतत एवाशु हतशेषाद्बलार्णवात् ३४
दंशितान्प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान् ।
ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः ३५
ततस्तु संवृतो भीमस्तावकान्निशितैः शरैः ।
पीडयामास तान्सर्वान्सहस्राक्ष इवासुरान्
ततः पञ्चशतान्हत्वा सवरूथान्महारथान् ।
जघान कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि ॥ ३७
हत्वा शतसहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः ।
वाजिनां च शतान्यष्टौ पाण्डवः स्म विराजते
भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव ।
मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ३९
तं तथा युद्ध्यमानं च विनिघ्नन्तं च तावकान्
ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्या नराधिप ४०
विद्राव्य च कुरून्सर्वां-
स्तांश्च हत्वा पदानुगान् ।
दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे
त्रासयानो महाद्विपान् ॥ ४१
हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशांपते ।
किञ्चिच्छेषा महाराज कृपणं समपद्यत ४२

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकादशधार्तराष्ट्रवधे
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६

## २७

सञ्जय उवाच ।
दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः ।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ
ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् ।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ २
शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः ।
गृहीत्वा सञ्जयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः ३
परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत ।
योधयित्वा रणे पापान्धार्तराष्ट्रान्सहानुगान्
दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ५
असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥ ६
असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७
प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः ।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि
गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिन्दम ।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम् ९
यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी१०
हत्वा तव बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः ।
जितान्पाण्डुसुतान्मत्वा रूपं धारयते महत्
निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः ।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः १२
एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव॥१३
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः
हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः ।
हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन ।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः
अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः १७
एतद्बलमभूच्छेषं
धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
मोक्षो न नूनं कालात्तु
विद्यते भुवि कस्यचित् ॥ १८
तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम्
अद्याह्ना हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति
न हि मे मोक्ष्यते कश्चि-
त्परेषामिह चिन्तये ।
ये त्वद्य समरं कृष्ण
न हास्यन्ति मदोत्कटाः ॥ २०
तान्वै सर्वान्हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः
अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् २१
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः
निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः
सभायामहरद्द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम् ।
अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरे स्त्रियः
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान्युधि ।
समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति २४
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति
नापयाति भयात्कृष्ण संग्रामाद्यदि चेन्मम ॥
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रं सुबालिशम्
मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिन्दम ॥ २६
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम्
एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना२७
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति ।
तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः २८
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष ।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया ॥ २९
तान्प्रेक्ष्य सहितान्सर्वा-
ञ्जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
सौबलोऽभ्यद्रवद्युद्धे
पाण्डवानाततायिनः ॥ ३०
सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात् ।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ३१
सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात् ।
ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप ३२

२७

दुर्योधन इति ॥ १ ॥

## २७

सञ्जय उवाच ।
दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः ।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ
ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् ।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ २
शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः ।
गृहीत्वा सञ्जयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः ३
परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत ।
योधयित्वा रणे पापान्धार्तराष्ट्रान्सहानुगान्
दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ५
असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥ ६
असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७
प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः ।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि
गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिन्दम ।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम् ९
यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी१०
हत्वा तव बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः ।
जितान्पाण्डुसुतान्मत्वा रूपं धारयते महत्
निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः ।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः १२
एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव॥१३
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः
हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः ।
हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन ।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः
अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः १७

एतद्बलमभूच्छेषं
धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
मोक्षो न नूनं कालात्तु
विद्यते भुवि कस्यचित् ॥ १८
तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम्
अद्याह्ना हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति
न हि मे मोक्ष्यते कश्चि-
त्परेषामिह चिन्तये ।
ये त्वद्य समरं कृष्ण
न हास्यन्ति मदोत्कटाः ॥ २०
तान्वै सर्वान्हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः
अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् २१
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः
निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः
सभायामहरद्द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम् ।
अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरे स्त्रियः
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान्युधि ।
समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति २४
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति
नापयाति भयात्कृष्ण संग्रामाद्यदि चेन्मम ॥
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रं सुबालिशम्
मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिन्दम ॥ २६
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम्
एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना२७
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति ।
तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः २८
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष ।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया ॥ २९
तान्प्रेक्ष्य सहितान्सर्वा-
न्जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
सौबलोऽभ्यद्रवद्युद्धे
पाण्डवानाततायिनः ॥ ३०
सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात् ।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ३१
सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात् ।
ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप ३२

२७

दुर्योधन इति ॥ १ ॥

उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः ।
शकुनिश्च महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत् ।
ते शूराः समरे राजन् समासाद्य परस्परम् ॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णप्रहितैः शरैः ॥ ५
तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशांपते ।
आच्छादयद्दिशः सर्वा धारा इव पयोमुचः
ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च भारत ।
चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ ॥ ७
ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद्बलं तव भारत ।
सान्धकारमिवाकाशमभवत्तत्र तत्र ह ॥ ८
अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरच्छन्नैर्विशांपते ।
तत्र तत्र वृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान् बहून्॥९
निहतानां हयानां च सहैव हयसादिभिः ।
वर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष ॥
ऋष्टिभिः शक्तिभिश्चैव सासिप्रासपरश्वधैः
संछन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव ॥
योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम् ।
व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥
उद्वृत्तनयनै रोषात्संदष्टौष्ठपुटैर्मुखैः ।
सकुण्डलैर्मही च्छन्ना पद्मकिञ्जल्कसन्निभैः ॥
भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः ।
साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासिप्रासपरश्वधैः ॥ १४
कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि ।
क्रव्यादगणसंछन्ना घोराऽभूत्पृथिवी विभो
अल्पावशिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान्महाहवे ।
प्रहृष्टाः पाण्डवा भूत्वा निन्यिरे यमसादनम्
एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान् ।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद्भृशम् ॥१७
स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रतापवान् ॥
सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत ।
निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः॥
विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिंदमः ।
तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः ॥
प्राद्रवन्सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः ।
प्रभग्नानथ तान्दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ।
इह कीर्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान्समश्नुते ॥
प्राणाञ्जहाति यो धीरो युद्धे पृष्ठमदर्शयन् ॥
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः ॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।
द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः
क्षुब्धसागरसंकाशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन्
तांस्तथा पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान् ॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजयोद्यताः ।
प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशांपते ॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा
हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ।
धनुश्चिच्छेद च शरैः
सौबलस्य हसन्निव ॥ २७
अथान्यद्धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः ।
विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनं च सप्तभिः
उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः
सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन्पितरं रणे ॥ २९
तं भीमसेनः समरे विव्याध नवभिः शरैः ।
शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः
ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः ।
सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयञ्शरवृष्टिभिः ॥
पर्वतं वारिधाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः ।
ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान्
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः ।
स जगाम रथाद्भूमिं सहदेवेन पातितः ॥ ३३
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गो नन्दयन्पाण्डवान् युधि ।
पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत ॥ ३४
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन्
चिन्तयित्वा मुहूर्तं स बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन्
सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः ।
तानपास्य शरान्मुक्ताञ्शरसंघैः प्रतापवान्॥
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे ।
छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा ॥
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत् ।
तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशांपते ॥ ३८
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव ।
असिं दृष्ट्वा तथा छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम्
प्राहिणोत्सहदेवाय सा मोघा न्यपतद्भुवि ।
ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रीमिवोद्यताम्

रणे वीरशब्दविशिष्टे ॥ ७ ॥

प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः ।
तामापतन्तीं सहसा शरैः कनकभूषणैः ॥४१
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव ।
सा पपात त्रिधा छिन्ना भूमौ कनकभूषणा
शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद्वै शतन्हदा ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम्
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः
अथोत्क्रुष्टं महच्चासीत्पाण्डवैर्जितकाशिभिः
धार्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाऽभवन्
तान्वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान्४५
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे ।
ततो गान्धारकैर्गुप्तं पुष्टैरश्वैर्जये धृतम् ॥ ४६
आससाद रणे यान्तं सहदेवोऽथ सौबलम् ।
स्वमंशमवशिष्टं तं संस्मृत्य शकुनिं नृप ४७
रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा व्याक्षिपन्सुमहद्धनुः ॥
स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भृशमभ्यहनत्क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ४९
उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव ।
क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव ॥
यत्तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले ।
फलमद्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते ॥ ५१
निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन्पुरा ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः
अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः ।
वृक्षात्फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना ५३
एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः ।
संक्रुद्धो रणशार्दूलो वेगेनाभिजगाम तम् ५४
अभिगम्य सुदुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः ।
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रज्वलन्निव ॥ ५५
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य छित्त्वा सिंह इवानदत्
छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः ।
कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः ५७
ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान्
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम् ५८
ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो
माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे ।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन
जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम् ॥ ५९
माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं
प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे ।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत्संचकर्त
ननाद चोच्चैस्तरसाऽऽजिमध्ये ॥ ६०
तस्याशुकारी सुसमाहितेन
सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन ।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन
शिरः शरीरात्प्रममाथ भूयः ॥ ६१
शरेण कार्तस्वरभूषितेन
दिवाकराभेण सुसंहितेन ।
हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन
पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः ॥ ६२
स तच्छिरो वेगवता शरेण
सुवर्णपुङ्खेन शिलाशितेन ।
प्रावेरयत्कुपितः पाण्डुपुत्रो
यत्तत्कुरूणामनयस्य मूलम् ॥ ६३
भुजौ सुवृत्तौ प्रचकर्त वीरः
पश्चात्कबन्धं रुधिरावसिक्तम् ।
विस्पन्दमानं निपपात घोरं
रथोत्तमात्पार्थिव पार्थिवस्य ॥ ६४
हृतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य
भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम् ।
योधास्त्वदीया भयनष्टसत्त्वा
दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥ ६५
प्रविद्रुताः शुष्कमुखा विसंज्ञा
गाण्डीवघोषेण समाहताश्च ।
भयार्दिता भग्नरथाश्वनागाः
पदातयश्चैव सधार्तराष्ट्राः ॥ ६६
ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा
मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः ।
शङ्खान्प्रदध्मुः समरेऽतिहृष्टाः
सकेशवाः सैनिकान्हर्षयन्तः ॥ ६७
तं चापि सर्वे प्रतिपूजयन्तो
दृष्ट्वा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ ।
दिष्ट्या हतो नैकृतिको महात्मा
सहात्मजो वीर रणे त्वयेति ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शकुन्युलूकवधे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

# अथ ह्रदप्रवेशपर्व २

## २९

सञ्जय उवाच ।

ततः क्रुद्धा महाराज
सौबलस्य पदानुगाः ।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे
पाण्डवान्पर्यवारयन् ॥ १

तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात्सहदेवजये धृतः ।
भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः ॥ २
शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम् ।
सङ्कल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ३
संगृहीतायुधान्बाहून्योधानामभिधावताम् ।
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि
ते हयाः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः ।
चरता लोकवीरेण प्रहताः सव्यसाचिना ५
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम् ।
हतशेषान्समानीय क्रुद्धो रथगणान्बहून् ॥ ६
कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च समन्ततः ।
उवाच सहितान्सर्वान्धार्तराष्ट्र इदं वचः ७
समासाद्य रणे सर्वान्पाण्डवान्ससुहृद्गणान् ।
पाञ्चाल्यं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्यवर्तत८

तस्य ते शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः ।
अभ्युद्ययू रणे पार्थांस्तव पुत्रस्य शासनात ९
तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान्महारणे ।
शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन्
तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः ।
अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ११
प्रतिष्ठमानं तु भयान्नावतिष्ठति दंशितम् ।
अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसा वृते १२
न प्राज्ञायन्त समरे दिशः सप्रदिशस्तथा ।
ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः
अभ्यघ्नंस्तावकान् युद्धे मुहूर्तादिव भारत ।
ततो निःशेषमभवत्तत्सैन्यं तव भारत ॥ १४
अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत ।
एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः ॥
तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु ।
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः १६

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा
दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीम् ।
विहीनः सर्वयोधैश्च
पाण्डवान् वीक्ष्य संयुगे ॥ १७

मुदितान्सर्वतः सिद्धान्नर्दमानान्समन्ततः ।
बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ॥
दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः ।
अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः ॥ १९

धृतराष्ट्र उवाच ।

निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिबिरे कृते।
पाण्डवानां बले सूत किं नु शेषमभूत्तदा २०
एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि सञ्जय ।
यच्च दुर्योधनो मन्दः कृतवांस्तनयो मम ॥
बलक्षयं तथा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः ।

सञ्जय उवाच ।

रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च।
पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः।
एतच्छेषमभूद्राजन्पाण्डवानां महद्बलम् ॥२३
परिगृह्य हि यद्युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ।
एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः ॥२४
नापश्यत्समरे कञ्चित्सहायं रथिनां वरः ।
नर्दमानान्परान्दृष्ट्वा स्वबलस्य च संक्षयम् ॥
तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः ।
हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात
एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम्
नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः ।
सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः ॥२८
इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ।
महद्वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे ॥ २९
एवं विचिन्तयानस्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं नृपः ।
दुःखसंतप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन्बलक्षयम् ॥ ३०
पाण्डवास्तु महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तव राजन्बलं प्रति ॥

२९

ततः क्रुद्ध इति ॥ १ ॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां बलानामभिगर्जताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ॥
तान्हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान्सह बंधुभिः
रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो बह्वशोभत ॥ ३३
सुबलस्य हते पुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे ।
महावनमिव छिन्नमभवत्तावकं बलम् ॥३४
अनेकशतसाहस्रे बले दुर्योधनस्य ह ।
नान्यो महारथो राजञ्जीवमानो व्यदृश्यत३५
द्रोणपुत्रादृते वीरात्तथैव कृतवर्मणः ।
कृपाच्च गौतमाद्राजन्पार्थिवाच्च तवात्मजात्
धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन्सात्यकिमब्रवीत् ।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥
धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः ।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा ॥३८
तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
मुच्यतां सञ्जयो जीवन्न हन्तव्यः कथञ्चन ॥
द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः ।
ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति सञ्जय साधय
अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः ।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायान्हे रुधिरोक्षितः ॥
क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम् ।
एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम् ॥४२
स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ।
उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तथा दीनमवस्थितम् ॥ ४३
तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे ।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः ॥ ४४
ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तदा ।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे ॥ ४५
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनां
भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः ॥
तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
भ्रातॄंश्च निहतान्सर्वान्सैन्यं च विनिपातितम्
त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप
इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्
स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः
असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥
त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति सञ्जय ।
द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पांडवाः
ब्रूयाः सञ्जय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥ ५१
सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च ।
पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः
आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात्
अस्मिंस्तोयन्हदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम् ॥
एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत्तं महाह्रदम् ।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥
तस्मिन् ह्रदे प्रविष्टे तु
त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान् ।
अपश्यं सहितानेक-
स्तं देशं समुपेयुषः ॥ ५५
कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां वरम् ।
भोजं च कृतवर्माणं सहिताञ्शरविक्षतान्
ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वाननोदयन् ।
उपयाय तु मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि सञ्जय ॥
अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम् ।
कच्चिद्दुर्योधनो राजा स नो जीवति सञ्जय
आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम् ।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥
ह्रदं चैवाहमाचक्षं यं प्रविष्टो नराधिपः ।
अश्वत्थामा तु तद्राजन्निशम्य वचनं मम ॥
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य
करुणं पर्यदेवयत् ।
अहो धिक् स न जानाति
जीवतोऽस्मान्नराधिपः ॥
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् ।
ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः ॥
प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान् रणे
ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम् ॥
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ।
तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति
सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् ।
ततो वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणो नराः
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।
तत्र विक्रोशमानानां रुदतीनां च सर्वशः ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः श्रुत्वा तद्बलसंक्षयम्
ततस्ता योषितो राजन् रुदन्त्यो वै मुहुर्मुहुः
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् ।
आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत
लुलुचुश्च तदा केशान् क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह
हाहाकारविनादिन्यो विनिघ्नन्त्य उरांसि च
शोचन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशांपते ।
ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः

राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।
वेत्रव्यासक्तहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशांपते
शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च
समादाय ययुस्तूर्णं नगरं दाररक्षिणः ॥ ७२
आस्थायाश्वतरीयुक्तान् स्यन्दनानपरे पुनः ।
स्वान्स्वान्दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ७३
अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु ।
ददृशुस्ता महाराज जना याताः पुरं प्रति ॥
ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः ।
प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः ॥ ७५
आगोपालाविपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति ।
ययुर्मनुष्याः संभ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः
अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत्सुदारुणम्
प्रेक्षमाणास्तदान्योन्यमाधावन्नगरं प्रति॥७७

तस्मिंस्तथा वर्तमाने विद्रवे भृशदारुणे ।
युयुत्सुः शोकसंमूढः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥
जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः ।
एकादशचमूभर्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः ७९
हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ।
अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद्यदृच्छया८०

विद्रुतानि च सर्वाणि
शिबिराणि समन्ततः ।
इतस्ततः पलायन्ते
हतनाथा हतौजसः ॥ ८१

अदृष्टपूर्वा दुःखार्ता भयव्याकुललोचनाः ।
हरिणा इव वित्रस्ता वीक्षमाणा दिशो दश
दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ८३
प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभो ।
युधिष्ठिरमनुज्ञाप्य भीमसेनं तथैव च ॥ ८४
एतमर्थं महाबाहुरुभयोः स न्यवेदयत् ।
तस्य प्रीतोऽभवद्राजा नित्यं करुणवेदिता
परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत् ।
ततः स रथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत् ८६
संवाहयितवांश्चापि राजदारान्पुरं प्रति ।
तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे॥
प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः।
अपश्यत महाप्राज्ञं विदुरं साश्रुलोचनम् ८८
राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम्
तमब्रवीत्सत्यधृतिः प्रणतं त्वग्रतः स्थितम्८९

दिष्ट्या कुरुक्षये वृत्ते
अस्मिंस्त्वं पुत्र जीवसि ॥
विना राज्ञः प्रवेशाद्वै
किमसि त्वमिहागतः ॥ ९०

एतद्वै कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय ।

युयुत्सुरुवाच ।

निहते शकुनौ तत्र सज्ञातिसुतबान्धवे९१
हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः ।
स्वकं सहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात्
अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात्
भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ ९३
ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातॄणां चास्य सर्वतः
वाहनेषु समारोप्य अध्यक्षाः प्राद्रवन्भयात्
ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम् ।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षँल्लोकान्प्रधावितान्
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम्
प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित्
अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यमब्रवीत् ।
प्राप्तकालमिदं सर्वं ब्रुवता भरतक्षये ॥ ९७

रक्षितः कुलधर्मश्च
सानुक्रोशतया त्वया ।
दिष्ट्या त्वामिह संग्रामा-
दस्माद्वीरक्षयात्पुरम् ॥ ९८

समागतमपश्याम ह्यंशुमन्तमिव प्रजाः ।
अन्धस्य नृपतेर्यष्टिर्लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ९९
बहुशो याच्यमानस्य दैवोपहतचेतसः ।
त्वमेको व्यसनार्तस्य ध्रियसे पुत्र सर्वथा१००

अद्य त्वमिह विश्रान्तः
श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम् ।
एतावदुक्त्वा वचनं
विदुरः साश्रुलोचनः ॥ १

युयुत्सुं समनुप्राप्य प्रविवेश नृपक्षयम् ।
पौरजानपदैर्दुःखाद्धाहेति भृशनादितम् २
निरानन्दं गतश्रीकं हृतारामामिवाशयम् ।
शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद्दुःखतरोऽभवत् ३
विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनान्तरात्मना ।
विवेश नगरे राजन्निशश्वास शनैः शनैः ॥ ४

युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत्तदा । वन्द्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत्सुदुःखितः
चिन्तयानः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम् ॥ १०५

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि ह्रदप्रवेशपर्वणि
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

समाप्तं ह्रदप्रवेशपर्व ।

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

शल्यपर्वान्तर्गतं

# गदापर्व ३

## ३०

धृतराष्ट्र उवाच।
हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत सञ्जय॥ १
कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान्।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत्तदा
सञ्जय उवाच।
संप्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम्
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः
निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा वै जयिनां स्वनं
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः।
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे
हृष्टः पर्यचरद्राजन् दुर्योधनवधेप्सया।
मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः॥६
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यञ्जनाधिपम्
स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत्॥७
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया
यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः
ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः॥
सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः।
ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि।
राजन्नुत्तिष्ठ युध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम्
जित्वा वा पृथिवीं भुंक्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि
तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया॥ १२
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः
न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशांपते॥
अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत।

दुर्योधन उवाच।
दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्ता-
नीदृशात्पुरुषक्षयात् १४
पाण्डुकौरवसंमर्दाज्जीवमानान्नरर्षभान्।
विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः।
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये॥ १६
न त्वेतदद्भुतं वीरा यद्वो महदिदं मनः।
अस्मासु च परा शक्तिर्न तु कालः पराक्रमे॥
विश्रम्यैकां निशामद्य
भवद्भिः सहितो रणे।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून्
श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः॥ १८
सञ्जय उवाच।
एवमुक्तोऽब्रवीद्द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम्।
उत्तिष्ठ राजन्भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान्
इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जयेन च।
शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान्
मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम्
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे
नाहत्वा सर्वपाञ्चालान्
विमोक्ष्ये कवचं विभो।
इति सत्यं ब्रवीम्येतं-
त्तन्मे शृणु जनाधिप॥ २२
तेषु संभाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया॥
ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः
मांसभारानुपाजह्रुर्भक्त्या परमया विभो॥

---

३०

हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे इत्यारभ्य शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपराऽभवन् इत्यन्तः शल्यपर्वशेषो गदापर्वाख्यस्तस्य तात्पर्यं सर्वनाशेऽपि जीवितं दुस्त्यजं पराभूतमपि शत्रुं शूरा न त्यजन्तीति च॥ १॥ यज्ञकृतां प्रीतिं यज्ञादिजस्य पुण्यस्य फलम्॥ २१॥

शल्यपर्वान्तर्गतं

# गदापर्व ३

## ३०

धृतराष्ट्र उवाच ।
हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे ।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत सञ्जय ॥ १
कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत्तदा
सञ्जय उवाच ।
संप्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम्
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः
निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा वै जयिनां स्वनं
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः ।
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे
हृष्टः पर्यचरद्राजन् दुर्योधनवधेप्सया ।
मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः ॥६
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यञ्जनाधिपम्
स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत् ॥ ७
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया
यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः
ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः ॥
सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः ।
ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः ॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि ।
राजन्नुत्तिष्ठ युध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम्
जित्वा वा पृथिवीं भुंक्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि
तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया ॥ १२
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः
न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशांपते ॥
अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत ।

दुर्योधन उवाच ।
दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्ता-
नीदृशात्पुरुषक्षयात् १४
पाण्डुकौरवसंमर्दाज्जीवमानान्नरर्षभान् ।
विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः ।
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥ १६
न त्वेतदद्भुतं वीरा यद्वो महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा शक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥
विश्रम्यैकां निशामद्य
भवद्भिः सहितो रणे ।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून्
श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥ १८
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तोऽब्रवीद्द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम् ।
उत्तिष्ठ राजन्भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान्
इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जयेन च ।
शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान्
मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम्
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे
नाहत्वा सर्वपाञ्चालान्
विमोक्ष्ये कवचं विभो ।
इति सत्यं ब्रवीम्येत-
त्तन्मे शृणु जनाधिप ॥ २२
तेषु संभाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः ।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥
ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः
मांसभारानुपाजह्रुर्भक्त्या परमया विभो ॥

---

३०

हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे इत्यारभ्य शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपराऽभवन्

इत्यन्तः शल्यपर्वशेषो गदापर्वाख्यस्तस्य तात्पर्यं सर्वनाशेऽपि जीवितं दुस्त्यजं पराभूतमपि शत्रुं शूरा न त्यजन्तीति च ॥ १ ॥ यज्ञकृतां प्रीतिं यज्ञादिजस्य पुण्यस्य फलम् ॥ २१ ॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययाऽस्तंभयत्प्रभो
ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः।
जग्मुर्दूरे महाराज कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६४
ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति
विष्टभ्य सलिलं सूतो धार्तराष्ट्रो महाबलः।
पाण्डवाश्चापि संप्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः
कथं नु युद्धं भविता
कथं राजा भविष्यति।
कथं नु पाण्डवा राजन्
प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम् ॥ ६७
इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान्विमुच्य ते
तत्रासांचक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः ६८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

सञ्जय उवाच।
ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् १
आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम्।
स्तम्भितं धार्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् २
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः।
पश्येमां धार्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम्
विष्टभ्य सलिलं शेते
नास्य मानुषतो भयम्।
दैवीं मायामिमां कृत्वा
सलिलान्तर्गतो ह्ययम् ॥ ४
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन्विमोक्ष्यते
यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ५
तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव।
वासुदेव उवाच।
मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिर।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च ७
जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम्।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः ८
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः ९
हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितौ।
वृत्रश्च निहतो राजन् क्रिययैव न संशयः १०
तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः
क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम।
क्रियाभ्युपायैर्निहतौ मया राजन् पुरातनौ १२
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्।
वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो
'क्रिया बलवती राजन्
नान्यत्किञ्चिद्युधिष्ठिर'।
दैत्याश्च दानवाश्चैव
राक्षसाः पार्थिवास्तथा ॥ १५
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात्समाचर
सञ्जय उवाच।
इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः १६
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम्।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत १७
सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशांपते ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

**तत इति** ॥ १ ॥ जीवितेप्सुं दुर्योधनं विज्ञाय कदाचिद्राज्यार्धं युधिष्ठिरस्तस्मै दास्यतीत्याशंक्य भगवांस्तं बोधयति दुर्योधनवधार्थी **मायाविन इत्यादिना** ॥६॥ क्रियाभ्युपायैः शत्रुक्रियानुरूपैः प्रतीकारैर्धर्म्यैरधर्म्यैर्वेत्यर्थः। एते तु छलकारिणश्छलैरेव हन्तव्या इति भावः ॥ ७ ॥ विक्रम विक्रमं कुरुष्व ॥ १२ ॥

ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद्वचनं रहः ।
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः ॥
तेऽपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे ।
निर्बंधं परमं चक्रुस्तदा वै युद्धकांक्षिणः ॥
तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान्
अयुद्धमनसं चैव राजानं स्थितमंभसि ॥२७
तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः
व्याधाभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनं
ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव ।
यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता ॥ २९
ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद्भाषितं तदा
अन्योन्यमब्रुवन् राजन् मृगव्याधाः शनैरिव
दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः
अव्यक्तमिह नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः
तस्माद्गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम् ॥३२
धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते ।
शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते ॥ ३३
स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत
किं नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा
एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः संप्रहृष्टा धनार्थिनः
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति ॥३५
पांडवापि महाराज लब्धलक्षाः प्रहारिणः
अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम् ।
निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः ।
चारान्संप्रेषयामासुः समन्तात्तद्रणाजिरे ॥
आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम् ।
न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ ।
चिंतामभ्यगमत्तीव्रां निशश्वास च पार्थिवः
अथ स्थितानां पाण्डूनां दीनानां भरतर्षभ ।
तस्माद्देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो
आजग्मुः शिबिरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम् ।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः ॥
ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम् ।
तस्मै तत्सर्वमाचख्युर्यद्वृत्तं यच्च वै श्रुतम् ॥
ततो वृकोदरो राजन् दत्वा तेषां धनं बहु
धर्मराजाय तत्सर्वमाचचक्षे परंतपः ॥ ४३
असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे ॥
तद्वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशांपते ।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत्सह सोदरैः
तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलह्रदे ।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छत्पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥
ततः किलकिलाशब्दः प्रादुरासीद्विशांपते ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां पञ्चालानां च सर्वशः
सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडाश्च भरतर्षभ ।
त्वरिताः क्षत्रिया राजञ्जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम् ॥
ज्ञातः पापो धार्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे ।
प्राक्रोशन् सोमकास्तत्र हृष्टरूपाः समन्ततः
तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र वेगिनाम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् पृथिवीपते ॥
दुर्योधनं परीप्सन्त-
स्तत्र तत्र युधिष्ठिरम् ।
अन्वयुस्त्वरितास्ते वै
राजानं श्रान्तवाहनाः ॥ ५१
अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः ।
पञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत ॥
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः ।
ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान्
द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत् ।
शीतामलजलं हृद्यं द्वितीयमिव सागरम् ५५
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत्ते स्थितः सुतः
अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत ॥ ५६
सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित्प्रभो ।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः ५७
ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन् ।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिःस्वनम् ५८
युधिष्ठिरश्च राजेन्द्र तं ह्रदं सह सोदरैः ।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै ॥ ५९
महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च ।
ऊर्ध्वं धुन्वन्महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम्
यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ६१
इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ६२

नष्टं अदृश्यत्वं गतं लीनमित्यर्थः ॥ ३८ ॥ अपयास्यामहे त्वदन्वेषणाभिया ॥ ६२ ॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययाऽस्तंभयत्प्रभो
ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः।
जग्मुर्दूरं महाराज कृपप्रभृतयो रथाः॥ ६४
ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति
विष्टभ्य सलिलं सूतो धार्तराष्ट्रो महाबलः।
पाण्डवाश्चापि संप्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः
कथं नु युद्धं भविता
कथं राजा भविष्यति।
कथं नु पाण्डवा राजन्
प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम्॥ ६७
इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान्विमुच्य ते
तत्रासांचक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः ६८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि
त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

## ३१

सञ्जय उवाच।
ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् १
आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम्।
स्तम्भितं धार्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् २
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः।
पश्येमां धार्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम्
विष्टभ्य सलिलं शेते
नास्य मानुषतो भयम्।
दैवीं मायामिमां कृत्वा
सलिलान्तर्गतो ह्ययम्॥ ४
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन्विमोक्ष्यते
यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ५
तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव।
वासुदेव उवाच।
मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिर।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च ७
जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम्।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः ८
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः ९
हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितौ।
वृत्रश्च निहतो राजन् क्रिययैव न संशयः १०
तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः
क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम।
क्रियाभ्युपायैर्निहतौ मया राजन् पुरातनौ १२
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्।
वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो
'क्रिया बलवती राजन्
नान्यत्किञ्चिद्युधिष्ठिर'।
दैत्याश्च दानवाश्चैव
राक्षसाः पार्थिवास्तथा॥ १५
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात्समाचर
सञ्जय उवाच।
इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः १६
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम्।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत १७
सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशांपते॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

३१

**तत इति**॥ १॥ जीवितेप्सुं दुर्योधनं विज्ञाय कदाचिद्राज्यार्धं युधिष्ठिरस्तस्मै दास्यतीत्याशंक्य भगवांस्तं बोधयति दुर्योधनवधार्थी **मायाविन इत्यादिना**॥६॥ क्रियाभ्युपायैः शत्रुक्रियानुरूपैः प्रतीकारैर्धर्म्यैरधर्म्यैर्वेत्यर्थः। एते तु छलकारिणश्छलैरेव हन्तव्या इति भावः॥ ७॥ विक्रम विक्रमं कुरुष्व॥ १२॥

जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वाञ्छञ्जीवितमात्मनः
उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन
स ते दर्पो नरश्रेष्ठ
स च मानः क्व ते गतः।
यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं
भीतो राजन् व्यवस्थितः॥ २०
सर्वे त्वां शूर इत्येवं जना जल्पन्ति संसदि
व्यर्थं तद्भवतो मन्ये शौर्यं सलिलशायिनः॥
उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोसि कुलोद्भवः
कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर २२
स कथं कौरवे वंशे प्रशंसञ्जन्म चात्मनः।
युद्धाद्भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि २३
अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन्पलायनम् २४
कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः
इमान्निपतितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा
सम्बन्धिनो वयस्यांश्च
मातुलान् बान्धवांस्तथा।
घातयित्वा कथं तात
ह्रदे तिष्ठसि सांप्रतम्॥ २६
शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत।
शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः २७
न हि शूराः पलायन्ते शत्रून् दृष्ट्वा कथञ्चन।
ब्रूहि वा त्वं यया वृत्त्या शूर त्यजसि संगरं
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन॥
नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया
क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन॥ ३०
यत्तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलम्
अमर्त्य इव संमोहात्त्वमात्मानं न बुद्धवान्॥
तत् पापं सुमहत्कृत्वा प्रतियुद्ध्यस्व भारत।
कथं हि त्वद्विधो मोहाद्रोचयेत पलायनम्॥
क्व ते तत् पौरुषं यातं क्व च मानः सुयोधन।
क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्जितं महत्
क्व ते कृतास्त्रता याता किञ्च शेषे जलाशये।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत॥ ३४
अस्मांस्तु वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमां
अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत
एष ते परमो धर्मः सृष्टो धात्रा महात्मना।
तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ॥

सञ्जय उवाच।

एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता।
सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत्॥ ३७

दुर्योधन उवाच।

नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत्
न च प्राणभयाद्भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत
अरथश्चानिषंगी च निहतः पार्ष्णिसारथिः।
एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम्॥
न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद्विशांपते।
इदमंभः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात्त्विदमनुष्ठितम्॥
त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव
अहमुत्थाय वः सर्वान्प्रतियोत्स्यामि संयुगे

युधिष्ठिर उवाच।

आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन॥ ४२
हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि
निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि

दुर्योधन उवाच।

यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनंदन।
त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर॥४४
क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम्।
न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम्
अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर।
भंक्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ॥
न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित्
द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे॥

---

अयुद्धं युद्धवर्जनं अव्यवस्थानं विशेषेण अवस्थानं राज्ये वा, स्वर्गे वा स्थितिर्व्यवस्थानं तदभावश्चैतत् द्वयं क्षत्रियस्य न धर्म इत्यर्थः॥ २४॥ **ब्रूहीति।** **हे शूरेति** साधिक्षेपसंबोधनम्। यया वृत्त्या निमिसमुत्तया वानप्रस्थत्वेन वा न्यस्तशस्त्रत्वेन वा क्लीबत्वेन वा त्वं संगरं त्यजसि तां वृत्तिं ब्रूहि। न त्वं वानप्रस्थोऽसि राज्यार्थित्वात्। नापि न्यस्तशस्त्रो गदाधारित्वात्। परिशेषात् क्लीबोऽस्मीति मा भाषस्व युद्धं कुर्विति भावः॥२८ विनीय त्यक्त्वा॥ २९॥ पौरुषं यत्नः विक्रान्तता शौर्यं विस्फूर्जितं गर्जनम्॥ ३३॥ नैतदिति प्राणेन रक्षितव्येन हेतुना भीर्भयं मा मां मनुष्यं आविशेदिति ब्रुवन्नैतच्चित्रमपि तु प्राणिनां स्वाभाविकोऽयं धर्मः परं तु मय्येतन्नास्तीत्याह—**न चेति**॥ ३८॥ प्राणहेतोर्जीवितार्थित्वात् भयात् बन्धनादित्रासात् विषादात् शोकाभिभूतत्वात्॥४०

अस्त्विदानीमियं राजन्
केवला पृथिवी तव ।
असहायो हि को राजा
राज्यमिच्छेत्प्रशासितुम् ॥ ४८
सुहृदस्तादृशान् हित्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि
भवद्भिश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥
अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः ।
रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत ॥
हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा ।
एषा ते पृथिवी राजन् भुंक्ष्वैनां विगतज्वरः
वनमेव गमिष्यामि
वसानो मृगचर्मणी ।
न हि मे निर्जनस्यास्ति
जीवितेऽद्य स्पृहा विभो ॥ ५२
गच्छ त्वं भुंक्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वरां
हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम् ॥५३
सञ्जय उवाच ।
दुर्योधनं तव सुतं सलिलस्थं महायशाः ।
श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः
नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव ॥
यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन
नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम् ।
अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम् ।
न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः
त्वया दत्तां न चेच्छेयं
पृथिवीमखिलामहम् ।
त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य
भोक्तास्मि वसुधामिमाम् ॥ ५८
अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि ।
त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि
धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः ।
वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम्
किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः
अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीं
न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन ।
आच्छेत्तुं वा बलाद्राजन् स कथं दातुमिच्छसि
मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम् ।
सूच्यग्रेणापि यद्भूमेरपि भिद्येत भारत ॥ ६३
तन्मात्रमपि तन्मह्यं न ददाति पुरा भवान् ।
स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशांपते ॥६४
सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिं
एवमैश्वर्यमासाद्य प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ॥
को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुंधराम्
त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुद्ध्यसे ॥
पृथिवीं दातुकामोऽपि
जीवितेन विमोक्ष्यसे ।
अस्मान्वा त्वं पराजित्य
प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ॥ ६७
अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान्
आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवं
संशयः सर्वभूतानां विजये नौ भविष्यति ।
जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि संप्रति वर्तते ॥
जीवयेयमहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः ।
दहने हि कृतो यत्नस्त्वयाऽस्मासु विशेषतः
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः ।
त्वया विनिकृता राजन् राज्यस्य हरणेन च
अप्रियाणां च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च ।
एतस्मात्कारणात्पाप जीवितं ते न विद्यते
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति
एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप७३

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि सुयोधनयुधिष्ठिरसंवादे
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

# ३२

धृतराष्ट्र उवाच ।
एवं संतर्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः ।
प्रकृत्या मन्युमान्वीरः कथमासीत्परन्तपः १
न हि सन्तर्जना तेन श्रुतपूर्वा कथञ्चन ।
राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत्
यस्यातपत्रच्छायापि स्वका भानोस्तथा प्रभा
खेदायैवाभिमानित्वात्सहेत्सैवं कथं गिरः ३
इयं च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम्
प्रसादाद्ध्रियते यस्य प्रत्यक्षं तव सञ्जय ॥ ४
स तथा तर्ज्यमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः ।
विहीनश्च स्वकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम् ५
स श्रुत्वा कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः
किमब्रवीत्पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ६
सञ्जय उवाच ।
तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः ।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह ७
श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः
सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन्हस्तौ पुनः पुनः
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत ॥ ९
यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः ।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः ॥ १०
आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः ।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ११
एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि
विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः १३
न मे त्वत्तो भयं राजन्न च पार्थाद्वृकोदरात्
फाल्गुनाद्वासुदेवाद्वा पञ्चालेभ्योऽथवा पुनः
यमाभ्यां युयुधानाद्वा ये चान्ये तव सैनिकाः
एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः
धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप ।
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन्प्रब्रवीम्यहम् १६
अहमुत्थाय सर्वान्वै प्रतियोत्स्यामि संयुगे ।
अनुगम्यागतान्सर्वानृतून्संवत्सरो यथा १७
अद्य वः सरथान् साश्वा-
नशस्त्रो विरथोऽपि सन् ।
नक्षत्राणीव सर्वाणि
सविता रात्रिसंक्षये ॥ १८
तेजसा नाशयिष्यामि
स्थिरी भवत पाण्डवाः ।
अद्यानृण्यं गमिष्यामि
क्षत्रियाणां यशस्विनाम् ॥ १९
बाह्लीक-द्रोण-भीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः
जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः २०
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च ।
पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च ॥ २१
मित्राणां सुहृदां चैव
बान्धवानां तथैव च ।
आनृण्यमद्य गच्छामि
हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह ॥ २२
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिपः ।
युधिष्ठिर उवाच ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन
दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धि-
र्युद्धायैव महाभुज ।
दिष्ट्या शूरोऽसि कौरव्य
दिष्ट्या जानासि सङ्गरम् ॥ २४
यस्त्वमेको हि नः सर्वा-
न्सङ्गरे योद्धुमिच्छसि ।
एक एकेन सङ्गम्य
यत्ते संमतमायुधम् ॥ २५
तत्त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः
स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्॥
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।
दुर्योधन उवाच ।
एकश्चेद्योद्धुमाक्रन्दे शूरोऽद्य मम दीयताम्
आयुधानामियं चापि वृता त्वत्संमते गदा
हन्तैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते

३२

एवमिति ॥ १ ॥ यस्येति । आतपत्रेण दुर्योधनः सूर्याद्रक्षित इत्येष प्रवादोऽपि यस्य न सहते इति भावः ॥३॥ परिद्यूनः परिश्रान्तः ॥१०॥ हत्वैकं अस्माकं पंचानां मध्ये एकमपि हत्वा त्वं राज्यं प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥ २७ ॥

पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह ।
वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे २९
इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत् ।
अस्त्राणामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः
युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव ।
गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम्
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः
न हि मे संभ्रमो जातु शक्रादपि युधिष्ठिर
युधिष्ठिर उवाच ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन।
एक एकेन सङ्गम्य संयुगे गदया बली ॥ ३३
पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः ।
अद्य ते जीवितं नास्ति यदीन्द्रोऽपि तवाश्रयः
सञ्जय उवाच ।
एतत्स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः ।
सलिलान्तर्गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन्३५
तथासौ वाक्प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः ।
वचो न ममृषे राजन्नुत्तमाश्वः कशामिव ३६
संक्षोभ्य सलिलं वेगाद्गदामादाय वीर्यवान्
अद्रिसारमयीं गुर्वीं काञ्चनाङ्गदभूषणाम् ३७
अन्तर्जलात्समुत्तस्थौ
नागेन्द्र इव निःश्वसन् ।
स भित्त्वा स्तम्भितं तोयं
स्कन्धे कृत्वाऽऽयसीं गदाम् ॥ ३८
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन् रश्मिवानिव ।
ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जातरूपपरिष्कृताम्
गदां परामृशद्धीमान् धार्तराष्ट्रो महाबलः ।
गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ४०
प्रजानामिव संक्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम् ।
सगदो भारतो भाति प्रतपन् भास्करो यथा
तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिन्दमम् ।
मेनिरे सर्वभूतानि दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥
वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम् ।
ददृशुः सर्वपञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप ४३
तमुत्तीर्णं तु संप्रेक्ष्य
समहृष्यन्त सर्वशः ।
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च
तेऽन्योन्यस्य तलान्ददुः ॥ ४४
अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान्४५
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदष्टदशनच्छदः ।
प्रत्युवाच ततस्तान्वै पाण्डवान् सहकेशवान्
दुर्योधन उवाच ।
अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः
गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम् ॥
सञ्जय उवाच ।
उत्थितश्च जलात्तस्मात्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४८
तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम्
शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः ॥
तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः ।
वैवस्वतमिव क्रुद्धं किंकरोद्यतपाणिनम् ॥ ५०
स मेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव च गोवृषः ।
आजुहाव ततः पार्थान् गदया युधि वीर्यवान्
दुर्योधन उवाच ।
एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि
न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रान्तश्चाप्सु परिप्लुतः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः ॥ ५३
अवश्यमेव योद्धव्यं सर्वैरेव मया सह ।
युक्तं त्वयुक्तमित्येतद्वेत्सि त्वं चैव सर्वदा ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन ।
यदाऽभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः॥५५
क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम् ।
अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथागतम् ॥
सर्वे भवन्तो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।
न्यायेन युध्यतां प्रोक्ता शक्रलोकगतिः परा
यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एव तु ।
तदाऽभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम्
'सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम् ।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति '॥
आमुञ्च कवचं वीर मूर्धजान् यमयस्व च ।
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत ।
इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ।
पञ्चानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि
ऋते च जीविताद्वीर युद्धे किं कुर्म ते प्रियम्

क्षत्रधर्मं अस्तीति शेषः । ' धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे ' इति मेदिनी॥ ५६ ॥

सञ्जय उवाच ।
ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम्
विचित्रं च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥
सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकाञ्चनवर्मभृत् ।
रराज राजन्पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ॥
सन्नद्धः सगदो राजन् सज्जः संग्राममूर्धनि ।
अब्रवीत्पाण्डवान्सर्वान्पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥
भ्रातृणां भवतामेको युध्यतां गदया मया ।
सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा ॥
अथवा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ ।
योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे
अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम् ।
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया ॥ ६८
गदायुद्धे न मे कश्चित्सदृशोऽस्तीति चिन्तये
गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान्
न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं न्यायेन केचन ।
न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः ।
अथवा सफलं ह्येतत्करिष्ये भवतां पुरः ॥७०
अस्मिन्मुहूर्ते सत्यं वा मिथ्या वैतद्भविष्यति
गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि युधिष्ठिरदुर्योधनसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## ३३

सञ्जय उवाच ।
एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः ।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥
यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत्त्वां युधिष्ठिर ।
अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा ॥ २
किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम्
एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति ॥
न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे ।
एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश ॥
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया ।
कथं नाम भवेत्कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ ॥ ५
साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम ।
नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ॥ ६
ऋते वृकोदरात्पार्थात्स च नातिकृतश्रमः ।
तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा ॥ ७
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशांपते ।
बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः ॥
बलवान्वा कृती वेति कृती राजन्विशिष्यते
सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्
को नु सर्वान्विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा
कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद्राज्यमागतम् ।
*पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम् ॥११
न हि पश्यामि तं लोके योऽद्य दुर्योधनं रणे
गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोऽपि हि
न त्वं भीमो न नकुलः सहदेवोऽथ फाल्गुनः
जेतुं न्यायेन शक्तो वै कृती राजा सुयोधनः
स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति हि ।
एकं च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत ॥
वृकोदरं समासाद्य संशयो वै जये हि नः ।
न्यायतो युध्यमानानां कृती ह्येष महाबलः ॥
एकं वाऽस्मान्निहत्य त्वं भव राजेति वै पुनः
नूनं न राज्यभागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च संततिः
अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः ।
भीमसेन उवाच ।
मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन ॥ १७
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम् ।
अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः ॥
विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते ।
अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम ॥ १९
न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम्
अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे ॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२

३३

**एवमिति** ॥१॥ योग्या–अभ्यासः । योग्यः प्रवीणे-ऽप्युपक्रम्य स्त्र्यभ्यासार्कयोषितोरिति **मेदिनी** ॥ ४ ॥ शकुनेश्च तव च यथा पुरा तथैवेदमिति द्वयोः संबंधः ॥ ७ ॥ इति कथं वदसे इत्यनुकर्षणीयम् ॥ १६ ॥

* **पातितश्चैकवाणेन शोचयेदेवमाहवे** इति पाठः ।

भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन।
सामरानपि लोकांस्त्रीन्नानाशस्त्रधरान् युधि
योधयेयं रणे कृष्ण किमुताद्य सुयोधनम्।

सञ्जय उवाच।

तथा संभाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम्॥
हृष्टः संपूजयामास वचनं चेदमब्रवीत्।
त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः
निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः
त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे २४
राजानो राजपुत्राश्च
नागाश्च विनिपातिताः।
कलिङ्गा मागधाः प्राच्या
गान्धाराः कुरवस्तथा॥ २५
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन।
हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागराम्
धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः शचीपतेः।
त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनंक्ष्यति॥
त्वमस्य सक्थिनी भंक्त्वा
प्रतिज्ञां पालयिष्यसि।
यत्नेन तु सदा पार्थ
योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः॥ २८
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा।
ततस्तु सात्यकी राजन्पूजयामास पाण्डवम्
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः।
तद्वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन् ३०
ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत्
सृञ्जयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम्३१
अहमेतेन सङ्गम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे।
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः ३२
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये भृशम्
सुयोधने धार्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः
शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डवहृच्छयम्।
निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव ३४
अद्य कीर्तिमयीं मालां
प्रतिमोक्ष्ये तवानघ।
प्राणाञ्श्रियं च राज्यं च
मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः॥ ३५
राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम्
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ३६
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन्॥ ३७

तदाह्वानममृष्यन् वै तव पुत्रोऽतिवीर्यवान्
प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ३८
गदाहस्तं तव सुतं युद्धाय समुपस्थितम्।
ददृशुः पाण्डवाः सर्वे कैलासमिव शृङ्गिणम्
तमेकाकिनमासाद्य धार्तराष्ट्रं महाबलम्।
वियूथमिव मातङ्गं समहृष्यन्त पाण्डवाः ४०
न संभ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा
आसीद्दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे॥
समुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम्।
भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत्४२
राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत्कृतम्
स्मर तद्दुष्कृतं कर्म यद्वृत्तं वारणावते॥ ४३
द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला।
द्यूते यद्विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात्॥
यानि चान्यानि दुष्टात्मन्पापानि कृतवानसि
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत्फलम्॥
त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः ४६
हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान्।
वैरस्य चादिकर्ताऽसौ शकुनिर्निहतो रणे॥
भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः।
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः४८
एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः।
प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः
अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः।
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः॥
अद्य तेऽहं रणे दर्पं
सर्वं नाशयिता नृप।
राज्याशां विपुलां राजन्
पाण्डवेषु च दुष्कृतम्॥ ५१

दुर्योधन उवाच।

किं कत्थितेन बहुना युध्यस्वाद्य मया सह
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर ५२
किं न पश्यसि मां पाप
गदायुद्धे व्यवस्थितम्।
हिमवच्छिखराकारां
प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ ५६
गदिनं कोऽद्य मां पाप हन्तुमुत्सहते रिपुः।
न्यायतो युध्यमानस्य देवेष्वपि पुरन्दरः ५४
मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम्।
दर्शयस्व बलं युद्धे यावत्तत्तेऽद्य विद्यते ५५

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवाः सहसृञ्जयाः ।
सर्वे संपूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः ५६
उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः ।
भूयः संहर्षयामासू राजन् दुर्योधनं नृपम् ५७
बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र
हया हेषन्ति चासकृत् ।
शस्त्राणि संप्रदीप्यन्ते
पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि भीमसेनदुर्योधनसंवादे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

सञ्जय उवाच ।
तस्मिन् युद्धे महाराज सुसंवृत्ते सुदारुणे ।
उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १
ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते ।
श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः
तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः ।
उपगम्योपसंगृह्य विधिवत्प्रत्यपूजयन् ॥ ३
पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन् ।
शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव
अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम्
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम् ५
चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥ ६
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ।
ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ॥ ७
युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेव रराजतुः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम्॥
स्वागतं कुशलं चास्मै पर्यपृच्छद्यथातथम् ।
कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम्
सत्त्वजाते परिप्रीतौ प्रियमाणौ यशस्विनौ ।
माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः
अभिवाद्य स्थिता राजन् रौहिणेयं महाबलम्
भीमसेनोऽथ बलवान्पुत्रस्तव जनाधिप ॥११
तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम् ।
स्वागतेन च ते तत्र प्रतिपूज्य समन्ततः ॥१२
पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन् ।
एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः ॥ १३
परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान् सहसृञ्जयान्
अपृच्छत्कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः
तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम् ।
प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान् क्षत्रियांश्च महात्मनः
कृत्वा कुशलसंयुक्तां संविदं च यथावयः ।
जनार्दनं सात्यकिं च प्रेम्णा स परिषस्वजे ॥
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्यपृच्छत ।
तौ च तं विधिवद्राजन् पूजयामासतुर्गुरुम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

**तस्मिन्युद्धे इति** ॥ १ ॥
चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः इति ॥
**ननु** श्रवणेऽत्र युद्धसमाप्तिर्दिश्यते तदनुपातेन युद्धारंभो मृगशीर्षे भवितुं युज्यते । अष्टादशाहानि युद्धमभूदिति वचनात् । एवं च युद्धारंभं प्रकृत्य भीष्मपर्वणि सञ्जय-वाक्यम्—
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
इति मघायां युद्धारंभप्रदर्शकं विरुध्यते । तथात्वे रेवत्यां युद्धसमाप्त्यापत्तेरित्युपक्रमोपसंहारयोर्विरोधो दुःसमाधेय इति चेत् । **सत्यम्** । उपसंहारस्य निर्णीतार्थकत्वात्तदनुरोधेनोपक्रमस्य नेयत्वान्मघाविषयग इत्यस्यायमर्थः—**अत्र** मघाशब्देन तत्सहचराः पितरो लक्ष्यन्ते 'मघानक्षत्रं पितरो देवता' इति श्रुतेरिति मघायां पितृसंबंधित्वावधारणात् । तेन युद्धे मृतानां उत्तमदेहप्रदानार्थं चन्द्रस्तदा पितृलोके सन्निहितोऽभूदिति । स्वर्गिणां दिव्यदेहलाभश्चन्द्राधीन इति शास्त्रप्रसिद्धम् । युद्धारंभस्तु मृगशीर्षे इति **भीष्मपर्वणि निपुणतरमुपपादितं** तत्र विस्मर्तव्यम् ॥ ६ ॥
रराजतुः रेजतुः ॥ ८ ॥

ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ ।
ततोऽब्रवीद्धर्मसुतो रौहिणेयमरिंदमम् ॥ १८
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत ।
तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान्केशवपूर्वजः ॥
न्यविशत्परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः ।
स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः ।
ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥२१
आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवागमने
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

जनमेजय उवाच ।
पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन्युद्ध उपस्थिते ।
आमन्त्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः
साहाय्यं धार्तराष्ट्रस्य न च कर्ताऽस्मि केशव
न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम्
एवमुक्त्वा तदा रामो यातः क्षत्रनिबर्हणः ।
तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मञ्शंसितुमर्हसि ॥ ३
आख्याहि मे विस्तरशः कथं राम उपस्थितः
कथं च दृष्टवान् युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम ४
वैशंपायन उवाच ।
उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः ॥ ५
शमं प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम् ।
स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च ॥ ६
उक्तवान्वचनं तथ्यं हितं चैव विशेषतः ।
न च तत्कृतवान् राजा यथा ख्यातं हि तत्पुरा
अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः ।
आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप ॥ ८
ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः ।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥
न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया
ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः ।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥
तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन ।
क्रियतामिति तत्कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा
ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः ।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः ॥
मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः ।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः ॥
युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान् ।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥ १५
पाण्डवेयान्पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् ।
गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह ॥
संभारांस्तीर्थयात्रायां सर्वोपकरणानि च ।
आनयध्वं द्वारकायामग्नीन्वै याजकांस्तथा ॥
सुवर्णरजतं चैव धेनूर्वासांसि वाजिनः ।
कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च ॥ १८
क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम् ।
प्रतिस्रोतः सरस्वत्या गच्छध्वं शीघ्रगामिनः
ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान् ।
एवं संदिश्य तु प्रेष्यान् बलदेवो महाबलः ॥
तीर्थयात्रां ययौ राजन्कुरूणां वैशसे तदा ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समन्तादभिजग्मिवान्
ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथाऽन्यैर्द्विजसत्तमैः ।
रथैर्गजैस्तथाश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ ॥ २२
गो-खरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः ।
श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषां
देशे देशे तु देयानि दानानि विविधानि च ।
अर्चायै चार्थिनां राजन् कल्पतानि बहुशस्तथा

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

**पूर्वमेवेति** ॥ १ ॥ अक्रियायां सन्धिकार्यानिष्पत्तौ ॥ ९ ॥ मैत्रनक्षत्रयोगे अनुराधायाम् । भोजः कृतवर्मा १४ पुष्येण हि पाण्डवेभ्यः प्रयाणमनुराधातस्तीर्थयात्रार्थमिति विवेकः ॥ १५ ॥

तानि यानीह देशेषु प्रतीक्षन्ति स्म भारत ।
बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः ॥२५
यो यो यत्र द्विजो भोज्यं भोक्तुं कामयते तदा
तस्य तस्य तु तत्रैवमुपजन्हुस्तदा नृप ॥ २६
तत्र तत्र स्थिता राजन् रौहिणेयस्य शासनात्
भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः ॥
वासांसि च महार्हाणि पर्यंकास्तरणानि च ।
पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम्
यत्र यः स्वदते विप्रः क्षत्रियो वाऽपि भारत ।
तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत ॥ २९
यथासुखं जनः सर्वो याति तिष्ठति वै तदा
यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च
बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ ।
उपजन्हुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च ॥३२
स पन्थाः प्रबभौ राजन् सर्वस्यैव सुखावहः
स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम्
नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्ष्यः शुभान्वितः
विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः ।
नानाद्रुमलतोपेतो नानारत्नविभूषितः ॥ ३३

ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा
पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन् ।
ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च
यदुप्रवीरो हलभृत् प्रतीतः ॥ ३४
दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै
सुवाससः काञ्चनबद्धशृङ्गीः ।
हयांश्च नानाविधदेशजातान्
यानानि दासांश्च शुभान् द्विजेभ्यः ॥
रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमं चा-
प्यग्र्यं सुवर्णं रजतं सुशुद्धम् ।
अयस्मयं ताम्रमयं च भाण्डं
ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः ॥ ३६
एवं स वित्तं प्रददौ महात्मा
सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि ।
ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभाव-
स्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तिः ॥ ३७

जनमेजय उवाच ।

सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे
फलं च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृत्तिमेव च ३८
यथाक्रमेण भगवंस्तीर्थानामनुपूर्वशः ।
ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ३९

वैशम्पायन उवाच ।

तीर्थानां च फलं राजन् गुणोत्पत्तिं च सर्वशः
मयोच्यमानं वै पुण्यं शृणु राजेन्द्र कृत्स्नशः ४०

पूर्वं महाराज यदुप्रवीर
ऋत्विग्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम् ।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम
यत्रोडुराड्यक्ष्मणा क्लिश्यमानः ४१
विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः
सर्वं जगद्भासयते नरेन्द्र ।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां
प्रभासनात्तस्य ततः प्रभासः ॥ ४२

जनमेजय उवाच ।

कथं तु भगवान्सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत ।
कथं च तीर्थप्रवरे तस्मिंश्चन्द्रो न्यमज्जत ४३
कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ॥ ४४

वैशम्पायन उवाच ।

दक्षस्य तनयास्तात प्रादुरासन्विशांपते ।
स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै ददौ
नक्षत्रयोगनिरताः सङ्ख्यानार्थं च ताऽभवन्
पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभकर्मणः

तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो
रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
अत्यरिच्यत तासां तु
रोहिणी रूपसंपदा ॥ ४७

ततस्तस्यां स भगवान्प्रीतिं चक्रे निशाकरः
साऽस्य हृद्या बभूवाथ तस्मात्तां बुभुजे सदा
पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसत्परम्
ततस्ताः कुपिताः सर्वा नक्षत्राख्या महात्मनः
ता गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतन्द्रिताः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा
ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वर
वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः ५१

---

विपणिः पण्यवीथिका आपणाः हट्टाः पण्यानि विक्रेयद्रव्याणि ॥ ३३ ॥ गुणान् रमणीयत्वादीन् उत्पत्तिं संभवं कर्मनिर्वृत्तिं तीर्थयात्राविधिसिद्धिम् ॥ ३८ ॥ यथाक्रमेण तीर्थक्रमापेक्षया अनुपूर्वशः गुणोत्पत्त्यादिक्रमापेक्षया ॥ ३९ ॥ प्रभासः प्रभासत्वम् ॥ ४२ ॥

श्रुत्वा तासां तु वचनं
दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु
मा त्वाऽधर्मो महान् स्पृशेत् ॥ ५२
तास्तु सर्वाऽब्रवीद्दक्षो
गच्छध्वं शशिनोऽन्तिकम् ।
समं वत्स्यति सर्वासु
चन्द्रमा मम शासनात् ॥ ५३
विसृष्टास्तास्तथा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा
तथापि सोमो भगवान्पुनरेव महीपते ॥ ५४
रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः ।
ततस्ताः सहिताः सर्वा भूयः पितरमब्रुवन्
तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवान्तिके
सोमो वसति नास्मासु नाकरोद्वचनं तव ५६
तासां तद्वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन
अनादृत्य तु तद्वाक्यं दक्षस्य भगवाञ्शशी ।
रोहिण्या सार्धमवसत्ततस्ताः कुपिताः पुनः
गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा
सोमो वसति नास्मासु तस्मान्नः शरणं भव
रोहिण्यामेव भगवान् सदा वसति चन्द्रमाः
न त्वद्वचो गणयति नास्मासु स्नेहमिच्छति
तस्मान्नस्त्राहि सर्वा वै
यथा नः सोम आविशेत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो
यक्ष्माणं पृथिवीपते ॥ ६१
ससर्ज रोषात्सोमाय स चोडुपतिमाविशत्
स यक्ष्मणाऽभिभूतात्माक्षीयताहरहःशशी ॥
यत्नं चाप्यकरोद्राजन् मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः
इष्टेष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः ६३
न चामुच्यत शापाद्वै क्षयं चैवाभ्यगच्छत ।
क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे ॥
निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्याश्च सर्वशः ।
ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः ॥
कृशाश्चासन्प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे
ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते ६६
किमिदं भवतो रूपमीदृशं न प्रकाशते ।
कारणं ब्रूहि नः सर्वं येनेदं ते महद्भयम् ॥ ६७

श्रुत्वा तु वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो वयम्
एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्ताञ्शशलक्षणः ॥
शापस्य लक्षणं चैव यक्ष्माणं च तथाऽऽत्मनः
देवास्तथा वचः श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन्
प्रसीद भगवन् सोमे
शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।
असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः
किञ्चिच्छेषो हि लक्ष्यते ॥ ७०
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चैव गताः क्षयम्
वीरुदोषधयश्चैव बीजानि विविधानि च७१
तेषां क्षये क्षयोऽस्माकं
विनाऽस्माभिर्जगच्च किम् ।
इति ज्ञात्वा लोकगुरो
प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ७२
एवमुक्तस्ततो देवान्प्राह वाक्यं प्रजापतिः ।
नैतच्छक्यं मम वचो व्यावर्तयितुमन्यथा ७३
हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति केनचित् ।
समं वर्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः७४
सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जञ्शशलक्षणः ।
पुनर्वर्धिष्यते देवास्तद्वै सत्यं वचो मम ॥ ७५
मासार्धं च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति
मासार्धं तु सदा वृद्धिं सत्यमेतद्वचो मम ७६
समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धिसङ्गमम् ।
आराधयतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति ॥
सरस्वतीं ततः सोमः स जगामर्षिशासनात्
प्रभासं प्रथमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह ७८
अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन्महाद्युतिः
लोकान्प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च
देवास्तु सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम्
सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन्८०
ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्जाथ देवताः ।
सोमं च भगवान्प्रीतो भूयो वचनमब्रवीत् ॥
माऽवमंस्थाः स्त्रियः पुत्र
मा च विप्रान् कदाचन ।
गच्छ युक्तः सदा भूत्वा
कुरु वै शासनं मम ॥ ८२
स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम् ।
प्रजाश्च मुदिता भूत्वा पुनस्तस्थुर्यथा पुरा८३

त्वा त्वां अधर्मः मा स्पृशेत्॥५२॥ विरोचन ! हे विशेषेण रोचमान ! त्वां मा शप्स्ये तव रोचनां यथाऽहं शापेन न हरामि तथा यतस्वेत्यर्थः ॥ ५७॥ शापस्य लक्षणं कारणम् ॥ ६९ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः।
प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं महत् ८४
अमावास्यां महाराज
नित्यशः शशलक्षणः।
स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान्
प्रभासे तीर्थ उत्तमे॥ ८५
अतश्चैतत्प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप।
प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः
ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद्बली।
चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत ८७
तत्र दत्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः
उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा
उदपानमथागच्छत्त्वरावान् केशवाग्रजः।
आद्यं स्वस्त्ययनं चैव यत्रावाप्य महत्फलम्॥
स्निग्धत्वादोषधीनां च
भूमेश्च जनमेजय।
जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र
नष्टामपि सरस्वतीम्॥ ९०

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां प्रभासोत्पत्तिकथने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

## ३६

वैशम्पायन उवाच।
तस्मान्नदीगतं चापि ह्युदपानं यशस्विनः।
त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः १
तत्र दत्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान्
उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः॥ २
तत्र धर्मपरो भूत्वा त्रितः स सुमहातपाः।
कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना ३
तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान्।
ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः ४
जनमेजय उवाच।
उदपानं कथं ब्रह्मन् कथं च सुमहातपाः।
पतितः किं च संत्यक्तो भ्रातृभ्यां द्विजसत्तम
कूपे कथं च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान्।
कथं च याजयामास पपौ सोमं च व कथम्
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रोतव्यं यदि मन्यसे।
वैशम्पायन उवाच।
आसन् पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः॥७
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः।
सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्तस्तथैव च॥ ८
ब्रह्मलोकजिताः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः।
तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च॥ ९
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा।
स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिमवाप्य च१०
जगाम भगवान् स्थानमनुरूपमिवात्मनः।
राजानस्तस्य ये ह्यासन्याज्या राजन्महात्मनः
ते सर्वे स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन्।
तेषां तु कर्मणा राजंस्तथा चाध्ययनेन च१२
त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा।
तथा सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः१३
अपूजयन्महाभागं यथास्य पितरं तथा।
कदाचिद्धि ततो राजन् भ्रातरावेकतद्वितौ
यज्ञार्थं चक्रतुश्चिन्तां तथा वित्तार्थमेव च।
तयोर्बुद्धिः समभवत्त्रितं गृह्य परन्तप॥ १५
याज्यान्सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः।
सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम्
चक्रुश्चैवं तथा राजन् भ्रातरस्त्रय एव च।
तथा ते तु परिक्रम्य याज्यान्सर्वान्पशून्प्रति
याजयित्वा ततो याज्यान्
लब्ध्वा तु सुबहून्पशून्।
याज्येन कर्मणा तेन
प्रतिगृह्य विधानतः॥ १८

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

३६
**तस्मादिति** ॥१॥ याजयामास स्वार्थे णिच्। यागं कृतवान्॥ ६॥ पशून् प्रति पश्वर्थं दक्षिणार्थां गाः प्राप्तुमित्यर्थः॥ १७॥

प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः ।
त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद्याति हृष्टवत् १९
एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन्पशून् ।
तयोश्चिन्ता समभवद्दृष्ट्वा पशुगणं महत् ॥२०

कथं च स्युरिमा गाव
आवाभ्यां हि विना त्रितम् ।
तावन्योन्यं समाभाष्य
एकतश्च द्वितश्च ह ॥ २१

यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर ।
त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो वेदेषु निष्ठितः २२
अन्यास्तु बहुला गावस्त्रितः समुपलप्स्यते ।
तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे

त्रितोऽपि गच्छतां काम-
मावाभ्यां वै विना कृतः ।
तेषामागच्छतां रात्रौ
पथिस्थानां वृकोऽभवत् ॥ २४

तत्र कूपो विदूरेऽभूत्सरस्वत्यास्तटे महान् ।
अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः२५
तद्भयादपसर्पन्वै तस्मिन्कूपे पपात ह ।
अगाधे सुमहाघोरे सर्वभूतभयङ्करे ॥ २६
त्रितस्ततो महाराज कूपस्थो मुनिसत्तमः ।
आर्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी ॥ २७
तं ज्ञात्वा पतितं कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ ।
वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य प्रजग्मतुः ॥
भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः
उदपाने तदा राजन्निर्जले पांसुसंवृते ॥ २९
त्रित आत्मानमालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते ।
निमग्नं भरतश्रेष्ठ नरके दुष्कृती यथा ॥ ३०
स बुद्ध्याऽगणयत्प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः
सोमः कथं तु पातव्य इहस्थेन मया भवेत् ३१
स एवमभिनिश्चित्य तस्मिन्कूपे महातपाः ।
ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां यदृच्छया ३२
पांशुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः
अग्नीन्सङ्कल्पयामास होत्रे चात्मानमेव च ॥
ततस्तां वीरुधं सोमं सङ्कल्प्य सुमहातपाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि मनसा चिन्तयन्मुनिः

ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा
प्रचक्रेऽभिषवं नृप ।
आज्यं च सलिलं चक्रे
भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ॥ ३५

सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार विपुलं ध्वनिम्
स चाविशद्दिवं राजन्पुनः शब्दस्त्रितस्य वै ॥
समवाप्य च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
वर्तमाने महायज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः ॥ ३७
आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणं च न बुद्ध्यते ।
ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः ३८

श्रुत्वा चैवाब्रवीत्सर्वान्
देवान् देवपुरोहितः ।
त्रितस्य वर्तते यज्ञ-
स्तत्र गच्छामहे सुराः ॥ ३९

स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान्देवानपि महातपाः ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः ॥
प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्तते ।
ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः
ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु ।
दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम् ॥
ऊचुश्चैनं महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम् ।
अथाब्रवीदृषिर्देवान्पश्यध्वं मां दिवौकसः
अस्मिन्प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम् ।
ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि ॥

मन्त्रयुक्तान्समदद-
त्ते च प्रीतास्तदाऽभवन् ।
ततो यथाविधि प्राप्तान्
भागान्प्राप्य दिवौकसः ॥ ४५

प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान्यान्मनसेच्छति
स तु वव्रे वरं देवांस्त्रातुमर्हथ मामितः ॥ ४६
यश्चेहोपस्पृशेत्कूपे स सोमपगतिं लभेत् ।
तत्र चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती ॥
तयोत्क्षिप्तः समुत्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः ।
तथेति चोक्ता विबुधा जग्मू राजन् यथागताः
त्रितश्चाभ्यागमत्प्रीतः स्वमेव निलयं तदा ।
क्रुद्धस्तु स समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा ॥
उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः ।
पशुलुब्धौ युवां यस्मान्मामुत्सृज्य प्रधावितौ
तस्माद्वृकाकृती रौद्रौ दंष्ट्रिणावभितश्चरौ ।
भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा ॥
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलाङ्गूलर्क्षवानराः ।
इत्युक्तेन तदा तेन क्षणादेव विशांपते ॥ ५२
तथाभूतावदृश्येतां वचनात्सत्यवादिनः ।
तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः ॥

दत्त्वा च विविधान् दायान्
पूजयित्वा च वै द्विजान् ।
उदपानं च तं वीक्ष्य
प्रशस्य च पुनः पुनः ।
नदीगतमदीनात्मा
प्राप्तो विनशनं तदा ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां त्रिताख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

वैशम्पायन उवाच ।
ततो विनशनं राजञ्जगामाथ हलायुधः ।
शूद्राभीरान्प्रतिद्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती ॥ १
तस्मात्तु ऋषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च ।
यत्राप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां महाबलः ॥२
सुभूमिकं ततोऽगच्छत्सरस्वत्यास्तटे वरे ।
तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतन्द्रिताः
क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः
तत्र देवाः सगन्धर्वा मासि मासि जनेश्वर
अभिगच्छन्ति तत्तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम्
तत्रादृश्यन्त गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥
समेत्य सहिता राजन्यथा प्राप्तं यथासुखम् ।
तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सवीरुधः ॥ ६
पुण्यैः पुष्पैः सदा दिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः
आक्रीडभूमिः सा राजंस्तासामप्सरसां शुभा
सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्राय माधवः

श्रुत्वा गीतं च तद्दिव्यं
वादित्राणां च निःस्वनम् ।
छायाश्च विपुला दृष्ट्वा
देव-गन्धर्व-रक्षसाम् ॥ ९

गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद्रोहिणीसुतः ।
विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः
नृत्यवादित्रगीतं च कुर्वन्ति सुमनोरमम् ।
तत्र दत्त्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु ॥
अजाविकं गो-खरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा ।
भोजयित्वा द्विजान्कामैः संतर्प्य च महाधनैः
प्रययौ सहितो विप्रैस्तूयमानश्च माधवः ।
तस्माद्गन्धर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिन्दमः ॥१३
गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली ।
तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ॥ १४
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः ।
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ॥ १५
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना ।
तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम्
तत्र गर्गं महाभागं ऋषयः सुव्रता नृप ।
उपासांचक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो
तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः ।
विधिवद्धि धनं दत्त्वा मुनीनां भावितात्मनां
उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान्विप्रेभ्यो विप्रदाय सः
नीलवासास्तदाऽगच्छच्छंखतीर्थं महायशाः
तत्रापश्यन्महाशंखं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
श्वेतपर्वतसंकाशं ऋषिसंघैर्निषेवितम् ॥ २०
सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ।
यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥
पिशाचाश्चामितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः ।
ते सर्वे ह्यशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः
व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते ।
प्राप्तैश्च नियमैस्तैस्तैर्विचरन्तः पृथक् पृथक् ॥
अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन्पुरुषर्षभ ।
एवं ख्यातो नरव्याघ्र लोकेस्मिन्स वनस्पतिः
ततस्तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम् ।
तस्मिंश्च यदुशार्दूलो दत्त्वा तीर्थे पयस्विनीः२५

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

**तत इति** ॥ १ ॥ शुभ्राः शुचयः ॥ ३ ॥ कालज्ञानं प्रति कालज्ञानार्थम् ॥ १७ ॥ शंखं शंखनामानम् ॥२०॥ नगं वृक्षम् ॥ २१ ॥

ताम्रायसानि भाण्डानि
वस्त्राणि विविधानि च ।
पूजयित्वा द्विजांश्चैव
पूजितश्च तपोधनैः ॥ २६
पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः ।
तत्र गत्वा मुनीन् दृष्ट्वा नानावेषधरान्बलः ॥
आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान् ।
तथैव दत्वा विप्रेभ्यः परिभोगान् सुपुष्कलान् ।
ततः प्रायाद्बलो राजन् दक्षिणेन सरस्वतीम्
गत्वा चैवं महाबाहुर्नातिदूरे महायशाः ॥ २९
धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः ।
यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः सन्निवेशनम् ॥३०
महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम् ।
ऋषीणां हि सहस्राणि तत्र नित्यं चतुर्दश ॥
यत्र देवाः समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम् ।
सर्वपन्नगराजानमभ्यषिञ्चन् यथाविधि ॥३२
पन्नगेभ्यो भयं तत्र विद्यते न स्म पौरव ।
तत्रापि विधिवद्दत्वा विप्रेभ्यो रत्नसञ्चयान्
प्रायात्प्राचीं दिशं तत्र तत्र तीर्थान्यनेकशः ।
सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदे पदे ॥ ३४
आप्लुत्य तत्र तीर्थेषु यथोक्तं तत्र चर्षिभिः ।
कृत्वोपवासनियमं दत्वा दानानि सर्वशः ॥
अभिवाद्य मुनींस्तान्वै तत्र तीर्थनिवासिनः ।
उद्दिष्टमार्गः प्रययौ यत्र भूयः सरस्वती ३६
प्राङ्मुखं वै निववृते वृष्टिर्वातहता यथा ।
ऋषीणां नैमिषेयाणामवेक्षार्थं महात्मनाम् ॥
निवृत्तां तां सरिच्छ्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लाङ्गली
बभूव विस्मितो राजन् बलः श्वेतानुलेपनः

जनमेजय उवाच ।

कस्मात्सरस्वती ब्रह्मन्निवृत्ता प्राङ्मुखीभवत्
व्याख्यातमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्युसत्तम ॥
कस्मिंश्चित्कारणे तत्र विस्मितो यदुनन्दनः ।
निवृत्ता हेतुना केन कथमेव सरिद्वरा ॥ ४०

वैशम्पायन उवाच ।

पूर्वं कृतयुगे राजन्नैमिषेयास्तपस्विनः ।
वर्तमाने सुविपुले सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ४१
ऋषयो बहवो राजंस्तत्सत्रमभिपेदिरे ।
उषित्वा च महाभागास्तस्मिन्सत्रे यथाविधि
निवृत्ते नैमिषेये वै सत्रे द्वादशवार्षिके ।
आजग्मुर्ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात् ४३
ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशांपते ।
तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा ॥
समन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः ।
तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः
जुह्वतां तत्र तेषां तु मुनीनां भावितात्मनाम्
स्वाध्यायेनातिमहता बभूवुः पूरिता दिशः ॥
अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां क्रियमाणैर्महात्मनाम् ।
अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समन्ततः ॥
वालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः
दन्तोलूखलिनश्चान्ये प्रसंख्यानास्तथा परे ॥
वायुभक्षा जलाहाराः पर्णभक्षाश्च तापसाः ।
नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थण्डिलशायिनः ॥
आसन्वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः ।
शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः
शतशश्च समापेतुर्ऋषयः सत्रयाजिनः ।
तेऽवकाशं न ददृशुः सरस्वत्या महाव्रताः ५१
ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्मिमाय वै ।
जुहुवुश्चाग्निहोत्रांश्च चक्रुश्च विविधाः क्रियाः
ततस्तमृषिसंघातं निराशं चिन्तयान्वितम् ।
दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ॥ ५३
ततः कुञ्जान् बहून्कृत्वा सन्निवृत्ता सरस्वती
ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ५४
ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ।
भूयः प्रतीच्यभिमुखी प्रसुस्राव सरिद्वरा ॥
अमोघा गमनं कृत्वा तेषां भूयो व्रजाम्यहम् ।
इत्यद्भुतं महच्चक्रे तदा राजन्महानदी ॥ ५६
एवं स कुञ्जो राजन् वै नैमिषीय इति स्मृतः
कुरुश्रेष्ठ कुरुक्षेत्रे कुरुष्व महतीं क्रियाम् ॥ ५७
तत्र कुञ्जान्बहून् दृष्ट्वा निवृत्तां च सरस्वतीम्
बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः ५८
उपस्पृश्य तु तत्रापि
विधिवद्यदुनन्दनः ।
दत्वा दायान् द्विजातिभ्यो
भाण्डानि विविधानि च ॥ ५९

अवेक्षार्थं इष्टसिद्ध्यर्थम् ॥ ३७ ॥ इच्छामि श्रोतुमिति शेषः ॥ ३९ ॥ यज्ञोपवीतैः यज्ञसूत्रैः । तीर्थं त्रेताग्नीनामुत्तरभागं तीर्थत्वेन श्रौते प्रसिद्धं निर्मिमाय निर्मायेत्यर्थः ॥ ५२ ॥ निराशं सरस्वतीजललाभे इत्यर्थः ॥ ५३ ॥ कुञ्जान् आत्मनो वासस्थानानि तीर्थविशेषानित्यर्थः ॥ ५४ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय च
ततः प्रायाद्बलो राजन्पूज्यमानो द्विजातिभिः
सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम् ।
बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थबिभीतकैः ६१
कङ्कोलैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा ।
सरस्वतीतीर्थरुहैस्तरुभिर्विविधैस्तथा ॥ ६२
करूषकवरैश्चैव बिल्वैराम्रातकैस्तथा ।
अतिमुक्तकषण्डैश्च पारिजातैश्च शोभितम् ॥
कदलीवनभूयिष्ठं दृष्टिकान्तं मनोहरम् ।
वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि ॥ ६४
तथाश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम् ।
स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम् ६५
अहिंस्रैर्धर्मपरमैर्नृभिरत्यर्थसेवितम् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः ।
यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ६६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

जनमेजय उवाच ।
सप्तसारस्वतं कस्मात्-
कश्च मङ्कणको मुनिः ।
कथं सिद्धः स भगवान्
कश्चास्य नियमोऽभवत् ॥ १
कस्य वंशे समुत्पन्नः किं चाधीतं द्विजोत्तम
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद्द्विजसत्तम २
वैशम्पायन उवाच ।
राजन्सप्त सरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत्
आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ॥ ३
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा
सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका ॥ ४
पितामहस्य महतो वर्तमाने महामखे ।
वितते यज्ञवाटे च संसिद्धेषु द्विजातिषु ॥ ५
पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा ।
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन्यज्ञविधौ तदा ॥ ६
तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे ।
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना ॥ ७
मनसा चिन्तिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा ।
उपतिष्ठन्ति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह ८
जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा
तस्य यज्ञस्य संपत्त्या तुतुषुर्देवता अपि ।
विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः १०
वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे ।
अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः ॥ ११
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ।
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम्
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै ।
सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती ॥
तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टास्त्वरायुक्तां सरस्वतीम्
पितामहं मानयन्तीं क्रतुं ते बहु मेनिरे ॥ १४
एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती ।
पितामहार्थं संभूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥
नैमिषे मुनयो राजन्समागम्य समासते ।
तत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वर
यत्र ते मुनयो ह्यासन्नानास्वाध्यायवेदिनः ।
ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम् ॥
सा तु ध्याता महाराज
ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ।
समागतानां राजेन्द्र
सहायार्थं महात्मनाम् ॥ १८
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती ।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम्
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता ।
गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

सप्तेति ॥ १ ॥ सस्मरुः स्मृतवन्तः ॥ १७ ॥ गयेषु गयदेशेषु ॥ २० ॥

आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ।
विशालां तु गयस्याहुर्ऋषयः संशितव्रताः २१
सरित्सा हिमवत्पार्श्वात्प्रसृता शीघ्रगामिनी
औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत २२
समेते सर्वतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा ।
उत्तरे कोसला भागे पुण्ये राजन्महात्मनः ॥
उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती ।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात्॥
पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ।
मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता
सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते ।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ॥ २६
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती ।
ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना २७
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती ।
दक्षेण यजता चापि गङ्गाद्वारे सरस्वती २८
सुरेणुरिति विख्याता प्रसृता शीघ्रगामिनी ।
विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः २९
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ।
एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तु प्रथितं भुवि ।
इति सप्तसरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः ॥
सप्त सारस्वतं चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम् ।
शृणु मङ्कणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः ॥
आपगामवगाढस्य राजन् प्रक्रीडितं महत् ।
दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमंभसि भारत ॥
स्नायन्तीं रुचिरापाङ्गीं
दिग्वाससमनिन्दिताम् ।
सरस्वत्यां महाराज
चस्कन्दे वीर्यमंभसि ॥ ३४
तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ।
सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ३५
तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः ।
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ३६
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान्
एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः ॥ ३७
इदमत्यद्भुतं राजन् शृण्वाश्चर्यतरं भुवि ।
महर्षेश्चरितं यादृक् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥
पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम्
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत्
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ।
ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥
प्रनृत्तमुभय वीर तेजसा तस्य मोहितम् ।
ब्रह्मादिभिः सुरै राजन् ऋषिभिश्च तपोधनैः
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप ।
नायं नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ४२
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह ।
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ॥
भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् ।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदमधिकं मुने ॥ ४४
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ।

ऋषिरुवाच ।

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम्
यं दृष्ट्वा संप्रनृत्तो वै हर्षेण महता विभो ।
तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ४६
अहं न विस्मयं विप्र
गच्छामीति प्रपश्य माम् ।
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं
महादेवेन धीमता ॥ ४७
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वाङ्गुष्ठस्ताडितोऽभवत्
ततो भस्म क्षताद्राजन्निर्गतं हिमसन्निभम् ॥
तद्दृष्ट्वा व्रीडितो राजन् स मुनिः पादयोर्गतः
मेने देवं महादेवमिदं चोवाच विस्मितः ४९
नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात्परतरं महत् ।
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृत् ॥
त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः ।
त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगक्षये ॥ ५१
देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया ।
त्वयि सर्वे स्म दृश्यन्ते भावा ये जगति स्थिताः

---

सुरेणुरुद्देशे षष्ठी यद्यपि तथापि पञ्चमे स्थाने कीर्त्यते श्लोकानां पौर्वापर्यं वा विज्ञेयम् ॥ २६ ॥ स्नायन्तीं स्नातीम् ॥ ३४ ॥ मरुतां प्राणवायूनां एकोनपञ्चाशतां एतेषां तपसा मरुतोऽदित्यामुत्पन्ना इति कल्पान्तरविषयोऽयमर्थः ॥ ३७ ॥ इदमत्यद्भुतं राजन्नित्यस्य तात्पर्यं योगेन सिद्धस्य कायस्य परिणामान्तरं ह्रासवृद्ध्यादिकं न जायतेऽतस्तत्र प्रविष्टोऽन्नरसोऽपरिणममाण एव देहान्निःसरति तं दृष्ट्वा आत्मनः सिद्धकायत्वं मत्वा मङ्कणको गर्वेण नृत्यति तदेव क्षयशून्यत्वं देहस्य महती योगसिद्धिः देहस्य भस्मभूतत्वं तु महीयसी सिद्धिरित्येतद्रुद्रो दर्शयंस्तस्य गर्वं परिहरतीति ॥३८ ॥

त्वामुपासन्त वरदं देवा ब्रह्मादयोऽनघ।
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च ह॥
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः
एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽभवत्।
यदिदं चापलं देव कृतमेतत्स्मयादिकम्।
ततः प्रसादयामि त्वां तपो मे न क्षरेदिति
ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत्।
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ५६
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्धमहं सदा
सप्तसारस्वते चास्मिन्यो मामर्चिष्यते नरः॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद्भवितेह परत्र वा।
सारस्वतं च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः
एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः।
स हि पुत्रः सुकन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने अष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

## ३९

वैशम्पायन उवाच।

उषित्वा तत्र रामस्तु संपूज्याश्रमवासिनः
तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभां चक्रे हलायुधः॥ १
दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च
पूजितो मुनिसङ्घैश्च प्रातरुत्थाय लाङ्गली॥ २
अनुज्ञाप्य मुनीन्सर्वान् स्पृष्ट्वा तोयं च भारत।
प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः॥ ३
ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः।
कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः॥ ४
महता शिरसा राजन् ग्रस्तजङ्घो महोदरः।
राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा॥ ५
तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मना।
यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः ६
यत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम्।
तत्प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम्॥ ७
विधिवद्वै ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम्

जनमेजय उवाच।

कपालमोचनं ब्रह्मन् कथं यत्र महामुनिः॥८
मुक्तः कथं चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना।

वैशम्पायन उवाच।

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना९
वसता राजशार्दूल राक्षसान् शमयिष्यता।
जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः॥
क्षुरेण शितधारेण उत्पपात महावने।
महोदरस्य तल्लग्नं जंघायां वै यदृच्छया॥ ११
वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वाऽस्फुरत्तदा।
स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह १२
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च।
स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः१३
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां चेति नः श्रुतम्
स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः
कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम्।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान्॥१५
स तु शुश्राव विप्रेन्द्र मुनीनां वचनं महत्।
सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा॥ १६
सर्वपापप्रशमनं सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम्।
स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः१७
तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा।
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा॥
विमुक्तस्तेन शिरसा परं सुखमवाप ह।
स चाप्यन्तर्जले मूर्धा जगामादर्शनं विभो॥
ततः स विशिरा राजन्पूतात्मा वीतकल्मषः
आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः॥२०
सोऽथ गत्वाऽऽश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः
कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम्॥
ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः२२

---

स्मयादिकं गर्वादिकम्॥ ५५॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

३९

उषित्वेति॥ १॥

स चापि तीर्थप्रवरं पुनर्गत्वा महानृषिः ।
पीत्वा पयः सुविपुलं सिद्धिमायात्तदा मुनिः
तत्र दत्वा बहून् दायान्विप्रान् संपूज्य माधवः
जगाम वृष्णिप्रवरो रुषङ्गोराश्रमं तदा ॥ २४
यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत ।
ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः
सर्वकामसमृद्धं च तदाश्रमपदं महत् ।
मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव सेवितं सर्वदा विभो॥२६
ततो हलधरः श्रीमान् ब्राह्मणैः परिवारितः।
जगाम तत्र राजेन्द्र रुषङ्गुस्तनुमत्यजत्॥२७
रुषङ्गुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनित्यश्च भारत।
देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा तदा ॥
ततः सर्वानुपादाय तनयान्वै महातपाः।
रुषङ्गुरब्रवीत्तत्र नयध्वं मां पृथूदकम् ॥ २९
विज्ञायातीतवयसं रुषङ्गुं ते तपोधनाः ।
तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥
स तैः पुत्रैस्तदा धीमानानीतो वै सरस्वतीम्
पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसङ्घैर्निषेविताम्३१
स तत्र विधिना राजन्नाप्लुत्य सुमहातपाः ।
ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः॥ ३२
सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान्पुत्रानुपासतः ।
सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्॥ ३३
पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वोमरणं तपेत् ।
तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः॥
दत्वा चैव बहून्दायान् विप्राणां विप्रवत्सलः
ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाँल्लोकपितामहः॥ ३५
यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः।
तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः ३६
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः।
ब्राह्मण्यं लब्धवान्यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः
महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महातपाः ।
तत्राजगाम बलवान् बलभद्रः प्रतापवान् ३८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

जनमेजय उवाच ।
कथमार्ष्टिषेणो भगवान् विपुलं तप्तवांस्तपः
सिंधुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा
देवापिश्च कथं ब्रह्मन् विश्वामित्रश्च सत्तम ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन्परं कौतूहलं हि मे ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः ।
वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥ ३
तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च।
समाप्तिं नागमद्विद्या नापि वेदा विशांपते॥४
स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः ।
ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान्॥५
स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः ।
तत्र तीर्थे वरान्प्रादात्त्रीनेव सुमहातपाः ॥ ६
अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्यप्रभृति मानवः ।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्स्यति पुष्कलं
अद्यप्रभृति नैवात्र भयं व्यालाद्भविष्यति ।
अपि चाल्पेन कालेन फलं प्राप्स्यति पुष्कलं
एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः ।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ९
तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत्॥१०
तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो जितेंद्रियः
तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥ ११
गाधिर्नाम महानासीत्क्षत्रियः प्रथितो भुवि।
तस्य पुत्रोऽभवद्राजन् विश्वामित्रः प्रतापवान्

---

श्वोमरणं तपेत् अक्षयं स्वर्गमाप्नोतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणं ब्रह्मसंघातो वेदसमूह इति यावत्। ततः स्वार्थे ष्यञ् 'ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते' इति **मेदिनी** ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

४०

**कथमिति** ॥ १ ॥

स राजा कौशिकस्तात महायोग्यभवत्किल
स पुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महातपाः१३
देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः ।
न गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान्महाभयात्
एवमुक्तः प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्ततः ॥
विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति सुतो मम
इत्युक्त्वा तु ततो गाधि-
विश्वामित्रं निवेश्य च
जगाम त्रिदिवं राजन्
विश्वामित्रोऽभवन्नृपः
न स शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम्।
ततः शुश्राव राजा स राक्षसेभ्यो महाभयम्
निर्ययौ नगराच्चापि चतुरङ्गबलान्वितः ।
स गत्वा दूरमध्वानं वसिष्ठाश्रममभ्ययात्१८
तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान्बहून् ।
ततस्तु भगवान्विप्रो वसिष्ठोऽऽश्रममभ्ययात्
ददृशेऽथ ततः सर्वं भज्यमानं महावनम् ।
तस्य क्रुद्धो महाराज वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥
सृजस्व शबरान् घोरानिति स्वां गामुवाच ह।
तथोक्ता साऽसृजद्धेनुः पुरुषान् घोरदर्शनान्
ते तु तद्बलमासाद्य बभञ्जुः सर्वतोदिशम् ।
तच्छ्रुत्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः
तपः परं मन्यमान-
स्तपस्येव मनो दधे ।
सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन्
सरस्वत्याः समाहितः ॥ २३
नियमैश्चोपवासैश्च
कर्षयन् देहमात्मनः ।
जलाहारो वायुभक्षः
पर्णाहारश्च सोऽभवत् ॥ २४
तथा स्थण्डिलशायी च
ये चान्ये नियमाः पृथक् ।
असकृत्तस्य देवास्तु
व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे ॥ २५
न चास्य नियमाद्बुद्धिरपयाति महात्मनः ।
ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः॥ २६
तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत ।
तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः२७
अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य तत् ।
स तु वव्रे वरं राजन् स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति
तथेति चाब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः ॥
विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः ।
तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु ३०
पयस्विनीस्तथा धेनूर्यानानि शयनानि च ।
अथ वस्त्राण्यलङ्कारं भक्ष्यं पेयं च शोभनम् ॥
अददन्मुदितो राजन् पूजयित्वा द्विजोत्तमान्
ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात्
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तरर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

वैशम्पायन उवाच ।
ब्रह्मयोनेरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः ।
यत्र दाल्भ्यो बको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः ।
तपसा घोररूपेण कर्षयन् देहमात्मनः ॥ २
क्रोधेन महताऽऽविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान्
पुरा हि नैमिषीयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके॥ ३

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

**ब्रह्मेति**। ब्रह्मयोनेः ब्राह्मण्योत्पादकात्तीर्थादवाकीर्णं नाम तत्स्यसेवितं तीर्थं जगाम ॥१॥ तस्यावाकीर्णत्वमाह- **जुहावेत्यादिना**। अवाकीर्यन्ते नीचैरवपात्यन्ते शत्रवोऽस्मिन्नित्यवाकीर्णमित्यर्थः । वैचित्रवीर्यिणः विचित्रवीर्य एव वैचित्रवीर्यिः स पितृत्वेनास्त्यस्य तस्यैवेत्यर्थः ॥ २ ॥ प्रतापवान् राष्ट्रं जुहावेति संबंधः। सत्रे वृत्ते निवृत्ते सतीत्युत्तरेण संबंधः ॥ ३ ॥

वृत्ते विश्वजितोऽन्ते वै पञ्चालानृषयोऽगमन्
तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनस्विनः ॥ ४
बलान्वितान्वत्सतरान्निर्व्याधीनेकविंशतिं
तानब्रवीद्बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति
पशूनेतानहं त्यक्त्वा
भिक्षिष्ये राजसत्तमम्
एवमुक्त्वा ततो राजन्
ऋषीन्सर्वान् प्रतापवान् ॥ ६
जगाम धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः ।
स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥७
अयाचत पशून् दाल्भ्यः
स चैनं रुषितोऽब्रवीत् ।
यदृच्छया मृता दृष्ट्वा
गास्तदा नृपसत्तमः ॥ ८
एतान्पशून्नय क्षिप्रं
ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि ।
ऋषिस्तथा वचः श्रुत्वा
चिन्तयामास धर्मवित् ॥ ९
अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोऽस्मि संसदि
चिन्तयित्वा मुहूर्तेन रोषाविष्टो द्विजोत्तमः
मतिं चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः ।
सतूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा ।
अवाकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकं
बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमं स्थितः
स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः॥ १३
तस्मिंस्तु विधिवत्सत्रे संप्रवृत्ते सुदारुणे ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव॥ १४
ततः प्रक्षीयमाणं तद्राज्यं तस्य महीपतेः ।
छिद्यमानं यथानन्तं वनं परशुना विभो॥ १५
बभूवापद्गतं तच्च व्यवकीर्णमचेतनम् ।
दृष्ट्वा तथाऽवकीर्णं तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः१६
बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च प्रभुः ।
मोक्षार्थमकरोद्यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा॥ १७
न च श्रेयोऽध्यगच्छत्तु क्षीयते राष्ट्रमेव च ।
यदा स पार्थिवः खिन्नस्ते च विप्रास्तदानघ
यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं मोक्षयितुं नृप ।
अथ वैप्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय ॥१९
ततो वैप्राश्निकाः प्राहुः पशुं विप्रकृतस्त्वया
मांसैरभिजुहोतीति तव राष्ट्रं मुनिर्बकः॥ २०
तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो महान्।
तस्यैतत्तपसः कर्म येन तेऽद्य लयो महान् ॥
अपां कुञ्जे सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव ।
सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा बकमब्रवीत् ॥
निपत्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ ।
प्रसादये त्वां भगवन्नपराधं क्षमस्व मे ॥ २३
मम दीनस्य लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः ।
त्वं गतिस्त्वं च मे नाथः प्रसादं कर्तुमर्हसि
तं तथा विलपन्तं तु शोकोपहतचेतसम् ।
दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तस्य व्यमोचयत् ॥
ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत्संरंभं च विहायसः ।
मोक्षार्थं तस्य राज्यस्य जुहाव पुनराहुतिम्॥
मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून्बहून् ।
हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव सः २७
धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः
स्वमेव नगरं राजन्प्रतिपेदे महर्द्धिमत् ॥ २८
तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः ।
असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम् ॥
मांसैरभिजुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः ।
दैवतैरपि संभग्ना जितकाशिभिराहवे ॥ ३०
तत्रापि विधिवद्दत्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः
वाजिनः कुञ्जरांश्चैव रथांश्चाश्वतरीयुतान् ॥
रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम्
ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥ ३२
तत्र यज्ञे ययातेश्च महाराज सरस्वती ।
सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ३३
तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः ।
अकामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान्
पुनस्तत्र च राजंस्तु ययातेर्यजतः प्रभोः ।
औदार्यं परमं कृत्वा भक्तिं चात्मनि शाश्वतीम्
ददौ कामान् ब्राह्मणेभ्यो
यान् यान् यो मनसेच्छति ।
यो यत्र स्थित एवेह
आहूतो यज्ञसंस्तरे ॥ ३६

---

पञ्चालान् विश्वजितो यज्ञस्यान्ते अगमन् । पञ्चालराजानं ययुरित्यर्थः । ईश्वरं पञ्चालराजम् ॥ ४ ॥ एतान् पञ्चालराजदत्तान् स्वयं तत्र भागं न गृहीतवान् इत्यर्थः ॥ ६ ॥ यदृच्छयेति।गाः बलीवर्दान् धेनूश्च ॥ ८ ॥ तत्र तीर्थे इति । शत्रुनाशकामैस्तत्र होमजपादिकं कर्तव्यमित्याख्यानतात्पर्यम् ॥ २९ ॥

तस्य तस्य सरिच्छ्रेष्ठा गृहादिशयनादिकम् ।
षड्रसं भोजनं चैव दानं नानाविधं तथा ३७
ते मन्यमाना राज्ञस्तु संप्रदानमनुत्तमम् ।
राजानं तुष्टुवुः प्रीता दत्वा चैवाशिषः शुभाः
तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य संपदा ।
विस्मिता मानुषाश्चासन् दृष्ट्वा तां यज्ञसंपदम्
ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतु-
महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः ।
वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं
धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

जनमेजय उवाच ।
वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ भीमवेगः कथं नु सः
किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत् १
कथमस्याभवद्वैरं कारणं किं च तत्प्रभो ।
शंस पृष्टो महाप्राज्ञ न हि तृप्यामि कथ्यति
वैशम्पायन उवाच ।
विश्वामित्रस्य विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत ।
भृशं वैरमभूद्राजंस्तपःस्पर्धाकृतं महत् ॥ ३
आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान्
पूर्वतः पार्श्वतश्चासीद्विश्वामित्रस्य धीमतः ४
यत्र स्थाणुर्महाराज तप्तवान्परमं तपः ।
तत्रास्य कर्म तद्घोरं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५
यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्
स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो ६
तत्र तीर्थे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन्नराधिप ।
सैनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम् ॥ ७
तस्मिन्सारस्वते तीर्थे विश्वामित्रो महामुनिः
वसिष्ठं चालयामास तपसोग्रेण तच्छृणु ८
विश्वामित्रवसिष्ठौ तावहन्यहनि भारत ।
स्पर्धां तपःकृतां तीव्रां चक्रतुस्तौ तपोधनौ ९
तत्राप्यधिकसन्तापो विश्वामित्रो महामुनिः
दृष्ट्वा तेजो वसिष्ठस्य चिन्तामभिजगाम ह ॥
तस्य बुद्धिरियं ह्यासीद्धर्मनित्यस्य भारत ।
इयं सरस्वती तूर्णं मत्समीपं तपोधनम् ॥ ११
आनयिष्यति वेगेन वसिष्ठं तपतां वरम् ।
इहागतं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः १२
एवं निश्चित्य भगवान्विश्वामित्रो महामुनिः
सस्मार सरितां श्रेष्ठां क्रोधसंरक्तलोचनः ॥
सा ध्याता मुनिना तेन व्याकुलत्वं जगाम ह
जज्ञे चैनं महावीर्यं महाकोपं च भाविनी ॥
तत एनं वेपमाना विवर्णा प्राञ्जलिस्तदा ।
उपतस्थे मुनिवरं विश्वामित्रं सरस्वती ॥ १०
हतवीरा यथा नारी
साऽभवद्दुःखिता भृशम् ।
ब्रूहि किं करवाणीति
प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥ १६
तामुवाच मुनिः क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय ।
यावदेनं निहन्म्यद्य तच्छ्रुत्वा व्यथिता नदी
प्राञ्जलिं तु ततः कृत्वा पुण्डरीकनिभेक्षणा ।
प्राकम्पत भृशं भीता वायुनेवाहता लता ॥
तथारूपां तु तां दृष्ट्वा मुनिराह महानदीम् ।
अविचारं वसिष्ठं त्वमानयस्वान्तिकं मम १९
सा तस्य वचनं श्रुत्वा
ज्ञात्वा पापं चिकीर्षितम् ।
वसिष्ठस्य प्रभावं च
जानन्त्यप्रतिमं भुवि ॥ २०
साऽभिगम्य वसिष्ठं च इदमर्थमचोदयत् ।
यदुक्ता सरितां श्रेष्ठा विश्वामित्रेण धीमता

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

**वसिष्ठस्येति** । अपोह्यते तीरे प्रास्यतेऽनेनेत्यपवाहस्तीर्थविशेषः ॥ १ ॥ कथ्यति त्वयि कथयति सति ॥ २ ॥

उभयोः शापयोर्भीता
वेपमाना पुनः पुनः ।
चिन्तयित्वा महाशाप-
मृषिवित्रासिता भृशम् ॥ २२
तां कृशां च विवर्णां च
दृष्ट्वा चिन्तासमन्विताम् ।
उवाच राजन्धर्मात्मा
वसिष्ठो द्विपदां वरः ॥ २३
वसिष्ठ उवाच ।
पाह्यात्मानं सरिच्छ्रेष्ठे
वह मां शीघ्रगामिनी ।
विश्वामित्रः शपेद्धि त्वां
मा कृथास्त्वं विचारणाम् ॥ २४
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा
कृपाशीलस्य सा सरित् ।
चिन्तयामास कौरव्य
किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ २५
तस्याश्चिन्ता समुत्पन्ना
वसिष्ठो मय्यतीव हि ।
कृतवान्हि दयां नित्यं
तस्य कार्यं हितं मया ॥ २६
अथ कूले स्वके राजन्
जपन्तमृषिसत्तमम् ।
जुह्वानं कौशिकं प्रेक्ष्य
सरस्वत्यभ्यचिन्तयत् ॥ २७
इदमन्तरमित्येवं ततः सा सरितां वरा ।
कूलापहारमकरोत्स्वेन वेगेन सा सरित् ॥
तेन कूलापहारेण मैत्रावरुणिरौह्यत ।
उह्यमानः स तुष्टाव तदा राजन् सरस्वतीम्
पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति ।
व्याप्तं चेदं जगत्सर्वं तवैवांभोभिरुत्तमैः ३०
त्वमेवाकाशगा देवि मेघेषु सृजसे पयः ।
सर्वाश्चापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहि ३१
पुष्टिर्द्युतिस्तथा कीर्तिः सिद्धिर्बुद्धिरुमा तथा
त्वमेव वाणी स्वाहा त्वं तवायत्तमिदं जगत्
त्वमेव सर्वभूतेषु वससीह चतुर्विधा ।
एवं सरस्वती राजंस्तूयमाना महर्षिणा॥ ३३
वेगेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत चाभीक्ष्णं विश्वामित्राय तं मुनिम्
तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्वेषत्प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥ ३५
तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्मवध्याभयान्नदी ।
अपोवाह वसिष्ठं तु प्राचीं दिशमतन्द्रिता ॥
उभयोः कुर्वती वाक्यं
वञ्चयित्वा च गाधिजम् ।
ततोपवाहितं दृष्ट्वा
वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ३७
अब्रवीद्दुःखसंक्रुद्धो विश्वामित्रो ह्यमर्षणः ।
यस्मान्मां त्वं सरिच्छ्रेष्ठे वञ्चयित्वा पुनर्गता
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंमतम् ।
ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ॥
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा ।
अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ॥ ४०
सरस्वतीं तथा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ।
एवं वसिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप॥
आगच्छच्च पुनर्मार्गं स्वमेव सरितां वरा॥ ४१

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

वैशम्पायन उवाच ।

सा शप्ता तेन क्रुद्धेन विश्वामित्रेण धीमता । तस्मिंस्तीर्थवरे शुभ्रे शोणितं समुपावहत् ॥ १

वयं ऋषयः त्वत्तोऽधीमहि वेदान् कदाचिदनावृष्ट्या मृतेषु ऋषिषु संप्रदायोच्छेदे सतीति भावः ॥ ३१ ॥ रक्षोग्रामणिसंमतमित्यत्र ह्रस्वत्वमार्षम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

सा शप्तेति ॥ १ ॥

अथाजग्मुस्ततो राजन् राक्षसास्तत्र भारत
तत्र ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ॥ २
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः ।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ ३
कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सुतपोधनाः
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां महीपते॥ ४
तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्वाप्लुत्य मुनिपुङ्गवाः ।
प्राप्य प्रीतिं परांचापि तपोलुब्धा विशारदाः
प्रययुर्हि ततो राजन् येन तीर्थमसृग्वहम् ।
अथागम्य महाभागास्तत्तीर्थं दारुणं तदा ॥ ६
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्याः शोणितेन परिप्लुतम् ।
पीयमानं च रक्षोभिर्बहुभिर्नृपसत्तम ॥ ७
तान्दृष्ट्वा राक्षसान् राजन्मुनयः संशितव्रताः
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ ८
ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ ९
कारणं ब्रूहि कल्याणि किमर्थं ते ह्रदो ह्ययम्
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वाऽध्यास्यामहे वयम्
ततः सा सर्वमाचष्ट यथावृत्तं प्रवेपती ।
दुःखितामथ तां दृष्ट्वा ऊचुस्ते वै तपोधनाः ॥
कारणं श्रुतमस्माभिः शापश्चैव श्रुतोऽनघे ।
करिष्यन्ति तु यत्प्राप्तं सर्व एव तपोधनाः१२
एवमुक्त्वा सरिच्छ्रेष्ठामूचुस्तेऽथ परस्परम् ।
विमोचयामहे सर्वे शापादेतां सरस्वतीम्१३
ते सर्वे ब्राह्मणा राजंस्तपोभिर्नियमैस्तथा ।
उपवासैश्च विविधैर्यमैः कष्टव्रतैस्तथा ॥ १४
आराध्य पशुभर्तारं महादेवं जगत्पतिम् ।
मोक्षयामासुस्तां देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम्
तेषां तु सा प्रभावेण प्रकृतिस्था सरस्वती।
प्रसन्नसलिला जज्ञे यथापूर्वं तथैव हि ॥ १६
निर्मुक्ता च सरिच्छ्रेष्ठा विबभौ सा यथा पुरा
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या मुनिभिस्तैस्तथा कृतम्
तानेव शरणं जग्मू
राक्षसाः क्षुधितास्तथा।
कृत्वाञ्जलिं ततो राजन्
राक्षसाः क्षुधयाऽर्दिताः ॥ १८
ऊचुस्तान्वै मुनीन्सर्वान् कृपायुक्तान्पुनः पुनः
वयं च क्षुधिताश्चैव धर्माद्धीनाश्च शाश्वतात्
न च नः कामकारोऽयं यद्वयं पापकारिणः ।
युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा २०
यत्पापं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः
योषितां चैव पापेन योनिदोषकृतेन च॥ २१
एवं हि वैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां तथैव च ।
ये ब्राह्मणान्प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः
आचार्यमृत्विजं चैव गुरुं वृद्धजनं तथा ।
प्राणिनो येऽवमन्यन्ते ते भवन्तीह राक्षसाः
तत्कुरुध्वमिहास्माकं तारणं द्विजसत्तमाः ।
शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे॥
तेषां तु वचनं श्रुत्वा तुष्टुवुस्तां महानदीम् ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषामूचुः प्रयतमानसाः २५
क्षुतं कीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाचितं भवेत्।
सकेशमवधूतं च रुदितोपहतं च यत् ॥ २६
एभिः संसृष्टमन्नं च
भागोऽसौ रक्षसामिह ।
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वा-
नेतान्यत्नाद्विवर्जयेत् ॥ २७
राक्षसान्नमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते ह्यन्नमीदृशम् ।
शोधयित्वा ततस्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः २८
मोक्षार्थं राक्षसानां च नदीं तां प्रत्यचोदयन्
महर्षीणां मतं ज्ञात्वा ततः सा सरितां वरा
अरुणामानयामास
स्वां तनूं पुरुषर्षभ ।
तस्यां ते राक्षसाः स्नात्वा
तनूस्त्यक्त्वा दिवं गताः ॥ ३०
अरुणायां महाराज ब्रह्मवध्यापहा हि सा ।
एतमर्थमभिज्ञाय देवराजः शतक्रतुः ॥ ३१
तस्मिंस्तीर्थे वरे स्नात्वा
विमुक्तः पाप्मना किल
जनमेजय उवाच ।
किमर्थं भगवान् शक्रो
ब्रह्मवध्यामवाप्तवान् ॥ ३२
कथमस्मिंश्च तीर्थे वै
आप्लुत्याकल्मषोऽभवत् ।
वैशम्पायन उवाच ।
शृणुष्वैतदुपाख्यानं
यथा वृत्तं जनेश्वर ॥ ३३
यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा ।
नमुचिर्वासवाद्भीतः सूर्यरश्मिं समाविशत् ॥

अध्यास्यामहे अध्यवसायं करिष्यामहे ॥१० ॥

तेनेन्द्रः सख्यमकरोत्समयं चेदमब्रवीत।
न चार्द्रेण न शुष्केण न रात्रौ नापि चाहनि
वधिष्याम्यसुरश्रेष्ठ सखे सत्येन ते शपे।
एवं स कृत्वा समयं दृष्ट्वा नीहारमीश्वरः ३६
चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः
तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वियात
भो भो मित्रहन्पापेति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात
एवं स शिरसा तेन चोद्यमानः पुनः पुनः ३८
पितामहाय सन्तप्त एतमर्थं न्यवेदयत्।
तमब्रवील्लोकगुरुररुणायां यथाविधि॥ ३९
इष्ट्वोपस्पृश देवेन्द्र तीर्थे पापभयापहे।
एषा पुण्यजला शक्र कृता मुनिभिरेव तु॥४०
निगूढमस्यागमनमिहासीत्पूर्वमेव तु।
ततोऽभ्येत्यारुणां देवीं प्लावयामास वारिणा
सरस्वत्यारुणायाश्च पुण्योऽयं संगमो महान्।
इह त्वं यज देवेन्द्र दद दानान्यनेकशः॥४२
अत्राप्लुत्य सुघोरात्त्वं पातकाद्विप्रमोक्ष्यसे।
इत्युक्तः स सरस्वत्याः कुञ्जे वै जनमेजय॥४२
इष्ट्वा यथावद्बलभिदरुणायामुपास्पृशत्।
स मुक्तः पाप्मना तेन ब्रह्मवध्याकृतेन च॥४४
जगाम संहृष्टमनास्त्रिदिवं त्रिदशेश्वरः।
शिरस्तच्चाप नमुचेस्तत्रैवाप्लुत्य भारत।
लोकान्कामदुघान्प्राप्तमक्षयान् राजसत्तम

वैशम्पायन उवाच

तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा
दत्त्वा च दानानि पृथग्विधानि।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा
जगाम सोमस्य महत्सुतीर्थम्॥ ४६
यत्रायजद्राजसूयेन सोमः
साक्षात्पुरा विधिवत्पार्थिवेन्द्रः।
अत्रिर्धीमान्विप्रमुख्यो बभूव
होता यस्मिन् क्रतुमुख्ये महात्मा॥४७
यस्यान्तेऽभूत्सुमहद्दानवानां
दैतेयानां राक्षसानां च देवैः।
यस्मिन् युद्धं तारकाख्यं सुतीव्रं
यत्र स्कन्दस्तारकाख्यं जघान॥ ४८
सैनापत्यं लब्धवान् देवतानां
महासेनो यत्र दैत्यान्तकर्ता।
साक्षाच्चैवं न्यवसत्कार्तिकेयः
सदा कुमारो यत्र स प्लक्षराजः॥४९

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

## ४४

जनमेजय उवाच।

सरस्वत्याः प्रभावोऽयमुक्तस्ते द्विजसत्तम।
कुमारस्याभिषेकं तु ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि॥
यस्मिन्देशे च काले च यथा च वदतां वर।
यैश्चाभिषिक्तो भगवान्विधिना येन च प्रभुः २
स्कन्दो यथा च दैत्यानामकरोत्कदनं महत्।
तथा मे सर्वमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे॥३

वैशंपायन उवाच।

कुरुवंशस्य सदृशं कौतूहलमिदं तव।
हर्षमुत्पादयत्येव वचो मे जनमेजय ॥ ४
हन्त ते कथयिष्यामि शृण्वानस्य नराधिप।
अभिषेकं कुमारस्य प्रभावं च महात्मनः॥५
तेजो माहेश्वरं स्कन्नमग्नौ प्रपतितं पुरा।
तत्सर्वभक्षो भगवान्नाशकद्दग्धुमक्षयम् ॥६
तेनासीदतितेजस्वी दीप्तिमान् हव्यवाहनः।
न चैव धारयामास गर्भं तेजोमयं तदा॥ ७
स गङ्गामभिसंगम्य नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभुः।
गर्भमाहितवान् दिव्यं भास्करोपमतेजसम्८
अथ गङ्गापि तं गर्भमसहन्ती विधारणे।
उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते॥९
स तत्र ववृधे लोकानावृत्य ज्वलनात्मजः।
ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गर्भमथ कृत्तिकाः॥१०
शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम्।
ममायमिति ताः सर्वाः पुत्रार्थिन्योऽभिचुक्रुशुः

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

४४

सरस्वत्या इति॥ १॥

तासां विदित्वा भावं तं मातॄणां भगवान्प्रभुः
प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिबत्तदा ॥ १२
तं प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः
परं विस्मयमापन्ना देव्यो दिव्यवपुर्धराः ॥
यत्रोत्सृष्टः स भगवान् गङ्गया गिरिमूर्धनि ।
स शैलकाञ्चनः सर्वः संबभौ कुरुसत्तम ॥ १४
वर्धता चैव गर्भेण पृथिवी तेन रञ्जिता ।
अतश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनाकराः ॥
कुमारः सुमहावीर्यः कार्तिकेय इति स्तुतः ।
गाङ्गेयः पूर्वमभवन्महायोगबलान्वितः ॥ १६
शमेन तपसा चैव वीर्येण च समन्वितः ।
ववृधेऽतीव राजेन्द्र चन्द्रवत्प्रियदर्शनः ॥१७
स तस्मिन्काञ्चने दिव्ये शरस्तम्बे श्रिया वृतः
स्तूयमानः सदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा ॥
तथैतमन्वनृत्यन्त देवकन्याः सहस्रशः ।
दिव्यवादित्रनृत्यज्ञाः स्तुवन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥
अन्वास्ते च नदी देवं गङ्गा वै सरितां वरा ।
दधार पृथिवी चैनं बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥२०
जातकर्मादिकास्तत्र क्रियाश्चक्रे बृहस्पतिः ।
वेदश्चैनं चतुर्मूर्तिरुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ २१
धनुर्वेदश्चतुष्पादः शस्त्रग्रामः ससंग्रहः ।
तत्रैनं समुपातिष्ठत्साक्षाद्वाणी च केवला ॥
स ददर्श महावीर्यं देवदेवमुमापतिम् ।
शैलपुत्र्या समासीनं भूतसंघशतैर्वृतम् ॥ २३
निकाया भूतसंघानां परमाद्भुतदर्शनाः ।
विकृता विकृताकारा विकृताभरणध्वजाः
व्याघ्रसिंहर्क्षवदना बिडालमकराननाः ।
वृषदंशमुखाश्चान्ये गजोष्ट्रवदनास्तथा ॥ २५
उलूकवदनाः केचिद्गृध्रगोमायुदर्शनाः ।
क्रौञ्चपारावतनिभैर्वदनै राङ्कवैरपि ॥ २६
श्वाविच्छल्यकगोधानामजैडकगवां तथा ।
सदृशानि वपूंष्यन्ये तत्र तत्र व्यधारयन् ॥
केचिच्छैलाम्बुदप्रख्याश्चक्रोद्यतगदायुधाः ।
केचिदञ्जनपुञ्जाभाः केचिच्छ्वेताचलप्रभाः ॥
सप्त मातृगणाश्चैव समाजग्मुर्विशांपते ।
साध्या विश्वेऽथ मरुतो वसवः पितरस्तथा ॥
रुद्रादित्यास्तथा सिद्धा
भुजगा दानवाः खगाः ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्
सपुत्रः सह विष्णुना ॥ ३०
शक्रस्तथाभ्ययाद्द्रष्टुं कुमारवरमच्युतम् ।
नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः ॥ ३१
देवर्षयश्च सिद्धाश्च बृहस्पतिपुरोगमाः ।
पितरो जगतः श्रेष्ठा देवानामपि देवताः ॥
तेऽपि तत्र समाजग्मुर्यामा धामाश्च सर्वशः
स तु बालोऽपि बलवान्महायोगबलान्वितः
अभ्याजगाम देवेशं शूलहस्तं पिनाकिनम् ।
तमाव्रजन्तमालक्ष्य शिवस्यासीन्मनोगतम् ॥
युगपच्छैलपुत्र्याश्च गङ्गायाः पावकस्य च ।
कं नु पूर्वमयं बालो गौरवादभ्युपैष्यति ॥
अपि मामिति सर्वेषां तेषामासीन्मनोगतम्
तेषामेतमभिप्रायं चतुर्णामुपलक्ष्य सः ॥ ३६
युगपद्योगमास्थाय ससर्ज विविधास्तनूः ।
ततोऽभवच्चतुर्मूर्तिः क्षणेन भगवान्प्रभुः ॥ ३७
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ।
एवं स कृत्वा ह्यात्मानं चतुर्धा भगवान्प्रभुः
यतो रुद्रस्ततः स्कन्दो जगामाद्भुतदर्शनः ।
विशाखस्तु ययौ येन देवी गिरिवरात्मजा ॥
शाखो ययौ स भगवान् वायुमूर्तिर्विभावसुं
नैगमेयोऽगमद्गङ्गां कुमारः पावकप्रभः ॥ ४०
सर्वे भासुरदेहास्ते चत्वारः समरूपिणः ।
तान्समभ्ययुरव्यग्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१
हाहाकारो महानासीद्देवदानवरक्षसाम् ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४२
ततो रुद्रश्च देवी च पावकश्च पितामहम् ।
गङ्गया सहिताः सर्वे प्रणिपेतुर्जगत्पतिम् ४३
प्रणिपत्य ततस्ते तु विधिवद्राजपुङ्गव ।
इदमूचुर्वचो राजन् कार्तिकेयप्रियेप्सया ॥ ४४
अस्य बालस्य भगवन्नाधिपत्यं यथेप्सितम् ।
अस्मत्प्रियार्थं देवेश सदृशं दातुमर्हसि ॥ ४५
ततः स भगवान् धीमान् सर्वलोकपितामहः
मनसा चिन्तयामास किमयं लभतामिति ॥
ऐश्वर्याणि च सर्वाणि देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
भूतयक्षविहङ्गानां पन्नगानां च सर्वशः ॥ ४७
पूर्वमेवादिदेशासौ निकायेषु महात्मनाम् ।
समर्थं च तमैश्वर्ये महामतिरमन्यत ॥ ४८

---

बिडालवृषदंशौ मार्जारजातिभेदौ तत्सदृशाननौ ॥ २५ ॥ [illegible] स्कन्दस्य पृष्ठतः पश्चात् शाखविशाखनैगमेयाः आसन् ते स्कन्देन सह चत्वारः ॥ ३८ ॥ अद्भुतमदृष्टपूर्वम् ॥ ४२ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा देवानां श्रेयसि स्थितः
सैनापत्यं ददौ तस्मै सर्वभूतेषु भारत ॥ ४९
सर्वदेवनिकायानां ये राजानः परिश्रुताः ।
तान् सर्वान्व्यादिदेशास्मै सर्वभूतपितामहः॥
ततः कुमारमादाय देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
अभिषेकार्थमाजग्मुः शैलेन्द्रं सहितास्ततः ५१
पुण्यां हैमवतीं देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ।
समन्तपञ्चके या वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥५२
तत्र तीरे सरस्वत्याः पुण्ये सर्वगुणान्विते ।
निषेदुर्देवगन्धर्वाः सर्वे संपूर्णमानसाः ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुमाराभिषेकोपक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

वैशम्पायन उवाच ।
ततोऽभिषेकसंभारान्सर्वान् संभृत्य शास्त्रतः
बृहस्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाग्निं यथाविधि
ततो हिमवता दत्ते मणिप्रवरशोभिते ।
दिव्यरत्नाचिते पुण्ये निषण्णं परमासने ॥ २
सर्वमङ्गलसंभारैर्विधिमंत्रपुरस्कृतम् ।
आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ३
इन्द्राविष्णू महावीर्यौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ
पूष्णा भगेनार्यम्णा च अंशेन च विवस्वता ।
रुद्रश्च सहितो धीमान् मित्रेण वरुणेन च॥ ५
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः ।
विश्वेदेवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥ ६
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।
देवर्षिभिरसंख्यातैस्तथा ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥७
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः ।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च यतिभिश्च महात्मभिः ८
सर्पैर्विद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धैस्तथा वृतः ।
पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥ ९
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च ।
क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥ १०
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च विशांपते ।
मूर्तिमत्यश्च सरितो वेदाश्चैव सनातनाः ११
समुद्राश्च ह्नदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च
पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च जनाधिप १२
अदितिर्देवमाता च
ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती ।
उमा शची सिनीवाली
तथा चानुमतिः कुहूः ॥ १३
राका च धिषणा चैव
पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम् ।
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च
मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥ १४
ऐरावतः सानुचरः कलाः काष्ठास्तथैव च ।
मासार्धमासा ऋतवस्तथा राज्यहनी नृप १५
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वासुकिः ।
अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥ १६
धर्मश्च भगवान्देवः समाजग्मुर्हि सङ्गताः ।
कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये १७
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः ।
ते कुमाराभिषेकार्थं समाजग्मुस्ततस्ततः १८
जगृहुस्ते तदा राजन् सर्व एव दिवौकसः ।
आभिषेचनिकं भाण्डं मङ्गलानि च सर्वशः ॥
दिव्यसम्भारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्नृप ।
सरस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव तु ॥
अभ्यषिञ्चन् कुमारं वै संप्रहृष्टा दिवौकसः ।
सेनापतिं महात्मानमसुराणां भयङ्करम् २१
पुरा यथा महाराज वरुणं वै जलेश्वरम् ।
तथाऽभ्यषिञ्चद्भगवान्सर्वलोकपितामहः २२

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

तत इति ॥ १ ॥ आभिषेचनिकं भांडं अभिषेकोपकरणम् ॥ १९ ॥ सरस्वतीभिरुदकवतीभिर्नदीभिः ताभिरेव वा सप्तभिः ॥ २० ॥

कश्यपश्च महातेजा ये चान्ये लोककीर्तिताः
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो बलिनो वातरंहसः
कामवीर्यधरान् सिद्धान्महापारिषदान्प्रभुः ।
नन्दिसेनं लोहिताक्षं घण्टाकर्णं च संमतम्
चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम् ।
तत्र स्थाणुर्महातेजा महापारिषदं प्रभुः ॥ २५
मायाशतधरं कामं कामवीर्यबलान्वितम् ।
ददौ स्कन्दाय राजेन्द्र सुरारिविनिबर्हणम्
स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् ।
जघान दोर्भ्यां संक्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश २७
तथा देवा ददुस्तस्मै सेनां नैर्ऋतसंकुलाम् ।
देवशत्रुक्षयकरीमजय्यां विष्णुरूपिणीम् २८
जयशब्दं तथा चक्रुर्देवाः सर्वे सवासवाः ।
गन्धर्वा यक्षरक्षांसि मुनयः पितरस्तथा २९
ततः प्रादादनुचरौ यमकालोपमावुभौ ।
उन्माथश्च प्रमाथश्च महावीर्यौ महाद्युती ॥ ३०
सुभ्राजो भास्वरश्चैव यौ तौ सूर्यानुयायिनौ ।
तौ सूर्यः कार्तिकेयाय ददौ प्रीतः प्रतापवान्
कैलासशृङ्गसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ।
सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेव च ॥
ज्वालाजिह्वं तथा ज्योतिरात्मजाय हुताशनः
ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ ॥ ३३
परिघं च वटं चैव भीमं च सुमहाबलम् ।
दहतिं दहनं चैव प्रचण्डौ वीर्यसंमतौ ॥ ३४
अंशोऽप्यनुचरान्पञ्च ददौ स्कन्दाय धीमते ।
उत्क्रोशं पञ्चकं चैव वज्रदण्डधरावुभौ ३५
ददावनलपुत्राय वासवः परवीरहा ।
तौ हि शत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ३६
चक्रं विक्रमकं चैव संक्रमं च महाबलम् ।
स्कन्दाय त्रीननुचरान् ददौ विष्णुर्महायशाः
वर्धनं नन्दनं चैव सर्वविद्याविशारदौ ।
स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भिषजां वरौ
कुन्दं च कुसुमं चैव कुमुदं च महायशाः ।
डम्बराडम्बरौ चैव ददौ धाता महात्मने ३९
चक्रानुचक्रौ बलिनौ मेघचक्रौ बलोत्कटौ ।
ददौ त्वष्टा महामायौ स्कन्दायानुचरावुभौ
सुव्रतं सत्यसन्धं च ददौ मित्रो महात्मने ।
कुमाराय महात्मानौ तपोविद्याधरौ प्रभुः ४१
सुदर्शनीयौ वरदौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ।
सुव्रतं च महात्मानं शुभकर्माणमेव च ॥ ४२
कार्तिकेयाय संप्रादाद्विधाता लोकविश्रुतौ ।
पाणीतकं कालिकं च महामायाविनावुभौ ॥
पूषा च पार्षदौ प्रादात्कार्तिकेयाय भारत ।
बलं चातिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ ॥ ४४
प्रददौ कार्तिकेयाय वायुर्भरतसत्तम ।
यमं चातियमं चैव तिमिवक्त्रौ महाबलौ ४५
प्रददौ कार्तिकेयाय वरुणः सत्यसङ्गरः ।
सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम् ४६
हिमवान्प्रददौ राजन् हुताशनसुताय वै ।
काञ्चनं च महात्मानं मेघमालिनमेव च ४७
ददावनुचरौ मेरुरग्निपुत्राय भारत ।
स्थिरं चातिस्थिरं चैव मेरुरेवापरौ ददौ ४८
महात्मा त्वग्निपुत्राय महाबलपराक्रमौ ।
उच्छृङ्गं चातिशृङ्गं च महापाषाणयोधिनौ ॥
प्रददावग्निपुत्राय विन्ध्यः पारिषदावुभौ ।
संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ ॥ ५०
प्रददावग्निपुत्राय महापारिषदावुभौ ।
उन्मादं शंकुकर्णं च पुष्पदन्तं तथैव च ॥ ५१
प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना ।
जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे ॥ ५२
प्रददौ पुरुषव्याघ्र वासुकिः पन्नगेश्वरः ।
एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा ५३
सागराः सरितश्चैव गिरयश्च महाबलाः ।
ददुः सेनागणाध्यक्षान् शूलपट्टिशधारिणः

दिव्यप्रहरणोपेता-
नानावेषविभूषितान् ।
शृणु नामानि चान्येषां
येऽन्ये स्कन्दस्य सैनिकाः ॥ ५५

विविधायुधसंपन्नाश्चित्राभरणभूषिताः ।
शंकुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ५६

अनन्तो द्वादशभुज-
स्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ।
घ्राणश्रवाः कपिस्कन्धः
काञ्चनाक्षो जलन्धमः ॥ ५७

अक्षः सन्तर्जनो राजन् कुनदीकस्तमोन्तकृत्
एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजटः प्रभुः ५८
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ।
पुण्यनामा सुनामा च सुचक्रः प्रियदर्शनः ५९
परिश्रुतः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ।
अजोदरो गजशिराः स्कन्धाक्षः शतलोचनः

ज्वालाजिह्वः करालाक्षः
शितिकेशो जटी हरिः ।
परिश्रुतः कोकनदः
कृष्णकेशो जटाधरः ॥ ६१
चतुर्दंष्ट्रोष्टजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ।
विद्युताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः६२
उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ।
समुद्रवेगो राजेन्द्र शैलकम्पी तथैव च ६३
वृषो मेषः प्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ।
धूम्रः श्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥
प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान् ।
आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा६५
क्षेमवाहः सुवाहश्च सिद्धपात्रश्च भारत ।
गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ६६
गायनो हसनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ।
वैताली गतिताली च तथा कथकवातिकौ
हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह ।
रणोत्कटः प्रहासश्च श्वेतसिद्धश्च नन्दनः ६८
कालकण्ठः प्रभासश्च तथा कुम्भाण्डकोदरः ।
कालकक्षः सितश्चैव भूतानां मथनस्तथा ६९
यज्ञवाहः सुवाहश्च देवयाजी च सोमपः ।
मज्जनश्च महातेजाः क्रथक्राथौ च भारत ७०
तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ।
मधुरः सुप्रसादश्च किरीटी च महाबलः ७१
वत्सलो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।
धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ७२
श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।
दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ॥
अचलः कनकाक्षश्च बालानामपि यः प्रभुः ।
सञ्चारकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ७४
लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ।
स्वर्णग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च चन्द्रभः७५
पाणिकूर्चाश्च शम्बूकः पञ्चवक्त्रश्च शिक्षकः ।
चाषवक्त्रश्च जम्बूकः शाकवक्त्रश्च कुञ्जलः७६
योगयुक्ता महात्मानः सततं ब्राह्मणप्रियाः ।
पैतामहा महात्मानो महापारिषदाश्च ये॥७७
यौवनस्थाश्च बालाश्च वृद्धाश्च जनमेजय ।
सहस्रशः पारिषदाः कुमारमवतस्थिरे ॥ ७८
वक्त्रैर्नानाविधैर्ये तु शृणु ताञ्जनमेजय ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ७९
खरोष्ट्रवदनाश्चान्ये वराहवदनास्तथा ।
मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च भारत॥८०
नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथा परे ।
आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ॥ ८१
मत्स्यमेषाननाश्चान्ये अजाविमहिषाननाः ।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा८२
भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखाश्च ये ।
गरुडाननाः कङ्कमुखा वृककाकमुखास्तथा
गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ।
महाजठरपादाङ्गास्तारकाक्षाश्च भारत ८४
पारावतमुखाश्चान्ये
तथा वृषमुखाः परे ।
कोकिलाभाननाश्चान्ये
श्येनतित्तिरिकाननाः ॥ ८५
कृकलासमुखाश्चैव विरजोम्बरधारिणः ।
व्यालवक्त्राः शूलमुखाश्चण्डवक्त्राः शुभाननाः
आशीविषाश्चीरधरा गोनासावदनास्तथा ।
स्थूलोदराः कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः
ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥
स्कन्धेमुखा महाराज तथाप्युदरतोमुखाः ।
पृष्ठेमुखा हनुमुखास्तथा जङ्घामुखा अपि ॥८९
पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा ।
तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्या गणेश्वराः ॥
नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः ।
नानावृक्षभुजाः केचित्कटिशीर्षास्तथा परे॥
भुजङ्गभोगवदना नानागुल्मनिवासिनः ।
चीरसंवृतगात्राश्च नानाकनकवाससः ॥ ९२
नानावेषधराश्चैव नानामाल्यानुलेपनाः ।
नानावस्त्रधराश्चैव चर्मवासस एव च ॥ ९३
उष्णीषिणो मुकुटिनः सुग्रीवाश्च सुवर्चसः ।
किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा काञ्चनमूर्धजाः
त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखाः परे
शिखण्डिनो मुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा
चित्रमालाधराःकेचित् केचिद्रोमाननास्तथा
विग्रहैकरसा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ॥ ९६
कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठास्तनूदराः ।
स्थूलपृष्ठा ह्रस्वपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ॥९७
महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः
कुब्जाश्च ह्रस्वजङ्घाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ॥
हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथा परे ।
दीर्घोच्छ्वासा दीर्घजङ्घा विकराला ह्यधोमुखाः

महादंष्ट्रा ह्रस्वदंष्ट्राश्चतुर्दंष्ट्रास्तथा परे ।
वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये भीमा राजन्सहस्रशः ॥
सुविभक्तशरीराश्च दीप्तिमन्तः स्वलंकृताः ।
पिंगाक्षाः शंकुकर्णाश्च रक्तनासाश्च भारत ॥
पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलौष्ठा हरिमूर्धजाः ।
नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥
नानाचर्मभिराच्छन्ना नानाभाषाश्च भारत ।
कुशला देशभाषासु जल्पन्तोऽन्योन्यमीश्वराः
हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापारिषदास्तथा ।
दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ॥
पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च लम्बकर्णाश्च भारत ।
वृकोदरनिभाश्चैव केचिदञ्जनसन्निभाः ॥१०५
श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिङ्गाक्षाश्च तथा परे
कल्माषा बहवो राजंश्चित्रवर्णाश्च भारत ॥
चामरापीडकनिभाः श्वेतलोहितराजयः ।
नानावर्णाः सवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ॥
पुनः प्रहरणान्येषां कीर्त्यमानानि मे शृणु ।
शेषैः कृतः पारिषदैरायुधानां परिग्रहः ॥
पाशोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खराननाः
पृथ्वक्षा नीलकण्ठाश्च तथा परिघबाहवः ॥
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥
गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।
आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महाजवाः ॥
महाबला महावेगा महापारिषदास्तथा ।
अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः ॥
घण्टाजालपिनद्धाङ्गा ननृतुस्ते महौजसः ।
एते चान्ये च बहवो महापारिषदा नृप ॥
उपतस्थुर्महात्मानं
कार्तिकेयं यशस्विनम् ।
दिव्याश्चाप्यान्तरिक्षाश्च
पार्थिवाश्चानिलोपमाः ॥ ११४
व्यादिष्टा दैवतैः शूराः स्कन्दस्यानुचरा भवन्
तादृशानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अभिषिक्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलरामतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने स्कन्दाभिषेके पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

वैशम्पायन उवाच ।
शृणु मातृगणान् राजन्कुमारानुचरानिमान्
कीर्त्यमानान्मया वीर सपत्नगणसूदनान् ॥
यशस्विनीनां मातॄणां
शृणु नामानि भारत ।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः
कल्याणीभिश्च भागशः ॥ २
प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोस्तनी तथा
श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥ ३
अप्सु जाता च गोपाली बृहदम्बालिका तथा
जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी ॥ ४
वसुदामा च दामा च विशोका नन्दिनी तथा
एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्च भारत ॥ ५
उत्तेजनी जयत्सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।
शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥
माधवी शुभवक्त्रा च तीर्थसेनिश्च भारत ।
गीतप्रिया च कल्याणी रुद्ररोमाऽमिताशना
मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वीर्यवती विद्युज्जिह्वा च भारत ।
पद्मावती सुनक्षत्रा कन्दरा बहुयोजना ।
संतानिका च कौरव्य कमला च महाबला
सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।
नृत्यप्रिया च राजेन्द्र शतोलूखलमेखला ॥
शतघण्टा शतानन्दा भगनन्दा च भाविनी
वपुष्मती चन्द्रशीता भद्रकाली च भारत ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६
शृणुविवति ॥ १ ॥

ऋक्षाम्बिका निष्कुटिका
वामा चत्वरवासिनी ।
सुमङ्गला स्वस्तिमती
बुद्धिकामा जयाप्रिया ॥ १२
धनदा सुप्रसादा च भवदा च जलेश्वरी ।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ॥
कण्डूतिः कालिका चैव देवमित्रा च भारत
वसुश्रीः कोटरा चैव चित्रसेना तथाऽचला
कुक्कुटिका शंखलिका
तथा शकुनिका नृप ।
कुण्डारिका कौकुलिका
कुम्भिकाऽथ शतोदरी ॥ १५
उत्क्राथिनी जलेला च महावेगा च कङ्कणा
मनोजवा कण्टकिनी प्रघसा पूतना तथा ॥
केशयन्त्री त्रुटिर्वामा क्रोशनाऽथ तडित्प्रभा
मन्दोदरी च मुण्डी च कोटरा मेघवाहिनी ॥
सुभगा लम्बिनी लम्बा
ताम्रचूडा विकाशिनी ।
उर्ध्ववेणीधरा चैव
पिंगाक्षी लोहमेखला ॥ १८
पृथुवक्त्रा मधुलिका मधुकुंभा तथैव च ।
पक्षालिका मत्कुलिका जरायुर्जर्जरानना ॥
ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा नृप ।
खण्डखण्डा च राजेन्द्र पूषणा मणिकुट्टिका॥
अमोघा चैव कौरव्य तथा लम्बपयोधरा ।
वेणुवीणाधरा चैव पिंगाक्षी लोहमेखला ॥
शशोलूकमुखी कृष्णा खरजङ्घा महाजवा।
शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा॥
जटालिका कामचरी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा।
कालेहिका वामनिका मुकुटा चैव भारत ॥
लोहिताक्षी महाकाया हरिपिण्डा च भूमिप ।
एकत्वचा सुकुसुमा कृष्णकर्णी च भारत॥२४
क्षुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ।
चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना॥२५
खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ।
शंखकुंभश्रवाश्चैव भगदा च महाबला ॥ २६
गणा च सुगणा चैव तथाऽभीत्यथ कामदा।
चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरी ॥२७
पशुदा वित्तदा चैव सुखदा च महायशाः ।
पयोदा गोमहिषदा सुविशाला च भारत॥२८
प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुरोचना ।
नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मंथिनी तथा॥
एकचन्द्रा मेघकर्णा मेघमाला विरोचना ।
एताश्चान्याश्च बहवो मातरो भरतर्षभ ॥ ३०
कार्तिकेयानुयायिन्यो नानारूपाः सहस्रशः।
दीर्घनख्यो दीर्घदन्त्यो दीर्घतुण्ड्यश्च भारत॥
सबला मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ॥
निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा काञ्चनसन्निभाः।
कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च भरतर्षभ ॥३३
अरुणाभा महाभोगा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः।
उर्ध्ववेणीधराश्चैव पिंगाक्ष्यो लम्बमेखलाः॥
लम्बोदर्यो लम्बकर्णास्तथा लम्बपयोधराः ।
ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथा पराः॥
वरदाः कामचारिण्यो
नित्यं प्रमुदितास्तथा ।
याम्या रौद्रास्तथा सौम्याः
कौबेर्योऽथ महाबलाः ॥ ३६
वारुण्योऽथ च माहेन्द्र्य-
स्तथाऽऽग्नेय्यः परंतप ।
वायव्यश्चाथ कौमार्यो
ब्राह्म्यश्च भरतर्षभ ॥ ३७
वैष्णव्यश्च तथा सौर्यो वाराह्यश्च महाबलाः
रूपेणाप्सरसां तुल्या मनोहार्यो मनोरमाः
परपुष्टोपमा वाक्ये तथर्द्ध्या धनदोपमाः ।
शक्रवीर्योपमा युद्धे दीप्त्या वह्निसमास्तथा
शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदास्ता भवन्त्युत ।
कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ॥ ४०
अचिन्त्यबलवीर्याश्च तथाऽचिन्त्यपराक्रमाः।
वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिकेतनाः ॥ ४१
गुहाश्मशानवासिन्यः
शैलप्रस्रवणालयाः ।
नानाभरणधारिण्यो
नानामाल्याम्बरास्तथा ॥ ४२
नानाविचित्रवेषाश्च नानाभाषास्तथैव च ।
एते चान्ये च बहवो गणाः शत्रुभयंकराः ४३
अनुजग्मुर्महात्मानं त्रिदशेन्द्रस्य संमते ।
ततः शक्रत्यस्त्रमदद्भगवान्पाकशासनः॥४४
गुहाय राजशार्दूल विनाशाय सुरद्विषाम् ।
महास्वनां महाघण्टां द्योतमानां सितप्रभाम्
अरुणादित्यवर्णां च पताकां भरतर्षभ ।
ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥ ४६

उग्रां नानाप्रहरणां तपोवीर्यबलान्विताम् ॥
अजेयां स्वगणैर्युक्तां नाम्ना सेनां धनञ्जयाम् ।
रुद्रतुल्यबलैर्युक्तां
योधानामयुतैस्त्रिभिः ।
न सा विजानाति रणा-
त्कदाचिद्विनिवर्तितुम् ॥ ४८
विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम्।
उमा ददौ विरजसी वाससी रविसप्रभे ॥४९
गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ।
ददौ प्रीत्या कुमाराय दण्डं चैव बृहस्पतिः॥५०
गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् ।
अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम् ॥ ५२
नागं तु वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् ।
कृष्णाजिनं ततो ब्रह्मा ब्रह्मण्याय ददौ प्रभुः॥
समरेषु जयं चैव प्रददौ लोकभावनः ।
सैनापत्यमनुप्राप्य स्कन्दो देवगणस्य ह ॥
शुशुभे ज्वलितोऽर्चिष्मान् द्वितीय इव पावकः।
ततः पारिषदैश्चैव मातृभिश्च समन्वितः ॥ ५४
ययौ दैत्यविनाशाय
ह्लादयन्सुरपुङ्गवान् ।
सा सेना नैर्ऋती भीमा
सघण्टोच्छ्रितकेतना ॥ ५५
सभेरीशंखमुरजा
सायुधा सपताकिनी ।
शारदी द्यौरिवाभाति
ज्योतिर्भिरिव शोभिता ॥ ५६
ततो देवनिकायास्ते नानाभूतगणास्तथा ।
वादयामासुरव्यग्रा भेरीः शंखांश्च पुष्कलान्॥
पटहान्झर्झरांश्चैव
क्रकचान् गोविषाणिकान् ।
आडम्बरान् गोमुखांश्च
डिण्डिमांश्च महास्वनान् ॥ ५८
तुष्टुवुस्ते कुमारं तु सर्वे देवाः सवासवाः ।
जगुश्च देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥५९
ततः प्रीतो महासेनस्त्रिदशेभ्यो वरं ददौ ।
रिपून्हन्तास्मि समरे ये वो वधचिकीर्षवः॥
प्रतिगृह्य वरं देवा-
स्तस्माद्विबुधसत्तमात् ।
प्रीतात्मानो महात्मानो
मेनिरे निहतान् रिपून् ॥ ६१
सर्वेषां भूतसंघानां हर्षान्नादः समुत्थितः ।
अपूरयत लोकांस्त्रीन् वरे दत्ते महात्मना ॥
स निर्ययौ महासेनो महत्या सेनया वृतः ।
वधाय युधि दैत्यानां रक्षार्थं च दिवौकसाम्
व्यवसायो जयो धर्मः
सिद्धिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः ।
महासेनस्य सैन्याना-
मग्रे जग्मुर्नराधिप ॥ ६४
स तया भीमया देवः शूलमुद्गरहस्तया ।
ज्वलितालातधारिण्या चित्राभरणवर्मया ॥
गदामुसलनाराचशक्तितोमरहस्तया ।
दृप्तसिंहनिनादिन्या विनद्य प्रययौ गुहः ॥६६
तं दृष्ट्वा सर्वदैतेया राक्षसा दानवास्तथा ।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा भयोद्विग्नाः समन्ततः
अभ्यद्रवन्त देवास्तान् विविधायुधपाणयः ।
दृष्ट्वा च स ततः क्रुद्धः स्कन्दस्तेजोबलान्वितः
शक्त्यस्त्रं भगवान् भीमं पुनः पुनरवाकिरत् ।
आदधच्चात्मनस्तेजो हविषेद्ध इवानलः ६९
अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा ।
उल्काज्वाला महाराज पपात वसुधातले ॥
संह्लादयन्तश्च तथा निर्घाताश्चापतन् क्षितौ।
यथान्तकालसमये सुघोराः स्युस्तथा नृप ७१
क्षिप्ता ह्येका यदा शक्तिः सुघोराऽनलसूनुना
ततः कोट्यो विनिष्पेतुः शक्तीनां भरतर्षभ ।
ततः प्रीतो महासेनो जघान भगवान्प्रभुः ।
दैत्येन्द्रं तारकं नाम महाबलपराक्रमम् ॥ ७३
वृतं दैत्यायुतैर्वीरैर्बलिभिर्दशभिर्नृप ।
महिषं चाष्टभिः पद्मैर्वृतं संख्ये निजघ्निवान्॥
त्रिपादं चायुतशतैर्जघान दशभिर्वृतम् ।
ह्रदोदरं निखर्वैश्च वृतं दशभिरीश्वरः ॥ ७५
जघानानुचरैः सार्धं विविधायुधपाणिभिः ।
तथाऽकुर्वन्त विपुलं नादं वध्यत्सु शत्रुषु ७६
कुमारानुचरा राजन्पूरयन्तो दिशो दश ।
ननृतुश्च ववल्गुश्च जहसुश्च मुदान्विताः ७७
शक्त्यस्त्रस्य तु राजेन्द्र
ततोऽर्चिर्भिः समन्ततः ।
त्रैलोक्यं त्रासितं सर्वं
जृंभमाणाभिरेव च ॥ ७८
दग्धाः सहस्रशो दैत्या नादैः स्कन्दस्य चापरे
पताकयाऽवधूताश्च हताः केचित् सुरद्विषः॥
केचिद्घण्टारवत्रस्ता निपेतुर्वसुधातले ।
केचित्प्रहरणैश्छिन्ना विनिष्पेतुर्गतायुषः ८०

एवं सुरद्विषोऽनेकान् बलवानाततायिनः।
जघान समरे वीरः कार्तिकेयो महाबलः ८१
बाणो नामाथ दैतेयो बलेः पुत्रो महाबलः
क्रौञ्चं पर्वतमाश्रित्य देवसंघानबाधत ॥ ८२
तमभ्ययान्महासेनः सुरशत्रुमुदारधीः।
स कार्तिकेयस्य भयात्क्रौञ्चं शरणमीयिवान्
ततः क्रौञ्चं महामन्युः
क्रौञ्चनादनिनादितम्।
शक्त्या बिभेद भगवान्
कार्तिकेयोऽग्निदत्तया ॥ ८४
स शालस्कन्धशबलं त्रस्तवानरवारणम्।
प्रोड्डीनोद्भ्रान्तविहगं विनिष्पतितपन्नगम् ८५
गोलाङ्गूलर्क्षसंघैश्च द्रवद्भिरनुनादितम्।
कुरङ्गमविनिर्घोषनिनादितवनान्तरम् ८६
विनिष्पतद्भिः शरभैः सिंहैश्च सहसा द्रुतैः।
शोच्यामपि दशां प्राप्तो रराजेव स पर्वतः
विद्याधराः समुत्पेतुस्तस्य शृङ्गनिवासिनः।
किन्नराश्च समुद्विग्नाः शक्तिपातरवोद्धताः ॥
ततो दैत्या विनिष्पेतुः शतशोऽथ सहस्रशः।
प्रदीप्तात्पर्वतश्रेष्ठाद्विचित्राभरणस्रजः ॥ ८९
तान्निजघ्नुरतिक्रम्य कुमारानुचरा मृधे।
स चैव भगवान् क्रुद्धो दैत्येन्द्रस्य सुतं तदा॥
सहानुजं जघानाशु वृत्रं देवपतिर्यथा।
बिभेद क्रौञ्चं शक्त्या च पावकिः परवीरहा
बहुधा चैकधा चैव कृत्वाऽऽत्मानं महाबलः
शक्तिः क्षिप्ता रणे तस्य पाणिमेति पुनः पुनः
एवंप्रभावो भगवांस्ततो भूयश्च पावकिः।
शौर्याद्द्विगुणयोगेन तेजसा यशसा श्रिया॥
क्रौञ्चस्तेन विनिर्भिन्नो दैत्याश्च शतशो हताः
ततः स भगवान्देवो निहत्य विबुधद्विषः ९४
स भज्यमानो विबुधैः परं हर्षमवाप ह।
ततो दुन्दुभयो राजन्नेदुः शङ्खाश्च भारत ९५
मुमुचुर्देवयोषाश्च पुष्पवर्षमनुत्तमम्।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः॥
दिव्यगन्धमुपादाय ववौ पुण्यश्च मारुतः।
गन्धर्वास्तुष्टुवुश्चैनं यज्वानश्च महर्षयः ॥ ९७
केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम्।
सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तमग्रजम् ९८
केचिन्महेश्वरसुतं केचित्पुत्रं विभावसोः।
उमायाः कृत्तिकानां च गङ्गायाश्च वदन्त्युत
एकधा च द्विधा चैव चतुर्धा च महाबलम्।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः॥
एतत्ते कथितं राजन् कार्तिकेयाभिषेचनम्
शृणु चैव सरस्वत्यास्तीर्थवर्यस्यपुण्यताम्॥
बभूव तीर्थप्रवरं हतेषु सुरशत्रुषु।
कुमारेण महाराज त्रिविष्टपमिवापरम् १०२
ऐश्वर्याणि च तत्रस्थो ददावीशः पृथक् पृथक्
ददौ नैर्ऋतमुख्येभ्यस्त्रैलोक्यं पावकात्मजः॥
एवं स भगवांस्तस्मिंस्तीर्थे दैत्यकुलान्तकः।
अभिषिक्तो महाराज देवसेनापतिः सुरैः
तैजसं नाम तत्तीर्थं यत्र पूर्वमपां पतिः।
अभिषिक्तः सुरगणैर्वरुणो भरतर्षभ ॥ १०५
अस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा
स्कन्दं चाभ्यर्च्य लाङ्गली।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ रुक्मं
वासांस्याभरणानि च ॥ १०६
उषित्वा रजनीं तत्र माधवः परवीरहा।
पूज्य तीर्थवरं तच्च स्पृष्ट्वा तोयं च लाङ्गली॥
हृष्टः प्रीतमनाश्चैव ह्यभवन्माधवोत्तमः।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
यथाऽभिषिक्तो भगवान्स्कन्दो देवैः समागतैः

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने तारकवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६ ॥

---

'तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तं स्कंद इत्याचक्षते' इति छांदोग्ये श्रुतं स्कंदस्य पूर्वपरिग्रहमाह–**केचिदिति** ॥९८॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

जनमेजय उवाच ।
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् श्रुतवानस्मि तत्त्वतः ।
अभिषेकं कुमारस्य विस्तरेण यथाविधि ॥ १
यच्छ्रुत्वा पूतमात्मानं
विजानामि तपोधन ।
प्रहृष्टानि च रोमाणि
प्रसन्नं च मनो मम ॥ २
अभिषेकं कुमारस्य दैत्यानां च वधं तथा ।
श्रुत्वा मे परमा प्रीतिर्भूयः कौतूहलं हि मे ॥
अपां पतिः कथं ह्यस्मिन्नभिषिक्तः पुरा सुरैः ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४
वैशम्पायन उवाच ।
शृणु राजन्निदं चित्रं पूर्वकल्पे यथातथम् ।
आदौ कृतयुगे राजन् वर्तमाने यथाविधि ५
वरुणं देवताः सर्वाः समेत्येदमथाब्रुवन् ।
यथास्मान् सुरराट् शक्रो भयेभ्यः पाति सर्वदा
तथा त्वमपि सर्वासां सरितां वै पतिर्भव ।
वासश्च ते सदा देव सागरे मकरालये ॥ ७
समुद्रोऽयं तव वशे भविष्यति नदीपतिः ।
सोमेन सार्धं च तव हानिवृद्धी भविष्यतः ॥
एवमस्त्विति तान्देवान्वरुणो वाक्यमब्रवीत्
समागम्य ततः सर्वे वरुण सागरालयम् ॥ ९
अपां पतिं प्रचक्रुर्हि विधिदृष्टेन कर्मणा ।
अभिषिच्य ततो देवा वरुणं यादसां पतिम् ॥
जग्मुः स्वान्येव स्थानानि
पूजयित्वा जलेश्वरम् ।
अभिषिक्तस्ततो देवै-
र्वरुणोऽपि महायशाः ॥ ११
सरितः सागरांश्चैव नदांश्चापि सरांसि च ।
पालयामास विधिना यथा देवाञ्शतक्रतुः ॥
ततस्तत्राप्युपस्पृश्य दत्वा च विविधं वसु ।
अग्नितीर्थं महाप्राज्ञो जगामाथ प्रलंबहा ॥१३
नष्टो न दृश्यते यत्र शमीगर्भे हुताशनः ।
लोकालोकविनाशे च प्रादुर्भूते तदाऽनघ ॥
उपतस्थुः सुरा यत्र सर्वलोकपितामहम् ।
अग्निः प्रनष्टो भगवान् कारणं च न विद्महे॥
सर्वभूतक्षयो राजन् संपादय विभोऽनलम् ।
जनमेजय उवाच
किमर्थं भगवानग्निः प्रनष्टो लोकभावनः१६
विज्ञातश्च कथं देवैस्तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ।
वैशंपायन उवाच
भृगोः शापाद्भृशं भीतो जातवेदाः प्रतापवान्
शमीगर्भमथासाद्य ननाश भगवांस्ततः ॥
प्रनष्टे तु तदा वन्हौ देवाः सर्वे सवासवाः ॥
अन्वैषन्त तदा नष्टं ज्वलनं भृशदुःखिताः ।
ततोऽग्नितीर्थमासाद्य शमीगर्भस्थमेव हि १९
ददृशुर्ज्वलनं तत्र वसमानं यथाविधि ।
देवाः सर्वे नरव्याघ्र बृहस्पतिपुरोगमाः ॥२०
ज्वलनं तं समासाद्य प्रीताऽभूवन्सवासवाः।
पुनर्यथागतं जग्मुः सर्वभक्षश्च सोऽभवत् ॥
भृगोः शापान्महाभाग यदुक्तं ब्रह्मवादिना ।
तत्राप्याप्लुत्य मतिमान् ब्रह्मयोनिं जगाम ह॥
ससर्ज भगवान् यत्र सर्वलोकपितामहः ।
तत्राप्लुत्य ततो ब्रह्मा सह देवैः प्रभुः पुरा ॥२३
ससर्ज तीर्थानि तथा देवतानां यथाविधि ।
तत्र स्नात्वा च दत्वा च वसूनि विविधानि च
कौबेरं प्रययौ तीर्थं तत्र तप्त्वा महत्तपः ।
धनाधिपत्यं संप्राप्तो राजन्नैलविलः प्रभुः ॥
तत्रस्थमेव तं राजन् धनानि निधयस्तथा ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठ तत्तीर्थं लाङ्गली बलः ॥ २६
गत्वा दत्वा च विधिवद्ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ
ददृशे तत्र तत् स्थानं कौबेरं काननोत्तमे ॥
पुरा यत्र तपस्तप्तं विपुलं सुमहात्मना ।
यक्षराज्ञा कुबेरेण वरा लब्धाश्च पुष्कलाः ॥
धनाधिपत्यं सख्यं च रुद्रेणामिततेजसा ।
सुरत्वं लोकपालत्वं पुत्रं च नलकूबरम् ॥२९
यत्र लेभे महाबाहो धनाधिपतिरञ्जसा ।
अभिषिक्तश्च तत्रैव समागम्य मरुद्गणैः ॥ ३०
वाहनं चास्य तद्दत्तं हंसयुक्तं मनोजवम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं नैर्ऋतैश्वर्यमेव च ॥ ३१
तत्राप्लुत्य बलो राजन्दत्वा दायांश्च पुष्कलान्
जगाम त्वरितो रामस्तीर्थं श्वेतानुलेपनः ॥

४७

अत्यद्भुतमिति ॥ १ ॥ ऐलविलः कुबेरः ॥२५॥

निषेवितं सर्वसत्त्वैर्नाम्ना बदरपाचनम् । नानर्तुकवनोपेतं सदा पुष्पफलं शुभम् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

वैशंपायन उवाच ।
ततस्तीर्थवरं रामो ययौ बदरपाचनम् ।
तपस्विसिद्धचरितं यत्र कन्या धृतव्रता ॥ १
भरद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी॥
तपश्चचार साऽत्युग्रं नियमैर्बहुभिर्वृता ।
भर्ता मे देवराजः स्यादिति निश्चित्य भामिनी
समास्तस्या व्यतिक्रान्ता
बह्व्यः कुरुकुलोद्वह ।
चरन्त्या नियमांस्तांस्तां-
स्त्रीभिस्तीव्रान् सुदुश्चरान् ॥ ४
तस्यास्तु तेन वृत्तेन तपसा च विशांपते ।
भक्त्या च भगवान्प्रीतः परया पाकशासनः
आजगामाश्रमं तस्यास्त्रिदशाधिपतिः प्रभुः।
आस्थाय रूपं विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६
सा तं दृष्ट्वोग्रतपसं वसिष्ठं तपतां वरम् ।
आचारैर्मुनिभिर्दृष्टैः पूजयामास भारत ॥ ७
उवाच नियमज्ञा च कल्याणी सा प्रियंवदा
भगवन्मुनिशार्दूल किमाज्ञापयसि प्रभो॥८
सर्वमद्य यथाशक्ति तव दास्यामि सुव्रत ।
शक्रभक्त्या च ते पाणिं न दास्यामि कथञ्चन
व्रतैश्च नियमैश्चैव तपसा च तपोधन ।
शक्रस्तोषयितव्यो वै मया त्रिभुवनेश्वरः ॥
इत्युक्तो भगवान्देवः स्मयन्निव निरीक्ष्य ताम्
उवाच नियमं ज्ञात्वा सांत्वयन्निव भारत ॥
उग्रं तपश्चरसि वै विदिता मेऽसि सुव्रते ।
यदर्थमयमारंभस्तव कल्याणि हृद्गतः ॥ १२
तच्च सर्वं यथाभूतं भविष्यति वरानने ।
तपसा लभ्यते सर्वं यथाभूतं भविष्यति ॥
यथा स्थानानि दिव्यानि विबुधानां शुभानने
तपसा तानि प्राप्याणि तपोमूलं महत्सुखम्
इति कृत्वा तपो घोरं देहं संन्यस्य मानवाः
देवत्वं यान्ति कल्याणि शृणुष्वैकं वचो मम
पच पञ्च चैतानि सुभगे बदराणि शुभव्रते ।
पचेत्युक्त्वा तु भगवाञ्जगाम बलसूदनः ॥
आमन्त्र्य तां तु कल्याणीं ततो जप्यं जजाप सः
अविदूरे ततस्तस्मादाश्रमात्तीर्थमुत्तमम् ॥१७
इन्द्रतीर्थेऽतिविख्यातं त्रिषु लोकेषु मानद ।
तस्य जिज्ञासनार्थं स भगवान्पाकशासनः ॥
बदराणामपचनं चकार विबुधाधिपः ।
ततः प्रतप्ता सा राजन् वाग्यता विगतक्लमा
तत्परा शुचिसंवीता पावके समधिश्रयत् ।
अपचद्राजशार्दूल बदराणि महाव्रता ॥ २०
तस्याः पचन्त्याः सुमहान् कालोऽगात्पुरुषर्षभ
न च स्म तान्यपच्यन्त दिनं च क्षयमभ्यगात्
हुताशनेन दग्धश्च यस्तस्याः काष्ठसञ्चयः ।
अकाष्ठमग्निं सा दृष्ट्वा स्वशरीरमथादहत् ॥ २२
पादौ प्रक्षिप्य सा पूर्वं पावके चारुदर्शना ॥
दग्धौ दग्धौ पुनः पादावुपावर्तयतानघ ॥ २३
चरणौ दह्यमानौ च नाचिन्तयदनिन्दिता ।
कुर्वाणा दुष्करं कर्म महर्षिप्रियकाम्यया २४
न वैमनस्यं तस्यास्तु मुखभेदोऽथवाऽभवत् ।
शरीरमग्निना दीप्य जलमध्येऽवहर्षिता ॥२५
तच्चास्या वचनं नित्यमवर्तद्धृदि भारत ।
सर्वथा बदराण्येव पक्तव्यानीति कन्यका २६
सा तन्मनसि कृत्वैव महर्षेर्वचनं शुभा ।
अपचद्बदराण्येव न चापच्यन्त भारत ॥ २७
तस्यास्तु चरणौ वह्निर्ददाह भगवान्स्वयम् ।
न च तस्या मनो दुःखं स्वल्पमप्यभवत्तदा ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

**तत इति** ॥ १ ॥ **दग्धाविति** । उपावर्तयताग्रेऽग्रे प्रसारितवती ॥ २३ ॥ यतोऽनिन्दिता योगधर्मेण निर्दोषा अतो नाचिन्तयादिति स्वपादसंवर्धनक्षमापि दाहपीडां सेहे इति धैर्योक्तिः ॥ २४ ॥

अथ तत कर्म दृष्ट्वाऽस्याः प्रीतस्त्रिभुवनेश्वरः
ततः संदर्शयामास कन्यायै रूपमात्मनः २९
उवाच च सुरश्रेष्ठस्तां कन्यां सुदृढव्रताम् ।
प्रीतोऽस्मि ते शुभे भक्त्या तपसा नियमेन च

तस्माद्योऽभिमतः कामः
स ते सम्पत्स्यते शुभे ।
देहं त्यक्त्वा महाभागे
त्रिदिवे मयि वत्स्यसि ॥ ३१

इदं च ते तीर्थवरं स्थिरं लोके भविष्यति ।
सर्वपापापहं सुभ्रु नाम्ना बदरपाचनम् ॥ ३२
विख्यातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्मर्षिभिरभिप्लुतम्
अस्मिन् खलु महाभागे शुभे तीर्थवरेऽनघे ॥
त्यक्त्वा सप्तर्षयो जग्मुर्हिमवन्तमरुन्धतीम् ।
ततस्ते वै महाभागा गत्वा तत्र सुसंशिताः
वृत्त्यर्थं फलमूलानि समाहर्तुं ययुः किल ।
तेषां वृत्त्यर्थिनां तत्र वसतां हिमवद्वने ॥ ३५
अनावृष्टिरनुप्राप्ता तदा द्वादशवार्षिकी ।
ते कृत्वा चाश्रमं तत्र न्यवसन्त तपस्विनः ॥
अरुन्धत्यपि कल्याणी तपोनित्याऽभवत्तदा
अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा तीव्रं नियममास्थिताम् ॥
अथागमत्त्रिनयनः सुप्रीतो वरदस्तदा ।
ब्राह्मं रूपं ततः कृत्वा महादेवो महायशाः ३८
तामभ्येत्याब्रवीद्देवो भिक्षामिच्छाम्यहं शुभे
प्रत्युवाच ततः सा तं ब्राह्मणं चारुदर्शना ३९
क्षीणोऽन्नसञ्चयो विप्र बदराणीह भक्षय ।
ततोऽब्रवीन्महादेवः पचस्वैतानि सुव्रते ४०
इत्युक्ता साऽपचत्तानि ब्राह्मणप्रियकाम्यया ।
अधिश्रित्य समिद्धेऽग्नौ बदराणि यशस्विनी

दिव्या मनोरमाः पुण्याः
कथाः शुश्राव सा तदा ।
अतीता सा त्वनावृष्टि-
र्घोरा द्वादशवार्षिकी ॥ ४२
अनश्नन्त्याः पचन्त्याश्च
शृण्वन्त्याश्च कथाः शुभाः ।
दिनोपमः स तस्याथ
कालोऽतीतः सुदारुणः ॥ ४३

ततस्तु मुनयः प्राप्ताः फलान्यादाय पर्वतात्
ततः स भगवान्प्रीतः प्रोवाचारुन्धतीं ततः
उपसर्पस्व धर्मज्ञे यथापूर्वमिमानृषीन् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञे तपसा नियमेन च ४५

ततः संदर्शयामास
स्वरूपं भगवान् हरः ।
ततोऽब्रवीत्तदा तेभ्य-
स्तस्याश्च चरितं महत् ॥ ४६

भवद्भिर्हिमवत्पृष्ठे यत्तपः समुपार्जितम् ।
अस्याश्च यत्तपो विप्रा न समं तन्मतं मम ४७
अनया हि तपस्विन्या तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ।
अनश्नन्त्या पचन्त्या च समा द्वादश पारिताः
ततः प्रोवाच भगवांस्तामेवारुन्धतीं पुनः ।
वरं वृणीष्व कल्याणि यत्तेऽभिलषितं हृदि
साऽब्रवीत्पृथुताम्राक्षी देवं सप्तर्षिसंसदि ।
भगवान्यदि मे प्रीतस्तीर्थं स्यादिदमद्भुतम् ॥
सिद्धदेवर्षिदयितं नाम्ना बदरपाचनम् ।
तथाऽस्मिन्देवदेवेश त्रिरात्रमुषितः शुचिः ५१
प्राप्नुयादुपवासेन फलं द्वादशवार्षिकम् ।
एवमस्त्विति तां देवः प्रत्युवाच तपस्विनीम्
सप्तर्षिभिः स्तुतो देवस्ततो लोकं ययौ तदा
ऋषयो विस्मयं जग्मुस्तां दृष्ट्वा चाप्यरुन्धतीम्

अश्रान्तां चाविवर्णां च
क्षुत्पिपासासमायुताम् ।
एवं सिद्धिः परा प्राप्ता
अरुन्धत्या विशुद्धया ॥ ५४

यथा त्वया महाभागे मदर्थं संशितव्रते ।
विशेषो हि त्वया भद्रे व्रते ह्यस्मिन्समर्पितः
तथा चेदं ददाम्यद्य नियमेन सुतोषितः ।
विशेषं तव कल्याणि प्रयच्छामि वरं वरे ॥
अरुन्धत्या वरस्तस्या यो दत्तो वै महात्मना
तस्य चाहं प्रभावेन तव कल्याणि तेजसा ॥
प्रवक्ष्यामि परं भूयो वरमत्र यथाविधि ।
यस्त्वेकां रजनीं तीर्थे वत्स्यते सुसमाहितः

स स्नात्वा प्राप्स्यते लोकान्
देहन्यासात्सुदुर्लभान् ।
इत्युक्त्वा भगवान् देवः
सहस्राक्षः प्रतापवान् ॥ ५९

श्रुतावतीं ततः पुण्यां जगाम त्रिदिवं पुनः ।
गते वज्रधरे राजंस्तत्र वर्षं पपात ह ॥ ६०
पुष्पाणां भरतश्रेष्ठ दिव्यानां पुण्यगन्धिनाम्
देवदुन्दुभयश्चापि नेदुस्तत्र महास्वनाः ६१

विशेषः समर्पितः वन्हौ देहोऽपि न्यस्तः पादयोः समर्पणादिति भावः ॥ ५५ ॥

मारुतश्च ववौ पुण्यः पुण्यगन्धो विशांपते ।
उत्सृज्य तु शुभा देहं जगामास्य च भार्यताम्
तपसोग्रेण तं लब्ध्वा तेन रेमे सहाच्युत ।
जनमेजय उवाच ।
का तस्या भगवन्माता क्व संवृद्धा च शोभना
श्रोतुमिच्छाम्यहं विप्र परं कौतूहलं हि मे ।
वैशम्पायन उवाच ।
भरद्वाजस्य विप्रर्षेः स्कन्नं रेतो महात्मनः
दृष्ट्वाऽप्सरसमायान्तीं घृताचीं पृथलोचनाम्
स तु जग्राह तद्रेतः करेण जपतां वरः ॥ ६५
तदाऽपतत्पर्णपुटे तत्र सा संभवत्सुता ।
तस्यास्तु जातकर्मादि कृत्वा सर्वं तपोधनः
नाम चास्याः स कृतवान्
भरद्वाजो महामुनिः ।
श्रुतावतीति धर्मात्मा
देवर्षिगणसंसदि ॥
स्वे च तामाश्रमे न्यस्य जगाम हिमवद्वनम् ॥
तत्राप्युपस्पृश्य महानुभावो
वसूनि दत्वा च महाद्विजेभ्यः ।
जगाम तीर्थं सुसमाहितात्मा
शक्रस्य वृष्णिप्रवरस्तदानीम् ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने बदरपाचनतीर्थकथने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

वैशम्पायन उवाच ।
इन्द्रतीर्थं ततो गत्वा यदूनां प्रवरो बलः ।
विप्रेभ्यो धनरत्नानि ददौ स्नात्वा यथाविधि
तत्र ह्यमरराजोऽसावीजे क्रतुशतेन च ।
बृहस्पतेश्च देवेशः प्रददौ विपुलं धनम् ॥ २
निरर्गलान्सजारूथ्या-
न्सर्वान्विविधदक्षिणान् ।
आजहार क्रतूंस्तत्र
यथोक्तान्वेदपारगैः ॥ ३
तान् क्रतून् भरतश्रेष्ठ शतकृत्वो महाद्युतिः ।
पूरयामास विधिवत्ततः ख्यातः शतक्रतुः ४
तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं शिवं पुण्यं सनातनम्
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ५
उपस्पृश्य च तत्रापि विधिवन्मुसलायुधः ॥
ब्राह्मणान् पूजयित्वा च सदाच्छादनभोजनैः
शुभं तीर्थवरं तस्माद्रामतीर्थं जगाम ह ।
यत्र रामो महाभागो भार्गवः सुमहातपाः ७
असकृत्पृथिवीं जित्वा हतक्षत्रियपुङ्गवाम् ।
उपाध्यायं पुरस्कृत्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ॥
अयजद्वाजपेयेन सोऽश्वमेधशतेन च ।
प्रददौ दक्षिणां चैव पृथिवीं वै ससागराम् ॥
दत्वा च दानं विविधं नानारत्नसमन्वितम्
सगोहस्तिकदासीकं साजावि गतवान्वनम्
पुण्ये तीर्थवरे तत्र देवब्रह्मर्षिसेविते ।
मुनींश्चैवाभिवाद्याथ यमुनातीर्थमागमत् ११
यत्रानयामास तदा राजसूयं महीपते ।
पुत्रोऽदितेर्महाभागो वरुणो वै सितप्रभः ॥
तत्र निर्जित्य संग्रामे मानुषान् दैवतास्तथा।
वरं क्रतुं समाजह्रे वरुणः परवीरहा ॥ १३
तस्मिन् क्रतुवरे वृत्ते संग्रामः समजायत ।
देवानां दानवानां च त्रैलोक्यस्य भयावहः ॥
राजसूये क्रतुश्रेष्ठे निवृत्ते जनमेजय ।
जायते सुमहाघोरः संग्रामः क्षत्रियान्प्रति ॥
तत्रापि लाङ्गली देव ऋषीनभ्यर्च्य पूजया ।
इतरेभ्योऽप्यदाद्दानमर्थिभ्यः कामदो विभुः
वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः ॥

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

४९

इन्द्रतीर्थमिति ॥ १ ॥ जारूथ्यान् पुष्टान् ॥ ३ ॥ साजावि अजाभिरविभिश्च सहितं दानम् ॥१०॥ आनयामास मुनीनित्यनुषज्यते, राजसूयं कर्तुमिति शेषः ॥ १२॥

यत्रेष्ट्वा भगवाञ्ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम।
ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावं चाभ्यपद्यत
तस्या नद्यास्तु तीरे वै सर्वे देवाः सवासवाः
विश्वेदेवाः समरुतो गन्धर्वाप्सरसश्च ह॥
द्वैपायनः शुकश्चैव कृष्णश्च मधुसूदनः।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशांपते॥
एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः।
तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये परंतप॥
तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ।
आप्लुत्य भरतश्रेष्ठ तीर्थप्रवर उत्तमे॥ २२
द्वैपायनश्च धर्मात्मा तत्रैवाप्लुत्य भारत।
संप्राप्य परमं योगं सिद्धिं च परमां गतः २३
असितो देवलश्चैव तस्मिन्नेव महातपाः॥
परमं योगमास्थाय ऋषिर्योगमवाप्तवान् २४

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

## ५०

वैशम्पायन उवाच।

तस्मिन्नेव तु धर्मात्मा वसति स्म तपोधनः
गार्हस्थ्यं धर्ममास्थाय ह्यसितो देवलः पुरा १
धर्मनित्यः शुचिर्दान्तो न्यस्तदण्डो महातपाः
कर्मणा मनसा वाचा समः सर्वेषु जन्तुषु २
अक्रोधनो महाराज तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः
प्रियाप्रिये तुल्यवृत्तिर्यमवत्समदर्शनः॥ ३
काञ्चने लोष्ठभावे च समदर्शी महातपाः।
देवानपूजयन्नित्यमतिथींश्च द्विजैः सह॥ ४
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं सदा धर्मपरायणः।
ततोऽभ्येत्य महाभाग योगमास्थाय भिक्षुकः
जैगीषव्यो मुनिर्धीमांस्तस्मिंस्तीर्थे समाहितः
देवलस्याश्रमे राजन्न्यवसत्स महाद्युतिः ६
योगनित्यो महाराज सिद्धिं प्राप्तो महातपाः
तं तत्र वसमानं तु जैगीषव्यं महामुनिम् ७
देवलो दर्शयन्नेव नैवायुञ्जत धर्मतः।
एवं तयोर्महाराज दीर्घकालो व्यतिक्रमत्॥
जैगीषव्यं मुनिवरं न ददर्शाथ देवलः।
आहारकाले मतिमान्परिव्राड्जनमेजय॥ ९
उपातिष्ठत धर्मज्ञो भैक्षकाले स देवलम्।
स दृष्ट्वा भिक्षुरूपेण प्राप्तं तत्र महामुनिम् १०
गौरवं परमं चक्रे प्रीतिं च विपुलां तथा।
देवलस्तु यथाशक्ति पूजयामास भारत॥ ११
ऋषिदृष्टेन विधिना समा बह्वीः समाहितः।
कदाचित्तस्य नृपते देवलस्य महात्मनः १२
चिन्ता सुमहती जाता मुनिं दृष्ट्वा महाद्युतिम्
समास्तु समतिक्रान्ता बह्व्यः पूजयतो मम॥
न चायमलसो भिक्षुरभ्यभाषत किञ्चन।
एवं विगणयन्नेव स जगाम महोदधिम्॥ १४
अन्तरिक्षचरः श्रीमान् कलशं गृह्य देवलः।
गच्छन्नेव स धर्मात्मा समुद्रं सरितां पतिम्
जैगीषव्यं ततोऽपश्यद्गतं प्रागेव भारत।
ततः सविस्मयश्चिन्तां जगामाथामितप्रभः॥
कथं भिक्षुरयं प्राप्तः समुद्रे स्नात एव च।
इत्येवं चिन्तयामास महर्षिरसितस्तदा॥ १७
स्नात्वा समुद्रे विधिवच्छुचिर्जप्यं जजाप सः
कृतजप्याह्निकः श्रीमानाश्रमं च जगाम ह।
कलशं जलपूर्णं वै गृहीत्वा जनमेजय।
ततः स प्रविशन्नेव स्वमाश्रमपदं मुनिः १९
आसीनमाश्रमे तत्र जैगीषव्यमपश्यत।
न व्याहरति चैवैनं जैगीषव्यः कथञ्चन॥ २०
काष्ठभूतोऽऽश्रमपदे वसति स्म महातपाः।
तं दृष्ट्वा चाप्लुतं तोये सागरे सागरोपमम् २१
प्रविष्टमाश्रमं चापि पूर्वमेव ददर्श सः।
असितो देवलो राजंश्चिन्तयामास बुद्धिमान्
दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम्।
चिन्तयामास राजेन्द्र तदा स मुनिसत्तमः॥
मया दृष्टः समुद्रे च आश्रमे च कथं त्वयम्।
एवं विगणयन्नेव स मुनिर्मन्त्रपारगः॥ २४

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

५०

तस्मिन्निति॥ १॥ व्यतिक्रमत् व्यत्यक्रामत्॥८॥

उत्पपाताश्रमात्तस्मादन्तरिक्षं विशांपते ।
जिज्ञासार्थं तदा भिक्षोर्जैगीषव्यस्य देवलः ॥

सोऽन्तरिक्षचरान् सिद्धान्
समपश्यत्समाहितान् ।
जैगीषव्यं च तैः सिद्धैः
पूज्यमानमपश्यत ॥ २६

ततोऽसितः सुसंरब्धो व्यवसायी दृढव्रतः ।
अपश्यद्वै दिवं यान्तं जैगीषव्यं स देवलः २७
तस्मात्तु पितृलोकं तं व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत
पितृलोकाच्च तं यातं याम्यं लोकमपश्यत॥
तस्मादपि समुत्पत्य सोमलोकमभिप्लुतम् ।
व्रजन्तमन्वपश्यत्स जैगीषव्यं महामुनिम् ॥
लोकान्समुत्पतन्तं तु शुभानेकान्तयाजिनां
ततोऽग्निहोत्रिणां लोकांस्ततश्चाप्युत्पपात ह
दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्ति तपोधनाः ।
तेभ्यः स ददृशे धीमाँल्लोकेभ्यः पशुयाजिनां
व्रजन्तं लोकममलमपश्यद्देवपूजितम् ।
चातुर्मास्यैर्बहुविधैर्यजन्ते ये तपोधनाः ॥३२
तेषां स्थानं ततो यातं तथाऽग्निष्टोमयाजिनां
अग्निष्टुतेन च तथा ये यजन्ति तपोधनाः ॥
तत्स्थानमनुसंप्राप्तमन्वपश्यत देवलः ।
वाजपेयं क्रतुवरं तथा बहुसुवर्णकम् ॥ ३४
आहरन्ति महाप्राज्ञास्तेषां लोकेष्वपश्यत ।
यजन्ते राजसूयेन पुण्डरीकेण चैव ये ॥ ३५
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।
अश्वमेधं क्रतुवरं नरमेधं तथैव च ॥ ३६
आहरन्ति नरश्रेष्ठास्तेषां लोकेष्वपश्यत ।
सर्वमेधं च दुष्प्रापं तथा सौत्रामणिं च ये ॥
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।
द्वादशाहैश्च सत्रैश्च यजन्ते विविधैर्नृप ॥ ३८
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।
मैत्रावरुणयोर्लोकानादित्यानां तथैव च ॥
सलोकतामनुप्राप्तमपश्यत ततोऽसितः ।
रुद्राणां च वसूनां च स्थानं यच्च बृहस्पतेः
तानि सर्वाण्यतीतानि समपश्यत्ततोऽसितः
आरुह्य च गवां लोकं प्रयातो ब्रह्मसत्रिणाम्
लोकानपश्यद्गच्छन्तं जैगीषव्यं ततोऽसितः ।
त्रीँल्लोकानपरान् विप्रमुत्पतन्तं स्वतेजसा ॥
पतिव्रतानां लोकांश्च व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत ।
ततो मुनिवरं भूयो जैगीषव्यमथासितः॥ ४३
नान्वपश्यत लोकस्थमन्तर्हितमरिंदम ।
सोऽचिन्तयन्महाभागो जैगीषव्यस्य देवलः
प्रभावं सुव्रतत्वं च सिद्धिं योगस्य चातुलाम्
असितोऽपृच्छत तदा सिद्धाँल्लोकेषु सत्तमान्
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा धीरस्तान्ब्रह्मसत्रिणः ।
जैगीषव्यं न पश्यामि तं शंसध्वं महौजसम्
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।

सिद्धा ऊचुः

शृणु देवल भूतार्थं शंसतां नो दृढव्रत ४७
जैगीषव्यः स वै लोकं शाश्वतं ब्रह्मणो गतः।

वैशम्पायन उवाच ।

स श्रुत्वा वचनं तेषां सिद्धानां ब्रह्मसत्रिणाम्
असितो देवलस्तूर्णमुत्पपात पपात च ।
ततः सिद्धास्त ऊचुर्हि देवलं पुनरेव ह ॥ ४९
न देवलगतिस्तत्र तव गन्तुं तपोधन ।
ब्रह्मणः सदने विप्र जैगीषव्यो यदाप्तवान् ५०

वैशम्पायन उवाच ।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सिद्धानां देवलः पुनः
आनुपूर्व्येण लोकांस्तान्सर्वानवततार ह ५१
स्वमाश्रमपदं पुण्यमाजगाम पतत्रिवत् ।
प्रविशन्नेव चापश्यज्जैगीषव्यं स देवलः ५२
ततो बुद्ध्या व्यगणयद्देवलो धर्मयुक्तया ।
दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम् ५३
ततोऽब्रवीन्महात्मानं जैगीषव्यं स देवलः ।
विनयावनतो राजन्नुपसर्प्य महामुनिम् ॥ ५४
मोक्षधर्मं समास्थातुमिच्छेयं भगवन्नहम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा उपदेशं चकार सः ॥ ५५
विधिं च योगस्य परं कार्याकार्यस्य शास्त्रतः
संन्यासकृतबुद्धिं तं ततो दृष्ट्वा महातपाः ५६
सर्वाश्चास्य क्रियाश्चक्रे विधिदृष्टेन कर्मणा ।
संन्यासकृतबुद्धिं तं भूतानि पितृभिः सह ५७
ततो दृष्ट्वा प्ररुरुदुः कोऽस्मान्संविभजिष्यति
देवलस्तु वचः श्रुत्वा भूतानां करुणं तथा ५८

---

भूतार्थं यथाभूतार्थम् ॥ ४७ ॥ उत्पपात ब्रह्मलोकं गन्तुमिति शेषः । पपात च गगनात् ॥ ४९ ॥ संन्यासे कृता- बुद्धिर्येन तम् ॥ ५३ ॥ सर्वाः क्रियाः उत्सर्गेष्ट्यादयः ॥ ५७ ॥

दिशो दश व्याहरतां मोक्षं त्यक्तुं मनो दधे।
ततस्तु फलमूलानि पवित्राणि च भारत ५९
पुष्पाण्योषधयश्चैव रोरूयन्ति सहस्रशः।
पुनर्नो देवलः क्षुद्रो नूनं छेत्स्यति दुर्मतिः ६०
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्वा नावबुध्यते।
ततो भूयो व्यगणयत्स्वबुद्ध्या मुनिसत्तमः ६१
मोक्षे गार्हस्थ्यधर्मे वा किं नु श्रेयस्करं भवेत्।
इति निश्चित्य मनसा देवलो राजसत्तम ६२
त्यक्त्वा गार्हस्थ्यधर्मं स मोक्षधर्ममरोचयत्।
एवमादीनि सञ्चिन्त्य देवलो निश्चयात्ततः
प्राप्तवान्परमां सिद्धिं परं योगं च भारत।
ततो देवाः समागम्य बृहस्पतिपुरोगमाः ६४
जैगीषव्ये तपश्चास्य प्रशंसन्ति तपस्विनः।
अथाब्रवीदृषिवरो देवान्वै नारदस्तथा ॥ ६५

जैगीषव्ये तपो नास्ति
विस्मापयति योऽसितम्।
तमेवंवादिनं धीरं
प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥ ६६
नैवमित्येव शंसन्तो जैगीषव्यं महामुनिम्।
नातः परतरं किञ्चित्तुल्यमस्ति प्रभावतः ६७
तेजसस्तपसश्चास्य योगस्य च महात्मनः।
एवं प्रभावो धर्मात्मा जैगीषव्यस्तथाऽसितः
तयोरिदं स्थानवरं तीर्थं चैव महात्मनोः ६८
तत्राप्युपस्पृश्य ततो महात्मा
दत्वा च वित्तं हलभृद्द्विजेभ्यः।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा
जगाम सोमस्य महत्सुतीर्थम् ॥ ६९

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

वैशम्पायन उवाच।
यत्रेजिवानुडुपती राजसूयेन भारत।
तस्मिंस्तीर्थे महानासीत्संग्रामस्तारकामयः
तत्राप्युपस्पृश्य बलो
दत्वा दानानि चात्मवान्।
सारस्वतस्य धर्मात्मा
मुनेस्तीर्थं जगाम ह ॥ २
तत्र द्वादशवार्षिक्या-
मनावृष्ट्या द्विजोत्तमान्।
वेदानध्यापयामास
पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ३
जनमेजय उवाच।
कथं द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान्
ऋषीनध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥

वैशंपायन उवाच।
आसीत्पूर्वं महाराज मुनिर्धीमान्महातपाः
दधीच इति विख्यातो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः
तस्यातितपसः शक्रो बिभेति सततं विभो।
न स लोभयितुं शक्यः फलैर्बहुविधैरपि ॥ ६
प्रलोभनार्थं तस्याथ प्राहिणोत् पाकशासनः
दिव्यामप्सरसं पुण्यां दर्शनीयामलम्बुषाम् ॥
तस्य तर्पयतो देवान् सरस्वत्यां महात्मनः।
समीपतो महाराज सोऽपातिष्ठत भाविनी
तां दिव्यवपुषं दृष्ट्वा तस्यर्षेर्भावितात्मनः।
रेतः स्कन्नं सरस्वत्यां तत्सा जग्राह निम्नगा
कुक्षौ चाप्यदधद्दृष्ट्वा तद्रेतः पुरुषर्षभ।
सा दधार च तं गर्भं पुत्रहेतोर्महानदी ॥ १०

मोक्षं संन्यासं त्यक्तुं मनो दधे उत्सृष्टानामग्नीनां पुनराधानं कर्तुमैच्छत् ॥ ५९ ॥ जैगीषव्ये तत्त्वविदि तपो नास्ति पूर्वस्य तपसो दग्धत्वात् क्रियमाणस्य चाश्लेषात्। तथा च श्रुती भवतः ' तद्यथैषीकतूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते तद्यथा पुष्करपलाशे आपो न श्लिष्यन्त एवमेवामुष्मिन् पापं कर्म नाश्लिष्यत ' इति ॥ ६६ ॥ असितः देवलः ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

५१

यत्रेति ॥ १ ॥

सुषुवे चापि समये पुत्रं सा सरितां वरा।
जगाम पुत्रमादाय तमृषिं प्रति च प्रभो ॥ ११
ऋषिसंसदि तं दृष्ट्वा सा नदी मुनिसत्तमम्।
ततः प्रोवाच राजेन्द्र ददती पुत्रमस्य तम्॥
ब्रह्मर्षे तव पुत्रोऽयं त्वद्भक्त्या धारितो मया
दृष्ट्वा तेऽप्सरसं रेतो यत्स्कन्नं प्रागलंबुषाम् ॥
तत्कुक्षिणा वै ब्रह्मर्षे त्वद्भक्त्या धृतवत्यहम्
न विनाशमिदं गच्छेत्त्वत्तेज इति निश्चयात्
प्रतिगृह्णीष्व पुत्रं स्वं मया दत्तमनिन्दितम्।
इत्युक्तः प्रतिजग्राह प्रीतिं चावाप पुष्कलाम्
स्वसुतं चाप्यजिघ्रत्तं मूर्ध्नि प्रेम्णा द्विजोत्तमः
परिष्वज्य चिरं कालं तदा भरतसत्तम ॥ १६
सरस्वत्यै वरं प्रादात्प्रीयमाणो महामुनिः।
विश्वेदेवाः सपितरो गन्धर्वाप्सरसां गणाः
तृप्तिं यास्यन्ति सुभगे तर्प्यमाणास्तवांभसा
इत्युक्त्वा स तु तुष्टाव वचोभिर्वै महानदीम्
प्रीतः परमहृष्टात्मा यथावच्छृणु पार्थिव।
प्रस्रुतासि महाभागे सरसो ब्रह्मणः पुरा ॥१९
जानन्ति त्वां सरिच्छ्रेष्ठे मुनयः संशितव्रताः
मम प्रियकरी चापि सततं प्रियदर्शने ॥ २०
तस्मात्सारस्वतः पुत्रो महांस्ते वरवर्णिनि।
तवैव नाम्ना प्रथितः पुत्रस्ते लोकभावनः॥
सारस्वत इति ख्यातो भविष्यति महातपाः
एष द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजर्षभान्॥
सारस्वतो महाभागे वेदानध्यापयिष्यति।
पुण्याभ्यश्च सरिद्भ्यस्त्वं सदा पुण्यतमा शुभे
भविष्यसि महाभागे मत्प्रसादात्सरस्वति।
एवं सा संस्तुताऽनेन वरं लब्ध्वा महानदी
पुत्रमादाय मुदिता जगाम भरतर्षभ।
एतस्मिन्नेव काले तु विरोधे देवदानवैः॥
शक्रः प्रहरणान्वेषी लोकांस्त्रीन्विचचार ह।
न चोपलेभे भगवाञ्शक्रः प्रहरणं तदा ॥२६
यद्वै तेषां भवेद्योग्यं वधाय विबुधद्विषाम्।
ततोऽब्रवीत्सुराञ्शक्रो न मे शक्या महासुराः
ऋतेऽस्थिभिर्दधीचस्य निहन्तुं त्रिदशद्विषः॥
तस्माद्गत्वा ऋषिश्रेष्ठो याच्यतां सुरसत्तमाः
दधीचास्थीनि देहीति तैर्वधिष्यामहे रिपून्।
स च तैर्याचितोऽस्थीनि यत्नादृषिवरस्तदा॥
प्राणत्यागं कुरुश्रेष्ठ चकारैवाविचारयन्।
स लोकानक्षयान्प्राप्तो देवप्रियकरस्तदा ॥ ३०
तस्यास्थिभिरथो शक्रः संप्रहृष्टमनास्तदा।
कारयामास दिव्यानि नानाप्रहरणानि च ॥
गदा वज्राणि चक्राणि गुरून्दण्डांश्च पुष्कलान्
स हि तीव्रेण तपसा संभृतः परमर्षिणा ॥३२
प्रजापतिसुतेनाथ भृगुणा लोकभावनः।
अतिकायः स तेजस्वी लोकसारो विनिर्मितः
जज्ञे शैलगुरुः प्रांशुर्महिम्ना प्रथितः प्रभुः।
नित्यमुद्विजते चास्य तेजसः पाकशासनः॥
तेन वज्रेण भगवान् मन्त्रयुक्तेन भारत।
भृशं क्रोधविसृष्टेन ब्रह्मतेजोद्भवेन च ॥ ३५
दैत्यदानववीराणां जघान नवतीर्नव।
अथ काले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयंकरे३६
अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन् द्वादशवार्षिकी।
तस्यां द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां महर्षयः॥
वृत्त्यर्थं प्राद्रवन् राजन् क्षुधार्ताः सर्वतोदिशं
दिग्भ्यस्तान् प्रद्रुतान् दृष्ट्वा मुनिः सारस्वतस्तदा
गमनाय मतिं चक्रे तं प्रोवाच सरस्वती।
न गन्तव्यमितः पुत्र तवाहारमहं सदा ॥ ३९
दास्यामि मत्स्यप्रवरानुष्यतामिह भारत।
इत्युक्तस्तर्पयामास स पितॄन् देवतास्तथा॥
आहारमकरोन्नित्यं प्राणान्वेदांश्च धारयन्।
अथ तस्यामनावृष्ट्यामतीतायां महर्षयः ॥४१
अन्योन्यं परिपप्रच्छुः पुनः स्वाध्यायकारणात्
तेषां क्षुधापरीतानां नष्टा वेदाऽभिधावताम्
सर्वेषामेव राजेन्द्र न कश्चित्प्रतिभानवान्।
अथ कश्चिदृषिस्तेषां सारस्वतमुपेयिवान्॥
कुर्वाणं संशितात्मानं स्वाध्यायमृषिसत्तमम्
स गत्वाऽऽचष्ट तेभ्यश्च सारस्वतमतिप्रभम्
स्वाध्यायममरप्रख्यं कुर्वाणं विजने वने।
ततः सर्वे समाजग्मुस्तत्र राजन्महर्षयः॥
सारस्वतं मुनिश्रेष्ठमिदमूचुः समागताः।
अस्मानध्यापयस्वेति तानुवाच ततो मुनिः॥
शिष्यत्वमुपगच्छध्वं विधिवद्धि ममेत्युत।
तत्राब्रुवन्मुनिगणा बालस्त्वमसि पुत्रक ॥४७
स तानाह न मे धर्मो नश्येदिति पुनर्मुनीन्।
यो ह्यधर्मेण वै ब्रूयाद्गृह्णीयाद्योऽप्यधर्मतः॥

---

परमर्षिणा दधीचिना स देहस्तपसा संभृतः ॥३२ अस्य मुनेः ॥ ३४ ॥ तेन तदस्थिजेन वज्रेण ॥ ३५ ॥ नवतीर्नव दशाधिकामष्टशतीम् ॥ ३६ ॥

हीयेतां तावुभौ क्षिप्रं स्यातां वा वैरिणावुभौ
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥ ४९
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनयस्ते विधानतः ५०
तस्माद्वेदाननुप्राप्य पुनर्धर्मं प्रचक्रिरे ।
षष्टिर्मुनिसहस्राणि शिष्यत्वं प्रतिपेदिरे ॥५१
सारस्वतस्य विप्रर्षेर्वेदस्वाध्यायकारणात् ।
मुष्टिं मुष्टिं ततः सर्वे दर्भाणां ते ह्युपाहरन् ।
तस्यासनार्थं विप्रर्षेर्बालस्यापि वशे स्थिताः ॥
तत्रापि दत्वा वसु रौहिणेयो
महाबलः केशवपूर्वजोऽथ ।
जगाम तीर्थं मुदितः क्रमेण
ख्यातं महद्वृद्धकन्या स्म यत्र ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

जनमेजय उवाच ।
कथं कुमारी भगवं-
स्तपोयुक्ता ह्यभूत्पुरा ।
किमर्थं च तपस्तेपे
को वाऽस्या नियमोऽभवत् ॥ १
सुदुष्करमिदं ब्रह्मं-
स्त्वत्तः श्रुतमनुत्तमम् ।
आख्याहि तत्त्वमखिलं
यथा तपसि सा स्थिता ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
ऋषिरासीन्महावीर्यः कुणिर्गर्गो महायशाः
स तप्त्वा विपुलं राजंस्तपो वै तपतां वरः ३
*मनसाऽथ सुतां सुभ्रूं समुत्पादितवान् विभुः
तां च दृष्ट्वा मुनिः प्रीतः कुणिर्गर्गो महायशाः
जगाम त्रिदिवं राजन्संत्यज्येह कलेवरम् ।
सुभ्रूः सा ह्यथ कल्याणी पुण्डरीकनिभेक्षणा५
महता तपसोग्रेण कृत्वाऽऽश्रममनिन्दिता ।
उपवासैः पूजयन्ती पितॄन्देवांश्च सा पुरा ६
तस्यास्तु तपसोग्रेण महान्कालोऽत्यगान्नृप ।
सा पित्रा दीयमानापि तत्र नैच्छदनिन्दिता
आत्मनः सदृशं सा तु भर्तारं नान्वपश्यत ।
ततः सा तपसोग्रेण पीडयित्वाऽऽत्मनस्तनुम्
पितृदेवार्चनरता बभूव विजने वने ।
सात्मानं मन्यमानापि कृतकृत्यं श्रमान्विता
वार्धकेन च राजेन्द्र तपसा चैव कर्शिता ।
सा नाशकद्यदा गन्तुं पदात्पदमपि स्वयम्१०
चकार गमने बुद्धिं परलोकाय वै तदा ।
मोक्तुकामां तु तां दृष्ट्वा शरीरं नारदोऽब्रवीत्
असंस्कृतायाः कन्यायाः
कुतो लोकास्तवानघे ।
एवं तु श्रुतमस्माभि-
र्देवलोके महाव्रते ॥ १२
तपः परमकं प्राप्तं न तु लोकास्त्वया जिताः
तन्नारदवचः श्रुत्वा साऽब्रवीदृषिसंसदि १३
तपसोऽर्धं प्रयच्छामि पाणिग्राहस्य सत्तम ।
इत्युक्ते चास्या जग्राह पाणिं गालवसंभवः ॥
ऋषिः प्राक्शृङ्गवान्नाम समयं चेममब्रवीत् ।
समयेन तवाद्याहं पाणिं स्प्रक्ष्यामि शोभने१५
यद्येकरात्रं वस्तव्यं त्वया सह मयेति ह ।
तथेति सा प्रतिश्रुत्य तस्मै पाणिं ददौ तदा
यथादृष्टेन विधिना हुत्वा चाग्निं विधानतः
चक्रे च पाणिग्रहणं तस्योद्वाहं च गालविः
सा रात्रावभवद्राजंस्तरुणी वरवर्णिनी ।
दिव्याभरणवस्त्रा च दिव्यगन्धानुलेपना १८
तां दृष्ट्वा गालविः प्रीतो दीपयन्तीमिव श्रिया
उवास च क्षपामेकां प्रभाते साऽब्रवीच्च तम्
यस्त्वया समयो विप्र
कृतो मे तपतां वर ।
तेनोषिताऽस्मि भद्रं ते
स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥ *तपसेति पाठः

५२
कथमिति ॥ १ ॥

सा निर्गताऽब्रवीद्भूयो
योऽस्मिंस्तीर्थे समाहितः।
वसते रजनीमेकां
तर्पयित्वा दिवौकसः॥ २१
चत्वारिंशतमष्टौ च द्वौ चाष्टौ सम्यगाचरेत्
यो ब्रह्मचर्यं वर्षाणि फलं तस्य लभेत सः॥२२
एवमुक्त्वा ततः साध्वी
देहं त्यक्त्वा दिवं गता।
ऋषिरप्यभवद्दीन-
स्तस्या रूपं विचिन्तयन्॥ २३
समयेन तपोऽर्धं च
कृच्छ्रात्प्रतिगृहीतवान्।
साधयित्वा तदाऽऽत्मानं
तस्याः स गतिमन्वियात्॥ २४
दुःखितो भरतश्रेष्ठ तस्या रूपबलात्कृतः।
एतत्ते वृद्धकन्याया व्याख्यातं चरितं महत्
तथैव ब्रह्मचर्यं च स्वर्गस्य च गतिः शुभा।
तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः २६
तत्रापि दत्वा दानानि द्विजातिभ्यः परंतपः
शुश्राव शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा२७
समन्तपञ्चकद्वारात्ततो निष्क्रम्य माधवः।
पप्रच्छर्षिगणान् रामः कुरुक्षेत्रस्य यत्फलम्
ते पृष्टा यदुसिंहेन कुरुक्षेत्रफलं विभो।
समाचख्युर्महात्मानस्तस्मै सर्वं यथातथम्२९

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

## ५३

ऋषय ऊचुः।
प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते
सनातनं राम समन्तपञ्चकम्।
समीजिरे यत्र पुरा दिवौकसो
वरेण सत्रेण महावरप्रदाः॥ १
पुरा च राजर्षिवरेण धीमता
बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा।
प्रकृष्टमेतत्कुरुणा महात्मना
ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे॥ २
राम उवाच।
किमर्थं कुरुणा कृष्टं क्षेत्रमेतन्महात्मना।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथ्यमानं तपोधनाः ३
ऋषय ऊचुः।
पुरा किल कुरुं राम कर्षन्तं सततोत्थितम्।
अभ्येत्य शक्रस्त्रिदिवात्पर्यपृच्छत कारणम् ४
इन्द्र उवाच।
किमिदं वर्तते राजन्प्रयत्नेन परेण च।
राजर्षे किमभिप्रेत्य येनेयं कृष्यते क्षितिः ५
कुरुरुवाच।
इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान्पापविवर्जितान्
अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं पुनः।
राजर्षिरप्यनिर्विण्णः कर्षत्येव वसुंधराम् ७
आगम्यागम्य चैवैनं भूयोभूयोऽवहस्य च।
शतक्रतुरनिर्विण्णं पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह॥ ८
यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष वसुधां नृपः।
ततः शक्रोऽब्रवीद्देवान् राजर्षेर्यच्चिकीर्षितम्
एतच्छ्रुत्वाऽब्रुवन् देवाः सहस्राक्षमिदं वचः।
वरेण च्छन्द्यतां शक्र राजर्षिर्यदि शक्यते१०
यदि ह्यत्र प्रमीता वै स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः
अस्माननिष्ट्वा क्रतुभिर्भागो नो न भविष्यति
आगम्य च ततः शक्रस्तदा राजर्षिमब्रवीत्।
अलं खेदेन भवतः क्रियतां वचनं मम॥ १२

---

चत्वारिंशतमष्टौ चेति प्रतिवेदं द्वादशवर्षाणीति वेदचतुष्टयाध्ययनायाष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि ततो द्वौ वत्सरौ स्नातकेन गुरोरानृण्यार्थं सेवा कार्या ततोऽष्टवार्षिकीं कन्यां परिणीय तस्या यौवनावध्यष्टवर्षाणीति अष्टपञ्चाशद्वर्षाणि ब्रह्मचर्यं सर्वस्येष्टम्॥ २२॥ इतिश्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

५३

प्रजापतेरिति॥ १॥

मानवा ये निराहारा देहं त्यक्ष्यन्त्यतन्द्रिताः
युधि वा निहताः सम्यगपि तिर्यग्गता नृप॥
ते स्वर्गभाजो राजेन्द्र भविष्यन्ति महामते
तथास्त्विति ततो राजा कुरुः शक्रमुवाच ह ॥
ततस्तमभ्यनुज्ञाप्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
जगाम त्रिदिवं भूयः क्षिप्रं बलनिषूदनः ॥१५
एवमेतद्यदुश्रेष्ठ कृष्टं राजर्षिणा पुरा ।
शक्रेण चाभ्यनुज्ञातं ब्रह्माद्यैश्च सुरैस्तथा ॥
नातः परतरं पुण्यं भूमेः स्थानं भविष्यति ।
इह तप्स्यन्ति ये केचित्तपः परमकं नराः ॥
देहत्यागेन ते सर्वे यास्यन्ति ब्रह्मणः क्षयम् ।
ये पुनः पुण्यभाजो वै दानं दास्यन्ति मानवाः
तेषां सहस्रगुणितं भविष्यत्यचिरेण वै ।
ये चेह नित्यं मनुजा निवत्स्यन्ति शुभैषिणः ॥
यमस्य विषयं ते तु न द्रक्ष्यन्ति कदाचन ।
यक्ष्यन्ति ये च क्रतुभिर्महद्भिर्मनुजेश्वराः ॥
तेषां त्रिविष्टपे वासो यावद्भूमिर्धरिष्यति ।
अपि चात्र स्वयं शक्रो जगौ गाथां सुराधिपः
कुरुक्षेत्रनिबद्धां वै तां शृणुष्व हलायुध ।
पांसवोऽपि कुरुक्षेत्राद्वायुना समुदीरिताः ।
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥

सुरर्षभा ब्राह्मणसत्तमाश्च
तथा नृगाद्या नरदेवमुख्याः ।
इष्ट्वा महार्हैः क्रतुभिर्नृसिंह
सन्त्यज्य देहान् सुगतिं प्रपन्नाः ॥२३
तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥ २४
शिवं महापुण्यमिदं दिवौकसां
सुसंमतं सर्वगुणैः समन्वितम् ।
अतश्च सर्वे निहता नृपा रणे
यास्यन्ति पुण्यां गतिमक्षयां सदा ॥

इत्युवाच स्वयं शक्रः सह ब्रह्मादिभिस्तदा ।
तच्चानुमोदितं सर्वं ब्रह्माविष्णुमहेश्वरैः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुरुक्षेत्रकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३ ॥

## ५४

वैशम्पायन उवाच ।
कुरुक्षेत्रं ततो दृष्ट्वा दत्वा दायांश्च सात्वतः
आश्रमं सुमहद्दिव्यमगमज्जनमेजय ॥ १
मधूकाम्रवणोपेतं प्लक्षन्यग्रोधसंकुलम् ।
चिरबिल्वयुतं पुण्यं पनसार्जुनसंकुलम् ॥ २
तं दृष्ट्वा यादवश्रेष्ठः प्रवरं पुण्यलक्षणम् ।
पप्रच्छ तानृषीन्सर्वान्कस्याश्रमवरस्त्वयम् ॥
ते तु सर्वे महात्मानमूचू राजन् हलायुधम् ।
शृणु विस्तरशो राम यस्यायं पूर्वमाश्रमः ॥
अत्र विष्णुः पुरा देवस्तप्तवांस्तप उत्तमम् ।
अत्रास्य विधिवद्यज्ञाः सर्वे वृत्ताः सनातनाः
अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी ।
योगयुक्ता दिवं याता तपःसिद्धा तपस्विनी ।
बभूव श्रीमती राजञ्शाण्डिल्यस्य महात्मनः
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी
सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह ।
गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता ॥ ८
श्रुत्वा ऋषीणां वचनमाश्रमं तं जगाम ह ।
ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः
संध्याकार्याणि सर्वाणि निर्वर्त्यारुरुहेऽचलं
नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली
पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ।
प्रभावं च सरस्वत्याः प्लक्षप्रस्रवणं बलः ॥

---

ब्रह्मणः क्षयं निवासम् ॥ १८ ॥ सारस्वतानां तीर्थानां वर्णनं कुरुक्षेत्रमाहात्म्यज्ञापनार्थम् । तदपि तत्र मृतानामन्येषामपि स्वर्गतिप्रदं किमुत क्षत्रधर्मेण मृतानामित्येतदर्थं तदेवोपसंहरन् दर्शयति-अतश्चेति ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

कुरुक्षेत्रमिति ॥ १ ॥

संप्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम् ।
हलायुधस्तत्र चापि दत्वा दानं महाबलः ॥
आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ ।
संतर्पयामास पितॄन् देवांश्च रणदुर्मदः ॥ १३
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह ।
मित्रावरुणयोः पुण्यं जगामाश्रममच्युतः ॥
इन्द्रोऽग्निरर्यमा चैव
यत्र प्राक् प्रीतिमाप्नुवन् ।
तं देशं कारपवना-
द्यमुनायां जगाम ह ॥ १५
स्नात्वा तत्र च धर्मात्मा परां प्रीतिमवाप्य च
ऋषिभिश्चैव सिद्धैश्च सहितो वै महाबलः ॥
उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुङ्गवः ।
तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः ॥
आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः ।
जटामण्डलसंवीतः स्वर्णचीरो महातपाः ॥
हेमदण्डधरो राजन् कमण्डलुधरस्तथा ।
कच्छपीं सुखशब्दां तां गृह्य वीणां मनोरमां
नृत्ये गीते च कुशलो देवब्राह्मणपूजितः ।
प्रकर्ता कलहानां च नित्यं च कलहप्रियः ॥
तं देशमगमद्यत्र श्रीमान् रामो व्यवस्थितः ।
प्रत्युत्थाय च तं सम्यक् पूजयित्वा यतव्रतम्
देवर्षिं पर्यपृच्छत्स यथा वृत्तं कुरून्प्रति ।
ततोऽस्याकथयद्राजन् नारदः सर्वधर्मवित्
सर्वमेतद्यथावृत्तमतीव कुरुसंक्षयम् ।
ततोऽब्रवीद्रौहिणेयो नारदं दीनया गिरा ॥
किमवस्थं तु तत्क्षत्रं ये तु तत्राभवन्नृपाः ।
श्रुतमेतन्मया पूर्वं सर्वमेव तपोधन ॥ २४
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे ।
नारद उवाच ।
पूर्वमेव हतो भीष्मो द्रोणः सिन्धुपतिस्तथा
हतो वैकर्तनः कर्णः पुत्राश्चास्य महारथाः ।
भूरिश्रवा रौहिणेय मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥२६
एते चान्ये च बहवस्तत्र तत्र महाबलाः ।
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य जयार्थं कौरवस्य वै
राजानो राजपुत्राश्च समरेष्वनिवर्तिनः ।
अहतास्तु महाबाहो शृणु मे तत्र माधव ॥
धार्तराष्ट्रबले शेषास्त्रयः समितिमर्दनाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ॥२९
तेऽपि वै विद्रुता राम दिशो दश भयात्तदा
दुर्योधनो हते शल्ये विद्रुतेषु कृपादिषु ॥ ३०
ह्रदं द्वैपायनं नाम विवेश भृशदुःखितः ।
शयानं धार्तराष्ट्रं तु सलिले स्तंभिते तदा३१
पाण्डवाः सह कृष्णेन वाग्भिरुग्राभिरार्दयन्
स तुद्यमानो बलवान् वाग्भी रामसमन्ततः३२
उत्थितः स ह्रदाद्वीरः प्रगृह्य महतीं गदाम्
स चाप्युपगतो योद्धुं भीमेन सह सांप्रतम् ॥
भविष्यति तयोरद्य युद्धं राम सुदारुणम् ।
यदि कौतूहलं तेऽस्ति व्रज माधव मा चिरं
पश्य युद्धं महाघोरं शिष्ययोर्यदि मन्यसे ।
वैशम्पायन उवाच ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा तानभ्यर्च्य द्विजर्षभान्
सर्वान्विसर्जयामास ये तेनाभ्यागताः सह ।
गम्यतां द्वारकां चेति सोन्वशादनुयायिनः॥
सोऽवतीर्याचलश्रेष्ठात्प्लक्षप्रस्रवणाच्छुभात् ।
ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वा तीर्थफलं महत् ।
विप्राणां सन्निधौ श्लोकमगायदिममच्युतः॥
' सरस्वती वाससमा कुतो रतिः
सरस्वतीवाससमाः कुतो गुणाः ।
सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः
सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम्॥
सरस्वती सर्वनदीषु पुण्या
सरस्वती लोकशुभावहा सदा ।
सरस्वतीं प्राप्य जनाः सुदुष्कृतं
सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ' ३९
ततो मुहुर्मुहुः प्रीत्या प्रेक्षमाणः सरस्वतीम् ।
हयैर्युक्तं रथं शुभ्रमातिष्ठत परंतपः ॥ ४०
स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुङ्गवः ।
दिदृक्षुरभिसंप्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम् ॥४१

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

# ५५

वैशम्पायन उवाच ।
एवं तदभवद्युद्धं तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदं
धृतराष्ट्र उवाच ।
रामं संनिहितं दृष्ट्वा गदायुद्ध उपस्थिते ।
मम पुत्रः कथं भीमं प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥ २
सञ्जय उवाच ।
रामसान्निध्यमासाद्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
युद्धकामो महाबाहुः समहृष्यत वीर्यवान्॥३
दृष्ट्वा लाङ्गलिनं राजा प्रत्युत्थाय च भारत ।
प्रीत्या परमया युक्तः समभ्यर्च्य यथाविधि॥
आसनं च ददौ तस्मै पर्यपृच्छदनामयम् ।
ततो युधिष्ठिरं रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥
मधुरं धर्मसंयुक्तं शूराणां हितमेव च ।
मया श्रुतं कथयतामृषीणां राजसत्तम ॥ ६
कुरुक्षेत्रं परं पुण्यं पावनं स्वर्ग्यमेव च ।
दैवतैरृषिभिर्जुष्टं ब्राह्मणैश्च महात्मभिः ॥ ७
तत्र वै योत्स्यमाना ये देहं त्यक्ष्यन्ति मानवाः
तेषां स्वर्गे ध्रुवो वासः शक्रेण सह मारिष ॥
तस्मात्समन्तपञ्चकमितो याम द्रुतं नृप ।
प्रथितोत्तरवेदी सा देवलोके प्रजापतेः ॥ ९
तस्मिन्महापुण्यतमे त्रैलोक्यस्य सनातने ।
संग्रामे निधनं प्राप्य ध्रुवं स्वर्गे भविष्यति॥
तथेत्युक्त्वा महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
समन्तपञ्चकं वीरः प्रायादभिमुखः प्रभुः ॥
ततो दुर्योधनो राजा प्रगृह्य महतीं गदाम्
पद्भ्याममर्षी द्युतिमानगच्छत्पाण्डवैः सह ॥
तथाऽऽयान्तं गदाहस्तं वर्मणा चापि दंशितं
अन्तरिक्षचरा देवाः साधु साध्वित्यपूजयन्
वातिकाश्चारणा ये तु दृष्ट्वा ते हर्षमागताः ।
स पाण्डवैः परिवृतः कुरुराजस्तवात्मजः
मत्तस्येव गजेन्द्रस्य गतिमास्थाय सोऽव्रजत्
ततः शङ्खनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ॥
सिंहनादैश्च शूराणां दिशः सर्वाः प्रपूरिताः
ततस्ते तु कुरुक्षेत्रं प्राप्ता नरवरोत्तमाः ॥ १६
प्रतीच्यभिमुखं देशं यथोद्दिष्टं सुतेन ते ।
दक्षिणेन सरस्वत्याः स्वयनं तीर्थमुत्तमम् ॥
तस्मिन्देशे त्वनिरिणे ते तु युद्धमरोचयन् ।
ततो भीमो महाकोटिं गदां गृह्याथ वर्मभृत्
बिभ्रद्रूपं महाराज सदृशं हि गरुत्मतः ।
अवबद्धशिरस्त्राणः संख्ये काञ्चनवर्मभृत् ॥
रराज राजन्पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ।
वर्मभ्यां संयतौ वीरौ भीमदुर्योधनावुभौ ॥
संयुगे च प्रकाशेते संरब्धाविव कुञ्जरौ ।
रणमण्डलमध्यस्थौ भ्रातरौ तौ नरर्षभौ ॥२१
अशोभेतां महाराज चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
तावन्योन्यं निरीक्षेतां क्रुद्धाविव महाद्विपौ॥
दहन्तौ लोचनै राजन्परस्परवधैषिणौ ।
संप्रहृष्टमना राजन् गदामादाय कौरवः ॥२३
सृक्किणी संलिहन्राजन्क्रोधरक्तेक्षणःश्वसन्
ततो दुर्योधनो राजन्गदामादाय वीर्यवान्॥
भीमसेनमभिप्रेक्ष्य गजो गजमिवाह्वयत् ।
अद्रिसारमयीं भीमस्तथैवादाय वीर्यवान् ॥
आह्वयामास नृपतिं सिंहं सिंहो यथा वने ।
तावुद्यतगदापाणी दुर्योधनवृकोदरौ ॥ २६

---

५५

**एवमिति** ॥ १ ॥ वातिकाः वातेन सह गच्छन्ति आकाशचारिणः चारणाः सिद्धविशेषाः ॥ १४ ॥ प्रतीच्याभिमुखमित्यत्र प्रतीयाति पाठे प्रतिगत्य अन्योन्याभिमुखं प्रातिभट्येन प्राप्येत्यर्थः । स्वयनं सुगतिदम् ॥१७ अनिरिणे अनूषरे अनिघृणे इति पाठे निर्हीनया घृणया कथमहं भ्रातरं वधिष्यामि इत्येवंरूपया करुणया रहिते अत एव समरे निष्ठुरत्वं प्रशस्यते स्वर्गहेतुत्वात् ॥ १८ ॥

# गदापर्व

( उपपर्व )

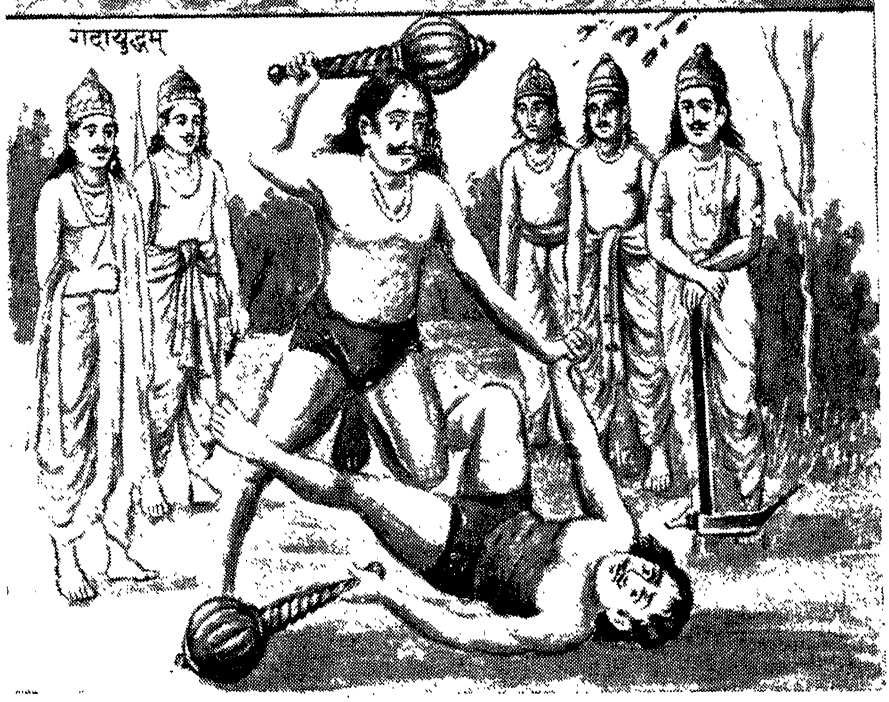

संयुगे च प्रकाशेतां गिरी सशिखराविव ।
तावुभौ समतिक्रुद्धावुभौ भीमपराक्रमौ ॥
उभौ शिष्यौ गदायुद्धे रौहिणेयस्य धीमतः।
उभौ सदृशकर्माणौ यमवासवयोरिव ॥ २८
तथा सदृशकर्माणौ वरुणस्य महाबलौ ।
वासुदेवस्य रामस्य तथा वैश्रवणस्य च ॥
सदृशौ तौ महाराज मधुकैटभयोर्युधि ।
उभौ सदृशकर्माणौ तथा सुन्दोपसुन्दयोः॥
रामरावणयोश्चैव वालिसुग्रीवयोस्तथा ।
तथैव कालस्य समौ मृत्योश्चैव परंतपौ ॥
अन्योन्यमभिधावन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ।
वासितासंगमे दृप्तौ शरदीव मदोत्कटौ ॥
उभौ क्रोधविषं दीप्तं वमन्तावुरगाविव ।
अन्योन्यमभिसंरब्धौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ॥
उभौ भरतशार्दूलौ विक्रमेण समन्वितौ ।
सिंहाविव दुराधर्षौ गदायुद्धविशारदौ ॥
नखदंष्ट्रायुधौ वीरौ व्याघ्राविव दुरुत्सहौ।
प्रजासंहरणे क्षुब्धौ समुद्राविव दुस्तरौ ॥
लोहिताङ्गाविव क्रुद्धौ प्रतपन्तौ महारथौ।
पूर्वपश्चिमजौ मेघौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ॥ ३६
गर्जमानौ सुविषमं क्षरन्तौ प्रावृषीव हि ॥
रश्मियुक्तौ महात्मानौ दीप्तिमन्तौ महाबलौ
ददृशाते कुरुश्रेष्ठौ कालसूर्याविवोदितौ ।
व्याघ्राविव सुसंरब्धौ गर्जन्ताविव तोयदौ
जहृषाते महाबाहू सिंहकेसरिणाविव ।
गजाविव सुसंरब्धौ ज्वलिताविव पावकौ
ददृशाते महात्मानौ सशृङ्गाविव पर्वतौ ।
रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठौ निरीक्षन्तौ परस्परम्
तौ समेतौ महात्मानौ गदाहस्तौ नरोत्तमौ।
उभौ परमसंहृष्टावुभौ परमसंमतौ ॥ ४१
सदश्वाविव हेषन्तौ बृंहन्ताविव कुञ्जरौ ।
वृषभाविव गर्जन्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ॥ ४२
दैत्याविव बलोन्मत्तौ रेजतुस्तौ नरोत्तमौ ।
ततो दुर्योधनो राजन्निदमाह युधिष्ठिरम्॥
भ्रातृभिः सहितं चैव कृष्णेन च महात्मना ।
रामेणामितवीर्येण वाक्यं शौटीर्यसंमतम् ॥
केकयैः सृञ्जयैर्दृप्तं पञ्चालैश्च महात्मभिः ।
इदं व्यवसितं युद्धं मम भीमस्य चोभयोः ॥
उपोपविष्टाः पश्यध्वं सहितैर्नृपपुङ्गवैः ।
श्रुत्वा दुर्योधनवचः प्रत्यपद्यन्त तत्तथा ४६
ततः समुपविष्टं तत्सुमहद्राजमण्डलम् ।
विराजमानं ददृशे दिवीवादित्यमण्डलम् ॥
तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः ।
उपविष्टो महाराज पूज्यमानः समन्ततः ४८
शुशुभे राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ।
नक्षत्रैरिव संपूर्णो वृतो निशि निशाकरः ॥
तौ तथा तु महाराज
गदाहस्तौ सुदुःसहौ ।
अन्योऽन्यं वाग्भिरुग्राभि-
स्तक्षमाणौ व्यवस्थितौ ॥ ५०
अप्रियाणि ततोऽन्योन्य-
मुक्त्वा तौ कुरुसत्तमौ ।
उदीक्षन्तौ स्थितौ तत्र
वृत्रशक्रौ यथाऽऽहवे ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि युद्धारम्भे
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

वैशम्पायन उवाच ।
ततो वाग्युद्धमभवत्तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम्
धिगस्तु खलु मानुष्यं यस्य निष्ठेयमीदृशी ।
एकादश चमूभर्ता यत्र पुत्रो ममानघ ॥ २

वासितासंगमे एककरिणीसंगमार्थे दृप्तौ मोहितौ ॥ ३२ ॥ लोहिताङ्गौ द्वौ कुजाविवेत्यभूतोपमा ॥ ३६ ॥ जहृषाते हर्षं प्रापतुः ॥ ३९ ॥ शौटीर्यसंमतं गर्वयुक्तम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

तत इति ॥ १ ॥

आज्ञाप्य सर्वान्नृपतीन्
भुक्त्वा चेमां वसुंधराम् ।
गदामादाय वेगेन
पदातिः प्रस्थितो रणे ।
भूत्वा हि जगतो नाथो ह्यनाथ इव मे सुतः ।
गदामुद्यम्य यो याति किमन्यद्भागधेयतः ४
अहो दुःखं महत्प्राप्तं पुत्रेण मम सञ्जय ।
एवमुक्त्वा स दुःखार्तो विरराम जनाधिपः
सञ्जय उवाच ।
स मेघनिनदो हर्षान्निनदन्निव गोवृषः ।
आजुहाव तदा पार्थं युद्धाय युधि वीर्यवान्
भीममाह्वयमाने तु कुरुराजे महात्मनि ।
प्रादुरासन्सुघोराणि रूपाणि विविधान्युत ॥
ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांशुवर्षं पपात च ।
बभूवुश्च दिशः सर्वास्तिमिरेण समावृताः ८
महास्वनाः सुनिर्वाता-
स्तुमुला लोमहर्षणाः ।
पेतुस्तथोल्काः शतशः
स्फोटयन्त्यो नभस्तलात् ॥ ९
राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते ।
चकम्पे च महाकम्पं पृथिवी सवनद्रुमा १०
दीप्ताश्च वाताः प्रववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।
गिरीणां शिखराण्येव न्यपतन्त महीतले ११
मृगा बहुविधाकाराः संपतन्ति दिशो दश ।
दीप्ताः शिवाश्चाप्यनदन् घोररूपाः सुदारुणाः
निर्घाताश्च महाघोरा बभूवुर्लोमहर्षणाः ।
दीप्तायां दिशि राजेन्द्र मृगाश्चाशुभवेदिनः ॥
उदपानगताश्चापो व्यवर्धन्त समन्ततः
अशरीरा महानादाः श्रूयन्ते स्म तदा नृप ॥
एवमादीनि दृष्ट्वाऽथ निमित्तानि वृकोदरः ।
उवाच भ्रातरं ज्येष्ठं धर्मराजं युधिष्ठिरम् १५
नैष शक्तो रणे जेतुं मन्दात्मा मां सुयोधनः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निगूढं हृदये चिरम्
सुयोधने कौरवेन्द्रे खाण्डवे पावको यथा ।
शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम्
निहत्य गदया पापमिमं कुरुकुलाधमम् ।
अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्याम्यहं त्वयि
हत्वेमं पापकर्माणं गदया रणमूर्धनि ।
अद्यास्य शतधा देहं भिनद्मि गदयाऽनया ॥
नायं प्रवेष्टा नगरं पुनर्वारणसाह्वयम् ।
सर्पोत्सर्गस्य शयने विषदानस्य भोजने २०
प्रमाणकोट्यां पातस्य दाहस्य जतुवेश्मनि ।
सभायामवहासस्य सर्वस्वहरणस्य च ॥ २१
वर्षमज्ञातवासस्य वनवासस्य चानघ ।
अद्यान्तमेषां दुःखानां गन्ताहं भरतर्षभ २२
एकाह्ना विनिहत्येमं भविष्याम्यात्मनोऽनृणः
अद्यायुर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेरकृतात्मनः ॥ २३
समाप्तं भरतश्रेष्ठ मातापित्रोश्च दर्शनम् ।
अद्य सौख्यं तु राजेन्द्र कुरुराजस्य दुर्मतेः ॥
समाप्तं च महाराज नारीणां दर्शनं पुनः ।
अद्यायं कुरुराजस्य शान्तनोः कुलपांसनः ॥
प्राणान् श्रियं च राज्यं च
त्यक्त्वा शेष्यति भूतले ।
राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य
श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ २६
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ।
इत्युक्त्वा राजशार्दूल गदामादाय वीर्यवान्
अभ्यतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ।
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम्॥२८
भीमसेनः पुनः क्रुद्धो दुर्योधनमुवाच ह ।
राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य तथा त्वमपि चात्मनः ॥
स्मर तद्दुष्कृतं कर्म यद्वृत्तं वारणावते ।
द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला ॥
द्यूते च वञ्चितो राजा यत्त्वया सौबलेन च
वने दुःखं च यत्प्राप्तमस्माभिस्त्वत्कृतं महत्
विराटनगरे चैव योन्यन्तरगतैरिव ।
तत्सर्वं पातयाम्यद्य दिष्ट्या दृष्टोऽसि दुर्मते
त्वत्कृतेऽसौ हतः शेते शरतल्पे प्रतापवान् ।
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठो निहतो याज्ञसेनिना ॥
हतो द्रोणश्च कर्णश्च तथा शल्यः प्रतापवान् ।
वैराग्नेरादिकर्ताऽसौ शकुनिः सौबलो हतः ॥
प्रातिकामी ततः पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः
भ्रातरस्ते हताः सर्वे शूरा विक्रान्तयोधिनः॥
एते चान्ये च बहवो निहतास्त्वत्कृते नृपाः
त्वामद्य निहनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥
इत्येवमुच्चै राजेन्द्र भाषमाणं वृकोदरम् ।
उवाच गतभी राजन् पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥
किं कत्थनेन बहुना युध्यस्व त्वं वृकोदर ।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां कुलाधम३९
न हि दुर्योधनः क्षुद्र केनचित्त्वद्विधेन वै ।
शक्यस्त्रासयितुं वाचा यथाऽन्यः प्राकृतो नरः

चिरकालेप्सितं दिष्ट्या हृदयस्थमिदं मम।
त्वया सह गदायुद्धं त्रिदशैरुपपादितम् ॥४०
किं वाचा बहुनोक्तेन कत्थितेन च दुर्मते।
वाणी संपद्यतामेषा कर्मणा मा चिरं कृथाः
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्व एवाभ्यपूजयन्।
राजानः सोमकाश्चैव ये तत्रासन् समागताः
ततः संपूजितः सर्वैः संप्रहृष्टतनूरुहः।
भूयो धीरां मतिं चक्रे युद्धाय कुरुनन्दनः ॥
उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्दैर्नराधिपाः।
भूयः संहर्षयांचक्रुर्दुर्योधनममर्षणम् ॥ ४४
तं महात्मा महात्मानं गदामुद्यम्य पाण्डवः।
अभिदुद्राव वेगेन धार्तराष्ट्रं वृकोदरः ॥ ४५
बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत्।
शस्त्राणि चाप्यदीप्यन्त पाण्डवानां जयैषिणां

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि गदायुद्धारंभे
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

सञ्जय उवाच।
ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भीमसेनं तथागतम्।
प्रत्युद्ययावदीनात्मा वेगेन महता नदन् ॥ १
समापेततुरन्योन्यं शृङ्गिणौ वृषभाविव।
महानिर्घातघोषश्च प्रहाराणामजायत ॥ २
अभवच्च तयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
जिगीषतोर्यथाऽन्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ गदाहस्तौ मनस्विनौ।
ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥
तथा तस्मिन्महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे।
खद्योतसंघैरिव खं दर्शनीयं व्यरोचत ॥ ५
तथा तस्मिन्वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम्।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥६
तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतपौ।
अभ्यहारयतान्योन्यं संप्रगृह्य गदे शुभे ॥ ७
तौ तु दृष्ट्वा महावीर्यौ समाश्वस्तौ नरर्षभौ।
बलिनौ वारणौ यद्वद्वासितार्थे मदोत्कटौ ॥
समानवीर्यौ संप्रेक्ष्य प्रगृहीतगदावुभौ।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वमानवाः ॥ ९
प्रगृहीतगदौ दृष्ट्वा दुर्योधनवृकोदरौ।
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ॥ १०
समागम्य ततो भूयो भ्रातरौ बलिनां वरौ।
अन्योन्यस्यान्तरप्रेप्सू प्रचक्रातेऽन्तरं प्रति ॥
यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिमिवोद्यताम्।
ददृशुः प्रेक्षका राजन् रौद्रीं विशसनीं गदां
आविध्यतो गदां तस्य भीमसेनस्य संयुगे।
शब्दः सुतुमुलो घोरो मुहूर्तं समपद्यत ॥ १३
आविध्यन्तमरिं प्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रोऽथ पाण्डवं
गदामतुलवेगां तां विस्मितः संबभूव ह ॥
चरंश्च विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भारत
अशोभत तदा वीरो भूय एव वृकोदरः ॥१५
तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे।
मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः ॥१६
अचरद्भीमसेनस्तु मार्गान्बहुविधांस्तथा।
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च
अस्त्रयंत्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥१८

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

**तत इति** ॥ १ ॥ अभ्यहारयतान्योन्यं परस्परमभ्यहारयतां गदे अजिग्रहीषाताम् सन्धिरार्षः ॥ ७ ॥ अन्तरं गतिविशेषम् ॥११॥ **मण्डलानि**-शत्रोः परिवेष्टनानि परितो भ्रमणानि ॥ १५ ॥ **गतं**-शत्रोः संमुखगमनं **प्रत्यागतं**-आभिमुख्यमत्यजत एवापसरणम् ॥१७॥ **अस्त्रयन्त्राणि**-कंचिन्मर्मदेशमाक्षिप्य येन शत्रोरुत्क्षेपणमपक्षेपणं च क्रियते तदस्त्रयन्त्रम्। अस्यते क्षिप्यतेऽनेनेत्यस्त्रं तच्च तद्यन्त्रं निग्रहणं चास्त्रयन्त्रमिति समासः। **स्थानानि**-तेषामेवोपयोगीनि मर्मदेशादीनि। **परिधावनं**-वेगेन सव्यापसव्यकरणम् ॥ १८ ॥

अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम् ।
परिवर्तनसंवर्तमवप्लुतमुपप्लुतम् ॥ १९
उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ ।
एवं तौ विचरन्तौ तु न्यघ्नतां वै परस्परम्
वञ्चयानौ पुनश्चैव चेरतुः कुरुसत्तमौ ।
विक्रीडन्तौ सुबलिनौ मण्डलानि विचेरतुः
तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ।
गदाभ्यां सहसाऽन्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ ॥
परस्परं समासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ।
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ॥
एवं तदभवद्युद्धं घोररूपं परंतप ।
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ॥ २४
गदाहस्तौ ततस्तौ तु मण्डलावस्थितौ बली
दक्षिणं मण्डलं राजन् धार्तराष्ट्रोऽभ्यवर्तत
सव्यं तु मण्डलं तत्र भीमसेनोऽभ्यवर्तत ।
तथा तु चरतस्तस्य भीमस्य रणमूर्धनि ॥ २६
दुर्योधनो महाराज पार्श्वदेशेऽभ्यताडयत् ।
आहतस्तु ततो भीमः पुत्रेण तव भारत ॥२७
आविद्ध्यत गदां गुर्वीं प्रहारं तमचिन्तयन् ।
इन्द्राशनिसमां घोरां यमदण्डमिवोद्यताम् ॥
ददृशुस्ते महाराज भीमसेनस्य तां गदाम् ।
आविध्यन्तं गदां दृष्ट्वा भीमसेनं तवात्मजः ॥
समुद्यम्य गदां घोरां प्रत्यविध्यत्परंतपः ।
गदामारुतवेगेन तव पुत्रस्य भारत ॥ ३०
शब्द आसीत्सुतुमुल-
स्तेजश्च समजायत ।
स चरन्विविधान्मार्गान्
मण्डलानि च भागशः ॥ ३१
समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात्सुयोधनः ।
आविद्धा सर्ववेगेन भीमेन महती गदा ॥३२
सधूमं सार्चिषं चाग्निं मुमोचोग्रमहास्वना ।
आधूतां भीमसेनेन गदां दृष्ट्वा सुयोधनः ॥३३
अद्रिसारमयीं गुर्वीमाविध्यन् बह्वशोभत ।
गदामारुतवेगं हि दृष्ट्वा तस्य महात्मनः ॥ ३४
भयं विवेश पाण्डूंस्तु सर्वानेव ससोमकान् ।
तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ॥
गदाभ्यां सहसाऽन्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ ।
तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ॥
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ।
एवं तदभवद्युद्धं घोररूपमसंवृतम् ॥ ३७
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ।
दृष्ट्वा व्यवस्थितं भीमं तव पुत्रो महाबलः ३८
चरंश्चित्रतरान्मार्गान्कौन्तेयमभिदुद्रुवे ।
तस्य भीमो महावेगां जाम्बूनदपरिष्कृताम्
अतिक्रुद्धस्य क्रुद्धस्तु ताडयामास तां गदाम्
सविस्फुलिङ्गो निर्ह्रादस्तयोस्तत्राभिघातजः
प्रादुरासीन्महाराज सृष्टयोर्वज्रयोरिव ।
वेगवत्या तया तत्र भीमसेनप्रमुक्तया ॥ ४१
निपतन्त्या महाराज पृथिवी समकम्पत ।
तां नामृष्यत कौरव्यो गदां प्रतिहतां रणे ॥
मत्तो द्विप इव क्रुद्धः प्रतिकुञ्जरदर्शनात् ।
स सव्यं मण्डलं राजा उद्भ्राम्य कृतनिश्चयः
आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया भीमवेगया ।
तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तव पाण्डवः४४
नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।
आश्चर्यं चापि तद्राजन्सर्वसैन्यान्यपूजयन् ॥
यद्गदाभिहतो भीमो नाकम्पत पदात्पदम् ।
ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृताम् ४६
दुर्योधनाय व्यसृजद्भीमो भीमपराक्रमः ।
तं प्रहारमसंभ्रान्तो लाघवेन महाबलः ॥ ४७
मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद्विस्मयो महान् ।
सा तु मोघा गदा राजन्पतन्ती भीमचोदिता
चालयामास पृथिवीं महानिर्घातनिःस्वना ।
आस्थाय कौशिकान्मार्गानुत्पतन्स पुनः पुनः
गदानिपातं प्रज्ञाय भीमसेनं च वञ्चितम् ।
वञ्चयित्वा तदा भीमं गदया कुरुसत्तमः ५०
ताडयामास संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः ।
गदया निहतो भीमो मुह्यमानो महारणे ५१
नाभ्यमन्यत कर्तव्यं पुत्रेणाभ्याहतस्तव ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने राजन्सोमकपाण्डवाः

**अभिद्रवणम्**-वेगेनाभ्यागमनम् । **आक्षेपं**-परयत्नस्य तत्पातनहेतुतासंपादनम् । **अवस्थानम्**-अचाञ्चल्यम् । **सविग्रहम्**-शत्रावुत्थिते पुनस्तेन सह युद्धकरणम् । **परिवर्तनम्**-शत्रुं प्रहर्तुं परितः प्रसरणम् । **संवर्तम्**-शत्रुप्रसरणस्यावरोधनम् । **अवप्लुतम्**-प्रहारवंचनार्थं नम्रीभूय निःसरणम् । **उपप्लुतम्**—तदेवार्वाग्गमनयुक्तम् ॥१९॥ **उपन्यस्तम्**—उपेत्यायुधप्रक्षेपः । **अपन्यस्तम्**-परावृत्य पृष्ठतः कृतेन हस्तेन शत्रोस्ताडनम् ॥२०॥ **आस्थायेति** । कौशिकान् कुश उन्मत्तस्तदाचरितान् मार्गान् आस्थाय पुनः पुनरुत्पतनेन वञ्चनेन च भीमं उन्मत्तीकृत्य गदया ताडयामासेति द्वयोः सम्बन्धः ॥४९॥

भृशोपहतसङ्कल्पा न हृष्टमनसोऽभवन् ।
स तु तेन प्रहारेण मातङ्ग इव रोहितः ॥ ५३
हस्तिवद्धस्तिसङ्काशमभिदुद्राव ते सुतम् ।
ततस्तु तरसा भीमो गदया तनयं तव ॥ ५४
अभिदुद्राव वेगेन सिंहो वनगजं यथा ।
उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः ॥ ५५
आविध्यत गदां राजन्समुद्दिश्य सुतं तव ।
अताडयद्भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा ॥ ५६
स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीम् ।
तस्मिन्कुरुकुलश्रेष्ठे जानुभ्यामवनीं गते ५७
उदतिष्ठत्ततो नादः सृञ्जयानां जगत्पते ।
तेषां तु निनदं श्रुत्वा सृञ्जयानां नरर्षभः ५८
अमर्षाद्भरतश्रेष्ठ पुत्रस्ते समकुप्यत ।
उत्थाय तु महाबाहुर्महानाग इव श्वसन् ५९
दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत ।
ततः स भरतश्रेष्ठो गदापाणिरभिद्रवन् ६०
प्रमथिष्यन्निव शिरो भीमसेनस्य संयुगे ।
स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः ॥
अताडयच्छङ्खदेशे न चचालाचलोपमः ।
स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे ।
उद्भिन्नरुधिरो राजन्प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ६२
ततो गदां वीरहणीमयोमयीं
प्रगृह्य वज्राशनितुल्यनिःस्वनाम् ।
अताडयच्छत्रुममित्रकर्षणो
बलेन विक्रम्य धनञ्जयाग्रजः ॥ ६३
स भीमसेनाभिहतस्तवात्मजः
पपात संकम्पितदेहबन्धनः ।
सुपुष्पितो मारुतवेगताडितो
वने यथा शाल इवावघूर्णितः ॥ ६४
ततः प्रणेदुर्जहृषुश्च पाण्डवाः
समीक्ष्य पुत्रं पतितं क्षितौ तव ।
ततः सुतस्ते प्रतिलभ्य चेतनां
समुत्पपात द्विरदो यथा ह्रदात् ६५
स पार्थिवो नित्यममर्षितस्तदा
महारथः शिक्षितवत्परिभ्रमन् ।
अताडयत्पाण्डवमग्रतः स्थितं
स विह्वलाङ्गो जगतीमुपास्पृशत् ६६
स सिंहनादं विननाद कौरवो
निपात्य भूमौ युधि भीममोजसा ।
बिभेद चैवाशनितुल्यमोजसा
गदानिपातेन शरीररक्षणम् ॥ ६७
ततोऽन्तरिक्षे निनदो महानभू-
द्दिवौकसामप्सरसां च नेदुषाम् ।
पपात चोच्चैरमरप्रवेरितं
विचित्रपुष्पोत्करवर्षमुत्तमम् ॥ ६८
ततः परानाविशदुत्तमं भयं
समीक्ष्य भूमौ पतितं नरोत्तमम् ।
अहीयमानं च बलेन कौरवं
निशाम्य भेदं सुदृढस्य वर्मणः ॥ ६९
ततो मुहूर्तादुपलभ्य चेतनां
प्रमृज्य वक्त्रं रुधिराक्तमात्मनः ।
धृतिं समालम्ब्य विवृत्य लोचने
बलेन संस्तभ्य वृकोदरः स्थितः॥७०

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि गदायुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७ ॥

## ५८

सञ्जय उवाच ।
समुदीर्णं ततो दृष्ट्वा संग्रामं कुरुमुख्ययोः ।
अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनम् । १
अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः
कस्य वा को गुणो भूयानेतद्वद जनार्दन ॥ २

---

नहृष्टमनसः खिन्नचेतसः ॥ ५३ ॥ शंखदेशे ललाटप्रांते ॥ ६२ ॥ नेदुषां नादं कृतवतीनाम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

५८

समुदीर्णमिति ॥ १ ॥

वासुदेव उवाच ।

उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः।
कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥३
भीमसेनस्तु धर्मेण युध्यमानो न जेष्यति ।
अन्यायेन तु युध्यन्वै हन्यादेव सुयोधनम् ॥
मायया निर्जिता देवैरसुरा इति नः श्रुतम् ।
विरोचनस्तु शक्रेण मायया निर्जितः स वै॥
मायया चाक्षिपत्तेजो वृत्रस्य बलसूदनः ।
तस्मान्मायामयं भीम आतिष्ठतु पराक्रमम् ॥
प्रतिज्ञातं च भीमेन द्यूतकाले धनञ्जय ।
ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनम्
सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु ॥
यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति ।
विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः ॥
पुनरेव तु वक्ष्यामि पाण्डवेय निबोध मे ।
धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतम् ॥ १०
कृत्वा हि सुमहत्कर्म हत्वा भीष्ममुखान्कुरून्
जयः प्राप्तो यशः प्राग्र्यं वैरं च प्रतियातितम्
तदेवं विजयः प्राप्तः पुनः संशयितः कृतः ।
अबुद्धिरेषा महती धर्मराजस्य पाण्डव १२
यदेकविजये युद्धं पाणितं घोरमीदृशम् ।
सुयोधनः कृती वीर एकायनगतस्तथा१३
अपि चोशनसा गीतः श्रूयतेऽयं पुरातनः ।
श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु १४
पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम् ।
भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हि ते ॥ १५
साहसोत्पतितानां च निराशानां च जीविते
न शक्यमग्रतः स्थातुं शक्रेणापि धनञ्जय १६
सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतम् ।
पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्यलंभने १७
को न्वेष संयुगे प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत् ।
अपि नो निर्जितं राज्यं न हरेत सुयोधनः
यस्त्रयोदशवर्षाणि गदया कृतनिश्रमः ।
चरत्यूर्ध्वं च तिर्यक् च भीमसेनजिघांसया
एनं चेन्न महाबाहुरन्यायेन हनिष्यति ।
एष वः कौरवो राजा धार्तराष्ट्रो भविष्यति
धनञ्जयस्तु श्रुत्वैतत्केशवस्य महात्मनः ।
प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत् २१
गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद्रणे ।
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च
दक्षिणं मण्डलं सव्यं गोमूत्रकमथापि च ।
व्यचरत्पाण्डवो राजन्नरिं संमोहयन्निव २३
तथैव तव पुत्रोऽपि गदामार्गविशारदः ।
व्यचरल्लघु चित्रं च भीमसेनजिघांसया २४
आधुन्वन्तौ गदे घोरे चन्दनागरुरूषिते ।
वैरस्यान्तं परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ
अन्योन्यं तौ जिघांसन्तौ प्रवीरौ पुरुषर्षभौ।
युयुधाते गरुत्मन्तौ यथा नागामिषैषिणौ ॥
मण्डलानि विचित्राणि चरतोर्नृपभीमयोः ।
गदासंपातजास्तत्र प्रजज्ञुः पावकार्चिषः २७
समं प्रहरतोस्तत्र शूरयोर्बलिनोर्मृधे ।
क्षुब्धयोर्वायुना राजन् द्वयोरिव समुद्रयोः
तयोः प्रहरतोस्तुल्यं मत्तकुञ्जरयोरिव ।
गदानिर्घातसंह्रादः प्रहाराणामजायत २९
तस्मिंस्तदा संप्रहारे दारुणे संकुले भृशम् ।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिन्दमौ ॥
तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतप ।
अभ्यहारयतां क्रुद्धौ प्रगृह्य महती गदे ॥ ३१
तयोः समभवद्युद्धं घोररूपमसंवृतम् ।
गदानिपातै राजेन्द्र तक्षतोर्वै परस्परम् ३२
समरे प्रद्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ पङ्कस्थौ माहिषाविव ३३
जर्जरीकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेणाभिसंप्लुतौ ।
ददृशाते हिमवति पुष्पिताविव किंशुकौ ३४
दुर्योधनस्तु पार्थेन विवरे संप्रदर्शिते ।
ईषदुन्मिषमाणस्तु सहसा प्रससार ह ॥ ३५
तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः ।
अवाक्षिपद्गदां तस्मिन्वेगेन महता बली ३६
आक्षिपन्तं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशांपते ।
अवासर्पत्ततः स्थानात्सा मोघा न्यपतद्भुवि॥
मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तव सुसंभ्रमात् ।
भीमसेनं च गदया प्राहरत्कुरुसत्तम ॥ ३८
तस्य विस्यन्दमानेन रुधिरेणामितौजसः ।
प्रहारगुरुपाताच्च मूर्छेव समजायत ॥ ३९
दुर्योधनो न तं वेद पीडितं पाण्डवं रणे ।
धारयामास भीमोऽपि शरीरमतिपीडितम् ॥
अमन्यत स्थितं ह्येनं प्रहरिष्यन्तमाहवे ।
अतो न प्राहरत्तस्मै पुनरेव तवात्मजः ॥ ४१
ततो मुहूर्तमाश्वस्य दुर्योधनमुपस्थितम् ।
वेगेनाभ्यपतद्राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम् ।
मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥ ४३
अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महामनाः ।
इयेषोत्पतितुं राजञ्छलयिष्यन् वृकोदरम् ॥
अबुध्यद्भीमसेनस्तु राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रुश्य च सिंहवत्
सृत्या वञ्चयतो राजन्पुनरेवोत्पतिष्यतः ।
ऊरुभ्यां प्राहिणोद्राजन् गदां वेगेन पाण्डवः
सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा ।
ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज प्रियदर्शनौ ॥ ४७
स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन् ।
भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥ ४८
ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांशुवर्षं पपात च ।
चचाल पृथिवी चापि सवृक्ष-क्षुप-पर्वता ४९
तस्मिन्निपतिते वीरे पत्यौ सर्वमहीक्षिताम् ।
महास्वना पुनर्दीप्ता सनिर्घाता भयङ्करी ॥५०
पपात चोल्का महती पतिते पृथिवीपतौ ।
तथा शोणितवर्षं च पांशुवर्षं च भारत ॥ ५१
ववर्ष मघवांस्तत्र तव पुत्रे निपातिते ।
यक्षाणां राक्षसानां च पिशाचानां तथैव च
अन्तरिक्षे महानादः श्रूयते भरतर्षभ ।
तेन शब्देन घोरेण मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥
जज्ञे घोरतरः शब्दो बहूनां सर्वतोदिशम् ।
ये तत्र वाजिनः शेषा गजाश्च मनुजैः सह ॥
मुमुचुस्ते महानादं तव पुत्रे निपातिते ।
भेरीशंखमृदङ्गानामभवच्च स्वनो महान् ॥ ५५
अन्तर्भूमिगतश्चैव तव पुत्रे निपातिते ।
बहुपादैर्बहुभुजैः कबन्धैर्घोरदर्शनैः ॥ ५६
नृत्यद्भिर्भयदैर्व्याप्ता दिशस्तत्राभवन्नृप ।
ध्वजवन्तोऽस्त्रवन्तश्च शस्त्रवन्तस्तथैव च ॥
प्राकम्पन्त ततो राजंस्तव पुत्रे निपातिते ।
ह्रदाः कूपाश्च रुधिरमुद्वेमुर्नृपसत्तम ॥ ५८
नद्यश्च सुमहावेगाः प्रतिस्रोतोवहाऽभवन् ।
पुल्लिङ्गा इव नार्यस्तु स्त्रीलिंगाः पुरुषाऽभवन्
दुर्योधने तदा राजन्पतिते तनये तव ।
दृष्ट्वा तानद्भुतोत्पातान् पञ्चालाः पांडवैः सह
आविग्नमनसः सर्वे बभूवुर्भरतर्षभ ।
ययुर्देवा यथाकामं गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥
कथयन्तोऽद्भुतं युद्धं सुतयोस्तव भारत ।
तथैव सिद्धा राजेन्द्र तथा वातिकचारणाः
नरसिंहौ प्रशंसन्तौ विप्रजग्मुर्यथागतम् ॥६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि दुर्योधनवधे
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

सञ्जय उवाच ।
तं पातितं ततो दृष्ट्वा महाशालमिवोद्गतम्
प्रहृष्टमनसः सर्वे ददृशुस्तत्र पाण्डवाः ॥ १
उन्मत्तमिव मातङ्गं सिंहेन विनिपातितम् ।
ददृशुर्हृष्टरोमाणः सर्वे ते चापि सोमकाः॥ २
ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान् ।
पातितं कौरवेन्द्रं तमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ३
गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससम् ।
यत्सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते ॥४
तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि ।
एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत्
शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत् ।
तथैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः ॥ ६
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं यत्तच्छृणु नराधिप ।
येऽस्मान्पुरोपनृत्यन्त मूढा गौरिति गौरिति
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति।
नास्माकं निकृतिर्वह्निर्नाक्षद्यूतं न वञ्चना ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं रिपून् ॥

---

क्षुपः क्षुद्रवृक्षः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

५९

तत इति ॥ १ ॥

सोऽवाप्य वैरस्य परस्य पारं
वृकोदरः प्राह शनैः प्रहस्य ।
युधिष्ठिरं केशवसृञ्जयांश्च
धनञ्जयं माद्रवतीसुतौ च ॥ ९
रजस्वलां द्रौपदीमानयन्ये
ये चाप्यकुर्वन्त सदस्यवस्त्राम् ।
तान् पश्यध्वं पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रान्
रणे हतांस्तपसा याज्ञसेन्याः ॥ १०
ये नः पुरा षण्ढतिलानवोचन्
क्रूरा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्राः ।
ते नो हताः सगणाः सानुबन्धाः
कामं स्वर्गं नरकं वा पतामः ॥ ११
पुनश्च राज्ञः पतितस्य भूमौ
स तां गदां स्कन्धगतां प्रगृह्य ।
वामेन पादेन शिरः प्रमृद्य
दुर्योधनं नैकृतिकं न्यवोचत् ॥ १२
हृष्टेन राजन्कुरुसत्तमस्य
क्षुद्रात्मना भीमसेनेन पादम् ।
दृष्ट्वा कृतं मूर्धनि नाभ्यनन्दन्
धर्मात्मानः सोमकानां प्रबर्हाः ॥१३
तव पुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरम् ।
नृत्यमानं च बहुशो धर्मराजोऽब्रवीदिदम्१४
गतोऽसि वैरस्यानृण्यं प्रतिज्ञा पूरिता त्वया
शुभेनाथाशुभेनैव कर्मणा विरमाधुना ॥ १५
मा शिरोऽस्य पदा मर्दी-
र्मा धर्मस्तेऽतिगो भवेत् ।
राजा ज्ञातिर्हतश्चायं
नैतन्न्याय्यं तवानघ ॥ १६
एकादशचमूनाथं कुरूणामधिपं तथा ।
मा स्प्राक्षीर्भीम पादेन राजानं ज्ञातिमेव च॥
हतबन्धुर्हतामात्यो भ्रष्टसैन्यो हतो मृधे ।
सर्वाकारेण शोच्योऽयं नावहास्योऽयमीश्वरः
विध्वस्तोऽयं हतामात्यो हतभ्राता हतप्रजः
उत्सन्नपिण्डो भ्राता च नैतन्न्याय्यं कृतं त्वया
धार्मिको भीमसेनोऽसा-
वित्याहुस्त्वां पुरा जनाः ।
स कस्माद्भीमसेन त्वं
राजानमधितिष्ठसि ॥ २० ॥
इत्युक्त्वा भीमसेनं तु साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः
उपसृत्याब्रवीद्दीनो दुर्योधनमरिंदमम् ॥ २१
तात मन्युर्न ते कार्यो
नात्मा शोच्यस्त्वया तथा ।
नूनं पूर्वकृतं कर्म
सुघोरमनुभूयते ॥ २२
धात्रोपदिष्टं विषमं नूनं फलमसंस्कृतम् ।
यद्वयं त्वां जिघांसामस्त्वं चास्मान्कुरुसत्तम
आत्मनो ह्यपराधेन
महद्व्यसनमीदृशम्
प्राप्तवानसि यल्लोभा-
न्मदाद्बाल्याच्च भारत ॥ २४
घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितॄंस्तथा ।
पुत्रान्पौत्रांस्तथा चान्यांस्ततोसि निधनं गतः
तवापराधादस्माभिर्भ्रातरस्ते निपातिताः
निहता ज्ञातयश्चापि दिष्टं मन्ये दुरत्ययम् ॥
आत्मा न शोचनीयस्ते श्लाघ्यो मृत्युस्तवानघ
वयमेवाधुना शोच्याः सर्वावस्थासु कौरव॥
कृपणं वर्तयिष्यामस्तैर्हीना बन्धुभिःप्रियैः ।
भ्रातॄणां चैव पुत्राणां तथा वै शोकविह्वलाः॥
कथं द्रक्ष्यामि विधवा वधूः शोकपरिप्लुताः
त्वमेकः सुस्थितो राजन्स्वर्गे ते निलयो ध्रुवः
वयं नरकसंज्ञं वै दुःखं प्राप्स्याम दारुणम्
स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य विह्वलाः ।
गर्हयिष्यन्ति नो नूनं विधवाः शोककर्शिताः

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निशश्वास स पार्थिवः
विललाप चिरं चापि धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि युधिष्ठिरविलापे
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

# ६०

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं दृष्ट्वा राजानं माधवोत्तमः।
किमब्रवीत्तदा सूत बलदेवो महाबलः॥ १
गदायुद्धविशेषज्ञो गदायुद्धविशारदः।
कृतवान् रौहिणेयो यत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय।

सञ्जय उवाच

शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम्।
रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली॥ ३
ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्वबाहुर्हलायुधः।
कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग्धिग्भीमेत्युवाच ह
अहो धिग्यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे
नैतद्दृष्टं गदायुद्धे कृतवान्यद्वृकोदरः॥ ५
अधो नाभ्या न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः
अयं त्वशास्त्रविन्मूढः स्वच्छन्दात्संप्रवर्तते॥
तस्य तत्तद्ब्रुवाणस्य रोषः समभवन्महान्।
ततो राजानमालोक्य रोषसंरक्तलोचनः॥
बलदेवो महाराज ततो वचनमब्रवीत्।
न चैष पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः
आश्रितस्य तु दौर्बल्यादाश्रयः परिभर्त्स्यते।
ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद्बली॥ ८
तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासीन्महात्मनः
बहुधा तु विचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः १०
तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद्बलवद्बली ११
सितासितौ यदुवरौ शुशुभातेऽधिकं तदा।
नभोगतौ यथा राजंश्चन्द्रसूर्यौ दिनक्षये॥ १२
उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा॥१३
विपरीतं द्विषत्स्वेतत्
षड्विधा वृद्धिरात्मनः।
आत्मन्यपि च मित्रे च
विपरीतं यदा भवेत्॥ १४
तदा विद्यान्मनोग्लानि-
माशु शान्तिकरो भवेत्
अस्माकं सहजं मित्रं
पाण्डवाः शुद्धपौरुषाः॥ १५
स्वकाः पितृष्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशम्
प्रतिज्ञापालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम्॥
सुयोधनस्य गदया भङ्क्तास्म्यूरू महाहवे।
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले॥ १७
मैत्रेयेणाभिशप्तश्च पूर्वमेव महर्षिणा।
ऊरू ते भेत्स्यते भीमो गदयेति परंतप॥ १८
अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुध्यस्व प्रलंबहन्
यौनैः स्वैः सुखहार्दैश्च संबन्धः सह पाण्डवैः
तेषां वृद्ध्या हि वृद्धिर्नो मा क्रुधः पुरुषर्षभ।
वासुदेववचः श्रुत्वा सीरभृत्प्राह धर्मवित्॥
धर्मः सुचरितः सद्भिः स च द्वाभ्यां नियच्छति
अर्थश्चात्यर्थलुब्धस्य कामश्चातिप्रसङ्गिणः॥
धर्मार्थौ धर्मकामौ च कामार्थौ चाप्यपीडयन्
धर्मार्थकामान्योऽभ्येति सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते
तदिदं व्याकुलं सर्वं कृतं धर्मस्य पीडनात्।
भीमसेनेन गोविन्द कामं त्वं तु यथाऽऽत्थ माम्

कृष्ण उवाच।

अरोषणो हि धर्मात्मा
सततं धर्मवत्सलः।
भवान्प्रख्यायते लोके
तस्मात्संशाम्य मा क्रुधः॥ २४

---

६०

**अधर्मेणेति** ॥ १ ॥ **आत्मेति** । १ आत्मवृद्धिः २ शत्रुक्षयः ३ स्वमित्रस्य वृद्धिः ४ शत्रुमित्रस्य क्षयः ५ स्वमित्रमित्रस्य वृद्धिः ६ शत्रुमित्रमित्रस्य क्षयः एवं षड्विधा आत्मनो वृद्धिः ॥ १३ ॥ विपरीतं आत्मक्षय-शत्रुवृद्ध्यादिकं इदमेव षट्कम् ॥ १४ ॥ प्रकृते मित्रवृद्धि-रेवात्मवृद्धिरित्याह–**अस्माकमिति** ॥ १५ ॥ भंक्ता भंक्ष्ये इति प्रतिज्ञापालनरूपत्वादप्यधोनाभिप्रहारो नाधर्म इत्यर्थः ॥ १७ ॥ यौनः योनिनिमित्तः संबंधः। अस्माकं पितामहः पाण्डवानां मातामहश्चैक इति यौनसंबंधः। एवमर्जुने जामातृत्वादिरपि सुखहार्दैः अन्योन्यसुखप्रदैः सौहार्दैः स्नेहेन चेत्यर्थः ॥ १९ ॥ सीरभृत् रामः ॥ २० ॥ **धर्म इति** । नियच्छति नियममेति अर्थकामाभ्यां धर्मः संकोचमेतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ धर्मार्थौ कामेनापीडयन् धर्मकामावर्थेनापीडयन् कामार्थौ धर्मेण चापीडयन्नित्यर्थः ॥ २२ ॥ कामं यथेष्टं त्वं मां प्रति उक्तवानसि न तु धर्म्यं यतोऽर्थलुब्धेन भीमेन धर्मस्य पीडनात्पूर्वोक्तो मार्गो व्याकुलीकृत इत्यर्थः ॥२३ ॥

प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः
सञ्जय उवाच ।
धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात्स विशांपते
नैव प्रीतमना रामो वचनं प्राह संसदि ॥२६
हत्वाऽधर्मेण राजानं
धर्मात्मानं सुयोधनम् ।
जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन्
ख्यातिं यास्यति पाण्डवः ॥ २७
दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा
गतिं यास्यति शाश्वतीम् ।
ऋजुयोधी हतो राजा
धार्तराष्ट्रो नराधिपः ॥ २८
युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च ।
हुत्वाऽऽत्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः
इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान्
श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥
पंचालाश्च सवार्ष्णेयाः पाण्डवाश्च विशांपते
रामे द्वारवतीं याते नातिप्रमनसोऽभवन् ॥
ततो युधिष्ठिरं दीनं चिन्तापरमधोमुखम् ।
शोकोपहतसंकल्पं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥
वासुदेव उवाच ।
धर्मराज किमर्थं त्वमधर्ममनुमन्यसे ।
हतबन्धोर्यदेतस्य पतितस्य विचेतसः ॥ ३३
दुर्योधनस्य भीमेन मृद्यमानं शिरः पदा ।
उपप्रेक्षसि कस्मात्त्वं धर्मज्ञः सन्नराधिप ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
न ममैतत्प्रियं कृष्ण यद्राजानं वृकोदरः ।
पदा मूर्ध्न्यस्पृशत्क्रोधान्न च हृष्ये कुलक्षये ॥
निकृत्या निकृता नित्यं धृतराष्ट्रसुतैर्वयम् ।
बहूनि परुषाण्युक्त्वा वनं प्रस्थापिताः स्म ह
भीमसेनस्य तद्दुःखमतीव हृदि वर्तते ।
इति सञ्चिन्त्य वार्ष्णेय मयैतत्समुपेक्षितम् ॥
तस्माद्धत्वाऽकृतप्रज्ञं लुब्धं कामवशानुगम् ।
लभतां पाण्डवः कामं धर्मेऽधर्मे च वा कृते॥
सञ्जय उवाच ।
इत्युक्ते धर्मराजेन वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ।
काममस्त्वेतदिति वै कृच्छ्राद्यदुकुलोद्वहः ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन भीमप्रियहितैषिणा ।
अन्वमोदत तत्सर्वं यद्भीमेन कृतं युधि ॥ ४०
भीमसेनोऽपि हत्वाऽऽजौ तव पुत्रममर्षणः ।
अभिवाद्याग्रतः स्थित्वा संप्रहृष्टः कृताञ्जलिः
प्रोवाच सुमहातेजा धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
हर्षादुत्फुल्लनयनो जितकाशी विशांपते ॥
तवाद्य पृथिवी सर्वा क्षेमा निहतकण्टका ।
तां प्रशाधि महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ ४३
यस्तु कर्ताऽस्य वैरस्य निकृत्या निकृतिप्रियः
सोऽयं विनिहतः शेते पृथिव्यां पृथिवीपते ॥
दुःशासनप्रभृतयः सर्वे ते चोग्रवादिनः ।
राधेयः शकुनिश्चैव हताश्च तव शत्रवः ॥ ४५
सेयं रत्नसमाकीर्णा मही सवनपर्वता ।
उपावृत्ता महाराज त्वामद्य निहतद्विषम् ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
गतो वैरस्य निधनं हतो राजा सुयोधनः ।
कृष्णस्य मतमास्थाय विजितेयं वसुंधरा ॥
दिष्ट्या गतस्त्वमानृण्यं
मातुः कोपस्य चोभयोः ।
दिष्ट्या जयसि दुर्धर्ष
दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवसान्त्वने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

धृतराष्ट्र उवाच ।
हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १
सञ्जय उवाच ।
हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
सिंहेनेव महाराज मत्तं वनगजं यथा ॥ २

---

**प्राप्तमिति** । कलियुगारंभे एतावत्पापं नातीव खेदावहमिति भावः ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

६१

**हतमिति** ॥ १ ॥

प्रहृष्टमनसस्तत्र कृष्णेन सह पाण्डवाः ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव निहते कुरुनन्दने ॥ ३
आविद्ध्युनुत्तरीयाणि सिंहनादांश्च नेदिरे ।
नैतान्हर्षसमाविष्टानियं सेहे वसुंधरा ॥ ४
धनूंष्यन्ये व्याक्षिपन्त
ज्याश्चाप्यन्ये तथाऽक्षिपन् ।
दध्मुरन्ये महाशंखा-
नन्ये जघ्नुश्च दुन्दुभीन् ॥ ५
चिक्रीडुश्च तथैवान्ये जहसुश्च तवाहिताः ।
अब्रुवंश्चासकृद्वीरा भीमसेनमिदं वचः ॥ ६
दुष्करं भवता कर्म रणेऽद्य सुमहत्कृतम् ।
कौरवेन्द्रं रणे हत्वा गदयाऽतिकृतश्रमम् ॥७
इन्द्रेणेव हि वृत्रस्य वधं परमसंयुगे ।
त्वया कृतममन्यन्त शत्रोर्वधमिमं जनाः ॥८
चरन्तं विविधान्मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः
दुर्योधनमिमं शूरं कोऽन्यो हन्याद्वृकोदरात्
वैरस्य च गतः पारं त्वमिहान्यैः सुदुर्गमम् ।
अशक्यमेतदन्येन संपादयितुमीदृशम् ॥ १०
कुञ्जरेणेव मत्तेन वीर संग्राममूर्धनि ।
दुर्योधनशिरो दिष्ट्या पादेन मृदितं त्वया ।
सिंहेन महिषस्येव कृत्वा सङ्गरमुत्तमम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं दिष्ट्या पीतं त्वयाऽनघ
ये विप्रकुर्वन् राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्
मूर्ध्नि तेषां कृतः पादो दिष्ट्या ते स्वेन कर्मणा
अमित्राणामधिष्ठानाद्वधाद्दुर्योधनस्य च ।
भीम दिष्ट्या पृथिव्यां ते प्रथितं सुमहद्यशः
एवं नूनं हते वृत्रे शक्रं नन्दन्ति बन्दिनः ।
तथा त्वां निहतामित्रं वयं नन्दाम भारत१५
दुर्योधनवधे यानि रोमाणि हृषितानि नः ।
अद्यापि न विकृष्यन्ते तानि तद्विद्धि भारत
इत्यब्रुवन् भीमसेनं
वातिकास्तत्र सङ्गताः ।
तान् हृष्टान्पुरुषव्याघ्रान्
पञ्चालान्पाण्डवैः सह ॥ १७
ब्रुवतोऽसदृशं तत्र प्रोवाच मधुसूदनः ।
न न्याय्यं निहतं शत्रुं भूयो हन्तुं नराधिपाः
असकृद्वाग्भिरुग्राभिर्निहतो ह्येष मन्दधीः ।
तदैवैष हतः पापो यदैव निरपत्रपः ॥ १९
लुब्धः पापसहायश्च सुहृदां शासनातिगः ।
बहुशो विदुर-द्रोण-कृप-गाङ्गेय-सृञ्जयैः॥२०
पाण्डुभ्यः प्रार्थ्यमानोऽपि
पित्र्यमंशं न दत्तवान् ।
नैष योग्योऽद्य मित्रं वा
शत्रुर्वा पुरुषाधमः ॥ २१
किमनेनातिभुग्नेन वाग्भिः काष्ठसधर्मणा ।
रथेष्वारोहत क्षिप्रं गच्छामो वसुधाधिपाः
दिष्ट्या हतोऽयं पापात्मा
सामात्यज्ञातिबान्धवः ।
इति श्रुत्वा त्वधिक्षेपं
कृष्णाद्दुर्योधनो नृपः ॥ २३
अमर्षवशमापन्न
उदतिष्ठद्विशांपते ।
स्फिग्देशेनोपविष्टः स
दोर्भ्यां विष्टभ्य मेदिनीम् ॥ २४
दृष्टिं भ्रूसङ्कटां कृत्वा वासुदेवे न्यपातयत् ।
अर्धोन्नतशरीरस्य रूपमासीन्नृपस्य तु ॥ २५
क्रुद्धस्याशीविषस्येव छिन्नपुच्छस्य भारत ।
प्राणान्तकरिणीं घोरां वेदनामप्यचिन्तयन्
दुर्योधनो वासुदेवं वाग्भिरुग्राभिरार्दयत् ।
कंसदासस्य दायाद न ते लज्जाऽस्त्यनेन वै
अधर्मेण गदायुद्धे
यदहं विनिपातितः ।
ऊरू भिन्धीति भीमस्य
स्मृतिं मिथ्या प्रयच्छता ॥ २८
किं न विज्ञातमेतन्मे यदर्जुनमवोचथाः ।
घातयित्वा महीपालानृजुयुद्धान्सहस्रशः २९
जिह्मैरुपायैर्बहुभिर्न ते लज्जा न ते घृणा ।
अहन्यहनि शूराणां कुर्वाणः कदनं महत् ३०
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य घातितस्ते पितामहः ।
अश्वत्थाम्नः सनामानं हत्वा नागं सुदुर्मते३१
आचार्यो न्यासितः शस्त्रं
किं तन्न विदितं मया ।
स चानेन नृशंसेन
धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ॥ ३२
पात्यमानस्त्वया दृष्टो न चैनं त्वमवारयः ।
वधार्थं पाण्डुपुत्रस्य याचितां शक्तिमेव च ३३
घटोत्कचे व्यंसयतः कस्त्वत्तः पापकृत्तमः ।
छिन्नहस्तः प्रायगतस्तथा भूरिश्रवा बली ३४

अतिभुग्नेन अत्यन्तं नामितेन ॥ २२ ॥

त्वयाऽभिसृष्टेन हतः शैनेयेन महात्मना ।
कुर्वाणश्चोत्तमं कर्म कर्णः पार्थजिगीषया ३५
व्यंसनेनाश्वसेनस्य पन्नगेन्द्रस्य वै पुनः ।
पुनश्च पतिते चक्रे व्यसनार्तः पराजितः ३६
पातितः समरे कर्ण-
श्चक्रव्यग्रोऽग्रणीर्नृणाम् ।
यदि मां चापि कर्णं च
भीष्मद्रोणौ च संयुतौ ॥ ३७
ऋजुना प्रतियुध्येथा न ते स्याद्विजयो ध्रुवम्
त्वया पुनरनार्येण जिह्ममार्गेण पार्थिवाः ३८
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो वयं चान्ये च घातिताः ।
वासुदेव उवाच ।
हतस्त्वमसि गान्धारे सभ्रातृसुतबान्धवः
सगणः ससुहृच्चैव पापं मार्गमनुष्ठितः ।
तवैव दुष्कृतैर्वीरौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥
कर्णश्च निहतः संख्ये तव शीलानुवर्तकः ।
याच्यमानं मया मूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि
पाण्डवेभ्यः स्वराज्यं च
लोभाच्छकुनिनिश्चयात् ।
विषं ते भीमसेनाय
दत्तं सर्वे च पाण्डवाः ॥ ४२
प्रदीपिता जतुगृहे मात्रा सह सुदुर्मते ।
सभायां याज्ञसेनी च कृष्टा द्यूते रजस्वला ४३
तदैव तावद्दुष्टात्मन् वध्यस्त्वं निरपत्रप ।
अनक्षज्ञं च धर्मज्ञं सौबलेनाक्षवेदिना ॥ ४४
निकृत्या यत्पराजैषीस्तस्मादसि हतो रणे ।
जयद्रथेन पापेन यत्कृष्णा क्लेशिता वने ४५
या तेषु मृगयां चैव तृणबिन्दोरथाश्रमम् ।
अभिमन्युश्च यद्बाल एको बहुभिराहवे ॥ ४६
त्वद्दोषैर्निहतः पाप तस्मादसि हतो रणे ।
यान्यकार्याणि चास्माकं कृतानीति प्रभाषसे
वैगुण्येन तवात्यर्थं सर्वं हि तदनुष्ठितम् ।
बृहस्पतेरुशनसो नोपदेशः श्रुतस्त्वया ॥ ४८
वृद्धा नोपासिताश्चैव हितं वाक्यं न ते श्रुतम्
लोभेनातिबलेन त्वं तृष्णया च वशीकृतः ४९
कृतवानस्य कार्याणि
विपाकस्तस्य भुज्यताम् ।
दुर्योधन उवाच ।
अधीतं विधिवद्दत्तं भूः प्रशास्ता ससागरा
मूर्ध्नि स्थितममित्राणां को नु स्वन्ततरो मया
यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुपश्यताम् ॥ ५१
तदिदं निधनं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।
देवार्हा मानुषा भोगाः प्राप्ता असुलभा नृपैः
ऐश्वर्यं चोत्तमं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।
ससुहृत्सानुगश्चैव स्वर्गं गन्ताहमच्युत ॥ ५३
यूयं निहतसङ्कल्पाः शोचन्तो वर्तयिष्यथ×।
सञ्जय उवाच ।
अस्य वाक्यस्य निधने कुरुराजस्य धीमतः
अपतत्सुमहद्वर्षं पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम् ।
अवादयन्त गन्धर्वा वादित्रं सुमनोहरम् ५५
जगुश्चाप्सरसो राज्ञो यशः संबद्धमेव च ।
सिद्धाश्च मुमुचुर्वाचः साधु साध्विति पार्थिव
ववौ च सुरभिर्वायुः पुण्यगन्धो मृदुः सुखः
व्यराजंश्च दिशः सर्वा नभो वैदूर्यसन्निभम्
अत्यद्भुतानि ते दृष्ट्वा वासुदेवपुरोगमाः ।
दुर्योधनस्य पूजां तु दृष्ट्वा व्रीडामुपागमन् ५८
हतांश्चाधर्मतः श्रुत्वा शोकार्ताः शुशुचुर्हि ते।
भीष्मं द्रोणं तथा कर्णं भूरिश्रवसमेव च ५९
तांस्तु चिन्तापरान् दृष्ट्वा
पाण्डवान् दीनचेतसः ।
प्रोवाचेदं वचः कृष्णो
मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ ६०
नैष शक्योऽतिशीघ्रास्त्रस्ते च सर्वे महारथाः
ऋजुयुद्धेन विक्रान्ता हन्तुं युष्माभिराहवे६१
नैष शक्यः कदाचित्तु हन्तुं धर्मेण पार्थिवः ।
ते वा भीष्ममुखाः सर्वे महेष्वासा महारथाः
मयाऽनेकैरुपायैस्तु मायायोगेन चासकृत् ।
हतास्ते सर्व एवाजौ भवतां हितमिच्छता॥
यदि नैवंविधं जातु कुर्यां जिह्ममहं रणे ।
कुतो वो विजयो भूयः कुतो राज्यं कुतो धनम्
ते हि सर्वे महात्मानश्चत्वारोऽतिरथा भुवि।
न शक्या धर्मतो हन्तुं लोकपालैरपि स्वयम्॥
तथैवायं गदापाणिर्धार्तराष्ट्रो गतक्लमः ।
न शक्यो धर्मतो हन्तुं कालेनापीह दण्डिना॥
न च वो हृदि कर्तव्यं यदयं घातितो रिपुः ।
मिथ्यावध्यास्तथोपायैर्बहवः शत्रवोऽधिकाः
पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभिः ।
सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते ॥६८
कृतकृत्याश्च सायाह्ने निवासं रोचयामहे ।
साश्वनागरथाः सर्वे विश्रमामो नराधिपाः ।

×'न मे विषादो भूमिप पादेन शिर आहतम् ॥ काका वा कङ्कगृध्रा वा निधास्यन्ति पदं क्षणात्॥' इत्यधिकःश्लोकः।

वासुदेववचः श्रुत्वा तदानीं पाण्डवैः सह ।
पञ्चाला भृशसंहृष्टा विनेदुः सिंहसङ्घवत्॥ ७०
ततः प्राध्मापयञ्शंखान्पाञ्चजन्यं च माधवः
हृष्टा दुर्योधनं दृष्ट्वा निहतं पुरुषर्षभ ॥ ७१

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि कृष्णपाण्डवदुर्योधनसंवादे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

सञ्जय उवाच

ततस्ते प्रययुः सर्वे
निवासाय महीक्षितः ।
शंखान् प्रध्मापयन्तो वै
हृष्टाः परिघबाहवः ॥ १
पाण्डवान् गच्छतश्चापि
शिबिरं नो विशांपते ।
महेष्वासोऽन्वगात्पश्चा-
द्युयुत्सुः सात्यकिस्तथा ॥ २
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
सर्वे चान्ये महेष्वासा ययुः स्वशिबिराण्युत॥
ततस्ते प्राविशन्पार्था हतत्विट्कं हतेश्वरम् ।
दुर्योधनस्य शिबिरं रङ्गवद्विसृते जने ॥ ४
गतोत्सवं पुरमिव हृतनागमिव ह्रदम् ।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठं वृद्धामात्यैरधिष्ठितम् ॥ ५
तत्रैतान्पर्युपातिष्ठन् दुर्योधनपुरःसराः ।
कृताञ्जलिपुटा राजन्काषायमलिनाम्बराः॥६
शिबिरं समनुप्राप्य कुरुराजस्य पाण्डवाः ।
अवतेरुर्महाराज रथेभ्यो रथसत्तमाः ॥ ७
ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
स्थितः प्रियहिते नित्यमतीव भरतर्षभ ॥ ८
अवरोपय गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी ।
अथाहमवरोक्ष्यामि पश्चाद्भरतसत्तम ॥ ९
स्वयं चैवावरोह त्वमेतच्छ्रेयस्तवानघ ।
तच्चाकरोत्तथा वीरः पाण्डुपुत्रो धनञ्जयः॥१०
अथ पश्चात्ततः कृष्णो
रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्
अवारोहत मेधावी
रथाद्गाण्डीवधन्वनः ॥ ११
अथावतीर्णे भूतानामीश्वरे सुमहात्मनि ।
कपिरन्तर्दधे दिव्यो ध्वजो गाण्डीवधन्वनः॥
स दग्धो द्रोणकर्णाभ्यां दिव्यैरस्त्रैर्महारथः ।
अथादीप्तोऽग्निना ह्याशु प्रजज्वाल महीपते
सोपासङ्गः सरश्मिश्च साश्वः सयुगबन्धुरः ।
भस्मीभूतोऽपतद्भूमौ रथो गाण्डीवधन्वनः ॥
तं तथा भस्मभूतं तु दृष्ट्वा पाण्डुसुताः प्रभो ।
अभवन् विस्मिता राजन्नर्जुनश्चेदमब्रवीत् १५
कृताञ्जलिः सप्रणयं प्रणिपत्याभिवाद्य ह ।
गोविन्द कस्माद्भगवन् रथो दग्धोऽयमग्निना
किमेतन्महदाश्चर्यमभवद्यदुनन्दन ।
तन्मे ब्रूहि महाबाहो श्रोतव्यं यदि मन्यसे ॥

वासुदेव उवाच

अस्त्रैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवायमर्जुन ।
मदधिष्ठितत्वात्समरे न विशीर्णः परंतप ॥
इदानीं तु विशीर्णोऽयं दग्धो ब्रह्मास्त्रतेजसा।
मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृतकर्मणि ॥
ईषदुत्स्मयमानस्तु भगवान्केशवोऽरिहा ।
परिष्वज्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत ॥२०
दिष्ट्या जयसि कौन्तेय
दिष्ट्या ते शत्रवो जिताः ।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च
भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २१
त्वं चापि कुशली राज-
न्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मुक्ता वीरक्षयादस्मा-
त्संग्रामान्निहतद्विषः ॥२२
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि भारत ।
उपायातमुपप्लव्यं सह गाण्डीवधन्वना ॥ २३
आनीय मधुपर्कं मां यत्पुरा त्वमवोचथाः ।
एष भ्राता सखा चैव तव कृष्ण धनञ्जयः ॥२४

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

तत इति ॥ १ ॥ वर्षवरः षंढः ॥ ५ ॥

रक्षितव्यो महाबाहो सर्वास्वापत्स्विवति प्रभो
तव चैव ब्रुवाणस्य तथेत्येवाहमब्रुवम् ॥ २५
स सव्यसाची गुप्तस्ते विजयी च जनेश्वर ।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र शूरः सत्यपराक्रमः ॥
मुक्तो वीरक्षयादस्मात्संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।
एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२७
हृष्टरोमा महाराज प्रत्युवाच जनार्दनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रमुक्तं द्रोणकर्णाभ्यां ब्रह्मास्त्रमरिमर्दन २८
कस्त्वदन्यः सहेत्साक्षादपि वज्री पुरंदरः ।
भवतस्तु प्रसादेन संशप्तकगणा जिताः ॥२९
महारणगतः पार्थो यच्च नासीत्पराङ्मुखः ।
तथैव च महाबाहो पर्यायैर्बहुभिर्मया ॥ ३०
कर्मणामनुसन्तानं तेजसश्च गतीः शुभाः ।
उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ३१
'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः'
इत्येवमुक्ते ते वीराः शिबिरं तव भारत ॥ ३२
प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोशरत्नर्धिसञ्चयान् ।
रजतं जातरूपं च मणीनथ च मौक्तिकान् ॥
भूषणान्यथ मुख्यानि कम्बलान्यजिनानि च।
दासीदासमसंख्येयं राज्योपकरणानि च ॥
ते प्राप्य धनमक्षय्यं त्वदीयं भरतर्षभ ।
उदक्रोशन्महाभागा नरेन्द्र विजितारयः॥३५
ते तु वीराः समाश्वस्य वाहनान्यवमुच्य च।
अतिष्ठन्त मुहुः सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा
अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः ।
अस्माभिर्मङ्गलार्थाय वस्तव्यं शिबिराद्बहिः ॥
तथेत्युक्त्वा हि ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा
वासुदेवेन सहिता मङ्गलार्थं बहिर्ययुः ॥ ३८
ते समासाद्य सरितं पुण्यामोघवतीं नृप ।
न्यवसन्नथ तां रात्रिं पाण्डवा हतशत्रवः ॥३९
युधिष्ठिरस्ततो राजा प्राप्तकालमचिन्तयत् ।
तत्र ते गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ ४०
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम ।
हेतुकारणयुक्तैश्च वाक्यैः कालसमीरितैः ॥४१
क्षिप्रमेव महाभाग गान्धारीं प्रशमिष्यसि ।
पितामहश्च भगवान् व्यासस्तत्र भविष्यति ॥
ततः संप्रेषयामासुर्यादवं नागसाह्वयम् ।
स च प्रायाज्जवेनाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥
दारुकं रथमारोप्य येन राजाऽम्बिकासुतः ।
तमूचुः संप्रयास्यन्तं शैब्यसुग्रीववाहनम् ॥
प्रत्याश्वासय गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम्
स प्रायात्पाण्डवैरुक्तस्तत्पुरं सात्वतां वरः ॥
आससाद ततः क्षिप्रं गान्धारीं निहतात्मजां

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि वासुदेवप्रेषणे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

जनमेजय उवाच ।

किमर्थं द्विजशार्दूल धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
गान्धार्याः प्रेषयामास वासुदेवं परंतपम् ॥ १
यदा पूर्वं गतः कृष्णः शमार्थं कौरवान्प्रति ।
न च तं लब्धवान्कामं ततो युद्धमभूदिदम्
निहतेषु तु योधेषु हते दुर्योधने तदा ।
पृथिव्यां पाण्डवेयस्य निःसपत्ने कृते युधि ॥
विद्रुते शिबिरे शून्ये प्राप्ते यशसि चोत्तमे ।
किं नु तत्कारणं ब्रह्मन् येन कृष्णो गतः पुनः
न चैतत्कारणं ब्रह्मन्नल्पं विप्रतिभाति मे ।
यत्रागमदमेयात्मा स्वयमेव जनार्दनः ॥ ५
तत्त्वतो वै समाचक्ष्व सर्वमध्वर्युसत्तम ।
यच्चात्र कारणं ब्रह्मन् कार्यस्यास्य विनिश्चये

वैशम्पायन उवाच ।

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो यन्मां पृच्छसि पार्थिव ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावद्भरतर्षभ ॥ ७
हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
व्युत्क्रम्य समयं राजन् धार्तराष्ट्रं महाबलम् ॥
अन्यायेन हतं दृष्ट्वा गदायुद्धेन भारत ।
युधिष्ठिरं महाराज महद्भयमथाविशत् ॥ ९
चिंतयानो महाभागां गान्धारीं तपसान्वितां
घोरेण तपसा युक्तां त्रैलोक्यमपि सा दहेत्

---

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

किमर्थमिति ॥ १ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य बुद्धिः समभवत्तदा ।
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः पूर्वं प्रशमनं भवेत्
सा हि पुत्रवधं श्रुत्वा कृतमस्माभिरीदृशम् ।
मानसेनाग्निना क्रुद्धा भस्मसान्नः करिष्यति
कथं दुःखमिदं तीव्रं गान्धारी संप्रशक्ष्यति ।
श्रुत्वा विनिहतं पुत्रं छलेनाजिह्मयोधिनम् ॥
एवं विचिन्त्य बहुधा भयशोकसमन्वितः ।
वासुदेवमिदं वाक्यं धर्मराजोऽभ्यभाषत ॥
तव प्रसादाद्गोविंद राज्यं निहतकण्टकम् ।
अप्राप्यं मनसापीदं प्राप्तमस्माभिरच्युत ॥१५
प्रत्यक्षं मे महाबाहो संग्रामे लोमहर्षणे ।
विमर्दः सुमहान्प्राप्तस्त्वया यादवनन्दन ॥१६
त्वया देवासुरे युद्धे वधार्थममरद्विषाम् ।
यथा साह्यं पुरा दत्तं हताश्च विबुधद्विषः ॥
साह्यं तथा महाबाहो दत्तमस्माकमच्युत ।
सारथ्येन च वार्ष्णेय भवता हि धृता वयम्
यदि न त्वं भवेन्नाथः फाल्गुनस्य महारणे ।
कथं शक्यो रणे जेतुं भवेदेष बलार्णवः ॥ १९
गदाप्रहारा विपुलाः परिघैश्चापि ताडनम् ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥
अस्मत्कृते त्वया कृष्ण वाचः सुपरुषाः श्रुताः
शस्त्राणां च निपाता वै वज्रस्पर्शोपमा रणे
ते च ते सफला जाता हते दुर्योधनेऽच्युत ।
तत्सर्वं न यथा नश्येत्पुनः कृष्ण तथा कुरु ॥
संदेहदोलां प्राप्तं नश्चेतः कृष्ण जये सति ।
गान्धार्या हि महाबाहो क्रोधं बुध्यस्व माधव
सा हि नित्यं महाभागा तपसोग्रेण कर्शिता ।
पुत्रपौत्रवधं श्रुत्वा ध्रुवं नः संप्रधक्ष्यति ॥ २४
तस्याः प्रसादनं वीर प्राप्तकालं मतं मम ।
कश्च तां क्रोधताम्राक्षीं पुत्रव्यसनकर्शिताम्
वीक्षितुं पुरुषः शक्तस्त्वामृते पुरुषोत्तम ।
तत्र मे गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ २६
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम ।
त्वं हि कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाव्ययः
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैः कालसमीरितैः ।
क्षिप्रमेव महाबाहो गान्धारीं शमयिष्यसि
पितामहश्च भगवान् कृष्णस्तत्र भविष्यति ।
सर्वथा ते महाबाहो गान्धार्याः क्रोधनाशनं
कर्तव्यं सात्वतां श्रेष्ठ पाण्डवानां हितार्थिना
धर्मराजस्य वचनं श्रुत्वा यदुकुलोद्वहः ॥३०
आमंत्र्य दारुकं प्राह रथः सज्जो विधीयताम्
केशवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणोऽथ दारुकः
न्यवेदयद्रथं सज्जं केशवाय महात्मने ।
तं रथं यादवश्रेष्ठः समारुह्य परंतपः ॥ ३२
जगाम हास्तिनपुरं त्वरितः केशवो विभुः ।
ततः प्रायान्महाराज माधवो भगवान् रथी
नागसाह्वयमासाद्य प्रविवेश च वीर्यवान् ।
प्रविश्य नगरं वीरो रथघोषेण नादयन् ॥३४
विदितं धृतराष्ट्रस्य सोऽवतीर्य रथोत्तमात् ।
अभ्यगच्छददीनात्मा धृतराष्ट्रनिवेशनम् ॥
पूर्वं चाभिगतं तत्र सोऽपश्यदृषिसत्तमम् ।
पादौ प्रपीड्य कृष्णस्य राज्ञश्चापि जनार्दनः
अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीं चापि केशवः ।
ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः ॥ ३७
पाणिमालम्ब्य राजेन्द्र सुस्वरं प्ररुरोद ह ।
स मुहूर्तादिवोत्सृज्य बाष्पं शोकसमुद्भवम्
प्रक्षाल्य वारिणा नेत्रे ह्याचम्य च यथाविधि
उवाच प्रस्तुतं वाक्यं धृतराष्ट्रमरिंदमः ॥ ३९
न तेऽस्त्यविदितं किंचिद्वृद्धस्य तव भारत
कालस्य च यथावृत्तं तत्ते सुविदितं प्रभो ॥
यदिदं पांडवैः सर्वैस्तव चित्तानुरोधिभिः ।
कथं कुलक्षयो न स्यात्तथा क्षत्रस्य भारत ॥
भ्रातृभिः समयं कृत्वा क्षान्तवान् धर्मवत्सलः
द्यूतच्छलजितैः शुद्धैर्वनवासो ह्युपागतः ॥ ४२
अज्ञातवासचर्या च नानावेषसमावृतैः ।
अन्ये च बहवः क्लेशास्त्वशक्तैरिव सर्वदा ॥
मया च स्वयमागम्य
युद्धकाल उपस्थिते ।
सर्वलोकस्य सान्निध्ये
ग्रामांस्त्वं पञ्च याचितः ॥ ४५
त्वया कालोपसृष्टेन लोभतो नापवर्जिताः ।
तवापराधान्नृपते सर्वं क्षत्रं क्षयं गतम् ॥ ४५
भीष्मेण सोमदत्तेन बाल्हीकेन कृपेण च ।
द्रोणेन च सपुत्रेण विदुरेण च धीमता ॥ ४६
याचितस्त्वं शमं नित्यं न च तत्कृतवानसि।
कालोपहतचित्ता हि सर्वे मुह्यन्ति भारत४७

हेतुकारणसंयुक्तैः हेतवो दृष्टा अपराधाः कारणानि अदृष्टान्यवश्यंभावीनि तैर्युक्तानि तैः ॥२८ ॥ प्रायादगच्छत् ॥ ३३ ॥
कृष्णस्य व्यासस्य ॥ ३६ ॥

यथा मूढो भवान्पूर्वमस्मिन्नर्थे समुद्यते ।
किमन्यत्कालयोगाद्धि दिष्टमेव परायणम् ॥
मा च दोषान्महाप्राज्ञ
पाण्डवेषु निवेशय ।
अल्पोऽप्यतिक्रमो नास्ति
पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ४९
धर्मतो न्यायतश्चैव
स्नेहतश्च परंतप ।
एतत्सर्वं तु विज्ञाय
ह्यात्मदोषकृतं फलम् ॥ ५०
असूयां पाण्डुपुत्रेषु न भवान्कर्तुमर्हति ।
कुलं वंशश्च पिण्डाश्च यच्च पुत्रकृतं फलम् ५१
गान्धार्यास्तव वै नाथ पाण्डवेषु प्रतिष्ठितम्।
त्वं चैव कुरुशार्दूल गान्धारी च यशस्विनी ॥
मा शुचो नरशार्दूल पाण्डवान्प्रति किल्बिषम्
एतत्सर्वमनुध्याय आत्मनश्च व्यतिक्रमम्॥५३
शिवेन पाण्डवान्पाहि नमस्ते भरतर्षभ ।
जानासि च महाबाहो धर्मराजस्य या त्वयि
भक्तिर्भरतशार्दूल स्नेहश्चापि स्वभावतः ।
एतच्च कदनं कृत्वा शत्रूणामपकारिणाम्॥ ५५
दह्यते स दिवा रात्रौ न च शर्माधिगच्छति।
त्वां चैव नरशार्दूल गान्धारीं च यशस्विनीं
स शोचन्नरशार्दूलः शान्तिं नैवाधिगच्छति।
ह्रिया च परयाऽऽविष्टो भवंतं नाधिगच्छति
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं बुद्धिव्याकुलितेन्द्रियम् ।
एवमुक्त्वा महाराज धृतराष्ट्रं यदूत्तमः ॥ ५८
उवाच परमं वाक्यं गान्धारीं शोककर्शितां
सौबलेयि निबोध त्वं यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु
त्वत्समानाऽस्ति लोकेऽस्मि-
न्नद्य सीमन्तिनी शुभे ।
जानासि च यथा राज्ञि
सभायां मम सन्निधौ ॥ ६०
धर्मार्थसहितं वाक्यमुभयोः पक्षयोर्हितम् ।
उक्तवत्यासि कल्याणि न च ते तनयैः कृतम्॥
दुर्योधनस्त्वया चोक्तो जयार्थी परुषं वचः ।
शृणु मूढ वचो मह्यं 'यतो धर्मस्ततो जयः'
तदिदं समनुप्राप्तं
तव वाक्यं नृपात्मजे ।
एवं विदित्वा कल्याणि
मां स्म शोके मनः कृथाः ॥ ६३
पाण्डवानां विनाशाय
मा ते बुद्धिः कदाचन ।
शक्ता चासि महाभागे
पृथिवीं सचराचराम् ॥ ६४
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन निर्दग्धुं तपसो बलात् ।
वासुदेववचः श्रुत्वा गान्धारी वाक्यमब्रवीत्
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि केशव ।
आधिभिर्दह्यमानाया मतिः सञ्चालिता मम ॥
सा मे व्यवस्थिता श्रुत्वा तव वाक्यं जनार्दन
राज्ञस्त्वन्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य केशव॥६७
त्वं गतिः सहितैर्वीरैः पाण्डवैर्द्विपदां वरः ।
एतावदुक्त्वा वचनं मुखं प्रच्छाद्य वाससा॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्ता गान्धारी प्ररुरोद ह ।
तत एनां महाबाहुः केशवः शोककर्शिताम्॥
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैराश्वासयत्प्रभुः ।
समाश्वास्य च गान्धारीं धृतराष्ट्रं च माधवः
द्रौणिसंकल्पितं भावमवबुध्यत केशवः ।
ततस्त्वरित उत्थाय पादौ मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥
द्वैपायनस्य राजेन्द्र ततः कौरवमब्रवीत् ।
आपृच्छे त्वां कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः
द्रौणेः पापोऽस्त्यभिप्राय-
स्तेनास्मि सहसोत्थितः ।
पाण्डवानां वधे रात्रौ
बुद्धिस्तेन प्रदर्शिता ॥ ७३
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गान्धार्या सहितोऽब्रवीत्
धृतराष्ट्रो महाबाहुः केशवं केशिसूदनम् ॥ ७४
शीघ्रं गच्छ महाबाहो पाण्डवान्परिपालय ।
भूयस्त्वया समेष्यामि क्षिप्रमेव जनार्दन॥७५
प्रायात्ततस्तु त्वरितो दारुकेण सहाच्युतः ।
वासुदेवे गते राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥ ७६
आश्वासयदमेयात्मा व्यासो लोकनमस्कृतः ।
वासुदेवोऽपि धर्मात्मा कृतकृत्यो जगाम ह ॥
शिबिरं हास्तिनपुरा-
द्दिदृक्षुः पाण्डवान्नृप ।
आगम्य शिबिरं रात्रौ
सोऽभ्यगच्छत पाण्डवान् ।
तच्च तेभ्यः समाख्याय
सहितस्तैः समाहितः ॥ ७८

इति श्रीमहाभा० शल्यपर्वान्तर्गतगदाप० धृतराष्ट्रगान्धारीसमाश्वासने त्रिषष्टितमोऽध्यायः६३

इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

# ६४

धृतराष्ट्र उवाच ।

अधिष्ठितः पदा मूर्ध्नि भग्नसक्थो महीं गतः
शौटीर्यमानी पुत्रो मे किमभाषत सञ्जय ॥ १
अत्यर्थं कोपनो राजा जातवैरश्च पाण्डुषु ।
व्यसनं परमं प्राप्तः किमाह परमाहवे ॥ २

सञ्जय उवाच ।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तं नराधिप ।
राज्ञा यदुक्तं भग्नेन तस्मिन्व्यसन आगते ॥ ३
भग्नसक्थो नृपो राजन्पांसुना सोऽवगुण्ठितः
यमयन्मूर्धजांस्तत्र वीक्ष्य चैव दिशो दश ॥ ४
केशान्नियम्य यत्नेन निःश्वसन्नुरगो यथा ।
संरंभाश्रुपरीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य माम्
बाहू धरण्यां निष्पिष्य सुदुर्मत्त इव द्विपः ।
प्रकीर्णान्मूर्धजान्धुन्वन् दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन्
गर्हयन्पाण्डवं ज्येष्ठं निःश्वस्येदमथाब्रवीत् ।
भीष्मे शान्तनवे नाथे कर्णे शस्त्रभृतां वरे
गौतमे शकुनौ चापि द्रोणे चास्त्रभृतां वरे ।
अश्वत्थाम्नि तथा शल्ये शूरे च कृतवर्मणि ॥ ८
इमामवस्थां प्राप्तोऽस्मि कालो हि दुरतिक्रमः
एकादशचमूभर्ता सोऽहमेतां दशां गतः ॥ ९
कालं प्राप्य महाबाहो न कश्चिदतिवर्तते ।
आख्यातव्यं मदीयानां येऽस्मिञ्जीवंति संयुगे
यथाहं भीमसेनेन व्युत्क्रम्य समयं हतः ।
बहूनि सुनृशंसानि कृतानि खलु पाण्डवैः ॥
भूरिश्रवसि कर्णे च भीष्मे द्रोणे च श्रीमति ।
इदं चाकीर्तिजं कर्म नृशंसैः पाण्डवैः कृतम् ॥
येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्ति हि मे मतिः
का प्रीतिः सत्त्वयुक्तस्य कृत्वोपाधिकृतं जयम्
को वा समयभेत्तारं बुधः संमन्तुमर्हति ।
अधर्मेण जयं लब्ध्वा को नु हृष्येत पण्डितः
यथा संहृष्यते पापः पाण्डुपुत्रो वृकोदरः ।
किंनु चित्रमितस्त्वद्य भग्नसक्थस्य यन्मम ॥
क्रुद्धेन भीमसेनेन पादेन मृदितं शिरः ।
प्रतपन्तं श्रिया जुष्टं वर्तमानं च बन्धुषु ॥ १६
एवं कुर्यान्नरो यो हि स वै संजय पूजितः ।
अभिज्ञौ युद्धधर्मस्य मम माता पिता च मे ॥
तौ हि संजय दुःखार्तौ
विज्ञाप्यौ वचनाद्धि मे ।
इष्टं भृत्या भृताः सम्यक्
भूः प्रशास्ता ससागरा ॥ १८
मूर्ध्नि स्थितममित्राणां जीवतामेव संजय ।
दत्ता दाया यथाशक्ति मित्राणां च प्रियं कृतम्
अमित्रा बाधिताः सर्वे
को नु स्वन्ततरो मया ।
मानिता बान्धवाः सर्वे
वश्यः संपूजितो जनः ॥ २०
त्रितयं सेवितं सर्वं को नु स्वन्ततरो मया ।
आज्ञप्तं नृपमुख्येषु मानः प्राप्तः सुदुर्लभः ॥ २१
आजानेयैस्तथा यातं को नु स्वन्ततरो मया ।
यातानि परराष्ट्राणि नृपा भुक्ताश्च दासवत् ॥
प्रियेभ्यः प्रकृतं साधु को नु स्वन्ततरो मया ।
अधीतं विधिवद्दत्तं प्राप्तमायुर्निरामयम् ॥ २३
स्वधर्मेण जिता लोकाः
को नु स्वन्ततरो मया ।
दिष्ट्या नाहं जितः संख्ये
परान्प्रेष्यवदाश्रितः ॥ २४
दिष्ट्या मे विपुला लक्ष्मी-
र्मृते त्वन्यगता विभो ।
यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां
स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ २५
निधनं तन्मया प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।
दिष्ट्या नाहं परावृत्तो वैरात्प्राकृतवज्जितः ॥
दिष्ट्या न विमतिं काञ्चि-
द्भजित्वा तु पराजितः ।
सुप्तं वाऽथ प्रमत्तं वा
यथा हन्याद्विषेण वा ॥ २७
एवं व्युत्क्रान्तधर्मेण व्युत्क्रम्य समयं हतः ।
अश्वत्थामा महाभागः कृतवर्मा च सात्वतः ॥
कृपः शारद्वतश्चैव वक्तव्या वचनान्मम ।
अधर्मेण प्रवृत्तानां पाण्डवानामनेकशः ॥ २९
विश्वासं समयघ्नानां न यूयं गन्तुमर्हथ ।
वार्तिकांश्चाब्रवीद्राजा पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥

---

६४

**अधिष्ठित इति** । शौटीरः शूरः स एव शौटीर्यमा- त्मानं मन्यते शौटीर्यमानी ॥ १ ॥ मया मत्तः ॥ २० ॥ वार्तिकान् वार्ताहारिणः ॥ ३० ॥

अधर्माद्भीमसेनेन निहतोऽहं यथा रणे।
सोऽहं द्रोणं स्वर्गगतं कर्णशल्यावुभौ तथा ॥
वृषसेनं महावीर्यं शकुनिं चापि सौबलम्।
जलसन्धं महावीर्यं भगदत्तं च पार्थिवम् ॥
सोमदत्तं महेष्वासं सैन्धवं च जयद्रथम्।
दुःशासनपुरोगांश्च भ्रातॄनात्मसमांस्तथा ॥३३
दौःशासनिं च विक्रान्तं
लक्ष्मणं चात्मजावुभौ।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून्
मदीयांश्च सहस्रशः ॥ ३४
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि
सार्थहीनो यथाऽध्वगः
कथं भ्रातॄन् हताञ्श्रुत्वा
भर्तारं च स्वसा मम ॥ ३५
रोरूयमाणा दुःखार्ता
दुःशला सा भविष्यति।
स्नुषाभिः प्रस्नुषाभिश्च
वृद्धो राजा पिता मम ॥ ३६
गान्धारीसहितश्चैव कां गतिं प्रतिपत्स्यति।
नूनं लक्ष्मणमातापि हतपुत्रा हतेश्वरा ॥ ३७
विनाशं यास्यति क्षिप्रं
कल्याणी पृथुलोचना।
यदि जानाति चार्वाकः
परिव्राड्वाग्विशारदः ॥ ३८
करिष्यति महाभागो ध्रुवं चापचितिं मम।
समन्तपञ्चके पुण्ये त्रिषु लोकेषु विश्रुते ॥ ३९
अहं निधनमासाद्य
लोकान्प्राप्स्यामि शाश्वतान्।
ततो जनसहस्राणि
बाष्पपूर्णानि मारिष ॥ ४०
प्रलापं नृपतेः श्रुत्वा व्यद्रवन्त दिशो दश।
ससागरवना घोरा पृथिवी सचराचरा ॥४१
चचालाथ सनिर्ह्रादा दिशश्चैवाविलाऽभवन्
ते द्रोणपुत्रमासाद्य यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४२
व्यवहारं गदायुद्धे
पार्थिवस्य च पातनम्।
तदाख्याय ततः सर्वे
द्रोणपुत्रस्य भारत।
ध्यात्वा च सुचिरं कालं
जग्मुरार्ता यथागतम् ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि दुर्योधनविलापे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

सञ्जय उवाच
वार्तिकाणां सकाशात्तु
श्रुत्वा दुर्योधनं हतम्।
हतशिष्टास्ततो राजन्
कौरवाणां महारथाः ॥ १
विनिर्भिन्नाः शितैर्बाणैर्गदा-तोमर-शक्तिभिः।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥२
त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन्।
तत्रापश्यन्महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितम् ॥
प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने।
भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ४
महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम्।
विवर्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥ ५
यदृच्छया निपतितं चक्रमादित्यगोचरम्।
महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम् ॥ ६
पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमण्डलम्।
रेणुध्वस्तं दीर्घभुजं मातङ्गमिव विक्रमे ॥ ७
वृतं भूतगणैर्घोरैः क्रव्यादैश्च समन्ततः।
यथा धनं लिप्समानैर्भृत्यैर्नृपतिसत्तमम् ॥
भ्रुकुटीकृतवक्त्रान्तं क्रोधादुद्वृत्तचक्षुषम्।
सामर्षं तं नरव्याघ्रं व्याघ्रं *निपतितं यथा ॥९

---

चार्वाकः ब्राह्मणवेषधारी राक्षसः ॥३८ ॥ अपचितिं प्रतीकारम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यान्तर्गतगदापर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

६५
वार्तिकाणामिति ॥ १ ॥ चक्रमादित्यगोचरं सूर्यमण्डलमिवेति लुप्तोपमा ॥ ६ ॥ *भीममिति पाठः।

ते तं दृष्ट्वा महेष्वासं भूतले पतितं नृपम्।
मोहमभ्यागमन्सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः॥ १०
अवतीर्य रथेभ्यश्च प्राद्रवन् राजसन्निधौ।
दुर्योधनं च संप्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन्॥११
ततो द्रौणिर्महाराज बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन्
उवाच भरतश्रेष्ठं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्॥ १२
न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किञ्चिदेव हि।
यत्र त्वं पुरुषव्याघ्र शेषे पांसुषु रूषितः॥ १३
भूत्वा हि नृपतिः पूर्वं समाज्ञाप्य च मेदिनीं
कथमेकोऽद्य राजेन्द्र तिष्ठसे निर्जने वने॥ १४
दुःशासनं न पश्यामि नापि कर्णं महारथम्।
नापि तान् सुहृदः सर्वान् किमिदं भरतर्षभ॥
दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथञ्चन।
लोकानां च भवान्यत्र शेषे पांसुषु रूषितः॥
एष मूर्धाभिषिक्तानामग्रे गत्वा परंतपः।
सतृणं ग्रसते पांसुं पश्य कालस्य पर्ययम् १७
क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिव।
सा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम
दुर्विज्ञेया गतिर्नूनं कार्याणां कारणान्तरे।
यद्वै लोकगुरुर्भूत्वा भवानेतां दशां गतः॥ १९
अध्रुवा सर्वमर्त्येषु श्रीरुपालक्ष्यते भृशम्।
भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्धिनो भृशम्॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः
उवाच राजन्पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां शोकजं बाष्पमुत्सृजन्
कृपादींस्स तदा वीरान् सर्वानेव नराधिपः॥
ईदृशो लोकधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते।
विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायमागतः॥
सोऽयं मां समनुप्राप्तः प्रत्यक्षं भवतां हि यः।
पृथिवीं पालयित्वाऽहमेतां निष्ठामुपागतः॥
दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्याञ्चिदापदि
दिष्ट्याऽहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः।
उत्साहश्च कृतो नित्यं मया दिष्ट्या युयुत्सता
दिष्ट्या चास्मिन्हतो युद्धे निहतज्ञातिबांधवः
दिष्ट्या च वोऽहं पश्यामि
मुक्तानस्माज्जनक्षयात्।
स्वस्तियुक्तांश्च कल्यांश्च
तन्मे प्रियमनुत्तमम् ॥ २७
मा भवन्तोऽत्र तप्यन्तां सौहृदान्निधनेन मे।
यदि वेदाः प्रमाणं वो जिता लोका मयाक्षयाः
मन्यमानः प्रभावं च कृष्णस्यामिततेजसः
तेन न च्यावितश्चाहं क्षत्रधर्मात्स्वनुष्ठितात्॥
स मया समनुप्राप्तो नास्मि शोच्यः कथंचन
कृतं भवद्भिः सदृशमनुरूपमिवात्मनः ॥ ३०
यतितं विजये नित्यं 'दैवं तु दुरतिक्रमम्'।
एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पव्याकुललोचनः॥
तूष्णीं बभूव राजेन्द्र रुजासौ विह्वलो भृशम्
तथा दृष्ट्वा तु राजानं बाष्पशोकसमन्वितम्।
द्रौणिःक्रोधेन जज्वाल यथा वह्निर्जगत्क्षये।
स च क्रोधसमाविष्टःपाणौ पाणिं निपीड्य च
बाष्पविह्वलया वाचा राजानमिदमब्रवीत्।
पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा॥
न तथा तेन तप्यामि यथा राजंस्त्वयाऽद्य वै
शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो॥ ३५
इष्टापूर्तेन दानेन धर्मेण सुकृतेन च।
अद्याहं सर्वपञ्चालान्वासुदेवस्य पश्यतः॥३६
सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराजनिवेशनम्।
अनुज्ञां तु महाराज भवान्मे दातुमर्हति॥३७
इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः।
मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत्॥ ३८
आचार्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय।
स तद्वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः॥ ३९
कलशं पूर्णमादाय राज्ञोऽन्तिकमुपागमत्।
तमब्रवीन्महाराज पुत्रस्तव विशांपते॥ ४०
ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोऽभिषिच्यताम्।
सैनापत्येन भद्रं ते मम चेदिच्छसि प्रियम्॥
राज्ञो नियोगाद्योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
वर्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवं धर्मविदो विदुः॥ ४२
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्तथा।
द्रौणिं राज्ञो नियोगेन सैनापत्येऽभ्यषेचयत्॥
सोऽभिषिक्तो महाराज परिष्वज्य नृपोत्तमम्
प्रययौ सिंहनादेन दिशः सर्वा विनादयन्॥४४
दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः।
तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहाम् ४५

कारणान्तरे अदृष्टरूपे सति तेन दृष्टसामग्रीवैयर्थ्यं जायत इति भावः॥ १९॥

अपक्रम्य तु ते तूर्णं तस्मादायोधनान्नृप। शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपराऽभवन् ४६

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि अश्वत्थामसैनापत्याभिषेके पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

अस्यानन्तरं सौप्तिकपर्व भविष्यति।

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

सञ्जय उवाच —

ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः ॥
उपास्तमनवेलायां शिबिराभ्याशमागताः ॥

## ॥ इति श्रीमहाभारते *शल्यपर्व समाप्तम् ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनु-श्रीनीलकण्ठविरचिते भारतभावदीपे शल्यपर्वार्थप्रकाशे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे-'नवमं पर्व निर्दिष्टमेतदद्भुतमर्थवत्। एकोनषष्टिरध्यायाः पर्वण्यत्र प्रकीर्तिताः ॥...त्रीणि श्लोकसहस्राणि द्वे शते विंशतिस्तथा' इत्युक्तम्। तथापि संप्रत्यध्यायसंख्या ६५श्लोकसंख्या च ३६३८ नयनसरणिमायाति। तदेतद्वैषम्यं पूर्वपूर्वलेखकादिप्रमादजामिति ध्येयमिति शम्।

इति श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचंद्र-शास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यां शल्यपर्व समाप्तम्। भारती जयतु। शके १८५३।

# Shriman
# MAHĀBHĀRATAM
## Part IV
## X Sauptikaparvan
WITH
## Bharata Bhawadeepa By Nilkantha.

**Edited by**

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar



*PRINTED & PUBLISHED*
BY
**SHANKAR NARHAR JOSHI**
Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1853.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

# श्रीमन्महाभारतम्।

## चतुर्थभागे—सौप्तिकपर्व।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्।

तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितम्।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५३] प्रथमं संस्करणम्। [ख्रिस्ताब्दाः १९३१

॥ भारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## सौप्तिकपर्व ।

## —१०—

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | **(१) सौप्तिकपर्व १–२०** | |
| १ | ६९ | अश्वत्थामादीनां शिबिराभ्यागमनादिकं शशंस सञ्जयः। विलपन्धृतराष्ट्रोऽधर्मेण हते दुर्योधने कृतवर्मादयः किमकुर्वन्निति पप्रच्छ। पाण्डवेभ्यो भीताः कृतवर्मादयो वनं गत्वा न्यग्रोधमूल उपविष्टाः सन्तो वृत्तं कुरुपाण्डवक्षयं चिन्तयामासुः। कृपकृतवर्मणोर्निद्रितयोर्जागरितोऽश्वत्थामा तस्मिन्नेव वने बहुवायसावृते न्यग्रोधे वायसेषु सुप्तेष्वेकेनोलूकेनागत्य कृतं बहुवायसनाशादिकं ददर्श। उलूककृतं सोपधं कर्म दृष्ट्वा चिन्तयन्नश्वत्थामा रात्रौ सुप्तानां पाण्डवानां नाशकरणं निश्चित्य कृपकृतवर्मणौ प्रबोध्य तौ प्रति 'हतो दुर्योधनो राजा' इत्याद्युवाच ... ... | ३ |
| २ | ३५ | अश्वत्थामानं प्रत्युपदेशवाक्यानि कथयन्कृपो दुर्योधनं विनिन्दन् 'धृतराष्ट्रादीन्प्रति गत्वा ते यथा कथयिष्यन्ति तथा कुर्मः' इत्याद्याह ... | ५ |
| ३ | ३६ | कृपवाक्यं श्रुत्वा शोचन्द्रौणिः कृपकृतवर्मणौ प्रति 'पुरुषे पुरुषे बुद्धिः' इत्याद्युक्त्वा क्षत्रधर्मावलम्बिनमात्मानं विनिन्दन्सुप्तान्पञ्चालादीन्हनिष्यामीत्याह स्म ... ... ... | ६ |
| ४ | ३४ | 'अद्य रात्रौ विश्रमस्व' इत्याद्युक्त्वा प्रशंसति कृपेऽश्वत्थामा क्रुद्धः सन्दुर्योधनोरुभङ्गमनूद्यात्मानं विकत्थयामास ... | ८ |
| ५ | ४० | सुप्तानां विश्वस्तानां पञ्चालादीनां वधनिवारणायोपदिशति कृपेऽश्वत्थामा पाण्डवकृतान्यान्यवधमनूद्य तेषां नाशार्थं निर्गतः सन्स्वाभिप्रायं कथयामास। कृपकृतवर्मभ्यामनुगतोऽश्वत्थामा पाण्डवशिबिरद्वारि तस्थौ ... ... | ९ |
| ६ | ३४ | द्रौणिमवस्थितं दृष्ट्वा कृपकृतवर्माणौ किमकुर्वतामिति धृतराष्ट्रप्रश्ने कृपकृतवर्माणावामन्त्र्य गच्छन्द्रौणिः शिबिरद्वारमाश्रित्य तत्र स्थितं रूपान्तरधारिणं महादेवं ददर्श। अश्वत्थामा स्वप्रेरितेष्वस्त्रेषु महादेवेन ग्रस्तेषु निरायुधः कृपवाक्यमनुस्मृत्य 'ब्रुवतामप्रियं पथ्यम्' इत्याद्युक्त्वा महादेवं शरणं गन्तुं चिन्तयामास ... | १० |
| ७ | ६८ | रथादवतीर्य महादेवं स्तुवत्यश्वत्थाम्नि तत्समीपे काञ्चनवे- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दिः प्रादुरभूत्तत्थाश्चोत्पन्ना महाभूतगणास्तं प्रत्यभाषन्त। धावतो भूतगणान्दृष्ट्वाऽप्यव्यथमानोऽश्वत्थामा स्वदेहमेवोपहारत्वेन दास्यामि इति निश्चित्य 'इममात्मानमद्याहम्' इत्याद्युवाच महादेवं प्रति। ततो महादेवोऽश्वत्थामानं प्रति 'सत्यशौचार्जवत्यागैः' इत्याद्युक्त्वा तच्छरीर आविश्य तस्मै खड्गं च ददौ ... | १३ |
| ८ | १५९ | अश्वत्थाम्नि प्रयाते कृपकृतवर्माणौ भयार्तौ न व्यवर्तेतां कच्चिदित्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने सञ्जयस्तयोः शिबिरद्वारस्थितिं कथयति स्म । द्वारस्थितौ कृपकृतवर्माणौ प्रति 'शिबिरात्पलायमानो न कश्चिन्मोचनीयः' इत्यादिश्य शिबिरं प्रविष्टोऽश्वत्थामा प्रथमं धृष्टद्युम्नशिबिरं प्रविश्य पादताडनेन तमबोधयत्। उत्तिष्ठन्तं धृष्टद्युम्नं पाणिभ्यां पिषञ्शस्त्रेण मां जहि इति तेन: प्रार्थितोऽप्यश्वत्थामा 'आचार्यघातिनां लोका न सन्ति शुभाः' इत्याद्युक्त्वा तं पशुवन्मारयित्वा शिबिरान्तरं जगाम । एवमुत्तमौजसं, युधामन्युं च हत्वा सुप्तान्योधान्प्रति धावन्नश्वत्थामा द्रौपदीपुत्रान्दृष्ट्वा बाणान्वर्षतस्तानपि हत्वा शिखण्डिनं जघान। सञ्जयोऽश्वत्थामकृतं पाण्डवीयबहुसैन्यानां नाशनं निद्रान्धानां तेषां व्याकुलत्वं द्वास्थादीनां पलायनादिकं चाचष्ट। द्वारि स्थितौ कृपकृतवर्माणौ पलायमानान् हत्वा शिबिरस्य प्रदेशत्रयेऽग्निं ददतुस्तस्मिन्नेव प्रकाशेऽश्वत्थामा खड्गेन बहून् वीरान्नाशयामास। सञ्जयो हतैर्वीरैः पृथिव्यावरणं भयार्तानामाक्रोशादिकं, रुधिरेण धरित्रीरजःशान्ति, नरमांसभोजनार्थं रक्षः पिशाचानामागमनं चाब्रवीत् । अश्वत्थामा शिबिरस्थान्सर्वान्हत्वा बहिरागत्य कृपकृतवर्माणौ प्रति तत्सर्वं कथयामास । द्रौणिः पूर्वमेवैतत् कुतो नाकरोदिति धृतराष्ट्रप्रश्ने भयात्पाण्डवानां मम सांनिध्ये कृतवानेतदित्याद्याह सञ्जयः। कृपादीनां परस्पराLिङ्गनानन्तरमश्वत्थामा स्वकीयं कार्तार्थ्यं कथयति स्म ... ... | १८ |
| ९ | ६३ | सञ्जयो दुर्योधनसमीपे कृपादीनामागमनं तात्कालिकीं दुर्योधनस्यावस्थां चाकथयत्। दुर्योधननिकटे कृपविलापानन्तरमश्वत्थामा विलापपूर्वकमर्जुनं निन्दन्दुर्योधनं प्रशस्यात्मानमपि निन्दन्सौप्तिके धृष्टद्युम्नादीनां नाशवृत्तान्तं कथयति स्म। द्रौणिवाक्यश्रवणानन्तरं तत्प्रशंसावाक्यं ब्रुवतो दुर्योधनस्य प्राणत्यागादिकं तत्समकालं स्वस्य दिव्यदर्शित्वनाशं च जगाद सञ्जयः । पुत्रवधं श्रुतवतो धृतराष्ट्रस्य चिन्तां चागदद्वैशम्पायनः ... ... ... | २० |
| | | **( २ ) ऐषीकपर्व २०–३२** | |
| १० | ३१ | युधिष्ठिरः सौप्तिकवृत्तान्तं कथयतो धृष्टद्युम्नसारथेः सकाशाद्द्रौपदेयादीनां नाशं श्रुत्वा पतितः पुनर्लब्धसंज्ञो विलपन्द्रौपदीमानेतुं नकुलमाज्ञाप्य शिबिरमागत्य हतान्पुत्रादीन्दृष्ट्वा पुनर्मूर्छितः सम्पपात ... ... | २२ |
| ११ | ३१ | शोकाकुलं युधिष्ठिरं दृष्ट्वा सुहृत्सु सान्त्वयत्सु नकुलेनानीता द्रौपदी पुत्रादिनाशं श्रुत्वा शोकार्ता सती भूमौ न्यपतत् । भीमेनाश्वासिताया द्रौपद्या अश्वत्था- | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मनाशार्थकं वाक्यं श्रुत्वा 'दूरगतमश्वत्थामानं हतं त्वं कथं ज्ञास्यसि' इति युधिष्ठिरेणानुयुक्ता सा 'द्रौणिं हत्वा प्रत्यभिज्ञार्थं तस्य मणिमाहर' इत्याह स्म। 'त्रातुमर्हसि मां भीम' इत्यादिकं द्रौपदीवाक्यं श्रुत्वा भीमोऽश्वत्थामानं हन्तुं जगाम | २३ |
| १२ | ४१ | भीमनिवारणार्थं युधिष्ठिरं प्रति वदन् श्रीकृष्णोऽश्वत्थाम्नो ब्रह्मशिरोऽस्त्रप्राप्तिवृत्तान्तं स्वनिकटे चक्रयाचनवृत्तान्तं चाकथयत् ... ... ... | २४ |
| १३ | ५२ | निर्गतं भीमं वारयितुं रथमारुह्य पृष्ठतो धावत्स्वपि कृष्णादिषु तं वारयितुमशक्नुवत्सु वेगवद्भिरश्वैर्गच्छन्स गङ्गातीरे व्यासेन सहितं स्थितमश्वत्थामानं दृष्ट्वा तं प्रति सशरं धनुर्गृहीत्वाऽधावत्। आगच्छन्तं भीमं तत्पृष्ठत आगच्छन्तौ कृष्णार्जुनौ च दृष्ट्वोपायान्तरमनालोचयन्नश्वत्थामा पाण्डवाभावायेषीकामादाय तस्यां ब्रह्मशिरोऽस्त्रमुदीरयंश्चिक्षेप ... ... | २५ |
| १४ | १६ | अश्वत्थाम्नोऽभिप्रायं ज्ञातवता कृष्णेन प्रेरितोऽर्जुनोऽपि तदेव दिव्यास्त्रं प्राक्षिपत्। उभयोरस्त्रतेजसा त्रस्ते त्रैलोक्ये तत्रागतौ व्यासनारदावश्वत्थामार्जुनौ प्रति 'नानाशस्त्रविदः पूर्वे' इत्याद्यूचतुः ... ... ... | २६ |
| १५ | ३५ | व्यासनारदयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनः 'प्रमुक्तमस्त्रमस्त्रेण' इत्याद्युक्त्वा स्वास्त्रमुपससंहार। अस्त्रं संहर्तुमसमर्थेन द्रौणिना 'उत्तमव्यसनार्तेन' इत्याद्युक्तो व्यास 'अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तात' इत्यारभ्य 'मणिं चैव प्रयच्छाद्य' इत्याद्यन्तमुवाच। पुनरश्वत्थाम्नो मणिप्रशंसापूर्वकं तद्दानमङ्गीकृतवतोऽमोघमेतदस्त्रं पाण्डवगर्भे विसृजामीति वाक्यमनुजज्ञे व्यासस्ततः स तदस्त्रमुत्तरागर्भे व्यसृजत ... ... | २७ |
| १६ | ३७ | श्रीकृष्णाश्वत्थाम्नोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं श्रीकृष्णोऽश्वत्थाम्ने शापं दत्त्वोत्तरागर्भरक्षणं प्रतिजज्ञे, व्यासश्च तदन्वमोदत। मणिं दत्त्वाऽश्वत्थाम्नि वनं गते शिबिरमागतेषु पाण्डवेषु भीतद्रौपद्योक्तिप्रत्युक्ती ... ... | २८ |
| १७ | २६ | सौप्तिके हतेषु सैन्येषु शोचन्युधिष्ठिरः श्रीकृष्णं प्रति मम पुत्रा द्रौणिना कथं हता इत्यादि पप्रच्छ। श्रीकृष्णोऽपि महादेवस्य प्रसादं कथयंस्तं प्रशंसन् सृष्टिकारणार्थं ब्रह्मकृततत्प्रेरणादिवृत्तान्तं कथयामास ... ... ... | ३० |
| १८ | २६ | पुनर्महादेवप्रभावं कथयञ्श्रीकृष्णो देवानां यज्ञकल्पनं, तत्र स्वभागमदृष्टवतो रुद्रस्य कोपं, तद्भयाद्यज्ञस्य मृगरूपेण पलायनं, देववाक्येन महाप्रसादादिकं चाह स्म। भविष्यत्पर्वसूचनपूर्विका सौप्तिकपर्वसमाप्तिः ... ... ... | ३२ |


॥ समाप्तेयं सौप्तिकपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

॥ शुभं भवतु ॥

ॐ

## ॥ सौप्तिकपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

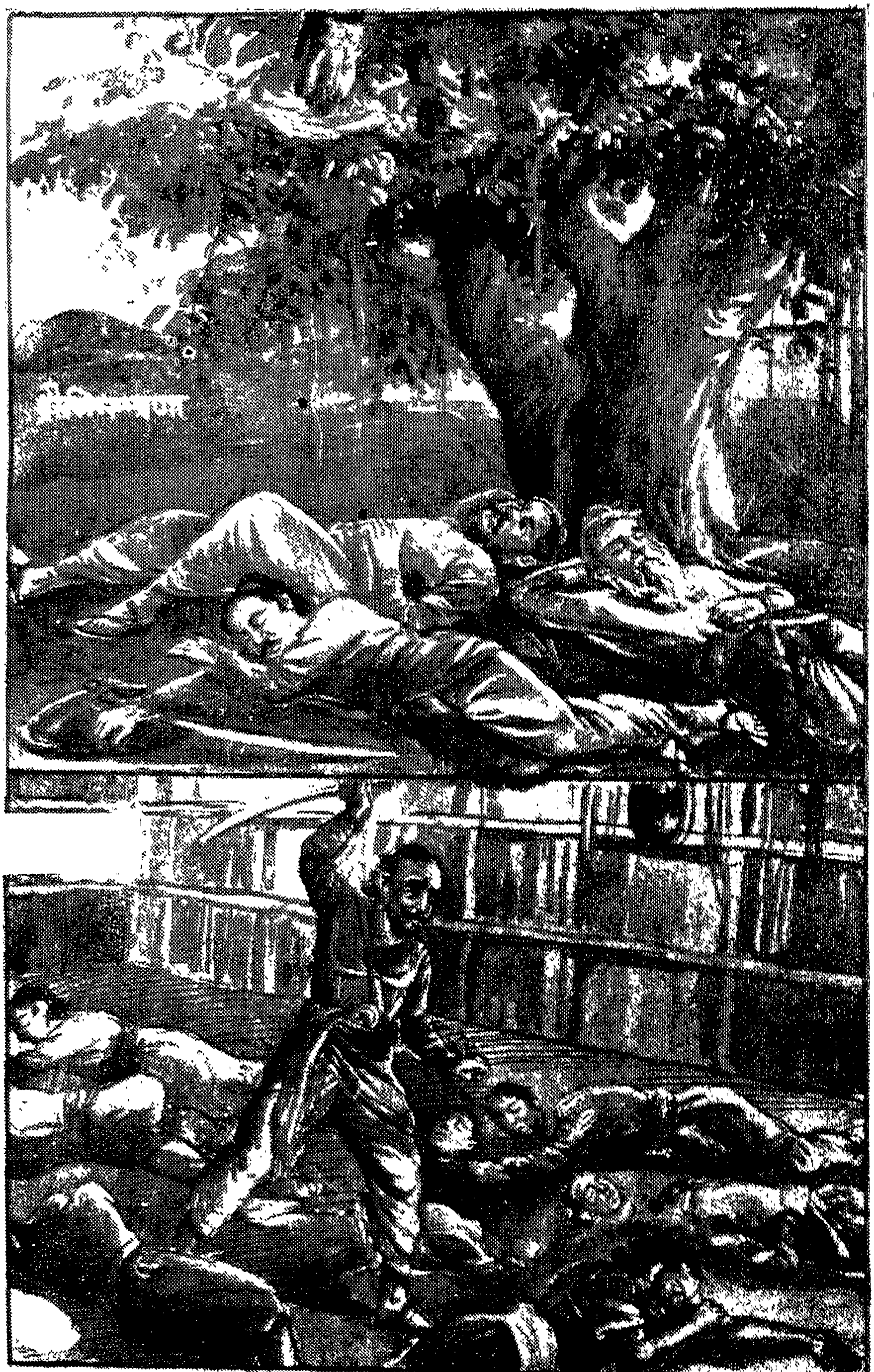

॥ महाभारतम् ॥

# सौप्तिकपर्व ।

## —१०—

### सौ प्ति क प र्व १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

सञ्जय उवाच ।

ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः
उपास्तमनवेलायां शिबिराभ्याशमागताः ॥१
विमुच्य वाहांस्त्वरिता भीता समभवंस्तदा ।
गहनं देशमासाद्य प्रच्छन्ना न्यविशन्त ते ॥ २
सेनानिवेशमभितो नातिदूरमवस्थिताः ।
निकृत्ता निशितैः शस्त्रैः समन्तात्क्षतविक्षताः
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य
पाण्डवानेव चिन्तयन् ।
श्रुत्वा च निनदं घोरं
पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४
अनुसारभयाद्भीताः प्राङ्मुखाः प्राद्रवन्पुनः
ते मुहूर्तात्ततो गत्वा श्रान्तवाहाःपिपासिताः
नामृष्यन्त महेष्वासाः क्रोधामर्षवशंगताः ॥
राज्ञो वधेन संतप्ता मुहूर्तं समवस्थिताः ॥ ४

धृतराष्ट्र उवाच ।

अश्रद्धेयमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय ।
यत्स नागायुतप्राणः पुत्रो मम निपातितः ७
अवध्यः सर्वभूतानां वज्रसंहननो युवा ।
पाण्डवैः समरे पुत्रो निहतो मम सञ्जय ॥ ८
न दिष्टमभ्यतिक्रान्तं शक्यं गावल्गणे नरैः ।
यत्समेत्य रणे पार्थैः पुत्रो मम निपातितः ९
अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
हतं पुत्रशतं श्रुत्वा यन्न दीर्णं सहस्रधा ॥ १०
कथं हि वृद्धमिथुनं हतपुत्रं भविष्यति ।
न ह्यहं पाण्डवेयस्य विषये वस्तुमुत्सहे ॥ ११
कथं राज्ञः पिता भूत्वा स्वयं राजा च सञ्जय
प्रेष्यभूतः प्रवर्तेयं पाण्डवेयस्य शासनात् १२
आज्ञाप्य पृथिवीं सर्वां
स्थित्वा मूर्धनि सञ्जय ।
येन पुत्रशतं पूर्ण-
मेकेन निहतं मम ॥ १३
कृतं सत्यं वचस्तस्य विदुरस्य महात्मना ।
अकुर्वता वचस्तेन मम पुत्रेण सञ्जय ॥ १४

---

१

## नीलकण्ठी—टीका

पूर्वस्मिन्पर्वणि अर्थार्थी कुटुम्बनाशमनु स्वयमपि नश्यतीत्युक्तम् । इदानीं परधर्मानुगो ब्राह्मणः तद्धर्मेष्वपि निन्द्यतमं कर्म करोतीत्युच्यते **ततस्ते सहिता वीरा इत्यादिना** सौप्तिकपर्वणि । ततः दुर्योधनेन सैनापत्येऽश्वत्थाम्नोऽभिषेकानन्तरं तेऽश्वत्थामकृपाचार्यकृतवर्माणः शिबिराभ्याशं शिबिरनिकटस्थं देशं आसाद्य वाहान्विमुच्य न्यविशन्तेति योजना ॥ १ ॥ अनुसारः पृष्ठगमनम् । प्राद्रवन्निति पुनर्वाहान्योजयित्वेति गम्यते ॥ ५ ॥ नामृष्यन्त पिपासामपि न परामृष्टवन्तः राज्ञो दुर्योधनस्य ॥ ६ ॥

कथमस्य भविष्यामि प्रेष्यभूतो दुरन्तकृत् ।
कथं भीमस्य वाक्यानि श्रोतुं शक्ष्यामि सञ्जय
अधर्मेण हते तात पुत्रे दुर्योधने मम ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः किमकुर्वत सञ्जय ॥ १६

सञ्जय उवाच ।

गत्वा तु तावका राजन्नातिदूरमवस्थिताः
अपश्यन्त वनं घोरं नानाद्रुमलतावृतम् १७
ते मुहूर्तं तु विश्रम्य लब्धतोयैर्हयोत्तमैः ।
सूर्यास्तमनवेलायां समासेदुर्महद्वनम् ॥ १८
नानामृगगणैर्जुष्टं नानापक्षिगणावृतम् ।
नानाद्रुमलताच्छन्नं नानाव्यालनिषेवितम् ॥
नानातोयैः समाकीर्णं
नानापुष्पोपशोभितम् ।
पद्मिनीशतसंच्छन्नं
नीलोत्पलसमायुतम् ॥ २०
प्रविश्य तद्वनं घोरं वीक्षमाणाः समन्ततः ।
शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधं ददृशुस्ततः ॥ २१
उपेत्य तु तदा राजन् न्यग्रोधं ते महारथाः ।
ददृशुर्द्विपदां श्रेष्ठाः श्रेष्ठं तं वै वनस्पतिम् २२
तेऽवतीर्य रथेभ्यश्च विप्रमुच्य च वाजिनः ।
उपस्पृश्य यथान्यायं सन्ध्यामन्वासत प्रभो
ततोऽस्तं पर्वतश्रेष्ठमनुप्राप्ते दिवाकरे ।
सर्वस्य जगतो धात्री शर्वरी समपद्यत ॥ २४
ग्रहनक्षत्रताराभिः संपूर्णाभिरलंकृतम् ।
नभोंऽशुकमिवाभाति प्रेक्षणीयं समन्ततः २५
इच्छया ते प्रवल्गन्ति
ये सत्त्वा रात्रिचारिणः ।
दिवाचराश्च ये सत्त्वा-
स्ते निद्रावशमागताः ॥ २६
रात्रिचराणां सत्त्वानां
निर्घोषोऽभूत्सुदारुणः ।
क्रव्यादाश्च प्रमुदिता
घोरा प्राप्ता च शर्वरी ॥ २७
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे
दुःखशोकसमन्विताः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणि-
रुपोपविविशुः समम् ॥ २८
तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समीपतः
तमेवार्थमतिक्रान्तं कुरुपाण्डवयोः क्षयम् २९
निद्रया च परीताङ्गा निषेदुर्धरणीतले ।
श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः ॥
ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ ।
सुखोचितावदुःखार्हौ निषण्णौ धरणीतले ॥
तौ तु सुप्तौ महाराज श्रमशोकसमन्वितौ ।
महार्हशयनोपेतौ भूमावेव ह्यनाथवत् ॥ ३२
क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत ।
न वै स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव श्वसन्
न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानो हि मन्युना ।
वीक्षां चक्रे महाबाहुस्तद्वनं घोरदर्शनम् ॥
वीक्षमाणो वनोद्देशं नानासत्त्वैर्निषेवितम् ।
अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसैर्युतम् ॥ ३५
तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन् ।
सुखं स्वपन्ति कौरव्य पृथक् पृथगुपाश्रयाः ॥
सुप्तेषु तेषु काकेषु विश्रब्धेषु समन्ततः ।
सोऽपश्यत्सहसा यान्तमुलूकं घोरदर्शनम् ॥
महास्वनं महाकायं हर्यक्षं बभ्रुपिङ्गलम् ।
सुदीर्घघोणानखरं सुपर्णमिव वेगितम् ३८
सोऽथ शब्दं मृदुं कृत्वा लीयमान इवाण्डजः
न्यग्रोधस्य ततः शाखां प्रार्थयामास भारत ॥
सन्निपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहङ्गमः ।
सुप्ताञ्जघान सुबहून्वायसान्वायसान्तकः ४०
केषाञ्चिदच्छिनत्पक्षाञ्छिरांसि च चकर्त ह
चरणांश्चैव केषाञ्चिद्बभञ्ज चरणायुधः ॥ ४१
+क्षणेनाहनद्बलवान्येऽस्य दृष्टिपथे स्थिताः ।
तेषां शरीरावयवैः शरीरैश्च विशांपते ॥ ४२
न्यग्रोधमण्डलं सर्वं
संछन्नं सर्वतोऽभवत् ।
तांस्तु हत्वा ततः काकान्
कौशिको मुदितोऽभवत् ॥ ४३
प्रतिकृत्य यथाकामं शत्रूणां शत्रुसूदनः ।
तद्दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतं निशि ॥

---

अन्वासत उपासितवन्तः ॥ २३ ॥ अलंकृतं रजतबिंदुचित्रितं अंशुकं वस्त्रम् ॥ २५ ॥ शयनोपेतौ प्रागिति शेषः ॥ ३२ ॥ पर्यणामयन् परिणीतवन्त आसन् ॥ ३६ ॥ हर्यक्षं हरिन्माणिनिभलोचनम् । घोणा नासा नखरः तीक्ष्णनखः ॥ ३८ ॥ सोपधं सकपटम् ॥ ४४ ॥ + ' क्षणेनाघ्नत् स बलवान् ' इति पाठान्तरम् ।

तद्भावे कृतसंकल्पो द्रौणिरेकोऽन्वचिन्तयत्।
उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे ॥ ४५
शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तः कालश्च मे मतः।
नाद्य शक्या मया हन्तुं पांडवा जितकाशिनः
बलवन्तः कृतोत्साहाः प्राप्तलक्षाः प्रहारिणः
राज्ञः सकाशात्तेषां तु प्रतिज्ञातो वधो मया॥
पतङ्गाग्निसमां वृत्तिमास्थायात्मविनाशिनीम्
न्यायतो युध्यमानस्य प्राणत्यागो न संशयः॥
छद्मना च भवेत्सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान्
ततः संशयितादर्थाद्योऽर्थो निःसंशयो भवेत्
तं जना बहु मन्यन्ते ये च शास्त्रविशारदाः।
यच्चाप्यत्र भवेद्वाच्यं गर्हितं लोकनिन्दितम्॥
कर्तव्यं तन्मनुष्येण क्षत्रधर्मेण वर्तता।
निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे
सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः।
अस्मिन्नर्थे पुरा गीताः श्रूयन्ते धर्मचिन्तकैः॥
श्लोका न्यायमवेक्षद्भि-
स्तत्त्वार्थास्तत्त्वदर्शिभिः।
परिश्रान्ते विदीर्णे वा
भुञ्जाने वापि शत्रुभिः ॥ ५३
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्तव्यं रिपोर्बलम्।
निद्रार्तमर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम् ॥ ५४
भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद्भवेत्।
इत्येवं निश्चयं चक्रे सुप्तानां निशि मारणे॥५५
पाण्डूनां सह पाञ्चालैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
स क्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः ५६
सुप्तौ प्राबोधयत्तौ तु मातुलं भोजमेव च।
तौ प्रबुद्धौ महात्मानौ कृपभोजौ महाबलौ ॥
नोत्तरं प्रतिपद्येतां तत्र युक्तं ह्रिया वृतौ।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पविह्वलमब्रवीत् ॥
हतो दुर्योधनो राजा एकवीरो महाबलः।
यस्यार्थे वैरमस्माभिरासक्तं पाण्डवैः सह५९
एकाकी बहुभिः क्षुद्रैराहवे शुद्धविक्रमः।
पातितो भीमसेनेन एकादशचमूपतिः ॥ ६०
वृकोदरेण क्षुद्रेण सुनृशंसमिदं कृतम्।
मूर्धाभिषिक्तस्य शिरः पादेन परिमृद्नता॥
विनर्दन्ति च पाञ्चालाः
क्ष्वेलन्ति च हसन्ति च।
धमन्ति शङ्खाञ्शतशो
हृष्टा घ्नन्ति च दुन्दुभीन् ॥ ६२
वादित्रघोषस्तुमुलो विमिश्रः शङ्खनिःस्वनैः।
अनिलेनेरितो घोरो दिशः पूरयतीव ह ६३
अश्वानां हेषमाणानां गजानां चैव बृंहताम्।
सिंहनादश्च शूराणां श्रूयते सुमहानयम् ॥ ६४
दिशं प्राचीं समाश्रित्य
हृष्टानां गच्छतां भृशम्।
रथनेमिस्वनाश्चैव
श्रूयन्ते लोमहर्षणाः ॥ ६५
पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां यदिदं कदनं कृतम्।
वयमेव त्रयः शिष्टा अस्मिन्महति वैशसे ६६
केचिन्नागशतप्राणाः केचित्सर्वास्त्रकोविदाः
निहताः पाण्डवेयैस्ते मन्ये कालस्य पर्ययम्
एवमेतेन भाव्यं हि नूनं कार्येण तत्त्वतः।
यथा ह्यस्येदृशी निष्ठा कृतकार्येऽपि दुष्करे॥
भवतोऽस्तु यदि प्रज्ञा न मोहादपनीयते।
व्यापन्नेऽस्मिन्महत्यर्थे यन्नः श्रेयस्तदुच्यताम्

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

कृप उवाच।
श्रुतं ते वचनं सर्वं यद्यदुक्तं त्वया विभो। ममापि तु वचः किञ्चिच्छृणुष्वाद्य महाभुज १

---

तद्भावे कपटभावे। उपदेश इति।
दुर्जनाचरितं मार्गं प्रमाणं कुर्वते खलाः।
विश्वस्तान्हिंसितुं द्रौणिरुलूकमरोद्गुरुम्॥४५
इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभाव-
दीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ † 'तत्र' इति पाठः।

२

श्रुतं त इति ॥ १ ॥

आबद्धा मानुषाः सर्वे निबद्धाः कर्मणोर्द्वयोः।
दैवे पुरुषकारे च परं ताभ्यां न विद्यते ॥ २
न हि दैवेन सिध्यन्ति कार्याण्येकेन सत्तम।
न चापि कर्मणैकेन द्वाभ्यां सिद्धिस्तु योगतः
ताभ्यामुभाभ्यां सर्वार्था
निबद्धा अधमोत्तमाः।
प्रवृत्ताश्चैव दृश्यन्ते
निवृत्ताश्चैव सर्वशः ॥ ४
पर्जन्यः पर्वते वर्षन्किन्नु साधयते फलम्।
कृष्टे क्षेत्रे तथा वर्षन्किन्न साधयते फलम् ॥ ५
उत्थानं चापि दैवस्य ह्यनुत्थानं च दैवतम्।
व्यर्थं भवति सर्वत्र पूर्वस्तत्र विनिश्चयः ॥ ६
सुवृष्टे च यथा देवे सम्यक् क्षेत्रे च कर्षिते।
बीजं महागुणं भूयात्तथा सिद्धिर्हि मानुषी॥७
तयोर्दैवं विनिश्चित्य स्वयं चैव प्रवर्तते।
प्राज्ञाः पुरुषकारेषु वर्तन्ते दाक्ष्यमाश्रिताः॥८
ताभ्यां सर्वे हि कार्यार्था मनुष्याणां नरर्षभ।
विचेष्टन्तः स्म दृश्यन्ते निवृत्तास्तु तथैव च९
कृतः पुरुषकारश्च सोऽपि दैवेन सिध्यति।
तथास्य कर्मणः कर्तुरभिनिर्वर्तते फलम् १०
उत्थानं च मनुष्याणां दक्षाणां दैववर्जितम्।
अफलं दृश्यते लोके सम्यगप्युपपादितम् ११
तत्रालसा मनुष्याणां ये भवन्त्यमनस्विनः।
उत्थानं ते विगर्हन्ति प्राज्ञानां तन्न रोचते१२
प्रायशो हि कृतं कर्म नाफलं दृश्यते भुवि।
अकृत्वा च पुनर्दुःखं कर्म पश्येन्महाफलम्१३
चेष्टामकुर्वँल्लभते यदि किञ्चिद्यदृच्छया।
यो वा न लभते कृत्वा दुर्दर्शौ तावुभावपि१४
शक्नोति जीवितुं दक्षो
नालसः सुखमेधते।
दृश्यन्ते जीवलोकेऽस्मिन्
दक्षाः प्रायो हितैषिणः ॥ १५
यदि दक्षः समारम्भात्
कर्मणो नाश्नुते फलम्।
नास्य वाच्यं भवेत्किञ्चि-
ल्लब्धव्यं वाऽधिगच्छति ॥ १६
अकृत्वा कर्म यो लोके फलं विन्दति धिष्ठितः
स तु वक्तव्यतां याति द्वेष्यो भवति भूयशः
एवमेतदनादृत्य वर्तते यस्त्वतोऽन्यथा।
स करोत्यात्मनोऽनर्थानेष बुद्धिमतां नयः ॥
हीनं पुरुषकारेण यदि दैवेन वा पुनः ।
कारणाभ्यामथैताभ्यामुत्थानमफलं भवेत् ॥
हीनं पुरुषकारेण कर्म त्विह न सिद्ध्यति।
दैवतेभ्यो नमस्कृत्य यस्त्वर्थान्सम्यगीहते ॥
दक्षो दाक्षिण्यसंपन्नो न स मोघैर्विहन्यते ॥
सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते ॥ २१
आपृच्छति च यच्छ्रेयः करोति च हितं वचः
उत्थायोत्थाय हि सदा प्रष्टव्या वृद्धसंमताः
ते स्म योगे परं मूलं तन्मूला सिद्धिरुच्यते।
वृद्धानां वचनं श्रुत्वा योऽभ्युत्थानं प्रयोजयेत्
उत्थानस्य फलं सम्यक्तदा स लभतेऽचिरात्
रागात्क्रोधाद्भयाल्लोभाद्योऽर्थानीहति मानवः
अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः
सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥

दैवे आसमन्तात् बद्धाः पुरुषकारे निहीनतया बद्धाः। तेन दैवं प्रधानं पुरुषकार उपसर्जनमित्युक्तं भवति ॥ २ ॥ वर्षन् किं फलं न साधयतेऽपि तु साधयत्येव। कृषिं विनापि वनेचराः केवलं पर्जन्येन जीवन्ति न तु कृषीवलाः केवलया कृष्या जीवन्ति। एवं पुरुषकारो दैवमपेक्षते दैवं तु नातीव पुरुषकारापेक्षमिति भावः ॥ ५ ॥ एतदेवाह-**उत्थानमिति**। दैवस्य प्रधानस्य उत्थानं पुरुषकारो व्यर्थं भवति तथाऽनुत्थानं उत्थानहीनं दैवमपि व्यर्थमिति पक्षद्वयं सर्वत्र व्यवस्यति तत्र पूर्व एव पक्षः श्रेयानित्यर्थः ॥ ६ ॥ द्वयोरानुकूल्यं श्रेष्ठतरमित्याह-**सुवृष्ट इति** ॥७॥ दैवं बलवदिति शेषः यतः स्वयमपि पुरुषकारं विनापि प्रवर्तते फलं दातुमिति शेषः। तर्हि किं पुरुषकारेणेत्याशंक्याह-**प्राज्ञा इति**। पुरुषापराधनिवृत्तिमात्रं तत्फलमित्यर्थः ॥ ८ ॥ विचेष्टन्तः प्रवृत्ताः दृश्यन्ते लोकदृष्टयेत्यर्थः ॥ ९ ॥ कर्म अकृत्वा दुःखं पश्येदित्यपि प्रायशोऽस्ति ॥ १३ ॥ दुर्दर्शौ दुर्लभौ चेष्टावान् लभते निश्चेष्टो न लभत इत्युत्सर्गमात्रमित्यर्थः ॥१४॥ **यदिति**। दक्षो निन्द्यतां न यातीति भावः ॥१६ अदक्षस्तु परप्रयत्नार्जितेन जीवन्नपि भोक्तुमेवायं समर्थो नार्जयितुमिति निन्द्यत इत्याहाकृत्वेति ॥१७॥ एतत् दैवदाक्ष्ययोः साहित्यं अन्यथा तयोरन्यतरालम्बनेन ॥ १८ ॥ एतदेव स्पष्टयति-**हीनमिति**। पुरुषकारेण हीनं दैवोत्थानमफलं एव दैवहीनं पुरुषकारस्योत्थानमपि तस्मात् द्वाभ्यामप्युत्थातव्यमित्यर्थः ॥ १९ ॥ कर्म दैवम्। फलितमाह-**दैवतेभ्य इति** ॥ २० ॥ ईहां विवृणोति—**सम्यगिति** ॥ २१ ॥ योगे अलब्धलाभे ॥ २३ ॥ अनीशः अजितचित्तः अवमानी परमवजानन् ॥ २५ ॥

असमर्थः समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः ।
हितबुद्धीननादृत्य संमंत्र्यासाधुभिः सह ॥
वार्यमाणोऽकरोद्वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः ।
पूर्वमप्यतिदुःशीलो न धैर्यं कर्तुमर्हति ॥ २७
तपत्यर्थे विपन्ने हि मित्राणां न कृतं वचः ।
अनुवर्तामहे यत्तु तं वयं पापपूरुषम् ॥ २८
अस्मानप्यनयस्तस्मात्प्राप्तोयं दारुणो महान्
अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता ॥
बुध्दिश्चिन्तयते किञ्चित्स्वं श्रेयो नावबुद्ध्यते
मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः सुहृदो जनाः ॥
तत्रास्य बुद्धिर्विनयस्तत्र श्रेयश्च पश्यति ।
ततोस्य मूलं कार्याणां बुद्ध्या निश्चित्य वै बुधाः
तेऽत्र पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत्कर्तव्यं तथा भवेत् ।
ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह ॥
उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिम् ।
ते पृष्टास्तु वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरम् ॥
तदस्माभिः पुनः कार्यमिति मे नैष्ठिकी मतिः
अनारंभात्तु कार्याणां नार्थः संपद्यते क्वचित्
कृते पुरुषकारे तु येषां कार्यं न सिद्ध्यति ।
दैवेनोपहतास्ते तु नात्र कार्या विचारणा ३५

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिकृपसंवादे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

सञ्जय उवाच ।
कृपस्य वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं शुभम् ।
अश्वत्थामा महाराज दुःखशोकसमन्वितः १
दह्यमानस्तु शोकेन प्रदीप्तेनाग्निना यथा ।
क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत ॥ २
पुरुषे पुरुषे बुद्धिर्या या भवति शोभना ।
तुष्यन्ति च पृथक् सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया
सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम्
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति ४
सर्वस्य हि स्वका प्रज्ञा साधुवादे प्रतिष्ठिता ।
परबुद्धिं च निन्दन्ति स्वां प्रशंसन्ति चासकृत्
कारणान्तरयोगेन योगे येषां समागतिः ।
अन्योन्येन च तुष्यन्ति बहु मन्यन्ति चासकृत्
तस्यैव तु मनुष्यस्य सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
कालयोगे विपर्यासं प्राप्यान्योन्यं विपद्यते
विचित्रत्वात्तु चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः
चित्तवैक्लव्यमासाद्य सा सा बुद्धिः प्रजायते
यथा हि वैद्यः कुशलो
ज्ञात्वा व्याधिं यथाविधि ।
भैषज्यं कुरुते योगा-
त्प्रशमार्थमिति प्रभो ॥ ९
एवं कार्यस्य योगार्थं बुद्धिं कुर्वन्ति मानवाः
प्रज्ञया हि स्वया युक्तास्तां च निन्दन्ति मानवाः
अन्यया यौवने मर्त्यो
बुद्ध्या भवति मोहितः ।
मध्येऽन्यया जरायां तु
सोऽन्यां रोचयते मतिम् ॥ ११
व्यसनं वा महाघोरं
समृद्धिं चापि तादृशीम् ।
अवाप्य पुरुषो भोज
कुरुते बुद्धिवैकृतम् ॥ १२
एकस्मिन्नेव पुरुषे सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
भवत्यकृतधर्मत्वात्सा तस्यैव न रोचते ॥ १३
निश्चित्य तु यथाप्रज्ञं यां मतिं साधु पश्यति
तया प्रकुरुते भावं सा तस्योद्योगकारिका ॥
सर्वो हि पुरुषो भोज साध्वेतदिति निश्चितः
कर्तुमारभते प्रीतो मरणादिषु कर्मसु ॥ १५

---

तपति संतापं प्राप्नोति भीमेन भग्नोरुः सन् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

कृपस्येति ॥ १ ॥ सर्वात्मानमित्यत्र सर्वः आत्मानमिति च्छेदः । सन्धिरार्षः ॥ ४ ॥ योगे समुदाये ॥ ६ ॥ हे भोज हे कृतवर्मन् एकमेव संबोधयन् कृपस्य मनासि अनादरं सूचयति ॥ १२ ॥ अकृतधर्मत्वात् अवसरानुरोधात् इदानीं मम शांतिबुद्धिर्न रोचते इत्यर्थः ॥ १३ ॥

सर्वे हि बुद्धिमाज्ञाय प्रज्ञां वापि स्वकां नराः
चेष्टन्ते विविधां चेष्टां हितमित्येव जानते ॥
उपजाता व्यसनजा येयमद्य मतिर्मम ।
युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीम्
प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा कर्म तासु विधाय च
वर्णे वर्णे समाधत्ते ह्येकैकं गुणभाग्गुणम् १८
ब्राह्मणे वेदमग्र्यं तु क्षत्रिये तेज उत्तमम् ।
दाक्ष्यं वैश्ये च शूद्रे च सर्ववर्णानुकूलताम् ॥
अदान्तो ब्राह्मणोऽसाधु-
निस्तेजाः क्षत्रियोऽधमः ।
अदक्षो निन्द्यते वैश्यः
शूद्रश्च प्रतिकूलवान् ॥ २०
सोऽस्मि जातः कुले श्रेष्ठे
ब्राह्मणानां सुपूजिते ।
मन्दभाग्यतयाऽस्म्येतं-
क्षत्रधर्ममनुष्ठितः ॥ २१
क्षत्रधर्मं विदित्वाहं यदि ब्राह्मण्यमाश्रितः ।
प्रकुर्यां सुमहत्कर्म न मे तत्साधुसंमतम् २२
धारयंश्च धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि ॥
सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्ममुपास्य तम् ।
गन्ताऽस्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महात्मनः
अद्य स्वप्स्यन्ति पाञ्चाला
विश्वस्ता जितकाशिनः ।
विमुक्तयुग्यकवचा
हर्षेण च समन्विताः ॥ २५
जयं मत्वाऽऽत्मनश्चैव
श्रान्ता व्यायामकर्शिताः ।
तेषां निशि प्रसुप्तानां
सुस्थानां शिबिरे स्वके ॥ २६

अवस्कन्दं करिष्यामि
शिबिरस्याद्य दुष्करम् ।
तानवस्कन्द्य शिबिरे
प्रेतभूतविचेतसः ॥ २७
सूदयिष्यामि विक्रम्य मघवानिव दानवान् ।
अद्य तान्सहितान्सर्वान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ॥
सूदयिष्यामि विक्रम्य
कक्षं दीप्त इवानलः ।
निहत्य चैव पाञ्चालान्
शान्तिं लब्धाऽस्मि सत्तम ॥ २९
पाञ्चालेषु भविष्यामि सूदयन्नद्य संयुगे ।
पिनाकपाणिः संक्रुद्धः स्वयं रुद्रः पशुष्विव ॥
अद्याहं सर्वपाञ्चालान्निहत्य च निकृत्य च
अर्दयिष्यामि संहृष्टो रणे पाण्डुसुतांस्तथा ३१
अद्याहं सर्वपाञ्चालैः कृत्वा भूमिं शरीरिणीं
प्रहृत्यैकैकशस्तेषु भविष्याम्यनृणः पितुः ३२
दुर्योधनस्य कर्णस्य भीष्मसैन्धवयोरपि ।
गमयिष्यामि पाञ्चालान्पदवीमद्य दुर्गमाम् ॥
अद्य पाञ्चालराजस्य
धृष्टद्युम्नस्य वै निशि ।
न चिरात्प्रमथिष्यामि
पशोरिव शिरो बलात् ॥ ३४
अद्य पाञ्चालपाण्डूनां
शयितानात्मजान्निशि ।
खड्गेन निशितेनाजौ
प्रमथिष्यामि गौतम ॥ ३५
अद्य पाञ्चालसेनां तां
निहत्य निशि सौप्तिके ।
कृतकृत्यः सुखी चैव
भविष्यामि महामते ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

विदित्वा आश्रित्य यदि ब्राह्मण्यं संश्रितः सन् शमादिरूपं सुमहत्कर्म प्रकुर्यां तत् मे साधु संमतं न अवलम्बितस्य च क्षत्रधर्मनिर्वाहोऽवश्यं कर्तव्य इत्यर्थः ॥ २२ ॥ गन्तास्मि गमिष्यामि पदवीमानृण्यम् ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

कृप उवाच ।
दिष्ट्या ते प्रतिकर्तव्ये मतिर्जातेयमच्युत ।
न त्वां वारयितुं शक्तो वज्रपाणिरपि स्वयम्॥
अनुयास्यावहे त्वां तु प्रभाते सहितावुभौ ।
अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्तकवचध्वजः ॥ २
अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः ।
परानभिमुखं यान्तं रथावास्थाय दंशितौ ॥३
आवाभ्यां सहितः शत्रून्
श्वो निहन्ता समागमे ।
विक्रम्य रथिनां श्रेष्ठ
पाञ्चालान्सपदानुगान् ॥ ४
शक्तस्त्वमसि विक्रम्य विश्रमस्व निशामिमां
चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम्
विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद ।
समेत्य समरे शत्रून्वधिष्यसि न संशयः ॥ ६
न हि त्वां रथिनां श्रेष्ठं प्रगृहीतवरायुधम् ।
जेतुमुत्सहते शश्वदपि देवेषु वासवः ॥ ७
कृपेण सहितं यान्तं गुप्तं च कृतवर्मणा ।
को द्रौणिं युधि संरब्धं योधयेदपि देवराट्
ते वयं निशि विश्रान्ता
विनिद्रा विगतज्वराः ।
प्रभातायां रजन्यां वै
निहनिष्याम शात्रवान् ॥ ९
तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि मम चैव न संशयः ।
सात्वतोऽपि महेष्वासो नित्यं युद्धेषु कोविदः
ते वयं सहितास्तात सर्वाञ्शत्रून्समागतान्
प्रसह्य समरे हत्वा प्रीतिं प्राप्स्याम पुष्कलां
विश्रमस्व त्वमव्यग्रः स्वप चेमां निशां सुखम्।
अहं च कृतवर्मा च त्वां प्रयान्तं नरोत्तमम्॥
अनुयास्याव सहितौ धन्विनौ परतापनौ ।
रथिनं त्वरया यान्तं रथमास्थाय दंशितौ१३
स गत्वा शिबिरं तेषां नाम विश्राव्य चाहवे
ततः कर्तासि शत्रूणां युध्यतां कदनं महत् ॥
कृत्वा च कदनं तेषां प्रभाते विमलेऽहनि ।
विहरस्व यथा शक्रः सूदयित्वा महासुरान् ॥
त्वं हि शक्तो रणे जेतुं पाञ्चालानां वरूथिनीम्
दैत्यसेनामिव क्रुद्धः सर्वदानवसूदनः ॥ १६
मया त्वां सहितं संख्ये गुप्तं च कृतवर्मणा
न सहेत विभुः साक्षाद्वज्रपाणिरपि स्वयम्१७
न चाहं समरे तात
कृतवर्मा न चैव हि ।
अनिर्जित्य रणे पाण्डू-
न्न च यास्यामि कर्हिचित् ॥ १८
हत्वा च समरे क्रुद्धान्
पाञ्चालान् पाण्डुभिः सह ।
निवर्तिष्यामहे सर्वे
हता वा स्वर्गगा वयम् ॥ १९
सर्वोपायैः सहायास्ते प्रभाते वयमाहवे ।
सत्यमेतन्महाबाहो प्रब्रवीमि तवानघ ॥ २०
एवमुक्तस्ततो द्रौणिर्मातुलेन हितं वचः ।
अब्रवीन्मातुलं राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः २१
आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च
अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः ।
तदिदं समनुप्राप्तं पश्य मेऽद्य चतुष्टयम् ॥ २२
पश्य भागश्चतुर्थो मे स्वप्नमह्नाय नाशयेत् ।
किं नाम दुःखं लोकेऽस्मिन्पितुर्वधमनुस्मरन्
हृदयं निर्दहन्मेऽद्य रात्र्यहानि न शाम्यति ।
यथा च निहतः पापैः पिता मम विशेषतः ॥
प्रत्यक्षमपि ते सर्वं तन्मे मर्माणि कृन्तति ।
कथं हि मादृशो लोके मुहूर्तमपि जीवति २५
द्रोणो हतेति यद्वाचः पञ्चालानां शृणोम्यहं
धृष्टद्युम्नमहत्वा तु नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २६
स मे पितुर्वधाद्वध्यः पाञ्चाला ये च सङ्गताः
विलापो भग्नसक्थस्य यस्तु राज्ञो मया श्रुतः
स पुनर्हृदयं कस्य क्रूरस्यापि न निर्दहेत् ।
कस्य ह्यकरुणस्यापि नेत्राभ्यामश्रु नाव्रजेत्॥
नृपतेर्भग्नसक्थस्य श्रुत्वा तादृग्वचः पुनः ।
यश्चायं मित्रपक्षो मे मयि जीवति निर्जितः॥
शोकं मे वर्धयत्येष वारिवेग इवार्णवम् ।
एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्॥

---

**४**

**दिष्ट्येति** ॥ १ ॥ निहन्ता निहनिष्यसि ॥ ४ ॥ चतुर्थं आतुरादीनां चतुर्णां मध्ये एको भागः अमर्षः मे मम स्वप्नं अह्नाय झटिति नाशयेत् तस्मात् स्वपेत्युक्तं तन्न युज्यते अनुस्मरन् अनुस्मरतः न शाम्यति अमर्ष इत्यर्थः । सार्धः श्लोकः ॥ २३ ॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां च तानहं परिरक्षितान्।
अविषह्यतमान्मन्ये महेन्द्रेणापि सत्तम ॥ ३१
न चापि शक्तः संयन्तुं
कोपमेतं समुत्थितम्।
तं न पश्यामि लोकेऽस्मिन्
यो मां कोपान्निवर्तयेत् ॥ ३२
तथैव निश्चिता बुद्धिरेषा साधुमता मम।
वार्तिकैः कथ्यमानस्तु मित्राणां मे पराभवः
पाण्डवानां च विजयो हृदयं दहतीव मे।
अहं तु कदनं कृत्वा शत्रूणामद्य सौप्तिके।
ततो विश्रमिता चैव स्वप्ता च विगतज्वरः ३४

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

कृप उवाच।
शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः।
नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः
तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षते।
न च किञ्चन जानाति सोऽपि धर्मार्थनिश्चयम्
चिरं ह्यपि जडः शूरः पण्डितं पर्युपास्य हि।
न स धर्मान्विजानाति दर्वी सूपरसानिव ३
मुहूर्तमपि तं प्राज्ञः पण्डितं पर्युपास्य हि।
क्षिप्रं धर्मान्विजानाति जिह्वा सूपरसानिव ४
शुश्रूषुस्त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः।
जानीयादागमान्सर्वान् ग्राह्यं च न विरोधयेत्
अनेयस्त्ववमानी यो दुरात्मा पापपूरुषः।
दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहुपापकम् ६
नाथवन्तं तु सुहृदः प्रतिषेधन्ति पातकात्।
निवर्तते तु लक्ष्मीवान्नालक्ष्मीवान्निवर्तते ७
यथा ह्युच्चावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते।
तथैव सुहृदा शक्यो नशक्यस्त्ववसीदति ॥
तथैव सुहृदं प्राज्ञं कुर्वाणं कर्म पापकम्।
प्राज्ञाः संप्रतिषेधन्ति यथाशक्ति पुनः पुनः ९
स कल्याणे मनः कृत्वा
नियम्यात्मानमात्मना।
कुरु मे वचनं तात
येन पश्चान्न तप्यसे ॥ १०
न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः।
तथैवापास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम् ११
ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्युः शरणा गताः
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः १२
अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्तकवचा विभो
विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः १३
यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः।
व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे ॥ १४
सर्वास्त्रविदुषां लोके
श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः।
न च ते जातु लोकेऽस्मिन्
सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम् ॥ १५
त्वं पुनः सूर्यसङ्काशः श्वोभूत उदिते रवौ।
प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान्
असंभावितरूपं हि त्वयि कर्म विगर्हितम्।
शुक्ले रक्तमिव न्यस्तं भवेदिति मतिर्मम ॥ १७
अश्वत्थामोवाच।
एवमेव यथाऽऽत्थ त्वं मातुलेह न संशयः।
तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः ॥ १८
प्रत्यक्षं भूमिपालानां भवतां चापि सन्निधौ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः १९
कर्णश्च पतिते चक्रे रथस्य रथिनां वरः।
उत्तमे व्यसने मग्नो हतो गाण्डीवधन्वना २०
तथा शान्तनवो भीष्मो
न्यस्तशस्त्रो निरायुधः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य
हतो गाण्डीवधन्वना ॥ २१

---

स्वप्ता स्वप्स्यामि ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

**शुश्रूषुरिति**। दुर्मेधाः मूढः अनियतेति छेदः ॥१॥ अनेयः सन्मार्गं नेतुमशक्यः दिष्टं उपदिष्टम् ॥ ६॥ अप्लवे इति छेदः ॥ १४ ॥ विदलीकृतः दलितः ॥ १८ ॥ **प्रत्यक्षमिति**। दुष्टो दौष्ट्येनैव जेतव्य इत्यर्थः ॥१९॥

भूरिश्रवा महेष्वासस्तथा प्रायगतो रणे ।
क्रोशतां भूमिपालानां युयुधानेन पातितः२२
दुर्योधनश्च भीमेन समेत्य गदया रणे ।
पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः २३
एकाकी बहुभिस्तत्र परिवार्य महारथैः ।
अधर्मेण नरव्याघ्रो भीमसेनेन पातितः ॥ २४
विलापो भग्नसक्थस्य यो मे राज्ञः परिश्रुतः ।
वार्तिकाणां कथयतां स मे मर्माणि कृन्तति
एवं चाधार्मिकाः पापाः
पञ्चाला भिन्नसेतवः ।
तानेवं भिन्नमर्यादान्
किं भवान्न विगर्हति ॥ २६
पितृहन्तॄनहं हत्वा पाञ्चालान्निशि सौप्तिके।
कामं कीटः पतङ्गो वा जन्म प्राप्य भवामि वै
त्वरे चाहमनेनाद्य यदिदं मे चिकीर्षितम् ।
तस्य मे त्वरमाणस्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्
न स जातः पुमाँल्लोके कश्चिन्न स भविष्यति।
यो मे व्यावर्तयेदेतां वधे तेषां कृतां मतिम् ॥
सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
एकांते योजयित्वाश्वान्प्रायादभिमुखः परान्
तमब्रूतां महात्मानौ भोजशारद्वतावुभौ ।
किमर्थं स्यन्दनो युक्तः किञ्च कार्यं चिकीर्षितम्
एकसार्थप्रयातौ स्वस्त्वया सह नरर्षभ ।
समदुःखसुखौ चापि नावां शङ्कितुमर्हसि ३२
अश्वत्थामा तु संक्रुद्धः
पितुर्वधमनुस्मरन् ।
ताभ्यां तथ्यं तथाऽऽचख्यौ
यदस्यात्मचिकीर्षितम् ॥ ३३
हत्वा शतसहस्राणि योधानां निशितैः शरैः
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ३४
तं तथैव हनिष्यामि न्यस्तधर्माणमद्य वै ।
पुत्रं पाञ्चालराजस्य पापं पापेन कर्मणा ३५
कथं च निहतः पापः पाञ्चाल्यः पशुवन्मया
शस्त्रेण विजिताँल्लोकान्नाप्नुयादिति मे मतिः
क्षिप्रं सन्नद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ ।
मामास्थाय प्रतीक्षेतां रथवर्यौ परंतपौ ॥ ३७
इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान्
तमन्वगात्कृपो राजन् कृपवर्मा च सात्वतः
ते प्रयाता व्यरोचन्त परानभिमुखास्त्रयः ।
हूयमाना यथा यज्ञे समिद्धा हव्यवाहनाः ३९
ययुश्च शिबिरं तेषां संप्रसुप्तजनं विभो ।
द्वारदेशं तु संप्राप्य द्रौणिस्तस्थौ महारथः ४०

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिगमने
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

धृतराष्ट्र उवाच ।
द्वारदेशे ततो द्रौणिमवस्थितमवेक्ष्य तौ ।
अकुर्वतां भोजकृपौ किं सञ्जय वदस्व मे ॥ १
सञ्जय उवाच ।
कृतवर्माणमामन्त्र्य कृपं च स महारथः ।
द्रौणिर्मन्युपरीतात्मा शिबिरद्वारमागमत् ॥२
तत्र भूतं महाकायं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
सोऽपश्यद्द्वारमाश्रित्य तिष्ठन्तं लोमहर्षणम् ॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं महारुधिरविस्रवम् ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥४
बाहुभिः स्वायतैः पीनैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ।
बद्धाङ्गदमहासर्पं ज्वालामालाकुलाननम् ॥५
दंष्ट्राकरालवदनं व्यादितास्यं भयानकम् ।
नयनानां सहस्रैश्च विचित्रैरभिभूषितम् ॥ ६

अधर्मेण नाभेरधस्तात्प्रहारेण ॥ २३ ॥ वार्तिकाणां वार्ताहराणाम् ॥ २५ ॥ एकसार्थप्रयातौ स्वः एकसाहित्येन प्रयत्नवन्तौ स्वः अस्तेर्लट उत्तमस्य द्विवचनम्॥३२॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

**द्वारदेश इति** ॥ १ ॥ बद्धाः महासर्पाः अङ्गदरूपा येन तम् अग्निज्वालाव्याप्तमुखं क्रुद्धमित्यर्थः ॥ ५ ॥ नयनानां सहस्रैरित्यनेनालौकिकत्वं दर्शितम् ॥ ६ ॥ रथशक्तिं

नैव तस्य वपुः शक्यं प्रवक्तुं वेष एव च ।
सर्वथा तु तदालक्ष्य स्फुटेयुरपि पर्वताः ॥ ७
तस्यास्य नासिकाभ्यां च
श्रवणाभ्यां च सर्वशः ।
तेभ्यश्चाक्षिसहस्रेभ्यः
प्रादुरासन्महार्चिषः ॥ ८
तथा तेजोमरीचिभ्यः शंखचक्रगदाधराः ।
प्रादुरासन् हृषीकेशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
तदत्यद्भुतमालोक्य भूतं लोकभयंकरम् ।
द्रौणिरव्यथितो दिव्यैरस्त्रवर्षैरवाकिरत् ॥ १०
द्रौणिमुक्ताञ्छरांस्तांस्तु तद्भूतं महदग्रसत् ।
उदधेरिव वार्योघान्पावको वडवामुखः ॥ ११
अग्रसत्तांस्तथाभूतं
द्रौणिना प्रहिताञ्शरान् ।
अश्वत्थामा तु संप्रेक्ष्य
शरौघांस्तान्निरर्थकान् ॥ १२
रथशक्तिं मुमोचासौ दीप्तामग्निशिखामिव ।
सा तमाहत्य दीप्ताग्रा रथशक्तिरदीर्यत ॥ १३
युग्मान्ते सूर्यमाहत्य महोल्केव दिवश्च्युता ।
अथ हेमत्सरुं दिव्यं खड्गमाकाशवर्चसम् ॥ १४
कोशात्समुद्बबर्हाशु बिलाद्दीप्तमिवोरगम् ।
ततः खड्गवरं धीमान् भूताय प्राहिणोत्तदा ॥
स तदासाद्य भूतं वै बिलं नकुलवद्ययौ ।
ततः स कुपितो द्रौणिरिन्द्रकेतुनिभां गदाम्
ज्वलन्तीं प्राहिणोत्तस्मै भूतं तामपि चाग्रसत्
ततः सर्वायुधाभावे वीक्षमाणस्ततस्ततः ॥ १७
अपश्यत्कृतमाकाशमनाकाशं जनार्दनैः ।
तदद्भुततमं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रो निरायुधः ॥ १८
अब्रवीदतिसंतप्तः कृपवाक्यमनुस्मरन् ।
ब्रुवतामप्रियं पथ्यं सुहृदां न शृणोति यः ॥ १९
स शोचत्यापदं प्राप्य यथाऽहमतिवर्त्य तौ
शास्त्रदृष्टानविद्धान्यः समतीत्य जिघांसति ॥
स पथः प्रच्युतो धर्मात्कुपथे प्रतिहन्यते ।
गो-ब्राह्मण-नृप-स्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा २१
हीनप्राणजडान्धेषु सुप्तभीतोत्थितेषु च ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राणि च पातयेत् ॥ २२
इत्येवं गुरुभिः पूर्वमुपदिष्टं नृणां सदा ।
सोऽहमुत्क्रम्य पन्थानं शास्त्रदृष्टं सनातनम् ॥
अमार्गेणैवमारभ्य घोरामापदमागतः ।
तां चापदं घोरतरां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४
यदुद्यम्य महत्कृत्यं भयादपि निवर्तते ।
अशक्तश्चैव तत्कर्तुं कर्म शक्तिबलादिह ॥ २५
न हि दैवाद्गरीयो वै मानुषं कर्म कथ्यते ।
मानुष्यं कुर्वतः कर्म यदि दैवान्न सिध्यति ॥
स पथः प्रच्युतो धर्माद्विपदं प्रतिपद्यते ।
प्रतिघातं ह्यविज्ञानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २७
यदारभ्य क्रियां काञ्चिद्भयादिह निवर्तते ।
तदिदं दुष्प्रणीतेन भयं मां समुपस्थितम् ॥ २८
न हि द्रोणसुतः संख्ये निवर्तेत कथञ्चन ।
इदं च सुमहद्भूतं दैवदण्डमिवोद्यतम् ॥ २९
न चैतदभिजानामि चिन्तयन्नपि सर्वथा ।
ध्रुवं येयमधर्मे मे प्रवृत्ता कलुषा मतिः ॥ ३०
तस्याः फलमिदं घोरं प्रतिघाताय कल्पते ।
तदिदं दैवविहितं मम संख्ये निवर्तनम् ॥ ३१
नान्यत्र दैवादुद्यन्तमिह शक्यं कथञ्चन ।
सोऽहमद्य महादेवं प्रपद्ये शरणं विभुम् ॥ ३२
दैवदण्डमिमं घोरं स हि मे नाशयिष्यति ।
कपर्दिनं देवदेवमुमापतिमनामयम् ॥ ३३
कपालमालिनं रुद्रं भगनेत्रहरं हरम् ।
स हि देवोऽत्यगाद्देवांस्तपसा विक्रमेण च ।
तस्माच्छरणमभ्येमि गिरिशं शूलपाणिनम् ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिचिन्तायां
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

चक्रम् ॥ १३ ॥ युग्मान्ते मिथुनराशेरन्ते अतिदीप्तम् १४ अनाकाशं निरवकाशम् ॥ १८ ॥ अतिवर्त्य अतिक्रम्य तौ तयोः कृपकृपवर्मणोर्वाक्यमिति शेषः । शास्त्रदृष्टान् अवध्यत्वेन शास्त्रे ज्ञातान् समतीत्य शास्त्रमुल्लंघ्य ॥ २० ॥ देवा अत्यगात् देवेभ्योऽधिकः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६

७

सञ्जय उवाच

एवं संचिन्तयित्वा तु द्रोणपुत्रो विशांपते।
अवतीर्य रथोपस्थाद्देवेशं प्रणतः स्थितः ॥ १
द्रौणिरुवाच
उग्रं स्थाणुं शिवं रुद्रं शर्वमीशानमीश्वरम्
गिरिशं वरदं देवं भवभावनमीश्वरम् ॥ २
शितिकण्ठमजं शुक्रं दक्षक्रतुहरं हरम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ३
श्मशानवासिनं दृप्तं महागणपतिं विभुम् ।
खट्वाङ्गधारिणं रुद्रं जटिलं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४
मनसा सुविशुद्धेन दुष्करेणाल्पचेतसा ।
सोऽहमात्मोपहारेण यक्ष्ये त्रिपुरघातिनम् ॥
स्तुतं स्तुत्यं स्तूयमानममोघं कृत्तिवाससम् ।
विलोहितं नीलकण्ठमसह्यं दुर्निवारणम् ॥
शक्रं ब्रह्मसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च ।
व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्तं तपतां गतिम् ॥ ७
बहुरूपं गणाध्यक्षं त्र्यक्षं पारिषदप्रियम् ।
धनाध्यक्षं क्षितिमुखं गौरीहृदयवल्लभम् ॥ ८
कुमारपितरं पिङ्गं गोवृषोत्तमवाहनम् ।
तनुवाससमत्युग्रमुमाभूषणतत्परम् ॥ ९
परं परेभ्यः परमं परं यस्मान्न विद्यते ।
इष्वस्त्रोत्तमभर्तारं दिगन्तं देशरक्षिणम् ॥ १०
हिरण्यकवचं देवं चन्द्रमौलिविभूषणम् ।
प्रपद्ये शरणं देवं परमेण समाधिना ॥ ११
इमां चेदापदं घोरां तराम्यद्य सुदुष्कराम् ।
सर्वभूतोपहारेण यक्ष्येऽहं शुचिना शुचिम् १२
इति तस्य व्यवसितं ज्ञात्वा योगात्सुकर्मणः।
पुरस्तात्काञ्चनी वेदी प्रादुरासीन्महात्मनः॥
तस्यां वेद्यां तदा राज-
श्चित्रभानुरजायत।
स दिशो विदिशः खं च
ज्वालाभिरिव पूरयन् ॥ १४
दीप्तास्यनयनाश्चात्र नैकपादशिरोभुजाः ।
रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ॥ १५
द्वीपशैलप्रतीकाशाः प्रादुरासन्महागणाः ।
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च हयगोमायुगोमुखाः ॥ १६
ऋक्षमार्जारवदना व्याघ्रद्वीपिमुखास्तथा ।
काकवक्त्राः प्लवमुखाः शुकवक्त्रास्तथैव च
महाजगरवक्त्राश्च हंसवक्त्राः शितप्रभाः ।
दार्वाघाटमुखाश्चापि चाषवक्त्राश्च भारत१८
कूर्मनक्रमुखाश्चैव शिशुमारमुखास्तथा ।
महामकरवक्त्राश्च तिमिवक्त्रास्तथैव च॥ १९
हरिवक्त्राः क्रौञ्चमुखाः कपोतेभमुखास्तथा।
पारावतमुखाश्चैव मद्गुवक्त्रास्तथैव च ॥ २०
पाणिकर्णाः सहस्राक्षास्तथैव च महोदराः ।
निर्मांसाः काकवक्त्राश्च श्येनवक्त्राश्च भारत
तथैवाशिरसो राजन् ऋक्षवक्त्राश्च भारत ।
प्रदीप्तनेत्रजिह्वाश्च ज्वालावर्णास्तथैव च॥ २२
ज्वालाकेशाश्च राजेन्द्र ज्वलद्रोमचतुर्भुजाः
मेषवक्त्रास्तथैवान्ये तथा छागमुखा नृप २३
शङ्खाभाः शङ्खवक्त्राश्च शङ्खवर्णास्तथैव च ।
शङ्खमालापरिकराः शङ्खध्वनिसमस्वनाः २४
जटाधराः पञ्चशिखा-
स्तथा मुण्डाः कृशोदराः ।
चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्जिह्वाः
शङ्कुकर्णाः किरीटिनः ॥ २५
मौञ्जीधराश्च राजेन्द्र तथा कुञ्चितमूर्धजाः ।
उष्णीषिणो मुकुटिनश्चारुवक्त्राः स्वलंकृताः
पद्मोत्पलापीडधरास्तथा मुकुटधारिणः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः
शतघ्नीवज्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
भुशुण्डीपाशहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥
पृष्ठेषु बद्धेषुधयश्चित्रबाणोत्कटास्तथा ।
सध्वजाः सपताकाश्च सघण्टाः सपरश्वधाः
महापाशोद्यतकरास्तथा लगुडपाणयः ।
स्थूणाहस्ताः खड्गहस्ताः सर्पोच्छ्रितकिरीटिनः
महासर्पाङ्गदधराश्चित्राभरणधारिणः ।
रजोध्वजाः पङ्कदिग्धाः सर्वे शुक्लाम्बरस्रजः
नीलाङ्गाः पिङ्गलाङ्गाश्च मुण्डवक्त्रास्तथैव च
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च झर्झरानकगोमुखान् ॥ ३२
अवादयन्पारिषदाः प्रहृष्टाः कनकप्रभाः ।
गायमानास्तथैवान्ये नृत्यमानास्तथा परे ३३

७

एवमिति ॥ १ ॥ प्लवमुखाः मण्डूकवक्त्राः ॥ १७ ॥ दार्वाघाटः पाक्षिविशेषः ॥ १८ ॥

लङ्घयन्तः प्लवन्तश्च वल्गन्तश्च महारथाः।
धावन्तो जवना मुण्डाः पवनोद्धूतमूर्धजाः॥
मत्ता इव महानागा विनदन्तो मुहुर्मुहुः।
सुभीमा घोररूपाश्च शूलपट्टिशपाणयः॥ ३५
नानाविरागवसनाश्चित्रमाल्यानुलेपनाः।
रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा॥ ३६
हन्तारो द्विषतां शूराः प्रसह्यासह्यविक्रमाः।
पातारोऽसृग्वसौघानां मांसान्त्रकृतभोजनाः
चूडालाः कर्णिकाराश्च प्रहृष्टाः पिठरोदराः।
अतिह्रस्वाऽतिदीर्घाश्च प्रलम्बाश्चातिभैरवाः
विकटाः काललम्बोष्ठा
बृहच्छेफाण्डपिण्डिकाः।
महार्हनानाविकटा
मुण्डाश्च जटिलाः परे॥ ३९
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रां द्यां कुर्युस्ते महीतले।
उत्सहेरंश्च ये हन्तुं भूतग्रामं चतुर्विधम्॥ ४०
ये च वीतभया नित्यं हरस्य भ्रुकुटीसहाः।
कामकारकरा नित्यं त्रैलोक्यस्येश्वरेश्वराः॥
नित्यानन्दप्रमुदिता वागीशा वीतमत्सराः।
प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं ये न यास्यन्ति वै स्मयम्
येषां विस्मयते नित्यं भगवान्कर्मभिर्हरः।
मनोवाक्कर्मभिर्युक्तैर्नित्यमाराधितश्च यैः॥ ४३
मनोवाक्कर्मभिर्भक्तान्पाति पुत्रानिवौरसान्।
पिबन्तोऽसृग्वसाश्चान्ये क्रुद्धा ब्रह्मद्विषां सदा
चतुर्विधात्मकं सोमं ये पिबन्ति च सर्वदा।
श्रुतेन ब्रह्मचर्येण तपसा च दमेन च॥ ४५
ये समाराध्य शूलाङ्कं भवसायुज्यमागताः।
यैरात्मभूतैर्भगवान्पार्वत्या च महेश्वरः॥ ४६
महाभूतगणैर्भुङ्क्ते भूतभव्यभवत्प्रभुः।
नानावादित्रहसितक्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः ४७
सन्त्रासयन्तस्ते विश्वमश्वत्थामानमभ्ययुः।
संस्तुवन्तो महादेवं भाः कुर्वाणाः सुवर्चसः
विवर्धयिषवो द्रौणेर्महिमानं महात्मनः।
जिज्ञासमानास्तत्तेजः सौप्तिकं च दिदृक्षवः

भीमोग्रपरिघालातशूलपट्टिशपाणयः।
घोररूपाः समाजग्मुर्भूतसङ्घाः समन्ततः॥
जनयेयुर्भयं ये स्म त्रैलोक्यस्यापि दर्शनात्।
तान्प्रेक्षमाणोऽपि व्यथां न चकार महाबलः
अथ द्रौणिर्धनुष्पाणिर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
स्वयमेवात्मनात्मानमुपहारमुपाहरत्॥ ५२
धनूंषि समिधस्तत्र पवित्राणि सिताः शराः
हविरात्मवतश्चात्मा तस्मिन् भारत कर्मणि॥
ततः सौम्येन मन्त्रेण द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
उपहारं महामन्युरथात्मानमुपाहरत्॥ ५४
तं रुद्रं रौद्रकर्माणं रौद्रैः कर्मभिरच्युतम्।
अभिष्टुत्य महात्मानमित्युवाच कृताञ्जलिः ५५

द्रौणिरुवाच।

इममात्मानमद्याहं जातमाङ्गिरसे कुले।
स्वग्नौ जुहोमि भगवन्प्रतिगृह्णीष्व मां बलिम्
भवद्भक्त्या महादेव परमेण समाधिना।
अस्यामापदि विश्वात्मन्नुपाकुर्मि तवाग्रतः ५७
त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चासि वै।
गुणानां हि प्रधानानामेकत्वं त्वयि तिष्ठति
सर्वभूताश्रय विभो हविर्भूतमवस्थितम्।
प्रतिगृहाण मां देव यद्यशक्याः परे मया ५९
इत्युक्त्वा द्रौणिरास्थाय
तां वेदीं दीप्तपावकाम्।
सन्त्यज्यात्मानमारुह्य
कृष्णवर्त्मन्युपाविशत्॥ ६०
तमूर्ध्वबाहुं निश्चेष्टं दृष्ट्वा हविरुपस्थितम्।
अब्रवीद्भगवान्साक्षान्महादेवो हसन्निव॥ ६१
सत्यशौचार्जवत्यागै-
स्तपसा नियमेन च।
क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या च
बुद्ध्या च वचसा तथा॥ ६२
यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते॥

---

बृहन्तः शेफाः मेढ्रानि अण्डाः वृषणाः पिण्डिकाः जानुनोरधः पश्चाद्भागश्च येषां ते बृहच्छेफाण्डपिण्डिकाः॥३९॥ चतुर्विधात्मकं सोमम्। अन्नरूपं लतारसरूपम्। अमृतरूपं चन्द्रमण्डलरूपं च क्रमादध्यात्माधियज्ञाधिदैवाधिलोकस्थदेवतारूपा इत्यर्थः ॥४५॥ ततः सौम्येन सोमदैवत्येन मन्त्रेण—
'आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य संगथे।'
इत्यनेन मन्त्रेण। आत्मानं शरीरं उपहारं हविष्यं उपाहरत् उपसादितवान्। **मंत्रार्थस्तु**-हे सोम त्वं आप्यायस्व कथं ते त्वां प्रति विश्वतः सर्वात्मना वृष्ण्यं वृष्णेरीश्वरस्याविर्भावस्थानं शरीरं एतु प्रविशतु ततश्च तेन शरीरेणाप्यायितस्त्वं संगथे संग्रामे वाजस्य वीर्यस्य दाता भव। कर्मणि षष्ठी वाजं भव प्रापय भूप्राप्तावित्यस्य रूपम्॥ ५४ ॥

कुर्वता तातसंमानं त्वां च जिज्ञासता मया।
पाञ्चालाः सहसा गुप्ता मायाश्च बहुशः कृताः
कृतस्तस्यैव संमानः पाञ्चालान् रक्षता मया।
अभिभूतास्तु कालेन नैषामद्यास्ति जीवितम्
एवमुक्त्वा महात्मानं भगवानात्मनस्तनुम्।
आविवेश ददौ चास्मै विमलं खड्गमुत्तमम्६६
अथाविष्टो भगवता भूयो जज्वाल तेजसा।
वेगवांश्चाभवद्युद्धे देवसृष्टेन तेजसा ॥ ६७
तमदृश्यानि भूतानि रक्षांसि च समाद्रवन्।
अभितः शत्रुशिबिरं यान्तं साक्षादिवेश्वरम्॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि द्रौणिकृतशिवार्चने
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

धृतराष्ट्र उवाच।
तथा प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महारथे।
कच्चित्कृपश्च भोजश्च भयार्तौ न व्यवर्तताम्।
कच्चिन्न वारितौ क्षुद्रै रक्षिभिर्नोपलक्षितौ।
असह्यमिति मन्वानौ न निवृत्तौ महारथौ ॥
कच्चिदुन्मथ्य शिबिरं
हत्वा सोमकपाण्डवान्।
दुर्योधनस्य पदवीं
गतौ परमिकां रणे ॥ ३
पञ्चालैर्निहतौ वीरौ कच्चिन्नु स्वपतां क्षितौ।
कच्चित्ताभ्यां कृतं कर्म तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥
सञ्जय उवाच।
तस्मिन्प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महात्मनि।
कृपश्च कृतवर्मा च शिबिरद्वार्यतिष्ठताम् ॥५
अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ।
प्रहृष्टः शनकै राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ६
यत्तौ भवन्तौ पर्याप्तौ सर्वक्षत्रस्य नाशने।
किं पुनर्योधशेषस्य प्रसुप्तस्य विशेषतः ॥ ७
अहं प्रवेक्ष्ये शिबिरं चरिष्यामि च कालवत्।
यथा न कश्चिदपि वां जीवन्मुच्येत मानवः॥८
तथा भवद्भ्यां कार्यं स्या-
दिति मे निश्चिता मतिः।
इत्युक्त्वा प्राविशद्द्रौणिः
पार्थानां शिबिरं महत् ॥ ९
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य विहाय भयमात्मनः।
स प्रविश्य महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह ॥ १०
धृष्टद्युम्नस्य निलयं शनकैरभ्युपागमत्।
ते तु कृत्वा महत्कर्म श्रान्ताश्च बलवद्रणे॥११
प्रसुप्ताश्चैव विध्वस्ताः समेत्य परिधाविताः।
अथ प्रविश्य तद्वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत॥१२
पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत्सुप्तमन्तिकात्।
क्षौमावदाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ १३
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते।
तं शयानं महात्मानं विस्रब्धमकुतोभयम्॥१४
प्राबोधयत पादेन शयनस्थं महीपते।
संबुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रणदुर्मदः ॥ १५
अभ्यजानादमेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथम्।
तमुत्पतन्तं शयनादश्वत्थामा महाबलः ॥ १६
केशेष्वालभ्य पाणिभ्यां निष्पिपेष महीतले
सबलं तेन निष्पिष्टः साध्वसेन च भारत॥१७
निद्रया चैव पाञ्चाल्यो नाशकच्चेष्टितुं तदा।
तमाक्रम्य पदा राजन् कण्ठे चोरसि चोभयोः
नदन्तं विस्फुरन्तं च पशुमारममारयत्।
तुदन्नखैस्तु स द्रौणिं नातिव्यक्तमुदाहरत् ॥
आचार्यपुत्र शस्त्रेण
जहि मां मा चिरं कृथाः।
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान्
गच्छेयं द्विपदां वर ॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

तथेति ॥ १ ॥ कच्चिन्नोपलक्षितावित्यत्र काचिदित्यावर्तते ॥ २ ॥ पाञ्चालैः पूर्वं निहतौ सन्तौ स्वपतां काचित् कोपात् स्वपतां पञ्चालानां कर्म वधाख्यं ताभ्यां कच्चित्कृतमिति संबन्धः ॥ ४ ॥ वां युवां प्राप्योति शेषः ॥८॥ उद्देशज्ञः धृष्टद्युम्नस्थलज्ञः ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा तु वचनं
विरराम परंतपः ।
सुतः पञ्चालराजस्य
आक्रान्तो बलिना भृशम् ॥२१
तस्याव्यक्तां तु तां वाचं
संश्रुत्य द्रौणिरब्रवीत् ।
आचार्यघातिनां लोका
न सन्ति कुलपांसन ॥ २२
तस्माच्छस्त्रेण निधनं न त्वमर्हसि दुर्मते ।
एवं ब्रुवाणस्तं वीरं सिंहो मत्तमिव द्विपम् ॥
मर्मस्वभ्यवधीत् क्रुद्धः पादाष्ठीलैः सुदारुणैः ।
तस्य वीरस्य शब्देन मार्यमाणस्य वेश्मनि ॥
अबुध्यन्त महाराज स्त्रियो ये चास्य रक्षिणः ।
ते दृष्ट्वा धर्षयन्तं तमतिमानुषविक्रमम् ॥ २५
भूतमेवाध्यवस्यन्तो न स्म प्रत्याहरन् भयात्
तं तु तेनाभ्युपायेन गमयित्वा यमक्षयम् ॥२६
अध्यतिष्ठत तेजस्वी रथं प्राप्य सुदर्शनम् ।
स तस्य भवनाद्राजन्निष्क्रम्यानादयन्दिशः ॥
रथेन शिबिरं प्रायाज्जिघांसुर्द्विषतो बली ।
अपक्रान्ते ततस्तस्मिन्द्रोणपुत्रे महारथे ॥ २८
सहितै रक्षिभिः सर्वैः प्राणेदुर्योषितस्तदा ।
राजानं निहतं दृष्ट्वा भृशं शोकपरायणाः ॥२९
व्याक्रोशन् क्षत्रियाः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य भारत ।
तासां तु तेन शब्देन समीपे क्षत्रियर्षभाः ॥
क्षिप्रं च समनह्यन्त
किमेतदिति चाब्रुवन् ।
स्त्रियस्तु राजन्वित्रस्ता
भारद्वाजं निरीक्ष्य ताः ॥ ३१
अब्रुवन् दीनकण्ठेन क्षिप्रमाद्रवतेति वै ।
राक्षसो वा मनुष्यो वा नैनं जानीमहे वयम्
हत्वा पाञ्चालराजानं रथमारुह्य तिष्ठति ।
ततस्ते योधमुख्याश्च सहसा पर्यवारयन् ॥
स तानापततः सर्वान् रुद्रास्त्रेण व्यपोथयत् ।
धृष्टद्युम्नं च हत्वा स तांश्चैवास्य पदानुगान् ॥
अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके ।
तमप्याक्रम्य पादेन कण्ठे चोरसि तेजसा ॥
तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिंदमम् ।
युधामन्युश्च संप्राप्तो मत्वा तं रक्षसा हतम् ॥
गदामुद्यम्य वेगेन हृदि द्रौणिमताडयत् ।
तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैनमपातयत् ॥३७
विस्फुरन्तं च पशुवत्तथैवैनममारयत् ।
तथा स वीरो हत्वा तं ततोऽन्यान्समुपाद्रवत्
संसुप्तानेव राजेन्द्र तत्र तत्र महारथान् ।
स्फुरतो वेपमानांश्च शमितेव पशून्मखे ॥ ३९
ततो निस्त्रिंशमादाय
जघानान्यान् पृथक् पृथक् ।
भागशो विचरन्मार्गा-
नसियुद्धविशारदः ॥ ४०
तथैव गुल्मे संप्रेक्ष्य
शयानान्मध्यगौल्मिकान् ।
श्रान्तान् व्यस्तायुधान्सर्वान्
क्षणेनैव व्यपोथयत् ॥ ४१
योधानश्वान्द्विपांश्चैव प्राच्छिनत्स वरासिना
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः कालसृष्ट इवान्तकः ४२
विस्फुरद्भिश्च तैर्द्रौणिर्निस्त्रिंशस्योद्यमेन च ।
आक्षेपणेन चैवासेस्त्रिधा रक्तोक्षितोऽभवत् ॥
तस्य लोहितरक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः ।
अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः ॥ ४४
ये त्वजाग्रन्त कौरव्य तेऽपि शब्देन मोहिताः
निरीक्ष्यमाणा अन्योऽन्यं दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रविव्यथुः
तद्रूपं तस्य ते दृष्ट्वा क्षत्रियाः शत्रुकर्षिणः ।
राक्षसं मन्यमानास्तं नयनानि न्यमीलयन् ॥
स घोररूपो व्यचरत्कालवच्छिबिरे ततः ।
अपश्यद् द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥
तेन शब्देन वित्रस्ता धनुर्हस्ता महारथाः ।
धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा द्रौपदेया विशांपते ॥ ४८
अवाकिरन् शरव्रातैर्भारद्वाजमभीतवत् ।
ततस्तेन निनादेन संप्रबुद्धाः प्रभद्रकाः ॥ ४९
शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रोणपुत्रं समार्दयन्
भारद्वाजः स तान् दृष्ट्वा शरवर्षाणि वर्षतः ॥
ननाद बलवन्नादं जिघांसुस्तान्महारथान् ।
ततः परमसंक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ५१
अवरुह्य रथोपस्थात्त्वरमाणोऽभिदुद्रुवे ।
सहस्रचन्द्रविमलं गृहीत्वा चर्म संयुगे ॥ ५२

पादाष्ठीलैः पादग्रंथिभिः पार्ष्णिघातैरित्यर्थः ॥२४॥ तैश्छिन्नगात्रैः विस्फुरद्भिः तेषां शरीरादुच्छलद्भी रक्तबिंदुभिरित्यर्थः । असेः शोणितार्द्रस्य उद्यमनात् मुष्टिद्वारा लोहितधारा बाहुमूलमायाति यत्रासिः क्षिप्यते ततोऽपि स्थानात् रक्तबिन्दवः उच्छलन्ति तैस्त्रिभिः प्रकारैरेव रक्तोक्षितो न तु स्वदेहस्यान्येन प्रहारादित्यर्थः ॥ ४३ ॥

खड्गं च विमलं दिव्यं जातरूपपरिष्कृतम् ।
द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्यधमद्बली ॥ ५३
ततः स नरशार्दूलः प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
कुक्षिदेशेऽवधीद्राजन् स हतो न्यपतद्भुवि ॥
प्रासेन विद्ध्वा द्रौणिं तु
सुतसोमः प्रतापवान् ।
पुनश्चासिं समुद्यम्य
द्रोणपुत्रमुपाद्रवत् ॥ ५५
सुतसोमस्य सासिं तं बाहुं छित्त्वा नरर्षभ ।
पुनरप्याहनत्पार्श्वे स भिन्नहृदयोऽपतत् ५६
नाकुलिस्तु शतानीको रथचक्रेण वीर्यवान् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन वक्षस्येनमताडयत् ५७
अताडयच्छतानीकं मुक्तचक्रं द्विजस्तु सः ।
स विह्वलो ययौ भूमिं ततोऽस्यापाहरच्छिरः
श्रुतकर्मा तु परिघं गृहीत्वा समताडयत् ।
अभिद्रुत्य ययौ द्रौणिं सव्ये सफलके भृशम्
स तु तं श्रुतकर्माणमास्ये जघ्ने वरासिना ।
स हतो न्यपतद्भूमौ विमूढो विकृताननः ६०
तेन शब्देन वीरस्तु श्रुतकीर्तिर्महारथः ।
अश्वत्थामानमासाद्य शरवर्षैरवाकिरत् ६१
तस्यापि शरवर्षाणि चर्मणा प्रतिवार्य सः ।
सकुण्डलं शिरः कायात् भ्राजमानमुपाहरत्
ततो भीष्मनिहन्तारं सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
अहनत्सर्वतो वीरं नानाप्रहरणैर्बली ॥ ६३
शिलीमुखेन चान्येन भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।
स तु क्रोधसमाविष्टो द्रोणपुत्रो महाबलः ६४
शिखण्डिनं समासाद्य
द्विधा चिच्छेद सोऽसिना ।
शिखण्डिनं ततो हत्वा
क्रोधाविष्टः परंतपः । ६५
प्रभद्रकगणान्सर्वानभिदुद्राव वेगवान् ।
यच्च शिष्टं विराटस्य बलं तु भृशमाद्रवत् ६६
द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि ।
चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः ॥ ६७
अन्यानन्यांश्च पुरुषानभिसृत्याभिसृत्य च ।
न्यकृन्तदसिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः ६८
कालीं रक्तास्यनयनां रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।
रक्ताम्बरधरामेकां पाशहस्तां कुटुम्बिनीम् ॥

ददृशुः कालरात्रिं तें
गायमानामवस्थिताम् ।
नराश्वकुञ्जरान्पाशै-
र्बद्ध्वा घोरैः प्रतस्थुषीम् ॥ ७०
वहन्तीं विविधान्प्रेतान्
पाशबद्धान्विमूर्धजान् ।
तथैव च सदा राजन्
न्यस्तशस्त्रान्महारथान् ॥ ७१
स्वप्ने सुप्तान्नयन्तीं तां रात्रिष्वन्यासु मारिष ।
ददृशुर्योधमुख्यास्ते घ्नन्तं द्रौणिं च सर्वदा ॥
यतः प्रभृति संग्रामः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
ततः प्रभृति तां कन्यामपश्यन् द्रौणिमेव च
तांस्तु दैवहतान्पूर्वं पश्चाद्द्रौणिर्व्यपातयत् ।
त्रासयन्सर्वभूतानि विनदन् भैरवान् रवान्
तदनुस्मृत्य ते वीरा दर्शनं पूर्वकालिकम् ।
इदं तदित्यमन्यन्त दैवेनोपनिपीडिताः ॥ ७५
ततस्तेन निनादेन प्रत्यबुध्यन्त धन्विनः ।
शिबिरे पाण्डवेयानां शतशोऽथ सहस्रशः ॥
सोऽच्छिनत्कस्यचित्पादौ
जघनं चैव कस्यचित् ।
कांश्चिद्बिभेद पार्श्वेषु
कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ७७
अत्युग्रप्रतिपिष्टैश्च नदद्भिश्च भृशोत्कटैः ।
गजाश्वमथितैश्चान्यैर्मही कीर्णाऽभवत्प्रभो ॥
क्रोशतां किमिदं कोऽयं
कः शब्दः किं नु किं कृतम् ।
एवं तेषां तथा द्रौणि-
रन्तकः समपद्यत ॥ ७९
अपेतशस्त्रसन्नाहान्सन्नद्धान्पाण्डुसृञ्जयान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय द्रौणिः प्रहरतां वरः ॥
ततस्तच्छस्त्रवित्रस्ता उत्पतन्तो भयातुराः ।
निद्रान्धा नष्टसंज्ञाश्च तत्र तत्र निलिल्यिरे८१
ऊरुस्तम्भगृहीताश्च कश्मलाभिहतौजसः ।
विनदन्तो भृशं त्रस्ताः समासीदन्परस्परम्
ततो रथं पुनर्द्रौणिरास्थितो भीमनिःस्वनम्
धनुष्पाणिः शरैरन्यान्प्रेषयद्वै यमक्षयम् ८३
पुनरुत्पततश्चापि दूरादपि नरोत्तमान् ।
शूरान्संपततश्चान्यान्कालरात्र्यै न्यवेदयत् ॥

फलकेऽताडयदित्यन्वयः ॥५९॥ पाण्डुसृञ्जयान् पाण्डवसम्बन्धिनः सृञ्जयान् पाण्डोर्गोत्रापत्याः सृञ्जयाश्च तान्वा ॥८०॥

तथैव स्यन्दनाग्रेण प्रमथन्स विधावति।
शरवर्षैश्च विविधैरवर्षच्छात्रवांस्ततः॥ ८५
पुनश्च सुविचित्रेण शतचन्द्रेण चर्मणा।
तेन चाकाशवर्णेन तथाऽचरत सोऽसिना॥
तथा च शिबिरं तेषां द्रौणिराहवदुर्मदः।
व्यक्षोभयत राजेन्द्र महाह्रदमिव द्विपः ८७
उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन्विचेतसः।
निद्रार्ताश्च भयार्ताश्च व्यधावन्त ततस्ततः
विस्वरं चुक्रुशुश्चान्ये बह्वबद्धं तथा वदन्।
न च स्म प्रत्यपद्यन्त शस्त्राणि वसनानि च॥
विमुक्तकेशाश्चाप्यन्ये
नाभ्यजानन् परस्परम्।
उत्पतन्तोऽपतन् श्रान्ताः
केचित्तत्राभ्रमंस्तदा॥ ९०
पुरीषमसृजन्केचित्केचिन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
बन्धनानि च राजेन्द्र संछिद्य तुरगा द्विपाः
समं पर्यपतंश्चान्ये कुर्वन्तो महदाकुलम्।
तत्र केचिन्नरा भीता व्यलीयन्त महीतले ९२
तथैव तान्निपतितानपिषन्गजवाजिनः।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने रक्षांसि पुरुषर्षभ॥ ९३
हृष्टानि व्यनदन्नुच्चैर्मुदा भरतसत्तम।
स शब्दः पूरितो राजन्भूतसंघैर्मुदायुतैः ९४
अपूरयद्दिशः सर्वा दिवं चातिमहान्स्वनः।
तेषामार्तरवं श्रुत्वा वित्रस्ता गजवाजिनः॥
मुक्ताः पर्यपतन् राजन्मृद्नन्तः शिबिरे जनम्
तैस्तत्र परिधावद्भिश्चरणोदीरितं रजः॥
अकरोच्छिबिरे तेषां रजन्यां द्विगुणं तमः।
तस्मिंस्तमसि संजाते प्रमूढाः सर्वतो जनाः
नाजानन्पितरः पुत्रान् भ्रातॄन् भ्रातर एव च
गजो गजानतिक्रम्य निर्मनुष्या हया हयान्
अताडयंस्तथाऽभञ्जंस्तथाऽमृद्नंश्च भारत।
ते भग्नाः प्रपतन्ति स्म निघ्नन्तश्च परस्परम्॥
न्यपातयंस्तथा चान्यान्
पातयित्वा तदाऽपिषन्।
विचेतसः सनिद्राश्च
तमसा चावृता नराः १००
जघ्नुः स्वानेव तत्राथ
कालेनैव प्रचोदिताः।
त्यक्त्वा द्वाराणि च द्वास्था-
स्तथा गुल्मानि गौल्मिकाः॥ १
प्राद्रवन्त यथाशक्ति कांदिशीका विचेतसः
विप्रनष्टाश्च तेऽन्योन्यं नाजानन्त तथा विभो॥
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति
दैवोपहतचेतसः।
पलायतां दिशस्तेषां
स्वानप्युत्सृज्य बान्धवान्॥ ३
गोत्रनामभिरन्योन्यमाक्रन्दन्त ततो जनाः।
हाहाकारं च कुर्वाणाः पृथिव्यां शेरते परे॥
तान्बुद्ध्वा रणमध्येऽसौ
द्रोणपुत्रो न्यवारयत्।
तत्रापरे वध्यमाना
मुहुर्मुहुरचेतसः॥ ५
शिबिरान्निष्पतन्ति स्म
क्षत्रिया भयपीडिताः।
तांस्तु निष्पतितांस्त्रस्तान्
शिबिराज्जीवितैषिणः॥ ६
कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः।
विस्रस्तयन्त्रकवचान्मुक्तकेशान्कृताञ्जलीन् ७
वेपमानान् क्षितौ भीतान्
नैव कांश्चिदमुच्यताम्।
नामुच्यत तयोः कश्चि-
न्निष्क्रान्तः शिबिराद्बहिः॥ ८
कृपश्चैव महाराज हार्दिक्यश्चैव दुर्मतिः।
भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम्॥
त्रिषु देशेषु ददतुः शिबिरस्य हुताशनम्।
ततः प्रकाशे शिबिरे खड्गेन पितृनन्दनः ११०
अश्वत्थामा महाराज व्यचरत्कृतहस्तवत्।
कांश्चिदापततो वीरानपरांश्चैव धावतः ११
व्ययोजयत खड्गेन प्राणैर्द्विजवरोत्तमः।
कांश्चिद्योधान्स खड्गेन मध्ये संछिद्य वीर्यवान्
अपातयद्द्रोणपुत्रः संरब्धस्तिलकाण्डवत्।
निनदद्भिर्भृशायस्तैर्नराश्वद्विरदोत्तमैः॥ १३
पतितैरभवत्कीर्णा मेदिनी भरतर्षभ।
मानुषाणां सहस्रेषु हतेषु पतितेषु च॥ १४
उदतिष्ठन्कबन्धानि बहून्युत्थाय चापतन्।
सायुधान्साङ्गदान्बाहून्विचकर्त शिरांसि च

---

अभञ्जन् गात्राण्यनमयन् अमृद्नन् परस्परं मर्दितवन्तः॥ ९९॥ अपिषन् अपिंषन्॥ १००॥ कान्दिशीकाः भयद्रुताः॥ २॥

हस्तिहस्तोपमानूरून्
हस्तान्पादांश्च भारत ।
पृष्ठच्छिन्नान्पार्श्वच्छिन्ना-
ञ्शिरश्छिन्नांस्तथा परान् ॥ १६
स महात्माऽकरोद्द्रौणिः
कांश्चिच्चापि पराङ्मुखान् ।
मध्यदेशे नरानन्यान्
चिच्छेदान्यांश्च कर्णतः ॥ १७
अंसदेशे निहत्यान्यान्काये प्रावेशयच्छिरः ।
एवं विचरतस्तस्य निघ्नतः सुबहून्नरान् १८
तमसा रजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना ।
किञ्चित्प्राणैश्च पुरुषैर्हतैश्चान्यैः सहस्रशः १९
बहुना च गजाश्वेन भूरभूद्भीमदर्शना ।
यक्षरक्षःसमाकीर्णे रथाश्वद्विपदारुणे १२०
क्रुद्धेन द्रोणपुत्रेण संच्छन्नाः प्रापतन् भुवि ।
भ्रातॄनन्ये पितॄनन्ये पुत्रानन्ये विचुक्रुशुः २१
केचिदूचुर्न तत्क्रुद्धैर्धार्तराष्ट्रैः कृतं रणे ।
यत्कृतं नः प्रसुप्तानां रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ॥
असान्निध्याद्धि पार्थानामिदं वः कदनं कृतम्
न चासुरैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः ॥ २३
शक्यो विजेतुं कौन्तेयो
गोप्ता यस्य जनार्दनः ।
ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तः
सर्वभूतानुकम्पकः ॥ २४
न च सुप्तं प्रमत्तं वा न्यस्तशस्त्रं कृताञ्जलिम् ।
धावन्तं मुक्तकेशं वा हन्ति पार्थो धनञ्जयः ॥
तदिदं नः कृतं घोरं रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ।
इति लालप्यमानाः स्म शेरते बहवो जनाः ॥
स्तनतां च मनुष्याणामपरेषां च कूजताम् ।
ततो मुहूर्तात्प्राशाम्यत्स शब्दस्तुमुलो महान्
शोणितव्यतिषिक्तायां वसुधायां च भूमिप ।
तद्रजस्तुमुलं घोरं क्षणेनान्तरधीयत ॥ २८
स चेष्टमानानुद्विग्नान्निरुत्साहान्सहस्रशः ।
न्यपातयन्नरान् क्रुद्धः पशून्पशुपतिर्यथा २९
अन्योन्यं संपरिष्वज्य शयानान्द्रवतो परान्
संलीनान्युद्ध्यमानांश्च सर्वान्द्रौणिरपोथयत
दह्यमाना हुताशेन वध्यमानाश्च तेन ते ।
परस्परं तदा योधाननयद्यमसादनम् ॥ ३१
तस्या रजन्यास्त्वर्धेन पाण्डवानां महद्बलम्
गमयामास राजेन्द्र द्रौणिर्यमनिवेशनम् ३२
निशाचराणां सत्त्वानां
रात्रिः सा हर्षवर्धिनी ।
आसीन्नरगजाश्वानां
रौद्री क्षयकरी भृशम् ॥ ३३
तत्रादृश्यन्त रक्षांसि पिशाचाश्च पृथग्विधाः
खादन्तो नरमांसानि पिबन्तः शोणितानि च
करालाः पिङ्गलाश्चैव शैलदन्ता रजस्वलाः ।
जटिला दीर्घशङ्खाश्च पञ्चपादा महोदराः ॥
पश्चादङ्गुलेया रूक्षा विरूपा भैरवस्वनाः ।
घण्टाजालावसक्ताश्च नीलकण्ठा विभीषणाः
सपुत्रदाराः सक्रूराः सुदुर्दर्शाः सुनिर्घृणाः ।
विविधानि च रूपाणि तत्रादृश्यन्त रक्षसां
पीत्वा च शोणितं हृष्टाः प्रानृत्यन्गणशोऽपरे
इदं परमिदं मेध्यमिदं स्वाद्विति चाब्रुवन् ॥
मेदोमज्जास्थिरक्तानां
वसानां च भृशाशिताः ।
परं मांसानि खादन्तः
क्रव्यादा मांसजीविनः ॥ ३९
वसाश्चैवापरे पीत्वा
पर्यधावन्विकुक्षिकाः ।
नानावक्त्रास्तथा रौद्राः
क्रव्यादाः पिशिताशनाः ॥ ४०
अयुतानि च तत्रासन्प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
रक्षसां घोररूपाणां महतां क्रूरकर्मणाम् ॥४१
मुदितानां वितृप्तानां तस्मिन्महति वैशसे ।
समेतानि बहून्यासन् भूतानि च जनाधिप
प्रत्यूषकाले शिबिरात्प्रतिगन्तुमियेष सः ।
नृशोणितावसिक्तस्य द्रौणेरासीदसित्सरुः ॥
पाणिना सह संश्लिष्ट एकीभूत इव प्रभो ।
दुर्गमां पदवीं गत्वा विरराज जनक्षये ॥ ४४
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ।
यथाप्रतिज्ञं तत् कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो
दुर्गमां पदवीं गच्छन्पितुरासीद्गतज्वरः ।
यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि ॥ ४६

भृशाशिताः भृशं संतर्पिताः दंत्यपाठे अस गतिदीप्त्यदानेष्वित्यस्य वा रूपं भृशं उद्दीपिता इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ विकुक्षिकाः विपुलकुक्षयः ॥ १४० ॥

तथैव हत्वा निःशब्दे
निश्चक्राम नरर्षभः ।
निष्क्रम्य शिबिरात्तस्मा-
त्ताभ्यां संगम्य वीर्यवान् ॥ ४७
आचख्यौ कर्म तत्सर्वं हृष्टः संहर्षयन्विभो ।
तावथाचख्यतुस्तस्मै प्रियं प्रियकरौ तदा ॥
पाञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव विनिकृत्तान्सहस्रशः ।
प्रीत्या चोच्चैरुदक्रोशंस्तथैवास्फोटयंस्तलान्
एवंविधा हि सा रात्रिः सोमकानां जनक्षये
प्रसुप्तानां प्रमत्तानामासीत्सुभृशदारुणा ॥
असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः ।
तादृशा निहता यत्र कृत्वाऽस्माकं जनक्षयम्

धृतराष्ट्र उवाच ।

प्रागेव सुमहत्कर्म द्रौणिरेतन्महारथः ।
नाकरोदीदृशं कस्मान्मत्पुत्रविजये धृतः ॥
अथ कस्माद्धते *क्षुद्रं कर्मेदं कृतवानसौ ।
द्रोणपुत्रो महात्मा स तन्मे शंसितुमर्हसि ॥

सञ्जय उवाच ।

तेषां नूनं भयात्रासौ कृतवान्कुरुनन्दन ।
असान्निध्याद्धि पार्थानां केशवस्य च धीमतः
सात्यकेश्चापि कर्मेदं द्रोणपुत्रेण साधितम् ।
को हि तेषां समक्षं तान् हन्यादपि मरुत्पतिः
एतदीदृशकं वृत्तं राजन्सुप्तजने विभो ।
ततो जनक्षयं कृत्वा पाण्डवानां महात्ययम्
दिष्ट्यादिष्ट्येव चान्योन्यं
समेत्योचुर्महारथाः
पर्यष्वजत्ततो द्रौणिस्ताभ्यां संप्रतिनन्दितः
इदं हर्षात्तु सुमहदाददे वाक्यमुत्तमम् ।
पाञ्चाला निहताः सर्वे द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥
सोमका मत्स्यशेषाश्च सर्वे विनिहता मया ।
इदानीं कृतकृत्याः स्म याम तत्रैव मा चिरम्
यदि जीवति नो राजा तस्मै शंसामहे वयम्

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि रात्रियुद्धे
पाञ्चालादिवधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

सञ्जय उवाच ।

ते हत्वा सर्वपाञ्चालान्द्रौपदेयांश्च सर्वशः
आगच्छन्सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः १
गत्वा चैनमपश्यन्त किञ्चित्प्राणं जनाधिपं
ततो रथेभ्यः प्रस्कन्द्य परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥२
तं भग्नसक्थं राजेन्द्र कृच्छ्रप्राणमचेतसम् ।
वमन्तं रुधिरं वक्त्रादपश्यन्वसुधातले ॥ ३
वृतं समन्ताद्बहुभिः श्वापदैर्घोरदर्शनैः ।
शालावृकगणैश्चैव भक्षयिष्यद्भिरन्तिकात् ॥
निवारयन्तं कृच्छ्रात्तान्
श्वापदांश्च चिखादिषून् ।
विचेष्टमानं मह्यां च
सुभृशं गाढवेदनम् ॥ ५
तं शयानं तथा दृष्ट्वा भूमौ सुरुधिरोक्षितम् ।
हतशिष्टास्त्रयो वीराः शोकार्ताः पर्यवारयन्
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
तैस्त्रिभिः शोणितादिग्धैर्निःश्वसद्भिर्महारथैः।
शुशुभे स वृतो राजा वेदी त्रिभिरिवाग्निभिः
ते तं शयानं संप्रेक्ष्य राजानमतथोचितम् ॥
अविषह्येन दुःखेन ततस्ते रुरुदुस्त्रयः ।
ततस्तु रुधिरं हस्तैर्मुखान्निर्मृज्य तस्य हि ।
रणे राज्ञः शयानस्य कृपणं पर्यदेवयन् ॥ ९

कृप उवाच ।

न दैवस्यातिभारोऽस्ति यदयं रुधिरोक्षितः
एकादशचमूभर्ता शेते दुर्योधनो हतः ॥ १०
पश्य चामीकराभस्य चामीकरविभूषिताम्
गदां गदाप्रियस्येमां समीपे पतितां भुवि ॥
इयमेनं गदा शूरं न जहाति रणे रणे ।
स्वर्गायापि व्रजन्तं हि न जहाति यशस्विनम्
पश्येमां सह वीरेण जाम्बूनदविभूषिताम् ।
शयानां शयने हर्म्ये भार्यां प्रीतिमतीमिव ॥

---

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकंठीये भारतभाव-दीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * क्षत्रे इति पाठः ।

९

ते हत्वेति ॥१॥ चिखादिषून् भक्षयितुमिच्छून् ॥५॥

योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे जातः परंतपः ।
स हतो ग्रसते पांसून्पश्य कालस्य पर्ययम् ॥
येनाजौ निहता भूमावशेरत हतद्विषः* ।
स भूमौ निहतः शेते कुरुराजः परैरयम् ॥१५
भयान्नमन्ति राजानो यस्य स्म शतसंघशः
स वीरशयने शेते क्रव्याद्भिः परिवारितः ॥
उपासत द्विजाः पूर्वमर्थहेतोर्यमीश्वरम् ।
उपासते च तं ह्यद्य क्रव्यादा मांसहेतवः ॥
सञ्जय उवाच ।
तं शयानं कुरुश्रेष्ठं ततो भरतसत्तम ।
अश्वत्थामा समालोक्य करुणं पर्यदेवयत् ॥
आहुस्त्वां राजशार्दूल मुख्यं सर्वधनुष्मताम्
धनाध्यक्षोपमं युद्धे शिष्यं संकर्षणस्य च ॥
कथं विवरमद्राक्षीद्भीमसेनस्तवानघ ।
बलिनं कृतिनं नित्यं स च पापात्मवान्नृप ॥
कालो नूनं महाराज लोकेऽस्मिन्बलवत्तरः ।
पश्यामो निहतं त्वां च भीमसेनेन संयुगे ॥
कथं त्वां सर्वधर्मज्ञं क्षुद्रः पापो वृकोदरः ।
निकृत्या हतवान्मन्दो नूनं कालो दुरत्ययः॥
धर्मयुद्धे ह्यधर्मेण समाहूयौजसा मृधे ।
गदया भीमसेनेन निर्भग्ने सक्थिनी तव ॥२३
अधर्मेण हतस्याजौ
मृद्यमानं पदा शिरः ।
य उपेक्षितवान् क्षुद्रं
धिक् कृष्णं धिग्युधिष्ठिरम् ॥ २४
युद्धेष्वपवदिष्यन्ति
योधा नूनं वृकोदरम् ।
यावत्स्थास्यन्ति भूतानि
निकृत्या ह्यसि पातितः ॥ २५
ननु रामोऽब्रवीद्राजंस्त्वां सदा यदुनन्दनः ।
दुर्योधनसमो नास्ति गदया इति वीर्यवान् ॥
श्लाघते त्वां हि वार्ष्णेयो
राजसंसत्सु भारत ।
स शिष्यो मम कौरव्यो
गदायुद्ध इति प्रभो ॥ २७
यां गतिं क्षत्रियस्याहुः
प्रशस्तां परमर्षयः ।
हतस्याभिमुखस्याजौ
प्राप्तस्त्वमसि तां गतिम् ॥ २८

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं पुरुषर्षभ ।
हतपुत्रौ तु शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥
भिक्षुकौ विचरिष्येते
शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् ।
धिगस्तु कृष्णं वार्ष्णेय-
मर्जुनं चापि दुर्मतिम् ॥ ३०
धर्मज्ञमानिनौ यौ त्वां वध्यमानमुपेक्षताम् ।
पाण्डवाश्चापि ते सर्वे किं वक्ष्यन्ति नराधिप
कथं दुर्योधनोऽस्माभिर्हत इत्यनपत्रपाः ।
धन्यस्त्वमसि गान्धारे यस्त्वमायोधने हतः
प्रायशोऽभिमुखः शत्रून्धर्मेण पुरुषर्षभ ।
हतपुत्रा हि गान्धारी निहतज्ञातिबान्धवा ॥
प्रज्ञाचक्षुश्च दुर्धर्षः कां गतिं प्रतिपत्स्यते ।
धिगस्तु कृतवर्माणं मां कृपं च महारथम् ॥३४
ये वयं न गताः स्वर्गं
त्वां पुरस्कृत्य पार्थिवम् ।
दातारं सर्वकामानां
रक्षितारं प्रजाहितम् ॥ ३५
यद्वयं नानुगच्छाम त्वां धिगस्मान्नराधमान् ।
कृपस्य तव वीर्येण मम चैव पितुश्च मे ॥ ३६
सभृत्यानां नरव्याघ्र रत्नवन्ति गृहाणि च ।
तव प्रसादादस्माभिः समित्रैः सह बान्धवैः॥
अवाप्ताः क्रतवो मुख्या बहवो भूरिदक्षिणाः।
कुतश्चापीदृशं पापाः प्रवर्तिष्यामहे वयम् ॥३८
यादृशेन पुरस्कृत्य त्वं गतः सर्वपार्थिवान् ।
वयमेव त्रयो राजन् गच्छन्तं परमां गतिम् ॥
यद्वै त्वां नानुगच्छामस्तेन धक्ष्यामहे वयम् ।
तत्स्वर्गहीना हीनार्थाः स्मरन्तः सुकृतस्य ते
किं नाम तद्भवेत्कर्म येन त्वां न व्रजाम वै ।
दुःखं नूनं कुरुश्रेष्ठ चरिष्याम महीमिमाम् ॥४१
हीनानां नस्त्वया राज-
न्कुतः शान्तिः कुतः सुखम् ।
गत्वैव तु महाराज
समेत्य च महारथान् ॥ ४२
यथाज्येष्ठं यथाश्रेष्ठं पूजयेर्वचनान्मम ।
आचार्यं पूजयित्वा च केतुं सर्वधनुष्मताम् ॥
हतं मयाऽद्य शंसेथा धृष्टद्युम्नं नराधिप ।
परिष्वजेथा राजानं बाल्हिकं सुमहारथम् ॥

मांसहेतवः मांसार्थिनः ॥ १७ ॥ धक्ष्यामहे भस्मीभवेम ॥ ४० ॥ * शेरते क्षत्रियर्षभाः इति पाठः ।

सैन्धवं सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ।
तथा पूर्वगतानन्यान् स्वर्गे पार्थिवसत्तमान्॥
अस्मद्वाक्यात्परिष्वज्य
संपृच्छेस्त्वमनामयम् ॥ ४६
सञ्जय उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा राजानं भग्नसक्थमचेतनम् ।
अश्वत्थामा समुद्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥४७
दुर्योधन जीवसि त्वं वाक्यं श्रोत्रसुखं शृणु ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो वयम् ॥
ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः।
अहं च कृतवर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ४९
द्रौपदेया हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
पाञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्यशेषं च भारत॥
कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि पाण्डवाः ।
सौप्तिके शिबिरं तेषां हतं सनरवाहनम् ॥५१
मया च पापकर्माऽसौ धृष्टद्युम्नो महीपते ।
प्रविश्य शिबिरं रात्रौ पशुमारेण मारितः ॥
दुर्योधनस्तु तां वाचं
निशम्य मनसः प्रियाम् ।
प्रतिलभ्य पुनश्चेत
इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५३
न मेऽकरोत्तद्गाङ्गेयो न कर्णो न च ते पिता ।
यत्त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतम्॥
स च सेनापतिः क्षुद्रो
हतः सार्धं शिखण्डिना ।
तेन मन्ये मघवता
सममात्मानमद्य वै ॥ ५५
स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः संगमः पुनः ।
इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं स कुरुराजो महामनाः॥
प्राणानुपासृजद्वीरः सुहृदां दुःखमुत्सृजन् ।
अपाक्रामद्दिवं पुण्यां शरीरं क्षितिमाविशत्॥
एवं ते निधनं यातः पुत्रो दुर्योधनो नृप ।
अग्रे यात्वा रणे शूरः पश्चाद्विनिहतः परैः॥५८
तथैव ते परिष्वक्ताः परिष्वज्य च ते नृपम् ।
पुनः पुनः प्रेक्षमाणाः स्वकानारुरुहू रथान् ॥
इत्येवं द्रोणपुत्रस्य निशम्य करुणां गिरम् ।
प्रत्यूषकाले शोकार्तः प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥६०
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
घोरो विशसनो रौद्रो राजन् दुर्मन्त्रिते तव
तव पुत्रे गते स्वर्गं शोकार्तस्य ममानघ ।
ऋषिदत्तं प्रनष्टं तद्दिव्यदर्शित्वमद्य वै ॥ ६२
वैशम्पायन उवाच ।
इति श्रुत्वा स नृपतिः पुत्रस्य निधनं तदा ।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च ततश्चिन्तापरोऽभवत्

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि दुर्योधनप्राणत्यागे
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## अथैषीकपर्व २

### १०

वैशम्पायन उवाच ।
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः
शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतम् ॥१
सूत उवाच ।
द्रौपदेया हता राजन् द्रुपदस्यात्मजैः सह
प्रमत्ता निशि विश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके
कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च ।
अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि
एतैर्नरगजाश्वानां प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
सहस्राणि निकृन्तद्भिर्निःशेषं ते बलं कृतम्
छिद्यमानस्य महतो वनस्येव परश्वधैः ।
शुश्रुवे सुमहाञ्शब्दो बलस्य तव भारत ॥ ५

---

**न मेऽकरोदिति—**
पापः कण्ठगतप्राणोऽप्यभिनन्दति पापिनम्
द्रौणिं प्रसुप्तबालघ्नं पांसुभुक्कुरादिव ॥ ५४ ॥
इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभाव-
दीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

जयेन हर्षतामनुपदमेव शोकभये प्रवर्तेते इति दर्शयन् ऐषीकमारभते—**तस्यामिति** ॥ १ ॥

अहमेकोऽवशिष्टस्तु तस्मात्सैन्यान्महामते ।
मुक्तः कथञ्चिद्धर्मात्मन् व्यग्राच्च कृतवर्मणः ॥
तच्छ्रुत्वा वाक्यमशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
पपात मह्यां दुर्धर्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ७
पतन्तं तमतिक्रम्य परिजग्राह सात्यकिः ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥
लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया गिरा
जित्वा शत्रूञ्जितः पश्चात्पर्यदेवयदार्तवत्॥९
दुर्विदा गतिरर्थानामपि ये दिव्यचक्षुषः ।
जीयमाना जयन्त्यन्ये जयमाना वयं जिताः
हत्वा भ्रातॄन्वयस्यांश्च
पितॄन्पुत्रान्सुहृद्गणान् ।
बन्धूनमात्यान्पौत्रांश्च
जित्वा सर्वाञ्जिता वयम् ॥ ११
अनर्थो ह्यर्थसंकाशस्तथाऽनर्थोऽर्थदर्शनः ।
जयोऽयमजयाकारो जयस्तस्मात्पराजयः ॥
यज्जित्वा तप्यते पश्चादापन्न इव दुर्मतिः ।
कथं मन्येत विजयं ततो जिततरः परैः ॥ १३
येषामर्थाय पापं स्याद्विजयस्य सुहृद्वधैः ।
निर्जितैरप्रमत्तैर्हि विजिता जितकाशिनः ॥
कर्णिनालीकदंष्ट्रस्य खड्गजिह्वस्य संयुगे ।
चापव्यात्तस्य रौद्रस्य ज्यातलस्वननादिनः ॥
क्रुद्धस्य नरसिंहस्य संग्रामेष्वपलायिनः ।
ये व्यमुञ्चन्त कर्णस्य प्रमादात्त इमे हताः ॥
रथह्रदं शरवर्षोर्मिमन्तं
रत्नाचितं वाहनवाजियुक्तम् ।
शक्त्यृष्टिमीनध्वजनागनक्रं
शरासनावर्तमहेषुफेनम् ॥ १७
संग्रामचन्द्रोदयवेगवेलं
द्रोणार्णवं ज्यातलनेमिघोषम् ।
ये तेरुरुच्चावचशस्त्रनौभि-
स्ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ १८
न हि प्रमादात्परमस्ति कश्चि-
द्वधो नराणामिह जीवलोके ।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्ता-
त्त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति ॥ १९
ध्वजोत्तमाग्रोच्छ्रितधूमकेतुं
शरार्चिषं कोपमहासमीरम् ।
महाधनुर्ज्यातलनेमिघोषं
तनुत्रनानाविधशस्त्रहोमम्† ॥ २०
महाचमूकक्षदवाभिपन्नं
महाहवे भीष्ममयाग्निदाहम् ।
ये सेहुरात्तायुधतीक्ष्णवेगं
ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ २१
न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं
विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा ।
पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रू-
न्सर्वान्महेन्द्रं सुखमेधमानम् ॥ २२
इन्द्रोपमान् पार्थिव पुत्रपौत्रा-
न्पश्याविशेषेण हतान्प्रमादात् ।
तीर्त्वा समुद्रं वणिजः समृद्धा
मग्नाः कुनद्यामिव हेलमानाः ॥ २३
अमर्षितैर्ये निहताः शयाना
निःसंशयं ते त्रिदिवं प्रपन्नाः ।
कृष्णां तु शोचामि कथं नु साध्वी
शोकार्णवं साऽद्य विशत्यभीता ॥२४
भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च हतान्निशम्य
पाञ्चालराजं पितरं च वृद्धम् ।
ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां
सा शोष्यते शोककृशाङ्गयष्टिः ॥ २५
तच्छोकजं दुःखमपारयन्ती
कथं भविष्यत्युचिता सुखानाम् ।
पुत्रक्षयभ्रातृवधप्रणुन्ना
प्रदह्यमानेन हुताशनेन ॥ २६
इत्येवमार्तः परिदेवयन्स
राजा कुरूणां नकुलं बभाषे ।
गच्छानयैनामिह मन्दभाग्यां
समातृपक्षामिति राजपुत्रीम् ॥ २७
माद्रीसुतस्तत्परिगृह्य वाक्यं
धर्मेण धर्मप्रतिमस्य राज्ञः ।
ययौ रथेनालयमाशु देव्याः
पाञ्चालराजस्य च यत्र दाराः ॥ २८

---

अतिक्रम्य धैर्यमर्यादां त्यक्त्वा पतन्तम् ॥८॥ अन्ये शत्रवः जयमानाः जयन्तः जितानां जयो जयतां पराजयः फलतोऽभूदिति महदाश्चर्यमित्यर्थः॥१०॥ व्यमुञ्चन्त मुक्ताः कर्णस्य कर्णात् प्रमादात् अस्मत्कृतात् असान्निध्यात् ॥ १६ ॥ तनुत्राणि नानाविधानि शस्त्राणि च तेषां होमः प्रक्षेपो यत्र तं तनुत्रनानाविधशस्त्रहोमम् ॥ २० ॥ भीष्ममयं भीष्मप्रधानं अग्निदाहम् भीष्मरूपेण अग्निना दाहमित्यर्थः ते सेहिरे सोढवन्तः॥२१॥ † भीष्ममहादवाग्निमिति पा०

प्रस्थाप्य माद्रीसुतमाजमीढः
शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः ।
रोरूयमाणः प्रययौ सुताना-
मायोधनं भूतगणानुकीर्णम् ॥ २९
स तत्प्रविश्याशिवमुग्ररूपं
ददर्श पुत्रान्सुहृदः सखींश्च ।
भूमौ शयानान् रुधिरार्द्रगात्रा-
न्विभिन्नदेहान्प्रहृतोत्तमाङ्गान् ॥ ३०
स तांस्तु दृष्ट्वा भृशमार्तरूपो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
उच्चैः प्रचुक्रोश च कौरवाग्र्यः
पपात चोर्व्यां सगणो विसंज्ञः ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि युधिष्ठिरशिबिरप्रवेशे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

वैशम्पायन उवाच ।
स दृष्ट्वा निहतान्संख्ये पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा
महादुःखपरीतात्मा बभूव जनमेजय ॥ १
ततस्तस्य महाञ्शोकः प्रादुरासीन्महात्मनः
स्मरतः पुत्रपौत्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य ह ॥२
तमश्रुपरिपूर्णाक्षं वेपमानमचेतसम् ।
सुहृदो भृशसंविग्नाः सांत्वयांचक्रिरे तदा ॥
ततस्तस्मिन् क्षणे कल्पो रथेनादित्यवर्चसा
नकुलः कृष्णया सार्धमुपायात्परमार्तया ॥
उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
तदा विनाशं सर्वेषां पुत्राणां व्यथिताऽभवत्
कम्पमानेव कदली वातेनाभिसमीरिता ।
कृष्णा राजानमासाद्य शोकार्ता न्यपतद्भुवि
बभूव वदनं तस्याः सहसा शोककर्षितम् ।
फुल्लपद्मपलाशाक्ष्यास्तमोग्रस्त इवांशुमान् ॥
ततस्तां पतितां दृष्ट्वा संरंभी सत्यविक्रमः ।
बाहुभ्यां परिजग्राह समुत्पत्य वृकोदरः ॥ ८
सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी
रुदती पाण्डवं कृष्णा सा हि भारतमब्रवीत्
दिष्ट्या राजन्नवाप्येमा-
मखिलां भोक्ष्यसे महीम् ।
आत्मजान् क्षत्रधर्मेण
संप्रदाय यमाय वै ॥ १०
दिष्ट्या त्वं कुशली पार्थ
मत्तमातङ्गगामिनीम् ।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां
सौभद्रं न स्मरिष्यसि ॥ ११
आत्मजान् क्षत्रधर्मेण
श्रुत्वा शूरान्निपातितान् ।
उपप्लव्ये मया सार्धं
दिष्ट्या त्वं न स्मरिष्यसि ॥ १२
प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा द्रौणिना पापकर्मणा ।
शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाश्रयम् १३
तस्य पापकृतो द्रौणेर्न चेदद्य त्वया रणे ।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम्
इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः ।
न चेत्फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः
एवमुक्त्वा ततः कृष्णा
पाण्डवं प्रत्युपाविशत् ।
युधिष्ठिरं याज्ञसेनी
धर्मराजं यशस्विनी ॥ १६
दृष्ट्वोपविष्टां राजर्षिः
पाण्डवो महिषीं प्रियाम् ।
प्रत्युवाच स धर्मात्मा
द्रौपदीं चारुदर्शनाम् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

स दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ दिष्ट्येति । पुत्रनाशापेक्षया राज्यप्राप्तिसुखं तत्र महदित्याक्षेपः ॥ १० ॥

धर्म्यं धर्मेण धर्मज्ञे प्राप्तास्ते निधनं शुभे।
पुत्रास्ते भ्रातरश्चैव तान्न शोचितुमर्हसि॥ १८
स कल्याणि वनं दुर्गं दूरं द्रौणिरितो गतः।
तस्य त्वं पातनं संख्ये कथं ज्ञास्यसि शोभने
द्रौपद्युवाच।
द्रोणपुत्रस्य सहजो मणिः शिरसि मे श्रुतः
निहत्य संख्ये तं पापं पश्येयं मणिमाहृतम्॥
राजञ्शिरसि ते कृत्वा
जीवेयमिति मे मतिः।
इत्युक्त्वा पाण्डवं कृष्णा
राजानं चारुदर्शना॥ २१
भीमसेनमथागत्य परमं वाक्यमब्रवीत्।
त्रातुमर्हसि मां भीम क्षत्रधर्ममनुस्मरन्॥ २२
जहि तं पापकर्माणं शंबरं मघवानिव।
न हि ते विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन॥
श्रुतं तत्सर्वलोकेषु परमव्यसने यथा।
द्वीपोऽभूस्त्वं हि पार्थानां नगरे वारणावते॥
हिडिम्बदर्शने चैव तथा त्वमभवो गतिः।
तथा विराटनगरे कीचकेन भृशार्दिताम् २५
मामप्युद्धृतवान्कृच्छ्रात्पौलोमीं मघवानिव।
यथैतान्यकृथाः पार्थ महाकर्माणि वै पुरा २६
तथा द्रौणिममित्रघ्न विनिहत्य सुखी भव।
तस्या बहुविधं दुःखं निशम्य परिदेवितम्॥
न चामर्षत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः।
स काञ्चनविचित्राङ्गमारुरोह महारथम् २८
आदाय रुचिरं चित्रं समार्गणगुणं धनुः।
नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे धृतः २९
विस्फार्य सशरं चापं तूर्णमश्वानचोदयत्।
ते हयाः पुरुषव्याघ्र चोदिता वातरंहसः ३०
वेगेन त्वरिता जग्मुर्हरयः शीघ्रगामिनः।
शिबिरात्स्वाद्गृहीत्वा स रथस्य पदमच्युतः३१

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि द्रौणिवधार्थं भीमसेनगमने एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

## १२

वैशम्पायन उवाच।
तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे यदूनामृषभस्ततः।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् १
एष पाण्डव ते भ्राता पुत्रशोकपरायणः।
जिघांसुर्द्रौणिमाक्रन्दे एक एवाभिधावति २
भीमः प्रियस्ते सर्वेभ्यो भ्रातृभ्यो भरतर्षभ।
तं कृच्छ्रगतमद्य त्वं कस्मान्नाभ्युपपद्यसे॥ ३
यत्तदाचष्ट पुत्राय द्रोणः परपुरंजयः।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेत पृथिवीमपि॥ ४
तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम्
प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनंजयम्॥ ५
तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाचदमर्षणः।
ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव॥ ६
विदितं चापलं ह्यासी-
दात्मजस्य दुरात्मनः।
सर्वधर्मविदाचार्यः
सोऽन्वशात्स्वसुतं ततः॥ ७
परमापद्गतेनापि न स्म तात त्वया रणे।
इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु विशेषतः॥ ८
इत्युक्तवान्गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान्।
न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ ९
स तदाज्ञाय दुष्टात्मा पितुर्वचनमप्रियम्।
निराशः सर्वकल्याणैः शोकात्पर्यचरन्महीम्
ततस्तदा कुरुश्रेष्ठ वनस्थे त्वयि भारत।
अवसद्द्वारकामेत्य वृष्णिभिः परमार्चितः ११
स कदाचित्समुद्रान्ते वसन् द्वारवतीमनु।
एक एकं समागम्य मामुवाच हसन्निव १२
यत्तदुग्रं तपः कृष्ण चरन्सत्यपराक्रमः।
अगस्त्याद्भारताचार्यः प्रत्यपद्यत मे पिता१३

पदं गमनमार्गचिन्हं गृहीत्वाऽऽलक्ष्य॥ ३१॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

१२

तस्मिन्निति॥ १॥ आक्रंदे संग्रामे॥ २॥ स्थाता स्थास्यसि॥ ९॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम देवगन्धर्वपूजितम् ।
तदद्य मयि दाशार्ह यथा पितरि मे तथा १४
अस्मत्तस्तदुपादाय दिव्यमस्त्रं यदूत्तम ।
ममाप्यस्त्रं प्रयच्छ त्वं चक्रं रिपुहणं रणे ॥१५
स राजन्प्रीयमाणेन मयाऽप्युक्तः कृताञ्जलिः
याचमानः प्रयत्नेन मत्तोऽस्त्रं भरतर्षभ ॥ १६
देव-दानव-गन्धर्व-मनुष्य-पतगोरगाः ।
न समा मम वीर्यस्य शतांशेनापि पिण्डिताः
इदं धनुरियं शक्तिरिदं चक्रमियं गदा ।
यद्यदिच्छसि चेदस्त्रं मत्तस्तत्तद्ददामि ते १८
यच्छक्नोषि समुद्यन्तुं प्रयोक्तुमपि वा रणे ।
तद्गृहाण विनाऽस्त्रेण यन्मे दातुमभीप्ससि१९
स सुनाभं सहस्रारं वज्रनाभमयस्मयम् ।
वव्रे चक्रं महाभागो मत्तः स्पर्धन्मया सह२०
गृहाण चक्रमित्युक्तो मया तु तदनन्तरम् ।
जग्राहोत्पत्य सहसा चक्रं सव्येन पाणिना
न चैनमशकत्स्थानात्सञ्चालयितुमच्युत ।
अथैनं दक्षिणेनापि गृहीतुमुपचक्रमे ॥ २२
सर्वयत्नबलेनापि गृह्णन्नेवमिदं ततः ।
ततः सर्वबलेनापि यदैनं न शशाक ह ॥ २३
उद्यन्तुं वा चालयितुं द्रौणिः परमदुर्मनाः ।
कृत्वा यत्नं परिश्रान्तः स न्यवर्तत भारत ॥
निवृत्तमनसं तस्मादभिप्रायाद्विचेतसम् ।
अहमामन्त्र्य संविग्नमश्वत्थामानमब्रुवम् ॥ २५
यः सदैव मनुष्येषु प्रमाणं परमं गतः ।
गाण्डीवधन्वा श्वेताश्वः कपिप्रवरकेतनः २६
यः साक्षाद्देवदेवेशं शितिकण्ठमुमापतिम् ।
द्वंद्वयुद्धे पराजिष्णुस्तोषयामास शंकरम् २७
यस्मात्प्रियतरो नास्ति ममान्यः पुरुषो भुवि
नादेयं यस्य मे किञ्चिदपि दाराः सुतास्तथा
तेनापि सुहृदा ब्रह्मन्पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
नोक्तपूर्वमिदं वाक्यं यस्त्वं मामभिभाषसे ॥
ब्रह्मचर्यं महद्घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसाऽऽर्जितः
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ३१
तेनाप्येतन्महद्दिव्यं चक्रमप्रतिमं रणे ॥
न प्रार्थितमभून्मूढ यदिदं प्रार्थितं त्वया ३२
रामेणातिबलेनैतन्नोक्तपूर्वं कदाचन ।
न गदेन न साम्बेन यदिदं प्रार्थितं त्वया ३३
द्वारकावासिभिश्चान्यैर्वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
नोक्तपूर्वमिदं जातु यदिदं प्रार्थितं त्वया ३४
भारताचार्यपुत्रस्त्वं मानितः सर्वयादवैः ।
चक्रेण रथिनां श्रेष्ठ कं नु तात युयुत्ससे ३५
एवमुक्तो मया द्रौणिर्मामिदं प्रत्युवाच ह ।
प्रयुज्य भवते पूजां योत्स्ये कृष्ण त्वया सह
प्रार्थितं ते मया चक्रं देवदानवपूजितम् ।
अजेयः स्यामिति विभो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते
त्वत्तोऽहं दुर्लभं काममनवाप्यैव केशव ।
प्रतियास्यामि गोविन्द शिवेनाभिवदस्व माम्
एतत्सुभीमं भीमानामृषभेण त्वया धृतम् ।
चक्रमप्रतिचक्रेण भुवि नान्योऽभिपद्यते ३९
एतावदुक्त्वा द्रौणिर्मां
युग्यानश्वान् धनानि च ।
आदायोपययौ काले
रत्नानि विविधानि च ॥ ४०
स संरम्भी दुरात्मा च चपलः क्रूर एव च ।
वेद चास्त्रं ब्रह्मशिरस्तस्माद्रक्ष्यो वृकोदरः ४१

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि युधिष्ठिरकृष्णसंवादे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा युधां श्रेष्ठः सर्वयादवनंदनः ।
सर्वायुधवरोपेतमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १
युक्तं परमकाम्बोजैस्तुरगैर्हेममालिभिः ।
आदित्योदयवर्णस्य धुरं रथवरस्य तु ॥ २

---

मे मह्यं दातुमिच्छसि तेन विनापि गृहाण त्वदीयेऽस्त्रे मम इच्छा नास्तीति भावः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः १२ ॥

१३

एवमिति ॥ १ ॥

दक्षिणामवहच्छैब्यः सुग्रीवः सव्यतोऽभवत्
पार्ष्णिवाहौ तु तस्यास्तां मेघपुष्पबलाहकौ॥
विश्वकर्मकृता दिव्या रत्नधातुविभूषिता।
उच्छ्रितेव रथे माया ध्वजयष्टिरदृश्यत॥ ४
वैनतेयः स्थितस्तस्यां प्रभामण्डलरश्मिवान्।
तस्य सत्यवतः केतुर्भुजगारिरदृश्यत॥ ५
अथारोहद्धृषीकेशः केतुः सर्वधनुष्मताम्।
अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः ६
अशोभेतां महात्मानौ दाशार्हमभितः स्थितौ
रथस्थं शार्ङ्गधन्वानमश्विनाविव वासवम् ७
तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितम्
प्रतोदेन जवोपेतान्परमाश्वानचोदयत्॥ ८
ते हयाः सहसोत्पेतुर्गृहीत्वा स्यन्दनोत्तमम्।
आस्थितं पाण्डवेयाभ्यां यदूनामृषभेण च ९
वहतां शार्ङ्गधन्वानमश्वानां शीघ्रगामिनाम्।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः पक्षिणां पततामिव
ते समार्च्छन्नरव्याघ्राः क्षणेन भरतर्षभ।
भीमसेनं महेष्वासं समनुद्रुत्य वेगिताः॥ ११
क्रोधदीप्तं तु कौन्तेयं द्विषदर्थे समुद्यतम्।
नाशक्नुवन्वारयितुं समेत्यापि महारथाः १२
स तेषां प्रेक्षतामेव श्रीमतां दृढधन्विनाम्।
ययौ भागीरथीतीरं हरिभिर्भृशवेगितैः॥ १३
यत्र स्म श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनाम्।
स ददर्श महात्मानमुदकान्ते यशस्विनम् १४
कृष्णद्वैपायनं व्यासमासीनमृषिभिः सह।
तं चैव क्रूरकर्माणं घृताक्तं कुशचीरिणम् १५
रजसा ध्वस्तमासीनं ददर्श द्रौणिमन्तके।
तमभ्यधावत्कौन्तेयः प्रगृह्य सशरं धनुः १६
भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
स दृष्ट्वा भीमधन्वानं प्रगृहीतशरासनम् १७
भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दनरथे स्थितौ।
व्यथितात्माऽभवद्द्रौणिः प्राप्तं चेदममन्यत १८
स तद्दिव्यमदीनात्मा परमास्त्रमचिन्तयत्।
जग्राह च स चैषीकां द्रौणिः सव्येन पाणिना

स तामापदमासाद्य
दिव्यमस्त्रमुदैरयत्।
अमृष्यमाणस्ताञ्छूरा-
न्दिव्यायुधधरान्स्थितान्॥ ५०

अपाण्डवायेति रुषा व्यसृजद्दारुणं वचः।
इत्युक्त्वा राजशार्दूल द्रोणपुत्रः प्रतापवान्
सर्वलोकप्रमोहार्थं तदस्त्रं प्रमुमोच ह।
ततस्तस्यामिषीकायां पावकः समजायत।
प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन्कालान्तकयमोपमः॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि ब्रह्मशिरोस्त्रत्यागे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

## १४

वैशम्पायन उवाच।
इङ्गितेनैव दाशार्हस्तमभिप्रायमादितः।
द्रौणेर्बुद्ध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत॥ १
अर्जुनार्जुन यद्दिव्यमस्त्रं ते हृदि वर्तते।
द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः संप्रति पाण्डव।
भ्रातृणामात्मनश्चैव परित्राणाय भारत।
विसृजैतत्त्वमप्याजावस्त्रमस्त्रनिवारणम्॥ ३
केशवेनैवमुक्तोऽथ पाण्डवः परवीरहा।
अवातरद्रथात्तूर्णं प्रगृह्य सशरं धनुः॥ ४
पूर्वमाचार्यपुत्राय ततोऽनन्तरमात्मने।
भ्रातृभ्यश्चैव सर्वेभ्यः स्वस्तीत्युक्त्वा परंतपः
देवताभ्यो नमस्कृत्य गुरुभ्यश्चैव सर्वशः।
उत्ससर्ज शिवं ध्यायन्नस्त्रमस्त्रेण शाम्यताम्
ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीवधन्वना।
प्रजज्वाल महार्चिष्मद्युगान्तानलसन्निभम्॥

---

अपाण्डवाय पाण्डवानामभावाय ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

इङ्गितेनेति ॥ १ ॥

तथैव द्रोणपुत्रस्य तदस्त्रं तिग्मतेजसः ।
प्रजज्वाल महाज्वालं तेजोमण्डलसंवृतम् ॥
निर्घाता बहवश्चासन्पेतुरुल्काः सहस्रशः ।
महद्भयं च भूतानां सर्वेषां समजायत ॥ ९
सशब्दमभवद्व्योम ज्वालामालाकुलं भृशम् ।
चचाल च मही कृत्स्ना सपर्वतवनद्रुमा ॥ १०
ते त्वस्त्रतेजसी लोकांस्तापयन्ती व्यवस्थिते
महर्षी सहितौ तत्र दर्शयामासतुस्तदा ॥ ११
नारदः सर्वभूतात्मा भरतानां पितामहः ।
उभौ शमयितुं वीरौ भारद्वाजधनञ्जयौ ॥ १२
तौ मुनी सर्वधर्मज्ञौ सर्वभूतहितैषिणौ ।
दीप्तयोरस्त्रयोर्मध्ये स्थितौ परमतेजसौ ॥ १३
तदन्तरमथाधृष्यावुपगम्य यशस्विनौ ।
आस्तामृषिवरौ तत्र ज्वलिताविव पावकौ
प्राणभृद्भिरनाधृष्यौ देवदानवसंमतौ ।
अस्त्रतेजः शमयितुं लोकानां हितकाम्यया ॥

ऋषी ऊचतुः ।

नानाशस्त्रविदः पूर्वे येऽप्यतीता महारथाः ।
नैतदस्त्रं मनुष्येषु तैः प्रयुक्तं कथञ्चन ।
किमिदं साहसं वीरौ कृतवन्तौ महात्ययम्

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि अर्जुनास्त्रत्यागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

वैशम्पायन उवाच ।

दृष्ट्वैव नरशार्दूल तावग्निसमतेजसौ ।
संजहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ १
उवाच भरतश्रेष्ठ तावृषी प्राञ्जलिस्तदा ।
प्रमुक्तमस्त्रमस्त्रेण शाम्यतामिति वै मया ॥ २
संहृते परमास्त्रेऽस्मिन्सर्वानस्मानशेषतः ।
पापकर्मा ध्रुवं द्रौणिः प्रधक्ष्यत्यस्त्रतेजसा ॥
यदत्र हितमस्माकं लोकानां चैव सर्वथा ।
भवन्तौ देवसंकाशौ तथा संमन्तुमर्हतः ॥ ४
इत्युक्त्वा संजहारास्त्रं पुनरेव धनञ्जयः ।
संहारो दुष्करस्तस्य देवैरपि हि संयुगे ॥ ५
विसृष्टस्य रणे तस्य परमास्त्रस्य संग्रहे ।
अशक्तः पाण्डवादन्यः साक्षादपि शतक्रतुः
ब्रह्मतेजोद्भवं तद्धि विसृष्टमकृतात्मना ।
न शक्यमावर्तयितुं ब्रह्मचारिव्रतादृते ॥ ७
अचीर्णब्रह्मचर्यो यः सृष्ट्वा वर्तयते पुनः ।
तदस्त्रं सानुबन्धस्य मूर्धानं तस्य कृन्तति ॥
ब्रह्मचारी व्रती चापि दुरवापमवाप्य तत् ।
परमव्यसनार्तोऽपि नार्जुनोऽस्त्रं व्यमुञ्चत ॥
सत्यव्रतधरः शूरो ब्रह्मचारी च पाण्डवः ।
गुरुवर्ती च तेनास्त्रं सञ्जहारार्जुनः पुनः ॥ १०
द्रौणिरप्यथ संप्रेक्ष्य तावृषी पुरतः स्थितौ ।
न शशाक पुनर्घोरमस्त्रं संहर्तुमोजसा ॥ ११
अशक्तः प्रतिसंहारे परमास्त्रस्य संयुगे ।
द्रौणिर्दीनमना राजन् द्वैपायनमभाषत ॥ १२
उत्तमव्यसनार्तेन प्राणत्राणमभीप्सुना ।
मयैतदस्त्रमुत्सृष्टं भीमसेनभयान्मुने ॥ १३
अधर्मश्च कृतोऽनेन धार्तराष्ट्रं जिघांसता ।
मिथ्याचारेण भगवन् भीमसेनेन संयुगे ॥ १४
अतः सृष्टमिदं ब्रह्मन्मयाऽस्त्रमकृतात्मना ।
तस्य भूयोऽद्य संहारं कर्तुं नाहमिहोत्सहे ॥
विसृष्टं हि मया दिव्यमेतदस्त्रं दुरासदम् ।
अपाण्डवायेति मुने वह्नितेजोऽनुमन्त्र्य वै ॥
तदिदं पाण्डवेयानामन्तकायाभिसंहितम् ।
अद्य पाण्डुसुतान्सर्वान् जीविताद्भ्रंशयिष्यति
कृतं पापमिदं ब्रह्मन् रोषाविष्टेन चेतसा ।
वधमाशास्य पार्थानां मयाऽस्त्रं सृजता रणे

व्यास उवाच ।

अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तात विद्वान्पार्थो धनञ्जयः।
उत्सृष्टवान्न रोषेण न नाशाय तवाहवे ॥ १९

---

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ आवर्तयते उपसंहरति—एतेनार्जुनस्यास्त्रमुपसंहरतश्चीर्णब्रह्मचर्यत्वं ख्याप्यते ॥ ८ ॥ अन्तकायान्ताय स्वार्थे कः ॥ १७ ॥

अस्त्रमस्त्रेण तु रणे तव संशमयिष्यता ।
विसृष्टमर्जुनेनेदं पुनश्च प्रतिसंहृतम् ॥ २०
ब्रह्मास्त्रमप्यवाप्यैतदुपदेशात्पितुस्तव ।
क्षत्रधर्मान्महाबाहुर्नाकम्पत धनञ्जयः ॥ २१
एवं धृतिमतः साधोः सर्वास्त्रविदुषः सतः ।
सभ्रातृबन्धोः कस्मात्त्वं वधमस्य चिकीर्षसि
अस्त्रं ब्रह्मशिरो यत्र परमास्त्रेण वध्यते ।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥ २३
एतदर्थं महाबाहुः शक्तिमानपि पाण्डवः ।
न विहन्यात्तदस्त्रं तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥
पाण्डवास्त्वं च राष्ट्रं च सदा संरक्ष्यमेव हि
तस्मात्संहर दिव्यं त्वमस्त्रमेतन्महाभुज ॥२५
अरोषस्तव चैवास्तु पार्थाः सन्तु निरामयाः ।
न ह्यधर्मेण राजर्षिः पाण्डवो जेतुमिच्छति ॥
मणिं चैव प्रयच्छाद्य यस्ते शिरसि तिष्ठति
एतदादाय ते प्राणान्प्रतिदास्यन्ति पांडवाः

द्रौणिरुवाच ।

पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत्कौरवैर्धनम् ।
अवाप्तमिह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते ॥
यमाबध्य भयं नास्ति शस्त्रव्याधिक्षुधाश्रयम्
देवेभ्यो दानवेभ्यो वा नागेभ्यो वा कथञ्चन
न च रक्षोगणभयं न तस्करभयं तथा ।
एवंवीर्यो मणिरयं न मे त्याज्यः कथञ्चन ॥
यत्तु मे भगवानाह तन्मे कार्यमनन्तरम् ।
अयं मणिरयं चाहमीषिका तु पतिष्यति ॥
गर्भेषु पाण्डवेयानाममोघं चैतदुत्तमम् ।
न च शक्तोऽस्मि भगवन्संहर्तुं पुनरुद्यतम् ॥
एतदस्त्रमतश्चैव गर्भेषु विसृजाम्यहम् ।
न च वाक्यं भगवतो न करिष्ये महामुने ॥

व्यास उवाच ।

एवं कुरु न चान्या तु बुद्धिः कार्या त्वयाऽनघ
गर्भेषु पाण्डवेयानां विसृज्यैतदुपारम ॥ ३४

वैशम्पायन उवाच ।

ततः परममस्त्रं तु द्रौणिरुद्यतमाहवे ।
द्वैपायनवचः श्रुत्वा गर्भेषु प्रमुमोच ह ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके० ऐषीके पर्वणि ब्रह्मशिरोस्त्रस्य पाण्डवेयगर्भप्रवेशने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

वैशम्पायन उवाच ।

तदाज्ञाय हृषीकेशो विसृष्टं पापकर्मणा ।
हृष्यमाण इदं वाक्यं द्रौणिं प्रत्यब्रवीत्तदा १
विराटस्य सुतां पूर्वं स्नुषां गाण्डीवधन्वनः ।
उपप्लव्यगतां दृष्ट्वा व्रतवान्ब्राह्मणोऽब्रवीत् २
परिक्षीणेषु कुरुषु पुत्रस्तव भविष्यति ।
एतदस्य परिक्षित्त्वं गर्भस्थस्य भविष्यति ३
तस्य तद्वचनं साधोः सत्यमेतद्भविष्यति ।
परिक्षिद्भविता ह्येषां पुनर्वंशकरः सुतः ॥ ४
एवं ब्रुवाणं गोविन्दं सात्वतां प्रवरं तदा ।
द्रौणिः परमसंरब्धः प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥ ५
नैतदेवं यथाऽऽत्थ त्वं पक्षपातेन केशव ।
वचनं पुण्डरीकाक्ष न च मद्वाक्यमन्यथा ६
पतिष्यति तदस्त्रं हि गर्भे तस्या मयोद्यतम् ।
विराटदुहितुः कृष्ण यं त्वं रक्षितुमिच्छसि

श्रीभगवानुवाच ।

अमोघः परमास्त्रस्य पातस्तस्य भविष्यति
स तु गर्भो मृतो जातो दीर्घमायुरवाप्स्यति
त्वां तु कापुरुषं पापं विदुः सर्वे मनीषिणः ।
असकृत्पापकर्माणं बालजीवितघातकम् ९
तस्मात्त्वमस्य पापस्य कर्मणः फलमाप्नुहि ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि चरिष्यसि महीमिमाम्
अप्राप्नुवन्क्वचित्काश्चित्संविदं जातु केनचित्
निर्जनानसहायस्त्वं देशान्प्रविचरिष्यसि११
भवित्री न हि ते क्षुद्रजनमध्येषु संस्थितिः ।
पूयशोणितगन्धी च दुर्गकान्तारसंश्रयः १२

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

१६

तदेति ॥ १ ॥ संविदं संलापम्॥ ११ ॥

विचरिष्यसि पापात्मा सर्वव्याधिसमन्वितः
वयः प्राप्य परिक्षित्तु वेदव्रतमवाप्य च ॥१३
कृपाच्छारद्वताच्छूरः सर्वास्त्राण्युपपत्स्यते ।
विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः १४
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति।
इतश्चोर्ध्वं महाबाहुः कुरुराजो भविष्यति १५
परिक्षिन्नाम नृपतिर्मिषतस्ते सुदुर्मते ।
अहं तं जीवयिष्यामि दग्धं शस्त्राग्नितेजसा
पश्य मे तपसो वीर्यं सत्यस्य च नराधम १६

व्यास उवाच ।

यस्मादनादृत्य कृतं त्वयाऽस्मान्कर्म दारुणम्
ब्राह्मणस्य सतश्चैव यस्मात्ते वृत्तमीदृशम् १७
तस्माद्यद्देवकीपुत्र उक्तवानुत्तमं वचः ।
असंशयं ते तद्भावि क्षत्रधर्मस्त्वयाऽऽश्रितः

अश्वत्थामोवाच ।

सहैव भवता ब्रह्मन्स्थास्यामि पुरुषेष्विह ।
सत्यवागस्तु भगवानयं च पुरुषोत्तमः ॥ १९

वैशम्पायन उवाच ।

प्रदायाथ मणिं द्रौणिः
पाण्डवानां महात्मनाम् ।
जगाम विमनास्तेषां
सर्वेषां पश्यतां वनम् ॥ २०
पाण्डवाश्चापि गोविन्दं पुरस्कृत्य हतद्विषः ।
कृष्णद्वैपायनं चैव नारदं च महामुनिम् ॥ २१
द्रोणपुत्रस्य सहजं मणिमादाय सत्वराः ।
द्रौपदीमभ्यधावन्त प्रायोपेतां मनस्विनीम्२२

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते पुरुषव्याघ्राः सदश्वैरनिलोपमैः ।
अभ्ययुः सहदाशार्हाः शिबिरं पुनरेव हि २३
अवतीर्य रथेभ्यस्तु त्वरमाणा महारथाः ।
ददृशुर्द्रौपदीं दृष्टामार्तामार्ततराः स्वयम् २४
तामुपेत्य निरानन्दां दुःखशोकसमन्विताम्
परिवार्य व्यतिष्ठन्त पाण्डवाः सहकेशवाः२५
ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञातो भीमसेनो महाबलः ।
प्रददौ तं मणिं दिव्यं वचनं चेदमब्रवीत् २६
अयं भद्रे तव मणिः पुत्रहन्तुर्जितः स ते ।
उत्तिष्ठ शोकमुत्सृज्य क्षात्रधर्ममनुस्मर २७
प्रयाणे वासुदेवस्य
शमार्थमसितेक्षणे ।
यान्युक्तानि त्वया भीरु
वाक्यानि मधुघातिनि ॥ २८
नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा भ्रातरो न च ।
न वै त्वमिति गोविन्द शममिच्छति राजनि
उक्तवत्यसि तीव्राणि वाक्यानि पुरुषोत्तमम्
क्षत्रधर्मानुरूपाणि तानि संस्मर्तुमर्हसि ॥ ३०
हतो दुर्योधनः पापो राज्यस्य परिपन्थिकः
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं विस्फुरतो मया३१
वैरस्य गतमानृण्यं
न स्म वाच्या विवक्षताम् ।
जित्वा मुक्तो द्रोणपुत्रो
ब्राह्मण्याद्गौरवेण च ॥ ३२
यशोऽस्य पतितं देवि शरीरं त्ववशेषितम् ।
वियोजितश्च मणिना भ्रंशितश्चायुधं भुवि३३

द्रौपद्युवाच ।

केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम ।
शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ३४
तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत्तदा
गुरोरुच्छिष्टमित्येव द्रौपद्या वचनादपि ३५
ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन्प्रभुः ।
शुशुभे स तदा राजा सचन्द्र इव पर्वतः ३६
उत्तस्थौ पुत्रशोकार्ता ततः कृष्णा मनस्विनी ।
कृष्णं चापि महाबाहुः परिपप्रच्छ धर्मराट् ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि द्रौपदीसान्त्वनायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

प्रायोपेतां मरणार्थं यो नियमस्तेनोपेताम् ॥ २२ ॥ दृष्टामश्वत्थाम्नः पराभवेन आर्तां पुत्रादेः शोकेन ॥ २४ ॥ मधुघातिनि मधुदैत्यहन्तरि ॥२८॥ विवक्षतां वक्तुमिच्छतां वाच्याः निन्द्याः नैव स्म॥३२॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

## १७

वैशम्पायन उवाच ।
हतेषु सर्वसैन्येषु सौप्तिके तै रथैस्त्रिभिः ।
शोचन्युधिष्ठिरो राजा दाशार्हमिदमब्रवीत् ॥ १
कथं नु कृष्ण पापेन क्षुद्रेणाकृतकर्मणा ।
द्रौणिना निहताः सर्वे मम पुत्रा महारथाः ॥ २
तथा कृतास्त्रविक्रान्ताः सहस्रशतयोधिनः ।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रोणपुत्रेण पातिताः ॥ ३
यस्य द्रोणो महेष्वासो न प्रादादाहवे मुखम् ।
निजघ्ने रथिनां श्रेष्ठं धृष्टद्युम्नं कथं नु सः ॥ ४
किं नु तेन कृतं कर्म तथायुक्तं नरर्षभ ।
यदेकः समरे सर्वानवधीन्नो गुरोः सुतः ॥ ५
श्रीभगवानुवाच ।
नूनं स देवदेवानामीश्वरेश्वरमव्ययम् ।
जगाम शरणं द्रौणिरेकस्तेनावधीद्बहून् ॥ ६
प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि ।
वीर्यं च गिरिशो दद्याद्येनेन्द्रमपि शातयेत् ॥ ७
वेदाहं हि महादेवं
तत्त्वेन भरतर्षभ ।
यानि चास्य पुराणानि
कर्माणि विविधानि च ॥ ८
आदिरेष हि भूतानां मध्यमन्तश्च भारत ।
विचेष्टते जगच्चेदं सर्वमस्यैव कर्मणा ॥ ९
एवं सिसृक्षुर्भूतानि ददर्श प्रथमं विभुः ।
पितामहोऽब्रवीच्चैनं भूतानि सृज मा चिरम् ॥ १०
हरिकेशस्तथेत्युक्त्वा भूतानां दोषदर्शिवान् ।
दीर्घकालं तपस्तेपे मग्नोऽम्भसि महातपाः ॥ ११
सुमहान्तं ततः कालं प्रतीक्ष्यैनं पितामहः ।
स्रष्टारं सर्वभूतानां ससर्ज मनसा परम् ॥ १२
सोऽब्रवीत्पितरं दृष्ट्वा गिरिशं मग्नमम्भसि ।
यदि मे नाग्रजोऽस्त्यन्यस्ततः स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः ॥ १३
तमब्रवीत्पिता नास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः ।
स्थाणुरेष जले मग्नो विस्रब्धः कुरु वैकृतम् ॥ १४
भूतान्यन्वसृजत्सप्त दक्षादींस्तु प्रजापतीन् ।
यैरिमं व्यकरोत्सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ १५
ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः
प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम् ।
बिभक्षयिषवो राज-
न्सहसा प्राद्रवंस्तदा ॥ १६
स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी
पितामहमुपाद्रवत् ।
आभ्यो मां भगवांस्त्रातु
वृत्तिरासां विधीयताम् ॥ १७
ततस्ताभ्यो ददावन्नमोषधीः स्थावराणि च ।
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ॥ १८
विहितान्नाः प्रजास्तास्तु
जग्मुः सृष्टा यथागतम् ।
ततो ववृधिरे राज-
न्प्रीतिमत्यः स्वयोनिषु ॥ १९
भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरावपि ।
उदतिष्ठज्जलाज्ज्येष्ठः प्रजाश्चेमा ददर्श सः ॥ २०
बहुरूपाः प्रजाः सृष्टा
विवृद्धाश्च स्वतेजसा ।
चुक्रोध भगवान् रुद्रो
लिङ्गं स्वं चाप्यविध्यत ॥ २१
तत्प्रविद्धं तथा भूमौ
तथैव प्रत्यतिष्ठत ।
तमुवाचाव्ययो ब्रह्मा
वचोभिः शमयन्निव ॥ २२
किं कृतं सलिले शर्व चिरकालस्थितेन ते ।
किमर्थं चेदमुत्पाद्य लिङ्गं भूमौ प्रवेशितम् ॥ २३

---

१७

**हतेष्विति**॥१॥ 'तरति शोकमात्मवित्' इति श्रुतेर्युधिष्ठिरादीनां शोकमपनिनीषुरात्मज्ञानमाह—**आदिरिति**। यथा कनकं कुण्डलादेरादिर्मध्यं अन्तश्चैवं रुद्रोऽपि जगत इत्यर्थः।तर्हि सांख्याभिमतप्रधानवदचेतनः स्यादित्याशंक्याह-**विचेष्टत इति**। 'को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इति श्रुतेः। प्राणापानचेष्टापि ईश्वराधीना किमुत मरणमारणादिरिति सर्वस्येश्वराधीनत्वात्। न कृताकृताभ्यां पुरुषेण संतापः कार्य इति भावः ॥९॥ न केवलं वयमेवास्य कर्मणा चेष्टां कुर्मोऽपि तु ब्रह्मादयोऽपीत्याह-**एवमित्यादिना**। प्रथमं रुद्रं तमोमयम् विभुस्त्रिगुणमय ईश्वरः ॥ १०॥ अपरं चतुर्मुखं रजोमयम् ॥१२॥ वैकृतं विकारम् ॥१४॥ त्रातु रक्षतु ॥१७॥ लिंगं प्रसवसामर्थ्यं मेढ्ररूपेण अविध्यत भूमौ पातितवान्। एतदेव पूजितं सत्सर्वसिद्धिप्रदं आस्तिकानां भविष्यतीत्यभिप्रायेण ॥ २१ ॥

सोऽब्रवीज्जातसंरंभस्तथा लोकगुरुर्गुरुम् ।
प्रजाः सृष्टाः परेणेमाः किं करिष्याम्यनेन वै॥
तपसाऽधिगतं चान्नं प्रजार्थं मे पितामह ।
ओषध्यः परिवर्तेरन् यथैवं सततं प्रजाः ॥ २५
एवमुक्त्वा स सक्रोधो जगाम विमना भवः।
गिरेर्मुञ्जवतः पादं तपस्तप्तुं महातपाः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि ऐषीके पर्वणि युधिष्ठिरकृष्णसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

श्रीभगवानुवाच

ततो देवयुगेऽतीते देवा वै समकल्पयन् ।
यज्ञं वेदप्रमाणेन विधिवद्यष्टुमीप्सवः ॥ १
कल्पयामासुरथ ते साधनानि हवींषि च ।
भागार्हा देवताश्चैव यज्ञियं द्रव्यमेव च ॥ २
ता वै रुद्रमजानन्त्यो याथातथ्येन देवताः ।
नाकल्पयन्त देवस्य स्थाणोर्भागं नराधिप॥
सोऽकल्प्यमाने भागे तु कृत्तिवासा मखेऽमरैः
ततः साधनमन्विच्छन्धनुरादौ ससर्ज ह ॥४
लोकयज्ञः क्रियायज्ञो गृहयज्ञः सनातनः ।
पञ्चभूतनृयज्ञश्च जज्ञे सर्वमिदं जगत् ॥ ५
लोकयज्ञैर्नृयज्ञैश्च कपर्दी विदधे धनुः ।
धनुः सृष्टमभूत्तस्य पञ्चकिष्कुप्रमाणतः ॥ ६
वषट्कारोऽभवज्ज्या तु धनुषस्तस्य भारत ।
यज्ञाङ्गानि च चत्वारि तस्य संनहनेऽभवन्॥
ततः क्रुद्धो महादेवस्तदुपादाय कार्मुकम् ।
आजगामाथ तत्रैव यत्र देवाः समीजिरे ॥ ८
तमात्तकार्मुकं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमव्ययम् ।
विव्यथे पृथिवी देवी पर्वताश्च चकम्पिरे ॥९
न ववौ पवनश्चैव नाग्निर्जज्वाल चैधितः ।
व्यभ्रमच्चापि संविग्नं दिवि नक्षत्रमण्डलम् ॥
न बभौ भास्करश्चापि सोमः श्रीमुक्तमण्डलः।
तिमिरेणाकुलं सर्वमाकाशं चाभवद्वृतम् ॥११
अभिभूतास्ततो देवा विषयान्न प्रजज्ञिरे ।
न प्रत्यभाच्च यज्ञः स देवतास्त्रेसिरे तथा॥१२
ततः स यज्ञं विव्याध रौद्रेण हृदि पत्रिणा ।
अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा स पावकः॥

---

**तपसेति** । मे मम तपसा जलवासरूपेण प्रजार्थं अन्नं जातम् । अन्नादन्नमित्येवं रूपेण ओषध्यो बीजांकुरसन्तानक्रमेण परिवर्तन्ते एवमेवान्नाद्रेतोद्वारा प्रजाश्च परिवर्तन्तेऽतः प्रवाहरूपेण सृष्टिस्थितिकार्ययोर्निर्वाहे सातत्येन प्रवृत्ते किमीश्वरेणेत्यभिप्रायेण लिंगेऽनादृते सति ईश्वरास्तिरोधानं प्राप्तवानित्यर्थः ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

**तत इति** । ईश्वरतिरोधानानन्तरं देवयुगे कृतयुगे विनापीश्वराराधनं प्रजाः स्वाभाविकैरेव शमदमादिभिः कृतकृत्या अभूवन् अतीते तु देवयुगे निरीश्वरास्ताः केवलेन कर्मणैव फलसिद्धिं इच्छन्त्यो यज्ञमकल्पयन् ॥ १ ॥ रुद्रं ईश्वरं यज्ञस्य फलदातारम् ॥ ३ ॥ 'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके यजति जुहोति ददाति तपस्तप्यतेऽन्तवदेवास्य तद्भवति' इति श्रुतेरीश्वराराधनहीनो यज्ञो ऽन्तवानित्येतद्दर्शयति आख्यायिकामुखेनैव **सोऽकल्प्यमाने इत्यादिना**।साधनं यज्ञनाशकम् ॥४॥ लोकयज्ञो लोकैषणा सर्वो मां साधुमेव जानात्विति वासनारूपः । क्रियायज्ञः गर्भाधानादिसंस्काररूपः। गृहयज्ञः पत्नीसाध्याग्निहोत्रादिः । पञ्चभूतनृयज्ञः पञ्चभूतानां गुणैः शब्दादिभिर्या नृणां प्रीतिस्तद्रूपः। विषयजं सुखमित्यर्थः । एतैरेव चतुर्भिर्यज्ञैः सर्वं जगत्सृष्टम् ॥ ५॥ तत्र मध्यमयोः शास्त्रोक्तयोर्यज्ञयोर्नाशार्थं प्रथमचरमयज्ञाभ्यां ईश्वरो धनुः कृतवान् किष्कुर्हस्तः । पञ्चहस्तं पञ्चविषयप्रमाणम् । लोकवासना देहवासना च शब्दादिविषयपञ्चकात्परतो नास्तीत्यर्थः ॥६॥वषट्कारसंज्ञेन गृहयज्ञेन ते उभे वासने किंचित्संकोचं गच्छत इति स तस्य वासनाद्वयरूपस्य धनुषो ज्यास्थानीयः यानि तु यज्ञाङ्गानि चत्वारि अर्थित्वं समर्थत्वं विद्वत्त्वं शास्त्रेण पर्युदस्तत्वं च तानि तस्य धनुषः लोकदेहवासनारूपस्य सन्नहने दार्ढ्याय अभवन् ॥ ७ ॥ यतः यज्ञाङ्गानि लोकैषणादौ विनियुक्तानि मूढैस्ततो हेतोः महादेवः क्रुद्धो यज्ञं जघानेत्यर्थादि स्पष्टार्थम् ॥८॥ रौद्रेण अहंकारेण दर्पेण वाऽहमेव यज्वा दाता विज्ञातेत्येवंरूपेण यज्ञो यज्ञात्पूर्वं अपक्रान्तं मुख्याद्विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादिशास्त्रोक्तादात्मविविदिषाख्यात् फलात् भ्रष्टः ॥ १३ ॥

स तु तेनैव रूपेण दिव्यं प्राप्य व्यराजत ।
अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर नभस्तले ॥ १४
अपक्रान्ते ततो यज्ञे संज्ञा न प्रत्यभात्सुरान् ।
नष्टसंज्ञेषु देवेषु न प्राज्ञायत किंचन ॥ १५
त्र्यंबकः सवितुर्बाहू भगस्य नयने तथा ।
पूष्णश्च दशनान् क्रुद्धो धनुष्कोट्या व्यशातयत् ॥ १६
प्राद्रवन्त ततो देवा यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ।
केचित्तत्रैव घूर्णन्तो गतासव इवाभवन् ॥ १७
स तु विद्राव्य तत्सर्वं शितिकण्ठोऽवहस्य च ।
अवष्टभ्य धनुष्कोटिं रुरोध विबुधांस्ततः ॥ १८
ततो वागमरैरुक्ता ज्यां तस्य धनुषोऽच्छिनत् ।
अथ तत्सहसा राजंश्छिन्नज्यं विस्फुरद्धनुः ॥
ततो विधनुषं देवा देवश्रेष्ठमुपागमन् ।
शरणं सह यज्ञेन प्रसादं चाकरोत्प्रभुः ॥ २०
ततः प्रसन्नो भगवान् स्थाप्य कोपं जलाशये ।
स जलं पावको भूत्वा शोषयत्यनिशं प्रभो ॥
भगस्य नयने चैव बाहू च सवितुस्तथा ।
प्रादात्पूष्णश्च दशनान्पुनर्यज्ञांश्च पाण्डव ॥ २२
ततः सुस्थमिदं सर्वं बभूव पुनरेव हि ।
सर्वाणि च हवींष्यस्य देवा भागमकल्पयन् ॥
तस्मिन् क्रुद्धेऽभवत्सर्वमसुस्थं भुवनं प्रभो ।
प्रसन्ने च पुनः सुस्थं प्रसन्नोऽस्य च वीर्यवान् ॥
ततस्ते निहताः सर्वे तव पुत्रा महारथाः ।
अन्ये च बहवः शूराः पाञ्चालस्य पदानुगाः ॥
न तन्मनसि कर्तव्यं न च तद्द्रौणिना कृतम् ।
महादेवप्रसादेन कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकैषीकपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## ॥ ऐषीकं पर्व समाप्तम् ॥

## ॥ सौप्तिकपर्व समाप्तम् ॥

किंचित्कालं फलं भुञ्जानो दिवि यजमानरूपेण व्यराजत । तथापि तेन कालात्मना रुद्रेण अन्वीयमानः सन् ततोऽप्यपक्रान्तः स्वर्गात् च्युतोऽभूदित्यर्थः ॥१४॥ अपक्रान्ते यज्ञे यज्ञफले भुक्ते सति व्रीह्यादौ गर्भवासादौ च जाते यज्ञपतौ सुरान् इन्द्रियाणि संज्ञा न प्रत्यभात् मूढान्यभूवन् हेयोपादेयविवेकशून्यान्यभूवन्नित्यर्थः ॥१५॥ **त्र्यंबक इति** । त्रीणि श्रवणमनननिदिध्यासनानि अम्बकानि गमकानि यस्य स परमेश्वरः । सवितुर्यज्ञप्रसोतुर्देहस्य । बाहू कर्मकरणहेतू । तथा भगस्य नेत्रे मनसः संकल्पौ अहमिदं करिष्ये इत्येवंरूपौ विहितप्रतिषिद्धरूपौ पूष्णो दशनान्वागिन्द्रियस्थानानि मंत्रांश्चेत्यर्थः । एतानि सर्वाणि धनुष्कोट्या पूर्वोक्तया लोकेषणया व्यशातयत् ॥ १६ ॥ एवं यज्ञे नष्टेऽपि धनुष्कोटिमपि पुण्याभावात् पूर्वोक्तां रुरोध ततो लोकदेहयोरपि रञ्जनं कुण्ठितमभूदित्यर्थः १८ ततोऽमरैरुक्ता वाक् विविदिषन्ति यज्ञेनेति पूर्वोक्ता देववाणी ज्यां श्रौतयज्ञरूपां धनुषः पूर्वोक्तवासनाढ्यात्मकात् अच्छिनत् दूरीचकार निष्कामं ईश्वरप्रीत्यर्थं यज्ञं कारितवतीत्यर्थः ॥१९॥ विधनुषं काम्यकर्महीनं देवं आत्मानं देवा इंद्रियाणि उपागमन् चित्तशुद्ध्यतिशयात् आत्मवश्यान्यभूवन् । ततश्च ईश्वरस्तैः शरणीकृतः प्रसन्नोऽभूत् ॥२०॥ कोपं रजस्तमोरूपं जलाशये मूढचित्ते ॥ २१ ॥ ततः सात्त्विको यज्ञः प्रवृत्त इत्याह-**भगस्येति** । पूर्ववदित्यर्थः २२ सर्वाणि हवींषि सर्वाणि कर्माणि ईश्वरार्पितान्येवाकुर्वन्नित्यर्थः ॥२३॥ फलितमाह-**न तदिति** । ईश्वरस्य वशे सर्वमिति ज्ञात्वा शोकं मा कार्षीरिति भावः ॥ २६ ॥

**इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंस श्रीगोविन्दसूरिसूनु श्रीनीलकण्ठविरचिते भारतभावदीपे सौप्तिकपर्वार्थप्रकाशे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥**

अस्यान्तरं स्त्रीपर्व भविष्यति

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

जनमेजय उवाच —

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः ।
धृतराष्ट्रो महाराज श्रुत्वा किमकरोन्मुने ॥

॥ इति श्रीमहाभारते *सौप्तिकपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे—' एतद्वै दशमं पर्व सौप्तिकं समुदाहृतम् । अष्टादशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्युक्ता महात्मना । श्लोकानां कथितान्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया ॥ श्लोकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता मुनिना ब्रह्मवादिना । ' इत्याद्युक्तं तथापि संप्रत्यस्मिन्पर्वणि श्लोकसंख्या ८०३ दृश्यते । अध्यायसंख्या विषये तु नैव भेदः । अयं श्लोकसंख्याव्यत्यासस्तु पूर्वपूर्वलेखकप्रमादजः स्यादिति भाति शम् ।

**इति श्रीकिंजवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचंद्रशास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यां सौप्तिकं पर्व समाप्तम् । भारती जयतु ॥ शके १८५३ ॥**

# Shriman
# MAHĀBHĀRATAM
## Part IV
## XI Streeparvan

WITH

## Bharata Bhawadeepa By Nīlkantha.

**Edited by**

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar



*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1853.* ] *First Edition.* [ *A. D. 1931.*

ॐ

# श्रीमन्महाभारतम् ।

## चतुर्थभागे–स्त्रीपर्व ।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
### भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम् ।

तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५३] प्रथमं संस्करणम् । [ खिस्ताब्दाः १९३१

|| श्रीभारती जयतु ||

# || महाभारतम् ||

## स्त्री-पर्व ।

## -११-

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | (१) जलप्रदानिकपर्व १-१८ | |
| १ | ४४ | दुर्योधने हते धृतराष्ट्रः किमकरोदिति जनमेजयप्रश्ने धृतराष्ट्रस्य सन्तापादिकं सञ्जयकृतं तत्सान्त्वनं पुनः शोकार्दितस्य तस्य पतनं चाह स्म वैशम्पायनः। विलपतो धृतराष्ट्रस्य शोकं निवारयन्सञ्जयो दुर्योधनं तं च विनिन्दन्नाश्वासयति स्म ... | ३ |
| २ | २७ | विदुरस्य धृतराष्ट्रं प्रति 'उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे' इत्यादिकं प्रबोधवाक्यम् ... ... ... | ४ |
| ३ | २० | विदुरवाक्येन विशोको धृतराष्ट्रः 'कथं नु मानसैर्दुःखैः प्रमुच्यन्ते तु पण्डिताः' इति पप्रच्छ। विदुरो 'यतो यतो मनो—दुःखात्' इत्यादिना तत्त्वमुपदिदेश ... ... ... ... | ५ |
| ४ | २४ | कथं संसारगहनमित्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने विदुरस्तदुत्तरत्वेन भूतानां जन्मप्रभृतिमरणपर्यन्तं वृत्तान्तं कथयित्वा धर्मपालनेन परमगतिप्राप्तिमाह स्म ... | ६ |
| ५ | २४ | 'यदिदं धर्मगहनम्' इत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने संसारगहनकथनं प्रतिज्ञाय वनोपमानकथनेन तत्सूचयन्नाह विदुरः ... ... | ७ |
| ६ | १४ | अहो खलु महद्दुःखमित्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने विदुरो मोक्षविकल्पितोपमानभूतकान्तारादिशब्दानामर्थं विवृणोति स्म ... | ८ |
| ७ | २९ | पुनर्धृतराष्ट्रप्रश्ने विदुरः संसारगहनवृत्तये तत्त्वमुपदिदेश ... ... ... ... | ९ |
| ८ | ५३ | पुनः शोकसंतप्तो धृतराष्ट्रः पतित्वा पुनर्लब्धसंज्ञो यदा विललाप तदा व्यासस्तं प्रति दैवकृतेरपरिहार्यत्वं कथयित्वा प्रत्यक्षतः श्रुतं देवानां कार्यं कथयितुं प्रतिजज्ञे। इन्द्रसभायां भारसंहारं प्रार्थयन्तीं पृथ्वीं प्रति 'धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठः पुत्रस्ते कार्यं करिष्यति' इत्यादिकं विष्णुवाक्यं कलेरंशेन दुर्योधनजन्मादिकं राजसूये नारदोक्तं चाभिधाय धृतराष्ट्रं सान्त्वयामास व्यासः। एतदुपदेशेन समाश्वस्तं धृतराष्ट्रमालक्ष्य व्यासोऽन्तर्दधे ... ... ... ... | ११ |
| ९ | २३ | व्यासे गते धृतराष्ट्रः किमकरोदिति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्। आगतस्य सञ्जयस्य प्रेतकार्यकरणविषयकं वाक्यं | |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | श्रुत्वा पतितं धृतराष्ट्रं प्रति विदुरः पुनरुपदिदेश ... ... ... | १२ |
| १० | २० | विदुरवाक्यं श्रुत्वा गान्धार्यादीनामानयनार्थमाज्ञाप्य धृतराष्ट्रो यानमारुरोह। आज्ञानुरोधेन कुन्त्यादिभिः सहागतायां गान्धार्यां रुदतीभिः स्त्रीभिः परिवृतो धृतराष्ट्रो युद्धस्थानं गन्तुं निर्जगाम ... ... ... | १३ |
| ११ | २४ | नगराद्बहिः क्रोशमात्रे प्रदेशे मिलिताः कृपाश्वत्थामकृतवर्माणो धृतराष्ट्राय वृत्तान्तं निवेद्य गान्धार्यै च पुत्राणां निधनं सौप्तिकवृत्तान्तं चावेद्य पाण्डवभयात्स्वस्थानानि जग्मुः ... | १३ |
| १२ | ३० | नगरान्निर्गतं धृतराष्ट्रं श्रुत्वा भ्रातृसहितो युधिष्ठिरः स्त्रीभिः सहिता द्रौपदी च प्रत्युद्गम्य धृतराष्ट्रवन्दनादि चक्रतुः। युधिष्ठिरमालिङ्ग्यालिङ्गनच्छलेन भीमनाशेच्छया तमालिङ्गितुं प्रवृत्तो धृतराष्ट्रस्तदभिप्रायज्ञेन श्रीकृष्णेन भीममाक्षिप्य पुरस्कृतां लौहीं भीमप्रतिमामालिङ्ग्य तां चूर्णीकृत्य मेदिन्यां पपात। ततो गतक्रोधं धृतराष्ट्रं प्रति 'मा शुचो धृतराष्ट्र त्वम्' इत्याद्युवाच श्रीकृष्णः ... ... ... ... | १४ |
| १३ | १७ | कृतशौचो धृतराष्ट्रो 'राजन्नधीता वेदास्ते' इत्यादिकं श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा तदनुमान्य भीमादीन्स्वगात्रैः स्पृष्ट्वा तत्तत्कल्याणमुवाच ... ... | १५ |
| १४ | २१ | ततो गान्धारीं प्रति गतेषु पाण्डवेषु तस्याः पाण्डवशापदानाभिप्रायं ज्ञात्वा तत्कालमागतेन व्यासेन सान्त्विता सा 'भगवन्नाभ्यसूयामि' इत्याद्युवाच तं प्रति ... ... ... | १६ |
| १५ | ४४ | गान्धार्या वाक्यं श्रुत्वा तां सान्त्वयतो भीमस्य तस्याश्चोक्तिप्रत्युक्ती। युधिष्ठिरमन्विष्यन्तीं गान्धारीं प्रति शापभीतः स आत्मानं विनिन्दन्नुवाच। अङ्गुल्यग्रे गान्धारीदृष्टिपातेन कुनखित्वं प्राप्तो युधिष्ठिरस्तदनुज्ञया कुन्तीसमीपमाजगाम। विलपन्तीं द्रौपदीमाश्वास्य तया सहागतां कुन्तीं प्रति 'मैवं पुत्रीति शोकार्ता' इत्याद्युवाच गान्धारी ... ... ... ... | १८ |
| | | **(२) स्त्रीविलापपर्व १८-३०** | |
| १६ | ६१ | व्यासप्रसादलब्धया दिव्यदृष्ट्या गान्धारी युद्धस्थानं ददर्श। धृतराष्ट्रादिष्वप्यायोधनं द्रष्टुमागतेषु विलपन्ती गान्धारी कृष्णं प्रति 'पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष' इत्याद्युवाच ... ... ... | २० |
| १७ | ३२ | हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा पतिता गान्धारी पुनर्लब्धसंज्ञा सती दुर्योधनमालिङ्ग्य विलपन्ती श्रीकृष्णं प्रति 'उपस्थितेऽस्मिन् संग्रामे' इत्याद्युक्त्वा दुर्योधनपत्नीं दृष्ट्वा पुनर्विललाप ... ... ... | २१ |
| १८ | २८ | निहतान्पुत्रान्दृष्ट्वा गान्धारी श्रीकृष्णं प्रति 'पश्य माधव पुत्रान्मे' इत्याद्युक्त्वा विलपन्तीः स्त्रियो दुःशासनं च दृष्ट्वा पुनर्विललाप ... ... ... ... | २२ |
| १९ | २१ | विकर्णं दुर्मुखादींश्च दृष्टवत्या गान्धार्या विलापः ... ... | २३ |
| २० | ३५ | अभिमन्युं दृष्ट्वा विलपन्ती गान्धारी श्रीकृष्णं प्रति, विलपन्तीमुत्तरां विराटे हते विलपन्तीस्ताः स्त्रियश्च दर्शयामास ... | २४ |
| २१ | १४ | कर्णं दृष्टवत्या गान्धार्या विलापः ... ... ... | २५ |
| २२ | १८ | आवन्त्यं जयद्रथं च दृष्टवत्या गान्धार्या विलापः ... ... | २६ |

| अ० | श्लोकाः | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| २३ | ४२ | शल्य-भगदत्त-भीष्म-द्रोणानां दर्शनेन गान्धारीविलापः ... | २७ |
| २४ | ३० | भूरिश्रवसं दृष्ट्वा विलपन्ती गान्धारी सोमदत्तोद्देशेन विलपन्तीस्तत्पत्नीर्यूपध्वजमुद्दिश्य च विलपन्तीस्तत्स्त्रियश्च श्रीकृष्णं प्रति दर्शयित्वा शकुनिदर्शनेन विलपति स्म ... ... | २८ |
| २५ | ५० | काम्बोजं मागधं धृष्टद्युम्नपुत्रादीन्विन्दानुविन्दादींश्च सर्वान् हतान् दृष्ट्वा विलापवाक्यानि वदन्ती गान्धारी शोकेन मूर्छिता सती भूम्यां पपात। पुनर्लब्धसंज्ञा गान्धारी मरणोन्मुखानामेषां समर्थेनापि त्वयोपेक्षा कृतेत्यादिना सर्वं दोषं श्रीकृष्ण आरोप्य 'त्वमपि सर्वान्स्वज्ञातीन्हत्वा कुत्सितं मरणं प्राप्स्यसि' इति तं शशाप। श्रीकृष्णो 'जानेऽहमेतदप्येवम्' इत्यादिना गान्धारीदत्तं शापमनुमनुते स्म ... | ३० |
| | | **(३) श्राद्धपर्व ३०–३२** | |
| २६ | ४४ | कृष्णेन प्रबोधिता गान्धारी तूष्णीं बभूव। धृतराष्ट्रेण, हतानां वीराणां संख्यायां पृष्टायां युधिष्ठिरस्तां कथयित्वा मृतानां गतीश्च कथयति स्म। पुनः 'केन ज्ञानबलेनैवं पुत्र पश्यसि सिद्धवत्' इति धृतराष्ट्रेण पृष्टो युधिष्ठिरो वनवासे लोमशाल्लब्धाया अनुस्मृतिविद्याया बलेनेत्याद्याह स्म। हतानां प्रेतकार्यकरणार्थमाज्ञप्तो धृतराष्ट्रेण युधिष्ठिरस्तदर्थं धौम्यादीनादिश्य दुर्योधनादीनां तानि कारयति स्म ... | ३१ |
| २७ | ३० | धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गातीरे आगत्य युधिष्ठिरादयः सर्वेषामुदकदानं चक्रुः। उदकदानसमये कुन्त्या 'सूर्यात्सकाशान्मय्युत्पन्नस्तव ज्येष्ठो भ्राता कर्ण इति तस्मै त्वमेवोदकदानं कुरु' इत्यादिष्टो युधिष्ठिरो भ्रातरं कर्णं ज्ञात्वा विलपंस्तस्मा उदकदानं चकार। भविष्यत्पर्वसूचनपूर्विका स्त्रीपर्वसमाप्तिः ... ... | ३४ |

॥ समाप्तेयं स्त्रीपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

॥ शुभं भवतु ॥

ॐ

॥ स्त्रीपर्वविषयानुक्रमणिका ॥

स्त्री विलापः

ॐ

# ॥ महाभारतम् ॥

## स्त्री-पर्व ।

## -११-

### जलप्रदानिकपर्व १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच ।

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः ।
धृतराष्ट्रो महाराज श्रुत्वा किमकरोन्मुने ॥

तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २

अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापादन्योन्यकारितात्
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत सञ्जयः ॥ ३

वैशम्पायन उवाच ।

हते पुत्रशते दीनं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ ४

ध्यानमूकत्वमापन्नं चिन्तया समभिप्लुतम् ।
अभिगम्य महाराज संजयो वाक्यमब्रवीत्

किं शोचसि महाराज नास्ति शोके सहायता
अक्षौहिण्यो हताश्चाष्टौ दश चैव विशांपते ॥

निर्जनेयं वसुमती
शून्या संप्रति केवला ।
नानादिग्भ्यः समागम्य
नानादेश्या नराधिपाः ॥ ७

सहैव तव पुत्रेण सर्वे वै निधनं गताः ।
पितॄणां पुत्रपौत्राणां ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
गुरूणां चानुपूर्व्येण प्रेतकार्याणि कारय ॥ ८

वैशम्पायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं पुत्रपौत्रवधार्दितः।
पपात भुवि दुर्धर्षो वाताहत इव द्रुमः ॥ ९

धृतराष्ट्र उवाच ।

हतपुत्रो हतामात्यो हतसर्वसुहृज्जनः ।
दुःखं नूनं भविष्यामि विचरन्पृथिवीमिमां
किं नु बन्धुविहीनस्य जीवितेन ममाद्य वै ।
लूनपक्षस्य इव मे जराजीर्णस्य पक्षिणः ॥११

---

### नीलकण्ठी-टीका-

१

एवं तत्त्वदृष्ट्या शोको न कर्तव्य इत्युक्तम् । लोकदृष्ट्यापि स न कार्य इत्याह-**हते दुर्योधने चैवेत्यादिना**ऽध्यायेनैकेन ॥ १ ॥ अन्योन्यकारितात्पाण्डवानां गर्भे ब्रह्मशिरोऽस्त्रं पतत्विति अश्वत्थाम्ना शापो दत्तः सहस्रवर्षाणि गलत्कुष्ठो भविष्यसीत्यश्वत्थाम्नः कृष्णेन शापो दत्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥ शून्या राजभिर्हीना केवला उपरतोत्सवा ॥ ७ ॥ **आनुपूर्व्येणेति** । आदौ हतानां आदावेव पश्चाद्धतानां पश्चादेवेति पौर्वापर्येण प्रेतानां परेतानां कार्याणि पारलौकिकानि कर्माणि ॥ ८ ॥ दुःखं यथा स्तात्तथा भविष्यामि ॥ १० ॥

हतराज्यो हतबन्धुर्हतचक्षुश्च वै तथा ।
न भ्राजिष्ये महाप्राज्ञ क्षीणरश्मिरिवांशुमान्
न कृतं सुहृदां वाक्यं जामदग्न्यस्य जल्पतः
नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ १३
सभामध्ये तु कृष्णेन यच्छ्रेयोऽभिहितं मम ।
अलं वैरेण ते राजन्पुत्रः संगृह्यतामिति ॥१४
तच्च वाक्यमकृत्वाऽहं भृशं तप्यामि दुर्मतिः
न हि श्रोतास्मि भीष्मस्य धर्मयुक्तं प्रभाषितं
दुर्योधनस्य च तथा वृषभस्येव नर्दतः ।
दुःशासनवधं श्रुत्वा कर्णस्य च विपर्ययम् ॥
द्रोणसूर्योपरागं च हृदयं मे विदीर्यते ।
न स्मराम्यात्मनः किंचित्पुरा सञ्जय दुष्कृतं
यस्येदं फलमद्येह मया मूढेन भुज्यते ।
नूनं व्यपकृतं किंचिन्मया पूर्वेषु जन्मसु ॥ १८
येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान् ।
परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे ॥ १९

सुहृन्मित्रविनाशश्च
दैवयोगादुपागतः ।
कोऽन्योऽस्ति दुःखिततरो
मत्तोऽन्यो हि पुमान् भुवि ॥ २०

तन्ममाद्यैव पश्यन्तु पाण्डवाः संशितव्रताः ।
विवृतं ब्रह्मलोकस्य दीर्घमध्वानमास्थितम् ॥

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य लालप्यमानस्य बहुशोकं वितन्वतः।
शोकापहं नरेन्द्रस्य सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ॥
शोकं राजन् व्यपनुद श्रुतास्ते वेदनिश्चयाः ।
शास्त्रागमाश्च विविधा वृद्धेभ्यो नृपसत्तम ॥
सृञ्जये पुत्रशोकार्ते यदूचुर्मुनयः पुरा ।
यथा यौवनजं दर्पमास्थिते ते सुते नृप ॥ २४
न त्वया सुहृदां वाक्यं ब्रुवतामवधारितम् ।
स्वार्थश्च न कृतः कश्चिल्लुब्धेन फलगृद्धिना
असिनैवैकधारेण स्वबुद्ध्या तु विचेष्टितम् ।
प्रायशोऽवृत्तसंपन्नाः सततं पर्युपासिताः ॥
यस्य दुःशासनो मन्त्री राधेयश्च दुरात्मवान्
शकुनिश्चैव दुष्टात्मा चित्रसेनश्च दुर्मतिः ॥

शल्यश्च येन वै सर्वं शल्यभूतं कृतं जगत् ।
कुरुवृद्धस्य भीष्मस्य गान्धार्या विदुरस्य च
द्रोणस्य च महाराज कृपस्य च शरद्वतः ।
कृष्णस्य च महाबाहो नारदस्य च धीमतः
ऋषीणां च तथाऽन्येषां व्यासस्यामिततेजसः
न कृतं तेन वचनं तव पुत्रेण भारत ।
न धर्मः सत्कृतः कश्चिन्नित्यं युद्धमभीप्सता
अल्पबुद्धिरहंकारी नित्यं युद्धमिति ब्रुवन् ।
क्रूरो दुर्मर्षणो नित्यमसंतुष्टश्च वीर्यवान् ॥३१
श्रुतवानसि मेधावी सत्यवांश्चैव नित्यदा ।
न मुह्यन्तीदृशाः सन्तो बुद्धिमन्तो भवादृशाः
न धर्मः सत्कृतः कश्चित्तव पुत्रेण मारिष ।
क्षपिताः क्षत्रियाः सर्वे शत्रूणां वर्धितं यशः

मध्यस्थो हि त्वमप्यासी-
र्न क्षमं किंचिदुक्तवान् ।
दुर्धरेण त्वया भार-
स्तुलया न समं धृतः ॥ ३४

आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथाक्षमम् ।
यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते ॥ ३५
पुत्रगृद्ध्या त्वया राजन् प्रियं तस्य चिकीर्षितं
पश्चात्तापमिमं प्राप्तो न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
मधु यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं नानुपश्यति ।
स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येवं यथा भवान्
अर्थांश्च शोचन्प्राप्नोति न शोचन्विन्दते फलम्
न शोचञ्श्रियमाप्नोति न शोचन्विन्दते परम्
स्वयमुत्पादयित्वाऽग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयन् ।
दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः ॥
त्वयैव ससुतेनायं वाक्यवायुसमीरितः ।
लोभाज्येन च संसिक्तो ज्वलितः पार्थपावकः
तस्मिन् समिद्धे पतिताः शलभा इव ते सुताः
तान्वै शराग्निनिर्दग्धान्न त्वं शोचितुमर्हसि
यच्चाश्रुपातात्कलिलं वदनं वहसे नृप ।
अशास्त्रदृष्टमेतद्धि न प्रशंसन्ति पण्डिताः ॥
विस्फुलिंगा इव ह्येतान्दहन्ति किल मानवान्
जहीहि मन्युं बुद्ध्या वै धारयात्मानमात्मना

श्रोतास्मि श्रुतवानस्मि ॥ १५ ॥ विपर्ययं विनाशम् ॥१६॥ तन्मामिति । अद्यैव प्राणत्यागं करिष्यामीत्यर्थः ॥२१॥ वितन्वतः विस्तारयतः ॥२२॥ अवृत्तेति च्छेदः ॥२६॥ शल्यश्च मन्त्रीति पूर्वेणान्वयः ॥ २८ ॥ ब्रुवन् दुर्योधन आसीदिति शेषः ॥३१॥ प्रपातं पर्वताग्राद् भ्रंशम् ॥ ३७ ॥ परं मोक्षम् ॥३८॥ दहंति शोका इत्यर्थात् । मन्युं दैन्यं 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः । आत्मानं चित्तम् । आत्मना धैर्येण धारय प्राणान्मात्या क्षीः इत्यर्थः ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच ।
एवमाश्वासितस्तेन सञ्जयेन महात्मना । विदुरोऽभूय एवाह बुद्धिपूर्वं परंतप ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।
ततोऽमृतसमैर्वाक्यैर्ह्लादयन्पुरुषर्षभम् ।
वैचित्रवीर्यं विदुरो यदुवाच निबोध तत् १
विदुर उवाच ।
उत्तिष्ठ राजन्किं शेषे धारयात्मानमात्मना
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः २
सर्वे क्षयान्ता निचयाः
पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता
मरणान्तं च जीवितम् ॥ ३
यदा शूरं च भीरुं च
यमः कर्षति भारत ।
तत्किं न योत्स्यन्ति हि ते
क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४
अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति ।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते ॥ ५
अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत ।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ६
न शोचन्मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ७
कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधान्युत
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ८
यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वशः ।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ ॥ ९
एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् ।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना १०
न चाप्येतान्हतान्युद्धे राजञ्शोचितुमर्हसि
प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम्
सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना
अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः ।
नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना १३
हतोऽपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः ।
उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे १४
तेषां कामदुघाँल्लोका-
निन्द्रः सङ्कल्पयिष्यति ।
इन्द्रस्यातिथयो ह्येते
भवन्ति भरतर्षभ ॥ १५
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया ।
स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः
शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः ।
हूयमानाञ्शरांश्चैव सेहुस्तेजस्विनो मिथः ॥
एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम् ।
न युद्धादधिकं किञ्चित्क्षत्रियस्येह विद्यते१८
क्षत्रियास्ते महात्मनः शूराः समितिशोभनाः
आशिषः परमाः प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि
आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कायमुत्स्रष्टुमर्हसि२०

---

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

**तत इति** ॥ १ ॥ एषा मरणान्ता अत उत्तिष्ठ शोकं त्यज ॥२॥ 'भावान्तरमभावो हि कयाचित्तु व्यपेक्षया' इति न्यायेन कृत्स्नप्रपञ्चस्याभावो ब्रह्म तदादीनि । भावो नामरूपात्मकता तन्मध्यानि तथाऽभावनिधनानीति तथा च 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' इति न्यायेन मध्येऽप्यभावभूतानां तेषां स्वप्नेषु प्रतीयमानानामिव नाशे व्यर्थः शोक इत्यर्थः ॥६॥ सांसिद्धिके स्वभावसिद्धे ॥७॥ संवर्तयति स्ववशं नयति ॥९॥ तत्र गामिनां परत्र गमनशीलानां यस्य काल उपस्थितः सोऽग्रे प्रयाति ॥ १० ॥ अदर्शनादज्ञानात् ॥ १३ ॥ नोऽस्माकं क्षत्रियाणाम् ॥१४ आचक्षे कथयामि ॥ १८ ॥ दीर्घमध्वानमास्थितं मां पाण्डवा अद्यैव पश्यन्तु इत्युक्तं तत्राह-**आत्मानमिति** कायं देहं कार्यमित्यपि पाठः ॥ २० ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ।
न मध्यस्थः क्वचित्कालः सर्वं कालः प्रकर्षति
कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येदेषु न पण्डितः
न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते २६
अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत्पराक्रमम् ।
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ॥ २७
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ।
अनिष्टसंप्रयोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च २८
मानुषा मानसैर्दुःखैर्दह्यन्ते चाल्पबुद्धयः ।
नार्थो न धर्मो न सुखं यदेतदनुशोचसि २९
न च नापैति कार्यार्थास्त्रिवर्गाच्चैव हीयते ।
अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः
असंतुष्टाः प्रमुह्यन्ति संतोषं यान्ति पण्डिताः
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्३१
शयानं चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति ।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम् ३२
यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम्
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समुपाश्नुते३३
येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्फलं समुपाश्नुते ॥ ३४
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्यापकृतस्य च
शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा ।
कृतं भवति सर्वत्र नाकृतं विद्यते क्वचित् ३६
न हि ज्ञानविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः३७

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

धृतराष्ट्र उवाच ।
सुभाषितैर्महाप्राज्ञ शोकोऽयं विगतो मम ।
भूय एव तु वाक्यानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
अनिष्टानां च संसर्गादिष्टानां च विसर्जनात्
कथं हि मानसैर्दुःखैः प्रमुच्यन्ते तु पण्डिताः

विदुर उवाच ।
यतो यतो मनो दुःखात्सुखाद्वा विप्रमुच्यते
ततस्ततो नियम्यैतच्छान्तिं विन्देत वै बुधः
अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ ।
कदलीसन्निभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते
यदा प्राज्ञाश्च मूढाश्च धनवन्तोऽथ निर्धनाः
सर्वे पितृवनं प्राप्य स्वपन्ति विगतज्वराः ॥
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धिभिः ।
किं विशेषं प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः ॥

---

जानपदिकं सर्वसाधारणं अभावेन मरणेन तच्च दुःखं च ॥२६॥ कार्यार्थान्नापैतीति न अपि त्वपैत्येव ॥३०॥ अवस्थायां यौवनादिरूपायाम्॥३३॥ **येनेति** । स्थूलेन देहेन कृतं तत्तेनैव भुज्यते मनःकृतं चेत्तेनैव भुज्यते स्वप्नादौ ॥३४॥ अपकृतस्यायथार्थस्य ॥३५॥ मूलं शरीरम् ॥३७॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

**सुभाषितैरिति** ॥ १ ॥ शान्तिं चित्तस्योपरतिम् ॥ ३ ॥ शान्तौ हेतुर्लोकस्य अशाश्वतत्वज्ञानमित्याह—**अशाश्वतमिति** ॥ ४ ॥ **यदेति** । पितृवनं मृत्युम् ॥ ५ ॥ यदि मरणमात्राद्विमुच्यते तर्हि देहशोषणं किमर्थं क्रियत इत्याह-**निर्मांसैरिति** । तत्र परलोके तेषां मृतानां परे तपस्विनः तस्मान्मरणानन्तरमपि विषमगतिरस्त्येवेत्यर्थः ॥ ६ ॥

येन प्रत्यवगच्छेयुः
कुलरूपविशेषणम् ।
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति
विप्रलब्धधियो नराः ॥ ७
गृहाणीव हि मर्त्यानामाहुर्देहानि पण्डिताः
कालेन विनियुज्यन्ते सत्त्वमेकं तु शाश्वतम्
यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु पूरुषः
अन्यद्रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥
वैचित्रवीर्य साध्यं हि दुःखं वा यदि वा सुखं
प्राप्नुवन्तीह भूतानि स्वकृतेनैव कर्मणा ॥ १०
कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः सुखं दुःखं च भारत ।
ततो वहति तं भारमवशः स्ववशोऽपि वा ॥
यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते ।
किंचित्प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापि वा
छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा ।
आर्द्रं वाप्यथवा शुष्कं पच्यमानमथापि वा
उत्तार्यमाणमापाकादुद्धृतं चापि भारत ।
अथवा परिभुञ्जन्तमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥
गर्भस्थो वा प्रसूतो वाऽप्यथवा दिवसान्तरः।
अर्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपि वा ॥
संवत्सरगतो वापि द्विसंवत्सर एव वा ।
यौवनस्थोऽथ मध्यस्थो वृद्धो वाऽपि विपद्यते
प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुतप्यसे ॥
यथा तु सलिलं राजन् क्रीडार्थमनुसंतरत् ।
उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किंचित्सत्त्वं नराधिप
एवं संसारगहने उन्मज्जननिमज्जने ।
कर्मभोगेन बध्यन्ते क्लिश्यन्ते चाल्पबुद्धयः ॥
ये तु प्राज्ञाः स्थिताः सत्त्वे
संसारेऽस्मिन् हितैषिणः ।
समागमज्ञा भूतानां
ते यान्ति परमां गतिम् । २०

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

धृतराष्ट्र उवाच ।
कथं संसारगहनं विज्ञेयं वदतां वर ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः
विदुर उवाच ।
जन्मप्रभृति भूतानां क्रिया सर्वोपलक्ष्यते ।
पूर्वमेवेह कलिले वसते किंचिदन्तरम् ॥ २
ततः स पञ्चमेऽतीते मासे वा समकल्पयत् ।
ततः सर्वाङ्गसंपूर्णो गर्भो वै स तु जायते ॥३
अमेध्यमध्ये वसति मांसशोणितलेपने ।
ततस्तु वायुवेगेन ऊर्ध्वपादो ह्यधःशिराः ॥
योनिद्वारमुपागम्य बहून् क्लेशान्समृच्छति
योनिसंपीडनाच्चैव पूर्वकर्मभिरन्वितः ॥ ५
तस्मान्मुक्तः स संसारादन्यान्पश्यत्युपद्रवान्
ग्रहास्तमनुगच्छन्ति सारमेया इवामिषम् ॥
ततः प्राप्तोत्तरे काले व्याधयश्चापि तं तथा
उपसर्पन्ति जीवन्तं बध्यमानं स्वकर्मभिः ॥

---

येन हेतुना अदृष्टरूपेण कुलेन रूपेण च विशेषणं प्राप्नोति सोऽदृष्टरूपो हेतुः सर्वत्र कार्येऽस्तीति पूर्वकर्माधीनेषु पुत्रादिसंयोगवियोगेषु न शोकादिकं युक्तमिति भावः ॥७॥ सत्त्वं लिंगशरीरं शाश्वतं मोक्षपर्यंतं स्थायित्वात् ॥ ८ ॥ अवरोप्यन्तं अवरोप्यमाणम् ॥ १३ ॥ आपाकात् कुलालकृतात् पात्रपाककूटात् ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

कथमिति ॥ १ ॥ जन्मप्रभृति शुक्रशोणितसंयोगादारभ्य क्रिया गर्भवृद्धिरूपा उपलक्ष्यते कलिलं शुक्रशोणितसंयोगः । ‘ एकरात्रोषितं कलिलं भवति पञ्चरात्राद्बुद्बुदः ’ इत्यादि शास्त्राद्गम्यते । तत्र कलिले वसते जीव इति शेषः। किंचिदन्तरं पूर्वदिनापेक्षया वृद्ध्यवस्थाभेदेन अल्पेन परिमाणान्तरेण ॥ २ ॥ पञ्चमे मासे अतीते अवयवाभिवृद्धे पिण्डे वासं चैतन्यस्याविर्भावं अकल्पयत्। पूर्वं चैतन्यसत्तामात्रं पञ्चमेऽतीते तु षष्ठे आविर्भाव इति विशेषः। ततः स दशमासाभ्यन्तरे संपूर्णो गर्भो जायते ॥ ३ ॥ तस्माद्योनिद्वारात् संसारात् संसारं प्राप्य ॥ ६ ॥ संगः

तं बद्धमिन्द्रियैः पाशैः संगस्वादुभिरावृतम्
व्यसनान्यपि वर्तन्ते विविधानि नराधिप
बध्यमानश्च तैर्भूयो नैव तृप्तिमुपैति सः।
तदा नावैति चैवायं प्रकुर्वन्साध्वसाधु वा

तथैव परिरक्षन्ति ये ध्यानपरिनिष्ठिताः।
अयं न बुध्यते तावद्यमलोकमथागतम्॥ ९

यमदूतैर्विकृष्यंश्च मृत्युं कालेन गच्छति।
वाग्घीनस्य च यन्मात्रमिष्टानिष्टं कृतं मुखे।
भूय एवात्मनाऽऽत्मानं बध्यमानमुपेक्षते ॥

अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः
लोभक्रोधभयोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते॥१२

कुलीनत्वे च रमते दुष्कुलीनान्विकुत्सयन्।
धनदर्पेण दृप्तश्च दरिद्रान्परिकुत्सयन्।
मूर्खानिति परानाह
नात्मानं समवेक्षते।

दोषान्क्षिपति चान्येषां
नात्मानं शास्तुमिच्छति॥ १४
यदा प्राज्ञाश्च मूर्खाश्च धनवन्तश्च निर्धनाः॥
कुलीनाश्चाकुलीनाश्च मानिनोऽथाप्यमानिनः
सर्वे पितृवनं प्राप्ताः स्वपन्ति विगतत्वचः।
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः॥
विशेषं न प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः।
येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम्॥ १७
यदा सर्वे समं न्यस्ताः स्वपन्ति धरणीतले।
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति प्रलब्धुमिह दुर्बुधाः
प्रत्यक्षं च परोक्षं च
यो निशम्य श्रुतिं त्विमाम्। १८
अध्रुवे जीवलोकेऽस्मिन्
यो धर्ममनुपालयन्॥
जन्मप्रभृति वर्तेत प्राप्नुयात्परमां गतिम् १९
एवं सर्वं विदित्वा वै यस्तत्त्वमनुवर्तते।
स प्रमोक्ष्यते सर्वान्पन्थानो मनुजेश्वर २०

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

## ५

धृतराष्ट्र उवाच।
यदिदं धर्मगहनं बुद्ध्या समनुगम्यते।
तद्धि विस्तरतः सर्वं बुद्धिमार्गं प्रशंस मे॥ १

विदुर उवाच।
अत्र ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे।
यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः॥ २

---

विषयसंगः स्वादुर्येषां तैः ८ यद्यपि मूढः पापं नावैति तथापि ध्यानपरिनिष्ठितास्ततस्तथैव यथाशास्त्रं आत्मानं परिरक्षन्त्येव ॥ १० तस्यैवं यमदूतैर्नीयमानस्य वाग्घीनस्य सर्वेन्द्रियविकलस्य यन्मात्रं यत्किञ्चिदिष्टानिष्टं पुण्यं पापं तन्मुखे प्रथमं कृतं भवति। तत्रापि पुण्यफलं भुञ्जानो विषयेषु योगात् आत्मानं बध्यमानं गर्भवासादिना पात्यमानं उपेक्षते न तु स्वाहितं कामयते ॥११ ॥ विगतत्वचः आच्छादनहीनाः ॥ १६ ॥ तस्य नास्तिक्यमनुवदति-**येनेत्यादिना** ॥ १७ ॥ यदेति सार्धः परमतानुवादः। प्रत्यक्षादितः सर्वे सर्वाणि भूतानि समं तुल्यं स्वपंति कृमिविद्भस्मभावं गच्छन्ति तदाऽन्योन्यं प्रलब्धुं विप्रलब्धुं ऋत्विग्यजमानं देहि अमुं लोकं प्राप्स्यसीति प्रतारयितुं दुर्बुधाः दुष्पंडिता इच्छन्ति देहरूपस्यात्मनो नष्टत्वात्। आमुष्मिकफलवचनमनर्थकं स्यादिति भावः ॥ १८ ॥ वर्तेत परमार्थसाधनव्यापारं कुर्यात्॥ १९ ॥ पन्थानो मार्गान् द्वितीयार्थे प्रथमा। अन्यान् गतिमार्गान् मोक्षयते किं तु ऊर्ध्वमार्गमेव प्रापयति ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

---

५

**यदिदं धर्मगहनमि**त्यध्यायस्य विवरणं उत्तराध्यायेन **अहो** क्रियते **खलु महद्दुःखमित्यादिना** ॥१॥

कश्चिन्महति कान्तारे वर्तमानो द्विजः किल
महद्दुर्गमनुप्राप्तो वनं क्रव्यादसंकुलम् ॥ ३
सिंह-व्याघ्र-गजर्क्षौघैरतिघोरं महास्वनैः ।
पिशितादैरतिभयैर्महोग्राकृतिभिस्तथा ॥ ४
समन्तात्संपरिक्षिप्तं यत् स्म दृष्ट्वा त्रसेद्यमः ।
तदस्य दृष्ट्वा हृदयमुद्वेगमगमत्परम् ॥ ५
अभ्युच्छ्रयं च रोम्णां वै विक्रियाश्च परन्तप
स तद्वनं व्यनुसरन्संप्रधावन्नितस्ततः ॥ ६
वीक्षमाणो दिशः सर्वाः शरणं क्व भवेदिति ।
स तेषां छिद्रमन्विच्छन्प्रद्रुतो भयपीडितः ७
न च निर्याति वै दूरं न वा तैर्विप्रमोच्यते ।
अथापश्यद्वनं घोरं समन्ताद्वागुरावृतम् ॥ ८
बाहुभ्यां संपरिक्षिप्तं स्त्रिया परमघोरया ।
पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः ॥ ९
नभःस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम् ।
वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः ॥ १०
वल्लीभिस्तृणच्छन्नाभिर्दृढाभिरभिसंवृतः ।
पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ११
विलग्नश्चाभवत्तस्मिन्लतासंतानसंकुले ।
पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम् १२
स तथा लम्बते तत्र ह्यूर्ध्वपादो ह्यधःशिराः
अथ तत्रापि चान्योऽस्य भूयो जात उपद्रवः
कूपमध्ये महानागमपश्यत महाबलम् ।
कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम् ॥ १४
षड्वक्त्रं कृष्णशुक्लं च द्विषट्कपदचारिणम् ।
क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ॥ १५
तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः
नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः १६
आसते मधु संवृत्य पूर्वमेव निकेतजाः ।
भूयो भूयः समीहन्ते मधूनि भरतर्षभ ॥ १७
स्वादनीयानि भूतानां यैर्बालो विप्रकृष्यते ।
तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते तदा १८
आलम्बमानः स पुमान् धारां पिबति सर्वदा
न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य सङ्कटे ॥
अभीप्सति तदा नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः ।
न चास्य जीविते राजन्निर्वेदः समजायत २०
तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता ।
कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति च मूषिकाः
व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया ।
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च २२
वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषिकेभ्यश्च पञ्चमम् ।
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद्भयम् ॥ २३
एवं स वसते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे ।
न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति २४

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

द्वाभ्यामविद्याकर्मभ्यां जायत इति द्विजः जन्तुः वनं संसारः । क्रव्यादा व्याधयः ॥३॥ महान् स्वनो दुःखशब्दो यैस्तैः सिंहादिभिर्व्याधिभिः॥ ४ ॥ वागुराः विषयतृष्णादिवासनाः ॥ ८ ॥ विलग्नः तत्रैवाभिमानवान् ॥ १२ ॥ ऊर्ध्वपादो ह्यधःशिराः स्वर्गच्युतः संसारमनुसृतः ॥१३॥ नागं कालसर्पं वीनाहो मुखबंधनं तस्य स्वदेहकूपप्रच्छादकस्य मरणकारणस्य क्रोधलोभादेर्वेलायां संवत्सराख्यः कालगजः परिवर्तते तं तिरोधातुं सहायो भवति ॥ १४ ॥ षट् ऋतवः वक्त्राणि यस्य तम्।कृष्णशुक्लं कृष्णशुक्लपक्षमयम्। द्विषट्काः द्वादश पादा मासा यस्य वल्ली जीविताशा वृक्ष आयुर्जीवितकालः ॥ १५ ॥ प्रशाखासु बाल्ययौवनाद्यवस्थासु मधुकराः कामरसार्थिन इन्द्रियगणाः ॥ १६ ॥ मधुकामान्संवृत्य संगृह्य निकेताः सन्धिगृहास्तजाः समीहन्ते इन्द्रियमधुकराः ॥ १७ ॥ इन्द्रियतृष्णया जीवोऽपि न हृष्यतीत्याह-**तेषामिति** ॥ १८ ॥ तत्रैव कामसुखे कृष्णाः श्वेताश्च मूषिकाः रात्र्यहानि वृक्षं कुट्यन्ति आयुः क्षिण्वन्ति ॥ २१ ॥ व्यालैः दुष्टमतङ्गजादितुल्यैर्व्याधिभिः स्त्रिया जरया नागेन मृत्युसर्पेण कुञ्जरेण संवत्सराख्येन कालेन॥२२॥वृक्षप्रपातो मरणम्। मधुलोभाद्विषयसुखासक्तेः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

धृतराष्ट्र उवाच ।
अहो खलु महद्दुःखं कृच्छ्रवासश्च तस्य ह ।
कथं तस्य रतिस्तत्र तुष्टिर्वा वदतां वर ॥ १
स देशः क नु यत्रासौ वसते धर्मसङ्कटे ।
कथं वा स विमुच्येत नरस्तस्मान्महाभयात्
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व साधु चेष्टामहे तदा ।
कृपा मे महती जाता तस्याभ्युद्धरणेन हि ३
विदुर उवाच ।
उपमानमिदं राजन्मोक्षविद्भिरुदाहृतम् ।
सुकृतं विन्दते येन परलोकेषु मानवः ॥ ४
उच्यते यत्तु कान्तारं महासंसार एव सः ।
वनं दुर्गं हि यच्चैतत्संसारगहनं हि तत् ॥ ५
ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्तिताः
या सा नारी बृहत्काया अध्यतिष्ठत तत्र वै
तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा रूप–वर्णविनाशिनीम्
यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम् ७
यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः
अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ ८
कूपमध्ये च या जाता वल्ली यत्र स मानवः
प्रताने लम्बते लग्नो जीविताशा शरीरिणाम्
स यस्तु कूपवीनाहे तं वृक्षं परिसर्पति ।
षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन्स तु संवत्सरः स्मृतः॥
मुखानि ऋतवो मासाः
पादा द्वादश कीर्तिताः ।
ये तु वृक्षं निकृन्तन्ति
मूषिकाः पन्नगास्तथा ॥ ११
रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः
ये ते मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः॥
यास्तु ता बहुशो धाराः
स्रवन्ति मधुनिस्रवम् ।
तांस्तु कामरसान्विद्या-
द्यत्र मज्जन्ति मानवाः ॥ १३
एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तिं विदुर्बुधाः
येन संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

धृतराष्ट्र उवाच ।
अहोऽभिहितमाख्यानं भवता तत्त्वदर्शिना
भूय एव तु मे हर्षः श्रुत्वा वागमृतं तव ॥ १
विदुर उवाच ।
शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि मार्गस्यैतस्य विस्तरम्
यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यन्ते संसारेभ्यो विचक्षणाः
यथा तु पुरुषो राजन् दीर्घमध्वानमास्थितः ।
क्वचित्क्वचिच्छ्रमाच्छ्रान्तः कुरुते वासमेव वा
एवं संसारपर्याये गर्भवासेषु भारत ।
कुर्वन्ति दुर्बुधा वासं मुच्यन्ते तत्र पण्डिताः
तस्मादध्वानमेवैतमाहुः शास्त्रविदो जनाः
यत्तु संसारगहनं वनमाहुर्मनीषिणः ॥ ५
सोऽयं लोकसमावर्तो मर्त्यानां भरतर्षभ ।
चराणां स्थावराणां च न गृध्येत्तत्र पण्डितः
शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्यालाः कथिता बुधैः
क्लिश्यमानाश्च तैर्नित्यं वार्यमाणाश्च भारत ।
स्वकर्मभिर्महाव्यालैर्नोद्विजन्त्यल्पबुद्धयः ८
अथापि तैर्विमुच्येत व्याधिभिः पुरुषो नृप ।
आवृणोत्येव तं पश्चाज्जरा रूपविनाशिनी ९
शब्द–रूप–रस–स्पर्शैर्गन्धैश्च विविधैरपि ।
मज्जमांसमहापङ्के निरालम्बे समन्ततः १०
संवत्सराश्च मासाश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।
क्रमेणास्योपयुञ्जन्ति रूपमायुस्तथैव च ॥ ११
एते कालस्य निधयो नैताञ्जानन्ति दुर्बुधाः ।
धात्राभिलिखितान्याहुः सर्वभूतानि कर्मणा

---

६

**अहो खल्विति** । स्पष्टार्थः ॥१ ॥ **येनेति** । येन निर्वेदेन पाशांश्छिन्दन्ति ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

**अहोऽभिहितमिति** ॥ १ ॥ निधयः कालस्य कर्तव्यार्थसाधकाः अभिलिखितानि सर्वतः वयसा आयुषा सुखदुःखजराव्याधिभिः कर्मणा अदृष्टरूपेण न्यस्तानि १२

रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम्।
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिस्तु रश्मयः॥
तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति।
स तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तते॥१४
यस्तान् संयमते बुद्ध्या संयतो न निवर्तते।
ये तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत्परिवर्तिते॥ १५
भ्रममाणा न मुह्यन्ति संसारे न भ्रमन्ति ते।
संसारे भ्रमतां राजन् दुःखमेतद्धि जायते॥
तस्मादस्य निवृत्त्यर्थं यत्नमेवाचरेद्बुधः।
उपेक्षा नात्र कर्तव्या शतशाखः प्रवर्धते १७
यतेन्द्रियो नरो राजन्क्रोधलोभनिराकृतः।
संतुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति
याम्यमाहू रथं ह्येनं मुह्यन्ते येन दुर्बुधाः।
स चैतत्प्राप्नुयाद्राजन्यत्त्वं प्राप्तो नराधिप १९
अनुतर्षुलमेवैतद्दुःखं भवति मारिष।
राज्यनाशं सुहृन्नाशं सुतनाशं च भारत॥
साधुः परमदुःखानां दुःखभैषज्यमाचरेत् २०
ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम्।
छिन्द्याद्दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः॥
न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः
तथोन्मोचयते दुःखाद्यथाऽऽत्मा स्थिरसंयमः
तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत।
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः।
शीलरश्मिसमायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे।
त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन्ब्रह्मलोकं स गच्छति
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति महीपते।
स गच्छति परं स्थानं विष्णोः पदमनामयम्
न तत् क्रतुसहस्रेण नोपवासैश्च नित्यशः।
अभयस्य च दानेन यत्फलं प्राप्नुयान्नरः २६
न ह्यात्मनः प्रियतरं किञ्चिद्भूतेषु निश्चितम्।
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत।
तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दया कार्या विपश्चिता।
नानामोहसमायुक्ता बुद्धिजालेन संवृताः २८
असूक्ष्मदृष्टयो मन्दा भ्राम्यन्ते तत्र तत्र ह।
सुसूक्ष्मदृष्टयो राजन्व्रजन्ति ब्रह्म शाश्वतम्॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे
सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

## ८

वैशम्पायन उवाच।
विदुरस्य तु तद्वाक्यं निशम्य कुरुसत्तमः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः पपात भुवि मूर्छितः १
तं तथा पतितं भूमौ निःसंज्ञं प्रेक्ष्य बान्धवाः
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षत्ता च विदुरस्तथा॥ २
सञ्जयः सुहृदश्चान्ये द्वाःस्था ये चास्य संमताः
जलेन सुखशीतेन तालवृन्तैश्च भारत॥ ३
पस्पर्शुश्च करैर्गात्रं वीज्यमानश्च यत्नतः।
आश्वास्य तु चिरं कालं धृतराष्ट्रं तथागतम्॥
अथ दीर्घस्य कालस्य लब्धसंज्ञो महीपतिः।
विललाप चिरं कालं पुत्राधिभिरभिप्लुतः॥५
धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुषेषु परिग्रहे।
यतोमूलानि दुःखानि संभवन्ति मुहुर्मुहुः ६
पुत्रनाशेऽर्थनाशे च ज्ञातिसंबन्धिनामथ।
प्राप्यते सुमहद्दुःखं विषाग्निप्रतिमं विभो ७

---

सत्त्वं बुद्धिः कर्मबुद्धिर्मनः 'मनः प्रग्रहमेव च' इति श्रुतेः॥ १३॥ यः संघाताभिमानी भोक्ता वेगं अनुधावति कर्ममार्गप्रवृत्तिं अनुसरति॥ १४॥ यः संयतः संयमी तान् इन्द्रियाद्यान् संयमते संयच्छते स न निवर्तते संसारे मृतः सन्न पुनरावर्तते॥ १५॥ जीवन्तोऽपि तादृशा न मुह्यन्ति न भ्रमन्ति योनिचक्रे॥ १६॥ शतशाखः संसारवृक्षः॥१७॥ क्रोधलोभौ निराकृतौ येन सः १८ याम्यं यमलोकप्रापकं संसारगहनम्॥ १९॥ अनुतर्षुलं तृष्णा-शीलं लक्षीकृत्य॥ २०॥ दूरपारं ब्रह्मज्ञानम्॥ २१॥ स्थिरः पुनर्विवर्तितुमसमर्थः संयमस्तुच्छविषयेभ्य इन्द्रिय-परावृत्तिर्यस्य तादृशः आत्मा स्वयम्॥ २२ ब्रह्मणः ब्रह्म-लोकस्य प्रापका इति शेषः॥ २३॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

---

८

विदुरस्येति॥ १॥

येन दह्यन्ति गात्राणि येन प्रज्ञा विनश्यति ।
येनाभिभूतः पुरुषो मरणं बहु मन्यते ॥ ८
तदिदं व्यसनं प्राप्तं
मया भाग्यविपर्ययात् ।
तस्यान्तं नाधिगच्छामि
ऋते प्राणविमोक्षणात् ॥ ९
तथैवाहं करिष्यामि अद्यैव द्विजसत्तम ।
इत्युक्त्वा तु महात्मानं पितरं ब्रह्मवित्तमम् ॥
धृतराष्ट्रोऽभवन्मूढः स शोकं परमं गतः ।
अभूच्च तूष्णीं राजाऽसौ ध्यायमानो महीपते
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं पुत्रं वचनमब्रवीत् ॥ १२
व्यास उवाच ।
धृतराष्ट्र महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु
श्रुतवानासि मेधावी धर्मार्थकुशलः प्रभो १३
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदितव्यं परंतप ।
अनित्यतां हि मर्त्यानां विजानासि न संशयः
अध्रुवे जीवलोके च स्थाने वा शाश्वते सति
जीविते मरणान्ते च कस्माच्छोचसि भारत
प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र वैरस्यास्य समुद्भवः ।
पुत्रं ते कारणं कृत्वा कालयोगेन कारितः१६
अवश्यं भवितव्ये च
कुरूणां वैशसे नृप ।
कस्माच्छोचसि ताञ्शूरान्
गतान्परमिकां गतिम् ॥ १७
जानता च महाबाहो विदुरेण महात्मना ।
यतितं सर्वयत्नेन शमं प्रति जनेश्वर ॥ १८
न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः ॥
देवतानां हि यत्कार्यं मया प्रत्यक्षतः श्रुतम् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथा स्थैर्यं भवेत्तव २०
पुराहं त्वरितो यातः सभामैन्द्रीं जितक्लमः
अपश्यं तत्र च तदा समवेतान्दिवौकसः २१
नारदप्रमुखाश्चापि सर्वे देवर्षयोऽनघ ।
तत्र चापि मया दृष्टा पृथिवी पृथिवीपते २२
कार्यार्थमुपसम्प्राप्ता देवतानां समीपतः ।
उपगम्य तदा धात्री देवानाह समागतान् ॥
यत्कार्यं मम युष्माभिर्ब्रह्मणः सदने तदा ।
प्रतिज्ञातं महाभागास्तच्छीघ्रं संविधीयताम्
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
उवाच वाक्यं प्रहसन् पृथिवीं देवसंसदि २५

धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां यस्तु ज्येष्ठः शतस्य वै ।
दुर्योधन इति ख्यातः स ते कार्यं करिष्यति
तं च प्राप्य महीपालं कृतकृत्या भविष्यसि
तस्यार्थे पृथिवीपालाः कुरुक्षेत्रे समागताः२७
अन्योन्यं घातयिष्यन्ति दृढैः शस्त्रैः प्रहारिणः
ततस्ते भविता देवि भारस्य युधि नाशनम्
गच्छ शीघ्रं स्वकं स्थानं लोकान्धारय शोभने
य एष ते सुतो राजल्लोकसंहारकारणात् ॥
कलेरंशः समुत्पन्नो गान्धार्या जठरे नृप ।
अमर्षी चपलश्चापि क्रोधनो दुष्प्रसाधनः ३०
दैवयोगात्समुत्पन्ना भ्रातरश्चास्य तादृशाः ।
शकुनिर्मातुलश्चैव कर्णश्च परमः सखा ॥ ३१
समुत्पन्ना विनाशार्थं पृथिव्यां सहिता नृपाः
यादृशो जायते राजा तादृशोऽस्य जनो भवेत्
अधर्मो धर्मतां याति
स्वामी चेद्धार्मिको भवेत् ।
स्वामिनो गुणदोषाभ्यां
भृत्याः स्युर्नात्र संशयः ॥ ३३
दुष्टं राजानमासाद्य गतास्ते तनया नृप ।
एतमर्थं महाबाहो नारदो वेद तत्त्ववित् ३४
आत्मापराधात्पुत्रास्ते
विनष्टाः पृथिवीपते ।
मा ताञ्शोचस्व राजेन्द्र
न हि शोकेऽस्ति कारणम् ॥ ३५
न हि ते पाण्डवाः स्वल्पमपराध्यन्ति भारत
पुत्रास्तव दुरात्मानो यैरियं घातिता मही ॥
नारदेन च भद्रं ते पूर्वमेव न संशयः ।
युधिष्ठिरस्य समितौ राजसूये निवेदितम् ३७
पाण्डवाः कौरवाः सर्वे समासाद्य परस्परम्
न भविष्यन्ति कौन्तेय यत्ते कृत्यं तदाचर ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा तदाऽशोचन्त पाण्डवाः
एवं ते सर्वमाख्यातं देवगुह्यं सनातनम्३९
कथं ते शोकनाशः स्यात्प्राणेषु च दया प्रभो
स्नेहश्च पाण्डुपुत्रेषु ज्ञात्वा दैवकृतं विधिम्४०
एष चार्थो महाबाहो पूर्वमेव मया श्रुतः ।
कथितो धर्मराजस्य राजसूये क्रतूत्तमे ॥ ४१
यतितं धर्मपुत्रेण मया गुह्ये निवेदिते ।
अविग्रहे कौरवाणां 'दैवं तु बलवत्तरम्'॥४२
अनतिक्रमणीयो हि विधी राजन्कथञ्चन ।
कृतान्तस्य तु भूतेन स्थावरेण चरेण च ॥ ४३

भवान्धर्मपरो यत्र बुद्धिश्रेष्ठश्च भारत।
मुह्यते प्राणिनां ज्ञात्वा गतिं चागतिमेव च
त्वां तु शोकेन संतप्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः।
ज्ञात्वा युधिष्ठिरो राजा प्राणानपि परित्यजेत्
कृपालुर्नित्यशो वीरस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि।
स कथं त्वयि राजेन्द्र कृपां नैव करिष्यति
मम चैव नियोगेन विधेश्चाप्यनिवर्तनात्।
पाण्डवानां च कारुण्यात्प्राणान्धारय भारत
एवं ते वर्तमानस्य लोके कीर्तिर्भविष्यति।
धर्मार्थः सुमहांस्तात तप्तं स्याच्च तपाश्चिरात्॥
पुत्रशोकं समुत्पन्नं हुताशं ज्वलितं यथा।
प्रज्ञांभसा महाभाग निर्वापय सदा सदा* ॥

वैशम्पायन उवाच।
तच्छ्रुत्वा तस्य वचनं व्यासस्यामिततेजसः
मुहूर्तं समनुध्यायन्धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥ ५०
महता शोकजालेन प्रणुन्नोऽस्मि द्विजोत्तम।
नात्मानमवबुध्यामि मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ५१

इदं तु वचनं श्रुत्वा
तव देवनियोगजम्।
धारयिष्याम्यहं प्राणान्
घटिष्ये न तु शोचितुम् ॥ ५२

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः सत्यवतीसुतः
धृतराष्ट्रस्य राजेन्द्र तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

जनमेजय उवाच।
गते भगवति व्यासे धृतराष्ट्रो महीपतिः।
किमचेष्टत विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १
तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २
अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापश्चान्योन्यकारितः
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत सञ्जयः ॥ ३
वैशम्पायन उवाच।
हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः।
सञ्जयो विगतप्रज्ञो धृतराष्ट्रमुपस्थितः ॥ ४
सञ्जय उवाच।
आगम्य नानादेशेभ्यो नानाजनपदेश्वराः
पितृलोकं गता राजन् सर्वे तव सुतैः सह ॥
याच्यमानेन सततं तव पुत्रेण भारत।
घातिता पृथिवी सर्वा वैरस्यान्तं विधित्सता
पुत्राणामथ पौत्राणां पितॄणां च महीपते।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां प्रेतकार्याणि कारय।
वैशम्पायन उवाच।
तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं सञ्जयस्य महीपतिः।
गतासुरिव निश्चेष्टो न्यपतत् पृथिवीतले ॥ ८
तं शयानमुपागम्य पृथिव्यां पृथिवीपतिम्।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९
उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे मा शुचो भरतर्षभ
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः ॥
अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥११
न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि१२
अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानस्तु जीवति।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते ॥
कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधानि च
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम
यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वतः।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ ॥
एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम्।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना ॥
यांश्चापि निहतान्युद्धे राजंस्त्वमनुशोचसि
न शोच्या हि महात्मानः सर्वे ते त्रिदिवं गताः

---

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * मम इति पाठः।

९

गत इति ॥ १ ॥ विगता प्रज्ञा व्यासदत्तं दिव्यज्ञानं यस्य स विगतप्रज्ञः ॥ ४ ॥ शोकस्यातिगाढत्वात्पुनर्विदुरेणोक्तम्-अभावादीनीत्यादि ॥ ११ ॥ संवर्तयति वर्तुलयति कंपयति वा ॥ १५ ॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया ।
तथा स्वर्गमुपायान्ति यथा शूरास्तनुत्यजः ॥
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना
शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः ।
हूयमानान् शरांश्चैव सेहुरुत्तमपूरुषाः ॥ २०
एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम् ।
न युद्धादधिकं किञ्चित्क्षत्रियस्येह विद्यते ॥
क्षत्रियास्ते महात्मानः
शूराः समितिशोभनाः ।
आशिषं परमां प्राप्ता
न शोच्याः सर्व एव हि ॥ २२
आत्मनात्मानमाश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ ।
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कार्यमुत्स्रष्टुमर्हसि ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि विदुरवाक्ये
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

वैशम्पायन उवाच ।
विदुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा तु पुरुषर्षभः ।
युज्यतां यानमित्युक्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
शीघ्रमानय गान्धारीं सर्वाश्च भरतस्त्रियः।
वधूं कुन्तीमुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा विदुरं धर्मवित्तमम्।
शोकविप्रहतज्ञानो यानमेवान्वपद्यत ॥ ३
गान्धारी पुत्रशोकार्ता भर्तुर्वचननोदिता ।
सह कुन्त्या यतो राजा सह स्त्रीभिरुपाद्रवत् ॥
ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः
आमन्त्र्यान्योन्यमीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः
ताः समाश्वासयत् क्षत्ता
ताभ्यश्चार्ततरः स्वयम् ।
अश्रुकण्ठीः समारोप्य
ततोऽसौ निर्ययौ पुरात् ॥ ६
ततः प्रणादः सञ्जज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु ।
आकुमारं पुरं सर्वमभवच्छोककर्षितम् ॥ ७
अदृष्टपूर्वा या नार्यः पुरा देवगणैरपि ।
पृथग्जनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः ॥ ८
प्रकीर्य केशान् सुशुभान् भूषणान्यवमुच्य च
एकवस्त्रधरा नार्यः परिपेतुरनाथवत् ॥ ९
श्वेतपर्वतरूपेभ्यो गृहेभ्यस्तास्त्वपाक्रमन् ।
गुहाभ्य इव शैलानां पृषत्यो हतयूथपाः ॥१०
तान्युदीर्णानि नारीणां तदा वृन्दान्यनेकशः।
शोकार्तान्यद्रवन् राजन्किशोरीणामिवाङ्गने
प्रगृह्य बाहून् क्रोशन्त्यः
पुत्रान् भ्रातॄन्पितॄनपि ।
दर्शयन्तीव ता ह स्म
युगान्ते लोकसंक्षयम् ॥ १२
विलपन्त्यो रुदन्त्यश्च धावमानास्ततस्ततः ।
शोकेनोपहतज्ञानाः कर्तव्यं न प्रजज्ञिरे ॥ १३
व्रीडां जग्मुः पुरा याः स्म सखीनामपि योषितः
ता एकवस्त्रा निर्लज्जाः श्वश्रूणां पुरतोऽभवन्
परस्परं सुसूक्ष्मेषु शोकेष्वाश्वासयंस्तदा ।
ताः शोकविह्वला राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥
ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः ।
निर्ययौ नगराद्दीनस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ १६
शिल्पिनो वणिजो वैश्याः सर्वकर्मोपजीविनः
ते पार्थिवं पुरस्कृत्य निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ १७
तासां विक्रोशमानानामार्तानां कुरुसंक्षये ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दो व्यथयन् भुवनान्युत
युगान्तकाले संप्राप्ते भूतानां दह्यतामिव ।
अभावः स्यादयं प्राप्त इति भूतानि मेनिरे ॥

---

आचक्षे कथयामि ॥२१॥ कार्यं अवश्यकर्तव्यमुदकदानादि ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

**विदुरस्येति** ॥ १ ॥ समारोप्य वाहनेष्विति शेषः ॥ ६ ॥ पृषत्यश्चित्रहरिण्यः ॥ १० ॥ किशोरीणां अश्वशावकीनाम् 'किशोरोऽश्वस्य शावकः' इति मेदिनी। अंगने नृत्याशिक्षाभूमौ ॥ ११ ॥

भृशमुद्विग्नमनसस्ते पौराः कुरुसंक्षये । प्राक्रोशन्त महाराज स्वनुरक्तास्तदा भृशम् ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्गमने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

वैशम्पायन उवाच ।

क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददृशुस्तान्महारथान् ।
शारद्वतं कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव च ॥ १
ते तु दृष्ट्वैव राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
अश्रुकण्ठा विनिःश्वस्य रुदन्तमिदमब्रुवन् ॥२
पुत्रस्तव महाराज कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः सानुचरो राजञ्शक्रलोकं महीपते ॥
दुर्योधनबलान्मुक्ता वयमेव त्रयो रथाः ।
सर्वमन्यत्परिक्षीणं सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ ४
इत्येवमुक्त्वा राजानं कृपः शारद्वतस्ततः ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५
अभीता युद्ध्यमानास्ते घ्नन्तः शत्रुगणान्बहून् ।
वीरकर्माणि कुर्वाणाः पुत्रास्ते निधनं गताः
ध्रुवं संप्राप्य लोकांस्ते
निर्मलाञ्शस्त्रनिर्जितान् ।
भास्वरं देहमास्थाय
विहरन्त्यमरा इव ॥ ७
न हि कश्चिद्धि शूराणां
युद्ध्यमानः पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण निधनं प्राप्तो
न च कश्चित्कृताञ्जलिः ॥ ८
एवं तां क्षत्रियस्याहुः पुराणाः परमां गतिम्
शस्त्रेण निधनं संख्ये तन्नः शोचितुमर्हसि ९
न चापि शत्रवस्तेषामृद्ध्यन्ते राज्ञि पाण्डवाः
शृणु यत्कृतमस्माभिरश्वत्थामपुरोगमैः ॥ १०
अधर्मेण हतं श्रुत्वा भीमसेनेन ते सुतम् ।
सुप्तं शिबिरमासाद्य पाण्डूनां कदनं कृतम् ॥
पञ्चाला निहताः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रौपदेयाश्च पातिताः १२
तथा विशसनं कृत्वा पुत्रशत्रुगणस्य ते ।
प्राद्रवाम रणे स्थातुं न हि शक्यामहे त्रयः १३
ते हि शूरा महेष्वासाः क्षिप्रमेष्यन्ति पाण्डवाः
अमर्षवशमापन्ना वैरं प्रतिजिहीर्षवः ॥ १४
ते हतानात्मजाञ्श्रुत्वा प्रमत्ताः पुरुषर्षभाः ॥
निरीक्षन्तः पदं शूराः क्षिप्रमेव यशस्विनि
तेषां तु कदनं कृत्वा संस्थातुं नोत्सहामहे ।
अनुजानीहि नो राज्ञि मा च शोके मनः कृथाः
राजंस्त्वमनुजानीहि धैर्यमातिष्ठ चोत्तमम् ।
दिष्टान्तं पश्य चापि त्वं क्षात्रं धर्मं च केवलम्
इत्येवमुक्त्वा राजानं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च भारत ॥ १८
अवेक्षमाणा राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
गङ्गामनु महाराज तूर्णमश्वानचोदयन् ॥ १९
अपक्रम्य तु ते राजन् सर्व एव महारथाः ।
आमन्त्र्यान्योन्यमुद्विग्नास्त्रिधा ते प्रययुस्तदा
जगाम हास्तिनपुरं कृपः शारद्वतस्तदा ।
स्वमेव राष्ट्रं हार्दिक्यो द्रौणिर्व्यासाश्रमं ययौ
एवं ते प्रययुर्वीरा वीक्षमाणाः परस्परम् ।
भयार्ताः पांडुपुत्राणामागस्कृत्वा महात्मनाम्
समेत्य वीरा राजानं तदा त्वनुदिते रवौ ।
विप्रजग्मुर्महात्मानो यथेच्छकमरिन्दमाः २३
समासाद्याथ वै द्रौणिं पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
व्यजयंस्ते रणे राजन् विक्रम्य तदनन्तरम् ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि कृपद्रौणिभोजदर्शने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

क्रोशमात्रमिति ॥ १ ॥ दिष्टान्तं मरणम् ॥१७॥ तदनन्तरं कृपाचार्यकृतवर्मभ्यां वियोगानन्तरम् ॥ २४ ॥
इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

वैशम्पायन उवाच ।
हतेषु सर्वसैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
शुश्रुवे पितरं वृद्धं निर्यान्तं गजसाह्वयात् ॥ १
सोऽभ्ययात्पुत्रशोकार्तः पुत्रशोकपरिप्लुतम् ।
शोचमानं महाराज भ्रातृभिः सहितस्तदा २
अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना ।
युयुधानेन च तथा तथैव च युयुत्सुना ॥ ३
तमन्वगात्सुदुःखार्ता द्रौपदी शोककर्शिता ।
सह पाञ्चालयोषिद्भिर्यास्तत्रासन्समागताः ४
स गङ्गामनु वृन्दानि स्त्रीणां भरतसत्तम ।
कुररीणामिवार्तानां क्रोशन्तीनां ददर्श ह ५
ताभिः परिवृतो राजा क्रोशन्तीभिः सहस्रशः
ऊर्ध्वबाहुभिरार्ताभी रुदतीभिः प्रियाप्रियैः ६
क्व नु धर्मज्ञता राज्ञः क्व नु साद्या नृशंसता ।
यच्चावधीत्पितॄन्भ्रातॄन्गुरुपुत्रान्सखीनपि
घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मं चापि पितामहम्
मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथम्
किं नु राज्येन ते कार्यं पितॄन्भ्रातॄनपश्यतः
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत ॥ ९
अतीत्य ता महाबाहुः क्रोशन्तीः कुररीरिव
ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः १०
ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्षणाः ।
न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः
तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः ।
अप्रीयमाणः शोकार्तः पाण्डवं परिषस्वजे ॥
धर्मराजं परिष्वज्य सान्तयित्वा च भारत
दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद्दिधक्षुरिव पावकः ॥
स कोपपावकस्तस्य शोकवायुसमीरितः ।
भीमसेनमयं दावं दिधक्षुरिव दृश्यते ॥ १४
तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः ।
भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम्
प्रागेव तु महाबुद्धिर्बुद्ध्वा तस्येङ्गितं हरिः ।
संविधानं महाप्राज्ञस्तत्र चक्रे जनार्दनः १६
तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् ।
बभञ्ज बलवान्राजा मन्यमानो वृकोदरम्
नागायुतबलप्राणः स राजा भीममायसम् ।
भंक्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात्
ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ।
प्रपुष्पिताग्रशिखरः पारिजात इव द्रुमः १९
प्रत्यगृह्णाच्च तं विद्वान्सूतो गावल्गणिस्तदा
मैवमित्यब्रवीच्चैनं शमयन्सान्त्वयन्निव ॥ २०
स तु कोपं समुत्सृज्य गतमन्युर्महामनाः ।
हा हा भीमेति चुक्रोश नृपः शोकसमन्वितः
तं विदित्वा गतक्रोधं भीमसेनवधार्दितम्
वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२
मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं
नैष भीमस्त्वया हतः ।
आयसी प्रतिमा ह्येषा
त्वया निष्पातिता विभो ॥ २३
त्वां क्रोधवशमापन्नं विदित्वा भरतर्षभ ।
मयाऽपकृष्टः कौन्तेयो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतः ॥
न हि ते राजशार्दूल बले तुल्योऽस्ति कश्चन
कः सहेत महाबाहो बाह्वोर्विग्रहणं नरः २५
यथाऽन्तकमनुप्राप्य जीवन्कश्चिन्न मुच्यते ।
एवं बाह्वन्तरं प्राप्य तव जीवेन्न कश्चन २६
तस्मात्पुत्रेण या तेऽसौ
प्रतिमा कारिताऽऽयसी ।
भीमस्य सेयं कौरव्य
तवैवोपहृता मया ॥ २७
पुत्रशोकाभिसंतप्तं धर्मादपकृतं मनः ।
तव राजेन्द्र तेन त्वं भीमसेनं जिघांससि २८
न त्वेतत्ते क्षमं राजन्हन्यास्त्वं यद्वृकोदरम्
न हि पुत्रा महाराज जीवेयुस्ते कथञ्चन २९
तस्माद्यत्कृतमस्माभिर्मन्यमानैः शमं प्रति ।
अनुमन्यस्व तत्सर्वं मा च शोके मनः कृथाः ३०

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि आयसभीमभङ्गे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२

---

१२

**हतेष्विति** ॥ १ ॥ प्रियाप्रियैः पाण्डवानां प्रियाः अभिमन्युप्रभृतयः अप्रियाः दुर्योधनादयः तैर्हेतुभिः क्रोशन्तीभिरिति संबन्धः॥६॥ **आक्षिप्य** निवार्य आयसं लोहमयम्॥१५॥संविधानं आयसस्य भीमस्य निर्माणम्॥१६ **पुत्रेति** । धर्मादपकृतं आलिंगनच्छलेन भीमवधः कर्तव्य इत्याशया ॥२८॥ वृकोदरेण अहता अपि न जीवेयुः । गतायुष्ट्वां तेषां निमित्तान्तरेणापि नाशावश्यंभावादिति भावः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

वैशम्पायन उवाच ।
तत एनमुपातिष्ठञ्शौचार्थं परिचारकाः ।
कृतशौचं पुनश्चैनं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १
राजन्नधीता वेदास्ते शास्त्राणि विविधानि च
श्रुतानि च पुराणानि राजधर्माश्च केवलाः २
एवं विद्वान्महाप्राज्ञः समर्थः सन् बलाबले ।
आत्मापराधात्कस्मात्त्वं कुरुषे कोपमीदृशम्
उक्तवांस्त्वां तदैवाहं भीष्मद्रोणौ च भारत
विदुरः सञ्जयश्चैव वाक्यं राजन्न तत्कृथाः ४
स वार्यमाणो नास्माकमकार्षीर्वचनं तदा ।
पाण्डवानधिकाञ्जानन्बले शौर्ये च कौरव
राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते ।
देशकालविभागं च परं श्रेयः स विन्दति ६
उच्यमानस्तु यः श्रेयो गृह्णीते नो हिताहिते
आपदः समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः ७
ततोऽन्यवृत्तमात्मानं समवेक्षस्व भारत ।
राजंस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधनवशे स्थितः
आत्मापराधादापन्न-
स्तत्किं भीमं जिघांससि ।
तस्मात् संयच्छ कोपं त्वं
स्वमनुस्मर दुष्कृतम् ॥ ९
यस्तु तां स्पर्धया क्षुद्रः पाञ्चालीमानयत्सभाम्
स हतो भीमसेनेन वैरं प्रतिजिहीर्षता ॥ १०
आत्मनोऽतिक्रमं पश्य पुत्रस्य च दुरात्मनः ।
यदनागसि पाण्डूनां परित्यागस्त्वया कृतः ॥
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तः स कृष्णेन सर्वं सत्यं जनाधिप ।
उवाच देवकीपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १२
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
पुत्रस्नेहस्तु बलवान्धैर्यान्मां समचालयत् १३
दिष्ट्या तु पुरुषव्याघ्रो बलवान्सत्यविक्रमः ।
त्वद्गुप्तो नागमत्कृष्ण भीमो बाह्वन्तरं मम १४
इदानीं त्वहमव्यग्रो गतमन्युर्गतज्वरः ।
मध्यमं पाण्डवं वीरं द्रष्टुमिच्छामि माधव१५
हतेषु पार्थिवेन्द्रेषु पुत्रेषु निहतेषु च ।
पाण्डुपुत्रेषु वै शर्म प्रीतिश्चाप्यवतिष्ठते ॥ १६
ततः स भीमं च धनञ्जयं च
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन् सुगात्रा-
नाश्वास्य कल्याणमुवाच चैतान् १७

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकप० धृतराष्ट्रकोपविमोचने पाण्डवपरिष्वङ्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३ ॥

## १४

वैशम्पायन उवाच ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपाण्डवाः ।
अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे गान्धारीं सहकेशवाः १
ततो ज्ञात्वा हतामित्रं युधिष्ठिरमुपागतम् ।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता शप्तुमैच्छदनिन्दिता२
तस्याः पापमभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान्प्रति
ऋषिः सत्यवतीपुत्रः प्रागेव समबुध्यत ॥ ३
स गङ्गायामुपस्पृश्य पुण्यगन्धि पयः शुचि
तं देशमुपसंपेदे परमर्षिर्मनोजवः ॥ ४
दिव्येन चक्षुषा पश्यन् मनसा तद्गतेन च ।
सर्वप्राणभृतां भावं स तत्र समबुध्यत ॥ ५
स स्नुषामब्रवीत्काले कल्यवादी महातपाः ।
शापकालमवाक्षिप्य शमकालमुदीरयन् ॥ ६

---

१३

**तत इति** ॥ १ ॥ न तत्कृथाः तन्न कृतवानसि अड्भाव आर्षः ॥ ४ ॥ श्रेयो हिताहिते उच्यमानो न गृह्णीत इत्यन्वयः ॥ ७ ॥ अनागसि अपराधाभावे परित्यागो राज्याप्रदानेन तिरस्कारः ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

**धृतराष्ट्रेति** ॥ १ ॥ कल्यवादी हितवादी ॥ ६ ॥

न कोपः पाण्डवे कार्यो गान्धारि शममाप्नुहि
वचो निगृह्यतामेतच्छृणु चेदं वचो मम ॥ ७
उक्ताऽस्यष्टादशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता ।
शिवमाशास्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः८
सा तथा याच्यमाना त्वं काले काले जयैषिणा
उक्तवत्यसि गान्धारि 'यतो धर्मस्ततो जयः'
न चाप्यतीतां गान्धारि
वाचं ते वितथामहम् ।
स्मरामि तोषमाणाया-
स्तथा प्रणिहिता ह्यसि ॥ १०
विग्रहे तुमुले राज्ञां गत्वा पारमसंशयम् ।
जितं पाण्डुसुतैर्युद्धे नूनं धर्मस्ततोऽधिकः ११
क्षमाशीला पुरा भूत्वा साऽद्य न क्षमसे कथम्
अधर्मं जहि धर्मज्ञे 'यतो धर्मस्ततो जयः' १२
स्वं च धर्मं परिस्मृत्य
वाचं चोक्तां मनस्विनि ।
कोपं संयच्छ गान्धारि
मैवं भूः सत्यवादिनि ॥ १३

गान्धार्युवाच ।
भगवन्नाभ्यसूयामि नैतानिच्छामि नश्यतः।
पुत्रशोकेन तु बलान्मनो विह्वलतीव मे ॥ १४
यथैव कुन्त्या कौन्तेया रक्षितव्यास्तथा मया
तथैव धृतराष्ट्रेण रक्षितव्या यथा त्वया ॥१५
दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च कृतोऽयं कुरुसंक्षयः
नापराध्यति बीभत्सुर्न च पार्थो वृकोदरः ।
नकुलः सहदेवश्च नैव जातु युधिष्ठिरः ॥ १७
युध्यमाना हि कौरव्याः
कृतमानाः परस्परम् ।
निहताः सहिताश्चान्यै-
स्तत्र नास्त्यप्रियं मम ॥ १८
किं तु कर्माकरोद्भीमो वासुदेवस्य पश्यतः ।
दुर्योधनं समाहूय गदायुद्धे महामनाः ॥ १९
शिक्षयाभ्यधिकं ज्ञात्वा चरन्तं बहुधा रणे ।
अधो नाभ्याः प्रहृतवांस्तन्मे कोपमवर्धयत्२०
कथं नु धर्मं धर्मज्ञैः समुद्दिष्टं महात्मभिः ।
त्यजेयुराहवे शूराः प्राणहेतोः कथञ्चन २१

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि गान्धारीसान्त्वनायां चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥

## १५

वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भीमसेनोऽथ भीतवत्
गान्धारीं प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं तदा १
अधर्मो यदि वा धर्मस्त्रासात्तत्र मया कृतः।
आत्मानं त्रातुकामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि
न हि युद्धेन पुत्रस्ते धर्म्येण स महाबलः ।
न शक्यः केनचिद्धन्तुमतो विषममाचरम् ॥
अधर्मेण जितः पूर्वं तेन चापि युधिष्ठिरः ।
निकृताश्च सदैव स्म ततो विषममाचरम् ॥४
सैन्यस्यैकोऽवशिष्टोऽयं गदायुद्धेन वीर्यवान्
मां हत्वा न हरेद्राज्यमिति वै तत्कृतं मया
राजपुत्रीं च पत्न्चालीमेकवस्त्रां रजस्वलाम् ।
भवत्या विदितं सर्वमुक्तवान्यत्सुतस्तव ॥ ६
सुयोधनमसंगृह्य न शक्या भूः ससागरा ।
केवला भोक्तुमस्माभिरतश्चैतत्कृतं मया ॥ ७
तथाप्यप्रियमस्माकं पुत्रस्ते समुपाचरत् ।
द्रौपद्या यत्सभामध्ये सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ ८
तदैव वध्यः सोऽस्माकं दुराचारश्च ते सुतः ।
धर्मराजाज्ञया चैव स्थिताः स्म समये तदा

---

एतत् वचः पाण्डवान् शत्रुमुद्यतं वाक्यम् ॥ ७ ॥ न चास्य तां तामिति पाठे अस्य एनं दुर्योधनं तोषमाणाया आशीर्वचनेन तोषयन्त्यास्ते तव तां तां वाचं वितथां न स्मरामीत्यन्वयः ॥ १० ॥ कृतमानाः कृताहंकाराः ॥१८ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

तदिति ॥ १ ॥ उक्तवान् न हि ते पतयः संतीत्यादि ॥ ६ ॥ असंगृह्य अनुपसंहृत्य ॥ ७ ॥

वैरमुद्दीपितं राज्ञि पुत्रेण तव तन्महत् ।
क्लेशिताश्च वने नित्यं तत एतत् कृतं मया ॥
वैरस्यास्य गताः पारं हत्वा दुर्योधनं रणे ।
राज्यं युधिष्ठिरः प्राप्तो वयं च गतमन्यवः ॥

गान्धार्युवाच ।

न तस्यैष वधस्तात यत्प्रशंससि मे सुतम् ।
कृतवांश्चापि तत्सर्वं यदिदं भाषसे मयि ॥ १२
हताश्वे नकुले यत्तु वृषसेनेन भारत ।
अपिबः शोणितं संख्ये दुःशासनशरीरजम् ॥
सद्भिर्विगर्हितं घोरमनार्यजनसेवितम् ।
क्रूरं कर्माकृथास्तस्मात्तदयुक्तं वृकोदर ॥ १४

भीमसेन उवाच ।

अन्यस्यापि न पातव्यं रुधिरं किं पुनः स्वकम् ।
यथैवात्मा तथा भ्राता विशेषो नास्ति कश्चन ॥
रुधिरं न व्यतिक्रामदन्तोष्ठादम्ब मा शुचः ।
वैवस्वतस्तु तद्वेद हस्तौ मे रुधिरोक्षितौ ॥ १६
हताश्वं नकुलं दृष्ट्वा वृषसेनेन संयुगे ।
भ्रातॄणां संप्रहृष्टानां त्रासः संजनितो मया ॥
केशपक्षपरामर्शे द्रौपद्या द्यूतकारिते ।
क्रोधाद्यदब्रुवं चाहं तच्च मे हृदि वर्तते ॥ १८
क्षत्रधर्माच्च्युतो राज्ञि भवेयं शाश्वतीः समाः ।
प्रतिज्ञां तामनिस्तीर्य ततस्तत्कृतवानहम् ॥
न मामर्हसि गान्धारि दोषेण परिशङ्कितुम् ।
अनिगृह्य पुरा पुत्रानस्मास्वनपकारिषु ।
अधुना किं नु दोषेण परिशङ्कितुमर्हसि ॥ २०

गान्धार्युवाच ।

वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान्निघ्नंस्त्वमपराजितः ।
कस्मान्न शेषयः किंचिद्येनाल्पमपराधितम् ॥
संतानमावयोस्तात वृद्धयोर्हृतराज्ययोः ।
कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता ॥
शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि ।
न मे दुःखं भवेदेतद्यदि त्वं धर्ममाचरेः ॥ २३

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु गान्धारी युधिष्ठिरमपृच्छत ।
क्व स राजेति सक्रोधा पुत्रपौत्रवधार्दिता ॥
तमभ्यगच्छद्राजेन्द्रो वेपमानः कृताञ्जलिः ।
युधिष्ठिरस्त्विदं तत्र मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥
पुत्रहन्ता नृशंसोऽहं तव देवि युधिष्ठिरः ।
शापार्हः पृथिवीनाशे हेतुभूतः शपस्व माम् ॥
न हि मे जीवितेनार्थो न राज्येन धनेन वा ।
तादृशान् सुहृदो हत्वा मूढस्यास्य सुहृद्द्रुहः ॥
तमेवंवादिनं भीतं संनिकर्षगतं तदा ।
नोवाच किंचिद्गान्धारी निःश्वासपरमा भृशं ॥
तस्यावनतदेहस्य पादयोर्निपतिष्यतः ।
युधिष्ठिरस्य नृपतेर्धर्मज्ञा दीर्घदर्शिनी ॥ २९
अंगुल्यग्राणि ददृशे देवी पट्टान्तरेण सा ।
ततः स कुनखीभूतो दर्शनीयनखो नृपः ॥ ३०
तं दृष्ट्वा चार्जुनोऽगच्छाद्वासुदेवस्य पृष्ठतः ।
एवं संचेष्टमानांस्तानितश्चेतश्च भारत ॥ ३२
गान्धारी विगतक्रोधा
सान्त्वयामास मातृवत् ।
तया ते समनुज्ञाता
मातरं वीरमातरम् ॥ ३३
अभ्यगच्छन्त सहिताः पृथां पृथुलवक्षसः ।
चिरस्य दृष्ट्वा पुत्रान् सा पुत्राधिभिरभिप्लुता ॥
बाष्पमाहारयद्देवी वस्त्रेणा वृत्य वै मुखम् ।
ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तदा पृथा ॥
अपश्यदेताञ्शस्त्रौघैर्बहुधा क्षतविक्षतान् ।
सा तानेकैकशः पुत्रान् संस्पृशन्ती पुनः पुनः ॥
अन्वशोचत दुःखार्ता द्रौपदीं च हतात्मजां ।
रुदतीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां भुवि ॥ ३६

द्रौपद्युवाच ।

आर्ये पुत्राः क्व ते सर्वे सौभद्रसहिता गताः ।
न त्वां तेऽद्याभिगच्छन्ति चिरं दृष्ट्वा तपस्विनीं ॥
किं नु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम ।
तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना ॥
उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोककर्षिताम् ।
तयैव सहिता चापि पुत्रैरनुगता नृप ॥ ३९
अभ्यगच्छत गान्धारीमार्तामार्ततरा स्वयम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीं ।
मैवं पुत्रीति शोकार्ता पश्य मामपि दुःखितां ॥
मन्ये लोकविनाशोऽयं कालपर्यायनोदितः ॥
अवश्यभावी संप्राप्तः स्वभावाल्लोमहर्षणः ।
इदं तत्समनुप्राप्तं विदुरस्य वचो महत् ॥ ४२

---

अन्तोष्ठात् अधरोष्ठात् उपरि न गतमित्यर्थः। दंतोष्ठादित्यपपाठः॥१६॥वृषसेनेन कर्णपुत्रेण ॥१७॥ किंचित् कमपि न शेषयः शेषमेकमपि न रक्षितवानसि॥२१॥ न वर्जिता वधकाले न त्यक्ता॥२२॥कुनखीभूतो हस्तदेशः इति शेषः॥३०॥

असिद्धानुनये कृष्णे यदुवाच महामतिः ।
तस्मिन्नपरिहार्येऽर्थे व्यतीते च विशेषतः ॥
मा शुचो न हि शोच्यास्ते
संग्रामे निधनं गताः ।
यथैवाहं तथैव त्वं
को वा माश्वासयिष्यति ।
ममैव ह्यपराधेन
कुलमग्र्यं विनाशितम् ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वाणि जलप्रदानिकपर्वाणि पृथापुत्रदर्शने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समाप्तं जलप्रदानिकं पर्व ।

## स्त्रीविलापपर्व २

### १६

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा तु गान्धारी कुरूणामवकर्तनम्
अपश्यत्तत्र तिष्ठन्ती सर्वं दिव्येन चक्षुषा ॥१
पतिव्रता महाभागा समानव्रतचारिणी ।
उग्रेण तपसा युक्ता सततं सत्यवादिनी ॥ २
वरदानेन कृष्णस्य महर्षेः पुण्यकर्मणः ।
दिव्यज्ञानबलोपेता विविधं पर्यदेवयत् ॥ ३
ददर्श सा बुद्धिमती दूरादपि यथान्तिके ।
रणाजिरं नृवीराणामद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४
अस्थिकेशवसाकीर्णं शोणितौघपरिप्लुतम् ।
शरीरैर्बहुसाहस्रैर्विनिकीर्णं समन्ततः ॥ ५
गजाश्वरथयोधानामावृतं रुधिराविलैः ।
शरीरैरशिरस्कैश्च विदेहैश्च शिरोगणैः ॥ ६
गजाश्वनरनारीणां निःस्वनैरभिसंवृतम् ।
सृगाल-बक-काकोल-कंक-काकनिषेवितम् ॥
रक्षसां पुरुषादानां मोदनं कुरराकुलम् ।
अशिवाभिः शिवाभिश्च नादितं गृध्रसेवितम्
ततो व्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः
पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ९
वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुं च पार्थिवम् ।
कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति १०
समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः ।
अपश्यन्त हतांस्तत्र पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन्पतीन्
क्रव्यादैर्भक्ष्यमाणान्वै गोमायुबलवायसैः ।
भूतैः पिशाचै रक्षोभिर्विविधैश्च निशाचरैः
रुद्राक्रीडनिभं दृष्ट्वा तदा विशसनं स्त्रियः ।
महार्हेभ्योऽथ यानेभ्यो विक्रोशन्त्यो निपेतिरे
अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्ता भरतस्त्रियः ।
शरीरेष्वस्खलन्नन्याः पतन्त्यश्चापरा भुवि ॥
श्रान्तानां चाप्यनाथानां
नासीत्काचन चेतना ।
पाञ्चालकुरुयोषाणां
कृपणं तदभून्महत् ॥ १५
दुःखोपहतचित्ताभिः समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वा योधनमत्युग्रं धर्मज्ञा सुबलात्मजा ॥ १६
ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरूणां वैशसं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १७
पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष स्नुषा मे निहतेश्वराः
प्रकीर्णकेशाः क्रोशन्तीः कुररीरिव माधव
अमूस्त्वभिसमागम्य
स्मरन्त्यो भर्तृजान् गुणान् ।
पृथगेवाभ्यधावन्त्यः
पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्पतीन् ॥ १९
वीरसूभिर्महाराज हतपुत्राभिरावृतम् ।
क्वचिच्च वीरपत्नीभिर्हतवीराभिरावृतम् २०

---

वाम् आवाम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

एवमिति । अवकर्तनं युद्धस्थानम् ॥ १ ॥ पंचानां

शोभितं पुरुषव्याघ्रैः कर्णभीष्माभिमन्युभिः ।
द्रोण-द्रुपद-शल्यैश्च ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥
काञ्चनैः कवचैर्निष्कैर्मणिभिश्च महात्मनाम् ।
अङ्गदैर्हस्तकेयूरैः स्रग्भिश्च समलङ्कृतम् ॥ २२
वीरबाहुविसृष्टाभिः शक्तिभिः परिघैरपि ।
खड्गैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सशरैश्च शरासनैः ॥
क्रव्यादसंघैर्मुदितैस्तिष्ठद्भिः सहितैः क्वचित् ।
क्वचिदाक्रीडमानैश्च शयानैश्चापरैः क्वचित् २४
एतदेवंविधं वीर संपश्यायोधनं विभो ।
पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाहं जनार्दन ॥
पञ्चालानां कुरूणां च विनाशे मधुसूदन ।
पञ्चानामपि भूतानामहं वधमचिन्तयम् २६
तान्सुपर्णाश्च गृध्राश्च कर्षयन्त्यसृगुक्षिताः ।
विगृह्य चरणैर्गृध्रा भक्षयन्ति सहस्रशः २७
जयद्रथस्य कर्णस्य तथैव द्रोण-भीष्मयोः ।
अभिमन्योर्विनाशं च कश्चिन्तयितुमर्हति ॥
अवध्यकल्पान्निहतान् गतसत्त्वानचेतसः ।
गृध्र-कङ्क-वट-श्येन-श्व-सृगालादनीकृतान् ॥
अमर्षवशमापन्नान् दुर्योधनवशे स्थितान् ।
पश्येमान्पुरुषव्याघ्रान् संशान्तान्पावकानिव
शयाना ये पुरा सर्वे मृदूनि शयनानि च ।
विपन्नास्तेऽद्य वसुधां विवृतामधिशेरते ॥ ३१

बन्दिभिः सततं काले
स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ।
शिवानामशिवा घोराः
शृण्वन्ति विविधा गिरः ॥ ३२

ये पुरा शेरते वीराः शयनेषु यशस्विनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गास्तेऽद्य पांसुषु शेरते ३३
तेषामाभरणान्येते गृध्र-गोमायु-वायसाः ।
आक्षिपन्ति शिवा घोरा विनिदन्त्यः पुनःपुनः

बाणान्विनिशितान्पीता-
न्निस्त्रिंशान् विमला गदाः ।
युद्धाभिमानिनः सर्वे
जीवन्त इव बिभ्रति ॥ ३५

सुरूपवर्णा बहवः क्रव्यादैरवघट्टिताः ।
ऋषभप्रतिरूपाश्च शेरते हरितस्रजः ॥ ३६
अपरे पुनरालिङ्ग्य गदाः परिघबाहवः ।
शेरतेऽभिमुखाः शूरा दयिता इव योषितः ॥
बिभ्रतः कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च ।
न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन

क्रव्यादैः कृष्यमाणाना-
मपरेषां महात्मनाम् ।
शातकौम्भ्यः स्रजश्चित्रा
विप्रकीर्णाः समन्ततः ॥ ३९

एते गोमायवो भीमा निहतानां यशस्विनाम्
कण्ठान्तरगतान्हारानाक्षिपन्ति सहस्रशः ॥
सर्वेष्वपररात्रेषु याननन्दन्त बन्दिनः ।
स्तुतिभिश्च परार्ध्याभिरुपचारैश्च शिक्षिताः
तानिमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमाङ्गनाः ।
कृपणं वृष्णिशार्दूल दुःखशोकार्दिता भृशम्
रक्तोत्पलवनानीव विभान्ति रुचिराणि च ।
मुखानि परमस्त्रीणां परिशुष्काणि केशव ॥
रुदिताद्विरता ह्येता ध्यायन्त्यः सपरिच्छदाः
कुरुस्त्रियोऽभिगच्छन्ति तेन तेनैव दुःखिताः
एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च ।
रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोषिताम्
श्यामानां वरवर्णानां गौरीणामेकवाससाम्
दुर्योधनवरस्त्रीणां पश्य वृन्दानि केशव ४६
आसामपरिपूर्णार्थं निशम्य परिदेवितम् ।
इतरेतरसंक्रन्दान्न विजानन्ति योषितः ४७
एता दीर्घमिवोच्छ्वस्य विक्रुश्य च विलप्य च
विस्पन्दमाना दुःखेन वीरा जहति जीवितम्

बह्व्यो दृष्ट्वा शरीराणि
क्रोशन्ति विलपन्ति च ।
पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति
शिरांसि मृदुपाणयः ॥ ४९

शिरोभिः पतितैर्हस्तैः सर्वाङ्गैर्यूथशः कृतैः ।
इतरेतरसंपृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥ ५०

विशिरस्कानथो कायान्
दृष्ट्वा ह्येताननिन्दितान् ।
मुह्यन्त्यनुगता नार्यो
विदेहानि शिरांसि च ॥ ५१

शिरः कायेन सन्धाय प्रेक्षमाणा विचेतसः ।
अपश्यन्त्यो परं तत्र नेदमस्येति दुःखिताः ॥
बाहूरुचरणानन्यान् विशिखोन्मथितान्पृथक्
संदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्छन्त्येताः पुनः पुनः

भूतानां पृथिव्यादीनां कुरुपंचालवधात् कृत्स्नं पाञ्चभौतिकं जगन्नष्टमिति भावः ॥ २६ ॥ शयनानि आस्तीर्येति शेषः ॥ ३१ ॥ एताः शोचन्तीरभिलक्ष्येति शेषः ॥ ४८ ॥

उत्कृत्य शिरसश्चान्यान्विजग्धान्मृगपक्षिभिः
दृष्ट्वा काश्चिन्न जानन्ति भर्तॄन् भरतयोषितः ॥
पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मधुसूदन ।
प्रेक्ष्य भ्रातॄन्पितॄन्पुत्रान्पतींश्च निहतान्परैः ॥
बाहुभिश्च सखड्गैश्च शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
अगम्यकल्पा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥
बभूव भरतश्रेष्ठ प्राणिभिर्गतजीवितैः ।
न दुःखेषूचिताः पूर्वं दुःखं गाहन्त्यनिन्दिताः
भ्रातृभिः पतिभिः पुत्रैरुपाकीर्णां वसुंधरां ।
यूथानीव किशोरीणां सुकेशीनां जनार्दन ॥
स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकशः ।
इतो दुःखतरं किं नु केशव प्रतिभाति मे ॥ ५९
यदिमाः कुर्वते सर्वा रवमुच्चावचं स्त्रियः ।
नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु ॥ ६०
या पश्यामि हतान् पुत्रान्
पौत्रान् भ्रातॄंश्च माधव ।
एवमार्ता विलपती
समाभाष्य जनार्दनम् ।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता
ददर्श निहतं सुतम् ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि आयोधनदर्शने
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

वैशम्पायन उवाच ।
दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा गान्धारी शोककर्शिता
सहसा न्यपतद्भूमौ छिन्नेव कदली वने ॥ १
सा तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां
विक्रुश्य च विलप्य च ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य
शयानं रुधिरोक्षितम् ॥ २
परिष्वज्य च गान्धारी कृपणं पर्यदेवयत् ।
हाहा पुत्रेति शोकार्ता विललापाकुलेन्द्रिया
सुगूढजत्रुविपुलं हारनिष्कविभूषितम् ।
वारिणा नेत्रजेनोरः सिञ्चन्ती शोकतापिता
समीपस्थं हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत् ।
उपस्थितेऽस्मिन्संग्रामे ज्ञातीनां संक्षये विभो
मामयं प्राह वार्ष्णेय प्राञ्जलिर्नृपसत्तमः ।
अस्मिन् ज्ञातिसमुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतु मे ॥
इत्युक्ते जानती सर्वमहं स्वव्यसनागमम् ।
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र 'यतो धर्मस्ततो जयः' ॥ ७
यथा च युध्यमानस्त्वं
न वै मुह्यसि पुत्रक ।
ध्रुवं शस्त्रजिताँल्लोकान्
प्राप्स्यस्यमरवत्प्रभो ॥ ८
इत्येवमब्रुवं पूर्वं नैनं शोचामि वै प्रभो ।
धृतराष्ट्रं तु शोचामि कृपणं हतबान्धवम् ॥९
अमर्षणं युधां श्रेष्ठं कृतास्त्रं युद्धदुर्मदम् ।
शयानं वीरशयने पश्य माधव मे सुतम् ॥
योऽयं मूर्धावसिक्तानामग्रे याति परंतपः ।
सोऽयं पांसुषु शेतेऽद्य पश्य कालस्य पर्ययम्
ध्रुवं दुर्योधनो वीरो गतिं सुलभतां गतः ।
तथा ह्यभिमुखः शेते शयने वीरसेविते ॥ १२
यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति वरस्त्रियः ।
तं वीरशयने सुप्तं रमयन्त्यशिवाः शिवाः ॥
यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति महीक्षितः ।
महीतलस्थं निहतं गृध्रास्तं पर्युपासते ॥ १४
यं पुरा व्यजनै रम्यैरुपवीजन्ति योषितः ।
तमद्य पक्षव्यजनैरुपवीजन्ति पक्षिणः ॥ १५
एष शेते महाबाहुर्बलवान् सत्यविक्रमः ।
सिंहेनेव द्विपः संख्ये भीमसेनेन पातितः ॥
पश्य दुर्योधनं कृष्ण शयानं रुधिरोक्षितम् ।
निहतं भीमसेनेन गदां संमृज्य भारत ॥ १७
अक्षौहिणीर्महाबाहुर्दश चैकां च केशव ।
आनयद्यः पुरा संख्ये सोऽनयान्निधनं गतः ॥

---

विजग्धान् भक्षितान् ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः॥१६

१७

दुर्योधनमिति ॥ १ ॥

एष दुर्योधनः शेते महेष्वासो महाबलः ।
शार्दूल इव सिंहेन भीमसेनेन पातितः ॥ १९
विदुरं ह्यवमन्यैष पितरं चैव मन्दभाक् ।
बालो वृद्धावमानेन मन्दो मृत्युवशं गतः ॥
निःसपत्ना मही यस्य त्रयोदश समाः स्थिता
स शेते निहतो भूमौ पुत्रो मे पृथिवीपतिः ॥
अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्तराष्ट्रानुशासिताम्
पूर्णां हस्तिगवाश्वैश्च वार्ष्णेय न तु तच्चिरम्
तामेवाद्य महाबाहो पश्याम्यन्यानुशासितां
हीनां हस्तिगवाश्वेन किं नु जीवामि माधव
इदं कष्टतरं पश्य पुत्रस्यापि वधान्मम ।
यदिमाः पर्युपासन्ते हताञ्शूरान् रणे स्त्रियः
प्रकीर्णकेशां सुश्रोणीं दुर्योधनशुभाङ्कगाम् ।
रुक्मवेदीनिभां पश्य कृष्ण लक्ष्मणमातरम् ॥
नूनमेषा पुरा बाला जीवमाने महीभुजे ।
भुजावाश्रित्य रमते सुभुजस्य मनस्विनी ॥२६
कथं तु शतधा नेदं हृदयं मम दीर्यते ।
पश्यन्त्या निहतं पुत्रं पुत्रेण सहितं रणे ॥ २७
पुत्रं रुधिरसंसिक्तमुपजिघ्रत्यनिन्दिता ।
दुर्योधनं तु वामोरूः पाणिना परिमार्जती ॥
किं नु शोचति भर्तारं पुत्रं चैषा मनस्विनी ।
तथा ह्यवस्थिता भाति पुत्रं चाप्यभिवीक्ष्य सा
स्वशिरः पञ्चशाखाभ्यामभिहत्यायतेक्षणा ।
पतत्युरसि वीरस्य कुरुराजस्य माधव ॥ ३०
पुण्डरीकनिभा भाति पुण्डरीकान्तरप्रभा ॥
मुखं विमृज्य पुत्रस्य भर्तुश्चैव तपस्विनी ॥ ३१
यदि सत्यागमाः सन्ति यदि वै श्रुतयस्तथा ।
ध्रुवं लोकानवाप्तोऽयं नृपो बाहुबलार्जितान्

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि दुर्योधनदर्शने
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

गान्धार्युवाच ।
पश्य माधव पुत्रान्मे शतसंख्याञ्जितक्लमान्
गदया भीमसेनेन भूयिष्ठं निहतान् रणे ॥ १
इदं दुःखतरं मेऽद्य यदिमा मुक्तमूर्धजाः ।
हतपुत्रा रणे बालाः परिधावन्ति मे स्नुषाः ॥२
प्रासादतलचारिण्यश्चरणैर्भूषणान्वितैः ।
आपन्ना यत्स्पृशन्तीमां रुधिरार्द्रां वसुन्धरां
कृच्छ्रादुत्सारयन्ति स्म गृध्रगोमायुवायसान्
दुःखेनार्ता विघूर्णन्त्यो मत्ता इव चरन्त्युत ४
एषाऽन्या त्वनवद्याङ्गी करसंमितमध्यमा ।
घोरमायोधनं दृष्ट्वा निपतत्यतिदुःखिता ॥ ५
दृष्ट्वा मे पार्थिवसुतामेतां लक्ष्मणमातरम् ।
राजपुत्रीं महाबाहो मनो न ह्युपशाम्यति ६
भ्रातॄंश्चान्याः पितॄंश्चान्याः
पुत्रांश्च निहतान् भुवि ।
दृष्ट्वा परिपतन्त्येताः
प्रगृह्य सुमहाभुजान् ॥ ७
मध्यमानां तु नारीणां वृद्धानां चापराजित
आक्रन्दं हतबन्धूनां दारुणे वैशसे शृणु ॥ ८
रथनीडानि देहांश्च हतानां गजवाजिनाम् ।
आश्रित्य श्रममोहार्ताः स्थिताः पश्य महाभुज
अन्यां चापहृतं कायाच्चारुकुण्डलमुन्नसम् ।
स्वस्य बन्धोः शिरः कृष्ण
गृहीत्वा पश्य तिष्ठतीम् ॥ १०
पूर्वजातिकृतं पापं मन्ये नाल्पमिवानघ ।
एताभिर्निरवद्याभिर्मया चैवाल्पमेधया ११

---

पंचशाखाभ्यां पंचाङ्गुलिभ्यां पाणिभ्याम् ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

पश्येति ॥ १ ॥ करसंमितमध्यमा मुष्टिप्रमितमध्या ॥ ५ ॥

यदिदं धर्मराजेन
पातितं नो जनार्दन ।
न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय
कर्मणोः शुभपापयोः ।
प्रत्यग्रवयसः पश्य
दर्शनीयकुचाननाः ॥ १२
कुलेषु जाता ह्रीमत्यः कृष्णपक्ष्माक्षिमूर्धजाः
हंसगद्गदभाषिण्यो दुःखशोकप्रमोहिताः ।
सारस्य इव वाशन्त्यः पतिताः पश्य माधव
फुल्लपद्मप्रकाशानि पुण्डरीकाक्षयोषिताम् ।
अनवद्यानि वक्त्राणि तापयत्येष रश्मिवान्
ईर्षूणां मम पुत्राणां वासुदेवावरोधनम् ।
मत्तमातङ्गदर्पाणां पश्यन्त्यद्य पृथग्जनाः १६
शतचन्द्राणि चर्माणि
ध्वजांश्चादित्यवर्चसः ।
रौक्माणि चैव वर्माणि
निष्कानपि च काञ्चनान् ॥ १७
शीर्षत्राणानि चैतानि पुत्राणां मे महीतले ।
पश्य दीप्तानि गोविन्द पावकान्सुहुतानिव
एष दुःशासनः शेते शूरेणामित्रघातिना ।
पीतशोणितसर्वाङ्गो युधि भीमेन पातितः ॥
गदया भीमसेनेन पश्य माधव मे सुतम् ।
द्यूतक्लेशाननुस्मृत्य द्रौपदीनोदितेन च ॥ २०
उक्ता ह्यनेन पाञ्चाली सभायां द्यूतनिर्जिता
प्रियं चिकीर्षता भ्रातुः कर्णस्य च जनार्दन ॥
सहैव सहदेवेन
नकुलेनार्जुनेन च ।
दासीभूतासि पाञ्चालि
क्षिप्रं प्रविश नो गृहान् ॥ २२
ततोऽहमब्रुवं कृष्ण तदा दुर्योधनं नृपम् ।
मृत्युपाशपरिक्षिप्तं शकुनिं पुत्र वर्जय ॥ २३
निबोधैनं सुदुर्बुद्धिं मातुलं कलहप्रियम् ।
क्षिप्रमेनं परित्यज्य पुत्र शाम्यस्व पाण्डवैः २४
न बुद्ध्यसे त्वं दुर्बुद्धे भीमसेनममर्षणम् ।
वाङ्नाराचैस्तुदंस्तीक्ष्णैरुल्काभिरिव कुञ्जरम्
तानेवं रहसि क्रुद्धो वाक्शल्यानवधारयन् ।
उत्ससर्ज विषं तेषु सर्पो गोवृषभेष्विव २६
एष दुःशासनः शेते विक्षिप्य विपुलौ भुजौ
निहतो भीमसेनेन सिंहेनेव महागजः ॥ २७
अत्यर्थमकरोद्रौद्रं भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
दुःशासनस्य यत्क्रुद्धोऽपिबच्छोणितमाहवे ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

गान्धार्युवाच ।
एष माधव पुत्रो मे विकर्णः प्राज्ञसंमतः ।
भूमौ विनिहतः शेते भीमेन शतधा कृतः १
गजमध्ये हतः शेते विकर्णो मधुसूदन ।
नीलमेघपरिक्षिप्तः शरदीव निशाकरः ॥ २
अस्य चापग्रहेणैव पाणिः कृतकिणो महान् ।
कथञ्चिच्छिद्यते गृध्रैरत्तुकामैस्तलत्रवान् ॥ ३
अस्य भार्याऽऽमिषप्रेप्सून्गृध्रकाकांस्तपस्विनी
वारयत्यनिशं बाला न च शक्नोति माधव ४
युवा वृन्दारकः शूरो विकर्णः पुरुषर्षभ ।
सुखोषितः सुखार्हश्च शेते पांसुषु माधव ॥ ५
कर्णिनालीकनाराचैर्भिन्नमर्माणमाहवे ।
अद्यापि न जहात्येनं लक्ष्मीर्भरतसत्तमम् ॥६
एष संग्रामशूरेण प्रतिज्ञां पालयिष्यता ।
दुर्मुखोऽभिमुखः शेते हतोऽरिगणहा रणे ७
तस्यैतद्वदनं कृष्ण श्वापदैरर्धभक्षितम् ।
विभात्यभ्यधिकं तात सप्तम्यामिव चन्द्रमाः
शूरस्य हि रणे कृष्ण पश्याननमथेदृशम् ।
स कथं निहतोऽमित्रैः पांसून् ग्रसति मे सुतः
यस्याहवमुखे सौम्य स्थाता नैवोपपद्यते ।
स कथं दुर्मुखोऽमित्रैर्हतो विबुधलोकजित् ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९
एष माधवेति । स्पष्टार्थः ॥ १ ॥

चित्रसेनं हतं भूमौ शयानं मधुसूदन।
धार्तराष्ट्रमिमं पश्य प्रतिमानं धनुष्मताम् ११
तं चित्रमाल्याभरणं युवत्यः शोककर्शिताः।
क्रव्यादसंघैः सहिता रुदत्यः पर्युपासते १२
स्त्रीणां रुदितनिर्घोषः श्वापदानां च गर्जितम्
चित्ररूपमिदं कृष्ण विचित्रं प्रतिभाति मे १३
युवा वृन्दारको नित्यं प्रवरस्त्रीनिषेवितः।
विविंशतिरसौ शेते ध्वस्तः पांसुषु माधव ॥
शरसंकृत्तवर्माणं वीरं विशसने हतम्।
परिवार्यासते गृध्राः पश्य कृष्ण विविंशतिम्
प्रविश्य समरे शूरः पाण्डवानामनीकिनीम्।
स वीरशयने शेते परः सत्पुरुषोचिते ॥ १६
स्मितोपपन्नं सुनसं सुभ्रु ताराधिपोपमम्।
अतीव शुभ्रं वदनं कृष्ण पश्य विविंशतेः १७
एनं हि पर्युपासन्ते बहुधा वरयोषितः।
क्रीडन्तमिव गन्धर्वं देवकन्याः सहस्रशः १८
हन्तारं परसैन्यानां शूरं समितिशोभनम्।
निबर्हणममित्राणां दुःसहं विषहेत कः ॥ १९
दुःसहस्यैतदाभाति शरीरं संवृतं शरैः।
गिरिरात्मगतैः फुल्लैः कर्णिकारैरिवाचितः
शातकौम्भ्या स्रजा भाति कवचेन च भास्वता
अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दुःसहः २१

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

गान्धार्युवाच ।
अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च केशव।
पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम्
यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम्।
स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशं गतः २
तस्योपलक्षये कृष्ण कार्ष्णेरमिततेजसः।
अभिमन्योर्हतस्यापि प्रभा नैवोपशाम्यति ३
एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः।
आर्ता बालं पतिं वीरं दृष्ट्वा शोचत्यनिन्दिता
तमेषा हि समागम्य भार्या भर्तारमन्तिके।
विराटदुहिता कृष्ण पाणिना परिमार्जति ५
तस्य वक्त्रमुपाघ्राय सौभद्रस्य मनस्विनी।
विबुद्धकमलाकारं कम्बुवृत्तशिरोधरम् ॥ ६
काम्यरूपवती चैषा परिष्वजति भामिनी।
लज्जमाना पुरा चैनं माध्वीकमदमूर्च्छिता ॥
तस्य क्षतजसंदिग्धं जातरूपपरिष्कृतम्।
विमुच्य कवचं कृष्ण शरीरमभिवीक्षते ॥ ८
अवेक्षमाणा तं बाला कृष्ण त्वामभिभाषते
अयं ते पुण्डरीकाक्ष सदृशाक्षो निपातितः ९
बले वीर्ये च सदृशस्तेजसा चैव तेऽनघ।
रूपेण च तथाऽत्यर्थं शेते भुवि निपातितः॥
अत्यन्तं सुकुमारस्य राङ्कवाजिनशायिनः।
कच्चिदद्य शरीरं ते भूमौ न परितप्यते ॥ ११
मातङ्गभुजवर्ष्माणौ ज्याक्षेपकठिनत्वचौ।
काञ्चनाङ्गदिनौ शेते निक्षिप्य विपुलौ भुजौ
व्यायम्य बहुधा नूनं सुखसुप्तः श्रमादिव।
एवं विलपतीमार्तां न हि मामभिभाषसे १३
न स्मराम्यपराधं ते किं मां न प्रतिभाषसे।
ननु मां त्वं पुरा दूरादभिवीक्ष्याभिभाषसे ॥
न स्मराम्यपराधं मे किं मां न प्रतिभाषसे।
आर्यामार्यं सुभद्रां त्वमिमांश्च त्रिदशोपमान्
पितॄन्मां चैव दुःखार्तां विहाय क्व गमिष्यसि
तस्य शोणितदिग्धान्वै केशानुद्यम्य पाणिना
उत्सङ्गे वक्त्रमाधाय जीवन्तमिव पृच्छति।
स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ॥
'कथं त्वां रणमध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः।
धिगस्तु क्रूरकर्तॄंस्तान् कृप-कर्ण-जयद्रथान्
द्रोणद्रौणायनी चोभौ यैरहं विधवा कृता।
रथर्षभाणां सर्वेषां कथमासीत्तदा मनः १९
बालं त्वां परिवार्यैकं मम दुःखाय जघ्नुषाम्।
कथं नु पाण्डवानां च पञ्चालानां तु पश्यताम्

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०
अध्यर्धगुणं सार्धगुणम् ॥ १ ॥

त्वं वीर निधनं प्राप्तो नाथवान् सन्ननाथवत्।
दृष्ट्वा बहुभिराक्रन्दे निहतं त्वां पिता तव २१
वीरः पुरुषशार्दूलः कथं जीवति पाण्डवः।
न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणां च पराभवः
प्रीतिं धास्यति पार्थानां
त्वामृते पुष्करेक्षण।
तव शस्त्रजिताँल्लोकान्।
धर्मेण च दमेन च॥ २३
क्षिप्रमन्वागमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय।
दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले भवति केनचित्॥ २४
यदहं त्वां रणे दृष्ट्वा हतं जीवामि दुर्भगा।
कामिदानीं नरव्याघ्र श्लक्ष्णया स्मितया गिरा
पितृलोके समेत्यान्यां मामिवामन्त्रयिष्यसि
नूनमप्सरसां स्वर्गे मनांसि प्रमथिष्यसि २६
परमेण च रूपेण गिरा च स्मितपूर्वया।
प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानप्सरोभिः समेयिवान्
सौभद्र विहरन् काले
स्मरेथाः सुकृतानि मे।

एतावानिह संवासो
विहितस्ते मया सह॥ २८
षण्मासान्सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः'
इत्युक्तवचनामेतामपकर्षन्ति दुःखिताम् २९

उत्तरां मोघसंकल्पां मत्स्यराजकुलस्त्रियः।
उत्तरामपकृष्यैनामार्तामार्ततराः स्वयम् ३०

विराटं निहतं दृष्ट्वा क्रोशन्ति विलपन्ति च
द्रोणास्त्रशरसंकृत्तं शयानं रुधिरोक्षितम् ३१
विराटं वितुदन्त्येते गृध्र-गोमायु-वायसाः।
वितुद्यमानं विहगैर्विराटमसितेक्षणाः॥ ३२

न शक्नुवन्ति विहगान्निवारयितुमातुराः।
आसामातपतप्तानामायासेन च योषिताम्॥

श्रमेण च विवर्णानां वक्त्राणां विप्लुतं वपुः।
उत्तरं चाभिमन्युं च काम्बोजं च सुदक्षिणम्
शिशूनेतान् हतान्पश्य लक्ष्मणं च सुदर्शनम्
आयोधनशिरोमध्ये शयानं पश्य माधव ३५

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये
विंशतितमोऽध्यायः॥ २०॥

## २१

गान्धार्युवाच।
एष वैकर्तनः शेते
महेष्वासो महारथः।
ज्वलितानलवत्संख्ये
संशान्तः पार्थतेजसा॥ १
पश्य वैकर्तनं कर्णं निहत्यातिरथान् बहून्।
शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि॥ २
अमर्षी दीर्घरोषश्च महेष्वासो महाबलः।
रणे विनिहतः शेते शूरो गाण्डीवधन्वना ३
यं स्म पाण्डवसन्त्रासान्मम पुत्रा महारथाः।
प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम्। ४
शार्दूलमिव सिंहेन समरे सव्यसाचिना।

मातङ्गमिव मत्तेन मातङ्गेन निपातितम्॥ ५
समेताः पुरुषव्याघ्र निहतं शूरमाहवे।
प्रकीर्णमूर्धजाः पत्न्यो रुदत्यः पर्युपासते॥
उद्विग्नः सततं यस्माद्धर्मराजो युधिष्ठिरः।
त्रयोदश समा निद्रां चिन्तयन्नाध्यगच्छत ७
अनाधृष्यः परैर्युद्धे
शत्रुभिर्मघवानिव।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्
हिमवानिव निश्चलः॥ ८
स भूत्वा शरणं वीरो धार्तराष्ट्रस्य माधव।
भूमौ विनिहतः शेते वातभग्न इव द्रुमः॥ ९

---

वपुः शस्ताकृतिः 'वपुः क्लीबं तनौ शस्ताकृतावपि' इति **मेदिनी**॥३४॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशतितमोऽध्यायः॥ २०॥

२१

' **एष वैकर्तन** इति। आवंत्यं भीमसेनेनेति च स्पष्टार्थौ एकविंशद्वाविंशौ॥ १॥

पश्य कर्णस्य पत्नीं त्वं वृषसेनस्य मातरम् ।
लालप्यमानां करुणं रुदतीं पतितां भुवि ॥
आचार्यशापोऽनुगतो ध्रुवं त्वां
यदग्रसच्चक्रमिदं धरित्री ।
ततः शरेणापहृतं शिरस्ते
धनञ्जयेनाहवशोभिना युधि ॥ ११
हाहा धिगेषा पतिता विसंज्ञा
समीक्ष्य जाम्बूनदबद्धकक्षम् ॥
कर्णं महाबाहुमदीनसत्त्वं
सुषेणमाता रुदती भृशार्ता ॥ १२

अल्पावशेषोऽपि कृतो महात्मा
शरीरभक्षैः परिभक्षयद्भिः ।
द्रष्टुं न नः प्रीतिकरः शशीव
कृष्णस्य पक्षस्य चतुर्दशाहे ॥ १३
सा वर्तमाना पतिता पृथिव्या-
मुत्थाय दीना पुनरेव चैषा ।
कर्णस्य वक्त्रं परिजिघ्रमाणा
रोरूयते पुत्रवधाभितप्ता ॥ १४

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि कर्णदर्शनो
नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

गान्धार्युवाच ।
आवन्त्यं भीमसेनेन भक्षयन्ति निपातितम् ।
गृध्रगोमायवः शूरं बहुबन्धुमबन्धुवत् ॥ १
तं पश्य कदनं कृत्वा शूराणां मधुसूदन ।
शयानं वीरशयने रुधिरेण समुक्षितम् ॥ २
तं सृगालाश्च कङ्काश्च क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः
तेन तेन विकर्षन्ति पश्य कालस्य पर्ययम् ॥३
शयानं वीरशयने शूरमाक्रन्दकारिणम् ।
आवन्त्यमभितो नार्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥
प्रातिपेयं महेष्वासं हतं भल्लेन बाह्लिकम् ।
प्रसुप्तमिव शार्दूलं पश्य कृष्ण मनस्विनम् ॥
अतीव मुखवर्णोऽस्य निहतस्यापि शोभते ।
सोमस्येवाभिपूर्णस्य पौर्णमास्यां समुद्यतः ॥
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां चाभिरक्षता ।
पाकशासनिना संख्ये वार्धक्षत्रिर्निपातितः
एकादश चमूर्भित्त्वा रक्ष्यमाणं महात्मना ।
सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम् ॥ ८
सिन्धु-सौवीरभर्तारं दर्पपूर्णं मनस्विनम् ।
भक्षयन्ति शिवा गृध्रा जनार्दन जयद्रथम् ॥९

संरक्ष्यमाणं भार्याभिरनुरक्ताभिरच्युत ।
भीषयन्त्यो विकर्षन्ति गहनं निम्नमन्तिकात्
तमेताः पर्युपासन्ते रक्ष्यमाणं महाभुजम् ।
सिन्धु-सौवीरभर्तारं काम्बोजयवनस्त्रियः ॥
यदा कृष्णामुपादाय प्राद्रवत्केकयैः सह ।
तदैव वध्यः पाण्डूनां जनार्दन जयद्रथः ॥ १२
दुःशलां मानयद्भिस्तु तदा मुक्तो जयद्रथः ।
कथमद्य न तां कृष्ण मानयन्ति स्म ते पुनः ॥
सैषा मम सुता बाला
विलपन्ती च दुःखिता ।
आत्मना हन्ति चात्मान-
माक्रोशन्ती च पाण्डवान् ॥ १४
किं नु दुःखतरं कृष्ण परं मम भविष्यति ।
यत्सुता विधवा बाला स्नुषाश्च निहतेश्वराः
हा हा धिग्दुःशलां पश्य वीतशोकभयामिव
शिरो भर्तुरनासाद्य धावमानामितस्ततः ॥
वारयामास यः सर्वान् पाण्डवान्पुत्रगृद्धिनः
स हत्वा विपुलाः सेनाः स्वयं मृत्युवशं गतः

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

आवन्त्यमिति ॥ १ ॥ वार्धक्षत्रिर्जयद्रथः ॥ ७ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं वीरं परमदुर्जयम् । परिवार्य रुदन्त्येताः स्त्रियश्चन्द्रोपमाननाः ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापे गान्धारीवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

गान्धार्युवाच ।
एष शल्यो हतः शेते साक्षान्नकुलमातुलः
धर्मज्ञेन हतस्तात धर्मराजेन संयुगे ॥ १
यस्त्वया स्पर्धते नित्यं सर्वत्र पुरुषर्षभ ।
स एष निहतः शेते मद्रराजो महाबलः ॥ २
येन संगृह्णता तात रथमाधिरथेर्युधि ।
जयार्थं पाण्डुपुत्राणां यदा तेजोवधः कृतः ॥
अहो धिक्पश्य शल्यस्य पूर्णचन्द्रसुदर्शनम् ।
मुखं पद्मपलाशाक्षं काकैरादष्टमव्रणम् ॥ ४
अस्य चामीकराभस्य तप्तकाञ्चनसप्रभा ।
आस्याद्विनिःसृता जिह्वा भक्ष्यते कृष्ण पक्षिभिः ॥ ५
युधिष्ठिरेण निहतं शल्यं समितिशोभनम् ।
रुदत्यः पर्युपासन्ते मद्रराजं कुलाङ्गनाः ॥ ६
एताः सुसूक्ष्मवसना मद्रराजं नरर्षभम् ।
क्रोशन्त्योऽथ समासाद्य क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभं
शल्यं निपतितं नार्यः परिवार्याभितः स्थिताः
वासिता गृष्टयः पङ्के परिमग्नमिव द्विपम् ॥ ८
शल्यं शरणदं शूरं पश्येमं वृष्णिनन्दन ।
शयानं वीरशयने शरैर्विशकलीकृतम् ॥ ९
एष शैलालयो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
गजांकुशधरः श्रीमाञ्शेते भुवि निपातितः
यस्य रुक्ममयी माला शिरस्येषा विराजते
श्वापदैर्भक्ष्यमाणस्य शोभयन्तीव मूर्धजान्
एतेन किल पार्थस्य युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
रोमहर्षणमत्युग्रं शक्रस्य त्वहिना यथा ॥१२
योधयित्वा महाबाहुरेष पार्थं धनञ्जयम् ।
संशयं गमयित्वा च कुन्तीपुत्रेण पातितः ॥
यस्य नास्ति समो लोके शौर्ये वीर्ये च कश्चन
स एष निहतः शेते भीष्मो भीष्मकृदाहवे ॥
पश्य शान्तनवं कृष्ण शयानं सूर्यवर्चसम् ।
युगान्त इव कालेन पतितं सूर्यमम्बरात् ॥१५
एष तप्त्वा रणे शत्रूञ्शस्त्रतापेन वीर्यवान् ।
नरसूर्योऽस्तमभ्येति सूर्योऽस्तमिव केशव ॥
शरतल्पगतं भीष्ममूर्ध्वरेतसमच्युतम् ।
शयानं वीरशयने पश्य शूरनिषेविते ॥ १७
कर्णिनालीकनाराचैरास्तीर्य शयनोत्तमम् ।
आविश्य शेते भगवान् स्कन्दः शरवणं यथा
अतूलपूर्णं गाङ्गेयस्त्रिभिर्बाणैः समन्वितम् ।
उपधायोपधानाग्र्यं दत्तं गाण्डीवधन्वना ॥
पालयानः पितुः शास्त्रमूर्ध्वरेता महायशाः ।
एष शान्तनवः शेते माधवाप्रतिमो युधि ॥
धर्मात्मा तात सर्वज्ञः पारावर्येण निर्णये ।
अमर्त्य इव मर्त्यः सन्नेष प्राणानधारयत् ॥ २१
नास्ति युद्धे कृती कश्चिन्न विद्वान्न पराक्रमी ।
यत्र शान्तनवो भीष्मः शेतेऽद्य निहतः शरैः
स्वयमेतेन शूरेण पृच्छमानेन पाण्डवैः ।
धर्मज्ञेनाहवे मृत्युरादिष्टः सत्यवादिना ॥ २३
प्रनष्टः कुरुवंशश्च पुनर्येन समुद्धृतः ।
स गतः कुरुभिः सार्धं महाबुद्धिः पराभवम्
धर्मेषु कुरवः कं नु परिप्रक्ष्यन्ति माधव ।
गते देवव्रते स्वर्गं देवकल्पे नरर्षभे ॥ २५
अर्जुनस्य विनेतारमाचार्यं सात्यकेस्तथा ।
तं पश्य पतितं द्रोणं कुरूणां गुरुमुत्तमम् २६
अस्त्रं चतुर्विधं वेद यथैव त्रिदशेश्वरः ।
भार्गवो वा महावीर्यस्तथा द्रोणोऽपि माधव

---

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

एष इति ॥ १ ॥ वासिताः करिण्यः गृष्टयः सकृत्प्रसूताः ॥ ८ ॥ अहिना वृत्रासुरेण ॥ १२ ॥ भीष्मकृत् भयंकरकर्मकृत् ॥ १४ ॥ शास्त्रमाज्ञाम् ॥ २० ॥ निर्णये पारावर्येण परावरौ परलोकेहलोकौ तद्विषयेण ज्ञानेन तत्त्वज्ञानबलेन प्राणानधारयदित्यर्थः ॥ २१ ॥

यस्य प्रसादाद्बीभत्सुः पाण्डवः कर्म दुष्करम्
चकार स हतः शेते नैनमस्त्राण्यपालयन् २८
यं पुरोधाय कुरव आह्वयन्ति स्म पाण्डवान्
सोऽयं शस्त्रभृतां श्रेष्ठो द्रोणः शस्त्रैः परिक्षतः
यस्य निर्दहतः सेनां गतिरग्नेरिवाभवत् ।
स भूमौ निहतः शेते शान्तार्चिरिव पावकः
धनुर्मुष्टिरशीर्णश्च हस्तावापश्च माधव ।
द्रोणस्य निहतस्याजौ दृश्यते जीवतो यथा
वेदा यस्माच्च चत्वारः सर्वाण्यस्त्राणि केशव
अनपेतानि वै शूराद्यथैवादौ प्रजापतेः ॥ ३२
वन्दनार्हाविमौ तस्य बन्दिभिर्वन्दितौ शुभौ
गोमायवो विकर्षन्ति पादौ शिष्यशतार्चितौ
द्रोणं द्रुपदपुत्रेण निहतं मधुसूदन ।
कृपी कृपणमन्वास्ते दुःखोपहतचेतना ॥ ३४
तां पश्य रुदतीमार्तां मुक्तकेशीमधोमुखीम् ।
हतं पतिमुपासन्तीं द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ३५
बाणैर्भिन्नतनुत्राणं धृष्टद्युम्नेन केशव ।
उपास्ते वै मृधे द्रोणं जटिला ब्रह्मचारिणी ॥
प्रेतकृत्यं च यतते कृपी कृपणमातुरा ।
हतस्य समरे भर्तुः सुकुमारी यशस्विनी ३७
अग्नीनाधाय विधिव-
च्चितां प्रज्वाल्य सर्वतः ।
द्रोणमाधाय गायन्ति
त्रीणि सामानि सामगाः ॥ ३८
कुर्वन्ति च चितामेते जटिला ब्रह्मचारिणः ।
धनुर्भिः शक्तिभिश्चैव रथनीडैश्च माधव ३९
शरैश्च विविधैरन्यैर्धक्ष्यते भूरितेजसम् ।
इति द्रोणं समाधाय शंसन्ति च रुदन्ति च
सामभिस्त्रिभिरन्तस्थैरनुशंसन्ति चापरे ।
अग्नावग्निं समाधाय द्रोणं हुत्वा हुताशने ४१
गच्छन्त्यभिमुखा गङ्गां द्रोणशिष्या द्विजातयः
अपसव्यां चितिं कृत्वा पुरस्कृत्य कृपीं च ते

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवचने त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥

## २४

गान्धार्युवाच ।
सोमदत्तसुतं पश्य युयुधानेन पातितम् ।
वितुद्यमानं विहगैर्बहुभिर्माधवान्तिके ॥ १
पुत्रशोकाभिसंतप्तः सोमदत्तो जनार्दन ।
युयुधानं महेष्वासं गर्हयन्निव दृश्यते ॥ २
असौ हि भूरिश्रवसो माता शोकपरिप्लुता
आश्वासयति भर्तारं सोमदत्तमनिन्दिता ३
दिष्ट्या नैनं महाराज दारुणं भरतक्षयम् ।
कुरुसंक्रन्दनं घोरं युगान्तमनुपश्यसि ॥ ४
दिष्ट्या यूपध्वजं पुत्रं वीरं भूरिसहस्रदम् ।
अनेकक्रतुयज्वानं निहतं नानुपश्यसि ॥ ५
दिष्ट्या स्नुषाणामाक्रन्दे घोरं विलपितं बहु ।
न शृणोषि महाराज सारसीनामिवार्णवे ६
एकवस्त्रार्धसंवीताः प्रकीर्णाः सितमूर्धजाः ।
स्नुषास्ते परिधावन्ति हतापत्या हतेश्वराः ७
श्वापदैर्भक्ष्यमाणं त्व-
महो दिष्ट्या न पश्यसि ।
छिन्नबाहुं नरव्याघ्र-
मर्जुनेन निपातितम् ॥ ८
शलं विनिहतं संख्ये
भूरिश्रवसमेव च ।
स्नुषाश्च विविधाः सर्वा
दिष्ट्या नाद्येह पश्यसि ॥ ९
दिष्ट्या तत्काञ्चनं छत्रं यूपकेतोर्महात्मनः ।
विनिकीर्णं रथोपस्थे सौमदत्तेर्न पश्यसि १०
अमूस्तु भूरिश्रवसो भार्याः सात्यकिना हतम्
परिवार्यानुशोचन्ति भर्तारमसितेक्षणाः ११
एता विलप्य करुणं भर्तृशोकेन कर्शिताः ।
पतन्त्यभिमुखा भूमौ कृपणं बत केशव १२

धक्ष्य दग्ध्वा॥४०॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४
सोमदत्तसुतमिति ॥ स्पष्टार्थश्चतुर्विंशः ॥ १ ॥

बीभत्सुरतिबीभत्सं कर्मेदमकरोत्कथम् ।
प्रमत्तस्य यदच्छैत्सीद्बाहुं शूरस्य यज्वनः १३
ततः पापतरं कर्म कृतवानपि सात्यकिः ।
यस्मात्प्रायोपविष्टस्य प्राहार्षीत्संशितात्मनः
एको द्वाभ्यां हतः शेषे
त्वमधर्मेण धार्मिक ।
किं नु वक्ष्यति वै सत्सु
गोष्ठीषु च सभासु च ॥ १५
अपुण्यमयशस्यं च कर्मेदं सात्यकिः स्वयम् ।
इति यूपध्वजस्यैताः स्त्रियः क्रोशन्ति माधव
भार्या यूपध्वजस्यैषा करसंमितमध्यमा ।
कृत्वोत्सङ्गे भुजं भर्तुः कृपणं परिदेवति ॥ १७
अयं स हन्ता शूराणां मित्राणामभयप्रदः ।
प्रदाता गोसहस्राणां क्षत्रियान्तकरः करः १८
अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दकः ।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः १९
वासुदेवस्य सान्निध्ये पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
युध्यतः समरेऽन्येन प्रमत्तस्य निपातितः २०
किं नु वक्ष्यसि संसत्सु कथासु च जनार्दन
अर्जुनस्य महत्कर्म स्वयं वा स किरीटभृत् २१
इत्येवं गर्हयित्वैषा तूष्णीमास्ते वराङ्गना ।
तामेतामनुशोचन्ति सपत्न्यः स्वामिव स्नुषाम्
गान्धारराजः शकुनिर्बलवान् सत्यविक्रमः ।
निहतः सहदेवेन भागिनेयेन मातुलः ॥ २३
यः पुरा हेमदण्डाभ्यां व्यजनाभ्यां स्म वीज्यते
स एष पक्षिभिः पक्षैः शयान उपवीज्यते २४
यः स्वरूपाणि कुरुते शतशोऽथ सहस्रशः ।
तस्य मायाविनो माया दग्धाः पाण्डवतेजसा
मायया निकृतिप्रज्ञो
जितवान् यो युधिष्ठिरम् ।
सभायां विपुलं राज्यं
स पुनर्जीवितं जितः ॥ २६
शकुन्ताः शकुनिं कृष्ण समन्तात्पर्युपासते ।
कैतवं मम पुत्राणां विनाशायोपशिक्षितम् २७
एतेनैतन्महद्वैरं प्रसक्तं पाण्डवैः सह ।
वधाय मम पुत्राणामात्मनः सगणस्य च २८
यथैव मम पुत्राणां लोकाः शस्त्रजिताः प्रभो ।
एवमस्यापि दुर्बुद्धेर्लोकाः शस्त्रेण वै जिताः
कथं च नायं तत्रापि पुत्रान्मे भ्रातृभिः सह ।
विरोधयेदृजुप्रज्ञानन्नृजुर्मधुसूदन ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

## २५

गान्धार्युवाच ।
काम्बोजं पश्य दुर्धर्षं
काम्बोजास्तरणोचितम् ।
शयानमृषभस्कन्धं
हतं पांसुषु माधव ॥ १
यस्य क्षतजसंदिग्धौ बाहू चन्दनभूषितौ ।
अवेक्ष्य करुणं भार्या विलपत्यतिदुःखिता २
इमौ तौ परिघप्रख्यौ बाहू शुभतलाङ्गुली ।
ययोर्विवरमापन्नां न रतिर्मां पुराऽजहात् ॥
कां गतिं तु गमिष्यामि त्वया हीना जनेश्वर
हतबन्धुरनाथा च वेपन्ती मधुरस्वरा ॥ ४
आतपे क्लाम्यमानानां विविधानामिव स्रजाम्
क्लान्तानामपि नारीणां न श्रीर्जहाति वै तनूः
शयानमभितः शूरं कालिङ्गं मधुसूदन ।
पश्य दीप्ताङ्गदयुगप्रतिनद्धमहाभुजम् ॥ ४
मागधानामधिपतिं जयत्सेनं जनार्दन ।
आवार्य सर्वतः पत्न्यः प्ररुदन्त्यः सुविह्वलाः
आसामायतनेत्राणां सुस्वराणां जनार्दन ।
मनःश्रुतिहरो नादो मनो मोहयतीव मे ८
प्रकीर्णवस्त्राभरणा रुदन्त्यः शोककर्शिताः ।
स्वास्तीर्णशयनोपेता मागध्यः शेरते भुवि ९

---

बीभत्सुरतीतिनिर्मलकर्मा अतिबीभत्सं अतिगर्हितम् ॥१३॥
इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५
काम्बोजमिति । काम्बोजास्तरणं कम्बलविशेषः ॥ १ ॥

कोसलानामधिपतिं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
भर्तारं परिवार्यैताः पृथक् प्ररुदिताः स्त्रियः
अस्य गात्रगतान् बाणान्
कार्ष्णिबाहुबलार्पितान् ।
उद्धरन्त्यसुखाविष्टा
मूर्छमानाः पुनः पुनः ॥ ११
आसां सर्वानवद्यानामातपेन परिश्रमात् ।
प्रम्लाननलिनाभानि भांति वक्त्राणि माधव
द्रोणेन निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
धृष्टद्युम्नसुताः सर्वे शिशवो हेममालिनः १३
रथाग्न्यगारं चापार्चिं शरशक्तिगदेन्धनम् ।
द्रोणमासाद्य निर्दग्धाः शलभा इव पावकम्
तथैव निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
द्रोणेनाभिमुखाः सर्वे भ्रातरः पञ्च केकयाः॥
तप्तकाञ्चनवर्माणस्तालध्वजरथव्रजाः ।
भासयन्ति महीं भासा ज्वलिता इव पावकाः
द्रोणेन द्रुपदं संख्ये पश्य माधव पातितम् ।
महाद्विपमिवारण्ये सिंहेन महता हतम् १७
पाञ्चालराज्ञो विमलं पुण्डरीकाक्षपाण्डुरम् ।
आतपत्रं समाभाति शरदीव निशाकरः १८
एतास्तु द्रुपदं वृद्धं स्नुषा भार्याश्च दुःखिताः
दग्ध्वा गच्छन्ति पाञ्चाल्यं राजानमपसव्यतः
धृष्टकेतुं महात्मानं चेदिपुङ्गवमङ्गनाः ।
द्रोणेन निहतं शूरं हरन्ति हृतचेतसः ॥ २०
द्रोणास्त्रमभिहत्यैष विमर्दे मधुसूदन ॥
महेष्वासो हतः शेते नद्या हृत इव द्रुमः २१
एष चेदिपतिः शूरो धृष्टकेतुर्महारथः ।
शेते विनिहतः संख्ये हत्वा शत्रून् सहस्रशः
वितुद्यमानं विहगैस्तं भार्याः पर्युपासिताः ।
चेदिराजं हृषीकेश हतं सबलबान्धवम् २३
दाशार्हपुत्रजं वीरं शयानं सत्यविक्रमम् ।
आरोप्याङ्के रुदन्त्येताश्चेदिराजवराङ्गनाः ॥
अस्य पुत्रं हृषीकेश सुवक्त्रं चारुकुण्डलम् ।
द्रोणेन समरे पश्य निकृत्तं बहुधा शरैः ॥ २५
पितरं नूनमाजिस्थं युध्यमानं परैः सह ।
नाजहात्पितरं वीरमद्यापि मधुसूदन ॥ २६
एवं ममापि पुत्रस्य पुत्रः पितरमन्वगात् ।
दुर्योधनं महाबाहो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ २७

विंदानुविंदावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधव ।
हिमान्ते पुष्पितौ शालौ मरुता गलिताविव
काञ्चनाङ्गदवर्माणौ बाणखड्गधनुर्धरौ ।
ऋषभप्रतिरूपाक्षौ शयानौ विमलस्रजौ २९
अवध्याः पाण्डवाः कृष्ण
सर्व एव त्वया सह ।
ये मुक्ता द्रोणभीष्माभ्यां
कर्णाद्वैकर्तनात्कृपात् ॥ ३०
दुर्योधनाद्द्रोणसुतात्सैन्धवाच्च जयद्रथात् ।
सोमदत्ताद्विकर्णाच्च शूराच्च कृतवर्मणः ॥ ३१
ये हन्युः शस्त्रवेगेन देवानपि नरर्षभाः ।
त इमे निहताः संख्ये पश्य कालस्य पर्ययम्
नातिभारोऽस्ति दैवस्य
ध्रुवं माधव कश्चन ।
यदिमे निहताः शूराः
क्षत्रियैः क्षत्रियर्षभाः ॥ ३३
तदैव निहताः कृष्ण मम पुत्रास्तरस्विनः ।
यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः ॥ ३४
शन्तनोश्चैव पुत्रेण प्राज्ञेन विदुरेण च ।
तदैवोक्तास्मि मा स्नेहं कुरुष्वात्मसुतेष्विति
तयोर्हि दर्शनं नैतन्मिथ्या भवितुमर्हति ।
अचिरेणैव मे पुत्रा भस्मीभूता जनार्दन ३६
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा न्यपतद्भूमौ
गान्धारी शोकमूर्छिता ।
दुःखोपहतविज्ञाना
धैर्यमुत्सृज्य भारत ॥ ३७
ततः कोपपरीताङ्गी पुत्रशोकपरिप्लुता ।
जगाम शौरिं दोषेण गान्धारी व्यथितेन्द्रिया
गान्धार्युवाच ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च
दग्धाः कृष्ण परस्परम् ।
उपेक्षिता विनश्यन्त-
स्त्वया कस्माज्जनार्दन ५ ३९
शक्तेन बहुभृत्येन विपुले तिष्ठता बले ।
उभयत्र समर्थेन श्रुतवाक्येन चैव ह ।
इच्छतोपेक्षितो नाशः कुरूणां मधुसूदन ।
यस्मात्त्वया महाबाहो फलं तस्मादवाप्नुहि

दाशार्हपुत्रजमित्यत्र पुत्र्यामपि पुत्रशब्दः ॥२४॥ **पितैरमिति** । पितृपदस्यावृत्तिः शोकाकुलत्वान्न दोषाय ॥ २६ ॥ तयोर्भीष्मविदुरयोः दर्शनं अनागतावेक्षणम् ॥ ३६ ॥

पतिशुश्रूषया यन्मे तपः किञ्चिदुपार्जितम् ।
तेन त्वां दुरवापेन शप्स्ये चक्रगदाधरम् ॥
यस्मात्परस्परं घ्नन्तो
ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः ।
उपेक्षितास्ते गोविन्द
तस्माज्ज्ञातीन् वधिष्यसि ॥ ४३
त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन ।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः ॥ ४४
अनाथवदविज्ञातो लोकेष्वनभिलक्षितः ।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि ॥
तवाप्येवं हतसुता निहतज्ञातिबान्धवाः ।
स्त्रियः परिपतिष्यन्ति यथैता भरतस्त्रियः ॥
वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं वासुदेवो महामनाः ।
उवाच देवीं गान्धारीमीषदभ्युत्स्मयन्निव ॥
जानेऽहमेतदप्येवं चीर्णं चरसि क्षत्रिये ।
दैवादेव विनश्यन्ति वृष्णयो नात्र संशयः ॥
संहर्ता वृष्णिचक्रस्य नान्यो मद्विद्यते शुभे ।
अवध्यास्ते नरैरन्यैरपि वा देवदानवैः ॥ ४९
परस्परकृतं नाशं यतः प्राप्स्यन्ति यादवाः
इत्युक्तवति दाशार्हे पाण्डवास्त्रस्तचेतसः ।
बभूवुर्भृशसंविग्ना निराशाश्चापि जीविते ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीशापदाने
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
समाप्तं स्त्रीविलापपर्व ।

## श्राद्धपर्व ३

## २६

श्रीभगवानुवाच ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि मा च शोके मनः कृथाः
तवैव ह्यपराधेन कुरवो निधनं गताः ।
यत्त्वं पुत्रं दुरात्मानमीर्षुमत्यन्तमानिनम्।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य दुष्कृतं साधु मन्यसे ॥ २
निष्ठुरं वैरपुरुषं वृद्धानां शासनातिगम् ।
कथमात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि ॥
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ४
तपोर्थीयं ब्राह्मणी धत्त गर्भं
गौर्वोढारं धावितारं तुरङ्गी ।
शूद्रा दासं पशुपालं च वैश्या
वधार्थीयं क्षत्रिया राजपुत्री ॥ ५
वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य पुनरुक्तं वचोऽप्रियम्
तूष्णीं बभूव गान्धारी शोकव्याकुललोचना
धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिर्निगृह्याबुद्धिजं तमः ।
पर्यपृच्छत धर्मज्ञो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७
जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव ।
हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे ॥८
युधिष्ठिर उवाच ।
दशायुतानामयुतं
सहस्राणि च विंशतिः ।
कोट्यः षष्टिश्च षट् चैव
ह्यस्मिन् राजन् मृधे हताः ॥ ९
अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
दश चान्यानि राजेन्द्र शतं षष्टिश्च पञ्च च
धृतराष्ट्र उवाच ।
युधिष्ठिर गतिं कां ते गताः पुरुषसत्तम ।
आचक्ष्व मे महाबाहो सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥

---

तवापीति ।
अनिरस्तः परध्वंसो याति शक्तमुपेक्षकम् ।
कुलध्वंसप्रसूतार्तिर्गान्धार्या इव केशवम् ॥ ४६ ॥
अभ्युत्स्मयन्नीषद्धसन्॥४७॥ चीर्णं चरसि मदनुष्ठितमेवानुतिष्ठसि स्वतपोनाशार्थमिति भावः॥४८॥इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५

२६

उत्तिष्ठेति ॥ १ ॥ दुष्कृतं दुराचरितं स्वकीयम् ॥२ वैरप्रियं पुरुषं वैरपुरुषम् ॥३॥ द्वौ पूर्वापरदुःखद्वयरूपौ॥४॥ तपोरूपायार्थाय उत्पन्नं तपोर्थीयं त्वाद्विधा वधार्थीयमेव गर्भं धत्ते अन्या तु जयार्थीयं कीर्त्यार्थीयमपीति भावः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
यैर्हुतानि शरीराणि हृष्टैः परमसंयुगे ।
देवराजसमाँल्लोकान् गतास्ते सत्यविक्रमाः
ये त्वहृष्टेन मनसा मर्तव्यमिति भारत ।
युध्यमाना हताः संख्ये गन्धर्वैः सह सङ्गताः
ये च संग्रामभूमिष्ठा याचमानाः पराङ्मुखाः
शस्त्रेण निधनं प्राप्ता गतास्ते गुह्यकान्प्रति ॥
पात्यमानाः परैर्ये तु हीयमाना निरायुधाः ।
ह्रीनिषेवा महात्मानः परानभिमुखा रणे ॥
छिद्यमानाः शितैः शस्त्रैः क्षत्रधर्मपरायणाः ।
गतास्ते ब्रह्मसदनं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥
ये त्वत्र निहता राजन्नन्तरायोधनं प्रति ।
यथाकथञ्चित्पुरुषास्ते गतास्तूत्तरान् कुरून्

धृतराष्ट्र उवाच ।
केन ज्ञानबलेनैवं पुत्र पश्यसि सिद्धवत् ।
तन्मे वद महाबाहो श्रोतव्यं यदि वै मया ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
निदेशाद्भवतः पूर्वं वने विचरता मया ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन संप्राप्तोऽयमनुग्रहः ॥ १९
देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम्
दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।
अनाथानां जनानां च सनाथानां च भारत
कच्चित्तेषां शरीराणि धक्ष्यसे विधिपूर्वकम्
न येषामस्ति संस्कर्ता न च येऽत्राहिताग्नयः
वयं च कस्य कुर्यामो बहुत्वात्तात कर्मणाम् ॥
यान्सुपर्णाश्च गृध्राश्च विकर्षन्ति यतस्ततः ।
तेषां तु कर्मणा लोका भविष्यन्ति युधिष्ठिर

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तो महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतं च सञ्जयम् ॥
विदुरं च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवम् ।
इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान् सूतांश्च सर्वशः ॥
भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याण्यशेषतः ।
यथा चानाथवत्किञ्चिच्छरीरं न विनश्यति
शासनाद्धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च सञ्जयः ।
सुधर्मा धौम्यसहित इन्द्रसेनादयस्तथा ॥
चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत ।
घृतं तैलं च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च
समाहृत्य महार्हाणि दारूणां चैव सञ्चयान् ।
रथांश्च मृदितांस्तत्र नानाप्रहरणानि च ॥
चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान्नराधिपान्
दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥३०
दुर्योधनं च राजानं भ्रातॄंश्चास्य शताधिकान्
शल्यं शलं च राजानं भूरिश्रवसमेव च ॥
जयद्रथं च राजानमभिमन्युं च भारत ।
दौःशासनिं लक्ष्मणं च धृष्टकेतुं च पार्थिवम्
बृहन्तं सोमदत्तं च सृञ्जयांश्च शताधिकान् ।
राजानं क्षेमधन्वानं विराटद्रुपदौ तथा ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्
युधामन्युं च विक्रान्तमुत्तमौजसमेव च ॥
कौसल्यं द्रौपदेयांश्च शकुनिं चापि सौबलम्
अचलं वृषकं चैव भगदत्तं च पार्थिवम् ॥३५
कर्णं वैकर्तनं चैव सहपुत्रममर्षणम् ।
केकयांश्च महेष्वासांस्त्रिगर्तांश्च महारथान् ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं बकभ्रातरमेव च ।
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहून्पार्थिवांश्च सहस्रशः ।
घृतधाराहुतैर्दीप्तैः पावकैः समदाहयन् ॥ ३८
पितृमेधाश्च केषांचित्प्रावर्तन्त महात्मनाम्
सामभिश्चाप्यगायन्त तेऽन्वशोचन्त चापरैः
साम्नामृचां च नादेन स्त्रीणां च रुदितस्वनैः
कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत ॥४०
ते विधूमाः प्रदीप्ताश्च दीप्यमानाश्च पावकाः
नभसीवान्वदृश्यन्त ग्रहास्तन्वभ्रसंवृताः ॥
ये चाप्यनाथास्तत्रासन्नानादेशसमागताः ।
तांश्च सर्वान्समानाय्य राशीन्कृत्वा सहस्रशः
चित्वा दारुभिरव्यग्रैः प्रभूतैः स्नेहपाचितैः
दाहयामास तान्सर्वान्विदुरो राजशासनात्
कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गामभिमुखोऽगमत् ४४

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कुरूणामौर्ध्वदेहिके षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

सुधर्माणं दुर्योधनपुरोहितम् ॥ २४ ॥ स्नेहपाचितैः स्निहसंयुक्तैः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

वैशम्पायन उवाच ।
ते समासाद्य तु गङ्गां तु शिवां पुण्यजलोचितां
ह्रदिनीं च प्रसन्नां च महारूपां महाबलाम् १
भूषणान्युत्तरीयाणि वेष्टनान्यवमुच्य च ।
ततः पितॄणां भ्रातॄणां पौत्राणां स्वजनस्य च २
पुत्राणामार्यकाणां च पतीनां च कुरुस्त्रियः ।
उदकं चक्रिरे सर्वा रुदत्यो भृशदुःखिताः ३
सुहृदां चापि धर्मज्ञाः प्रचक्रुः सलिलक्रियाः ।
उदके क्रियमाणे तु वीराणां वीरपत्निभिः ४
सूपतीर्थाऽभवद्गङ्गा भूयो विप्रससार च ।
तन्महोदधिसङ्काशं निरानन्दमनुत्सवम् ॥ ५
वीरपत्नीभिराकीर्णं गङ्गातीरमशोभत ।
ततः कुन्ती महाराज सहसा शोककर्शिता
रुदती मन्दया वाचा पुत्रान्वचनमब्रवीत् ।
यः स वीरो महेष्वासो रथयूथपयूथपः ॥७
अर्जुनेन जितः संख्ये वीरलक्षणलक्षितः ।
यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेयमिति पाण्डवाः ८
यो व्यराजच्चमूमध्ये दिवाकर इव प्रभुः ।
प्रत्ययुध्यत वः सर्वान्पुरा यः सपदानुगान् ९
दुर्योधनबलं सर्वं यः प्रकर्षन् व्यरोचत ।
यस्य नास्ति समो वीर्ये पृथिव्यामपि पार्थिवः
योऽवृणीत यशः शूरः प्राणैरपि सदा भुवि ।
कर्णस्य सत्यसन्धस्य संग्रामेष्वपलायिनः ११
कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः ।
स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्यजायत
कुण्डली कवची शूरो दिवाकरसमप्रभः ।
श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचनमप्रियम्
कर्णमेवानुशोचन्तो भूयः क्लान्ततराऽभवन् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः १४
उवाच मातरं वीरो निःश्वसन्निव पन्नगः ।
यः शरोर्मिर्ध्वजावर्तो महाभुजमहाग्रहः १५
तलशब्दानुनदितो महारथमहाह्रदः ।
यस्येषुपातमासाद्य नान्यस्तिष्ठेद्धनञ्जयात् १६
कथं पुत्रो भवत्याः स देवगर्भः पुराऽभवत् ।
यस्य बाहुप्रतापेन तापिताः सर्वतो वयम् १७
तमग्निमिव वस्त्रेण कथं छादितवत्यसि ।
यस्य बाहुबलं नित्यं धार्तराष्ट्रैरुपासितम् १८
उपासितं यथाऽस्माभिर्बलं गाण्डीवधन्वनः ।
भूमिपानां च सर्वेषां बलं बलवतां वरः १९
नान्यं कुन्तीसुतात्कर्णादगृह्णाद्रथिनां रथी ।
स नः प्रथमजो भ्राता सर्वशस्त्रभृतां वरः २०
असूत तं भवत्यग्रे कथमद्भुतविक्रमम् ।
अहो भवत्या मन्त्रस्य गूहनेन वयं हताः २१
निधनेन हि कर्णस्य पीडितास्तु सबान्धवाः
अभिमन्योर्विनाशेन द्रौपदेयवधेन च ॥ २२
पञ्चालानां विनाशेन कुरूणां पतनेन च ।
ततः शतगुणं दुःखमिदं मामस्पृशद्भृशम् २३
कर्णमेवानुशोचामि दह्याम्यग्नाविवाहितः ।
नेह स्म किञ्चिदप्राप्यं भवेदपि दिवि स्थितम्
न चेदं वैशसं घोरं कौरवान्तकरं भवेत् ।
एवं विलप्य बहुलं धर्मराजो युधिष्ठिरः २५
व्यरुदच्छनकै राजंश्चकारास्योदकं प्रभुः ।
ततो विनेदुः सहसा स्त्रियस्ताः खलु सर्वशः
अभितो याः स्थितास्तत्र तस्मिन्नुदककर्मणि ।
तत आनाययामास कर्णस्य सपरिच्छदाः ॥
स्त्रियः कुरुपतिर्धीमान् भ्रातुः प्रेम्णा युधिष्ठिरः
स ताभिः सह धर्मात्मा प्रेतकृत्यमनन्तरम् २८
चकार विधिवद्धीमान्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
पापेनासौ मया श्रेष्ठो भ्राता ज्ञातिर्निपातितः
अतो मनसि यद्गुह्यं स्त्रीणां तन्न भविष्यति
इत्युक्त्वा स तु गङ्गाया उत्तताराकुलेन्द्रियः ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्गङ्गातीरमुपेयिवान् ३०

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कर्णगूढजत्वकथने
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## ॥ स्त्रीपर्व समाप्तम् ॥

---

२७

**ते समासाद्येति** ॥ १ ॥ वेष्टनानि उष्णीषकटिबन्धनादीनि ॥२॥ सूपतीर्था शोभनजलावतरणमार्गा ॥५॥ भवन् अभवन् अडभाव आर्षः ॥ १४ ॥ **नेह स्मेति**। कर्णे भ्रातृत्वेन ज्ञाते सति तदनुसारिणामस्माकमपि दुर्लभं नाभविष्यन्नापि कौरवाणां क्षयोऽभविष्यदित्यर्थः ॥ २४॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## अस्यानन्तरं शान्तिपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः—

वैशम्पायन उवाच ——

कृतोदकास्ते सुहृदां सर्वेषां पाण्डुनन्दनाः ।
विदुरो धृतराष्ट्रश्च सर्वाश्च भरतस्त्रियः ॥ १

## ॥ इति श्रीमहाभारते *स्त्रीपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे-सप्तविंशति-रध्यायाः पर्वण्यस्मिन्प्रकीर्तिताः । श्लोकसप्तशती चापि पञ्चसप्ततिसंयुता' इत्युक्तम् । अस्मिंस्त्रीपर्वणि तु अध्यायाः सप्तविंशतिसंख्याका एव, तथापि श्लोकसंख्या तु ८२५ वर्तते, इयं श्लोकवृद्धिः मध्ये मध्ये प्रक्षिप्तश्लोकैः संजाता वेदितव्येति शम् ।

इति श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज- पण्डितरामचंद्र-शास्त्रिकृतौ महाभारतलघुटिप्पण्यां स्त्रीपर्व समाप्तम् । भारती जयतु । शके १८५३ ।

# Shriman

# MAHABHARATAM

# श्रीमन्महाभारतम्।

## शान्तिपर्वात्मकः पंचमो भागः।

### चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
### भारतभावदीपाख्यटीकया समेत

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतः ।



स च

पुण्याख्यपत्तने



१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्य प्रकाशितः ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५४]  प्रथमं संस्करणम्।  [ख्रिस्ताब्दाः [illegible]

॥ भारती विजयते ॥

# प्रास्ताविकम् ।

अयि ! प्रियपाठकमहाभागाः ! भगवतः करुणावरुणालयस्य परमेश्वरस्य कृपापाङ्गादिमं महाभारतस्य पंचमं भागं भावत्ककरकमलयोर्विन्यासितुं प्रमोदामहे । अत्र द्वादशतमं शान्तिपर्व संपूर्णं समागतम् । अस्य संशोधनं द्वितीयभागप्रदर्शिताऽऽदर्शपुस्तकानां साहाय्येन, विशेषतः पुण्यपत्तनस्थ- ओरिएंटल बुक एजन्सी ' इत्यभिधप्राचीनविविधग्रंथप्रकाशनैकतत्परायाः संस्थायाः प्रधानाध्यक्षैः ' डॉ. नरहर गोपाल सरदेसाई ' इत्यभिधेयमहाभागैर्महताऽऽयासेन संपाद्य संशोधनकर्मणेऽस्मभ्यं वितीर्णस्य प्रायो दुष्प्राप्यस्यार्जुनमिश्रटीकासंवलितशान्तिपर्वणः साहाय्येन च व्यधायि । अस्मिन्पर्वणि युधिष्ठिरभीष्मसंवादव्याजेन राजधर्मापद्धर्ममोक्षधर्माणां व्याख्यानं साकल्येन भगवता पाराशर्येण कृतम् । प्रौढमतीनां पाठकमिश्राणामस्य विषयस्य परिशीलनेन सुमहान् परितोषः स्यादिति नः सुतरां विश्वासः ।

अग्रिमे भागेऽवशिष्टानि महाभारतस्य पर्वाणि समागच्छेयुरचिरादेव च स भवच्चक्षुर्गोचरः स्यादित्यावेद्य विरमति—

विद्वद्विधेयः

किञ्जवडेकरोपाह्वो रामचन्द्रशास्त्री

पुण्यपत्तनस्थभुवनभारतीनिवासी ।

कार्तिक शु. ११<br>शाकः १८५४

ॐ

# चित्राणां सूचीपत्रम् ।

## शान्तिपर्व ।


[१] तत उत्थाय दाशार्हः शङ्खमादाय पूजितम् ।
अभ्यषिंचत्पार्तिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥१५॥—शान्तिपर्व अ. ४० पृ. ७०

[२] एवमुक्तस्तु भीष्मेण धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विनीतवदुपागम्य तस्थौ संदर्शनेऽग्रतः ॥ २० ॥
तमुवाचाथ गाङ्गेयो वृषभः सर्वधन्विनाम् ।
मां पृच्छ तात विश्रब्धं मा भैस्त्वं कुरुसत्तम ॥ २२ ॥—शान्तिपर्व अ. ५५ पृ. ९१

[३] सोऽहमन्त्यावसायानां हराम्येनां प्रतिग्रहात् ।
न स्तैन्यदोषं पश्यामि हरिष्यामि श्वजाघनीम् ॥ ४१ ॥—शान्तिपर्व अ. १४१ पृ. २४३

[४] ततः कृतप्रतिज्ञो वै स पक्षी प्रहसन्निव ।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य प्रविवेश महामतिः ॥ २३ ॥
अग्निमध्ये प्रविष्टं तु लुब्धो दृष्ट्वा तु पक्षिणम् ।
चिन्तयामास मनसा किमिदं वै मया कृतम् ॥ २४ ॥—शान्तिपर्व अ. १४६ पृ. २५३

[५] रुद्रतुल्यगणा रौद्रा रुद्रवीर्यपराक्रमाः ।
ते निपेतुस्ततस्तूर्णं दक्षयज्ञाविहिंसया ॥
भीमरूपा महाकायाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३६ ॥—शान्तिपर्व अ. २८४ पृ. ५५३

[६] ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम् ।
पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाभ्यतर्पयत् ॥ —शान्तिपर्व अ. ३२० पृ. ६५४

[७] शुको ददर्श धर्मात्मा ... ... ... ...
तस्यां क्रीडन्त्यभिरतास्ते चैवाप्सरसां गणाः ॥
× × × × × ×
आलोक्य तमृषिं सर्वाः संभ्रान्ता गतचेतसः ।
जले निलिल्यिरे काश्चित्काश्चिद्गुल्मान्प्रपेदिरे ॥२९॥—शान्तिपर्व अ. ३३३ पृ. ६९०

[८] एतस्मिन्नन्तरे राजन्! देवो हयशिरोधरः ।
जग्राह वेदानखिलान् रसातलगतान् हरिः ॥ —शान्तिपर्व अ. ३४७ पृ. ७३१

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## शान्तिपर्व

### -१२-

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | **( १ ) राजधर्मानुशासनपर्व १–२२०** | |
| १ | ४४ | कृतोदकेषु पाण्डवेषु गंगातीरे निवसत्सु तान्प्रत्यागतेषु व्यासनारदादिषु नारदो "भवता बाहुवीर्येण" इत्याद्युवाच युधिष्ठिरं प्रति। असंतुष्टो युधिष्ठिरो नारदं प्रति कुन्तीकृतमन्त्रसंवरणवृत्तान्तं पूर्वोक्तं कुन्तीकर्णसंवादं च कथयित्वा कर्णाज्ञानेनानुतप्तः सन् कर्णाभिशापवृत्तान्तं शुश्रूषया प्रपच्छ। ... ... | ३ |
| २ | २९ | उत्तरं वदन्नारदो द्रोणसमीपे कर्णकृतं ब्रह्मास्त्रयाचनं द्रोणकृतं तत्प्रत्याख्यानं च कथयति स्म। द्रोणेन प्रत्याख्यातः कर्णः परशुरामं प्रति गत्वा ब्राह्मणोऽहमित्युक्त्वा तत्र वसंस्तस्मादस्त्रशिक्षामवाप। कदाचित्कर्णः समुद्रतीरे विचरन्नज्ञानाद्ब्राह्मणधेनुं हत्वा तं ब्राह्मणमनुनयन्नपि क्रुद्धात्तस्मान्मरणकाले चक्रमज्जनादिरूपं शापमवाप। ... ... | ४ |
| ३ | ३३ | कर्णस्य वीर्यादिकं दृष्ट्वा तुष्टो रामस्तस्मै ब्रह्मास्त्रं ददौ। कदाचित्कर्णोत्संगे शिरो निधाय सुप्तो रामः केनचित्कीटेन भग्नात्कर्णोरोर्निर्गतेन रुधिरेण स्पृष्टः प्रबुद्धः सन् कर्णोरुभेदकं कीटं ददर्श। कीटको रामस्य दृष्टिपातेन तत्कीटकरूपं त्यक्त्वा राक्षसरूपः सन् स्वस्य कीटत्वप्राप्तिकारणवृत्तान्तमाचख्यौ। "नैतादृशं ब्राह्मणस्य धैर्यं तस्मात्तथ्यं कथय" इति परशुरामेण सक्रोधमुक्तः कर्णः स्वस्य यथार्थं वृत्तान्तं कथयामास। तच्छ्रुत्वा क्रुद्धेन रामेण "यस्मान्मिथ्योपचरितः" इत्यादिना मरणकाले ब्रह्मास्त्रास्फुरणरूपं शापं दत्वा विसर्जितः कर्णः पादवंदनादिपूर्वकं स्वदेशं जगाम ... ... | ६ |
| ४ | २१ | दुर्योधनेन सह कर्णस्य सख्ये जाते कदाचित्स्वयंवरदर्शनार्थं कलिंगदेशं प्रत्युभौ जग्मतुः। तत्र दुर्योधनेन कलिंगराजकन्यायां हृतायां राजभिः सह कर्णदुर्योधनयोर्युद्धम् ... ... | ७ |
| ५ | १५ | मागधेन युद्धार्थमाहूतः कर्णस्तं पराजिग्ये, पराजितश्च स कर्णाय मालिनीनगरं ददौ। देव- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मायाविमोहितः कर्ण इन्द्राय सहजं कवचं कुंडले च ददौ | ७ |
| ६ | १३ | इत्युक्त्वा विरते नारदे शोचन् युधिष्ठिरो "यातितः स मया पूर्वं" इत्यादिना कर्णेन सह जातं स्वसंवादं कथयन्तीं कुन्तीं प्रति "तव मन्त्रसंवरणेनाहं पीडितः" इत्याद्युक्त्वा "न गुह्यं धारयिष्यन्ति" इति सर्वाः स्त्रियः शशाप ... | ८ |
| ७ | ४४ | कर्णं स्मृत्वा संतप्तो युधिष्ठिरो हतान् ज्ञातीननुस्मृत्य दुर्योधनं विनिंदन् पापभीतोऽर्जुनं प्रत्यात्मनो वनवासाभिप्रायं कथयति स्म ... ... | १० |
| ८ | ३७ | युधिष्ठिरं प्रत्युत्तरं वदन्नर्जुनोऽर्थं प्रशंसन्नर्थहीनान्विनिंदन् भूमित्यागरूपं कुपथं मा स्म गम इत्याह। .... ... | १२ |
| ९ | ३७ | युधिष्ठिरो वनवासप्रशंसापूर्वकं तद्धर्मान् यतिधर्मांश्चाख्याय संसारालम्बने दुःखं तत्यागे सुखं च वर्णयति स्म ... | १४ |
| १० | २८ | युधिष्ठिरं प्रति भीमस्य "श्रोत्रियस्येव ते राजन्" इत्याद्युपदेशवाक्यम् ... ... | १६ |
| ११ | २८ | अर्जुनो युधिष्ठिरं प्रति गार्हस्थ्यालम्बनस्य श्रेयस्त्वं प्रतिपादयंस्तापसेन्द्रसंवादरूपमितिहासं कथयामास ... ... | १८ |
| १२ | ३८ | युधिष्ठिरं प्रत्यर्जुनोक्त्युपबृंहकं "विशाखयूपे देवानां" इत्यादिकं नकुलस्योपदेशवाक्यम् ... ... | २० |
| १३ | १३ | सहदेवो युधिष्ठिरं प्रति "न बाह्यं द्रव्यमुत्सृज्य" इत्याद्युवाच ... ... | २१ |
| १४ | ३९ | भ्रातृभिर्बोधितमपि तूष्णींभूतं युधिष्ठिरं प्रति सर्वैः प्रकारै राज्योपभोगसमर्थनरूपा द्रौपद्युक्तिः ... ... | २३ |
| १५ | ५८ | द्रौपदीवाक्यं श्रुत्वा पुनरर्जुनो दण्डं प्रशस्य तस्यार्थाधीनत्वं प्रतिपादयन्नन्तरात्मनोऽवध्यत्वं कथयन् भ्रूणहत्यादिदोषाभावं वर्णयति स्म ... ... | २५ |
| १६ | २९ | अर्जुनवाक्यं श्रुत्वा भीमो युधिष्ठिरमाक्षिपन् शारीरादीन् व्याधीनभिधाय द्रौपदीसभानयनाद्यनूद्य राज्यं शाधीत्याह ... | २७ |
| १७ | २४ | युधिष्ठिरो राज्यं विनिंदन् वनवासिनः प्रशस्य जनकोक्तां गाथां जगाद... ... ... | २८ |
| १८ | ४० | तूष्णींभूते युधिष्ठिरे पुनरर्जुनो राज्यत्यागिनो जनकस्य तत्पत्न्या सह संवादं कथयित्वा तद्दृष्टांतेन "त्वं मोहं मास्म गमः" इत्याह | ३१ |
| १९ | २६ | पुनर्युधिष्ठिरो राज्यत्यागमभिप्रेत्य वनवासिनः प्रशशंस... | ३२ |
| २० | १४ | युधिष्ठिरं प्रत्युपदिशन् देवस्थानऋषिर्यज्ञं प्रशशंस... | ३३ |
| २१ | २० | पुनर्देवस्थान इंद्रबृहस्पतिसंवादरूपमितिहासमुक्त्वा भूतानां नानाविधानि मतान्युपन्यस्य राज्यं पालयितुमुपादिदेश... | ३४ |
| २२ | १५ | पुनरर्जुनो युधिष्ठिरं प्रति "क्षत्रधर्मेण धर्मज्ञ प्राप्य राज्यं सुदुर्लभं" इत्याद्युवाच... ... | ३५ |
| २३ | ४७ | अर्जुनोक्तिं श्रुत्वा तूष्णींभूतं युधिष्ठिरं प्रति व्यासो गृहस्थाश्रमं प्रशस्य ब्राह्मणक्षत्रियधर्मानुपदिश्य तदुद्देशेन बृहस्पतिगीतां "राजानं चाविरोद्धारं" इत्यादिरूपां गाथामाह स्म। सुद्युम्नः केन कर्मणा सिद्धिमवापेति युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरं कथयन् व्यासः शंखलिखितवृत्तान्तं कथयति स्म। कदाचिल्लिखितः शंखाश्रमं गत्वा फलान्यभुङ्क्त तं चाह शंखो मदनुज्ञां विना फलानि भक्षितवता त्वया स्तेयं कृतमिति सुद्युम्नं राजानं | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | प्रति गच्छेति। शंखानुज्ञया सुद्युम्नं प्रति गत्वा "स्तेनं मां मत्वा दण्डं धारय" इत्युक्तवंतं लिखितं प्रति स राजा "प्रमाणं चेन्मतो राजा" इत्याद्युवाच। पुनर्दंडमेव कुर्विति प्रार्थितेन सुद्युम्नेन हस्तद्वयच्छेदनरूपे दंडे विहिते धृतदंडो लिखितः शंखवाक्याद्बाहुदानद्यां स्नात्वा हस्ताववाप तेन स राजापि सिद्धिं प्राप... | ३७ |
| २४ | ३४ | व्यासः पुनर्युधिष्ठिरं प्रति राजधर्मानुपदिदेश... ... | ३९ |
| २५ | ३६ | प्रत्युत्तरं वदन्युधिष्ठिरो यदा "न पार्थिवमिदं राज्यं" इत्याद्युवाच तदा व्यासः "कालप्रभावात्सर्वं भवति" इत्युक्त्वा तदुपष्टंभकत्वेन सेनाजित्कथिता गाथा अभिधाय पुना राजधर्मानभ्यधात्... ... ... | ४१ |
| २६ | ३१ | पुनर्युधिष्ठिरोऽर्जुनं प्रति वनवासप्रशंसारूपं वाक्यमुक्त्वा ययातिगीता गाथाः कथयित्वा धनं विनिंदन्नुवाच... ... ... | ४२ |
| २७ | ३४ | अभिमन्युवधादिकं भीष्मपराक्रमं द्रोणवाक्यं चानूद्य विलपन्तं बंधुशोकविह्वलं युधिष्ठिरं प्रति व्यासः "संयोगा विप्रयोगांताः" इत्याद्युपदिदेश... ... | ४४ |
| २८ | ५९ | पुनर्युधिष्ठिरस्य शोकमपनुदन् व्यासोऽश्मर्षिजनकसंवादरूपमितिहासं कथयति स्म। "आगमे यदि वापाये ज्ञातीनां द्रविणस्य च" इत्यादिके जनकप्रश्ने उत्तरं वदन्नश्मर्षिः सर्वेषां कालाधीनत्वं भूतसमागमस्यानित्यत्वं च कथयन्नुपदिदेश। अश्मोपदेशेन विशोकस्य जनकस्य स्वगृहगमनमाख्याय "जनकवत् त्वमपि शोकं मुञ्च" इत्याद्याह व्यासः... | ४६ |
| २९ | १४९ | युधिष्ठिरशोकापनोदार्थमर्जुनेन प्रेरितः श्रीकृष्णस्तदथ सृञ्जयनारदसंवादरूपमितिहासं कथयति स्म। पुत्रशोकसंतप्तं सृञ्जयं प्रति नारदो मरुत्त-सुहोत्र-बृहद्रथ-शिबि-भरत-राम-भगीरथ-दिलीप-मान्धातृ-ययाति-अम्बरीषप्रभृतीनां षोडशानां मरणकथनेन तस्य शोकमपनुद्य राज्ञः पुत्रयाचनमंगीकृत्य पुनस्तं दातुं प्रतिजज्ञे... ... | ५२ |
| ३० | ४४ | सृञ्जयस्य स्वर्णष्ठीवी पुत्रः कथं जात इति धृतराष्ट्रप्रश्ने श्रीकृष्णस्तदुत्तरं वदन्नारदपर्वतवृत्तान्तं कथयति स्म। नारदपर्वतयोः प्रार्थनापूर्वकं सृञ्जयगृहे निवसतोः सृञ्जयेनोभयोः सेवार्थं नियुक्तायाः कन्यायाः परिचर्यया मदनाक्रान्तं नारदं दृष्ट्वा पर्वतस्तस्मै वानराकृतिप्राप्तिरूपं शापं विततार, नारदश्च पर्वताय स्वर्गगतिरोधरूपम्। परस्परशापदानानन्तरं गते पर्वते नारदो राजकन्यां लब्ध्वा निवसन् कस्मिंश्चित्काले पर्वतं जगाम। तत्र नारदं दृष्ट्वा शापमोचनार्थं पर्वतेन प्रार्थनायां कृतायामुभावपि परस्परं शापमोचनं चक्रतुः। शापमोचनेन रूपान्तरवन्तं नारदं दृष्ट्वा परपुरुषशङ्कया विद्रवन्ती राजकन्या पर्वतोपदेशेन प्रकृतिमापेदे। इत उत्तरं वृत्तान्तमेष नारदो वक्ष्यतीत्युवाच श्रीकृष्णो युधिष्ठिरम् ... ... | ५४ |
| ३१ | ४७ | युधिष्ठिरेण पृष्टो नारदोऽवशिष्टं वृत्तान्तं कथयितुं प्रतिजज्ञे, राजगृहे बहुदिनवासेन तुष्टयोर्नारदपर्वतयोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं पर्वतेन वरयाचनार्थमुक्तः सृञ्जयो देवराजसमद्युतिं पुत्रं ययाचे, तच्छ्रुत्वा पर्वतो "यतस्त्वयेन्द्रस्पर्धया पुत्रः प्रार्थितोऽतस्तव स्वर्ण- | |

अ० श्लो० विषयः पृष्ठम्

ष्ठीवी पुत्रो भविष्यति परं त्वल्पायुर्भविष्यति " इत्युवाच राजानम् । पुनर्दीर्घायुषं पुत्रं प्रार्थितवति राजनि नारदो "भवत्वल्पायुर्मा स्मर ते पुत्रं दर्शयिष्यामि " इत्यवादीत् । पर्वतप्रसादात्पुत्रे स्वर्णष्ठीविनि जाते सति तन्नाशार्थमिन्द्रेण प्रेषितं स्वकीयं वज्रं व्याघ्ररूपेण राजपुत्रं जघान । तदा स्मृतो नारद आगत्य तं पुत्रं जीवयामास राजा च तुष्टः सन् राज्यं पालयामास। एवं कथयित्वा नारदो युधिष्ठिरं प्रति शोकं परित्यज्य राज्यं पालयेत्युवाच ... ... ५५

३२ २५ तूष्णीं भूतं युधिष्ठिरं " प्रजानां पालनं धर्मः" इत्यादिकं व्यासवाक्यं श्रुत्वा "न तेऽभिशङ्के वचनं " इत्यादिना अवध्यानां हननं मां दहति इत्यादिना वदन्तं प्रति व्यासः "ईश्वरप्रयुक्तेन पुरुषेण साध्वसाधु क्रियते " इत्याद्युवाच ५७

३३ ४८ पुनर्विलपन्तं युधिष्ठिरमाश्वासयितुं उपदिशन् व्यासो देवासुरसंग्रामवृत्तान्तमाख्याय प्रायश्चित्तार्थमश्वमेधकरणमुपदिदेश ५९

३४ ३२ " कानि कृत्वेह कर्माणि प्रायश्चित्तीयते नरः" इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने उत्तरं कथयन् व्यासो विहिताकरणादिना प्रायश्चित्तार्हत्वमभिधाय प्रायश्चित्तार्हाणां स्वरूपं निरूप्य येषु क्रियमाणेष्वपि दोषाभावस्तान्यप्यभिदधाति स्म ... ... ६०

३५ ५२ ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगपरदाराभिमर्शिपरिवेत्तृप्रभृतीनां प्रायश्चित्तान्यभिदधाति स्म व्यासः। ब्राह्मणादीनां प्रायश्चित्ते गौरवलाघवे निरूप्यागम्यागमनप्रायश्चित्तं भक्ष्याभक्ष्येष्वज्ञानिनः स्वल्पप्रायश्चित्तादिकं चाचष्ट ... ६३

३६ ५० भक्ष्याभक्ष्यादिज्ञानार्थं युधिष्ठिरप्रश्ने तन्निरूपणार्थं सिद्धमनुसंवादरूपमितिहासं वर्णयति स्म व्यासः। सिद्धैः कार्याकार्यविषये पृष्टो मनुः "अनादेशे जपो होमः" इत्याद्युक्त्वा ब्राह्मणानामभक्ष्याणि कथयित्वा प्रेतान्नादिभक्षणे दोषं चाभिधाय गृहस्थानां देवादिपूजनपूर्वकं भोजनादिनियमं दाननियमं चाख्यातवान्। ...६५

३७ ४९ राजधर्मादीन् श्रोतुं प्रार्थयंतं युधिष्ठिरं प्रति व्यासो "भीष्मं गच्छ स ते सर्वं कथयिष्यति" इत्युक्त्वा भीष्मं प्रशशंस। भीष्मं प्रति गंतुं लज्जमानो युधिष्ठिरः श्रीकृष्णेन बोधितः सन् षोडशगवं रथमारुह्य तत्कालोचितपरिकरसमेतः पुरं प्रविवेश। ६७

३८ ३७ पुरप्रवेशसमये दिदृक्षूणां जनानामागमने स्त्रीषु द्रौपदीं स्तुतवतीषु प्रकृतिषु च राजानं प्रशंसत्सु प्रविष्टो युधिष्ठिरो ब्राह्मणपूजादिकमाचचार, पुरे पुण्याहघोषादिके प्रवृत्ते दुर्योधनसखश्चार्वाको नाम राक्षसो भिक्षुरूपेणागत्य युधिष्ठिरं निनिंद। तदवसरेण युधिष्ठिरेण प्रार्थिता ब्राह्मणास्तत्प्रत्यभिज्ञां दत्वा हुंकारैः पापराक्षसं चार्वाकं जघ्नुः ... ६८

३९ १२ श्रीकृष्णो युधिष्ठिरं प्रति चार्वाकराक्षसस्य ब्रह्मणो वरदानं देवप्रार्थनया ब्रह्मादिष्टं तद्वधोपायं चाकथयत्। ... ... ६९

४० २४ वैशंपायनो युधिष्ठिरादीनामासनोपवेशनमाभिषेचनिकसामग्रीं युधिष्ठिरस्य राज्याभिषेकं ब्राह्मणानां स्तुतिपूर्वकाशीर्वादांश्चाभिदधाति स्म। ... ...७०

४१ १९ युधिष्ठिरोऽमात्यादीन् प्रति धृ-

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | तराष्ट्राज्ञानुवर्तनाद्यभिधाय भीमं यौवराज्येऽभिषिच्य मंत्रणादिषु धृतराष्ट्रसंमानने च विदुरादीन् विनियुयोज। ... | ...७१ |
| ४२ | १२ | युधिष्ठिरादिभिः कृतानि मृतानां श्राद्धान्यकथयद्वैशंपायनः | ७१ |
| ४३ | १७ | अभिषेकोत्तरं युधिष्ठिरकृतः श्रीकृष्णस्तवः। ... | ... ७३ |
| ४४ | १६ | विसर्जितेष्वमात्यादिषु स्वस्वगृहगतेषु युधिष्ठिरो भीमादीन्सांत्वयित्वा भीमार्जुननकुलसहदेवान् प्रति दुर्योधनदुःशासनदुर्मर्षणदुर्मुखगृहेषु निवसितुं यथाक्रममनुजज्ञे... ... ... | ७३ |
| ४५ | २० | "प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरो यदकरोत्तत्कथय" इति जनमेजयस्य प्रश्ने वैशंपायनस्योत्तरम्। युधिष्ठिरश्चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं स्वे स्वे स्थाने निवेश्य धौम्यादिभ्यो धनं दत्वा श्रीकृष्णसमीपं गत्वा "सुखेन ते निशा कच्चित्" इत्याद्युवाच | ७४ |
| ४६ | ३५ | उत्तरमददानं ध्यायंतं श्रीकृष्णं दृष्ट्वा विस्मितो युधिष्ठिरः "किमिदं परमाश्चर्यं" इत्याद्युवाच तं प्रति। "भीष्मो मां ध्यायति तद्गतं मम मनः" इत्युक्त्वा तं प्रशस्य राजधर्मादीन् श्रोतुं तं प्रति गच्छेति श्रीकृष्णेनोक्तो युधिष्ठिरस्त्वां पुरस्कृत्य गमिष्यामीत्युवाच। तच्छ्रुत्वा श्रीकृष्णेन रथयोजनार्थं सात्यकिद्वाराऽऽज्ञप्तो दारुको रथं सज्जीकृत्याजगाम... ... | ...७६ |
| ४७ | १०८ | भीष्मः कथं देहमुत्सृष्टवानिति जनमेजयप्रश्ने वैशंपायनस्योत्तरम्। शरतल्पगतो भीष्मो व्यासनारदादिषु समीपस्थितेषु श्रीकृष्णस्य स्तवराजं कृतवान्। स्तवेन तुष्टः श्रीकृष्णो रूपांतरेण भीष्माय दिव्यं ज्ञानं दत्वा शयनस्थाने स्वं देहमागतो युधिष्ठिरेण प्रबोधितो रथमारुह्य युधिष्ठिरादिभिः सह कुरुक्षेत्रदर्शनार्थं निर्जगाम... | ८० |
| ४८ | १६ | श्रीकृष्णादिषु कुरुक्षेत्रमवतीर्य तद्दर्शनं कुर्वत्सु श्रीकृष्णो युधिष्ठिरं प्रति संक्षेपेण जामदग्न्यस्य रामस्य पराक्रममकथयत्... | ८१ |
| ४९ | ९० | रामपराक्रमज्ञानार्थं युधिष्ठिरप्रश्ने श्रीकृष्णः सविस्तरं तं कथयन् रामस्य जन्मवृत्तांतं कथयति स्म। ऋचीको गाधिकन्यां सत्यवतीं परिणीय प्रसन्नः संस्तस्या गाधेश्च पुत्रोत्पत्त्यर्थं चरुद्वयं निर्माय "त्वच्चरुर्ब्राह्मणं पुत्रं त्वन्मातृचरुः क्षत्रियं पुत्रं जनयिष्यतीति यथायोग्यमनयोरुपयोगः कर्तव्यः" इत्युक्त्वा वनं जगाम - एतस्मिन्नवसरे तीर्थयात्रां कुर्वन् गाधिराश्रममाजगाम, तेन सहागतया मातुरुपदेशेन विनिमयपूर्वकं चरोरुपयोगं सत्यवतीतन्मातरौ चक्रतुः। चरुव्यत्ययेन गर्भव्यत्ययं दृष्ट्वा ऋचीकः सत्यवतीं प्राह "तव पुत्रः क्रूरकर्मा क्षत्रियो भविष्यति त्वन्मातुश्च तपोरतो ब्राह्मणः पुत्रः" इति। "मम पौत्रस्तथा भवतु पुत्रश्च शमात्मको ब्राह्मणो भवतु" इति सत्यवत्या प्रार्थित ऋचीकस्तथांगीचकार, ततः सत्यवती जमदग्निं तन्माता च विश्वामित्रं जनयामास। जमदग्नेरुत्पन्नो रामो महादेवादस्त्राणि परशुं चावाप। दत्तात्रेयप्रसादाल्लब्धबाहुसहस्रो हैहयाधिपतिरर्जुनोऽग्निना भिक्षितस्तस्मै पुरराष्ट्रादीनि ददौ स च तानि ददाह। दग्धवताग्निनाऽऽपवस्याश्रमे दग्धे क्रुद्धः सोऽर्जुनं प्रति तव बाहुसहस्रं रामश्छेत्स्यति" इति शशाप। कदाचिदर्जुनपुत्रैर्जमदग्निहोमधेनोर्वत्से हृते तन्निमित्तकेऽर्जुनरामयोर्युद्धे प्रसक्ते रामोऽर्जुनस्य बाहुसहस्रमच्छिनत्। | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | आश्रमं रामरहितं दृष्ट्वा तत्रागत्यार्जुनपुत्रैर्जमदग्नौ हते क्रुद्धो रामः पृथिवीं निःक्षत्रियां कर्तुं प्रतिज्ञाय तथा कृत्वा वनं जगाम। पुनः परावसोराक्षेपवाक्यात्क्रुद्धो राम एकविंशतिवारं क्षत्रियान् हत्वा निःक्षत्रियां पृथिवीं कश्यपाय दत्वा समुद्रतीरे वासमकरोत्। अराजके प्रजानां दुःखं पृथिव्या उर्वीतिनाम्नो वृत्तांतं निगूढतया स्थितैः क्षत्रियैरात्मरक्षार्थं कश्यपं प्रति पृथ्वीप्रार्थनं तद्वाक्यात्कश्यपकृतं क्षत्रियाणां राज्याभिषेकं चाभिधाय युधिष्ठिरादीनां कुरुक्षेत्रदर्शनं चाभिदधाति स्म वैशम्पायनः... ... | ८४ |
| ५० | ३८ | विस्मितेन युधिष्ठिरेण रामपराक्रमेऽभिनंदिते तदादयः सर्वे भीष्मसमीपमाजग्मुः। आगतेषु सर्वेषु श्रीकृष्णो भीष्मं प्रति "कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि" इत्याद्युक्त्वा तं प्रशस्य युधिष्ठिरस्य शोकमपनुद इत्याह। श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा तं स्तुत्वा उत्तमां गतिं प्रार्थयन्तं भीष्मं प्रति इत्याह ... | ८५ |
| ५१ | १८ | श्रीकृष्णवाक्यं श्रुत्वा तं स्तुत्वा उत्तमां गतिं प्रार्थयंतं भीष्मं प्रति श्रीकृष्णः "उदगयने त्वमिष्टां गतिं प्राप्स्यसीत्युक्त्वा सर्वधर्मोपदेशपूर्वकं युधिष्ठिरस्य शोकमपाकुरु" इत्याह... ... | ८६ |
| ५२ | ३४ | "शरवेदनाक्रांतोऽनवस्थितमनाः कथं वक्ष्यामि" इत्युक्तवन्तं भीष्मं प्रति श्रीकृष्णो ग्लानिमूर्च्छादिनिवृत्तये वरं ददौ। तदा व्यासादिषु श्रीकृष्णसंमाननं कृत्वा भीष्ममामंत्र्य "श्वः समेष्यामः" इत्युक्त्वा गतेषु युधिष्ठिरादयोऽपि स्वस्वगृहाणि जग्मुः | ८८ |
| ५३ | २७ | रात्रौ सुप्तः श्रीकृष्णोऽर्धयामशेषायां रात्रावुत्थाय प्रातःकृत्यं कृत्वा युधिष्ठिरं प्रति सात्यकिं प्रेषयामास स च "कृष्णः सज्जो भूत्वा त्वां प्रतीक्षते इत उत्तरं यत्कर्तव्यं तत्कुरु" इत्युवाच युधिष्ठिरम्। सात्यकिवाक्यं श्रुत्वा युधिष्ठिराज्ञयार्जुनेनानीतं रथमारुह्य सर्वे कृष्णं प्रति गत्वा तेन सह भीष्मसमीपं जग्मुः... | ८९ |
| ५४ | ३९ | "शरतल्पगते भीष्मे काः कथाः समवर्तत" इति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायन आह। ऋषिप्रभृतिषु सर्वेष्वागतेषु भीष्मात्सकाशाद्धर्मश्रवणार्थं नारदेन प्रेरितेषु पांडवेषु प्रश्नकरणार्थं श्रीकृष्णं प्रत्याह युधिष्ठिरः। श्रीकृष्णेन कुशलप्रश्ने कृते भीष्मस्तं प्रति "त्वत्प्रसादान्मे ग्लान्यादिकं नास्ति, श्रेयो वक्तुमहं समर्थोऽस्मि, परंतु त्वमेव कुतो न कथयसि मां किमिति प्रेरयसि" इत्याद्याह स्म। भीष्मवाक्यं श्रुत्वा श्रीकृष्णस्तं प्रशस्य "मया धर्मेषु कथितेषु नाश्चर्यं परंतु तव यशः प्रख्यापयितुं त्वां प्रेरयामि" इत्याद्युक्त्वा प्रथमं राजधर्मान्ब्रूहीत्याह... ... ... | ९० |
| ५५ | २२ | "युधिष्ठिरो मां पृच्छतु" इत्युक्तवंतं भीष्मं प्रति श्रीकृष्णो "युद्धे गुरुवधादिप्रयुक्तलज्जया व्रीडितो युधिष्ठिरस्त्वां न पृच्छति" इत्युवाच। "युद्धे गुर्वादिहननं राज्ञां धर्मः" इत्यादि भीष्मवाक्यं श्रुत्वा पादयोः पतन्तं युधिष्ठिरं प्रति "मां पृच्छ तात विस्रब्धं मा भैस्त्वं कुरुसत्तम" इत्युवाच भीष्मः... ... ... | ९१ |
| ५६ | ६१ | राजनीतिं श्रोतुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तां कथयन् प्रथमं देवब्राह्मणार्चनमभिधाय सर्वथा क्षमा- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | शीलस्य भृत्यैः सह सोपहासभाषणशीलस्य च दोषानाचष्ट | ९४ |
| ५७ | ४५ | राज्ञा नित्यमुद्योगवता भवितव्यमित्याद्युक्त्वा "द्वाविमौ ग्रसते भूमिः" इत्यादिकमुशनोगीतमभिधाय मरुत्ताद्याचारनिदर्शनपूर्वकं राजधर्मानाख्यातवान् भीष्मः... ... ... | ९७ |
| ५८ | ३० | बृहस्पत्याद्युक्तप्रजारक्षणरूपं राजधर्मं चारादिसाधनं चाख्याय राजधर्मविषयिणीं बृहस्पतिगाथामाह स्म भीष्मः। व्यासादिषु भीष्मं प्रशंसत्सु श्वः प्रष्टास्मीत्युक्तवति युधिष्ठिरे ब्राह्मणादीनभिवाद्य कृष्णादयो गृहं जग्मुः | ९८ |


## राजनीतिप्रारंभः।


| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ५९ | १४५ | पुनर्युधिष्ठिरादिषु भीष्मसमीपमागतेषु युधिष्ठिरो "य एष राजन् राजेति" इत्यादिना राजशब्दोत्पत्त्यादिकं प्रपच्छ। राज्यस्य कारणमभिदधानो भीष्मः कृतयुगे प्रजानां धर्मेणैव परस्परक्षणमभिधाय कालांतरे तासु मोहाद्युत्पत्तिक्रमेण वेदनाशमभ्यधात्। वेदे नष्टे देवैः प्रार्थितो ब्रह्मा "श्रेयोऽहं चिंतयिष्यामि" इत्याद्युक्त्वा लक्षाध्यायात्मकं नीतिशास्त्रं कृत्वा देवान् प्रति "उपकाराय लोकस्य" इत्याद्युवाच। तदेव नीतिशास्त्रं प्रजानामायुर्ह्रासाद्यालोच्य शिवाद्य उत्तरोत्तरं संचिक्षिपुः। विष्णुं प्रति गत्वा सर्वे मनुष्येभ्यः श्रेष्ठं दिशेत्युक्तवत्सु देवेषु स मानसं पुत्रं विरजसनामानं जनयामास। विरजसः कीर्तिमांस्ततः कर्दमस्ततोंगापरनामानंगस्ततोतिबलस्ततो मृत्युकन्यायां संभूतो वेनो यदा प्रजासु विधर्मेण वर्तनं चकार तदा तमृषयो जघ्नुः। मृतस्य वेनस्य दक्षिणमूरुमृषयो ममन्थुस्ततो निषादेषूत्पन्नेषु पुनस्तस्य दक्षिणबाहोस्तैरेव मथितात्पृथुरुत्पद्य तान् प्रति "सुसूक्ष्मा मे समुत्पन्ना" इत्याद्युवाच। पृथुं प्रति देवादयो "नियतो यत्र धर्मो वै" इत्याद्युक्त्वा "पालयिष्याम्यहं भौमं" इत्यादिकं प्रतिजानीहीत्यूचुः। भीष्मो वैन्यस्य पुरोधःप्रभृतीनां नामानि निरूप्य तस्य राज्याभिषेकादिकं तत्कृतपृथ्वीदोहनादिकं राजादिशब्दानां निर्वचनं राजदेहे विष्णोराविर्भावादिकं चाब्रवीत्... ... ... | १०५ |
| ६० | ५४ | युधिष्ठिरेण चातुर्वर्ण्यधर्मान् पृष्टो भीष्मो धर्मादीन् प्रणम्य ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां धर्मानाख्याय शूद्रवृत्तिं निरूप्य श्रद्धां प्रशंसंस्तद्विषये यज्ञगाथा आचख्यौ ... ... | १०८ |
| ६१ | २१ | आश्रमधर्मान् कथयन् भीष्मो वानप्रस्थधर्मान् यतिधर्मान् गृहस्थधर्मांस्तद्विषयिणीं नारायणगीतां ब्रह्मचारिधर्मांश्च निजगाद ... ... | १०९ |
| ६२ | ११ | "शिवान् सुखान् महोदर्कान्" इत्यादिविशेषणविशिष्टान् धर्मान्ब्रूहीति युधिष्ठिरप्रश्ने उक्तविशेषेण विशिष्टधर्माधिकारित्वं ब्राह्मणस्यैवेत्यभिप्रायेण ब्राह्मणानामेव चतुराश्रमाधिकारमुक्त्वा तेषां क्षत्रियादिवृत्तिकरणे दोषं स्वकर्मकरणे प्रशंसां चाह स्म भीष्मः ... ... | ११० |
| ६३ | ३० | ब्राह्मणानामविहितं कर्माख्याय विहितं च प्रतिपाद्य क्षत्रधर्माश्रयिकं सर्वधर्मस्थितिमाचष्ट ... .... | ११२ |
| ६४ | ३० | सर्वधर्माणां क्षत्रधर्माधीनत्वमभिधाय दण्डनीतिं प्रशस्य धर्मनिश्चयार्थं मान्धातृचरितमाह भीष्मः। विष्णुदर्शनार्थं | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मान्धात्रारब्धे यज्ञे इन्द्ररूपेणाविर्भूतस्य विष्णोस्तेन सह संवाद इन्द्रकृता क्षत्रधर्मप्रशंसा च | ११४ |
| ६५ | ३५ | पुनः क्षत्रधर्मं प्रशस्य स्वस्वकर्मपरित्यागिनां दोषमभिधाय विकर्मस्थान् ब्राह्मणान्निनिन्देन्द्रः। यवनादिधर्मान् श्रोतुं मान्धात्रा पृष्ट इन्द्रस्तानभिदधाति स्म। पुनर्मान्धात्रा "दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः" इति प्रश्ने कृते तदुत्तरमभिधाय तमुपदिश्येन्द्ररूपो विष्णुर्जगाम | ११५ |
| ६६ | ४३ | त्वंत्कथिता मनुष्यमात्रस्याश्रमधर्मा मया श्रुताः परं तेषामेव स्पष्टीकरणं सविस्तरमाचक्ष्वेति युधिष्ठिरप्रश्नः। अस्योत्तरं कथयन् भीष्मः "चातुराश्रम्यकारिणां यानि लिङ्गानि तानि राज्ञां धर्मे एव वर्तन्ते" इत्यभिधाय "अकामद्वेषयुक्तस्य दण्डनीत्या युधिष्ठिर। समदर्शिनश्च भूतेषु भैक्ष्याश्रमपदं भवेत्" इत्यादिनाऽऽश्रमान्तरे आश्रमान्तरस्यासाधारणं धर्ममप्याचरंस्तदाश्रमफलं प्राप्नोतीति विवरणपूर्वकमाह। एतत्सर्वमभिधाय भीष्मो युधिष्ठिरं प्रति राजधर्मं प्रजापालनमुपददेश ... ... | ११७ |
| ६७ | ३९ | "राष्ट्रवासिनो जनस्य यत्कृत्यतमं तद्ब्रूहि" इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्तत्कथयन् 'प्रजानां राज्ञोऽभिषचनं कृत्यतमं' इत्यभिधाय तदकरणे दोषं चाख्याय पूर्वमराजके दुःखितानां प्रजानां ब्रह्माणं प्रति शरणगमनमाचष्ट। प्रजापालने ब्रह्मकृतमादेशमनंगीकुर्वन्तं मनुं प्रति सर्वाः प्रजाः "कर्तॄनेनो गमिष्यति" इत्याद्यभिधाय "पशूनामधिपञ्चाशत" इत्यादिना तद्वृत्तिं कल्पयामासुः ... | ११९ |
| ६८ | ६१ | राजानं किं दैवतमाहुरित्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो बृहस्पतिवसुमनसोः संवादरूपमितिहासमाह स्म। "केन भूतानि वर्धन्ते" इत्यादि पृष्टवन्तं वसुमनसं राजानं प्रति बृहस्पतिर्धर्मो राजमूल इत्याद्यभिधाय राज्ञोऽभावे प्रजानां दोषं, प्रजारक्षणे राज्ञो गुणं, प्रशंसापूर्वकं राज्ञोऽग्न्यादिरूपतां, तद्योगेन प्रजानां हितादिकं चादिदेश ... ... | १२१ |
| ६९ | १०५ | पार्थिवेन किं कार्यं, जनपदः कथं रक्षणीयः, शत्रवश्च कथं जेयाः इत्यादिके युधिष्ठिरेण पृष्टे भीष्मो राज्ञां कर्तव्यकर्माण्याह। मनःसहितेन्द्रियजयकरणं दुर्गादिषु गुल्मन्यासममात्यादिषु गूढचारनियोजनमापणादिषु परप्रेषितचारान्वेषणमात्मनो हीनतादशायां सन्धिकरणादिकं चाह। प्रजाभ्यो बलिग्रहणादिकमाकरादिष्वमात्यादिन्यासं चाभिधाय सम्यग्दण्डधरत्वादीन् राजगुणान् बलवता पीडितस्य दुर्गाश्रयणादिकं दुर्गादिरक्षणोपायादींश्चाह। भिक्षुकादीनां बहिष्करणादिकमर्थानां तैलवसादिद्रव्याणां च संग्रहं रक्षणीयमात्मादिसप्तकं षाड्गुण्यादिकं त्रिवर्गमनयोर्लक्षणं प्रजापालने बृहस्पतिगीतश्लोकद्वयं चाह। दण्डनीतिं ज्ञातुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तां कथयंस्तद्गुणानाह। दण्डनीत्यां सम्यग्वर्तमाने राज्ञि कृतयुगप्रवृत्तिमंशत्रयेण वर्तमाने त्रेतायुगप्रवृत्तिमर्द्धांशेनानुवर्तमाने द्वापरयुगप्रवृत्तिं तां परित्यज्य वर्तमाने कलियुगप्रवृत्तिं चाभिधाय राज्ञश्चतुर्युगप्रवृत्ति- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कारणत्वं सत्यादियुगप्रवर्तनेन गुणदोषौ चाभ्यधात ... | १२५ |
| ७० | १४ | केन वृत्तेन राज्ञा सुखामित्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो राज्ञः षट्त्रिंशद्गुणानाचष्ट ... | १२६ |
| ७१ | ३३ | "कथं राजा प्रजा रक्षन्" इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः संक्षेपेण राजधर्मानाख्याय लोभत्यागं कर्तुमुपदिश्य प्रजारक्षणे राज्ञः फलं कथयति स्म ... | १२८ |
| ७२ | २५ | "य एव तु सतो रक्षेदसतश्च नियर्तयेत्। स एव राज्ञा कर्तव्यो राजन् राजपुरोहितः" इत्यभिधाय तद्विषये पुरूरवसो मातरिश्वनश्च संवादरूपमितिहासमाह। कुतःस्विद्ब्राह्मणो जात इत्यादिके पुरूरवसः प्रश्ने मातरिश्वा ब्राह्मणादीनां जन्मवृत्तान्तमाचख्यौ।" द्विजक्षत्रियोर्मध्ये कस्येयं पृथिवी" इति पुरूरवसः प्रश्ने "विप्रस्य सर्वमेवैतत्" इत्यादिना ज्येष्ठत्वाद्ब्राह्मणस्यैव सर्वमित्यभिधाय राजा तदनुशिष्टं यं धर्ममाचरति तस्य सर्वस्य भागी राजपुरोहित इत्याद्याह स्म मातरिश्वा ... ... | १२९ |
| ७३ | ३२ | भीष्मः पुरोहितलक्षणान्युक्त्वा "ब्रह्मक्षत्रं हि सर्वेषां वर्णानां मूलमुच्यते" इत्यभिधायैतद्विषये ऐलकश्यपसंवादरूपमितिहासमाह स्म। "यदा हि ब्रह्म प्रजहाति क्षत्रं" इत्यादिके ऐलस्य प्रश्ने कश्यपो ब्रह्मक्षत्रिययोः परस्पररक्षणं कथयति स्म। ऐलकश्यपयोः संवादः | १३१ |
| ७४ | ३२ | भीष्मो राजपुरोहितयोः समानयोगक्षेमत्वं निरूप्य तद्विषये मुचुकुंदवैश्रवणयोः संवादं जगाद मुकुचुन्दः पृथिवीं जित्वा स्वबलपरीक्षार्थं धनदं प्रति जगाम, तेन च स्वाज्ञप्तै राक्षसैः पराभूतो राजा पुरोहितं वसिष्ठं गर्हयामास। गर्हितेन पुरोहितेन तपस्तप्त्वा राक्षसेषु हतेषु मुचुकुंदं धनद आचिक्षेप, ततः क्रुद्धस्य मुचुकुंदस्य धनदस्य चोक्तिप्रत्युक्ती अभिधाय क्षत्रधर्मास्थितमुचुकुंददर्शनेन धनदस्य विस्मयादिकमभ्यधासीद्भीष्मः... ... | १३२ |
| ७५ | ३७ | "कृतपुरोहितो राजा कथं प्रजावृद्ध्या परलोकं जयेत्"-इति युधिष्ठिरप्रश्ने "दानशीलो भवेद्राजा" इत्यादिना भीष्मस्योत्तरम्। राज्यकरणमनिच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति तद्विषये भीष्मस्योपदेशः। "किं तात परमं स्वर्ग्यं" इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने "यस्मिन्भयार्दितः सम्यक् क्षेमं विंदत्यपि क्षणम्। स स्वर्गजित्तमः" इत्यादिकं भीष्मस्योत्तरम्... | १३४ |
| ७६ | १४ | स्वकर्मरतानां विकर्मरतानां च विशेषमभिधत्स्वेति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः स्वकर्माचरतां ब्राह्मणानां प्रशंसां विकर्मकृतां निंदां चाकरोत्... ... ... | १३५ |
| ७७ | ३४ | राजा केषां वित्तस्य प्रभुः कया च वृत्त्या वर्तेतेति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः "अब्राह्मणादीनां धनाधिकारी राजा" इत्याद्युक्त्वा राज्ये स्तेनसत्ता राजदोष इति चाभिधाय तद्विषये केकयराजस्येतिहासमुपन्यास्यत्। कदाचिदरण्ये केकयं निगृह्णन् राक्षसो "न मे स्तेनो जनपदे" इत्यादिकं केकयवाक्यं श्रुत्वा तमुन्मुच्य "स्वस्ति प्राप्नुहि गृहं गच्छ" इत्युक्त्वा स्वयं जगाम। इममितिहासमुक्त्वा भीष्मो ब्राह्मणादिरक्षणरूपं धर्ममाचष्ट ... | १३६ |
| ७८ | ४४ | ब्राह्मणस्यापदि क्षत्रियवृ- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | त्याश्रयणवद्वैश्यवृत्त्याश्रयणमस्ति न वेति युधिष्ठिरप्रश्ने वैश्यवृत्त्यापि जीवनविषये भीष्मस्याभ्यनुज्ञा। ब्राह्मणानामापदि विक्रेयद्रव्यजिज्ञासया युधिष्ठिरप्रश्ने उत्तरं वदन्भीष्मो ब्राह्मणस्याविक्रेयाणि सुरालवणादिद्रव्याण्याह । " यदा तु सर्वे शस्त्रधारिणः स्वधर्मं व्युत्क्रामंति तदा क्षीणबलो राजा कथं प्रजारक्षकः स्यात् " इति युधिष्ठिरप्रश्ने दानादिना ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः क्षेममिच्छेयुरित्युक्त्वा ब्राह्मणेन वर्धितबलो राजा प्रजा रक्षेदित्याद्याह स्म ब्राह्मणान् दूषयतः क्षत्रियस्य कथं। ब्राह्मणस्त्रातेति प्रश्ने भीष्मः " तप आद्युपायेन ब्राह्मणेनैव क्षत्रं नियंतव्यम् " इत्याद्युक्त्वा ब्राह्मणरक्षणां गतिमाचष्ट । यदि ब्राह्मणो वैश्यः शूद्रो वा दस्यूत्थाने शस्त्रं गृहीत्वा प्रजा रक्षेत्तर्हि तेन राजकार्यं कर्तव्यं न वा स च स्वामी भवेन्न वेति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो य एवं कुर्यात्स माननीय एवेत्युक्त्वा प्रजारक्षणासमर्थं राजानं निनिंद भीष्मः... ... | १३८ |
| ७९ | २१ | ऋत्विजां लक्षणानि ज्ञातुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तानि कथयामास । पुनर्युधिष्ठिरेण ऋत्विग्देयदक्षिणाविषये कृतप्रश्नो भीष्मो " न वेदानां परिभवात् " इत्यादिना तदुत्तरमकथयत् | १४० |
| ८० | ४१ | सचिवस्य लक्षणं ज्ञातुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मश्चतुर्विधमित्राणां विशेषमाख्यायामित्रस्योत्तममित्रस्यामात्यानां च लक्षणानि निरूप्य राज्ञो ज्ञातिभिः सह व्यवहाररीतिमाह... ... | १४२ |
| ८१ | ३१ | ज्ञातिप्रभृतिषु राज्ञा कीदृशो भावः कर्तव्य इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तद्विषये वासुदेवनारदसंवादेतिहासमाह स्म। ज्ञातिवाक्शल्यपीडितस्य वासुदेवस्य "नासुहृत्परमं मंत्रं" इत्यादिना सर्वेषां चित्तवशीकारः कथं कर्तव्य इत्यभिप्रायके प्रश्ने नारदस्य "आपदो द्विविधाः कृष्ण" इत्याद्युत्तरम्। अनायासेन शस्त्रेण जिह्वामुद्धर इति कथयन्नारदः 'अनायासं मुने शस्त्रं' इत्यादि पृष्टवन्तं श्रीकृष्णं प्रति तत्स्वरूपमाह स्म ... | १४३ |
| ८२ | ६८ | " कोशवृद्धिकरोऽमात्यादिभ्योपि विशेषेण संमाननीयः ' इत्युक्त्वा तद्विषये कालकवृक्षीयमुनेः कौसल्यस्य च संवादमाह भीष्मः । सर्वज्ञः कालकवृक्षीयो मुनिः पंजरनिहितं काकं गृहीत्वा कौसल्यराजसमीपमागत्य तवामात्यादयः सर्वेऽपि कोशं हरंतीति सत्यवाद्ययं काकः कथयति तद्विचारयेत्याह स्म। एतच्छ्रुतवद्भिरमात्यादिभिरीर्ष्यया निशि काके बाणेन विद्धे मुनिः कौसल्यं प्रत्यभयं ययाचे। राज्ञाऽभये दत्ते तं प्रत्यमात्यानां दोषान् कथयित्वा दुष्टानां तेषां भयादन्यत्र गच्छामीत्यभिधायोपदेशं चकार कालकवृक्षीयः । राज्ञा रक्षणप्रतिज्ञापूर्वकं स्वगृहे निवासितो मुनिर्दुष्टामात्यगणनाशपूर्वकं राज्यरक्षणमादिश्यात्मनः प्रत्यभिज्ञानं दत्वा "व्यापन्ने भवतो राज्ये" इत्याद्युक्तवान्... | १४६ |
| ८३ | ५७ | " कीदृशाः सभासदादयः " इति युधिष्ठिरप्रश्ने तेषां लक्षणं कथयन् भीष्मो राज्ञः श्रेयोलक्षणममात्यानां गुणदोषान् मन्त्रिलक्षणं मन्त्रश्रवणे योग्यायोग्ययोर्लक्षणादिकमभ्यधात् ... ... | १४९ |
| ८४ | ११ | मन्त्रमूलभूतप्रजासंग्रहणविषये बृहस्पतिशक्रसंवादरूपमितिहासमवोचद्भीष्मः । " किमाचरन्सर्व- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | भूतप्रियो भवति " इति शक्रस्य प्रश्ने " सान्त्वमेकपदं शक्र " इत्यादि बृहस्पतेः प्रत्युत्तरम् ... ... | १५० |
| ८५ | ३४ | " प्रजाः पालयन् राजा कथं कीर्तिमाप्नोति " इति युधिष्ठिरप्रश्ने " व्यवहारेण शुद्धेन " इत्याद्याह भीष्मः । " कीदृशैर्व्यवहारैस्तु कैश्च व्यवहरेन्नृपः " इत्यादिके पुनर्युधिष्ठिरप्रश्ने राज्ञाऽमात्यादिकरणरीतिं दण्डविधानरीतिं दूतादीनां लक्षणं च जगाद भीष्मः ... ... | १५२ |
| ८६ | ३३ | " कथंविधं पुरं राजा स्वयमावस्तुमर्हति " इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः षड्विधदुर्गनिर्माणादिकं पुरे स्थापनीयद्रव्यसञ्चयं चाभिधाय तत्र स्थितस्य राज्ञः कर्तव्यं व्याजहार ... | १५३ |
| ८७ | ४० | राष्ट्रगुप्तिराष्ट्रसंग्रहयोर्जिज्ञासया युधिष्ठिरप्रश्ने राष्ट्रगुप्तिप्रकारं करादानरीत्युपन्यासेन राष्ट्रसंग्रहप्रकारं चावभाषे ... | १५५ |
| ८८ | ३३ | कोशार्थी राजा प्रजासु कथं वर्तेतेति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः प्रजानुशासनरीतिं पानागारादीनां नियमनं कोशसंग्रहोपायांश्चाभाषत ... | १५६ |
| ८९ | २६ | " वनस्पतीन्भक्ष्यफलान् " इत्यादिना राष्ट्रपालनरीतिमुपदिशन् भीष्मः " तुल्यबाहुबलानां च " इत्यादिना कथमितर इतरं भुञ्जीतेति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति " यचरा ह्यचरानद्युः " इत्यादिना बलवानेव दुर्बलं भुञ्जीत, तुल्यस्त्वात्मानं रक्षेदित्यभिप्रायकमुत्तरमाह ... | १५८ |
| | ४० | प्रकीर्णकान् धर्मान् वक्तुमुतथ्यगीतमाह भीष्मः मान्धातरं प्रति । राजधर्ममुपदिशन्नुतथ्यः " उच्छिद्यते धर्मवृत्तं " इत्यादिना पापनिवारणार्थं राज्ञा यत्नः करणीय इत्याद्युपदिश्य धर्मस्य श्रैष्ठ्यमुक्त्वा तत्स्वरूपाद्याह स्म पुनरुतथ्यो बलिदृष्टान्तेनासूयादित्यागमुपदिश्य प्रमत्ते राज्ञि सर्वत्राधर्मोत्थानादिकमाह ... | १५९ |
| ९१ | ६० | " अकालवर्षी पर्जन्यः " इत्यादिना राज्ञोऽप्रमादे प्रजानां सुखमभिधाय प्रमाद्यति तस्मिन् सर्वेषां प्रमादं " दुर्बलार्थं बलं सृष्टं " इत्यादिना दुर्बलावमानने दोषं चाहोतथ्यः । " राज्ञो यदा जनपदे " इत्यादिनाऽन्यायवर्तिनां राजपुरुषाणामदण्डने दोषं " यदा राजा शास्ति " इत्यादिनाऽशिष्टानां दण्डने राज्यवृद्धिं चाभिधाय राज्ञोऽवश्यकर्तव्यमुपदिश्यैतद्राजवृत्तमप्रमादेन त्वमप्याचरेति मान्धातारमुपदिदेशोतथ्यः, मान्धातृदृष्टान्तेन युधिष्ठिरं प्रति भीष्मस्य वाक्यम् ... ... | १६१ |
| ९२ | १९ | धर्मे स्थातुमिच्छन् राजा कथं वर्तेतेति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो वामदेवगीतां व्याजहार । वसुमनसा पृष्टो वामदेवो " धर्ममेवानुवर्तस्व " इत्याद्युक्त्वा राज्ञो विनाशकारणान्याख्याय सुखकारणमप्याह स्म .... | १६२ |
| ९३ | ३९ | पुनरपि " यत्राधर्मं प्रणयते " इत्यादिना किञ्चिन्नाशकारणमभिधाय राज्ञोऽवश्यकरणीयमादिदेश ... ... | १६४ |
| ९४ | १३ | पुनर्वामदेवेन " अयुद्धेनैव विजयं " इत्यादिनोपदिष्टं राजधर्ममाख्याय भीष्मो वसुमनसं दृष्टान्तीकृत्य युधिष्ठिरं प्रति त्वमप्येतत्कुर्वित्याह स्म ... | १६४ |
| ९५ | २२ | विजिगीषुविजयधर्मजिज्ञासो- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | युधिष्ठिरस्य प्रश्ने भीष्मस्तं कथयति स्म । क्षत्रियेण क्षत्रियः कथं योद्धव्य इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो युद्धरीतिं व्याजहार ... | १६५ |
| ९६ | २४ | अधर्मेण युद्धे दोषमाख्याय राज्ञो वर्तनप्रकारमाह स्म भीष्मः ... ... | १६७ |
| ९७ | ३२ | क्षत्रियधर्मजिज्ञासया पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मस्तं कथयित्वाऽयुद्धेन मरणे क्षत्रियस्य निंदामाह ... | १६८ |
| ९८ | ५० | युद्धे मृतानां के लोका भवंतीति युधिष्ठिरानुयोगे भीष्मोऽम्बरीषशक्रसंवादेतिहासमाह । अम्बरीषः स्वर्गं गत्वाऽऽत्मनोऽमात्यं सुदेवमिन्द्रसमीपस्थं दृष्ट्वा विस्मितः सन्निन्द्रं प्रति "ममायममात्यो मदपेक्षया कुतोधिकः" इत्याद्याह स्म । अमात्यस्याधिक्यकारणभूतं युद्धयज्ञं कथयन्तमिन्द्रं प्रति तत्प्रकारं पृच्छति स्माम्बरीषः । इन्द्रो युद्धयज्ञे ऋत्विगादीन्निरूप्य युद्धे मृतादीनां लोकप्राप्तिं चाख्याय युद्धमृतानामशोच्यत्वादिकमाह ... | १७० |
| ९९ | १७ | भीष्मः शूरप्रोत्साहनविषये प्रतर्दन-मैथिल-संग्रामेतिहासमाख्याय शूरं प्रशशंस ... | १७१ |
| १०० | ५० | जयार्थिनो योधान् यथानयन्ति तत्कथयेति युधिष्ठिरप्रश्ने सेनानीतिमवादीद्भीष्मः । अश्वादीनां युद्धार्थं भूम्यादीन्निरूप्य सैन्याधिपतिसंख्यादिकमाख्याय युद्धसमये योधान् प्रति यद्वक्तव्यं तदाह भीष्मः ... | १७३ |
| १०१ | २० | "किंशीलाः किंसमाचाराः" इत्यादिना कीदृशा योद्धारः संग्रामे क्षमा इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मोऽस्त्रविशेषयुद्धकुशलान्गान्धारादीन्निरूप्य "सिंहशार्दूलवाङ्नेत्राः" इत्यादिना योधानां लक्षणान्यभिदधाति स्म ... ... | १७४ |
| १०२ | ४१ | "जयिन्याः कानि रूपाणि" इत्यादिना जयिन्याः सेनाया लक्षणेषु युधिष्ठिरेण पृष्टेषु भीष्मस्तान्यभिधाय युद्धसरणिमुपदिदेश ... ... | १७६ |
| १०३ | ५३ | मृदौ तीक्ष्णे च शत्रौ राज्ञा आदौ कथं वर्तितव्यमिति पृच्छंतं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मो बृहस्पतींद्रसंवादेतिहासं बभाषे "अहितेषु कथं ब्रह्मन् वर्तेयं" इतीन्द्रेण पृष्टो बृहस्पतिः शत्रौ वर्तनरीतिं प्रदर्शयति स्म । "कानि लिङ्गानि दुष्टस्य" इतीन्द्रेण पृष्टो बृहस्पतिस्तान्यभ्यधात् | १७८ |
| १०४ | ५४ | "कोशदण्डाभ्यां च्युतोऽमात्यैः प्रबाधितो धार्मिको राजा सुखमिच्छन् कथं चरेत्" इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः क्षेमदर्शीयेतिहासमभाषत । वैदेहेन राज्याद् भ्रंशितः क्षेमदर्शी कालकवृक्षीयं मुनिं प्रति "अर्थेषु भागी पुरुषः" इत्यादिना यत्नवतोऽप्यलब्धराज्यस्य कर्तव्यं किं, विषयविरक्तस्य च सुखं किमित्यादिकं पप्रच्छ । मुनिरपि निवृत्तिरतं तं दृष्ट्वा "पुरस्तादेव ते बुद्धिः" इत्यादिना दुर्बलस्य हीनसंपदः परैर्निर्जितस्य निवृत्तिधर्म एव श्रेयानित्युपदिदेश ... ... | १८१ |
| १०५ | २५ | हीनसंपदः परैर्जितस्य प्रबलस्य तु "अथ चेत्पौरुषं किञ्चित्"-इत्यादिना निकृतिप्रधानां राजनीतिमुपदिदेश कालकवृक्षीयः ... ... | १८२ |
| १०६ | २८ | "न निकृत्या न दंभेन" इत्या- | |

अ० श्लो० विषयः पृष्ठम्

दिना निकृतिं कर्तुमनिच्छतः क्षेमदर्शिनो विदेहस्य च परस्परं संधिकरणेनैतादृशस्य धर्मिष्ठस्य सामाख्यं जयोपायमुपदिशति स्म कालकवृक्षीयः ... ... १८३

१०७ ३२ कथितं ब्राह्मणादिधर्माणां वृत्तमनूद्य गणानां वृत्तं पृच्छंतं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मस्तदाख्यातवान् ... ... ... ... १८४

१०८ ३३ अनेकविधानां धर्माणां मध्ये किमनुष्ठेयतरमिति युधिष्ठिरप्रश्ने मात्रादिपूजनरूपधर्मस्य बहुमतत्वमभिधायाचार्यादीनामुत्तरोत्तरगुरुत्वं पित्रादिभक्तस्य फलमाचार्यादिद्रोहिणामनिष्कृतिं चोवाच भीष्मः... ... ... १८६

१०९ ३० धर्मे स्थातुमिच्छन्नरः कथं वर्तेतेत्यादिषु युधिष्ठिरप्रश्नेषु भीष्मः सत्यासत्ययोर्व्यवस्थां धर्माधर्मव्यवस्थां प्राणात्ययादावसत्ये दोषाभावं स्वधर्मविरोधेनोपजीवितुर्दंडं चाचख्यौ... ... १८८

११० ३० येन दुर्गाण्यतितरेत्तत्कथयेति युधिष्ठिरप्रश्ने "आश्रमेषु यथोक्तेषु" इत्यादिना दुर्गातितरणमुपदिदेश भीष्मः... ...१८९

१११ ९० "असौम्याः सौम्यरूपेण सौम्याश्चासौम्यदर्शनाः॥ ईदृशान् पुरुषांस्तात कथं विद्यामहे वयं" इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो व्याघ्रगोमायुसंवादेतिहासमाह स्म। पौरिकाख्यो नृपः प्राक्कर्मदोषेण गोमायुत्वं प्राप्य श्मशाने वसन्नपि शुद्धाचारेण वर्तमानः सजातीयैः स्वसदृशाचारार्थमुपदिष्टोपि तान् शुद्धाचारेण वर्तयितुमुपदिदेश। कदाचिच्छुद्धाचारो गोमायुः शार्दूलेनामात्यत्वेन वृत्वा "सौम्य विज्ञातरूपस्त्वं गच्छ यात्रां मया सह" इत्युक्तः संस्तं प्रति "सदृशं मृगराजैतत्" इत्याद्युवाच। शार्दूलस्य पूर्वामात्यैः स्पर्धया गोमायौ मांसचौर्यारोपं कृत्वा तद्विषये विज्ञापितः शार्दूलो गोमायुं हंतुमुद्यतः स्वमात्रा बोधितस्तं मुमोच। गोमायोः प्रायोपवेशनाभिप्रायं ज्ञात्वा सांत्वयंतं व्याघ्रं प्रति गोमायुः "पूजितोऽहं त्वया पूर्वं" इत्यादिना प्रसादयित्वा वनं प्रविश्य प्रायोपवेशेन स्वं देहं तत्याज ... १९२

११२ २१ "राज्ञा किं कर्तव्यं किं कृत्वा सुखी भवेत्" इत्यादिके युधिष्ठिरेण पृष्टे भीष्मो राज्ञः कर्तव्यमुपदिशन्नुष्ट्रवृत्तांतं व्याजहार। कश्चिदुष्ट्रो ब्रह्मणो वरप्रदानाद्योजनशतदीर्घां ग्रीवामुपलभ्यालस्येनैकत्र स्थित्वेतस्ततो ग्रीवां चालयन् कदाचिद्वातवर्षाभ्यां पीडितस्तां गुहायां प्रवेश्य स्थितो जम्बुकेन भक्षितग्रीवो ममार। इत्युक्त्वा राज्ञ आलस्यवर्जनमुपदिश्य बुद्धिमूलत्वं विजयस्यावोचद्भीष्मः ... ... ... ... १९३

११३ १४ अमित्रेण सहासाधनेन राज्ञा कथं वर्तितव्यमिति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः सागरगंगयोरितिहासमाख्याय तं प्रति "यो हि शत्रोर्विवृद्धस्य" इत्याद्युवाच १९४

११४ २१ मूर्खेण सह विदुषा कथं वर्तितव्यमिति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तदुत्तरमाचख्यौ... ...१९५

११५ २३ "यद्धितं राज्यतंत्रस्य" इत्यादिषु युधिष्ठिरप्रश्नेषु भीष्मो राजधर्मानुपदिदेश... ... १९६

११६ २३ उत्तमस्थाने नीचो न योज्य इत्युपदेशार्थं श्वदृष्टांतरूपमितिहासमाह स्म भीष्मः। कस्मिंश्चिदाश्रमे तपस्यंतं शांतं मुनिं प्रति व्याघ्रादयः सत्त्वाः प्रतिदिनमागत्य सुखप्रश्नादिकं कृत्वा जग्मु-

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | रित्येवं प्रचलिते क्रमे तन्निकटे कश्चिच्छ्वा अवात्सीत्। स श्वा कदाचित्क्षुद्रव्याघ्रं दृष्ट्वा भीतो मुनिवाक्यत्तद्रूपोऽभूत् पुनर्महाव्याघ्रं दृष्ट्वा भीतो मुनिवाक्यादेव तद्रूपोऽभूत्... ... ... | १९७ |
| ११७ | २३ | पुनः स मुनिर्हस्तिनं दृष्ट्वा भीतं श्वानं हस्तिनं सिंहं दृष्टवन्तं सिंहं शरभं दृष्टवन्तं शरभं च चक्रे स श्वा शरभो भूत्वा यदा मुनिं हन्तुं प्रवृत्तस्तदा मुनिवाक्यात्पुनः श्वैवाभवत्... ... ... | १९८ |
| ११८ | २८ | मुनिना तपोवनाद्बहिष्कृतः श्वाऽतिदैन्यमवापेत्युक्त्वा भीष्म एतद्दृष्टान्तेन युधिष्ठिरं प्रति यथायोग्यं भृत्यनियोजनं सचिवलक्षणं राजगुणान्योधगुणांश्चाचष्ट... ... ... | १९९ |
| ११९ | २० | भीष्मः पुनः श्वदृष्टांतेन यथाधिकारं नीचादीनां तत्तत्स्थाने नियोजनं कोशरक्षणादिकं चाभ्यधात्... ... ... | २०० |
| १२० | ५६ | एतावत्पर्यंतं विस्तरेण कथितं राजधर्मं पुनः संक्षिप्तं कथयेत्यनुयुञ्जानं युधिष्ठिरं प्रति प्रजारक्षणादिकं राजधर्मं राजनीतिं धनवृद्धिकारणं निंदापूर्वकं लुब्धस्यासंग्रहं चाब्रवीत्... ... | २०४ |
| १२१ | ६० | "को दंडः कीदृशो दंडः" इत्यादिना दंडविषये एकादश प्रश्नान्कुर्वन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः सर्वप्रश्नोत्तराणि वदन् दंडस्य सामान्यनामानि बहुरूपतां प्रयोजनवत्तां विशेषनामाष्टकं चाख्यायाष्टांगबलं मात्रादीनामपि दंडार्हत्वं च व्याहरति स्म... ... | २०७ |
| १२२ | ५६ | दंडोत्पत्तिविषयेऽगराजस्य वसुहोमस्येतिहासं जगाद भीष्मः। मुंजपृष्ठं गतं वसुहोमं प्रति यदृच्छागतो मांधाता दंडोत्पत्तिप्रकारं पप्रच्छ। दंडोत्पत्तिप्रकारं कथयन् वसुहोमो ब्रह्मणा प्रारब्धे यज्ञे प्रजानियमनरूपस्य दंडस्यान्तर्धानं जगाद। ततो निर्मर्यादासु प्रजासु ब्रह्मणा केशवं संपूज्य प्रार्थितो महादेवो दंडं निर्माय-इन्द्रादीन् देवाद्याधिपत्ये नियोज्य धर्मगोप्तारं दंडं विष्णवे ददौ। "विष्णुरंगिरसे प्रादात्" इत्यादिना दंडप्राप्तिपरंपरामाख्याय सर्वेषां जागरेण दंडस्यादिकारणत्वं चाभिधाय वसुहोमेतिहासश्रवणफलमाचष्ट युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः ... ... ... ... | २०९ |
| १२३ | २५ | "तात धर्मार्थकामानां श्रोतुमिच्छामि निश्चयम्" इत्यादिना धर्मादयः किमुद्दिश्य क्रियंते, किमेषामुत्पत्तिस्थानं, कथं तेषां साहित्यं, कथं च पृथक्त्वं, इति चतुरः प्रश्नांश्चकार युधिष्ठिरः। तत्र "यदा ते" इत्यादिनाऽऽद्यानां त्रयाणां व्युत्क्रमेणोत्तरमभिधाय चतुर्थस्योत्तरमभिधाय चतुर्थस्योत्तरमभिदधानो भीष्म आंगरिष्ठकामंदकयोरितिहासं निजगाद। मर्यादाभंगं कृत्वा "यः पापं कुरुते राजा" इत्यादिके आंगरिष्ठप्रश्ने "यो धर्मार्थौ परित्यज्य" इत्यादिकं कामन्दकस्योत्तरम्... ... ... | २१० |
| १२४ | ७१ | "धर्मस्य मूलकारणं शीलं वदंति जनास्तत्कथं प्राप्यते तल्लक्षणं च किं" इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मस्तदुत्तरं वक्तुं दुर्योधनधृतराष्ट्रसंवादरूपमितिहासमाह स्म। किमर्थं तप्यसे पुत्रेत्यादिके धृतराष्ट्रप्रश्ने तापकारणभूतां युधिष्ठिरसंपत्तिमभिदधानं दुर्योधनं प्रति स "युधिष्ठिरसदृशसंपत्प्राप्तिकारणं शीलं संपादय" इत्याह। | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | "तच्छीलं कथं प्राप्यते" इति दुर्योधनेन पृष्टो धृतराष्ट्रः शीलेन प्रह्लादस्य राज्यप्राप्तिरूपामितिहासमाचष्ट। इंद्रो बृहस्पतेः सकाशाच्छ्रेयः श्रुत्वा तदनुज्ञया भार्गवं गतस्तस्मादपि तच्छ्रुत्वा तस्याप्यनुज्ञया शिष्यत्वं पुरस्कृत्य ब्राह्मणरूपेण प्रल्हादं गत्वा "त्रैलोक्यराज्यं त्वया कथं प्राप्तं" इति पप्रच्छ। "नासूयामि द्विजान् विप्र" इत्यादिना स्वेनाचीर्णं श्रेयोऽभिधाय प्रल्हादो ब्राह्मणरूपमिंद्रं प्रति वरं याचस्वेत्युवाच। वरं दत्वा चिंतयन् प्रह्लादः स्वशरीरान्निर्गतं शीलं प्रति को भवानिति पप्रच्छ। तच्च "शीलमहमस्मि त्वया त्यक्तं ब्राह्मणशरीरं गच्छामि" इत्युवाच। एवमेव तमनु धर्मसत्यवृत्तबलेषु गतेषु स्वशरीरान्निर्गता श्रीः प्रल्हादेन का त्वमिति पृष्टा सती "श्रीरहं यत्र शीलादीनि तत्र गच्छामि" इत्याद्युक्त्वा ब्राह्मणस्येंद्रत्वेन प्रत्याभिज्ञां दत्वा शीलं प्रशस्य शीलादिसहिता श्रीरिंद्रं प्रति जगाम। शीलप्राप्त्युपायं कथयेति दुर्योधनेन पृष्टो धृतराष्ट्रस्तत्प्राप्त्युपायमभिदधाति स्म... ... | २१३ |
| १२५ | १९ | आशायाः स्वरूपं ज्ञातुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्म ऋषभसुमित्रयोः संवादरूपमितिहासं कथयन्सुमित्रस्य मृगयां संवर्ण्य तद्बाणविद्धस्य मृगस्य महारण्यप्रवेशमाख्यातवान्... ... | २१४ |
| १२६ | १९ | मृगमन्वेषितुमरण्यगतो मुनिभिः "कस्त्वं कुत आयातः" इति पृष्टः सुमित्रः स्ववृत्तं कथयित्वा तान् प्रत्याशाविवरणज्ञानार्थं पप्रच्छ... ... ... | २१५ |
| १२७ | २६ | मुनीनां मध्ये श्रेष्ठ ऋषभः कृशस्य मुनेरितिहासं कथयन् वीरद्युम्नस्यागमनादिकमाचख्यौ | २१६ |
| १२८ | २७ | मुनीन् प्रति स्वप्रत्यभिज्ञादानपूर्वकं स्वपुत्रनाशादिकं कथयतो वीरद्युम्नस्य वाक्यं श्रुत्वाप्युत्तरमददानं कृशनामानं मुनिं प्रति आशावृत्तान्तं ज्ञातुं स राजा पुनः पप्रच्छ। ततः कृशवीरद्युम्नयोरुक्तिप्रत्युक्ती अभिधाय भीष्मो युधिष्ठिरं प्रति "एवं त्वमपि कौंतेय" इत्याद्युवाच... ... | २१७ |
| १२९ | ११ | पुनर्धर्मान् श्रोतुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो गौतमयमसंवादेतिहासं वर्णयंस्तयोरुक्तिप्रत्युक्ती अभ्यधात्... ... ... | २१८ |
| १३० | ५० | "मित्रैर्हीनस्य बह्वमित्रस्य राज्ञः का गतिः" इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने तमुपदिशन् भीष्म आपदि कोशसंचयरूपं प्रशस्तमुपायमाख्याय धर्मादीनां तन्मूलकत्वमाचख्यौ... ... ... | २२० |

## (२) आपद्धर्मपर्व (२२०-२९०)

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १३१ | १४ | क्षीणत्वदीर्घसूत्रत्वादिविशिष्टस्य किं कार्यमवशिष्यते इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्म आपद्धर्मानकथयत्। अभ्यन्तरप्रकुपितादेः किं कार्यमिति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्योत्तरकथनम्... ... | २२२ |
| १३२ | २२ | 'हीने परमके धर्मे सर्वलोकाभिसंहिते। सर्वस्मिन्दस्युसाद्भूते पृथिव्यामुपजीवने। केन स्विद्ब्राह्मणो जीवेत्' इत्यादिना आपद्बहुले काले ब्राह्मणः कथं जीवेदिति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो ब्राह्मणजीवनप्रकारमभिदधाति स्म ... ... ... ... | २२३ |
| १३३ | २० | आपन्नस्य कोशादिसंग्रहकरणमुपदिश्य तद्विषयकमुपायं कथ- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | यन्दस्यूनामाश्रयणं तत्कर्मकरणं चानुजज्ञे भीष्मः... | २२४ |
| १३४ | १७ | पुनर्भीष्मस्य पुराविद्वाक्यकथनेन युधिष्ठिरं प्रत्युपदेशः। बलप्रशंसा। पापकारिणां तत्परिहारोपायकथनम्... | २२५ |
| १३५ | २६ | दस्यूनामपि सिद्धिविषये कायव्यदस्युसंवादेतिहासं प्रोवाच भीष्मः। त्वमस्माकं ग्रामणीर्भवेति दस्युभिः प्रार्थितः कायव्यस्तान् प्रति 'मा वधीस्त्वं स्त्रियं भीरुम्' इत्यादीन् धर्मानुपदिदेश, तैश्च तस्मिन्नङ्गीकृते उभयेऽपि सिद्धिमापुः ... ... ... | २२६ |
| १३६ | ११ | राज्ञां कोशसंग्रहमार्गं कथयितुं ब्रह्मगीता गाथाः प्रोवाच गाङ्गेयः ... ... ... | २२७ |
| १३७ | २४ | अनागतविधातुः प्रत्युत्पन्नमतेश्च सुखं दीर्घसूत्रस्य तु तन्नास्तीत्येतद्विषये अनागतविधातृप्रत्युत्पन्नमतिदीर्घसूत्राणां मत्स्यानामितिहासमाचष्ट भीष्मः... | २२८ |
| १३८ | २२१ | 'यथा राजा न मुह्येत शत्रुभिः परिवारितः' इत्यादिषु युधिष्ठिरप्रश्नेषु भीष्म आपद्धर्मानुपदिशन्नापादि शत्रुणाऽपि संधिकरणविषये दृष्टान्ततया मार्जारमूषिककथा। एकस्मिन्वने महान्तं वटमाश्रित्य पलिताख्यमूषिकलोमशाख्यमार्जारयोर्वसतोः कदाचित्प्रमत्ते मार्जारे व्याधप्रसारितेन जालेन निबद्धे सति निःशंको मूषिकस्तत्स्थं मांसं भक्षयति स्म। एतदन्तरे वटस्याधो बिलस्थितं नकुलमुपरिस्थितमुलूकं च दृष्ट्वा भीतो मूषिक आपदि शत्रुरपि संधेय इति मनसि निधाय मार्जारं प्रति 'सौहृदेनाभिभाषे त्वाम्' इत्यादि प्रोवाच। उभयोः संवादानन्तरमाश्वस्तो मूषिको मार्जारक्रोडे निःशंकं स्थितो मार्जारेण जालतन्तुच्छेदने त्वरां कुर्वित्युक्तो 'मा भैस्त्वरां मा कुरु' इत्याद्युवाच मूषिकस्तं प्रति। यमदूताभं चाण्डालं दृष्ट्वा भीतेन मार्जारेण 'किमिदानीं करिष्यसि' इत्युक्तेन मूषिकेण चाण्डालभयादुलूकनकुलौ पलायितौ दृष्ट्वा जालतन्तौ छिन्ने मार्जारो वटोपरि जगाम मूषिकश्च स्वबिलं जगाम। ततो वटोपरिस्थितस्य मार्जारस्य बिलस्थितस्य मूषिकस्य च पुनः संवादे प्रवृत्ते मूषिको मार्जारं प्रति सौहार्दकारणमाख्यायात्मरक्षार्थं यत्नः करणीय इत्याद्युपादिदेश। 'सत्यं शपे त्वयाऽहं वै मित्रद्रोहो विगर्हितः' इत्यादिकं मार्जारोक्तं प्रत्याख्यायोशनसा कृते 'शत्रुसाधारणे कृत्ये' इत्यादिके द्वे गाथे अभिधाय 'त्वत्तो मयात्मा संरक्ष्यस्त्वमपि चाण्डालादात्मानं रक्ष' इति मूषिकेणोक्तो मार्जारो वटं हित्वाऽन्यत्र जगाम, मूषिकोऽपि तत् बिलं हित्वा बिलान्तरमगात्... | २३५ |
| १३९ | ११३ | विश्वासं विना राज्ञा कथं वर्तितव्यमिति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः पूजनीब्रह्मदत्तसंवादकथनपूर्वकं प्रत्युत्तरमब्रवीत् राजपुत्रेण हतं स्वपुत्रं दृष्ट्वा क्षत्रियनिन्दां विधाय चरणाभ्यां राजपुत्रस्य नेत्रे भित्त्वाऽऽकाशे स्थिता सती ब्रह्मदत्तं प्रति 'इच्छयेह कृतं पापं सद्यस्तं चोपसर्पति' इत्यादि बहुप्रश्नोत्तरमिषेण जगाद पूजनी। उभयोः संवादानन्तरं पूजनी ब्रह्मदत्तं प्रति 'यस्येह व्राणिनौ पादौ' इत्यादिदृष्टान्तमुखेन कृतापराधाहं त्वयि न वत्स्यामीति स्वाभिप्रायं प्रकटय्य दिगन्तरं ययौ ... ... ... | २३९ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १४० | ७१ | 'युगक्षयात्परिक्षीणे' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो भारद्वाजशत्रुंजयसंवादेतिहासोपन्यासपूर्वकमुत्तरमाह स्म । 'अलब्धस्य कथं लिप्सा' इत्यादिके शत्रुंजयप्रश्ने भारद्वाजो 'नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्' इत्यादिनाऽध्यायपरिसमाप्तिपर्यन्तं राजनीतिमुपदिदेश ... ... | २४२ |
| १४१ | १०२ | 'हीने परमके धर्मे' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने योगक्षेमादीनां राजमूलत्वमभिधाय विश्वामित्रचाण्डालसंवादरूपमितिहासमब्रवीद्भीष्मः । कदाचिद्द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां नष्टप्रायासु प्रजासु क्षुधा पीडितो विश्वामित्रः कुत्राप्यन्नादिकमलभमानः कस्यचिच्छ्वपचस्य गृहं प्रविवेश । तत्र प्रविष्टो विश्वामित्रः श्वमांसयुतां दण्डिकां दृष्ट्वा 'आपदि ब्राह्मणेन स्तेयमपि कर्तव्यम्' इत्यादि विचार्य श्वजंघां चोरयितुमुद्युक्तः श्वपचेनाधिक्षिप्तः । श्वपचविश्वामित्रयोः संवादानन्तरं श्वजंघां गृहीत्वा निर्गते विश्वामित्रे विधिना भागान् परिकल्प्येन्द्रादीनाह्वयति सति शक्रः सर्वत्र वृष्टिं चकार । वृष्ट्या सर्वत्र सुभिक्षे विश्वामित्रः श्वमांसं परित्यज्य तपसा सिद्धिमवाप | २४७ |
| १४२ | ३८ | 'यदि घोरं समुद्दिष्टमश्रद्धेयमिवानृतम् । अस्तिस्विद्दस्युमर्यादा यामहं परिवर्जये' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्म आपत्कालिकं राजधर्मं कथयंस्तद्विषये बृहस्पतेर्भार्गवस्य चानुमतिमाह स्म । यामन्यो नाभिलंघयेत् ईदृशी मर्यादा अस्ति चेत्तां ब्रूहीति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्योत्तरम् | २४९ |
| १४३ | ३३ | 'शरणागतरक्षकस्य यो धर्मस्तं ब्रूहि' इत्यनुयुञ्जानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मस्तं कथयंस्तद्विषये कपोताख्यानमकथयत् । विस्तरेण कपोतवृत्तं श्रोतुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो मुचुकुन्दभार्गवसंवादमुखेन सविस्तरं तदाख्यातुमुपचक्रमे । कश्चिच्छकुनिलुब्धकः शकुनान्हन्तुं निर्गतो वातवर्षादिना क्लान्तः स्थातुं गन्तुमशक्नुवन्नप्यकस्माद्वृक्षात्पतितां कपोतीं स्वपञ्जरके क्षिप्त्वा वातवर्षनिवृत्तावपि गन्तुमसमर्थो महान्तमेकं वृक्षं दृष्ट्वा तत्प्रार्थनापूर्वकं नक्तं तदधः सुष्वाप | २५० |
| १४४ | १७ | तस्य वृक्षस्य शाखायां ससुहृज्जनो दीर्घकालं निवसन्कपोतः प्रातर्गतायां भार्यायां रात्रावनागतायां तामुद्दिश्य बहु विललाप ... ... | २५१ |
| १४५ | १३ | लुब्धपञ्जरके स्थित्वा कपोती कपोतस्य विलापवाक्यं श्रुत्वा हृष्टा सती तं प्रति 'शरणागतत्राता भव' इत्युक्त्वा शरणागतरक्षणमाहात्म्यमाख्याय लुब्धकसत्कारकरणमुपदिदेश ... | २५२ |
| १४६ | २६ | कपोतिवाक्यं श्रुत्वा कपोतो लुब्धकमागत्य स्वागतप्रश्नपूर्वकमतिथिपूजनं प्रशस्य 'किमहं ते करोमि' इत्यादि पप्रच्छ । शरीरतापनार्थं शीतार्तस्य व्याधस्य प्रार्थनां श्रुत्वा तदर्थमग्निमादीप्य 'शरीरं तापयित्वा सुखी भव' इति कपोतोक्तिः । तापितशरीरेण स्वस्थेन लुब्धकेनाहारे याचिते कपोतः स्वनिकटे तत्पर्याप्तसामग्र्यभावादात्मप्रदानेन तस्याहारं दित्सुः पूर्वप्रज्वालितमग्निं प्रविवेश, तं दृष्ट्वा विषण्णो लुब्धक आत्मानं जगर्हे ... | २५३ |
| १४७ | ११ | क्रूरकर्मापि लुब्धकः किमी | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दृशं नृशंसेन इत्याद्युक्त्वा स्वकीयं मृगयापारिकरं कपोतीं च विसृज्य महाप्रस्थानगमनं चकार ... ... | २५३ |
| १४८ | १२ | भर्तारं स्मृत्वा विलपन्ती कपोती तच्छोकेनाग्निं प्रविवेश, तत आगतं विमानं कपोतः कपोत्या सहारुह्य स्वर्गं गतो रेमे ... ... | २५४ |
| १४९ | १९ | विमानस्थौ तौ दृष्ट्वा चिन्तयँल्लुब्धको महारण्यं प्रविश्य दावदग्धः सन्स्वर्गमगच्छत् ... | २५५ |
| १५० | १९ | 'अबुद्धिपूर्वकं पापं कुर्वन्कथं मुच्यते' इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो जनमेजयशौनकसंवादोपन्यासेनोत्तरं कथयाति स्म। अबुद्धिपूर्वकं ब्रह्महत्यां प्राप्तो जनमेजयो वनं जगाम तं च शौनको भर्त्सयांचक्रे .. | २५६ |
| १५१ | २३ | 'गर्ह्यो भवान्गर्ह्यते' इत्यादि ब्रुवतो जनमेजयस्य शौनकेन सह संवादः ... | २५७ |
| १५२ | ३९ | 'यज्ञो, दानं, दया, वेदाः सत्यं च पृथिवीपते। पञ्चैतानि पवित्राणि षष्ठं सुचरितं तपः' इत्यादिना यज्ञादीनि पापनिवृत्तिसाधनान्युपदिश्याबुद्धिपूर्वकपापनाशविषये बृहस्पतिवाक्यं चोदाहृत्य जनमेजयमश्वमेधेन याजयामास च निष्कल्मषः स्वं राज्यं विवेश ... | २५९ |
| १५३ | १२२ | 'कच्चित्पितामहेनासीच्छ्रुतं वा दृष्टमेव च। कच्चिन्मर्त्यो मृतो राजन् पुनरुज्जीवितोऽभवत्' इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो गृध्रजम्बुकसंवादेतिहासमुदाहृत्योत्तरयामास। कस्यचिद्ब्राह्मणस्य बालग्रहेण मृतं पुत्रमादाय श्मशानमागतान्शोकेन तं परित्यज्य गन्तुमसमर्थान् ब्राह्मणान्प्रति श्मशानवासी कश्चिद् गृध्रो 'यद्येनं परित्यज्य दिवैव गृहं गमिष्यन्ति तदा मम कार्यं भविष्यति' इत्यभिप्रायेण 'मृतं बालमिह त्यक्त्वा गृहं गच्छत' इति उपदिदेश। गृध्रवाक्येन गन्तुमुद्यतान् प्रति श्मशानवासी कश्चिज्जम्बुको 'यद्येते सायंकालपर्यन्तमत्र स्थित्वा गमिष्यन्ति तदा मम कार्यसिद्धिर्भविष्यति' इत्यभिप्रायेण 'निर्घृणाः खलु मानुषाः' इत्यादिना तेषां गमनं न्यषेधीत्। एवं स्वस्वाभिप्रायेण बोधयतोर्गृध्रजम्बुकयोर्वाक्याद्गन्तुं स्थातुं चानिश्चितबुद्धींस्तान्व्याकुलान्दृष्ट्वा करुणाविष्टः शंकरः प्रादुरभूत्। शंकरेण वरदोऽस्मीत्युक्ते मृतपुत्रजीवनरूपं वरं प्रार्थयन्तो ब्राह्मणास्ते संजीवितं पुत्रमादाय हृष्टाः सन्तो जग्मुः ... ... | २६३ |
| १५४ | २१ | 'बलिनः प्रत्यमित्रस्य नित्यमासन्नवर्तिनः। उपकारापकाराभ्यां समर्थस्योद्यतस्य च' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो 'यद्यापन्नो राजा दैवेन नानुगृह्यते तर्हि शत्रुमेव शरणीं कुर्यात, यदि तु वाक्शूरत्वात्तेन सह वैरं करोति तदा कृत्स्नं स्वपरिग्रहं स्वयमेव त्यक्त्वा स्वात्ममात्रं रक्षेत्' इत्यर्थबोधिकां पवनशाल्मलिसंवादाख्यायिकामुदघाटयत्। हिमालयस्थं महान्तं शाल्मलिवृक्षं दृष्ट्वा तन्निकट आगत्य नारदस्तं प्रति 'अहो नु रमणीयस्त्वम्' इत्याद्युवाच ... ... ... | २६४ |
| १५५ | १८ | 'बन्धुत्वादथवा सख्यात्त्वां पवनो रक्षति' इत्यादिकां नारदोक्तिमाकर्ण्य 'न मे वायुः सखा | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ब्रह्मन्' इत्याद्युक्तवन्तं शाल्मलिं प्रति नारदः 'शाल्मले विपरीतं ते' इत्याद्युवाच ... ... | २६४ |
| १५६ | १९ | ततः नारदो वायुसमीपमागत्य तं प्रति शाल्मलेरहंकारं नाशयितुं हिमवत्पृष्ठजः कश्चित् इत्याद्युवाच। एतन्नारदवाक्यं श्रुत्वा क्रुद्धः समीरणः शाल्मलिवृक्षसमीपमागत्य 'यतो नारदसमीपे मां निन्दितवानस्यतस्तथा प्रभावं दर्शयामि यथा त्वं पुनर्नावमन्यथाः' इत्याद्युवाच। वायुवाक्यं श्रुत्वा 'पवन त्वं च मे क्रुद्धः' इत्याद्युक्तवन्तं शाल्मलिं प्रति 'श्वो दर्शयिष्यामि ते तेजः' इत्याद्यभिदधे पवनः ... | २६५ |
| १५७ | १६ | प्रातरागतो वायुः शाखापर्णस्कन्धादिरहितं शाल्मलिं दृष्ट्वा तं प्रति 'अहमप्येवमेव त्वाम्' इत्याद्युवाच। शाल्मलिं दृष्टान्तीकृत्य भीष्मः 'एवं हि राजशार्दूल' इत्याद्युपदिदेश युधिष्ठिरं प्रति ... ... ... | २६६ |
| १५८ | ३५ | 'पापस्य यदधिष्ठानं यतः पापं प्रवर्तते। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन भरतर्षभ' इति युधिष्ठिरस्य प्रश्ने भीष्मः 'एको लोभो महाग्राहो लोभात्पापं प्रवर्तते' इत्यादि प्रोवाच ... ... | २६८ |
| १५९ | १४ | 'अज्ञानं श्रोतुमिच्छामि' इति युधिष्ठिरवाक्ये भीष्मस्तदाचष्ट। अज्ञानप्रवृत्त्यादिविषये युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्तदब्रवीत् ... | २६८ |
| १६० | ३८ | 'स्वाध्याये कृतयत्नस्य नरस्य च पितामह। धर्मकामस्य धर्मात्मन् किं नु श्रेय इहोच्यते' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो दमस्य श्रेयस्त्वमभ्यधात् ... ... | २७० |
| १६१ | १३ | 'भीष्मः सर्वमेतत्तपोमूलम्' इत्यादिना तपः प्रशशंस | २७१ |
| १६२ | २६ | सत्यस्य स्वरूपादिके युधिष्ठिरेण पृष्टे भीष्मः सत्यस्य लक्षणादिकथनपूर्वकं तत्प्रशशंस | २७२ |
| १६३ | २२ | 'यतः क्रोधादीनां संभवस्तत्कथय' इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः क्रोधादीनां दुर्जयत्वमाख्याय तेषामुत्पत्तिप्रकारं व्याजहार ... ... ... | २७३ |
| १६४ | १३ | 'आनृशंस्यं विजानामि दर्शनेन सतां सदा। नृशंसान्न विजानामि तेषां कर्म च भारत' इत्यादिना नृशंसधर्मान् पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मस्तान् कथयामास ... ... ... ... | २७४ |
| १६५ | ७८ | भीष्मः प्रथमं दानयोग्यत्वप्रतिपादनपुरःसरं ब्राह्मणान् प्रशस्य सर्वापन्मूलभूतपापनिवृत्तये प्रायश्चित्तान्यभ्यधात् ... | २७७ |
| १६६ | ८९ | 'धनुःखड्गयोर्मध्ये युद्धे किं श्रेष्ठतरम्' इत्यापृच्छ्य नकुलः स्वाभिमतस्य खड्गस्योत्पत्त्यादिकं प्रपच्छ। एतदुत्तरं वदन् भीष्मः सृष्टिप्रकारमभिधाय ब्रह्मणो यज्ञप्रस्तावे खड्गोत्पत्तिप्रकारं रुद्रादारभ्य नकुलपर्यन्तं तत्प्राप्तिपरंपरां चाख्याय 'असिर्विशसनः' इत्यादितन्नामानि चोक्त्वा धनुष्योत्पत्तिमाचष्ट ... | २८० |
| १६७ | ५१ | इत्युक्त्वा तूष्णींभूते भीष्मे युधिष्ठिरो गृहं गत्वा विदुरसहितान् भ्रातॄन् प्रति कामादीनां मध्ये को गरीयान् कश्च मध्यमः कश्च कनीयानिति पप्रच्छ। युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वा विदुरो बाहुश्रुत्यं तमस्त्यागः इत्यादिना धर्मस्य प्राधान्यमर्थस्य मध्यमत्वं कामस्य कनीयस्त्वं जगाद। एवमेवार्जुनोऽर्थस्य ज्यायस्त्वमवोचत्। लसहदेवौ धर्मार्थयोर्गरी मवोचतां भीमश्च कामस्य | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मभ्यधात्। सर्वेषां वचनानि श्रुत्वा युधिष्ठिरो 'यो वै न पापे निरतो न पुण्ये' इत्यादिना मोक्षाख्यपुरुषार्थस्यैवाभ्यर्हितत्वं व्याजहार, तच्छ्रुत्वा सर्वे जहृषुः ... ... ... ... | २८२ |
| १६८ | ५२ | 'कीदृशा मानवाः सौम्याः' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः सन्धेयानसंधेयांश्च पुरुषाँल्लक्षणतः कथयति स्म। मित्रद्रोहिणः कृतघ्नस्य वृत्तं जिज्ञासोर्युधिष्ठिरस्य प्रश्नं श्रुत्वा भीष्मो दुर्जनसंबन्धे दोषानभिधातुं गौतमस्येतिहासमाह स्म। दस्युगृहे भिक्षार्थमागतो गौतमनामा ब्राह्मणो दस्युना द्रव्यदानेन स्त्रीसमर्पणेन च सत्कृतस्तद्गृहे निवसंस्तत्समतामवाप। कदाचिद्गौतमस्य गृहमागतस्य सब्रह्मचारी कश्चिद्ब्राह्मणस्तस्याचारवैपरीत्यं दृष्ट्वा 'किमिदं कुरुषे मोहात्' इत्याद्युवाच। तच्छ्रुत्वा सोऽपि स्ववृत्तभ्रंशप्रकारादिकं कथयामास ... ... | २८४ |
| १६९ | २४ | ब्राह्मणोपदेशेन दस्युगृहान्निर्गतो गौतमः समुद्रं गच्छता सार्थेन सह जगाम। मार्गमध्ये मत्तेन द्विरदेन सार्थे निहते गौतम एकाकी भ्रमन् कस्मिंश्चिद्वने न्यग्रोधवृक्षं दृष्ट्वा तन्मूले सुखं सुष्वाप। तस्मिन्वृक्षे निवसन्कश्यपस्य पुत्रो ब्राह्मणः सखा नाडीजंघाख्यो राजधर्मापरनामा बकः सूर्यास्तानन्तरं तत्रागत्य ब्राह्मणं दृष्ट्वा तं सभाजयामास ... ... | २८५ |
| १७० | २६ | ततो राजधर्मा गौतमायात्मवृत्तान्तकथनपूर्वकं सत्कारोपयोग्यासनादिकं ददाति स्म। तत उभयोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरमर्थार्थी गौतमो राजधर्मवाक्याद्विरूपाक्षराक्षसनगरसमीपं गतस्तत्प्रेषितैः प्रेष्यैः सह तद्भवनं प्रविवेश ... ... ... ... | २८६ |
| १७१ | ३४ | सत्कारपूर्वकमासने उपवेशितेन गौतमेन सहोक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं जन्ममात्रेणायं ब्राह्मण इति जानन् विरूपाक्षो राक्षसो 'मम सख्या प्रेषितायास्मै किं देयम्' इत्यादि चिन्तयामास। कार्तिकीमहोत्सवे मिलितेषु ब्राह्मणेषु विरूपाक्षेणानुज्ञातं द्रव्यं स्वस्वशक्त्यनुरोधेन गृहीत्वा गतेषु गौतमोऽपि स्वभर्तारं गृहीत्वा निर्गतो राजधर्मसमीपं जगाम। तत्रागत्य विश्रान्तो गौतमो "महान्तमेनं स्वर्णभारं गृहीत्वा गन्तव्यं मार्गश्च दूरतरो मार्गमध्ये भक्ष्यं किमपि नास्ति तस्मादेनं महान्तं मांसराशिभूतं राजधर्माणं हत्वैतन्मांसेन प्राणधारणं कार्यम्" इत्यादि चिन्तयामास... | २८८ |
| १७२ | २६ | ततो विश्वस्तं राजधर्माणं हत्वा तन्मांसं गृहीत्वा गते गौतमे प्रतिदिनमागच्छन्तं स्वसखायं राजधर्माणमदृष्ट्वा साशंको विरूपाक्षस्तच्छोधनार्थं स्वपुत्रं प्रेषयामास। राजाज्ञया निर्गतस्तत्पुत्रो न्यग्रोधमागत्य हतस्य बकस्य कंकालं दृष्ट्वा रुदन् गौतमं गृहीत्वा बककंकालं चादाय विरूपाक्षसमीपमाजगाम। गौतमं हन्तुमाज्ञप्तो राजपुत्रः खण्डशश्छित्त्वा तन्मांसं मांसादेभ्यो ददौ। ते च कृतघ्नमांसमेतदिति बुद्ध्वा तन्न जजक्षुः... ... ... | २८९ |
| १७३ | २६ | विरूपाक्षे राजधर्मणो दाहादिसंस्कारं कुर्वति चितायां सुरभिमुखाच्च्युतः फेनो राजधर्माणमुदजीवयत्। सुरभ्योज्जीवितो राजधर्मा यावद्विरूपाक्षमागच्छति तावदिन्द्रोऽप्यागत्य | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | तस्य ब्रह्मशापादिवृत्तान्तमाचष्ट। गौतमस्योज्जीवनार्थं राजधर्मणा प्रार्थित इन्द्रस्तं जीवयामास। ततो राजधर्मा तमालिङ्ग्य ब्रह्मणः सदनं ययौ गौतमश्च स्वगृहं, देवाश्चैनं शेपुः। भीष्मो नारदेनैतदाख्यानं मह्यं कथितमित्यभिधाय 'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः' इत्याद्युक्त्वा 'कृतघ्नेन सर्वदा भाव्यं मित्रद्रोहश्च न कर्तव्यः' इत्याद्याह स्म। तच्छ्रुत्वा युधिष्ठिरः प्रीतमना बभूव ... ... | २९० |


## ( ३ ) मोक्षधर्मपर्व २९१–७५४


| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| १७४ | ६३ | मोक्षधर्मं ज्ञातुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तमुपदिदेश। धनादौ नष्टे पुरुषो यया बुद्ध्या शोकमपनुदेत्तद्ब्रूहीति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः सेनजिद्विप्रसंवादरूपमितिहासमाचष्टे स्म। 'का बुद्धिः किं तपो विप्र' इत्यादि पृच्छन्तं सेनजितं प्रत्युपादिशन् विप्र आशाया दुर्जयत्वमाख्याय तद्विषये पिङ्गलागीता गाथा अकथयत्... ... ... | २९८ |
| १७५ | ३९ | 'अतिक्रामति कालेऽस्मिन्सर्वभूतक्षयावहे किं श्रेयः' इति युधिष्ठिरप्रश्ने तद्विषये पितापुत्रसंवादेतिहासं व्याजहार भीष्मः। पितापुत्रयोः संवादमाख्याय पुत्रोपदेशेन पित्रा यत्कृतं तत् त्वमप्याचरेत्याह युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः ... ... ... ... | ३०० |
| १७६ | २३ | 'धनिनश्चाधना ये च वर्तयन्ते स्वतन्त्रिणः। सुखदुःखागमस्तेषां कः कथं वा पितामह' इति युधिष्ठिरप्रश्ने शंपाकगीतामाह स्म भीष्मः... ... | ३०१ |
| १७७ | ५४ | धनतृष्णाभिभूतः किं कुर्वन् सुखी भवेत् इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः सुखिनं निरूप्य मंकिगीतां कथयति स्म... ... | ३०४ |
| १७८ | १३ | मंकिगीतोपष्टम्भकत्वेन जनकगीतमाख्याय बोध्यनाहुषसंवादेतिहासं कथयन् बोध्योक्तानां पिङ्गलादीनां षण्णां गुरूणां वृत्तमकथयत् भीष्मः... | ३०५ |
| १७९ | ३६ | वीतशोकः केन वृत्तेन महीं चरेत् इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः प्रह्लादाजगरसंवादेतिहासमाचख्यौ। स्वस्थः शक्तो मृदुर्दान्तः इत्यादिके प्रह्लादप्रश्ने आजगरो मुनिः स्वाभाविकप्रवृत्त्यादिकमाख्यायाजगरव्रतस्वरूपं कथयति स्म। इदमाजगरचरितं योऽनुचरेत्स सुखी भवेदित्याह भीष्मः ... ... ... ... | ३०८ |
| १८० | ५४ | आजगरव्रतरूपां स्वास्थ्यलक्षणां निष्ठां बांधवोपलक्षिता जातिरेव समर्पयति किंवा मणिमन्त्रौषधिसाधनादि कर्म किंवा वित्तसाध्यं यज्ञादि उत प्रज्ञैवेति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'प्रज्ञैव समर्पयति' इत्युक्त्वा तद्विषये इन्द्रकाश्यपसंवादरूपमितिहासं व्याजहार। मत्तेन वैश्येन पातितः काश्यपो धनहीनस्त्वान्मर्तुं यदा प्रववृत्ते तदा शृगालरूपेणेन्द्र आगत्य 'मनुष्ययोनिमिच्छंति' इत्यादिना ब्राह्मणत्वलाभेऽप्यसंतोषमभिधाय 'न तृप्तिः प्रियलाभेऽस्ति' इत्यादिना जीवानां दुःखहेतुमाशाप्रशमनाभावाद्याह। एतच्छ्रुत्वा विगतशोको ब्राह्मणः प्रत्यक्षमिन्द्रं दृष्ट्वा तं संपूज्य स्वमालयं जगाम... | ३११ |
| १८१ | २० | 'यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्म 'आत्मनानर्थयुक्तेन' इत्यादिनोपदिदेश ... ... ... ... | ३१२ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १८२ | ३८ | 'कुतः सृष्टमिदं विश्वम्' इत्यादिप्रश्ने तद्विषये भृगुभरद्वाजसंवादरूपमितिहासं व्याहृतवान्। सृष्टिविषये प्रश्नं कुर्वन्तं भरद्वाजं प्रति भृगुर्मानसस्याव्यक्तस्य महत्तत्त्वादिसृष्टिकर्तृत्वमाख्यातवान्। गगनादिपरिमाणजिज्ञासुं भरद्वाजं प्रति भृगुर्गगनादीनामपरिमेयत्वमाह। 'यदि ब्रह्मा पुष्करात्संभूतस्तर्हि पुष्करं ज्येष्ठं भवेत्, भवांस्तु ब्रह्माणं पूर्वजमाह, कथमेतत्' इति पृच्छन्तं भरद्वाजं प्रति भृगुर्ब्रह्मण एव ज्येष्ठत्वमभिधाय तस्य पुष्करे प्रादुर्भूतत्वात्तत्संभूतत्वमित्याह स्म... | ३१५ |
| १८३ | १७ | सृष्टिविषये भृगुभरद्वाजयोः संवादः... ... ... | ३१७ |
| १८४ | ४४ | 'ब्रह्मणा सहस्रशो भूतानां सर्जनात्कथं पंचानामेव भूतत्वम्' इति भरद्वाजप्रश्ने भृगुः सर्वभूतव्यापनादेतेषामेव महाभूतत्वमित्याद्याह। 'स्थावरजङ्गमा यदि पञ्चभूतयुक्तास्तर्हि स्थावराणां कथं पाञ्चभौतिकत्वम्' इत्यनुयुंजानं भरद्वाजं प्रत्युत्तरं वदन् भृगुः स्थावरेषु तत्सत्तां प्रकाश्य दृष्टान्तत्वेन जङ्गमेष्वपि तत्सत्तामाख्याय पृथिव्यादीनां गुणविभागादिकमपि स्फुटयति स्म... | ३२० |
| १८५ | १७ | शारीरयोरग्निवाय्वोर्गतिं ज्ञातुं भरद्वाजेन पृष्टो भृगुः 'वायोर्गतिमहं ब्रह्मन्' इत्यादिना तां कथयति स्म... ... ... | ३२१ |
| १८६ | १५ | यदि प्राणयते वायुस्तदा जीवो निरर्थकः' इत्यारभ्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तं भरद्वाजप्रश्नः... | ३२३ |
| १८७ | ३१ | 'न प्रणाशोऽस्ति जीवस्य' इत्यादिना तदुत्तरं वदन्भृगुः 'यद्यग्निमारुतौ भूमिः' इत्यादिना जीवस्वरूपजिज्ञासया भरद्वाजेन पृष्टस्तत्कथयति स्म... | ३२५ |
| १८८ | २० | ब्राह्मणादिवर्णभेदेन सृष्ट्यादिक्रमभिधाय ब्राह्मणादीनां सितादीन्वर्णानभिदधद्भृगुः। 'चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते' इत्यादिना भरद्वाजेनाक्षिप्तस्तद्विभागे कारणादिकमभ्यधात्... ... ... | ३२६ |
| १८९ | १८ | 'ब्राह्मणः केन भवति' इत्यादिके भरद्वाजप्रश्ने भृगुर्ब्राह्मणस्य लक्षणाद्याचष्टे... ... | ३२८ |
| १९० | १६ | भृगुः सत्यस्य ब्रह्मादिरूपत्वमनृतस्य तमोरूपत्वं प्रतिपाद्योभयोर्धर्माधर्मरूपत्वं सुखदुःखरूपत्वं चाभिधायैतदेव 'यदेतद्भवताभिहितम्' इत्यादि भरद्वाजप्रश्नद्वारा दृढीचकार... | ३२९ |
| १९१ | १८ | 'दानस्य किं फलं प्राहुः' इत्यादौ भरद्वाजप्रश्ने भृगुर्व्युत्क्रमेण होमादीनां फलं प्रत्यपादयत्। भृगुभरद्वाजयोराश्रमविषये प्रश्नोत्तरे... ... ... | ३३१ |
| १९२ | २७ | वानप्रस्थवृत्तान्तं परिव्राजकाचारं चाख्याय परलोकजिज्ञासोर्भरद्वाजस्य प्रश्नमुत्तरयन्भृगुस्तेन तदक्रियत... ... | ३३४ |
| १९३ | ३३ | आचारविधिजिज्ञासयानुयुंजानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्म आचारं प्रतिपादयति स्म... | ३३६ |
| १९४ | ६३ | 'अध्यात्मं नाम यदिदं पुरुषस्येह चिन्त्यते। यदध्यात्मं यथा चैतत्तन्मे ब्रूहि पितामह' इत्यादिनाध्यात्मविषयके युधिष्ठिरानुयोगे भीष्मस्तन्निरूप्य सत्त्वादीनां गुणानां लक्षणानि व्याकरोत् ... ... ... ... | ३४२ |
| १९५ | २२ | भीष्मेण चतुर्विधध्यानयोगकथनम्... ... ... | ३४५ |
| १९६ | २६ | 'जापकानां फलावाप्तिं श्रोतुमिच्छामि भारत' इत्यादिना | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | जापकानां फलावाप्तिविषयके युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरं कथयन्भीष्मो यमब्राह्मणसंवादेतिहासं व्याजहार... ... ... | ३४८ |
| १९७ | १३ | जापकानां ब्रह्मलोकप्राप्त्यादिरूपगत्यपेक्षयाऽन्या गतिरस्ति न वेति युधिष्ठिरानुयुक्तो भीष्मस्तेषां गतिविशेषमाचष्टे स्म... | ३४८ |
| १९८ | ११ | जापकः कीदृशं निरयं यातीति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो जापकस्य निरयान्निरूपयति स्म... | ३४९ |
| १९९ | १२८ | कालमृत्युयमानामिक्ष्वाकोर्ब्राह्मणस्य च यद्वृत्तं तत्कथयेति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तेषां संवादरूपमितिहासं जगाद। पैप्पलादिः कौशिकनामा जापकः संतुष्टां सावित्रीं प्रति 'जप्ये मे रमतां मनः' इत्यूचे। सावित्री तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणं प्रति सर्वं तत्ते भविष्यति इत्युक्त्वा कालमृत्युयमानां त्वया संवादो भविष्यति इति चाभिधाय जगाम। ततो जापके दिव्यं वर्षशतं जपति तत्रागतस्य प्रसन्नस्य धर्मस्य संवादे प्रचलति सत्यागतानां कालमृत्युयमानां जापकस्य चोक्तिप्रत्युक्ती। तस्मिन्स्थाने आगतमिक्ष्वाकुं प्रति सत्कारपूर्वकं 'किं करोमि' इत्युवाच ब्राह्मणः। इक्ष्वाकुराजब्राह्मणयोर्विवदतोः सतोस्तौ प्रति 'युवयोरविवादोऽस्तु' इत्याद्युवाच धर्मः। साक्षादागतः स्वर्ग उभौ प्रत्यविषादोऽस्तु युवयोरुभौ तुल्यफलौ युवाम् इत्युवाच। स्वर्गं प्रत्याख्याय 'यदीच्छा तर्हि ब्राह्मणो मे फलं गृह्णातु' इत्युक्तवत इक्ष्वाकोर्ब्राह्मणस्य चोक्तिप्रत्युक्ती। एतदन्तरे विवदमानौ विकृतविरूपाख्यौ द्वौ पुरुषावागत्य राजानं प्रति स्वस्ववृत्तं निवेदयामासतुः। विरूप किं धारयसे इत्यादिना राज्ञा पृष्टेन विरूपेण विवादवृत्तान्ते कथिते इक्ष्वाकुविकृतविरूपाणां परस्परमुक्तिप्रत्युक्तयः तद्विवादं श्रुतवतो ब्राह्मणस्येक्ष्वाकोश्चोक्तिप्रत्युक्ती। विरूपः कामक्रोधौ विद्धि नौ त्वम् इत्याद्युक्त्वा 'गच्छ लोकान् जितान् स्वेन कर्मणा यत्र वाञ्छसि' इत्युवाच राजानं प्रति। भीष्मो जापकानां गत्यादिकमाख्यायोपसंजहार ... ... ... ... ... | ३५५ |
| २०० | ३४ | 'इक्ष्वाकुराजब्राह्मणौ किं चक्रतुः' इति युधिष्ठिरप्रश्ने उत्तरमकथयद्भीष्मः। राजब्राह्मणयोरुक्तिप्रत्युक्तिद्वारा सहैवोभयोर्गमनं निश्चिन्वतोस्तत्रागतेषु ब्रह्मादिषु तत्समक्षं योगधारणया प्राणांस्त्यजतोस्तयोः शरीराग्निर्गते तेजसि ब्रह्माणं प्रति प्रविष्टे सर्वे देवा ब्रह्मणो वाक्यं श्रुत्वा स्वं स्वं स्थानं जग्मुः... | ३५७ |
| २०१ | २७ | 'किं फलं ज्ञानयोगस्य' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरं कथयन्भीष्मो मनुबृहस्पतिसंवादरूपमितिहासमाह स्म। 'यत्कारणं यत्र विधिः प्रवृत्तः' इत्यादिकेषु बृहस्पतिप्रश्नेषु मनुः कर्मविध्यादिप्रवृत्तिकारणान्याख्यायान्तेऽक्षरस्वरूपमभ्यधात्... | ३६० |
| २०२ | २३ | अक्षरात्खमित्यादिना सृष्टिक्रमं, एतैः शरीरैरित्यादिना संहारक्रमं, नोष्णमित्यादिनाऽक्षरस्वरूपकथनं न चक्षुषेत्यादिना तस्यासत्त्वं च प्रतिपाद्य यथा समीप इत्यादिना धीतादात्म्यभ्रान्त्या संसारप्रतीत्यादिकमाह स्म मनुः... ... ... | ३६३ |
| २०३ | २२ | यदिन्द्रियैरित्यादिना बुद्धिप्रकाशकत्वेन चेतनस्य तस्य तद | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | न्यत्वं न चक्षुषेत्यादिनेन्द्रियागोचरत्वं च प्रतिपाद्यादृष्टस्यापि तस्यानुमानेन ज्ञेयत्वं दृष्टान्तपुरःसरमाह स्म मनुः... ... | ३६७ |
| २०४ | २० | यथा व्यक्तमित्यादिना देहसंबंधनिवृत्त्युपायं वदन्निन्द्रियमन आदीनां लयमभिधातुमिन्द्रियेभ्य इत्यादिना तेषां कार्यकारणभावमाख्याय विषया विनिवर्तन्ते इत्यादिना प्रवृत्तिनिवृत्तिधर्माविभ्यधान्मनुः... ... | ३६९ |
| २०५ | २६ | शारीरे मानसे च दुःखे प्राप्ते तन्निवृत्त्युपायतया तदनुचिन्तनाभावरूपं वैराग्यं साधनत्वेनाभिधाय ज्ञानं ज्ञेयमित्यादिना सुखप्राप्त्युपायभूतं ब्रह्मात्मज्ञानमाह ... ... | ३७१ |
| २०६ | ३२ | शब्दादिविषयैः सहितानि पञ्चेन्द्रियाणि मनसा सह यदा निगृहीतानि भवन्ति तदा सर्वत्र ब्रह्मव्याप्तिं पश्यतीत्याद्यभिधायाध्यायान्तेऽनागतमित्यनेन प्रकरणार्थमुपसञ्जहार मनुः | ३७६ |
| २०७ | ४९ | 'पितामह महाप्राज्ञ पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । कर्तारमकृतं विष्णुं भूतानां प्रभवाप्ययम् ।' इत्यादिना नारायणं तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामि इति युधिष्ठिरप्रश्ने तत्कथनं प्रतिजज्ञे भीष्मः । उदके शयानस्य विष्णोर्नाभिपद्मे ब्रह्मण उत्पत्त्यनन्तरमुत्पन्नस्य मधोर्महासुरस्य नाशनाद्भगवान् मधुसूदन इत्याभिहितो देवादिभिः । ब्रह्मणः सकाशान्मरीच्यादीनां सप्तानां जन्मप्रकारमदित्यां देवादीनां जन्म, श्रीकृष्णस्य मुखादितो ब्राह्मणादीनां सृष्ट्यादि च समवर्णयद्भीष्मः । ... ... | ३७८ |
| २०८ | ३६ | 'के प्रजानां पतयः पूर्वमासन्' इति युधिष्ठिरप्रश्ने ब्रह्मणो मरीच्यादीन्पुत्रान् दक्षादीनां तथा देवानां नामानि च निरूप्य देवेषु ब्राह्मणादींश्चतुरो वर्णान्प्रदर्श्य प्राच्यादिचतुर्दिक्षु पृथक् पृथक् अवस्थितान् सप्तर्षींश्च नामतो व्याचख्यौ भीष्मः | ३८० |
| २०९ | ३६ | पुनः कार्त्स्न्येन 'कृष्णं श्रोतुमिच्छामि' इति युधिष्ठिरप्रश्ने कश्यपकथितां श्रीकृष्णकथां व्याजहार भीष्मः । पुरा दानवपीडितेषु देवेषु ब्रह्माणं प्रति गतेषु 'वराहरूपेण भगवानन्तर्भूमिगतान्दानवान्हनिष्यति' इति ब्रह्मवाक्यं श्रुतवत्सु तत्कालाविर्भूतो वराहरूपधारी भगवानन्तर्भूमिगतो दैत्यदानवान् क्षोभयन् महान्तं नादं चकार' वराहनादं श्रुत्वा मुग्धैर्देवैः 'कोऽसौ हि कस्य वा नादः ।' इति पृष्टो ब्रह्मा 'दानवपतीन्निहत्य भगवता वराहेण मुक्तोऽयं नादः इति न कार्या भीर्भवद्भिः' इत्याद्युवाच पितामहः ... | ३८१ |
| २१० | ४६ | मोक्षयोगशुश्रूषोर्युधिष्ठिरस्यानुयोगे भीष्मो गुरुशिष्यसंवादरूपेतिहासकथनद्वारा तमुपदिदेश । गुरुं प्रति शिष्यस्य 'कुतश्चाहं कुतश्च त्वम्' इत्यादिकेऽनुयोगे गुरुर्ब्रह्मवार्ष्णेयाख्येतिहासकथनमुखेनोपदिदेश । 'युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्' इत्यादिना अन्तर्हितानां वेदानां लाभादिकं, विज्ञेयं व्यापकं चित्तमित्यादिकं, अग्निर्दारुगतो यद्वदित्यादिकं, कर्मणा बाध्यते रूपं इत्यादिकं चोपदिदेश गुरुः | ३८५ |
| २११ | १७ | 'चतुर्विधानि भूतानि' इत्यादिना जीवस्य प्राग्वासनावशात्कर्माणि प्रवृत्तिमभिधाय 'येनै- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | तद्वर्तते चक्रम्' इत्यादिना वासनावशात्कर्म, कर्मवशाच्च वासना इत्यादिकं चक्रं प्रतिपाद्य तादात्म्याभ्यासात् शुद्धस्वरूपं न जानीयात् इत्याद्याह स्म भीष्मः ... ... | ३८७ |
| २१२ | ३३ | पुनर्भीष्मो निवृत्तिरूपं मोक्षमार्गं बुद्धिमन्त इच्छन्तीति 'प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः' इत्यादिनाऽभिधाय 'नाशुद्धमाचरेत्' इत्यादिना चित्तशुद्ध्यर्थं निष्कामकर्माचरणं चोक्त्वा 'पञ्चभूतात्मके देहे' इत्यादिना देहस्य मृद्विकारत्वं चाख्यायाहङ्कारत्यागमुपदिश्य गुणत्रयमूलकान्दोषांश्चिन्तयेदित्याह स्म। 'के दोषा मनसा त्यक्ताः' इत्यादिना संशयं निरसितुं युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मस्तदुत्तरं वदन् 'दोषैर्मूलादवच्छिन्नैः' इत्यादिना दोषाणां समूलं नाशनमाख्याय 'रजसाऽधर्मयुक्तानि' इत्यादिना श्लोकत्रयेण त्याज्यत्वेन राजसतामसकर्माण्युक्त्वा ग्राह्यत्वेन सात्त्विकान्याह स्म कर्माणि ... ... | ३९० |
| २१३ | २१ | पूर्वाध्यायान्तिमश्लोकत्रयं विवृण्वन् भीष्मः क्रोधादिपरित्यागाच्छुचित्वं तत्फलं चाभिधाय मायामोहितानां क्रोधाद्युद्भवप्रणालिकया गर्भवासादि दुःखं निरूप्य तन्निरासार्थमिन्द्रियनिग्रहाद्याह स्म ... ... | ३९१ |
| २१४ | २९ | इन्द्रियनिग्रहविषये उपायं कथयन् भीष्मः 'सर्वेषामेव भूतानाम्' इत्यादिना ज्ञानहीनापेक्षया ज्ञानिनोऽधिकत्वमभिधाय 'तांस्तानुपासते धर्मान्' इत्यादिना धर्मज्ञानां शुभगुणज्ञापकत्वमभ्यधात्। ब्रह्मचर्यस्य दुष्करत्वमाख्याय 'संप्रदीप्तमुदीर्णं च निगृह्णीयाद्द्विजो रजः' इत्याद्युपदिश्य 'त्रिबीजमिन्द्रदैवत्यं तस्मादिन्द्रियमुच्यते' इतीन्द्रियलक्षणं निरूप्य 'भाविता मनसो ज्ञानं' इत्याद्युपदिदेश ... | ३९३ |
| २१५ | २७ | वशीकृतेन्द्रियाणां परपदप्राप्त्याद्यभिधाय पापनाशकं शुभं कर्म कुर्यादित्याह स्म भीष्मः। 'अहिंसा सत्यवचनं' इत्यादिनाऽहिंसादिविशिष्टस्य सुखित्वं 'सत्यां वाचम्' इत्यादिना सत्यादिगुणविशिष्टां वाचं वदेदिति चाभिधाय 'रजोभूतैर्हि करणैः' इत्यादिना राजसतामसकर्मवर्जनमुपदिश्य 'निःसंदिग्धमनीहो वै' इत्यादिना ब्रह्मप्राप्त्युपायमाह स्म ... ... | ३९५ |
| २१६ | २० | ब्रह्मचर्यं चरतो निद्रावर्जनं, निद्रायां दोषांश्चाख्यायैतत्प्रसङ्गेन जाग्रदाद्यवस्थात्रयं चाभिधाय सर्वेषां मनोगतत्वमुपदिश्य देवासुरेभ्यः प्रजापतिना गोपितं ब्रह्मेन्द्रियनिग्रहेण वेदितुं शक्यमित्याद्याह स्म भीष्मः ... | ३९७ |
| २१७ | ३८ | पुनर्भीष्मः प्रधानपुरुषजीवेश्वररूपं चतुष्टयं न वेद स परं ब्रह्म न वेदेत्युक्त्वा प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणौ धर्मौ चाख्याय 'अनाद्यन्तावुभावेतौ' इत्यादिना पुंप्रकृत्योर्जीवेश्वरयोश्च साधर्म्यवैधर्म्ये निरूप्य 'श्रियं दिव्याम्' इत्यादिना शारीरमानसे तपसी कर्तव्यत्वेनाह। 'अन्तकाले' इत्यादिना साधनान्तराण्यभिधाय तैः परपदप्राप्तिं चाख्याय 'तृष्णाबद्धम्' इत्यादिना तृष्णात्यागं चाभिदधाति स्म ... | ४०१ |
| २१८ | ४९ | 'केन वृत्तेन वृत्तज्ञ' इत्या- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दिना जनकः कथं मोक्षमवाप्नोति युधिष्ठिरानुयुक्तो भीष्मो जनकस्येतिहासमाह स्म । भीष्मो मिथिलायां पञ्चशिखस्य मुनेरागमनं तस्य पञ्चशिख इति कापिलेय इति च संज्ञाद्वयप्राप्तिकारणं चाभिधाय 'एतन्मे भगवानाह' (श्लो० १६) इत्याद्युवाच । पञ्चशिखं दृष्ट्वा गुरुशतं विहायानुसरन्तं जनकं प्रति स 'जातिनिर्वेदम्' (श्लो० २१) इत्यादिना जन्मादिनिर्वेदमाख्याय कर्मादिप्रवृत्तिकारणं मोहं विवरीतुं 'दृश्यमाने विनाशे च' (श्लो० २३) इत्यादिना लोकायतमतमुपन्यासपूर्वकं निरस्य तथैव सौगतमतं तार्किकमतं च निरस्यार्थलिप्सूनां दुःखं तदनिच्छूनां सुखं चाचख्यौ | ४०५ |
| २१९ | ५२ | 'भगवन्यदि न प्रेत्य' (श्लो० २) इत्यादिना प्रेत्य संज्ञाभावे सति ज्ञानाज्ञानकृतो न कश्चिद्विशेषः इत्याद्याक्षेपान् कुर्वन्तं जनकं प्रत्युपदिशन् पञ्चशिखो 'धातवः पञ्चभूतेषु' (श्लो० ७) इत्यादिना शरीरादीनामनात्मत्वं बोधयितुं तत्प्रकृतीराह स्म । एतेषामात्मन्यारोपमुक्त्वा 'अनात्मेति च यद् दृष्टम्' (श्लो० १५) इत्यादिनाऽपवादं चाभिधाय 'अत्र सम्यग्वधो नाम' (श्लो० १६) इत्यादिना त्यागप्रधानं सांख्यशास्त्रमुपदिश्य जनककृतानाक्षेपान्निरस्य 'इमां च यो वेद' (श्लो० ४४) इत्यादिना विद्याफलं प्रतिपादयति स्म ... | ४१० |
| २२० | २० | 'किं कुर्वन्सुखमाप्नोति' (श्लो० १) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो दमं प्रशस्य 'तेषां लिंगानि वक्ष्यामि' (श्लो० ९) इत्यादिना दमवतां लक्षणान्यभिधाय फलतो दमं कुर्वन्सुखी भवत्यकुर्वंश्च दुःखीत्याह स्म... ... | ४११ |
| २२१ | १७ | 'द्विजातयो व्रतोपेताः' (१) इत्यादिना वैदिकं तांत्रिकं च विधिमाश्रित्य त्रैवर्णिका हविर्भुञ्जते तद्युक्तमयुक्तं वेति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'अवेदोक्तव्रतोपेता' (२) इत्याद्युत्तरमाह । 'यदिदं तपः'(३) इत्यादिना उपवासात्मकमेव तप उतान्यदपीति पुनर्युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो मासपक्षोपवासेनेत्याद्युत्तरमाह । 'कथं सदोपवासी स्यात्' (९) इत्यादिषु चतुर्षु युधिष्ठिरप्रश्नेषु 'अन्तरा प्रातराशं च' (१०) इत्यादिना क्रमेणोत्तराण्याह भीष्मः... ... ... ... ... | ४१२ |
| २२२ | ३७ | 'यदिदं कर्म लोकेऽस्मिन्' (१) इत्यादिना शुभाशुभकर्मणां पुरुषः कर्तास्ति न वेति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रत्येतद्विषये इन्द्रप्रन्हादसंवादरूपमितिहासं व्याजहार भीष्मः । 'यैः कश्चित्संमतो लोके' (९) इत्यादिके इन्द्रप्रश्ने प्रन्हादः 'प्रवृत्तिं निवृत्तिं च' (१४) इत्यादिना स्वस्य कर्तृत्वं सोपपत्तिकं निरस्य शुभाशुभकर्मणां स्वभावादेव प्राप्तिमुक्त्वा सर्वस्यानित्यतां जानन्नहं न शोचामीत्याह । 'येनैषा लभ्यते प्रज्ञा' (३३) इत्यादिनैतादृशप्रज्ञालाभोपायं पृच्छन्तमिन्द्रं प्रति प्रन्हादः 'आर्जवेनाप्रमादेन' (३४) इत्यादिना तं कथयति स्म ... ... ... ... | ४१५ |
| २२३ | ३० | 'यया द्धर्या महीपालः' (१) इत्यादिना भ्रष्टश्रीर्नृपः पृथ्व्यां कथं चरेदित्यनुयुञ्जानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्म एतद्विषये इन्द्रबलिसंवादरूपमितिहासमब्रवीत् । स- | |

| श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|
| | वान्सुराञ्जित्वेन्द्रो बलिमपश्यन् ब्रह्माणं प्रति गत्वा 'बलिं नाधिगच्छामि तं कथय' इति पप्रच्छ, तच्छ्रुत्वा ब्रह्मा 'उष्ट्रेषु यदि वा गोषु' (९) इत्यादिना तेजस्विपशुरूपेण शून्यागारे तिष्ठतीत्याह। शून्यागार उपलब्धं तमहं हन्यां न वेति पृच्छन्निन्द्रो 'मा स्म शक्र बलिं हिंसीः ......न्यायस्तु शक्र-प्रष्टव्यः' (११) इति ब्रह्मवाक्यं श्रुत्वा तं गवेषयन् शून्यागारे खररूपेण स्थितं ददर्श। 'खरयोनिमनुप्राप्तः' (१४) इत्यादीन् प्रश्नान्कुर्वन्तमिन्द्रं प्रति बलिः 'न त्वं पश्यसि भृंगारम्' (२६) इत्याद्युवाच... ... | ४१६ |
| ६० | पुनर्हासपूर्वकमिन्द्रस्य 'यत्त-द्यानसहस्रेण' (२) इत्याद्युक्तिं श्रुत्वा बलिः 'अनित्यमुपलक्ष्येह' (५) इत्यादिना सर्वस्यांतवत्त्वा-दनित्यत्वं बुद्ध्वा न शोचामीत्युक्त्वा 'सर्वं कालः समादत्ते' (१९) इत्यादिना सर्वस्य कालकृतत्वं 'मासमासार्धवेश्मानम्' (४६) इत्यादिना कालस्वरूपं चाख्याय तस्यानिर्वर्त्यत्वकथनपूर्वकं श्रियश्चांचल्यमभ्यधात्... ... | ४१९ |
| ३८ | बलिदेहनिर्गतां श्रियं दृष्ट्वा बलि-वाक्यात्तां प्रति का त्वमिति पृच्छन्तमिन्द्रं प्रति श्रीः स्वनामा-द्याख्यानपूर्वकं स्वस्य दुर्ज्ञेयत्वमाचख्यौ। उभायोरुक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं 'तिष्ठेथा मयि नित्यं त्वम्' (१८) इत्यादि प्रार्थयन्निन्द्रः 'स्थास्यामि नित्यं देवेन्द्र' (१९) इत्यादि श्रीवाक्यं श्रुत्वेन्द्रः स्वकथितेषु पृथ्वीजलाग्निसाधुषु चतुर्षु निहितपदां श्रियं रक्षितुं प्रतिजज्ञे। ततो बलिना 'यावत्पुरस्तात्प्रतपेत्' (३०) इत्यादिना स्वपराक्रमकाले कथिते इन्द्रेण ब्रह्माज्ञया त्वयि वज्रं न मुञ्चामीत्युक्तो बलिर्दक्षिणां दिशं जगाम। इन्द्रश्चोदीचीं गतः खमारुरोह... | ४२२ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| २२६ | २३ | भीष्मोऽनहंकारत्वविषये इन्द्र-नमुचिसंवादाख्यमितिहासं कथयामास... ... ... | ४२३ |
| २२७ | ११९ | 'मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे' (१) इत्यादि पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्म उत्तरं वदन् 'धृतिः श्रेयस्करी नृप' (३) इत्याद्युक्त्वैत-द्विषये पुनर्बलिवासवसंवादेतिहासमाह स्म। विजयीन्द्र ऐरावतारूढः सञ्चरन् समुद्रान्ते गिरिगह्वरे बलिमविकारं निर्भयं च दृष्ट्वा तं प्रति 'दैत्य न व्यथसे शौर्यात्' (१४) इत्यादि पप्रच्छ। बलिरुत्तरं वदन् 'नैतदस्मत्कृतं शक्र' (२६) इत्याद्युक्त्वा 'कालः काले नयति माम्' (२९) इत्यादिना सर्वस्य कालकृतत्वमभिधाय 'न च कालेन कालज्ञः' (८६) इत्यादिनाऽऽत्मनः शोकाभावं प्रतिपादयामास | ४२७ |
| २२८ | ९६ | 'पूर्वरूपाणि मे राजन् पुरुषस्य भविष्यतः। पराभविष्यतश्चैव तन्मे ब्रूहि पितामह' (१) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो मन एव मनुष्यस्य (२) इत्याद्यभिधाय श्रीशक्रसंवादरूपामितिहासमाचख्यौ। कदाचिदिन्द्र-नारदयोर्गङ्गातीरे वार्ताः कुर्वतोः सूर्यमुपतिष्ठमानयोः सतोरग्रत उपस्थितां श्रियं दृष्ट्वेन्द्रस्तां प्रति का त्वमित्यादि पप्रच्छ। श्रिया "पुण्येषु त्रिषु लोकेषु"(२०) इत्यादिना स्ववृत्तान्तमाख्याय "त्वयि वासमरोचयम्" (२७) इत्युक्तः शक्रस्तां प्रति "कथं वृत्तेषु दैत्येषु" (२८) इत्यादि पप्रच्छ। एवमिन्द्रेण पृष्टा श्रीः "स्वधर्ममनुति- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ष्ठत्सु " ( २९ ) इत्यादिना स्वनिवासयोग्यान् गुणान् " ततःकालविपर्यासे " ( ५० ) इत्यादिना स्वनिवासयोग्यान् दोषांश्चाभिधाय " नाहं देवेन्द्र वत्स्यामि " ( ८१ ) इत्याद्याचष्टे स्म ... | ४३० |
| २२९ | २५ | " किंशीलः किंसमाचारः " ( १ ) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो जैगीषव्यासितदेवलसंवादकथनमुखेनोत्तरमाहस्म | ४३१ |
| २३० | २४ | " प्रियः सर्वस्य लोकस्य " ( १ ) इत्यादिना सर्वस्य प्रियः, सर्वलोकाभिनंदिता, सर्वगुणैरुपेतो भुवि, कोऽस्तीति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रत्युत्तरं वदन् भीष्मो नारदोद्देशेनोग्रसेनवासुदेवसंवादरूपमितिहासं व्याचख्यौ | ४३२ |
| २३१ | ३२ | " आद्यन्तं सर्वभूतानां ज्ञातुमिच्छामि कौरव " ( १ ) इति पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मो व्यासशुकसंवादेतिहासं न्यरूपयत् । " भूतग्रामस्य कर्तारं " ( ९ ) इत्यादिके शुकप्रश्ने व्यासः " अनाद्यन्तमजं दिव्यं" ( ११ ) इत्यादिना प्रश्नद्वयोत्तरमभ्यधात् । ... ... ... | ...४२४ |
| २३२ | ४३ | पुनः शुकं प्रत्युपदिशन् व्यासो " ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं " ( १ ) इत्यादिना ब्रह्मतो मनो मनस्त आकाश इत्यादिक्रमेण वेदपर्यंतां सृष्टिमभिधाय " ऋषयस्तपसा वेदान् " ( २५ ) इत्यादिना ऋषीणां वेदप्राप्त्यादिकमभ्यधात् । ... ... | ४३८ |
| २३३ | १९ | व्यासः " प्रत्याहारं तु वक्ष्यामि " ( १ ) इत्यादिनाध्यायसमाप्तिपर्यन्तेन ग्रंथेन क्रमप्राप्तं प्रलयं न्यरूपयत् । ... | ४४१ |
| २३४ | ३८ | " ब्राह्मणस्य तु यत्कृत्यं तत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु " ( १ ) इत्युक्त्वा व्यासो ब्राह्मणस्य कृत्यान्यभिधाय " देवर्षिपितृगुर्वर्थे " ( १३ ) इत्यादिना दानस्यावश्यकर्तव्यं निरूप्य रन्तिदेवादिदृष्टान्तविवरणेन तदेव द्रढयति स्म ... ... | ४४२ |
| २३५ | ३२ | " त्रयीं विद्यामवेक्षेत " ( १ ) इत्यादिना ब्राह्मणस्यावश्यकर्तव्यमुपदिश्य ज्ञानपूर्वकमुक्तमकर्माणि कुर्वतः सिद्धिं चाभिधाय " पञ्चेन्द्रियजलां घोरां " ( ११ ) इत्यादिना रूपकेण संसारनदीं प्रदर्श्य तत्तरणाय प्रज्ञाप्लवमभिधाय तत्सम्पादनाय साधनान्यभ्यधाद्व्यासः । ... | ४४३ |
| २३६ | ४१ | " अथ चेद्रोचयेदेतत " ( १ ) इत्यादिना मोक्षकामो ज्ञानवान् भवेदित्यभिधाय देशकर्मादिद्वादशनियमनपूर्वकं " यच्छेद्वाङ्मनसी " ( ४ ) इत्यादिना मनोवाङ्नियमनं चोक्त्वा " धर्मोपस्थो ह्रीनिषेवः " ( ९ ) इत्यादिना रथरूपकेण योगमुपायमुपदिशन् बाह्यानि तदङ्गान्याचख्यौ । ततः पृथिव्यादीनां जयमभिधाय "पञ्चविंशतितत्वानि" ( २९ ) इत्यादिना तद्विषये योगसांख्ययोर्विशेषं व्याचख्यौ । | ४४५ |
| २३७ | २५ | " अथ ज्ञानप्लवं धीरः " ( १ ) इत्यादि वदन्तं व्यासं प्रति शुकः " किं तज्ज्ञानमथो विद्या " ( २ ) इत्यादि पप्रच्छ । संशयकारणभूतानि शून्यवादिप्रभृतीनां मतान्युपन्यासपूर्वकं यस्तित्वत्यादिना निरस्य " स्थावरेभ्यो विशिष्टानि " ( १२ ) इत्यादिना विदुषो ब्रह्मनिष्ठस्य श्रैष्ठ्यमाह व्यासः ... | ४५० |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| २३८ | २१ | "एषा पूर्वतरा वृत्तिः" (१) इत्यादिना ब्राह्मणस्य नित्यां वृत्तिमभिधाय "पौरुषं कारणं केचित्" ( ४ ) इत्यादिना मतान्तराण्युपन्यासपूर्वकं निरस्य ज्ञानस्वरूपं निर्णीतवान् व्यासः | ४५१ |
| २३९ | ३४ | एवं व्यासोक्तं प्रशस्य शुकः "प्रज्ञावान् श्रोत्रियो यज्वा" (२) इत्यादिना ब्रह्मप्राप्तिः कथं भवति, केन प्रकारेण भवति, सांख्ये वा योगे वा, इति पप्रच्छ । अत्रोत्तरं वदन् व्यासो "नान्यत्र विद्यातपसोः" (५) इत्यद्याभिधाय "क्रान्ते विष्णुर्बले" (८) इत्यादिनाध्यायसमाप्तिपर्यन्तेन ग्रन्थेन सांख्यस्यैव सिद्धान्तत्वं प्रतिपादयति स्म ... ... | ४५४ |
| २४० | ३६ | योगकृत्यं कथयितुं प्रतिजानन् व्यासो योगकारिणां कामादित्यागं, सत्त्वगुणाश्रयेण निद्रोच्छेदनं दोषजयादिकं, मनसि पञ्चेन्द्रियाणां स्थापनं, मनसः स्थिरीकरणं चाह स्म ... | ४५७ |
| २४१ | २० | "यदिदं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च। कां दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा" ( १ ) इति शुकेन पृष्टो व्यास "कर्मणा बध्यते जन्तुः" ( ७ ) इत्यादिना कर्मणा बन्धं विद्यया तन्मोचनं चाभिधायोभयप्राप्ये गती अभिदधाति स्म ... | ४५८ |
| २४२ | ३० | पुनरुक्तानुवादपूर्वकं "वेदे वचनमुक्तं तु" ( ३ ) इत्यनेन कर्मकरणतत्त्यागयोर्व्यवस्थां पृच्छति शुके व्यासो "यथा वै विहिता वृत्तिः" ( ५ ) इत्यादिना तामाह स्म । "कुरु कर्म त्यजेति विरुद्धयोर्वाक्ययोः शास्त्रता कथम्" इत्यादिनाऽशास्त्रत्वात्प्रामाण्याभावे प्रसक्ते प्रामाण्यमुभयोः कथमिति पृच्छन्तं शुकं प्रति व्यासः कर्मणां चित्तशुद्ध्यर्थत्वं मनसि निधाय चातुराश्रम्यधर्मान्वदन्प्रथमं ब्रह्मचारिधर्मानाह ... ... | ४६० |
| २४३ | २९ | "द्वितीयमायुषो भागम्" ( १ ) इत्यादिना क्रमप्राप्तान् गृहस्थधर्मानाख्यायान्ते "अतः परं" ( २९ ) इत्यादिना वानप्रस्थाश्रमो विधेय इति व्याजहार व्यासः ... ... | ४६१ |
| २४४ | ३१ | भीष्मस्य युधिष्ठिरं प्रत्युक्तिः। "गृहस्थस्तु यदा पश्येत्" ( ४ ) इत्यादिना व्यासो वानप्रस्थधर्मानभिधाय "चतुर्थे चायुषः शेषे" ( २२ ) इत्यादिना संन्यासं कुर्यादित्याह ... ... | ४६३ |
| २४५ | ३६ | "वर्तमानस्तथैवात्र" ( १ ) इति शुकप्रश्ने व्यासः "प्राप्य संस्कारमेताभ्याम्" ( २ ) इत्यादिनाऽध्यायसमाप्तिपर्यन्तेन ग्रन्थेन यतिधर्मानाह ... | ४६६ |
| २४६ | २३ | "प्रकृत्यास्तु विकारा ये" (१) इत्यादिना चक्षुरादय आत्मानं न पश्यन्ति तांस्त्वयं पश्यतीत्याख्याय "इंद्रियेभ्यः परे ह्यर्थाः" (३) इत्यादिना आत्मनो भूतेषु गूढत्वं "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या" ( ५ ) इत्यादिनाऽऽत्मनःसत्त्वे मानं च प्रदर्श्य ध्यानेनोपरतस्यामृतत्वामिंद्रियवश्यस्य मृत्युं चाभिधाय "आहृत्य सर्वसंकल्पान्" ( ९ ) इत्यादिना सत्त्वे निवेशितस्य चेतसः प्रसादमुक्त्वा "अतो गुह्यतरार्थं" ( २१ ) इत्यादिनाऽध्यात्मकथनं प्रतिजज्ञे व्यासः... | ४६८ |
| २४७ | २५ | "अध्यात्मं विस्तरेणेह" ( १ ) इत्यादि पृच्छन्तं शुकं प्रति व्यासः सविस्तरमध्यात्ममाचचक्षे | ४६९ |
| २४८ | २४ | "मनो विसृजते भावम्" ( १ ) | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | इत्यादिना मनोबुद्ध्यहंकाराणां स्वरूपादिकमभिधाय जगतो बुद्धिमात्रकल्पितत्वं जानतः "एवं स्वभावमेवेदं" (१३) इत्यादिना शोकाभावं फलमभिधाय मनसेंद्रियनियमने आत्मा प्रकाशते इत्याद्याह स्म व्यासः... ... | ४७१ |
| २४९ | १४ | "सृजते तु गुणान् सत्त्वं" (१) इत्यादिना बुद्धेर्गुणस्रष्टृत्वं क्षेत्रज्ञस्याधिष्ठातृत्वादुदासीनत्वं संवर्ण्य "अनादिनिधनो ह्यात्मा" (५) इत्यादिनाऽऽत्मानं बुद्ध्वा विचरतः शमप्राप्त्यादिकमाह स्म व्यासः... ... ... | ४७३ |
| २५० | २५ | "यस्माद्धर्मात्परो धर्मः" (१) इत्यादिना विद्याप्रापकं धर्मं पृच्छति शुके व्यासो "धर्मं ते संप्रवक्ष्यामि" (२) इत्यादिना तान्धर्मानाख्यास्यन् "दृष्ट्वा त्वमात्मनात्मानं" (१०) इत्यादिनाऽऽत्मानं ज्ञात्वा "सर्वतः स्रोतसं" (१२) इत्यादिना निरूपितां संसारनदीं तीर्त्वा ब्रह्मैव भविष्यसीत्याद्याह स्म... ... | ४७४ |
| २५१ | २४ | "गंधान् रसान्" (१) इत्यादिना ब्रह्मप्राप्तिसाधनान्याख्याय जीवन्मुक्तस्य लक्षणान्यप्यवादीद्व्यासः... ... ... | ४७६ |
| २५२ | १२ | एतावत्पर्यन्तं विस्तरेण निरूपितमध्यात्मं "द्वंद्वानि मोक्षजिज्ञासुः" (१) इत्याद्यध्यायेन सुखसंग्रहार्थं संक्षेपेणाख्यातवान् व्यासः... ... ... | ४७७ |
| २५३ | १५ | "शरीराद्विप्रमुक्तं हि" (१) इत्यादिना स्थूलशरीरांतर्गतं लिंगशरीरं तद्विषये विदुषां योगिनामनुभवं प्रदर्श्य 'तमेतमतितेजोंशं' (१२) इत्यादिना रजस्तमोभ्यामाविष्टानामात्मदर्शनाभावं "योगशास्त्रपरा भूत्वा" (१३) इत्यादिना योगेन तद्दर्शनं चाभ्यधाद्व्यासः... ... | ४७९ |
| २५४ | १४ | "हृदि कामद्रुमश्चित्रः" (१) इत्यादिना हृदयक्षेत्रस्थं कामद्रुमं रूपकेण निरूप्य तन्निवृत्तस्य दुःखाभावं "शरीरं पुरमित्याहुः" (९) इत्यादिना संसारं कुराज्यरूपकेण चाभिधाय तत्सक्तस्यानर्थमभिदधाति स्म व्यासः... | ४८० |
| २५५ | १३ | "भूतानां परिसंख्यानं" (१) इत्यादिना व्यासोक्तमुपायं वक्तुं प्रतिजानानो भीष्मो युधिष्ठिरं प्रत्युपादिशन् "भूमेः स्थैर्यं" (३) इत्यादिना प्रत्येकस्य दश दशेत्येवं क्रमेण पंचभूतानां मिलितान् पंचाशद्गुणानभिधाय मनसो बुद्धेश्च गुणानाख्याति स्म। "कथं पंचगुणा बुद्धिः" (११) इति पृच्छंतं युधिष्ठिरं प्रति "आहुः षष्टिं बुद्धिगुणान्" (१२) इत्यादिनोत्तरमाह भीष्मः... ... | ४८२ |
| २५६ | २१ | "य इमे पृथिवीपालाः" (१) इत्यारभ्य "कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः" (६) इत्यन्तेन मृत्युविषयकं प्रश्नं कुर्वाणं युधिष्ठिरं प्रत्यकम्पनराजचरितकथनद्वारोत्तरमाह स्म भीष्मः। पुत्रशोकार्तमकम्पनं प्रति नारदस्योक्तिः। स्वसृष्टाभिः प्रजाभिर्वर्द्धमानाभिस्त्रिलोक्यां निरुच्छ्वासायां तत्संजिहीर्षया प्रजापतिर्यदा क्रुद्धस्तदा तदिन्द्रियेभ्यो निर्गतेऽग्नौ प्रजा दहति सति स्थाणुः पितामहं प्रति शरणं जगाम | ४८२ |
| २५७ | २२ | स्थाणुप्रजापत्योः संवादानन्तरं स्थाणुवाक्यात्तेजः संहरतो ब्रह्मणः खेभ्यः प्रजासंहारकारिणी नार्युदपद्यत। उत्पद्य दक्षिणां दिशं गच्छन्ती नारी "मृत्यो" इत्याहूय ब्रह्मणा "प्रजा संहर" (२०) इत्युक्ता सती चिन्तयाऽश्रूण्यमुञ्चत्तानि च प्रजापति- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | लोकानां हितायांजलावधारयत ... ... | ४८३ |
| २५८ | ४२ | "त्वया सृष्टा कथं नारी" (२) इत्यादिना संहारमनिच्छंतीं नारीं प्रति "मृत्यो संकल्पितो मे त्वं" (७) इत्यादिना ब्रह्मा पुनः प्रेरयामास। एवं पुनः पुनर्नियुज्य प्रजापतौ गतरोषे सति सा नारी धेनुकामाश्रमादौ गत्वा तपश्चचार। तपसा तुष्टेन ब्रह्मणा पुनः संहारे नियुज्यमाना तदनिच्छन्त्यपि "अधर्मो नास्ति मे मृत्यो" (२८) इत्याद्युक्त्वा "ये तवाश्रुबिंदवो मयाञ्जलौ धृतास्ते प्राणिनो मारयिष्यन्ति" (३४) इत्यभिहिता सती शापभयात्तन्नियोगमङ्गीचकार। इत्यभिधाय "अथो प्राणान् प्राणिनामन्तकाले" (३७) इत्यादिना राजानं सांत्वयन्नारदः "तस्मात्पुत्रं मा शुचो राजसिंह" (४१) इत्याह स्म | ४८५ |
| २५९ | २७ | "कोऽयं धर्मः कुतो धर्मः" (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो धर्मस्वरूपं निरूप्य "तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न ते कार्या" (२७) इत्याद्याह स्म। ... | ४८७ |
| २६० | २० | "सूक्ष्मं साधु समुद्दिष्टम्" (१) इत्यारभ्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तेन ग्रन्थेन धर्मतत्त्वस्य दुर्ज्ञेयत्वमाचाराणामनैकाग्र्यं व्यभिचारित्वं च प्रतिपाद्य स्वभावेनैव सुखदुःखादिव्यवस्था न श्रुत्यादिप्रमाणकेन धर्मेणेत्याचिक्षेप युधिष्ठिरः ... ... ... | ४८९ |
| २६१ | ५१ | युधिष्ठिरेणैवमुक्तो भीष्मो धर्मे प्रमाणभूतं तुलाधारजाजलिसंवादरूपमितिहासं व्याजहार। वनचरो जाजलिनामा कश्चिद्ब्राह्मणः समुद्रतीरे जले तपः कुर्वन् जल एव सर्वां महीं पश्यन् दूरदर्शित्वसिद्धिप्राप्त्या गर्वितः सन् "नेमया सदृशोऽस्तीह" (६) इत्याद्युवाच। तदा पिशाचैः "नैवं त्वं वक्तुमर्हसि" (७) इत्यादिना उक्तस्तैरेव बहिर्निष्कास्य दर्शितमार्गो वाराणस्यां तुलाधारं प्रति जगाम। "केन कर्मणा जाजलिः सिद्धिं प्राप" (१२) इति युधिष्ठिरप्रश्ने सिद्धिकारणं तपश्चर्यादिकमाख्याय गर्वितस्य जाजलेराकाशवाणीश्रवणेन वाराणस्यां तुलाधारं प्रति गमनं तं प्रति तुलाधारवाक्यं चाचष्ट भीष्मः ... | ४९० |
| २६२ | ५५ | "विक्रीणीतः सर्वरसान्" (२) इत्यादिना जाजलिनाऽऽक्षिप्तस्तुलाधारो "वेदाहं जाजले धर्मम्" (५) इत्यादिना हिंसाप्रधानयज्ञकृष्यादिवर्जितान् निवृत्तिधर्मानेवाचख्यौ ... | ४९४ |
| २६३ | ४२ | "अयं प्रवर्तितो धर्मः" (१) इत्यादिना जाजलिना पुनराक्षिप्तस्तुलाधारो हिंसाप्रधानान्धर्मान्निरस्याहिंसाप्रधानान्धर्मानेवोपदिदेश। "न वै मुनीनां शृणुमः" (३६) इत्यादिके जाजलिप्रश्ने तुलाधारस्य "उत यज्ञा उतायज्ञाः" (३८) इत्यादि तदुत्तरकथनम् ... ... | ४९८ |
| २६४ | २३ | स्वोक्ते अहिंसाधर्मे प्रत्ययोत्पादनार्थं तुलाधारेणादिष्टेन जाजलिनाऽऽहूताः पक्षिणोप्यहिंसाहिंसात्मकधर्मयोरिह परत्र च प्रत्यक्षं फलमित्यभिधाय हिंसायाः श्रद्धाविघातकत्त्वं चाख्याय श्रद्धामेव प्रशशंसुः। भीष्मस्तुलाधारस्य जाजलेश्च स्वर्गगमनमभिधायोपसंजहार ... | ५०० |
| २६५ | १४ | एतावत्पर्यंतमुपपादितमहिंसाधर्ममेव प्रशंसितुं विचख्नुगीतां | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कथयन् भीष्मो हिंसाधर्मं निनिंद। "शरीरमापद्श्चापि" (१३) इत्यादिना हिंसाशून्यस्य कथं शरीरनिर्वाह इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः शरीराविरोधेन धर्माचरणं कर्तव्यमुपदिदेश... ... | ५०१ |
| २६६ | ७८ | "कथं कार्यं परीक्षेत" (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः किमपि कार्यं चिरेण विचार्य कर्तव्यमित्येतत्तात्पर्यकं चिरकार्युपाख्यानं व्याजहार।: अहल्यायाः कस्मिंश्चित्काले व्यभिचाररूपमपचारं दृष्ट्वा चिरकारिणं पुत्रं प्रति "इमां जननीं जहि" इत्युक्त्वा गौतमे वनं गते सति विचारयन् पित्राज्ञानुलंघने हेतुभूतपितृगौरवमुपपाद्य तथैव मातृगौरवमुद्भाव्य स्त्रीणां निरपराधत्वं पुरुषाणां सापराधत्वं च व्यचिंतयत्। एवं विचारयति चिरकारिणि बहुकालातिक्रमानंतरमाश्रममागतो गौतमः पश्चात्तापं कुर्वंश्चिरकारिणं पुत्रं स्वस्त्रियमहल्यां च दृष्ट्वा "चिरकारिक भद्रं ते" (६७) इत्यादिना चिरकारिणं प्रशंसति स्म | ५०५ |
| २६७ | ३६ | "कथं राजा प्रजा रक्षेत्" (१) इत्यनुयुंजानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मो द्युमत्सेनसत्यवत्संवादरूपमितिहासमब्रवीत् ... ... | ५०७ |
| २६८ | ४० | "अविरोधेन भूतानां" (१) इत्यादिना गार्हस्थ्ययोगधर्मयोः किं श्रेय इति पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्म उभयोरपि धर्मयोर्महाफलत्वं सदाचरितत्वं चाभिधाय कपिलगोसंवादरूपमितिहासमभ्यधात्। गृहमागताय त्वष्ट्रे मधुपर्के नहुषे लब्धुं नियुक्तां गां दृष्ट्वा वेदा ३ इत्युक्तवन्तं कपिलं प्रति योगबलेन गवि प्रविष्टः स्यूमरश्मिः "हंहो वेदा३ यदि मताः" (९) इत्यादुवाच। स्यूमरश्मिवाक्यं श्रुत्वा कपिलो नाहं वेदान् विनिंदामि इत्यादिना चतुर्णामाश्रमाणां फलेषु ज्यायस्त्वकनीयस्त्वे उपपाद्यानारंभेऽदोषमारंभे दोषं चाभ्यधात्। कपिवाक्यं श्रुत्वा स्यूमरश्मिः "स्वर्गकामो यजेतेति सततं श्रूयते श्रुतिः" (१८) इत्यादिना यागीयहिंसाया हिंसात्वाभावं प्रतिपाद्य हिंसारंभयोरदोषत्वादिकमाह स्म ... ... ... ... | ५१० |
| २६९ | ६८ | कपिलः "एतावदनुपश्यन्ति यतयः" (१) इत्यादिना निर्द्वन्द्वादिविशेषेण विशिष्टानां सनातनलोकप्राप्तिमाख्याय "गार्हस्थ्ये किं प्रयोजनं" (४) इत्याह। स्यूमरश्मिर्जनकादीनां गार्हस्थ्ये एव विद्वत्त्वदर्शनात्कर्म समुच्चितैव विद्या फलदेत्यभिप्रेत्य "यद्येषा परमा काष्ठा" (५) इत्यादिना गार्हस्थ्यस्य सर्वाश्रमाधारत्वं विश्वोत्पत्त्यादिहेतुत्वादिकं प्रतिपाद्य मोक्षो गार्हस्थ्ये एव, सिद्ध्यतीत्याह। कपिलो "दर्शं च पौर्णमासं च" (२०) इत्यादिना चित्तशुद्ध्यर्थं चातुर्मास्यान्तानां कर्मणां कर्तव्यत्वमभिधाय "नाक्षैर्दीव्येत्" (२४) इत्यादिना पाणिवागुदरोपस्थगुप्तिमाख्याय यज्ञादीनामन्तवत्फलत्वं जानन्, ज्ञाननिष्ठामेवाश्रयस्वेत्याह। "यथा च वेदप्रामाण्यं" (३९) इत्यादि पृच्छन्तं स्यूमरश्मिं प्रति "प्रत्यक्षमिह पश्यन्ति" (४०) इत्यादिनोत्तरमाह कपिलः। "स्यूमरश्मिरहं ब्रह्मन्" (४१) इत्यादिना स्वप्रत्यभिज्ञां दत्वा "इमं च संशयं" (४२) इत्यारभ्य "निर्णये किं निरामयम्" (४८) इत्यन्तेन ग्रंथेन पुनः पृच्छन्तं स्यूमरश्मिं प्रति "यद्यदाचरते शास्त्रं" (४९) इत्या- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दिनोत्तरमाह कपिलः। " सर्वमेतन्मया ब्रह्मन् " (५७) इत्यारभ्य "यथा ते विदितो मोक्षस्तथेच्छाम्यनुशिक्षितुं "(६९) इत्यंतेन पुनः प्रश्नं कृतवान् स्यूमरश्मिः | ५१७ |
| २७० | ४७ | " वेदाः प्रमाणं लोकानां" (१) इत्यादिना कपिलः कर्मकाण्डस्य ज्ञानाङ्गत्वं प्रतिपादयन् सदाचारं प्रशस्य " निरापद्धर्म आचारः" (२१) इति तल्लक्षणमाख्याय तस्यैकस्यैव चतुर्धा विभागं प्रदर्श्य प्रश्नप्रत्युत्तरभावेनात्मविद्यामुपदिदेश ... ... ... | ५२१ |
| २७१ | ५६ | " धर्ममर्थं च कामं च " (१) इत्यादित्रिवर्गमध्ये कस्य लाभः श्रेयान् इति पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मः कुण्डधारोपाख्यानं प्रतिपादयन्नुत्तरमाह स्म। धनार्थी कश्चिद्ब्राह्मणो बह्वीर्देवता आराध्य धनं प्राप्नुवन् देवानुचरं कुण्डधाराख्यं मेघमन्यैर्मानुषैरनावृतं दृष्ट्वा तमाराधयति स्म। ब्राह्मणतपसा तुष्टे कुण्डधारे उपकारप्रकारप्रवर्तिकां वाचमुदीरयति तत्तेजःप्रभावाद्ब्राह्मणः स्वप्ने सर्वभूतानि पश्यन् देवाज्ञया याचकेभ्यः फलानि समर्पयन्तं मणिभद्रमपश्यत्। कुण्डधारं भूमिपतनपूर्वकं "यदि प्रसन्ना देवा मे " (२०) इत्याद्युक्तवन्तं प्रति मणिभद्रो धनार्थिनेऽस्मै ब्राह्मणाय धनं दीयतामित्युवाच। एतच्छ्रुत्वा ब्राह्मणस्य धर्मे प्रवृत्त्यर्थं पुनः पुनः प्रार्थयति कुण्डधारे मणिभद्रः " प्रीतास्ते देवताः सर्वाः" (२९)इत्यादिना तदनुजज्ञे। देवताप्रसादान्निर्विण्णे ब्राह्मणे वनं गत्वा तपश्चरति सति तत्प्रभावाल्लब्धदिव्यचक्षुषि च सति पुनः कुण्डधारस्तमागत्य निरयस्थान् राज्ञः स्वरूपेण स्थितान् क्रोधादींश्च दर्शयित्वा " एतैर्लोकाः सुसंवृद्धाः" (४८) इत्याद्याह स्म। प्रणामादिपूर्वकं सत्कृते कुण्डधारेऽन्तर्हिते ब्राह्मणस्तत्प्रसादात्सिद्धिं प्राप्य विचचार यथेच्छम् ... ... ... | ५२३ |
| २७२ | २० | " बहूनां यज्ञतपसाम् " (१) इत्यादिना हिंसायज्ञस्वरूपं पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मो नारदकथितमुञ्छवृत्त्युपाख्यानं कथयन्, हिंसात्मकं यज्ञं निनिंद ... | ५२४ |
| २७३ | २४ | "कथं भवति पापात्मा" (१) इत्यादिना युधिष्ठिरेण कृतानां चतुर्णां प्रश्नानामुत्तराणि क्रमेणाह भीष्मः ... ... ... | ५२५ |
| २७४ | १९ | मोक्षोपायजिज्ञासया युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो मोक्षोपायानादिदेश ... ... ... | ५२७ |
| २७५ | ३८ | ब्रह्मपदप्राप्तिविषये नारदासितदेवलसंवादं कथयति स्म भीष्मः। " कुतः सृष्टमिदं विश्वं " (३) इत्यादिके नारदप्रश्ने सितः सृष्टिवृत्तान्तं सविस्तरमाचचक्षे | ५३१ |
| २७६ | १४ | " भ्रातरः पितरः पौत्राः" (१) इत्यादिना तृष्णानिवृत्तिप्रकारं पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मस्तद्विषये जनकगीतं कथयति स्म। | ५३२ |
| २७७ | ३९ | "अतिक्रामति काले किं श्रेयः", (१) इति पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मः पूर्वोक्तं पितापुत्रसंवादमाह स्म। " धीरः किं स्वित्तात कुर्यात् " (५) इत्यादिके पुत्रप्रश्ने पिता ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्मान् कथयति स्म। " एवमभ्याहते लोके " (७) इत्यादि ब्रुवन्तं पुत्रं प्रति " कथमभ्याहतो लोकः" (८) इत्यादि पितृप्रश्नः। "मृत्युनाभ्याहतो लोकः"(९) इत्यादेः पुत्रस्योपदेशात् पितुर्ज्ञानमुदेति स्म... | ५३३ |
| २७८ | २२ | " किंशीलः किंसमाचारः " (१) इत्यादिना मोक्षसाधनानि | |

अ० श्लो० विषयः पृष्ठम्

पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मो "मोक्षधर्मेषु निरतः" (२) इत्यादिना हारितकथितानि तान्याचष्ट ५३५

२७९ ३४ "धन्या धन्या इति जनाः" (१) इत्यादिके राज्यविरक्तस्य युधिष्ठिरस्य प्रश्ने भीष्मो दुःखानामन्तवत्त्वमभिधाय भ्रष्टराज्यवृत्रगीतं कथयन्नुपदिदेश। भ्रष्टैश्वर्यो वृत्रासुर उशनसा "कच्चित् पराजितस्याद्य न व्यथा तेऽस्ति दानव" (१५) इति पृष्टः सन् "सत्येन तपसा चैव" (१६) इत्यादिना संसारमोक्षौ विदित्वा नाहं शोचामीत्याह। तच्छ्रुत्वा तद्बुद्धिपरीक्षार्थं "धीमन् दुष्टप्रलापांस्त्वं तात कस्मात्प्रभाषसे" (२३) इति पृच्छन् तमुशनसं प्रति वृत्रः "प्रत्यक्षमेतद्भवतः" (२४)इत्यादिना स्वकर्मानुरोधेनैश्वर्यप्राप्तिभ्रंशौ युद्धकाले विष्णुदर्शनं चाख्याय "ऐश्वर्यं वै महद्ब्रह्म" (३१) इत्यादिकं पप्रच्छ ...५३७

२८० ७० वृत्रप्रश्नं श्रुत्वा तं प्रति विष्णुमाहात्म्यं कथयितुं प्रतिज्ञातवत्युशनसि तत्कालागतः सनत्कुमारस्तत्प्रेरितः सन् "शृणु सर्वमिदं दैत्य" (७) इत्यादिना तत्कथयति स्म। वृत्रः सनत्कुमारोक्तं विष्णुमाहात्म्यं श्रुत्वा "एवं गते मे न विषादोऽस्ति कश्चित्" (५७) इत्याद्युक्त्वा प्राणानुत्सृज्य परमं स्थानमवाप। "अयं स भगवान्देवः" (६०) इत्यादिना पुरोवर्तिनं श्रीकृष्णं निर्दिशति युधिष्ठिरे तत्तत्त्वमुपदिदेश भीष्मः। "वृत्रेण परमार्थज्ञ" (६५) इत्यादिना वृत्रासुरगतिमनूद्य स्वगतिविषये सन्देहमुद्भाव्य भीतं युधिष्ठिरं "शुद्धाभिजनसंपन्नाः" (६९) इत्यादिनाऽऽश्वासयति स्म भीष्मः ... ... ५४५

२८१ ४४ "अहो! धर्मिष्ठता तात" (१) इत्यादिना वृत्रप्रशंसापूर्वकं तद्वधप्रकारं ज्ञातुं पृच्छति युधिष्ठिरे तं कथयन्भीष्म इन्द्रवृत्रयोर्युद्धं वर्णयति स्म। युद्धे मोहित इन्द्रो वसिष्ठप्रोत्साहितो विवृद्धतेजाः सन् वृत्रप्रणीतां मायां व्यपाकर्षत्। बृहस्पत्यादिभिः प्रार्थितस्य महेश्वरस्य तेजो ज्वररूपेण वृत्रशरीरमविशत् विष्णुश्चेन्द्रवज्रम्। महेश्वरेण "एष वृत्रो महान् शक्र" (३४) इत्याद्यभिधाय "एतत्त्वां मामकं तेजः" (३८) इत्यादि व्याजहार। ततो देवा जहृषुः ... ... ५४७

२८२ ६५ माहेश्वरज्वराविष्टो गात्रकंपादियुक्तो वृत्रासुर इन्द्रप्रेषितेन वज्रेण हतः पपात। वृत्रशरीरान्निर्गतया ब्रह्महत्यया गृहीत इन्द्रो ब्रह्माणं शरणं जगाम। तेन चेन्द्रं मोचयितुमाज्ञप्ता सा स्वनिवासस्थानमयाचत। ब्रह्मणा ब्रह्महत्यायाश्चतुर्धा विभागं कृत्वा प्रथमभागग्रहणार्थमाज्ञप्तोऽग्निस्तत्कथितं तन्निवृत्त्युपायं श्रुत्वैकं भागं जग्राह। एवमेव ब्रह्माज्ञया वृक्षौषधिभिरप्सरोभिरद्भिश्च भागत्रितये गृहीते मुक्त इन्द्रो ब्रह्माज्ञयाऽश्वमेधं कृत्वा श्रिया युक्तः प्रहर्षं लेभे ... ... ५४९

२८३ ६३ ज्वरोत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामीति युधिष्ठिरेणानुपृष्टो भीष्मो ज्वरोत्पत्तिकथनं प्रतिजज्ञे। पुरा देवादिभिरुपास्यमाने महादेवे कैलासे स्थिते सति कदाचिद्दक्षयज्ञं गच्छतो देवान् दृष्ट्वा पार्वत्या पृष्टेन शङ्करेण 'दक्षयज्ञं प्रति गच्छन्ति'

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | इत्युक्ते पुनस्तया त्वं कस्मान्न गच्छसीति पृष्टेन स्वभागाभावान्न गच्छामीत्युक्ता सा तूष्णीं बभूव। पार्वत्या अभिप्रायं ज्ञात्वाऽनुचरैः सह दक्षयज्ञं ध्वंसितुं प्रवृत्ते महादेवे तद्भयान्मृगरूपं धृत्वा पलायमानं यज्ञमनुसरति तस्मिंस्तल्ललाटनिर्गतस्वेदबिन्दोरुत्पन्नः क्रूरः पुरुषो यज्ञमदहत। देवादयश्च तद्भयादपलायन्त। ब्रह्मणा "भवतोऽपि सुराः सर्वे" (४५) इत्यादिना यज्ञे भागदानं प्रकल्प्य 'त्वया सृष्टोऽयं पुरुषो ज्वरनामा लोके प्रचरिष्यति इत्युक्त्वैतस्य भागं कुर्वित्युक्ते महादेवस्तुष्टः सन् शीर्षाभितापादिभेदेन ज्वरस्य विभागं चकार। भीष्मः "एतन्माहेश्वरं तेजः" (५७) इत्यादिनोपसंहारं कृत्वा ज्वरोत्पत्तिश्रवणपठनफलमभ्यधात्। | ५५१ |
| २८४ | २०८ | दक्षस्याश्वमेधः कथं नष्टः इति जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनस्तद्वृत्तान्तं व्याजहार। यज्ञे शिवमदृष्ट्वा क्रुद्धस्य दधीचेर्दक्षस्य चोक्तिप्रत्युक्ती। पार्वत्योत्तेजितः शिवो वीरभद्रमुत्पाद्य तं पार्वतीमन्यूद्भवया भद्रकाल्या सह दक्षयज्ञं विहन्तुं प्रेषयामास। यज्ञनाशं कुर्वन्वीरभद्रो ब्रह्मादिभिः प्रार्थितः स्वस्योत्पत्तिं तत्प्रयोजनं चाख्याय शिवं शरणं गच्छेत्युवाच दक्षं प्रति। वीरभद्रवाक्याच्छिवं स्तुतवति दक्षेऽग्निकुण्डात्समुद्भूतः शिवस्तत्प्रार्थनया यज्ञसमाप्तिं तथाऽस्त्वित्यनुजज्ञे दक्षश्च तमष्टोत्तरसहस्रनामभिस्तुष्टाव। सहस्रनामशुश्रूषया युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो नाम्नां सहस्रं, तेन तुष्टस्य शंकरस्य वरदानं चाख्याय तत्पाठफलमाचष्ट ... | ५६३ |
| २८५ | ४६ | "अध्यात्मं नाम यदिदम्" (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्तत्कथयन् पृथिव्यादिभूतानि तेषां गुणांश्चाख्याय "इन्द्रियाणि नरे पञ्च" (१५) इत्यादिना बुद्धेः सप्तमीत्वमभिधाय "प्रहर्षः प्रीतिरारम्भः"(२५) इत्यादिना सत्त्वादीनां गुणादिकं व्याख्याय "सत्त्वक्षेत्रज्ञयोः"(३३)इत्यादिना तद्भेदं प्रदर्श्य वस्तुतत्त्वमुपदिदेश | ५६६ |
| २८६ | २१ | "सुदुःखाश्च सुमृत्योश्च" (१) इत्यादिना सुखं वा दुःखं वा यथाऽस्माकं न स्यात्तथा कथयेति युधिष्ठिरप्रश्ने नारदसमंगसंवादरूपमितिहासमाचख्यौ भीष्मः "उरसैव प्रणमसे" (३) इत्यादिना सर्वदा विशोकत्वे हृष्टत्वे च कारणं पृच्छति नारदे समंगस्तत्कथयति स्म ... ... | ५६८ |
| २८७ | ५९ | शास्त्रतत्त्वानभिज्ञस्य संशयात्मनोऽकृतव्यवसायस्य च श्रेयो ब्रूहि इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो गुरुपूजादिना तस्य श्रेयोभिधाय तद्विषये गालवनारदसंवादरूपमितिहासमब्रवीत्। "यैः कश्चित्संमतो लोके" (५) इत्यादिनात्मश्रेयसि सन्दिहानेन गालवेन पृष्टो नारदः "आश्रमास्तात चत्वारः" (१२) इत्यादिना श्रेयःसाधनानि कथयित्वा "यत्रागमयमानानाम्" (४१) इत्यादिना गुरुशिष्यधर्माद्याख्यातवान् | ५७१ |
| २८८ | ४७ | "कथं न युक्तः पुरुषः"(१)इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः सगरारिष्टनेमिसंवादरूपमितिहासं व्याचचक्षे। "किं श्रेयः परमं ब्रह्मन्" (३) इत्यादिके सगरप्रश्ने अरिष्टनेमिः "सुखं मोक्षसुखं लोके" (५) इत्यादिना तदुत्तरमाचचक्षे ... ... ... | ५७४ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| २८९ | ३८ | उशना देवर्षिरसुराणां प्रियकरः सुराणां चाप्रियकरः कथमभूत् इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो देवानामप्रियकरत्वे कारणमभ्यधात्। "किमर्थमुशना महादेवजठरे व्यचरत्" (२१) इति युधिष्ठिरानुयोगे तदुत्तरं वदन् भीष्मो महादेवजठरे तस्य स्थितिकारणमभ्यधात्। स्वजीवितं प्रार्थयन्नुशना महादेववाक्याच्छिश्नद्वारा निर्गतः शुक्रेति नाम प्राप्य देव्या वचनाच्छिवेन मुक्तस्तं प्रणम्य जगाम ... ... | ५७५ |
| २९० | २६ | "किं कर्म पुरुषः कृत्वा श्रेयः प्राप्नोति" (२) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो जनकपराशरसंवादरूपेतिहासकथनेन तदुत्तरमाह। "किं श्रेयः सर्वभूतानां" (४) इत्यादिके जनकप्रश्ने "धर्म एव कृतः श्रेयान्" (६) इत्यादिना तदुत्तरं वदति स्म पराशरः | ५७८ |
| २९१ | २३ | "मनोरथरथं प्राप्य" (१) इत्यादिना देहं प्राप्यायुषो दौर्लभ्यं च बुध्वा ब्रह्मभावेन संपश्यन्मुच्यते इत्याद्यभिधाय "स्वयं कृत्वा तु" (११) इत्यादिना बुद्धिपूर्वकृतानां पापानां नाशाभावं प्रदर्श्य राज्ञा जेतव्याः शत्रवः इत्यादिना राज्ञां विशेषधर्मानाचष्ट... .... ... | ५७९ |
| २९२ | २३ | "कः कस्य चोपकुरुते" (१) इत्यादिना सर्वः प्राणी यत्कर्म कुरुते तदात्मार्थमेव कुरुते न परार्थमित्याख्याय विशिष्टस्येत्यादिना निर्धनस्य विशिष्टात्परिग्रहो दानेन तुल्यः सधनस्य तु दानं पुण्यतरमित्याद्यात्महितमनुशासन् रंतिदेवादीनुदाहरणत्वेन प्रदर्श्याग्न्यादीनां सेवादिकमभ्यधात्पराशरः... ... | ५८१ |
| २९३ | २१ | "वृत्तिः सकाशाद्वर्णेभ्य" (१) इत्यादिना वृद्धसेवां प्रशस्य ब्राह्मणादीनां धर्मान्व्याख्याय "प्राणसंतापनिर्दिष्टाः" (१६) इत्यादिना दानमेव प्रशशंस | ५८२ |
| २९४ | ३१ | "प्रतिग्रहागता विप्रे" (१) इत्यादिना दानार्थमर्थार्जनं नियम्य प्रासंगिकानि वृत्त्यन्तराण्यभिधाय "श्रूयन्ते हि पुराणेषु" (८) इत्यादिना कामक्रोधादिद्वारेण प्रजानां बंधनं प्रदर्श्य "एतस्मिन्नेव काले तु" (१५) इत्यादिना तन्निवृत्त्युपायं व्याजहार पराशरः ... ... ... ... | ५८४ |
| २९५ | ३९ | "एष धर्मविधिः" (१) इत्यादिना तपोविधिकथनं प्रतिज्ञाय "प्रायेण च गृहस्थस्य" (२) इत्यादिना गृहस्थधर्मं विनिन्द्य तपसः प्रशंसामकरोत् पराशरः | ५८६ |
| २९६ | ३९ | "वर्णो विशेषवर्णानां" (१) इत्यादिनोत्तरोत्तरमुत्कर्षः कथमिति पृच्छन्तं जनकं प्रति पराशरः "एवमेतन्महाराज" (३) इत्यादिना ईश्वरस्य वक्त्रादितश्चतुर्णां वर्णानां तेभ्यश्च संकरजातीयानामुत्पत्तिं चाभ्यधात्। "ब्रह्मणैकेन जातानां नानात्वं गोत्रतः कथं" (१०) इत्याद्यनुयुंजानं जनकं प्रति पराशरो "राजन् नैतत् भवेद्ग्राह्यं" (१२) इत्यादिना तेषां दुर्ज्ञेयत्वं व्याकुर्वन् मूलगोत्राणि चत्वारि कर्मतोऽन्यानि "गोत्राणि इत्याद्याह स्म। "वर्णानां विशेषधर्मान्सामान्यधर्मांश्चाभिधेहि" (१९) इति जनकेन पृष्टः पराशरस्तान्व्याजहार। "किं कर्म दूषयत्येनम्" (३१) इत्यादिके जनकप्रश्ने कर्म जातिश्चेत्युभयं दोषकारकमित्याह पराशरः। "कानि धर्म्याणि कर्माणि" (३५) इति जनकप्रश्ने तानि न्यरूपयत्पराशरः... | ५८८ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| २९७ | ४१ | "पिता सखायो गुरवः" (१) इत्यादिना धर्मकार्याण्युपादिक्षत्पराशरः। | ५९१ |
| २९८ | ४७ | "किं श्रेयः का गतिर्ब्रह्मन्" (२) इत्यादिके जनकप्रश्ने पराशरः "असंगः श्रेयसो मूलं" (३) इत्याद्युपादिदेश। एवं पराशरेणाभिहितं सर्वं श्रुतवतो जनकस्य हर्षप्राप्तिमाचष्ट भीष्मः | ५९४ |
| २९९ | ४५ | "सत्यं दमं क्षमां प्रज्ञां" (१) इत्यादिना पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मोऽस्माद्यर्थं यत्नमकुर्वतो यत्कर्तव्यं तन्निरूपयितुं साध्यहंससंवादरूपां हंसगीतामाचचक्षे "शकुने वयं स्म देवा वै" (४) इत्यादिना मोक्षधर्मं पृच्छत्सु साध्येषु हंसरूपेणाविर्भूतः प्रजापतिः "इदं कार्यममृताशाः शृणोमि" (७) इत्यादिना तमुपदिदेश। "केनायमावृतो लोकः" (३९) इति साध्यैः पृष्टो हंसः "अज्ञानेनावृतो लोकः" (४०) इत्यादिनोत्तरं जगाद। भीष्मः साध्यानां हंसस्य चोक्तिप्रत्युक्ती अभिधाय "संवाद इत्ययं श्रेष्ठः" (४५) इत्यादिनोपसंजहार | ५९७ |
| ३०० | ६२ | सांख्ययोगयोर्विशेषजिज्ञासया युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः "सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्ति" (२) इत्यादिना तयोर्विशेषमभ्यधात् "यदि तुल्यं व्रतं शौचं" (१०) इत्याद्यनुयुंजानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मो "रागं मोहं तथा स्नेहं" (११) इत्याद्युपादिदेश। "आहारान्कीदृशान् कृत्वा" (४२) इत्यादिना कीदृशमाहारं कृत्वा योगी बलमाप्नोतीति युधिष्ठिरेणापृष्टो भीष्मः "कणानां भक्षणे युक्तः" (४३) इत्यादिना बलाधायकानि भक्ष्याणि निगद्य कामक्रोधादिजयादिकमभ्यधात् | ६०२ |
| ३०१ | ११६ | "सम्यक्त्वयाऽयं नृपते" (१) इत्यादिना सांख्यविधिं जिज्ञासुना युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः "शृणु मे त्वमिदं सूक्ष्मम्" (३) इत्यारभ्य "तथा विज्ञाय चाशुभान्" (५२) इत्यन्तेन ग्रन्थेन तमाख्यातवान्। "कान् स्वगात्रोद्भवान् दोषान्पश्यसि" (५३) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो देहस्य कामादीन्दोषांस्तच्छेदनोपायांश्चाभिधाय "ततो दुःखोदकं घोरं" (६४) इत्यादिना संसारसमुद्रतरणादिकमाख्याय मोक्षप्राप्तिं चाचख्यौ। "स्थानमुत्तममासाद्य" (८०) इत्यादिना मोक्षे विशेषविज्ञानमस्ति न वेत्येतत्तात्पर्यकं युधिष्ठिरप्रश्नमाकर्ण्य भीष्मस्तदभिनंदनपुरःसरं "यथान्यायं त्वया तात" (८४) इत्यादिना तदुत्तरमभिधाय "ज्ञानं महद्यद्धि महत्सु" (१०८) इत्यादिना सांख्यज्ञानं प्रशशंस | ६०९ |
| ३०२ | ४९ | अक्षरक्षरयोर्विवेकं ज्ञातुं युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो वसिष्ठकरालजनकसंवादरूपमितिहासकथनमुखेनोत्तरमाह। "भगवन् श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनं" (११) इत्यादिना क्षराक्षरविषयकं प्रश्नं कुर्वति जनके क्षराक्षरयोर्विवेकं कथयन् वसिष्ठश्चतुर्विंशतितत्त्वात्मकं क्षरमुपदिश्य पंचविंशमक्षरत्वेनोपदिदेश | ६१२ |
| ३०३ | ५४ | प्रकृतिसंयोगात् पुरुषस्तामेवानुवर्तत इति, पूर्वाध्यायोक्तमेवाभिनयपूर्वकं विस्तरेण व्याचख्यौ वसिष्ठः | ६१४ |
| ३०४ | ११ | पूर्वोक्तं व्याख्यानं समाप्यान्ते "तत्क्षयान्मोक्ष उच्यते" (७) इत्यनेन प्रकृतिक्षयान्मोक्ष इत्याह | ६१५ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३०५ | ३९ | प्रकृतिक्षयान्मोक्ष इति श्रुत्वा प्रकृतिपुरुषयोस्तुल्यत्वेन निवृत्त्यसंभवं मन्वानस्य जनकस्य "अक्षरक्षरयोरेषः" (१) इत्याद्याक्षेपे वसिष्ठो "यदेतदुक्तं भवता" (११) इत्यादिना आक्षेपं निरस्यान्ते "एकत्वमक्षरं प्राहुर्नानात्वं क्षरमुच्यते" (३६) इत्याद्याह | ६१९ |
| ३०६ | ५० | नानात्वैकत्वविषये संदेहपूर्वकं "तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि" (४) इत्यादिना जनकेन कृतानां प्रश्नानामुत्तराणि वदन् वसिष्ठो "हन्त ते संप्रवक्ष्यामि" (६) इत्यारभ्य "योगदर्शनमेतावत्"(२६)इत्यन्तेन योगदर्शनमुक्त्वा सांख्यज्ञानमित्यादिना सांख्यदर्शनं व्याचष्टे स्म ... ... ... ... | ६२४ |
| ३०७ | ४८ | "विद्याविद्ये त्विदानीं मे"(१) इत्यारभ्य "विद्याविद्यार्थतत्त्वेन" (१०) इत्यन्तेन विद्याविद्ये अभिधाय "अक्षरं च क्षरं चैव" (१०) इत्यारभ्य अक्षरक्षरयोरेतत् (४२) इत्यन्तेन क्षराक्षरे निरूप्य "यदेव शास्त्रं" (४४) इत्यादिना सांख्ययोगयोरैक्यं बोधयति स्म वसिष्ठः ... ... ... | ६२८ |
| ३०८ | ५१ | "अथ बुद्धमथाबुद्धम्" (१) इत्यारभ्य "प्रोक्तो बुद्धश्च तत्त्वेन" (२२) इत्यन्तेन बुद्धाबुद्धबुद्ध्यमानान् प्रदर्श्य "नानात्वैकत्वं" (२२) इत्यादिनैकत्वनानात्वे निरूप्य "एतावदेतत्कथितं" (३१) इत्यादिनोपसंजहार वसिष्ठः। भीष्म इमं वसिष्ठकरालजनकसंवादमुपदिश्य "एतदुक्तं परं ब्रह्म"(४२) इत्यादिनैतत्प्राप्तिपरंपरामाख्याय "मा शुचः" (४६) इत्यादिकमुपदिदेश | ६३१ |
| ३०९ | २५ | अक्षराधिगमेऽधिकारहेतून्कांश्चिद्धर्मान्वक्तुं भीष्मो "मृगयां विचरन् कश्चित्" (१) इत्यादिना भार्गववसुमत्संवादेतिहासं व्याजहार... ... | ६३२ |
| ३१० | २६ | "धर्माधर्मविमुक्तं यत्" इत्यादिके युधिष्ठिरेण पृष्टे भीष्मो जनकयाज्ञवल्क्यसंवादेतिहासकथनद्वारोत्तरमवदत्। "कतींद्रियाणि विप्रर्षे" (५) इत्यादिना जनकेन कृतानां प्रश्नानामुत्तराणि वदन् याज्ञवल्क्यः "श्रूयतामवनीपाल" (८) इत्यादिना जनकं प्रशस्याष्टौ प्रकृतीः षोडश विकारान् महदादीन् नव सर्गांश्चाभ्यधात्... ... | ६३४ |
| ३११ | २१ | "अव्यक्तस्य नरश्रेष्ठ" (१) इत्यादिना कालसंख्यां वर्णयति स्म याज्ञवल्क्यः... ... | ६३५ |
| ३१२ | १७ | तत्त्वसंख्यानकालसंख्यानकथनमनूद्य "यथा संहरते" (२) इत्यादिना संहारं व्याजहार याज्ञवल्क्यः ... ... | ६३६ |
| ३१३ | २८ | पूर्वाध्यायान्ते "अध्यात्ममधिभूतं च" (१७) इत्यादिना कथनीयत्वेन प्रतिज्ञातान्यध्यात्माधिभूताधिदैवानि "पादावध्यात्ममित्याहुः" (१) इत्यादिना निर्दिश्य प्रकृतिः स्वच्छन्देन गुणान् विकुरुते इत्याह याज्ञवल्क्यः ... ... ... | ६३७ |
| ३१४ | १८ | "एते प्रधानस्य गुणाः" (१) इत्यादिना सात्त्विकादिना प्राप्याणि स्थानान्याख्यायाचेतनायाः प्रकृतेश्चेतनपुरुषाधिष्ठितायाः सर्गादिकर्तृत्वमाह याज्ञवल्क्यः। "अनादिनिधनावेतौ" (१३) इत्यादिना प्रकृतेरचेतनत्वमाक्षिप्य "अस्तित्वं केवलत्वं च" (१६) इत्यादीन् प्रश्नांश्चकार जनकः। ... ... | ६३९ |
| ३१५ | २० | तेषां प्रश्नानामुत्तराणि व्युत्क | |

अ० श्लो० विषयः पृष्ठम्

मेण वदन् याज्ञवल्क्यो "न शक्यो निर्गुणस्तात" (१) इत्यादिना सांख्यं प्रावोचत ... ६४०

३१६ २७ योगं कथयन् याज्ञवल्क्यः सांख्ययोगयोरेकत्वमुपपाद्य मनोधारणादिकं चाख्याय, युक्तयुञ्जानयोर्योगिनोर्लक्षणे अभिदधाति स्म, ... ... ६४२

३१७ २१ "तथैवोत्क्रममाणं तु" (१) इत्यादिनोत्क्रममाणस्य स्थानान्यभिधाय "अरिष्टानि प्रवक्ष्यामि" (९) इत्यादिनाऽरिष्टानि चोक्त्वा सांख्ययोगयोर्मुख्यं फलमाख्यातवान् याज्ञवल्क्यः ६४४

३१८ ११२ "अव्यक्तस्थं परं यत्तत्" (१) इत्यादिनोत्तरकथनं प्रतिज्ञाय सूर्यात् सकाशात् स्वस्य वेदप्राप्त्यादिकमभिधाय विश्वावसुगन्धर्वकृतानां "विश्वाविश्वं तथाश्वाश्वं" (२८) इत्यादिना चतुर्विंशतिप्रश्नानां स्वेन दत्तानि तावन्त्युत्तराणि चाख्याय "पञ्चविंशं" (५८) इत्यादिना पुनर्विश्वावसुकृते प्रश्ने तदुत्तरं चाभिधाय "एवमप्रतिबुद्धश्च" (८१) इत्यादिनोपसञ्जहार याज्ञवल्क्यः। एवमुपदिश्य याज्ञवल्क्ये गते जनकेन कृतं, गोकोटिदानादिकमभिधाय युधिष्ठिरमुपदिदेश भीष्मः ... ... ६५२

३१९ १५ ऐश्वर्यादिकमवाप्य "कथं मृत्युमतिक्रमेत्"(१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः पञ्चशिखजनकसंवादमाचख्यौ स्वधर्ममाचरन् निवृत्तिमार्गनिष्ठो जरांतकावतिक्रामति इत्यध्यायतात्पर्यम् ... ६५३

३२० १९० "अपरित्यज्य गार्हस्थ्य" (१) इत्यादिना गार्हस्थ्यमपरित्यजतो मोक्षः कथमिति पृष्टो भीष्मस्तद्विषये सुलभाजनकसंवादरूपमितिहासमुदीरयति स्म। कदाचित् जगत्यटंती सुलभा संन्यासिनां मुखाज्जनकस्य मोक्षशास्त्रनिष्णातत्वं श्रुत्वा सन्दिहाना तत्परीक्षार्थं रूपान्तरेण मिथिलामागता राज्ञा सत्कृता सती योगबलेन तच्छरीरं प्रविश्य तस्य चित्तं बबन्ध। सुलभयैवं निबद्धचित्तो जनकस्तां प्रति "भगवत्या क्व चर्येयं कृता क्व च गमिष्यसि" (२०) इत्यादिप्रश्नान् कुर्वन् जीवन्मुक्तत्वमाख्यातुं स्वस्य पञ्चशिखशिष्यत्वं तत्कृतमुपदेशं चोदीर्य स्वस्यासङ्गत्वं प्रकाश्य "सौकुमार्यं तथा रूपं" (५४) इत्यादिना तस्याः संन्यासविरुद्धाचारप्रदर्शनाय परशरीरप्रवेशेनाश्रमसङ्करादिकरत्वमुद्भाव्य "सा त्वं जातिं श्रुतं वृत्तं" (७५) इत्याद्यब्रवीत्। जनकवाक्यं श्रुत्वा वक्तुं प्रवृत्ता सुलभा प्रथमं "नवभिर्नवभिश्चैव" (७८) इत्यादिना वाक्यलक्षणं वाक्यस्य गुणदोषांश्चाख्याय "यथा जतु च काष्ठं च" (९५) इत्यादिना जतुकाष्ठादियोगसंयोगवच्चिदचित्संघातात्मके शरीरे तदन्तर्वर्तिनि चिदंशे च भेदाभावादिकं प्रतिपालयितुं "विंशतिर्दश चैवं हि" (१११) इत्यादिना शरीरस्वरूपं "बिन्दुन्यासादयोऽवस्थाः" (११५) इत्यादिना तदवस्था अभिधाय "यद्यात्मनि"(१२६) इत्यादिना काऽसि कस्यासीति प्रश्नासम्भवमुद्भाव्य "रिपौ मित्रे च" (१२८) इत्यादिना मुक्तामुक्तलक्षणानि चाख्याय "तानि तानि" (१३२) इत्यादिना राज्ञोऽस्वतन्त्रत्वं राज्ये दुःखानि चोक्त्वा "ननु नाम त्वया" (१६२) इत्यादिना राजानमधिक्षिप्य तदुद्भावितान्याश्रम-

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | सङ्करादीनि निरस्य "प्रधानो नाम राजर्षिः" (१८१) इत्यादिना स्वस्य वृत्तान्तमुदीर्य तत्त्वजिज्ञासार्थमहमागतेत्युक्त्वा तव शरीरे अद्य स्थित्वा श्वो गमिष्यामीत्युवाच। सुलभावाक्यं श्रुत्वा जनकस्तूष्णीमासीदित्याह भीष्मः तूष्णींभावे तात्पर्यं तु, गार्हस्थ्ये मुक्तिदौर्लभ्यात्संन्यास एव श्रेयानिति सुलभामतमेव सिद्धान्त इति ... ... | ६६६ |
| ३२१ | ९४ | "कथं निर्वेदमापन्नः शुको वैय्यासिकिः पुरा" (१) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः पूर्वाख्याने श्रेष्ठत्वेनाभिहितस्य संन्यासस्य धर्माननुपदेष्टुं व्यासेन कृतं शुकानुशासनं व्याकुर्वन्नुत्तरमाह। व्यासः शुकं पुत्रमध्याप्य "धर्मं पुत्र निषेवस्व" (४) इत्यादिना "धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते" (९३) इत्यन्तेन मोक्षसाधनत्वेन संन्यासधर्मानुपादिक्षत शुकोऽप्येतच्छ्रुत्वा व्यासं परित्यज्य जगाम ... ... | ६७० |
| ३२२ | २० | "यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा" (१) इत्याद्यनुयुञ्जानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः "आत्मनाऽनर्थयुक्तेन" (२) इत्यादिना पुरा कृतस्य कर्मणो जन्मजन्मन्यनुवर्तनमाचख्यौ | ६७१ |
| ३२३ | २९ | "कथं व्यासस्य धर्मात्मा" (१) इत्यादिना शुकोत्पत्त्यादिविषये युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः तत्कथयन् मेरुशृङ्गे पुत्रप्राप्त्यर्थं कर्णिकारवने विहरन्तं महादेवं तोषयितुं तत्र शतं वर्षाणि तपो विधाय तुष्टान्महादेवात्पुत्रप्राप्तिरूपं वरमलभत व्यासः | ६७२ |
| ३२४ | २७ | कदाचिद् घृताचीदर्शनेन क्षुभितमनसो व्यासस्यारण्यां स्खलिताद्रेतसः समुत्पन्नः शुको महादेवेनोपनीत इन्द्रेण कमण्डल्वादिना संभावितो बृहस्पतेः सकाशाद्वेदानधीत्य गुरवे दक्षिणां दत्वा समावृत्तस्तपश्चचार ... ... ... | ६७३ |
| ३२५ | ४५ | मोक्षार्थिनः शुकस्य प्रश्ने व्यासस्तस्मै कापिलं योगं चोपदिश्य मोक्षधर्मज्ञानार्थं जनकं गच्छेत्युवाच। व्यासवाक्यान्निर्गतः शुको मिथिलां गत्वा जनकस्य प्रमदावने तां रात्रिमुवास ... | ६७५ |
| ३२६ | ५१ | द्वितीयेऽह्नि जनकेन संमानपुरःसरं कुशलप्रश्नादिना संभावितः शुकः पित्राज्ञया मोक्षधर्मान् प्रष्टुं समागतोऽस्मीत्युक्त्वा "किं कार्यं ब्राह्मणेनेह" (१३) इत्यादीन् प्रश्नांश्चकार। एवं कृतप्रश्नो जनको "यत्कार्यं ब्राह्मणेनेह" (१४) इत्यादिनोत्तरमाह। "उत्पन्ने ज्ञानविज्ञाने" (२०) त्रिष्वाश्रमेष्ववश्यं वस्तव्यं, न वा इति शुकेनानुयुक्तो जनको ज्ञानविज्ञानप्राप्त्यर्थं ब्रह्मचर्यस्यावश्यकत्वमभिधाय ततः प्रागेव वा तदुत्पत्तौ लोकसंग्रहार्थं तदावश्यकत्वं चाख्याय, चित्तशुद्ध्यर्थमाश्रमधर्माचरणं तच्छुद्धौ तेषां वैयर्थ्यं चोदीर्य शुकस्याधिकारं निरूप्यान्ते किमन्यत् श्रोतुमर्हसीत्युवाच ... ... | ६७७ |
| ३२७ | ५२ | भीष्मो, जनकवाक्यश्रवणानन्तरं शुकस्य हिमालयं प्रति गमनं तद्वर्णनपुरःसरं कार्तिकेयस्य शक्तिप्रक्षेपादिवृत्तांतमुत्तरस्यां दिशि व्यासस्याश्रमं तत्र गतस्य शुकस्य व्यासवन्दनपुरःसरं जनकसमागमवृत्तान्तनिवेदनं चाचष्ट, "षष्ठः शिष्यो न ते ख्याति" (४०) इत्यादि प्रार्थयन्तो व्यासशिष्या व्यासेन कथितं वेदोपदेशादिविधिं श्रुत्वा जहृषुः | ६७९ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३२८ | ५७ | दृष्ट्वा व्यासशिष्याः शाखाविभागादिना वेदाननेकधा कर्तुं व्यासानुज्ञां गृहीत्वा पृथ्वीमवतीर्य चातुर्होत्रमचीक्लृपन् । शिष्येषु गतेष्वनधीयानो व्यासो "भो भो ब्रह्मर्षिवासिष्ठ" (१२) इत्यादिना नारदेन पृष्टोऽनध्ययनकारणं शिष्यगमनमभिदधानः पुनर्नारदेनानभ्यासस्य, वेदमलत्वे कथिते तदुपदेशाच्छुकेन सह वेदाध्ययनं प्रारभत । अधीयानयोर्द्वयोरकस्मान्महति वाते प्रवृत्तेऽनध्यायं कुर्वन्व्यासः शुकेन वायूत्पत्त्यादिविषयेऽनुयुक्तः स तत्सर्वमकथयत् ... ... ... | ६८२ |
| ३२९ | ५९ | व्यासाश्रमे पुनरागतो नारदः शुकेन सत्कृतः "केन त्वां श्रेयसा वत्स" (३) इत्याद्युवाच तं प्रति । "अस्मिँल्लोके हितं यत्स्यात्तेन मां योक्तुमर्हसि" (३) इति शुकेन प्रार्थितो नारदस्तं प्रति "तत्त्वं जिज्ञासतां पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ सनत्कुमारो भगवानिदं वचनमब्रवीत्" (५) इत्यारभ्य एकत्रिंशदधिकत्रिशततमाध्यायस्थैतत्ते परमं गुह्यम् (४५) मित्यादि पंच चत्वारिंशत्तमश्लोकपर्यंतेन हितमुपदिदेश | ६८४ |
| ३३० | ३० | " " " | ६८५ |
| ३३१ | ६५ | "नारदस्य वचः श्रुत्वा" इत्यादिषट्चत्वारिंशत्तमश्लोकपर्यंतेन ग्रन्थेन नारदवाक्यश्रवणानन्तरं दीप्ततेजसमादित्यं गत्वा सुखं वत्स्यामीति निश्चित्य, तत्रत्यानगादीनापृच्छ्य नारदानुज्ञामादाय पितरं नमस्कृत्य तत्त्यागपूर्वकं कैलासपृष्ठं जगाम शुकः इत्याह स्म भीष्मः... | ६८८ |
| ३३२ | ३१ | "गिरिशृंगं समारुह्य" (१) समे विविक्ते देशे उपविश्य योगधारणयाऽऽत्मानं सर्वसंगविनिर्मुक्तं दृष्ट्वा हासं कुर्वाणो नारदेनाभ्यनुज्ञातो विहायसा गच्छन् सर्वैर्भूतैर्विस्मयपूर्वकमालोकितो मलयपर्वते उर्वश्यादिभिः स्तुतो दिगादीनालोक्य तान्प्रति "मत्पृष्ठतः शुकेत्याह्वानपूर्वकमागच्छन्तं मत्पितरं प्रति प्रत्युत्तरं देयं सर्वैः" इत्युवाच ते च तद्वचनमंगीचक्रुः.... ... | ६८९ |
| ३३३ | ४२ | भीष्मः शुकस्य सिद्धिप्राप्तिं तत्समये उल्कापातादिकं पर्वतभेदनपूर्वकं तस्य गमनं तत्समये देवादीनां कोलाहलादिकं तस्य मंदाकिनीदर्शनं तत्रत्यानामप्सरसां तद्दर्शने लज्जाभावं तस्य ब्रह्मप्राप्तिं चाभ्यधात् । पुत्रस्य पृष्ठतः आह्वानपूर्वकं गच्छन् व्यासः पर्वतादिभिर्दत्तप्रतिवचनः स्वदर्शनेन लज्जिता अप्सरसो दृष्ट्वा पुत्रप्रभावं निश्चित्य प्रीतो व्रीडितश्च तत्कालागतेन महादेवेन छायाशुकदर्शनरूपे वरे दत्ते तत्प्रभावाच्छुकच्छायां सर्वत्र पश्यन्मुमोद... ... | ६९१ |
| ३३४ | ४५ | "गृहस्थो ब्रह्मचारी वा" (१) इत्यादिना सिद्धिप्राप्तीच्छुः कां देवतां यजेतेत्यादीन्प्रश्नान्कुर्वति युधिष्ठिरे भीष्मो "गूढं मां प्रश्नवित्प्रश्नं" (५) इत्युक्त्वा नारायणनारदसंवादरूपमितिहासं वर्णयन् उत्तरमाह स्म । नारायणस्य जन्मादिवृत्तान्तमाख्याय बदर्याश्रमे नारदागमनमाचष्ट भीष्मः । "वेदेषु सपुराणेषु" (२५) इत्यादिना "जगद्गुरुस्त्वं कं त्वद्य यजसे देवम्" इत्यादि पृच्छन्तं नारदं प्रति "अवाच्यमेतद्वक्तव्यं" (२८) इत्यादिनोत्तरमुदैरयन्नारायणः ... ... | ६९३ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३३५ | ५५ | “ यदर्थमात्मप्रभवेण जन्म” (२) इत्यादिना श्वेतद्वीपस्थामाद्यां मूर्तिं द्रष्टुं प्रार्थयन्नारदो नारायणानुज्ञया श्वेतद्वीपं जगाम भीष्मश्च तत्रत्यांल्लोकान् वर्णयति स्म । “ अनिन्द्रिया निराहाराः” (१३) इत्यादिना तत्रस्थाः पुरुषाः निरिंद्रियत्वादिविशिष्टाः कथं जाताः इत्यादि पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति तदुत्तरं कथयन् भीष्म उपरिचरराजवृत्तान्तं व्याजहार।उपरिचरराजस्य राज्यस्थितिं संवर्ण्य मरीच्यादयः स्वायंभुवसहिताः स्वनिर्मितं शास्त्रमशरीरस्य भगवतो वाक्यात् बृहस्पतौ स्थापयित्वा यथेप्सितं देशं जग्मुरित्याह भीष्मः... ... | ६९६ |
| ३३६ | ६५ | पुनर्भीष्मः “ ततोऽतीते महाकल्पे ” ( १ ) इत्यादिना बृहस्पतेरुत्पत्त्या देवानां सुखं तन्नामनिर्वचनं चाख्यायोपरिचरवसोरश्वमेधयज्ञवृत्तान्तमुदीरयन् यज्ञेऽदृश्येन भगवता भागे गृहीते क्रुद्धस्य बृहस्पतेः स्रुचा आकाशताडनाद्यभिदधाति स्म । “ किमर्थमिह न प्राप्तो दर्शनं स हरिः ” ( १६ ) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्योत्तरम्। क्रुद्धस्य बृहस्पतेः सान्त्वनं कुर्वन्त एकतद्वितत्रितादय ऋषयो भगवद्दर्शनार्थं स्वतपश्चरणं भगवदाज्ञया श्वेतद्वीपगमनं, “पुनस्तत्र एतेषां दर्शनेन भगवद्दर्शनम्” इत्याद्यदृश्यपुरुषवाक्यश्रवणं चाचख्यौ। बृहस्पतिना समापितयज्ञ उपरिचरो वसुर्ब्रह्मशापादन्तर्भूमिगतो भगवत्प्रसादादुपर्यागत्य ब्रह्मलोकं जगामेत्याह भीष्मः | ६९८ |
| ३३७ | ४१ | भागवतो राजा कथं स्वर्गाद् भ्रष्ट इति, युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो देवानामृषीणां च संवादरूपमितिहासमाचष्ट।अजेन यष्टव्यमिति प्रतिपादयत्सु देवेषु बीजैर्यष्टव्यं, न पशुनेति, प्रतिपादयत्स्वृषिषु उभयोर्विवादनिर्णयार्थमुभाभ्यां पृष्टे उपरिचरे देवपक्षपातेन पशुना यष्टव्यमित्युक्तवति तमृषयो “दिवः पत” इत्यादि शेपुः। शापमोचनार्थं देवैरुपदिष्टो वसुर्भूमिविवरगतोऽपि भगवन्तमर्चयंस्तुष्टेन भगवता गरुडेनोपर्यानायितो ब्रह्मलोकं जगाम । भीष्मस्तु नारदस्य श्वेतद्वीपगमनमाख्यातुं प्रतिजज्ञे ... ... | ७०० |
| ३३८ | ३ | नारदः श्वेतद्वीपं गत्वा “नमस्ते देवदेवेश” इत्यादिभिः शतनामभिर्भगवन्तं तुष्टाव ... | ७०२ |
| ३३९ | १४१ | स्तवेन तुष्टे नारायणे प्रादुर्भूय वरं याचस्वेत्युक्तवति नारदो भगवतः साक्षाद्दर्शनमभूदेतावानेव वरो नान्यो याचनीय इत्याह । नारायणो नारदं प्रति स्वमाहात्म्यप्रदर्शनपूर्वकमात्मतत्त्वमुपदिशन् आत्मनः सकाशाद्ब्रह्मादिसृष्टिं, ब्रह्मणे स्वदत्तान् वरान्, अनिरुद्धादिचतुर्व्यूहकार्याणि, स्वकर्तव्यकर्माणि चाख्यायान्तर्धानमयासीत् । ब्रह्मा नारायणमाहात्म्यं कथं नाज्ञासीदित्याश्चर्यपूर्वकं पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मस्तदुत्तरमभिधाय नारायणीयोपाख्यानप्राप्तिपरंपरामगादीत् । वैशम्पायनस्य भीष्मस्य सौतेश्च जनमेजययुधिष्ठिरर्षीन् प्रत्युक्तयः | ७०७ |
| ३४० | ११९ | “ कथं स भगवान्देवो यज्ञेष्वग्रहरः प्रभुः ” (१) इत्यादिषु शौनकप्रश्नेषु सौतेस्तदुत्तरकथनप्रतिज्ञा । “ इमे सब्रह्मका लोकाः ” ( ७ ) इत्यादि पृच्छन्तं जनमेजयं प्रति वैशम्पायनो व्यासोक्तिकथनेनोत्तरं वक्तुं प्रतिजज्ञे । व्यासः | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | सुमन्तुप्रभृतीन् शिष्यान्प्रति त्रैकालिकज्ञानं कथयितुं प्रतिज्ञाय पृथिव्यादिसृष्टिप्रकारमुदीर्य रुद्रादिभिर्देवैः "किमस्माकं हितं" इति पृष्टो ब्रह्मा तेषां हितोपायमुपदिश्य तैः सह क्षीरसमुद्रं गत्वा तपश्चचार। तपसा तुष्टेन भगवता यज्ञकरणार्थमाज्ञप्ता देवा वैष्णवयज्ञानुष्ठानमारभ्य स्वं स्वं भागं परिकल्पयाञ्चक्रुः। कल्पितदेवयज्ञभागान् देवान्प्रति "येन यः कल्पितो भागः" (५९) इत्याद्युक्त्वा सत्यादियुगधर्मानाचष्ट भगवान्। "कलियुगे किं कर्तव्यमस्माभिः" इति देवैः पृष्टेन भगवता "यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च" (८८) इत्यादिना सेव्यदेशे कथिते ते सर्वे स्वस्वस्थानान्यभ्ययुः। एतेषु देवेषु गतेष्वेकाकी स्थितो ब्रह्मा हयग्रीवं भगवन्तं दृष्ट्वा प्रणनाम भगवांश्च तमालिंग्योपदिश्य चान्तरधात्। वैशम्पायनो व्यासकृतं भगवत्स्तवं तच्छ्रवणादिफलं चोदीर्योपसंजहार | ...७१२ |
| ३४१ | ५९ | भगवन्नामनिरुक्तीः श्रोतुं जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनः श्रीकृष्णार्जुनयोः प्रश्नोत्तरकथनेन ता व्याख्याय हृषीकेशनामनिर्वचनप्रसङ्गेनाग्नीषोमयोरेकयोनित्वमाचख्यौ ... ... | ७१५ |
| ३४२ | १४२ | "अग्नीषोमौ कथं पूर्वमेकयोनी प्रवर्तितौ" (१) इत्यर्जुनेन पृष्टः श्रीकृष्णस्तदुत्तरं कथयन् "संप्रक्षालनकाले" (३) इत्यादिना प्रलयान्ते तमसः प्रादुर्भूतस्य हरेः प्रजाः सिसृक्षमाणस्य नेत्राभ्यामग्नीषोमोत्पत्तिमभिधाय "यः सोमस्तद्ब्रह्म" (९) इत्यादिना ब्राह्मणश्रैष्ठ्यमाचष्ट। ब्राह्मणश्रैष्ठ्ये एवोदाहरणान्यभिधास्यन् "अहल्याधर्षणनिमित्तं हि" (२३) इत्यादिना अहल्याधर्षणादीन्याख्यायैतत्प्रसङ्गादेव "विश्वरूपो हि वै त्वाष्ट्रः" (२८) इत्यादिना त्वाष्ट्रवधादिकमिन्द्रवृत्तान्तादिकमुक्त्वा, एवंविधं माहात्म्यं ब्राह्मणानां इति व्याहृत्य हृषीकेशपदनिर्वचनं निगमय्य हर्यादिपदानां निर्वचनान्यभिदधद्न्ते खण्डपरशुनामनिर्वचनप्रसङ्गेनार्जुनप्रश्नमुखेन रुद्रनारायणयोर्युद्धवृत्तान्तमभिधाय रुद्रमाहात्म्यमुपदिशति स्मार्जुनं कृष्णः ... | ७२३ |
| ३४३ | ६६ | शौनकस्य सौतेश्च प्रश्नोत्तरानंतरं "भगवद्वाक्यं ध्यायता नारदेन किमाचरितं" इत्यादिषु जनमेजयप्रश्नेषूत्तरं वदन् वैशम्पायनो भगवत्तत्त्वमाचष्ट। नारदस्य बदर्याश्रमगमनादिविषये पृच्छन्तं जनमेजयं प्रति वैशम्पायन उत्तरं वदन् नारदस्य बदर्याश्रमागमनं कथयित्वा नरनारायणयो रूपं वर्णयति स्म। "अपीदानीं स भगवान्" (४६) इत्यादिना श्वेतद्वीपे आवयोः प्रकृतिर्दृष्टा किमिति नरनारायणाभ्यां पृष्टो नारदः श्वेतद्वीपस्थवृत्तान्तमभिदधाति स्म... ... | ७२५ |
| ३४४ | २७ | नारदः स्वप्रशंसासहितं नरनारायणवाक्यं श्रुत्वा जपादिकं कुर्वन्, बदर्याश्रम एवावसत् | ७२६ |
| ३४५ | २८ | नारदो दैवं पितृभ्यं च कर्म कुर्वन् "क इज्यते द्विजश्रेष्ठ"(२) इति पृच्छन्तं नारायणं प्रति "त्वयैतत्कथितं" (४) इत्यादिनोत्तरमभिधाय "त्रीन् पिंडान्न्यस्य वै पृथ्व्याम्" (११) इत्यादि पप्रच्छ। एवं पृच्छन्तं नारदं प्रति नरनारायणौ "इमां हि धरणीं पूर्वं" (१२) इत्यादिनोत्तरमभिदधानो पृथि- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | द्युद्धरणानन्तरं दंष्ट्रालग्नांस्त्रीन् पिण्डान्भूमौ निधाय लोकमर्यादास्थापनार्थं "अहं हि पितरः स्रष्टुं" (१८) इत्यादिकां तदुक्तिमभ्यधात्... ... | ...७२७ |
| ३४६ | २२ | नरनारायणोपदेशलब्धभक्तिर्नारदस्तयोराश्रमे सहस्रं वर्षाणि निरुष्य हिमालयस्थं स्वमाश्रमं जगाम । सौतिर्नारायणीयोपाख्यानमुपसंहृत्य नरनारायणमाहात्म्यकथनपूर्वकमाशिषमाह स्म ... ... ... | ७२९ |
| ३४७ | ९६ | हयग्रीवावतारशुश्रूषया शौनकेन पृष्टः सौतिस्तत्कथनं प्रतिजज्ञे, हयग्रीवावतारविषये जनमेजयप्रश्ने तदुत्तरं कथयन्, वैशंपायनो "यत्किंचिदिह लोके वै" (१२) इत्यादिना सर्वेषां पंचभूतात्मकत्वं प्रलयं चाभिधाय तदवसाने अनिरुद्धात्पद्मे ब्रह्मणः प्रादुर्भावं मधुकैटभयोरुत्पत्तिं चाकथयत् । मधुकैटभयोर्वेदानाहृत्य रसातलं गतयोर्ब्रह्मणो विलापपूर्विकया स्तुत्या तुष्टो भगवान् हयग्रीवरूपेणाविर्भूय विगाह्य रसातलं ततो वेदानाहृत्य ब्रह्मणे समर्प्य स्वप्रकृतिस्थो बभूव । मधुकैटभौ वेदस्थानं शून्यं दृष्ट्वा तान् शोधयंतौ शेषतल्पशायिनं भगवंतं दृष्ट्वा अयमेव वेदहर्तेति निश्चित्य तं प्रबोधयामासतुः।स च ताभ्यां युद्धं कुर्वंस्तौ हत्वा ब्राह्मणे लोकसर्जनमार्तिं दत्त्वाऽन्तर्दधे। हयग्रीवावतारवृत्तांतश्रवणफलं निर्दिश्य नारायणमाहात्म्यं जगाद वैशम्पायनः... ... | ७३२ |
| ३४८ | ८८ | "अहो ! ह्येकान्तिनः सर्वान्" (१) इत्यादिना ऐकान्तधर्मिणः प्रशस्य "केनैष धर्मः कथितः" (६) इत्यादिना तद्विषयकान् प्रश्नान्कुर्वति जनमेजये वैशंपायनः "समुपोढेष्वनीकेषु" (८) इत्यादिना कृष्णभीष्म-समीपे पार्थं प्रति नारदोक्तस्य कथनं प्रतिजज्ञे। "यदासीन्मानसं जन्म" (१३) इत्यारभ्य "यत्र चैकांतिनो यांति नारायणपरायणाः" (६६) इत्यंतेन मानस-चाक्षुष-वाचिक-श्रावण-नासत्यांडज-पाद्माख्यानि ब्रह्मणः सप्त जन्मानि प्रतिजन्मानि नारायणादेतद्धर्मप्राप्तितत्परंपरादिकं च विवृत्य प्रशंसापूर्वकं तद्धर्मप्राप्यां गतिमाचष्ट। "एवं बहुविधं धर्मं" (६६) इत्यादिना जनमेजयवैशम्पायनयोरुक्तिप्रत्युत्तरे... ... | ...७३६ |
| ३४९ | ७४ | "सांख्यं योगः पांचरात्रं" (१) इत्यादिना सांख्ययोगपांचरात्रोपनिषदामेकनिष्ठत्वं पृथङ्निष्ठत्वं वेति संदेहपूर्वके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्तदुत्तरं वदन्, प्रथमं नारायणो व्यासं ससर्जेत्यवोचत् । "त्वयैव कथितं पूर्वं" (६) इत्यादिना नारायणो व्यासं ससर्जेत्युक्तिमाक्षिप्य पृच्छति जनमेजये वैशम्पायनस्तत्समाधानं वदन्नुत्तरमाह मत्सहितैः सुमंतुप्रभृतिभिः पंचभिः शिष्यैः सह हिमवत्पादे साङ्गान्वेदान् भारतार्थांश्चावर्तयन् स्थितो व्यासो नारायणाद्यज्जन्म, तद्विषये शिष्यैरनुयुक्तः सन्भगवतः प्रथमं ब्रह्मणो निर्माणं तस्य प्रजासर्गविषये तत्प्रवर्तनं चाख्याय वाचः सकाशादपान्तरतमनाम्नः पुत्रस्य निर्माणं तत्कृतं वेदविभागं च प्रतिपाद्य कलियुगे पराशरात्ते जन्म भविष्यति तदा पुनर्वेदान् विभजेति भगवदाज्ञां चाभिधाय स्वजन्मवृत्तांतमुपसंजहारेत्याह वै- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | शम्पायनः। एतदाख्याय सांख्ययोगपांचरात्रादीनां तत्तद्वक्तृप्रशंसापूर्वकं प्रामाण्यं प्रतिपाद्य सर्वेषामवांतरतात्पर्यभेदेपि परमतात्पर्यं त्वेकमेवेत्यभिप्रायेण तेषां नारायणनिष्ठत्वमवादीद्वैशम्पायनः... ... | ७३९ |
| ३५० | २७ | "बहवः पुरुषा ब्रह्मन्" (१) इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने तदुत्तरं व्याहरन् वैशम्पायनो "बहवः पुरुषा लोके" (२) इत्यादिना सांख्ययोगमते पुरुषबहुत्वं स्वमतेन पुरुषैकत्वं च प्रतिपाद्यैतद्विषये ब्रह्मरुद्रसंवादरूपमितिहासमाचचक्षे। वैजयन्तपर्वतमधिष्ठितो ब्रह्मा स्वसमीपागतं रुद्रं स्वागतप्रश्नादिना सदाकार्षीत्, ततो रुद्रेण "को ह्यसौ चिन्त्यते ब्रह्मन् त्वयैकः पुरुषोत्तमः" (२४) इत्यनुयुक्तो ब्रह्मा एकं पुरुषं प्रत्यपादयत्... ... ... | ७४१ |
| ३५१ | २३ | ब्र । पुनः पुनः पुरुषस्य वस्तुत एकत्वमुपाधिभेदात् बहुरूपत्वं चाख्याय तदनुसंदधानो "मंतामंतव्यम् प्राशिताप्राशितव्यम्" (१७) इत्यादिना भेदं रूपयामास... ... ... | ७४४ |
| ३५२ | ११ | "धर्माः पितामहेनोक्ताः" (१) इत्यादिना आश्रमिणां श्रेष्ठधर्मं वक्तुमर्हसीति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः "सर्वत्र विहितो धर्मः" (२) इत्यादिना गृहस्थधर्मस्य श्रैष्ठ्यं प्रतिपादयितुमिन्द्रं प्रति नारदकथितमुञ्छवृत्त्युपाख्यानमाह स्म ... ... ... | ७४४ |
| ३५३ | ९ | गंगादक्षिणतीरे महापद्मनगरे अत्रिगोत्रसमुत्पन्नः कश्चिद्ब्राह्मण आसीत्स च धर्मविषये निश्चयमलभमानो यावत् चिंतयति तावदागतमतिथिं सत्कृत्य तमपृच्छत्... ... ... | ७४५ |
| ३५४ | १६ | "समुत्पन्नाभिधानोऽस्मि" (१) इत्यादिकं ब्राह्मणवाक्यमाकर्ण्यातिथिः "अहमप्यत्र मुह्यामि" (९) इत्यादिना मोक्षधर्मादिप्राशस्त्यबोधकानि मतान्तराण्युपन्यस्य स्वस्याप्यनिश्चयमुद्भावयति स्म... ... ... | ७४६ |
| ३५५ | ११ | पुनरतिथिः "उपदेशं तु ते" (१) इत्यादिना गोमतीतीरस्थनैमिषारण्यगतनागाह्वये पुरे स्थितं पद्मनाभाख्यं नागं गच्छ स ते परमं धर्मं प्रवक्ष्यति इत्याह ब्राह्मणं प्रति... ... | ७४७ |
| ३५६ | ११ | ब्राह्मणोऽतिथिनोक्तं श्रुत्वाऽभिनन्द्याद्य रात्रावत्र निरुष्य प्रभाते गमिष्यसीति प्रार्थितोऽतिथिस्तथाऽकरोत् ब्राह्मणश्च प्रभातेऽतिथिं पूजयित्वा तत्कथितस्य भुजगेन्द्रस्य गृहं जगाम... | ७४७ |
| ३५७ | १३ | नागगृहं गतो ब्राह्मणो नागपत्न्या सत्कारपूर्वकं सूर्यरथं वोढुं नागो गतः सप्ताष्टभिर्दिवसै रागमिष्यति, इत्युक्ते "अहं तदागमनावधि स्थास्यामि, ममागमनं तस्मै निवेद्य" इति तामादिश्य गोमतीपुलिने न्यवात्सीत्... | ७४८ |
| ३५८ | १३ | गोमतीतीरे निराहारतया स्थितो ब्राह्मणो नागबन्धुभिराहारार्थं प्रेरितो "नागदर्शनार्थं ममैतद्व्रतमस्ति तदागमनोत्तरमाहारं ग्रहीष्यामि" इत्युवाच तान् प्रति ते च तच्छ्रुत्वा स्वस्वगृहाणि जग्मुः ... ... ... | ७४८ |
| ३५९ | १६ | गृहमागतं नागं प्रति तद्भार्या "भवद्दर्शनार्थी कश्चिद्ब्राह्मण आगत्य सप्ताष्टदिनानि गोमतीतीरे निराहारास्तिष्ठति तं प्रति गत्वा स्वात्मानं दर्शय" इत्युवाच | ७४९ |
| ३६० | २० | नागनागभार्ययोरुक्तिप्रत्युक्ती ... ... ... | ७५० |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ३६१ | १६ | भार्यावाक्यात्तत्रागतस्य नागस्य ब्राह्मणस्य च प्रश्नोत्तरयोः प्रचलतोर्ब्राह्मणो नागं प्रति "मत्प्रश्नस्योत्तरं वद तदनन्तरमागमनकारणं कथयिष्यामि" इत्युवाच ... ... | ७५१ |
| ३६२ | १८ | "सूर्यरथं वोढुं गतेन भवता तत्र किमाश्चर्यं दृष्टं तत्कथय" इति ब्राह्मणेन पृष्टो नागो नानाविधान्याश्चर्याण्यभिधायान्ते, मध्याह्ने कश्चित् स्वतेजसा सर्वान् लोकानवभासयन् सूर्येण दत्तहस्तो रश्मिमण्डलप्रविष्टः सूर्येणैकीभावमवाप। तद्दृष्टवन्तो वयं कोयमिति सूर्यमपृच्छाम इत्युवाच। ... ... ... | ७५२ |
| ३६३ | ६ | अस्माभिः पृष्ट सूर्यः "उञ्छवृत्तिव्रते सिद्धो मुनिरेष दिवं गतः" (१) इत्याद्यवाच एतदाश्चर्यं दृष्टमिति कथयति स्म नागः | ७५२ |
| ३६४ | १० | "एतदाश्चर्यं कथयता भवता ममाभीष्टः पन्था दर्शितः" इत्युक्त्वा गन्तुमुद्यतो ब्राह्मणो "भवता प्रतिज्ञातं स्वागमनकारणमनुक्त्वा कथं गच्छसि" इति नागेनाक्षिप्तः सन् "पुण्यसंशयमापद्य त्वत्समीपागतोऽहं त्वत्कथितेन वृत्तेनोञ्छवृत्तिं पुण्यसाधनभूतां चरिष्यामि" इत्युक्त्वा तमामन्त्रयति स्म ... | ७५३ |
| ३६५ | ९ | "नागमापृच्छ्य निर्गतो ब्राह्मणश्च्यवनभार्गवाद्दीक्षामवाप्योञ्छवृत्त्याश्रयणेन धर्मं चचार" इत्यभिधाय एतत्कथाप्राप्तिपरंपरामुक्त्वाञ्छवृत्त्युपाख्यानमुपसञ्जहार भीष्मः ... | ७५४ |

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ शुभं भवतु ॥

॥ ॐ ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## शान्ति-पर्व ।

## -१२-

### राजधर्मानुशासनपर्व १

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥**

**वैशम्पायन उवाच ।**

**कृतोदकास्ते सुहृदां सर्वेषां पाण्डुनन्दनाः ।**
**विदुरो धृतराष्ट्रश्च सर्वाश्च भरतस्त्रियः ॥ १**

**तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन्पाण्डुनन्दनाः ।**
**शौचं निवर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात्**

### नीलकण्ठी टीका—

**श्रीमद्गोपालमानम्य श्रीलक्ष्मणपदानुगः ।**
**नीलकण्ठो भावदीपं कुरुते शान्तिपर्वणि १**

यत्साधनेषु रुच्यर्थमितिहासोऽयमीरितः ।
धर्मार्थकाममोक्षास्ते सम्यगत्र निरूपिताः ॥ २ ॥
धर्मादित्रयमर्थकामकरणप्रीत्यर्थमित्यल्पका
धीशुद्धिक्रतुजीवनार्थकतया मुक्त्यर्थमित्युत्तमाः ॥
एतत्पाण्डवधार्तराष्ट्रचरितव्याख्यामिषाद्दर्शितं
येनासौ निजवाक्यजातहृदयं मह्यं ददात्वादरात्॥ ३॥

तत्र तावच्छान्तौ राजधर्मापद्धर्ममोक्षधर्माख्याः काण्डात्रयः क्रमेण विश्वस्यापन्नस्य विरक्तस्य चोपकारकास्तेष्वभ्यर्हितत्वात्प्राथम्यं राजधर्माणां।राजशब्दार्थश्चात्र प्रकरणात् 'राजा रञ्जनकाम्यया' इति वक्ष्यमाणनिर्वचनानुसारेण समानप्रकरणे सर्वा रञ्जयति प्रजा इति मनूक्तेः,'अथातो नृपतेर्धर्मं वक्ष्यामि हितकाम्यया' इति वृद्धपराशरेणापि सर्ववर्णसाधारणनृपतिशब्दप्रयोगाच्च यः प्रजारञ्जनं करोति स एव बोध्यः । स च क्षत्रियोऽक्षात्रियो वा 'उत्थानेन सदा पुत्र'इत्यादिना वक्ष्यमाणानुत्थानादीन् धर्माननुतिष्ठेत् । तत्रापि यः कामलोभादिहीनोऽत्यन्तानिर्विण्णः केवलं प्रजापालनजं धर्ममात्रं कामयते स एव राज्यार्ह इति युधिष्ठिरोदाहरणेन प्रथमं निरूपयति—कृतोदकास्ते सुहृदामित्यादिना नमो धर्माय महते इत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । कृतोदकाः कृतप्रेततर्पणाः । सुहृदामित्यनेनैव दुर्योधनादीनामपि ग्रहणं **'मरणान्तानि वैराणि'** इति न्यायेन तेषामपि इदानीं सुहृत्त्वात् ॥१॥ तत्र गङ्गातीरे पुराद्बहिर्मासमात्रवासस्य प्रयोजनं तु यत् कचिच्छद्मयुद्धं कृतं तज्जन्यदोषनिर्हरणेन शुद्धिसम्पादनं तदेतदुक्तं शौचं निर्वर्तयिष्यन्त इति । न त्वत्र शावाशौचशुद्धिर्मासमात्रेणेति विवक्षितम् ।

'दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूपतिः
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति '

इति मनुवाक्यविरोधात् । न चैते शूद्रा येन मासमाशौचं कुर्युः । किं च

' उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ।
सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाऽऽशौचमिति स्थितिः '

इति संग्रामहतानां सपिण्डाः सद्य एव शुद्ध्यन्ति इत्युक्तं मनुना । तेन द्वादशाहमपि नैषामाशौचं मासस्तु

कृतोदकं तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अभिजग्मुर्महात्मानः सिद्धा ब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥
द्वैपायनो नारदश्च देवलश्च महानृषिः ।
देवस्थानश्च कण्वश्च तेषां शिष्याश्च सत्तमाः
अन्ये च वेदविद्वांसः कृतप्रज्ञा द्विजातयः ।
गृहस्थाः स्नातकाः सन्तो ददृशुः कुरुसत्तमम्
तेऽभिगम्य महात्मानः पूजिताश्च यथाविधि
आसनेषु महार्हेषु विविशुस्ते महर्षयः ॥ ६
प्रतिगृह्य ततः पूजां तत्कालसदृशीं तदा ।
पर्युपासन्यथान्यायं परिवार्य युधिष्ठिरम् ७
पुण्ये भागीरथीतीरे शोकव्याकुलचेतसम् ।
आश्वासयन्तो राजानं विप्राः शतसहस्रशः
नारदस्त्वब्रवीत्काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
संभाष्य मुनिभिः सार्धं कृष्णद्वैपायनादिभिः
भवता बाहुवीर्येण प्रसादान्माधवस्य च ।
जितेयमवनिः कृत्स्ना धर्मेण च युधिष्ठिर ॥
दिष्ट्या मुक्तस्तु संग्रामादस्माल्लोकभयंकरात्
क्षत्रधर्मरतश्चापि कच्चिन्मोदसि पाण्डव ११
कच्चिच्च निहतामित्रः प्रीणासि सुहृदो नृप ।
कच्चिच्छ्रियमिमां प्राप्य न त्वां शोकः प्रबाधते

युधिष्ठिर उवाच ।

विजितेयं मही कृत्स्ना कृष्णबाहुबलाश्रयात्
ब्राह्मणानां प्रसादेन भीमार्जुनबलेन च १३
इदं मम महद्दुःखं वर्तते हृदि नित्यदा ।
कृत्वा ज्ञातिक्षयमिमं महान्तं लोभकारितम्
सौभद्रं द्रौपदेयांश्च घातयित्वा सुतान् प्रियान्
जयोऽयमजयाकारो भगवन्प्रतिभाति मे १५
किं नु वक्ष्यति वार्ष्णेयी वधूर्मे मधुसूदनम् ।
द्वारकावासिनी कृष्णमितः प्रतिगतं हरिम्
द्रौपदी हतपुत्रेयं कृपणा हतबान्धवा ।
अस्मत्प्रियहिते युक्ता भूयः पीडयतीव माम्
इदमन्यत्तु भगवन् यत्त्वां वक्ष्यामि नारद ।
मन्त्रसंवरणेनास्मि कुन्त्या दुःखेन योजितः
यः स नागायुतबलो लोकेऽप्रतिरथो रणे ।
सिंहखेलगतिर्धीमान् घृणी दाता यतव्रतः ॥
आश्रयो धार्तराष्ट्राणां मानी तीक्ष्णपराक्रमः
अमर्षी नित्यसंरंभी क्षेप्ताऽस्माकं रणे रणे २०
शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च
कृती चाद्भुतविक्रमः ।
गूढोत्पन्नः सुतः कुन्त्या
भ्राताऽस्माकमसौ किल ॥ २१
तोयकर्मणि तं कुन्ती कथयामास सूर्यजम्
पुत्रं सर्वगुणोपेतमवकीर्णं जले पुरा ॥ २२
मञ्जूषायां समाधाय गङ्गास्रोतस्यमज्जयत्
यं सूतपुत्रं लोकोऽयं राधेयं चाभ्यमन्यत २३

---

दूरतो निरस्त इति प्रतीयते । यद्वा सौप्तिके पशुवद्धतानां सुहृदां द्वादशाहमाशौचमस्ति तेन युद्धदिनेषु अष्टादशाहपर्यन्तं प्रत्यहमाशौचप्राप्तिः सद्यः शुद्धिश्च अन्त्यदिने प्राप्तस्याशौचस्य द्वादशाहेन निवृत्तिरिति मासं शौचसम्पादनोक्तिर्युज्यते ॥ २ ॥ वेदविद्वांसो वेदार्थविदः कृतप्रज्ञाः। वेदोक्ताचारनिष्ठाः। स्नातका ब्रह्मचारिणः सन्तः अभयदक्षिणाप्रदाः संन्यासिनः ॥ ५ ॥ ते राज्ञाऽभिगम्य प्रत्युपगम्य नमस्कारादिना पूर्वं पूजिताः सन्तः आसनेषु विविशुरिति सम्बन्धः ॥ ६ ॥ पूजामर्घादिकां परिवार्य पर्युपासन् परित उपाविष्टवन्तः तङभाव आर्षः ॥ ७ ॥ आश्वासयन्तः हेतौ शतृप्रत्ययः । आश्वासनार्थं पर्युपासन्नित्यर्थः ॥ ८ ॥ कालेऽवसरे संभाष्य ऐकमत्यं कृत्वाऽब्रवीत् ॥ ९ ॥ भवत इति षष्ठ्यन्तपाठे पूर्वमधर्मेणाक्रान्ता सतीयमवनिरिदानीं त्वद्बलेन माधवबलसहायेन धर्मेण कर्त्रा जिता युवाभ्यां खलनाशे कृते सति धर्मः प्रादुरभूदित्यर्थः ॥ १० ॥ दिष्ट्या भाग्येन कच्चिदिति कामप्रवेदने। अनेन कर्मणा तव मोदं सुहृत्प्रीणनं विशोकत्वं च कामयमानस्त्वां पृच्छामीत्यर्थः ॥११॥ **किं नु वक्ष्यतीति** । वधूः कनिष्ठभ्रातृभार्यात्वात् स्नुषाभूता वार्ष्णेयी सुभद्रा । मे मां प्रति किं नु वक्ष्यति राज्यलोभेन त्वया मत्पुत्रो घातित इति वक्ष्यत्येवेति भावः । तथा मधुसूदनं हरिं इतः द्वारकां प्रति गतं सन्तं प्रति वासिनी अस्मज्जयश्रवणोत्सुका द्वारका द्वारकावासिजनसमूहः किं नु वक्ष्यतीति सम्बन्धः । खलहन्त्रा स्वजनपीडापहंत्रा ईश्वरेण त्वया साधुः स्वीयः सौभद्रः कथं घातित इति वक्ष्यत्येवेति भावः । एतच्च कृष्णस्य मधुसूदनं हरिमिति विशेषणद्वयसामर्थ्यादेव लभ्यते ॥ १६ ॥ यतो हतपुत्रा हतबान्धवाऽतः कृपणा दीनातिदुःखिता इत्यर्थः । प्रियं सुखकरं हितं पथ्यं प्रियं च ताद्धितं च तस्मिन्नर्थे युक्ता सन्नद्धा ॥ १७ ॥ मंत्रसंवरणेन गूढोत्पन्नस्यास्मद्भ्रातुः कर्णस्याप्रकाशेन ॥ १८ ॥ तदेवाह त्रिभिः—**यः स इति** । सिंहस्येव खेलो युद्धक्रीडा गतिर्गमनं च यस्य स तथा घृणी दयालुः ॥ १९ ॥ अमर्षी परोत्कर्षासहिष्णुः नित्यसंरम्भी सदा क्रोधवान् ॥ २० ॥ पुत्रं स्वस्येति शेषः । अवकीर्णं त्यक्तम् ॥२२॥

स ज्येष्ठपुत्रः कुन्त्या वै भ्राताऽस्माकं च मातृजः
अजानता मया भ्रात्रा राज्यलुब्धेन घातितः
तन्मे दहति गात्राणि तूलराशिमिवानलः।
न हि तं वेद पार्थोऽपि भ्रातरं श्वेतवाहनः ॥
नाहं न भीमो न यमौ स त्वस्मान्वेद सुव्रतः
गता किल पृथा तस्य सकाशामिति नः श्रुतम्
अस्माकं शमकामा वै त्वं च पुत्रो ममेत्यथ ।
पृथाया न कृतः कामस्तेन चापि महात्मना॥
अपि पश्चादिदं मातर्यवोचदिति नः श्रुतम्।
न हि शक्ष्याम्यहं त्यक्तुं नृपं दुर्योधनं रणे ॥
अनार्यत्वं नृशंसत्वं कृतघ्नत्वं च मे भवेत्।
युधिष्ठिरेण सन्धिं हि यदि कुर्यां मते तव ॥
भीतो रणे श्वेतवाहादिति मां मंस्यते जनः।
सोऽहं निर्जित्य समरे विजयं सहकेशवम्
सन्धास्ये धर्मपुत्रेण पश्चादिति च सोऽब्रवीत्
तमुवाच किल पृथा पुनः पृथुलवक्षसम् ३१
चतुर्णामभयं देहि कामं युध्यस्व फाल्गुनम्।
सोऽब्रवीन्मातरं धीमान् वेपमानां कृताञ्जलिः
प्राप्तान् विषह्यांश्चतुरो
न हनिष्यामि ते सुतान्।
पञ्चैव हि सुता देवि
भविष्यन्ति तव ध्रुवाः ॥ ३३
सार्जुना वा हते कर्णे सकर्णा वा हतेऽर्जुने।
तं पुत्रगृद्धिनी भूयो माता पुत्रमथाब्रवीत् ३४
भ्रातॄणां स्वस्ति कुर्वीथा
येषां स्वस्ति चिकीर्षसि ।
एवमुक्त्वा किल पृथा
विसृज्योपययौ गृहान् ॥ ३५
सोऽर्जुनेन हतो वीरो भ्रात्रा भ्राता सहोदरः
न चैव विवृतो मन्त्रः पृथायास्तस्य वा विभो
अथ शूरो महेष्वासः पार्थेनाजौ निपातितः
अहं त्वज्ञासिषं पश्चात्स्वसोदर्यं द्विजोत्तम ॥
पूर्वजं भ्रातरं कर्णं पृथाया वचनात्प्रभो।
तेन मे दूयते तीव्रं हृदयं भ्रातृघातिनः॥ ३८
कर्णार्जुनसहायोऽहं जयेयमपि वासवम्।
सभायां क्लिश्यमानस्य धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः
सहसोत्पतितः क्रोधः कर्णं दृष्ट्वा प्रशाम्यति।
यदा ह्यस्य गिरो रूक्षाः शृणोमि कटुकोदयाः
सभायां गदतो द्यूते दुर्योधनहितैषिणः।
तदा नश्यति मे रोषः पादौ तस्य निरीक्ष्य ह
कुन्त्या हि सदृशौ पादौ कर्णस्येति मतिर्मम
सादृश्यहेतुमन्विच्छन् पृथायास्तस्य चैव ह॥
कारणं नाधिगच्छामि कथञ्चिदपि चिन्तयन्
कथं नु तस्य संग्रामे पृथिवी चक्रमग्रसत् ४३
कथं नु शप्तो भ्राता मे तत्त्वं वक्तुमिहार्हसि ।
श्रोतुमिच्छामि भगवंस्त्वत्तः सर्वं यथातथम्
भवान्हि सर्वविद्विद्वान् लोके वेद कृताकृतम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कर्णाभिज्ञाने
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।

स एवमुक्तस्तु मुनिर्नारदो वदतां वरः। कथयामास तत्सर्वं यथा शप्तः स सूतजः ॥

मातृजः मातृसम्बन्धेन ॥ २४ ॥ श्वेतवाहनोऽर्जुनः ॥ २५ ॥ पाण्डववत् त्वं च पुत्रो ममेत्यब्रवीदिति शेषः कामोऽभिलषितम् ॥ २७ ॥ मातरि मातरं प्रति अवोचत्कर्ण इति शेषः। नः अस्माभिः श्रुतम् ॥२८॥ **नृशंसत्वं** सङ्कटे मित्रत्यागान्निर्दयत्वं **कृतघ्नत्व**-मुपकर्तृष्वपकारित्वं च प्रसिद्धमित्यतोऽनार्यत्वमेव स्पष्टीकरोति-**भीत इति**। विजयमर्जुनम् ॥३०॥ पृथुलवक्षसं कपाटवक्षसम् ॥ ३१ ॥ वेपमानां अर्जुननाशभीत्या ॥ ३२ ॥ विषह्यान्वशगान् ॥ ३३ ॥ **पुत्रगृद्धिनी** पुत्रलोभवती ॥ ३४ ॥ विसृज्य कर्णमिति शेषः ॥ ३५ ॥ दूयते उपतप्यते ॥ ३८ ॥ कारणं सादृश्यहेतोस्तज्जन्यत्वस्य ज्ञापकं कथं नु इत्यद्भुतप्रश्ने चक्रं रथचक्रम् ॥ ४३ ॥ सर्ववित्त्वे हेतुः विद्वानिति आत्मज्ञ इत्यर्थः। अत एव कृतं कार्यं अकृतं कारणं च वेद जानाति ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

**स एवमिति**। उक्तः पृष्टः ॥ १ ॥

नारद उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
न कर्णार्जुनयोः किंचिदविषह्यं भवेद्रणे ॥ २
गुह्यमेतत्तु देवानां कथयिष्यामि तेऽनघ ।
तन्निबोध महाबाहो यथा वृत्तमिदं पुरा ॥ ३
क्षत्रं स्वर्गं कथं गच्छेच्छस्त्रपूतमिति प्रभो ।
संघर्षजननस्तस्मात्कन्यागर्भो विनिर्मितः ॥
स बालस्तेजसा युक्तः सूतपुत्रत्वमागतः ।
चकाराङ्गिरसां श्रेष्ठाद्धनुर्वेदं गुरोस्तदा ॥ ५
स बलं भीमसेनस्य फाल्गुनस्य च लाघवम् ।
बुद्धिं च तव राजेन्द्र यमयोर्विनयं तदा ॥ ६
सख्यं च वासुदेवेन बाल्ये गाण्डीवधन्वनः ।
प्रजानामनुरागं च चिन्तयानो व्यदह्यत ॥ ७
स सख्यमकरोद्बाल्ये राज्ञा दुर्योधनेन च ।
युष्माभिर्नित्यसंद्विष्टो दैवाच्चापि स्वभावतः ।
वीर्याधिकमथालक्ष्य धनुर्वेदे धनञ्जयम् ।
द्रोणं रहस्युपागम्य कर्णो वचनमब्रवीत् ॥ ९
ब्रह्मास्त्रं वेत्तुमिच्छामि सरहस्यनिवर्तनम् ।
अर्जुनेन समं चाहं युध्येयमिति मे मतिः ॥
समः शिष्येषु वः स्नेहः पुत्रे चैव तथा ध्रुवम्
त्वत्प्रसादान्न मां ब्रूयुरकृतास्त्रं विचक्षणाः ॥
द्रोणस्तथोक्तः कर्णेन सापेक्षः फाल्गुनं प्रति
दौरात्म्यं चैव कर्णस्य विदित्वा तमुवाच ह
ब्रह्मास्त्रं ब्राह्मणो विद्याद्यथावच्चरितव्रतः ।
क्षत्रियो वा तपस्वी यो नान्यो विद्यात्कथञ्चन
इत्युक्तोऽङ्गिरसां श्रेष्ठमामन्त्र्य प्रतिपूज्य च ।
जगाम सहसा रामं महेन्द्रं पर्वतं प्रति ॥ १४
स तु राममुपागम्य शिरसाऽभिप्रणम्य च ।
ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति गौरवेणाभ्यगच्छत
रामस्तं प्रतिजग्राह पृष्ट्वा गोत्रादि सर्वशः ।
उष्यतां स्वागतं चेति प्रीतिमांश्चाभवद्भृशम्
तत्र कर्णस्य वसतो महेन्द्रे स्वर्गसन्निभे ।
गन्धर्वै राक्षसैर्यक्षैर्देवैश्चासीत्समागमः ॥ १७
स तत्रेष्वस्त्रमकरोद्भृगुश्रेष्ठाद्यथाविधि ।
प्रियश्चाभवदत्यर्थं देव-दानव-रक्षसाम् ॥ १८
स कदाचित्समुद्रान्ते विचरन्नाश्रमान्तिके
एकः खड्गधनुष्पाणिः परिचक्राम सूर्यजः ॥
सोऽग्निहोत्रप्रसक्तस्य कस्यचिद्ब्रह्मवादिनः ।
जघानाज्ञानतः पार्थ होमधेनुं यदृच्छया ॥ २०
तदज्ञानकृतं मत्वा ब्राह्मणाय न्यवेदयत् ।
कर्णः प्रसादयंश्चैनमिदमित्यब्रवीद्वचः ॥ २१
अबुद्धिपूर्वं भगवन् धेनुरेषा हता तव ।
मया तत्र प्रसादं च कुरुष्वेति पुनः पुनः ॥ २२
तं स विप्रोऽब्रवीत्क्रुद्धो वाचा निर्भर्त्सयन्निव
दुराचारवधार्हस्त्वं फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ २३
येन विस्पर्धसे नित्यं यदर्थं घटसेऽनिशम् ।
युध्यतस्तेन ते पाप भूमिश्चक्रं ग्रसिष्यति ॥ २४
ततश्चक्रे महीग्रस्ते मूर्धानं ते विचेतसः ।
पातयिष्यति विक्रम्य शत्रुर्गच्छ नराधम ॥ २५
यथेयं गौर्हता मूढ प्रमत्तेन त्वया मम ।
प्रमत्तस्य तथाऽरातिः शिरस्ते पातयिष्यति
शप्तः प्रसादयामास कर्णस्तं द्विजसत्तमम् ।
गोभिर्धनैश्च रत्नैश्च स चैनं पुनरब्रवीत् ॥ २७
न हि मेऽव्याहृतं कुर्यात्सर्वलोकोऽपि केवलं
गच्छ वा तिष्ठ वा यद्वा कार्यं ते तत्समाचर
इत्युक्तो ब्राह्मणेनाथ कर्णो दैन्यादधोमुखः ।
राममभ्यगमद्भीतस्तदेव मनसा स्मरन् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कर्णशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

कर्णार्जुनसहायोऽहं जयेयमपि वासवमित्युक्तमनुमोदते- **एवमेतदिति**॥२॥ तर्हि किमर्थं देवैरनयोर्वैरमुत्पादितमित्याशङ्क्याह-**गुह्यमिति**॥३॥**क्षत्रमिति** । संघर्षजननो वैराग्न्युद्दीपकः कन्यागर्भो देवैः क्षत्रस्य स्वर्गमनाय निर्मित इत्यर्थः ॥ ४ ॥ चकार अधीतवान् । अङ्गिरसां श्रेष्ठात् द्रोणात् ॥ ५ ॥ **दैवाच्चापि स्वभावत इति** । दैवाद्देवानां संकल्पात् पूर्वोक्तात् स्वभावतः 'वीर्याधिको नीचकुलो दुःसंगेन समेधितः । महाजनैः स्पर्धमानो हन्ति राष्ट्रं सराजकम्' इति श्लोकोक्तात् ॥८॥ **ब्रह्मास्त्रमिति** । **रहस्यं** तत्प्रसादनविधिर्**निवर्तन**मुपसंहारः ताभ्यां- सहितं सरहस्यनिवर्तनम् ॥ १० ॥ **ब्रह्मास्त्रमिति** । त्वं तु ब्रह्मक्षत्रेतरत्वान्न विद्यार्ह इत्यर्थः ॥१३ ॥ गुरुरेव पितेत्यभिसन्धायाहं ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति ॥ १५ ॥ समुद्रान्ते दक्षिणसमुद्रसमीपे ॥ १९ ॥ होमधेनुं कर्णपर्वोक्तादिशा वत्सवध एवात्र धेनुवधो ज्ञेयः ॥ २० ॥ मे व्याहृतमिति शेषः। अव्याहृतमनुक्तं तद्वदन्यथेत्यर्थः । नेदमव्याहृतमिति पाठः सुगमः । केवलं तूष्णीं यथा स्यात्तथा यत्ते कार्यं तद्वा समाचरेत्यन्वयः ॥२८॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

नारद उवाच ।
कर्णस्य बाहुवीर्येण प्रणयेन दमेन च ।
तुतोष भृगुशार्दूलो गुरुशुश्रूषया तथा ॥ १
तस्मै स विधिवत्कृत्स्नं ब्रह्मास्त्रं सनिवर्तनम्
प्रोवाचाखिलमव्यग्रं तपस्वी तत्तपस्विने ॥ २
विदितास्त्रस्ततः कर्णो रममाणोऽऽश्रमे भृगोः
चकार वै धनुर्वेदे यत्नमद्भुतविक्रमः ॥ ३
ततः कदाचिद्रामस्तु चरन्नाश्रममन्तिकात्
कर्णेन सहितो धीमानुपवासेन कर्शितः ॥ ४
सुष्वाप जामदग्न्यस्तु विश्रंभोत्पन्नसौहृदः
कर्णस्योत्सङ्ग आधाय शिरः क्लान्तमना गुरुः
अथ कृमिः श्लेष्म-मेदो-मांस-शोणितभोजनः।
दारुणो दारुणस्पर्शः कर्णस्याभ्याशमागतः ॥
स तस्योरुमथासाद्य बिभेद रुधिराशनः ।
न चैनमशकत्क्षेप्तुं हन्तुं वापि गुरोर्भयात् ॥७
संदश्यमानस्तु तथा कृमिणा तेन भारत ।
गुरोः प्रबोधनाशङ्की तमुपैक्षत सूर्यजः ॥ ८
कर्णस्तु वेदनां धैर्यादसह्यां विनिगृह्य ताम् ।
अकम्पयन्नव्यथयन् धारयामास भार्गवम् ॥९
यदाऽस्य रुधिरेणाङ्गं परिस्पृष्टं भृगूद्वहः ।
तदाऽबुद्ध्यत तेजस्वी संत्रस्तश्चेदमब्रवीत् ॥
अहोऽस्म्यशुचितां प्राप्तः किमिदं क्रियते त्वया
कथयस्व भयं त्यक्त्वा याथातथ्यमिदं मम ॥
तस्य कर्णस्तदाऽऽचष्ट कृमिणा परिभक्षणम्।
ददर्श रामस्तं चापि कृमिं सूकरसन्निभम् ॥
अष्टपादं तीक्ष्णदंष्ट्रं सूचीभिरिव संवृतम् ॥
रोमभिः सन्निरुद्धाङ्गमलर्कं नाम नामतः ॥
स दृष्टमात्रो रामेण कृमिः प्राणानवासृजत् ।
तस्मिन्नेवासृजि क्लिन्नस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥
ततोऽन्तरिक्षे ददृशे विश्वरूपः करालवान् ।
राक्षसो लोहितग्रीवः कृष्णाङ्गो मेघवाहनः
स रामं प्राञ्जलिर्भूत्वा बभाषे पूर्णमानसः ।
स्वस्ति ते भृगुशार्दूल गमिष्येऽहं यथागतम् ॥
मोक्षितो नरकादस्माद्भवता मुनिसत्तम ।
भद्रं तवास्तु वंदे त्वां प्रियं मे भवता कृतम्
तमुवाच महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
कस्त्वं कस्माच्च नरकं प्रतिपन्नो ब्रवीहि तत्
सोऽब्रवीदहमासं प्राक् दंशो नाम महासुरः ।
पुरा देवयुगे तात भृगोस्तुल्यवया इव ॥ १९
सोऽहं भृगोः सुदयितां भार्यामपहरं बलात्
महर्षेरभिशापेन कृमिभूतोऽपतं भुवि ॥ २०
अब्रवीद्धि स मां क्रुद्धस्तव पूर्वपितामहः ।
मूत्रश्लेष्माशनः पाप निरयं प्रतिपत्स्यसे ॥
शापस्यान्तो भवेद्ब्रह्मन्नित्येवं तमथाब्रुवम् ।
भविता भार्गवाद्रामादिति मामब्रवीद्भृगुः ॥
सोऽहमेनां गतिं प्राप्तो यथा नकुशलं तथा ।
त्वया साधो समागम्य विमुक्तः पापयोनितः
एवमुक्त्वा नमस्कृत्य ययौ रामं महासुरः ।
रामः कर्णं च सक्रोधमिदं वचनमब्रवीत् ॥
अतिदुःखमिदं मूढ न जातु ब्राह्मणः सहेत् ।
क्षत्रियस्येव ते धैर्यं कामया सत्यमुच्यताम् ॥
तमुवाच ततः कर्णः शापाद्भीतः प्रसादयन् ।
ब्रह्मक्षत्रान्तरे जातं सूतं मां विद्धि भार्गव ॥
राधेयः कर्ण इति मां प्रवदन्ति जना भुवि ।
प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन्नस्त्रलुब्धस्य भार्गव ॥ २७
पिता गुरुर्न संदेहो वेदविद्याप्रदः प्रभुः ।
अतो भार्गव इत्युक्तं मया गोत्रं तवान्तिके ॥
तमुवाच भृगुश्रेष्ठः सरोषः प्रहसन्निव ।
भूमौ निपतितं दीनं वेपमानं कृताञ्जलिम् ॥
यस्मान्मिथ्योपचरितो ह्यस्त्रलोभादिह त्वया
तस्मादेतन्न ते मूढ ब्रह्मास्त्रं प्रतिभास्यति ॥३०

---

**३**

**कर्णस्येति** । प्रश्रयेणेति पाठेऽनुरागेण दमेन इन्द्रियजयेन ॥ १ ॥ कृत्स्नं सरहस्यं न तु मन्त्रमात्रम् अखिलं अङ्गप्रत्यङ्गदेवताराधनसहितं अव्यग्रं यथा स्यात्तथा तपस्वी एकाग्रचित्तः ॥ २ ॥ अश्रमे श्रमवर्जिते आश्रमे इत्यर्थः ॥ ३ ॥ विश्रंभो विश्वासः ॥ ५ ॥ क्षेप्तुं दूरीकर्तुं भयात् निद्राभङ्गभयात् ॥ ७ ॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णै रोमभिः संवृतं सन्निरुद्धाङ्गं त्रासेन संकुचिताङ्गं नाम प्रसिद्धं नामतो नाम्ना ॥ १३ ॥ असृजि शोणिते ॥ १४ ॥ विश्वरूपः कामरूपी करालवान् भीषणरूपवान् मेघवाहनो मेघोपरिस्थः ॥ १५ ॥ देवयुगे सत्ययुगे ॥ १९ ॥ नकुशलं अभद्रम् ॥ २३ ॥ कामया स्वरसेन ॥ २५ ॥ ब्रह्मक्षत्रयोरन्तरे अन्यत्र जातं तदेवाह—**सूतं मां विद्धीति**॥२६॥ कथं तर्हि ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति मिथ्यावचनं त्वयोक्तमित्यत आह-**पिता गुरुरिति** ॥ २८ ॥ **तस्मादिति** हे मूढ ! ते तव वधकालादन्यत्र ब्रह्मास्त्रं न प्रतिभास्यतीति न किं तु वधकाल एव न प्रतिभास्यति कालान्तरे तु प्रतिभास्यत्येवेत्यर्थः इत्युत्तरेण सम्बन्धः३०॥

अन्यत्र वधकालात्ते सदृशेन समीयुषः ।
अब्राह्मणेन हि ब्रह्म ध्रुवं तिष्ठेत्कदाचन ॥ ३१
गच्छेदानीं न ते स्थानमनृतस्येह विद्यते ।
न त्वया सदृशो युद्धे भविता क्षत्रियो भुवि
एवमुक्तः स रामेण न्यायेनोपजगाम ह ।
दुर्योधनमुपागम्य कृतास्त्रोऽस्मीति चाब्रवीत्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कर्णास्त्रप्राप्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

नारद उवाच ।
कर्णस्तु समवाप्यैवमस्त्रं भार्गवनन्दनात् ।
दुर्योधनेन सहितो मुमुदे भरतर्षभ ॥ १
ततः कदाचिद्राजानः समाजग्मुः स्वयंवरे ।
कलिङ्गविषये राजन् राज्ञश्चित्राङ्गदस्य च ॥
श्रीमद्राजपुरं नाम नगरं तत्र भारत ।
राजानः शतशस्तत्र कन्यार्थं समुपागमन् ।
श्रुत्वा दुर्योधनस्तत्र समेतान् सर्वपार्थिवान्
रथेन काञ्चनाङ्गेन कर्णेन सहितो ययौ ॥ ४
ततः स्वयंवरे तस्मिन्संप्रवृत्ते महोत्सव ।
समाजग्मुर्नृपतयः कन्यार्थे नृपसत्तम ॥ ५
शिशुपालो जरासन्धो भीष्मको वक्र एव च
कपोतरोमा नीलश्च रुक्मी च दृढविक्रमः ॥
सृगालश्च महाराजः स्त्रीराज्याधिपतिश्च यः ।
अशोकः शतधन्वा च भोजो वीरश्च नामतः
एते चान्ये च बहवो
दक्षिणां दिशमाश्रिताः
म्लेच्छाचार्याश्च राजानः
प्राच्योदीच्यास्तथैव च ॥ ८
काञ्चनाङ्गदिनः सर्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभाः ।
सर्वे भास्वरदेहाश्च व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥
ततः समुपविष्टेषु तेषु राजसु भारत ।
विवेश रंगं सा कन्या धात्री वर्षवरान्विता
ततः संश्राव्यमाणेषु राज्ञां नामसु भारत ।
अत्यक्रामद्धार्तराष्ट्रं सा कन्या वरवर्णिनी ॥
दुर्योधनस्तु कौरव्यो नामर्षयत लङ्घनम् ।
प्रत्यषेधच्च तां कन्यामसत्कृत्य नराधिपान् ।
स वीर्यमदमत्तत्वाद्भीष्मद्रोणावुपाश्रितः ।
रथमारोप्य तां कन्यामाजहार नराधिपः ॥
तमन्वगाद्रथी खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
कर्णः शस्त्रभृतां श्रेष्ठः पृष्ठतः पुरुषर्षभ ॥ १४
ततो विमर्दः सुमहान् राज्ञामासीद्युयुत्सताम्
सन्नह्यतां तनुत्राणि रथान्योजयतामपि ॥१५
तेऽभ्यधावन्त संक्रुद्धाः कर्णदुर्योधनावुभौ ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो मेघाः पर्वतयोरिव ॥१६
कर्णस्तेषामापततामेकैकेन शरेण ह ।
धनूंषि च शरव्रातान्पातयामास भूतले ॥१७
ततो विधनुषः कांश्चित्
कांश्चिदुद्यतकार्मुकान् ।
कांश्चिच्चोद्वहतो बाणान्
रथ-शक्ति-गदास्तथा ॥ १८
लाघवाद्याकुलीकृत्य कर्णः प्रहरतां वरः ।
हतसूतांश्च भूयिष्ठानवजिग्ये नराधिपान् ॥
ते स्वयं वाहयन्तोऽश्वान्
पाहि पाहीति वादिनः ।
व्यपेयुस्ते रणं हित्वा
राजानो भग्नमानसाः ॥ २०

---

सदृशेऽर्जुनादौ शूरे ते पुरतःस्थिते समीयुषः युध्यमानस्य 'समित्याजिसमिद्युधः' इतिसपूर्वस्य इणो युद्धार्थत्वदर्शनात् । ध्रुवं मरणावधि न तिष्ठेद्ब्रह्म ब्रह्मास्त्रम् ॥३१॥ न्यायेनाभिवन्दनादिपूर्वकं उपजगाम इष्टं देशमिति शेषः ॥३३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

कर्णस्तु समावाप्यैवमित्यध्यायः स्पष्टार्थः ॥१॥ विषये देशे ॥ २ ॥ वर्षवरः षण्ढः ॥ १० ॥ व्यपेयुर्व्यपगताः ॥२०॥

दुर्योधनस्तु कर्णेन पाल्यमानोऽभ्ययात्तदा । हृष्टः कन्यामुपादाय नगरं नागसाह्वयम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनप० दुर्योधनस्य स्वयंवरे कन्याहरणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

नारद उवाच ।
आविष्कृतबलं कर्णं श्रुत्वा राजा स मागधः
आह्वयद्द्वैरथेनाजौ जरासन्धो महीपतिः ॥ १
तयोः समभवद्युद्धं दिव्यास्त्रविदुषोर्द्वयोः ।
युधि नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षतोः ॥ २
क्षीणबाणौ विधनुषौ भग्नखड्गौ महीं गतौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामुभावपि बलान्वितौ ॥
बाहुकण्टकयुद्धेन तस्य कर्णोऽथ युध्यतः ।
बिभेद सन्धिं देहस्य जरया श्लेषितस्य हि ॥
स विकारं शरीरस्य दृष्ट्वा नृपतिरात्मनः ।
प्रीतोऽस्मीत्यब्रवीत्कर्णं वैरमुत्सृज्य दूरतः
प्रीत्या ददौ स कर्णाय मालिनीं नगरीमथ ।
अंगेषु नरशार्दूल स राजाऽऽसीत्सपत्नजित्
पालयामास चम्पां च कर्णः परबलार्दनः ।
दुर्योधनस्यानुमते तवापि विदितं तथा ॥ ७
एवं शस्त्रप्रतापेन प्रथितः सोऽभवत्क्षितौ ।
त्वद्धितार्थं सुरेन्द्रेण भिक्षितो वर्मकुण्डले ॥
स दिव्ये सहजे प्रादात्कुण्डले परमार्जिते ।
सहजं कवचं चापि मोहितो देवमायया ॥९
विमुक्तः कुण्डलाभ्यां च सहजेन च वर्मणा
निहतो विजयेनाजौ वासुदेवस्य पश्यतः ॥
ब्राह्मणस्याभिशापेन रामस्य च महात्मनः ।
कुन्त्याश्च वरदानेन मायया च शतक्रतोः ॥
भीष्मावमानात्संख्यायां
रथस्यार्धानुकीर्तनात् ।
शल्यात्तेजोवधाच्चापि
वासुदेवनयेन च ॥ १२
रुद्रस्य देवराजस्य यमस्य वरुणस्य च ।
कुबेरद्रोणयोश्चैव कृपस्य च महात्मनः ॥ १३
अस्त्राणि दिव्यान्यादाय युधि गांडीवधन्वना
हतो वैकर्तनः कर्णो दिवाकरसमद्युतिः ॥ १४
एवं शप्तस्तव भ्राता बहुभिश्चापि वञ्चितः ।
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र युद्धेन निधनं गतः॥ १५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कर्णवीर्यकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

वैशम्पायन उवाच ।
एतावदुक्त्वा देवर्षिर्विरराम स नारदः । युधिष्ठिरस्तु राजर्षिर्दध्यौ शोकपरिप्लुतः ॥ १

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

**आविष्कृतेति** ॥ १ ॥ बाहुकंटकयुद्धेन बाहुकंटकं केतकपत्रं तद्वद्यत्र बलिना दुर्बलस्य शरीरं पाट्यते **तद्बाहुकण्टकं** नाम युद्धम् । यथोक्तम्–
'एकां जंघां पदाऽऽक्रम्य परामुद्यम्य पाटयते ।
केतकीपत्रवच्छत्रुर्युद्धं **तद्बाहुकण्टकम्**' इति ॥
जरासन्धस्य संबन्धी यो देहस्तस्य सन्धिं बिभेद ॥ ४ ॥ विकारं पाटनरूपम् ॥ ५॥ रथस्यार्धानुकीर्तनात् शल्याच्च तेजोवधादिति संबन्धः ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

**एतावदुक्त्वेति** । दध्यौ भ्रातृवधजं दोषं चिन्तितवान् ॥ १ ॥

तं दीनमनसं वीरं शोकोपहतमातुरम् ।
निःश्वसन्तं यथा नागं पर्यश्रुनयनं तथा ॥ २
कुन्ती शोकपरीताङ्गी दुःखोपहतचेतना ।
अब्रवीन्मधुराभाषा काले वचनमर्थवत् ॥ ३
युधिष्ठिर महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ।
जहि शोकं महाप्राज्ञ शृणु चेदं वचो मम ॥४
यातितः स मया पूर्वं भ्रात्र्यं ज्ञापयितुं तव ।
भास्करेण च देवेन पित्रा धर्मभृतां वरः ॥ ५
यद्वाच्यं हितकामेन सुहृदा हितमिच्छता ।
तथा दिवाकरेणोक्तः स्वप्नान्ते मम चाग्रतः ॥
न चैनमशकन्द्रानुरहं वा स्नेहकारणैः ।
पुरा प्रत्यनुनेतुं वा नेतुं वाऽप्येकतां त्वया ॥
ततः कालपरीतः स वैरस्योद्धरणे रतः ।
प्रतीपकारी युष्माकमिति चोपेक्षितो मया
इत्युक्तो धर्मराजस्तु मात्रा बाष्पाकुलेक्षणः
उवाच वाक्यं धर्मात्मा शोकव्याकुलितेन्द्रियः
भवत्या गूढमन्त्रत्वात्पीडितोस्मीत्युवाच ताम्
शशाप च महातेजाः सर्वलोकेषु योषितः ।
न गुह्यं धारयिष्यन्तीत्येवं दुःखसमन्वितः ॥
स राजा पुत्रपौत्राणां संबंधिसुहृदां तदा ।
स्मरन्नुद्विग्नहृदयो बभूवोद्विग्नचेतनः ॥ १२
ततः शोकपरीतात्मा सधूम इव पावकः ।
निर्वेदमगमद्धीमान् राजा सन्तापपीडितः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वाणि राजधर्मानुशासनपर्वाणि स्त्रीशापे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

वैशम्पायन उवाच ।
युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा शोकव्याकुलचेतनः
शुशोच दुःखसंतप्तः स्मृत्वा कर्णं महारथम्
आविष्टो दुःखशोकाभ्यां निःश्वसंश्च पुनः पुनः
दृष्ट्वाऽर्जुनमुवाचेदं वचनं शोककार्शितः ॥ २
युधिष्ठिर उवाच ।
यद्भैक्ष्यमाचरिष्याम वृष्ण्यन्धकपुरे वयम् ।
ज्ञातीन्निष्पुरुषान्कृत्वा नेमां प्राप्स्याम दुर्गतिं
अमित्रा नः समृद्धार्था वृत्तार्थाः कुरवः किल
आत्मानमात्मना हत्वा किं धर्मफलमाप्नुमः ॥
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ।
धिगस्त्वमर्षं येनेमामापदं गमिता वयम् ॥ ५
साधु क्षमा दमः शौचं वैराग्यं चाप्यमत्सरः
अहिंसा सत्यवचनं नित्यानि वनचारिणाम्
वयं तु लोभान्मोहाच्च दंभं मानं च संश्रिताः
इमामवस्थां संप्राप्ता राज्यलाभबुभुत्सया ॥

---

पर्यश्रुनयनं परितोऽश्रुव्याप्तनयनम् ॥ २ ॥ मधुरा आभाषा भाषणं यस्याः सा तथा ॥ ३ ॥ एनं कर्णम् ॥ ४ ॥ यातितः प्रवर्तितः तव तुभ्यं भ्रात्र्यं भ्रातुः कर्म कनिष्ठानां परिपालनं ज्ञापयितुं त्वया सौभ्रात्रं युधिष्ठिरादिभ्यः प्रदर्शनीयमित्यभ्यर्थित इति ॥ ५॥ प्रत्यनुनेतुं शमयितुम् ॥ ७ ॥ कालपरीतः मृत्युग्रस्तः उद्धरणे शत्रूणां निःशेषनाशेनोन्मूलने ॥८॥ **स्मरन्निति** । कर्मणि षष्ठ्यौ उद्विग्नहृदयः उद्विग्नचेतनो बभूव । ध्यायतीव लेलायतीवेति श्रुतेर्बुद्धौ ध्यायन्त्यां चेतनोऽपि ध्यायतीवेत्यादिरर्थः ॥ १२ ॥ निर्वेदं राज्यादौ वैराग्यम् ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वाणि राजधर्मानुशासनपर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

**युधिष्ठिर इति** ॥१॥ दुःखं देहेन्द्रियादीनां तापः शोकस्तत्कृतं वैकल्यं ताभ्यामाविष्टो व्याप्तः कर्शितः कृशीकृतः ॥ २ ॥ यत् यदि भैक्ष्यमाचरिष्ये स्यात्तर्हि ज्ञातिवधाज्जाता दुर्गतिर्न प्राप्ता स्यादित्यर्थः । लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ॥ ३ ॥ यतो वयं वृत्तार्थाः संक्षिप्तपुरुषार्था ज्ञातिवधेन हतभाग्याः स्म ततो हेतोर्नः अस्माकममित्राः समृद्धार्था इत्यर्थः । ज्ञातिवधोऽप्यस्माकं धर्मवध एवेत्याशंक्याह-**आत्मानमिति** । धर्मफलं यशःस्वर्गौ किं आप्नुमः उभयमपि नास्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥ सत्यपि शास्त्रदृष्टे फले बीभत्सत्वान्निंद्य एवायं धर्म इत्याह-**धिगिति** । **बलं** सहायादि **पौरुषं** पराक्रमः **अमर्षः** क्रोधः । येन आचारादिना आपदं शोकम् ॥ ५ ॥ तर्हि को धर्मः श्रेष्ठ इत्यत आह-**साध्विति**। क्षमादिकमेव श्रेष्ठमित्यर्थः ॥ ६ ॥

त्रैलोक्यस्यापि राज्येन
नास्मान्कश्चित्प्रहर्षयेत् ।
बान्धवान्निहतान्दृष्ट्वा
पृथिव्यां विजयैषिणः ॥ ८

ते वयं पृथिवीहेतोरवध्यान् पृथिवीश्वरान् ।
संपरित्यज्य जीवामो हीनार्था हतबान्धवाः
आमिषे गृध्यमानानामशुभं वै शुनामिव ।
आमिषं चैव नो हीष्टमामिषस्य विवर्जनम्
न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः
न गवाश्वेन सर्वेण ते त्याज्या य इमे हताः ॥
काममन्युपरीतास्ते क्रोधहर्षसमन्विताः ।
मृत्युयानं समारुह्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ १२
बहुकल्याणसंयुक्तानिच्छन्ति पितरः सुतान् ।
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च तितिक्षया ॥ १३
उपवासैस्तथेज्याभिर्व्रतकौतुकमङ्गलैः ।
लभन्ते मातरो गर्भान् मासान्दश च बिभ्रति
यदि स्वस्ति प्रजायन्ते जाता जीवन्ति वा यदि
संभाविता जातबलास्ते दद्युर्यदि नः सुखम्
इह चामुत्र चैवेति कृपणाः फलहेतवः ।
तासामयं समुद्योगो निर्वृत्तः केवलोऽफलः
यदासां निहता पुत्रा युवानो मृष्टकुण्डलाः
अभुक्त्वा पार्थिवान् भोगानृणान्यनपहाय च
पितृभ्यो देवताभ्यश्च गता वैवस्वतक्षयम् ॥
यदैषामम्ब पितरौ जातकामावुभावपि ।
संजातधनरत्नेषु तदैव निहता नृपाः ॥ १९
संयुक्ताः काममन्युभ्यां क्रोधहर्षासमञ्जसाः ।
न ते जयफलं किंचिद्भोक्तारो जातु कर्हिचित्
पञ्चालानां कुरूणां च हता एव हि ये हताः
न चेत्सर्वानयं लोकः पश्येत् स्वेनैव कर्मणा
वयमेवास्य लोकस्य विनाशे कारणं स्मृताः
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेषु तत्सर्वं प्रतिपत्स्यति ॥ २२
सदैव निकृतिप्रज्ञो द्वेष्टा मायोपजीवनः ।
मिथ्याविनीतः सततमस्मास्वनपकारिषु ॥
न सकामा वयं ते च न चास्माभिर्न तैर्जितं
न तैर्भुक्तेयमवनिर्न नार्यो गीतवादितम् ॥
नामात्यसुहृदां वाक्यं न च श्रुतवतां श्रुतम् ।
न रत्नानि परार्ध्यानि न भूर्न द्रविणागमः ॥
अस्मद्द्वेषेण सन्तप्तः सुखं न स्मेह विन्दति -
ऋद्धिमस्मासु तां दृष्ट्वा विवर्णो हरिणः कृशः
धृतराष्ट्रश्च नृपतिः सौबलेन निवेदितः ।
तं पिता पुत्रगृद्धित्वादनुमेने नये स्थितः ॥२७

---

ननु युद्धे जयश्चेद्राज्यलाभो मृत्युश्चेत्स्वर्गलाभ इत्युभयलोकहितं युद्धमित्याशंक्याऽर्थं निरस्यति-**त्रैलोक्यस्येति** ॥ ८ ॥ हीनार्थत्वमेवाह-**आमिषमिति** । आमिषे राज्यनिमित्ते अशुभं ज्ञातिद्रोहाख्यम् । शुनामिव इतरेषां भवति नो हि अस्माकं तु आमिषं च आमिषस्य विवर्जनं चेति द्वयमपीष्टम् ॥ १० ॥ एतदेव विभजते-**न पृथिव्येति** । पृथिव्यादेरामिषस्य वर्जनं इष्टं बन्धुरूपं त्वामिषमिष्टमेव बन्धूनामर्थे सर्वं त्याज्यमित्यर्थः ॥११॥ **कामेति** । मृत्युयानं मृत्युमार्गं युद्धे मृतानां स्वर्गोऽपि नास्ति किं तु कामाद्याक्रान्तत्वान्नरक एवास्तीत्यर्थः १२॥ एवं हि नृणां पापहतानां नरकं चोपपाद्य तत्सम्बन्धिनां शोकं च व्युत्पादयति-**बहुकल्याणेत्यादिना** १३॥ **व्रतानि** गौरीव्रतादीनि **कौतुकानि** दुर्गोत्सवादीनि **मङ्गलानि** लक्ष्मीनारायणशिलादीनि तैः ॥ १४ ॥ अनपहाय अपरिहृत्य अनवदायेति पाठे अपरिशोध्य पितृभ्य इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥ १८ ॥ **यदैषामिति** । अर्जुनेन सह वदन्नपि सन्निहितां मातरमुक्तार्थसंवादाय संबोधयति-**हे अम्बेति** । पितरौ मातापितरौ गान्धारीधृतराष्ट्रौ यदैव जातकामौ तदैव ते नृपा दुर्योधनप्रभृतयो हताः ॥ १९ ॥ **संयुक्ता इति** । **कामोऽर्थस्या**भिलाषः । **मन्युस्त**दलाभे दैन्यम् । **क्रोधः** कामप्रतिबंधे सत्यत्युत्तप्तता। **हर्षो** लाभे सति अत्युत्फुल्लता तैः असमञ्जसाः। ह्रस्वपाठेऽसमंजस् इति सकारान्तः शब्दः। विषमा ये पुरुषास्ते जयफलं भूमेः स्वर्गस्य वा जयेन यत्फलं तन्न भोक्तारो न भोक्ष्यन्ति। जातु कदाचित् जीवने मरणे वा कर्हिचित् क्वचिद्देशे इह परत्र वा ॥ २० ॥ ननु ये हतास्ते स्वर्गं भोक्ष्यन्त्येवेत्याशंक्याह-**पञ्चालानामिति** । ये हतास्ते हता एव न तु स्वर्गं गताः कामाद्युपेतत्वादित्युक्तहेतोः।एवं न चेदपहन्ता स्वेनैव कर्मणा निमित्तेन स्वर्गतांस्तान्पश्येत् च पश्यतीति लोकायतमतमाश्रित्योक्तम् ॥ २१ ॥ तत्सर्वं विनाशकारणत्वं प्रतिपत्स्यति पर्यवस्यति वयं राज्यलोभाद्विनाशे अवान्तरकारणं मुख्यं कारणं तु अस्मद्राज्यापहाराद्धृतराष्ट्र एवेति भावः ॥ २२ ॥ तदेवाह-**सदैवेत्यादिना** । **निकृतिर्वं**चनं तन्निष्ठैव प्रज्ञा यस्येति निकृतिप्रज्ञः । मायया कपटद्यूतादिनोपजीवनं यस्य स तथा मिथ्याविनीतश्च धृतराष्ट्र एवात्र प्राधान्यः। सर्वमूलत्वात् ॥ २३ ॥ युद्धयतां लोकद्वयनाशमुपपाद्योपसंहरत्यर्धेन **न सकामा इति** ॥ २४ ॥ श्रुतवतां पण्डितानां रत्नानीत्यादौ भुक्तानीत्यादिर्यथालिङ्गं शेषः ॥ २५ ॥ तत्र हेतु**रस्मादिति**। हरिणः पांडुरः ॥२६॥

अनपेक्ष्यैव पितरं गाङ्गेयं विदुरं तथा ।
असंशयं क्षयं राजा यथैवाहं तथा गतः ॥२८
अनियम्याशुचिं लुब्धं पुत्रं कामवशानुगम् ।
यशसः पतितो दीप्ताद्घातयित्वा सहोदरान्
इमौ हि वृद्धौ शोकाग्नौ प्रक्षिप्य स सुयोधनः
अस्मत्प्रद्वेषसंयुक्तः पापबुद्धिः सदैव ह ॥ ३०
को हि बन्धुः कुलीनः संस्तथा ब्रूयात्सुहृज्जने
यथाऽसाववदद्वाक्यं युयुत्सुः कृष्णसन्निधौ
आत्मनो हि वयं दोषा-
द्विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।
प्रदहन्तो दिशः सर्वा
भास्वरा इव तेजसा ॥ ३२
सोऽस्माकं वैरपुरुषो दुर्मतिः प्रग्रहं गतः ।
दुर्योधनकृते ह्येतत्कुलं नो विनिपातितम् ॥
अवध्यानां वधं कृत्वा
लोके प्राप्ताः स्म वाच्यताम् ।
कुलस्यास्यान्तकरणं
दुर्मतिं पापपूरुषम् ॥ ३४
राजा राष्ट्रेश्वरं कृत्वा धृतराष्ट्रोऽद्य शोचति
हताः शूराः कृतं पापं विषयः स्वो विनाशितः
हत्वा नो विगतो मन्युः शोको मां रुंधयत्ययं
धनञ्जयकृतं पापं कल्याणेनोपहन्यते ॥ ३६
ख्यापनेनानुतापेन दानेन तपसाऽपि वा ।
निवृत्त्या तीर्थगमनाच्छ्रुति-स्मृति-जपेन वा
त्यागवांश्च पुनः पापं नालंकर्तुमिति श्रुतिः ।
त्यागवाञ्जन्ममरणे नाप्नोतीति श्रुतिर्यदा
प्राप्तवर्त्मा कृतमतिर्ब्रह्म संपद्यते तदा ।
स धनञ्जय निर्द्वंद्वो मुनिर्ज्ञानसमान्वितः ॥ ३९
वनमामन्त्र्य वः सर्वान् गमिष्यामि परंतप ।
न हि कृत्स्नतमो धर्मः शक्यः प्राप्तुमिति श्रुतिः
परिग्रहवता तन्मे प्रत्यक्षमरिसूदन ।
मया निसृष्टं पापं हि परिग्रहमभीप्सता ॥
जन्मक्षयनिमित्तं च प्राप्तुं शक्यमिति श्रुतिः
सपरिग्रहमुत्सृज्य कृत्स्नं राज्यं सुखानि च ॥
गमिष्यामि विनिर्मुक्तो
विशोको निर्ममः क्वचित् ।
प्रशाधि त्वमिमामुर्वीं
क्षेमां निहतकण्टकाम् ॥ ४३
न ममार्थोऽस्ति राज्येन भोगैर्वा कुरुनन्दन ।
एतावदुक्त्वा वचनं कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
उपारमत्ततः पार्थः कनीयानभ्यभाषत ॥ ४४

**इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिरपरिदेवनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥**

---

तथागतः बुद्धमुनिः क्षणिकबुद्धिरिति यावत् । यथाहमनवस्थितबुद्धिस्तथा धृतराष्ट्रोऽपीत्यर्थः ॥ २८ ॥ एतत्फलमाह -**अनियम्येति** ॥ २९ ॥ प्रक्षिप्य गत इति शेषः ३० युयुत्सुर्योद्धुकामः । वाक्यमस्मद्द्वेषेण पांडवा नष्टा इत्येवंरूपम् ॥३१॥ तदेवार्थत आह-**आत्मन इति**।दुर्योधनेऽप्युपचारादात्मपदप्रयोगः आत्मनो दुर्योधनस्य ॥ ३२ ॥ प्रग्रहं दृढबंधनं गतः प्राप्तः । नोऽस्माभिः ॥ ३३ ॥ अवध्यानामवध्यकल्पानां भीष्मादीनां गुरुत्वाद्वा वधानर्हाणाम् ॥ ३४ ॥ विषयः आमिषम् ॥ ३५ ॥ नोऽस्माकं सर्वेषां मन्युः क्रोधस्तान्हत्वा विगतः मां त्वेकं शोको रुन्धयति रुणद्धि रोधयति इति वक्तव्ये रुन्धयतीति प्रयोगा वक्तुर्वैक्लव्यं सूचयति कल्याणेनोपकारेण ॥ ३६ ॥ निवृत्त्या त्यागेन ॥ ३७ ॥ एतेषु त्यागमेव प्रशंसति-**त्यागवानिति** । श्रुतिः-'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इति यदा यदाह ॥३८॥ तस्मात्प्राप्तवर्त्मा लब्धयोगमार्गः कृतमतिः श्रवणमननादिना अहं ब्रह्मास्मीति निश्चितबुद्धिः ब्रह्म अखंडानन्दं संपद्यते ऐक्येन प्राप्नोति। **स इति**।एवं त्यागफलं जानन्नहं निर्द्वन्द्वः परिग्रहशून्यः मुनिर्ध्याननिष्ठो ज्ञानेन ब्रह्मात्मैक्यविषयेण समन्वितो भवितुमिच्छुः ३९॥ समन्वितः सन् वा वनं गमिष्यामि कृत्स्नो धर्मः योगेनात्मदर्शनं यदाह याज्ञवल्क्यः—

'इज्याऽऽचारदमोऽहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् 'इति॥

कृत्स्नतमो धर्मस्तु पार्यन्तिकं जीवन्मुक्तिसुखम् ४०॥परिग्रहवता गृहस्थेन नहि प्राप्तुं शक्यं एतेन याज्ञवल्क्यादिवत्स्वस्यापि विद्वत्संन्यासेऽधिकारो दर्शितः । परिग्रहसत्त्वे दोषमाह-**मयेति** । परिग्रहात्पापकरणं, ततश्च जन्मादिहेतोर्मोहस्य पुनः प्राप्तिरित्यर्थः । अत्र श्रुतिः-'तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य' तदेव ब्रह्म भयहेतुर्विदुषोऽप्यमन्वानस्य ध्यानशून्यस्येति श्रुत्यर्थः । फलितमाह-**स इति** ॥४१॥ गमिष्यामि निर्विक्षेपेण ध्यानसिद्ध्यर्थम् । **क्वचिदिति** । अज्ञातदेशत्वं दर्शितम् ॥४३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

वैशम्पायन उवाच ।
अथार्जुन उवाचेदमधिक्षिप्त इवाक्षमी ।
अभिनीततरं वाक्यं दृढवादपराक्रमः ॥ १
दर्शयन्नैन्द्रिरात्मानमुग्रमुग्रपराक्रमः ।
स्मयमानो महातेजाः सृक्किणी परिसंलिहन्

अर्जुन उवाच ।
अहो दुःखमहो कृच्छ्रमहो वैक्लव्यमुत्तमम् ।
यत्कृत्वाऽमानुषं कर्म त्यजेथाः श्रियमुत्तमाम्
शत्रून्हत्वा महीं लब्ध्वा स्वधर्मेणोपपादिताम्
एवंविधं कथं सर्वं त्यजेथा बुद्धिलाघवात् ॥
क्लीबस्य हि कुतो राज्यं दीर्घसूत्रस्य वा पुनः
किमर्थं च महीपालानवधीः क्रोधमूर्छितः ॥
यो ह्याजिजीविषेद्भैक्ष्यं कर्मणा नैव कस्यचित्
समारंभान्बुभूषेत हतस्वस्तिरकिञ्चनः ।
सर्वलोकेषु विख्यातो न पुत्रपशुसंहितः ॥
कापालीं नृप पापिष्ठां वृत्तिमासाद्य जीवतः
संत्यज्य राज्यमृद्धं ते लोकोऽयं किं वदिष्यति
सर्वारम्भान् समुत्सृज्य हतस्वस्तिरकिञ्चनः ।
कस्मादाशंससे भैक्ष्यं कर्तुं प्राकृतवत्प्रभो ८
अस्मिन् राजकुले जातो
जित्वा कृत्स्नां वसुन्धराम् ।
धर्मार्थावखिलौ हित्वा
वनं मौढ्यात्प्रतिष्ठसे ॥ ९
यदीमानि हवींषीह विमथिष्यन्त्यसाधवः ।
भवता विप्रहीणानि प्राप्तं त्वामेव किल्बिषम्
आकिञ्चन्यं मुनीनां च इति वै नहुषोऽब्रवीत्
कृत्वा नृशंसं ह्यधने धिगस्त्वधनतामिह ११
अश्वस्तनमृषीणां हि विद्यते वेद तद्भवान् ।
यं त्विमं धर्ममित्याहुर्धनादेष प्रवर्तते ॥ १२
धर्मं संहरते तस्य धनं हरति यस्य सः ।
ह्रियमाणे धने राजन् वयं कस्य क्षमेमहि ॥
अभिशस्तं प्रपश्यन्ति दरिद्रं पार्श्वतः स्थितम् ।
दरिद्रं पातकं लोके न तच्छंसितुमर्हति ॥
पतितः शोच्यते राजन्निर्धनश्चापि शोच्यते ।
विशेषं नाधिगच्छामि पतितस्याधनस्य च
अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संभृतेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥
अर्थाद्धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप ।
प्राणयात्रापि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिद्ध्यति

---

८

अथार्जुनः दृढौ युक्तिशक्त्युपेतौ वादपराक्रमौ उक्तिविक्रमौ यस्य स तथा ॥ १ ॥ अमानुषामिति च्छेदः ॥३॥ दुःखं स्वजनवधात् कृच्छ्रं परवीरजयात् वैक्लव्यं मौढ्यं धर्मलब्धस्य त्यागादित्याह-**शत्रूनिति**। शत्रून् शातयितॄन्परान्हत्वा प्रविनाश्य शत्रून् शातयितव्यान्स्वीयान्हत्वा घातयित्वेति च द्वयोरेकेन वाक्येन संग्रहः ॥ ४ ॥ क्लीबस्य स्वीयवधे कातरस्य दीर्घसूत्रस्य परवधे अलसस्य। एवं चेन्महीपालान् उभयपक्षीयान् किमर्थमवधीः अतोऽपि क्लीबोऽसीत्यर्थः ॥ ५ ॥ एतदेव स्पष्टयति—**यो हीति** सार्धश्लोको वाक्यम्। हि प्रसिद्धं यः पुमान् हतस्वस्तिर्नष्टकल्याणः आकिंचनो दरिद्रः अत एव क्रमात्सर्वलोकेषु न विख्यातः । पुत्रपशुसंहितः पुत्रादिभिराश्लिष्टश्च न भवति स भैक्ष्यमाजिजीविषेत् उपजीवितुमिच्छेत् स कर्मणा पौरुषेण कस्यचिदपि परस्य समारभ्यन्त इति समारंभा अर्थास्तान्नैव बुभूषेत नैव प्राप्तुमिच्छेत् त्वं तु प्राप्तकल्याणः संपन्नः ख्यातः पुत्राद्याश्लिष्टश्च पौरुषेणार्थाँल्लब्ध्वा भैक्ष्येण जीवितुमिच्छसीति विपर्यस्तबुद्धिरसीति भावः ॥ ६ ॥ कापालीं

जीवतस्ते इति सम्बन्धः ॥ ७ ॥ सर्वारंभान् सर्वार्थान् धर्मादीन् प्राकृतवत् मूढवत् ॥८॥ धर्महानिं व्युत्पादयति **—यदीति** । अस्माकं राज्ये अनधिकारात् अधिकारिणस्तवैव धर्मलोपजं किल्बिषं भवतीत्यर्थः ॥१०॥ अर्थस्तु धर्मादीनां चतुर्णामपि मूलमिति सर्वथा स न त्याज्य इत्याह **आकिञ्चन्यमित्यादिना** । 'आकिंचन्य मुनीनां च राज्यादप्यधिकं मतम्' इति यद्वाक्यं तदुद्दिश्य नहुषो राजा अधनतामिह धिगस्त्विति अब्रवीत् । अधने धनाभावे निमित्ते सति अगस्त्यशापात्सर्पीभावदशायां नृशंसं निर्दयं भीमसेनादिमनुष्यग्रासरूपं कर्म कृत्वा दारिद्र्यं पापहेतुत्वान्निन्दितवानित्यर्थः ॥ ११ ॥ एतदपि ऋषीणामेवोचितं न राज्ञामित्याह—**अश्वस्तनमिति** । 'वयमेवास्य लोकस्य विनाशे कारणं स्मृताः-' इति यदुक्तं तत्राह-**यं त्विममित्यादि** ॥१२॥ वयं क्षत्रियाः कस्य भ्रातुः पितुर्वा अपराधं क्षमेमहि न कस्यापीत्यर्थः ॥१३॥ क्षमायां दोषमाह—**अभिशस्तमिति** । अभिशस्तवदित्यर्थः शंसितुं प्रशंसितुम् ॥ १४ ॥ **प्राणेति**। मुमुक्षूणां

अर्थेन हि विहीनस्य
पुरुषस्याल्पमेधसः ।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा
ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ १८
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि
यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमान् लोके
यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ १९
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विधित्सितुम्
अर्थैरर्थानि बध्यन्ते गजैरिव महागजाः २०
धर्मः कामश्च स्वर्गश्च हर्षः क्रोधः श्रुतं दमः ।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप २१
धनात्कुलं प्रभवति धनाद्धर्मः प्रवर्धते ।
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परः पुरुषोत्तम २२
नाधनो धर्मकृत्यानि यथावदनुतिष्ठति ।
धनाद्धि धर्मः स्रवति शैलादभि नदी यथा ॥
यः कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः
स वै राजन् कृशो नाम न शरीरकृशः कृशः
अवेक्षस्व यथान्यायं पश्य देवासुरं यथा ।
राजन् किमन्यज्ज्ञातीनां वधादृद्ध्यन्ति देवताः
न चेद्धर्तव्यमन्यस्य कथं तद्धर्ममारभेत् ।
एतावानेव वेदेषु निश्चयः कविभिः कृतः ॥
अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता
सर्वथा धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः २७
द्रोहाद्देवैरवाप्तानि दिवि स्थानानि सर्वशः ।
द्रोहात्किमन्यज्ज्ञातीनां गृद्ध्यन्ते येन देवताः
इति देवा व्यवसिता वेदवादाश्च शाश्वताः
अधीयन्तेऽध्यापयन्ते यजन्ते याजयन्ति च
कृत्स्नं तदेव तच्छ्रेयो
यदप्याददतेऽन्यतः ।
न पश्यामोऽनपकृतं
धनं किञ्चित्क्वचिद्वयम् ॥ ३०
एवमेव हि राजानो यजन्ति पृथिवीमिमाम्
जित्वा ममेयं ब्रुवते पुत्रा इव पितुर्धनम् ३१
राजर्षयोऽपि ते स्वर्गो धर्मो ह्येषां निरुच्यते
यथैव पूर्णादुदधेः स्यन्दन्त्यापो दिशो दश ॥
एवं राजकुलाद्वित्तं पृथिवीं प्रति तिष्ठति ।
आसीदियं दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ३३
अम्बरीषस्य मान्धातुः
पृथिवी सा त्वयि स्थिता ।
स त्वां द्रव्यमयो यज्ञः
संप्राप्तः सर्वदक्षिणः ॥ ३४
तं चेन्न यजसे राजन्प्राप्तस्त्वं राज्यकिल्बिषम्
येषां राजाऽश्वमेधेन यजते दक्षिणावता ३५
उपेत्य तस्यावभृथे पूताः सर्वे भवन्ति ते ।
विश्वरूपो महादेवः सर्वमेधे महामखे ।
जुहाव सर्वभूतानि तथैवात्मानमात्मना ३६
शाश्वतोऽयं भूतिपथो नास्त्यन्तमनुशुश्रुम ।
महान् दाशरथः पन्था मा राजन्कुपथं गमः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अर्जुनवाक्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

कृशार्थः क्षीणार्थः ॥ २४ ॥ यदुक्तं ज्ञातीनां परस्परं युद्धे हतानां हंतॄणां च श्रेयो नास्तीति तच्छिष्टाचारदर्शनेन दूषयति—**अवेक्षस्वेत्यादिना** ॥ २५ ॥ अन्यस्य परस्य धनं चेन्न हर्तव्यं तर्हि राजा कथं धर्ममाचरेत् तस्य वृत्त्यन्तराभावान्न कथञ्चिदित्यर्थः ॥ २६ ॥ आहार्यं स्वधर्मेणार्जनीयं तस्य च प्रयोजनं यष्टव्यमित्युक्तम् ॥ २७ ॥ ननु परद्रव्यापहारे दोषोऽस्तीत्याशंक्याह—**कृत्स्नमिति** । यदेव धनं राजानोऽन्यतः परस्मादाददते तदेव तेषां श्रेयः श्रेयस्करम् । अन्यथा अनपकृतं अपकारवर्जितं धनं राज्ञां नास्त्येवेत्यर्थः । यज्ञार्थं पशुबीजादिवधादिव परद्रव्यापहारादपि राज्ञां न दोषोऽस्तीति भावः ॥३०॥ निरुच्यते उत्कृष्टत्वेन कीर्त्यते स्यन्दन्ति प्रस्रवन्ति ॥ ३२ ॥ किंच परवित्तापहारोऽस्य परोद्धरणार्थ एवेत्याह—**येषामिति** । येषां माण्डलिकानां प्रजादीनां च । द्रव्यापहर्ता राजा यजते ते सर्वे तदवभृथे पूता भवन्तीत्यन्वयः ॥ ३५ ॥ **विश्वरूप इति** । ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभेत इत्यादिशास्त्रात् ब्राह्मणादीनां भूतानां च स्वदेहस्य च होमः यज्ञार्थं क्रियते । तत्र कियान् द्रव्यापहार इति भावः ॥ ३६ ॥ एवमनादिरनन्तश्चायं यज्ञियः पन्था इत्याह—**शाश्वत इति** । **दाशरथः**-एकः पशुः, द्वौ पत्नीयजमानौ, त्रयो वेदाः, चत्वार ऋत्विजः इति दश रथाश्च प्रचरन्ति यस्मिन्स दशरथः स एव दाशरथः ॥ ३७ ॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

# ९

युधिष्ठिर उवाच ।
मुहूर्तं तावदेकाग्रो मनःश्रोत्रेऽन्तरात्मनि ।
धारयन्नपि तच्छ्रुत्वा रोचेत वचनं मम ॥ १
साधुगम्यमहं मार्गं न जातु त्वत्कृते पुनः ।
गच्छेयं तद्गमिष्यामि हित्वा ग्राम्यसुखान्युत
क्षेम्यश्चैकाकिना गम्यः
पन्था कोऽस्तीति पृच्छ माम् ।
अथवा नेच्छसि प्रष्टु-
मपृच्छन्नपि मे शृणु ॥ ३
हित्वा ग्राम्यसुखाचारं तप्यमानो महत्तपः ।
अरण्ये फलमूलाशी चरिष्यामि मृगैः सह ४
जुह्वानोऽग्निं यथाकालमुभौ कालावुपस्पृशन् ।
कृशः परिमिताहारश्चर्मचीरजटाधरः ॥ ५
शीतवातातपसहः क्षुत्पिपासाश्रमक्षमः ।
तपसा विधिदृष्टेन शरीरमुपशोषयन् ॥ ६
मनःकर्णसुखा नित्यं शृण्वन्नुच्चावचा गिरः ।
मुदितानामरण्येषु वसतां मृगपक्षिणाम् ॥ ७
आजिघ्रन्पेशलान् गंधान्फुल्लानां वृक्षवीरुधाम्
नानारूपान्वने पश्यन् रमणीयान्वनौकसः ८
वानप्रस्थजनस्यापि दर्शनं कुलवासिनाम् ।
नाप्रियाण्याचरिष्यामि किंपुनर्ग्रामवासिनाम्
एकान्तशीली विमृशन्पक्वापक्वेन वर्तयन् ।
पितॄन्देवांश्च वन्येन वाग्भिरद्भिश्च तर्पयन् ॥
एवमारण्यशास्त्राणामुग्रमुग्रतरं विधिम् ।
सेवमानः प्रतीक्षिष्ये देहस्यास्य समापनम्
अथवैकोऽहमेकाहमेकैकस्मिन्वनस्पतौ ।
चरन् भैक्ष्यं मुनिर्मुण्डः क्षपयिष्ये कलेवरम्
पांसुभिः समभिच्छन्नः शून्यागारप्रतिश्रयः ।
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ॥
न शोचन्न प्रहृष्यंश्च तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः॥
आत्मारामः प्रसन्नात्मा जडान्धबधिराकृतिः
अकुर्वाणः परैः काश्चित्संविदं जातु कैरपि
जङ्गमाजङ्गमान्सर्वानविहिंसंश्चतुर्विधान् ।
प्रजाः सर्वाः स्वधर्मस्थाः समः प्राणभृतः प्रति
न चाप्यवहसन्कञ्चिन्न कुर्वन्भ्रुकुटीः क्वचित् ।
प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वेन्द्रियसुसंयतः ॥ १७
अपृच्छन्कस्यचिन्मार्गं प्रव्रजन्नेव केनचित् ।
न देशं न दिशं काञ्चिद्गन्तुमिच्छन् विशेषतः
गमने निरपेक्षश्च पश्चादनवलोकयन् ।
ऋजुः प्रणिहितो गच्छंस्त्रसस्थावरवर्जकः १९
स्वभावस्तु प्रयात्यग्रे प्रभवन्त्यशनान्यपि ।
द्वंद्वानि च विरुद्धानि तानि सर्वाण्यचिन्तयन्
अल्पं वा स्वादु वा भोज्यं
पूर्वालाभे न जातु चित् ।
अन्येष्वपि चरँल्लाभ-
मलाभे सप्त पूरयन् ॥ २१

---

९

**मुहूर्तमिति** । त्वमपि मदुक्तं निवृत्तिमार्गमपि श्रुत्वा मुहूर्तमन्तरात्मनि हृदयपुण्डरीके मनःश्रोत्रे बाह्याभ्यन्तरकरणे धारयन् स्थिरीकुर्वंस्तावदादौ एकाग्रो भवेति शेषः । पश्चान्मम वचनं तुभ्यं रोचेत त्वद्रुचये भवेत् अन्तर्मुखस्यैव निवृत्तिमार्ग इष्टो न बहिर्मुखस्येति भावः । श्रोत्रेऽन्तरिति सन्धिरार्षः ॥१॥ **साध्विति** । उत अपि ग्राम्यसुखानि हित्वा साधुगम्यं मार्गं गच्छेयं न पुनस्त्वत्कृते जातु तत् राज्यं गमिष्यामि स्वीकरिष्यामि ॥ २ ॥ राज्यमेव साधुगम्यो मार्ग इति चेत्तत्राह—**क्षेम्य इति** ॥ ३ ॥ तत्र तावद्वनस्थधर्माननुष्ठास्यामीत्याह —**हित्वेत्यादिना** ॥ ४ ॥ पेशलान् रम्यान् ॥ ७ ॥ यतेर्धर्मानुष्ठानं प्रतिजानीतेऽ**थवेति** ॥ १२ ॥ आत्मारामः योगेनात्मन्येव रममाणः प्रसन्नात्मा शुद्धसत्त्वः केनचिन्निमित्तेन संविदं संवादमकुर्वाणः कृत्याभावात् ॥ १५ ॥ चतुर्विधान् जंगमस्य जरायुजाण्डजस्वेदजभेदेन त्रैविध्यात् स्वधर्मस्थाः प्राणभृत इन्द्रियपोषकाश्च प्रजाः प्रति सम इत्यन्वयः ॥१६ केनचिन्मार्गेण ॥१८॥ एवं यत्याश्रमधर्मानुक्त्वाऽत्याश्रमधर्ममाह—**ऋजुरिति**। कामक्रोधादिशून्यः प्रणिहितोन्तर्मुखः । त्रस्यतीति त्रसं भयादिधर्मकं लिंगशरीरं मरणकालेऽत्रैव तिष्ठतीति स्थावरं स्थूलशरीरं तयोर्वर्जकः स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानशून्य इत्यर्थः ॥ १९ ॥ एवंरूपस्य कथं देहयात्रानिर्वाह इत्याशंक्याह—**स्वभाव इति**। स्वभावो देहादीनां पूर्वसंस्कारः कटवेष्टनवत् प्रारब्धकर्मोपस्थापितदेहनिर्वाहार्थमग्रे व्रजति पुरस्कृतो भवति । नन्वेवं सुषुप्तावपि यात्रा स्यादित्याशंक्याह—**प्रभवन्त्यशनान्यपीति** । यथा प्रसुप्तः शिशुस्तनं पिबति संस्कारदार्ढ्यात् एवं देहद्वयाभिमानहीनोऽहमपि भोजनादिकं करिष्यामीत्यर्थः । द्वन्द्वादिषु यानि विरुद्धान्यपमानाल्पभोज्यादीनि तान्यचिन्तयन् ॥२०॥ पूर्वालाभेन पूर्वस्मिन् गृहेऽलाभेन हेतुना जातु कदाचित् । अन्येष्वपि गृहेषु लाभं लब्धमन्नं चरन् भक्षयन् ॥ २१ ॥

विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
अतीतपात्रसंचारे काले विगतभिक्षुके ॥ २२
एककालं चरन्भैक्ष्यं त्रीनथ द्वे च पञ्च वा ।
स्नेहपाशं विमुच्याहं चरिष्यामि महीमिमाम्
अलाभे सति वा लाभे समदर्शी महातपाः
न जिजीविषुवत्किञ्चिन्न मुमूर्षुवदाचरन् २४
जीवितं मरणं चैव नाभिनन्दन्न च द्विषन् ।
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः ॥
नाकल्याणं न कल्याणं चिन्तयन्नुभयोस्तयोः
याः काश्चिज्जीवता शक्याः
कर्तुमभ्युदयक्रियाः ।
सर्वास्ताः समभित्यज्य
निमेषादिव्यवस्थितः ॥ २६
तेषु नित्यमसक्तश्च त्यक्तसर्वेन्द्रियक्रियः ।
अपरित्यक्तसंकल्पः सुनिर्णिक्तात्मकल्मषः ॥
विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो व्यतीतः सर्ववागुराः ।
न वशे कस्यचित्तिष्ठन्सधर्मा मातरिश्वनः २८
वीतरागश्चरन्नेवं तुष्टिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम् ।
तृष्णया हि महत्पापमज्ञानादस्मि कारितः
कुशलाकुशलान्येके कृत्वा कर्माणि मानवाः
कार्यकारणसंश्लिष्टं स्वजनं नाम बिभ्रति ३०
आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्राणं कलेवरम् ।
प्रतिगृह्णाति तत्पापं कर्तुः कर्मफलं हि तत् ॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् व्याविद्धे रथचक्रवत्
समेति भूतग्रामोऽयं भूतग्रामेण कार्यवान् ॥
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिवेदनाभिरभिद्रुतम्
अपारमिव चास्वस्थं संसारं त्यजतः सुखम्
दिवः पतत्सु देवेषु स्थानेभ्यश्च महर्षिषु ।
को हि नाम भवेनार्थी भवेत्कारणतत्त्ववित्
कृत्वा हि विविधं कर्म तत्तद्विविधलक्षणम् ।
पार्थिवैर्नृपतिः स्वल्पैः कारणैरेव बध्यते ३५
तस्मात्प्रज्ञामृतमिदं चिरान्मां प्रत्युपस्थितम्
तत्प्राप्य प्रार्थये स्थानमव्ययं शाश्वतं ध्रुवम् ॥
एतया सन्ततं धृत्या चरन्नेवंप्रकारया ।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिवेदनाभिरभिद्रुतम् ।
देहं संस्थापयिष्यामि निर्भयं मार्गमास्थितः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भैक्ष्यकालमाह—**विधूमे इति**। गृहे इति शेषः ॥२२॥ त्रीन् गृहान्॥२३॥ जिजीविषुवद्धनादिसंग्रहं ममूर्षुवदन्नादित्यागम् ॥२४॥**वासी** तक्षायुधं तया ॥२५॥**या इति**। निमेषोन्मेषाशनपानादिशारीरनिर्वाहमात्रकर्मस्ववस्थित इत्यर्थः॥२६॥ तेष्वपि कर्मसु असक्तः अपरित्यक्तः **नित्यं** वशीकृतः संकल्पो मनःक्रिया येन दृढमना इत्यर्थः। नास्ति परित्यक्तः संकल्पो यस्मादन्य इति वा सुनिर्णिक्तात्मकल्मषः सम्यक् दूरीकृतधर्मामलः ॥ २७ ॥ वागुराः स्नेहपाशान् ॥२८॥ चिकीर्षितमाह—**वीतराग इति** ॥ २९ ॥ एके मूढाः कार्यकारणसंश्लिष्टं स्वसुखेन निमित्तभूतेन संलग्नं स्त्र्यादिकं बिभ्रति आत्मोपकारकत्वेन पुष्णन्ति तथा च श्रुतिः ' न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति' इति॥३०॥ अनात्मीयेष्वात्मीयबुद्ध्या तत्पोषणार्थं कृतं कर्म तु मरणान्तेऽपि न मुञ्चतीत्याह—**आयुष इति** ॥ ३१ ॥ व्याविद्धे भ्राम्यमाणे समेति संयोगमेति ॥ ३२ ॥ अस्वस्थमात्मनि अध्यासं विना रज्ज्वां भुजङ्गवदविद्यमानम् ॥ ३३ ॥ ऐहिकार्थानां त्यागे सुखमुक्त्वाऽऽमुष्मिकाणामपि त्यागे तदस्तीत्याह-**दिव इति**। भवेन स्वर्गैश्वर्येण कारणमविद्या तस्यास्तत्त्वं तद्दुःखमयत्वं तद्वित्३४ **कृत्वा हीति**। विविधं सामाद्युपायवत् विविधलक्षणं नानाविधकपटादिरूपं कर्म कृत्वा स्वल्पैः पार्थिवैः क्षुद्रराजभिर्नृपतिर्महाराजो बध्यते कारणैः स्वापमानादिभिर्हेतुभिः बहवो मिलित्वा एकं महान्तं घ्नन्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ यस्माद्दुःखमयं क्षयिष्णु च ऐश्वर्यं तस्मात् स्थानं मोक्षं अव्ययमपक्षयशून्यं शाश्वतं अनाद ध्रुवं सदैकरूपम् ॥३६॥ संस्थापयिष्यामि समापयिष्यामि ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

# १०

भीम उवाच ।

श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी ॥ १
आलस्ये कृतचित्तस्य राजधर्मानसूयतः ।
विनाशे धार्तराष्ट्राणां किं फलं भरतर्षभ ॥२
क्षमानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं न विद्यते ।
क्षात्रमाचरतो मार्गमपि बन्धोस्त्वदन्तरे ॥३
यदीमां भवतो बुद्धिं विद्याम वयमीदृशीम् ।
शस्त्रं नैव ग्रहीष्यामो न वधिष्याम कञ्चन ॥
भैक्ष्यमेवाचरिष्याम शरीरस्याविमोक्षणात् ।
न चेदं दारुणं युद्धमभविष्यन्महीक्षिताम् ॥
प्राणस्यान्नमिदं सर्वमिति वै कवयो विदुः ।
स्थावरं जंगमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥
आददानस्य चेद्राज्यं ये केचित्परिपन्थिनः ।
हन्तव्यास्त इति प्राज्ञाः क्षत्रधर्मविदो विदुः
ते सदोषा हतास्माभी राज्यस्य परिपन्थिनः
तान् हत्वा भुंक्ष्व धर्मेण युधिष्ठिर महीमिमाम्
यथा हि पुरुषः खात्वा कूपमप्राप्य चोदकम्
पङ्कदिग्धो निवर्तेत कर्मेदं नस्तथोपमम् ॥ ९
यथाऽऽरुह्य महावृक्षमपहृत्य ततो मधु ।
अप्राप्य निधनं गच्छेत्कर्मेदं नस्तथोपमम् ॥
यथा महान्तमध्वानमाशया पुरुषः पतन् ।
स निराशो निवर्तेत कर्मैतन्नस्तथोपमम् ॥११
यथा शत्रून् घातयित्वा पुरुषः कुरुनन्दन ।
आत्मानं घातयेत्पश्चात्कर्मेदं नस्तथोपमम् ॥
यथान्नं क्षुधितो लब्ध्वा न भुञ्जीयाद्यदृच्छया
कामीव कामिनीं लब्ध्वा कर्मेदं नस्तथोपमम्
वयमेवात्र गर्ह्या हि यद्वयं मन्दचेतसम् ।
त्वां राजन्ननुगच्छामो ज्येष्ठोऽयमिति भारत
वयं हि बाहुबलिनः कृतविद्या मनस्विनः ।
क्लीबस्य वाक्ये तिष्ठामो यथैवाशक्तयस्तथा ।
अगतीकगतीनस्मान्नष्टार्थानर्थसिद्धये ।
कथं वै नानुपश्येयुर्जनाः पश्यत यादृशम् ॥
आपत्काले हि संन्यासः कर्तव्य इति शिष्यते
जरयाऽभिपरीतेन शत्रुभिर्व्यंसितेन वा ॥१७
तस्मादिह कृतप्रज्ञास्त्यागं न परिचक्षते ।
धर्मव्यतिक्रमं चैव मन्यन्ते सूक्ष्मदर्शिनः ॥
कथं तस्मात्समुत्पन्नास्तन्निष्ठास्तदुपाश्रयाः ।
तदेव निन्दां भाषेयुर्धाता तत्र न गर्ह्यते ॥ १९
श्रिया विहीनैरधनैर्नास्तिकैः संप्रवर्तितम् ।
वेदवादस्य विज्ञानं सत्याभासमिवानृतम् ॥

१०

श्रोत्रियस्य वेदपाठकस्य मन्दत्वादेवाविपश्चितः अर्थज्ञानशून्यस्य अनुवाकेन नित्यपाठेन हता नष्टा ॥ १ ॥ आलस्य एव न तु परमार्थे कृतचित्तस्य तव ॥ २ ॥ त्वदन्तरे त्वत्तोऽन्यत्र ॥ ३ ॥ प्राणस्य प्राणवतो बलिष्ठस्य इदं सर्वं अन्नमिवान्नं भोग्यम्—'वीरभोग्या वसुंधरा' इति स्मृतेः । अत एव तस्यैव भोजनं भुज्यते पाल्यते इति व्युत्पत्त्या पालनीयमिदं यद्यप्येतत्प्राणोपासनाप्रकरणे श्रुतं तथापि सर्वस्यात्मार्थत्वमित्यंशेन साम्यादुदाहृतम् ॥ ६ ॥ हताऽस्माभिरिति सन्धिरार्षः । तान् धर्मेण हत्वा निघ्नन् त्वं राज्यं भुंक्ष्व हन्तेरन्येभ्योऽपि दृश्यत इति क्वनिप् अनुनासिकलोपः ह्रस्वस्येति तुक् ॥ ८ ॥ तथा तेन प्रकारेण उपमीयत इति तथोपमम् ॥ ९ ॥ पतन् गच्छन् ॥११॥ अशक्तयः शक्तिहीनाः ॥१५॥ अगतीकगतीननाथरक्षकान् दैर्घ्यमार्षम् । ईदृशानपि नष्टार्थान् दृष्ट्वा जना इतरेऽपि अर्थसिद्धये कथं नानुपश्येयुरपि तु आलोचयेयुरेव । एतत् यादृशं मम वचनं तादृशं पश्यत युक्तमयुक्तं वेति परीक्षयेत्यर्थः । समर्थैः स्वार्थसिद्ध्यर्थं यतितव्यमेवेति भावः ॥ १६॥ ननु संन्यास एव नः श्रेयानित्युक्तं तत आह—आपदिति । व्यंसितेन दुर्गतिं प्रापितेन ॥ १७ ॥ इह क्षत्रयोनौ त्यागं चरन् भैक्ष्यं मुनिर्मुंड इत्युक्तविधं संन्यासं न परिचक्षते न प्रशंसन्ति । तत्र हेतुः—धर्मेति ।

'मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिङ्गधारणम् ।
बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते '

इति स्मृतेः क्षत्रियस्य मौंड्यादिकं निषिद्धं तस्याचरणे धर्मव्यतिक्रमोऽस्त्येवेति भावः ॥१८॥ ननु हिंस्रोऽयं क्षात्रधर्मो निंद्य एवेत्याशंक्याह—कथमिति । हिंसार्थमुत्पन्नाः हिंस्रयोनौ जाताः हिंसैकजीवनास्तदेव तस्यैव हिंस्रधर्मस्य निन्दां कथं भाषेयुः । कथं वा तत्र धाता तस्य धर्मस्य स्रष्टा न गर्ह्यते न निंद्यते । धातृविहितत्वात्सहजत्वाच्च नासौ धर्मो निन्द्य इत्यर्थः । यदाह भगवान्—'सदोषमपि कौन्तेय सहजं कर्म न त्यजेत्' इति ॥ १९ ॥ कथं तर्हि जाबालोपनिषदि—' अथ परिव्राट् मुण्डो विवर्णवासा इत्युपक्रम्य भरतरैवतकप्रभृतयोऽनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्ते' इति भरतादीनां क्षत्रियाणां मौंड्यमुन्मत्तचर्या च श्रूयते इत्या-

शक्यं तु मौनमास्थाय बिभ्रताऽऽत्मानमात्मना
धर्मच्छद्म समास्थाय च्यवितुं न तु जीवितुम्
शक्यं पुनररण्येषु सुखमेकेन जीवितुम् ।
अबिभ्रता पुत्रपौत्रान्देवर्षीनतिथीन्पितॄन् ॥२२
नेमे मृगाः स्वर्गजितो न वराहा न पक्षिणः
अथान्येन प्रकारेण पुण्यमाहुर्न तं जनाः ॥ २३
यदि संन्यासतः सिद्धिं
राजा कश्चिदवाप्नुयात् ।
पर्वताश्च द्रुमाश्चैव
क्षिप्रं सिद्धिमवाप्नुयुः ॥ २४
एते हि नित्यसंन्यासा दृश्यन्ते निरुपद्रवाः ।
अपरिग्रहवन्तश्च सततं ब्रह्मचारिणः ॥ २५
अथ चेदात्मभाग्येषु नान्येषां सिद्धिमश्नुते ।
तस्मात्कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः ॥
औदकाः सृष्टयश्चैव जन्तवः सिद्धिमाप्नुयुः ।
तेषामात्मैव भर्तव्यो नान्यः कश्चन विद्यते ॥
अवेक्षस्व यथा स्वैः स्वैः कर्मभिर्व्यापृतं जगत्
तस्मात्कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि भीमवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

अर्जुन उवाच ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
तापसैः सह संवादं शक्रस्य भरतर्षभ ॥ १
केचिद्गृहान्परित्यज्य वनमभ्यागमन्द्विजाः
अजातश्मश्रवो मन्दाः कुले जाताः प्रवव्रजुः
धर्मोऽयमिति मन्वानाः समृद्धा ब्रह्मचारिणः
त्यक्त्वा भ्रातॄन्पितॄंश्चैव तानिन्द्रोऽन्वकृपायत
तानाबभाषे भगवान् पक्षी भूत्वा हिरण्मयः
सुदुष्करं मनुष्यैश्च यत्कृतं विघसाशिभिः ॥

शंक्याह-**श्रियेति** । 'ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेः। श्रिया त्रय्या विद्यया विहीनैः अधनैर्लक्ष्म्या च हीनैः इदमनृतं संप्रवर्तितं वेदयतीति वेदो विधिस्तस्य वादोऽर्थवादस्तत्सग्रन्थि विज्ञानं संन्यासविधिस्तुत्यर्थं भरतादिकीर्तनं प्रजापतिवपोत्खननवदर्थवादो न तु तावता मौण्ड्ये क्षत्रियस्याधिकारः सिध्यतीति भावः ॥ २० ॥ यत्तु ऋजुः प्रणिहितो गच्छन्नित्यत्याश्रम उक्तस्तं दूषयति-**शक्यं त्विति** । आत्मानं देहमात्मना स्वेनैव बिभ्रता निश्चलं स्थापयता धर्मच्छद्म कपटयोगं आस्थाय च्यवितुं मर्तुमेव शक्यं न जीवितुं केवलं प्रणिधानेन शरीरनाशो भवेदित्यर्थः ॥ २१ ॥ यत्तु स्वभावस्तु व्रजत्यग्रे इति सुप्तबालकस्तनपानवद्देहयात्रासिद्धिरुक्ता तां दूषयति द्वाभ्यां-**शक्यं पुनरिति** । पुत्राद्यभरणेन पशुसाम्येन च तत्रापि दोषोऽस्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥ अथेत्यतः शब्दार्थे तमेकचरमेन्येन प्रकारेण एकचर्यां विना न पुण्यं श्रेयांसमाहुः, सा च मृगेऽप्यस्तीति न तयोर्विशेष इति भावः ॥ २३ ॥ संन्यासयुक्तमेकाकित्वमपि निरस्यति द्वाभ्यां-**यदीति** ॥ २४ ॥ ननु पश्वादयः कर्मयोनयो न भवन्ति, किं तु पूर्वकृतमेव ते भुञ्जते; अहं तु कर्माधिकृतः स्वप्रयत्नेन ध्रुवं पदं प्राप्स्यामीति चेत्तत्राह-**अथ चेदिति**। आत्मभाग्येषु स्वसंपत्सु अन्येषां सिद्धिं परकर्मार्जितं फलं नाप्नुते किं तु स्वकर्मार्जितमेवाप्नुते तर्हि कर्मैव कुर्वित्यर्थः । सिद्धिर्मोक्षः ॥२६॥ ननु मुमुक्षूणां देहभरणव्यतिरिक्तं कर्म नापेक्षितमित्यत आह-**औदका इति** । उदके भवाः मीनादयः सृष्टयः स्थावरास्तेषामपि आत्मैव देह एव भर्तव्यो नान्य इति तेऽपि मुच्येरन् ॥ २७ ॥ लोकदृष्ट्यापि कर्मैव कर्तव्यमित्याह-**अवेक्षस्वेति** ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

एवं संन्यासः श्रेयानिति धर्मस्य पक्षो गार्हस्थ्यं श्रेय इति भीमस्य पक्षस्तत्र आद्यस्य श्रैष्ठ्यं मत्वाऽनधिकारिकृतसंन्यासापेक्षया गार्हस्थ्यमेव श्रेय इत्याख्यायिकामुखेन समर्थयन्नर्जुन उवाच --**अत्रैवेत्यादिना** ॥ १ ॥ प्रवव्रजुः पुनर्गृहं प्रति न गन्तव्यमिति प्रकर्षेण गता इत्यर्थः ॥ २ ॥ विघसाशिभिः महायज्ञावशिष्टभोजिभिः ॥४॥

पुण्यं भवति कर्मेदं प्रशस्तं चैव जीवितम् ।
सिद्धार्थास्ते गतिं मुख्यां प्राप्ता धर्मपरायणाः

ऋषय ऊचुः ।

अहो बतायं शकुनिर्विघसाशान्प्रशंसति ।
अस्मान्नूनमयं शास्ति वयं च विघसाशिनः ॥

शकुनिरुवाच ।

नाहं युष्मान् प्रशंसामि
पङ्कदिग्धान् रजस्वलान् ।
उच्छिष्टभोजिनो मन्दा-
नन्ये वै विघसाशिनः ॥ ७

ऋषय ऊचुः ।

इदं श्रेयः परमिति वयमेवाभ्युपास्महे ।
शकुने ब्रूहि यच्छ्रेयो भृशं ते श्रद्दधामहे ॥ ८

शकुनिरुवाच ।

यदि मां नाभिशंकध्वं विभज्यात्मानमात्मना
ततोऽहं वः प्रवक्ष्यामि याथातथ्यं हितं वचः

ऋषय ऊचुः ।

शृणुमस्ते वचस्तात पन्थानो विदितास्तव
नियोगे चैव धर्मात्मन्स्थातुमिच्छाम शाधि नः

शकुनिरुवाच ।

चतुष्पदां गौः प्रवरा लोहानां काञ्चनं वरम्
शब्दानां प्रवरो मन्त्रो ब्राह्मणो द्विपदां वरः
मन्त्रोऽयं जातकर्मादिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
जीवतोऽपि यथाकालं श्मशाननिधनादिभिः
कर्माणि वैदिकान्यस्य
स्वर्ग्यः पन्थास्त्वनुत्तमः ।
कथं मे सर्वकर्माणि
मन्त्रसिद्धानि चक्रिरे ॥ १३

आत्मानं दृढवादीति+ तथा सिद्धिरिहेष्यते
मासार्धमासा ऋतव आदित्यशशितारकम्
ईहन्ते सर्वभूतानि तदिदं कर्मसंज्ञितम् ।
सिद्धिक्षेत्रमिदं पुण्यमयमेवाश्रमो महान् ।
अथ ये कर्म निन्दन्तो मनुष्याः कापथं गताः
मूढानामर्थहीनानां तेषामेनस्तु विद्यते ॥ १६
देववंशान्पितृवंशान् ब्रह्मवंशांश्च शाश्वतान्
सन्त्यज्य मूढा वर्तन्ते ततो यान्त्यश्रुतीपथम्

---

शास्ति ज्ञापयति विगतो घसोऽन्नं यस्य तदन्नं विघसं शीर्णतृणपर्णफलादिकं तदनशीलास्तु वयमेवातो विघसाशिनः श्रेयांसः स्म इति मेनिरे इत्यर्थः ॥ ६ ॥ पङ्कदिग्धान् रजस्वलानित्यागन्तुकस्वाभाविकदोषयुक्तत्वमुक्तं क्रमेण **उच्छिष्टभोजिन इति** ।प्रायेण शीर्णतृणपर्णफलानि मृगकीटपक्ष्युच्छिष्टानि भवन्ति तद्भोजिनो मन्दान् मूढान्॥७॥ ते तव वच इति शेषः ॥ ८ ॥ श्रद्दधानोऽन्यो वक्ताऽऽत्मा शंकितान्यो मन्ताऽऽत्मेतीत्यात्मन्येवायं विभागो विषमभागद्वयं यदि धूर्ता न भविष्यथेत्यर्थः॥९॥ पन्थानः श्रेयोमार्गाः ॥ १० ॥ मंत्रो मंत्रोक्तसंस्कारः श्मशानेति पदं यतिनिधनव्यावृत्त्यर्थम् ॥१२॥ कर्माणि स्वर्ग्यः पन्था इति न चेत्तर्हि कथं मे मत्समक्षं मदर्थं वा कर्माणि चक्रिरे प्राचः स्वर्गार्थिन इति शेषः।अतस्तानि स्वर्ग्याण्येवेति भावः। मन्त्रसिद्धानि मन्त्रैः प्रकाशितानि ॥१३॥ **आत्मानमिति।** दृढवादी दृढनिश्चयः पुमान्यथाऽऽत्मानं **इति-पति** गुणाभाव आर्षः । यद्देवतारूपं जानीते अयमहमस्मि सांबशिव इति,तथैवेह लोके शास्त्रे वा सिद्धिस्तत्तद्देवतातादात्म्यरूपा इष्यते, ' तं यथा यथोपासते तथेतः प्रेत्य भवन्ति'इति श्रुतेः। अथागमो 'यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति' इति स्मृतेश्च । तत्र कतिप्रकारा सिद्धिरित्यत आह-**मासेति**। माघादिभिर्मासैः शुक्लैरर्धमासैः शिशिरादिभिर्ऋतुभिश्च आदित्यमार्गप्राप्तिरूपा एका सिद्धिः क्रममुक्तिस्थानभूतब्रह्मलोकावाप्तिफला । तथा श्रावणादिभिर्मासैः कृष्णैरर्धमासैः वर्षादिभिर्ऋतुभिः शशिमार्गप्राप्तिरूपा द्वितीया सिद्धिः पुनरावृत्तिस्थानभूतस्वर्गलोकावाप्तिफला । तथा मार्गद्वयानपेक्षा आध्यात्मिकमाधिभौतिकं वा विमुक्तमुपासीनानां देहान्ते तारकब्रह्मावाप्तिरूपा तृतीया सद्योमुक्तिफला । तथा च श्रुतयः --'स एतान्ब्रह्म गमयति न स पुनरावर्तते ' इति । तथा 'एतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तते' इति । 'तथाऽत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति ' इति च क्रमेण ज्ञेयाः ॥ १४ ॥ **ईहन्त इति** । तदिदं आदित्यशशितारकात्मकं सिद्धित्रयं कर्मसंज्ञितं कर्मफलत्वेनाभिहितं ईहन्ते कामयन्ते सर्वभूतानि।तस्मात् कर्माधिकारस्थानं गार्हस्थ्यमेव सिद्धिक्षेत्रं पुण्यश्चायमाश्रमो महांश्च ॥१५॥ अन्यथा दोषमाह--**अथेति** । निन्दन्तो निन्दां कृत्वा कापथं तदुक्तत्यागमार्गं ये गतास्तेषां एनः पापं विद्यते ॥ १६ ॥ आदित्यशशितारकाख्यासिद्धित्रयानादरे दुर्गतिमाह—**देवेति** । वंश इव वंशोऽर्चिरादिपर्वार्पितत्वान्मार्गः देववंशो देवयानमार्गः । तथा पितृवंशः पितृयानमार्गः ब्रह्मवंशो ब्रह्मावाप्तिमार्गः। तत्प्राप्त्युपायबहुत्वात्प्रत्येकं बहुवचनं एषां त्यागेन अश्रुतीपथं क्षुद्रदंदशूकादियोनिं यान्ति। श्रुतीति दैर्घ्यमार्षम् ॥ १७ ॥ + आम्नायदृढवादीनीत्यपि पाठः ।



5144

एतद्वोऽस्तु तपोयुक्तं ददामीत्यृषिचोदितम् ।
तस्मात्तत्तद्व्यवस्थानं तपस्वितप उच्यते १८
देववंशान्ब्रह्मवंशान्पितृवंशांश्च शाश्वतान् ।
संविभज्य गुरोश्चर्यां तद्वै दुष्करमुच्यते ॥ १९
देवा वै दुष्करं कृत्वा विभूतिं परमां गताः
तस्माद्गार्हस्थ्यमुद्वोढुं दुष्करं प्रब्रवीमि वः ॥
तपः श्रेष्ठं प्रजानां हि मूलमेतन्न संशयः ।
कुटुम्बविधिनाऽनेन यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्
एतद्विदुस्तपो विप्रा द्वंद्वातीता विमत्सराः ।
+तस्माद्व्रतं मध्यमं तु लोकेषु तप उच्यते २२
दुराधर्षं पदं चैव गच्छन्ति विघसाशिनः ।
सायंप्रातर्विभज्यान्नं स्वकुटुम्बे यथाविधि ॥
दत्त्वाऽतिथिभ्यो देवेभ्यः पितृभ्यः स्वजनाय च
अवशिष्टानि येऽश्नन्ति तानाहुर्विघसाशिनः
तस्मात्स्वधर्ममास्थाय सुव्रताः सत्यवादिनः
लोकस्य गुरवो भूत्वा ते भवन्त्यनुपस्कृताः
त्रिदिवं प्राप्य शक्रस्य स्वर्गलोके विमत्सराः
वसन्ति शाश्वतान्वर्षाञ्जना दुष्करकारिणः

अर्जुन उवाच ।

ततस्ते तद्वचः श्रुत्वा
धर्मार्थसहितं हितम् ।
उत्सृज्य ÷नास्तीति गता
गार्हस्थ्यं समुपाश्रिताः ॥ २७

तस्मात्त्वमपि सर्वज्ञ धैर्यमालम्ब्य शाश्वतम् ।
प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां हतामित्रां नरोत्तम

इति श्रीमहा० शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अर्जुनवाक्ये ऋषिशकुनिसंवादकथने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

एतत्कर्म वो युष्माकमस्तु तच्च तपोयुक्तं उपासनायुक्तम् उपासना चात्र द्विविधा अध्यात्मं अधियज्ञं च । तत्र यज्ञाङ्गेऽश्वादौ विराट्दृष्टिरूपा वा अश्वस्य मेधस्य शिर इत्यादिना विहितांत्या। आद्या त्वविमुक्तोपासनो सोऽविमुक्त उपास्य इत्युपक्रम्य कतमश्चास्य स्थानं भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिरित्यादिना विहिता । एतेन द्विविधाप्युपासना कर्मसमुच्चितैव कर्तव्येति दर्शितं।किंभूतं एतत्कर्म ददामीति ऋषिणा मन्त्रेण चोदितं तथा चेन्द्रवाक्यं कर्मकाण्डे-'देहि मे ददामि ते'इति।देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागरूपं दानं कुरु तुभ्यं चाहं पुत्रपशुस्वर्गादिकं फलं दास्यामीति मन्त्रार्थः। यस्मादेवं तस्मात्तत्र तत्र मार्गे व्यवस्थानं निष्ठापूर्विका स्थितिस्तदेव तपस्विनां तप उच्यते नान्यत्कायशोषणादि ॥ १८ ॥ देवेति । अङ्गोपास्तियुक्तं वा केवलं वा विमुक्तोपास्तियुक्तं वा देववंशादिशब्दोपलक्षितं कर्म गुरोश्चर्यां परिचर्यां संविभज्य परस्पराविरोधेन दिननाडीविभागेन नित्यं क्रियमाणं दुष्करं दुःसाध्यमुच्यते विद्वद्भिः । इत्थमेव कर्तव्यमिति भावः ॥ १९ ॥ एतदेव परकृत्या द्रढयति—देवा इति ॥ २० ॥ तपः कर्मैव प्रजानां मूलमतः श्रेष्ठं यतः अनेन च्छान्दोग्यदृष्टेन कुटुम्बविधिना कुटुंबे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयान इत्यादिना यस्मिन्गृहस्थकर्मणि सर्वं प्रतिष्ठितं तथा च सूत्रं-'कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः' इति । सर्वेषामाश्रमाणां धर्मा गृहे एव सन्ति न त्वन्यत्रेति हेतोश्छांदोग्ये कुटुम्ब इत्यादिश्रुत्या गृहिणैव विद्योपसंहारः कृत इति सूत्रार्थः ॥ २१ ॥ व्रतं ब्रह्मचर्याद्युपेतमध्ययनं मध्यमं च तद्राहितं यज्ञादि च तपःशब्देनोच्यते ॥ २२ ॥ तयोर्द्वितियं स्तौति-**दुराधर्षेति** ॥ २३ ॥ विघसाशिपदं व्याचष्टे-**सायमिति** सार्धेन ॥ २४ ॥ अनुपस्कृताः निःसंशयाः ॥ २५ ॥ **तत इति** । ते तरुणाः संन्यासचिकीर्षवः उत्सृज्य नास्तीति गताः आश्रमान्तरे सिद्धिर्नास्तीति तदुत्सृज्य गता इति योज्यम् ॥ २७ ॥ फलितमाह-**तस्मादिति** ॥२८॥ इति श्रीम० शान्ति० राजध० नै० भा० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

* तद्व्यावसतः इति पाठः । + एतस्माद्वनमध्ये इति पाठः । ÷ नास्तिकमतिमिति पाठः ।

# १२

वैशम्पायन उवाच ।

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नकुलो वाक्यमब्रवीत्
राजानमभिसंप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतां वरम् ॥ १
अनुरुध्य महाप्राज्ञो भ्रातुश्चित्तमरिंदम ।
व्यूढोरस्को महाबाहुस्ताम्रास्योमितभाषिता

नकुल उवाच ।

विशाखयूपे* देवानां सर्वेषामग्नयश्चिताः
तस्माद्विद्धि महाराज देवाः कर्मफले स्थिताः
अनास्तिकानां भूतानां प्राणदाः पितरश्च ये ।
तेऽपि कर्मैव कुर्वन्ति विधिं संप्रेक्ष्य पार्थिव
वेदवादापविद्धांस्तु
तान्विद्धि भृशनास्तिकान् ।
न हि वेदोक्तमुत्सृज्य
विप्रः सर्वेषु कर्मसु ॥ ५
देवयानेन नाकस्य पृष्ठमाप्नोति भारत ।
अत्याश्रमानयं सर्वानित्याहुर्वेदनिश्चयाः ॥ ६
ब्राह्मणाः श्रुतिसंपन्नास्तान्निबोध नराधिप ।
वित्तानि धर्मलब्धानि क्रतुमुख्येष्ववासृजन्
कृतात्मा स महाराज स वै त्यागी स्मृतो नरः
अनवेक्ष्य सुखादानं
तथैवोर्ध्वं प्रतिष्ठितः ।
आत्मत्यागी महाराज
स त्यागी तामसो मतः ॥ ९
अनिकेतः परिपतन् वृक्षमूलाश्रयो मुनिः ।
अपाचकः सदा योगी स त्यागी पार्थ भिक्षुकः
क्रोधहर्षावनादृत्य पैशुन्यं च विशेषतः ।
विप्रो वेदानधीते यः स त्यागी पार्थ उच्यते ।
आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः ।
एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः ॥१२
समीक्ष्य तुलया पार्थ कामं स्वर्गं च भारत ।
अयं पन्था महर्षीणामियं लोकविदां गतिः ॥
इति यः कुरुते भावं स त्यागी भरतर्षभ ।
न यः परित्यज्य गृहान्वनमेति विमूढवत् ॥
यदा कामान् समीक्षेत धर्मवैतंसिको नरः ।
अथैनं मृत्युपाशेन कण्ठे बध्नाति मृत्युराट् ॥

१२

एवमर्जुनवाक्यात् कर्मणामवश्यकर्तव्यत्वे सिद्धे संगं कर्तृत्वाभिमानं फलाशां च त्यक्त्वा तानि कर्तव्यानीति नकुलवाक्येन प्रतिपादयिष्यन्नारभते-**अर्जुनस्येत्यादि** ॥ १ ॥ ताम्रास्यो दुःखेन विवर्णमुखः ॥२ ॥ विशाखयूपे क्षेत्रविशेषे । देवानां देवैः अग्नयोऽग्निस्थापनार्थानि स्थंडिलानि। चिता इष्टकाभी रचिता। अद्यापि दृश्यन्ते तेन देवत्वमपि कर्मफलमेवेत्यर्थ. । ' कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः ' इति श्रुतेश्चयनाश्रितविद्याबलात् ब्रह्मलोकं गता ये तेऽत्र देवाः । तथाऽग्नेः केवलकर्मणा स्वर्लोकं गता ये तेऽत्र पितर इति बोध्यम् ॥ ३ ॥ अनास्तिकानामास्तिक्यशून्यानामपि । पाठान्तरे स्पष्टोर्थः । प्राणदा वृष्टिद्वारा अन्नप्रदाः ' अन्नं ह प्राणः ' इति श्रुतेः । विधिमग्निं वा अकामयेतेत्याद्यग्न्यादिभावस्य कर्मसाध्यत्वज्ञापकम् ॥ ४ ॥ वेदवादः अपविद्धस्त्यक्तो यैस्तान् ॥ ५ ॥ देवयानेन मार्गेण पृष्ठमुपरिभागं ब्रह्मलोकमित्यर्थः । अयं गृहाश्रमः सर्वानाश्रमान् अति अतिक्रान्तः तेभ्यः श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥६॥ तान्ब्राह्मणान् गत्वा निबोध बुध्यस्व अवासृजन् समर्पयन् ॥ ७ ॥ कृतात्मा जितचित्तः अहंममाभिमानशून्य इत्यथः । स त्यागी सात्त्विक इति शेष ॥ ८ ॥ सुखादानं गार्हस्थ्यसुखभोगम् । ऊर्ध्वं वनादौ प्रतिष्ठितो निष्ठावान् सन् यः आत्मत्यागी देहत्यागी स तामसो मतः ।

' अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य सुतानपि ।
अनिष्ट्वा शक्तितो यज्ञैर्मोक्षमिच्छन् पतत्यधः ' इति

मनूक्त्यनभिज्ञत्वात्तामसोऽयं त्यागीति भावः ॥ ९॥ परिपतन् भिक्षार्थं पर्यटन् यतोऽपाचकः योगी निरुद्धसर्ववृत्तिः। **भिक्षुक इति**। यायावरधर्मा ब्राह्मणः स्मृतः। सोऽयं ब्राह्मणकल्पो धर्मः शुभोऽपि प्रजापरिपालनक्लेशार्हेण क्षत्रियेण आश्रित इति राजसत्त्वाद्दोषमूलः। तथा च श्रुतिः-'यदा वै क्षात्रयाय पापं भवति ब्राह्मणकल्पोऽस्य प्रजायामाजायते' इति माभूवं याचको भिक्षुकः ॥ १० ॥

' संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदं तु न परित्यजेत् ।
नियतो वेदमभ्यस्यन्पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् '॥

इति मनूक्तं वेदन्यासमकृत्वा भ्रातृराज्ये निवत्स्यामीत्याशंक्याह-**क्रोधेति** । विप्र इत्यनेनायमपि धर्मो ब्राह्मणस्यैव विहितोऽधिकारादिति दर्शितम् । तेनायं त्यागो राजस एव पूर्ववदिति सिद्धम् ॥ ११ ॥ **समीक्ष्येति** । आश्रमान्तरे स्वर्ग एवास्ति न कामः गार्हस्थ्ये तूभयमस्तीति अयमेव मार्गो गतिश्चेत्यर्थः ॥ १३ ॥ **इतीति** । आवश्यकमेवेदं ममेतिभावं कृत्वा यः संगफलेप्सारहितः करोति स त्यागी नान्य इत्यर्थः ॥१४॥ वनेऽपि कामस्मरणं चेत्पतत्येवेत्याह-**यदेति** । धर्मवैतंसिको धर्मध्वजी ॥ १५ ॥ * विशालयूपे इति पाठः ।

अभिमानकृतं कर्म नैतत्फलवदुच्यते।
त्यागयुक्तं महाराज सर्वमेव महाफलम्॥
शमो दमस्तथा धैर्यं सत्यं शौचमथार्जवम्।
यज्ञो धृतिश्च धर्मश्च नित्यमार्षो विधिः स्मृतः
पितृदेवातिथिकृते समारंभोऽत्र शस्यते।
अत्रैव हि महाराज त्रिवर्गः केवलं फलम्॥
एतस्मिन्वर्तमानस्य विधावप्रतिषेधिते।
त्यागिनः प्रसृतस्येह नोच्छित्तिर्विद्यते क्वचित्
असृजद्धि प्रजा राजन्प्रजापतिरकल्मषः।
मां यक्ष्यन्तीति धर्मात्मा यज्ञैर्विविधदक्षिणैः
वीरुधश्चैव वृक्षांश्च यज्ञार्थं वै तथौषधीः।
पशूंश्चैव तथा मेध्यान् यज्ञार्थानि हवींषि च
गृहस्थाश्रमिणस्तच्च यज्ञकर्म विरोधकम्।
तस्माद्गार्हस्थ्यमेवेह दुष्करं दुर्लभं तथा॥२२
तत्संप्राप्य गृहस्था ये पशु-धान्य-धनान्विताः
न यजन्ते महाराज शाश्वतं तेषु किल्बिषम्
स्वाध्याययज्ञा ऋषयो ज्ञानयज्ञास्तथा परे।
अथापरे महायज्ञान् मनस्येव वितन्वते॥ २४
एवं मनःसमाधानं मार्गमातिष्ठतो नृप।
द्विजातेर्ब्रह्मभूतस्य स्पृहयन्ति दिवौकसः॥
स रत्नानि विचित्राणि संहृतानि ततस्ततः।
मखेष्वनभिसंत्यज्य नास्तिक्यमभिजल्पसि
कुटुम्बमास्थिते त्यागं न पश्यामि नराधिप।
राजसूयाश्वमेधेषु सर्वमेधेषु वा पुनः॥ २७
ये चान्ये क्रतवस्तात ब्राह्मणैरभिपूजिताः।
तैर्यजस्व महीपाल शक्रो देवपतिर्यथा॥ २८
राज्ञः प्रमाददोषेण दस्युभिः परिमुष्यताम्।
अशरण्यः प्रजानां यः स राजा कलिरुच्यते
अश्वान् गाश्चैव दासीश्च करेणूश्च स्वलंकृताः
ग्रामाञ्जनपदांश्चैव क्षेत्राणि च गृहाणि च
अप्रदाय द्विजातिभ्यो मात्सर्याविष्टचेतसः।
वयं ते राजकलयो भविष्याम विशांपते॥
अदातारो शरण्याश्च राजकिल्बिषभागिनः।
दोषाणामेव भोक्तारो न सुखानां कदाचन
अनिष्ट्वा च महायज्ञैरकृत्वा च पितृस्वधाम्।
तीर्थेष्वनभिसंप्लुत्य प्रव्रजिष्यसि चेत्प्रभो॥
छिन्नाभ्रमिव गन्तासि विलयं मारुतेरितम्।
लोकयोरुभयोर्भ्रष्टो ह्यन्तराले व्यवस्थितः॥
अन्तर्बहिश्च यत्किंचिन्मनोव्यासङ्गकारकम्।
परित्यज्य भवेत्त्यागी न हित्वा प्रतितिष्ठति
एतस्मिन् वर्तमानस्य विधावप्रतिषेधिते।
ब्राह्मणस्य महाराज नोच्छित्तिर्विद्यते क्वचित्

निहत्य शत्रूंस्तरसा समृद्धान्
शक्रो यथा दैत्यबलानि संख्ये।
कः पार्थ शोचेन्निरतः स्वधर्मे
पूर्वैः स्मृते पार्थिव शिष्टजुष्टे॥ ३७
क्षात्रेण धर्मेण पराक्रमेण
जित्वा महीं मन्त्रविद्भ्यः प्रदाय।
नाकस्य पृष्ठेऽसि नरेन्द्र गन्ता
न शोचितव्यं भवताद्य पार्थ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नकुलवाक्ये ÷द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

---

अभिमानः कर्ताहमित्येवंरूपस्तेन कृतं कर्म फलवन्न गतिप्रदं न त्यागयुक्तं अभिमानत्यागोपेतम्॥ १६॥ आर्षः ऋषीणां हितः॥ १७॥ अत्र गार्हस्थ्ये॥ १८॥ इह विधौ प्रसृतस्य निष्ठावतः॥ १९॥ तच्च कर्म गृहस्थाश्रमिणो विरोधकं निगडवद्विशेषेण रोधकम्॥ २२॥ एतत्त्यागे दोषमाह-तदिति॥ २३॥ अपरे योगिनः महायज्ञानिति बहुवचनं वितर्कविचाराद्यवान्तरयोगभेदापेक्षम्॥ २४॥ त्रिष्वपि यज्ञेष्वाद्योऽतीतकालः उपस्थितं मध्यमगुरुध्यान्त्यस्य वार्तां कुर्वतस्तेनास्तिक्यं स्पष्टमित्याह-स इति॥ २६॥ पूर्वं वेदसंन्यासेऽपि तत्राधिकारो नास्तीत्युक्तम्। इदानीं वेदसंन्यास एव न संभवतीत्यर्थेनाह-कुटुंबमिति। कुत्र तर्हि त्यागं पश्यसीत्यत आह-राजसूयेति॥ २७॥ फलितमाह-ये चेति॥ २८॥ प्रमादो राज्याकरणं परिमुष्यतां लुप्यमानानाम्॥ २९॥ मात्सर्यं बन्धुद्रोहः दानाभावेन कलिस्वरूपा एव वयं जाता इत्यर्थः॥ ३१॥ अन्तराले पिशाचयोनौ॥ ३४॥ अन्तर्व्यासङ्गः अहं ज्ञाता दाता कर्ता हर्ता इत्यादिरात्मपूजा, बहिर्व्यासंगः पुत्रपश्वादिपूजा, तयोः कारकं मूलं अहंकारममकारौ त्यक्त्वैव त्यागी भवेन्न तु यो गृहं हित्वा प्रतितिष्ठति स इत्यर्थः॥ ३५॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः॥ १२

÷ अस्मिन्नध्याये एकोनविंशतिश्लोका अधिकाः खपुस्तके।

## १३

सहदेव उवाच ।
न बाह्यं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति भारत।
शारीरं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति वा न वा
बाह्यद्रव्यविमुक्तस्य
शारीरेष्वनुगृध्यतः ।
यो धर्मो यत्सुखं वा स्याद्
द्विषतां तत्तथाऽस्तु नः ॥ २
शारीरं द्रव्यमुत्सृज्य पृथिवीमनुशासतः ।
यो धर्मो यत्सुखं वा स्यात्सुहृदां तत्तथाऽस्तु नः
द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥४
ब्रह्ममृत्यू ततो राजन्नात्मन्येव समाश्रितौ ।
अदृश्यमानौ भूतानि योधयेतामसंशयम् ॥ ५
अविनाशोऽस्य सत्त्वस्य नियतो यदि भारत
हत्वा शरीरं भूतानां न हिंसा प्रतिपत्स्यते ६
अथापि च सहोत्पत्तिः सत्त्वस्य प्रलयस्तथा ।
नष्टे शरीरे नष्टः स्याद्वृथा च स्यात् क्रियापथः
तस्मादेकान्तमुत्सृज्य पूर्वैः पूर्वतरैश्च यः ।
पन्था निषेवितः सद्भिः स निषेव्यो विजानता
लब्ध्वाऽपि पृथिवीं कृत्स्नां
सहस्थावरजङ्गमाम् ।
न भुङ्क्ते यो नृपः सम्यङ्-
निष्फलं तस्य जीवितम् ॥ ९
अथवा वसतो राजन् वने वन्येन जीवतः ।
द्रव्येषु यस्य ममता मृत्योरास्ये स वर्तते१०
बाह्यान्तरं च भूतानां स्वभावं पश्य भारत ।
ये तु पश्यन्ति तद्भूतं मुच्यन्ते ते महाभयात्
भवान् पिता भवान्माता
भवान्भ्राता भवान् गुरुः ।
दुःखप्रलापानार्तस्य
तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ १२
तथ्यं वा यदि वाऽतथ्यं यन्मयैतत्प्रभाषितम्
तद्विद्धि पृथिवीपाल भक्त्या भरतसत्तम॥१३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सहदेववाक्ये
*त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१३

**न बाह्यमिति** । अहंकारममकारौ त्यक्तव्याविति उक्तम्।तत्राद्यत्यागे सर्वव्यवहारोच्छेदः स्यादिति ममकार एव त्याज्य इत्येतदर्थमध्याय आरभ्यते । तत्र द्रव्यं ममकारास्पदं द्विविधं बाह्यं व्यावहारिकं शारीरं शरीरे भवं मनःकल्पितं च यथोक्तं 'घटौ मृन्मयधीमयौ' इति। तथा च श्रुतिर्विदुषो विदेहकैवल्यकाले बाह्यद्रव्यस्य स्वकारणे लयं दर्शयति—**गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा इति** । कलाः प्राणमनःप्रभृतयः प्रतिष्ठाः उपादानकारणानि प्रति गताः तथा इमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं यन्तीति मनःकल्पितानां कलानां पुरुषे लयं दर्शयति अतः शारीरमेव द्रव्यं बन्धनमूलं न बाह्यमिति बाह्यत्यागो व्यर्थः। शारीरद्रव्यत्यागेऽपि मनश्चाञ्चल्यात्पुनरुपादाने सिद्धिर्न भवतीति न वेत्यनेन उक्तम् । तेन दृढत्याग एव सिद्धिकृदित्युक्तम् । अक्षरयोजना स्पष्टा ॥१॥ ममेति स्वीकारः न ममेति परित्यागश्च एतौ मृत्युशाश्वतौ संसारमोक्षयोर्मूले इत्यर्थः ॥ ४ ॥ आत्मनि बुद्धौ भूतानि शास्त्रकर्तॄन् तथा च केचित् कर्ताऽऽत्मा नित्य इति केचिदानित्य इति ॥ ५ ॥ तत्राद्ये दोषाभावमाह—**अविनाश इति** ॥ ६ ॥ सत्त्वस्य कर्तृत्वधर्मवत्या बुद्धेः ॥ ७ ॥ द्वितीये कृतहानादिदोष इत्याह—**तस्मादिति** । तस्मात् कर्तुरनाशे मोक्षाभावो नाशे देहात्मवादप्रसङ्गस्तस्मादेकान्तं अन्यतरं निश्चयं त्यक्त्वा प्राचां पन्थास्तन्मिथ्यात्वपक्ष एवादर्तव्यः। तेन कल्पितस्य शारीरद्रव्यस्य स्वाप्नस्येव त्यागो युज्यत इत्याशयवानाह—**तस्मादिति** ॥ ८ ॥ निष्फलं बाह्यद्रव्यत्यागं कृत्वाऽऽन्तरद्रव्यत्यागमकुर्वन् मूढ एवेत्याह द्वाभ्यां—**लब्ध्वाऽपीति** ॥ ९ ॥ तदुभयद्रव्यत्यागः श्रेयानित्याशङ्क्याह—**बाह्येति** । भूतानां बाह्यमाभ्यन्तरं च यद्द्रव्यं तत्सर्वं स्वभावं स्वस्य प्रत्यगात्मनः भावं सत्तां पश्य जानीहि तदात्मव्यतिरिक्तं नास्तीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'आत्मैवेदं सर्वम्' इति । ये तु पुमांसस्तदात्मरूपं भूतं नित्यसिद्धं पश्यन्ति । वृत्तामिति पाठेऽपि स एवार्थः । ते महतो भयात् उभयद्रव्यसङ्जात् संसारान्मुच्यन्ते कल्पितस्य मरीचिकोदकस्येव त्यागः कर्तव्यो न स्वरूपतस्तस्य नित्यनिवृत्तत्वादिति भावः ॥ ११ ॥ भक्त्यैव भाषितं न तु ज्ञानगर्वेण ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * अस्मिन्नध्याये श्लोकद्वयमधिकं खपुस्तके ।

## १४

वैशम्पायन उवाच ।

अव्याहरति कौन्तेये
धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
भ्रातॄणां ब्रुवतां तांस्तान्
विविधान् वेदनिश्चयान् ॥ १

महाभिजनसंपन्ना श्रीमत्यायतलोचना ।
अभ्यभाषत राजेन्द्र द्रौपदी योषितां वरा ॥२

आसीनमृषभं राज्ञां भ्रातृभिः परिवारितम् ।
सिंह-शार्दूलसदृशैर्वारणैरिव यूथपम् ॥ ३

अभिमानवती नित्यं विशेषेण युधिष्ठिरे ।
लालिता सततं राज्ञा धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ॥४

आमन्त्र्य विपुलश्रोणी साम्ना परमवल्गुना ।
भर्तारमभिसंप्रेक्ष्य ततो वचनमब्रवीत् ॥ ५

द्रौपद्युवाच ।

इमे ते भ्रातरः पार्थ शुष्यन्ते स्तोकका इव
वावाश्यमानास्तिष्ठन्ति न चैनानभिनन्दसे६

नन्दयैतान्महाराज मत्तानिव महाद्विपान् ।
उपपन्नेन वाक्येन सततं दुःखभागिनः ॥ ७

कथं द्वैतवने राजन्
पूर्वमुक्त्वा तथा वचः ।
भ्रातॄनेतान् स्म सहितान्
शीतवातातपार्दितान् ॥ ८

वयं दुर्योधनं हत्वा मृधे भोक्ष्याम मेदिनीम्
संपूर्णां सर्वकामानामाहवे विजयैषिणः ॥ ९

विरथांश्च रथान् कृत्वा निहत्य च महागजान्
संस्तीर्य च रथैर्भूमिं ससादिभिररिंदमाः १०

यजतां विविधैर्यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ।
वनवासकृतं दुःखं भविष्यति सुखाय वः॥११

इत्येतानेवमुक्त्वा त्वं स्वयं धर्मभृतां वर ।
कथमद्य पुनर्वीर विनिहंसि मनांसि नः ॥१२

न क्लीबो वसुधां भुंक्ते न क्लीबो धनमश्नुते ।
न क्लीबस्य गृहे पुत्रा मत्स्याः पङ्क इवासते ॥

नादण्डः क्षत्रियो भाति नादण्डो भूमिमश्नुते
नादण्डस्य प्रजा राज्ञः सुखं विन्दन्ति भारत

मित्रता सर्वभूतेषु दानमध्ययनं तपः ।
ब्राह्मणस्यैव धर्मः स्यान्न राज्ञो राजसत्तम१५

असतां प्रतिषेधश्च सतां च परिपालनम् ।
एष राज्ञां परो धर्मः समरे चापलायनम्॥१६

यस्मिन् क्षमा च क्रोधश्च दानादाने भयाभये
निग्रहानुग्रहौ चोभौ स वै धर्मविदुच्यते॥१७

न श्रुतेन न दानेन न सान्त्वेन न चेज्यया ।
त्वयेयं पृथिवी लब्धा न संकोचेन चाप्युत१८

यत्तद्बलममित्राणां तथा वीर्यसमुद्यतम् ।
हस्त्यश्वरथसंपन्नं त्रिभिरङ्गैरनुत्तमम् ॥ १९

रक्षितं द्रोणकर्णाभ्यामश्वत्थाम्ना, कृपेण च ।
तत्त्वया निहतं वीर तस्माद्भुंक्ष्व वसुंधराम्

जंबूद्वीपो महाराज नानाजनपदैर्युतः ।
त्वया पुरुषशार्दूल दण्डेन मृदितः प्रभो ॥२१

जंबूद्वीपेन सदृशः क्रौञ्चद्वीपो नराधिप ।
*अधरेण महामेरोर्दण्डेन मृदितस्त्वया॥ २२

क्रौञ्चद्वीपेन सदृशः शाकद्वीपो नराधिप ।
पूर्वेण तु महामेरोर्दण्डेन मृदितास्त्वया ॥२३

उत्तरेण महामेरोः शाकद्वीपेन संमितः ।
भद्राश्वः पुरुषव्याघ्र दण्डेन मृदितस्त्वया॥२४

द्वीपाश्च सान्तरद्वीपा नानाजनपदाश्रयाः ।
विगाह्य सागरं वीर दण्डेन मृदितास्त्वया

एतान्यप्रतिमेयानि कृत्वा कर्माणि भारत ।
न प्रीयसे महाराज पूज्यमानो द्विजातिभिः

स त्वं भ्रातॄनिमान् दृष्ट्वा प्रतिनंदस्व भारत
ऋषभानिव संमत्तान् गजेन्द्रानूर्जितानिव ॥

अमरप्रतिमाः सर्वे शत्रुसाहाः परंतपाः ।
एकोऽपि हि सुखायैषां मम स्यादिति मे मतिः

किं पुनः पुरुषव्याघ्र पतयो मे नरर्षभाः ।
समस्तानीन्द्रियाणीव शरीरस्य विचेष्टने॥२९

अनृतं नाब्रवीच्छ्वश्रूः सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी ।
युधिष्ठिरस्त्वां पाञ्चालि सुखे धास्यत्यनुत्तमे

---

१४

अव्याहरति । वक्तव्याभावान्न तु क्रोधान्मौर्ख्याद्वा ॥ १ ॥ साम्ना-सान्त्ववादेन। वल्गुना-रमणीयेन ॥ ५ ॥ स्तोककाश्चातकाः । वावाश्यमानाः-पुनः पुनः क्रन्दन्तः ॥ ६ ॥ उपपन्नेन युक्तियुक्तेन ॥ ७ ॥ सर्वकामानां सर्वैरर्थैः ॥ ९ ॥ क्लीबः-अधीरः ॥ १३ ॥ प्रतिषेधो-दण्डः राज्यान्निर्वासनं वा ॥ १६ ॥ दानं आदानं च ते ॥१७॥ संकोचेन-याञ्चया ॥ १८ ॥ त्रिभिरङ्गैः तिसृभिः शक्तिभिः ताश्च-प्रभुशक्तिर्मन्त्रशक्तिरुत्साहशक्तिस्ताभिरनुत्तमं श्रेष्ठम् ॥ १९ ॥ अधरेण पश्चिमतः ॥२२॥ क्रौञ्चद्वीपादिवशीकरणं सिद्धद्वारा राजसूये ॥ २३ ॥

* अपरेणेति पाठः ।

हत्वा राजसहस्राणि बहून्याशुपराक्रमः ।
तदर्थं संप्रपश्यामि मोहात्तव जनाधिप ॥३१
येषामुन्मत्तको ज्येष्ठः सर्वे तेऽप्यनुसारिणः ।
तवोन्मादान्महाराज सोन्मादाः सर्वपांडवाः
यदि हि स्युरनुन्मत्ता भ्रातरस्ते नराधिप ।
बद्ध्वा त्वां नास्तिकैः सार्धं प्रशासेयुर्वसुंधरां
कुरुते मूढ एवं हि यः श्रेयो नाधिगच्छति ।
धूपैरञ्जनयोगैश्च नस्यकर्मभिरेव च ॥ ३४
भेषजैः स चिकित्स्यः स्या-
द्य उन्मार्गेण गच्छति ।
साहं सर्वाधमा लोके
स्त्रीणां भरतसत्तम ॥ ३५
तथा विनिकृता पुत्रैर्याहमिच्छामि जीवितुम्
एतेषां यतमानानां न मेऽद्य वचनं मृषा ॥ ३६
त्वं तु सर्वां महीं त्यक्त्वा कुरुषे स्वयमापदम्
यथाऽऽस्तां संमतौ राज्ञां पृथिव्यां राजसत्तम
मांधाता चाम्बरीषश्च तथा राजन् विराजसे
प्रशाधि पृथिवीं देवीं प्रजा धर्मेण पालयन्
सपर्वतवनद्वीपां
मा राजन् विमना भव ।
यजस्व विविधैर्यज्ञै-
र्युध्यस्वारीन्प्रयच्छ च ।
धनानि भोगान् वासांसि
द्विजातिभ्यो नृपोत्तम ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि द्रौपदीवाक्ये +चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

वैशम्पायन उवाच ।
याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा पुनरेवार्जुनोऽब्रवीत्
अनुमान्य महाबाहुं ज्येष्ठं भ्रातरमच्युतम् ॥ १
अर्जुन उवाच ।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥
दण्डः संरक्षते धर्मं तथैवार्थं जनाधिप ।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते ॥३
दण्डेन रक्ष्यते धान्यं धनं दण्डेन रक्ष्यते ।
एवं विद्वन्नुपाधत्स्व भावं पश्यस्व लौकिकम्
राजदण्डभयादेके पापाः पापं न कुर्वते ।
यमदण्डभयादेके परलोकभयादपि ॥ ५
परस्परभयादेके पापाः पापं न कुर्वते ।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्
दण्डस्यैव भयादेके न खादन्ति परस्परम् ।
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥
यस्माददान्तान् दमयत्यशिष्टान् दण्डयत्यपि
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥
वाचा दण्डो ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां भुजार्पणं
दानदण्डाः स्मृता वैश्या निर्दण्डः शूद्र उच्यते
असंमोहाय मर्त्यानामर्थसंरक्षणाय च ।
मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशांपते

---

नस्यकर्म नासाद्वारा भेषजग्रहणम् नष्टेति पाठे नष्टाः प्रेता तद्बाधानिवृत्त्यर्थैः रक्षाबन्धनादिभिः कर्मभिः॥३४॥एतेषां एताननादृत्य ॥३६॥ इति श्रीमहा० शान्ति० राजधर्मा० द्रौपदीवाक्ये नैल० भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥ + अस्मिन्नध्याये एकचत्वारिंशच्छ्लोका अधिकाः खपुस्तके।

१५

**याज्ञसेन्या वच इति** ॥ १ ॥ नादण्डः क्षत्रियो भातीति द्रौपद्युक्तिमुपबृंहयति-**दण्ड इति** ॥२॥ उपाधत्स्व दण्डामिति शेषः । लौकिकं भावं लोकव्यवहारं पश्यस्व पश्य । यद्वा शोभनश्चासावलौकिकश्च तं भावं शास्त्रैकगम्यमानन्दात्मानमन्तर्दृष्ट्या पश्य बहिश्च दण्डमुपाधत्स्व । तेन सहदेवोक्तोऽर्थः प्रदर्शितो भवति ॥४॥ सांसिद्धिके पशुवत् दण्डार्हस्वभावे ॥ ६ ॥ दण्डशब्दार्थमाह—**यस्मादिति** । दमयति ताडनादिना दण्डयति वित्तमपहरति ॥ ८ ॥ भुज्यत इति भुजं भक्तं तन्मात्रार्पणं वेतनप्रदानमित्यर्थः । दानं राज्ञे द्रव्यार्पणम् । निर्दण्डः दास्यमेव कारयेन्न त्वस्य दण्डोऽस्ति । शूद्रं तु कारयेद्दास्यमिति **मनूक्तेः** । एतच्चाल्पापराधे ज्ञेयम् ॥९॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति सूद्यतः
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ते नेता चेत्साधु पश्यति ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः
नाभीतो यजते राजन्नाभीतो दातुमिच्छति
नाभीतः पुरुषः कश्चित्समये स्थातुमिच्छति ॥
नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम्
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियं
नाघ्नतः कीर्तिरस्तीह न वित्तं न पुनः प्रजाः
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ॥ १५
य एव देवा हन्तारस्ताँल्लोकोऽर्चयते भृशम् ।
हन्ता रुद्रस्तथा स्कंदः शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः
हन्ता कालस्तथा वायुर्मृत्युर्वैश्रवणो रविः ।
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवाश्च भारत ॥
एतान्देवान्नमस्यन्ति प्रतापप्रणता जनाः ।
न ब्रह्माणं न धातारं न पूषाणं कथञ्चन ॥ १८
मध्यस्थान्सर्वभूतेषु दान्ताञ्शमपरायणान् ।
जयन्ते मानवाः केचित्प्रशान्ताः सर्वकर्मसु
न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कश्चिदहिंसया
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः
नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलं तथा ।
बिडालमत्ति श्वा राजन् श्वानं व्यालमृगस्तथा
तानत्ति पुरुषः सर्वान्पश्य कालो यथागतः ।
प्राणस्यान्नमिदं सर्वं जङ्गमं स्थावरं च यत् ॥
विधानं दैवविहितं तत्र विद्वान्न मुह्यति ।
यथा सृष्टोऽसि राजेन्द्र तथा भवितुमर्हसि
विनीतक्रोधहर्षा हि मन्दा वनमुपाश्रिताः ।
विना वधं न कुर्वन्ति तापसाः प्राणयापनम्
उदके बहवः प्राणाः
पृथिव्यां च फलेषु च ।
न च कश्चिन्न तान् हन्ति
किमन्यत्प्राणयापनात् ॥ २५

सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात्स्कन्धपर्ययः
ग्रामान्निष्क्रम्य मुनयो विगतक्रोधमत्सराः ।
वने कुटुम्बधर्माणो दृश्यन्ते परिमोहिताः ॥
भूमिं भित्त्वौषधीश्छित्त्वा
वृक्षादीनण्डजान् पशून् ।
मनुष्यास्तन्वते यज्ञां-
स्ते स्वर्गं प्राप्नुवन्ति च ॥ २८
दण्डनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः
कौन्तेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः ॥
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः ।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलान्बलवत्तराः
सत्यं चेदं ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं
दण्डः प्रजा रक्षति साधु नीतः ।
पश्याग्नयश्च प्रतिशाम्य भीताः
संतर्जिता दण्डभयाज्ज्वलन्ति ॥ ३१
अन्धं तम इवेदं स्यान्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी ॥
येऽपि संभिन्नमर्यादा नास्तिका वेदनिंदकाः
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनाशु निपीडिताः
सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्जनः
दण्डस्य हि भयाद्भीतो भोगायैव प्रवर्तते ॥
चातुर्वर्ण्यप्रमोदाय
सुनीतिनयनाय च ।
दण्डो विधात्रा विहितो
धर्मार्थौ भुवि रक्षितुम् ॥ ३५
यदि दण्डान्न बिभ्येयुर्वयांसि श्वापदानि च
अद्युः पशून्मनुष्यांश्च यज्ञार्थानि हवींषि च ॥
न ब्रह्मचार्यधीयीत कल्याणी न दुहेत गाम् ।
न कन्योद्वहनं गच्छेद्यदि दण्डो न पालयेत् ॥
विष्वग्लोपः प्रवर्तेत भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
ममत्वं न प्रजानीयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥

---

श्यामः दृढाभिघातेन दण्ड्यस्यांध्यजनकत्वात् । लोहिताक्षो दण्डयितुः क्रोधातिशयात् सूद्यतः सुतरामुद्यतः साधु यथापराधम् ॥ ११ ॥ महतीं इन्द्रलोकादिं मत्स्यघातीवेत्यनपकारिणामपि वधः कार्य इत्यत्र दृष्टान्तः ॥ १४ ॥ व्यालमृगश्चित्रव्याघ्रः ॥२१॥ यथासृष्टः शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यमित्याद्युक्तस्वभावः क्षत्रियः सृष्टोऽसि धात्रा ॥२३॥ विनीतौ अपनीतौ क्रोधहर्षौ यैस्ते मन्दाः क्षत्रियाः ॥२४॥ स्कन्धपर्ययः देहस्य विपर्ययः ॥२६॥

ततो दण्डयुक्ता नीतिर्दण्डनीतिस्तस्यां प्रणीतायां प्रवर्तितायाम् ॥ २९ ॥ अभक्ष्यन् भक्षयेयुः ॥३०॥ सन्तर्जिताः फूत्कारेण ॥ ३१ ॥ भोगाय पालनाय मर्यादाया इति शेषः ॥ ३३ ॥ सुनीतिनयनाय विनयप्रापणाय ॥ ३५ ॥ कल्याणीमपत्यवतीं न दुहेत लोकः । उद्वहनं न गच्छेत् किं तु व्यभिचरेदेव ॥ ३७ ॥ विष्वग्लोपः सर्वोच्छेदः सेतवो मर्यादाः ममत्वं परिच्छिन्नं न जानीयुः सर्वः सर्वत्र ममत्वं कुर्यादित्यर्थः ॥३८॥

न संवत्सरसत्राणि तिष्ठेयुरकुतोभयाः।
विधिवद्दक्षिणावन्ति यदि दण्डो न पालयेत्
चरेयुर्नाश्रमे धर्मं यथोक्तं विधिमाश्रिताः।
न विद्यां प्राप्नुयात्कश्चिद्यदि दण्डो न पालयेत्
न चोष्ट्रा न बलीवर्दा नाश्वाश्वतरगर्दभाः।
युक्ता वहेयुर्यानानि यदि दण्डो न पालयेत्
न प्रेष्या वचनं कुर्युर्न बाला जातु कर्हिचित्
न तिष्ठेद्युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत् ॥
दण्डे स्थिताः प्रजाः सर्वा भयं दण्डे विदुर्बुधाः
दण्डे स्वर्गो मनुष्याणां लोकोऽयं सुप्रतिष्ठितः
न तत्र कूटं पापं वा वञ्चना वाऽपि दृश्यते।
यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः ४४
हविः श्वा प्रलिहेद्दृष्ट्वा दण्डश्चेन्नोद्यतो भवेत्
हरेत्काकः पुरोडाशं यदि दण्डो न पालयेत्
यदीदं धर्मतो राज्यं
विहितं यद्यधर्मतः।
कार्यस्तत्र न शोको वै
भुङ्क्ष्व भोगान् यजस्व च ॥ ४६
सुखेन धर्मं श्रीमन्तश्चरन्ति शुचिवाससः।
*संवर्षन्तः फलैर्दानैर्भुञ्जानाश्चान्नमुत्तमम् ४७
अर्थे सर्वे समारंभाः समायत्ता न संशयः।
स च दण्डे समायत्तः पश्य दण्डस्य गौरवम्
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम्।
अहिंसाऽसाधुहिंसेति श्रेयान् धर्मपरिग्रहः॥
नात्यन्तं गुणवत्किञ्चिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा ॥५०
पशूनां वृषणं छित्त्वा ततो भिन्दन्ति मस्तकम्
वहन्ति बहवो भारान्बध्नन्ति दमयन्ति च ॥
एवं पर्याकुले लोके वितथैर्जर्जरीकृते।
तैस्तैर्न्यायैर्महाराज पुराणं धर्ममाचर ॥ ५२
यज, देहि, प्रजा रक्ष, धर्मं समनुपालय।
अमित्राञ्जहि कौन्तेय, मित्राणि परिपालय ॥
मा च ते निघ्नतः शत्रून् मन्युर्भवतु पार्थिव।
न तत्र किल्बिषं किंचित्कर्तुर्भवति भारत ॥
आततायी हि यो हन्यादाततायिनमागतम्।
न तेन भ्रूणहा स स्यान्मन्युस्तं मन्युमार्छति॥
अवध्यः सर्वभूतानामन्तरात्मा न संशयः।
अवध्ये चात्मनि कथं वध्यो भवति कस्यचित्
यथा हि पुरुषः शालां पुनः संप्रविशेन्नवाम्॥
एवं जीवः शरीराणि तानि तानि प्रपद्यते॥
देहान्पुराणानुत्सृज्य नवान्संप्रतिपद्यते।
एवं मृत्युमुखं प्राहुर्जना ये तत्त्वदर्शिनः ॥५८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अर्जुनवाक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

**वैशम्पायन उवाच।**

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः। धैर्यमास्थाय तेजस्वी ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ॥१

तिष्ठेयुरनुतिष्ठेयुः ॥ ३९ ॥ आश्रिता आश्रमिणः ॥४०॥ गोष्ठप्रविष्टव्याघ्रादेर्हिंसा गवामेव हिंसा भवति । अत एतयोर्मध्ये धर्मस्य परिग्रह आर्तत्राणं श्रेयान्॥४९॥ मस्तकं भिन्दन्ति शृङ्गाद्रीमाभूदिति । **मस्तकानिति** पाठे नासिकाः॥५१॥ जर्जरीकृते दण्डेन तदभावे भारवहनादि कार्यं न स्यादतः पुराणमेव धर्ममाचर। न त्वत्र प्रवाहायातं हिंसादिदोषमवेक्षस्वेति भावः ॥५२॥ मन्युः दैन्यं ॥ ५४ ॥ आततायी शस्त्रपाणिः मन्युः क्रोधः मन्युं क्रोधमार्छति आ सर्वतः ऋच्छति प्राप्नोति 'मन्युः कर्ता नाहं कर्ता' इति श्रुतेस्तत्र न भ्रूणहा भवतीत्यर्थः ॥५५॥ वस्तुतस्त्ववध्य एव आत्मा देहस्तु शालावदनात्मा तेन देहेन देहे निहते नात्मा हन्ता वा वध्यो वेत्याह—**अवध्य इत्यादिना** ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * संवसन्त इति पाठः।

१६

**अर्जुनस्येति'** । ननु देहश्चेच्छालातुल्यस्तर्हि तत्पीडया कः पीड्यते इत्याशंक्य मन एव पीड्यते नात्मेति वक्तुमयमध्यायः ॥ १ ॥

राजन् विदितधर्मोऽसि
न तेऽस्त्यविदितं क्वचित्।
उपशिक्षाम ते वृत्तं
सदैव न च शक्नुमः ॥ २

न वक्ष्यामि न वक्ष्यामी-
त्येवं मे मनसि स्थितम्।
अतिदुःखात्तु वक्ष्यामि
तन्निबोध जनाधिप ॥ ३

भवतः संप्रमोहेन सर्वं संशयितं कृतम्।
विक्लवत्वं च नः प्राप्तमबलत्वं तथैव च ॥ ४

कथं हि राजा लोकस्य सर्वशास्त्रविशारदः
मोहमापद्यसे दैन्याद्यथा कापुरुषस्तथा ॥ ५

अगतिश्च गतिश्चैव
लोकस्य विदिता तव।
आयत्यां च तदात्वे च
न तेऽस्त्यविदितं प्रभो ॥ ६

एवं गते महाराज राज्यं प्रति जनाधिप।
हेतुमत्र प्रवक्ष्यामि तमिहैकमनाः शृणु ॥ ७

द्विविधो जायते व्याधिः
शारीरो मानसस्तथा
परस्परं तयोर्जन्म
निर्द्वंद्वं नोपलभ्यते ॥ ८

शारीराज्जायते व्याधिर्मानसो नात्र संशयः
मानसाज्जायते वापि शारीर इति निश्चयः
शारीरं मानसं दुःखं योऽतीतमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ च विन्दति ॥
शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्

तेषामन्यतमोद्रेके विधानमुपदिश्यते।
उष्णेन बाध्यते शीतं शीतेनोष्णं प्रबाध्यते ॥
सत्त्वं रजस्तम इति मानसाः स्युस्त्रयो गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥
तेषामन्यतमोत्सेके विधानमुपदिश्यते।
हर्षेण बाध्यते शोको हर्षः शोकेन बाध्यते ॥
कश्चित्सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति
कश्चिद्दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छति ॥

स त्वं न दुःखी दुःखस्य
न सुखी च सुखस्य वा।
न दुःखी सुखजातस्य
न सुखी दुःखजस्य वा ॥ १६

स्मर्तुमिच्छसि कौरव्य
दिष्टं हि बलवत्तरम्।
अथवा ते स्वभावोऽयं
येन पार्थिव क्लिश्यसे ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा सभागतां कृष्णामेकवस्त्रां रजस्वलाम्
मिषतां पाण्डुपुत्राणां न तस्य स्मर्तुमर्हसि ॥
प्रव्राजनं च नगरादजिनैश्च विवासनम्।
महारण्यनिवासश्च न तस्य स्मर्तुमर्हसि ॥१९
जटासुरात्परिक्लेशं चित्रसेनेन चाहवम्।
सैन्धवाच्च परिक्लेशं कथं विस्मृतवानसि ॥
पुनरज्ञातचर्यायां कीचकेन पदा वधम्।
द्रौपद्या राजपुत्र्याश्च कथं विस्मृतवानसि ॥
यच्च ते द्रोणभीष्माभ्यां युद्धमासीदरिंदम।
मनसैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम् ॥२२
यत्र नास्ति शरैः कार्यं न मित्रैर्न च बन्धुभिः
आत्मनैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम् ॥

---

न च शक्नुमः कर्तुमिति शेषः ॥ २ ॥ आयत्यामुत्तरकाले तदात्वे वर्तमानकाले अगतिर्दुर्मार्गः गतिः सन्मार्गः ॥६॥ राज्यं प्रति हेतुं राज्यं कर्तुं युक्तिम्॥७॥ देहमनसी दुःखाश्रये न त्वात्मेति ज्ञात्वा सुखेन राज्यं कर्तव्यमिति तात्पर्यम्। निर्द्वन्द्वं शरीरं विना व्याधिर्नास्ति मनो विना आधिर्नास्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥ शीतोष्णे कफपित्ते वायुर्वातः ॥ ११ ॥ विधानं चिकित्सा उष्णेन द्रव्येण ॥ १२ ॥ **कश्चिदिति**। कश्चिन्मूढो दिव्यस्त्र्यादिसुखकाले नष्टं पुत्रादि स्मरन् शोकेन हर्षं बाधते। कश्चिद्दुःखकालेऽतीतं सुखं स्मरन् हर्षेण शोकं बाधते। इदमुभयं देहाद्यभिमानविषयम् ॥१५॥ त्वं तु शारीरमानसाभ्यामन्यः कालत्रयेऽपि न दुःखी न वा सुखी। अतस्तदुभयस्मरणानर्हत्वात्सुखकाले दुःखं दुःखकाले सुखं वा स्मर्तुं नार्हसि। अथापि चेत्स्मरसि तर्हि दैवमेव बलीय इत्याह सार्धेन—**स इति** ॥१६॥ अथ ते तव देहादिसङ्घात्ममानिनः स्वभाव एवेति चेत्किं द्रौपदीक्लेशादिकं दुःखं न स्मर्तुमर्हसि अपि तु अर्हस्येवेत्याह-**अथवेत्यादिना** ॥१७॥ यच्च यथा च ते द्रोणभीष्माभ्याम्। आत्मतुल्याभ्यां सह युद्धमासीत्तथा ते तव चात्मसमेन मनसा एकेन योद्धव्यमुपस्थितमिति योजना। द्रोणादिवन्मनोऽपि त्वत्तोऽन्यदित्याशयः। एकेन निर्विकल्पावस्थेन आत्ममनोनाशो भवतीत्यर्थः ॥ २२ ॥

तस्मिन्ननिर्जिते युद्धे प्राणान्यदि विमोक्ष्यसे
अन्यं देहं समास्थाय ततस्तैरपि योत्स्यसे*॥
तस्माद्द्यैव गन्तव्यं युद्धस्यस्व भरतर्षभ।
परमव्यक्तरूपस्य व्यक्तं त्यक्त्वा स्वकर्मभिः
तस्मिन्ननिर्जिते युद्धे कामवस्थां गमिष्यसि।
एतज्जित्वा महाराज कृतकृत्यो भविष्यसि
एतां बुद्धिं विनिश्चित्य भूतानामागतिं गतिम्
पितृपैतामहे वृत्ते शाधि राज्यं यथोचितम्
दिष्ट्या दुर्योधनः पापो
निहतः सानुगो युधि।
द्रौपद्याः केशपाशस्य
दिष्ट्या त्वं पदवीं गतः॥ २८
यजस्व वाजिमेधेन विधिवद्दक्षिणावता।
वयं ते किंकराः पार्थ वासुदेवश्च वीर्यवान्॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि भीष्मवाक्ये षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

## १७

युधिष्ठिर उवाच
असंतोषः प्रमादश्च मदो रागोऽप्रशान्तता।
बलं मोहोऽभिमानश्चाप्युद्वेगश्चैव सर्वशः॥ १
एभिः पाप्मभिराविष्टो
राज्यं त्वमभिकाङ्क्षसे।
निरामिषो विनिर्मुक्तः
प्रशान्तः सुसुखी भव॥ २
य इमामखिलां भूमिं शिष्यादेको महीपतिः।
तस्याप्युदरमेकं वै किमिदं त्वं प्रशंससि॥ ३
नाह्ना पूरयितुं शक्यां न मासैर्भरतर्षभ।
अपूर्यां पूरयन्निच्छामायुषापि न शक्नुयात्॥
यथेद्धः प्रज्वलत्यग्निरसमिद्धः प्रशाम्यति।
अल्पाहारतया त्वग्निं शमयौदर्यमुत्थितम्॥
आत्मोदरकृते प्राज्ञः करोति विघसं बहु।
जयोदरं पृथिव्या ते श्रेयो निर्जितया जितम्
मानुषान्कामभोगांस्त्वमैश्वर्यं च प्रशंससि।
अभोगिनोऽबलाश्चैव यान्ति स्थानमनुत्तमम्॥
योगः क्षेमश्च राष्ट्रस्य धर्माधर्मौ त्वयि स्थितौ
मुच्यस्व महतो भारात्त्यागमेवाभिसंश्रय॥
एकोदरकृते व्याघ्रः करोति विघसं बहु।
तमन्येऽप्युपजीवन्ति मन्दा लोभवशा मृगाः९

तस्मिन्मनसि वासनातन्तुसन्तानरूपे अनिर्जिते सति देहान्तरेऽपि पूर्वसंस्कारात्तव युध्यतस्तस्य युद्धप्राप्तिरनिवार्येत्याह—**तस्मिन्निति**॥२४॥ **तस्मादिति**। यस्मादेवं तस्माद्द्यैव स्वकर्मभिर्यमाद्यष्टाङ्गैर्व्यक्तं स्थूलशरीरं त्यक्त्वा अव्यक्तरूपस्य मनसः परं शत्रुभूतं ऐकात्म्यं गन्तव्यं प्राप्तव्यम्। अतो युध्यस्व मनोजयार्थं सन्नद्धो भवेत्यर्थः॥ २५॥ तस्मिन्मनसि कामवस्थामवाच्यामित्यर्थः। एतन्मनः॥२६॥एतां मनोदेहाभ्यामन्यश्चात्मेत्येवंरूपाम्। भूतानामागतिं गतिं च मनसा तादात्म्येन कृतामवेक्ष्य तदपहाय हर्षशोकविमुक्तः सन् राज्यं कुर्वित्यर्थः॥२७॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः॥१६॥

*यो ह्यनाढ्यः स पतितस्तदुच्छिष्टं तदल्पकम्
बह्वपथ्यं बलवतो न किञ्चिन्मायते बलम्।
इत्याधिक पाठः।

१७

**असंतोष इति**। मनस्तादात्म्यं त्यक्त्वा हर्षविषादशून्यो राज्यं यज्ञांश्च कुर्वित्युक्तम्। तत्र त्यागो वाङ्मात्रेण न भवति किं तु मनोनिरोधेन स च सन्तोषैकाग्र्याविनयवैराग्यशान्तिधैर्यविवेकाहङ्कारत्यागानुद्वेगादिना साध्यः। राज्यं त्वसन्तोषादिमता कर्तव्यमतो राज्याकाङ्क्षी वृथापाण्डित्यं मा कुरु किं तु राज्यं त्यक्त्वा सन्तोषादिनिष्ठ एव भवेति श्लोकद्वयार्थः॥१॥ इद्धः प्रदीप्तः॥५॥ श्रेयसा परलोकजयेनैव पृथिवी जिता भवतीति ते तव जितं जय एवास्तीति भावः॥ ६॥ अबलास्तपःकृशाः॥ ७॥ अलब्धलाभो **योगः**, लब्धसंरक्षणं **क्षेमस्त**दुभयं धर्माधर्मात्मकसंसाररूपत्वान्महद्भयं तस्मान्मुच्यस्व मुक्तो भव॥८॥**एकेति**। व्याघ्र इव स्वार्थपर एव राजाऽतो बध्यते पारार्थ्यं त्वस्यानुषङ्गिकं न मोचयितुं क्षममिति भावः॥९॥

विषयान्प्रतिसंगृह्य संन्यासं कुर्वते यदि* ।
न च तुष्यन्ति राजानः पश्य बुद्ध्यन्तरं यथा
पत्राहारैरश्मकुट्टैर्दन्तोलूखलिकैस्तथा ।
अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च तैरयं नरको जितः ॥ ११
यस्त्विमां वसुधां कृत्स्नां प्रशासेदखिलां नृपः
तुल्याश्मकाञ्चनो यश्च स कृतार्थो न पार्थिवः
संकल्पेषु निरारंभो निराशो निर्ममो भव ।
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाव्ययम्
निरामिषा न शोचन्ति
शोचसि त्वं किमामिषम् ।
परित्यज्यामिषं सर्वं
मृषावादात्प्रमोक्ष्यसे ॥ १४
पन्थानौ पितृयानश्च देवयानश्च विश्रुतौ ।
ईजानाः पितृयानेन देवयानेन मोक्षिणः ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण स्वाध्यायेन महर्षयः ।
विमुच्य देहांस्ते यान्ति मृत्योरविषयं गताः
आमिषं बन्धनं लोके
कर्मेहोक्तं तथामिषम् ।
ताभ्यां विमुक्तः पापाभ्यां
पदमाप्नोति तत्परम् ॥ १७
अपि गाथां पुरा गीतां जनकेन वदन्त्युत ॥
निर्द्वन्द्वेन विमुक्तेन मोक्षं समनुपश्यता ॥ १८
अनन्तं बत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य
अशोच्यां शोचतो जनान्
जगतीस्थानिवाद्रिस्थो
मन्दबुद्धिर्न चेक्षते ॥ २०
दृश्यं पश्यति यः पश्यन्
स चक्षुष्मान्स बुद्धिमान् ।
आज्ञातानां च विज्ञानात
संबोधाद्बुद्धिरुच्यते ॥ २१
यस्तु वाचं विजानाति बहुमानमियात्स वै ।
ब्रह्मभावप्रपन्नानां वैद्यानां भावितात्मनाम् ॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २३
ते जनास्तां गतिं यान्ति
नाविद्वांसोऽल्पतेजसः
नाबुद्धयो नातपसः
सर्वं बुद्धौ प्रतिष्ठितम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

**विषयानिति** । बहिरर्थांस्त्यक्त्वा शान्तः संन्यासी सन्न बध्यत इत्युक्तम् । तत् बुद्ध्यन्तरं बुद्धेर्विपर्ययो यथा तथा पश्य जानीहि ॥ १० ॥ एवं चेत्पत्राहारादिकं मुनयो न कुर्युरिति द्वयोः श्लोकयोर्भावः ॥११॥ मनसैव त्यागः कार्य इत्येतन्निरस्यति—**निरामिषा इति** । अत आत्मानं त्यागीति वदन् मृषावादी भवसीत्यर्थः ॥ १४ ॥ ईजानाः वर्णाश्रमाद्यभिमानिनः गता इति शेषः । मोक्षिणः निःसङ्गाः ॥ १५ ॥ बन्धनं राज्यसङ्गः ताभ्यामामिषाभ्याम् ॥ १७ ॥ यत्तु पितृपैतामहं राज्यमित्युक्तं तत्रापि स्वस्यासङ्गं दर्शयति-**अपि गाथामिति** ॥ १८ ॥ यदुक्तं दिष्ट्या दुर्योधनो हत इति तत्राह—**प्रज्ञेति** । मन्दत्वादेव प्रज्ञाप्रासादमारोढुमशक्तः । अशोच्यान् स्वर्गतान् दुर्योधनादीन् शोचतस्त्वद्दारादीन्न पश्यसि । परदुःखेन सुखी भवन्मूर्खोऽसीति भावः ॥२०॥ कस्तर्हि बुद्धिमान् इत्यत आह—**दृश्यमिति** । दृश्यं द्रष्टुं योग्यं कर्तव्यमकर्तव्यं च । अज्ञातं ज्ञापयति तस्य कर्तव्यत्वमकर्तव्यत्वं वा सम्बोधयति सम्यक् निश्चाययति सा बुद्धिस्तद्वान्बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ यत्तु एतां बुद्धिं विनिश्चित्येत्युक्तं तत्राह-**य इति** । यस्तु वैद्यानां विद्यावतां वाचं विजानाति न तु तदर्थं स त्वादृशो बहुमानं इयात् । गुरूनप्युपदेष्टुं योग्यमात्मानं मन्यते न तु तत्त्वं विन्दति ॥ २२ ॥ कस्तर्हि तत्त्वं विन्दतीत्यत आह—**यदेति** । यदा यस्मिन्काले भूतानां वियदादीनां पृथग्भावं नानात्वं एकस्थं एकस्मिन्नात्मनि पर्यवसन्नं विलीनमिति यावत् । घटशरावादीनामिव मृन्मात्रमनुपश्यति शास्त्राचार्योपदेशमनु ध्यानेन साक्षात्करोति तथा तत् एकस्मादेव विस्तारं उत्पत्तिं च पश्यति तदा ब्रह्म सम्पद्यते तत्त्वं विन्दति ॥ २३ ॥ ते बुद्धिमन्तस्तां गतिं ब्रह्मसम्पत्तिं यान्ति न त्वादृशा विद्वांसः शास्त्रमात्राभिज्ञाः यतोऽल्पचेतसः मन्दबुद्धयो बहिर्मुखा इत्यर्थः । कथं तर्हि बुद्धिमन्तो भवन्तीत्यत आह—**नाबुद्धयो नातपस इति** । ये अतपसो न ते अबुद्धयो न तपसैव बुद्धिः प्राप्यत इत्यर्थः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

* **संन्यासे कुरुते मतिम्** इति पाठः ।

## १८

वैशम्पायन उवाच ।
तूष्णींभूतं तु राजानं
पुनरेवार्जुनोऽब्रवीत् ।
संतप्तः शोकदुःखाभ्यां
राजवाक्शल्यपीडितः ॥ १

अर्जुन उवाच
कथयन्ति पुरावृत्तमितिहासमिमं जनाः ।
विदेहराज्ञः संवादं भार्यया सह भारत ॥ २
उत्सृज्य राज्यं भिक्षार्थं
कृतबुद्धिं नरेश्वरम्
विदेहराजमहिषी
दुःखिता यदभाषत* ॥ ३
धनान्यपत्यं दाराश्च रत्नानि विविधानि च
पन्थानं पावकं हित्वा जनको मौण्ड्यमास्थितः
तं ददर्श प्रिया भार्या भैक्ष्यवृत्तिमकिंचनम्
धानामुष्टिमुपासीनं निरीहं गतमत्सरम् ॥
तमुवाच समागत्य भर्तारमकुतोभयम् ।
क्रुद्धा मनस्विनी भार्या विविक्ते हेतुमद्वचः ॥
कथमुत्सृज्य राज्यं स्वं धनधान्यसमन्वितम्
कापालीं वृत्तिमास्थाय धानामुष्टिर्न ते वरः
प्रतिज्ञा तेऽन्यथा राजन्
विचेष्टा चान्यथा तव
यद्राज्यं महदुत्सृज्य
स्वल्पे तुष्यसि पार्थिव ॥ ८
नैतेनातिथयो राजन्देवर्षिपितरस्तथा ।
अद्य शक्यास्त्वया भर्तुं मोघस्तेऽयं परिश्रमः
देवतातिथिभिश्चैव पितृभिश्चैव पार्थिव ।
सर्वैरेतैः परित्यक्तः परिव्रजसि निष्क्रियः ॥
यस्त्वं त्रैविद्यवृद्धानां
ब्राह्मणानां सहस्रशः ।
भर्ता भूत्वा च लोकस्य
सोऽद्य तैर्भृतिमिच्छसि
श्रियं हित्वा प्रदीप्तां त्वं
श्ववत्संप्रति वीक्ष्यसे ।
अपुत्रा जननी तेऽद्य
कौसल्या चापतिस्त्वया ॥ १२
अमी च धर्मकामास्त्वां क्षत्रियाः पर्युपासते
त्वदाशामभिकाङ्क्षन्तः कृपणाः फलहेतुकाः ॥
तांश्च त्वं विफलान्कुर्वन्
कं नु लोकं गमिष्यसि
राजन्संशयिते मोक्षे
परतन्त्रेषु देहिषु ॥ १४
नैव तेऽस्ति परो लोको
नापरः पापकर्मणः ।
धर्म्यान्दारान्परित्यज्य
यस्त्वमिच्छसि जीवितुम् ॥ १५
स्रजो गन्धानलङ्कारान्
वासांसि विविधानि च
किमर्थमभिसंत्यज्य
परिव्रजसि निष्क्रयः ॥ १६
निपानं सर्वभूतानां
भूत्वा त्वं पावनं महत् ।
आढ्यो वनस्पतिर्भूत्वा
सोऽन्यांस्त्वं पर्युपाससे ॥ १७
खादन्ति हस्तिनं न्यासैः क्रव्यादा बहवोऽप्युत
बहवः कृमयश्चैव किं पुनस्त्वामनर्थकम् ॥ १८

---

### १८

**तूष्णींभूतमिति** ॥ १ ॥ बुद्ध्यर्थं तपोऽनुष्ठातुं वनमेव श्रेय इत्युक्तं तत्र 'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय' इति उक्ते गृहेऽपि चित्तशुद्धिकरं यज्ञादिकं तपोऽस्तीत्याख्यायिकामुखेन प्रतिपादयिष्यन्नर्जुन उवाच **—कथयन्तीति** ॥२॥ पावकं यज्ञादिद्वारा शोधकम् ॥४॥ धाना भृष्टयवाः निरीहं वितृष्णम् ॥५॥ हेतुमत् युक्तियुक्तम् ॥६॥ न ते वरः न ते त्वया वरणीयः ॥७॥ प्रतिज्ञा सर्वसङ्गं त्यक्ष्यामीत्येवंरूपा स्वल्पेनापि कुण्डिकादिसंग्रहेण नष्टेत्यर्थः ॥ ८ ॥ एतेन धानामुष्टिना ॥९॥ यतो निष्क्रियः अतो देवतादिभिः परित्यक्तः सन्नेव परिव्रजासि ॥ १० ॥ भृतिं स्वोदरभरणम् ॥ ११ ॥ फलहेतुकाः फलार्थिनः ॥ १३ ॥ परतन्त्रेषु अदृष्टाधीनेषु ॥ १४ ॥ निपीयतेऽस्मिन्स्वेच्छया गोभिर्जलमिति निपानं आहावः कूपोपान्तस्थक्षुद्रजलाशय इति यावत् तद्भूत्वा तथा आढ्यः फलवान् पक्षिणामाश्रयश्च भूत्वा अन्यान् उदरार्थं कथं पर्युपाससे ॥ १७ ॥ हस्तिनमपि न्यासैः सर्वकर्मत्यागैरुपेतं क्रव्यादा मांसादाः खादन्ति अनर्थकं सर्वपुरुषार्थहीनम् १८ * 'प्रत्यभाषत' इति पाठः

य इमां कुण्डिकां भिन्द्या-
त्त्रिविष्टब्धं च यो हरेत्
वासश्चापि हरेत्तस्मिन्
कथं ते मानसं भवेत् ॥ १९

यस्त्वयं सर्वमुत्सृज्य धानामुष्टेरनुग्रहः ।
यदाऽनेन समं सर्वं किमिदं ह्यवसीयसे ॥
धानामुष्टेरिहार्थश्चेत्प्रतिज्ञा ते विनश्यति ।
का वाऽहं तव को मे त्वं कश्च ते मय्यनुग्रहः
प्रशाधि पृथिवीं राजन् यदि तेऽनुग्रहो भवेत्
प्रासादं शयनं यानं वासांस्याभरणानि च ॥

+श्रिया विहीनैरधनै-
स्त्यक्तमित्रैरकिञ्चनैः ।
सौखिकैः संभृतानर्थान्
यः संत्यजति किं नु तत् ॥ २३

योऽत्यन्तं प्रतिगृह्णीयाद्यश्च दद्यात्सदैव हि ।
तयोस्त्वमन्तरं विद्धि श्रेयांस्ताभ्यां क उच्यते
सदैव याचमानेषु तथा दम्भान्वितेषु च ।
एतेषु दक्षिणा दत्ता दावाग्नाविव दुर्हुतम् ॥
जातवेदा यथा राजन्नादग्ध्वैवोपशाम्यति ।
सदैव याचमानो हि तथा शाम्यति वै द्विजः
सतां वै ददतोऽन्नं च लोकेऽस्मिन्प्रकृतिर्ध्रुवा
न चेद्राजा भवेद्दाता कुतः स्युर्मोक्षकांक्षिणः
अन्नाद्गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तत एव च
अन्नात्प्राणः प्रभवति अन्नदः प्राणदो भवेत्
गृहस्थेभ्योऽपि निर्मुक्ता गृहस्थानेव संश्रिताः
प्रभवं च प्रतिष्ठां च दान्ता विन्दन्त आसते

त्यागान्न भिक्षुकं विन्द्या-
न्न मौढ्यान्न च याचनात् ।
ऋजुस्तु योऽर्थं त्यजति
नसुखं विद्धि भिक्षुकम् ॥ ३०

असक्तः सक्तवद्गच्छन्निःसङ्गो मुक्तबन्धनः ।
समः शत्रौ च मित्रे च स वै मुक्तो महीपते

परिव्रजन्ति दानार्थं
मुण्डाः काषायवाससः ।
सिता बहुविधैः पाशैः
सञ्चिन्वन्तो वृथामिषम् ॥ ३२
त्रयीं च नाम वार्तां च
त्यक्त्वा पुत्रान्व्रजन्ति ये ।
त्रिविष्टब्धं च वासश्च
प्रतिगृह्णन्त्यबुद्धयः ॥ ३३

अनिष्कषाये काषायमीहार्थमिति विद्धि तम्
धर्मध्वजानां मुण्डानां वृत्त्यर्थमिति मे मितिः
काषायैरजिनैश्चीरैर्नग्नान्मुण्डाञ्जटाधरान्
बिभ्रत्साधून्महाराज जय लोकाञ्जितेन्द्रियः ।
अग्न्याधेयानि गुर्वर्थे क्रतूनपि सुदक्षिणान् ॥
ददात्यहरहः पूर्वं को नु धर्मरतस्ततः ॥ ३६

अर्जुन उवाच ।

तत्त्वज्ञो जनको राजा
लोकेऽस्मिन्निति गीयते ।
सोऽप्यासीन्मोहसंपन्नो
मा मोहवशमन्वगाः ॥ ३७

एवं धर्ममनुक्रान्ताः सदा दानतपःपराः ।
आनृशंस्यगुणोपेताः काम-क्रोधविवर्जिताः॥

---

**य इमामिति**। त्रिविष्टब्धं त्रिदण्डम् ॥१९॥ अवसीयसे अध्यवस्यसि अनेन धानामुष्टिना सर्वं राज्यादिकं समं संगित्वाविशेषात्॥२०॥इहार्थ इति जीवनार्थं बाह्यमप्यर्थं त्यक्तुमशक्तः कथमान्तरान्देहेन्द्रियादींस्त्यक्ष्यसि। तथा च सर्वसंगत्यागप्रतिज्ञा व्यर्थैव किं तर्हि सर्वसंगत्यागरूपमत आह-**का वेति** ।देहेंद्रियमनोबुद्धिविषयाणां त्यागे शुद्धचिन्मात्रस्य तवाहं च तादृशी का मम त्वं च कः । न ह्यसंगचिन्मात्रयोर्द्वयोः परस्परसम्बन्धोऽस्ति भेदकोपाधेरभावात् एवं सति मयि कश्च तेऽनुग्रहो न कश्चिदित्यर्थः ॥ २१ ॥ एवमसंगस्य तव राज्यं कुर्वतो यथा कथंचित्प्रारब्धकर्मावसानपर्यंतं देहं धारयतः कुण्डिकाद्यपेक्षया राज्यमेव मङ्गलमनुग्राहकमित्याह **प्रशाधीत्यादिना**॥२२॥ सौखिकैः परमसुखार्थिभिः संन्यासिभिः संभृतानर्थान् कुंडिकादीन् वक्ष्यि यः स्वयमपि तथा करोति स किं नु तद्राज्यादिकं त्यजति अपि तु नैव त्यजति किं तु उचितं परिग्रहं त्यक्त्वा दैवोपहतत्वादनुचितं परिग्रहान्तरमेव करोतीत्यसंगत्वमस्य दुर्लभमित्यर्थः ॥ २३ ॥ एतदेवाह-**य इति** ॥ २४ ॥ सदैव याचमानः परिव्राट् ॥ २५ ॥ स च क्लेशान्दग्ध्वैवोपशाम्यति अग्निवदित्याह-**जातेति** ॥२६॥ एतच्च गृहस्थाधीनमित्याह-**सतामिति** । सतां संन्यासिनां प्रकृतिर्जीवनम् ॥ २७ ॥ ऋजुत्वमेवाह—**असक्त इति** ॥ ३१ ॥ **दानार्थं** दानं प्राप्तुं सिता बद्धाः पाशैः मठो मे भूयाच्छिष्यो मे भूयान्मानो मे भूयादित्यादिभिः । आमिषं धनं मठपुस्तकाद्यर्थम् ॥३२॥ अनिष्कषाये रागादिदोषवर्जनाभावे ॥ ३४ ॥ साधून्निष्कषायान् ॥ ३५ ॥ + श्रियां निराशैरिति पाठः ।

प्रजानां पालने युक्ता दानमुत्तममास्थिताः
इष्टाँल्लोकानवाप्स्यामो गुरुवृद्धोपचायिनः ॥
देवतातिथिभूतानां निर्वपन्तो यथाविधि ।
स्थानमिष्टमवाप्स्यामो ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अर्जुनवाक्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

युधिष्ठिर उवाच ।
वेदाहं तात शास्त्राणि अपराणि पराणि च
उभयं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च ॥ १
आकुलानि च शास्त्राणि हेतुभिश्चिन्तितानि च
निश्चयश्चैव यो मन्त्रे वेदाहं तं यथाविधि २
त्वं तु केवलमस्त्रज्ञो वीरव्रतसमन्वितः ।
शास्त्रार्थं तत्त्वतो गन्तुं न समर्थः कथञ्चन ३
शास्त्रार्थसूक्ष्मदर्शी यो धर्मनिश्चयकोविदः ।
तेनाप्येवं न वाच्योऽहं यदि धर्मं प्रपश्यसि ॥
भ्रातृसौहृदमास्थाय यदुक्तं वचनं त्वया ।
न्याय्यं युक्तं च कौन्तेय प्रीतोऽहं तेन तेऽर्जुन
युद्धधर्मेषु सर्वेषु क्रियाणां नैपुणेषु च ।
न त्वया सदृशः कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ६
धर्मं सूक्ष्मतरं वाच्यं तत्र दुष्प्रतरं त्वया ।
धनञ्जय न मे बुद्धिमभिशङ्कितुमर्हसि ॥ ७
युद्धशास्त्रविदेव त्वं न वृद्धाः सेवितास्त्वया
संक्षिप्तविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम्
तपस्त्यागो विधिरिति
निश्चयस्त्वेष धीमताम् ।
परस्परं ज्याय एषां
येषां नैश्रेयसी मतिः ॥
यस्त्वेतन्मन्यसे पार्थ
न ज्यायोऽस्ति धनादिति ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि
यथा नैतत्प्रधानतः ॥ १०
तपःस्वाध्यायशीला हि
दृश्यन्ते धार्मिका जनाः ।
ऋषयस्तपसा युक्ता
येषां लोकाः सनातनाः ॥ ११
अजातशत्रवो धीरास्तथाऽन्ये वनवासिनः ।
अरण्ये बहवश्चैव स्वाध्यायेन दिवं गताः १२
उत्तरेण तु पन्थानमार्या विषयनिग्रहात् ।
अबुद्धिजं तमस्त्यक्त्वा लोकांस्त्यागवतां गताः
दक्षिणेन तु पन्थानं यं भास्वन्तं प्रचक्षते ।
एते क्रियावतां लोका ये श्मशानानि भेजिरे
अनिर्देश्या गतिः सा तु
यां प्रपश्यन्ति मोक्षिणः ।
तस्माद्योगः प्रधानेष्टः
स तु दुःखं प्रवेदितुम् ॥ १५

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

अन्तःसंगं त्यक्त्वा बहिः कर्म कुर्वित्युक्तं दूषयन् युधिष्ठिर उवाच-**वेदेति** । अपराणि धर्मशास्त्राणि पराणि ब्रह्मशास्त्राणि ' कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ' इति त्यजतैव हि 'तज्ज्ञेयम्' इति 'कुरु कर्म त्यज' इति च शास्त्रद्वयं वेद जाने ॥ १ ॥ तयोर्निश्चयमप्यहं वेद । विविदिषन्ति यज्ञेन दानेनेत्यादिश्रुतेरात्मवेदनेच्छापर्यन्तं कर्मविषयः ॥ २ ॥ ' एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति ' इति इच्छोत्तरं प्रव्रज्येति कर्मतत्यागश्रुत्योश्चव्यवस्थामजानंस्त्वं मूर्खोऽसीत्याह-**त्वं त्वित्यादिना** ॥३॥ धर्मे धर्मप्रतिपादके तत्र विषये दुष्प्रतरं दुरवगाहम् ॥७॥कस्तर्हि निश्चय इत्यत आह-तप इति.अविधिरनिर्देश्यं ब्रह्म ॥ ९ ॥ एतेषु तपो विभजते-**तप इति** ॥ ११ ॥ **अरण्य इति** । अतिजघन्यं तपोऽपि धनाज्ज्यायः किमुत त्यागविधिरिति भावः ॥ १२ ॥ त्यागमाह—**उत्तरेणेति** ॥ १३ ॥ **श्मशानानीति** । क्रियावतां जन्ममरणसंबंधो दुर्वार इति त्याग एव कर्तव्य इति दर्शितम् ॥ १४ ॥ अविधिमाह-**अनिर्देश्येति** । गतिर्मोक्षः प्रत्यगानन्दरूपः तस्माद्धेतोस्तल्लाभायेत्यर्थः । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः सः प्रधानं च तदिष्टश्च प्रधानेष्टः योगेनैव ब्रह्म प्राप्यते नान्यथेत्यर्थः । यदाह दक्षः—
' स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो वै यथा घटम्' इति ।
स तु दुःखं प्रवेदितुं तुभ्यं ज्ञापयितुं अशक्यस्तव तत्रानधिकारादित्यर्थः ॥ १५ ॥

अनुस्मृत्य तु शास्त्राणि कवयः समवस्थिताः
अपीह स्यादपीह स्यात्सारासारदिदृक्षया॥
वेदवादानतिक्रम्य शास्त्राण्यारण्यकानि च
विपाट्य कदलीस्तंभं सारं ददृशिरे न ते १७
अथैकान्तव्युदासेन शरीरे पाञ्चभौतिके।
इच्छा-द्वेषसमासक्तमात्मानं प्राहुरिङ्गितैः १८
अग्राह्यं चक्षुषा सूक्ष्ममनिर्देश्यं च तद्गिरा।
कर्महेतुपुरस्कारं भूतेषु परिवर्तते ॥ १९
कल्याणगोचरं कृत्वा मनस्तृष्णां निगृह्य च
कर्मसन्ततिमुत्सृज्य स्यान्निरालम्बनः सुखी
अस्मिन्नेवं सूक्ष्मगम्ये मार्गे सद्भिर्निषेविते।
कथमर्थमनर्थाढ्यमर्जुन त्वं प्रशंससि ॥ २१
पूर्वशास्त्रविदोऽप्येवं जनाः पश्यन्ति भारत
क्रियासु निरता नित्यं दाने यज्ञे च कर्मणि
भवन्ति सुदुरावर्ता हेतुमन्तोऽपि पण्डिताः
दृढपूर्वे स्मृता मूढा नैतदस्तीतिवादिनः २३
अनृतस्यावमन्तारो वक्तारो जनसंसदि।
चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वावदूका बहुश्रुताः॥
पार्थ यान्न विजानीमः कस्ताञ्ज्ञातुमिहार्हति
एवं प्राज्ञाः श्रुताश्चापि महान्तः शास्त्रवित्तमाः
तपसा महदाप्नोति बुद्ध्या वै विन्दते महत्।
त्यागेन सुखमाप्नोति सदा कौन्तेय तत्त्ववित्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अपिर्वार्थे इह वा सारोस्तीह वेति एवमिह वाऽसार इह वेति शास्त्राणि आलोक्य कवयः सारमुपादायासारं परित्यज्य समवस्थिताः सम्यक् निश्चयवन्तो जाता इत्यर्थः ॥ १६ ॥ आरण्यकानि वेदान्तान् ॥१७॥ एकान्तं जनवर्जितं तद्व्युदासेन तत्त्यागेन केचिच्छरीरे स्थितमात्मानं इच्छादिमन्तं प्राहुः। ममेदं भूयादित्यादिभिरिङ्गितैर्लिङ्गैः ॥ १८ ॥ एवं परमतमुपन्यस्य सिद्धान्तमाह-**अग्राह्यमिति** । चक्षुषा समनस्कैश्चक्षुरादिभिरग्राह्यं यतः सूक्ष्मं गिरा वाऽनिर्देश्यम् । कर्महेतुरविद्या तयैव पुरस्कारो ब्राह्मणोऽहं गृहस्थोऽहमिति चक्षुर्वाग्गोचरत्वं यस्य तत्सूक्ष्ममेव विपरिवर्तते जीवरूपेणास्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ कल्याणगोचरं आत्मोन्मुखं निरालम्बनः निरहङ्कारः ॥२०॥ सूक्ष्मगम्ये सूक्ष्मया बुद्ध्या गम्ये सद्भिश्च निषेवितेऽन्तरहङ्कारत्यागरूपे सति कथं बाह्यतमान् अर्थान् उपादेयत्वेन प्रशंससि ॥ २१ ॥ पूर्वशास्त्रविदः कर्मकाण्डविदोऽपि एवमर्थमनर्थत्वेन पश्यन्ति किमुत ज्ञानिनः॥२२॥ दुरावर्ताः दुःखेनापि सिद्धान्तं ग्राहयितुमशक्याः दृढः पूर्वः प्राग्भावियः संस्कारो येषां ते दृढपूर्वे ।बहुव्रीहावप्यार्षी सर्वनामता ॥ २३ ॥ हे पार्थ यत् यान् लौकिकानप्यर्थान वयं विजानीमस्तान् इतरः को ज्ञातुमर्हति न कोऽपि यथा एवं प्राज्ञा अपि अस्माकमन्येषां च दुर्ज्ञेया इत्यर्थः ॥ २५ ॥ महद्वैराग्यं महत्परं ब्रह्म तत्त्ववित् तत् आदीनामेव ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

वैशम्पायन उवाच ।
अस्मिन्वाक्यान्तरे वक्ता देवस्थानो महातपाः
अभिनीततरं वाक्यमित्युवाच युधिष्ठिरम् १
देवस्थान उवाच ।
यद्वचः फाल्गुनेनोक्तं न ज्यायोस्ति धनादिति
अत्र ते वर्तयिष्यामि तदेकान्तमनाः शृणु॥ २
अजातशत्रो धर्मेण कृत्स्ना ते वसुधा जिता ।
तां जित्वा च वृथा राजन्न परित्यक्तुमर्हसि ३
चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येव प्रतिष्ठिता ।
तां क्रमेण महाबाहो यथावज्जय पार्थिव ॥ ४
तस्मात्पार्थ महायज्ञैर्यजस्व बहुदक्षिणैः ।
स्वाध्याययज्ञा ऋषयो ज्ञानयज्ञास्तथाऽपरे॥५

२०

**अस्मिन्निति**।अस्मिन् वाक्यान्तरे वक्तेत्यादिना 'दण्ड एव हि राजेन्द्र क्षत्रधर्मो न मुंडनमित्यंतेन ग्रन्थेनात्मविविदिषोत्पत्तेः पूर्वं कर्माणि कर्तव्यानि पश्चात्त्याज्यानीति युधिष्ठिरमतं ब्राह्मणविषयं न तु क्षत्रियविषयमिति प्रतिपाद्यते । वाक्यान्तरे वाक्यावसरे अभिनीततरं युक्तिमत्तरम् ॥ १ ॥ चतुष्पदी चतुराश्रमी ॥ ४ ॥ तामेवाह-**स्वाध्यायेति** । क्रमाद्ब्रह्मचारियतिगृहस्थवानप्रस्थान् बुध्यस्वेत्यर्थः ॥ ५ ॥

कर्मनिष्ठांश्च बुद्ध्येथास्तपोनिष्ठांश्च पार्थिव ।
वैखानसानां कौन्तेय वचनं श्रूयते यथा ॥ ६
ईहेत धनहेतोर्यस्तस्यानीहा गरीयसी ।
भूयान्दोषो हि वर्धेत यस्तं धर्मसुपाश्रयेत् ७
कृत्स्नं च धनसंहारं कुर्वन्ति विधिकारणात्।
आत्मानं दूषितो बुद्ध्या भ्रूणहत्यां न बुद्ध्यते
अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते ।
अर्हानर्हापरिज्ञानाद्दानधर्मोऽपि दुष्करः ९

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा
यज्ञोद्दिष्टः पुरुषो रक्षिता च
तस्मात्सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं
धनं ततोऽनन्तर एव कामः ॥ १०

यज्ञैरिन्द्रो विविधै रन्नवद्भि-
र्देवान्सर्वानभ्ययाद्भूरितेजाः ।
तेनेन्द्रत्वं प्राप्य विभ्राजतेऽसौ
तस्माद्यज्ञे सर्वमेवोपयोज्यम् ॥ ११

महादेवः सर्वयज्ञे महात्मा
हुत्वाऽऽत्मानं देवदेवो बभूव ।
विश्वाँल्लोकान् व्याप्य विष्टभ्य कीर्त्या
विराजते द्युतिमान्कृत्तिवासाः ॥ १२

आविक्षितः पार्थिवोऽसौ मरुत्तो
वृद्ध्या शक्रं योऽजयद्देवराजम् ।
यज्ञे यस्य श्रीः स्वयं संनिविष्टा
यस्मिन्भाण्डं काञ्चनं सर्वमासीत् ॥

हरिश्चन्द्रः पार्थिवेन्द्रः श्रुतस्ते
यज्ञैरिष्ट्वा पुण्यभाग्वीतशोकः ।
ऋद्ध्या शक्रं योऽजयन्मानुषः सं-
स्तस्माद्यज्ञे सर्वमेवोपयोज्यम् ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि देवस्थानवाक्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

देवस्थान उवाच ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
इन्द्रेण समये पृष्टो यदुवाच बृहस्पतिः ॥ १
संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम् ।
तुष्टेर्न किंचित्परतः सा सम्यक्प्रतितिष्ठति २
यदा संहरते कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
तदात्मज्योतिरचिरात्स्वात्मन्येव प्रसीदति॥
न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न बिभ्यति
कामद्वेषौ च जयति तदात्मानं च पश्यति ४

---

वैखानसानां हैरण्यगर्भाणाम् ॥ ६॥ धनं हेतुः कारणं यस्य तस्य यज्ञादेः यज्ञार्थं ईहेत धनं तस्यानीहैव गरीयसी 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' इति न्यायात्तमिमं परधर्मं यः क्षत्रिय उपाश्रयेत स दुष्येदित्याह-**भूयानिति** ॥ ७ ॥ चो हेतौ । यस्माद्विधिकारणात् यज्ञार्थं धनसंहारं धनसंचयम् । **आत्मानमिति**। बुद्ध्या दूषित आत्मानं देहं तद्वत्प्रियं धनं वा अनर्हते अयोग्याय कर्मणे समर्पयति योग्याय च न सः आत्मद्रोहजां भ्रूणहत्यां न बुध्यते सार्धः ॥ ८॥ दानधर्मः शुद्धिधर्मः दैप् शोधने इत्यस्य रूपं पक्षे स्पष्टोऽर्थः॥९॥यज्ञोद्दिष्टो यज्ञार्थमेव आम्नातो वेदेन। यज्ञसृष्ट इति पाठे यज्ञार्थमेव सृष्टः अनन्तरः संनिहितः यज्ञादेव सर्वकामावाप्तिर्भवतीति भावः ॥ १० ॥ भाण्डमुपकरणं पात्रादि ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

**अत्रैवेति** । अत्रैव क्षत्रियस्य वैखानसधर्माश्रयणं दोषः पालनयागदानादिकं गुण इत्यस्मिन्नर्थे **एव** ॥१॥ असंतुष्टो हि राजा प्रजाः पीडयत्यतः संतोषमेव स्तौति- **संतोष इति** । सा तुष्टिः ॥ २ ॥ सम्यक्प्रतितिष्ठति येन तदाह-**यदेति** । यदा प्रसीदति तदा तुष्टिः प्रतितिष्ठतीति सम्बन्धः। कदा प्रसीदति यदा कामान् जाग्रदादिविषयान्संहरते-आत्मनि प्रविलापयति तदाऽऽत्मज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मा स्वात्मन्येव स्वस्वरूपे एव प्रसीदति दृग्दर्शनेन दृश्यादिभेददर्शनरूपं मलं त्यजति ॥३॥ न बिभेति द्वितीयाभावात् अस्मान्न बिभ्यति अस्य निष्क्रियत्वात् समाधौ व्युत्थाने तु कामक्रोधौ जयति ॥ ४ ॥

यदाऽसौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न कांक्षति।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ५
एवं कौन्तेय भूतानि तं तं धर्मं तथा तथा।
तदात्मना प्रपश्यन्ति तस्माद् बुद्धयस्व भारत
अन्ये साम प्रशंसन्ति व्यायाममपरे जनाः।
नैकं न चापरे केचिदुभयं च तथापरे॥ ७
यज्ञमेव प्रशंसन्ति संन्यासमपरे जनाः।
दानमेके प्रशंसन्ति केचिच्चैव प्रतिग्रहम् ॥८॥
केचित्सर्वं परित्यज्य तूष्णीं ध्यायन्त आसते
राज्यमेके प्रशंसन्ति प्रजानां परिपालनम् ॥
हत्वा छित्वा च भित्वा च
केचिदेकान्तशीलिनः
एतत्सर्वं समालोक्य
बुधानामेष निश्चयः॥
अद्रोहेणैव भूतानां यो धर्मः स सतां मतः॥
अद्रोहः सत्यवचनं संविभागो दया दमः॥
प्रजनं स्वेषु दारेषु मार्दवं ह्रीरचापलम्।
एवं धर्मं प्रधानेष्टं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।
तस्मादेतत्प्रयत्नेन कौन्तेय प्रतिपालय।
यो हि राज्ये स्थितः शश्वद्वशी तुल्यप्रियाप्रियः
क्षत्रियो यज्ञशिष्टाशी
राजा शास्त्रार्थतत्त्ववित्।
असाधुनिग्रहरतः
साधूनां प्रग्रहे रतः॥ १४॥
धर्मवर्त्मनि संस्थाप्य प्रजा वर्तेत धर्मतः।
पुत्रसंक्रामितश्रीश्च वने वन्येन वर्तयन्॥ १५
विधिना श्रावणेनैव कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः।
य एवं वर्तते राजन्स राजा धर्मनिश्चितः १६
तस्यायं च परश्चैव लोकः स्यात्सफलोदयः।
निर्वाणं हि सुदुष्प्राप्यं बहुविघ्नं च मे मतम्॥
एवं धर्ममनुक्रान्ताः सत्य-दान-तपःपराः।
आनृशंस्यगुणैर्युक्ताः कामक्रोधविवर्जिताः॥
प्रजानां पालने युक्ता धर्ममुत्तममास्थिताः।
गोब्राह्मणार्थे युध्यन्तः प्राप्ता गतिमनुत्तमाम्
एवं रुद्राः सवसवस्तथाऽऽदित्याः परंतप।
साध्या राजर्षिसंघाश्च धर्ममेतं समाश्रिताः।
अप्रमत्तास्ततः स्वर्गं प्राप्ताः पुण्यैः स्वकर्मभिः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि देवस्थानवाक्ये एकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१॥

## २२

वैशम्पायन उवाच
अस्मिन्नेवान्तरे वाक्यं पुनरेवार्जुनोऽब्रवीत्
निर्विण्णमनसं ज्येष्ठमिदं भ्रातरमच्युतम् ॥१
क्षत्रधर्मेण धर्मज्ञ प्राप्य राज्यं सुदुर्लभम्।
जित्वा चारीन्नरश्रेष्ठ तप्यते किं भृशं भवान्

---

यदा काले ॥५॥ **एवमिति**। भूतानि अधिकारिजीवाः यथा यथा येन येन प्रकारेण यद्यत्कर्म यज्ञादिकं वा सगुणोपासनं निर्गुणोपासनं वा साङ्गं व्यङ्गं वा करोति तत्तत्कर्म तथा तथा तेन तेन प्रकारेण फलात्मना आविर्भूतं आत्मना स्वानुभवेन पश्यन्ति। एतेन 'तं यथायथोपासते तथैतः प्रेत्य भवति' इति श्रुतेरर्थो दर्शितः तस्मात्सर्वेभ्यो भूतेभ्यो भयं ददद्भयं विन्दत्यभयं ददद्भयं विन्दतीति बुध्यस्व। सम्यक्प्रजापालनेन त्वमप्यभयं प्राप्नुहीति भावः ॥६॥**अन्य इति**। साम प्रीतिम्। व्यायामं यत्नम्। अपरे एकं ध्यानं न प्रशंसन्ति इति न,अपि तु प्रशंसन्त्येव उभयं सामव्यायामौ एकस्यैव अवस्थाभेदेन प्रशंसन्ति,अपरे तथैव प्रशंसन्ति प्रागुपात्तमेकं श्रेयम् ॥ ७ ॥ पक्षाप्येतान्पक्षान्विवृणोति-**यज्ञेति** त्रिभिः। यज्ञसंन्यासदानैर्देवसर्वभूतविप्राणां प्रीतिर्भवति। प्रतिग्रहं प्रजाभ्यो यजमानेभ्यो वा द्रव्यादानं व्यायामरूपं मन्दाः प्रशंसन्ति ॥ ८ ॥ सर्वपरित्यागेन त्वेकं केचित्। राज्यमेके इत्यादिपादत्रयेण सामव्यायामौ एकस्यैवाह ॥९॥ अन्त्यं पक्षमाह—**केचिदेकान्तशीलिनेति**॥१०॥सिद्धान्तमाह-**अद्रोहेणेति** ॥ ११ ॥ प्रजनं पुत्रोत्पादनं, प्रधानं चासौ इष्टश्चेति समासस्तम् ॥ १२ ॥ प्रग्रहे संग्रहे ॥ १४ श्रावणेन शास्त्रश्रवणाद्विहितेन ॥१६॥ इति श्रीमहा० शान्तिप० रा० नै० भारतभा० एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

२२

**अस्मिन्निति**। अच्युतं धर्मात् ॥ १ ॥

क्षत्रियाणां महाराज संग्रामे निधनं मतम् ।
विशिष्टं बहुभिर्यज्ञैः क्षत्रधर्ममनुस्मर ॥ ३ ॥
ब्राह्मणानां तपस्त्यागः प्रेत्य धर्मविधिः स्मृतः
क्षत्रियाणां च निधनं संग्रामे विहितं प्रभो
क्षात्रधर्मो महारौद्रः शस्त्रनित्य इति स्मृतः ।
वधश्च भरतश्रेष्ठ काले शस्त्रेण संयुगे ॥५ ॥
ब्राह्मणस्यापि चेद्राजन् क्षत्रधर्मेण वर्ततः ।
प्रशस्तं जीवितं लोके क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम्॥६
न त्यागो न पुनर्यज्ञो न तपो मनुजेश्वर ।
क्षत्रियस्य विधीयन्ते न परस्वोपजीवनम् ॥
स भवान् सर्वधर्मज्ञो धर्मात्मा भरतर्षभ ।
राजा मनीषी निपुणो लोके दृष्टपरावरः ॥८
त्यक्त्वा सन्तापजं शोकं दंशितो भव कर्मणि
क्षत्रियस्य विशेषेण हृदयं वज्रसन्निभम् ॥९॥

जित्वाऽरीन् क्षत्रधर्मेण
प्राप्य राज्यमकण्टकम् ।
विजितात्मा मनुष्येन्द्र
यज्ञदानपरो भव ॥ १०
इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः क्षत्रियः कर्मणाऽभवत् ।
ज्ञातीनां पापवृत्तीनां जघान नवतीर्नव ॥११
तच्चास्य कर्म पूज्यं च प्रशस्यं च विशांपते
तेनेन्द्रत्वं समापेदे देवानामिति नः श्रुतम्१२
स त्वं यज्ञैर्महाराज यजस्व बहुदक्षिणैः ॥
यथैवेन्द्रो मनुष्येन्द्र चिराय विगतज्वरः॥१३
मा त्वमेवं गते किंचिच्छोचेथाः क्षत्रियर्षभ॥
गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूताः परां गतिम्१४
भवितव्यं तथा तच्च यद्वृत्तं भरतर्षभ ।
दिष्टं हि राजशार्दूल न शक्यमतिवर्तितुम्१५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अर्जुनवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु कौन्तेयो
गुडाकेशेन पाण्डवः ।
नोवाच किंचित्कौरव्य-
स्ततो द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥
व्यास उवाच ।
बीभत्सोर्वचनं सौम्य सत्यमेतद्युधिष्ठिर ।
शास्त्रदृष्टः परो धर्मः स्थितो गार्हस्थ्यमाश्रितः
स्वधर्मं चर धर्मज्ञ यथाशास्त्रं यथाविधि ।
न हि गार्हस्थ्यमुत्सृज्य तवारण्यं विधीयते॥
गृहस्थं हि सदा देवाः पितरोऽतिथयस्तथा ।
भृत्याश्चैवोपजीवन्ति तान् भरस्व महीपते ॥
वयांसि पशवश्चैव भूतानि च जनाधिप ।

गृहस्थैरेव धार्यन्ते तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥५
सोऽयं चतुर्णामेतेषामाश्रमाणां दुराचरः ।
तं चराद्य विधिं पार्थ दुश्चरं दुर्बलेन्द्रियैः ॥६
वेदज्ञानं च ते कृत्स्नं
तपश्चाचरितं महत् ।
पितृपैतामहं राज्यं
धुर्यवद्वोढुमर्हसि ॥ ७
तपो यज्ञस्तथा विद्या भैक्ष्यमिन्द्रियसंयमः ।
ध्यानमेकान्तशीलत्वं तुष्टिर्ज्ञानं च शक्तितः॥
ब्राह्मणानां महाराज चेष्टा संसिद्धिकारिका
क्षत्रियाणां तु वक्ष्यामि तवापि विदितं पुनः
यज्ञो विद्या समुत्थानमसंतोषः श्रियं प्रति ।
दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम् ॥१०

---

त्यागः संन्यासः॥४॥ यज्ञ आत्मयज्ञः समाधिरिति यावत् ॥ ७ ॥ दंशितः सन्नद्धः विजयं धर्मसंहितमिति पाठे प्रशंसन्ति इत्यध्याहारः ॥ ९ ॥ ब्रह्मणः कश्यपस्य नवतीर्नव दशाधिकं शताष्टकम् ॥ ११ ॥ इंद्रत्वमैश्वर्यम् ॥१२॥ इति श्रीम० शां० रा० नै० भारतभा० द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

२३

**एवमुक्त इति** ॥ १ ॥ गार्हस्थ्यं गृहस्थस्यायं गार्हस्थ्यस्तम् ॥ २ ॥ तव क्षत्रियत्वात् अरण्यं संन्यासः ॥३॥ दुर्बलानि जितानि च तानि इन्द्रियाणि तैः ॥६॥ **विद्या** आत्मनोऽसंगत्वज्ञानम्, ज्ञानं शास्त्रविषयम् ॥८॥

वेदज्ञानं तथा कृत्स्नं
तपः सुचरितं तथा ॥
द्रविणोपार्जनं भूरि
पात्रे च प्रतिपादनम् ॥ ॥ ११
एतानि राज्ञां कर्माणि सुकृतानि विशांपते ।
इमं लोकममुं चैव साधयन्तीति नः श्रुतम् ।
एषां ज्यायस्तु कौन्तेय दण्डधारणमुच्यते ।
बलं हि क्षत्रिये नित्यं बले दण्डः समाहितः
एता विद्याः क्षत्रियाणां
राजन् संसिद्धिकारिकाः ।
अपि गाथामिमां चापि
बृहस्पतिरगायत ॥ १४
भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्
सुद्युम्नश्चापि राजर्षिः श्रूयते दण्डधारणात् ।
प्राप्तवान्परमां सिद्धिं दक्षः प्राचेतसो यथा ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन्कर्मणा केन सुद्युम्नो वसुधाधिपः ।
संसिद्धिं परमां प्राप्तः श्रोतुमिच्छामि तं नृपम्

व्यास उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शङ्खश्च लिखितश्चास्तां भ्रातरौ संशितव्रतौ ॥
तयोरावसथावास्तां रमणीयौ पृथक् पृथक् ।
नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतौ बाहुदामनु ॥ १९
ततः कदाचिल्लिखितः
शङ्खस्याश्रममागतः ।
यदृच्छयाऽथ शङ्खोऽपि
निष्क्रान्तोऽभवदाश्रमात् ॥ २०
सोऽभिगम्याश्रमं भ्रातुः शङ्खस्य लिखितस्तदा
फलानि पातयामास सम्यक्परिणतान्युत ॥
तान्युपादाय विस्रब्धो भक्षयामास स द्विजः
तस्मिंश्च भक्षयत्येव शङ्खोऽप्याश्रममागतः २२
भक्षयन्तं तु तं दृष्ट्वा शङ्खो भ्रातरमब्रवीत् ।
कुतः फलान्यवाप्तानि हेतुना केन खादसि ॥
सोऽब्रवीद्भ्रातरं ज्येष्ठमुपस्पृत्याभिवाद्य च ।
इत एव गृहीतानि मयेति प्रहसन्निव ॥ २४
तमब्रवीत्तथा शङ्खस्तीव्ररोषसमन्वितः ।
स्तेयं त्वया कृतमिदं फलान्याददता स्वयम्
गच्छ राजानमासाद्य स्वकर्म कथयस्व वै ।
अदत्तादानमेवं हि कृतं पार्थिवसत्तम ॥ २६
स्तेनं मां त्वं विदित्वा च स्वधर्ममनुपालय ।
शीघ्रं धारय चौरस्य मम दण्डं नराधिप ॥
इत्युक्तस्तस्य वचनात्सुद्युम्नं स नराधिपम् ।
अभ्यगच्छन्महाबाहो लिखितः संशितव्रतः ॥
सुद्युम्नस्त्वन्तपालेभ्यः
श्रुत्वा लिखितमागतम् ।
अभ्यगच्छत्सहामात्यः
पद्भ्यामेव जनेश्वरः ॥ २९
तमब्रवीत्समागम्य स राजा धर्मवित्तमम् ।
किमागमनमाचक्ष्व भगवन्कृतमेव तत् ॥ ३०
एवमुक्तः स विप्रर्षिः सुद्युम्नमिदमब्रवीत् ।
प्रतिश्रुत्य करिष्येति श्रुत्वा तत्कर्तुमर्हसि ३१
अनिसृष्टानि गुरुणा फलानि मनुजर्षभ ।
भक्षितानि महाराज तत्र मां शाधि मा चिरम्

सुद्युम्न उवाच ।

प्रमाणं चेन्मतो राजा भवतो दण्डधारणे ।
अनुज्ञायामपि तथा हेतुः स्याद्ब्राह्मणर्षभ ३३
स भवानभ्यनुज्ञातः
शुचिकर्मा महाव्रतः ।
ब्रूहि कामानतोऽन्यांस्त्वं
करिष्यामि हि ते वचः ॥ ३४

व्यास उवाच ।

संच्छाद्यमानो ब्रह्मर्षिः पार्थिवेन महात्मना
नान्यं स वरयामास तस्माद्दण्डादृते वरम् ॥
ततः स पृथिवीपालो लिखितस्य महात्मनः
करौ प्रच्छेदयामास धृतदण्डो जगाम सः ॥
स गत्वा भ्रातरं शङ्खमार्तरूपोऽब्रवीदिदम् ।
धृतदण्डस्य दुर्बुद्धेर्भवांस्तत् क्षन्तुमर्हति ३७

---

बिलशयान्मूषिकान् अप्रवासिनं गृहादिसंगिनम् ॥१५॥ बाहुदां नदीमनु तत्समीपे ॥ १९ ॥ विस्रब्धो ममैवैतानीति निश्चयवान् ॥२२॥ इदं भक्षणं कृतम् ॥२५॥ हे पार्थिवसत्तम मया अदत्तादानं कृतमिति अस्मै राज्ञे कथयस्वेति संबंधः ॥ २६ ॥ अन्तपालेभ्यः द्वारपालेभ्यः ॥ २९ ॥ करिष्येति सन्धिरार्षः ॥ ३१ ॥ अनिसृष्टान्यदत्तानि गुरुणा ज्येष्ठभ्रात्रा ॥३२॥ यथा दण्डधारणे राजा प्रमाणं तथाऽनुज्ञायां हेतुः प्रमाणम् ॥३३॥ शुचिकर्मा मदनुज्ञयैव शोधितदोषः। श्रुतकर्मेति पाठे श्राविदकर्मा । कीर्तनेनापि दोषो नश्यतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

शङ्ख उवाच ।
न कुप्ये तव धर्मज्ञ न त्वं दूषयसे मम ।
धर्मस्तु तेऽव्यतिक्रान्तस्ततस्ते निष्कृतिः कृता
त्वं गत्वा बाहुदां शीघ्रं तर्पयस्व यथाविधि ।
देवान्नृषीन्पितॄंश्चैवं मा चाधर्मे मनः कृथाः ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्खस्य लिखितस्तदा ।
अवगाह्यापगां पुण्यामुदकार्थं प्रचक्रमे ॥ ४०
प्रादुरास्तां ततस्तस्य करौ जलजसन्निभौ ।
ततः स विस्मितो भ्रातुर्दर्शयामास तौ करौ
ततस्तमब्रवीच्छङ्खस्तपसेदं कृतं मया ।
मा च तेऽत्र विशङ्काऽभूद्दैवमत्र विधीयते ॥
लिखित उवाच ।
किं तु नाहं त्वया पूतः पूर्वमेव महाद्युते ।
यस्य ते तपसो वीर्यमीदृशं द्विजसत्तम ॥ ४३
शङ्ख उवाच ।
एवमेतन्मया कार्यं नाहं दण्डधरस्तव ।
स च पूतो नरपतिस्त्वं चापि पितृभिः सह
व्यास उवाच ।
स राजा पाण्डवश्रेष्ठ श्रेयान्वै तेन कर्मणा।
प्राप्तवान्परमां सिद्धिं दक्षः प्राचेतसो यथा
एष धर्मः क्षत्रियाणां प्रजानां परिपालनम् ।
उत्पथोऽन्यो महाराज मा स्म शोके मनः कृथाः
भ्रातुरस्य हितं वाक्यं शृणु धर्मज्ञ सत्तम ।
दण्ड एव हि राजेन्द्र क्षत्रधर्मो न मुंडनम्*

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि व्यासवाक्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

वैशम्पायन उवाच ।
पुनरेव महर्षिस्तं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
अजातशत्रुं कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १
अरण्ये वसतां तात भ्रातॄणां ते मनस्विनाम् ।
मनोरथा महाराज ये तत्रासन् युधिष्ठिर ॥२
तानि मे भरतश्रेष्ठ प्राप्नुवन्तु महारथाः ।
प्रशाधि पृथिवीं पार्थ ययातिरिव नाहुषः ३
अरण्ये दुःखवसतिरनुभूता तपस्विभिः ।
दुःखस्यान्ते नरव्याघ्र सुखान्यनुभवन्तु वै ४
धर्ममर्थं च कामं च भ्रातृभिः सह भारत ।
अनुभूय ततः पश्चात्प्रस्थाताऽसि विशांपते ५
अर्थिनां च पितॄणां च देवतानां च भारत ।
आनृण्यं गच्छ कौन्तेय तत्सर्वं च करिष्यति
सर्वमेधाश्वमेधाभ्यां यजस्व कुरुनन्दन ।
ततः पश्चान्महाराज गमिष्यसि परां गतिम्
भ्रातॄंश्च सर्वान् क्रतुभिः संयोज्य बहुदक्षिणैः
संप्राप्तः कीर्तिमतुलां पाण्डवेय भविष्यसि ८
विद्मस्ते पुरुषव्याघ्र वचनं कुरुसत्तम ।
शृणुष्वैवं यथा कुर्वन्न धर्माच्च्यवसे नृप ॥ ९
आददानस्य विजयं विग्रहं च युधिष्ठिर ।
समानधर्मकुशलाः स्थापयन्ति नरेश्वर॥१०॥
देशकालप्रतीक्षी यो दस्यून्मर्षयते नृपः ।
शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय युज्यते नैनसा हि सः
आदाय बलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति
प्रतिगृह्णाति तत् पापं चतुर्थांशेन भूमिपः॥१२

---

मम मां मया वा न दूषयसे ते त्वया निष्कृतिः प्रायश्चित्तम् ॥ ३८ ॥ उदकस्यार्थे प्रयोजनं आचमनादि कर्तुमिति शेषः ॥ ४० ॥ आख्यायिकातात्पर्यमाह—दण्ड इति ॥४७॥ इति श्रीम० शान्ति० राजधर्मानु० नैल०भा०त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥*श्लोकषट्कमधिकं ख.

२४

पुनरेवेति ॥ १ ॥ स्वधर्म इति राज्यं कर्तव्यमित्युक्तं भ्रात्रादीनामानृण्यार्थमपि तत्कर्तव्यमित्याह—अरण्य इत्यादिना ॥ २ ॥ वचनं हिंसाप्रधानः क्षत्रधर्मो मे माऽस्त्वित्येवंरूपम् । हे कुरुसत्तम॥९॥ आददानस्य परस्वापहर्तुः समानधर्मः अविषमो धर्मस्तत्र कुशलाः स्थापयन्ति अवश्यकर्तव्यतया व्यवस्थापयन्ति । हे नरेश्वर नरेश्वरमिति पाठान्तरे विजयादिकं कर्तुमिति शेषः ॥ १० ॥ मर्षयते दस्यूनपि न हन्ति एनसा तज्जेन पापेन ॥ ११ ॥

निबोध च यथा तिष्ठन् धर्मान्न च्यवते नृपः।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामनुरुद्ध्यन्नपेतभीः ॥१३॥
काम-क्रोधावनादृत्य पितेव समदर्शनः।
शास्त्रजां बुद्धिमास्थाय युज्यते नैनसा हि सः
दैवेनाभ्याहतो राजा कर्मकाले महाद्युते।
न साधयति यत्कर्म न तत्राहुरतिक्रमम् ॥१५
तरसा बुद्धिपूर्वं वा निग्राह्या एव शत्रवः।
पापैः सह न संदध्याद्राज्यं पुण्यं च कारयेत्
शूराश्चार्याश्च सत्कार्या विद्वांसश्च युधिष्ठिर
गोमिनो धनिनश्चैव परिपाल्या विशेषतः॥
व्यवहारेषु धर्मेषु योक्तव्याश्च बहुश्रुताः।
गुणयुक्तेऽपि नैकस्मिन् विश्वसेत विचक्षणः॥

अरक्षिता दुर्विनीतो
मानी स्तब्धोऽभ्यसूयकः।
एनसा युज्यते राजा
दुर्दान्त इति चोच्यते ॥१९॥

ये रक्ष्यमाणा हीयन्ते दैवेनाभ्याहता नृप।
तस्करैश्चापि हीयन्ते सर्वं तद्राजकिल्बिषम्
सुमन्त्रिते सुनीते च सर्वतश्चोपपादिते।
पौरुषे कर्मणि कृते नास्त्यधर्मो युधिष्ठिर॥

विच्छिद्यन्ते समारब्धाः
सिद्ध्यन्ते चापि दैवतः।
कृते पुरुषकारे तु
नैनः स्पृशति पार्थिवम् ॥ २२

अत्र ते राजशार्दूल वर्तयिष्ये कथामिमाम्
यद्वृत्तं पूर्वराजर्षेर्हयग्रीवस्य पाण्डव ॥ २३
शत्रून्हत्वा हतस्याजौ शूरस्याक्लिष्टकर्मणः।
असहायस्य संग्रामे निर्जितस्य युधिष्ठिर॥२४

यत्कर्म वै निग्रहे शात्रवाणां
योगश्चाग्र्यः पालने मानवानाम्।
कृत्वा कर्म प्राप्य कीर्तिं स युद्धा-
द्वाजिग्रीवो मोदते स्वर्गलोके ॥२५॥

संयुक्तात्मा समरेष्वाततायी
शस्त्रैश्छिन्नो दस्युभिर्वध्यमानः।
अश्वग्रीवः कर्मशीलो महात्मा
संसिद्धार्थो मोदते स्वर्गलोके ॥ २६
धनुर्यूपो रशना ज्या शरः स्रुक्
स्रुवः खड्गो रुधिरं यत्र चाज्यम्।
रथो वेदी कामजो युद्धमग्नि-
श्चातुर्होत्रं चतुरो वाजिमुख्याः ॥२७
हुत्वा तस्मिन्यज्ञवह्नावथारीन्।
पापान्मुक्तो राजसिंहस्तरस्वी।
प्राणान् हुत्वा चावभृथे रणे स
वाजिग्रीवो मोदते देवलोके ॥ २८

राष्ट्रं रक्षन्बुद्धिपूर्वं नयेन
संत्यक्तात्मा यज्ञशीलो महात्मा।
सर्वाँल्लोकान् व्याप्य कीर्त्या मनस्वी
वाजिग्रीवो मोदते देवलोके ॥ २९
दैवीं सिद्धिं मानुषीं दण्डनीतिं
योगन्यासैः पालयित्वा महीं च।
तस्माद्राजा धर्मशीलो महात्मा
वाजिग्रीवो मोदते देवलोके ॥ ३०
विद्वांस्त्यागी श्रद्दधानः कृतज्ञ-
स्त्यक्त्वा लोकं मानुषं कर्म कृत्वा।
मेधाविनां विदुषां संमतानां
तनुत्यजां लोकमाक्रम्य राजा ॥ ३१
सम्यग्वेदान् प्राप्य शास्त्राण्यधीत्य
सम्यग्राज्यं पालयित्वा महात्मा
चातुर्वर्ण्यं स्थापयित्वा स्वधर्मे
वाजिग्रीवो मोदते देवलोके ॥ ३२
जित्वा संग्रामान्पालयित्वा प्रजाश्च
सोमं पीत्वा तर्पयित्वा द्विजाग्र्यान्
युक्त्या दण्डं धारयित्वा प्रजानां
युद्धे क्षीणे मोदते देवलोके ॥ ३३

---

आतिष्ठन्निति छेदः। धर्मशास्त्राणां निग्रहादतिलङ्घनाज्जातादधर्माद्धेतोर्नच्यवते। तानि अनुरुध्यन्नपेतभीश्च भवति ॥ १३ ॥ गां वाचं मिमते विचारयन्ति ते गोमिनो ब्रह्मकर्मकाण्डार्थविदो ब्राह्मणाः गोमन्तो वा धनिनो वैश्याः ॥ १७ ॥ स्तब्धो मान्यानमानयन् अभ्यसूयको गुणेषु दोषदृष्टिः ॥ १९ ॥ ये जनाः दैवेन अवर्षणादिना ॥ २० ॥ मंत्रनीतिसहायाद्युपेते पुरुषकारे कृतेऽपि यदि जना हीयन्ते म्रियन्ते वा तर्हि राज्ञोऽधर्मो नास्तीत्यर्थः ॥ २१ ॥ शत्रून्हत्वा प्राप्य ततः शत्रोः सकाशादाजौ हतस्य वधं प्राप्तस्य तत्र हेतुरसहायस्येति ॥ २४ ॥ यत्कर्म कर्तव्यं तत्कर्म कृतवेति संबन्धः ॥ २५ ॥ कामजः क्रोधः युद्धमूलभूतोऽग्निः चातुर्होत्रं ब्रह्माद्याः ऋत्विजश्चतुरश्चत्वारः ॥ २७ ॥ संत्यक्तात्मा त्यक्ताहंकारः ॥ २९ ॥ योगः क्रियायामुत्साहो न्यासा अभिमानत्यागास्तैर्युक्तां दैवीं सिद्धिं यज्ञादिक्रियामन्यदीयां मानुषीं च सिद्धिं दंडनीतिं महीं च पालयित्वेति योजना। स्वयं च यज्ञशीलः॥३०॥ मानुषं लोकमिति संबन्धः तनुत्यजां प्रयागादौ ॥ ३१ ॥

वृत्तं यस्य श्लाघनीयं मनुष्याः
सन्तो विद्वांसोऽर्हयन्त्यर्हणीयम्।
स्वर्गं जित्वा वीरलोकानवाप्य
सिद्धिं प्राप्तः पुण्यकीर्तिर्महात्मा॥ ३४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि व्यासवाक्ये *चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४ ॥

## २५

वैशम्पायन उवाच।
द्वैपायनवचः श्रुत्वा कुपिते च धनञ्जये।
व्यासमामंत्र्य कौन्तेयः प्रत्युवाच युधिष्ठिरः
युधिष्ठिर उवाच।
न पार्थिवमिदं राज्यं
न भोगाश्च पृथग्विधाः।
प्रीणयन्ति मनो मेऽद्य
शोको मां रुन्धयत्ययम्॥ २ ॥
श्रुत्वा वीरविहीनानामपुत्राणां च योषिताम्
परिदेवयमानानां शान्तिं नोपलभे मुने॥ ३
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो योगविदां वरः।
युधिष्ठिरं महाप्राज्ञो धर्मज्ञो वेदपारगः॥ ४
व्यास उवाच।
न कर्मणा लभ्यते चेज्यया वा
नाप्यस्ति दाता पुरुषस्य कश्चित्।
पर्याययोगाद्विहितं विधात्रा
कालेन सर्वं लभते मनुष्यः ॥ ५
न बुद्धिशास्त्राध्ययनेन शक्यं
प्राप्तुं विशेषं मनुजैरकाले।
मूर्खोऽपि चाप्नोति कदाचिदर्थान्
कालो हि कार्यं प्रति निर्विशेषः॥६
नाभूतिकालेषु फलं ददन्ति
शिल्पानि मन्त्राश्च तथौषधानि।
तान्येव कालेन समाहितानि
सिद्ध्यन्ति वर्धन्ति च भूतिकाले ७
कालेन शीघ्राः प्रवहन्ति वाताः
कालेन वृष्टिर्जलदानुपैति।
कालेन पद्मोत्पलवज्जलं च
कालेन पुष्यन्ति वनेषु वृक्षाः॥ ८
कालेन कृष्णाश्च सिताश्च रात्र्यः
कालेन चन्द्रः परिपूर्णबिम्बः।
नाकालतः पुष्पफलं द्रुमाणां
नाकालवेगाः सरितो वहन्ति॥ ९
नाकालमत्ताः खगपन्नगाश्च
मृगद्विपाः शैलमृगाश्च लोके।
नाकालतः स्त्रीषु भवन्ति गर्भा
नायान्त्यकाले शिशिरोष्णवर्षाः १०
नाकालतो म्रियते जायते वा
नाकालतो व्याहरते च बालः।
नाकालतो यौवनमभ्युपैति
नाकालतो रोहति बीजमुप्तम्॥ ११
नाकालतो भानुरुपैति योगं
नाकालतोऽस्ताङ्गिरिमभ्युपैति।
नाकालतो वर्धते हीयते च
चन्द्रः समुद्रोऽपि महोर्मिमाली १२
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
गीतं राज्ञा सेनजिता दुःखार्तेन युधिष्ठिर॥
सर्वानेवैष पर्यायो मर्त्यान् स्पृशति दुःसहः।
कालेन परिपक्वा हि म्रियन्ते सर्वपार्थिवाः॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः २४॥
* अष्टौ श्लोका अधिकाः ख पुस्तके।

२५

**द्वैपायनेति**। कुपिते राज्यकारणात्॥ १॥ रुन्धयति शोकोपहतो गुरूणां बन्धूनां वा वाक्यं न शृणोतीति भावः॥ २॥ वीरविहीनानां पतिहीनानाम्॥ ३॥ न लभ्यते वीरो हतवीराभिर्वीरपत्नीभिरित्यर्थः। नापि ताभ्यः कश्चित्पतिं दातुं समर्थोऽस्तीत्यर्थः। कालेन लभते न त्वकालेऽतस्तासां पतिलाभकालोऽतीत इति न ताः शोच्याः॥ ५॥ विशेषं विगतं शेषं अस्यास्ति तत् विशेषं पुत्रादिकम्॥ ६॥ ददन्ति ददते॥ ७॥ अस्तंगिरिं भानुरभ्युपैति॥ १२॥ सेनजिता पुत्रशोककृतदुःखार्तेन॥ १३॥ पर्यायः कालगतिः॥ १४॥

घ्नन्ति चान्यान्नरान् राजं-
स्तानप्यन्ये तथा नराः ।
संज्ञैषा लौकिकी राज-
न्न हिनस्ति न हन्यते ॥ १५
हन्तीति मन्यते कश्चिन्न हन्तीत्यपि चापरः ।
स्वभावतस्तु नियतौ भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥
नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृत ॥
अहो दुःखमिति ध्यायन्दुःखस्यापचितिं चरेत्
स किं शोचसि मूढः सन्
शोच्यान् किमनुशोचसि ।
यस्य दु खेषु दुःखानि
भयेषु च भयान्यपि ॥ १८
आत्मापि चायं न मम सर्वापि पृथिवी मम ।
यथा मम तथाऽन्येषामिति पश्यन्न मुह्यति ॥
शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥
एवमेतानि कालेन प्रियद्वेष्याणि भागशः ।
जीवेषु परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥
दुःखमेवास्ति न सुखं तस्मात्तदुपलभ्यते ॥
तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम् ॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्
सुखमेव हि दुःखान्तं कदाचिद्दुःखतः सुखम् ।
तस्मादेतद्द्वयं जह्याद्य इच्छेच्छाश्वतं सुखम् ॥
सुखान्तप्रभवं दुःखं दुःखान्तप्रभवं सुखम् ।
यन्निमित्तो भवेच्छोकस्तापो वा दुःखमूर्छितः
आयासो वाऽपि यन्मूलस्तदेकाङ्गमपि त्यजेत्
सुखं वा यदि वा दुःखं
प्रियं वा यदि वाऽप्रियम् ।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत
हृदयेनापराजितः ॥ २६
ईषदप्यङ्ग दाराणां पुत्राणामाचरन्प्रियम् ।
ततो ज्ञास्यसि कः कस्य केन वा कथमेव च
ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः ।
त एव सुखमेधन्ते मध्यमः क्लिश्यते जनः २८
इत्यब्रवीन्महाप्राज्ञो युधिष्ठिर स सेनजित् ।
परावरज्ञो लोकस्य धर्मवित्सुखदुःखवित् ॥
‡येन दुःखेन यो दुःखी
न स जातु सुखी भवेत् ।
दुःखानां हि क्षयो नास्ति
जायते ह्यपरात्परम् ॥ ३०
सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायतः सर्वमवाप्नुवन्ति
तस्माद्धीरो नैव हृष्येन्न शोचेत् ३१

---

न हिनस्ति न हन्यते हननस्य कर्ता कर्म वा न भवति तेन कर्त्रात्मवादो देहात्मवादश्च तार्किकलोकायतिकमतौ क्रमेण निरस्तौ ॥ १५ ॥ कश्चित्तार्किकः अपरः सांख्यः स्वभावतः चित्सत्तातः भूतानां देहाद्याकाराणां प्रभवाप्ययौ उत्पत्तिनाशौ नियतौ आत्मा न कर्ता नाप्यकर्ता किं तु स्वसत्तामात्रेण महाह्रदतरङ्गाणां मरीचय इव भूतानामुत्पत्तिविनाशयोर्हेतुरिति भावः ॥ १६ ॥ मौढ्यात् ध्यायन्नेवापचितिं प्रतीकारं चरेन्न त्वध्यायन् ॥ १७ ॥ शोच्यान् शोकाक्रान्तान्बालविधवया दुहित्रा तुल्यान् दुःखेषु शोकजेषु मनस्तापेषु दुःखानि शिरस्ताडनादीनि दुःखादेर्द्विगुणीकरणं मूढकार्यमित्यर्थः ॥ १८ ॥ मोहनिवृत्तेरवधिमाह-**आत्मेति** । अयं व्यावहारिक आत्मा अहंप्रत्ययविषयः सोऽपि मम स्वरूपं न मत्तः पृथग्भूतत्वात् सर्वा पृथिवीति सर्वप्रपञ्चोपलक्षणं सर्वं वा ममैव स्वरूपम् । यथाहं सर्वस्मादन्यः सर्वात्मा च तथाऽन्येऽपीत्याह-**यथेति** । एवमद्वैतात्मतत्त्वं पश्यन्न मुह्यतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः 'तरति शोकमात्मवित्' इति ॥ १९ ॥ यानि प्रियाणि तान्येव काले दुःखानि भवन्ति । यानि द्वेष्याणि तान्येव सुखानि तस्माद्वातजडस्य ताडनमिव सर्वदुःखमेव मोहात्सुखवद्विभातीत्यर्थः ॥ २१ ॥ तृष्णाया याऽऽर्तिरनवस्थितचित्तता तज्जं दुःखं दुःखस्यार्तिर्विनाशस्तज्जं सुखम् ॥२२॥ सन्ततेयं सुखदुःखधारा इत्यतस्त्याज्यैवेत्याह-**सुखस्येत्यादिना** ॥ २३ ॥ दुःखमूर्छितः दुःखेन वर्धितः । एकाङ्गमपि सर्पदष्टाङ्गुष्ठवत् त्यजेत् किमुत बाह्यं राज्यादीति भावः ॥ २५ ॥ हृदयेन शोकमूलेन ॥ २६ ॥ प्रियं आचरन्कुर्वन्केन हेतुना कथं केन प्रकारेण कस्य संबन्धीति ज्ञास्यसि ॥ २७ ॥ मूढतमाः प्रसुप्तनरवज्जडाः बुद्धेः परं ब्रह्म गताः प्राप्ताः अतस्त्वमधमस्तु न भवसि मध्यमोऽपि मा भूरित्यर्थः ॥२८॥ येन तृष्णादिनिमित्तेन ॥ ३० ॥ भवाभवौ ऐश्वर्यानैश्वर्ये ॥ ३१ ॥ ‡ **परदुःखेन** इति पाठः ।

दीक्षां राज्ञः संयुगे युद्धमाहु-
र्योगं राज्ये दण्डनीत्यां च सम्यक् ।
वित्तत्यागो दक्षिणानां च यज्ञे
सम्यग्दानं पावनानीति विद्यात् ३२
रक्षन् राज्यं बुद्धिपूर्वं नयेन
संत्यक्तात्मा यज्ञशीलो महात्मा ।
सर्वाँल्लोकान् धर्मदृष्ट्या चरंश्चा-
प्यूर्ध्वं देहान्मोदते देवलोके ॥ ३३
जित्वा संग्रामान्पालयित्वा च राष्ट्रं
सोमं पीत्वा वर्धयित्वा प्रजाश्च ।
युक्त्या दण्डं धारयित्वा प्रजानां
युद्धे क्षीणो मोदते देवलोके ॥ ३४
सम्यग्वेदान्प्राप्य शास्त्राण्यधीत्य
सम्यग्राज्यं पालयित्वा च राजा ।
चातुर्वर्ण्यं स्थापयित्वा स्वधर्मे
पूतात्मा वै मोदते देवलोके ॥ ३५
यस्य वृत्तं नमस्यन्ति
स्वर्गस्थस्यापि मानवाः ।
पौरजानपदामात्याः
स राजा राजसत्तमः ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सेनजिदुपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

वैशम्पायन उवाच ।
अस्मिन्नेव प्रकरणे धनञ्जयमुदारधीः ।
अभिनीततरं वाक्यमित्युवाच युधिष्ठिरः १
यदेतन्मन्यसे पार्थ न ज्यायोऽस्ति धनादिति
न स्वर्गो न सुखं नार्थो निर्धनस्येति तन्मृषा
स्वाध्याययज्ञसंसिद्धा दृश्यन्ते बहवो जनाः
तपोरताश्च मुनयो येषां लोकाः सनातनाः ॥
ऋषीणां समयं शश्वद्ये रक्षन्ति धनञ्जय ।
आश्रिताः सर्वधर्मज्ञा देवास्तान्ब्राह्मणान्विदुः
स्वाध्यायनिष्ठान् हि ऋषीन्
ज्ञाननिष्ठांस्तथाऽपरान् ।
बुद्ध्येथाः सन्ततं चापि
धर्मनिष्ठान् धनञ्जय ॥ ५ ॥
ज्ञाननिष्ठेषु कार्याणि प्रतिष्ठाप्यानि पाण्डव
वैखानसानां वचनं यथा नो विदितं प्रभो
'अजाश्च पृश्नयश्चैव सिकताश्चैव भारत ।
अरुणाः केतवश्चैव स्वाध्यायेन दिवं गताः'॥
अवाप्यैतानि कर्माणि वेदोक्तानि धनञ्जय ।
दानमध्ययनं यज्ञो निग्रहश्चैव दुर्ग्रहः ॥८॥
दक्षिणेन च पन्थानमर्यम्णो ये दिवं गताः ।
एतान् क्रियावतां लोकानुक्तवान्पूर्वमप्यहम्।
उत्तरेण तु पन्थानं नियमाद्यं प्रपश्यसि ।
एते यागवतां लोका भान्ति पार्थ सनातनाः
तत्रोत्तरां गतिं पार्थ प्रशंसन्ति पुराविदः ।
संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम् ॥
तुष्टेर्न किञ्चित्परमं सा सम्यक् प्रतितिष्ठति
विनीतक्रोधहर्षस्य सततं सिद्धिरुत्तमा ॥ १२

---

**दीक्षामिति** । राज्ञो यागयोगसंन्यासस्थानीयाः युद्धं, पालनं, क्रतौ वित्तत्यागश्चेति तान्येवास्य पावनानीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ संत्यक्तात्मा निरहङ्कारः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

**अस्मिन्नेवेति** ॥ १ ॥ समयमध्ययनसंप्रदायस्याविच्छेदम् आश्रिता आश्रमिणः ब्रह्मचारिण इत्यर्थः ॥४॥ कार्याणि राजकार्याणि प्रतिष्ठाप्यानि तद्वचसाऽनुष्ठेयानीत्यर्थः । तथाहि । धर्माधर्मनिर्णयार्थं पर्षदमुपक्रम्य एको वाऽध्यात्मवित्तम इति स्मरन्ति । पर्षत्त्वेन वरणीय इति शेषः । **कव्यानीति** पाठे पित्र्याणि हवींषि ज्ञाननिष्ठेभ्य एव देयानीत्यर्थः । ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि इत्येव वैखानसानां वानप्रस्थानां वचनम् ॥ ६ ॥ अजादयो वालखिल्यवदृषीणां गणविशेषाः ॥ ७ ॥ एतान् पुरूपान् क्रियावतां कर्मिणाम् ॥ ९ ॥ उत्तरेण उत्तरतः स्थितम् ॥१०॥ गतिद्वयादप्यधिकमाह-**संतोष इति** । संतोषः परं वैराग्यम्। परमं सुखं कैवल्यम्॥११॥ सा तुष्टिः परमवैराग्याभिधा उत्तमा सिद्धिः विनीतक्रोधहर्षस्य क्रोधादिजयिनः सम्यक् प्रतितिष्ठति इतरस्य तु नेत्यर्थः ॥१२ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीमां गाथां गीतां ययातिना
'योऽभिप्रेत्याहरेत्कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः
यदा चायं न बिभेति
यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि
ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ १४ ॥
यदा न भावं कुरुते सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥१५
विनीतमानमोहश्च बहुसङ्गविवर्जितः ।
तदाऽऽत्मज्योतिषः साधोर्निर्वाणमुपपद्यते '
इदं तु शृणु मे पार्थ ब्रुवतः संयतेन्द्रियः ।
धर्ममन्ये वृत्तमन्ये धनमीहन्ति चापरे ॥१७॥
धनहेतोर्य ईहेत तस्यानीहा गरीयसी ।
भूयान्दोषो हि वित्तस्य यश्च धर्मस्तदाश्रयः।
प्रत्यक्षमनुपश्यामि त्वमपि द्रष्टुमर्हसि ।
वर्जनं वर्जनीयानामीहमानेन दुष्करम् ।
ये वित्तमभिपद्यन्ते सम्यक्त्वं तेषु दुर्लभम् ।
द्रुह्यतः प्रैति तत्प्राहुः प्रतिकूलं यथातथम् ॥
यस्तु संभिन्नवृत्तः स्याद्वीतशोकभयो नरः ।
अल्पेन तृषितो द्रुह्यन् भ्रूणहत्यां न बुध्यते ॥
दुष्यन्त्याददतो भृत्या नित्यं दस्युभयादिव
दुर्लभं च धनं प्राप्य भृशं दत्वाऽनुतप्यते ॥
अधनः कस्य किं वाच्यो
विमुक्तः सर्वशः सुखी ।
देवस्वमुपगृह्यैव
धनेन न सुखी भवेत् ॥ २३
तत्र गाथां यज्ञगीतां कीर्तयन्ति पुराविदः।
त्रयीमुपाश्रितां लोके यज्ञसंस्तरकारिकाम् ॥
'यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा
यज्ञाय सृष्टः पुरुषो रक्षिता च ।
तस्मात्सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं
धनं न कामाय हितं प्रशस्तम् '॥२५
एतत्स्वार्थे च कौन्तेय धनं धनवतां वर ।
धाता ददाति मर्त्येभ्यो यज्ञार्थमिति विद्धि तत्
तस्माद्बुध्यन्ति पुरुषा
न हि तत्कस्यचिद्ध्रुवम् ।
श्रद्दधानस्ततो लोको
दद्याच्चैव यजेत च ॥ २७ ॥
लब्धस्य त्यागमित्याहुर्न भोगं न च संक्षयम्
तस्य किं सञ्चयेनार्थः कार्ये ज्यायसि तिष्ठति
ये स्वधर्मादपेतेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्पबुद्धयः ।
शतं वर्षाणि ते प्रेत्य पुरीषं भुञ्जते जनाः॥२९
अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते ।
अर्हानर्हापरिज्ञानाद्दानधर्मोऽपि दुष्करः॥३०
लब्धानामपि वित्तानां
बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ॥
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च
पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनप० युधिष्ठिरवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः२६*

आत्मज्योतिषः आत्मज्ञस्य निर्वाणं मोक्षः ॥ १६ ॥ वृत्तं शीलं ईहन्ति ईहन्ते ॥ १७ ॥ धनहेतोः धर्माय वित्तस्यार्जने इति शेषः । तदाश्रयो धर्मो यज्ञादिस्तस्मिन्नपि भूयान्दोषोऽस्ति ॥ १८ ॥ ईहमानेन धनार्थिना १९॥सम्यक्त्वं साधुकर्म द्रुह्यतः द्रोहयुक्तानेव तद्धनं प्रैति न त्वद्रोहानिति प्राहुः हिंसां विना धनप्राप्तिर्नास्तीत्यर्थः । प्राप्तमपि यथायथं सर्वथा प्रतिकूलं नानाभयहेतुत्वात् ॥ २० ॥ संभिन्नवृत्तः संकीर्णस्वभावः वीतं गतं भाविशोकजं भयं यस्मात्स वीतशोकभयः । अल्पेन धनेन हेतुना तृषितः तृष्णावान् सन् द्रुह्यन् तनं द्रोहेण जायमानां ब्रह्महत्यां न बुध्यते । लोभी अल्पार्थेऽपि ब्रह्महत्यां अर्जयतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ दुर्लभं धनं प्राप्यानुकूलेभ्योऽपि भृत्येभ्यो दत्वा दस्युभयादिव भृशमनुतप्यत इति संबन्धः। वित्तव्यय महद्दुःखं भवतीत्यर्थः ॥ २२ ॥ देवस्वं तथा 'त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स हि सोमं पिबेद्द्विजः । प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत्' इति स्मृतेरल्पमपि संचितं धनं देवस्वमेव । तदपि उपसंगृह्य देवेभ्योऽदत्त्वैव न तेन तावतापि सुखी भवेत्किं तु ' लाभाल्लोभः प्रवर्तते ' इति न्यायेन तृष्णाधिक्याद्दुःखमेवानुभवतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ गाथां वैदिकजने यज्ञप्रतिष्ठाकरीम् ॥ २४ ॥ तामाह-**यज्ञायेति** ॥ २५ ॥ एतद्धनं स्वार्थे चायज्ञार्थेऽपि ॥ २६ ॥ **तस्मादिति** । धनस्वाम्यं तस्यापि नास्तीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'इति। फलितमाह-**श्रद्धधान इति** ॥ २७ ॥ इत्याहुः प्रशस्तमाहुरित्यर्थः। कार्ये त्यागरूपे ॥ २८ ॥ अपात्रे धनं न देयमित्याह-**ये इति** ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

* अयमध्यायः खपुस्तके नास्ति ।

## २७

युधिष्ठिर उवाच ।
अभिमन्यौ हते बाले द्रौपद्यास्तनयेषु च ।
धृष्टद्युम्ने विराटे च द्रुपदे च महीपतौ ॥ १
वृषसेने च धर्मज्ञे धृष्टकेतौ तु पार्थिवे ।
तथाऽन्येषु नरेन्द्रेषु नानादेश्येषु संयुगे ॥ २
न च मुञ्चति मां शोको
ज्ञातिघातिनमातुरम् ।
राज्यकामुकमत्युग्रं
स्ववंशोच्छेदकारिणम् ॥ ३
यस्याङ्के क्रीडमानेन मया वै परिवर्तितम् ।
स मया राज्यलुब्धेन गाङ्गेयो युधि पातितः
यदा ह्येनं विघूर्णन्तमपश्यं पार्थसायकैः ।
कम्पमानं यथा वज्रैः प्रेक्ष्यमाणं शिखण्डिना
जीर्णसिंहमिव प्रांशुं नरसिंहं पितामहम् ।
कीर्यमाणं शरैर्दृष्ट्वा भृशं मे व्यथितं मनः ॥ ६
प्राङ्मुखं सीदमानं च रथे पररथारुजम् ।
घूर्णमानं यथा शैलं तदा मे कश्मलोऽभवत्॥
यः स बाणधनुष्पाणिर्योधयामास भार्गवम्।
बहून्यहानि कौरव्यः कुरुक्षेत्रे महामृधे ॥ ८
समेतं पार्थिवं क्षत्रं वाराणस्यां नदीसुतः।
कन्यार्थमाह्वयद्वीरो रथेनैकेन संयुगे ॥ ९
येन चोग्रायुधो राजा चक्रवर्ती दुरासदः ।
दग्धश्चास्त्रप्रतापेन स मया युधि घातितः ॥
स्वयं मृत्युं रक्षमाणः पाञ्चाल्यं यः शिखंडिनं
न बाणैः पातयामास सोऽर्जुनेन निपातितः
यदैनं पतितं भूमावपश्यं रुधिरोक्षितम् ।
तदैवाविशदत्युग्रो ज्वरो मां मुनिसत्तम ॥
येन संवर्धिता बाला येन स्म परिरक्षिताः ।
स मया राज्यलुब्धेन पापेन गुरुघातिना ।
अल्पकालस्य राज्यस्य कृते मूढेन घातितः
आचार्यश्च महेष्वासः सर्वपार्थिवपूजितः
अभिगम्य रणे मिथ्या पापेनोक्तः सुतं प्रति ॥
तन्मे दहति गात्राणि यन्मां गुरुरभाषत ।
सत्यमाख्याहि राजंस्त्वं यदि जीवति मे सुतः
सत्यमामर्षयन् विप्रो मयि तत्परिपृष्टवान् ।
कुञ्जरं चान्तरं कृत्वा मिथ्योपचरितं मया ॥
सुभृशं राज्यलुब्धेन पापेन गुरुघातिना ।
सत्यकञ्चुकमुन्मुच्य मया स गुरुराहवे ॥१७
अश्वत्थामा हत इति निरुक्तः कुञ्जरे हते ।
काँल्लोकांस्तु गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करं
अघातयं च यत्कर्णं समरेष्वपलायिनम् ॥१९
ज्येष्ठभ्रातरमत्युग्रं को मत्तः पापकृत्तमः ।
अभिमन्युं च यद्बालं जातं सिंहमिवाद्रिषु॥
प्रावेशयमहं लुब्धो वाहिनीं द्रोणपालिताम्
तदाप्रभृति बीभत्सुं न शक्नोमि निरीक्षितुम्
कृष्णं च पुण्डरीकाक्षं किल्बिषी भ्रूणहा यथा
द्रौपदीं चापि दुःखार्तां पञ्चपुत्रैर्विनाकृताम्
शोचामि पृथिवीं हीनां पञ्चभिः पर्वतैरिव ।
सोऽहमागस्करः पापः पृथिवीनाशकारकः
आसीन एवमेवेदं शोषयिष्ये कलेवरम् ।
प्रायोपविष्टं जानीध्वमथ मां गुरुघातिनम् ॥
जातिष्वन्यास्वपि यथा न भवेयं कुलान्तकृत्
न भोक्ष्ये न च पानीयमुपभोक्ष्ये कथञ्चन ॥
शोषयिष्ये प्रियान्प्राणानिहस्थोऽहं तपोधनाः
यथेष्टं गम्यतां काममनुजाने प्रसाद्य वः ॥
सर्वे मामनुजानीत त्यक्ष्यामीदं कलेवरम् ।
वैशम्पायन उवाच ।
तमेवंवादिनं पार्थं बन्धुशोकेन विह्वलम् ॥
मैवमित्यब्रवीद्व्यासो निगृह्य मुनिसत्तमः ॥
व्यास उवाच ।
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि ।
पुनरुक्तं तु वक्ष्यामि दिष्टमेतदिति प्रभो ॥
संयोगा विप्रयोगान्ता जातानां प्राणिनां ध्रुवं
बुद्बुदा इव तोयेषु भवन्ति न भवन्ति च ॥३०
सर्वे क्षयान्ता निचयाः
पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता
मरणान्तं हि जीवितम् ॥ ३१
सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयं
भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षे वसति नालसे

२७

अभिमन्याविति ॥ १ ॥ वृषसेने कर्णे । पाठान्तरे वसुषेणोऽपि स एव ॥ २ ॥ पररथारुजं पररथानां पीडकम् ॥ ७ ॥ आमर्शयन् निश्चिन्वन् ॥ १६ ॥ अतिवेलमत्यर्थम् ॥ २९ ॥ आलस्यं तत्काले सुखमपि दुःखान्तं, दाक्ष्यं तत्काले दुःखमपि सुखोदयम् । भूतिः अणिमादिः ॥३२॥

नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः ।
न च प्रज्ञालमर्थेभ्यो न सुखेभ्योऽप्यलं धनम्
यथा सृष्टोऽसि कौन्तेय धात्रा कर्मसु तत्कुरु
अत एव हि सिद्धिस्ते नेशस्त्वं कर्मणां नृप ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि व्यासवाक्ये सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

वैशम्पायन उवाच ।
ज्ञातिशोकाभितप्तस्य प्राणानभ्युत्सिसृक्षतः
ज्येष्ठस्य पांडुपुत्रस्य व्यासः शोकमपानुदत्
व्यास उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अश्मगीतं नरव्याघ्र तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ २
अश्मानं ब्राह्मणं प्राज्ञं वैदेहो जनको नृपः ।
संशयं परिपप्रच्छ दुःखशोकसमन्वितः ॥ ३
जनक उवाच ।
आगमे यदि वाऽपाये ज्ञातीनां द्रविणस्य च
नरेण प्रतिपत्तव्यं कल्याणं कथमिच्छता ॥ ४
अश्मोवाच ।
उत्पन्नमिममात्मानं नरस्यानन्तरं ततः ।
तानि तान्यनुवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च
तेषामन्यतरापत्तौ यद्यदेवोपपद्यते *
तदस्य चेतनामाशु हरत्यभ्रमिवानिलः ॥ ६
अभिजातोऽस्मि सिद्धोऽस्मि
नास्मि केवलमानुषः ।
इत्येभिर्हेतुभिस्तस्य
त्रिभिश्चित्तं प्रसिच्यते ॥ ७
संप्रसक्तमना भोगान्
विसृज्य पितृसंचितान् ।
परिक्षीणः परस्वाना-
मादानं साधु मन्यते ॥ ८
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसांप्रतम् ।
प्रतिषेधन्ति राजानो लुब्धा मृगमिवेषुभिः ॥
ये च विंशतिवर्षा वा त्रिंशद्वर्षाश्च मानवाः ।
परेण ते वर्षशतान्न भविष्यन्ति पार्थिव ॥१०
तेषां परमदुःखानां बुद्ध्या भैषज्यमाचरेत् ।
सर्वप्राणभृतां वृत्तं प्रेक्षमाणस्ततस्ततः ॥ ११
मानसानां पुनर्योनिर्दुःखानां चित्तविभ्रमः ।
अनिष्टोपनिपातो वा तृतीयं नोपपद्यते ॥ १२
एवमेतानि दुःखानि तानि तानीह मानवम्
विविधान्युपवर्तन्ते तथा संस्पर्शजान्यपि ॥
जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव
बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि१४
न कश्चिज्जात्वतिक्रामेज्जरामृत्यू हि मानवः
अपि सागरपर्यन्तां विजित्येमां वसुन्धराम् ।
सुखं वा यदि वा दुःखं भूतानां पर्युपस्थितम्
प्राप्तव्यमवशैः सर्वं परिहारो न विद्यते १६

---

अत एव कर्मभ्य एव कर्मणां त्यागे त्वं नेशो न प्रभुः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * **यद्यदेवोपसेवते** इति पाठः ।

२८

**ज्ञातीति** । अभ्युत्सिसृक्षतः त्यक्तुमिच्छतः ॥ १ ॥ कल्याणमिच्छता सुखादिकं कथं प्रतिपत्तव्यं केन प्रकारेण इष्टत्वेन अनिष्टत्वेन उदासीनत्वेन वा ज्ञातव्यम् ॥ ४ ॥ आत्मानं देहं उत्पन्नमनु अनन्तरं अव्यवधानेनैव देहस्वभावप्राप्ते सुखादौ हर्षविषादौ न कुर्वीत, किं तु उदासीनैवेति भावः ॥ ५ ॥ प्रसिच्यते क्लिन्नं श्लथं भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ भोगान् भोग्यार्थान् धनादीन् विसृज्य भोगेन नटनर्तकादिद्वारा व्ययीकृत्य, आदानं चौर्यं साधु हितम् ॥ ८ ॥ असांप्रतमयुक्तं यथा स्यात्तथा इषुभिः प्रतिषेधन्ति निघ्नन्तीत्यर्थः । लुब्धा व्याधाः ॥९॥ ये चोरास्ते परेण विंशत्यादिवर्षादूर्ध्वं वर्षशतात् शतवर्षपर्यन्तं न भविष्यन्ति न जीविष्यन्ति। चौर्यप्रसक्ताः सद्य एव मार्यन्त इत्यर्थः ॥ १० ॥ तेषां दारिद्र्योत्थानां भैषज्यं प्रतीकारं तमेवाह—**सर्वेति** । 'दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकान् । आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्' इति भावः ॥११॥ विभ्रमो विपर्यासः अनिष्टेऽपीष्टबुद्धिरिष्टे चानिष्टबुद्धिरिति अनिष्टं पुत्रशोकादि तत्प्राप्तिर्वा ॥ १२ ॥ संस्पर्शजानि विषयसङ्गजानि ॥ १३ ॥ प्राप्तव्यं भोक्तव्यम् ॥ १६ ॥

पूर्वे वयसि मध्ये वाऽप्युत्तरे वा नराधिप ।
अवर्जनीयास्तेऽर्था वै कांक्षिता ये ततोऽन्यथा
अप्रियैः सह संयोगो विप्रयोगश्च सुप्रियैः ।
अर्थानर्थौ सुखं दुःखं विधानमनुवर्तते ॥ १८
प्रादुर्भावश्च भूतानां देहत्यागस्तथैव च ।
प्राप्तिर्व्यायामयोगश्च सर्वमेतत्प्रतिष्ठितम् १९
गन्ध-वर्ण-रस-स्पर्शा निवर्तन्ते स्वभावतः ।
तथैव सुखदुःखानि विधानमनुवर्तते ॥ २०
आसनं शयनं यानमुत्थानं पान-भोजनम् ।
नियतं सर्वभूतानां कालेनैव भवत्युत ॥ २१
वैद्याश्चाप्यातुराः सन्ति बलवन्तश्च दुर्बलाः ।
श्रीमन्तश्चापरे षण्ढा विचित्रः कालपर्ययः २२
कुले जन्म, तथा वीर्यमारोग्यं रूपमेव च ।
सौभाग्यमुपभोगश्च भवितव्येन लभ्यते २३
सन्ति पुत्राः सुबहवो
दरिद्राणामनिच्छताम् ।
नास्ति पुत्रः समृद्धानां
विचित्रं विधिचेष्टितम् ॥ २४
व्याधिरग्निर्जलं शस्त्रं बुभुक्षाश्चापदो विषम् ।
ज्वरश्च मरणं जन्तोरुच्चाच्च पतनं तथा ॥ २५
निर्माणे यस्य यद्दिष्टं तेन गच्छति सेतुना ।
दृश्यते नाप्यतिक्रामन्न निष्क्रान्तोऽथवा पुनः
दृश्यते चाप्यतिक्रामन्न निग्राह्योऽथवा पुनः
दृश्यते हि युवैवेह विनश्यन्वसुमान्नरः ।
दरिद्रश्च परिक्लिष्टः शतवर्षो जरान्वितः २७
अकिञ्चनाश्च दृश्यन्ते पुरुषाश्चिरजीविनः ।
समृद्धे च कुले जाता विनश्यन्ति पतङ्गवत्
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः
अहमेतत्करोमीति मन्यते कालनोदितः ।
यद्यदिष्टमसन्तोषाद्दुरात्मा पापमाचरेत् ॥३०
मृगयाऽक्षाः स्त्रियः पानं
प्रसङ्गा निन्दिता बुधैः ।
दृश्यन्ते पुरुषाश्चात्र
संप्रयुक्ता बहुश्रुताः ॥ ३१
इति कालेन सर्वार्थानीप्सितानीप्सितानिह
स्पृशन्ति सर्वभूतानि निमित्तं नोपलभ्यते३२
वायुमाकाशमग्निं च
चन्द्रादित्यावहःक्षपे ।
ज्योतींषि सरितः शैलान्
कः करोति बिभर्ति च ॥ ३३
शीतमुष्णं तथा वर्षं कालेन परिवर्तते ।
एवमेव मनुष्याणां सुखदुःखे नरर्षभ ॥ ३४
नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः ।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम् ॥
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ ३६
ये चैव पुरुषाः स्त्रीभिर्गीतवाद्यैरुपस्थिताः ।
ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रियः
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्
नैवास्य कश्चिद्भविता नायं भवति कस्यचित्
पथि सङ्गतमेवेदं दारबन्धुसुहृज्जनैः ॥ ३९
क्वासे क्व च गमिष्यामि को न्वहं किमिहास्थितः
कस्मात्किमनुशोचेयमित्येवं स्थापयेन्मनः ४०
अनित्ये प्रियसंवासे संसारे चक्रवद्गतौ ।
पथि सङ्गतमेवैतद्भ्राता माता पिता सखा४१
न दृष्टपूर्वं प्रत्यक्षं परलोकं विदुर्बुधाः ।
आगमांस्त्वनतिक्रम्य श्रद्धातव्यं बुभूषता ४२

तेऽर्था जरादयः पदार्थाः ततोऽन्यथाऽजरत्वादिरूपेण ये मनुष्यस्य कांक्षिता इष्टाः ॥१७॥ विधानमदृष्टम् ॥१८॥ प्राप्तिर्लाभो **व्यायामः** श्रमः अलाभ इति यावत्, तयोर्योगः प्रतिष्ठितं विधानमित्यनुषज्यते ॥ १९ ॥ **गन्धेति** । फलस्था गन्धादयो निवर्तन्ते पूर्वे पूर्वे उत्तरे उत्तरे उपयान्ति तथैव सुखादीनि अप्रत्याख्येयानि अनुसृत्य वर्तते विद्वान् ॥ २० ॥ बुभुक्षाः क्षुत्प्रभृतयः ॥२५॥ निर्माणेऽदृष्टे सेतुना कर्ममर्यादया अतिक्रामन्नतिपापी अनिष्क्रान्तो न दृश्यते किं तु पापेन सद्यो बध्यत एव कश्चित्तु निग्राह्यो न भवतीत्यपि दृश्यते ॥२६॥ प्रसङ्गात् युद्धविवादादयः। अत्र मृगयादौ ॥ ३१ ॥ इह निमित्तं नोपलभामहे किंतु अदृष्टनिमित्तमेव तदित्यर्थः ॥ ३२ ॥ यथा वाय्वादिरीशकृतत्वादविनाश्य एवं दुःखमपीत्याह- **वायुमित्यादिना** ॥ ३३ ॥ उपस्थिताः सेविताः कालो मृत्युः ॥३७ ॥ पथि मार्गे अन्यैरिवेह दारादिभिः सङ्गतं ज्ञेयम् ॥३९॥ स्थापयेद्विचारे इति शेषः ॥४०॥ एवमिष्टवियोगे शोको न कार्य इत्युक्त्वाऽमुत्र नरकपातभयादपि शोको न कार्य इत्याह-**न दृष्टपूर्वमित्यादिना** । आगमैकगम्यः परलोकः आगमे च युद्धे शत्रुघातिनां स नश्यतीति न दृष्टमतो वृथैव ते शोक इत्यर्थः ॥ ४२ ॥

कुर्वीत पितृदैवत्यं धर्म्याणि च समाचरेत् ।
यजेच्च विद्वान्विधिवत्त्रिवर्गं चाप्युपाचरेत्
सन्निमज्जेज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे ।
जरामृत्युमहाग्राहे न कश्चिदवबुध्यते ॥ ४४
आयुर्वेदमधीयानाः केवलं सपरिग्रहाः ।
दृश्यन्ते बहवो वैद्या व्याधिभिः समभिप्लुताः
ते पिबन्तः कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च
न मृत्युमतिवर्तन्ते वेलामिव महोदधिः ४६
रसायनविदश्चैव सुप्रयुक्तरसायनाः ।
दृश्यन्ते जरया भग्ना नागा नागैरिवोत्तमैः ॥
तथैव तपसोपेताः स्वाध्यायाभ्यसने रताः ।
दातारो यज्ञशीलाश्च न तरन्ति जरान्तकौ
न ह्यहानि निवर्तन्ते न मासा न पुनः समाः
जातानां सर्वभूतानां न पक्षा न पुनः क्षपाः
सोऽयं विपुलमध्वानं कालेन ध्रुवमध्रुवः ।
नरोऽवशः समभ्येति सर्वभूतनिषेवितम् ५०
देहो वा जीवतोऽभ्येति
जीवो वाऽभ्येति देहतः ।
पथि सङ्गममभ्येति
दारैरन्यैश्च बन्धुभिः ॥ ५१
नायमत्यन्तसंवासो लभ्यते जातु केनचित्
अपि स्वेन शरीरेण किमुतान्येन केनचित् ५२

क्व नु तेऽद्य पिता राजन्
क्व नु तेऽद्य पितामहाः ।
न त्वं पश्यसि तानद्य
न त्वां पश्यन्ति तेऽनघ ॥ ५३
न चैव पुरुषो द्रष्टा स्वर्गस्य नरकस्य च ।
आगमस्तु सतां चक्षुर्नृपते तमिहाचर ॥ ५४
चरितब्रह्मचर्यो हि प्रजायेत यजेत च ।
पितृ-देव-मनुष्याणामानृण्यादनसूयकः ॥५५
स यज्ञशीलः प्रजने निविष्टः
प्राग्ब्रह्मचारी प्रविविक्तचक्षुः ।
आराधयेत्स्वर्गमिमं च लोकं
परं च मुक्त्वा हृदयव्यलीकम् ॥ ५६
समं हि धर्मं चरतो नृपस्य
द्रव्याणि चाभ्याहरतो यथावत् ।
प्रवृत्तधर्मस्य यशोऽभिवर्धते
सर्वेषु लोकेषु चराचरेषु ॥ ५७
*इत्येवमाज्ञाय विदेहराजो
वाक्यं समग्रं परिपूर्णहेतु ।
अश्मानमामन्त्र्य विशुद्धबुद्धि-
र्ययौ गृहं स्वं प्रति शान्तशोकः ॥ ५८
तथा त्वमप्यच्युत मुञ्च शोक-
मुत्तिष्ठ शक्रोपम हर्षमेहि ।
क्षात्रेण धर्मेण मही जिता ते
तां भुंक्ष्व कुन्तीसुत मावमंस्थाः ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि व्यासवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

वैशम्पायन उवाच ।
अव्याहरति राजेन्द्रे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ।
गुडाकेशो हृषीकेशमभ्यभाषत पाण्डवः ॥ १

अर्जुन उवाच ।
ज्ञातिशोकाभिसंतप्तो धर्मपुत्रः परंतपः ।
एष शोकार्णवे मग्नस्तमाश्वासय माधव ॥ २

---

धर्म्याणि धर्मावहानि ॥ ४३ ॥ नागाः गजाः उत्तमैः बलिष्ठैः ॥ ४७ ॥ अध्वानं संसारमार्गम् । अवश इति च्छेदः ॥ ५० ॥ अभ्येति- आविर्भवति नित्यात्मपक्षे जीवाद्देहोत्पत्तिरनित्यात्मपक्षे देहाज्जीवोत्पत्तिर्वा भवतु सर्वथा दारादिसङ्गमः पान्थसङ्गमतुल्य एवेत्यर्थः ॥ ५१ ॥ संवासः सहावस्थानम् ॥ ५२ ॥ प्रजायेत पुत्रादीनुत्पादयेत् आनृण्याद्धेतोः ॥ ५५ ॥ प्रजने प्रजोत्पादने हृदयव्यलीकं हृत्स्थं अप्रियं शोकमनृतं वा ममत्वाद्यध्यासं मुक्त्वा स्वर्गं इमं च लोकं परं परमात्मानं वा आराधयेत् ॥ ५६ ॥ समं रागद्वेषवर्जं यथा स्यात्तथा धर्मं चरतः ॥ ५७ ॥ हे **अच्युतेति** । स्वधर्मान्न च्युतोऽसीत्यर्थः ते त्वया ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * **इत्येवमाकर्ण्य** इति पा०

२९

**अव्याहरतीति** । अव्याहरति हेत्वभावेऽपि शोको बाधते इति विस्मयात् मौनमास्थिते ॥ १ ॥

सर्वे स्म ते संशयिताः पुनरेव जनार्दन ।
अस्य शोकं महाबाहो प्रणाशयितुमर्हसि ॥३
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु गोविन्दो विजयेन महात्मना ।
पर्यवर्तत राजानं पुण्डरीकेक्षणोऽच्युतः ॥ ४
अनतिक्रमणीयो हि
धर्मराजस्य केशवः ।
बाल्यात्प्रभृति गोविन्दः
प्रीत्या चाभ्यधिकोऽर्जुनात् ॥ ५
संप्रगृह्य महाबाहुर्भुजं चन्दनभूषितम् ।
शैलस्तंभोपमं शौरिरुवाचाभिविनोदयन् ॥६
शुशुभे वदनं तस्य सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् ।
व्याकोशमिव विस्पष्टं पद्मं सूर्य इवोदिते ॥ ७
वासुदेव उवाच ।
मा कृथाः पुरुषव्याघ्र
शोकं त्वं गात्रशोषणम् ।
न हि ते सुलभा भूयो
ये हताऽस्मिन् रणाजिरे ॥ ८
स्वप्नलब्धा यथा लाभा वितथाः प्रतिबोधने
एवं ते क्षत्रिया राजन् ये व्यतीता महारणे
सर्वेप्यभिमुखाः शूरा विजिता रणशोभिनः
नैषां कश्चित्पृष्ठतो वा पलायन्वापि पातितः
सर्वे त्यक्त्वाऽऽत्मनः प्राणा-
न्युद्ध्वा वीरा महामृधे ।
शस्त्रपूता दिवं प्राप्ता
न ताञ्छोचितुमर्हसि ॥ ११
क्षत्रधर्मरताः शूरा वेदवेदाङ्गपारगाः ।
प्राप्ता वीरगतिं पुण्यां तान्न शोचितुमर्हसि ॥
मृतान्महानुभावांस्त्वं श्रुत्वैव पृथिवीपतीन्

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥१३
सृञ्जयं पुत्रशोकार्तं यथाऽयं नारदोऽब्रवीत् ।
'सुखदुःखैरहं त्वं च प्रजाः सर्वाश्च सृञ्जय ॥
अविमुक्ता मरिष्यामस्तत्र का परिदेवना ।
महाभाग्यं पुरा राज्ञां कीर्त्यमानं मया शृणु
गच्छावधानं नृपते ततो दुःखं प्रहास्यसि ।
मृतान्महानुभावांस्त्वं श्रुत्वैव पृथिवीपतीन्
शममानय संतापं शृणु विस्तरशश्च मे ।
क्रूरग्रहाभिशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ १७
अग्रिमाणां क्षितिभुजामुपादानं मनोहरम् ।

( १ )

आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम१८
यस्य सेन्द्राः सवरुणा बृहस्पतिपुरोगमाः ।
देवा विश्वसृजो राज्ञो यज्ञमीयुर्महात्मनः ॥
यः स्पर्धयाऽजयच्छक्रं देवराजं पुरंदरम् ।
शक्रप्रियैषी यं विद्वान्प्रत्याचष्ट बृहस्पतिः ॥
संवर्तो याजयामास यवीयान्स बृहस्पतेः ।
यस्मिन्प्रशासति महीं नृपतौ राजसत्तम ।
अकृष्टपच्या पृथिवी विबभौ चैत्यमालिनी ॥
आविक्षितस्य वै सत्रे विश्वेदेवाः सभासदः
मरुतः परिवेष्टारः साध्याश्चासन्महात्मनः ॥
मरुद्गणा मरुत्तस्य यत्सोममपिबंस्ततः ।
देवान्मनुष्यान्गन्धर्वानत्यरिच्यन्त दक्षिणाः
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ २४

( २ )

सुहोत्रं चैवातिथिनं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्मिन्हिरण्यं ववृषे मघवा परिवत्सरम् ॥
सत्यनामा वसुमती यं प्राप्यासीज्जनाधिपम्
हिरण्यमवहन्नद्यस्तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥ २६

---

ते वयम् ॥ ३ ॥ पर्यवर्तत अभिमुखोऽभूत् ॥ ४ ॥ भुजं राज्ञः संप्रगृह्य हस्ते धृत्वा ॥ ६ ॥ व्याकोशं विकसितम् ॥ ७ ॥ हताः अस्मिन्स-न्धिरार्थः ॥८॥ लाभाः अर्थाः ॥९॥ मृतान्महानुभावान् श्रुत्वा तान्बन्धून् शोचितुं नार्हसीति सम्बन्धः ॥ १३ ॥ सृञ्जयस्य पुत्रः सहदेवस्तस्य शोकेनार्तं सहदेवाय सार्जया-येति ब्राह्मणात् ॥ १४ ॥ **अविमुक्ता इति** । मरणेऽपि सुखादेर्वियोगो नास्तीति प्रायोपवेशनं व्यर्थमिति भावः । महाभाग्यं माहात्म्यम् ॥१५॥ उपादानं उपादातुं श्रोतुं योग्यम् ॥ १८ ॥ ईयुः प्रत्यक्षमागतवन्तः ॥ १९ ॥ यागं मा कुर्विति प्रत्याचष्ट प्रत्याख्यातवान् ॥ २० ॥

' मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।
आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासदः ' ।

इति श्रुतेरर्थं दर्शयति—**आविक्षितस्येति** ॥ २२ ॥ अत्यरिच्यन्त एभ्यो याः दक्षिणा दत्तास्तास्तैर्वोढुमशक्या जाता इत्यर्थः ॥ २३ ॥ चतुर्भद्रतरः चत्वारि धर्मज्ञान-वैराग्यैश्वर्याख्यानि भद्राणि यस्मिन्स चतुर्भद्रः । त्वया अवधिभूतेन त्वत्तोऽतिशयेन चतुर्भद्र इत्यर्थः ॥ २४ ॥

कूर्मान्कर्कटकान्नक्रान्मकराञ्छिशुकानपि ।
नदीष्ववपातयद्राजन्मघवा लोकपूजितः ॥२७
हिरण्मयान्पातितान्दृष्ट्वा
मत्स्यान्मकरकच्छपान् ।
सहस्रशोऽथ शतशा-
स्ततोऽस्मयदथोऽतिथिः ॥ २८
तद्धिरण्यमपर्यन्तमावृतं कुरुजाङ्गले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यः समार्पयत् ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ३०
अदक्षिणमयज्वानं चेत्य संशाम्य मा शुचः ।

( ३ )

अङ्गं बृहद्रथं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३१
यः सहस्रं सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ।
सहस्रं च सहस्राणां कन्या हेमपरिष्कृताः ॥
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
यः सहस्रं सहस्राणां गजानामतिपद्मिनाम् ॥
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
शतं शतसहस्राणि वृषाणां हेममालिनाम् ३४
गवां सहस्रानुचरं दक्षिणामत्यकालयत् ।
अङ्गस्य यजमानस्य तदा विष्णुपदे गिरौ ३५
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
यस्य यज्ञेषु राजेन्द्र शतसंख्येषु वै पुरा ॥ ३६
देवान्मनुष्यान् गन्धर्वा-
नत्यरिच्यन्त दक्षिणाः ।
न जातो जनिता नान्यः
पुमान्यः संप्रदास्यति ॥ ३७
यदङ्गः प्रददौ वित्तं सोमसंस्थासु सप्तसु ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥३८
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

( ४ )

शिबिमौशीनरं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥३९
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत्समवेष्टयत् ।
महता रथघोषेण पृथिवीमनुनादयन् ॥ ४०
एकच्छत्रां महीं चक्रे जैत्रेणैकरथेन यः ।
यावदस्य गवाश्वं स्यादारण्यैः पशुभिः सह
तावतीः प्रददौ गाः स शिबिरौशीनरोऽध्वरे
न वोढारं धुरं तस्य कश्चिन्मेने प्रजापतिः ४२
न भूतं न भविष्यं च
सर्वराजसु सृञ्जय ।
अन्यत्रौशीनराच्छैब्या-
द्राजर्षेरिन्द्रविक्रमात् ॥ ४३
अदक्षिणमयज्वानं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ४४

( ५ )

भरतं चैव दौष्यन्तिं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
शाकुन्तलं महात्मानं भूरिद्रविणसञ्चयम् ॥
यो बध्वा त्रिशतं चाश्वान्देवेभ्यो यमुनामनु
सरस्वतीं विंशतिं च गङ्गामनु चतुर्दश ॥ ४६
अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
इष्टवान्स महातेजा दौष्यन्तिर्भरतः पुरा ॥
भरतस्य महत्कर्म सर्वराजसु पार्थिवाः ।
खं मर्त्या इव बाहुभ्यां नानुगन्तुमशक्नुवन् ॥
परं सहस्राद्यो बद्धान् हयान्वेदीर्वितत्य च ।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ५०

( ६ )

रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
योऽन्वकंपत वै नित्यं प्रजाः पुत्रानिवौरसान्
विधवा यस्य विषये नानाथाः काश्च नाभवन्
सदैवासीत्पितृसमो रामो राज्यं यदन्वशात्
कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि समपादयत् ।
नित्यं सुभिक्षमेवासीद्रामे राज्यं प्रशासति

---

चेत्यचेतनावान्भव जानीहीत्यर्थः । संशाम्य ज्ञात्वा शान्तो भवेत्यर्थः ॥ ३१ ॥ अवासृजत् यज्ञार्थमुत्सृष्टवान् ॥ ३२ ॥ अत्यकालयत् दत्तवान् ॥ ३३ ॥ सप्तसु-अग्निष्टोमेऽत्यग्निष्टोमो उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्र आप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थास्तासु ॥ ३८ ॥

'भरतस्य महाकर्म न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः '
इति श्रुतेरर्थं संगृह्णाति-भरतस्येति ॥ ४८ ॥ बद्धान् हयानिति पाठः। बद्धं संख्याविशेषः अर्बुदपर्यायः ' यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मणा बद्धशो गा विभेजिरे' इति श्रुतेः॥ ४९ ॥

प्राणिनो नाप्सु मज्जन्ति
नान्यथा पावकोऽदहत्।
रुजा भयं न तत्रासी-
द्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ५४
आसन्वर्षसहस्रिण्यस्तथा वर्षसहस्रकाः ।
अरोगाः सर्वसिद्धार्था रामे राज्यं प्रशासति
नान्योन्येन विवादोऽभूत्
स्त्रीणामपि कुतो नृणाम् ।
धर्मनित्याः प्रजाश्चासन्
रामे राज्यं प्रशासति ॥ ५६
संतुष्टाः सर्वसिद्धार्था निर्भयाः स्वैरचारिणः।
नराः सत्यव्रताश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति
नित्यपुष्पफलाश्चैव पादपा निरुपद्रवाः ।
सर्वा द्रोणदुघा गावो रामे राज्यं प्रशासति
स चतुर्दशवर्षाणि वने प्रोष्य महातपाः ।
दशाश्वमेधान् जारूथ्यानाजहार निरर्गलान्
युवा श्यामो लोहिताक्षो मातङ्ग इव यूथपः।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत्
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ६२

( ७ )

भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्येन्द्रो वितते यज्ञे सोमं पीत्वा मदोत्कटः
असुराणां सहस्राणि बहूनि सुरसत्तमः ।
अजयद्बाहुवीर्येण भगवान्पाकशासनः ॥ ६४
यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ॥
सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
शतं शतं रथे नागाः पद्मिनो हेममालिनः ॥
सहस्रमश्वा एकैकं हस्तिनं पृष्ठतोऽन्वयुः ।
गवां सहस्रमश्वेऽश्वे सहस्रं गव्यजाविकम् ॥
उपह्वरे निवसतो यस्याङ्के निषसाद ह ।
गङ्गा भागीरथी तस्मादुर्वशी चाभवत्पुरा ॥
भूरिदक्षिणमिक्ष्वाकुं यजमानं भगीरथम् ।
त्रिलोकपथगा गङ्गा दुहितृत्वमुपेयुषी ॥ ६९
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ७०

( ८ )

दिलीपं च महात्मानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य कर्माणि भूरीणि कथयन्ति द्विजातयः
य इमां वसुसंपूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
ददौ तस्मिन्महायज्ञे ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥
यस्येह यजमानस्य यज्ञे यज्ञे पुरोहितः ।
सहस्रं वारणान्हैमान्दक्षिणामत्यकालयत् ॥
यस्य यज्ञे महानासीद्यूपः श्रीमान्हिरण्मयः ।
तं देवाः कर्म कुर्वाणाः शक्रज्येष्ठा उपाश्रयन् ॥
चषाले यस्य सौवर्णे तस्मिन् यूपे हिरण्मये
ननृतुर्देवगन्धर्वाः षट् सहस्राणि सप्तधा ॥ ७५
अवादयत्तत्र वीणां मध्ये विश्वावसुः स्वयम् ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त मम वादयतीत्ययम् ॥ ७६
एतद्राज्ञो दिलीपस्य राजानो नानुचक्रिरे ।
यस्येभा हेमसंछन्नाः पथि मत्ताः स्म शेरते ॥
राजानं शतधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ।
येऽपश्यन्सुमहात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नराः
त्रयः शब्दा न जीर्यन्ते दिलीपस्य निवेशने ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषो दीयतामिति वै त्रयः
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ८०

( ९ )

मान्धातारं यौवनाश्वं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यं देवा मरुतो गर्भं पितुः पार्श्वादपाहरन् ॥

---

वर्षसहस्रिण्यः स्त्रियः वर्षसहस्रकाः पुरुषाः॥५५॥द्रोणदुघाः द्रोणपरिमितं क्षीरं दुहन्ति ताः। द्रोणः कलश इत्येके॥५८॥ जारूथ्यान् स्तुत्यान् त्रिगुणदक्षिणानित्यन्ये निरर्गलान् अवारितद्वारान् ॥५९॥ चतुर्युजः चतुरश्वाः ॥६६॥ उपह्वरे समीपे अङ्के ऊरौ निषसाद आसांचक्रे, तस्माद्योगात्सा उर्वशी ऊरौ वासो यस्याः सा इति योगात् । **ऊर्वसी**-त्यपेक्षिते ह्रस्वत्वं वर्णविपर्ययश्च पृषोदरादित्वात् ज्ञेयः ॥ ६८ ॥ सप्तधा सप्तस्वरानुसारेणावादयदिति सम्बन्धः ॥ ७५ ॥ मम पुरत इति शेषः मां लक्षीकृत्येत्यर्थः ॥७६॥ **शतधन्वानं**-शतं अनन्तान् सहते धनुर्यस्य तं शतधन्वानं मध्यमपदलोपी समासः ॥ ७८ ॥ पृषदाज्यं

सम्भूतो युवनाश्वस्य जठरे यो महात्मनः ।
पृषदाज्योद्भवः श्रीमांस्त्रिलोकविजयी नृपः
यं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देवरूपिणम् ।
अन्योन्यमब्रुवन्देवाः कमयं धास्यतीति वै
मामेव धास्यतीत्येवमिन्द्रोऽथाभ्युपपद्यत ।
मान्धातेति ततस्तस्य नाम चक्रे शतक्रतुः ॥
ततस्तु पयसो धारां
पुष्टिहेतोर्महात्मनः ।
तस्यास्ये यौवनाश्वस्य
पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत् ॥ ८५
तं पिबन्पाणिमिन्द्रस्य शतमह्ना व्यवर्धत ।
स आसीद्द्वादशसमो द्वादशाहेन पार्थिवः ॥
तमिमं पृथिवी सर्वा एकाह्ना समपद्यत ।
धर्मात्मानं महात्मानं शूरमिन्द्रसमं युधि ॥
यश्चाङ्गारं तु नृपतिं मरुत्तमसितं गयम् ।
अङ्गं बृहद्रथं चैव मांधाता समरेऽजयत् ॥ ८८
यौवनाश्वो यदाङ्गारं समरे प्रत्ययुध्यत ।
विस्फारैर्धनुषो देवा द्यौरभेदीति मेनिरे ॥
यत्र सूर्य उदेति स्म यत्र च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते
अश्वमेधशतेनेष्ट्वा राजसूयशतेन च ।
अददद्रोहितान्मत्स्यान्ब्राह्मणेभ्यो विशांपते ॥
हैरण्यान् योजनोत्सेधा-
नायतान्दशयोजनम् ।
अतिरिक्तान्द्विजातिभ्यो
व्यभजंस्त्वितरे जनाः ॥ ९२
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ९३

( १० )

ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
य इमां पृथिवीं कृत्स्नां विजित्य सहसागरां
शम्यापातेनाभ्यतीया-
न्वेदीभिश्चित्रयन्महीम् ।
ईजानः क्रतुभिर्मुख्यैः
पर्यगच्छद्वसुंधराम् ॥ ९५
इष्ट्वा क्रतुसहस्रेण वाजपेयशतेन च ।
तर्पयामास विप्रेन्द्रांस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥
व्यूढेनासुरयुद्धेन हत्वा दैतेयदानवान् ।
व्यभजत्पृथिवीं कृत्स्नां ययातिर्नहुषात्मजः ॥
अन्त्येषु पुत्रान्निक्षिप्य यदुद्रुह्युपुरोगमान् ।
पूरुं राज्येऽभिषिच्याथ सदारः प्राविशद्वनम्
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ९९

( ११ )

अम्बरीषं च नाभागं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यं प्रजा वव्रिरे पुण्यं गोप्तारं नृपसत्तमम् ॥
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञामयुतयाजिनाम् ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यः सुसंहितः ॥
नैतत्पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ।
इत्यम्बरीषं नाभागिमन्वमोदन्त दक्षिणाः ॥
शतं राजसहस्राणि शतं राजशतानि च ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानास्तेऽन्वयुर्दक्षिणायनम् ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १०४

( १२ )

शशबिन्दुं चैत्ररथं मृतं शुश्रुम सृञ्जय ।
यस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः

---

दधिमिश्रमाज्यं कस्यचिदर्थे पुत्रोत्पादनाय निर्मितं तद्युवनाश्वेन पीतं तत् रेतोरुधिरयोगं विनाऽपि तदुदरे गर्भोऽभवत् । स पितुः पार्श्वं भित्त्वा निःसारितो देवैरित्याख्यायिकार्थोऽत्र सूचितः ॥ ८२ ॥ अह्ना एकेन शतं पलानि व्यवर्धत । द्वादशसमो द्वादशवर्षतुल्यः । द्वादशशतपलतुलितो वाऽभवत्, एतावानेव प्रायेण पक्वस्य पुरुषस्य भारो भवति ॥ ८६ ॥ अभेदि भिन्ना ॥८९॥ मत्स्यान् हैरण्यानिति सम्बन्धः ॥ ९१ ॥ शम्या स्थूलबुध्नः काष्ठदण्डः स बलवता क्षिप्तो यावद्दूरं पतेतावान्देशः शम्यापातः तावतान्तरेण पुरः पुरो यज्ञवेदीं कुर्वाणो वसुन्धरां पर्यगच्छत्, परित्यज्य समुद्रतीरं प्राप्त इत्यर्थः ॥ ९५ ॥ व्यभजत्पुत्रेभ्यो दत्तवान् ॥ ९७ ॥ यदुर्द्रुह्युरनुस्तुर्वसुश्च तान् यदुद्रुह्युपुरोगमान् ॥ ९८ ॥ याजिनां यज्वनां राज्ञां सहस्रं ब्राह्मणेभ्यः ब्राह्मणानामातिथ्यार्थं अयुतं योजितवान्, नृपान् दास्ये योजितवानित्यर्थः ॥ १०१ ॥ दक्षिणाः दास्ययुक्ताः ॥ १०२ ॥ सर्वे राजानोऽम्बरीषयज्ञेषु विप्रदास्यं कुर्वाणा अश्वमेधफलभागित्वात्तद्याजिनः सन्तः अम्बरीषमाहात्म्याद्दक्षिणायनं अनु पश्चात् अनुर्गताः। उत्तरायणमार्गेण हिरण्यगर्भलोकं प्राप्ताः इत्यर्थः ॥ १०३ ॥

सहस्रं तु सहस्राणां यस्यासन् शाशबिन्दवाः
हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ॥
शतं कन्या राजपुत्रमेकैकं पृथगन्वयुः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागं नागं शतं रथाः
रथे रथे शतं चाश्वा देशजा हेममालिनः ।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां तद्वदजाविकम्
एतद्धनमपर्यन्तमश्वमेधे महामखे ।
शशबिन्दुर्महाराज ब्राह्मणेभ्यः समार्पयत् ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ११०

(१३)

गयं चामूर्तरयसं मृतं शुश्रुम सृञ्जय ।
यः स वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥
यस्मै वह्निर्वरं प्रादात्ततो वव्रे वरान्गयः ।
ददतो योऽक्षयं वित्तं धर्मे श्रद्धा च वर्धताम्
मनो मे रमतां सत्ये त्वत्प्रसादाद्धुताशन ।
लेभे च कामांस्तान्सर्वान्पावकादिति नः श्रुतं
दर्शे च पूर्णमासे च चातुर्मास्ये पुनः पुनः ।
अयजद्धयमेधेन सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ११४
शतं गवां सहस्राणि शतमश्वतराणि च ।
उत्थायोत्थाय वै प्रादात्सहस्रं परिवत्सरान्
तर्पयामास सोमेन देवान्वित्तैर्द्विजानपि ।
पितॄन्स्वधाभिः कामैश्च स्त्रियः स पुरुषर्षभ ॥
सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा दशव्यामां द्विरायतां
दक्षिणामददद्राजा वाजिमेधे महाक्रतौ ॥
यावत्यः सिकता राजन्गङ्गायां पुरुषर्षभ ।
तावतीरेव गाः प्रादादामूर्तरयसो गयः ॥ १८
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १९

(१४)

रन्तिदेवं च सांकृत्यं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
सम्यगाराध्य यः शक्राद्वरं लेभे महातपाः
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमन्मा च याचिष्म कञ्चन
उपातिष्ठन्त पशवः स्वयं तं संशितव्रतम् ।
ग्राम्यारण्या महात्मानं रन्तिदेवं यशस्विनम्
महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात्सस्रुजे यतः ।
ततश्चर्मण्वतीत्येवं विख्याता सा महानदी ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ निष्कान्सदसि प्रतते नृपः ।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति क्रोशंति वै द्विजाः
सहस्रं तुभ्यमित्युक्त्वा ब्राह्मणान्संप्रपद्यते ।
अन्वाहार्योपकरणं द्रव्योपकरणं च यत् ॥
घटाः पात्र्यः कटाहानि स्थाल्यश्च पिठराणि च
नासीत्किञ्चिदसौवर्णं रन्तिदेवस्य धीमतः
सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमवसन् गृहे ।
आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि च विंशतिः
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा ॥
स चेन्मार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १२९

(१५)

सगरं च महात्मानं मृतं शुश्रुम सृञ्जय ।
ऐक्ष्वाकं पुरुषव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३०
षाष्टिः पुत्रसहस्राणि यं यान्तमनुजग्मिरे ।
नक्षत्रराजं वर्षान्ते व्यभ्रे ज्योतिर्गणा इव ॥
एकच्छत्रा मही यस्य प्रतापादभवत्पुरा ।
योऽश्वमेधसहस्रेण तर्पयामास देवताः ॥ ३२
यः प्रादात्कनकस्तंभं प्रासादं सर्वकाञ्चनम् ।
पूर्णं पद्मदलाक्षीणां स्त्रीणां शयनसंकुलम् ॥
द्विजातिभ्योऽनुरूपेभ्यः
कामांश्च विविधान्बहून् ।
यस्यादेशेन तद्वित्तं
व्यभजन्त द्विजातयः ॥ १३४

---

शाशबिन्दवाः शशबिन्दोः पुत्राः ॥ १०६ ॥ ददतो दानं कुर्वतः अयः सुवर्णं तदेव वित्तं अक्षयं सत् वर्धतां मे क्षयमिति पाठस्त्वनार्षः॥११२॥ व्यामं व्यायतहस्तप्रमाणं पञ्चहस्तोन्मितं दशव्यामां पञ्चाशद्धस्तविस्तारां द्विरायतां शतहस्तदीर्घाम् ॥ ११७ ॥ उपातिष्ठन्त पितृकार्ये मां नियोजय मां नियोजयेति ॥ १२२ ॥ तेषां मारितानां पशूनां चर्मराशेः उत्क्लेदात् साद्रवात् ॥ १२३ ॥ तुभ्य-मिति । निष्कं निष्कशतं 'शतं तुभ्यं शतं तुभ्यमिति स्मैव प्रताम्यति' इति मन्त्रवर्णात् । तुभ्यं निष्कशतं ददामीति क्रोशन्त्येव द्विजाः न तु कश्चिद् गृह्णाति ॥१२४॥ सहस्रं तुभ्यमित्युक्त्वा तु ब्राह्मणान्प्रतिग्रहीतॄन्प्रपद्यते प्राप्नोति ॥ १२५ ॥ पिठराणि विततमुखानि दारुपात्राणि ॥१२६॥ नाद्य मांसं पशुमात्रोपयोगस्य प्रागुक्तत्वात् ॥१२८॥ ऐक्ष्वाकमिक्ष्वाकुवंशजम् ॥ १३०॥ आदेशेन आज्ञया तद्वित्तं स्वर्णप्रासादरूपम् ॥ १३४ ॥ वैन्यं

आनयामास यः कोपात्पृथिवीं सागराङ्किताम्
यस्य नाम्ना समुद्रश्च सागरत्वमुपागतः ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ३६

(१६)

राजानं च पृथुं वैन्यं मृतं शुश्रुम सृञ्जय ।
यमभ्यषिञ्चन्संभूय महारण्ये महर्षयः ॥ १३७
प्रथयिष्यति वै लोकान्पृथुरित्येव शब्दितः ।
क्षताद्यो वै त्रायतीति स तस्मात्क्षत्रियः स्मृतः
पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी पुटके पुटके मधु ।
सर्वा द्रोणदुघा गावो वैन्यस्यासन्प्रशासतः
अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या अकुतोभयाः ।
यथाभिकाममवसन् क्षेत्रेषु च गृहेषु च ॥ ४१
आपस्तस्तंभिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ।
सरितश्चानुदीर्यन्त ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥४२
हैरण्यांस्त्रिनलोत्सेधान्पर्वतानेकविंशतिम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा योऽश्वमेधे महामखे
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ४४

किं वा तूष्णीं ध्यायसे सृञ्जय त्वं
न मे राजन्वाचमिमां शृणोषि ।
न चेन्मोघं विप्रलप्तं ममेदं
पथ्यं मुमूर्षोरिव सुप्रयुक्तम् ॥ ४५

सृञ्जय उवाच ।

शृणोमि ते नारद वाचमेनां
विचित्रार्थां स्रजमिव पुण्यगन्धाम् ।
राजर्षीणां पुण्यकृतां महात्मनां
कीर्त्या युक्तानां शोकनिर्णाशनार्थाम्
न ते मोघं विप्रलप्तं महर्षे
दृष्ट्वैवाहं नारद त्वां विशोकः ।
शुश्रूषे ते वचनं ब्रह्मवादिन्
न ते तृप्याम्यमृतस्येव पानात् ॥ ४७
अमोघदर्शिन्मम चेत्प्रसादं
सन्तापदग्धस्य विभो प्रकुर्याः ।
सुतस्य सञ्जीवनमद्य मे स्या-
त्तव प्रसादात्सुतसङ्गमश्च ॥ ४८

नारद उवाच ।

यस्ते पुत्रो गमितोऽयं विजातः
स्वर्णष्ठीवी यमदात्पर्वतस्ते ।
पुनस्तु ते पुत्रमहं ददामि
हिरण्यनाभं वर्षसहस्रिणं च ॥ १४९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि षोडशराजोपाख्याने*
एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

युधिष्ठिर उवाच ।

स कथं काञ्चनष्ठीवी सृञ्जयस्य सुतोऽभवत्
पर्वतेन किमर्थं वा दत्तस्तेन ममार च ॥ १
यदा वर्षसहस्रायुस्तदा भवति मानवः ।
कथमप्राप्तकौमारः सृञ्जयस्य सुतो मृतः ॥ २
उताहो नाममात्रं वै सुवर्णष्ठीविनोऽभवत् ।
कथं वा काञ्चनष्ठीवीत्येतदिच्छामि वेदितुम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं जनेश्वर ।
नारदः पर्वतश्चैव द्वावृषी लोकसत्तमौ ॥ ४

---

वेनपुत्रम् महारण्ये दण्डकारण्ये ॥ १३७ ॥ पुटके पुटके पत्रे पत्रे इति प्राञ्चः ॥ १४० ॥ त्रिनलोत्सेधान् नलः किष्कुचतुःशतमिति पाठं प्रकल्प्य व्याख्यायते प्राचीनैः। वस्तुतस्तु नल इत्यत्र च्छान्दसो वर्णलोपः ॥ १४३ ॥ विप्रलप्तं विप्रजल्पितम् ॥ १४५ ॥ विशोको जात इति शेषः ॥ १४७ ॥ गमितः मृतः विजातः गुणवान् ॥ १४९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नै० भा० एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९॥

* इदं षोडशराजोपाख्यानं द्रोणपर्वणि पञ्चाधिकपञ्चाशदध्यायादारभ्यैकसप्तत्यध्यायपर्यन्तमागतम् । अत्र पुनस्तदेव संक्षेपाद्विगुनम् । किं तु पूर्वतनं परशुरामचरितं तावन्मात्र संगृहीतम् । तथा च पूर्वतनपौरवराजचरितस्थाने बृहद्रथचरितमुपवर्णितम् । कथाक्रमाविषयेऽपि व्यत्यासो दृश्यते ।

३०

स इति ॥ १ ॥

मातुलो भागिनेयश्च देवलोकादिहागतौ ।
विहर्तुकामौ संप्रीत्या मानुषेषु पुरा विभो ॥
हविः पवित्रभोज्येन देवभोज्येन चैव हि ।
नारदो मातुलश्चैव भागिनेयश्च पर्वतः ॥ ६
तावुभौ तपसोपेतावचनीतलचारिणौ ।
भुञ्जानौ मानुषान्भोगान् यथावत्पर्यधावताम्
प्रीतिमन्तौ मुदा युक्तौ समयं चैव चक्रतुः ।
यो भवेद्धृदि संकल्पः शुभो वा यदि वाऽशुभः
अन्योन्यस्य च आख्येयो
मृषा शापोऽन्यथा भवेत् ।
तौ तथेति प्रतिज्ञाय
महर्षी लोकपूजितौ ॥ ९
सृञ्जयं श्वैत्यमभ्येत्य राजानमिदमूचतुः ।
आवां भवति वत्स्यावः काञ्चित्कालं हिताय ते
यथावत्पृथिवीपाल आवयोः प्रगुणी भव ।
तथेति कृत्वा राजा तौ सत्कृत्योपचचार ह
ततः कदाचित्तौ राजा महात्मानौ तपोधनौ
अब्रवीत्परमप्रीतः सुतेयं वरवर्णिनी ॥ १२
एकैव मम कन्यैषा युवां परिचरिष्यति ।
दर्शनीयाऽनवद्याङ्गी शीलवृत्तसमाहिता ॥
सुकुमारी कुमारी च पद्मकिञ्जल्कसुप्रभा ।
परमं सौम्यमित्युक्तं ताभ्यां राजा शशास तां
कन्ये विप्रावुपचर देववत्पितृवच्च ह ।
सा तु कन्या तथेत्युक्त्वा पितरं धर्मचारिणी
यथानिर्देशं राज्ञस्तौ सत्कृत्योपचचार ह ।
तस्यास्तेनोपचारेण रूपेणाप्रतिमेन च ॥१६
नारदं हृच्छयस्तूर्णं सहसैवाभ्यपद्यत ।
ववृधे हि ततस्तस्य हृदि कामो महात्मनः ॥
यथा शुक्लस्य पक्षस्य प्रवृत्तौ चन्द्रमाः शनैः ।
न च तं भागिनेयाय पर्वताय महात्मने ॥१८
शशंस हृच्छयं तीव्रं व्रीडमानः स धर्मवित् ।
तपसा चेङ्गितैश्चैव पर्वतोऽथ बुबोध तम् ॥
कामार्तं नारदं क्रुद्धः शशापैनं ततो भृशम् ।
कृत्वा समयमव्यग्रो भवान्वै सहितो मया ॥
यो भवेद्धृदि संकल्पः शुभो वा यदि वाऽशुभः
अन्योन्यस्य स आख्येय इति तद्वै मृषा कृतं
भवता वचनं ब्रह्मंस्तस्मादेष शपाम्यहम् ।
न हि कामं प्रवर्तन्तं भवानाचष्ट मे पुरा ॥
सुकुमार्यां कुमार्यां ते तस्मादेष शपाम्यहम् ।
ब्रह्मचारी गुरुर्यस्मात्तपस्वी ब्राह्मणश्च सन् ॥
अकार्षीः समयभ्रंशमावाभ्यां यः कृतो मिथः
शप्स्ये तस्मात्सुसंक्रुद्धो भवन्तं तं निबोध मे
सुकुमारी च ते भार्या भविष्यति न संशयः
वानरं चैव ते रूपं विवाहात्प्रभृति प्रभो ॥
संद्रक्ष्यन्ति नराश्चान्ये स्वरूपेण विनाशनम् ।
स तद्वाक्यं तु विज्ञाय नारदः पर्वतं तथा ॥
अशपत्तमपि क्रोधाद्भागिनेयं स मातुलः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ २७
युक्तोऽपि नित्यधर्मश्च न वै स्वर्गमवाप्स्यसि
तौ तु शप्त्वा भृशं क्रुद्धौ परस्परममर्षणौ ॥
प्रतिजग्मतुरन्योन्यं क्रुद्धाविव गजोत्तमौ ।
पर्वतः पृथिवीं कृत्स्नां विचचार महामतिः ॥
पूज्यमानो यथान्यायं तेजसा स्वेन भारत ।
अथ तामलभत्कन्यां नारदः सृञ्जयात्मजाम्
धर्मेण विप्रप्रवरः सुकुमारीमनिन्दिताम् ।
सा तु कन्या यथाशापं नारदं तं ददर्श ह ॥
पाणिग्रहणमन्त्राणां नियोगादेव नारदम् ।
सुकुमारी च देवर्षिं वानरप्रतिमाननम् ॥ ३२
नैवावमन्यत तदा प्रीतिमत्येव चाभवत् ।
उपतस्थे च भर्तारं न चान्यं मनसाप्यगात् ॥
देवं मुनिं वा यक्षं वा पतित्वे पतिवत्सला ।
ततः कदाचिद्भगवान्पर्वतोऽनुचचार ह ॥
वनं विरहितं किंचित्तत्रापश्यत्स नारदम् ।
ततोऽभिवाद्य प्रोवाच नारदं पर्वतस्तदा ॥
भवान्प्रसादं कुरुतात्स्वर्गादेशाय मे प्रभो ।
तमुवाच ततो दृष्ट्वा पर्वतं नारदस्तथा ॥ ३६
कृताञ्जलिमुपासीनं दीनं दीनतरः स्वयम् ।
त्वयाऽहं प्रथमं शप्तो वानरस्त्वं भविष्यसि ॥
इत्युक्तेन मया पश्चाच्छप्तस्त्वमपि मत्सरात् ।
अद्यप्रभृति वै वासं स्वर्गे नावाप्स्यसीति ह ॥
तव नैतद्धि सदृशं पुत्रस्थाने हि मे भवान् ।
निवर्तयेतां तौ शापावन्योन्येन तदा मुनी ॥
श्रीसमृद्धं तदा दृष्ट्वा नारदं देवरूपिणम् ।
सुकुमारी प्रदुद्राव परपत्याभिशंकया ॥ ४०
तां पर्वतस्ततो दृष्ट्वा प्रद्रवन्तीमनिन्दिताम् ।
अब्रवीत्तव भर्तैष नात्र कार्या विचारणा ॥

हविः पवित्रभोज्येन शाल्यन्नेन देवभोज्येन घृतेन ताभ्यां विहर्तुकामाविति सम्बन्धः ॥ ६ ॥ प्रगुणी भव अनुकूलो भव ॥ ११ ॥ सुकुमारी नाम्ना सौम्यं उत्तमम् ॥ १४ ॥ प्रवर्तन्तं प्रवर्तमानम् ॥ २२ ॥ ते त्वाम् ॥२३ ॥

ऋषिः परमधर्मात्मा नारदो भगवान्प्रभुः ।
तवैवाभेद्यहृदयो मा तेऽभूदत्र संशयः ॥ ४२
साऽनुनीता बहुविधं पर्वतेन महात्मना ।
शापदोषं च तं भर्तुः श्रुत्वा प्रकृतिमागता ।
पर्वतोऽथ ययौ स्वर्गं नारदोऽभ्यगमद्गृहान् ।

वासुदेव उवाच ।

प्रत्यक्षकर्ता सर्वस्य नारदो भगवानृषिः ।
एष वक्ष्यति ते पृष्टो यथावृत्तं नरोत्तम ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नारदपर्वतोपाख्याने* त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

वैशम्पायन उवाच ।

ततो राजा पांडुसुतो नारदं प्रत्यभाषत ।
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि सुवर्णष्ठीविसंभवम् ॥
एवमुक्तस्तु स मुनिर्धर्मराजेन नारदः ।
आचचक्षे यथावृत्तं सुवर्णष्ठीविनं प्रति ॥ २

नारद उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथाऽयं केशवोऽब्रवीत्
कार्यस्यास्य तु यच्छेषं तत्ते वक्ष्यामि पृच्छतः
अहं च पर्वतश्चैव स्वस्रीयो मे महामुनिः ।
वस्तुकामावभिगतौ सृञ्जयं जयतां वरम् ॥४
तत्रावां पूजितौ तेन विधिदृष्टेन कर्मणा ।
सर्वकामैः सुविहितौ निवसावोऽस्य वेश्मनि
व्यतिक्रान्तासु वर्षासु समये गमनस्य च ।
पर्वतो मामुवाचेदं काले वचनमर्थवत् ॥ ६
आवामस्य नरेन्द्रस्य गृहे परमपूजितौ ।
उषितौ समये ब्रह्मंस्तद्विचिन्तय सांप्रतम् ॥७
ततोऽहमब्रुवं राजन्पर्वतं शुभदर्शनम् ।
सर्वमेतत्त्वयि विभो भागिनेयोपपद्यते ॥ ८
वरेण च्छन्द्यतां राजा लभतां यद्यदिच्छति
आवयोस्तपसा सिद्धिं प्राप्नोतु यदि मन्यसे
तत आहूय राजानं सृञ्जयं जयतां वरम् ।
पर्वतोऽनुमतो वाक्यमुवाच कुरुपुङ्गव ॥ १०
प्रीतौ स्वो नृप सत्कारैर्भवदार्जवसंभृतैः ।
आवाभ्यामभ्यनुज्ञातो वरं नृवर चिन्तय ॥
देवानामविहिंसायां न भवेन्मानुषक्षयम् ।
तद्गृहाण महाराज पूजार्हो नौ मतो भवान्

सृञ्जय उवाच ।

प्रीतौ भवन्तौ यदि मे कृतमेतावता मम ।
एष एव परो लाभो निर्वृत्तो मे महाफलः ॥
तमेवंवादिनं भूयः पर्वतः प्रत्यभाषत ।
वृणीष्व राजन्संकल्पं यत्ते हृदि चिरं स्थितं

सृञ्जय उवाच ।

अभीप्सामि सुतं वीरं वीर्यवन्तं दृढव्रतम् ।
आयुष्मन्तं महाभागं देवराजसमद्युतिम् ॥

पर्वत उवाच ।

भविष्यत्येष ते कामो न त्वायुष्मान्भविष्यति
देवराजाभिभूत्यर्थं संकल्पो ह्येष ते हृदि ॥
ख्यातः सुवर्णष्ठीवीति पुत्रस्तव भविष्यति ।
रक्ष्यश्च देवराजात्स देवराजसमद्युतिः ॥ १७
तच्छ्रुत्वा सृञ्जयो वाक्यं पर्वतस्य महात्मनः
प्रसादयामास तदा नैतदेवं भवेदिति ॥ १८
आयुष्मान्मे भवेत्पुत्रो भवतस्तपसा मुने ।
न च तं पर्वतः किंचिदुवाचेन्द्रव्यपेक्षया ॥
तमहं नृपतिं दीनमब्रुवं पुनरेव च ।
स्मर्तव्योऽस्मि महाराज दर्शयिष्यामि ते सुतं
अहं ते दयितं पुत्रं प्रेतराजवशं गतम् ।
पुनर्दास्यामि तद्रूपं मा शुचः पृथिवीपते ॥
एवमुक्त्वा तु नृपतिं प्रयातौ स्वो यथेप्सितं
सृञ्जयश्च यथाकामं प्रविवेश स्वमंदिरम् ॥ २२
सृञ्जयस्याथ राजर्षेः कस्मिंश्चित्कालपर्यये
जज्ञे पुत्रो महावीर्यस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥२३

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

* द्रोणपर्वणि पञ्चपञ्चाशत्तमाध्याय इयं कथाऽन्यथा दृश्यते ।

३१

तत इति ॥ १ ॥ सांप्रतं कल्याणम् ॥ ७ ॥ देवानामिति । येन देवपीडा मनुष्यक्षयश्च न भवति तत्तादृशं वरं गृहाणेति भावः ॥ १२ ॥

ववृधे स यथाकालं सरसीव महोत्पलम् ।
बभूव काञ्चनष्ठीवी यथार्थं नाम तस्य तत् ॥
तदद्भुततमं लोके पप्रथे कुरुसत्तम ।
बुबुधे तच्च देवेन्द्रो वरदानं महर्षितः ॥ २५
ततः स्वाभिभवाद्भीतो बृहस्पतिमते स्थितः ।
कुमारस्यान्तरप्रेक्षी बभूव बलवृत्रहा ॥ २६
चोदयामास तद्वज्रं दिव्यास्त्रं मूर्तिमत्स्थितम्
व्याघ्रो भूत्वा जहीमं त्वं राजपुत्रमिति प्रभो
प्रवृद्धः किल वीर्येण मामेषोऽभिभविष्यति ।
सृञ्जयस्य सुतो वज्र यथैनं पर्वतोऽब्रवीत् ॥२८
एवमुक्तस्तु शक्रेण वज्रः परपुरञ्जयः ।
कुमारमन्तरप्रेक्षी नित्यमेवान्वपद्यत ॥ २९
सृञ्जयोऽपि सुतं प्राप्य देवराजसमद्युतिम् ।
हृष्टः सान्तःपुरो राजा वननित्यो बभूव ह
ततो भागीरथीतीरे कदाचिन्निर्जने वने ।
धात्रीद्वितीयो बालः स क्रीडार्थं पर्यधावत
पञ्चवर्षकदेशीयो बालो नागेन्द्रविक्रमः ।
सहसोत्पतितं व्याघ्रमाससाद महाबलम् ॥
स बालस्तेन निष्पिष्टो वेपमानो नृपात्मजः
व्यसुः पपात मेदिन्यां ततो धात्री विचुक्रुशे
हत्वा तु राजपुत्रं स तत्रैवान्तरधीयत ।
शार्दूलो देवराजस्य माययाऽन्तर्हितस्तदा ॥
धात्र्यास्तु निनदं श्रुत्वा रुदत्याः परमार्तवत्
अभ्यधावत तं देशं स्वयमेव महीपतिः ॥ ३५
स ददर्श शयानं तं गतासुं पीतशोणितम्
कुमारं विगतानन्दं निशाकरमिव च्युतम् ॥
स तमुत्सङ्गमारोप्य परिपीडितमानसः ।
पुत्रं रुधिरसंसिक्तं पर्यदेवयदातुरः ॥ ३७
ततस्ता मातरस्तस्य रुदत्यः शोककर्शिताः ।
अभ्यधावन्त तं देशं यत्र राजा स सृञ्जयः ॥
ततः स राजा सस्मार मामेव गतमानसः ।
तदाहं चिन्तनं ज्ञात्वा गतवांस्तस्य दर्शनम्
मयैतानि च वाक्यानि
श्रावितः शोकलालसः ।
यानि ते यदुवीरेण
कथितानि महीपते ॥ ४०
संजीवितश्चापि पुनर्वासवानुमते तदा ।
भवितव्यं तथा तच्च न तच्छक्यमतोऽन्यथा
तत ऊर्ध्वं कुमारस्तु स्वर्णष्ठीवी महायशाः
चित्तं प्रसादयामास पितुर्मातुश्च वीर्यवान् ॥
कारयामास राज्यं च पितरि स्वर्गते नृप ।
वर्षाणां शतमेकं च सहस्रं भीमविक्रमः ॥ ४३
तत ईजे महायज्ञैर्बहुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
तर्पयामास देवांश्च पितॄंश्चैव महाद्युतिः ॥ ४४
उत्पाद्य च बहून्पुत्रान्कुलसन्तानकारिणः ।
कालेन महता राजन्कालधर्ममुपेयिवान् ॥
स त्वं राजेन्द्र सञ्जातं शोकमेनं निवर्तय ।
यथा त्वां केशवः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः
पितृपैतामहं राज्यमास्थाय धुरमुद्वह ।
इष्ट्वा पुण्यैर्महायज्ञैरिष्टं लोकमवाप्स्यसि ॥४७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि स्वर्णष्ठीविसंभवोपाख्याने+ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

वैशम्पायन उवाच ।
तूष्णींभूतं तु राजानं शोचमानं युधिष्ठिरम्
तपस्वी धर्मतत्त्वज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥
व्यास उवाच ।
प्रजानां पालनं धर्मो राज्ञां राजीवलोचन
धर्मः प्रमाणं लोकस्य नित्यं धर्मानुवर्तिनः ॥
अनुतिष्ठस्व तद्राजन्पितृपैतामहं पदम् ।
ब्राह्मणेषु तपो धर्मः स नित्यो वेदनिश्चितः ॥
तत्प्रमाणं ब्राह्मणानां शाश्वतं भरतर्षभ ।
तस्य धर्मस्य कृत्स्नस्य क्षत्रियः परिरक्षिता

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भा० एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ +पर्वत-नारदकथावदियमपि कथा द्रोणपर्वणि भिन्ना वर्तते ।

३२

तूष्णींभूतमिति ॥ १ ॥ तत्तस्माद्धर्मं अनुतिष्ठस्व पदं पालयेति च सम्बन्धः ॥ ३ ॥

यः स्वयं प्रतिहन्ति स्म शासनं विषये रतः ।
स बाहुभ्यां विनिग्राह्यो लोकयात्राविघातकः
प्रमाणमप्रमाणं यः कुर्यान्मोहवशं गतः ।
भृत्यो वा यदि वा पुत्रस्तपस्वी वाऽथ कश्चन ॥
पापान्सर्वैरुपायैस्तान्
नियच्छेच्छातयीत वा ।
अतोऽन्यथा वर्तमानो
राजा प्राप्नोति किल्बिषम् ॥ ७
धर्मं विनश्यमानं हि यो न रक्षेत्स धर्महा ।
ते त्वया धर्महन्तारो निहताः सपदानुगाः ॥
स्वधर्मे वर्तमानस्त्वं किं नु शोचसि पांडव ।
राजा हि हन्याद्दद्याच्च प्रजा रक्षेच्च धर्मतः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

न तेऽभिशंके वचनं यद्ब्रवीषि तपोधन ।
अपरोक्षो हि ते धर्मः सर्वधर्मविदां वर ॥
मया त्ववध्या बहवो घातिता राज्यकारणात्
तानि कर्माणि मे ब्रह्मन्दहन्ति च पचन्ति च

व्यास उवाच ।

ईश्वरो वा भवेत्कर्ता पुरुषो वाऽपि भारत
हठो वा वर्तते लोके कर्मजं वा फलं स्मृतम्
ईश्वरेण नियुक्तो हि साध्वसाधु च भारत ।
कुरुते पुरुषः कर्म फलमीश्वरगामि तत् ॥ १३
यथा हि पुरुषश्छिन्द्याद्वृक्षं परशुना वने ।
छेत्तुरेव भवेत्पापं परशोर्न कथञ्चन ॥ १४
अथवा तदुपादानात्प्राप्नुयात्कर्मणः फलम् ।
दण्डशस्त्रकृतं पापं पुरुषे तन्न विद्यते ॥ १५
न चैतदिष्टं कौन्तेय यदन्येन कृतं फलम् ।
प्राप्नुयादिति यस्माच्च ईश्वरे तन्निवेशय ॥१६
अथापि पुरुषः कर्ता कर्मणोः शुभपापयोः ।
न परो विद्यते तस्मादेवमेतच्छुभं कृतम् ॥
न हि कश्चित्क्वचिद्राजन्दिष्टं प्रतिनिवर्तते ।
दण्डशस्त्रकृतं पापं पुरुषे तन्न विद्यते ॥ १८
यदि वा मन्यसे राजन् हतमेकं प्रतिष्ठितम् ।
एवमप्यशुभं कर्म न भूतं न भविष्यति ॥ १९
अथाभिपत्तिर्लोकस्य कर्तव्या पुण्यपापयोः ।
अभिपन्नमिदं लोके राज्ञामुद्यतदण्डनम् ॥
तथापि लोके कर्माणि समावर्तन्ति भारत ।
शुभाशुभफलं चैते प्राप्नुवन्तीति मे मतिः ॥२१
एवमप्यशुभं कर्म कर्मणस्तत्फलात्मकम् ।
त्यज त्वं राजशार्दूल मैवं शोके मनः कृथा

---

शातयीत मारयेत् ॥ ७ ॥ मे मां दहन्ति हृदयं पचन्ति शरीरं शोषयन्ति॥११॥मया बहवो घातिता इत्युक्तं तत्किं हननक्रियायां तव प्रयोज्यकर्तृत्वं प्रयोजककर्तृत्वं वा वध्यस्य च कर्मत्वं वा प्राक्तनकर्मफलभोक्तृत्वं वेति विकल्पानाह-**ईश्वर इति** ॥ १२ ॥ नाद्य इत्याह-**ईश्वरेणेति** परशोरिव परप्रयोज्यस्य तव हन्तृत्वं नास्तीत्यर्थः ॥१३॥ परप्रयोज्योऽप्यहं परशोः प्रयोक्ताऽस्मि । न तु परशुवदचेतनोऽस्मीति । मम पापसम्बन्धोऽस्त्येवेत्याह-**अथवेति** । प्राप्नुयात् परशोरुपादाता । एवं तर्हि येन परशोर्दण्डः शस्त्रं परशुश्च कृतः तमेव पापं कर्तृ नाप्नुयात् । तस्य प्रथमप्रयोज्यत्वात्, पुरुषे उपादातरि तन्न विद्यते तस्य जघन्यत्वात् ॥ १५ ॥ **न चेति** । यदि च एतन्नेष्टं एतत्किं यत् अन्येन प्रहर्त्रा कृतं पापं तस्य फलं शस्त्रकर्ता आप्नुयादिति । तर्हि जघन्यप्रयोज्ये त्वय्यपि पापाभावादीश्वरे एव तन्निवेशय ॥ १६ ॥ **अथापीति** । यदा पुरुष एव कर्ता पर ईश्वरो नास्ति तस्मादपि हेतोस्त्वया एतच्छुभमेव कृतम् ॥ १७ ॥ यतः कश्चिदपि दिष्टं प्रति अदृष्टस्य प्रतिकूलो भूत्वाऽवश्यं भाविनः कर्मणः सकाशान्न निवर्तते दैवस्य दुर्लंघ्यत्वादिति भावः । ननु दिष्टमपि जन्मान्तरीयः स्वस्यैवापराध इत्याशंक्याह—**दण्डेति** । पूर्वपूर्वापराधस्य उत्तरोत्तरहेतुत्वमित्यनादित्वादिदानींतनस्य कर्तुर्नापराधोऽस्तीत्यतः प्राचीनकर्ता दण्डशस्त्रकृदिव न पर्यनुयोज्य इति भावः ॥ १८ ॥ तृतीयं पक्षं दूषयति—**यदीति** । प्रतिष्ठितं निश्चितं यथा स्यात्तथा । यदि पुरुषं हतं हननक्रियायाः कर्मभूतमेव मन्यसे तर्हि स्वभाववादिनस्ते भूतभाव्यशुभाभावादृथैव शोक इत्यर्थः ॥ १९ ॥ चतुर्थपक्षमाह—**अथेति** । पुण्यपापयोः सुखदुःखयोः अभिपत्तिरुपपत्तिः कर्तव्या सा च धर्माधर्मावन्तरेण न घटते तौ च शास्त्रैकगम्याविति चेद्राज्ञामुद्यतदण्डनं उद्धतदमनं लोके शास्त्रे चोपपन्नतरमित्यर्थः ॥ २० ॥ अत्र शङ्कते—**तथापीति** । यद्यप्येवं तथापि लोके शास्यमाने कर्माणि शुभान्यशुभानि च समापतन्ति-अवश्यं आयान्ति फलं च प्रयच्छन्ति, अतो मम प्रायोपवेशनमेव वरमिति भावः ॥ २१ ॥ समाधत्ते-**एवमपीति** । यस्मात्कर्मणः पापादशुभफलात्मकं पापप्रवृत्तिरूपं कर्म भवति तत्पापमूलं कर्म त्यज ॥ २२ ॥

स्वधर्मे वर्तमानस्य सापवादेऽपि भारत ।
एवमात्मपरित्यागस्तव राजन्न शोभनः ॥ २३
विहितानि हि कौन्तेय प्रायश्चित्तानि कर्मणां
शरीरवांस्तानि कुर्यादशरीरः पराभवेत् ।
तद्राजन् जीवमानस्त्वं प्रायश्चित्तं करिष्यसि
प्रायश्चित्तमकृत्वा तु प्रेत्य तप्तासि भारत ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि प्रायश्चित्तविधौ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## *३३

युधिष्ठिर उवाच ।
हताः पुत्राश्च पौत्राश्च भ्रातरः पितरस्तथा ।
श्वशुरा गुरवश्चैव मातुलाश्च पितामहाः ॥ १
क्षत्रियाश्च महात्मानः सम्बन्धिसुहृदस्तथा ।
वयस्या भागिनेयाश्च ज्ञातयश्च पितामह ॥ २
बहवश्च मनुष्येन्द्रा नानादेशसमागताः ।
घातिता राज्यलुब्धेन मयैकेन पितामह ॥३
तांस्तादृशानहं हत्वा धर्मनित्यान्महीक्षितः ।
असकृत्सोमपान्वीरान्किं प्राप्स्यामि तपोधन
दह्याम्यनिशमद्यापि चिन्तयानः पुनः पुनः ।
हीनां पार्थिवसिंहैस्तैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमां
दृष्ट्वा ज्ञातिवधं घोरं हतांश्च शतशः परान् ।
कोटिशश्च नरानन्यान्परितप्ये पितामह ॥६
का नु तासां वरस्त्रीणामवस्थाऽद्य भविष्यति
विहीनानां तु तनयैः पतिभिर्भ्रातृभिस्तथा ॥७
अस्मानन्तकरान्घोरान्
पाण्डवान्वृष्णिसंहतान् ।
आक्रोशन्त्यः कृशा दीनाः
प्रपतिष्यन्ति भूतले ॥ ८
अपश्यन्त्यः पितॄन् भ्रातॄन्-
पतीन्पुत्रांश्च योषितः ।
त्यक्त्वा प्राणान् प्रियान् सर्वा
गमिष्यन्ति यमक्षयम् ॥ ९
वत्सलत्वाद्द्विजश्रेष्ठ
तत्र मे नास्ति संशयः ।
व्यक्तं सौक्ष्म्याच्च धर्मस्य
प्राप्स्यामः स्त्रीवधं वयम् ॥ १०
यद्वयं सुहृदो हत्वा कृत्वा पापमनन्तकम् ।
नरके निपतिष्यामो ह्यधःशिरस एव ह ॥
शरीराणि विमोक्ष्यामस्तपसोग्रेण सत्तम ।
आश्रमाणां विशेषं त्वमथाचक्ष्व पितामह ॥
वैशम्पायन उवाच ।
युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा द्वैपायनस्तदा ।
निरीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या ऋषिः प्रोवाच पांडवं
व्यास उवाच ।
मा विषादं कृथा राजन्क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ।
स्वधर्मेण हता ह्येते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ १४
कांक्षमाणाः श्रियं कृत्स्नां पृथिव्यां च महद्यशः
कृतान्तविधिसंयुक्ताः कालेन निधनं गताः
न त्वं हन्ता न भीमोऽयं नार्जुनो न यमावपि
कालः पर्यायधर्मेण प्राणानादत्त देहिनाम् ॥
न तस्य मातापितरौ नानुग्राह्यो हि कश्चन ।
कर्मसाक्षी प्रजानां यस्तेन कालेन संहृताः ॥

---

सापवादे निन्द्येऽपि स्वधर्मे स्थितस्य त आत्मत्यागो नोचित इत्यर्थः ॥२३॥ ननु तथापि निन्द्यत्कर्मणः पापं भवतीत्याशंक्याह—विहितानीति ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

* 'हताः पुत्राः' इत्यारभ्य 'पितामह' इत्यन्ता द्वादश श्लोकाः खपुस्तके पूर्वाध्याये एव निवेशिताः ।

३३

हताः पुत्राश्चेति ॥ १ ॥ अनन्तकं प्रायश्चित्तैरप्य_विनाश्यम् ॥११॥ शरीराणीति । मम तु तप एव प्रशस्तमिति निश्चयोऽस्ति । तथापि आश्रमाणां मध्ये विशेषं श्रेष्ठं उक्तदोषनिवर्तनक्षमं आचक्ष्वेत्यर्थः ॥१२॥ कृतान्तविधिः परप्राणहरणं तेन संयुक्ताः स्वापराधेनैव हता इत्यर्थः ॥ १५ ॥ वस्तुतस्तु तेषामपि स्वातन्त्र्यं नास्तीत्याह—न त्वमिति । पर्यायधर्मेण मरणविधिना आदत्त गृहीतवान् ॥ १६ ॥

हेतुमात्रमिदं तस्य विहितं भरतर्षभ।
यच्छन्ति भूतैर्भूतानि तदस्मै रूपमैश्वरम् ॥
कर्मसूत्रात्मकं विद्धि साक्षिणं शुभपापयोः।
सुखदुःखगुणोदर्कं कालं कालफलप्रदम् ॥ १९
तेषामपि महाबाहो कर्माणि परिचिन्तय।
विनाशहेतुकानि त्वं यैस्ते कालवशं गताः॥
आत्मनश्च विजानीहि नियतव्रतशासनम्।
यदा त्वमीदृशं कर्म विधिनाऽऽक्रम्य कारितः
त्वष्ट्रेव विहितं यन्त्रं यथा चेष्टयितुर्वशे।
कर्मणा कालयुक्तेन तथेदं चेष्टते जगत् ॥ २२
पुरुषस्य हि दृष्ट्वेमामुत्पत्तिमनिमित्ततः।
यदृच्छया विनाशं च शोकहर्षावनर्थकौ २३
व्यलीकमपि यत्त्वत्र चित्तवैतंसिकं तव।
तदर्थमिष्यते राजन्प्रायश्चित्तं तदाचर ॥ २४
इदं तु श्रूयते पार्थ युद्धे देवासुरे पुरा।
असुरा भ्रातरो ज्येष्ठा देवाश्चापि यवीयसः
तेषामपि श्रीनिमित्तं महानासीत्समुच्छ्रयः।
युद्धं वर्षसहस्राणि द्वात्रिंशदभवत्किल ॥ २६
एकार्णवां महीं कृत्वा रुधिरेण परिप्लुताम्
जघ्नुर्दैत्यांस्तथा देवास्त्रिदिवं चाभिलेभिरे २७
तथैव पृथिवीं लब्ध्वा ब्राह्मणा वेदपारगाः।
संश्रिता दानवानां वै साह्यार्थं दर्पमोहिताः
शालावृका इति ख्यातास्त्रिषु लोकेषु भारत
अष्टाशीतिसहस्राणि ते चापि विबुधैर्हताः
धर्मव्युच्छित्तिमिच्छन्तो येऽधर्मस्य प्रवर्तकाः
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो देवैर्दैत्या इवोल्बणाः
एकं हत्वा यदि कुले शिष्टानां स्यादनामयम्
कुलं हत्वा च राष्ट्रे च न तद्वृत्तोपघातकम्३१

अधर्मरूपो धर्मो हि कश्चिदस्ति नराधिप।
धर्मश्चाधर्मरूपोऽस्ति तच्च ज्ञेयं विपश्चिता३२
तस्मात्संस्तम्भयात्मानं श्रुतवानसि पाण्डव
देवैः पूर्वगतं मार्गमनुयातोऽसि भारत ॥ ३३
न हीदृशा गमिष्यन्ति नरकं पाण्डवर्षभ।
भ्रातॄनाश्वासयैतांस्त्वं सुहृदश्च परन्तप ॥ ३४
यो हि पापसमारम्भे कार्ये तद्भावभावितः।
कुर्वन्नपि तथैव स्यात्कृत्वा च निरपत्रपः ३५
तस्मिंस्तत्कलुषं सर्वं
समाप्तमिति शब्दितम्।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति
ह्रासो वा पापकर्मणः ॥ ३६
त्वं तु शुक्लाभिजातीयः परदोषेण कारितः।
अनिच्छमानः कर्मेदं कृत्वा च परितप्यसे३७
अश्वमेधो महायज्ञः प्रायश्चित्तमुदाहृतम्।
तमाहर महाराज विपाप्मैवं भविष्यसि ३८
मरुद्भिः सह जित्वाऽरीन्भगवान्पाकशासनः
एकैकं क्रतुमाहृत्य शतकृत्वः शतक्रतुः ॥ ३९
धूतपाप्मा जितस्वर्गो
लोकान्प्राप्य सुखोदयान्।
मरुद्गणैर्वृतः शक्रः
शुशुभे भासयन्दिशः ॥ ४०
स्वर्गे लोके महीयन्तमप्सरोभिः शचीपतिम्
ऋषयः पर्युपासन्ते देवाश्च विबुधेश्वरम् ४१
सेयं त्वामनुसंप्राप्ता विक्रमेण वसुन्धरा।
निर्जिताश्च महीपाला विक्रमेण त्वयाऽनघ
तेषां पुराणि राष्ट्राणि गत्वा राजन्सुहृद्वृतः।
भ्रातॄन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च स्वे स्वे राज्येऽभिषेचय

---

हेतुमात्रं निमित्तमात्रं इदं युद्धं तस्य तेन अस्मै अस्य ऐश्वरं नियन्तृत्वम् ॥१८॥ कर्मैव सूत्रं बन्धनं तदात्मकं तत्प्रधानं ईश्वरोऽपि कर्मानुसारेण फलं ददन्न वैषम्यनैर्घृण्यदोषौ भजतीत्यर्थः। कालं कर्मापि काल एवेत्यर्थः ॥ १९ ॥ **आत्मन इति।** शान्तस्यापि तव हिंस्रे कर्मणि प्रवृत्तिरिति कालस्यैवैतन्माहात्म्यमित्यर्थः ॥ २१ ॥ **पुरुषस्येति।** उत्पत्तिवद्विनाशोऽपि यादृच्छिक एवेति भावः ॥ २३ ॥ व्यलीकं अनृतं चित्तवैतंसिकं चित्तबन्धनं तदर्थं तन्निवृत्त्यर्थं मृषाभूतमपि हन्तृत्वादिकं यदि सत्यमिति मन्यसे तर्हि प्रायश्चित्तं कुर्वित्यर्थः ॥२४॥ यवीयसः यवीयांसः ॥२५॥ समुच्छ्रयो विरोधः ॥ २६ ॥ संश्रिताः मध्यस्थाः साह्यार्थं साहाय्यार्थम् ॥ २८ ॥ अधर्मस्येति च्छेदः ॥ ३० ॥ राष्ट्रेऽनामयं स्यात्तर्हि तदेकस्य कुलस्य वा हननं वृत्तोपघातकं धर्मनाशकं न भवति ॥ ३१ ॥ अधर्मरूपो धर्मवद्भाति धर्मः यथा-शालावृकाख्यब्राह्मणवधः। धर्मश्चाधर्मः यथा-कर्णपर्वोक्तसत्यवादिनः चैरेभ्यः कार्पटिकमार्गं प्रदिशतः ॥३२॥ तद्भावभावितः पापभावनां गतः कुर्वन्पापमिति वर्तते ॥३५॥ **तस्मिन्निति।** तस्य अपश्चात्तापिनो निर्लज्जस्य प्रायश्चित्तं वा तेन पापह्रासो वा नास्तीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ परदोषेण दुर्योधनदोषेण ॥ ३७ ॥ महीयन्तं महीयमानम् ॥ ४१ ॥ हतनाथानां स्त्रीणां शोकेन मम दोषोऽनन्त इत्युक्तं तत्राह—**तेषामिति** ॥४३॥

बालानपि च गर्भस्थान्सान्त्वेन समुदाचरन्
रञ्जयन्प्रकृतीः सर्वाः परिपाहि वसुन्धराम् ४४
कुमारो नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय
कामाशयो हि स्त्रीवर्गः शोकमेवं प्रहास्यसि
एवमाश्वासनं कृत्वा सर्वराष्ट्रेषु भारत।
यजस्व वाजिमेधेन यथेन्द्रो विजयी पुरा४६
अशोच्यास्ते महात्मानः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ
स्वकर्मभिर्गता नाशं कृतान्तबलमोहिताः ४७
अवाप्तः क्षत्रधर्मस्ते राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
रक्षस्व धर्मं कौन्तेय श्रेयान्यः प्रेत्य भारत४८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि प्रायश्चित्तीयोपाख्याने त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३३ ॥

## ३४

युधिष्ठिर उवाच।
कानि कृत्वेह कर्माणि प्रायश्चित्तीयते नरः
किं कृत्वा मुच्यते तत्र तन्मे ब्रूहि पितामह १
व्यास उवाच।
अकुर्वन्विहितं कर्म प्रतिषिद्धानि चाचरन्
प्रायश्चित्तीयते ह्येवं नरो मिथ्यानुवर्तयन् २
सूर्येणाभ्युदितो यश्च ब्रह्मचारी भवत्युत।
तथा सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनखी श्यावदन्नपि ३
परिवित्तिः परिवेत्ता ब्रह्मघ्नो यश्च कुत्सकः।
दिधिषूपपतिर्यः स्यादग्रेदिधिषुरेव च ॥ ४
अवकीर्णी भवेद्यश्च द्विजातिवधकस्तथा।
अतीर्थे ब्राह्मणस्त्यागी तीर्थे चाप्रतिपादकः५
ग्रामघाती च कौन्तेय मांसस्य परिविक्रयी
यश्चाग्नीनपविध्येत तथैव ब्रह्मविक्रयी ॥ ६
गुरुस्त्रीवधको यश्च पूर्वः पूर्वस्तु गर्हितः।
वृथापशुसमालम्भी गृहदाहस्य कारकः ७
अनृतेनोपवर्ती च प्रतिरोद्धा गुरोस्तथा।+
एतान्येनांसि सर्वाणि व्युत्क्रान्तसमयश्च यः
अकार्याणि तु वक्ष्यामि यानि तानि निबोध मे
लोकवेदविरुद्धानि तान्येकाग्रमनाः शृणु
स्वधर्मस्य परित्यागः परधर्मस्य च क्रिया।
अयाज्ययाजनं चैव तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम्
शरणागतसंत्यागो भृत्यस्याभरणं तथा।
रसानां विक्रयश्चापि तिर्यग्योनिवधस्तथा ॥
आधानादीनि कर्माणि शक्तिमान्न करोति यः
अप्रयच्छंश्च सर्वाणि नित्यदेयानि भारत॥
दक्षिणानामदानं च ब्राह्मणस्वाभिमर्शनम्।
सर्वाण्येतान्यकार्याणि प्राहुर्धर्मविदो जनाः
पित्रा विवदते पुत्रो यश्च स्याद्गुरुतल्पगः।
अप्रजायन्नरव्याघ्र भवत्यधार्मिको नरः ॥ १४
उक्तान्येतानि कर्माणि विस्तरेणेतरेण च।
यानि कुर्वन्नकुर्वंश्च प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ १५

---

कामाः आशेरतेऽस्मिन्कामाशयः पूर्णकाम इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भा० त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः३३

३४

**कानि कृत्वेति।** प्रायश्चित्तीयते प्रायश्चित्तेऽधिक्रियते ॥ १ ॥ मिथ्यानुवर्तयन्कापथ्यं चरन् ॥ २ ॥ सूर्येणाभ्युदितः यस्मिन् शयाने सति सूर्योऽभ्युदेतीत्यर्थः। अभिनिर्मुक्तः यस्मिन् शयान सति सूर्योऽस्तं गच्छतीत्यर्थः। अव्याधितं चेत्स्वपन्तमादित्योऽभ्युदियादित्यादित्यादि स्मृत्युक्तप्रायश्चित्तं स कुर्यादित्यर्थः। कुनखी श्यावदन्निति च 'स्वर्णहारी तु कुनखी सुरापः श्यावदन्तकः' इति कर्मविपाके जन्मान्तरीयदोषवतापि सूर्यारुणसंवादादावुपदिष्टं प्रायश्चित्तं कर्तव्यमित्युक्तम्॥३॥ अनूढे ज्येष्ठे ऊढवान् कनिष्ठः**परिवेत्ता परिवित्तिः** पूर्वजः। ज्येष्ठायामनूढायां कनिष्ठामूढवानग्रे**दिधिषुः। दिधिषूपपतिस्तु** कनिष्ठाविवाहोत्तरं ज्येष्ठामूढवान् ॥ ४ ॥ **अवकीर्णी** नष्टव्रतः। अतीर्थे अपात्रे त्यागी दाता ॥ ५ ॥ ग्रामघाती समूहहन्ता। याजीति पाठान्तरम्। मांसस्येति नृपश्वादेः अपविध्येत त्यजेत्। ब्रह्मविक्रयी भृतकाध्यापकः। राजविक्रयीति पाठे सोमविक्रयी राजानमाप्यायतीत्यादौ सोमे राजशब्दश्रवणात् ॥ ६ ॥ अभक्ष्यस्य लशुनादेः ॥ १० ॥ रसानां लवणगुडादीनाम् ॥११॥ नित्यदेयानि गोग्रासादीनि ॥१२॥ दक्षिणानां प्रतिश्रुतानाम् ॥१३॥ विवदते धनाद्यर्थं पित्रा सह कलहं करोति। अप्रजायन् धर्मपत्न्यां काले मैथुनमकुर्वन् ॥ १४ ॥ इतरेण संक्षेपेण ॥१५॥

एतान्येव तु कर्माणि क्रियमाणानि मानवाः
येषु येषु निमित्तेषु न लिप्यन्तेऽथ तान् शृणु
प्रगृह्य शस्त्रमायान्तमपि वेदान्तगं रणे।
जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत्
इति चाप्यत्र कौन्तेय मन्त्रो वेदेषु पठ्यते।
वेदप्रमाणविहितं धर्मं च प्रब्रवीमि ते ॥ १८
अपेतं ब्राह्मणं वृत्ताद्यो हन्यादाततायिनम्।
न तेन ब्रह्महा स स्यान्मन्युस्तन्मन्युमृच्छति॥
प्राणात्यये तथाऽज्ञानादाचरन्मदिरामपि।
आदेशितो धर्मपरैः पुनः संस्कारमर्हति॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं कौन्तेयाभक्ष्यभक्षणम्
प्रायश्चित्तविधानेन सर्वमेतेन शुद्ध्यति ॥ २१
गुरुतल्पं हि गुर्वर्थं न दूषयति मानवम्।
उद्दालकः श्वेतकेतुं जनयामास शिष्यतः॥
स्तेयं कुर्वंश्च गुर्वर्थमापत्सु न निबध्यते।
बहुशः कामकारेण न चेद्यः संप्रवर्तते ॥ २३
अन्यत्र ब्राह्मणस्वेभ्य आददानो न दुष्यति।
स्वयमप्राशिता यश्च न स पापेन लिप्यते॥
प्राणत्राणेऽनृतं वाच्यमात्मनो वा परस्य च
गुर्वर्थे स्त्रीषु चैव स्याद्विवाहकरणेषु च ॥ २५
नावर्तते व्रतं स्वप्ने शुक्रमोक्षे कथंचन।
आज्यहोमः समिद्धेऽग्नौ प्रायश्चित्तं विधीयते
पारिवित्त्यं तु पतिते नास्ति प्रव्राजिते तथा
भिक्षितेः पारदार्यं च तद्धर्मस्य न दूषकम्॥
वृथा पशुसमालम्भं नैव कुर्यान्न कारयेत्।
अनुग्रहः पशूनां हि संस्कारो विधिनोदितः
अनर्हे ब्राह्मणे दत्तमज्ञानात्तन्न दूषकम्।
सत्काराणां तथा तीर्थे नित्यं वा प्रतिपादनं
स्त्रियास्तथाऽपचारिण्या
निष्कृतिः स्याददूषिका।
अपि सा पूयते तेन
न तु भर्ता प्रदुष्यति॥ ३०
तत्त्वं ज्ञात्वा तु सोमस्य
विक्रयः स्याददोषवान्।
असमर्थस्य भृत्यस्य
विसर्गः स्याददोषवान्।
वनदाहो गवामर्थे
क्रियमाणो न दूषकः॥ ३१
उक्तान्येतानि कर्माणि यानि कुर्वन्न दुष्यति
प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामि विस्तरेणैव भारत॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि प्रायश्चित्तीये चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः* ॥ ३४ ॥

---

एतानि स्वधर्मस्य परित्याग इत्यादीनि कर्माणि क्रियमाणानि ये मानवाः उपजीवन्त इति शेषः ॥१६॥ जिघांसां हन्तुमिच्छावान् इयात् गच्छेत् ॥ १७ ॥ मन्त्रो मन्युरकार्षीन्नमो नम इत्यादिर्मन्यवे स्वाहेत्यन्तः ॥१८॥ मन्युः क्रोधः तन्मन्युं शत्रोः क्रोधं प्रति ऋच्छति गच्छति क्रोध एव तं प्रतीपीभूय परशरीरद्वारा हन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ असाध्यरोगादिना प्राणात्यये उपस्थिते जीवनार्थं मदिरामपि आचरन्पिबन्धर्मपरैः चिकित्सकैः आदेशित उपदिष्टः ॥ २० ॥ गुर्वर्थे गुर्वाज्ञया ॥ २२॥ व्रतं नावर्तते पुनरुपनयनं न कर्तव्यमित्यर्थः। आज्यहोमः पुनर्मामैत्विन्द्रियमिति मन्त्रेण ॥ २३ ॥ पतिते ज्येष्ठभ्रातरि भिक्षिते धर्मार्थमपि रेतः सिञ्चेति स्त्रिया प्रार्थिते सति ॥ २७ ॥ वृथा श्राद्धादिनिमित्तं विना। संस्कारः पावित्र्यम्।

'यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि शतं समाः।
मांसानि च न खादेत द्वयमेतत्समं स्मृतम्' ॥

इति स्मृतेः ॥ २८ ॥ तीर्थे सत्काराणामज्ञानादप्रतिपादनमपि न दूषकम् ॥ २९ ॥ अपचारिण्याः व्यभिचारिण्याः निष्कृतिः धिक्करणं दासीवत् अन्नाच्छादनमात्रेण दूरस्थापनं तया सह रतिभोजनादिवर्जनं चेत्यर्थः ॥ ३० ॥ सोमस्य तत्त्वं अनेन तृप्ता देवा मनुष्यान्कामैरभिवर्षन्तीति लोकद्वयोपकारणकोऽयं सोम इति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३४ ॥

* अस्मिन्नध्यायेऽष्टमश्लोकपूर्वार्धानन्तरमिदं श्लोकद्वयमधिकं खपुस्तके--

स्वदत्तस्यापहर्ता च परदत्तनिरोधकः।
वाग्दत्तं च मनोदत्तं धारादत्तं च यो हरेत्।
पाकभेदेन भोक्ता च भुञ्जानस्याप्यनादरः।
स्वजनैः कलहं चैवं आश्रितानामरक्षणम्।

# ३५

व्यास उवाच ।

तपसा कर्मणा चैव प्रदानेन च भारत ।
पुनाति पापं पुरुषः पुनश्चेन्न प्रवर्तते ॥ १
एककालं तु भुञ्जीत चरन्भैक्ष्यं स्वकर्मकृत् ।
कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचारी सदोत्थितः
अनसूयुरधःशायी कर्म लोके प्रकाशयन् ।
पूर्णैर्द्वादशभिर्वर्षैर्ब्रह्महा विप्रमुच्यते ॥ ३
लक्ष्यः शस्त्रभृतां वा स्या-
द्विदुषामिच्छयाऽऽत्मनः ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा
समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ॥ ४
जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ५
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥
षड्भिर्वर्षैः कृच्छ्रभोजी ब्रह्महा पूयते नरः ।
मासे मासे समश्नंस्तु त्रिभिर्वर्षैः प्रमुच्यते ॥७
संवत्सरेण मासाशी पूयते नात्र संशयः ।
तथैवोपवसन् राजन् स्वल्पेनापि प्रपूयते ॥ ८
क्रतुना चाश्वमेधेन पूयते नात्र संशयः ।
ये चाप्यवभृथस्नाताः केचिदेवंविधा नराः ॥
ते सर्वे धूतपाप्मानो भवन्तीति परा श्रुतिः
ब्राह्मणार्थे हतो युद्धे मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १०
गवां शतसहस्रं तु पात्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ।
ब्रह्महा विप्रमुच्येत सर्वपापेभ्य एव च ॥ ११
कपिलानां सहस्राणि यो दद्यात्पञ्चविंशतिम्
दोग्ध्रीणां स च पापेभ्यः सर्वेभ्यो विप्रमुच्यते
गोसहस्रं सवत्सानां
दोग्ध्रीणां प्राणसंशये ।
साधुभ्यो वै दरिद्रेभ्यो
दत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ १३
शतं वै यस्तु काम्बोजान्ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति
नियतेभ्यो महीपाल स च पापात्प्रमुच्यते ॥
मनोरथं तु यो दद्यादेकस्मा अपि भारत ।
न कीर्तयेत दत्वा यः स च पापात्प्रमुच्यते ॥
सुरापानं सकृत्कृत्वा योऽग्निवर्णां सुरां पिबेत्
स पावयत्यथात्मानमिह लोके परत्र च ॥१६
मरुप्रपातं प्रपतन् ज्वलनं वा समाविशन् ।
महाप्रस्थानमातिष्ठन्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
बृहस्पतिसवेनेष्ट्वा सुरापो ब्राह्मणः पुनः ।
समितिं ब्राह्मणो गच्छेदिति वै ब्राह्मणः श्रुतिः
भूमिप्रदानं कुर्याद्यः सुरां पीत्वा विमत्सरः ।
पुनर्न च पिबेद्राजन्संस्कृतः स च शुध्यति ॥
गुरुतल्पी शिलां तप्तामायसीमभिसंविशेत् ।
अवकृत्यात्मनः शेफं प्रव्रजेदूर्ध्वदर्शनः ॥ २०
शरीरस्य विमोक्षेण मुच्यते कर्मणोऽशुभात्
कर्मभ्यो विप्रमुच्यन्ते यत्ताः संवत्सरं स्त्रियः
महाव्रतं चरेद्यस्तु दद्यात्सर्वस्वमेव तु ।
गुर्वर्थे वा हतो युद्धे स मुच्येत्कर्मणोऽशुभात्

---

३५

साधारणानि प्रायश्चित्तानि तावदाह—**तपसेति** । तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिना । कर्मणा यज्ञादिना प्रदानेन गवादीनां पुनाति शोधयति ॥ १ ॥ स्वकर्मकृद्दासादिरहितः ॥ २ ॥ कर्म ब्रह्महत्याम् ॥ ३ ॥ **लक्ष्य इति** । कामकारविषये विदुषां प्रायश्चित्तोपदेष्टॄणां आत्मनो वा इच्छया वैदुष्ये सति अकामतस्त्वाह-**त्रिरित्यादिना** ॥ ४ ॥ अवाक्शिराः यं कश्चिद्वेदं जपन् योजनानां शतं त्रिर्व्रजेत् शतत्रययोजनं पादचारेण तीर्थयात्रायां वेदं जपन्मुच्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ कृच्छ्रभोजी कृच्छ्ररीत्या सातत्येन भुञ्जानः ' त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् । त्र्यहं परं च नाश्नीयात् । ' इति विधिना एकैकः कृच्छ्रो द्वादशदिनात्मको ज्ञेयः । मासे मासे इति तस्यैवातिदेशः । सप्ताहं प्रातः-सप्ताहं सायंसप्ताह-मयाचितं सप्ताहमनशनं विषमेषु मासेषु स एवाष्टाहक्रमेण समेषु मासेषु प्रकार एवं वर्षत्रयमिति द्वितीयः ॥ ७ ॥ **मासाशीति** । मासं सायं मासं प्रातर्मासमयाचितं मासमुपवास इति क्रमेण वर्षं वा नयेत् । मासादधिकेन स्वल्पेनापि कालेन उपवसन् जलमात्रेण वर्तयन् मुच्यते ॥ ८ ॥ ' सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते ' इति **श्रुतिः** ॥ ९ ॥ काम्बोजान् जात्यश्वान् कम्बुदेशजान् ॥ १४ ॥ मनोरथं वाञ्छितं गृहक्षेत्रादि ॥ १५ ॥ मरुप्रपातं निर्जलदेशे पर्वताग्रात्पतनं महाप्रस्थानं केदारे हिमवदारोहणम् ॥१७॥ समितिं गच्छेदित्यस्य निष्पापः सन् ब्राह्मणः सभामारोढुं योग्यो भवतीत्यर्थः ॥१८॥ शेफं शिश्नम् ॥२०॥ यत्ताः त्यक्ताहारविहाराः शुश्रूष्वेव पापेषु सत्सु मुच्यन्ते ॥ २१ ॥ महाव्रतं मासमात्रं जलस्यापि त्यागः ॥ २२ ॥

अनृतेनोपवर्ती चेत्प्रतिरोद्धा गुरोस्तथा ।
उपाहृत्य प्रियं तस्मै तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥
अवकीर्णिनिमित्तं तु
ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।
गोचर्मवासाः षण्मासां-
स्तथा मुच्येत किल्बिषात् ॥ २४
परदारापहारी तु परस्यापहरन्वसु ।
संवत्सरं व्रती भूत्वा तथा मुच्येत किल्बिषात्
धनं तु यस्यापहरेत्तस्मै दद्यात्समं वसु ॥ २२
विविधेनाभ्युपायेन तदा मुच्येत किल्बिषात्
कृच्छ्राद्द्वादशरात्रेण संयतात्मा व्रते स्थितः ।
परिवेत्ता भवेत्पूतः परिवित्तिस्तथैव च ॥२७
निवेश्यं तु पुनस्तेन सदा तारयता पितॄन् ।
न तु स्त्रिया भवेद्दोषो न तु सा तेन लिप्यते
भोजनं ह्यन्तराशुद्धं चातुर्मास्ये विधीयते ।
स्त्रियस्तेन प्रशुध्यन्ति इति धर्मविदो विदुः ॥
स्त्रियस्त्वाशंकिताः पापा
नोपगम्या विजानता ।
रजसा ता विशुध्यन्ते
भस्मना भाजनं यथा ॥ ३०
पादजोच्छिष्टकांस्यं यद्गवा घ्रातमथापि वा
गंडूषोच्छिष्टमपि वा विशुध्येद्दशभिस्तु तत्
चतुष्पात्सकलो धर्मो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
पादावकृष्टो राजन्ये तथा धर्मो विधीयते ॥
तथा वैश्ये च शूद्रे च पादः पादो विधीयते
विद्यादेवंविधेनैषां गुरुलाघवनिश्चयम् ॥ ३३
तिर्यग्योनिवधं कृत्वा द्रुमांश्छित्त्वेतरान्बहून्
त्रिरात्रं वायुभक्षः स्यात्कर्म च प्रथयन्नरः ॥
अगम्यागमने राजन्प्रायश्चित्तं विधीयते ।
आर्द्रवस्त्रेण षण्मासान्विहार्यं भस्मशायिना
एष एव तु सर्वेषामकार्याणां विधिर्भवेत् ।
ब्राह्मणोक्तेन विधिना दृष्टान्तागमहेतुभिः ॥३६
सावित्रीमप्यधीयीत शुचौ देशे मिताशनः ।
अहिंसो मन्दकोऽजल्पो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः
अहःसु सततं तिष्ठेदभ्याकाशं निशां स्वपन्
त्रिरह्नि त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत्
स्त्रीशूद्रं पतितं चापि नाभिभाषेद्व्रतान्वितः ।
पापान्यज्ञानतः कृत्वा मुच्येदेवंव्रतो द्विजः ॥
शुभाशुभफलं प्रेत्य लभते भूतसाक्षिकम् ।
अतिरिच्येत यो यत्र तत्कर्ता लभते फलम्
तस्माद्दानेन तपसा कर्मणा च फलं शुभम्
वर्धयेदशुभं कृत्वा यथा स्यादतिरेकवान् ॥
कुर्याच्छुभानि कर्माणि
निवर्तेत्पापकर्मणः ।
दद्यान्नित्यं च वित्तानि
तथा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ४२
अनुरूपं हि पापस्य प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ।
महापातकवर्जं तु प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ४३

---

**कृच्छ्रादिति** । एतच्च ज्येष्ठस्यापि दाराग्निहोत्रकरणानन्तरं द्रष्टव्यम् ॥२७॥ तेन कनिष्ठेन निवेश्यं विवाहान्तरं कर्तव्यम् । अन्यथा शुद्धिर्नास्तीत्यर्थः ॥ २८ ॥ अन्तरा भोजनं धारणापारणव्रतेन मासचतुष्टयकृतेन शुध्यन्ति महापापयोगे ॥ २९ ॥ अन्यत्र तु सकृद्व्यभिचारमात्रे मानसिके वा आह—**स्त्रिय इति** ॥ ३० ॥ प्रसङ्गाद्भाजनशुद्धिमाह—**पादजेति** । शूद्रस्य उच्छिष्टं कांस्यं पात्रं तथा तदेव गवाघ्रातं तथा गण्डूषपात्रं ब्राह्मणस्यापि पूतानि दशभिः शोधनैः शुद्ध्यन्ति । तानि पञ्चगव्येन मृत्तोयैर्भस्मनाऽऽम्लेन वह्निनेति ॥ ३१ ॥ विधीयते पादः पादोपकृष्टः इत्यर्थः । वैश्यस्य द्विपादः शूद्रस्य पादमात्रः । धर्मः शौचादिः । प्रायश्चित्तादेरधिकस्य विधानात् ॥ ३३ ॥ **एष इति** । भस्मसाहचर्याच्छतरुद्रीयजपोऽप्यत्र द्रष्टव्यः । यदाह **वृद्धशातातपः—**

'मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा
स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा ।
भस्मच्छन्नो भस्मशय्यां शयानो
रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः ' ॥

इति । पापानां गौरवलाघवानुसारेण दीक्षा संवत्सरं षण्मासं त्रिमासं मासं द्वादशाहमिति यथायोग्य ज्ञेया । तत्र यथा कूष्माण्डहोमे यो योनौ रेतः सिञ्चतीति पारदार्यं प्रकृत्य वर्ष–मास–चतुर्विंशतिरात्र–द्वादशरात्र–षड्रात्र–त्रिरात्रपक्षा उक्ताः यावदेनो दीक्षामुपैतीति च पापानुसारित्वं दीक्षायामुक्तं तद्दृष्टान्तेन सर्वत्र बोध्यम् । दृष्टान्तभूतो य आगमस्तत्रोक्तैर्हेतुभिर्यावदेन इत्याद्यैः ॥ ३६ ॥ मन्द इव मन्दकः रागद्वेषमानापमानशून्यः अजल्प इति च्छेदः ॥ ३७ ॥ तिष्ठेदित्युपवेशनादेर्व्यावृत्तिः अभ्याकाशं निरावरणे स्थण्डिलादौ अहःसु इति बहुवचनादिनापि पापानुसारेण व्यवरणामहां गणना कल्पनीया ॥ ३८ ॥ यत्र पुण्ये पापे वाऽतिरिच्यत योऽधिको भवति स इतरेणेतरदभिभूयातिरिक्तस्य फलं भुंक्त इत्यर्थः ॥ ४० ॥ व्रतादिरूपं प्रायश्चित्तं महापातकवर्जं ज्ञेयम् ॥ ४३ ॥

भक्ष्याभक्ष्येषु चान्येषु वाच्यावाच्ये तथैव च
अज्ञानज्ञानयो राजन् विहितान्यनुजानतः ॥
जानता तु कृतं पापं गुरु सर्वं भवत्युत ।
अज्ञानात्स्वल्पको दोषः प्रायश्चित्तं विधीयते
शक्यते विधिना पापं यथोक्तेन व्यपोहितुम्
आस्तिके श्रद्दधाने च विधिरेष विधीयते ४६
नास्तिकाश्रद्दधानेषु पुरुषेषु कदाचन ।
दम्भद्वेषप्रधानेषु विधिरेष न दृश्यते ॥ ४७
शिष्टाचारश्च शिष्टश्च धर्मो धर्मभृतां वर ।
सेवितव्यो नरव्याघ्र प्रेत्येह च सुखेप्सुना ४८
स राजन्मोक्ष्यसे पापात्तेन पूर्वेण हेतुना ।
प्राणार्थे वा धनेनैषामथवा नृपकर्मणा ॥ ४९
अथवा ते घृणा काचित्प्रायश्चित्तं चरिष्यसि
मा त्वेवानार्यजुष्टेन मन्युना निधनं गमः ५०
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तो भगवता धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तेन प्रत्युवाच तपोधनम् ५१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि प्रायश्चित्तीये पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

युधिष्ठिर उवाच ।
किं भक्ष्यं चाप्यभक्ष्यं च
किं च देयं प्रशस्यते ।
किं च पात्रमपात्रं वा
तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
व्यास उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
सिद्धानां चैव संवादं मनोश्चैव प्रजापतेः २
ऋषयस्तु व्रतपराः समागम्य पुरा विभुम् ।
धर्मं पप्रच्छुरासीनमादिकाले प्रजापतिम् ३
कथमन्नं कथं पात्रं दानमध्ययनं तपः ।
कार्याकार्यं च यत्सर्वं शंस वै त्वं प्रजापते ४
तैरेवमुक्तो भगवान्मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।
शुश्रूषध्वं यथावृत्तं धर्मं व्याससमासतः ५
अनादेशे जपो होम उपवासस्तथैव च ।
आत्मज्ञानं पुण्यनद्यो यत्र प्रायश्च तत्पराः ६
अनादिष्टं तथैतानि पुण्यानि धरणीभृतः ।
सुवर्णप्राशनमपि रत्नादिस्नानमेव च ॥ ७
देवस्थानाभिगमनमाज्यप्राशनमेव च ।
एतानि मेध्यं पुरुषं कुर्वन्त्याशु न संशयः ॥ ८
न गर्वेण भवेत्प्राज्ञः कदाचिदपि मानवः ।
दीर्घमायुरथेच्छन्हि त्रिरात्रं चोष्णपो भवेत् ९
अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तपः ।
अहिंसा सत्यमक्रोध इज्या धर्मस्य लक्षणम्
स एव धर्मः सोऽधर्मो देशकाले प्रतिष्ठितः ।
आदानमनृतं हिंसा धर्मो ह्यावस्थिकः स्मृतः
द्विविधौ चाप्युभावेतौ
धर्माधर्मौ विजानताम् ।
अप्रवृत्तिः प्रवृत्तिश्च
द्वैविध्यं लोकवेदयोः ॥ १२

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३५॥

३६

किं भक्ष्यमिति ॥ १ ॥ प्रजापतिं मनुम् ॥ ३ ॥ कथं केन प्रकारेण अन्नमदनीयं किंद्रव्यकं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ व्यासो विस्तरः ॥ ५ ॥ अनादेशे विशेषतोऽनुक्ते दोषे यत्र देशे तत्पराः जपादिपराः प्रायः बहुशः सन्ति सोऽपि गङ्गादिवत्पावन इत्यर्थः । यत्रोपाया इति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ ६ ॥ तथा जपादिवत् पुण्यानि एतानि वक्ष्यमाणानि धरणीभृतः पर्वता ब्रह्मगिरिप्रभृतयः आदिपदात्सुवर्णस्नानादि अनादिष्टप्रायश्चित्तं सामान्यमित्यर्थः ॥ ७ ॥ गर्वेण युक्तो न भवेत् पूज्यां नावगणयेत् । अवगणने तु त्रिरात्रमुष्णपो भवेदिति तप्तकृच्छ्रं धर्मशास्त्रोक्तं कुर्यादित्यर्थः । भवेदित्यत्र पिबेदिति पाठे प्रकृत्य सुरामित्यध्याहृत्य सुरां न पिबेत् । पाने तु उष्णपो भवेत्सुरामेवोष्णां कृत्वा पिबेदिति केचित् ॥ ९ ॥ तप उपवासादि ॥ १० ॥ आदानं स्तेयं आवस्थिकः अवस्थाविशेषे भवः प्राणात्ययादौ अधर्मस्यापि स्तेयादेर्धर्मत्वं धर्मस्याप्यस्तेयादेरधर्मत्वमित्यर्थः ॥ ११ ॥ वैदिक्यौ प्रवृत्त्यप्रवृत्ती मर्त्यत्वामृतत्वप्रदे लौकिक्यौ तु ते शुभे चेत् शुभफले अशुभे चेदशुभफले इत्याह द्वाभ्याम्–द्विविधाविति ॥१२॥

अप्रवृत्तेरमर्त्यत्वं मर्त्यत्वं कर्मणः फलम् ।
अशुभस्याशुभं विद्याच्छुभस्य शुभमेव च ।
एतयोश्चोभयोः स्यातां शुभाशुभतया तथा१३
दैवं च दैवसंयुक्तं प्राणश्च प्राणदश्च ह ।
अपेक्षापूर्वकरणादशुभानां शुभं फलम् १४
ऊर्ध्वं भवति संदेहादिह दृष्टार्थमेव च ।
अपेक्षापूर्वकरणात्प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १५
क्रोधमोहकृते चैव दृष्टान्तागमहेतुभिः ।
शरीराणामुपक्लेशो मनसश्च प्रियाप्रिये ।
तदौषधैश्च मन्त्रैश्च प्रायश्चित्तैश्च शाम्यति १६
उपवासमेकरात्रं दण्डोत्सर्गे नराधिपः ।
विशुद्ध्येदात्मशुद्ध्यर्थं त्रिरात्रं तु पुरोहितः १७
क्षयं शोकं प्रकुर्वाणो न म्रियेत यदा नरः ।
शस्त्रादिभिरुपाविष्टस्त्रिरात्रं तत्र निर्दिशेत् ॥
जातिश्रेण्यधिवासानां कुलधर्मांश्च सर्वतः ।
वर्जयन्ति च ये धर्मं तेषां धर्मो न विद्यते १९
दश वा वेदशास्त्रज्ञास्त्रयो वा धर्मपाठकाः ।
यद्ब्रूयुः कार्य उत्पन्ने स धर्मो धर्मसंशये २०
अनड्वान्मृत्तिका चैव तथा क्षुद्रपिपीलिकाः
श्लेष्मातकस्तथा विप्रैरभक्ष्यं विषमेव च २१

अभक्ष्या ब्राह्मणैर्मत्स्याः
शल्कैर्ये वै विवर्जिताः ।
चतुष्पात्कच्छपादन्यो
मण्डूका जलजाश्च ये ॥ २२

भासा हंसाः सुपर्णाश्च
चक्रवाकाः प्लवा बकाः ।
काको मद्गुश्च गृध्रश्च
श्येनोलूकस्तथैव च ॥ २३

क्रव्यादा दंष्ट्रिणः सर्वे चतुष्पात्पक्षिणश्च ये ।
येषां चोभयतो दन्ताश्चतुर्दंष्ट्राश्च सर्वशः २४
एडकाश्वखरोष्ट्रीणां सूतिकानां गवामपि ।
मानुषीणां मृगीणां च न पिबेद्ब्राह्मणः पयः
प्रेतान्नं सूतिकान्नं च यच्च किंचिदनिर्दशम् ।
अभोज्यं चाप्यपेयं च धेनोर्दुग्धमनिर्दशम्२६
राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुः सुवर्णकारान्नमवीरायाश्च योषितः २७
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं गणिकान्नमथेन्द्रियम्
मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितान्नं च सर्वशः
दीक्षितस्य कदर्यस्य क्रतुविक्रयिकस्य च ।
तक्षणश्चर्मावकर्तुश्च पुंश्चल्या रजकस्य च ॥२९
चिकित्सकस्य यच्चान्नमभोज्यं रक्षिणस्तथा
गणग्रामाभिशस्तानां रङ्गस्त्रीजीविनां तथा
परिवित्तीनां पुंसां च बन्दिद्यूतविदां तथा ।
वामहस्ताहृतं चान्नं भक्तं पर्युषितं च यत् ॥
सुरानुगतमुच्छिष्टमभोज्यं शेषितं च यत् ।
पिष्टस्य चेक्षुशाकानां विकाराः पयसस्तथा
सक्तुधानाकरम्भाणां नोपभोग्याश्चिरस्थिताः ।
पायसं कृसरं मांसमपूपाश्च वृथाकृताः ॥ ३३

---

एतयोर्लौकिकयोः फले अपि कारणानुरूपे इत्यर्थः ॥ १३ ॥ दैवयुक्तं शास्त्रीयं कर्म प्राणः जीवनं एतेषां चतुर्णामपेक्षापूर्वं यत्किंचित्क्रियते तर्हि अशुभानां नीचानामपि पुंसां तस्य फलं शुभं भवति ॥ १४ ॥ **ऊर्ध्वमिति ।** सत्यपि सन्देहे यल्लोकविगानपरिहारार्थे कृतं नित्यादि यच्च केवलं दृष्टार्थं कृतं श्येनादि तत्रोभयत्रापि ॥ १५ ॥ क्रोधादिना यन्मनसः प्रियमप्रियं कृतं तत्र दृष्टान्तागमहेतुभिः पूर्वोक्तैर्यावदेन इत्याद्यैः प्रमाणैर्देहस्य शोषणं उपवासादिकं प्रायश्चित्तं कर्तव्यम् । औषधैर्हविष्याशनैः मन्त्रैश्च पवित्रजपैः चादन्यदपि तीर्थाटनश्रमादिभिः तत्पापं शाम्यतीति सार्धम् ॥ १६ ॥ क्षयं पुत्रादिमरणनिमित्तं आत्मवधार्थं प्रवृत्तो न म्रियेत चेत् त्रिरात्रमुपवासं चरेत् ॥१८॥ जातिर्ब्राह्मणत्वादिः । श्रेणी गृहस्थादीनां पंक्तिः । अधिवासः जन्मभूमिः जात्यादिधर्मांश्च ये वर्जयन्ति तेषां धर्मः प्रायश्चित्तादिस्वरूपो न विद्यते ॥ १९ ॥ पाठकाः शोधकाः विचारका इति यावत् । कार्ये प्रायश्चित्तनिमित्ते दोषे ॥ २० ॥ अभक्ष्यानाह चतुर्भिः— **अनड्वानिति** ॥ २१ ॥ एडका मेषी । सूतिकानामनिर्दशानाम् ॥२५॥ अभोज्यं पायसाद्यन्तर्गतम् ॥२६॥ अवीरायाः पतिपुत्रहीनायाः ॥ २७ ॥ इंद्रियं शुक्रं गणिकादित्रयाणामन्नम् ॥ २८ ॥ दीक्षितस्य अग्नीषोमीयवपाहोमात्प्राक् न भोक्तव्यं, कदर्यः धनव्ययभयाद्भोगत्यागहीनः ॥ २९ ॥ रक्षिणः ग्रामपालकस्य सामादिरक्षिणो वा ॥ ३० ॥ शेषितं कुटुम्बाय अदत्वाऽऽत्मार्थं रक्षितम् ॥ ३२ ॥ धानाः भृष्टयवाः, करंभाः दधिसक्तवः सक्त्वादीनां विकाराः नष्टाः वस्तवादयः, कृसरं तिलमिश्र ओदनः । वृथाकृताः देवताद्युद्देशं विना कृताः ॥ ३३ ॥

अपेयाश्चाप्यभक्ष्याश्च ब्राह्मणैर्गृहमेधिभिः ।
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् गृह्यांश्च देवताः ॥
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ।
यथा प्रव्रजितो भिक्षुस्तथैव स्वे गृहे वसेत् ॥
एवंवृत्तः प्रियैर्दारैः संवसन् धर्ममाप्नुयात् ।
न दद्याद्यशसे दानं न भयान्नोपकारिणे ॥
न नृत्यगीतशीलेषु हासकेषु च धार्मिकः ।
न मत्ते चैव नोन्मत्ते न स्तेने न च कुत्सके ॥
न वाग्घीने विवर्णे वा नाङ्गहीने न वामने ।
न दुर्जने दौष्कुले वा व्रतैर्यो वा न संस्कृतः
न श्रोत्रियमृते दानं ब्राह्मणे ब्रह्मवर्जिते ।
असम्यक् चैव यद्दत्तमसम्यक् च प्रतिग्रहः ।
उभयं स्यादनर्थाय दातुरादातुरेव च ॥ ३९
यथा खदिरमालम्ब्य शिलां वाऽप्यर्णवं तरन्
मज्जेत मज्जतस्तद्वद्दाता यश्च प्रतिग्रही ॥ ४०
काष्ठैरार्द्रैर्यथा वह्निरुपस्तीर्णो न दीप्यते ।
तपःस्वाध्यायचारित्रैरेवं हीनः प्रतिग्रही ॥
कपाले यद्वदापः स्युः श्वदतौ च यथा पयः ।
आश्रयस्थानदोषेण वृत्तहीने तथा श्रुतम् ॥
निर्मन्त्रो निर्वृतो यः स्यादशास्त्रज्ञोऽनसूयकः
अनुक्रोशात्प्रदातव्यं हीनेष्वव्रतिकेषु च ॥४३
न वै देयमनुक्रोशाद्दीनार्तातुरकेष्वपि ।
आप्ताचरित इत्येव धर्म इत्येव वा पुनः ॥ ४४
निष्कारणं स्मृतं दत्तं ब्राह्मणे ब्रह्मवर्जिते ।
भवेदपात्रदोषेण न चात्रास्ति विचारणा ॥
यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥
यथा षंढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला
शकुनिर्वाप्यपक्षः स्यान्निर्मन्त्रो ब्राह्मणस्तथा
ग्रामधान्यं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ।
यथा हुतमनग्नौ च तथैव स्यान्निराकृतौ ॥४८
देवतानां पितॄणां च हव्यकव्यविनाशकः ।
शत्रुरर्थहरो मूर्खो न लोकान्प्राप्तुमर्हति ॥४९
एतत्ते कथितं सर्वं यथावृत्तं युधिष्ठिर ।
समासेन महद्ध्येतच्छ्रोतव्यं भरतर्षभ ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि व्यासवाक्ये षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

युधिष्ठिर उवाच ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्
विस्तरेण महामुने ।
राजधर्मान् द्विजश्रेष्ठ
चातुर्वर्ण्यस्य चाखिलान् ॥ १
आपत्सु च यथा नीतिः प्रणेतव्या द्विजोत्तम
धर्म्यमालक्ष्य पन्थानं विजयेयं कथं महीम् ॥
प्रायश्चित्तकथा ह्येषा भक्ष्याभक्ष्यविवर्जिता ।
कौतूहलानुप्रवणा हर्षं जनयतीव मे ॥ ३
धर्मचर्या च राज्यं च नित्यमेव विरुध्यते ।
एवं मुह्यति मे चेतश्चिन्तयानस्य नित्यशः ॥
वैशम्पायन उवाच ।
तमुवाच महाराज व्यासो वेदविदां वरः ।
नारदं समभिप्रेक्ष्य सर्वज्ञानां पुरातनम् ॥५
श्रोतुमिच्छसि चेद्धर्मं निखिलेन नराधिप ।
प्रैहि भीष्मं महाबाहो वृद्धं कुरुपितामहम् ॥
स ते धर्मरहस्येषु संशयान्मनसि स्थितान् ।
छेत्ता भागीरथीपुत्रः सर्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ ७

---

चात् पेयाः पीयूषादयः॥३४॥हासकेषु परिहासपरेषु भण्डेषु ॥३७॥वाग्घीने मूके मूर्खे वा॥३८॥ श्वदतौ शुनकचर्ममये कोशे ॥ ४२ ॥ अनसूयकः गुणेषु दोषारोपं अकुर्वन् अनुक्रोशात् दयया ॥ ४३ ॥ आप्तचरितः इष्टकारीति बुद्धया धर्मबुद्धया वा निर्मन्त्रे न देयमित्याह-**न वा इति**॥४४॥ अत्रैव हेतुमाह-**निष्कारणमिति** । निष्कारणं निष्फलं दोषेण युक्त इति शेषः ॥४५॥ निराकृतौ मूर्खे ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६॥

३७

**श्रोतुमिति** ॥ १ ॥ भक्ष्याभक्ष्यविवर्जिता उपवासान्मिका कौतूहलेन प्रसङ्गेन अनुप्रवणा अभिमुखा ॥३॥ प्रैहि प्रयाहि ॥ ६ ॥

जनयामास यं देवी दिव्या त्रिपथगा नदी।
साक्षाद्ददर्श यो देवान्सर्वानिन्द्रपुरोगमान्॥
बृहस्पतिपुरोगांस्तु देवर्षीनसकृत्प्रभुः।
तोषयित्वोपचारेण राजनीतिमधीतवान्॥९
उशना वेद यच्छास्त्रं यश्च देवगुरुर्द्विजः।
यश्च धर्मं सवैयाख्यं प्राप्तवान्कुरुसत्तमः॥ १०
भार्गवाच्च्यवनाच्चापि वेदानङ्गोपबृंहितान्।
प्रतिपेदे महाबाहुर्वसिष्ठाच्चरितव्रतः॥ ११
पितामहसुतं ज्येष्ठं कुमारं दीप्ततेजसम्।
अध्यात्मगतितत्त्वज्ञमुपाशिक्षत यः पुरा॥१२
मार्कण्डेयमुखात्कृत्स्नं यतिधर्ममवाप्तवान्।
रामादस्त्राणि शक्राच्च प्राप्तवान्पुरुषर्षभः॥१३
मृत्युरात्मेच्छया यस्य जातस्य मनुजेष्वपि।
तथाऽनपत्यस्य सतः पुण्यश्लोकादिविश्रुताः
यस्य ब्रह्मर्षयः पुण्या नित्यमासन्सभासदः।
यस्य नाविदितं किञ्चिज्ज्ञानयज्ञेषु विद्यते॥
स ते वक्ष्यति धर्मज्ञः सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्ववित्।
तमभ्येहि पुरा प्राणान्स विमुञ्चति धर्मवित्
एवमुक्तस्तु कौन्तेयो दीर्घप्रज्ञो महामतिः।
उवाच वदतां श्रेष्ठं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥

युधिष्ठिर उवाच।

वैशसं सुमहत्कृत्वा ज्ञातीनां रोमहर्षणम्।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पृथिवीनाशकारकः॥
घातयित्वा तमेवाजौ छलेनाजिह्मयोधिनम्
उपसंप्रष्टुमर्हामि तमहं केन हेतुना॥ १९

वैशम्पायन उवाच।

ततस्तं नृपतिश्रेष्ठं चातुर्वर्ण्यहितेप्सया।
पुनराह महाबाहुर्यदुश्रेष्ठो महामतिः॥ २०

वासुदेव उवाच।

नेदानीमतिनिर्बन्धं शोके त्वं कर्तुमर्हसि।
यदाह भगवान्व्यासस्तत्कुरुष्व नृपोत्तम॥
ब्राह्मणास्त्वां महाबाहो भ्रातरश्च महौजसः
पर्जन्यमिव घर्मान्ते नाथमाना उपासते॥२२
हतशिष्टाश्च राजानः कृत्स्नं चैव समागतम्।
चातुर्वर्ण्यं महाराज राष्ट्रं ते कुरुजाङ्गलम्॥
प्रियार्थमपि चैतेषां ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
नियोगादस्य च गुरोर्व्यासस्यामिततेजसः॥
सुहृदामस्मदादीनां द्रौपद्याश्च परंतप।
कुरु प्रियममित्रघ्न लोकस्य च हितं कुरु॥

वैशम्पायन उवाच।

एवमुक्तः स कृष्णेन राजा राजीवलोचनः
हितार्थं सर्वलोकस्य समुत्तस्थौ महामनाः॥
सोऽनुनीतो नरव्याघ्र विष्टरश्रवसा स्वयम्।
द्वैपायनेन च तथा देवस्थानेन जिष्णुना॥२७
एतैश्चान्यैश्च बहुभिरनुनीतो युधिष्ठिरः।
व्यजहान्मानसं दुःखं सन्तापं च महायशाः
श्रुतवाक्यः श्रुतनिधिः श्रुतश्रव्यविशारदः।
व्यवस्य मनसः शान्तिमगच्छत्पाण्डुनन्दनः
स तैः परिवृतो राजा नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य स्वपुरं प्रविवेश ह॥ ३०
प्रविविक्षुः स धर्मज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अर्चयामास देवांश्च ब्राह्मणांश्च सहस्रशः॥३१
ततो नवं रथं शुभ्रं कम्बलाजिनसंवृतम्।
युक्तं षोडशभिर्गोभिः पाण्डुरैः शुभलक्षणैः३२

---

सवैयाख्यं व्याख्यासहितम्॥ १०॥ विमुञ्चति विमोक्ष्यति ततः पुरा॥ १६॥ वैशसं विनाशम्॥ १८॥ उपसंप्रष्टुं उपागत्य सम्यक्प्रष्टुम्॥ १९॥ नाथमानाः याचमानाः उपासत इत्युत्तरत्रापि योज्यम्॥ २२॥ विष्टरश्रवसा विष्णुना॥ २७॥ संतापं शारीरं तापम्॥ २८॥ वाक्यानि वेदावयवाः। निधिस्तदर्थविचारग्रंथो मीमांसा। अन्यदपि यत् श्रुतं श्रव्यं नीतिशास्त्रादि तत्र **विशारदः** ऊहापोहकुशलः। व्यवस्य कर्तव्यमर्थं निश्चित्य॥ २९॥ **तत इति**। गोभिर्बलीवर्दैः। एतस्माल्लिंगाद्गम्यते यत्पुरप्रवेशे प्रथमं गोरथेन प्रवेष्टव्यमिति। मन्त्रलिङ्गादप्येतद्गम्यते-

'सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो
भग इवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति
बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ॥'

अस्यार्थः—हे बृहस्पते बृहस्पतितुल्य हे पुरोहित **आंगिरसो** बृहस्पतिः **गोभिर्**वृषैः रथमित्यर्थात्। **संनक्षमाणो** रथस्य संनहनं करिष्यन्। यकारलोप आर्षः **अर्यमणं देवं भग इव** षड्विधमैश्वर्यमिव निनाय, प्रापितवान्। तत्र दृष्टान्तः-**जने इति**। नकार उपमार्थे। यथा जने लोके मित्रः सखा दम्पती अनक्ति अन्योन्यसंबद्धे स करोति एवं नगरगतामैश्वर्यलक्ष्मीं परिणेष्यन् गोरथेन नगरं प्रवेशयेद्राजानं पुरोहितः। एवं जयलक्ष्मीं परिणेष्यन्नश्वरथेन आजिं प्रविशेदित्याह-**वाजयेति**। आजौ संग्रामे अशूनश्वान् रथे युञ्जन् **वाजय** गमय यजमानं जयलक्ष्मीं परिणेतुमित्यर्थादनुषञ्जनीयम्॥३२॥

मन्त्रैरभ्यर्चितं पुण्यैः स्तूयमानश्च बन्दिभिः ।
आरुरोह यथा देवः सोमोऽमृतमयं रथम् ॥
जग्राह रश्मीन्कौन्तेयो भीमो भीमपराक्रमः
अर्जुनः पाण्डुरं छत्रं धारयामास भानुमत् ॥
ध्रियमाणं च तच्छत्रं पाण्डुरं रथमूर्धनि ।
शुशुभे तारकाकीर्णे सितमभ्रमिवाम्बरे ॥३५
चामरव्यजने त्वस्य वीरौ जगृहतुस्तदा ।
चन्द्ररश्मिप्रभे शुभ्रे माद्रीपुत्रावलंकृते ॥ ३६
ते पञ्चरथमास्थाय भ्रातरः समलंकृताः ।
भूतानीव समस्तानि राजन्ददृशिरे तदा ॥
आस्थाय तु रथं शुभ्रं युक्तमश्वैर्मनोजवैः ।
अन्वयात्पृष्ठतो राजन्युयुत्सुः पाण्डवाग्रजम्
रथं हेममयं शुभ्रं
शैब्यसुग्रीवयोजितम् ।
सह सात्यकिना कृष्णः
समास्थायान्वयात्कुरून् ॥ ३९
नरयानेन तु ज्येष्ठः पिता पार्थस्य भारत ।
अग्रतो धर्मराजस्य गान्धारीसहितो ययौ ॥
कुरुस्त्रियश्च ताः सर्वाः कुन्ती कृष्णा तथैव च
यानैरुच्चावचैर्जग्मुर्विदुरेण पुरस्कृताः ॥ ४१
ततो रथाश्च बहुला नागाश्वसमलंकृताः ।
पादाताश्च हयाश्चैव पृष्ठतः समनुव्रजन् ॥ ४२
ततो वैतालिकैः सूतैर्मागधैश्च सुभाषितैः ।
स्तूयमानो ययौ राजा नगरं नागसाह्वयम् ॥
तत्प्रयाणं महाबाहोर्बभूवाप्रतिमं भुवि ।
आकुलाकुलमुत्कृष्टं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥ ४४
अभियाने तु पार्थस्य नरैर्नगरवासिभिः ।
नगरं राजमार्गाश्च यथावत्समलङ्कृताः ॥
पाण्डुरेण च माल्येन पताकाभिश्च मेदिनी ।
संस्कृता राजमार्गोऽभूद्धूपनैश्च प्रधूपितः ॥४६
अथ चूर्णैश्च गन्धानां नानापुष्पप्रियङ्गुभिः ।
माल्यदामभिरासक्तै राजवेश्माभिसंवृतम् ॥
कुंभाश्च नगरद्वारि वारिपूर्णा नवा दृढाः ।
सिताः सुमनसो गौराः स्थापितास्तत्र तत्र ह
यथा स्वलङ्कृतं द्वारं नगरं पाण्डुनन्दनः ।
स्तूयमानः शुभैर्वाक्यैः प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥४९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिरप्रवेशे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

वैशम्पायन उवाच ।
प्रवेशने तु पार्थानां जनानां पुरवासिनाम् ।
दिदृक्षूणां सहस्राणि समाजग्मुः सहस्रशः ॥
स राजमार्गः शुशुभे समलङ्कृतचत्वरः ।
यथा चन्द्रोदये राजन्वर्धमानो महोदधिः ॥२
गृहाणि राजमार्गेषु रत्नवन्ति महान्ति च ।
प्राकम्पन्तीव भारेण स्त्रीणां पूर्णानि भारत
ताः शनैरिव सव्रीडं प्रशशंसुर्युधिष्ठिरम् ।
भीमसेनार्जुनौ चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
धन्या त्वमसि पांचालि या त्वं पुरुषसत्तमान्
उपतिष्ठसि कल्याणि महर्षीनिव गौतमी ॥५
तव कर्माण्यमोघानि व्रतचर्या च भाविनि ।
इति कृष्णां महाराज प्रशशंसुस्तदा स्त्रियः ॥
प्रशंसावचनैस्तासां मिथःशब्दैश्च भारत ।
प्रीतिजैश्च तदा शब्दैः पुरमासीत्समाकुलम् ॥
तमतीत्य यथायुक्तं राजमार्गं युधिष्ठिरः ।
अलङ्कृतं शोभमानमुपायाद्राजवेश्म ह ॥ ८

---

अमृतमयं देवतामयम् ॥ ३३ ॥ तारकास्ताराः तत्तुल्याश्छत्रप्रान्तस्थमौक्तिकगुच्छाश्च ॥ ३५ ॥ यथा देहरथो भूतपञ्चकमयः एवं सोऽपि रथो भ्रातृपञ्चकयुक्तः ॥ ३७ ॥ युयुत्सुर्धृतराष्ट्रपुत्रः ॥ ३८ ॥ नरयानं 'तख्तरावा' इति म्लेच्छभाषायां प्रसिद्धं न तु शिबिका ॥ ४० ॥ आकुलाकुलमतिसंकुलं संमर्दवशात् ॥४४॥ माल्येन पुष्पसमूहेन मेदिनी समलंकृतेत्यनुषज्यते । धूपनैः अगरुप्रभृतिभिर्धूपद्रव्यैः ॥ ४६ ॥ सिताः चूर्णादिना शुक्लीकृताः सुमनसः पुष्पाणि गौराः शुक्लाः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

३८

प्रवेशने इति ॥१॥ स्त्रीणां स्त्रीभिः ॥ ३ ॥

ततः प्रकृतयः सर्वाः पौरा जानपदास्तदा ।
ऊचुः कर्णसुखा वाचः समुपेत्य ततस्ततः ॥९
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र शत्रूञ्छत्रुनिषूदन ।
दिष्ट्या राज्यं पुनः प्राप्तं धर्मेण च बलेन च
भवनस्त्वं महाराज राजेह शरदां शतम् ।
प्रजाः पालय धर्मेण यथेन्द्रस्त्रिदिवं तथा ॥
एवं राजकुलद्वारि मङ्गलैरभिपूजितः ।
आशीर्वादान् द्विजैरुक्तान्प्रतिगृह्य समन्ततः
प्रविश्य भवनं राजा देवराजगृहोपमम् ।
श्रद्धाविजयसंयुक्तं रथात्पश्चादवातरत् ॥ १३
प्रविश्याभ्यन्तरं श्रीमान्दैवतान्यभिगम्य च
पूजयामास रत्नैश्च गन्धमाल्यैश्च सर्वशः ॥
निश्चक्राम ततः श्रीमान्पुनरेव महायशाः ।
ददर्श ब्राह्मणांश्चैव सोऽभिरूपानवस्थितान् ॥
स संवृतस्तदा विप्रैराशीर्वादविवक्षुभिः ।
शुशुभे विमलश्चन्द्रस्तारागणवृतो यथा ॥१६
तांस्तु वै पूजयामास
कौन्तेयो विधिवद्द्विजान् ।
धौम्यं गुरुं पुरस्कृत्य
ज्येष्ठं पितरमेव च ॥ १७
सुमनोमोदकै रत्नैर्हिरण्येन च भूरिणा ।
गोभिर्वस्त्रैश्च राजेन्द्र विविधैश्च किमिच्छकैः
ततः पुण्याहघोषोऽभूद्दिवं स्तब्ध्वेव भारत ।
सुहृदां प्रीतिजननः पुण्यः श्रुतिसुखावहः ॥
हंसवद्विदुषां राजा द्विजानां तत्र भारतीम् ।
शुश्रुवे वेदविदुषां पुष्कलार्थपदाक्षराम् ॥ २०
ततो दुन्दुभिनिर्घोषः शंखानां च मनोरमः ।
जयं प्रवदतां तत्र स्वनः प्रादुरभून्नृप ॥ २१
निःशब्दे च स्थिते तत्र
ततो विप्रजने पुनः ।
राजानं ब्राह्मणच्छद्मा
चार्वाको राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २२
तत्र दुर्योधनसखा
भिक्षुरूपेण संवृतः ।
साक्षः शिखी त्रिदण्डी च
धृष्टो विगतसाध्वसः ॥ २३
वृतः सर्वैस्तथा विप्रैराशीर्वादविवक्षुभिः ।
परं सहस्रै राजेन्द्र तपोनियमसंवृतैः ॥ २४
स दुष्टः पापमाशंसुः पाण्डवानां महात्मनाम्
अनामन्त्र्यैव तान् विप्रांस्तमुवाच महीपतिम्

चार्वाक उवाच ।

इमे प्राहुर्द्विजाः सर्वे समारोप्य वचो मयि
धिग् भवन्तं कुनृपतिं ज्ञातिघातिनमस्तु वै
किं तेन स्याद्धि कौन्तेय कृत्वेमं ज्ञातिसंक्षयं
घातयित्वा गुरूंश्चैव मृतं श्रेयो न जीवितम्
इति ते वै द्विजाः श्रुत्वा तस्य दुष्टस्य रक्षसः
विव्यथुश्चुक्रुशुश्चैव तस्य वाक्यप्रधर्षिताः ॥
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे स च राजा युधिष्ठिर
व्रीडिताः परमोद्विग्नास्तूष्णीमासन् विशांपते

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रसीदन्तु भवन्तो मे प्रणतस्याभियाचतः ।
प्रत्यासन्नव्यसनिनं न मां धिक्कर्तुमर्हथ ॥ ३०

वैशम्पायन उवाच ।

ततो राजन् ब्राह्मणास्ते सर्व एव विशांपते
ऊचुर्नैतद्वचोऽस्माकं श्रीरस्तु तव पार्थिव ॥
जज्ञुश्चैव महात्मानस्ततस्तं ज्ञानचक्षुषा ।
ब्राह्मणा वेदविद्वांसस्तपोभिर्विमलीकृताः ॥

ब्राह्मणा ऊचुः ।

एष दुर्योधनसखा चार्वाको नाम राक्षसः
परिव्राजकरूपेण हितं तस्य चिकीर्षति ॥३३
न वयं ब्रूम धर्मात्मन् व्येतु ते भयमीदृशम् ।
उपतिष्ठतु कल्याणं भवन्तं भ्रातृभिः सह ॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे हुंकारैः क्रोधमूर्छिताः
निर्भर्त्सयन्तः शुचयो निजघ्नुः पापराक्षसम्
स पपात विनिर्दग्धस्तेजसा ब्रह्मवादिनाम् ।
महेन्द्राशनिनिर्दग्धः पादपोऽङ्कुरवानिव ॥
पूजिताश्च ययुर्विप्रा राजानमभिनन्द्य तम् ।
राजा च हर्षमापेदे पाण्डवः ससुहृज्जनः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजध० चार्वाकवधे अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

अभिरूपान्मङ्गलद्रव्यपाणीन् ॥१५॥ किमिच्छसि किमिच्छसीति पृच्छद्भिर्भृत्यैर्विविधैर्गोवस्त्रादिद्रव्यैर्निमन्त्रयाद्भिरित्यर्थः॥१८॥ स्तब्ध्वा व्याप्य ॥१९॥ प्रत्यासन्नाः समीपस्थाः व्यसनिनश्चिरदुःखिनो भ्रात्रादयो यस्य तं भ्रात्रादिदुःखपरिहारार्थं ममेदं राज्यकरणं न तु स्वसुखार्थमित्यर्थः ॥ ३० ॥ जज्ञुः ज्ञातवन्तः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये 'भारतभावदीपे अष्टत्रिंशतमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

[वैशम्पायन उवाच ।
ततस्तत्र तु राजानं तिष्ठन्तं भ्रातृभिः सह ।
उवाच देवकीपुत्रः सर्वदर्शी जनार्दनः॥१॥*]
वासुदेव उवाच ।
ब्राह्मणास्तात लोकेऽस्मिन्नर्चनीयाः सदा मम
एते भूमिचरा देवा वाग्विषाः सुप्रसादकाः
पुरा कृतयुगे राजंश्चार्वाको नाम राक्षसः।
तपस्तेपे महाबाहो बदर्यां बहुवार्षिकम् ॥ २
वरेण च्छन्द्यमानश्च ब्रह्मणा च पुनः पुनः ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो वरयामास भारत ॥ ३
द्विजावमानादन्यत्र प्रादाद्वरमनुत्तमम् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददौ तस्मै जगत्पतिः ॥
स तु लब्धवरः पापो देवानमितविक्रमः ।
राक्षसस्तापयामास तीव्रकर्मा महाबलः ॥५
ततो देवाः समेताश्च ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ।
वधाय रक्षसस्तस्य बलविप्रकृतास्तदा ॥ ६
तानुवाच ततो देवो विहितस्तत्र वै मया ।
यथाऽस्य भविता मृत्युरचिरेणेति भारत ॥
राजा दुर्योधनो नाम सखाऽस्य भविता नृषु
तस्य स्नेहावबद्धोऽसौ ब्राह्मणानवमंस्यते ॥ ८
तत्रैनं रुषिता विप्रा विप्रकारप्रधर्षिताः ।
धक्ष्यन्ति वाग्बलाः पापं ततो नाशं गमिष्यति
स एष निहतः शेते ब्रह्मदण्डेन राक्षसः ।
चार्वाको नृपतिश्रेष्ठ मा शुचो भरतर्षभ ॥१०
हतास्ते क्षत्रधर्मेण ज्ञातयस्तव पार्थिव ।
स्वर्गताश्च महात्मानो वीराः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥
स त्वमातिष्ठ कार्याणि
मा तेऽभूद् ग्लानिरच्युत ।
शत्रून् जहि प्रजा रक्ष
द्विजांश्च परिपूजय ॥ १२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि चार्वाकवरदानादिकथने एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

वैशम्पायन उवाच ।
ततः कुन्तीसुतो राजा गतमन्युर्गतज्वरः ।
काञ्चने प्राङ्मुखो हृष्टो न्यषीदत्परमासने ॥
तमेवाभिमुखौ पीठे प्रदीप्ते काञ्चने शुभे ।
सात्यकिर्वासुदेवश्च निषीदतुररिंदमौ ॥ २
मध्ये कृत्वा तु राजानं भीमसेनार्जुनावुभौ ।
निषीदतुर्महात्मानौ श्लक्ष्णयोर्मणिपीठयोः ३
दान्ते सिंहासने शुभ्रे जाम्बूनदविभूषिते।
पृथाऽपि सहदेवेन सहास्ते नकुलेन च ॥ ४
सुधर्मा विदुरो धौम्यो धृतराष्ट्रश्च कौरवः ।
निषेदुर्ज्वलनाकारेष्वासनेषु पृथक् पृथक् ॥५
युयुत्सुः सञ्जयश्चैव गान्धारी च यशस्विनी ।
धृतराष्ट्रो यतो राजा ततः सर्वे समाविशन् ६
तत्रोपविष्टो धर्मात्मा
श्वेताः सुमनसोऽस्पृशत् ।
स्वस्तिकानक्षतान्भूमिं
सुवर्णं रजतं मणिम् ॥ ७
ततः प्रकृतयः सर्वाः पुरस्कृत्य पुरोहितम् ।
ददृशुर्धर्मराजानमादाय बहुमङ्गलम् ॥ ८
पृथिवीं च सुवर्णं च रत्नानि विविधानि च।
आभिषेचनिकं भाण्डं सर्वसंभारसंभृतम्॥ ९

---

३९

ब्राह्मणा इति ॥ १ ॥ विहितः मया आज्ञप्तः ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * क्षिप्तः श्लोक उवाचसहितः ।

४०

ततः कुन्तीसुत इति । गतमन्युर्वीतदैन्यः गतज्वरो वीतशोकः ॥ १ ॥ निषीदतुरिति निषेदतुरित्यर्थे आर्षम् ॥ २ ॥ दान्ते गजदन्तमये ॥ ४ ॥ सुधर्मा दुर्योधनपुरोहितः ॥ ५ ॥ स्वस्तिकान्सर्वतोभद्राद्यङ्कितानि देवतापीठानि ॥ ७ ॥ भाण्डमुपकरणम् ॥ ९ ॥

काञ्चनौदुम्बरास्तत्र राजताः पृथिवीमयाः ।
पूर्णकुंभाः सुमनसो लाजा बर्हींषि गोरसम्॥
शमीपिप्पलपालाशसमिधो मधुसर्पिषी ।
स्रुव औदुम्बरः शङ्खस्तथा हेमविभूषितः॥११
दाशार्हेणाभ्यनुज्ञातस्तत्र धौम्यः पुरोहितः ।
प्रागुदक्प्रवणे वेदीं लक्षणेनोपलिख्य च॥ १२
व्याघ्रचर्मोत्तरे शुक्ले सर्वतोभद्र आसने ।
दृढपादप्रतिष्ठाने हुताशनसमत्विषि ॥ १३
उपवेश्य महात्मानं कृष्णां च द्रुपदात्मजाम्
जुहाव पावकं धीमान्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् १४
तत उत्थाय दाशार्हः शङ्खमादाय पूजितम्।
अभ्यषिञ्चत्पतिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्
धृतराष्ट्रश्च राजर्षिः सर्वाः प्रकृतयस्तथा ।
अनुज्ञातोऽथ कृष्णेन भ्रातृभिः सह पाण्डवः
पाञ्चजन्याभिषिक्तश्च राजाऽमृतमुखोऽभवत्
ततोऽनुवादयामासुः पणवानकदुन्दुभीन् १७
धर्मराजोऽपि तत्सर्वं प्रतिजग्राह धर्मतः ।
पूजयामास तांश्चापि विधिवद्भूरिदक्षिणः१८
ततो निष्कसहस्रेण ब्राह्मणान्स्वस्ति वाचयन्
वेदाध्ययनसंपन्नान्धृतिशीलसमन्वितान् १९
ते प्रीता ब्राह्मणा राजन्स्वस्त्यूचुर्जयमेव च
हंसा इव च नर्दन्तः प्रशशंसुर्युधिष्ठिरम् ॥२०
युधिष्ठिर महाबाहो दिष्ट्या जयसि पाण्डव
दिष्ट्या स्वधर्मं प्राप्तोऽसि विक्रमेण महाद्युते॥
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च भीमसेनश्च पाण्डवः
त्वं चापि कुशली राजन्माद्रीपुत्रौ च पांडवौ
मुक्ता वीरक्षयात्तस्मात्संग्रामाद्विजितद्विषः ।
क्षिप्रमुत्तरकार्याणि कुरु सर्वाणि भारत॥२३
ततः प्रत्यर्चितः सद्भिर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
प्रतिपेदे महद्राज्यं सुहृद्भिः सह भारत ॥ २४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिराभिषेके चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

वैशम्पायन उवाच ।
प्रकृतीनां च तद्वाक्यं देशकालोपबृंहितम् ।
श्रुत्वा युधिष्ठिरो +राजा सोन्तरं प्रत्यभाषत
धन्याः पाण्डुसुता नूनं
येषां ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
तथ्यान्वाऽप्यथवाऽतथ्यान्
गुणानाहुः समागताः ॥ २
अनुग्राह्या वयं नूनं भवतामिति मे मतिः ।
यदेवं गुणसंपन्नानस्मान्ब्रूथ विमत्सराः ॥ ३
धृतराष्ट्रो महाराजः पिता मे दैवतं परम्
शासनेऽस्य प्रिये चैव स्थेयं मत्प्रियकाङ्क्षिभिः
एतदर्थं हि जीवामि कृत्वा ज्ञातिवधं महत्।
अस्य शुश्रूषणं कार्यं मया नित्यमतन्द्रिणा ५
यदि चाहमनुग्राह्यो भवतां सुहृदां तथा ।
धृतराष्ट्रे यथापूर्वं वृत्तिं वर्तितुमर्हथ ॥ ६
एष नाथो हि जगतो भवतां च मया सह ।
अस्यैव पृथिवी कृत्स्ना पाण्डवाः सर्व एव च
एतन्मनसि कर्तव्यं भवद्भिर्वचनं मम ।
अनुज्ञाप्याथ तान् राजा यथेष्टं गम्यतामिति॥
पौरजानपदान्सर्वान्विसृज्य कुरुनन्दनः ।
यौवराज्येन कौन्तेयं भीमसेनमयोजयत् ॥ ९
मन्त्रे च निश्चये चैव षाड्गुण्यस्य च चिन्तने।
विदुरं बुद्धिसंपन्नं प्रीतिमान्स समादिशत् १०
कृताकृतपरिज्ञाने तथाऽऽयव्ययचिन्तने ।
सञ्जयं योजयामास वृद्धं सर्वगुणैर्युतम् ॥ ११
बलस्य परिमाणे च भक्तवेतनयोस्तथा ।
नकुलं व्यादिशद्राजा कर्मणां चान्ववेक्षणे१२
परचक्रोपरोधे च दुष्टानां चावमर्दने ।
युधिष्ठिरो महाराज फाल्गुनं व्यादिदेश ह१३

---

औदुम्बरास्ताम्रमयाः॥१०॥ उदुम्बरकाष्ठमयः स्रुवः॥११॥ अमृतमुखः अत्यन्तं दर्शनीयः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

प्रकृतीनामिति । तद्वाक्यं दिष्ट्या जयसीत्यादि अन्तरं पश्चात् ॥ १ ॥ + राजाऽथोत्तरम् इति पाठः ।

तत उत्थाय दाशार्हः शङ्खमादाय पूजितम् ।
अभ्यषिंचत्पतिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥१५॥—शान्तिपर्व अ० ४० पृ० ७०

द्विजानां देवकार्येषु कार्येष्वन्येषु चैव ह ।
धौम्यं पुरोधसां श्रेष्ठं नित्यमेव समादिशत् ॥
सहदेवं समीपस्थं नित्यमेव समादिशत् ।
तेन गोप्यो हि नृपतिः सर्वावस्थो विशांपते
यान्यानमन्यद्योग्यांश्च येषु येष्विह कर्मसु ।
तांस्तांस्तेष्वेव युयुजे प्रीयमाणो महीपतिः १६
विदुरं सञ्जयं चैव युयुत्सुं च महामतिम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नो धर्मात्मा धर्मवत्सलः ॥१७
उत्थायोत्थाय तत्कार्यमस्य राज्ञः पितुर्मम ।
सर्वं भवद्भिः कर्तव्यमप्रमत्तैर्यथायथम् ॥ १८
पौरजानपदानां च यानि कार्याणि सर्वशः ।
राजानं समनुज्ञाप्य तानि कर्माणि भागशः ।

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि भीमादिकर्मनियोगे
एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

वैशम्पायन उवाच ।
ततो युधिष्ठिरो राजा ज्ञातीनां ये हता युधि
श्राद्धानि कारयामास तेषां पृथगुदारधीः ॥ १
धृतराष्ट्रो ददौ राजा पुत्राणामौर्ध्वदेहिकम् ।
सर्वकामगुणोपेतमन्नं गाश्च धनानि च ॥ २
रत्नानि च विचित्राणि महार्हाणि महायशाः
युधिष्ठिरस्तु द्रोणस्य कर्णस्य च महात्मनः ३
धृष्टद्युम्नाभिमन्युभ्यां हैडिम्बस्य च रक्षसः ।
विराटप्रभृतीनां च सुहृदामुपकारिणाम् ॥ ४
द्रुपदद्रौपदेयानां द्रौपद्या सहितो ददौ ।
ब्राह्मणानां सहस्राणि पृथगेकैकमुद्दिशन् ॥ ५
धनै रत्नैश्च गोभिश्च वस्त्रैश्च समतर्पयत् ।
ये चान्ये पृथिवीपाला येषां नास्ति सुहृज्जनः
उद्दिश्योद्दिश्य तेषां च चक्रे राजौर्ध्वदेहिकं
सभाः प्रपाश्च विविधास्तटाकानि च पाण्डव
सुहृदां कारयामास सर्वेषामौर्ध्वदेहिकम्
स तेषामनृणो भूत्वा गत्वा लोकेष्ववाच्यताम्
कृतकृत्योऽभवद्राजा प्रजा धर्मेण पालयन् ।
धृतराष्ट्रं यथापूर्वं गान्धारीं विदुरं तथा ॥ ९
सर्वांश्च कौरवान्मान्यान्भृत्यांश्च समपूजयत्
याश्च तत्र स्त्रियः काश्चिद्धतवीरा हतात्मजाः
सर्वास्ताः कौरवो राजा संपूज्यापालयद्घृणी
दीनान्धकृपणानां च गृहाच्छादनभोजनैः ॥
आनृशंस्यपरो राजा चकारानुग्रहं प्रभुः ।
स विजित्य महीं कृत्स्नामानृण्यं प्राप्य वैरिषु
निःसपत्नः सुखी राजा विजहार युधिष्ठिरः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि श्राद्धक्रियायां
द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

यत् अस्य कार्यं तच्च भवद्भिः कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १८ ॥ राजानं धृतराष्ट्रं अनुज्ञाप्य तानि कार्याणि कर्तव्यानीत्यर्थः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

**ततो युधिष्ठिर इति ॥ १ ॥ उद्दिश्येति ।** सभाः धर्मशालाः तत्तन्नामाङ्कितानि सभादीनि चक्रे इयममुकस्य सभा इयममुकस्य सभेति । एतेन सभादिकरणात्सन्तानफलं लभ्यते इति गम्यते ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

# ४३

वैशम्पायन उवाच ।
अभिषिक्तो महाप्राज्ञो राज्यं प्राप्य युधिष्ठिरः
दाशार्हं पुण्डरीकाक्षमुवाच प्राञ्जलिः शुचिः

तव कृष्ण प्रसादेन नयेन च बलेन च ।
बुद्ध्या च यदुशार्दूल तथा विक्रमणेन च ॥२

पुनः प्राप्तमिदं राज्यं पितृपैतामहं मया ।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुनः पुनररिन्दम ॥ ३

त्वामेकमाहुः पुरुषं त्वामाहुः सात्वतां पतिं
नामभिस्त्वां बहुविधैःस्तुवन्ति प्रयता द्विजाः

विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन्विश्वसंभव ।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम

अदित्याः सप्तधा त्वं तु पुराणो गर्भतां गतः
पृश्निगर्भस्त्वमेवैकास्त्रियुगं त्वां वदन्त्यपि ॥६

शुचिश्रवा हृषीकेशो घृतार्चिर्हंस उच्यते ।
त्रिचक्षुः शंभुरेकस्त्वं विभुर्दामोदरोऽपि च ॥

वराहोऽग्निर्बृहद्भानुर्वृषभस्तार्क्ष्यलक्षणः ।
अनीकसाहः पुरुषः शिपिविष्ट उरुक्रमः ॥ ८

वरिष्ठ उग्रसेनानीः
सत्यो वाजसनिर्गुहः ।
अच्युतश्च्यावनोऽरीणां
संस्कृतो विकृतिर्वृषः ॥ ९

कृष्णधर्मस्त्वमेवादिर्वृषदर्भो वृषाकपिः ।
सिन्धुर्विधर्मस्त्रिककुप् त्रिधामा त्रिदिवाच्युतः

सम्राड् विराट् स्वराट् चैव
सुरराजो भवोद्भवः ।
विभुर्भूरतिभूः कृष्णः
कृष्णवर्त्मा त्वमेव च ॥ ११

स्विष्टकृद्भिषजावर्तः कपिलस्त्वं च वामनः ।
यज्ञो ध्रुवः पतङ्गश्च यज्ञसेनस्त्वमुच्यसे ॥ १२

शिखण्डी नहुषो बभ्रुर्दिवस्पृक् त्वं पुनर्वसुः ।
सुबभ्रू रुक्मयज्ञश्च सुषेणो दुन्दुभिस्तथा ॥१३

गभस्तिनेमिः श्रीपद्मः पुष्करः पुष्पधारणः
ऋभुर्विभुः सर्वसूक्ष्मश्चारित्रं चैव पठ्यसे* ॥

अंभोनिधिस्त्वं ब्रह्मा त्वं
पवित्रं धाम धामवित् ।
हिरण्यगर्भं त्वामाहुः
स्वधा स्वाहा च केशव ॥ १५

योनिस्त्वमस्य प्रलयश्च कृष्ण
त्वमेवेदं सृजसि विश्वमग्रे ।
विश्वं चेदं त्वद्वशे विश्वयोने
नमोऽस्तु ते शार्ङ्गचक्रासिपाणे ॥ १६

---

४३

**अभिषिक्त इति**॥१॥ पुरुषं सर्वशरीरशायिनं सात्वतां उपासकानां पतिं पालकम् ॥ ४ ॥ विश्वस्य सम्भवो योनिः ॥ ५ ॥ सप्तधा विष्ण्वाख्य आदित्यो वामनश्चेति द्वेधा अदित्यामेव जन्म । ततोऽदिते रूपान्तरेषु पृश्निप्रभृतिषु क्रमात्पृश्निगर्भः परशुरामः दाशरथी रामः यादवौ रामकृष्णौ चेति सर्वेषु गर्भेषु एक एव त्वं न तु प्रतिगर्भं भिन्नः। त्रिषु वर्तमानात्युगात् पूर्वेषु भवं त्रियुगम्। अन्ये तु धर्मज्ञाने वैराग्यैश्वर्ये श्रीयशसी चेति त्रीणि युग्मानि तद्वन्तमित्याहुः ॥ ६ ॥ शुचिश्रवाः पुण्यकीर्तिः। घृतार्चिर्यज्ञेश्वरः हंसो ब्रह्मणोऽपि गुरुः त्रीणि चक्षूंषि दर्शनसाधनानि श्रुत्यनुमानप्रत्यक्षाणि यस्मिन् ॥ ७ ॥ बृहद्भानुः सूर्यः। वृषभो धर्मः। तार्क्ष्यलक्षणो गरुडध्वजः। अनीकसाहः शत्रुसेनावमर्दी। शिपिविष्टः सर्वशरीरान्तःप्रविष्टः पुरुषो जीवः ॥ ८ ॥ वरिष्ठः उत्तमः। वाजसनिः अन्नप्रदः। गुहः देवसेनानीः। संस्कृतो विप्रादिरूपः। विकृतिः अनुलोमजाविलोमजादिरूपः। वृषः श्रेष्ठः परिव्राडादिरूपः ॥ ९ ॥ कृष्णधर्मः यज्ञादिरूपः। वृषा इन्द्रस्तं दृभ्नाति स्तभ्नातीति वृषदर्भ इन्द्रदर्पहन्ता । वृषाकपिर्हरिहररूपी सिन्धुः समुद्रः विधर्मो निर्गुणः त्रिककुप् कर्मयोग्यप्रागुदगैशानादिदिग्रूपः त्रिधामा सूर्यचन्द्राग्निप्रभः। त्रिदिवात् च्युतोऽवतीर्णः ॥१०॥ भूः सत्तारूपः। अतिभूः अशरीरः ॥ ११ ॥ भिषजावर्तः भिषजौ अश्विनौ आवर्तत इत्यावर्तस्तयोः पिता सूर्यः पतङ्गो गरुडः॥१२॥ बभ्रुर्महेश्वरः पुनर्वसुर्नक्षत्रभेदः। सुबभ्रुः सुतरां पिङ्गलवर्णः॥१३॥ गभस्तिरर्को नेमिः परिधिर्यस्य स कालचक्ररूपः ॥१४॥ * त्वं धरित्री च पठ्यसे इति पा०

एवं स्तुतो धर्मराजेन कृष्णः
सभामध्ये प्रीतिमान्पुष्कराक्षः ।
तमभ्यनन्दद्भारतं पुष्कलाभि-
र्वाग्भिर्ज्येष्ठं पाण्डवं यादवाग्र्यः×१७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वासुदेवस्तुतौ त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

## ४४

वैशम्पायन उवाच ।
ततो विसर्जयामास सर्वाः प्रकृतयो नृपः।
विविशुश्चाभ्यनुज्ञाता यथास्वानि गृहाणि ते ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमं भीमपराक्रमम् ।
सान्त्वयन्नब्रवीच्छ्रीमानर्जुनं यमजौ तथा ॥
शत्रुभिर्विविधैः शस्त्रैः
क्षतदेहा महारणे ।
श्रान्ता भवन्तः सुभृशं
तापिताः शोकमन्युभिः ॥ ३
अरण्ये दुःखवसतीर्मत्कृते भरतर्षभाः ।
भवद्भिरनुभूता हि यथा कुपुरुषैस्तथा ॥ ४
यथासुखं यथाजोषं
जयोऽयमनुभूयताम् ।
विश्रान्ताँल्लब्धविज्ञानान्
श्वः समेताऽस्मि वः पुनः ॥ ५
ततो दुर्योधनगृहं प्रासादैरुपशोभितम् ।
बहुरत्नसमाकीर्णं दासीदाससमाकुलम् ॥
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातं भ्रात्रा दत्तं वृकोदरः ।
प्रतिपेदे महाबाहुर्मन्दिरं मघवानिव ॥
यथा दुर्योधनगृहं तथा दुःशासनस्य तु ।
प्रासादमालायुक्तं हेमतोरणभूषितम् ॥ ८
दासीदाससुसंपूर्णं प्रभूतधनधान्यवत् ।
प्रतिपेदे महाबाहुरर्जुनो राजशासनात् ॥ ९
दुर्मर्षणस्य भवनं दुःशासनगृहाद्वरम् ।
कुबेरभवनप्रख्यं मणिहेमविभूषितम् ॥ १०
नकुलाय वरार्हाय कर्शिताय महावने ।
ददौ प्रीतो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
दुर्मुखस्य च वेश्माग्र्यं श्रीमत्कनकभूषणम् ।
पूर्णपद्मदलाक्षीणां स्त्रीणां शयनसंकुलम् ॥१२
प्रददौ सहदेवाय संततं प्रियकारिणे ।
मुमुदे तच्च लब्ध्वाऽसौ कैलासं धनदो यथा
युयुत्सुर्विदुरश्चैव सञ्जयश्च विशांपते ।
सुधर्मा चैव धौम्यश्च यथास्वान् जग्मुरालयान्
सह सात्यकिना शौरिरर्जुनस्य निवेशनम् ।
विवेश पुरुषव्याघ्रो व्याघ्रो गिरिगुहामिव ॥
तत्र भक्ष्यान्नपानैस्ते मुदिताः सुसुखोषिताः ।
सुखप्रबुद्धा राजानमुपतस्थुर्युधिष्ठिरम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि गृहविभागे चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४३

× एतन्नामशतं विष्णोर्धर्मराजेन कीर्तितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
इत्यधिकः श्लोकः क्वचित् ।

४४

तत इति । विस्पष्टार्थः ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

जनमेजय उवाच ।

प्राप्य राज्यं महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यदन्यदकरोद्विप्र तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ १
भगवान्वा हृषीकेशस्त्रैलोक्यस्य परो गुरुः ।
ऋषे यदकरोद्वीरस्तच्च व्याख्यातुमर्हसि ॥ २

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु तत्त्वेन राजेन्द्र कीर्त्यमानं मयाऽनघ।
वासुदेवं पुरस्कृत्य यदकुर्वत पाण्डवाः ॥ ३
प्राप्य राज्यं महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं स्वे स्वे स्थाने न्यवेशयत्
ब्राह्मणानां सहस्रं च स्नातकानां महात्मनाम्
सहस्रं निष्कमेकैकं दापयामास पाण्डवः ॥५
तथाऽनुजीविनो भृत्यान्संश्रितानतिथीनपि
कामैः संतर्पयामास कृपणांस्तर्ककानपि ॥ ६
पुरोहिताय धौम्याय प्रादादयुतशः स गाः ।
धनं सुवर्णं रजतं वासांसि विविधान्यपि ॥
कृपाय च महाराज गुरुवृत्तिमवर्तत ।
विदुराय च राजाऽसौ पूजां चक्रे यतव्रतः ॥
भक्ष्यान्नपानैर्विविधैर्वासोभिः शयनासनैः ।
सर्वान्संतोषयामास संश्रितान्ददतां वरः ॥
लब्धप्रशमनं कृत्वा स राजा राजसत्तम ।
युयुत्सोर्धार्तराष्ट्रस्य पूजां चक्रे महायशाः ॥
धृतराष्ट्राय तद्राज्यं गान्धार्यै विदुराय च ।
निवेद्य सुस्थवद्राजा सुखमास्ते युधिष्ठिरः ॥
तथा सर्वं स नगरं प्रसाद्य भरतर्षभ ।
वासुदेवं महात्मानमभ्यगच्छत्कृताञ्जलिः ॥
ततो महति पर्यङ्के मणिकाञ्चनभूषिते ।
ददर्श कृष्णमासीनं नीलमेघसमद्युतिम् ।
जाज्वल्यमानं वपुषा दिव्याभरणभूषितम् ।
पीतकौशेयवसनं हेम्नेवोपगतं मणिम् ॥ १४
कौस्तुभेनोरसिस्थेन मणिनाऽभिविराजितम्।
उद्यतेवोदयं शैलं सूर्येणाभिविराजितम् ॥
नौपम्यं विद्यते तस्य त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
सोऽभिगम्य महात्मानं विष्णुं पुरुषविग्रहम्
उवाच मधुरं राजा स्मितपूर्वमिदं तदा ।
सुखेन ते निशा कच्चिद्व्युष्टा बुद्धिमतां वर ॥
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत
तथैवोपश्रिता देवी बुद्धिर्बुद्धिमतां वर ॥ १८
वयं राज्यमनुप्राप्ताः पृथिवी च वशे स्थिता ।
तव प्रसादाद्भगवंस्त्रिलोकगतिविक्रम ॥ १९
जयं प्राप्ता यशश्चाग्र्यं न च धर्मच्युता वयम्
तं तथा भाषमाणं तु धर्मराजमरिंदमम् ।
नोवाच भगवान्किंचिद्ध्यानमेवान्वपद्यत॥२०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कृष्णं प्रति युधिष्ठिरवाक्ये पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

युधिष्ठिर उवाच ।

किमिदं परमाश्चर्यं ध्यायस्यमितविक्रम ।
कच्चिल्लोकत्रयस्यास्य स्वस्ति लोकपरायण ॥
चतुर्थं ध्यानमार्गं त्वमालम्ब्य पुरुषर्षभ ।
अपक्रान्तो यतो देवस्तेन मे विस्मितं मनः ॥
निगृहीतो हि वायुस्ते पञ्चकर्मा शरीरगः ।
इन्द्रियाणि प्रसन्नानि मनसि स्थापितानि ते

---

४५

प्राप्येति ॥ १ ॥ तर्ककान् प्राश्निकान् ॥ ६ ॥ लब्धप्रशमनं लब्धस्य धनादेः यथोचितमंशतः पात्रे समर्पणेन शान्तिकम् ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

किमिदमिति ॥ १ ॥ चतुर्थं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभ्यः परं आलम्ब्य अपक्रान्तः देहत्रयात् ॥ २ ॥ पञ्चकर्मा प्राणनादिकारी ॥ ३ ॥

वाक्‌ सत्त्वं च गोविंद बुद्धौ संवेशितानि ते
सर्वे चैव गुणा देवाः क्षेत्रज्ञे ते निवेशिताः ॥
नेङ्गन्ति तव रोमाणि स्थिरा बुद्धिस्तथा मनः
काष्ठकुड्यशिलाभूतो निरीहश्चासि माधव ॥
यथा दीपो निवातस्थो निरिङ्गो ज्वलते पुनः
तथाऽसि भगवन्देव पाषाण इव निश्चलः ॥६
यदि श्रोतुमिहार्हामि न रहस्यं च ते यदि ।
छिन्धि मे संशयं देव प्रपन्नायाभियाचते ॥७
त्वं हि कर्ता विकर्ता च क्षरं चैवाक्षरं च हि
अनादिनिधनश्चाद्यस्त्वमेव पुरुषोत्तम ॥ ८
त्वत्प्रपन्नाय भक्ताय शिरसा प्रणताय च ।
ध्यानस्यास्य यथा तत्त्वं ब्रूहि धर्मभृतां वर ॥
ततः स्वे गोचरे न्यस्य मनोबुद्धीन्द्रियाणि सः
स्मितपूर्वमुवाचेदं भगवान्वासवानुजः ॥ १०

वासुदेव उवाच ।

शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः
मां ध्याति पुरुषव्याघ्रस्ततो मे तद्गतं मनः ॥
यस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
न सेहे देवराजोऽपि तमस्मि मनसा गतः ॥
येनाभिजित्य तरसा समस्तं राजमण्डलम् ।
ऊढास्तिस्रस्तु ताः कन्यास्तमस्मि मनसा गतः
त्रयोविंशतिरात्रं यो योधयामास भार्गवम् ।
न च रामेण निस्तीर्णस्तमस्मि मनसा गतः
एकीकृत्येन्द्रियग्रामं मनः संयम्य मेधया ।
शरणं मामुपागच्छत्ततो मे तद्गतं मनः ॥ १५
यं गङ्गा गर्भविधिना धारयामास पार्थिव ।
वसिष्ठशिक्षितं तात तमस्मि मनसा गतः ॥
दिव्यास्त्राणि महातेजा
यो धारयति बुद्धिमान् ।
साङ्गांश्च चतुरो वेदां-
स्तमस्मि मनसा गतः ॥ १७
रामस्य दयितं शिष्यं जामदग्न्यस्य पाण्डव ।
आधारं सर्वविद्यानां तमस्मि मनसा गतः १८
स हि भूतं भविष्यच्च भवच्च भरतर्षभ ।
वेत्ति धर्मविदां श्रेष्ठं तमस्मि मनसा गतः १९

तस्मिन्हि पुरुषव्याघ्रे कर्मभिः स्वैर्दिवं गते ।
भविष्यति मही पार्थ नष्टचन्द्रेव शर्वरी ॥ २०
तद्युधिष्ठिर गाङ्गेयं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
अभिगम्योपसंगृह्य पृच्छ यत्ते मनोगतम् ॥ २१
चातुर्विद्यं चातुर्होत्रं चातुराश्रम्यमेव च ।
राजधर्मांश्च निखिलान् पृच्छैनं पृथिवीपते ॥
तस्मिन्नस्तमिते भीष्मे
कौरवाणां धुरंधरे ।
ज्ञानान्यस्तं गमिष्यन्ति
तस्मात्त्वां चोदयाम्यहम् ॥ २३
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य तथ्यं वचनमुत्तमम् ।
साश्रुकण्ठः स धर्मज्ञो जनार्दनमुवाच ह ॥२४
यद्भवानाह भीष्मस्य प्रभावं प्रति माधव ।
तथा तन्नात्र संदेहो विद्यते मम माधव ॥ २५
महाभाग्यं च भीष्मस्य प्रभावश्च महाद्युते ।
श्रुतं मया कथयतां ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥
भवांश्च कर्ता लोकानां यद्ब्रवीत्यरिसूदन ।
तथा तदनभिध्येयं वाक्यं यादवनन्दन ॥२७
यदि त्वनुग्रहवती बुद्धिस्ते मयि माधव ।
त्वामग्रतः पुरस्कृत्य भीष्मं यास्यामहे वयम्
आवृत्ते भगवत्यर्के स हि लोकान् गमिष्यति
त्वद्दर्शनं महाबाहो तस्मादर्हति कौरवः २९
तव चाद्यस्य देवस्य क्षरस्यैवाक्षरस्य च ।
दर्शनं त्वस्य लाभः स्यात्त्वं हि ब्रह्ममयो निधिः

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वैवं धर्मराजस्य वचनं मधुसूदनः ।
पार्श्वस्थं सात्यकिं प्राह रथो मे युज्यतामिति
सात्यकिस्त्वाशु निष्क्रम्य
केशवस्य समीपतः ।
दारुकं प्राह कृष्णस्य
युज्यतां रथ इत्युत ॥ ३२
स सात्यकेराशु वचो निशम्य
रथोत्तमं काञ्चनभूषिताङ्गम् ।
मसारगल्वर्कमयैर्विभङ्गै-
र्विभूषितं हेमनिबद्धचक्रम् ॥ ३३

---

सत्त्वं मनः वागुपलक्षितानीन्द्रियाणि च बुद्धौ महत्तत्त्वे गुणाः शब्दादिगुणभाजो देवाः श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि ॥४॥ नेङ्गन्ति न कम्पन्ते निरीहो निश्चेष्टः ॥ ५ ॥ निरिङ्गः अचलः ॥ ६ ॥ गोचरे स्वे स्वे स्थाने ॥१०॥ ध्याति–ध्यायति ॥ ११ ॥ चतस्रो विद्याः धर्मार्थकाममो-क्षविद्याः सर्ववर्णसाधारणाः चातुर्होत्रं त्रैवर्णिकानां विशेषधर्मो यज्ञादिः ॥ २२ ॥ अनभिध्येयं अविचारणीयम् ॥ २७ ॥ स इति । मसारगल्वर्कमयैर्विभङ्गैः मसारो मरकतमणिः गल्लुश्चन्द्रकान्तः अर्कः सूर्यकान्तः तन्मयैः विभङ्गैः विस्तरैः । विटङ्कैरिति पाठे पक्ष्युपवेशनस्थानैः ३३

दिवाकरांशुप्रभमाशुगामिनं
विचित्रनानामणिभूषितान्तरम् ।
नवोदितं सूर्यमिव प्रतापिनं
विचित्रतार्क्ष्यध्वाजिनं पताकिनम् ३४

सुग्रीवशैब्यप्रमुखैर्वराश्वै-
र्मनोजवैः काञ्चनभूषिताङ्गैः ।
संयुक्तमावेदयदच्युताय
कृताञ्जलिर्दारुको राजसिंह ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि महापुरुषस्तवे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## ४७

जनमेजय उवाच ।
शरतल्पे शयानस्तु भरतानां पितामहः ।
कथमुत्सृष्टवान्देहं कं च योगमधारयत् ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजञ्शुचिर्भूत्वा समाहितः
भीष्मस्य कुरुशार्दूल देहोत्सर्गं महात्मनः ॥ २
निवृत्तमात्रे त्वयन उत्तरे वै दिवाकरे ।
समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः ॥ ३
विकीर्णांशुरिवादित्यो भीष्मः शरशतैश्चितः।
शुशुभे परया लक्ष्म्या वृतो ब्राह्मणसत्तमैः ॥ ४
व्यासेन वेदविदुषा नारदेन सुरर्षिणा ।
देवस्थानेन वात्स्येन तथाऽश्मकसुमन्तुना ॥ ५
तथा जैमिनिना चैव पैलेन च महात्मना ।
शाण्डिल्यदेवलाभ्यां च मैत्रेयेण च धीमता
असितेन वसिष्ठेन कौशिकेन महात्मना ।
हारीतलोमशाभ्यां च तथाऽऽत्रेयेण धीमता७
बृहस्पतिश्च शुक्रश्च च्यवनश्च महामुनिः ।
सनत्कुमारः कपिलो वाल्मीकिस्तुंबुरुः कुरुः॥
मौद्गल्यो भार्गवो रामस्तृणबिन्दुर्महामुनिः ।
पिप्पलादोऽथ वायुश्च संवर्तः पुलहः कचः ९
काश्यपश्च पुलस्त्यश्च क्रतुर्दक्षः पराशरः ।
मरीचिरङ्गिराः काश्यो गौतमो गालवो मुनिः
धौम्यो विभाण्डो माण्डव्यो
धौम्रः कृष्णानुभौतिकः ।
उलूकः परमो विप्रो
मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ ११
भास्करिः पूरणः कृष्णः सूतः परमधार्मिकः ।
एतैश्चान्यैर्मुनिगणैर्महाभागैर्महात्मभिः ॥ १२
श्रद्धा-दम-शमोपेतैर्वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ।
भीष्मस्तु पुरुषव्याघ्रः कर्मणा मनसा गिरा ॥
शरतल्पगतः कृष्णं प्रदध्यौ प्राञ्जलिः शुचिः ।
स्वरेण हृष्टपुष्टेन तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ १४
योगेश्वरं पद्मनाभं विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम्
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वाग्विदां प्रवरः प्रभुः ।
भीष्मः परमधर्मात्मा वासुदेवमथास्तुवत् ॥
भीष्म उवाच ।
आरिराधयिषुः कृष्णं वाचं जिगादिषामि यां
तया व्याससमासिन्या प्रीयतां पुरुषोत्तमः
शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेष्ठिनम् ।
युक्त्वा सर्वात्मनाऽऽत्मानं तं प्रपद्ये प्रजापतिं
अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः ।
एकोऽयं वेद भगवान् धाता नारायणो हरिः
नारायणादृषिगणास्तथा सिद्धमहोरगाः ।
देवा देवर्षयश्चैव यं विदुः परमव्ययम् ॥ १९
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
यं न जानन्ति को ह्येष कुतो वा भगवानिति
यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठंति च विशंति च·
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥ २१

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

**शरतल्पे इति** ॥ १ ॥ आरिराधयिषुः वस्तुतस्तत्त्वावधारणपूर्वकं ध्यानमाराधनं तत्कर्तुमिच्छुः । जिगादिषामि । वक्तुमिच्छामि व्याससमासिन्या विस्तरसंक्षेपवत्या ॥ १६ ॥ तत्र संक्षेपमाह—**शुचिमिति** । शुचिं स्वतः परतो वा दोषहीनं शुचिपदं तादृशमेव पदं प्राप्तिमार्गो योगो यस्य तम् । हंसं सर्वातिगम् । तत्पदं तत्त्वमसीतिवाक्ये तत्पदस्यार्थभूतं ईश्वरं परमेष्ठिनं हिरण्यगर्भं आत्मानं देहत्रयम् ॥ १७ ॥

यस्मिन्नित्ये तते तन्तौ दृढे स्रगिव तिष्ठति ।
सदसद्ग्रथितं विश्वं विश्वाङ्गे विश्वकर्मणि ॥
हरिं सहस्रशिरसं सहस्रचरणेक्षणम् ।
सहस्रबाहुमुकुटं सहस्रवदनोज्ज्वलम् ॥ २३
प्राहुर्नारायणं देवं यं विश्वस्य परायणम् ।
अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठं च स्थवीयसाम्
गरीयसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रेयसामपि ॥२५
यं वाकेष्वनुवाकेषु निषत्सूपनिषत्सु च ।
गृणन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ॥
चतुर्भिश्चतुरात्मानं सत्त्वस्थं सात्वतां पतिम्
यं दिव्यैर्देवमर्चन्ति गुह्यैः परमनामभिः ॥ २७
यस्मिन्नित्यं तपस्तप्तं यदङ्गेष्वनुतिष्ठति ।
सर्वात्मा सर्ववित्सर्वः सर्वज्ञः सर्वभावनः ॥
यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत ।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै दीप्तमग्निमिवारणिः ॥
यमनन्यो व्यपेताशीरात्मानं वीतकल्मषम् ।
दृष्ट्वाऽऽनन्त्याय गोविन्दं पश्यत्यात्मानमात्मनि
अतिवाय्विन्द्रकर्माणमतिसूर्यातितेजसम् ।
अतिबुद्धीन्द्रियात्मानं तं प्रपद्ये प्रजापतिम्
पुराणे पुरुषं प्रोक्तं ब्रह्म प्रोक्तं युगादिषु ।
क्षये सङ्कर्षणं प्रोक्तं तमुपास्यमुपास्महे ॥ ३२
यमेकं बहुधाऽऽत्मानं प्रादुर्भूतमधोक्षजम् ।
नान्यभक्ताः क्रियावन्तो यजन्ते सर्वकामदम्
यमाहुर्जगतः कोशं यस्मिन्सन्निहिताः प्रजाः
यस्मिँल्लोकाः स्फुरन्तीमे जले शकुनयो यथा
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतोः परम् ।
अनादिमध्यपर्यन्तं न देवा नर्षयो विदुः ।
यं सुरासुरगन्धर्वाः सिद्धा ऋषिमहोरगाः ॥
प्रयता नित्यमर्चन्ति परमं दुःखभेषजम् ।
अनादिनिधनं देवमात्मयोनिं सनातनम् ॥
अप्रेक्ष्यमनभिज्ञेयं हरिं नारायणं प्रभुम् ।
यं वै विश्वस्य कर्तारं जगतस्तस्थुषां पतिम् ।
वदन्ति जगतोऽध्यक्षमक्षरं परमं पदम् ॥ ३७

## अथ भीष्मस्तवराजः ।

हिरण्यवर्णं यं गर्भमदितेर्दैत्यनाशनम् ।
एकं द्वादशधा जज्ञे तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥
शुक्ले देवान्पितॄन्कृष्णे तर्पयत्यमृतेन यः ॥
यश्च राजा द्विजातीनां तस्मै सोमात्मने नमः
महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम् ।
यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः
यं बृहन्तं बृहत्युक्थे यमग्नौ यं महाध्वरे ।
यं विप्रसंघा गायन्ति तस्मै वेदात्मने नमः ॥
ऋग्यजुःसामधामानं दशार्धहविरात्मकम्
यं सप्ततन्तुं तन्वन्ति तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः ॥

---

सदसत्कार्यं कारणं च ताभ्यां सूत्रान्तर्यामिभ्यां ग्रथितम् । विश्वं अङ्गेऽधिष्ठानभूते यस्य तस्मिन् । विश्वं कर्म यस्मात् । को ह्येवान्यादिति श्रुतिः ॥२२॥ वाकेषु मन्त्रेषु सामान्यतः कर्मप्रकाशकेषु अनुवाकेषु मन्त्रार्थविवरणभूतेषु ब्राह्मणवाक्येषु । निषत्सु कर्माङ्गावयवबद्धदेवतादिज्ञानवाक्येषु उपनिषत्सु केवलात्मज्ञापकवाक्येषु । गृणन्ति ध्यायन्ति सत्यं अबाधितं सत्येषु अबाधितार्थेषु सामसु ज्येष्ठसामादिषु ॥२६॥ चतुर्भिर्नामभिः वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धरूपैः क्रमाच्चतुरात्मानंब्रह्म जीवमनोहङ्काररूपम्। सत्त्वस्थं बुद्धौ अभिव्यक्तम् । सात्वतां भक्तानां पतिम् ॥ २७ ॥ नित्यं तपः स्वधर्मः तत् यस्मिन् । यत्प्रीत्यर्थं तप्तं सत् यत् यस्मादङ्गेषु चित्तेषु अनुतिष्ठति उपतिष्ठति । यश्च सर्वात्मा तं प्रपद्ये इति सर्वेषां यच्छब्दसम्बद्धानां प्रथमेनान्वयः । ईश्वरार्थमनुष्ठितो धर्मः स्वचित्तशुद्धिद्वारा स्वार्थ एव भवतीत्याश्चर्यमिति भावः ॥ २८ ॥ **भौमं** ब्रह्म वेदा ब्राह्मणा यज्ञाश्च ॥ २९ ॥ अनन्यः त्यक्तभेदः आत्मानं प्रत्यञ्चमेव आत्मानं सर्वेश्वरं आत्मनि हार्दाकाशे दृष्ट्वा सूक्ष्मबुद्ध्या । इष्ट्वेति पाठे योगेन पश्यति आनन्त्याय मोक्षाय ॥ ३० ॥ पुराणे अतीतकल्पादिविषये पुरुषं पूर्णं सर्वमस्मिन्नतीतमस्त्येवेति योगात्पुरुष इति नाम । युगादिषु युगारम्भेषु बृंहकत्वात्स्रष्टेरेनं ब्रह्मेत्याहुः । क्षये सर्वस्य सम्यक्कर्षणादयं सङ्कर्षण इत्युक्तः ॥ ३२ ॥ बहुधा इन्द्रादिदेवतारूपेण नान्यभक्ताः अनन्यभक्ताः ॥ ३३ ॥ शकुनयो हंसकारण्डवाद्याः ॥ ३४ ॥ जज्ञे जनयामास ॥ ३८ ॥ अतितेजसं स्वयंज्योतिषं ज्ञेयात्मने न तूपास्यात्मने ॥ ४० ॥ उक्थे बह्वृचाः अग्नौ चयनेऽध्वर्यवः ॥४१॥ ऋग्यजुःसामान्येव धामानि यस्य तम् । दशार्धानि पञ्चधानाः करम्भः परिवापः पुरोडाशः पयश्चेति पञ्चहवींषि तदात्मकम् । सप्ततन्तव इव योजनीयाः गायत्र्यादयो यस्मिन् तं सप्ततन्तुम् ॥ ४२ ॥ **चतुर्भिरिति** । आश्रावयेति चतुरक्षरम् । **अस्तु श्रौषडिति** चतुरक्षरम् । **यजेति** द्व्यक्षरम् । **ये यजामहे** इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो वषट्कार इति सप्तदशभिरक्षरैर्यो हूयते तस्मै होमात्मने नमः ॥ ४३ ॥

यः सुपर्णो यजुर्नाम च्छन्दोगात्रस्त्रिवृच्छिराः
रथन्तरं बृहत्साम तस्मै स्तोत्रात्मने नमः ॥
यः सहस्रसमे सत्रे जज्ञे विश्वसृजामृषिः ।
हिरण्यपक्षः शकुनिस्तस्मै हंसात्मने नमः ॥
पादाङ्गं सन्धिपर्वाणं स्वरव्यञ्जनभूषणम् ।
यमाहुरक्षरं दिव्यं तस्मै वागात्मने नमः ॥
यज्ञाङ्गो यो वराहो वै भूत्वा गामुज्जहार ह
लोकत्रयहितार्थाय तस्मै वीर्यात्मने नमः ॥
यः शेते योगमास्थाय पर्यङ्के नागभूषिते ।
फणासहस्ररचिते तस्मै निद्रात्मने नमः ॥
यस्तनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना ।
धर्मार्थव्यवहाराङ्गैस्तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः ।
पृथग्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥
यतः सर्वे प्रसूयन्ते ह्यनङ्गात्माङ्गदेहिनः ।
उन्मादः सर्वभूतानां तस्मै कामात्मने नमः
यं च व्यक्तस्थमव्यक्तं विचिन्वन्ति महर्षयः
क्षेत्रे क्षेत्रज्ञमासीनं तस्मै क्षेत्रात्मने नमः ॥
यं त्रिधात्मानमात्मस्थं वृतं षोडशभिर्गुणैः।
प्राहुः सप्तदशं सांख्यास्तस्मै सांख्यात्मने नमः
यं विनिद्रा जितश्वासाः
सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जाना-
स्तस्मै योगात्मने नमः ॥ ५४
अपुण्यपुण्योपरमे
यं पुनर्भवनिर्भयाः ।
शान्ताः संन्यासिनो यान्ति
तस्मै मोक्षात्मने नमः ॥ ५५
योऽसौ युगसहस्रान्ते प्रदीप्तार्चिर्विभावसुः
संभक्षयति भूतानि तस्मै घोरात्मने नमः ॥
संभक्ष्य सर्वभूतानि कृत्वा चैकार्णवं जगत्
बालः स्वपिति यश्चैकस्तस्मै मायात्मने नमः॥
तद्यस्य नाभ्यां संभूतं यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितं
पुष्करे पुष्कराक्षस्य तस्मै पद्मात्मने नमः॥५८
सहस्रशिरसे चैव पुरुषायामितात्मने ।
चतुःसमुद्रपर्याययोगनिद्रात्मने नमः ॥ ५९
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः ॥
यस्मात्सर्वाः प्रसूयन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः
यस्मिंश्चैव प्रलीयन्ते तस्मै हेत्वात्मने नमः ६१
यो निषण्णो भवेद्रात्रौ दिवा भवति विष्ठितः
इष्टानिष्टस्य च द्रष्टा तस्मै द्रष्ट्रात्मने नमः ६२
अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम् ।
वैकुण्ठस्य च तद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः ६३
त्रिःसप्तकृत्वो यः क्षत्रं धर्मव्युत्क्रान्तगौरवम्
क्रुद्धो निजघ्ने समरे तस्मै क्रौर्यात्मने नमः ६४
विभज्य पञ्चधाऽऽत्मानं वायुर्भूत्वा शरीरगः
यश्चेष्टयति भूतानि तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥
युगेष्वावर्तते योगैर्मासर्त्वयनहायनैः ।
सर्गप्रलययोः कर्ता तस्मै कालात्मने नमः ६६

सुपर्णः वेदपुरुषः यजुरिति यस्य नाम छन्दांसि गायत्र्यादीनि यस्य गात्राणि हस्तादीनि । त्रिवृत् त्रिभिर्ऋग्यजुःसामभिर्वर्तत इति योगाद्यज्ञः स एव शिरो यस्य यस्य रथन्तरं बृहच्च वैकल्पिकं साम प्रीतिवाक्यम् ॥ ४४ ॥ सहस्रसमे सहस्रसंवत्सरे सत्रे जज्ञे आविर्बभूव ॥ ४५ ॥ पादाश्चरणाः पदसमूहा वाक्यानि वा अङ्गानि हस्तादीनि यस्य तं पादाङ्गम् । सन्धयः शाब्दिकप्रसिद्धाः । पर्वाणि अङ्गुल्यादीनि काण्डानि । स्वराः अचः । व्यञ्जनानि हलः ॥४६॥ सेतुं तरणोपायं योगधर्मम् । ऋतेन वेदोक्तेन उपायेन अमृतयोनिना मोक्षहेतुना धर्मार्थं एव न त्वर्थकामार्थौ व्यवहारो वागादिपरिस्पन्दस्तदर्थानि अङ्गानि तैः जितैरिन्द्रियैरित्यर्थः ॥ ४९ ॥ धर्मैः पाशुपतपञ्चरात्रादितन्त्रोक्तैः ॥ ५० ॥ अनङ्गात्मानि काममयानि अङ्गानि यस्य सः अनङ्गात्माङ्गः स चासौ देही च तस्य अनङ्गात्माङ्गदेहिनः ॥ ५१ ॥ व्यक्तस्थं देहान्तस्थं क्षेत्रे बुद्धौ ॥५२॥ आत्मानं चेतनम् । आत्मस्थं नित्यं स्वरूपस्थितमपि षोडशभिर्गुणैर्गुणकार्यैरेकादशभिरिन्द्रियैः पञ्चभिर्भूतैश्च त्रिधा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपादारतनुप्रसुप्तरूपैर्वृतम् ॥ ५३ ॥ तत्पुष्करम् यस्य नाभ्यां सम्भूतं । यस्मिन्पुष्करे विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥ चतुर्णां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणां समुद्राणां कामानां पर्यायः सर्वात्मना निर्गमनं यस्याः सा योगनिद्रा तदात्मने 'कामं समुद्रमाविश' इति मन्त्रवर्णात्समुद्रः कामः ॥ ५९ ॥ रात्रौ सुषुप्तौ निषण्ण एव न तु सुप्तः साक्षीत्यर्थः । दिवा जाग्रत्स्वप्नयोः विष्ठितः कर्तृरूपेण तद्विपरीतेन स्थितः । वस्तुतस्तुद्रष्टा न तु कर्ता ॥ ६२ ॥ अकुण्ठं अनिरुद्धम् ॥ ६३ ॥ पञ्चधा प्राणादिरूपेण ॥ ६५ ॥ युगेषु कृतादिषु आवर्तते मत्स्यादिरूपेण किं कर्मवशोऽयं नेत्याह-योगैरिति । योगमायाबलेन नटवदित्यर्थः ॥ ६६ ॥

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः ।
पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः
यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः
सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रे तस्मै लोकात्मने नमः ॥
परः कालात्परो यज्ञात्परात्परतरश्च यः ।
अनादिरादिर्विश्वस्य तस्मै विश्वात्मने नमः
विषये वर्तमानानां यं तं वैशेषिकैर्गुणैः ।
प्राहुर्विषयगोप्तारं तस्मै गोप्त्रात्मने नमः ॥
अन्नपानेन्धनमयो रसप्राणविवर्धनः ।
यो धारयति भूतानि तस्मै प्राणात्मने नमः
प्राणानां धारणार्थाय योऽन्नं भुंक्ते चतुर्विधम्
अन्तर्भूतः पचत्यग्निस्तस्मै पाकात्मने नमः ॥
पिङ्गेक्षणसटं यस्य रूपं दंष्ट्रानखायुधम् ।
दानवेन्द्रान्तकरणं तस्मै दृप्तात्मने नमः ॥
यं न देवा न गन्धर्वा न दैत्या न च दानवाः
तत्त्वतो हि विजानन्ति तस्मै सूक्ष्मात्मने नमः
रसातलगतः श्रीमाननन्तो भगवान्विभुः।
जगद्धारयते कृत्स्नं तस्मै वीर्यात्मने नमः ॥
यो मोहयति भूतानि स्नेहपाशानुबन्धनैः।
सर्गस्य रक्षणार्थाय तस्मै मोहात्मने नमः ॥
आत्मज्ञानमिदं ज्ञानं ज्ञात्वा पञ्चस्ववस्थितम्
यं ज्ञानेनाभिगच्छन्ति तस्मै ज्ञानात्मने नमः
अप्रमेयशरीराय सर्वतो बुद्धिचक्षुषे ।
अनन्तपरिमेयाय तस्मै दिव्यात्मने नमः ॥
जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे ।
कमण्डलुनिषङ्गाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥
शूलिने त्रिदशेशाय त्र्यम्बकाय महात्मने ।
भस्मदिग्धोर्ध्वलिङ्गाय तस्मै रुद्रात्मने नमः
चन्द्रार्धकृतशीर्षाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।
पिनाकशूलहस्ताय तस्मै उग्रात्मने नमः ॥८१
सर्वभूतात्मभूताय भूतादिनिधनाय च ।
अक्रोधद्रोहमोहाय तस्मै शान्तात्मने नमः ॥
यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः ॥
विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन्विश्वसंभव
अपवर्गस्थभूतानां पञ्चानां परतः स्थित ॥ ८४
नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु।
नमस्ते दिक्षु सर्वासु त्वं हि सर्वमयो निधिः
नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानां प्रभवाप्यय
त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजितः
न हि पश्यामि ते भावं दिव्यं हि त्रिषु वर्त्मसु
त्वां तु पश्यामि तत्त्वेन यत्ते रूपं सनातनम्
दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुन्धरा
विक्रमेण त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः
दिशो भुजा रविश्चक्षुर्वीर्ये शुक्रः प्रतिष्ठितः ।
सप्तमार्गा निरुद्धास्ते वायोरमिततेजसः ॥८९
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ९१

कृष्णव्रताः कृष्णमनुस्मरन्तो
रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये ।
ते कृष्णदेहाः प्रविशन्ति कृष्ण-
माज्यं यथा मन्त्रहुतं हुताशे ॥ ९२

नमो नरकसंत्रासरक्षामण्डलकारिणे ।
संसारनिम्नगावर्ततरिकाष्ठाय विष्णवे ॥ ९३

---

परात् हिरण्यगर्भात् परो मायावी परतरस्तु शुद्धः ॥६९॥ विषये श्रोत्रादिगोचरे वर्तमानानाम् । अनादरे षष्ठी । तान् अनादृत्य वैशेषिकैर्गुणैः विशेषजैः रागद्वेषैः यं विषयगोप्तारं प्राहुः । यत्र रागस्तमेवार्थं वासनारूपेण मनसि रक्षन् संसरति न तु सर्वामित्यर्थः ॥ ७० ॥ अन्तर्भूतः अन्तः प्रविष्टः ॥७२॥ दृप्तात्मने नृसिंहाय ॥७३॥ आत्मेति । शब्दादिविषयको यो बोधः स विषयमनन्तर्भाव्य आत्मस्वरूपभूतमेव ज्ञानम् । यथोक्तम्—

'परांगर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता ।
संवित्सैवेह मेयोऽर्थो वेदान्तोक्तिप्रमाणतः' इति ॥

ईदृशमेव यं ज्ञानेन ज्ञानसाधनवाक्येन ॥ ७७ ॥ अप्रमेयमगोचरं शरीरं स्वरूपं यस्य अनन्तमपारं परिमेयं विषयजातं यत्र तस्मै ॥ ७८ ॥ कमण्डलुनिषङ्गाय तज्जलैरेव बाणभूतैरसुरान्नाशयते इत्यर्थः ॥ ७९ ॥ भूतादेरहङ्कारस्य निधनं मरणं तस्मै ॥ ८२ ॥ अपवर्गस्थ नित्यमुक्त यतः भूतानां भूतेभ्यः परतः स्थित ॥ ८४ ॥ त्रिषु लोकेषु तेभ्यः परतश्च विद्यमानाय ते त्रिषु कालेषु नमः ॥ ८५ ॥ वर्त्मसु वर्तमानादिषु ॥८७॥ दिवं द्यौः ॥ ८८ ॥ सप्त उपरितनानि च्छिद्राणि प्रवाहादयो वा सर्वं त्वयैव व्याप्तमित्यर्थः ॥ ८९ ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः
प्राणकान्तारपाथेयं संसारोच्छेदभेषजम् ।
दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ९५
यथा विष्णुमयं सत्यं तथा विष्णुमयं जगत्
यथा विष्णुमयं सर्वं पाप्मा मे नश्यतां तथा
त्वां प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे ।
यच्छ्रेयः पुण्डरीकाक्ष तद्ध्यायस्व सुरोत्तम ॥
इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः।
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥
नारायणः परं ब्रह्म नारायणपरं तपः ।
नारायणः परो देवः सर्वं नारायणः सदा ॥
वैशम्पायन उवाच ।
एतावदुक्त्वा वचनं भीष्मस्तद्गतमानसः ।
नम इत्येव कृष्णाय प्रणाममकरोत्तदा ॥१००
अभिगम्य तु योगेन भक्तिं भीष्मस्य माधवः।
त्रैलोक्यदर्शनं ज्ञानं दिव्यं दत्वा ययौ हरिः
तस्मिन्नुपरते शब्दे ततस्ते ब्रह्मवादिनः ।
भीष्मं वाग्भिर्बाष्पकण्ठास्तमानर्चुर्महामतिम्
ते स्तुवन्तश्च विप्राद्याः केशवं पुरुषोत्तमम्
भीष्मं च शनकैः सर्वे प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥
विदित्वा भक्तियोगं तु भीष्मस्य पुरुषोत्तमः ।
सहसोत्थाय संहृष्टो यानमेवान्वपद्यत ॥
केशवः सात्यकिश्चापि रथेनैकेन जग्मतुः ।
अपरेण महात्मानौ युधिष्ठिरधनञ्जयौ ॥ १०५
भीमसेनो यमौ चोभौ रथमेकं समाश्रिताः ।
कृपो युयुत्सुः सूतश्च संजयश्च परंतपः ॥ १०६
ते रथैर्नगराकारैः प्रयाताः पुरुषर्षभाः ।
नेमिघोषेण महता कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥
ततो गिरः पुरुषवरस्तवान्विता
द्विजेरिताः पथि सुमनाः स शुश्रुवे ।
कृताञ्जलिं प्रणतमथापरं जनं
स केशिहा मुदितमनाऽभ्यनन्दत ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि भीष्मस्तवराजे सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः* ॥ ४७ ॥

## ४८

वैशम्पायन उवाच ।
ततः स च हृषीकेशः स च राजा युधिष्ठिरः
कृपादयश्च ते सर्वे चत्वारः पाण्डवाश्च ते॥ १
रथैस्तैर्नगरप्रख्यैः पताका-ध्वजशोभितैः ।
ययुराशु कुरुक्षेत्रं वाजिभिः शीघ्रगामिभिः॥
तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं केशमज्जास्थिसंकुलम् ।
देहन्यासः कृतो यत्र क्षत्रियैस्तैर्महात्मभिः ॥
गजाश्वदेहास्थिचयैः पर्वतैरिव संचितम् ।
नरशीर्षकपालैश्च शङ्खैरिव च सर्वशः ॥ ४
चितासहस्रैश्चितं वर्मशस्त्रसमाकुलम् ।
आपानभूमिं कालस्य तथा भुक्तोज्झितामिव
भूतसंघानुचरितं रक्षोगणनिषेवितम् ।
पश्यन्तस्ते कुरुक्षेत्रं ययुराशु महारथाः ॥ ६
गच्छन्नेव महाबाहुः स वै यादवनन्दनः ।
युधिष्ठिराय प्रोवाच जामदग्न्यस्य विक्रमम्
अमी रामह्रदाः पञ्च दृश्यन्ते पार्थ दूरतः।
तेषु संतर्पयामास पितॄन् क्षत्रियशोणितैः ॥८
त्रिःसप्तकृत्वो वसुधां कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः
इहेदानीं ततो रामः कर्मणो विरराम ह ॥ ९
युधिष्ठिर उवाच ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा
रामेणेति तथाऽऽत्थ त्वमत्र मे संशयो महान्

---

भीष्माय ज्ञानं दत्वा पुनः स्वदेहं प्रति शयनस्थाने ययौ आगतवान् । तदा युधिष्ठिरेण च प्रबोधितः सन्नुत्थित इत्यर्थः ॥१०१॥ विदित्वा योगबलेन ज्ञात्वा ॥ १०४ ॥ अभ्यनन्दतेति सन्धिरार्षः ॥१०८॥ इति श्रीम० शान्ति० राज० नै० भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४७

* पुस्तकान्तरेऽस्मिन्नध्याये ३७ श्लोका अधिकाः ।

४८

**ततः स चेति** ॥ १ ॥ सन्तर्पयामास राम इत्यर्थात् । एतेन शत्रुकुलवधजा ग्लानिस्ते मांभूदिति दर्शितम् ॥ ८ ॥

क्षत्रबीजं यथा दग्धं रामेण यदुपुङ्गव ।
कथं भूयः समुत्पत्तिः क्षत्रस्यामितविक्रम ॥
महात्मना भगवता रामेण यदुपुङ्गव ।
कथमुत्सादितं क्षत्रं कथं वृद्धिमुपागतम् ॥१२
महता रथयुद्धेन कोटिशः क्षत्रिया हताः ।
तथाऽभूच्च मही कीर्णा क्षत्रियैर्वेदतां वर ॥
किमर्थं भार्गवेणेदं क्षत्रमुत्सादितं पुरा ।
रामेण यदुशार्दूल कुरुक्षेत्रे महात्मना ॥ १४
एतन्मे छिन्धि वार्ष्णेय संशयं तार्क्ष्यकेतन ।
आगमो हि परः कृष्ण त्वत्तो नो वासवानुज

वैशम्पायन उवाच ।

ततो यथावत्स गदाग्रजः प्रभुः
शशंस तस्मै निखिलेन तत्त्वतः ।
युधिष्ठिरायाप्रतिमौजसे तदा
यथाऽभवत् क्षत्रियसंकुला मही ॥१६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि रामोपाख्याने अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

वासुदेव उवाच ।

शृणु कौन्तेय रामस्य प्रभावो यो मया श्रुतः
महर्षीणां कथयतां विक्रमं तस्य जन्म च ॥१
यथा च जामदग्न्येन कोटिशः क्षत्रिया हताः
उद्भूता राजवंशेषु ये भूयो भारते हताः ॥ २
जन्होरजस्तु तनयो बलाकाश्वस्तु तत्सुतः
कुशिको नाम धर्मज्ञस्तस्य पुत्रो महीपते ॥ ३
अग्र्यं तपः समातिष्ठत्सहस्राक्षसमो भुवि ।
पुत्रं लभेयमजितं त्रिलोकेश्वरमित्युत ॥ ४
तमुग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः ।
समर्थं पुत्रजनने स्वयमेवान्वपद्यत ॥ ५
पुत्रत्वमगमद्राजंस्तस्य लोकेश्वरेश्वरः ।
गाधिर्नामाऽभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः
तस्य कन्याऽभवद्राजन्नाम्ना सत्यवती प्रभो ।
तां गाधिर्भृगुपुत्राय सर्चीकाय ददौ प्रभुः ॥
तस्याः प्रीतः स शौचेन भार्गवः कुरुनन्दनः ।
पुत्रार्थं श्रपयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ ८
आहूयोवाच तां भार्यां सर्चीको भार्गवस्तदा
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्राऽप्ययं तव ॥ ९
तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः ।
अजय्यः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥१०
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं शमात्मकम्
तपोन्वितं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥
इत्येवमुक्त्वा तां भार्यां सर्चीको भृगुनन्दनः
तपस्यभिरतः श्रीमाञ्जगामारण्यमेव हि ॥१२
एतस्मिन्नेव काले तु तीर्थयात्रापरो नृपः ।
गाधिः सदारः संप्राप्तः सर्चीकस्याश्रमं प्रति
चरुद्वयं गृहीत्वा च राजन्सत्यवती तदा ।
भर्तुर्वाक्यं तदा व्यग्रा मात्रे हृष्टा न्यवेदयत् ॥
माता तु तस्याः कौन्तेय दुहित्रे स्वं चरुं ददौ
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ॥
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा ।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम् ॥ १६
तामृचीकस्तदा दृष्ट्वा तस्या गर्भगतं द्विजम् ।
अब्रवीद्भृगुशार्दूलः स्वां भार्यां देवरूपिणीम् ॥
मात्राऽसि व्यंसिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ।
भविष्यति हि ते पुत्रः क्रूरकर्माऽत्यमर्षणः ॥

---

आगमो वेदः । त्वत्तः त्वद्वचनात्नो परः नाधिकः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

४९

शृण्विति ॥ १ ॥ भारते भारतसंग्रामे ॥२॥ गाधेः पुत्रार्थं तस्याश्च पुत्रार्थं चरुं चरुद्वयम् ॥ ८ ॥ उपयोज्यो भोज्यो भोक्तव्यः ॥ ९ ॥ व्यग्रा हर्षेणैव ॥ १४ ॥ व्यंसिता वञ्चिता ॥ १८ ॥

उत्पत्स्यति च ते भ्राता ब्रह्मभूतस्तपोरतः ।
विश्वं हि ब्रह्म सुमहच्चरौ तव समाहितम् ॥
क्षत्रवीर्यं च सकलं तव मात्रे समर्पितम् ।
विपर्ययेण ते भद्रे नैतदेवं भविष्यति ॥ २०
मातुस्ते ब्राह्मणो भूयात्तव च क्षत्रियः सुतः ।
सैवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥
पपात शिरसा तस्मै वेपन्ती चाब्रवीदिदम् ।
नार्होऽसि भगवन्नद्य वक्तुमेवंविधं वचः ।
ब्राह्मणापसदं पुत्रं प्राप्स्यसीति हि मां प्रभो ॥
ऋचीक उवाच ।
नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथा त्वयि
उग्रकर्मा समुत्पन्नश्चरुव्यत्यासहेतुना ॥ २३
सत्यवत्युवाच ।
इच्छन् लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतं
शमात्मकमृजुं पुत्रं दातुमर्हसि मे प्रभो ॥ २४
ऋचीक उवाच ।
नोक्तपूर्वानृतं भद्रे स्वैरेष्वपि कदाचन ।
किमुताग्निं समाधाय मन्त्रवच्चरुसाधने ॥२५
दृष्टमेतत्पुरा भद्रे ज्ञातं च तपसा मया ।
ब्रह्मभूतं हि सकलं पितुस्तव कुलं भवेत् ॥२६
सत्यवत्युवाच ।
काममेवं भवेत्पौत्रो ममेह तव च प्रभो ।
शमात्मकमहं पुत्रं लभेयं जयतां वर ॥ २७
ऋचीक उवाच ।
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि ।
यथा त्वयोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥
वासुदेव उवाच ।
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं शान्तं जमदग्निं यतव्रतम् ॥ २९
विश्वामित्रं च दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः
यः प्राप ब्रह्मसमितं विश्वैर्ब्रह्मगुणैर्युतम् ॥ ३०
ऋचीको जनयामास जमदग्निं तपोनिधिम्
सोऽपि पुत्रं ह्यजनयज्जमदग्निः सुदारुणम् ॥३१
सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥३२
तोषयित्वा महादेवं पर्वते गन्धमादने ।
अस्त्राणि वरयामास परशुं चातितेजसम् ॥
स तेनाकुण्ठधारेण ज्वलितानलवर्चसा ।
कुठारेणाप्रमेयेण लोकेष्वप्रतिमोऽभवत् ॥३४

एतस्मिन्नेव काले तु कृतवीर्यात्मजो बली
अर्जुनो नाम तेजस्वी क्षत्रियो हैहयाधिपः ॥
दत्तात्रेयप्रसादेन राजा बाहुसहस्रवान् ।
चक्रवर्ती महातेजा विप्राणामाश्वमेधिके ॥
ददौ स पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
स्वबाहुस्त्रबलेनाजौ जित्वा परमधर्मवित् ॥
तृषितेन च कौन्तेय भिक्षितश्चित्रभानुना ।
सहस्रबाहुर्विक्रान्तः प्रादाद्भिक्षामथाग्नये ॥
ग्रामान्पुराणि राष्ट्राणि घोषांश्चैव तु वीर्यवान्
जज्वाल तस्य बाणाग्राच्चित्रभानुर्दिधक्षया ॥
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महौजसः ।
ददाह कार्तवीर्यस्य शैलानथ वनस्पतीन् ॥
स शून्यमाश्रमं रम्यमापवस्य महात्मनः ।
ददाह पवनेनेद्धश्चित्रभानुः सहैहयः ॥ ४१
आपवस्तु ततो रोषाच्छशापार्जुनमच्युत ।
दग्धे श्रमे महाबाहो कार्तवीर्येण वीर्यवान्
त्वया न वर्जितं यस्मान्ममेदं हि महद्वनम् ।
दग्धं तस्माद्रणे रामो बाहूंस्ते च्छेत्स्यतेऽर्जुन
अर्जुनस्तु महातेजा बली नित्यं शमात्मकः ।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च दाता शूरश्च भारत ॥ ४४
नाचिन्तयत्तदा शापं तेन दत्तं महात्मना ।
तस्य पुत्रास्तु बलिनः शापेनासन्पितुर्वधे ॥
निमित्तादवलिप्ता वै नृशंसाश्चैव सर्वदा ।
जमदग्निधेन्वास्ते वत्समानिन्युर्भरतर्षभ ॥
अज्ञातं कार्तवीर्येण हैहयेन्द्रेण धीमता ।
तन्निमित्तमभूद्युद्धं जामदग्न्येर्महात्मनः ॥ ४७
ततोऽर्जुनस्य बाहूंस्तां-
श्छित्त्वा रामो रुषान्वितः ।
तं भ्रमन्तं ततो वत्सं
जामदग्न्यः स्वमाश्रमम् ॥ ४८
प्रत्यानयत राजेन्द्र तेषामन्तःपुरात्प्रभुः ।
अर्जुनस्य सुतास्ते तु संभूयाबुद्धयस्तदा ॥४९
गत्वाऽऽश्रममसंबुद्धा जमदग्नेर्महात्मनः ।
अपातयन्त भल्लाग्रैः शिरः कायान्नराधिप ॥
समित्कुशार्थं रामस्य निर्यातस्य यशस्विनः ।
ततः पितृवधामर्षाद्रामः परममन्युमान् ॥ ५१
निःक्षत्रियां प्रतिश्रुत्य महीं शस्त्रमगृह्णत ।
ततः स भृगुशार्दूलः कार्तवीर्यस्य वीर्यवान्

चित्रभानुना अग्निना ॥ ३८ ॥ बाणाग्रात् उद्भूत इति शेषः ॥ ३९ ॥ आपवस्य वसिष्ठस्य ॥ ४१ ॥ दग्धे श्रमे आश्रमे ॥ ४२ ॥ पितुर्वधे वधनिमित्तं आसन् ॥ ४५ ॥ निमित्तात् शापादेव हेतोः ॥ ४६ ॥

विक्रम्य निजघानाशु पुत्रान्पौत्रांश्च सर्वशः ।
सहैहयसहस्राणि हत्वा परममन्युमान् ॥ ५३
चकार भार्गवो राजन्
मही शोणितकर्दमाम् ।
स तथाऽऽशु महातेजाः
कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् ॥ ५४
कृपया परयाऽऽविष्टो वनमेव जगाम ह ।
ततो वर्षसहस्रेषु समतीतेषु केषुचित् ॥५५
क्षेपं संप्राप्तवांस्तत्र प्रकृत्या कोपनः प्रभुः ।
विश्वामित्रस्य पौत्रस्तु रैभ्यपुत्रो महातपाः ॥
परावसुर्महाराज क्षिप्त्वाऽऽह जनसंसदि ।
ये ते ययातिपतने यज्ञे सन्तः समागताः ॥
प्रतर्दनप्रभृतयो राम किं क्षत्रिया न ते ॥ ५८
मिथ्याप्रतिज्ञो राम त्वं कत्थसे जनसंसदि ।
भयात्क्षत्रियवीराणां पर्वतं समुपाश्रितः ॥
सा पुनः क्षत्रियशतैः पृथिवी सर्वतः स्तृता ।
परावसोर्वचः श्रुत्वा शस्त्रं जग्राह भार्गवः ॥
ततो ये क्षत्रिया राजन् शतशस्तेन वर्जिताः
ते विवृद्धा महावीर्याः पृथिवीपतयोऽभवन्
स पुनस्ताञ्जघानाशु बालानपि नराधिप ।
गर्भस्थैस्तु मही व्याप्ता पुनरेवाभवत्तदा ॥ ६२
जातं जातं स गर्भं तु पुनरेव जघान ह ।
अरक्षंश्च सुतान् कांश्चित्तदा क्षत्रिययोषितः ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं
कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
दक्षिणामश्वमेधान्ते
कश्यपायाददत्ततः ॥ ६४
स क्षत्रियाणां शेषार्थं करेणोद्दिश्य कश्यपः ।
स्रुक्प्रग्रहवता राजंस्ततो वाक्यमथाब्रवीत् ॥
गच्छ तीरं समुद्रस्य दक्षिणस्य महामुने ।
न ते मद्विषये राम वस्तव्यमिह कर्हिचित् ॥
ततः शूर्पारकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे ।
सहसा जामदग्न्यस्य सोऽपरान्तमहीतलम्
कश्यपस्तां महाराज प्रतिगृह्य वसुंधराम् ।
कृत्वा ब्राह्मणसंस्थां वै प्रविष्टः सुमहद्वनम् ॥
ततः शूद्राश्च वैश्याश्च यथा स्वैरप्रचारिणः ।
अवर्तन्त द्विजाग्र्याणां दारेषु भरतर्षभ ॥ ६९
अराजके जीवलोके दुर्बला बलवत्तरैः ।
पीड्यन्ते न हि विप्रेषु प्रभुत्वं कस्यचित्तदा ॥
ततः कालेन पृथिवी पीड्यमाना दुरात्मभिः
विपर्ययेण तेनाशु प्रविवेश रसातलम् ॥ ७१
अरक्ष्यमाणा विधिवत्क्षत्रियैर्धर्मरक्षिभिः ।
तां दृष्ट्वा द्रवतीं तत्र संत्रासात्स महामनाः ॥
ऊरुणा धारयामास कश्यपः पृथिवीं ततः ।
धृता तेनोरुणा येन तेनोर्वीति मही स्मृता ॥
रक्षणार्थं समुद्दिश्य ययाचे पृथिवी तदा ।
प्रसाद्य कश्यपं देवी वरयामास भूमिपम् ॥

पृथिव्युवाच ।

सन्ति ब्रह्मन्मया गुप्ताः स्त्रीषु क्षत्रियपुङ्गवाः।
हैहयानां कुले जातास्ते संरक्षन्तु मां मुने ॥
अस्ति पौरवदायादो विदूरथसुतः प्रभो ।
ऋक्षैः संवर्धितो विप्र ऋक्षवत्यथ पर्वते ॥७६
तथाऽनुकम्पमानेन यज्वनाऽथामितौजसा ।
पराशरेण दायादः सौदासस्याभिरक्षितः ॥
सर्वकर्माणि कुरुते शूद्रवत्तस्य स द्विजः ।
सर्वकर्मेत्यभिख्यातः स मां रक्षतु पार्थिवः ॥
शिबिपुत्रो महातेजा गोपतिर्नाम नामतः ।
वने संवर्धितो गोभिः सोऽभिरक्षतु मां मुने
प्रतर्दनस्य पुत्रस्तु वत्सो नाम महाबलः ।
वत्सैः संवर्धितो गोष्ठे स मां रक्षतु पार्थिवः
दधिवाहनपौत्रस्तु पुत्रो दिविरथस्य च ।
गुप्तः स गौतमेनासीद्गङ्गाकूलेऽभिरक्षितः ॥
बृहद्रथो महातेजा भूरिभूतिपरिष्कृतः ।
गोलाङ्गूलैर्महाभागो गृध्रकूटेऽभिरक्षितः ॥
मरुत्तस्यान्ववाये च रक्षिताः क्षत्रियात्मजाः
मरुत्पतिसमा वीर्ये समुद्रेणाभिरक्षिताः॥८३
एते क्षत्रियदायादास्तत्र तत्र परिश्रुताः ।
द्योकारहेमकारादिजातिं नित्यं समाश्रिताः
यदि मामभिरक्षन्ति ततः स्थास्यामि निश्चला
एतेषां पितरश्चैव तथैव च पितामहाः ॥ ८५
मदर्थं निहता युद्धे रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
तेषामपचितिश्चैव मया कार्या महामुने ॥ ८६

---

क्षेपं निन्दां 'अशक्तो रामः' इति ॥ ५६ ॥ मिथ्याप्रतिज्ञः सर्वेषां क्षत्रियाणां वधाकरणात् ॥ ५९ ॥ स्तृता व्याप्ता शस्त्रं जग्राह तत्कार्यं क्षत्रियाणामन्तं कृतवान् ॥ ६० ॥ वर्जिताः अहताः ॥ ६१ ॥ स्रुक्प्रग्रहवता करेणेति कश्यपोऽध्वर्युः सन् कर्मान्तर एव माध्यन्दिनसवने दाक्षिणाकाले इदं अब्रवीदिति सूच्यते ॥ ६५ ॥ द्विजः क्षत्रियोऽपि ॥ ७८ ॥ द्योतुल्यानिविचित्रप्रासादादीन्कुर्वन्ति ते द्योकाराः शिल्पिनः ज्याकारेति पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः ॥ ८४ ॥ अपचितिः आनृण्यार्थं पूजा ॥ ८६ ॥

न ह्यहं कामये नित्यमतिक्रान्तेन रक्षणम् ।
वर्तमानेन वर्तेयं तत्क्षिप्रं संविधीयताम् ॥
वासुदेव उवाच ।
ततः पृथिव्या निर्दिष्टांस्तान्समानीय कश्यपः
अभ्यषिञ्चन्महीपालान्क्षत्रियान्वीर्यसंमतान् ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः
एवमेतत्पुरावृत्तं यन्मां पृच्छसि पाण्डव ॥८९
वैशम्पायन उवाच ।
एवं ब्रुवंस्तं च यदुप्रवीरो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
रथेन तेनाशु ययौ महात्मा
दिशः प्रकाशन्भगवानिवार्कः ॥ ९०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि रामोपाख्याने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः× ॥ ४९ ॥

## ५०

वैशम्पायन उवाच ।
ततो रामस्य तत्कर्म श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः
विस्मयं परमं गत्वा प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥
अहो रामस्य वार्ष्णेय शक्रस्येव महात्मनः ।
विक्रमो वसुधा येन क्रोधान्निःक्षत्रिया कृता
गोभिः समुद्रेण तथा गोलांगूलर्क्षवानरैः ।
गुप्ता रामभयोद्विग्नाः क्षत्रियाणां कुलोद्वहाः ॥
अहो धन्यो नृलोकोऽयं सभाग्याश्च नरा भुवि
यत्र कर्मेदृशं धर्म्यं द्विजेन कृतमित्युत ॥ ४
तथावृत्तौ कथां तात तावच्युतयुधिष्ठिरौ ।
जग्मतुर्यत्र गाङ्गेयः शरतल्पगतः प्रभुः ॥ ५
ततस्ते ददृशुर्भीष्मं शरप्रस्तरशायिनम् ।
स्वरश्मिजालसंवीतं सायंसूर्यसमप्रभम् ॥ ६
उपास्यमानं मुनिभिर्देवैरिव शतक्रतुम् ।
देशे परमधर्मिष्ठे नदीमोघवतीमनु ॥ ७
दूरादेव तमालोक्य कृष्णो राजा च धर्मजः
चत्वारः पाण्डवाश्चैव ते च शारद्वतादयः ॥८
अवस्कन्याथ वाहेभ्यः संयम्य प्रचलं मनः ।
एकीकृत्येन्द्रियग्राममुपतस्थुर्महामुनीन् ॥ ९
अभिवाद्य तु गोविन्दः
सात्यकिस्ते च पार्थिवाः ।
व्यासादीनृषिमुख्यांश्च
गाङ्गेयमुपतस्थिरे ॥ १०
ततो वृद्धं तथा दृष्ट्वा गाङ्गेयं यदुकौरवाः ।
परिवार्य ततः सर्वे निषेदुः पुरुषर्षभाः ॥ ११
ततो निशाम्य गाङ्गेयं शाम्यमानमिवानलम्
किंचिद्दीनमना भीष्ममिति होवाच केशवः
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि यथा पुरा
कच्चिन्न व्याकुला चैव बुद्धिस्ते वदतां वर ॥
शराभिघातदुःखात्ते कच्चिद्गात्रं न दूयते ।
मानसादपि दुःखाद्धि शारीरं बलवत्तरम् ॥
वरदानात्पितुः कामं छन्दमृत्युरसि प्रभो ।
शान्तनोर्धर्मनित्यस्य न त्वेतन्मम कारणम्
सुसूक्ष्मोऽपि तु देहे वै शल्यो जनयते रुजम् ।
किं पुनः शरसंघातैश्चित्तस्य तव पार्थिव ॥१६
कामं नैतत्तवाख्येयं प्राणिनां प्रभवाप्ययौ ।
उपदेष्टुं भवान्शक्तो देवानामपि भारत ॥१७
यच्च भूतं भविष्यं च भवच्च पुरुषर्षभ ।
सर्वं तज्ज्ञानवृद्धस्य तव भीष्म प्रतिष्ठितम्१८
संहारश्चैव भूतानां धर्मस्य च फलोदयः ।
विदितस्ते महाप्राज्ञ त्वं हि धर्ममयो निधिः

नित्यमतिक्रान्तेन धर्मातिक्रमिणा ॥ ८७ ॥ प्रकाशन् प्रकाशयन् ॥ ९० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नै० भा० एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥ × अस्मिन्नध्याये श्लोकषट्कमधिकं खपुस्तके

५०

तत इति ॥ १ ॥ तथावृत्तौ तादृक् गोष्ठीपरौ ॥ ५ ॥ अवस्कन्याथ अवरुह्य वाहेभ्यः ॥ ९ ॥ निशाम्य आलोच्य ॥ १२ ॥ छन्दमृत्युः इच्छामरणः एतच्छन्दमृत्युतायाः कारणं पितृतोषणं ममापि न किमुतान्येषामित्यर्थः ॥ १५ ॥ कामं एतन्न युक्तमिति शेषः । सर्वज्ञस्यापि तवोपदेशो न युक्त इत्यर्थः ॥ १७ ॥ प्रतिष्ठितं बुद्धाविति शेषः ॥ १८ ॥

त्वां हि राज्ये स्थितं स्फीते
समग्राङ्गमरोगिणम् ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतं
पश्यामीवोर्ध्वरेतसम् ॥ २०

ऋते शान्तनवाद्भीष्मात्त्रिषु लोकेषु पार्थिव ।
सत्यधर्मान्महावीर्याच्छूराद्धर्मैकतत्परात् ॥
मृत्युमावार्य तपसा शरसंस्तरशायिनः ।
निसर्गप्रभवं किंचिन्न च तातानुशुश्रुम ॥ २२
सत्ये, तपसि, दाने च, यज्ञाधिकरणे, तथा ।
धनुर्वेदे, च वेदे, च नीत्यां, चैवानुरक्षणे॥ २३
अनृशंसं शुचिं दान्तं सर्वभूतहिते रतम् ।
महारथं त्वत्सदृशं न कश्चिदनुशुश्रुम ॥ २४
त्वं हि देवान्सगन्धर्वानसुरान् यक्षराक्षसान्
शक्तस्त्वेकरथेनैव विजेतुं नात्र संशयः ॥ २५
स त्वं भीष्म महाबाहो वसूनां वासवोपमः
नित्यं विप्रैः समाख्यातो नवमोऽनवमो गुणैः
अहं च त्वाऽभिजानामि यस्त्वं पुरुषसत्तम ।
त्रिदशेष्वपि विख्यातस्त्वं शक्त्या पुरुषोत्तमः
मनुष्येषु मनुष्येन्द्र न दृष्टो न च मे श्रुतः ॥
भवतो वा गुणैर्युक्तः पृथिव्यां पुरुषः क्वचित्
त्वं हि सर्वगुणै राजन्देवानप्यतिरिच्यसे ।
तपसा हि भवाञ्शक्तः स्रष्टुं लोकांश्चराचरान्
किं पुनश्चात्मनो लोकानुत्तमानुत्तमैर्गुणैः ।
तदस्य तप्यमानस्य ज्ञातीनां संक्षयेन वै ॥
ज्येष्ठस्य पांडुपुत्रस्य शोकं भीष्म व्यपानुद ।
ये हि धर्माः समाख्याताश्चातुर्वर्ण्यस्य भारत
चातुराश्रम्यसंयुक्ताः सर्वे ते विदितास्तव ।
चातुर्विद्ये च ये प्रोक्ताश्चातुर्होत्रे च भारत ॥

योगे सांख्ये च नियता
ये च धर्माः सनातनाः ।
चातुर्वर्ण्यस्य यश्चोक्तो
धर्मो न स्म विरुध्यते ॥ ३३

सेव्यमानः सवैयाख्यो गांगेय विदितस्तव
प्रतिलोमप्रसूतानां वर्णानां चैव यः स्मृतः ॥
देशजातिकुलानां च जानीषे धर्मलक्षणम् ।
वेदोक्तो यश्च शिष्टोक्तः सदैव विदितस्तव *
इतिहासपुराणार्थाः कार्त्स्न्येन विदितास्तव
धर्मशास्त्रं च सकलं नित्यं मनसि ते स्थितम्
ये च केचन लोकेऽस्मिन्नर्थाः संशयकारकाः
तेषां छेत्ता नास्ति लोके त्वदन्यः पुरुषर्षभ ॥

स पाण्डवेयस्य मनःसमुत्थितं
नरेन्द्र शोकं व्यपकर्ष मेधया ।
भवद्विधा ह्युत्तमबुद्धिविस्तरा
विमुह्यमानस्य नरस्य शान्तये ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा तु वचनं भीष्मो वासुदेवस्य धीमतः
किंचिदुन्नाम्य वदनं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥
भीष्म उवाच ।
नमस्ते भगवन्कृष्ण लोकानां प्रभवाप्यय ।
त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजितः
विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन्विश्वसंभव ।
अपवर्गस्थ भूतानां पञ्चानां परतः स्थित ॥ ३
नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु ।
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु त्वं हि सर्वपरायणः ॥

मत्संश्रितं यदाऽऽत्थ त्वं
वचः पुरुषसत्तम ।
तेन पश्यामि ते दिव्यान्
भावान् हि त्रिषु वर्त्मसु ॥ ५

पश्यामीवेतीव शब्दादप्रतिज्ञातः पूर्वं ऊर्ध्वरेतस्त्वं नासीदिति भावः ॥ २० ॥ भीष्मादृते मृत्युमावार्य स्थितं किमपि निसर्गप्रभवं जनिमत्त्वं न शुश्रुमेति द्वयोः सम्बन्धः ॥ २१ ॥ वसूनामष्टानामंशघटितो नवमो गुणैरनवमश्च ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नै० भा० पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०
* 'प्रवृत्तश्च निवृत्तश्च स चापि विदितस्तव' इत्यधिकम् ।

५१

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ नमस्त इत्यादयोऽष्टौ श्लोकाः स्तवराजे व्याख्याताः ॥ २ ॥

तच्च पश्यामि गोविन्द यत्ते रूपं सनातनम् ।
सप्त मार्गा निरुद्धास्ते वायोरमिततेजसः ॥ ६
दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुंधरा ।
दिशो भुजा रविश्चक्षुर्वीर्ये शुक्रः प्रतिष्ठितः ॥
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।
वपुर्ह्यनुमिमीमस्ते मेघस्येव सविद्युतः ॥ ८
त्वत्प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे ।
यच्छ्रेयः पुण्डरीकाक्ष तद्ध्यायस्व सुरोत्तम ॥

वासुदेव उवाच ।

यतः खलु परा भक्तिर्मयि ते पुरुषर्षभ ।
ततो मया वपुर्दिव्यं त्वयि राजन् प्रदर्शितम् ॥
न ह्यभक्ताय राजेन्द्र भक्तायानृजवे न च ।
दर्शयाम्यहमात्मानं न चाशान्ताय भारत ॥
भवांस्तु मम भक्तश्च नित्यं चार्जवमास्थितः ।
दमे तपसि सत्ये च दाने च निरतः शुचिः ॥
अर्हस्त्वं भीष्म मां द्रष्टुं तपसा स्वेन पार्थिव ।
तव ह्युपस्थिता लोका येभ्यो नावर्तते पुनः ॥
पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर
शेषं दिनानां तव जीवितस्य ।
ततः शुभैः कर्मफलोदयैस्त्वं
समेष्यसे भीष्म विमुच्य देहम् ॥ १४
एते हि देवा वसवो विमाना-
न्यास्थाय सर्वे ज्वलिताग्निकल्पाः ।
अन्तर्हितास्त्वां प्रतिपालयन्ति
काष्ठां प्रपद्यन्तमुदक्पतङ्गम्× ॥ १५
व्यावर्तमाने भगवत्युदीचीं
सूर्ये जगत्कालवशं प्रपन्ने ।
गन्तासि लोकान् पुरुषप्रवीर
नावर्तते यानुपलभ्य विद्वान् ॥ १६
अमुं च लोकं त्वयि भीष्म याते
ज्ञानानि नंक्ष्यन्त्यखिलेन वीर+ ।
अतस्तु सर्वे त्वयि सन्निकर्षं
समागता धर्मविवेचनाय ॥ १७
तज्ज्ञातिशोकोपहतश्रुताय
सत्याभिसन्धाय युधिष्ठिराय ।
प्रब्रूहि धर्मार्थसमाधियुक्तं
सत्यं वचोऽस्यापनुदाशु शोकम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कृष्णवाक्य एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

वैशम्पायन उवाच ।

ततः कृष्णस्य तद्वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
श्रुत्वा शान्तनवो भीष्मः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥
लोकनाथ महाबाहो शिव नारायणाच्युत ।
तव वाक्यमुपश्रुत्य हर्षेणास्मि परिप्लुतः ॥ २

---

पञ्चाशतं षट् चेति तव जीवितसम्बन्धिनां दिनानां शेषं पञ्च षट् च पञ्चवारमावर्तिताः षडिति रीत्या त्रिंशदिति ज्ञेयं तावदेव आशतं शतावधि यद्दिनानां शतेन कर्तुं शक्यं तत्त्रिंशतापि कर्तुं शक्यमित्यर्थः । 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' इति भीष्मो वक्ष्यति । तत्र त्रिंशदतः परं शिष्टाः अष्टाविंशतिरितः पूर्वं व्यतीताः। तथाहि । भीष्मस्य शरतल्पशयनानन्तरं अष्टौ दिनानि युद्धं ततो दुर्योधनाशौचं युयुत्सोः षोडशदिनानि तेन सह पुरं प्रविशतां पाण्डवानामपि तावन्ति दिनानि गतानि पञ्चविंशे सर्वेषां श्राद्धदानं षड्विंशे पुरप्रवेशः सप्तविंशे राज्याभिषेकः, अष्टाविंशे प्रकृतिसान्त्वनं आभ्युदयिकं दानं च ऊनत्रिंशे भीष्मं प्रत्यागमनम् । तद्दिनमारभ्य त्रिंशद्दिनानि शिष्टानीति ज्ञेयम् ॥१४॥ प्रतिपालयन्ति प्रतीक्षन्ते पतङ्गं सूर्यम् ॥ १५ ॥ कालवशं च जगत् प्रपन्ने प्राप्ते क्षेमुमिति शेषः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ × पतङ्गमिति पाठः । + ज्ञानानि सर्वाणि पराभविष्यन् इति पाठः ।

५२

तत इति ॥ १ ॥

किं चाहमभिधास्यामि
वाक्यं ते तव सन्निधौ ।
यदा वाचोगतं सर्वं
तव वाचि समाहितम् ॥ ३
यच्च किञ्चित्क्वचिल्लोके कर्तव्यं क्रियते च यत्
त्वत्तस्तन्निःसृतं देव लोके बुद्धिमतो हि ते
कथयेद्देवलोकं यो देवराजसमीपतः ।
धर्मकामार्थमोक्षाणां सोऽर्थं ब्रूयात्तवाग्रतः ५
शराभितापाद्व्यथितं मनो मे मधुसूदन ।
गात्राणि चावसीदन्ति न च बुद्धिः प्रसीदति
न च मे प्रतिभा काचि-
दस्ति किञ्चित्प्रभाषितुम् ।
पीड्यमानस्य गोविन्द
विषानलसमैः शरैः ॥ ७
बलं मे प्रजहातीव प्राणाः संत्वरयन्ति च ।
मर्माणि परितप्यन्ति भ्रान्तचित्तस्तथा ह्यहम्
दौर्बल्यात्सज्जते वाङ्मे स कथं वक्तुमुत्सहे ।
साधु मे त्वं प्रसीदस्व दाशार्हकुलवर्धन ॥ ९
तत्क्षमस्व महाबाहो न ब्रूयां किञ्चिदच्युत ।
त्वत्सन्निधौ च सीदेद्धि वाचस्पतिरपि ब्रुवन्
न दिशः संप्रजानामि नाकाशं न च मेदिनीम्
केवलं तव वीर्येण तिष्ठामि मधुसूदन ॥ ११
स्वयमेव भवांस्तस्माद्धर्मराजस्य यद्धितम् ।
तद्ब्रवीत्वाशु सर्वेषामागमानां त्वमागमः ॥
कथं त्वयि स्थिते कृष्णे शाश्वते लोककर्तरि ।
प्रब्रूयान्मद्विधः कश्चिद्गुरौ शिष्य इव स्थिते ॥

वासुदेव उवाच ।

उपपन्नमिदं वाक्यं कौरवाणां धुरन्धरे ।
महावीर्ये महासत्त्वे स्थिरे सर्वार्थदर्शिनि १४
यच्च मामात्थ गाङ्गेय बाणघातरुजं प्रति ।
गृहाणात्र वरं भीष्म मत्प्रसादकृतं प्रभो १५
न ते ग्लानिर्न ते मूर्छा न दाहो न च ते रुजा
प्रभविष्यन्ति गाङ्गेय क्षुत्पिपासे न चाच्युत१६
ज्ञानानि च समग्राणि प्रतिभास्यन्ति तेऽनघ
न च ते क्वचिदासक्तिर्बुद्धेः प्रादुर्भविष्यति ॥
सत्त्वस्थं च मनो नित्यं तव भीष्म भविष्यति
रजस्तमोभ्यां रहितं घनैर्मुक्त इवोडुराट् १८
यद्यच्च धर्मसंयुक्तमर्थयुक्तमथापि च ।
चिन्तयिष्यसि तत्राग्र्या बुद्धिस्तव भविष्यति
इमं च राजशार्दूल भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चक्षुर्दिव्यं समाश्रित्य द्रक्ष्यस्यमितविक्रम ॥
=संसरन्तं प्रजाजालं संयुक्तो ज्ञानचक्षुषा ।
भीष्म द्रक्ष्यसि तत्त्वेन जले मीन इवामले ॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते व्याससहिताः सर्व एव महर्षयः ।
ऋग्यजुःसामसहितैर्वचोभिः कृष्णमार्चयन्
ततः सर्वार्तवं दिव्यं पुष्पवर्षं नभस्तलात् ।
पपात यत्र वार्ष्णेयः सगाङ्गेयः सपाण्डवः ॥
वादित्राणि च सर्वाणि जगुश्चाप्सरसां गणाः
न चाहितमनिष्टं च किञ्चित्तत्र प्रदृश्यते २४
ववौ शिवः सुखो वायुः सर्वगन्धवहः शुचिः
शान्तायां दिशि शान्ताश्च प्रावदन्मृगपक्षिणः
ततो मुहूर्ताद्भगवान्सहस्रांशुर्दिवाकरः ।
दहन्वनमिवैकान्ते प्रतीच्यां प्रत्यदृश्यत २६
ततो महर्षयः सर्वे समुत्थाय जनार्दनम् ।
भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रू राजानं च युधिष्ठिरम्
ततः प्रणाममकरोत्केशवः सहपाण्डवः ।
सात्यकिः सञ्जयश्चैव स च शारद्वतः कृपः ॥
ततस्ते धर्मनिरताः सम्यक् तैरभिपूजिताः ।
श्वः समेष्याम इत्युक्त्वा यथेष्टं त्वरिता ययुः
तथैवामन्त्र्य गाङ्गेयं केशवः पाण्डवास्तथा ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य रथानारुरुहुः शुभान् ॥ ३०
ततो रथैः काञ्चनचित्रकूबरै-
र्महीधराभैः समदैश्च दन्तिभिः ।
हयैः सुपर्णैरिव चाशुगामिभिः
पदातिभिश्चात्तशरासनादिभिः ३१
ययौ रथानां पुरतो हि सा चमू-
स्तथैव पश्चादतिमात्रसारिणी ।
पुरश्च पश्चाच्च यथा महानदी
तमृक्षवन्तं गिरिमेत्य नर्मदा ॥ ३२
ततः पुरस्ताद्भगवान्निशाकरः
समुत्थितस्तामभिहर्षयंश्चमूम् ।
दिवाकरापीतरसा महौषधीः
पुनः स्वकेनैव गुणेन योजयन् ॥ ३३

---

ते तवैव वाक्यं तव सन्निधौ वाचोगतं वाचां विषयः सर्वोऽपि तव वाचि वेदे ॥ ३ ॥ यच्चेति । हिते प्रिये लोके देवलोके इह परत्र च तत्सर्वं त्रैकालिकं त्वत्तो निःसृतमिति उक्तेऽर्थे हेतुरुक्तः ॥ ४ ॥ आसक्तिः अवसन्नता ॥१७॥ संसरन्तं संसरत् ॥२१॥ = चतुर्विधमिति पा.

ततः पुरं सुरपुरसंमितद्युति
प्रविश्य ते यदुवृषपाण्डवास्तदा ।
यथोचितान्भवनवरान्समाविशन्
श्रमान्विता मृगपतयो गुहा इव ३४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिराद्यागमने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शयनमाविश्य प्रसुप्तो मधुसूदनः ।
याममात्रार्धशेषायां यामिन्यां प्रत्यबुध्यत १
स ध्यानपथमाविश्य सर्वज्ञानानि माधवः ।
अवलोक्य ततः पश्चाद्दध्यौ ब्रह्म सनातनम् २
ततः स्तुतिपुराणज्ञा रक्तकण्ठाः सुशिक्षिताः
अस्तुवन्विश्वकर्माणं वासुदेवं प्रजापतिम् ॥ ३
पठन्ति पाणिस्वनिका-
स्तथा गायन्ति गायनाः ।
शङ्खानथ मृदङ्गांश्च
प्रवाद्यन्ति सहस्रशः ॥ ४
वीणापणववेणूनां स्वनश्चातिमनोरमः ।
सहास इव विस्तीर्णः शुश्रुवे तस्य वेश्मनः ५
ततो युधिष्ठिरस्यापि राज्ञो मङ्गलसंहिताः ।
उच्चेरुर्मधुरा वाचो गीतवादित्रनिःस्वनाः ६
तत उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः
जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्नीनाश्रित्य तस्थिवान्
ततः सहस्रं विप्राणां चतुर्वेदविदां तथा ।
गवां सहस्रेणैकैकं वाचयामास माधवः ॥ ८
मङ्गलालम्भनं कृत्वा आत्मानमवलोक्य च ।
आदर्शे विमले कृष्णस्ततः सात्यकिमब्रवीत्
गच्छ शैनेय जानीहि गत्वा राजनिवेशनम्
अपि सज्जो महातेजा भीष्मं द्रष्टुं युधिष्ठिरः
ततः कृष्णस्य वचनात्सात्यकिस्त्वरितो ययौ
उपगम्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत ॥ ११
युक्तो रथवरो राजन्वासुदेवस्य धीमतः ।
समीपमापगेयस्य प्रयास्यति जनार्दनः ॥ १२
भवत्प्रतीक्षः कृष्णोऽसौ धर्मराज महाद्युते ।
यदत्रानन्तरं कृत्यं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ १३

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
युधिष्ठिर उवाच ।
युज्यतां मे रथवरः फाल्गुनाप्रतिमद्युते॥१४
न सैनिकैश्च यातव्यं यास्यामो वयमेव हि ।
न च पीडयितव्यो मे भीष्मो धर्मभृतां वरः
अतः पुरःसराश्चापि निवर्तन्तु धनञ्जय ।
अद्यप्रभृति गाङ्गेयः परं गुह्यं प्रवक्ष्यति ॥
अतो नेच्छामि कौन्तेय पृथग्जनसमागमम्
वैशम्पायन उवाच ।
स तद्वाक्यमथाज्ञाय कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥
युक्तं रथवरं तस्मा आचचक्षे नरर्षभः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा यमौ भीमार्जुनावपि
भूतानीव समस्तानि ययुः कृष्णनिवेशनम् ।
आगच्छत्स्वथ कृष्णोऽपि पांडवेषु महात्मसु
शैनेयसहितो धीमान् रथमेवान्वपद्यत ।
रथस्थाः संविदं कृत्वा सुखां पृष्ट्वा च शर्वरीम्
मेघघोषै रथवरैः प्रययुस्ते नरर्षभाः ।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ।
दारुकश्चोदयामास वासुदेवस्य वाजिनः॥२१
ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः ।
गां खुराग्रैस्तथा राजन् लिखन्तः प्रययुस्तदा
ते ग्रसन्त इवाकाशं वेगवन्तो महाबलाः ।
क्षेत्रं धर्मस्य कृत्स्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरन् ॥ २३
ततो ययुर्यत्र भीष्मः शरतल्पगतः प्रभुः ।
आस्ते महर्षिभिः सार्धं ब्रह्मा देवगणैर्यथा २४
ततोऽवतीर्य गोविन्दो रथात्स च युधिष्ठिरः
भीमो गाण्डीवधन्वा च यमौ सात्यकिरेव च
ऋषीनभ्यर्चयामासुः करानुद्यम्य दक्षिणान्

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

५३

तत इति ॥ १ ॥ मङ्गलानां गवादीनामालम्भनं स्पर्शम् ॥ ९ ॥

स तैः परिवृतो राजा नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
अभ्याजगाम गाङ्गेयं ब्रह्माणमिव वासवः ॥
शरतल्पे शयानं तमादित्यं पतितं यथा ।
स ददर्श महाबाहुं भयाच्चागतसाध्वसः॥२७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि भीष्माभिगमने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

जनमेजय उवाच ।
धर्मात्मनि महावीर्ये सत्यसन्धे जितात्मनि
देवव्रते महाभागे शरतल्पगतेऽच्युते ॥ १
शयाने वीरशयने भीष्मे शान्तनुनन्दने ।
गाङ्गेये पुरुषव्याघ्रे पाण्डवैः पर्युपासिते ॥ २
काः कथाः समवर्तन्त तस्मिन्वीरसमागमे ।
हतेषु सर्वसैन्येषु तन्मे शंस महामुने ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
शरतल्पगते भीष्मे कौरवाणां धुरंधरे ।
आजग्मुर्ऋषयः सिद्धा नारदप्रमुखा नृप ॥ ४
हतशिष्टाश्च राजानो युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
धृतराष्ट्रश्च कृष्णश्च भीमार्जुनयमास्तथा ॥ ५
तेऽभिगम्य महात्मानो भरतानां पितामहं
अन्वशोचन्त गाङ्गेयमादित्यं पतितं यथा ॥६
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा
नारदो देवदर्शनः ।
उवाच पाण्डवान्सर्वान्
हतशिष्टांश्च पार्थिवान् ॥ ७
प्राप्तकालं समाचक्षे भीष्मोऽयमनुयुज्यताम् ।
अस्तमेति हि गाङ्गेयो भानुमानिव भारत ॥
अयं प्राणानुत्सिसृक्षु-
स्तं सर्वेऽभ्यनुपृच्छत ।
कृत्स्नान् हि विविधान्धर्मां-
श्चातुर्वर्ण्यस्य वेत्त्ययम् ॥ ९
एष वृद्धः परान्लोकान्संप्राप्नोति तनुं त्यजन्
तं शीघ्रमनुयुञ्जीध्वं संशयान्मनसि स्थितान् ॥
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्ते नारदेन भीष्ममीयुर्नराधिपाः ।
प्रष्टुं चाशक्नुवन्तस्ते वीक्षां चक्रुः परस्परम् ॥
*अथोवाच हृषीकेशं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नान्यस्तु देवकीपुत्राच्छक्तः प्रष्टुं पितामहम् ॥
प्रत्याहर यदुश्रेष्ठ त्वमग्रे मधुसूदन ।
त्वं हि नस्तात सर्वेषां सर्वधर्मविदुत्तमः ॥
एवमुक्तः पाण्डवेन भगवान्केशवस्तदा ।
अभिगम्य दुराधर्षं प्रत्याहारयदच्युतः ॥ १४
वासुदेव उवाच ।
कच्चित्सुखेन रजनी व्युष्टा ते राजसत्तम ।
विस्पष्टलक्षणा बुद्धिः कच्चिच्चोपस्थिता तव
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रतिभान्ति च तेऽनघ
न ग्लायते च हृदयं न च ते व्याकुलं मनः ॥
भीष्म उवाच ।
दाहो मोहः श्रमश्चैव क्लमो ग्लानिस्तथा रुजा
तव प्रसादाद्वार्ष्णेय सद्यः प्रतिगतानि मे ॥
यच्च भूतं भविष्यच्च भवच्च परमद्युते ।
तत्सर्वमनुपश्यामि पाणौ फलमिवार्पितम् ॥
वेदोक्ताश्चैव ये धर्मा वेदान्ताधिगताश्च ये ।
तान्सर्वान्संप्रपश्यामि वरदानात्तवाच्युत ॥
शिष्टैश्च धर्मो यः प्रोक्तः स च मे हृदि वर्तते ।
देशजातिकुलानां च धर्मज्ञोऽस्मि जनार्दन ॥
चतुर्ष्वाश्रमधर्मेषु योऽर्थः स च हृदि स्थितः ।
राजधर्मांश्च सकलानवगच्छामि केशव ॥२१
यच्च यत्र च वक्तव्यं तद्वक्ष्यामि जनार्दन ।
तव प्रसादाद्धि शुभा मनो मे बुद्धिराविशत्
युवेवास्मि समावृत्तस्त्वदनुध्यानबृंहितः ।
वक्तुं श्रेयः समर्थोऽस्मि त्वत्प्रसादाज्जनार्दन

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

५४

धर्मात्मनीति ॥ १ ॥ समाचक्षे ब्रवीमि अनुयुज्यतां पृच्छताम् ॥८॥ ततः उवाचेति छेदः ॥ १२ ॥ प्रत्याहारयत् अवाचयत् ॥ १४ ॥ वेदोक्ताः अग्निहोत्रादयः वेदान्ताधिगताः शमदमसंन्यासादयः ॥ १९ ॥ मे मम मनः कर्म बुद्धिराविशत् ॥२२॥ * ततोवाच-पा०

अर्थ किमर्थं तु भवान् श्रेयो न प्राह पाण्डवं
किं ते विवक्षितं चात्र तदाशु वद माधव ॥
वासुदेव उवाच ।
यशसः श्रेयसश्चैव
मूलं मां विद्धि कौरव ।
मत्तः सर्वेऽभिनिर्वृत्ता
भावाः सदसदात्मकाः ॥२५
शीतांशुश्चन्द्र इत्युक्ते लोके को विस्मयिष्यति
तथैव यशसा पूर्णे मयि को विस्मयिष्यति ॥
आधेयं तु मया भूयो यशस्तव महाद्युते ।
ततो मे विपुला बुद्धिस्त्वयि भीष्म समर्पिता
यावद्धि पृथिवीपाल पृथ्वीयं स्थास्यति ध्रुवा
तावत्तवाक्षया कीर्तिर्लोकाननुचरिष्यति ॥
यच्च त्वं वक्ष्यसे भीष्म पांडवायानुपृच्छते ।
वेदप्रवाद इव ते स्थास्यते वसुधातले ॥ २९
यश्चैतेन प्रमाणेन योक्ष्यत्यात्मानमात्मना ।
स फलं सर्वपुण्यानां प्रेत्य चानुभविष्यति ॥
एतस्मात् कारणाद्भीष्म
मतिर्दिव्या मया हि ते ।
दत्ता यशो विप्रथयेत्
कथं भूयस्तवेति ह ॥ ३१
यावद्धि प्रथते लोके पुरुषस्य यशो भुवि ।
तावत्तस्याक्षया कीर्तिर्भवतीति विनिश्चिता
राजानो हतशिष्टास्त्वां राजन्नभित आसते
धर्माननुयुयुक्षन्तस्तेभ्यः प्रब्रूहि भारत ॥ ३३
भवान् हि वयसा वृद्धः श्रुताचारसमन्वितः ।
कुशलो राजधर्माणां सर्वेषामपराश्च ये ॥ ३४
जन्मप्रभृति ते कश्चिद् वृजिनं न ददर्श ह ॥
ज्ञातारं सर्वधर्माणां त्वां विदुः सर्वपार्थिवाः
तेभ्यः पितेव पुत्रेभ्यो राजन्ब्रूहि परं नयम् ।
ऋषयश्चैव देवाश्च त्वया नित्यमुपासिताः ॥
तस्माद्वक्तव्यमेवेदं त्वयाऽवश्यमशेषतः ।
धर्मं शुश्रूषमाणेभ्यः पृष्टेन च सता पुनः ॥ ३७
वक्तव्यं विदुषा चेति धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
अप्रतिब्रुवतः कष्टो दोषो हि भविता प्रभो ॥
तस्मात्पुत्रैश्च पौत्रैश्च धर्मान्पृष्टान्सनातनान् ।
विद्वान् जिज्ञासमानैस्त्वं प्रब्रूहि भरतर्षभ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कृष्णवाक्ये चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

वैशम्पायन उवाच ।
अथाब्रवीन्महातेजा वाक्यं कौरवनन्दनः ।
हन्त धर्मान्प्रवक्ष्यामि दृढे वाङ्मनसी मम १
तव प्रसादाद्गोविन्द भूतात्मा ह्यसि शाश्वतः
युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा मां धर्माननुपृच्छतु
एवं प्रीतो भविष्यामि
धर्मान्वक्ष्यामि चाखिलान् ॥ २
यस्मिन् राजर्षभे जाते धर्मात्मनि महात्मनि
अहृष्यन् ऋषयः सर्वे स मां पृच्छतु पाण्डवः
सर्वेषां दीप्तयशसां
कुरूणां धर्मचारिणाम् ।
यस्य नास्ति समः कश्चित्
स मां पृच्छतु पाण्डवः ४
धृतिर्दमो ब्रह्मचर्यं क्षमा धर्मश्च नित्यदा ।
यस्मिन्नोजश्च तेजश्च स मां पृच्छतु पाण्डवः
सम्बन्धीनातिथीन्भृत्यान्
संश्रितांश्चैव यो भृशम् ।
संमानयति सत्कृत्य
स मां पृच्छतु पाण्डवः ॥ ६

---

मे मया ॥२७॥ यशः परचित्तचमत्कृतिजनको गुणौघः कीर्तिः साधुतयाऽन्यैः कथनम् ॥ ३२ ॥ अनुयुयुक्षन्तः प्रष्टुमिच्छन्तः ॥ ३३ ॥ • इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

अथेति ॥१॥ भूतात्मा प्राणिनामन्तरात्माऽसि तेन ममाभिप्रायं वेत्सीति भावः ॥ २ ॥ प्रसङ्गाद्धर्मश्रवणाधिकारिणं निरूपयति युधिष्ठिरस्तुतिव्याजेन—यस्मिन्नित्यादिना ॥ ३ ॥ सम्बन्धीन्सम्बन्धिनः ॥ ६ ॥

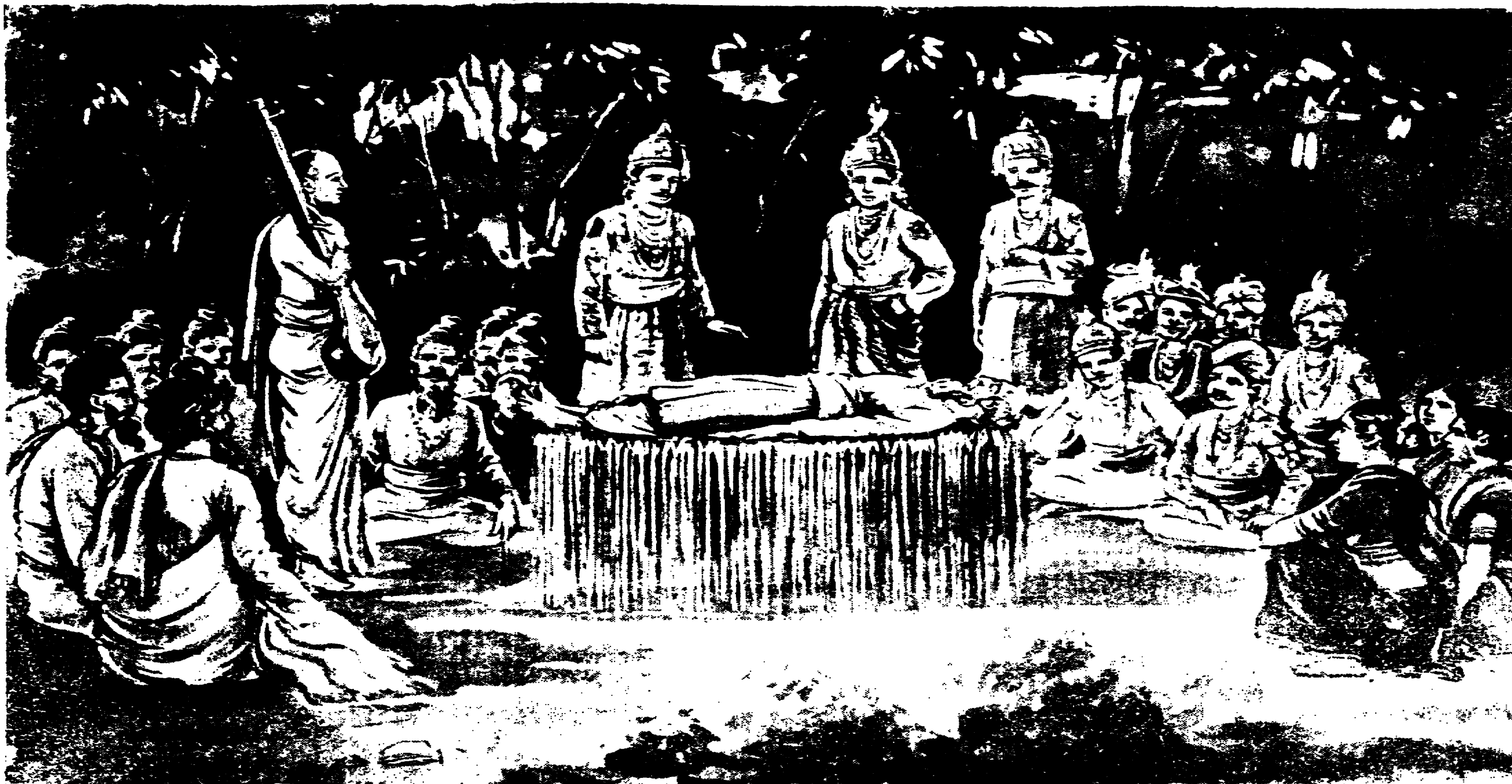

एवमुक्तस्तु भीष्मेण धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विनीतवदुपागम्य तस्थौ संदर्शनेऽग्रतः ॥ २० ॥
तमुवाचाथ गाङ्गेयो वृषभः सर्वधन्विनाम् ।
मां पृच्छ तात विश्रब्धं मा भैस्त्वं कुरुसत्तम ॥२२॥—शान्तिपर्व अ० ५५ पृ० ९१

सत्यं दानं तपः शौर्यं शान्तिर्दाक्ष्यमसंभ्रमः ।
यस्मिन्नेतानि सर्वाणि स मां पृच्छतु पाण्डवः
यो न कामान्न संरम्भा-
न्न भयान्नार्थकारणात् ।
कुर्यादधर्मं धर्मात्मा
स मां पृच्छतु पाण्डवः ॥ ८
सत्यनित्यः क्षमानित्यो
ज्ञाननित्योऽतिथिप्रियः ।
यो ददाति सतां नित्यं
स मां पृच्छतु पाण्डवः ॥ ९
इज्याध्ययननित्यश्च धर्मे च निरतः सदा ।
क्षान्तः श्रुतरहस्यश्च स मां पृच्छतु पाण्डवः

वासुदेव उवाच ।

लज्जया परयोपेतो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभिशापभयाद्भीतो भवन्तं नोपसर्पति ११
लोकस्य कदनं कृत्वा लोकनाथो विशांपते
अभिशापभयाद्भीतो भवन्तं नोपसर्पति १२
पूज्यान्मान्यांश्च भक्तांश्च
गुरून्सम्बन्धिबान्धवान् ।
अर्घार्हानिषुभिर्भित्त्वा
भवन्तं नोपसर्पति ॥ १३

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणानां यथा धर्मो दानमध्ययनं तपः ।
क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम् १४
पितॄन्पितामहान्भ्रातॄन्
गुरून्सम्बन्धिबान्धवान् ।
मिथ्याप्रवृत्तान्यः संख्ये
निहन्याद्धर्म एव सः ॥ १५
समयत्यागिनो लुब्धान्गुरूनपि च केशव ।
निहन्ति समरे पापान्क्षत्रियो यः स धर्मवित्
यो लोभान्न समीक्षेत धर्मसेतुं सनातनम् ।
निहन्ति यस्तं समरे क्षत्रियो वै स धर्मवित्
लोहितोदां केशतृणां गजशैलां ध्वजद्रुमाम्
महीं करोति युद्धेषु क्षत्रियो यः स धर्मवित्
आहूतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ।
धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यं च युद्धं हि मनुरब्रवीत् ।

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु भीष्मेण धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विनीतवदुपागम्य तस्थौ संदर्शनेऽग्रतः २०
अथास्य पादौ जग्राह भीष्मश्चापि ननन्द तम्
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥ २१
तमुवाचाथ गाङ्गेयो वृषभः सर्वधन्विनाम् ।
मां पृच्छ तात विस्रब्धं मा भैस्त्वं कुरुसत्तम

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिराश्वासने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

वैशम्पायन उवाच ।

प्रणिपत्य हृषीकेशमभिवाद्य पितामहम् ।
अनुमान्य गुरून्सर्वान्पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।

राज्ञां वै परमो धर्म इति धर्मविदो विदुः ।
महान्तमेतं भारं च मन्ये तद्ब्रूहि पार्थिव २
राजधर्मान्विशेषेण कथयस्व पितामह ।
सर्वस्य जीवलोकस्य राजधर्मः परायणम् ३
त्रिवर्गो हि समासक्तो राजधर्मेषु कौरव ।
मोक्षधर्मश्च विस्पष्टः सकलोऽत्र समाहितः ४
यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्यांकुशो यथा
नरेन्द्रधर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतम् ५

---

अभिशापो लोकगर्ह्यता ॥ ११ ॥ गोत्रवधजां ग्लानिं धर्मराजस्यापनेष्यन् भीष्म उवाच—**ब्राह्मणानामिति** ॥ १४ ॥ तं लोभिनम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

**प्रणिपत्येति** । गुरून्कृपव्यासादीन् पर्यपृच्छत् धर्मानिति शेषः ॥ १ ॥ **धर्मः** प्रजापालनात्मकः परमः सर्वधर्मश्रेष्ठः एतं धर्मं भारं दुर्वहं मन्ये ॥ २ ॥ **परायणं** आश्रयः ॥ ३ ॥ **त्रिवर्गः** धर्मार्थकामात्मकः राजधर्मेषु दण्डनीतौ समासक्तः समाश्रितः ॥ ४ ॥ **प्रग्रहणं** नियन्त्रणम् ॥ ५ ॥

तत्र चेत्संप्रमुह्येत धर्मे राजर्षिसेविते ।
लोकस्य संस्था न भवेत्सर्वं च व्याकुलीभवेत्

उद्यन् हि यथा सूर्यो
नाशयत्यशुभं तमः ।
राजधर्मास्तथाऽलोक्यां
निक्षिपन्त्यशुभां गतिम् ॥ ७

तदग्रे राजधर्मान् हि मदर्थे त्वं पितामह ।
प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ त्वं हि धर्मभृतां वरः ॥ ८
आगमश्च परस्त्वत्तः सर्वेषां नः परंतप ।
भवन्तं हि परं बुद्धौ वासुदेवोऽभिमन्यते ॥९

भीष्म उवाच ।

नमो धर्माय महते
नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य
धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १०

शृणु कार्त्स्न्येन मत्तस्त्वं राजधर्मान्युधिष्ठिर
निरुच्यमानान्नियतो यच्चान्यदपि वांछसि ॥
आदावेव कुरुश्रेष्ठ राज्ञा रंजनकाम्यया ।
देवतानां द्विजानां च वर्तितव्यं यथाविधि
दैवतान्यर्चयित्वा हि ब्राह्मणांश्च कुरूद्वह ।
आनृण्यं याति धर्मस्य लोकेन च समर्च्यते
उत्थानेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर ।
न ह्युत्थानमृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसाधयेत् ॥१४

साधारणं द्वयं ह्येतद्दैवमुत्थानमेव च ।
पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चित्यमुच्यते ॥
विपन्ने च समारंभे संतापं मा स्म वै कृथाः ।
घटस्वैव सदाऽऽत्मानं राज्ञामेष परो नयः ॥
न हि सत्यादृते किञ्चिद्राज्ञां वै सिद्धिकारकं
सत्ये हि राजा निरतः प्रेत्य चेह च नन्दति
ऋषीणामपि राजेन्द्र सत्यमेव परं धनम् ।
तथा राज्ञां परं सत्यान्नान्यद्विश्वासकारणम्
गुणवाञ्शीलवान्दान्तो मृदुर्धर्म्यो जितेन्द्रियः
सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्येत सदा श्रियः
आर्जवं सर्वकार्येषु श्रयेथाः कुरुनन्दन ।
पुनर्नयविचारेण त्रयीसंवरणेन च ॥ २०
मृदुर्हि राजा सततं लंघ्यो भवति सर्वशः ।
तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रय
अदण्ड्याश्चैव ते पुत्र विप्राश्च ददतां वर ।
भूतमेतत्परं लोके ब्राह्मणो नाम पाण्डव ॥
मनुना चैव राजेन्द्र गीतौ श्लोकौ महात्मना
धर्मेषु स्वेषु कौरव्य हृदि तौ कर्तुमर्हसि ॥२३
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥
अयो हन्ति यदाऽश्मानमग्निना वारि हन्यते
ब्रह्म च क्षत्रियो द्वेष्टि तदा सीदन्ति ते त्रयः

संस्था मर्यादा व्यवस्था ॥ ६ ॥ अलोक्यामप्रकाशात्मिकामशुभां गतिं नरकं निक्षिपन्ति दूरीकुर्वन्ति । तथा च स्मृतिः--

'राजभिः कृतदण्डास्तु शुध्यन्ति मलिना जनाः ।
कृतार्थाश्च ततो यान्ति स्वर्गं सुकृतिनो यथा' इति॥७॥

अग्रे इतरेभ्यो धर्मेभ्यः पूर्वम् ॥ ८ ॥ परः आगमः परं रहस्यं नः अस्माकं त्वत्त एव विहितमस्तु ॥९॥शाश्वतान्वेदपरंपरागतान् ॥ १० ॥ रञ्जनकाम्ययेति । यः कश्चिदक्षत्रियोऽपि प्रजापालनाधिकृतस्तस्य राज्ञोऽयं धर्मः यत् देवद्विजादिषु यथाविधि अनुग्रहबुद्ध्या वर्तितव्यमिति ॥१२॥यद्धर्मलोपाद्राज्ञो ऋणं भवति तद्देवताद्यर्चनेन नश्यतीत्याह—दैवतानीति । लोके च तत एव पूज्यो भवतीति संयोगान्तरम् ॥ १३ ॥ उत्थानेन पुरुषकारेण प्रयतेथाः जयाद्यर्थे यतस्व दैवं प्राग्भवीयं कर्म देवताराधनादिकं वा । केवलं उत्थानं विना न राज्ञां इष्टमर्थं साधयेत् ॥ १४ ॥ साधारणं रथचक्रवत्समानं तत्रापि पौरुषं परं श्रेष्ठं दृष्टद्वारत्वात्, दैवं तु फलद्वारा निश्चित्य मुच्यते । अकरणदोषात्फलासिद्धौ फलसिद्धौ तु दुःखान्मुच्यते ॥ १५ ॥ विपन्ने इति । घटस्व घटयस्व कर्षकवत्सकृद्यत्नवैफल्येऽपि यतस्वैवेत्यर्थः ॥ १६ ॥ न हीति । सत्यात्सामन्ता अपि वशे भवन्त्यन्यथा विश्वासाभावात्स्वीया अप्युद्विजन्ते । क्षीणा अपि परे प्राणपणेनापि जिगीषन्त एवेति श्लोकद्वयार्थः ॥ १७ ॥ गुणाः शौर्यौदार्यगाम्भीर्यादयस्तद्वान् । शीलं सदाचारस्तद्वान् । दान्तः अचपलः। मृदुर्दयावान्। धर्म्यो धर्मादनपेतः । जितेन्द्रियः जितचित्तः । सुदर्शः प्रसन्नमुखः । स्थूललक्ष्यः बहुप्रदः ॥१९॥ आर्जवम्-अवक्रतां नयो नीतिः स्वरन्ध्रगोपनं पररन्ध्रान्वेषणस्य स्वेन क्रियमाणस्य परेभ्यो गोपनं मन्त्रगोपनं चेत्यादि तद्युक्तेन विचारेण ऊहापोहेन साधकबाधकोपन्यासेन क्रियमाणेन । त्रयीसंवरणे उक्तविधनीतिरूपे आर्जवं यथार्थभाषित्वं च न श्रयेथाः ॥ २० ॥ उभयं मृदुत्वं तीक्ष्णत्वं च समुचितं आश्रय ॥ २१ ॥ तत्रापि तैक्ष्ण्यापवादमाह—अदण्ड्या इति ॥ २२ ॥

एवं कृत्वा महाराज नमस्या एव ते द्विजाः
भौमं ब्रह्म द्विजश्रेष्ठा धारयन्ति समर्चिताः ॥
एवं चैव नरव्याघ्र लोकत्रयविघातकाः ।
निग्राह्या एव सततं बाहुभ्यां ये स्युरीदृशाः
श्लोकौ चोशनसा गीतौ पुरा तात महर्षिणा
तौ निबोध महाराज त्वमेकाग्रमना नृप ॥
उद्यम्य शस्त्रमायान्तमपि वेदान्तगं रणे ।
निगृह्णीयात्स्वधर्मेण धर्मापेक्षी नराधिपः ॥
विनश्यमानं धर्मं हि योऽभिरक्षेत्स धर्मवित्
न तेन धर्महा स स्यान्मन्युस्तन्मन्युमृच्छति
एवं चैव नरश्रेष्ठ रक्ष्या एव द्विजातयः ।
सापराधानपि हि तान्विषयान्ते समुत्सृजेत्
अभिशस्तमपि ह्येषां कृपायीत विशांपते ।
ब्रह्मघ्ने गुरुतल्पे च भ्रूणहत्ये तथैव च ॥ ३२
राजद्विष्टे च विप्रस्य विषयान्ते विसर्जनम् ।
विधीयते न शारीरं दण्डमेषां कदाचन ॥३३
दयिताश्च नरास्तेस्युर्भक्तिमन्तो द्विजेषु ये ।
न कोशः परमोऽन्योऽस्ति राज्ञां पुरुषसंचयात्
दुर्गेषु च महाराज षट्सु ये शास्त्रनिश्चिताः
सर्वदुर्गेषु मन्यन्ते नरदुर्गं सुदुस्तरम् ॥ ३५
तस्मान्नित्यं दया कार्या चातुर्वर्ण्ये विपश्चिता
धर्मात्मा सत्यवाक् चैव राजा रञ्जयति प्रजाः

न च क्षान्तेन ते नित्यं भाव्यं पुत्र समंततः ।
अधर्मो हि मृदू राजा क्षमावानिव कुञ्जरः ॥
बार्हस्पत्ये च शास्त्रे च श्लोको निगदितः पुरा
अस्मिन्नर्थे महाराज तन्मे निगदतः शृणु ॥
क्षममाणं नृपं नित्यं नीचः परिभवेज्जनः ।
हस्तियन्ता गजस्यैव शिर एवारुरुक्षति ॥
तस्मान्नैव मृदुर्नित्यं तीक्ष्णो नैव भवेन्नृपः ।
वासंतार्क इव श्रीमान्न शीतो न च घर्मदः
प्रत्यक्षेणानुमानेन तथौपम्यागमैरपि ।
परीक्ष्यास्ते महाराज स्वे परे चैव नित्यशः ॥
व्यसनानि च सर्वाणि त्यजेथा भूरिदक्षिण ।
न चैव न प्रयुञ्जीत संकीर्णं परिवर्जयेत् ४२
लोकस्य व्यसनी नित्यं परिभूतो भवत्युत ।
उद्वेजयति लोकं च योऽतिद्वेषी महीपतिः ॥
भवितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणीसहधर्मिणा ।
कारणं च महाराज शृणु येनेदमिष्यते ४४
यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम्
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयम् ॥
वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना ।
स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत् ॥
न सन्त्याज्यं च ते धैर्यं कदाचिदपि पाण्डव
धीरस्य स्पष्टदण्डस्य न भयं विद्यते क्वचित्

---

भौमं ब्रह्म वेदान् यज्ञांश्च ॥ २६ ॥ मार्दवापवादमाह— **एवमिति** ॥२७॥ स्वधर्मेण शस्त्रोद्यमनेन निगृह्णीयादेव न तु हन्यात् ॥ २९ ॥ विनश्यमानं आततायिदोषात् तेन आततायिनिग्रहेण । अनिग्रहे तु धर्महा स्यादेव जीवतोऽस्य निग्रहो दुःशकश्चेत्तत्राह-**मन्युस्तन्मन्युमृच्छति** यथा सूर्यांशुतप्तः स्फटिकस्तूलपिण्डमुद्दीप्य तदूष्मणा स्वयं नश्यति, एवं आततायिक्रोधोऽन्यमुद्दीप्य तद्द्वाराऽऽततायिनमेवाश्रयदाहेन दहति नात्र हन्तुर्दोष इत्यर्थः ॥ ३० ॥ **एवं चेति** । यद्यप्येवं तथापि द्विजातयो ब्राह्मणा रक्ष्या एव ॥ ३१ ॥ अभिशस्तं सताऽसता वा दोषेण युक्तं तथा ख्यापितम् ॥ ३२ ॥ शारीरं कशाघातादिदण्डम् । क्लीबत्वमार्धम् ॥ ३३ ॥ पुरुषसञ्चयात् ब्राह्मणभक्तादिति पूर्वार्धार्थः ॥ ३४ ॥ षट्सु मरु–जल-पृथिवी-वन-पर्वत-नरमयेषु ॥३५॥ पुनर्दयापवादमाह— **न चेति** । समन्ततः सर्वजातीयेषु अधर्मो धर्मविरोधी ॥३७॥ गजस्य क्षममाणस्य ॥ ३९ ॥ प्रत्यक्षेण उपकारापकारादिना । अनुमानेन नेत्रवक्त्रविकारादिना । यथोक्तम् —

'नेत्रवक्त्रविकारेण ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः' इति ।

**औपम्यं** उपमानं अन्यत्र कार्यदर्शनेन । **आगमैः**— शब्दादिना सामुद्रिकलक्षणेन ते पुरुषाः परीक्ष्याः ॥४१॥ व्यसनानि अष्टादश । यथाऽऽह **मनुः**—

'मृगयाऽक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाटनं कामजो दशको गणः ।'

तौर्यत्रिकं वाद्यगीतनृत्यानि ।

'पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः' इति ।

तत्र च सप्त कष्टतमानि । यथाऽऽह—

'पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ।
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा' इति ।

न प्रयुञ्जीतेति न अपि तु सर्वदा शूरान् जयाय प्रयोजयेदेव संकीर्णं प्रयुक्त्यप्रयुक्त्योः सङ्करं साम्ना उपगते प्रयोगो नास्ति । अन्यत्र कुर्यादेवेत्यर्थः ॥४२॥ **व्यसनी** मृगयाक्षाः स्त्रियः पानं च तद्वान् । **अतिद्वेषी** प्रजाद्रोहपरः ॥ ४३ ॥ प्रियं इष्टम् ॥ ४६ ॥ ते त्वया स्पष्टः प्रख्यातो दण्डः अश्वरथहस्तिपुरुषादिसमूहो यस्य तस्य स्पष्टदण्डस्य ॥ ४७ ॥

परिहासश्च भृत्यैस्ते नात्यर्थं वदतां वर ।
कर्तव्यो राजशार्दूल दोषमत्र हि मे शृणु ४८
अवमन्यन्ति भर्तारं संघर्षादुपजीविनः ।
स्वे स्थाने न च तिष्ठन्ति लङ्घयन्ति च तद्वचः
प्रेष्यमाणा विकल्पन्ते गुह्यं चाप्यनुयुञ्जते ।
अयाच्यं चैव याचन्ते भोज्यान्याहारयन्ति च
क्रुध्यन्ति परिदीप्यन्ति भूमिपायाधितिष्ठते ।
उत्कोचैर्वञ्चनाभिश्च कार्याण्यनुविहन्ति च
जर्जरं चास्य विषयं कुर्वन्ति प्रतिरूपकैः ॥
स्त्रीरक्षिभिश्च सज्जन्ते तुल्यवेषा भवन्ति च
वान्तं निष्ठीवनं चैव कुर्वते चास्य सन्निधौ ।
निर्लज्जा राजशार्दूल व्याहरन्ति च तद्वचः
हयं वा दन्तिनं वाऽपि रथं वा नृपसत्तम ।
अभिरोहन्त्यनादृत्य हर्षुले पार्थिवे मृदौ ॥ ५४
इदं ते दुष्करं राजन्निदं ते दुष्टचेष्टितम् ।
इत्येवं सुहृदो वाचं वदन्ते परिषद्गताः ॥ ५५
क्रुद्धे चास्मिन्हसन्त्येव न च हृष्यन्ति पूजिताः
संहर्षशीलाश्च तदा भवन्त्यन्योन्यकारणात्
विस्रंसयन्ति मन्त्रं च
विवृण्वन्ति च दुष्कृतम् ।
लीलया चैव कुर्वन्ति
सावज्ञास्तस्य शासनम् ॥ ५७
अलंकारे च भोज्ये च तथा स्नानानुलेपने ।
हेलनानि नरव्याघ्र स्वस्थास्तस्योपशृण्वतः ॥
निन्दन्ते स्वानधीकारान्
सन्त्यजन्ते च भारत ।
न वृत्त्या परितुष्यन्ति
राजदेयं हरन्ति च ॥ ५९
क्रीडितुं ते न चेच्छन्ति ससूत्रेणेव पक्षिणा ।
अस्मत्प्रणेयो राजेति लोकांश्चैव वदन्त्युत ॥
एते चैवापरे चैव दोषाः प्रादुर्भवन्त्युत ।
नृपतौ मार्दवोपेते हर्षुले च युधिष्ठिर ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

भीष्म उवाच ।
नित्योद्युक्तेन वै राज्ञा भवितव्यं युधिष्ठिर
प्रशस्यते न राजा हि नारीवोद्यमवर्जितः १
भगवानुशना चाह श्लोकमत्र विशाम्पते ।
तदिहैकमना राजन् गदतस्तं निबोध मे २
द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्
तदेतन्नरशार्दूल हृदि त्वं कर्तुमर्हसि ।
सन्धेयानभिसंधत्स्व विरोध्यांश्च विरोधय

संघर्षात् आतिसंश्लेषात् ॥ ४९ ॥ विकल्पन्ते कार्ये संशयं दर्शयन्ति गुह्यं गोप्यमपि छिद्रं अनुयुञ्जते प्रकटयन्ति भोज्यानि राज्ञः आहारयन्ति भक्षयन्ति ॥ ५० ॥ उत्कोचैर्लेखाभिः वञ्चना अलीकगुणदोषादिप्रदर्शनम् । अनुविहन्ति विनिघ्नन्ति ॥ ५१ ॥ प्रतिरूपकैः कृत्रिमैः शासनपत्रैः विषयं देशं जर्जरं निःसारं स्त्रीरक्षिभिः सजन्ते प्रीतिं कुर्वन्ति । अन्तःपुरे प्रवेशमिच्छन्तः ॥ ५२ ॥ वान्तं जृम्भादिना निष्ठीवनं थूत्कारं तद्वचः राजवाक्यं गुह्यमपि लोके व्याहरन्ति ॥ ५३ ॥ हर्षुले परिहासशीले ॥५४॥ विस्रंसयन्ति भेदयन्ति ॥ ५७ ॥ हेलनानि कुर्वन्तीति शेषः । उपशृण्वतः शृण्वन्तमनादृत्य स्वस्थाः निर्भयाः ॥ ५८ ॥ राजदेयं राजभागम् ॥५९॥ क्रीडितुं राज्ञा सह मृगयादिक्रीडां कर्तुं ससूत्रेण बद्धेन पक्षिणा श्येनेन राज्ञो निरोधका इत्यर्थः । प्रणेयः शास्यः ॥ ६० ॥ अपरे दारापहारादयः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

अस्यैवाध्यायस्य सूत्रभूतस्योत्तरो ग्रन्थो वृत्तिरूपः । तत्र उत्थानेन यतेथा इत्युक्तं तद्विवृणोति-नित्येति ॥ १ ॥ यत् श्लोकमाह तत् तस्मात्तं श्लोकं निबोध ॥ २ ॥ अप्रवासिनं वेदाध्ययनार्थं ब्राह्मणं यतिं वा ॥ ३ ॥ विरोधय पर्वतादौ तेषां विशेषेण रोधं कुरु ॥ ४ ॥

सप्ताङ्गस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरेत्
गुरुर्वा यदि वा मित्रं प्रतिहन्तव्य एव सः ५
मरुत्तेन हि राज्ञा वै गीतः श्लोकः पुरातनः ।
राजाधिकारे राजेन्द्र बृहस्पतिमते पुरा ॥ ६
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ७
बाहोः पुत्रेण राज्ञा च सगरेण च धीमता ।
असमञ्जाः सुतो ज्येष्ठस्त्यक्तः पौरहितैषिणा
असमंजाः सरय्वां स पौराणां बालकान्नृप ।
न्यमज्जयदतः पित्रा निर्भर्त्स्य स विवासितः
ऋषिणोद्दालकेनापि श्वेतकेतुर्महातपाः ।
मिथ्या विप्रानुपचरन्संत्यक्तो दयितः सुतः
लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः ।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम् ॥
न हिंस्यात्परवित्तानि देयं काले च दापयेत्
विक्रान्तः सत्यवाक्क्षान्तो नृपो न चलते पथः
आत्मवांश्च जितक्रोधः शास्त्रार्थकृतनिश्चयः ।
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च सततं रतः ॥
त्रय्यां संवृतमन्त्रश्च राजा भवितुमर्हति ।
वृजिनं च नरेन्द्राणां नान्यच्चारक्षणात्परम् ॥
चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता ।
धर्मसंकररक्षा च राज्ञां धर्मः सनातनः ॥
न विश्वसेच्च नृपतिर्न चात्यर्थं च विश्वसेत् ।
षाड्गुण्यगुणदोषांश्च नित्यं बुद्ध्याऽवलोकयेत्
द्विट्छिद्रदर्शी नृपतिर्नित्यमेव प्रशस्यते ।
त्रिवर्गे विदितार्थश्च युक्तचारोपधिश्च यः ॥
कोशस्योपार्जनरतिर्यमवैश्रवणोपमः ।
वेत्ता च दशवर्गस्य स्थानवृद्धिक्षयात्मनः ॥
अभृतानां भवेद्भर्ता भृतानामन्ववेक्षकः ।
नृपतिः सुमुखश्च स्यात्स्मितपूर्वाभिभाषिता॥
उपासिता च वृद्धानां जिततन्द्रिरलोलुपः ।
सतां वृत्ते स्थितमतिः सन्तोष्यश्चारुदर्शनः ॥
न चाददीत वित्तानि सतां हस्तात्कदाचन ।
असद्भ्यश्च समादद्यात्सद्भ्यस्तु प्रतिपादयेत् ॥

सप्त स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि अङ्गानि यस्य तस्य सप्ताङ्गस्य । विपरीतं यस्य कस्यचिदप्यङ्गस्य प्रतिकूलम् ॥ ५ ॥ शाश्वतः अप्रतिसमाधेयः पर्वतारोहणादिरूपः अन्यस्य तु वध एव ॥ ७ ॥ न हिंस्यात् करार्थं क्षेत्रेषु धान्यानि रुद्ध्वा वृष्ट्यादिना न नाशयेत् । देयं भृत्यानां वेतनं, विक्रान्तः पराक्रमी, क्षान्तः क्षमावान् पथः शुभमार्गात् ॥ १२ ॥ आत्मवान् जितचित्तः शास्त्रार्थे कृतनिश्चयः निःसन्देहः सततं नित्यं पूर्वाह्णे धर्मं मध्याह्नेऽर्थमपराह्णे काममपररात्रे योगं चेति नित्यं सर्वानपि सेवेत ॥ १३ ॥ वृजिनं सङ्कटम् । अरक्षणात् मन्त्रस्यागोपनादन्यन्नास्ति ॥ १४ ॥ धर्माणां सङ्करो व्यत्ययस्तस्मात्प्रजानां रक्षा धर्मसङ्कररक्षा ॥१५॥ न विश्वसेत् चात् विश्वसेदप्याप्तेषु तेष्वपि अत्यर्थं न विश्वसेत् षण्णां गुणानां भावः षाड्गुण्यं ते च बलवति स्थायिनि यानिनः सन्धिः, समबले विग्रहो युद्धादिः, दुर्बले यानं तदीयदुर्गाद्याक्रमणं एवं स्थायिनो बलवति यायिन्यासनं दुर्गादावेव स्वरक्षणं, मध्यमे द्वैधीभावः अर्धेन दण्डेन दुर्गाश्रयणं अर्धेन परेषां धान्यादिनिरोधनं, दुर्बले समाश्रयः मित्रान्तरमाश्रित्य तेन सह युद्धं कर्तव्यम् । एतेषु कर्तव्येषु गुणान् जयावहान् दोषान् पराजयावहांश्चार्थान्कोशदण्डादिपौष्कल्यादीन् बुद्ध्या स्वयमेव निश्चिनुयात् ॥ १६ ॥ द्विषः शत्रोः सप्तसु राज्याङ्गेषु स्वप्रवेशद्वारशैथिल्यं तत् द्विट्छिद्रम् । एवं स्वस्य सप्तसु राज्याङ्गेषु यत्परप्रवेशद्वारशैथिल्यं तत्परच्छिद्रं द्विट्छिद्रदर्शी स्यात् । एतच्च स्वच्छिद्रगोपनस्याप्युपलक्षणम् । त्रिवर्गे धर्मादौ विदितार्थो ज्ञाततत्त्वः युक्तः चारः प्रच्छन्नः स्पशः उपाधिः परकीयानाममात्यादीनामुत्कोचदानादिना भेदनं च येन स युक्तचारोपधिः तत्र चारनियोजनस्थानान्युक्तानि नीतिशास्त्रे—

'मन्त्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः ।
पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोऽन्तर्वेशिकस्तथा ।
कारागाराधिकारी च द्रव्यसंचयकृत्तथा ।
कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ।
प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्यनिर्माणकृत्तथा ।
धर्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दण्डपालस्त्रिपञ्चमः ।
षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तपालकः ।
अटवीपालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु ।
चारान्विचारयेत्तीर्थे स्वात्मनश्च परस्य च ।
पाषण्डादीनविज्ञातानन्योन्यमितरेष्वपि ।
मन्त्रिणं युवराजं च हित्वा स्वेषु पुरोहितम्'इति ।

॥ १७ ॥ दशवर्गः 'अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि कोशो दण्डश्च पञ्चमः'इति प्रकृतिपञ्चकं स्वपक्षे परपक्षे चेति दशको वर्गः स च उभयोः साम्यं चेत् स्थानं स्थितिस्तत्कर्ता स्वस्याधिक्ये वृद्धिकर्ता परस्याधिक्ये क्षयकर्ता ॥ १८ ॥

स्वयं प्रहर्ता दाता च वश्यात्मा रम्यसाधनः
काले दाता च भोक्ता च शुद्धाचारस्तथैव च
शूरान्भक्तानसंहार्यान्कुले जातानरोगिणः।
शिष्टान्शिष्टाभिसंबन्धान्मानिनोऽनवमानिनः
विद्याविदो लोकविदः परलोकान्ववेक्षकान्
धर्मे च निरतान्साधूनचलानचलानिव ॥ २४
सहायान्सततं कुर्याद्राजा भूतिपरिष्कृतः।
तैश्च तुल्यो भवेद्भोगैश्छत्रमात्राज्ञयाऽधिकः॥
प्रत्यक्षा च परोक्षा च वृत्तिश्चास्य भवेत्समा
एवं कुर्वन्नरेन्द्रोऽपि न खेदमिह विन्दति ॥
सर्वाभिशंकी नृपतिर्यश्च सर्वहरो भवेत्।
स क्षिप्रमनृजुर्लुब्धः स्वजनेनैव बध्यते ॥ २७
शुचिस्तु पृथिवीपालो लोकचित्तग्रहे रतः।
न पतत्यरिभिर्ग्रस्तः पतितश्चावतिष्ठते ॥ २८
अक्रोधनो ह्यव्यसनी मृदुदण्डो जितेन्द्रियः
राजा भवति भूतानां विश्वास्यो हिमवानिव
प्राज्ञस्त्यागगुणोपेतः पररन्ध्रेषु तत्परः।
सुदर्शः सर्ववर्णानां नयापनयवित्तथा ॥ ३०
क्षिप्रकारी जितक्रोधः सुप्रसादो महामनाः।
अरोषप्रकृतिर्युक्तः क्रियावानविकत्थनः ॥ ३१
आरब्धान्येव कार्याणि सुपर्यवसितानि च।
यस्य राज्ञः प्रदृश्यन्ति स राजा राजसत्तमः
पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः।
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः
अगूढविभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिनः।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः ॥ ३५
स्वकर्मनिरता यस्य जना विषयवासिनः।
असंघातरता दान्ताः पाल्यमाना यथाविधि
वश्या नेया विधेयाश्च न च संघर्षशीलिनः।
विषये दानरुचयो नरा यस्य स पार्थिवः ॥
न यस्य कूटं कपटं न माया न च मत्सरः।
विषये भूमिपालस्य तस्य धर्मः सनातनः ॥
यः सत्करोति ज्ञानानि ज्ञेये परहिते रतः*।
सतां वर्त्मानुगस्त्यागी स राजा राज्यमर्हति
यस्य चाराश्च मन्त्राश्च नित्यं चैव कृताकृताः
न ज्ञायन्ते हि रिपुभिः स राजा राज्यमर्हति
श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेण महात्मना।
आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत ॥
राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम्।
राजन्यसति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम्
तद्राज्ये राज्यकामानां नान्यो धर्मः सनातनः
ऋते रक्षां तु विस्पष्टां रक्षा लोकस्य धारिणी
प्राचेतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ।
राजधर्मेषु राजेन्द्र नाविहैकमनाः शृणु ॥४३
षडेतान्पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे।
=अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम्॥४४
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्

---

शूरान् सहायान् कुर्यादिति तृतीयेनान्वयः। असंहार्यान्परैरप्रतार्यान् शिष्टाभिसम्बन्धान् शिष्टपरिवारान् अनवमानिनः अवमानं परस्याकुर्वतः ॥२३॥ अचलान् स्थिरान् अचलानिव पर्वतानिव ॥ २४ ॥ छत्रमात्रेण सहिता या आज्ञा 'इदमित्थं कुरु' 'इदं न'इति तयाऽधिकः अन्यत्सर्वं भृत्यैः समानं भुञ्जीत ॥ २५ ॥ इयं च शूरेषु राज्ञो वृत्तिः प्रत्यक्षा परोक्षा च समा भवेत्। सन्निहितेष्वसन्निहितेषु वा तुल्या स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥ सर्वाभिशङ्की सर्वत्राकृतविश्वासः सर्वहरः सर्वस्वापहारी। अनृजुः अकृतापराधारोपकृत् यतो लुब्धः ॥ २७ ॥ असङ्घातरताः सङ्घाते शरीरे प्रीतिमन्तो न भवन्ति किं तु तत्साध्ये धर्मे एवेत्यर्थः ॥ ३५ ॥ नेयाः विनेतुं योग्याः सङ्घर्षः पराभिभवस्तच्छीलिनो न ॥ ३६ ॥ कूटं दम्भः कपटं अनृतं मत्सरः परोत्कर्षासहिष्णुत्वम् ॥ ३७ ॥ ज्ञानानि ज्ञानयुक्तान्पण्डितान् ज्ञेये शास्त्रार्थे परस्य हितावहे रतः न तु हिंसामये। त्यागी दाता ॥ ३८ ॥ कृता अप्यकृता इवेति कृताकृताः॥३९॥ प्रथमं श्रेष्ठं असति अशुभे ॥ ४१॥ रक्षैव राज्ञः कर्म तामकुर्वन् राजा त्याज्य इत्याह प्राचेतस इति ॥ ४३ ॥ * ज्ञेयः पौरहिते रतः इति पाठः।
=अयं भावः-आचार्यस्य गुरोरध्यापनं कर्म वक्तृतां विना नैव घटते अतो वाक्पटुत्वेनाचार्यपदत्वमिहार्हति। आर्त्विज्यस्य कर्मणो वैदिकत्वात्तत्कारी ऋत्विगऽपि साङ्गवेदविदपेक्षते अध्ययनाभावे तन्न स्यात्। सर्वतस्त्राणेन प्रजारञ्जनं राज्ञः कर्म, तदसमर्थो राजाऽपार्थक एव। गवां सम्यक्संरक्षणं सुस्वादुवन्यघासेन यथेष्टं संचारेण च भवितुमर्हति। एतच्च वनमात्रसाध्यं प्रायः। गोपालः सर्वदा ग्रामवासप्रियश्चेत्तर्हि रक्षणं न स्यात्। नापितकर्मणो ग्रामाधीनत्वात्सर्वथा वनकामो नापितस्तत्कर्मण्यनर्ह एव।

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

भीष्म उवाच ।
एतत्ते राजधर्माणां नवनीतं युधिष्ठिर ।
बृहस्पतिर्हि भगवान्नान्यं धर्मं प्रशंसति ॥
विशालाक्षश्च भगवान्काव्यश्चैव महातपाः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः ॥२
भरद्वाजश्च भगवांस्तथा गौरशिरा मुनिः ।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः ॥ ३
रक्षामेव प्रशंसन्ति धर्मं धर्मभृतां वर ।
राज्ञां राजीवताम्राक्ष साधनं चात्र मे शृणु
चारश्च प्रणिधिश्चैव काले दानममत्सरात् ।
युक्त्या दानं न चादानमयोगेन युधिष्ठिर ॥
सतां संग्रहणं शौर्यं दाक्ष्यं सत्यं प्रजाहितम्
अनार्जवैरार्जवैश्च शत्रुपक्षस्य भेदनम् ॥ ६
केतनानां च जीर्णानामवेक्षा चैव सीदताम्
द्विविधस्य च दण्डस्य प्रयोगः कालचोदितः
साधूनामपरित्यागः कुलीनानां च धारणम्
निचयश्च निचेयानां सेवा बुद्धिमतामपि ॥ ८
बलानां हर्षणं नित्यं प्रजानामन्ववेक्षणम् ।
कार्येष्वखेदः कोशस्य तथैव च विवर्धनम् ॥
पुरगुप्तिरविश्वासः पौरसंघातभेदनम् ।
अरिमध्यस्थमित्राणां यथावच्चान्ववेक्षणम् ॥
उपजापश्च भृत्यानामात्मनः पुरदर्शनम् ।
अविश्वासः स्वयं चैव परस्याश्वासनं तथा ॥
नीतिधर्मानुसरणं नित्यमुत्थानमेव च ।
रिपूणामनवज्ञानं नित्यं चानार्यवर्जनम् ॥
उत्थानं हि नरेन्द्राणां बृहस्पतिरभाषत ।
राजधर्मस्य तन्मूलं श्लोकांश्चात्र निबोध मे
उत्थानेनामृतं लब्धमुत्थानेनासुरा हताः ।
उत्थानेन महेन्द्रेण श्रैष्ठ्यं प्राप्तं दिवीह च ॥
उत्थानवीरः पुरुषो वाग्वीरानधितिष्ठति ।
उत्थानवीरान्वाग्वीरा रमयन्त उपासते ॥
उत्थानहीनो राजा हि बुद्धिमानपि नित्यशः
प्रधर्षणीयः शत्रूणां भुजंग इव निर्विषः ॥ १६
न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च
एकाङ्गेनापि संभूतः शत्रुर्दुर्गमुपाश्रितः ।
सर्वं तापयते देशमपि राज्ञः समृद्धिनः ॥१८
राज्ञो रहस्यं यद्वाक्यं यथार्थं लोकसंग्रहः ।
हृदि यच्चास्य जिह्मं स्यात्कारणेन च यद्भवेत्
यच्चास्य कार्यं वृजिनमार्जवेनेह निर्जयेत् ।
दंभनार्थं च लोकस्य धर्मिष्ठामाचरेत्क्रियाम्॥
राज्यं हि सुमहत्तन्त्रं धार्यते नाकृतात्मभिः ।
न शक्यं मृदुना वोढुमायासस्थानमुत्तमम् ॥
राज्यं सर्वामिषं नित्यमार्जवेनेह धार्यते ।
तस्मान्मिश्रेण सततं वर्तितव्यं युधिष्ठिर ॥
यद्यप्यस्य विपत्तिः स्याद्रक्षमाणस्य वै प्रजाः
सोऽप्यस्य विपुलो धर्म एवंवृत्ता हि भूमिपाः
एष ते राजधर्माणां लेशः समनुवर्णितः ।
भूयस्ते यत्र संदेहस्तद्ब्रूहि कुरुसत्तम ॥ २४
वैशम्पायन उवाच ।
ततो व्यासश्च भगवान्देवस्थानोऽश्म एव च
वासुदेवः कृपश्चैव सात्यकिः सञ्जयस्तथा ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

५८

**एतदिति** । एतत् रक्षणं नवनीतं नवनीतवत्सर्वधर्मसारं न्याय्यं न्यायादनपेतम् ॥ १ ॥ अत्र रक्षणे साधनं युक्तिम् ॥ ४॥ **चारो** गुप्तस्पशः, प्रणिधिः प्रकटस्पशः, दानं भक्तवेतनयोः युक्तेः आदानं अयोगेन अनुपायेन आदानं करग्रहणं न च ॥ ५ ॥ केतनानां गृहादीनां द्विविधस्य शारीरदण्डोऽर्थदण्डश्चेति भेदात् ॥७॥ निचेयानां संग्राह्याणां धान्यादीनां निचयः संग्रहः ॥ ८ ॥ अविश्वासो यामिकादीनामपि पौराणां सङ्घातस्य परैर्वाणिज्यादिच्छलेन वशीकृतस्य भेदनं विघटनम् ॥ १० ॥ **उपजापः** परैः स्वभृत्यानां भेदनं अविश्वासः भृत्यानामेव ॥ ११ ॥ उत्थानं उद्योगः अनार्यं हीनकर्म कदर्यत्वादि तद्वर्जनम् ॥१२॥ वाग्वीरान् पण्डितान् उत्थानमेव महत्पाण्डित्यमित्यर्थः ॥१५॥ एकाङ्गेन हस्त्यश्वरथपादातानामन्यतमेनापि सम्भूतः सम्पन्नः समृद्धिनः समृद्धिमतः ॥ १८ ॥ स्थैर्येण आर्जवेन राज्ञो यद्रहस्यं वाक्यं यो वा जयार्थं लोकसंग्रहो यच्चास्य कारणेन शत्रुजयादिहेतुना जिह्मं कपटं यच्च वृजिनं हीनं कार्यं तत्सर्वं समीकुर्यादित्याह द्वाभ्यां—**राज्ञ इति**॥१९॥ दम्भनार्थं सङ्घातार्थम् ॥२०॥ अकृतात्मभिः क्रूरैः ॥ २१ ॥ मिश्रेण क्रौर्यमार्दवाभ्याम् ॥ २२ ॥ इति

साधु साध्विति संहृष्टाः पुष्यमाणैरिवाननैः
अस्तुवंश्च नरव्याघ्रं भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥
ततो दीनमना भीष्ममुवाच कुरुसत्तमः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां पादौ तस्य शनैः स्पृशन् ॥
श्व इदानीं स्वसंदेहं प्रक्ष्यामि त्वां पितामह ।
उपैति सविता ह्यस्तं रसमापीय पार्थिवम् ॥
ततो द्विजातीनभिवाद्य केशवः
कृपश्च ते चैव युधिष्ठिरादयः ।
प्रदक्षिणीकृत्य महानदीसुतं
ततो रथानारुरुहुर्मुदान्विताः ॥ २९
दृषद्वतीं चाप्यवगाह्य सुव्रताः
कृतोदकार्थाः कृतजप्यमङ्गलाः ।
उपास्य संध्यां विधिवत्परंतपा-
स्ततः पुरं ते विविशुर्गजाह्वयम् ॥३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि युधिष्ठिरादिस्वस्थानगमने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

---

श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

# महाभारतम्

## ( राजधर्मानुशासनपर्व १ )

### ५९

वैशम्पायन उवाच ।

ततः कल्यं समुत्थाय कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः
ययुस्ते नगराकारै रथैः पाण्डवयादवाः ॥ १
प्रतिपद्य कुरुक्षेत्रं भीष्ममासाद्य चानघ ।
सुखां च रजनीं पृष्ट्वा गाङ्गेयं रथिनां वरम् ॥
व्यासादीनभिवाद्यर्षीन्सर्वैस्तैश्चाभिनंदिताः।
निषेदुरभितो भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥ ३
ततो राजा महातेजा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भीष्मं प्रतिपूज्य यथाविधि ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

य एष राजन् राजेति शब्दश्चरति भारत ।
कथमेष समुत्पन्नस्तन्मे ब्रूहि परंतप ॥ ५
तुल्यपाणिभुजग्रीवस्तुल्यबुद्धीन्द्रियात्मकः ।
तुल्यदुःखसुखात्मा च तुल्यपृष्ठमुखोदरः ॥ ६
तुल्यशुक्रास्थिमज्जा च तुल्यमांसासृगेव च ।
निःश्वासोच्छ्वासतुल्यश्च तुल्यप्राणशरीरवान्
समानजन्ममरणः समः सर्वैर्गुणैर्नृणाम् ।
विशिष्टबुद्धीन् शूरांश्च कथमेकोऽधितिष्ठति
कथमेको महीं कृत्स्नां शूरवीरार्यसंकुलाम् ।
रक्षत्यपि च लोकस्य प्रसादमभिवांछति ॥९
एकस्य तु प्रसादेन कृत्स्नो लोकः प्रसीदति ।
व्याकुले चाकुलः सर्वो भवतीति विनिश्चयः
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन भरतर्षभ ।
कृत्स्नं तन्मे यथातत्त्वं प्रब्रूहि वदतां वर ॥ ११
नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति विशांपते ।
यदेकस्मिन् जगत्सर्वं देववद्याति सन्नतिम् ॥

भीष्म उवाच ।

नियतस्त्वं नरव्याघ्र शृणु सर्वमशेषतः ।
यथा राज्यं समुत्पन्नमादौ कृतयुगेऽभवत् १३
न वै राज्यं न राजाऽऽसी-
न्न च दण्डो न दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा
रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥ १४
पाल्यमानास्तथान्योऽन्यं
नरा धर्मेण भारत ।
खेदं परमुपाजग्मु-
स्ततस्तान्मोह आविशत् । १५
ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ ।
प्रतिपत्तिविमोहाच्च धर्मस्तेषामनीनशत् ।
नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या नरास्तदा ।
लोभस्य वशमापन्नाः सर्वे भरतसत्तम ॥ १७

५९

**ततः कल्य**मित्यध्यायो दण्डनीतिशास्त्रस्य राज्ञश्च उत्पत्तिं वक्तुं प्रवर्तते । कल्यं प्रातः ॥ १ ॥ मानुषत्वे समानेऽपि किं निमित्तेयं एकस्मिन्निग्रहानुग्रहशक्तिरिति पृच्छति—**य इत्यादिना** ॥ ५ ॥ दण्डः दमनं दाण्डिको दण्डप्रणेता ॥ १४ ॥ धर्मेणैव न तु मातृवत्स्नेहे न भृत्यवद्वेतनेन वा खेदं श्रमं मोहो वैचित्यम् ॥ १५ ॥ प्रतिपात्तिविमोहात् ज्ञानलोपात् ॥ १६ ॥ प्रथमं ज्ञानलोपस्ततो मोहस्ततो लोभो लोभाद्विषयाभिलाषोऽभिलषितसंयोगादिन्द्रियप्रीत्याख्यः कामस्ततस्ताद्विषये रागो रागात्कर्तव्याकर्तव्यप्रतिपत्तिशून्यत्वं ततः पुनर्मोह इत्यादि चक्रमाह—**नष्टायामिति** त्रिभिः ॥ १७ ॥

अप्राप्तस्याभिमर्शं तु कुर्वन्तो मनुजास्ततः ।
कामो नामापरस्तत्र प्रत्यपद्यत वै प्रभो ॥ १८
तांस्तु कामवशं प्राप्तान्
रागो नामाभिसंस्पृशत् ।
रक्ताश्च नाभ्यजानन्त
कार्याकार्यं युधिष्ठिर ॥ १९
अगम्यागमनं चैव वाच्यावाच्यं तथैव च ।
भक्ष्याभक्ष्यं च राजेन्द्र दोषादोषं च नात्यजन् ॥
विप्लुते नरलोके वै ब्रह्म चैव ननाश ह ।
नाशाच्च ब्रह्मणो राजन्धर्मो नाशमथागमत् ॥
नष्टे ब्रह्मणि धर्मे च देवांस्त्रासः समाविशत् ।
ते त्रस्ता नरशार्दूल ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २२
प्रसाद्य भगवन्तं ते देवं लोकपितामहम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे दुःखवेगसमाहताः २३
भगवन्नरलोकस्थं ग्रस्तं ब्रह्म सनातनम् ।
लोभमोहादिभिर्भावैस्ततो नो भयमाविशत् ॥
ब्रह्मणश्च प्रणाशेन धर्मो व्यनशदीश्वर ।
ततः स्म समतां याता मर्त्यैस्त्रिभुवनेश्वर ॥
अधो हि वर्षमस्माकं नरास्तूर्ध्वप्रवर्षिणः ।
क्रियाव्युपरमात्तेषां ततो गच्छाम संशयम् ॥
अत्र निःश्रेयसं यन्नस्तद्ध्यायस्व पितामह ।
त्वत्प्रभावसमुत्थोऽसौ स्वभावो नो विनश्यति ॥
तानुवाच सुरान्सर्वान्
स्वयंभूर्भगवांस्ततः ।
श्रेयोऽहं चिन्तयिष्यामि
व्येतु वो भीः सुरर्षभाः ॥ २८
ततोऽध्यायसहस्राणां
शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः
कामश्चैवाभिवर्णितः ॥ २९
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयंभुवा ।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः ॥ ३०
मोक्षस्यास्ति त्रिवर्गोऽन्यः
प्रोक्तः सत्त्वं रजस्तमः ।
स्थानं वृद्धिः क्षयश्चैव
त्रिवर्गश्चैव दण्डजः ॥ ३१
आत्मा देशश्च कालश्चाप्युपायाः कृत्यमेव च ।
सहायाः कारणं चैव षड्वर्गो नीतिजः स्मृतः ॥
त्रयी चान्वीक्षिकी चैव वार्ता च भरतर्षभ ।
दण्डनीतिश्च विपुला विद्यास्तत्र निदर्शिताः ॥
अमात्यरक्षा प्रणिधी राजपुत्रस्य लक्षणम् ।
चारश्च विविधोपायः प्रणिधेयः पृथग्विधः ॥
सामभेदः प्रदानं च ततो दण्डश्च पार्थिव ।
उपेक्षा पञ्चमी चात्र कार्त्स्न्येन समुदाहृता ॥
मन्त्रश्च वर्णितः कृत्स्न-
स्तथा भेदार्थ एव च ।
विभ्रमश्चैव मन्त्रस्य
सिद्ध्यसिद्ध्योश्च यत्फलम् ॥ ३६
सन्धिश्च त्रिविधाभिख्यो
हीनो मध्यस्तथोत्तमः ।
भयसत्कारवित्ताख्यं
कार्त्स्न्येन परिवर्णितम् ॥ ३७

नात्यजन्दुष्टमदुष्टं च सर्वं स्वीचक्रुरित्यर्थः॥२०॥ ब्रह्म वेदः धर्मो यज्ञः ॥२१॥ मर्त्यैः समतां याताः स्म स्वाहाद्यभावेन क्षीणाः स्म इत्यर्थः ॥२५॥ नराः यजमानाः हविर्धाराभिरूर्ध्वप्रवर्षिणः ततश्चान्नाभावान्नश्याम इत्यर्थः ॥ २६ ॥ नोऽस्माकं स्वभावः ऐश्वर्यसत्यसङ्कल्पत्वादिकम् ॥२७॥ पृथगर्थः त्रिवर्गफलापेक्षया विपरीतफलः पृथग्गुणः त्रिवर्गसाधनापेक्षया विपरीतसाधनः ॥ ३० ॥ मोक्षस्य त्रिवर्गो धर्मादिरन्यो निष्कामः । धर्मादेर्भेदश्च सत्त्वादिगुणप्राधान्यनिमित्त इत्यर्थः । दण्डात्स्थानं साम्यं वाणिजां वृद्धिस्तपस्विनां क्षयश्चोराणां च भवतीत्याहार्थेन—**स्थानमिति** ॥ ३१ ॥ नीतिजान्षड्गुणानाह—**आत्मेति** । आत्मा चित्तं भीतिबलात् । प्रजानां चित्तं दुःस्थितमपि सुस्थितं भवति । कुदेशोऽपि सुदेशो भवति कलिरपि कृतं भवति । उपायाः साधनानि कृत्यं कृतिनिर्वर्त्यं प्रयोजनम् । सहायाः सुहृदादयः । एते सर्वे विकला अपि सकला भवन्ति तत्र कारणं नीतिजः षड्वर्गो नीतिप्रोत्तम्भितश्चित्तादिरित्यर्थः ॥ ३२ ॥ त्रयी कर्मकाण्डः । आन्वीक्षिकी ज्ञानकाण्डः । वार्ता कृषिवाणिज्यादि जीविकाकाण्डः । दण्डनीतिः पालनविद्या । एते धर्मादयस्तत्र ब्रह्मकृतशतसहस्राध्याये दर्शिताः ॥ ३३ ॥ भेदशङ्कया अमात्यानामपि रक्षा कर्तव्या तदर्थं प्रणिधिर्गुप्तश्चारः स च चारो विविधोपायः ब्रह्मचार्यादिवेषधारी प्रणिधेयः पृथग्विधः एकैकस्मिन्स्थाने पृथक्पृथग्वेषास्त्रयस्त्रय इति ॥ ३४ ॥ सामादिचतुष्टयं उपेक्षा च पञ्चमीत्युपायाः ॥ ३५ ॥ विभ्रमो भेदार्थे ॥३६॥ भयेन सन्धिर्हीनः । सत्कारेण मध्यमः । वित्तग्रहणेन उत्तमः । तत् त्रयं सन्धिकारणं वर्णितम् ॥३७॥

यात्रा कालाश्च चत्वारस्त्रिवर्गस्य च विस्तरः
विजयो धर्मयुक्तश्च तथार्थविजयश्च ह ॥ ३८
आसुरश्चैव विजयस्तथा कार्त्स्न्येन वर्णितः।
लक्षणं पञ्चवर्गस्य त्रिविधं चात्र वर्णितम् ॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च दण्डोऽथ परिशब्दितः।
प्रकाशोऽष्टविधस्तत्र गुह्यश्च बहुविस्तरः ४०
रथा नागा हयाश्चैव पादाताश्चैव पाण्डव।
विष्टिर्नावश्चराश्चैव देशिका इति चाष्टमम्
अङ्गान्येतानि कौरव्य प्रकाशानि बलस्य तु
जङ्गमाजङ्गमाश्चोक्ताश्चूर्णयोगा विषादयः ४२
स्पर्शे चाभ्यवहार्ये चाप्युपांशुर्विविधः स्मृतः
अरिर्मित्र उदासीन इत्येतेऽप्यनुवर्णिताः ४३
कृत्स्ना मार्गगुणाश्चैव
तथा भूमिगुणाश्च ह।
आत्मरक्षणमाश्वासः
सर्गाणां चान्ववेक्षणम् ॥ ४४
कल्पना विविधाश्चापि
नृ-नाग-रथ-वाजिनाम्।
व्यूहाश्च विविधाभिख्या
विचित्रं युद्धकौशलम् ॥ ४५
उत्पाताश्च निपाताश्च सुयुद्धं सुपलायितम्।
शस्त्राणां पालनं ज्ञानं तथैव भरतर्षभ ॥ ४६
बलव्यसनयुक्तं च तथैव बलहर्षणम्।
पीडा चापद्कालश्च पत्तिज्ञानं च पाण्डव ॥
तथाख्यातविधानं च योगः संचार एव च।
चौरैराटविकैश्चोग्रैः परराष्ट्रस्य पीडनम् ४८
अग्निदैर्गरदैश्चैव प्रतिरूपककारकैः।
श्रेणिमुख्योपजापेन वीरुधश्छेदनेन च ॥ ४९
दूषणेन च नागानामातङ्कजननेन च।
आराधनेन भक्तस्य प्रत्ययोपार्जनेन च ॥ ५०
सप्ताङ्गस्य च राज्यस्य ह्रासवृद्धिसमञ्जसम्।
दूतसामर्थ्यसंयोगात्सराष्ट्रस्य विवर्धनम् ५१
अरिमध्यस्थमित्राणां सम्यक् चोक्तं प्रपञ्चनम्
अवमर्दः प्रतीघातस्तथैव च बलीयसाम् ५२
व्यवहारः सुसूक्ष्मश्च तथा कण्टकशोधनम्।
श्रमो व्यायामयोगश्च त्यागो द्रव्यस्य संग्रहः
अभृतानां च भरणं भृतानां चान्ववेक्षणम्।
अर्थस्य काले दानं च व्यसने चाप्रसङ्गिता
तथा राजगुणाश्चैव सेनापतिगुणाश्च ह।
कारणं च त्रिवर्गस्य गुणदोषास्तथैव च ॥
दुश्चेष्टितं च विविधं वृत्तिश्चैवानुवर्तिनाम्।
शङ्कितत्वं च सर्वस्य प्रमादस्य च वर्जनम् ॥
अलब्धलाभो लब्धस्य तथैव च विवर्धनम्।
प्रदानं च विवृद्धस्य पात्रेभ्यो विधिवत्ततः ॥
विसर्गोऽर्थस्य धर्मार्थं कामहैतुकमुच्यते।
चतुर्थं व्यसनाघाते तथैवात्रानुवर्णितम् ॥ ५८

चत्वारः मित्रवृद्धिः कोशसञ्चयश्च स्वस्य मित्रनाशः कोशहानिश्च परस्येति ॥ ३८ ॥ आसुरो विजयः सौप्तिके गतः। पञ्चवर्गः अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि बलं कोशश्च पञ्चमः। त्रिविधं उत्तममध्यमाधमभेदेन ॥ ३९ ॥ दण्डः सेना। 'दण्डोऽस्त्री लगुडे पुमान्' इत्युपक्रम्य 'सैन्ये काले मानभेदे' इति **मेदिनी** ॥ ४० ॥ विष्टिर्विष्टिगृहीता भारग्राहाः चराश्चाराः देशिकाः उपदेष्टारो गुरवः ॥४१॥ जङ्गमा महावृश्चिकादिजाः अजङ्गमाः रक्तशृङ्गिकादयः ॥४२॥ स्पर्शे वस्त्रादौ अभ्यवहार्येऽन्नादौ उपांशुरभिचारादिरिति विविधो विषयोगरूपो दण्डः ॥ ४३ ॥ मार्गगुणाः ग्रहनक्षत्रादिमार्गगुणाः। भूमिगुणाश्चतुरशीति मूबलानि यामलोक्तानि आत्मरक्षणं मन्त्रयन्त्रादिना। सर्गाणां रथादिनिर्माणानाम् ॥४४॥ कल्पनाः बलपुष्टिकराः योगाः विविधाभिख्याश्चक्रव्यूहक्रौञ्चव्यूहादिनानानामानः ॥४५॥ उत्पाताः ग्रहयुद्धादयो धूमकेत्वादयश्च। निपाताः उल्कापातभूमिकम्पादयः। शस्त्राणां पालनं तीक्ष्णीकरणम् ॥४६॥ पीडा च आपदां समूहो आपदं तस्य काल आपद्कालः ॥ ४७ ॥ आख्यातं अभिमन्त्रितदुन्दुभिध्वनिना प्रयाणादिकथनं योगः पताकादिमन्त्रणादि तयोः सञ्चारः श्रवणदर्शनाभ्यां परमोहनम्। एतत्सर्वं तत्र उक्तमिति सर्वत्र योज्यम् ॥ ४८ ॥ गरदैः विषदैः प्रतिरूपकं प्रतिमा तत्कारकैस्तद्द्वारा कार्मणकारिभिः कौलिकैः श्रेणिमुख्याः बलाध्यक्षादयस्तेषामुपजापो भेदनं तेन वीरुधश्छेदनेन धान्याङ्कुरच्छेदेन ॥४९॥ नागानां दूषणं मन्त्रतन्त्रौषधादिना तेन प्रत्ययोपार्जनेन विश्वासोत्पादनेन च परराष्ट्रस्य पीडनं उक्तमिति प्रपूर्वेण सम्बन्धः ॥ ५० ॥ समञ्जसं समत्वम् ॥ ५१ ॥ कण्टकशोधनं खलानामुन्मूलनं श्रमो मल्लक्रीडा व्यायामयोगः आयुधप्रयोगाभ्यासः त्यागो दानम् ॥ ५३ ॥ अप्रसाङ्गिता असम्बन्धः ॥५४॥ राजगुणाः उत्थानादयः सेनापतिगुणाः मौलतादयः ॥ ५५ ॥ पात्रेभ्यः प्रदानं प्रथमम् ॥ ५७ ॥ **विसर्ग इति**। विसर्गो दानं धर्मार्थं यज्ञार्थं द्वितीयं काम्यं तृतीयं व्यसनाघाते चतुर्थम् ॥ ५८ ॥

क्रोधजानि तथोग्राणि कामजानि तथैव च
दशोक्तानि कुरुश्रेष्ठ व्यसनान्यत्र चैव ह ५९
मृगयाऽक्षास्तथा पानं स्त्रियश्च भरतर्षभ ।
कामजान्याहुराचार्याः प्रोक्तानीह स्वयंभुवा
वाक्पारुष्यं तथोग्रत्वं दण्डपारुष्यमेव च ।
आत्मनो निग्रहस्त्यागो ह्यर्थदूषणमेव च ६१
यन्त्राणि विविधान्येव
क्रियास्तेषां च वर्णिताः ।
अवमर्दः प्रतीघातः
केतनानां च भञ्जनम् ॥ ६२
चैत्यद्रुमावमर्दश्च रोधः कर्मानुशासनम् ।
अपस्करोऽथ वसनं तथोपायाश्च वर्णिताः ॥
पणवानकशङ्खानां भेरीणां च युधिष्ठिर ।
उपार्जनं च द्रव्याणां परिमर्दश्च तानि षट् ॥
लब्धस्य च प्रशमनं सतां चैवाभिपूजनम् ।
विद्वद्भिरेकीभावश्च दानहोमविधिज्ञता ॥ ६५
मङ्गलालम्भनं चैव शरीरस्य प्रतिक्रिया ।
आहारयोजनं चैव नित्यमास्तिक्यमेव च ॥
एकेन च यथोत्थेयं सत्यत्वं मधुरा गिरः ।
उत्सवानां समाजानां क्रियाः केतनजास्तथा
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च सर्वाधिकरणेष्वथ ।
वृत्तेर्भरतशार्दूल नित्यं चैवान्ववेक्षणम् ॥ ६८
अदण्ड्यत्वं च विप्राणां
युक्त्या दण्डनिपातनम् ।
अनुजीवी स्वजातिभ्यो
गुणेभ्यश्च समुद्भवः ॥ ६९
रक्षणं चैव पौराणां
राष्ट्रस्य च विवर्धनम् ।

मण्डलस्था च या चिन्ता
राजन्द्वादशराजिका ॥ ७०
द्वासप्ततिविधा चैव शरीरस्य प्रतिक्रिया ।
देशजातिकुलानां च धर्माः समनुवर्णिताः ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चात्रानुवर्णिताः ।
उपायाश्चार्थलिप्सा च विविधा भूरिदक्षिण
मूलकर्मक्रिया चात्र मायायोगश्च वर्णितः ।
दूषणं स्रोतसां चैव वर्णितं चास्थिराम्भसां*
यैर्यैरुपायैर्लोकस्तु न चलेदार्यवर्त्मनः ।
तत्सर्वं राजशार्दूल नीतिशास्त्रेऽभिवर्णितम्
एतत्कृत्वा शुभं शास्त्रं ततः स भगवान्प्रभुः
देवानुवाच संहृष्टः सर्वाञ्छक्रपुरोगमान् ७५
उपकाराय लोकस्य त्रिवर्गस्थापनाय च ।
नवनीतं सरस्वत्या बुद्धिरेषा प्रभाविता ७६
दण्डेन सहिता ह्येषा लोकरक्षणकारिका ।
निग्रहानुग्रहरता लोकाननुचरिष्यति ॥ ७७
दण्डेन नीयते चेदं दण्डं नयति वा पुनः ।
दण्डनीतिरिति ख्याता त्रीँल्लोकानभिवर्तते
षाड्गुण्यगुणसारैषा स्थास्यत्यग्रे महात्मसु ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च सकला ह्यत्र शब्दिताः
ततस्तां भगवान्नीतिं पूर्वं जग्राह शंकरः ।
बहुरूपो विशालाक्षः शिवः स्थाणुरुमापतिः
प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय भगवाञ्शिवः।
संचिक्षेप ततः शास्त्रं महार्थं ब्रह्मणा कृतम् ॥
वैशालाक्षमिति प्रोक्तं तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत ।
दशाध्यायसहस्राणि सुब्रह्मण्यो महातपाः ॥
भगवानपि तच्छास्त्रं संचिक्षेप पुरंदरः ।
सहस्रैः पञ्चभिस्तात यदुक्तं बाहुदन्तकम् ८२

परिशेषात् वाक्पारुष्यादीनि षट्क्रोधजानि आत्मनो देहस्य ॥ ६१ ॥ अवमर्दः परचक्रेण देशादेः पीडनम् ॥ ६२ ॥ कर्मान्तः कृष्यादिफलं तत्रानुशासनं रोधः अपस्कर उपकरणानि वसनं कवचादिकं उपायास्तन्निर्माणे युक्तयः ॥ ६३ ॥ तानि द्रव्याणि षट्—'**मणयः पशवः पृथिवी वासो दास्यादि काञ्चनम्**'इति ॥६४॥ मङ्गलं स्वर्णादिकं तस्यालम्भनं स्पर्शः प्रतिक्रिया अलंकरणम् ॥ ६६ ॥ एकस्याप्युत्थानप्रकारः केतनजाः गृहजाः क्रियाः ध्वजारोहणाद्याः ॥ ६७ ॥ अधिकरणेषु जनोपवेशनस्थानेषु चत्वरादिषु ॥ ६८ ॥ जातितो गुणतश्च समुद्भवो मान्यत्वम् ॥ ६९ ॥ द्वादशानां राज्ञां समूहो द्वादशराजिका मध्यस्थस्य विजिगीषोश्चतुर्दिक्षु चत्वारोऽरयस्तेभ्योऽपरे चत्वारो मित्राणि तेभ्यः परे चत्वार उदासीना इति ॥ ७० ॥ द्वासप्ततिविधा वैद्यशास्त्रप्रसिद्धा प्रतिक्रिया संस्कारः शौच्याभ्यङ्गादिः ॥ ७१ ॥ हे भूरिदक्षिण ॥ ७२ ॥ मूलकर्माणि कोशवृद्धिकराणि कृष्यादीनि तेषां क्रिया करणप्रकारः॥७३॥ नीयते पुरुषार्थफलाय इदं जगत् दण्डं नयति प्रणयति अनया चेति ॥७८॥ वा संचिक्षेप संक्षिप्तं कृतवान्॥८१॥ **वैशालाक्षं बाहुदन्तकं बार्हस्पत्य**मित्युत्तरोत्तरसंक्षिप्तदण्डनीतिग्रन्थनामानि ॥८२॥ * च स्थिराम्भसाम् इति-पाठः ।

अध्यायानां सहस्रैस्तु त्रिभिरेव बृहस्पतिः ।
सञ्चिक्षेपेश्वरो बुद्ध्या बार्हस्पत्यं तदुच्यते ८४
अध्यायानां सहस्रेण काव्यः संक्षेपमब्रवीत् ।
तच्छास्त्रममितप्रज्ञो योगाचार्यो महायशाः
एवं लोकानुरोधेन शास्त्रमेतन्महर्षिभिः ।
संक्षिप्तमायुर्विज्ञाय मर्त्यानां ह्रासमेव च ॥
अथ देवाः समागम्य
विष्णुमूचुः प्रजापतिम् ।
एको योऽर्हति मर्त्येभ्यः
श्रैष्ठ्यं वै तं समादिश ॥ ८७
ततः सञ्चिन्त्य भगवान्देवो नारायणः प्रभुः
तैजसं वै विरजसं सोऽसृजन्मानसं सुतम् ॥
विरजास्तु महाभागः प्रभुत्वं भुवि नैच्छत ।
न्यासायैवाभवद्बुद्धिः प्रणीता तस्य पाण्डव
कीर्तिमांस्तस्य पुत्रोऽभूत्
सोऽपि पञ्चातिगोऽभवत् ।
कर्दमस्तस्य तु सुतः
सोऽप्यतप्यन्महत्तपः ॥ ९०
प्रजापतेः कर्दमस्य त्वनङ्गो नाम वै सुतः ।
प्रजा रक्षयिता साधुर्दण्डनीतिविशारदः ॥
अनङ्गपुत्रोऽतिबलो नीतिमानभिगम्य वै ।
प्रतिपेदे महाराज्यमथेन्द्रियवशोऽभवत् ९२
मृत्योस्तु दुहिता राजन्सुनीथा नाम मानसी
प्रख्याता त्रिषु लोकेषु याऽसौ वेनमजीजनत्
तं प्रजासु विधर्माणं रागद्वेषवशानुगम् ।
मन्त्रपूतैः कुशैर्जघ्नुर्ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ९४
ममन्थुर्दक्षिणं चोरुमृषयस्तस्य मन्त्रतः ।
ततोऽस्य विकृतो जज्ञे ह्रस्वाङ्गः पुरुषो भुवि
दग्धस्थूणाप्रतीकाशो रक्ताक्षः कृष्णमूर्धजः ।
निषीदेत्येवमुचुस्तमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ९६
तस्मान्निषादाः संभूताः
क्रूराः शैलवनाश्रयाः ।
ये चान्ये विन्ध्यनिलया
म्लेच्छाः शतसहस्रशः ॥ ९७
भूयोऽस्य दक्षिणं पाणिं ममन्थुस्ते महर्षयः ।
ततः पुरुष उत्पन्नो रूपेणेन्द्र इवापरः ॥ ९८
कवची बद्धनिस्त्रिंशः सशरः सशरासनः ।
वेदवेदाङ्गविच्चैव धनुर्वेदे च पारगः ९९
तं दण्डनीतिः सकला श्रिता राजन्नरोत्तमम्
ततस्तु प्राञ्जलिर्वैन्यो महर्षीस्तानुवाच ह ॥
सुसूक्ष्मा मे समुत्पन्ना बुद्धिर्धर्मार्थदर्शिनी ।
अनया किं मया कार्यं तन्मे तत्त्वेन शंसत ॥
यन्मां भवन्तो वक्ष्यन्ति कार्यमर्थसमन्वितम्
तदहं वै करिष्यामि नात्र कार्या विचारणा
तमूचुस्तत्र देवास्ते ते चैव परमर्षयः ।
नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर ॥
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु ।
कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः
यश्च धर्मात्प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः ।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद्धर्ममवेक्षता ॥
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा, कर्मणा, गिरा
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो
लोकं च सङ्करात्कृत्स्नं त्राताऽस्मीति परंतप
वैन्यस्ततस्तानुवाच देवानृषिपुरोगमान् ।
ब्राह्मणा मे महाभागा नमस्याः पुरुषर्षभाः ॥
एवमस्त्विति वैन्यस्तु तैरुक्तो ब्रह्मवादिभिः ।
पुरोधाश्चाभवत्तस्य शुक्रो ब्रह्ममयो निधिः ॥
मन्त्रिणो वालखिल्याश्च
सारस्वत्यो गणस्तथा ।
महर्षिर्भगवान्गर्ग-
स्तस्य सांवत्सरोऽभवत् ॥ १११
आत्मनाऽष्टम इत्येव श्रुतिरेषा परा नृषु ।
उत्पन्नौ बन्दिनौ चास्य तत्पूर्वौ सूतमागधौ
तयोः प्रीतो ददौ राजा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्
अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥ ११३
समतां वसुधायाश्च स सम्यगुदपादयत् ।
वैषम्यं हि परं भूमेरासीदिति च नः श्रुतम् ॥

---

एवं शास्त्रोत्पत्तिमुक्त्वा नृपोत्पत्तिमाह—**अथेत्यादिना** ॥ ८७ ॥ पञ्चातिगः विषयातिगः मुक्तः ॥ ९० ॥ अनङ्ग इत्यङ्गस्यैव नामान्तरम् ॥ ९१ ॥ स्ववशः स्वानीन्द्रियाणि तद्वशः न कदाचन भविष्यामीति शेषः । स्वेति स्वच्छ पाठः ॥ १०७ ॥ सांवत्सरो ज्यौतिषिकः ॥१११॥ आत्मना स्वशरीरेण सहाष्टमः पृथुर्विष्णोः सकाशादित्यर्थः । तथा हि—**विष्णुः** प्रथमः । **विरजा** द्वितीयः । **कीर्तिमां**स्तृतीयः । **कर्दम**श्चतुर्थः । **अनङ्गः** पञ्चमः । **अतिबलः** षष्ठः । **वेनः** सप्तमः । **पृथु**रष्टम इति ॥ ११२ ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु विषमा जायते मही।
उज्जहार ततो वैन्यः शिलाजालान्समन्ततः
धनुष्कोट्या महाराज तेन शैला विवर्धिताः
स विष्णुना च देवेन शक्रेण विबुधैः सह ॥
ऋषिभिश्च प्रजापालैर्ब्राह्मणैश्चाभिषेचितः।
तं साक्षात्पृथिवी भेजे रत्नान्यादाय पाण्डव
सागरः सरितां भर्ता हिमवांश्चाचलोत्तमः।
शक्रश्च धनमक्षय्यं प्रादात्तस्मै युधिष्ठिर ११८
रुक्मं चापि महामेरुः स्वयं कनकपर्वतः।
यक्षराक्षसभर्ता च भगवान्नरवाहनः ११९
धर्मे, चार्थे, च कामे, च समर्थं प्रददौ धनम्।
हया रथाश्च नागाश्च कोटिशः पुरुषास्तथा ॥
प्रादुर्बभूवुर्वैन्यस्य चिन्तनादेव पाण्डव।
न जरा न च दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा
सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्यो
न चान्योन्यात्कदाचन।
भयमुत्पद्यते तत्र
तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात् ॥ १२२
आपस्तस्तंभिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् १२३
तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च।
यक्षराक्षसनागैश्चापीप्सितं यस्य यस्य यत् ॥
तेन धर्मोत्तरश्चायं कृतो लोको महात्मना।
रञ्जिताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते ॥
ब्राह्मणानां क्षतत्राणात्ततः क्षत्रिय उच्यते ॥
प्रथिता धर्मतश्चेयं पृथिवी बहुभिः× स्मृता ॥
स्थापनं चाकरोद्विष्णुः स्वयमेव सनातनः।
नातिवर्तिष्यते कश्चिद्राजंस्त्वामिति भारत
तपसा भगवान्विष्णुराविवेश च भूमिपम्।
देववन्नरदेवानां नमते यं जगन्नृपम् ॥ १२८
दण्डनीत्या च सततं रक्षितव्यं नरेश्वर।
नाधर्षयेत्तथा कश्चिच्चारनिष्पन्ददर्शनात् ॥
शुभं हि कर्म राजेन्द्र शुभत्वायोपकल्पते।
आत्मना कारणैश्चैव समस्येह महीक्षितः ॥
को हेतुर्यद्वशे तिष्ठेल्लोको दैवादृते गुणात्।
विष्णोर्ललाटात्कमलं सौवर्णमभवत्तदा १३१
श्रीः संभूता यतो देवी पत्नी धर्मस्य धीमतः
श्रियः सकाशादर्थश्च जातो धर्मेण पाण्डव
अथ धर्मस्तथैवार्थः श्रीश्च राज्ये प्रतिष्ठिता।
सुकृतस्य क्षयाच्चैव स्वर्लोकादेत्य मेदिनीम् ॥
पार्थिवो जायते तात दण्डनीतिविशारदः।
महत्त्वेन च संयुक्तो वैष्णवेन नरो भुवि ॥
बुद्ध्या भवति संयुक्तो
माहात्म्यं चाधिगच्छति।
स्थापितं च ततो देवैर्न कश्चिदतिवर्तते।
तिष्ठत्येकस्य च वशे तं चेदं न विधीयते ॥
शुभं हि कर्म राजेन्द्र शुभत्वायोपकल्पते।
तुल्यस्यैकस्य यस्यायं लोको वचसि तिष्ठते
योऽस्य वै मुखमद्राक्षीत्
सौम्यं सोऽस्य वशानुगः।
सुभगं चार्थवन्तं च
रूपवन्तं च पश्यति ॥ १३७
महत्त्वात्तस्य दण्डस्य नीतिर्विस्पष्टलक्षणा।
नयचारश्च विपुलो येन सर्वमिदं ततम् १३८
आगमश्च पुराणानां महर्षीणां च सम्भवः।
तीर्थवंशश्च वंशश्च नक्षत्राणां युधिष्ठिर १३९
सकलं चातुराश्रम्यं चातुर्होत्रं तथैव च।
चातुर्वर्ण्यं तथैवात्र चातुर्विद्यं च कीर्तितम् ॥
इतिहासाश्च वेदाश्च न्यायः कृत्स्नश्च वर्णितः
तपो ज्ञानमहिंसा च सत्यासत्येन यः परः ॥
वृद्धोपसेवा दानं च शौचमुत्थानमेव च।
सर्वभूतानुकम्पा च सर्वमत्रोपवर्णितम् १४२
भुवि चाधोगतं यच्च तच्च सर्वं समर्पितम्।
तस्मिन्पैतामहे शास्त्रे पाण्डवैतन्न संशयः ॥

---

प्रथितावनता चेति विग्रहे वर्णलोपविकाराभ्यां पृथिवी ॥ १२६ ॥ स्थापनं मर्यादाम् ॥ १२७ ॥ **दण्डेति।** रक्षितव्यं राज्यं तच्चान्यो न आधर्षयेत् तत्र हेतुः चाराणां निष्पन्दः सञ्चारस्तद्द्वारा यद्दर्शनं लोकवृत्तान्तस्य दृष्ट्वा च पालनं तत इत्यर्थः। आत्मना चित्तेन कारणैः क्रियाभिश्च समस्य महीक्षितः कर्मेति सम्बन्धः ॥ १२९ ॥ विष्णुर्भूमिपमाविवेशेत्युक्तं तत्रोपपत्तिः क इत्यर्थेन ॥ १३१ ॥ पत्नी पालयित्री ॥ १३२ ॥ स्थापितमभिषिक्तं एकस्य राज्ञो वशे इदं तिष्ठति तं चेदं लक्षीकृत्य न विधीयते इदं जगद्विधानसामर्थ्यं न भवति ॥ १३५ ॥ तुल्यस्य हस्ताद्यवयवैः समस्य ॥ १३६ ॥ अस्य राज्ञः सौम्यं मुखं अद्राक्षीत् सुभगादिरूपं चैनं पश्यति अस्य द्रष्टुः स राजा वशानुगः आज्ञाकारीति ज्ञेयम् ॥ १३७ ॥ **महत्त्वादिति।** दण्डसामर्थ्यादेव लोके नीत्यादिकं दृश्यत इत्यर्थः ॥ १३८ ॥ आगमादिकं चात्र ग्रन्थे कीर्तितम् ॥ १३९ ॥ × साधुभिः इति-पा०

ततो जगति राजेन्द्र सततं शब्दितं बुधैः ।
देवाश्च नरदेवाश्च तुल्या इति विशांपते १४४
एतत्ते सर्वमाख्यातं महत्त्वं प्रति राजसु ।
कार्त्स्न्येन भरतश्रेष्ठ किमन्यदिह वर्तते ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सूत्राध्याये×
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

वैशम्पायन उवाच ।
ततः पुनः स गाङ्गेयमभिवाद्य पितामहम् ।
प्राञ्जलिर्नियतो भूत्वा पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः १
के धर्माः सर्ववर्णानां चातुर्वर्ण्यस्य के पृथक्
चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च राजधर्माश्च के मताः ।
केन वै वर्धते राष्ट्रं राजा केन विवर्धते ।
केन पौराश्च भृत्याश्च वर्धन्ते भरतर्षभ ॥ २
कोशं दण्डं च दुर्गं च सहायान्मन्त्रिणस्तथा
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान्कीदृशान्वर्जयेन्नृपः३
केषु विश्वासितव्यं स्यात्
राज्ञा कस्यांश्चिदापदि ।
कुतो वाऽऽत्मा दृढं रक्ष्य-
स्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५
भीष्म उवाच ।
नमो धर्माय महते
नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य
धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ६
अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा ।
प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च ॥ ७
आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः ।
ब्राह्मणस्य तु यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि केवलम्
दममेव महाराज धर्ममाहुः पुरातनम् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव तत्र कर्म समाप्यते ९
तं चेद्द्विजमुपागच्छेद्वर्तमानं स्वकर्मणि ।
अकुर्वाणं विकर्माणि शान्तं प्रज्ञानतर्पितम् ॥
कुर्वीतापत्यसन्तानमथो दद्याद्यजेत च ।
संविभज्य च भोक्तव्यं धनं सद्भिरितीर्यते ॥
परिनिष्ठितकार्यस्तु स्वाध्यायेनैव ब्राह्मणः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते १२
क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत
दद्याद्राजन्न याचेत यजेत न च याजयेत् १३
नाध्यापयेदधीयीत प्रजाश्च परिपालयेत् ।
नित्योद्युक्तो दस्युवधे रणे कुर्यात्पराक्रमम् ॥
ये तु क्रतुभिरीजानाः श्रुतवन्तश्च भूमिपाः ।
य एवाहवजेतारस्त एषां लोकजित्तमाः १५
अविक्षतेन देहेन समराद्यो निवर्तते ।
क्षत्रियो नास्य तत्कर्म प्रशंसन्ति पुराविदः
एवं हि क्षत्रबंधूनां मागमाहुः प्रधानतः ।
नास्य कृत्यतमं किञ्चिदन्यद्दस्युनिबर्हणात् ॥
दानमध्ययनं यज्ञो राज्ञां क्षेमो विधीयते ।
तस्माद्राज्ञा विशेषेण योद्धव्यं धर्ममीप्सता
स्वेषु धर्मेष्ववस्थाप्य प्रजाः सर्वा महीपतिः ।
धर्मेण सर्वकृत्यानि शमनिष्ठानि कारयेत्१९
परिनिष्ठितकार्यस्तु नृपतिः परिपालनात् ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादैन्द्रो राजन्य उच्यते ॥
वैश्यस्यापि हि यो धर्म-
स्तं ते वक्ष्यामि शाश्वतम् ।
दानमध्ययनं यज्ञः
शौचेन धनसञ्चयः ॥ २१
पितृवत्पालयेद्वैश्यो युक्तः सर्वान्पशूनिह ।
विकर्म तद्भवेदन्यत्कर्म यत्स समाचरेत् ॥२२
रक्षया स हि तेषां वै महत्सुखमवाप्नुयात् ।
प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददौ पशून्२३

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥

× अस्मिन्नध्याये खपुस्तके नव श्लोका अधिकाः ।

६०

**ततः पुनरिति** ॥ १ ॥ सर्ववर्णानां अनुलोमविलोमजादीनां चातुर्वर्ण्यस्य ये आश्रमाः ब्राह्मणस्य चत्वार आश्रमाः क्षत्रियस्य त्रयो वैश्यस्य द्वौ शूद्रस्यैक इति तेषाम् ॥ २ ॥ सर्ववर्णधर्मानाह—**अक्रोध इति** सार्धेन ॥ ७ ॥ तत्राध्ययने तावतैव नैष्ठिकः कृतार्थो भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥ स्वयमुपागते वित्ते दारक्रियापूर्वकं अपत्यसन्तानमिच्छेत्स इत्याह द्वाभ्याम्—**तं चेदिति** ॥ १० ॥

ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि यच्च तस्योपजीवनम्
षण्णामेकां पिबेद्धेनुं शताच्च मिथुनं हरेत् ।
लब्धाच्च सप्तमं भागं तथा शृङ्गे कला खुरे॥
सस्यानां सर्वबीजानामेषा सांवत्सरी भृतिः
न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति॥
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथञ्चन
शूद्रस्यापि हि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत
प्रजापतिर्हि वर्णानां दासं शूद्रमकल्पयत् ।
तस्माच्छूद्रस्य वर्णानां परिचर्या विधीयते ॥
तेषां शुश्रूषणाच्चैव महत्सुखमवाप्नुयात् ।
शूद्र एतान्परिचरेत्त्रीन्वर्णाननुपूर्वशः ॥ २९
संचयांश्च न कुर्वीत जातु शूद्रः कथञ्चन ।
पापीयान्हि धनं लब्ध्वा वशे कुर्याद्गरीयसः
राज्ञा वा समनुज्ञातः कामं कुर्वीत धार्मिकः।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि यच्च तस्योपजीवनम्
अवश्यं भरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते ।
छत्रं वेष्टनमौशीरमुपानद्व्यजनानि च ॥ ३२
यातयामानि देयानि
शूद्राय परिचारिणे ।
अधार्याणि विशीर्णानि
वसनानि द्विजातिभिः ॥ ३३
शूद्रायैव प्रदेयानि तस्य धर्मधनं हि तत् ।
यं च कश्चिद्द्विजातीनां शूद्रः शुश्रूषुराव्रजेत्
कल्प्यां तेन तु ते प्राहुर्वृत्तिं धर्मविदो जनाः
देयः पिण्डोऽनपत्याय भर्तव्यौ वृद्धदुर्बलौ ॥
शूद्रेण तु न हातव्यो भर्ता कस्याञ्चिदापदि
अतिरेकेण भर्तव्यो भर्ता द्रव्यपरिक्षये ॥ ३६
न हि स्वमस्ति शूद्रस्य भर्तृहार्यधनो हि सः ।
उक्तस्त्रयाणां वर्णानां यज्ञस्तस्य च भारत ।
स्वाहाकारवषट्कारौ मन्त्रः शूद्रे न विद्यते ॥
तस्माच्छूद्रः पाकयज्ञैर्यजेताव्रतवान्स्वयम् ।
पूर्णपात्रमयीमाहुः पाकयज्ञस्य दक्षिणाम् ३८
शूद्रः पैजवनो नाम सहस्राणां शतं ददौ ।
ऐन्द्राग्नेन विधानेन दक्षिणामिति नः श्रुतम्
यतो हि सर्ववर्णानां यज्ञस्तस्यैव भारत ।
अग्रे सर्वेषु यज्ञेषु श्रद्धायज्ञो विधीयते ॥ ४०
दैवतं हि महच्छ्रद्धा पवित्रं यजतां च यत् ।
दैवतं हि परं विप्राः स्वेन स्वेन परस्परम् ४१
अयजन्निह सत्रैस्ते तैस्तैः कामैः समाहिताः।
संसृष्टा ब्राह्मणैरेव त्रिषु वर्णेषु सृष्टयः ॥ ४२

---

षण्णां धेनूनां रक्षको वैश्य एकस्याः क्षीरं स्ववेतनं हरेत् शतस्य रक्षको वर्षे एकं गोमिथुनं वेतनं हरेत् । वाणिज्ये तु लब्धात्सप्तमं भागं धनिकाद्धरेत् । गवयादिशृङ्गवाणिज्ये लाभात्सप्तममेव । खुरे पशुविशेषखुरे महामूल्ये । कला षोडशो भागः॥२५॥ एवं सस्यानामपि सप्तममेवांशं हरेत् ॥ २६ ॥ कुर्वीत सञ्चयानित्यपकृष्यते धार्मिकः कर्मप्रधानः न तु भोगलोभप्रधानः ॥ ३१ ॥ औशीरं वेष्टनं वीरणमूलकृताच्छदिः ॥ ३२ ॥ यातयामानि भुक्तभोगानि । जीर्णानीति यावत् ॥ ३३ ॥ द्विजातीनां मध्ये यं कश्चित्प्रति ॥ ३४ ॥ तेन द्विजातिना ॥३५॥ अतिरेकेण स्वकुटुम्बपोषणादाधिक्येन भर्ता पोष्यः ॥३६॥ अन्यत्र भृत्यार्जितमपि धनं शूद्रस्य स्वामिनैव हार्यं यथोक्तम्—

'त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम्'इति ।

तस्माद्युक्तमुक्तं भर्तृहार्यधनो हि स इति । तस्य **शूद्रस्य** चामन्त्रको यज्ञोऽस्तीत्यर्थः॥३७॥ **तस्मादिति** । पाकयज्ञैः क्षुद्रयज्ञैर्ग्रहशान्तिवैश्वदेवादिभिर्यजेत अव्रतवान् श्रौतव्रतोपायहीनः ।

'अष्टमुष्टि भवेत्किञ्चित्किञ्चिदष्टौ तु पुष्कलम् ।
पुष्कलानि तु चत्वारि **पूर्णपात्रं** प्रचक्षते ।'

इत्युक्तलक्षणपूर्णपात्रमयी यज्ञे गवामिव पूर्णपात्राणामेव गणना यज्ञानुसारेण । मंत्रास्तेषां पौराणिका नाममन्त्रा वा प्रणववर्जिता इति सर्वं **शूद्रपद्धत्युक्तं** द्रष्टव्यम् ॥३८॥ सहस्राणां शतं लक्षं पूर्णपात्राणि ऐन्द्राग्नस्य विधिर्यथा श्रौते चरोः पशोर्वा विधिस्तथैवामन्त्रकमस्य विधानं तेन ॥ ३९ ॥ ननु 'तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः' इति श्रुतेः । कथमस्यामन्त्रोऽपि यज्ञ इत्याशंक्याह—**यत इति** । सर्ववर्णानां त्रैवर्णिकानां यो यज्ञः स तस्यैव शूद्रस्यैव भवति तस्य तत्सेवकत्वात् यथा हि श्रद्धया गुर्वग्नीन्परिचरत उपकोसलस्याग्नयो ब्रह्मविद्यां दत्तवन्तः एवं श्रद्धया ब्राह्मणादीनाराधयतः शूद्रस्यापि ब्राह्मणकृतयज्ञफलभागित्वमस्त्येवेत्यर्थः। सार्धः श्लोकः ॥ ४० ॥ सृष्टयः सन्तानानि तेन सर्वेषां वर्णानां ब्राह्मणजत्वादस्त्येव शूद्रस्यापि यज्ञेऽधिकार इत्यर्थः ॥४२ ॥

देवानामपि ये देवा यद्ब्रूयुस्ते परं हितम् ।
तस्माद्वर्णैः सर्वयज्ञाः संसृज्यन्ते न काम्यया
ऋग्यजुःसामवित्पूज्यो
नित्यं स्याद्देववद्द्विजः ।
अनृग्यजुरसामा च
प्राजापत्य उपद्रवः ।
यज्ञो मनीषया तात
सर्ववर्णेषु भारत ॥ ४४
नास्य यज्ञकृतो देवा ईहन्ते नेतरे जनाः ।
ततः सर्वेषु वर्णेषु श्रद्धायज्ञो विधीयते ॥ ४५
स्वं दैवतं ब्राह्मणः स्वेन नित्यं
परान्वर्णानयजन्नेवमासीत् ।
अधरो वितानः संसृष्टो वैश्यो
ब्राह्मणस्त्रिषु वर्णेषु यज्ञसृष्टः ॥ ४६

तस्माद्वर्णा ऋजवो ज्ञातिवर्णाः
संसृज्यन्ते तस्य विकार एव ।
एकं साम यजुरेकमृगेका
विप्रश्चैको निश्चये तेषु सृष्टः ॥ ४७
अत्र गाथा यज्ञगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
वैखानसानां राजेन्द्र मुनीनां यष्टुमिच्छताम्
'उदितेऽनुदिते वापि श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
वह्निं जुहोति धर्मेण श्रद्धा वै कारणं महत् ॥
यत्स्कन्नमस्य तत्पूर्वं यदस्कन्नं तदुत्तरम् ।
बहूनि यज्ञरूपाणि नानाकर्मफलानि च ५०
तानि यः संप्रजानाति ज्ञाननिश्चयनिश्चितः ।
द्विजातिः श्रद्धयोपेतः स यष्टुं पुरुषोऽर्हति ॥

यद्ब्रूयुस्ते तत्ते तव परं हितं वर्णैः सशूद्रैः सर्वयज्ञाः श्रौताः स्मार्ताश्च न काम्यया स्वभावात्संसृज्यन्त इति पूर्वस्योपसंहारः ॥ ४३ ॥ अत्र हेतुमाह--**ऋगिति** । द्विजस्त्रैवर्णिकः पूज्यः शूद्रेण उपद्रवतीति तत्समीपगामित्वादुपद्रवो दासः शूद्रः स वेदहीनोऽपि प्राजापत्यः प्रजापतिदेवताकः यथाऽऽग्नेयो ब्राह्मण ऐन्द्रः क्षत्रियस्तद्वत् । तथा च मानसे देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मके यज्ञे सर्वे वर्णा आधिक्रियन्त इत्यर्थः सार्धः श्लोकः ॥ ४४ ॥ अस्य मानसयज्ञकर्तुः देवाः इतरेजनाश्च न ईहन्ते इति न अपि तु श्रद्धापूतत्वात्सर्वेऽप्यस्य यज्ञे भागं कामयन्त इत्यर्थः । नास्य यज्ञस्य त इति पाठे एनं यज्ञं देवा अपि कर्तुं न ईहन्ते न समर्था भवन्तीति योज्यम् ॥ ४५ ॥ नन्वग्निहीनस्य शूद्रस्य कथं पाकयज्ञेष्वधिकार इत्याशंक्याह--स्वं दैवतं ब्राह्मणः स्वेन नित्यं परान्वर्णानयजन्नेवमासीत् । अधरो वितानः संसृष्टो वैश्यो ब्राह्मणस्त्रिषु वर्णेषु यज्ञसृष्ट इति । ब्राह्मणस्त्रयाणामपि वर्णानां स्वं असाधारणं दैवतं अतः कारणात् ते स्वे आत्मीयाः ब्राह्मणाः परान्वर्णानुद्दिश्य न अयजन्निति नैव आसीत् । अपि तु 'अमुककामेनामुकशर्मणाऽहं व्रतोऽमुकयज्ञेन यक्ष्ये' इत्युद्देशं कृत्वाऽयजन्नेव यागं कृतवन्त एवेत्येवमेवासीदेवं पुराकल्पप्रदर्शनमुखेनायं विधिर्ज्ञेयः । आयजन्निति परस्मैपदप्रयोगस्तु परगामित्वात्क्रियाफलस्य युक्तः । अधरो नीचः वैवाहिकात् श्रौताच्चान्यत्वात् वितानोऽग्नीनां विस्तरः । तस्य अग्नयो लौकिका एव **पञ्चकुण्डीविधानादौ** ज्ञेयाः । एककुण्डपक्षे त्वेक एव लौकिकः । स वाऽथ खलु यत्र क्व च होष्यन्स्यादित्युपक्रम्याग्निं प्रतिष्ठाप्येति गृह्यकारैर्दर्शितः । संसृष्ट इति । तत्रापि मंत्रसंसर्ग उच्यते । वैश्यः वैश्यगृहादानीतः श्रौतेऽपि विट्कुलाद्वित्तवतो वेति वैश्यग्रहाद्दक्षिणाग्न्यर्थमग्न्यानयनं दृश्यते । यस्मादेवं तस्माद्ब्राह्मणस्त्रिष्वपि वर्णेषु यज्ञः सृष्टो येन स यज्ञस्रष्टा भवतीत्यर्थः । पाठान्तरे वैश्यपदे विभक्तिलोप आर्षः ॥ ४६ ॥ यस्मात् त्रिषु वर्णेषु ब्राह्मणो यज्ञस्रष्टा तस्मात्सर्वेऽपि वर्णाः ऋजवः साधव एव यज्ञसंयोगात् । एवं धर्मसाम्येऽपि ज्ञातिसाम्यं नास्तीत्याशंक्याह--**ज्ञातिवर्णाः** अपि क्षत्रियवैश्यशूद्रास्तस्य ब्राह्मणस्यैव विकारे क्षत्रियादिकन्यासूत्पन्ने मूर्धाभिषिक्तादौ संसृज्यन्त एव । तेन धर्मतो जन्मतश्च सर्वे वर्णा ब्राह्मणसंसृष्टा इति स्थितम् । तत्र हेतुमाह--**एक इति** । तेषु तत्त्वनिश्चये क्रियमाणे एको विप्रो ब्रह्मैव प्रथमो ब्राह्मणः सृष्टो जातः । ब्राह्मणसन्ततित्वात्सर्वेऽप्येते ब्राह्मणा एवेत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः-**एकं सामेति**। अकारो वै सर्वा वाक्सैषा स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवतीति श्रुतेरेकं अकाररूपमेव अक्षरं यथा सामादिरूपं तथा ब्रह्मैव ब्राह्मणादिरूपमित्यर्थः ॥ ४७ ॥ वैखानसानां वानप्रस्थानां गाथाः यज्ञस्तुतिश्लोकाः यज्ञगीताः विष्णुगीताः ॥ ४८ ॥ **यत्स्कन्नमिति** । रौद्रं गवि सद्वायव्यमुपावसृष्टमित्यादिबह्वृचब्राह्मणे षोडशकमग्निहोत्रमुक्तम् । तत्र मारुतं विष्यन्दमानामिति स्कन्नमपि मरुद्दैवत्यं भवतीति तत्पूर्वं आद्यं अग्निहोत्रं यत् अस्कन्नं यथाविधि हुतं उत्तरं सर्वोत्कृष्टं बहूनीति रौद्रादीनि ॥ ५० ॥ तानि षोडश अग्निहोत्ररूपाणि ॥ ५१ ॥

स्तेनो वा यदि वा पापो
यदि वा पापकृत्तमः ।
यष्टुमिच्छति यज्ञं यः
साधुमेव वदन्ति तम् ॥ ५२
ऋषयस्तं प्रशंसन्ति साधु चैतदसंशयम् ।
सर्वथा सर्वदा वर्णैर्यष्टव्यमिति निर्णयः ।
न हि यज्ञसमं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥
तस्माद्यष्टव्यमित्याहुः पुरुषेणानसूयता ।
श्रद्धा पवित्रमाश्रित्य यथाशक्ति यथेच्छया ५४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वर्णाश्रमधर्मकथने= षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

भीष्म उवाच ।
आश्रमाणां महाबाहो शृणु सत्यपराक्रम ।
चतुर्णामपि नामानि कर्माणि च युधिष्ठिर ॥
वानप्रस्थं भैक्ष्यचर्यं गार्हस्थ्यं च महाश्रमम् ।
ब्रह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चतुर्थं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥ २
जटाधरणसंस्कारं द्विजातित्वमवाप्य च ।
आधानादीनि कर्माणि प्राप्य वेदमधीत्य च
सदारो वाऽप्यदारो वा
आत्मवान्संयतेन्द्रियः ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत्
कृतकृत्यो गृहाश्रमात् ॥ ४
तत्रारण्यकशास्त्राणि समधीत्य स धर्मवित् ।
ऊर्ध्वरेताः प्रव्रजित्वा गच्छत्यक्षरसात्मताम् ।
एतान्येव निमित्तानि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
कर्तव्यानीह विप्रेण राजन्नादौ विपश्चिता ॥
चरितब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशांपते ।
भैक्षचर्यास्वधीकारः प्रशस्त इह मोक्षिणः ७
यत्रास्तमितशायी स्या-
न्निराशीरनिकेतनः ।
यथोपलब्धजीवी स्या-
न्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ८
निराशीः स्यात्सर्वसमो
निर्भोगो निर्विकारवान् ।
विप्रः क्षेमाश्रमं प्राप्तो
गच्छत्यक्षरसात्मताम् ॥ ९
अधीत्य वेदान्कृतसर्वकृत्यः
संतानमुत्पाद्य सुखानि भुक्त्वा ।
समाहितः प्रचरेद्दुश्चरं यो
गार्हस्थ्यधर्मं मुनिधर्मजुष्टम् ॥ १०
स्वदारतुष्टस्त्वृतुकालगामी
नियोगसेवी न शठो न जिह्मः ।
मिताशनो देवरतः कृतज्ञः
सत्यो मृदुश्चानृशंसः क्षमावान् ११

यज्ञं विष्णुं यष्टुं यज्ञदानादिना आराधितुम् ॥ ५२ ॥ ऋषय इति सार्धः ॥ ५३ ॥ श्रद्धा पवित्रं यथा स्यात्तथा यष्टव्यमिति सम्बन्धः आश्रित्य शास्त्रमिति शेषः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मा० नै०भा०षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ = अस्मिन्नध्याये श्लोकत्रयमधिकम्

६१

**आश्रमाणामिति** ॥ १ ॥ **वानप्रस्थमिति** । पाठक्रमो न विवक्षितः । चतुर्थं संन्यासं तं च जटाधारणसंस्कारं अवाप्य चेति चो भिन्नक्रमः । चात् मुण्डितं च वदन्ति ॥ २ ॥ द्विजातित्वमवाप्य वेदमधीत्य आधानादीनि कर्माणि प्राप्य वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदित्यन्वयः ॥ ३ ॥ आरण्यकानां वानप्रस्थानां शास्त्राणि शासनानि समधीत्य सम्यगनुष्ठानेन प्राप्य अक्षरसात्मतां कैवल्यम् ॥ ५ ॥ एतानि द्विजत्वावाप्त्यादीनि एवशब्दः प्रकारान्तरं मोक्षप्राप्तौ वारयति ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेदितिश्रुतेर्मध्यममाश्रमद्वयमनित्यमित्याह—**चरितेति** ॥ ७ ॥ विकाराः कामसङ्कल्पादयस्तद्वाञ्चित्तं तद्रहितो निर्विकारवान् अकमनस्क इत्यर्थः ॥ ९ ॥ गृहिणो मुक्तिमाह—**अधीत्येति** । समाहितः योगयुक्तः सन्गार्हस्थ्यधर्मं यः प्रचरेत्सोऽपि अक्षरसात्मतां गच्छतीति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ १० ॥ असमाहितं प्रत्याह—**स्वदारेति** । शठो धूर्तः जिह्मः कुटिलः ॥ ११ ॥

दान्तो विधेयो हव्यकव्येऽप्रमत्तो
ह्यन्नस्य दाता सततं द्विजेभ्यः ।
अमत्सरी सर्वलिङ्गप्रदाता
वैताननित्यश्च गृहाश्रमी स्यात् ॥ १२
अथात्र नारायणगीतमाहु-
र्महर्षयस्तात महानुभावाः ।
महार्थमत्यन्ततपःप्रयुक्तं
तदुच्यमानं हि मया निबोध ॥ १३
सत्यार्जवं चातिथिपूजनं च
धर्मस्तथाऽर्थश्च रतिः स्वदारैः ।
निषेवितव्यानि सुखानि लोके
ह्यस्मिन्परे चैव मतं ममैतत् ॥ १४
भरणं पुत्रदाराणां वेदानां धारणं तथा ।
वसतामाश्रमं श्रेष्ठं वदन्ति परमर्षयः ॥ १५
एवं हि यो ब्राह्मणो यज्ञशीलो
गार्हस्थ्यमध्यावसते यथावत् ।
गृहस्थवृत्तिं प्रविशोध्य सम्यक्
स्वर्गे विशुद्धं फलमाप्नुते सः ॥ १६
तस्य देहपरित्यागा-
दिष्टाः कामाऽक्षया मताः ।
आनन्त्यायोपतिष्ठन्ति
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखाः ॥ १७
स्मरन्नेको जपन्नेकः सर्वानेको युधिष्ठिर ।
एकस्मिन्नेव चाचार्ये शुश्रूषुर्मलपङ्कवान् ॥ १८
ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यं दीक्षापरो वशी
परिचार्य तथा वेदं कृत्यं कुर्वन्वसेत्सदा १९
शुश्रूषां सततं कुर्वन्गुरोः संप्रणमेत च ।
षट्कर्मसु निवृत्तश्च न प्रवृत्तश्च सर्वशः ॥ २०
न चरत्यधिकारेण सेवेत द्विषतो न च ।
एषोऽऽश्रमपदस्तात ब्रह्मचारिण इष्यते ॥ २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि चतुराश्रमधर्मकथने एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

युधिष्ठिर उवाच ।
शिवान्सुखान्महोदर्कानहिंस्राँल्लोकसंमतान्
ब्रूहि धर्मान्सुखोपायान्मद्विधानां सुखावहान्
भीष्म उवाच ।
ब्राह्मणस्य तु चत्वारस्त्वाश्रमा विहिताः प्रभो
वर्णास्तान्नानुवर्तन्ते त्रयो भारतसत्तम ॥ २
उक्तानि कर्माणि बहूनि राजन्
स्वर्ग्याणि राजन्यपरायणानि ।
नेमानि दृष्टान्तविधौ स्मृतानि
क्षात्रे हि सर्वं विहितं यथावत् ॥ ३

विधेयः गुरुशास्त्राज्ञापालकः । अप्रमत्तः अवहितः सर्वेभ्यो लिङ्गयुक्तेभ्य आश्रमेभ्यः प्रदाताऽन्नादेः लिङ्ग-प्रदातेति मध्यमपदलोपी समासः । वैतानं श्रौतकर्म तत्र नित्यः ॥ १२ ॥ वृत्तिं जीविकां प्रविशोध्य शुद्धां कृत्वा न्यायागतेन धनेन जीवन्नित्यर्थः ॥ १६ ॥ **तस्येति** । तस्य गृहस्थस्य देहपरित्यागात्समाहितश्चे-दिहैव देहाभिमानत्यागात् असमाहितस्य मरणानन्तरम् । इष्टाः कामाः विषयाः हार्दाकाशे स्वर्गे वा उप-तिष्ठन्ति कामाः अक्षया इति च्छेदः सन्धिरार्षः । सर्व-तोक्षिशिरोमुखा इत्यनेन कामानां किंकर णामिव वश्य-त्वमुक्तम् । यत्र यत्र देशे काले वा योग्यमयोग्यं वा सङ्कल्पयति तत्सर्वं सद्य उपतिष्ठतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ ब्रह्म-चारिणोऽपि कैवल्यमाह—**स्मरन्निति** । सर्वान्देवा-न्मन्त्रांश्च ॥ १८ ॥ दीक्षा नियमविशेषस्वीकारः वेदं वेदान्तान् कृत्यं कर्तुमर्हं ध्यानयोगम् ॥ १९ ॥ तद-विरोधेन शुश्रूषां च कुर्वन्निवृत्तः निवृत्तिमान् ॥ २० ॥ अधिकारेण निग्रहानुग्रहेण ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

**शिवानिति** ॥ १ ॥ उक्तविशेषणविशिष्टा ब्राह्मण-स्यैव धर्मा इत्याशयेनाह—**ब्राह्मणस्येति** । एतेन गृहस्थस्यापि ब्राह्मणस्य हिंस्रो धर्मः कामकार एव न विधिचोदित इति दर्शितम् । वक्ष्यति च मोक्षधर्मेषु 'पशु-यज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति' इति । त्रयो हिंसापरा वर्णास्तान्नानुवर्तन्ते ॥ २ ॥ नानुवर्तन्ते इत्येतत्प्रपञ्चयति उक्तानीत्यादिना । राजन्यानां परायणानि युद्धजयादीनि दृष्टान्तविधौ त्वया पृष्टस्य प्रतिवचनेन योग्यानि । यतः क्षात्रे विहितं विधिप्रधानं प्रवृत्तिशास्त्रमिति यावत् । तत्कथं निवृत्तिप्रधानैर्ब्राह्मणधर्मैः समत्वमेतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

क्षात्राणि वैश्यानि च सेव्यमानः
शौद्राणि कर्माणि च ब्राह्मणः सन्।
अस्मिँल्लोके निन्दितो मन्दचेताः
परे च लोके निरयं प्रयाति ॥ ४
या संज्ञा विहिता लोके
दासे शुनि वृके पशौ।
विकर्मणि स्थिते विप्रे
सैव संज्ञा च पाण्डव ॥ ५
षट्कर्मसंप्रवृत्तस्य आश्रमेषु चतुर्ष्वपि।
सर्वधर्मोपपन्नस्य संवृतस्य कृतात्मनः ॥ ६
ब्राह्मणस्य विशुद्धस्य तपस्यभिरतस्य च।
निराशिषो वदान्यस्य लोका ह्यक्षरसंमिताः
यो यस्मिन्कुरुते कर्म यादृशं येन यत्र च।
तादृशं तादृशेनैव सगुणं प्रतिपद्यते ॥ ८
वृद्ध्या कृषिवणिक्त्वेन जीवसञ्जीवनेन च।
वेत्तुमर्हसि राजेन्द्र स्वाध्यायगणितं महत् ॥
कालसञ्चोदितो लोकः कालपर्यायनिश्चितः।
उत्तमाधममध्यानि कर्माणि कुरुतेऽवशः ॥१०
अन्तवन्ति प्रधानानि पुरा श्रेयस्कराणि च।
स्वकर्मनिरतो लोके ह्यक्षरः सर्वतोमुखः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वर्णाश्रमधर्मकथने द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

भीष्म उवाच।
ज्याकर्षणं शत्रुनिबर्हणं च
कृषिर्वणिज्या पशुपालनं च।
शुश्रूषणं चापि तथाऽर्थहेतो-
रकार्यमेतत्परमं द्विजस्य ॥ १
सेव्यं तु ब्रह्म षट्कर्म गृहस्थेन मनीषिणा।
कृतकृत्यस्य चारण्ये वासो विप्रस्य शस्यते
राजप्रेष्यं कृषिधनं जीवनं च वणिक्पथा।
कौटिल्यं कौलटेयं च कुसीदं च विवर्जयेत्
शूद्रो राजन्भवति ब्रह्मबन्धु-
र्दुश्चारित्रो यश्च धर्मादपेतः।
वृषलीपतिः पिशुनो नर्तनश्च
राजप्रेष्यो यश्च भवेद्विकर्मा ॥ ४
जपन्वेदानजपंश्चापि राजन्
समः शूद्रैर्दासवच्चापि भोज्यः।
एते सर्वे शूद्रसमा भवन्ति
राजन्नेतान्वर्जयेद्देवकृत्ये ॥ ५

---

**षट्कर्माणि**-प्राणायामः, प्रत्याहारो, ध्यानं, धारणा, तर्कः, समाधिरिति। इज्यादीनामाश्रमान्तरेष्वयोगात्सर्वाश्रमयोग्यान्येतान्येव षट्कर्माणि सर्वधर्मोऽहिंसा संवृतस्याचपलस्य कृतात्मनो जितचित्तस्य ॥ ६ ॥ तपसि विचारे अक्षरसम्मिताः अक्षयाः ॥ ७ ॥ नन्वेवं ब्राह्मणः स्वधर्मं त्यक्त्वा किमिति हीनधर्मे रमत इत्याशंक्याह—**य इति**। यः पुमान्यस्मिन्नवस्थाविशेषे यत्र देशे काले वा येन फलेन निमित्तेन यत्कर्म करोति साधु असाधु वा तत्सकलं लोभाच्चिराभ्यासाच्च सगुणमेवेति प्रतिपद्यते। न त्विदं निंद्यमिति ततो विरज्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥ तान्येवाह—**वृद्ध्येति**। जीवैः संजीवनं मृगया जीवित्वं तेन महदपि स्वाध्यायगणितं वेदाभ्यसनं वृद्ध्यादिभिः समानमिति वेत्तुमर्हसि उक्तहेतोरित्यर्थः ॥ ९ ॥ अभ्यासात्कर्माणि रोचन्ते चेदुत्तमान्येव तानि कुतो नाभ्यस्यन्त इत्याशंक्याह—**कालेति**। कालेन पर्येति आविर्भवतीति कालपर्यायः प्राग्भवीयो वासनासमूहस्तेन निश्चितः तेन कालेन प्रेरितस्तदनुगुणं कर्म करोति यतः अवशः कालाद्यधीनः ॥ १० ॥ एवं चेत्कृतं विधिनिषेधाभ्यामित्यत आह—**अन्तवन्तीति**। पुरा श्रेयस्कराणि प्राचीनानि पुण्यापुण्यानि यानि प्रधानानि देहारम्भकाणि तानि। अन्तवन्ति देहस्यैव अन्तवत्त्वात् देहसम्बन्धि यत्सुखदुःखाद्यागमनं तदपरिहार्यं अन्यत्र तु शुभाशुभप्रवृत्त्यादौ लोकः स्वकर्मनिरतः स्वस्य अभीष्टं यत्कर्म रागादिविषयभूतं तत्रैव निरतः तत्रायत्तः सर्वतोमुखः प्रवृत्तौ वा स्वतन्त्रः अक्षरो जीवः तत्र तत्र कामकारेण प्रवर्ततेऽतो विधिनिषेधशास्त्रस्यास्त्येवार्थवत्त्वमित्यर्थः ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

**ज्याकर्षणमिति** ॥ १ ॥ कौटिल्यमनार्जवं कौलटेयं कुलटाप्रधानं जारकर्म पारदार्यं वा। अन्ये तु कौटिलीयामिति पाठं प्रकल्प्य मात्सर्यमिति व्याचक्षते कुसीदं वृद्धिजीविकाम् ॥३॥ राजप्रेष्यादिः वेदान् जपन् अजपन्वा शूद्र इव पङ्क्तेर्बहिर्भोजनीय एवेति भावः ॥ ५ ॥

निर्मर्यादे चाशुचौ क्रूरवृत्तौ
हिंसात्मके त्यक्तधर्मस्ववृत्ते ॥
हव्यं कव्यं यानि चान्यानि राजन्
देयान्यदेयानि भवन्ति चास्मै ॥ ६
तस्माद्धर्मो विहितो ब्राह्मणस्य
दमः शौचमार्जवं चापि राजन् ।
तथा विप्रस्याश्रमाः सर्व एव
पुरा राजन्ब्रह्मणा वै निसृष्टाः ॥ ७
यः स्याद्दान्तः सोमपश्चार्यशीलः
सानुक्रोशः सर्वसहो निराशीः ।
ऋजुर्मृदुरनृशंसः क्षमावान्
स वै विप्रो नेतरः पापकर्मा ॥ ८
शूद्रं वैश्यं राजपुत्रं च राजन्
लोकाः सर्वे संश्रिता धर्मकामाः ।
तस्माद्वर्णाञ्शान्तिधर्मेष्वसक्तान्
मत्वा विष्णुर्नेच्छति पाण्डुपुत्र ॥ ९
लोके चेदं सर्वलोकस्य न स्यात्
चातुर्वर्ण्यं वेदवादाश्च न स्युः ।
सर्वाश्चेज्याः सर्वलोकक्रियाश्च
सद्यः सर्वे चाश्रमस्था न वै स्युः १०
यश्च त्रयाणां वर्णानामिच्छेदाश्रमसेवनम् ।
चातुराश्रम्यदृष्टांश्च धर्मास्तान्शृणु पाण्डव ॥
शुश्रूषोः कृतकार्यस्य कृतसंतानकर्मणः ।
अभ्यनुज्ञातराजस्य शूद्रस्य जगतीपते ॥ १२
अल्पान्तरगतस्यापि दशधर्मगतस्य वा ।
आश्रमा विहिताः सर्वे वर्जयित्वा निराशिषम्
भैक्ष्यचर्यां ततः प्राहुस्तस्य तद्धर्मचारिणः ।
तथा वैश्यस्य राजेन्द्र राजपुत्रस्य चैव हि ॥
कृतकृत्यो वयोतीतो राज्ञः कृतपरिश्रमः ।
वैश्यो गच्छेदनुज्ञातो नृपेणाश्रमसंश्रयम् १५
वेदानधीत्य धर्मेण राजशास्त्राणि चानघ ।
संतानादीनि कर्माणि कृत्वा सोमं निषेव्य च
पालयित्वा प्रजाः सर्वा धर्मेण वदतां वर ।
राजसूयाश्वमेधादीन्मखानन्यांस्तथैव च १७
आनयित्वा यथापाठं विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणः ।
सङ्ग्रामे विजयं प्राप्य तथाऽल्पं यदि वा बहु
स्थापयित्वा प्रजापालं पुत्रं राज्ये च पाण्डव
अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ १९
अर्चयित्वा पितॄन्सम्यक् पितृयज्ञैर्यथाविधि ।
देवान् यज्ञैर्ऋषीन्वेदैरर्चयित्वा तु यत्नतः २०
अन्तकाले च संप्राप्ते
य इच्छेदाश्रमान्तरम् ।
सोऽनुपूर्व्याश्रमान् राजन्
गत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २१
राजर्षित्वेन राजेन्द्र भैक्ष्यचर्या न सेवया ।
अपेतगृहधर्मोऽपि चरेज्जीवितकाम्यया ॥
न चैतन्नैष्ठिकं कर्म त्रयाणां भूरिदाक्षिण ।
चतुर्णां राजशार्दूल प्राहुराश्रमवासिनाम् ॥
बाह्वायत्तं क्षत्रियैर्मानवानां
लोकश्रेष्ठं धर्ममासेवमानैः ।
सर्वे धर्माः सोपधर्मास्त्रयाणां
राज्ञो धर्मादिति वेदाच्छृणोमि २४

धर्मेष्वसक्तान्विष्णुर्नेच्छति चेत्का हानिरत आह—**लोक इति** । लोके स्वर्गे इदं सुखादि आश्रमस्थाश्च स्वधर्मे न तिष्ठेयुः स्वर्गादिकं सर्वं विष्णुप्रसादादेव तदभावे सर्वं कृतं कर्म व्यर्थमिति भावः ॥ १० ॥ यो राजा त्रयाणां ब्राह्मण-वैश्य-शूद्राणां स्वराज्ये आश्रमधर्मसेवनं यथोक्तं इच्छेत् तेनावश्यज्ञातव्यान्धर्मान्शृणु ॥ ११ ॥ शुश्रूषोः वेदान्तेष्वनधिकारात्पुराणद्वारा आत्मानं श्रोतुमिच्छोः कृतकार्यस्य यावच्छरीरसामर्थ्यं सेवितत्रैवर्ण्यस्य कृतसन्तानकर्मणः जातपुत्रस्य अभ्यनुज्ञातो राज्ञा इत्यभ्यनुज्ञातराजस्तस्य ॥ १२ ॥ अल्पान्तरगतस्य आचारनिष्ठया त्रैवर्णिकसमस्य दशधर्मगतस्येति मत्तप्रमत्तादीन्प्रकृत्य दशधर्मं न जानन्तीत्युक्तेरत्र योगधर्मानभिज्ञस्य ग्रहणं तस्यापि आश्रमाः सर्वे विहिताः । शूद्रोऽपि नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं वानप्रस्थं वा सकलविक्षेपककर्मत्यागरूपं संन्यासं वाऽनुतिष्ठेदेव निराशिषं शान्तिदान्त्यादिकल्याणगुणराहितम् ॥१३॥ भैक्ष्यचर्यां पारिव्राज्यं तस्य शूद्रस्य तद्धर्मचारिणः तान्पूर्वोक्तान् स्वधर्मान् चरतीति तथाभूतस्य तथा वैश्यस्य राजपुत्रस्य च भैक्ष्यचर्यां प्राहुरित्यन्वयः ॥१४॥ राजा ऋषित्वेन मन्त्रार्थद्रष्टृत्वेन वेदान्तश्रवणकर्तृत्वेन हेतुना भैक्ष्यचर्यामिच्छेदिति पूर्वेण सम्बन्धः न तु सेवया श्रवणमकुर्वन्नाश्रममात्रार्थमित्यर्थः । तदकुर्वंस्तु जीवितकांक्षया भैक्ष्यचर्यां चरेदेवेत्यर्थः ॥ २२ ॥ एतद्भैक्ष्यं नैष्ठिकं नित्यं त्रयाणां राजादीनां तेषामाश्रमसंन्यासो नित्यो नास्ति अपि तु विक्षेपककर्मत्यागरूपः काम्य एवास्तीत्यर्थः । स च चतुर्णामप्याश्रमाणामस्तीति प्राहुः ॥ २३ ॥ राजधर्मं प्रशंसति—**बाह्वायत्तमित्यादिना** ॥ २४ ॥

यथा राजन्हस्तिपदे पदानि
संलीयन्ते सर्वसत्त्वोद्भवानि ।
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान्
सर्वावस्थं संप्रलीनान्निबोध ॥ २५
अल्पाश्रयानल्पफलान्वदन्ति
धर्मानन्यान्धर्मविदो मनुष्याः ॥
महाश्रयं बहुकल्याणरूपं
क्षात्रं धर्मं नेतरं प्राहुरार्याः ॥ २६
सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः
सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति ।
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजं-
स्त्यागं धर्मं चाहुरग्र्यं पुराणम् २७
मज्जेत्त्रयी दण्डनीतौ हतायां
सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विबुद्धाः ।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः
क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे ॥ २८
सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः
सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ताः ।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः
सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः ॥ २९
यथा जीवाः प्राकृतैर्वध्यमाना
धर्मश्रुतानामुपपीडनाय ।
एवं धर्मा राजधर्मैर्वियुक्ताः
सञ्चिन्वन्तो नाद्रियन्ते स्वधर्मम् ३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वर्णाश्रमधर्मकथने+ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

भीष्म उवाच ।
चातुराश्रम्यधर्माश्च यतिधर्माश्च पाण्डव ।
लोकवेदोत्तराश्चैव क्षात्रधर्मे समाहिताः ॥ १
सर्वाण्येतानि कर्माणि क्षात्रे भरतसत्तम ।
निराशिषो जीवलोकाः क्षत्रधर्मे व्यवस्थिते
अप्रत्यक्षं बहुद्वारं धर्ममाश्रमवासिनाम् ।
प्रकोपयन्ति तद्भावमागमैरेव शाश्वतम् ॥ ३
अपरे वचनैः पुण्यैर्वादिनो लोकनिश्चयम् ।
अनिश्चयज्ञा धर्माणामदृष्टान्ते परे हताः ॥ ४
प्रत्यक्षं सुखभूयिष्ठमात्मसाक्षिकमच्छलम् ।
सर्वलोकहितं धर्मं क्षत्रियेषु प्रतिष्ठितम् ॥ ५
धर्माश्रमेऽध्यवसिनां ब्राह्मणानां युधिष्ठिर ।
यथा त्रयाणां वर्णानां संख्यातोपश्रुतिः पुरा
राजधर्मेष्वनुमता लोकाः सुचरितैः सह ।
उदाहृतं ते राजेन्द्र यथा विष्णुं महौजसम् ॥
सर्वभूतेश्वरं देवं प्रभुं नारायणं पुरा ।
जग्मुः सुबहुशः शूरा राजानो दण्डनीतये ॥
एकैकमात्मनः कर्म तुलयित्वाऽऽश्रमं पुरा ।
राजानः पर्युपासन्त दृष्टान्तवचने स्थिताः ९

---

सर्वेषां त्यागिनां षड्भागहारी राजाऽपि सर्वत्यागी भवतीत्यर्थः ॥ २७ ॥ **यथेति** । जीवाः मृगादयः प्राकृतैर्नीचैर्वध्यमानाः हन्तॄणां धर्मस्य श्रुतदृष्टादीनां च नाशाय भवन्ति एवं राजधर्मैर्नीत्यादिभिर्वियुक्ता धर्मा अग्निहोत्रादयश्चोरैर्नाश्यमानाः कर्तॄणां धर्मं चित्तं च खेदयन्ति कर्तारश्च सञ्चिन्वन्तः स्वास्थ्यमन्वेषयन्तो व्याकुलतया स्वधर्मं नाद्रियन्ते तस्माद्राजधर्म एव मुख्यो धर्म इत्यर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैल० भा० त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ + अस्मिन्नध्याये श्लोकद्वयमधिकं खपुस्तके ।

६४

**चातुराश्रम्येति** ॥ १ ॥ धर्मं बहुद्वारं विद्धि अन्ये तु तद्भावं धर्मस्य स्वरूपं कोपयन्ति विरुद्धागमैः ॥३॥ अदृष्टान्तेन दृष्टोऽन्तो यस्य तस्मिन्परे धर्मे हताः नष्टधियः निश्चयं प्रकोपयन्ति ॥ ४ ॥ **धर्माश्रमे इति** । गार्हस्थ्ये त्रयाणां वर्णानां धर्माणां उपश्रुतिरन्तर्भावः । संख्याता प्रकटा तथाऽध्यवसिनां नैष्ठिकवानप्रस्थयतीनां ब्राह्मणानां च धर्माणां उपश्रुतिः संख्याता तथा राजधर्मेषु धर्मैः सह लोका अन्तर्भूता इति सार्धः श्लोकः ॥६॥ अत्र पूर्वोक्तां कथां स्मारयति—**उदाहृतमिति** सार्धः ॥ ७ ॥ आश्रमं आश्रमविहितं कर्मधर्मं तुलयित्वा किं दण्डनीतिजो धर्मो महान् उत आश्रमधर्म इति संदिह्य दृष्टान्तवचने सिद्धान्तं श्रोतुं प्रभुं उपासन्तेति योजना ॥ ९ ॥

साध्या देवा वसवश्चाश्विनौ च
रुद्राश्च विश्वे मरुतां गणाश्च ।
सृष्टाः पुरा ह्यादिदेवेन देवाः
क्षात्रे धर्मे वर्तयन्ते च सिद्धाः ॥ १०
अत्र ते वर्तयिष्यामि धर्ममर्थविनिश्चयम् ।
निर्मर्यादे वर्तमाने दानवैकार्णवे पुरा ॥ ११
बभूव राजा राजेन्द्र मान्धाता नाम वीर्यवान्
पुरा वसुमतीपालो यज्ञं चक्रे दिदृक्षया ॥ १२
अनादिमध्यनिधनं देवं नारायणं प्रभुम् ।
स राजा राजशार्दूल मान्धाता परमेश्वरम्
जगाम शिरसा पादौ यज्ञे विष्णोर्महात्मनः
दर्शयामास तं विष्णू रूपमास्थाय वासवम्
स पार्थिवैर्वृतः सद्भिरर्चयामास तं प्रभुम् ।
तस्य पार्थिवसिंहस्य तस्य चैव महात्मनः ।
संवादोऽयं महानासीद्विष्णुं प्रति महाद्युतिम्

इन्द्र उवाच ।

किमिष्यते धर्मभृतां वरिष्ठ
यद्द्रष्टुकामोऽसि तमप्रमेयम् ।
अनन्तमायामितमन्त्रवीर्यं
नारायणं ह्यादिदेवं पुराणम् ॥ १६
नासौ देवो विश्वरूपो मयापि
शक्यो द्रष्टुं ब्रह्मणा वाऽपि साक्षात्।
येऽन्ये कामास्तव राजन् हृदिस्था
दास्ये चैतांस्त्वं हि मर्त्येषु राजा १७
सत्ये स्थितो धर्मपरो जितेन्द्रियः
शूरो दृढप्रीतिरतः सुराणाम् ।
बुद्ध्या भक्त्या चोत्तमः श्रद्धया च
ततस्तेऽहं दद्मि वरान्यथेष्टम् ॥ १८

मान्धातोवाच ।

असंशयं भगवन्नादिदेवं
द्रक्ष्यामि त्वाऽहं शिरसा संप्रसाद्य।
त्यक्त्वा कामान्धर्मकामो ह्यरण्य-
मिच्छे गन्तुं सत्पथं लोकदृष्टम् ॥ १९
क्षात्राद्धर्माद्विपुलादप्रमेया-
ल्लोकाः प्राप्ताः स्थापितं स्वं यशश्च ।
धर्मो योऽसावादिदेवात्प्रवृत्तो
लोकश्रेष्ठं तं न जानामि कर्तुम् ॥ २०

इन्द्र उवाच ।

असैनिका धर्मपराश्च धर्मे
परां गतिं न नयन्ते ह्ययुक्तम् ।
क्षात्रो धर्मो ह्यादिदेवात्प्रवृत्तः
पश्चादन्ये शेषभूताश्च धर्माः २१
शेषाः सृष्टा ह्यन्तवन्तो ह्यनन्ताः
सप्रस्थानाः क्षात्रधर्मा विशिष्टाः ।
अस्मिन्धर्मे सर्वधर्माः प्रविष्टा-
स्तस्माद्धर्मं श्रेष्ठमिमं वदन्ति ॥ २२
कर्मणा वै पुरा देवा ऋषयश्चामितौजसः ।
त्राताः सर्वे प्रसह्यारीन्क्षत्रधर्मेण विष्णुना ॥
यदि ह्यसौ भगवान्नाहनिष्य-
द्रिपून्सर्वानसुरानप्रमेयः ।
न ब्राह्मणा न च लोकादिकर्ता
नायं धर्मो नादिधर्मोऽभविष्यत् २४
इमामुर्वीं नाजयद्विक्रमेण
देवश्रेष्ठः सासुरामादिदेवः ।
चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यधर्माः
सर्वे न स्युर्ब्राह्मणानां विनाशात् २५
नष्टा धर्माः शतधा शाश्वतास्ते
क्षात्रेण धर्मेण पुनः प्रवृद्धाः ।
युगे युगे ह्यादिधर्माः प्रवृत्ता
लोकज्येष्ठं क्षात्रधर्मं वदन्ति ॥ २६
आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा
लोकज्ञानं पालनं मोक्षणं च ।
विषण्णानां मोक्षणं पीडितानां
क्षात्रे धर्मे विद्यते पार्थिवानाम् २७
निर्मर्यादाः काममन्युप्रवृत्ता
भीता राज्ञो नाधिगच्छन्ति पापम्
शिष्टाश्चान्ये सर्वधर्मोपपन्नाः
साध्वाचाराः साधु धर्मं वदन्ति २८

---

अर्थस्य निश्चयो यत्र तम् ॥ ११ ॥ वासवं ऐन्द्रं रूपम् ॥ १४ ॥ त्वाऽहं त्वामहम् ॥ १९ ॥ तं क्षात्रधर्मात् श्रेष्ठं कर्तुं न जानामि ॥ २० ॥ न सन्ति सैनिका येषां ते असैनिकाः अराजानः धर्मे विषये परां गतिं काष्ठां न नयन्ते न प्रापयन्ति अन्यं स्वयं च न व्रजन्ति । राजानस्तु प्रयुक्तैर्धर्मैर्द्वयमपि कुर्वन्ति । ह्ययुक्तमिति पाठे हि प्रसिद्धं अयुक्तं अभिनिवेशशून्यं यथा स्यात्तथा । हेलयैव न नयन्ते इत्यर्थः । शेषभूताः अङ्गभूताः ॥ २१ ॥ सप्रस्थानाः पारिव्राज्यसहिताः शेषधर्मा अन्तवत्फलाः अनन्ता असंख्याताः ॥२२॥कर्मणा क्रियया ॥ २३ ॥ अयं क्षात्रः आदिर्ब्राह्मः ॥ २४ ॥ आत्मत्यागो युद्धे मरणम् ॥ २७ ॥

पुत्रवत्पाल्यमानानि राजधर्मेण पार्थिवैः ।
लोके भूतानि सर्वाणि चरन्ते नात्र संशयः ॥
सर्वधर्मपरं क्षात्रं लोकश्रेष्ठं सनातनम् ।
शश्वदक्षरपर्यन्तमक्षरं सर्वतोमुखम् ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वर्णाश्रमधर्मकथने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

इन्द्र उवाच ।

एवंवीर्यः सर्वधर्मोपपन्नः
क्षात्रः श्रेष्ठः सर्वधर्मेषु धर्मः ।
पाल्यो युष्माभिर्लोकहितैरुदारै-
र्विपर्यये स्यादभवः प्रजानाम् ॥ १

भूसंस्कारं राजसंस्कारयोग-
मभैक्ष्यचर्या पालनं च प्रजानाम् ।
विद्याद्राजा सर्वभूतानुकम्पी
देहत्यागं चाहवे धर्ममग्र्यम् ॥ २

त्यागं श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति
सर्वश्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजन्तः ।
नित्यं युक्ता राजधर्मेषु सर्वे
प्रत्यक्षं ते भूमिपाला यथैव ॥ ३

बहुश्रुत्या गुरुशुश्रूषया च
परस्पराः संहननाद्वदन्ति ।
नित्यं धर्मे क्षत्रियो ब्रह्मचारी
चरेदेको ह्याश्रमं धर्मकामः ॥ ४

सामान्यार्थे व्यवहारप्रवृत्ते
प्रियाप्रिये वर्जयन्नेव यत्नात् ।
चातुर्वर्ण्य स्थापनात्पालनाच्च
तैस्तैर्योगैर्नियमैरौरसैश्च ॥ ५

सर्वोद्योगैराश्रमं धर्ममाहुः
क्षात्रं श्रेष्ठं सर्वधर्मोपपन्नम् ।
स्वं स्वं धर्मं ये न चरन्ति वर्णा-
स्तांस्तान्धर्मानन्यथार्थान्वदन्ति ॥ ६

निर्मर्यादान्नित्यमर्थे निविष्टा-
नाहुस्तांस्तान्वै पशुभूतान्मनुष्यान् ।
यथा नीतिं गमयत्यर्थयोगा-
च्छ्रेयस्तस्मादाश्रमात्क्षत्रधर्मः ॥ ७

त्रैविद्यानां या गतिर्ब्राह्मणानां
ये चैवोक्ताश्चाश्रमा ब्राह्मणानाम् ।
एतत्कर्म ब्राह्मणस्याहुरग्र्य-
मन्यत्कुर्वञ्शूद्रवच्छस्त्रवध्यः ॥ ८

चातुराश्रम्यधर्माश्च वेदधर्माश्च पार्थिव ।
ब्राह्मणेनानुगन्तव्या नान्यो विद्यात्कदाचन
अन्यथा वर्तमानस्य नासौ वृत्तिः प्रकल्प्यते
कर्मणा वर्धते धर्मो यथा धर्मस्तथैव सः १०

यो विकर्मस्थितो विप्रो न स सन्मानमर्हति।
कर्म स्वं नोपयुञ्जानमविश्वास्यं हि तं विदुः॥

एते धर्माः सर्ववर्णेषु लीना
उत्क्रष्टव्याः क्षत्रियैरेष धर्मः ।
तस्माज्ज्येष्ठा राजधर्मा न चान्ये
वीरज्येष्ठा वीरधर्मा मता मे ॥ १२

मान्धातोवाच ।

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः ।
शकास्तुषाराः कङ्काश्च पल्हवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥ १३

---

अक्षरपर्यन्तं मोक्षावसानम् ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैल० भा०भा० दी० चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५ .

**एवमिति** ॥ १ ॥ भूसंस्कारं भुवः सम्पन्नसस्यत्वं राजसंस्कारो राजसूयाश्वमेधावभृथस्नानं अभैक्ष्यचर्या संन्यासाभावम् । एतेन संन्यासो राज्ञामधर्म इत्युक्तम्॥२॥ यथैव शरीराणि त्यजन्तः ॥ ३ ॥ औरसैः पौरुषैः ॥ ५ ॥ येन क्षात्रधर्मेण अन्यथाऽर्थांस्तांस्तान् धर्मान्वदन्ति ॥६॥ या गतिर्यज्ञादिः आश्रमधर्मश्च एतद्द्वयम् ॥८॥ नोपयुञ्जानं नाचरन्तम् ॥११॥ उत्क्रष्टव्याः उत्कर्षं प्रापणीयाः एष धर्मः क्षत्रियस्य ॥ १२ ॥

पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः
काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।
ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च
वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥ १४
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ।
त्वं बन्धुभूतो ह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर ॥
इन्द्र उवाच ।
मातापित्रोर्हि शुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः
आचार्यगुरुशुश्रूषा तथैवाश्रमवासिनाम् १७
भूमिपानां च शुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः ।
वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते ॥ १८
पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च ।
दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा
अहिंसा सत्यमक्रोधो वृत्तिदायानुपालनम् ।
भरणं पुत्रदाराणां शौचमद्रोह एव च ॥ २०
दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता
पाकयज्ञा महार्हाश्च दातव्याः सर्वदस्युभिः
एतान्येवंप्रकाराणि विहितानि पुराऽनघ ।
सर्वलोकस्य कर्माणि कर्तव्यानीह पार्थिव ॥
मान्धातोवाच ।
दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः ।
लिङ्गान्तरे वर्तमाना आश्रमेषु चतुर्ष्वपि २३
इन्द्र उवाच ।
विनष्टायां दण्डनीत्यां राजधर्मे निराकृते ।
संप्रमुह्यन्ति भूतानि राजदौरात्म्यतोऽनघ ॥
असंख्याता भविष्यन्ति
भिक्षवो लिङ्गिनस्तथा ।
आश्रमाणां विकल्पाश्च
निवृत्तेऽस्मिन्कृते युगे ॥ २५
अशृण्वानाः पुराणानां धर्माणां परमा गतीः
उत्पथं प्रतिपत्स्यन्ते काममन्युसमीरिताः ॥
यदा निवर्त्यते पापो दण्डनीत्या महात्मभिः
तदा धर्मो न चलते सद्भूतः शाश्वतः परः ॥
सर्वलोकगुरुं चैव राजानं योऽवमन्यते ।
न तस्य दत्तं न हुतं न श्राद्धं फलते क्वचित्
मानुषाणामधिपतिं देवभूतं सनातनम् ।
देवाऽपि नावमन्यन्ते धर्मकामं नरेश्वरम् ॥
प्रजापतिर्हि भगवान्सर्वं चैवासृजज्जगत् ।
स प्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थं धर्माणां क्षत्रमिच्छति ॥
प्रवृत्तस्य हि धर्मस्य
बुद्ध्या यः स्मरते गतिम् ।
स मे मान्यश्च पूज्यश्च
तत्र क्षत्रं प्रतिष्ठितम् ॥ ३१
भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा स भगवान्मरुद्गणवृतः प्रभुः ।
जगाम भवनं विष्णोरक्षरं शाश्वतं पदम् ॥
एवं प्रवर्तिते धर्मे पुरा सुचरितेऽनघ ।
कः क्षत्रमवमन्येत चेतनावान्बहुश्रुतः ॥ ३३
अन्यायेन प्रवृत्तानि निवृत्तानि तथैव च ।
अन्तरा विलयं यान्ति यथा पथि विचक्षुषः
आदौ प्रवर्तिते चक्रे तथैवादिपरायणे ।
वर्तस्व पुरुषव्याघ्र संविजानामि तेऽनघ ३५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि इन्द्रमान्धातृसंवादे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

दस्युजीविनः दस्युवृत्तिजीविनः ॥ १५ ॥ एतदिति । सङ्करजानां चोराणां च कथं धर्मे स्थापनं कर्तव्यमिति प्रश्नार्थः ॥ १६ ॥ तेषामपि मात्रादिशुश्रूषारूपे धर्मे स्थापनं कर्तव्यमित्याह-मातेति॥१७॥ महार्हा इति। पाकयज्ञमुद्दिश्य ब्राह्मणाय धनं देयं एवं श्राद्धमपि आमेन हिरण्येन चेति ज्ञेयम्॥२१॥ पापः पापादिति शेषः॥२७॥ गतिं फलं आस्तिकत्वात्स मे मान्यः॥३१॥ अन्यायेन क्षत्रधर्मावज्ञया ॥३४॥ चक्रे धातुराज्ञायां आदिपरायणे पूर्वेषां शरणभूते वर्तस्व ते त्वां संविजानामि सम्यक्समर्थोऽसीति जानामि ॥ ३५॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुता मे कथिताः पूर्वे
चत्वारो मानवाश्रमाः ।
व्याख्यानयित्वा व्याख्यान-
मेषामाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १
भीष्म उवाच ।
विदिताः सर्व एवेह धर्मास्तव युधिष्ठिर ।
यथा मम महाबाहो विदिताः साधुसंमताः
यत्तु लिङ्गान्तरगतं पृच्छसे मां युधिष्ठिर ।
धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठ तन्निबोध नराधिप ॥ ३
सर्वाण्येतानि कौन्तेय विद्यन्ते मनुजर्षभ ।
साध्वाचारप्रवृत्तानां चातुराश्रम्यकारिणाम्
अकामद्वेषयुक्तस्य दण्डनीत्या युधिष्ठिर ।
समदर्शिनश्च भूतेषु भैक्ष्याश्रमपदं भवेत् ॥ ५
वेत्ति ज्ञानविसर्गं च निग्रहानुग्रहं तथा ।
यथोक्तवृत्तेर्धीरस्य क्षेमाश्रमपदं भवेत् ॥ ६
अर्हान्पूजयतो नित्यं संविभागेन पाण्डव ।
सर्वतस्तस्य कौन्तेय भैक्ष्याश्रमपदं भवेत् ७
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि व्यापन्नानि युधिष्ठिर
समभ्युद्धरमाणस्य दीक्षाश्रमपदं भवेत् ॥ ८
लोकमुख्येषु सत्कारं लिङ्गिमुख्येषु चासकृत्
कुर्वतस्तस्य कौन्तेय वन्याश्रमपदं भवेत् ९
आन्हिकं पितृयज्ञांश्च भूतयज्ञान्समानुषान् ।
कुर्वतः पार्थ विपुलान्वन्याश्रमपदं भवेत् १०
संविभागेन भूतानामतिथीनां तथार्चनात् ।
देवयज्ञैश्च राजेन्द्र वन्याश्रमपदं भवेत् ॥ ११
मर्दनं परराष्ट्राणां शिष्टार्थं सत्यविक्रम ।
कुर्वतः पुरुषव्याघ्र वन्याश्रमपदं भवेत् ॥ १२
पालनात्सर्वभूतानां स्वराष्ट्रपरिपालनात् ।
दीक्षा बहुविधा राजन्सत्याश्रमपदं भवेत् १३
वेदाध्ययननित्यत्वं क्षमाऽथाचार्यपूजनम् ।
अथोपाध्यायशुश्रूषा ब्रह्माश्रमपदं भवेत् ॥ १४
आन्हिकं जपमानस्य देवान्पूजयतः सदा ।
धर्मेण पुरुषव्याघ्र धर्माश्रमपदं भवेत् ॥ १५
मृत्युर्वा रक्षणं वेति यस्य राज्ञो विनिश्चयः ।
प्राणद्यूते ततस्तस्य ब्रह्माश्रमपदं भवेत् १६
अजिह्ममशठं मार्गं वर्तमानस्य भारत ।
सर्वदा सर्वभूतेषु ब्रह्माश्रमपदं भवेत् ॥ १७
वानप्रस्थेषु विप्रेषु त्रैविद्येषु च भारत ।
प्रयच्छतोऽर्थान्विपुलान्वन्याश्रमपदं भवेत् ॥
सर्वभूतेष्वनुक्रोशं कुर्वतस्तस्य भारत ।
आनृशंस्यप्रवृत्तस्य सर्वावस्थं पदं भवेत् १९
बालवृद्धेषु कौन्तेय सर्वावस्थं युधिष्ठिर ।
अनुक्रोशक्रिया पार्थ सर्वावस्थं पदं भवेत् २०
बलात्कृतेषु भूतेषु परित्राणं कुरूद्वह ।
शरणागतेषु कौरव्य कुर्वन्गार्हस्थ्यमावसेत्
चराचराणां भूतानां रक्षणं चापि सर्वशः ।
यथार्हपूजां च तथा कुर्वन्गार्हस्थ्यमावसेत् ॥
ज्येष्ठानुज्येष्ठपत्नीनां भ्रातॄणां पुत्रनप्तृणाम् ।
निग्रहानुग्रहौ पार्थ गार्हस्थ्यमिति तत्तपः ॥
साधूनामर्चनीयानां पूजासु विदितात्मनाम्
पालनं पुरुषव्याघ्र गृहाश्रमपदं भवेत् ॥ २४
आश्रमस्थानि भूतानि यस्तु वेश्मनि भारत
आददीतेह भोज्येन तद्गार्हस्थ्यं युधिष्ठिर २५

---

६६

**श्रुता इति** । मानवस्य मनुष्यमात्रस्य आश्रमाश्चत्वार इति श्रुतं तत्कथं दस्यूनामप्युत्तमाश्रमयोगः । एषां आश्रमाणां व्याख्यानं स्पष्टीकरणं व्याख्यानयित्वा विस्तरं नीत्वा आचक्ष्व । व्याख्यानयित्वेति नामधातुपदम् ॥ १ ॥ यथा मम विदितास्तथा तव विदिता इत्यन्वयः ॥२॥ लिङ्गस्य सूक्ष्मस्याप्यन्तरं कारणं हार्दाकाशं तद्गतं सर्वज्ञमित्यर्थः ॥ ३ ॥ एतानि चातुराश्रम्यकारिणां लिङ्गानि सतां राज्ञां राजधर्मेष्वेव वर्तन्ते इत्यर्थः ॥ ४ ॥ अत्र यो यस्याश्रमस्यासाधारणो धर्मः स यत्र कुत्रचिदाश्रमे यस्यां कस्यांचिज्जातौ दृष्टश्चेत्स तदाश्रमधर्मप्राप्यं स्थानमाप्नोति न तूत्तमपदप्राप्तौ जातिराश्रमो वा कारणमित्यध्यायार्थस्तमाह— **अकामेत्यादिना** । कामद्वेषराहित्यं समदर्शित्वं च यतेरसाधारणो धर्मस्तद्वान् राजा यदि दण्डनीत्या भूतेषु वर्तेत तर्हि तस्य यद्भैक्ष्याश्रमस्य संन्यासिनो यत्पदं ब्रह्मलोकप्राप्तिस्तद्भवेत् एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ ५ ॥ क्षेमाश्रमो गार्हस्थ्यम् ॥ ६ ॥ भैक्ष्याश्रमो ब्रह्मचर्यम् ॥७॥ दीक्षाश्रमो वैखानसः ॥ ८ ॥ परराष्ट्राणां वनौषधीनामिव शिष्टार्थं शिष्टसंरक्षणार्थं कुर्वन्वनितुल्यः ॥ १२ ॥ **दीक्षा बहुविधेति** । यावतां पालनं तावन्तो यज्ञाः कृता इत्यर्थः । सत्याश्रमो ब्रह्मलोकप्रद आश्रमः संन्यासः ॥१३॥ अनुक्रोशं दयां आनृशंस्यमनिष्ठुरत्वम् ॥१९॥

यः स्थितः पुरुषो धर्मे धात्रा सृष्टे यथार्थवत्
आश्रमाणां हि सर्वेषां फलं प्राप्नोत्यनामयम्
यस्मिन्न नश्यन्ति गुणाः कौन्तेय पुरुषे सदा
आश्रमस्थं तमप्याहुर्नरश्रेष्ठं युधिष्ठिर ॥ २७
स्थानमानं कुले मानं वयोमानं तथैव च ।
कुर्वन्वसति सर्वेषु ह्याश्रमेषु युधिष्ठिर ॥ २८
देशधर्मांश्च कौन्तेय कुलधर्मांस्तथैव च ।
पालयन्पुरुषव्याघ्र राजा सर्वाश्रमी भवेत् २९
काले विभूतिं भूतानामुपहारांस्तथैव च ।
अर्हयन्पुरुषव्याघ्र साधूनामाश्रमे वसेत् ॥ ३०
दशधर्मगतश्चापि यो धर्मं प्रत्यवेक्षते ।
सर्वलोकस्य कौन्तेय राजा भवति सोऽश्रमी
ये धर्मकुशला लोके धर्मं कुर्वन्ति भारत
पालिता यस्य विषये धर्मांशस्तस्य भूपतेः ॥
धर्मारामान्धर्मपरान्ये न रक्षन्ति मानवान् ।
पार्थिवाः पुरुषव्याघ्र तेषां पापं हरन्ति ते ॥
ये चाप्यत्र सहायाः स्युः पार्थिवानां युधिष्ठिर
ते चैवांशहराः सर्वे धर्मे परकृतेऽनघ ॥ ३४
सर्वाश्रमपदेऽप्याहुर्गार्हस्थ्यं दीप्तनिर्णयम् ।
पावनं पुरुषव्याघ्र यं धर्मं पर्युपास्महे ॥ ३५
आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति मानवः ।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः प्रेत्येह लभते सुखम्
धर्मे स्थिता सत्त्ववीर्या धर्मसेतुवटारका ।
त्यागवाताध्वगा शीघ्रा नौस्त्वं संतारयिष्यति
यदा निवृत्तः सर्वस्मात्
कामो योऽस्य हृदि स्थितः ।
तदा भवति सत्त्वस्थ-
स्ततो ब्रह्म समश्नुते ॥ ३८
सुप्रसन्नस्तु भावेन योगेन च नराधिप ।
धर्मं पुरुषशार्दूल प्राप्स्यते पालने रतः ॥ ३९
वेदाध्ययनशीलानां विप्राणां साधुकर्मणाम्
पालने यत्नमातिष्ठ सर्वलोकस्य चैव ह ॥४०
वने चरन्ति ये धर्ममाश्रमेषु च भारत ।
रक्षणात्तच्छतगुणं धर्मं प्राप्नोति पार्थिवः ॥
एष ते विविधो धर्मः पाण्डवश्रेष्ठ कीर्तितः ।
अनुतिष्ठ त्वमेनं वै पूर्वदृष्टं सनातनम् ॥ ४२
चातुराश्रम्यमैकाग्र्यं चातुर्वर्ण्यं च पाण्डव ।
धर्मं पुरुषशार्दूल प्राप्स्यसे पालने रतः ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि चातुराश्रम्यविधौ
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

युधिष्ठिर उवाच ।
चातुराश्रम्यमुक्तं ते चातुर्वर्ण्यं तथैव च ।
राष्ट्रस्य यत्कृत्यतमं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
राष्ट्रस्यैतत्कृत्यतमं राज्ञ एवाभिषेचनम् ।
अनिन्द्रमबलं राष्ट्रं दस्यवोऽभिभवन्त्युत ॥ २
अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते ।
परस्परं च खादन्ति सर्वथा धिगराजकम् ॥
इन्द्रमेव प्रवृणुते यद्राजानमिति श्रुतिः ।
यथैवेन्द्रस्तथा राजा संपूज्यो भूतिमिच्छता
नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्यमिति रोचये ।
नाराजकेषु राष्ट्रेषु हव्यमग्निर्वहत्युत ॥ ५

---

दशधर्मगतो भीतत्वादिना अत्यन्तं व्याकुलतया धर्माधर्मप्रतिपत्तिशून्योऽपि सोऽश्रमी सः आश्रमी सर्वाश्रमफलभागित्यर्थः ॥ ३१ ॥ **धर्मे इति ।** राजधर्मात्मिका नौः धर्मेऽब्धाविव स्थिता सत्त्वमेव वीर्यं कर्णधारबलं यत्र धर्मसेतुः शास्त्रं सैव वटारका बन्धनरज्जुर्यत्र त्यागवातेनेव शीघ्रगा ॥ ३७ ॥ सत्त्वस्थः धीसत्त्वमात्रनिष्ठः ॥ ३८ ॥ भावेन चेतसा. योगेन चित्तनिरोधेन ॥ ३९ ॥ पूर्वमनादिम् । सनातनं पारंपर्यागतम् ॥४२॥

अध्यायार्थमुपसंहरति—**चातुराश्रम्यमिति** ॥ ४३ ॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

**चातुराश्रम्यमिति** ॥ १ ॥ राष्ट्रस्य तात्स्थ्यात् राष्ट्रवासिनो जनस्य कृत्यतमं मुख्यं कार्यं अनिन्द्रं अराजकं अत एवाबलम् ॥ २ ॥ न व्यवतिष्ठते अन्योन्यं लोकाः धर्मव्यवस्थापनं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥३॥

अथ चेदभिवर्तेत राज्यार्थी बलवत्तरः ।
अराजकाणि राष्ट्राणि हतवीर्याणि वा पुनः
प्रत्युद्गम्याभिपूज्यः स्यादेतदत्र सुमंत्रितम् ।
न हि पापात्परतरमस्ति किञ्चिदराजकात्
स चेत्समनुपश्येत समग्रं कुशलं भवेत् ।
बलवान्हि प्रकुपितः कुर्यान्निःशेषतामपि ॥
भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदन्त्यपि ॥
यदतप्तं प्रणमते नैतत्संतापमर्हति ।
यत्स्वयं नमते दारु न तत्संनामयन्त्यपि ॥
एतयोपमया वीर संनमेत बलीयसे ।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ११
तस्माद्राजैव कर्तव्यः सततं भूतिमिच्छता ।
न धनार्थो न दारार्थस्तेषां येषामराजकम् ॥
प्रीयते हि हरन्पापः परवित्तमराजके ।
यदास्य उद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छति
पापा ह्यपि तदा क्षेमं न लभन्ते कदाचन ।
एकस्य हि द्वौ हरतो द्वयोश्च बहवोऽपरे ॥
अदासः क्रियते दासो
ह्रियन्ते च बलात्स्त्रियः ।
एतस्मात्कारणाद्देवाः
प्रजापालान्प्रचक्रिरे ॥ १५
राजा चेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः ।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलं बलवत्तराः ॥
अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्
परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान् ॥
समेत्य तास्ततश्चक्रुः समयानिति नः श्रुतम् ।
वाक्शूरो दण्डपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः
यः परस्वमथादद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति ।
विश्वासार्थं च सर्वेषां वर्णानामविशेषतः ।
तास्तथा समयं कृत्वा समयेनावतस्थिरे ॥

सहितास्तास्तदा जग्मुरसुखार्ताः पितामहम्
अनीश्वरा विनश्यामो भगवन्नीश्वरं दिश ॥
यं पूजयेम संभूय यश्च नः प्रतिपालयेत् ।
ततो मनुं व्यादिदेश मनुर्नाभिननन्द ताः ॥

मनुरुवाच ।

बिभेमि कर्मणः पापाद्राज्यं हि भृशदुस्तरम्
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा ॥

भीष्म उवाच ।

तमब्रुवन्प्रजा मा भैः कर्तृनेनो गमिष्यति ।
पशूनामधिपं चाशद्धिरण्यस्य तथैव च ॥ २३
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोशवर्धनम्
कन्यां शुल्के चारुरूपां विवाहेषूद्यतासु च
मुखेन शस्त्रपत्रेण ये मनुष्याः प्रधानतः ।
भवन्तं तेऽनुयास्यन्ति महेन्द्रमिव देवताः ॥
स त्वं जातबलो राजा दुष्प्रधर्षः प्रतापवान्
सुखे धास्यसि नः सर्वान्कुबेर इव नैर्ऋतान्
यं च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः
चतुर्थं तस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति ॥
तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावितः ।
पाह्यस्मान्सर्वतो राजन्देवानिव शतक्रतुः ॥
विजयाय हि निर्याहि प्रतपन् रश्मिवानिव ।
मानं विधम शत्रूणां जयोऽस्तु तव सर्वदा ॥
स निर्ययौ महातेजा बलेन महता वृतः ।
महाभिजनसंपन्नस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ३०
तस्य दृष्ट्वा महत्त्वं ते महेन्द्रस्येव देवताः ।
अपतत्रसिरे सर्वे स्वधर्मे च दधुर्मनः ॥ ३१
ततो महीं परिययौ पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
शमयन्सर्वतः पापान्स्वकर्मसु च योजयन् ।
एवं ये भूतिमिच्छेयुः पृथिव्यां मानवाः क्वचित्
कुर्यू राजानमेवाग्रे प्रजानुग्रहकारणात् ॥ ३३

---

अथेति। राज्यार्थी अन्योऽपि कश्चिदायाति तदा सम्पूज्यः राष्ट्रस्थैरित्युभयोः सम्बन्धः ॥६॥ अपूजने दोषमाह—न हीति ॥ ७ ॥ स चेदिति । तत्प्रसादप्रकोपायत्ते कुशलाकुशले राष्ट्रस्येत्यर्थः ॥ ८ ॥ धनादेरर्थ उपभोगः ॥ १२ ॥ वाक्शूरो निष्ठुरभाषी, दण्डपरुषः उग्रदण्डः पारजायिकः परस्त्रीगामी ॥ १८ ॥ असुखार्ताः दुःखपीडिताः । असुखार्था इति पाठे सुखैरर्थैश्च हीनाः । दिश देहि ॥ २० ॥ ताः प्रजाः नाभिननन्द नाङ्गीचकार ॥ २१॥ अधिपञ्चाशत् पञ्चाशतमधिकृत्य पञ्चाशत्पशुलाभे एकं भागं तुभ्यं दास्याम इत्यर्थः । तथैव हिरण्यस्यापि ॥ २३ ॥ विवाहेषूद्यतासु कन्यासु शुल्के मौल्यप्रसङ्गे सति सुरूपां कन्यां तुभ्यं दास्याम इति पूर्वेणान्वयः । विवादेषु ततासु चेति प्राचां पाठः । इयं मया क्रेया इयं मया क्रेयेति विवादविषयास्विति तदर्थः । विवादे द्यूततासु चेति पाठे द्यूतता द्यूते पणीकृतत्वम् ॥२४॥ मुखेन मुखतः प्रथममित्यर्थः। शस्त्रपत्रेण शस्त्रेण वाहनेन च प्रधानतः श्रेष्ठाः प्रथमार्थे तसिः ॥२५॥ मानं दर्पं विधम नाशय ॥ २९ ॥ अपतत्रसिरे त्रासं प्राप्ताः ॥ ३१ ॥

नमस्येरंश्च तं भक्त्या शिष्या इव गुरुं सदा
देवा इव च देवेन्द्रं तत्र राजानमन्तिके ॥
सत्कृतं स्वजनेनेह परोऽपि बहु मन्यते ।
स्वजनेन त्ववज्ञातं परे परिभवन्त्युत ॥ ३५
राज्ञः परैः परिभवः सर्वेषां स सुखावहः ।
तस्माच्छत्रं च पत्रं च वासांस्याभरणानि च
भोजनान्यथ पानानि राज्ञे दद्युर्गृहाणि च ।
आसनानि च शय्याश्च सर्वोपकरणानि च
गोप्ता तस्माद्दुराधर्षः स्मितपूर्वाभिभाषिता ।
आभाषितश्च मधुरं प्रत्याभाषेत मानवान् ॥
कृतज्ञो दृढभक्तिः स्यात्संविभागी जितेंद्रियः
ईक्षितः प्रतिवीक्षेत मृदु वल्गु च सुष्ठु च॥३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि राष्ट्रे राजकरणावश्यकत्वकथने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

युधिष्ठिर उवाच ।
किमाहुर्दैवतं विप्रा राजानं भरतर्षभ ।
मनुष्याणामधिपतिं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
बृहस्पतिं वसुमना यथा पप्रच्छ भारत ॥ २
राजा वसुमना नाम कौसल्यो धीमतां वरः
महर्षिं किल पप्रच्छ कृतप्रज्ञं बृहस्पतिम ॥ ३
सर्वं वैनयिकं कृत्वा विनयज्ञो बृहस्पतिम् ।
दक्षिणानन्तरो भूत्वा प्रणम्य विधिपूर्वकम्
विधिं पप्रच्छ राज्यस्य सर्वलोकहिते रतः ।
प्रजानां सुखमन्विच्छन्धर्मशीलं बृहस्पतिम्
वसुमना उवाच ।
केन भूतानि वर्धन्ते क्षयं गच्छन्ति केन वा
कमर्चन्तो महाप्राज्ञ सुखमत्ययमाप्नुयुः ॥ ६
एवं पृष्टो महाप्राज्ञः कौसल्येनामितौजसा ।
राजसत्कारमव्यग्रं शशंसास्मै बृहस्पतिः ॥
बृहस्पतिरुवाच ।
राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम् ॥८
राजा ह्येवाखिलं लोकं समुदीर्णं समुत्सुकम्
प्रसादयति धर्मेण प्रसाद्य च विराजते ॥
यथा ह्यनुदये राजन्भूतानि शशिसूर्ययोः ।
अन्धे तमसि मज्जेयुरपश्यन्तः परस्परम् ।
यथा ह्यनुदके मत्स्या निराक्रन्दे विहङ्गमाः
विहरेयुर्यथाकामं विहिंसन्तः पुनः पुनः ॥ १
विमथ्यातिक्रमेरंश्च विषह्यापि परस्परम् ।
अभावमचिरेणैव गच्छेयुर्नात्र संशयः ॥ १
एवमेव विना राज्ञा विनश्येयुरिमाः प्रजाः
अन्धे तमसि मज्जेयुरगोपाः पशवो यथा ।
हरेयुर्बलवन्तोऽपि दुर्बलानां परिग्रहान् ।
हन्युर्व्यायच्छमानांश्च यदि राजा न पालयेत
ममेदमिति लोकेऽस्मिन्न भवेत्संपरिग्रहः ।
न दारा न च पुत्रः स्यान्न धनं न परिग्रहः
विष्वग्लोपः प्रवर्तेत यदि राजा न पालयेत
यानं वस्त्रमलंकारान् रत्नानि विविधानि च
हरेयुः सहसा पापा यदि राजा न पालयेत
पतेद्बहुविधं शस्त्रं बहुधा धर्मचारिषु ।
अधर्मः प्रगृहीतः स्याद्यदि राजा न पालयेत
मातरं पितरं वृद्धमाचार्यमतिथिं गुरुम् ।
क्लिश्नीयुरपि हिंस्युर्वा यदि राजा न पालयेत

---

पत्रं वाहनम् ॥ ३६ ॥ संविभागी विभज्य भोक्ता वल्गु शोभनम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

किमाहुरिति ॥ १ ॥ वैनयिकं अभ्युत्थानाभिवादनादिकं दक्षिणा दक्षिणातोऽनन्तरः समीपे भूत्वा प्रदक्षिणक्रियेत्यर्थः ॥ ४ ॥ समुदीर्णं त्यक्तमर्यादं समुत्सुकं परदाराद्यासक्तं प्रसादयति दण्डेन शुद्धं करोति ॥ ९ ॥ अनुदके ह्यल्पोदके निराक्रन्दे हिंस्रभयरहिते ॥ ११ ॥ परिग्रहान्गृहादीन् व्यायच्छमानान्स्वं स्वमर्थं आग्रहेण रक्षमाणान् ॥ १४ ॥ ममेदमिति न स्यात अपि तु बलवत इदमित्येव स्यात् विष्वक्सर्वतः लोपः अर्थानां लुम्पनम् ॥ १५ ॥

वधबन्धपरिक्लेशो नित्यमर्थवतां भवेत् ।
ममत्वं च न विन्देयुर्यदि राजा न पालयेत्
अन्ताश्चाकाल एव स्युर्लोकोऽयं दस्युसाद्भवेत्
पतेयुर्नरकं घोरं यदि राजा न पालयेत् ॥२०
न योनिदोषो वर्तेत न कृषिर्न वणिक्पथः ।
मज्जेद्धर्मस्त्रयी न स्याद्यदि राजा न पालयेत्
न यज्ञाः संप्रवर्तेयु-
र्विधिवत्स्वाप्तदक्षिणाः ।
न विवाहाः समाजो वा
यदि राजा न पालयेत् ॥ २२
न वृषाः संप्रवर्तेरन्न मथ्येरंश्च गर्गराः ।
घोषाः प्रणाशं गच्छेयुर्यदि राजा न पालयेत्
त्रस्तमुद्विग्नहृदयं हाहाभूतमचेतनम् ।
क्षणेन विनशेत्सर्वं यदि राजा न पालयेत् ॥
न संवत्सरसत्राणि तिष्ठेयुरकुतोभयाः ।
विधिवद्दक्षिणावन्ति यदि राजा न पालयेत्
ब्राह्मणाश्चतुरो वेदान्नाधीयीरंस्तपस्विनः ।
विद्यास्नाता व्रतस्नाता यदि राजा न पालयेत्
न लभेद्धर्मसंश्लेषं *हतविप्रहतो जनः ।
हर्ता स्वमिन्द्रियो गच्छेद्यदि राजा न पालयेत्
हस्ताद्धस्तं परिमुषेद्भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
भयार्तं विद्रवेत्सर्वं यदि राजा न पालयेत् ॥
अनयाः संप्रवर्तेरन्भवेद्वै वर्णसंकरः ।
दुर्भिक्षमाविशेद्राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत्
विवृत्य हि यथाकामं गृहद्वाराणि शेरते ।
मनुष्या रक्षिता राज्ञा समन्तादकुतोभयाः
नाक्रुष्टं सहते कश्चित्कुतो वा हस्तलाघवम् ।
यदि राजा न सम्यग्गां रक्षयत्यपि धार्मिकः
स्त्रियश्चापुरुषा मार्गं सर्वालङ्कारभूषिताः ।
निर्भयाः प्रतिपद्यन्ते यदि रक्षति भूमिपः ॥
धर्ममेव प्रपद्यन्ते न हिंसन्ति परस्परम् ।
अनुगृह्णन्ति चान्योन्यं यदा रक्षति भूमिपः
यजन्ते च महायज्ञैस्त्रयो वर्णाः पृथग्विधैः ।
युक्ताश्चाधीयते विद्यां यदा रक्षति भूमिपः ॥

वार्तामूलो ह्ययं लोकस्त्रय्या वै धार्यते सदा
तत्सर्वं वर्तते सम्यग्यदा रक्षति भूमिपः ॥३५
यदा राजा धुरं श्रेष्ठामादाय वहति प्रजाः ।
महता बलयोगेन तदा लोकः प्रसीदति ॥
यस्याभावेन भूतानामभावः स्यात्समन्ततः
भावे च भावो नित्यं स्यात्कस्तं न प्रतिपूजयेत्
तस्य यो वहते भारं सर्वलोकभयावहम् ।
तिष्ठन्प्रियहिते राज्ञ उभौ लोकाविमौ जयेत्
यस्तस्य पुरुषः पापं मनसाऽप्यनुचिन्तयेत् ।
असंशयमिह क्लिष्टः प्रेत्यापि नरकं व्रजेत् ॥
न हि जात्ववमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ४०
कुरुते पञ्चरूपाणि कालयुक्तानि यः सदा ।
भवत्यग्निस्तथाऽऽदित्यो मृत्युर्वैश्रवणो यमः
यदा ह्यासीदतः पापान्दहत्युग्रेण तेजसा ।
मिथ्योपचरितो राजा तदा भवति पावकः
यदा पश्यति चारेण सर्वभूतानि भूमिपः ।
क्षेमं च कृत्वा व्रजति तदा भवति भास्करः
अशुचींश्च यदा क्रुद्धः क्षिणोति शतशो नरान्
सपुत्रपौत्रान्सामात्यांस्तदा भवति सोऽन्तकः
यदा त्वधार्मिकान्सर्वांस्तीक्ष्णैर्दण्डैर्नियच्छति
धार्मिकांश्चानुगृह्णाति भवत्यथ यमस्तदा ॥
यदा तु धनधाराभि-
स्तर्पयत्युपकारिणः ।
आच्छिनत्ति च रत्नानि
विविधान्यपकारिणाम् ॥ ४६
श्रियं ददाति कस्मैचित्कस्माच्चिदपकर्षति ।
तदा वैश्रवणो राजा लोके भवति भूमिपः ॥
नास्यापवादे स्थातव्यं दक्षेणाक्लिष्टकर्मणा ।
धर्म्यमाकांक्षता लोकमीश्वरस्यानसूयता ॥
न हि राज्ञः प्रतीपानि कुर्वन्सुखमवाप्नुयात् ।
पुत्रो भ्राता वयस्यो वा यद्यप्यात्मसमो भवेत्
कुर्यात्कृष्णगतिः शेषं ज्वलितोऽनिलसारथिः
न तु राजाऽभिपन्नस्य शेषं क्वचन विद्यते

अन्ताः मृत्यवः । दस्युसात् चोराधीनः ॥ २० ॥ योनिदोषः व्यभिचारे विगानम् ॥२१॥ न सम्प्रवर्तेरन् न रेतः सिञ्चेरन् गर्गरा मन्थन्यः ' गर्गरो मीनभेदेऽस्त्री मन्थन्याम् ' इति मेदिनी ॥२३॥ हस्ताद्धस्तं हस्तस्थमपि चोरा हरेयुः ॥२८॥अनयाः अनीतयः। अनायासमिति पाठे अक्लेशं यथा यात्तथा प्रवर्तेरन्परदारादिषु ॥ २९ ॥ विवृत्य उद्घाट्य ॥ ३० ॥ हस्तलाघवं तत्साध्यं ताडनं आक्रुष्टं गालनं वा कुतो न सहते अपि तु अनायकत्वात्सहत एव । गां पृथ्वीम् ॥ ३१ ॥ अपुरुषाः अरक्षिता अपि ॥ ३२ ॥ वार्ता जीविका तन्मूलः त्रय्या च वृष्ट्यादिहेतुतया त्रायते रक्षते सर्वं त्रयी वार्तादिः ॥ ३५ ॥ आसीदतः समीपस्थान् मिथ्योपचरितो वञ्चितः ॥ ४२ ॥ कृष्णगतिरग्निः अभिपन्नस्य तिरस्कृतस्य ॥५०॥ * मोहवि०-पा०

तस्य सर्वाणि रक्ष्याणि दूरतः परिवर्जयेत् ।
मृत्योरिव जुगुप्सेत राजस्वहरणान्नरः ॥ ५१
नश्येदभिमृशन्सद्यो मृगः कूटमिव स्पृशन् ।
आत्मस्वमिव रक्षेत राजस्वमिह बुद्धिमान् ॥
महान्तं नरकं घोरमप्रतिष्ठमचेतनम् ।
पतन्ति चिररात्राय राजवित्तापहारिणः ॥
राजा भोजो विराट् सम्राट्
क्षत्रियो भूपतिर्नृपः ।
य एभिः स्तूयते शब्दैः
कस्तं नार्चितुमर्हति ॥ ५४
तस्माद्बुभूषुर्नियतो जितात्मा नियतेन्द्रियः ।
मेधावी स्मृतिमान्दक्षः संश्रयेत महीपतिम् ।
कृतज्ञं प्राज्ञमक्षुद्रं दृढभक्तिं जितेन्द्रियम् ।
धर्मनित्यं स्थितं नीत्यं मन्त्रिणं पूजयेन्नृपः ॥
दृढभक्तिं कृतप्रज्ञं धर्मज्ञं संयतेन्द्रियम् ।
शूरमक्षुद्रकर्माणं निषिद्धजनमाश्रयेत् ॥ ५७
प्रज्ञा प्रगल्भं कुरुते मनुष्यं
राजा कृशं वै कुरुते मनुष्यम् ।
राजाभिपन्नस्य कुतः सुखानि
राजाभ्युपेतं सुखिनं करोति× ॥ ५८
राजा प्रजानां हृदयं गरीयो
गतिः प्रतिष्ठा सुखमुत्तमं च ।
समाश्रिता लोकमिमं परं च
जयन्ति सम्यक् पुरुषा नरेन्द्र ॥ ५९
नराधिपश्चाप्यनुशिष्य मेदिनीं
दमेन सत्येन च सौहृदेन ।
महद्भिरिष्ट्वा क्रतुभिर्महायशा-
स्त्रिविष्टपे स्थानमुपैति शाश्वतम् ६०
स एवमुक्तोऽङ्गिरसा कौसल्यो राजसत्तमः
प्रयत्नात्कृतवान्वीरः प्रजानां परिपालनम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि आङ्गिरसवाक्ये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

युधिष्ठिर उवाच ।

पार्थिवेन विशेषेण किं कार्यमवशिष्यते ।
कथं रक्ष्यो जनपदः कथं जेयाश्च शत्रवः । १
कथं चारं प्रयुञ्जीत वर्णान्विश्वासयेत्कथम् ।
कथं भृत्यान्कथं दारान्कथं पुत्रांश्च भारत २

भीष्म उवाच ।

राजवृत्तं महाराज शृणुष्वावहितोऽखिलम्
यत्कार्यं पार्थिवेनादौ पार्थिवप्रकृतेन वा ॥ ३
आत्मा जेयः सदा राज्ञा
ततो जेयाश्च शत्रवः ।
अजितात्मा नरपति-
र्विजयेत कथं रिपून् ॥
एतावानात्मविजयः पञ्चवर्गविनिग्रहः ।
जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन् ॥
न्यसेत गुल्मान्दुर्गेषु सन्धौ च कुरुनन्दन ।
नगरोपवने चैव पुरोद्यानेषु चैव ह ॥ ६
संस्थानेषु च सर्वेषु पुरेषु नगरेषु च ।
मध्ये च नरशार्दूल तथा राजनिवेशने ॥ ७

सर्वाणि द्रव्याणि रक्ष्याण्येव न तु हर्तव्यानि। यद्वा रक्षणीयानि द्रव्याण्येव रक्ष्याणि ॥ ५१ ॥ कूटं मारणयन्त्रं 'कूटोऽस्त्री सीरावयवयन्त्रयोः' इति मेदिनी ॥ ५२ ॥ राजा रञ्जकः भोजः सुखानां भोजयिता विविधं राजत इति विराट् श्रीमान्सम्राडिति राज्ञामपि राजेत्यकुण्ठितैश्वर्यः ॥५४॥ बुभूषुर्भवितुमिच्छुः ॥ ५५ ॥ निषिद्धजनं अहमेक एवेदं कार्यं करिष्यामि किमेतैरिति वादिनं एकाङ्गवीरम् ॥५७॥ समाश्रिता राजानमिति शेषः ॥५९॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राज० नैल० भा० अष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८

× राजा प्रजानां प्रथमं शरीरं
प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरम् ॥
राज्ञा विहीना न भवन्ति देशा
देशैर्विहीना न नृपा भवन्ति॥इत्यधिकम्

६९

एवं राज्ञां माहात्म्यं श्रुत्वा तत्कर्तव्यं पृच्छति–पार्थिवेनेति ॥ १ ॥ भृत्यादीनपि कथं प्रयुञ्जीत विश्वासयेच्चेति योज्यम् ॥ २ ॥ पार्थिवेन पृथुवंश्येन राज्ञा पार्थिवप्रकृतेन वा विजातीयेनापि तत्कार्यकारिणा प्रहितेनेति पाठान्तरम् ॥ ३ ॥ आत्मा चित्तम् ॥४॥ पञ्चवर्गः श्रोत्रादिः ॥ ५ ॥ गुल्मान् रक्षिणः पतीन् सन्धौ सीमान्ते ॥ ६ ॥ संस्थानेषु कोष्ठपालाद्युपवेशनस्थानेषु मध्ये अन्तःपुरे ॥ ७ ॥

प्रणिधींश्च ततः कुर्या-
जडान्धबधिराकृतीन् ।
पुंसः परीक्षितान्प्राज्ञान्
क्षुत्पिपासाश्रमक्षमान् ॥ ८
अमात्येषु च सर्वेषु मित्रेषु विविधेषु च
पुत्रेषु च महाराज प्रणिदध्यात्समाहितः ९
पुरे जनपदे चैव तथा सामन्तराजसु ।
यथा न विद्युरन्योन्यं प्रणिधेयास्तथा हि ते॥
चारांश्च विद्यात्प्रहितान्परेण भरतर्षभ ।
आपणेषु विहारेषु समाजेषु च भिक्षुषु ॥ ११
आरामेषु तथोद्याने पण्डितानां समागमे ।
देशेषु चत्वरे चैव सभास्वावसथेषु च ॥ १२
एवं विचिनुयाद्राजा परचारं विचक्षणः ।
चारे हि विदिते पूर्वं हितं भवति पाण्डव ॥
यदा तु हीनं नृपतिर्विद्यादात्मानमात्मना ।
अमात्यैः सह संमन्त्र्य कुर्यात्सन्धिं बलीयसा
अज्ञायमाने हीनत्वे सन्धिं कुर्यात्परेण वै ।
लिप्सुर्वा कंचिदेवार्थं त्वरमाणो विचक्षणः
गुणवन्तो महोत्साहा धर्मज्ञाः साधवश्च ये ।
संदधीत नृपस्तैश्च राष्ट्रं धर्मेण पालयन् ॥ १६
उच्छिद्यमानमात्मानं ज्ञात्वा राजा महामतिः
पूर्वापकारिणो हन्याल्लोकद्विष्टांश्च सर्वशः ॥
यो नोपकर्तुं शक्नोति नापकर्तुं महीपतिः ।
न शक्यरूपश्चोद्धर्तुमुपेक्ष्यस्तादृशो भवेत् १८
यात्रायां यदि विज्ञातमनाक्रन्दमनन्तरम् ।
व्यासक्तं च प्रमत्तं च दुर्बलं च विचक्षणः ॥
यात्रामाज्ञापयेद्वीरः कल्यः पुष्टबलः सुखी ।
पूर्वं कृत्वा विधानं च यात्रायां नगरे तथा ॥
न च वश्यो भवेदस्य नृपो यश्चातिवीर्यवान्
हीनश्च बलवीर्याभ्यां कर्षयंस्तत्परो वसेत् ॥
राष्ट्रं च पीडयेत्तस्य शस्त्राग्निविषमूर्छनैः ।
अमात्यवल्लभानां च विवादांस्तस्य कारयेत्
वर्जनीयं सदा युद्धं राज्यकामेन धीमता ।
उपायैस्त्रिभिरादानमर्थस्याह बृहस्पतिः २३
सान्त्वेन तु प्रदानेन भेदेन च नराधिप ।
यदर्थं शक्नुयात्प्राप्तुं तेन तुष्येत पण्डितः ॥ २४
आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन ।
स षड्भागमपि प्राज्ञस्तासामेवाभिगुप्तये २५
दशधर्मगतेभ्यो यद्वसु बह्वल्पमेव च ।
तदाददीत सहसा पौराणां रक्षणाय वै २६
यथा पुत्रास्तथा पौत्रा द्रष्टव्यास्ते न संशयः।
भक्तिश्चैषां न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते २७
श्रोतुं चैव न्यसेद्राजा प्राज्ञान्सर्वार्थदर्शिनः
व्यवहारेषु सततं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् २८
आकरे लवणे शुल्के तरे नागबले तथा ।
न्यसेदमात्यान्नृपतिः स्वाप्तान्वा पुरुषान्हितान्

प्रणिधीन् चारान् ॥ ८ ॥ प्रणिदध्यात् प्रचारान्नियुञ्ज्यात् ॥ ९ ॥ आपणेषु, वार्णिजां हट्टेषु विहारेषु यूनां मल्लक्रीडास्थानेषु, समाजेषु महाजनसमुदायेषु ॥ ११ ॥ आरामेषु पुरवाटिकासु,उद्याने बहिर्वाटिकायां, देशेषु आकरस्थानेषु, चत्वरे आधिकारिणां उपवेशनस्थाने,सभासु राजसंसत्सु, आवसथेषु तत्र तत्र महतां गृहेषु ॥ १२ ॥ विचिनुयात् अन्विष्यात् ॥ १३ ॥ तैर्द्वारभूतैः तान्द्वारीकृत्य संदध्यात् बलवद्भिर्नृपैः सह सन्धिं कुर्यात ॥ १६ ॥ पूर्वापकारिणः पूर्वं दुष्टा इति अपकृताः पश्चाद्दययाऽनुगृहीतास्ते पूर्वापकारवन्तस्तान् ॥ १७ ॥ तत्रापि विशेषमाह-य इति ॥ १८ ॥ यात्रायां यदि इच्छा स्यात्तर्हि दुर्बलत्वादिना विज्ञातं शत्रुं प्रत्येव यात्रामाज्ञापयेदित्युत्तरेण सम्बन्धः। यात्रां यायादविज्ञातामिति पाठे दुर्बलं शत्रुमुद्दिश्य तेन अविज्ञानं यथा स्यात्तथा यात्रां यायादिति योजना । अनाक्रन्दं मित्रहीनम् । अनन्तरं बन्धुजनहीनम् । व्यासक्तं अन्येन युद्धं कुर्वाणं प्रमत्तं अनवहितम् ॥१९॥ विधानं रक्षणं रक्षणादिसामग्रीसम्पादनम् ॥ २० ॥ कर्षयन् वीर्यवन्तं तत्परः वर्धनपरः ॥२१ ॥ कर्षणमेवाह—राष्ट्रं चेति । कारयेत् भृत्यादिद्वारा ॥ २२ ॥ बलिनो राष्ट्रं कर्षन्दुर्बलस्ततः सान्त्वेनार्थं यत् यावत् प्राप्तुं शक्नुयात्तेन तुष्येत भवद्भिर्मत्तो वार्षिकः करो न प्राह्यो मया च भवतां राष्ट्रं नोपहन्तव्यमिति **सान्त्वम्** । मह्यं ग्रामद्वयं देयं तेनाहं शाम्येयं इत्युक्त्या—**अर्थप्रदानम्** । **भेदेन** राजामात्यान्भेदयित्वा राज्ञः स्वोपरि प्रयाणस्य विघ्नादिकं वा कर्तव्यमित्यादिना । **क्षीणः** प्रबलेन सह वैरं चेत्संग्रामं विना एवमुपायत्रयेण स्वार्थं साधयेदित्यर्थः ॥ २४ ॥ **प्रजाभ्यः** स्वाभ्यः ॥२५॥ दशधर्मगताः मत्तोन्मत्तादयस्तेभ्यो दण्डयेभ्यो यद्वसु प्राह्यं तत्पौराणां रक्षणाय भवति । अदण्डितास्ते पुरं बाधेरन्निति भावः ॥२६॥ भक्तिः स्वीयत्वेन स्नेहः एषामुपरि ॥२७॥ व्यवहारेषु अर्थिप्रत्यर्थिवाक्यविचारेषु विषयेषु राजा प्राज्ञान्पण्डितान्न्यसेत् ॥२८॥ **आकरे** स्वर्णाद्युत्पत्तिस्थाने । **लवणे** तदुत्पत्तिस्थाने । **शुल्के** धान्यादिविक्रयस्थाने । **तरे** नदीसन्तरणे । **नागबले** हस्तियूथे । एतेषु स्थानेषु आयव्ययविचारार्थं अमात्यान् न्यसेत् ॥२९॥

सम्यग्दण्डधरो नित्यं राजा धर्ममवाप्नुयात्
नृपस्य सततं दण्डः सम्यग्धर्मः प्रशस्यते ३०
वेदवेदाङ्गवित्प्राज्ञः सुतपस्वी नृपो भवेत् ।
दानशीलश्च सततं यज्ञशीलश्च भारत ॥ ३१
एते गुणाः समस्ताः स्युर्नृपस्य सततं स्थिराः
व्यवहारलोपे नृपतेः कुतः स्वर्गः कुतो यशः
यदा तु पीडितो राजा भवेद्राज्ञा बलीयसा
तदाभिसंश्रयेद्दुर्गं बुद्धिमान्पृथिवीपतिः॥ ३३
विधानाऽऽक्रम्य मित्राणि विधानमुपकल्पयेत्
सामभेदान्विरोधार्थे विधानमुपकल्पयेत् ३४
घोषान्न्यसेत मार्गेषु ग्रामानुत्थापयेदपि ।
प्रवेशयेच्च तान्सर्वान् शाखानगरकेष्वपि ३५
ये गुप्ताश्चैव दुर्गाश्च देशास्तेषु प्रवेशयेत् ।
धनिनो बलमुख्यांश्च सान्त्वयित्वा पुनः पुनः
तस्याभिहारं कुर्याच्च स्वयमेव नराधिपः ।
असंभवे प्रवेशस्य दहेद्दावाग्निना भृशम् ३७
क्षेत्रस्थेषु च सस्येषु शत्रोरुपजपेन्नरान् ।
विनाशयेद्वा तत्सर्वं बलेनाथ स्वकेन वा ३८
नदीमार्गेषु च तथा संक्रमानवसादयेत् ।
जलं विस्रावयेत्सर्वमविस्राव्यं च दूषयेत् ३९
तदात्वेनायतीभिश्च निवसेद्भूम्यनन्तरम् ।
प्रतीघातं परस्याजौ मित्रकार्येऽप्युपस्थिते ४०

घोषान् धनस्थान्मार्गेषु राजपथेषु न्यसेत् । शाखानगराणि महानगरस्योपनगराणि ॥ ३५ ॥ ये इति । धनिकादीन् दुर्गेषु प्रवेशयेदित्यर्थः ॥ ३६ ॥ अभिहारं समीपमानयनम् दहेत् परेषां तन्माभूदिति ॥ ३७ ॥ उपजपेत् भेदयित्वा तद्द्वारा दाहयेत् ॥ ३८ ॥ संक्रमान् । अवतरणार्थान्सेतून् । जलं तटाकादिस्थं विस्रावयेत् तदयोग्यं वापीकूपादिस्थं दूषयेत् विषादिना नाशयेत् ॥३९॥ तदात्वेन वर्तमानकाले आयतीभिः उत्तरकालेषु च अपवर्गे तृतीया । सर्वदा मित्रकार्ये उपस्थितेऽपि तद्विहायेत्यर्थात् । आजौ परस्य शत्रोः प्रतीघातं हन्तारं भूम्यनन्तरं निकटदेशवासिनं तच्छत्रुमाश्रित्य निवसेत् । अयमर्थः-स्वराष्ट्रे यन्मुख्यं स्थानं तदाक्रम्य वसन् शत्रोः शत्रुभिः सर्वदा स्नेहं कृत्वा तद्बलेन शत्रून्स्वराष्ट्राद्दूरीकुर्यादिति ॥ ४० ॥ दुर्गाणां क्षुद्रदुर्गाणां परेषामाश्रयो माभूदिति मूलच्छेदं कुर्यात् ॥ ४१ ॥

'प्रगण्डीः कारयेत्सम्यक् षाड्गुण्यं सत्रिवर्गकं ।
यो वेत्ति पुरुषव्याघ्रं स भुङ्क्ते पृथिवीमिमाम्'
इति प्राचां पाठः। तत् व्याख्यानं च तदीयमव ।

दुर्गाणां चाभितो राजा मूलच्छेदं प्रकारयेत्
सर्वेषां क्षुद्रवृक्षाणां चैत्यवृक्षान्विवर्जयेत् ४१
प्रवृद्धानां च वृक्षाणां शाखां प्रच्छेदयेत्तथा ।
चैत्यानां सर्वथा त्याज्यमपि पत्रस्य पातनम्
प्रगण्डीः कारयेत्सम्यगाकाशजननीस्तदा ।
आपूरयेच्च परिखां स्थाणु-नक्र-झषाकुलाम् ॥
संकटद्वारकाणि स्युरुच्छ्वासार्थं पुरस्य च ।
तेषां च द्वारवद्गुप्तिः कार्या सर्वात्मना भवेत्
द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत्सदा ।
आरोपयेच्छतघ्नीश्च स्वाधीनानि च कारयेत्

काष्ठानि चाभिहार्याणि
तथा कूपांश्च खानयेत् ।
संशोधयेत्तथा कूपान्
कृतपूर्वान् पयोर्थिभिः ॥ ४६

तृणच्छन्नानि वेश्मानि पङ्केनाथ प्रलेपयेत् ।
निर्हरेच्च तृणं मासि चैत्रे वह्निभयात्तथा ॥४७
नक्तमेव च भक्तानि पाचयेत नराधिपः ।
न दिवा ज्वालयेदग्निं वर्जयित्वाऽग्निहोत्रिकम्
कर्मारारिष्टशालासु ज्वलेदग्निः सुरक्षितः ।
गृहाणि च प्रवेश्यान्तर्विधेयः स्याद्धुताशनः॥
महादण्डश्च तस्य स्याद्यस्याग्निर्वै दिवा भवेत्
प्रघोषयेदथैवं च रक्षणार्थं पुरस्य च ॥ ५०

'सञ्चारो यत्र लोकानां दूरादेवावबुध्यते
प्रगण्डी सा च विज्ञेया बहिःप्राकारसंज्ञिता ॥
प्रणिधिस्तत्र यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता
स एवाकाशरक्षीति ह्युच्यते शास्त्रकोविदैः ' ॥

इति । तांश्चतुर्दिक्षु कारयेदित्यर्थः । षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहादि । त्रिवर्गः(१) स्थानवृद्धिक्षयरूपो वा । (२)अरिमित्रोदासीनरूपो वा । (३) मन्त्रोत्साहप्रभुशक्तिरूपो वा । (४) भूमिमित्रहिरण्यादिरूपो वा । (५) धर्मार्थकामरूपो वा। उत्तरार्धार्थः स्पष्टः। प्रगण्डीः दुर्गप्राकारभित्तौ शूराणां उपवेशनस्थानानि । आकाशजननीः तत्रैव एकपक्षायां भित्तौ तत्रत्यानां रक्षणभूतायां बाह्यार्थदर्शनार्थानि क्षुद्रच्छिद्राणि यद्द्वारा आग्नेयास्त्रगुलिकाः प्रक्षिप्यन्ते । स्थाणवः सशूलाः येषु पतन्विदीर्यते नक्रैर्वा भक्ष्यते ॥ ४३ ॥संकटद्वारकाणि सूक्ष्मद्वाराणि तेषां च द्वारवत् गुप्तिः कार्या । तेषां चाचारवद्गुप्तिरिति पाठे आचारवद्भिः शिष्टैर्गुप्तिः कार्या ॥ ४४ ॥ कर्मारः लोहकारादिस्तच्छाला । अरिष्टं सूतिकागृहं तद्रूपासु शालासु । अन्तर्विधेयः आच्छादितः कर्तव्यः ॥ ४९ ॥ महादण्डो वधः ॥ ५० ॥

भिक्षुकांश्चाक्रिकांश्चैव
क्लीबोन्मत्तान्कुशीलवान् ।
बाह्यान् कुर्यान्नरश्रेष्ठ
दोषाय स्युर्हि तेऽन्यथा ॥ ५१
चत्वरेष्वथ तीर्थेषु सभास्वावसथेषु च ।
यथार्थवर्णं प्रणिधिं कुर्यात्सर्वस्य पार्थिवः ॥
विशालान् राजमार्गांश्च कारयीत नराधिपः
प्रपाश्च विपणांश्चैव यथोद्देशं समाविशेत् ५३
भाण्डागारायुधागारान्योधागारांश्च सर्वशः
अश्वागारान्गजागारान्बलाधिकरणानि च
परिखाश्चैव कौरव्य प्रतोलीर्निष्कुटानि च
न जात्वन्यः प्रपश्येत गुह्यमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५५
अर्थसंनिचयं कुर्याद्राजा परबलार्दितः ।
तैलं वसा मधु घृतमौषधानि च सर्वशः ५६
अङ्गारकुशमुञ्जानां पलाशशरवर्णिनाम् ।
यवसेन्धनदिग्धानां कारयीत च सञ्चयान्
आयुधानां च सर्वेषां शक्त्यृष्टिप्रासवर्मणाम्
संचयानेवमादीनां कारयीत नराधिपः ॥५८
औषधानि च सर्वाणि मूलानि च फलानि च
चतुर्विधांश्च वैद्यान्वै संगृह्णीयाद्विशेषतः ॥५९
नटांश्च नर्तकांश्चैव मल्लान्मायाविनस्तथा ।
शोभयेयुः पुरवरं मोदयेयुश्च सर्वशः ॥ ६०
यतः शंका भवेच्चापि भृत्यतोऽथापि मन्त्रितः
पौरेभ्यो नृपतेर्वापि स्वाधीनान्कारयीत तान्
कृते कर्मणि राजेन्द्र पूजयेद्धनसञ्चयैः ।
दानेन च यथार्हेण सान्त्वेन विविधेन च ॥
निर्वेदयित्वा तु परं हत्वा वा कुरुनन्दन ।
ततोऽनृणो भवेद्राजा यथा शास्त्रे निदर्शितं
राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि
तानि चैव निबोध मे ।

आत्माऽमात्याश्च कोशाश्च
दण्डो मित्राणि चैव हि ॥ ६४
तथा जनपदाश्चैव पुरं च कुरुनन्दन ।
एतत्सप्तात्मकं राज्यं परिपाल्यं प्रयत्नतः॥
षाड्गुण्यं च त्रिवर्गं च त्रिवर्गपरमं तथा ।
यो वेत्ति पुरुषव्याघ्र स भुंक्ते पृथिवीमिमाम्
षाड्गुण्यमिति यत्प्रोक्तं तन्निबोध युधिष्ठिर ।
संधानासनमित्येव यात्रासन्धानमेव च ॥६७
विगृह्यासनमित्येव यात्रां संपरिगृह्य च ।
द्वैधीभावस्तथाऽन्येषां संश्रयोऽथ परस्य च
त्रिवर्गश्चापि यः प्रोक्तस्तमिहैकमनाः शृणु ।
क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गः परमस्तथा ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च सेवितव्योऽथ कालतः ।
धर्मेण च महीपालश्चिरं पालयते म[illegible] ॥
अस्मिन्नर्थे च श्लोकौ द्वौ गीतावंगिरसा स्वयं
यादवीपुत्र भद्रं ते तावपि श्रोतुमर्हसि ॥ ७१
कृत्वा सर्वाणि कार्याणि
सम्यक्संपाल्य मेदिनीम् ।
पालयित्वा तथा पौरान्
परत्र सुखमेधते ॥ ७२
किं तस्य तपसा राज्ञः किं च तस्याध्वरैरपि
सुपालितप्रजो यः स्यात्सर्वधर्मविदेव सः *

युधिष्ठिर उवाच ।

दण्डनीतिश्च राजा च समस्तौ तावुभावपि ।
कस्य किं कुर्वतः सिध्येत्तन्मे ब्रूहि पितामह

भीष्म उवाच ।

महाभाग्यं दण्डनीत्याः सिद्धैः शब्दैः सहेतुकैः
शृणु मे शंसतो राजन् यथावदिह भारत ॥

---

चाक्रिकान् शाकटिकान् कुशीलवान् फाललेखान् कीनाशीनिति यावत् ॥ ५१ ॥ तीर्थेषु मन्त्र्यादिषु अष्टादशसु प्राक्व्याख्यातेषु॥५२॥ प्रतोली रथ्या निष्कुटानि गृहारामाः ॥५५॥वर्णिनां लेखकानां । 'वर्णी स्याल्लेखके चित्रकारेऽपि ब्रह्मचारिणि' इति **मेदिनी**। यवसं घासः दिग्धानां विषाक्तबाणानां 'दिग्धो विषाक्तबाणे स्यात्' इति **मेदिनी** ॥ ५७ ॥ चतुर्विधान् विषशल्यरोगकृत्याहरान् ॥ ५९ ॥ अस्थाने कोपेन परस्य निर्वेदस्ताडनं वा कृतं चेत्तं दानमानादिना पुनस्तत्समीकर्तव्यमित्याह—**निर्वेदयित्वे**-**ति** ॥६३॥ सन्धानासनं सन्धिं कृत्वाऽवस्थितिः यात्रासन्धानं यानम् ॥ ६७ ॥ विगृह्य वैरं कृत्वाऽवस्थानं विग्रहः। यात्रां सम्परिगृह्य आसनं शत्रोर्भयप्रदर्शनार्थं यानं प्रदर्श्य स्वस्थानेऽवस्थानम्। द्वैधीभावः उभयत्र सन्धिकरणं परस्य अन्यस्याश्रयो दुर्गादेर्महाराजस्य वा ॥६८॥ अत्राध्यायं केचित्समापयन्ति-**दण्डेति**। इदं द्वयं समस्तं च व्यस्तं च तत्र केन कस्य किं क्रियत इति प्रश्नत्रयम् ॥७४॥ दण्डनीत्याः सकाशात् राज्ञां प्रजानां च यत् महाभाग्यं तत् शृणु॥७५॥ * केचनात्राध्यायं समापयन्ति

दण्डनीतिः स्वधर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति ।
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यो नियच्छति
चातुर्वर्ण्ये स्वकर्मस्थे मर्यादानामसंकरे ।
दण्डनीतिकृते क्षेमे प्रजानामकुतोभये ॥ ७७
स्वाम्ये प्रयत्नं कुर्वन्ति त्रयो वर्णा यथाविधि
तस्मादेव मनुष्याणां सुखं विद्धि समाहितम्
कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणं
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्

दण्डनीत्यां यदा राजा
सम्यक्कात्स्न्येन वर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम
कालसृष्टं प्रवर्तते ॥ ८०

ततः कृतयुगे धर्मो नाधर्मो विद्यते क्वचित्।
सर्वेषामेव वर्णानां नाधर्मे रमते मनः ॥ ८१
योगक्षेमाः प्रवर्तन्ते प्रजानां नात्र संशयः ।
वै[illegible]ानि च सर्वाणि भवन्त्यपि गुणान्युत
ऋतवश्च सुखाः सर्वे भवन्त्युत निरामयाः ।
प्रसीदन्ति नराणां च स्वरवर्णमनांसि च ॥
व्याधयो न भवन्त्यत्र नाल्पायुर्दृश्यते नरः ।
विधवा न भवन्त्यत्र कृपणो न तु जायते ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी भवन्त्योषधयस्तथा ।
त्वक्पत्रफलमूलानि वीर्यवन्ति भवन्ति च ॥
नाधर्मो विद्यते तत्र धर्म एव तु केवलम् ।
इति कार्तयुगानेतान्धर्मान्विद्धि युधिष्ठिर ॥
दण्डनीत्यां यदा राजा त्रीनंशाननुवर्तते।
चतुर्थमंशमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते ॥ ८७
अशुभस्य चतुर्थांशस्त्रीनंशाननुवर्तते ।
कृष्टपच्यैव पृथिवी भवन्त्योषधयस्तथा ॥ ८८
अर्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यर्धमनुवर्तते ।
ततस्तु द्वापरं नाम स कालः संप्रवर्तते ॥
अशुभस्य यदा त्वर्धं द्वावंशावनुवर्तते ।
कृष्टपच्यैव पृथिवी भवत्यर्धफला तथा ॥ ९०
दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कात्स्न्येन भूमिपः
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः ॥
कलावधर्मो भूयिष्ठं धर्मो भवति न क्वचित् ।
सर्वेषामेव वर्णानां स्वधर्माच्च्यवते मनः ९२
शूद्रा भैक्षेण जीवन्ति ब्राह्मणाः परिचर्यया ।
योगक्षेमस्य नाशश्च वर्तते वर्णसङ्करः ॥ ९३
वैदिकानि च कर्माणि भवन्ति विगुणान्युत
ऋतवो न सुखाः सर्वे भवन्त्यामयिनस्तथा
ह्रसन्ति च मनुष्याणां स्वरवर्णमनांस्युत ।
व्याधयश्च भवन्त्यत्र म्रियन्ते च गतायुषः ॥
विधवाश्च भवन्त्यत्र नृशंसा जायते प्रजा ।
क्वचिद्वर्षति पर्जन्यः क्वचित्सस्यं प्ररोहति ॥
रसाः सर्वे क्षयं यान्ति यदा नेच्छति भूमिपः
प्रजाः संरक्षितुं सम्यग्दण्डनीतिसमाहितः ॥
राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥
कृतस्य करणाद्राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।
त्रेतायाः करणाद्राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ॥
प्रवर्तनाद्द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते ।
कलेः प्रवर्तनाद्राजा पापमत्यन्तमश्नुते ॥ १००
ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।
प्रजानां कल्मषे मग्नोऽकीर्तिं पापं च विन्दति
दण्डनीतिं पुरस्कृत्य विजानन्क्षत्रियः सदा ।
अनवाप्तं च लिप्सेत लब्धं च परिपालयेत् ॥
लोकस्य सीमन्तकरी मर्यादा लोकभाविनी
सम्यङ्नीता दण्डनीतिर्यथा माता यथा पिता
यस्यां भवन्ति भूतानि तद्विद्धि मनुजर्षभ ।
एष एव परो धर्मो यद्राजा दण्डनीतिमान् ॥
तस्मात्कौरव्य धर्मेण प्रजाः पालय नीतिमान्
एवं वृत्तः प्रजा रक्षन्स्वर्गं जेतासि दुर्जयम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि×
एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

तत्र दण्डनीत्या राजा स्वर्गादिकं प्राप्नोति राज्ञां च दण्डनीतिः कृतादीन् जनयति तावुभौ च प्रजानां क्षेमं जनयत इत्युत्तरमाह—दण्डनीतिरित्यादिना । स्वधर्मेभ्यः स्वधर्मार्थं अधर्मेभ्य इति पञ्चमी ॥ ७६ ॥ असङ्करे तद्रूपे क्षेमे ॥ ७७ ॥ स्वाम्ये स्वास्थ्ये तन्निमित्तं तस्मात्क्षेमाख्यादसङ्करात् ॥ ७८ ॥ अशुभस्य अधर्मस्य ॥८८॥ अयोगेन अनुपायेन ॥ ९१ ॥ चतुर्थस्य कलेः॥९८॥सीमन्तकरी व्यवस्थापिका॥१०३॥इति श्रीम० शान्तिपर्वणि राज० नै० भा० एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९ × पञ्चदश श्लोका अधिकाः खपुस्तके ।

## ७०

युधिष्ठिर उवाच ।

केन वृत्तेन वृत्तज्ञ वर्तमानो महीपतिः ।
सुखेनार्तान्सुखोदर्कानिह च प्रेत्य चाप्नुयात् । १

भीष्म उवाच ।

अयं गुणानां षट्त्रिंशत्षट्त्रिंशद्गुणसंयुतः
यान्गुणांस्तु गुणोपेतः कुर्वन्गुणमवाप्नुयात् २
चरेद्धर्मानकटुको मुञ्चेत्स्नेहं न चास्तिकः ।
अनृशंसश्चरेदर्थं चरेत्काममनुद्धतः ॥ ३
प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः ।
दाता नापात्रवर्षी स्यात्प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः
संदधीत न चानार्यैर्विगृह्णीयान्न बन्धुभिः ।
नाभक्तं चारयेच्चारं कुर्यात्कार्यमपीडया ॥ ५
अर्थं ब्रूयान्न चासत्सु गुणान् ब्रूयान्न चात्मनः
आदद्यान्न च साधुभ्यो नासत्पुरुषमाश्रयेत् ॥
नापरीक्ष्य नयेद्दण्डं न च मन्त्रं प्रकाशयेत् ।
विसृजेन्न च लुब्धेभ्यो विश्वसेन्नापकारिषु ७
अनीर्षुर्गुप्तदारः स्याच्चोक्षः स्यादघृणी नृपः ।
स्त्रियः सेवेत नात्यर्थं मृष्टं भुञ्जीत नाहितम् ८
अस्तब्धः पूजयन्मान्यान्गुरून्सेवेदमायया ।
अर्चेद्देवानदम्भेन श्रियमिच्छेदकुत्सिताम् ९
सेवेत प्रणयं हित्वा दक्षः स्यान्न त्वकालवित्
सांत्वयेन्न च मोक्षाय अनुगृह्णन्न चाक्षिपेत् १०
प्रहरेन्न त्वविज्ञाय हत्वा शत्रून्न शोचयेत् ।
क्रोधं कुर्यान्न चाकस्मान्मृदुः स्यान्नापकारिषु
एवं चरस्व राज्यस्थो यदि श्रेय इहेच्छसि ।
अतोऽन्यथा नरपतिर्भयमृच्छत्यनुत्तमम् ॥ १२

इति सर्वान्गुणानेतान्
यथोक्तान् योऽनुवर्तते ।
अनुभूयेह भद्राणि
प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥ १३

वैशम्पायन उवाच ।

इदं वचः शान्तनवस्य शुश्रुवान्
युधिष्ठिरः पाण्डवमुख्यसंवृतः ।
तदा ववन्दे च पितामहं नृपो
यथोक्तमेतच्च चकार बुद्धिमान् १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

---

७०

**केनेति**। दण्डनीतिं सम्यक्प्रयोज्य केन वृत्तेन वर्तेतेति प्रश्नः ॥ १ ॥ षट्त्रिंशत् एतत्संख्याको धर्मचर्यादिगुणगणः स च प्रत्येकं एकैकगुणयोगात्षट्त्रिंशद्गुणैरकटुकतादिभिः संयुतः। अत एव गुणोपेतः यान्गुणान्धर्मादीन्कुर्वन्गुणं कल्याणं अवाप्नुयात् सोयं षट्त्रिंशत्को गणस्त्वया श्रोतव्य इत्यर्थः ॥२॥ अकटुको रागद्वेषहीनः धर्मान्मन्त्रीश्चरेत् १ आस्तिकः परलोककामुकः सन् स्नेहं कुर्यान्न तु लोभादिना २ अनृशंसः अनिष्ठुरः सन्नर्थमर्जयेत् ३ अनुद्धतः धर्मार्थाविनाशयन्कामं इन्द्रियप्रीतिं चरेत् ४ ॥ ३ ॥ अकृपणः अदीनः ५ अविकत्थनः श्लाघाहीनः ६।७ अनिष्ठुरः सदयः ८ ॥ ४ ॥ आर्यत्वं जानन्सन्धिं कुर्यात् ९ बन्धुत्वं जानन्विग्रहं न कुर्यात् १० इति सर्वत्र गुणोपेतो गुणो द्रष्टव्यः अभक्तं अल्पान्नं पुष्कलान्नदश्चारान्कुर्यात् ११ अपीडयन्भक्तं दद्यात् १२ ॥५॥ साधुत्वेन परीक्ष्यार्थं प्रयोजनं ब्रूयात् १३ श्रोतार उपहासिष्यन्तीति ज्ञात्वा आत्मनो गुणान्न ब्रूयात् १४।१६॥६॥२०॥७॥२१।चोक्षः शुद्धः २२ ।२४॥८ ।२८॥९॥ प्रणयं नम्रतां हित्वा धारयित्वा हित्वेति धात्रो रूपम् २९।३०न च मोक्षाय फलं दित्सन्नेव सान्त्वयेदित्यर्थः ३१।३२ ॥१०॥ अविज्ञाय शत्रुं दोषं चेति शेषः ३३न शोचयेत् शत्रुबन्धूनां शोकं अपनुदेत् ३४ अकस्मात्कारणं विना ३५।३६ ॥११॥ अनुत्तमं महत्तरम् ॥१२॥ पाण्डवमुख्यैः पाण्डुपुत्रैर्भीमादिभिर्वृतः संवृतो गुप्तः ॥१४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

## ७१

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं राजा प्रजा रक्षन्नाधिबन्धेन युज्यते ।
धर्मे च नापराध्नोति तन्मे ब्रूहि पितामह १

भीष्म उवाच ।

समासेनैव ते राजन्धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान्
विस्तरेणैव धर्माणां न जात्वन्तमवाप्नुयात् ॥
धर्मनिष्ठान् श्रुतवतो देवव्रतसमाहितान् ।
अर्चयित्वा यजेथास्त्वं गृहे गुणवतो द्विजान्
प्रत्युत्थायोपसंगृह्य चरणावभिवाद्य च ।
अथ सर्वाणि कुर्वीथाः कार्याणि सपुरोहितः
धर्मकार्याणि निर्वर्त्य मङ्गलानि प्रयुज्य च ।
ब्राह्मणान्वाचयेथास्त्वमर्थसिद्धिजयाशिषः ५
आर्जवेन च संपन्नो धृत्या बुद्ध्या च भारत।
यथार्थं प्रतिगृह्णीयात्कामक्रोधौ च वर्जयेत् ६
कामक्रोधौ पुरस्कृत्य योऽर्थं राजाऽनुतिष्ठति
न स धर्मं न चाप्यर्थं प्रतिगृह्णाति बालिशः ७
मा स्म लुब्धांश्च मूर्खांश्च कामार्थे च प्रयूयुजः
अलुब्धान्बुद्धिसम्पन्नान्सर्वकर्मसु योजयेत् ८
मूर्खो ह्यधिकृतोऽर्थेषु कार्याणामविशारदः ।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन कामक्रोधसमन्वितः ९
बलिषष्ठेन शुल्केन दण्डेनाथापराधिनाम् ।
शास्त्रानीतेन लिप्सेथा वेतनेन धनागमम् १०
दापयित्वा करं धर्म्यं राष्ट्रं नीत्या यथाविधि
*तथैतं कल्पयेद्राजा योगक्षेममतन्द्रितः ॥११
गोपायितारं दातारं धर्मनित्यमतन्द्रितम् ।
अकामद्वेषसंयुक्तमनुरज्यन्ति मानवाः ॥ १२

मा स्म लोभेनाधर्मेण
लिप्सेथास्त्वं धनागमम् ।
धर्मार्थावध्रुवौ तस्य
यो न शास्त्रपरो भवेत् ॥ १३
अर्थशास्त्रपरो राजा धर्मार्थान्नाधिगच्छति ।
अस्थाने चास्य तद्वित्तं सर्वमेव विनश्यति ॥
अर्थमूलोऽपि हिंसां च कुरुते स्वयमात्मनः ।
करैरशास्त्रदृष्टैर्हि मोहात्संपीडयन् प्रजाः॥१५
ऊधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी न लभेत्पयः
एवं राष्ट्रमयोगेन पीडितं न विवर्धते ॥ १६
यो हि दोग्ध्रीमुपास्ते च
स नित्यं विन्दते पयः ।
एवं राष्ट्रमुपायेन
भुञ्जानो लभते फलम् ॥ १७
अथ राष्ट्रमुपायेन भुज्यमानं सुरक्षितम् ।
जनयत्यतुलां नित्यं कोशवृद्धिं युधिष्ठिर॥१८
दोग्ध्री धान्यं हिरण्यं च
मही राज्ञा सुरक्षिता ।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च
तृप्ता माता यथा पयः ॥ १९
मालाकारोपमो राजन्भव माऽऽङ्गारिकोपमः
तथायुक्तश्चिरं राज्यं भोक्तुं शक्ष्यसि पालयन्
परचक्राभियानेन यदि ते स्याद्धनक्षयः ।
अथ साम्नैव लिप्सेथा धनमब्राह्मणेषु यत् ॥
मा स्म ते ब्राह्मणं दृष्ट्वा धनस्थं प्रचलेन्मनः ।
अन्त्यायामप्यवस्थायां किमु स्फीतस्य भारत

---

### ७१

**कथमिति** । बह्वीनां प्रजानां परिपालनं कथं स्यादिति चिन्ता आधिः स एव बन्धस्तेन न युज्यते नापराध्नोति नान्यथा करोति धर्मे व्यवहारनिर्णयादौ एतद्द्वयं कथं स्यादिति प्रश्नः ॥१॥ उत्तरं वक्तुं प्रतिजानीते—**समासेनैवेति** ॥२॥ रागद्वेषहीनो ब्राह्मणान्पुरस्कृत्य व्यवहारनिर्णयं कुर्वन्धर्मेऽपि नापराध्नोतीति द्वितीयस्योत्तरमाह—**धर्मनिष्ठानिति चतुर्भिः** ॥३॥ विपक्षे दोषमाह—**कामेति** ॥७॥ आद्यस्योत्तरमाह—**मास्मेत्यादिना** । साधून्सर्वत्र कार्येषु नियोज्य स्वयं नाधिबन्धेन युज्यत इत्यर्थः ॥८॥ अयोगेन **योग** इष्टप्राप्तिस्तदभावेन ॥ ९ ॥ **बलिः** राजदेयं तदेव सस्यादेः षष्ठांशस्तेन बलिषष्ठेन **शुल्केन** शुद्धेन गणनादनाधिकेनेत्यर्थः । 'शुक्लं पूताम्लनिष्ठुरे' इति **मेदिनी** । **वेतनेन** पथि रक्षितैर्वणिग्भिर्यद्दत्तं तद्राज्ञो वेतनं सेवाधनं तेन च धनागमं लिप्सेत राजा ॥ १० ॥ धान्यादेः षष्ठांशे हृते शेषेण प्रजानां यदि वार्षिको ग्रासो न भवेत्तदा राजैव तासां योगक्षेमं कल्पयेदित्याह—**दापयित्वेति** ॥११॥ धर्मसहितान् अर्थान् धर्मार्थान् ॥ १४ ॥ अर्थमूलोऽर्थार्थी प्रजाः पीडयन् आत्मानमेव हिनस्तीत्युक्तं तत्र दृष्टान्तमाह—**ऊध इति** ॥ १६ ॥ दोग्ध्री पूरयित्री ॥ १९ ॥ आङ्गारिकः इङ्गालकर्ता ॥२०॥ * तथैनामिति-पा०

धनानि तेभ्यो दद्यास्त्वं यथाशक्ति यथार्हतः
सान्त्वयन्परिरक्षंश्च स्वर्गमाप्स्यसि दुर्जयम्
एवं धर्मेण वृत्तेन प्रजास्त्वं परिपालय ।
स्वन्तं पुण्यं यशो नित्यं प्राप्स्यसे कुरुनन्दन
धर्मेण व्यवहारेण प्रजाः पालय पाण्डव ।
युधिष्ठिर यथा युक्तो नाधिबन्धेन योक्ष्यसे ॥
एष एव परो धर्मो यद्राजा रक्षति प्रजाः ।
भूतानां हि यदा धर्मो रक्षणं परमा दया ॥
तस्मादेवं परं धर्मं मन्यन्ते धर्मकोविदाः ।
यो राजा रक्षणे युक्तो भूतेषु कुरुते दयाम् ॥
यदन्हा कुरुते पापमरक्षन्भयतः प्रजाः ।
राजा वर्षसहस्रेण तस्यान्तमधिगच्छति ॥
यदह्वा कुरुते धर्मं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
दशवर्षसहस्राणि तस्य भुङ्क्ते फलं दिवि ॥
स्विष्टिः स्वधीतिः सुतपा
लोकाञ्जयति यावतः ।
क्षणेन तानवाप्नोति
प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३०
एवं धर्मं प्रयत्नेन कौन्तेय परिपालय ।
ततः पुण्यफलं लब्ध्वा नाधिबन्धेन योक्ष्यसे
स्वर्गलोके सुमहतीं श्रियं प्राप्स्यसि पाण्डव
असंभवश्च धर्माणामीदृशानामराजसु ॥ ३२
तस्माद्राजैव नान्योऽस्ति यो धर्मफलमाप्नुयात्
स राज्यं धृतिमान्प्राप्य धर्मेण परिपालय ।
इन्द्रं तर्पय सोमेन कामैश्च सुहृदो जनान् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

## ७२

भीष्म उवाच ।
य एव तु सतो रक्षेदसतश्च निवर्तयेत् ।
स एव राज्ञा कर्तव्यो राजन् राजपुरोहितः
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुरूरवस ऐलस्य संवादं मातरिश्वनः ॥ २
पुरूरवा उवाच ।
कुतः स्विद्ब्राह्मणो जातो वर्णाश्चापि कुतस्त्रयः
कस्माच्च भवति श्रेष्ठस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
मातरिश्वोवाच ।
ब्राह्मणो मुखतः सृष्टो ब्रह्मणो राजसत्तम ।
बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्ट ऊरुभ्यां वैश्य एव च
वर्णानां परिचर्यार्थं त्रयाणां भरतर्षभ ।
वर्णश्चतुर्थः संभूतः पद्भ्यां शूद्रो विनिर्मितः *५
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामनुजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ६
अतः पृथिव्या यन्तारं क्षत्रियं दण्डधारणे ।
द्वितीयं दण्डमकरोत्प्रजानामनुगुप्तये ॥ ७
वैश्यस्तु धनधान्येन त्रीन्वर्णान्विभृयादिमान्
शूद्रो ह्येतान्परिचरेदिति ब्रह्मानुशासनम् ॥८
ऐल उवाच ।
द्विजस्य क्षत्रबन्धोर्वा कस्येयं पृथिवी भवेत् ।
धर्मतः सह वित्तेन सम्यग्वायो प्रचक्ष्व मे ॥९
वायुरुवाच ।
विप्रस्य सर्वमेवैतद्यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
ज्येष्ठेनाभिजनेनेह तद्धर्मकुशला विदुः ॥ १०
स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
गुरुर्हि सर्ववर्णानां ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च वै द्विजः ॥
पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम् ।
एष ते प्रथमः कल्प आपद्यन्यो भवेदतः ॥

यथा युक्तः उक्तेन प्रकारेण अवहितः ॥ २५ ॥ यो दयां कुरुते तं धर्मं मन्यन्ते इति योजना ॥ २७ ॥ स्वन्तं यातनाभोगनिष्क्रान्तिम् ॥ २८ ॥ स्विष्टिः स्वधीतिः सुतपा इति क्रमेण गृहस्थब्रह्मचारिवानप्रस्थधर्मान्सम्यगनुतिष्ठन् ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

७२

य इति । निवर्तयेत् राज्याद्दूरीकारयेत् ॥ १ ॥

* ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ इति श्रुतेः ।

यदि स्वर्गं परं स्थानं स्वधर्मं परिमार्गसि ।
यत्किञ्चिज्जयसे भूमिं ब्राह्मणाय निवेद्य ॥१३
श्रुतवृत्तोपपन्नाय धर्मज्ञाय तपस्विने ।
स्वधर्मपरितृप्ताय यो न वित्तपरो भवेत् ॥१४
यो राजानं नयेद्बुद्ध्या सर्वतः परिपूर्णया ।
ब्राह्मणो हि कुले जातः कृतप्रज्ञो विनीतवान्
श्रेयो नयति राजानं ब्रुवंश्चित्रां सरस्वतीम् ।
राजा चरति यं धर्मं ब्राह्मणेन निदर्शितम्।१६
शुश्रूषुरनहंवादी क्षत्रधर्मव्रते स्थितः ।
तावता सत्कृतः प्राज्ञश्चिरं यशसि तिष्ठति१७
तस्य धर्मस्य सर्वस्य भागी राजपुरोहितः ।
एवमेव प्रजाः सर्वा राजानमभिसंश्रिताः॥१८
सम्यग्वृत्ताः स्वधर्मस्था न कुतश्चिद्भयान्विताः
राष्ट्रे चरन्ति यं धर्मं राज्ञा साध्वभिरक्षिताः
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा भागं तु विन्दति ।
देवा मनुष्याः पितरो गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥
यज्ञमेवोपजीवन्ति नास्ति चेष्टमराजके ।
ततो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा॥२१
राजन्येवास्य धर्मस्य योगक्षेमः प्रतिष्ठितः ।
छायायामप्सु वायौ च सुखमुष्णेऽधिगच्छति
अग्नौ वाससि सूर्ये च सुखं शीतेऽधिगच्छति
शब्दे, स्पर्शे, रसे, रूपे, गन्धे च रमते मनः२३
तेषु भोगेषु सर्वेषु न भीतो लभते सुखम् ।
अभयस्य हि यो दाता तस्यैव सुमहत्फलम् ॥
न हि प्राणसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
इन्द्रो राजा यमो राजा धर्मो राजा तथैव च
राजा बिभर्ति रूपाणि राज्ञा सर्वमिदं धृतम्॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि *
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

भीष्म उवाच ।
राज्ञा पुरोहितः कार्यो भवेद्विद्वान्बहुश्रुतः।
उभौ समीक्ष्य धर्मार्थावप्रमेयावनन्तरम् ॥ १
धर्मात्मा मन्त्रविद्येषां राज्ञां राजन्पुरोहितः ।
राजा चैवंगुणो येषां कुशलं तेषु सर्वशः ॥ २
उभौ प्रजा वर्धयतो देवान्सर्वान्सुतान्पितॄन्
भवेयातां स्थितौ धर्मे श्रद्धेयौ सुतपस्विनौ ॥
परस्परस्य सुहृदौ विहितौ समचेतसौ ।
ब्रह्मक्षत्रस्य संमानात्प्रजा सुखमवाप्नुयात् ॥ ४
विमाननात्तयोरेव प्रजा नश्येयुरेव हि ।
ब्रह्मक्षत्रं हि सर्वेषां वर्णानां मूलमुच्यते ॥ ५
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऐलकश्यपसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ६
ऐल उवाच ।
यदा हि ब्रह्म प्रजहाति क्षत्रं
क्षत्रं यदा वा प्रजहाति ब्रह्म ।
अन्वग्बलं कतमेऽस्मिन्भजन्ते
तथा वर्णाः कतमेऽस्मिन्भ्रियन्ते ॥ ७
कश्यप उवाच ।
वृद्धं राष्ट्रं क्षत्रियस्य भवति
ब्रह्मक्षत्रं यत्र विरुद्ध्यतीह ।
अन्वग्बलं दस्यवस्तद्भजन्ते
तथा वर्णं तत्र विन्दन्ति सन्तः ॥ ८

---

छायायामिति । उष्णजं शीतजं च भयं छायादिना-ऽग्न्यादिना च नश्यति शब्दादिना च रमते अराजकभयाक्रान्तस्तु कुत्रापि सुखं न लभते इति श्लोकद्वयतात्पर्यम् ॥ २२ ॥ यत एवं अतः अभयदानमेव मुख्यं दानं तद्दातेन्द्रादिरूप एवेत्याह द्वाभ्यां—अभयस्येति ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नै०भा०भा० द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२ *श्लोकत्रयमाधिकं-ख

७३

राज्ञेति । अप्रमेयौ गहनौ अनन्तरं शीघ्रमेव पुरोहितः कार्यो भवेत् ॥ १ ॥ धर्मात्मेति । धर्मसाधकः ॥२॥ ब्रह्म कर्म, क्षत्रं कर्तृ, अनु पश्चात्प्रकाशमानं बलमन्वग्बलं यथा स्यात्तथाऽस्मिन्ब्रह्मक्षत्रान्यतरस्मिन् कतमे भजन्ते किं क्षत्रेण ब्रह्म बलवद्भवत्युत ब्रह्मणा क्षत्रमित्यर्थः ॥७॥ वृद्धं छिन्नं क्षत्रं कर्तृ तत्र क्षत्रे मन्तः वर्णं विन्दन्ति ब्राह्मणानामवमन्ता म्लेच्छजातीयोऽयं राजेत्यनुमानाज्जानन्ति यथोक्तं-
'भोगेन ज्ञायते कर्म कर्मणा ज्ञायते जनिः'इति

नैषां ब्रह्म च वर्धते नोत पुत्रा
न गर्गेरो मथ्यते नो जयन्ते ।
नैषां पुत्रा वेदमधीयते च
यदा ब्रह्म क्षत्रियाः सन्त्यजन्ति ॥ ९
नैषामर्थो वर्धते जातु गेहे
नाधीयते सुप्रजा नो यजन्ते ।
अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति
ये ब्राह्मणान्क्षत्रियाः सन्त्यजन्ति ॥
एतौ हि नित्यं संयुक्तावितरेतरधारणे ।
क्षत्रं वै ब्रह्मणो योनिर्योनिः क्षत्रस्य वै द्विजाः
उभावेतौ नित्यमभिप्रपन्नौ
संप्रापतुर्महतीं संप्रतिष्ठाम् ।
तयोः सन्धिर्भिद्यते चेत्पुराण-
स्ततः सर्वं भवति हि संप्रमूढम् ॥ १२
नात्र पारं लभते पारगामी
महागाधे नौरिव संप्रपन्ना ।
चातुर्वर्ण्यं भवति हि संप्रमूढं
प्रजास्ततः क्षयसंस्था भवन्ति ॥ १३
ब्रह्मवृक्षो रक्ष्यमाणो मधु हेम च वर्षति ।
अरक्ष्यमाणः सततमश्रु पापं च वर्षति ॥ १४
न ब्रह्मचारी चरणादपेतो
यदा ब्रह्म ब्रह्मणि त्राणमिच्छेत् ।
आश्चर्यतो वर्षति तत्र देव-
स्तत्राभीक्ष्णं दुःसहाश्चाविशन्ति ॥१५
स्त्रियं हत्वा ब्राह्मणं वाऽपि पापः
सभायां यत्र लभतेऽनुवादम् ।
राज्ञः सकाशे न बिभेति चापि
ततो भयं विद्यते क्षत्रियस्य ॥ १६
पापैः पापे क्रियमाणे हि चैल
ततो रुद्रो जायते देव एषः ।
पापैः पापाः सञ्जनयन्ति रुद्रं
ततः सर्वान्साध्वसाधून्हिनस्ति ॥१७
ऐल उवाच ।
कुतो रुद्रः कीदृशो वाऽपि रुद्रः
सत्त्वैः सत्त्वं दृश्यते वध्यमानम् ।
एतत्सर्वं कश्यप मे प्रचक्ष्व
कुतो रुद्रो जायते देव एषः ॥ १८
कश्यप उवाच ।
आत्मा रुद्रो हृदये मानवानां
स्वं स्वं देहं परदेहं च हन्ति ।
वातोत्पातैः सदृशं रुद्रमाहु-
र्दैवैर्जीमूतैः सदृशं रूपमस्य ॥ १९
ऐल उवाच ।
न वै वातः परिवृणोति कञ्चि-
न्न जीमूतो वर्षति नापि देवः ।
तथायुक्तो दृश्यते मानुषेषु
कामद्वेषाद्बध्यते मुह्यते च ॥ २०
कश्यप उवाच ।
यथैकगेहे जातवेदाः प्रदीप्तः
कृत्स्नं ग्रामं दहते चत्वरं वा ।
विमोहनं कुरुते देव एष
ततः सर्वं स्पृशते पुण्यपापैः ॥ २१

---

अपध्वस्ताः सङ्करजा इव कंमादिवत् सार्धश्लोकः ॥ ९ ॥ अभिप्रपन्नौ अन्योन्यशरणौ क्षत्रशरणं ब्रह्म तपस्यति ब्रह्मशरणं क्षत्रं जयतीति भावः ॥ १२ ॥ अत्र ब्रह्मक्षत्रयोर्वियोगे संप्रपन्ना विपन्ना ॥ १३ ॥ मधु सुखं अश्रु दुःखं पापं नरकम् ॥ १४ ॥ न क्षत्रियं ब्रह्म ब्राह्मणजातिर्ब्रह्मचारी चरणात् अधीतशाखातः अपेतः दस्युभिर्वारितः सन्ब्रह्मणि वेदेऽध्येतव्ये त्राणं रक्षणं इच्छेत् । रक्षितुरभावात्तदा देवस्तत्र आश्चर्यतो वर्षति तत्र वर्षं अत्यन्तं दुर्लभमित्यर्थः । दुःसहाः मारी-दुर्भिक्षादयः । अब्रह्मचारी नाश्चर्यत इति च पाठे ब्रह्मचरणादपेतत्वादब्रह्मचारी वेदाध्ययनशून्यः सन् त्राणमिच्छेत्तर्हि तत्राश्चर्यतोऽपि न वर्षतीति योज्यम् ॥१५॥ स्त्रियं ब्राह्मणं वापि हत्वाऽनुवादं प्रशंसाम् ॥ १६ ॥ रुद्रः हिंस्रः देवो राजा रुद्रं कलिम् ॥ १७ ॥ कुतो राज्ञो रुद्रत्वमिति पृष्टे आह—आत्मेति । मानवानां हृदये य आत्मा जीवोऽस्ति स एव रुद्रः संहर्ता भवति । यथा च ग्रहाविष्टस्य शरीरं देहस्वामिनः स्वं न भवति किं तु तदानीं तद्ग्रहस्यैव स्वं एवं रुद्रावेशकाले नृपस्य शरीरं रौद्रमेव भवतीत्यर्थः । ननु कुतः शान्तस्यात्मनो रुद्रत्वमत आह—वातेति । यथा उत्पातवातः आकाशोत्थ आकाशोत्थां मेघदेवतां इतस्ततो नयति गर्जयति विद्युद्दर्शनिवारीणि च तत आविर्भावयत्येवं आत्मोत्थितं जीवमात्मोत्थिताः कामक्रोधादयः सर्वं हिंस्रं कारयन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ इदमाक्षिपति—न वा इति । यथा आकाशेन युक्तास्ततः पृथग्भूताः वातो मेघाश्च मेघप्रवर्तकदेवता च प्रत्यक्षेण शास्त्रज्ञानेन च दृश्यन्ते नैवं जीवो वा तदभिभावकः कामादिर्वा पृथक् दृश्यते किं तु आत्मन्येव वह्न्यौष्ण्यवत्कामद्वेषौ वर्तेते तौ चैतस्य सम्बन्धकौ मोहकौ च भवत इत्यर्थः ॥ २० ॥ अत्रोत्तरमाह—यथेति । यथाऽल्पोऽपि वह्निराधिकमधिकं काष्ठभारमुपारुह्य कृत्स्नं ग्रामं दहति तत्र न केवलं काष्ठानां दाहकत्वं नापि काष्ठान्यनुपारूढस्याग्नेः किं तु तदुभयसङ्घातस्यैव । तत्रापि

ऐल उवाच।
यदि दण्डः स्पृशतेऽपुण्यपापं
पापं पापे क्रियमाणे विशेषात्।
कस्य हेतोः सुकृतं नाम कुर्या-
द्दुष्कृतं वा कस्य हेतोर्न कुर्यात् ॥ २२
कश्यप उवाच।
असंयोगात्पापकृतामपापां-
स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावा-
न्न मिश्रः स्यात्पापकृद्भिः कथंचित् ॥
ऐल उवाच।
साध्वसाधून्धारयतीह भूमिः
साध्वसाधूंस्तापयतीह सूर्यः।
साध्वसाधूंश्चापि वातीह वायु-
रापस्तथा साध्वसाधून्पुनन्ति ॥ २४
कश्यप उवाच।
एवमस्मिन्वर्तते लोक एष
नामुत्र वर्तते राजपुत्र।
प्रेत्यैतयोरन्तरवान्विशेषो
यो वै पुण्यं चरते यश्च पापम् ॥ २५
पुण्यस्य लोको मधुमान्घृतार्चि-
र्हिरण्यज्योतिरमृतस्य नाभिः।
तत्र प्रेत्य मोदते ब्रह्मचारी
न तत्र मृत्युर्न जरा नोत दुःखम् २६
पापस्य लोको निरयोऽप्रकाशो
नित्यं दुःखं शोकभूयिष्ठमेव।
तत्रात्मानं शोचति पापकर्मा
बह्वीः समाः प्रतपन्नप्रतिष्ठः ॥ २७
मिथो भेदाद्ब्राह्मणक्षत्रियाणां
प्रजा दुःखं दुःसहं चाविशन्ति।
एवं ज्ञात्वा कार्य एवेह नित्यं
पुरोहितो नैकविद्यो नृपेण ॥ २८
तं चैवान्वभिषिञ्चेत तथा धर्मो विधीयते।
अग्रं हि ब्राह्मणः प्रोक्तं सर्वस्यैवेह धर्मतः २९
पूर्वं हि ब्राह्मणः सृष्टिरिति ब्रह्मविदो विदुः।
ज्येष्ठेनाभिजनेनास्य प्राप्तं पूर्वं यदुत्तरम् ३०
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च
ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक्।
सर्वं श्रेष्ठं विशिष्टं च
निवेद्यं तस्य धर्मतः ॥ ३१
अवश्यमेव कर्तव्यं राज्ञा बलवताऽपि हि।
ब्रह्म वर्धयति क्षत्रं क्षत्रतो ब्रह्म वर्धते।
एवं राज्ञा विशेषेण पूज्या वै ब्राह्मणाः सदा

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि ऐलकश्यपसंवादे×
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

विवेके क्रियमाणे वह्नेरेव उपाध्यावेशाद्दाहकत्वम्। एवं आत्मानमारुह्याहङ्कारवह्निः कामक्रोधादिवातैरुद्दीपितो रुद्रत्वं प्रतिपद्यते। ततश्च अयो दहति एधांसि पचन्तीतिवत् अहङ्कारेण कृतं आत्मन्युपचर्यते मोहात्तेन च सर्वं जगदसङ्गमपि जलचन्द्रन्यायेन पुण्यैः पापैश्च स्पृश्यते तत्त्वालोचने त्वसङ्ग एवात्मेत्यर्थः ॥ २१ ॥ अत्र शङ्कते—**यदीति**। अपुण्यपापमपि आत्मानं यदि विशेषात् क्रियमाणे पापे निमित्तभूते सति दण्डः पापं दण्डात्मकं पापं गालनताडनादिदुःखं कर्तृ, स्पृशते मोहादिति ब्रवीषि तर्हि पुण्यकरणं पापवर्जनं च शास्त्रचोदितं वृथैव स्यात्। आत्मनि वास्तवदुःखाभावस्य सिद्धत्वात्तदर्थं साधनोपादानं व्यर्थं स्यादिति भावः ॥ २२ ॥ आत्माहङ्कारयोर्मिश्रीभावादहङ्कारगतं दुःखमात्मनि प्रतीयते अतोऽहङ्कारत्यागान्न किञ्चिदात्मनो दुःखमस्तीत्युत्तरयति—**असंयोगादिति** ॥२३॥ अहंकर्त्रादीन् अधिष्ठानभूत आत्मा भूमिसूर्यादिवदसङ्ग एव सन्धारयतु प्रकाशयतु। वाय्वंबुवच्चालयतु स्वसत्तया आप्याययतु वा कस्तत्रात्मन सम्बन्धोऽहङ्कारधर्मेण रुद्रत्वेनात आत्मा रुद्र इत्युक्तमयुक्तमित्याक्षेपः ॥ २४ ॥ तत्त्वदृष्ट्या यद्यप्येवमेव तथापि ऐहिकामुष्मिकव्यवहारदृष्ट्याऽस्त्येवात्मनो रुद्रत्वमित्युत्तरयति- **एवमस्मिन्नित्यादिना**। एष एवंरूपोऽर्थः। अस्मिन्प्रत्यगात्मनि लोके लोक्यत इति लोको दर्शनं तत्र विषये वर्तते सिद्धान्तोऽस्ति न तु अमुत्र परलोकविषये एवं दर्शनं वर्तते किं तर्हि अमुत्र वर्तते यः पापं चरते यश्च पुण्यं, एतयोः प्रेत्य मरणानन्तरं विशेषोऽस्ति स चान्तरवानन्तरोहितः शास्त्रैकगम्यो धर्माधर्मफले इत्यर्थः ॥ २५ ॥ शास्त्रमेवाह द्वाभ्या—**पुण्यस्येति** ॥ २६ ॥ प्रकृतमनुसरति- **मिथ इति**। नैकविद्यो बहुविद्यः ॥२८॥ तं पुरोहितं कृत्वा अनु० पश्चादात्मानं राज्येऽभिषिञ्चेत् ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥× अस्मिन्नध्यायेऽष्टात्रिंशच्छ्लोका अधिकाः।

## ७४

भीष्म उवाच ।

योगक्षेमो हि राष्ट्रस्य राजन्यायत्त उच्यते
योगक्षेमो हि राज्ञो हि समायत्तः पुरोहिते १
यत्रादृष्टं भयं ब्रह्म प्रजानां शमयत्युत ।
दृष्टं च राजा बाहुभ्यां यद्राज्यं सुखमेधते २
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मुचुकुन्दस्य संवादं राज्ञो वैश्रवणस्य च ३
मुचुकुन्दो विजित्येमां पृथिवीं पृथिवीपतिः ।
जिज्ञासमानः स्वबलमुपेयादलकाधिपम् ॥ ४
ततो वैश्रवणो राजा राक्षसानसृजत्तदा ।
ते बलान्यवमृद्नन्त मुचुकुन्दस्य नैर्ऋताः ५
स हन्यमाने सैन्ये स्वे मुचुकुन्दो नराधिपः ।
गर्हयामास विद्वांसं पुरोहितमरिन्दमः ॥ ६
तत उग्रं तपस्तप्त्वा वासिष्ठो धर्मवित्तमः ।
रक्षांस्युपावधीत्तस्य पन्थानं चाप्यविंदत ७
ततो वैश्रवणो राजा मुचुकुन्दमदर्शयत् ।
वध्यमानेषु सैन्येषु वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८

धनद उवाच ।

बलवन्तरस्त्वया पूर्वे राजानः सपुरोहिताः
न चैवं समवर्तन्त यथा त्वमिह वर्तसे ॥ ९
ते खल्वपि कृतास्त्राश्च बलवन्तश्च भूमिपाः ।
आगम्य पर्युपासन्ते मामीशं सुखदुःखयोः ॥
यद्यस्ति बाहुवीर्यं ते तद्दर्शयितुमर्हसि ।
किं ब्राह्मणबलेन त्वमतिमात्रं प्रवर्तसे ॥ ११
मुचुकुन्दस्ततः क्रुद्धः प्रत्युवाच धनेश्वरम् ।
न्यायपूर्वमसंरब्धमसंभ्रान्तमिदं वचः ॥ १२
ब्रह्मक्षत्रमिदं सृष्टमेकयोनि स्वयंभुवा ।
पृथग्बलविधानं तन्न लोकं परिपालयेत् १३
तपो मन्त्रबलं नित्यं ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठितम् ।
अस्त्रबाहुबलं नित्यं क्षत्रियेषु प्रतिष्ठितम् १४
ताभ्यां संभूय कर्तव्यं प्रजानां परिपालनम् ।
तथा च मां प्रवर्तन्तं किं गर्हस्यलकाधिप १५
ततोऽब्रवीद्वैश्रवणो राजानं सपुरोहितम् ।
नाहं राज्यमनिर्दिष्टं कस्मैचिद्विदधाम्युत १६
नाच्छिन्दे चाप्यनिर्दिष्ट-
मिति जानीहि पार्थिव ।
प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां
मद्दत्तामखिलामिमाम् ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच
मुचुकुन्दो महीपतिः ॥ १७

मुचुकुन्द उवाच ।

नाहं राज्यं भवद्दत्तं भोक्तुमिच्छामि पार्थिव ।
बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये १८

भीष्म उवाच

ततो वैश्रवणो राजा विस्मयं परमं ययौ ।
क्षत्रधर्मे स्थितं दृष्ट्वा मुचुकुन्दमसंभ्रमम् ॥ १९
ततो राजा मुचुकुन्दः सोऽन्वशासद्वसुन्धराम्
बाहुवीर्यार्जितां सम्यक्क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ २०
एवं यो धर्मविद्राजा ब्रह्मपूर्वं प्रवर्तते ।
जयत्यविजितामुर्वीं यशश्च महदश्नुते ॥ २१
नित्योदकी ब्राह्मणः स्यान्नित्यशस्त्रश्च क्षत्रियः
तयोर्हि सर्वमायत्तं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् २२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि मुचुकुन्दोपाख्याने×
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

---

७४

**योगेति** ॥ १ ॥ अदृष्टं अनावृष्ट्यादिजं ब्रह्म ब्राह्मणः दृष्टं परचक्रादिजम् ॥ २ ॥ असृजत् अतिसृष्टवान् आज्ञापितवानिति यावत् ॥ ५ ॥ तस्य मुचुकुन्दस्य पन्थानं गतिं मार्गं अविन्दत ज्ञातवान् ॥ ७ ॥ अनिर्दिष्टं ईश्वरेणाननुज्ञातं विदधामि ददामि ॥ १६ ॥ नाच्छिन्दे न हरामि च अखिलां खिलरहिताम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

× अस्मिन्नध्याये श्लोकत्रयमाधिकम् ।

# ७५

युधिष्ठिर उवाच ।

यथा वृत्त्या महीपालो
विवर्धयति मानवान् ।
पुण्यांश्च लोकान् जयति
तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

दानशीलो भवेद्राजा यज्ञशीलश्च भारत ।
उपवासतपःशीलः प्रजानां पालने रतः २
सर्वाश्चैव प्रजा नित्यं राजा धर्मेण पालयन् ।
उत्थानेन प्रदानेन पूजयेच्चापि धार्मिकान् ३
राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते ।
यद्यदाचरते राजा तत्प्रजानां स्म रोचते ४
नित्यमुद्यतदण्डश्च भवेन्मृत्युरिवारिषु ।
निहन्यात्सर्वतो दस्यून्न कामात्कस्यचित्क्षमेत्
यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा भारत विन्दति ६
यदधीते यद्ददाति यज्जुहोति यदर्चति ॥
राजा चतुर्थभाक्तस्य प्रजा धर्मेण पालयन् ७
यद्राष्ट्रेऽकुशलं किञ्चिद्राज्ञो रक्षयतः प्रजाः ।
चतुर्थं तस्य पापस्य राजा भारत विन्दति ८
अप्याहुः सर्वमेवेति भूयोऽर्धमिति निश्चयः ।
कर्मणः पृथिवीपाल नृशंसोऽनृतवागपि ॥ ९
तादृशात्किल्बिषाद्राजा शृणु येन प्रमुच्यते ।
प्रत्याहर्तुमशक्यं स्याद्धनं चोरैर्हृतं यदि ।
तत्स्वकोशात्प्रदेयं स्यादशक्तेनोपजीवतः ॥
सर्ववर्णैः सदा रक्ष्यं ब्रह्मस्वं ब्राह्मणा यथा ।
न स्थेयं विषये तेन योऽपकुर्याद् द्विजातिषु
ब्रह्मस्वे रक्ष्यमाणे तु सर्वं भवति रक्षितम् ।
तस्मात्तेषां प्रसादेन कृतकृत्यो भवेन्नृपः ॥ १२
पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिव द्विजाः ।
नरास्तमुपजीवन्ति नृपं सर्वार्थसाधकम् १३
न हि कामात्मना राज्ञा सततं कामबुद्धिना ।
नृशंसेनातिलुब्धेन शक्यं पालयितुं प्रजाः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

नाहं राज्यसुखान्वेषी
राज्यमिच्छाम्यपि क्षणम् ।
धर्मार्थं रोचये राज्यं
धर्मश्चात्र न विद्यते ॥ १५
तदलं मम राज्येन यत्र धर्मो न विद्यते ।
वनमेव गमिष्यामि तस्माद्धर्मचिकीर्षया १६
तत्र मेध्येष्वरण्येषु न्यस्तदण्डो जितेन्द्रियः ।
धर्ममाराधयिष्यामि मुनिर्मूलफलाशनः १७

भीष्म उवाच ।

वेदाहं तव या बुद्धिरानृशंस्याऽगुणैव सा ।
न च शुद्धा नृशंसेन शक्यं राज्यमुपासितुम्
अपि तु त्वां मृदुप्रज्ञमत्यार्यमतिधार्मिकम् ।
क्लीबं धर्मघृणायुक्तं न लोको बहु मन्यते ॥ १९
वृत्तं तु स्वमपेक्षस्व पितृपैतामहोचितम् ।
नैव राज्ञां तथावृत्तं यथा त्वं स्थातुमिच्छसि
न हि वैक्लव्यसंसृष्टमानृशंस्यमिहास्थितः ।
प्रजापालनसंभूतमाप्ता धर्मफलं ह्यसि ॥ २१
न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न च कुन्ती त्वयाचत ।
*तथैतत्प्रज्ञया तात यथाऽऽचरसि मेधया २२
शौर्यं बलं च सत्यं च पिता तव सदाऽब्रवीत्
माहात्म्यं च महौदार्यं भवतः कुन्त्ययाचत ॥
नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं चोभे मानुषदैवते
पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च २४
दानमध्ययनं यज्ञं प्रजानां परिपालनम् ।
धर्ममेतदधर्मं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः ॥ २५

---

७५

एवं कृतपुरोहितो राजा कथं प्रजावृद्ध्या परलोकं जयेदिति पृच्छति—**यथेति** ॥ १ ॥ तत्र प्रजावृद्धिप्रकारमाह-**दानेति** ॥ २ ॥ उत्थानेन नित्योद्योगेन ॥ ३ ॥ परलोकजयप्रकारमाह **यं हीति** ॥६॥ यदधीते ब्राह्मणादिः ॥ ७ ॥ विपक्षे दोषमाह—**यद्राष्ट्र इति** । अकुशलमिति च्छेदः ॥ ८ ॥ नृशंसोऽनृतवाक् च यत्कर्म करोति तस्य कर्मणः सर्वं यस्ततो भूयो वा पापमाप्नोतीत्यन्ये आहुर्निश्चयस्त्वर्धमित्यर्थः ॥ ९ ॥ अशक्तेन राज्ञा उपजीवितः धनोपजीविनो वणिजादेः सार्धः ॥१०॥ **नाहमिति**- अत्र राज्ये पुण्यस्य चतुर्थांशः पापस्य त्वर्धं कृत्स्नं वा लभ्यत इति पापाधिक्याद्धर्मो नास्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥ आनृशंस्या परदुःखापहा सा चात्र राजधर्मेषु दस्युवधप्रधानेषु अगुणैव ॥ १८ ॥ घृणा कृपा ॥ १९ ॥ आप्तासि प्राप्स्यसि ॥ २१ ॥ एतद्दानादिकं धर्मं अधर्मं वा धर्म्यमधर्म्यं वाऽस्तु तथापि तत्त्वं तु जन्मनैव त्वं जातोऽसि तथा च ' श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः ' इति न्यायेन तव तं विना गतिर्नास्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥ *तवैतां प्राज्ञताम्-पा०

काले धुरि च युक्तानां वहतां भारमाहितम्
सीदतामपि कौन्तेय न कीर्तिरवसीदति २६
समन्ततो विनियतो वहत्यस्खलितो हयः ।
निर्दोषः कर्मवचनात्सिद्धिः कर्मण एव सा ॥
नैकान्तविनिपातेन विचचारेह कश्चन ।
धर्मी गृही वा राजा वा ब्रह्मचारी यथा पुनः
अल्पं हि सारभूयिष्ठं यत्कर्मोदारमेव तत् ।
कृतमेवाकृताच्छ्रेयो न पापीयोऽस्त्यकर्मणः ॥
यदा कुलीनो धर्मज्ञः प्राप्नोत्यैश्वर्यमुत्तमम् ।
योगक्षेमस्तदा राज्ञः कुशलायैव कल्पते ३०
दानेनान्यं बलेनान्यमन्यं सूनृतया गिरा ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥
यं हि वैद्याः कुले जाता ह्यवृत्तिभयपीडिताः
प्राप्य तृप्ताः प्रतिष्ठन्ति धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः

युधिष्ठिर उवाच ।
किं तात परमं स्वर्ग्यं का ततः प्रीतिरुत्तमा
किं ततः परमैश्वर्यं ब्रूहि मे यदि पश्यसि ३३

भीष्म उवाच ।
यस्मिन्भयार्दितः सम्यक्
क्षेमं विन्दत्यपि क्षणम् ।
स स्वर्गजित्तमोऽस्माकं
सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३४
त्वमेव प्रीतिमांस्तस्मात्कुरूणां कुरुसत्तम ।
भव राजा जय स्वर्गं सतो रक्षासतो जहि
अनु त्वां तात जीवन्तु सुहृदः साधुभिः सह ।
पर्जन्यमिव भूतानि स्वादुद्रुममिव द्विजाः ॥
धृष्टं शूरं प्रहर्तारमनृशंसं जितेन्द्रियम् ।
वत्सलं संविभक्तारमुपजीवन्ति तं नराः ३७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि *
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

युधिष्ठिर उवाच ।
स्वकर्मण्यपरे युक्तास्तथैवान्ये विकर्मणि ।
तेषां विशेषमाचक्ष्व ब्राह्मणानां पितामह १

भीष्म उवाच ।
विद्यालक्षणसंपन्नाः सर्वत्र समदर्शिनः ।
एते ब्रह्मसमा राजन् ब्राह्मणाः परिकीर्तिताः
ऋग्यजुःसामसंपन्नाः स्वेषु कर्मस्ववस्थिताः ॥
एते देवसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत ३
जन्मकर्मविहीना ये कदर्या ब्रह्मबन्धवः ।
एते शूद्रसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत ४
अश्रोत्रियाः सर्व एव
सर्वे चानाहिताग्नयः ।
तान् सर्वान् धार्मिको राजा
बलिं विष्टिं च कारयेत् ॥ ५
आह्वायका देवलका नाक्षत्रा ग्रामयाजकाः
एते ब्राह्मणचाण्डाला महापथिकपञ्चमाः ६

---

**समन्तत इति** । शिक्षितोऽश्वोऽपि सम्यग्वहति किमुत त्वं मानुष इत्यर्थः ॥२७॥ धर्मी धर्मवानेकान्तविनिपातेन अत्यन्ताभिनिवेशेन धर्मं कश्चिदपि न विचचार सूक्ष्मस्या-धर्मस्यापरिहार्यत्वादिति भावः ॥ २८ ॥ अल्पं दुष्टं हिंसामयत्वात्तुच्छमपि बहुजनसुखहेतुत्वात्सारभूयिष्ठं ॥२९॥ ऐश्वर्यं साम्राज्याधिकारम् ॥३०॥ प्रतिगृह्णीयात् वशीकुर्यात् ॥ ३१ ॥ दरिद्रैस्यतर्पणात् भयार्दितत्राणं महान्धर्म इत्याह-यस्मिन्निति ॥३४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

*एकः श्लोकः अधिकः ।

७६

**स्वकर्मणीति**॥१॥ लक्षणानि शमो दमस्तपःशौच-मित्यादीनि ॥२॥ जन्मकर्म जन्मोचितकर्म तेन विहीनाः ॥ ४ ॥ बलिं करदानं विष्टिं विना वेतनं राजसेवाम् ॥ ५ ॥ आह्वायकाः धर्माधिकारिणः देवलकाः वेतनेन देवपूजाकर्तारः महापथिकः समुद्रे नौयानेन गच्छन् यद्वा महापथि शुल्कग्राहकः ॥ ६ ॥

ऋत्विक् पुरोहितो मन्त्री दूतो वार्तानुकर्षकः
एते क्षत्रसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत ७
अश्वारोहा गजारोहा रथिनोऽथ पदातयः ।
एते वैश्यसमा राजन् ब्राह्मणानां भवन्त्युत ८
एतेभ्यो बलिमादद्याद्धीनकोशो महीपतिः ।
ऋते ब्रह्मसमेभ्यश्च देवकल्पेभ्य एव च ॥ ९
अब्राह्मणानां वित्तस्य स्वामी राजेति वैदिकम्
ब्राह्मणानां च ये केचिद्विकर्मस्था भवन्त्युत ॥

विकर्मस्थाश्च नोपेक्ष्या विप्रा राज्ञा कथंच
नियम्याः संविभज्याश्च धर्मानुग्रहकार
यस्य स्म विषये राजन्स्तेनो भवति वै
राज्ञ एवापराधं तं मन्यन्ते तादृशो जन
अवृत्त्या यो भवेत्स्तेनो वेदवित्स्नातकस
राजन्स राज्ञा भर्तव्य इति वेदविदो वि
स चेन्नोपरिवर्तेत कृतवृत्तिः परंतप ।
ततो निर्वासनीयः स्यात्तस्माद्देशात्सबा

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि*
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

युधिष्ठिर उवाच ।
केषां प्रभवते राजा वित्तस्य भरतर्षभ ।
कया च वृत्त्या वर्तेत तन्मे ब्रूहि पितामह ॥
भीष्म उवाच ।
अब्राह्मणानां वित्तस्य स्वामी राजेति वैदिकं
ब्राह्मणानां च ये केचिद्विकर्मस्था भवन्त्युत ॥
विकर्मस्थाश्च नोपेक्ष्या विप्रा राज्ञा कथञ्चन
इति राज्ञां पुरावृत्तमभिजल्पन्ति साधवः ॥
यस्य स्म विषये राज्ञः स्तेनो भवति वै द्विजः
राज्ञ एवापराधं तं मन्यन्ते किल्बिषं नृप ॥
अभिशस्तमिवात्मानं मन्यन्ते येन कर्मणा ।
तस्माद्राजर्षयः सर्वे ब्राह्मणानन्वपालयन् ॥ ५
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गीतं कैकेयराजेन ह्रियमाणेन रक्षसा ॥ ६
केकयानामधिपतिं रक्षो जग्राह दारुणम् ।
स्वाध्यायेनान्वितं राजन्नरण्ये संशितव्रतम् ॥
राजोवाच ।
न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नायज्वा मामकान्तरमाविशः
न च मे ब्राह्मणोऽविद्वान्नाव्रती नाप्यसोमपः ।

नानाहिताग्निर्नायज्वा मामकान्तरमाविशः
नानाप्रदक्षिणैर्यज्ञैर्यजन्ते विषये मम ।
नाधीते नाव्रती कश्चिन्मामकान्तरमाविशः ॥
अधीयन्तेऽध्यापयन्ति यजन्ते याजयन्ति च
ददति प्रतिगृह्णन्ति षट्सु कर्मस्ववस्थिताः ॥ ११
पूजिताः संविभक्ताश्च मृदवः सत्यवादिनः ।
ब्राह्मणा मे स्वकर्मस्था मामकान्तरमाविशः ॥
न याचन्ति प्रयच्छन्ति सत्यधर्मविशारदाः ।
नाध्यापयन्त्यधीयन्ते यजन्ते याजयन्ति न ॥
ब्राह्मणान्परिरक्षन्ति संग्रामेष्वपलायिनः ।
क्षत्रिया मे स्वकर्मस्था मामकान्तरमाविशः ॥
कृषि-गोरक्ष-वाणिज्यमुपजीवन्त्यमायया ।
अप्रमत्ताः क्रियावन्तः सुव्रताः सत्यवादिनः
संविभागं दमं शौचं सौहृदं च व्यपाश्रिताः
मम वैश्याः स्वकर्मस्था मामकान्तरमाविशः
त्रीन्वर्णानुपजीवन्ति यथावदनसूयकाः ।
मम शूद्राः स्वकर्मस्था मामकान्तरमाविशः ॥
कृपणानाथवृद्धानां दुर्बलातुरयोषिताम् ।
संविभक्ताऽस्मि सर्वेषां मामकान्तरमाविशः

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ *त्रयोदश श्लोका अधिकाः ।

७७

केषामिति ॥ १ ॥ येन ब्राह्मणानामपालनेन ॥५॥ मामकान्तरमाविशः मदीयाभ्यन्तरं त्वमाविष्टवान् कुत इति शेषः ॥ ८ ॥ [illegible] न्तीति प्रतिग्रहादिर्शाविकोपायान्निवृत्ताः ॥१३॥

कुलदेशादिधर्माणां प्रथितानां यथाविधि ।
अव्युच्छेत्ताऽस्मि सर्वेषां मामकान्तरमाविशः
तपस्विनो मे विषये पूजिताः परिपालिताः
संविभक्ताश्च सत्कृत्य मामकान्तरमाविशः ॥
नासंविभज्य भोक्तास्मि नाविशामि परस्त्रियं
स्वतन्त्रो जातु न क्रीडे मामकान्तरमाविशः
नाब्रह्मचारी भिक्षावान्भिक्षुर्वाऽब्रह्मचर्यवान्
अनृत्विजा हुतं नास्ति मामकान्तरमाविशः॥
नावजानाम्यहं वैद्यान्न वृद्धान्न तपस्विनः।
राष्ट्रे स्वपति जागर्मि मामकान्तरमाविशः ॥
आत्मविज्ञानसंपन्नस्तपस्वी सर्वधर्मवित् ।
स्वामी सर्वस्य राष्ट्रस्य धीमान्मम पुरोहितः
दानेन विद्यामभिवाञ्छयामि
सत्येनार्थं ब्राह्मणानां च गुप्त्या ।
शुश्रूषया चापि गुरूनुपैमि
न मे भयं विद्यते राक्षसेभ्यः ॥ २५
न मे राष्ट्रे विधवा ब्रह्मबन्धु-
र्न ब्राह्मणः कितवो नोत चोरः ।
अयाज्ययाजी न च पापकर्मा
न मे भयं विद्यते राक्षसेभ्यः ॥ २६

न मे शस्त्रैरनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ।
धर्मार्थं युध्यमानस्य मामकान्तरमाविशः ॥
गोब्राह्मणेभ्यो यज्ञेभ्यो नित्यं स्वस्त्ययनं मम
आशासते जना राष्ट्रे मामकान्तरमाविशः॥*

राक्षस उवाच ।

यस्मात्सर्वास्ववस्थासु धर्ममेवान्ववेक्षसे ।
तस्मात्प्राप्नुहि कैकेय गृहं स्वस्ति व्रजाम्यहम्
येषां गोब्राह्मणं रक्ष्यं प्रजा रक्ष्याश्च कैकय ।
न रक्षोभ्यो भयं तेषां कुत एव तु पावकात्
येषां पुरोगमा विप्रा
येषां ब्रह्मपरं बलम् ।
अतिथिप्रियास्तथा पौरा-
स्ते वै स्वर्गजितो नृपाः ॥ ३१

भीष्म उवाच ।

तस्माद्द्विजातीन् रक्षेत ते हि रक्षन्ति रक्षिताः
आशीरेषां भवेद्राजन् राज्ञां सम्यक्प्रवर्तताम्
तस्माद्राज्ञा विशेषेण विकर्मस्था द्विजातयः ।
नियम्याः संविभज्याश्च तदनुग्रहकारणात् ॥
एवं यो वर्तते राजा पौरजानपदेष्विह ।
अनुभूयेह भद्राणि प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ३४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कैकेयोपाख्याने *
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

युधिष्ठिर उवाच ।

व्याख्याता राजधर्मेण वृत्तिरापत्सु भारत
कथं स्विद्वैश्यधर्मेण संजीवेद्ब्राह्मणो न वा ॥१

भीष्म उवाच ।

अशक्तः क्षत्रधर्मेण वैश्यधर्मेण वर्तयेत् ।
कृषिगोरक्ष्यमास्थाय व्यसने वृत्तिसंक्षये ॥ २

युधिष्ठिर उवाच ।

कानि पण्यानि विक्रीय स्वर्गलोकान्न हीयते
ब्राह्मणो वैश्यधर्मेण वर्तयन्भरतर्षभ ॥ ३

भीष्म उवाच ।

सुरा लवणमित्येव तिलान्केसारिणः पशून्
वृषभान्मधुमांसं च कृतान्नं च युधिष्ठिर ॥ ४

---

स्वपति स्वापं कुर्वति सति ॥ २३ ॥ वांछयामि वाञ्छामि ॥२५॥ अध्यायतात्पर्यं संगृह्णाति-**येषामिति** ॥ ३० ॥
इति श्रीमहाभारते राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

* मा ममान्तरमाविशः-पा० * अष्टौ श्लोका आधिकाः ।

७८

**व्याख्याता** ब्राह्मणस्येति शेषः । **राजधर्मेणेति**। शस्त्रधारणादिना वृत्तिर्जीविका । आपदि विकर्मस्थोऽपि ब्राह्मणादिर्न राज्ञः पाप्मा भवतीति भावः ॥ १ ॥ नवेद्ब्राह्मणः ॥ २ ॥ केसारिणः अश्वान् पशून्गोजाविमहिषादीन् । कृतान्नं पक्वमन्नम् ॥ ४ ॥

सर्वास्ववस्थास्वेतानि ब्राह्मणः परिवर्जयेत्।
एतेषां विक्रयात्तात ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥५
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट्।
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेयाः कथञ्चन ॥ ६
पक्वेनामस्य निमयं न प्रशंसन्ति साधवः।
निमयेत्पक्वमामेन भोजनार्थाय भारत ॥ ७
वयं सिद्धमशिष्यामो भवान्साधयतामिदम्।
एवं संवीक्ष्य निमयन्नाधर्मोऽस्ति कथञ्चन ॥८
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरा धर्मः सनातनः।
व्यवहारप्रवृत्तानां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ९
भवतेऽहं ददानीदं भवानेतत्प्रयच्छतु।
रुचितो वर्तते धर्मो न बलात्संप्रवर्तते ॥ १०
इत्येवं संप्रवर्तन्ते व्यवहाराः पुरातनाः।
ऋषीणामितरेषां च साधु चैतदसंशयम् ॥११

युधिष्ठिर उवाच।

अथ तात यदा सर्वाः शस्त्रमाददते प्रजाः।
व्युत्क्रामंति स्वधर्मेभ्यः क्षत्रस्य क्षीयते बलम्
राजा त्राता तु लोकस्य कथं च स्यात्परायणं
एतन्मे संशयं ब्रूहि विस्तरेण नराधिप ॥ १३

भीष्म उवाच।

दानेन तपसा यज्ञैरद्रोहेण दमेन च।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः क्षेममिच्छेयुरात्मनः ॥
तेषां ये वेदबलिनस्तेऽभ्युत्थाय समन्ततः।
राज्ञो बलं वर्धयेयुर्महेन्द्रस्येव देवताः ॥ १०
राज्ञोऽपि क्षीयमाणस्य ब्रह्मैवाहुः परायणम्।
तस्माद्ब्रह्मबलेनैव समुत्थेयं विजानता ॥ १६
यदा भुवि जयी राजा क्षेमं राष्ट्रेऽभिसंदधेत्
तदा वर्णा यथाधर्मं निविशेरुः कथञ्चन ॥
उन्मर्यादे प्रवृत्ते तु दस्युभिः संकरे कृते।
सर्वे वर्णा न दुष्येयुः शस्त्रवन्तो युधिष्ठिर ॥

युधिष्ठिर उवाच।

अथ चेत्सर्वतः क्षत्रं प्रदुष्येद्ब्राह्मणं प्रति।
कस्तस्य ब्राह्मणस्त्राता को धर्मः किं परायणम्

भीष्म उवाच।

तपसा ब्रह्मचर्येण शस्त्रेण च बलेन च।
अमायया मायया च नियन्तव्यं तदा भवेत्
क्षत्रियस्यातिवृत्तस्य ब्राह्मणेषु विशेषतः।
ब्रह्मैव संनियंतृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥
यदा छिनत्त्ययोऽश्मानमग्निश्चापोऽभिगच्छति।
क्षत्रं च ब्राह्मणं द्वेष्टि तदा नश्यन्ति ते त्रयः॥ २३
तस्माद्ब्रह्माणि शाम्यन्ति क्षत्रियाणां युधिष्ठिर।
समुदीर्णान्यजेयानि तेजांसि च बलानि च ॥
ब्रह्मवीर्ये मृदुभूते क्षत्रवीर्ये च दुर्बले।
दुष्टेषु सर्ववर्णेषु ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ॥ २५
ये तत्र युद्धं कुर्वन्ति त्यक्त्वा जीवितमात्मनः
ब्राह्मणान्परिरक्षन्तो धर्ममात्मानमेव च ॥ २६
मनस्विनो मन्युमन्तः पुण्यश्लोका भवन्ति ते।
ब्राह्मणार्थं हि सर्वेषां शस्त्रग्रहणमिष्यते ॥ २७
अतिस्विष्टमधीतानां लोकानतितपस्विनाम्।
अनाशनाग्न्योर्विशतां शूरा यांति परां गतिं
ब्राह्मणस्त्रिषु वर्णेषु शस्त्रं गृह्णन्न दुष्यति।
एवमेवात्मनस्त्यागान्नान्यं धर्मं विदुर्जनाः ॥
तेभ्यो नमश्च भद्रं च ये शरीराणि जुह्वते।
ब्रह्मद्विषो नियच्छंतस्तेषां नोऽस्तु सलोकता
ब्रह्मलोकजितः स्वर्ग्यान्वीरांस्तान्मनुरब्रवीत्।
यथाश्वमेधावभृथे स्नाताः पूता भवन्त्युत।
दुष्कृतस्य प्रणाशेन ततः शस्त्रहता रणे ॥ ३१

---

अजादीनां विक्रयेऽग्न्यादयो देवता एव विक्रीतास्त-
तश्चायज्ञियो भवतीत्यर्थः । **विराट्**—अन्नमिति
प्राञ्चः । अन्नविक्रयात्पृथिवीविक्रयपापं भवतीति तेषा-
माशयः । पृथिवीविक्रयात्सर्वदेवतासमष्टिरूपो विराडेव
विक्रीतस्तेन तत्संबन्धाद्वेदादिरहितो भवतीत्यर्थः
॥ ६ ॥ पक्वेनामस्य विनिमये पक्वदो दुष्यति न त्वामद
इत्यर्थः ॥ ७ ॥ इदमप्यपवदति-**वयमिति** ॥ ८ ॥
**भवतेऽहमिति** । रुचितः सर्वेऽपि विनिमया युक्ताः
न तु लाभलोभ इत्यर्थः ॥ १० ॥ प्रजाः वैश्य-
शूद्राः [illegible] ते-
त्याह द्वाभ्यां-**दानेनेति** ॥ १४ ॥ यदि ताः स्पर्धेरन्
तर्हि राजा ब्राह्मणानेवाश्रित्य प्रजा वशीकुर्यादित्याह
द्वाभ्यां-**राज्ञोऽपीति** ॥ १६ ॥ कालविशेषे सर्वेषामपि
शस्त्रधारणं युक्तमित्याह-**उन्मर्यादे इति** ॥ १८ ॥
ब्राह्मणान् द्विषतः क्षत्रियस्य ब्रह्मैव परायणमिति प्रश्नपूर्व-
कमाह—**अथेत्यादिना** ॥ १९ ॥ नियन्तव्यं क्षत्रं
ब्राह्मणेनेति शेषः ॥ २० ॥ सर्ववर्णैर्ब्रह्मक्षत्रयोरभिभवे
ब्राह्मणार्थं क्षत्रेण मर्तव्यमेवेत्याह-**ब्रह्मेत्यादिना** ॥२५॥
**अतीति**। यज्ञाध्ययनतपोयुक्तानां अनशनाग्निप्रवेशकारि-
णामप्यपेक्षया ब्राह्मणार्थं म्रियमाणा उत्कृष्टान् लोकानाप्नो-
तीत्यर्थः ॥ २८ ॥ एवं युद्धधर्मेण ॥२९॥ नोऽस्माकमस्तु
॥३०॥ [illegible]

अत्रत्यधर्मो धर्मो हि धर्माधर्मावुभावपि ।
कारणाद्देशकालस्य देशकालः स तादृशः ॥
मैत्राः क्रूराणि कुर्वन्तो जयन्ति स्वर्गमुत्तमम् ।
धर्म्याः पापानि कुर्वाणा गच्छंति परमां गतिं
ब्राह्मणास्त्रिषु कालेषु शस्त्रं गृह्णन्न दुष्यति ।
आत्मत्राणे वर्णदोषे दुर्दम्यनियमेषु च ॥ ३४

युधिष्ठिर उवाच ।

अभ्युत्थिते दस्युबले क्षत्रार्थे वर्णसंकरे ।
संप्रमूढेषु क्षत्रेषु यद्यन्योऽभिभवेद्बली ॥ ३५
ब्राह्मणो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम
दस्युभ्योऽथ प्रजा रक्षेद्दण्डं धर्मेण धारयन् ॥
कार्यं कुर्यान्न वा कुर्यात्स वार्यो वा भवेन्न वा
तस्माच्छस्त्रं ग्रहीतव्यमन्यत्र क्षत्रबन्धुतः ॥ ३७

भीष्म उवाच ।

अपारे यो भवेत्पारमप्लवे यः प्लवो भवेत् ।
शूद्रो वा यदि वाऽप्यन्यः सर्वथा मानमर्हति
यमाश्रित्य नरा राजन्वर्तयेयुर्यथासुखम् ।
अनाथाः परिकाल्यंतो दस्युभिः परिपीडिताः
तमेव पूजयेयुस्ते प्रीत्या स्वमिव बान्धवम् ।
अभीरभीक्ष्णं कौरव्य कर्ता सन्मानमर्हति ॥
किं तैर्येऽनडुहो नोह्याः
किं धेन्वा वाऽप्यदुग्धया ।
वन्ध्यया भार्यया कोऽर्थः
कोऽर्थो राज्ञाऽप्यरक्षता ॥ ४१
यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यथा ह्यनर्थः षण्ढो वा पार्थ क्षेत्रं यथोषरम्
एवं विप्रोऽनधीयानो राजा यश्च न रक्षता
मेघो न वर्षते यश्च सर्वथा ते निरर्थकाः ४३
नित्यं यस्तु सतो रक्षेदसतश्च निवर्तयेत् ।
स एव राजा कर्तव्यस्तेन सर्वमिदं धृतम् ४४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

युधिष्ठिर उवाच ।

कसमुत्थाः कथंशीला
ऋत्विजः स्युः पितामह ।
कथंविधाश्च राजेन्द्र
तद्ब्रूहि वदतां वरः ॥ १

भीष्म उवाच ।

प्रतिकर्म पराचार ऋत्विजां स्म विधीयते ।
छन्दः सामादि विज्ञाय द्विजानां श्रुतमेव च
ये त्वेकमतयो नित्यं वीराणां प्रतिवादिनः ।
परस्परस्य सुहृदः समन्तात्समदर्शिनः ॥ ३

---

क्रमादधर्मो धर्मश्च भवतः कारणविशेषात् ॥ ३२ ॥ मैत्राः उत्तङ्कपराशरादयः क्रूराणि सर्पराक्षससत्रादीनि । धर्म्याः धर्मादनपेताः क्षत्रियाः पापानि परराष्ट्रावमर्दादीनि । अधर्मस्य धर्मत्वे उदाहरणद्वयमुक्तम् इदमेव अर्हंशास्त्रधर्माश्रये धर्मरूपमपि भवतीति ज्ञेयम् ॥ ३३॥ वर्णदोषे क्षत्रियादिवृत्त्यथगामिषु सत्सु ॥ ३४ ॥ दस्यूदये सति क्षत्रार्थे प्रजापालननिमित्तं लोकेषु मूढेषु वर्णसंकरेऽन्योन्यं दारहरणादौ प्रवृत्ते सति यदि अन्योऽक्षत्रियो बली दस्यून् अभिभवेत् प्रजाश्च दस्युभ्यो रक्षेत्तर्हि स राजा कार्यं कुर्यान्न वा आर्यः स्वामी च भवेन्न वा आद्ये अक्षत्रियाऽपि मान्यः स्यात् अन्त्ये सर्वनाश इत्याह त्रिभिः-अभ्युत्थित इति ३५ आद्यमेव पक्षमुपादत्ते-अपार इत्यादिना ॥३८॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि [illegible] ऽध्यायः ॥७८॥

७९

**स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानां** सप्तानां राज्यप्रकृतीनां मध्ये स्वामिरूपा प्रकृतिः ऋत्विक्पुरोहितनृपभेदेन त्रिविधा। तत्राभ्यर्हितत्वात् प्रथमं पुरोहितस्ततः शेषित्वाद्राजा च निरूपित इदानीं ऋत्विजो निरूपयति-**केत्यादिना** । कसमुत्थाः कस्मिन्निमित्त उदिताः किमेषां कर्तव्यं कर्मेत्यर्थः ॥ १ ॥ **प्रतीति** । यथा योगशास्त्रे मैत्र्यादिभिश्चित्तप्रसादनाख्यं प्रतिकर्म विधीयते एवं राज्ञां शान्तिकपौष्टिकादिकर्म प्रयोगशुद्धयाख्यं प्रतिकर्म ऋत्विग्भिः कर्तव्यम् । तत्र पराचारः अत्यन्ताभियोगेनाचरणं ऋत्विजां विधीयते कीदृशानां छन्दो ऋचः साम आदिपदार्थो यजुः श्रुतं मीमांसा तानि विज्ञाय [illegible] तदुक्त्वा **किंशीला** इत्यस्योत्तरमाह-**ये त्विति** ॥३

अनृशंसाः सत्यवाक्या अकुसीदा अथार्जवः।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः
धीमान्सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामविहिंसकः।
अकामद्वेषसंयुक्तस्त्रिभिः शुक्लैः समन्वितः ५
अहिंसको ज्ञानतृप्तः स ब्रह्मासनमर्हति।
एते महर्त्विजस्तात सर्वे मान्या यथार्हतः ६

युधिष्ठिर उवाच।

यदिदं वेदवचनं दक्षिणासु विधीयते।
इदं देयमिदं देयं न क्वचिद्व्यवतिष्ठते ॥ ७
नेदं प्रतिधनं शास्त्रमापद्धर्मानुशास्त्रतः।
आज्ञा शास्त्रस्य घोरेयं न शक्तिं समवेक्षते ८
श्रद्धावता च यष्टव्यमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
मिथ्योपेतस्य यज्ञस्य किमु श्रद्धा करिष्यति

भीष्म उवाच।

न वेदानां परिभवान्न शाठ्येन न मायया।
कश्चिन्महदवाप्नोति मा तेऽभूद्बुद्धिरीदृशी॥
यज्ञाङ्गं दक्षिणा तात वेदानां परिबृंहणम्।
न यज्ञा दक्षिणाहीनास्तारयन्ति कथञ्चन ११
शक्तिस्तु पूर्णपात्रेण संमिता न समाऽभवत्।
अवश्यं तात यष्टव्यं त्रिभिर्वर्णैर्यथाविधि १२
सोमो राजा ब्राह्मणाना-
मित्येषा वैदिकी स्थितिः।
तं च विक्रेतुमिच्छन्ति
न वृथा वृत्तिरिष्यते ॥ १३
तेन क्रीतेन यज्ञेन ततो यज्ञः प्रतायते।
इत्येवं धर्मतो ध्यानमृषिभिर्धर्मचारिभिः॥
पुमान्यज्ञश्च सोमश्च न्यायवृत्तो यदा भवेत्।
अन्यायवृत्तः पुरुषो न परस्य न चात्मनः॥
शरीरपृत्तमास्थाय
इत्येषा श्रूयते श्रुतिः।
नातिसम्यक् प्रणीतानि
ब्राह्मणानां महात्मनाम्॥ १६
तपो यज्ञादपि श्रेष्ठमित्येषा परमा श्रुतिः।
तत्ते तपः प्रवक्ष्यामि विद्वंस्तदपि मे शृणु १७
अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा।
एतत्तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम् १८
अप्रामाण्यं च वेदानां
शास्त्राणां चाभिलङ्घनम्।
अव्यवस्था च सर्वत्र
तद्वै नाशनमात्मनः॥ १९
निबोध दशहोतॄणां
विधानं पार्थ यादृशम्।
चित्तिः स्रुक्* चित्तमाज्यं च
पवित्रं ज्ञानमुत्तमम्॥ २०

---

कथंविधा इत्यस्याह त्रिभिः-**अनृशंसा इति** ॥ ४ ॥ त्रिभिः श्रुतवृत्तवंशैः शुक्लैः निर्दोषैः ॥ ५ ॥ महर्त्विजो ब्रह्मादयः उपर्त्विजो ब्राह्मणाच्छंस्यादयस्ते यथार्हतः यथायोग्यं मान्याः धनादिना आराधनीयाः ॥ ६ ॥ ऋत्विक्प्रसंगात्तद्दानार्थं दक्षिणां विचारयति-**यदिदमिति**। न क्वचित् व्यवतिष्ठते व्यवस्थां प्राप्नोति अलेप्यपच्छेदनिमित्त सर्वस्वदक्षिणाविधानादुत्तरकनुकल्पलोपप्राप्तेः ॥ ७ ॥ ततश्च नेदं शास्त्रं प्रति धनं धनविभागाभिप्रायं अपि तु आपत्कल्पाभिप्रायं द्वादशशतदक्षिणादानासमर्थस्य सर्वस्वदानं विधेयम्। अन्यथा दरिद्रस्य याग एव न घटेतेत्यर्थः ॥८॥ ननु यावतीर्गास्तावन्ति वासांसि चरून्वा दद्यादिति दरिद्रं प्रत्यनुकल्पोऽप्यस्तीति चेन्नेत्याह **मिथ्येति**। गोः स्थाने चरुमात्रदानं मिथ्याचारस्तदुपेतो यज्ञः श्रद्धयाऽपि न संपूर्यत इत्यर्थः ॥ ९ ॥ सर्वस्वदानशास्त्रं दरिद्रपरं कुर्वतो वेदावज्ञा शाठ्यं च भवतीति नेदं शास्त्रतात्पर्यमित्याह-**नेति**। महत्पदम्॥ १० ॥ **पूर्णपात्रेणेति**। यथा सक्तुप्रस्थस्य दानं अश्वमेधादप्यधिकं तद्वद्दरिद्रस्य पूर्णपात्रं द्वादशशतसममित्यर्थः ॥ १२ ॥ सोमविक्रयादिनाऽप्यर्थं प्रसाध्य यष्टव्यमित्याह द्वाभ्यां--**सोम इति**। वृथा यज्ञादिनिमित्तं विना वृत्तिर्वर्तनं न इष्यते ॥ १३ ॥ तेन सोमविक्रयलब्धेन धनेन क्रीतो यो यज्ञः सोमस्तेन यज्ञः प्रतायते ॥ १४ ॥ न्यायवृत्तः शाठ्यादिरहितः ॥ १५ ॥ **शरीरेति**। देहधारणमात्रं आस्थाय प्रवृत्तानां ब्राह्मणानां प्रणीतानि प्रणीताभिसाध्यानि यज्ञादीनि नातिसम्यक् हिंसामयत्वान्न शुभं तत् ॥१६॥ किं तर्हि शुभमत आह—**तप इति** ॥१७॥ **अहिंसेति**। तपः अध्ययनं तदर्थानुसन्धानं च। घृणा दया त्रपा वा॥ १८ ॥ कर्माण्यपि ज्ञानपराण्येवेत्याह-**निबोधेति**। दश होतॄणां चित्तिः स्रुक्चित्तमाज्यम् इत्यादीनां मन्त्राणां चित्तः साधनं जीवब्रह्मणोरेकीकरणसाधनं योगस्तस्थानेऽत्र स्रुक्। होतव्यं द्रव्यं परात्मनि प्रविलापनीयं चित्तं तत्स्थानेऽत्र **आज्यमिति**। यज्ज्ञानं तदेवात्यन्तं पवित्रं न केवलो यज्ञ इत्यर्थः॥ २० ॥

*(१) चित्तिः स्रुक् (२) चित्तमाज्यम् (३) वाग्वेदिः (४) आधीतं बर्हिः (५) केतो अग्निः (६) विज्ञातमग्निः (७) वाक्पतिर्होता (८) मन उपवक्ता, (९) प्राणो हविः (१०) सामाध्वर्युः। इति दश होतारः। तै० आर०

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम् । एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

युधिष्ठिर उवाच ।
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्ञा पितामह ॥ १
किंशीलः किंसमाचारो राज्ञोऽथ सचिवो भवेत् ।
कीदृशे विश्वसेद्राजा कीदृशे न च विश्वसेत् ॥ २
भीष्म उवाच ।
चतुर्विधानि मित्राणि राज्ञां राजन्भवन्त्युत
सहार्थो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा ॥ ३
धर्मात्मा पञ्चमश्चापि मित्रं नैकस्य न द्वयोः ।
यतो धर्मस्ततो वा स्याद्धर्मस्थो वा ततो भवेत् ॥ ४
यस्तस्यार्थो न रोचेत न तं तस्य प्रकाशयेत् ।
धर्माधर्मेण राजानश्चरन्ति विजिगीषवः ५
चतुर्णां मध्यमौ श्रेष्ठौ नित्यं शङ्क्यौ तथाऽपरौ
सर्वे नित्यं शङ्कितव्याः प्रत्यक्षं कार्यमात्मनः ६
न हि राज्ञा प्रमादो वै कर्तव्यो मित्ररक्षणे ।
प्रमादिनं हि राजानं लोकाः परिभवन्त्युत ७
असाधुः साधुतामेति साधुर्भवति दारुणः ।
अरिश्च मित्रं भवति मित्रं चापि प्रदुष्यति ८
अनित्यचित्तः पुरुषस्तस्मिन्को जातु विश्वसेत्
तस्मात्प्रधानं यत्कार्यं प्रत्यक्षं तत्समाचरेत् ९
एकान्तेन हि विश्वासः कृत्स्नो धर्मार्थनाशकः
अविश्वासश्च सर्वत्र मृत्युना च विशिष्यते ॥ १०
अकालमृत्युर्विश्वासो विश्वसन् हि विपद्यते
यस्मिन्करोति विश्वासमिच्छतस्तस्य जीवति ११
तस्माद्विश्वसितव्यं च शङ्कितव्यं च केषुचित्
एषा नीतिगतिस्तात लक्ष्या चैव सनातनी ॥ १२
यं मन्येत ममाभावादिममर्थागमं स्पृशेत् ।
नित्यं तस्माच्छङ्कितव्यममित्रं तद्विदुर्बुधाः १३

---

जिह्मं शाठ्यम् आर्जवं अवक्रत्वम् ॥ २१ ॥ इति शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

एवं स्वामिसंपदं विविच्यामात्यसंपदं विविनक्ति— **यदपीत्यादिना** ॥ १ ॥ यज्ञवत् राज्यमपि एकाकिना कर्तुमशक्यमतः ऋत्विजामिव सचिवानामपि परीक्षाऽवश्यं कर्तव्येत्यर्थः ॥२॥ उत्तरमाह—**चतुर्विधानीति** । सहार्थः अयं शत्रुरुभाभ्यामुन्मूलनीय । अस्य राज्यं उभाभ्यां विभज्य ग्राह्यमिति पणपूर्वकृतः । भजमानः पितृपैतामहक्रमागत । सहजः मातृष्वस्रीयादिः । कृत्रिमो धनादिना आवर्जितः ॥३॥ **नैकस्येति** पक्षपातशून्यः । न द्वयोरित्युभयवेतनत्वेन कपटकारी । यः प्रार्थितोऽपि धर्मपक्षपाती भवति तस्य उदासीनत्वे तु यो धर्मस्थः स तं आश्रयेदित्यर्थः ॥ ४॥ अर्थो धर्मापेतत्वात्स्वयमपि सोऽर्थस्त्याज्य इत्याशंक्याह-**धर्मेति** । केवलेन धर्मेण जिगीषवो न सिद्ध्यन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ मध्यमौ भजमानसहजौ । अपरौ सहार्थकृत्रिमौ । आद्यः फलप्राप्तिकाले बलवांश्चेत्सर्वमपाजिहीर्षतीति शंक्य एव । कृत्रिमो विशेषधनलाभात्परकीयो भविष्यतीति सोऽपि शंक्य एव । सर्वे पञ्चापि प्रत्यक्षं कार्यमुद्दिश्य मंत्रितमपि दुष्टामात्यनिग्रहादिकं कार्यं पञ्चानामपि समक्षं न कुर्यादित्यर्थः ॥६॥ **नहीति** । कुमित्रं सर्वथा हन्तव्यमेवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ यस्मात् नृणां चलचित्तत्वाद्विपर्यासो मित्रादीनां दृश्यते तस्मात्क्वचिदपि विश्वासमकृत्वा कोशदुर्गादिसंख्यारक्षणं स्वप्रत्यक्षमेव कुर्याद्राजेत्याह द्वाभ्यां—**असाधुरिति** ॥ ८ ॥ अत्यन्तं विश्वासाविश्वासावपि विरुद्धावित्याह त्रिभिः-**एकान्तेनेति** ॥१०॥ अविश्वासस्थानान्याह-**यमिति** । मयि मृतेऽयं राजा भविष्यतीति य मन्यते प्रतिवंशी भ्राता वा पुत्रो वाऽस्तु तस्माच्छंकितव्यमेवेत्यर्थः ॥ १३ ॥

यस्य क्षेत्रादप्युदकं क्षेत्रमन्यस्य गच्छति ।
न तत्रानिच्छतस्तस्य भिद्येरन्सर्वसेतवः १४
तथैवात्युदकाद्भीतस्तस्य भेदनमिच्छति ।
यमेवं लक्षणं विद्यात्तममित्रं विनिर्दिशेत् १५
यस्तु वृद्ध्या न तृप्येत क्षये दीनतरो भवेत् ।
एतदुत्तमामित्रस्य निमित्तमिति चक्षते ॥ १६
यन्मन्येत ममाभावादस्याभावो भवेदिति।
तस्मिन्कुर्वीत विश्वासं यथा पितरि वै तथा
तं शक्त्या वर्धमानश्च सर्वतः परिबृंहयेत् ।
नित्यं क्षताद्वारयति यो धर्मेष्वपि कर्मसु १८
क्षताद्भीतं विजानीयादुत्तमं मित्रलक्षणम् ।
ये तस्य क्षतमिच्छन्ति ते तस्य रिपवः स्मृताः

व्यसनान्नित्यभीतो यः
समृद्ध्या यो न दुष्यति ।
यत्स्यादेवंविधं मित्रं
तदात्मसममुच्यते ॥ २०

रूप-वर्ण-स्वरोपेतस्तितिक्षुरनसूयकः ।
कुलीनः कुलसंपन्नः स तस्मात्प्रत्यनन्तरः २१

मेधावी स्मृतिमान्दक्षः
प्रकृत्या चानृशंस्यवान् ।
यो मानितोऽमानितो वा
न च दुष्येत्कदाचन ॥ २२
ऋत्विग्वा यदि वाऽऽचार्यः
सखा वाऽत्यन्तसंस्तुतः ।
गृहे वसेदमात्यस्ते
स स्यात्परमपूजितः ॥ २३

स ते विद्यात्परं मन्त्रं प्रकृतिं चार्थधर्मयोः ।
विश्वासस्ते भवेत्तत्र यथा पितरि वै तथा २४
नैव द्वौ न त्रयः कार्या न मृष्येरन् परस्परम्
एकार्थे ह्येव भूतानां भेदो भवति सर्वदा २५

कीर्तिप्रधानो यस्तु स्या-
द्यश्च स्यात्समये स्थितः ।
समर्थान् यश्च न द्वेष्टि
नानर्थान्कुरुते च यः ॥ २६
यो न कामाद्भयाल्लोभात्
क्रोधाद्वा धर्ममुत्सृजेत् ।
दक्षः पर्याप्तवचनः
स ते स्यात्प्रत्यनन्तरः ॥ २७

कुलीनः शीलसंपन्नस्तितिक्षुरविकत्थनः ।
शूरश्चार्यश्च विद्वांश्च प्रतिपत्तिविशारदः २८
एते ह्यमात्याः कर्तव्याः सर्वकर्मस्ववस्थिताः
पूजिताः संविभक्ताश्च सुसहायाः स्वनुष्ठिताः
कृत्स्नमेते विनिक्षिप्ताः प्रतिरूपेषु कर्मसु ।
युक्ता महत्सु कार्येषु श्रेयांस्युत्थापयन्त्युत ॥
एते कर्माणि कुर्वन्ति स्पर्धमाना मिथः सदा
अनुतिष्ठन्ति चैवार्थमाचक्षाणाः परस्परम् ॥

---

अमित्रस्य लक्षणान्तरमाह—**यस्येति** द्वाभ्याम् । यथा महातटाकसेतुसमीपे यस्य क्षेत्रं स चेत्सेतुं रक्षति तर्हि ततोऽर्वाचीनानि क्षेत्राणि समोदकानि सम्यक्फलन्ति । स चेत्सेतुं भिनत्ति तदाऽतिजलप्रवाहात्क्षेत्राणामुपघातो भवति । एवं महति शत्रौ सीमान्तपालः सम्यक्सीमां पालयति तदा परराष्ट्रादुत्तमपण्यागमेन स्वराष्ट्रं सुखभाक् भवति । स चेत्सीमां भिनत्ति तदा स्वं राज्यं विपक्षप्रवेशान्नश्यति । तत्र यस्मात्सीमान्तपालाद्भयं संभावितं स शत्रुरिति ज्ञेयम् । यदधीनौ शत्रुप्रकोपौ सोऽन्तपालोऽप्यविश्वसनीय इत्यर्थः । अक्षरार्थः स्पष्टः ॥ १४ ॥ मित्रलक्षणमाह—**यस्त्विति** । वृद्धया न तृप्येत एतदुक्तमिति च पाठान्तरे इदमेवामित्रलक्षणम् । अदीनेति च च्छेदः ॥ १६ ॥ यत् मित्रं वर्तृ ॥ १७ ॥ **स इति** । तत्रार्थप्रकृतिर्धर्मप्रकृतिरर्थधर्मप्रकृतिश्चेति त्रेधा प्रकृतिस्ताम् । तत्राद्या—

'कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुंजरबन्धनम् ।
खन्याकरकरादानं शून्यानां च निवेशनम् ।
अष्टौ सन्धानकर्माणि प्रयुक्तानि मनीषिभिः'

इति । **संधानं** अर्थप्राप्तिः तथा—

'दुर्गाध्यक्षो बलाध्यक्षो धर्माध्यक्षश्च भूपतिः ।
पुरोधा वैद्यदैवज्ञौ सप्त प्रकृतयस्त्विमाः'

इति । तत्र धर्माध्यक्षो धर्मप्रकृतिः । अन्ये अर्थधर्मप्रकृतय इति विवेकः ॥ २४ ॥ एकार्थे एकस्मिन्प्रयोजने एक एवाध्यक्षः कार्यश्चारैस्तु तद्गुणदोषान्संकलयेन्न तु एकार्थे द्वावध्यक्षौ कार्यावित्याह—**एकार्थे इति** ॥ २५ ॥ समये नीतिमर्यादायाम् ॥ २६ ॥ प्रत्यनन्तरः प्रतिनिधिः प्रधान इति यावत् ॥ २७ ॥ प्रतिपत्तिविशारदः कार्याकार्यविवेककुशलः ॥ २८ ॥ स्वनुष्ठिताः सुष्ठु अनुष्ठितं कर्तव्यं येषां ते ॥ २९ ॥ कृत्स्नं अप्रतिकञ्चुकं यथा स्यात्तथा विनिक्षिप्ता अधिकृताः प्रतिरूपेषु अनुरूपेषु कर्मसु आयव्ययसंकलनादिषु कार्येषु पराभिभवादिषु ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यश्चैव बुद्ध्येथा मृत्योरिव भयं सदा।
उपराजेव राजर्धिं ज्ञातिर्न सहते सदा ३२
ऋजोर्मृदोर्वदान्यस्य ह्रीमतः सत्यवादिनः
नान्यो ज्ञातेर्महाबाहो विनाशमभिनन्दति ॥
अज्ञातिनोऽपि न सुखा नावज्ञेयास्ततः परम्
अज्ञातिमन्तं पुरुषं परे चाभिभवन्त्युत ॥ ३४
निकृतस्य नरैरन्यैर्ज्ञातिरेव परायणम् ।
नान्यो निकारं सहते ज्ञातिर्ज्ञातेः कथञ्चन ॥
आत्मानमेव जानाति निकृतं बान्धवैरपि ।
तेषु सन्ति गुणाश्चैव नैर्गुण्यं चैव लक्ष्यते ३६
नाज्ञातिरनुगृह्णाति न चाज्ञातिर्नमस्यति ।
उभयं ज्ञातिवर्गेषु दृश्यते साध्वसाधु च ॥३७
संमानयेत्पूजयेच्च वाचा नित्यं च कर्मणा ।
कुर्याच्च प्रियमेतेभ्यो नाप्रियं किञ्चिदाचरेत् ॥
विश्वस्तवदविश्वस्तस्तेषु वर्तेत सर्वदा ।
न हि दोषो गुणो वेति निरूप्यस्तेषु दृश्यते.
अस्यैवं वर्तमानस्य पुरुषस्याप्रमादिनः ।
अमित्राः संप्रसीदन्ति तथा मित्रीभवन्त्यपि
य एवं वर्तते नित्यं ज्ञातिसंबन्धिमण्डले ।
मित्रेष्वमित्रे मध्यस्थे चिरं यशासि तिष्ठति॥४१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

युधिष्ठिर उवाच ।
एवमग्राह्यके तस्मिन् ज्ञातिसम्बन्धिमण्डले
मित्रेष्वमित्रेष्वपि च कथं भावो विभाव्यते
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं वासुदेवस्य सुरर्षेर्नारदस्य च ॥ २
वासुदेव उवाच ।
नासुहृत्परमं मन्त्रं
नारदार्हति वेदितुम् ।
अपण्डितो वाऽपि सुहृत-
पण्डितो वाऽप्यनात्मवान् ॥ ३
स ते सौहृदमास्थाय किञ्चिद्वक्ष्यामि नारद
कृत्स्नां बुद्धिबलं प्रेक्ष्य संपृच्छे त्रिदिवंगम ॥ ४
दास्यमैश्वर्यवादेन
ज्ञातीनां न करोम्यहम् ।
अर्धं भोक्ताऽस्मि भोगानां
वाग्दुरुक्तानि च क्षमे ॥ ५
अरणीमग्निकामो वा मथ्नाति हृदयं मम ।
वाचा दुरुक्तं देवर्षे तन्मे दहति नित्यदा ॥ ६
बलं संकर्षणे नित्यं सौकुमार्यं पुनर्गदे ।
रूपेण मत्तः प्रद्युम्नः सोऽसहायोऽस्मि नारद
अन्ये हि सुमहाभागा बलवन्तो दुरुत्सहाः ।
नित्योत्थानेन संपन्ना नारदान्धकवृष्णयः ॥८
यस्य न स्युर्न वै स स्या-
द्यस्य स्युः कृत्स्नमेव तत् ।
द्वाभ्यां निवारितो नित्यं
वृणोम्येकतरं न च ॥ ९

उपराजा समीपवर्ती सामन्तः ॥ ३२ ॥ निकृतस्य लंघितस्य नान्यः परायणं कथं च कथमपि न सहते इत्यन्वयः ३५॥बान्धवैः सम्बन्धिभिर्निकृते कस्मिंश्चित्पुरुषे तज्ज्ञातिः कृत्स्ना आत्मानमेव निकृतं जानाति तेषु ज्ञातिषु यथोक्तम् '**परस्परविरोधे हि वयं पञ्च च ते शतम् ॥ अन्यैः सह विरोधे तु वयं पञ्चोत्तरं शतम्**'इति ॥३६॥इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनप० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः॥८०॥

८१

**एवमिति** । अग्राह्यके वशीकर्तुमशक्ये द्वयोरन्योन्यं स्पर्धमानयोरेकस्यादरे इतरस्य कोपोत्पत्तेरवश्यं मित्रमप्यमित्रतां याति अतः सर्वेषां भावश्चित्तं कथं विभाव्यते वशीक्रियते इति प्रश्नः ॥१॥ दास्यमेवाह-**अर्धमिति** । अर्जितस्यार्धं ज्ञातिभ्यो देयं तदुक्तानि च क्षन्तव्यानीत्येवं ज्ञातिदास्यम् ॥ ५ ॥ वाशब्द इवार्थः । वाचा दुरुक्तं आहुकस्नेहात्कृष्णो मां द्वेष्टीति अक्रूरदुरुक्तम् अक्रूरस्नेहात्कृष्णो मां द्वेष्टीत्याहुकदुरुक्तम् ॥ ६ ॥ असहायः आहुकाक्रूरयोः सान्त्वने इति शेषः ॥ ७ ॥ ते यस्य पक्षे न स्युः स न स्यात् नश्येदेव । यस्य पक्षे ते स्युस्तत्कुलं कृत्स्नमेव पुरुषार्थं लभते ईदृशा अपि मम साहाय्यं न कुर्वन्तीति भावः । द्वाभ्यां आहुकाक्रूराभ्यां निवारितः निरस्तः सन् एकतरं न वृणोमि इतरस्य कोपो माभूदिति ॥ ९ ॥

स्यातां यस्याहुकाक्रूरौ किं नु दुःखतरं ततः
यस्य चापि न तौ स्यातां किं नु दुःखतरं ततः
सोऽहं कितव मातेव द्वयोरपि महामते ।
एकस्य जयमाशंसे द्वितीयस्यापराजयम् ॥
ममैवं क्लिश्यमानस्य नारदोभयतः सदा ।
वक्तुमर्हसि यच्छ्रेयो ज्ञातीनामात्मनस्तथा ॥

नारद उवाच ।

आपदो द्विविधाः कृष्ण बाह्याश्चाभ्यंतराश्च ह
प्रादुर्भवन्ति वार्ष्णेय स्वकृता यदि वाऽन्यतः॥
सेयमाभ्यन्तरा तुभ्यमापत्कृच्छ्रा स्वकर्मजा ।
अक्रूरभोजप्रभवा सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥ १४
अर्थहेतोर्हि कामाद्वा वाचा बीभत्सयाऽपि वा
आत्मना प्राप्तमैश्वर्यमन्यत्र प्रतिपादितम् ॥
कृतमूलमिदानीं तज्ज्ञातिशब्दं सहायवान् ।
न शक्यं पुनरादातुं वान्तमन्नमिव त्वया ॥१६
बभ्रुग्रसेनयो राज्यं नातुं शक्यं कथञ्चन ।
ज्ञातिभेदभयात्कृष्ण त्वया चापि विशेषतः
तच्च सिध्येत्प्रयत्नेन कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
महाक्षयं व्ययो वा स्याद्विनाशो वा पुनर्भवेत्
अनायसेन शस्त्रेण मृदुना हृदयच्छिदा ।
जिह्वामुद्धर सर्वेषां परिमृज्यानुमृज्य च ॥

वासुदेव उवाच ।

अनायसं मुने शस्त्रं मृदु विद्यामहं कथम् ।
येनैषामुद्धरे जिह्वां परिमृज्यानुमृज्य च॥ २०

नारद उवाच ।

शक्त्याऽन्नदानं सततं तितिक्षार्जवमार्दवम्॥
यथार्हप्रतिपूजा च शस्त्रमेतदनायसम् ॥ २१
ज्ञातीनां वक्तुकामानां कटुकानि लघूनि च
गिरा त्वं हृदयं वाचं शमयस्व मनांसि च ॥
नामहापुरुषः कश्चिन्नानात्मा नासहायवान् ।
महतीं धुरमाधत्ते तामुद्यम्योरसा वह ॥ २३
सर्व एव गुरुं भारमनड्वान्वहते समे ।
दुर्गे प्रतीकः सुगवा भारं वहति दुर्वहम् ॥
भेदाद्विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव ।
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेदयं संघस्तथा कुरु

नान्यत्र बुद्धिक्षान्तिभ्यां
नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्
नान्यत्र धनसंत्यागा-
द्गणः प्राज्ञेऽवतिष्ठते ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वपक्षोद्भावनं सदा ।
ज्ञातीनामविनाशः स्याद्यथा कृष्ण तथा कुरु
आयत्यां च तदात्वे च न तेऽस्त्यविदितं प्रभो
षाड्गुण्यस्य विधानेन यात्रा यानविधौ तथा
यादवाः कुकुरा भोजाः सर्वे चान्धकवृष्णयः
त्वय्यासक्ता महाबाहो लोका लोकेश्वराश्च ये
उपासन्ते हि त्वद्बुद्धिमृषयश्चापि माधव ।
त्वं गुरुः सर्वभूतानां जानीषे त्वं गतागतम् ।
त्वामासाद्य यदुश्रेष्ठ मेधन्ते यादवाः सुखं३१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वासुदेवनारदसंवादो नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

---

द्वयोर्मद्विषयोरिव युध्यतोर्वारणे मध्यस्थस्य मम महद्दुःखं तथा द्वयोः सुहृदोस्त्यागेऽपीत्याह-**स्यातामिति**॥१०॥ द्वयोः कितवयोर्द्यूतकारिणोरेका मातेव ॥ ११ ॥ अन्यतः बाह्याः आपदः स्वकृताः ज्ञातिकृताः अभ्यन्तरा आपदः ॥१३॥ एते संकर्षणादयः तदन्वया अक्रूरान्वयाः ॥१४॥ तत्र हेतुरर्थेति । तत्स्नेहप्रभवा इयं तवापदिति सार्धः स्वकर्मजेत्युक्तं तद्विवृणोति-**आत्मनेति** सार्धेन । अन्यत्र आहुके ॥१५॥तत् ऐश्वर्यं कृतमूलं यतो ज्ञातिशब्दं ज्ञातित्वादनुच्छेदनीयं हे सहायवन् अत एव पुनरादातुं न शक्यमित्याह-**नेति** ॥ १६ ॥ तत्र हेतुः-**ज्ञातीति** । त्वयेति महतां दत्तापहारो नोचितः 'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्' इति न्यायादित्यर्थः ॥ १७ ॥ तच्च राज्यस्य पुनरादानं च ॥ १८ ॥ जिह्वामुद्धर तेषां मूकीभावं सम्पादय येन कलहोदयो न स्यात् ॥१९॥ परिमार्जनं दोषापनयनं तितिक्षार्जवमार्दवं कार्यम् । अनुमार्जनं प्रीतिगुणाधानम् यथार्हपूजनादित्यर्थः ॥ २१ ॥ हृदयं क्रूरनिश्चयम् मनांसि कुसंकल्पजालानि ॥ २२ ॥ अनात्मा अजितचित्तः उरसा अंगीकृत्य क्षमया वहस्वेत्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

भीष्म उवाच ।

एषा प्रथमतो वृत्तिर्द्वितीयां शृणु भारत ।
यः कश्चिज्जनयेदर्थं राज्ञा रक्ष्यः सदा नरः ॥
ह्रियमाणममात्येन भृत्यो वा यदि वा भृतः
यो राजकोशं नश्यन्तमाचक्षीत युधिष्ठिर ॥
श्रोतव्यमस्य च रहो रक्ष्यश्चामात्यतो भवेत्
अमात्या ह्यपहर्तारो भूयिष्ठं घ्नन्ति भारत ।
राजकोशस्य गोप्तारं राजकोशविलोपकाः ।
समेत्य सर्वे बाधन्ते स विनश्यत्यरक्षितः ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मुनिः कालकवृक्षीयः कौसल्यं यदुवाच ह ॥
कोसलानामाधिपत्यं संप्राप्तं क्षेमदर्शिनम् ।
मुनिः कालकवृक्षीय आजगामेति नः श्रुतम् ॥
स काकं पञ्जरे बद्ध्वा विषयं क्षेमदर्शिनः ।
सर्वं पर्यचरद्युक्तः प्रवृत्त्यर्थी पुनः पुनः ॥ ७
अधीध्वं वायसीं विद्यां शंसन्ति मम वायसाः
अनागतमतीतं च यच्च संप्रति वर्तते ॥ ८
इति राष्ट्रे परिपतन्बहुभिः पुरुषैः सह ।
सर्वेषां राजयुक्तानां दुष्करं परिदृष्टवान् ॥ ९
स बुद्ध्वा तस्य राष्ट्रस्य व्यवसायं हि सर्वशः
राजयुक्तापहारांश्च सर्वान्बुद्ध्वा ततस्ततः ॥
ततः स काकमादाय राजानं द्रष्टुमागमत् ।
सर्वज्ञोऽस्मीति वचनं ब्रुवाणः संशितव्रतः ।
स स्म कौसल्यमागम्य राजामात्यमलंकृतम्
प्राह काकस्य वचनादमुत्रेदं त्वया कृतम् ॥
असौ चासौ च जानीते
राजकोशस्त्वयाहृतः ।
एवमाख्याति काकोऽयं
तच्छीघ्रमनुगम्यताम् ॥ १३

तथाऽन्यानपि स प्राह राजकोशहरांस्तदा ।
न चास्य वचनं किंचिदनृतं श्रूयते क्वचित् ॥
तेन विप्रकृताः सर्वे राजयुक्ताः कुरूद्वह ।
तमस्यातिप्रसुप्तस्य निशि काकमवेधयन् ॥
वायसं तु विनिर्भिन्नं दृष्ट्वा बाणेन पञ्जरे ।
पूर्वाह्णे ब्राह्मणो वाक्यं क्षेमदर्शिनमब्रवीत् ॥१७
राजंस्त्वामभयं याचे प्रभुं प्राणधनेश्वरम् ।
अनुज्ञातस्त्वया ब्रूयां वचनं भवतो हितम् ।
मित्रार्थमभिसंतप्तो भक्त्या सर्वात्मनाऽऽगतः
अयं तवार्थो ह्रियते यो ब्रूयादक्षमान्वितः ।
संबुबोधयिषुर्मित्रं सदश्वमिव सारथिः ॥ १८
अतिमन्युप्रसक्तो हि प्रसह्य हितकारणात् ।
तथाविधस्य सुहृदा क्षन्तव्यं स्वं विजानता ।
ऐश्वर्यमिच्छता नित्यं पुरुषेण बुभूषता ॥ १९
तं राजा प्रत्युवाचेदं यत्किंचिन्मां भवान्वदेत्
कस्मादहं न क्षमेयमाकांक्षन्नात्मनो हितम् ॥
ब्राह्मण प्रतिजाने ते प्रब्रूहि यदिहेच्छसि ।
करिष्यामि हि ते वाक्यं यदस्मान्विप्र वक्ष्यसि

मुनिरुवाच ।

ज्ञात्वा पापानपापांश्च भृत्यतस्ते भयानि च ।
भक्त्या वृत्तिं समाख्यातुं भवतोऽन्तिकमागमम्
प्रागेवोक्तस्तु दोषोऽयमाचार्यैर्नृपसेविनाम् ।
अगतीकगतिर्ह्येषा पापा राजोपसेविनाम् ॥
आशीविषैश्च तस्याहुः संगतं यस्य राजभिः ।
बहुमित्राश्च राजानो बह्वमित्रास्तथैव च ॥२४
तेभ्यः सर्वेभ्य एवाहुर्भयं राजोपजीविनाम् ।
तथैषां राजतो राजन्मुहूर्तादेव भीर्भवेत् ॥
नैकान्तेनाप्रमादो हि शक्यः कर्तुं महीपतौ ।
न तु प्रमादः कर्तव्यः कथंचिद्भूतिमिच्छता ॥

---

८२

एवममात्यान्सृष्टाभ्रदानतितिक्षार्जवमार्दवपूजाभिर्मानयेदित्युक्तं कोशवृद्धिकरं तु ततोऽप्यधिकतरं मानयेद्रक्षेच्चेत्याह—एषेति ॥ १ ॥ प्रवृत्त्यर्थी अमात्यदोषदर्शने राजानं प्रवर्तयितुकामः ॥ ७ ॥ परिपतन्पारतो भ्रमन् राजयुक्तानां राज्ञा तेषु तेषु कार्येषु नियुक्तानां दुष्करं स्वामिद्रव्यापहाररूपं पापम् ॥ ९ ॥ राजयुक्तैर्धनस्यापहारान् ॥ १० ॥ राजानमागम्य तत्समक्षमेवामात्यं प्राह अमुत्र स्थाने त्वया इदं धनचौर्यं कृतमिति ॥ १२ ॥ अनुगम्यतां आलोच्यताम् ॥ १३ ॥ अस्य मुनेः तमना-शयेत्यर्थः ॥१५॥ आगतोऽहं त्वयाऽनुज्ञातः सन् तव हितं ब्रूयामिति सार्धः ॥ १७ ॥ अर्थो ह्रियत इति यो ब्रूयात्तस्य मित्रस्य तथाभूतं तद्वचनं त्वया क्षन्तव्यमिति द्वयोः सम्बन्धः न पुनः काकवत्तादृशं मित्रमनवहिततया परैर्घातनीयमिति भावः । सार्धश्लोकद्वयम् ॥१८ पापान् अपापांश्च भृत्यान् ज्ञात्वा भृत्यतः भृत्यात्ते तव भयानि च ज्ञात्वा ॥२२॥ अगतीकगतिः श्ववृत्तित्वात् श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ॥ २३ ॥ तेभ्यः राजकीयमित्रेभ्योऽमित्रेभ्यो राजतश्च भयमस्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥

प्रमादाद्धि स्खलेद्राजा
स्खलिते नास्ति जीवितम् ।
अग्निं दीप्तमिवासीदे-
द्राजानमुपशिक्षितः ॥ २७

आशीविषमिव क्रुद्धं प्रभुं प्राणधनेश्वरम् ।
यत्नेनोपचरेन्नित्यं नाहमस्मीति मानवः ॥ २८
दुर्व्याहृताच्छङ्कमानो दुःस्थितादुरधिष्ठितात्
दुरासितादुर्व्रजितादिङ्गितादङ्गचेष्टितात् ॥२९
देवतेव हि सर्वार्थान्कुर्याद्राजा प्रसादितः ।
वैश्वानर इव क्रुद्धः समूलमपि निर्दहेत् ॥ ३०
इति राजन्यमः प्राह वर्तते च तथैव तत् ।
अथ भूयांसमेवार्थं करिष्यामि पुनः पुनः ॥
ददात्यस्मद्विधोऽमात्यो बुद्धिसाहाय्यमापदि
वायसस्त्वेष मे राजन्ननु कार्याभिसंहितः ॥
न च मेऽत्र भवान्गर्ह्यो न च येषां भवान् प्रियः
हिताहितांस्तु बुद्ध्येथा मा परोक्षमतिर्भवेः ॥
ये त्वादानपरा एव वसन्ति भवतो गृहे ।
अभूतिकामा भूतानां तादृशैर्मेऽभिसंहितम् ॥
यो वा भवद्विनाशेन राज्यमिच्छत्यनन्तरम् ।
आन्तरैरभिसंधाय राजन्सिद्ध्यति नान्यथा
तेषामहं भयाद्राजन् गमिष्याम्यन्यमाश्रमम् ।
तैर्हि मे सन्धितो बाणः काके निपातितः प्रभो
छद्मकामैरकामस्य गमितो यमसादनम् ।
दृष्टं ह्येतन्मया राजंस्तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥३७
बहुनक्रझषग्राहां तिमिङ्गिलगणैर्युताम् ।
काकेन बालिशेनेमां यामतार्षमहं नदीम् ॥
स्थाण्वश्मकण्टकवतीं
सिंहव्याघ्रसमाकुलाम् ।
दुरासदां दुष्प्रसहां
गुहां हैमवतीमिव ॥ ३९

अग्निना तामसं दुर्गं नौभिराप्यं च गम्यते ।
राजदुर्गावतरणे नोपायं पण्डिता विदुः ॥४०
गहनं भवतो राज्यमन्धकारं तमोन्वितम् ।
नेह विश्वसितुं शक्यं भवताऽपि कुतो मया
अतो नायं शुभो वासस्तुल्ये सदसती इह ।
वधो ह्येवात्र सुकृते दुष्कृते न च संशयः ॥४२
न्यायतो दुष्कृते घातः सुकृते न कथञ्चन ।
नेह युक्तं चिरं स्थातुं जवेनैवाव्रजेद्बुधः ॥ ४३
सीता नाम नदी राजन्प्लवो यस्यां निमज्जति
तथोपमामिमां मन्ये वागुरां सर्वघातिनीम् ॥
मधुप्रपातो हि भवान् भोजनं विषसंयुतम् ।
असतामिव ते भावो वर्तते न सतामिव ॥
आशीविषैः परिवृतः कूपस्त्वमसि पार्थिव ।
दुर्गतीर्था बृहत्कूला करीरा वेत्रसंयुता ॥४६
नदी मधुरपानीया यथा राजंस्तथा भवान् ।
श्व-गृध्र-गोमायुयुतो राजहंससमो ह्यसि ४७
यथाऽऽश्रित्य महावृक्षं कक्षः संवर्धते महान्
ततस्तं संवृणोत्येव तमतीत्य च वर्धते ॥ ४८
तेनैवोग्रेन्धनेनैनं दावो दहति दारुणः ।
तथोपमा ह्यमात्यास्ते राजंस्तान्परिशोधय ॥
त्वया चैव कृता राजन्भवता परिपालिताः
भवन्तमभिसंधाय जिघांसन्ति भवत्प्रियम् ॥

प्रमादात् भृत्यकृतात्स्खलेत्पूर्वोपकारं विस्मृत्य द्विषेत् ॥२७ नाहमस्मीति मत्वा जीवनाशां त्यक्त्वेत्यर्थः ॥ २८ ॥ अहमिति पाठे भूयांसं बह्वैश्वर्यवन्तं करिष्यामि ॥३१॥ तत्र द्वारमाह-**ददातीति**। बुद्धिदानेऽप्यनिष्टमाह-**वायसस्त्विति**। ननु इति वितर्के । तुशब्दो यथार्थे यथा मे वायसः कार्याभिसंहितः कार्यकारी तथाऽहमप्यस्मीति शेषः । तद्वदेव च मां त्वदमात्या मारयिष्यन्तीति वितर्कये इति भावः ॥ ३२ ॥ आदानपराः कोशलोपाः भूतानां प्रजानां मे मयि तादृशैः अभिसंहितं अभिसंधिर्वैरं कृतं मदीयकाकहननादिति भावः ॥ ३४ ॥ आन्तरैः सूदादिभिः अभिसन्धाय अन्नादौ विषं प्रक्षेप्स्यामीति स्नेहं कृत्वा तेषामर्माप्सितो भवद्विनाशः सिध्यति च अन्यथा न सिध्यति च आयुःशेषे सतीति भावः ॥ ३५ ॥ तेषां त्वद्वैरिणां काकमिव मामपि मारयिष्यन्तीति ध्वनिः ३६ इमां राजनीतिनदीं सजातीयविजातीयदुर्बलग्रासिभिः नक्रादितुल्यैरधिकारिपुरुषैर्व्याप्तां काकेन बालिशेन स्वमृत्युं संपादयता सहायेनाहमतार्षं तीर्णवानस्मि विरुद्धलक्षणया तन्मरणान्मृतोऽस्मीति भावः ॥ ३८ ॥ स्थाण्विति पूर्वनद्या एवोपमानम् ॥ ३९ ॥ अग्निना दीपेन ॥ ४० गहनं कपटं अन्धकारमिव तमोन्वितं धर्माधर्मदर्शनशून्यम्४१॥ यथा बह्वावर्तायां सीतायां प्लवस्तारणं प्रायःनिमज्जति तथा तव राजनीतौ प्लवो मादृशोऽपि निमज्जति ॥४४॥ मध्विति सार्धः ॥ ४५ ॥ तीर्थं जलावतरणमार्गः करीरो निष्पत्रकण्टीक्षुपः ॥ ४६ ॥ **यथेति** । तेन कक्षेण सहैव दावो दावाग्निर्दहति वृक्षं, एवं त्वदाश्रयाद्वृद्धिं प्राप्तास्त्वामतिक्रान्ता अमात्यास्तैः सह त्वं नाशं प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥४८॥

उषितं शङ्कमानेन प्रमादं परिरक्षता ।
अन्तः सर्प इवागारे वीरपत्न्या इवालये ।
शीलं जिज्ञासमानेन राज्ञश्च सहजीविनः ॥
कच्चिज्जितेन्द्रियो राजा
कच्चिदस्यान्तरा जिताः ।
कच्चिदेषां प्रियो राजा
कच्चिद्राज्ञः प्रियाः प्रजाः ॥ ५२
विजिज्ञासुरिह प्राप्तस्तवाहं राजसत्तम ।
तस्य मे रोचते राजन्क्षुधितस्येव भोजनम् ॥
अमात्या मे न रोचन्ते वितृष्णस्य यथोदकं
भवतोऽर्थकृदित्येवं मयि दोषो हि तैः कृतः ।
विद्यते कारणं नान्यदिति मे नात्र संशयः ॥
न हि तेषामहं द्रुग्धस्तत्तेषां दोषदर्शनम् ।
अरेर्हि दुर्हृदाद्भेयं भग्नपृष्ठादिवोरगात् ॥ ५५

राजोवाच ।

भूयसा परिहारेण सत्कारेण च भूयसा ।
पूजितो ब्राह्मणश्रेष्ठ भूयो वस गृहे मम ॥ ५६
ये त्वां ब्राह्मण नेच्छन्ति ते न वत्स्यंति मे गृहे
भवतैव हि तज्ज्ञेयं यत्तदेषामनन्तरम् ॥ ५७
यथा स्यात्सुधृतो दण्डो यथा च सुकृतं कृतम्
तथा समीक्ष्य भगवन् श्रेयसे विनियुंक्ष्व माम्

मुनिरुवाच ।

अदर्शयन्निमं दोषमेकैकं दुर्बलीकुरु ।
ततः कारणमाज्ञाय पुरुषं पुरुषं जहि ॥ ५९
एकदोषा हि बहवो मृद्नीयुरपि कण्टकान् ।
मन्त्रभेदभयाद्राजंस्तस्मात्तद्ब्रवीमि ते ॥ ६०
वयं तु ब्राह्मणा नाम मृदुदण्डाः कृपालवः ।
स्वस्ति चेच्छाम भवतः परेषां च यथाऽऽत्मनः
राजन्नात्मानमाचक्षे सम्बन्धी भवतो ह्यहम्
मुनिः कालकवृक्षीय इत्येवमभिसंज्ञितः ॥६२
पितुः सखा च भवतः संमतः सत्यसङ्गरः ।
व्यापन्ने भवतो राज्ये राजन्पितरि संस्थिते
सर्वकामान्परित्यज्य तपस्तप्तं तदा मया ।
स्नेहात्त्वां तु ब्रवीम्येतन्मा भूयो विभ्रमेदिति
उभे दृष्ट्वा दुःखसुखे राज्यं प्राप्य यदृच्छया ।
राज्येनामात्यसंस्थेन कथं राजन्प्रमाद्यसि ॥
ततो राजकुले नान्दी सञ्जज्ञे भूयसा पुनः ।
पुरोहितकुले चैव संप्राप्ते ब्राह्मणर्षभे ॥ ६६
एकच्छत्रां महीं कृत्वा कौसल्याय यशस्विने
मुनिः कालकवृक्षीय ईजे क्रतुभिरुत्तमैः ॥६७
हितं तद्वचनं श्रुत्वा कौसल्योऽप्यजयन्महीम्
तथा च कृतवान् राजा यथोक्तं तेन भारत ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अमात्यपरीक्षायां कालकवृक्षीयोपाख्याने द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥*

---

उषितं मयेति शेषः । वीरपत्न्याः आलये जारेणेवेति शेषः। मृत्युस्थाने त्वच्छीलजिज्ञासया स्थितमिति सार्धाभिप्रायः ॥५१॥ जिज्ञासामेवाह-**कच्चिदिति** । आन्तराः कामादयः षट्। एषां अमात्यादीनाम् ॥५२॥ रोचते भवानिति शेषः ॥ ५३ ॥ अमात्येष्वरुचौ हेतुमाह-**भवत इति** । दोषो मित्रध्वंसः ॥५४॥ न द्रुग्धः न द्रोहकर्ता एवं सत्यपि तत् अयमस्मद्द्वेषीति तेषां मयि दोषदर्शनमस्ति अतो मयाऽत्र न स्थेयमित्यर्थः। दुर्हृदात् दुष्टचित्तात् भयं भेतव्यं भग्नपृष्ठात् पृष्ठभङ्गेन कोपितात् ॥ ५५ ॥ इमं हि तस्य कारस्य वधे दोषमदर्शयन् एकमेकममात्यं क्रमेण दुर्बली कुरु ऐश्वर्यात् च्यावय दुर्बलीकृतस्य कारणं वधहेतुं दोषमाज्ञाय साकल्येन ज्ञात्वा एकैकमेव जहि ॥ ५९ ॥ तेषामकस्मात् युगपच्च वधे दोषमाह-**एकेति** । संहताः कंटकानपि मृद्नीयुः विमृत मादृशान्मृदूनित्यर्थः ॥ ६० ॥ पितरि त्वदीये संस्थिते मृते ॥ ६३ ॥ विभ्रमेत् अनाप्तेष्वाप्तबुद्धिं भवान्माकार्षीदिति ॥ ६४ ॥ केवलं अमात्यसंस्थो मा भूरित्याशयेनाह-**उभे इति** ॥ ६५ ॥ नान्दी मङ्गलपाठः ततस्तस्मिन्मन्त्रिणि वृते सति नन्दीति पाठे हर्षः । मन्त्रीतिपाठे भयसा यत्नेन सञ्जज्ञे जातः ६६ कौसल्याय कौसल्यार्थे ॥ ६७ ॥इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२ ॥

*अस्मिन्नध्याये श्लोकपंचकमाधिकम् ।

## ८३

युधिष्ठिर उवाच ।
सभासदः सहायाश्च
सुहृदश्च विशांपते ।
परिच्छदास्तथाऽमात्याः
कीदृशाः स्युः पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
ह्रीनिषेवास्तथा दान्ताः
सत्यार्जवसमन्विताः ।
शक्ताः कथयितुं सम्य-
क्ते तव स्युः सभासदः ॥ २
अमात्यांश्चातिशूरांश्च ब्राह्मणांश्च परिश्रुतान् ।
सुसंतुष्टांश्च कौन्तेय महोत्साहांश्च कर्मसु ॥३
एतान्सहायाँल्लिप्सेथाः सर्वास्वापत्सु भारत
कुलीनः पूजितो नित्यं न हि शक्तिं निगूहति
प्रसन्नमप्रसन्नं वा पीडितं हतमेव वा ।
आवर्तयति भूयिष्ठं तदेव ह्यनुपालितम् ॥ ५
कुलीना देशजाः प्राज्ञा रूपवन्तो बहुश्रुताः ।
प्रगल्भाश्चानुरक्ताश्च ते तव स्युः परिच्छदाः
दौष्कुलेयाश्च लुब्धाश्च नृशंसा निरपत्रपाः ।
ते त्वां तात निषेवेयुर्यावदार्द्रकपाणयः ॥ ७
कुलीनान् शीलसंपन्ना-
निङ्गितज्ञाननिष्ठुरान् ।
देशकालविधानज्ञान्
भर्तृकार्यहितैषिणः ॥ ८
नित्यमर्थेषु सर्वेषु राजा कुर्वीत मन्त्रिणः ।
अर्थमानार्घसत्कारैर्भोगैरुच्चावचैः प्रियैः ।
यानर्थभाजो मन्येथास्ते ते स्युः सुखमानिनः
अभिन्नवृत्ता विद्वांसः
सद्वृत्ताश्चरितव्रताः ।
न त्वां नित्यार्थिनो जह्यु-
रक्षुद्राः सत्यवादिनः ॥ १०
अनार्या ये न जानन्ति समयं मन्दचेतसः ।
तेभ्यः परिजुगुप्सेथा ये चापि समयच्युताः ॥
नैकमिच्छेद्गणं हित्वा स्याच्चेदन्यतरग्रहः ।
यस्त्वेको बहुभिः श्रेयान्कामं तेन गणं त्यजेत्
श्रेयसो लक्षणं चैतद्विक्रमो यस्य दृश्यते ।
कीर्तिप्रधानो यश्च स्यात्समये यश्च तिष्ठति
समर्थान्पूजयेद्यश्च नास्पर्धैः स्पर्धते च यः ।
न च कामाद्भयात्क्रोधाल्लोभाद्वा धर्ममुत्सृजेत्
अमानी सत्यवान्क्षान्तो
जितात्मा मानसंयुतः ।
स ते मन्त्रसहायः स्यात्
सर्वावस्थापरीक्षितः ॥ १५
कुलीनः कुलसंपन्नस्तितिक्षुर्दक्ष आत्मवान् ।
शूरः कृतज्ञः सत्यश्च श्रेयसः पार्थ लक्षणम् १६
तस्यैवं वर्तमानस्य पुरुषस्य विजानतः ।
अमित्राः संप्रसीदन्ति तथा मित्रीभवन्त्यपि ॥
अत ऊर्ध्वममात्यानां परीक्षेत गुणागुणम् ।
संयतात्मा कृतप्रज्ञो भूतिकामश्च भूमिपः १८
संबन्धिपुरुषैराप्तैरभिजातैः स्वदेशजैः ।
अहार्यैरव्यभीचारैः सर्वशः सुपरीक्षितैः १९

८३

सभासदः व्यवहारनिर्णायकाः । सहायाः युद्धादावुपयोगिनः । सुहृदो हितकर्तारः । परिच्छदाः सेनान्यादयः । अमात्याः मन्त्रिणः ॥ १ ॥ क्रमेणैषां लक्षणान्याह—ह्रीति । कथयितुं न्यायान्यायौ वक्तुम् ॥ २ ॥ अमात्यान् नित्यं सन्निहितान् शूराः पुरोहितादयश्च सहाया इत्यर्थः ॥ ३ ॥ सुहृदमाह सार्धेन-कुलीन इति ॥४॥ यावदार्द्रकपाणयः शुष्कहस्तास्तु सद्यो विक्रियन्ते इत्यर्थः ॥ ७ ॥ इङ्गितज्ञान्नेत्रवक्त्रादिचेष्टितज्ञान् ॥ ८ ॥ अर्थो धनं मानः उच्चस्थाने निवेशादिः अर्घो दिव्यवस्त्रताम्बूलादिदानम् । सत्कार आदरः यान्प्रियान्मन्येथास्तेऽर्थभाजः सुखभागिनश्च स्युः ॥ ९ ॥ त एवापदि अभिन्नवृत्ताः स्वामिना सह अनर्थभाजो दुःखभाजश्च स्युः । नित्यं आपद्यनापदि चार्थयन्त इति नित्यार्थिनः ॥१०॥ समयं धर्माधर्ममर्यादां जुगुप्सेथाः रक्षस्व ॥ ११ ॥ अन्यतरग्रहो गणैकयोरेकतरस्य ग्रहणप्रसङ्गः एकश्चेद्गुणी तदा गणं त्यक्त्वा स एव ग्राह्यः अन्यथा गण एव ग्राह्य इति ॥१२॥ श्रेयसः साधोः ॥१३॥ सत्यः सत्यवान् ॥१६॥ भूमिपः परीक्षेतेति योजना ॥ १८ ॥ अभिजातैः कुलीनैः अहार्यैः लञ्चादिना वशीकर्तुमशक्यैः सम्बन्धिपुरुषैर्येषां सम्बन्धोऽस्ति तादृशैः ॥१९॥

यौनाः श्रौतास्तथा मौलास्तथैवाप्यनहंकृताः
कर्तव्या भूतिकामेन पुरुषेण बुभूषता ॥ २०
एषां वैनयिकी बुद्धिः प्रकृतिश्चैव शोभना ।
तेजो, धैर्य, क्षमा, शौचमनुरागः स्थितिर्धृतिः
परीक्ष्य च गुणान्नित्यं प्रौढभावान्धुरंधरान् ।
पञ्चोपधाव्यतीतांश्च कुर्याद्राजाऽर्थकारिणः
पर्याप्तवचनान्वीरान्प्रतिपत्तिविशारदान् ।
कुलीनान्सत्त्वसम्पन्नानिङ्गितज्ञाननिष्ठुरान् ॥
देशकालविधानज्ञान्भर्तृकार्यहितैषिणः ।
नित्यमर्थेषु सर्वेषु राजन्कुर्वीत मन्त्रिणः २४
हीनतेजोभिसंसृष्टो नैव जातु व्यवस्यति ।
अवश्यं जनयत्येव सर्वकर्मसु संशयम् ॥ २५
एवमल्पश्रुतो मन्त्री कल्याणाभिजनोऽप्युत ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो नालं मन्त्रं परीक्षितुम् २६
तथैवानभिजातोऽपि काममस्तु बहुश्रुतः ।
अनायक इवाचक्षुर्मुह्यत्यणुषु कर्मसु ॥ २७
यो वाऽप्यस्थिरसंकल्पो बुद्धिमानागतागमः
उपायज्ञोऽपि नालं स कर्म प्रापयितुं चिरम्
केवलात्पुनरादानात्कर्मणो नोपपद्यते ।
परामर्शो विशेषाणामश्रुतस्येह दुर्मतेः ॥ २९
मन्त्रिण्यननुरक्ते तु विश्वासो नोपपद्यते ।
तस्मादननुरक्ताय नैव मन्त्रं प्रकाशयेत् ॥ ३०
व्यथयेद्धि स राजानं मन्त्रिभिः सहितोऽनृजुः
मारुतोपहितच्छिद्रैः प्रविश्याग्निरिव द्रुमम्
संक्रुद्धश्चैकदा स्वामी स्थानाच्चैवापकर्षति ।
वाचा क्षिपति संरब्धः पुनः पश्चात्प्रसीदति
तानि तान्यनुरक्तेन
शक्यानि हि तितिक्षितुम् ।
मन्त्रिणां च भवेत्क्रोधो
विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ ३३
यस्तु संहरते तानि भर्तुः प्रियचिकीर्षया ।
समानसुखदुःखं तं पृच्छेदर्थेषु मानवम् ॥ ३४
अनृजुस्त्वनुरक्तोऽपि संपन्नश्चेतरैर्गुणैः ।
राज्ञः प्रज्ञानयुक्तोऽपि न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥
योऽमित्रैः सह संबद्धो न पौरान्बहुमन्यते ।
असुहृत्तादृशो ज्ञेयो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ३६
अविद्वानशुचिः स्तब्धः शत्रुसेवी विकत्थनः
असुहृत्क्रोधनो लुब्धो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥
आगन्तुश्चानुरक्तोऽपि काममस्तु बहुश्रुतः ।
सत्कृतः संविभक्तो वा न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥
विधर्मतो विप्रकृतः पिता यस्याभवत्पुरा ।
सत्कृतः स्थापितः सोऽपि न मन्त्रं श्रोतुमर्हति
यः स्वल्पेनापि कार्येण सुहृदाक्षारितो भवेत्
पुनरन्यैर्गुणैर्युक्तो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ४०
कृतप्रज्ञश्च मेधावी बुधो जानपदः शुचिः ।
सर्वकर्मसु यः शुद्धः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति ४१
ज्ञानविज्ञानसंपन्नः प्रकृतिज्ञः परात्मनोः ।
सुहृदात्मसमो राज्ञः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति ४२
सत्यवाक् शीलसंपन्नो गम्भीरः सत्रपो मृदुः
पितृपैतामहो यः स्यात्स मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥
संतुष्टः संमतः सत्यः शौटीरो द्वेष्यपापकः ।
मन्त्रवित्कालविच्छूरः स मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥
सर्वलोकमिमं शक्तः सान्त्वेन कुरुते वशे ।
तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता नृप
पौरजानपदा यस्मिन्विश्वासं धर्मतो गताः ।
योद्धा नयविपश्चिच्च स मन्त्रं श्रोतुमर्हति ४६

---

यौना उत्तमयोनयः श्रौता वेदपथगाः मौलाः परम्परागताः अनहंकृता अगर्वाः कर्तव्या मन्त्रिण इति शेषः ॥२०॥ **प्रकृतिः** पूर्वकर्मजः संस्कारः । शोभना सत्यार्जवादिमती **तेजः** पराभिभवसामर्थ्यं । **धैर्य** महत्यामप्यापदि चित्तस्यानवसादः । **क्षमा** महत्यप्यपकारे सहिष्णुत्वम् । **शौचं** बाह्यमान्तरं च निष्कापट्यं । **अनुरागः** स्वामिनि प्रीतिः । **स्थितिः** अव्यभिचारिता । **धृतिः** धारणसामर्थ्यम् ॥२१॥ एव मन्त्रिण इति तृतीयेनान्वयः । उपधा च्छलं तत् व्यतीतान् ॥२२॥ पर्याप्तं कृत्स्नस्य विवित्सितस्यार्थस्य निर्वाहकं वचनं येषां तान् ॥२३॥ वर्ज्यानाह - **हीनेत्यादिना** । हीनतेजसा मित्रेणाभिसंसृष्टः सम्बद्धः न व्यवस्यति न कर्तव्याकर्तव्यं निश्चिनोति ॥ २५ ॥ बहुगुणयुक्तोऽपि किञ्चिद्दोषयुक्तस्त्याज्य इत्याह-- **एवमिति** ॥ २६ ॥ अणुषु सूक्ष्मेषु ॥ २७ ॥ प्रापयितुं समापयितुम् ॥२८॥ **केवलादिति** । आरम्भशूरोऽपि मूर्खः कर्मणः फलविशेषान् ज्ञातुं न शक्नोतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ अनुरक्तलक्षणमाह त्रिभिः-- **संक्रुद्ध इति** । संक्रुद्धः स्वामी कदाचिदाश्वासितमपि अधिकारच्युतं करोति कदाचित्परुषमुक्त्वाऽप्यनुगृह्णाति तच्चानुरक्तेनापि मन्त्रिणा सोढुमशक्यं मन्त्रिक्रोधश्च वज्रपाततुल्योऽतो नित्यं राजहितार्थी यस्तानि सोढुं शक्नुयात्स एवानुरक्ततमेव राजा पृच्छेदित्यर्थः ॥३०॥ आगन्तुर्नूतनः सोऽप्यविश्वास्य इत्यर्थः ॥३८॥ विधर्मतः अन्यायेन ॥ ३९ ॥ आक्षारितो धनग्रहणेन रिक्तः कृतः ॥४०॥ उपादेयानाह-**सर्वेति** । जानपदः स्वदेशजः ४१ परस्य शत्रोः आत्मनः च प्रकृतीः स्वाम्यमात्यादिकाः जानातीति प्रकृतिज्ञः ॥४२॥ गम्भीरो मन्त्रगोपनसमर्थः ॥ ४३ ॥ शौटीरः प्रगल्भः द्वेष्यवत् हेयं पापं यस्य स द्वेष्यपापकः ४४ आधित्सता आधातुमिच्छता ४५

तस्मात्सर्वैर्गुणैरेतैरुपपन्नाः सुपूजिताः ।
मन्त्रिणः प्रकृतिज्ञाः स्युस्त्र्यवरा महदीप्सवः
स्वासु प्रकृतिषु च्छिद्रं लक्षयेरन्परस्य च ।
मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते ॥
नास्य च्छिद्रं परः पश्ये-
च्छिद्रेषु परमन्वियात् ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि
रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ४९
मन्त्रगूढा हि राज्यस्य मन्त्रिणो ये मनीषिणः
मन्त्रसंहननो राजा मन्त्राङ्गानीतरे जनाः ५०
राज्यं प्रणिधिमूलं हि मन्त्रसारं प्रचक्षते ।
स्वामिनस्त्वनुवर्तन्ते वृत्त्यर्थमिह मन्त्रिणः ५१
संविनीय मदक्रोधौ मानमीर्ष्यां च निर्वृताः
नित्यं पञ्चोपधातीतैर्मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥
तेषां त्रयाणां विविधं विमर्शं
विबुध्य चित्तं विनिवेश्य तत्र ।
स्वनिश्चयं तत्प्रतिनिश्चयज्ञं
निवेदयेदुत्तरमन्त्रकाले ॥ ५३

धर्मार्थकामज्ञमुपेत्य पृच्छे-
द्युक्तो गुरुं ब्राह्मणमुत्तरार्थम् ।
निष्ठा कृता तेन यदा सहः स्या-
त्तं मन्त्रमार्गं प्रणयेदसक्तः ॥ ५४
एवं सदा मन्त्रयितव्यमाहु-
र्ये मन्त्रतत्त्वार्थविनिश्चयज्ञाः ।
तस्मात्तमेवं प्रणयेत्सदैव
मन्त्रं प्रजासंग्रहणे समर्थम् ॥ ५५
न वामनाः कुब्जकृशा न खञ्जा
नान्धो जडः स्त्री च नपुंसकं च ।
न चात्र तिर्यङ्न पुरो न पश्चा-
न्नोर्ध्वं न चाधः प्रचरेत्कथंचित् ५६
आरुह्य वा वेश्म तथैव शून्यं
स्थलं प्रकाशं कुशकाशहीनम् ।
वागङ्गदोषान्परिहृत्य सर्वा-
न्संमन्त्रयेत्कार्यमहीनकालम् ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सभ्यादिलक्षणकथने [ऽ]
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । बृहस्पतेश्च संवादं शक्रस्य च युधिष्ठिर ॥ १

पञ्चानामभावे त्र्यवरास्त्रिभ्यो न्यूना न कार्याः ॥४७॥ प्रकृतिषु स्वाम्यमात्यादिषु मन्त्रिणां छिद्रं अयथोक्तकारित्वाभावेन परस्यावसरदानम् ॥४८॥ रक्षेत् गोपयेत् पिदध्यात् विवरं छिद्रम् ॥ ४९ ॥ मन्त्रो गूढो येषां ते मन्त्रसंहननो मन्त्रकवचः इतरे शूरजनादयः ॥ ५० ॥ स्वामिनो मन्त्रिणश्च मदादिरहिताः सन्तो यद्यन्योन्यमनुवर्तन्ते तर्हि निर्वृताः सुखिनो भवन्तीत्यर्थः ॥ ५१ ॥ निन्यमित्यर्थः । उपधाः छलानि तानि पञ्च तेषु केवलं वाचिकी द्रोणवधे हतोऽश्वत्थामा कुञ्जर इत्युक्तिर्युधिष्ठिरस्य मनसि च्छलाभावात् । भीमस्य तु तत्रैव कायिकी वाचिकी च । केवलं मानसिकी पाण्डवेषु धृतराष्ट्रस्य वाचिक्या अभावात् । तत्रैव धार्तराष्ट्राणां कायवाङ्मनोभवा जतुगृहे । सौप्तिकेऽश्वत्थाम्नः कायिकीति पञ्चविधा उपधा तामतीतैः ॥५२॥ तेषामिति । त्रयाणाम् त्रीणि मतानि स्वनिश्चयं चावधार्य निश्चयज्ञं गुरुं प्रति तन्मतचतुष्टयं निवेदयेदिति द्वयोः सम्बन्धः ॥ ५३ ॥ तेन गुरुणापि चतुर्भिः सह ऊहापोहपूर्वकं यदा निष्ठा सिद्धान्तः कृतो भवेत् सोऽपि यदा सहः स्यात्सर्वेषामेकमत्येन स्यात्तदा तं मन्त्रं प्रणयेत् कार्ये नियोजयेत् ॥ ५४ ॥ अत्र मन्त्रस्थाने ॥५६॥ वाग्दोष उच्चैर्भाषणादिः अङ्गदोषो नेत्रवक्त्रविकारादिः तेनान्यं नाधिक्षिपेदित्यर्थः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

८४

अत्र मन्त्रमूलभूते प्रजासंग्रहणे विषये ॥ १ ॥

शक्र उवाच ।
किं स्विदेकपदं ब्रह्मन्पुरुषः सम्यगाचरन् ।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत् ॥ २
बृहस्पतिरुवाच ।
सान्त्वमेकपदं शक्र पुरुषः सम्यगाचरन् ।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत् ॥ ३
एतदेकपदं शक्र सर्वलोकसुखावहम् ।
आचरन्सर्वभूतेषु प्रियो भवति सर्वदा ॥ ४
यो हि नाभाषते किंचित्सर्वदा भ्रुकुटीमुखः
द्वेष्यो भवति भूतानां स सान्त्वमिह नाचरन्
यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते ।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति
दानमेव हि सर्वत्र सान्त्वेनानभिजल्पितम् ।
न प्रीणयति भूतानि निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ७
आदानादपि भूतानां मधुरामीरयन् गिरम् ।
सर्वलोकमिमं शक्र सान्त्वेन कुरुते वशे ८
तस्मात्सान्त्वं प्रयोक्तव्यं
दण्डमाधित्सतोऽपि हि ।
फलं च जनयत्येवं
न चास्योद्विजते जनः ॥ ९
सुकृतस्य हि सान्त्वस्य
श्लक्ष्णस्य मधुरस्य च ।
सम्यगासेव्यमानस्य
तुल्यं जातु न विद्यते ॥ १०
भीष्म उवाच ।
इत्युक्तः कृतवान्सर्वं यथा शक्रः पुरोधसा
तथा त्वमपि कौन्तेय सम्यगेतत्समाचर ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि इन्द्रबृहस्पतिसंवादे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

युधिष्ठिर उवाच ।
कथं स्विदिह राजेन्द्र पालयन्पार्थिवः प्रजाः
प्रीतिं धर्मविशेषेण कीर्तिमाप्नोति शाश्वतीम्
भीष्म उवाच ।
व्यवहारेण शुद्धेन
प्रजापालनतत्परः ।
प्राप्य धर्मं च कीर्तिं च
लोकानाप्नोत्युभौ शुचिः ॥ २
युधिष्ठिर उवाच ।
कीदृशैर्व्यवहारैस्तु कैश्च व्यवहरेन्नृपः ।
एतत्पृष्टो महाप्राज्ञ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३
ये चैव पूर्वं कथिता गुणास्ते पुरुषं प्रति ।
नैकस्मिन्पुरुषे ह्येते विद्यन्त इति मे मतिः ४
भीष्म उवाच ।
एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि बुद्धिमन् ।
दुर्लभः पुरुषः कश्चिदेभिर्युक्तो गुणैः शुभैः ॥ ५
किं तु संक्षेपतः शीलं
प्रयत्नेनेह दुर्लभम् ।
वक्ष्यामि तु यथाऽमात्यान्
यादृशांश्च करिष्यसि ॥ ६
चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान्
प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन् ।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ
बलिनः शस्त्रपाणिनः ॥ ७
वैश्यान्वित्तेन संपन्नानेकविंशतिसंख्यया ।
त्रींश्च शूद्रान्विनीतांश्च शुचीन्कर्मणि पूर्वके ॥

---

एकपदं यत्र सर्वे गुणाः अन्तर्भवन्ति तदेव कर्तव्यं वस्तु प्रमाणं सम्मतम् ॥ २ ॥ सान्त्वं निष्कपटं प्रियवचनम् ॥३॥ नाभाषते तूष्णीमास्ते नाचरन् अनाचरन् ॥५॥ यो राजा पूर्वं स्वदुःखनिवेदनात्प्रागेव किमर्थमागतोऽसीत्यादि भाषते ॥६ ॥ दानमेव दानमपि सान्त्वहीनं न प्रीणयतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ सर्वस्वं गृहीत्वापि सान्त्वं प्रयुञ्जतो वशे लोको भवतीत्याह—आदानादपीति ॥ ८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैल० भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

कथमिति । प्रीतिं स्वर्गम् ॥ १ ॥ व्यवहारेण एकस्मिन्गृहक्षेत्रादौ विषये ममेदमिति द्वयोर्विवदतोर्मध्येऽयं सत्योऽयमनृत इति विवेको व्यवहारः । तेन शुद्धेन पक्षपातहीनेन ॥ २ ॥ कीदृशैः किंस्वरूपैः कैर्व्यवहारनिर्णायकैः व्यवहरेत् निर्णयं कुर्यात् ॥३॥ पूर्वके नित्ये ॥८॥

अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम् ॥ ९
श्रुति-स्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।
कार्ये विवदमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम् १०
वर्जितं चैव व्यसनैः सुघोरैः सप्तभिर्भृशम्।
अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्
ततः संप्रेषयेद्राष्ट्रे राष्ट्रीयाय च दर्शयेत्।
अनेन व्यवहारेण द्रष्टव्यास्ते प्रजाः सदा १२
न चापि गूढं द्रव्यं ते ग्राह्यं कार्योपघातकम्
कार्ये खलु विपन्ने त्वां सोऽधर्मस्तांश्च पीडयेत्
विद्रवेच्चैव राष्ट्रं ते श्येनात्पक्षिगणा इव।
परिस्रवेच्च सततं नौर्विशीर्णेव सागरे ॥ १४
प्रजाः पालयतो सम्यगधर्मेणेह भूपतेः।
हार्दं भयं सम्भवति स्वर्गश्चास्य विरुध्यते ॥
अथ यो धर्मतः पाति
राजामात्योऽथ वाऽऽत्मजः।
धर्मासने सन्नियुक्तो
धर्ममूले नरर्षभ ॥ १६
कार्येष्वधिकृताः सम्यगकुर्वन्तो नृपानुगाः
आत्मानं पुरतः कृत्वा यान्त्यधः सहपार्थिवाः
बलात्कृतानां बलिभिः कृपणं बहु जल्पताम्
नाथो वै भूमिपो नित्यमनाथानां नृणां भवेत्
ततः साक्षिबलं साधु द्वैधवादकृतं भवेत्।
असाक्षिकमनाथं वा परीक्ष्यं तद्विशेषतः १९
अपराधानुरूपं च दण्डं पापेषु धारयेत्।
वियोजयेद्धनैर्ऋद्धानधनानथ बन्धनैः॥ २०
विनयेच्चापि दुर्वृत्तान्प्रहारैरपि पार्थिवः।
सान्त्वेनोपप्रदानेन शिष्टांश्च परिपालयेत् २१
राज्ञो वधं चिकीर्षेद्यस्तस्य चित्रो वधो भवेत्
आदीपकस्य स्तेनस्य वर्णसंकरिकस्य च २२
सम्यक् प्रणयतो दण्डं भूमिपस्य विशांपते।
युक्तस्य वा नास्त्यधर्मो धर्म एव हि शाश्वतः
कामकारेण दण्डं तु यः कुर्यादविचक्षणः।
स इहाकीर्तिसंयुक्तो मृतो नरकमृच्छति २४
न परस्य प्रवादेन परेषां दण्डमर्पयेत्।
आगमानुगमं कृत्वा बध्नीयान्मोक्षयीत वा॥
न तु हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्याञ्चिदापदि।
दूतस्य हंता निरयमाविशेत्सचिवैः सह २६
यथोक्तवादिनं दूतं क्षत्रधर्मरतो नृपः।
यो हन्यात्पितरस्तस्य भ्रूणहत्यामवाप्नुयुः २७

---

अष्टाभिर्गुणैः। शुश्रूषा श्रवणं ग्रहणं धारणमूहनमपोहनं विज्ञानं तत्त्वज्ञानं चेति तैः। पञ्चाशद्वर्षवयसमित्येकैकस्य विशेषणम् ॥ ९ ॥ सप्तभिः मृगयाक्षाः स्त्रियः पानमिति चतुर्भिः कामजैः दण्डपातनं वाक्पारुष्यं अर्थदूषणमिति त्रिभिः क्रोधजैरिति सप्तभिः अष्टानां ब्राह्मणचतुष्टयं शूद्रत्रयं सूतश्चेति तेषाम् ॥ ११ ॥ ते त्वया द्रष्टव्याः ॥१२॥ गूढं न्यासापहारादिकं ते त्वया न ग्राह्यम्। अन्योन्यं विवदमानौ द्रव्ये परस्परसम्बन्धं दूषयतस्तथा च उभयोरसम्बन्धाद्राजकीयमिदमिति बुद्धिं न कारयेदित्यर्थः सार्धः ॥ १३ ॥ परिस्रवेत् मन्दं मन्दमन्यत्र गच्छेत् ॥ १४ ॥ अधर्मत इति च्छेदः। धर्ममूले राज्ये ॥ १६॥ ततः साक्षीति। यतोऽपरीक्षायां सामात्यस्य राज्ञोऽधोगतिस्तातो हेतोस्तत् व्यवहारजातं परीक्ष्यम्। तथाहि। अर्थिना ममायं शतं सुवर्णान्धारयतीति पक्षे उपन्यस्ते यदि प्रत्यर्थी धारयामीति वदेत्तदा न साक्ष्यादिप्रयोजनमस्ति यदि त्वसौ न धारयामीति वदति तदा द्वैधवादकृतं अन्योन्यं विरुद्धो य उभयोर्वादस्तत्र कृतं साक्षिबलं साधु भवेत् निर्णायकमिति शेषः। तत्र अर्थिना प्रत्यर्थिनि स्वार्थसाधनाय साक्षिपत्रं शपथो वा आस्थेयः। क्षेत्रादिविषये विवादश्चेद्भोगोऽपि प्रदर्शनीयः। यदा तु प्रत्यर्थी वदति सत्यमस्य मया गृहीतं परन्तु प्रत्यर्पितमिति वा अस्मिन्नर्थे पूर्वमेवायं मया पराजितोऽस्ति पुनर्निर्लज्जत्वादुपागत इति वा वदति तदा प्रत्यर्पणकालीना अर्थिपराजयकालीना वा साक्ष्यादयः प्रदर्शनीयाः। यदर्थिनः प्रत्यर्थिनो वा साक्ष्यादिकं नास्ति शपथं वा परो नानुमन्यते तदा तद्विवादास्पदं द्रव्यमसाक्षिकत्वादनाथं निःस्वामिकं भवति अर्थी च तन्न मुञ्चति तदा विशेषतस्तत्परगुप्रहणादिना तत्परीक्ष्यमिति ॥ १९ ॥ परीक्षोत्तरमपि किं कार्यमत आह—अपराधेति ॥ २० ॥ चित्रोऽनेकधा आदीपकस्य गृहादिदाहकस्य चित्र इति सर्वत्रानुकृष्यते ॥२२॥ युक्तस्य यथाशास्त्रमवहितस्य चित्रवधं कुर्वतोऽपि राज्ञो दोषो नास्ति प्रत्युत धर्म एवास्तीत्यर्थः ॥२३॥ नेति। पितुरपराधे पुत्रो न दण्ड्यः अपि तु आगमानुगमः कार्यः त्वं स्वपितरं पत्रादिद्वारा आनीयोपस्थापयेति तदुपरि पित्रागमनस्य पर्यनुयोगः कार्यः तावत्पर्यन्तं पुत्रं बध्नीयात् यदि तु स बद्धेऽपि पुत्रे नायाति तदा पुत्रमपि मोक्षयेत्। पितुः राष्ट्रान्निर्वासनरूपस्य दण्डस्य तेन स्वत एव सम्पादितत्वादिति भावः ॥ २५ ॥

कुलीनः कुलसंपन्नो वाग्मी दक्षः प्रियंवदः।
यथोक्तवादी स्मृतिमान्दूतः स्यात्सप्तभिर्गुणैः
एतैरेव गुणैर्युक्तः प्रतीहारोऽस्य रक्षिता।
शिरोरक्षश्च भवति गुणैरेतैः समन्वितः २९
धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सांधिविग्रहिको भवेत्।
मतिमान्धृतिमान्ह्रीमान्रहस्यविनिगूहिता
कुलीनः सत्त्वसंपन्नः शुक्लोऽमात्यः प्रशस्यते।
एतैरेव गुणैर्युक्तस्तथा सेनापतिर्भवेत्॥ ३१
व्यूहयन्त्रायुधानां च तत्त्वज्ञो विक्रमान्वितः
वर्षशीतोष्णवातानां सहिष्णुः पररन्ध्रवित्॥
विश्वासयेत्परांश्चैव विश्वसेच्च न कस्यचित्।
पुत्रेष्वपि हि राजेन्द्र विश्वासो न प्रशस्यते
एतच्छास्त्रार्थतत्त्वं तु मयाऽऽख्यातं तवानघ
अविश्वासो नरेन्द्राणां गुह्यं परममुच्यते ३४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि अमात्यविभागे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

## ८६

युधिष्ठिर उवाच।
कथंविधं पुरं राजा स्वयमावस्तुमर्हति।
कृतं वा कारयित्वा वा तन्मे ब्रूहि पितामह
भीष्म उवाच।
वस्तव्यं यत्र कौन्तेय सपुत्रज्ञातिबन्धुना।
न्याय्यं तत्र परिप्रष्टुं वृत्तिं गुप्तिं च भारत २
तस्मात्ते वर्तयिष्यामि दुर्गकर्म विशेषतः।
श्रुत्वा तथा विधातव्यमनुष्ठेयं च यत्नतः ३
षड्विधं दुर्गमास्थाय पुराण्यथ निवेशयेत्।
सर्वसंपत्प्रधानं यद्बाहुल्यं चापि संभवेत्॥ ४
धन्वदुर्गं महीदुर्गं गिरिदुर्गं तथैव च।
मनुष्यदुर्गं मृद्दुर्गं वनदुर्गं च तानि षट्॥ ५
यत्पुरं दुर्गसंपन्नं धान्यायुधसमन्वितम्।
दृढप्राकारपरिखं हस्त्यश्वरथसङ्कुलम्॥ ६
विद्वांसः शिल्पिनो यत्र निचयाश्च सुसंचिताः
धार्मिकश्च जनो यत्र दाक्ष्यमुत्तममास्थितः ७
ऊर्जस्विनरनागाश्वं चत्वरापणशोभितम्।
प्रसिद्धव्यवहारं च प्रशान्तमकुतोभयम्॥ ८
सुप्रभं सानुनादं च सुप्रशस्तनिवेशनम्।
शूराढ्यजनसंपन्नं ब्रह्मघोषानुनादितम्॥ ९
समाजोत्सवसंपन्नं सदा पूजितदैवतम्।
वश्यामात्यबलो राजा तत्पुरं स्वयमाविशेत्
तत्र कोशं बलं मित्रं व्यवहारं च वर्धयेत्।
पुरे जनपदे चैव सर्वदोषान्निवर्तयेत्॥ ११
भाण्डागारायुधागारं प्रयत्नेनाभिवर्धयेत्।
निचयान्वर्धयेत्सर्वांस्तथा यन्त्रायुधालयान्॥
काष्ठ-लोह-तुषाङ्गार-दारु-शृङ्गास्थि-वैणवान्।
मज्जा-स्नेह-वसा क्षौद्रमौषधग्राममेव च॥ १३
शणं सर्जरसं धान्यमायुधानि शरांस्तथा।
चर्म स्नायुं तथा वेत्रं मुञ्जबल्वजदन्ध्वनान्॥
आशयाश्चोदपानाश्च प्रभूतसलिलाकराः।
निरोद्धव्याः सदा राज्ञा क्षीरिणश्च महीरुहाः
सत्कृताश्च प्रयत्नेन आचार्यर्त्विक्पुरोहिताः
महेष्वासाः स्थपतयः सांवत्सरचिकित्सकाः
प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता दक्षाः शूरा बहुश्रुताः
कुलीनाः सत्त्वसंपन्ना युक्ताः सर्वेषु कर्मसु १७

प्रतीहारो द्वारपालः शिरोरक्षः शिरांसीव शिरांसि दुर्गनगरादीनि प्रधानस्थानानि तद्रक्षणकर्ता ॥२९॥ एतैः धर्मत्यादिभिरमात्यगुणैः॥ ३१॥ सेनापतेर्विशेषगुणानाह व्यूहेति। व्यूहः सेनायाः निवेशनप्रकारविशेषः। यन्त्राणि धनुरादीनि आयुधानि खड्गादीनि॥ ३२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

८६

कथंविधमिति ॥१॥ अथ दुर्गाणामाश्रयेण पुराणि महानगराणि निवेशयेत् ॥४॥ धन्वा निर्जलदेशः तदेव परितश्च दुर्गं धन्वदुर्गं महीदुर्गं कोटः ॥५॥ दुर्गेण मही दुर्गेण सम्पन्नं अत एव दृढप्राकारपरिखम्॥ ६॥ सानुनादं गीतवादित्रध्वनिमत्॥ ९॥ निचयान् धान्यादिसंग्रहान्॥ १२॥ दन्ध्वनान् ध्वनिमतो निःसाणादीन् बन्धनानिति पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः ॥१४॥ आशया निपानानि उदपानाः कूपाः निरोद्धव्या रक्षणियाः॥ १५॥ प्रज्ञा-ग्रन्थार्थग्रहणसामर्थ्यं मेधा ऊहापोहकौशलम् ॥१७॥

पूजयेद्धार्मिकान् राजा
निगृह्णीयादधार्मिकान् ।
नियुञ्ज्याच्च प्रयत्नेन
सर्ववर्णान् स्वकर्मसु ॥ १८
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव पौरजानपदं तथा ।
चारैः सुविदितं कृत्वा ततः कर्म प्रयोजयेत्
चरान्मन्त्रं च कोशं च दण्डं चैव विशेषतः ।
अनुतिष्ठेत्स्वयं राजा सर्वं ह्यत्र प्रतिष्ठितम् २०
उदासीनारिमित्राणां सर्वमेव चिकीर्षितम् ।
पुरे जनपदे चैव ज्ञातव्यं चारचक्षुषा ॥ २१
ततस्तेषां विधातव्यं सर्वमेवाप्रमादतः ।
भक्तान्पूजयता नित्यं द्विषतश्च निगृह्णता २२
यष्टव्यं क्रतुभिर्नित्यं दातव्यं चाप्यपीडया ।
प्रजानां रक्षणं कार्यं न कार्यं धर्मबाधकम् ॥
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् ।
योगक्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत् २३
आश्रमेषु यथाकालं चैलभाजनभोजनम् ।
सदैवोपहरेद्राजा सत्कृत्याभ्यर्च्य मान्य च
आत्मानं सर्वकार्याणि तापसे राष्ट्रमेव च ।
निवेदयेत्प्रयत्नेन तिष्ठेत्प्रह्वश्च सर्वदा ॥ २६
सर्वार्थत्यागिनं राजा कुले जातं बहुश्रुतम् ।
पूजयेत्तादृशं दृष्ट्वा शयनाशनभोजनैः ॥ २७
तस्मिन्कुर्वीत विश्वासं
राजा कस्याञ्चिदापदि ।
तापसेषु हि विश्वास-
मपि कुर्वन्ति दस्यवः ॥ २८
तस्मिन्निधीनादधीत प्रज्ञां पर्याददीत च ।
न चाप्यभीक्ष्णं सेवेत भृशं वा प्रतिपूजयेत्
अन्यः कार्यः स्वराष्ट्रेषु परराष्ट्रेषु चापरः
अटवीषु परः कार्यः सामन्तनगरेष्वपि ३०
तेषु सत्कारमानाभ्यां संविभागांश्च कारयेत्
परराष्ट्राटवीस्थेषु यथा स्वविषये तथा ॥ ३१
ते कस्याञ्चिदवस्थायां शरणं शरणार्थिने ।
राज्ञे दद्युर्यथाकामं तापसाः संशितव्रताः ३२
एष ते लक्षणोद्देशः संक्षेपेण प्रकीर्तितः ।
यादृशे नगरे राजा स्वयमावस्तुमर्हति ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि दुर्गपरीक्षायां * षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

युधिष्ठिर उवाच ।
राष्ट्रगुप्तिं च मे राजन् राष्ट्रस्यैव तु संग्रहम् ।
सम्यग्जिज्ञासमानाय प्रब्रूहि भरतर्षभ ॥ १
भीष्म उवाच ।
राष्ट्रगुप्तिं च त सम्यग्राष्ट्रस्यैव तु संग्रहम् ।
हन्त सर्वं प्रवक्ष्यामि तत्त्वमेकमनाः शृणु २
ग्रामस्याधिपतिः कार्यो
दशग्राम्यास्तथा परः ।
द्विगुणायाः शतस्यैवं
सहस्रस्य च कारयेत् ॥ ३
ग्रामे यान् ग्रामदोषांश्च
ग्रामिकः प्रतिभावयेत् ।
तान् ब्रूयाद्दशपायासौ
स तु विंशतिपाय वै ॥ ४
सोऽपि विंशत्यधिपतिर्वृत्तं जानपदे जने ।
ग्रामाणां शतपालाय सर्वमेव निवेदयेत् ॥ ५

---

अनुतिष्ठेत् आलोचयेत् ॥ २० ॥ विधातव्यं प्रतिकर्तव्यम् ॥ २२ ॥ तापसे तपस्विजने ॥ २६ ॥ निधीन् धनभाण्डानि अभीक्ष्णं न सेवेत दस्यूनां तत्सूचने तपस्विनाशापत्तेः न प्रतिपूजयेच्च ॥ २९ ॥ अन्यस्तापसः कार्यः सखित्वेन सम्पादनीयः ॥ ३० ॥ तेषु तत्तत्स्थानस्थेषु तापसेषु ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * एकः श्लोक अधिकः ख.

८७

राष्ट्रस्य गुप्तिः परिपालनं कथं कर्तव्यमिति पृच्छति नगरगुप्तिश्रवणानंतरं तस्या बुद्धिस्थाया उपस्थानात् राष्ट्रेति १ दशानां ग्रामाणां समाहारो दशग्रामी तस्याः दशग्राम्याः । द्विगुणायाः विंशतिग्राम्याः शतस्य सहस्रस्य चाधिपतिं कारयेत् ॥ ३ ॥

यानि ग्राम्याणि भोज्यानि
ग्रामिकस्तान्युपाश्रियात् ।
दशपस्तेन भर्तव्य-
स्तेनापि द्विगुणाधिपः ॥ ६
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षो भोक्तुमर्हति सत्कृतः ।
महान्तं भरतश्रेष्ठ सुस्फीतं जनसंकुलम् ७
तत्र ह्यनेकपायत्तं राज्ञो भवति भारत ।
शाखानगरमर्हस्तु सहस्रपतिरुत्तमः ॥ ८
धान्यहैरण्यभोगेन भोक्तुं राष्ट्रीयसङ्गतः ।
तेषां संग्रामकृत्यं स्याद्ग्रामकृत्यं च तेषु यत् ९
धर्मज्ञः सचिवः कश्चित्तत्तत्पश्येदतन्द्रितः ।
नगरे नगरे वा स्यादेकः सर्वार्थचिन्तकः ॥
उच्चैः स्थाने घोररूपो नक्षत्राणामिव ग्रहः ।
भवेत्स तान्परिक्रामेत्सर्वानेव सभासदः ११
तेषां वृत्तिं परिणयेत्कश्चिद्राष्ट्रेषु तच्चरः ।
जिघांसवः पापकामाः परस्वादायिनः शठाः
रक्षाभ्यधिकृता नाम
तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ।
विक्रयं क्रयमध्वानं
भक्तं च सपरिच्छदम् ॥ १३
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजां कारयेत्करान् ।
उत्पत्तिं दानवृत्तिं च शिल्पं संप्रेक्ष्य चासकृत्
शिल्पं प्रति करानेवं शिल्पिनः प्रति कारयेत्
उच्चावचकरा दाप्या महाराज्ञा युधिष्ठिर ॥
यथा यथा न सीदेरंस्तथा कुर्यान्महीपतिः ।
फलं कर्म च संप्रेक्ष्य ततः सर्वं प्रकल्पयेत् ॥
फलं कर्म च निर्हेतु
न कश्चित्संप्रवर्तते ।
यथा राजा च कर्ता च
स्यातां कर्मणि भागिनौ ॥ १७
संवेक्ष्य तु तथा राज्ञा प्रणेयाः सततं कराः ।
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चापि तृष्णया
ईहाद्वाराणि संरुध्य राजा संप्रीतदर्शनः ।
प्रद्विषन्ति परिख्यातं राजानमतिखादिनम्
प्रद्विष्टस्य कुतः श्रेयो नाप्रियो लभते फलम्
वत्सौपम्येन दोग्धव्यं राष्ट्रमक्षीणबुद्धिना ॥
भृतो वत्सो जातबलः पीडां सहति भारत ।
न कर्म कुरुते वत्सो भृशं दुग्धो युधिष्ठिर ॥
राष्ट्रमप्यतिदुग्धं हि न कर्म कुरुते महत् ।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति परिरक्षन्स्वयं नृपः ॥ २२
संजातमुपजीवन्स लभते सुमहत्फलम् ।
आपदर्थं च निर्यातं धनं त्विह विवर्धयेत् ॥
राष्ट्रं च कोशभूतं स्यात्कोशो वेश्मगतस्तथा
पौरजानपदान्सर्वान्संश्रितोपाश्रितांस्तथा ।
यथाशक्त्यनुकम्पेत सर्वान्स्वल्पधनानपि ॥
बाह्यं जनं भेदयित्वा भोक्तव्यो मध्यमः सुखं
एवं नास्य प्रकुप्यन्ति जनाः सुखितदुःखिताः
प्रागेव तु धनादानमनुभाष्य ततः पुनः ।
सन्निपत्य स्वविषये भयं राष्ट्रे प्रदर्शयेत् ॥ २६
इयमापत्समुत्पन्ना परचक्रभयं महत् ।
अपि चान्ताय कल्पन्ते वेणोरिव फलागमा
अरयो मे समुत्थाय बहुभिर्दस्युभिः सह ।
इदमात्मवधायैव राष्ट्रमिच्छन्ति बाधितुम् ॥
अस्यामापदि घोरायां संप्राप्ते दारुणे भये ।
परित्राणाय भवतः प्रार्थयिष्ये धनानि वः ॥
प्रतिदास्ये च भवतां सर्वं चाहं भयक्षये ।
नारयः प्रतिदास्यन्ति यद्धरेयुर्बलादितः ॥
कलत्रमादितः कृत्वा सर्वं वो विनशेदिति
अपि चेत्पुत्रदारार्थमर्थसंचय इष्यते ॥ ३१
नन्दामि वः प्रभावेण पुत्राणामिव चोदये ।
यथाशक्त्युपगृह्णामि राष्ट्रस्यापीडया च वः

---

तत्र राष्ट्रे शताधिपतिभोग्यं ग्रामं अनेकपायत्तं भवति क्लीबत्वमार्षं सार्धः । अन्यथा तस्य तदायत्तत्वे धनलोभात्स कृत्स्नं ग्रामं पीडयेदिति भावः । सहस्रपतिः शाखानगरं तत्रत्यधान्यहैरण्यसंबन्धी यो भोगो धनं तेन स्वस्य वेतनेन भोक्तुं पालयितुमर्हः तत्र क्षत्रियाणामभावाद्वैश्येभ्यो यः कर आयाति तदेव तस्य वेतनमित्यर्थः ॥ ८ ॥ कारयेत् दापयेत् ॥ १४ ॥ फलं धान्यधनवृद्ध्यनुरूपः करः कल्प्य इत्यर्थः ॥ १६ ॥ आत्मनो मूलं राष्ट्रं परेषां मूलं कृष्यादि ॥ १८ ॥ ईहा लोभः अतिखादिनं बहुभक्षम् ॥ १९ ॥ निर्यातं दत्तं इह राष्ट्रे ॥२३॥ संश्रिताः साक्षादाश्रिताः उपाश्रिताः व्यवहिताः ॥ २४॥ बाह्यमिति । आटविको दस्युसंघो बाह्यजनस्तं यूयमुपातिष्ठध्वमिति भेदयित्वा मध्यमो ग्रामीणजनो भोक्तव्यस्ततो बहुलं धनमादद्यादित्यर्थः ॥ २५ ॥ तत्र प्रकारमाह—प्रागिति । चोरनिग्रहार्थं कटकबन्धः कर्तव्यस्तदर्थं धनमपेक्षितमिति पूर्वमेव आभाष्य सूचनां कृत्वा ततः सन्निपत्य तेषु तेषु ग्रामेषु गत्वा भयं दर्शयेत् ॥ २६ ॥ आत्मवधायेति प्रजासु स्वसामर्थ्यं द्योत्यते ॥ २८ ॥

आपत्स्वेव च वोढव्यं भवद्भिः पुङ्गवैरिव ।
न च प्रियतरं कार्यं धनं कस्यांश्चिदापदि ॥
इति वाचा मधुरया श्लक्ष्णया सोपचारया ।
स्वरश्मीनभ्यवसृजेद्योगमाधाय कालवित् ॥
प्राकारं भृत्यभरणं व्ययं संग्रामतोभयम् ।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य गोमिनः कारयेत्करम्
उपेक्षिता हि नश्येयुर्गोमिनोऽरण्यवासिनः
तस्मात्तेषु विशेषेण मृदुपूर्वं समाचरेत् ॥ ३६

सान्त्वनं रक्षणं दानमवस्था चाप्यभीक्ष्णशः ।
गोमिनां पार्थ कर्तव्यः संविभागः प्रियाणि च
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलं गोमिषु भारत ।
प्रभावयन्ति राष्ट्रं च व्यवहारं कृषिं तथा ॥
तस्माद्गोमिषु यत्नेन प्रीतिं कुर्याद्विचक्षणः ।
दयावानप्रमत्तश्च करान्संप्रणयन्मृदून् ॥ ३९
सर्वत्र क्षेमचरणं सुलभं नाम गोमिषु ।
न ह्यतः सदृशं किंचिद्वरमस्ति युधिष्ठिर ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मपर्वणि राष्ट्रगुप्त्यादिकथने
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

युधिष्ठिर उवाच ।
यदा राजा समर्थोपि कोशार्थी स्यान्महामते
कथं प्रवर्तेत तदा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
यथादेशं यथाकालं यथाबुद्धि यथाबलम् ।
अनुशिष्यात्प्रजा राजा धर्मार्थी तद्धिते रतः
यथा तासां च मन्येत श्रेय आत्मन एव च ।
तथा कर्माणि सर्वाणि राजा राष्ट्रेषु वर्तयेत
मधुदोहं दुहेद्राष्ट्रं भ्रमरा इव पादपम् ।
वत्सापेक्षी दुहेच्चैव स्तनांश्च न विकुट्टयेत् ॥
जलौकावत्पिबेद्राष्ट्रं मृदुनैव नराधिपः ।
व्याघ्रीव च हरेत्पुत्रान्संदशेन्न च पीडयेत् ॥
यथा शल्यकवानाखुः पदं धूनयते सदा ।
अतीक्ष्णेनाभ्युपायेन तथा राष्ट्रं समापिबेत् ॥

अल्पेनाल्पेन देयेन वर्धमानं प्रदापयेत् ।
ततो भूयस्ततो भूयः क्रमवृद्धिं समाचरेत् ॥
दमयन्निव दम्यानि शश्वद्भारं विवर्धयेत् ।
मृदुपूर्वं प्रयत्नेन पाशानभ्यवहारयेत् ॥ ८
सकृत्पाशावकीर्णास्ते न भविष्यन्ति दुर्दमाः
उचितेनैव भोक्तव्यास्ते भविष्यन्ति यत्नतः ॥
तस्मात्सर्वसमारंभो
दुर्लभः पुरुषं प्रति ।
यथा मुख्यान्सान्त्वयित्वा
भोक्तव्य इतरो जनः ॥ १०
ततस्तान् भेदयित्वा तु परस्परविवक्षितान्
भुञ्जीत सान्त्वयंश्चैव यथासुखमयत्नतः ॥ ११
न चास्थाने न चाकाले करांस्तेभ्यो निपातयेत्
आनुपूर्व्येण सान्त्वेन यथाकालं यथाविधि

---

पुङ्गवैर्बलीवर्दैः न च प्रियमित्यादिसार्धः । एवं चालेख्येन सुशिक्षितान्मुक्तांश्च स्वरश्मीन्स्वस्य रश्मिभूतान् पदातीन् अधिकारिणः प्रजासु धनमुद्ग्रहीतुं अभ्यवसृजेत्प्रेरयेत् योगं धनग्रहणोपायं आधाय प्रजासु प्रयोज्य धनं गृह्णीयादिति शेषः ॥३३॥ गोमिनः वैश्यान् भाषायां 'चारणा' इति प्रसिद्धान् प्राकारादीन्कर्तव्यान्प्रेक्ष्य संदर्शयित्वा । इदं कार्यमुपस्थितमत्यावश्यकमित्युक्त्वा करं कारयेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

यदेति ॥ १ ॥ शल्यकवान् तीक्ष्णतुंड आखुविशेषः स हि निद्रितस्य मनुष्यस्य पादतलस्थं मांसं अतीक्ष्णेनैवोपायेन भक्षयति । शयानस्तु ईषद्वेदनया पदं किंचिद्धूनयते कंपयते न तु तीव्रवेदनया प्रबुद्धयन् आखुं निवारयति तद्वद्राष्ट्रं समापिबेत् ॥ ६ ॥ प्रत्यब्दं शततमेनाधिकेन वांशेन वर्धमानं करं प्रदापयन् प्रामद्रव्यस्य वृद्धिं कुर्यादित्याह—अल्पेनेति ॥ ७ ॥ दम्यानि वत्सतरकुलानि यथाक्रमेण दमयेत्तद्वत्प्रजा अपीत्याह—दमयन्निवेति । अभ्यवहारयेत् ग्राहयेत् ॥ ८ ॥ सकृत्सद्यः पाशावकीर्णाः सन्तो न भविष्यन्ति मरिष्यन्ति यतो दुर्दमाः अत उचितेन क्रमेण ते भोक्तव्याः दम्याः प्रजाश्च ॥ ९ ॥ पुरुषं प्रतीत्यस्य प्रतिपुरुषमित्यर्थः ॥ १० ॥ ततो मुख्यद्वारा तान् इतरान् विवक्षितान्वोढुमिष्टान् ॥ ११ ॥

उपायान्प्रब्रवीम्येतांश्च मे माया विवक्षिता ।
अनुपायेन दमयन्प्रकोपयति वाजिनः ॥ १३
पानागारनिवेशाश्च वेश्याः प्रापणिकास्तथा
कुशीलवाः सकितवा ये चान्ये केचिदीदृशाः
नियम्याः सर्व एवैते ये राष्ट्रस्योपघातकाः ।
एते राष्ट्रेऽभितिष्ठन्तो बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः
न केनचिद्याचितव्यः कश्चित्किञ्चिदनापदि
इति व्यवस्था भूतानां पुरस्तान्मनुना कृता ॥
सर्वे तथाऽनुजीवेयुर्न कुर्युः कर्म चेदिह ।
सर्व एव इमे लोका न भवेयुरसंशयम् ॥ १७
प्रभुर्नियमने राजा य एतान्न नियच्छति ।
भुङ्क्ते स तस्य पापस्य चतुर्भागमिति श्रुतिः ॥
भोक्ता तस्य तु पापस्य सुकृतस्य यथा तथा ।
नियन्तव्याः सदा राज्ञा पापा ये स्युर्नराधिप
कृतपापस्त्वसौ राजा य एतान्न नियच्छति
तथा कृतस्य धर्मस्य चतुर्भागमुपाश्नुते ॥ २०
स्थानान्येतानि संयम्य प्रसंगो भूतिनाशनः
कामे प्रसक्तः पुरुषः किमकार्यं विवर्जयेत् ॥
मद्यमांसपरस्वानि तथा दारा धनानि च ।
आहरेद्रागवशगस्तथा शास्त्रं प्रदर्शयेत् ॥ २२
आपद्येव तु याचन्ते येषां नास्ति परिग्रहः ।
दातव्यं धर्मतस्तेभ्यस्त्वनुक्रोशाद्भयान्न तु ॥
मा ते राष्ट्रे याचनकाऽभूवन्मा चापि दस्यवः
एषां दातार एवैते नैते भूतस्य भावकाः ॥
ये भूतान्यनुगृह्णन्ति वर्धयन्ति च ये प्रजाः ।
ते ते राष्ट्रेषु वर्तन्तां मा भूतानामभावकाः ॥
दण्ड्यास्ते च महाराज धनादानप्रयोजकाः
प्रयोगं कारयेयुस्तान् यथाबलिकरांस्तथा ॥
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं यच्चान्यत्किंचिदीदृशं
पुरुषैः कारयेत्कर्म बहुभिः कर्मभेदतः ॥ २७
नरश्चेत्कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं चाप्यनुष्ठितः ।
संशयं लभते किञ्चित्तेन राजा विगर्ह्यते ॥
धनिनः पूजयेन्नित्यं पानाच्छादनभोजनैः ।
वक्तव्याश्चानुगृह्णीध्वं प्रजाः सह मयेति वै ॥
अङ्गमेतन्महद्राज्ये धनिनो नाम भारत ।
ककुदं सर्वभूतानां धनस्थो नात्र संशयः ॥
प्राज्ञः शूरो धनस्थश्च स्वामी धार्मिक एव च
तपस्वी सत्यवादी च बुद्धिमांश्चापि रक्षति
तस्मात्सर्वेषु भूतेषु प्रीतिमान्भव पार्थिव ।
सत्यमार्जवमक्रोधमानृशंस्यं च पालय ॥ ३२
एवं दण्डं च कोशं च मित्रं भूमिं च लप्स्यसि
सत्यार्जवपरो राजन्मित्रकोशबलान्वितः ३३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मपर्वणि कोशसञ्चयप्रकारकथने अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## ८९

भीष्म उवाच ।
वनस्पतीन्भक्ष्यफलान्न च्छिन्द्युर्विषये तव ।
ब्राह्मणानां मूलफलं धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥ १
ब्राह्मणेभ्योऽतिरिक्तं च भुञ्जीरन्नितरे जनाः ।
न ब्राह्मणापराधेन हरेदन्यः कथंचन ॥ २

---

मद्यशालाः संदेशहराः कुट्टन्यः कुत्सितेन शीलेन वान्ति गच्छन्ति धर्म हिंसन्ति वा कुशीलवा विटाः कितवा द्यूतकाराश्च निग्राह्या इत्याह-**पानेति** ॥ १४ ॥ भद्रिकाः कल्याण्यः ॥ १५ ॥ याचितव्यः दत्तमृणं करं वेति शेषः ॥ १६ ॥ अनुजीवेयुरनुसरेयुः अन्यथा दोष माह-**नेति** । ॥ १७ ॥ तथा नियच्छन्निति शेषः ॥ २० ॥ स्थानानि मद्यादीनां वक्ष्यमाणानां किमकार्यं विवर्जयेत् अपि तु सर्वमकार्यं कुर्यादेव ॥ २१ ॥ अकार्यमेवाह--**मद्येति** । शास्त्रं आज्ञां प्रदर्शयेत्प्रवर्तयेत् ॥ २२ ॥ आपद्येव न तु शाठ्यादिनाऽनापद्यपि ॥ २३ ॥ दातार आच्छेत्तारः ॥ २४ ॥ धनेत्यधिकधनग्रहणं प्रयोजयन्तोऽधिकारिणो दंड्याः अन्ये च अधिकारिणस्तान् यथावद्बलिकरानुद्दिश्य प्रयोगं कारयेयुः ॥ २६ ॥ बहुभिः कारयेदन्यथा कर्मभेदतः कर्मणो भेदो नाशः स्यादित्यर्थः ॥ २७ ॥ संशयं चोरेभ्यो राजकीयेभ्यो वा भयात् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

॥ ८९ ॥

**वनस्पतीनिति** । मूलफलं ब्राह्मणानां स्वमिति धर्ममाहुरतोऽप्येतान्न च्छिन्द्युः ॥ १ ॥ ब्राह्मणापराधेन तैरपालनेन ॥ २ ॥

विप्रश्चेत्त्यागमातिष्ठे-
दात्मार्थे वृत्तिकर्शितः ।
परिकल्प्याऽस्य वृत्तिः स्या-
त्सदारस्य नराधिप ॥ ३
स चेन्नोपनिवर्तेत वाच्यो ब्राह्मणसंसदि ।
कस्मिन्निदानीं मर्यादामयं लोकः करिष्यति
असंशयं निवर्तेत न चेद्वक्ष्यत्यतः परम् ।
पूर्वं परोक्षं कर्तव्यमेतत्कौन्तेय शाश्वतम् ॥५
आहुरेतज्जना ब्रह्मन्न चैतच्छ्रद्दधाम्यहम् ।
निमन्त्र्यश्च भवेद्भोगैरवृत्त्या च तदाचरेत् ॥६
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं लोकानामिह जीवनम्
ऊर्ध्वं चैव त्रयी विद्या सा भूतान्भावयत्युत
तस्यां प्रयतमानायां ये स्युस्तत्परिपन्थिनः ।
दस्यवस्तद्वधायेह ब्रह्मा क्षत्रमथासृजत् ॥ ८
शत्रून् जय प्रजा रक्ष यजस्व क्रतुभिर्नृप ।
युध्यस्व समरे वीरो भूत्वा कौरवनंदन ॥ ९
संरक्ष्यान्पालयेद्राजा स राजा राजसत्तमः ।
ये केचित्तान्न रक्षन्ति तैरर्थो नास्ति कश्चन
सदैव राज्ञा योद्धव्यं सर्वलोकाद्युधिष्ठिर ।
तस्माद्धेतोर्हि भुञ्जीत मनुष्यानेव मानवः ॥
आन्तरेभ्यः परान् रक्षन्
परेभ्यः पुनरान्तरान् ।
परान्परेभ्यः स्वान्स्वेभ्यः
सर्वान्पालय नित्यदा ॥ १२
आत्मानं सर्वतो रक्षन्
राजन् रक्षस्व मेदिनीम् ।
आत्ममूलमिदं सर्व-
माहुर्वै विदुषो जनाः ॥ १३
किं छिद्रं को नु संगो मे
किं वाऽस्त्यविनिपातितम् ।
कुतो मामाश्रयेद्दोष
इति नित्यं विचिन्तयत् ॥ १४
अतीतदिवसे वृत्तं प्रशंसन्ति न वा पुनः ।
गुप्तैश्चारैरनुमतैः पृथिवीमनुसारयेत् ॥ १५
जानीयुर्यदि मे वृत्तं प्रशंसन्ति न वा पुनः ।
कच्चिद्रोचेज्जनपदे कच्चिद्राष्ट्रे च मे यशः ॥
धर्मज्ञानां धृतिमतां संग्रामेष्वपलायिनाम् ।
राष्ट्रे तु येऽनुजीवन्ति ये तु राज्ञोऽनुजीविनः॥
अमात्यानां च सर्वेषां
मध्यस्थानां च सर्वशः ।
ये च त्वाऽभिप्रशंसेयु-
र्निन्देयुरथवा पुनः ॥ १८
सर्वान् सुपरिणीतांस्तान्
कारयेथा युधिष्ठिर ।
एकान्तेन हि सर्वेषां
न शक्यं तात रोचितुम् ।
मित्रामित्रमथो मध्यं
सर्वभूतेषु भारत ॥ १९

युधिष्ठिर उवाच ।

तुल्यबाहुबलानां च तुल्यानां च गुणैरपि ।
कथं स्यादधिकः कश्चित्स च भुञ्जीत मानवान्

भीष्म उवाच ।

यच्चरा ह्यचरानद्युरदंष्ट्रान्दंष्ट्रिणस्तथा ।
आशीविषा इव क्रुद्धा भुजंगान्भुजगा इव ॥
एतेभ्यश्चाप्रमत्तः स्यात्सदा शत्रोर्युधिष्ठिर ।
भारुण्डसदृशा ह्येते निपतन्ति प्रमादतः ॥
कच्चित्ते वणिजो राष्ट्रे नोद्विजन्ति करार्दिताः
क्रीणन्तो बहुनाऽल्पेन कान्तारकृतविश्रमाः
कच्चित्कृषिकरा राष्ट्रं न जहत्यतिपीडिताः ।
ये वहन्ति धुरं राज्ञां ते भरन्तीतरानपि ॥*

---

त्यागं राष्ट्रस्य ॥ ३ ॥ अवृत्त्या राष्ट्रं त्यजतो राज्ञा वृत्तिः कल्प्येति मर्यादा न तु राजस्थाचलाभात् । त्यजतस्तदपि देयमित्यस्तीति कस्मिन्निति काका सूचयति ॥ ४ ॥ अतः परं त्वं वृत्तिं कल्पयसि न तु पूर्वमिति उपालंभे पूर्वं परोक्षं विस्मर्तव्यं कर्तव्यं क्षन्तव्यमिति तं प्रार्थयेदित्यर्थः ॥५॥ वृत्तिमात्रं कल्पयेदिति परमतं भोगार्थी च चेदाङ्गं त्यजति तदा भोगैरपि निमन्त्र्यः अवृत्त्या चेत्तदावृत्त्यापि निमन्त्र्य इत्याहाहुरिति ॥ ६ ॥ ऊर्ध्वं स्वर्गम् ॥ ७ ॥ लोकात् लोकहितार्थं योद्धव्यं बोद्धव्यमिति पाठे स्वपरचारित्रमिति शेषः । उत्तरार्धे तु भुञ्जेतेत्यत्र युञ्जीतेति पाठः । मनुष्यांश्चारानिति चार्थः ॥ ११ ॥ स्वीयाः आन्तरा बाह्याश्च परस्माद्रक्ष्याः स्वीयाः बाह्यास्तु शत्रुभ्यो रक्ष्या इत्यर्थः ॥ १२ ॥ विदुषो विद्वांसः ॥ १३ ॥ संगो व्यसनस्येति शेषः ॥१४॥ सुपरिणीतान् सत्कृतान् ॥ १९ ॥ तुल्येषु कथमितर इतरं भुञ्जीतेति प्रश्नः बलवानेव दुर्बलं भुञ्जीत तुल्यात् आत्मानं रक्षेच्छलेन च तं भुञ्जीतेत्युत्तरमाह तुल्येति त्रिभिः॥२०॥ भारुंडः गृध्रः ॥ २२ ॥ * अत्र श्लोकद्वयमधिकम्—ख.

इतो दत्तेन जीवन्ति देवाः पितृगणास्तथा।
मानुषोरगरक्षांसि वयांसि पशवस्तथा ॥ २५
एषा ते राष्ट्रवृत्तिश्च राज्ञां गुप्तिश्च भारत।
एतमेवार्थमाश्रित्य भूयो वक्ष्यामि पाण्डव ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मपर्वणि राष्ट्रगुप्तौ
एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

भीष्म उवाच।
यानङ्गिराः क्षत्रधर्मानुतथ्यो ब्रह्मवित्तमः।
मान्धात्रे यौवनाश्वाय प्रीतिमानभ्यभाषत ॥
स यथाऽनुशशासैनमुतथ्यो ब्रह्मवित्तमः।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि निखिलेन युधिष्ठिर ॥२
उतथ्य उवाच।
धर्माय राजा भवति
न कामकरणाय तु।
मान्धातरिति जानीहि
राजा लोकस्य रक्षिता ॥ ३
राजा चरति चेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते।
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ ४
धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि
धर्मो राजनि तिष्ठति।
तं राजा साधु यः शास्ति
स राजा पृथिवीपतिः ॥ ५
राजा परमधर्मात्मा
लक्ष्मीवान्धर्म उच्यते।
देवाश्च गर्हां गच्छन्ति
धर्मो नास्तीति चोच्यते ॥ ६
स्वधर्मे वर्तमानानामर्थसिद्धिः प्रदृश्यते।
तदेव मङ्गलं लोकः सर्वः समनुवर्तते ॥ ७
उच्छिद्यते धर्मवृत्तमधर्मो वर्तते महान्।
भयमाहुर्दिवारात्रं यदा पापो न वार्यते ॥ ८
ममेदमिति नैवैतत्साधूनां तात धर्मतः।
न वै व्यवस्था भवति यदा पापो न वार्यते ॥
नैव भार्या न पशवो न क्षेत्रं न निवेशनम्।
संदृश्येत मनुष्याणां यदा पापबलं भवेत्।
देवाः पूजां न जानन्ति न स्वधां पितरस्तदा
न पूज्यन्ते ह्यतिथयो यदा पापो न वार्यते।
न वेदानधिगच्छन्ति व्रतवन्तो द्विजातयः ॥
न यज्ञांस्तन्वते विप्रा यदा पापो न वार्यते।
वृद्धानामिव सत्त्वानां मनो भवति विह्वलम्
मनुष्याणां महाराज यदा पापो न वार्यते।
उभौ लोकावभिप्रेक्ष्य राजानमृषयः स्वयम्
असृजन्सुमहद्भूतमयं धर्मो भविष्यति।
यस्मिन्धर्मो विराजेत तं राजानं प्रचक्षते ॥
यस्मिन्विलीयते धर्मस्तं देवा वृषलं विदुः।
वृषो हि भगवान्धर्मो यस्तस्य कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं विवर्धयेत् ॥
धर्मे वर्धति वर्धन्ति
सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति हीयन्ते
तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६
धनात्स्रवति धर्मो हि धारणाद्वेति निश्चयः।
अकार्याणां मनुष्येन्द्र स सीमान्तकरः स्मृतः

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवतितमोऽध्यायः॥८९

९०

एवं स्वाम्यादिप्रकृतिषट्कं निरूप्य प्रकीर्णकान् धर्मान्वक्तुं उतथ्यमान्धातृसंवादं वामदेवगीतां चारभते **यानंगिरा इत्यादिना** अध्यायपञ्चकेन। अंगिराः आंगिरसः **देवा इति**। यदा पापो न वार्यते तदा दैवतनिन्दादयो दोषाः प्रवर्तन्त इति सार्धत्रयम् ॥ ६ ॥ वृद्धानां शस्त्रेण छिन्नदेहानाम् ॥ १२ ॥ धर्मो धर्मपालः ॥ १४ ॥ अलं वारणं छेदनमिति यावत्। तेन वृषं लुनाति छिनत्तीति वृषल इति योगो दर्शितः ॥१५॥ धर्मपदस्य द्वेधा व्युत्पत्तिमाह-**धनादिति**। धनवाची नान्तो धनशब्दः अर्तेर्गत्यर्थान्मक्प्रत्यये ततो नलोपगुणौ धनादि स्रवतीति धर्म इत्यर्थः। धनादिति पञ्चमी तु धनं प्रापयितुं स्रवति द्रवति कृपायत इति ल्यब्लोपे ज्ञेया धारणाद्वा धर्मः। धृञो मन्प्रत्ययः सीमान्तकरः यावत्पापं तावद्यातनाकर इत्यर्थः॥१७

प्रभवार्थं हि भूतानां धर्मः सृष्टः स्वयंभुवा ।
तस्मात्प्रवर्तयेद्धर्मं प्रजानुग्रहकारणात् ॥ १८
तस्माद्धि राजशार्दूल धर्मः श्रेष्ठतरः स्मृतः ।
स राजा यः प्रजाः शास्ति साधुकृत्पुरुषर्षभ
कामक्रोधावनादृत्य धर्ममेवानुपालय ।
धर्मः श्रेयस्करतमो राज्ञां भरतसत्तम ॥ २०
धर्मस्य ब्राह्मणा योनिस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा
ब्राह्मणानां च मांधातः कुर्यात्कामानमत्सरी
तेषां ह्यकामकरणाद्राज्ञः संजायते भयम् ।
मित्राणि न च वर्धन्ते तथाऽमित्रीभवन्त्यपि

ब्राह्मणानां सदाऽसूया-
द्बाल्याद्वैरोचनो बलिः ।
अथास्माच्छ्रीरपाक्राम-
द्याऽस्मिन्नासीत्प्रतापिनी ॥ २३

ततस्तस्मादपाक्रम्य साऽगच्छत्पाकशासनम्
अथ सोऽन्वतपत्पश्चाच्छ्रियं दृष्ट्वा पुरंदरे ॥२४
एतत्फलमसूयाया अभिमानस्य वा विभो ।
तस्माद्बुध्यस्व मांधातर्मा त्वां जह्यात्प्रतापिनी
दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मादिति श्रुतिः
तेन देवासुरा राजन्नीताः सुबहवो व्ययम् ॥
राजर्षयश्च बहवस्तथा बुध्यस्व पार्थिव ।
राजा भवति तं जित्वा दासस्तेन पराजितः
स यथा दर्पसहितमधर्मं नानुसेवते ।
तथा वर्तस्व मांधातश्चिरं चेत्स्थातुमिच्छसि

मत्तात्प्रमत्तात्पौगण्डादुन्मत्ताच्च विशेषतः ।
तदभ्यासादुपावर्तं संहितानां च सेवनात् ॥
निगृहीतादमात्याच्च स्त्रीभ्यश्चैव विशेषतः ।
पर्वताद्विषमाद्दुर्गाद्धस्तिनोऽश्वात्सरीसृपात् ॥
एतेभ्यो नित्ययुक्तः स्याद्नक्तंचर्यां च वर्जयेत्
अत्यागं चाभिमानं च दंभं क्रोधं च वर्जयेत् ।
अविज्ञातासु च स्त्रीषु क्लीबासु स्वैरिणीषु च ।
परभार्यासु कन्यासु नाचरेन्मैथुनं नृपः ॥ ३२
कुलेषु पापरक्षांसि जायन्ते वर्णसंकरात् ।
अपुमांसोऽङ्गहीनाश्च स्थूलजिह्वा विचेतसः॥
एते चान्ये च जायन्ते यदा राजा प्रमाद्यति
तस्माद्राज्ञा विशेषेण वर्तितव्यं प्रजाहिते ॥
क्षत्रियस्य प्रमत्तस्य दोषः संजायते महान् ।
अधर्माः संप्रवर्धन्ते प्रजासंकरकारकाः ॥३५
अशीते विद्यते शीतं शीते शीतं न विद्यते ।
अवृष्टिरतिवृष्टिश्च व्याधिश्चाप्याविशेत्प्रजाः
नक्षत्राण्युपतिष्ठन्ति ग्रहा घोरास्तथागते ।
उत्पाताश्चात्र दृश्यन्ते बहवो राजनाशनाः
अरक्षितात्मा यो राजा प्रजाश्चापि न रक्षति
प्रजाश्च तस्य क्षीयन्ते ततः सोऽनुविनश्यति
द्वावाददाते ह्येकस्य द्वयोः सुबहवोऽपरे ।
कुमार्यः संप्रलुप्यन्ते तदाहुर्नृपदूषणम् ॥ ३९
ममेदमिति नैकस्य मनुष्येष्ववतिष्ठति ।
त्यक्त्वा धर्मं यदा राजा प्रमादमनुतिष्ठति४०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
उतथ्यगीतासु नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

उतथ्य उवाच ।

कालवर्षी च पर्जन्यो धर्मचारी च पार्थिवः
संपद्यदेषा भवति सा बिभर्ति सुखं प्रजाः ॥
यो न जानाति हर्तुं वा वस्त्राणां रजको मलं
रक्तानां वा शोधयितुं यथा नास्ति तथैव सः

---

अमित्रीभवन्ति वर्धन्ते ॥ २२ ॥ असूयात् असूयातः लिंगव्यत्यय आर्षः असूयया अतति सततं वर्तत इति वा असूयात् ॥ २३ ॥ अधर्मादिति च्छेदः ॥ २६ ॥ तं दर्पम् ॥ २७ ॥ पौगंडात् बालकात् अज्ञादित्यर्थः पार्षडादिति मुख्यः पाठः । मत्तादिभ्य उपावर्तं परावृत्तिं भज तदभ्यासात्तैः सह परिचयात् संहितानां मिलितानां च तेषां सेवनाच्च सुतरामुपावर्तेत्यर्थः ॥२९ ॥ अत्यागं बद्धमुष्टिताम् ॥ ३१ ॥ अपुमांसः क्लीबाः स्थूलजिह्वा मूकाः ॥ ३३ ॥ नक्षत्राणि धूमकेत्वादयः ॥ ३७ ॥ एकस्य धनं द्वौ आददाते आच्छिद्य गृह्णीतः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

कालेति ॥ १ ॥ वस्त्राणां शुक्लानां शोधयितुं रंगमविचाल्य मलमात्रं दूरीकर्तुम् ॥ २ ॥

एवमेतद्द्विजेन्द्राणां क्षत्रियाणां विशां तथा ।
शूद्रश्चतुर्थो वर्णानां नानाकर्मस्ववस्थितः ॥ ३
कर्म शूद्रे कृषिर्वैश्ये दण्डनीतिश्च राजनि ।
ब्रह्मचर्यं तपो मन्त्राः सत्यं चापि द्विजातिषु
तेषां यः क्षत्रियो वेद वस्त्राणामिव शोधनम्
शीलदोषान्विनिर्हन्तुं स पिता स प्रजापतिः
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ ।
राजवृत्तानि सर्वाणि राजैव युगमुच्यते ॥ ६
चातुर्वर्ण्यं तथा वेदाश्चातुराश्रम्यमेव च ।
सर्वं प्रमुह्यते ह्येतद्यदा राजा प्रमाद्यति ॥ ७
अग्निस्त्रेता त्रयी विद्या यज्ञाश्च सहदक्षिणाः ।
सर्व एव प्रमाद्यन्ति यदा राजा प्रमाद्यति ॥
राजैव कर्ता भूतानां राजैव च विनाशकः ।
धर्मात्मा यः स कर्ता स्यादधर्मात्मा विनाशकः
राज्ञो भार्याश्च पुत्राश्च बान्धवाः सुहृदस्तथा
समेत्य सर्वे शोचन्ति यदा राजा प्रमाद्यति
हस्तिनोऽश्वाश्च गावश्चाप्युष्ट्राश्वतरगर्दभाः ।
अधर्मभूते नृपतौ सर्वे सीदन्ति जन्तवः ॥११
दुर्बलार्थं बलं सृष्टं धात्रा मान्धातरुच्यते ।
अबलं तु महद्भूतं यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
यच्च भूतं संभजते ये च भूतास्तदन्वयाः ।
अधर्मस्थे हि नृपतौ सर्वे शोचन्ति पार्थिव ॥
दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च ।
अविषह्यतमं मन्ये मा स्म दुर्बलमासदः ॥ १४
दुर्बलांस्तात बुध्येथा नित्यमेवाविमानितान्
मा त्वां दुर्बलचक्षूंषि प्रदहेयुः सबान्धवम् ॥
न हि दुर्बलदग्धस्य कुले किंचित्प्ररोहते ।
आमूलं निर्दहन्त्येव मा स्म दुर्बलमासदः ॥
अबलं वै बलाच्छ्रेयो यच्चातिबलवद्बलम् ।
बलस्याबलदग्धस्य न किंचिदवशिष्यते ॥
विमानितो हतः क्रुष्टस्त्रातारं चेन्न विन्दति ।
अमानुषकृतस्तत्र दण्डो हन्ति नराधिपम् ॥
मा स्म तात रणे स्थित्वा भुञ्जीथा दुर्बलं जनं
मा त्वां दुर्बलचक्षूंषि दहन्त्वग्निरिवाशयम्

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदताम्
तानि पुत्रान्पशून्घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसनात्
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पौत्रेषु नप्तृषु ।
न हि पापं कृतं कर्म सद्यः फलति गौरिव
यत्राबलो वध्यमानस्त्रातारं नाधिगच्छति ।
महान्दैवकृतस्तत्र दण्डः पतति दारुणः ॥ २२
युक्ता यदा जानपदा भिक्षन्ते ब्राह्मणा इव ।
अभीक्ष्णं भिक्षुरूपेण राजानं घ्नन्ति तादृशाः
राज्ञो यदा जनपदे बहवो राजपूरुषाः ।
अनयेनोपवर्तन्ते तद्राज्ञः किल्बिषं महत् ॥
यदा युक्त्या नयेदर्थान्कामादर्थवशेन वा ।
कृपणं याचमानानां तद्राज्ञो वैशसं महत् ॥

महान्वृक्षो जायते वर्धते च
तं चैव भूतानि समाश्रयन्ति ।
यदा वृक्षश्छिद्यते दह्यते च
तदाश्रया अनिकेता भवन्ति ॥ २६
यदा राष्ट्रे धर्ममग्र्यं चरन्ति
संस्कारं वा राजगुणं ब्रुवाणाः ।
तैरेवाधर्मश्चरितो धर्ममोहा-
त्तूर्णं जह्यात्सुकृतं दुष्कृतं च ॥ २७
यत्र पापा ज्ञायमानाश्चरन्ति
सतां कलिर्विन्दति तत्र राज्ञः ।
यदा राजा शास्ति नरानशिष्टां-
स्तदा राज्यं वर्धते भूमिपस्य ॥ २८
यश्चामात्यान्मानयित्वा यथार्थं
मन्त्रे च युद्धे च नृपो नियुञ्ज्यात् ।
विवर्धते तस्य राष्ट्रं नृपस्य
भुङ्क्ते महीं चाप्यखिलां चिराय ॥२९

यश्चापि सुकृतं कर्म वाचं चैव सुभाषिताम् ।
समीक्ष्य पूजयन् राजा धर्मं प्राप्नोत्यनुत्तमम्
संविभज्य यदा भुङ्क्ते नामात्यानवमन्यते ।
निहन्ति बलिनं दृप्तं स राज्ञो धर्म उच्यते ॥
त्रायते हि यदा सर्वं वाचा कायेन कर्मणा ।
पुत्रस्यापि न मृष्येच्च स राज्ञो धर्म उच्यते ॥

द्विजानां मध्ये यः कश्चिच्छूद्रो वा नानाकर्मस्ववस्थितः स्वकर्मच्युतो मूढः रजकतुल्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥ अग्निस्त्रेता गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयाख्यं वह्नित्रयं, त्रयी ऋग्यजुःसामवेदाः ॥ ८ ॥ अबलं तु अबलस्य पालनान्महत्पुण्यमपालनाच्च महत्पापमित्यर्थः ॥ १२ ॥ भूतं दुर्बलं संभजतेऽन्नादिना सेवते तदन्वयाः दातृसंबन्धिनः ॥१३॥ अबलं तु महद्भूतमित्येतद्विवृणोति-दुर्बलस्येत्यादिना ॥ १४ ॥ रणे स्थित्वा प्रतिपक्षीभूय भुञ्जीथाः करादानेन ॥ १९ ॥ यदि आत्मनि फलं पापं न फलति तर्हि पुत्रादिषु फलति न तु सद्यः फलतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ नयेत् अपहरेत् ॥ २५ ॥ महानिति दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाह-यदेति । यदा धर्मं चरति तदा राजा वर्धत इति भावः दुष्कृतं चापयातीत्यर्थः ॥२७॥ राज्ञः नृपान् २८

संविभज्य यदा भुंक्ते नृपतिर्दुर्बलान्नरान् ।
तदा भवन्ति बलिनः स राज्ञो धर्म उच्यते ॥
यदा रक्षति राष्ट्राणि यदा दस्यूनपोहति ।
यदा जयति संग्रामे स राज्ञो धर्म उच्यते ३४
पापमाचरतो यत्र कर्मणा व्याहृतेन वा ।
प्रियस्यापि न मृष्येत स राज्ञो धर्म उच्यते ॥
यदा सारणिकान् राजा पुत्रवत्परिरक्षति ।
भिनत्ति च न मर्यादां स राज्ञो धर्म उच्यते
यदाऽऽप्तदक्षिणैर्यज्ञैर्यजते श्रद्धयाऽन्वितः ।
कामद्वेषावनादृत्य स राज्ञो धर्म उच्यते ३७
कृपणानाथवृद्धानां यदाश्रु परिमार्जति ।
हर्षं सञ्जनयन्नॄणां स राज्ञो धर्म उच्यते ॥ ३८
विवर्धयति मित्राणि तथारींश्चापि कर्षति ।
संपूजयति साधूंश्च स राज्ञो धर्म उच्यते३९
सत्यं पालयति प्रीत्या नित्यं भूमिं प्रयच्छति
पूजयेदतिथीन्भृत्यान् स राज्ञो धर्म उच्यते
निग्रहानुग्रहौ चोभौ यत्र स्यातां प्रतिष्ठितौ ।
अस्मिँल्लोके परे चैव राजा स प्राप्नुते फलम्
यमो राजा धार्मिकाणां मान्धातः परमेश्वरः
संयच्छन्भवति प्राणानसंयच्छंस्तु पातुकः४२
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान्सत्कृत्यानवमन्य च
यदा सम्यक्प्रगृह्णाति स राज्ञो धर्म उच्यते
यमो यच्छति भूतानि सर्वाण्येवाविशेषतः
तथा राज्ञानुकर्तव्यं यन्तव्या विधिवत्प्रजाः
सहस्राक्षेण राजा हि सर्व एवोपमीयते ।
स पश्यति च यं धर्मं स धर्मः पुरुषर्षभ ॥ ४५
अप्रमादेन शिक्षेथाः क्षमां बुद्धिं धृतिं मतिम्
भूतानां चैव जिज्ञासा साध्वसाधु च सर्वदा
संग्रहः सर्वभूतानां दानं च मधुरं वचः ।
पौरजानपदाश्चैव गोप्तव्यास्ते यथासुखम् ४७
न जात्वदक्षो नृपतिः प्रजाः शक्नोति रक्षितुम्
भारो हि सुमहांस्तात राज्यं नाम सुदुष्करम्
तद्दण्डविन्नृपः प्राज्ञः शूरः शक्नोति रक्षितुम् ।
न हि शक्यमदण्डेन क्लीबेनाबुद्धिनाऽपि वा
अभिरूपैः कुले जातैर्दक्षैर्भक्तैर्बहुश्रुतैः ।
सर्वा बुद्धीः परीक्षेथास्तापसाश्रमिणामपि५०
अतस्त्वं सर्वभूतानां धर्मं वेत्स्यसि वै परम्
स्वदेशे परदेशे वा न ते धर्मो विनंक्ष्यति ५१
तस्मादर्थाच्च कामाच्च धर्म एवोत्तरो भवेत् ।
अस्मिँल्लोके परे चैव धर्मात्मा सुखमेधते ५२
त्यजन्ति दारान्पुत्रांश्च मनुष्याः परिपूजिताः
संग्रहश्चैव भूतानां दानं च मधुरा च वाक् ॥
अप्रमादश्च शौचं च राज्ञो भूतिकरं महत् ।
एतेभ्यश्चैव मान्धातः सततं मा प्रमादिथाः ॥
अप्रमत्तो भवेद्राजा छिद्रदर्शी परात्मनोः ।
नास्य च्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेषु परमन्वियात्
एतद्वृत्तं वासवस्य यमस्य वरुणस्य च ।
राजर्षीणां च सर्वेषां तत्त्वमप्यनुपालय ॥ ५६
तत्कुरुष्व महाराज वृत्तं राजर्षिसेवितम् ।
आतिष्ठ दिव्यं पन्थानमह्नाय भरतर्षभ ॥ ५७
धर्मवृत्तं हि राजानं प्रेत्य चेह च भारत ।
देवर्षिपितृगन्धर्वाः कीर्तयन्ति महौजसः ५८

भीष्म उवाच ।

स एवमुक्तो मान्धाता तेनोतथ्येन भारत
कृतवानविशंकश्च एकः प्राप च मेदिनीम् ५९
भवानपि तथा सम्यङ्मान्धातेव महीपते ।
धर्मं कृत्वा महीं रक्ष स्वर्गे स्थानमवाप्स्यसि६०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि उतथ्यगीतासु एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

---

सारणिकान् प्रसारिणीप्रधानान्वणिजः शारणिकानिति पाठे शरणागतान् ॥३६॥ धार्मिकाणां परमेश्वरोऽनुग्राहकोऽस्ति अतः प्राणान् इन्द्रियाणि नियच्छन् भवति ऐश्वर्यं प्राप्नोति अनियच्छंस्तु पातुकः पतयालुर्भवति पावक इति पाठे स्वाश्रयदाही भवतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ अभिरूपैरमात्यैः सहेति शेषः ॥ ५० ॥ धर्मोऽर्थादुत्पद्यत इति तत्फलभूतत्वात्तत उत्तरः एवं कामादपि धर्म एवोत्तरस्तन्मूलत्वात् ॥ ५२ ॥ प्रमादिथाः प्रमाद्येथाः ॥५४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

## ९२

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं धर्मे स्थातुमिच्छन् राजा वर्तेत धार्मिकः
पृच्छामि त्वां कुरुश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गीतं दृष्टार्थतत्त्वेन वामदेवेन धीमता ॥ २
राजा वसुमना नाम ज्ञानवान्धृतिमाञ्छुचिः
महर्षि परिपप्रच्छ वामदेवं तपस्विनम् ॥ ३
धर्मार्थसहितैर्वाक्यैर्भगवन्ननुशाधि माम् ।
येन वृत्तेन वै तिष्ठन्न हीयेयं स्वधर्मतः ॥ ४
तमब्रवीद्वामदेवस्तेजस्वी तपतां वरः ।
हेमवर्णं सुखासीनं ययातिमिव नाहुषम् ॥ ५

वामदेव उवाच ।

धर्ममेवानुवर्तस्व
न धर्माद्विद्यते परम् ।
धर्मे स्थिता हि राजानो
जयन्ति पृथिवीमिमाम् ॥ ६
अर्थसिद्धेः परं धर्मं मन्यते यो महीपतिः ।
वृद्धयां च कुरुते बुद्धिं स धर्मेण विराजते ७
अधर्मदर्शी यो राजा बलादेव प्रवर्तते ।
क्षिप्रमेवापयातोऽस्मादुभौ प्रथममध्यमौ ॥ ८
असत्पापिष्ठसचिवो वध्यो लोकस्य धर्महा ।
सहैव परिवारेण क्षिप्रमेवावसीदति ॥ ९
अर्थानामननुष्ठाता कामचारी विकत्थनः ।
अपि सर्वां महीं लब्ध्वा क्षिप्रमेव विनश्यति
अथाददानः कल्याणमनसूयुर्जितेन्द्रियः ।
वर्धते मतिमान् राजा स्रोतोभिरिव सागरः
न पूर्णोऽस्मीति मन्येत धर्मतः कामतोऽर्थतः
बुद्धितो मित्रतश्चापि सततं वसुधाधिप॥ १२
एतेष्वेव हि सर्वेषु लोकयात्रा प्रतिष्ठिता ।
एतानि शृण्वँल्लभते यशः कीर्तिं श्रियं प्रजाः
एवं यो धर्मसंरम्भी धर्मार्थपरिचिन्तकः ।
अर्थान्समीक्ष्य भजते स ध्रुवं महदश्नुते ॥ १४
अदाता ह्यनतिस्नेहो दण्डेनावर्तयन्प्रजाः ।
साहसप्रकृती राजा क्षिप्रमेव विनश्यति १५
अथ पापकृतं बुद्ध्या न च पश्यत्यबुद्धिमान् ।
अकीर्त्याऽभिसमायुक्तो भूयो नरकमश्नुते ।
अथ मानयितुर्दातुः श्लक्ष्णस्य वशवर्तिनः ।
व्यसनं स्वमिवोत्पन्नं विजिघांसन्ति मानवाः
यस्य नास्ति गुरुर्धर्मे न चान्यानपि पृच्छति
सुखतन्त्रोऽर्थलाभेषु न चिरं सुखमश्नुते ॥ १८
गुरुप्रधानो धर्मेषु स्वयमर्थान्वेक्षिता ।
धर्मप्रधानो लाभेषु स चिरं सुखमश्नुते ॥ १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वामदेवगीतासु
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

वामदेव उवाच ।

यत्राधर्मं प्रणयते दुर्बले बलवत्तरः ।
तां वृत्तिमुपजीवन्ति ये भवन्ति तदन्वयाः ॥
राजानमनुवर्तन्ते तं पापाभिप्रवर्तकम् ।
अविनीतमनुष्यं तत्क्षिप्रं राष्ट्रं विनश्यति ॥ २

---

९२

धर्मस्योत्कर्षं श्रुत्वा धर्मे स्थितिप्रकारं पृच्छति—**कथमिति** ॥ १ ॥ तपतां तपः कुर्वताम् ॥ ५ ॥ अर्थापेक्षया धर्मं श्रेष्ठं मत्वा धर्मवृद्धौ बुद्धिं कुर्यादित्याहार्थेति ॥ ७ ॥ उभौ धर्मार्थौ ॥ ८ ॥ असन्तः दुष्टाः पापिष्ठाश्च सचिवा यस्य सः ॥ ९ ॥ एतेषु धर्मादिषु ॥ १३ ॥ पापकृतं पापकारिणम् ॥ १६ ॥ दात्रो दातुः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३

**यत्रेति।** यत्र राष्ट्रे प्रणयते आरोपयति बलवत्तरो राजा ॥ १ ॥ तं राजानं अनुवर्तन्तेऽन्ये ॥ २ ॥

यद्वृत्तमुपजीवन्ति प्रकृतिस्थस्य मानवाः ।
तदेव विषमस्थस्य स्वजनोऽपि न मृष्यते ॥ ३
साहसप्रकृतिर्यत्र किञ्चिदुल्बणमाचरेत् ।
अशास्त्रलक्षणो राजा क्षिप्रमेव विनश्यति ॥
योऽत्यन्ताचरितां वृत्तिं क्षत्रियो नानुवर्तते
जितानामजितानां च क्षत्रधर्मादपैति सः ॥
द्विषन्तं कृतकल्याणं गृहीत्वा नृपतिं रणे ।
यो न मानयते द्वेषात्क्षत्रधर्मादपैति सः ॥६
शक्तः स्यात्सुसुखो राजा कुर्यात्करणमापदि
प्रियो भवति भूतानां न च विभ्रश्यते श्रियः
अप्रियं यस्य कुर्वीत भूयस्तस्य प्रियं चरेत् ।
नचिरेण प्रियः स स्याद्योऽप्रियः प्रियमाचरेत्
मृषावादं परिहरेत्कुर्यात्प्रियमयाचितः ।
न कामान्न च संरंभान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् ॥९
नापत्रपेत प्रश्नेषु नाविभाव्यां गिरं सृजेत् ।
न त्वरेत न चासूयेत्तथा संगृह्यते परः ॥ १०
प्रियेनातिभृशं हृष्येदप्रियेन च संज्वरेत् ।
न तप्येदर्थकृच्छ्रेषु प्रजाहितमनुस्मरन् ॥ ११
यः प्रियं कुरुते नित्यं
गुणतो वसुधाधिपः ।
तस्य कर्माणि सिद्ध्यन्ति
न च संत्यज्यते श्रिया ॥ १२
निवृत्तं प्रतिकूलेषु वर्तमानमनुप्रिये ।
भक्तं भजेत नृपतिः सदैव सुसमाहितः ॥ १३
अप्रकीर्णेन्द्रियग्राममत्यन्तानुगतं शुचिम् ।
शक्तं चैवानुरक्तं च युंज्यान्महति कर्मणि ॥
एवमेतैर्गुणैर्युक्तो योऽनुरज्यति भूमिपम् ।
भर्तुरर्थेष्वप्रमत्तं नियुंज्यादर्थकर्माणि ॥ १५
मूढमैन्द्रियकं लुब्धमनार्यचरितं शठम् ।
अनतीतोपधं हिंस्रं दुर्बुद्धिमबहुश्रुतम् ॥ १६
त्यक्तोदात्तं मद्यरतं द्यूत-स्त्री-मृगयापरम् ।
कार्ये महति युञ्जानो हीयते नृपतिः श्रिया ॥
रक्षितात्मा च यो राजा रक्ष्यान्यश्चानुरक्षति
प्रजाश्च तस्य वर्धन्ते ध्रुवं च महदश्नुते ॥ १८
ये केचिद्भूमिपतयः सर्वांस्तानन्ववेक्षयेत् ।
सुहृद्भिरनभिख्यातैस्तेन राजाऽतिरिच्यते ॥
अपकृत्य बलस्थस्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
श्येनाभिपतनैरेते निपतन्ति प्रमाद्यतः ॥
दृढमूलस्त्वदुष्टात्मा विदित्वा बलमात्मनः
अबलानभियुञ्जीत न तु ये बलवत्तराः ॥ २१
विक्रमेण महीं लब्ध्वा प्रजा धर्मेण पालयेत् ।
आहवे निधनं कुर्याद्राजा धर्मपरायणः ॥ २२
मरणान्तमिदं सर्वं नेह किञ्चिदनामयम् ।
तस्माद्धर्मे स्थितो राजा प्रजा धर्मेण पालयेत्
रक्षाधिकरणं युद्धं तथा धर्मानुशासनम् ।
मन्त्रचिन्तासुखं काले पञ्चभिर्वर्धते मही ॥
एतानि यस्य गुप्तानि स राजा राजसत्तम ।
सततं वर्तमानोऽत्र राजा धत्ते महीमिमाम्
नैतान्येकेन शक्यानि सातत्येनानुवीक्षितुम्
तेषु सर्वं प्रतिष्ठाप्य राजा भुंक्ते चिरं महीम् ॥
दातारं संविभक्तारं मार्दवोपगतं शुचिम् ।
असन्त्यक्तमनुष्यं च तं जनाः कुर्वते नृपम् ॥
यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा ज्ञानं तत्प्रतिपद्यते ।
आत्मनो मतमुत्सृज्य तं लोकोऽनुविधीयते
योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते ।
शृणोति प्रतिकूलानि सर्वदा विमना इव ॥
अग्राम्यचरितां वृत्तिं यो न सेवेत नित्यदा ।
जितानामजितानां च क्षत्रधर्मादपैति सः ॥
निगृहीतादमात्याच्च स्त्रीभ्यश्चैव विशेषतः ।
पर्वताद्विषमाद्दुर्गाद्धस्तिनोऽश्वात्सरीसृपात् ।
एतेभ्यो नित्ययुक्तः सन् रक्षेदात्मानमेव तु

---

प्रकृतिः स्वधर्मः विषमः कुमार्गः ॥ ३ ॥ जितानां आपन्नानां अजितानां स्वस्थानाम् ॥ ५ ॥ कृतकल्याणं प्रागुपकारं कृतवन्तम् ॥ ६ ॥ शक्तौ सुखमनुभवेत् । आपदि तु करणं आपन्निवारणं कर्म कुर्यात् । 'करणं हेतुकर्मणोः' इति मेदिनी ॥ ७ ॥ अप्रियमिति । उपकृतः शत्रुरग्रेऽप्युपकरिष्यत्येवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ नापत्रपेत न्याय्यानिष्ठुरं उत्तरं दद्यात् अविभाव्यां अगम्भीरां अभीतिपाठे दूषणार्हाम् ॥ १० ॥ प्रियं भृत्यादीनाम् ॥१२॥ एतैर्निवृत्तमिति श्लोकद्वयोक्तैः योऽनुरज्यति अनुरञ्जयति तं नियुञ्ज्यात् भूमिपः ॥ १५ ॥ त्यक्तोदात्तं उदारकर्मत्यागिनम् ॥ १७ ॥ महत्पदम् ॥ १८ ॥ सुहृद्भिश्चारैः अनाभिख्यातैः स्वेषां परेषां चाविदितैः ॥ १९ ॥ मरणान्तमपि इदं पालनं अनामयं कुशलमेव स्वर्गहेतुत्वादित्यर्थः ॥ २३ ॥ रक्षाधिकरणं दुर्गादि सुखं सुखप्रदानम् ॥ २४ ॥ गुप्तानि सुरक्षितानि ॥ २५ ॥ एकेन राज्ञा तेषु दुर्गाद्यधिष्ठातृषु पञ्चसु ॥ २६ ॥ ज्ञानं इदं मम निःश्रेयसमिति यज्ज्ञानं तत् ॥ २८ ॥ अर्थकामस्य सख्युः प्रातिकूल्याद्द्वेषात् शृणोति तच्छत्रुभ्यः सकाशात् ॥२९॥ अग्राम्यैर्बुद्धिमद्भिः वृत्तिं लाभोपायम् ॥३०॥

मुख्यानमात्यान्यो हित्वा
निहीनान्कुरुते प्रियान् ।
स वै व्यसनमासाद्य
*गाधमार्तो न विन्दति ॥ ३२
यः कल्याणगुणान् ज्ञातीन्प्रद्वेषान्नो बुभूषति ।
अदृढात्मा दृढक्रोधः स मृत्योर्वसतेऽन्तिके
अथ यो गुणसंपन्नान्हृदयस्य प्रियानपि ।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥
नाकाले प्रणयेदर्थान्नाप्रिये जातु संज्वरेत् ।
प्रियेनातिभृशं तुष्येद्युञ्जीतारोग्यकर्मणि ॥ ३५
के वाऽनुरक्ता राजानः के भयात्समुपाश्रिताः
मध्यस्थदोषाः के चैषामिति नित्यं विचिंतयेत्
न जातु बलवान्भूत्वा दुर्बले विश्वसेत्कचित्
भारुण्डसदृशा ह्येते निपतन्ति प्रमाद्यतः ॥
अपि सर्वगुणैर्युक्तं भर्तारं प्रियवादिनम् ।
अभिद्रुह्यति पापात्मा न तस्माद्विश्वसेज्जनात्
एवं राजोपनिषदं ययातिः स्माह नाहुषः ।
मनुष्यविषये युक्तो हन्ति शत्रूननुत्तमान् ॥३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वामदेवगीतासु×
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३ ॥

## ९४

वामदेव उवाच ।
अयुद्धेनैव विजयं वर्धयेद्वसुधाधिपः ।
जघन्यमाहुर्विजयं युद्धेन च नराधिप ॥ १
न चाप्यलब्धं लिप्सेत मूलेनातिदृढे सति ।
न हि दुर्बलमूलस्य राज्ञो लाभो विधीयते ॥
यस्य स्फीतो जनपदः संपन्नप्रियराजकः ।
संतुष्टपुष्टसचिवो दृढमूलः स पार्थिवः ॥ ३
यस्य योधाः सुसंतुष्टाः
सांत्विताः सूपधास्थिताः ।
अल्पेनापि स दण्डेन
महीं जयति पार्थिवः ॥ ४
पौरजानपदा यस्य भूतेषु च दयालवः ।
सधना धान्यवन्तश्च दृढमूलः स पार्थिवः ॥५
प्रतापकालमधिकं यदा मन्येत चात्मनः ।
तदा लिप्सेत मेधावी परभूमिधनान्युत ॥ ६
भोगेषूदयमानस्य भूतेषु च दयावतः ।
वर्धते त्वरमाणस्य विषयो रक्षितात्मनः ॥
तक्षेदात्मानमेवं स वनं परशुना यथा ।
यः सम्यग्वर्तमानेषु स्वेषु मिथ्या प्रवर्तते ॥ ८
नैव द्विषन्तो हीयन्ते राज्ञो नित्यमनिघ्नतः ।
क्रोधं निहन्तुं यो वेद तस्य द्वेष्टा न विद्यते॥
यदार्यजनविद्विष्टं कर्म तन्नाचरेद्बुधः ।
यत्कल्याणमभिध्यायेत्तत्रात्मानं नियोजयेत्
नैव मन्येऽवजानन्ति नात्मना परितप्यते ।
कृत्यशेषेण यो राजा सुखान्यनुबुभूषति ॥ ११
इदं वृत्तं मनुष्येषु वर्तते यो महीपतिः ।
उभौ लोकौ विनिर्जित्य विजये संप्रतिष्ठते
भीष्म उवाच ।
इत्युक्तो वामदेवेन सर्वं तत्कृतवान्नृपः ।
तथा कुर्वंस्त्वमप्येतौ लोकौ जेता न संशयः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि वामदेवगीतासु=
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

---

**मुख्यानिति** । गाधं कार्यस्यान्तम् ॥ ३२ ॥ राजोपनिषदं राज्ञां रहस्यविद्याम् ॥३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिप० राजधर्मानुशासनप० नैल० भारत० त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥ *साधुमार्गं इति पा० ×श्लोकद्वयमधिकं-ख

९४

**अयुद्धेनेति** ॥ १ ॥ नातिदृढे अनतिदृढे ॥२॥ दृढमूलत्वस्य लक्षणमाह—**यस्येति** ॥ ३ ॥ सूपधाः परवञ्चनास्तत्र स्थिता निष्ठावन्तः दण्डेन सैन्येन ॥ ४ ॥ लिप्सेत विजिगीषेत ॥ ६ ॥ कृत्यशेषेण परकृत्यं कार्त्स्न्येन न समापयेत् । समापिते तु परोऽवमन्यते स्वस्य च तापो भवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ नृपो वसुमनाः ॥ १३ ॥ इति श्रीमहा० शान्ति० राजधर्मानुशासन० नैल०भारत० चतुर्नवतितमोऽध्या० ॥९४॥ = त्रयोदशश्लोका अधिकाः-ख

## ९५

युधिष्ठिर उवाच ।
अथ यो विजिगीषेत क्षत्रियः क्षत्रियं युधि।
कस्तस्य विजये धर्मो ह्येतं पृष्टो ब्रवीहि मे ॥
भीष्म उवाच ।
ससहायोऽसहायो वा राष्ट्रमागम्य भूमिपः
ब्रूयादहं वो राजेति रक्षिष्यामि च वः सदा
मम धर्मबलिं दत्त किं वा मां प्रतिपत्स्यथ ।
ते चेत्तमागतं तत्र वृणुयुः कुशलं भवेत् ॥ ३
ते चेदक्षत्रियाः सन्तो विरुध्येरन्कथंचन ।
सर्वोपायैर्नियन्तव्या विकर्मस्था नराधिप ॥
अशस्त्रं क्षत्रियं मत्वा शस्त्रं गृह्णात्यथापरः ।
त्राणायाप्यसमर्थं तं मन्यमानमतीव च ॥ ५
युधिष्ठिर उवाच ।
अथ यः क्षत्रियो राजा क्षत्रियं प्रत्युपाव्रजेत्।
कथं संप्रति योद्धव्यस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६
भीष्म उवाच ।
नैवासन्नद्धकवचो योद्धव्यः क्षत्रियो रणे ।
एक एकेन वाच्यश्च विसृजेति क्षिपामि च
स चेत्सन्नद्ध आगच्छेत्सन्नद्धव्यं ततो भवेत्
स चेत्ससैन्य आगच्छेत्ससैन्यस्तमथाह्वयेत्॥
स चेन्निकृत्या युद्ध्येत निकृत्या प्रतियोधयेत्।
अथ चेद्धर्मतो युद्ध्येद्धर्मेणैव निवारयेत् ॥ ९
नाश्वेन रथिनं यायादुदियाद्रथिनं रथी ।
व्यसने न प्रवर्तव्यं न भीताय जिताय च॥१०
इषुर्लिप्तो न कर्णी स्यादसतामेतदायुधम् ।
यथार्थमेव योद्धव्यं न क्रुद्ध्येत जिघांसतः ॥
साधूनां तु यदा भेदात्साधुर्व्यसनी भवेत् ।
निष्प्राणो नाभिहन्तव्यो नानपत्यः कथंचन
भग्नशस्त्रो विपन्नश्च
कृत्तज्यो हतवाहनः ।
चिकित्स्यः स्यात्स्वविषये
प्राप्यो वा स्वगृहे भवेत् ॥ १३
निर्व्रणश्च स मोक्तव्य एष धर्मः सनातनः ।
तस्माद्धर्मेण योद्धव्यमिति स्वायंभुवोऽब्रवीत्
सत्सु नित्यः सतां धर्मस्तमास्थाय न नाशयेत्
यो वै जयत्यधर्मेण क्षत्रियो धर्मसंगरः ॥ १५
आत्मानमात्मना हन्ति पापो निकृतिजीवनः
कर्म चैतदसाधूनामसाधून्साधुना जयेत् ॥
धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा ।
नाधर्मश्चरितो राजन्सद्यः फलति गौरिव ॥
मूलानि च प्रशाखाश्च दहन्समधिगच्छति ।
पापेन कर्मणा वित्तं लब्ध्वा पापः प्रहृष्यति
स वर्धमानः स्तेयेन पापः पापे प्रसज्जति ।
न धर्मोऽस्तीति मन्वानः शुचीनवहसन्निव
अश्रद्दधानश्च भवेद्विनाशमुपगच्छति ।
संबद्धो वारुणैः पाशैरमर्त्य इव मन्यते ॥ २०
महादृतिरिवाध्मातः सुकृते नैव वर्तते ।
ततः समूलो ह्रियते नदीकूलादिव द्रुमः ॥
अथैनमभिनिन्दन्ति भिन्नं कुंभमिवाश्मनि ।
तस्माद्धर्मेण विजयं कोशं लिप्सेत भूमिपः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि विजिगीषमाणवृत्ते*
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

९५

वामदेवगीता समाप्ता । यस्य स्वाम्याद्याः सप्तप्रकृतयो दृढाः स परमहीं लिप्सेतेत्युक्तं तत्र यो जिगीषते जेतुमिच्छति तस्य विजये विषये विजयनिमित्तं कोऽनुष्ठेयो धर्म इति पृच्छति-**अथेति** ॥१॥ जिगीषुर्द्विविधः अनुपस्थितपरिपन्थी उपस्थितपरिपन्थी च । तत्राद्यस्य धर्ममाह-**ससहाय इति** । योऽकस्माद्राष्ट्रं परकीयं आगत्य अहं वः रक्षिष्यामीत्यादि ब्रूयात् स आद्यो विजिगीषमाण इत्यर्थः ॥ २ ॥ **अशस्त्रमिति** । त्राणायाप्यसमर्थं परं चातीव मन्यमानं क्षत्रियं अशस्त्रं ज्ञात्वा अपरो हीनोऽपि शस्त्रं गृह्णाति । अतः शस्त्रबलेनैव जितान्ग्रामादीनुल्लंघ्य तत्तदधिपतिमुखे स्थातव्यं जितं राष्ट्रं सामादिना वशीकर्तव्यमिति शेषः ॥५॥लिप्तो विषदिग्धः इषुर्महान्बाणः **कर्णी** ऋजुः प्रतीपकण्टको बाणः ॥ ११ ॥ एतत् निकृत्या जयरूपम् । असाधूनपि ॥१६॥ महादृतिः महान् चर्मकोशः आध्मातो वायुना पूरित इवातिपुष्टः सुकृते सत्कर्मणि ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ *श्लोकचतुष्टयमधिकं--ख

## ९६

भीष्म उवाच।
नाधर्मेण महीं जेतुं लिप्सेत जगतीपतिः।
अधर्मविजयं लब्ध्वा को नु मन्येत भूमिपः॥
अधर्मयुक्तो विजयो ह्यध्रुवोऽस्वर्ग्य एव च।
सादयत्येष राजानं महीं च भरतर्षभ॥ २
विशीर्णकवचं चैव तवास्मीति च वादिनम्
कृताञ्जलिं न्यस्तशस्त्रं गृहीत्वा न हि हिंसयेत्
बलेन विजितो यश्च न तं युध्येत भूमिपः।
संवत्सरं विप्रणयेत्तस्माज्जातः पुनर्भवेत्॥ ४
नार्वाक्संवत्सरात्कन्या प्रष्टव्या विक्रमाहृता
एवमेव धनं सर्वं यच्चान्यत्सहसाऽऽहृतम् ५
न तु वध्यधनं तिष्ठेत्पिबेयुर्ब्राह्मणाः पयः।
युञ्जीरन्वाप्यनडुहः क्षन्तव्यं वा तदा भवेत् ६
राज्ञा राजैव योद्धव्यस्तथा धर्मो विधीयते।
नान्यो राजानमभ्यस्येदराजन्यः कथञ्चन ७
अनीकयोः संहतयोर्यदीयाद्ब्राह्मणोऽन्तरा।
शान्तिमिच्छन्नुभयतो न योद्धव्यं तदा भवेत्
मर्यादां शाश्वतीं भिन्द्या-
द्ब्राह्मणं योऽभिलंघयेत्।
अथ चेल्लंघयेदेव
मर्यादां क्षत्रियब्रुवः॥ ९
असंख्येयस्तदूर्ध्वं स्यादनादेयश्च संसदि।
यस्तु धर्मविलोपेन मर्यादाभेदनेन च॥ १०
तां वृत्तिं नानुवर्तेत
विजिगीषुर्महीपतिः।
धर्मलब्धाद्धि विजया-
ल्लाभः कोऽभ्यधिको भवेत्॥ ११

सहसानार्यभूतानि क्षिप्रमेव प्रसादयेत्।
सान्त्वेन भोगदानेन स राज्ञां परमो नयः॥
भुज्यमाना ह्ययोगेन स्वराष्ट्रादभितापिताः।
अमित्रास्तमुपासीरन्व्यसनौघप्रतीक्षिणः १३
अमित्रोपग्रहं चास्य
ते कुर्युः क्षिप्रमापदि।
सन्तुष्टाः सर्वतो राजन्
राजव्यसनकांक्षिणः॥ १४
नामित्रो विनिकर्तव्यो नातिच्छेद्यः कथञ्चन
जीवितं ह्यप्यतिच्छिन्नः संत्यजेच्च कदाचन
अल्पेनापि च संयुक्तस्तुष्यत्येव नराधिपः।
शुद्धं जीवितमेवापि तादृशो बहु मन्यते १६
यस्य स्फीतो जनपदः सम्पन्नः प्रियराजकः
सन्तुष्टभृत्यसचिवो दृढमूलः स पार्थिवः १७
ऋत्विक्पुरोहिताचार्या
ये चान्ये श्रुतसत्तमाः।
पूजार्हाः पूजिता यस्य
स वै लोकविदुच्यते॥
एतेनैव च वृत्तेन महीं प्राप सुरोत्तमः।
अनेन चेन्द्रविषयं विजिगीषन्ति पार्थिवाः॥
भूमिवर्जं धनं राजा जित्वा राजन्महाहवे।
अपि चान्नौषधीः शश्वदाजहार प्रतर्दनः २०
अग्निहोत्राग्निशेषं च हविर्भोजनमेव च।
आजहार दिवोदासस्ततो विप्रकृतोऽभवत्
सराजकानि राष्ट्राणि नाभागो दक्षिणां ददौ
अन्यत्र श्रोत्रियस्वाच्च तापसार्थाच्च भारत २२

९६

**नाधर्मेणेति** ॥१॥ विप्रणयेत् दासोऽस्मीति वदेति तं शिक्षयेत् ततः संवत्सरादूर्ध्वं स एव अब्रुवन्नपि ततो जातः जेतुः पुत्र एव भवेत् ततश्च मोक्तव्य इत्यर्थः ॥४॥ विक्रमाहृता कन्या त्वमस्मान्वृणीषे उतान्यं चेति प्रष्टव्या-ऽन्यार्थिनी न स्थाप्येति भावः। सहसा निकृत्या आहृतं दासदास्यादिकं वत्सरान्ते प्रत्यर्पणीयं तदा स्वीयमेव तस्मै दत्तं भवति ॥५॥ वध्याश्चोरादयः तद्धनं न तिष्ठेदपि तु व्ययितव्यमेव वध्योऽप्यचोरश्चेत्तदा क्षन्तव्यं पूर्ववत्तद्धनं प्रतिदेयमित्यर्थः ॥६॥ अभ्यस्येत् अभिमुखं शस्त्रं क्षिपेत् ॥७॥ क्षत्रियब्रुवः क्षत्रियाधमः ॥९॥ असंख्येयः क्षत्रियेषु न गणनीयः जातिबाह्यः कर्तव्य इत्यर्थः ॥१०॥ अनार्यभूतानि जयादीनि कृत्वा प्रसादयेत् ॥१२॥ अयोगेन असान्त्वेन॥१३॥ अमित्रोपग्रहं तद्वैरिणामानुकूल्यं ते बलाद्भुज्यमानाः ॥१४॥ विनिकर्तव्यः निकृत्या वञ्चयितव्यः ॥१५॥ **भूमीति**। धान्यान्यपि शत्रोर्हर्तव्यानीति किमु स्वर्णादिकमिति भावः ॥ २० ॥ अग्निशेषं यज्ञाङ्गभूतं हविः भोजनं सिद्धान्नं एतन्न हर्तव्यमित्यर्थः विप्रकृतो वञ्चितः ॥ २१ ॥

उच्चावचानि चित्तानि धर्मज्ञानां युधिष्ठिर।
आसन् राज्ञां पुराणानां सर्वं तन्मम रोचते
सर्वविद्यातिरेकेण जयमिच्छेन्महीपतिः।
न मायया न दम्भेन य इच्छेद्भूतिमात्मनः२४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि विजिगीषमाणवृत्ते षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

## ९७

युधिष्ठिर उवाच।
क्षत्रधर्मान्हि पापीयान्न धर्मोऽस्ति नराधिप
अपयानेन युद्धेन राजा हन्ति महाजनम् १
अथ स्म कर्मणा केन लोकान् जयति पार्थिवः
विद्वन् जिज्ञासमानाय प्रब्रूहि भरतर्षभ ॥ २
भीष्म उवाच।
निग्रहेण च पापानां साधूनां संग्रहेण च।
यज्ञैर्दानैश्च राजानो भवन्ति शुचयोऽमलाः३
उपरुन्धन्ति राजानो भूतानि विजयार्थिनः
त एव विजयं प्राप्य वर्धयन्ति पुनः प्रजाः ४
अपविध्यन्ति पापानि दान-यज्ञ-तपोबलैः।
अनुग्रहाय भूतानां पुण्यमेषां विवर्धते ॥ ५
यथैव क्षेत्रनिर्याता
निर्यातं क्षेत्रमेव च।
हिनस्ति धान्यं कक्षं च
न च धान्यं विनश्यति ॥ ६
एवं शस्त्राणि मुञ्चन्तो घ्नन्ति वध्याननेकधा
तस्यैषा निष्कृतिः कृत्स्ना भूतानां भावनं पुनः
यो भूतानि धनाक्रान्त्या वधात्क्लेशाच्च रक्षति
दस्युभ्यः प्राणदानात्स धनदः सुखदो विराट्
स सर्वयज्ञैरीजानो राजाऽथाभयदक्षिणैः।
अनुभूयेह भद्राणि प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ९
ब्राह्मणार्थे समुत्पन्ने योऽरिभिः सृत्य युध्यति
आत्मानं यूपमुत्सृज्य स यज्ञोऽनन्तदक्षिणः
अभीतो विकिरन् शत्रून्
प्रतिगृह्य शरांस्तथा।
न तस्मात्त्रिदशाः श्रेयो
भुवि पश्यन्ति किञ्चन ॥ ११
तस्य शस्त्राणि यावन्ति
त्वचं भिन्दन्ति संयुगे।
तावतः सोऽश्नुते लोकान्
सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १२
यदस्य रुधिरं गात्रादाहवे संप्रवर्तते।
सह तेनैव पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १३
यानि दुःखानि सहते क्षत्रियो युधि तापितः
तेन तेन तपो भूय इति धर्मविदो विदुः १४
पृष्ठतो भीरवः संख्ये वर्तन्ते धर्मपूरुषाः।
शूराच्छरणमिच्छन्तः पर्जन्यादिव जीवनम्
यदि शूरस्तथा क्षेमं प्रतिरक्षेद्यथाऽभये।
प्रतिरूपं जनं कुर्यान्न चेत्तद्वर्तते तथा ॥ १६
यदि ते कृतमाज्ञाय नमस्कुर्युः सदैवतम्।
युक्तं न्याय्यं च कुर्युस्ते न च तद्वर्तते तथा १७
पुरुषाणां समानानां दृश्यते महदन्तरम्।
संग्रामेऽनीकवेलायामुत्क्रुष्टेऽभिपतन्त्युत १८

---

उच्चेति। राज्ञा सर्वं हर्तव्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

९७

**क्षत्रेति**। महाजनं कटकाश्रितं वैश्यादिजनम् ॥ १ ॥ केन तद्वधप्रायश्चित्तं कृत्वा पुण्यफलमाप्नोतीत्यर्थः ॥ २ ॥ उत्तरमाह-**निग्रहेणेति** ॥ ३ ॥ उपरुन्धन्ति पीडयन्ति ॥ ४ ॥ अपविध्यन्ति दूरीकुर्वन्ति ॥ ५ ॥ निर्याता तृणापनयेन शोधकः। निर्दातेति पाठे दैप् शोधने इत्यस्य रूपं कक्षं तृणम् ॥ ६ ॥ भावनं वर्धनम् ॥ ७ ॥ आत्मानं देहयूपं यज्ञस्तंभं उत्सृज्य उच्छ्रित्य यज्ञो युद्धयज्ञः ॥१०॥ पापेन दुःखेन ॥ १३ ॥ **यदीति**। रक्षित्वा प्रतिरूपं युद्धाभिमुखं जनं चेन्न कुर्यात् किं तर्हि स्वयं पुरतो भूत्वा तांश्चेत् पृष्ठतः कुर्यात्तर्हि तत्तथा पूर्ववत्पुण्यं वर्तते वान्यथेत्यर्थः ॥ १६ ॥ यदि ते रक्षितारः सन्तस्तं नमस्कुर्युः अथ च न्याय्यं युद्धं च परावृत्य कुर्युस्तदपि तथा न ॥१७ अनीकवेलायां अनीकानां संघट्टकाले अभिपतन्त्यक उत अपि च नेत्यन्य इत्यर्थात् ॥ १८ ॥

पतत्यभिमुखः शूरः परान्भीरुः पलायते।
आस्थाय स्वर्ग्यमध्वानं सहायान्विषमे त्यजेत्
मा स्म तांस्तादृशांस्तात
जनिष्ठाः पुरुषाधमान्।
ये सहायान् रणे हित्वा
स्वस्तिमन्तो गृहान्ययुः ॥ २०
अस्वस्ति तेभ्यः कुर्वन्ति
देवा इन्द्रपुरोगमाः।
त्यागेन यः सहायानां
स्वान्प्राणांस्त्रातुमिच्छति ॥ २१
तं हन्युः काष्ठलोष्टैर्वा दहेयुर्वा कटाग्निना।
पशुवन्मारयेयुर्वा क्षत्रिया ये स्युरीदृशाः २२
अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्यामरणं भवेत्।
विसृजन् श्लेष्ममूत्राणि कृपणं परिदेवयन् २३
अविक्षतेन देहेन प्रलयं योऽधिगच्छति।
क्षत्रियो नास्य तत्कर्म प्रशंसन्ति पुराविदः
न गृहे मरणं तात क्षत्रियाणां प्रशस्यते।
शौटीराणामशौटीर्यमधर्मं कृपणं च तत् २५
इदं दुःखं महत्कष्टं पापीय इति निष्टनन्।
प्रतिध्वस्तमुखः पूतिरमात्याननुशोचयन् २६
अरोगाणां स्पृहयते मुहुर्मृत्युमपीच्छति।
वीरो दृप्तोऽभिमानी च नेदृशं मृत्युमर्हति २७
रणेषु कदनं कृत्वा ज्ञातिभिः परिवारितः।
तीक्ष्णैः शस्त्रैरभिक्लिष्टः क्षत्रियो मृत्युमर्हति
शूरो हि काममन्युभ्यामाविष्टो युध्यते भृशम्
हन्यमानानि गात्राणि परैर्नैवावबुध्यते ॥ २९
स संख्ये निधनं प्राप्य प्रशस्तं लोकपूजितम्
स्वधर्मं विपुलं प्राप्य शक्रस्यैति सलोकताम्
सर्वोपायै रणमुखमातिष्ठंस्त्यक्तजीवितः।
प्राप्नोतीन्द्रस्य सालोक्यं शूरः पृष्ठमदर्शयन् ॥
यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवारितः।
अक्षयाँल्लभते लोकान्यदि दैन्यं न सेवते ३२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

## ९८

युधिष्ठिर उवाच।
के लोका युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्
भवन्ति निधनं प्राप्य तन्मे ब्रूहि पितामह १
भीष्म उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
अम्बरीषस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर २
अम्बरीषो हि नाभागिः स्वर्गं गत्वा सुदुर्लभम्
ददर्श सुरलोकस्थं शक्रेण सचिवं सह ॥ ३
सर्वतेजोमयं दिव्यं विमानवरमाश्रितम्।
उपर्युपरि गच्छन्तं स्वं वै सेनापतिं प्रभुम् ४
स दृष्ट्वोपरि गच्छन्तं सेनापतिमुदारधीः।
ऋद्धिं दृष्ट्वा सुदेवस्य विस्मितः प्राह वासवम्
अम्बरीष उवाच।
सागरान्तां महीं कृत्स्नामनुशास्य यथाविधि
चातुर्वर्ण्यं यथाशास्त्रं प्रवृत्तो धर्मकाम्यया ६
ब्रह्मचर्येण घोरेण गुर्वाचारेण सेवया।
वेदानधीत्य धर्मेण राजशास्त्रं च केवलम् ७
अतिथीनन्नपानेन पितॄंश्च स्वधया तथा।
ऋषीन्स्वाध्यायदीक्षाभिर्देवान्यज्ञैरनुत्तमैः ८

---

तदेवाह-**पततीति**। विषमे प्राणसंकटे त्यजेत् देहमिति शेषः ॥ १९ ॥ तेभ्यः तस्मै ॥ २१ ॥ तस्य दण्डमाह-**तं हन्युरिति**। तृणमये कटे बध्वा दहनं कटाग्निना दाहः ॥ २२ ॥ शौटीराणां शूरत्वाभिमानवताम् ॥ २५ ॥ निष्टनन्शब्दं कुर्वन् पूतिः दुर्गन्धिः अमात्यान् पुत्रान् ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

९८

अक्षयाँल्लभते लोकानित्युक्तं तत्प्रश्नपूर्वकं विवृणोति-**क इति** ॥ १ ॥ नाभागिर्नाभागपुत्रः शक्रेण सह स्थितं सचिवम् ॥ ३ ॥

क्षत्रधर्मे स्थितो भूत्वा यथाशास्त्रं यथाविधि
उदीक्षमाणः पृतनां जयामि युधि वासव ९
देवराज सुदेवोऽयं
मम सेनापतिः पुरा ।
आसीद्योधः प्रशान्तात्मा
सोऽयं कस्मादतीव माम् ॥ १०
अनेन क्रतुभिर्मुख्यै-
र्नेष्टं नापि द्विजातयः ।
तर्पिता विधिवच्छक्र
सोऽयं कस्मादतीव माम् ॥ ११

इन्द्र उवाच ।

एतस्य विततस्तात सुदेवस्य बभूव ह ।
संग्रामयज्ञः सुमहान्यश्चान्यो युद्ध्यते नरः १२
सन्नद्धो दीक्षितः सर्वो
योधः प्राप्य चमूमुखम् ।
युद्धयज्ञाधिकारस्थो
भवतीति विनिश्चयः ॥ १३

अम्बरीष उवाच ।

कानि यज्ञे हवींष्यस्मिन्
किमाज्यं का च दक्षिणा ।
ऋत्विजश्चात्र के प्रोक्ता-
स्तन्मे ब्रूहि शतक्रतो ॥ १४

इन्द्र उवाच ।

ऋत्विजः कुञ्जरास्तत्र वाजिनोऽध्वर्यवस्तथा
हवींषि परमांसानि रुधिरं त्वाज्यमुच्यते १५
शृगाल-गृध्र-काकोलाः सदस्यास्तत्र सत्रिणः
आज्यशेषं पिबन्त्येते हविः प्राश्नन्ति चाध्वरे
प्रास तोमरसंघाताः
खड्ग-शक्ति-परश्वधाः ।
ज्वलन्तो निशिताः पीताः
स्रुचस्तस्याथ सत्रिणः ॥ १७
चापवेगायतस्तीक्ष्णः परकायावभेदनः ।
ऋजुः सुनिशितः पीतः सायकश्च स्रुवो महान्
द्वीपिचर्मावनद्धश्च नागदन्तकृतत्सरुः ।
हस्तिहस्तधरः खड्गः स्फिग्भवेत्तस्य संयुगे१९
ज्वलितैर्निशितैः प्रासशक्त्यृष्टिसपरश्वधैः ।
शैक्यायसमयैस्तीक्ष्णैरभिघातो भवेद्वसु २०
संख्यासमयविस्तीर्णमभिजातोद्भवं बहु ।
आवेगाद्यच्च रुधिरं संग्रामे स्रवते भुवि २१
साऽस्य पूर्णाहुतिर्होमे
समृद्धा सर्वकामधुक् ।
छिन्धि भिन्धीति यः शब्दः
श्रूयते वाहिनीमुखे ॥ २२
सामानि सामगास्तस्य गायन्ति यमसादने ।
हविर्धानं तु तस्याहुः परेषां वाहिनीमुखम् ॥
कुञ्जराणां हयानां च वर्मिणां च समुच्चयः ।
अग्निः श्येनाचितो नाम स च यज्ञे विधीयते
उत्तिष्ठते कबन्धोऽत्र सहस्रे निहते तु यः ।
स यूपस्तस्य शूरस्य खादिरोऽष्टास्रिरुच्यते
इडोपहूताः क्रोशन्ति कुञ्जरास्त्वंकुशेरिताः
व्याघुष्टतलनादेन वषट्कारेण पार्थिव ॥ २६
उद्गाता तत्र संग्रामे त्रिसामा दुंदुभिर्नृप ।
ब्रह्मस्वे ह्रियमाणे तु त्यक्त्वा युद्धे प्रियां तनुं
आत्मानं यूपमुत्सृज्य स यज्ञोऽनन्तदक्षिणः
भर्तुरर्थे च यः शूरो विक्रमेद्वाहिनीमुखे ॥ २८
न भयाद्विनिवर्तेत तस्य लोका यथा मम ।
नीलचर्मावृतैः खड्गैर्बाहुभिः परिघोपमैः ॥२९
यस्य वेदिरुपस्तीर्णा तस्य लोका यथा मम
यस्तु नापेक्षते कंचित्सहायं विजये स्थितः ॥
विगाह्य वाहिनीमध्यं तस्य लोका यथा मम
यस्य शोणितसंघाता भेरी मण्डूककच्छपा
वीरास्थिशर्करा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा ।
असिचर्मप्लवा घोरा केशशैवलशाद्वला ॥३२
अश्व-नाग-रथैश्चैव संछिन्नैः कृतसंक्रमा ।
पताकाध्वजवानीरा हतवारणवाहिनी ॥३३
शोणितोदा सुसंपूर्णा दुस्तरा पारगैर्नरैः ।
हतनागमहानक्रा परलोकवहाशिवा ॥ ३४
ऋष्टि-खड्गमहानौका गृध्र-कङ्कबलप्लवा ।
पुरुषादानुचरिता भीरूणां कश्मलावहा ॥
नदी योधस्य संग्रामे तदस्यावभृथं स्मृतम् ।
वेदिर्यस्य त्वमित्राणां शिरोभ्यश्च प्रकीर्यते ॥

---

यश्चान्यो क्षत्रियोऽपि युध्यते नरस्तस्याप्ययं च यज्ञोऽस्ति यश्चान्यो . विद्यते नव इति पाठे यः यस्मात् अन्यो यज्ञो वः युष्माकं क्षत्रियाणां न विद्यत इत्यर्थः ॥ १२ ॥ निशिताः शाणघृष्टाः पीताः क्षारपानीयेन संभाविताः ॥ १७ ॥ शैक्यायसमयैः सर्वलोहमयैः वसु यत्किंचित्प्रियं द्रव्यम् ॥ २० ॥ हविर्धानं हविषः स्थापनस्थलम् ॥ २३ ॥ शोणितसंघाता शोणितौघमयी ॥ ३१ ॥

अश्वस्कन्धैर्गजस्कन्धैस्तस्य लोका यथा मम
पर्णशाला कृता यस्य परेषां वाहिनीमुखम्
हविर्धानं स्ववाहिन्यास्तदस्याहुर्मनीषिणः।
सदस्या दक्षिणा योधा आग्नीध्रश्चोत्तरां दिशं
शत्रुसेनाकलत्रस्य सर्वलोकानदूरतः।
यदा तूभयतो व्यूहे भवत्याकाशमग्रतः॥ ३९
साऽस्य वेदिस्तदा यज्ञैर्नित्यं वेदास्त्रयोऽग्नयः
यस्तु योधः परावृत्तः संत्रस्तो हन्यते परैः॥
अप्रतिष्ठः स नरकं याति नास्त्यत्र संशयः।
यस्य शोणितवेगेन वेदिः स्यात्संपरिप्लुता॥
केशमांसास्थिसंपूर्णा स गच्छेत्परमां गतिम्।
यस्तु सेनापतिं हत्वा तद्यानमधिरोहति॥
स विष्णुविक्रमक्रामी बृहस्पतिसमः प्रभुः।
नायकं तत्कुमारं वा यो वा स्यात्तत्र पूजितः
जीवग्राहं प्रगृह्णाति तस्य लोका यथा मम।
आहवे तु हतं शूरं न शोचेत कथञ्चन॥ ४४
अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते।
न ह्यन्नं नोदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौचकम्
हतस्य कर्तुमिच्छन्ति तस्य लोकाञ्छृणुष्व मे
वराप्सरःसहस्राणि शूरमायोधने हतम्॥
त्वरमाणाऽभिधावन्ति मम भर्ता भवेदिति।
एतत्तपश्च पुण्यं च धर्मश्चैव सनातनः॥ ४७
चत्वारश्चाश्रमास्तस्य यो युद्धमनुपालयेत्।
वृद्धबालौ न हन्तव्यौ न च स्त्री नैव पृष्ठतः॥
तृणपूर्णमुखश्चैव तवास्मीति च यो वदेत्।
जंभं वृत्रं बलं पाकं शतमायं विरोचनम्॥
दुर्वार्यं चैव नमुचिं नैकमायं च शम्बरम्।
विप्रचित्तिं च दैतेयं दनोः पुत्रांश्च सर्वशः॥
प्रह्लादं च निहत्याजौ ततो देवाधिपोऽभवम्
भीष्म उवाच।
इत्येतच्छक्रवचनं निशम्य प्रतिगृह्य च।
योधानामात्मनः सिद्धिमम्बरीषोऽभिपन्नवान्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि इन्द्राम्बरीषसंवादे अष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥

## ९९

भीष्म उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
प्रतर्दनो मैथिलश्च संग्रामं यत्र चक्रतुः॥ १
यज्ञोपवीती संग्रामे जनको मैथिलो यथा।
योधानुद्धर्षयामास तन्निबोध युधिष्ठिर॥ २
जनको मैथिलो राजा महात्मा सर्वतत्त्ववित्
योधान्स्वान्दर्शयामास स्वर्गं नरकमेव च॥३
अभीरूणामिमे लोका भास्वन्तो हन्त पश्यत
पूर्णा गन्धर्वकन्याभिः सर्वकामदुहोऽक्षयाः
इमे पलायमानानां नरकाः प्रत्युपस्थिताः।
अकीर्तिः शाश्वती चैव पतितव्यमनन्तरम्॥
तान्दृष्ट्वाऽरीन्विजयत भूत्वा संत्यागबुद्धयः।
नरकस्याप्रतिष्ठस्य मा भूत वशवर्तिनः॥ ६
त्यागमूलं हि शूराणां स्वर्गद्वारमनुत्तमम्।
इत्युक्तास्ते नृपतिना योधाः परपुरंजय॥ ७
अजयन्त रणे शत्रून्हर्षयन्तो नरेश्वरम्।
तस्मादात्मवता नित्यं स्थातव्यं रणमूर्धनि॥
गजानां रथिनो मध्ये रथानामनु सादिनः।
सादिनामन्तरे स्थाप्यं पादातमपि दंशितम्
य एवं व्यूहते राजा स नित्यं जयति द्विषः
तस्मादेवं विधातव्यं नित्यमेव युधिष्ठिर॥
सर्वे स्वर्गतिमिच्छन्ति सुयुद्धेनातिमन्यवः।
क्षोभयेयुरनीकानि सागरं मकरा यथा॥११
हर्षयेयुर्विषण्णांश्च व्यवस्थाप्य परस्परम्।
जितां च भूमिं रक्षेत भग्नान्नात्यनुसारयेत्॥

---

इति श्रीम० शान्ति० राज० नै० भा० अष्टनवतितमोऽध्यायः ९८ *अस्मिन्नध्याये सप्तविंशतिश्लोका अधिकाः-ख

९९

अत्रेति। अत्र शूरप्रोत्साहने विषये मैथिलः जनकः॥१॥ यज्ञोपवीतीत्यनेन संग्रामस्य यज्ञत्वात्तत्र प्रायत्येन भाव्यमिति दर्शितम्॥ २॥ दर्शयामास योगबलेन॥ ३॥ गजानां मध्ये रथिनः रथिनां मध्ये सादिनः सादिनां मध्ये पादातम् ९ नात्यनुसारयेन्नातिद्रावयेत् परावृत्तिभयात् १२

पुनरावर्तमानानां निराशानां च जीविते।
वेगः सुदुःसहो राजंस्तस्मान्नात्यनुसारयेत् ॥
न हि प्रहर्तुमिच्छन्ति शूराः प्रद्रवतो भृशम्।
तस्मात्पलायमानानां कुर्यान्नात्यनुसारणम्
चराणामचरा ह्यन्नमदंष्ट्रा दंष्ट्रिणामपि।
आपः पिपासतामन्नमन्नं शूरस्य कातराः ॥
समानपृष्ठोदरपाणिपादाः
पराभवं भीरवो वै व्रजन्ति।
अतो भयार्ताः प्रणिपत्य भूयः
कृत्वाऽञ्जलीनुपतिष्ठन्ति शूरान् १६
शूरबाहुषु लोकोऽयं लम्बते पुत्रवत्सदा।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु शूरः संमानमर्हति ॥
न हि शौर्यात्परं किञ्चि-
त्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
शूरः सर्वं पालयति
सर्वं शूरे प्रतिष्ठितम् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि विजिगीषमाणवृत्ते नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥*

## १००

युधिष्ठिर उवाच।
यथा जयार्थिनः सेनां नयन्ति भरतर्षभ।
ईषद्धर्मं प्रपीड्यापि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच।
सत्येन हि स्थितो धर्म उपपत्त्या तथा परे।
साध्वाचारतया केचित्तथैवौपयिकादपि ॥ २
उपायधर्मान्वक्ष्यामि सिद्धार्थानर्थधर्मयोः।
निमर्यादा दस्यवस्तु भवन्ति परिपन्थिनः ॥
तेषां प्रतिविघातार्थं प्रवक्ष्याम्यथ नैगमम्।
कार्याणां सर्वसिद्ध्यर्थं तानुपायान्निबोध मे ॥
उभे प्रज्ञे वेदितव्ये ऋज्वी वक्रा च भारत।
जानन्वक्रां न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम् ॥
अमित्रा एव राजानं भेदेनोपचरन्त्युत।
तां राजा निकृतिं जानन्यथाऽमित्रान्प्रबाधते
गजानां पार्थ वर्माणि गोवृषाजगराणि च।
शल्यकण्टकलोहानि तनुत्रचमराणि च ॥ ७
सितपीतानि शस्त्राणि
सन्नाहाः पीतलोहिताः।
नानारञ्जनरक्ताः स्युः
पताकाः केतवश्च ह ॥ ८
ऋष्टयस्तोमराः खड्गा निशिताश्च परश्वधाः।
फलकान्यथ चर्माणि प्रतिकल्प्यान्यनेकशः
अभिनीतानि शस्त्राणि योधाश्च कृतनिश्चयाः
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा सेनायोगः प्रशस्यते
पक्वसस्या हि पृथिवी भवत्यम्बुमती तदा।
नैवातिशीतो नात्युष्णः कालो भवति भारत
तस्मात्तदा योजयेत परेषां व्यसनेऽथवा।
एते हि योगाः सेनायाः प्रशस्ताः परबाधने
जलवांस्तृणवान्मार्गः समो गम्यः प्रशस्यते
चारैः सुविदिताभ्यासः कुशलैर्वनगोचरैः ॥
न ह्यरण्येन शक्येत गन्तुं मृगगणैरिव।
तस्मात्सेनासु तानेव योजयन्ति जयार्थिनः
अग्रतः पुरुषानीकं शक्तं चापि कुलोद्भवम्।
आवासस्तोयवान्दुर्गः पर्याकाशः प्रशस्यते ॥
परेषामुपसर्पाणां प्रतिषेधस्तथा भवेत्।
आकाशात्तु वनाभ्यासं मन्यन्ते गुणवत्तरम्

---

तदेवाह—**पुनरिति** ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नै० भारत० नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ *एकः श्लोक अधिकः-ख

**१००**

**यथेति**। नयन्ति भीतानपि राजभयप्रदर्शनेन पुरस्कुर्वन्ति ॥ १ ॥ सत्यं क्षत्रधर्मः उपपत्तिर्मरणनिश्चयः साध्वाचारः शिष्टाचारः औपयिक उक्तभयप्रदर्शनजा प्रज्ञप्तिः एतैश्चतुर्भिर्हेतुभिर्धर्मः स्थितः स्थिरो भवति ॥२॥ सिद्धार्थान्सद्यःफलान् तेषां च येऽर्थधर्मयोर्निर्मर्यादास्ते परिपन्थिनो नाशका भवन्ति ॥ ३ ॥ तेषां दस्यूनां नैगमं वेदोक्तमुपायम् ॥ ४ ॥ **प्रज्ञेति** । वक्रां वक्रयैव नाशयेत् ॥ ५ ॥ अमित्रानिव तां निकृतिं प्रबाधते बाधेत् ॥ ६ ॥ गजानां वर्माणि बाणघातत्राणानि गवादीनां शल्यादीनि ॥ ७ ॥

बहुभिर्गुणजातैश्च ये युद्धकुशला जनाः।
उपन्यासो भवेत्तत्र बलानां नातिदूरतः ॥१७
उपन्यासावतरणं पदातीनां च गूहनम्।
अथ शत्रुप्रतीघातमापदर्थं परायणम् ॥ १८
सप्तर्षीन्पृष्ठतः कृत्वा युध्येयुरचला इव।
अनेन विधिना शत्रून् जिगीषेतापि दुर्जयान्
यतो वायुर्यतः सूर्यो यतः शुक्रस्ततो जयः।
पूर्वं पूर्वं ज्याय एषां सन्निपाते युधिष्ठिर ॥
अकर्दमामनुदकाममर्यादामलोष्टकाम्।
अश्वभूमिं प्रशंसन्ति ये युद्धकुशला जनाः ॥
अपङ्का गर्तरहिता रथभूमिः प्रशस्यते।
नीचद्रुमा महाकक्षा सोदका हस्तियोधिनां
बहुदुर्गा महाकक्षा वेणुवेत्रसमाकुला।
पदातीनां क्षमा भूमिः पर्वतोपवनानि च ॥
पदातिबहुला सेना दृढा भवति भारत।
रथाश्वबहुला सेना सुदिनेषु प्रशस्यते ॥ २४
पदातिनागबहुला प्रावृट्काले प्रशस्यते।
गुणानेतान्प्रसंख्याय देशकालौ प्रयोजयेत्।
एवं सञ्चिन्त्य यो याति तिथिनक्षत्रपूजितः
विजयं लभते नित्यं
सेनां सम्यक्प्रयोजयन्।
प्रसुप्तांस्तृषितान् श्रान्तान्
प्रकीर्णांश्चाभिघातयेत् ॥ २६
मोक्षे प्रयाणे चलने पानभोजनकालयोः।
अतिक्षिप्तान्व्यतिक्षिप्तान् निहतान्प्रतनूकृतान्
अविश्रब्धान्कृतारंभानुपन्यासात्प्रतापितान्।
बहिश्चरानुपन्यासान्कृतवेश्मानुसारिणः॥२८
पारंपर्यागते द्वारे ये कचिदनुवर्तिनः।
परिचर्यावतो द्वारे ये च केचन वर्गिणः ॥ २९
अनीकं ये विभिन्दन्ति भिन्नं संस्थापयन्ति च
समानाशनपानास्ते कार्या द्विगुणवेतनाः ॥
दशाधिपतयः कार्याः शताधिपतयस्तथा।
ततः सहस्राधिपतिं कुर्याच्छूरमतन्द्रितम् ॥
यथा मुख्यान्सन्निपात्य वक्तव्याः संशयामहे
विजयार्थं हि संग्रामे न त्यक्ष्यामः परस्परम्
इहैव ते निवर्तन्तां ये च केचन भीरवः।
ये घातयेयुः प्रवरं कुर्वाणास्तुमुलं प्रति ॥ ३३
न सन्निपाते प्रदरं वधं वा कुर्युरीदृशाः।
आत्मानं च स्वपक्षं च पालयन्हन्ति संयुगे ॥
अर्थनाशो वधोऽकीर्तिरयशश्च पलायने।
अमनोज्ञाऽसुखा वाचः पुरुषस्य पलायने ॥३५
प्रतिध्वस्तोष्ठदन्तस्य न्यस्तसर्वायुधस्य च।
अमित्रैरवरुद्धस्य द्विषतामस्तु नः सदा ॥ ३६
मनुष्यापसदा ह्येते ये भवन्ति पराङ्मुखाः।
राशिवर्धनमात्रास्ते नैव ते प्रेत्य नो इह ॥३७
अमित्रा हृष्टमनसः प्रत्युद्यान्ति पलायिनम्।
जयिनस्तु नरास्तात चन्दनैर्मण्डनेन च ॥३८
यस्य स्म संग्रामगता यशो वै घ्नन्ति शत्रवः
तदसह्यतरं दुःखमहं मन्ये वधादपि ॥ ३९
जयं जानीत धर्मस्य मूलं सर्वसुखस्य च।
या भीरूणां परा ग्लानिः शूरस्तामधिगच्छति
ते वयं स्वर्गमिच्छन्तः संग्रामे त्यक्तजीविताः
जयन्तो वध्यमाना वा प्राप्नुयाम च सद्गतिम्
एवं संशप्तशपथाः समभित्यक्तजीविताः।
अमित्रवाहिनीं वीराः प्रतिगाहन्त्यभीरवः ॥
अग्रतः पुरुषानीकमसिचर्मवतां भवेत्।
पृष्ठतः शकटानीकं कलत्रं मध्यतस्तथा ॥ ४३

---

उपन्यासं न्यासस्य धननिक्षेपस्य समीपे अवतरणं पदातीनां गूहनं च न्यासस्यैव कार्यम्। उपास्थाः सवितरणमिति पाठे सदानं यथा स्यात्तथा जना उपास्या इति पूर्वान्वयि। पदातीनां गूहनं परवञ्चनार्थम्। अथ निलीय आगतशत्रुप्रतिघातं कुर्यात् ॥ १८ ॥ अमर्यादां सेतुप्राकारादिहीनाम् ॥ २१ ॥ सुदिनेषु वृष्टिवर्जितादिनेषु ॥ २४ ॥ प्रसंख्याय सम्यग्विचार्य तिथौ नक्षत्रे च पूजितः आशीर्भिर्योजितः ॥ २५ ॥ उपन्यासात्सुरुंगादिगुप्तोपायात् बहिस्तृणाद्यर्थं चरतो बहिश्चरान् अल्पान् उपन्यासान् तृणाद्याहर्तॄन् ॥ २८ ॥ राजद्वारेऽमात्यद्वारे वा ये वर्गिणः समुदायाधिपतयस्तांश्चाभिघातयेदिति प्रपूर्वेण सम्बन्धः ॥ २९ ॥ अनीकं परकीयं भिन्नं स्वीयम् ॥ ३० ॥ सन्निपात्य एकीकृत्य ॥ ३२ ॥ प्रदरं भंगम् 'प्रदरः शरभंगयोः' इति विश्वः। प्रदरं पलायनमित्येके वधं वा स्वीयानाम् ॥ ३४ ॥ नः अस्मत्संबन्धिनां द्विषतां पुरुषस्य द्रव्यनाशादिकमस्त्विति पूर्वेण सह द्वयोः सम्बन्धः ॥ ३६ ॥ राशिर्योधसंख्या शरीरं वा तस्य वर्धनाः वृथाजन्मान इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ पलायिनं जयिनः प्रत्युद्यान्ति यत् तदसह्यतरमित्यपकृष्यते ॥ ३८ ॥ परा ग्लानिः मृत्युः प्रहारो वा ॥ ४० ॥ चर्मवतां पुरुषाणामनीकं विभक्तिलोप आर्षः ॥ ४३ ॥

परेषां प्रतिघातार्थं पदातीनां च बृंहणम् ।
अपि तस्मिन्पुरे वृद्धा भवेयुर्ये पुरोगमाः ४४
ये पुरस्तादभिमताः सत्त्ववन्तो मनस्विनः ।
ते पूर्वमभिवर्तेरंश्चैतानेवेतरे जनाः ॥ ४५
अपि चोद्धर्षणं कार्यं भीरूणामपि यत्नतः ।
स्कन्धदर्शनमात्रात्तु तिष्ठेयुर्वा समीपतः ४६
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ।
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह ॥
संप्रयुक्ते निकृष्टे वा सत्यं वा यदि वाऽनृतम्
प्रगृह्य बाहून् क्रोशेत भग्ना भग्नाः परे इति ४८
आगतं मे मित्रबलं
प्रहरध्वमभीतवत् ।
सत्त्ववन्तोऽभिबाधेयुः
कुर्वन्तो भैरवान् रवान् ॥ ४९
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः
क्रकचा गोविषाणिकाः ।
भेरी-मृदङ्ग-पणवा-
न्नादयेयुः* पुरश्चरान् ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सेनानीति कथने = शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## १०१

युधिष्ठिर उवाच ।
किंशीलाः किंसमाचाराः
कथंरूपाश्च भारत ।
किंसन्नाहाः कथंशस्त्रा
जनाः स्युः सङ्गरे क्षमाः ॥ १
भीष्म उवाच ।
यथाऽऽचरितमेवात्र शस्त्रं पत्रं विधीयते ।
आचाराद्वीरपुरुषस्तथा कर्मसु वर्तते ॥ २
गान्धाराः सिन्धुसौवीरा नखरप्रासयोधिनः
अभीरवः सुबलिनस्तद्बलं सर्वपारगम् ॥ ३
सर्वशस्त्रेषु कुशलाः सत्त्ववन्तो ह्युशीनराः ।
प्राच्या मातङ्गयुद्धेषु कुशलाः कूटयोधिनः ४
तथा यवनकाम्बोजा मथुरामभितश्च ये ।
एते नियुद्धकुशला दाक्षिणात्याऽसिपाणयः
सर्वत्र शूरा जायन्ते महासत्त्वा महाबलाः ।
प्राय एव समुद्दिष्टा लक्षणानि तु मे शृणु ६
सिंह-शार्दूलवाङ्नेत्राः सिंहशार्दूलगामिनः
पारावतकुलिङ्गाक्षाः सर्वे शूराः प्रमाथिनः ७
मृगस्वरा द्वीपिनेत्रा ऋषभाक्षास्तरस्विनः ।
प्रमादिनश्च मन्दाश्च क्रोधनाः किङ्किणीस्वनाः
मेघस्वनाः क्रोधमुखाः केचित्करभसन्निभाः ।
जिह्मनासाग्रजिह्वाश्च दूरगा दूरपातिनः ॥ ९
बिडालकुब्जतनवस्तनुकेशास्तनुत्वचः ।
शीघ्राश्चपलवृत्ताश्च ते भवन्ति दुरासदाः १०
गोधानिमीलिताः केचिन्मृदुप्रकृतयस्तथा ।
तुरङ्गगतिनिर्घोषास्ते नराः पारयिष्णवः ११
सुसंहताः सुतनवो व्यूढोरस्काः सुसंस्थिताः
प्रवादितेषु कुप्यन्ति हृष्यन्ति कलहेषु च १२
गम्भीराक्षा निःसृताक्षाः
पिङ्गाक्षा भ्रुकुटीमुखाः ।
नकुलाक्षास्तथा चैव
सर्वे शूरास्तनुत्यजः ॥ १३

---

ये पुरोगमा भवेयुस्ते पदातीनां बृंहणं कुर्युः ॥ ४४ ॥ 'स्कन्धः स्यात्नृपतावंसे संपरायसमूहयोः' इति **मेदिनी**। समूहमात्रार्थं वा तिष्ठेयुः ॥ ४६ ॥ संहतान् अन्योन्यं श्लिष्टान् स्वान्परैः सह योधयेत्सेनापतिः तदेवाह-**सूची**-**ति** ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे शततमोऽध्यायः॥१००॥ *श्च जर्झराम्-पा० =एकः श्लोक अधिकः

१०१

**किंशीला इति** ॥ १ ॥ आचरितं कुलदेशाचारागतं पत्रं वाहनम् ॥ २ ॥ नियुद्धं बाहुयुद्धं दाक्षिणात्या असिपाणय इति च्छेदः । संधिरार्षः ॥ ५ ॥ सर्वत्र सर्वदेशे समुद्दिष्टाः प्रख्याताः ॥६॥ पारावतकुलिंगाक्षाः ' कुलिंगो भूमिकूष्मांडे मतंगजभुजंगयोः' इति **मेदिनी** । सर्पाक्षत्वं शूरलक्षणं कुलिंदाक्षा इति पाठेऽपि कुलिंदः पक्षिविशेषः॥७॥ करभ उष्ट्रः ॥ ९ ॥

जिह्माक्षाः प्रललाटाश्च निर्मांसहनवोऽपि च
वज्रबाह्वंगुलीचक्राः कृशा धमनिसन्तताः१४
प्रविशन्ति च वेगेन सांपराये ह्युपस्थिते ।
वारणा इव संमत्तास्ते भवन्ति दुरासदाः
दीप्तस्फुटितकेशान्ताः स्थूलपार्श्वहनूमुखाः ।
उन्नतांसाः पृथुग्रीवा विकटाः स्थूलपिंडिकाः
उद्वृत्ता इव सुग्रीवा विनता विहगा इव ।
पिण्डशीर्षातिवक्त्राश्च वृषदंशमुखास्तथा १७
उग्रस्वरा मन्युमन्तो युद्धेष्वारावसारिणः ।
अधर्मज्ञावलिप्ताश्च घोरा रौद्रप्रदर्शनाः ॥ १८
त्यक्तात्मानः सर्वे एते अन्त्यजा=ह्यनिवर्तिनः
पुरस्कार्याः सदा सैन्ये हन्यन्ते घ्नन्ति चापि ये
अधार्मिका भिन्नवृत्ताः सान्त्वेनैषां पराभवः
एवमेव प्रकुप्यन्ति राज्ञोऽप्येते ह्यभीक्ष्णशः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि विजिगीषमाणवृत्ते* एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## १०२

युधिष्ठिर उवाच ।
जयिष्याः कानि रूपाणि भवन्ति भरतर्षभ
पृतनायाः प्रशस्तानि तानि चेच्छामि वेदितुम्
भीष्म उवाच ।
जयिन्या यानि रूपाणि भवन्ति भरतर्षभ ।
पृतनायाः प्रशस्तानि तानि वक्ष्यामि सर्वशः
दैवे पूर्वं प्रकुपिते मानुषे कालचोदिते ।
तद्विद्वांसोऽनुपश्यन्ति ज्ञानदिव्येन चक्षुषा ३
प्रायश्चित्तविधिं चात्र जपहोमांश्च तद्विदः ।
मङ्गलानि च कुर्वन्ति शमयन्त्यहितानि च ४
उदीर्णमनसो योधा वाहनानि च भारत ।
यस्यां भवन्ति सेनायां ध्रुवं तस्यां परो जयः
अन्वेतान्वायवो यान्ति तथैवेन्द्रधनूंषि च ।
अनुप्लवन्तो मेघाश्च तथाऽऽदित्यस्य रश्मयः
गोमायवश्चानुकूला बलगृध्राश्च सर्वशः ।
अर्हयेयुर्यदा सेनां तदा सिद्धिरनुत्तमा ॥ ७
प्रसन्नभाः पावकश्चोर्ध्वरश्मिः
प्रदक्षिणावर्तशिखो विधूमः ।
पुण्या गन्धाश्चाहुतीनां भवन्ति
जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ८
गम्भीरशब्दाश्च महास्वनाश्च
शङ्खाश्च भेर्यश्च नदन्ति यत्र ।
युयुत्सवश्चाप्रतीपा भवन्ति
जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ९
इष्टा मृगाः पृष्ठतो वामतश्च
संप्रस्थितानां च गमिष्यतां च ।
जिघांसतां दक्षिणाः सिद्धिमाहु-
र्ये त्वग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ १०
माङ्गल्यशब्दाञ्शकुना वदन्ति
हंसाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च चाषाः ।
हृष्टा योधाः सत्त्ववन्तो भवन्ति
जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ११
शस्त्रैर्यन्त्रैः कवचैः केतुभिश्च
सुभानुभिर्मुखवर्णैश्च यूनाम् ।
भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया
येषां चमूस्तेऽभिभवन्ति शत्रून् ॥ १२

---

जिह्माक्षाः कुटिलदृशः प्रललाटाः उन्नतकपालाः ॥१४॥ दीप्तः पिङ्गलः स्थूला दीर्घाः पिण्डिकाः जानुनोरधः पश्चाद्भागाः येषाम् ॥ १६ ॥ सुग्रीवा वासुदेवाश्वा इव उद्वृत्ताः विनता विहगाः गरुडास्तद्वत् उद्वृत्ताः उत्पतन्तः पिंडशीर्षाः वृत्तशिरसः अतिवक्त्राः विस्तीर्णमुखाः सन्धिरार्षः समासो वा । वृषदंशो मार्जारः ॥ १७ ॥ अन्त्यजाः प्रान्तदेशोद्भवाः कैवर्तभिल्लादयः ॥१९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकशततमोऽध्यायः॥१०१॥

=उदग्रा-पा० *एकः श्लोक अधिकः ।

१०२

**जयिष्या इति** ॥ १ ॥ दैवज्ञसंपत्तिः पुरोहितसंपत्तिश्च जयलक्षणमित्याह द्वाभ्यां—**दैवे इति** ॥ ३ ॥ अनुयान्तीति सम्बन्धः ॥६॥ अप्रतीपाः अनुकूलाः ॥९॥

शुश्रूषवश्चानभिमानिनश्च
परस्परं सौहृदमास्थिताश्च ।
येषां योधाः शौचमनुष्ठिताश्च
जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ १३

शब्दाः स्पर्शास्तथा गन्धा
विचरन्ति मनःप्रियाः ।
धैर्यं चाविशते योधान्
विजयस्य मुखं च तत् ॥ १४

इष्टो वामः प्रविष्टस्य दक्षिणः प्रविविक्षतः ।
पश्चात्संसाधयत्यर्थं पुरस्ताच्च निषेधति ॥ १५
संभृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां युधिष्ठिर ।
साम्नैव वर्तयेः पूर्वं प्रयतेथास्ततो युधि ॥ १६
जघन्य एष विजयो यद्युद्धं नाम भारत ।
यादृच्छिको युधि जयो दैवो वेति विचारणं
अपामिव महावेगस्त्रस्ता इव महामृगाः ।
दुर्निवार्यतमा चैव प्रभग्ना महती चमूः ॥ १८
भग्ना इत्येव भज्यन्ते विद्वांसोऽपि न कारणं
उदारसारा महती रुरुसंघोपमा चमूः ॥ १९
परस्परज्ञाः संहृष्टास्त्यक्तप्राणाः सुनिश्चिताः
अपि पञ्चाशतं शूरा निघ्नन्ति परवाहिनीम् ॥

अपि वा पञ्चषट्सप्त
संहताः कृतनिश्चयाः ।
कुलीनाः पूजिताः सम्य-
ग्विजयन्तीह शात्रवान् ॥ २१

सन्निपातो न मन्तव्यः शक्ये सति कथञ्चन ।
सान्त्वभेदप्रदानानां युद्धमुत्तरमुच्यते ॥ २२
संदर्शनैव सेनाया भयं भीरून्प्रबाधते ।
वज्रादिव प्रज्वलितादियं क्व नु पतिष्यति ॥
अभिप्रयातां समितिं ज्ञात्वा ये प्रतियान्त्यथ
तेषां स्यन्दन्ति गात्राणि योधानां विजयस्य च
विषयो व्यथते राजन्सर्वः सस्थाणुजङ्गमः ।
अस्त्रप्रतापतप्तानां मज्जा सीदति देहिनाम्
तेषां सान्त्वं क्रूरमिश्रं प्रणेतव्यं पुनः पुनः ।
संपीड्यमाना हि परैर्योगमायान्ति सर्वतः ।
आन्तराणां च भेदार्थं चरानभ्यवचारयेत् ॥
यश्च तस्मात्परो राजा तेन संधिः प्रशस्यते

न हि तस्यान्यथा पीडा
शक्या कर्तुं तथाविधा ।
यथा सार्धममित्रेण
सर्वतः प्रतिबाधनम् ॥ २८

क्षमा वै साधुमायाति न ह्यसाधून्क्षमा सदा
क्षमायाश्चाक्षमायाश्च पार्थ विद्धि प्रयोजनम्
विजित्य क्षममाणस्य यशो राज्ञो विवर्धते ।
महापराधे ह्यप्यस्मिन् विश्वसन्त्यपि शात्रवः
मन्यते कर्षयित्वा तु क्षमा साध्वीति शम्बरः
असंतप्तं तु यद्दारु प्रत्येति प्रकृतिं पुनः ॥ ३१
नैतत्प्रशंसन्त्याचार्या न च साधुनिदर्शनम् ।
अक्रोधेनाविनाशेन नियन्तव्याः स्वपुत्रवत् ॥
द्वेष्यो भवति भूतानामुग्रो राजा युधिष्ठिर ।
मृदुमप्यवमन्यन्ते तस्मादुभयमाचरेत् ॥ ३३
प्रहरिष्यन्प्रियं ब्रूयात्प्रहरन्नपि भारत ।
प्रहृत्य च कृपायीत शोचन्निव रुदन्निव* ॥ ३४
न मे प्रियं यन्निहताः संग्रामे मामकैर्नरैः ।
न च कुर्वन्ति मे वाक्यमुच्यमानाः पुनः पुनः
अहो जीवितमाकांक्षन्नेदृशो वधमर्हति ।
सुदुर्लभाः सुपुरुषाः संग्रामेष्वपलायिनः ॥ ३६
कृतं ममाप्रियं तेन येनायं निहतो मृधे ।
इति वाचा वदन्हंतॄन्पूजयेत रहोगतः ॥ ३७
हंतॄणामाहतानां च यत्कुर्युरपराधिनः ।
क्रोशेद्बाहुं प्रगृह्यापि चिकीर्षन् जनसंग्रहम् ॥
एवं सर्वास्ववस्थासु सांत्वपूर्वं समाचरेत् ।
प्रियो भवति भूतानां धर्मज्ञो वीतभीर्नृपः ॥
विश्वासं चात्र गच्छन्ति सर्वभूतानि भारत
विश्वस्तः शक्यते भोक्तुं यथाकाममुपस्थितः ॥

---

इष्टः काक इति शेषः ॥ १५ ॥ पञ्चाशतं पञ्चाशत् ॥ २० ॥ सन्निपातो युद्धम् ॥ २२ ॥ प्रबाधते भीरून् ॥ २३ ॥ समितिं संग्रामं स्यन्दन्ति स्विद्यन्ति विजयस्य विजिगीषमाणस्य च गात्राणि स्विद्यन्ति ॥ २४ ॥ विषयो देशः ॥ २५ ॥ योगं सन्धिम् ॥ २६ ॥ आन्तराणां शत्रोः सखीनां तस्माच्छत्रोः परः श्रेष्ठस्तेन सन्धिं च कुर्यात् भयेन सन्धिना शत्रुत्तेजनेन च युगपत्प्रयुक्तेन त्रयेण परं जयेदिति समुदायार्थः ॥ २७ ॥ नन्वेवं परं क्षमापयेदेव किं कपटेनेत्याशंक्याह–**क्षमेति** ॥ २९ ॥ अस्मिन्क्षमावति ॥ ३० ॥ असन्ताप्य ऋजूकृतं वंशादि पुनर्वक्रीभवत्यतः शत्रुं सन्ताप्य क्षमां कुर्यादिति **शम्बरस्य** दैत्यस्य मतम् ॥ ३१ ॥ स्वमतमाह–**नैतदिति** ॥ ३२ स्वयान्बंधून्हतानिव लोकप्रत्ययार्थं शोचेदित्याह–**हंतॄणामिति** ॥ ३८ ॥ विश्वस्तो जनः ॥ ४० ॥ *आदिपर्वणि ( १४२ ) अध्याये कणिकनीत्यामयमेव श्लोकः आगतः ।

तस्माद्विश्वासयेद्राजा सर्वभूतान्यमायया । सर्वतः परिरक्षश्च यो महीं भोक्तुमिच्छति ॥

इति श्रीमहाभारत शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सेनानीतिकथने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## १०३

युधिष्ठिर उवाच ।
कथं मृदौ कथं तीक्ष्णे महापक्षे च पार्थिव ।
आदौ वर्तेत नृपतिस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ २
बृहस्पतिं देवपतिरभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उपसंगम्य पप्रच्छ वासवः परवीरहा ॥ ३
इंद्र उवाच ।
अहितेषु कथं ब्रह्मन्प्रवर्तेयमतन्द्रितः ।
असमुच्छिद्य चैवैतान्नियच्छेयमुपायतः ॥ ४
सेनयोर्व्यतिषङ्गेण
जयः साधारणो भवेत् ।
किंकुर्वाणं न मां जह्या-
ज्ज्वलिता श्रीः प्रतापिनी ॥ ५
ततो धर्मार्थकामानां कुशलः प्रतिभानवान् ।
राजधर्मविधानज्ञः प्रत्युवाच पुरंदरम् ॥ ६
बृहस्पतिरुवाच ।
न जातु कलहेनेच्छेन्नियन्तुमपकारिणः ।
बालैरासेवितं ह्येतद्यदमर्षो यदक्षमा ॥ ७
न शत्रुर्विवृतः कार्यो वधमस्याभिकांक्षता ।
क्रोधं भयं च हर्षं च नियम्य स्वयमात्मनि ॥
अमित्रमुपसेवेत विश्वस्तवदविश्वसन् ।
प्रियमेव वदेन्नित्यं नाप्रियं किंचिदाचरेत् ॥
विरमेच्छुष्कवैरेभ्यः कण्ठायासांश्च वर्जयेत् ।
यथा वैतंसिको युक्तो द्विजानां सदृशस्वनः ॥
तान् द्विजान्कुरुते वश्यां-
स्तथा युक्तो महीपतिः ।
वशं चोपनयेच्छत्रू-
न्निहन्याच्च पुरन्दर ॥ ११
न नित्यं परिभूयारीन्सुखं स्वपिति वासव ।
जागर्त्येव हि दुष्टात्मा सङ्करेऽग्निरिवोत्थितः
न सन्निपातः कर्तव्यः सामान्ये विजये सति
विश्वास्यैवोपसन्नार्थो वशे कृत्वा रिपुः प्रभो
संप्रधार्य सहामात्यैर्मन्त्रविद्भिर्महात्मभिः ।
उपेक्ष्यमाणोऽवज्ञातो हृदयेनापराजितः १४
अथास्य प्रहरेत्काले किञ्चिद्विचलिते पदे ।
दण्डं च दूषयेदस्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ १५
आदिमध्यावसानज्ञः प्रच्छन्नं च विधारयेत्
बलानि दूषयेदस्य जानन्नेव प्रमाणतः ॥ १६
भेदेनोपप्रदानेन संसृजेदौषधैस्तथा ।
न त्वेवं खलु संसर्गं रोचयेदरिभिः सह १७
दीर्घकालमपीक्षेत निहन्यादेव शात्रवान् ।
कालाकांक्षी हि क्षपयेद्यथा विश्रम्भमाप्नुयुः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः १०२

१०३

कथमिति ॥ १ ॥ व्यतिषङ्गेण मिश्रणेन युद्धेनेत्यर्थः साधारणो नियतः ॥ ५ ॥ प्रत्युवाच गुरुः ॥ ६ ॥ विवृतः सावधानः सार्धश्लोकः ॥८ ॥ कंठायासान्मुखरत्वं वितंसः पक्षिबन्धनोपायस्तदुपजीवी वैतंसिकः ॥ १० ॥ स्वपिति महीपतिरित्यनुकर्षः । 'संकरोऽग्निचटत्कारः' इति मेदिनी ॥ १२ ॥ सामान्ये अनिश्चिते रिपुर्वशे कृत्वा उपसन्नार्थो लंभितार्थः कृतश्चेत्स एनं काले प्रहरेदिति सार्धयोर्द्वयोः संबंधः ॥ १३ ॥ किंचास्य दण्डं सेनां च भेदेन दूषयेत् सः ॥ १५ ॥ प्रच्छन्नं यथा स्यात्तथा विधारयेत् मनसि विषमं धारयेत् ॥ १६ ॥ औषधैर्विषादिभिः फलितमाह—न त्विति ॥ १७ ॥ यथा विश्रंभं विश्वासमाप्नुयुस्तथा कुर्यात् ॥ १८ ॥

न सद्योऽरीन्विहन्याच्च द्रष्टव्यो विजयो ध्रुवः
न शल्यं वा घटयति न वाचा कुरुते व्रणम्
प्राप्ते च प्रहरेत्काले न च संवर्तते पुनः ।
हन्तुकामस्य देवेन्द्र पुरुषस्य रिपून्प्रति ॥ २०
यो हि कालो व्यतिक्रामेत
पुरुषं कालकांक्षिणम् ।
दुर्लभः स पुनस्तेन
कालः कर्मचिकीर्षुणा ॥ २१
ओजश्च विनयेदेव संगृह्णन्साधुसंमतम् ।
अकाले साधयेन्मित्रं न च प्राप्ते प्रपीडयेत् ॥
विहाय कामं क्रोधं च तथाऽहंकारमेव च ।
युक्तो विवरमन्विच्छेदहितानां पुनः पुनः ॥
मार्दवं दण्ड आलस्यं प्रमादश्च सुरोत्तम ।
मायाः सुविहिताः शक्र सादयन्त्यविचक्षणं
निहत्यैतानि चत्वारि मायां प्रति विहाय च
ततः शक्नोति शत्रूणां प्रहर्तुमविचारयन् ॥२५
यदैवैकेन शक्येत गुह्यं कर्तुं तदाचरेत् ।
यच्छन्ति सचिवा गुह्यं मिथो विश्रावयन्त्यपि
अशक्यमिति कृत्वा वा
ततोऽन्यैः संविदं चरेत् ।
ब्रह्मदण्डमदृष्टेषु
दृष्टेषु चतुरङ्गिणीम् ॥ २७
भेदं च प्रथमं युंज्यात्तूष्णीमपि तथैव च ।
काले प्रयोजयेद्राजा तस्मिंस्तस्मिंस्तदा तदा
प्रणिपातं च गच्छेत काले शत्रोर्बलीयसः
युक्तोऽस्य वधमन्विच्छेदप्रमत्तः प्रमाद्यतः ॥
प्रणिपातेन, दानेन, वाचा मधुरया ब्रुवन् ।
अमित्रमपि सेवेत न च जातु विशंकयेत् ॥
स्थानानि शंकितानां च नित्यमेव विवर्जयेत्
न च तेष्वाश्वसेद्राजा जाग्रतीह निराकृताः
न ह्यतो दुष्करं कर्म किंचिदस्ति सुरोत्तम ।
यथा विविधवृत्तानामैश्वर्यममराधिप ॥ ३२
तथा विविधवृत्तानामपि संभव उच्यते ।
यतते योगमास्थाय मित्रामित्रं विचारयेत् ॥
मृदुमप्यवमन्यन्ते तीक्ष्णादुद्विजते जनः ।
मा तीक्ष्णो मा मृदुर्भूस्त्वं तीक्ष्णो भव मृदुर्भव
यथा वप्रे वेगवति सर्वतः संप्लुतोदके ।
नित्यं विवरणाद्बाधस्तथा राज्यं प्रमाद्यतः ॥
न बहूनभियुञ्जीत यौगपद्येन शात्रवान् ।
साम्ना, दानेन, भेदेन, दण्डेन च पुरंदर ॥ ३६
एकैकमेषां निष्पिष्य शिष्टेषु निपुणं चरेत् ।
न तु शक्तोऽपि मेधावी सर्वानेवारभेन्नृप ॥
यदा स्यान्महती सेना हय-नाग-रथाकुला ।
पदातियन्त्रबहुला अनुरक्ता षडङ्गिनी ॥ ३८
यदा बहुविधां वृद्धिं मन्येत प्रतिलोमतः ।
तदा विवृत्य प्रहरेद्दस्यूनामविचारयन् ॥ ३९
न सामदण्डोपनिषत्प्रशस्यते
न मार्दवं शत्रुषु यात्रिकं सदा ।
न सस्यघातो न च संकरक्रिया
न चापि भूयः प्रकृतेर्विचारणा ॥४०

द्रष्टव्यः प्रदर्शनीयः नेति सार्धः ॥ १९ ॥ रिपून्प्रति-हन्तुकामस्य पुनः कालो न संवर्तते नोपसंपद्यतेऽतःप्राप्ते काले प्रहरेदेव न तु कालान्तरं प्रतीक्षेतेत्यर्थः॥२०॥ओजः सामर्थ्यं शत्रौ अकाले प्राप्ते सति स्वकार्यं न साधयेत् नापि तं प्रपीडयेत् काले च नातिक्रामेतेत्यर्थः ॥२२॥ चत्वारि मार्दवादीनि॥२५॥ मंत्रविप्लवभयाद्यदेकेनैव कर्तुं शक्यं तत्तं प्रति वक्तव्यं न बहून्प्रतीत्याह-यदीति। यच्छन्ति निगृह्णन्ति कर्तुं न प्रयच्छन्तीत्यर्थः ॥२६॥ अन्यैः सह संविदं संमतिं चरेद्यदि पूर्वो मन्त्रं विप्लयेदित्यर्थः । ततश्चादृष्टेषु दूरस्थेषु ब्रह्मदण्डं पुरोहितद्वारमभिचारं प्रयुञ्ज्यात्। दृष्टे प्रत्यक्षशत्रौ चतुरङ्गिणीमपि प्रयुञ्ज्यादित्याह-ब्रह्मेति ॥ ॥ २७ ॥ न विशंकयेत् शंकायत्तं न कुर्यात् ॥ ३० ॥ तदेवाह-स्थानानीति । निराकृताः स्वशत्रुभिः सह प्रीतिं कुर्वाणानन्यान् शत्रुत्वेन पश्यन्ति तदीयमित्रत्वे च न विश्वसन्तीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ विविधवृत्तानां अस्थिराणां स्थिरचित्त एव भवेदित्यर्थः ॥ ३२ ॥ वेगवति पूरे सति वप्रे तटे विवरणाद्विदारणाद्बाध इति योजना ॥ ३५ ॥ निपुणं कुशलं आरभेत् पेष्टुमिति शेषः ॥ ३७ ॥ षडंगिनीं रथ-तुरग-मातंग-पदाति-कोश-वणिक्पथवती ॥३८॥ प्रतिलोमतः शत्रोरपेक्षया विवृत्य प्रकटीभूय दस्यूनां दस्यून् ॥ ३९ ॥ उक्तमेवार्थं संगृह्णाति-न सामेति । बलवति शत्रौ साम न प्रशस्यते किं तर्हि दण्डोपनिषत् रहस्यदण्डः न शत्रुर्विवृतः कार्य इत्यादिना प्रागुक्तरीत्या छलेनैव स नाशनीय इत्यर्थः । अत एव शत्रुषु मार्दवं पार्यन्तिकं न कार्यम् । नापि यात्रिकं सदा कार्यं जयस्यानियतत्वात् यात्रायां हि सस्यानां घातः संकरक्रिया विषादिना जलादीनां नाशनं भूयः पुनः पुनः प्रकृतेः सप्तविधायाः विचारणा । कथं दंडः कथं कोशः कथममात्य इत्यादिसंदेहश्चापद्यते । तत् त्रयमपि न कार्यं हिंसामूलत्वात् चिंतावृद्धिकरत्वाच्च तस्मात्कपटपूर्वको दण्ड एव श्रेयानित्यर्थः ॥४०॥

मायाविभेदानुपसर्जनानि
तथैव पापं न यशःप्रयोगात् ।
आप्तैर्मनुष्यैरुपचारयेत
पुरेषु राष्ट्रेषु च संप्रयुक्तान् ॥ ४१
पुरापि चैषामनुसृत्य भूमिपाः
पुरेषु भोगानखिलान् जयन्ति ।
पुरेषु नीतिं विहितां यथाविधि
प्रयोजयन्तो बलवृत्रसूदन ॥ ४२
प्रदाय गूढानि वसूनि राजन्
प्रच्छिद्य भोगानवधाय च स्वान् ।
दुष्टान्स्वदोषैरिति कीर्तयित्वा
पुरेषु राष्ट्रेषु च योजयन्ति ॥ × ४३
तथैव चान्यैरपि शास्त्रवेदिभिः
स्वलंकृतैः शास्त्रविधानदृष्टिभिः ।
सुशिक्षितैर्भाष्यकथाविशारदैः
परेषु कृत्यामुपधारयेच्च ॥ ४४

इन्द्र उवाच ।

कानि लिङ्गानि दुष्टस्य भवन्ति द्विजसत्तम ।
कथं दुष्टं विजानीयामेतत्पृष्टो ब्रवीहि मे ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

परोक्षमगुणानाह सद्गुणानभ्यसूयते ।
परैर्वा कीर्त्यमानेषु तूष्णीमास्ते पराङ्मुखः
तूष्णींभावेऽपि विज्ञेयं न चेद्भवति कारणम्
विश्वासं चोष्ठसंदंशं शिरसश्च प्रकम्पनम् ॥
करोत्यभीक्ष्णं संसृष्टमसंसृष्टश्च भाषते ।
अदृष्टितो न कुरुते दृष्टो नैवाभिभाषते ॥ ४८
पृथगेत्य समश्नाति नेदमद्य यथाविधि ।
आसने, शयने, याने भावा लक्ष्या विशेषतः॥
आर्तिरार्ते प्रिये प्रीतिरेतावन्मित्रलक्षणम् ।
विपरीतं तु बोद्धव्यमरिलक्षणमेव तत् ॥ ५०
एतान्येव यथोक्तानि बुध्येथास्त्रिदशाधिप ।
पुरुषाणां प्रदुष्टानां स्वभावो बलवत्तरः ॥ ५१
इति दुष्टस्य विज्ञानमुक्तं ते सुरसत्तम ।
निशम्य शास्त्रतत्त्वार्थं यथावदमरेश्वर ॥ ५२

भीष्म उवाच ।

स तद्वचः शत्रुनिबर्हणे रत-
स्तथा चकारावितथं बृहस्पतेः ।
चचार काले विजयाय चारिहा
वशं च शत्रूननयत्पुरंदरः ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि इन्द्रबृहस्पतिसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

## १०४

युधिष्ठिर उवाच ।

धार्मिकोऽर्थानसंप्राप्य
राजामात्यैः प्रबाधितः ।
च्युतः कोशाच्च दण्डाच्च
सुखमिच्छन्कथं चरेत् ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्रायं क्षेमदर्शीय इतिहासोऽनुगीयते ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ २
क्षेमदर्शी नृपसुतो यत्र क्षीणबलः पुरा ।
मुनिं कालकवृक्षीयमाजगामेति नः श्रुतम् ।
तं पप्रच्छानुसंगृह्य कृच्छ्रामापदमास्थितः ॥ ३

---

एतदेव विवृणोति-**मायेति** मायाविभेदान्नानाविधाःमायाः प्रयुञ्जीत तत उपसर्जनानि परस्परमितरेषां शत्रूणामुत्थापनादीनि तत्तथैव शत्रुषु पापं कपटं च प्रयुञ्ज्यात् कथं यशसः प्रयोगात् । प्रयोगे हि यशो न नाशनीयं प्राक्फलोदयादयमनेनास्मासु अपकाराश्चिन्तित आसीदित्यकीर्तिं गूढमन्त्रतया न कुर्यात् किं तर्हि कुर्यादत आह-**आप्तैरिति** ॥ ४१ ॥ एषां एतान् शत्रून्पुरेषु तत्तत्स्थानेषु अनुसृत्य भोगांस्तदीयान् जयन्ति नीतिं पुरेषु स्वीयेषु ॥ ४२ ॥ अनुसरणमेवाह-**प्रदायेति** । एतेन ममामात्याः दुष्टाः मां त्यक्त्वा राजान्तरं प्रति गता इति लोकमुखात्कीर्तयित्वा परेषां पुरेषु राष्ट्रेषु च तान्योजयन्ति ॥ ४३ ॥ कृत्यामिव कृत्यां मृत्युकारिणीं देवताम् ॥ ४४ ॥ संसृष्टं संसर्गं असंसृष्टश्च पर इव भाषते अदृष्टितः परोक्षे प्रतिश्रुतमपि कार्यं न कुरुते ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३ ॥

१०४

अधार्मिकस्य च्छलादिकं विधेयमित्युक्तं धार्मिकस्य हीनसंपदो विजिगीषमाणस्य कर्तव्यं पृच्छति-**धार्मिक इति** ॥१॥ × मुद्राराक्षसेऽयं प्रयोगो दृश्यते ।

राजोवाच ।

अर्थेषु भागी पुरुष ईहमानः पुनः पुनः ।
अलब्ध्वा मद्विधो राज्यं ब्रह्मन्किं कर्तुमर्हति
अन्यत्र मरणाद्दैन्यादन्यत्र परसंश्रयात् ।
क्षुद्रादन्यत्र चाचारात्तन्ममाचक्ष्व सत्तम ॥५
व्याधिना चाभिपन्नस्य मानसेनेतरेण वा ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च त्वद्विधः शरणं भवेत् ॥ ६
निर्विद्यति नरः कामा-
न्निर्विद्य सुखमेधते ।
त्यक्त्वा प्रीतिं च शोकं च
लब्ध्वा बुद्धिमयं वसु ॥ ७
सुखमर्थाश्रयं येषामनुशोचामि तानहम् ।
मम ह्यर्थाः सुबहवो नष्टाः स्वप्न इवागताः ॥८
दुष्करं बत कुर्वन्ति महतोऽर्थांस्त्यजन्ति ये
वयं त्वेतान्परित्यक्तुमसतोऽपि न शक्नुमः ॥९
इमामवस्थां संप्राप्तं दीनमार्तं श्रिया च्युतम् ।
यदन्यत्सुखमस्तीह तद्ब्रह्मन्ननुशाधि माम् ॥१०
कौसल्येनैवमुक्तस्तु राजपुत्रेण धीमता ।
मुनिः कालकवृक्षीयः प्रत्युवाच महाद्युतिः

मुनिरुवाच ।

पुरस्तादेव ते बुद्धिरियं कार्या विजानता।
अनित्यं सर्वमेवैतदहं च मम चास्ति यत् १२
यत्किंचिन्मन्यसेऽस्तीति
सर्वं नास्तीति विद्धि तत् ।
एवं न व्यथते प्राज्ञः
कृच्छ्रामप्यापदं गतः ॥ १३
यद्धि भूतं भविष्यं च सर्वं तन्न भविष्यति ।
एवं विदितवेद्यस्त्वमधर्मेभ्यः प्रमोक्ष्यसे १४
यच्च पूर्वं समाहारे
यच्च पूर्वं परे
सर्वं तन्नास्ति ते चैव
तज्ज्ञात्वा कोऽनुसंज्वरेत् ॥ १५
भूत्वा च न भवत्येतदभूत्वा च भविष्यति ।
शोके न ह्यस्ति सामर्थ्यं शोकं कुर्यात्कथञ्चन
क्व नु तेऽद्य पिता राजन्
क्व नु तेऽद्य पितामहः ।
न त्वं पश्यसि तानद्य
न त्वां पश्यन्ति तेऽपि च ॥ १७
आत्मनोऽध्रुवतां पश्यं-
स्तांस्त्वं किमनुशोचसि ।
बुद्ध्या चैवानुबुद्ध्यस्व
ध्रुवं हि न भविष्यसि ॥ १८
अहं च त्वं च नृपते सुहृदः शत्रवश्च ते ।
अवश्यं न भविष्यामः सर्वं च न भविष्यति
ये तु विंशतिवर्षा वै त्रिंशद्वर्षाश्च मानवाः ।
अर्वागेव हि ते सर्वे मरिष्यन्ति शरच्छतात्
अपि चेन्महतो वित्तात्प्रमुच्येत पूरुषः ।
नैतन्ममेति तन्मत्वा कुर्वीत प्रियमात्मनः २१
अनागतं यन्न ममेति विद्या-
दतिक्रान्तं यन्न ममेति विद्यात् ।
दिष्टं बलीय इति मन्यमाना-
स्ते पण्डितास्तत्सतां स्थानमाहुः २२
अनाढ्याश्चापि जीवंति राज्यं चाप्यनुशासति
बुद्धिपौरुषसंपन्नास्त्वया तुल्याऽधिका जनाः
न च त्वमिव शोचन्ति तस्मात्त्वमपि मा शुचः
किं न त्वं तैर्नरैः श्रेयांस्तुल्यो वा बुद्धिपौरुषैः

राजोवाच ।

यादृच्छिकं सर्वमासीत्तद्राज्यमिति चिन्तये
न्ह्रियते सर्वमेवेदं कालेन महता द्विज ॥ २५
तस्यैव न्ह्रियमाणस्य स्रोतसेव तपोधन ।
फलमेतत्प्रपश्यामि यथालब्धेन वर्तयन् ॥२६

---

भागी भागार्हः ईहमानो यतमानः ॥ ४ ॥ इतरेण शारीरेण ॥ ६ ॥ निर्विद्यति विरज्यते कामाद्विषयभोगात् बुद्धिमयं वसु ज्ञानरूपं धनम् ॥ ७ ॥ इयं निर्विद्यतीति श्लोकेन त्वया प्रोक्ता अहं च यच्च मम अस्ति एतत्सर्वं अनित्यमिति जानता ॥ १२ ॥ नास्ति तुच्छत्वात् ॥ १३ ॥ सर्वं तन्नाभून्न भविष्यति दृष्टिसमसमयैव सृष्टिरिति भावः ॥१४॥ यच्च पूर्वं प्राचीनं समाहारे राज्ञां समुदाये धान्यादिकं यच्च पूर्वं परे परे पूर्वस्मिन्पूर्वस्मिन् राज्ञि तत्सर्वं ते तव नास्त्येवेति तज्ज्ञात्वा सर्वत्र ममतां त्यक्त्वेति भावः ॥ १५ ॥ सामर्थ्यं धनार्जनवीर्यं कथं च कथमपि न कुर्यात् शोकम् ॥ १६ ॥ आत्मनः देहस्य अध्रुवतामिति च्छेदः। न भविष्यसि मरिष्यसि ॥ १८ ॥ न प्रमुच्येत प्रत्यक्षेण त्यागो न संभवति चेन्ममत्वं बान्धवादौ त्याज्यमित्याह-अपीति ॥२१॥ विद्यात् विद्युः तत् निर्ममत्वम् ॥ २२ ॥ यादृच्छिकं अयत्नादागतम् ॥ २५ ॥ एतत् शोकाख्यं फलं यथालब्धेन वर्तयन् जीवन्नपि पश्यामि यादृच्छिकस्य नाशेन जीवनालोपेऽपि शोको न नश्यतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

मुनिरुवाच ।

अनागतमतीतं च याथातथ्यविनिश्चयात् ।
नानुशोचेत कौसल्य सर्वार्थेषु तथा भव २७
अवाप्यान्कामयन्नर्थान्नानवाप्यान्कदाचन ।
प्रत्युत्पन्नाननुभवन्मा शुचस्त्वमनागतान् २८
यथा लब्धोपपन्नार्थैस्तथा कौसल्य रंस्यसे ।
कच्चिच्छुद्धस्वभावेन श्रिया हीनो न शोचसि
पुरस्ताद्भूतपूर्वत्वाद्धीनभाग्यो हि दुर्मतिः ।
धातारं गर्हते नित्यं लब्धार्थश्च न मृष्यते ३०
अनर्हानपि चैवान्यान्मन्यते श्रीमतो जनान् ।
एतस्मात्कारणादेतद्दुःखं भूयोऽनुवर्तते ॥ ३१
ईर्ष्याभिमानसंपन्ना राजन्पुरुषमानिनः ।
कच्चित्त्वं न तथा राजन्मत्सरी कोसलाधिप
सहस्व श्रियमन्येषां यद्यपि त्वयि नास्ति सा
अन्यत्रापि सतीं लक्ष्मीं कुशला भुञ्जते सदा
अभिनिस्यन्दते श्रीर्हि सत्यपि द्विषतो जनम्
श्रियं च पुत्रपौत्रं च मनुष्या धर्मचारिणः ।
योगधर्मविदो धीराः स्वयमेव त्यजन्त्युत ३४
बहुसंकुसुकं दृष्ट्वा विधित्सासाधनेन च ।
तथाऽन्ये संत्यजन्त्येव मत्वा परमदुर्लभम्
त्वं पुनः प्राज्ञरूपः सन्
कृपणं परितप्यसे ।
अकाम्यान्कामयानोऽर्थान्
पराधीनानुपद्रवान् ॥ ३६
तां बुद्धिमुपजिज्ञासुस्त्वमेवैतान्परित्यज ।
अनर्थाश्चार्थरूपेण ह्यर्थाश्चानर्थरूपिणः ॥ ३७
अर्थायैव हि केषांचिद्धननाशो भवत्युत ।
आनन्त्यं तत्सुखं मत्वा श्रियमन्यः परीप्सति
रममाणः श्रिया कश्चिन्नान्यच्छ्रेयोऽभिमन्यते
तथा तस्येहमानस्य समारंभो विनश्यति ३९
कृच्छ्राल्लब्धमभिप्रेतं यदि कौसल्य नश्यति ।
तदा निर्विद्यते सोऽर्थात्परिभग्नक्रमो नरः
धर्ममेकेऽभिपद्यन्ते कल्याणाभिजना नराः ।
परत्र सुखमिच्छन्तो निर्विद्येयुश्च लौकिकात्
जीवितं सन्त्यजन्त्येके धनलोभपरा जनाः ।
न जीवितार्थं मन्यन्ते पुरुषा हि धनादृते ४२
पश्य तेषां कृपणतां पश्य तेषामबुद्धिताम् ।
अध्रुवे जीविते मोहादर्थदृष्टिमुपाश्रिताः ॥४३
संचये च विनाशान्ते मरणान्ते च जीविते ।
संयोगे च वियोगान्ते को नु विप्रणयेन्मनः
धनं वा पुरुषो राजन्पुरुषं वा पुनर्धनम् ।
अवश्यं प्रजहात्येव तद्विद्वान्कोऽनुसंज्वरेत्
अन्येषामपि नश्यन्ति सुहृदश्च धनानि च ।
पश्य बुद्ध्या मनुष्याणां राजन्नापदमात्मनः ।
नियच्छ यच्छ संयच्छ इन्द्रियाणि मनो गिरं
प्रतिषेद्धा न चाप्येषु दुर्बलेष्वहितेष्वपि ।
प्राप्तिसृष्टेषु भावेषु व्यपकृष्टेष्वसंभवे ॥ ४७
प्रज्ञानतृप्तो विक्रान्तस्त्वद्विधो नानुशोचति ।
अल्पमिच्छन्नचपलो मृदुर्दान्तः सुनिश्चितः
ब्रह्मचर्योपपन्नश्च त्वद्विधो नैव शोचति ॥ ४९
न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ।
नृशंसवृत्तिं पापिष्ठां दुष्टां कापुरुषोचिताम्
अपि मूलफलाजीवो रमस्वैको महावने ।
वाग्यत संगृहीतात्मा सर्वभूतदयान्वितः ५१

---

न मृष्यते तैर्न सन्तुष्यति ॥३०॥ अनर्हान् म्लेच्छादीन्नीचान् ॥ ३१ ॥ सहस्वेतिसार्धं अन्यत्र शत्रौ कुशलाः निर्मत्सराः जनं द्विषतः सकाशात् अभिनिस्यन्दते प्रस्रवति ॥ ३३ ॥ विधित्सा क्रियाणामनुपरमस्तेन साधनेन संकुसुकं अस्थिरं नित्यं नवं नवमारंभं कुर्वाणं दृष्ट्वा अन्ये प्राकृतास्तत् संत्यजन्त्येव ॥ ३५ ॥ उपद्रवान् अस्थिरान् ॥ ३६ ॥ अर्थरूपेण भासमानाः ॥ ३७ ॥ आद्यस्योदाहरणं-**अर्थायेति** ॥ ३८ ॥ द्वितीयस्योदाहरणं **रममाण इति** ॥ ३९ ॥परिभग्नक्रमो नष्टारंभः ॥४०॥ विप्रणयेत् दद्यात् ॥ ४४ ॥ अन्येषामपीति सार्धः । बुद्ध्या कल्पितामापदं पश्य कथमत आह-**नियच्छेति** । यथाक्रमेणान्वयः इन्द्रियादीनां निरोधे हि जगत्तत्वं सम्यक् स्फुरति तेनापदां कल्पितत्वं स्फुटीभवतीति भावः ॥४६॥ **प्रतीति** । भावेषु अर्थेषु प्राप्तिसृष्टेषु दर्शनमात्रोत्पन्नेषु प्रतिषेद्धा न विद्यते अप्रत्याख्येयदर्शनाः सर्वे वर्तमानाः पदार्था इत्यर्थव्यपकृष्टेषु देशतः कालतश्च व्यवहितेष्वतीतानागतदूरस्थेषु दर्शनस्यासंभवे च ज्ञाते सति त्वद्विधो नानुशोचति इष्टानिष्टसंयोगवियोगयोरिति सार्धार्थः ॥४८

सदृशं पण्डितस्यैतदीषादन्तेन दन्तिना ।
यदेको रमतेऽरण्येष्वारण्येनैव तुष्यति ॥ ५२
महान्ह्रदः संक्षुभित आत्मनैव प्रसीदति ।
एतदेवं गतस्याहं सुखं पश्यामि जीवितुम् ॥
असंभवे श्रियो राजन्हीनस्य सचिवादिभिः
दैवे प्रतिनिविष्टे च किं श्रेयो मन्यते भवान्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कालकवृक्षीये *
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

## १०५

मुनिरुवाच ।
अथ चेत्पौरुषं किंचित्क्षत्रियात्मनि पश्यसि
ब्रवीमि तां तु ते नीतिं राज्यस्य प्रतिपत्तये
तां चेच्छक्नोषि निर्मातुं कर्म चैव करिष्यसि
शृणु सर्वमशेषेण यत्त्वां वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥२
आचरिष्यसि चेत्कर्म महतोऽर्थानवाप्स्यसि
राज्यं राज्यस्य मन्त्रं वा महतीं वा पुनःश्रियं
अथैतद्रोचते राजन्पुनर्ब्रूहि ब्रवीमि ते ।

राजोवाच ।
ब्रवीतु भगवान्नीतिमुपपन्नोस्म्यहं प्रभो ॥४
अमोघोऽयं भवत्वद्य त्वया सह समागमः ।

मुनिरुवाच ।
हित्वा दंभं च कामं च क्रोधं हर्षं भयं तथा
अप्यमित्राणि सेवस्व प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
तमुत्तमेन शौचेन कर्मणा चाभिधारय ॥ ६
दातुमर्हति ते वित्तं वैदेहः सत्यसंगरः ।
प्रमाणं सर्वभूतेषु प्रग्रहं च भविष्यसि ॥ ७
ततः सहायान्सोत्साहाँ-
ल्लप्स्यसेऽव्यसनाञ्शुचीन् ।
वर्तमानः स्वशास्त्रेण
संयतात्मा जितेन्द्रियः ॥ ८
अभ्युद्धरति चात्मानं प्रसादयति च प्रजाः ।
तेनैव त्वं धृतिमता श्रीमता चाभिसत्कृतः ९
प्रमाणं सर्वभूतेषु गत्वा च ग्रहणं महत् ।
ततः सुहृद्बलं लब्ध्वा मन्त्रयित्वा सुमंत्रिभिः
आन्तरैर्भेदयित्वाऽरीन्बिल्वं बिल्वेन भेदय
परैर्वा संविदं कृत्वा बलमप्यस्य घातय ॥११
अलभ्या ये शुभा भावास्त्रियश्चाच्छादनानि च
शय्यासनानि यानानि महार्हाणि गृहाणि च
पक्षिणो मृगजातानि रसगंधाः फलानि च
तेष्वेव सज्जयेथास्त्वं यथा नश्यत्वयं परः १३
यद्येवं प्रतिषेद्धव्यो यद्युपेक्षणमर्हति ।
न जातु विवृतः कार्यः शत्रुः सुनयमिच्छता ॥
रमस्व परमामित्रे विषये प्राज्ञसंमतः ।
भजस्व श्वेतकाकीयैर्मित्रधर्ममनर्थकैः ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥ * अस्मिन्नध्याये श्लोकचतुष्टयमधिकं-ख.

१०५

एवं दुर्बलस्य हीनसंपदः परैर्निर्जितस्य निवृत्तिधर्म एव श्रेयानित्युक्तम् । प्रबलस्य तु तादृशस्य निकृत्याख्यं जयोपायं वक्तुमध्याय आरभ्यते-**अथ चेदिति** ॥ १ ॥ उपपन्नोऽस्मि पौरुषेणेति शेषः ॥ ४ ॥ वित्तं वेतनरूपं प्रमाणं विश्वासं प्रग्रहमिव प्रग्रहं भुजत्वं तस्य बाहुस्थानीयो भाविष्यसीत्यर्थः । 'प्रग्रहस्तु तुलासूत्रे बन्द्यां नियमने भुजे' इति **मेदिनी** ॥ ७ ॥ स्वशास्त्रेण नीतिशास्त्रेण ॥ ८ ॥ ग्रहणं आदरं ' ग्रहणं स्वीकारादरकरोपरागोपलब्धिबन्दिषु ' इति **मेदिनी** ॥ १० ॥ **बिल्वं बिल्वेनेति** । अन्यपराजयोपीष्ट इति मत्वा जनकेनान्यं विपरीतं वा घातय अस्य वैदेहस्य ॥ ११ ॥ प्रतिषेधस्थाने तदकरणेऽयं मां न प्रतिषिद्धवानिति मम शत्रुरिति विवृतत्वं भवति तद्रक्ष्यमित्यर्थः ॥ १४ ॥ हे परम । अमित्रे शत्रुसमीपे श्वेतकाकीयैः श्वा च एतश्च काकश्च तेषामिमे धर्माः क्रमेण नित्यं जागरूकत्वभयचकितत्वपरेङ्गितज्ञत्वानि तैः उपायैः मित्रधर्मं भजस्व श्वेत इत्यत्रैमाङ्श्लेषिति पररूपम् एतो मृगः ॥ १५ ॥

आरंभांश्चास्य महतो दुश्चरांश्च प्रयोजय।
नदीवन्धविरोधांश्च बलवद्भिर्विरुध्यताम् १६
उद्यानानि महार्हाणि शयनान्यासनानि च।
प्रतिभोगसुखेनैव कोशमस्य विरेचय ॥ १७
यज्ञदाने प्रशाध्यस्मै ब्राह्मणाननुवर्ण्य तान्।
ते त्वां प्रतिकरिष्यन्ति तं भोक्ष्यन्ति वृका इव
असंशयं पुण्यशीलः प्राप्नोति परमां गतिम्।
त्रिविष्टपे पुण्यतमं स्थानं प्राप्नोति मानवः १९
कोशक्षये त्वमित्राणां वशं कौसल्य गच्छति
उभयत्र प्रयुक्तस्य धर्मेणाधर्म एव च ॥ २०
फलार्थमूलं व्युच्छिद्येत्तेन नन्दन्ति शत्रवः।
न चास्मै मानुषं कर्म दैवमस्योपवर्णय ॥ २१
असंशयं दैवपरः क्षिप्रमेव विनश्यति।
याजयैनं विश्वजिता सर्वस्वेन वियुज्य तम्
ततो गच्छसि सिद्धार्थः पीड्यमानं महाजनम्
योगधर्मविदं पुण्यं कंचिदस्योपवर्णयेत् ॥ २३
अपि त्यागं बुभूषेत कच्चिद्दुच्छेदनामयम्।
सिद्धेनौषधियोगेन सर्वशत्रुविनाशिना।
नागानश्वान्मनुष्यांश्च कृतकैरुपघातयेत् ॥२४
एते चान्ये च बहवो दंभयोगाः सुचिन्तिताः
शक्या विषहता कर्तुं पुरुषेण कृतात्मना ॥२५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कालकवृक्षीये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

## १०६

राजोवाच।

न निकृत्या न दंभेन ब्रह्मन्निच्छामि जीवितुम्
नाधर्मयुक्तानिच्छेयमर्थान्सुमहतोऽप्यहम् ॥ १
पुरस्तादेव भगवन्मयैतदपवर्जितम्।
येन मां नाभिशंकेत येन कृत्स्नं हितं भवेत् २
आनृशंस्येन धर्मेण लोके ह्यस्मिन् जिजीविषुः
नाहमेतदलं कर्तुं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ ३

मुनिरुवाच।

उपपन्नस्त्वमेतेन यथा क्षत्रिय भाषसे।
प्रकृत्या ह्युपपन्नोऽसि बुद्ध्या वा बहुदर्शनः ४
उभयोरेव वामर्थे यतिष्ये तव तस्य च।
संश्लेषं वा करिष्यामि शाश्वतं ह्यनपायिनम्
त्वादृशं हि कुले जातमनृशंसं बहुश्रुतम्।
अमात्यं को न कुर्वीत राज्यप्रणयकोविदम्
यस्त्वं प्रच्यावितो राज्याद्व्यसनं चोत्तमं गतः
आनृशंस्येन वृत्तेन क्षत्रियेच्छसि जीवितुम्
आगन्ता मद्गृहं तात वैदेहः सत्यसंगरः।
अथाहं तं नियोक्ष्यामि तत्करिष्यत्यसंशयम्
तत आहूय वैदेहं मुनिर्वचनमब्रवीत्।
अयं राजकुले जातो विदिताभ्यन्तरो मम ९

---

आरंभान्विरोधांश्च महानदीवदुस्तरान् ॥ १६ ॥ प्रतिकरिष्यन्ति प्रत्युपकारेण स्वस्त्ययनादिना उपकरिष्यन्ति ॥ १८०॥ धर्माधर्माभ्यां कोशक्षये सति ॥ २० ॥ फलस्य स्वर्गादेः अर्थस्य जयादेः मूलकारणं कोशः व्युच्छिद्येत् विशेषत उच्छेदं गच्छेत् दैवं जयादिकम् ॥ २१ ॥ गच्छसि अवगच्छसि सिद्धार्थः कृतयज्ञादिप्रयोजनः महाजनपीडां तस्मै निवेदयेत् तत्परिहारार्थं आचार्यं च वर्णयेत् ॥ २३ ॥तद्द्वारा राज्यं त्याजयेदित्याह— अपीति। यद्वा औषधाद्यैरस्य नागादीन्घातयेदिति सार्धः॥२४॥इति श्रीम० शान्ति० राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५

१०६

निकृतिं कपटं च कर्तुमनिच्छोर्धर्मिष्ठस्य क्षत्रियस्य सामात्यं जयोपायमाह-न **निकृत्येत्यादिना** ॥१॥ वां युवयोः तस्य विदेहस्य ॥ ५ ॥ त्वादृशं राजानं लब्ध्वा अमात्यकर्मको न कुर्वीत अपि तु सर्वोऽपि मादृशः कुर्वीतैवेत्यर्थः ॥ ६ ॥ उत्तमं महत् ॥ ७॥

आदर्श इव शुद्धात्मा शारदश्चन्द्रमा यथा।
नास्मिन्पश्यामि वृजिनं सर्वतो मे परीक्षितः
तेन ते सन्धिरेवास्तु विश्वसास्मिन्यथा मयि
न राज्यमनमात्येन शक्यं शास्तुमपि त्र्यहम्
अमात्यः शूर एव स्याद्बुद्धिसंपन्न एव वा।
ताभ्यां चैवोभयं राजन्पश्य राज्यप्रयोजनं
धर्मात्मनां क्वचिल्लोके नान्यास्ति गतिरीदृशी
महात्मा राजपुत्रोऽयं सतां मार्गमनुष्ठितः १३
सुसंगृहीतस्त्वेवैष त्वया धर्मपुरोगमः।
संसेव्यमानः शत्रूंस्ते गृह्णीयान्महतो गणान्
यद्यहं प्रतियुद्ध्येत्वां स्वकर्म क्षत्रियस्य तत्।
जिगीषमाणस्त्वां युद्धे पितृपैतामहे पदे १५
त्वं चापि प्रतियुद्ध्येथा विजिगीषुव्रते स्थितः
अयुध्वैव नियोगान्मे वशो कुरुहिते स्थितः॥
स त्वं धर्ममवेक्षस्व हित्वा लोभमसांप्रतम्।
न च कामान्न च द्रोहात्स्वधर्मं हातुमर्हसि
नैव नित्यं जयस्तात नैव नित्यं पराजयः।
तस्माद्भोजयितव्यश्च भोक्तव्यश्च परो जनः॥

आत्मन्यपि च संदृश्यावुभौ जयपराजयौ।
निःशेषकारिणां तात निःशेषकरणाद्भयम्॥
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं वचनं ब्राह्मणर्षभम्।
प्रतिपूज्याभिसत्कृत्य पूजार्हमनुमान्य च २०
यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महाश्रुतः॥
श्रेयस्कामो यथा ब्रूयादुभयोरेव तत्क्षमम् २१
यद्यद्वचनमुक्तोऽस्मि करिष्यामि च तत्तथा।
एतद्धि परमं श्रेयो न मेऽत्रास्ति विचारणा
ततः कौसल्यमाहूय मैथिलो वाक्यमब्रवीत्
धर्मतो नीतितश्चैव लोकश्च विजितो मया॥
अहं त्वया चात्मगुणैर्जितः पार्थिवसत्तम।
आत्मानमनवज्ञाय जितवद्वर्ततां भवान्॥ २४
नावमन्यामि ते बुद्धिं नावमन्ये च पौरुषम्।
नावमन्ये जयामीति जितवद्वर्ततां भवान् २५
यथावत्पूजितो राजन्गृहं गन्तासि मे भृशम्
ततः संपूज्य तौ विप्रं विश्वस्तौ जग्मतुर्गृहान्
वैदेहस्त्वथ कौसल्यं प्रवेश्य गृहमञ्जसा।
पाद्यार्घ्यमधुपर्कैस्तं पूजार्हं प्रत्यपूजयत्॥ २७
ददौ दुहितरं चास्मै रत्नानि विविधानि च
एष राज्ञां परो धर्मो नित्यौ जयपराजयौ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कालकवृक्षीये षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

## १०७

युधिष्ठिर उवाच।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
धर्मवृत्तं च वित्तं च वृत्त्युपायाः फलानि च
राज्ञां वित्तं च कोशं च कोशसंचयनं जयः॥
अमात्यगुणवृत्तिश्च प्रकृतीनां च वर्धनम्॥ २
षाड्गुण्यगुणकल्पश्च सेनावृत्तिस्तथैव च।
परिज्ञानं च दुष्टस्य लक्षणं च सतामपि॥ ३
समहीनाधिकानां च यथावल्लक्षणं च यत्।
मध्यमस्य च तुष्ट्यर्थं यथा स्थेयं विवर्धता॥४

क्षीणग्रहणवृत्तिश्च यथाधर्मं प्रकीर्तितम्।
लघुना देशरूपेण ग्रन्थयोगेन भारत॥ ५
विजिगीषोस्तथा वृत्तमुक्तं चैव तथैव ते।
गणानां वृत्तिमिच्छामि श्रोतुं मतिमतां वर
यथा गणाः प्रवर्धन्ते न भिद्यन्ते च भारत
अरींश्च विजिगीषन्ते सुहृदः प्राप्नुवन्ति च ७
भेदमूलो विनाशो हि गणानामुपलक्षये।
मंत्रसंवरणं दुःखं बहूनामिति मे मतिः॥ ८

---

ताभ्यां शौर्यबुद्धिभ्यां उभयं लोकद्वयम्॥ १२॥ गणान्शत्रुसंघान्॥ १४॥ असांप्रतं अनुचितम्॥ १७॥ परो जनः शत्रुजनः भोजनादिना सन्धेयः दंडापेक्षया सामैव श्रेयः इत्यर्थः॥ १८॥ **अहमिति**। जितवत्पराजय इव॥ २४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

१०७

गणवृत्तं बुभुत्सुः पूर्वोक्तमनुवदति-**ब्राह्मणेति**॥ १॥ क्षीणस्य ग्रहणं वृत्तिर्जीविका च लघुना सुगमेन आदेशरूपेण उपदेशात्मकेन॥ ५॥ गणानां शूरजनस्तोमानाम्

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं निखिलेन परंतप ।
यथा च ते न भिद्येरंस्तच्च मे वद पार्थिव ॥ ९

भीष्म उवाच ।

गणानां च कुलानां च राज्ञां भरतसत्तम ।
वैरसंदीपनावेतौ लोभामर्षौ नराधिप ॥ १०
लोभमेको हि वृणुते ततोऽमर्षमनन्तरम् ।
तौ क्षयव्ययसंयुक्तावन्योन्यं च विनाशिनौ
चारमन्त्रबलादानैः सामदानविभेदनैः ।
क्षयव्ययभयोपायैः प्रकर्षन्तीतरेतरम् ॥ १२
तत्रादानेन भिद्यन्ते गणाः संघातवृत्तयः ।
भिन्ना विमनसः सर्वे गच्छन्त्यरिवशं भयात्
भेदे गणा विनश्युर्हि भिन्नास्तु सुजयाः परैः
तस्मात्संघातयोगेन प्रयतेरन् गणाःसदा॥१४
अर्थाश्चैवाधिगम्यन्ते संघातबलपौरुषैः ।
बाह्याश्च मैत्रीं कुर्वन्ति तेषु संघातवृत्तिषु १५
ज्ञानवृद्धाः प्रशंसन्ति शुश्रूषन्तः परस्परम् ।
विनिवृत्ताभिसन्धानाः सुखमेधन्ति सर्वशः
धर्मिष्ठान्व्यवहारांश्च स्थापयन्तश्च शास्त्रतः ।
यथावत्प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः
पुत्रान्भ्रातॄन्निगृह्णन्तो विनयन्तश्च तान्सदा ।
विनीतांश्च प्रगृह्णन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः ॥
चारमन्त्रविधानेषु कोशसंनिचयेषु च ।
नित्ययुक्ता महाबाहो वर्धन्ते सर्वतो गणाः ॥
प्राज्ञान्शूरान्महोत्साहान्कर्मसु स्थिरपौरुषान्
मानयन्तः सदा युक्ता विवर्धन्ते गणा नृप ॥
द्रव्यवन्तश्च शूराश्च शस्त्रज्ञाः शास्त्रपारगाः ।
कृच्छ्रास्वापत्सु संमूढान् गणाः सन्तारयन्ति ते
क्रोधो भेदो भयं दण्डः कर्षणं निग्रहो वधः ।
नयत्यरिवशं सद्यो गणान्भरतसत्तम ॥ २२
तस्मान्मानयितव्यास्ते गणमुख्याः प्रधानतः
लोकयात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव २३
मन्त्रगुप्तिः प्रधानेषु चारश्चामित्रकर्षण ।
न गणाः कृत्स्नशो मन्त्रं श्रोतुमर्हन्ति भारत
गणमुख्यैस्तु संभूय कार्यं गणहितं मिथः ।
पृथग्गणस्य भिन्नस्य विततस्य ततोऽन्यथा
अर्थाः प्रत्यव सीदन्ति तथाऽनर्था भवन्ति च
तेषामन्योन्यभिन्नानां स्वशक्तिमनुतिष्ठताम् ॥
निग्रहः पण्डितैः कार्यः क्षिप्रमेव प्रधानतः ।
कुलेषु कलहा जाताः कुलवृद्धैरुपेक्षिताः ॥२७
गोत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गणभेदस्य कारकम् ।
आभ्यन्तरं भयं रक्ष्यमसारं बाह्यतो भयम् ॥

आभ्यन्तरं भयं राजन्
सद्यो मूलानि कृन्तति ।
अकस्मात्क्रोधमोहाभ्यां
लोभाद्वापि स्वभावजात् ॥ २९

अन्योन्यं नाभिभाषन्ते तत्पराभवलक्षणम् ।
जात्या च सदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास्तथा
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूपद्रव्येण वा पुनः ।
भेदाच्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः ३१
तस्मात्संघातमेवाहुर्गणानां शरणं महत् ३२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि गणवृत्ते सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

---

एको राजा लोभं वृणुते, गणस्तदाऽसम्यं न ददातीत्यमर्षं वृणुते ॥ ११ ॥ इतरेतरं गणा राजानश्च प्रकर्षन्ति ॥ १२ ॥ संघातयोगेन ऐकमत्यप्रयोगेण॥१४॥ विनिवृत्ताभिसंधानाः विघटितसंधाः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वाणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

# १०८

युधिष्ठिर उवाच ।
महानयं धर्मपथो बहुशाखश्च भारत ।
किंस्विदेवेह धर्माणामनुष्ठेयतमं मतम् ॥ १
किं कार्यं सर्वधर्माणां गरीयो भवतो मतम् ।
यथाहं परमं धर्ममिह च प्रेत्य चाप्नुयाम् ॥ २
भीष्म उवाच ।
मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम ।
इह युक्तो नरो लोकान्यशश्च महदश्नुते ॥ ३
यच्च तेऽभ्यनुजानीयुः कर्म तात सुपूजिताः ।
धर्माधर्मविरुद्धं वा तत्कर्तव्यं युधिष्ठिर ॥ ४
न च तैरभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।
यं च तेऽभ्यनुजानीयुः स धर्म इति निश्चयः
एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ॥ ६
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥ ७
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकांश्च विजेष्यसि ।
पितृवृत्त्या त्विमं लोकं मातृवृत्त्या तथा परम्
ब्रह्मलोकं गुरोर्वृत्त्या नियमेन तरिष्यसि ।
सम्यगेतेषु वर्तस्व त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ९
यशः प्राप्स्यसि भद्रं ते धर्मं च सुमहत्फलम्
नैतानतिशयेज्जातु नात्यश्नीयान्न दूषयेत् ॥१०
नित्यं परिचरेच्चैव तद्वै सुकृतमुत्तमम् ।
कीर्तिं पुण्यं यशो लोकान्प्राप्स्यसे राजसत्तम
सर्वे तस्यादृता लोका यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः
न चायं न परो लोकस्तस्य चैव परंतप ।
अमानिता नित्यमेव यस्यैते गुरवस्त्रयः ॥ १३
न चास्मिन्न परे लोके यशस्तस्य प्रकाशते ।
न चान्यदपि कल्याणं परत्र समुदाहृतम् १४
तेभ्य एव हि यत्सर्वं कृत्वा च विसृजाम्यहं
तदाऽसीन्मे शतगुणं सहस्रगुणमेव च ॥ १५
तस्मान्मे संप्रकाशन्ते त्रयो लोका युधिष्ठिर
दशैव तु सदाऽऽचार्यः श्रोत्रियानतिरिच्यते
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश
पितॄन्दश तु मातैका सर्वां वा पृथिवीमपि १७
गुरुत्वेनाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः ।
गुरुर्गरीयान्पितृतो मातृतश्चेति मे मतिः १८
उभौ हि मातापितरौ जन्मन्येवोपयुज्यतः ।
शरीरमेव सृजतः पिता माता च भारत १९
आचार्यशिष्टा या जातिः
सा दिव्या साऽजरामरा ।
अवध्या हि सदा माता
पिता चाप्यपकारिणौ ॥ २०
न संदुष्यति तत्कृत्वा न च ते दूषयन्ति तम्
धर्माय यतमानानां विदुर्देवा महर्षिभिः ॥२१
यश्चावृणोत्यवितथेन कर्मणा
ऋतं ब्रुवन्ननृतं संप्रयच्छन् ।
तं वै मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन् ॥ २२
विद्यां श्रुत्वा ये गुरुं नाद्रियन्ते
प्रत्यासन्ना मनसा कर्मणा वा ।
तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं
नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके ।
यथैव ते गुरुभिर्भावनीया-
स्तथा तेषां गुरवोऽभ्यर्चनीयाः ॥ २३
तस्मात्पूजयितव्याश्च संविभज्याश्च यत्नतः ।
गुरवोऽर्चयितव्याश्च पुराणं धर्ममिच्छता २४
येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः ।
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता २५

---

१०८

नीतिप्रधानान् राजधर्मान् श्रुत्वा तदनुग्राहकान् शुद्धधर्मानाह—**महानित्यादिना** ॥१॥ वृत्त्या पूजया ॥८॥ न अतिशयेत् भोगेषु क्रियासु वा स्वस्याधिक्यं न दर्शयेत् ॥ १० ॥ जातिर्जन्म अवध्येत्यादि सार्धः चादुरुः ॥२०॥ तत् वध्यानामपि तेषां अवधं कृत्वा ते अपराधिनोऽपि पितृमातृगुरवः अवधेन राजानमिव नैनं दूषयन्ति । राजा हि वध्यानामवधे दुष्यति तद्वन्नेत्यर्थः । धर्माय दुष्टानामपि पित्रादीनां पालनाय यतमानानां यतमानान्देवा अप्यनुग्राह्यत्वेन विदुः ॥ २१ ॥ आवृणोति अनुगृह्णाति कर्मणा प्रवचनेन ऋतं वेदम् ॥ २२ ॥ नाद्रियन्ते ये ते प्रत्यासन्नाः विपर्ययेण विशीर्णा नष्टा भवन्ति ॥ २३ ॥

येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद्ब्रह्म पूजितम्।
मातृतः पितृतश्चैव तस्मात्पूज्यतमो गुरुः २६
ऋषयश्च हि देवाश्च प्रीयन्ते पितृभिः सह।
पूज्यमानेषु गुरुषु तस्मात्पूज्यतमो गुरुः ॥ २७
केनचिन्न च वृत्तेन ह्यवज्ञेयो गुरुर्भवेत्।
न च माता न च पिता मन्यते यादृशो गुरुः
न तेऽवमानमर्हन्ति न तेषां दूषयेत्कृतम्।
गुरूणामेव सत्कारं विदुर्देवा महर्षिभिः २९
उपाध्यायं पितरं मातरं च
येऽभिद्रुह्यन्ते मनसा कर्मणा वा।
तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं
तस्मान्नान्यः पापकृदस्ति लोके ॥ ३०

भृतो वृद्धो यो न बिभर्ति पुत्रः
स्वयोनिजः पितरं मातरं च।
तद्वै पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं
तस्मान्नान्यः पापकृदस्ति लोके ॥ ३१
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिनः।
चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिं नानुशुश्रुम ॥ ३२
एतत्सर्वमनिर्देशेनैवमुक्तं
यत्कर्तव्यं पुरुषेणेह लोके।
एतच्छ्रेयो नान्यदस्माद्विशिष्टं
सर्वान् धर्माननुसृत्यैतदुक्तम् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि मातृ-पितृ-गुरुमाहात्म्ये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

## १०९

युधिष्ठिर उवाच।
कथं धर्मे स्थातुमिच्छन्नरो वर्तेत भारत।
विद्वन् जिज्ञासमानाय प्रब्रूहि भरतर्षभ ॥ १
सत्यं चैवानृतं चोभे लोकानावृत्य तिष्ठतः।
तयोः किमाचरेद्राजन्पुरुषो धर्मनिश्चितः ॥ २
किंस्वित्सत्यं किमनृतं
किंस्विद्धर्म्यं सनातनम्।
कस्मिन्काले वदेत्सत्यं
कस्मिन्कालेऽनृतं वदेत् ॥ ३
भीष्म उवाच।
सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।
यत्तु लोकेषु दुर्ज्ञानं तत्प्रवक्ष्यामि भारत ॥ ४

भवेत्सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं वाऽप्यनृतं भवेत् ५
तादृशो बध्यते बालो* यत्र सत्यमनिष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्
अप्यनार्यो कृतप्रज्ञः पुरुषोऽप्यतिदारुणः।
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ७
किमाश्चर्यं च यन्मूढो धर्मकामोऽप्यधर्मवित्
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं गंगायामिव कौशिकः ॥८
तादृशोऽयमनुप्रश्नो यत्र धर्मः सुदुर्लभः।
दुष्करः प्रतिसंख्यातुं तत्केनात्र व्यवस्यति ९
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥

---

अनिर्देशेन विस्तरेण न तु निर्देशमात्ररूपेण संक्षेपेण अनुसृत्य एकीकृत्य एतत्सारभूतम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैल० भा० अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

**कथमिति** । सत्यानृतयोर्धर्माधर्मरूपत्वे हिंसाहिंसायुक्तयोस्तयोर्वैपरीत्यदर्शनात्संशय इत्यर्थः ॥ १ ॥ उभयोस्त्यागस्त्वतिदुष्कर इत्याह-**सत्यमिति**। लोकान्संसारिणः ॥ २ ॥ तादृशः सत्यानृतयोस्तत्त्वमजानन्बालत्वाद्बध्यते यत्र विषये अहिंसोपकारादौ सत्यं अनिष्ठितं न निष्ठायुक्तं ते सत्यानृते बहूपकारप्रधाने निश्चिन्वन्धर्मवित् भवति ॥ ६ ॥ अन्धस्य घ्राणचक्षुषः सर्वप्राणिवधायोद्यतस्य वधात् बलाकः व्याधः हिंस्रस्वभावोऽपि स्वर्गं जगामेति कर्णपर्वकथाऽनुसन्धेया ॥७॥ मूढः कर्णपर्वोक्तः सत्यवादी चोरेभ्यः सत्यवचनाभिमानित्वान्मार्गमुपदिश्य कार्पटिकान्घातितवान् असौ धर्मविन्नेत्यर्थः ॥ **कौशिक** उलूकः गंगातीरे सहस्रशः सर्पिण्या स्थापितान्यण्डानि भित्त्वा महत्पुण्यं प्राप तदभेदने तु तीक्ष्णविषाणां सर्पाणां वृद्धया सद्यो लोकनाशः संभवेत् ॥ ८ ॥ सुदुर्लभो दुर्विवेकः अत्र धर्मलक्षणे व्यवस्यति निश्चिनोति ॥ ९ ॥ प्रभवोऽभ्युदयः अहिंसा अपीडनं धारणं संरक्षणं एतत् त्रयं येन सत्येनानृतेन वा मृदुना तीक्ष्णेन वा यतो भवति स धर्म इत्याह त्रिभिः-**प्रभवेति** ॥ १० ॥

* वर्धते पापो-पा०

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः
श्रुतिधर्म इति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः ।
न च तत्प्रत्यसूयामो न हि सर्वं विधीयते १३
येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो
धनमिच्छन्ति कस्यचित् ।
तेभ्यस्तु न तदाख्येयं
स धर्म इति निश्चयः ॥ १४
अकूजनेन चेन्मोक्षो नावकूजेत्कथञ्चन ।
अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन्वाऽप्यकूजनात्
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम् ।
यः पापैः सह संबंधान्मुच्यते शपथादपि १६
न तेभ्योऽपि धनं देयं शक्ये सति कथञ्चन ।
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्१७
स्वशरीरोपरोधेन धनमादातुमिच्छतः ।
सत्यसंप्रतिपत्त्यर्थं यद्ब्रूयुः साक्षिणः क्वचित्१८
अनुक्त्वा तत्र तद्वाच्यं सर्वे तेऽनृतवादिनः ।
प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत् १९

अर्थस्य रक्षणार्थाय परेषां धर्मकारणात् ।
परेषां सिद्धिमाकांक्षन्नीचः स्याद्धर्मभिक्षुकः
प्रतिश्रुत्य प्रदातव्यः स्वकार्यस्तु बलात्कृतः ।
यः कश्चिद्धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मसाधनः २१
दण्डेनैव स हन्तव्यस्तं पन्थानं समाश्रितः ।
च्युतः सदैव धर्मेभ्योऽमानवं धर्ममास्थितः ॥
शठः स्वधर्ममुत्सृज्य तमिच्छेदुपजीवितुम् ।
सर्वोपायैर्निहन्तव्यः पापो निकृतिजीवनः ॥
धनमित्येव पापानां सर्वेषामिह निश्चयः ।
अविषह्या ह्यसंभोज्या निकृत्या पतनं गताः
च्युता देवमनुष्येभ्यो यथा प्रेतास्तथैव ते ।
निर्यज्ञास्तपसा हीना मा स्म तैः सह सङ्गमः
धननाशाद्दुःखतरं जीविताद्विप्रयोजनम् ।
अयं ते रोचतां धर्म इति वाच्यः प्रयत्नतः २६
न कश्चिदस्ति पापानां धर्म इत्येष निश्चयः ।
तथागतं च यो हन्यान्नासौ पापेन लिप्यते
स्वकर्मणा हतं हन्ति हत एव स हन्यते ।
तेषु यः समयं कश्चित्कुर्वीत हतबुद्धिषु ॥ २८
यथा काकाश्च गृध्राश्च तथैवोपाधिजीविनः ।
ऊर्ध्वं देहविमोक्षान्ते भवन्त्येतासु योनिषु ॥

**श्रुतीति** । श्रुत्युक्तोऽर्थः सर्वो धर्म इत्यपि न श्येनादेर्धर्मत्वाभावात् । 'फलतोऽपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते ॥ केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म इति कथ्यते ' इति वचनात् श्येनादिफलस्य शत्रुवधादेरनर्थत्वादुक्तलक्षण एव धर्म इत्यर्थः । सर्वं श्येनाद्यपि विधीयते धर्मत्वेन चोद्यते ॥ १३ ॥ **य इति** । अन्यायेनेति च्छेदः बुभुक्षितेभ्यश्चोरेभ्यो धनिकं न ज्ञापयेत् भिक्षुभ्यस्तु ज्ञापयेदेवेत्यर्थः ॥ १४ ॥ **अकूजनेनेति** । चोरेषु धनिकं पृच्छत्सु न वदेत् अवदतो मोक्षाभावे न वेद्मीति शपथपूर्वकमपि वदेत्तादृशस्थलेऽनृते दोषो नास्तीति श्लोकद्वयार्थः ॥ १५ ॥ **नेति** । तेभ्यः स्तेनेभ्यः अपिर्हेत्वर्थे ॥ १७ ॥ स्वेति सार्धः । यदा धनं त्वदीयं श्रमो मदीयः लाभस्तूभाभ्यां विभज्य ग्राह्य इति नियमपूर्वकं प्रवृत्तेऽधर्मेण चोरादिना धननाशः स्यात्तदा उत्तमर्णः अधमर्णस्य शरीरोपरोधेन दासीकरणेन धनमादातुमिच्छति चेत्तस्य वाक्ये सत्यसंप्रतिपत्त्यर्थं संवादार्थमाहूताः साक्षिणो वाच्यं वक्तुं योग्यं वचोऽनुक्त्वा शतं रूप्याणि धारयत्येवेति निश्चयवादित्वादनृतवादिन इति भावः ॥ १८ ॥ यदा त्वधमर्णो धनवानुत्तमर्णस्तु क्षीणस्तदा तदप्यनृतं न दोषायेत्याह—**प्राणेति** ॥ १९ ॥ ईदृशस्थले वेषान्तरेणापि परकीयमर्थं रक्षेदित्याह—**अर्थस्येति** ॥ २० ॥ यदि तु उक्तविषये एव लाभालाभौ समौ उभाभ्यां विभज्य ग्राह्यमिति प्रतिश्रुतं तदा नाशितोऽर्थोऽधमर्णेन यथाभागं प्रदातव्यः । अथवा स्वकारी धनार्जनकारी अधमर्णो बलात्कृत उक्तरीत्या दासीकृतोऽप्यस्तु स चेत्कपटं करोत्यनष्टमपि नष्टमिति वदति चेत्तत्राह—**य इत्यादिना** ॥ ॥२१॥ अमानव आसुरम् ॥ २२ ॥ शठः वञ्चकः तं **अमानवम्** ॥ २३ ॥ धनमेव श्रेयो न धर्म इत्यर्थः ॥ २४ ॥ मा संगमः संगं मा कार्षीः ॥ २५ ॥ तत्र **हेतुर्धनेति** । विप्रयोजनं वियोगः एतदपि पापाः कुर्वन्तीत्यर्थः । **अयमिति** । पापानां पापिनां मध्ये वाचा उपदेशार्हः कश्चिदपि नास्ति किं तु सर्वं धर्म इत्येव तेषां निश्चय इत्यन्वयः । अधर्मकोटिस्फुरणाभावादित्याशयः ॥ २६ ॥ **समयं** एतान् हनिष्यामीति व्रतं यश्चिकीर्षेत् स कुर्वीत तादृशानां वधे पुण्यमस्तीति भावः ॥ २८ ॥

यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया बाधितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सत्यानृतकाविभागे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## ११०

युधिष्ठिर उवाच ।
क्लिश्यमानेषु भूतेषु तैस्तैर्भावैस्ततस्ततः ।
दुर्गाण्यतितरेद्येन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं ये द्विजातयः ।
वर्तन्ते संयतात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते २
ये दम्भान्नाचरन्ति स्म येषां वृत्तिश्च संयता ।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ३
प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते
वासयन्त्यतिथीन्नित्यं नित्यं ये चानसूयकाः
नित्यं स्वाध्यायशीलाश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते
मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तन्ते धर्मकोविदाः ।
वर्जयन्ति दिवा स्वप्नं दुर्गाण्यतितरन्ति ते ६
ये वा पापं न कुर्वन्ति कर्मणा, मनसा, गिरा
निक्षिप्तदण्डा भूतेषु दुर्गाण्यतितरन्ति ते ७
ये न लोभान्नयन्त्यर्थान्
राजानो रजसाऽन्विताः ।
विषयान् परिरक्षन्ति
दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ८
स्वेषु दारेषु वर्तन्ते न्यायवृत्तिमृतावृतौ ।
अग्निहोत्रपराः सन्तो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ९
आहवेषु च ये शूरास्त्यक्त्वा मरणजं भयम्
धर्मेण जयमिच्छन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते १०
ये वदन्तीह सत्यानि प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।
प्रमाणभूता भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ११
कर्माण्यकुहकार्थानि येषां वाचश्च सूनृताः ।
येषामर्थाश्च संबद्धा दुर्गाण्यतितरन्ति ते १२
अनध्यायेषु ये विप्राः स्वाध्यायं नेह कुर्वते ।
तपोनिष्ठाः सुतपसो दुर्गाण्यतितरन्ति ते १३
ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारब्रह्मचारिणः ।
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते १४
ये च संशान्तरजसः संशान्ततमसश्च ये ।
सत्त्वे स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते
येषां न कश्चित्त्रसति न त्रसन्ति हि कस्यचित्
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति त
परश्रिया न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः ।
ग्राम्यादर्थान्निवृत्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते
सर्वान्देवान्नमस्यन्ति सर्वधर्मांश्च शृण्वते ।
ये श्रद्दधानाः शान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते
ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान्
मान्यमानान्नमस्यन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते
ये च श्राद्धानि कुर्वन्ति
तिथ्यां तिथ्यां प्रजार्थिनः ।
सुविशुद्धेन मनसा
दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २०
ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान्संशमयन्ति च।
न च कुप्यन्ति भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

११०

क्लिश्यमानेष्विति । भूतेषु प्राणिषु दुर्गाणि दुस्तराणि ॥ १ ॥ विषयान्विषयार्थानि इन्द्रियाणि ॥३॥ उच्यमानाः निन्द्यमानाः ॥ ४ ॥ रजसाऽन्विताः सन्तोऽर्थान्न नयन्ति न हरन्ति ॥ ८ ॥ अकुहकार्थानि अदंभार्थानि ॥ १२ ॥

मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह मानवाः ।
जन्मप्रभृति मद्यं च दुर्गाण्यतितरन्ति ते २२
यात्रार्थं भोजनं येषां
सन्तानार्थं च मैथुनम् ।
वाक् सत्यवचनार्थाय
दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २३
ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भक्ता नारायणं देवं दुर्गाण्यतितरन्ति ते २४
य एष पद्मरक्ताक्षः पीतवासा महाभुजः ।
सुहृद्भ्राता च मित्रं च संबंधी च तथाऽच्युतः
य इमान्सकलाँल्लोकांश्चर्मवत्परिवेष्टयेत् ।
इच्छन्प्रभुरचिन्त्यात्मा गोविंदः पुरुषोत्तमः ॥
स्थितः प्रियहिते जिष्णोः स एष पुरुषोत्तमः
राजंस्तव च दुर्धर्षो वैकुण्ठः पुरुषर्षभ ॥ २७
य एनं संश्रयन्तीह भक्ता नारायणं हरिम् ।
ते तरन्तीह दुर्गाणि न चात्रास्ति विचारणा
दुर्गातितरणं ये च पठन्ति श्रावयन्ति च ।
कथयन्ति च विप्रेभ्यो दुर्गाण्यतितरन्ति ते
इति कृत्यसमुद्देशः कीर्तितस्ते मयाऽनघ ।
तरन्ते येन दुर्गाणि परत्रेह च मानवाः ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि दुर्गातितरणं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

---

## १११

युधिष्ठिर उवाच ।
असौम्याः सौम्यरूपेण
सौम्याश्चासौम्यदर्शनाः ।
ईदृशान्पुरुषांस्तात
कथं विद्यामहे वयम् ॥ १

भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
व्याघ्र-गोमायुसंवादं तं निबोध युधिष्ठिर २
पुरिकायां पुरि पुरा श्रीमत्यां पौरिको नृपः
परहिंसारतिः क्रूरो बभूव पुरुषाधमः ॥ ३
स त्वायुषि परिक्षीणे जगामानीप्सितां गतिं
गोमायुत्वं च संप्राप्तो दूषितः पूर्वकर्मणा ॥ ४
संस्मृत्य पूर्वभूतिं च निर्वेदं परमं गतः ।
न भक्षयति मांसानि परैरुपहृतान्यपि ॥ ५
अहिंस्रः सर्वभूतेषु सत्यवाक् सुदृढव्रतः ।
स चकार यथाकालमाहारं पतितैः फलैः ६
श्मशाने तस्य चावासो
* गोमायोः संमतोऽभवत् ।
जन्मभूम्यनुरोधाच्च
नान्यवासमरोचयत् ॥ ७
तस्य शौचममृष्यन्तस्ते सर्वे सहजातयः ।
चालयन्ति स्म तां बुद्धिं वचनैः प्रश्रयोत्तरैः
वसन्पितृवने रौद्रे शौचे वर्तितुमिच्छसि ।
इयं विप्रतिपत्तिस्ते यदा त्वं पिशिताशनः ९
तत्समानो भवास्माभिर्भोज्यं दास्यामहे वयं
भुंक्ष्व शौचं परित्यज्य यद्धि भुक्तं सदास्तु ते
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच समाहितः ।
मधुरैः प्रसृतैर्वाक्यैर्हेतुमद्भिरनिष्ठुरैः ॥ ११
अप्रमाणा प्रसूतिर्मे शीलतः क्रियते कुलम् ।
प्रार्थयामि च तत्कर्म येन विस्तार्यते यशः ॥
श्मशाने यदि मे वासः समाधिर्मे निशम्यतां
आत्मा फलति कर्माणि नाश्रमो धर्मकारणं
आश्रमे यो द्विजं हन्याद्गां वा दद्यादनाश्रमे ।
किं तु तत्पातकं न स्यात्तद्वा दत्तं वृथा भवेत्
भवन्तः स्वार्थलोभेन केवलं भक्षणे रताः ।
अनुबन्धे त्रयो दोषास्तान्न पश्यन्ति मोहिताः

---

यात्रार्थं जीवनार्थम् ॥ २३ ॥ तव च हिते स्थितः ॥ २७ ॥ कृत्यसमुद्देशः कर्तव्यलेशः ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकशततमोऽध्यायः ११०

१११

**असौम्या इति** ॥ १ ॥ विप्रतिपत्तिर्विपरीता बुद्धिः ॥ ९ ॥ प्रसृतैः विस्तृतैः ॥ ११ ॥ अनुबन्धे परिणामे १५ *गोमायुः शृगालः, 'कोल्हा' इति भाषायाम् ।

अप्रत्ययकृतां गर्ह्यामर्थापनयदूषिताम् ।
इह चामुत्र चानिष्टां तस्माद्वृत्तिं न रोचये १६
तं शुचिं पण्डितं मत्वा शार्दूलः ख्यातविक्रमः
कृत्वात्मसदृशीं पूजां साचिव्येऽवरयत्स्वयम्

शार्दूल उवाच ।

सौम्य विज्ञातरूपस्त्वं
गच्छ यात्रां मया सह ।
व्रियन्तामीप्सिता भोगाः
परिहार्याश्च पुष्कलाः ॥ १८

तीक्ष्णा इति वयं ख्याता भवन्तं ज्ञापयामहे ।
मृदुपूर्वं हितं चैव श्रेयश्चाधिगमिष्यसि ॥ १९
अथ संपूज्य तद्वाक्यं मृगेन्द्रस्य महात्मनः ।
गोमायुः संश्रितं वाक्यं बभाषे किञ्चिदानतः

गोमायुरुवाच ।

सदृशं मृगराजैतत्तव वाक्यं मदन्तरे ।
यत्सहायान्मृगयसे धर्मार्थकुशलाञ्छुचीन् ॥
न शक्यं ह्यनमात्येन महत्त्वमनुशासितुम् ।
दुष्टामात्येन वा वीर शरीरपरिपन्थिना २२
सहायाननुरक्तांश्च नयज्ञानुपसंहितान् ।
परस्परमसंसृष्टान्विजिगीषूनलोलुपान् ॥ २३
अनतीतोपदान्प्राज्ञान् हिते युक्तान्मनस्विनः ।
पूजयेथा महाभाग यथाऽऽचार्यान्यथा पितॄन्
न त्वेव मम सन्तोषाद्रोचतेऽन्यन्मृगाधिप ।
न कामये सुखान्भोगानैश्वर्यं च तदाश्रयम् २५
न योक्ष्यति हि मे शीलं तव भृत्यैः पुरातनैः
ते त्वां विभेदयिष्यन्ति दुःशीलाश्च मदन्तरे
न संश्रयः श्लाघनीयोऽहमेषामपि भास्वताम् ।
कृतात्मा सुमहाभागः पापकेष्वप्यदारुणः २७
दीर्घदर्शी महोत्साहः स्थूललक्ष्यो महाबलः ।
कृती चामोघकर्तास्मि भोग्यैश्च समलंकृतः
न स्वल्पेनास्मि संतुष्टो दुःखवृत्तिरनुष्ठिता ।
सेवायां चापि नाभिज्ञः स्वच्छन्देन वनेचरः
राजोपक्रोशदोषाश्च सर्वे संश्रयवासिनाम् ।
व्रतचर्या तु निःसंगा निर्भया वनवासिनाम् ॥
नृपेणाहूयमानस्य यत्तिष्ठति भयं हृदि ।
न तत्तिष्ठति तुष्टानां वने मूलफलाशिनाम् ॥
पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वाऽभयोत्तरम्
विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः
अपराधैर्न तावन्तो भृत्याः शिष्टा नराधिपैः
उपघातैर्यथा भृत्या दूषिता निधनं गताः ३३
यदि त्वेतन्मया कार्यं मृगेन्द्र यदि मन्यसे ।
समयं कृतमिच्छामि वर्तितव्यं यथा मयि ३४

मदीया माननीयास्ते
श्रोतव्यं च हितं वचः ।
कल्पिता या च मे वृत्तिः
सा भवेत्त्वयि सुस्थिरा ॥ ३५

न मन्त्रयेयमन्यैस्ते सचिवैः सह कर्हिचित् ।
नीतिमन्तः परीप्सन्तो वृथा ब्रूयुः परे मयि
एक एकेन संगम्य रहो ब्रूयां हितं वचः ।
न च ते ज्ञातिकार्येषु प्रष्टव्योऽहं हिताहिते ॥

मया संमन्त्र्य पश्चाच्च
न हिंस्याः सचिवास्त्वया ।
मदीयानां च कुपितो
मा त्वं दण्डं निपातयेः ॥ ३८

एवमस्त्विति तेनासौ मृगेन्द्रेणाभिपूजितः ।
प्राप्तवान्मतिसाचिव्यं गोमायुर्व्याघ्रयोनितः
तं तथा सुकृतं दृष्ट्वा पूज्यमानं स्वकर्मसु ।
प्राद्विषन्कृतसंघाता पूर्वभृत्या मुहुर्मुहुः ॥ ४०
मित्रबुद्ध्या च गोमायुं सान्त्वयित्वा प्रसाद्य च
दोषैस्तु समतां नेतुमैच्छन्नशुभबुद्धयः ॥ ४१
अन्यथा ह्युषिताः पूर्वं परद्रव्याभिहारिणः ।
अशक्ताः किञ्चिदादातुं द्रव्यं गोमायुयन्त्रिताः

व्युत्थानं च विकाङ्क्षद्भिः
कथाभिः प्रतिलोभ्यते ।
धनेन महता चैव
बुद्धिरस्य विलोभ्यते ॥ ४३

---

अप्रत्ययः असंतोषस्तेन कृतां अर्थापनयो धर्महानिः ॥ १६ ॥ यात्रां राजकार्ये गच्छ प्राप्नुहि परिहार्याश्चानीप्सिताः । परिहार्याः परिच्छेद्या इत्यन्ये १८ ज्ञापयामहे सूचयामहे ॥ १९ ॥ मदन्तरे मन्निमित्तम् ॥ २१ ॥ न शक्यं राज्ञेति शेषः ॥ ॥ २२ ॥ योक्ष्यति योगं प्राप्स्यति मदन्तरे मन्निमित्तं दुःशीलाश्च भविष्यन्ति ॥ २६ ॥ अत्र हेतुमाह—**नेति** । एषामहं श्लाघनीयो नास्मीति द्वयोः संबंधः ॥ २७ ॥ स्थूललक्ष्यो बहुप्रदः ॥ २८ ॥ दुःखा वृत्तिः सेवावृत्तिश्च नानुष्ठिता ॥ २९ ॥ राजसमीपे उपक्रोशो निन्दा तज्जाः दोषाःराजोपक्रोशदोषाः सन्ति॥ ३० ॥ यत्र निर्वृतिः सुखं तत्खलु सुखं स्वर्गं पश्यामि निर्वृतिः सुस्थितिरिति वा सुखं शर्मणि नाके च 'निर्वृतिः सुस्थितौ' इति च **मेदिनी** ॥ ३२ ॥ शिष्टाः कृतदण्डाः ॥ ३३ ॥ व्याघ्रयोनितः व्याघ्रयोनेः व्याघ्रस्येत्यर्थः ॥ ३९ ॥

न चापि स महाप्राज्ञस्तस्माद्धैर्याच्चचाल ह।
अथास्य समयं कृत्वा विनाशाय तथाऽपरे॥
ईप्सितं तु मृगेन्द्रस्य मांसं यत्तत्र संस्कृतम्।
अपनीय स्वयं तद्धि तैर्न्यस्तं तस्य वेश्मनि॥
यदर्थं चाप्यपहृतं येन तच्चैव मन्त्रितम्।
तस्य तद्विदितं सर्वं कारणार्थं च मर्षितम् ४६
समयोऽयं कृतस्तेन साचिव्यमुपगच्छता।
नोपघातस्त्वया कार्यो राजन्मैत्रीमिहेच्छता

भीष्म उवाच।

क्षुधितस्य मृगेन्द्रस्य भोक्तुमभ्युत्थितस्य च
भोजनायोपहर्तव्यं तन्मांसं नोपदृश्यते॥ ४८
मृगराजेन चाज्ञप्तं दृश्यतां चोर इत्युत।
कृतकैश्चापि तन्मांसं मृगेन्द्रायोपवर्णितम्॥
साचिवेनापनीतं ते विदुषा प्राज्ञमानिना।
सरोषस्त्वथ शार्दूलः श्रुत्वा गोमायुचापलम्
बभूवामर्षितो राजा वधं चास्य व्यरोचयत्।
छिद्रं तु तस्य तद्दृष्ट्वा प्रोचुस्ते पूर्वमन्त्रिणः ५१
सर्वेषामेव सोऽस्माकं वृत्तिभङ्गे प्रवर्तते।
निश्चित्यैव पुनस्तस्य ते कर्माण्यपि वर्णयन्
इदं तस्येदृशं कर्म किं तेन न कृतं भवेत्।
श्रुतश्च स्वामिना पूर्वं यादृशो नैव तादृशः॥
वाङ्मात्रेणैव धर्मिष्ठः स्वभावेन तु दारुणः।
धर्मच्छद्मा ह्ययं पापो वृथाचारपरिग्रहः॥५४
कार्यार्थं भोजनार्थेषु व्रतेषु कृतवान् श्रमम्।
यदि विप्रत्ययो ह्येष तदिदं दर्शयाम ते॥ ५५
तन्मांसं चैव गोमायोस्तैः क्षणादाशु ढौकितं
मांसापनयनं ज्ञात्वा व्याघ्रः श्रुत्वा च तद्वचः
आज्ञापयामास तदा गोमायुर्वध्यतामिति।
शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा शार्दूलजननी ततः॥
मृगराजं हितैर्वाक्यैः सम्बोधयितुमागमत्।
पुत्र नैतत्त्वया ग्राह्यं कपटारंभसंयुतम् ५८
कर्मसंघर्षजैर्दोषैर्दुष्यतेऽशुचिभिः शुचिः।
नोच्छ्रितं सहते कश्चित्प्रक्रिया वैरकारिका
शुचेरपि हि युक्तस्य दोष एव निपात्यते।
मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः ६०
उत्पाद्यन्ते त्रयः पक्षा मित्रोदासीनशत्रवः।
लुब्धानां शुचयो द्वेष्याः कातराणां तरस्विनः
मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या दरिद्राणां महाधनाः
अधार्मिकाणां धर्मिष्ठा विरूपाणां सुरूपिणः
बहवः पण्डिता मूर्खा लुब्धा मायोपजीविनः
कुर्युर्दोषमदोषस्य बृहस्पतिमतेरपि॥ ६३
शून्यात्तच्च गृहान्मांसं यद्यप्यपहृतं तव।
नेच्छते दीयमानं च साधु तावद्विमृश्यताम्

असभ्याः सभ्यसंकाशाः
सभ्याश्चासभ्यदर्शनाः।
दृश्यन्ते विविधा भावा-
स्तेषु युक्तं परीक्षणम्॥ ६५

तलवद्दृश्यते व्योम खद्योतो हव्यवाडिव।
न चैवास्ति तलं व्योम्नि खद्योते न हुताशनः
तस्मात्प्रत्यक्षदृष्टोऽपि युक्तो ह्यर्थः परीक्षितुम्
परीक्ष्य ज्ञापयन्नर्थान्न पश्चात्परितप्यते॥ ६७
न दुष्करमिदं पुत्र यत्प्रभुर्घातयेत्परम्।
श्लाघनीया यशस्या च लोके प्रभवतां क्षमा
स्थापितोऽयं त्वया पुत्र सामन्तेष्वपि विश्रुतः
दुःखेनासाद्यते पात्रं धार्यतामेष ते सुहृत्।
दूषितं परदोषैर्हि गृह्णीते योऽन्यथा शुचिम्।
स्वयं संदूषितामात्यः क्षिप्रमेव विनश्यति ७०
तस्मादप्यरिसंघाताद्गोमायोः कश्चिदागतः
धर्मात्मा तेन चाख्यातं यथैतत्कपटं कृतम्॥
ततो विज्ञातचरितः सत्कृत्य स विमोक्षितः
परिष्वक्तश्च सस्नेहं मृगेन्द्रेण पुनः पुनः॥ ७२
अनुज्ञाप्य मृगेन्द्रं तु गोमायुर्नीतिशास्त्रवित्॥
तेनामर्षेण संतप्तः प्रायमासितुमैच्छत॥ ७३
शार्दूलस्तं तु गोमायुं स्नेहात्प्रोत्फुल्ललोचनः॥
अवारयत्स धर्मिष्ठं पूजया प्रतिपूजयन्॥ ७४
तं स गोमायुरालोक्य स्नेहादागतसंभ्रमम्।
उवाच प्रणतो वाक्यं बाष्पगद्गदया गिरा॥
पूजितोऽहं त्वया पूर्वं पश्चाच्चैव विमानितः
परेषामास्पदं नीतो वस्तुं नार्हाम्यहं त्वयि॥

---

तस्य गोमायोर्वेश्मनि॥ ४५॥ तस्य गोमायोस्तद्विदितं तेन च तन्मर्षितं कारणार्थं स्वस्य बन्धविच्छेदो भवत्विति हेतोरित्यर्थः॥ ४६॥ वर्णयन् अवर्णयन्॥ ५२॥ विप्रत्ययः अविश्वासः॥ ५५॥ गोमायोर्गृहे ढौकितं प्रवेशितं मांसं प्रदर्शयामासुरित्यर्थः॥ ५६॥ कर्म न ग्राह्यमित्युत्तरश्लोकेन सम्बन्धः॥ ५८॥ सङ्घर्षजैः स्पर्धोत्थैः प्रक्रिया प्रकृष्टं कर्म॥ ५९॥ तलवत् अवाङ्मुखकटाहगर्भवत्॥ ६६॥ प्रभवतां प्रभूणाम्॥ ६८॥ गोमायोश्चारः॥ ७१॥ प्रायं मरणार्थमुपवेशनं आसितुं आचरितुम्॥ ७३॥

असंतुष्टाश्च्युताः स्थानान्मानात्प्रत्यवरोपिताः
स्वयं चापहृता भृत्या ये चाप्युपहिताः परैः ॥
परिक्षीणाश्च लुब्धाश्च
क्रुद्धा भीताः प्रतारिताः ।
हृतस्वा मानिनो ये च
त्यक्तादाना महेप्सवः ॥ ७८
सन्तापिताश्च ये केचिद्व्यसनौघप्रतीक्षिणः ।
अन्तर्हिताः सोपहितास्ते सर्वेऽपरसाधनाः
अवमानेन युक्तस्य स्थानभ्रष्टस्य वा पुनः ।
कथं यास्यसि विश्वासमहं तिष्ठामि वा कथं
समर्थ इति संगृह्य स्थापयित्वा परीक्षितः ।
कृतं च समयं भित्त्वा त्वयाऽहमवमानितः ॥
प्रथमं यः समाख्यातः शीलवानिति संसदि
न वाच्यं तस्य वैगुण्यं प्रतिज्ञां परिरक्षता ॥
एवं चावमतस्येह विश्वासं मे न यास्यसि ।
त्वयि चापेतविश्वासे ममोद्वेगो भविष्यति
शंकितस्त्वमहं भीतः परच्छिद्रानुदर्शिनः ।
अस्निग्धाश्चैव दुस्तोषाः कर्म चैतद्बहुच्छलम् ॥
दुःखेन श्लिष्यते भिन्नं श्लिष्टं दुःखेन भिद्यते
भिन्ना श्लिष्टा तु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन वर्तते
कश्चिदेव हिते भर्तुर्दृश्यते न परात्मनोः ।
कार्यापेक्षा हि वर्तन्ते भावास्निग्धाः सुदुर्लभाः
सुदुःखं पुरुषज्ञानं चित्तं ह्येषां चलाचलम् ।
समर्थो वाप्यशंको वा शतेष्वेकोऽधिगम्यते
अकस्मात्प्रक्रिया नृणामकस्माच्चापकर्षणम् ।
शुभाशुभे महत्त्वं च प्रकर्तुं बुद्धिलाघवम् ८८
एवंविधं सान्त्वमुक्त्वा धर्मकामार्थहेतुमत्
प्रसादयित्वा राजानं गोमायुर्वनमभ्यगात् ॥
अगृह्यानुनयं तस्य मृगेन्द्रस्य च बुद्धिमान् ।
गोमायुः प्रायमास्थाय त्यक्त्वा देहं दिवं ययौ

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि व्याघ्रगोमायुसंवादे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## ११२

युधिष्ठिर उवाच ।
किं पार्थिवेन कर्तव्यं
किं च कृत्वा सुखी भवेत् ।
एतदाचक्ष्व तत्त्वेन
सर्वधर्मभृतां वर ॥ १
भीष्म उवाच ।
हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि शृणु कार्यैकनिश्चयम्
यथा राज्ञेह कर्तव्यं यच्च कृत्वा सुखी भवेत्
न चैवं वर्तितव्यं स्म यथेदमनुशुश्रुम ।
उष्ट्रस्य तु महद्वृत्तं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ३
जातिस्मरो महानुष्ट्रः प्राजापत्ये युगेऽभवत् ।
तपः सुमहदातिष्ठदरण्ये संशितव्रतः ।
तपसस्तस्य चान्तेऽथ प्रीतिमानभवद्विभुः ।
वरेण च्छन्दयामास ततश्चैनं पितामहः ॥ ५
उष्ट्र उवाच ।
भगवंस्त्वत्प्रसादान्मे दीर्घा ग्रीवा भवेदियम्
योजनानां शतं साग्रं गच्छामि चरितुं विभो
एवमस्त्विति चोक्तः स वरदेन महात्मना ।
प्रतिलभ्य वरं श्रेष्ठं ययावुष्ट्रः स्वकं वनम् ॥ ७
स चकार तदाऽऽलस्यं वरदानात्सुदुर्मतिः ।
न चैच्छच्चरितुं गन्तुं दुरात्मा कालमोहितः ॥
स कदाचित्प्रसार्यैव तां ग्रीवां शतयोजनाम्
चचार श्रान्तहृदयो वातश्चागात्ततो महान्

---

उपहिताः वञ्चिताः ॥ ७७ ॥ प्रतारिताः क्षारिताः ॥ ७८ ॥ अपरसाश्च अधनाश्चेतिः अपरसाधनाः प्रीतिशून्या निर्धनाश्चेत्यर्थः ॥ ७९ ॥ कश्चिदेव कश्चिदपि भर्तुर्हिते न दृश्यते किं तु वाणिज्यवदुभयार्थः स्नेहो न केवलं भर्तुः कार्यार्थ इत्यर्थः ॥ ८६ ॥ पुरुषज्ञानं सुदुःखं दुर्लभं यत एषां नृपाणां चित्तं चलाचलमास्थिरं गम्यते ज्ञायते इपुरुषज्ञानं दुर्घटमित्यर्थः ॥ ८७ ॥ प्रक्रिया-महीकरणम् । अकस्मात्वतुं बुद्धेर्लाघवं तुच्छत्वमेव हेतुः ॥ ८८ ॥ प्रसादयित्वा प्रसाद्य ॥ ८९ ॥ अगृह्य अगृहीत्वा ॥ ९० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

किमिति । किं पार्थिवेनेत्यध्यायो नीचो महत्पदं प्राप्यापि मौर्ख्यादालस्याच्च नश्यतीति दर्शयति ॥ १ ॥

स गुहायां शिरो ग्रीवां निधाय पशुरात्मनः
आस्ते तु वर्षमभ्यागात्सुमहत्प्लावयज्जगत् १०
अथ शीतपरीताङ्गो जंबुकः क्षुच्छ्रमान्वितः।
सदारस्तां गुहामाशु प्रविवेश जलार्दितः ११
स दृष्ट्वा मांसजीवी तु सुभृशं क्षुच्छ्रमान्वितः।
अभक्षयत्ततो ग्रीवामुष्ट्रस्य भरतर्षभ ॥ १२
यदा त्वबुध्यतात्मानं भक्ष्यमाणं स वै पशुः।
तदा संकोचने यत्नमकरोद्भृशदुःखितः ॥ १३
यावदूर्ध्वमधश्चैव ग्रीवां संक्षिपते पशुः।
तावत्तेन सदारेण जम्बुकेन स भक्षितः ॥१४
स हत्वा भक्षयित्वा च तमुष्ट्रं जम्बुकस्तदा।
विगते वातवर्षे तु निश्चक्राम गुहामुखात् १५
एवं दुर्बुद्धिना प्राप्तमुष्ट्रेण निधनं तदा।
आलस्यस्य क्रमात्पश्य महान्तं दोषमागतम्
त्वमप्येवंविधं हित्वा योगेन नियतेन्द्रियः।
वर्तस्व बुद्धिमूलं तु विजयं मनुरब्रवीत् ॥ १७
बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च १८
राज्यं तिष्ठति दक्षस्य संगृहीतेन्द्रियस्य च।
आर्तस्य बुद्धिमूलं हि विजयं मनुरब्रवीत्।
गुह्यं मंत्रं श्रुतवतः सुसहायस्य चानघ ॥ १९
परीक्ष्यकारिणो ह्यर्थास्तिष्ठन्तीह युधिष्ठिर।
सहाययुक्तेन मही कृत्स्ना शक्या प्रशासितुम्
इदं हि सद्भिः कथितं विधिज्ञैः
पुरा महेन्द्रप्रतिमप्रभाव।
मयापि चोक्तं तव शास्त्रदृष्ट्या
यथैव बुध्वा प्रचरस्व राजन् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि उष्ट्रग्रीवोपाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## ११३

युधिष्ठिर उवाच।
राजा राज्यमनुप्राप्य दुर्लभं भरतर्षभ।
अमित्रस्यातिवृद्धस्य कथं तिष्ठेदसाधनः ॥ १
भीष्म उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
सरितां चैव संवादं सागरस्य च भारत ॥ २
सुरारिनिलयः शश्वत्सागरः सरितां पतिः।
पप्रच्छ सरितः सर्वाः संशयं जातमात्मनः ३
सागर उवाच।
समूलशाखान्पश्यामि
निहतान्कायिनो द्रुमान्।
युष्माभिरिह पूर्णाभि-
र्नयस्तत्र न वेतसम् ॥ ४
अकायश्चाल्पसारश्च वेतसः कूलजश्च वः।
अवज्ञया वा नानीतः किं च वा तेन वः कृतं
तदहं श्रोतुमिच्छामि सर्वासामेव वो मतम्
यथा चेमानि कूलानि हित्वा नायाति वेतसः
तत्र प्राह नदी गंगा वाक्यमुत्तममर्थवत्।
हेतुमद्ग्राहकं चैव सागरं सरितां पतिम् ॥ ७
गंगोवाच।
तिष्ठन्त्येते यथास्थानं नगा ह्येकनिकेतनाः।
ते त्यजन्ति ततः स्थानं प्रातिलोम्यान्न वेतसः

---

योगेन उपायेन एवंविधं आलस्यम् ॥ १७ ॥ बाह्विति बाहूपलक्षितं शौर्यं, जंघोपलक्षितं पादविहरणं भारो भारवहनम् ॥ १८ ॥ आर्तस्य अतिलिप्सावतः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

राजा राज्यमित्यध्यायो बलवति रिपौ विनय एव श्रेयानित्यर्थकः ॥१॥ निहतान् उन्मूलितान् कायिनः महाशरीरान् अन्यान्वृक्षान् आनीतानिति शेषः ॥ ४ ॥ अकायः अल्पकायः ॥५॥ एकनिकेतनाः स्तब्धा इत्यर्थः प्रातिलोम्यात् अस्माकं प्रातिकूल्यात् ॥ ८ ॥

वेतसो वेगमायातं दृष्ट्वा नमति नापरे ।
सरिद्वेगेऽभ्यतिक्रान्ते स्थानमासाद्य तिष्ठति
कालज्ञः समयज्ञश्च सदा वश्यश्च नोद्धतः ।
अनुलोमस्तथा लब्धस्तेन नाभ्येति वेतसः ॥
मारुतोदकवेगेन ये नमन्त्युन्नमन्ति च ।
ओषध्यः पादपा गुल्मा न ते यान्ति पराभवं

भीष्म उवाच ।
यो हि शत्रोर्विवृद्धस्य प्रभोर्बन्धविनाशने ।
पूर्वं न सहते वेगं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ १२
सारासारं बलं वीर्यमात्मनो द्विषतश्च यः ।
जानन्विचरति प्राज्ञो न स याति पराभवम्
एवमेव यदा विद्वान्मन्यतेऽतिबलं रिपुम् ।
संश्रयेद्वैतसीं वृत्तिमेतत्प्रज्ञानलक्षणम् ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि सरित्सागरसंवादे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

## ११४

युधिष्ठिर उवाच ।
विद्वान्मूर्खप्रगल्भेन मृदु तीक्ष्णेन भारत ।
आक्रुश्यमानः सदसि कथं कुर्यादरिंदम १
भीष्म उवाच ।
श्रूयतां पृथिवीपाल यथैषोऽर्थोऽनुगीयते ।
सदा सुचेताः सहते नरस्येहाल्पमेधसः ॥ २
अरुष्यन् क्रुश्यमानस्य सुकृतं नाम विन्दति ।
दुष्कृतं चात्मनोऽमर्षी रुष्यत्येवापमार्ष्टि वै
टिट्टिभं तमुपेक्षेत वाशमानमिवातुरम् ।
लोकविद्वेषमापन्नो निष्फलं प्रतिपद्यते ॥ ४
इति संश्लाघते नित्यं तेन पापेन कर्मणा ।
इदमुक्तो मया कश्चित्संमतो जनसंसदि ॥ ५
स तत्र व्रीडितः शुष्को मृतकल्पोऽवतिष्ठते ।
श्लाघन्नश्लाघनीयेन कर्मणा निरपत्रपः ॥ ६
उपेक्षितव्यो यत्नेन तादृशः पुरुषाधमः ।
यद्यद्ब्रूयादल्पमतिस्तत्तदस्य सहेद्बुधः ॥ ७
प्राकृतो हि प्रशंसन्वा निन्दन्वा किं करिष्यति
वने काक इवाबुद्धिर्वाशमानो निरर्थकम् ॥८
यदि वाग्भिः प्रयोगः स्यात्प्रयोगे पापकर्मणः
वागेवार्थो भवेत्तस्य न ह्येवार्थो जिघांसतः ९
निषेकं विपरीतं स आचष्टे वृत्तचेष्टया ।
मयूर इव कौपीनं नृत्यं संदर्शयन्निव ॥ १०
यस्यावाच्यं न लोकेऽस्ति
नाकार्यं चापि किञ्चन ।
वाचं तेन न संदध्या-
च्छुचिः संक्लिष्टकर्मणा । ११
प्रत्यक्षं गुणवादी यः परोक्षे चापि निन्दकः ।
स मानवः श्ववल्लोके नष्टलोकपरावरः ॥ १२

---

वैतसीं वृत्तिं अस्तब्धत्वम् ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

११४

**विद्वानिति** । मूर्खश्चासौ प्रगल्भश्च तेन ॥ १ ॥ सहते दुष्कृतम् ॥२॥ क्रुश्यमानस्य क्रोशतः मर्षी तितिक्षुः रुष्यति क्रोधवति ॥ ३ ॥ टिट्टिभमिव टिट्टिभवत् दुःश्रवं वाशमानं रटन्तम् ॥ ४ ॥ **यदीति** । पापकर्मणः प्रयोगे अनेनेदं कुकर्म कृतमिति शब्दोच्चारणे कृते सति वाग्भिर्वाङ्मात्रेण प्रयोगः परत्र दोषसिद्धिः स्यात्तर्हि वागेवार्थः प्रयोजनं स्यात्तव पुत्रो म्रियतामिति शब्देनैव पुत्रमृत्युः स्यात्जिघांसतस्तु अर्थो व्यापारो न हि स्यात् । यथा वाचा हतो न हन्यते एवं वाचा दूषितो न दुष्यतीत्यर्थः ॥९॥ **निषेकमिति** । स एवं वदन्नृतेन क्रियया चेष्टया वागादिव्यापारेण च लिङ्गेन निषेकं स्वमातरि रेतःसेकं विपरीतं पितुरन्येन कृतमिति आचष्टे व्यक्तं कथयति । कौपीनं गुह्यप्रदेशं सन्दर्शयन्निव नृत्यं कुर्वन्मयूरो यथा श्लाघते सम्यङ्नृत्यामीति मन्यते न तु मम गुह्यं लोकाः पश्यन्तीति त्रपते एवं खलोऽपि मया स महानमुकसभायां दुरुक्तमुक्त इति श्लाघते न तु अनेन मम मातुर्दोषः स्पष्टीक्रियते मयैवेति न त्रपते इत्यर्थः ॥१०॥ नष्टो लोकः परं ज्ञानं अवरो धर्मश्च यस्य सः नष्टलोकपरावरः ॥१२॥

तादृग्जनशतस्यापि यद्ददाति जुहोति च ।
परोक्षेणापवादी यस्तं नाशयति तत्क्षणात् ॥
तस्मात्प्राज्ञो नरः सद्यस्तादृशं पापचेतसम् ।
वर्जयेत्साधुभिर्वर्ज्यं सारमेयामिषं यथा ॥१४
परिवादं ब्रुवाणो हि दुरात्मा वै महाजने ।
प्रकाशयति दोषांस्तु सर्वः फणमिवोच्छ्रितम्
तं स्वकर्माणि कुर्वाणं प्रतिकर्तुं य इच्छति ।
भस्मकूट इवाबुद्धिः खरो रजसि सज्जति १६
मनुष्यशालावृकमप्रशान्तं
जनापवादे सततं निविष्टम् ।
मातङ्गमुन्मत्तमिवोन्नदन्तं
त्यजेत तं श्वानमिवातिरौद्रम् ॥ १७
अधीरजुष्टे पथि वर्तमानं
दमादपेतं विनयाच्च पापम् ।
अरिव्रतं नित्यमभूतिकामं
धिगस्तु तं पापमतिं मनुष्यम् ॥ १८
प्रत्युच्यमानस्त्वभिभूय एभि-
र्निशाम्य मा भूस्त्वमथार्तरूपः ।
उच्चस्य नीचेन हि संप्रयोगं
विगर्हयन्ति स्थिरबुद्धयो ये ॥ १९
क्रुद्धो दशार्धेन हि ताडयेद्वा
स पांसुभिर्वा विकिरेत्तुषैर्वा ।
विवृत्य दन्तांश्च विभीषयेद्वा
सिद्धं हि मूढे कुपिते नृशंसे ॥ २०
विगर्हणां परमदुरात्मना कृतां
सहेत यः संसदि दुर्जनान्नरः ।
पठेदिदं चापि निदर्शने सदा
न वाङ्मयं स लभति किंचिदप्रियम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि टिट्टिभकं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

---

## ११५

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ संशयो मे महानयम् ।
संछेत्तव्यस्त्वया राजन्भवान्कुलकरो हि नः
पुरुषाणामयं तात दुर्वृत्तानां दुरात्मनाम् ।
कथितो वाक्यसंचारस्ततो विज्ञापयामि ते
यद्धितं राज्यतन्त्रस्य कुलस्य च सुखोदयम् ।
आयत्यां च तदात्वे च क्षेमवृद्धिकरं च यत्
पुत्रपौत्राभिरामं च राष्ट्रवृद्धिकरं च यत् ।
अन्नपाने शरीरे च हितं यत्तद्ब्रवीहि मे ॥ ४
अभिषिक्तो हि यो राजा राष्ट्रस्थो मित्रसंवृतः
असुहृत्समुपेतो वा स कथं रञ्जयेत्प्रजाः ॥ ५
यो ह्यसत्प्रग्रहरतिः स्नेहरागबलात्कृतः ।
इन्द्रियाणामनीशत्वादसज्जनबुभूषकः ॥ ६
तस्य भृत्या विगुणतां यान्ति सर्वे कुलोद्गताः
न च भृत्यफलैरर्थैः स राजा संप्रयुज्यते ॥ ७

---

नादृक्पुमान् ॥ १३ ॥ सारमेयामिषं शुनो मांसम् ॥ १४ ॥ निषेकमित्युक्तं व्याचष्टे—परिवादमिति । दोषान् जारजत्वादीन् ॥ १५ ॥ भस्मकूटे भस्मराशौ खर इवाबुद्धिः रजसि दुःखे निमज्जति ॥ १६ ॥ शालावृकं श्वानमेव मनुष्यत्वेन लोके गृहीतामित्यर्थः ॥ १७ ॥ प्रत्युच्यमानः आक्षिप्यमाण एभिरसद्भिः निशम्य अभिभूयः अस्मै प्रत्युत्तरं मा देहीति निवारणीयः तदेवाह—मा भूरिति ॥१९॥ दशार्धेन संवृतांगुलिपञ्चकेन पाणिना इदं सर्वं कुपितमूढे सिद्धमेव ॥२०॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैल० भा० दी० चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

११५

पितामहेति ॥ १ ॥ अयं निन्दारूपः ॥ २ ॥ हितं अनिन्द्यम् । आयत्यां उत्तरकाले तदात्वे वर्तमानकाले ॥ ३ ॥ मित्रसुहृदौ प्रत्युपकारमपेक्ष्यानपेक्ष्य चोपकर्तारौ तद्वान् समुपेतः शौर्यादिनेति शेषः ॥ ५ ॥ तथापि जितेन्द्रियत्वाद्विगुणितभृत्यः सन् राज्ये सुखं लभते न वेति प्रश्नार्थः। सत्यपि साधनान्तरे भृत्यानामानुकूल्याभावे राज्यं नश्यति तत्सद्भावे च सर्वान्कामान्फलतीत्युत्तरमाह—यो हीत्यादिना । असत्प्रग्रहरतिः इन्द्रियाणामनिग्रहशीलः ॥ ६ ॥ भृत्यफलैः भृत्यबलप्राप्यैरर्थैर्धनादिभिः ॥ ७ ॥

एतन्मे संशयस्यास्य राजधर्मान्सुदुर्विदान् ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या भवान्शंसितुमर्हति ॥ ८
शंसिता पुरुषव्याघ्र त्वन्नः कुलहिते रतः ।
क्षत्ता चैको महाप्राज्ञो यो नः शंसति सर्वदा
त्वत्तः कुलहितं वाक्यं श्रुत्वा राज्यहितोदयं
अमृतस्याव्ययस्येव तृप्तः स्वप्स्याम्यहं सुखम्
कीदृशाः सन्निकर्षस्था
भृत्याः सर्वगुणान्विताः ।
कीदृशैः किं कुलीनैर्वा
सह यात्रा विधीयते ॥ ११
न ह्येको भृत्यरहितो राजा भवति रक्षिता
राज्यं चेदं जनः सर्वस्तत्कुलीनोऽभिकांक्षति
भीष्म उवाच ।
न च प्रशास्तुं राज्यं हि शक्यमेकेन भारत
असहायवता तात नैवार्थाः केचिदप्युत १३
लब्धुं लब्धा ह्यपि सदा रक्षितुं भरतर्षभ ।
यस्य भृत्यजनः सर्वो ज्ञानविज्ञानकोविदः ॥
हितैषी कुलजः स्निग्धः स राज्यफलमश्नुते ॥
मन्त्रिणो यस्य कुलजा असंहार्याः सहोषिताः
नृपतेर्मतिदाः सन्तः संबन्धज्ञानकोविदाः ॥
अनागतविधातारः कालज्ञानविशारदाः ।
अतिक्रान्तमशोचन्तः स राज्यफलमश्नुते ॥
समदुःखसुखा यस्य सहायाः प्रियकारिणः ।
अर्थचिन्तापराः सत्याः स राज्यफलमश्नुते ॥
यस्य नार्तो जनपदः
सन्निकर्षगतः सदा ।
अक्षुद्रः सत्पथालम्बी
स राजा राज्यभाग्भवेत् ॥ १९
कोशाख्यपटलं यस्य कोशवृद्धिकरैर्नरैः ।
आप्तैस्तुष्टैश्च सततं चीयते स नृपोत्तमः ॥२०
कोष्ठागारमसंहार्यैराप्तैः संचयतत्परैः ।
पात्रभूतैरलुब्धैश्च पाल्यमानं गुणी भवेत् २१
व्यवहारश्च नगरे यस्य कर्मफलोदयः ।
दृश्यते शंखलिखितः स्वधर्मफलभाङ्नृपः २२
संगृहीतमनुष्यश्च यो राजा राजधर्मवित् ।
षड्वर्गं प्रतिगृह्णाति स धर्मफलमश्नुते ॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## ११६

×भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
निदर्शनं परं लोके सज्जनाचरिते सदा ॥ १
अस्यैवार्थस्य सदृशं यच्छ्रुतं मे तपोवने ।
जामदग्न्यस्य रामस्य यदुक्तमृषिसत्तमैः ॥ २
वने महति कस्मिंश्चिदमनुष्यनिषेविते ।
ऋषिर्मूलफलाहारो नियतो नियतेन्द्रियः ॥
दीक्षादमपरः शान्तः स्वाध्यायपरमः शुचिः
उपवासविशुद्धात्मा सततं सत्त्वमाश्रितः ४
तस्य संदृश्य सद्भावमुपविष्टस्य धीमतः ।
सर्वे सत्त्वाः समीपस्था भवन्ति वनचारिणः

क्षत्ता विदुरः ॥ ९ ॥ लब्धुं लब्धाश्च रक्षितुं शक्या इति शेषः ॥१४॥ असंहार्याः उत्कोचादिना अभेद्याः ॥१६॥ पटलं समूहम् ॥२०॥ कोष्ठागारं धान्यादिसामग्रीगृहं गुणी- भवेत् बहुगुणिभावं गच्छेत् ॥२१॥ व्यवहारः अर्थिप्रत्य- र्थिनो र्विवादे निर्णयः फलोदयः अर्थिन्यनृते सति अर्थ्यमान- द्विगुणो दण्डो राज्ञा ग्राह्यः । प्रत्यर्थिन्यनृते सति यावदर्थ्य- मानं अर्थिने दाप्यं तावानेव राजदंडश्च फलपर्यन्तः । तत्र दृष्टान्तः शङ्खलिखित इति।यथा फलमात्रस्तेने शङ्खेन लिखितस्य हस्तच्छेदो राजानं प्रतिषेधयित्वा कारितस्त- द्वदित्यर्थः ॥ २२ ॥ षड्वर्गं सन्धिविग्रहादिकम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शा० राजधर्मा० नै० भारत० पञ्चदशा- धिकशततमोऽध्यायः॥११५॥ × युधिष्ठिर उवाच— न सन्ति कुलजा यत्र सहायाः पार्थिवस्य तु अकुलीनाश्च कर्तव्या न वा भरतसत्तम ॥ इत्यधिकम् ।

११६

अत्रेति । अत्र वक्ष्यमाणे उत्तमाधममध्यमस्थानेषु क्रमादुत्तमाधममध्यमा एव योज्या न तु उच्चस्थाने नीचो नियोज्य इत्यस्मिन्नर्थे निदर्शनं श्वदृष्टान्तरूमितिहास- मुदाहरन्ति ॥ १ ॥ अस्यैव वक्ष्यमाणस्य ॥ २ ॥ सत्त्वाः प्राणिनः ॥ ५ ॥

सिंहव्याघ्रगणाः क्रूरा मत्ताश्चैव महागजाः ।
द्वीपिनः खड्गभल्लूका ये चान्ये भीमदर्शनाः
ते सुखप्रश्नदाः सर्वे भवन्ति क्षतजाशनाः ।
तस्यर्षेः शिष्यवच्चैव न्यग्भूताः प्रियकारिणः
दत्वा च ते सुखप्रश्नं सर्वे यान्ति यथागतम् ।
ग्राम्यस्त्वेकः पशुस्तत्र नाजहात्स महामुनिम्
भक्तोऽनुरक्तः सततमुपवासकृशोऽबलः ।
फलमूलोदकाहारः शान्तः शिष्टाकृतिर्यथा
तस्यर्षेरुपविष्टस्य पादमूले महामते ।
मनुष्यवद्गतो भावं स्नेहबद्धोऽभवद्भृशम् ॥१०
ततोऽभ्ययान्महावीर्यो द्वीपी क्षतजभोजनः ।
स्वार्थमत्यन्तसंतुष्टः क्रूरकाल इवान्तकः ॥११
लेलिह्यमानस्तृषितः पुच्छास्फोटनतत्परः ।
व्यादितास्यः क्षुधाभुग्नः प्रार्थयानस्तदामिषं
दृष्ट्वा तं क्रूरमायान्तं जीवितार्थी नराधिप ।
प्रोवाच श्वा मुनिं तत्र तच्छृणुष्व विशांपते
श्वशत्रुर्भगवन्नेष द्वीपी मां हन्तुमिच्छति ।
त्वत्प्रसादाद्भयं न स्यादस्मान्मम महामुने १४
तथा कुरु महाबाहो सर्वज्ञस्त्वं न संशयः ।
स मुनिस्तस्य विज्ञाय भावज्ञो भयकारणम् ।
रुतज्ञः सर्वसत्त्वानां तमैश्वर्यसमन्वितः ॥ १५

मुनिरुवाच ॥

न भयं द्वीपिनः कार्यं मृत्युतस्ते कथंचन ।
एष श्वरूपरहितो द्वीपी भवसि पुत्रक ॥ १६
ततः श्वा द्वीपितां नीतो जाम्बूनदनिभाकृतिः
चित्राङ्गो विस्फुरद्दंष्ट्रो वने वसति निर्भयः ॥
तं दृष्ट्वा संमुखे द्वीपी आत्मनः सदृशं पशुम् ।
अविरुद्धस्ततस्तस्य क्षणेन समपद्यत ॥ १८
ततोऽभ्ययान्महारौद्रो
व्यादितास्यः क्षुधान्वितः ।
द्वीपिनं लेलिहद्वक्त्रो
व्याघ्रो रुधिरलालसः ॥ १९
व्याघ्रं दृष्ट्वा क्षुधा भुग्नं दंष्ट्रिणं वनगोचरम् ।
द्वीपी जीवितरक्षार्थमृषिं शरणमेयिवान् २०
संवासजं परं स्नेहमृषिणा कुर्वता तदा ।
स द्वीपी व्याघ्रतां नीतो रिपूणां बलवत्तरः
ततो दृष्ट्वा स शार्दूलो नाहनत्तं विशांपते ।
स तु श्वा व्याघ्रतां प्राप्य बलवान्पिशिताशनः
न मूलफलभोगेषु स्पृहामप्यकरोत्तदा ।
यथा मृगपतिर्नित्यं प्रकाङ्क्षति वनौकसः ।
तथैव स महाराज व्याघ्रः समभवत्तदा ॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि श्वर्षिसंवादे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

## ११७

भीष्म उवाच ।

व्याघ्रश्चोटजमूलस्थस्तृप्तः सुप्तो हतैर्मृगैः ।
नागश्चागात्तमुद्देशं मत्तो मेघ इवोद्धतः ॥ १
प्रभिन्नकरटः प्रांशुः पद्मी विततकुंभकः ।
सुविषाणो महाकायो मेघगंभीरनिःस्वनः ॥२
तं दृष्ट्वा कुञ्जरं मत्तमायान्तं बलगर्वितम् ।
व्याघ्रो हस्तिभयात्त्रस्तस्तमृषिं शरणं ययौ ३
ततोऽनयत्कुञ्जरत्वं व्याघ्रं तमृषिसत्तमः ।
महामेघनिभं दृष्ट्वा स भीतो ह्यभवद्गजः ॥ ४
ततः कमलषण्डानि शल्लकीगहनानि च ।
व्यचरत्स मुदा युक्तः पद्मरेणुविभूषितः ॥ ५
कदाचिद्भ्रममाणस्य हस्तिनः संमुखं तदा ।
ऋषेस्तस्योटजस्थस्य कालोऽगच्छन्निशानिशं

सुखप्रश्नदाः सुखिनः स्थ इति प्रश्नस्योत्तरं सुखिनः स्म इति तत्प्रदा इत्यर्थः । न्यग्भूताः दासभूताः ॥ ७ ॥ भावं चित्तम् ॥ १० ॥ द्वीपी क्षुद्रव्याघ्रः ॥ ११ ॥ द्वीपिनः द्वीपिरूपाद् मृत्युतः श्वरूपरहितः श्वरूपहीनः ॥ १६ ॥ क्षुधा भुग्नं पीडितम् ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

११७

व्याघ्रश्चेति । मृगैस्तृप्तः ॥१॥ कमलषण्डानि कमलसमूहान् ॥५॥ निशानिशं बहुरात्रम् ॥ ६ ॥

अथाजगाम तं देशं केसरी केसरारुणः।
गिरिकन्दरजो भीमः सिंहो नागकुलान्तकः
तं दृष्ट्वा सिंहमायान्तं नागः सिंहभयार्दितः।
ऋषिं शरणमापेदे वेपमानो भयातुरः॥ ८
स ततः सिंहतां नीतो नागेन्द्रो मुनिना तदा
वन्यं नागणयत्सिंहं तुल्यजातिसमन्वयात् ९
दृष्ट्वा च सोऽभवत्सिंहो वन्यो भयसमन्वितः
स चाश्रमेऽवसत्सिंहस्तस्मिन्नेव महावने १०
तद्भयात्पशवो नान्ये तपोवनसमीपतः।
व्यदृश्यन्त तदा त्रस्ता जीविताकांक्षिणस्तथा
कदाचित्कालयोगेन सर्वप्राणिविहिंसकः।
बलवान्क्षतजाहारो नानासत्त्वभयङ्करः॥ १२
अष्टपादूर्ध्वनयनः शरभो वनगोचरः।
तं सिंहं हन्तुमागच्छन्मुनेस्तस्य निवेशनम्
तं मुनिः शरभं चक्रे बलोत्कटमरिंदम।
ततः स शरभो वन्यो मुनेः शरभमग्रतः॥ १४
दृष्ट्वा बलिनमत्युग्रं द्रुतं संप्राद्रवद्वनात्।
स एवं शरभस्थाने संन्यस्तो मुनिना तदा १५
मुनेः पार्श्वगतो नित्यं शरभः सुखमाप्तवान्।

ततः शरभसंत्रस्ताः सर्वे मृगगणास्तदा १६
दिशः संप्राद्रवन् राजन्भयाज्जीवितकांक्षिणः
शरभोऽप्यतिसंहृष्टो नित्यं प्राणिवधे रतः॥
फलमूलाशनं कर्तुं नैच्छत्स पिशिताशनः।
ततो रुधिरतर्षेण बलिना शरभोऽन्वितः १८
इयेष तं मुनिं हन्तुमकृतज्ञः श्वयोनिजः।
ततस्तेन तपःशक्त्या विदितो ज्ञानचक्षुषा

विज्ञाय स महाप्राज्ञो
मुनिः श्वानं तमुक्तवान्।
श्वा त्वं द्वीपित्वमापन्नो
द्वीपी व्याघ्रत्वमागतः॥ २०

व्याघ्रान्नागो मदपटुर्नागः सिंहत्वमागतः।
सिंहस्त्वं बलमापन्नो भूयः शरभतां गतः॥
मया स्नेहपरीतेन विसृष्टो नकुलान्वयः।
यस्मादेवमपापं मां पाप हिंसितुमिच्छसि २२
तस्मात्स्वयोनिमापन्नः श्वैव त्वं हि भविष्यसि
ततो मुनिजनद्वेष्टा दुष्टात्मा प्राकृतोऽबुधः।
ऋषिणा शरभः शप्तस्तद्रूपं पुनराप्तवान्॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि श्वर्षिसंवादे+ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

## ११८

भीष्म उवाच।
स श्वा प्रकृतिमापन्नः परं दैन्यमुपागतः।
ऋषिणा हुंकृतः पापस्तपोवनबहिष्कृतः॥ १
एवं राज्ञा मतिमता विदित्वा सत्यशौचताम्
आर्जवं, प्रकृतिं, सत्त्वं, श्रुतं, वृत्तं, कुलं, दमम्
अनुक्रोशं, बलं, वीर्यं
प्रभावं प्रश्रयं, क्षमाम्।
भृत्या ये यत्र योग्याः स्यु-
स्तत्र स्थाप्याः सुरक्षिताः॥ ३

नापरीक्ष्य महीपालः सचिवं कर्तुमर्हति।
अकुलीननराकीर्णो न राजा सुखमेधते॥ ४
कुलजः प्राकृतो राज्ञा स्वकुलीनतया सदा।
न पापे कुरुते बुद्धिं भिद्यमानोऽप्यनागसि॥
अकुलीनस्तु पुरुषः प्राकृतः साधुसंश्रयात्।
दुर्लभैश्वर्यतां प्राप्तो निन्दितः शत्रुतां व्रजेत्॥
कुलीनं शिक्षितं प्राज्ञं ज्ञानविज्ञानपारगम्।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं सहिष्णुं देशजं तथा॥ ७

---

समन्वयात्सम्बन्धात्॥ ९॥ अकृतज्ञत्वे हेतुः श्वयोनिज इति॥१९॥ मदपटुः प्रवहन्मदः॥२१॥ विसृष्टो विविधेन रूपेण त्वं सृष्टः। न तु त्वं कुलान्वयः तेन तेन कुलेनान्वयः सम्बन्धो यस्य स कुलान्वयस्तादृशस्त्वं न भवसि॥२२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११७॥ + एकादश श्लोका अधिकाः-ख.

११८

स श्वेति॥१॥ दृष्टान्तमुपपाद्य दार्ष्टान्तिकमाह-एवमित्यादिना॥ २॥ राज्ञा अनागसि भिद्यमानोऽपि कुलीनः पापे बुद्धिं न कुरुत इत्यन्वयः॥५॥ अकुलीनस्तु निन्दामात्रेण शत्रुतां व्रजेत्॥ ६॥

कृतज्ञं बलवन्तं च क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम्
अलुब्धं लब्धसंतुष्टं स्वामिमित्रबुभूषकम् ॥ ८
सचिवं देशकालज्ञं सत्त्वसंग्रहणे रतम् ।
सततं युक्तमनसं हितैषिणमतन्द्रितम् ॥ ९
युक्ताचारं स्वविषये सन्धिविग्रहकोविदम् ।
राज्ञस्त्रिवर्गवेत्तारं पौरजानपदप्रियम् ॥ १०
खातकव्यूहतत्त्वज्ञं बलहर्षणकोविदम् ।
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञं यात्राज्ञानविशारदम् ११
हस्तिशिक्षासु तत्त्वज्ञमहंकारविवर्जितम् ।
प्रगल्भं दक्षिणं दान्तं बलिनं युक्तकारिणम्
चौक्षं चौक्षजनाकीर्णं सुमुखं सुखदर्शनम् ।
नायकं नीतिकुशलं गुणचेष्टासमन्वितम् १३
अस्तब्धं प्रसृतं श्लक्ष्णं मृदुवादिनमेव च ।
धीरं शूरं महार्धिं च देशकालोपपादकम् १४
सचिवं यः प्रकुरुते न चैनमवमन्यते ।
तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योत्स्ना ग्रहपतेरिव
एतैरेव गुणैर्युक्तो राजा शास्त्रविशारदः ।
एष्टव्यो धर्मपरमः प्रजापालनतत्परः ॥ १६
धीरो मर्षी शुचिस्तीक्ष्णः
काले पुरुषकारवित् ।
शुश्रूषुः श्रुतवान् श्रोता
ऊहापोहविशारदः ॥ १७
मेधावी धारणायुक्तो यथान्यायोपपादकः ॥
दान्तः सदा प्रियाभाषी क्षमावांश्च विपर्यये
दानाच्छेदे स्वयंकारी श्रद्धालुः सुखदर्शनः ।
आर्तहस्तप्रदो नित्यममात्यो हि हिते रतः ॥
नाहंवादी न निर्द्वन्द्वो न यत्किंचनकारकः
कृते कर्मण्यमात्यानां कर्ता भक्तजनप्रियः ॥
संगृहीतजनो स्तब्धः प्रसन्नवदनः सदा ।
सदा भृत्यजनापेक्षी न क्रोधी सुमहामनाः ॥
युक्तदण्डो न निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासनः ।
चारनेत्रः प्रजावेक्षी धर्मार्थकुशलः सदा २२
राजा गुणशताकीर्ण एष्टव्यस्तादृशो भवेत् ।
योधाश्चैव मनुष्येन्द्र सर्वे गुणगणैर्वृताः ॥ २३
अन्वेष्टव्याः सुपुरुषाः सहाया राज्यधारणे ।
न विमानयितव्यास्ते राज्ञा वृद्धिमभीप्सता
योधाः समरशौटीराः कृतज्ञाः शस्त्रकोविदाः
धर्मशास्त्रसमायुक्ताः पदातिजनसंवृताः ॥ २५
अभया गजपृष्ठस्था रथचर्याविशारदाः ।
इष्वस्त्रकुशला यस्य तस्येयं नृपतेर्मही ॥ २६
सर्वसंग्रहणे युक्तो नृपो भवति यः सदा ।
उत्थानशीलो मित्राढ्यः स राजा राजसत्तमः
शक्या चाश्वसहस्रेण वीरारोहेण भारत ।
संगृहीतमनुष्येण कृत्स्ना जेतुं वसुंधरा ॥ २८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि श्वर्षिसंवादे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## ११९

भीष्म उवाच ।

एवं शुना समान्भृत्यान्स्वे स्वे स्थाने नराधिपः
नियोजयति कृत्येषु स राज्यफलमश्नुते ॥ १
न श्वा स्वं स्थानमुत्क्रम्य
प्रमाणमभिसत्कृतः ।
आरोप्यः श्वा स्वकात्स्थाना-
दुत्क्रम्यान्यत्प्रमाद्यति ॥ २

स्वामिनो मित्राणां बुभूषकं ऐश्वर्यलिप्सुम् ॥ ८ ॥ सत्त्वसंग्रहणे प्राणिमात्ररञ्जने ॥९॥ खातकाः परसैन्या वदारका ये व्यूहादयस्तेषां तत्त्वज्ञम् ॥११॥ चौक्षं शुद्धम् ॥१३॥ प्रसृतं सूक्ष्मार्थगामिनम् ॥ १४ ॥ मर्षी क्षमी ॥ १७ ॥ विपर्ययेऽक्षमावति अपकारिणि क्षमावान् ॥ १८ ॥ दानस्य अच्छेदे विषये स्वयं अविच्छेदकर्ता ॥ १९ ॥ न निर्द्वन्द्वो न निष्परिग्रहः कर्ता उपकर्ता ॥ २० ॥ गुणशतं कुलीनत्वादय एकपञ्चाशदमात्यगुणास्तत्सहितः धर्मपरमत्वादय एकचत्वारिंशदेवं अष्टोनं गुणशतम् एतेषां सान्धिविग्रहकोविदमित्यादिरीत्याऽन्यत् गुणाष्टकं ऊहयित्वा पूर्णं शतं ज्ञेयम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

**एवमिति** । एवं नीचाननर्चिनैव योजयेत् ॥ १ ॥ विपरीते दोषमाह—**न श्वेति**। स्वं स्थानं प्रमाणं चोत्क्रम्य उच्चस्थाने न आरोप्यः आरोपितश्चेत्प्रमाद्यतीति योजना ॥ २ ॥

स्वजातिगुणसंपन्नाः स्वेषु कर्मसु संस्थिताः ।
प्रकर्तव्या ह्यमात्यास्तु नास्थाने प्रक्रिया क्षमा
अनुरूपाणि कर्माणि भृत्येभ्यो यः प्रयच्छति
स भृत्यगुणसंपन्नो राजा फलमुपाश्नुते ॥ ४
शरभः शरभस्थाने
सिंहः सिंह इवोर्जितः ।
व्याघ्रो व्याघ्र इव स्थाप्यो
द्वीपी द्वीपी यथा तथा ॥ ५
कर्मस्विहानुरूपेषु न्यस्या भृत्या यथाविधि
प्रतिलोमं न भृत्यास्ते स्थाप्याः कर्मफलैषिणा
यः प्रमाणमतिक्रम्य प्रतिलोमं नराधिपः ।
भृत्यान्स्थापयतेऽबुद्धिर्न स रञ्जयते प्रजाः ॥७
न बालिशा न च क्षुद्रा
नाप्राज्ञा नाजितेन्द्रियाः ।
नाकुलीना नराः सर्वे
स्थाप्या गुणगणैषिणा ॥ ८
साधवः कुलजाः शूरा ज्ञानवन्तोऽनसूयकाः
अक्षुद्रा शुचयो दक्षाः स्युर्नराः पारिपार्श्वकाः
न्यग्भूतास्तत्पराः शान्ता-
श्चौक्षाः प्रकृतिजैः शुभाः ।
स्वस्थानानपकृष्टा ये
ते स्यू राज्ञां बहिश्चराः ॥ १०

सिंहस्य सततं पार्श्वे सिंह एवानुगो भवेत्।
असिंहः सिंहसहितः सिंहवल्लभते फलम् ११
यस्तु सिंहः श्वभिः कीर्णः सिंहकर्मफले रतः
न स सिंहफलं भोक्तुं शक्तः श्वभिरुपासितः
एवमेतन्मनुष्येन्द्र शूरैः प्राज्ञैर्बहुश्रुतैः ।
कुलीनैः सह शक्येत कृत्स्ना जेतुं वसुंधरा ॥
नाविद्यो नानृजुः पार्श्वे नाप्राज्ञो नामहाधनः
संग्राह्यो वसुधापालैर्भृत्यो भृत्यवतां वर १४
बाणवद्विसृता यान्ति
स्वामिकार्यपरा नराः ।
ये भृत्याः पार्थिवहिता-
स्तेषां सान्त्वं प्रयोजयेत् ॥ १५
कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः
कोशमूला हि राजानः कोशो वृद्धिकरो भवेत्
कोष्ठागारं च ते नित्यं स्फीतैर्धान्यैः सुसंवृतं
सदास्तु सत्सु संन्यस्तं धनधान्यपरो भव ॥
नित्ययुक्ताश्च ते भृत्या भवन्तु रणकोविदाः ।
वाजिनां च प्रयोगेषु वैशारद्यमिहेष्यते ॥ १८
ज्ञातिबन्धुजनावेक्षी मित्रसंबन्धिसंवृतः ।
पौरकार्यहितान्वेषी भव कौरवनन्दन ॥ १९
एषा ते नैष्ठिकी बुद्धिः प्रजास्वभिहिता मया
शुनो निदर्शनं तात किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि श्वर्षिसंवादे एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## १२०

युधिष्ठिर उवाच ।
राजवृत्तान्यनेकानि त्वया प्रोक्तानि भारत
पूर्वैः पूर्वनियुक्तानि राजधर्मार्थवेदिभिः ॥ १
तदेव विस्तरेणोक्तं पूर्वदृष्टं सतां मतम्।
प्रणेयं राजधर्माणां प्रब्रूहि भरतर्षभ ॥ २
भीष्म उवाच ।
रक्षणं सर्वभूतानामिति क्षात्रं परं मतम् ।
तद्यथा रक्षणं कुर्यात्तथा शृणु महीपते ॥ ३

---

अबुद्धिरिति च्छेदः ॥ ७ ॥ बहिश्चराः प्राणा इवेति शेषः ॥ १० ॥ विसृता अपरावर्तिनः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

**राजवृत्तेति**। राजवृत्तानीत्यध्यायः पूर्वोक्तानां राजधर्माणां सर्वेषामुपसंहारार्थः ॥१॥ राजधर्माणां राजधर्मविदां मतं यत् विस्तरेणोक्तं तदेव प्रणेयं प्रकर्षेण नेतुं बोद्धुं शक्यं संक्षिप्तमित्यर्थः प्रब्रूहि ॥ २ ॥ सर्वभूतरक्षणे कृत्स्नो राजधर्मः परिसमाप्त इत्याह—**रक्षणमिति**॥ ३॥

यथा बर्हाणि चित्राणि बिभर्ति भुजगाशनः
तथा बहुविधं राजा रूपं कुर्वीत धर्मवित् ४
तैक्ष्ण्यं जिह्मत्वमादाल्भ्यं सत्यमार्जवमेव च
मध्यस्थः सत्त्वमातिष्ठंस्तथा वै सुखमृच्छति
यस्मिन्नर्थे हितं यत्स्यात्तद्वर्णं रूपमादिशेत् ।
बहुरूपस्य राज्ञो हि सूक्ष्मोऽप्यर्थो न सीदति
नित्यं रक्षितमन्त्रः स्याद्यथा मूकः शरच्छिखी
श्लक्ष्णाक्षरतनुः श्रीमान्भवेच्छास्त्रविशारदः
आपद्द्वारेषु युक्तः स्याज्जलप्रस्रवणेष्विव ।
शैलवर्षोदकानीव द्विजान्सिद्धान्समाश्रयेत् ।
अर्थकामः शिखां राजा कुर्याद्धर्मध्वजोपमां
नित्यमुद्यतदण्डः स्यादाचरेदप्रमादतः ।
लोके चायव्ययौ दृष्ट्वा बृहद्वृक्षमिवास्रवत् ॥ ९
मृजावान् स्यात् स्वयूथ्येषु
भौमानि चरणैः क्षिपेत् ।
जातपक्षः परिस्पन्देत्
प्रेक्षेद्वैकल्यमात्मनः ॥ १०
दोषान्विवृणुयाच्छत्रोः परपक्षान्विधूनयेत् ।
काननेष्विव पुष्पाणि बर्हिरर्थान्समाचरन् ॥
उच्छ्रितान्नाशयेत्स्फीतान्नरेन्द्रानचलोपमान् ।
श्रयेच्छायामविज्ञातां गुप्तं रणमुपाश्रयेत् ॥ १२
प्रावृषीवासितग्रीवो मज्जेत निशि निर्जने ।
मायूरेण गुणेनैव स्त्रीभिश्चावेक्षितश्चरेत् ॥ १३
न जह्याच्च तनुत्राणं रक्षेदात्मानमात्मना ।
चारभूमिष्वभिगतान्पाशांश्च परिवर्जयेत् ॥
प्रणयेद्वापि तां भूमिं
प्रणश्येद्गहने पुनः ।
हन्यात्क्रुद्धानतिविषां-
स्तान् जिह्मगतयोऽहितान् ॥ १५
नाशयेद्बलबर्हाणि सन्निवासान्निवासयेत् ।
सदा बर्हिनिभः कामं प्रशस्तं कृतमाचरेत् ।
सर्वतश्चाददेत्प्रज्ञां पतङ्गं गहनेष्विव ॥ १६
एवं मयूरवद्राजा स्वराज्यं परिपालयेत् ।
आत्मबुद्धिकरीं नीतिं विदधीत विचक्षणः ॥

---

एतदेव मयूरदृष्टान्तेनोपपादयति—**यथेति** । बर्हाणि पक्षान् भुजगाशनो मयूरः ॥ ४ ॥ तैक्ष्ण्यं क्रूरत्वं जिह्मत्वं कौटिल्यं आदाल्भ्यं दल्भो भयं तदभावोऽदल्भः अभयं तस्य भाव आदाल्भ्यम् । अभयप्रदत्वमित्यर्थः । रलयोः सावर्ण्यात् दर्भो भये इत्यस्य रूपम्। आदानमिति पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः ॥ ५ ॥ यस्मिन्नर्थे दण्डेऽनुग्रहे वा हितं क्रूरं शान्तं वा रूपमादिशेत् दर्शयेत् ॥ ६ ॥ आपदां द्वारेषु मन्त्रभेदादिषु युक्तोऽवहितः स्यात्। शैलवर्षोदकानि पर्वतप्रदेशे वृष्ट्या जनितानि महानदीजलानि शिखां योग्यलिंगं क्रूरत्वादिकं कुर्यात् प्रकाशयेत् ॥ ८ ॥ **नित्यमिति** । आचरेत् यथायोग्यं दण्डम् । तत्र दृष्टांतः **बृहदिति** । बृहन्तो वृक्षाः यत्र तद्बृहद्वृक्षं तालवनम् आस्रवत् रसं प्रस्रवत् यथा रसग्राही प्रदेशविशेष एव प्रहृत्य रसं गृह्णाति न तु कृत्स्नवृक्षच्छेदेन इक्षुकाण्डादिवत्ततो रसं जिघृक्षति एवं प्रजानामायव्ययौ ज्ञात्वा ताः जीवयंस्ताभ्यो धनरसमादद्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥ मृजा शुद्धिस्तद्वान् भौमानि परेषां सस्यानि चरणैरश्वादिगमनैः क्षिपेत् नाशयेत् ॥१०॥ अर्थात् मृगयादिव्याजात्परराष्ट्रं समाचरन्परपक्षान्विधूनयेत् ॥ ११ ॥ छायां परदुर्गाधिपतिना सन्धिं कृत्वा देवतादर्शनादिव्याजेनाकस्मात्परदुर्गं गत्वा प्रविश्य तन्नाशयेदित्याह—**उच्छ्रितानिति** ॥ १२ ॥ असितग्रीवो मयूरो निशीव प्रावृषि मज्जेत अदृश्योऽन्तःपुरचर एव स्यात् ॥ १३ ॥ तत्रापि चारैर्दर्शितासु भूमिषु धात्रीसौविदल्लसूपकारादिषु परैर्भेदितेषु अभिगतान्विषादीन्पाशान्परिवर्जयेदात्मानं रक्षेच्चेत्याह-**नेति** ॥ १४ ॥ ननु कुतस्तत्रापि पाशप्रसक्तिरत आह—**प्रणयेदिति** । गहने दुर्बोधे पाशज्ञाने सति तां कपटभूमिं प्रतिपद्यात्मानं प्रणयेत्प्रापयेत्तदा नश्येदेव वाशब्द एवार्थे । प्रयोजयन्ति हि राजानो विषमयीं कन्यां कृत्वा* द्वीपान्तरप्राप्तेयं पद्मिनीजातीया कन्या अस्याः स्पर्शमात्राद्दर्शीतिवार्षिकोऽपि षोडशवर्षो भवतीति सेयमतिश्रेष्ठरत्नतया श्रीमतामर्थे कल्पिताऽनुग्राह्या चेयं वयं चेति ब्रुवाणाः । तत्र चारमुखात्कपटं श्रुत्वा तां न प्रणयेत् ऊहितान्केनचिन्निमित्तेन तर्कितांस्तानतिविषान्कन्यादीन् स्पर्शमात्रेणोच्छ्वासमात्रेण वा संगतमक्षिकामशकादिमरणलिंगेन ज्ञातान्हन्यादेव ॥१५॥**नाशयेदिति**सार्धः । बलबर्हाणि स्थूलान्पक्षान्सैन्यस्य पक्षस्थानीयान्महाशिबिरवारवनितानटनर्तकादींश्च नाशयेत् मयूर इव दूरीकुर्यात् 'बलं गन्धरसे रूपे स्थामानि स्थौल्यसैन्ययोः' इति **मेदिनी** । सन्निवासान्दृढमूलान्पक्षानमात्यादीन् शूरांश्च वासयेत्स्थापयेत् बर्हिनिभः मयूरतुल्यः कामं यथेष्टं प्रशस्तं कृतं प्रशस्तां क्रियां पक्षाणां विस्फारणमाचरेत् अनेनैव क्रमेण सर्वतश्च जातिमात्रात्प्रज्ञां आददीत । यथोक्तं 'बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत्' इत्यादि । पतङ्गं शलभसमूहो यथा गहनेषु पतति गहनं च निष्पत्रं करोति एवं संभूय शत्रुराष्ट्रे पतितव्यमित्यर्थः । पन्नगं गहनेष्विवेति पाठे पन्नगग्राही पन्नगमिवाकस्माच्छत्रुं गृह्णीयादित्यर्थ. ॥१६॥ * विषकन्याप्रयोगो मुद्राराक्षसे प्रयुक्तः ।

आत्मसंयमनं बुद्ध्या परबुद्ध्याऽवधारणम् ।
बुद्ध्या चात्मगुणप्राप्तिरेतच्छास्त्रनिदर्शनम् ॥
परं विश्वासयेत्साम्ना स्वशक्तिं चोपलक्षयेत्
आत्मनः परिमर्शेन बुद्धिं बुद्ध्या विचारयेत्
सान्त्वयोगमतिः प्राज्ञः कार्याकार्यप्रयोजकः
निगूढबुद्धेर्धीरस्य वक्तव्ये वा कृतं तथा ॥२०
स निकृष्टां कथां प्राज्ञो यदि बुद्ध्या बृहस्पतिः
स्वभावमेष्यते तप्तं कृष्णायसमिवोदके ॥ २१
अनुयुञ्जीत कृत्यानि सर्वाण्येव महीपतिः ।
आगमैरुपदिष्टानि स्वस्य चैव परस्य च २२
मृदु शीलं तथा प्राज्ञं शूरं चार्थविधानवित् ।
स्वकर्मणि नियुञ्जीत ये चान्ये च बलाधिकाः
अथ दृष्ट्वा नियुक्तानि स्वानुरूपेषु कर्मसु ।
सर्वांस्ताननुवर्तेत स्वरांस्तन्त्रीरिवायता २४
धर्माणामविरोधेन सर्वेषां प्रियमाचरेत् ।
ममायमिति राजा यः सपर्वत इवाचलः २५
व्यवसायं समाधाय सूर्यो रश्मीनिवायतान्
धर्ममेवाभिरक्षेत कृत्वा तुल्ये प्रियाप्रिये २६
कुलप्रकृतिदेशानां धर्मज्ञान्मृदुभाषिणः ।
मध्ये वयसि निर्दोषान् हिते युक्तानविक्लवान्

अलुब्धान् शिक्षितान्दान्तान्
धर्मेषु परिनिष्ठितान् ।
स्थापयेत्सर्वकार्येषु
राजा धर्मार्थरक्षिणः ॥ २८

एतेन च प्रकारेण कृत्यानामागतिं गतिम् ।
युक्तः समनुतिष्ठेत तुष्टश्चारैरुपस्कृतः ॥ २९
अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षितुः ।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥ ३०
व्यक्तश्चानुग्रहो यस्य यथार्थश्चापि निग्रहः ।
गुप्तात्मा गुप्तराष्ट्रश्च स राजा राजधर्मवित् ॥
नित्यं राष्ट्रमवेक्षेत गोभिः सूर्य इवोदितः ।
चरान्स्वनुचरान्विद्यात्तथा बुद्ध्या स्वयं चरेत्
कालं प्राप्तमुपादद्यान्नार्थं राजा प्रसूचयेत् ।
अहन्यहनि संदुह्यान्महीं गामिव बुद्धिमान् ३३
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनोति मधु षट्पदः ।
तथा द्रव्यमुपादाय राजा कुर्वीत सञ्चयम् ॥

यद्धि गुप्तावशिष्टं स्या-
त्तद्वित्तं धर्मकामयोः ।
सञ्चयान्न विसर्गी स्या-
द्राजा शास्त्रविदात्मवान् ॥ ३५

नार्थमल्पं परिभवेन्नावमन्येत शात्रवान्
बुद्ध्या तु बुद्ध्येदात्मानं न चाबुद्धिषु विश्वसेत्

धृतिर्दाक्ष्यं संयमो बुद्धिरात्मा
धैर्यं शौर्यं देशकालाप्रमादः ।
अल्पस्य वा बहुनो वा विवृद्धौ
धनस्यैतान्यष्ट समिन्धनानि ॥ ३७
अग्निः स्तोको वर्धतेऽप्याज्यसिक्तो
बीजं चैकं रोहसहस्रमेति ।
आयव्ययौ विपुलौ सन्निशाम्य
तस्मादल्पं नावमन्येत वित्तम् ॥ ३८
बालोऽप्यबालः स्थविरो रिपुर्यः
सदा प्रमत्तं पुरुषं निहन्यात् ।
कालेनान्यस्तस्य मूलं हरेत
कालज्ञाता पार्थिवानां वरिष्ठः ॥ ३९
हरेत्कीर्तिं धर्ममस्योपरुन्ध्या-
दर्थे दीर्घं वीर्यमस्योपहन्यात् ।
रिपुर्द्वेष्टा दुर्बलो वा बली वा
तस्माच्छत्रौ नैव हीयेद्यतात्मा ॥ ४०

बुद्धया आत्मनः संयमनं इत्थमेव कर्तुं युक्तं नियमं कुर्यात् परबुद्धया च तत्रैवार्थे संवादितया तस्यार्थस्यावधारणं दृढतरो निश्चयः कार्यः । बुद्धया शास्त्रोत्थधिया आत्मगुणस्य पूर्वोक्तनिश्चयहेतोः प्राप्तिर्भवति एतदेव शास्त्रस्य निदर्शनं प्रयोजनं यत्कार्यक्षोदक्षमता बुद्धेरित्यर्थः ॥ १८ ॥ आत्मनः स्वस्य परिमर्शेन सर्वतोऽतीतानागतविचारेण बुद्धिं कार्यनिश्चयं बुद्धया ऊहापोहकौशलरूपया मेधया विचारयेत्साधकबाधकभूमौ संचारयेत् ॥ १९ ॥ तमेवाह--सान्त्वे उपदेशे कर्तव्ये कृतं अलं तस्योपदेशापेक्षा नास्तीत्यर्थः ॥ २० ॥ सः अनन्तरश्लोकोक्तः प्राज्ञो बुद्धया बृहस्पतिसमोऽपि सन् यदि निकृष्टां कथां निर्बुद्धित्ववादं प्राप्नुयात्तर्हि सद्य एव युक्त्या स्वभावं स्वास्थ्यं एष्यते उदके प्रक्षिप्तं तप्तायसं शैत्यमिव ॥२१॥ गोभिः रश्मिभिः चरान् चारान्स्वनुचरान्समाचारान् ॥ ३२ ॥ न अर्थं प्रसूचयेत् अर्थवत्तां न ज्ञापयेत् ॥ ३३ ॥ संचयान्न विसर्गी स्यात् कोशाद्धनं न दद्यादपि तु उपर्यात्तमेवेत्यर्थः ॥३५॥ आत्मा देहः देशे काले वाऽप्रमाद इत्येकम् ॥३७॥ अबालः अहीनः अन्यः संपन्नः ॥ ३९ ॥ शत्रोः शत्रुं प्राप्य नैव हीयेनैव प्रमादी स्यात् ॥ ४० ॥

क्षयं, वृद्धिं, पालनं, संचयं वा
बुध्वाऽप्युभौ संहतौ सर्वकामौ।
ततश्चान्यन्मतिमान्संदधीत
तस्माद्राजा बुद्धिमत्तां श्रयेत ॥ ४१
बुद्धिर्दीप्ता बलवन्तं हिनस्ति
बलं बुद्ध्या पाल्यते वर्धमानम्।
शत्रुर्बुद्ध्या सीदते वर्धमानो
बुद्धेः पश्चात्कर्म यत्तत्प्रशस्तम् ॥ ४२
सर्वान्कामान्कामयानो हि धीरः
सत्त्वेनाल्पेनाप्नुते हीनदोषः।
यश्चात्मानं प्रार्थयतेऽर्थ्यमानैः
श्रेयः पात्रं पूरयते च नाल्पम् ॥ ४३
तस्माद्राजा प्रगृहीतः प्रजासु
मूलं लक्ष्म्याः सर्वशो ह्याददीत।
दीर्घं कालं ह्यपि संपीड्यमानो
विद्युत्संपातमपि वा नोर्जितः स्यात
विद्या तपो वा विपुलं धनं वा
सर्वं ह्येतद्व्यवसायेन शक्यम्।
बुद्ध्यायत्तं तन्निवसेद्देहवत्सु
तस्माद्विद्याद्व्यवसायं प्रभूतम् ॥ ४५
यत्रासते मतिमन्तो मनस्विनः
शक्रो विष्णुर्यत्र सरस्वती च।
वसन्ति भूतानि च यत्र नित्यं
तस्माद्विद्वान्नावमन्येत देहम् ॥ ४६
लुब्धं हन्यात्संप्रदानेन नित्यं
लुब्धस्तृप्तिं परवित्तस्य नैति।
सर्वो लुब्धः कर्मगुणोपभोगे
योऽर्थैर्हीनो धर्मकामौ जहाति ॥ ४७

धनं भोगं पुत्रदारं समृद्धिं
सर्वं लुब्धः प्रार्थयते परेषाम्।
लुब्धे दोषाः संभवन्तीह सर्व
तस्माद्राजा न प्रगृह्णीत लुब्धम् ॥ ४८
संदर्शनेन पुरुषं जघन्यमपि चोदयेत्।
आरंभान्द्विषतां प्राज्ञः सर्वार्थांश्च प्रसूदयेत् ॥
धर्मान्वितेषु विज्ञाता मन्त्री गुप्तश्च पाण्डव।
आप्तो राजा कुलीनश्च पर्याप्तो राजसंग्रहे ॥
विधिप्रयुक्तान्नरदेवधर्मा-
नुक्तान्समासेन निबोध बुद्ध्या।
इमान्विदध्याद्व्यतिसृत्य यो वै
राजा महीं पालयितुं स शक्तः ॥ ५२
अनीतिजं यस्य विधानजं सुखं
हठप्रणीतं विधिवत्प्रदृश्यते।
न विद्यते तस्य गतिर्महीपते-
र्न विद्यते राज्यसुखं ह्यनुत्तमम् ॥ ५२
धनैर्विशिष्टान्मतिशीलपूजितान्
गुणोपपन्नान्युधि दृष्टविक्रमान्।
गुणेषु दृष्ट्वा न चिरादिवात्मवान्
यतोऽभिसन्धाय निहन्ति शात्रवान्
पश्येदुपायान्विविधैः क्रियापथै-
र्न चानुपायेन मतिं निवेशयेत्।
श्रियं विशिष्टां, विपुलं यशो, धनं
न दोषदर्शी पुरुषः समश्नुते ॥ ५४
प्रीतिप्रवृत्तौ विनिवर्तितौ यथा
सुहृत्सु विज्ञाय निवृत्य चोभयोः।
यदेव मित्रं गुरुभारमावहे-
त्तदेव सुस्निग्धमुदाहरेद्बुधः ॥ ५५

क्षयं ऐश्वर्यं सर्वं ऐश्वर्यादि कामो विजिगीषादिस्तौ सर्वकामौ बुद्ध्वा वा संदधीत संधिं वा कुर्यात् अन्याद्विग्रहादिकं कुर्यात् ॥ ४१ ॥ वर्धमानं क्षीयमाणं बुद्धेः पश्चात् बुद्ध्यनुसारि ॥ ४२ ॥ अल्पेनापि सत्त्वेन बलेन अर्थ्यमानैर्युक्तम् आत्मानं प्रार्थयते लुब्धो दृप्तश्च भवतीत्यर्थः। श्रेयः पात्रं न पूरयते ततः श्रेयोऽपसर्पतीत्यर्थः ॥ ४३ ॥ प्रगृहीतः स्निग्धः लक्ष्म्याः मूलं अर्थं सर्वशः सर्वाभ्यः संपीड्यमानः संपीडयन् प्रजासु विद्युत्संपातं सम्यक्पतित्वापि ऊर्जितः स्यात्। अत्र बृहद्वृक्षदृष्टान्तः प्रागेवोक्तः ॥ ४४ ॥ व्यवसायेन उद्योगेन विद्यात् लभेत् ॥४५॥ अनुद्योगेन जन्म न नाशयेदित्याह-यत्रेति ॥४६॥ कर्म यज्ञादि गुणः अङ्गं यस्य तत्फलं सुखं तदुपभोगे सर्वोऽपि लुब्धः स चेदर्थैर्हीनस्तर्हि सुखलोभाद्धर्मं कामं द्रव्यादिविषयं च जहाति ॥ ४७ ॥ समृद्धिं च प्राप्यापीति शेषः। धनं उत्कोचरूपं न प्रगृह्णीत न संगृह्णीत ॥४८॥ धर्मान्वितेषु ब्राह्मणमंडलेषु विज्ञाता ज्ञाततत्त्वः राजसंग्रहे सामन्तवशीकरणे ॥ ५० ॥ निबोध बुद्ध्यस्व व्यतिसृत्य गुरुमनुसृत्य विदध्यात् हृदि कुर्यात् ॥ ५१ ॥ विधानजं दैवप्राप्तं राजधर्माज्ञाने प्राप्तोऽप्यर्थः सद्यो नश्यतीत्यर्थः ॥५२ गुणोपपन्नाञ्शौर्यादियुक्तान् गुणेषु सन्धिविग्रहादिषु आत्मवानप्रमत्तः यतः उत्थानं कुर्वाणाञ्शात्रवानभिसन्धाय लक्षीकृत्य निहन्ति ॥ ५३ ॥ दोषदर्शी निर्दोषेष्वपीति शेषः ॥ ५४ ॥ सुहृत्सु विज्ञाय ज्ञानपूर्वकं प्रीतेः प्रवृत्तौ सत्यां यौ सुहृदौ निवृत्य नितरां वृत्वा एकस्मिन्कार्ये विनिवर्तितौ अभिमुखीकृतौ तयोरुभयोर्मध्ये यदेव गुरुभारमावहेत्तदेव उदाहरेत्प्रशंसेत् ॥ ५५ ॥

एतान् मयोक्तांश्चर राजधर्मान्
नृणां च गुप्तौ मतिमादधत्स्व ।
अवाप्स्यसे पुण्यफलं सुखेन
सर्वो हि लोको नृप धर्ममूलः ॥ ५६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि राजधर्मकथने×
विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

## १२१

युधिष्ठिर उवाच ।
अयं पितामहेनोक्तो राजधर्मः सनातनः ।
ईश्वरश्च महादण्डो दण्डे सर्वं प्रतिष्ठितम् १
देवतानामृषीणां च पितॄणां च महात्मनाम् ।
यक्षरक्षःपिशाचानां साध्यानां च विशेषतः
सर्वेषां प्राणिनां लोके तिर्यग्योनिनिवासिनां
सर्वव्यापी महातेजा दंडः श्रेयानिति प्रभो
इत्येवमुक्तं भवता दण्डे वै सचराचरम् ।
पश्यता लोकमासक्तं ससुरासुरमानुषम् ॥ ४
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं तत्त्वेन भरतर्षभ ।
को दण्डः कीदृशो दण्डः किंरूपः किंपरायणः
किमात्मकः कथंभूतः कथंमूर्तिः कथं प्रभो ।
जागर्ति च कथं दण्डः प्रजास्ववहितात्मकः
कश्च पूर्वापरमिदं जागर्ति प्रतिपालयन् ।
कश्च विज्ञायते पूर्वं को वरो दण्डसंज्ञितः ।
किंसंस्थश्च भवेद्दण्डः का वाऽस्य गतिरुच्यते

भीष्म उवाच ।
शृणु कौरव्य यो दण्डो व्यवहारो यथा च सः
यस्मिन् हि सर्वमायत्तं स दण्ड इह केवलः
धर्मसंख्या महाराज व्यवहार इतीष्यते ।
तस्य लोपः कथं न स्याल्लोकेष्ववहितात्मनः
इत्येवं व्यवहारस्य व्यवहारत्वमिष्यते ।
अपि चैतत्पुरा राजन्मनुना प्रोक्तमादितः ॥
सुप्रणीतेन दण्डेन प्रियाप्रियसमात्मना ।
प्रजा रक्षति यः सम्यग्धर्म एव स केवलः ॥
यथोक्तमेतद्वचनं प्रागेव मनुना पुरा ।
यन्मयोक्तं मनुष्येन्द्र ब्रह्मणो वचनं महत् ॥१२
प्रागिदं वचनं प्रोक्तमतः प्राग्वचनं विदुः ।
व्यवहारस्य चाख्यानाद्व्यवहार इहोच्यते ।
दण्डे त्रिवर्गः सततं सुप्रणीते प्रवर्तते ।
दैवं हि परमो दण्डो रूपतोऽग्निरिवोत्थितः
नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ।
अष्टपान्नैकनयनः शंकुकर्णोर्ध्वरोमवान् ॥ १५

चर अनुतिष्ठ आदधत्स्व आधत्स्व । दध धारणे इत्यस्य रूपम् ॥५६॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वाणि राजधर्मानुशासनपर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ × एकः श्लोक अधिकः-ख.

१२१

**अयमिति** । अयं पितामहेनेत्यध्यायद्वयेन दण्डस्वरूपादिकमुच्यते-को दण्ड इत्यादय एकादशप्रश्नास्तत्र को दण्ड इत्यस्योत्तरमाह-**धर्मेति** । धर्मस्य संख्या सम्यक् ख्यानं प्रकाशनं दण्डापरपर्यायव्यवहारशब्दवाच्यं व्यवहारपदं निर्वक्ति **तस्येति** सार्धेन । अवहितात्मनो राज्ञः तस्य धर्मस्य लोपः कथं केन प्रकारेण न स्यात्स प्रकारो व्यवहारः विगतः अवहारो नीचमार्गेण परस्वादिहरणं यस्मात्स इति व्युत्पत्त्या सिद्धः ॥९॥ अपि चेति । एतत् एतस्य व्यवहारस्य ॥ १० ॥ प्रजारक्षकत्वाद्व्यवहार एव धर्मपदवाच्योऽपीत्याह-**सुप्रणीतेनेति** ॥ ११ ॥ **यथेति** । सुप्रणीतेनेति श्लोकेन यन्मनुवचनमुक्तं तद्ब्रह्मण एव वचनं मनुमुखाच्छ्रुतमित्यर्थः॥१२॥**प्रागिति**।दण्ड एव उक्तवचनाद्धर्मशब्देन व्यवहारशब्देन चोच्यत इत्यर्थः । प्राग्वचनं धर्मवचनम् ॥१३॥ रूपतोऽग्निरिवोत्थित इति तस्यान्तरं रूपं दुष्टसन्तापकत्वात्क्रूरमग्नितुल्यमित्युक्तम् ॥१४॥ बाह्यं रूपं वर्णयति-**नीलेति** । दण्डाधिष्ठात्र्या देवताया इदं ध्यानादिकं अज्ञानाददण्ड्यदण्डजं दोषं निराकर्तुं दण्डकर्तृभिरमात्यादिभिर्ध्येयमित्येवमर्थयुक्तम्। यदि तु लौकिकानि दण्डधर्मव्यवहाराङ्गान्यत्रोत्प्रेक्ष्यन्ते तर्हि एवं व्याख्येयम् । तत्र दण्डः संहर्तृत्वाद्रौद्रो रुद्रश्च नीललोहित इति तस्याग्निरिवोत्थित इति लोहितं रूपमुक्तम् । नीलं च नीलोत्पलेति **निरुक्तम्** । तत्र राज्ञा दण्ड्ये द्वेषात्तद्धने च लोभात्प्रणेयस्य दण्डस्य मालिन्यरागोत्पन्नत्वान्नीललोहितं दंडस्य रूपम् चतस्रो दंष्ट्रा इव

जटी द्विजिह्वस्ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः ।
एतद्रूपं बिभर्त्युग्रं दण्डो नित्यं दुराधरः ॥१६
असिर्धनुर्गदा शक्तिस्त्रिशूलं मुद्गरः शरः ।
मुसलं परशुश्चक्रं पाशो दण्डर्ष्टितोमराः १७
सर्वप्रहरणीयानि सन्ति यानीह कानिचित्
दण्ड एव स सर्वात्मा लोके चरति मूर्तिमान्
भिन्दंश्छिन्दन् रुजन्कृन्तन्दारयन्पाटयंस्तथा
घातयन्नभिधावंश्च दण्ड एव चरत्युत ॥ १९
असिर्विशसनो धर्मस्तीक्ष्णवर्मा दुराधरः ।
श्रीगर्भो विजयः शास्ता व्यवहारः सनातनः
शास्त्रं ब्राह्मणमन्त्राश्च शास्ता प्राग्वदतां वरः
धर्मपालोऽक्षरो देवः सत्यगो नित्यगोऽग्रजः
असंगो रुद्रतनयो मनुर्ज्येष्ठः शिवंकरः ।
नामान्येतानि दण्डस्य कीर्तितानि युधिष्ठिर
दण्डो हि भगवान्विष्णुर्दण्डो नारायणः प्रभुः
शश्वद्रूपं महद्बिभ्रन्महान्पुरुष उच्यते ॥ २३
तथोक्ता ब्रह्मकन्येति लक्ष्मीर्वृत्तिः सरस्वती ।
दण्डनीतिर्जगद्धात्री दण्डो हि बहुविग्रहः ॥
अर्थानर्थौ सुखं दुःखं धर्माधर्मौ बलाबले ।
दौर्भाग्यं भागधेयं च पुण्यापुण्ये गुणागुणौ ॥
कामाकामावृतुर्मासः शर्वरी दिवसः क्षणः ।
अप्रमादः प्रमादश्च हर्षक्रोधौ शमो दमः ॥ २६
दैवं पुरुषकारश्च मोक्षामोक्षौ भयाभये ।
हिंसाहिंसे तपो यज्ञः संयमोऽथ विषाविषम्
अन्तश्चादिश्च मध्यं च कृत्यानां च प्रपञ्चनम्
मदः प्रमादो दर्पश्च दंभो धैर्यं नयानयौ ॥ २८
अशक्तिः शक्तिरित्येवं मानस्तंभौ व्ययाव्ययौ
विनयश्च विसर्गश्च कालाकालौ च भारत ॥
अनृतं ज्ञानिता सत्यं श्रद्धाश्रद्धे तथैव च ।
क्लीबता व्यवसायश्च लाभालाभौ जयाजयौ
तीक्ष्णता मृदुता मृत्युरागमानागमौ तथा ।
विरोधश्चाविरोधश्च कार्याकार्ये बलाबले ॥
असूया चानसूया च धर्माधर्मौ तथैव च ।
अपत्रपानपत्रपे ह्रीश्च संपद्विपत्पदम् ॥ ३२

तेजः कर्माणि पाण्डित्यं
वाक्शक्तिस्तत्त्वबुद्धिता ।
एवं दण्डस्य कौरव्य
लोकेऽस्मिन्बहुरूपता ॥ ३३

न स्याद्यदीह दण्डो वै प्रमथेयुः परस्परम् ।
भयाद्दण्डस्य नान्योऽन्यं घ्नन्ति चैव युधिष्ठिर

---

प्राणिनां वधसाधनानि यत्र सः । तथा हि । केचिन्मानभङ्गेन केचिद्धनहरणेन केचिदङ्गवैकल्येन केचित्प्राणव्यापादनेन च वध्यन्तेऽतस्तान्येव तद्दंष्ट्राः।चत्वारो भुजाः अर्थादानकर्तारो यस्य सः तथा हि। प्रजाभ्यः सामन्तेभ्यश्च करादानं । अनृतादर्थिनोऽर्थ्यमानद्रव्याद्द्विगुणधनादानम्। अनृतात्प्रत्यर्थिनस्तत्समं द्रव्यादानं। धनवतः कदर्याद्विप्रात्सर्वस्वादानं चेति । अथ तस्यैव व्यवहाररूपिणो रूपं वर्णयति 'अष्टपान्नैकनयनः शंकुकर्णोर्ध्वरोमवान्। जटी द्विजिह्व' इति आवेदनं भाषा संप्रतिपत्तिर्मिथ्योत्तरं कारणोत्तरं प्राङ्न्यायं प्रतिभूः क्रियाफलसिद्धिश्चेत्यष्टौ पादाः। एतैर्हि निमित्तैर्दण्डश्चरति नान्यथेत्येतेषां पादत्वम्। तत्र आवेदनं अर्थिना सभ्यान्प्रति गत्वा देवदत्तो मदीयं शतं सुवर्णानां अमुकस्मिन् देशे काले साक्षिणि च गृहीत्वा न ददातीति तद्धस्तेन लेखनं पुनरपि प्रत्यर्थिनमाहूय तत्समक्षं तथैव लेखनं भाषा । तत्र प्रत्यर्थिनाऽहमेतस्य धारयामीत्युक्ते न कस्यापि दण्ड इति तदिदं संप्रतिपत्तिरूपमुत्तरम्। न दण्डपादत्वेन गण्यते नाहमेतस्य धारयामीति मिथ्योत्तरं मया गृहीतमासीत्तत्पुनः परावृत्य दत्तमिति कारणोत्तरम्। अस्मिन्नर्थेऽनेन पूर्वमहमभियुक्तस्तत्र पराजितो मयेति प्राङ्न्यायोत्तरम् । त्रिविधेऽप्यस्मिन्नुत्तरे अर्थिप्रत्यर्थिभ्यां प्रतिभूर्देयः अहमेतस्मिन्पराजित इदं द्रव्यं दास्यामीति क्रिया, स्वमतसाधकानां साक्षिपत्रभोगशपथादीनां प्रदर्शनं ततोऽच्यवने तस्य जय इति अष्टभ्यः पादेभ्योऽनन्तरं अपराधी दण्ड्यत इत्येते दण्डस्य पादाः । यदाह—**याज्ञवल्क्यः** ।

' निन्हवे भावितो दद्यात् धनं राज्ञे च तत्समम् ।
मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाद्धनं वहेत्' इति ॥

नैकनयनः नैकानि बहूनि नयनस्थानीयानि राजामात्यपुरोहितपर्षदाख्यानि दर्शनसाधनानि यस्मिन्। शंकुकर्णः तीक्ष्णकर्णः अवश्यं श्राव्यः। ऊर्ध्वरोमवान् अत्यन्तं उत्फुल्लः शंकुकर्णश्चासौ ऊर्ध्वरोमवांश्चेति समासः ॥ १५ ॥ **जटीति** । जटी अनेकसंदेहजटिलः । **द्विजिह्वः** अर्थिप्रत्यर्थिनोर्वाक्यवैमत्यात् द्वे जिव्हे यस्य स तथा । एवं व्यवहाररूपिणो दण्डस्य रूपमुक्त्वा धर्माख्यदण्डरूपमाह—**ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छद इति** । ताम्रो वन्हिरेवाहवनीयादिरास्यं यस्य स तथा। मृगराजः कृष्णमृगस्तत्संबन्धि चर्म तनुच्छदः शरीराच्छादकं प्रावरणमस्य। एतेन दीक्षाप्रधानो यज्ञ उक्तः। एतच्च सर्वेषां दानोपवासहोमादीनामुपलक्षणम् ॥ १६ ॥ मुख्यं दंडस्य रूपमाह—**दण्डो हीति** ॥ २३ ॥ तत्पत्न्या रूपमाह—**तथेति** । दण्डेन सहिता नीतिर्दण्डनीतिः ॥ २४ ॥ किं परायण इत्यस्योत्तरमर्थानर्थादिविवेक एव तस्य परायणमित्याह—**अर्थानर्थावित्यादिना** । तस्माद्दण्डः परायणमित्यन्तेन ॥ २५ ॥

दण्डेन रक्ष्यमाणा हि राजन्नहरहः प्रजाः ।
राजानं वर्धयन्तीह तस्माद्दण्डः परायणम्
व्यवस्थापयति क्षिप्रमिमं लोकं नरेश्वर ।
सत्ये व्यवस्थितो धर्मो ब्राह्मणेष्ववतिष्ठते ३६
धर्मयुक्ता द्विजश्रेष्ठा देवयुक्ता भवन्ति च ।
बभूव यज्ञो देवेभ्यो यज्ञः प्रीणाति देवताः ३७
प्रीताश्च देवता नित्यमिन्द्रे परिवदन्त्यपि ।
अन्नं ददाति शक्रश्चाप्यनुगृह्णन्निमाः प्रजाः ३८
प्राणाश्च सर्वभूतानां नित्यमन्ने प्रतिष्ठिताः ।
तस्मात्प्रजाः प्रतिष्ठन्ते दण्डो जागर्ति तासु च
एवंप्रयोजनश्चैव दण्डः क्षात्रियतां गतः ।
रक्षन्प्रजाः स जागर्ति नित्यं स्ववहितोऽक्षरः
ईश्वरः पुरुषः प्राणः सत्त्वं चित्तं प्रजापतिः ।
भूतात्मा जीव इत्येवं नामभिः प्रोच्यतेऽष्टभिः
अददद्दण्डमेवास्मै धृतमैश्वर्यमेव च ।
बलेन यश्च संयुक्तः सदा पञ्चविधात्मकः ४२
कुलं बहुधनामात्याः प्रज्ञा प्रोक्ता बलानि तु ।
आहार्यमष्टकैर्द्रव्यैर्बलमन्यद्युधिष्ठिर ॥ ४३ ॥
हस्तिनोऽश्वा रथाः पत्तिर्नावो विष्टिस्तथैव च
दैशिकाश्चाविकाश्चैव तदष्टाङ्गं बलं स्मृतम्

अथवाऽङ्गस्य युक्तस्य रथिनो हस्तियायिनः ।
अश्वारोहाः पदाताश्च मन्त्रिणो रसदाश्च ये
भिक्षुकाः प्राड्विवाकाश्च
मौहूर्ता दैवचिन्तकाः ।
कोशो मित्राणि धान्यं च
सर्वोपकरणानि च ॥ ४६
सप्तप्रकृति चाष्टाङ्गं शरीरमिह यद्विदुः ।
राज्यस्य दण्डमेवाङ्गं दण्डः प्रभव एव च ४७
ईश्वरेण प्रयत्नेन कारणात्क्षत्रियस्य च ।
दण्डो दत्तः समानात्मा दण्डो हीदं सनातनम्
राज्ञां पूज्यतमो नान्यो यथा धर्मः प्रदर्शितः
ब्रह्मणा लोकरक्षार्थं स्वधर्मस्थापनाय च ४९
भर्तृप्रत्यय उत्पन्नो व्यवहारस्तथाऽपरः ।
तस्माद्यः सहितो दृष्टो भर्तृप्रत्ययलक्षणः ॥ ५०
व्यवहारस्तु वेदात्मा वेदप्रत्यय उच्यते ।
मौलश्च नरशार्दूल शास्त्रोक्तश्च तथा परः ५१
उक्तो यश्चापि दण्डोऽसौ भर्तृप्रत्ययलक्षणः ।
ज्ञेयो नः स नरेन्द्रस्थो दण्डः प्रत्यय एव च
दण्डप्रत्ययदृष्टोऽपि व्यवहारात्मकः स्मृतः ।
व्यवहारः स्मृतो यश्च स वेदविषयात्मकः ५३

**किमात्मकः कथंभूतः कथंमूर्तिरिति** प्रश्नत्रयस्योत्तरमाह-**व्यवस्थापयतीति** । लोकपालनात्मकः, सत्यपक्षपाती, ब्राह्मणमूर्तिस्वरूप इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ दण्डस्य ब्राह्मणमूर्तित्वं विवृण्वन् कथं जागर्ति इत्यस्योत्तरमाह-**धर्मयुक्ता इत्यादिना** । ब्राह्मणमूर्तिर्दण्डो यज्ञादिद्वाराऽन्नसृष्टिहेतुतया भूतानि पालयन् जागर्तीति श्लोकत्रयार्थः ॥ ३७ ॥ कश्च पूर्वापरमिदं जागर्ति प्रतिपालयन्नित्यस्योत्तरमाह-**एवंप्रयोजन इत्यादिना ज्ञेयो नः स नरेंद्रस्थो दण्डः प्रत्यय एव चेत्यन्तेन** ॥ ४० ॥ अददर्दीश्वर इति शेषः । अस्मै राज्ञे दण्डं दण्डनीतिम्। अत एवायं बलेन संयुक्तः पञ्चविध आत्मा यस्य स तथा । धर्मव्यवहारदण्डेश्वरजीवरूपेण पञ्चप्रकारात्मको राजा ॥ ४२ ॥ बहुधनसहिता अमात्याः बहुधनामात्याः । बलानि तु तेज ओजः सह आख्यानि देहेन्द्रियबुद्धिसामर्थ्यानि । अष्टकैरष्टसंख्याकैरनन्तरश्लोके वक्ष्यमाणैर्हस्त्यादिभिराहार्यमर्जनीयम्। अन्यद्बलं कोशवृद्धिरूपम् ॥४३॥ अङ्गस्य सैन्यस्य राज्यस्य दण्डमेवाङ्गमिति वाक्यशेषात् युक्तस्य सन्नद्धस्य रथादिकं शरीरं विदुरिति तृतीयेनान्वयः रसदाः वैद्याः ॥ ४५ ॥ प्राड्विवाकाः पृच्छतीति प्राट् स चासौ विवाकश्च विवदमानयोर्द्वयोः प्रवृत्तिनिमित्तवेत्ता ॥ ४६ ॥ दण्डः सैन्यं दण्डः प्रसिद्धः ॥ ४७ ॥ दण्डो दण्डाधीनम् ॥ ४८ ॥

प्रदर्शितो दण्डः स्थापनाय च प्रदर्शिता ब्राह्मणाः ॥४९॥ भर्तृप्रत्ययः भर्तारौ द्वौ विवदमानौ प्रत्ययः कारणं यस्य स तथा वादिप्रतिवादिभ्यां प्रवर्तितो व्यवहारः। तयोरन्यतरस्य प्रत्ययोऽभ्युपगमो लक्षणं यस्य स भर्तृप्रत्ययलक्षणः अन्यतरपराजयादित्यर्थः सहितो हितमिष्टं तेन युक्तः सहितः अन्यतरजयावह इत्यर्थः ॥ ५० ॥ वेदात्मा वेदोक्तो दोषः पारदार्यादिस्तन्निवृत्त्यर्थं पर्षदं प्रति गतश्चेत्तत्र प्रायश्चित्तात्मको वेदहेतुक एव दण्डः। मौलः कुलाचारप्रयुक्तो यो व्यवहारस्तत्रापि शास्त्रोक्तो दण्डः। यथा शूद्रस्य सुरापाने प्रायश्चित्तं नास्ति अथापि कस्मिंश्चिच्छूद्रकुले एवं नियमो योऽस्माकं मध्ये सुरां पिबति स ज्ञातिबाह्य इति तस्योल्लंघने शूद्रस्य सुरापानोक्तं प्रायश्चित्तं भवति । तथा च शास्त्रविदामनुक्रमणं धर्मज्ञानां समयः प्रमाणं वेदाश्चेति ॥ ५१ ॥ तेषां त्रयाणां दण्डानां मध्ये आद्यः क्षत्रियाधीन इत्याह-**उक्त इति** । नः अस्माभिः क्षत्रियैर्दण्डोऽपि ज्ञेयः तत्र प्रत्ययोऽपि ज्ञेयः ॥ ५२ ॥ अस्यापि वेदमूलत्वमाह-**दण्ड इति** । विविधोऽवहारः अन्योन्यं परपक्षक्षेपेण स्वपक्षसाधनं व्यवहारस्तदात्मको न्यायः स यद्यपि दण्डः प्रत्ययदृष्टस्तथापि स व्यवहारपदार्थो मन्वादिभिः स्मृतोऽस्ति । अतः सोऽपि वैदिकप्रणीतत्वाद्वेदविषयात्मको वेदार्थगोचरोऽस्तीत्यर्थः ॥ ५३ ॥

यश्च वेदप्रसूतात्मा स धर्मो गुणदर्शनः ।
धर्मप्रत्यय उद्दिष्टो यथाधर्मं कृतात्मभिः ५४
व्यवहारः प्रजागोप्ता ब्रह्मदिष्टो युधिष्ठिर ।
त्रीन्धारयति लोकान्वै सत्यात्मा भूतिवर्धनः
यश्च दण्डः स दृष्टो नो व्यवहारः सनातनः ।
व्यवहारश्च दृष्टो यः स वेद इति निश्चितम् ॥
यश्च वेदः स वै धर्मो यश्च धर्मः स सत्पथः
ब्रह्मा पितामहः पूर्वं बभूवाथ प्रजापतिः ५७
लोकानां स हि सर्वेषां ससुरासुररक्षसाम् ।
समनुष्योरगवतां कर्ता चैव स भूतकृत् ५८
ततोऽन्यो व्यवहारोऽयं भर्तृप्रत्ययलक्षणः ।
तस्मादिदमथोवाच व्यवहारनिदर्शनम् ५९
माता पिता च भ्राता च भार्या चैव पुरोहितः
नादण्ड्यो विद्यते राज्ञो यः स्वधर्मेण तिष्ठति

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि दण्डस्वरूपाधिकथने एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

## १२२

भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अङ्गेषु राजा द्युतिमान्वसुहोम इति श्रुतः ॥ १
स राजा धर्मविन्नित्यं सह पत्न्या महातपाः
मुञ्जपृष्ठं जगामाथ पितृदेवर्षिपूजितम् ॥ २
तत्र शृङ्गे हिमवतो मेरौ कनकपर्वते ।
यत्र मुञ्जावटे रामो जटाहरणमादिशत् ॥ ३
तदाप्रभृति राजेन्द्र ऋषिभिः संशितव्रतैः ।
मुञ्जपृष्ठ इति प्रोक्तः स देशो रुद्रसेवितः ॥ ४
स तत्र बहुभिर्युक्तस्तदा श्रुतिमयैर्गुणैः ।
ब्राह्मणानामनुमतो देवर्षिसदृशोऽभवत् ॥ ५
तं कदाचिददीनात्मा सखा शक्रस्य मानिता
अभ्यगच्छन्महीपालो मान्धाता शत्रुकर्शनः
सोऽपसृत्य तु मान्धाता वसुहोमं नराधिपम्
दृष्ट्वा प्रकृष्टतपसं विनतोऽग्रेऽभ्यतिष्ठत ॥ ७
वसुहोमोऽपि राज्ञो वै पाद्यमर्घ्यं न्यवेदयत् ।
सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य पप्रच्छ कुशलाव्यये ८
सद्भिराचरितं पूर्वं यथावदनुयायिनम् ।
अपृच्छद्वसुहोमस्तं राजन्किं करवाणि ते ९
सोऽब्रवीत्परमप्रीतो मान्धाता राजसत्तमम्
वसुहोमं महाप्राज्ञमासीनं कुरुनन्दन ॥ १०
मान्धातोवाच ।
बृहस्पतेर्मतं राजन्नधीतं सकलं त्वया ।
तथैवौशनसं शास्त्रं विज्ञातं ते नरोत्तम ११
तदहं ज्ञातुमिच्छामि दण्ड उत्पद्यते कथम् ।
किं चास्य पूर्वं जागर्ति किं वा परममुच्यते
कथं क्षत्रियसंस्थश्च दण्डः संप्रत्यवस्थितः ।
ब्रूहि मे सुमहाप्राज्ञ ददाम्याचार्यवेतनम् ॥ १३
वसुहोम उवाच ।
शृणु राजन्यथा दण्डः संभूतो लोकसंग्रहः ।
प्रजाविनयरक्षार्थं धर्मस्यात्मा सनातनः १४
ब्रह्मा यियक्षुर्भगवान्सर्वलोकपितामहः ।
ऋत्विजं नात्मनस्तुल्यं ददर्शेति हि नः श्रुतं
स गर्भं शिरसा देवो बहुवर्षाण्यधारयत् ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु स गर्भः क्षुवतोऽपतत् ॥ १६

---

इतरौ द्वौ व्यवहारौ वेदमूलत्वाद्धर्मरूपावित्याह-यश्चेति द्वाभ्याम् । यथाधर्मं उद्दिष्टः मम पारदार्यजेनाधर्मेण धर्मलोपो मा भूदिति पश्चात्तापवति उद्दिष्टः प्रायश्चित्तरूपो दण्डो धर्म एवेत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रजागोप्ता प्रजाकृतस्य नियमस्य रक्षिता शूद्रस्यापि सुरापानप्रायश्चित्तादिरूपः सोऽपि धर्म एवेत्यर्थः ॥ ५५ ॥ दण्डव्यवहारधर्मवेदसत्पथप्रजापतीनामैकात्म्यमाह द्वाभ्याम्-य इति ॥ ५६ ॥ यतः प्रजापतिर्भूतकृत् ततो हेतोः अयमस्मदीयो भर्तृप्रत्ययलक्षणो व्यवहारः प्रवृत्तस्तस्मादस्मान्विषय स इदं निदर्शनं वाक्यं उवाच ॥ ५९ ॥ तदेव वाक्यं पठति— मातेति । यो राजा स्वधर्मेण तिष्ठति तस्य राज्ञ इति संबंधः ॥ ६० ॥ इति शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

१२२

अत्रेति । अत्र दण्डोत्पत्तौ विषये ॥१॥ आचार्यवेतनं गुरुदक्षिणाम् ॥ १३ ॥ यियक्षुः यष्टुमिच्छुः॥१५॥ क्षुवतः क्षुतवतः ॥१६॥

स क्षुपो नाम संभूतः प्रजापतिररिन्दम ।
ऋत्विगासीन्महाराज यज्ञे तस्य महात्मनः
तस्मिन्प्रवृत्ते सत्रे तु ब्रह्मणः पार्थिवर्षभ ।
दृष्टरूपप्रधानत्वाद्दण्डः सोऽन्तर्हितोऽभवत् ॥
तस्मिन्नन्तर्हिते चापि प्रजानां संकरोऽभवत्
नैव कार्यं न वाकार्यं भोज्याभोज्यं न विद्यते
पेयापेये कुतः सिद्धिर्हिंसन्ति च परस्परम् ॥
गम्यागम्यं तदा नासीत्स्वं परस्वं च वै समम्
परस्परं विलुंपन्ति सारमेया यथामिषम् ।
अबलान्बलिनो घ्नन्ति निर्मर्यादमवर्तत ॥२१
ततः पितामहो विष्णुं भगवन्तं सनातनम्
संपूज्य वरदं देवं महादेवमथाब्रवीत् ॥ २२
अत्र त्वमनुकम्पां वै कर्तुमर्हसि केशव ।
संकरो न भवेदत्र यथा तद्वै विधीयताम् २३
ततः स भगवान्ध्यात्वा चिरं शूलवरायुधः
आत्मानमात्मना दण्डं ससृजे देवसत्तमः ॥
तस्माच्च धर्मचरणान्नीतिर्देवी सरस्वती ।
ससृजे दण्डनीतिं सा त्रिषु लोकेषु विश्रुता
भूयः स भगवान्ध्यात्वा चिरं शूलवरायुधः
तस्य तस्य निकायस्य चकारैकैकमीश्वरम्
देवानामीश्वरं चक्रे देवं दशशतेक्षणम् ।
यमं वैवस्वतं चापि पितॄणामकरोत्प्रभुम् २७
धनानां राक्षसानां च कुबेरमपि चेश्वरम् ।
पर्वतानां पतिं मेरुं सरितां च महोदधिम् ॥
अपां राज्ये सुराणां च विदधे वरुणं प्रभुम् ।
मृत्युं प्राणेश्वरमथो तेजसां च हुताशनम् २९
रुद्राणामपि चेशानं गोप्तारं विदधे प्रभुम् ।
महात्मानं महादेवं विशालाक्षं सनातनम् ॥
वासिष्ठमीशं विप्राणां वसूनां जातवेदसम् ।
तेजसां भास्करं चक्रे नक्षत्राणां निशाकरम्
वीरुधामंशुमन्तं च भूतानां च प्रभुं वरम् ।
कुमारं द्वादशभुजं स्कन्दं राजानमादिशत् ॥
कालं सर्वेशमकरोत्संहारविनयात्मकम् ।
मृत्योश्चतुर्विभागस्य दुःखस्य च सुखस्य च
ईश्वरः सर्वदेवस्तु राजराजो नराधिपः ।
सर्वेषामेव रुद्राणां शूलपाणिरिति श्रुतिः ३४

तमेनं ब्रह्मणः पुत्रमनुजातं क्षुपं ददौ ।
प्रजानामधिपं श्रेष्ठं सर्वधर्मभृतामपि ॥ ३५
महादेवस्ततस्तस्मिन्वृत्ते यज्ञे यथाविधि ।
दण्डं धर्मस्य गोप्तारं विष्णवे सत्कृतं ददौ ॥
विष्णुरङ्गिरसे प्रादादङ्गिरा मुनिसत्तमः ।
प्रादादिन्द्रमरीचिभ्यां मरीचिर्भृगवे ददौ ॥
भृगुर्ददावृषिभ्यस्तु दण्डं धर्मसमाहितम् ।
ऋषयो लोकपालेभ्यो लोकपालाः क्षुपाय च
क्षुपस्तु मनवे प्रादादादित्यतनयाय च ।
पुत्रेभ्यः श्राद्धदेवस्तु सूक्ष्मधर्मार्थकारणात् ३९
विभज्य दण्डः कर्तव्यो धर्मेण न यदृच्छया ।
दुष्टानां निग्रहो दण्डो हिरण्यं बाह्यतः क्रिया
व्यंगत्वं च शरीरस्य वधो नाल्पस्य कारणात्
शरीरपीडास्तास्ताश्च देहत्यागो विवासनम्
तं ददौ सूर्यपुत्रस्तु मनुर्वै रक्षणार्थकम् ।
आनुपूर्व्याच्च दण्डोऽयं प्रजा जागर्ति पालयन्
इन्द्रो जागर्ति भगवानिन्द्रादग्निर्विभावसुः ।
अग्नेर्जागर्ति वरुणो वरुणाच्च प्रजापतिः ॥४३
प्रजापतेस्ततो धर्मो जागर्ति विनयात्मकः ।
धर्माच्च ब्रह्मणः पुत्रो व्यवसायः सनातनः ४४
व्यवसायात्ततस्तेजो जागर्ति परिपालयत् ।
ओषध्यस्तेजसस्तस्मादोषधीभ्यश्च पर्वताः ॥
पर्वतेभ्यश्च जागर्ति रसो रसगुणात्तथा ।
जागर्ति निर्ऋतिर्देवी ज्योतींषि निर्ऋतेरपि ॥
वेदाः प्रतिष्ठा ज्योतिर्भ्यस्ततो हयशिराः प्रभुः
ब्रह्मा पितामहस्तस्माज्जागर्ति प्रभुरव्ययः ४७
पितामहान्महादेवो जागर्ति भगवाञ्शिवः ।
विश्वेदेवाः शिवाच्चापि विश्वेभ्यश्च तथर्षयः
ऋषिभ्यो भगवान्सोमः सोमाद्देवाः सनातनाः
देवेभ्यो ब्राह्मणा लोके जाग्रतीत्युपधारय ॥
ब्राह्मणेभ्यश्च राजन्या लोकान् रक्षन्ति धर्मतः
स्थावरं जङ्गमं चैव क्षत्रियेभ्यः सनातनम् ५०
प्रजा जागर्ति लोकेऽस्मिन्
दण्डो जागर्ति तासु च ।
सर्वं संक्षिपते दण्डः
पितामहसमप्रभः ॥ ५१

दृष्टरूपप्रधानत्वात् दृष्टं रूपं दीक्षापरिग्रहः प्रजानियन्ता दीक्षां प्रविष्ट इति नियमनरूपो दण्डोऽन्तर्हितोऽभवदित्यर्थः ॥१८॥ विनयो विवृद्धिः चत्वारो विभागा यस्य तस्य शत्रं शत्रुर्यमः कर्म च रोगोऽपथ्याशनप्रयोजको रोगो यमः कर्म चेति वा ॥ ३३ ॥ विभज्य न्यायं न्यायाभासं च विविच्य दुष्टनिग्रह एव दण्डस्य मुख्यं प्रयोजनम् हिरण्यादिग्रहणं तु लोकानां बिभीषिकार्थं न तु कोशवृद्ध्यर्थमित्यर्थः ॥ ४० ॥ देहत्यागः प्रपातादौ विवासनं स्वदेशाद् दूरीकरणम् ॥ ४१ ॥

जागर्ति कालः पूर्वे च मध्ये चान्ते च भारत
ईश्वरः सर्वलोकस्य महादेवः प्रजापतिः ५२
देवदेवः शिवः सर्वो जागर्ति सततं प्रभुः।
कपर्दी शंकरो रुद्रः शिवः स्थाणुरुमापतिः॥
इत्येष दण्डो विख्यात आदौ मध्ये तथावरे
भूमिपालो यथान्यायं वर्तेतानेन धर्मवित्॥

भीष्म उवाच।

इतीदं वसुहोमस्य शृणुयाद्यो मतं नरः।
श्रुत्वा सम्यक्प्रवर्तेत सर्वान्कामानवाप्नुयात्
इति ते सर्वमाख्यातं यो दण्डो मनुजर्षभ।
नियन्ता सर्वलोकस्य धर्माक्रान्तस्य भारत

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि दण्डोत्पत्त्युपाख्याने द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १२२॥

## १२३

युधिष्ठिर उवाच।

तात धर्मार्थकामानां श्रोतुमिच्छामि निश्चयं
लोकयात्रा हि कार्त्स्न्येन त्रिष्वेतेषु प्रतिष्ठिता
धर्मार्थकामाः किंमूलास्त्रयाणां प्रभवश्च कः।
अन्योन्यं चानुषज्जन्ते वर्तन्ते च पृथक्पृथक् २

भीष्म उवाच।

यदा ते स्युः सुमनसो लोके धर्मार्थनिश्चये।
कालप्रभवसंस्थासु सज्जन्ते च त्रयस्तदा ३
धर्ममूलः सदैवार्थः कामोऽर्थफलमुच्यते।
संकल्पमूलास्ते सर्वे संकल्पो विषयात्मकः ४
विषयाश्चैव कार्त्स्न्येन सर्व आहारसिद्धये।
मूलमेतत्त्रिवर्गस्य निवृत्तिर्मोक्ष उच्यते॥ ५
धर्माच्छरीरसंगुप्तिर्धर्मार्थं चार्थ उच्यते।
कामो रतिफलश्चात्र सर्वे ते च रजस्वलाः
सन्निकृष्टांश्चरेदेतान्न चैतान्मनसा त्यजेत्।
विमुक्तस्तपसा सर्वान्धर्मादीन्कामनैष्ठिकान्
श्रेष्ठे बुद्धिस्त्रिवर्गस्य यदयं प्राप्नुयान्नरः।
कर्मणा बुद्धिपूर्वेण भवत्यर्थो न वा पुनः॥ ८

इति श्रीमहा० शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नै० भारतभावदीपे द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १२२॥

१२३

**तातेति**॥ १॥ किंमूलाः किमुद्दिश्य क्रियन्त इत्यर्थः प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः किमेषामुत्पत्तिस्थानं तेषां साहित्यं कथं पृथक् पृथक्त्वं च कथमिति चत्वारः प्रश्नाः॥ २॥ सूचीकटाहन्यायेन साहित्यमाह-**यदेति**। सुमनसः शोभनचित्ताः पुमांसो यदा स्युस्तदा लोके भूमौ धर्मपूर्वके अर्थनिश्चये अहं गर्भाधानोक्तविधिना ऋतौ भार्यां गत्वा सुपुत्रं लप्स्याम्येवेत्येवंरूपे प्रवृत्ते सति। ते धर्मार्थकामास्त्रयोऽपि कालो ऋतुवेलाप्रभवो जायासंस्थासम्यक्कर्मनिष्पत्तिस्तासु सतीषु सज्जन्ते युगपदुत्पद्यन्ते। योनिसंस्काररूपो धर्मः पुत्ररूपोऽर्थः स्त्रीसंगरूपः कामश्च भवतीत्यर्थः॥ ३॥ आद्यस्य प्रश्नद्वयस्योत्तरमाह-**धर्मेति**। दिव्यदेवतादिशरीरप्राप्तिमर्थांश्च स्त्र्यादीनुद्दिश्य धर्मः क्रियतेऽतो दैवेन सहितोऽर्थो धर्ममूलः। अर्थस्य भोगार्थत्वं प्रसिद्धमिति काममूलोऽर्थ इति नोक्तम् कामोऽर्थफलं कामस्य मूलं इन्द्रियप्रीतिरित्यर्थः। संकल्पमूलाः संकल्पप्रभावास्ते सर्वेऽपीति द्वितीयस्योत्तरम्। एतदेवोपपादयति-**संकल्प इति**। रूपादिविषयः संकल्पो रूपाद्याश्च भोगार्था इति सर्वेऽप्येते संकल्पमूलाः। मोक्षस्तु तद्विलक्षणो निःसंकल्परूप इत्यर्थः॥ ४॥ किमेवं त्रिवर्गः सर्वेणापि न सेव्य इत्याशंक्य रजस्वलो रजःप्रधानः स न सेव्यः सत्त्वप्रधानस्तु सेव्य एवेत्याह-**धर्मादिति**। आरोग्यार्थं धर्मः काम्यधर्मार्थं इन्द्रियप्रीत्यर्थं काम इत्येते हेया इत्यर्थः॥ ६॥ स्वर्गादिकं बाह्यं फलं विप्रकृष्टं तदर्था एते विप्रकृष्टाः आत्मज्ञानरूपं फलं तु सन्निकृष्टम् तदर्था एते सन्निकृष्टास्तांश्चरेत् सेवेत। धर्मश्चित्तशुद्ध्यर्थोऽर्थो निष्कामकर्मार्थः कामो देहधारणमात्रार्थ इत्येवमेते सेव्या इत्यर्थः। धर्मादीन्कामनैष्ठिकान्कामांतान्धर्मार्थकामान्सर्वानपि मनसाऽपि न त्यजेत्किमुत स्वरूपेण न त्यजेदित्यर्थः। कथं तर्ह्येतांस्त्यजेदित्याह-**तपसा विमुक्त इति**। विचारेणैव तेभ्यो विमुक्तो भवेत् संगफलत्यागपूर्वकं धर्मादीननुतिष्ठेदिति भावः॥ ७॥ ततश्च किमत आह-**श्रेष्ठ इत्यर्धेन**। त्रिवर्गस्य बुद्धिर्निष्ठा श्रेष्ठे मोक्ष एवास्ति यत् यदि अयं कर्ता तं श्रेष्ठं प्राप्नुयात् इतस्तु निष्कामस्य तस्य दौर्लभ्यमेवेति भावः। काम्यं धर्मं निन्दति-**कर्मणेति**। अस्मात्कर्मण इदं फलं प्राप्स्ये इति बुद्धिपूर्वं कृतेनापि कर्मणाऽर्थः कदाचिद्भवति कदाचिन्नेति व्यभिचारः॥ ८॥

अर्थार्थमन्यद्भवति विपरीतमथापरम् ।
अनर्थार्थमवाप्यार्थमन्यत्राद्योपकारकम् ।
बुद्ध्या बुद्धिरिहार्थेन तदज्ञाननिकृष्टया ॥ ९
अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम् ।
संप्रमोदमलः कामो भूयः स्वगुणवर्जितः १०
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कामन्दकस्य संवादमाङ्गरिष्ठस्य चोभयोः ११
कामन्दमृषिमासीनमभिवाद्य नराधिपः ।
आङ्गरिष्ठोऽथ पप्रच्छ कृत्वा समयपर्ययम् १२
यः पापं कुरुते राजा काममोहबलात्कृतः ।
प्रत्यासन्नस्य तस्यर्षे किं स्यात्पापप्रणाशनम्
अधर्मं धर्म इति च योऽज्ञानादाचरेन्नरः ।
तं चापि प्रथितं लोके कथं राजा निवर्तयेत् ।
कामन्दक उवाच ।
यो धर्मार्थौ परित्यज्य काममेवानुवर्तते ।
स धर्मार्थपरित्यागात्प्रज्ञानाशमिहार्छति १५
प्रज्ञानाशात्मको मोहस्तथा धर्मार्थनाशकः ।
तस्मान्नास्तिकता चैव दुराचारश्च जायते ॥
दुराचारान्यदा राजा प्रदुष्टान्न नियच्छति ।
तस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद्वेश्मगतादिव १७
तं प्रजा नानुवर्तन्ते ब्राह्मणा न च साधवः ।
ततः संशयमाप्नोति तथा वध्यत्वमेति च १८
अपध्वस्तस्त्ववमतो दुःखं जीवितमृच्छति ।
जीवेच्च यदपध्वस्तस्तच्छुद्धं मरणं भवेत् ॥ १९
अत्रैतदाहुराचार्याः पापस्य परिगर्हणम् ।
सेवितव्या त्रयी विद्या सत्कारो ब्राह्मणेषु च
महामना भवेद्धर्मे विवहेच्च महाकुले ।
ब्राह्मणांश्चापि सेवेत क्षमायुक्तान्मनस्विनः २१
जपेदुदकशीलः स्यात्ससततं सुखमास्थितः ।
धर्मान्वितान्संप्रविशेद्बहिः कृत्वेह दुष्कृतीन्
प्रसादयेन्मधुरया वाचा वाऽप्यथ कर्मणा ।
तवास्मीति वदेन्नित्यं परेषां कीर्तयन्गुणान् ॥
अपापो ह्येवमाचारः क्षिप्रं बहुमतो भवेत् ।
पापान्यपि हि कृच्छ्राणि शमयेन्नात्र संशयः
गुरवो हि परं धर्मं यं ब्रूयुस्तं तथा कुरु ।
गुरूणां हि प्रसादाद्वै श्रेयः परमवाप्स्यसि २५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि कामन्दाङ्गरिष्ठसंवादे त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

---

अर्थार्थे धर्मादपि अन्यत् सेवाकृष्यादिकं भवतीति न धर्मैकलभ्योऽर्थ इत्यर्थार्थं धर्मो न कार्यः । प्रत्युत विपरीतमपि अपरं मतमस्ति । केचिद्धठेनैवार्थो भवति स्वभावेन वा दैवेन वेति मन्यन्त इति तदर्थमलं धर्मेणेत्यर्थः । एवं धर्मस्यार्थहेतुत्वं दूरीकृत्यार्थस्यापि धर्महेतुत्वं दूषयति अर्थमवाप्यापि जगदनर्थार्थमपायार्थं भवति। तथाहि धनमत्तः सर्वं पापं करोतीति नार्थेन धर्मोत्पत्तिर्नित्यास्ति। अर्थं विनाऽपि धर्मोत्पत्तिरस्तीत्याहा-न्यत्राद्योपकारकं स्वार्थे त्रल्। अन्यत्रान्यदेवोपवासव्रतादिकं आद्यस्य धर्मस्योपकारकं वर्धकं भवति । इहार्थे अस्मिन्नर्थे धर्मादर्थोऽर्थतो धर्म इति विषये अज्ञाननिकृष्टया बुद्ध्या उपलक्षितः अबुद्धिर्विमूढः तत् उक्तरूपं धर्मार्थयोः फलं न प्राप्नुयात्। उभयत्रापि व्यभिचारस्यान्यथासिद्धेः प्रदर्शितत्वात्तस्माच्छ्रेष्ठमेव तयोः फलमव्यभिचारीति ज्ञेयम् ॥ ९ ॥ धर्मादीनां रजस्वलत्वमुक्तं तदेव रजो दर्शयति-अपेति । अपध्यानं फलाभिसन्धिः । निगूहनं दानभोगयोरप्रतिपादनम् । संप्रमोदः प्रीतिविशेषः स एव त्रिवर्गः स्वगुणवर्जितः सुतरां अगुणो दुर्गुणोऽपध्यानादिस्तेन वर्जितः सन् भूयः बहुतरं फलं चित्तशुद्धिद्वारा ब्रह्मानन्दरूपं प्रयच्छतीति शेषः ॥ १० ॥ एवं पूर्वोक्तस्य प्रश्नत्रयस्योत्तरमुक्त्वा वर्तते च पृथक्पृथगिति चतुर्थप्रश्नस्योत्तरमितिहासमुखेनाह—अत्रापीति ॥ ११ ॥ समयपर्ययं मर्यादाभङ्गम् ॥ १२ ॥ प्रत्यासन्नस्य पश्चात्तप्तस्य ॥ १३ ॥ अत्र आपस्तम्बाः प्रनिदर्शनात् तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते च्छाया गन्ध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्त इत्येवंरूपाद्धर्मोऽर्थकामाभ्यामविनाभूतोऽर्थश्च कामेनाविनाभूतः सर्वत्रास्ति परिशेषात्काम एव धर्मार्थौ आतिक्रम्यास्ति तत्परं निन्दति-य इति ॥ १५ ॥ एवं निंदितस्य कर्तव्यमाह--अत्रेति ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

# १२४

युधिष्ठिर उवाच ।

इमे जना नरश्रेष्ठ प्रशंसन्ति सदा भुवि ।
धर्मस्य शीलमेवादौ ततो मे संशयो महान्
यदि तच्छक्यमस्माभिर्ज्ञातुं धर्मभृतां वर ।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं यथैतदुपलभ्यते ॥ २
कथं तत्प्राप्यते शीलं श्रोतुमिच्छामि भारत
किंलक्षणं च तत्प्रोक्तं ब्रूहि मे वदतां वर ३

भीष्म उवाच ।

पुरा दुर्योधनेनेह धृतराष्ट्राय मानद ।
आख्यातं तप्यमानेन श्रियं दृष्ट्वा तथागताम्
इंद्रप्रस्थे महाराज तव सभ्रातृकस्य ह ।
सभायां चाह वचनं तत्सर्वं शृणु भारत ॥ ५
भवतस्तां सभां दृष्ट्वा समृद्धिं चाप्यनुत्तमाम् ।
दुर्योधनस्तदाऽऽसीनः सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ॥
श्रुत्वा हि धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत्कर्णसहितं दुर्योधनमिदं वचः ॥ ७

धृतराष्ट्र उवाच ।

किमर्थं तप्यसे पुत्र श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
श्रुत्वा त्वामनुनेष्यामि यदि सम्यग्भविष्यति
त्वया च महदैश्वर्यं प्राप्तं परपुरञ्जय ।
किंकरा भ्रातरः सर्वे मित्रसंबन्धिनः सदा ९
आच्छादयसि प्रावारानश्नासि पिशितौदनं
आजानेया वहन्त्यश्वाः केनासि हरिणः कृशः

दुर्योधन उवाच ।

दश तानि सहस्राणि स्नातकानां महात्मनां
भुञ्जते रुक्मपात्रीभिर्युधिष्ठिरनिवेशने ॥ ११
दृष्ट्वा च तां सभां दिव्यां
दिव्यपुष्पफलान्विताम् ।
अश्वांस्तित्तिरकल्माषान्
वस्त्राणि विविधानि च ॥ १२
दृष्ट्वा तां पाण्डवेयानामृद्धिं वैश्रवणीं शुभाम्
अमित्राणां सुमहतीमनुशोचामि भारत ॥ १३

धृतराष्ट्र उवाच ।

यदीच्छसि श्रियं तात यादृशी सा युधिष्ठिरे
विशिष्टां वा नरव्याघ्र शीलवान्भव पुत्रक ॥
शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः
न हि किञ्चिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत्
एकरात्रेण मान्धाता त्र्यहेण जनमेजयः ।
सप्तरात्रेण नाभागः पृथिवीं प्रतिपेदिरे ॥ १६
एते हि पार्थिवाः सर्वे
शीलवन्तो दयान्विताः ।
अतस्तेषां गुणक्रीता
वसुधा स्वयमागता ॥ १७

दुर्योधन उवाच ।

कथं तत्प्राप्यते शीलं श्रोतुमिच्छामि भारत
येन शीलेन तैः प्राप्ता क्षिप्रमेव वसुन्धरा १८

धृतराष्ट्र उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदेन पुरा प्रोक्तं शीलमाश्रित्य भारत १९
प्रल्हादेन हृतं राज्यं महेन्द्रस्य महात्मनः ।
शीलमाश्रित्य दैत्येन त्रैलोक्यं च वशे कृतम्
ततो बृहस्पतिं शक्रः प्राञ्जलिः समुपस्थितः ।
तमुवाच महाप्राज्ञः श्रेय इच्छामि वेदितुम्
ततो बृहस्पतिस्तस्मै ज्ञानं नैःश्रेयसं परम् ।
कथयामास भगवान्देवेन्द्राय कुरूद्वह ॥ २२
एतावच्छ्रेय इत्येव बृहस्पतिरभाषत ।
इन्द्रस्तु भूयः पप्रच्छ को विशेषो भवेदिति ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

विशेषोऽस्ति महांस्तात भार्गवस्य महात्मनः
अत्रागमय भद्रं ते भूय एव सुरर्षभ ॥ २४
आत्मनस्तु ततः श्रेयो भार्गवात्सुमहातपाः ।
ज्ञानमागमयत्प्रीत्या पुनः स परमद्युतिः ॥ २५
तेनापि समनुज्ञातो भार्गवेण महात्मना ।
श्रेयोऽस्तीति पुनर्भूयः शुक्रमाह शतक्रतुः २६
भार्गवस्त्वाह सर्वज्ञः प्रल्हादस्य महात्मनः ।
ज्ञानमस्ति विशेषेणेत्युक्तो हृष्टश्च सोऽभवत्
स ततो ब्राह्मणो भूत्वा प्रल्हादं पाकशासनः
गत्वा प्रोवाच मेधावी श्रेय इच्छामि वेदितुं
प्रल्हादस्त्वब्रवीद्विप्रं क्षणो नास्ति द्विजर्षभ ।
त्रैलोक्यराज्यसक्तस्य ततो नोपदिशामि ते ॥

---

१२४

इमे जना इति शीलाध्यायः धर्मस्य कारणमिति शेषः ॥ १ ॥ गुणाक्रीडेति पाठे गुणारामा ॥ १७ ॥
नैःश्रेयसं मोक्षोपयोगि ॥ २२ ॥ को विशेषः नैःश्रेयसादपि किं श्रेय इत्यर्थः ॥ २३ ॥

ब्राह्मणस्त्वब्रवीद्राजन्यस्मिन्काले क्षणो भवेत्
तदोपादेष्टुमिच्छामि यदाचर्यमनुत्तमम् ॥ ३०
ततः प्रीतोऽभवद्राजा प्रह्लादो ब्रह्मवादिनः।
तथेत्युक्त्वा शुभे काले ज्ञानतत्त्वं ददौ तदा
ब्राह्मणोऽपि यथान्यायं गुरुवृत्तिमनुत्तमाम्।
चकार सर्वभावेन यदस्य मनसेप्सितम् ॥ ३२
पृष्टश्च तेन बहुशः प्राप्तं कथमनुत्तमम्।
त्रैलोक्यराज्यं धर्मज्ञ कारणं तद्ब्रवीहि मे।
प्रह्लादोऽपि महाराज ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत्

प्रह्लाद उवाच।

नासूयामि द्विजान्विप्र
राजाऽस्मीति कदाचन।
काव्यानि वदतां तेषां
संयच्छामि वहामि च ॥ ३४
ते विस्रब्धाः प्रभाषन्ते संयच्छन्ति च मां सदा
ते मां काव्यपथे युक्तं शुश्रूषुमनसूयकम् ॥ ३५
धर्मात्मानं जितक्रोधं
नियतं संयतेन्द्रियम्।
समासिञ्चन्ति शास्तारः
क्षौद्रं मध्विव मक्षिकाः ॥ ३६
सोऽहं वागग्रविद्यानां रसानामवलेहिता।
स्वजात्यानधितिष्ठामि नक्षत्राणीव चन्द्रमाः
एतत्पृथिव्याममृतमेतच्चक्षुरनुत्तमम्।
यद्ब्राह्मणमुखे काव्यमेतच्छ्रुत्वा प्रवर्तते ॥ ३८
एतावच्छ्रेय इत्याह प्रह्लादो ब्रह्मवादिनम्।
शुश्रूषितस्तेन तदा दैत्येन्द्रो वाक्यमब्रवीत् ॥
यथावद्गुरुवृत्त्या ते प्रीतोऽस्मि द्विजसत्तम।
वरं वृणीष्व भद्रं ते प्रदातास्मि न संशयः ॥
कृतमित्येव दैत्येन्द्रमुवाच स च वै द्विजः।
प्रह्लादस्त्वब्रवीत्प्रीतो गृह्यतां वर इत्युत ४१

ब्राह्मण उवाच।

यदि राजन्प्रसन्नस्त्वं मम चेदिच्छसि प्रियम्
भवतः शीलमिच्छामि प्राप्तुमेष वरो मम ४२
ततः प्रीतस्तु दैत्येन्द्रो भयमस्याभवन्महत्।
वरे प्रदिष्टे विप्रेण नाल्पतेजाऽयमित्युत ॥४३
एवमस्त्विति स प्राह प्रह्लादो विस्मितस्तदा
उपाकृत्य तु विप्राय वरं दुःखान्वितोऽभवत्
दत्ते वरे गते विप्रे चिन्ताऽऽसीन्महती तदा
प्रह्लादस्य महाराज निश्चयं न च जग्मिवान्
तस्य चिन्तयतस्तावच्छायाभूतं महाद्युति
तेजोविग्रहवत्तात शरीरमजहात्तदा ॥ ४६
तमपृच्छन्महाकायं
प्रह्लादः को भवानिति।
प्रत्याहतं तु शीलोऽस्मि
त्यक्तो गच्छाम्यहं त्वया ॥ ४७
तस्मिन्द्विजोत्तमे राजन्
वत्स्याम्यहमनिन्दिते।
योऽसौ शिष्यत्वमागम्य
त्वयि नित्यं समाहितः ॥ ४८
इत्युक्त्वान्तर्हितं तद्वै शक्रं चान्वाविशत्प्रभो
तस्मिंस्तेजसि याते तु तादृग्रूपस्ततोऽपरः
शरीरान्निःसृतस्तस्य
को भवानिति चाब्रवीत्।
धर्मं प्रह्लाद मां विद्धि
यत्रासौ द्विजसत्तमः ॥ ५०
तत्र यास्यामि दैत्येन्द्र यतः शीलं ततो ह्यहम्
ततोऽपरो महाराज प्रज्वलन्निव तेजसा५१
शरीरान्निःसृतस्तस्य प्रह्लादस्य महात्मनः।
को भवानिति पृष्टश्च तमाह स महाद्युतिः ॥
सत्यं विद्ध्यसुरेन्द्राद्य प्रयास्ये धर्ममन्वहम्।
यस्मिन्ननुगते सत्ये महान्वै पुरुषोऽपरः ५३
निश्चक्राम ततस्तस्मात्पृष्टश्चाह महाबलः।
वृत्तं प्रह्लाद मां विद्धि यतः सत्यं ततो ह्यहम्
तस्मिन्गते महाशब्दः शरीरात्तस्य निर्ययौ।
पृष्टश्चाह बलं विद्धि यतो वृत्तमहं ततः ॥ ५५
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र यतो वृत्तं नराधिप।
ततः प्रभामयी देवी शरीरात्तस्य निर्ययौ।
तामपृच्छत्स दैत्येन्द्रः सा श्रीरित्येनमब्रवीत्
उषिताऽस्मि स्वयं वीर त्वयि सत्यपराक्रम
त्वया त्यक्ता गमिष्यामि बलं ह्यनुगता ह्यहम्
ततो भयं प्रादुरासीत्प्रह्लादस्य महात्मनः।
अपृच्छत्स ततो भूयः क्व यासि कमलालये

---

आचर्यं आचरणीयम् ॥ ३० ॥ काव्यानि शुक्रप्रोक्तानि नीतिशास्त्राणि सर्वज्ञत्वाभिमानेन नासूयामि ॥ ३४ ॥ ते मुनयः ते त्वां संयच्छामि नियमयामीति मां प्रभाषन्ते ॥ ३५ ॥ क्षुद्राभिर्मधुमक्षिकाभिर्निर्मितं क्षौद्रं मधु, तत्र मक्षिका मध्विव मां ते शास्त्रेण सिञ्चन्ति ॥ ३६ ॥ स इति। वागग्रविद्यानां वागग्रे एव न तु पुस्तके विद्या येषां तेषाम् ॥ ३७ ॥ तेजाऽयमिति सन्धिरार्षः ॥ ४३ ॥ तेजो विग्रहवत् तेजोमयशरीरं शीलम् ॥ ४६ ॥

त्वं हि सत्यव्रता देवी लोकस्य परमेश्वरी ।
कश्चासौ ब्राह्मणश्रेष्ठस्तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्
श्रीरुवाच ।
स शक्रो ब्रह्मचारी यस्त्वत्तश्चैवोपशिक्षितः
त्रैलोक्ये ते यदैश्वर्यं तत्तेनापहृतं प्रभो ॥ ६०
शीलेन हि त्रयो लोका-
स्त्वया धर्मज्ञ निर्जिताः ।
तद्विज्ञाय सुरेन्द्रेण
तव शीलं हृतं प्रभो ॥ ६१
धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाऽप्यहम् ।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः ॥
भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा गता श्रीस्तु ते च सर्वे युधिष्ठिर
दुर्योधनस्तु पितरं भूय एवाब्रवीद्वचः ॥ ६३
शीलस्य तत्त्वमिच्छामि वेत्तुं कौरवनन्दन ।
प्राप्यते च यथा शीलं तं चोपायं वदस्व मे ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
सोपायं पूर्वमुद्दिष्टं प्रल्हादेन महात्मना ।
संक्षेपेण तु शीलस्य शृणु प्राप्तिं नरेश्वर ६५
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा, मनसा, गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत्प्रशस्यते ॥ ६६
यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम् ।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात्कथंचन ॥ ६७
तत्तु कर्म तथा कुर्याद्येन श्लाघ्येत संसदि ।
शीलं समासेनैतत्ते कथितं कुरुसत्तम ॥ ६८
यद्यप्यशीला नृपते प्राप्नुवन्ति श्रियं क्वचित् ।
न भुञ्जते चिरं तात समूलाश्च न सन्ति ते ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
एतद्विदित्वा तत्त्वेन शीलवान्भव पुत्रक ।
यदीच्छसि श्रियं तात सुविशिष्टां युधिष्ठिरात्
भीष्म उवाच ।
एतत्कथितवान्पुत्रे धृतराष्ट्रो नराधिपः ।
एतत्कुरुष्व कौन्तेय ततः प्राप्स्यसि तत्फलम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि शीलवर्णनं नाम
चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

## १२५

युधिष्ठिर उवाच ।
शीलं प्रधानं पुरुषे कथितं ते पितामह ।
कथं त्वाशा समुत्पन्ना या चाशा तद्वदस्व मे
संशयो मे महानेष समुत्पन्नः पितामह ।
छेत्ता च तस्य नान्योऽस्ति त्वत्तः परपुरञ्जय
पितामहाशा महती ममासीद्धि सुयोधने ।
प्राप्ते युद्धे तु तद्युक्तं तत्कर्ताऽयमिति प्रभो ३
सर्वस्याशा सुमहती पुरुषस्योपजायते ।
तस्यां विहन्यमानायां दुःखो मृत्युर्न संशयः
सोऽहं हताशो दुर्बुद्धिः कृतस्तेन दुरात्मना ।
धार्तराष्ट्रेण राजेन्द्र पश्य मन्दात्मतां मम ५
आशां महत्तरां मन्ये पर्वतादपि सद्रुमात् ।
आकाशादपि वा राजन्नप्रमेयैव वा पुनः ६
एषा चैव कुरुश्रेष्ठ दुर्विचिन्त्या सुदुर्लभा ।
दुर्लभत्वाच्च पश्यामि किमन्यद्दुर्लभं ततः ७
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि युधिष्ठिर निबोध तत्
इतिहासं सुमित्रस्य निर्वृत्तमृषभस्य च ॥ ८
सुमित्रो नाम राजर्षिर्हैहयो मृगयां गतः ।
स सारसं मृगं विद्ध्वा बाणेनानतपर्वणा ॥९
स मृगो बाणमादाय ययावमितविक्रमः ।
स च राजा बलात्तूर्णं ससार मृगयूथपम् १०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

१२५
शीलमिति ॥ १ ॥ युक्तं युद्धं विनैव राज्यार्धदानं कर्ता करिष्यति ॥ ३ ॥ पर्वतान्महत्तरां अविचाल्यत्वेन द्रुमान्महत्तरां न च फलप्रदर्शकत्वेन ॥ ६ ॥ दुर्लभा दुर्जया ॥ ७ ॥

ततो निम्नं स्थलं चैव स मृगोऽद्रवदाशुगः ।
मुहूर्तमिव राजेन्द्र समेन स पथाऽगमत् ११
ततः स राजा तारुण्यादौरसेन बलेन च ।
ससार बाणासनभृत्सखड्गोऽसौ तनुत्रवान्
ततो नदान्नदींश्चैव पल्वलानि वनानि च ।
अतिक्रम्याभ्यतिक्रम्य ससारैको वनेचरः ॥
स तु कामान्मृगो राजन्नासाद्यासाद्य तं नृपम्
पुनरभ्येति जवनो जवेन महता ततः ॥ १४
स तस्य बाणैर्बहुभिः समभ्यस्तो वनेचरः ।
प्रक्रीडन्निव राजेन्द्र पुनरभ्येति चान्तिकम्॥
पुनश्च जवमास्थाय जवनो मृगयूथपः ।
अतीत्यातीत्य राजेन्द्र पुनरभ्येति चान्तिकम्
तस्य मर्मच्छिदं घोरं तीक्ष्णं चामित्रकर्शनः।
समादाय शरं श्रेष्ठं कार्मुके तु तथाऽसृजत्१७
ततो गव्यूतिमात्रेण मृगयूथपयूथपः ।
तस्य बाणपथं मुक्त्वा तस्थिवान्प्रहसन्निव॥
तस्मिन्निपतिते बाणे भूमौ ज्वलिततेजसि ।
प्रविवेश महारण्यं मृगो राजाऽप्यथाद्रवत्॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि ऋषभगीतासु पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## १२६

भीष्म उवाच ।
प्रविश्य स महारण्यं तापसानामथाश्रमम्
आससाद ततो राजा श्रान्तश्चोपाविशत्तदा
तं कार्मुकधरं दृष्ट्वा श्रमार्तं क्षुधितं तदा।
समेत्य ऋषयस्तस्मिन्पूजां चक्रुर्यथाविधि २
स पूजामृषिभिर्दत्तां संप्रगृह्य नराधिपः ।
अपृच्छत्तापसान्सर्वांस्तपसो वृद्धिमुत्तमाम् ३
ते तस्य राज्ञो वचनं संप्रगृह्य तपोधनाः ।
ऋषयो राजशार्दूलं तमपृच्छन्प्रयोजनम् ॥ ४
केन भद्र सुखार्थेन संप्राप्तोऽसि तपोवनम् ।
पदातिर्बद्धनिस्त्रिंशो धन्वी बाणी नरेश्वर ५
एतदिच्छामहे श्रोतुं
कुतः प्राप्तोऽसि मानद ।
कस्मिन्कुले तु जातस्त्वं
किंनामा चासि ब्रूहि नः ॥ ६
ततः स राजा सर्वेभ्यो द्विजेभ्यः पुरुषर्षभ
आचचक्षे यथान्यायं परिचर्यां च भारत ७
हैहयानां कुले जातः सुमित्रो मित्रनन्दनः ।
चरामि मृगयूथानि निघ्नन्बाणैः सहस्रशः ८
बलेन महता गुप्तः सामात्यः सावरोधनः ।
मृगस्तु विद्धो बाणेन मया सरति शल्यवान्
तं द्रवन्तमनुप्राप्तो वनमेतद्यदृच्छया ।
भवत्सकाशं नष्टश्रीर्हताशः श्रमकर्शितः ॥१०
किं नु दुःखमतोऽन्यद्वै यदहं श्रमकर्शितः ।
भवतामाश्रमं प्राप्तो हताशो भ्रष्टलक्षणः ११
न राजलक्षणत्यागो न पुरस्य तपोधनाः ।
दुःखं करोति तत्तीव्रं यथाऽऽशा विहता मम
हिमवान्वा महाशैलः समुद्रो वा महोदधिः
महत्त्वान्नान्वपद्येतां नभसो वाऽन्तरं तथा१३
आशायास्तपसि श्रेष्ठास्तथा नान्तमहं गतः।
भवतां विदितं सर्वं 'सर्वज्ञा हि तपोधनाः'॥
भवन्तः सुमहाभागास्तस्मात्पृच्छामि संशयम्
आशावान्पुरुषो यः स्यादन्तरिक्षमथापि वा
किं नु ज्यायस्तरं लोके महत्त्वात्प्रतिभाति वः
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं किमिह दुर्लभम्
यदि गुह्यं न वो नित्यं तदा प्रब्रूत माचिरम्।
न गुह्यं श्रोतुमिच्छामि युष्मद्भ्यो द्विजसत्तमाः

बाणासनभृत् धनुर्धरः ॥१२॥ समभ्यस्तो विद्धः ॥१५॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

१२६

प्रविश्येति ॥ १ ॥ हे भद्र ॥ ५ ॥ पुरस्य च त्याग इति पदैकदेशोऽपि निष्कृष्यते आशा मृगाशा ॥ १२ ॥ हिमवानुच्चत्वेन महोदधिर्विततत्वेन च गगनान्तं नान्वपद्येतां तस्य ततोऽप्युच्चत्वाद्विततत्वाच्च अवान्तरं एकांशमपि ॥ १३ ॥ आशावान् आशाया महत्त्वेन तद्वतोऽपि महत्त्वमन्तरिक्षवत् ॥ १५ ॥

भवत्तपोविघातो वा
यदि स्याद्विरमे ततः ।
यदि वाऽस्ति कथायोगो
योऽयं प्रश्नो मयेरितः ॥ १८

एतत्कारणसामर्थ्यं
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
भवन्तोऽपि तपोनित्या
ब्रूयुरेतत्समन्विताः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि ऋषभगीतासु षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## १२७

भीष्म उवाच ।

ततस्तेषां समस्तानामृषीणामृषिसत्तमः ।
ऋषभो नाम विप्रर्षिर्विस्मयन्निदमब्रवीत् ॥१
पुराहं राजशार्दूल तीर्थान्यनुचरन्प्रभो ।
समासादितवान्दिव्यं नरनारायणाश्रमम् २
यत्र सा बदरी रम्या ह्रदो वैहायसस्तथा ।
यत्र चाश्वशिरा राजन्वेदान्पठति शाश्वतान्
तस्मिन्सरसि कृत्वाऽहं विधिवत्तर्पणं पुरा ।
पितॄणां देवतानां च ततोऽऽश्रममियां तदा
रेमाते यत्र तौ नित्यं नरनारायणावृषी ।
अदूरादाश्रमं कञ्चिद्वासार्थमगमं तदा ॥ ५
तत्र चीराजिनधरं कृशमुच्चमतीव च ।
अद्राक्षमृषिमायान्तं तनुं नाम तपोधनम् ॥ ६
अन्यैर्नरैर्महाबाहो वपुषाऽष्टगुणान्वितम् ।
कृशता चापि राजर्षे न दृष्टा तादृशी क्वचित्
शरीरमपि राजेन्द्र तस्य कानिष्ठिकासमम् ।
ग्रीवा बाहू तथा पादौ केशाश्चाद्भुतदर्शनाः
शिरः कायानुरूपं च कर्णौ नेत्रे तथैव च ।
तस्य वाक्चैव चेष्टा च सामान्ये राजसत्तम ९
दृष्ट्वाऽहं तं कृशं विप्रं भीतः परमदुर्मनाः ।
पादौ तस्याभिवाद्याथ स्थितः प्राञ्जलिरग्रतः
निवेद्य नामगोत्रे च पितरं च नरर्षभ ।
प्रदिष्टे चासने तेन शनैरहमुपाविशम् ।
ततः स कथयामास कथां धर्मार्थसंहिताम् ।
ऋषिमध्ये महाराज तनुर्धर्मभृतां वरः ॥ १२
तस्मिंस्तु कथयत्येव राजा राजीवलोचनः ।
उपायाज्जवनैरश्वैः सबलः सावरोधनः ॥ १३
स्मरन्पुत्रमरण्ये वै नष्टं परमदुर्मनाः ।
भूरिद्युम्नपिता श्रीमान्वीरद्युम्नो महायशाः ॥
इह द्रक्ष्यामि तं पुत्रं द्रक्ष्यामीहेति पार्थिवः ।
एवमाशाहतो राजा चरन्वनमिदं पुरा ॥ १५
दुर्लभः स मया द्रष्टुं नूनं परमधार्मिकः ।
एकः पुत्रो महारण्ये नष्ट इत्यसकृत्तदा १६
दुर्लभः स मया द्रष्टुमाशा च महती मम ।
तया परीतगात्रोऽहं मुमूर्षुर्नात्र संशयः ॥ १७
एतच्छ्रुत्वा तु भगवांस्तनुर्मुनिवरोत्तमः ।
अवाक्शिरा ध्यानपरो मुहूर्तमिव तस्थिवान्
तमनुध्यान्तमालक्ष्य राजा परमदुर्मनाः ।
उवाच वाक्यं दीनात्मा मन्दं मंदमिवासकृत्
दुर्लभं किं नु देवर्षे आशायाश्चैव किं महत् ।
ब्रवीतु भगवानेतद्यदि गुह्यं न ते मयि ॥ २०

मुनिरुवाच ।

महर्षिर्भगवांस्तेन पूर्वमासीद्विमानितः ।
बालिशां बुद्धिमास्थाय मन्दभाग्यतयाऽऽत्मनः
अर्थयन्कलशं राजन्काञ्चनं वल्कलानि च ।
अवज्ञापूर्वकेनापि न संपादितवांस्ततः ॥ २२
निर्विण्णः स तु राजर्षिर्निराशः समपद्यत ।
एवमुक्तोऽभिवाद्याथ तमृषिं लोकपूजितम् ।
श्रान्तोऽवसीद्धर्मात्मा यथा त्वं नरसत्तम ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

१२७

तत इति ॥ १ ॥ वैहायसः विहायसा गच्छन्त्या मन्दाकिन्या वैहायस्या अयं वैहायसः ॥ ३ ॥ ततोश्रमं तत आश्रमं मण्डपं इयां गतवानहम् ॥ ४ ॥ कायानुरूपं स्थूलम् ॥ ९ ॥ तेन तव पुत्रेण भूरिद्युम्नेन ॥ २१ ॥ एवं मुनिना उक्तः वीरद्युम्नः अवसीदत नष्टप्रायोऽभूदित्यर्थः ॥ २३ ॥

अर्घ्यं ततः समानीय पाद्यं चैव महानृषिः ।
आरण्यकेनैव विधिना राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥
ततस्ते मुनयः सर्वे परिवार्य नरर्षभम् ।
उपाविशन्नरव्याघ्र सप्तर्षय इव ध्रुवम् ॥ २५
अपृच्छंश्चैव तं तत्र राजानमपराजितम् ।
प्रयोजनमिदं सर्वमाश्रमस्य निवेशने ॥ २६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि ऋषभगीतासु सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

## १२८

राजोवाच ।
वीरद्युम्न इति ख्यातो राजाऽहं दिक्षु विश्रुतः
भूरिद्युम्नं सुतं नष्टमन्वेष्टुं वनमागतः ॥ १
एकः पुत्रः स विप्राग्र्य बाल एव च मेऽनघ ।
न दृश्यते वने चास्मिंस्तमन्वेष्टुं चराम्यहम् २
ऋषभ उवाच ।
इत्येवमुक्ते वचने राज्ञा मुनिरधोमुखः ।
तूष्णीमेवाभवत्तत्र न च प्रत्युक्तवान्नृपम् ॥ ३
स हि तेन पुरा विप्रो राज्ञा नात्यर्थमानितः ।
आशाकृतश्च राजेन्द्र तपो दीर्घं समाश्रितः
प्रतिग्रहमहं राज्ञां न करिष्ये कथञ्चन ।
अन्येषां चैव वर्णानामिति कृत्वा धियं तदा
आशा हि पुरुषं बालमुत्थापयति तस्थुषी ।
तामहं व्यपनेष्यामि इति कृत्वा व्यवस्थितः
वीरद्युम्नस्तु तं भूयः पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ॥ ६
राजोवाच ।
आशायाः किं कृशत्वं च किं चेह भुवि दुर्लभं
ब्रवीतु भगवानेतत्त्वं हि धर्मार्थदर्शिवान् ॥ ७
ततः संस्मृत्य तत्सर्वं स्मारयिष्यन्निवाब्रवीत्
राजानं भगवान्विप्रस्ततः कृशतनुस्तदा ॥ ८
ऋषिरुवाच ।
कृशत्वेन समं राजन्नाशाया विद्यते नृप ।
तस्या वै दुर्लभत्वाच्च प्रार्थिताः पार्थिवा मया
राजोवाच ।
कृशाकृशे मया ब्रह्मन्गृहीते वचनात्तव ।
दुर्लभत्वं च तस्यैव वेदवाक्यमिव द्विज १०
संशयस्तु महाप्राज्ञ सञ्जातो हृदये मम ।
तन्मुने मम तत्त्वेन वक्तुमर्हसि पृच्छतः ॥ ११
त्वत्तः कृशतरं किं नु ब्रवीतु भगवानिदम् ।
यदि गुह्यं न ते किञ्चिद्विद्यते मुनिसत्तम ॥१२
कृश उवाच ।
दुर्लभोऽप्यथवा नास्ति
योऽर्थी धृतिमवाप्नुयात् ।
स दुर्लभतरस्तात
योऽर्थिनं नावमन्यते ॥ १३
सत्कृत्य नोपकुरुते परं शक्त्या यथार्हतः ।
या सक्ता सर्वभूतेषु साऽऽशा कृशतरी मया
कृतघ्नेषु च या सक्ता नृशंसेष्वलसेषु च ।
अपकारिषु चासक्ता साऽऽशा कृशतरी मया
एकपुत्रः पिता पुत्रे नष्टे वा प्रोषितेऽपि वा ।
प्रवृत्तिं यो न जानाति साऽऽशा कृशतरी मया
प्रसवे चैव नारीणां वृद्धानां पुत्रकारिता ।
तथा नरेन्द्र धनिनां साऽऽशा कृशतरी मया

---

तत एवं मुनिना राजपूजानन्तरं आगताः किमर्थं आश्रमे त्वं प्रविष्टोऽसीत्यपृच्छन् ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

१२८

**वीरेति** ॥ १ ॥ आशया कृतः-हतः कृ हिंसायामित्यस्य रूपम् ॥ ४ ॥ आशायाः आशावतः समं अन्यत् कृशत्वेन समं किमपि नास्ति तस्याः तद्गृहीतार्थस्य ॥९॥ कृशाकृशे य आशाजितः स कृशः येनाशा जिता स पुष्ट इत्यर्थः तस्यैव आशाविषयस्यैव ॥ १० ॥ दुर्लभं किं नु इति पूर्वप्रश्नस्योत्तरमाह-**दुर्लभ इति** ॥ १३ ॥ त्वत्तः कृशतरामित्यनुपदोक्तस्योत्तरमाह-**सत्कृत्येति** । आदरेणाशां प्रदर्श्य योऽर्थिनं नोपकुरुते तत्र या आशा सा अतिकृशा मया मत्तः दीनत्वसंपादकत्वात् ॥ १४ ॥

प्रदानकांक्षिणीनां च
कन्यानां वयसि स्थिते ।
श्रुत्वा कथास्तथायुक्ताः
साऽऽशा कृशतरी मया ॥ १८
एतच्छ्रुत्वा ततो राजन्स राजा सावरोधनः
संस्पृश्य पादौ शिरसा निपपात द्विजर्षभम्
राजोवाच ।
प्रसादये त्वां भगवन्पुत्रेणेच्छामि संगमम्
यदेतदुक्तं भवता संप्रति द्विजसत्तम ॥ २०
सत्यमेतन्न संदेहो यदेतद्व्याहृतं त्वया ।
ततः प्रहस्य भगवांस्तनुर्धर्मभृतां वरः ॥ २१
पुत्रमस्यानयत्क्षिप्रं तपसा च श्रुतेन च ।
स समानीय तत्पुत्रं तमुपालभ्य पार्थिवम् ॥
आत्मानं दर्शयामास धर्मं धर्मभृतां वरः ।
स दर्शयित्वा चात्मानं दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।
विपाप्मा विगतक्रोधश्चचार वनमन्तिकात्
एतद्दृष्टं मया राजंस्तथा च वचनं श्रुतम् ।
आशामपनयस्वाशु ततः कृशतरीमिमाम् २४
भीष्म उवाच ।
स तथोक्तस्तदा राजन्नृषभेण महात्मना ।
सुमित्रोऽपनयत्क्षिप्रमाशां कृशतरीं ततः ॥ २५
एवं त्वमपि कौन्तेय श्रुत्वा वाणीमिमां मम ।
स्थिरो भव महाराज हिमवानिव पर्वतः २६
त्वं हि प्रष्टा च श्रोता च कृच्छ्रेष्वनुगतेष्विह
श्रुत्वा मम महाराज न संतप्तुमिहार्हसि २७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि ऋषभगीतासु अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

## १२९

युधिष्ठिर उवाच ।
नामृतस्येव पर्याप्ति-
र्ममास्ति ब्रुवति त्वयि ।
यथा हि स्वात्मवृत्तिस्थ-
स्तथा तृप्तोऽस्मि भारत ॥
तस्मात्कथय भूयस्त्वं धर्ममेव पितामह ।
न हि तृप्तिमहं यामि पिबन्धर्मामृतं हि ते २
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गौतमस्य च संवादं यमस्य च महात्मनः ॥३
पारियात्रं गिरिं प्राप्य गौतमस्याश्रमो महान्
उवास गौतमो यं च कालं तमपि मे शृणु ४
षष्टिं वर्षसहस्राणि सोऽतप्यद्गौतमस्तपः ।
तमुग्रतपसा युक्तं भावितं सुमहामुनिम् ॥ ५
उपयातो नरव्याघ्र लोकपालो यमस्तदा ।
तमपश्यत्सुतपसमृषिं वै गौतमं तदा ॥ ६
स तं विदित्वा ब्रह्मर्षिंर्यममागतमोजसा ।
प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा उपविष्टस्तपोधनः ७
तं धर्मराजो दृष्ट्वैव सत्कृत्यैव द्विजर्षभम् ।
न्यमन्त्रयत धर्मेण क्रियतां किमिति ब्रुवन् ८
गौतम उवाच ।
मातापितृभ्यामानृण्यं किं कृत्वा समवाप्नुयात्
कथं च लोकानाप्नोति पुरुषो दुर्लभाञ्शुभान्
यम उवाच ।
तपःशौचवता नित्यं सत्यधर्मरतेन च ।
मातापित्रोरहरहः पूजनं कार्यमञ्जसा ॥ १०

---

तथायुक्ताः प्रदानं स्थितामिति शब्दयुक्ताः ॥ १८ ॥ उपालभ्य तत्रापराधं स्थापयित्वा ॥ २२ ॥ मम मत्तः ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

१२९

नामृतस्येति । शीलवतो जिताशस्य यत्कर्तव्यं तदत्रोच्यते पर्याप्तिरलंभावस्तृप्तिरिति यावत् । स्वात्मवृत्तिस्थः समाधिसुखेनेवाहमपि त्वद्वागमृतेन तृप्तोऽस्मीत्यर्थः ॥१॥ धर्मेण मया तव किं इष्टं क्रियतामिति ब्रुवन्यमो न्यमन्त्रयत तं संमुखीकृतवान् ॥ ८ ॥

अश्वमेधैश्च यष्टव्यं बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः । तेन लोकानवाप्नोति पुरुषोऽद्भुतदर्शनान् ॥ ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि यमगौतमसंवादे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

## १३०

युधिष्ठिर उवाच ।

मित्रैः प्रहीयमाणस्य बह्वमित्रस्य का गतिः
राज्ञः संक्षीणकोशस्य बलहीनस्य भारत १
दुष्टामात्यसहायस्य च्युतमन्त्रस्य सर्वतः ।
राज्यात्प्रच्यवमानस्य गतिमन्यामपश्यतः २
परचक्राभियातस्य परराष्ट्राणि मृद्नतः ।
विग्रहे वर्तमानस्य दुर्बलस्य बलीयसा ॥ ३
असंविहितराष्ट्रस्य देशकालावजानतः ।
अप्राप्यं च भवेत्सान्त्वं भेदो वाऽप्यतिपीडनात् ।
जीवितं त्वर्थहेतुर्वा तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ४

भीष्म उवाच ।

गुह्यं धर्मज मा प्राक्षीरतीव भरतर्षभ ।
अपृष्टो नोत्सहे वक्तुं धर्ममेतं युधिष्ठिर ॥ ५
धर्मो ह्यणीयान्वचनाद्बुद्धिश्च भरतर्षभ ।
श्रुत्वोपास्य सदाचारैः साधुर्भवति स क्वचित्
कर्मणा बुद्धिपूर्वेण भवत्याढ्यो न वा पुनः ।
तादृशोऽयमनुप्रश्नः संव्यवस्यः स्वया धिया ७
उपायं धर्मबहुलं यात्रार्थं शृणु भारत ।
नाहमेतादृशं धर्मं बुभूषे धर्मकारणात् ॥ ८
दुःखादान इह ह्येष स्यात्तु पश्चात्क्षयोपमः ।
अभिगम्यमतीनां हि सर्वासामेव निश्चयः ९
यथा यथा हि पुरुषो नित्यं शास्त्रमवेक्षते ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानमथ रोचते ॥
अविज्ञानादयोगो हि पुरुषस्योपजायते ।
विज्ञानादपि योगश्च योगो भूतिकरः परः ॥
अशंकमानो वचनमनसूयुरिदं शृणु ।
राज्ञः कोशक्षयादेव जायते बलसंक्षयः ॥ १२
कोशं च जनयेद्राजा निर्जलेभ्यो यथा जलम्
कालं प्राप्यानुगृह्णीयादेष धर्मः सनातनः ।
उपायधर्मं प्राप्येमं पूर्वैराचरितं जनैः ॥ १३

---

अश्वमेधैरिति स्वधर्ममात्रस्योपलक्षणम् ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

१३०

मित्रैरित्यध्यायो वक्ष्यमाणानामापद्धर्माणां सूत्रभूतस्तत्र सर्वप्रकारैरापद्यागतायामधर्मेण प्रजापीडनजेनापि कोशवृद्धिः कर्तव्या तेनैव सर्वा आपदस्तरतीत्यध्यायार्थः ॥ १ ॥ सर्वतः सर्वैः ॥ २ ॥ परस्य चक्रं राष्ट्रं प्रति अभियातस्य बलीयसा सार्धम् ॥ ३ ॥ असंविहितं असम्यग्रक्षितं राष्ट्रं येन तस्य अतिपीडनात् परकीयामात्यादीनां भेदोऽपि अप्राप्यः तत्र अर्थसाध्यं जीवितं वा सुकृतं अर्थश्चामार्गेणापि प्राप्य उतार्थं विना मरणं वा श्रेय इति सार्धेन प्रश्नः ॥ ४ ॥ मा मां अप्राक्षीः पृष्टवानसि ॥ ५ ॥ वचनात् शास्त्रात् धर्मं श्रुत्वा उपास्य च क्वचिद्देशे कश्चिदेव साधुर्भवति ॥ ६ ॥ आपत्काले धनार्थं प्रजाः कर्षन्नपि धनं लभते चेदापदं निस्तीर्य प्रजा अनुकम्पयेत् । न वा लभते चेत्स्वस्य प्रजानां च नाशो भवतीति विचार्य स्वस्य प्रश्नस्योत्तरं स्वयमेव चिन्तनीयमित्यर्थः ॥ ७ ॥ यात्रार्थं राज्ञां व्यवहारनिर्वाहार्थं धर्मो राज्ञां आपद्धर्मस्तदर्थत्वेन बहुलं उपायं शृणु, अहं तु न बुभूषे इति तस्य शब्दैरनादरणीयत्वं दर्शितं बुभूषे प्राप्तुमिच्छामि ॥ ८ ॥ एष उपायो दुःखादानः प्रजानां दुःखेन आदीयतेऽङ्गीक्रियतेऽत एव पश्चात्क्षयोपमो मरणतुल्यः ।

'प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः प्राणान्बलं कोशं नादग्ध्वा विनिवर्तते ' इति ।

आभिगम्याश्च ताः मतयश्च तासां सर्वासां प्रजानामिति वा ॥ ९ ॥ अयोगः उपायाभावः ॥ ११ ॥ अनुगृह्णीयात् प्राक्कर्षिताः प्रजा इति शेषः उपायधर्मं उपधर्मं अमुख्यधर्ममिति यावत् सार्धः ॥ १३ ॥

अन्यो धर्मः समर्थानामापत्स्वन्यश्च भारत ।
प्राक्कोशात्प्राप्यते धर्मो वृत्तिर्धर्माद्गरीयसी ॥
धर्मं प्राप्य न्यायवृत्तिं न बलीयान्न विन्दति
यस्माद्बलस्योपपत्तिरेकान्तेन न विद्यते १५
तस्मादापत्स्वधर्मोऽपि श्रूयते धर्मलक्षणः ।
अधर्मो जायते तस्मिन्निति वै कवयो विदुः
अनन्तरं क्षत्रियस्य तत्र किं विचिकित्स्यते ।
यथाऽस्य धर्मो न ग्लायेन्नेयाच्छत्रुवशं यथा ।
तत्कर्तव्यमिहेत्याहुर्नात्मानमवसादयेत् १७
सर्वात्मनैव धर्मस्य न परस्य न चात्मनः ।
सर्वोपायैरुज्जिहीर्षेदात्मानमिति निश्चयः १८
तत्र धर्मविदां तात निश्चयो धर्मनैपुणम् ।
उद्यमो नैपुणं क्षात्रे बाहुवीर्यादिति श्रुतिः १९
क्षत्रियो वृत्तिसंरोधे कस्य नादातुमर्हति ।
अन्यत्र तापसस्वाच्च ब्राह्मणस्वाच्च भारत २०
यथा वै ब्राह्मणः सीदन्नयाज्यमपि याजयेत् ।
अभोज्यान्नानि चाश्नीयात्तथेदं नात्र संशयः ॥
पीडितस्य किमु द्वारमुत्पथो विधृतस्य च ।
अद्वारतः प्रद्रवति यथा भवति पीडितः २२
यस्य कोशबलग्लान्या सर्वलोकपराभवः ।
भैक्ष्यचर्या न विहिता न च विट्शूद्रजीविका
स्वधर्मानन्तरा वृत्तिर्जात्यानुपजीवतः ।
वहतः प्रथमं कल्पमनुकल्पेन जीवनम् ॥ २४
आपद्गतेन धर्माणामन्यायेनोपजीवनम् ।
अपि ह्येतद्ब्राह्मणेषु दृष्टं वृत्तिपरिक्षये ॥ २५
क्षत्रिये संशयः कस्मादित्येवं निश्चितं सदा
आददीत विशिष्टेभ्यो नावसीदेत्कथञ्चन २६
हन्तारं रक्षितारं च प्रजानां क्षत्रियं विदुः ।
तस्मात्संरक्षता कार्यमादानं क्षत्रबन्धुना २७
अन्यत्र राजन्हिंसाया वृत्तिर्नेहास्ति कस्यचित्
अप्यरण्यसमुत्थस्य एकस्य चरतो मुनेः २८
न शंखलिखितां वृत्तिं शक्यमास्थाय जीवितुम्
विशेषतः कुरुश्रेष्ठ प्रजापालनमीप्सया ॥ २९
परस्परं हि संरक्षा राज्ञा राष्ट्रेण चापदि ।
नित्यमेव हि कर्तव्या एष धर्मः सनातनः ॥
राजा राष्ट्रं यथाऽऽपत्सु द्रव्यौघैरपि रक्षति ।
राष्ट्रेण राजा व्यसने रक्षितव्यस्तथा भवेत् ॥
कोशं दण्डं बलं मित्रं यदन्यदपि सञ्चितम् ।
न कुर्वीतान्तरं राष्ट्रे राजा परिगतः क्षुधा ॥
बीजं भक्तेन संपाद्यमिति धर्मविदो विदुः ।
अत्रैतच्छम्बरस्याहुर्महामायस्य दर्शनम् ३३

प्राक्कोशाद्विनापि कोशं तप आदिना धर्मः वृत्तिर्जीवनं तल्लोपप्रसक्तौ तु कोशसञ्चयविरोधी धर्मो नादर्तव्य इत्यर्थः॥ १४॥ नबलीयान्नैकधेतिवत्समासः दुर्बलो धर्मं प्राप्य अनुरुध्य न्यायवृत्तिं न्यायोपेतां श्रेष्ठां जीविकां न विन्दति यस्माद्यत्नाच्चावश्यं बलं भवतीति नियमो नास्ति। यस्मात् तस्मादापदि अधर्मोऽपि कर्तव्यत्वेन श्रूयते तत्र च योऽधर्मलक्षणो धर्मः स अधर्म एव भवतीति शास्त्रमर्यादेति श्लोकद्वयार्थः। प्रजाकर्षणादिरधर्मोऽप्यापदि धर्म एव अक्रूरश्चेत्स एवाधर्म इति भावः ॥१५॥ अनन्तरं आपन्निवृत्त्युत्तरं तत्र पूर्वोक्ताधर्मे किं विचिकित्स्यते प्रायश्चित्तादिकं कराग्रहणादिकं च विधीयते दोषपरिहारार्थमित्यर्थः। फलितमाह—**यथेति** ॥ १७ ॥ धर्मस्येति कर्मणि षष्ठी परस्य धर्मं नोज्जिहीर्षेन्नाप्यात्मनो धर्ममुज्जिहीर्षेदपि तु आत्मानमेव उज्जिहीर्षेत् स्वपरधर्मलोपेऽप्यात्मानमेवोद्धर्तुमिच्छेदित्यर्थः ॥ १८ ॥ विधृतस्य निरुद्धस्य क उत्पथो न कोऽपि किं तु यथाऽपथेनापि प्रद्रवति तथा यतितव्यमिति शेषः ॥ २२ ॥ न विहिता यस्येत्यनुषज्ज्यते स्वधर्मो विजयेन क्षत्रियस्य धनार्जनम् तस्य अनन्तरा प्रत्यासन्ना स्वपरराष्ट्रावमर्देन धनार्जनं तेन वृत्तिस्तस्य विहितेत्यनुषङ्गः। जात्यान्सजातीयाननुपजीवतः अयाचमानस्य नित्यं प्रथमं कल्पं वहतोऽपि आपदि अनुकल्पेन जीवनं युक्तमित्यर्थः ॥ २४ ॥ अन्यायेन विपर्ययेण 'बुभुक्षितस्त्र्यहं विप्रो धान्यमब्राह्मणाद्धरेत्' इति प्रतिग्रहालाभे ब्राह्मणस्य यथा चौर्यं विहितम् ॥ २५ ॥ एवं क्षत्रियोऽप्यापदि शिष्टेभ्यो बलादाददीतेत्यत्र संदेह एव न युक्त इत्यर्थः ॥ २६ ॥ अस्यापवादमाह—**अन्यत्रेति** । अन्यत्र हिंसायाः कृशजनपीडामकृत्वेत्यर्थः। इह हिंसायां कस्यचिदपि वृत्तिर्हिंसापूर्विका न हिताऽस्तीति नेत्यर्थः। अरण्यसमुत्थस्य वने एव तिष्ठतः ॥ २८ ॥ शंखे ललाटास्थि लिखितां वृत्तिं दिष्टमात्रालम्बिना राज्ञा जीवितुं न शक्यं 'शंखः कम्बुललाटास्थि' इति **विश्वलोचनः**। ईप्सया औत्कण्ठ्येन प्रजापालनं चिकीर्षतेति शेषः ॥२९॥ अन्तरं दूरतः ॥ ३२ ॥ बीजं भक्तेनासंपादितं चेदग्रे भक्तदौर्बल्यं यथा भवति एवमल्पधनो राजा प्रजाभिर्न रक्षितो नश्यति नष्टे च तस्मिन्सर्वाः प्रजा अपि नश्यन्तीत्यर्थः। एतत्पूर्वार्धोक्तं दर्शनं शास्त्रम् ॥ ३३ ॥

धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रं यस्यावसीदति
अवृत्त्यान्यमनुष्योऽपि यो वैदेशिक इत्यपि ॥
राज्ञः कोशबलं मूलं कोशमूलं पुनर्बलम् ।
तन्मूलं सर्वधर्माणां धर्ममूलाः पुनः प्रजाः ॥
नान्यानपीडयित्वेह
कोशः शक्यः कुतो बलम् ।
तदर्थं पीडयित्वा च
दोषं प्राप्तुं न सोऽर्हति ॥ ३६
अकार्यमपि यज्ञार्थं क्रियते यज्ञकर्मसु ।
एतस्मात्कारणाद्राजा न दोषं प्राप्तुमर्हति ३७
अर्थार्थमन्यद्भवति विपरीतमथापरम् ।
अनर्थार्थमथाप्यन्यत्तत्सर्वं ह्यर्थकारणम् ।
एवं बुद्ध्या संप्रपश्येन्मेधावी कार्यनिश्चयम् ॥
यज्ञार्थमन्यद्भवति यज्ञोऽन्यार्थस्तथा परः ।
यज्ञस्यार्थार्थमेवान्यत्तत्सर्वं यज्ञसाधनम् ३९
उपमामत्र वक्ष्यामि धर्मतत्त्वप्रकाशिनीम् ।
यूपं छिन्दन्ति यज्ञार्थं तत्र ये परिपन्थिनः ४०
द्रुमाः केचन सामन्ता ध्रुवं छिन्दन्ति तानपि
ते चापि निपतन्तोऽन्यान्निघ्नन्त्येव वनस्पतीन्
एवं कोशस्य महतो ये नराः परिपन्थिनः ।
तानहत्वा न पश्यामि सिद्धिमत्र परंतप ४२
धनेन जयते लोकावुभौ परमिमं तथा ।
सत्यं च धर्मवचनं यथा नास्त्यधनस्तथा ४३
सर्वोपायैराददीत धनं यज्ञप्रयोजनम् ।
न तुल्यदोषः स्यादेवं कार्याकार्येषु भारत ॥
नैतौ संभवतो राजन्कथञ्चिदपि पार्थिव ।
न ह्यरण्येषु पश्यामि धनवृद्धानहं क्वचित् ४५
यदिदं दृश्यते वित्तं पृथिव्यामिह किञ्चन ।
ममेदं स्यान्ममेदं स्यादित्येवं काङ्क्षते जनः
न च राज्यसमो धर्मः कश्चिदस्ति परंतप ।
धर्मः संशब्दितो राज्ञामापदर्थमतोऽन्यथा ॥
दानेन कर्मणा चान्ये
तपसाऽन्ये तपस्विनः ।
बुद्ध्या दाक्ष्येण चैवान्ये
विन्दन्ति धनसञ्चयान् ॥ ४८
अधनं दुर्बलं प्राहुर्धनेन बलवान्भवेत ।
सर्वं धनवता प्राप्यं सर्वं तरति कोशवान् ॥
कोशेन धर्मः कामश्च परलोकस्तथा ह्ययम् ।
तं च धर्मेण लिप्सेत नाधर्मेण कदाचन ५०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्वणि
त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

## ॥ समाप्तं राजधर्मानुशासनपर्व ॥

---

अवृत्त्या जीविकाया अभावेन यस्य राष्ट्रं अवसीदति यो वा अन्यमनुष्यः अल्पेति पाठेऽल्पपरीवारः यो वा वैदेशिको देशान्तरोपजीवी तस्य राज्ञो जीवितं धिक् ॥ ३४ ॥ राज्ञो मूलं दीर्घकारणं कोशो बलं च तत्रापि कोशो बलस्य मूलं तद्बलं धर्माणां मूलं धर्मश्च प्रजानां मूलं अतः सर्वस्य मूलभूतं कोशं वर्धयेत् ॥ ३५ ॥ कारणात् दृष्टान्तात् राजा रक्षार्थं प्रजाः कर्षन्न दोषं प्राप्नोति॥३७॥ अन्यत् आपदि प्रजापीडनमप्यर्थार्थं भवति अपरं अपीडनं विपरीतं अनर्थार्थं भवति। यदप्यन्यदनर्थार्थं अर्थाभावार्थं कुञ्जरपालनादि भवति तदेवेह्यर्थस्य कारणं उत्पादकं भवति एवमेतदपीत्याहार्धेन एवामिति सार्धः ॥ ३८ ॥ **यज्ञार्थमिति** । यथा पश्वादिकं यज्ञार्थं यज्ञश्च चित्तसंस्कारार्थः पश्वादिकं यज्ञः संस्कारश्चेति त्रयं अर्थार्थं मोक्षार्थं भवति। एवं दंडः कोशार्थं कोशो बलार्थः बलं शत्रुपराभवार्थम् । कोशो बलं जयश्चेति त्रयं राष्ट्रपुष्ट्यर्थमिति भावः ॥ ३९ ॥ सामन्ताः प्रतिपक्षभूताः ॥ ४१ ॥ यथा नास्त्यधनस्तथेति जीवन्मृतत्वमधनस्योक्तम् ॥ ४३ ॥ यज्ञार्थं धनं सर्वैरप्यनिषिद्धैरुपायैराददीत परं तु कार्याकार्येषु विहितनिषिद्धेषु आपदि प्रजापीडनं विहितं तदेवानापदि निषिद्धं तथाभूतेष्वर्थेषु तुल्यदोषो न स्याद्देशकालानुसारेण कार्यमप्यकार्यं भवत्यकार्यमपि कार्यं भवति तत्र विपरीतं न प्रतिपद्येतेति भावः ॥ ४४ ॥ एतौ धनसंग्रहत्यागौ एकस्मिन् पुरुषे न संभवतः युगपत्तयोर्वृत्तिर्न सिध्यति विरक्तेषु संग्रहासंभवात् ॥ ४५ ॥ अन्येषु त्यागासंभवमाह-**यदिदमिति** । तस्मादविरक्तत्वाद्राज्ञो धनमेष्टव्यमेवेति भावः ॥ ४६ ॥ ननु किं पापमूलेन धनेन किं च तन्मूलेन राज्येनेत्याशंक्याह-**न चेति**। अनापद्येव राज्ञो बहुकरादानं पापमूलं आपदि तु न तत्तथा भवति। अतो न पापमूलं धनं नापि तन्मूलराज्यस्य हेयत्वं अपि तु धर्महेतुत्वादवश्यं कर्तव्यत्वमेवेत्यर्थः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे राजधर्मानुशासनपर्वणि त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

# महाभारतम् ।

## शान्तिपर्व ।

### आपद्धर्मपर्व २

### १३१

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥**
**देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥**

युधिष्ठिर उवाच ।

क्षीणस्य दीर्घसूत्रस्य सानुक्रोशस्य बन्धुषु
परिशङ्कितवृत्तस्य श्रुतमन्त्रस्य भारत ॥ १
विभक्तपुरराष्ट्रस्य निर्द्रव्यनिचयस्य च ।
असंभावितमित्रस्य भिन्नामात्यस्य सर्वशः ॥
परचक्राभिजातस्य दुर्बलस्य बलीयसा ।
आपन्नचेतसो ब्रूहि किं कार्यमवशिष्यते ॥ ३

भीष्म उवाच ।

बाह्यश्चेद्विजिगीषुः स्याद्धर्मार्थकुशलः शुचिः
जवेन सन्धिं कुर्वीत पूर्वभुक्तान्विमोचयेत् ४
योऽधर्मविजीगीषुः स्याद्बलवान्पापनिश्चयः ।
आत्मनः सन्निरोधेन सन्धिं तेनापि रोचयेत्
अपास्य राजधानीं वा तरेद्द्रव्येण चापदम् ॥
तद्भावयुक्तो द्रव्याणि जीवन्पुनरुपार्जयेत् ६

**श्रीगणेशाय नमः ॥**

**गोपाल-नारायण-लक्ष्मणार्यान्**
**धीरेश-गंगाधर-नीलकण्ठान् ।**
**चिन्तामणिं सांबशिवं च नत्वा**
**विवृण्म आपद्गतराजधर्मान् ॥ १ ॥**

पूर्वस्मिन्नध्याये यायिन आपदि आगतायां प्रजापीडनेनापि कोशं संपाद्यापदन्तरेदित्युक्तम् । इदानीं स्थायिन एवापद्यागतायां पृच्छति-**क्षीणस्येत्यादिना** । क्षीणस्य धान्यकोशादिसंग्रहरहितस्य । दीर्घसूत्रस्य अलसस्य । सानुक्रोशस्य बन्धुक्षयभयाद्दुर्गाद्बहिर्निर्गत्य युद्धं दातुमसमर्थस्य । परिशंकितवृत्तस्य अमात्येषु शंकावतः । यतः श्रुतमंत्रस्य लोकैरिति शेषः। अगुप्तमन्त्रस्येत्यर्थः ॥ १ ॥ विभक्तानि शत्रुभिर्विभज्य गृहीतानि पुरराष्ट्राणि यस्य । अत एव निर्द्रव्यनिचयस्य द्रव्याभावादेव न संभावितानि आवर्जितानि मित्राणि येन तस्य । मित्रबलहीनत्वादेव भिन्नाः शत्रुभिर्वशीकृता अमात्या यस्य ॥ २ ॥ परचक्रं अभिजातं संमुखं यस्य परचक्रेणाभिभूतस्येत्यर्थः । बलीयसा शत्रुणा आपन्नं व्याकुलीकृतं चेतो यस्य ॥ ३ ॥ बाह्यो यायी यदि धर्मपूर्वके अर्थार्जने कुशलस्तर्हि शीघ्रं सन्धिः कर्तव्यः। स्वीयपूर्वैर्भुक्तान् ग्रामनगरादीन् तेनाक्रान्तान् क्रमशः ततो मोचयेत् साम्नैवेत्यर्थः ॥ ४ ॥ स चेद्दुष्टात्मा तर्हि सन्निरोधेन कतिपयग्रामदानेनापि सन्धिमेव कुर्यादित्याह-**य इति** । अधर्मेति च्छेदः । अधर्मप्रधानो विजिगीषुरधर्माविजिगीषुः ॥ ५ ॥ स चेद्दुष्टतरस्तदा किं कर्तव्यं तदाह-**अपास्येति** । तद्भावयुक्तो राजत्वगुणयुक्तश्चेत् ॥ ६ ॥

यास्तु कोशबलत्यागाच्छक्यास्तरितुमापदः ।
कस्तत्राधिकमात्मानं सन्त्यजेदर्थधर्मवित् ७
अवरोधान् जुगुप्सेत का सपत्नधने दया ।
न त्वेवात्मा प्रदातव्यः शक्ये सति कथञ्चन ८
युधिष्ठिर उवाच ।
आभ्यन्तरे प्रकुपिते बाह्ये चोपनिपीडिते ।
क्षीणे कोशे श्रुते मन्त्रे किं कार्यमवशिष्यते ९
भीष्म उवाच ।
क्षिप्रं वा सन्धिकामः स्यात्
क्षिप्रं वा तीक्ष्णविक्रमः ।
तदापनयनं क्षिप्र-
मेतावत्साम्परायिकम् ॥ १०
अनुरक्तेन चेष्टेन हृष्टेन जगतीपतिः ।
अल्पेनापि हि सैन्येन महीं जयति भूमिपः ॥
हतो वा दिवमारोहे-
द्धत्वा वा क्षितिमावसेत् ।
युद्धे हि सन्त्यजन्प्राणान्
शक्रस्यैति सलोकताम् ॥ ११
सर्वलोकागमं कृत्वा मृदुत्वं गन्तुमेव च ।
विश्वासाद्विनयं कुर्याद्विश्वसेच्चाप्युपायतः ॥
अपचिक्रमिषुः क्षिप्रं
साम्ना वा परिसान्त्वयन् ।
विलंघयित्वा मन्त्रेण
ततः स्वयमुपक्रमेत् ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि
एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ [ १ ]

## १३२

युधिष्ठिर उवाच ।
हीने परमके धर्मे सर्वलोकाभिसंहिते ।
सर्वस्मिन्दस्युसाद्भूते पृथिव्यामुपजीवने १
केन स्विद्ब्राह्मणो जीवेज्जघन्ये काल आगते
असन्त्यजन्पुत्रपौत्राननुक्रोशात्पितामह ॥ २
भीष्म उवाच ।
विज्ञानबलमास्थाय जीवितव्यं तथागते ।
सर्वं साध्वर्थमेवेदमसाध्वर्थं न किञ्चन ॥ ३
असाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यो यः प्रयच्छति
आत्मानं संक्रमं कृत्वा कृच्छ्रधर्मविदेव सः ४
आकाङ्क्षन्नात्मनो राज्यं
राज्ये स्थितिमकोपयन् ।
अदत्तमेवाददीत
दातुर्वित्तं ममेति च ॥ ५
विज्ञानबलपूतो यो वर्तते निन्दितेष्वपि ।
वृत्तिविज्ञानवान्धीरः कस्तं वा वक्तुमर्हति ६

---

युद्धतमे तु राज्यधनं त्यक्त्वा आत्मानं रक्षेदित्याह- **यास्त्विति** ॥ ७ ॥ अवरोधान् अन्तःपुराणि जुगुप्सेत पलायितुमिच्छेत् तत्राशक्तौ तेषु शत्रुसाद्भूतेषु दया स्नेहो न कार्यः तानुपेक्ष्यापि केवलमात्मानमेव रक्षेदित्यर्थः ॥ ८ ॥ आभ्यन्तरेऽमात्यादौ बाह्ये दुर्गराष्ट्रादौ उपनिपीडिते आक्रान्ते ॥ ९ ॥ धर्मिष्ठे बाह्ये क्षिप्रं सन्धिः अधर्मिष्ठे तु तीक्ष्णः पराक्रमः कर्तव्यः । यदा त्वेवं तदा अपनयनं शत्रोर्दूरीकरणं क्षिप्रमेव भवति। अथवा सांपरायिकं धर्मयुद्धेन मरणे परलोकहितं भवति ॥ १० ॥ विक्रमे पक्षद्वयमपि संभावितमित्याह द्वाभ्यां- **अनुरक्तेनेति** ॥ ११ ॥ यस्मिन्काले मृदुत्वं गन्तुं युद्धपक्षं त्यक्तुम् सर्वलोकागमं सर्वस्य लोकस्य प्रसिद्धं आगमं शपथाद्युपायं छलं मा भूदिति बुद्ध्या कृत्वा विश्वासात् विश्वासं प्राप्य विनयं कुर्यात् मृदुर्भवेत् । न तु युद्धमेव हठेन श्रयेत् ॥ १३ ॥ यद्याभ्यन्तरप्रकोपात् युद्धं कर्तुमशक्यम् बाह्यप्रकोपात्साम चाशक्यं तदा साम्ना अपचिक्रमिषुर्दुर्गादपक्रान्तुमिच्छुः स्यात् । अपक्रम्य कंचित्कालं देशं च विलंघयित्वा मन्त्रेण मंत्रबलेन पुनः पृथ्वीं जेतुमुपक्रमेत् ॥१४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

१३२

**हीन इति।** हीने धर्मे राज्ञामिति शेषः परमके सर्वोपायेन ब्राह्मणा रक्ष्या इत्यस्मिन्॥१॥ जघन्यं आपद्बहुले ब्राह्मणः केन जीवेदित्यस्य ब्राह्मणं कथं रक्षेदित्यर्थः ॥२॥ सर्वं धनादिकं साध्वर्थं सतामर्थे ॥३॥ एवं हेतुमुक्त्वा विधेयमाह- **असाधुभ्य इति**। संक्रमं आगमनमार्गम् ॥ ४ ॥ स्थितिं पालनधर्मं दातुः पालयितुः देङ् पालने इत्यस्य रूपम्। स्थानभ्रष्टस्य राज्ञो ब्राह्मणपालनार्थं सर्वस्वहरणेऽपि दोषो नास्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ वक्तुं निंदितुम् ॥ ६ ॥

येषां बलकृता वृत्तिस्तेषामन्या न रोचते ।
तेजसाऽभिप्रवर्तन्ते बलवन्तो युधिष्ठिर ॥ ७
यदेव प्राकृतं शास्त्रमविशेषेण वर्तते ।
तदेवमभ्यसेदेवं मेधावी वाऽप्यथोत्तरम् ८
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान्
सत्कृतानभिसत्कृतान् ।
न ब्राह्मणान्घातयीत
दोषान्प्राप्नोति घातयन् ॥ ९
एतत्प्रमाणं लोकस्य चक्षुरेतत्सनातनम् ।
तत्प्रमाणोऽवगाहेत तेन तत्साध्वसाधु वा ॥
बहवो ग्रामवास्तव्या रोषाद्ब्रूयुः परस्परम् ।
न तेषां वचनाद्राजा सत्कुर्याद् घातयीत वा
न वाच्यः परिवादोऽयं न श्रोतव्यः कथञ्चन
कर्णावथापिधातव्यौ प्रस्थेयं चान्यतो भवेत्
असतां शीलमेतद्वै परिवादोऽथ पैशुनम् ।
गुणानामेव वक्तारः सन्तः सत्सु नराधिप ॥
यथा समधुरौ दम्यौ सुदान्तौ साधुवाहिनौ
धुरमुद्यम्य वहतस्तथा वर्तेत वै नृपः ॥ १४
यथा यथाऽस्य बहवः सहायाः स्युस्तथा परे
आचारमेव मन्यन्ते गरीयो धर्मलक्षणम् १५
अपरे नैवमिच्छन्ति ये शङ्खलिखितप्रियाः
मात्सर्यादथवा लोभान्न ब्रूयुर्वाक्यमीदृशम्
आर्षमप्यत्र पश्यन्ति विकर्मस्थस्य पातनम् ।
न तादृक्सदृशं किञ्चित्प्रमाणं दृश्यते क्वचित्
देवताश्च विकर्मस्थं पातयन्ति नराधमम् ।
व्याजेन विन्दन्वित्तं हि धर्मात्स परिहीयते
सर्वतः सत्कृतः सद्भिर्भूतिप्रवरकारणैः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं व्यवस्यति १९
यश्चतुर्गुणसम्पन्नं धर्मं ब्रूयात्स धर्मवित् ।
अहेरिव हि धर्मस्य पदं दुःखं गवेषितुम् २०
यथा मृगस्य विद्धस्य पदमेकपदं नयेत् ।
लक्षेद्रुधिरलेपेन तथा धर्मपदं नयेत् ॥ २१
यथा सद्भिर्विनीतेन यथा गन्तव्यमित्युत ।
राजर्षीणां वृत्तमेतदेवं गच्छ युधिष्ठिर ॥ २२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि राजर्षिवृत्तं नाम
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ [ २ ]

---

प्राकृतं प्राकृतापद्धर्मोपयोगि शास्त्रम् । स्वराष्ट्रात्परराष्ट्राच्च कोशं संजनयेन्नृप इति सामान्यशास्त्रमेवापन्नो राजा उपजीवेत् । मेधावी तु तत्रापि ये राष्ट्रद्वयस्था धनिकाः कदर्यत्वेन दंडार्हास्तादृशेभ्य एवाददीतेत्युत्तरं शास्त्रं अभ्यसेत् ॥ ८ ॥ **ऋत्विगिति** । अत्यन्तापद्यपि ऋत्विगादीन् धनवतोऽपि न घातयीत धनहरणेन न हिंस्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥ ग्रामवास्तव्या ग्रामवासिनः ॥ ११ ॥ ऋत्विगादीनां निंदाऽपि न श्रोतव्येत्याह–**न वाच्य इति** ॥ १२ ॥ **अपरे इति** । एवं ऋत्विगादीनामदण्डनं शंखेन लिखितस्य भ्रातुरपि हस्तच्छेदः कृतस्तादृशधर्मपराः इदमपि वाक्यं मात्सर्यादिना न ब्रूयात् । धर्मेण तु ब्रूयादेवेत्यपरे इच्छन्ति ॥ १६ ॥ आर्षं–

'गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्' इति ।

तादृक् विकर्मस्थं न पातयेदित्येवंरूपम् ॥ १७ ॥ स्वमतमाह–**देवता इति** । दैवमेव पापिष्ठं ऋत्विगादि दंडयति । राजा तु तत्रोदासीतैवेति भावः॥१८॥सर्वतः सर्वात्मना सत्कृतः श्रौतो धर्मः आदृतः ।सद्भिर्मन्वादिभिः सत्कृतः स्मार्तधर्मः । भूतिप्रवरकारणैः भूतिप्रवरा ईश्वराः कारणानि पारंपर्यागतानि कुलदेशग्रामादिपरिगृहीतानि तैरपि निमित्तैः सत्कृतः । मन्वादिभिरनुक्तोऽपि शिष्टैरादृत इत्यर्थः । हेतुत्रयाभावेऽपि स्वयं च यो धर्मत्वेन निश्चितः एवं चतुर्भिः कारणैर्धर्मः सिध्यति न तदनुमतिर्ऋत्विगादीनां दंडे दृश्यत इति भावः ॥१९॥ चत्वारो गुणाः आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति य एषामविरुद्धश्चतुर्गुणसंपन्नः ॥ २० ॥ पदं भूमौ निहितं पदं स्थानं लक्षेत् लक्षयेत् नयेत् अन्यान्प्रापयेत् युक्त्येति शेषः॥२१॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

# १३३

भीष्म उवाच ।
स्वराष्ट्रात्परराष्ट्राच्च कोशं संजनयेन्नृपः ।
कोशाद्धि धर्मः कौन्तेय राज्यमूलं च वर्धते
तस्मात्संजनयेत्कोशं सत्कृत्य परिपालयेत् ।
परिपाल्यानुतनुयादेष धर्मः सनातनः ॥ २
न कोशः शुद्धशौचेन न नृशंसेन जातुचित् ।
मध्यमं पदमास्थाय कोशसंग्रहणं चरेत् ॥ ३
अबलस्य कुतः कोशो ह्यकोशस्य कुतो बलम्
अबलस्य कुतो राज्यमराज्ञः श्रीर्भवेत्कुतः ४
उच्चैर्वृत्तेः श्रियो हानिर्यथैव मरणं तथा ।
तस्मात्कोशं बलं मित्रमथ राजा विवर्धयेत्
हीनकोशं हि राजानमवजानन्ति मानवाः ।
न चास्याल्पेन तुष्यन्ति कार्यमप्युत्सहन्ति च
श्रियो हि कारणाद्राजा
सत्क्रियां लभते पराम् ।
साऽस्य गूहति पापानि
वासो गुह्यमिव स्त्रियाः ॥ ७
ऋद्धिमस्यानुतप्यन्ते पुरा विप्रकृता नराः ।
शालावृका इवाजस्रं जिघांसुमेव विन्दति ८
ईदृशस्य कुतो राज्ञः सुखं भवति भारत ।
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ॥ ९
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ।
अप्यरण्यं समाश्रित्य चरेन्मृगगणैः सह १०
न त्वेवोज्झितमर्यादैर्दस्युभिः सहितश्चरेत् ।
दस्यूनां सुलभा सेना रौद्रकर्मसु भारत ११
एकान्ततो ह्यमर्यादात्सर्वोऽप्युद्विजते जनः ।
दस्यवोऽप्यभिशङ्कन्ते निरनुक्रोशकारिणः ॥
स्थापयेदेव मर्यादां जनचित्तप्रसादिनीम् ।
अल्पेऽप्यर्थे च मर्यादा लोके भवति पूजिता
नायं लोकोऽस्ति न पर इति व्यवसितो जनः
नालं गन्तुं हि विश्वासं नास्तिके भयशङ्किते
यथा सद्भिः परादानमहिंसा दस्युभिः कृता
अनुरज्यन्ति भूतानि समर्यादेषु दस्युषु १५
अयुध्यमानस्य वधो दारामर्षः कृतघ्नता ।
ब्रह्मवित्तस्य चादानं निःशेषकरणं तथा १६
स्त्रिया मोषः पतिस्थानं दस्युष्वेतद्विगर्हितम्
संश्लेषं च परस्त्रीभिर्दस्युरेतानि वर्जयेत् १७
अभिसंदधते ये च विश्वासायास्य मानवाः ।
अशेषमेवोपलभ्य कुर्वन्तीति विनिश्चयः १८
तस्मात्सशेषं कर्तव्यं स्वाधीनमपि दस्युभिः ।
न बलस्थोऽहमस्मीति नृशंसानि समाचरेत् ॥
सशेषकारिणस्तत्र शेषं पश्यन्ति सर्वशः ।
निःशेषकारिणो नित्यं निःशेषकरणाद्भयम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ [ ३ ]

---

१३३

**स्वराष्ट्रादिति** । राजधर्मान्ते उक्तस्यापन्नस्य यायिन उक्तां स्थितिं दृढीकर्तुमयमध्यायः ॥ १ ॥ अनुतनुयादनुगृह्णीयात् ॥ २ ॥ उच्चैर्वृत्तेः महतः ॥ ५ ॥ कार्यमपि कर्तुं नोत्सहन्ति ॥ ६ ॥ विप्रकृताः कृतविरोधाः शालावृकवत् जिघांसुमेनमेव विन्दन्ति आश्रयन्ति कपटेन हन्तुं प्राप्त्यर्थस्य विन्दते रूपं आर्षो वचनव्यत्ययः ॥ ८ ॥ दस्युभिः दस्युप्रायैरमात्यैः अत्यन्तापन्नस्य वनस्था दस्यवोऽपि कार्यकरा इत्याह-**दस्यूनामिति** ॥ ११ ॥ तेष्वपि सत्येन मार्दवेन च स्थेयमित्याह-**एकान्तत इति** ॥ १२ ॥ जनः प्राकृतः अलं पर्याप्तं युक्तमित्यर्थः ॥ १४ ॥ सद्भिर्दस्युभिः परादानं परस्वहरणमपि कृतं अहिंसा भवति तथा वक्ष्ये इति शेषः ॥ १५ ॥ तदेवाह-**अयुध्यमानस्येति** । निःशेषकरणं सर्वहरणम् ॥ १६ ॥ स्त्रियाः कन्यायाः मोषश्चौर्यं दारामर्षस्य प्रागुक्तेः पतिस्थानं ग्रामादीनाक्रम्य तत्पतित्वेनावस्थानम् आत्यन्तिकपरवृत्तिनिरोधात् । संश्लेषं सख्योऽविभागे दूषणम् ॥ १७ ॥ ये मानवाः निःशेषीकृतास्तेऽस्य दस्योर्विश्वासायाभिसंदधते दस्युना सह विश्वासः कर्तव्य इति व्यवस्यन्ति ततश्च विश्वासे जाते दस्योः स्थानादिकमुपलभ्य अशेषं दस्योरपि निःशेषं धनसंतानादिकं कुर्वन्ति ॥ १८ ॥ यस्मादेवं तस्मात् सशेषमेव परलुंपनं कर्तव्यम् ॥ १९ ॥ यो यथा करोति तथैव प्रजाः कुर्वन्तीत्याह-**सशेषेति** ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

## १३४

भीष्म उवाच ।

अत्र धर्मानुवचनं कीर्तयन्ति पुराविदः ।
प्रत्यक्षावेव धर्माथौं क्षत्रियस्य विजानतः १
तत्र न व्यवधातव्यं परोक्षा धर्मयापना ।
अधर्मो धर्म इत्येतद्यथा वृकपदं तथा ॥ २
धर्माधर्मफले जातु ददर्शेह न कश्चन ।
बुभूषेद्बलमेवैतत्सर्वं बलवतो वशे ॥ ३
श्रियो बलममात्यांश्च बलवानिह विन्दति ।
यो ह्यनाढ्यः स पतितस्तदुच्छिष्टं यदल्पकम्
बह्वपथ्यं बलवति न किंचित्क्रियते भयात् ।
उभौ सत्याधिकारस्थौ त्रायेते महतो भयात्
अतिधर्माद्बलं मन्ये बलाद्धर्मः प्रवर्तते ।
बले प्रतिष्ठितो धर्मो धरण्यामिव जङ्गमम् ६
धूमो वायोरिव वशे बलं धर्मोऽनुवर्तते ।
अनीश्वरो बले धर्मो द्रुमे वल्लीव संश्रिता ७
वशे बलवतां धर्मः सुखं भोगवतामिव ।
नास्त्यसाध्यं बलवतां सर्वं बलवतां शुचि ८
दुराचारः क्षीणबलः परित्राणं न गच्छति ।
अथ तस्मादुद्विजते सर्वो लोको वृकादिव ९
अपध्वस्तो ह्यवमतो दुःखं जीवति जीवितम्
जीवितं यदपकृष्टं यथैव मरणं तथा ॥ १०
यदेवमाहुः पापेन चारित्रेण विवर्जितः ।
सुभृशं ताप्य तेनैव वाक्शल्येन परिक्षतः ११
अत्रैतदाहुराचार्याः पापस्य परिमोक्षणे ।
त्रयीं विद्यामवेक्षेत तथोपासीत वै द्विजान् ॥
प्रसादयेच्चक्षुषा च वाचा चाप्यथ कर्मणा ।
महामनाश्चापि भवेद्विवहेच्च महाकुले ॥ १३
इत्यस्मीति वदेदेवं परेषां कीर्तयेद् गुणान् ।
जपेदुदकशीलः स्यात्पेशलो नातिजल्पकः ॥
ब्रह्मक्षत्रं संप्रविशेद्बहु कृत्वा सुदुष्करम् ।
उच्यमानो हि लोकेन बहुकृत्तदचिन्तयन् १५
अपापो ह्येवमाचारः क्षिप्रं बहुमतो भवेत् ।
सुखं च चित्रं भुञ्जीत कृतेनैकेन गोपयेत् १६
लोके च लभते पूजां परत्रेह महत्फलम् १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३४ ॥ [ ४ ]

## १३५

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यथा दस्युः समर्यादः प्रेत्यभावे न नश्यति ॥ १

---

### १३४

**अत्रेति** । प्रत्यक्षौ दुःखस्य कारणं सर्वस्वादानमपि दुःखस्य कारणं स्तेयमपि धर्मः॥१॥ तस्माद्व्यवधानं शास्त्रोक्तधर्माधर्मविचारेणादृष्टसुखेऽन्तरायो न कर्तव्यः धर्मयापना धर्मोपदेशः परोक्षः दृष्टफलस्याभावादविश्वास्य इत्यर्थः वृकपदं यथा तथेदं किमिदं भूमौ वृकस्य पदं उत शुनः उत चित्रव्याघ्रस्येत्ययं विचारो व्यर्थस्तथायं धर्मोऽधर्मो वेति विचारोऽपि ॥ २ ॥ **धर्मेति** । अदृष्टफलौ धर्माधर्मावपास्य ।

'विद्याभिजनमित्राणि बुद्धिसत्त्वधनानि च ।
तपःसहायवीर्याणि दैवं च दशमं बलम् ' इति ।

विशालोक्तं दशविधं बलमेवाश्रयेदित्यर्थः ॥ ३ ॥ श्रियो धनानि बलं विन्दन्ति । बलवांश्चामात्यादींविन्दति अतः श्रीरेव सर्वमूलं तद्रहित एव पतितो न त्वधर्मकारीत्यर्थमात्रमिदम् । आततायिश्रोत्रियस्मृतिवत् ॥४॥ **बलवति** बहु अपथ्यं दृष्ट्वाऽपि भयात्स न किंचित्क्रियते पतितोऽयमिति न बहिः क्रियते । उभौ बलधर्मौ ॥ ५ ॥ अनयोर्मध्ये बलमेव श्रेय इत्याह—**अतीति** ॥ ६ ॥ अपध्वस्तः ऐश्वर्याच्च्युतः अपकृष्टं निन्दितम् ॥ १० ॥ वर्जितस्त्यक्तो बान्धवैरिति शेषः । ताप्य तापयित्वा परिक्षतः क्रियत इति शेषः ॥ ११ ॥ अत्र अधर्मेण धनार्जने कृते सति ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

### १३५

'ननु प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' इति न्यायेन दस्युकर्मैव राज्ञा न कर्तव्यं कृतेऽपि प्रायश्चित्तकालावधि जीवनानियमादन्तरा मरणे सति अक्षय्यनरकप्राप्तिरित्याशंक्य दस्यूनामपि स्वर्गोऽस्तीत्याह–**अत्रापीत्यादिना।** प्रेत्यभावे मरणे न नश्यति न निरयं प्राप्नोति ॥ १ ॥

प्रहर्ता मतिमान् शूरः
श्रुतवान् सुनृशंसवान् ।
रक्षन्नाश्रमिणां धर्मं
ब्रह्मण्यो गुरुपूजकः ॥ २
निषाद्यां क्षत्रियाज्जातः
क्षत्रधर्मानुपालकः ।
कायव्यो नाम नैषादि-
र्दस्युत्वात्सिद्धिमाप्तवान् ॥ ३
अरण्ये सायं पूर्वाह्णे मृगयूथप्रकोपिता ।
विधिज्ञो मृगजातीनां नैषादानां च कोविदः
सर्वकालप्रदेशज्ञः पारियात्रचरः सदा ।
धर्मज्ञः सर्वभूतानाममोघेषुर्दृढायुधः ॥ ५
अप्यनेकशतां सेनामेक एव जिगाय सः ।
स वृद्धावन्धबधिरौ महारण्येऽभ्यपूजयत् ६
मधुमांसैर्मूलफलैरन्नैरुच्चावचैरपि ।
सत्कृत्य भोजयामास मान्यान्परिचचार च
आरण्यकान् प्रव्रजितान्
ब्राह्मणान् परिपूजयन् ।
अपि तेभ्यो मृगान् हत्वा
निनाय सततं वने ॥ ८
येऽस्मान्न प्रतिगृह्णन्ति दस्युभोजनशङ्कया ।
तेषामासज्य गेहेषु कल्य एव स गच्छति ९
बहूनि च सहस्राणि ग्रामणित्वेऽभिवव्रिरे ।
निर्मर्यादानि दस्यूनां निरनुक्रोशवर्तिनाम् ॥
दस्यव ऊचुः ।
मुहूर्तदेशकालज्ञः प्राज्ञः शूरो दृढव्रतः ।
ग्रामणीर्भवनो मुख्यः सर्वेषामेव सङ्गतः ११
यथा यथा वक्ष्यसि नः करिष्यामस्तथा तथा
पालयास्मान्यथान्यायं यथा माता यथा पिता
कायव्य उवाच ।
मा वधीस्त्वं स्त्रियं भीरुं
मा शिशुं मा तपस्विनम् ।
नायुद्ध्यमानो हन्तव्यो
न च ग्राह्या बलात्स्त्रियः ॥ १३
सर्वथा स्त्री न हन्तव्या सर्वसत्त्वेषु केनचित्
नित्यं तु ब्राह्मणे स्वस्ति योद्धव्यं च तदर्थतः ॥
सत्यं च नापि हर्तव्यं सारविघ्नं च मा कृथाः
पूज्यन्ते यत्र देवाश्च पितरोऽतिथयस्तथा १५
सर्वभूतेष्वपि च वै ब्राह्मणो मोक्षमर्हति ।
कार्या चोपचितिस्तेषां सर्वस्वेनापि या भवेत्
यस्य ह्येते संप्ररुष्टा मन्त्रयन्ति पराभवम् ।
न तस्य त्रिषु लोकेषु त्राता भवति कश्चन १७
यो ब्राह्मणान्परिवदेद्विनाशं चापि रोचयेत् ।
सूर्योदय इव ध्वान्ते ध्रुवं तस्य पराभवः १८
इहैव फलमासीनः
प्रत्याकाङ्क्षेत सर्वशः ।
ये ये नो न प्रदास्यन्ति
तांस्तांस्तेनाभियास्यसि ॥ १९
शिष्ट्यर्थं विहितो दण्डो न वृद्ध्यर्थं विनिश्चयः
ये च शिष्टान्प्रबाधन्ते दण्डस्तेषां वधः स्मृतः
ये च राष्ट्रोपरोधेन वृद्धिं कुर्वन्ति केचन ।
तदैव तेऽनुमार्यन्ते कुणपे कृमयो यथा । २१
ये पुनर्धर्मशास्त्रेण वर्तेरन्निह दस्यवः ।
अपि ते दस्यवो भूत्वा क्षिप्रं सिद्धिमवाप्नुयुः
भीष्म उवाच ।
ते सर्वमेवानुचक्रुः कायव्यस्यानुशासनम्।
वृद्धिं च लेभिरे सर्वे पापेभ्यश्चाप्युपारमन् ॥
कायव्यः कर्मणा तेन महतीं सिद्धिमाप्तवान्
साधूनामाचरन् क्षेमं दस्यून्पापान्निवर्तयन् ॥
इदं कायव्यचरितं यो नित्यमनुचिन्तयेत् ।
नारण्येभ्यो हि भूतेभ्यो भयं प्राप्नोति किञ्चन
न भयं तस्य भूतेभ्यः सर्वेभ्यश्चैव भारत ।
नासतो विद्यते राजन् स ह्यरण्येषु गोपतिः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कायव्यचरिते
पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ [ ५ ]

---

पारियात्रः पर्वतविशेषः ॥ ५ ॥ वृद्धौ मातापितरौ ॥ ६ ॥ आसज्य कश्चिन्निधाय कल्ये प्रातः ॥ ९ ॥ वव्रिरे तमिति शेषः ॥ १० ॥ मा वधीस्त्वमित्येकवचनं गणाभिप्रायेण ॥ १३ ॥ स्वस्ति कल्याणं चिन्तनीयम् ॥ १४ ॥ सारो विवाहादि कार्यं तत्र विघ्नं मा कृथाः ॥१५॥ उपचिति-र्वृद्धिः ॥ १६ ॥ ध्वान्ते ध्वान्तस्य ॥ १८ ॥ ये ये वणिजः नः अस्मभ्यम् ॥ १९ ॥ शिष्ट्यर्थं दुष्टानां शासनार्थम् ॥ २० ॥ कुणपे कृमयो यथा दुःखदत्वात्सद्यो मार्यन्ते एवं तेऽपि वध्या इत्यर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

## १३६

भीष्म उवाच ।
अत्र गाथा ब्रह्मगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः
येन मार्गेण राजा वै कोशं सञ्जनयत्युत ॥ १
न धनं यज्ञशीलानां हार्यं देवस्वमेव च ।
दस्यूनां निष्क्रियाणां च क्षत्रियो हर्तुमर्हति २
इमाः प्रजाः क्षत्रियाणां राज्यभोगाश्च भारत
धनं हि क्षत्रियस्यैव द्वितीयस्य न विद्यते ३
तदस्य स्याद्बलार्थं वा
धनं यज्ञार्थमेव च ।
अभोग्याश्चौषधीश्छित्त्वा
भोग्या एव पचन्त्युत ॥ ४
यो वै न देवान्न पितॄन्न मर्त्यान्हविषाऽर्चति ।
अनर्थकं धनं तत्र प्राहुर्धर्मविदो जनाः ॥ ५
हरेत द्रविणं राजन् धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
ततः प्रीणयते लोकं न कोशं तद्विधं नृपः ६
असाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यो यः प्रयच्छति
आत्मानं संक्रमं कृत्वा कृत्स्नधर्मविदेव सः ७
तथा तथा जयेल्लोकान्
शक्त्या चैव यथा यथा ।
उद्भिज्जा जन्तवो यद्व-
च्छुक्लजीवा यथा यथा ॥ ८
अनिमित्तात्संभवन्ति तथाऽयज्ञः प्रजायते ९
यथैव दंशमशकं यथा चाण्डपिपीलिकम् ।
सैव वृत्तिरयज्ञेषु यथा धर्मो विधीयते ॥ १०
यथा ह्यकस्माद्भवति भूमौ पांसुर्विलोलितः ।
तथैवेह भवेद्धर्मः सूक्ष्मः सूक्ष्मतरस्तथा ॥ ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि
षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ [ ६ ]

## १३७

भीष्म उवाच ।
अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिश्च यः ।
द्वावेव सुखमेधेते दीर्घसूत्री विनश्यति ॥ १
अत्रैव चेदमव्यग्रं शृणुष्वाख्यानमुत्तमम् ।
दीर्घसूत्रमुपाश्रित्य कार्याकार्यविनिश्चये ॥ २
नातिगाधे जलाधारे सुहृदः कुशलास्त्रयः ।
प्रभूतमत्स्ये कौन्तेय बभूवुः सहचारिणः ॥ ३
तत्रैको दीर्घकालज्ञ उत्पन्नप्रतिभोऽपरः ।
दीर्घसूत्रश्च तत्रैकस्त्रयाणां सहचारिणाम् ॥ ४
कदाचित्तं जलस्थायं मत्स्यबन्धाः समन्ततः
निस्रावयामासुरथो निम्नेषु विविधैर्मुखैः ॥ ५
प्रक्षीयमाणं तं दृष्ट्वा जलस्थायं भयागमे ।
अब्रवीद्दीर्घदर्शी तु तावुभौ सुहृदौ तदा ॥ ६
इयमापत्समुत्पन्ना सर्वेषां सलिलौकसाम् ।
शीघ्रमन्यत्र गच्छामः पन्था यावन्न दुष्यति ७
अनागतमनर्थं हि सुनयैर्यः प्रबाधयेत् ।
स न संशयमाप्नोति रोचतां भो व्रजामहे ८
दीर्घसूत्रस्तु यस्तत्र सोऽब्रवीत्सम्यगुच्यते ।
न तु कार्या त्वरा तावदिति मे निश्चिता मतिः
अथ संप्रतिपत्तिज्ञः प्राब्रवीद्दीर्घदर्शिनम् ।
प्राप्ते काले न मे किञ्चिन्न्यायतः परिहास्यते

---

१३६

**अत्र गाथा इति** ॥ १ ॥ औषधीश्छित्त्वा ताभि-रिन्धनीकृताभिर्भोग्या व्रीह्याद्याः दुष्टान् हिंसित्वा साधून् पालयेदिति भावः ॥ ४ ॥ द्वितीया उपमा शुक्लजीवाः वम्रीसंज्ञाः उद्भिद्य भुवं जायन्ते इत्युद्भिज्जाः पिपीलिका-दयो यथा शनैर्दूरमपि गच्छन्त्येवं परलोकमाक्रमेत् ॥८॥ अयज्ञ इति छेदः ॥ ९ ॥ सैव यथा दंशाद्या गवादि-भ्योऽपोह्यन्ते एवं राष्ट्रादयज्ञा अपि अपोह्याः। अयमेव धर्म इति भावः ॥१०॥ विलोलितः शिलायां शिलया पिष्टः सूक्ष्मः सूक्ष्मतरश्च भवत्येवं धर्मोऽपि ॥११॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

१३७

**अनागतेति** ॥ १ ॥ • सहचारिणोऽन्येऽप्यासन्निति शेषः ॥ ४ ॥ जलस्थायं क्षुद्रजलाशयं निम्नेषु प्रदेशेषु विविधैर्मुखैर्जलनिर्गमनमार्गैर्निःस्रावयामासुः ॥५॥

एवं श्रुत्वा निराक्रम्य दीर्घदर्शी महामतिः ।
जगाम स्रोतसा तेन गम्भीरं सलिलाशयम्
ततः प्रसृततोयं तं प्रसमीक्ष्य जलाशयम् ।
बबन्धुर्विविधैर्योगैर्मत्स्यान्मत्स्योपजीविनः
विलोड्यमाने तस्मिंस्तु स्रुततोये जलाशये ।
अगच्छद्बन्धनं तत्र दीर्घसूत्रः सहापरैः ॥ १३
उद्दाने क्रियमाणे तु मत्स्यानां तत्र रज्जुभिः
प्रविश्यान्तरमेतेषां स्थितः संप्रतिपत्तिमान्
गृह्यमेव तदुद्दानं गृहीत्वा तं तथैव सः ।
सर्वानेव च तांस्तत्र ते विदुर्ग्रथितानिति १५
ततः प्रक्षाल्यमानेषु
मत्स्येषु विपुले जले ।
मुक्त्वा रज्जुं प्रमुक्तोऽसौ
शीघ्रं संप्रतिपत्तिमान् ॥ १६
दीर्घसूत्रस्तु मन्दात्मा हीनबुद्धिरचेतनः ।
मरणं प्राप्तवान् मूढो यथैवोपहतेन्द्रियः १७
एवं प्राप्ततमं कालं यो मोहान्नावबुध्यते ।
स विनश्यति वै क्षिप्रं दीर्घसूत्रो यथा झषः
आदौ न कुरुते श्रेयः
कुशलोऽस्मीति यः पुमान् ।
स संशयमवाप्नोति
यथा संप्रतिपत्तिमान् ॥ १९
अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिश्च यः ।
द्वावेव सुखमेधेते दीर्घसूत्रो विनश्यति ॥ २०
काष्ठा कला मुहूर्ताश्च
दिवा रात्रिस्तथा लवाः ।
मासाः पक्षाः षड् ऋतवः
कल्पः संवत्सरास्तथा ॥ २१
पृथिवी देश इत्युक्तः कालः स च न दृश्यते ।
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं ध्यायते यच्च तत्तथा २२
एतौ धर्मार्थशास्त्रेषु मोक्षशास्त्रेषु चर्षिभिः ।
प्रधानाविति निर्दिष्टौ कामे चाभिमतौ नृणाम्
परीक्ष्यकारी युक्तश्च स सम्यगुपपादयेत् ।
देशकालावभिप्रेतौ ताभ्यां फलमवाप्नुयात् २४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि शाकुलोपाख्याने सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ [ ७ ]

---

## १३८

युधिष्ठिर उवाच ।
सर्वत्र बुद्धिः कथिता श्रेष्ठा ते भरतर्षभ ।
अनागता तथोत्पन्ना दीर्घसूत्रा विनाशिनी १
तदिच्छामि तदा श्रोतुं बुद्धिं ते भरतर्षभ ।
यथा राजा न मुह्येत शत्रुभिः परिवारितः २
धर्मार्थकुशलो राजा धर्मशास्त्रविशारदः ।
पृच्छामि त्वां कुरुश्रेष्ठ तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
शत्रुभिर्बहुभिर्ग्रस्तो यथा वर्तेत पार्थिवः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वमेव यथाविधि ४
विषमस्थं हि राजानं शत्रवः परिपन्थिनः ।
बहवोऽप्येकमुद्धर्तुं यतन्ते पूर्वतापिताः ॥ ५
सर्वत्र प्रार्थ्यमानेन दुर्बलेन महाबलैः ।
एकेनैवासहायेन शक्यं स्थातुं भवेत्कथम् ६

---

श्रुत्वा तयोर्वचनं इति शेषः । तेन रेचनमार्गेण सलिलाशयं जलाशयान्तरम् ॥ ११ ॥ योगैर्जलस्याकुलीकरणादिभिरुपायैः ॥ १२ ॥ उद्दाने ग्रथने एतेषां ग्रथितानां मत्स्यानामन्तरं प्रविश्य स्थितः ॥१४॥ गृह्यमिति । तदुद्दानं ग्रथनसूत्रं गृह्यं गृह्णातीति गृह्यं सूत्रं मुखेनावलम्ब्यावस्थितं तं मत्स्यं ते मत्स्यवेधाः गृहीत्वा सर्वानेव ग्रथितान् विदुः स च मत्स्यः तथैव गृहीतवदेव तत्रास्ते इति शेषः ॥ १५ ॥ काष्ठेति । कालस्य देशस्य च सूक्ष्मतां अवहितो जानीयात् इति श्लोकद्वयार्थः ॥ २१ ॥ एतौ दीर्घदर्शिसंप्रतिपत्तिमन्तौ ॥ २३ ॥ ताभ्यां पञ्चमी । तदपेक्षयाऽपि परीक्ष्यकारी युक्तश्च विशिष्ट इत्यर्थः ॥ २४ ॥ शाकुलं मीनसम्बन्ध्युपाख्यानम् ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

---

१३८

सर्वत्रेति ॥ १ ॥ उद्धर्तुमुन्मूलयितुम् ॥ ५ ॥ सर्वत्र सर्वदिक्स्थैः प्रार्थ्यमानेन ग्रसितुमिति शेषः ॥६॥

कथं मित्रमरिं चापि विन्दते भरतर्षभ ।
चेष्टितव्यं कथं चात्र शत्रोर्मित्रस्य चान्तरे ७
प्रज्ञातलक्षणे मित्रे तथैवामित्रतां गते ।
कथं तु पुरुषः कुर्यात्कृत्वा किं वा सुखी भवेत्
विग्रहं केन वा कुर्यात्सन्धिं वा केन योजयेत्
कथं वा शत्रुमध्यस्थो वर्तेत बलवानपि ॥ ९
एतद्वै सर्वकृत्यानां परं कृत्यं परंतप ।
नैतस्य कश्चिद्वक्तास्ति श्रोता वापि सुदुर्लभः
ऋते शान्तनवाद्भीष्मात
सत्यसन्धाज्जितेन्द्रियात् ।
तदन्विष्य महाभाग
सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ ११
भीष्म उवाच ।
त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो युधिष्ठिर सुखोदयः ।
शृणु मे पुत्र कात्स्न्र्येन गुह्यमापत्सु भारत ॥
अमित्रो मित्रतां याति
मित्रं चापि प्रदुष्यति ।
सामर्थ्ययोगात्कार्याणा-
मनित्या वै सदा गतिः ॥ १३
तस्माद्विश्वसितव्यं च विग्रहं च समाचरेत् ।
देशं कालं च विज्ञाय कार्याकार्यविनिश्चये ॥
संधातव्यं बुधैर्नित्यं व्यवस्य च हितार्थिभिः
अमित्रैरपि सन्धेयं प्राणा रक्ष्या हि भारत ॥
यो ह्यमित्रैर्नरो नित्यं न सन्दध्यादपण्डितः ।
न सोऽर्थं प्राप्नुयात्किञ्चित्फलान्यपि च भारत
यस्त्वमित्रेण सन्दध्यान्मित्रेण च विरुध्यते ।
अर्थयुक्तिं समालोक्य सुमहद्विन्दते फलम् १७
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मार्जारस्य च संवादं न्यग्रोधे मूषिकस्य च
वने महति कस्मिंश्चिन्न्यग्रोधः सुमहानभूत् ।
लताजालपरिच्छिन्नो नानाद्विजगणान्वितः
स्कन्धवान्मेघसङ्काशः शीतच्छायो मनोरमः
अरण्यमभितो जातः स तु व्यालमृगाकुलः
तस्य मूलं समाश्रित्य कृत्वा शतमुखं बिलम्
वसति स्म महाप्राज्ञः पलितो नाम मूषिकः
शाखां तस्य समाश्रित्य वसति स्म सुखं पुरा
लोमशो नाम मार्जारः पक्षिसंघातखादकः ॥
तत्र चागत्य चाण्डालो ह्यरण्ये कृतकेतनः।
प्रयोजयति चोन्माथं नित्यमस्तङ्गते रवौ २३
तत्र स्नायुमयान् पाशान् यथावत्संविधाय सः
गृहं गत्वा सुखं शेते प्रभातामेति शर्वरीम् ॥
तत्र स्म नित्यं बध्यन्ते नक्तं बहुविधा मृगाः
कदाचिदत्र मार्जारस्त्वप्रमत्तो *ऽयबध्यत२५
तस्मिन् बद्धे महाप्राणे शत्रौ नित्याततायिनि
तं कालं पलितो ज्ञात्वा प्रचचार सुनिर्भयः
तेनानुचरता तस्मिन्वने विश्वस्तचारिणा ।
भक्ष्यं मृगयमाणेन चिराद्दृष्टं तदामिषम् २७
स तमुन्माथमारुह्य तदामिषमभक्षयत् ॥ २८
तस्योपरि सपत्नस्य बद्धस्य मनसा हसन् ।
आमिषे तु प्रसक्तः स कदाचिदवलोकयन् ॥
अपश्यदपरं घोरमात्मनः शत्रुमागतम् ।
शरप्रसूनसङ्काशं महीविवरशायिनम् ॥ ३०
नकुलं हरिणं नाम चपलं ताम्रलोचनम् ।
तेन मूषिकगन्धेन त्वरमाणमुपागतम् ॥ ३१
भक्ष्यार्थं संलिहानं तं भूमावूर्ध्वमुखं स्थितम् ।
शाखागतमरिं चान्यमपश्यत्कोटरालयम् ॥
उलूकं चन्द्रकं नाम तीक्ष्णतुण्डं क्षपाचरम् ।
गतस्य विषयं तत्र नकुलोलूकयोस्तथा॥३३
अथास्यासीदियं चिन्ता तत्प्राप्य सुमहद्भयम्
आपद्यस्यां सुकष्टायां मरणे प्रत्युपस्थिते ३४
समन्ताद्भय उत्पन्ने कथं कार्यं हितैषिणा ।
स तथा सर्वतो रुद्धः सर्वत्र भयदर्शनः ॥ ३५
अभवद्भयसंतप्तश्चक्रे च परमां मतिम् ।
आपद्विनाशभूयिष्ठं गतैः कार्यं हि जीवितम्
समन्तात्संशयात्सैषा तस्मादापदुपस्थिता।
गतं मां सहसा भूमिं नकुलो भक्षयिष्यति ॥
उलूकश्चेह तिष्ठन्तं मार्जारः पाशसंक्षयात् ।
न त्वेवास्मद्विधः प्राज्ञः संमोहं गन्तुमर्हति॥
करिष्ये जीविते यत्नं यावद्युक्त्या प्रतिग्रहात्
न हि बुद्ध्यान्वितः प्राज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः
निमज्जत्यापदं प्राप्य महतीं दारुणामपि॥४०

---

प्राकृतकृत्रिमामित्रयोर्मध्ये केन सन्धिः कर्तव्यः केन वा वैरम् ॥९॥ व्यवस्य निश्चित्य॥१५॥ अत्र पूर्वश्लोकोक्तेऽर्थे॥१८॥ 'उन्माथं' कूटयन्त्रं पशुमृगपक्षिबन्धनम् ॥ २३ ॥ पलितो मूषिकः ॥ २६ ॥ तदामिषं तस्य उन्माथे धृतमामिषम् ॥ २८ ॥ सपत्नस्य सपत्नं बद्धं अनादृत्य ॥ २९ ॥ शरस्तृणविशेषस्तत्प्रसूनं पुष्पम् ॥ ३० ॥ गतैः आपद्गतैः जीवितं आपद्विनाशेन भूयिष्ठं प्रशस्तं कार्यम् ॥ ३६ ॥ स्पष्टोऽध्यायशेषः ॥ ३७ ॥ * मार्जारः संप्रवृत्तो-पा०

न त्वन्यामिह मार्जाराद्गतिं पश्यामि सांप्रतम्
विषमस्थो ह्ययं शत्रुः कृत्यं चास्य महन्मया ॥
जीवितार्थी कथं त्वद्य शत्रुभिः प्रार्थितस्त्रिभिः
तस्मादेनमहं शत्रुं मार्जारं संश्रयामि वै ४२
नीतिशास्त्रं समाश्रित्य हितमस्योपवर्णये ।
येनेमं शत्रुसंघातं मतिपूर्वेण वञ्चये ॥ ४३
अयमत्यन्तशत्रुर्मे वैषम्यं परमं गतः ।
मूढो ग्राहयितुं स्वार्थं सङ्गत्या यदि शक्यते
कदाचिद्व्यसनं प्राप्य सन्धिं कुर्यान्मया सह
बलिना सन्निकृष्टस्य शत्रोरपि परिग्रहः ४५
कार्य इत्याहुराचार्या विषमे जीवितार्थिना ।
श्रेष्ठो हि पण्डितः शत्रुर्न च मित्रमपण्डितः
मम त्वमित्रे मार्जारे जीवितं संप्रतिष्ठितम् ।
हन्तास्मै संप्रवक्ष्यामि हेतुमात्मभिरक्षणे ४७
अपीदानीमयं शत्रुः सङ्गत्या पण्डितो भवेत् ।
एवं विचिन्तयामास मूषिकः शत्रुचेष्टितम् ॥
ततोऽर्थगतितत्त्वज्ञः सन्धिविग्रहकालवित्
सांत्वपूर्वमिदं वाक्यं मार्जारं मूषिकोऽब्रवीत्
सौहृदेनाभिभाषे त्वां
कच्चिन्मार्जार जीवसि ।
जीवितं हि तवेच्छामि
श्रेयः साधारणं हि नौ ॥ ५०
न ते सौम्य भयं कार्यं जीविष्यसि यथासुखं
अहं त्वामुद्धरिष्यामि यदि मां न जिघांससि
अस्ति कश्चिदुपायोऽत्र दुष्करः प्रतिभाति मे
येन शक्यस्त्वया मोक्षः प्राप्तुं श्रेयस्तथा मया
मयाप्युपायो दृष्टोऽयं विचार्य मतिमात्मनः ।
आत्मार्थं च त्वदर्थं च श्रेयः साधारणं हि नौ
इदं हि नकुलोलूकं पापबुद्ध्याऽभिसंस्थितम् ।
न धर्षयति मार्जार तेन मे स्वस्ति सांप्रतम्
कूजंश्चपलनेत्रोऽयं कौशिको मां निरीक्षते ।
नगशाखाग्रगः पापस्तस्याहं भृशमुद्विजे ५५
सतां साप्तपदं मैत्रं स सखा मेऽसि पण्डितः
सांवास्यकं करिष्यामि नास्ति ते भयमद्य वै
न हि शक्तोऽसि मार्जार
पाशं छेत्तुं मया विना ।
अहं छेत्स्यामि पाशांस्ते
यदि मां त्वं न हिंससि ॥ ५७
त्वमाश्रितो द्रुमस्याग्रं मूलं त्वहमुपाश्रितः ।
चिरोषितावुभावावां वृक्षेऽस्मिन् विदितं च ते
यस्मिन्नाश्वासते कश्चिद्यश्च नाश्वसिति क्वचित्
न तौ धीराः प्रशंसन्ति नित्यमुद्विग्नमानसौ
तस्माद्विवर्धतां प्रीतिर्नित्यं संगतमस्तु नौ ।
कालातीतमिहार्थं तु न प्रशंसन्ति पण्डिताः
अर्थयुक्तिमिमां तत्र यथाभूतां निशामय ।
तव जीवितमिच्छामि त्वं ममेच्छसि जीवितं
कश्चित्तरति काष्ठेन सुगंभीरां महानदीम् ।
स तारयति तत्काष्ठं स च काष्ठेन तार्यते
ईदृशो नौ समायोगो
भविष्यति सुविस्तरः ।
अहं त्वां तारयिष्यामि
मां च त्वं तारयिष्यसि ॥ ६३
एवमुक्त्वा तु पलितस्तमर्थमुभयोर्हितम् ।
हेतुमद्ग्रहणीयं च कालापेक्षी न्यवेक्ष्य च ६४
अथ सुव्याहृतं श्रुत्वा तस्य शत्रोर्विचक्षणः।
हेतुमद्ग्रहणीयार्थं मार्जारो वाक्यमब्रवीत् ६५
बुद्धिमान्वाक्यसंपन्नस्तद्वाक्यमनुवर्णयन् ।
स्वामवस्थां समीक्ष्याथ साम्नैव प्रत्यपूजयत्
ततस्तीक्ष्णाग्रदशनो मणिवैदूर्यलोचनः ।
मूषिकं मन्दमुद्वीक्ष्य मार्जारो लोमशोऽब्रवीत्
नन्दामि सौम्य भद्रं ते
यो मां जीवितुमिच्छसि ।
श्रेयश्च यदि जानीषे
क्रियतां मा विचारय ॥ ६८
अहं हि भृशमापन्नस्त्वमापन्नतरो मम ।
द्वयोरापन्नयोः सन्धिः क्रियतां मा चिराय च
विधास्ये प्राप्तकालं यत्कार्यं सिद्धिकरं विभो
मयि कृच्छ्राद्विनिर्मुक्ते न विनंक्ष्यति ते कृतम्।
न्यस्तमानोऽस्मि भक्तोऽस्मि
शिष्यस्त्वद्धितकृत्तथा ।
निदेशवशवर्ती च
भवन्तं शरणं गतः ॥ ७१
इत्येवमुक्तः पलितो मार्जारं वशमागतम् ।
वाक्यं हितमुवाचेदमभिनीतार्थमर्थवित् ७२
उदारं यद्भवानाह नैतच्चित्रं भवद्विधे ।
विहितो यस्तु मार्गो मे हितार्थं शृणु तं मम
अहं त्वाऽनुप्रवेक्ष्यामि नकुलान्मे महद्भयम् ।
त्रायस्व भो मावधीस्त्वं शक्तोऽस्मि तव रक्षणे
उलूकाच्चैव मां रक्ष क्षुद्रः प्रार्थयते हि माम् ।
अहं छेत्स्यामि ते पाशान् सखे सत्येन ते शपे
तद्वचः संगतं श्रुत्वा लोमशो युक्तमर्थवत् ।
हर्षादुद्वीक्ष्य पलितं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥७६

तं संपूज्याथ पलितं मार्जारः सौहृदे स्थितः
स विचिन्त्याब्रवीद्धीरः प्रीतस्त्वरित एव च
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते त्वं मे प्राणसमः सखा
तव प्राज्ञ प्रसादाद्धि प्रायः प्राप्स्यामि जीवितं
यद्यदेवं गते नाथ शक्यं कर्तुं मया तव।
तदाज्ञापय कर्ताऽस्मि सन्धिरेवास्तु नौ सखे
अस्मात्तु संकटान्मुक्तः समित्रगणबान्धवः।
सर्वकार्याणि कर्ताऽहं प्रियाणि च हितानि च
मुक्तश्च व्यसनादस्मात्सौम्याहमपि नाम ते।
प्रीतिमुत्पादयेयं च प्रीतिकर्तुश्च सत्क्रियाम्

*प्रत्युपकुर्वन्बह्वपि
न भाति पूर्वोपकारिणा तुल्यः।
एकः करोति हि कृते
निष्कारणमेव कुरुतेऽन्यः॥ ८२

भीष्म उवाच।

ग्राहयित्वा तु तं स्वार्थं मार्जारं मूषिकस्तथा
प्रविवेश तु विश्रब्ध क्रोडमस्य कृतागसः ८३
एवमाश्वासितो विद्वान्मार्जारेण स मूषिकः
मार्जारोरसि विस्रब्धः सुष्वाप पितृमातृवत्
लीनं तु तस्य गात्रेषु मार्जारस्य च मूषिकम्
दृष्ट्वा तौ नकुलोलूकौ निराशौ प्रत्यपद्यताम्॥
तथैव तौ सुसंत्रस्तौ दृढमागततंद्रितौ।
दृष्ट्वा तयोः परां प्रीतिं विस्मयं परमं गतौ॥
बलिनौ मतिमन्तौ च सुवृत्तौ चाप्युपासितौ
अशक्तौ तु नयात्तस्मात्संप्रधर्षयितुं बलात्
कार्यार्थे कृतसन्धी तौ दृष्ट्वा मार्जारमूषिकौ।
उलूकनकुलौ तूर्णं जग्मतुस्तौ स्वमालयम् ८८
लीनः स तस्य गात्रेषु पलितो देशकालवित्।
चिच्छेद पाशान्नृपते कालापेक्षी शनैः शनैः॥
अथ बन्धपरिक्लिष्टो मार्जारो वीक्ष्य मूषिकम्
छिन्दन्तं वै तदा पाशानत्वरन्तं त्वरान्वितः
तमत्वरन्तं पलितं पाशानां छेदने तथा।
संचोदयितुमारेभे मार्जारो मूषिकं तदा ॥९१
किं सौम्य नातित्वरसे किं कृतार्थोऽवमन्यसे
छिन्धि पाशानमित्रघ्न पुरा श्वपच एति च
इत्युक्तस्त्वरता तेन मतिमान्पलितोऽब्रवीत्
मार्जारमकृतप्रज्ञं पथ्यमात्माहितं वचः॥ ९३
तूष्णीं भव न ते सौम्य त्वरा कार्या न संभ्रमः
वयमेवात्र कालज्ञा न कालः परिहास्यते ९४
अकाले कृत्यमारब्धं कर्तुर्नार्थाय कल्पते।
तदेव काल आरब्धं महतेऽर्थाय कल्पते ९५
अकाले विप्रमुक्तान्मे त्वत्त एव भयं भवेत्।
तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व किमिति त्वरसे सखे
यदा पश्यामि चाण्डालमायान्तं शस्त्रपाणिनं
ततश्छेत्स्यामि ते पाशान् प्राप्ते साधारणे भये
तस्मिन्काले प्रमुक्तस्त्वं तरुमेवाधिरोक्ष्यसे।
न हि ते जीवितादन्यत्किंचित्कृत्यं भविष्यति
ततो भवत्यपक्रान्ते त्रस्ते भीते च लोमश।
अहं बिलं प्रवेक्ष्यामि भवान् शाखां भजिष्यति
एवमुक्तस्तु मार्जारो मूषिकेणात्मनो हितम्
वचनं वाक्यतत्त्वज्ञो जीवितार्थी महामतिः
अथात्मकृत्ये त्वरितः सम्यक् प्रश्रितमाचरन्।
उवाच लोमशो वाक्यं मूषिकं चिरकारिणं
न ह्येवं मित्रकार्याणि प्रीत्या कुर्वन्ति साधवः
यथा त्वं मोक्षितः कृच्छ्रात्त्वरमाणेन वै मया
तथा हि त्वरमाणेन त्वया कार्यं हितं मम।
यत्नं कुरु महाप्राज्ञ यथा रक्षाऽऽवयोर्भवेत्॥
अथवा पूर्ववैरं त्वं स्मरन्कालं जिहीर्षसि।
पश्य दुष्कृतकर्मस्त्वं व्यक्तमायुः क्षयं तव ॥४
यदि किंचिन्मयाऽज्ञानात्पुरस्ताद्दुष्कृतं कृतम्
न तन्मनसि कर्तव्यं क्षामये त्वां प्रसीद मे ५
तमेवंवादिनं प्राज्ञः शास्त्रबुद्धिसमन्वितः।
उवाचेदं वचः श्रेष्ठं मार्जारं मूषिकस्तदा ॥ ६
श्रुतं मे तव मार्जार स्वमर्थं परिगृह्णतः।
ममापि त्वं विजानासि स्वमर्थं परिगृह्णतः ७
यन्मित्रं भीतवत्साध्यं यन्मित्रं भयसंहितम्।
सुरक्षितव्यं तत्कार्यं पाणिः सर्पमुखादिव ८
कृत्वा बलवता सन्धिमात्मानं यो न रक्षति
अपथ्यमिव तद्भुक्तं तस्य नार्थाय कल्पते॥ ९

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं
न कश्चित्कस्यचित्सुहृत्।
अर्थतस्तु निबध्यन्ते
मित्राणि रिपवस्तथा॥ १०

अर्थैरर्था निबध्यन्ते गजैर्वनगजा इव।
न च कश्चित्कृते कार्ये कर्तारं समवेक्षते ११

तस्मात्सर्वाणि कार्याणि
सावशेषाणि कारयेत्।
तस्मिन्कालेऽपि च भवान्
दिवाकीर्तिभयार्दितः॥ १२

* क्वाचित्कमिदं वृत्तं प्रायोऽस्मिन्ग्रन्थे।

मम न ग्रहणे शक्तः पलायनपरायणः।
छिन्नं तु तन्तुबाहुल्यं तन्तुरेकोऽवशेषितः १३
छेत्स्याम्यहं तमप्याशु निर्वृतो भव लोमश।
तयोः संवदतोरेवं तथैवापन्नयोर्द्वयोः॥ १४
क्षयं जगाम सा रात्रिर्लोमशं त्वाविशद्भयम्
ततः प्रभातसमये विकृतः कृष्णपिङ्गलः॥ १५
स्थूलस्फिग्विकृतो रूक्षः श्वयूथपरिवारितः।
शंकुकर्णो महावक्त्रो मलिनो घोरदर्शनः॥१६
परिघो नाम चाण्डालः शस्त्रपाणिरदृश्यत।
तं दृष्ट्वा यमदूताभं मार्जारस्त्रस्तचेतनः॥ १७
उवाच वचनं भीतः किमिदानीं करिष्यसि
अथ तावपि संत्रस्तौ तं दृष्ट्वा घोरसंकुलम्॥
क्षणेन नकुलोलूकौ नैराश्यमुपजग्मतुः।
बलिनौ मतिमन्तौ च संघाते चाप्युपागतौ
अशक्तौ सुनयात्तस्मात्संप्रधर्षयितुं बलात्।
कार्यार्थे कृतसन्धानौ दृष्ट्वा मार्जारमूषिकौ॥
उलूकनकुलौ तत्र जग्मतुः स्वं स्वमालयम्।
ततश्चिच्छेद तं पाशं मार्जारस्य च मूषिकः
विप्रमुक्तोऽथ मार्जारस्तमेवाभ्यपतद्द्रुमम्।
स तस्मात्संभ्रमावर्तान्मुक्तो घोरेण शत्रुणा॥
बिलं विवेश पलितः शाखां लेभे स लोमशः
उन्माथमप्यथादाय चाण्डालो वीक्ष्य सर्वशः
विहताशः क्षणेनास्ते तस्माद्देशादपाक्रमत्।
जगाम स स्वभवनं चाण्डालो भरतर्षभ २४
ततस्तस्माद्भयान्मुक्तो दुर्लभं प्राप्य जीवितम्
बिलस्थं पादपाग्रस्थः पलितं लोमशोऽब्रवीत्
अकृत्वा संविदं काञ्चित्सहसा समवप्लुतः।
कृतज्ञं कृतकर्माणं कच्चिन्मां नाभिशंकसे २६
गत्वा च मम विश्वासं दत्वा च मम जीवितं
मित्रोपभोगसमये किं मां त्वं नोपसर्पसि॥
कृत्वा हि पूर्वं मित्राणि यः पश्चान्नानुतिष्ठति
न स मित्राणि लभते कृच्छ्रात्स्वापत्सु दुर्मतिः
सत्कृतोऽहं त्वया मित्र सामर्थ्यादात्मनः सखे
स मां मित्रत्वमापन्नमुपभोक्तुं त्वमर्हसि॥ २९
यानि मे सन्ति मित्राणि
ये च संबन्धिबान्धवाः।
सर्वे त्वां पूजयिष्यन्ति
शिष्या गुरुमिव प्रियम्॥ ३०
अहं च पूजयिष्ये त्वां समित्रगणबान्धवम्।
जीवितस्य प्रदातारं कृतज्ञः को न पूजयेत्॥
ईश्वरो मे भवानस्तु स्वशरीरगृहस्य च।
अर्थानां चैव सर्वेषामनुशास्ता च मे भव॥
अमात्यो मे भव प्राज्ञ पितेवेह प्रशाधि माम्
न तेऽस्ति भयमस्मत्तो जीवितेनात्मनः शपे
बुद्ध्या त्वमुशना साक्षाद्बलेनाधिकृता वयम्
त्वं मन्त्रबलयुक्तो हि दत्वा जीवितमद्य मे॥
एवमुक्तः परां शान्तिं मार्जारेण स मूषिकः
उवाच परमन्त्रज्ञः श्लक्ष्णमात्महितं वचः ३५
यद्भवानाह तत्सर्वं मया ते लोमश श्रुतम्।
ममापि तावद्ब्रुवतः शृणु यत्प्रतिभाति मे ३६
वेदितव्यानि मित्राणि विज्ञेयाश्चापि शत्रवः
एतत्सुसूक्ष्मं लोकेऽस्मिन् दृश्यते प्राज्ञसंमतम्
शत्रुरूपा हि सुहृदो मित्ररूपाश्च शत्रवः।
सन्धितास्ते न बुध्यन्ते कामक्रोधवशं गताः
नास्ति जातु रिपुर्नाम मित्रं नाम न विद्यते।
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा
यो यस्मिन् जीवति स्वार्थं
पश्येत्पीडां न जीवति।
स तस्य मित्रं तावत्स्या-
द्यावन्न स्याद्विपर्ययः॥ ४०
नास्ति मैत्री स्थिरा नाम न च ध्रुवमसौहृदम्
अर्थयुक्त्याऽनुजायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा
मित्रं च शत्रुतामेति कस्मिंश्चित्कालपर्यये।
शत्रुश्च मित्रतामेति स्वार्थो हि बलवत्तरः ४२
यो विश्वसिति मित्रेषु न विश्वसिति शत्रुषु।
अर्थयुक्तिमविज्ञाय यः प्रीतौ कुरुते मनः ४३
मित्रे वा यदि वा शत्रौ तस्यापि चलिता मतिः
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्
विश्वासाद्भयमुत्पन्नमपि मूलानि कृन्तति
अर्थयुक्त्या हि जायन्ते पिता माता सुतस्तथा
मातुला भागिनेयाश्च तथा संबन्धिबान्धवाः
पुत्रं हि मातापितरौ त्यजतः पतितं प्रियम्।
लोको रक्षति चात्मानं पश्य स्वार्थस्य सारताम्
सामान्या निष्कृतिः प्राज्ञ
यो मोक्षात्प्रत्यनन्तरम्॥
कृतं मृगयसे शत्रुं
सुखोपायमसंशयम्
अस्मिन्निलय एव त्वं न्यग्रोधादवतारितः४८
पूर्वं निविष्टमुन्माथं चपलत्वान्न बुद्धवान्।
आत्मनश्चपलो नास्ति कुतोऽन्येषां भविष्यति
तस्मात्सर्वाणि कार्याणि चपलो हन्त्यसंशयम्
ब्रवीषि मधुरं यच्च प्रियो मेऽद्य भवानिति५०

तन्मित्रकारणं सर्वं विस्तरेणापि मे शृणु।
कारणात्प्रियतामेति द्वेष्यो भवति कारणात्
अर्थार्थी जीवलोकोऽयं
न कश्चित्कस्यचित्प्रियः।
सख्यं सोदर्ययोर्भ्रात्रो-
र्दम्पत्योर्वा परस्परम् ॥ ५२
कस्यचिन्नाभिजानामि
प्रीतिं निष्कारणामिह।
यद्यपि भ्रातरः क्रुद्धा
भार्या वा कारणान्तरे ॥ ५३
स्वभावतस्ते प्रीयन्ते नेतरः प्रीयते जनः।
प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ॥५४
मन्त्रहोमजपैरन्यः कार्यार्थे प्रीयते जनः।
उत्पन्ना कारणे प्रीतिरासीन्नौ कारणान्तरे॥
प्रध्वस्ते कारणस्थाने सा प्रीतिर्विनिवर्तते॥
किं तु तत्कारणं मन्ये येनाहं भवतः प्रियः
अन्यत्राभ्यवहारार्थं तत्रापि च बुधा वयम्।
कालो हेतुं विकुरुते स्वार्थस्तमनुवर्तते॥ ५७
स्वार्थं प्राज्ञोऽभिजानाति प्राज्ञं लोकोऽनुवर्तते
न त्वीदृशं त्वया वाच्यं विदुषि स्वार्थपंडिते
अकाले हि समर्थस्य स्नेहहेतुरयं तव।
तस्मान्नाहं चले स्वार्थात्सुस्थिरः सन्धिविग्रहे
अभ्राणामिव रूपाणि विकुर्वन्ति क्षणे क्षणे।
अद्यैव हि रिपुर्भूत्वा पुनरद्यैव मे सुहृत् ॥ ६०
पुनश्च रिपुरद्यैव युक्तीनां पश्य चापलम्।
आसीन्मैत्री तु तावन्नौ यावद्धेतुरभूत्पुरा ६१
सा गता सह तेनैव
कालयुक्तेन हेतुना।
त्वं हि मे जातितः शत्रुः
सामर्थ्यान्मित्रतां गतः॥ ६२
तत्कृत्यमभिनिर्वर्त्य
प्रकृतिः शत्रुतां गता।
सोऽहमेवं प्रणीतानि
ज्ञात्वा शास्त्राणि तत्त्वतः॥ ६३
प्रविशेयं कथं पाशं त्वत्कृते तद्वदस्व मे।
त्वद्वीर्येण प्रमुक्ताऽहं मद्वीर्येण तथा भवान्॥
अन्योन्यानुग्रहे वृत्ते नास्ति भूयः समागमः।
त्वं हि सौम्य कृतार्थोऽद्य निवृत्तार्थास्तथा वयं
न तेऽस्त्यद्य मया कृत्यं किञ्चिदन्यत्र भक्षणात्
अहमन्नं भवान् भोक्ता दुर्बलोऽहं भवान्बली
नावयोर्विद्यते सन्धिर्वियुक्ते विषमे बले।

स मन्येऽहं तव प्रज्ञां यन्मोक्षात्प्रत्यनन्तरम्
भक्ष्यं प्रशंससे नूनं सुखोऽपायेन कर्मणा।
भक्षार्थं ह्यवबद्धस्त्वं स मुक्तः पीडितः क्षुधा
शास्त्रजां मतिमास्थाय नूनं भक्षयिताऽद्य माम्
जानामि क्षुधितं तु त्वामाहारसमयश्च ते ६९
स त्वं मामभिसन्धाय भक्ष्यं मृगयसे पुनः।
त्वं चापि पुत्रदारस्थो यत्सन्धिं सृजसे मयि
शुश्रूषां यतसे कर्तुं सखे मम न तत्क्षमम्।
त्वया मां सहितं दृष्ट्वा प्रिया भार्या सुताश्च ते
कस्मात्ते मां न खादेयुर्हृष्टाः प्रणयिनस्त्वयि।
नाहं त्वया समेष्यामि वृत्तो हेतुः समागमे॥
शिवं ध्यायस्व मे स्वस्थः सुकृतं स्मरसे यदि
शत्रोरनार्यभूतस्य क्लिष्टस्य क्षुधितस्य च ७३
भक्ष्यं मृगयमाणस्य कः प्राज्ञो विषयं व्रजेत्।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि दूरादपि तवोद्विजे
विश्वस्त वा प्रमत्तं वा एतदेव कृतं भवेत्।
बलवत्संनिकर्षो हि न कदाचित्प्रशस्यते॥
नाहं त्वया समेष्यामि निवृत्तो भव लोमश।
यदि त्वं सुकृतं वेत्सि तत्सख्यमनुसारय ७६
प्रशान्तादपि मे पापात् भेतव्यं बलिनः सदा
यदि स्वार्थं न ते कार्यं ब्रूहि किं करवाणि ते
कामं सर्वं प्रदास्यामि
न त्वाऽऽत्मानं कदाचन।
आत्मार्थे सन्ततिस्त्याज्या
राज्यं रत्नं धनानि च॥ ७८
अपि सर्वं स्वमुत्सृज्य रक्षेदात्मानमात्मना।
ऐश्वर्यधनरत्नानां प्रत्यमित्रे निवर्तताम् ॥७९
दृष्टा हि पुनरावृत्तिर्जीवतामिति नः श्रुतम्।
न त्वात्मनः संप्रदानं धनरत्नवदिष्यते॥ ८०
आत्मा हि सर्वदा रक्ष्यो दारैरपि धनैरपि।
आत्मरक्षणतन्त्राणां सुपरीक्षितकारिणाम्॥
आपदो नोपपद्यन्ते पुरुषाणां स्वदोषजाः।
शत्रुं सम्यग्विजानन्ति दुर्बला ये बलीयसम्
न तेषां चाल्यते बुद्धिः शास्त्रार्थकृतनिश्चया।
इत्यभिव्यक्तमेवं स पलितेनाभिभर्त्सितः ८३
मार्जारो व्रीडितो भूत्वा
मूषिकं वाक्यमब्रवीत्॥ ८४

लोमश उवाच।

सत्यं शपे त्वयाऽहं वै मित्रद्रोहो विगर्हितः
तन्मन्येऽहं तव प्रज्ञां यस्त्वं मम हिते रतः ८५

उक्तवानर्थतत्त्वेन मया संभिन्नदर्शनः ।
न तु मामन्यथा साधो त्वं ग्रहीतुमिहार्हसि
प्राणप्रदानजं त्वत्तो
मयि सौहृदमागतम् ।
धर्मज्ञोऽस्मि गुणज्ञोऽस्मि
कृतज्ञोऽस्मि विशेषतः ॥ ८७
मित्रेषु वत्सलश्चास्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ।
तस्मादेवं पुनः साधो मय्याचरितुमर्हसि ८८
त्वया हि वाच्यमानोऽहं
जह्यां प्राणान्सबान्धवः ।
विश्रंभो हि बुधैर्दृष्टो
मद्विधेषु मनस्विषु ॥ ८९
तदतेद्धर्मतत्त्वज्ञ न त्वं शंकितुमर्हसि ।
इति संस्तूयमानोऽपि मार्जारेण स मूषिकः
मनसा भावगंभीरो
मार्जारं वाक्यमब्रवीत् ।
साधुर्भवान् श्रुतार्थोऽस्मि
प्रीये च न च विश्वसे ॥ ९१
संस्तवैर्वा धनौघैर्वा नाहं शक्यः पुनस्त्वया
न ह्यमित्रे वशं यान्ति प्राज्ञा निष्कारणं सखे
अस्मिन्नर्थे च गाथे द्वे निबोधोशनसा कृते ।
शत्रुसाधारणे कृत्ये कृत्वा सन्धिं बलीयसा
समाहितश्चरेद्युक्त्या कृतार्थश्च न विश्वसेत् ।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्
नित्यं विश्वासयेदन्यान्परेषां तु न विश्वसेत्
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु रक्षेज्जीवितमात्मनः ।
द्रव्याणि सन्ततिश्चैव सर्वं भवति जीवतः ।
संक्षेपो नीतिशास्त्राणामविश्वासः परो मतः
नृषु तस्मादविश्वासः पुष्कलं हितमात्मनः ।
वध्यन्ते न हि विश्वस्ताः शत्रुभिर्दुर्बला अपि
विश्वस्तास्तेषु वध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः
त्वद्विधेभ्यो मया ह्यात्मा रक्ष्यो मार्जार सर्वदा
रक्ष त्वमपि चात्मानं
चाण्डालाज्जातिकिल्बिषात् ।
स तस्य ब्रुवतस्त्वेवं
संत्रासाज्जातसाध्वसः ॥ ९९
शाखां हित्वा जवेनाशु मार्जारः प्रययौ ततः
ततः शास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बुद्धिसामर्थ्यमात्मनः॥
विश्राव्य पलितः प्राज्ञो बिलमन्यज्जगाम ह ।

एवं प्रज्ञावता बुद्ध्या दुर्बलेन महाबलाः ॥ १
एकेन बहवोऽमित्राः पलितेनाभिसन्धिताः ।
अरिणाऽपि समर्थेन सन्धिं कुर्वीत पण्डितः
मूषिकश्च बिडालश्च मुक्तावन्योन्यसंश्रयात् ।
इत्येवं क्षत्रधर्मश्च मया मार्गेषु दर्शितः ॥ ३
विस्तरेण महाराज संक्षेपमपि मे शृणु ।
अन्योन्यकृतवैरौ तु चक्रतुः प्रीतिमुत्तमाम् ४
अन्योन्यमभिसंधातुं संबभूव तयोर्मतिः ।
तत्र प्राज्ञोऽभिसंधत्ते सम्यक् बुद्धिसमाश्रयात्
अभिसन्धीयते प्राज्ञः प्रमादादपि वा बुधैः ।
तस्मादभीतवद्भीतो विश्वस्तवदविश्वसन् ६
न ह्यप्रमत्तश्चलति चलितो वा विनश्यति ।
कालेन रिपुणा संधिः काले मित्रेण विग्रहः
कार्य इत्येव सन्धिज्ञाः प्राहुर्नित्यं नराधिप
एतज्ज्ञात्वा महाराज शास्त्रार्थमभिगम्य च
अभियुक्तः प्रसन्नश्च प्राग्भयाद्भीतवच्चरेत् ।
भीतवत्संधिधिः कार्यः प्रतिसन्धिस्तथैव च
भयादुत्पद्यते बुद्धिरप्रमत्ताभियोगतः ।
न भयं विद्यते राजन् भीतस्यानागते भये ॥
अभीतस्य च विश्रंभात् सुमहज्जायते भयम्
अभीश्चरति यो नित्यं मन्त्रो देयः कथंचन ॥
अविज्ञानाद्धि विज्ञातो गच्छेदास्पददर्शिषु ।
तस्मादभीतवद्भीतो विश्वस्तो बहु विश्वसन्
कार्याणां गुरुतां प्राप्य नानृतं किंचिदाचरेत्
एवमेतन्मया प्रोक्तमितिहासं युधिष्ठिर २१३
श्रुत्वा त्वं सुहृदां मध्ये यथावत्समुपाचर ।
उपलभ्य मतिं चाग्र्यामरिमित्रान्तरं तथा १४
सन्धिविग्रहकाले च मोक्षोपायस्तथैव च ।
शत्रुसाधारणे कृत्ये कृत्वा सन्धिं बलीयसा
समागमे चरेद्युक्त्या कृतार्थो न च विश्वसेत् ।
अविरुद्धां त्रिवर्गेण नीतिमेतां महीपते ॥ १६
अभ्युत्तिष्ठ श्रुतादस्माद्भूयः संरक्षयन्प्रजाः ।
ब्राह्मणैश्चापि ते सार्धं यात्रा भवतु पाण्डव ॥
ब्राह्मणा वै परं श्रेयो दिवि चेह च भारत ।
एते धर्मस्य वेत्तारः कृतज्ञाः सततं प्रभो १८
पूजिताः शुभकर्तारः पूजयेत्तान्नराधिप ।
राज्यं श्रेयः परं राजन् यशः कीर्तिं च लप्स्यसे
कुलस्य सन्ततिं चैव यथान्यायं यथाक्रमम् ॥

द्वयोरिमं भारत सन्धिविग्रहं
सुभाषितं बुद्धिविशेषकारकम् ।
यथा त्ववेक्ष्य क्षितिपेन सर्वदा
निषेवितव्यं नृप शत्रुमण्डले ॥ २२६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि मार्जारमूषिकसंवादे
अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ [ ८ ]

## १३९

युधिष्ठिर उवाच ।
उक्तो मन्त्रो महाबाहो
विश्वासो नास्ति शत्रुषु ।
कथं हि राजा वर्तेत
यदि सर्वत्र नाश्वसेत् ॥ १
विश्वासाद्धि परं राजन् राज्ञामुत्पद्यते भयम्
कथं हि नाश्वसन् राजा शत्रून् जयति पार्थिवः
एतन्मे संशयं छिन्धि मतिर्मे संप्रमुह्यति ।
अविश्वासकथामेतामुपश्रुत्य पितामह ॥ ३
भीष्म उवाच ।
शृणुष्व राजन् यद्वृत्तं ब्रह्मदत्तनिवेशने ॥
पूजन्या सह संवादं ब्रह्मदत्तस्य भूपतेः ॥ ४
कांपिल्ये ब्रह्मदत्तस्य त्वन्तःपुरनिवासिनी ।
पूजनी नाम शकुनिर्दीर्घकालं सहोषिता ॥५
रुतज्ञा सर्वभूतानां यथा वै जीवजीवकः ।
सर्वज्ञा सर्वतत्त्वज्ञा तिर्यग्योनिं गताऽपि सा
अभिप्रजाता सा तत्र पुत्रमेकं सुवर्चसम् ।
समकालं च राज्ञोऽपि देव्यां पुत्रो व्यजायत
तयोरर्थे कृतज्ञा सा खेचरी पूजनी सदा ।
समुद्रतीरं सा गत्वा आजहार फलद्वयम् ८
पुष्ट्यर्थं च स्वपुत्रस्य राजपुत्रस्य चैव ह ।
फलमेकं सुतायादाद्राजपुत्राय चापरम् ॥ ९
अमृतास्वादसदृशं बलतेजोभिवर्धनम् ।
आदायादाय सैवाशु तयोः प्रादात्पुनः पुनः
ततोऽगच्छत्परां वृद्धिं राजपुत्रः फलाशनात्
ततः स धात्र्या कक्षेण उह्यमानो नृपात्मजः
ददर्श तं पक्षिसुतं बाल्यादागत्य बालकः ।
ततो बाल्याच्च यत्नेन तेनाक्रीडत पक्षिणा ॥
शून्ये च तमुपादाय पक्षिणं समजातकम् ।
हत्वा ततः स राजेन्द्र धात्र्या हस्तमुपागतः
अथ सा पूजनी राजन्नागमत्फलहारिणी ।
अपश्यन्निहतं पुत्रं तेन बालेन भूतले ॥ १४
बाष्पपूर्णमुखी दीना दृष्ट्वा तं रुदती सुतम् ।
पूजनी दुःखसंतप्ता रुदती वाक्यमब्रवीत् १५
क्षत्रिये संगतं नास्ति
न प्रीतिर्न च सौहृदम् ।
कारणात्सान्त्वयन्त्येते
कृतार्थाः सन्त्यजन्ति च ॥ १६
क्षत्रियेषु न विश्वासः कार्यः सर्वापकारिषु ।
अपकृत्यापि सततं सान्त्वयन्ति निरर्थकम् ॥
अहमस्य करोम्यद्य सदृशीं वैरयातनाम् ।
कृतघ्नस्य नृशंसस्य भृशं विश्वासघातिनः ॥
सहसंजातवृद्धस्य तथैव सहभोजिनः ।
शरणागतस्य च वधस्त्रिविधं ह्येव पातकम्
इत्युक्त्वा चरणाभ्यां तु नेत्रे नृपसुतस्य सा
भित्त्वा स्वस्था तत इदं पूजनी वाक्यमब्रवीत्
इच्छयेह कृतं पापं सद्यस्तं चोपसर्पति ।
कृतं प्रतिकृतं येषां न नश्यति शुभाशुभम् २१
पापं कर्म कृतं किंचिद्यदि तस्मिन्न दृश्यते ।
नृपते तस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपि च नप्तृषु ॥ २२

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैल० भारतभावदीपे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३८ ॥

१३९

**उक्तो मन्त्रो इति** ॥ १ ॥ अविश्वस्तं यथा स्यात्तथा बहु विश्वसेदित्युक्तम् । तत्र सर्वत्राविश्वासे कार्यस्यासिद्धिरेव स्यादित्याशंक्य पूजनीदृष्टान्तेन पूर्वकृतापकारो न विश्वसेदिति निरूपयति उक्त इत्यध्यायेन । पूजन्या चटकया ॥ ४ ॥ जीवजीवकः शाकुनिकः स हि अयं पक्षी अस्यां दिशि लाभं अस्यामलाभं दिशतीति वर्णयति—**जीवजीवक इति** । पक्षिविशेष इत्यन्ये ॥ ६ ॥ अभिप्रजाता प्रसूतवती देव्यां राजभार्यायाम् ॥ ७ ॥ समजातकं समानवयसम् ॥१३॥ इच्छया बुद्धिपूर्वकं उपसर्पति फलरूपेण कर्तारम् ॥ २१ ॥ कर्तर्यदृष्टं तत्पुत्रादावपि पापं दृश्यत एवेत्याह—**पापमिति** । तेषां महतां पापमपराधकृतमेनः ॥ २२ ॥

ब्रह्मदत्तः सुतं दृष्ट्वा पूजन्याहृतलोचनम् ।
कृते प्रतिकृतं मत्वा पूजनीमिदमब्रवीत् ॥ २३

ब्रह्मदत्त उवाच ।

अस्ति वै कृतमस्माभिरस्ति प्रतिकृतं त्वया
उभयं तत्समीभूतं वस पूजनि मा गमः ॥ २४

पूजन्युवाच ।

सकृत्कृतापराधस्य तत्रैव परिलम्बतः ।
न तद्बुधाः प्रशंसन्ति श्रेयस्तत्रापसर्पणम् २५
सान्त्वे प्रयुक्ते सततं कृतवैरे न विश्वसेत् ।
क्षिप्रं स बध्यते मूढो न हि वैरं प्रशाम्यति ॥
अन्योन्यकृतवैराणां पुत्रपौत्रं नियच्छति ।
पुत्रपौत्रविनाशे च परलोकं नियच्छति ॥ २७

सर्वेषां कृतवैराणा-
मविश्वासः सुखोदयः ।
एकान्ततो न विश्वासः
कार्यो विश्वासघातकैः ॥ २८

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्
विश्वासाद्भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति ।
कामं विश्वासयेदन्यान्परेषां च न विश्वसेत्

माता पिता बान्धवानां वरिष्ठौ
भार्या जरा बीजमात्रं तु पुत्रः ।
भ्राता शत्रुः क्लिन्नपाणिर्वयस्य
आत्मा ह्येकः सुखदुःखस्य भोक्ता ३०

अन्योन्यकृतवैराणां न सन्धिरुपपद्यते ।
स च हेतुरतिक्रान्तो यदर्थमहमावसम् ॥ ३१
पूजितस्यार्थमानाभ्यां जन्तोः पूर्वापकारिणः
मनो भवत्यविश्वस्तं कर्म त्रासयतेऽबलान् ॥

पूर्वं संमानना यत्र
पश्चाच्चैव विमानना ।
जह्यात्तत्सत्त्ववान्स्थानं
शत्रोः संमानितोऽपि सन् ॥ ३३

उषितास्मि तवागारे दीर्घकालं समर्चिता
तदिदं वैरमुत्पन्नं सुखमाशु व्रजाम्यहम् ॥ ३४

ब्रह्मदत्त उवाच ।

यः कृते प्रतिकुर्याद्वै न स तत्रापराध्नुयात् ।
अनृणस्तेन भवति वस पूजनि मा गमः ॥ ३५

पूजन्युवाच ।

न कृतस्य तु कर्तुश्च सख्यं सन्धीयते पुनः।
हृदयं तत्र जानाति कर्तुश्चैव कृतस्य च ॥ ३६

ब्रह्मदत्त उवाच ।

कृतस्य चैव कर्तुश्च सख्यं संधीयते पुनः ।
वैरस्योपशमो दृष्टः पापं नोपाश्नुते पुनः ॥ ३७

पूजन्युवाच ।

नास्ति वैरमतिक्रान्तं
सान्त्वितोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
विश्वासाद्बध्यते लोके
तस्माच्छ्रेयोऽप्यदर्शनम् ॥ ३८

तरसा ये न शक्यन्ते शस्त्रैः सुनिशितैरपि ।
साम्ना तेऽपि निगृह्यन्ते गजा इव करेणुभिः

ब्रह्मदत्त उवाच ।

संवासाज्जायते स्नेहो
जीवितान्तकरेष्वपि ।
अन्योन्यस्य च विश्वासः
श्वपचेन शुनो यथा ॥ ४०

अन्योन्यकृतवैराणां संवासान्मृदुतां गतम् ।
नैव तिष्ठति तद्वैरं पुष्करस्थमिवोदकम् ॥ ४१

पूजन्युवाच ।

वैरं पञ्चसमुत्थानं तच्च बुध्यन्ति पण्डिताः
स्त्रीकृतं वास्तुजं वाग्जं ससापत्नापराधजम्
तत्र दाता न हन्तव्यः क्षत्रियेण विशेषतः ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा बुध्वा दोषबलाबलम्

---

मागमः मास्म गमः ॥२४॥ परिलम्बतः विश्वासं कुर्वतः ॥२५॥नियच्छति मृत्युर्नाशयति ततो नष्टसन्ततित्वात्परलोकं च नियच्छति॥२७॥जरा वीर्यहरत्वात्। बीजमात्रं प्रसवरूपत्वात्। शत्रुः रिक्थहरत्वात्। क्लिन्नपाणिः उपाक्रियमाणः धनादिना पूज्यमानमेव मित्रं नान्यदित्यर्थः॥३०॥ हेतुः पुत्ररक्षा स्नेहो वा ॥ ३१ ॥ कर्म स्वकृतं अबलान् मादृशान् ॥ ३२ ॥ **नेति** । अन्योन्यस्यापकारमुभावपि नित्यं स्मरत इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ प्रतिकृतं प्रायश्चित्तं जातमिति मन्वानः साधुः पुनर्नापकरोतीत्याशयेनाह—**कृतस्येति** ॥ ३७ ॥ न शक्यन्ते जेतुमिति शेषः ॥ ३९ ॥ श्वपचश्चाण्डालः श्वमांसाहारोऽपि शुना सह सख्यमेति । संवासादेवं मामपि जानीहीत्यर्थः ॥ ४० ॥ वैरं **स्त्रीकृतं** कृष्णशिशुपालयोः । वास्तुगृहादिकं स्थानं **तज्जं** कौरवपाण्डवानां । **वाग्जं** द्रोणद्रुपदयोः । **सापत्नं** जातिवैरं मूषकमार्जारयोः **अपराधजं** आवयोः तच्च तच्चेति द्वन्द्वः ताभ्यां सहितं ससापत्नापराधजम् ॥ ४२ ॥ कृतवैरोऽपि दाताऽर्थादिना मानयिताऽर्थाशावता राज्ञा न हन्तव्यः ॥ ४३ ॥

कृतवैरे न विश्वासः कार्यस्त्विह सुहृद्यपि ।
छन्नं संतिष्ठते वैरं गूढोऽग्निरिव दारुषु ४४
न वित्तेन न पारुष्यैर्न च सान्त्वेन वाऽऽश्रितैः
कोपाग्निः शाम्यते राजंस्तोयाग्निरिव सागरे
न हि वैराग्निरुद्भूतः कर्म चाप्यपराधजम् ।
शाम्यत्यदग्ध्वा नृपते विना ह्येकतरक्षयात्
सत्कृतस्यार्थमानाभ्यामनुपूर्वापकारिणः ।
नादेयोऽमित्रविश्वासः कर्म त्रासयतेऽबलान्
नैवापकार्ये कस्मिंश्चिदहं त्वयि तथा भवान्
उषितास्मि गृहेऽहं ते नेदानीं विश्वसाम्यहम्

ब्रह्मदत्त उवाच ।

कालेन क्रियते कार्यं तथैव विविधाः क्रियाः
कालेनैते प्रवर्तन्ते कः कस्येहापराध्यति ४९
तुल्यं चोभे प्रवर्तेते मरणं जन्म चैव ह ।
कार्यते चैव कालेन तन्निमित्तं न जीवति ५०
बध्यन्ते युगपत्केचिदेकैकस्य न चापरे ।
कालो दहति भूतानि संप्राप्याग्निरिवेन्धनम्
नाहं प्रमाणं नैव त्वमन्योन्यं कारणं शुभे ।
कालो नित्यमुपादत्ते सुखं दुःखं च देहिनाम्
एवं वसेह सस्नेहा यथाकाममहिंसिता ।
यत्कृतं तत्तु मे क्षान्तं त्वं च वै क्षम पूजनि

पूजन्युवाच ।

यदि कालः प्रमाणं ते न वैरं कस्यचिद्भवेत्
कस्मात्त्वपचितिं यान्ति बान्धवा बान्धवैर्हतैः
कस्माद्देवासुराः पूर्वमन्योन्यमभिजघ्निरे ।
यदि कालेन निर्याणं सुखं दुःखं भवाभवौ ॥
भिषजो भैषजं कर्तुं कस्मादिच्छन्ति रोगिणः
यदि कालेन पच्यन्ते भेषजैः किं प्रयोजनम्
प्रलापः सुमहान्कस्मात्
क्रियते शोकमूर्च्छितैः ।
यदि कालः प्रमाणं ते
कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु ॥ ५७

तव पुत्रो ममापत्यं हतवान्स हतो मया ।
अनन्तरं त्वयाऽहं च हन्तव्या हि नराधिप
अहं हि पुत्रशोकेन कृतपापा तवात्मजे ।
यथा त्वया प्रहर्तव्यं तथा तत्त्वं च मे शृणु ॥
भक्षार्थं क्रीडनार्थं च नरा वाञ्छन्ति पक्षिणः
तृतीयो नास्ति संयोगो वधबन्धादृते क्षमः
वधबन्धभयादेते मोक्षतन्त्रमुपाश्रिताः ।
मरणोत्पातजं दुःखं प्राहुर्वेदविदो जनाः ६१
सर्वस्य दयिताः प्राणाः सर्वस्य दयिताः सुताः
दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम्
दुःखं जरा ब्रह्मदत्त दुःखमर्थविपर्ययः ।
दुःखं चानिष्टसंवासो दुःखमिष्टवियोजनम्
वधबन्धकृतं दुःखं स्त्रीकृतं सहजं तथा ।
दुःखं सुतेन सततं जनान्विपरिवर्तते ॥ ६४
न दुःखं परदुःखे वै केचिदाहुरबुद्धयः ।
यो दुःखं नाभिजानाति स जल्पति महाजने
यस्तु शोचति दुःखार्तः स कथं वक्तुमुत्सहेत्
रसज्ञः सर्वदुःखस्य यथाऽऽत्मनि तथा परे ६६
यत्कृतं ते मया राजंस्त्वया च मम यत्कृतम्
न तद्वर्षशतैः शक्यं व्यपोहितुमरिन्दम ॥ ६७
आवयोः कृतमन्योन्यं पुनः सन्धिर्न विद्यते ।
स्मृत्वा स्मृत्वा हि ते पुत्रं नवं वैरं भविष्यति
वैरमन्तिकमासाद्य यः प्रीतिं कर्तुमिच्छति ।
मृन्मयस्येव भग्नस्य यथा सन्धिर्न विद्यते ६९
निश्चयः स्वार्थशास्त्रेषु विश्वासश्चासुखोदयः ।
उशना चैव गाथे द्वे प्रह्लादायाब्रवीत्पुरा ७०
ये वैरिणः श्रद्दधते सत्ये सत्येतरेऽपि वा ।
वध्यन्ते श्रद्दधानास्तु मधु शुष्कतृणैर्यथा ७१
न हि वैराणि शाम्यन्ति कुले दुःखगतानि च
आख्यातारश्च विद्यन्ते कुले वै म्रियते पुमान्
उपगृह्य तु वैराणि सान्त्वयन्ति नराधिप ।
अथैनं प्रतिपिंषन्ति पूर्णं घटमिवाश्मनि ७२

यद्यप्येवं नित्यं फलद्वयदानात्त्वं मां न हनिष्यसीति जानामि तथाऽपि कृतवैरे विश्वासो नीतिविरुद्ध इत्याह— **कृतेति** ॥४४॥ पारुष्यैः गुरुशिक्षार्थं गुरुभिरुक्तैः ॥४५॥ वैराग्निः अदग्ध्वा न शाम्यत्यपराधजं कर्म एकतरक्षयाद्विना शाम्यतीति योजना ॥ ४६ ॥ कस्मिंश्चिदन्यतरे अपकार्येऽन्यतरेण बाध्ये सति अहं च त्वयि तथास्मि एवं भवानपि मयि तथाऽस्तीति योज्यम् । अतो नावयोरन्योन्यं विश्वासः सम्भवतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥ कालाधीने जगति आवयोर्मध्ये कस्यापि दोषो नास्तीत्याह— **कालेनेत्यादिना** ॥ ४९ ॥ कार्यते जायते तन्निमित्तं कालनिमित्तं न जीवति म्रियते ॥ ५० ॥ एकैकस्य एकैकेन ॥ ५१ ॥ क्षम क्षमस्व ॥ ५३ ॥ कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु तदा विधिनिषेधकथा व्यर्था स्यादिति भावः ॥ ५७ ॥ सुतेन नष्टेन दुष्टेन वा ॥६४॥ कृतं अलं पर्याप्तं सख्यमिति शेषः ॥ ६८ ॥ वैरिणः वाक्ये इति शेषः । शत्रुणा दर्शितं पुरःस्थितं मधु श्रद्दधानाः शुष्कतृणैश्छन्नं प्रपातं यथा पतन्ति तद्वदेते इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

सदा न विश्वसेद्राजा पापं कृत्वेह कस्यचित्
अपकृत्य परेषां हि विश्वासाद्दुःखमश्नुते ॥ ७४
ब्रह्मदत्त उवाच ।
नाविश्वासाद्विन्दतेऽर्थानीहते चापि किञ्चन
भयात्त्वेकतरान्नित्यं मृतकल्पा भवन्ति च ॥
पूजन्युवाच ।
यस्येह व्रणिनौ पादौ पद्भ्यां च परिसर्पति
खन्येते तस्य तौ पादौ सुगुप्तमिह धावतः ७६
नेत्राभ्यां सरुजाभ्यां यः प्रतिवातमुदीक्षते ।
तस्य वायुरुजाऽत्यर्थं नेत्रयोर्भवति ध्रुवम् ७७
दुष्टं पन्थानमासाद्य यो मोहादुपपद्यते ।
आत्मनो बलमज्ञाय तदन्तं तस्य जीवितम् ॥
यस्तु वर्षमविज्ञाय क्षेत्रं कर्षति कर्षकः ।
हीनः पुरुषकारेण सस्यं नैवाश्नुते ततः ॥ ७९
यस्तु तिक्तं कषायं वा स्वादु वा मधुरं हितम्
आहारं कुरुते नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते
पथ्यं मुक्त्वा तु यो मोहाद्दुष्टमश्नाति भोजनम्
परिणाममविज्ञाय तदन्तं तस्य जीवितम् ८१
दैवं पुरुषकारश्च स्थितावन्योन्यसंश्रयात् ।
उदाराणां तु सत्कर्म 'दैवं क्लीबा उपासते' ॥
कर्म चात्महितं कार्यं
तीक्ष्णं वा यदि वा मृदु ।
ग्रस्यते कर्मशीलस्तु
सदाऽनर्थैरकिञ्चनः ॥ ८३
तस्मात्सर्वं व्यपोह्यार्थं कार्य एव पराक्रमः ।
सर्वस्वमपि सन्त्यज्य कार्यमात्महितं नरैः ८४
विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्तीह तैर्बुधाः ८५
निवेशनं च कुप्यं च क्षेत्रं भार्या सुहृज्जनः ।
एतान्युपहितान्याहुः सर्वत्र लभते पुमान् ८६
सर्वत्र रमते प्राज्ञः सर्वत्र च विराजते ।
न विभीषयते कश्चिद्भीषितो न बिभेति च ॥
नित्यं बुद्धिमतोऽप्यर्थः स्वल्पकोऽपि विवर्धते
दाक्ष्येणाकुर्वतः कर्म संयमात्प्रतितिष्ठति ८८
गृहस्नेहावबद्धानां नराणामल्पमेधसाम् ।
कुस्त्री खादति मांसानि माघमांसेगवा इव
गृहं क्षेत्राणि मित्राणि स्वदेश इति चापरे ।
इत्येवमवसीदन्ति नरा बुद्धिविपर्यये ॥ ९०
उत्पतेत्सहजाद्देशाद्व्याधिदुर्भिक्षपीडितात् ।
अन्यत्र वस्तुं गच्छेद्वा वसेद्वा नित्यमानितः
तस्मादन्यत्र यास्यामि वस्तुं नाहमिहोत्सहे
कृतमेतदनार्यं मे तव पुत्रे च पार्थिव ॥ ९२
कुभार्यां च कुपुत्रं च कुराजानं कुसौहृदम् ।
कुसम्बन्धं कुदेशं च दूरतः परिवर्जयेत् ९३
कुपुत्रे नास्ति विश्वासः
कुभार्यायां कुतो रतिः ।
कुराज्ये निर्वृतिर्नास्ति
कुदेशे नास्ति जीविका ॥ ९४
कुमित्रे संगतिर्नास्ति नित्यमस्थिरसौहृदे ।
अवमानः कुसम्बन्धे भवत्यर्थविपर्यये ॥ ९५
सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र निर्वृतिः
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते
यत्र नास्ति बलात्कारः स राजा तीव्रशासनः
भीरेव नास्ति सम्बन्धो दरिद्रं यो बुभूषते ॥
भार्या देशोऽथ मित्राणि
पुत्रसम्बन्धिबान्धवाः ।
एते सर्वे गुणवति
धर्मनेत्रे महीपतौ ॥ ९८
अधर्मज्ञस्य विलयं प्रजा गच्छन्ति निग्रहात्
राजा मूलं त्रिवर्गस्य स्वप्रमत्तोऽनुपालयेत् ॥
बलिषड्भागमुद्धृत्य बलिं समुपयोजयेत् ।
न रक्षति प्रजाः सम्यग्यः स पार्थिवतस्करः

---

सर्वथाऽनाश्वासे नृणां जीवनमेव न स्यादित्याह—**नेति** ॥७५॥स्वयं दोषवती अहं निर्दोषमपि त्वया सह वासं कर्तुं न शक्नोमीत्याह दृष्टान्तमुखेन—**यस्येत्यादिना** ॥७६॥ अकर्मशील इति च्छेदः ॥८३॥ अर्थं कालदैवस्वभावाख्यम् ॥ ८४ ॥ बलं वैराग्यम् ॥ ८५ ॥ कुप्यं ताम्रादि चादकुप्यं स्वर्णरत्नादि उपहितानि उपमित्राणि ॥ ८६ ॥ विद्यादीनां फलानि क्रमेणाह—**सर्वत्रेति**। कश्चित्तमिति शेषः ॥ ८७ ॥ दाक्ष्येण वर्धते संयमाद्व्ययसंकोचात् प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठां स्थितिमेव गच्छति वर्धत इत्यर्थः ॥८८॥ बलहीनस्यावस्थामाह—**गृहेति**। खादति स्वापराधैस्तं संतापयति शुष्कं करोति माघमां—कर्कटी सेगवा—**तदपत्यानि** कर्कट्या नाशहेतुर्गर्भ एवेति प्रसिद्धम् ॥ ८९ ॥ निर्धैर्यस्याह—**गृहमिति** ॥ ९० ॥ मे मया ॥ ९२ ॥ **यत्रेति**। यत्र देशे बलात्कारो नास्ति तत्र भीरेव नास्ति यो राजा दरिद्रं जनं बुभूषति पालयितुमिच्छति स एव तेन सह पाल्यपालकभावलक्षणः सम्बन्ध इति योज्यम् ॥ ९७ ॥ धर्मनेत्रो धर्मनेता ॥ ९८ ॥ निग्रहात् बन्दीरूपात् न तु स्वेच्छया स्वप्रमत्तः सुतरां अप्रमत्तः ॥९९॥ समुपयोजयेत् भक्षयेत् अथ च न रक्षति ॥१००॥

दत्त्वाऽभयं यः स्वयमेव राजा
न तत्प्रमाणं कुरुतेऽर्थलोभात् ।
स सर्वलोकादुपलभ्य पापं
सोऽधर्मबुद्धिर्निरयं प्रयाति ॥ १०१
दत्त्वाऽभयं स्वयं राजा प्रमाणं कुरुते यदि ।
स सर्वसुखकृज्ज्ञेयः प्रजा धर्मेण पालयन् २
माता पिता गुरुर्गोप्ता वह्निर्वैश्रवणो यमः ।
सप्त राज्ञो गुणानेतान्मनुराह प्रजापतिः ३
पिता हि राजा राष्ट्रस्य
प्रजानां योऽनुकम्पनः ।
तस्मिन्मिथ्याविनीतो हि
तिर्यग्गच्छति मानवः ॥ ४
सम्भावयति मातेव दीनमप्युपपद्यते ।
दहत्यग्निरिवानिष्टान्यमयन्नसतो यमः ॥ ५
इष्टेषु विसृजन्नर्थान्कुबेर इव कामदः ।
गुरुर्धर्मोपदेशेन गोप्ता च परिपालयन् ॥ ६
यस्तु रञ्जयते राजा पौरजानपदान् गुणैः ।
न तस्य भ्रमते राज्यं स्वयं धर्मानुपालनात् ७
स्वयं समुपजानन्हि पौरजानपदार्चनम् ।
स सुखं प्रेक्षते राजा इह लोके परत्र च ॥ ८
नित्योद्विग्नाः प्रजा यस्य करभारप्रपीडिताः
अनर्थैर्विप्रलुप्यन्ते स गच्छति पराभवम् ॥ ९
प्रजा यस्य विवर्धन्ते सरसीव महोत्पलम् ।
स सर्वफलभाग्राजा स्वर्गलोके महीयते १०
बलिना विग्रहो राजन्न कदाचित्प्रशस्यते ।
बलिना विग्रहो यस्य कुतो राज्यं कुतः सुखम्
भीष्म उवाच ।
सैवमुक्त्वा शकुनिका ब्रह्मदत्तं नराधिपम्
राजानं समनुज्ञाप्य जगामाभीप्सितां दिशम्
एतत्ते ब्रह्मदत्तस्य पूजन्या सह भाषितम् ।
मयोक्तं नृपतिश्रेष्ठ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि१३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि ब्रह्मदत्तपूजन्योः संवादे
एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ [ ९ ]

## १४०

युधिष्ठिर उवाच ।
युगक्षयात्परिक्षीणे धर्मे लोके च भारत
दस्युभिः पीड्यमाने च कथं स्थेयं पितामह१
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि नीतिमापत्सु भारत ।
उत्सृज्यापि घृणां काले यथा वर्तेत भूमिपः
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भारद्वाजस्य संवादं राज्ञः शत्रुंजयस्य च ॥३
राजा शत्रुंजयो नाम सौवीरेषु महारथः ।
भारद्वाजमुपागम्य पप्रच्छार्थविनिश्चयम् ॥ ४
अलब्धस्य कथं लिप्सा लब्धं केन विवर्धते।
वर्धितं पाल्यते केन पालितं प्रणयेत्कथम् ॥५
तस्मै विनिश्चितार्थाय परिपृष्टोऽर्थनिश्चयम् ।
उवाच ब्राह्मणो वाक्यमिदं हेतुमदुत्तमम् ॥ ६
नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी च परेषां विवरानुगः ७
नित्यमुद्यतदण्डस्य भृशमुद्विजते नरः ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत्
एवं दण्डं प्रशंसन्ति पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ।
तस्माच्चतुष्टये तस्मिन्प्रधानो दण्ड उच्यते ९
छिन्नमूले त्वधिष्ठाने सर्वेषां जीवनं हतम् ।
कथं हि शाखास्तिष्ठेयुश्छिन्नमूले वनस्पतौ ॥
मूलमेवादितश्छिन्द्यात्परपक्षस्य पण्डितः ।
ततः सहायान् पक्षं च मूलमेवानुसाधयेत् ॥
सुमंत्रितं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम् ।
आपदास्पदकाले तु कुर्वीत न विचारयेत् ॥
वाङ्मात्रेण विनीतः स्याद्धृदयेन यथा क्षुरः ।
श्लक्ष्णपूर्वाभिभाषी च कामक्रोधौ विवर्जयेत्

---

अभयमिति च्छेदः ॥१०१॥ सम्भावयति इष्टं चिन्तयति उपपद्यते पालयति ॥ १०५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

१४०

युगेति ॥ १ ॥ घृणां दयाम् ॥ २ ॥

सपत्नसहिते कार्ये कृत्वा सन्धिं न विश्वसेत्
अपक्रामेत्ततः शीघ्रं कृतकार्यो विचक्षणः १४
शत्रुं च मित्ररूपेण सान्त्वेनैवाभिसांत्वयेत्।
नित्यशश्चोद्विजेत्तस्माद्गृहात्सर्पयुतादिव ॥ १५
यथा बुद्धिः परिभवेत्तमतीतेन सांत्वयेत्।
अनागतेन दुष्प्रज्ञं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम् ॥ १६
अञ्जलिं शपथं सान्त्वं प्रणम्य शिरसा वदेत्
अश्रुप्रमार्जनं चैव कर्तव्यं भूतिमिच्छता १७
वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
प्राप्तकालं तु विज्ञाय भिंद्याद्घटमिवाश्मनि ॥
मुहूर्तमपि राजेन्द्र तिन्दुकालातवज्ज्वलेत्।
न तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायेत चिरं नरः ॥ १९

नानार्थिकोऽर्थसम्बन्धं
कृतघ्नेन समाचरेत्।
अर्थी तु शक्यते भोक्तुं
कृतकार्योऽवमन्यते।
तस्मात्सर्वाणि कार्याणि
सावशेषाणि कारयेत् ॥ २०

कोकिलस्य वराहस्य मेरोः शून्यस्य वेश्मनः
नटस्य भक्तिमित्रस्य यच्छ्रेयस्तत्समाचरेत् २१
उत्थायोत्थाय गच्छेत नित्ययुक्तो रिपोर्गृहान्
कुशलं चास्य पृच्छेत यद्यप्यकुशलं भवेत् २२
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीबा नाभिमानिनः
न च लोकरवाद्भीता न वै शश्वत्प्रतीक्षिणः
नात्मच्छिद्रं रिपुर्विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ २४
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चाप्यलुम्पेत शरवच्च विनिष्पतेत् ॥ २५
पानमक्षास्तथा नार्यो मृगया गीतवादितम्।
एतानि युक्त्या सेवेत प्रसंगो ह्यत्र दोषवान्
कुर्यात्तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम्।
अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि संश्रयेत्
देशकालौ समासाद्य विक्रमेत विचक्षणः।
देशकालव्यतीतो हि विक्रमो निष्फलो भवेत्
कालाकालौ संप्रधार्य बलाबलमथात्मनः।
परस्परं बलं ज्ञात्वा तत्रात्मानं नियोजयेत् ॥
दण्डेनोपनतं शत्रुं यो राजा न नियच्छति।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा॥ ३०

सुपुष्पितः स्यादफलः
फलवान् स्याद्दुरारुहः।
आमः स्यात्पक्वसंकाशो
न च शीर्येत कस्यचित् ॥ ३१

आशां कालवतीं कुर्यात्तां च विघ्नेन योजयेत्
विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं चापि हेतुतः ॥
भीतवत्संविधातव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥ ३३
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥ ३४

---

नित्यमुद्यतदण्डः स्यादित्येतदन्तो ग्रन्थ आदिपर्वणि व्याख्यातः॥१९॥ नानार्थिकः बहुप्रयोजनवान् कृतघ्ने पुरुषे अर्थसम्बन्धं न समाचरेत्। मानार्थिक इति पाठे मानी यद्याचरेत्तर्हि तत्कार्यसमाप्तेः प्रागेवाचरेदित्याह—**अर्थीति।** फलितमाह—**तस्मादिति** सार्द्धः ॥ २० ॥

कोकिलस्य वराहस्य मेरोः शून्यस्य वेश्मनः।
नटस्य भक्तिमित्रस्य यच्छ्रेयस्तत्समाचरेत्'।

कोकिलस्य श्रेयः स्वपोष्याणां परैः पोषणम्। तथाहि—

कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम्।
खन्याकरकरादानं सञ्चयार्थाष्टकं मतम् ॥

यः कीनाशः शतं निवर्तनानि भूमेः कर्षति तेन विष्टिरूपेण राजकीयमपि निवर्तनदशकं कर्षणीयं स्वीयवद्रक्षणीयं च तदुत्पन्नं धान्यादिकं राज्ञे देयम्। एवमेव यो वणिक् शतेन बलीवर्दैः पण्यमाहरति तेन राजकीया अपि दश बलीवर्दा वोढव्याः पोषणीयाश्च। दुर्गेऽटव्यादौ मार्गे रक्षाम् इति व्यपदेशेन पान्थेभ्यो वेतनं ग्राह्यम्। एवं सेतौ नदीतरणे। प्रतिग्रामं कुञ्जरान्विभज्य बध्नीयात् ग्रामीणैरेव तेषां पोषणं कर्तव्यमित्येवमादि यथायथमूह्यम्। एवं खर्वोऽपि राजकीयः कुटुम्बार्थः प्रजाद्वारैव निर्वोढव्यः। षड्भागहारस्तु कोशार्थमुपयुज्यते। कोशश्च धर्माय परावमर्दाय वोपयुज्यते इत्यन्यत्। वराहस्य श्रेयः वराहश्रेयो मूलोत्खननम् तच्च राजा शत्रूणां कुर्यात्। मेरोरचञ्चलत्वमनुल्लंघनीयत्वं च तत्स्वयमात्मन इच्छेत्। शून्यस्य वेश्मनः संपदागम इष्टस्तमिच्छेत्। नटस्य नानारूपत्वमिष्टम्। एवं राजा स्निग्धप्रसन्नादीन् गुणान् बिभृयात्। व्यालस्येति पाठे सर्पवदवन्ध्यकोपत्वमिष्टम्। भक्तिमित्रस्य स्वाराध्योदय इष्ट एवं स्वप्रतिपाल्यानां प्रजानामुदयो राज्ञा नित्यमेष्टव्य इत्यर्थः ॥ २१ ॥ बकादीनामेकाग्रत्वं निर्भयत्वं शीघ्रकारित्वं अपराभूतित्वं च गुणास्तान् परार्थादाने राजा श्रयेदित्यर्थः ॥ २५ ॥ अश्वतरी गर्दभजा अश्वा उदरभेदेनैव प्रसूत इति प्रसिद्धम् ॥ ३० ॥

अनागतं विजानीयाद्यच्छेद्भयमुपस्थितम् ।
पुनर्वृद्धिभयात्किंचिदनिवृत्तं निशामयेत् ॥३५
प्रत्युपस्थितकालस्य सुखस्य परिवर्जनम् ।
अनागतसुखाशा च नैव बुद्धिमतां नयः ३६
योऽरिणा सह सधाय सुखं स्वपिति विश्वसन्
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो वा पतितः प्रतिबुध्यते ३७
कर्मणा येन तेनैव मृदुना दारुणेन च ।
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ३८
ये सपत्नाः सपत्नानां सर्वांस्तानुपसेवयेत् ।
आत्मनश्चापि बोद्धव्याश्चारा विनिहताः परैः
चारस्त्वविदितः कार्य आत्मनोऽथ परस्य च
पाषण्डांस्तापसादींश्च परराष्ट्रे प्रवेशयेत् ॥४०
उद्यानेषु विहारेषु प्रपास्वावसथेषु च ।
पानागारे प्रवेशेषु तीर्थेषु च सभासु च ॥ ४१
धर्माभिचारिणः पापाश्चौरा लोकस्य कंटकाः
समागच्छन्ति तान्बुध्वा नियच्छेच्छमयीत च
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्
विश्वासाद्भयमभ्येति नापरीक्ष्य च विश्वसेत्
विश्वासयित्वा तु परं तत्त्वभूतेन हेतुना ।
अथास्य प्रहरेत्काले किंचिद्विचलिते पदे ४४
अशंक्यमपि शंकेत नित्यं शंकेत शंकितात् ।
भयं ह्यशंकिताज्जातं समूलमपि कृन्तति ४५
अवधानेन मौनेन काषायेण जटाजिनैः ।
विश्वासयित्वा द्वेष्टारमवलुम्पेद्यथा वृकः ४६

पुत्रो वा यदि वा भ्राता
पिता वा यदि वा सुहृत् ।
अर्थस्य विघ्नं कुर्वाणा
हन्तव्या भूतिमिच्छता ॥ ४७

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम् ४८
अभ्युत्थानाभिवादाभ्यां संप्रदानेन कनचित्
प्रतिपुष्पफलाघाती तीक्ष्णतुण्ड इव द्विजः ४९
नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम्
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियं
नास्ति जात्या रिपुर्नाम मित्रं वाऽपि न विद्यते
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा
अमित्रं नैव मुञ्चेत वदन्तं करुणान्यपि ।
दुःखं तत्र न कर्तव्यं हन्यात्पूर्वापकारिणम् ॥
संग्रहानुग्रहे यत्नः सदा कार्योऽनसूयता ।
निग्रहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता ।
प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहृत्यैव प्रियोत्तरम् ।
असिनापि शिरश्छित्त्वा शोचेत च रुदेत च
निमन्त्रयीत सान्त्वेन संमानेन तितिक्षया ।
लोकाराधनमित्येतत्कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥
न शुष्कवैरं कुर्वीत बाहुभ्यां न नदीं तरेत् ।
अनर्थकमनायुष्यं गोविषाणस्य भक्षणम् ।
दन्ताश्च परिमृज्यन्ते रसश्चापि न लभ्यते ॥
त्रिवर्गस्त्रिविधा पीडा अनुबन्धास्तथैव च ।
अनुबन्धं तथा ज्ञात्वा पीडां च परिवर्जयेत्
ऋणशेषमग्निशेषं शत्रुशेषं तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न धारयेत् ॥
वर्धमानमृणं तिष्ठेत्परिभूताश्च शत्रवः ।
जनयन्ति भयं तीव्रं व्याधयश्चाप्युपेक्षिताः ॥
नासम्यक् कृतकारी स्यादप्रमत्तः सदा भवेत्
कण्टकोऽपि हि दुश्छिन्नो विकारं कुरुते चिरं
वधेन च मनुष्याणां मार्गाणां दूषणेन च ।
अगाराणां विनाशैश्च परराष्ट्रं विनाशयेत् ॥
गृध्रदृष्टिर्बकालीनः श्वचेष्टः सिंहविक्रमः ।
अनुद्विग्नः काकशंकी भुजङ्गचरितं चरेत् ६२

---

निगृहीतमपि भयं पुनर्विवृद्धिभयादनिवृत्तमिव निशामयेत् जानीयात् सर्वदाऽवहितास्तिष्ठेदिति भावः ॥ ३५ ॥ अभ्युत्थानादिमृदूपायैः शत्रोः प्रतिपुष्पफलाघाती स्यात्। पुष्पफलं पुष्पफलं प्रति इति प्रतिपुष्पफलम्। सर्वं पुष्पं पुरुषार्थसाधनं सर्वं फलं पुरुषार्थरूपं च तद्विनाशयेत् तीक्ष्णतुण्डो द्विजः पक्षी यथा सर्वं वृक्षस्य पुष्पं फलं च नाशयति तद्वत् ॥ ४९ ॥ नास्तीति । समर्थस्य ते जीयांसो रिपवो भवन्त्यन्ये मित्राणि भवन्तीत्यर्थः ॥ ५१ ॥ शुष्कं लाभशून्यं तत्र दृष्टान्तो गोविषाणस्य भक्षणमिति शत्रोरियं गौरिति तद्विषाणचर्वणे प्रवृत्तस्यायासो व्यर्थस्तद्वादित्यर्थः सार्धः ॥ ५६ ॥ त्रिवर्गः धर्मार्थकामाः तत्र त्रिविधा पीडा धर्मेणार्थस्य पीडा अर्थेन धर्मस्य कामेन तयोरिति । अनुबन्धाः फलानि । धर्मस्यार्थोऽर्थस्य कामः कामस्येन्द्रियप्रीतिरिति क्षुद्राः । धर्मस्य चित्तशुद्धिरर्थस्य यज्ञः कामस्य जीवनमात्रमिति प्राज्ञाः । तत्र बलाबलं ज्ञात्वाऽनुबन्धान् लिप्सेत पीडां तु परिवर्जयेदेवेत्यर्थः ॥ ५७ ॥ गृध्रदृष्टिर्गृध्रवत् दूरदर्शी । बकवदालीनो निश्चलो बकालीनः । श्वचेष्टः शुनकवज्जागरूकश्चोरसूचकश्च । सिंहवाद्विक्रमो यस्य आनिर्दयस्य तद्वदेव। काकवत् शंकी परेङ्गितज्ञः। भुजङ्गचरितं अकस्मात्परकृते दुर्गादौ प्रवेशनं तत्कुर्यात ॥ ६२ ॥

शूरमञ्जलिपातेन भीरुं भेदेन भेदयेत्।
लुब्धमर्थप्रदानेन समं तुल्येन विग्रहः ॥ ६३
श्रेणीमुख्योपजापेषु वल्लभानुनयेषु च।
अमात्यान् परिरक्षेत भेदसंघातयोरपि ६४
मृदुरित्यवजानन्ति तीक्ष्ण इत्युद्विजन्ति च।
तीक्ष्णकाले भवेत्तीक्ष्णो मृदुकाले मृदुर्भवेत्
मृदुनैव मृदुं छिन्धि मृदुना हन्ति दारुणम्।
नासाध्यं मृदुना किंचित्तस्मात्तीक्ष्णतरो मृदुः
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः।
प्रसाधयति कृत्यानि शत्रुं चाप्यधितिष्ठति ॥
पण्डितेन विरुद्धः सन्
दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू
याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥ ६८
न तत्तरेद्यस्य न पारमुत्तरे-
न्नतद्धरेद्यत्पुनराहरेत्परः।
न तत्खनेद्यस्य न मूलमुद्धरे-
न्न तं हन्याद्यस्य शिरो न पातयेत् ॥
इतीदमुक्तं वृजिनाभिसंहितं
न चैतदेवं पुरुषः समाचरेत्।
परप्रयुक्तेन कथं विभावये-
दतो मयोक्तं भवतो हितार्थिना ॥७०
यथावदुक्तं वचनं हितार्थिना
निशम्य विप्रेण सुवीरराष्ट्रपः।
तथाऽकरोद्वाक्यमदीनचेतनः
श्रियं च दीप्तां बुभुजे स बान्धवः ७१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कणिकोपदेशे
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

## १४१

युधिष्ठिर उवाच।
हीने परमके धर्मे सर्वलोकाभिलंघिते।
अधर्मे धर्मतां नीते धर्मे चाधर्मतां गते ॥ १
मर्यादासु विनष्टासु क्षुभिते धर्मनिश्चये।
राजभिः पीडिते लोके परैर्वाऽपि विशांपते २
सर्वाश्रयेषु मूढेषु कर्मसूपहतेषु च।
कामाल्लोभाच्च मोहाच्च भयं पश्यत्सु भारत
अविश्वस्तेषु सर्वेषु नित्यं भीतेषु पार्थिव।
निकृत्या हन्यमानेषु वंचयत्सु परस्परम् ॥ ४
संप्रदीप्तेषु देशेषु ब्राह्मणे चातिपीडिते।
अवर्षति च पर्जन्ये मिथो भेदे समुत्थिते ५
सर्वस्मिन्दस्युसाद्भूते पृथिव्यामुपजीवने।
केनस्विद्ब्राह्मणो जीवेज्जघन्ये काल आगते६
अतितिक्षुः पुत्रपौत्राननुक्रोशान्नराधिप।
कथमापत्सु वर्तेत तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ७
कथं च राजा वर्तेत लोके कलुषतां गते।
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेत परन्तप ॥ ८
भीष्म उवाच।
राजमूला महाबाहो योगक्षेमसुवृष्टयः।
प्रजासु व्याधयश्चैव मरणं च भयानि च ॥ ९

---

श्रेणीमुख्यः नानाजातीयाः सन्त एककार्ये निविष्टाः श्रेणयस्तासां मुख्यस्य उपजापो भेदः। उपतापेष्विति पाठे उपतापः क्लेशो वा वल्लभानां मित्राणामनुनयेषु अन्यैः क्रियमाणेषु अमात्यान्परिरक्षेत। भेदात्संघातात्सम्भूय कार्यकारित्वाच्च संहता ह्यमात्याः सद्यो राजानमराजानं कुर्युर्विपरीतं वा कुर्युरित्यर्थः ॥ ६४ ॥ वृजिनाभिसंहितं आपत्कालाभिप्रायेणैतदुक्तं न त्वेतदेवं पुरुषः समाचरेत्। परप्रयुक्ते परेणाभियोगे कृते सति इदं मदुक्तं कथं न भावयेत् अपि तु भावयेदेव। आपदि एतदनुष्ठानादधर्मो नास्तीति भावः ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

१४१

हीने इति। आपद्यकार्यमपि कणिकेनोक्तं तत्र विश्वामित्रश्वजाघनीपचनरूपं शिष्टाचारं प्रमाणयति ॥१॥ अतितिक्षुः त्यक्तुमनिच्छुः अनुक्रोशात् दयातः ब्राह्मणान्पालयितुमशक्तो राजा किं कुर्यादित्यर्थः ॥७॥ अप्राप्तप्रापणं योगः प्राप्तसंरक्षणं क्षेमः सुवृष्टिश्च ताः ब्राह्मणादीनां विपदागमो राज्ञ एव दोष इत्यर्थः ॥ ९ ॥

सोऽहमन्त्यावसायानां हराम्येनां प्रतिग्रहात्।
न स्तैन्यदोषं पश्यामि हरिष्यामि श्वजाघनीम् ॥४२॥—शान्तिपर्व अ. १४१ पृ २४३

कृतं त्रेतां द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ ।
राजमूला इति मतिर्मम नास्त्यत्र संशयः १०
तस्मिंस्त्वभ्यागते काले प्रजानां दोषकारके
विज्ञानबलमास्थाय जीवितव्यं भवेत्तदा ११
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विश्वामित्रस्य संवादं चाण्डालस्य च पक्कणे
त्रेताद्वापरयोः सन्धौ तदा दैवविधिक्रमात् ।
अनावृष्टिरभूद्घोरा लोके द्वादशवार्षिकी १३
प्रजानामतिवृद्धानां युगान्ते समुपस्थिते ।
त्रेताविमोक्षसमये द्वापरप्रतिपादने ॥ १४
नववर्षसहस्राक्षः प्रतिलोमोऽभवद्गुरुः ।
जगाम दक्षिणं मार्गं सोमो व्यावृत्तलक्षणः
नावश्यायोऽपि तत्राभूत्कुत एवाभ्रजातयः ।
नद्यः संक्षिप्ततोयौघाः किञ्चिदन्तर्गतास्ततः
सरांसि सरितश्चैव कूपाः प्रस्रवणानि च ।
हतत्विषो न लक्ष्यन्ते निसर्गाद्दैवकारितात्
उपशुष्कजलस्थाया विनिवृत्तसभाप्रपा ।
निवृत्तयज्ञस्वाध्याया निर्वषट्कारमङ्गला १८
उच्छिन्नकृषिगोरक्षा निवृत्तविपणापणा ।
निवृत्तयूपसंभारा विप्रनष्टमहोत्सवा ॥ १९
अस्थिसञ्चयसंकीर्णा महाभूतरवाकुला ।
शून्यभूयिष्ठनगरा दग्धग्रामनिवेशना ॥ २०
क्वचिच्चोरैः क्वचिच्छस्त्रैः क्वचिद्राजभिरातुरैः ।
परस्परभयाच्चैव शून्यभूयिष्ठनिर्जना ॥ २१
गतदैवतसंस्थाना वृद्धलोकनिराकृता ।
गोजाविमहिषीहीना परस्परपराहता ॥ २२
हतविप्रा हतारक्षा प्रनष्टौषधिसञ्चया ।
सर्वभूततरुप्राया बभूव वसुधा तदा ॥ २३
तस्मिन्प्रतिभये काले क्षते धर्मे युधिष्ठिर ।
बभूवुः क्षुधिता मर्त्याः खादमानाः परस्परम्
ऋषयो नियमांस्त्यक्त्वा परित्यज्याग्निदेवताः
आश्रमान्संपरित्यज्य पर्यधावन्नितस्ततः २५
विश्वामित्रोऽथ भगवान्महर्षिरनिकेतनः ।
क्षुधापरिगतो धीमान्समन्तात्पर्यधावत २६
त्यक्त्वा दारांश्च पुत्रांश्च कस्मिंश्च जनसंसदि

भक्ष्याभक्ष्यसमो भूत्वा निरग्निरनिकेतनः ॥
स कदाचित्परिपतन् श्वपचानां निवेशनम् ।
हिंस्राणां प्राणिघातानामाससाद वने क्वचित्
विभिन्नकलशाकीर्णं श्वचर्मच्छेदनायुतम् ।
वराहखरभग्नास्थिकपालघटसंकुलम् ॥ २९
मृतचैलपरिस्तीर्णं निर्माल्यकृतभूषणम् ।
सर्पनिर्मोकमालाभिः कृतचिन्हकुटीमठम् ३०
कुक्कुटारावबहुलं गर्धभध्वनिनादितम् ।
उद्घोषद्भिः खरैर्वाक्यैः कलहद्भिः परस्परम्
उलूकपक्षिध्वनिभिर्देवतायतनैर्वृतम् ।
लोहघण्टापरिष्कारं श्वयूथपरिवारितम् ३२
तत्प्रविश्य क्षुधाविष्टो विश्वामित्रो महानृषिः
आहारान्वेषणे युक्तः परं यत्नं समास्थितः ३३
न च क्वचिदविन्दत्स
भिक्षमाणोऽपि कौशिकः ।
मांसमन्नं फलं मूल-
मन्यद्वा तत्र किञ्चन ॥ ३४
अहो कृच्छ्रं मया प्राप्तमिति निश्चित्य कौशिकः
पपात भूमौ दौर्बल्यात्तस्मिंश्चाण्डालपक्कणे ३५
स चिन्तयामास मुनिः किं नु मे सुकृतं भवेत्
कथं वृथा न मृत्युः स्यादिति पार्थिवसत्तम
स ददर्श श्वमांसस्य कुतन्त्रीं विततां मुनिः ।
चाण्डालस्य गृहे राजन् सद्यः शस्त्रहतस्य वै
स चिन्तयामास तदा स्तैन्यं कार्यमितो मया
न हीदानीमुपायो मे विद्यते प्राणधारणे ३८
आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्तव्यमिति निश्चयः ३९
हीनादादेयमादौ स्यात्समानात्तदनन्तरम् ।
असंभवे वाऽऽददीत विशिष्टादपि धार्मिकात्
सोऽहमन्त्यावसायानां
हराम्येनां प्रतिग्रहात् ।
न स्तैन्यदोषं पश्यामि
हरिष्यामि श्वजाघनीम् ॥ ४१
एतां बुद्धिं समास्थाय विश्वामित्रो महामुनिः
तस्मिन्देशे स सुष्वाप श्वपचो यत्र भारत ४२

पक्कणे चाण्डालागारे॥१२॥ दैवविधिर्दैवविहितः॥१३॥ प्रतिलोमो वक्री व्यावृत्तं अन्यथाभूतं लक्षणं चिन्हं यस्य ॥ १५ ॥ अवश्यायो धूमिका ॥ १६ ॥ जलस्थायाः क्षुद्र-जलाशयाः ॥ १८ ॥ विपणो विक्रयादिः आपणो हट्टः ॥ १९ ॥ हता आरक्षा रक्षाकर्तारो यस्यां सा भूततरुः श्मशानवृक्षस्तद्वद्गम्या भूततरुप्राया भूतनरप्रायेति पाठे भूतप्रायनरेत्यर्थः। शावभूतनरप्रायेति प्राचां पाठः। स्पष्टार्थः शव एव शावः ॥२३॥ वृथा अन्नं विना ॥३६॥ कुतन्त्रीं दाण्डिकाम् ॥ ३७ ॥ प्रतिग्रहात् तज्जदोषात् स्तैन्यदोषं अधिकं न पश्यामीत्यर्थः। श्वजाघनीं शुनो जंघाम् ॥४१॥

स विगाढां निशां दृष्ट्वा सुप्ते चाण्डालपक्कणे
शनैरुत्थाय भगवान्प्रविवेश कुटीमतः ४३
स सुप्त इव चाण्डालः श्लेष्मापिहितलोचनः
परिभिन्नस्वरो रूक्षः प्रोवाचाप्रियदर्शनः ॥४४

श्वपच उवाच ।

कः कुतन्त्रीं घट्टयति
सुप्ते चाण्डालपक्कणे ।
जागर्मि नात्र सुप्तोऽस्मि
हतोऽसीति च दारुणः ॥ ४५

विश्वामित्रस्ततो भीतः सहसा तमुवाच ह
तत्र व्रीडाकुलमुखः सोद्वेगस्तेन कर्मणा ॥४६
विश्वामित्रोऽहमायुष्मन्नागतोऽहं बुभुक्षितः ।
मा वधीर्मम सद्बुद्धे यदि सम्यक् प्रपश्यसि ॥
चाण्डालस्तद्वचः श्रुत्वा महर्षेर्भावितात्मनः।
शयनादुपसंभ्रान्त उद्ययौ प्रति तं ततः ॥ ४८
स विसृज्याश्रु नेत्राभ्यां बहुमानात्कृताञ्जलिः।
उवाच कौशिकं रात्रौ ब्रह्मन्किं ते चिकीर्षितं
विश्वामित्रस्तु मातङ्गमुवाच परिसान्त्वयन्।
क्षुधितोऽहं गतप्राणो हरिष्यामि श्वजाघनीम्
क्षुधितः कलुषं यातो नास्ति ह्रीरशनार्थिनः
क्षुच्च मां दूषयत्यत्र हरिष्यामि श्वजाघनीम् ॥
अवसीदन्ति मे प्राणाः श्रुतिर्मे नश्यति क्षुधा
दुर्बलो नष्टसंज्ञश्च भक्ष्याभक्ष्यविवर्जितः ॥५२

सोऽधर्मं बुद्ध्यमानोऽपि
हरिष्यामि श्वजघानीम् ।
अटन् भैक्ष्यं न विन्दामि
यदा युष्माकमालये ॥ ५३

तदा बुद्धिः कृता पापे हरिष्यामि श्वजाघनीं
अग्निर्मुखं पुरोधाश्च देवानां शुचिषाड्विभुः ॥
यथावत्सर्वभुग्ब्रह्मा तथा मां विद्धि धर्मतः ।
तमुवाच स चाण्डालो महर्षे शृणु मे वचः
श्रुत्वा तत्त्वं तथाऽऽतिष्ठ यथा धर्मो न हीयते
धर्मं तवापि विप्रर्षे शृणु यत्ते ब्रवीम्यहम् ॥५६

शृगालादधमं श्वानं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तस्याप्यधम उद्देशः शरीरस्य श्वजाघनी ५७
नेदं सम्यग्व्यवसितं महर्षे धर्मगर्हितम् ।
चाण्डालस्वस्य हरणमभक्ष्यस्य विशेषतः ५८
साध्वन्यमनुपश्य त्वमुपायं प्राणधारणे ।
न मांसलोभात्तपसो नाशस्ते स्यान्महामुने
जानता विहितं धर्मं न कार्यो धर्मसंकरः ।
मा स्म धर्मं परित्याक्षीस्त्वं हि धर्मभृतां वरः
विश्वामित्रस्ततो राजन्नित्युक्तो भरतर्षभ ।
क्षुधार्तः प्रत्युवाचेदं पुनरेव महामुनिः ॥ ६१
निराहारस्य सुमहान्मम कालोऽभिधावतः ।
न विद्यतेऽप्युपायश्च कश्चिन्मे प्राणधारणे ६२
येन येन विशेषेण कर्मणा येन केनचित् ।
अभ्युज्जीवेत्साद्यमानः समर्थो धर्ममाचरेत् ॥
ऐन्द्रो धर्मः क्षत्रियाणां ब्राह्मणानामथाग्निकः
ब्रह्मवह्निर्मम बलं भक्ष्यामि शमयन् क्षुधाम् ॥
यथा यथैव जीवद्धि तत्कर्तव्यमहेलया ।
जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन् धर्ममवाप्नुयात्
सोऽहं जीवितमाकांक्षन्नभक्ष्यस्यापि भक्षणं
व्यवस्ये बुद्धिपूर्वं वै तद्भवाननुमन्यताम् ॥६६
बलवन्तं करिष्यामि प्रणोत्स्याम्यशुभानि तु
तपोभिर्विद्यया चैव ज्योतींषीव महत्तमः ६७

श्वपच उवाच ।

नैतत्खादन्प्राप्नुते दीर्घमायु-
र्नैव प्राणान्नामृतस्येव तृप्तिः ।
भिक्षामन्यां भिक्ष मा ते मनोऽस्तु
श्वभक्षणे श्वा ह्यभक्ष्यो द्विजानाम् ६८

विश्वामित्र उवाच ।

न दुर्भिक्षे सुलभं मांसमन्य-
च्छ्वपाक मन्ये न च मेऽस्ति वित्तम् ।
क्षुधार्तश्चाहमगतिर्निराशः
श्वमांसे चास्मिन् षड्रसान् साधु मन्ये

---

घट्टयति चालयति ॥ ४५ ॥ मम माम् ॥ ४७ ॥ नेत्राभ्यां श्लेष्मपिहिताभ्याम् ॥ ४९ ॥ कलुषं यातः पापं कर्मानुसृतः ॥ ५१ ॥ अग्निर्देवानां मुखं च पुरोधाश्च सः शुचिषाट् शुचिमेध्यमेव सहते नामेध्यम् ॥ ५४ ॥ तस्यापि यथा सर्वभुक्त्वं तथाऽहं ब्रह्मा ब्राह्मणोऽपि तत्तुल्यत्वात्सर्वभुग्भविष्यामीत्यर्थः ॥ ५५ ॥ ऐन्द्रः पालनात्मकः आग्निकः सर्वभुक्त्वरूपः ब्रह्म वेदः स एव वह्निः ॥ ६४ ॥ ज्योतींषीव तप इन्धनेन बलवन्तं करिष्यामि आत्मानमिति शेषः ॥ ६७ ॥

श्वपच उवाच ।

पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या *ब्रह्मक्षत्रस्य वै विशः
यथा शास्त्रं प्रमाणं ते माऽभक्ष्ये मानसं कृथाः

विश्वामित्र उवाच ।

अगस्त्येनासुरो जग्धो वातापिः क्षुधितेन वै
अहमापद्गतः क्षुत्तो भक्षयिष्ये श्वजाघनीम् ॥

श्वपच उवाच ।

भिक्षामन्यामाहरेति न च कर्तुमिहार्हसि ।
न नूनं कार्यमेतद्वै हर कामं श्वजाघनीम् ॥७२

विश्वामित्र उवाच ।

शिष्टा वै कारणं धर्मे तद्वृत्तमनुवर्तये ।
परां मेध्याशनादेनां भक्ष्यां मन्ये श्वजाघनीम्

श्वपच उवाच ।

असता यत्समाचीर्णं न च धर्मः सनातनः
नाकार्यमिह कार्यं वै मा छलेनाशुभं कृथाः ॥

विश्वामित्र उवाच ।

न पातकं नावमतमृषिः सन्कर्तुमर्हति ।
समौ च श्वमृगौ मन्ये तस्माद्भोक्ष्ये श्वजाघनीं

श्वपच उवाच ।

यद्ब्राह्मणार्थे कृतमर्थितेन
तेनर्षिणा तदवस्थाधिकारे ।
स वै धर्मो यत्र न पापमस्ति
सर्वैरुपायैर्गुरवो हि रक्ष्याः ॥ ७६

विश्वामित्र उवाच ।

मित्रं च मे ब्राह्मणस्यायमात्मा
प्रियश्च मे पूज्यतमश्च लोके ।
तं भर्तुकामोऽहमिमां जिहीर्षे
नृशंसानामीदृशानां न बिभ्ये ॥ ७७

श्वपच उवाच ।

कामं नरा जीवितं सन्त्यजन्ति
न चाभक्ष्ये क्वचित्कुर्वन्ति बुद्धिम् ।
सर्वान्कामान्प्राप्नुवन्तीह विद्वन्
प्रियस्व कामं सहितः क्षुधैव ॥ ७८

विश्वामित्र उवाच ।

स्थाने भवेत्संशयः प्रेत्यभावे
निःसंशयः कर्मणां वै विनाशः ।
अहं पुनर्व्रतनित्यः शमात्मा
मूलं रक्ष्यं भक्षयिष्याम्यभक्ष्यम् ॥७९

बुद्ध्यात्मके व्यक्तमस्तीति पुण्यं
मोहात्मके यत्र यथा श्वभक्ष्ये ।
यद्यप्येतत्संशयात्मा चरामि
नाहं भविष्यामि यथा त्वमेव ॥ ८०

---

पंच शशशल्यकादयः पञ्चैव भक्ष्या नान्ये इति हेतोरभक्ष्ये श्वमांसे मनो मा कृथाः ॥ ७० ॥ इति कर्तुं नार्हसीति योजना ॥ ७२ ॥ शिष्टाः अगस्त्यादयः ॥ ७३ ॥ समौ पशुत्वादिति भावः ॥ ७५ ॥ **यदिति** । तेनागस्त्येन ब्राह्मणानामर्थेऽर्थितेन प्रार्थितेन अर्थाद्ब्राह्मणैरेव वातापिभक्षणं कृतं न स्वार्थे तदपि अवस्थाधिकारे स तादृश एव समयो नान्यत् किंचित्कर्तुं शक्यमित्यर्थः । नृशंसमपि भक्षित्वा तेन वातापिना भक्ष्यमाणा ब्राह्मणा रक्षिता इति धर्म एवेत्यर्थः ॥ ७६ ॥ तर्हि अयमात्मा देहो मम मित्रं एतस्य रक्षणार्थे मया अप्येतद्भुक्तं चेन्न कश्चिद्दोषोऽस्तीत्याह–**मित्रं चेति** ॥७७॥ क्षुधैव जितया सर्वान्कामानन्ये आप्नुवन्ति अतस्त्वमपि क्षुधैव सहितः अनाहारेणैव कामं प्रियस्व पूरयस्व ॥७८॥ **स्थाने इति** । सकामः प्रेत्यभावे मरणे सति यशः यशस्करो भवेदिति स्थाने युक्तं अनशनेन मरणं श्रेय इति सत्यमित्यर्थः । जीवतस्त्वनश्नतो धर्मलोपः प्रत्यक्षः मूलं धर्मस्य शरीरं रक्ष्यं तस्य वैकल्येन धर्मविरोधो भवतीत्यर्थः ॥ ७९ ॥ **बुद्ध्यात्मके** प्रमातरि विचारिते श्वजाघनीभक्षणेऽपि पुण्यमस्तीति जाने । ज्ञानोत्पत्तियोग्यं शरीरमपथ्येनापि रक्ष्यमेवेति भावः मोहात्मके कर्तृत्वाद्यभिमानभाजि यथा श्वभक्षणे दोषस्तथैव तत्र विषयेऽस्ति । संशयात्माऽन्यतरस्यात्मनो हृदपरिग्रहाभावात् । तथापि श्वभक्षणमात्रेण त्वादृशः श्वपचोऽहं न भविष्यामि तपसा दोषं दूरीकर्तुं शक्तोऽस्मीति भावः ॥ ८० ॥

---

*पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव ॥
शशकः शल्यको गोधा कूर्मः खड्गी तु पञ्चमः

इति रामायणम् । उभयोश्च युगपत्प्राप्तावितरव्यावृत्तिपरो विधिः परिसंख्याविधिः। यथा 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' इति । इदं हि वाक्यं न पञ्चनखभक्षणपरम् । तस्य रागतः प्राप्तत्वात् । नापि नियमपरम् । पञ्चनखापञ्चभक्षणस्य युगपत्प्राप्तेः पक्षेऽप्राप्त्यभावात् । अत इदमपञ्चनखभक्षणे निवृत्तिपरमिति भवति परिसंख्याविधिः । सा च द्विविधा श्रौती लाक्षणिकी चेति । तत्र ' अत्र ह्येवावपन्ति ' इति श्रौती । 'पञ्चपञ्चनखा भक्ष्याः' इति तु लाक्षणिकी इत्याद्यन्यत्र विस्तारः ।

श्वपच उवाच ।
गोपनीयमिदं दुःखमिति मे निश्चिता मतिः
दुष्कृतो ब्राह्मणः सन्नं यस्त्वामहमुपालभे ८१
विश्वामित्र उवाच ।
पिबन्त्येवोदकं गावो मण्डूकेषु रुवत्स्वपि ।
न तेऽधिकारो धर्मेऽस्ति मा भूरात्मप्रशंसकः
श्वपच उवाच ।
सुहृद्भूत्वाऽनुशासे त्वां कृपा हि त्वयि मे द्विज
यदिदं श्रेय आधत्स्व मा लोभात्पातकं कृथाः
विश्वामित्र उवाच ।
सुहृन्मे त्वं सुखेप्सुश्चे-
दापदो मां समुद्धर ।
जानेऽहं धर्मतोऽऽत्मानं
शौनीमुत्सृज जाघनीम् ॥ ८४
श्वपच उवाच ।
नैवोत्सहे भवतो दातुमेतां
नोपेक्षितुं ह्रियमाणं स्वमन्नम् ।
उभौ स्यावः पापलोकावलिप्तौ
दाता चाहं ब्राह्मणस्त्वं प्रतीच्छन् ॥
विश्वामित्र उवाच ।
अद्याहमेतद्वृजिनं कर्म कृत्वा
जीवंश्चरिष्यामि महापवित्रम् ।
स पूतात्मा धर्ममेवाभिपत्स्ये
यदेतयोर्गुरु तद्वै ब्रवीहि ॥ ८६
श्वपच उवाच ।
आत्मैव साक्षी कुलधर्मकृत्ये
त्वमेव जानासि यदत्र दुष्कृतम् ।
यो ह्याद्रियाद्भक्ष्यमिति श्वमांसं
मन्ये न तस्यास्ति विवर्जनीयम् ८७
विश्वामित्र उवाच ।
उपादाने खादने चास्ति दोषः
कार्यात्यये नित्यमत्रापवादः ।
यस्मिन् हिंसा नानृतं वाच्यलेशो
भक्ष्यक्रिया यत्र न तद्गरीयः ॥ ८८
श्वपच उवाच ।
यद्येष हेतुस्तव खादने स्या-
न्न ते वेदः कारणं नार्यधर्मः ।
तस्माद्भक्ष्ये भक्षणे वा द्विजेन्द्र
दोषं न पश्यामि यथेदमत्र ॥ ८९
विश्वामित्र उवाच ।
नैवातिपापं भक्षमाणस्य दृष्टं
सुरां तु पीत्वा पततीति शब्दः ।
अन्योन्यकार्याणि यथा तथैव
न पापमात्रेण कृतं हिनस्ति ॥ ९०
श्वपच उवाच ।
अस्थानतो हीनतः कुत्सिताद्वा
तद्विद्वांसं बाधते साधुवृत्तम् ।
श्वानं पुनर्यो लभतेऽभिषङ्गा-
त्तेनापि दण्डः सहितव्य एव ॥ ९१
भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा निववृते मातङ्गः कौशिकं तदा
विश्वामित्रो जहारैव कृतबुद्धिः श्वजाघनीम्
ततो जग्राह स श्वाङ्गं जीवितार्थी महामुनिः ।
सदारस्तामुपाहृत्य वने भोक्तुमियेष सः ॥ ९२

---

इदं श्वजाघनीभक्षणजं दुःखं पापं गोपनीयं गूहनीयं त्वया क्रियमाणं निरसनीयमिति मे बुद्धिर्निश्चिताऽस्ति । ततोऽहं दुष्कृतः पापीयानपि अब्राह्मणोऽपि त्वामुपालभे यः सोऽहं सत्रं कैतवकारी । अस्मि स त्वमिति पाठे स त्वं प्रसिद्धो विश्वामित्रस्त्वां यदब्राह्मणोऽहमुपालभेऽतः दुष्कृतोऽस्मीति योजना ॥ ८१ ॥ धर्मे धर्मानुशासने ॥ ८२ ॥ पापलोकौ च तावलिप्तौ चेति समासः । प्रतीच्छन् प्रतिगृह्णन् ॥ ८५ ॥ कार्यात्यये प्राणात्ययेऽभक्ष्यमपि भक्षणयिमिति भक्ष्याभक्ष्यविधेरपवादोऽस्ति तथा च सूत्रम्–'सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात्' इति । यत्राभक्ष्यक्रिया अभक्ष्यतापादकं वाक्यं तच्छास्त्रं गरीयो न यतः यस्मिन्नभक्ष्यभक्षणे हिंसाऽनृतं च न इदमेव द्वयं अधर्मस्य ज्ञापकं, किं तर्हि भक्ष्याभक्ष्यशास्त्रमनर्थकं नेत्याह–वाच्यलेश इति । भावप्रधानो निर्देशः । तत्र वाच्यत्वस्य निन्द्यत्वस्य लेशमात्रं न तु तद्धिंसानृतवदत्यन्तं निन्द्यमित्यर्थः ॥ ८८ ॥ हेतुः प्राणपोषणेच्छाऽस्ति कारणं प्रमाणं भक्ष्ये भक्षणे। अभक्षणे इति च्छेदः ॥ ८९ ॥ अतिपापं हिंसावदभक्ष्यं भक्षमाणस्य न दृष्टं पततीति शब्दः शब्दशास्त्रस्याज्ञामात्रम्। परं तु पापहेतुर्मुख्यो हिंसाख्योऽत्र न दृश्यत इति भावः । अन्योन्यकार्याणि मैथुनानि । पापमात्रेण कृतं पुण्यं हिनस्ति नाशयति तेन ईषत्पापोत्पत्तिरस्तु नतु ब्राह्मण्यादिधर्महानिरस्तीति भावः ॥ ९० ॥ अस्थानतः चाण्डालगृहात् हीनतः चौर्यतः कुत्सितात् अदित्सतः कदर्यात् अभिषंगात् अत्याग्रहात् श्वानं लभते तेनापि तेनैव दंडः सहितव्यः सोढव्य एव । न तु दातुर्मम दोषोऽस्तीति भावः ॥९१॥

अथास्य बुद्धिरभवद्विधिनाहं श्वजाघनीम्।
भक्षयामि यथाकामं पूर्वं सन्तर्प्य देवताः ९४
ततोऽग्निमुपसंहृत्य ब्राह्मेण विधिना मुनिः।
ऐन्द्राग्नेयेन विधिना चरुं श्रपयत स्वयम् ९५
ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत।
आहूय देवानिन्द्रादीन् भागं भागं विधिक्रमात
एतस्मिन्नेव काले तु प्रववर्ष स वासवः।
सञ्जीवयन् प्रजाः सर्वा जनयामास चौषधीः
विश्वामित्रोऽपि भगवांस्तपसा दग्धकिल्बिषः
कालेन महता सिद्धिमवाप परमाद्भुताम् ९८
स संहृत्य च तत्कर्म अनास्वाद्य च तद्धविः
तोषयामास देवांश्च पितॄंश्च द्विजसत्तमः ९९
एवं विद्वानदीनात्मा व्यसनस्थो जिजीविषुः
सर्वोपायैरुपायज्ञो दीनमात्मानमुद्धरेत् १००
एतां बुद्धिं समास्थाय जीवितव्यं सदा भवेत्
जीवन्पुण्यमवाप्नोति पुरुषो भद्रमश्नुते ॥ १०१
तस्मात्कौन्तेय विदुषा धर्माधर्मविनिश्चये।
बुद्धिमास्थाय लोकेऽस्मिन् वर्तितव्यं कृतात्मना

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि विश्वामित्रश्वपचसंवादे*
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

## १४२

युधिष्ठिर उवाच।
यदि घोरं समुद्दिष्टमश्रद्धेयमिवानृतम्।
अस्ति स्विद्दस्युमर्यादा यामहं परिवर्जये ॥ १
संमुह्यामि विषीदामि धर्मो मे शिथिलीकृतः
उद्यमं नाधिगच्छामि कदाचित्परिसान्त्वयन्
भीष्म उवाच।
नैतच्छ्रुत्वाऽऽगमादेव तव धर्मानुशासनम्।
प्रज्ञासमविहारोऽयं कविभिः संभृतं मधु ३
बह्व्यः प्रतिविधातव्याः प्रज्ञा राज्ञा ततस्ततः
नैकशाखेन धर्मेण यत्रैषा संप्रवर्तते ॥ ४
बुद्धिसञ्जननो धर्म आचारश्च सतां सदा।
श्रेयो भवति कौरव्य सदा तद्विद्धि मे वचः ५
बुद्धिश्रेष्ठा हि राजानश्चरन्ति विजयैषिणः।
धर्मः प्रतिविधातव्यो बुद्ध्या राज्ञा ततस्ततः
नैकशाखेन धर्मेण राज्ञो धर्मो विधीयते।
दुर्बलस्य कुतः प्रज्ञा पुरस्तादनुपाहृता ॥ ७
अद्वैधज्ञः पथि द्वैधे संशयं प्राप्नुमर्हति।
बुद्धिद्वैधं वेदितव्यं पुरस्तादेव भारत ॥ ८
पार्श्वतः करणं प्राज्ञो विष्टंभित्वा प्रकारयेत्
जनस्तच्चरितं धर्मं विजानात्यन्यथान्यथा ९

---

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि आपद्धर्मानुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १४१ ॥ * अस्मिन्नध्याये श्लोकत्रयमधिकम्।

१४२

**यदिति।** यदि महद्भिरपि घोरं कर्म कर्तव्यत्वेन समुद्दिष्टं यदश्रद्धेयामिवानृतामिव च तर्हि दस्यूनामकार्यकारिणामपि मर्यादा काचिदस्ति इतोऽधिकं दस्यूनां न कर्तव्यमिति ॥ १ ॥ अस्मिंश्चाकृत्ये कर्तव्ये संमोहादिकं प्राप्तोऽप्यात्मानं सान्त्वयन्नप्युद्यममध्यवसायं नाधिगच्छामि एतान् धर्मान् कर्तुमहं न शक्नोमीत्यर्थः ॥ २ ॥ एतदागमादेव श्रुत्वा तव धर्मानुशासनं मया कृतामिति नास्ति किं तु प्रज्ञायाः समवहारः निष्ठा कल्पितेयमित्यर्थः एतदाग्निहोत्रादिवद्विधेयं न अपि तु कविभिरकरणे महान्तं दोषं पश्यद्भिः कल्पितमिति भावः ॥ ३ ॥ ततस्ततः कोकिलवराहवृकसिंहादिभ्यः शिक्षित्वा यत्र यासु प्रज्ञासु अनुष्ठेयासु एषा तव बुद्धिः ऐकशाखेनैकदेशिना धर्मेणोपलक्षिता न संप्रवर्तते ताः प्रज्ञाः बह्व्यः प्रतिविधातव्याः सन्ति ॥ ४ ॥ धर्मादिर्ज्ञेयः तत्तत्र विषये मे मम वचो विद्धि ॥ ५ ॥ प्रतिविधातव्यः चिकित्सनीयः ॥ ६ ॥ यतः पुरस्तादध्ययनकालेऽनुपाहृता अशिक्षिता अतः दुर्बलस्यैकदेशाध्ययनवतः प्रज्ञा कुतः न कुतश्चिदित्यर्थः ॥ ७ ॥ द्वैधं एकस्यैव कर्मणः क्वचित्काले धर्मत्वं क्वचिदधर्मत्वमिति द्विप्रकारत्वं, तस्मिन्प्राप्ते तदनभिज्ञः संशयं संकटं प्राप्नोति । अहिंसाया धर्मत्वेऽपि चोररक्षया पापं भवति तद्वदिदं ज्ञेयम् ॥ ८ ॥ पार्श्वतः पश्चात्करणं करणीयं विष्टंभित्वा निश्चित्याग्रिमवर्षे प्रजाभ्यः षड्भागस्यार्धं अंशत्रयं वा गृहीष्यामीत्यभिसंधाय प्रकारयेत् आपत्काले तमेव षड्भागं सार्धगुणं सपादगुणं वा प्रकर्षेण गृह्णीयात् तत्कुर्वन्मूढदृष्ट्याऽधर्मी भवति न तु प्राज्ञदृष्ट्येत्यर्थः ॥ ९ ॥

अमिथ्याज्ञानिनः केचिन्मिथ्याविज्ञानिनः परे
तद्वै यथायथं बुध्वा ज्ञानमाददते सताम् १०
परिमुष्णन्ति शास्त्राणि धर्मस्य परिपन्थिनः
वैषम्यमर्थविद्यानां निरर्थाः ख्यापयन्ति ते ११
आजिजीविषवो विद्यां यशःकामौ समन्ततः
ते सर्वे नृप पापिष्ठा धर्मस्य परिपन्थिनः १२
अपक्कमतयो मन्दा न जानन्ति यथातथम् ।
यथा ह्यशास्त्रकुशलाः सर्वत्रायुक्तिनिष्ठिताः
परिमुष्णन्ति शास्त्राणि शास्त्रदोषानुदर्शिनः
विज्ञातमर्थं विद्यानां न सम्यगिति वर्तते १४
निन्दया परविद्यानां स्वविद्यां ख्यापयन्ति च
वागस्त्रा वाक्छुरीभूता दुग्धविद्याफला इव
तान्विद्यावणिजो विद्धि राक्षसानिव भारत
व्याजेन सद्भिर्विहितो धर्मस्ते परिहास्यति
न धर्मवचनं वाचा नैव बुद्ध्येति नः श्रुतम् ।
इति बार्हस्पतं ज्ञानं प्रोवाच मघवा स्वयम् ॥
न त्वेव वचनं किञ्चिदनिमित्तादिहोच्यते ।
सुविनीतेन शास्त्रेण न व्यवस्यन्त्यथापरे १८
लोकयात्रामिहैके तु धर्मं प्राहुर्मनीषिणः ।
समुद्दिष्टं सतां धर्मं स्वयमूहेत पण्डितः १९
अमर्षाच्छास्त्रसम्मोहादविज्ञानाच्च भारत ।
शास्त्रं प्राज्ञस्य वदतः समूहे यात्यदर्शनम् २०
आगतागमया बुद्ध्या वचनेन प्रशस्यते ।
अज्ञानाज्ज्ञानहेतुत्वाद्वचनं साधु मन्यते २१
अनया हतमेवेदमिति शास्त्रमपार्थकम् ।
दैतेयानुशना प्राह संशयच्छेदनं पुरा ॥ २२
ज्ञानमप्यपदिश्यं हि यथा नास्ति तथैव तत् ।
तं तथा छिन्नमूलेन सन्नोदयितुमर्हसि ॥ २३
अनव्यवहितं यो वा नेदं वाक्यमुपाश्नुते ।
उग्रायैव हि सृष्टोऽसि कर्मणे न त्वमीक्षसे

---

सतां मतमिति शेषः ॥१०॥ मुष्णंति धर्मशास्त्रविरुद्धं अर्थशास्त्रं नादर्तव्यमिति वदन्ति वैषम्यं अप्रामाण्यं अधर्मत्वं वा ॥११॥ शास्त्रचोरनिंदाप्रसंगात्तदुपजीविनोऽपि निंदाति **आजिजीविषव इति** सार्धैश्चतुर्भिः ॥१२॥ दम्भिनं निन्दत्यर्धेन-**व्याजेनेति** । कृत इति शेषः ते तव॥१६॥ प्रकृतमाह-**नेति**। वाचा केवलया बुद्ध्या तर्केण वा केवलेन धर्मवचनं धर्मनिश्चयो नास्ति अपि तु समुच्चिताभ्यां उभाभ्यां धर्मनिर्णय इत्यर्थः ॥१७॥ **न त्विति** । आततायी ब्राह्मणोऽपि हन्तव्य इत्यादिवचनं कामतो ब्राह्मणं हंतुः प्रायश्चितं न विद्यत इत्यनेन विरुद्धमपि निष्कारणं प्रवर्तते न को हि तद्वेदयद्यमुष्मिंल्लोकेऽस्ति वा न वेति वचनं यथा दिक्ष्वतीकाशान् करोतीत्यतीकाशविधिपरं न तु पर लोकफले संदेहोपन्यासपरम्। एवं आततायिब्राह्मणवधवाक्यमपि आततायी सर्वथा हंतव्य इत्येवंपरं न तु ब्राह्मणरूपोऽप्याततायी हन्तव्य इत्येवंपरं इति कैश्चिदुच्यते । अपरे तु सुविनीतेन युक्तिमतापि शास्त्रेण शिक्षितं आततायिवधं न व्यवस्यन्ति कर्तव्यत्वेन निश्चिन्वन्ति अहिंसाशास्त्रप्राबल्यात् । आत्मवधार्थमुद्यताद्गोरिवाततायिनोऽप्यात्मानं रक्षेन्न गामिव तं हन्यादिति तेषां भावः॥१८॥ इहलोके तु एके मुख्यास्त्वाचार्याः लोकयात्रां तन्निर्वाहमेव धर्मं प्राहुः। सा च चोरादीनां वधमन्तरेण न संभवतीत्यवश्यं हिंसाऽपि कर्तव्येति तेषामाशयः । तथाहि कल्पकाराः श्रुतिमुदाहरन्ति-अन्नादेर्भ्रूणहा मार्ष्टि अनेना अभिशंसति स्तेनः प्रमुक्तो राजनि याचन्ननृतसंगरे गुरौयाजश्च शिष्यश्च भर्तुर्व्यभिचारिणीति मार्ष्टिस्त्रियश्चपापामिति शेषः। एवं सत्यपि मतभेदे युक्त्यैव धर्मं ऊहेतेत्याह-**सामिति** १९ तस्मादमर्षादींस्त्यक्त्वा समूहे सभायां शास्त्रं वदेदित्याशयेनाह **अमर्षादिति**॥२०॥आगतागमया बुद्ध्या श्रुत्युपगृहीतेन तर्केण सहितं यद्वचनं तेन प्रशस्यते शास्त्रं नान्यतरेण । अन्यस्तु ज्ञानहेतुत्वात् । अज्ञातज्ञापकतया वचनं तर्केण हीनं शब्दमेव साधु मन्यते कुतः अज्ञानात् ॥२१॥ अन्यः पुनः अनया युक्त्या इदं शास्त्रं हतं दुषितं इति हेतोरपार्थकं व्यर्थमिति मन्यते तदप्यज्ञानादेव । तस्मात्तर्केण शास्त्रस्य शास्त्रेण तर्कस्य वा बाधमकृत्वा यदुभयसंमतं तदेवानुष्ठेयमित्युशनसो मतं पूर्वोक्तेन बार्हस्पत्येन ज्ञानेनैक्यंगतमिति दर्शितम्॥२२॥ किंच अपादिश्यं दिशोर्मध्ये स्थितं कोटिद्वयस्पार्शि ज्ञानं संशयरूपं तद्यथा नास्ति तथैव व्यर्थमित्यर्थः । अतस्तं संशयं छिन्नमूलेन मूलोच्छेदेन यथा स्यात्तथा सन्नोदयितुं दूरीकर्तुमर्हसि निःसंशयं यत् ज्ञानं तदेवाश्रयस्वेत्यर्थः ॥ २३ ॥ यो वा भवान् मम इदं नीतिवाक्यं न उपाश्नुते नांगीकरोति तत् अनव्यवहितं अयुक्तम् । व्यवहितपदं न शब्देन समस्तं चेत् न व्यवहितशब्दः सन्निकृष्टवचनः तदभावोऽनव्यवहितमिति योगोऽत्र ज्ञेयः । कुतो युक्तमत आह-**उग्रायेति** । यतः उग्राय हिंस्रकर्मार्थमेव त्वं सृष्टोसि । तच्च त्वं न समीक्षसेऽतो मम वचनं तव चेतसि न किंचिल्लग्नमित्यर्थः २४

अङ्ग मामन्ववेक्षस्व राजन्याय बुभूषते।
यथा प्रमुच्यते त्वन्यो यदर्थं न प्रमोदते २५
अजोऽश्वः क्षत्रमित्येतत् सदृशं ब्रह्मणा कृतम्।
तस्मादभीक्ष्णं भूतानां यात्रा काचित्प्रसिद्ध्यति ॥ २६
यस्त्ववध्यवधे दोषः स वध्यस्यावधे स्मृतः
सा चैव खलु मर्यादा यामयं परिवर्जयेत्२७
तस्मात्तीक्ष्णः प्रजा राजा स्वधर्मे स्थापयेत्ततः
अन्योन्यं भक्षयन्तो हि प्रचरेयुर्वृका इव २८
यस्य दस्युगणा राष्ट्रे ध्वांक्षा मत्स्यान् जलादिव।
विहरन्ति परस्वानि स वै क्षत्रियपांसनः ॥ २९
कुलीनान् सचिवान् कृत्वा वेदविद्यासमन्वितान्।
प्रशाधि पृथिवीं राजन् प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३०
विहीनं कर्मणा न्यायं यः प्रगृह्णाति भूमिपः
उपायस्याविशेषज्ञं तद्वै क्षत्रं नपुंसकम् ॥ ३१
नैवोग्रं नैव चानुग्रं धर्मेणेह प्रशस्यते।
उभयं न व्यतिक्रामेदुग्रो भूत्वा मृदुर्भव ३२
कष्टः क्षत्रियधर्मोऽयं सौहृदं त्वयि मे स्थितम्
उग्रकर्मणि सृष्टोऽसि तस्माद्राज्यं प्रशाधि वै
अशिष्टनिग्रहो नित्यं शिष्टस्य परिपालनम्।
एवं शुक्रोऽब्रवीद्धीमानापत्सु भरतर्षभ ॥ ३४

युधिष्ठिर उवाच।

अस्ति चेदिह मर्यादा यामन्यो नाभिलंघयेत्
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह

भीष्म उवाच।

ब्राह्मणानेव सेवेत विद्यावृद्धांस्तपस्विनः।
श्रुतचारित्रवृत्ताढ्यान्पवित्रं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३६
या देवतासु वृत्तिस्ते साऽस्तु विप्रेषु नित्यदा
क्रुद्धैर्हि विप्रैः कर्माणि कृतानि बहुधा नृप ३७
प्रीत्या यशो भवेन्मुख्यमप्रीत्या परमं भयम्।
प्रीत्या ह्यमृतवद्विप्राः क्रुद्धाश्चैव विषं यथा३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

## १४३

युधिष्ठिर उवाच।

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
शरणं पाल्यमानस्य यो धर्मस्तं ब्रवीहि मे १

भीष्म उवाच।

महान्धर्मो महाराज शरणागतपालने।
अर्हः प्रष्टुं भवांश्चैव प्रश्नं भरतसत्तम ॥ २

हे अङ्ग मां अन्ववेक्षस्व बुभूषते ऐश्वर्यलिप्सवे राजन्याय राजसमूहाय तदर्थं यथा तत्प्रमुच्यते तथाकुर्वाणं मामन्ववेक्षस्वेत्यध्याहृत्य योज्यम्। अन्यो लोको यदर्थं यमर्थं न प्रमोदते नानुमोदते हिंस्रोऽयमिति मां निन्दन्तोऽपि भूलोकार्थिनो राजानः स्वाहितमजानाना अपि मया स्वर्लोकं प्रापिताः उपकारायैव न स्वार्थाय। एवं त्वमप्युग्रेण कर्मणा प्रजास्तद्धितायैव शाधीति भावः ॥ २५ ॥ **अज इति**। यथाऽजो यज्ञार्थं नीयते तद्धितायैवं अश्वक्षत्रियावपि संग्रामार्थं नीयेते तद्धितायैव। 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'इत्युक्तेः। तथा यज्ञे हन्यमानस्य पशोरपि स्वर्गप्राप्तिर्दृष्टा। 'पशुर्वै नीयमानः स मृत्युं प्रापश्यत्स देवान्नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमयिष्यामः' इति ॥ २६ ॥ एवं संमुग्राभीत्यादेरुत्तरमुक्त्वाऽस्तित्विहदस्युमर्यादा इत्यस्योत्तरमाह **यस्त्ववेति** ॥२७॥ अन्यायं न्यायवर्जितं यथा स्यात्तथा प्रगृह्णाति षड्भागमादत्ते कर्मणा पालनात्मकेन विहीनं क्षत्रम् ॥ ३१ ब्राह्मणादर्वागेव दंडस्य मर्यादा ब्राह्मणस्तु नैवं दंड्योऽपि तु पूज्य एवेत्याह-**ब्राह्मणानेवेति**॥३६ इति श्री महाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

१४३

**पितामहेति** ॥ १ ॥

शिबिप्रभृतयो राजन् राजानः शरणागतान्
परिपाल्य महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः
श्रूयते च कपोतेन शत्रुः शरणमागतः ।
पूजितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ४

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं कपोतेन पुरा शत्रुः शरणमागतः ।
स्वमांसं भोजितः कां च गतिं लेभे स भारत

भीष्म उवाच ।

श्रृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्
नृपतेर्मुचुकुन्दस्य कथितां भार्गवेण वै ॥ ६
इममर्थं पुरा पार्थ मुचुकुन्दो नराधिपः ।
भार्गवं परिपप्रच्छ प्रणतः पुरुषर्षभ ॥ ७
तस्मै शुश्रूषमाणाय भार्गवोऽकथयत्कथाम् ।
इमां यथा कपोतेन सिद्धिः प्राप्ता नराधिप

मुनिरुवाच ।

धर्मनिश्चयसंयुक्तां कामार्थसहितां कथाम् ।
श्रृणुष्वावहितो राजन् गदतो मे महाभुज ९
कश्चित्क्षुद्रसमाचारः पृथिव्यां कालसंमितः
विचचार महारण्ये घोरः शकुनिलुब्धकः१०
काकोल इव कृष्णांगो रक्ताक्षः कालसंमितः
दीर्घजंघो ह्रस्वपादो महवक्त्रो महाहनुः ११
नैव तस्य सुहृत्कश्चिन्न सम्बन्धी न बान्धवाः
स हि तैः संपरित्यक्तस्तेन रौद्रेण कर्मणा१२
नरः पापसमाचार-
स्त्यक्तव्यो दूरतो बुधैः ।
आत्मानं योऽभिसन्धत्ते
सोऽन्यस्य स्यात्कथं हितः ॥ १३
ये नृशंसा दुरात्मानः प्राणिप्राणहरा नराः ।
उद्वेजनीया भूतानां व्याला इव भवन्ति ते ॥
स वै क्षारकमादाय द्विजान् हत्वा वने सदा
चकार विक्रयं तेषां पतङ्गानां जनाधिप १५
एवं तु वर्तमानस्य तस्य वृत्ति दुरात्मनः ।
अगमत्सुमहान्कालो न चाधर्ममबुध्यत ॥ १६
तस्य भार्यासहायस्य रममाणस्य शाश्वतम् ।
दैवयोगविमूढस्य नान्या वृत्तिररोचत ॥ १७
ततः कदाचित्तस्याथ वनस्थस्य समन्ततः ।
पातयन्निव वृक्षांस्तान्सुमहान्वातसंभ्रमः १८
मेघसंकुलमाकाशं विद्युन्मण्डलमण्डितम् ।
संछन्नस्तु मुहूर्तेन नौसार्थैरिव सागरः ॥ १९
वारिधारासमूहेन संप्रविष्टः शतक्रतुः ।
क्षणेन पूरयामास सलिलेन वसुन्धराम् २०
ततो धाराकुले काले संभ्रमन्नष्टचेतनः ।
शीतार्तस्तद्वनं सर्वमाकुलेनान्तरात्मना ॥ २१
नैव निम्नं स्थलं वापि सोऽविन्दत विहङ्गहा
पूरितो हि जलौघेन तस्य मार्गो वनस्य
पक्षिणो वर्षवेगेन हता लीनास्तदाऽभवन् ।
मृग-सिंह-वराहाश्च स्थलमाश्रित्य शेरते २३
महता वातवर्षेण त्रासितास्ते वनौकसः ।
भयार्ताश्च क्षुधार्ताश्च बभ्रमुः सहिता वने २४
स तु शीतहतैर्गात्रैर्न जगाम न तस्थिवान् ।
ददर्श पतितां भूमौ कपोतीं शीतविह्वलाम्
दृष्ट्वाऽऽर्तोपि हि पापात्मा स तां पञ्जरकेक्षिपत्
स्वयं दुःखाभिभूतोऽपि दुःखमेवाकरोत्परे२६
पापात्मा पापकारित्वात्पापमेव चकार सः
सोऽपश्यत्तरुषण्डेषु मेघनीलवनस्पतिम् २७
सेव्यमानं विहङ्गौघैश्छायावासफलार्थिभिः
धात्रा परोपकाराय स साधुरिव निर्मितः२८
अथाभवत्क्षणेनैव वियद्विमलतारकम् ।
महत्सर इवोत्फुल्लं कुमुदच्छुरितोदकम् ॥२९
ताराढ्यं कुमुदाकारमाकाशं निर्मलं बहु ।
घनैर्मुक्तं नभो दृष्ट्वा लुब्धकः शीतविह्वलः३०
दिशो विलोकयामास विगाढां प्रेक्ष्य शर्वरीम्
दूरतो मे निवेशश्च अस्माद्देशादिति प्रभो ३१
कृतबुद्धिर्द्रुमे तस्मिन्वस्तुं तां रजनीं ततः ।
साञ्जलिः प्रणतिं कृत्वा वाक्यमाह वनस्पतिम्
शरणं यामि यान्यस्मिन् दैवतानि वनस्पतौ
स शिलायां शिरः कृत्वा पर्णान्यास्तीर्य भूतले
दुःखेन महताऽऽविष्टस्ततः सुष्वाप पक्षिहा॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कपोतलुब्धकसंवादोपक्रमे
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

काकोलः काकविशेषः ॥ ११ ॥ 'अभिसंधत्ते विषोद्बन्धनादिना हन्तुमिति शेषः ॥ १३ ॥ क्षारकं जालम् ॥१५॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

## १४४

भीष्म उवाच।
अथ वृक्षस्य शाखायां विहङ्गः ससुहृज्जनः।
दीर्घकालोषितो राजंस्तत्र चित्रतनूरुहः ॥ १
तस्य कल्यगता भार्या चरितुं नाभ्यवर्तत।
प्राप्तां च रजनीं दृष्ट्वा स पक्षी पर्यतप्यत ॥ २
वातवर्षं महच्चासीन्न चागच्छति मे प्रिया।
किं नु तत्कारणं येन साऽद्यापि न निवर्तते
अपि स्वस्ति भवेत्तस्याः प्रियाया मम कानने
तया विरहितं हीदं शून्यमद्य गृहं मम ॥ ४
पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः।
भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत् ५
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् ॥ ६
यदि सा रक्तनेत्रान्ता चित्राङ्गी मधुरस्वरा।
अद्य नायाति मे कान्ता न कार्यं जीवितेन मे
न भुंक्ते मय्यभुक्ते या नास्नाते स्नाति सुव्रता
नातिष्ठत्युपतिष्ठेत शेते च शयिते मयि ॥ ८
हृष्टे भवति सा हृष्टा दुःखिते मयि दुःखिता।
प्रोषिते दीनवदना क्रुद्धे च प्रियवादिनी ॥ ९
पतिव्रता पतिगतिः पतिप्रियहिते रता।
यस्य स्यात्तादृशी भार्या धन्यः स पुरुषो भुवि
सा हि श्रान्तं क्षुधार्तं च
जानीते मां तपस्विनी।
अनुरक्ता स्थिरा चैव
भक्ता स्निग्धा यशस्विनी ॥ ११
वृक्षमूलेऽपि दयिता
यस्य तिष्ठति तद्गृहम्।
प्रासादोऽपि तया हीनः
कान्तार इति निश्चितम् ॥ १२
धर्मार्थकामकालेषु भार्या पुंसः सहायिनी।
विदेशगमने चास्य सैव विश्वासकारिका ॥
भार्या हि परमो ह्यर्थः पुरुषस्येह पठ्यते।
असहायस्य लोकेऽस्मिंल्लोकयात्रासहायिनी
तथा रोगाभिभूतस्य नित्यं कृच्छ्रगतस्य च ॥
नास्ति भार्यासमं किञ्चिन्नरस्यार्तस्य भेषजम्
नास्ति भार्यासमो बन्धु-
र्नास्ति भार्यासमा गतिः।
नास्ति भार्यासमो लोके
सहायो धर्मसंग्रहे ॥ १६
यस्य भार्या गृहे नास्ति
साध्वी च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं
यथाऽऽरण्यं तथा गृहम् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि भार्याप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

## १४५

भीष्म उवाच।
एवं विलपतस्तस्य श्रुत्वा तु करुणं वचः।
गृहीता शकुनिघ्नेन कपोती वाक्यमब्रवीत् १
कपोत्युवाच।
अहोऽतीव सुभाग्याऽहं
यस्या मे दयितः पतिः।
असतो वा सतो वाऽपि
गुणानेवं प्रभाषते ॥ २
न सा स्त्री ह्यभिमन्तव्या यस्यां भर्ता न तुष्यति
तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः
अग्निसाक्षिकमित्येव भर्ता वै दैवतं परम्।
दावाग्निनेव निर्दग्धा सपुष्पस्तबका लता ३

---

१४४
अथेति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

१४५
एवमिति ॥ १ ॥

भस्मीभवति सा नारी
यस्या भर्ता न तुष्यति ॥ ४
इति सञ्चिन्त्य दुःखार्ता
भर्तारं दुःखितं तदा
कपोती लुब्धकेनापि गृहीता वाक्यमब्रवीत्५
हन्त वक्ष्यामि ते श्रेयः श्रुत्वा तु कुरु तत्तथा
शरणागतसन्त्राता भव कान्त विशेषतः ६
एष शाकुनिकः शेते तव वासं समाश्रितः।
शीतार्तश्च क्षुधार्तश्च
पूजामस्मै समाचर॥ ७
यो हि कश्चिद्द्विजं हन्यात्
गां च लोकस्य मातरम्।
शरणागतं च यो हन्यात्
तुल्यं तेषां च पातकम्॥ ८

अस्माकं विहिता वृत्तिः
कापोती ज्ञातिधर्मतः।
सा न्याय्याऽऽत्मवता नित्यं
त्वद्विधेनानुवर्तितुम् ॥ ९
यस्तु धर्मं यथाशक्ति
गृहस्थो ह्यनुवर्तते।
स प्रेत्य लभते लोकानक्षयानिति शुश्रुम॥१०
स त्वं सन्तानवानद्य पुत्रवानसि च द्विज।
तत्स्वदेहे दयां त्यक्त्वा धर्मार्थौ परिगृह्य च।
पूजामस्मै प्रयुंक्ष्व त्वं प्रीयेतास्य मनो यथा११
शरीरे मा च संतापं कुर्वीथास्त्वं विहङ्गम।
शरीरयात्राकृत्यर्थमन्यान् दारानुपैष्यसि १२
इति सा शकुनी वाक्यं पञ्जरस्था तपस्विनी।
अतिदुःखान्विता प्रोक्त्वा भर्तारं समुदैक्षत

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कपोतं प्रति कपोतीवाक्ये पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

---

## १४६

भीष्म उवाच।
स पत्न्या वचनं श्रुत्वा धर्मयुक्तिसमन्वितम्
हर्षेण महता युक्तो वाक्यं व्याकुललोचनः १
तं वै शाकुनिकं दृष्ट्वा विधिदृष्टेन कर्मणा।
स पक्षी पूजयामास यत्नात्तं पक्षिजीविनम्२
उवाच स्वागतं तेऽद्य ब्रूहि किं करवाणि ते।
संतापश्च न कर्तव्यः स्वगृहे वर्तते भवान्॥ ३
तद्ब्रवीतु भवान् क्षिप्रं
किं करोमि किमिच्छसि।
प्रणयेन ब्रवीमि त्वां
त्वं हि नः शरणागतः॥ ४
अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः॥ ५
शरणागतस्य कर्तव्यमातिथ्यं हि प्रयत्नतः।
पञ्चयज्ञप्रवृत्तेन गृहस्थेन विशेषतः॥ ६
पञ्चयज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमे।
तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः७

तद्ब्रूहि मां सुविश्रब्धो यत्त्वं वाचा वदिष्यसि
तत्करिष्याम्यहं सर्वं मा त्वं शोके मनः कृथाः
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शकुनेर्लुब्धकोऽब्रवीत्।
बाधते खलु मे शीतं सन्त्राणं हि विधीयताम्
एवमुक्तस्ततः पक्षी पर्णान्यास्तीर्य भूतले।
यथाशक्त्या हि पर्णेन ज्वलनार्थं द्रुतं ययौ॥
स गत्वाऽङ्गारकर्मान्तं गृहीत्वाग्निमथागमत्।
ततः शुष्केषु पर्णेषु पावकं सोऽभ्यदीपयत् ॥
स सन्दीप्तं महत्कृत्वा तमाह शरणागतम्।
प्रतापय सुविश्रब्धः स्वगात्राण्यकुतोभयः ॥
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा
लुब्धो गात्राण्यतापयत्।
अग्निप्रत्यागतप्राण-
स्ततः प्राह विहङ्गमम्॥ १३
हर्षेण महताऽऽविष्टो वाक्यं व्याकुललोचनः
तथेमं शकुनिं दृष्ट्वा विधिदृष्टेन कर्मणा॥ १४

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

१४६

स इति स पत्न्या वचनमित्यध्यायत्रयं प्रायः स्पष्टार्थम् ॥१॥ अंगारकर्मान्तं कर्मारगृहसमीपम् ॥ ११ ॥

ततः कृतप्रतिज्ञो वै स पक्षी प्रहसन्निव ।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य प्रविवेश महामतिः ॥ २३ ॥
अग्निमध्ये प्रविष्टं तु लुब्धो दृष्ट्वा तु पक्षिणम् ।
चिन्तयामास मनसा किमिदं वै मया कृतम् ॥२४॥—शान्तिपर्व अ० १४६ पृ० २५३

दत्तमाहारमिच्छामि त्वया क्षुद्बाधते हि माम्
स तद्वचः प्रतिश्रुत्य वाक्यमाह विहङ्गमः १५
न मेऽस्ति विभवो येन नाशयेयं क्षुधां तव ।
उत्पन्नेन हि जीवामो वयं नित्यं वनौकसः
सञ्चयो नास्ति चास्माकं मुनीनामिव भोजने
इत्युक्त्वा तं तदा तत्र विवर्णवदनोऽभवत्
कथं नु खलु कर्तव्यमिति चिन्तापरस्तदा ।
बभूव भरतश्रेष्ठ गर्हयन् वृत्तिमात्मनः ॥ १८
मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु स पक्षी पक्षिघातिनम् ।
उवाच तर्पयिष्ये त्वां मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ १९
इत्युक्त्वा शुष्कपर्णैस्तु समुज्ज्वाल्य हुताशनं
हर्षेण महताऽऽविष्टः स पक्षी वाक्यमब्रवीत्
ऋषीणां देवतानां च पितॄणां च महात्मनाम्
श्रुतः पूर्वं मया धर्मो महानातिथिपूजने ॥ २१
कुरुष्वानुग्रहं सौम्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
निश्चिता खलु मे बुद्धिरातिथिप्रतिपूजने ॥ २२
ततः कृतप्रतिज्ञो वै स पक्षी प्रहसन्निव ।
तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रविवेश महामतिः २३
अग्निमध्ये प्रविष्टं तु लुब्धो दृष्ट्वा तु पक्षिणम् ।
चिन्तयामास मनसा किमिदं वै मया कृतम्
अहो मम नृशंसस्य गर्हितस्य स्वकर्मणा ।
अधर्मः सुमहान् घोरो भविष्यति न संशयः
एवं बहुविधं भूरि विललाप स लुब्धकः ।
गर्हयन्स्वानि कर्माणि द्विजं* दृष्ट्वा तथागतम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कपोतलुब्धकसंवादे
षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

## १४७

भीष्म उवाच ।
ततः स लुब्धकः पश्यन् क्षुधयापि परिप्लुतः
कपोतमग्निपतितं वाक्यं पुनरुवाच ह ॥ १
किमीदृशं नृशंसेन मया कृतमबुद्धिना ।
भविष्यति हि मे नित्यं पातकं कृतजीविनः
स विनिन्दंस्तथाऽऽत्मानं पुनः पुनरुवाच ह२
अविश्वास्यः सुदुर्बुद्धिः सदा निकृतिनिश्चयः ।
शुभं कर्म परित्यज्य सोऽहं शकुनिलुब्धकः ॥
नृशंसस्य ममाद्यायं प्रत्यादेशो न संशयः ।
दत्तः स्वमांसं दहता कपोतेन महात्मना ॥ ४
सोऽहं त्यक्ष्ये प्रियान्प्राणान्पुत्रान्दारांस्तथैव च
उपदिष्टो हि मे धर्मः कपोतेन महात्मना ॥५
अद्यप्रभृति देहं स्वं सर्वभोगैर्विवर्जितम् ।
यथा स्वल्पं सरो ग्रीष्मे शोषयिष्याम्यहं तथा
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ।
उपवासैर्बहुविधैश्चरिष्ये पारलौकिकम् ॥ ७
अहो देहप्रदानेन दर्शिताऽतिथिपूजना ।
तस्माद्धर्मं चरिष्यामि धर्मो हि परमा गतिः
दृष्टो धर्मो हि धर्मिष्ठे यादृशो विहगोत्तमे ।
एवमुक्त्वा विनिश्चित्य रौद्रकर्मा स लुब्धकः
महाप्रस्थानमाश्रित्य प्रययौ संशितव्रतः ॥ १०
ततो यष्टिं शलाकां च क्षारकं पञ्जरं तथा ।
तां च बद्धां कपोतीं स प्रमुच्य विससर्ज ह

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि लुब्धकोपरतौ
सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥ * द्विजं पक्षिणमित्यर्थः ।

१४७

तत इति ॥ १ ॥ प्रत्यादेशः धिक्कारपूर्वक उपदेशः ॥ ३ ॥ यष्टिं दंडम् यष्टिशलाकमिति पाठे पक्षिसंश्लेषार्थं चिक्कणद्रव्योपेतं दीर्घदंडं यथेष्टं वर्धयितुं शक्यं षष्ट्या शलाकाभिः संधितं पंजरम् स्पष्टम् ॥१०॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

## १४८

भीष्म उवाच ।

ततो गते शाकुनिके कपोती प्राह दुःखिता
संस्मृत्य सा च भर्तारं रुदती शोककर्शिता १
नाहं ते विप्रियं कान्त कदाचिदपि संस्मरे ।
सर्वापि विधवा नारी बहुपुत्रापि शोचते ॥२
शोच्या भवति बंधूनां पतिहीना तपस्विनी ।
लालिताऽहं त्वया नित्यं बहुमानाच्च पूजिता
वचनैर्मधुरैः स्निग्धैरसंक्लिष्टमनोहरैः ।
कंदरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च ॥ ४
द्रुमाग्रेषु च रम्येषु रमिताऽहं त्वया सह ।
आकाशगमने चैव विहृताऽहं त्वया सुखम् ५
रमामि स्म पुरा कान्त तन्मे नास्त्यद्य किञ्चन
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ।
नास्ति भर्तृसमो नाथो नास्ति भर्तृसमं सुखं
विसृज्य धनसर्वस्वं भर्ता वै शरणं स्त्रियाः ।
न कार्यमिह मे नाथ जीवितेन त्वया विना
पतिहीना तु का नारी सती जीवितुमुत्सहेत्
एवं विलप्य बहुधा करुणं सा सुदुःखिता ९
पतिव्रता संप्रदीप्तं प्रविवेश हुताशनम् ।
ततश्चित्राङ्गदधरं भर्तारं साऽन्वपश्यत ॥ १०
विमानस्थं सुकृतिभिः पूज्यमानं महात्मभिः
चित्रमाल्याम्बरधरं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ११
विमानशतकोटीभिरावृतं पुण्यकर्मभिः ।
ततः स्वर्गं गतः पक्षी विमानवरमास्थितः ।
कर्मणा पूजितस्तत्र रेमे स सह भार्यया ॥ १२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कपोतस्वर्गगमने
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४८ ॥

## १४९

भीष्म उवाच ।

विमानस्थौ तु तौ राजन् लुब्धकः खे ददर्श ह
दृष्ट्वा तौ दम्पती राजन् व्यचिन्तयत तां गतिं
ईदृशेनैव तपसा गच्छेयं परमां गतिम् ।
इति बुद्ध्या विनिश्चित्य गमनायोपचक्रमे ॥ २
महाप्रस्थानमाश्रित्य लुब्धकः पक्षिजीवकः ।
निश्चेष्टो मरुदाहारो निर्ममः स्वर्गकांक्षया॥३
ततोऽपश्यत्सुविस्तीर्णं हृद्यं पद्माभिभूषितम् ।
नानापक्षिगणाकीर्णं सरः शीतजलं शिवम्
पिपासार्तोऽपि तद्दृष्ट्वा तृप्तः स्यान्नात्र संशयः
उपवासकृशोऽत्यर्थं स तु पार्थिवलुब्धकः ॥५
अनवेक्ष्यैव संहृष्टः श्वापदाध्युषितं वनम् ।
महान्तं निश्चयं कृत्वा लुब्धकः प्रविवेश ह६
प्रविशन्नेव स वनं निगृहीतः स कंटकैः ।
स कंटकैर्विभिन्नाङ्गो लोहितार्द्रीकृतच्छविः
बभ्राम तस्मिन्विजने नानामृगसमाकुले ।
ततो द्रुमाणां महता पवनेन वने तदा ॥ ८
उदतिष्ठत संघर्षात्सुमहान् हव्यवाहनः ।
तद्वनं वृक्षसंपूर्णं लताविटपसंकुलम् ॥ ९
ददाह पावकः क्रुद्धो युगान्ताग्निसमप्रभः ।
स ज्वालैः पवनोद्धूतैर्विस्फुलिंगैः समंततः१०
ददाह तद्वनं घोरं मृगपक्षिसमाकुलम् ।
ततः स देहमोक्षार्थं संप्रहृष्टेन चेतसा ॥ ११
अभ्यधावत वर्धन्तं पावकं लुब्धकस्तदा ।
ततस्तेनाग्निना दग्धो लुब्धको नष्टकल्मषः ।
जगाम परमां सिद्धिं ततो भरतसत्तम ॥ १२
ततः स्वर्गस्थमात्मानमपश्यद्विगतज्वरः ।
यक्षगन्धर्वसिद्धानां मध्ये भ्राजन्तमिन्द्रवत्॥
एवं खलु कपोतश्च कपोती च पतिव्रता ।
लुब्धकेन सह स्वर्गं गताः पुण्येन कर्मणा १४

---

१४८

**तत इति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

१४९

**विमानस्थाविति** चाध्यायौ स्पष्टार्थौ ॥ १ ॥

याऽपि चैवंविधा नारी भर्तारमनुवर्तते ।
विराजते हि सा क्षिप्रं कपोतीव दिविस्थिता
एवमेतत्पुरावृत्तं लुब्धकस्य महात्मनः ।
कपोतस्य च धर्मिष्ठा गतिः पुण्येन कर्मणा ॥
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं यश्चेदं परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं विद्यते तस्य मनसाऽपि प्रमादतः १७

युधिष्ठिर महानेष धर्मो धर्मभृतां वर ।
गोघ्नेष्वपि भवेदस्मिन्निष्कृतिः पापकर्मणः ॥
न निष्कृतिर्भवेत्तस्य यो हन्याच्छरणागतम् ।
इतिहासमिमं श्रुत्वा पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि लुब्धकस्वर्गगमने
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

## १५०

युधिष्ठिर उवाच ।
अबुद्धिपूर्वं यत्पापं कुर्याद्भरतसत्तम ।
मुच्यते स कथं तस्मादेतत्सर्वं ब्रवीहि मे ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुराणमृषिसंस्तुतम् ।
इन्द्रोतः शौनको विप्रो यदाह जनमेजयम् २
आसीद्राजा महावीर्यः पारिक्षिज्जनमेजयः ।
अबुद्धिपूर्वामागच्छद्ब्रह्महत्यां महीपतिः ॥ ३
ब्राह्मणाः सर्व एवैते तत्यजुः सपुरोहिताः ।
स जगाम वनं राजा दह्यमानो दिवानिशम्
प्रजाभिः स परित्यक्तश्चकार कुशलं महत् ।
अतिवेलं तपस्तेपे दह्यमानः स मन्युना ॥ ५
ब्रह्महत्यापनोदार्थमपृच्छद्ब्राह्मणान् बहून् ।
पर्यटन् पृथिवीं कृत्स्नां देशे देशे नराधिपः ६
तत्रेतिहासं वक्ष्यामि धर्मस्यास्योपबृंहणम् ।
दह्यमानः पापकृत्या जगाम जनमेजयः ॥ ७
चरिष्यमाण इन्द्रोतं शौनकं संशितव्रतम् ।
समासाद्योपजग्राह पादयोः परिपीडयन् ८
ऋषिर्दृष्ट्वा नृपं तत्र जगर्हे सुभृशं तदा ।
कर्ता पापस्य महतो भ्रूणहा किमिहागतः ९

किं त्वयाऽस्मासु कर्तव्यं
मा मां स्प्राक्षीः कथञ्चन ।
गच्छ गच्छ न ते स्थानं
प्रीणात्यस्मानिति ब्रुवन् ॥ १०
रुधिरस्येव ते गन्धः शवस्येव च दर्शनम् ।
अशिवः शिवसङ्काशो मृतो जीवन्निवाटसि ॥
ब्रह्ममृत्युरशुद्धात्मा पापमेवानुचिन्तयन् ।
प्रबुद्ध्यसे प्रस्वपिषि वर्तसे परमे सुखे ॥ १२
मोघं ते जीवितं राजन्
परिक्लिष्टं च जीवसि ।
पापायैव हि सृष्टोऽसि
कर्मणेह यवीयसे ॥ १३
बहुकल्याणमिच्छन्ति ईहन्ते पितरः सुतान् ।
तपसा दैवतेज्याभिर्वन्दनेन तितिक्षया १४
पितृवंशमिमं पश्य त्वत्कृते नरकं गतम् ।
निरर्थाः सर्व एवैषामाशाबन्धास्त्वदाश्रयाः
यान्पूजयन्तो विन्दन्ति स्वर्गमायुर्यशः प्रजाः
तेषु त्वं सततं द्वेष्टा ब्राह्मणेषु निरर्थकः ॥ १६
इमं लोकं विमुच्य त्वमवाङ्मूर्द्धा पतिष्यसि
अशाश्वतीः शाश्वतीश्च समाः पापेन कर्मणा

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

१५०

लुब्धकदृष्टान्तेन बुद्धिपूर्वं कृतस्यापि पापस्य महता तपसा परिहारो दृष्टस्तत्प्रसंगादबुद्धिपूर्वस्यापि परिहारस्तत्तुल्ययत्नसाध्य इत्याशयवान् पृच्छति- **अबुद्धीति** ॥ १ ॥ पारिक्षित् पारिक्षितः ॥ ३ ॥ पापकृत्या पापक्रियया ॥ ७ ॥ यवीयसे हीनाय ॥ १३ ॥ अशाश्वतीः सर्वस्यापि कर्मणोऽन्तवत्त्वात् शाश्वतीः बहुत्वात् ॥ १७ ॥

अर्द्यमानो यत्र गृध्रैः शितिकण्ठैरयोमुखैः ।
ततश्च पुनरावृत्तः पापयोनिं गमिष्यसि ॥ १८

यदिदं मन्यसे राजन् नायमस्ति कुतः परः ।
प्रति स्मारयितारस्त्वां यमदूता यमक्षये १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि इन्द्रोत-पारिक्षितीयसंवादे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

## १५१

भीष्म उवाच ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच तं मुनिं जनमेजयः ।
गर्ह्यं भवान् गर्हयते निन्द्यं निन्दति मां पुनः १
धिक्कार्यं मां धिक्कुरुते तस्मात्त्वाऽहं प्रसादये ।
सर्वं हीदं दुष्कृतं मे ज्वलाम्यग्नाविवाहितः
स्वकर्माण्यभिसन्धाय नाभिनन्दति मे मनः ।
प्राप्य घोरं भयं नूनं मया वैवस्वतादपि ॥ ३
तत्तु शल्यमनिर्हृत्य कथं शक्ष्यामि जीवितुम् ।
सर्वं मन्युं विनीय त्वमभि मां वद शौनक ४
महानासं ब्राह्मणानां
भूयो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
अस्तु शेषं कुलस्यास्य
मा पराभूदिदं कुलम् ॥ ५
न हि नो ब्रह्मशस्तानां शेषं भवितुमर्हति ।
स्तुतीरलभमानानां संविदं वेदनिश्चितान् ६
निर्विद्यमानस्त्वात्मानं
भूयो वक्ष्यामि शाश्वतम् ।
भूयश्चैवाभिरक्षन्तु
निर्धनान्निर्जना इव ॥ ७
न ह्ययज्ञा अमुं लोकं प्राप्नुवन्ति कथञ्चन ।
आपातान्प्रतितिष्ठन्ति पुलिन्दशबरा इव ८
अविज्ञायैव मे प्रज्ञां बालस्येव स पण्डितः ।
ब्रह्मन् पितेव पुत्रस्य प्रीतिमान् भव शौनक ९
शौनक उवाच ।
किमाश्चर्यं ततः प्राज्ञो ब्रह्म कुर्यादसाम्प्रतम्
इति वै पण्डितो भूत्वा भूतानां नानुकुप्यते ॥
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचते जनान्
जगतीस्थानिवाद्रिस्थः प्रज्ञया प्रतिपत्स्यति ॥
न चोपलभ्यते तेन न चाश्चर्याणि कुर्वते ।
निर्विण्णात्मा परोक्षो वा धिक्कृतः पूर्वसाधुषु
विदितं भवतो वीर्यं माहात्म्यं वेद आगमे ।
कुरुष्वेह यथाशान्ति ब्रह्मा शरणमस्तु ते ॥१३
तद्वै पारत्रिकं तात ब्राह्मणानामकुप्यताम् ।
अथवा तप्यसे पापे धर्ममेवानुपश्य वै ॥ १४

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१

**एवमिति** ॥ १ ॥ त्वाहं त्वामहम् सार्द्धः। दुष्कृतमभिसंधायेति संबंधः ॥ २ ॥ **प्राप्येति**। यमयातनाभोगान्ते दुष्कृतजं शल्यं मम गमिष्यतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणानां भक्त इति शेषः ॥ ५ ॥ ब्रह्मशस्तं हिंसितं यैस्तेषां संविदं ऐकमत्यं सजातीयैः सहालभमानानामिति पूर्वान्वयि। वेदनिश्चितान् युष्मान् प्रति भूयो वक्ष्यामि॥६ निर्जनाः निष्परिग्रहाः योगिनो यथा निर्धनान् दीनान् रक्षन्ति एवं मां भवन्तो दययैव स्वसामर्थ्येन रक्षन्त्वित्यर्थः ॥ ७ ॥ आपातान् नरकान् पुलिंदाः शबराः म्लेच्छभेदाः ॥ ८ ॥ स पंडितः यो महदोषान् जानाति न त्वन्तस्थां प्रज्ञां शरणागतोऽहमित्येवंरूपां स त्वपंडितः ब्रह्मन्ब्राह्मण ॥ ९ ॥ ब्रह्म ब्राह्मणजातिः कुपिता सती असांप्रतमयुक्तमपि कुर्यात् अत्र किमाश्चर्यं न किमपीत्यर्थः । यत एवमतः प्राज्ञो बुद्धिमान् इति एवंप्रकारेण पंडितो विवेकवान् भूत्वा भूतानां भूतेषु नानुकुप्यतेऽनु कोपं न करोति ॥ १० ॥ न केवलमकोप एव प्रज्ञाफलं अपि तु महत्त्वमप्यस्तीत्याह-**प्रज्ञेति** ॥ ११ ॥ यः साधुषु निर्विण्णात्मा विरक्तः परोक्षस्तद्दृष्टिपथादपेतः तैश्च धिक्कृतस्तेन प्रज्ञा न चोपलभ्यते तादृशस्य तदलाभेऽन्ये आश्चर्यमपि न कुर्वते अतः सत्संगं विना प्रज्ञा दुर्लभैवेत्यर्थः ॥ १२ ॥ वीर्यं ब्राह्मणस्येति शेषः। वेदे ऋग्वेदादौ आगमे सर्वार्थद्योतके ब्रह्मा ब्राह्मणः शरणं रक्षिता यथाशान्ति शान्तिमनतिक्रम्य ॥ १३ ॥ यत्कृतं तद्वै पारात्रिकमित्याध्याहृत्य योज्यम् ॥ १४ ॥

जनमेजय उवाच ।

अनुतप्ये च पापेन न च धर्मं विलोपये ।
बुभूषुं भजमानं च प्रीतिमान् भव शौनक १५

शौनक उवाच ।

छित्त्वा दंभं च मानं च प्रीतिमिच्छामि ते नृप
सर्वभूतहितं तिष्ठ धर्मं चैव प्रति स्मरन् ॥ १६
न भयान्न च कार्पण्यान्न लोभात्त्वामुपाह्वये ।
तां मे दैवीं गिरं सत्यां शृणु त्वं ब्राह्मणैः सह
सोऽहं न केनचिच्चार्थी त्वां च धर्मादुपाह्वये ।
क्रोशतां सर्वभूतानां हाहा धिगिति जल्पतां
वक्ष्यन्ति मामधर्मज्ञं त्यक्ष्यन्ति सुहृदो जनाः
ता वाचः सुहृदः श्रुत्वा संज्वरिष्यन्ति मे भृशं
केचिदेव महाप्राज्ञाः प्रतिज्ञास्यन्ति तत्त्वतः
जानीहि मत्कृतं तात ब्राह्मणान् प्रति भारत
यथा ते मत्कृते क्षेमं लभन्ते ते तथा कुरु ।
प्रतिजानीहि चाद्रोहं ब्राह्मणानां नराधिप ॥

जनमेजय उवाच ।

नैव वाचा न मनसा पुनर्जातु न कर्मणा ।
द्रोग्धास्मि ब्राह्मणान्विप्र चरणावपि ते स्पृशे

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि इन्द्रोत-पारिक्षितीये एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥ [ २१ ]

## १५२

शौनक उवाच ।

तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि धर्ममावृतचेतसे ।
श्रीमान्महाबलस्तुष्टः स्वयं धर्ममवेक्षसे ॥ १
पुरस्ताद्दारुणो भूत्वा सुचित्रतरमेव तत् ।
अनुगृह्णाति भूतानि स्वेन वृत्तेन पार्थिवः ॥ २
कृत्स्नं नूनं स दहति इति लोको व्यवस्यति
यत्र त्वं तादृशो भूत्वा धर्ममेवानुपश्यसि ॥३
हित्वा तु सुचिरं भक्ष्यं भोज्यांश्च तप आस्थितः
इत्येतदभिभूतानामद्भुतं जनमेजय ॥ ४
योऽदुर्लभो भवेद्दाता कृपणो वा तपोधनः ।
अनाश्चर्यं तदित्याहुर्नातिदूरेण वर्तते ॥ ५
एतदेव हि कार्पण्यं समग्रमसमीक्षितम् ।
यच्चेत्समीक्षयैव स्याद्भवेत्तस्मिंस्ततो गुणः ॥६
यज्ञो, दानं, दया, वेदाः, सत्यं च पृथिवीपते।
पञ्चैतानि पवित्राणि षष्ठं सुचरितं तपः ॥ ७
तदेव राज्ञां परमं पवित्रं जनमेजय ।
तेन सम्यग्गृहीतेन श्रेयांसं धर्ममाप्स्यसि ॥८
पुण्यदेशाभिगमनं पवित्रं परमं स्मृतम् ।
अत्राप्युदाहरन्तीमां गाथां गीतां ययातिना
यो मर्त्यः प्रतिपद्येत आयुर्जीवितमात्मनः ।
यज्ञमेकान्ततः कृत्वा तत्संन्यस्य तपश्चरेत् ॥
पुण्यमाहुः कुरुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रात्सरस्वतीम् ।
सरस्वत्याश्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथूदकम् ११
यत्रावगाह्य पीत्वा च नैनं श्वोमरणं तपेत् ।
महासरः पुष्कराणि प्रभासोत्तरमानसे ॥ १२
कालोदकं च गन्तासि लब्धायुर्जीविते पुनः
सरस्वतीदृषद्वत्योः संगमो मानसः सरः ॥१३
स्वाध्यायशीलः स्थानेषु सर्वेष्वेवमुपस्पृशेत् ।
त्यागधर्मः पवित्राणां सन्यासं मनुरब्रवीत् १४

---

बुभूषुं श्रेयो लिप्सुं भजमानं मां प्रतीति शेषः॥१५॥ सर्वभूतहितं हितरूपं धर्मं तिष्ठ अनुतिष्ठ हिते इति सप्तम्यन्तपाठः स्पष्टार्थः॥१६॥ उपाह्वये शिष्यं करोमीत्यर्थः ॥१७॥ शौनकं पापिष्ठसंग्रहीतारं धिगिति जल्पतांताननादृत्य उपाह्वये इत्यर्थः ॥ १८ ॥ प्रतिज्ञास्यन्ति मदभिप्रायं कृतमेव जानीहीति ॥ २० ॥ ते ब्राह्मणा मत्कृते मन्निमित्तं ते त्वत्तः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

१५२

तस्मादिति। यस्मात् श्रीमान् विद्यावानस्मि तस्मात् ॥ १ ॥ स भवान् तादृशस्तापकः ॥ ३ ॥ अभिभूतानामधर्मेणेति शेषः ॥ ४ ॥ नास्ति दुर्लभं यस्य सोऽदुर्लभः संपन्नः ॥ ५ ॥ यत् असमीक्षितं पौर्वापर्येणानालोचितं एतदेकं समग्रं कृत्स्नं कार्पण्यं चेत्कार्यं समीक्षयैव स्यात् तस्मिन् कार्ये ततः समीक्षातः गुणः स्यात् ॥६॥ समीक्षामेवाह-यज्ञ इति ॥ ७ ॥ एकान्ततोऽतियत्नेन ॥ १० ॥ तप एवाह-पुण्यमिति ॥ ११ ॥ मानस इति पुंस्त्वमार्षम् ॥ १३ ॥ पवित्राणां पावनानां मध्ये त्यागधर्मो दानात्मको धर्मः पवित्रतरः संन्यासं तु परं धर्मं ततोऽप्यधिकं मनुरब्रवीत् ॥ १४ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथाः सत्यवता कृताः।
यथा कुमारः सत्यो वै नैव पुण्यो न पापकृत्
न ह्यस्ति सर्वभूतेषु दुःखमस्मिन्कुतः सुखम्।
एवं प्रकृतिभूतानां सर्वसंसर्गयायिनाम् ॥१६
त्यजतां जीवितं श्रेयो निवृत्ते पुण्यपापके।
यत्त्वेव राज्ञो ज्यायिष्ठं कार्याणां तद्ब्रवीमि ते
बलेन संविभागैश्च जय स्वर्गं जनेश्वर।
यस्यैव बलमोजश्च स धर्मस्य प्रभुर्नरः॥ १८
ब्राह्मणार्थं सुखार्थं हि त्वं पाहि वसुधां नृप।
यथैवैतान्पुराक्षेप्सीस्तथैवैतान्प्रसादय ॥ २०
अपि विक्रममाणोऽपि त्यजमानोऽप्यनेकधा
आत्मनो दर्शनाद्विप्रान्न हंतास्मीति मार्गय।
घटमानः स्वकार्येषु कुरु निःश्रेयसं परम् ॥२०
हिमाग्निघोरसदृशो राजा भवति कश्चन।
लांगलाशनिकल्पो वा भवेदन्यः परंतप २१
न विशेषेण गन्तव्यमविच्छिन्नेन वा पुनः।
न जातु नाहमस्मीति सुप्रसक्तमसाधुषु ॥ २२
विकर्मणा तप्यमानः पापाद्विपरिमुच्यते।
नैतत्कार्यं पुनरिति द्वितीयात्परिमुच्यते २३
करिष्ये धर्ममेवेति तृतीयात्परिमुच्यते।
शुचिस्तीर्थान्यनुचरन् बहुत्वात्परिमुच्यते२४
कल्याणमनुकर्तव्यं पुरुषेण बुभूषता।
ये सुगन्धीनि सेवन्ते तथागन्धा भवन्ति ते
ये दुर्गन्धीनि सेवन्ते तथागन्धा भवन्ति ते
तपश्चर्यापरः सद्यः पापाद्विपरिमुच्यते ॥ २६
संवत्सरमुपास्याग्निमभिशस्तः प्रमुच्यते।
त्रीणि वर्षाण्युपास्याग्निं भ्रूणहा विप्रमुच्यते
महासरः पुष्कराणि प्रभासोत्तरमानसे।
अभ्येत्य योजनशतं भ्रूणहा विप्रमुच्यते ॥ २८
यावतः प्राणिनो हन्यात्तज्जातीयांस्तु तावतः
प्रमीयमानानुन्मोच्य प्राणिहा विप्रमुच्यते ॥
अपि चाप्सु निमज्जेत जपंस्त्रिरघमर्षणम्।
यथाश्वमेधावभृथस्तथा तन्मनुरब्रवीत् ॥ ३०
तत्क्षिप्रं नुदते पापं सत्कारं लभते तथा।
अपि चैनं प्रसीदन्ति भूतानि जडमूकवत्३१

बृहस्पतिं देवगुरुं सुरासुराः
सर्वे समेत्याभ्यनुयुज्य राजन्।
धर्म्यं फलं वेत्थ फलं महर्षे
तथैव तस्मिन्नरके पारलोक्ये ॥ ३२
उभे तु यस्य सदृशे भवेतां
किंस्वित्तयोस्तत्र जयोऽथ न स्यात्।
आचक्ष्व नः पुण्यफलं महर्षे
कथं पापं नुदते धर्मशीलः ॥ ३३

बृहस्पतिरुवाच।

कृत्वा पापं पूर्वमबुद्धिपूर्वं
पुण्यानि चेत्कुरुते बुद्धिपूर्वम्।
स तत्पापं नुदते कर्मशीलो
वासो यथा मलिनं क्षारयुक्तम् ॥ ३४
पापं कृत्वाऽभिमन्येत नाहमस्मीति पूरुषः।
तच्चिकीर्षति कल्याणं श्रद्दधानोऽनसूयकः३५

---

कुमारो बालः सत्यो रागद्वेषशून्यत्वात् तथा तिष्ठेदित्यर्थः ॥१५॥ नहीति सार्धः। सुखं दुःखं चोभयमपि कल्पितमित्यर्थः।प्रकृतिर्ब्रह्म तद्भूतानां ब्रह्मस्वरूपाणां सर्वाणि यानि संसर्गरूपाणि पापानि यान्ति तद्वतां आविद्यकसंगमात्राद्दुःखादिभाजामित्यर्थः ॥१६॥ बलेन धैर्येण संविभागैः दानैः।ओज इन्द्रियपाटवम् ॥ १८ ॥ विक्रममाणः कर्मणि शानच्। नीचैः क्रियमाण इत्यर्थः। त्यजमानः दूरीक्रियमाणः आत्मनो दर्शनात्। आत्मौपम्येन मार्गय निश्चिनु ॥ २० ॥ हिमवत् शीतलः अग्निवत् क्रूरः घोरो यमस्तद्वद्गुणदोषविचारकः लांगलवद्दुष्टमूलोन्मूलनपरः अशनिवदाकस्मिकपातो दुष्टेषु ॥ २१ ॥ असाधुषु सुप्रसक्तं प्रीतिविशेषेण विशेषेण विद्वत्त्वादिना हेतुना अविच्छिन्नेन सामान्येन ब्राह्मणत्वादिना धर्मेण वा न गन्तव्यं न प्राप्तव्यं केनापि हेतुना खलेषु संगो न कर्तव्य इत्यर्थः। तत्र हेतुमाह-नेति। जातु कदाचित् अहं न अस्मीति न अपि त्वस्मीत्येव। मत्वेति शेषः स्वनाशार्थिखलसंगं न कुर्यादिति भावः ॥२२॥ विकर्मणेति। सकृत्कृतात्पापात्पश्चात्तापमात्रेण मुच्यते। द्विरावृत्तात्पुनर्न करिष्यामीति नियमग्रहणमात्रेण। त्रिरावृत्तायत्किंचिद्धर्मस्वीकारमात्रेण बहुकृत्वेति तदभ्यस्तात्तु तीर्थादिना मुच्यत इति श्लोकद्वयार्थः ॥ २३ ॥ यावत इति प्रकृतोपयोगि ॥ २९ ॥ अघमर्षणं ऋतं च सत्यं चेति ऋक्त्रयम् ॥३०॥ अनुयुज्य अत्यादरपूर्वकं उपेत्यापृच्छाम्रिति शेषः। धर्म्ये धर्मोद्भवं फलं सुखरूपं वेत्थ जानासि। तथा नरके फलं दुःखं तदपि वेत्थ ॥ ३२ ॥ यस्य योगिनः उभे अपि सुखदुःखे सदृशे यस्य च तयोर्द्वयोस्तुल्यो जयोऽस्ति उत न सामान्याभावेऽपि किं पुण्यस्य फलं कथं दानपुण्येन पापं नुदति तदाचक्ष्वेति द्वयोः संबंधः ॥ ३३ ॥ अबुद्धिपूर्वमित्यस्य प्रश्नस्योत्तरमाह-कृत्वेति ॥ ३४ ॥ पापमिति कर्तृत्वाभिमानशून्यः पापं कुर्वन्नपि न करोत्यवलेपेस्यार्थः ॥ ३५ ॥

छिद्राणि विवृतान्येव साधूनां चावृणोति यः
यः पापं पुरुषः कृत्वा कल्याणमभिपद्यते ३६
यथाऽऽदित्यः प्रातरुद्यंस्तमः सर्वं व्यपोहति ।
कल्याणमाचरन्नेवं सर्वपापं व्यपोहति ॥ ३७
भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा तु राजानमिन्द्रोतो जनमेजयम् ।
याजयामास विधिवद्वाजिमेधेन शौनकः ३८
ततः स राजा व्यपनीतकल्मषः
श्रेयोवृतः प्रज्वलिताग्निरूपवान् ।
विवेश राज्यं स्वममित्रकर्षणो
यथा दिवं पूर्णवपुर्निशाकरः ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि इन्द्रोत-पारिक्षितीये द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥ [ २२ ]

## १५३

युधिष्ठिर उवाच ।
कच्चित्पितामहेनासीच्छ्रुतं वा दृष्टमेव च ।
कच्चिन्मर्त्यो मृतो राजन्पुनरुज्जीवितोऽभवत्
भीष्म उवाच ।
शृणु पार्थ यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
गृध्रजम्बुकसंवादं यो वृत्तो नैमिषे पुरा ॥ २
कस्यचिद्ब्राह्मणस्यासीद्दुःखलब्धः सुतो मृतः
बाल एव विशालाक्षो बालग्रहनिपीडितः ३
दुखिताः केचिदादाय बालमप्राप्तयौवनम् ।
कुलसर्वस्वभूतं वै रुदन्तः शोकविह्वलाः ॥ ४
बालं मृतं गृहीत्वाऽथ
श्मशानाभिमुखाः स्थिताः ।
अङ्केनैव च संक्रम्य
रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥ ५
शोचन्तस्तस्य पूर्वोक्तान्भाषितांश्चासकृत्पुनः
तं बालं भूतले क्षिप्य प्रतिगन्तुं न शक्नुयुः ६
तेषां रुदितशब्देन
गृध्रोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ।
एकात्मजमिमं लोके
त्यक्त्वा गच्छत मा चिरम् ॥ ७
इह पुंसां सहस्राणि
स्त्रीसहस्राणि चैव ह ।
समानीतानि कालेन
हित्वा वै यान्ति बान्धवाः ॥ ८
संपश्यत जगत्सर्वं सुखदुःखैरधिष्ठितम् ।
संयोगो विप्रयोगश्च पर्यायेणोपलभ्यते ॥ ९
गृहीत्वा ये च गच्छन्ति
ये न यान्ति च तान्मृतान् ।
तेऽप्यायुषः प्रमाणेन
स्वेन गच्छन्ति जन्तवः ॥ १०
अलं स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन्
गृध्रगोमायुसंकुले ।
कङ्कालबहुले रौद्रे
सर्वप्राणिभयङ्करे ॥ ११
न पुनर्जीवितः कश्चित्कालधर्ममुपागतः ।
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यः प्राणिनां गतिरीदृशी

---

आवृणोति पिधत्ते स कल्याणं चिकीर्षतीति संबंधः ॥३६
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

१५३

तदेवं व्यापन्नस्य राज्ञो बुद्धिपूर्वमबुद्धिपूर्वं वा कृतं पापं सत्कर्मणा धर्माध्यवसायेन च नश्यतीति परलोकभयाभावो दर्शितः । इहलोकेऽप्यत्यन्तापन्नस्य मृतकल्पस्य द्वाभ्यामहमहमिकया ग्रसितुमवेक्षितस्य केनचित्कारणेन कंचित्कालमवस्थितस्य काचिद्गतिरस्ति न वेति पृच्छति- **कच्चिदिति** । तादृशस्याप्युज्जीवनं क्वचिद्दृष्टमस्तीति प्रश्नाशयः ॥१॥ अत्रोत्तरं गृध्रगोमायुभ्यां युगपत्प्रार्थ्यमानस्य शिशोः स्वजननिरोधात्कंचित्कालमवस्थितस्य ईश्वरेण यथा जीवनं दत्तं एवमेवेश्वरोऽनुगृह्णातीत्याख्यायिकामुखेनैवाह-**शृणु पार्थेत्यादिना**। स्पष्टार्थोऽध्यायशेषः ॥ २ ॥

सर्वेण खलु मर्तव्यं मर्त्यलोके प्रसूयता ।
कृतान्तविहिते मार्गे मृतं को जीवयिष्यति
कर्मान्तविरते लोके अस्तं गच्छति भास्करे
गम्यतां स्वमधिष्ठानं सुतस्नेहं विसृज्य वै १४
ततो गृध्रवचः श्रुत्वा प्राक्रोशन्तस्तदा नृप
बान्धवास्तेऽभ्यगच्छन्त पुत्रमुत्सृज्य भूतले ॥
विनिश्चित्याथ च तदा विक्रोशन्तस्ततस्ततः
मृतमित्येव गच्छन्तो निराशास्तस्य दर्शने१६
निश्चितार्थाश्च ते सर्वे सन्त्यजन्तः स्वमात्मजम्
निराशा जीविते तस्य मार्गमाश्रित्य धिष्ठिताः
ध्वांक्षपक्षसवर्णस्तु
विलान्निसृत्य जम्बुकः ।
गच्छमानान् स्म तानाह
निर्घृणाः खलु मानुषाः ॥ १८
आदित्योऽयं स्थितो मूढाः स्नेहं कुरुत मा भयम्
बहुरूपो मुहूर्तश्च जीवत्यपि कदाचन ॥ १९
यूयं भूमौ विनिक्षिप्य पुत्रस्नेहविनाकृताः ।
श्मशाने सुतमुत्सृज्य कस्माद्गच्छत निर्घृणाः
न वोऽस्त्यस्मिन्सुते स्नेहो बाले मधुरभाषिणि
यस्य भाषितमात्रेण प्रसादमधिगच्छत ॥ २१
न पश्यत सुतस्नेहो यादृशः पशुपक्षिणाम् ।
न तेषां धारयित्वा तान् कश्चिदस्ति फलागमः
चतुष्पात्पक्षिकीटानां प्राणिनां स्नेहसङ्गिनाम्
परलोकगतिस्थानां मुनियज्ञक्रियामिव ॥ २३
तेषां पुत्राभिरामाणामिहलोके परत्र च ।
न गुणो दृश्यते कश्चित्प्रजाः संधारयन्ति च
अपश्यतां प्रियान्पुत्रान् तेषां शोको न तिष्ठति
न च पुष्णन्ति संवृद्धास्ते मातापितरौ क्वचित्
मानुषाणां कुतः स्नेहो येषां शोको भविष्यति
इमं कुलकरं पुत्रं त्यक्त्वा क्व नु गमिष्यथ २६
चिरं मुञ्चत बाष्पं च चिरं स्नेहेन पश्यत ।
एवंविधानि हीष्टानि दुस्त्यजानि विशेषतः
क्षीणस्यार्थाभियुक्तस्य श्मशानाभिमुखस्य च
बान्धवा यत्र तिष्ठन्ति तत्रान्यो नाधितिष्ठति
सर्वस्य दयिताः प्राणाः सर्वः स्नेहं च विंदति
तिर्यग्योनिष्वपि सतां स्नेहं पश्यत यादृशम्
त्यक्त्वा कथं गच्छथेमं पद्मलोलायताक्षिकम्
यथा नवोद्वाहकृतं स्नानमाल्यविभूषितम् ३०
जंबुकस्य वचः श्रुत्वा कृपणं परिदेवतः ।
न्यवर्तन्त तदा सर्वे शवार्थं ते स्म मानुषाः ॥

गृध्र उवाच ।

अहो बत नृशंसेन जंबुकेनाल्पमेधसा ।
क्षुद्रेणोक्ता हीनसत्त्वा मानुषाः किं निवर्तथ
पञ्चभूतपरित्यक्तं शून्यं काष्ठत्वमागतम् ।
कस्माच्छोचथ तिष्ठन्तमात्मानं किं न शोचथ
तपः कुरुत वै तीव्रं मुच्यध्वं येन किल्बिषात्
तपसा लभ्यते सर्वं विलापः किं करिष्यति
अनिष्टानि च भाग्यानि
जातानि सह मूर्तिना ।
येन गच्छति बालोऽयं
दत्वा शोकमनन्तकम् ॥ ३५
धनं, गावः, सुवर्णं च मणिरत्नमथापि च ।
अपत्यं च तपोमूलं तपोयोगाच्च लभ्यते ॥ ३६
यथा कृता च भूतेषु प्राप्यते सुखदुःखिता ।
गृहीत्वा जायते जन्तुर्दुःखानि च सुखानि च
न कर्मणा पितुः पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा ।
मार्गेणान्येन गच्छन्ति बद्धाः सुकृतदुष्कृतैः ॥
धर्मं चरत यत्नेन न चाधर्मे मनः कृथाः ।
वर्तध्वं च यथाकालं दैवतेषु द्विजेषु च ॥ ३९
शोकं त्यजत दैन्यं च सुतस्नेहान्निवर्तत ।
त्यज्यतामयमाकाशे ततः शीघ्रं निवर्तत ४०
यत्करोति शुभं कर्म तथा कर्म सुदारुणम् ।
तत्कर्तैव समश्नाति बान्धवानां किमत्र ह ॥
इह त्यक्त्वा न तिष्ठन्ति बान्धवा बान्धवं प्रियं
स्नेहमुत्सृज्य गच्छन्ति बाष्पपूर्णाविलेक्षणाः
प्राज्ञो वा यदि वा मूर्खः सधनो निर्धनोऽपि वा
सर्वः कालवशं याति शुभाशुभसमन्वितः ॥
किं करिष्यथ शोचित्वा मृतं किमनुशोचथ ।
सर्वस्य हि प्रभुः कालो धर्मतः समदर्शनः ॥
यौवनस्थांश्च बालांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि ।
सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत् ॥ ४५

जम्बुक उवाच ।

अहो मन्दीकृतः स्नेहो गृध्रेणेहाल्पबुद्धिना
पुत्रस्नेहाभिभूतानां युष्माकं शोचतां भृशम् ॥
समैः सम्यक्प्रयुक्तैश्च वचनैः प्रत्ययोत्तरैः ।
यद्गच्छति जनश्चायं स्नेहमुत्सृज्य दुस्त्यजम्
अहो पुत्रवियोगेन मृतशून्योपसेवनात् ।
क्रोशतां सुभृश दुःखं विवत्सानां गवामिव

कृथा इति वचनव्यत्ययश्छान्दसः ॥ ३९ ॥

अद्य शोकं विजानामि मानुषाणां महीतले ।
स्नेहं हि कारणं कृत्वा ममाप्यश्रूण्यथापतन्॥
यत्नो हि सततं कार्यस्ततो दैवेन सिद्ध्यति ।
दैवं पुरुषकारश्च कृतान्तेनोपपद्यते ॥ ५०
अनिर्वेदः सदा कार्यो निर्वेदाद्धि कुतः सुखम्
प्रयत्नात्प्राप्यते ह्यर्थः कस्माद्गच्छथ निर्दयम्
आत्ममांसोपवृत्तं च शरीरार्धमयीं तनुम् ।
पितॄणां वंशकर्तारं वने त्यक्त्वा क्व यास्यथ
अथवाऽस्तंगते सूर्ये सन्ध्याकाल उपस्थिते
ततो नेष्यथ वा पुत्रमिहस्था वा भविष्यथ ५३

गृध्र उवाच ।

अद्य वर्षसहस्रं मे साग्रं जातस्य मानुषाः
न च पश्यामि जीवन्तं मृतं स्त्रीपुंनपुंसकम्॥
मृता गर्भेषु जायन्ते जातमात्रा म्रियन्ति च
चंक्रमन्तो म्रियन्ते च यौवनस्थास्तथा परे ॥
अनित्यानीह भाग्यानि चतुष्पात्पक्षिणामपि
जंगमानां नगानां वाप्यायुरग्रेऽवतिष्ठते ॥५६
इष्टदारवियुक्ताश्च पुत्रशोकान्वितास्तथा ।
दह्यमानाः स्म शोकेन गृहं गच्छन्ति नित्यशः
अनिष्टानां सहस्राणि तथेष्टानां शतानि च ।
उत्सृज्येह प्रयाता वै बान्धवा भृशदुःखिताः
त्यज्यतामेष निस्तेजाः शून्यः काष्ठत्वमागतः
अन्यदेहविषक्तं हि शावं काष्ठत्वमागतम् ५९
त्यक्तजीवस्य चैवास्य कस्माद्धित्वा न गच्छत
निरर्थको ह्ययं स्नेहो निष्फलश्च परिश्रमः ॥
चक्षुर्भ्यां न च कर्णाभ्यां संशृणोति समीक्षते
कस्मादेनं समुत्सृज्य न गृहान्गच्छताशु वै ॥
मोक्षधर्माश्रितैर्वाक्यैर्हेतुमद्भिः सुनिष्ठुरैः ।
मयोक्ता गच्छत क्षिप्रं स्वं स्वमेव निवेशनम्
प्रज्ञाविज्ञानयुक्तेन बुद्धिसंज्ञाप्रदायिना ।
वचनं श्राविता नूनं मानुषाः संन्यवर्तत ६३

शोको द्विगुणतां याति
दृष्ट्वा स्मृत्वा च चेष्टितम् ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा
सन्निवृत्तास्तु मानुषाः ।
अपश्यत्तं तदा सुप्तं
द्रुतमागत्य जम्बुकः ॥ ६४

जम्बुक उवाच ।

इमं कनकवर्णाभं भूषणैः समलंकृतम् ।
गृध्रवाक्यात्कथं पुत्रं त्यजध्वं पितृपिण्डदम्
न स्नेहस्य च विच्छेदो विलापरुदितस्य च ।
मृतस्यास्य परित्यागात्तापो वै भविता ध्रुवं
श्रूयते शम्बुके शूद्रे हते ब्राह्मणदारकः ।
जीवितो धर्ममासाद्य रामात्सत्यपराक्रमात्
तथा श्वेतस्य राजर्षेर्बालो दिष्टान्तमागतः ।
श्वेतेन धर्मनिष्ठेन मृतः सञ्जीवितः पुनः ॥ ६८
तथा कश्चिल्लभेत्सिद्धो मुनिर्वा देवतापि वा ।
कृपणानामनुक्रोशं कुर्याद्वो रुदतामिह ॥ ६९
इत्युक्तास्ते न्यवर्तन्त शोकार्ताः पुत्रवत्सलाः
अङ्के शिरः समाधाय रुरुदुर्बहुविस्तरम् ।
तेषां रुदितशब्देन गृध्रोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत्

गृध्र उवाच ।

अश्रुपातपरिक्लिन्नः पाणिस्पर्शप्रपीडितः ।
धर्मराजप्रयोगाच्च दीर्घनिद्रां प्रवेशितः ॥ ७१
तपसाऽपि हि संयुक्ता धनवन्तो महाधियः
सर्वे मृत्युवशं यान्ति तदिदं प्रेतपत्तनम् ॥७२
बालवृद्धसहस्राणि सदा सन्त्यज्य बान्धवाः
दिनानि चैव रात्रींश्च दुःखं तिष्ठन्ति भूतले॥
अलं निर्बन्धमागत्य शोकस्य परिधारणे ।
अप्रत्ययं कुतो ह्यस्य पुनरद्येह जीवितम् ७४
मृतस्योत्सृष्टदेहस्य पुनर्देहो न विद्यते ।
नैव मूर्तिप्रदानेन जम्बुकस्य शतैरपि ॥ ७५
शक्यं जीवयितुं ह्येष बालो वर्षशतैरपि ।
अथ रुद्रः कुमारो वा ब्रह्मा वा विष्णुरेव च
वरमस्मै प्रयच्छेयुस्ततो जीवेदयं शिशुः ।
नैव बाष्पविमोक्षेण न वा श्वासकृतेन च७७
न दीर्घरुदितेनायं पुनर्जीवं गमिष्यति ।
अहं च क्रोष्टुकश्चैव यूयं ये चास्य बान्धवाः ॥
धर्माधर्मौ गृहीत्वेह सर्वे वर्तामहेऽध्वनि ।
अप्रियं परुषं चापि परद्रोहं परस्त्रियम् ॥ ७९
अधर्ममनृतं चैव दूरात्प्राज्ञो विवर्जयेत् ।
धर्मं सत्यं श्रुतं न्याय्यं महतीं प्राणिनां दयाम्
अजिह्मत्वमशाठ्यं च यत्नतः परिमार्गत ।
मातरं पितरं वाऽपि बान्धवान् सुहृदस्तथा
जीवतो ये न पश्यन्ति तेषां धर्मविपर्ययः ।
यो न पश्यति चक्षुर्भ्यां नेङ्गते च कथञ्चन८२

तस्य निष्ठावसानान्ते
रुदन्तः किं करिष्यथ ।
इत्युक्तास्ते सुतं त्यक्त्वा
भूमौ शोकपरिप्लुताः ॥
दह्यमानाः सुतस्नेहात्प्रययुर्बान्धवा गृहम् ८३

जम्बुक उवाच ।

दारुणो मर्त्यलोकोऽयं सर्वप्राणिविनाशनः
इष्टबन्धुवियोगश्च तथेहाल्पं च जीवितम् ८४
बह्लीकमसत्यं चाप्यतिवादाप्रियंवदम् ।
इमं प्रेक्ष्य पुनर्भावं दुःखशोकविवर्धनम् ॥ ८५
न मे मानुषलोकोऽयं मुहूर्तमपि रोचते ।
अहो धिग्गृध्रवाक्येन यथैवाबुद्धयस्तथा ८६
कथं गच्छत निःस्नेहाः सुतस्नेहं विसृज्य च
प्रदीप्ताः पुत्रशोकेन सन्निवर्तत मानुषाः ८७
श्रुत्वा गृध्रस्य वचनं पापस्येहाकृतात्मनः ।
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्
सुखदुःखावृते लोके नेहास्त्येकमनन्तरम् ।
इमं क्षितितले त्यक्त्वा बालं रूपसमान्वितम्
कुलशोभाकरं मूढाः पुत्रं त्यक्त्वा क्व यास्यथ ।
रूप-यौवनसम्पन्नं द्योतमानमिव श्रिया ॥९०
जीवन्तमेव पश्यामि मनसा नात्र संशयः ।
विनाशो नास्य न हि वै सुखं प्राप्स्यथ मानुषाः
पुत्रशोकाभितप्तानां मृतानामद्य वः क्षमम् ।
सुखसम्भावनं कृत्वा धारयित्वा सुखं स्वयम्
त्यक्त्वा गमिष्यथ क्वाद्य समुत्सृज्याल्पबुद्धिवत्

भीष्म उवाच ।

तथा धर्मविरोधेन प्रियमिथ्याभिधायिना
श्मशानवासिना नित्यं रात्रिं मृगयता नृप
ततो मध्यस्थतां नीता वचनैरमृतोपमैः ।
जम्बुकेन स्वकार्यार्थं बान्धवास्तस्य धिष्ठिताः

गृध्र उवाच ।

अयं प्रेतसमाकीर्णो यक्षराक्षससेवितः ।
दारुणः काननो देशः कौशिकैरभिनादितः
भीमः सुघोरश्च तथा नीलमेघसमप्रभः ।
अस्मिञ्छवं परित्यज्य प्रेतकार्याण्युपासत ॥
भानुर्यावत्प्रयात्यस्तं यावच्च विमला दिशः
तावदेनं परित्यज्य प्रेतकार्याण्युपासत ॥९७
नदन्ति परुषं श्येनाः
शिवाः क्रोशन्ति दारुणम् ।
मृगेन्द्राः प्रतिनन्दन्ति
रविरस्तं च गच्छति ॥ ९८
चिताधूमेन नीलेन संरज्यन्ते च पादपाः ।
श्मशाने च निराहाराः प्रतिनर्दन्ति देवताः
सर्वे विकृतदेहाश्चाप्यस्मिन्देशे सुदारुणे ।
युष्मान्प्रधर्षयिष्यन्ति विकृता मांसभोजिनः
क्रूरश्चायं वनोद्देशो भयमद्य भविष्यति ।
त्यज्यतां काष्ठभूतोऽयं मृष्यतां जाम्बुकं वचः
यदि जम्बुकवाक्यानि निष्फलान्यनृतानि च
श्रोष्यथ भ्रष्टविज्ञानास्ततः सर्वे विनंक्ष्यथ २

जम्बुक उवाच ।

स्थीयतां नेह भेतव्यं यावत्तपति भास्करः।
तावदस्मिन् सुते स्नेहादनिर्वेदेन वर्तत ॥ ३
स्वैरं रुदन्तो विश्रब्धाश्चिरं स्नेहेन पश्यत ।
स्थीयतां यावदादित्यः किं च क्रव्यादभाषितैः
यदि गृध्रस्य वाक्यानि तीव्राणि रभसानि च
गृह्णीत मोहितात्मानः सुतो वो न भविष्यति

भीष्म उवाच ।

गृध्रोऽस्तमित्याह गतो गतो नेति च जम्बुकः
मृतस्य तं परिजनमूचतुस्तौ क्षुधान्वितौ ६
स्वकार्यबद्धकक्षौ तौ राजन् गृध्रोऽथ जम्बुकः ।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ शास्त्रमालम्ब्य जल्पतः
तयोर्विज्ञानविदुषोर्द्वयोर्मृगपतत्रिणोः ।
वाक्यैरमृतकल्पैस्तैः प्रतिष्ठन्ति व्रजन्ति च
शोकदैन्यसमाविष्टा रुदन्तस्तस्थिरे तदा ।
स्वकार्यकुशलाभ्यां ते सम्भ्राम्यन्ते ह नैपुणात्
तथा तयोर्विवदतोर्विज्ञानविदुषोर्द्वयोः ।
बान्धवानां स्थितानां चाप्युपातिष्ठत शङ्करः
देव्या प्रणोदितो देवः कारुण्यार्द्रीकृतेक्षणः ।
ततस्तानाह मनुजान् वरदोऽस्मीति शङ्करः
ते प्रत्यूचुरिदं वाक्यं
दुःखिताः प्रणताः स्थिताः ।
एकपुत्रविहीनानां
सर्वेषां जीवितार्थिनाम् ॥ १२
पुत्रस्य नो जीवदानाज्जीवितं दातुमर्हसि ।
एवमुक्तः स भगवान् वारिपूर्णेन चक्षुषा १३
जीवितं स्म कुमाराय प्रादाद्वर्षशतानि वै ।
तथा गोमायुगृध्राभ्यां प्राददत्क्षुद्विनाशनम्
वरं पिनाकी भगवान् सर्वभूतहिते रतः ।
ततः प्रणम्य ते देवं प्रायो हर्षसमन्विताः १५
कृतकृत्याः सुखं हृष्टाः प्रातिष्ठन्त तदा विभो
अनिर्वेदेन दीर्घेण निश्चयेन ध्रुवेण च ॥ १६
देवदेवप्रसादाच्च क्षिप्रं फलमवाप्यते ।
पश्य दैवस्य संयोगं बान्धवानां च निश्चयम्
कृपणानां तु रुदतां कृतमश्रुप्रमार्जनम् ।
पश्य चाल्पेन कालेन निश्चयान्वेषणेन च १८

प्रसादं शङ्करात्प्राप्य
दुःखिताः सुखमाप्नुवन्।
ते विस्मिताः प्रहृष्टाश्च
पुत्रसञ्जीवनात् पुनः ॥ १९
बभूवुर्भरतश्रेष्ठ
प्रसादाच्छङ्करस्य वै।
ततस्ते त्वरिता राजं-
स्त्यक्त्वा शोकं शिशूद्भवम् ॥ २०
विविशुः पुत्रमादाय नगरं हृष्टमानसाः।
एषा बुद्धिः समस्तानां चातुर्वर्ण्येन दर्शिता
धर्मार्थमोक्षसंयुक्तमितिहासमिमं शृणु।
श्रुत्वा मनुष्यः सततमिहामुत्र प्रमोदते ॥ २२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि गृध्रगोमायुसंवादे कुमारसंजीवने त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥ [ २३ ]

## १५४

युधिष्ठिर उवाच।
बलिनः प्रत्यमित्रस्य नित्यमासन्नवर्तिनः।
उपकारापकाराभ्यां समर्थस्योद्यतस्य च ॥ १
मोहाद्विकत्थनामात्रैरसारोऽल्पबलो लघुः।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिरभिद्रुह्य पितामह ॥ २
आत्मनो बलमास्थाय कथं वर्तेत मानवः।
आगच्छतोऽतिक्रुद्धस्य तस्योद्धरणकाम्यया
भीष्म उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
संवादं भरतश्रेष्ठ शाल्मलेः पवनस्य च ॥ ४
हिमवन्तं समासाद्य महानासीद्वनस्पतिः।
वर्षपूगाभिसंवृद्धः शाखी स्कन्धी पलाशवान्
तत्र स्म मत्तमातङ्गा घर्मार्ताः श्रमकर्शिताः।
विश्राम्यन्ति महाबाहो तथान्या मृगजातयः
नल्वमात्रपरीणाहो घनच्छायो वनस्पतिः।
सारिकाशुकसंजुष्टः पुष्पवान्फलवानपि ॥ ७
सार्थिका वणिजश्चापि तापसाश्च वनौकसः
वसन्ति तत्र मार्गस्थाः सुरम्ये नगसत्तमे ॥ ८
तस्य ता विपुलाः शाखा
दृष्ट्वा स्कन्धं च सर्वशः।
अभिगम्याब्रवीदेनं
नारदो भरतर्षभ ॥ ९
अहो नु रमणीयस्त्वमहो चासि मनोहरः।
प्रियामहे त्वया नित्यं तरुप्रवरशाल्मले ॥ १०
सदैव शकुनास्तात मृगाश्चाथ तथा गजाः।
वसन्ति तव संहृष्टा मनोहर मनोहराः ॥ ११
तव शाखा महाशाख स्कन्धांश्च विपुलांस्तथा
न वै प्रभग्नान्पश्यामि मारुतेन कथञ्चन १२
किं नु ते पवनस्तात प्रीतिमानथवा सुहृत्।
त्वां रक्षति सदा येन वनेऽत्र पवनो ध्रुवम् १३
भगवान्पवनः स्थानाद् वृक्षानुच्चावचानपि।
पर्वतानां च शिखराण्याचालयति वेगवान्
शोषयत्येव पातालं वहन् गन्धवहः शुचिः।
सरांसि सरितश्चैव सागरांश्च तथैव च ॥ १५
संरक्षति त्वां पवनः सखित्वेन न संशयः।
तस्मात्त्वं बहुशाखोऽपि पर्णवान्पुष्पवानपि ॥
इदं च रमणीयं ते प्रतिभाति वनस्पते।
यदिमे विहगास्तात रमन्ते मुदितास्त्वयि ॥
एषां पृथक् समस्तानां श्रूयते मधुरस्वरः।
पुष्पसंमोदने काले वाशतां सुमनोहरम् १८
तथेमे गर्जिता नागाः
स्वयूथकुलशोभिताः।
घर्मार्तास्त्वां समासाद्य
सुखं विन्दन्ति शाल्मले ॥ १९

---

इति शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभाव० त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५३ श्लोकद्वयमधिकम्।

१५४

**बलिनः प्रत्यमित्रस्येति** ॥१॥ यदापन्नो राजा दैवेन नानुगृह्यते तदा तमेव शरणीकुर्यात् यदि तु वाक्शूर-तया तेन सह विरोधं करोति तदा कृत्स्नं स्वपरिग्रहं स्वयमेव त्यक्त्वा स्वात्ममात्रं रक्षेत्। एतत्पवनशाल्मलिसंवादाख्यायिकया दर्शयति-**अत्रापीत्यादिना** ॥ ५ ॥ **नल्वः** हस्तानां शतचतुष्टयं **परीणाहः** स्थूलत्वं वैपुल्यमिति यावत्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

तथैव मृगजातीभिरन्याभिरभिशोभसे ।
तथा सर्वाधिवासैश्च शोभसे मेरुवद्द्रुम २०
ब्राह्मणैश्च तपःसिद्धैस्तापसैः श्रमणैस्तथा ।
त्रिविष्टपसमं मन्ये तवायतनमेव हि ॥ २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि पवनशाल्मलिसंवादे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥ [ २४ ]

## १५५

नारद उवाच ।

बन्धुत्वादथवा सख्याच्छाल्मले नात्र संशयः
पालयत्येव सततं भीमः सर्वत्रगोऽनिलः ॥ १
न्यग्भावं परमं वायोः शाल्मले त्वमुपागतः ।
तवाहमस्मीति सदा येन रक्षति मारुतः ॥ २
न तं पश्याम्यहं वृक्षं पर्वतं वेश्म चेदृशम् ।
यं न वायुबलाद्भग्नं पृथिव्यामिति मे मतिः ३
त्वं पुनः कारणैर्नूनं रक्ष्यसे शाल्मले यथा ।
वायुना सपरीवारस्तेन तिष्ठस्यसंशयम् ॥ ४

शाल्मलिरुवाच ।

न मे वायुः सखा ब्रह्म-
न बन्धुर्न च मे सुहृत् ।
परमेष्ठी तथा नैव
येन रक्षति वाऽनिलः ॥ ५
मम तेजो बलं भीमं वायोरपि हि नारद ।
कलामष्टादशीं प्राणैर्न मे प्राप्नोति मारुतः ६
आगच्छन्परुषो वायु-
र्मया विष्टम्भितो बलात् ।
भञ्जन् द्रुमान् पर्वतांश्च
यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ ७
स मया बहुशो भग्नः प्रभञ्जन्वै प्रभञ्जनः ।
तस्मान्न बिभ्ये देवर्षे क्रुद्धादपि समीरणात् ८

नारद उवाच ।

शाल्मले विपरीतं ते दर्शनं नात्र संशयः ।
न हि वायोर्बलेनाऽस्ति भूतं तुल्य बलं क्वचित्
इन्द्रो यमो वैश्रवणो वरुणश्च जलेश्वरः ।
नैतेऽपि तुल्या मरुतः किं पुनस्त्वं वनस्पते१०
यच्च किंचिदिह प्राणी चेष्टते शाल्मले भुवि
सर्वत्र भगवान्वायुश्चेष्टाप्राणकरः प्रभुः ॥ ११
एष चेष्टयते सम्यक् प्राणिनः सम्यगायतः ।
असम्यगायतो भूयश्चेष्टते विकृतं नृषु ॥ १२
स त्वमेवंविधं वायुं सर्वसत्त्वभृतां वरम् ।
न पूजयसि पूज्यं तं किमन्यद्बुद्धिलाघवात् ॥
असारश्चापि दुर्मेधाः केवलं बहु भाषसे ।
क्रोधादिभिरवच्छन्नो मिथ्या वदसि शाल्मले
मम रोषः समुत्पन्नस्त्वय्येवं संप्रभाषति ।
ब्रवीम्येष स्वयं वायोस्तव दुर्भाषितं बहु १५
चन्दनैः स्यन्दनैः शालैः सरलैर्देवदारुभिः ।
वेतसैर्धन्वनैश्चापि ये चान्ये बलवत्तराः १६
तैश्चापि नैवं दुर्बुद्धे क्षिप्तो वायुः कृतात्मभिः।
तेऽपि जानन्ति वायोश्च बलमात्मन एव च
तस्मात्तं वै नमस्यन्ति श्वसनं तरुसत्तमाः ।
त्वं तु मोहान्न जानीषे वायोर्बलमनन्तकम्
एवं तस्माद्गमिष्यामि सकाशं मातरिश्वनः१८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि पवनशाल्मलिसंवादे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ [ २५ ]

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

१५५

अत्र बन्धुत्वादिति, एवमुक्त्वा त्विति, ततो निश्चित्येति चाध्यायत्रयं स्पष्टार्थम् ॥ १ ॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

## १५६

भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा तु राजेन्द्र शाल्मलिं ब्रह्मवित्तमः
नारदः पवने सर्वं शाल्मलेर्वाक्यमब्रवीत् १
नारद उवाच ।
हिमवत्पृष्ठजः कश्चि-
च्छाल्मलिः परिवारवान् ।
बृहन्मूलो बृहच्छायः
स त्वां वायोऽवमन्यते ॥ २
बहुव्याक्षेपयुक्तानि त्वामाह वचनानि सः ।
न युक्तानि मया वायो तानि वक्तुं तवाग्रतः
जानामि त्वामहं वायो सर्वप्राणभृतां वरम् ।
वरिष्ठं च गरिष्ठं च क्रोधे वैवस्वतं यथा ॥ ४
भीष्म उवाच ।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा नारदस्य समीरणः ।
शाल्मलिं तमुपागम्य क्रुद्धो वचनमब्रवीत् ५
वायुरुवाच ।
शाल्मले नारदो गच्छं-
स्त्वयोक्तो मद्विगर्हणम् ।
अहं वायुः प्रभावं ते
दर्शयाम्यात्मनो बलम् ॥ ६
अहं त्वामभिजानामि विदितश्चासि मे द्रुम ।
पैतामहः प्रजासर्गे त्वयि विश्रान्तवान्प्रभुः
तस्य विश्रमणादेष प्रसादो मत्कृतस्तव ।
रक्ष्यसे तेन दुर्बुद्धे नात्मवीर्याद् द्रुमाधम ८
यन्मां त्वमवजानीषे यथाऽन्यं प्राकृतं तथा ।
दर्शयाम्येष चात्मानं यथा मां नावमन्यसे ॥
भीष्म उवाच ।
एवमुक्तस्ततः प्राह शाल्मलिः प्रहसन्निव ।
पवन त्वं च मे क्रुद्धो दर्शयात्मानमात्मना१०
मयि वै त्यज्यतां क्रोधः
किं मे क्रुद्धः करिष्यसि ।
न ते बिभेमि पवन
यद्यपि त्वं स्वयं प्रभुः ॥ ११
बलाधिकोऽहं त्वत्तश्च न भीः कार्या मया तव
ये तु बुद्ध्या हि बलिनस्ते भवन्ति बलीयसः
प्राणमात्रबला ये वै नैव ते बलिनो मताः ।
इत्येवमुक्तः पवनः श्व इत्येवाब्रवीद्वचः ॥ १३
दर्शयिष्यामि ते तेजस्ततो रात्रिरुपागमत् ।
अथ निश्चित्य मनसा शाल्मलिर्वातकारितम्
पश्यमानस्तदाऽऽत्मानमसमं मातरिश्वना ।
नारदे यन्मया प्रोक्तं वचनं प्रति तन्मृषा १५
असमर्थो ह्यहं वायोर्बलेन बलवान् हि सः ।
मारुतो बलवान्नित्यं यथा वै नारदोऽब्रवीत्
अहं तु दुर्बलोऽन्येभ्यो वृक्षेभ्यो नात्र संशयः
किं तु बुद्ध्या समो नास्ति मया कश्चिद्वनस्पतिः
तदहं बुद्धिमास्थाय भयं मोक्ष्ये समीरणात् ।
यदि तां बुद्धिमास्थाय तिष्ठेयुः पर्णिनो वने ॥
अरिष्टाः स्युः सदा क्रुद्धात्पवनान्नात्र संशयः
ते तु बाला न जानन्ति यथा वै तान् समीरणः
समीरयति संक्रुद्धो यथा जानाम्यहं तथा १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि पवनशाल्मलिसंवादे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥ [ २६ ]

## १५७

भीष्म उवाच ।
ततो निश्चित्य मनसा
शाल्मलिः क्षुभितस्तदा ।
शाखास्कन्धान्प्रशाखाश्च
स्वयमेव व्यशातयत् ॥ १
स परित्यज्य शाखाश्च पत्राणि कुसुमानि च
प्रभाते वायुमायान्तं प्रत्यैक्षत वनस्पतिः ॥ २

---

१५६

**एवामिति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

१५७

**तत इति** ॥ १ ॥

ततः क्रुद्धः श्वसन्वायुः पातयन्वै महाद्रुमान्
आजगामाथ तं देशमास्ते यत्र स शाल्मलिः
तं हीनपर्णं पतिताग्रशाखं
निशीर्णपुष्पं प्रसमीक्ष्य वायुः।
उवाच वाक्यं स्मयमान एवं
मुदा युतः शाल्मलिमुग्रशाखम् ॥ ४

वायुरुवाच।
अहमप्येवमेव त्वां कुर्वाणः शाल्मले रुषा।
आत्मना यत्कृतं कृच्छ्रं शाखानामपकर्षणम्
हीनपुष्पाग्रशाखस्त्वं शीर्णाङ्कुरपलाशकः।
आत्मदुर्मन्त्रितेनेह मद्वीर्यवशगः कृतः ॥ ६

भीष्म उवाच।
एतच्छ्रुत्वा वचो वायोः
शाल्मलिर्व्रीडितस्तदा।
अतप्यत वचः स्मृत्वा
नारदो यत्तदाऽब्रवीत् ॥ ७
एवं हि राजशार्दूल दुर्बलः सन्बलीयसा।
वैरमारभते बालस्तप्यते शाल्मलिर्यथा ॥ ८
तस्माद्वैरं न कुर्वीत दुर्बलो बलवत्तरैः।
शोचेद्धि वैरं कुर्वाणो यथा वै शाल्मलिस्तथा
न हि वैरं महात्मानो
विवृण्वन्त्यपकारिषु।
शनैः शनैर्महाराज
दर्शयन्ति स्म ते बलम् ॥ १०
वैरं न कुर्वीत नरो दुर्बुद्धिर्बुद्धिजीविना।
बुद्धिर्बुद्धिमतो याति तृणेष्विव हुताशनः ११
न हि बुद्ध्या समं किञ्चिद्विद्यते पुरुषे नृप।
तथा बलेन राजेन्द्र न समोऽस्तीह कश्चन ॥
तस्मात्क्षमेत बालाय जडान्धबधिराय च।
बलाधिकाय राजेन्द्र तद्दृष्टं त्वयि शत्रुहन्॥
अक्षौहिण्यो दशैका च सप्त चैव महाद्युते।
बलेन न समा राजन्नर्जुनस्य महात्मनः॥ १४
निहताश्चैव भग्नाश्च पाण्डवेन यशस्विना।
चरता बलमास्थाय पाकशासनिना मृधे १५
उक्ताश्च ते राजधर्मा आपद्धर्माश्च भारत।
विस्तरेण महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि पवन-शाल्मलिसंवादे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥ [ २७ ]

## १५८

युधिष्ठिर उवाच।
पापस्य यदधिष्ठानं यतः पापं प्रवर्तते।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ १

भीष्म उवाच।
पापस्य यदधिष्ठानं तच्छृणुष्व नराधिप।
एको लोभो महाग्राहो लोभात्पापं प्रवर्तते २
अतः पापमधर्मश्च तथा दुःखमनुत्तमम्।
निकृत्या मूलमेतद्धि येन पापकृतो जनाः ३
लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रवर्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानस्तम्भः परासुता
अक्षमा ह्रीपरित्यागः श्रीनाशो धर्मसंक्षयः।
अभिध्याऽप्रख्यता चैव सर्वं लोभात्प्रवर्तते ५
अत्यागश्चातितर्षश्च विकर्मसु च याः क्रियाः
कुलविद्यामदश्चैव रूपैश्वर्यमदस्तथा ॥ ६
सर्वभूतेष्वभिद्रोहः सर्वभूतेष्वसत्कृतिः।
सर्वभूतेष्वविश्वासः सर्वभूतेष्वनार्जवम् ॥ ७

---

इति शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

१५८

तदेवमापद्धर्मानुक्त्वा राज्ञामराज्ञां च सर्वापन्मूलभूतान् दोषान् उत्पत्तिप्रतिबन्धकान् गुणांश्च लोभाज्ञानदमतपःसत्यादीन् हेयानुपादेयांश्च क्रमेणाध्यायसप्तकेनाह-**पापस्य यदधिष्ठानमित्यादिना** ॥१॥ ग्राह इव ग्राहो ग्रासकर्ता ॥ २ ॥ येन लोभेन जनाः पापकृतो भवन्ति ॥ ३ ॥ परासुता पराधीनप्राणत्वम् ॥ ४ ॥ **अभिध्या** चिन्ता अप्रख्यता अपकीर्तिः ॥ ५ ॥ **अत्यागादयोऽ**कार्यक्रियान्ताः सर्वे दोषाः लोभात् प्रवर्तन्त इति पूर्वेणान्वयः ॥ ६ ॥

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम् ।
वाग्वेगो मनसो वेगो निन्दावेगस्तथैव च ॥८
उपस्थोदरयोर्वेगो मृत्युवेगश्च दारुणः ।
ईर्ष्यावेगश्च बलवान् मिथ्यावेगश्च दुर्जयः ॥९
रसवेगश्च दुर्वार्यः श्रोत्रवेगश्च दुःसहः ।
कुत्सा विकत्था मात्सर्यं पापं दुष्करकारिता
साहसानां च सर्वेषा-
मकार्याणां क्रियास्तथा ।
जातौ बाल्ये च कौमारे
यौवने चापि मानवाः ॥ ११
न संत्यजन्त्यात्मकर्म यो न जीर्यति जीर्यतः
यो न पूरयितुं शक्यो लोभः प्राप्त्या कुरूद्वह
नित्यं गंभीरतोयाभिरापगाभिरिवोदधिः ।
न प्रहृष्यति यो लोभैः कामैर्यश्च न तृप्यति ॥
यो न देवैर्न गन्धर्वैर्नासुरैर्न महोरगैः ।
ज्ञायते नृप तत्त्वेन सर्वैर्भूतगणैस्तथा ॥ १४
स लोभः सह मोहेन विजेतव्यो जितात्मना
दंभो द्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा
भवन्त्येतानि कौरव्य लुब्धानामकृतात्मनां
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्तीहाल्पबुद्धयः ।
द्वेषक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः १७
अन्तःक्रूरा वाङ्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव
धर्मवैतंसिकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत्
कुर्वते च बहून्मार्गा-
स्तान् हेतुबलमाश्रिताः ।
सतां मार्गान् विलुम्पन्ति
लोभज्ञानेष्ववस्थिताः ॥ १९
धर्मस्य ह्रियमाणस्य लोभग्रस्तैर्दुरात्मभिः ।
या या विक्रियते संस्था ततः साऽपि प्रपद्यते
दर्पः क्रोधो मदः स्वप्नो
हर्षः शोकोऽतिमानिता ।
एत एव हि कौरव्य
दृश्यन्ते लुब्धबुद्धिषु ॥ २१
एतानशिष्टान्बुध्यस्व
नित्यं लोभसमन्वितान्
शिष्टांस्तु परिपृच्छेथा
यान्वक्ष्यामि शुचिव्रतान् ॥ २२
येष्वावृत्तिभयं नास्ति परलोकभयं न च ।
नामिषेषु प्रसंगोऽस्ति न प्रियेष्वप्रियेषु च ॥
शिष्टाचारः प्रियो येषु दमो येषु प्रतिष्ठितः ।
सुखं दुःखं समं येषां सत्यं येषां परायणम् ॥
दातारो न ग्रहीतारो दयावन्तस्तथैव च ।
पितृदेवातिथेयाश्च नित्योद्युक्तास्तथैव च ॥ २५
सर्वोपकारिणो वीराः सर्वधर्मानुपालकाः ।
सर्वभूतहिताश्चैव सर्वदेयाश्च भारत ॥ २६
न ते चालयितुं शक्या धर्मव्यापारकारिणः
न तेषां भिद्यते वृत्तं यत्पुरा साधुभिः कृतम्
न त्रासिनो न चपला न रौद्राः सत्पथे स्थिताः
त सेव्याः साधुभिर्नित्यं येष्वहिंसा प्रतिष्ठिता
कामक्रोधव्यपेता ये निर्ममा निरहंकृताः ।
सुव्रताः स्थिरमर्यादास्तानुपास्व च पृच्छ च २९
न धनार्थं यशोऽर्थं वा धर्मस्तेषां युधिष्ठिर ।
अवश्यं कार्य इत्येव शरीरस्य क्रियास्तथा ३०
न भयं क्रोधचापल्ये न शोकस्तेषु विद्यते ।
न धर्मध्वजिनश्चैव न गुह्यं कश्चिदास्थिताः ॥
येष्वलोभस्तथा मोहो ये च सत्यार्जवे स्थिताः
तेषु कौन्तेय रज्येथा येषां न भ्रश्यते पुनः ३२
ये न हृष्यन्ति लाभेषु नालाभेषु व्यथन्ति च
निर्ममा निरहंकाराः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ॥
लाभालाभौ सुखदुःखे च तात
प्रियाप्रिये मरणं जीवितं च ।
समानि येषां स्थिरविक्रमाणां
बुभुत्सतां सत्त्वपथे स्थितानाम् ॥३४

---

जातौ जन्मनि ॥ ११ ॥ यो न पूरयितुं शक्य इत्यादीनां स लोभो जेतव्य इति तृतीयेनान्वयः ॥ १२ ॥ अल्पेऽपि धनादौ बुद्धिर्येषां तेऽल्पबुद्धयो लुब्धा इत्यर्थः ॥ १७ ॥ धर्मवैतंसिकाः धर्मव्याजेनेतरान् हिंसन्तः ध्वजिनो धर्मख्यापकाः ॥ १८ ॥ हेतुबलं

'येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः ।
संतोषं जनयेत्प्राज्ञस्तदेवेश्वरपूजनम् ॥'

इत्यागमबलेन अन्योन्यसंतोषहेतुतया पारदार्यादेरपि धर्मत्वं वर्णयन्तीति भावः ॥ १९ ॥ संस्था स्थितिः विक्रियतेऽन्यथा भवति सा तथैव प्रपद्यते प्रथां याति २० सर्वं प्राणपर्यन्तमपि देयं परार्थे दातुं योग्यं येषां ते ॥२६॥ पृच्छ च धर्मामिति शेषः ॥ २९ ॥ क्रिया आहारादयः ॥ ३० ॥ गुह्यं गोपनीयं कंचित्पाखंडधर्मम् ॥ ३१ ॥ अमोह इति च्छेदः येषां वृत्तमिति शेषः ॥ ३२ ॥

धर्मप्रियांस्तान्सुमहानुभावान्
दान्तोऽप्रमत्तश्च समर्चयेथाः ।
दैवान्सर्वे गुणवन्तो भवन्ति
शुभाशुभे वाक्प्रलापास्तथान्ये ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि आपन्मूलभूतदोषकथने अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ [ २८ ]

## १५९

युधिष्ठिर उवाच ।
अनर्थानामधिष्ठानमुक्तो लोभः पितामह ।
अज्ञानमपि वै तात श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः १
भीष्म उवाच ।
करोति पापं योऽज्ञानान्नात्मनो वेत्ति च क्षयं
प्रद्वेष्टि साधुवृत्तांश्च स लोकस्यैति वाच्यताम्
अज्ञानान्निरयं याति तथाऽज्ञानेन दुर्गतिम् ।
अज्ञानात्क्लेशमाप्नोति तथाऽऽपत्सु निमज्जति
युधिष्ठिर उवाच ।
अज्ञानस्य प्रवृत्तिं च स्थानं वृद्धिक्षयोदयौ
मूलं योगं गतिं कालं कारणं हेतुमेव च ॥ ४
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यथावदिह पार्थिव ।
अज्ञानप्रसवं हीदं यद्दुःखमुपलभ्यते ॥ ५
भीष्म उवाच ।
रागो द्वेषस्तथा मोहो हर्षः शोकोऽभिमानिता
कामः क्रोधश्च दर्पश्च तन्द्री चालस्यमेव च ६
इच्छा द्वेषस्तथा तापः परवृद्ध्युपतापिता ।
अज्ञानमेतन्निर्दिष्टं पापानां चैव याः क्रियाः ७
एतस्य वा प्रवृत्तेश्च वृद्ध्यादीन्यांश्च पृच्छसि ।
विस्तरेण महाराज शृणु तच्च विशेषतः ॥ ८
उभावेतौ समफलौ समदोषौ च भारत ।
अज्ञानं चातिलोभश्चाप्येकं जानीहि पार्थिव
लोभप्रभवमज्ञानं वृद्धं भूयः प्रवर्धते ।
स्थाने स्थाने भवेत्क्षीणमुपैति विविधां गतिं
मूलं लोभस्य मोहो वै कालात्मगतिरेव च ।
छिन्ने भिन्ने तथा लोभे कारणं काल एव च
तस्याज्ञानाद्धि लोभो हि लोभादज्ञानमेव च
सर्वदोषास्तथा लोभात्तस्माल्लोभं विवर्जयेत्
जनको युवनाश्वश्च वृषादर्भिः प्रसेनजित् ।
लोभक्षयाद्दिवं प्राप्तास्तथैवान्ये नराधिपाः१३
प्रत्यक्षं तु कुरुश्रेष्ठ त्यज लोभमिहात्मना ।
त्यक्त्वा लोभं सुखं लोके प्रेत्य चानुचरिष्यसि॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि अज्ञानमाहात्म्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ [ २९ ]

---

हे शुभ हे भद्र सर्वे वाक्प्रलापाः गुणवन्तो भवन्ति तान् दैवान् प्रधानान् अन्ये तु मूढानां वाक्प्रलापा अशुभे अशुभार्थमेव भवन्तीति शेषः । लोभं जेतुकामेन सत्संगः कर्तव्यः इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे टीकायां अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

१५९

**अनर्थानामिति** ॥ १ ॥ वाच्यतां निंद्यताम् ॥ २ ॥ अज्ञानस्य स्वरूपेण सह प्रवृत्त्यादयो द्वादश प्रश्नाः ॥ ४ ॥ स्वरूपमाह द्वाभ्यां-**राग इति** ॥ ६ ॥ कार्ये कारणोपचाराद्रागादय एवाज्ञानं पापानां क्रियाः हिंसादयः ॥७॥ एतस्य एतत्प्रवृत्तेः प्रवृत्तिं तच्च त्रयं शृणु ॥ ८ ॥ मुख्यमज्ञानस्वरूपमाह-**उभाविति** । अत्रापि पूर्ववत्कारणे कार्योपचारः ॥ ९ ॥ लोभप्रभवं लोभात्तस्य प्रवृत्तिः । लोभवृद्धौ वृद्धिर्लोभस्थाने साम्ये स्थानं समता लोभे क्षीणे क्षीणं भवति उदेति उपैति लोभस्योदये उदेतीत्यर्थः । विविधां गतिं दुःखसंतापमोहादिरूपां प्रापयितुमिति शेषः। तदेवं षण्णां प्रश्नानामुत्तरमुक्तम् ॥१०॥ लोभस्याज्ञानात्मकस्य मूलं मोहो वैचित्यं कार्याकार्यप्रतिपत्तिरूपम्। एतेनैव मोहसंयोग एवाज्ञानयोग इत्यष्टमस्याप्युत्तरम्। कालात्मनामिति तेनाज्ञानस्य गतिः स्वर्गनरकनरसुरतिर्यग्रूपेति नवमस्योत्तरम्। लोभस्य च्छेदभेदादिस्तस्थः कालः यदा लिप्स्यमानोऽर्थो विघ्नितो भवति तदैव वैचित्यं रूपस्याज्ञानस्य काल इति दशमस्योत्तरं कारणं निदानं हेतुः फलम् ११ तस्य कालस्य मूढस्य वा तदुभयमाह। अज्ञानकारणाल्लोभः कार्यं फलं एवं लोभादज्ञानमित्यन्तयोरुत्तरम् ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलक० भारतभावदीपे एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

## १६०

युधिष्ठिर उवाच ।
स्वाध्याये कृतयत्नस्य नरस्य च पितामह ।
धर्मकामस्य धर्मात्मन् किं नु श्रेय इहोच्यते१
बहुधा दर्शने लोके श्रेयो यदिह मन्यसे ।
अस्मिँल्लोके परे चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २
महानयं धर्मपथो बहुशाखश्च भारत ।
किंस्विदेवेह धर्माणामनुष्ठेयतमं मतम् ॥ ३
धर्मस्य महतो राजन् बहुशाखस्य तत्त्वतः ।
यन्मूलं परमं तात तत्सर्वं ब्रूह्यशेषतः ४
भीष्म उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि येन श्रेयो ह्यवाप्स्यसि
पीत्वाऽमृतमिव प्राज्ञो ज्ञानतृप्तो भविष्यसि
धर्मस्य विधयो नैके ये वै प्रोक्ता महर्षिभिः
स्वं स्वं विज्ञानमाश्रित्य दमस्तेषां परायणम् :
दमं निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ७
दमात्तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपलभ्यते ।
दमो दानं तथा यज्ञानधीतं चातिवर्तते ॥ ८
दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं च दमः परम् ।
विपाप्मा तेजसा युक्तः पुरुषो विन्दते महत्
दमेन सदृशं धर्मं नान्यं लोकेषु शुश्रुम ।
दमो हि परमो लोके प्रशस्तः सर्वधर्मिणाम्
प्रेत्य चात्र मनुष्येन्द्र परमं विन्दते सुखम् ।
दमेन हि समायुक्तो महान्तं धर्ममश्नुते ॥ ११
सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं पर्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति १२
अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते ।
अनर्थांश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान्
आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम् ।
तस्य लिङ्गानि वक्ष्यामि येषां समुदयो दमः
क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।
इन्द्रियाभिजयो दाक्ष्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्
अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः प्रियवादिता ।
अविहिंसाऽनसूया चाप्येषां समुदयो दमः१६
गुरुपूजा च कौरव्य दया भूतेषु पैशुनम् ।
जनवादं मृषावादं स्तुतिनिन्दाविसर्जनम्१७
कामं क्रोधं च लोभं च दर्पं स्तम्भं विकत्थनम्
रोषमीर्ष्यावमानं च नैव दान्तो निषेवते १८
अनिन्दितो ह्यकामात्मा नाल्पेष्वर्थ्यनसूयकः
समुद्रकल्पः स नरो न कथञ्चन पूर्यते ॥ १९
अहं त्वयि ममत्वं च मयि तेषु तथाऽप्यहम्
पूर्वसम्बन्धिसंयोगं नैतद्दान्तो निषेवते २०
सर्वा ग्राम्यास्तथाऽऽरण्या
याश्च लोके प्रवृत्तयः ।
निन्दां चैव प्रशंसां च
यो नाश्रयति मुच्यते ॥ २१
मैत्रोथ शीलसम्पन्न[illegible]
मुक्तस्य विविधैः सङ्गस्तस्य प्रेत्य फल महत्
सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद्बुधः
प्राप्येह लोके सत्कारं सुगतिं प्रतिपद्यते २३
कर्म यच्छुभमेवेह सद्भिराचरितं च यत् ।
तदेव ज्ञानयुक्तस्य मुनेर्वर्त्म न हीयते ॥ २४
निष्क्रम्य वनमास्थाय ज्ञानयुक्तो जितेन्द्रियः
कालाकांक्षी चरत्येवं ब्रह्मभूयाय कल्पते २५
अभयं यस्य भूतेभ्यो भूतानामभयं यतः ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन २६
अवाचिनोति कर्माणि न च संप्रचिनोति ह
समः सर्वेषु भूतेषु मैत्रायणगतिश्चरेत् ॥ २७
शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य च ।
यथा गतिर्न दृश्येत तथा तस्य न संशयः २८

---

१६०

**स्वाध्याये इति** ॥१॥ दमः इन्द्रियनियमः परायणं पराकाष्ठा अत्रैव सर्वे धर्मा अन्तर्भूता इत्यर्थः ॥ ६ ॥ पैशुनं दान्तो नैव निषेवत इत्युत्तरेणान्वयः स्तुतिनिंदयोरविसर्जनम् ॥ १७ ॥ दर्पं गर्वं स्तंभम् अविनयम् ॥१८॥ अल्पेषु अनित्यसुखेषु कथंचन ब्रह्मलोकलाभेऽपि न पूर्यते न तृप्तो भवति ॥ १९ ॥ वर्त्म स्वाभाविकः पन्थाः यदयेषां विहितं तज्ज्ञानिनः स्वभावसिद्धमित्यर्थः ॥ २४ ॥ निष्क्रम्य गृहादिति शेषः। संन्यस्येत्यर्थः ॥ २५ ॥ अवाचिनोति भोगेन व्ययीकरोति न च संचिनोति संगृह्णाति तत्त्वज्ञस्य कर्माश्लेषस्मरणात् मैत्रायणं सर्वभूतेभ्योऽभयदानम् ॥ २७ ॥ अनेन देवयानेनान्येन वा पथा गत इति न ज्ञायते उत्क्रमणाभावात् । 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्योति' इति श्रुतेरिति भावः ॥ २८ ॥

गृहानुत्सृज्य यो राजन्
मोक्षमेवाभिपद्यते ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य
कल्पन्ते शाश्वतीः समाः ॥ २९
संन्यस्य सर्वकर्माणि संन्यस्य विधिवत्तपः ।
संन्यस्य विविधा विद्याः सर्वं संन्यस्य चैव ह
कामे शुचिरनावृत्तः प्रसन्नात्माऽऽत्मवित्शुचिः
प्राप्येह लोके सत्कारं स्वर्गं समभिपद्यते ३१
यच्च पैतामहं स्थानं ब्रह्मराशिसमुद्भवम् ।
गुहायां पिहितं नित्यं तद्दमेनाभिगम्यते ३२
ज्ञानारामस्य बुद्धस्य सर्वभूताविरोधिनः ।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥ ३३
एक एव दमे दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ३४
एकोऽस्य सुमहाप्राज्ञ दोषः स्यात् सुमहान्गुणः
क्षमया विपुला लोकाः सुलभा हि सहिष्णुता
दान्तस्य किमरण्येन तथाऽदान्तस्य भारत
यत्रैव निवसेद्दान्तस्तदरण्यं स चाश्रमः ३६
वैशम्पायन उवाच ।
एतद्भीष्मस्य वचनं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः
अमृतेनेव संतृप्तः प्रहृष्टः समपद्यत ॥ ३७
पुनश्च परिपप्रच्छ भीष्मं धर्मभृतां वरम् ।
ततः प्रीतः स चोवाच तस्मै सर्वं कुरूद्वहः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि दमकथने
षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ [ ३० ]

## १६१

भीष्म उवाच ।
सर्वमेतत्तपोमूलं कवयः परिचक्षते ।
न ह्यतप्ततपा मूढः क्रियाफलमवाप्नुते ॥ १
प्रजापतिरिदं सर्वं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ २
तपसैव ससर्जान्नं
फलमूलानि यानि च ।
त्रींल्लोकांस्तपसा सिद्धाः
पश्यन्ति सुसमाहिताः ॥ ३
औषधान्यगदादीनि क्रियाश्च विविधास्तथा
तपसैव हि सिद्ध्यन्ति तपोमूलं हि साधनम्
यद्दुरापं भवेत्किंचित्तत्सर्वं तपसो भवेत् ।
ऐश्वर्यमृषयः प्राप्तास्तपसैव न संशयः ॥ ५
सुरापो संमतादायी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
तपसैव सुतप्तेन नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ ६
तपसो बहुरूपस्य तैस्तैर्द्वारैः प्रवर्ततः ।
निवृत्त्या वर्तमानस्य तपो नानशनात्परम् ७
अहिंसा सत्यवचनं दानमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतेभ्यो हि महाराज तपो नानशनात्परम् ८
न दुष्करतरं दानान्नातिमातरमाश्रमः ।
त्रैविद्येभ्यः परं नास्ति संन्यासः परमं तपः ।
इन्द्रियाणीह रक्षन्ति स्वर्गधर्माभिगुप्तये ।
तस्मादर्थे च धर्मे च तपो नानशनात्परम् १०
ऋषयः पितरो देवा
मनुष्या मृगपक्षिणः ।
यानि चान्यानि भूतानि
स्थावराणि चराणि च ॥ ११

---

कामे शुचिः सत्यकाम इत्यर्थः । अनावृत्तः सर्वत्र कामाचारभाक् । 'तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' इतिश्रुतेः शुचिस्त्यक्तकामः सत्कारं सत्यसंस्कारत्वादिगुणयोगेन संमानं इह प्राप्य स्वर्गं अभिपद्यते विदेहकैवल्यकाले ॥ ३१ ॥ गुहायां हृत्पुण्डरीके पैतामहं ब्रह्मलोकाख्यम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

१६१

**सर्वमिति** ॥ १ ॥ **नेति** । मातरमातिक्रम्याश्रमो न सर्वेष्वप्याश्रमेषु माता पालनीयैव तत्त्यागस्य संन्यासिनोऽप्ययोगात् नास्ति दानसमागतिरिति पाठान्तरे स्पष्ट एवार्थः ॥ ९ ॥

तपःपरायणाः सर्वे सिध्यन्ति तपसा च ते ।
इत्येवं तपसा देवा महत्त्वं प्रतिपेदिरे ॥ १२
इमानीष्टविभागानि फलानि तपसः सदा ।
तपसा शक्यते प्राप्तुं देवत्वमपि निश्चयात् १३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि तपःप्रशंसायां एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ [ ३१ ]

---

## १६२

युधिष्ठिर उवाच ।
सत्यं धर्मं प्रशंसन्ति विप्रर्षिपितृदेवताः ।
सत्यमिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि पितामह १
सत्यं किंलक्षणं राजन् कथं वा तदवाप्यते ।
सत्यं प्राप्य भवेत्किं च कथं चैव तदुच्यताम्
भीष्म उवाच ।
चातुर्वर्ण्यस्य धर्माणां संकरो न प्रशस्यते
अविकारितमं सत्यं सर्ववर्णेषु भारत ॥ ३
सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः ॥ ४
सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्
आचारानिह सत्यस्य यथावदनुपूर्वशः ।
लक्षणं च प्रवक्ष्यामि सत्यस्येह यथाक्रमम् ६
प्राप्यते च यथा सत्यं तच्च श्रोतुमिहार्हसि ।
सत्यं त्रयोदशविधं सर्वलोकेषु भारत ॥ ७
सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः ।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षाऽनसूयता
त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं दया ।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश ९
सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च ।
सर्वधर्माविरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते ॥ १०
आत्मनीष्टे तथाऽनिष्टे रिपौ च समता तथा
इच्छाद्वेषं क्षयं प्राप्य कामक्रोधक्षयं तथा ११
दमो नान्यस्पृहा नित्यं गांभीर्यं धैर्यमेव च ।
अभयं रोगशमनं ज्ञानेनैतदवाप्यते ॥ १२
अमात्सर्यं बुधाः प्राहुर्दाने धर्मे च संयमः ।
अवस्थितेन नित्यं च सत्येनामत्सरी भवेत्
अक्षमायाः क्षमायाश्च प्रियाणीहाप्रियाणि च ।
क्षमते संमतः साधुः साध्वाप्नोति च सत्यवाक्
कल्याणं कुरुते बाढं धीमान्न ग्लायते क्वचित्
प्रशान्तवाङ्मना नित्यं ह्रीस्तु धर्मादवाप्यते
धर्मार्थहेतोः क्षमते तितिक्षा क्षान्तिरुच्यते ।
लोकसंग्रहणार्थं वै सा तु धैर्येण लभ्यते ॥१६
त्यागः स्नेहस्य यस्त्यागो विषयाणां तथैव च
रागद्वेषप्रहीणस्य त्यागो भवति नान्यथा ॥
आर्यता नाम भूतानां यः करोति प्रयत्नतः ।
शुभं कर्म निराकारो वीतरागस्तथैव च ॥१८
धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियां
तां भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः
सर्वथा क्षमिणा भाव्यं तथा सत्यपरेण च ।
वीतहर्षभयक्रोधो धृतिमाप्नोति पण्डितः २०
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा, मनसा, गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः २१
एते त्रयोदशाकाराः पृथक्सत्यैकलक्षणाः ।
भजन्ते सत्यमेवेह बृंहयन्ते च भारत ॥ २२

---

इमानि नक्षत्रादीनि । 'सुकृतां वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणि' इति श्रुतेः ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

१६२

**सत्यमिति** ॥१॥ सत्यादीनां पदानां त्रयोदशानां अर्थान् व्याचष्टे-**सत्यं नामेत्यादिना** ॥१०॥ अक्षमाया विषये तथा क्षमाया इति दृष्टान्तार्थम्॥१४॥ असूया परगुणेषु दोषदर्शनं तद्वत्तितिक्षाया असंभवात्तितिक्षाव्याख्यानेनैव तद्व्याख्यानं सिद्धमिति न सा पृथगुक्ता।तद्व्याख्यानश्लोको लुप्त इति वा तां व्याख्याय त्यागं व्याख्याति **त्याग इति** । सूत्रश्लोके त्यागो ध्यानमिति त्यागानुसंधानाख्यः पदद्वयोपात्त एकः पदार्थः ॥ १७ ॥ सर्वथेतिश्लोके **धृतिशब्देन** उद्देशक्रमप्राप्ता **दया प्रान्त्या** ॥२०॥

नान्तः शक्यो गुणानां च
वक्तुं सत्यस्य पार्थिव।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति
विप्राः सपितृदेवताः॥ २३
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्
श्रुतिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात्सत्यं न लोपयेत्
उपैति सत्याद्दानं हि तथा यज्ञाः सदक्षिणाः
त्रेताग्निहोत्रं वेदाश्च ये चान्ये धर्मनिश्चयाः॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥२६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि सत्यप्रशंसायां द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६२॥ [ ३२ ]

## १६३

युधिष्ठिर उवाच।
यतः प्रभवति क्रोधः कामो वा भरतर्षभ।
शोकमोहौ विधित्सा च परासुत्वं च तद्वद
लोभो मात्सर्यमीर्ष्या च
कुत्साऽसूया कृपा भयम्।
एतत्सर्वं महाप्राज्ञ
याथातथ्येन मे वद॥ २
भीष्म उवाच।
त्रयोदशैतेतिबलाः शत्रवः प्राणिनां स्मृताः
उपासन्ते महाराज समन्तात्पुरुषानिह॥ ३
एते प्रमत्तं पुरुषमप्रमत्तास्तुदन्ति च।
वृका इव विलुम्पन्ति दृष्ट्वैव पुरुषं बलात्॥ ४
एभ्यः प्रवर्तते दुःखमेभ्यः पापं प्रवर्तते।
इति मर्त्यो विजानीयात्सततं पुरुषर्षभ॥ ५
एतेषामुदयं स्थानं क्षयं च पृथिवीपते।
हन्त ते कथयिष्यामि क्रोधस्योत्पत्तिमादितः
यथातत्त्वं क्षितिपते तदिहैकमनाः शृणु।
लोभात्क्रोधः प्रभवति परदोषैरुदीर्यते॥ ७
क्षमया तिष्ठते राजन् क्षमया विनिवर्तते।
संकल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते ८
यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति।
परासूया क्रोधलोभावन्तरा प्रतिमुच्यते॥ ९
दयया सर्वभूतानां निर्वेदाद्विनिवर्तते।
अवद्यदर्शनादेति तत्त्वज्ञानाच्च धीमताम् १०
अज्ञानप्रभवो मोहः पापाभ्यासात्प्रवर्तते।
यदा प्राज्ञेषु रमते तदा सद्यः प्रणश्यति॥ ११
विरुद्धानीह शास्त्राणि ये पश्यन्ति कुरुद्वह।
विधित्सा जायते तेषां तत्त्वज्ञानान्निवर्तते॥
प्रीत्या शोकः प्रभवति वियोगात्तस्य देहिनः
यदा निरर्थकं वेत्ति तदा सद्यः प्रणश्यति॥
परासुता क्रोधलोभादभ्यासाच्च प्रवर्तते।
दयया सर्वभूतानां निर्वेदात्सा निवर्तते १४
सत्यत्यागात्तु मात्सर्यमहितानां च सेवया।
एतत्तु क्षीयते तात साधूनामुपसेवनात्॥ १५
कुलाज्ज्ञानात्तथैश्वर्यान्मदो भवति देहिनाम्।
एभिरेव तु विज्ञातैः स च सद्यः प्रणश्यति॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

१६३

**यतः** अज्ञानात्॥ १॥ कृपाऽभयामित्यन्तास्त्रयोदश॥ २॥ क्रोधादीनामुत्पत्तिस्थितिलक्षणानि व्याख्याति **लोभादित्यादिना**। लोभात् केनचिन्निमित्तेनोपहतात् क्रोधो भवति। स च परदोषैर्दृष्टैः उदीर्यते उद्दीप्तो भवति॥ ७॥ स क्षमया तिष्ठते निरुध्यते विनिवर्तते चेति एवं सर्वत्र द्रष्टव्यम्॥ ८॥ परस्मिन्नसूयादोषदर्शनं तत्क्रोधालोभाद्वा भवति। दयया निवर्तते। अत्र क्रोधादीनां व्युत्पादनप्रसंगे उद्देशक्रमो नादर्तव्यः। असूया च अवद्यदर्शनात् परस्मिन्दोषदर्शनात् एति उदेति तत्त्वज्ञानात् वस्तुनो निर्दोषत्वज्ञानादसूया धीमतां निवर्तत इत्यनुषंगः सार्धश्लोकोऽयम्॥ १०॥ मोहो विपरीतबुद्धिः॥ ११॥ मोह इत्याकृष्यते विधित्सा आरंभप्रावण्यं इदमुभयं विरुद्धानि कौलिकादिशास्त्राणि ये पश्यंति तेषां जायते तत्त्वज्ञानात्सम्यग्वैदिकार्थज्ञानात्तत्र विश्वासाच्च निवर्तते॥१२॥ पुत्रादिप्रियवस्तुनाशे शोको जायते स च शोचतोऽपि पुनर्दुर्लभ इति निरर्थक इति ज्ञानान्नश्यतीत्याह-**प्रीत्येति**॥ १३॥ परासुता अत्यन्तं अकार्यपारवश्यम्। अभ्यासादसकृदावृत्तेः दयया क्रोधपरासुता निवर्तते निर्वेदाद्वैराग्याल्लोभादिनेति भेदः॥ १४॥

ईर्ष्या कामात्प्रभवति संहर्षाच्चैव जायते।
इतरेषां तु सत्त्वानां प्रज्ञया सा प्रणश्यति १७
विभ्रमाल्लोकबाह्यानां
द्वेष्यैर्वाक्यैरसंमतैः।
कुत्सा संजायते राजन्
लोकान्प्रेक्ष्याऽभिशाम्यति ॥ १८
इति कर्तुं न शक्ता ये बलस्थायापकारिणे।
असूया जायते तीव्रा कारुण्याद्विनिवर्तते १९
कृपणान्सततं दृष्ट्वा ततः सञ्जायते कृपा।
धर्मनिष्ठां यदा वेत्ति तदा शाम्यति सा कृपा
अज्ञानप्रभवो लोभो भूतानां दृश्यते सदा।
अस्थिरत्वं च भोगानां दृष्ट्वा ज्ञात्वा निवर्तते
एतान्येव जितान्याहुः
प्रशमाच्च त्रयोदश।
एते हि धार्तराष्ट्राणां
सर्वे दोषास्त्रयोदश।
त्वया सत्यार्थिना नित्यं
विजिता ज्येष्ठसेवनात् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि लोभनिरूपणे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ [ ३३ ]

## १६४

युधिष्ठिर उवाच।
आनृशंस्यं विजानामि दर्शनेन सतां सदा
नृशंसान्न विजानामि तेषां कर्म च भारत १
कण्टकान्कूपमग्निं च वर्जयन्ति यथा नराः।
तथा नृशंसकर्माणं वर्जयन्ति नरा नरम् ॥ २
नृशंसो हि दहेद्व्यक्तं प्रेत्य चेह च भारत।
तस्मात्त्वं ब्रूहि कौरव्य तस्य धर्मविनिश्चयम्
भीष्म उवाच।
स्पृहा स्याद्गर्हिता चैव
विधित्सा चैव कर्मणाम्।
आक्रोष्टा क्रुश्यते चैव
वञ्चितो बुध्यते स च ॥ ४
दत्तानुकीर्तिर्विषमः क्षुद्रो नैकृतिकः शठः।
असंविभागी मानी च तथा सङ्गी विकत्थनः
सर्वातिशङ्की पुरुषो बलीशः कृपणोऽथवा।
वर्गप्रशंसी सततमाश्रमद्वेषसङ्करी ॥ ६
हिंसाविहारः सततमविशेषगुणागुणः।
बह्वलीको मनस्वी च लुब्धोऽत्यर्थं नृशंसकृत्
धर्मशीलं गुणोपेतं पापमित्यवगच्छति।
आत्मशीलप्रमाणेन न विश्वसिति कस्यचित्
परेषां यत्र दोषः स्यात्तद्गुह्यं संप्रकाशयेत्।
समानेष्वेव दोषेषु वृत्त्यर्थमुपघातयेत् ॥ ९
तथोपकारिणं चैव मन्यते वञ्चितं परम्।
दत्वाऽपि च धनं काले सन्तपत्युपकारिणे॥
भक्ष्यं पेयमथालेह्यं यच्चान्यत्साधु भोजनम्।
प्रेक्षमाणेषु योऽश्नीयान्नृशंसमिति तं वदेत् ११

---

इति कर्तुं यथायोग्यं प्रतीकारं कर्तुम् ॥ १९ ॥ कृपाऽपि चित्तोन्माथकरीति द्वेषवद्धेयैवेत्यभिप्रेत्याह-**कृपणानिति** ॥ २० ॥ अज्ञानप्रभवो लोभ इत्यत्र लोभपदेन भयं ग्राह्यं लोभस्य प्राग्व्याख्यातत्वात् कृपा भयमिति भयस्यापि प्रागुद्दिष्टत्वाच ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

१६४

आनृशंस्यं सतां धर्म इति यद्यपि सामान्यतो जानामि तथापि नृशंसत्वे ज्ञाते तदभावरूपमानृशंस्यं विशेषतःसुज्ञेयमतो नृशंसस्यैव स्वरूपादिकं ब्रूहीति प्रश्नः ॥१॥ यस्य स्पृहा विधित्सा च वध्यश्येनादिविषया गर्हिता स्यात्। यो निन्दको निन्द्यश्च दैवेनाहं वञ्चितोऽस्मि यदीदृशं कुकर्म करोमीति बुध्यते करोति वा कृत्यं स आत्महा नृशंसकृदिति चतुर्थेनान्वयः ॥ ४ ॥ दत्तमनुकीर्तयतीति **दत्तानुकीर्तिः** स्वस्य वदान्यत्वप्रकाशकः (पाठान्तरे कीर्तिशब्दः विश्वासपर इति यावत्) **विषमः** विद्वेषकर्ता **क्षुद्रो** नीचकर्मकारी **नैकृतिकः** स्नेहं प्रदर्श्य वञ्चकः **शठः** सत्यपि सामर्थ्ये दारिद्र्यव्यंजकः ॥ ५ ॥ **बलीशः** काक इव वञ्चकदृष्टिः **आश्रमद्वेषः** संकरश्चास्यातीति आश्रमद्वेषसंकरी ॥ ६ ॥

ब्राह्मणेभ्यः प्रदायाग्रं यः सुहृद्भिः सहाश्नुते ।
स प्रेत्य लभते स्वर्गमिह चानन्त्यमश्नुते ॥ १२
एष ते भरतश्रेष्ठ नृशंसः परिकीर्तितः ।
सदा विवर्जनीयो हि पुरुषेण विजानता १३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नृशंसाख्याने
चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ [ ३४ ]

## १६५

भीष्म उवाच ।
हृतार्थो यक्ष्यमाणश्च सर्ववेदान्तगश्च यः ।
आचार्यपितृकार्यार्थं स्वाध्यायार्थमथापि च १
एते वै साधवो दृष्टा ब्राह्मणा धर्मभिक्षवः ।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्या च भारत
अन्यत्र दक्षिणादानं देयं भरतसत्तम ।
अन्येभ्योऽपि बहिर्वेदि चाकृतान्नं विधीयते
सर्वरत्नानि राजा हि यथार्हं प्रतिपादयेत् ।
ब्राह्मणा एव वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ॥ ४
अन्योन्यविभवाचारा यजन्ते गुणतः सदा ।
यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं चापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ५
यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादंशेनैकेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ६
यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्वित्तं यज्ञार्थं पार्थिवो हरेत् ७
आहरेदथ नो किञ्चित्कामं शूद्रस्य वेश्मनः ।
न हि यज्ञेषु शूद्रस्य किञ्चिदस्ति परिग्रहः ८
योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ ९
अदातृभ्यो हरेद्वित्तं विख्याप्य नृपतिः सदा
तथैवाचरतो धर्मो नृपतेः स्यादथाखिलः १०
तथैव शृणु मे भक्तं भक्तानि षडनश्नतः ।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ ११
खलात्क्षेत्रात्तथारामाद्यतो वाऽप्युपपद्यते ।
आख्यातव्यं नृपस्यैतत्पृच्छतेऽपृच्छतेऽपि वा
न तस्मै धारयेद्दण्डं राजा धर्मेण धर्मवित् ।
क्षत्रियस्य तु बालिश्याद्ब्राह्मणः क्लिश्यते क्षुधा
श्रुतशीले समाज्ञाय वृत्तिमस्य प्रकल्पयेत् ।
अथैनं परिरक्षेत पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १४
इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ।
अनुकल्पः परो धर्मो धर्मवादैस्तु केवलम्१५
विश्वैर्देवैश्च साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधिः प्रतिनिधीकृतः१६
प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पे न वर्तते ।
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् १७
न ब्राह्मणो निवेदेत किंचिद्राजनि वेदवित्
स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् १८
तस्माद्राज्ञः सदा तेजो दुःसहं ब्रह्मवादिनाम्
कर्ता शास्ता विधाता च ब्राह्मणो देव उच्यते
तस्मिन्नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कामीरयेद्गिरम् ।
क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः१६४

१६५

हृतेति। एवमापदां निदानप्रतीकारादिकमुक्तम्। इदानीं सामान्यतः सर्वासामापदां मूलं पापं तच्चाकृतप्रायश्चित्तानामापद्रूपेण बाधत इति साधारणासाधारणं प्रायश्चित्तमाह हृतार्थइत्यध्यायेन। हृतार्थः चोरैर्लुण्ठितः१॥निःस्वो निर्धनः अन्यत्र उक्तेभ्योऽन्यत्रापि ब्राह्मणेषु अन्येभ्योऽब्राह्मणेभ्यः अकृतान्नं अपक्वान्नं विधीयते तेभ्योऽप्यकृतान्नं देयमिति भावः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणस्य यज्ञः एकेनांशेन ब्रयाद्यंगनांशेन प्रतिरुद्धः स्यात्तर्हि तस्य वैश्यस्य तद्धनं पार्थिवो यज्ञार्थं हरेदिति द्वितीयेन सम्बन्धः ॥ ६ ॥ भक्तं एकाहपर्याप्तं धान्यं भक्तानि षडनश्नतः त्र्यहमुपोषितस्य॥११॥ बालिश्यादित्यनेन क्षत्रियस्यैव स दोष इत्युक्तम् ॥ १३ ॥ अब्दपर्यये प्रत्यब्दं कर्तव्यस्य आग्रयणपशुसोमादेरकरणे धर्मवादैर्धर्मज्ञैरुक्त इति शेषः ॥१५॥ अनुकल्पं मानमाह-विश्वैरिति ॥ १६ ॥ सांपरायिकं पारलौकिकं शठत्वात् ॥ १७ ॥ न निवेदेत अहं ब्राह्मणोऽस्मीति न निवेदयेत् ॥ १८ ॥

धनैर्वैश्यश्च शूद्रश्च, मन्त्रैर्होमैश्च वै द्विजः ।
नैव कन्या न युवतिर्नामन्त्रज्ञो न बालिशः॥२१
परिवेष्टाग्निहोत्रस्य भवेन्नासंस्कृतस्तथा ।
नरकं निपतन्त्येते जुह्वानाः स च यस्य तत्॥
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः २२
प्राजापत्यमदत्त्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम् ।
अनाहिताग्निरिति स प्रोच्यते धर्मदर्शिभिः२३
पुण्यानि यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः
अनाप्तदक्षिणैर्यज्ञैर्न यजेत कथञ्चन ॥ २४
प्रजाः पशूंश्च स्वर्गं च हन्ति यज्ञो ह्यदक्षिणः ।
इन्द्रियाणि यशः कीर्तिमायुश्चाप्यवकृन्तति
उदक्यामासते ये च द्विजाः केचिदनग्नयः ।
होमं चाश्रोत्रियं येषां ते सर्वे पापकर्मिणः२६
उदपानोदके ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
उषित्वा द्वादश समाः शूद्रकर्मैव गच्छति२७
अभार्यां शयने बिभ्रच्छूद्रं वृद्धं च वै द्विजः ।
अब्राह्मणं मन्यमानस्तृणेष्वासीत पृष्ठतः ।
तथा संशुध्यते राजन् शृणु चात्र वचो मम२८

यदेकरात्रेण करोति पापं
निकृष्टवर्णे ब्राह्मणः सेवमानः ।
स्थानासनाभ्यां विहरन् व्रती स
त्रिभिर्वर्षैः शमयेदात्मपापम् ॥ २९
न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले ।
न गुर्वर्थे नात्मनो जीवितार्थे
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ३०

श्रद्दधानः शुभां विद्यां हीनादपि समाप्नुयात्
सुवर्णमपि चामेध्यादाददीताविचारयन् ३१
स्त्रीरत्नं दुष्कुलाच्चापि विषादप्यमृतं पिबेत् ।
अदूष्या हि स्त्रियो रत्नमाप इत्येव धर्मतः ३२
गोब्राह्मणहितार्थं च वर्णानां सङ्करेषु च ।
वैश्यो गृह्णीत शस्त्राणि परित्राणार्थमात्मनः
सुरापानं ब्रह्महत्या गुरुतल्पमथापि वा ।
अनिर्देश्यानि मन्यन्ते प्राणान्तमिति धारणा
सुवर्णहरणं स्तैन्यं विप्रस्वं चेति पातकम् ।
विहरन्मद्यपानाच्च अगम्यागमनादपि ॥ ३५
पतितैः संप्रयोगाच्च ब्राह्मणीयोनितस्तथा ।
अचिरेण महाराज पतितो वै भवत्युत ॥३६
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात्

एतानि हित्वाऽतोऽन्यानि
निर्देश्यानीति भारत ।
निर्देश्यानेन विधिना
कालेनाऽव्यसनी भवेत् ॥ ३८

अन्नं वीर्यं ग्रहीतव्यं प्रेतकर्मण्यपातिते ।
त्रिषु त्वेतेषु पूर्वेषु न कुर्वीत विचारणाम् ३९
अमात्यान्वा गुरून्वापि जह्याद्धर्मेण धार्मिकः
प्रायश्चित्तानि कुर्याच्च न तैरर्हन्ति संविदम्॥
अधर्मकारी धर्मेण तपसा हन्ति किल्बिषम् ।
ब्रुवंस्तेन इति स्तेनं तावत्प्राप्नोति किल्बिषम्
अस्तेनं स्तेन इत्युक्त्वा द्विगुणं पापमाप्नुयात्
त्रिभागं ब्रह्महत्यायाः कन्या प्राप्नोति दुष्यती

---

परिवेष्टा आहुतिप्रक्षेप्ता कन्यायुवत्योः स्मार्ताग्निहोमे 'स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्यन्तेवासी वा' इत्याश्वलायनवचनादधिकृतयोरत्रापि प्रसक्तेर्निषेध उक्तः ॥ २२ ॥ आसते मिथुनीभवन्ति 'संग्रामदाडिम' इत्यादिलिंगानुशासनसूत्राद्धोमशब्दस्य नपुंसकत्वम् । सर्वे त्रयोऽपि ॥ २६ ॥ उदपानः कूपः तदेकोदके एककूपोपजीव्ये इत्यर्थः ॥२७॥ अभार्यां अपरिणीतां शयने बिभ्रद्ब्राह्मणः तथा शूद्रं वृद्धं महानिति मन्यमानः तथा अब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं वा वृद्धं मन्यमानः तृणेषु यद्यासीत उपविष्टः स यथा संशुध्येत तथा शृणु इति सार्धार्थः ॥ २८ ॥ विहरन् करोतीति सम्बन्धः ॥२९॥ अनिर्देश्यानि बुद्धिपूर्वकानि चेदत्र प्रायश्चित्तं नास्तीत्यर्थः । किं तर्हि मरणान्तमेव प्रायश्चित्तमिति धारणा निश्चयः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणीयोनितः अब्राह्मणो ब्राह्मणीगमनादित्यर्थः ॥३६॥

याजनादित्रयेण सद्यःपतति न तु यानादिना तेन तु वर्षेण पततीत्यर्थः । यौनं विवाहादिना संबंधः ॥ ३७ ॥ एतानि पञ्चमहापापानि अन्यानि तु निर्देश्यानि सप्रायश्चित्तानि निर्दिश्य विशोध्य अव्यसनी पुनः पापरुचिर्न स्यात् ॥३८॥ अन्नमिति । पूर्वेषु त्रिषु सुरापब्रह्मघ्नगुरुतल्पगेषु मृतेषु प्रेतकर्मण्यपातितेऽपि दाहाद्यकरणेऽपि अन्नं वीर्यं हिरण्यं च ग्रहीतव्यं तेषु मृतेषु सपिंडानामाशौचाभावात् तेषां प्रेतकर्मनिषेधाच्चेति भावः ॥ ३९ ॥ अमात्यादीन्पतितान् जह्यादेव धार्मिकस्तैः सह संविदं न कुर्यात् यतस्ते प्रायश्चित्तानि नार्हन्तीति योजना । प्रायश्चित्तान्यकुर्वाणैर्न तैरर्हन्ति संविदमिति पाठान्तरे तु सुगमम् ॥ ४० ॥ ब्रुवन्निति। उपलक्षणमिदं दोषान्तराणाम् ॥ ४१ ॥ दुष्यती अप्रत्तापि मैथुनमिच्छन्ती ॥४२॥

यस्तु दूषयिता तस्याः शेषं प्राप्नोति पाप्मनः
ब्राह्मणानवगर्ह्येह स्पृष्ट्वा गुरुतरं भवेत् ॥ ४३
वर्षाणां हि शतं तावत्प्रतिष्ठां नाधिगच्छति
सहस्रं चैव वर्षाणां निपत्य नरकं वसेत् ॥ ४४
तस्मान्नैवावगर्ह्येत नैव जातु निपातयेत् ।
शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णीयाद्द्विजक्षतात्
तावतीः स समा राजन् नरके प्रतिपद्यते ।
भ्रूणहाऽऽहवमध्ये तु शुध्यते शस्त्रपाततः ४६
आत्मानं जुहुयादग्नौ समिद्धे तेन शुद्ध्यते ।
सुरापो वारुणीमुष्णां पीत्वा पापाद्विमुच्यते
तया स काये निर्दग्धे मृत्युं वा प्राप्य शुद्ध्यति
लोकांश्च लभते विप्रो नान्यथा लभते हि सः
गुरुतल्पमधिष्ठाय
दुरात्मा पापचेतनः ।
स्त्र्याकारां प्रतिमां लिंग्य
मृत्युना सोऽभिशुद्ध्यति ॥ ४९
अथवा शिश्नवृषणावादायाञ्जलिना स्वयम् ॥
नैर्ऋतीं दिशमास्थाय निपतेत्स त्वजिह्मगः ।
ब्राह्मणार्थेऽपि वा प्राणान् संत्यजेत्तेन शुद्ध्यति
अश्वमेधेन वाऽपीष्ट्वा अथवा गोसवेन वा ।
अग्निष्टोमेन वा सम्यगिह प्रेत्य च पूज्यते ५२
तथैव द्वादशसमाः कपाली ब्रह्महा भवेत् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं स्वकर्म ख्यापयन्मुनिः ५३
एवं वा तपसा युक्तो ब्रह्महा सवनी भवेत् ।
एवं तु समभिज्ञातामात्रेयीं वा निपातयेत् ॥
द्विगुणा ब्रह्महत्या वै आत्रेयीनिधने भवेत् ।
सुरापो नियताहारो ब्रह्मचारी क्षितीशयः ॥
ऊर्ध्वं त्रिभ्योऽपि वर्षेभ्यो यजेताग्निष्टुता परम्
ऋषभैकसहस्रं वा गा दत्वा शौचमाप्नुयात् ॥
वैश्यं हत्वा तु वर्षे द्वे ऋषभैकशतं च गाः ।
शूद्रं हत्वाब्दमेवैकमृषभं च शतं च गाः ५७
श्ववराहखरान् हत्वा शौद्रमेव व्रतं चरेत् ।
मार्जारचाषमंडूकान् काकं व्यालं च मूषिकं
उक्तः पशुसमो दोषो राजन्प्राणिनिपातनात् ।
प्रायश्चित्तान्यथान्यानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥
अल्पे वाऽप्यथ शोचेत पृथक् संवत्सरं चरेत् ।
त्रीणि श्रोत्रियभार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ॥
काले चतुर्थे भुञ्जानो ब्रह्मचारी व्रती भवेत् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।
एवमेव निराकर्ता यश्चाग्नीनपविध्यति ॥ ६१
त्यजत्यकारणे यश्च पितरं मातरं गुरुम् ।
पतितः स्यात्स कौरव्य यथा धर्मेषु निश्चयः ॥
ग्रासाच्छादनमात्रं तु दद्यादिति निदर्शनम् ।
भार्यायां व्यभिचारिण्यां निरुद्धायां विशेषतः
यत्पुंसः परदारेषु तदेनां चारयेद्व्रतम् ॥ ६३
श्रेयांसं शयनं हित्वा याऽन्यं पापं निगच्छति
श्वभिस्तामर्दयेद्राजा संस्थाने बहुविस्तरे ६४
पुमांसमुन्नयेत्प्राज्ञः शयने तप्त आयसे ।
अप्यादधीत दारूणि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ६५
एष दंडो महाराज स्त्रीणां भर्तृव्यतिक्रमात्
संवत्सरोऽभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो भवेत् ॥
द्वे तस्य त्रीणि वर्षाणि चत्वारि सहसेविनि
कुचरः पञ्चवर्षाणि चरेद्भैक्ष्यं मुनिव्रतः ॥ ६७
परिवित्तिः परिवेत्ता या चैव परिविद्यते ।
पाणिग्राहस्त्वधर्मेण सर्वे ते पतिताः स्मृताः
चरेयुः सर्व एवैते वीरहा यद्व्रतं चरेत् ।
चांद्रायणं चरेन्मासं कृच्छ्रं वा पापशुद्धये ६९
परिवेत्ता प्रयच्छेत तां स्नुषां परिवित्तये ।
ज्येष्ठेन त्वभ्यनुज्ञातो यवीयानप्यनन्तरम् ।
एवं च मोक्षमाप्नोति तौ च सा चैव धर्मतः

शेषं भागद्वयं अवगर्ह्य गालयित्वा विनिंद्य स्पृष्ट्वाऽर्धचन्द्रादिनापनोद्य गुरुतरं शेषादप्याधिकं पातकं तस्य फलम् ॥ ४३ ॥ तावत् शेषकालपर्यन्तं प्रतिष्ठां नाधिगच्छति प्रेतत्वान्न मुच्यते ब्रह्महत्यायास्तृतीयांशद्वयस्य यावान् भोगस्तावन्तं कालमित्यर्थः ॥ ४४ ॥ आहवमध्ये गोब्राह्मणरक्षार्थं संग्रामे शस्त्रेण हतश्चेद्ब्रह्महा शुद्ध्यते ॥ ४६ ॥ स्त्र्याकारां प्रतिमां सतप्तामिति शेषः । लिंग्य आलिंग्य ॥ ४९ ॥ सवनी त्रिषवणस्नायी । आत्रेयीं प्राप्तगर्भां स्त्रियम् ॥ ५४ ॥ अल्पे पापे अबुद्धिपूर्वकृते कीटवधादौ शोचेत पश्चात्तापं कुर्यात् । तावतैव तत्र शुद्धिरिति भावः। अन्यत्र तु गोवधात् पृथक् एकैकस्योपपातकस्य प्रायश्चित्तं संवत्सरं चरेत् ॥ ६० ॥ पूर्वश्लोकोक्तं निराकर्तृपदं व्याचष्टे-त्यजतीति ॥ ६२ ॥ ग्रासेति सार्धः ॥ ६३ ॥ श्रेयांसं ब्राह्मणं स्वपतिं हित्वा या पापं स्ववर्णान्नीचवर्णं प्रति शयनं शय्यां निगच्छति तस्याः दंडः-श्वभिरिति ॥ ६४ ॥ अभिशस्तस्य प्रायश्चित्तं सद्योऽकुर्वतः ॥ ६६ ॥ तस्य पतितस्य सहसेविनि संसर्गिणि प्रायश्चित्तं तु कुचरः पृथिवीं पर्यटन् ॥ ६७ ॥ परिवेत्ता कनिष्ठः परिवित्तये ज्येष्ठाय भार्यां स्नुषात्वेन प्रयच्छेत् एतां स्वेनाभुक्ताम् । तवैवेयं स्नुषेति मानपूर्वकं समर्पयेत् तदा ज्येष्ठानुज्ञातो यवीयाननन्तरं तां स्वीकुर्यात् । पाणिग्राहेण स्वदोषे क्षमापिते त्रयोऽपि पापान्मुच्यन्त इति सार्धश्लोकार्थः ॥७०

अमानुषीषु गोवर्ज्यमनावृष्टिर्न दुष्यति ।
अधिष्ठातारमन्तारं पशूनां पुरुषं विदुः ॥ ७१
परिधायोर्ध्ववालं तु पात्रमादाय मृन्मयम् ।
चरेत्सप्तगृहान्भैक्ष्यं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ ७२
तत्रैव लब्धभोजी स्याद्द्वादशाहात्स शुद्ध्यति
चरेत्संवत्सरं चापि तद्व्रतं येन कृन्तति ७३
भवेत्तु मानुषेष्वेवं प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ।
दानं वा दानशक्तेषु सर्वमेतत्प्रकल्पयेत् ॥ ७४
अनास्तिकेषु गोमात्रं दानमेकं प्रचक्षते ।
श्ववराहमनुष्याणां कुक्कुटस्य खरस्य च ॥ ७५
मांसं मूत्रं पुरीषं च प्राश्य संस्कारमर्हति ।
ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमादाय सोमपः ७६
अपस्त्र्यहं पिबेदुष्णं त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षो भवेत्त्र्यहम्
एवमेतत्समुद्दिष्टं प्रायश्चित्तं सनातनम् ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण यदज्ञानेन संभवेत् ॥ ७८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि प्रायश्चित्तीये
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ [ ३५ ]

## १६६

वैशम्पायन उवाच ।

कथान्तरमथासाद्य खड्गयुद्धविशारदः ।
नकुलः शरतल्पस्थमिदमाह पितामहम् ॥ १

नकुल उवाच ।

धनुः प्रहरणं श्रेष्ठमतीवात्र पितामह ।
मनस्तु मम धर्मज्ञ खड्ग एव सुसंशितः ॥ २
विशीर्णे कार्मुके राजन्
प्रक्षीणेषु च वाजिषु ।
खड्गेन शक्यते युद्धे
साध्वात्मा परिरक्षितुम् ॥ ३
शरासनधरांश्चैव गदाशक्तिधरांस्तदा ।
एकः खड्गधरो वीरः समर्थः प्रतिबाधितुम् ४
अत्र मे संशयश्चैव कौतूहलमतीव च ।
किं स्वित्प्रहरणं श्रेष्ठं सर्वयुद्धेषु पार्थिव ॥ ५
कथं चोत्पादितः खड्गः कस्मै चार्थाय केन च
पूर्वाचार्यं च खड्गस्य प्रब्रूहि प्रपितामह ॥ ६

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य धीमतः ।
स तु कौशलसंयुक्तं सूक्ष्मचित्रार्थसंमतम् ॥ ७
ततस्तस्योत्तरं वाक्यं स्वरवर्णोपपादितम् ।
शिक्षया चोपपन्नाय द्रोणशिष्याय भारत ८
उवाच स तु धर्मज्ञो धनुर्वेदस्य पारगः ।
शरतल्पगतो भीष्मो नकुलाय महात्मने ॥ ९

भीष्म उवाच ।

तत्त्वं शृणुष्व माद्रेय यदेतत्परिपृच्छसि ।
प्रबोधितोऽस्मि भवता धातुमानिव पर्वतः ॥
सलिलैकार्णवं तात पुरा सर्वमभूदिदम् ।
निष्प्रकम्पमनाकाशमनिर्देश्यमहीतलम् ११
तमसाऽऽवृतमस्पर्शमतिगम्भीरदर्शनम् ।
निःशब्दं चाप्रमेयं च तत्र जज्ञे पितामहः १२

---

अमानुषीषु पशुजातिषु अनावृष्टिः अजीवनं हिंसेत्यर्थः । पृश्नतोऽश्छादिकर्मण इदं रूपम् । अनाधृष्टिरिति पाठेऽपि स एवार्थः ॥७१॥ उर्ध्ववालं चमरीपुच्छं परिधाय रंगेऽवतरन् ब्राह्मण एवैतत्प्रायश्चित्तं कुर्यात् ॥ ७२ ॥ तत्रैव सप्तसु गृहेषु येन परिधानेन हेतुभूतेन ऊर्ध्ववालं यः कृन्तति छिनत्ति स उक्तं व्रतं संवत्सरं चरेत् ॥ ७३ ॥ अनास्तिकेषु आस्तिकेषु ॥ ७५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

१६६

**कथान्तरमिति** । कथान्तरमापद्धर्माणां सांगानां समाप्तत्वात् कथाया अवसानं आसाद्य प्राप्य ॥ १ ॥ मम तु मनः खड्गेऽस्ति यतः सुसंशितः सम्यग्विनीत आत्मा खड्गेन परिरक्षितुं शक्यते इति द्वितीयेनान्वयः ॥ २ ॥ धातुमान् गैरिकवान् रुधिरोक्षितत्वात् ॥ १० ॥

सोऽसृजद्वातमग्निं च
भास्करं चापि वीर्यवान्।
आकाशमसृजच्चोर्ध्व-
मधो भूमिं च नैर्ऋतिम् ॥ १३
नभः सचन्द्रतारं च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।
संवत्सरानृतून्मासान्पक्षानथ लवान् क्षणान्
ततः शरीरं लोकस्थं स्थापयित्वा पितामहः।
जनयामास भगवान् पुत्रानुत्तमतेजसः ॥ १५
मरीचिमृषिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठाङ्गिरसौ चोभौ रुद्रं च प्रभुमीश्वरम् ॥
प्राचेतसस्तथा दक्षः कन्याषष्टिमजीजनत्।
ता वै ब्रह्मर्षयः सर्वाः प्रजार्थं प्रतिपेदिरे १७
ताभ्यो विश्वानि भूतानि
देवाः पितृगणास्तथा।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव
रक्षांसि विविधानि च ॥ १८
पतत्रिमृगमीनाश्च प्लवङ्गाश्च महोरगाः।
तथा पक्षिगणाः सर्वे जलस्थलविचारिणः १९
उद्भिदः स्वेदजाश्चैव साण्डजाश्च जरायुजाः।
जज्ञे तात जगत्सर्वं तथा स्थावरजङ्गमम् २०
भूतसर्गमिमं कृत्वा सर्वलोकपितामहः।
शाश्वतं वेदपठितं धर्मं प्रयुयुजे ततः ॥ २१
तस्मिन् धर्मे स्थिता देवाः
सहाचार्यपुरोहिताः।
आदित्या वसवो रुद्राः
ससाध्या मरुदश्विनः ॥ २२
भृग्वत्र्यङ्गिरसः सिद्धाः काश्यपाश्च तपोधनाः
वसिष्ठगौतमागस्त्यास्तथा नारदपर्वतौ ॥ २३
ऋषयो वालखिल्याश्च
प्रभासाः सिकतास्तथा।
घृतपाः सोमवायव्या
वैश्वानरमरीचिपाः ॥ २४
अकृष्टाश्चैव हंसाश्च ऋषयो वाऽग्नियोनयः।
वानप्रस्थाः पृश्नयश्च स्थिता ब्रह्मानुशासने २५
दानवेन्द्रास्त्वतिक्रम्य तत्पितामहशासनम्।
धर्मस्यापचयं चक्रुः क्रोधलोभसमन्विताः २६
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षो विरोचनः।
शम्बरो विप्रचित्तिश्च प्रह्रादो नमुचिर्बलिः ॥
एते चान्ये च बहवः सगणा दैत्यदानवाः।
धर्मसेतुमतिक्रम्य रेमिरे धर्मनिश्चयाः ॥ २८
सर्वे तुल्याभिजातीया यथा देवास्तथा वयम्
इत्येवं धर्ममास्थाय स्पर्धमानाः सुरर्षिभिः २९
न प्रियं नाप्यनुक्रोशं चक्रुर्भूतेषु भारत।
त्रीनुपायाननुपाक्रम्य दण्डेन रुरुधुः प्रजाः ॥३०
न जग्मुः संविदं तैश्च दर्पादसुरसत्तमाः।
अथ वै भगवान्ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिरुपस्थितः ३१
तदा हिमवतः शृङ्गे सुरम्ये पद्मतारके।
शतयोजनविस्तारे मणिरत्नचयाचिते ३२
तस्मिन् गिरिवरे पुत्र पुष्पितद्रुमकानने।
तस्थौ स विबुधश्रेष्ठो ब्रह्मा लोकार्थसिद्धये ॥
ततो वर्षसहस्रान्ते वितानमकरोत्प्रभुः।
विधिना कल्पदृष्टेन यथावच्चोपपादितम् ३४
ऋषिभिर्यज्ञपटुभिर्यथावत्कर्मकर्तृभिः।
समिद्भिः परिसङ्कीर्णं दीप्यमानैश्च पावकैः ॥
काञ्चनैर्यज्ञभाण्डैश्च भ्राजिष्णुभिरलंकृतम्।
वृतं देवगणैश्चैव प्रवरैर्यज्ञमण्डलम् ॥ ३६
तथा ब्रह्मर्षिभिश्चैव सदस्यैरुपशोभितम्।
तत्र घोरतमं वृत्तमृषीणां मे परिश्रुतम् ॥ ३७
चन्द्रमा विमलं व्योम यथाभ्युदिततारकम्।
विकीर्याग्निं तथा भूतमुत्थितं श्रूयते तदा ३८
नीलोत्पलसवर्णाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं कृशोदरम्।
प्रांशुं सुदुर्धर्षतरं तथैव ह्यमितौजसम् ॥ ३९
तस्मिन्नुत्पतमाने च प्रचचाल वसुन्धरा।
महोर्मिकलितावर्तश्चुक्षुभे स महोदधिः ४०
पेतुरुल्का महोत्पाताः शाखाश्च मुमुचुर्द्रुमाः।
अप्रशान्ता दिशः सर्वाः पवनश्चाशिवो ववौ
मुहुर्मुहुश्च भूतानि प्राव्यथन्त भयात्तथा।
ततः स तुमुलं दृष्ट्वा तं च भूतमुपस्थितम् ॥ ४२
महर्षिसुरगन्धर्वानुवाचेदं पितामहः।
मयैवं चिन्तितं भूतमसिर्नामैष वीर्यवान् ४३
रक्षणार्थाय लोकस्य वधाय च सुरद्विषाम्।
ततस्तद्रूपमुत्सृज्य बभौ निस्त्रिंश एव सः ४४
विमलस्तीक्ष्णधारश्च कालान्तक इवोद्यतः।
ततः स शितिकण्ठाय रुद्रायार्षभकेतवे ४५
ब्रह्मा ददावसिं तीक्ष्णमधर्मप्रतिवारणम्।
ततः स भगवान् रुद्रो महर्षिजनसंस्तुतः ४६
प्रगृह्यासिममेयात्मा रूपमन्यच्चकार ह।
चतुर्बाहुः स्पृशन्मूर्ध्ना भूस्थितोऽपि दिवाकरम्

पद्मानीव तारका यत्र लमास्तस्मिन् पद्मतारके अत्यन्तमुच्छ्रित इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

ऊर्ध्वदृष्टिर्महालिङ्गो
मुखाज्ज्वालाः समुत्सृजन् ।
विकुर्वन् बहुधा वर्णा-
न्नीलपाण्डुरलोहितान् ॥ ४८
बिभ्रत्कृष्णाजिनं वासो हेम प्रवरतारकम् ।
नेत्रं चैकं ललाटेन भास्करप्रतिमं वहन् ४९
शुशुभातेऽतिविमले द्वे नेत्रे कृष्णपिङ्गले ।
ततो देवो महादेवः शूलपाणिर्भगाक्षिहा ५०
संप्रगृह्य तु निस्त्रिंशं कालाग्निसमवर्चसम् ।
त्रिकूटं चर्म चोद्यम्य सविद्युतमिवाम्बुदम् ।
चचार विविधान्मार्गान्महाबलपराक्रमः ५१
विधुन्वन्नसिमाकाशे तथा युद्धचिकीर्षया ।
तस्य नादं विनदतो महाहासं च मुञ्चतः ५२
बभौ प्रतिभयं रूपं तदा रुद्रस्य भारत ।
तद्रूपधारिणं रुद्रं रौद्रकर्मचिकीर्षया ॥ ५३
निशम्य दानवाः सर्वे हृष्टाः समभिदुद्रुवुः ।
अश्मभिश्चाभ्यवर्षन्त प्रदीप्तैश्च तथोल्मुकैः ५४
घोरैः प्रहरणैश्चान्यैः क्षुरधारैरयोमयैः ।
ततस्तु दानवानीकं संप्रणेतारमच्युतम् ॥ ५५
रुद्रं दृष्ट्वा बलोद्भूतं प्रमुमोह चचाल च ।
चित्रं शीघ्रपदत्वाच्च चरन्तमसिपाणिनम् ५६
तमेकमसुराः सर्वे सहस्रमिति मेनिरे ।
छिन्दन् भिन्दन् रुजन् कृन्तन्
दारयन् पोथयन्नपि ॥ ५७
अचरद्वैरिसंघेषु दावाग्निरिव कक्षगः ।
असिवेगप्रभग्नास्ते छिन्नबाहूरुवक्षसः ॥ ५८
संप्रकीर्णान्त्रगात्राश्च पेतुरुर्व्यां महाबलाः ।
अपरे दानवा भग्नाः खड्गपातावपीडिताः ५९
अन्योन्यमभिनर्दन्तो दिशः संप्रतिपेदिरे ।
भूमिं केचित्प्रविविशुः पर्वतानपरे तथा ६०
अपरे जग्मुराकाशमपरेऽम्भः समाविशन् ।
तस्मिन्महति संवृत्ते समरे भृशदारुणे ॥ ६१
बभूव भूः प्रतिभया मांसशोणितकर्दमा ।
दानवानां शरीरैश्च पतितैः शोणितोक्षितैः ॥
समाकीर्णा महाबाहो शैलैरिव सकिंशुकैः ।
स रुद्रो दानवान् हत्वा कृत्वा धर्मोत्तरं जगत्
रौद्रं रूपमथोत्क्षिप्य चक्रे रूपं शिवं शिवः
ततो महर्षयः सर्वे सर्वे देवगणास्तथा ॥ ६४
जयेनाद्भुतकल्पेन देवदेवं तथाऽर्चयन् ।
ततः स भगवान् रुद्रो दानवक्षतजोक्षितम् ६५
असिं धर्मस्य गोप्तारं ददौ सत्कृत्य विष्णवे ।
विष्णुर्मरीचये प्रादान्मरीचिर्भगवानपि ६६
महर्षिभ्यो ददौ खड्गमृषयो वासवाय च ।
महेन्द्रो लोकपालेभ्यो लोकपालास्तु पुत्रक
मनवे सूर्यपुत्राय ददुः खड्गं सुविस्तरम् ।
ऊचुश्चैनं तथा वाक्यं मानुषाणां त्वमीश्वरः
असिना धर्मगर्भेण पालयस्व प्रजा इति ।
धर्मसेतुमतिक्रान्ताः स्थूलसूक्ष्मात्मकारणात्
विभज्य दण्डं रक्ष्यास्तु धर्मतो न यदृच्छया
दुर्वाचा निग्रहो दण्डो हिरण्यबहुलस्तथा७०
व्यङ्गता च शरीरस्य वधो वाऽनल्पकारणात्
असेरेतानि रूपाणि दुर्वारादीनि निर्दिशेत् ॥
असेरेवं प्रमाणानि परिपाल्य व्यतिक्रमात् ।
स विसृज्याथ पुत्रं स्वं प्रजानामधिपं ततः ७२
मनुः प्रजानां रक्षार्थं क्षुपाय प्रददावसिम् ।
क्षुपाज्जग्राह चेक्ष्वाकुरिक्ष्वाकोश्च पुरूरवाः
आयुश्च तस्माल्लेभे तं
नहुषश्च ततो भुवि ।
ययातिर्नहुषाच्चापि
पूरुस्तस्माच्च लब्धवान् ॥ ७४
अमूर्तरयसस्तस्मात्ततो भूमिशयो नृपः ।
भरतश्चापि दौष्यन्तिर्लेभे भूमिशयादसिम्७५
तस्माल्लेभे च धर्मज्ञो राजन्नैलविलस्तथा ।
ततस्त्वैलविलाल्लेभे धुन्धुमारो नरेश्वरः ७६
धुन्धुमाराच्च काम्बोजो मुचुकुन्दस्ततोऽलभत्
मुचुकुन्दान्मरुत्तश्च मरुत्तादपि रैवतः ॥ ७७
रैवताद्युवनाश्वश्च युवनाश्वात्ततो रघुः ।
इक्ष्वाकुवंशजस्तस्माद्धरिणाश्वः प्रतापवान्
हरिणाश्वादसिं लेभे शुनकः शुनकादपि ।
उशीनरो वै धर्मात्मा तस्माद्भोजः स यादवः
यदुभ्यश्च शिबिर्लेभे शिबेश्चापि प्रतर्दनः ।
प्रतर्दनादष्टकश्च पृषदश्वोऽष्टकादपि ॥ ८०
पृषदश्वाद्भरद्वाजो द्रोणस्तस्मात्कृपस्ततः ।
ततस्त्वं भ्रातृभिः सार्धं परमासिमवाप्तवान्

त्रिकूटं त्रीणि कूटानि कपटानि पार्श्वयोरग्रे च तीक्ष्णधाररूपाणि परविदारकाणि यस्मिन् ॥ ५१ ॥ स्थूलसूक्ष्मात्मकारणात् स्थूल आत्मा शरीरं सूक्ष्म आत्मा मनः तयोः प्रीणनार्थम् ॥ ६९ ॥ दुर्वारादीनीत्यत्र दुर्वाचादीनीति साधीयान्पाठः ॥ ७१ ॥

कृत्तिकास्तस्य नक्षत्रमसेरग्निश्च दैवतम् ।
रोहिणी गोत्रमास्याथ्य रुद्रश्च गुरुरुत्तमः ८२
असेरष्टौ हि नामानि रहस्यानि निबोध मे ।
पाण्डवेय सदा यानि कीर्तयन् लभते जयम्
असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च ॥ ८४
अग्र्यः प्रहरणानां च खड्गो माद्रवतीसुत ।
महेश्वरप्रणीतश्च पुराणे निश्चयं गतः ॥ ८५
पृथुस्तूत्पादयामास धनुराद्यमरिन्दमः ।
तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि सुबहून्यपि ।
धर्मेण च यथापूर्वं वैन्येन परिरक्षिता ॥ ८६
तदेतदार्षं माद्रेय प्रमाणं कर्तुमर्हसि ।
असेश्च पूजा कर्तव्या सदा युद्धविशारदैः८७
इत्येष प्रथमः कल्पो
व्याख्यातस्ते सुविस्तरात् ।
असेरुत्पत्तिसंसर्गो
यथावद्भरतर्षभ ॥ ८८
सर्वथैतदिदं श्रुत्वा खड्गसाधनमुत्तमम् ।
लभते पुरुषः कीर्तिं प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ८९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि खड्गोत्पत्तिकथने
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥ [ ३६ ]

## १६७

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तवति भीष्मे तु तूष्णींभूते युधिष्ठिरः।
पप्रच्छावसथं गत्वा भ्रातॄन् विदुरपञ्चमान् १
धर्मे चार्थे च कामे च लोकवृत्तिः समाहिता
तेषां गरीयान् कतमो मध्यमः को लघुश्च कः
कस्मिंश्चात्मा नियन्तव्यस्त्रिवर्गविजयाय वै ।
संहृष्टा नैष्ठिकं वाक्यं यथावद्वक्तुमर्हथ ॥ ३
ततोऽर्थगतितत्त्वज्ञः प्रथमं प्रतिभानवान् ।
जगाद विदुरो वाक्यं धर्मशास्त्रमनुस्मरन् ४
विदुर उवाच ।
बाहुश्रुत्यं तपस्त्यागः श्रद्धा यज्ञक्रिया क्षमा।
भावशुद्धिर्दया सत्यं संयमश्चात्मसंपदः ॥ ५
एतदेवाभिपद्यस्व मा तेऽभूच्चलितं मनः ।
एतन्मूलौ हि धर्मार्थावेतदेकपदं हि मे ॥ ६
धर्मेणैवर्षयस्तीर्णा धर्मे लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
धर्मेण देवा ववृधुर्धर्मे चार्थः समाहितः ॥ ७
धर्मो राजन् गुणः श्रेष्ठो मध्यमो ह्यर्थ उच्यते
कामो यवीयानिति च प्रवदन्ति मनीषिणः
तस्माद्धर्मप्रधानेन भवितव्यं यतात्मना ।
तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि ॥ ९
वैशम्पायन उवाच ।
समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्रविशारदः ।
पार्थो धर्मार्थतत्त्वज्ञो जगौ वाक्यं प्रचोदितः
अर्जुन उवाच ।
कर्मभूमिरियं राजन्निह वार्ता प्रशस्यते ।
कृषिर्वाणिज्यगोरक्षं शिल्पानि विविधानि च
अर्थ इत्येव सर्वेषां कर्मणामव्यतिक्रमः ।
न ह्यृतेऽर्थेन वर्तेते धर्मकामाविति श्रुतिः १२
विषयैरर्थवान् धर्ममाराधयितुमुत्तमम् ।
कामं च चरितुं शक्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥
अर्थस्यावयवावेतौ धर्मकामाविति श्रुतिः ।
अर्थसिद्ध्या विनिर्वृत्तावुभावेतौ भविष्यतः ॥
तद्गतार्थं हि पुरुषं विशिष्टतरयोनयः ।
ब्रह्माणमिव भूतानि सततं पर्युपासते ॥ १५

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६६

१६७

एवं शूराणां सर्वापन्निवारणहेतुः खङ्ग इति खङ्गोत्पत्त्यन्ता कथा सर्वैः श्रुता । अथेदानीमेकरूपेऽप्युपदेष्टरि शिष्याः स्वस्वाभिप्रायानुसारेणैव शास्त्रतत्त्वं गृह्णन्तीति एतमर्थमाख्यायिकामुखेन दर्शयति-**इत्युक्तवतीत्यादिना**। आवसथं गृहं विदुरः पञ्चमो येषु तान् स्वयं षष्ठः षड्योगजा गीता इत्ययं **षड्जगीताध्यायः** ॥ १ ॥ त्रिवर्गविजयाय कामक्रोधलोभानां जयाय ॥ ३ ॥ धर्मावतारत्वाद्धर्मशास्त्रानुसारिवाक्यं विदुर उवाच-**बाहुश्रुत्यमिति**। बाहुश्रुत्यं बहध्ययनम्। **तपः** स्वधर्माचरणं। **त्यागो** दानं । **श्रद्धा** आस्तिक्यं । **यज्ञक्रिया** सोमसंस्थादिः । **क्षमा** आक्रुष्टस्य ताडितस्य वा निर्विकारित्वं । **भावशुद्धिर्निष्कपटत्वं** । दयादीनेष्वनुजिघृक्षा । **सत्यं** हिंसाशून्यं यथार्थवचनं। **संयमः** इंद्रियनिग्रहः। एता दश आत्मनो धर्मस्य संपदः ऐश्वर्याणि ॥ ५ ॥ एवं **धर्म**श्रैष्ठ्ये विदुरेण प्रतिपादितेऽर्थश्रैष्ठ्यमर्जुन **आह—कर्मभूमिरिति** ॥ ११ ॥ अव्यतिक्रमो मर्यादा ॥ १२ ॥

जटाजिनधरा दान्ताः पङ्कदिग्धा जितेंद्रियाः
मुण्डा निस्तन्तवश्चापि वसन्त्यर्थार्थिनः पृथक्
काषायवसनाश्चान्ये श्मश्रुला ह्रीनिषेविणः
विद्वांसश्चैव शान्ताश्च मुक्ताः सर्वपरिग्रहैः ॥
अर्थार्थिनः सन्ति केचिदपरे स्वर्गकांक्षिणः ।
कुलप्रत्यागमाश्चैके स्वं स्वं धर्ममनुष्ठिताः ॥ १८
आस्तिका नास्तिकाश्चैव नियताः संयमे परे ।
अप्रज्ञानं तमोभूतं प्रज्ञानं तु प्रकाशिता ॥१९

भृत्यान् भोगैर्द्विषो दण्डै-
र्यो योजयति सोऽर्थवान् ।
एतन्मतिमतां श्रेष्ठ
मतं मम यथातथम् ।
अनयोस्तु निबोध त्वं
वचनं वाक्यकण्ठयोः ॥ २०

वैशम्पायन उवाच ।

ततो धर्मार्थकुशलौ माद्रीपुत्रावनन्तरम् ।
नकुलः सहदेवश्च वाक्यं जगदतुः परम् ॥ २१

नकुलसहदेवावूचतुः ।

आसीनश्च शयानश्च विचरन्नपि वा स्थितः
अर्थयोगं दृढं कुर्याद्योगैरुच्चावचैरपि ॥ २२
अस्मिंस्तु वै विनिर्वृत्ते दुर्लभे परमप्रिये ।
इह कामानवाप्नोति प्रत्यक्षं नात्र संशयः २३
योऽर्थो धर्मेण संयुक्तो धर्मो यश्चार्थसंयुतः ।
तद्धित्वाऽमृतसंवादं तस्मादेतौ मताविह २४
अनर्थस्य न कामोऽस्ति तथाऽर्थोऽधर्मिणः कुतः
तस्मादुद्विजते लोको धर्मार्थाद्यो बहिष्कृतः
तस्माद्धर्मप्रदानेन साध्योऽर्थः संयतात्मना ।
विश्वस्तेषु हि भूतेषु कल्पते सर्वमेव हि ॥२६
धर्मं समाचरेत्पूर्वं ततोऽर्थं धर्मसंयुतम् ।
ततः कामं चरेत्पश्चात्सिद्धार्थः स हि तत्परं

वैशम्पायन उवाच ।

विरेमतुस्तु तद्वाक्यमुक्त्वा तावश्विनोः सुतौ
भीमसेनस्तदा वाक्यमिदं वक्तुं प्रचक्रमे ॥ २८

भीमसेन उवाच ।

नाकामः कामयत्यर्थं
नाकामो धर्ममिच्छति ।
नाकामः कामयानोऽस्ति
तस्मात्कामो विशिष्यते ॥ २९

कामेन युक्ता ऋषयस्तपस्येव समाहिताः ।
पलाशफलमूलादा वायुभक्षाः सुसंयताः ३०
वेदोपवेदेष्वपरे युक्ताः स्वाध्यायपारगाः ।
श्राद्धयज्ञक्रियायां च तथा दानप्रतिग्रहे ॥३१

वणिजः कर्षका गोपाः
कारवः शिल्पिनस्तथा ।
देवकर्मकृतश्चैव
युक्ताः कामेन कर्मसु ॥ ३२

समुद्रं वा विशन्त्यन्ये नराः कामेन संयुताः
कामो हि विविधाकारः सर्वं कामेन सन्ततं
नास्ति नासीन्नाभविष्यद्भूतं कामात्मकात्परं
एतत्सारं महाराज धर्मार्थावत्र संश्रितौ ३४
नवनीतं यथा दध्नस्तथा कामोऽर्थधर्मतः ।
श्रेयस्तैलं हि पिण्याकाद्घृतं श्रेय उदश्वितः
श्रेयः पुष्पफलं काष्ठात् कामो धर्मार्थयोर्वरः॥

पुष्पतो मध्विव रसः
काम आभ्यां तथा स्मृतः ।
कामो धर्मार्थयोर्योनिः
कामश्चाथ तदात्मकः ॥ ३६
नाकामतो ब्राह्मणाः स्वन्नमर्था-
न्नाकामतो ददति ब्राह्मणेभ्यः ।
नाकामतो विविधा लोकचेष्टा
तस्मात्कामः प्राक् त्रिवर्गस्य दृष्टः ३७
सुचारुवेषाभिरलंकृताभि-
र्मदोत्कटाभिः प्रियदर्शनाभिः ।
रमस्व योषाभिरुपेत्य कामं
कामो हि राजन्परमो भवेन्नः ॥ ३८

---

निस्तन्तवः नैष्ठिकब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥ प्रज्ञानमर्थश्रेष्ठाविषयम् ॥ १९ ॥ अनयोर्नकुलसहदेवयोः ॥ २० ॥ तद्धि निश्चितं त्वा त्वां प्रति अमृतसमं यथा स्यात्तथा मतौ आवयोरिति शेषः ॥ २४ ॥ अनर्थस्य अर्थहीनस्य अधर्मिणः धर्महीनस्य ॥ २५ ॥ धर्मरूपेण प्रदानेन विश्वस्तेषु अस्मद्वाक्ये विश्वासवत्सु ॥ २६ ॥ धर्ममिति । अत्र धर्मार्थयोः समत्वेऽपि धर्मस्य पूर्वत्वाद्विदुरमतमेवैतदीषद्भेदेन दर्शितम् ॥ २७ ॥ कामस्यैव प्राधान्यं मन्वानो भीमसेन उवाच—न काम इति ॥ २९ ॥ उदश्वितः तक्रात् ॥ ३५ ॥ अकामतः कामं विना केवलार्थात्स्वन्नं मृष्टान्नमस्ति न हि धनमस्तीति मृष्टं भुज्यते अपि तु रुच्यात्मकः कामोऽस्तीति अन्यथा ज्वरितस्यापि मृष्टं दीयेत ॥ ३७ ॥

बुद्धिर्ममैषा परिखास्थितस्य
माभूद्विचारस्तव धर्मपुत्र ।
स्यात्संहितं सद्भिरफल्गुसारं
ममेति वाक्यं परमानृशंसम् ॥ ३९
धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या
यो ह्येकभक्तः स नरो जघन्यः ।
तयोस्तु दाक्ष्यं प्रवदन्ति मध्यं
स उत्तमो योऽभिरतस्त्रिवर्गे ॥ ४०
प्राज्ञः सुहृच्चन्दनसारलिप्तो
विचित्रमाल्याभरणैरुपेतः ।
ततो वचः संग्रहविस्तरेण
प्रोक्त्वाथ वीरान् विरराम भीमः ४१
ततो मुहूर्तादथ धर्मराजो
वाक्यानि तेषामनुचिन्त्य सम्यक् ।
उवाच वाचा वितथं स्मयन्वै
लब्धश्रुतां धर्मभृतां वरिष्ठः । ४२

युधिष्ठिर उवाच ।

निःसंशयं निश्चितधर्मशास्त्राः
सर्वे भवन्तो विदितप्रमाणाः ।
विज्ञातुकामस्य ममेह वाक्य-
मुक्तं यद्वै नैष्ठिकं तच्छ्रुतं मे ।
इदं त्ववश्यं गदतो ममापि
वाक्यं निबोधध्वमनन्यभावाः ४३
यो वै न पापे निरतो न पुण्ये
नार्थे न धर्मे मनुजो न कामे ।
विमुक्तदोषः समलोष्टकाञ्चनो
विमुच्यते दुःखसुखार्थसिद्धेः ॥ ४४
भूतानि जातिस्मरणात्मकानि
जराविकारैश्च समन्वितानि ।
भूयश्च तैस्तैः प्रतिबोधितानि
मोक्षं प्रशंसन्ति न तं च विद्मः ४५
स्नेहेन युक्तस्य न चास्ति मुक्ति-
रिति स्वयंभूर्भगवानुवाच ।
बुधाश्च निर्वाणपरा भवन्ति
तस्मान्न कुर्यात्प्रियमप्रियं च ॥ ४६
एतत्प्रधानं च न कामकारो
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।
भूतानि सर्वाणि विधिर्नियुङ्क्ते
विधिर्बलीयानिति वित्त सर्वे ॥ ४७
न कर्मणाऽऽप्नोत्यनवाप्यमर्थं
यद्भावि तद्वै भवतीति वित्त ।
त्रिवर्गहीनोऽपि हि विन्दतेऽर्थं
तस्मादहो लोकहिताय गुह्यम् ॥ ४८

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तदग्र्यं वचनं मनोनुगं
समस्तमाज्ञाय ततो हि हेतुमत् ।
तदा प्रणेदुश्च जहर्षिरे च ते
कुरुप्रवीराय च चक्रिरेऽञ्जलिम् ४९
सुचारुवर्णाक्षरचारुभूषितां
मनोनुगां निर्धुतवाक्यकण्टकाम् ।
निशम्य तां पार्थिव पार्थभाषितां
गिरं नरेन्द्राः प्रशशंसुरेव ते ॥ ५०
स चापि तान् धर्मसुतो महामना-
स्तदा प्रतीतान्प्रशशंस वीर्यवान् ।
पुनश्च पप्रच्छ सरिद्वरासुतं
ततः परं धर्ममहीनचेतसम् ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि षड्जगीतायां सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ [ ३७ ]

परिखास्थितस्य परितः खाता परिखा सर्वतो मूलशोध इत्यर्थः। तत्र स्थितस्य अनृशंसमनिष्ठुरम् ॥ ३९ ॥ दाक्ष्यं अर्थहेतुत्वान्मध्यं मध्यमम् अर्थात्काम उत्तमो धर्मो जघन्य इति फलितम् ॥४०॥ लब्धं श्रुतं श्रवणं यैस्तेषां लब्धश्रुताम् ॥४२॥ नैष्ठिकं सिद्धांतरूपं एतेन पूर्वे सर्वे पूर्वपक्षा एवेत्युक्तम् ॥ ४३ ॥ यः पापादिपंचके न निरतः स दुःखसुखादिसिद्धिर्यस्य तस्मात् सर्वकर्मवृंदाद्विमुच्यते ॥ ४४ ॥ जातिर्जन्मस्मरणमतीतार्थस्मरणं तेनातीतत्वमात्रं लक्ष्यते। जन्ममरणात्मकानीत्यर्थः ॥ ४५ ॥ स्नेहेनेतिरागद्वेषयोरुपलक्षणं एतेन मुक्तेर्दुर्लभत्वमाह-**न चेति** । तथापि प्रार्थ्या च सेत्याह-**बुधा इति** ॥ ४६ ॥ एतत्पदार्थमाह--**यथेत्यादिना** ॥ ४७ ॥ अर्थं मोक्षं वित्त जानीत लोकहिताय मोक्षाय त्रिवर्गहीनोऽपि गुह्यमर्थं रहस्यं ज्ञानं विन्दते लभते पूर्वोक्तोऽधिकारी ॥ ४८ ॥ ततो युधिष्ठिरात् ततः पूर्वोक्तात्सर्वेषां वाक्यात् हेतुमदिति वा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

## १६८

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ कुरूणां प्रीतिवर्धन ।
प्रश्नं कञ्चित्प्रवक्ष्यामि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
कीदृशा मानवाः सौम्याः
कैः प्रीतिः परमा भवेत् ।
आयत्यां च तदात्वे च
के क्षमास्तान्वदस्व मे ॥ २
न हि तत्र धनं स्फीतं
न च सम्बन्धिबान्धवाः ।
तिष्ठन्ति यत्र सुहृद-
स्तिष्ठन्तीति मतिर्मम ॥ ३
दुर्लभो हि सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत्।
एतद्धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४
भीष्म उवाच ।
सन्धेयान् पुरुषान् राजन्नसन्धेयांश्च तत्त्वतः
वदतो मे निबोध त्वं निखिलेन युधिष्ठिर ५
लुब्धः क्रूरस्त्यक्तधर्मा निकृतिः शठ एव च ।
क्षुद्रः पापसमाचारः सर्वशङ्की तथाऽलसः ६
दीर्घसूत्रोऽनृजुः क्रुष्टो गुरुदारप्रधर्षकः ।
व्यसने यः परित्यागी दुरात्मा निरपत्रपः ७
सर्वतः पापदर्शी च नास्तिको वेदनिन्दकः
संप्रकीर्णेन्द्रियो लोके यः कामं निरतश्चरेत् ८
असत्यो लोकविद्विष्टः समये चानवस्थितः ।
पिशुनोऽथाकृतप्रज्ञो मत्सरी पापनिश्चयः ९
दुःशीलोऽथाकृतात्मा च नृशंसः कितवस्तथा
मित्रैरपकृतिर्नित्यमिच्छतेऽर्थं परस्य यः १०
ददतश्च यथाशक्ति यो न तुष्यति मन्दधीः ।
अधैर्यमपि यो युंक्ते सदा मित्रं नरर्षभ ॥ ११
अस्थानक्रोधनोऽयुक्तो यश्चाकस्माद्विरुध्यते ।
सुहृदश्चैव कल्याणानाशु त्यजति किल्बिषी
अल्पेऽप्यपकृते मूढस्तथाज्ञानात्कृतेऽपि च ।
कार्यसेवी च मित्रेषु मित्रद्वेषी नराधिप १३
शत्रुर्मित्रमुखो यश्च जिह्मप्रेक्षी विलोचनः ।
न विरज्यति कल्याणे यः कुर्यात्तादृशं नरम्
पानपो द्वेषणः क्रोधी निर्घृणः परुषस्तथा ।
परोपतापी मित्रध्रुक् तथा प्राणिवधे रतः १५
कृतघ्नश्चाधमो लोके न सन्धेयः कदाचन ।
छिद्रान्वेषी ह्यसन्धेयः सन्धेयानपि मे शृणु
कुलीना वाक्यसम्पन्ना ज्ञानविज्ञानकोविदाः
रूपवन्तो गुणोपेतास्तथाऽलुब्धा जितश्रमाः
सन्मित्राश्च कृतज्ञाश्च सर्वज्ञा लोभवर्जिताः ।
माधुर्यगुणसम्पन्नाः सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः
व्यायामशीलाः सततं कुलपुत्राः कुलोद्वहाः ।
दोषैः प्रमुक्ताः प्रथितास्ते ग्राह्याः पार्थिवैर्नराः
यथाशक्ति समाचाराः संप्रतुष्यन्ति हि प्रभो
नास्थाने क्रोधवन्तश्च न चाकस्माद्विरागिणः
विरक्ताश्च न दुष्यन्ति मनसाऽप्यर्थकोविदाः
आत्मानं पीडयित्वाऽपि
सुहृत्कार्यपरायणाः ।
विरज्यन्ति न मित्रेभ्यो
वासो रक्तमिवाविकम् ॥ २१
क्रोधाच्च लोभमोहाभ्यां नानर्थे युवतीषु च ।
न दर्शयन्ति सुहृदो विश्वस्ता धर्मवत्सलाः ॥
लोष्टकाञ्चनतुल्यार्थाः सुहृत्सु दृढबुद्धयः ।
ये चरन्त्यभिमानानि सृष्टार्थमनुषङ्गिणः ॥ २३

---

१६८
यद्यपि सर्वे यथाप्रश्नमुपदेशार्थं गृह्णन्ति तथापि सन्मित्रलाभः सर्वासां संपदां हेतुर्दुर्मित्रसम्बन्धः सर्वासामापदां हेतुरिति सर्वपुरुषसाधारणोऽर्थः कृत्स्नाया राजनीतेश्च सारभूत इति तमेव व्युत्पादयति प्रश्नोत्तरमुखेन-**पितामह महाप्राज्ञेत्यादिना** ॥१॥ आयत्यां परिणामकाले तदात्वे च वर्तमानकाले क्षमाः हितायेति शेषः ॥२ मित्रस्यार्थादिभ्योऽन्तरंगत्वमाह--**न हीति** ॥ ३ ॥ संधेयान् मित्रीकर्तुं योग्यान् ॥ ५ ॥ **अलसोऽनुद्योगी** ॥ ६ ॥ दीर्घसूत्रश्चिरकारी । क्रुष्टो लोकनिन्दितः ॥ ७॥ अयुक्तः अनवहितः ॥ १२ ॥ अज्ञानात्कृतेऽपकृते कार्यार्थमेव सेवते न तु धर्मार्थमिति कार्यसेवी ॥ १३ ॥ विलोचनः विपरीतदृष्टिः ॥ १४ ॥ वासो रक्तमिवाविकं मेषकम्बलः ॥ २१ ॥ अनर्थे निर्धने क्रोधाद्विरागं न दर्शयन्ति । युवतीषु च लोभमोहाभ्यां विरागं न दर्शयन्तीति योजना। विरज्यन्तीति पूर्वश्लोकाद्वि*परिणामेनानुषज्यते। दोषांश्च लोभमोहादीनर्थेषु युवतीषु चेति पाठान्तरं तु स्पष्टार्थम् ॥ २२ ॥ अभिमानानि सर्वतः प्रमाणानि शास्त्रादीनि सृष्टार्थं प्रारब्धकर्मप्रापितं चार्थं चरन्ति अनुसरन्ति अनुषंगिणः आत्ममानरहिताः ॥ २३ ॥

*विरज्यन्तीत्यस्य विरागमिति सुबन्तत्वेन विपरिणामः।

संगृह्णन्तः परिजनं स्वाम्यर्थपरमाः सदा ।
ईदृशैः पुरुषश्रेष्ठैर्यः सन्धिं कुरुते नृपः ॥ २४
तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योत्स्नाग्रहपतेरिव ।
शास्त्रनित्या जितक्रोधा बलवन्तो रणे सदा
जन्मशीलगुणोपेताः सन्धेयाः पुरुषोत्तमाः ।
ये च दोषसमायुक्ता नराः प्रोक्ता मयाऽनघ
तेषामप्यधमा राजन् कृतघ्ना मित्रघातकाः ।
त्यक्तव्यास्तु दुराचाराः सर्वेषामिति निश्चयः

युधिष्ठिर उवाच ।

विस्तरेणाथ सम्बन्धं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यः प्रोक्तस्तद्वदस्व मे ॥२८

भीष्म उवाच ।

हन्त ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
उदीच्यां दिशि यद्वृत्तं म्लेच्छेषु मनुजाधिप
ब्राह्मणो मध्यदेशीयः कश्चिद्वै ब्रह्मवर्जितः ।
ग्रामं वृद्धियुतं वीक्ष्य प्राविशद्भैक्ष्यकांक्षया ॥
तत्र दस्युर्धनयुतः सर्ववर्णविशेषवित् ।
ब्रह्मण्यः सत्यसन्धश्च दाने च निरतोऽभवत्
तस्य क्षयमुपागम्य ततो भिक्षामयाचत ।
प्रतिश्रयं च वासार्थं भिक्षां चैवाथ वार्षिकीं
प्रादात्तस्मै स विप्राय वस्त्रं च सदृशं नवम् ।
नारीं चापि वयोपेतां भर्त्रा विरहितां तथा
एतत्संप्राप्य हृष्टात्मा दस्योः सर्वं द्विजस्तथा
तस्मिन् गृहवरे राजंस्तया रेमे स गौतमः ॥
कुटुंबार्थे च दास्याश्च
साहाय्यं चाप्यथाकरोत् ।
तत्रावसत्स वर्षाश्च
समृद्धे शबरालये ॥ ३५
बाणवेधे परं यत्नमकरोच्चैव गौतमः ।
चक्राङ्गान्स च नित्यं वै सर्वतो वनगोचरान्
जघान गौतमो राजन् यथा दस्युगणास्तथा
हिंसापटुर्घृणाहीनः सदा प्राणिवधे रतः ३७
गौतमः सन्निकर्षेण दस्युभिः समतामियात् ।
तथा तु वसतस्तस्य दस्युग्रामे सुखं तदा ॥३८
अगमन्बहवो मासा निघ्नतः पक्षिणो बहून् ।
ततः कदाचिदपरो द्विजस्तं देशमागतः ३९
जटाचीराजिनधरः स्वाध्यायपरमः शुचिः ।
विनीतो नियताहारो ब्रह्मण्यो वेदपारगः ४०
स ब्रह्मचारी तद्देश्यः सखा तस्यैव सुप्रियः ।
तं दस्युग्राममगमद्यत्रासौ गौतमोऽवसत् ४१
स तु विप्रगृहान्वेषी शूद्रान्नपरिवर्जकः ।
ग्रामे दस्युसमाकीर्णे व्यचरत्सर्वतोदिशम् ॥
ततः स गौतमगृहं प्रविवेश द्विजोत्तमः ।
गौतमश्चापि संप्राप्तस्तावन्योन्येन संगतौ ४३
चक्राङ्गभारस्कन्धं तं धनुष्पाणिं धृतायुधम् ।
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं गृहद्वारमुपागतम् ॥ ४४
तं दृष्ट्वा पुरुषादाभमपध्वस्तं क्षयागतम् ।
अभिज्ञाय द्विजो व्रीडन्निदं वाक्यमथाब्रवीत्
किमिदं कुरुषे मोहाद्विप्रस्त्वं हि कुलोद्वहः ।
मध्यदेशपरिज्ञातो दस्युभावं गतः कथम् ४६
पूर्वान् स्मर द्विज ज्ञातीन्
प्रख्यातान्वेदपारगान् ।
तेषां वंशेऽभिजातस्त्व-
मीदृशः कुलपांसनः ॥ ४७
अवबुध्यात्मनाऽऽत्मानं स त्वं शीलं श्रुतं दमं
अनुक्रोशं च संस्मृत्य त्यज वासमिमं द्विज ॥
स एवमुक्तः सुहृदा तेन तत्र हितैषिणा ।
प्रत्युवाच ततो राजन् विनिश्चित्य तदार्तवत्
निर्धनोऽस्मि द्विजश्रेष्ठ नापि वेदविदप्यहम्
वित्तार्थमिह संप्राप्तं विद्धि मां द्विजसत्तम ५०
त्वद्दर्शनात्तु विप्रेन्द्र कृतार्थोऽस्म्यद्य वै द्विज ।
आवां हि सह यास्यावः श्वो वसस्वाद्य शर्वरीं
स तत्र न्यवसद्विप्रो घृणी किञ्चिदसंस्पृशन् ।
क्षुधितश्छन्द्यमानोऽपि भोजनं नाभ्यनन्दत

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कृतघ्नोपाख्याने
अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ [ ३८ ]

---

कृतं उपकारं घ्नन्ति वाचाऽपलापेन वा ते कृतघ्नाः त एव उपकर्तुर्नाशकराः मित्रद्रुहः ॥ २७ ॥ सम्बन्धं सम्बध्यते सज्जते ह्यातुमुपादातुं वा श्रुतमर्थं येन तं इतिहासम् ॥२८ ब्रह्म वेदस्तदुक्तं कर्म च तद्विवर्जितः ॥ ३० ॥ क्षयं गृहम् ॥ ३२ ॥ वयोपेतां युवतीं सन्धिरार्षः । भर्त्रा विरहितां दासीमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ चक्राङ्गान् हंसान् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

## १६९

भीष्म उवाच ।

तस्यां निशायां व्युष्टायां
गते तस्मिन् द्विजोत्तमे ।
निष्क्रम्य गौतमोऽगच्छत्
समुद्रं प्रति भारत ॥ १
सामुद्रिकान्स वणिज-
स्ततोऽपश्यत् स्थितान् पथि ।
स तेन सह सार्थेन
प्रययौ सागरं प्रति ॥ २
स तु सार्थो महान् राजन्
कस्मिंश्चिद्गिरिगह्वरे ।
मत्तेन द्विरदेनाथ
निहतः प्रायशोऽभवत् ॥ ३
स कथंचिद्भयात्तस्माद्विमुक्तो ब्राह्मणस्तथा ।
कांदिग्भूतो जीवितार्थी प्रदुद्रावोत्तरां दिशम्
स तु सार्थपरिभ्रष्टस्तस्माद्देशात्तथा च्युतः ।
एकाकी व्यचरत्तत्र वने किंपुरुषो यथा ॥ ५
स पन्थानमथासाद्य समुद्राभिसरं तदा ।
आससाद वनं रम्यं दिव्यं पुष्पितपादपम् ६
सर्वर्तुकैराम्रवणैः पुष्पितैरुपशोभितम् ।
नन्दनोद्देशसदृशं यक्षकिन्नरसेवितम् ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कालागुरुवनैस्तथा ।
चन्दनस्य च मुख्यस्य पादपैरुपशोभितम् ।
गिरिप्रस्थेषु रम्येषु तेषु तेषु सुगन्धिषु ॥ ८
समन्ततो द्विजश्रेष्ठास्तत्राकूजन्त वै तदा ।
मनुष्यवदनाश्चान्ये भारुण्डा इति विश्रुताः ९
भूलिङ्गशकुनाश्चान्ये सामुद्राः पर्वतोद्भवाः ।
स तान्यतिमनोज्ञानि विहगानां रुतानि वै१०
शृण्वन् सुरमणीयानि विप्रोऽगच्छत गौतमः
ततोऽपश्यत्सुरम्येषु सुवर्णसिकताचिते ॥ ११
देशे समे सुखे चित्रे स्वर्गोद्देशसमे नृप ।
श्रिया जुष्टं महावृक्षं न्यग्रोधं च सुमण्डलम् ॥
शाखाभिरनुरूपाभिर्भूयिष्ठं छत्रसंनिभम् ।
तस्य मूलं च संसिक्तं वरचन्दनवारिणा १३
दिव्यपुष्पान्वितं श्रीमत्पितामहसभोपमम् ।
तं दृष्ट्वा गौतमः प्रीतो मनःकान्तमनुत्तमम् १४
मेध्यं सुरगृहप्रख्यं पुष्पितैः पादपैर्वृतम् ।
तमासाद्य मुदा युक्तस्तस्याधस्तादुपाविशत् ।
तत्रासीनस्य कौन्तेय गौतमस्य सुखः शिवः
पुष्पाणि समुपस्पृश्य प्रववावनिलः शुभः ।
ह्लादयन् सर्वगात्राणि गौतमस्य तदा नृप १६
स तु विप्रः प्रशान्तश्च स्पृष्टः पुण्येन वायुना ।
सुखमासाद्य सुष्वाप भास्करश्चास्तमभ्ययात्
ततोऽस्तं भास्करे याते सन्ध्याकाल उपस्थिते
आजगाम स्वभवनं ब्रह्मलोकात्खगोत्तमः १८
नाडीजंघ इति ख्यातो दयितो ब्रह्मणः सखा
बकराजो महाप्राज्ञः कश्यपस्यात्मसम्भवः१९
राजधर्मेऽतिविख्यातो बभूवाप्रतिमो भुवि ।
देवकन्यासुतः श्रीमान् विद्वान्देवसमप्रभः२०
मृष्टाभरणसम्पन्नो भूषणैरर्कसंनिभैः ।
भूषितः सर्वगात्रेषु देवगर्भः श्रिया ज्वलन् २१
तमागतं खगं दृष्ट्वा गौतमो विस्मितोऽभवत् ।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तो हिंसार्थी चाभ्यवैक्षत

राजधर्मोवाच ।

स्वागतं भवतो विप्र
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मे गृहम् ।
अस्तं च सविता यातः
सन्ध्येयं समुपस्थिता ॥ २३
मम त्वं निलयं प्राप्तः प्रियातिथिरनिन्दितः ।
पूजितो यास्यसि प्रातर्विधिदृष्टेन कर्मणा २४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कृतघ्नोपाख्याने
एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ [३९]

---

१६९

तस्यामिति ॥ १ ॥ सामुद्रिकान् समुद्रोपान्ते गतान् ॥ २ ॥ कां दिशं प्रयामीत्याकुलः कांदिग्भूतः ॥ ४ ॥ रम्येषु प्रदेशेषु मध्ये एकत्र ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९

## १७०

भीष्म उवाच ।
गिरं तां मधुरां श्रुत्वा गौतमो विस्मितस्तदा
कौतूहलान्वितो राजन् राजधर्माणमैक्षत १
राजधर्मोवाच ।
भोः कश्यपस्य पुत्रोऽहं माता दाक्षायणी च मे
अतिथिस्त्वं गुणोपेतः स्वागतं ते द्विजोत्तम २
भीष्म उवाच ।
तस्मै दत्वा स सत्कारं विधिदृष्टेन कर्मणा
शालपुष्पमयीं दिव्यां बृसीं वै समकल्पयत् ३
भगीरथरथाक्रान्तदेशान् गङ्गानिषेवितान् ।
ये चरन्ति महामीनास्तांश्च तस्यान्वकल्पयत्
वन्हिं चापि सुसंदीप्तं मीनांश्चापि सुपीवरान्
स गौतमायातिथये न्यवेदयत काश्यपिः ५
भुक्तवन्तं च तं विप्रं प्रीतात्मानं महातपाः ।
क्लमापनयनार्थं स पक्षाभ्यामभ्यवीजयत् ॥ ६
ततो विश्रान्तमासीनं गोत्रप्रश्नमपृच्छत ।
सोऽब्रवीद्गौतमोऽस्मीति ब्रह्म नान्यदुदाहरत्
तस्मै पर्णमयं दिव्यं दिव्यपुष्पाधिवासितम् ।
गन्धाढ्यं शयनं प्रादात्स शिश्ये तत्र वै सुखम्
अथोपविष्टं शयने गौतमं धर्मराट् तदा ।
पप्रच्छ काश्यपो वाग्मी किमागमनकारणम्
ततोऽब्रवीद्गौतमस्तं दरिद्रोऽहं महामते ।
समुद्रगमनाकांक्षी द्रव्यार्थमिति भारत १०
तं काश्यपोऽब्रवीत्प्रीतो नोत्कण्ठां कर्तुमर्हसि
कृतकार्यो द्विजश्रेष्ठ सद्रव्यो यास्यसे गृहान्॥
चतुर्विधा ह्यर्थसिद्धिर्बृहस्पतिमतं यथा ।
पारंपर्यं तथा दैवं काम्यं मैत्रमिति प्रभो ॥ १२
प्रादुर्भूतोऽस्मि ते मित्रं
सुहृत्त्वं च मम त्वयि ।
सोऽहं तथा यतिष्यामि
भविष्यसि यथार्थवान् ॥ १३
ततः प्रभातसमये सुखं दृष्ट्वाऽब्रवीदिदम् ।
गच्छ सौम्य पथाऽनेन कृतकृत्यो भविष्यसि ॥
इतस्त्रियोजनं गत्वा राक्षसाधिपतिर्महान् ।
विरूपाक्ष इति ख्यातः सखा मम महाबलः॥
तं गच्छ द्विजमुख्य त्वं स मद्वाक्यप्रचोदितः
कामानभीप्सितांस्तुभ्यं दाता नास्त्यत्र संशयः
इत्युक्तः प्रययौ राजन् गौतमो विगतक्लमः ।
फलान्यमृतकल्पानि भक्षयन् स यथेष्टतः १७
चन्दनागुरुमुख्यानि त्वक्पत्राणां वनानि च
तस्मिन् पथि महाराज सेवमानो द्रुतं ययौ ॥
ततो मेरुव्रजं नाम नगरं शैलतोरणम् ।
शैलप्राकारवप्रं च शैलयन्त्राकुलं तथा ॥ १९
विदितश्चाभवत्तस्य राक्षसेन्द्रस्य धीमतः ।
प्रहितः सुहृदा राजन् प्रीयमाणः प्रियातिथिः
ततः स राक्षसेन्द्रः स्वान् प्रेष्यानाह युधिष्ठिर
गौतमो नगरद्वाराच्छीघ्रमानीयतामिति २१
ततः पुरवरात्तस्मात्पुरुषाः श्येनचेष्टनाः ।
गौतमेत्यभिभाषन्तः पुरद्वारमुपागमन् ॥ २२
ते तमूचुर्महाराज राजप्रेष्यास्तदा द्विजम् ।
त्वरस्व तूर्णमागच्छ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति
राक्षसाधिपतिर्वीरो विरुपाक्ष इति श्रुतः ।
स त्वां त्वरति वै द्रष्टुं तत्क्षिप्रं संविधीयताम्
ततः स प्राद्रवद्विप्रो विस्मयाद्विगतक्लमः ।
गौतमः परमर्धिं तां पश्यन् परमविस्मितः २५
तैरेव सहितो राज्ञो वेश्म तूर्णमुपाद्रवत् ।
दर्शनं राक्षसेन्द्रस्य कांक्षमाणो द्विजस्तदा २६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कृतघ्नोपाख्याने
सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥ [४०]

---

१७०

**गिरमिति** ॥ १ ॥ श्येनचेष्टनाः श्येनवदुत्पतन्तः शीघ्रा इत्यर्थः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

## १७१

भीष्म उवाच ।

ततः स विदितो राज्ञः प्रविश्य गृहमुत्तमम्
पूजितो राक्षसेन्द्रेण निषसादासनोत्तमे ॥ १
पृष्टश्च गोत्रचरणं स्वाध्यायं ब्रह्मचारिकम् ।
न तत्र व्याजहारान्यद्गोत्रमात्रादृते द्विजः ॥ २
ब्रह्मवर्चसहीनस्य स्वाध्यायोपरतस्य च ।
गौतमात्रविदो राजा निवासं समपृच्छत ३

राक्षस उवाच ।

क्व ते निवासः कल्याण किंगोत्रा ब्राह्मणी च ते
तत्त्वं ब्रूहि न भीः कार्या विश्वसस्व यथासुखम्

गौतम उवाच ।

मध्यदेशप्रसूतोऽहं वासो मे शबरालये ।
शूद्रा पुनर्भूर्भार्या मे सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ५

भीष्म उवाच ।

ततो राजा विमम्शे कथं कार्यमिदं भवेत् ।
कथं वा सुकृतं मे स्यादिति बुद्ध्याऽन्वचिन्तयत्
अयं वै जन्मना विप्रः सुहृत्तस्य महात्मनः ।
संप्रेषितश्च तेनायं काश्यपेन ममान्तिकम् ७
तस्य प्रियं करिष्यामि
स हि मामाश्रितः सदाः ।
भ्राता मे बान्धवश्चासौ
सखा च हृदयङ्गमः ॥ ८
कार्तिक्यामद्य भोक्तारः सहस्रं मे द्विजोत्तमाः
तत्रायमपि भोक्ता च देयमस्मै च मे धनम् ९
स चाद्य दिवसः पुण्यो ह्यतिथिश्चायमागतः ।
सङ्कल्पितं चैव धनं किं विचार्यमतः परम् ॥
ततः सहस्रं विप्राणां विदुषां समलंकृतम् ।
स्नातानामनुसंप्राप्तं सुमहत्क्षौमवाससाम् ।
तानागतान् द्विजश्रेष्ठान्
विरूपाक्षो विशाम्पते ।
यथार्हं प्रतिजग्राह
विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १२
बृस्यस्तेषां तु संन्यस्ता
राक्षसेन्द्रस्य शासनात् ।
भूमौ वरकुशाः स्तीर्णाः
प्रेष्यैर्भरतसत्तम ॥ १३

तासु ते पूजिता राज्ञा निषण्णा द्विजसत्तमाः
तिलदर्भोदकेनाथ अर्चिता विधिवद्द्विजाः १४
विश्वेदेवाः सपितरः साग्नयश्चोपकल्पिताः ।
विलिप्ताः पुष्पवन्तश्च सुप्रचाराः सुपूजिताः
व्यराजन्त महाराज नक्षत्रपतयो यथा ।
ततो जाम्बूनदीः पात्री-
र्वज्राङ्का विमलाः शुभाः ॥ १६
वरान्नपूर्णा विप्रेभ्यः
प्रादान्मधुघृतप्लुताः ।
तस्य नित्यं सदाऽऽषाढ्यां
माघ्यां च बहवो द्विजाः ॥ १७
ईप्सितं भोजनवरं लभन्ते सत्कृतं सदा ।
विशेषतस्तु कार्तिक्यां द्विजेभ्यः संप्रयच्छति
शरद्व्यपाये रत्नानि पौर्णमास्यामिति श्रुतिः ।
सुवर्णं रजतं चैव मणीनथ च मौक्तिकान् १९
वज्रान्महाधनांश्चैव वैदूर्याजिनराङ्कवान् ।
रत्नराशीन्विनिक्षिप्य दक्षिणार्थे स भारत
ततः प्राह द्विजश्रेष्ठान् विरूपाक्षो महाबलः ।
गृह्णीत रत्नान्येतानि यथोत्साहं यथेष्टतः २१
येषु येषु च भाण्डेषु भुक्तं वो द्विजसत्तमाः ।
तान्येवादाय गच्छध्वं स्ववेश्मानीति भारत
इत्युक्तवचने तस्मिन् राक्षसेन्द्रे महात्मनि ।
यथेष्टं तानि रत्नानि जगृहुर्ब्राह्मणर्षभाः ॥ २३
ततो महार्हास्ते सर्वे रत्नैरभ्यर्चिताः शुभैः ।
ब्राह्मणा मृष्टवसनाः सुप्रीताः स्म ततोऽभवन्
ततस्तान् राक्षसेन्द्रश्च
द्विजानाह पुनर्वचः ।
नानादेशगतान् राजन्
राक्षसान् प्रतिषिध्य वै ॥ २५
अद्यैकं दिवसं विप्रा न वोऽस्तीह भयं क्वचित्
राक्षसेभ्यः प्रमोदध्वमिष्टतो यात माचिरम्
ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे विप्रसंघाः समन्ततः ।
गौतमोऽपि सुवर्णस्य भारमादाय सत्वरः २७
कृच्छ्रात्समुद्वहन् भारं न्यग्रोधं समुपागमत्
न्यषीदच्च परिश्रान्तः क्लान्तश्च क्षुधितश्च सः

१७१

तत इति ॥ १ ॥ विलिप्ताश्चन्दनेन ॥ १५ ॥ इष्टतः इष्टं देशम् ॥ २६ ॥

ततस्तमभ्यगाद्राजन् राजधर्मा खगोत्तमः ।
स्वागतेनाभिनन्द्यंश्च गौतमं मित्रवत्सलः २९
तस्य पक्षाग्रविक्षेपैः
क्लमं व्यपनयत्खगः ।
पूजां चाप्यकरोद्धीमान्
भोजनं चाप्यकल्पयत् ॥ ३०
स भुक्तवान्सुविश्रान्तो गौतमोऽचिन्तयत्तदा
हाटकस्याभिरूपस्य भारोऽयं सुमहान्मया ३१
गृहीतो लोभमोहाभ्यां दूरं च गमनं मम ।
न चास्ति पथि भोक्तव्यं प्राणसन्धारणं मम
किं कृत्वा धारयेयं वै प्राणानित्यभ्यचिन्तयत
ततः स पथि भोक्तव्यं प्रेक्षमाणो न किञ्चन ॥
कृतघ्नः पुरुषव्याघ्र मनसेदमचिन्तयत् ।
अयं बकपतिः पार्श्वे मांसराशिः स्थितो महान
इमं हत्वा गृहीत्वा च यास्येऽहं समभिद्रुतम

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कृतघ्नोपाख्याने
एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ [४१]

## १७२

भीष्म उवाच ।
अथ तत्र महार्चिष्मानन लो वातसारथिः ।
तस्याविदूरे रक्षार्थं खगेन्द्रेण कृतोऽभवत् १
स चापि पार्श्वे सुष्वाप
निःश्वस्तो बकराट् तदा ।
कृतघ्नस्तु स दुष्टात्मा
तं जिघांसुरथाग्रतः ॥ २
ततोऽलातेन दीप्तेन निःश्वस्तं निजघान तम्
निहत्य च मुदा युक्तः सोऽनुबन्धं न दृष्टवान्
स तं विपक्षरोमाणं कृत्वाऽग्नावपचत्तदा ।
तं गृहीत्वा सुवर्णं च ययौ द्रुततरं द्विजः ४
ततोऽन्यस्मिन् गते चाह्नि
विरूपाक्षोऽब्रवीत्सुतम् ।
न प्रेक्षे राजधर्माण-
मद्य पुत्र खगोत्तमम् ॥ ५
स पूर्वसंध्यां ब्रह्माणं वन्दितुं याति सर्वदा ।
मां वा दृष्ट्वा कदाचित्स न गच्छति गृहं खगः
उभे द्विरात्रिसंध्ये वै नाभ्यगात्स ममालयम्
तस्मान्न शुध्यते भावो मम स ज्ञायतां सुहृत
स्वाध्यायेन वियुक्तो हि ब्रह्मवर्चसवर्जितः ।
तद्गतस्तत्र मे शंका हन्यात्तं स द्विजाधमः ८
दुराचारस्तु दुर्बुद्धिरिङ्गितैर्लक्षितो मया ।
निष्कृपो दारुणाकारो दुष्टो दस्युरिवाधमः ९
गौतमः स गतस्तत्र तेनोद्विग्नं मनो मम ।
पुत्र शीघ्रमितो गत्वा राजधर्मनिवेशनम् १०
ज्ञायतां स विशुद्धात्मा
यदि जीवति मा चिरम् ।
स एवमुक्तस्त्वरितो
रक्षोभिः सहितो ययौ ॥ ११
न्यग्रोधं तत्र चापश्यत् कङ्कालं राजधर्मणः ।
स रुदन्नगमत्पुत्रो राक्षसेन्द्रस्य धीमतः १२
त्वरमाणः परं शक्त्या गौतमग्रहणाय वै ।
ततोऽविदूरे जगृहुर्गौतमं राक्षसास्तदा १३
राजधर्मशरीरं च पक्षास्थि चरणोज्झितम् ।
तमादायाथ रक्षांसि द्रुतं मेरुव्रजं ययुः ॥ १४
राज्ञश्च दर्शयामासुः शरीरं राजधर्मणः ।
कृतघ्नं पुरुषं तं च गौतमं पापकारिणम् १५
रुरोद राजा तं दृष्ट्वा सामात्यः सपुरोहितः
आर्तनादश्च सुमहानभूत्तस्य निवेशने ॥ १६
सस्त्रीकुमारं च पुरं बभूवास्वस्थमानसम् ।
अथाब्रवीन्नृपः पुत्रं पापोऽयं वध्यतामिति १७
अस्य मांसैरिमे सर्वे विहरन्तु यथेष्टतः ।
पापाचारः पापकर्मा पापात्मा पापसाधनः

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

१७२
अथेति ॥ १ ॥ अनुबन्धं पापदोषम् ॥ ३ ॥ तद्गतः हिंस्रधर्मा ॥ ८ ॥ कंकालं अस्थि ॥ १२ ॥

हन्तव्योऽयं मम मतिर्भवद्भिरिति राक्षसाः
इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसा घोरविक्रमाः ॥
नैच्छन्त तं भक्षयितुं पापकर्माणमित्युत ।
दस्यूनां दीयतामेष साध्वद्य पुरुषाधमः २०
इत्यूचुस्ते महाराज
राक्षसेन्द्रं निशाचराः ।
शिरोभिः प्रणताः सर्वे
व्याहरन् राक्षसाधिपम् ॥ २१
न दातुमर्हसि त्वं नो
भक्षणायास्य किल्बिषम् ।
एवमस्त्विति तानाह
राक्षसेन्द्रो निशाचरान् ॥ २२
दस्यूनां दीयतामेष कृतघ्नोऽद्यैव राक्षसाः ।
इत्युक्ता राक्षसास्तेन शूलपट्टिशपाणयः ॥ २३
कृत्वा तं खण्डशः पापं दस्युभ्यः प्रददुस्तदा
दस्यवश्चापि नैच्छन्त तमत्तुं पापकारिणम् ।
क्रव्यादा अपि राजेन्द्र कृतघ्नं नोपभुञ्जते ॥२४
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च
चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता राजन्
कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ २५
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च नृशंसश्च नराधमः ।
क्रव्यादैः कृमिभिश्चैव न भुज्यन्ते हि तादृशाः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कृतघ्नोपाख्याने
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ [ ४२ ]

## १७३

भीष्म उवाच ।
ततश्चितां बकपतेः कारयामास राक्षसः ।
रत्नैर्गन्धैश्च बहुभिर्वस्त्रैश्च समलंकृताम् ॥ १
ततः प्रज्वाल्य नृपतिर्बकराजं प्रतापवान् ।
प्रेतकार्याणि विधिवद्राक्षसेन्द्रश्चकार ह ।
तस्मिन्काले च सुरभिर्देवी दाक्षायणी शुभा
उपरिष्टात्ततस्तस्य सा बभूव पयस्विनी ॥ ३
तस्या वक्त्राच्च्युतः फेनः क्षीरमिश्रस्तदाऽनघ
सोऽपतद्वै ततस्तस्यां चितायां राजधर्मणः ॥४
ततः संजीवितस्तेन बकराजस्तदाऽनघ ।
उत्पत्य च समीयाय विरूपाक्षं बकाधिपः ॥
ततोऽभ्ययाद्देवराजो विरूपाक्षपुरं तदा ।
प्राह चेदं विरूपाक्षं दिष्ट्या संजीवितस्त्वया
श्रावयामास चेन्द्रस्तं विरूपाक्षं पुरातनम् ।
यथा शापः पुरा दत्तो ब्रह्मणा राजधर्मणः ७
यदा बकपती राजन् ब्रह्माणं नोपसर्पति ।
ततो रोषादिदं प्राह खगेन्द्राय पितामहः ८
यस्मान्मूढो मम सभां नागतोऽसौ बकाधमः
तस्माद्वधं स दुष्टात्मा न चिरात्समवाप्स्यति
तदयं तस्य वचनान्निहतो गौतमेन वै ।
तेनैवामृतसिक्तश्च पुनः संजीवितो बकः १०
राजधर्मा बकः प्राह प्रणिपत्य पुरंदरम् ।
यदि तेऽनुग्रहकृता मयि बुद्धिः सुरेश्वर ॥ ११
सखायं मे सुदयितं गौतमं जीवयेत्युत ।
तस्य वाक्यं समादाय वासवः पुरुषर्षभ १२
सिक्त्वाऽमृतेन तं विप्रं गौतमं जीवयत्तदा
सभाण्डोपस्करं राजंस्तमासाद्य बकाधिपः
संपरिष्वज्य सुहृदं प्रीत्या परमया युतः ।
अथ तं पापकर्माणं राजधर्मा बकाधिपः १४
विसर्जयित्वा सधनं प्रविवेश स्वमालयम् ।
यथोचितं च स बको ययौ ब्रह्मसदस्तथा १५
ब्रह्मा चैनं महात्मानमातिथ्येनाभ्यपूजयत् ।
गौतमश्चापि संप्राप्य पुनस्तं शबरालयम् ।
शूद्रायां जनयामास पुत्रान् दुष्कृतकारिण

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

१७३

तत इति ॥ १ ॥

शापश्च सुमहांस्तस्य
दत्तः सुरगणैस्तदा ।
कुक्षौ पुनर्भ्वाः पापोऽयं
जनयित्वा चिरात्सुतान् ॥ १७
निरयं प्राप्स्यति महत् कृतघ्नोऽयमिति प्रभो
एतत्प्राह पुरा सर्वं नारदो मम भारत ॥१८
संस्मृत्य चापि सुमहदाख्यानं भरतर्षभ ।
मयाऽपि भवते सर्वं यथावदनुवर्णितम् ॥ १९
कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम्
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः
मित्रद्रोहो न कर्तव्यः पुरुषेण विशेषतः ।
मित्रध्रुङ्नरकं घोरमनन्तं प्रतिपद्यते ॥ २१
कृतज्ञेन सदा भाव्यं मित्रकामेन चैव ह ।
मित्राच्च लभते सर्वं मित्रात्पूजां लभेत च ॥
मित्राद्भोगांश्च भुञ्जीत मित्रेणापत्सु मुच्यते ।
सत्कारैरुत्तमैर्मित्रं पूजयेत विचक्षणः ॥ २३
परित्याज्यो बुधैः पापः कृतघ्नो निरपत्रपः ।
मित्रद्रोही कुलाङ्गारः पापकर्मा नराधमः २४
एष धर्मभृतां श्रेष्ठ प्रोक्तः पापो मया तव ।
मित्रद्रोही कृतघ्नो वै किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तदा वाक्यं भीष्मेणोक्तं महात्मना
युधिष्ठिरः प्रीतमना बभूव जनमेजय ॥ २६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि आपद्धर्मपर्वणि कृतघ्नोपाख्याने
त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥ [ ४३ ]

## समाप्तं चापद्धर्मपर्व ।

---

कथातात्पर्यमाह-परित्याज्य इति ॥ २४ ॥
इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य
कृतौ भारतभावदीपे शान्तिपर्वण्यापद्धर्मार्थप्रकाशः समाप्तिमगमत् ॥ १७३ ॥

# महाभारतम्

## शान्तिपर्व ।

## –१२–

### मोक्षधर्मपर्व ३

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥**
**देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्**

**श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः ।**

तरणिमुकुरनेत्रोत्तेजनाभां शरीरप्रतिकृतिमनुमायी भूम्नि चंद्रान्तराभः ।
स्थिरदृगणुमसङ्गं यं नयत्यन्यथात्वं तदभयममृतं सत्प्रत्यगीडे गवेन्द्रम् ॥ १ ॥

कणभक्षमक्षचरणं जैमिनिकपिलौ पतञ्जलिं च नुमः ।
श्रीमद्व्यासवचोम्बुधिनयसीकरवर्षिणो मुदिरान् ॥ २ ॥

सर्वविद्येशतामाविश्चिकीर्षू पूर्वपूरुषौ ।
श्रीनारायणधीरेशरूपौ हरिहरौ नुमः ॥ ३ ॥

बहून् समाहृत्य विभिन्नदेश्यान् कोशान्विनिश्चित्य च पाठमग्र्यम् ।
प्राचां गुरूणामनुसृत्य वाचं व्याकुर्महे भारतमोक्षधर्मान् ॥ ४ ॥

उत्तानेष्विह कोशविग्रहबलं पद्येषु नैवाश्रितं
गंभीरेषु न सेतवो न विहिताः कूटा न न स्फोटिताः ।
न च्छिन्ना न तमश्चराननततिर्भक्ता न नाह्लादिता
नो दीनाश्च विभीषणा न विहिताः श्रीलक्ष्मणार्याश्रितैः ॥ ५ ॥

ननु मोक्षो नाम शरीरनाशादन्यो नास्ति 'अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' इति श्रुतेः । स च स्वयमेवोपनमतीति किं तदर्थं शास्त्रेणेति चेन्न–

**कर्तव्यमेव कर्मेह जानताऽमित्रकर्शन ।**
**अकर्माणो हि जीवन्ति स्थावरा नेतरे जनाः**
**यावद्गोस्तनपानाच्च यावच्छायोपसेवनात् ।**

**प्राणिनः कर्मणा वृत्तिमाप्नुवन्ति नरर्षभ** 'इति आरण्यके प्राक्कर्मसद्भावसाधनात् स्थूलदेहनाशेऽपि कर्माश्रयलिंगदेहनाशायोगात् । तत्र श्लोकार्थः–न जीवन्तीति सम्बन्धः इतरे जना इति दृष्टान्तः । तथा चायं प्रयोगः– स्थावरजीविका प्राक्कर्मपूर्विका जीविकात्वात् पाकादिक्रियापूर्वकास्मदादिजीविकावदिति । यावदिति कार्त्स्न्ये

## १७४-[१]

युधिष्ठिर उवाच ।

**धर्माः पितामहेनोक्ता राजधर्माश्रिताः शुभाः**
**धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हसि पार्थिव ॥ १**

भीष्म उवाच ।

**सर्वत्र विहितो धर्मः सत्यप्रेत्य तपःफलम् ।**
**बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया २**

ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ । गोस्तनपानमारभ्य छायोपसेवनं प्रतिमाद्वारकं भोगं चारभ्य सर्वां वृत्तिं जीविकां कर्मणैवाप्नुवन्तीति योजना । सद्योजातस्य हि गोवत्सस्य स्तनपाने प्रवृत्तिः प्राग्भवीयेष्टसाधनताज्ञानजन्यसंस्कारपूर्विका अस्मदादिपाकादिप्रवृत्तिवद्दृश्यते । एवं मरणात् त्रासोऽपि प्राचीनमरणजदुःखानुभवसंस्कारात्प्राणिमात्रस्य सिद्धोऽतोऽस्ति प्राचीनं कर्म । किंच कौलिकशास्त्रप्रसिद्ध्या यथा चैत्रः स्वदेहे कंटकेन तुन्ने सति व्यथते एवं शत्रुकृतायां स्वदेहप्रतिमायामपि कण्टकेन तुन्नायां व्यथते । तत्र व्यथाहेतुर्नान्तरं धातुवैषम्यं दृश्यते बाह्यं वा कण्टकवेधादि दृष्टं द्वारमस्ति किं तु केवलमदृष्टमेव । एवं प्राक्कर्मसद्भावसिद्धेस्तत्तत्पूर्वपूर्वजन्मकल्पनयाऽनादिः संसारः ।एवमनादित्वादानन्त्यं चास्य सिद्धम् । तर्हि अनादिभावस्य ध्वंसायोगात्पुनरनर्थकं शास्त्रमिति चेत् सत्यम् । न वयमात्मनि कर्तृत्वभोक्तृत्वादेः संसारस्य सम्बन्धं सत्यं वदामः । यक्षस्य परशरीर इव चितो लिंगशरीरे आभिमानिकतादात्म्यादपि तद्धर्मभाक्त्वोपपत्तेः । अभिमन्तृत्वमपि न वास्तवं अनुपदोक्तच्छायोपसेवनन्यायेन परकल्पितसम्बन्धेनापि व्यवहारनिर्वाहे सति तत्सत्यत्वकल्पनानौचित्यात् । संसारस्य सुप्तिमूर्च्छादावदर्शनेन कादाचित्कप्रतीतिविषयतया रज्जूरगवत्कल्पितत्वेनात्मनि तत्सम्बन्धस्य सत्यत्वायोगाच्च । यथा नौकास्थस्तीरतरौ चाञ्चल्यमारोपयति । यथा वा प्रत्यग्भूतमपि मुखं मुकुरः परागिव दर्शयति । यथा वा सूक्ष्ममपि पुस्तकाक्षरमुपनेत्रमहिम्ना स्थूलमिव भाति । तद्वत्कूटस्थे दृङ्मात्रे सूक्ष्मे प्रतीचि द्वितीयेन्दुतुल्येश्वरसृष्टदेहप्रतिमाद्वारा चञ्चलत्वदृश्यत्वस्थूलत्वाद्यारोपो युज्यत एवेति नास्माकं किंचिदवद्यम् । यस्य त्वनादिः सत्यश्च संसारस्तस्यैव पूर्वमायुक्तो दोषोऽपरिहार्यः । तस्मात्संसारकल्पिकाया अविद्याया आत्मविद्यया निवृत्तौ समूलस्य संसारस्योच्छेदोऽवश्यंभावीति विद्योत्पत्तये शास्त्रमारंभणीयमिति सिद्धम् । तत्र नानाविधान् दुरनुष्ठेयान् क्षुद्रफलान् राजधर्मानापद्धर्मांश्च श्रुत्वाऽत्यन्तमुद्विग्नः सर्वापन्निवारणमात्यन्तिकश्रेयोहेतुं धर्मं जिज्ञासमानो राजा युधिष्ठिर उवाच- **धर्माः पितामहेनोक्ता राजधर्माश्रिताः शुभाः धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हसि पार्थिव इति।** पितामहेनेति श्रैष्ठ्यं वात्सल्यं च सूचितम् । राजधर्माश्रिता राजधर्मांगत्वेनोपस्थिता धर्मा आपद्धर्मा उक्ताः । श्रेष्ठः प्रशस्यतमो मोक्षधर्मस्तमाश्रमिणामित्युक्तेर्गृहस्थादीनां सर्वेषामप्यत्राधिकारो दर्शितः। तथा च **याज्ञवल्क्यः**-' स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु'इति ॥१॥कर्मज्ञानफले विभजति ज्ञाने श्रैष्ठ्यं वक्तुम् ॥ **सर्वत्रेति** । सर्वत्राश्रमेषु धर्मो विहितो वेदेन ' अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः' इत्यादिना अदृष्टफलः स इत्यर्थः । **सत्यप्रेत्य तपःफलम्** सति सद्वस्तुनि विषये तप आलोचनं श्रवणमनननिदिध्यासनात्मकं तस्य फलं साक्षात्कारः सः अप्रेत्य मरणात्प्रागेव भवति । ज्ञानं दृष्टफलमित्यर्थः। ननु तर्हि तप एव क्रियतां किं धर्मेणेत्याशंक्याह-**बह्विति। अयमर्थः**- ' विविदिषन्ति यज्ञेन ' इत्यादिश्रुतेरश्वेन जिगमिषतीतिवत्करणस्य धात्वर्थेनान्वयात् विद्यार्थत्वं कर्मणाम् । यद्वा । सन्प्रत्ययस्य प्राधान्यात् ज्ञानेच्छैव कर्मसाध्या । यथोक्तम् ।

'प्रत्यग्विविदिषां बुद्धेः कर्माण्युत्पाद्य शुद्धितः ।
कृतार्थान्यस्तमायान्ति प्रावृडन्ते घना इव' इति ।

तथा ' यो वेदेदं मेऽनेनांगं संस्क्रियते ' । इति स्मृतेश्चित्तशुद्ध्यर्थमेव कर्माणीति त्रेधा विभागः । तत्राद्यपक्षे विशिष्टगुर्वादिलाभो निष्प्रत्यूहं श्रवणादिसिद्धिश्च कर्मभिरेव जन्या । द्वितीये इच्छोत्पत्तिरेव कर्मफलं इतरत्तु यत्नान्तरसाध्यम् । तृतीये चित्तशुद्धिरेव कर्मफलं ज्ञानेच्छादिकं सर्वं यत्नान्तरसाध्यमिति विवेकः। एवं ज्ञानार्थमपि कृतात्कर्मणस्तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गन्ध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते इत्यापस्तंबोक्ताम्रनिदर्शनादानुषाङ्गिकं स्वर्गाद्यपि भवति । तथा स्वर्गार्थमपि कृतं तत् विशुद्धदेवतादिदेहोत्पादनद्वारा मोक्षाय भवति। यथाहुः-'विड्वराहादिदेहेन नचैन्द्रं भुज्यते पदम्' इति। 'भोगं भंगुरमीक्षन्ते' 'बुद्धिशुद्ध्यनुरोधतः' इति च । तथा दृष्टफलः पुत्रकामेष्ट्यादिरपि धर्मः सद्यः फलप्रदर्शनेन वैदिकधर्मे श्रद्धोत्पादनद्वारा श्रेयोहेतुरिति न धर्मक्रिया विफला । सर्वथाऽपि कृतो धर्मो मोक्षद एवेत्यर्थः । स्वर्ग्यः सत्यफलोदय इतिपाठे स्वर्गार्थं तैस्तैर्वाक्यैर्विहितोऽपि धर्मः सत्यमबाधितं फलं मोक्षाख्यं तदुदयाय भवति । विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादिश्रुत्या संयोगपृथक्त्वन्यायेन 'दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात्' इति वाक्यान्तरेण नित्यस्यापि दध्न इन्द्रियार्थत्वमिव स्वर्गाद्यर्थानामपि यज्ञादीनां विद्यार्थत्वमिष्टम्। केवलकाम्यस्यापि धर्मस्य परंपरया परमपुरुषार्थत्वमाह-**बह्विति** । पाठान्तरं तु नादरणीयम् २

यस्मिन्यस्मिंस्तु विषये
यो यो याति विनिश्चयम् ।
स तमेवाभिजानाति
नान्यं भरतसत्तम ॥ ३
यथा यथा च पर्येति लोकतन्त्रमसारवत् ।
तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः ४
एवं व्यवसिते लोके बहुदोषे युधिष्ठिर ।
आत्ममोक्षनिमित्तं वै यतेत मतिमान्नरः ॥ ५
युधिष्ठिर उवाच ।
नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते ।
यया बुद्ध्या नुदेच्छोकं तन्मे ब्रूहि पितामह ६
भीष्म उवाच ।
नष्टे धने वा दारे वा
पुत्रे पितरि वा मृते ।
अहो दुःखमिति ध्यायन्
शोकस्यापचितिं चरेत् ॥ ७
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा सेनजितं विप्रः कश्चिदेत्याब्रवीत्सुहृत् ८
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं राजानं शोकविह्वलम् ।
विषण्णमनसं दृष्ट्वा विप्रो वचनमब्रवीत् ॥ ९
'किं नु मुह्यसि मूढस्त्वं
शोच्यः किमनुशोचसि ।
यदा त्वामपि शोचन्तः
शोच्या यास्यन्ति तां गतिम् ॥ १०
त्वं चैवाहं च ये चान्ये त्वामुपासन्ति पार्थिव
सर्वे तत्र गमिष्यामो यत एवागता वयम्' ११
सेनजिदुवाच ।
का बुद्धिः किं तपो विप्र
कः समाधिस्तपोधन ।
किं ज्ञानं किं श्रुतं चैव
यत्प्राप्य न विषीदसि ॥ १२
ब्राह्मण उवाच ।
पश्य भूतानि दुःखेन व्यतिषिक्तानि सर्वशः
उत्तमाधममध्यानि तेषु तेष्विह कर्मसु ॥ १३
आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम
यथा मम तथाऽन्येषामिति चिन्त्य न मे व्यथा
एतां बुद्धिमहं प्राप्य न प्रहृष्ये न च व्यथे १४
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ १५
एवं पुत्राश्च पौत्राश्च ज्ञातयो बान्धवास्तथा ।
तेषां स्नेहो न कर्तव्यो विप्रयोगो ध्रुवो हि तैः

---

**यस्मिन्निति** । विद्या तदिच्छा चित्तसंस्कारस्वर्गपुत्रादिकामेषु यस्मिन्विषये द्वारभूते कामे अभिजानाति श्रेयस्त्वेन ॥ ३ ॥ **पर्येति** पर्यालोचयति तेनैव द्वारेण चित्तशुद्धौ सत्याम् असारं तृणादि तद्वत्तुच्छम् ॥ ४ ॥ व्यवसिते निश्चिते लोके स्थावरादिसत्यलोकपर्यन्ते । बहुदोषे ऐश्वर्यतारतम्यक्षयिष्णुत्वादिदोषबहुले । दोषदर्शननिश्चयेन वैराग्ये सतीत्यर्थः । व्यवस्थिते इति पाठे विविधरूपेणावस्थिते सति ॥ ५ ॥ तन्मे तां मे ॥ ६ ॥ ध्यायन् 'अतोऽन्यदार्तम्'इति श्रुतेरात्मनोऽन्यत्सर्वं दुःखस्वरूपमिति श्रुत्यनुमानादिना आलोचयन् अपचितिं चरेत् —'तरति शोकमात्मवित्' इति श्रुतेरात्मज्ञानार्थं शोकप्रतीकारहेतुं शमादिकमनुतिष्ठेदित्यर्थः ॥७॥ स तं शोकेत्यत्र पुत्रशोकेत्येव पाठः । सन्तापोऽन्तर्बहिर्दाहः विह्वलत्वं बाह्येन्द्रियचलनशून्यत्वम् । विषण्णं मूढं मनो यस्य ॥९॥ **किन्त्विति** । मूढाः सर्वेऽपि शोच्याः शोकाक्रान्ताश्चेत्यतो निःशोकं पदमन्वेष्टव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ तदेवाह-**त्वमिति** त्वं चाहं चेति भोक्तृवर्ग उक्तः । **ये चेति** । देहेंद्रियवियदादिभोग्यवर्गः । तद्द्वयं यत आगतं यत्र लवणोदकवल्लीयते तदद्वैतमशोकं पदं द्वैतं तु सशोकमित्यर्थः । तथाच श्रुती भवतः-'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इति 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति च ॥ ११ ॥ तत्र बुद्धिरुपपत्तिः । तपस्तदालोचनम् । समाधिर्बुद्धेरेकत्र पर्यवसानम् । ज्ञानं साक्षात्कारः । श्रुतं एतेष्वर्थेषु प्रमाणम् ॥ १२ ॥ तत्र बुद्धिमाह सार्धद्वयेन—**पश्येति** । व्यतिषिक्तानि व्याप्तानि उत्तमाधममध्यानि देवतिर्यङ्मनुष्यादीनि । कर्मसु निमित्तभूतेषु ॥ १३ ॥ एवं कर्मजं दुःखं देवादीनामप्यस्तीति दृश्यमानभूतदृष्टान्तेनोपपाद्य तन्निवृत्तावप्युपपत्तिमाह—**आत्मेति** । योऽयमहमिति प्रतीतिगोचर आत्मा सोऽपि न मम चिन्मात्रस्य स्वरूपम् । चिद्भास्यत्वात्तस्य । भास्यभासकयोश्च घटालोकयोः प्रसिद्धो भेदः । एवमहमर्थाच्चिदात्मानं विविच्य तत्रैव पृथिव्याद्यध्यस्तामिति सर्वस्य तदनन्यत्वमाह-**सर्वा वा पृथिवी मम स्वरूपमिति** । एतदेवाभ्यासेन द्रढयति-**यथा ममेति** । अयं भावः-यथा दर्पणप्रतिबिम्बितं मुखं न स्वरूपतः स्वमुखं दृश्यत्वात् नाप्यन्यत् तद्व्यतिरेकेणाभावात् एवं मायाकल्पितेषु इन्द्रियमनोविद्यादर्पणेषु स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतरेषु प्रतिफलिताश्चिदात्मा विराट्सूत्रान्तर्यामिभावेन दृश्यो न प्रत्यगात्मा नापि ततोऽन्य इति । एवमुपपन्नमात्मैकत्वं चिन्त्य ध्यानेन साक्षात्कृत्य न मे व्यथेति तत्फलमुक्तम् । तद्व्याचष्टे-**एतामित्यर्धेन** । हर्षोऽपि वृथैवेति भावः ॥ १४ ॥ बुद्धिमुक्त्वा तप आह-**यथेत्यादिना** ॥ १५ ॥ तपःफलमाह—**एवमिति** ॥ १६ ॥

अदर्शनादापतितः
पुनश्चादर्शनं गतः ।
न त्वाऽसौ वेद न त्वं तं
कः सन् किमनुशोचसि ॥ १७

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम् ।
सुखात्सञ्जायते दुःखं दुःखमेवं पुनः पुनः १८

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
सुखदुःखे मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्ततः ॥ १९

सुखात्त्वं दुःखमापन्नः पुनरापत्स्यसे सुखम् ।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्

शरीरमेवायतनं सुखस्य
दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम् ।
यद्यच्छरीरेण करोति कर्म
तेनैव देही समुपाश्नुते तत् ॥ २१

जीवितं च शरीरेण तेनैव सह जायते ।
उभे सह विवर्तेते उभे सह विनश्यतः ॥ २२

स्नेहपाशैर्बहुविधैराविष्टविषया जनाः ।
अकृतार्थाश्च सीदन्ते जलैः सैकतसेतवः २३

स्नेहेन तिलवत्सर्वं सर्गचक्रे निपीड्यते ।
तिलपीडैरिवाक्रम्य क्लेशैरज्ञानसम्भवैः ॥ २४

सञ्चिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः ।
एकः क्लेशानवाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥२५

पुत्रदारकुटुम्बेषु प्रसक्ताः सर्वमानवाः ।
शोकपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ २६

पुत्रनाशे वित्तनाशे ज्ञातिसम्बन्धिनामपि ।
प्राप्यते सुमहद्दुःखं दावाग्निप्रतिमं विभो ।
दैवायत्तमिदं सर्वं सुखदुःखे भवाभवौ ॥ २७

असुहृत्ससुहृच्चापि सशत्रुर्मित्रवानपि ।
सप्रज्ञः प्रज्ञया हीनो दैवेन लभते सुखम् २८

नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः ।
न च प्रज्ञाऽलमर्थानां न सुखानामलं धनम्२९

---

**अदर्शनादिति** । नास्ति दर्शनं दृश्यत्वेन द्रष्टृत्वेन वा प्रकाशो यस्य तददर्शनं शुद्धचिन्मात्रं तस्मात् । आपतितस्तव पुत्र इति शेषः । त्वा त्वां चिन्मात्रं असौ पुत्रो न वेद स्वप्नोपलब्धपुरुषवत्त्वत्कल्पनामात्रत्वात्तस्य तथा त्वमपि तं चिन्मात्रं न वेत्थ चितश्चिद्गोचरत्वायोगात् । किमनुशोचसीत्यस्य अयं भावः-शोच्यः पुत्रः किंस्विदात्मा उताचिद्रूपो देहो वा। नाद्यः। चित एकत्वादविनाशित्वाच्च कः केन शोच्यः। नान्त्यः। लोष्टादेरपि शोच्यतापत्तेरिति ॥ १७ ॥ कुतस्तर्ह्ययं शोक उल्लसतीत्याशंक्याह—तृष्णेतित्रिभिः । तृष्णार्तिः विषयेषु प्राप्यमाणेष्वपि मोहादतृप्तिरूपा पीडा। दुःखार्तिर्दुःखनाशस्तज्जं सुखम्। तेन दुःखार्तिरेव सुखमिति वदन्परास्तः॥१८॥ शरीरं स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधम्। तदेव सुखादेरायतनं आश्रयो न त्वात्मा तदभावे सुप्तिसमाध्योरात्मनि दुःखाद्यनुपलंभात् जाग्रत्स्वप्नयोस्तत्र तदुपलंभस्तु देहोपाधिकः । जलचाञ्चल्यमिव जलचन्द्रे । दुःखादेरात्मधर्मत्वे वह्न्यौष्ण्यवदाश्रयनाशमन्तरेणात्यन्तिकदुःखोच्छेदायोगात् । घटे यावद्रूपनाशादर्शनादिति भावः । यद्यदित्यत्राद्यो यच्छब्दो हेत्वर्थः । यस्माच्छरीरमेव दुःखाद्याश्रयस्तस्माद्देही देहाभिमानी येन यत्कर्म करोति तेनैव तत्फलमश्नुते। तेन यः कर्ता स एव चिदाभासो भोक्ता न तु प्रकृतिः कर्त्री चिदात्मा भोक्तेति वदतः सांख्यस्यावकाशोऽस्ति ॥ २१ ॥ जीवितं जीवनहेतुलिङ्गशरीरं शरीरेण स्थूलेन । पाठान्तरे जात्या स्वभावेनैव सह जायते तेनैवेति स्थूलस्य लिंगादनन्यत्वमुक्तम्।लिंगमेव हि चिरभावितं स्थूलं भवतीत्यर्थः। तथा चोक्तं वासिष्ठे—

'आतिवाहिक एवायं त्वादृशैश्चित्तदेहकः ।
आधिभौतिकया बुद्ध्या गृहीतश्चिरभावनात्'इति ।

विवर्तेते संसारकाले विविधेन रूपेण वर्तेते विनश्यतश्च मोक्षे स्थूलदेहवत्कर्त्रादिधर्मकं लिंगमपि नश्यतीत्यर्थः ॥ २२ ॥ आविष्टाश्चित्ते मग्ना विषया येषां ते सेतव इवेति लुप्तोपमा । सीदन्ते सीदन्ति। चित्तस्थैर्विषयैरिति शेषः२३ स्नेहेन निमित्तेन तिलपीडैस्तैलिकैः क्लेशैरविद्यादभिरनित्याशुचिदुःखानात्मसु देहादिषु नित्यत्वशुचित्वसुखत्वात्मत्वारोपप्रभृतिभिरज्ञानमूलैः । ततश्चाज्ञाननाशात् क्लेशोच्छेदे प्रवृत्त्याद्यभावेन देहदुःखाद्यभावान्निष्प्रत्यूहो मोक्षः सिद्धः। तथाचाक्षपादचरणाः-**दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः** इति ॥२४॥ अशुभं चौर्यादि कलत्रापेक्षया भार्यादिपोषणार्थं धनसुखभागिनः सर्वे पापफलभागी तु एक एवायमित्यर्थः ॥ २५ ॥ **पुत्रेति**। यथा जीवनाशे मरणे दुःखं प्राप्यते तथा पुत्रस्य ज्ञात्यादेश्च नाशेऽपीति तेषु ममता न कार्येत्यर्थः । भवाभवौ ऐश्वर्यानैश्वर्ये ॥२७॥ **सुहृत्** प्रत्युपकारमनपेक्ष्य उपकारकर्ता । **मित्रं** प्रत्युपकारमपेक्ष्य उपकारकर्तृ। तयोः प्रज्ञायाश्च भावेऽभावे वा शत्रुयोगेऽपि वा दैवादेव सुखं लभते निर्दैवाः सत्यपि सुखसाधने दुःखिन एव तृष्णाधिक्यात् सदैवास्तु तदभावात्सुखिन एव तृष्णात्यागादित्यर्थः २८ सुखाय सुखं दातुं नालं पर्याप्ताः अर्थानां लाभे इति शेषः२९

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ३०
बुद्धिमन्तं च शूरं च मूढं भीरुं जडं कविम् ।
दुर्बलं बलवन्तं च भागिनं भजते सुखम् ३१
धेनुर्वत्सस्य गोपस्य स्वामिनस्तस्करस्य च ।
पयः पिबति यस्तस्या धेनुस्तस्येति निश्चयः ॥
ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः ।
ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः
अन्त्येषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।
अन्त्यप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमन्त्ययोः ३४
ये च बुद्धिसुखं प्राप्ता द्वन्द्वातीता विमत्सराः
तान्नैवार्था न चानर्था व्यथयन्ति कदाचन ३५
अथ ये बुद्धिमप्राप्ता व्यतिक्रान्ताश्च मूढताम्
तेऽतिवेलं प्रहृष्यन्ति सन्तापमुपयान्ति च ॥
नित्यं प्रमुदिता मूढा दिवि देवगणा इव ।
अवलेपेन महता परिभूत्या विचेतसः ॥ ३७
सुखं दुःखान्तमालक्ष्य दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयं
भूतिस्त्वेवं श्रिया सार्धं दक्षे वसति नालसे
सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियं
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥ ३९
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥
बुद्धिमन्तं कृतप्रज्ञं शुश्रूषुमनसूयकम् ।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरं
एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्तचित्तश्चरेद्बुधः ।
उदयास्तमयज्ञं हि न शोकः स्प्रष्टुमर्हति ४२

जाड्यं मूढता असमृद्धये धनादिनाशाय लोको भोग्यप्रपञ्चस्तस्य पर्यायो निर्माणं तत्र विषये वृत्तान्तं सिद्धान्तं प्राज्ञस्तत्त्ववित्।'पर्यायस्तु प्रकारे स्यान्निर्माणेऽवसरे क्रमे' इति **विश्वः**। तत्त्ववित्तु मरीचिकोदकवल्लोकं पश्यन्न सुखे दुःखे वा हर्षविषादौ लभते इत्यर्थः ॥ ३० ॥ मूढं निर्बुद्धिं जडं अलसं कविं दीर्घदर्शिनं भागिनं सदैवं भजते स्वयमेव उपनमते न तु तदर्थं यत्नोऽपेक्ष्य इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ **धेनुरिति**। पयः पातुरेव धेनुः इतरेषां तु तत्र ममता व्यर्था । तस्मादावश्यकादधिके स्पृहा न कार्येत्यर्थः यथोक्तम्—

'गोशतादपि गोक्षीरं प्रस्थं धान्यशतादपि ।
प्रासादादपि खट्वार्धं शेषाः परविभूतयः' ॥ इति

॥ ३२ ॥ मूढतमाः सुषुप्तिस्थाः बुद्धेः परंगताः निर्विकल्पसमाधिस्थाः। एधन्ते वृद्धिं ब्रह्मभावाख्यां प्राप्नुवन्ति। 'सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति । ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति सुषुप्तिसमाध्योर्ब्रह्मभावश्रुतेः । अत्र सुषुप्त्युपन्यासो दृष्टान्तार्थः । अत एव **माध्यंदिनाः**-'यद्वै तन्न पश्यति' इत्यादिना सुषुप्तिसमाध्योर्द्वैतादर्शनं तुल्यवदामनन्ति। सूत्रमपि-**स्वाप्ययसम्पत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि** इति।स्वाप्यये सुषुप्तौ सम्पत्तौ कैवल्येऽत्र द्वैतादर्शनं स्पष्टीकृतमिति सूत्रार्थः। अन्तरं भेदः सञ्जातोऽस्य जाग्रत्स्वप्नसविकल्पसमाधिस्थस्य सः अन्तरितः भेददर्शी क्लिश्यति । अथ 'यत्रान्यत्पश्यति तदल्पम्। नाल्पे सुखमस्तीतोऽन्यदार्तम्' इत्यादि श्रुतिभ्यः ॥ ३३ ॥ अन्त्येष्विति बहुवचनं सुप्तिसमाधिव्यक्त्यभिप्रायम् । अन्त्ययोरिति द्विवचनं तु तज्जात्यभिप्रायम्। अन्तरं मध्यम् ॥ ३४ ॥ विवेकिनस्त्वन्तरस्था अपि न क्लिश्यन्तीत्याह—**ये चेति**। बुद्धिसुखं बुद्धेः परं सुखं स्वरूपसुखं प्राप्ताः। अत एव द्वन्द्वातीताः सुखदुःखाद्यतीताः मत्सरः परोत्कर्षासहिष्णुत्वं तद्वर्जिताः । अर्थाः स्त्र्यादयः अनर्थास्तद्वियोगाः ॥३५॥ अल्पज्ञं प्रति प्राह—**अथ ये इति**। अतिवेलं अत्यन्तम् ॥ ३६ ॥ अस्यज्ञं प्रति प्राह—**नित्यमिति**। अवलेपेन गर्वेण मूढाः सदसद्विवेकहीनाः विचेतसः कामादिभिर्ग्रस्तचित्ताः । परिभूत्या पराभवेन ॥ ३७ ॥ तर्हि मौढ्यमेव सुखदमित्याशंक्याह—**सुखमिति**। दुःखं अन्ते यस्य। उदर्कदुःखं मौढ्यसुखं न श्रेय इत्यर्थः। आलक्ष्य दुःखं चापि सुखोदयमिति पाठे सुखेष्वसक्तो दुःखादनुद्विग्नो दाक्ष्यं ज्ञानसाधनानुष्ठाने उत्साहं श्रयेदित्यर्थः। आलस्यं दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयमिति पाठे त्वालस्यं ज्ञानसाधनेष्वप्रवृत्तिः दुःखं दुःखकरं भूतिरणिमाद्यैश्वर्यम्। श्रिया 'ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुत्युक्तया विद्यया॥३८॥ सुखदुःखसाधने प्रियाप्रिये हृदयेन हर्षशोकमयेन अपराजितः अवशीकृतः ॥३९॥ **शोकेति**। शोकमूलानि इष्टवियोगादीनि । भयमूलानि अनिष्टसंयोगादीनि । आविशन्ति स्वकार्योत्पादनेन व्याप्नुवन्ति ॥ ४० ॥ न पण्डितमित्येतद्विवृणोति-**बुद्धीति**। बुद्धिः ग्रन्थधारणसामर्थ्यं तद्वन्तम्। कृता स्वतःसिद्धा प्रज्ञा ऊहापोहकौशलं यस्य तम्। शुश्रूषुं शास्त्राभ्यासपरम्। अनसूयकं शास्त्रीयेऽर्थे दोषदृष्टिरसूया तद्रहितम्। दान्तं जितबाह्येन्द्रियम्। जितेन्द्रियं जितचित्तम् ॥ ४१ ॥ गुप्तं कामादिभ्यो रक्षितं चित्तं येन सः गुप्तचित्तः। युक्तचित्त इति पाठे प्रतीचि योजितचित्त इत्यर्थः। अत एव उदयास्तमयज्ञं जगदुत्पत्तिलयस्थानं ब्रह्म तज्ज्ञं युक्तचित्तत्वात्। एतेन 'तरति

यस्मिन्निमित्ते भवेच्छोकस्तापो वा दुःखमेव च ।
आयासो वा यतो मूलमेकाङ्गमपि तत्त्यजेत्
किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम् ।
तदेव परितापार्थं सर्वं संपद्यते तथा ॥ ४४
यद्यत्त्यजति कामानां तत्सुखस्याभिपूर्यते ।
कामानुसारी पुरुषः कामाननुविनश्यति ४५
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥
पूर्वदेहकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
प्राज्ञं मूढं तथा शूरं भजते यादृशं कृतम् ४७

एवमेव किलैतानि प्रियाण्येवाप्रियाणि च ।
जीवेषु परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च
एतां बुद्धिं समास्थाय सुखमास्ते गुणान्वितः
सर्वान्कामान् जुगुप्सेत कामान्कुर्वीत पृष्ठतः
वृत्त एष हृदि प्रौढो मृत्युरेष मनोभवः ।
क्रोधो नाम शरीरस्थो देहिनां प्रोच्यते बुधैः

यदा संहरते कामान्
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
तदाऽऽत्मज्योतिरात्माऽय-
मात्मन्येव प्रपश्यति ॥ ५१

शोकमात्मावित्' इति श्रुत्यर्थो दर्शितः । उदयास्तमयेत्यतः प्राक् 'शुक्लकृष्णगतिज्ञं तं देवासुरविनिर्गमम्' इत्यर्धं गौडाः पठन्ति । तस्यार्थः—शुक्लं सत्त्वं कृष्णं तमः ताभ्यां प्राप्ये गती प्रकाशावरणकार्ये मुक्तिसंसाराख्ये तज्ज्ञम् । **देवाः** दानदयादिरूपाः सात्त्विक्यश्चेतोवृत्तयः। **असुराः** राजस्यस्तामस्यः लोभमोहाद्यास्ता एव तासामुभयीनामपि विशेषेण निर्गमो बहिर्भावो यस्मात्तम् युक्तचित्तो हि योगबलेन मुक्तिसंसारयोस्तत्त्वं जानन् निरुद्धसदसद्वृत्तिर्ब्रह्मभूतो भवत्यतस्तं शोको न स्पृशतीति ॥४२॥ यतः आयासस्तन्मूलं कारणं आयासादेः एकाङ्गं शरीरैकदेशभूतमपि त्यजेत् किमुत धनदारादि ॥ ४३॥ दारादौ ममतैवानर्थहेतुः प्रत्युत तत्त्याग एव सुखकर इत्याह द्वाभ्यां **—किञ्चिदेवेति** ॥ ४४ ॥ कामानां विषयाणां मध्ये ॥ ४५ ॥ वैराग्यं स्तौति—**यच्चेति** । लोके मानुषे दिव्यं स्वर्गभवं तृष्णाक्षयो वैराग्यम् ॥ ४६ ॥ नन्वेवं धनादित्यागे कथं देहनिर्वाह इत्याशंक्याह—**पूर्वेति** । दृष्टसुखार्थं ऐहिको यत्नो व्यर्थ इत्यर्थः ॥ ४७ ॥ ननु पूर्वकर्मापि दृष्टयत्नापेक्षमत आह—**एवमिति** । यथा रोगारोग्यादिजानि दुःखसुखानि अप्रार्थितान्येव लभ्यन्ते एवमेव प्रियाप्रियासम्बन्धादीनि लाभनाशादीनि च लभ्यन्ते इत्यनर्थको यत्न इत्यर्थः ॥४८॥ एतां यच्च कामसुखमित्यादिना उक्तां मुखं निरुद्योगं यथा स्यात्तथा गुणान्वितः वैतृष्ण्यान्वितः जुगुप्सेत निन्देत कामान् विषयान् कामात् हठात् क्रोधं कुर्वीतेत्यपि वा पाठः ॥ ४९ ॥ वृत्तो नित्यनिष्पन्नमृत्युः जन्ममरणाख्यसंसारद्वारभूतः । मनोभवः कामः स एव केनचिन्निमित्तेन प्रतिहतः क्रोधरूपेण परिणमते इत्यर्थः ॥ ५० ॥ **यदेति** । त्रिविधाः कामाः स्थूलसूक्ष्मकारणोपाधिभोग्या विषयाः । तत्र स्थूलानां त्यागः सङ्गवर्जनेन स्थवीयानेव । सूक्ष्माणां वासनामयानां त्यागो वैराग्यदार्ढ्यात्सर्वविषयस्मरणस्याप्यभावः । एतानपि गुरूक्तयुक्त्या परित्यज्य हार्दाकाशाख्यं कारणं ब्रह्मप्रविष्टो योगी । 'अत्र हि सर्वे कामाः समाहिता यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दते' इतिश्रुतेर्वर्तमानं त्रिलोक्यन्तर्गतमतीतानागतं च कामजातं सङ्कल्पसमकालोत्थितं पुरो वर्तमानमेव पश्यन् कदाचिद्वैराग्यमान्द्यान्मुह्येतातस्तानपि संहरेत् । तथा च सूत्रं भगवतः पतञ्जलेः—स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्'इति । व्याख्यातं चैतद्भगवता बादरायणेन–तत्र मधुमतीभूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्त्वबुद्धिमनुपश्यन्तः स्थानैरुपनिमन्त्रयन्ते । भो इहास्यतां कमनीयोऽयं भोगः कमनीयेयं कन्या रसायनमिदं जरामृत्यू बाधते । वैहायसमिदं यानम् । अमी कल्पद्रुमाः । पुण्या मन्दाकिनी । सिद्धा महर्षयः । उत्तमा अनुकूलाश्च अप्सरसः । दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी । वज्रोपमः कायः । स्वगुणैः सर्वमिदमप्युपार्जितमायुष्मता । प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरं स्थानं देवानां प्रियमित्येवमभिधीयमानः । सङ्गदोषान् भावयेत् । घोरेषु संसाराङ्गारेषु पच्यमानेन मया जननमरणान्धकारे विवर्तमानेन कथंचिदासादितः क्लेशतिमिरविनाशी योगप्रदीपः । तस्य चैते तृष्णायोनयो विषयवायवः प्रतिपक्षाः । स खल्वहं लब्धालोकः कथमनया विषयमृगतृष्णया वञ्चितः तस्यैव पुनः प्रदीप्तस्य संसाराग्नेरात्मानमिन्धनीकुर्यामिति । स्वस्ति वः स्वप्नोपमेभ्यः कृपणजनप्रार्थनीयेभ्यो विषयेभ्य इत्येवं निश्चितमतिः समाधिं भावयेत् । सङ्गमकृत्वा स्मयं कुर्यात् । एवमहं देवानां प्रार्थनीय इति स्मयादयं सुस्थितंमन्यतया मृत्युना केशगृहीतमात्मानं न भावयिष्यति । तथा चास्य च्छिद्रान्तरप्रेक्षी नित्यं यत्नोपचर्यः प्रमादो लब्धविवरः क्लेशानुत्तम्भयिष्यति । ततश्च पुनरनिष्टप्रसङ्ग इति । तस्मात्सर्वशः सर्वान् त्रिविधानपि कामान् संहरेत् कूर्मोऽङ्गानीति दृष्टान्तः । कामानां स्वरूपादनन्यत्वं

न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न बिभ्यति
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥५२
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा शोकानन्दौ भयाभये
प्रियाप्रिये परित्यज्य प्रशान्तात्मा भविष्यति
यदा न कुरुते धीरः सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा, मनसा, वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ५४
या दुस्त्यजा दुर्मतिभि-
र्या न जीर्यति जीर्यतः
योऽसौ प्राणान्तिको रोग-
स्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ५५
अत्र पिंगलया गीता गाथाः श्रूयन्ति पार्थिव
यथा सा कृच्छ्रकालेऽपि लेभे धर्मं सनातनं
संकेते पिङ्गला वेश्या कान्तेनासीद्विना कृता
अथ कृच्छ्रगता शान्ता बुद्धिमास्थापयत्तदा५७

पिङ्गलोवाच ।

उन्मत्ताऽहमनुन्मत्तं कान्तमन्ववसं चिरम्
अन्तिके रमणं सन्तं नैनमध्यगमं पुरा ॥ ५८
एकस्थूणं नवद्वारमपि धास्याम्यगारकम् ।
का हि कान्तमिहायान्तमयं कान्तेति मंस्यते
अकामां कामरूपेण धूर्ता नरकरूपिणः ।
न पुनर्वञ्चयिष्यन्ति प्रतिबुद्धास्मि जागृमि ॥
अनर्थो हि भवेदर्थो दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
संबुद्धाऽहं निराकारा नाहमद्याजितेन्द्रिया

---

स्वाधीनोत्पत्तिप्रलयत्वं च दर्शयति—यदा कामान् सर्वान्संहरेत्तदा अयमात्माऽहंप्रत्ययगोचरो जीवः । आत्मन्येव अपेतसर्वोपाधौ स्वस्वरूपे एव आत्मज्योतिः प्रत्यगभिन्नं चिन्मात्रं पश्यति । अयमर्थः—यथा जागरे घटं सूर्यादिना ज्योतिषा पश्यति । गाढान्धकारे तु वाचैव ज्योतिषा पश्यति । स्वप्ने तु आलोकेन्द्रियज्योतिषोरभावाद्वासनामयस्य घटस्य प्रत्यगात्मज्योतिषैव प्रकाश इति प्रसाधितं ज्योतिर्ब्राह्मणे-अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिरिति । तेन तत्र कारणाभावे सिद्धे सुषुप्तौ वासनामयस्य प्रपञ्चस्यापि नाशे दृश्याभावाद्दृङ्मात्रं प्रकाशते । एवं समाधावपि संप्रज्ञाते करणाभावः । असंप्रज्ञाते कर्मकरणयोरभावाद्द्रष्टृत्वनिवृत्तौ दृङ्मात्रं शिष्यते इति । प्रसीदतीति पाठे कार्यकरणसम्पर्कजं कालुष्यं त्यजतीत्यर्थः । किञ्चिदेव ममत्वेनेति श्लोकं केचिदित उत्तरं पठन्ति । तदा मधुमत्यां योगभूमौ उपस्थितेषु विषयेषु वैराग्यार्थमिदं वचनमिति ज्ञेयम् ॥ ५१ ॥ असंप्रज्ञातावस्थामेव प्रपञ्चयति द्वाभ्यां—**न विभेतीति** । 'ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव' इति श्रुतेर्भयादेर्मनोधर्मत्वान्मनसश्च लीनत्वाद्यदा भयादिरहितः स्थाणुवदचञ्चलो भवति । तदाऽस्मादन्ये जना न बिभ्यति । अयं च ब्रह्म सम्पद्यते तथा च श्रुतिः—

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्' इति

॥ ५२ ॥ सत्यं व्यावहारिकं देहादि । अनृतं स्वप्नसबीजसमाधिकालिकं प्रातिभासिकं च देहादि । प्रशान्तात्मा प्रकर्षेण शान्त उपरतः आत्मा चित्तं यस्य स प्रशान्तात्मा ॥ ५३ ॥ व्युत्थानावस्थामाह—**यदा नेति** । पापकं हिंसनम् ॥ ५४ ॥ एषा स्थितिस्तृष्णात्यागेनैव लभ्येत्याख्यायिकापूर्वकमाह—**या दुस्त्यजेत्यादिना** ॥ ५५ ॥ कृच्छ्रकाले दुःखकाले सनातनं धर्मं नित्यप्रसिद्धं योगम् ॥ ५६ ॥ **संकेते इति** । आस्थापयत् व्यवस्थापितवती । तद्विदुःखमेव वैराग्यहेतुरिति भावः ॥ ५७ ॥ उन्मत्ता विकारवती । अनुन्मत्तं निर्विकारं कान्तं स्वामिनमन्तर्यामिणम् । अन्ववसं वस आच्छादने आर्षः पदव्यत्ययः । अहङ्कारधर्मं कामादिकमनुलक्षीकृत्य आच्छादितवती । अन्तिके हृदयकोशे रमणं आनन्दप्रदम् । 'एष ह्येवानन्दं याति' इति श्रुतेः । मरणमित्यपपाठः ॥ ५८ ॥ एका अविद्यैव स्थूणेव विधारिका यस्य तदेकस्थूणम् । नव श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणमनोबुद्धिकामकर्माणि विषयप्राप्तिद्वाराणि यस्य तत् । नवद्वारं अपिधास्यामि विद्याबलेनाच्छादयामि । अगारमिव चिदात्मोपलब्धिस्थानं देहादिसंघातम् । **का हीति** ।

'विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति'

इति विष्णुपुराणोक्तेर्दर्पणापगमे बिम्बप्रतिबिम्बयोरिवाविद्यानाशे ईशजीवयोर्भेदाभावात् । इह हार्दाकाशे आयान्तं चिन्मात्ररूपेणाविर्भवन्तं प्रत्यगनन्यमीशं अयं कान्त इति का मंस्यते न काऽपीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति विद्यावस्थायां मन्तृमन्तव्यभावाभावेन भेदमपवदति **—कान्तेति** सन्धिरार्षः ॥ ५९ ॥ अकामां आत्मलाभेन सर्वकामावाप्तेर्निरिच्छां कामरूपेण कामुकरूपेण । प्रतिबुद्धा ज्ञातात्मतत्त्वा । जागृमि जागर्मि । अविद्यानिद्रोच्छेदात् । ज्ञाततत्त्वो न विपर्ययैराकृष्यत इत्यर्थः ॥ ६० ॥ अनर्थो धनाद्याशया वैक्लव्यं तदेव अर्थो भवेत् आशाया निरन्वयोच्छेदहेतुत्वेन सुखायापि स्यात् । तत्र हेतुः दैवात् देवस्यानुग्रहात् । निरीश्वरवादिमतमनुरुध्याह—**पूर्वकृतेन वेति** । निराकारा निर्विषयज्ञानरूपा ॥ ६१ ॥

सुखं निराशः स्वपिति नैराश्यं परमं सुखम् ।
आशामनाशां कृत्वा हि सुखं स्वपिति पिङ्गला

भीष्म उवाच ।
एतैश्चान्यैश्च विप्रस्य हेतुमद्भिः प्रभाषितैः ।
पर्यवस्थापितो राजा सेनजिन्मुमुदे सुखी ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि ब्राह्मणसेनजित्संवादकथने चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

## १७५-[२]

युधिष्ठिर उवाच ।
अतिक्रामति कालेऽस्मिन्सर्वभूतक्षयावहे।
किं श्रेयः प्रतिपद्येत तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितुः पुत्रेण संवादं तं निबोध युधिष्ठिर ॥ २
द्विजातेः कस्यचित्पार्थ स्वाध्यायनिरतस्य वै
बभूव पुत्रो मेधावी मेधावी नाम नामतः ३
सोऽब्रवीत्पितरं पुत्रः स्वाध्यायकरणे रतम्
मोक्षधर्मार्थकुशलो लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४
पुत्र उवाच ।
धीरः किंस्वित्तात कुर्यात्प्रजानन्
क्षिप्रं ह्यायुर्भ्रश्यते मानवानाम् ।
पितस्तदाचक्ष्व यथार्थयोगं
ममानुपूर्व्या येन धर्मं चरेयम् ॥ ५
पितोवाच ।
वेदानधीत्य ब्रह्मचर्येण पुत्र
पुत्रानिच्छेत्पावनार्थं पितॄणाम् ।
अग्नीनाधाय विधिवच्चेष्टयज्ञो
वनं प्रविश्याथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ६
पुत्र उवाच ।
एवमभ्याहते लोके समन्तात्परिवारिते ।
अमोघासु पतन्तीषु किं धीर इव भाषसे ॥ ७
पितोवाच ।
कथमभ्याहतो लोकः केन वा परिवारितः
अमोघाः काः पतन्तीह किं नु भीषयसीव मां
पुत्र उवाच ।
मृत्युनाऽभ्याहतो लोको जरया परिवारितः
अहोरात्राः पतन्त्येते ननु कस्मान्न बुध्यसे ९
अमोघा रात्रयश्चापि नित्यमायान्ति यान्ति च
यदाऽहमेतज्जानामि न मृत्युस्तिष्ठतीति ह ।
सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये ज्ञानेनापिहितश्चरन् ॥
रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं यदा
तदैव वन्ध्यं दिवसमिति विद्याद्विचक्षणः ॥
गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा ।
अनवाप्तेषु कामेषु मृत्युरभ्येति मानवम् १२

---

सुखमिति । नैराश्यमेव परं सुखं मोक्षाख्यपरसुखप्रापकम् । अशनं भोजनमाशो विषयभोगस्तद्राहितामनाशाम् । भोगार्थं हि धनाद्याशा भोगत्यागादुच्छिद्यते इत्यर्थः ॥ ६२ ॥ पर्यवस्थापितः आत्मतत्त्वे निष्ठां प्रापितः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

१७५

पूर्वं जिताशो मोक्षमिच्छेदित्युक्तम् । संप्रति तत्र कालबिलम्बो न कर्तव्य इत्याहाध्यायेन—अतीति। अतिक्रामति जरारोगादिभिर्नृणां पराभवं कुर्वति । श्रेयः प्रशस्ततरम् ॥ १ ॥ मोक्षधर्माणां अर्थेषु कुशलः । विचक्षणः ऊहापोहकुशलः ॥ ४ ॥ यथार्थयोगं फलसम्बन्धमनतिक्रम्य ॥ ५ ॥ मुनिर्ध्यानभिक्षुः ॥ ६ ॥ अभ्याहते मृत्युनाऽभितस्ताडिते परिवारिते जरया व्याप्ते । परितापिते इति जीर्णपाठः । अमोघासु आयुर्हरणेन सफलासु रात्रिषु ॥ ७ ॥ अहो वा रात्रयश्चापीति पाठे अहो इति खेदे । वाशब्द एवार्थे भिन्नक्रमः । यान्त्येव न तु तिष्ठन्तीत्यर्थः। न तिष्ठति अपि तु क्षणे क्षणे अर्वागायाति ज्ञानेन अपिहितः अनाच्छादितज्ञानकवचस्य हि मृत्युभयं नास्ति अहं तु तद्रहितः कथं नोद्विजेयमित्यर्थः । अपिशब्दस्य भागुरिमतेन अकारलोपं कृत्वा नञ्समासः । जालेनापिहित इति पाठे तु न अकारलोपादि । जालेन मायावरणेन अपिहित आच्छादितः ॥ १० ॥ वंध्यं निष्फलम् ॥ ११ ॥ यदा मृत्युरभ्येति तदा कः सुखं बिन्देतेति सम्बन्धः ॥ १२ ॥

पुष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्रगतमानसम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥
अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगादयं
अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै संप्रकर्षति ॥ १४
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्
को हि जानाति कस्याद्य
मृत्युकालो भविष्यति ।
युवैव धर्मशीलः स्या-
दनित्यं खलु जीवितम् ।
कृते धर्मे भवेत्कीर्ति-
रिह प्रेत्य च वै सुखम् ॥ १६
मोहेन हि समाविष्टः पुत्रदारार्थमुद्यतः ।
कृत्वा कार्यमकार्यं वा पुष्टिमेषां प्रयच्छति ॥
तं पुत्रपशुसंपन्नं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव मृत्युरादाय गच्छति ॥
सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
व्याघ्रः पशुमिवादाय मृत्युरादाय गच्छति
इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् ।
एवमीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे ॥ २०
कृतानां फलमप्राप्तं कर्मणां कर्मसंज्ञितम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति ॥ २१
दुर्बलं बलवन्तं च शूरं भीरुं जडं कविम् ।
अप्राप्तं सर्वकामार्थान्मृत्युरादाय गच्छति २२
मृत्युर्जरा च व्याधिश्च दुःखं चानेककारणम्
अनुषक्तं यदा देहे किं स्वस्थ इव तिष्ठसि २३
जातमेवान्तकोऽन्ताय जरा चान्वेति देहिनं
अनुषक्ता द्वयेनैते भावाः स्थावरजङ्गमाः २४
मृत्योर्वा मुखमेतद्वै या ग्रामे वसतो रतिः ।
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः ॥
निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैतां सुकृतो यांति नैनां छिंदंति दुष्कृतः
न हिंसयति यो जंतून्मनोवाक्कायहेतुभिः ।
जीवितार्थापनयनैः प्राणिभिर्न स हिंस्यते ॥
न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित्प्रबाधते ।
ऋते सत्यमसत्त्याज्यं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम् ॥
तस्मात्सत्यव्रताचारः सत्ययोगपरायणः ।
सत्यागमः सदा दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत्
अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम् ।
मृत्युरापद्यते मोहात् सत्येनापद्यतेऽमृतम् ॥
सोऽहं ह्यहिंस्रः सत्यार्थी कामक्रोधबहिष्कृतः
समदुःखसुखः क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमर्त्यवत्

पुष्पाणि काम्यकर्मफलानि मेषीणामार्तवानि वा आर्तवं विना पशूनां स्त्रीसंगे प्रवृत्त्यदर्शनात् । विचिन्वन्तं शास्त्रदृष्ट्या आघ्राणेन च उरणं मेषम् ॥ १३ ॥ अनित्यं खल्वित्यत्रानिमित्तमिति पाठे आयुरियत्तावधारणकारणहीनम् ॥ १६ ॥ **मोहेनेति** । एषां पुत्रादीनाम् ॥ १७ ॥ सुप्तं व्याघ्रं महौघेवेतिपाठे—सुप्तं सैकते महौघा महानदी अकालपूरवर्ती ॥ १८ ॥ संचिन्वानकं कुत्सितं संचिन्वानं संग्रहीतारम् ॥ १९ ॥ कार्यं कर्तुमिष्टं कृताकृतं अर्धकृतं ईहा तृष्णा ॥ २० ॥ फलं न प्राप्तं येन तं फलमप्राप्तं नरम् । अप्राप्तकर्मफलमित्यर्थः । कर्मसंज्ञितं वाणिगित्यादिकर्मानुरूपसंज्ञावन्तम् ॥ २१ ॥ द्वयेन अन्तकजराख्येन ॥ २४ ॥ एवं पुत्रादिषु वैराग्यमुक्त्वा तेषां त्यागमप्याह--**मृत्योरिति** । ग्रामे स्त्र्यादिसंघे रतिरासक्तिरेव मृत्योर्मुखं न तु वासमात्रं गोष्ठमिव गोष्ठं वासस्थानम् । अरण्यं विविक्तदेशः । तद्धि देवानामिन्द्रियाणां गवां गोष्ठमिव बन्धनस्थानम् गृहं त्यक्त्वा एकान्ते ध्यानपरो भवेदित्यर्थः। लिंगव्यत्यय आर्षः ॥ २५ ॥ यान्ति मुक्तिमिति शेषः ॥ २६ ॥ न हिंसयति हिंसां न कारयति न करोति चेत्यर्थः । हेतुः श्राद्धादिनिमित्तं तैः कर्महेतुभिरिति पाठेऽपि स एवार्थः । जीवितं अर्थाश्च अपनयन्ति तैर्हिंस्रस्तेनादिभिः प्राणिभिः स न हिंस्यते निमित्ताभावात् यथोक्तं वैष्णवे—

'यः परस्य न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा
तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते' इति ।

कर्मभिर्न स बद्धयत इति पाठे मनोवाक्कायजैरपध्यानपरुषोक्तिशस्त्रपातनादिभिः करणभूतैः न बध्यते सम्बन्धं न प्राप्नोति। बध्यत इति स्पष्टार्थः पाठः। यो हि संयच्छति प्राणानित्यपपाठः ॥ २७ ॥ मृत्युसेनां जराव्याधिरूपां सत्यं अबाधितात्मतत्त्वप्रापकत्वाद्योगधर्मम्। अमृतं मरणाभावः । एतेन 'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' इतिश्रुतेरर्थ उक्तः। ऋते सत्यमसत्याद्यमिति पाठे—असत्यमज्ञानं अद्यं भक्ष्यं यस्येत्यर्थः॥२८॥ सत्यव्रताचारः ब्रह्मप्राप्त्यर्थानि व्रतानि यमनियमरूपाणि आचरतीति तथा । सत्ययोगः चिदाभासरूपस्य जीवस्य प्रविलापनं तत्र परायणः । सत्यः प्रमाणभूत आगमो गुरुवेदवाक्यं यस्य स सत्यागमः श्रद्धावान् ॥२९ देहे चित्ते मोहात् विषयपारवश्यात् सत्येन तद्वर्जनात्मकेन योगेन तथा च ।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः
बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ।'

इति श्रुत्यर्थ उक्तः ॥ ३० ॥ क्षेमी परसुखार्थी । अमर्त्यवत् । हिरण्यगर्भवत् ॥ ३१ ॥

शान्तियज्ञरतो दान्तो ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः
वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युदगायने ॥ ३२
पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति ।
अन्तवद्भिरिव प्राज्ञः क्षेत्रयज्ञैः पिशाचवत् ॥

यस्य वाङ्मनसी स्यातां
सम्यक् प्रणिहिते सदा ।
तपस्त्यागश्च सत्यं च
स वै सर्वमवाप्नुयात् ॥ ३४

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखं

आत्मन्येवात्मना जात
आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा ।
आत्मन्येव भविष्यामि
न मां तारयति प्रजा ॥ ३६

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च ।
शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥ ३७

किं ते धनैर्बान्धवैर्वाऽपि किं ते
किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताः पिता च ॥३८

भीष्म उवाच ।

पुत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा यथाऽकार्षीत्पिता नृप ।
तथा त्वमपि वर्तस्व सत्यधर्मपरायणः ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पितापुत्रसंवादकथने
पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

---

## १७६-[३]

युधिष्ठिर उवाच ।

धनिनश्चाधना ये च वर्तयन्ते स्वतन्त्रिणः।
सुखदुःखागमस्तेषां कः कथं वा पितामह ॥१

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शंपाकेनेह मुक्तेन गीतं शान्तिगतेन च ॥ २

---

शान्तियज्ञो निवृत्तिमार्गाभ्यासः ब्रह्मयज्ञो नित्यमुपनिषदर्थचिन्तनम् । वाग्यज्ञः प्रणवजपः । मनोयज्ञः अकारोकारमकारार्धमात्राणां पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरत्र प्रविलापनम् । कर्मयज्ञः स्नानशौचगुरुशुश्रूषाद्यावश्यकधर्मानुष्ठानम् । उदगायने इति देवयानपथानिमित्तम् । उक्तपञ्चयज्ञपरो भविष्यामि दैर्घ्यमार्षम् ॥ ३२ ॥ अन्तवद्भिः अनित्यफलैः क्षेत्रयज्ञैः शरीरत्यागैः यथा कश्चित्पिशाचः प्राप्तं प्राप्तं शरीरं पूर्वपूर्ववासनावशाद्विषाग्न्युद्बन्धनादिना पुनः पुनर्हिनस्ति तद्वदहं पश्वादिशरीरमात्मदेहत्वेन पश्यन् कथं नाशयेयमित्यर्थः । क्षत्रैरित्यपि पाठः । क्षत्रियाणामुचितैर्युद्धयज्ञतुल्यैरित्यर्थः ॥ ३३ ॥ यस्य वागादिपञ्चकं ब्रह्मणि प्रणिहितं समर्पितं स सर्वं ब्रह्म प्राप्नुयात् । सत्यं च स वै परमवाप्नुयादिति मूलपाठः ॥ ३४ ॥ विद्या ग्रंथज्ञानं ब्रह्माकारा चरमान्तःकरणवृत्तिश्च ज्ञानापरपर्याया ॥ ३५ ॥ आश्रमकर्म पित्रा प्रोक्तं निरस्यति—**आत्मनीति** । आत्मनि ब्रह्मणि आत्मना ब्रह्मरूपेण जातः न पित्रा मातरि । आत्मनिष्ठो ब्रह्मभूतः । अप्रजोऽनपत्यः वाशब्द एवार्थे आत्मन्येव ब्रह्मण्येव भविष्यामि न जायायां पुत्ररूपेण प्रजा सन्ततिः ॥ ३६ ॥ एकता एकाकित्वं शीलं श्लाघनीयं वृत्तं दंडनिधानं वाङ्मनःकायैर्हिंसात्यागः ॥ ३७ ॥ गुहां बुद्धिम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

१७६

युवैव मोक्षार्थं यतेतेत्युक्तं तत्र मोक्षसाधनं यज्ञादिद्वारा धनमेव,निर्धनानां तु दुर्लभो मोक्ष इति मन्वानः पृच्छति **धनिन इति** । धनिनां कःकिंरूपः केन प्रकारेण सुखदुःखयोर्मुक्तिसंसारयोरागमः कथं च निर्धनानां सुखदुःखागम इत्यर्थः । स्वतन्त्रिणः स्वशास्त्रानुसारिणः ॥ १ ॥ 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन । त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इति श्रुत्यनुसारादकिंचना एव मुच्यन्ते न तु धनिन इत्युत्तरयति—**अत्रापीति** । शं आत्मसुखं तेन पाकः रागद्वेषादिराहित्यान्निर्मलः।'शंपाकस्तर्कके धृष्टे मुनिभिच्चतुरङ्गुले' **इत्यनेकार्थः** । तेन शंपाकेन यद्गीतं तत् मां प्रति कश्चिदब्रवीदिति द्वयोः सम्बन्धः ॥ २ ॥

अब्रवीन्मां पुरा कश्चिद्ब्राह्मणस्त्यागमाश्रितः
क्लिश्यमानः कुदारेण कुचैलेन बुभुक्षया ॥ ३
उत्पन्नमिह लोके वै जन्मप्रभृति मानवम् ।
विविधान्युपवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च
तयोरेकतरे मार्गे यदेनमभिसन्नयेत् ।
न सुखं प्राप्य संहृष्येन्नासुखं प्राप्य संज्वरेत
न वै चरसि यच्छ्रेय आत्मनो वा यदीशिषे ।
अकामात्मापि हि सदा धुरमुद्यम्य चैव ह ६
अकिञ्चनः परिपतन् सुखमास्वादयिष्यसि ।
अकिञ्चनः सुखं शेते समुत्तिष्ठति चैव ह ७
आकिंचन्यं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम्
अनमित्रपथो ह्येष दुर्लभः सुलभो मतः ॥ ८
अकिञ्चनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वतः ।
अवेक्षमाणस्त्रींल्लोकान्न तुल्यमिह लक्षये ॥ ९
आकिञ्चन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम्
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम्
आकिञ्चन्ये च राज्ये च विशेषः सुमहानयम्
नित्योद्विग्नो हि धनवान्मृत्योरास्यगतो यथा
नैवास्याग्निर्न चारिष्टो न मृत्युर्न च दस्यवः
प्रभवन्ति धनत्यागाद्विमुक्तस्य निराशिषः १२
तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः
धनवान् क्रोधलोभाभ्यामाविष्टो नष्टचेतनः
तिर्यगीक्षः शुष्कमुखः पापको भ्रुकुटीमुखः ॥
निर्दशन्नधरोष्ठं च क्रुद्धो दारुणभाषिता ।
कस्तमिच्छेत्परिद्रष्टुं दातुमिच्छति चेन्महीम्
श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो मोहयत्यविचक्षणम्
सा तस्य चित्तं हरति शारदाभ्रमिवानिलः
अथैनं रूपमानश्च
धनमानश्च विन्दति ।
अभिजातोऽस्मि सिद्धोऽस्मि
नास्मि केवलमानुषः ॥ १७
इत्येभिः कारणैस्तस्य त्रिभिश्चित्तं प्रमाद्यति ।
संप्रसक्तमना भोगान्विसृज्य पितृसंचितान् ।
परिक्षीणः परस्वानामादानं साधु मन्यते १८
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानं ततस्ततः ।
प्रतिषेधन्ति राजानो लुब्धा मृगमिवेषुभि
एवमेतानि दुःखानि तानि तानीह मानवम्
विविधान्युपपद्यन्ते गात्रसंस्पर्शजान्यपि २०
तेषां परमदुःखानां बुद्ध्या भैषज्यमाचरेत् ।
लोकधर्ममवज्ञाय ध्रुवाणामध्रुवैः सह ॥ २१
नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति
नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते
त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव ॥ २२
इत्येतद्धास्तिनपुरे ब्राह्मणेनोपवर्णितम् ।
शंपाकेन पुरा मह्यं तस्मात्त्यागः परो मतः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शंपाकगीतायां षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

---

कुचैलेन कुवस्त्रेण निर्धनत्वादन्नाच्छदनहीन इत्यर्थः ॥३॥ अभिसंनयेत् दैवं यदि प्रापयेत् तर्हि न संहृष्येदित्यादिना सम्बन्धः । **मार्गे इति** । प्रथमान्तपाठे तु संनयेत् संप्राप्नुयात् ॥५॥ न वै इति। कामादिधर्मवानात्मा चित्तं, कामात्मा 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव' इति श्रुतेः। त्वं तु स्वरूपेण अकामात्मापि मनस्तादात्म्यात् भ्रान्त्या तप्तायःपिंडवत् कामात्मेव सन् धुरमुद्यम्य धैर्येण योगांगगणभारं वोढ्वा श्रेयः मोक्षं प्रति न चरसि नाभिमुखो भवसि यत् तत्र किं हेतुरात्मनश्चित्तस्य न ईशिषे न ईश्वरो भवसि। उपालंभोयम् । तेन चित्तस्य स्वाधीनत्वात् श्रेय आचरेदित्यर्थः ॥ ६ ॥ नास्ति किञ्चन धनदारादिकं यस्य सः अकिञ्चनः परितः पतन् गच्छन् अनिकेतश्चरन्नित्यर्थः ॥ ७ ॥ पथ्यं मोक्षमार्गादनपेतं अनामयं निर्विघ्नम् अनमित्रपथः शत्रुवर्जितः पन्थाः दुर्लभः कामिनां सुलभः पारतन्त्र्याभावात् ॥ ८ ॥ उपपन्नस्य वैराग्यसंपन्नस्य ॥ ९ ॥ गुणाधिक्यमेवाह—**आकिञ्चन्ये चेति** ॥ ११ ॥ न चारिष्ट इत्यत्र न चादित्य इत्यपपाठः । अरिष्टश्चोराद्युपप्लवः ॥ १२ ॥ अनुपस्तीर्णे शय्याहीने भूतले शेते तं उपधानं शीर्षोपधानम् ॥ १३ ॥ अभिजातः उत्तमवंश्यः ॥ १७ ॥ त्रिभिर्धनरूपकुलैः । भोगान् भोग्यधनादीन् विसृज्य व्ययीकृत्येति सार्धश्लोकः । परस्वानामादानं चौर्यम् ॥ १८ ॥ प्रतिषेधन्ति दण्डयन्ति । लुब्धा व्याधाः ॥ १९ ॥ संस्पर्शजानि दाहच्छेदादीनि ॥ २० ॥ तेषां ध्रुवाणामवश्यंभाविनां परमदुःखानाम् । बुद्ध्या ज्ञानेन भैषज्यं प्रतीकारमाचरेत् कुर्यात् । किं कृत्वा अध्रुवैर्देहादिभिः सह लोकधर्मं पुत्रैषणादिरूपमवज्ञाय धिक्कृत्य ॥ २१॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

## १७७–[४]

युधिष्ठिर उवाच ।

ईहमानः समारंभान्यदि नासादयेद्धनम् ।
धनतृष्णाभिभूतश्च किं कुर्वन्सुखमाप्नुयात ॥ १

भीष्म उवाच ।

सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत
निर्वेदश्चाविधित्सा च यस्य स्यात्स सुखी नरः
एतान्येव पदान्याहुः पञ्च वृद्धाः प्रशान्तये ।
एष स्वर्गश्च धर्मश्च सुखं चानुत्तमं मतम् ॥ २
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
निर्वेदान्मंकिना गीतं तन्निबोध युधिष्ठिर ४
ईहमानो धनं मङ्किर्भग्नेहश्च पुनः पुनः ।
केनचिद्धनशेषेण क्रीतवान् दम्यगोयुगम् ॥ ५
सुसंबद्धौ तु तौ दम्यौ दमनायाभिनिःसृतौ
आसीनमुष्ट्रं मध्येन सहसैवाभ्यधावताम् ॥६
तयोः संप्राप्तयोरुष्ट्रः स्कन्धदेशममर्षणः ।
उत्थायोत्क्षिप्य तौ दम्यौ प्रससार महाजवः
ह्रियमाणौ तु तौ दम्यौ तेनोष्ट्रेण प्रमाथिना
म्रियमाणौ च संप्रेक्ष्य मंकिस्तत्राब्रवीदिदम्
न चैवाविहितं शक्यं दक्षेणापीहितुं धनम् ।
युक्तेन श्रद्धया सम्यगीहां समनुतिष्ठता ॥ ९
कृतस्य पूर्वं चानर्थैर्युक्तस्याप्यनुतिष्ठतः ।
इमं पश्यत संगत्या मम दैवमुपप्लवम् ॥ १०
उद्यम्योद्यम्य मे दम्यौ विषमेणैव गच्छतः ।
उत्क्षिप्य काकतालीयमुत्पथेनैव धावतः ११
मणी वोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम ।
शुद्धं हि दैवमेवेदं हठेनैवास्ति पौरुषम् ॥ १२
यदि वाप्युपपद्येत पौरुषं नाम कर्हिचित् ।
अन्विष्यमाणं तदपि दैवमेवावतिष्ठते ॥ १३

### १७७

पूर्वं धनस्य मोक्षहेतुत्वं निरस्तम् । जीवनहेतुत्वं तु प्रत्यक्षम् । अतो जीवनाय समारम्भान् कृषिवाणिज्ययज्ञदानाद्यारम्भान् ईहमानः कर्तुमिच्छन् यो धनमलभमानस्तृष्णाभिभूतश्च स किं कुर्यात् । यतेतैव वा धनार्थं उपरमेतैव वाऽऽरम्भादित्यर्थः । आद्ये वैयर्थ्यात् अन्त्ये देहनाशापाताच्च मोक्षसाधनं विघ्नितं भवति । अतस्तयोर्मध्ये किं श्रेय इति भावः ॥ १ ॥ सर्वत्र लाभालाभमानापमानादौ साम्यमवैषम्यं सर्वसाम्यम् । अनायासः धनाद्यर्थं श्रमाभावः । निर्वेदो वैराग्यम् । अविधित्सा कर्मणि इच्छाभावः । विधित्सेति पाठे श्रवणादीच्छा । लाभादौ वैषम्ये रागादिस्ततः प्रवृत्तिस्तत आयासस्ततः सत्यत्याग इत्येतानि त्यक्त्वैव सुखी स्यान्न त्वत्यक्त्वा । देहनिर्वाहस्त्वारब्धकर्मोपनतैरेवान्नादिभिर्भविष्यति । तस्मादुपरम एव श्रेयानित्यर्थः ॥ २ ॥ पदानि पदनीयानि आश्रयणीयानि प्रशान्तये मोक्षाय । एष इति विधेयापेक्षे लिङ्गैकत्वे एष स्वर्गादिस्तत्साधनत्वात्॥३॥ भग्नेहः भग्नाशः व्यर्थचेष्टो वा । दम्यौ दमनयोग्यौ गावौ वत्सतरौ ताभ्यां सहितं युगं शकटादिधुरि योजितं तिर्यक्काष्ठं यस्यां तयोर्गावौ युज्येते ॥ ५ ॥ सुसम्बद्धौ युगान्तयोः सम्यग्योजितौ दमनाय । असम्बद्धाविति पाठे दमयित्रा असंयतौ ॥ ६ ॥ स्कन्धदेशं संप्राप्तयोः सतोरिति सम्बन्धः । उत्क्षिप्य तुलाभाजनद्वयवदुपरि भूमेर्नीत्वा ॥ ७ ॥ अविहितं दैवेनानुपस्थापितम् । ईहितुं एष्टुम् । ईहितामिति पाठे आप्तुमित्यध्याहारः । श्रद्धया फलप्राप्तिनिश्चयेन ईहां चेष्टाम् ॥ ९ ॥ कृतस्य पूर्वं नानार्थैरिति पाठे । अर्थैर्नानाकृतस्य पृथक्कृतस्य । युक्तस्य अवहितचित्तस्य अनुतिष्ठतोऽर्थप्राप्त्युपायान् । सङ्गत्या दम्योष्ट्रसम्बन्धेन दैवं देवेन ईश्वरेण निर्मितम् ॥ १० ॥ उपप्लवमेवाह—**उद्यम्येति** । उद्यम्योद्यम्य उष्ट्रगतिवेगादुत्प्लुत्योत्प्लुत्य विषमेण कृच्छ्रेण दम्यौ गच्छतः । काकतालीयं दैवकृतं सङ्गमं उत्क्षिप्य उत्थाप्य । धावत उष्ट्रस्येत्यग्रिमेण सम्बन्धः । उन्माथेनेव जम्बूकामित्यपि पाठः । तालः करतलयोः शब्दजनकः संयोगस्तस्मिन् क्रियमाणे उत्पतन् काको दैवात्तत्र तालाभ्यामाक्रान्तोऽभूत् । तदेतत् **काकतालीयमिति** इत्युच्यते । काकस्पर्शसमकालं तालफलस्य तालवृक्षस्य वा पतनं तदित्यन्ये* मेषयोर्युध्यतोः परस्परशिरःसंघट्ट उन्माथस्तेन दैवान्मध्ये प्रविष्टो जंम्बूकोतिपीडनान्ममार तदपि काकतालीयोत्थानमेव तथेदमित्यर्थः ॥११॥ **मणी वेति । वाशब्द इवार्थे** हठेनैव मूढनिर्बन्धेनैव पौरुषमस्ति न तु तद्विद्वद्दृष्ट्येत्यर्थ.। नैवेति पदविभागो वा॥ १२ ॥ उपपद्येत यदि लोकदृष्टान्तेन पौरुषास्तित्वं युज्येत तर्हि फलव्यभिचारात्तदपि दैवायत्तमेवोपपद्यते न स्वातंत्र्येणेत्यर्थः ॥ १३ ॥

* अप्पय्यदीक्षितादयः । अप्पय्यदीक्षितमहाभागः स्वीये कुवलयानन्द एवमुदलिखत्–"काकतालीयमित्यत्र काकतालशब्दौ वृत्तिविषये काकतालसमवेतक्रियावर्तिनौ । तेन काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालमितीवार्थे 'समासाच्च तद्विषयात्' इति ज्ञापकात्समासः' । ततः काकतालमिव काकतालीयमिति द्वितीयस्मिन्निवार्थे 'समासाच्च तद्विषयात्' इति सूत्रेण 'इवे प्रतिकृतौ' इत्याधिकारस्थेन छप्रत्ययः" इति ।

तस्मान्निर्वेद एवेह गन्तव्यः सुखमिच्छता ।
सुखं स्वपिति निर्विण्णो निराशश्चार्थसाधने
अहो सम्यक् शुकेनोक्तं सर्वतः परिमुच्यता ।
प्रतिष्ठता महारण्यं जनकस्य निवेशनात् १५

यः कामानाप्नुयात्सर्वान्
यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् ।
प्रापणात्सर्वकामानां
परित्यागो विशिष्यते ॥ १६

नान्तं सर्वविधित्सानां गतपूर्वोऽस्ति कश्चन
शरीरे जीविते चैव तृष्णा मन्दस्य वर्धते ॥

निवर्तस्व विधित्साभ्यः
शाम्य निर्विद्य कामुक ।
असकृच्चासि निकृतो
न च निर्विद्यसे ततः ॥ १८

यदि नाहं विनाश्यस्ते यद्येवं रमसे मया ।
मा मां योजय लोभेन वृथा त्वं वित्तकामुक
सञ्चितं सञ्चितं द्रव्यं नष्टं तव पुनः पुनः ।
कदाचिन्मोक्ष्यसे मूढ धनेहां धनकामुक २०
अहो नु मम बालिश्यं योऽहं क्रीडनकस्तव ।
किं नैवं जातु पुरुषः परेषां प्रेष्यतामियात् ॥

न पूर्वे नापरे जातु
कामानामन्तमाप्नुवन् ।
त्यक्त्वा सर्वसमारंभान्
प्रतिबुद्धोऽस्मि जागृमि ॥ २२

नूनं ते हृदयं काम वज्रसारमयं दृढम् ।
यदनर्थशताविष्टं शतधा न विदीर्यते ॥ २३
जानामि काम त्वां चैव यच्च किंचित्प्रियं तव
तवाहं प्रियमन्विच्छन्नात्मन्युपलभे सुखम् ॥
काम जानामि ते मूलं संकल्पात्किल जायसे
न त्वां संकल्पयिष्यामि समूलो नभविष्यसि

ईहा धनस्य न सुखा
लब्ध्वा चिन्ता च भूयसी ।
लब्धनाशे यथा मृत्यु-
र्लब्धं भवति वा नवा ॥ २६

परित्यागे न लभते ततो दुःखतरं नु किम् ।
न च तुष्यति लब्धेन भूय एव च मार्गति ॥
अनुतर्षुल एवार्थः स्वादु गाङ्गमिवोदकम् ।
मद्विलापनमेतत्तु प्रतिबुद्धोऽस्मि संत्यज ॥२८
य इमं मामकं देहं भूतग्रामः समाश्रितः ।
स यात्वितो यथाकामं वसतां वा यथासुखं
न युष्मास्विह मे प्रीतिः कामलोभानुसारिषु
तस्मादुत्सृज्य कामान्वै सत्त्वमेवाश्रयाम्यहम्
सर्वभूतान्यहं देहे पश्यन्मनसि चात्मनः ।
योगे बुद्धिं, श्रुते सत्त्वं, मनो ब्रह्मणि धारयन्॥
विहरिष्याम्यनासक्तः सुखी लोकान्निरामयः
यथा मां त्वं पुनर्नैवं दुःखेषु प्रणिधास्यसि ॥
त्वया हि मे प्रणुन्नस्य गतिरन्या न विद्यते ।
तृष्णाशोकश्रमाणां हि त्वं कामप्रभवः सदा
धननाशेऽधिकं दुःखं मन्ये सर्वमहत्तरम् ।
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते मित्राणि च धनाच्च्युतं

---

निर्वेदामिति पाठे क्लीबत्वमार्षम् । वैराग्यं गन्तव्यं अनुवर्तितव्यं निराशः निरस्ताशः अर्थश्च तत्साधनं चेति समाहारस्तस्मिन् ॥ १४ ॥ विधित्सानां धनार्थं प्रवृत्तीनां गतपूर्वः पूर्वं गतः प्राप्तो गतपूर्वः ॥ १७ ॥ हे कामुक कामादिधर्मवत् हे मनः मानसेत्यपि पाठः निर्विद्य वैराग्यं प्राप्य शाम्य शमं गच्छ, निकृतः वञ्चितः प्रवृत्तिनैष्फल्यात् ॥ १८ ॥ मोक्ष्यसे त्यक्ष्यसे ॥ २० ॥ क्रीडनकः क्रीडामृगः जातु कदाचित् । प्रेष्यतां दास्यं कामाभावे कोऽपि कस्यचिदपि न प्रेष्यः स्यादित्यर्थः ॥ २१ ॥ अन्तं नाप्नुवन् अतो हेतोस्त्यक्त्वा ॥ २२ ॥ प्रियं जायादि ॥ २४ ॥ नभविष्यसि विनाशिष्यसि ॥ २५॥ ईहा लिप्सा चेष्टा वा तदा धनस्य धनायेत्यर्थः लब्ध्वा चिन्ता नाशभयात् यथा मृत्युस्तथा दुःखकृत् श्रमेऽपि फलं संदिग्धम् ॥ २६ ॥ परित्यागे देहस्य परस्वत्वापादनेऽपि न लभते । मार्गति मृगयते परेभ्यो यो न लभत इति पाठे परेभ्यः सेव्यमानेभ्योऽपि ॥ २७ ॥ अनुतर्षुलस्तृष्णावृद्धिकृत् मद्विलापनं मन्नाशः एतत् तृष्णावृद्ध्याख्यं प्रतिबुद्धोऽस्मि अतो मां संत्यज हे कामेति शेषः ॥ २८ ॥ भूतग्रामो यातु स्वकारणं प्रति पञ्चत्वम-स्त्वित्यर्थः ॥ २९ ॥ युष्मासु अनात्मसु अहंकारादिषु राजसतामसेषु सत्त्वं सत्त्वगुणं वनमेवेति पाठे वनं ब्रह्म पारिव्रज्यं वा ॥ ३० ॥ देहे तत्रापि मनसि हृत्पुंडरीकस्थे पश्यन् हेतौ शतृप्रत्ययः । एकात्मदर्शनायेत्यर्थः । योगे विषये बुद्धिं करिष्यामीति निश्चयं कुर्वन् श्रुते श्रवणादौ सत्त्वं एकाग्रचित्तं धारयन् मनश्च ब्रह्मणि लवणोदकन्यायेन धारयन् विहरिष्यामीत्यग्रिमेण सम्बन्धः ॥ ३१ ॥ अनासक्तो निरामय इति रागद्वेषराहित्यमुक्तम् ॥ ३२ ॥ अन्या योगे बुद्धिमित्युक्तगतेरन्या ॥ ३३ ॥

अवज्ञानसहस्रैस्तु दोषाः कष्टतरा धने ।
धने सुखकला या तु साऽपि दुःखैर्विधीयते
धनमस्येति पुरुषं पुरो निघ्नन्ति दस्यवः ।
क्लिश्यन्ति विविधैर्दण्डैर्नित्यमुद्वेजयन्ति च
अर्थलोलुपता दुःखमिति बुद्धं चिरान्मया ।
यद्यदालम्बसे कामं तत्तदेवानुरुध्यसे ॥ ३७
अतत्त्वज्ञोऽसि बालश्च दुस्तोषो पूरणोऽनलः
नैव त्वं वेत्थ सुलभं नैव त्वं वेत्थ दुर्लभम् ॥
पाताल इव दुष्पूरो मां दुःखैर्योक्तुमिच्छसि ।
नाहमद्य समावेष्टुं शक्यः काम पुनस्त्वया ३९
निर्वेदमहमासाद्य द्रव्यनाशाद्यदृच्छया ।
निर्वृत्तिं परमां प्राप्य नाद्य कामान्विचिन्तये
अतिक्लेशान्सहामीह नाहं बुद्ध्याम्यबुद्धिमान्
निकृतो धननाशेन शये सर्वाङ्गविज्वरः ४१
परित्यजामि काम त्वां हित्वा सर्वमनोगतीः
न त्वं मया पुनः काम वत्स्यसे न च रंस्यसे
क्षमिष्ये क्षिपमाणानां न हिंसिष्ये विहिंसितः
द्वेष्ययुक्तः प्रियं वक्ष्याम्यनादृत्य तदप्रियम् ॥
तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं यथा लब्धेन वर्तयन्
न सकामं करिष्यामि त्वामहं शत्रुमात्मनः
निर्वेदं निर्वृतिं तृप्तिं शान्तिं सत्यं दमं क्षमाम्
सर्वभूतदयां चैव विद्धि मां समुपागतम् ४५
तस्मात्कामश्च लोभश्च तृष्णा कार्पण्यमेव च
त्यजन्तु मां प्रतिष्ठन्तं सत्त्वस्थो ह्यस्मि सांप्रतं
प्रहाय कामं लोभं च
सुखं प्राप्तोऽस्मि सांप्रतम् ।
नाद्य लोभवशं प्राप्तो
दुःखं प्राप्स्याम्यनात्मवान् ॥ ४७
यद्यत्त्यजति कामानां तत्सुखस्याभिपूर्यते ।
कामस्य वशगो नित्यं दुःखमेव प्रपद्यते ॥४८
कामानुबन्धं नुदते यत्किंचित्पुरुषो रजः ।
कामक्रोधोद्भवं दुःखमह्रीररतिरेव च ॥ ४९
एष ब्रह्मप्रतिष्ठोऽहं ग्रीष्मे शीतमिव ह्रदम् ।
शाम्यामि परिनिर्वामि सुखं मामेति केवलं
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्
आत्मना सप्तमं कामं हत्वा शत्रुमिवोत्तमम् ।
प्राप्यावध्यं ब्रह्मपुरं राजेव स्यामहं सुखी ५२
एतां बुद्धिं समास्थाय मङ्किर्निर्वेदमागतः ।
सर्वान्कामान्परित्यज्य प्राप्य ब्रह्म महत्सुखम्
दम्यनाशकृते मङ्किरमृतत्वं किलागमत् ।
अच्छिनत्काममूलं स तेन प्राप महत्सुखम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मङ्किगीतायां सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

---

अधने इति च्छेदः सन्धिरार्षः ॥ ३५ ॥ **धनमस्यास्तीति** ॥ ३६ ॥ अनलोऽग्निरिवेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ सहामि इतः पूर्वं सोढवानस्मि ॥ ४१ ॥ मनोगतीः मनसो वृत्तीः एतेन समाधिमनुष्ठास्ये इत्युक्तं भवति । तत्रैव सर्वकामाभावात् ॥ ४२ ॥ क्षिपमाणानां धिक्कुर्वतां शब्दादीन् ॥ ४३ ॥ सकामं लब्धमनोरथं हे कामेति शेषः ॥ ४४ ॥ निर्वृत्तिं सुखम् । तृप्तिं पूर्णकामताम् ॥ ४५ ॥ प्रतिष्ठन्तं मोक्षाय गन्तुम् ॥४६॥ **रजः** प्रवर्तको गुणः तच्च कामेनानुबध्नातीति कामानुबन्धं दुःखादिकं च कामाद्युद्भवम् । अतः सर्वानर्थमूलं रजस्त्याज्यमित्यर्थः ॥ ४९ ॥ शाम्यामि कर्मभ्य उपरतिं गच्छामि परिनिर्वामि निर्दुःखो भवामि सुखं स्वरूपसुखं केवलं निर्विषयम् ॥ ५० ॥ आत्मना स्थूलदेहेन सह गणनायां **सप्तमः** कामः। तथाहि। अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयाश्चत्वारः **कोशाः** प्रवृत्तिमत्त्वाद्रजःप्रधानाः । आनंदमय आवरणरूपत्वात्तमःप्रधानः **पञ्चमः** । ततः शुद्धसत्त्वप्राधान्यात् सबीजसमाधिः आनन्दाख्यः **षष्ठः** । तस्यापि मूलमस्मीति प्रत्ययमात्रशरीरो महत्तत्त्वाख्यः सर्वानर्थबीजभूतश्चरमः कामः **सप्तमः** । तं हत्वा ब्रह्मैव पुरं ब्रह्मपुरं प्रविष्टः स्यां यतस्तदवध्यम् कुतः । 'नास्य जरयैतज्जीर्यते न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम्' इति श्रुतेः ॥ ५२ ॥ कामान्प्रथमाध्यायोक्तरीत्या जाग्रत्स्वप्नसंप्रज्ञातावस्थागतान् विषयान् ॥ ५३ ॥ काममूलं अविद्याम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

## १७८-[५]

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गीतं विदेहराजेन जनकेन प्रशाम्यता ॥ १
अनन्तमिव मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन ॥
अत्रैवोदाहरन्तीमं बोध्यस्य पदसंचयम् ।
निर्वेदं प्रतिविन्यस्तं तं निबोध युधिष्ठिर ॥३
बोध्यं शान्तमृषिं राजा नाहुषः पर्यपृच्छत ।
निर्वेदाच्छान्तिमापन्नं शास्त्रप्रज्ञानतर्पितम् ४
उपदेशं महाप्राज्ञ शमस्योपदिशस्व मे ।
कां बुद्धिं समनुध्याय शान्तश्चरसि निर्वृतः ५

बोध्य उवाच ।

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन ।
लक्षणं तस्य वक्ष्येऽहं तत्स्वयं परिमृश्यताम्
पिङ्गला, कुररः, सर्पः, सारङ्गान्वेषणं वने ।
इषुकारः, कुमारी च षडेते गुरवो मम ॥ ७

भीष्म उवाच ।

आशा बलवती राजन्नैराश्यं परमं सुखम् ।
आशां निराशां कृत्वा तु सुखं स्वपिति पिङ्गला
सामिषं कुररं दृष्ट्वा वध्यमानं निरामिषैः ।
आमिषस्य परित्यागात्कुररः सुखमेधते ॥ ९
गृहारंभो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १०
सुखं जीवन्ति मुनयो भैक्ष्यवृत्तिं समाश्रिताः
अद्रोहेणैव भूतानां सारङ्गा इव पक्षिणः ॥११
इषुकारो नरः कश्चिदिषावासक्तमानसः ।
समीपेनापि गच्छन्तं राजानं नावबुद्धवान् ॥
बहूनां कलहो नित्यं द्वयोः संकथनं ध्रुवम् ।
एकाकी विचरिष्यामि कुमारीशंखको यथा

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि बोध्यगीतायां अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

## १७९-[६]

युधिष्ठिर उवाच ।

केन वृत्तेन वृत्तज्ञ वीतशोकश्चरेन्महीम् । किञ्च कुर्वन्नरो लोके प्राप्नोति गतिमुत्तमाम् ॥ १

### १७८

मङ्किवदुपरमेतैवेत्युक्तम् । तेनैव योगक्षेमसिद्धिं सदृष्टान्तामाह—अत्रेत्यादिना ॥ १ ॥ अनन्तं देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छिन्नम्। वित्तमिव निगूढं कोशपञ्चकलक्षणगुहास्थं प्रत्यक्त्वमेवास्य मे स्वरूपभूतम् । अत एव सर्वस्य मदनन्यत्वाद्रज्जुरगवन्मायि कल्पितत्वाच्च मे मम न किञ्चन । अत एवाह—मिथिलायामिति । न ह्यध्यस्तदोषैरधिष्ठानं स्पृश्यते । मरीचिनद्याऽपि मरुभूमेरार्द्रत्वापत्तेरिति भावः ॥ २ ॥ पदसञ्चयं—श्लोकं वैराग्यार्थमुपन्यस्तम् ॥३॥ तस्य उपदेशस्य लक्षणं ज्ञापकं तत् ज्ञाप्यम् ॥ ६ ॥ सारङ्गो भ्रमरस्तस्य अन्वेषणं अनुगमनम् । इष गतौ दिवादिः ॥ ७ ॥ यस्माद्यस्माद्गुरोर्यद्यदुपात्तं तत्तदाह भीष्मः—आशेति । राजन् हे युधिष्ठिर ॥८॥ पिङ्गलावत्कुररवच्चाशां गृहधनरूपामामिषं च त्यक्त्वा कथं जीवेतेत्याशंक्यान्यथासिद्धिमाह—गृहेति द्वाभ्याम् ॥१०॥ एवमारम्भान्तरवर्जितेन ब्रह्मण्यैकाग्र्यं चित्तस्य सम्पादनीयमित्याह—इष्विति ॥ १२ ॥ ऐकाग्र्यमेकाकितयैव सिद्ध्यतीत्याह—बहूनामिति । काचित्कुमारी पित्रादिपरवशा गृहागतानतिथीन्प्रच्छन्नं भोजयितुमिच्छन्ती व्रीहीनवहन्तुं प्रचक्रमे तस्याः प्रकोष्ठस्थाः शङ्खाश्चुक्रुशुः । सा परेषां सूचना मा भूदिति शङ्खान् भंक्त्वा एकैकमवशेषितवतीति श्रीमद्भागवते दृष्टान्तोऽयं व्याख्यातः ॥१३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

### १७९

केनेत्याक्षेपे केन वृत्तेन वीतशोको भूत्वा महीं चरेत् । न तादृशं वृत्तमस्तीत्यर्थः । यतः सर्पसारङ्गवृत्त्या गृहाहारसम्पादनेऽपि प्रतिपक्षबाहुल्यं दृश्यते । द्विषन्ति हि भिक्षुका भिक्षुकान्तरं स्वाध्यासितस्थानागतमत एकाकित्वैकाग्र्ययोश्चासम्भवः । अन्नचिन्तया धनाशावियोगस्यापि दुष्करत्वादिति भावः । अतः किं तादृशमुपायान्तरं हिंसाशून्यमुत्तमगतिप्रदमस्तीति प्रश्नार्थः ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ २
चरन्तं ब्राह्मणं कश्चित्कल्पचित्तमनामयम् ।
पप्रच्छ राजा प्रह्लादो बुद्धिमान् बुद्धिसंमतं

प्रह्लाद उवाच ।

स्वस्थः शक्तो मृदुर्दान्तो
निर्विधित्सोऽनसूयकः ।
सुवाक् प्रगल्भो मेधावी
प्राज्ञश्चरसि बालवत् ॥ ४
नैव प्रार्थयसे लाभं नालाभेष्वनुशोचसि ।
नित्यतृप्त इव ब्रह्मन्न किञ्चिदिव मन्यसे ॥ ५
स्रोतसा ह्रियमाणासु प्रजासु विमना इव ।
धर्मकामार्थकार्येषु कूटस्थ इव लक्ष्यसे ॥ ६
नानुतिष्ठसि धर्मार्थौ न कामे चापि वर्तसे ।
इन्द्रियार्थाननादृत्य मुक्तश्चरसि साक्षिवत् ७
का नु प्रज्ञा श्रुतं वा किं वृत्तिर्वा का नु ते मुने
क्षिप्रमाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रेयो यदिह मन्यसे ८

भीष्म उवाच ।

अनुयुक्तः स मेधावी लोकधर्मविधानवित्
उवाच श्लक्ष्णया वाचा प्रह्लादमनपार्थया ९
पश्य प्रह्लाद भूतानामुत्पत्तिमनिमित्ततः ।
ह्रासं वृद्धिं विनाशं च न प्रहृष्ये न च व्यथे
स्वभावादेव संदृश्या वर्तमानाः प्रवृत्तयः ।
स्वभावनिरताः सर्वाः परितुष्येन्न केनचित् ॥
पश्य प्रह्लाद संयोगान् विप्रयोगपरायणान् ।
संचयांश्च विनाशान्तान्न क्वचिद्विदधे मनः ॥
अन्तवन्ति च भूतानि गुणयुक्तानि पश्यतः ।
उत्पत्तिनिधनज्ञस्य किं कार्यमवशिष्यते ॥१३

---

उत्तरमाह—**अत्रेति** । आजगरस्य अजगरवृत्त्या जीवतः ॥ २ ॥ कल्पचित्तं दृढचित्तम् । अनामयं रागद्वेषाननुविद्धम् ॥ ३ ॥ स्वस्थः विषयैरनाकृष्टः । शुद्धो दम्भादिहीनः । मृदुर्दयावान् । दान्तो जितेन्द्रियः । निर्विधित्सो निरारम्भः । अनसूयकः सर्वत्रादोषदर्शी । सुवाक् सत्यवाक् । प्रगल्भः प्रतिभानवान् । मेधावी ऊहापोहकुशलः । प्राज्ञः ज्ञाततत्त्वः ॥ ४ ॥ मन्यसे इष्टत्वेनानिष्टत्वेन वा । अवमन्यसे इति पाठे वीतदर्पोऽसीत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्रोतसा कामादिवेगेन । विमनाः निर्मनस्कः । स्थाणुरिव कूटस्थो निर्व्यापारः । अविमना इति पाठे तु अव्याकुलचित्तः ॥ ६ ॥ कौटस्थ्यमेवाह—**नेति** । इन्द्रियार्थान् गन्धरसादीननादृत्य चरसि क्षुन्निर्वाहमात्रार्थी अश्नासि । साक्षिवत् मुक्तः कर्तृत्वादिना ॥ ७ ॥ प्रज्ञा तत्त्वदर्शनं, श्रुतं तन्मूलभूतं शास्त्रं वृत्तिस्तदर्थानुष्ठानं । श्रेयो ममेति शेषः ॥ ८ ॥ अनुयुक्तः पृष्टः लोकस्य धर्मो जन्मजरादिस्तस्य विधानं कारणमविद्याकामकर्मादि तदभिज्ञः लोकधर्मविधानवित् ॥ ९ ॥ भूतानामुत्पत्त्यादिकं अनिमित्ततः करणहीनादेकादद्वितीयादिति पश्य आलोचय श्रुतियुक्तिभ्यां श्रुतिस्तावत् । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय ' इति । सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यादेकरसाद्वस्तुनो जगदुत्पत्तिमाह । युक्तिरपि शून्याज्जगदुत्पत्त्ययोगात् । अचेतनानां च प्रधानपरमाण्वादीनामधिष्ठातारमन्तरेण सङ्घातकर्तृत्वायोगात् । विकरणस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वायोगात्संसारस्य स्वाभाविकत्वे मुक्त्ययोगात् स्वप्नमायेन्द्रजालवदविद्याकल्पितत्वमवश्यं वाच्यम् । अविद्यानाशस्य च सर्वतन्त्रसिद्धत्वात् अविद्या मिथ्या । अनादिभावत्वे सति अनित्यत्वादृत्व्यतिरेकेणाकाशवदित्यविद्यामिथ्यात्वसिद्धेरेकाद्वितीयादेव जगदुत्पत्तिं साधयति । ततश्च 'यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमि ' इति श्रुतेरात्मज्ञस्य मम द्वितीयाभावान्न हर्षव्यथे भवतः ॥ १० ॥ एवमेकाद्वितीयाद्वस्तुन उत्पत्तिमुक्त्वा तत्रैव स्थितिलयावप्याह—**स्वेति** । स्वभावात् स्वस्य भावः स्वभावः स्वरूपसत्ता तत एव वर्तमानाः प्रवृत्तयोऽपि संदृश्याः सम्यग्द्रष्टव्याः । स्वभावे एव निरताः सर्वाः प्रजास्तासामेतासां स्वभावादन्यत्परायणं नास्तीत्यर्थः । तस्मादेवं जानन् केनचिद्ब्रह्मलोकैश्वर्यलाभेनापि न तुष्येत्तुच्छमेवैतद्दृश्यमिति विजानीयादित्यर्थः ॥ ११ ॥ एवं तत्त्वदृष्ट्या स्वास्थ्यमुपपाद्य बाह्यदृष्ट्याऽपि लोकस्यानित्यत्वात्तदुपपादयति—**पश्येति** । तस्मादहं मनो न क्वचिद्विषये विदधे धारयामि । तद्विनाशे शोकोत्पत्तिं जानन् । यद्वा । अश्रौतयोरारम्भसङ्घातवादयोरपि जगदनित्यत्वमस्तीति स्वास्थ्यमेवोचितमित्याह—**पश्येति** ॥ १२ ॥ एवमादीन्यश्रौतानि मतानि दूषयति—**अन्तवन्तीति** । भूतानि परमते नित्यसिद्धानि परमाणुप्रधानादीनीति **पक्षनिर्देशः** जरायुजादिशरीराणि **दृष्टान्तो** वा । अन्तवत्त्वं **साध्यं** गुणयुक्तत्वं **हेतुः** । यत्संहतं घटादि तदनित्यं परमाण्वादयश्च गुणगुणिभावेन प्रधानं च गुणत्रयात्मत्वेन संहता इति ध्रुवमनित्याः । तस्मात्पूर्वोक्तमुत्पत्तिनिधनहेतुभूतं वस्तु जानतः किं कार्यं कर्तव्यमत्रशिष्यते न किमपीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'एतद्ध स्म वै तद्विद्वांसः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया अग्निहोत्रं न जुहवांचक्रिरे' इति॥१३॥

जलजानामपि ह्यन्तं पर्यायेणोपलक्षये ।
महतामपि कायानां सूक्ष्माणां च महोदधौ ॥
जङ्गमस्थावराणां च भूतानामसुराधिप ।
पार्थिवानामपि व्यक्तं मृत्युं पश्यामि सर्वशः
अन्तरिक्षचराणां च दानवोत्तमपक्षिणाम् ।
उत्तिष्ठते यथाकालं मृत्युर्बलवतामपि ॥ १६
दिवि सञ्चरमाणानि ह्रस्वानि च महान्ति च
ज्योतींष्यपि यथाकालं पतमानानि लक्षये ॥
इति भूतानि संपश्यन्ननुषक्तानि मृत्युना ।
सर्वसामान्यगो विद्वान् कृतकृत्यः सुखं स्वपे
सुमहान्तमपि ग्रासं ग्रसे लब्धं यदृच्छया ।
शये पुनरभुञ्जानो दिवसानि बहून्यपि ॥ १९
आशयन्त्यपि मामन्नं पुनर्बहुगुणं बहु ।
पुनरल्पं पुनस्तोकं पुनर्नैवोपपद्यते ॥ २०
कणं कदाचित्खादामि पिण्याकमपि च ग्रसे
भक्षये शालिमांसानि भक्षांश्चोच्चावचान्पुनः
शये कदाचित्पर्यङ्के भूमावपि पुनः शये ।
प्रासादे चापि मे शय्या कदाचिदुपपद्यते ॥
धारयामि च चीराणि शाणक्षौमाजिनानि च
महार्हाणि च वासांसि धारयाम्यहमेकदा ॥
न संनिपतितं धर्म्यमुपभोगं यदृच्छया ।
प्रत्याचक्षे न चाप्येनमनुरुध्ये सुदुर्लभम् २४
अचलमनिधनं शिवं विशोकं
शुचिमतुलं विदुषां मते प्रविष्टम् ।
अनभिमतमसेवितं विमूढै-
र्व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २५
अचलितमतिरच्युतः स्वधर्मा-
त्परिमितसंसरणः परावरज्ञः ।
विगतभयकषायलोभमोहो
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २६
अनियतफलभक्ष्यभोज्यपेयं
विधिपरिणामविभक्तदेशकालम् ।
हृदयसुखमसेवितं कदर्यै-
र्व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २७
इदमिदमिति तृष्णयाऽभिभूतं
जनमनवाप्तधनं विषीदमानम् ।
निपुणमनुनिशम्य तत्त्वबुद्ध्या-
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २८
बहुविधमनुदृश्य चार्थहेतोः
कृपणमिहार्यमनार्यमाश्रयन्तम् ।
उपशमरुचिरात्मवान् प्रशान्तो
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २९
सुखमसुखमलाभमर्थलाभं
रतिमरतिं मरणं च जीवितं च ।
विधिनियतमवेक्ष्य तत्त्वतोऽहं
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३०
अपगतभयरागमोहदर्पो
धृतिमतिबुद्धिसमन्वितः प्रशान्तः ।
उपगतफलभोगिनो निशम्य
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३१
अनियतशयनासनः प्रकृत्या
दमनियमव्रतसत्यशौचयुक्तः ।
अपगतफलसंचयः प्रहृष्टो
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३२

पामरदृष्ट्यापि जगतो विनाशित्वमाह—**जलजानामित्यादिपञ्चभिः** ॥ १४ ॥ पार्थिवानां पृथिवीस्थानाम् ॥ १५ ॥ सर्वसामान्यगः यथा घटत्वादि सामान्यं पटादिभ्यो व्यावृत्तम् । पृथिवीत्वसामान्यं तूभयसमम् । तदुपादानत्वात् । एवं सर्वस्य सत्सदिति सदभेदेन प्रतीयमानस्योपादानं सत्तासामान्यं सर्वसामान्यं न तु तार्किकाभिमतम् । तस्य सत्तासमवायादिभ्यो व्यावृत्तत्वेन सर्वसामान्यत्वाभावात् । तच्च शुद्धं ब्रह्म तद्गतः सर्वसामान्यगः सर्वं सामान्यतो विद्वानित्यपपाठः ॥ १८ ॥ आजगरीं वृत्तिं प्रपञ्चयति—**सुमहान्तमित्यादिना** । सुमहान्तं रसाधिक्यात् ॥ १९ ॥ आशयन्ति भोजयन्ति अल्पं रसाल्पत्वात् ॥ २० ॥ कणं अतिसूक्ष्मं धान्यांशं पिण्याकं तिलखलिम् ॥ २१ ॥ क्षौमाणि क्षुमा अतसी तत्सूत्रमयानि ॥ २३ ॥ धर्म्यं धर्मादनपेतं यथेष्टाचरणे तत्त्वविदामपि. श्वसूकरादितुल्यतापत्तेः ॥ २४ ॥ अचलं दृढं अनिधनं मृत्युविरोधि शुचिम् । आर्षो विभक्त्यलुक् । विदुषां मते ब्रह्मणि प्रविष्टं तत्प्रापकमित्यर्थः । अनभिमतत्वादेवासेवितं मूढैः । आजगरं अजगरो ह्ययत्नेनैव जीवति तस्येदम् ॥ २५ ॥ कषायः क्रोधाद्यावेशेन स्तिमितचित्तता रागद्वेषादिर्वा ॥ २६ ॥ अनियतं अक्लृप्तं फलादि यत्र विधिरदृष्टं तस्य परिणामः परिपाकस्तेनैव देशकालव्यवस्थया प्रापितं कदर्यैर्विषयलुब्धैः ॥ २७ ॥ धनप्राप्तौ कर्मैव कारणं न पौरुषमिति धिया निशम्य आलोच्य ॥ २८ ॥ अर्थहेतोः अनार्यं नीचं अर्थं स्वामिनं आश्रयति यः कृपणो दीनजनस्तमनुदृश्य उपशमरुचिः आत्मवान् जितचित्तः ॥ २९ ॥ विधिनियतं दैवाधीनम् ॥ ३० ॥ धृतिर्धैर्यं मतिरालोचनं बुद्धिर्निश्चयः उपगतं समीपागतं फलं प्रियं येषां तान् । भोगिनः सर्पान् अजगरान् निशम्य दृष्ट्वा फलभोगिन इति शाकपार्थिवादिवन्मध्यमपदलोपः ॥ ३१ ॥ प्रकृत्या दमादियुक्तः सिद्धत्वात् न तु साधकवद्धठेन अपगतफलसञ्चयः त्यक्तयोगफलसमूहः ॥ ३२ ॥

अपगतमसुखार्थमीहनार्थै-
रुपगतबुद्धिरवेक्ष्य चात्मसंस्थम् ।
तृषितमनियतं मनो नियन्तुं
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३३
हृदयमनुरुध्य वाङ्मनो वा
प्रियसुखदुर्लभतामनित्यतां च ।
तदुभयमुपलक्षयन्निवाहं
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३४
बहुकथितमिदं हि बुद्धिमद्भिः
कविभिरपि प्रथयद्भिरात्मकीर्तिम् ।
इदमिदमिति तत्र तत्र हन्त
स्वपरमतैर्गहनं प्रतर्कयद्भिः ॥ ३५
तदिदमनुनिशम्य विप्रपातं
पृथगभिपन्नमिहाबुधैर्मनुष्यैः ।
अनवसितमनन्तदोषपारं
नृषु विहरामि विनीतदोषतृष्णः ॥ ३६
भीष्म उवाच ।
अजगरचरितं व्रतं महात्मा
य इह नरोऽनुचरेद्विनीतरागः ।
अपगतभयलोभमोहमन्युः
स खलु सुखी विचरेदिमं विहारम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि अजगरप्रह्लादसंवादे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

## १८०—[७]

युधिष्ठिर उवाच ।
बान्धवाः कर्म वित्तं वा प्रज्ञा वेह पितामह
नरस्य का प्रतिष्ठा स्यादेतत्पृष्टो वदस्व मे १
भीष्म उवाच ।
प्रज्ञा प्रतिष्ठा भूतानां प्रज्ञा लाभः परो मतः
प्रज्ञा निःश्रेयसी लोके प्रज्ञा स्वर्गो मतः सताम्
प्रज्ञया प्रापितार्थो हि बलिरैश्वर्यसंक्षये ।
प्रह्लादो नमुचिर्मङ्किस्तस्याः किं विद्यते परं
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
इन्द्रकाश्यपसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ४

**ईहनार्थैः** इच्छाविषयै रूपादिभिः । एषणाविषयैर्वा पुत्रवित्तादिभिर्हेतुभिः । असुखार्थं परिणामे दुःखार्थं अपगतं आत्मनः पराङ्मुखं तृषितमनियतं च मनोऽवेक्ष्य । उपगतबुद्धिर्लब्धालोकः आत्मसंस्थं आत्मनि संस्था समाप्तिर्यस्य तत्तथा नियन्तुं व्रतं चरामि । अभिहतमसुखैरिहार्थनाशैरित्याद्यः पाठः ॥ ३३ ॥ हृदयं तात्स्थ्याद्बुद्धिर्मनश्च ताभ्यां तद्धर्माः कर्तृत्वभोक्तृत्वकामसङ्कल्पादयो लक्ष्यन्ते ।ताननुरुद्ध्य उपेक्ष्य । पाठान्तरे न अनुरुध्येति सम्बन्धात्स एवार्थः । तत् तत्र बुद्धौ सुदुर्लभतां सुखानित्यतां चोभयं उपलक्षयन्निति योजना ॥ ३४ ॥ इदमाजगरं व्रतं सर्ववादिवल्लभमित्याह— **बह्वीति** । गहनं आत्मतत्त्वं तर्कागोचरमपि । तत्र तत्र शास्त्रे हन्तेत्यालोचने । इदमिदमिति स्वमतैः परमतैश्च तर्कयद्भिः उन्नयद्भिः । तथाहि शून्यं वा निर्विषयज्ञानधारा वा जडो वा बुद्ध्यादिविशेषगुणहीनस्वरूपप्रतिष्ठं चिन्मात्रं वा । अनृतजडदुःखादिव्यावृत्तमेकरसं सच्चिदानन्दानन्तस्वरूपं वेति वादिनां विकल्पा आत्मनि दृश्यन्ते । तथाऽपि सर्वेषां स्वस्वाभिमतात्मतत्त्वदर्शनायाऽऽजगरं व्रतमेवोपेयमिति भावः ॥ ३५ ॥ **तदिदमिति** । इदमिति प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रमितं जगत् । अबुधैः पृथक् आत्माऽतिरिक्तत्वेनाभिपन्नं गृहीतं सत् विप्रपातं विशिष्टः प्रपातो भृगुस्तद्वन्नाशकरमिति । अनुनिशम्य शास्त्रयुक्तिभ्यामन्वालोच्य । नृषु विहरामि । किं तर्हि जगतस्तत्त्वं त्वया निश्चितमित्यत आह—अनवसितं नास्ति कालतो गुणतो देशतश्चावसितमवसानं परिच्छेदो यस्य तत्तथा । यतः अनन्तदोषपारम् । अन्तो नाशः । दोषः विषमसृष्टिहेतुत्वेन नैर्घृण्यादिः पारः देशपरिच्छेदश्च नास्ति यस्य तत्तथा ॥ ३६ ॥ य इमं विहारं इमां अजगरव्रतरूपां क्रीडां अनुचरेत् स सुखी विहरेदिति सम्बन्धः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

१८०

**बान्धवा इति** । आजगरव्रतरूपां स्वास्थ्यलक्षणां प्रतिष्ठां किं बान्धवशब्दोपलक्षिता जातिरेव समर्पयति पक्षिणामाकाशगमनवत् । किं कर्म मणिमन्त्रौषधिसाधनादि । किं वित्तं वित्तसाध्यं यज्ञादि । उत प्रज्ञैवेति प्रश्नः ॥ १ ॥ प्रज्ञाहीनः स्वल्पेनापि निमित्तेन नश्यति प्रज्ञावांस्तु न कदाचिदित्याह—**अत्रेति** ॥ ४ ॥

वैश्यः कश्चिदृषिसुतं काश्यपं संशितव्रतम् ।
रथेन पातयामास श्रीमान् दृप्तस्तपस्विनम् ५
आर्तः स पतितः क्रुद्ध-
स्त्यक्त्वाऽऽत्मानमथाब्रवीत् ।
मरिष्याम्यधनस्येह
जीवितार्थो न विद्यते ॥ ६
तथा मुमूर्षुमासीनमकूजन्तमचेतसम् ।
इन्द्रः सृगालरूपेण बभाषे लुब्धमानसम् ॥ ७
मनुष्ययोनिमिच्छन्ति सर्वभूतानि सर्वशः ।
मनुष्यत्वे च विप्रत्वं सर्व एवाभिनन्दति ॥ ८
मनुष्यो ब्राह्मणश्चासि श्रोत्रियश्चासि काश्यप
सुदुर्लभमवाप्यैतन्न दोषान्मर्तुमर्हसि ॥ ९
सर्वे लाभाः साभिमाना इति सत्यवती श्रुतिः
संतोषणीयरूपोऽसि लोभाद्यदभिमन्यसे १०
अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः ।
अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणयः॥११
पाणिमद्भ्यः स्पृहाऽस्माकं यथा तव धनस्य वै
न पाणिलाभादधिको लाभः कश्चन विद्यते
अपाणित्वाद्वयं ब्रह्मन् कण्टकं नोद्धरामहे ।
जन्तूनुच्चावचानङ्गे दशतो न कषाम वा १३
अथ येषां पुनः पाणी देवदत्तौ दशाङ्गुली ।
उद्धरन्ति कृमीनङ्गाद्दशतो निकषन्ति च १४
वर्षाहिमातपानां च परित्राणानि कुर्वते ।
चैलमन्नं सुखं शय्यां निवातं चोपभुञ्जते १५
अधिष्ठाय च गां लोके भुञ्जते वाहयन्ति च ।
उपायैर्बहुभिश्चैव वश्यानात्मनि कुर्वते ॥ १६
ये खल्वजिह्वाः कृपणा
अल्पप्राणा अपाणयः ।
सहन्ते तानि दुःखानि
दिष्ट्या त्वं न तथा मुने ॥ १७
दिष्ट्या त्वं न शृगालो वै न कृमिर्न च मूषकः
न सर्पो न च मण्डूको न चान्यः पापयोनिजः
एतावतापि लाभेन तोष्टुमर्हसि काश्यप ।
किं पुनर्योऽसि सत्त्वानां सर्वेषां ब्राह्मणोत्तमः
इमे मां कृमयोऽदन्ति येषामुद्धरणाय वै ।
नास्ति शक्तिरपाणित्वात्पश्यावस्थामिमां मम
अकार्यमिति चैवेमं नात्मानं सन्त्यजाम्यहम्
नातः पापीयसीं योनिं पतेयमपरामिति २१
मध्ये वै पापयोनीनां शार्गालीं यामहं गतः ।
पापीयस्यो बहुतरा इतोऽन्याः पापयोनयः ॥
जात्यैवैके सुखितराः संत्यन्ये भृशदुःखिताः
नैकान्तं सुखमेवेह क्वचित्पश्यामि कस्यचित्
मनुष्या ह्याढ्यतां प्राप्य राज्यमिच्छन्त्यनन्तरं
राज्याद्देवत्वमिच्छन्ति देवत्वादिन्द्रतामपि॥
भवेस्त्वं यद्यपि त्वाढ्यो न राजा न च दैवतं
देवत्वं प्राप्य चेन्द्रत्वं नैव तुष्येस्तथा सति ॥
न तृप्तिः प्रियलाभेऽस्ति
तृष्णा नाद्भिः प्रशाम्यति ।
संप्रज्वलति सा भूयः
समिद्भिरिव पावकः ॥ २६
अस्त्येव त्वयि शोकोऽपि
हर्षश्चापि तथा त्वयि ।
सुखदुःखे तथा चोभे
तत्र का परिदेवना ॥ २७

---

रथेन रथघातेन॥५॥आत्मानं धैर्यं त्यक्त्वा । 'आत्मा बुद्धौ धृतौ देहे' इति **कोशः** । जीवितार्थो जीवितप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ अकूजन्तं मूर्च्छया निःशब्दं प्रोत्कूजन्तमिति पाठे प्रकर्षेण उच्छ्वसन्तम् ॥ ७ ॥ सर्वः देवादिरपि अभिनन्दति विप्रत्वमभिलक्ष्य नन्दति ॥ ८॥ **श्रोत्रियो** ऽधीतवेदः । एतत् मनुष्यत्वादित्रयं दोषात् मौढ्यात् ॥ ९ ॥ साभिमाना मयेदं धनं लब्धमित्यभिमान एव धनलाभो न तु वस्तुतः कस्यापि धनेन सम्बन्धोऽस्ति 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' इति श्रुतेः । गृधः गर्धं लोभं मा कार्षीः । यत्सन्तोषणीयं रूपम् । त्वं स्वस्य अभिमन्यसे अवमन्यसे मरिष्यामीति निर्बन्धनेन नाशयसे इति वा । यदि वा एनमभिमंस्ये कनीयोऽन्नं करिष्य इत्यभिपूर्वस्य मन्यतेर्हिंसार्थत्वदर्शनात् । यन्नाभिमन्यस इति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ १० ॥ न कषाम न नाशयाम ॥ १३ ॥ निकषन्ति कण्डूयनेन ॥ १४ ॥ अधिष्ठाय अध्यास्य गां पृथिवीं बलीवर्दादि वा आत्मनि आत्मभोगनिमित्तम् ॥ १६ ॥ अल्पप्राणाः अल्पबलाः ॥१७॥ अदन्ति दशन्ति ॥ २० ॥ **अकार्यमिति** । तिरश्चामपि देहत्यागः पापाय किमुत विदुषां समर्थानां नृणामिति भावः ॥ २१ ॥ मध्ये स्थिता नातिनीचेत्यर्थः ॥ २२ ॥ एके देवाद्याः अन्ये पश्वाद्याः एकान्तं अत्यन्तं सुखं कस्यापि नास्ति । तृष्णाया निरवधित्वात् ॥ २३ ॥ तदेवाह—**मनुष्या इत्यादिना** ॥ २४ ॥ त्वमाढ्यो भूत्वाऽपि ब्राह्मणत्वान्न राजा भवेः । नापि दैवतं यदि कदाचिद्भवेस्तथापि न तुष्येरिति योज्यम् । परिच्छिन्नैव कामान्वै इति पाठे राजा नैव भवेरिति शेषः ॥२५॥ **अस्तीति** । शोकादिकं त्वय्येवास्ति अतः स्वगतेनैव हर्षेण शोकं मार्जयितुं शक्तस्य ते वृथैवेयं परिदेवनेत्यर्थः॥२७॥

परिच्छिद्यैव कामानां सर्वेषां चैव कर्मणाम्
मूलं बुद्धीन्द्रियग्रामं शकुन्तानिव पञ्जरे ॥२८
न द्वितीयस्य शिरसश्छेदनं विद्यते क्वचित्।
न च पाणेस्तृतीयस्य यन्नास्ति न ततो भयम्
न खल्वप्यरसज्ञस्य कामः क्वचन जायते।
संस्पर्शाद्दर्शनाद्वापि श्रवणाद्वापि जायते ३०

न त्वं स्मरसि वारुण्या
लट्वाकानां च पक्षिणाम्।
ताभ्यां चाभ्यधिको भक्ष्यो
न कश्चिद्विद्यते क्वचित् ॥ ३१

यानि चान्यानि भूतेषु
भक्ष्यजातानि कस्यचित्।
येषामभुक्तपूर्वाणि
तेषामस्मृतिरेव ते ॥ ३२

अप्राशनमसंस्पर्शमसंदर्शनमेव च।
पुरुषस्यैष नियमो मन्ये श्रेयो न संशयः॥ ३३
पाणिमन्तो बलवन्तो धनवन्तो न संशयः।
मनुष्या मानुषैरेव दासत्वमुपपादिताः ॥ ३४
वधबन्धपरिक्लेशैः क्लिश्यन्ते च पुनः पुनः।
ते खल्वपि रमन्ते च मोदन्ते च हसन्ति च
अपरे बाहुबलिनः कृतविद्या मनस्विनः।
जुगुप्सितां च कृपणां पापवृत्तिमुपासते ॥ ३६

उत्सहन्ते च ते वृत्तिमन्यामप्युपसेवितुम्।
स्वकर्मणा तु नियतं भवितव्यं तु तत्तथा ३७
न पुल्कसो न चाण्डाल आत्मानं त्यक्तुमिच्छति
तया तुष्टः स्वया योन्या मायां पश्यस्व यादृशी

दृष्ट्वा कुणीन्पक्षहतान्
मनुष्यानामयाविनः।
सुसंपूर्णः स्वया योन्या
लब्धलाभोऽसि काश्यप ॥ ३९

यदि ब्राह्मण देहस्ते निरातङ्को निरामयः।
अङ्गानि च समग्राणि न च लोकेषु धिक्कृतः॥
न केनचित्प्रवादेन सत्येनैवापहारिणा।
धर्मायोत्तिष्ठ विप्रर्षे नात्मानं त्यक्तुमर्हसि॥
यदि ब्रह्मन् शृणोष्येतच्छ्रद्दधासि च मे वचः
वेदोक्तस्यैव धर्मस्य फलं मुख्यमवाप्स्यसि॥
स्वाध्यायमग्निसंस्कारमप्रमत्तोऽनुपालय।
सत्यं दमं च दानं च स्पर्धिष्ठा मा च केनचित्
ये केचन स्वध्ययनाः प्राप्ता यजनयाजनम्।
कथं ते चानुशोचेयुर्ध्यायेयुर्वाऽप्यशोभनम्॥
इच्छन्तस्ते विहाराय सुखं महदवाप्नुयुः।
उत जाताः सुनक्षत्रे सुतिथौ सुमुहूर्तजाः।
यज्ञदानप्रजेहायां यतन्ते शक्तिपूर्वकम् ॥ ४५
नक्षत्रेष्वासुरेष्वन्ये दुस्तिथौ दुर्मुहूर्तजाः।
संपतन्त्यासुरीं योनिं यज्ञप्रसववर्जिताः॥ ४६

हर्षोद्दीपनप्रकारमाह—**परीति**। कामादीनां मूलं बुद्धीन्द्रियग्रामं शकुन्तानिव शरीरपञ्जरे परिच्छिद्य निरुध्य स्थितस्य भयं नास्तीत्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ २८ ॥ भयाभावोऽपि किं द्वैतादर्शनाद्वा द्वैताभावाद्वेत्याशंक्य तत्र द्वैताभावे हेतुं दृष्टान्तमुखेनाह—**नेति**। यथा द्वितीयस्य शिरसस्तृतीयस्य पाणेर्वा स्वरूपेणाभावाज्जातु कदाचिच्छेदनं तज्जं दुःखं नास्ति तथा यद्द्वैतं कालत्रयेऽपि नास्ति ततो भयमपि नास्तीत्यर्थः। तथा च। 'अतोऽन्यदार्तं नेह नानास्ति किंचन यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमि' इत्यादिद्वैताभावप्रतिपादिका श्रुतिरबाधिता भवति। दुःखप्रतीतिस्तु स्वप्नवदप्युपपद्यत इति न कश्चिद्दोषः ॥ २९ ॥ ननु प्रत्यक्षेण शीतोष्णादिभयं स्वप्नवदबाधितं दृश्यते तत्कथं भयं नास्तीति लोकदृष्ट्याऽप्याशंक्याह—**नेति**। स्पर्शसुखाभिज्ञस्यैवानुभूते विषये कामो जायते। बुद्ध्यादिनिरोधेन रसज्ञानाभावान्न क्वचिदपि विषये कामो जायतेऽतो बुद्ध्यादिकृतं शीतोष्णाद्यपि तन्निरोधेन नास्त्येवेत्यर्थः ॥ ३० ॥ अरसज्ञस्य कामो न जायत इत्यत्र दृष्टान्तमाह—**नेति**। वारुण्या मद्यस्य। लट्वाख्यपक्षिमांसस्य च कर्माणि षष्ठ्यौ। त्वं न स्मरसि ब्राह्मणत्वेन तव तद्रसग्रहाभावात्। भक्ष्यो रस्यो विषयस्ताभ्यामन्यो न विद्यते। तथापि त्वं तद्द्वयं न स्मरसि ॥३१॥ कस्यचिद्राजादेः। येषां यानि अभुक्तपूर्वाणि ते त्वया ॥ ३२ ॥ उपसंहरति—**अप्राशनमिति**। प्राशनादिवर्जननियम एव पुरुषस्य श्रेयः ॥ ३३ ॥ दैवाधीनत्वाच्च सुखादेर्न त्वया शोकः कार्य इत्याह—**पाणिमन्त इत्यादिना**। दासत्वं वधबन्धादिकं हीनवृत्तिः सत्यपि सामर्थ्ये तदत्यागं चाण्डालादिदेहं निन्द्यतरमनिष्टमपि दैवबलात्कारादेव प्राणिनामपरिहार्यमिति श्लोकपञ्चकस्य भावः ॥३४॥ तव त्वितरापेक्षया दैवमनुकूलमस्तीत्याह—**दृष्ट्वेति**। कुणीन् हस्तविकलान् पक्षहतान्। अर्धाङ्गवातादिना नष्टान्। आमयाविनो रोगाक्रान्तान्। अधिकदुःखान् अन्यान् दृष्ट्वा स्वयमात्मानं सुखिनं मन्येतेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ प्रवादेन कलङ्केन अपहारिणा जातिभ्रंशकरेण ॥४१॥ मुख्यं विवेकं चित्तशुद्धिं वा ॥४२॥ विहाराय यथोचितेन यज्ञादिना विहर्तुं सुनक्षत्रे पुष्यादौ। सार्धश्लोकः ॥ ४५ ॥ आसुरेषु मूलाश्लेषादिषु ॥ ४६ ॥

अहमासं पंडितको हैतुको वेदनिन्दकः।
आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम्
हेतुवादान्प्रवदिता
वक्ता संसत्सु हेतुमत्।
आक्रोष्टा चाभिवक्ता च
ब्रह्मवाक्येषु च द्विजान्॥ ४८
नास्तिकः सर्वशंकी च मूर्खः पण्डितमानिकः
तस्येयं फलनिर्वृत्तिः सृगालत्वं मम द्विज ४९
अपि जातु तथा तस्मादहोरात्रशतैरपि।
यदहं मानुषीं योनिं सृगालः प्राप्नुयां पुनः ५०
संतुष्टश्चाप्रमत्तश्च यज्ञदानतपोरतिः।
ज्ञेयज्ञाता भवेयं वै वर्ज्यवर्जयिता तथा॥ ५१
ततः स मुनिरुत्थाय काश्यपस्तमुवाच ह।
अहो बतासि कुशलो बुद्धिमांश्चेति विस्मितः
समवैक्षत तं विप्रो ज्ञानदीर्घेण चक्षुषा।
ददर्श चैनं देवानां देवमिन्द्रं शचीपतिम् ५३
ततः संपूजयामास काश्यपो हरिवाहनम्।
अनुज्ञातस्तु तेनाथ प्रविवेश स्वमालयम्॥५४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि सृगालकाश्यपसंवादे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८०॥

## १८१-[८]

युधिष्ठिर उवाच।
यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा तपस्तप्तं तथैव च।
गुरूणां वापि शुश्रूषा तन्मे ब्रूहि पितामह॥१

भीष्म उवाच।
आत्मनानर्थयुक्तेन पापे निविशते मनः।
स्वकर्मकलुषं कृत्वा कृच्छ्रे लोके विधीयते २

पण्डितकः कुत्सितः पण्डितः। यतो हैतुकः। अनारब्धद्रव्यत्वादित्यादिभिर्हेतुभिराकाशादेरपि नित्यत्वसाधनपरः। वेदनिन्दकः 'अतोऽन्यदार्तम्' इति तदनित्यत्वप्रतिपादकस्य वेदस्याप्रामाण्यकर्ता। ईक्षा प्रत्यक्षं तामनुप्रवृत्ता ईक्षा अन्वीक्षा धूमादिदर्शनेन वन्ह्याद्यनुमानं तत्प्रधानां आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यां कणभक्षाक्षचरणादिप्रणीतं शास्त्रम्। निरर्थिकां पुरुषार्थचतुष्टयशून्यां श्रुत्येकगम्यस्य वस्तुतत्त्वस्य निर्णयानुपयोगिनीम्॥ ४७॥ प्रवदिता प्रकर्षेण वदिता श्रुतेरनुमानाविरोधेनैव प्रामाण्यं न स्वत इति वदिता। ननु नास्तिकान्प्रत्येतद्वक्तुं युक्तं युक्तिबलेनैव वेदाप्राण्यवादिनां तेषां निरसनीयत्वादिति नायं दोष इत्यत आह—संसत्सु समीचीनेषु साधुष्वपि हेतुमदेव वक्ता न श्रुतिमत्। आक्रोष्टा परुषवाक्। अभिवक्ता अभिक्रम्य वक्ता। ब्रह्मवाक्येषु वेदवाक्येषु विचार्यमाणेषु॥ ४८॥ नास्तिकः वेदप्रामाण्यनिन्दकः सर्वशंकी स्वर्गादृष्टादिसद्भावेऽपि शंकावान्। स्वभाववादेन चाभित आकृष्यमाणोऽनवस्थित इत्यर्थः। कुतर्कमनादृत्य वेदमार्गे एव त्वया स्थातव्यमिति भावः॥ ४९॥ मम तु एतदत्यन्तं प्रार्थ्यमित्याह—अपीति। तस्मात् हीनयोनिदात्पापान्मुक्त इति शेषः॥५०॥ समवैक्षतेति। दिव्यज्ञानवतां काश्यपादीनामपि देहाभिमानावेशाद्दार्ढ्यबुद्धिर्भवति किमुत प्राकृतानामिति देहावेशो वर्ज्य इति भावः। यथोक्तम्—देहावेशात्प्रमाद्यतीति॥५३॥ हरिवाहनं इन्द्रम्॥ ५४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८०॥

१८१

आजगरव्रतालाभे प्रज्ञैव देहावेशनिवृत्तिद्वारेण हेतुरित्युक्तम्। तत्र प्रज्ञा बुद्धेः परिणामविशेषः स च क्षीरादिवत्स्वभावादेव कालक्रमेण भविष्यतीति दत्तेष्टादेर्वैयर्थ्यं मन्वानः शङ्कते—यदीति।

'शरणागतसंत्राणं भूतानामप्यहिंसनम्
बहिर्वेदि च यद्दानं दत्तमित्यभिधीयते।
अग्निहोत्रं तपः शौचं वेदानां चानुशासनम्
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते।'

दत्तेष्टे गृहस्थस्य धर्मः। तपो वानप्रस्थस्य। गुरुशुश्रूषा ब्रह्मचारिणः। यदि दत्तादिकं शुभादृष्टोत्पादनद्वारा कालान्तरीयप्रज्ञाहेतुर्भवति तर्हि मे महामनुष्ठेयमेतदिति ब्रूहि नोचेत्स्वभाव एव शरणं ममेत्यर्थः॥ १॥ स्वभाववादे सर्वेषां भौतिकानामुत्पत्त्यादौ एकरूपैव सामग्री तथा च ह्रस्वदीर्घसाध्वसाधुसुखदुःखादिवैचित्र्यं जगति दृश्यमानं नोपपद्यतेऽतस्तत्रावश्यं कर्मजन्यमदृष्टं कारणमभ्युपेयमिति

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात्क्लेशं भयाद्भयम् ।
मृतेभ्यः प्रमृतं यान्ति दरिद्राः पापकारिणः
उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात्स्वर्गं सुखात्सुखं
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनाढ्याः शुभकारिणः
व्यालकुञ्जरदुर्गेषु सर्पचोरभयेषु च ।
हस्तावापेन गच्छन्ति नास्तिकाः किमतः परं
प्रियदेवातिथेयाश्च वदान्याः प्रियसाधवः ।
क्षेम्यमात्मवतां मार्गमास्थिता हस्तदक्षिणम्
पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु ।
तद्विधास्ते मनुष्याणां येषां धर्मो न कारणम्
सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति ।
शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम् ॥ ८
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ।
करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते ॥ ९
येन येन यथा यद्यत्पुरा कर्म समीहितम् ।
तत्तदेकतरो भुंक्ते नित्यं विहितमात्मना ॥ १०
स्वकर्मफलनिक्षेपं विधानपरिरक्षितम् ।
भूतग्राममिमं कालः समन्तात्परिकर्षति ११
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च
स्वं कालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम्
संमानश्चावमानश्च लाभालाभौ क्षयोदयौ ।
प्रवृत्तानि विवर्तन्ते विधानान्ते पुनः पुनः १३
आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखं
गर्भशय्यामुपादाय भुज्यते पौर्वदेहिकम् १४
बालो युवा च वृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम्
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं प्रतिपद्यते १५
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १६
समुन्नमग्रतो वस्त्रं पश्चाच्छुध्यति कर्मणा ।
उपवासैः प्रतप्तानां दीर्घं सुखमनन्तकम् ॥१७
दीर्घकालेन तपसा सेवितेन तपोवने ।
धर्मनिर्धूतपापानां संपद्यन्ते मनोरथाः ॥ १८
शकुनानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके
पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः १९
अलमन्यैरुपालंभैः कीर्तितैश्च व्यतिक्रमैः ।
पेशलं चानुरूपं च कर्तव्यं हितमात्मनः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

मत्वा 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' इति श्रुतिस्मृतिसिद्धं कर्मणः सदसत्प्रज्ञाहेतुत्वमाह—**आत्मनेति** । आत्मना बुद्ध्या अनर्थः कामक्रोधादिस्तद्युक्तेन कृच्छ्रे दुःखदे नरकादौ विधीयते भोक्तुमधिक्रियते ॥ २ ॥ मृतेभ्यः मरणेभ्यः प्रमृतं मरणान्तरम् । अविलम्बेन पुनः पुनर्म्रियन्त इत्यर्थः । 'अथैतयोः पथोर्न कतरेणच न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि' इति श्रुतेः ॥ ३ ॥ हस्तौ अवाप्येते प्रवेश्येते यस्मिन्निति हस्तावापो हस्तनिगडस्तेन निगडिताः सन्तो नास्तिकाः राज्ञा दूरीकृताः व्यालादिमत्सु वनेषु गच्छन्ति निगडितहस्तत्वाच्च व्यालादीन्वारयितुमशक्ताः अत्यन्तमुद्वेगं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः। व्यालो दुष्टगजः ॥ ५ ॥ आतिथेयं अतिथिहितं मृष्टान्नदानादि । आत्मवतां जितचित्तानां योगिनां मार्गं देवयानम् । हस्तदक्षिणं हस्तोपलक्षितेन तत्कर्तव्येन दानादिना कर्मणा दक्षिणं अनुकूलम् ॥ ६ ॥ पुलाकाः गर्तोष्मणा भक्तासिक्थवन्नष्टबीजभावाः पूतिधान्यमिति यावत् । पुत्तिका मशकाः कारणं सुखादिहेतुः ॥ ७ ॥ शुभप्रज्ञाहेतुरपि धर्म एव चेत्तत्र प्रवृत्तिरपि पूर्वकर्मायत्तेति किं पुरुषकारेणेत्याशंक्याह-**सुशीघ्रमिति**। विधानं प्राक्कर्म धावन्तं यतमानं अनुधावति फलप्रदानेनानुसरति अन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह-शेते इति । येन येन यथा कृतं तं तं प्रति तथा प्राक्कर्म फलदमफलदं च भवति ॥ ८ ॥ कर्म प्राचीनं छायेव अनुविधीयते पुरुषेण स्वस्यानुकूलं क्रियते अनादौ संसारेऽनन्तानां सतामसतां वा कर्मणामहं पूर्वमहं पूर्वमिति स्पर्धया स्वस्वफलदानाय युगपदुपस्थितानां यदेव कर्म अविकलः पुरुषकारोऽनुगृह्णाति तदेव प्रभवतीत्यर्थः॥ ९ ॥ **येनेति** । भुंक्ते इति वर्तमानार्थलट्प्रयोगेण ऐहिकभोगे एव प्राक्कर्मणः प्राबल्यं न त्वामुष्मिकभोगार्थायां यज्ञादिप्रवृत्तौ । विधिप्रतिषेधशास्त्रानर्थक्यापत्तेरित्यर्थः । नित्यं अपरिहार्यम् ॥ १० ॥ **स्वकर्मणः** फलं स्वर्गपश्वादि तदेव निक्षेपरूपं विधानेन कर्मजन्यादृष्टेन रक्षितं गौणकर्मीभूतं भूतग्रामं प्रति कालः समनुकर्षति ॥ ११ ॥ समुन्नं जलेन क्लिन्नं उन्दी क्लेदनेऽस्य निष्ठायां रूपम् । संयुक्तमिति पाठे मलेनेति शेषः । संस्विन्नमिति पाठे स्वेदेन मलिनम् । कर्मणा क्षालनेन उपवासः विषयत्यागः अनन्तकं सुखं मोक्षः॥१७॥ मनोरथाः ज्ञानलाभविषयाः१८ प्राप्तज्ञाना न कार्यब्रह्मलोकं गच्छन्ति किं तु 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते' इति तत्त्वविदः प्राणादीनां प्रलयस्य श्रुतेः प्रत्यगात्मन्येव श्रवणादात्मा च न द्रष्टुं योग्य इत्याशयेनाह-'**शकुनानामिति** ज्ञानविदां ब्रह्मविदां गतिः परायणं ब्रह्मैवेत्यर्थः 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः ॥ १९ ॥ उपालंभैः आक्षेपवाक्यैः व्यतिक्रमैः अपराधैः । अलमुक्तैः पर्याप्तं पेशलं कौशलयुक्तं यथा स्यात्तथा । सत्कर्मभिः सद्वासनोदयात्साध्वी प्रज्ञा समुदेतीति भावः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

# १८२–[९]

युधिष्ठिर उवाच ।

कुतः सृष्टमिदं विश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः ।
सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः
कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः ।
शौचाशौचं कथं तेषां धर्माधर्मविधिः कथं
कीदृशो जीवतां जीवः क वा गच्छंति ये मृताः
अस्माल्लोकादमुं लोकं सर्वं शंसतु नो भवान्

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भृगुणाऽभिहितं शास्त्रं भरद्वाजाय पृच्छते॥५
कैलासशिखरे दृष्ट्वा दीप्यमानं महौजसम् ।
भृगुं महर्षिमासीनं भरद्वाजोऽन्वपृच्छत ॥ ६
ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः ।
सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः
कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः ।
शौचाशौचं कथं तेषां धर्माधर्मविधिः कथम्
कीदृशो जीवतां जीवः क वा गच्छंति ये मृताः
परलोकमिमं चापि सर्वं शंसितुमर्हसि ॥ ९
एवं स भगवान्पृष्टो भरद्वाजेन संशयम् ।
ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसंकाशः सर्वं तस्मै ततोऽब्रवीत् १०

भृगुरुवाच ।

मानसो नाम यः पूर्वो विश्रुतो वै महर्षिभिः
अनादिनिधनो देवस्तथाऽभेद्योऽजरामरः ११
अव्यक्त इति विख्यातः
शाश्वतोऽथाक्षयोऽव्ययः ।
यतः सृष्टानि भूतानि
जायन्ते च म्रियन्ति च ॥ १२
सोऽसृजत्प्रथमं देवो महान्तं नाम नामतः ।
महान्ससर्जाहंकारं स चापि भगवानथ १३

---

१८२

एवमष्टभिरध्यायैः क्रमादाशां जित्वा पूर्वस्मिन्नेव वयसि निष्परिग्रहो निरीहो हिंसाशून्य आजगरीं वृत्तिमास्थितः प्रज्ञावान् सुकृती ब्रह्मविद्याधिकारी निरूपितः तत्र प्रसंगात्तत्र तत्र संक्षेपेणात्मतत्त्वं च सूचितम् । यथा आजगरेऽनवसितमनन्तदोषपारमित्यनेन आकाशस्येव नित्यत्वाद्विभुत्वाच्चात्मनः कालतो देशतश्च परिच्छेदाभावः परेषां संमतः । अस्माकं त्वात्मनि त्रिविधभेदरूपो वस्तुपरिच्छेदोऽपि नास्ति । यथा परेषामात्मान्तरस्य पृथिव्यादेरात्मगतबुद्ध्यादिगुणानां च पृथक्सत्त्वेन आत्मनि सजातीयविजातीयस्वगतभेदरूपो वस्तुपरिच्छेदोऽस्ति न तथाऽस्माकमित्यखण्डैकरसमेकाद्वितीयं कूटस्थं वस्तु निर्दिष्टम् । तथा सृगालीये—

**'न द्वितीयस्य शिरसश्छेदनं विद्यते क्वचित्
न च पाणेस्तृतीयस्य यन्नास्ति न ततो भयम्'**

इति । आत्मातिरिक्तस्य द्वितीयशिरआदिवदत्यन्तासत्त्वमुक्त्वा तदेव दृढीकृतम् । तथा—

**'शकुनानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके
पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः'**

इति । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति 'इति च प्रतिपादितम् । ततश्च विकारिकारणाभावाज्जगज्जन्माद्यसंभवं मन्वानः पृच्छति **कुत इति**। तत्र कुत इति कालादृष्टेश्वरेच्छादिनिमित्तप्रश्नः कमभ्येतीति उपादानप्रश्नः तत्रैव कार्यलयनियमात् ॥१॥ केनेत्यवान्तरकारणप्रश्नः ॥ २ ॥ कथमिति सृष्टिप्रकारप्रश्नः विभक्तयो विभागाः॥३॥ जीवः कीदृश इति जीवतत्त्वप्रश्नः अमृताः मुक्ताः क्व अधिष्ठाने लीयन्त इति मुक्तिप्राप्यवस्तुप्रश्नः अस्माल्लोकात् इमं लोकं मुक्त्वा अमुं लोकं सर्वं च पूर्वं पृष्टं नो अस्मभ्यं भवान् कथयतु॥ ४ ॥ पूर्वोक्तब्रह्माद्वैतसिद्धये कृत्स्नस्य जगतः ब्रह्मोपादानकत्वं प्रतिपादयिष्यन् 'असतोऽधिमनोऽसृजत । मनःप्रजापतिमसृजत । प्रजापतिः प्रजा असृजत । तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितं यदिदं किंच'इति श्रुतिमनुसरन्नुत्तरमाह—**मानस इति** सत्त्वासत्त्वाभ्यां निर्वक्तुमशक्यादज्ञानान्मन उत्पन्नं तच्च चित्प्रतिबिम्बविशिष्टं मानसो नाम जगतो मूलकारणं सर्वश्रुतिस्मृतिप्रसिद्धं अनादिनिधनः आदिनिधनं जन्मलयस्थानं तद्धीनः तत्कारणस्य असतो ज्ञानस्यानिर्वचनीयस्य स्वरूपेणासत्त्वात् कूटस्थस्य च शुद्धब्रह्मणस्तं प्रत्यनुपादानत्वात् । अभेद्यः भेत्तुमनर्हः एकत्वात् । अजरामर इति 'य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्प.' इति श्रुत्युक्तानां गुणानां संग्रहः ॥ ११ ॥ अक्षयोऽव्यय इति लक्षणया वृद्धिजन्महीनत्वमुक्तम् । अत एव शाश्वतः सदैकरूपः अव्यक्त इति संज्ञामात्रम् । योगिनां प्रत्यक्षत्वात् । मूढान्प्रत्यप्रकाशत्वाद्वाऽव्यक्तः । सृष्टानि जन्मवन्ति भूतानि आकाशादीनि जायन्ते म्रियन्ति व्ययवन्ति च यत्रैव भवन्ति । सृष्टानीति विशेषणादसृष्टाश्चेतना न जायन्त इति दर्शितम् ॥ १२ ॥ 'स दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता—'इत्यादिश्रुतिषु आकाश इति विख्यातः सन् महान्तं समष्टिजीवं हैरण्यगर्भं बुद्धिं

आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः ।
आकाशादभवद्वारि सलिलादग्निमारुतौ ।
अग्निमारुतसंयोगात्ततः समभवन्मही ॥ १४
ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयंभुवा ।
तस्मात्पद्मात्समभवद्ब्रह्मा वेदमयो निधिः १५
अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत् ।
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः १६
शैलास्तस्यास्थिसंज्ञास्तु मेदो मांसं च मेदिनी
समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा ॥ १७
पवनश्चैव निःश्वासस्तेजोऽग्निर्निम्नगाः शिराः
अग्नीषोमौ तु चन्द्रार्कौ नयने तस्य विश्रुते ॥
नभश्चोर्ध्वं शिरस्तस्य
क्षितिः पादौ भुजौ दिशः ।
दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मा
सिद्धैरपि न संशयः ॥ १९
स एष भगवान्विष्णुरनन्त इति विश्रुतः ।
सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयो कृतात्मभिः २०
अहंकारस्यः यः स्रष्टा सर्वभूतभवाय वै ।
यतः समभवद्विश्वं पृष्टोऽहं यदिह त्वया ॥ २१

भरद्वाज उवाच ।
गगनस्य दिशां चैव भूतलस्यानिलस्य वा।
कान्यत्र परिमाणानि संशयं छिन्धि तत्त्वतः
भृगुरुवाच ।
अनन्तमेतदाकाशं सिद्धदैवतसेवितम् ।
रम्यं नानाश्रयाकीर्णं यस्यान्तो नाधिगम्यते
ऊर्ध्वं गतेरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न दृश्यतः ।
तत्र देवाः स्वयं दीप्ता भास्वराभाग्निवर्चसः ॥
ते चाप्यन्तं न पश्यन्ति नभसः प्रथितौजसः
दुर्गमत्वादनन्तत्वादिति मे विद्धि मानद ॥
उपरिष्टोपरिष्टात्तु प्रज्वलद्भिः स्वयंप्रभैः ।
निरुद्धमेतदाकाशमप्रमेयं सुरैरपि ॥ २६
पृथिव्यन्ते समुद्रास्तु समुद्रान्ते तमः स्मृतम्
तमसोऽन्ते जलं प्राहुर्जलस्यान्तेऽग्निरेव च ॥
रसातलान्ते सलिलं जलान्ते पन्नगाधिपाः ।
तदन्ते पुनराकाशमाकाशान्ते पुनर्जलम् २८
एवमन्तं भगवतः प्रमाणं सलिलस्य च ।
अग्निमारुततोयेभ्यो दुर्ज्ञेयं दैवतैरपि ॥ २९

---

वाऽसृजदिति योजना महानपि अहंकारं हैरण्यगर्भं मनः । स चाहंकारो भगवान् आकाशं शब्दतन्मात्राख्यं असृजत्१३ 'आकाशादभवद्वारि'इत्यादिपाठक्रमो न विवक्षितः किं तु 'आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी–'इति श्रौत एव ज्ञेयः। तत्र वाय्वादिशब्दैः स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रं च सूक्ष्ममपञ्चीकृतं भूतजातमुच्यते ॥१४॥ ततस्तेजोमयं लिंगशरीरं दिव्यं परलोकगमनार्हं स्थूलभूतानि च पञ्चीकृतानि तत्कर्दममयं ब्रह्माण्डापरनामधेयं पद्मं चासृजत् । ब्रह्मा विराट् वेदमयो वेदपूर्णो निधिरिव ज्ञानैश्वर्यादीनाम्॥१५॥ 'ख्यातः सोहमित्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत्' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः । सर्वभूतानि स्थूलवियदादीनि तदात्मा तच्छरीरः स चासौ भूतकृच्चतुर्विधभूतग्रामस्रष्टा चेति समासः । ये एते पञ्च आकाशादयो धातवो धारणकर्माणः स एव ब्रह्मा ॥१६॥ **'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा'** इति भगवतो वैश्वरूप्यप्रतिपादिकां श्रुतिमुपबृंहयति-**शैला इत्यादिपञ्चभिः** ॥ १७ ॥ अग्नीषोमावेव चन्द्रार्कौ ॥ १८ ॥ सर्वभूतानामात्मभूतोऽहंकारस्तत्स्थः ॥ २० ॥ भूतभवाय भूतोत्पत्तये स्रष्टाहंकारस्येति सम्बन्धः। यतो विश्वं समभवत् यच्च त्वयाऽहं पृष्टस्तत्तुभ्यमुक्तमिति शेषः ।२१। कुतःसृष्टमिदं विश्वमित्यस्य प्रश्नस्योत्तरं ब्रह्मैव ईशसूत्रविराड्रूपेण सन्निविष्टमस्तीत्युक्तम् । तत्किं एकदेशेन उत कार्त्स्न्येन। नाद्यः । ब्रह्मणः सांशतापत्तेर्निष्कलत्वश्रुतिव्याकोपः । नान्त्यः । कार्यस्य परिच्छिन्नत्वेन व्याप्यत्वात् ब्रह्मणोऽपि परिच्छेदापत्तिस्ततश्चानन्त्यश्रुतिव्याकोप इति शंकते-**गगनस्येति** ॥ २२ ॥ कार्यस्यानन्त्यं कारणानन्त्यायोपपादयन्नुक्तां शङ्कां परिहरति-**अनन्तमेतदिति** । आश्रयाश्चतुर्दश भुवनानि ॥ २३ ॥ गतेः सूर्यरश्मिगतेरपि ऊर्ध्वमधस्ताच्च चन्द्रादित्यौ न दृश्येते मध्यमपरिमाणयोस्तयोरनन्ताकाशव्याप्तियोगात् यत्र तौ न दृश्येते तत्र सन्धिरार्षः ॥२४॥ तेऽपि सूर्यादिगतेरूर्ध्वस्था अनन्तमेवाकाशं पश्यन्ति न तु परिच्छिन्नमिति मे मद्वचनाद्विद्धि ॥२५॥ एवं तत्तदुपर्यपीत्याह-**उपरिष्टेति** । आर्षो वर्णलोपः प्रज्वलद्भिर्लोकैरिति शेषः ॥ २६ ॥ तिर्यक्प्रमाणतोऽप्यानन्त्यमाह-**पृथिव्यन्त इति** २७ एवमन्तं पुनः पुनर्जलं पुनराकाशं पुनर्जलमित्येवंरूपमेव सलिलस्य सलिलात्मकस्य भगवतोऽन्तं पश्यामः न तु जलाकाशमालाया इत्यर्थः। तोयेभ्य इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी२९

अग्निमारुततोयानां वर्णाः क्षितितलस्य च ।
आकाशादिवगृह्यन्ते भिद्यन्ते तत्त्वदर्शनात् ॥
पठन्ति चैव मुनयः शास्त्रेषु विविधेषु च ।
त्रैलोक्यसागरे चैव प्रमाणं विहितं यथा ३१
अदृश्याय त्वगम्याय कः प्रमाणमुदाहरेत् ।
सिद्धानां देवतानां च यदा परिमिता गतिः
तदा गौणमनन्तस्य नामानन्तेति विश्रुतम् ॥
नामधेयानुरूपस्य मानसस्य महात्मनः ॥ ३३
यदा तु दिव्यं यद्रूपं
ह्रसते वर्धते पुनः ।
कोऽन्यस्तद्वेदितुं शक्यो
योऽपि स्यात्तद्विधोऽपरः ॥ ३४

ततः पुष्करतः सृष्टः सर्वज्ञो मूर्तिमान्प्रभुः ।
ब्रह्मा धर्ममयः पूर्वः प्रजापतिरनुत्तमः ॥ ३५

भरद्वाज उवाच ।

पुष्कराद्यदि संभूतो ज्येष्ठं भवति पुष्करम् ।
ब्रह्माणं पूर्वजं चाह भवान्संदेह एव मे ॥ ३६

भृगुरुवाच ।

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता ।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ३७
कर्णिकान्तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः ।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान्सृजते जगतः प्रभुः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे
द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

---

**अग्नीति**। वर्णो रूपं तच्च स्पर्शस्याप्युपलक्षणं यथा रूपस्पर्शरहितं नभोद्रव्यं देशतः कालतश्चानन्तं तद्वदग्न्यादयोऽपि। तथा च लक्षणभेदाभावादाकाशानतिरिक्ता अपि ते केवलमतत्त्वदर्शनादेवाकाशात्पृथगवगृह्यन्ते द्वितीयचन्द्रवत्। एवमाकाशादयोऽपि पूर्वस्मात्पूर्वस्मात्स्वकारणादभिन्नाः सन्तो मानसमात्रं भवन्तीत्यर्थः ॥३०॥ कथं तर्हि बौद्धज्योतिषिकपौराणिकास्त्रैलोक्यादेः प्रमाणं यथा विहितं पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तारायामादिरूपमुपपादयन्तीति शङ्कते-**पठन्तीति** ॥३१॥ दूषयति-**अदृश्यायेति** । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । ब्रह्म परिमाणहीनं अदृश्यत्वादगम्यत्वाच्च आकाशादिवदित्यनुमानेन कारणानन्त्यात्कार्यानन्त्यसिद्धिः । **सिद्धानामिति**। गतिर्गमनमार्ग आकाशः सोऽपि चेत्परिमितः स्यात्तर्हि श्रूयमाणं परमात्मनो मानसाख्यस्य आनन्त्यं गौणमौपचारिकं स्यात्तच्च न युक्तम् 'अनन्तं ब्रह्म' इति वेदपीडाप्रसंगादिति सार्धः श्लोकः ३२ दिव्यं द्योतमानं यत् रूपं विश्वरूपं तदपि ह्रसते सुप्तिप्रलययोर्लीयते वर्धते च जाग्रत्सर्गयोर्यदि तर्हि 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' इति न्यायेन सर्गकालेऽप्यसतो जगतः स्वरूपम् । तद्विधोऽपि ब्रह्मभावं गतोऽपि कोऽन्यो वेदितुं शक्तो न कश्चित् । न हि मरुमरीचितोयस्य रसस्पर्शौ कश्चिद्वेदितुमर्हतीति भावः । तत्र सुप्तिबोधयोर्जगल्लयोदयौ कौषीतकिनः समामनन्ति—'स यदा स्वपिति तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति । चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति । मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति । अथ यदा प्रबुध्यते । एतस्मादात्मनः सर्वे प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः' इति । तथा च 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' इति भगवदुक्तदिशा जगतोऽसत्त्वाद्दुर्ज्ञेयत्वं सिद्धम् ॥ ३४ ॥ पुष्करतः स्थूलसूक्ष्मकार्यरूपात् । ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥३५॥ चतुर्मुखस्यैव महत्तत्त्वात्मतां मन्वानः शङ्कते—**पुष्करादिति** ॥ ३६ ॥ परिहरति—**मानसस्येति** । यथा बीजादंकुरतरुजातावपि तरुस्थपक्वफलवदंकुरतर्वन्तरोत्पादे न समर्थौ । फलं त्वनेकबीजगर्भं तरुबीजादप्यधिकशक्तिमत् । एवं मानसाख्यादीशाज्जातावपि सूत्रविराजौ न सूत्रविराडन्तरं स्रष्टुं शक्नुतः । चतुर्मुखे तु कृत्स्ना मानसस्य शक्तिरभिव्यक्ताऽतः स च सूत्रविराडात्मकात्पद्माज्ज्यायान् । तथापि तदभिव्यक्त्यभिप्रायेण पुष्करतो ब्रह्माऽभवत् । वृक्षादिव फलमित्यर्थः ॥३७॥ गगनं हार्दाकाशाख्यं ब्रह्म पद्मस्य मध्ये तस्यापि मध्ये उच्छ्रितो मेरुस्तस्य मध्ये अधिष्ठितः कर्णिकामिति पदयोजना । एतेन 'दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः' इत्यादिना 'उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते' इत्यन्तायाः श्रुतेरर्थः संगृहीतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

# १८३-[१०]

भरद्वाज उवाच ।
प्रजाविसर्गं विविधं कथं स सृजते प्रभुः ।
मेरुमध्ये स्थितो ब्रह्मा तद्ब्रूहि द्विजसत्तम ॥ १
भृगुरुवाच ।
प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसाऽसृजत्
संरक्षणार्थं भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम् ॥ २
यत्प्राणः सर्वभूतानां वर्धन्ते येन च प्रजाः ।
परित्यक्ताश्च नश्यन्ति तेनेदं सर्वमावृतम् ॥ ३
पृथिवी पर्वता मेघा मूर्तिमन्तश्च ये परे ।
सर्वं तद्वारुणं ज्ञेयमापस्तस्तंभिरे यतः ॥ ४
भरद्वाज उवाच ।
कथं सलिलमुत्पन्नं कथं चैवाग्निमारुतौ ।
कथं वा मेदिनी सृष्टेत्यत्र मे संशयो महान् ५
भृगुरुवाच ।
ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन्ब्रह्मर्षीणां समागमे ।
लोकसंभवसन्देहः समुत्पन्नो महात्मनाम् ६
तेऽतिष्ठन्ध्यानमालम्ब्य
मौनमास्थाय निश्चलाः ।
त्यक्ताहाराः पवनपा
दिव्यं वर्षशतं द्विजाः ॥ ७
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत् ।
दिव्या सरस्वती तत्र संबभूव नभस्तलात् ८
पुरा स्तिमितमाकाशमनन्तमचलोपमम् ।
नष्टचन्द्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव संबभौ ॥ ९

---

१८३

**प्रजाविसर्गमिति** । प्रजा जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जास्तासां विविधं सर्गम् । मेरुमध्ये इति तस्य व्यवहितत्वमुक्तम् । प्रजानां तु सर्गो यथायथं स्वस्वबीजात्तत्स्वादृष्टवशाद्दृश्यते । तत्र कथं तस्य स्रष्टृत्वमित्याक्षेपः ॥१॥ चतुर्मुखत्वं प्राप्तो मानस एव मनसा संकल्पेन प्रजाविसर्गमसृजत् । 'संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति' इति श्रुतेः । सत्यकामः सत्यसंकल्प इत्यादिश्रुतेश्च न तस्य बीजसान्निध्याद्यपेक्षा । संकल्पैकसाधनत्वात् ॥२॥ यत् जलं तेन जलेन ॥ ३ ॥ वारुणं वरुणदेवतासम्बन्धात् । आप्यमित्यर्थः । मूर्तिमत् मनुष्यपश्वादिविग्रहवत् आप्यत्वे हेतुः । आपस्तस्तम्भिरे यत आपस्तम्भं घनीभावं पृथिव्यादिरूपं प्राप्ताः । 'तद्यदपां शर आसीत्तत्समहन्यत सा पृथिव्यभवत्' इति श्रुतेः ॥ ४ ॥ एतदाक्षिपति—**कथमिति** । भौतिकसृष्टावेव चतुर्मुखस्याधिकाराद्भूतानां च प्रागेव सृष्टत्वात् तस्य जलादिस्रष्टृत्वोक्तिरयुक्तेत्याक्षेपाभिप्रायः ॥ ५ ॥ ब्रह्मकल्पे ब्रह्मलोके कल्पादावित्यर्थः । लोकानां सम्भव उत्पत्तिस्तत्र विषये सन्देहः । तथाहि 'कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्' इति श्रुत्यैवानेकपक्षोपन्यासात् । तत्र काल इति **ज्यौतिषिकाः** । स्वभाव इति **बौद्धा लोकायतिकाश्च** । नियतिरदृष्टं कारणं कर्मेति **मीमांसकाः** । यदृच्छेत्यार्हताः । भूतानीति **तार्किकादयः** । योनिर्जगत्कारणं पुरुष **इत्यौपनिषदाः** ॥ ६ ॥ एवं सन्देहे सति ध्यानयोग एव शरणीकरणीय इत्याख्यायिकामुखेनाह—**तेऽतिष्ठन्निति** । ध्यानं ध्यायन्त्यस्मिन्निति व्युत्पत्त्या हृदयपुण्डरीकम् । आलम्ब्य-आलम्बनीकृत्य मौनं ध्यानं चित्तनिरोधरूपं योगमास्थिताः सन्तः आतिष्ठन् ॥ ७ ॥ श्रुतौ यद्यपि 'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' इत्यनुभवगम्योऽयमर्थ इत्युक्तम् । तथापि अनुभवे भ्रान्तत्वसम्भवात् श्रुतिरेव निष्कलङ्कं प्रमाणमित्याशयेनाह—**तेषामिति** । तत्र हृदयपुण्डरीके नभस्तलाद्धार्दाकाशाख्यात् मायाविशिष्टाद्ब्रह्मणः ॥८॥ सरस्वतीमेवाह—**पुरेति** । हार्दाकाशे गुरूक्तयुक्त्या स्थूलदेहासङ्गेन चित्तं धारयन् । प्रथमं कज्जलश्यामलेन तमसा व्याप्तमचलमनन्तमशब्दमाकाशं पश्यति । तच्च तमः क्रमेण कालिमानं जहत् अवश्यायाख्यनीहाररूपेण । ततो धूमरूपेण च भाति । ततः किञ्चित्तमसोपगमे सुषिरमनन्तमाकाशं पश्यति । स तत्र श्रान्तस्तृषार्त इव भूत्वा जलं स्मरति । तच्च जलं क्षणेन तमेवाकाशं पूरयति । तत्र यथा घटे जलेनापूर्यमाणे शब्दो वायुश्चाभिव्यज्यते । तथैव तत्र शब्दवायू आविर्भवतः । ततश्च तयोर्जलवाय्वोररण्योरिव संघर्षात्तेज उत्पद्यते । तेन च हार्दाकाशं निस्तिमिरीकुर्वता वायुना सह संयोगमेत्य सलिलमाकाशे समुत्क्षिपता जलपवनसंपर्कादात्मा घनीक्रियते सोयं त्रयाणां संघातः पृथिवी नाम भवति । एवं भूतानि सृष्ट्वा भौतिकान्यपि सृजति । पुनश्च तत्सर्वमुपसंहृत्य केवलचिन्मात्रेण रूपेण निरुद्धसर्ववृत्तिस्तिष्ठतीति योगिनामनुभवक्रमः । तदुपक्रमं एकदेशेन श्रुतिरनुवदति—

'**नीहारधूमार्कानलानिलानां**
**खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्** ।

ततः सलिलमुत्पन्नं तमसीवापरं तमः ।
तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः ॥
यथा भाजनमच्छिद्रं निःशब्दमिव लक्ष्यते ।
तच्चांभसा पूर्यमाणं सशब्दं कुरुतेऽनिलः ११
तथा सलिलसंरुद्धे नभसोऽन्ते निरन्तरे ।
भित्त्वार्णवतलं वायुः समुत्पतति घोषवान्१२
स एष चरते वायुरर्णवोत्पीडसंभवः ।
आकाशस्थानमासाद्य प्रशान्तिं नाधिगच्छति
तस्मिन्वाय्वंबुसङ्घर्षे दीप्ततेजा महाबलः ।
प्रादुरभूदूर्ध्वशिखः कृत्वा निस्तिमिरं नभः ॥
अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिपते जलम् ।
सोऽग्निर्मारुतसंयोगाद्घनत्वमुपपद्यते ॥ १५
तस्याकाशं निपतितः स्नेहस्तिष्ठति योऽपरः ।
स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति॥१६
रसानां सर्वगन्धानां स्नेहानां प्राणिनां तथा
भूमिर्योनिरिह ज्ञेया यस्यां सर्वं प्रसूयते॥ १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे मानसभूतोत्पत्तिकथने त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

## १८४-[११]

भरद्वाज उवाच ।
त एते धातवः पञ्च ब्रह्मा यानसृजत्पुरा ।
आवृता यैरिमे लोका महाभूताभिसंज्ञिताः॥
यदाऽसृजत्सहस्राणि भूतानां स महामतिः ।
पञ्चानामेव भूतत्वं कथं समुपपद्यते ॥ २
भृगुरुवाच ।
अमितानां महाशब्दो यान्ति भूतानि संभवं
ततस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते ॥ ३
चेष्टा वायुः खमाकाशमूष्माग्निः सलिलं द्रवः
पृथिवी चात्र संघातः शरीरं पाञ्चभौतिकम्
इत्येतैः पञ्चभिर्भूतैर्युक्तं स्थावरजङ्गमम् ।
श्रोत्रं घ्राणं रसः स्पर्शो दृष्टिश्चेन्द्रियसंज्ञिताः

**एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे** ॥ इति स एवायं भूतोत्पत्तिक्रमोऽत्र पुरा स्तिमितमाकाशमित्यादिना श्लोकनवकेन प्रतिपादितः । अक्षरयोजनापि कृतप्राया ॥ ९ ॥ कथं घनत्वमुपपद्यते इत्यत आह— **तस्येति** । षष्ठी सप्तम्यर्थे । तस्मिन्मारुतयुक्तेऽग्नौ आकाशमध्ये भ्रमति यः स्नेहाश्रयो जलं तत्संघातत्वमिति स्पष्टम् । एवं मानसस्य सृष्टिर्मानस्येव तत्सामान्यादस्मदादीनामपीयं सृष्टिः स्वप्नवन्मानसस्यैवेत्यध्यायतात्पर्यम् । अत एव द्वितीयशिरोवदस्या असत्त्वं प्रागुक्तं सङ्गच्छते ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

१८४

ननु चतुर्मुखेन मनसा सृष्टाः पञ्च धातव आकाशादयः स्वाप्नाकाशादिवदान्तराः सन्तः कथं बाह्यलोकानामावरका इत्युपपद्यते इत्याह- **त एते इति**। यान् ब्रह्माऽसृजत्ते एते इति कथमित्यग्रिमेण सम्बन्धः । एते के ये महाभूतसंज्ञाः यैश्च लोका आवृता इति योजना ॥ १ ॥ तथा ब्रह्मणा सृष्टानां जरायुजादीनां चैवं प्रत्येकं मानसानि पञ्चभूतानि सन्ति । स्वप्ने तद्दर्शनात् । ततश्च कथं ब्रह्मसृष्टानामेव पञ्चानां भूतानां महाभूतत्वं नास्मदादिसृष्टानां भूतत्वं यतः सर्वेषां मानसत्वाविशेषात् प्रातिभासिकत्वेन क्षुद्रभूतत्वं ईशसृष्टानां तु महाभूतत्वम् तथा च प्रातिभासिकव्यावहारिकयोर्बाध्याबाध्ययोः प्रपञ्चयोर्भेद एष्टव्य इति आक्षेप्तुरभिप्रायः ॥ २ ॥ अमितत्वमेव महच्छब्दार्थो न त्वबाध्यत्वमित्याह-**अमितानामिति**। अमितेषु अमितत्वादित्यर्थः । यतः संभवं यान्ति ततो हेतोर्भूतानीत्यर्थः । ततश्चानन्तत्वोत्पन्नत्वयोरुभयत्राविशेषात् न व्यावहारिकप्रातिभासिकयोर्महाभूतसंघयोर्भेद इत्यर्थः ३ कार्यमात्रे व्याप्तिं प्रदर्शयन्नमितत्वमेवाह-**चेष्टेति** । खं सुषिरम् अत्र शरीरे द्रवो लोहितादिसंघातः काठिनं मांसास्थ्यादि ॥४॥ श्रोत्रं खं घ्राणं पृथिवी रसो रसनेन्द्रियं जलं स्पर्शः स्पर्शनेन्द्रियं त्वक् वायुः दृष्टिश्चक्षुरिन्द्रियं तेजः श्रोत्रादीनां खादिगुणान् शब्दादीन् प्रतिग्राहकत्वात् खाद्यात्मकत्वं श्रोत्रादीनां खाद्यात्मत्वोपपादनं दृष्टान्तसिद्ध्यर्थम् । तथा चायं प्रयोगः। मेयमातारौ समानजातीयौ ग्राह्यग्राहकत्वात् शब्दश्रोत्रादिवदिति । तथा च प्रमातुश्चेतनाभिन्नत्वेन प्रमेयस्यापि तथात्वमिति **अद्वैतसिद्धिः**॥ ५ ॥

भरद्वाज उवाच ।

पञ्चभिर्यदि भूतैस्तु युक्ताः स्थावरजङ्गमाः।
स्थावराणां न दृश्यन्ते शरीरे पञ्चधातवः॥ ६
अनूष्मणामचेष्टानां घनानां चैव तत्त्वतः।
वृक्षाणां नोपलभ्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः॥७
न शृण्वन्ति न पश्यन्ति न गन्धरसवेदिनः।
न च स्पर्शं विजानंति ते कथं पाञ्चभौतिकाः
अद्रवत्वादनग्नित्वादभूमित्वादवायुतः।
आकाशस्याप्रमेयत्वाद्वृक्षाणां नास्ति भौतिकं

भृगुरुवाच ।

घनानामपि वृक्षाणा-
माकाशोऽस्ति न संशयः।
तेषां पुष्पफलव्यक्ति-
र्नित्यं समुपपद्यते ॥ १०
ऊष्मतो म्लायते वर्णं त्वक् फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः
वल्ली वेष्टयते वृक्षं
सर्वतश्चैव गच्छति।
न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति
तस्मात्पश्यन्ति पादपाः ॥ १३
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धै-
र्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति
तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः ॥ १४
पादैः सलिलपानाच्च
व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च
विद्यते रसनं द्रुमे ॥ १५
वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः॥ १६
सुखदुःखयोश्च ग्रहणा-
च्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणा-
मचैतन्यं न विद्यते ॥ १७
तेन तज्जलमादत्तं जरयत्यग्निमारुतौ।
आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते१८
जङ्गमानां च सर्वेषां शरीरे पञ्चधातव.।
प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यैः शरीरं विचेष्टते॥ १९
त्वक्‌ मांसं तथाऽस्थीनि
मज्जा स्नायुश्च पञ्चमम्।
इत्येतदिह संघातं
शरीरे पृथिवीमयम् ॥ २०
तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च।
अग्निर्जरयते यच्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः॥ २१
श्रोत्रं घ्राणं तथाऽऽस्यं च हृदयं कोष्ठमेव च।
आकाशात्प्राणिनामेते शरीरे पञ्चधातवः२२
श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च।
इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा॥
प्राणात्प्रणीयते प्राणी व्यानाद्व्यायच्छते तथा
गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानो हृद्यवस्थितः२४
उदानादुच्छ्वसिति च प्रतिभेदाच्च भाषते।
इत्येते वायवः पञ्च चेष्टयन्तीह देहिनम् ॥२५
भूमेर्गन्धगुणान्वेत्ति
रसं चाद्भ्यः शरीरवान्।
ज्योतिषा चक्षुषा रूपं
स्पर्शं वेत्ति च वाहिना ॥ २६

---

ननु वृक्षाणां प्रमेयत्वेऽपि न चेतनाभिन्नत्वं दृश्यतेऽस्मदादिवत्तेषां गत्याद्यभावेनानिन्द्रियत्वात्तत्श्चाभौतिकत्वमिति न ब्रह्मप्रभवत्वमपीत्यद्वैतासिद्धिरित्यभिप्रेत्य वृक्षाणां भौतिकत्वं तावन्निरस्यति-**पञ्चभिरित्यादिना** ॥ ६ ॥ ऊष्माद्यभावादग्न्याद्यभावमाह-**अनूष्मणामिति**॥ ७ ॥ अप्रमेयत्वात् अप्रतीयमानत्वात् ॥ ९ ॥ वृक्षाणामभौतिकत्वानिन्द्रियत्वादिकं परिहरंश्चेतनत्वमुपपादयति-**घनानामित्यादिभिर्नवभिः** ॥ १० ॥ शीर्यत इत्यनेन वज्रमणेरपि मत्कुणशोणितस्पर्शात् शीर्यमाणस्य चेतनत्वं व्याख्यातम्। एवमेकदेशे कम्पादिदर्शनाद्गोरिव भूमेरपि तत् द्रष्टव्यम् ॥ ११ ॥ नालेन नलिकया एतेन क्षीरादिपायिनः पारदादेरपि चेतनत्वं व्याख्यातम् ॥ १६ ॥ तेन वृक्षेण जरयति जरयतः ॥ १८ ॥ शरीरिणः अन्तर्गतोऽग्निस्तेजःक्रोधचक्षुरूष्मजाठररूप इति पञ्चाग्नेयाः ॥ २१ ॥ श्रोत्रमिन्द्रियं घ्राणं नासारंध्रे कोष्ठं अन्नादिस्थानम् ॥२२॥ प्राणात् प्राणं आश्रित्य प्रणीयते गमनादि कार्यते व्यायच्छते बलसाध्यमुद्यमं करोति ॥ २४ ॥ प्रतिभेदात् उरःकंठशिरःस्थानभेदात् ॥ २५ ॥ भूमेः भूम्या घ्राणरूपया अद्भ्य इति रसनेन वाहिना वहनशीलेन वायुना चकारेण आकाशेन श्रोत्ररूपेण शब्दं गुणं वेत्तीत्यपि द्रष्टव्यम् २६

गन्धः स्पर्शो रसो रूपं
शब्दश्चात्र गुणाः स्मृताः ।
तस्य गन्धस्य वक्ष्यामि
विस्तराभिहितान् गुणान् ॥ २७
इष्टश्चानिष्टगन्धश्च मधुरः कटुरेव च ।
निर्हारी संहतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च
एवं नवविधो ज्ञेयः
पार्थिवो गन्धविस्तरः ।
ज्योतिः पश्यति चक्षुर्भ्यां
स्पर्शं वेत्ति च वायुना ॥ २९
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसश्चापि गुणाः स्मृताः
रसज्ञानं तु वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ३०
रसो बहुविधः प्रोक्त ऋषिभिः प्रथितात्मभिः
मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोऽम्लः कटुस्तथा
एष षड्विधविस्तारो रसो वारिमयः स्मृतः ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते॥
ज्योतिः पश्यति रूपाणि रूपं च बहुधा स्मृतं
ह्रस्वो दीर्घस्तथा स्थूलश्चतुरस्रोऽणुवृत्तवान्
शुक्लः कृष्णस्तथा रक्तः पीतो नीलारुणस्तथा।
कठिनश्चिक्कणःश्लक्ष्णः पिच्छिलो मृदुदारुणः
एवं षोडशविस्तारो ज्योतीरूपगुणः स्मृतः ।
शब्दस्पर्शौ च विज्ञेयौ द्विगुणो वायुरित्युत॥
वायव्यस्तु गुणः स्पर्शः
स्पर्शश्च बहुधा स्मृतः ।
उष्णः शीतः सुखो दुःखः
स्निग्धो विशद एव च ॥ ३६
तथा खरो मृदू रूक्षो लघुर्गुरुतरोऽपि च ।
एवं द्वादशधा स्पर्शो वायव्यो गुण उच्यते ॥
तत्रैकगुणमाकाशं शब्द इत्येव तत्स्मृतम् ।
तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरं विविधात्मकं
षड्जऋषभगान्धारौ मध्यमो धैवतस्तथा ।
पञ्चमश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान्॥
एष सप्तविधः प्रोक्तो गुण आकाशसंभवः ।
ऐश्वर्येण तु सर्वत्र स्थितोऽपि पटहादिषु ॥ ४०
मृदङ्गभेरीशंखानां
स्तनयित्नो रथस्य च ।
यः कश्चिच्छ्रूयते शब्दः
प्राणिनोऽप्राणिनोऽपि वा ।
एतेषामेव सर्वेषां
विषये संप्रकीर्तितः ॥ ४१
एवं बहुविधाकारः शब्द आकाशसंभवः ।
आकाशजं शब्दमाहुरेभिर्वायुगुणैः सह ॥ ४२

---

अत्र गन्धाधिकरणे गन्धे वाऽधिकरणस्य तन्मात्रत्वात् । विस्तरेण अभिहितान् वृद्धैः गुणान् भेदान् ॥ २७ ॥ **इष्टः** कस्तूरिकादौ, **अनिष्टः** शवादौ, **मधुरो** मधुपुष्पादौ **कटुः** मरीच्यादौ, **निर्हारी** सर्वगन्धाभिभावको हिंग्वादौ, **संहत**श्चित्रगन्धोऽनेकद्रव्यकल्कगतः, **स्निग्धः** सद्यस्तप्तघृतादौ, **रूक्षः** सर्षपतैलादौ, **विशदः** शाल्यन्नादौ २८ **पार्थिवः** पृथिव्याश्रितो मुख्यो गुणः, **ज्योतिः** पृथिव्यादिरूपम् वायुनात्वगिंद्रियेण॥२९॥गुणाः अप्रधानभूताः एवं जलादावप्येकैको मुख्यः इतरेऽप्रधाना इति द्रष्टव्यम् ३० **कषायः** बिभीतकफलादौ ३१, कृष्णकाचकज्जलादेः नीलारुणः मयूरपिच्छादेः कठिनादयः स्पर्शभेदा अपि चक्षुषापि निर्णेतुं शक्या इति रूपमध्ये पठिताः । तथाहि लोष्ठपाषाणसंघट्टे तन्नाशानाशाभ्यां बालस्तयोर्मृदुत्वकाठिनत्वे निश्चिनोति एवमन्यत्रापि ज्ञेयम् ॥ ३४ ॥ ज्योतिरात्मको रूपगुणः द्वौ गुणौ यस्मिन्निति द्विगुणः ॥ ३५ ॥ **उष्णशीतौ** आतपतुहिनयोः । सुखदुःखे ते एव कालभेदेन स्निग्धः पुत्रादेः विशदः उत्तमवस्त्रादेः ॥ ३६ ॥ खरमृदू पाषाणतूलादेः रूक्षः कंटकादेः लघुत्वगुरुत्वे तर्कमते पतनानुमेये अपि पौराणिकमते त्वग्राह्ये एव । तथाहि तमस्यपि परीक्षकाः पाणिना उत्तोल्यैव पलिकसपादपलिकयोरायतानायतयोरपि प्रमाणं निश्चिन्वन्ति । गुरुतर इति तरप्प्रत्ययेन गुरुरपि आक्षिप्यते । तेन द्वादशविधः । एवमेकादशविध इत्यपि पठन्ति ॥ ३७ ॥ ऐश्वर्येण व्यापकत्वेन स्थितोऽपि पटहादिषु अभिव्यज्यते इति शेषः ४० एतेषां षड्जादीनाम् ॥ ४१ ॥ **एवमिति** बहुविधः षड्जादिभेदेन तारमन्द्रादिभेदेन वायुगुणैः खरमृदुस्पर्शैः । अयमर्थः—विवक्षुप्रयत्नाभिहतः कोष्ठ्योऽग्निस्तत्रत्यं वायुं प्रेरयति स च यत्नतारतम्येन हृदयकंठशिरोदेशं प्राप्य मन्द्रं मध्यमं तारं वा ध्वनिमुत्पाद्य हृदयादिदेशाज्जिह्वामूलादीनि स्थानानि प्राप्य नित्यान् विभून् वर्णान् मन्द्रत्वादिभिर्ध्वनिधर्मैरनुरञ्जितानकारादीनभिव्यज्य वेगवत्त्वस्वाभाव्यान्मुखाद्बहिर्निर्गतो जनकर्णविवरमनुप्रविशति तेन च संस्कृतेन तत्रत्यश्रोत्रेण तं शब्दमनुभवति स च संस्कारो मुखजस्य वायोर्बाह्यवायुनाऽनुकूल्याद्दूरतो वा प्रातिकूल्यात्समीप एव वा भित्त्यादिना प्रतिघातान्नैव वा गिरिगुहादिगतवायुना प्रतिस्रोतः प्रवर्तनेन द्विर्वा भवति तदनुसारेण शब्दं दूरतोऽप्यनुभवति । समीपत एव वा नैव वा द्विर्वा शब्दप्रतिशब्दरूपेणानुभवति । एवं वाय्वभिघाततारतम्याद्भेर्यादिशब्दोऽपि मन्द्रादिभेदेनानुभूयते तदिदमुक्तम् ।

अत्याहतैश्चेतयते न वेत्ति विषमस्थितैः ।
आप्याय्यन्ते च ते नित्यं धातवस्तैस्तु धातुभिः ॥ ४३
आपोऽग्निर्मारुतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु ।
मूलमेते शरीरस्य व्याप्य प्राणानिह स्थिताः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभारद्वाजसंवादे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

## १८५–[१२]

भरद्वाज उवाच ।
पार्थिवं धातुमासाद्य शारीरोऽग्निः कथं प्रभो
अवकाशविशेषेण कथं वर्तयतेऽनिलः ॥ १
भृगुरुवाच ।
वायोर्गतिमहं ब्रह्मन् कथयिष्यामि तेऽनघ
प्राणिनामनिलो देहान् यथा चेष्टयते बली २
श्रितो मूर्धानमग्निस्तु शरीरं परिपालयन् ।
प्राणो मूर्धनि चाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते ॥
स जन्तुः सर्वभूतात्मा पुरुषः स सनातनः ।
मनो बुद्धिरहङ्कारो भूतानि विषयश्च सः ॥ ४
एवं त्विह स सर्वत्र प्राणेन परिचाल्यते ।
पृष्ठतस्तु समानेन स्वां स्वां गतिमुपाश्रितः ॥ ५
बस्तिमूलं गुदं चैव पावकं समुपाश्रितः ।
वहन्मूत्रं पुरीषं चाप्यपानः परिवर्तते ॥ ६

अत्याहतैरप्रतिहतैर्वायुगुणैः स्पर्शैश्चेतयते शब्दं जानाति न वेत्ति वा शब्दं विषमस्थितैरित्यादिना प्रतिवातेन वाऽभिभवात् । तं च एभिर्वायुगुणैः सह सन्तं चेतयते इति अध्याहृत्य सम्बन्धनीयम् । विषमागतैरिति पाठेऽपि स एवार्थः । विषमा गतीरिति गौडपाठस्तु प्रामादिकः, तदेवं शब्दाभिव्यक्तिप्रज्ञप्तयोर्भिन्नकालत्वानुभवान्मध्ये वीचीतरंगन्यायेन शब्दसन्ततिरुत्पद्यते । तत्रान्त्यशब्द एव गृह्यते इति क्षणिकवादिबन्धवो वदन्ति भेरीशब्दो मया श्रुतः स एवायं प्रपाठक इत्यभेदप्रत्यभिज्ञाबाधकप्रत्ययं विनाऽपि भ्रान्त इति वदन्ति तद्विद्वांस एवालोचयन्तु । ते शब्दाद्युत्पादका धातवो देहारंभकास्त्वगादि गोलकाः धातुभिः प्राणेन्द्रियैः आप्याय्यन्ते आदित आरभ्य संवर्ध्यन्ते अन्नसुखस्पर्शाद्यर्पणेन श्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥ ४२ ॥ तदेवाह—**आप इति** । एतेऽबादयः शरीरस्य मूलं कथं प्राणान्व्याप्य प्राप्य शुक्रशोणितसंयोगे हि प्राणो लब्धवृत्तिश्चेत् शरीरं निष्पद्यते । अन्यथा योनिनिषिक्तमपि रेतो व्यर्थं भवति ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

१८५

शरीरेन्द्रियादीनां भौतिकत्वमुक्तम् । विज्ञानप्राणयोरपि ज्ञानक्रियाशक्तिमतोर्भौतिकत्वं चिदात्मनो व्यतिरिक्तत्वापादनायाह—**पार्थिवमित्यादिनाऽ**ध्यायेन । अग्निस्तेजः पार्थिवं पृथिवीबाहुल्यात् पाञ्चभौतिकं देहमासाद्य शारीरः शरीराभिमानी प्रकाशात्मा विज्ञानधातुः । कथं केन प्रकारेण भवेत् । तथाऽनिलो वायुः सोऽपि पार्थिवं धातुमासाद्य कथं केन प्रकारेण वर्तयते देहं चेष्टयते ॥१॥ अत्रोत्तर**मग्निर्मूर्धेति** मंत्रार्थमनुसरन्नाह-**वायोरित्यादिना।कथयिष्यामि**।अग्नेः शारीरत्वं उक्त्वेति भावः ॥ २ ॥ मूर्ध्नि सहस्रारे स्थितत्वात् श्रेष्ठत्वाद्वा मूर्धानं चिदात्मानं अग्निर्विज्ञानात्मा श्रितस्तदुपाधितां प्राप्तः सन् शरीरं परिपालयन् चित्प्रतिबिम्बं प्राप्य विज्ञानात्मा शरीरं चेतयतीत्यर्थः । प्राणरूपः उपाधिस्तु तावुभावपि व्याप्नोतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ सः चिद्विज्ञानप्राणानां संघातो जन्तुर्जीवः सर्वेषां भूतानां कार्यकारणरूपाणामात्मा चेतयिता सनातनः पुरुषः परं ब्रह्म च स एव निरस्तोपाधिः सन् स एवोपाधिपक्षपाती सन् भूतानां मन आदिरूपो भवति विषयश्च शब्दादिः स एव ॥ ४ ॥ **एवमिति** । सर्वत्र अन्तर्बहिश्च स्थितम् । सर्वं प्राणेन देहलीदीपवन्मध्यस्थेन आन्तरं विज्ञानं बाह्यं देहेन्द्रियादिकं च चाल्यत इत्यर्थः । पृष्ठतः जीवत्वप्राप्त्यनन्तरं समानेन । इत्थंभावे तृतीया समानवायुत्वं प्राप्तः ॥ ५ ॥ पावकं जाठरमाश्रितः सन् बस्तिमूलं मूत्राशयम् गुदं पुरीषाशयं च स्वां स्वां पृथग्गम्या गतिम् आश्रितो भवति । जाठरस्थः समानोऽशितपीतादिकं पाचयित्वा स्वं स्वं स्थानं नयतीत्यर्थः । मूत्रं शरीरं चेति पाठे तु मूत्रशब्देनैव पुरीषमप्युपलक्षणीयम् ६

प्रयत्ने कर्मणि बले य एकस्त्रिषु वर्तते ।
उदान इति तं प्राहुरध्यात्मविदुषो जनाः ॥७
सन्धिष्वपि च सर्वेषु सन्निविष्टस्तथाऽनिलः
शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते ॥ ८
धातुष्वग्निस्तु विततः समानेन समीरितः ।
रसान्धातूंश्च दोषांश्च वर्तयन्नवतिष्ठते ॥ ९
अपानप्राणयोर्मध्ये प्राणापानसमाहितः ।
समन्वितस्त्वधिष्ठानं सम्यक्पचति पावकः
आस्यं हि पायुपर्यन्तमन्ते स्याद्गुदसंज्ञितम्
स्रोतस्तस्मात्प्रजायन्ते सर्वस्रोतांसि देहिनां
प्राणानां सन्निपाताच्च सन्निपातः प्रजायते ।
ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनां
अग्निवेगवहः प्राणो गुदान्ते प्रतिहन्यते ।
स ऊर्ध्वमागम्य पुनः समुत्क्षिपति पावकम्
पक्वाशयस्त्वधो नाभ्यामूर्ध्वमामाशयः स्थितः
नाभिमध्ये शरीरस्य सर्वे प्राणाश्च संस्थिताः
प्रस्थिता हृदयात्सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
वहन्त्यन्नरसान्नाड्यो दश प्राणप्रचोदिताः १५
एष मार्गोऽथ योगानां येन गच्छन्ति तत्पदं
जितक्लमाः समा धीरा मूर्धन्यात्मानमादधन्
एवं सर्वेषु विहितः
प्राणापानेषु देहिनाम् ।
तस्मिन्समिध्यते नित्य-
मग्निः स्थाल्यामिवाहितः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

कर्म गमनादि प्रयत्नस्तदनुकूला चेष्टा बलं भारोद्यमनादौ सामर्थ्यम् । विदुषः सकाशात् श्रुत्वेति शेषः ॥७॥ **धातुष्विति** । धातुषु त्वगादिषु विततो व्याप्तोऽग्निर्जाठरः । रसादीन् वर्तयन् परिणमयन् रसानन्नादीन् धातूंस्त्वगादीन् दोषान् पित्तादीन्॥९॥ कथं वर्तयतीति तत्राह-**अपानेति**। नाभेरधोऽपानः ऊर्ध्वं प्राणः तयोर्मध्ये नाभौ प्राणापानाभ्यां मिथः संसर्गेण समानसंज्ञत्वं प्राप्ताभ्यां समाहितः समुद्दीपितः अधिष्ठानं नाभिमंडलं समन्वितः समाश्रितः पचति । अन्नादिकमिति शेषः। यद्वा । समन्वितः एकीभावेन युक्तः समानत्वं गत इत्यर्थः । अधितिष्ठति व्यापारवान् भवत्यनेनेति जीवनमन्नमधिष्ठानम् ॥ १० ॥ पक्वमन्नं कथं देहं व्याप्नोतीत्यत आह-**आस्यमिति** । आस्यमारभ्य आस्यादीत्यपि पाठः । पायुपर्यन्तं यथा महत्तरं स्रोतः प्राणप्रवहणमार्गः प्रसिद्धस्तच्चान्ते गुदसंज्ञितं स्यात् तस्मान्महास्रोतसः अन्यानि सर्वाणि स्रोतांसि प्राणमार्गाः नाडीसंज्ञाः शरीरं व्याप्य तिष्ठन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥ तैः स्रोतोभिः सर्वेष्वंगेषु प्राणानां सन्निपातात्तत्सहचारिणो जाठरवन्हेरपि सन्निपातः संगमो भवति । तत्रानुभवं प्रमाणयति-**ऊष्मा चेति** ॥ १२ ॥ प्राणाग्न्योः परस्परोद्दीपकत्वमाह-**अग्नीति** । अग्नेर्वेगेन वहतीत्यग्निवेगवहः प्राणः । एवं प्राणोऽप्यग्निवेगहेतुरित्याह-**गुदान्त इत्यादिना** । दृष्टं च लोकेऽग्निवेगाद्बाष्पवायुवृद्धिर्वायुवेगाच्चाग्निवृद्धिरिति । तथा च प्राणरोधे सति जाठरभयनिवृत्तेः प्राणो रोद्धव्य इति भावः ॥ १३ ॥ जाठरनिरोधेन सर्वेषामिन्द्रियाणां निरोधो भवतीत्याशयेनाह-**पक्वेति**। पक्वाशयः पक्वस्थानं आमाशयः अपक्वस्थानं नाभिमध्ये इति तात्स्थ्याज्जाठरे सर्वे प्राणाः सर्वाणीन्द्रियाणि ॥ १४ ॥ सर्वे रसाः हृदयात् हृदयं प्राप्य दशभिः प्राणैः प्रेरिताः ते च प्राणादयः पञ्च नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाश्च पञ्च ॥ १५ ॥ एष आस्यादिपायुपर्यन्तो योमार्गो योगिनां मार्गः । किमनेन तिर्यगपि गन्तव्यं नेत्याह-**येनेति** । के गच्छन्ति ये मूर्धनि सुषुम्नया नाड्या सहस्रारं प्राप्य तत्रात्मानं आदधन् आहितवन्तः ॥ १६ ॥ अध्यायार्थमुपसंहरति-**एवमिति** । देहिनां सर्वेषु प्रचारेषु बुद्धिसत्वकार्येन्द्रियनिवर्त्येषु विषयेषु प्राणादिषु निमित्तभूतेषु सत्सु विहितः प्राणनिरोधरूपो योगस्तस्मिन्ननुष्ठिते सति नित्यं सद्रूपं ब्रह्म समिध्यते सम्यग्बुद्धयाद्युपाधिजनितकालुष्यत्यागेन दीप्यते प्रकाशते । मंत्रार्थस्तु—अग्निर्विज्ञानं मूर्धा चितिच्छायया चिद्रूपः सन् दिवो व्यवहरतः प्राणवायोरपि ककुच्छ्रेष्ठः । अयं प्राणाग्निचितो संघातःपृथिव्या देहस्य पतिर्जीवः अपां रेतांसि शरीराणि अन्नादिप्राणादिरूपेण जाठररूपेण च पाचयन् जिन्वति । पुष्णाति तेन प्राणविज्ञानयोर्निरोधे यदवशिष्यते तद्ब्रह्मेत्यर्थः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

## १८६-[१३]

भरद्वाज उवाच।
यदि प्राणयते वायुर्वायुरेव विचेष्टते।
श्वसित्याभाषते चैव तस्माज्जीवो निरर्थकः
यदूष्मभाव आग्नेयो वह्निना पच्यते यदि।
अग्निर्जरयते चैतत्तस्माज्जीवो निरर्थकः॥ २
जन्तोः प्रमीयमाणस्य जीवो नैवोपलभ्यते।
वायुरेव जहात्येनमूष्मभावश्च नश्यति॥ ३
यदि वायुमयो जीवः संश्लेषो यदि वायुना।
वायुमण्डलवद्दृश्यो गच्छेत्सह मरुद्गणैः ४
संश्लेषो यदि वा तेन यदि तस्मात्प्रणश्यति।
महार्णवविमुक्तत्वादन्यत्सलिलभाजनम्॥ ५
कूपे वा सलिलं दद्यात्प्रदीपं वा हुताशने।
क्षिप्रं प्रविश्य नश्येत यथा नश्यत्यसौ तथा ६
पञ्चधारणके ह्यस्मिन् शरीरे जीवितं कुतः।
तेषामन्यतराभावाच्चतुर्णां नास्ति संशयः॥ ७
नश्यन्त्यापो ह्यनाहाराद्वायुरुच्छ्वासनिग्रहात्
नश्यते कोष्ठभेदात्खमग्निर्नश्यत्यभोजनात् ८
व्याधिवर्णपरिक्लेशैर्मेदिनी चैव शीर्यते।
पीडितेऽन्यतरे ह्येषां संघातो याति पञ्चधा ९
तस्मिन्पञ्चत्वमापन्ने जीवः किमनुधावति।
किं वेदयति वा जीवः किं शृणोति ब्रवीति च
एषा गौः परलोकस्थं
तारयिष्यति मामिति।
यो दत्वा म्रियते जन्तुः
सा गौः कं तारयिष्यति॥ ११
गौश्च प्रतिग्रहीता च दाता चैव समं यदा।
इहैव विलयं यान्ति कुतस्तेषां समागमः १२
विहगैरुपभुक्तस्य शैलाग्रात्पतितस्य च।
अग्निना चोपयुक्तस्य कुतः सञ्जीवनं पुनः १३

---

### १८६

नित्यं समिध्यत इति जीवस्यानौपाधिकं रूपं दीप्यत इत्युक्तं तल्लोकायतमते स्थित्वा आक्षिपति-**यदीति**। प्राणयते जीवयते॥ १॥ आग्नेयोऽग्निगुण ऊष्मभाव औष्ण्यम् वह्निना जाठरेण अन्तःस्थेन पच्यते स्पष्टीक्रियते इदित्वभावेऽपि नलोपः। अग्निर्जाठर एव एतत् अन्नम्॥२॥ एवं नित्यस्य वस्तुनः सत्त्वे कार्यलिंगकमनुमानं निरस्य प्रत्यक्षमपि निरस्यति-**जन्तोरिति**। जन्तोः देहेन्द्रियबुद्धिसंघातस्य प्रमीयमाणस्य नश्यमानस्य नैवोपलभ्यते पलालपृथक्करणे बीजमिव तस्माद्वायुवियोग एव मरणम्॥ ३॥ वायुमयो वायुप्रधानो वायोरन्यः। वायुमंडलवद्वात्याचक्रवद्वायुना सह दृश्यः स्यादित्यर्थः॥ ४॥ यथा पाषाणबद्धं तुंबीफलं जले मज्जति च्युतबन्धं तून्मज्जति तद्वज्जीवः ज्ञानान्मोक्षो नास्तीति ज्ञानावरणीयम्। आर्हते मते मोक्षो नास्तीति दर्शनावरणीयम्। स्वशास्त्रस्य परशास्त्रेण समत्वदर्शनं मोहनीयम्। परोक्षज्ञानादपि कृतकृत्यत्वबुद्धिरन्तरीयामिति घातिकर्मचतुष्टयम्। शुक्रशोणितसंयोग आयुष्कम्। तयोः कललावस्था गोत्रिकं, तस्यादार्ढ्यं नामिकं ततो देहाकारपरिणामो वेदनीयमित्यघातिकर्मचतुष्टयम्। एतेन कर्माष्टकेन बद्धो न पृथगुपाधेर्दृश्यते इति **दिगम्बरमतेन** परिहारमाशंक्याह—**संश्लेष इति**। यदि वातेन वातप्रधानेन संघातेन जीवस्य संश्लेषोऽस्ति तस्माच्च संघातादन्यो जीवस्तर्हि संघाते प्रणश्यति सति महार्णवे पाषाणादिना विमुक्तं तस्य भावस्तत्त्वं तस्माद्धेतोर्जलभाजनमिव जीवोऽन्यत् पृथक् स्यादित्यर्थः॥ ५॥ ब्रह्मांशो जीव इति पक्षमाशंक्याह—**कूपे इति**। संघातनाशे ब्रह्मान्तर्गतस्य जीवस्य स्वरूपनाश एव समुद्रे नदीनामिवेत्यर्थः॥ ६॥ इष्टापत्तिमाशंक्याह—**पञ्चेति**। पञ्चधारणके पञ्चभिरेव धारणं यस्य। पञ्चसाधारणे इत्यादः पाठः। जीवितं जीवः। मञ्चारूढपुरुषवदतिरिक्तं कुतः न कुतश्चिदित्यर्थः। तत्र हेतुः—**तेषामिति**। अतिरिक्तश्चेत्संघातैकदेशनाशेऽपि दृश्येत मञ्चैकदेशनाशे पुरुष इव। न च दृश्यते। तस्मात्संघातात्मैव जीवस्तदेकदेशनाशे नश्यति। मञ्चैकदेशनाशे मञ्च इवेत्यर्थः। चतुर्णामभावे नास्ति संशयो जीवो नष्ट इति। संग्रह इति पाठः स्वच्छः॥ ७॥ कोष्ठभेदाद्वाय्वादिना कोष्ठनिरोधात्॥ ८॥ वर्णो विस्तारः उच्छूनतेत्यर्थः॥ ९॥ **तस्मिन्निति**। संघाताद्यतिरिक्ते धावनजीवनाद्यदर्शनात्। संघात एव जीव इत्यर्थः॥ १०॥ ततश्च परलोकादिकं नास्तीति दानादेर्वैयर्थ्यमित्याह-**एषेति**। ११

छिन्नस्य यदि वृक्षस्य न मूलं प्रतिरोहति।
बीजान्यस्य प्रवर्तन्ते मृतः क्व पुनरेष्यति १४
बीजमात्रं पुरा सृष्टं यदेतत्परिवर्तते।
मृतामृताः प्रणश्यन्ति बीजाद्बीजं प्रवर्तते १५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जीवस्वरूपाक्षेपे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

## १८७-[१४]

भृगुरुवाच।
न प्रणाशोऽस्ति जीवस्य
दत्तस्य च कृतस्य च।
याति देहान्तरं प्राणी
शरीरं तु विशीर्यते ॥ १
न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन्नष्टे प्रणश्यति।
समिधामिव दग्धानां यथाऽग्निर्दृश्यते तथा २
भरद्वाज उवाच।
अग्नेर्यथा तथा तस्य यदि नाशो न विद्यते।
इन्धनस्योपयोगान्ते स चाग्निर्नोपलभ्यते ३
नश्यतीत्येव जानामि शान्तमग्निमनिन्धनम्
गतिर्यस्य प्रमाणं वा संस्थानं वा न विद्यते ४
भृगुरुवाच।
समिधामुपयोगान्ते यथाग्निर्नोपलभ्यते।
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः
तथा शरीरसन्त्यागे जीवो ह्याकाशवत्स्थितः
न गृह्यते तु सूक्ष्मत्वाद्यथा ज्योतिर्न संशयः ६
प्राणान् धारयते ह्यग्निः
स जीव उपधार्यताम्।
वायुसन्धारणो ह्यग्नि-
र्नश्यत्युच्छ्वासनिग्रहात् ॥ ७
तस्मिन्नष्टे शरीराग्नौ ततो देहमचेतनम्।
पतितं याति भूमित्वमयनं तस्य हि क्षितिः
जंगमानां हि सर्वेषां स्थावराणां तथैव च।
आकाशं पवनोऽन्वेति ज्योतिस्तमनुगच्छति
तेषां त्रयाणामेकत्वाद्द्वयं भूमौ प्रतिष्ठितम् ९
यत्र खं तत्र पवनस्तत्राग्निर्यत्र मारुतः।
अमूर्तयस्ते विज्ञेया मूर्तिमन्तः शरीरिणाम् १०
भरद्वाज उवाच।
यद्यग्निमारुतौ भूमिः खमापश्च शरीरिषु।
जीवः किंलक्षणस्तत्रेत्येतदाचक्ष्व मेऽनघ ११

लीनमूलश्छिन्नो वृक्षो यथा पुनः प्ररोहति एवं लीनकर्मा संघातो नष्टोऽपि पुनरुत्पत्स्यते बीजसत्त्वादित्याशंक्याह—**छिन्नस्येति**। वृक्षमूलं बीजभूतमुपलभ्यते। न देहमूलं कर्मेत्यर्थः ॥ १४ ॥ शरीरमूलं तु बीजमात्रं प्रत्यक्षदृष्टं रेत एव न त्वदृष्टं अक्लृप्तत्वात्। प्रवर्तते देहरूपेण परिणमते। तथा च बीजरुहतरुवन्नष्टानां नाश एवैतेषां उद्भव इति तस्मान्नित्यं समिध्यते इत्यनुपपन्नम् ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

१८७

एतद्दूषयति—**न प्रणाश इति** ॥ १ ॥ न प्रणश्यति न दृश्यते इति च सम्बन्धः। अदर्शनमात्रान्न वस्तुनो नाशावधारणम्। दग्धेन्धनस्याग्नेरपि नाशापत्तेरित्यर्थः ॥ २ ॥ इष्टापत्तिमाशङ्कते—**अग्नेरिति**। अनुपलब्धेरुभयत्रापि तुल्यत्वादग्नेरपि नाश एवेत्यर्थः ॥ ३ ॥ एतदेव द्रढयति—**नश्यतीत्येवेति** ॥ ४ ॥ **समिधामिति**। दग्धेन्धनाग्निवत्सन्नेवात्मा देहनाशे सति सौक्ष्म्यान्नोपलभ्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ आकाशवत्सर्वगतो नित्यश्च। ज्योतिः अरणिस्थोऽग्निः। न च तत्रासन्नेव अग्निर्मन्थनादुत्पद्यत इति वाच्यम्। असत्त्वाविशेषेण सर्वतः सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गात्। तस्मात्तिलेषु तैलमिवारण्यादिष्वग्निः सन्नेव यत्नेनाभिव्यज्यते। न च प्राग्यत्नाद्दृश्यते सूक्ष्मत्वादित्यर्थः ॥ ६ ॥ **प्राणानिति**। अग्निर्विज्ञानं स एव विज्ञानमयो जीवः। वायुनैव सन्धारणमवस्थानं यस्य। नश्यति अदर्शनं गच्छति। उच्छ्वासस्य वायोर्निग्रहात् ॥ ७ ॥ अयनं लयस्थानम् ॥ ८ ॥ निगृहीतः पवनः द्वयं जलभूम्याख्यम् ॥ ९ ॥ अमूर्तयः अदृश्याः अतस्तेषामप्यभावावधारणं दुःशकं किमुत सूक्ष्मस्य जीवस्येति भावः ॥ १० ॥ नन्वसत्त्ववत्सत्त्वमपि निश्चेतुमशक्यम्। नित्यस्य वस्तुनो लक्षणाद्यभावादिति शंकते—**यद्यीति**। शरीरिषु शरीराकारपरिणामवत्सु संघातेषु ॥ ११ ॥

पञ्चात्मके पञ्चरतौ पञ्चविज्ञानचेतने ।
शरीरे प्राणिनां जीवं वेत्तुमिच्छामि यादृशम् ॥ १२

मांसशोणितसंघाते मेदःस्नाय्वस्थिसंचये ।
भिद्यमाने शरीरे तु जीवो नैवोपलभ्यते ॥ १३

यद्यजीवं शरीरं तु पञ्चभूतसमन्वितम् ।
शारीरे मानसे दुःखे कस्तां वेदयते रुजम् ॥ १४

शृणोति कथितं जीवः
कर्णाभ्यां न शृणोति तत् ।
महर्षे मनसि व्यग्रे
तस्माज्जीवो निरर्थकः ॥ १५

सर्वं पश्यति यद् दृश्यं मनोयुक्तेन चक्षुषा ।
मनसि व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति ॥ १६

न पश्यति न चाघ्राति न शृणोति न भाषते ।
न च स्पर्शरसौ वेत्ति निद्रावशगतः पुनः ॥ १७

हृष्यति क्रुध्यते कोऽत्र शोचत्युद्विजते च कः ।
इच्छति ध्यायति द्वेष्टि वाचमीरयते च कः ॥ १८

भृगुरुवाच ।

न पञ्चसाधारणमत्र किञ्चि-
च्छरीरमेको वहतेऽन्तरात्मा ।
स वेत्ति गन्धांश्च रसान् श्रुतीश्च
स्पर्शं च रूपं च गुणांश्च येऽन्ये ॥ १९

पञ्चात्मके पञ्चगुणप्रदर्शी
स सर्वगात्रानुगतोऽन्तरात्मा ।
स वेत्ति दुःखानि सुखानि चात्र
तद्विप्रयोगात्तु न वेत्ति देहः ॥ २०

यदा न रूपं न स्पर्शो नोष्मभावश्च पावके ।
तदा शान्ते शरीराग्नौ देहत्यागेन नश्यति ॥ २१

आपोमयमिदं सर्वमापो मूर्तिः शरीरिणाम् ।
तत्रात्मा मानसो ब्रह्मा सर्वभूतेषु लोककृत् ॥ २२

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः ।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ २३

आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम् ।
तस्मिन् यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥ २४

क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम् ।
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान् ॥ २५

सचेतनं जीवगुणं वदन्ति
स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ।
अतः परं क्षेत्रविदो वदन्ति
प्रावर्तयद्यो भुवनानि सप्त ॥ २६

---

**पञ्चेति** । पञ्चभूतात्मके पञ्चविषयरतौ पञ्चविज्ञानानि ज्ञानकारणानि पञ्च चेतनानि ज्ञानानि च यत्र तस्मिन्पञ्चविज्ञानचेतने ॥ १२ ॥ नैवोपलभ्यते व्रीहितण्डुलवत् ॥ १३ ॥ अजीवं चेतनाशून्यम् । अन्यस्याभावाच्छरीरमेव चेतनमित्यर्थः ॥ १४ ॥ मास्तु देहेन्द्रियसंघातश्चेतनो यस्मिन्व्यग्रे सति सङ्घातः सन्निकृष्टोऽपि शब्दादीन्न गृह्णाति तन्मन एव आत्माऽस्त्वित्याह चतुर्भिः-**शृणोतीति** ॥१५॥ उत्तरमाह-**न पञ्चेति** । यथा श्रोत्रादीनां शब्दादिग्राहकत्वेन ग्राह्यसजातीयगुणाश्रयत्वेन आकाशादिरूपत्वम् । एवं मनोऽपि सर्वगुणग्राहकत्वात् सर्वगुणाश्रयत्वेन पाञ्चभौतिकम् । अतस्तन्न किंचिद्भूतेभ्योऽन्यत्तत्त्वान्तरं पाञ्चसाधारणत्वात् । अतस्तन्न शरीरनिर्वाहकं किं तु एकः अन्तरात्मैव शरीरं स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधं वहते चालयति ॥ १९ ॥ यदुक्तं मनसोऽनवधानान्न शृणोति तत्राह—**पञ्चात्मके इति**। पञ्चभूतात्मके शरीरे पञ्चगुणाः यस्मिन् तत् तथा मनस्तस्य द्रष्टा । मम मनः खिन्नमित्यनुभवात् । स एव मनोद्वारा सर्वगात्रानुगतः । व्यतिरेकमाह—तद्विप्रयोगात्सुषुप्तौ समाधौ वा देहः सबुद्धिमनस्को न वेत्ति । देहादेश्चेतनत्वे सुप्त्यादावपि वेदनमपरिहार्यं स्यात् । ततश्चक्षुष इव मनसाऽप्यनुन्मीलनाददर्शनेऽपि न तस्य करणत्वव्याहतिरित्यर्थः ॥ २० ॥ यदा निर्वातप्रदीप इव देहाग्नौ शान्ते रूपादिकं नोपलभ्यते तदा नश्यति म्रियते देह एव न तु चेतन इत्यर्थः ॥ २१ ॥ स्थूलदेहनाशमुक्त्वा सूक्ष्मस्याविनाशमाह—**आप इति** । आपोमयं अम्बुमयम् । अत्रापशब्देन सूक्ष्मभूतसङ्घातो गृह्यते । तन्मयं सूत्रात्मना व्याप्तमित्यर्थः । तस्माद्देहिनामपि आप एव मूर्तिराकृतिः । तत्राप्सु आत्मा चिद्रूपः पुरुषः मानसः तदन्तर्गते मनसि अभिव्यक्तः । स एवोपाधियोगाज्जीवः । स एव ब्रह्मा पूर्वोक्तश्चतुर्मुखो मुख्यजीवः । सार्वज्ञ्यादिमत्त्वात् ॥ २२ ॥ स एवात्मा प्राकृतैः त्रिगुणात्मकमूलप्रकृतेर्विकारैर्गुणैरिन्द्रियमनोभिः संयुक्तः सन् क्षेत्रज्ञः जीव इत्युच्यते । तथा च श्रुतिः—'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति । अयमेव परमात्मेत्याह—**तैरेवेति** ॥२३॥ तं परमं सर्वलोकस्य हितं सुखं तदात्मकं 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः। तस्मिन्पूर्वोक्तस्थूलसूक्ष्मरूपे॥२४॥ क्षेत्रज्ञं प्रत्यगात्मानं त्वमर्थं तं परमात्मानं तदर्थं जानीहि । क्षेत्रज्ञस्य लौकिकस्वरूपमाह-**तम इति** । योऽयमावरणप्रवृत्तिप्रकाशाद्यभिमानी क्षेत्रज्ञः स परमात्मैवेत्यर्थः ॥ २५ ॥ सचेतनं चेतनेन सहितं जीवगुणं जीवस्य भोगोपकरणं देहेन्द्रियमनांसि स जीवगुणः । चेष्टते तं च सर्वं सर्वा-

न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे
मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः ।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति
दशार्धतैवास्य शरीरभेदः ॥ २७

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढश्चरति संवृतः ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः
तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा
पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ २९

चित्तस्य हि प्रसादेन
हित्वा कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा
सुखमानन्त्यमश्नुते ॥ ३०

मानसोऽग्निः शरीरेषु जीव इत्यभिधीयते ।
सृष्टिः प्रजापतेरेषा भूताध्यात्मविनिश्चये ३१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे जीवस्वरूपनिरूपणे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

## १८८-[१५]

भृगुरुवाच ।
असृजद्ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन् ।
आत्मतेजोभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान्
ततः सत्यं च धर्मं च तपो ब्रह्म च शाश्वतम्
आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः २
देव-दानव-गन्धर्वा दैत्यासुर-महोरगाः ।
यक्ष-राक्षस-नागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा ३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम
ये चान्ये भूतसंघानां वर्णास्तांश्चापि निर्ममे
ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा ५

---

त्मकं ब्रह्म 'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः' इति निर्वचनात् । चेष्टयते दारुपुत्रिकामिव सूत्रधारः । कीदृशं सर्वं अतःपरं संसारिणो जीवादन्यमसंसारिणम् ॥ २६ ॥ एवं नित्यस्य वस्तुनः सत्त्वे सिद्धे जातो देवदत्तो, मृतो देवदत्त इत्यादिव्यवहारो देहोत्पत्तिनाशमात्रपर इत्याह– **न जीवेति** । दशार्धता पञ्चत्वं शरीरनाश एव जीवस्य मरणमित्युच्यते । 'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते' इति श्रुतेः ॥ २७ ॥ गूढः देहेन्द्रियादिषु लीनः । संवृतः यतोऽज्ञानेनावृतः । सः अग्र्यया सूक्ष्मया बुद्ध्या अहंब्रह्मास्मीति वाक्यकरणकबुद्धिवृत्त्या दृश्यते । आवरकाज्ञाननाशपूर्वकं देहादिभ्यो विविक्तः साक्षात्क्रियते ॥ २८ ॥ प्रसादेन अन्तर्मुखत्ववृत्त्या सुखं सुखाभिन्नं आनन्त्यं मोक्षम् ॥ ३० ॥ कुतः सृष्टमिदं विश्वमित्यादिप्रश्नषट्कस्य तात्पर्यमाह—**मानस इति** । यः शरीरेषु जरायुजादिषु मानसो मनस्याविर्भूतोऽग्निः अग्निरिव प्रकाशात्मा पुरुषो जीव इत्यभिधीयते लौकिकैः । तस्मादेव प्रजापतेः सर्वेश्वरात् । एषा सर्वभूतप्रत्यक्षा सृष्टिर्भूता समुत्पन्ना । किं व्यवहारत इदमुच्यते नेत्याह–**अध्यात्मविनिश्चये सति** । आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तो विशिष्टः ब्रह्मविद्याजन्यसाक्षात्कारेण परोक्षज्ञानादधिकोऽहंब्रह्मास्मीति निश्चयोऽसंदिग्धाविपर्यस्तं ज्ञानं तस्मिन् सति । तत्त्वविदां स्वप्नसमैषा दृष्टिसमसमया सृष्टिर्मूढैर्वज्रपञ्जरवदत्यभ्यासात्ताच्विक्यैवेति निश्चितेति भावः ॥३१॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

१८८

कथं सृष्टानि भूतानीत्यस्योत्तरमुक्त्वा कथं वर्णविभक्तय इत्यस्योत्तरमाह—**असृजदित्यादि** । तत्र पूर्वं चित्तप्रसादेन आनन्त्यमश्नुत इत्युक्तं चित्तप्रसादश्च स्वधर्मफलमतो धर्मं निरूपयति—**ब्राह्मणान्** ब्रह्मनिष्ठान् प्रजापतीन् मरीच्याङ्गिरआदीन् । आत्मनस्तेजः सत्यसङ्कल्पत्वादि सामर्थ्यं तेन निर्वृत्तान् उत्पादितान् ब्रह्मणा ॥ १ ॥ धर्मं यज्ञादिं तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि शाश्वतं ब्रह्म नित्यं वेदः । आचारं स्नानादिं शौचं प्रायश्चित्तादि ॥२॥ वर्णाः सात्त्विकं राजसं तामसं मिश्रं चेति स्वच्छत्वादिसाम्यात् गुणवृत्तं वर्णशब्देनोच्यते ॥ ४ ॥ सितः स्वच्छः सत्त्वगुणः प्रकाशात्मा शमदमादिस्वभावः । लोहितो रजोगुणः प्रवृत्त्यात्मा शौर्यतेज आदिस्वभावः । पीतकः रजस्तमोभ्या-

भरद्वाज उवाच ।
चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते।
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसंकरः ॥ ६
कामः क्रोधो भयं लोभः
शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः ।
सर्वेषां नः प्रभवति
कस्माद्वर्णो विभिद्यते ॥ ७
स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् ।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ८
जंगमानामसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः ॥९
भृगुरुवाच ।
न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १०
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः
क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गा-
स्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः ।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः
ब्राह्मणा ब्रह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति ।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ॥
ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः
पिशाचा राक्षसाः प्रेता
विविधा म्लेच्छजातयः ।
प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः
स्वच्छन्दाचारचेष्टिताः ॥ १८
प्रजा ब्राह्मणसंस्काराः स्वकर्मकृतनिश्चयाः ।
ऋषिभिः स्वेन तपसा सृज्यन्ते चापरेऽपरैः
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षयाऽव्यया ।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे वर्णविभागकथने अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

मिश्रः कृष्यादिनिहीनकर्मप्रवर्तकः । असितः कृष्णः आवरणात्मा तमोगुणः स्वतः प्रकाशप्रवृत्तिहीनः शकटवत् परप्रेर्यः॥५॥ इदमाक्षिपति-चातुर्वर्ण्यस्येति वर्णेन जात्या वर्णः सात्त्विकत्वादि भिद्यते। तन्नेति शेषः । तत्र हेतुः—**सर्वेषामिति** ॥६॥ नः अस्माकं ब्राह्मणानामपि कामक्रोधादि रजस्तमःकार्यं निग्रहाय प्रभवति समर्थं भवति । अतः सत्त्वादिव्यभिचारान्न तत्प्रयुक्ता जात्यादिव्यवस्थेत्यर्थः ॥७॥ जङ्गमानां पश्वादीनाम् । तस्मात्सर्वेषां समानधर्मत्वात् । पशुवृक्षादिष्विव मनुष्येष्वपि न जातिभेदनिश्चय इत्यर्थः ॥९॥ ब्राह्मं ब्राह्मणजातिमत् । तत्र हेतुः-**ब्रह्मणेति** । वर्णतां क्षत्रियादिभावम् ॥ १० ॥ रक्ताङ्गाः रजोगुणमयाः ॥ ११ ॥ पीताः रजस्तमोमयाः ॥ १२ ॥ कृष्णाः केवलतमोमयाः ॥ १३ ॥ व्यस्ताः पृथक्कृताः द्विजाः ब्राह्मणाः तेषां चतुर्णामपि वर्णानाम् ॥ १४ ॥ चतुरः चत्वारः ब्राह्मी वेदमयी चतुर्णामपि वर्णानां ब्रह्मणा पूर्वं विहिता लोभदोषेण तु अज्ञानतां तमोभावं गताः शूद्रा अनाधिकारिणो वेदे जाता इत्यर्थः ॥१५॥ ब्रह्मतन्त्रं वेदोक्तानुष्ठानं तत्स्थाः तत्पराः । अतस्तेषां ब्रह्म आत्मानं धारयतां पुरुषार्थत्वेन निश्चिन्वतां जिज्ञासूनां तप आदिकं न नश्यति ॥१६॥ **ब्रह्म चैवेति**। सृष्टं सर्वकार्यं परं ब्रह्माभेदेन ये अद्विजाः हीनाद्विजास्ते न जानन्तीति योजना तत्र तत्र योनिषु जातयो जन्मानि ॥ १७ ॥ तानेवाह—**पिशाचा इति** ॥ १८ ॥ ब्राह्मणः ब्रह्माणि वेदे विहितो ब्राह्मणः संस्कारो यासां ताः वेदोक्तसंस्कारवत्यः । अपरेऽर्वाचीना ऋषयः परैः प्राचीनैः सृज्यन्ते ॥ १९ ॥ एवं प्राप्तां मीमांसकसम्मतामनवस्थां निवारयति—**आदीति** । अक्षया नाशहीना अव्यया अपचयहीना यतो मानसी रज्जूरगवन्मनोमात्रजन्या न हि रज्जूरगो नश्यत्यपचीयते वा । अनुत्पन्नत्वात् । धर्मतन्त्रं योगानुष्ठानं तदेव परं अयनं विलयस्थानं यस्याः सा तथा ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

# १८९-[१६]

भरद्वाज उवाच ।
ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तमः
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतां वर ॥ १
भृगुरुवाच ।
जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः
वेदाध्ययनसंपन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ॥ २
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥ ३
सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ४
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंगतः ।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५
वणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादानरतिः शुचिः
वेदाध्ययनसंपन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥ ६
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः
सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः
एतत्पवित्रं ज्ञानानां तथा चैवात्मसंयमः ॥९
वार्यौ सर्वात्मना तौ हि श्रेयोघातार्थमुच्छ्रितौ
नित्यं क्रोधाच्छ्रियं रक्षेत्तपो रक्षेच्च मत्सरात्
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥
यस्य सर्वे समारंभा
निराशीर्बन्धना द्विज
त्यागे यस्य हुतं सर्वं
स त्यागी च स बुद्धिमान् ॥ १२
अहिंस्रः सर्वभूतानां मैत्रायणगतश्चरेत् ।
परिग्रहान्परित्यज्य भवेद्बुद्ध्या जितेन्द्रियः ।
अशोकं स्थानमातिष्ठेदिह चामुत्र चाभयम्१३
तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना ।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना॥१४
इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः ।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
अविस्रम्भेन गन्तव्यं विस्रम्भे धारयेन्मनः ।
मनः प्राणे निगृह्णीयात् प्राणं ब्रह्मणि धारयेत्

---

१८९

'इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः' इत्युक्तं तत्प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—**ब्राह्मण इत्यादिना** ॥ १ ॥ जातकर्मादिभिरष्टाचत्वारिंशता 'यस्यैतेऽष्टाचत्वारिंशत्संस्काराः स ब्राह्मणः सायुज्यतां सरूपतां गच्छति'इति स्मृतेः। षट्कर्माणि—

'संध्या, स्नानं, जपो, होमो, देवतानां च पूजनम् ।
आतिथ्यं, वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने'इति ॥२॥

विघसं ब्राह्मणादिभुक्तशेषं तदेवाश्नातीति विघसाशी ॥३॥ अथाद्रोह इत्यत्र तपो क्रोध इत्यपि पाठः । आनृशंस्यं नैष्ठुर्याभावः, त्रपा लज्जा, घृणा कारुण्यम्॥४॥ क्षत्रं हिंसा तदर्थं जातं क्षत्रजं युद्धात्मकं कर्म दानं विप्रेभ्यः आदानं प्रजाभ्यः ॥ ५ ॥ वाणिज्या पशुरक्षा चेत्यत्र विशत्याशु पशुभ्यश्चेति पाठे पशुभ्य इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । पशून् वाणिज्याद्युपयोगिनो लब्ध्वा विशति प्रतिष्ठां लभते इत्यर्थः ॥ ६ ॥ **शूद्रे चेति** । एतत्सत्यादिसप्तकं द्विजे त्रैवर्णिके धर्म एव वर्णविभागे कारणं न जातिरित्यर्थः॥८॥ तमेव ब्राह्मण्यहेतुं धर्ममाह—**सर्वोपायैरित्यादिना** । तौ क्रोधलोभौ । सार्धः श्लोकः ॥ ९ ॥ आशीः इष्टकाम्या तदेव बन्धनं तद्वर्जिता निराशीः बन्धनाः समारंभाः सम्यगारभ्यन्त इति यज्ञादयः काम्यकर्मत्यागीत्यर्थः। हुते अग्नौ ब्राह्मणे वा दत्तमग्निहोत्रनित्यश्राद्धादि । त्यागे फलत्यागनिमित्तम्—'सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः' इति ॥ १२ ॥ अहिंस्रं अहिंसाशीलः मैत्रं मित्रभावस्तदेवायनं परं प्राप्यं स्थानं तत्र गतः ।अशोकं स्थानं आत्मानं आतिष्ठेत् आभिमुख्येन तिष्ठेत् आत्मध्यानपरो भवेदित्यर्थः । सार्धः श्लोकः ॥ १३ ॥ संगेषु ममेदमिति संगहेतुषु पुत्रदारादिषु ॥ १४ ॥ एवंभूतस्यानुष्ठेयं योगमाह—**इन्द्रियैरिति** । इति अव्यक्तमिति सम्बन्धः । इति अनेन प्रकारेण यत् इन्द्रियैर्न गृह्यते तत् अव्यक्तं तच्च विज्ञेयं साक्षात्कर्तव्यं लिंगग्राह्यं लिंगं च तद्ग्राह्यं चेति सूक्ष्मशरीरं योगिदृश्यं चेत्यर्थः । यद्वा । लोकदृष्ट्याऽनुमानगम्यं यतः अतीन्द्रियं इन्द्रियागोचरम् ॥ १५ ॥ अविस्रंभे अविश्वासे निमित्ते सति न गन्तव्यं न प्राप्यम् । अतः विस्रंभे एव गुरुवेदवाक्येषु याथार्थ्यनिश्चये मनो धारयेत् । अविस्रंभेणेति समूर्धन्यपाठे तु यथा योषितमग्निं धारयीतेत्यादौ योषित्स्वरूपं अग्नित्वेन यद्द्रष्टव्यं तद्विश्वासेनैव न तु तत्र वस्तुतस्त्वं तथास्ति । इह तु अनुभव एव प्रमाणमित्यर्थः । एवं च सर्वाणीन्द्रियाणि प्रत्याहृत्य स्वप्न इव मनोमात्रेणावतिष्ठेत मनोऽपि प्राणे प्राणोपाधिके जीवात्मनि शुद्धत्वंपदार्थे धारयेत् । तमपि ब्रह्मणि तत्पदलक्ष्ये धारयेत् ॥ १६ ॥

निर्वेदादेव निर्वाणं न च किञ्चिद्विचिन्तयेत्।
सुखं वै ब्राह्मणो ब्रह्म निर्वेदेनाधिगच्छति १७

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम्॥१८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे वर्णस्वरूपकथने एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

---

## १९०-[ १७ ]

भृगुरुवाच।

सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजाः
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति १
अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसाऽऽवृताः
स्वर्गः प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च।
सत्यानृतं तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः॥ ३
तत्राप्येवंविधा लोके वृत्तिः सत्यानृते भवेत्।
धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखं सुखं तथा॥४

तत्र यत्सत्यं स धर्मो यो धर्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत्सुखमिति। तत्र यदनृतं सोऽधर्मो योऽधर्मस्तत्तमो यत्तमस्तद्दुःखमिति॥ ५
अत्रोच्यते—

शारीरैर्मानसैर्दुःखैः सुखैश्चाप्यसुखोदयैः।
लोकसृष्टिं प्रपश्यन्तो न मुह्यन्ति विचक्षणाः

तत्र दुःखविमोक्षार्थं प्रयतेत विचक्षणः।
सुखं ह्यनित्यं भूतानामिहलोके परत्र च॥ ७

राहुग्रस्तस्य सोमस्य
यथा ज्योत्स्ना न भासते।
तथा तमोभिभूतानां
भूतानां नश्यते सुखम्॥ ८

तत् खलु द्विविधं सुखमुच्यते शारीरं मानसं च। इह खल्वमुष्मिंश्च लोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभिधीयन्ते। न ह्यतः परं त्रिवर्गफलं विशिष्टतरमस्ति स एव काम्यो गुणविशेषो धर्मार्थगुणारम्भस्तद्धेतुरस्योत्पत्तिः सुखप्रयोजनार्थ आरंभः॥ ९

---

एतच्च ब्रह्मात्मनाऽवस्थानं निर्वाणाख्यं पदं यत्र किंचित् ध्येयध्यानध्यातृविभागं योगी न चिन्तयेत्तन्निर्वेदात् परवैराग्यादेव प्राप्नोतीत्याह—**निर्वेदादिति**। यदाहुर्योगभाष्यकाराः वैराग्यं प्रस्तुत्य—एतस्यैव हि नान्तरीयकं फलं कैवल्यमिति सुखं ब्रह्मेत्यभेदे सामानाधिकरण्यम्॥ १७॥ संक्षेपेण योगाधिकारिणं निरूपयति-**शौचेनेति**॥ १८॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८९॥

१९०

शुक्लो ब्राह्मणधर्मः कृष्णः शूद्रधर्म इति प्रागुक्तम्। तत्र शुक्लकृष्णयोः स्वरूपे विविनक्ति-**सत्यमिति**। सत्यं सत्यवस्तुप्रापकम्। ब्रह्म वेदः, तपः स्वधर्मानुष्ठानं, सत्येन ब्रह्मतपोरूपेण॥ १॥ अनृतं तद्विपरीतमवैदिकं यथेष्टाचरणं प्रकाशं स्वर्गं तमः अविद्यादिरूपो विपर्ययस्तेन ग्रस्ताः तमसा मूलाज्ञानेन॥ २॥ स्वर्गो देवत्वम्। **प्रकाशः** सत्त्वप्राप्यः, नरकम् तिर्यक्त्वम् तमोगुणेन सत्यानृतं मानुषत्वम् तदुभयमिश्रणेन॥ ३॥ सत्यानृते इति धर्माधर्मौ प्रकाशतमसी सुखदुःखे इति सम्बन्धः॥४॥ श्लोकं व्याचष्टे **तत्रेति**॥ ५॥ भूतानां संसारिणां यत्सुखं पुत्रपरिष्वंगादिजं तत् अनित्यं अतः सुखार्थं न यतेत किं तु दुःखस्यौपाधिकस्य विमोक्षार्थमेव यतेत॥ ७॥ तर्कि नित्यं सुखं नास्त्येवेत्याशंक्य सदपि न प्रकाशत इति सदृष्टान्तमाह-**राहुरिति**। नश्यते अन्तर्हितं भवति॥८॥ प्रवृत्तयः दृष्टादृष्टफलाः अभिधीयन्ते वेदे। न ह्यतः त्रिवर्गफलात् परं स एव अनित्यसुखमेव आत्मगुणविशेषस्तार्किकाभिमतः। धर्मार्थौ गुणभूतौ यस्य प्रधानभूतस्य सुखस्य तदर्थ आरंभ आरभ्यत इति व्युत्पत्त्या धर्मादिः। अनुष्ठेय इति शेषः। यतस्तद्धेतुः धर्महेतुरस्य सुखस्योत्पत्तिरभिव्यक्तिः आरंभस्त्रिवर्गस्य राहुग्रस्तेन्दुप्रकाशवत् सतोऽपि तमसा अप्रकाशमानस्य सुखस्य अभिव्यक्तये सर्वोऽप्यारंभ इत्यर्थः॥ ९॥

भरद्वाज उवाच।

यदेतद्भवताभिहितं सुखानां परमा स्थितिरिति न तदुपगृह्णीमो न ह्येषामृषीणां महति स्थितानामप्राप्य एष काम्यो गुणविशेषो न चैनमभिलषन्ति च तपसि श्रूयते त्रिलोककृद्ब्रह्मा प्रभुरेकाकी तिष्ठति। ब्रह्मचारी न कामसुखेष्वात्मानमवदधाति। अपि च भगवान् विश्वेश्वर उमापतिः काममभिवर्तमानमनङ्गत्वेन शममनयत्। तस्माद्ब्रूमो न तु महात्मभिरयं प्रतिगृहीतो न त्वेषां तावद्विशिष्टो गुणविशेष इति। नैतद्भगवतः प्रत्येमि भगवता तूक्तं सुखान्न परमस्तीति लोकप्रवादो हि द्विविधः फलोदयः सुकृतात्सुखमवाप्यते दुष्कृताद्दुःखमिति ॥ १०

भृगुरुवाच।

अत्रोच्यते-अनृतात्खलु तमः प्रादुर्भूतं ततस्तमोग्रस्ता अधर्ममेवानुवर्तन्ते न धर्मं क्रोधलोभहिंसाऽनृतादिभिरवच्छन्ना न खल्वस्मिँल्लोके नामुत्र सुखमाप्नुवन्ति। विविधव्याधिरुजोपतापैरवकीर्यन्ते। वधबन्धनपरिक्लेशादिभिश्च क्षुत्पिपासाश्रमकृतैरुपतापैरुपतप्यन्ते। वर्षवातात्युष्णातिशीतकृतैश्च प्रतिभयैः शारीरैर्दुःखैरुपतप्यन्ते। बन्धुधनविनाशविप्रयोगकृतैश्च मानसैः शोकैरभिभूयन्ते जरामृत्युकृतैश्चान्यैरिति ॥ ११

यस्त्वेतैः शारीरमानसैर्दुःखैर्न संस्पृश्यते स सुखं वेद। न चैते दोषाः स्वर्गे प्रादुर्भवन्ति तत्र खलु भवन्ति ॥ १२

सुसुखः पवनः स्वर्गे गन्धश्च सुरभिस्तथा।
क्षुत्पिपासाश्रमो नास्ति न जरा न च पापकम्

नित्यमेव सुखं स्वर्गे सुखं दुःखमिहोभयम्।
नरके दुःखमेवाहुः सुखं तत्परमं पदम् ॥ १४

पृथिवी सर्वभूतानां जनित्री तद्विधाः स्त्रियः
पुमान् प्रजापतिस्तत्र शुक्रं तेजोमयं विदुः१५

इत्येतल्लोकनिर्माणं ब्रह्मणा विहितं पुरा।
प्रजाः समनुवर्तन्ते स्वैः स्वैः कर्मभिरावृताः॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

---

सुखार्थ आरंभ इत्यत्र शंकते-**यदेतदिति**। सुखानां परमा स्थितिः नित्यं सत्त्वम्। सुखान्न परमस्तीति पाठान्तरं नोपगृह्णीमो नित्यसुखस्यानुपलम्भात्। अनित्यस्य सुखस्य तुच्छत्वमाह-**न हीति**। महति योगैश्वर्ये ॥ १० ॥ नित्यस्य सुखस्यानुपलम्भे हेतुमुपन्यस्यन्नेतन्निराकरोति-**अत्रोच्यते इत्यादिना**। अनृतात् सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयादज्ञानात् तमः अविद्या अनित्याशुचिदुःखात्मसु देहादिषु नित्यत्वशुचित्वसुखत्वबुद्धिरूपो विपर्यासः ॥ ११ ॥ अस्य विपर्यासस्याभावे नित्यं सुखं प्रकाशत इत्याह-**यस्त्वेतैरिति**। एतदेव स्वर्गपदाभिधेयमित्याह—**न चैत इत्यादिना**। तस्मात्स्वर्गार्थिनां प्रवृत्तिः सुखार्थैवेति युक्तमुक्तं-**सुखान्न परमस्तीति** ॥ १२ ॥ ऐहिकं सुखं तुच्छीकृत्य यथा स्वर्गार्थं सर्वे बुद्धिमन्तः प्रवर्तन्ते एवं स्वर्गमपि क्षयिष्णुत्वेन तुच्छीकृत्य बुद्धिमत्तरा मोक्षसुखार्थं यतन्त इत्याह-**पृथिवीति**। सर्वभूतानां जनित्री अविद्या पृथिवीव पृथिवी सर्वेषां क्लेशानां क्षेत्रभूता यथाऽत्रानुभूयते तद्विधाः अनन्तक्लेशसन्ततिक्षेत्रभूतास्तत्र स्वर्गे स्त्रियः सन्ति। यथाऽत्र पुमानविद्यावाननेकक्लेशभाजनं तथा तत्र प्रजापतिः। 'तस्यापि सोऽबिभेत् स नारमत प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्तस्य रुद्रः शिरोऽहरत् मधुकैटभौ तं हन्तुमुद्यतौ। यक्षराक्षसास्तं यमितुमुद्यताः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिस्तस्यापि भयारत्यादिप्रतिपादनात्। एतावांस्तु विशेषः-अत्र शुक्रं जन्मान्तरबीजं वासनाजालं पुण्यापुण्यमयम्। तत्र तु तेजोमयं केवलं पुण्यमयमिति। एवं च निरुपाधिसुखमेव परमः पुरुषार्थो न स्वर्ग इति साधयता मोक्षस्य निर्विषयसुखात्मत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

## १९१-[१८]

भरद्वाज उवाच ।

दानस्य किं फलं प्राहुर्धर्मस्य चरितस्य च
तपसश्च सुतप्तस्य स्वाध्यायस्य हुतस्य वा॥ १

भृगुरुवाच ।

हुतेन शाम्यते पापं स्वाध्यायैः शान्तिरुत्तमा
दानेन भोगानित्याहुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात् २
दानं तु द्विविधं प्राहुः परत्रार्थमिहैव च ।
सद्भ्यो यद्दीयते किंश्चित्तत्परत्रोपतिष्ठते ॥ ३
असद्भ्यो दीयते यत्तु तद्दानमिह भुज्यते ।
यादृशं दीयते दानं तादृशं फलमश्नुते ॥ ४

भरद्वाज उवाच ।

किं कस्य धर्माचरणं किं वा धर्मस्य लक्षणम्
धर्मः कतिविधो वाऽपि तद्भवान्वक्तुमर्हति५

भृगुरुवाच ।

स्वधर्माचरणे युक्ता ये भवन्ति मनीषिणः।
तेषां स्वर्गफलावाप्तिर्योऽन्यथा स विमुह्यते ६

भरद्वाज उवाच ।

यदेतच्चातुराश्रम्यं ब्रह्मर्षिविहितं पुरा ।
तेषां स्वे स्वे समाचारास्तान्मे वक्तुमिहार्हसि

भृगुरुवाच ।

पूर्वमेव भगवता ब्रह्मणा लोकहितमनुतिष्ठता धर्मसंरक्षणार्थमाश्रमाश्चत्वारोऽभिनिर्दिष्टाः। तत्र गुरुकुलवासमेव प्रथममाश्रममुदाहरन्ति। सम्यग्यत्र शौचसंस्कारनियमव्रतविनियतात्मा उभे सन्ध्ये भास्कराग्निदैवतान्युपस्थाय विहाय तन्द्र्यालस्ये गुरोरभिवादनवेदाभ्यासश्रवणपवित्रीकृतान्तरात्मा त्रिषवणमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्याग्निपरिचरणगुरुशुश्रूषानित्यभिक्षाभैक्ष्यादिसर्वनिवेदितान्तरात्मा गुरुवचननिर्देशानुष्ठानाप्रतिकूलो गुरुप्रसादलब्धस्वाध्यायतत्परः स्यात् ॥ ८

भवति चात्र श्लोकः—

गुरुं यस्तु समाराध्य द्विजो वेदमवाप्नुयात् ।
तस्य स्वर्गफलावाप्तिः सिध्यते चास्य मानसमिति ॥ ९

गार्हस्थ्यं खलु द्वितीयमाश्रमं वदन्ति। तस्य समुदाचारलक्षणं सर्वमनुव्याख्यास्यामः। समावृत्तानां सदाचाराणां सह धर्मचर्यफलार्थिनां गृहाश्रमो विधीयते। धर्मार्थकामावाप्तिर्ह्यत्र त्रिवर्गसाधनमपेक्ष्यागर्हितेन कर्मणा धनान्यादाय स्वाध्यायोपलब्धप्रकर्षेण वा ब्रह्मर्षिनिर्मितेन वा अद्रिसारगतेन वा । हव्यकव्यनियमाभ्यासदैवतप्रसादोपलब्धेन वा धनेन गृहस्थो गार्हस्थ्यं वर्तयेत् । तद्धि सर्वाश्रमाणां मूलमुदाहरन्ति । गुरुकुलनिवासिनः परिव्राजका ये चान्ये संकल्पितव्रतनियमधर्मानुष्ठायिनस्तेषामप्यत एव भिक्षाबलिसंविभागाः प्रवर्तन्ते ॥ १० वानप्रस्थानां च द्रव्योपस्कार इति प्रायशः खल्वेते साधवः साधुपथ्योदनाः स्वाध्यायप्रसङ्गिनस्तीर्थाभिगमनदेशदर्शनार्थं पृथिवीं पर्यटन्ति । तेषां प्रत्युत्थानाभिगमनाभिवादनानसूयवाक्प्रदानसुखशक्त्यासनसुखशयनाभ्यवहारसत्क्रिया चेति ॥ ११

---

### १९१

एवं अनृतात् खलु तमः प्रादुर्भूतमित्यादिग्रन्थश्रवणेन दुःखादुद्विग्नो मोक्षं च दुर्लभं मन्वानाश्रित्तशुद्धिद्वारा मोक्षप्रापकं पुण्यमेव श्रेय इति निश्चिन्वंस्तद्विशेषफलानि पृच्छति सारासारविवेकार्थम्-**दानस्येत्यादिना** । दानस्य दानरूपस्य धर्मस्येत्येकः प्रश्नः ॥१॥ शान्तिरुपरतिः ॥२॥ कस्याधिकारिणः किं रूपं धर्माचरणम्॥५॥ स्वधर्मो वर्णाश्रमनियतधर्मः तस्याचरणे युक्ता अवहिताः योऽन्यथा विपरीताचारः स मुह्यते ॥६॥ स्वोचितमेव धर्मं पृच्छति—**यदिति** । चतुर्णामाश्रमाणां धर्मश्चातुराश्रम्यं तेषामाश्रमाणाम् ॥७॥ **तन्द्री**-अर्धनिद्रा **आलस्यम्**-अनुद्योगः **अभ्यासः**-अक्षरग्रहणं **श्रवणं**-तदर्थविचारः॥८॥मानसं मनः सिध्यते सत्यसंकल्पादिसिद्धिं प्राप्नोति ॥९॥ सम्यगुदित आचारः समुदाचारस्तस्य लक्षणम् । समावृत्तानां समापितगुरुकुलवासत्व्यानां स्नातकानां सहधर्मचर्यं सहोभौ चरतां धर्ममिति दम्पत्योः सहाधिकारिकं धर्मं तच्चर्याफलं पुत्रजन्म । प्रकर्षः यथा उषस्तस्य चाक्रायणस्य सर्वैर्ब्राह्मणैरज्ञाताः प्रस्तावादिदेवता उपदिशतो राज्ञा सर्वर्त्विक्तुल्यदक्षिणाप्रदानहेतुः। निर्मितं याजनमध्यापनं प्रतिग्रहश्च अद्रिसाराः मणिदिव्यौषधिस्वर्णाद्याकारास्तेभ्यो गतेन प्राप्तेन । **भिक्षा**ऽतिथिभ्यः **बलिर्भूमौ** होमः । **संविभागः** पुत्रादिभ्यो विभजनम् ॥ १० ॥ **द्रव्योपस्कारः** धनवर्जनम्। द्रव्योपस्कर इति पाठे द्रव्याणां फलमूलनीवारादीनां **उपस्करः** संपादनम् **सुखशक्त्या** सुखवस्था शक्त्या न तु देहपीडया सत्क्रिया च कर्तव्येति शेषः ॥ ११ ॥

भवति चात्र श्लोकः—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति

अपि चात्र यज्ञक्रियाभिर्देवताः प्रीयन्ते । निवापेन पितरो विद्याभ्यासश्रवणधारणेन ऋषयः। अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिरिति ॥१३

श्लोकौ चात्र भवतः—

वात्सल्यात्सर्वभूतेभ्यो वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः।परितापोपघातश्च पारुष्यं चात्र गर्हितं
अवज्ञानमहंकारो दंभश्चैव विगर्हितः ।
अहिंसा सत्यमक्रोधः सर्वाश्रमगतं तपः १५

अपि चात्र माल्याभरणवस्त्राभ्यङ्गनित्योपभोग-नृत्य-गीत-वादित्रश्रुतिसुख-नयनाभिरामदर्शनानां प्राप्तिर्भक्ष्य-भोज्य-लेह्य-पेय-चोष्याणामभ्यवहार्याणां विविधानामुपभोगः । स्वविहारसंतोषः कामसुखावाप्तिरिति ॥ १६

त्रिवर्गगुणनिर्वृत्तिर्यस्य नित्यं गृहाश्रमे ।
स सुखान्यनुभूयेह शिष्टानां गतिमाप्नुयात् ॥
उंछवृत्तिर्गृहस्थो यः स्वधर्माचरणे रतः ।
त्यक्तकामसुखारंभः स्वर्गस्तस्य न दुर्लभः १८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

## १९२-[१९]

भृगुरुवाच ।

वानप्रस्थाः खल्वपि धर्ममनुसरन्तः पुण्यानि तीर्थानि नदीप्रस्रवणानि सुविविक्तेष्वरण्येषु मृग-महिष-वराह-शार्दूल-वनगजाकीर्णेषु तपस्यन्तोऽनुसंचरन्ति त्यक्तग्राम्यवस्त्राभ्यवहारोपभोगा वन्यौषधि-फल-मूल-पर्णपरिमितविचित्रनियताहाराः स्थानासनिनो भूमि-पाषाण-सिकता-शर्करा-वालुका-भस्मशायिनः काश-कुश-चर्म-वल्कलसंवृताङ्गाः केश-श्मश्रु-नख-रोमधारिणो नियतकालोपस्पर्शना अस्कन्दितकालबलिहोमानुष्ठायिनः समित्कुशकुसुमापहारसंमार्जनलब्धविश्रामाः शीतोष्ण-वर्ष-पवनाविष्टंभाविभिन्नसर्वत्वचो विविधनियमोपयोगचर्यानुष्ठानविहितपरिशुष्कमांसशोणितत्वगस्थिभूता धृतिपराः सत्त्वयोगाच्छरीराण्युद्वहन्ते १

यस्त्वेतां नियतश्चर्यां ब्रह्मर्षिविहितां चरेत्।
स दहेदग्निवद्दोषान् जयेल्लोकांश्च दुर्जयान् २

परिव्राजकानां पुनराचारः-तद्यथा-विमुच्याग्नि-धन-कलत्र-परिबर्हणं संगेष्वात्मनः स्नेहपाशानवधूय परिव्रजन्ति । समलोष्टाश्मकाञ्चनास्त्रिवर्गप्रवृत्तेष्वसक्तबुद्धयोऽरिमित्रोदासीनानां तुल्यदर्शनाः स्थावरजरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जानां भूतानां वाङ्मनःकर्मभिरनभिद्रोहिणोऽनिकेताः पर्वत-पुलिनवृक्ष-मूल-देवतायतनान्यनुचरन्तो वासार्थमुपेयुर्नगरं ग्रामं वा नगरे पञ्चरात्रिकाः ग्रामे चैकरात्रिकाः प्रविश्य च प्राणधारणार्थं द्विजातीनां भवनान्यसंकीर्णकर्मणामुपतिष्ठेयुः पात्रपतितायाचितभैक्ष्याः कामक्रोधदर्पलोभमोहकार्पण्यदंभपरिवादाभिमानहिंसानिवृत्ता इति ॥ ३

---

निवापेन पितृतर्पणेन ॥ १३ ॥ अपि चात्र वात्सल्यादिधर्मे माल्यादिलाभः संकल्पसमकालं सिद्ध्यतीत्यर्थः॥१६ त्रिवर्गो धर्मार्थकामास्तैः सहिता गुणानां सत्त्वरजस्तमसां निर्वृत्तिः कृतार्थता मुक्तिहेतोः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातेर्जननाद्भ्रष्टाधिकारतेत्यर्थः। शिष्टानां तत्त्वमसीत्यादिवाक्यैर्गुरुभिरनुशिष्टानाम् ॥ १७ ॥ उंछः कणश आदानं तेन वृत्तिर्जीवनमस्य कामसुखं आरंभाश्चेति द्वन्द्वः॥१८॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

१९२

वानप्रस्थेति । सिकताः सूक्ष्मपाषाणपांसवः शर्कराः कर्करसहिता मृत् । वालुकाः लघूपलमिश्राः सिकता एव । उपस्पर्शनं स्नानम् । बलिः भूमावाहुतिः । होमः वन्हौ । बलिहोमयोः कालेऽनुष्ठायिनः। विष्टम्भः हेलनया सहनम् । नियमः पञ्चाग्न्यादिसाधनम् । उपयोगः आहारसङ्कोचः । चर्या पर्यटनम् । विहितं विधानम् ॥ १ ॥ परिव्राजकानामिति । परिबर्हणं शय्यादिभोगसामग्री ॥३

भवन्ति चात्र श्लोकाः—
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा यश्चरते मुनिः।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥ ४
कृत्वाऽग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं
शारीरमग्निं स्वमुखे जुहोति।
विप्रस्तु भैक्ष्योपगतैर्हविर्भि-
श्चिताग्निनां स व्रजते हि लोकम् ५
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं
शुचिः सुसंकल्पितमुक्तबुद्धिः।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं
स ब्रह्मलोकं श्रयते मनुष्यः ॥ ६
भरद्वाज उवाच।
अस्माल्लोकात्परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते
तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ७
भृगुरुवाच।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते।
पुण्यः क्षेम्यश्च काम्यश्च स परो लोक उच्यते

**कृत्वेति**। आत्मन्यग्नीन् समारोप्य अग्निमुद्दिश्य स्वमुखे हविर्भिर्जुहोति होमं कुर्यात्। चिताग्निनां यैरग्नि-चयनं कृतं मुनिवृन्दैस्तेषां लोकं प्राजापत्यं पदम्। यद्वा स्वशरीरसंस्थं अग्निहोत्रं प्राणाग्निहोत्रं भैक्ष्योपगतैर्हविर्भिः कृत्वेति सम्बन्धः। भिक्षुर्भूत्वेत्यर्थः। शारीरं शरीरस्थं अग्निमिव प्रकाशमानं जीवम्। स्वमुखे निर्गमस्थाने पर-मात्मनि जुहोति। जीवं ब्रह्माणि प्रविलापयति योगं करोतीत्यर्थः। सः चितानां नष्टानामग्निनां। न्हस्वत्व-मार्षं—लोकमव्यक्तभावम्। श्रूयते च—

'यथा निरिन्धनो वन्हिः स्वयोनावुपशाम्यति।
तथा वृत्तिक्षये चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति' ॥ इति

उक्तं च—
'शकुनीनामिवाकाशे पदं न दृश्यत' इति।

चिधातोर्नाशार्थत्वं यो वै भागिनं भागान्नुदते चयते वैनं स यदि वैनं न चयतेऽथ पुत्रमथ पौत्रं चयत इत्यादौ दृष्टम्। चयते क्षिणोति ॥ ५ ॥ एतदेवाह—**मोक्षेति**। सुतरां सङ्कल्पितमुक्ता सङ्कल्पहीना बुद्धिर्यस्य ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकस्तम् ॥ ६ ॥ एवं ससाधनां ब्रह्म-विद्यां श्रुत्वा ब्रह्मसाक्षात्कारोपायं जिज्ञासमानः पृच्छति—**अस्मादिति**। परो लोकः परमात्मा ज्ञातुं साक्षा-त्कर्तुम् ॥ ७ ॥ **उत्तरे इति**। अत्रेदमवधेयम्। किमिह श्रौतो हिमवदुत्तरभाग एव परलोकत्वेन प्रतिपाद्यते उत श्रुति-प्रसिद्धः परमात्मेति। तत्र श्रौतार्थलाभे संभवति लाक्षणिका-र्थस्याग्राह्यत्वात्। स्वर्गसदृशः पुण्यकृज्जनप्राप्यो भूभाग एव आश्रमत्रयधर्मफलस्य उपसंहार्यत्वादिति प्राप्ते ब्रूमः। 'अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं सब्रह्मलोकं श्रयते मनुष्यः' इति। एतद्वाक्यसमनन्तरमुत्थितयोः प्रश्नोत्तरयोः ब्रह्म-विद्याप्रकरणस्थयोस्तत्परत्वे सम्भवति असन्निहिता प्रकृत-प्राचीनाश्रमधर्मफलोपसंहारपरत्वकल्पनं न युज्यते। तेषां तत्र तत्र तस्य स्वर्गफलावाप्तिः सिध्यते चास्य मानसमिति स्वर्गस्तस्य न दुर्लभ इति। 'स दहेदग्निवद्दोषान् जयेल्लोकांश्च दुर्जयान्' इति फलस्योपसंहारेण तदनपेक्षणात्। ततश्चान-र्थक्यप्रतिहतानां विपरीतं बलाबलमिति न्यायेन सन्निधि-प्रकरणाभ्यां श्रुतिरेव बाध्यते। यथा 'आकाशस्तल्लिंगादित्यत्र सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते' इति सर्वभूतोत्पादिलिङ्गादाकाशश्रुतिर्भूताकाशपरापि ब्रह्मपरतया व्यवस्थाप्यते तद्वदिहापि द्रष्टव्यम्। न च पूषानुमन्त्रण-मन्त्रवदित उत्कृष्टस्यास्य योग्यतया प्राचीनाश्रमत्रयधर्म-फलत्वेनान्वयो भविष्यतीति युक्तम्। प्रकरणानुगुणार्थ-समर्पकत्वे सम्भवत्युत्कर्षायोगात्। तस्मादन्यार्थत्वे सत्य-न्यार्थतया प्रतीयमानमेतत्प्रश्नोत्तरमिति व्यासकष्टं अव-हितहृदयैरालोचनीयमिति दिक्। श्रुतियुक्तिभ्यां ज्ञातोऽपि परमात्मा न साक्षात्क्रियते इति तत्साक्षात्कारोपायं ब्रूहीति प्रार्थितो भृगुराह—**उत्तरे इति**। उत्तरे आत्मोपलब्धि-स्थानत्वात्। उत्कृष्टतरे हिमवत्पार्श्वे हिमवत्तुल्योऽन्यत्र मेरुशब्दोदितो नासावंशस्तस्य पार्श्वे समीपे भ्रूघ्राणमध्ये पुण्ये बहुपुण्यगम्ये। सर्वैर्गुणैः रमणीयत्वादिभिर्युते देशे। पुण्यः अपहतपाप्मा। क्षेम्यः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः। काम्यः सर्वकामोपभोगयोग्यश्च परो लोकः परमात्मा ऽस्तीत्युच्यते। तथा हि मन्त्रशास्त्रे भ्रूमध्यदेशस्य रम्यत्वा-दिकमुक्तम्—

'हेमरूपो भ्रुवोर्मध्ये मेरुस्तिष्ठति पर्वतः।
तस्याभितो मही पार्श्वे पञ्चाशत्कोटियोजना ॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलात्मभिः।
सिंधुभिः सप्तभिर्द्वीपैस्तत्संस्थैर्द्विगुणोत्तरैः ॥'

मन्दरः पारियात्रश्च' इत्यादिना। श्रुतावपि 'य एषोऽन-न्तोऽव्यक्त आत्मा तं कथमहं विजानीयाम्' इत्युपक्रम्य 'सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठितः सो विमुक्तः कस्मिन्प्रतिष्ठितः' इत्यादिना भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिरित्यन्तेन तस्य देशस्य निरुपाधिब्रह्मप्रापकविमुक्ताख्यसोपाधिकब्रह्मस्थान-त्वोक्तेः। सोपाधिकब्रह्मगुणाश्च 'य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इति श्रुतिप्रसिद्धाः। तदिदमुक्तं-**हिमव-त्पार्श्वे परो लोक इति** ॥ ८ ॥

तत्र ह्यपापकर्माणः शुचयोऽत्यन्तनिर्मलाः ।
लोभमोहपरित्यक्ता मानवा निरुपद्रवाः ॥ ९
स स्वर्गसदृशो देशस्तत्र ह्युक्ताः शुभा गुणाः ।
काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च
न लोभः परदारेषु स्वदारनिरतो जनः ।
नान्योन्यं वध्यते तत्र द्रव्येषु च न विस्मयः ।
परो ह्यधर्मो नैवास्ति संदेहो नापि जायते ११
कृतस्य तु फलं तत्र प्रत्यक्षमुपलभ्यते ।
पानासनाशनोपेताः प्रासादभवनाश्रयाः १२
सर्वकामैर्वृताः केचिद्धेमाभरणभूषिताः ।
प्राणधारणमात्रं तु केषांचिदुपपद्यते ॥ १३
श्रमेण महता केचित्कुर्वन्ति प्राणधारणम् ।
इह धर्मपराः केचित्केचिन्नैकृतिका नराः ।
सुखिता दुःखिताः केचिन्निर्धना धनिनोऽपरे
इह श्रमो भयं मोहः क्षुधा तीव्रा च जायते ।
लोभश्चार्थकृतो नृणां येन मुह्यन्त्यपण्डिताः
इह वार्ता बहुविधा धर्माधर्मस्य कारिणः ।
यस्तद्वेदोभयं प्राज्ञः पाप्मना न स लिप्यते
सोपधं निकृतिस्तेयं परीवादो ह्यसूयिता ।
परोपघातो हिंसा च पैशुन्यमनृतं तथा ॥ १७
एतानासेवते यस्तु तपस्तस्य प्रहीयते ।
यस्त्वेतान्नाचरेद्विद्वांस्तपस्तस्य प्रवर्धते १८
इह चिन्ता बहुविधा धर्माधर्मस्य कर्मणः ।
कर्मभूमिरियं लोके इह कृत्वा शुभाशुभम् ।
शुभैः शुभमवाप्नोति तथाऽशुभमथान्यथा १९
इह प्रजापतिः पूर्वं देवाः सर्षिगणास्तथा ।
इष्टेष्टतपसः पूता ब्रह्मलोकमुपाश्रिताः ॥ २०
उत्तरः पृथिवीभागः सर्वपुण्यतमः शुभः ।
इहस्थास्तत्र जायन्ते ये वै पुण्यकृतो जनाः

तत्रेति । अपापकर्मत्वादिगुणचतुष्टयवन्तो मानवास्तत्र गताः सन्तो निरुपद्रवा भवन्तीति योजना । तथा च श्रुतिः—' तं वा एतं सेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति ' इति । सेतुं आत्मानं तीर्त्वा प्राप्य समाधिकाले ॥ ९ ॥ तत्र काले इति सम्बन्धः । अमृत्युः आत्मा समाधिकाले प्रभवति ईश्वरो भवति । ' सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति ' इति तस्य सत्यसङ्कल्पत्वश्रवणात् । अत एव च-**अनन्याधिपतिः** इति सूत्राच्च । सत्यसङ्कल्पत्वादेव विद्वान् अनन्याधिपतिरस्य ईश्वरोऽन्यो नास्ति किन्त्वयमेव सर्वेश्वर इति सूत्रार्थः । अत एव स देशः हिमवत्पार्श्वाख्यो भ्रुवोर्मध्यदेशः । स्वर्गसदृशः । सत्यसङ्कल्पादिगुणाविर्भावसाम्यात् । निरुपद्रवा इत्यस्य विवरणं व्याधयो न स्पृशन्तीति ॥ १० ॥ आत्ममिथुन आत्मक्रीड आत्मरतिरित्यादिश्रुतेरर्थं संगृह्णाति—**न लोभ इति** । परे अनात्मभूताश्च ते दाराश्चेति समासः । स्व आत्मैव दाराः तत्र निरतः । यतः अजनः बाधितबाह्यलोकः । नान्योन्यं बध्यते । तत्र भेदाभावात् । द्रव्येषु सङ्कल्पमात्रोपनतेषु । न विस्मयः आश्चर्यबुद्धिर्नास्ति । इदं सर्वं यदयमात्मेत्यादिश्रुतिभ्यः सर्वस्य आत्ममात्रत्वावधारणात् । हि यतः । तत्र परो नात्मभूतः अधर्मः आनृतादिर्नास्ति । एवं ब्रह्मलोकं न विन्दत्यनृतेन हि प्रत्यूढा इति श्रुतेरनृतस्याज्ञानस्य तत्तिरोधायकत्वादनृताभावे एव तदाविर्भावसम्भवात् । सन्देहः किं देहादिरात्मा उत अन्यः अन्योऽपि कर्ताऽकर्ता वा अकर्ताऽपि एकोऽनेको वेत्येवंरूपः संशयः न जायते । न तत्त्वापरोक्षीकरणात् छिद्यन्ते सर्वसंशयाः इति श्रुतेः ॥११॥ कृतस्य अनुष्ठितस्य योगस्य कर्ममात्रस्य वा । 'एनं सर्वं तदभिसमेति यत्किं च प्रजाः साधु कुर्वन्ति' इति ब्रह्मविद्यायां सर्वकर्मफलान्तर्भावश्रवणात् ॥ १२ ॥ सर्वकामैरिति सार्धश्लोकद्वयमेकं वाक्यम् । इह अस्मिन्भ्रुवोः सन्धौ स्थिताः केचिद्योगिनः सर्वकामैर्वृता आवृताः सन्तो मुहुरावर्तन्त इति भावः । प्राणे परमात्मनि धारणं सर्वेषां कामानां प्रविलापनं तन्मात्रमेव केषांचिद्दिव्यभोगेऽपि विरक्तानां उपपद्यते युज्यते न तु कामभोगः ॥ १३ ॥ मध्यमानां त्वेतत् । क्लेशमाध्यमित्याह—**श्रमेणेति** । केचिद्योगैश्वर्यं प्राप्य धर्मपराः व्यासनारदादयः । परोपकारार्थैव हि तेषां सिद्धिर्न स्वभोगाय । केचिन्नैकृतिकाः आत्मवञ्चनपराः बाह्यभोगेन योगजं धर्मं नाशयन्तः । अत एवान्ये धर्मपराः सुखिताः नैकृतिकास्तु दुःखिताः । यतो निर्धनाः क्षीणपुण्याः अपरे धर्मपरास्तु धनिनः योगजधर्मेण परोपकारजं धर्मधनं वर्धयन्तः ॥ १४ ॥ **इहेति** । नैकृतिकानामिहलोके श्रमादिकं भवतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ वार्ताः कुशलाः धर्माधर्मस्य धर्माधर्मयोरिति पूर्वेण सह सार्धश्लोकः । य इति उभयं धर्माधर्मौ उपादेयहेयतया वेद ॥ १६ ॥ सोपधं सदम्भम् ॥ १७ ॥ तपो योगजधर्मः ॥ १८ ॥ तस्मादिहैव धर्माधर्मविचारः कार्य इत्याह सार्धेन—**इहेति** । चिन्ता विचारः तमेवाह—**कर्मेति** ॥ १९ ॥ इष्टं आसतमं तपो येषां ब्रह्मलोकं हिमवत्पार्श्वम् ॥ २० ॥ तत्र वै तत्रैव जायन्ते आविर्भवन्ति ॥ २१ ॥

यदि सत्कारमृच्छन्ति तिर्यग्योनिषु चापरे।
क्षीणायुषस्तथा चान्ये नश्यन्ति पृथिवीतले
अन्योन्यभक्षणासक्ता लोभमोहसमन्विताः।
इहैव परिवर्तन्ते न ते यान्त्युत्तरां दिशम्२३
ये गुरून्पर्युपासन्ते नियता ब्रह्मचारिणः।
पन्थानं सर्वलोकानां विजानन्ति मनीषिणः
इत्युक्तोऽयं मया धर्मः
संक्षिप्तो ब्रह्मनिर्मितः।
धर्माधर्मौ हि लोकस्य
यो वै वेत्ति स बुद्धिमान्॥ २५
भीष्म उवाच।
इत्युक्तो भृगुणा राजन् भरद्वाजः प्रतापवान्
भृगुं परमधर्मात्मा विस्मितः प्रत्यपूजयत् २६
एष ते प्रसवो राजन् जगतः संप्रकीर्तितः।
निखिलेन महाप्राज्ञ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भृगुभरद्वाजसंवादे
द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

## १९३-[२०]

युधिष्ठिर उवाच।
आचारस्य विधिं तात प्रोच्यमानं त्वयाऽनघ
श्रोतुमिच्छामि धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः १
भीष्म उवाच।
दुराचारा दुर्विचेष्टा दुष्प्रज्ञाः प्रियसाहसाः
असंतस्त्विति विख्याताः संतश्चाचारलक्षणाः
पुरीषं यदि वा मूत्रं ये न कुर्वन्ति मानवाः।
राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च ते शुभाः
शौचमावश्यकं कृत्वा देवतानां च तर्पणम्।
धर्ममाहुर्मनुष्याणामुपस्पृश्य नदीं तरेत् ॥ ४
सूर्यं सदोपतिष्ठेत न च सूर्योदये स्वपेत्।
सायं प्रातर्जपेत्सन्ध्यां तिष्ठन् पूर्वां तथेतराम्
पञ्चार्द्रो भोजनं भुञ्ज्या-
त्प्राङ्मुखो मौनमास्थितः।
न निन्द्यादन्नभक्ष्यांश्च
स्वादु स्वादु च भक्षयेत् ॥ ६
आर्द्रपाणिः समुत्तिष्ठेन्नार्द्रपादः स्वपेन्निशि।
देवर्षिर्नारदः प्राह एतदाचारलक्षणम् ॥ ७
शुचिं देशमनड्वाहं देवगोष्ठं चतुष्पथम्।
ब्राह्मणं धार्मिकं चैत्यं नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम्
अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते ९
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं वेदनिर्मितम्।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत् १०

---

सत्कारं योगे आदरं ऋच्छन्ति प्राप्नुवन्ति। अन्यथा दोषमाह—**तिर्यगिति** ॥ २२ ॥ इहैव संसारे उत्तरां दिशं हिमवत्पार्श्वम् ॥ २३ ॥ योगकलालाभे सदाऽऽचार्य एव शरणीकरणीयः। 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' इत्यादिश्रुतिभ्य इत्याह—**ये गुरूनिति**। नियताः शमदमोपरत्यादियुक्ताः। ब्रह्मचारिणः ब्रह्मण्येव चारः कायवाङ्मनसां प्रवृत्तिर्येषाम्। पन्थानं गमनागमनमार्गम्। सगुणं ब्रह्मनिर्गुणवस्तुप्राप्तिद्वारं जानन्ति ॥ २४ ॥ ब्रह्मनिर्मितः वेदप्रकाशितः धर्माधर्मौ लोकस्य कर्तव्याकर्तव्यार्थौ ॥ २५ ॥ विस्मितः प्रत्यगद्वैतश्रवणेन ॥ २६ ॥ एष प्रत्यगात्मा जगतः प्रसवः कारणं निखिलेन साकल्येन संकीर्तितः।

**परैरदर्शितः पन्थाः श्रुतियुक्तिबलान्मया**
**यथाकथञ्चिदुन्नीतः पण्डिताःशोधयन्तु तम्**

॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

१९३

संक्षेपेण प्रागुक्तमाचारं योगं च विस्तरेण प्रतिपादयितुमध्यायत्रयमारभ्यते—**आचारस्य विधिं तातेत्यादि** ॥ १ ॥ आचारो लक्षणं ज्ञापकं येषां यत आचारं जिज्ञाससेऽतः साधुरसीति भावः ॥ २ ॥ शौचं कृत्वा उपस्पृश्य आचम्य नदीं तरेत् अवगाहेत् ततस्तर्पणमिति सम्बन्धः ॥ ४ ॥ जपेत्सावित्रीं संध्यां उपलक्ष्य तिष्ठन् उपतिष्ठेत च स्वगृह्योक्तैर्मन्त्रैः इतरां पश्चिमाम् ॥ ५ ॥ पञ्च पादौ पाणी मुखं चेति पञ्च आर्द्राणि यस्य भोजनं अन्नं अन्नभक्ष्यान् ओदनं अपूपादींश्च ॥ ६ ॥ आर्द्रपाणिः कृतोत्तरापोशन इत्यर्थः। नार्द्रपाणिरित्यपपाठः ॥ ७ ॥ शुचिं देशं यज्ञादिशालां चैत्यं देवतायतनम् ॥ ८ ॥ सामान्यं साधारणं पाकभेदं न कुर्यादित्यर्थः ॥९॥ तथा कुर्वन् यथाकालभोजी उपवासफलं लभेतेत्यर्थः ॥ १० ॥

होमकाले तथा जुह्वन्नृतुकाले तथा व्रजन्।
अनन्यस्त्रीजनः प्राज्ञो ब्रह्मचारी तथा भवेत्
अमृतं ब्राह्मणोच्छिष्टं जनन्या हृदयं कृतम्।
तज्जनाः पर्युपासन्ते सत्यं सन्तः समासते१२
लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी तु यो नरः।
नित्योच्छिष्टः शंकुशुको नेहायुर्विन्दते महत्
यजुषा संस्कृतं मांसं निवृत्तो मांसभक्षणात्
न भक्षयेद्वृथामांसं पृष्ठमांसं च वर्जयेत्॥ १४
स्वदेशे परदेशे वा अतिथिं नोपवासयेत्।
काम्यकर्मफलं लब्ध्वा गुरूणामुपपादयेत् १५
गुरुभ्य आसनं देयं कर्तव्यं चाभिवादनम्।
गुरूनभ्यर्च्य युज्यन्ते आयुषा यशसा श्रिया
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं न च नग्नां परस्त्रियम्।
मैथुनं सततं धर्म्यं गुह्ये चैव समाचरेत्॥ १७
तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचिः।
सर्वमार्यकृतं चौक्ष्यं वालसंस्पर्शनानि च १८
दर्शने दर्शने नित्यं सुखप्रश्नमुदाहरेत्।

सायंप्रातश्च विप्राणां प्रदिष्टमभिवादनम् १९
देवागारे गवां मध्ये ब्राह्मणानां क्रियापथे।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत्
सायं प्रातश्च विप्राणां पूजनं च यथाविधि।
पण्यानां शोभते पण्यं कृषीणां बाद्यते कृषिः
बहुकारं च सस्यानां वाह्ये वाह्ये गवां तथा
सम्पन्नं भोजने नित्यं पानीये तर्पणं तथा।
सुश्रृतं पायसे ब्रूयाद्यवाग्वां कृसरे तथा॥२२
श्मश्रुकर्मणि संप्राप्ते क्षुते स्नानेऽथ भोजने।
व्याधितानां च सर्वेषामायुष्यमभिनन्दनम्॥
प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत्।
सह स्त्रियाऽथ शयनं सह भोज्यं च वर्जयेत्
त्वंकारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत्।
अवराणां समानानामुभयेषां न दुष्यति २५
हृदयं पापवृत्तानां पापमाख्याति वैकृतम्।
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने २६

ब्राह्मणभुक्तावशिष्टं मातुर्हृदयामिव हितकरं कृतं धात्रा तत् ये उपासते ते सत्यं ब्रह्म समासते आसादयन्ति। आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलंभे सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्ष इति क्रमेण आहारशुद्धेर्ब्रह्मप्रापकत्वश्रुतेः ॥१२॥शंकुशुकः कीलबद्धशुकवत् पराधीनो वृथापंडितो वा। दन्त्यादिपाठे संश्लेषकः कामलोभादिवशः कुशकुससंश्लेषणार्थौ देवादिकौ। दन्त्यद्वयवानेव मुख्यः पाठः। संकुसुको विकुसुक इति मन्त्रवर्णात्। अस्थिरः पापो वा। यद्वाऽमृतं ब्राह्मणोच्छिष्टमित्यस्य प्रशंसार्थं हिंसामयं यागादि कर्म निन्द्यते—**लोष्ठेति**। लोष्ठमर्दी यज्ञियवेदिकरणार्थं, तृणच्छेदी बर्हिराहरणार्थं, नखखादी नखैश्छित्त्वा छित्त्वा यज्ञशेषं मांसं खादतीति तथा। नित्योच्छिष्टं नित्यसोमपानं। 'पिता पितामहोवाऽपि सोमं यस्य न पीतवान्। स वै दुर्ब्राह्मणो नाम' इत्युक्तेः। तेन उच्छिष्टः सोमपायी संकुसुकः फलाभिष्वंगी महदायुर्ब्रह्म ॥ १३ ॥ यजुषा यजुर्वेदविदाऽध्वर्युणा मांसं यज्ञियमपि निवृत्तो न भक्षयेत्। वृथामांसं असंस्कृतमांसं पृष्ठमांसं चरममांसं श्राद्धशेषमित्यर्थः। 'पृष्ठं चरममात्रे स्यात्'इति विश्वः। एतेन हिंसायुक्तो धर्मो न कर्तव्य इत्युक्तम्॥ १४ ॥ किं तर्हि गृहस्थेन कर्तव्यमत आह-**स्वेति**। काम्यं कमनीयं कर्म भिक्षाचर्यं तस्य फलं अन्नादि गुरूणां पित्रादीनाम्॥ १५ ॥ धर्म्यं ऋतुकालिकं गुह्ये रहसि ॥ १७ ॥ हृदयं रहस्यं तीर्थं गुरुः शुचिः अग्निः आर्यकृतं शिष्टाचरितं सर्वं चौक्ष्यं प्रशस्तं स्वार्थे ष्यञ्। वालं गोपुच्छम्॥ १८ ॥ प्रदिष्टं कर्तव्यत्वेनोपदिष्टम् ॥ १९ ॥ क्रियापथे श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठाने दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् यज्ञोपवीती भवेत्। 'अजिनं वासो वा दक्षिणत उपवीय दक्षिणबाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सेव्यमिति यज्ञोपवीतमेतदेव विपरीतं प्राचीनावीतम्' इति श्रुतेः॥ २० ॥ सायमिति सार्धः श्लोकः। विप्राणां पूजनमेव उत्तमं पुण्यं उत्तमा कृषिश्च तद्वत् दृष्टफलामित्यर्थः। बाद्यते स्थिरीक्रियते बदस्थैर्ये इति धातुः। सधकारः पाठः प्रामादिकः। सस्यानां धान्यानां बहुकारं बहुलीकरणं च तदेव गवां इन्द्रियाणां वाह्ये प्राप्ये वाहः प्रापणं दिव्यस्त्र्यन्नपानादीष्टप्राप्तिरपि विप्राणां पूजनमेव पण्यादिवद्देष्टव्यमित्यर्थः॥ २१ ॥ पूजनप्रकारमाह-**संपन्नमिति**। भोजने दीयमाने संपन्नमिति ब्रूयात् दाता सुसंपन्नमिति प्रतिग्रहीता ब्रूयादित्यर्थात् ज्ञेयम्। एवमुत्तरत्र सुतर्पणमिति प्रतिग्रहीता श्रृतमिति दाता सश्रृतमित्यन्यः। यवाग्वां द्रुतौदने कृसरे द्विदलेन सह पाचिते ओदने। ॥ २२ ॥ संप्राप्ते कृते सति विप्राणां अभिनन्दनं वन्दनादिना संतोषणं कार्यमिति शेषः। कीदृशं अभिनन्दनं व्याधितानामायुष्यं आयुष्करम्॥ २३ ॥ प्रत्यादित्यं आदित्याभिमुखो न मेहेत न मूत्रमुत्सृजेत् शकृत्पुरीषम् ॥ २४ ॥ अवराणां कनिष्ठानां समानानां तुल्यानाम् ॥२५ आर्यवृत्तं सेव्यमित्युक्तं तच्चाभिवादनादिरूपं दंभेनापि कर्तुं शक्यमिति कथमार्यत्वनिश्चयस्तत्राह—हृदयमिति वैकृतं नेत्रादिविकारः पापं हृदयमाख्याति। यथोक्तं 'नेत्रवक्त्रविकारेण ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः' इति गूहमानाः पापम्॥२६॥

ज्ञानपूर्वकृतं पापं छादयत्यबहुश्रुतः ।
नैनं मनुष्याः पश्यन्ति पश्यन्त्येव दिवौकसः
पापेनापिहितं पापं पापमेवानुवर्तते ।
धर्मेणापिहितो धर्मो धर्ममेवानुवर्तते ॥
धार्मिकेण कृतो धर्मो धर्ममेवानुवर्तते ॥ २८
पापं कृतं न स्मरतीह मूढो
विवर्तमानस्य तदेति कर्तुः ।
राहुर्यथा चन्द्रमुपैति चापि
तथाऽबुधं पापमुपैति कर्म ॥ २९
आशया सञ्चितं द्रव्यं दुःखेनैवोपभुज्यते ।
तद्बुधा न प्रशंसन्ति मरणं न प्रतीक्षते ॥ ३०
मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
तस्मात्सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत् ३१
एक एव चरेद्धर्मं नास्ति धर्मे सहायता ।
केवलं विधिमासाद्य सहायः किं करिष्यति
धर्मो योनिर्मनुष्याणां देवानाममृतं दिवि ।
प्रेत्यभावे सुखं धर्माच्छश्वत्तैरुपभुज्यते ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे आचारविधौ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

## १९४-[ २१ ]

युधिष्ठिर उवाच ।
अध्यात्मं नाम यदिदं पुरुषस्येह चिन्त्यते ।
यदध्यात्मं यथा चैतत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
कुतः सृष्टमिदं विश्वं ब्रह्मन् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये कथमभ्येति तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ २
भीष्म उवाच ।
अध्यात्ममिति मां पार्थ यदेतदनुपृच्छसि ।
तद्व्याख्यास्यामि ते तात श्रेयस्करतमं सुखम्
सृष्टिप्रलयसंयुक्त-
माचार्यैः परिदर्शितम् ।
यज्ज्ञात्वा पुरुषो लोके
प्रीतिं सौख्यं च विन्दति ।
फललाभश्च तस्य स्यात्
सर्वभूतहितं च तत् ॥ ४

---

**पापेनेति।** पापं पापिनं पापं प्रकाशनीयं धर्मस्तु गोपनीय इत्यर्थः ॥ २८ ॥ निवर्तमानस्य अशास्त्रस्थस्य अबुधमिति च्छेदः ॥ २९ ॥ मरणं कर्तृ ॥ ३० ॥ मानसं मनोनिर्वर्त्यम् मनसा शिवमित्यस्य सर्वभूतेभ्योऽभयं दद्यादित्यर्थः ॥३१॥ **एक इति।** धर्मं ध्यानयोगं ननु 'सहोभौ चरतां धर्मम्' इति विधेर्दम्पत्योरग्निहोत्रादिधर्मो विहितस्तत्कथमुच्यते एक एवेतीत्याशंक्याह—**नास्ति धर्मे सहायतेति** श्राद्धादेरिति शेषः । का तर्हि विधेर्गतिरित्यत आह—**केवलमिति** । मनसि धर्मशून्ये बाह्यसहायो विधिप्राप्तोऽप्यनर्थक इत्यर्थः । यथोक्तम्—

'मनसैव कृतं राम न शरीरकृतं कृतम् ।
येनैवालिंग्यते कान्ता तेनैवालिंग्यते सुता ' इति ॥

तस्मात् श्राद्धादिसापेक्षं धर्ममनादृत्य मानसिके योगधर्मे एव मनो दध्यादिति भावः ॥ ३२ ॥ एतमेव स्तौति—**धर्म इति।** योनिरुत्पत्तिप्रलयस्थानम्। देवत्वमनुष्यत्वादिप्रापको धर्म इत्यर्थः । तेषामेव देवमनुष्याणाम् । दिवि हार्दाकाशाख्ये ब्रह्मलोके अमृतं कैवल्यकारणं धर्म एव । तथा प्रेत्यभावे अपूर्वदेहप्राप्तौ धर्मादेव सुखं तैर्धर्मकर्तृभिः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

१९४

पूर्वं मानसिको धर्मो देवादीनां योनिरित्युक्तम् । तत्र किं स्वरूपोऽसौ धर्मः कथं च देवादिहेतुत्वं तस्येति पृच्छति—**अध्यात्ममिति।** आत्मानं चित्तमधिकृत्य प्रवृत्तो योगधर्मोऽध्यात्मम्। यदिदं पुरुषस्य कर्तव्यत्वेन चिन्त्यते शास्त्रे विचार्यते तदध्यात्मम्। किंलक्षणं किंप्रकारकं चेति। यद्यथाशब्दाभ्यां प्रश्नद्वयं कृतम् ॥ १ ॥ तथा ब्रह्मैव प्रजानां योनिरिति प्रसिद्धं त्वया तु मानसो धर्मो योनिरित्युक्तं तत्कथमित्याशयवानाह—**कुत इति** ॥ २ ॥ श्रेयस्करं धनादि श्रेयस्करतमो धर्मः श्रेयस्करतमो ध्यानयोगः सुखं स्वरूपसुखाविर्भावहेतुत्वात् ॥ ३ ॥ **सृष्टीति** । सृष्टिप्रलयव्याख्याऽपि अध्यात्मव्याख्यायामेवान्तर्भूता ।तथाहि यदि ज्ञेय आत्मा प्रतीचोऽन्यः स्यात्तर्हि तस्य उपासनाशेषत्वात् तस्मिन् श्रुतं जगज्जन्मादिहेतुत्वं पर्णमयीफलवदर्थवादः स्यात् । द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात् फलश्रुतिरर्थवादः स्यादिति घंटाघोषः योषिदग्नित्ववदारोपिते-

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्
महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ ५
यतः सृष्टानि तत्रैव तानि यान्ति पुनः पुनः।
महाभूतानि भूतेभ्यः सागरस्योर्मयो यथा ६
प्रसार्य च यथाऽङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः।
तद्वद्भूतानि भूतात्मा सृष्टानि हरते पुनः ॥ ७
महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत्।
अकरोत्तेषु वैषम्यं तत्तु जीवो न पश्यति ८
शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशयोनिजम्
वायोः स्पर्शस्तथा चेष्टा त्वक्चैव त्रितयं स्मृतम्

रूपं चक्षुस्तथा पाकस्त्रिविधं तेज उच्यते।
रसः क्लेदश्च जिह्वा च त्रयो जलगुणाः स्मृताः
घ्रेयं घ्राणं शरीरं च एते भूमिगुणास्त्रयः।
महाभूतानि पञ्चैव षष्ठं च मन उच्यते ॥ ११
इन्द्रियाणि मनश्चैव विज्ञानान्यस्य भारत।
सप्तमी बुद्धिरित्याहुः क्षेत्रज्ञः पुनरष्टमः ॥ १२
चक्षुरालोचनायैव संशयं कुरुते मनः।
बुद्धिरध्यवसानाय क्षेत्रज्ञः साक्षिवत् स्थितः
ऊर्ध्वं पादतलाभ्यां यदर्वाक्चोर्ध्वं च पश्यति
एतेन सर्वमेवेदं विद्ध्यभिव्याप्तमन्तरम् ॥ १४

रपि नीलग्रीवत्वपीताम्बरत्वसत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वजगज्जन्मादिहेतुत्वादिगुणैरुपास्ति स्वरूपासिद्धेः संतु वा तत्रानारोपिता एव गुणाः तथापि तस्य सर्वगुणविशिष्टस्य ज्ञेयत्वेन घटादिवज्जडत्वापत्तिर्दुर्वारा। ननु चिन्मय एवास्य विग्रहाश्चिन्मया एव गुणा इति न तेषां जडत्वमिति चेत् अत्र पृच्छामः—चिन्मयत्वं चिद्विकारत्वं चिद्रूपत्वं वा। नाद्यः। 'वाचारंभणं विकारो नामधेयम्' इति विकारस्यानृतत्वश्रवणेन तेषां तुच्छत्वापत्तेः। नान्त्यः। स्वात्मनि वृत्तिविरोधात्। न हि चिदेव चिदन्तरग्राह्येति संभवति ग्राह्यचितः अचित्त्वापत्तेः। तस्मात् ज्ञेय आत्मा प्रतीचोऽनन्य एव। तथा च सृष्ट्यादेस्तदुपादानकत्वोक्तिस्तदद्वयत्वप्रतिपत्त्यर्थेति। अध्यात्मव्याख्यायामेव सृष्टिप्रलयव्युत्पादनं संगतमिति तत्प्रसंगे प्रश्नोत्तरयोः सृष्ट्याद्युपन्यासो युक्तिमत्तर इति सिद्धम्। अत्र मानमाह-**आचार्यैः परिदर्शितमिति**।आत्मैवेदं सर्वं ब्रह्मैवेदं सर्वमित्यादि वेदवाक्यैरित्यर्थः। प्रीतिं दृष्टसुखं सौख्यं सुखात्मकं भावं सत्तां प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां सुखात्मकसन्मात्रमित्यर्थावगमात् सुखस्य भाव इति विग्रहे षष्ठी तु राहोः शिर इतिवदौपचारिकी व्यक्तमाकरे। तथा च श्रुतयः—'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान्सह। निष्क्रियं निष्कलं शान्तम्' इत्याद्याः। तस्य आत्मविदः फलं सर्वकामावाप्तिस्तल्लाभः स्यात् हितं च तज्ज्ञानम् ॥ ४ ॥अध्यारोपापवादन्यायेन ज्ञेयस्य ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं तावदाह-**पृथिवीति**। भूतानां जरायुजादीनां प्रभवाप्ययौ उत्पत्तिलयस्थानभूतानि॥५॥ यतः आनन्दात्मनः। 'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' इति श्रुतेः। सृष्टानि तत्रैव लयं यान्ति। **यत इति**। यच्छब्दार्थमाह-महाभूतानि पृथिव्यादीनि भूतेभ्यः जरायुजादिभ्यः उत्पद्यन्ते-**सागरस्योर्मयो यथेति**। अत्र जरायुजादिभ्यः खाद्युत्पत्तिलयौ वदता तेषामानन्दरूपत्वमुक्तम्। खादीनां च स्वप्नाकाशादिवत्कल्पनामात्रत्वं चोक्तम् ॥६॥ **प्रसार्येति**। भूतानि खादीनि। भूतात्मा जीवः यतः भूतान्येव देहाद्याकारेण परिणतानि आत्मत्वेन मन्यमानः। 'अस्ति खल्वन्योऽपरो भूतात्मा योऽयं सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः सदसद्योनिमापद्यते' इति श्रुतिप्रसिद्धेश्च। एतेन कूर्माङ्गानीव वियदादीनि प्रतीचोऽनन्यानीत्युक्तम् ॥ ७ ॥ ननु कथं भौतिकेभ्यो भूतोत्पत्तिः न हि पुत्रात्पितोत्पद्यत इति चेत्। अत्र ब्रूमः। **बीजाद्वटो** वटात् बीजानि बीजेभ्यो वटा इतिवद्भविष्यतीति। ननु तत्र प्रतिबीजं सूक्ष्मरूपेण वटोऽस्ति अंकुरोन्मुखतिन्तिणीबीजोदरे कृत्स्नतिन्तिणीसन्निवेशदर्शनात्। तर्हि प्रत्यगभेदेन गृहीते देहे सूक्ष्मरूपेण महाभूतानि सन्तीति तुल्यमित्याभिप्रेत्याह-**महाभूतानीति**। भूतकृत् ईश्वरः। सर्वभूतेषु शरीरेषु पञ्चमहाभूतानि अकरोदेव। कृतेषु च तेषु वैषम्यं वैलक्षण्यं पार्थक्येनावस्थितत्वं यत् तत्तु जीवो देहाद्यात्माभिमानी न पश्यति। देहे कः पार्थिवोंशः कः आप्य इति न जानाति। अयं भावः-जीवत्वाभिमानत्यागे खलु स्वस्य सर्वकारणत्वं ग्राह्यम्। तदभावात्तु स्वप्ने गृह्यमाणमपि तन्न श्रद्धत्ते। ततश्च न बाह्यान्तरसृष्ट्योः सत्यत्वमिथ्यात्वे निश्चिनोति। ततो भेददृष्टेरबाधाद्बध्यत इति ॥८॥ जीवस्य जगदुपादानत्वप्रथनाय तस्यात्मभूते देहे खाद्यंशान् विभजते-**शब्द इत्यादिना**। खानि छिद्राणि आकाश एव योनिः कारणं तज्जम् ॥ ९ ॥ पाकः अन्नादिपाक्तिसद्धेतुः ॥ १० ॥ पञ्चैव देहस्थानीति शेषः ॥११॥ इन्द्रियाणि भूतेष्वन्तर्भूतानि मन इति कर्ता जीव उच्यते। अस्य विज्ञानानि च वृत्तिरूपाणि। एतदुभयात्मिका बुद्धिः सप्तमी क्षेत्रज्ञः साक्षी ॥ १२ ॥ चक्षुरिति पञ्चानामुपलक्षणम्। आलोचनाय विषयग्रहणाय अध्यवसानाय निश्चयाय क्षेत्रज्ञः साक्षिवत् उदासीनबोधरूपत्वात् साक्षित्वस्यापि साक्ष्योपाधिकत्वान्नात्मधर्मत्वमितिवत्करणेन दर्शितम् १३ **ऊर्ध्वमिति**। पादतलद्वयमारभ्य ऊर्ध्वस्थितं शरीरं उपर्यधश्च यत्साक्षि चैतन्यं पश्यति। एतेन इदं बहिर्दृश्यमानं अन्तरं व्योमोदरं कृत्स्नं व्याप्तम् ॥ १४ ॥

पुरुषैरिन्द्रियाणीह वेदितव्यानि कृत्स्नशः ।
तमो रजश्च सत्त्वं च तेऽपि भावास्तदाश्रिताः
एतां बुद्ध्वा नरा बुद्ध्या भूतानामागतिं गतिं
समवेक्ष्य शनैश्चैव लभते शममुत्तमम् ॥ १६
गुणैर्निनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि ।
मनःषष्ठानि भूतानि तदभावे कुतो गुणाः १७
इति तन्मयमेवैतत्सर्वं स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलीयते चोद्भवति तस्मान्निर्दिश्यते तथा १८

येन पश्यति तच्चक्षुः शृणोति श्रोत्रमुच्यते ।
जिघ्रति घ्राणमित्याहू रसं जानाति जिह्वया
त्वचा स्पर्शयते स्पर्शं बुद्धिर्विक्रियते सकृत् ।
येन प्रार्थयते किञ्चित्तदा भवति तन्मनः २०
अधिष्ठानानि बुद्धेर्हि
पृथगर्थानि पञ्चधा ।
इन्द्रियाणीति यान्याहु-
स्तान्यदृश्योऽधितिष्ठति ॥ २१

एवं बुद्ध्यादिसाक्षिणो ब्रह्मभावमुक्त्वाऽस्य बुद्ध्याद्युपहितस्य पूर्वं महाभूतस्रष्टृत्वमुक्तं तद्युक्त्या श्रुत्या चालोचनीयमित्याह-**पुरुषैरिति** । कृत्स्नशः कार्त्स्न्येन वेदितव्यानि परीक्षणीयानि इंद्रियाणीति मनोबुद्ध्योरप्युपलक्षणम् । तथाहि । किमिन्द्रियाणि प्राक् सन्तमेव घटादिकं गोचरयन्त्युत दृष्टिसमसमयमात्रसिद्धम् । आद्येऽपि किं सत्त्वं सत्तासामान्यसमवायो वा अर्थक्रियाकारिता वा । नाद्यः। सत्तायां सत्तासामान्यान्तराभ्युपगमेऽनवस्थापातात् अनभ्युपगमे तस्या अप्यसत्त्वापत्तेश्च । न द्वितीयः । रज्ज्वां कल्पितस्यापि सर्पस्य भयकम्पादिजनकत्वलक्षणार्थक्रियाकारित्वदर्शनात् । न च तत्र पुष्कलार्थक्रियाकारित्वं दृष्टं प्रसर्पणाद्यदर्शनादिति शंक्यम्। तार्क्ष्योऽहमिति स्वस्मिंस्तार्क्ष्यत्वकल्पनायाः सत्यविषनिवर्तकत्वदर्शनात् । तथा चैत्रोऽयमिति प्रतिमायां कल्पितचैत्रत्वस्य प्रतिमापीडनाच्चैत्रपीडाकरत्वदर्शनाच्च । ननु तत्र तार्क्ष्यात्स्वस्य भेदे गृह्यमाणे एव शास्त्रप्राप्तस्य ध्यानादेः सत्यविषनिवर्तकत्वं युक्तम् । गारुडशास्त्रप्रमाणात् देहेन्द्रियादीनां तु आत्मन्यभेदेन दृश्यमानानां कथं कल्पितत्वमिति चेत् श्लाघनीयप्रज्ञो देवानां प्रियः । भेदग्रहे सत्यपि यत्र कल्पनायाः पुष्कलार्थक्रियाकारित्वं दृष्टं किमुताभेदग्रहे । बाधोत्तरकालीनार्थक्रियाकारित्वाभावस्य रज्जुसर्पादौ देहेन्द्रियादौ च तुल्यवद्दर्शनात् तस्मात् परिशेषात् रज्जूरगवद्दृष्टिसमसमयसिद्धं घटादिकं इन्द्रियाणि गोचरयन्तीति सिद्धम् । इन्द्रियाण्यपि मनसोऽनवहिततायां सन्निहितमपि रूपादिकं न गोचरयन्तीति मनोमात्राण्येव । स्वप्ने तेषां तन्मात्रत्वानुभवात् । मनोऽपि प्रमात्रा प्रयुक्तं सन्नावहितं भवतीति प्रमात्रात्मकमेव । प्रमातृत्वं चात्मनि बुद्धिव्यतिरेकेण सुषुप्त्यादौ न दृष्टमिति बुद्धेरेव धर्मः । बुद्धिश्च त्रिगुणात्मकस्याज्ञानस्य कार्यमतस्त्रिगुणात्मकानेव भावान् विषयीकरोति । तदिदमुक्तम् इन्द्रियाणि तम आदिकमेव तेऽपि इन्द्रियग्राह्या भावा अपि तदाश्रिता इन्द्रियाश्रिता इन्द्रियजाः परंपरया तमआद्याश्रिता एवेति ॥ १५ ॥ एतदेव प्रपञ्चयिष्यन् प्ररोचनाय तज्ज्ञानफलमाह-**एतामिति** । एतां त्रिगुणात्मिकां मूलप्रकृतिं बुद्धिं वा भूतानां खादीनां जरायुजादीनां च आगतिं उद्गमनस्थानम् । गतिं लयस्थानं चेति-बुद्ध्या विचारेण अवेक्ष्य । शनैः वैराग्यविवेकवृद्धिक्रमेण उत्तमं शमं सुखं प्रत्यगानन्दं लभते। कण्ठगतविस्मृतचामीकरवन्नित्यप्राप्तमिव तत्त्वमस्यादिवाक्याल्लभते ॥ १६ ॥ भूतानां गत्यागती एवाह-**गुणैरिति** । तम आदिभिर्गुणैः बुद्धिर्निनीयते पुनः पुनरतिशयेन विषयात्मतां नीयते।अतो बुद्धिरेव मनःषष्ठानींद्रियाणि भूतानि च द्विविधानि सैव।तदभावे बुद्धेरभावे गुणाः कुतः स्वरूपेण तेषां बाधान्न क्वापि सन्तीत्यर्थः। एतेन सांख्याभिमतं तेषामबाध्यत्वं नित्यानुमेयत्वं च निरस्तम्। **अयमर्थः**-रज्ज्वज्ञाने सति तत्कार्यं सर्पस्तज्जं भयादिकं च दृश्यते । परीक्षादशायां तु सर्पाभावे सति रज्जौ न तन्मूलमज्ञानमुपलभ्यते नापि तज्जं भयादिकम् । एवं बुद्ध्यभावे बुद्धेः कार्यं कारणं च नश्यतीति गुणशब्देन सत्त्वादयो मन इन्द्रियविषयादयश्च गृह्यन्ते ॥ १७ ॥ **इतीति** । यत एवं तस्मात् तन्मयं बुद्धिमयं प्रलीयते बुद्धौ लीनायामुद्भवति बुद्ध्युद्भवे तस्मात्तथा बुद्धिमयत्वेन निर्दिश्यते वेदे 'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति ' इति । ' प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः' इति च । बुद्धिमनसोरभेदात् बुद्धिरेव श्रवणादिसाधनं श्रोत्रादिरूपेण प्राणेभ्यश्चक्षुरादिभ्य इन्द्रियेभ्यः देवास्तदनुग्राहका आदित्यादयः लोका-भूतभौतिका इति श्रुत्यर्थः ॥ १८ ॥ एतदेवाह द्वाभ्याम्-**येनेति** । सा बुद्धिर्येन द्वारेण पश्यति तच्चक्षुरित्यर्थः । जिह्वया त्वचेति इत्थं भावे तृतीया । जिह्वारूपया बुद्ध्या-बुद्धिः कर्त्री रसं जानाति॥ १९ ॥ तत्र हेतुः विक्रियते बुद्धिरेव चिदाभासविशिष्टा जीवापरसंज्ञाकर्तृत्वं करणत्वं चापद्यते तथा च श्रूयते—'स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति वदन् वाक् पश्यन् चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्य कर्मनामान्येव' इति । सकृदिति यौगपद्यमुच्यते कर्त्रादिभावस्य । ततश्चाकाशाद्वायुः वायोरग्निरिति क्रमो न विवक्षितः । किं तु ज्ञातृज्ञानज्ञेयानां सहैवोत्पत्तिरित्यर्थः ॥ २० ॥ अधितिष्ठति रूपादीनि बुद्धिः प्रकाशयत्येतैरित्यधिष्ठानानि करणानि बुद्धेः कर्त्र्याः अदृश्यश्चिदात्माऽधिति-

**पुरुषे तिष्ठती बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते ।**
**कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदनुशोचति २२**
**न सुखेन न दुःखेन कदाचिदपि वर्तते ।**
**एवं नराणां मनसि त्रिषु भावेष्ववस्थिता २३**
**सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते ।**
**सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान्**
**अतिभावगता बुद्धिर्भावे मनसि वर्तते ।**
**प्रवर्तमानं तु रजस्तद्भावमनुवर्तते ॥ २५**
**इन्द्रियाणि हि सर्वाणि प्रवर्तयति सा तदा ।**
**ततः सत्त्वं तमोभावः प्रीतियोगात्प्रवर्तते २६**
**प्रीतिः सत्त्वं रजःशोकस्तमो मोहस्तु ते त्रयः**
**ये ये च भावा लोकेऽस्मिन् सर्वेष्वेतेषु वै त्रिषु**
**इति बुद्धिगतिः सर्वा व्याख्याता तव भारत**
**इन्द्रियाणि च सर्वाणि विजेतव्यानि धीमता**

**सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्राणिनां संश्रिताः सदा।**
**त्रिविधा वेदना चैव सर्वसत्त्वेषु दृश्यते ॥ २९**
**सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति भारत**
**सुखस्पर्शः सत्त्वगुणो दुःखस्पर्शो रजोगुणः ।**
**तमोगुणेन संयुक्तौ भवतो व्यावहारिकौ ३०**
**तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।**
**वर्तते सात्त्विको भाव इत्याचक्षीत तत्तथा**
**अथ यद्दुःखसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।**
**प्रवृत्तं रज इत्येव तन्न संरभ्य चिन्तयेत् ३२**
**अथ यन्मोहसंयुक्तमव्यक्तविषयं भवेत् ।**
**अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ३३**
**प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता ।**
**कथञ्चिदभिवर्तन्त इत्येते सात्त्विका गुणाः ३४**

इति स्वरूपसत्तामात्रेण इन्द्रियाणि व्यापारयति अयस्कान्त इव लोहम् ॥ २१ ॥ एतदेवाह—**पुरुषे इति** । त्रिषु भावेषु सत्त्वरजस्तमोमयेषु सुखदुःखमोहात्मकेषु तानेव क्रमेणाह—**कदाचिदिति** ॥ २२ ॥ एवं त्रिषु भावेष्ववस्थिता बुद्धिर्मनसि वर्तते मनोद्वारा इन्द्रियविषयेष्वपि इति द्रष्टव्यम् ॥२३ ॥ **सेयमिति** । सेयं सर्वात्मिकाऽपि बुद्धिः भावान् सुखदुःखमोहान् तदात्मिकाऽपि सती अतिक्रम्य वर्तते । तत्र योग्यो दृष्टान्तः । सरितां भर्ता पूरयिता ऊर्मिमान् सागरः महावेलामिवेति । अयमर्थः—यथा समुद्रप्रभवानां नदीनां समुद्रं प्राप्तानां वीचयः समुद्रोर्मिभिस्तिरोधीयन्ते । एवं बुद्धिप्रभवाणां देहेन्द्रियविषयाणां योगेन बुद्धौ लीयमानानां संस्काराः बुद्धेर्ब्रह्माकारतया तिरोधीयन्ते इति बुद्धेर्गुणातीतत्वमुच्यते । यथा घटप्रकाशे चक्षुरालोकसहकारेण समर्थम् । दीपप्रकाशे तु तन्निरपेक्षम्। विषयस्यैव प्रकाशात्मकत्वात् एवं धीवृत्तिश्चिदाभाससहकारेणैव घटादीन्प्रकाशयति । यथोक्तम्—

'बुद्धितत्स्थचिदाभासावुभौ व्याप्नु(व)तो घटम् ।
तत्राज्ञानं धिया नश्येच्चैतन्येन घटः स्फुरेत्' इति

आत्मनि तु धीवृत्तिरेवापेक्षिता विषयस्य प्रकाशात्मत्वात्। प्रकाशमाने त्वानन्दे धीवृत्तिः कतकरजोवत् सजातीयवृत्त्यन्तरं विनाशयन्ती स्वयमपि विलीयते। तदा च संस्कारात्मना सती सा सत्त्वादिकार्याणि सुखदुःखमोहाख्यानि अतिक्रम्य गता भवति सुषुप्तौ तु मोहस्याविनाशात्सुप्तिसमाध्योर्भेद इति ॥ २४ ॥ ननु आत्माकारवृत्तिमत्या बुद्धेर्गुणातीतत्वोपगमे ज्ञानसमकालमेव देहपातः स्यात् । नष्टायास्तस्याः मूलकारणस्याज्ञानस्य नाशेन पुनरुत्पादायोगादित्याशंक्याह—**अतिभावेति** । सुखादिभावान् अतिक्रान्तापि बुद्धिर्भावे मनसि निर्वृत्तिकतया **सत्ता**मात्रे मनसि वर्तते ज्ञानकाले सूक्ष्मरूपेणास्तीत्यर्थः । **तु** पश्चादभ्युत्थानकाले प्रवर्तमानं रजः तद्भावं बुद्धिभावं अनुवर्तते घृतकाठिन्यवद्विलीनापि बुद्धिः रजोगुणेन शीतेन घृतमिव पुनर्घनीक्रियत इत्यर्थः । **अयं भावः**—सत्यप्यज्ञाननाशे क्षालितलशुनभाण्डगन्धवत्क्लेशतोऽनुवर्तमानाऽविद्या प्रारब्धकर्मपराधीना न पुनः पुनर्देहादीनुत्थापयति । प्रारब्धकर्मोपरमे तु निरन्वयनाशान्निष्प्रत्यूहं कैवल्यमिति ॥२५॥ सा बुद्धिर्यदा रजसा लब्धात्मिका भवति तदा हि प्रसिद्धमिन्द्रियाणि प्रवर्तयति । ततश्च विषयसंबंधात् सत्त्वं सत्त्वात्मिका बुद्धिः विषययाथात्म्यज्ञानं प्रवर्तते । तथा तमोभावः तमसा विषयाज्ञानेन जनितो भावः विषयविपर्यासरूपः शुक्तिरजतादिः प्रीतियोगात्पुरुषगतरागादिदोषात्प्रवर्तते । प्रमारूपं विपर्ययरूपं वा ज्ञानं विषयेन्द्रियसम्बन्धाज्जायत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ ततश्च प्रीत्यादयः सत्त्वाद्यात्मानः प्रवर्तन्ते भावाः शमदमकामक्रोधभयविषादादयः॥२७॥ बुद्धिव्याख्यानं सप्रयोजनमुपसंहरति—**इतीति** ॥ २८ ॥ प्रीतिः सत्त्वमित्युक्तमर्थं प्रपञ्चयति—**सत्त्वं रज इत्यादिना** ॥२९॥ त्रैविध्यमेवाह-**सात्त्विकीति** सार्धेन । तमोगुणे प्रादुर्भूते सति संयुक्तौ पूर्वोक्तौ सुखदुःखस्पर्शौ न भवतः किं तु **मोह** एवेत्यर्थः ॥ ३० ॥ संरभ्य भीत्या दुःखानुसंधानात् दुःखमेव वर्द्धिष्यत इति भीत्या दुःखं न चिन्तयेन्न गणयेदित्यर्थः ॥ ३२ ॥ इष्टवस्तुश्रवणदर्शनप्राप्त्युपभोगजानि सुखानि प्रहर्षप्रीत्यानन्दसुखाख्यानि प्रियमोदप्रमोदानन्दापरपर्यायाणि प्रशान्तचित्तता निर्विकल्पसुखता पुच्छब्रह्माख्या कथंचिदिति दौर्लभ्यमुक्तम् ॥ ३४ ॥

अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथाऽक्षमा
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुभिः॥
अवमानस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतन्द्रिता।
कथञ्चिदभिवर्तन्ते विविधास्तामसा गुणाः
दूरगं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम्।
मनः सुनियतं यस्य स सुखी प्रेत्य चेह च ३७
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं पश्य सूक्ष्मयोः।
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् ३८
मशकोदुम्बरौ वाऽपि संप्रयुक्तौ यथा सदा।
अन्योन्यमेतौ स्यातां च संप्रयोगस्तथा तयोः
पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा।
यथा मत्स्यौ जलं चैव संप्रयुक्तौ तथैव तौ॥
न गुणा विदुरात्मानं स गुणान्वेत्ति सर्वशः
परिद्रष्टा गुणानां तु संसृष्टान्मन्यते तथा ४१
इन्द्रियैस्तु प्रदीपार्थं कुरुते बुद्धिसप्तमैः।
निर्विचेष्टैरजानद्भिः परमात्मा प्रदीपवत् ४२
सृजते हि गुणान् सत्त्वं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति।
संप्रयोगस्तयोरेष सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्ध्रुवः॥ ४३
आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य क्षेत्रज्ञस्य च कश्चन
सत्त्वं मनः संसृजते न गुणान्वै कदाचन ४४
रश्मींस्तेषां स मनसा यदा सम्यङ्नियच्छति
तदा प्रकाशतेऽस्यात्मा घटे दीपो ज्वलन्निव

त्यक्त्वा यः प्राकृतं कर्म
नित्यमात्मरतिर्मुनिः।
सर्वभूतात्मभूस्तस्मात्
स गच्छेदुत्तमां गतिम्॥ ४६

यथा वारिचरः पक्षी सलिलेन न लिप्यते।
एवमेव कृतप्रज्ञो भूतेषु परिवर्तते॥ ४७

हेत्वहेतुभिर्हेतुभिरहेतुभिश्च आहाराद्यपूर्तौ सत्यामतुष्टिः क्षुद्बाधाद्यनिवृत्तिहेतुभिः सर्वसंपत्तिमतस्तु याऽतुष्टिः सा निर्हेतुका केवलमोहकार्यमित्यर्थः॥ ३५॥ स्वप्नो निद्रा तत्सहिता तन्द्रिता तंद्रायुक्तत्वम्। कथञ्चित् अभाग्यातिशयात्॥ ३६॥ दूरगं दुर्लभेऽपि वस्तुन्यासक्तम्। बहुधागामि अनेकेषु विषयेषु युगपन्निपतितुं शीलम्। प्रार्थना देहीति दैन्यभाषणम्। सुनियतं निरुद्धवृत्तिकम्॥ ३७॥ वृत्तिनिरोधफलं सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमाह-**सत्त्वेति**। सत्त्वं बुद्धिसत्त्वं क्षेत्रज्ञः साक्षी तयोः अन्तरं भेदम्। तप्तायःपिण्डवदितरेतराविवेकात्प्रागगृहीतम्। एकः सत्त्वं गुणान् अहंकारादीन्॥ ३८॥ एतौ मशकोदुम्बरौ तयोः सत्त्वक्षेत्रज्ञयोः॥ ३९॥ प्रकृत्या स्वभावेन ॥ ४०॥ ननु मशकोदुम्बरवज्जलमत्स्यवद्वा तयोः संयोगश्चेदुभयोरपि विभुत्वादपरिहार्यः संयोगः स्यादित्याशंक्याह-**नेति**। न विदुरिति गुणानां जडत्वमुक्तम्। वेत्तीति क्षेत्रज्ञस्य चिदात्मत्वमुक्तम्। अतश्चिज्जडयोर्वास्तवः सम्बन्धो नोपपद्यते। दृष्टान्ते तु जडयोरेव मीनादिशरीरयोर्जलादिना जडेनैव सम्बन्धः। एतदेवाह-**परिद्रष्टेति**। पुरुषो गुणानां देहाहंकारादीनां द्रष्टाऽपि सन् तान् संसृष्टान् स्वतादात्म्यापन्नान्मन्यते न हि द्रष्टृदृश्ययोः पुंगुणयोरभेदः संभवति प्रतीयते चाभेदः अहं गौरोऽहं काणोऽहं सुखी अहं कर्तेति। तस्मात् मरुमहाह्रदयोरिवानयोराध्यासिकः सम्बन्ध इत्यर्थः। संसृष्टेति पाठे समित्येकीभावे इति यास्कवचनात् आत्मनि एकीभावेन तादात्म्येन गुणानां स्रष्टा कल्पकः संस्रष्टा चिदात्मा विद्यया मन्यतेऽभिमानं करोति॥ ४१॥ ननु चिदात्मा गुणसंगी चेत् घटपिहितप्रदीपवन्न किंचित्प्रकाशयेदित्याशंक्याह-**इन्द्रियैरिति**। प्रदीपार्थं अर्थप्रकाशनं घटच्छिद्रैरिव घटपिहितो दीप इत्यर्थः। इन्द्रियैर्मनसा सह षड्भिः॥ ४२॥ संप्रयोगः संबंधः ध्रुवः अनादिः॥ ४३॥ सत्त्वक्षेत्रज्ञयोः संप्रयोगोऽनिर्वचनीय इत्याह-**आश्रय इति**। आत्मन असंगत्वान्निर्गुणत्वाच्च जतुकाष्ठवद्रूपरूपिवद्वा न तयोराश्रिताश्रयभावोऽस्तीत्यर्थः। क्षेत्रज्ञस्य कश्चन आश्रयो नास्ति स्वमहिमप्रतिष्ठत्वात्। गुणः सत्त्वस्य चेतनेति प्राचीनपाठे तु सत्त्वस्याश्रयः प्रकृतिः शाखाया इव तरुः स नास्ति प्रकृतेस्तुच्छत्वात्। 'तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् अनृतेन हि प्रत्यूढाः' इत्यादिश्रुतिभ्यस्तस्यास्तुच्छत्वावगतेः कथं तर्हि सत्त्वस्यात्मलाभ इत्यत आह-**चेतनासत्त्वस्य गुण इति**। शुक्तीदंता यथा तत्राध्यस्तरजतस्य विशेषणं भवति तद्वच्चेतना स्वस्मिन्नध्यस्तस्य सत्त्वस्य विशेषणं भवति तमिमं सत्त्वे चेतनानुवेधमालक्ष्य आत्मा जडश्चेतना तद्गुणः सा च क्षणावस्थायिनीति बुद्धबन्धवः प्रलपन्ति। उक्तेर्थे हेतुमाह-**सत्त्वमिति**। संसृजते निर्दिशति प्रकाशयतीत्यर्थः वै प्रसिद्धम्। मन आदिकमेव सत्त्वस्य कार्यं प्रथते न तन्मूलभूता गुणा अतस्तेषां स कार्याणां मृषात्वमित्यर्थः। न हि निपुणैरपि परीक्ष्यमाणं रज्जूरगोपादानमज्ञानं दृष्टिपथमवतरतीति भावः॥ ४४॥ अध्यासनिवृत्त्युपायमाह—**रश्मीनिति**। वृत्तिबहुत्वापेक्षया बहुवचनम्। तेषां तस्य सत्त्वस्य रश्मीनिव इन्द्रियाणि॥ ४५॥ प्राकृतं स्वाभाविकं कर्म त्यक्त्वा संन्यस्येत्यर्थः। आत्मरतिः अनन्यनिष्ठः मुनिः ध्यानशीलः सर्वेषां भूतानामात्मैव भवतीति सर्वभूतात्मभूः।'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति'। 'आत्मा ह्येषां संभवति' इत्यादि श्रुतिभ्यः आत्मनः सार्वात्म्यावगतेः तस्मात्संन्यासादेः॥ ४६॥ एवंविदः कर्मालेपं दृष्टान्तमाह-**यथेति**। वारिचरः हंसः तथा च श्रुतिः—'तं विदित्वा न कर्मणा लिप्यते पापकेन' इति॥ ४७॥

एवंस्वभावमेवैतत्स्वबुद्ध्या विहरेन्नरः ।
अशोचन्नप्रहृष्यंश्च समो विगतमत्सरः ॥ ४८
स्वभावयुक्त्या युक्तस्तु स नित्यं सृजते गुणान्
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं विज्ञेयास्तंतुवद्गुणाः ॥
प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते निवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
प्रत्यक्षेण परोक्षं तदनुमानेन सिध्यति ॥ ५०
एवमेकेऽध्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे ।
उभयं सम्प्रधार्यैतद्व्यवस्येत यथामति ॥ ५१
इतीमं हृदयग्रन्थिं बुद्धिभेदमयं दृढम् ।
विमुच्य सुखमासीत न शोचेच्छिन्नसंशयः।
मलिनाः प्राप्नुयुः सिद्धिं यथा पूर्णां नदीं नराः
अवगाह्य सुविद्वांसो विद्धि ज्ञानमिदं तथा ॥
महानद्या हि पारज्ञस्तप्यते न तदन्यथा ।
न तु तप्यति तत्त्वज्ञः फले ज्ञाते तरत्युत ५४
एवं ये विदुराध्यात्मं केवलं ज्ञानमुत्तमम् ५५
एतां बुद्ध्वा नरः सर्वां भूतानामागतिं गतिम्
अवेक्ष्य च शनैर्बुद्ध्या लभते शमनं ततः ॥ ५६

एवंस्वभावं अलेपस्वभावम्। एतत् आत्मस्वरूपं स्वबुद्ध्या निश्चित्येति शेषः ॥ ४८ ॥ एवंविदो जीवन्मुक्तिमाह- **स्वेति**। स्वभावे स्वरूपे युक्तिर्योगः तया देहेन्द्रियादितादात्म्याध्यासकृतां पररूपतां परित्यज्य स्वरूपावस्थित्या युक्तश्च स विद्वान् नित्यं गुणान् भूतभौतिकान् योगैश्वर्यबलेन सृजते। यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा इत्युपक्रम्य 'स विश्वकृत्स हि विश्वस्य कर्ता'इति श्रुतेः।ऊर्णनाभिदृष्टान्तोऽभिन्ननिमित्तत्वोपपादनाय दर्शितः ॥ ४९ ॥ एवं जीवन्मुक्तः प्रारब्धकर्मावष्टब्धदेहः प्राक्संस्कारवशात्प्रत्युपस्थितैर्गुणैर्दृष्टिसमसमयां सृष्टिं पश्यन् योगैश्वर्येणाणिमादिना वा निर्विकल्पध्यानेन वा वर्तयतीत्युक्तम् । प्रारब्धकर्मसमाप्तौ तु किं गुणाः घटवन्निवर्तन्त उत रज्जूरगवद्बाध्यन्ते इति मीमांसते-**प्रध्वस्ता इति द्वाभ्याम्** । तत्र कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वादिति योगाः। प्रधानं त्रिगुणात्मकम् विदेहं कैवल्यभाजं प्रतिनष्टं ध्वस्तमपि अनष्टं अध्वस्तं यतोऽन्यसाधारणम् । निरन्वयनाशे इदानींतनानां संसारोपलंभो न स्यात्। न च कश्चिन्मुक्त एव नास्तीति वक्तुं शक्यम्। इदानींतनानामपि मुक्तावनाश्वासप्रसंगादित्याहुस्तदनुवदति—**प्रध्वस्ता न निवर्तन्त इति**। प्रध्वस्ता अपि गुणाः न निवर्तन्ते इति तदेत दूषयति—**निवृत्तिः प्रत्यक्षेण नोपलभ्यत इति** । **अयं भावः**—सतः पदार्थस्यादर्शनं सान्निध्याभावाद्वा दृष्टिलोपाद्वा लोकेऽवगतम् । तत्र नाद्यः । प्रधानस्य विभुत्वात् । नान्त्यः । पुरुषस्यालुप्तदृष्टित्वात् । तथा च'ज्ञानादेव तु कैवल्यम् ' इति ज्ञाननिवर्त्यत्वश्रुत्यन्यथानुपपत्त्या रज्जूरगवत्प्रधानस्य बुद्धाबुद्धदृष्टिभेदेन नष्टत्वानष्टत्वे बोद्धव्ये न तु घटवत्सत्यत्वपक्षे तद्युज्यते प्रत्यक्षविरोधादिति भावः। परोक्षं तदनुमानेन सिद्ध्यति । अनुभवानारूढं तत् प्रधानस्य सत्यस्यापि दृष्टिभेदेन नाशानाशवचनं किं तु केवलानुमानेन बन्धमोक्षव्यवस्थान्यथानुपपत्त्या प्रधानस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धप्रपञ्चकारणस्य नित्यानुमेयस्य सर्वप्रमाणविरोधापातान्मिथ्यात्वमपि नाध्यवसातुं शक्यमतोऽगत्या कृतार्थं प्रति नष्टमनष्टं तदित्युपेयमिति । यद्वा प्रत्यक्षं श्रुतिः प्रामाण्यं प्रति निरपेक्षत्वात्। अनुमानं स्मृतिः, प्रामाण्यं प्रति सापेक्षत्वात्। तथा च 'नेह नानास्ति किंचन' इति प्रपञ्चस्य बाधः प्रत्यक्षसिद्धः । नष्टमप्यनष्टमिति ध्वंसपक्षः स्मृतिसिद्धः-'**तेन विरोधे त्वनपेक्षं स्यात्**'इति न्यायेन ध्वंसस्मृतिरप्रमाणमिति भावः ॥ ५० ॥ एवमेके नानाजीववादिनो व्यवहारानुरोधात् व्यवस्यन्ति निश्चिन्वन्ति । अपरे एकजीववादिनो निवृत्तिरेव स्वाज्ञानकृतः प्रपञ्चस्तन्नाशे कार्त्स्न्येन निवर्तते । न हि चैत्रेण स्वप्ने दृष्टो गजश्चैत्रप्रबोधेन बाधितोऽपि मैत्रदृष्ट्या रज्जूरगवद्स्तीति शक्यं वक्तुम् । किं तु निरन्वयनाश एव तस्येत्यपि केचिद्व्यवस्यन्ति । एवमेतदुभयं दर्शितम् । तन्मध्येऽन्यतरन्मतं संप्रधार्य सम्यक् शास्त्राभिनिश्चित्य यथामति व्यवस्येत ध्यानेन साक्षात्कुर्यात् ॥५१॥ हृदयग्रंथिं अन्योन्याध्यासम् । तप्तायःपिंडवत् बुद्धिक्षेत्रज्ञयोः एकलोलीभावम् । तथाहि क्षेत्रज्ञे बुद्धिधर्माः दुःखादयः बुद्धौ च क्षेत्रज्ञधर्माः सत्त्वचित्तत्वादयो दृश्यन्ते । बुद्धिकृतो यो भेदस्तन्मयं तत्प्रधानं तं विमुच्य सत्त्वपुरुषयोः पृथक्त्वज्ञानेन त्यक्त्वा । तथा च श्रुतिः— ' भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ' इति ॥ ५२ ॥ नदीमिव इदं ज्ञानमवगाह्य मलिनाः शुद्धिं प्राप्नुयुः । इति विद्धि । यथोक्तं —'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इति ॥ ५३ ॥ **महेति**। न हि परदर्शनमात्रात्कृतकृत्यता किं तु नौकादिना पारप्राप्त्यैव फलमात्मनि तु ज्ञानमात्रादेव न पुनरनुष्ठानान्तरापेक्षेति भावः ॥५४॥ उपसंहरति—**एवमित्यर्धेन** अध्यात्मं आत्मनि हृदयाकाशे । केवलं निर्विषयम्। कैवल्यमिति पाठे स्वार्थे ष्यञ्। ते ज्ञानं लभन्त इति शेषः ॥ ५५ ॥ **एतामिति** । स्त्रीत्वं विधेयलिंगापेक्षया । इदमेव ज्ञानम् । सर्वप्रत्ययभूतं भूतानां लयोदयस्थानं इति शास्त्रतो बुद्ध्वा ध्यानेन

त्रिवर्गो यस्य विदितः प्रेक्ष्य यश्च विमुञ्चति।
अन्विष्य मनसा युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः
न चात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैश्च विभागशः
तत्र तत्र विसृष्टैश्च दुर्वार्यैश्चाकृतात्मभिः ५८
एतद्बुध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम्।
विज्ञाय तद्धि मन्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः
न भवति विदुषां ततो भयं
यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत्।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचित्
सति हि गुणे प्रवदन्त्यतुल्यताम् ६०
यः करोत्यनभिसन्धिपूर्वकं
तच्च निर्णुदति यत्पुराकृतम्।
नाप्रियं तदुभयं कुतः प्रियं
तस्य तज्जनयतीह सर्वतः ॥ ६१
लोकमातुरमसूयते जन-
स्तस्य तज्जनयतीह सर्वतः ॥ ६२
लोक आतुरजनान्विरावशं-
स्तत्तदेव बहु पश्य शोचतः।
तत्र पश्य कुशलानशोचतो
ये विदुस्तदुभयं पदं सताम्॥ ६३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि अध्यात्मकथने
चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९४॥

---

सूक्ष्मया बुद्ध्या चावेक्ष्य। शं सुखम् अनन्ततः अनन्तम्। शममन्त इति पाठः स्पष्टार्थः॥ ५६॥ शमं को लभत इत्यत आह—**त्रिवर्ग इति**। विदितः क्षयिष्णुत्वेन ज्ञातः। प्रेक्ष्य यत्कृतकं तदनित्यं कार्यत्वात्। घटवदित्यनुमानोपगृहीतया। 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति श्रुत्या धर्मफलस्य प्रत्यक्षेणैवार्थकामसुखयोश्चानित्यत्वं निश्चित्य विमुञ्चति। तं त्यजति। संन्यस्यतीत्यर्थः। अन्विष्य श्रवणमननाभ्यां निश्चित्य युक्तो ध्यानशीलः। निरुत्सुकः आत्मदर्शनेनैव सर्वकामावाप्तेरन्यत्रास्थाशून्यः॥ ५७॥ **न चेति**। तत्र तत्र रूपादौ। अकुलो हि सः इति श्रुतेः। इन्द्रियैर्वस्तुत आत्मैव गृह्यते परं तु पृथक्त्वेन दर्पणेनेव मुखम्। अतः अभेदस्य भेदग्रहेण तिरोधानादकृतार्थता नाशहेतुता च तेषामिति तानि निरोद्धव्यान्येवेति भावः॥ ५८॥ इतोऽपेक्षयाऽधिकं ज्ञातव्यं नास्तीत्याह—**एतदिति**॥ ५९॥ ज्ञानफलं दृष्टादृष्टभयनिवृत्तिमाह—**न भवतीति** द्वाभ्याम्। भयं संसारदुःखं यतः यस्माद्धेतोः रज्जूरगादिवत् द्वैतादविदुषां महद्भयम् तत एव बाधितात् विदुषां भयं न भवति। हि यस्मात्। अज्ञानसंसर्गावेव बन्धमोक्षौ अतः सर्वेषां गतिः मुक्तिः स्वरूपात्मिका तुल्यैव। हि यतः गुणे आधेये अपनेये वा सति गुणानां आधानापकर्षतारतम्यादतुल्यतां प्रवदन्ति न तु निर्गुणे इत्यर्थः॥ ६०॥

**य इति**। निष्कामं कर्म प्राचीनदोषापहमिति पूर्वार्धार्थः। तदुभयं प्राचीनमैहिकं च कर्म तस्य विदुषः कुर्वतोऽपि नाप्रियं बन्धं जनयति। 'तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते। तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते' इति तयोर्दाहाश्लेषश्रवणात्कुतः प्रियमिति। मोक्षं प्रति तु कर्मणः कारणत्वं दूरनिरस्तमिति भावः। 'नास्त्यकृतः कृतेन' इति श्रुतेः। अकृतः मोक्षः कृतेन कर्मणा॥ ६१॥ अज्ञानफलं दृष्टादृष्टभयमित्याह अर्धेन—**लोकमिति**। आतुरं कामक्रोधादिव्यसनैर्जर्जरीकृतं लोकं जनः परीक्षकोऽसूयते धिक्करोति तस्य कर्माणि षष्ठी। तं आतुरं तत् निन्द्यं कर्म सर्वतः सर्वासु योनिषु इहलोके जनयति जन्म ददाति। आतुरो जीवन्निनन्द्यते मृतश्च तिर्यक्षु जायत इत्यर्थः॥ ६२॥ तस्माल्लोकतत्त्वमालोच्य यद्धितं तत्कर्तव्यमित्याह—**लोक इति**। लोके निराविशन् सम्यगभिनिवेशं कुर्वन्। आतुरान् पश्य कीदृशान् तत्तदेव नष्टं नष्टं पुत्रदारादिकं शोचतः हा कष्टमितीष्टं शोचमानान्। तथा तत्रैव पुत्रादिनाशविषये कुशलान् सारासारविवेकनिपुणान् अशोचतः शोकहीनान् पश्य। उभयं क्रममुक्तिं सद्योमुक्तिं च सतां उपासकानां ज्ञानिनां च पदं पदनीयम्॥ ६३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९४॥

## १९५–[२२]

भीष्म उवाच ।

हन्त वक्ष्यामि ते पार्थ ध्यानयोगं चतुर्विधम्
यं ज्ञात्वा शाश्वतीं सिद्धिं गच्छन्तीह महर्षयः

यथा स्वनुष्ठितं ध्यानं तथा कुर्वन्ति योगिनः ।
महर्षयो ज्ञानतृप्ता निर्वाणगतमानसाः ॥ २

नावर्तन्ते पुनः पार्थ मुक्ताः संसारदोषतः ।
जन्मदोषपरिक्षीणाः स्वभावे पर्यवस्थिताः ३

निर्द्वन्द्वा नित्यसत्त्वस्था विमुक्ता नियमस्थिताः
असङ्गान्यविवादीनि मनःशान्तिकराणि च

तत्र ध्यानेन संश्लिष्टमेकाग्रं धारयेन्मनः ।
पिण्डीकृत्येन्द्रियग्राममासीनः काष्ठवन्मुनिः

शब्दं न विन्देच्छ्रोत्रेण
स्पर्शं त्वचा न वेदयेत् ।
रूपं न चक्षुषा विद्या-
ज्जिह्वया न रसांस्तथा ॥ ६

घ्रेयाण्यपि च सर्वाणि जह्याद्ध्यानेन योगवित्
पञ्चवर्गप्रमाथीनि नेच्छेच्चैतानि वीर्यवान् ७

ततो मनसि संगृह्य पञ्चवर्गं विचक्षणः ।
समादध्यान्मनो भ्रान्तमिन्द्रियैः सह पञ्चभिः

विसंचारि निरालम्बं पञ्चद्वारं चलाचलम् ।
पूर्वे ध्यानपथे धीरः समादध्यान्मनोऽन्तरा ९

इन्द्रियाणि मनश्चैव यदा पिण्डीकरोत्ययम् ।
एष ध्यानपथः पूर्वो मया समनुवर्णितः १०

तस्य तत्पूर्वसंरुद्धमात्मनः षष्ठमान्तरम् ।
स्फुरिष्यति समुद्भ्रान्ता विद्युदम्बुधरे यथा

जलबिन्दुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः ।
एवमेवास्य चित्तं च भवति ध्यानवर्त्मनि ॥

---

### १९५

निर्णीतमात्मतत्त्वं तत्साक्षात्कारोपायं योगमाह--**हन्तेत्यादिना** । चतुर्विधं आलंबनभेदाच्चतुःप्रकारम् । आलम्बनानि च योगशास्त्रे प्रोक्तानि । प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । विषयवती वा प्रवृत्तिः । स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा । यथाऽभिमतध्यानाद्वेति । आलम्बनान्तराणामप्यत्रैवान्तर्भावः । अयमर्थः—रेचकस्य पूरकस्य वाऽभ्यासाद्वायुं स्थिरीकृत्य तदालम्बनं मनः कुर्यात् । वायुस्थैर्ये मनःस्थैर्यावश्यंभावात् । यद्वा । बाह्यं सूर्यचन्द्रतद्रश्मिप्रतिमादिकं वा । आभ्यन्तरं नासिकाग्रजिह्वाग्रादि वा चित्तालम्बनं कुर्यात् । यद्वा । जाग्रन्निद्रयोरन्तराले यदास्मितामात्रं भाति तन्मात्रालम्बनं वा । यथाभिमतं नीलग्रीवपीताम्बरादिविग्रहं षट्चक्रदेवतादिकं वा आलम्ब्य चित्तं स्थिरीकुर्यात् । अत्र बहु वक्तव्यं तदग्रे वक्ष्यते ॥ १ ॥ स्वभावे स्वरूपे ॥ ३ ॥ सर्वासु विद्यासु साधारणीमितिकर्तव्यतामाह—**निर्द्वन्द्वा इति** । निर्द्वन्द्वाः शीतोष्णादिसहाः नित्यं सत्त्वे प्रकाशे स्थिताः । विमुक्ताः लोभादिभिरिति शेषः । नियमेषु शौचसंतोषादिषु स्थिताः निष्ठावन्तः । निष्परिग्रहा इत्यपि पाठः । असंगानि स्त्र्यादिसंगहीनानि अविवादीनि प्रतिपक्षशून्यानि । शान्तिः प्रसादः एवंविधानि स्थानानि ॥ ४ ॥

तत्र तेषु स्थानेषु ध्यानेन कर्मणि ल्युट् । ध्येयवस्तुना संश्लिष्टं एकीभावं गतम् । अध्ययनसंश्लिष्टमिति प्राचीनपाठे प्रणवेन घंटानादवत् अतिदीर्घोच्चारितेन एकीभूतम् । एकाग्रं एकं ध्येयमेवाग्रे विषयतयाऽस्य स्फुरति न तु शब्दादयस्तदेकाग्रं तत्रोपायः–**पिंडीकृत्येति** । 'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इत्यादिश्रुतेर्मनः कूर्मस्येव हीन्द्रियाण्यङ्गानि तेन प्रसारितानि विषयान् स्पृशन्ति । तेनैव गुरूक्तयुक्तिबलेनाकुंचितानि न स्पृशन्ति सेयं इन्द्रियाणां मनोमात्रात्मनाऽवस्थितिः पिंडीकारः ॥ ५ ॥ एतमेव स्पष्टयति—**शब्दमिति** ॥ ६ ॥ पञ्चानां श्रोत्रादीनां वर्गं प्रमथ्नन्ति व्याकुलयन्तीति तथा एतानि शब्दादीनि ॥ ७ ॥ इन्द्रियैः सह संभूय भ्रांतं मनः समादध्यात् । ध्येयैकप्रवणं कुर्यात् किं कृत्वा पञ्चवर्गं मनसि संगृह्य तत इति पूर्वोक्तप्रत्याहारानन्तर्यमुच्यते ॥ ८ ॥ विसंचारि विषयसंचारशीलम् । पञ्चेन्द्रियाणि विषयदेशे प्रापकाणि निर्गमद्वाराणि यस्य तत् पञ्चद्वारम् । चलाचलं चलेष्वपि विषयेषु अचलम् । नित्यमव्यग्रम् । अन्तरा हार्दाकाशे निरालम्बं देहाद्यालम्बनशून्यं कृत्वा ध्यानपथे चतुर्विधे ध्यानालम्बने मनः समादध्यात् ॥९॥ **इन्द्रियाणीति** । एषः समनस्केन्द्रियपिंडीकरणलक्षणः ध्यानपथः पूर्वो मुख्यः विधित्सितः आलम्बनं त्वविवक्षितमित्यर्थः ॥ १० ॥ एतावताऽपि न अकृतकृत्यतेत्याह–**तस्येति** । तस्य मनोबुद्धीन्द्रियपञ्चकाख्यसप्ताङ्गस्य आत्मनः जीवस्य षष्ठमान्तरं अङ्गं मनः पूर्वं सन्निरुद्धमपि स्फुरिष्यति अतिचांचल्ये दृष्टान्तो विद्युत् ॥ ११ ॥

**समाहितं क्षणं किञ्चिद्ध्यानवर्त्मनि तिष्ठति।**
**पुनर्वायुपथं भ्रान्तं मनो भवति वायुवत् १३**
**अनिर्वेदो गतक्लेशो गततन्द्रिरमत्सरी।**
**समादध्यात्पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित्**
**विचारश्च विवेकश्च वितर्कश्चोपजायते।**
**मुनेः समादधानस्य प्रथमं ध्यानमादितः १५**

वायुपथं नाडीमार्गं प्राप्येति शेषः। मनो भ्रान्तं भवति नानाविधानि रूपाणि दृष्ट्वेति शेषः। 'तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं च' इतियोगमार्गेऽनेकनाडीरूपश्रवणात् ॥ १३ ॥ गतक्लेशः प्राप्तश्रमोऽपि अनिर्वेदो योगे निर्वेदशून्यः स्यात्। तथा गततन्द्रिर्निरालस्यः अमत्सरी परोत्कर्षसहः स्यात्। ध्यानेन ध्येयाकारप्रत्ययप्रवाहेण ॥ १४ ॥ **विचारश्चेति**। प्रथमं समादधानस्य प्रागननुष्ठितयोगस्य योगिनः आदितः आदौ विचारो विचाराख्यं ध्यानं विवेकाख्यं वितर्काख्यं वा उपजायतेऽधिकारभेदेन। तथाहि मध्यमानां सूक्ष्मे मनःकल्पिते पीताम्बरादिविग्रहे चेतसः प्रणिधानं विचारः सोऽपि द्विविधः सविचारनिर्विचारभेदात्। तत्र यदा शब्दतदर्थोल्लेखपूर्वकं भावना प्रवर्तते स आद्यः। तदुल्लेखं विना द्वितीयः। अयमेव स्थूलालम्बनस्य वितर्कस्य सवितर्कनिर्वितर्काख्यस्य द्विविधे प्रकारे भेदोऽधमाधिकारियोग्यः। ननु विचारे वितर्के वा मानसिकी भौतिकी वा मूर्तिरेवालम्बनं तस्याश्च ध्यानेन कीटभृंगवत् तत्सारूप्यमेव प्राप्यं न तु कैवल्यमिति तावनुपायाविति चेत्। सत्यम्। द्विविधं ध्यानम्। भावना प्रणिधानं च। तत्राद्यं सिद्धं कल्पितं वा विषयमाधिकृत्य प्रवर्तते न वस्तुतत्त्वमवश्यमपेक्षते। द्वितीयं तु यथा गृह्यमाणे मणौ परोपदिष्टत्वाज्ञाततद्गतविशेषावगतये तदेव चक्षुः यत्नेन प्रणिधीयत इति प्रणिधानं वस्तुतत्त्वविषयं तत्र यथा स्फटिकः स्वतःशुद्धः जपाकुसुमसान्निध्यात् मध्यमस्य तत्रैव रक्तः स्फटिक इत्यध्यासः। अधमस्य स्फटिकांशप्रमोषेण तत्रैव पद्मरागत्वाध्यासः। तत्रैव मूढतमस्य चन्द्रिकायामिन्द्रनीलत्वाध्यासः। एवं चिदात्मा स्वतःशुद्धो मायासान्निध्यादीशः। तत्रैव ब्रह्मभावप्रमोषे सति अविद्यया सूत्रात्माध्यासः। तत्रापि अविद्याप्राबल्ये सति विराडध्यासः। तत्र वस्तुनि चित्तं प्रणिधित्सतः क्रमेण उत्तरोत्तराध्यासनिवृत्तौ पूर्वपूर्वाध्यासोऽवतिष्ठते। सर्वात्मना त्वज्ञाननिवृत्तौ स्फटिकमणिवदनुपाधि आत्मतत्त्वं प्रकाशते तत्र विचारेण मूर्त्याकारतां नीते चित्ते मूर्तेरेकैकावयवत्यागेन स्मितमात्रं पदनखचन्द्रमात्रं वा भावयेत्। ततस्तदपि त्यक्त्वा गुरूक्तयुक्त्या विराजि मनो धारयेत्। तत उक्तक्रमेण निर्गुणप्रतिपत्तिः। तथा वितर्कालम्बने स्थूलप्रतिमायां प्रणिधियमानं चित्तं तत्त्वोपगं भवति। तथाहि। प्रतिमाया विराड्रूपे चेतने पुंसि स्थाणुवदध्यस्तत्वेनाचेतनताङ्गतायास्तत्त्वं चैतन्यमेव। तद्यथा—तीव्राभिनिवेशेन निरीक्ष्यमाणं शुक्तिरजतं तिरोधीयते। शुक्तिश्च प्रकाशते। एवमीश्वरत्वेन चिन्त्यमानायाः मूर्तेर्जडत्वं तिरोधीयते चैतन्यं चाविर्भवति। अत एव बाणादयः स्वाराध्यैः शिवादिभिः सह स्यत्र-हरन्तीति बहुलमुपाख्यायते। तथा चेतनमूर्तेरपि तत्त्वं विश्वरूपमेव। तन्निरीक्षणे तदेव विश्वरूपमाविर्भवति यदपश्यद्यशोदा कृष्णमुखे यच्चार्जुनः कृष्णशरीरे। तदिदं वितर्कजं प्रत्यक्षं प्रकृत्योक्तं योगभाष्ये—तत्परं प्रत्यक्षं तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम् इति। तथा निर्विचारपरिपाकेऽपि सार्वज्ञ्यं सूत्रितं–निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः। ऋतंभरा तत्र प्रज्ञेत्यादिना। ततः पुनरुक्तक्रमेण निर्गुणप्रतिपत्तिः। तत्र यदा देहविस्मरणेन बाह्यमूर्त्याकारं चेतः सर्वात्मना भवति तदास्य भृंगीभूतस्य कीटस्य कीटभाव इवास्य जीवभावो निवर्तते। केवलमूर्त्याकारो भवति। सेयं महाविदेहा नाम धारणा। यां प्रकृत्य सूत्रितम् बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततःप्रकाशावरणक्षयः इति। उक्तौ विचारवितर्कौ व्यक्तालम्बनौ मध्यमाधमयोग्यौ। अव्यक्तालम्बनावपि द्वौ सानन्दसास्मितौ उत्तमात्युत्तमयोग्यौ। तत्र गुरूक्तयुक्त्याऽव्यक्ते चित्तं धारयतोऽत्यन्तं देहविस्मरणे सति अहमेवेदं सर्वोऽस्मीति श्रुतिप्रसिद्धाः सार्वात्म्यसार्वकाम्यादय ईश्वरगुणा उपतिष्ठन्ते उत्तमस्य सोऽयं सानंदः। तेषां प्रविलापनेनास्मितामात्रमवशिष्यत सोऽयं सास्मितः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिसंज्ञो हृदयग्रंथिभेदोऽत्र विवेकशब्देनोच्यते स चात्युत्तमस्य परवैराग्यवतो नष्टाशेषभोगवासनस्य ऐश्वर्याविर्भावं विनाऽपि भवतीति मुख्यः। सानंदस्याप्यत्रैवान्तर्भावं विवक्षित्वा त्रितयमेवोक्तम्—**विचारश्च विवेकश्च वितर्कश्चेति**। तदेतदव्यक्तमालम्बनम्।

'निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते।
तं भावं भावयन्प्राज्ञः सुखमक्षय्यमश्नुते।'

इति शास्त्रे स्पष्टमुक्तमपि गुरूपदेशं विना दुर्गमं क्लेशसाध्यं च देहाभिमानवताम्। यथोक्तम्–'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्' इति। एतेन प्राणालम्बना गतिर्व्यक्ताव्यक्तोभयालम्बना ज्ञेया। एतासु चतसृष्वपि योगविधासु वितर्कस्थूलसूक्ष्मकारणचैतन्यैरनुगतः विचारः सूक्ष्मकारणचै-

मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत् ।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत्कुर्यादेवात्मनो हितम् ॥
पांसुभस्मकरीषाणां यथा वै राशयश्चिताः ।
सहसा वारिणा सिक्ता न यान्ति परिभावनम् ॥
किञ्चित्स्निग्धं यथा च स्या-
च्छुष्कचूर्णमभावितम् ।
क्रमशस्तु शनैर्गच्छे-
त्सर्वं तत्परिभावनम् ॥ १८

एवमेवेन्द्रियग्रामं शनैः संपरिभावयेत् ।
संहरेत्क्रमशश्चैव स सम्यक् प्रशमिष्यति १९
स्वयमेव मनश्चैवं पञ्चवर्गं च भारत ।
पूर्वं ध्यानपथे स्थाप्य नित्ययोगेन शाम्यति ॥
न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित् ।
सुखमेष्यति तत्तस्य यदेवं संयतात्मनः ॥ २१
सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यानकर्मणि ।
गच्छन्ति योगिनो ह्येवं निर्वाणं तन्निरामयम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि ध्यानयोगकथने पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

## १९६-[२३]

युधिष्ठिर उवाच ।

**चातुराश्रम्यमुक्तं ते राजधर्मास्तथैव च । नानाश्रयाश्च बहव इतिहासाः पृथग्विधाः ॥ १॥**

तन्यैस्त्रिभिरेव । विवेकः कारणचैतन्याभ्यामेव । निर्बीजस्तु कैवल्यरूपः फलभूत इति साधनरूपेष्वेषुनगणितं इत्यलं पल्लवितेन ॥१५॥ **मनसेति** । तुः अप्यर्थे, समाधानं समाधिं कारयेत् । कुर्यादेव। स्वार्थे णिच्। तदेवाह—**नेति**। निर्वेदः योगो न सेत्स्यतीत्युपरमो योगात् ॥ १६ ॥ स उपरमो न कर्तव्यः । कालक्रमेण अवश्यंभावात्फलस्येति सदृष्टान्तमाह—**पांस्विति** । करीषं शुष्कगोमयचूर्णं एतेषां राशयः जलेन सिक्तमात्राः सन्तः परिभावनं मूर्त्याद्याकारेण कल्पनं न यान्ति न प्राप्नुवन्ति ॥१७॥ बहुकालं जले क्लिन्नाः सन्तः चिक्कणतां प्राप्य मूर्त्याद्याकारं ग्रहीतुं शक्तास्तद्वच्चित्तं चिरकालयोगे हृदयमग्नं तत्त्वाकारं कर्तुं शक्यमित्याह—**किञ्चिदिति**। अल्पस्नेहादभावितमपि चिरकालक्लेदात् सञ्जातबहुलस्नेहं भावितुं शक्यामित्यर्थः ॥१८॥ दार्ष्टान्तिके योजयति—**एवमेवेति** । संपरिभावयेत् मूर्त्याद्याकारं नयेत् । क्रमशश्च मूर्तेरेकैकावयवत्यागक्रमेण तमपि चित्तस्याकारं संहरेत् । अयं भावः—यत्र यत्रालम्बने स्थिरीभूतं चित्तं भवति तं तमाकारं परित्यज्य सोपानारोहक्रमेणोत्तरमाकारं प्रविशेत् । सर्वाकारोपरमे तु प्रशमिष्यति प्रशाम्यति प्रकर्षेण शमं गच्छति निर्विकल्पं भवतीत्यर्थः । तथा हि वितर्काद्विचारं गच्छेत् विचारादानन्दमानन्दादास्मितां ततः कैवल्यमिति क्रमो योगशास्त्रे सिद्धः ॥ १९ ॥ **स्वयमिति** । बुद्धिर्गृह्यते धीः मनः पञ्चेन्द्रियगणं च ध्यानपथे पूर्वोक्ते नित्याभ्यस्तेन योगेन स्थाप्य प्रविलाप्य दग्धेन्धनानलवत् स्वयमपि शाम्यति । यथोक्तम्— 'येन त्यज्यसि तं त्यज' इति । ब्रह्माकारा चेतोवृत्तिः कतकरजोवत् वृत्त्यन्तराणि शमयन्ती स्वयमपि शाम्यतीत्यर्थः ॥ २० ॥ **न तदिति** । ऐहिकात्परमसुखात्सर्वाङ्गसम्पन्नात्सार्वभौमात् आमुष्मिकात् हिरण्यगर्भपदाद्वा न तत्प्राप्यं यत्संयतात्मनो निरुद्धचित्तस्य योगिनो भवति । तथा च श्रुतिः—

'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो-
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते' इति ॥ २१ ॥

रंस्यते तद्गुचिज्ञः स्वयमेव तत्र रतिं प्राप्स्यति न तत्प्राप्तौ हठापेक्षेत्यर्थः । निर्वाणं कैवल्यं निरामयं निर्द्वन्द्वम् ॥२२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

### १९६

तत्र पूर्वं 'तत्राध्ययनसंश्लिष्टमेकाग्रं धारयेन्मनः' इत्येकान्ते जप्यसहितं मन एकाग्रं कृत्वा निरुन्ध्यादित्युक्तम् । तत्र जपस्य श्रैष्ठ्यं विज्ञाय तद्विधिफलादिकं श्रुतानुवादपूर्वकं पृच्छति—**चातुराश्रम्येति** । चतुर्णामाश्रमाणां हितं चातुराश्रम्यं ते तव उक्तं वचनं श्रुतमित्युत्तरश्लोकाद्विपरिणामेनापकृष्यते । ते इति सम्बन्धे षष्ठी न कर्तृषष्ठी

श्रुतास्त्वत्तः कथाश्चैव धर्मयुक्ता महामते।
सन्देहोऽस्ति तु कश्चिन्मे तद्भवान्वक्तुमर्हति २
जापकानां फलावाप्तिं श्रोतुमिच्छामि भारत
किं फलं जपतामुक्तं क्व वा तिष्ठन्ति जापकाः
जप्यस्य च विधिं कृत्स्नं वक्तुमर्हसि मेऽनघ।
जापका इति किञ्चैतत्सांख्ययोगक्रियाविधिः
किं यज्ञविधिरेवैष किमेतज्जप्यमुच्यते।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ५

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यमस्य यत्पुरावृत्तं कालस्य ब्राह्मणस्य च ६
सांख्ययोगौ तु यावुक्तौ मुनिभिर्मोक्षदर्शिभिः
संन्यास एव वेदान्ते वर्तते जपनं प्रति।
वेदवादाश्च निर्वृत्ताः शान्ता ब्रह्मण्यवस्थिताः
सांख्ययोगौ तु यावुक्तौ मुनिभिः समदर्शिभिः
मार्गौ तावप्युभावेतौ संश्रितौ न च संश्रुतौ
यथा संश्रूयते राजन् कारणं चात्र वक्ष्यते।
मनःसमाधिरत्रापि तथेन्द्रियजयः स्मृतः ९
सत्यमग्निपरीचारो विविक्तानां च सेवनम्।
ध्यानं तपो दमः क्षान्तिरनसूया मिताशनम्
विषयप्रतिसंहारो मितजल्पस्तथा शमः।
एष प्रवर्तको यज्ञो निवर्तकमथो शृणु॥ ११
यथा निवर्तते कर्म जपतो ब्रह्मचारिणः।
एतत्सर्वमशेषेण यथोक्तं परिवर्तयेत्॥ १२
निवृत्तं मार्गमासाद्य व्यक्ताव्यक्तमनाश्रयम्॥
कुशोच्चयनिषण्णः सन्
कुशहस्तः कुशैः शिखी।
कुशैः परिवृतस्तस्मिन्
मध्ये छन्नः कुशैस्तथा॥ १४

---

येन न लोकाव्ययनिष्ठेति प्रतिषेधप्रसक्तिः स्यात्। इतिहासाः पुनरावृत्तानि ॥१॥ कथा तत्त्वावबोधको वाक्यप्रबन्धः ॥ २ ॥ सांख्यं वेदान्तविचारः योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। क्रियाः कर्माणि एतेषां विधिः प्रकाशनं किं जापकशब्देन विचारकृत् योगकृत् कर्मठो वा उच्यत इत्यर्थः ॥ ४ ॥ यज्ञविधिर्ब्रह्मयज्ञविधिः ॥५॥ **अत्रेति।** अत्र जपविषये चकारात् मृत्युप्रभृतीनां ग्रहणं पुरावृत्तं मयाऽग्रे वक्ष्यमाणम् ॥ ६ ॥ सांख्ययोगौ यावुक्तौ तयोर्मध्ये सांख्ये जपक्रियात्याग एवेत्याह—**सांख्येति सार्धेन।** संन्यास इति। वेदान्ते सांख्याख्ये तत्र हेतुमाह—**वेदेति।** चकारो हेत्वर्थः। यतो वेदवादाः सर्वे ब्रह्मण्यवस्थिताः पर्यवसन्नाः न तु उपास्त्यादिविधिपराः। यतः शान्ताः निवृत्तिप्रधानाः। उपासनायाश्च मानसक्रियात्वात्तत्परत्वे वेदान्तानां शान्तत्वं न युज्यतेत्यर्थः। ननु '**आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्**' इति परमर्षिणाऽक्रियार्थानां सिद्धार्थावबोधकानां राजाऽसौ गच्छतीत्यादिवाक्यानामानर्थक्योक्त्या अप्रामाण्याभिधानादिति तत्राह—**निर्वृत्ता इति।** रज्जुरियं न सर्प इत्यादिवत्सिद्धार्थबोधकस्यापि वाक्यस्य भयकम्पाद्यनर्थनिवर्तकत्वेनार्थवत्त्वोपपत्त्यां प्रवृत्तिनैराकांक्ष्येण कृतार्थत्वोपपत्तेः। तथा च मानान्तरानवगतब्रह्मात्मैक्यरूपसिद्धार्थपरत्वाद्वेदान्तानां न तत्र जपापेक्षाऽस्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं ब्रह्मात्मैक्यप्रमितौ जपानपेक्षामुक्त्वा द्वयोरपि मार्गयोर्जपस्य आरादुपकारित्वेन अपेक्षां साक्षात्कारोत्पत्तावनपेक्षां चाह—**सांख्येति।** संश्रितौ जपमिति शेषः। तथा हि। चित्तशुद्धिद्वारा तत्त्वमसीति वाक्यार्थज्ञाने आलम्बनरूपत्वेन च योगे प्रणवजप उपकरोति। न परतः साक्षात्काररूपफलोपकारित्वेन ॥ ८ ॥ एतदेवाह—**यथेत्यादिना।** अत्रापि मार्गद्वयेऽपि मनः समाधिर्मनोनिग्रहः। इन्द्रियजयः ॥ ९ ॥ सत्यं प्रसिद्धं अग्निपरिचारोऽग्निपरिचर्या। विविक्तानां शुद्धानामाहारादीनां एकान्तदेशानां वा। ध्यानं ध्येयाकारप्रत्ययप्रवाहः। तपः आलोचनं विषयदोषदर्शनात्मकम्। दमः जितानामिन्द्रियाणां तत्त्वप्रतिपत्तियोग्यता ॥ १० ॥ विषयाणां विशेषेण बध्नतां कामादीनां प्रतिसंहारो **जयः। शमः** निगृहीतस्य मनसो विक्षेपराहित्यम्। **एष इति।** एष मनःसमाध्यादिः जपतः प्रवर्तकः कामनावतः स्वर्गादिजनको जपाङ्गभूतो धर्म इत्यर्थः ॥ ११ ॥ निवर्तकं जपतो यज्ञं व्याचष्टे—**यथेति।** कर्मनिवृत्तिर्मोक्षः। स यथा सम्पद्यते स यज्ञो निवर्तक इत्यर्थः। कर्मनिवृत्तिप्रकारमाह—**एतदिति।** एतत् मनःसमाध्यादि परिवर्तयेत्। निष्कामानुष्ठानेन विपरीतं कुर्यात् ॥ १२ ॥ एतदेवाहार्धेन—**निवृत्तमिति।** विरतमित्यपि पाठः। मार्गं विशिनष्टि—व्यक्तं बाह्याभ्यन्तरं वाऽलम्बनं यद्वितर्कविचारयोः प्रागुक्तं सूक्ष्मं स्थूलं च। अव्यक्तं सानन्दसास्मितयोरालम्बनम्। ततोऽनाश्रयं निर्विषयं शुद्धचिन्मात्रमित्यर्थः ॥ १३ ॥ मार्गप्राप्तौ हेतुमाह—**कुशेति।** कदम्बमुकुलसदृशात् हृदयपिण्डात् प्रस्थिता नाड्यः कुशवत्स्थूलमूलाः सूक्ष्माग्राः अग्रैर्हृदयपिण्डं स्पृशन्त्यो मूलैर्ब्रह्माण्डमापूर्य तिष्ठन्ति। तदिदमुक्तम्। **कुशोच्चयनिषण्ण** इत्यधस्तात्। **कुशहस्त** इति पुरस्तात्।

विषयेभ्यो नमस्कुर्याद्विषयान्न च भावयेत्।
साम्यमुत्पाद्य मनसा मनस्येव मनो दधत्१५
तद्धिया ध्यायति ब्रह्म जपन्वै संहितां हिताम्
संन्यस्यत्यथवा तां वै समाधौ पर्यवस्थितः॥
ध्यानमुत्पादयत्यत्र संहिताबलसंश्रयात्।
शुद्धात्मा तपसा दान्तो निवृत्तद्वेषकामवान्
अरागमोहो निर्द्वन्द्वो न शोचति न सज्जते।
न कर्ता कारणानांच न कार्याणामिति स्थितिः
न चाहङ्कारयोगेन मनः प्रस्थापयेत्क्वचित्।
न चार्थग्रहणे युक्तो नावमानी न चाक्रियः॥
ध्यानक्रियापरो युक्तो
ध्यानवान् ध्याननिश्चयः।
ध्याने समाधिमुत्पाद्य
तदपि त्यजति क्रमात्॥ २०
स वै तस्यामवस्थायां
सर्वत्यागकृतः सुखम्।
निरिच्छस्त्यजति प्राणान्
ब्राह्मीं संविशते तनुम्॥ २१
अथवा नेच्छते तत्र ब्रह्मकायनिषेवणम्।
उत्क्रामति च मार्गस्थो नैव क्वचन जायते॥
आत्मबुद्ध्या समास्थाय
शान्तीभूतो निरामयः।
अमृतं विरजः शुद्ध-
मात्मानं प्रतिपद्यते॥ २२

कुशैः शिखीत्युपरिष्टात्। कुशैः परिवृत इति समन्तात्। तस्मिन्कुशजालमध्ये इति हृदयपिण्डेऽपि कुशैश्छन्नोऽयं पुरुष इति प्रभाद्वारा प्रदीपस्येवास्य पुरुषस्य नाडीद्वारा ब्रह्माण्डव्याप्तिरस्तीति। श्रुतावपि ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्य इत्युपक्रम्य। तस्य वा एतस्य पुरुषस्य प्राचीदिक्प्राञ्चः प्राणा दक्षिणा दिग्दक्षिणे प्राणा इत्यादिनाऽयमेवार्थो दर्शितः। तथा चैतद्व्याख्यातं वार्तिके—

'कदम्बपुष्पवत्सैषा देवता हृदयाश्रया
बहिर्गतासु नाडीषु विविक्ता हृदयादधि।
यथाऽस्य नाड्यः पुंसः स्युरध्यात्मं सर्वतोगताः
अधिभूतं तथैवास्य वायुमय्यः समन्तगाः
एतस्मादेव निःसृत्य शरीरात्सर्वतोगताः
अधिभूतात्मनैवायं नाडीलक्षणवर्त्मना
आपूर्येदं जगत्सर्वं स्थित आध्यात्मिकः पुमान्'इति

तथा च शरावपिहितप्रभावत् सर्वद्वारा पिधाने हार्दाकाशे एकीभूतं प्रज्ञानं अनादौ संसारे समनुभूतानिखिलप्रपञ्चवासनावासितं तत् सर्वमवभासयतीति चितः सार्वात्म्ययुक्तं भवति॥१४॥ नम इति। बाह्यान् न च भावयेदित्यान्तरांश्च विषयांस्त्यजेदित्युक्तम्। साम्यं जीवब्रह्मणोरैक्यम्। तत्र हेतुः मनस्येव मनः प्रविलापनं मनो हि न कूटस्थे लीयते। तस्य तद्विकारत्वाभावात्। नापि मायायां तस्यास्तुच्छत्वात्। अतः परिशेषात्स्वस्मिन्नेव तस्य लय इत्युक्तम्॥ १५॥ तद्धिया साम्यधिया प्रत्यगभेदेनेत्यर्थः। ब्रह्म शुद्धबुद्धमुक्तत्वादिलक्षणम्। अहं देहेन्द्रियादिभिन्नो विशुद्धोऽस्मीति भावयेदित्यर्थः। संहितां यथायोग्यं प्रणवगायत्र्यादिरूपां संन्यस्यति चित्तस्थैर्यसंपत्तौ सत्याम्। अथेत्यानन्तर्ये वेत्यवधारणे॥ १६॥ ध्यानामिति सार्धः श्लोकः। ध्यानं ध्येयाकारप्रत्ययप्रवाहम्। संहितायास्तदुत्पादकत्वे द्वारमाह—शुद्धात्मा शुद्धचित्तः तपसा विचारेण दान्तो जितेन्द्रियः। निवृत्तद्वेषाणां सर्वभूताभयप्रदानां योगिनां यः कामो ब्रह्मावाप्तिविषयस्तद्वान्॥ १७॥ कारणानां कर्मणां कार्याणां फलभोगानाम्॥ १८॥ प्रस्थापयेत् सज्जीकुर्यात्। क्वचित्कर्मकर्तृत्वे भोगकर्तृत्वे वा॥ १९॥ ध्यानक्रियैव परा उत्कृष्टत्वेनाभिमता यस्य। ध्याने श्रद्धावानित्यर्थः। अत एव ध्यानवान् ध्याननिष्ठः। ध्यानद्वारकस्तत्त्वनिश्चयो यस्य स ध्याननिश्चयः। ध्याने ध्यानालम्बने समाधिं चित्तैकाग्र्यं उत्पाद्य तदपि आलम्बनम्॥ २०॥ तस्यां त्यक्तसर्वालम्बनायां सर्वत्यागकृतः निर्बीजसमाधिस्तस्य सुखं प्रत्यगानन्दम्। विशते इत्यपकृष्यते। को विशते यो निरिच्छः योगफलेऽणिमादावपीच्छारहितः। प्राणान् प्राणमनोबुद्धीन्द्रियात्मकं लिङ्गशरीरं लोकान्तरगतिसाधनं यस्त्यजति स ब्राह्मीं तनुम्। सुखमिति सामानाधिकरण्यं तत् प्रविशति नतूत्क्रामति। तथा च श्रुतिः—'योकामो निष्काम आप्तकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते' इति। तस्य शुद्धब्रह्मविदः अत्रात्मनि समवनीयन्ते एकीभावेन विलीयन्ते इति श्रुतिपदानामर्थः॥ २१॥ ब्रह्मकायो ब्रह्मस्वरूपसुखं तस्य निषेवणं चेन्नेच्छति। तर्हि उत्क्रामति। न जायते नैव जन्म प्राप्नोति योगी स्वेच्छया कैवल्यं वा ब्रह्मलोकं वा गच्छति न तु संसारं प्राप्नोतीत्यर्थः। मार्गस्थः देवयानमार्गस्थः। श्रीमद्भागवतेऽप्येतद्दर्शितं 'यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यम्' इत्यादिना॥२२॥ आत्मबुद्ध्या तत्त्वसाक्षात्कारेण विरजः रजोगुणयुक्तं कार्यब्रह्मभावरूपं आपेक्षिकम्। अमृतं यथाऽऽहुः—'आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते' इति। तदन्याद्विरजः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जापकोपाख्याने षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

## १९७-[२४]

युधिष्ठिर उवाच ।
गतीनामुत्तमप्राप्तिः कथिता जापकेष्विह
एकैवैषा गतिस्तेषामुत यान्त्यपरामपि ॥ १
भीष्म उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजन् जापकानां गतिं विभो
यथा गच्छन्ति निरयाननेकान्पुरुषर्षभ ॥ २
यथोक्तपूर्वं पूर्वं यो नानुतिष्ठति जापकः ।
एकदेशक्रियश्चात्र निरयं स च गच्छति ॥ ३
अवमानेन कुरुते न प्रीयति न हृष्यति ।
ईदृशो जापको याति निरयं नात्र संशयः ४
अहङ्कारकृतश्चैव सर्वे निरयगामिनः ।
परावमानी पुरुषो भविता निरयोपगः ॥ ५
अभिध्यापूर्वकं जप्यं कुरुते यश्च मोहितः ।
यत्रास्य रागः पतति तत्र तत्रोपपद्यते ॥ ६
अथैश्वर्यप्रवृत्तेषु जापकस्तत्र रज्यते ।
स एव निरयस्तस्य नासौ तस्मात्प्रमुच्यते ७
रागेण जापको जप्यं कुरुते तत्र मोहितः ।
यत्रास्य रागः पतति तत्र तत्रोपपद्यते ॥ ८
दुर्बुद्धिरकृतप्रज्ञश्चले मनसि तिष्ठति ।
चलामेव गतिं याति निरयं वा नियच्छति ९
अकृतप्रज्ञको बालो मोहं गच्छति जापकः ।
स मोहान्निरयं याति तत्र गत्वाऽनुशोचति
दृढग्राही करोमीति जाप्यं जपति जापकः ।
न सम्पूर्णो न संयुक्तो निरयं सोऽनुगच्छति
युधिष्ठिर उवाच ।
अनिवृत्तं परं यत्तदव्यक्तं ब्रह्मणि स्थितम् ।
तद्भूतो जापकः कस्मात्स शरीरमिहाविशेत्
भीष्म उवाच ।
दुष्प्रज्ञानेन निरया बहवः समुदाहृताः ।
प्रशस्तं जापकत्वं च दोषाश्चैते तदात्मकाः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जापकोपाख्याने सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

---

आत्यन्तिकममृतं समास्थाय सम्यगास्थाय विषयीकृत्य शान्तीभूतो निष्कामः । निरामयः जरामरणवर्जितः । विशुद्धं निष्कलं आत्मानं प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

१९७

जापकानां योगसिद्धिप्राप्तिद्वारा जरामरणराहित्यं इच्छया देहत्यागो ब्रह्मलोकं प्रति गमनं विशुद्धकैवल्यं चेत्युक्तम् इतोऽपि अन्या काचित्तेषां गतिरस्तीति पृच्छति —**गतीनामिति** । प्राप्तिः गतिः ॥ १ ॥ इतोऽन्याः गतयः पूर्वोक्तगतितो हीना इति सूचयन् तासु निरयपदं प्रयुञ्जान एवोत्तरयति-**शृणुष्वेति** ॥ २ ॥ **एकदेशेति** । अपूर्णाङ्गजपपर इत्यर्थः ॥ ३ ॥ अवमानेन अश्रद्धया जपे प्रीत्यादिरहितः ॥ ४ ॥ अहंकारकृतः दर्पवन्तः पुरुषः जापकः ॥ ५ ॥ अभिध्या फलाभिसन्धिः यत्र फले रागः प्रीतिः तत्र तत्फलभोगनिमित्तं उपपद्यते योग्यं देहं प्राप्नोति ॥ ६ ॥ ऐश्वर्यं अणिमादिकं तस्य प्रवृत्तानि प्रवृत्तयस्तेषु प्रवर्तमानेष्वणिमादिष्वित्यर्थः । स एव तत्र राग एव ॥ ७ ॥ तत्र ऐश्वर्यविषये रागेण मोहितः ॥ ८ ॥ दुष्टा भोगासक्ता बुद्धिर्यस्य स दुर्बुद्धिः । अकृतप्रज्ञः भोगानां दुरन्तताज्ञानशून्यः ॥ ९ ॥ न संपूर्णो न संयुक्त इत्यस्य अविरक्तोऽपि हठेन त्यक्तभोग इत्यर्थः ॥ ११ ॥ अनिवृत्तं स्वाभाविकम् अनागंतुकत्वात् । अनिमित्तमिति पाठेऽपि स एवार्थः । अव्यक्तं वाङ्मनसातीतं ब्रह्मणि प्रणवे स्थितं तद्द्वारा प्राप्यं तद्भूतः ब्रह्मभावं गतः ॥ १२ ॥ दुष्प्रज्ञानेन कामाक्रान्तया बुद्ध्या । दोषाः रागादयः तदात्मकाः दुष्प्रज्ञानात्मकाः ॥१३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

## १९८–[२५]

युधिष्ठिर उवाच।

कीदृशं निरयं याति जापको वर्णयस्व मे
कौतूहलं हि राजन्मे तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १

भीष्म उवाच।

धर्मस्यांशप्रसूतोऽसि धर्मिष्ठोऽसि स्वभावतः
धर्ममूलाश्रयं वाक्यं शृणुष्वावहितोऽनघ २
अमूनि यानि स्थानानि देवानां परमात्मनाम्
नानासंस्थानवर्णानि नानारूपफलानि च ३
दिव्यानि कामचारीणि
विमानानि सभास्तथा।
आक्रीडा विविधा राजन्
पद्मिन्यश्चैव काञ्चनाः ॥ ४
चतुर्णां लोकपालानां शुक्रस्याथ बृहस्पतेः।
मरुतां विश्वदेवानां साध्यानामश्विनोरपि ५
रुद्रादित्यवसूनां च तथाऽन्येषां दिवौकसाम्
एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः ६
अभयं चानिमित्तं च न तत्क्लेशसमावृतम्।
द्वाभ्यां मुक्तं त्रिभिर्मुक्तमष्टाभिस्त्रिभिरेव च ७
चतुर्लक्षणवर्जं तु चतुष्कारणवर्जितम्।
अप्रहर्षमनानन्दमशोकं विगतक्लमम् ॥ ८
कालः सम्पद्यते तत्र कालस्तत्र न वै प्रभुः।
स कालस्य प्रभू राजन् स्वर्गस्यापि तथेश्वरः
आत्मकेवलतां प्राप्तस्तत्र गत्वा न शोचति।
ईदृशं परमं स्थानं निरयास्ते च तादृशाः १०
एते ते निरयाः प्रोक्ताः सर्व एव यथातथम्।
तस्य स्थानवरस्येह सर्वे निरयसंज्ञिताः ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जापकोपाख्याने
अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

---

१९८

निरयपदार्थं प्रसिद्धं गृहीत्वा पृच्छति–**कीदृशमिति**। कौतूहलं शुभकर्तुरपि अशुभनिरयप्राप्तिरित्याश्चर्यम् ॥ १ ॥ धर्ममूलं वेदः परमात्मा च तौ आश्रयौ यस्य ॥ २ ॥ अमूनि वक्ष्यमाणानि परमात्मनां महाबुद्धीनाम् देवानां दिव्यदेहानाम् संस्थानानि **आकृतयः**। वर्णाः श्वेतपीताद्याः नानारूपाणि अनेकविधानि ॥ ३ ॥ आक्रीडाः क्रीडास्थानानि उद्यानानि ॥ ४ ॥ परमात्मनः स्थानस्येति परमात्मा भिन्नं स्थानमपेक्ष्येत्यर्थः ॥६॥ एतदेव वर्णयति त्रिभिः–**अभयमिति**। अभयं नाशभयशून्यम्।यतः अनिमित्तं स्वभावसिद्धम्।क्लेशाः अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः तैः समावृतं च न। असंगत्वादागन्तुकमपि भयं तत्र नास्तीत्यर्थः। द्वाभ्यां प्रियाप्रियाभ्यां मुक्तम्। 'अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' इति श्रुतेः। यतस्त्रिभिर्गुणैः प्रियाप्रियहेतुभिः मुक्तं गुणातीतत्वमपि कुतः। यतोऽष्टाभिः पुरीभिः—

'भूतेन्द्रियमनो बुद्धिर्वासना कर्म वायवः।
अविद्या चेत्यमुं वर्गमाहुः पुर्यष्टकं बुधाः' ॥

इत्युक्ताभिर्मुक्तं कार्यानिवृत्तिर्लक्ष्यत इत्यर्थः। एतदपि कुतः त्रिभिः ज्ञेयज्ञानज्ञातृभावैर्मुक्तम् ॥ ७ ॥ इदमपि कुतः। यतश्चतुर्लक्षणवर्जं लक्ष्यते ज्ञायते विषयस्वरूपमेभिस्तानि लक्षणानि दृष्टिश्रुतिमतिविज्ञातयः। रूपादिहीनत्वान्न प्रत्यक्षस्य विषयः। गुणजातिक्रियाहीनत्वात् न शब्दस्य। असंगत्वेन सम्बन्धाग्रहान्नानुमानस्य। सर्वसाक्षित्वेनाजडत्वाच्च न बुद्धेः। तथा च श्रुतिः—'न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं शृणुयात् न मतेर्मन्तारमन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः' इति चतुष्कारणवर्जितं उक्तैरेव दृष्ट्यादिविषयत्वकारणैः रूपादिमत्त्वादिभिर्वर्जितम्।तथा च श्रुतयः 'अस्थूलमनणु' इत्याद्याः परमात्मनि सर्वाविशेषान्निषेधन्ति। पूर्वत्र द्वाभ्यां युक्तमिति पाठे तु पूर्वार्धेन प्रियाप्रियादियोगमात्मन्यध्यारोप्य उत्तरार्धेन तदपवाद इति ध्येयम् भ्रान्त्या प्रियादियुक्तमपि तत्त्वतो न दर्शनादिविषय इत्यर्थः। प्रहर्षं इष्टविषयलाभजं सुखम्। आनन्दस्तद्भोगजं सुखम्। ताभ्यां हीनमप्रहर्षमनानन्दम्। शोक आन्तरं दुःखं क्लमो बाह्यं दुःखं ताभ्यां हीनं अशोकं विगतक्लमम् ॥८॥ **काल इति**। संपद्यते उत्पद्यते। यत्तु अतीतानागतादिव्यवहारहेतुरखंडदंडायमानः कालो नाम नित्यं तत्त्वान्तरमस्ति। तस्य चोपाधिजन्यवस्तुमात्रामिति वदन्ति। तत्र उपाधय एव स्वस्यातीतत्वादिव्यवहारहेतवो भवन्ति। किमन्तर्गडुना कालेनेत्यभिप्रेत्योक्तम्–**कालः संपद्यत इति**। न प्रभुरित्याद्यन्तशून्यं तद्वस्त्विति दर्शितम् ॥९॥ आत्मनः प्रतीचः केवलतां त्रिपुटया अभावेन एकाकितां तत्र परमे स्थाने॥१०॥स्थानवरस्य स्थानवरापेक्षया ॥११॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

## १९९-[२६]

युधिष्ठिर उवाच ।
कालमृत्युयमानां ते इक्ष्वाकोर्ब्राह्मणस्य च
विवादो व्याहृतः पूर्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
इक्ष्वाकोः सूर्यपुत्रस्य यद्वृत्तं ब्राह्मणस्य च ॥ २
कालस्य मृत्योश्च तथा
यद्वृत्तं तन्निबोध मे ।
यथा स तेषां संवादो
यस्मिन्स्थानेऽपि चाभवत् ॥ ३
ब्राह्मणो जापकः कश्चिद्धर्मवृत्तो महायशाः ।
षडङ्गविन्महाप्राज्ञः पैप्पलादिः स कौशिकः
तस्यापरोक्षं विज्ञानं षडङ्गेषु बभूव ह ।
वेदेषु चैव निष्णातो हिमवत्पादसंश्रयः ॥ ५
सोद्यं ब्राह्मं तपस्तेपे संहितां संयतो जपन् ।
तस्य वर्षसहस्रं तु नियमेन तथा गतम् ॥ ६
स देव्या दर्शितः साक्षात्
प्रीताऽस्मीति तदा किल ।
जप्यमावर्तयंस्तूष्णीं
न स तां किञ्चिदब्रवीत् ॥ ७
तस्यानुकम्पया देवी प्रीता समभवत्तदा ।
वेदमाता ततस्तस्य तज्जप्यं समपूजयत् ॥ ८
समाप्तजप्यस्तूत्थाय शिरसा पादयोस्तदा ।
पपात देव्या धर्मात्मा वचनं चेदमब्रवीत् ९
दिष्ट्या देवि प्रसन्ना त्वं दर्शनं चागता मम
यदि चापि प्रसन्नासि जप्ये मे रमतां मनः ॥
सावित्र्युवाच ।
किं प्रार्थयसि विप्रर्षे किं चेष्टं करवाणि ते ।
प्रब्रूहि जपतां श्रेष्ठ सर्वं तत्ते भविष्यति ॥ ११
इत्युक्तः स तदा देव्या विप्रः प्रोवाच धर्मवित्
जप्यं प्रति ममेच्छेयं वर्धत्विति पुनः पुनः ॥
मनसश्च समाधिर्मे वर्धेताहरहः शुभे ।
तत्तथेति ततो देवी मधुरं प्रत्यभाषत ॥ १३
इदं चैवापरं प्राह देवी तत्प्रियकाम्यया ।
निरयं नैव याता त्वं यत्र याता द्विजर्षभाः ॥
यास्यसि ब्रह्मणः स्थानमनिमित्तमनिन्दितम् ।
साधये भविता चैतद्यत्त्वयाऽहमिहार्थिता ॥
नियतो जप चैकाग्रो धर्मस्त्वां समुपैष्यति ।
कालो मृत्युर्यमश्चैव समायास्यन्ति तेऽन्तिकं
भविता च विवादोऽत्र तव तेषां च धर्मतः ।
भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा भगवती जगाम भवनं स्वकम्
ब्राह्मणोऽपि जपन्नास्ते दिव्यं वर्षशतं तथा ।
सदा दान्तो जितक्रोधः सत्यसन्धोऽनसूयकः
समाप्ते नियमे तस्मिन्नथ विप्रस्य धीमतः ।
साक्षात्प्रीतस्तदा धर्मो दर्शयामास तं द्विजं
धर्म उवाच ।
द्विजाते पश्य मां धर्ममहं त्वां द्रष्टुमागतः ।
जप्यस्यास्य फलं यत्तत्संप्राप्तं तच्च मे शृणु २०
जिता लोकास्त्वया सर्वे
ये दिव्या ये च मानुषाः ।
देवानां निलयान्साधो
सर्वानुत्क्रम्य यास्यसि ॥ २१
प्राणत्यागं कुरु मुने
गच्छ लोकान्यथेप्सितान् ।
त्यक्त्वाऽऽत्मनः शरीरं च
ततो लोकानवाप्स्यसि ॥ २२

---

१९९

आख्यायिकामुखेन जापकस्य वश्या यमादयो भवन्ति स च स्वं परं च तारयति तेन च सत्यादिकं रक्षणीयम् दंभादिकं च त्याज्यमिति निरूपयति अध्यायद्वयेन— **कालेत्यादिना** । आयुःपरिच्छेदिका देवता कालः । प्राणवियोजिका मृत्युः पुण्यापुण्यफलदायिका यमः तत् तम् ॥ १॥ सूर्यपुत्रस्य यमस्य ॥२॥ जापकः मंत्राध्ययनपरः षडंगानि शिक्षादीनि हृदयादीनि वा वेत्तीति षडङ्गवित् ॥४॥ अपरोक्षं तत्त्वदर्शनात्मकम् ॥५॥ सोद्यं वादोऽर्थज्ञानं भासनोपसंभाषेतिसूत्रे वदेर्ज्ञानार्थत्वानुवादात् तेन सह सोद्यं वदः सुपि क्यप् चेति क्यप् यजादित्वात्संप्रसारणम् । ब्राह्मं ब्राह्मणयोग्यम् तपः स्वधर्मानुष्ठानं सोन्त्यमिति पाठेन्त्यं उत्तमम् ॥ ६ ॥ देव्या सावित्र्या दर्शितः दर्शनदानेनानुगृहीतः ॥ ७ ॥ समाधिः नियमः ॥ १३ ॥ निरयं स्वर्गं क्षयिणं याता यास्यसि याताः गताः ॥१४॥ अनिमित्तं अजन्यं यत् **जप्ये मे रमतां मन इति** ॥१५॥ जप जपं कुरु तेन कालादीनां तव भयं नास्तीत्यर्थः ॥१६ दर्शयामास द्विजाय आत्मानं दर्शितवान् ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच ।
किं नु लोकैर्हि मे धर्म गच्छ त्वं च यथासुखं
बहुदुःखसुखं देहं नोत्सृजेयमहं विभो ॥ २३
धर्म उवाच ।
अवश्यं भोः शरीरं ते त्यक्तव्यं मुनिपुङ्गव ।
स्वर्गमारोह भो विप्र किं वा वै रोचतेऽनघ
ब्राह्मण उवाच ।
न रोचये स्वर्गवासं
विना देहमहं विभो ।
गच्छ धर्म न मे श्रद्धा
स्वर्गं गन्तुं विनाऽऽत्मना ॥ २५
धर्म उवाच ।
अलं देहे मनः कृत्वा त्यक्त्वा देहं सुखी भव
गच्छ लोकानरजसो यत्र गत्वा न शोचसि
ब्राह्मण उवाच ।
रमे जपन् महाभाग किं नु लोकैः सनातनैः
सशरीरेण गन्तव्यं मया स्वर्गं न वा विभो ॥
धर्म उवाच ।
यदि त्वं नेच्छसे त्यक्तुं शरीरं पश्य वै द्विज ।
एष कालस्तथा मृत्युर्यमश्च त्वामुपागताः ॥
भीष्म उवाच ।
अथ वैवस्वतः कालो मृत्युश्च त्रितयं विभो
ब्राह्मणं तं महाभागमुपगम्येदमब्रुवन् ॥ २९
यम उवाच ।
तपसोऽस्य सुतप्तस्य तथा सुचरितस्य च ।
फलप्राप्तिस्तव श्रेष्ठा यमोऽहं त्वामुपब्रुवे ३०
काल उवाच ।
यथावदस्य जप्यस्य
फलं प्राप्तमनुत्तमम् ।
कालस्ते स्वर्गमारोढुं
कालोऽहं त्वामुपागतः ॥ ३१

मृत्युरुवाच ।
मृत्युं मां विद्धि धर्मज्ञ रूपिणं स्वयमागतम्
कालेन चोदितो विप्र त्वामितो नेतुमद्य वै ॥
ब्राह्मण उवाच ।
स्वागतं सूर्यपुत्राय कालाय च महात्मने ।
मृत्यवे चाथ धर्माय किं कार्यं करवाणि वः
भीष्म उवाच ।
अर्घ्यं पाद्यं च दत्त्वा स तेभ्यस्तत्र समागमे
अब्रवीत्परमप्रीतः स्वशक्त्या किं करोमि वः
तस्मिन्नेवाथ काले तु तीर्थयात्रामुपागतः ।
इक्ष्वाकुरगमत्तत्र समेता यत्र ते विभो ॥ ३५
सर्वानेव तु राजर्षिः संपूज्याथ प्रणम्य च ।
कुशलप्रश्नमकरोत्सर्वेषां राजसत्तमः ॥ ३६
तस्मै सोऽथासनं दत्त्वा पाद्यमर्घ्यं तथैव च
अब्रवीद्ब्राह्मणो वाक्यं कृत्वा कुशलसंविदम्
स्वागतं ते महाराज ब्रूहि यद्यदिहेच्छसि ।
स्वशक्त्या किं करोमीह तद्भवान्प्रब्रवीतु मां
राजोवाच ।
राजाऽहं ब्राह्मणश्च त्वं यदा षट्कर्मसंस्थितः।
ददानि वसु किञ्चित्ते प्रथितं तद्वदस्व मे ३९
ब्राह्मण उवाच ।
द्विविधा ब्राह्मणा राजन्
धर्मश्च द्विविधः स्मृतः ।
प्रवृत्ताश्च निवृत्ताश्च
निवृत्तोऽहं प्रतिग्रहात् ॥ ४०
तेभ्यः प्रयच्छ दानानि ये प्रवृत्ता नराधिप ।
अहं न प्रतिगृह्णामि किमिष्टं किं ददामि ते
ब्रूहि त्वं नृपतिश्रेष्ठ तपसा साधयामि किम्
राजोवाच ।
क्षत्रियोऽहं न जानामि देहीति वचनं क्वचित्
प्रयच्छ युद्धमित्येवंवादिनः स्मो द्विजोत्तम

---

**किंन्विति** । त्यक्त्वाऽऽत्मनः शरीरमित्यनुषज्यते । अवते शब्दं करोतीत्युत् उङ्शब्दे जापकोऽहं बहुना दुःखेन मिश्रं सुखं यत्र तं देहं देहान्तरं न सृजेयं किं तु अनेनैव देहेन मुक्तः स्यामित्यर्थः । तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित इति श्रौतनिर्वचनात् उत् सर्वपापहीनोऽहं देहं न सृजेयमिति वा । कैवल्याधिकारित्वान्ममेति भावः ॥ २३ ॥ अदेहं अशरीरमात्मानं विना तं परित्यज्य अनात्मसुखे मम रुचिः श्रद्धा वा नास्तीत्यहमिदं शरीरं न त्यक्ष्यामीत्यर्थः ॥ २५ ॥ कृत्वाऽलं मा कुर्वित्यर्थः। अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वेति क्त्वः क्त्वा ॥२६॥ **नवेति** । देहेनापि सह स्वर्गतिरस्त्वैव जपफलादिति भावः ॥२७॥ जापकस्यामुष्मिकसुखे निःस्पृहत्वं प्रदर्श्य ऐहिकसुखेऽपि निःस्पृहत्वमाख्यायिकयैव ज्ञापयति–**राजाऽहमिति** । प्रथितं स्वर्णरत्नादि वदस्व आज्ञापय यजनयाजने अध्ययनाध्यापने दानप्रतिग्रहौ चेति षट्कर्माणि । तेषां मध्ये प्रतिग्रहस्यान्तर्भावादित्याशयः ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण उवाच ।
तुष्यसि त्वं स्वधर्मेण तथा तुष्टा वयं नृप ।
अन्योन्यस्यान्तरं नास्ति यदिष्टं तत्समाचर
राजोवाच ।
स्वशक्त्याऽहं ददानीति त्वया पूर्वमुदाहृतम्
याचे त्वां दीयतां मह्यं जप्यस्यास्य फलं द्विज
ब्राह्मण उवाच ।
युद्धं मम सदा वाणी याचतीति विकत्थसे
न च युद्धं मया सार्धं किमर्थं याचसे पुनः ॥
राजोवाच ।
वाग्वज्रा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः
क्षत्रिया बाहुजीविनः ।
वाग्युद्धं तदिदं तीव्रं
मम विप्र त्वया सह ॥ ४६
ब्राह्मण उवाच ।
सैवाद्यापि प्रतिज्ञा मे
स्वशक्त्या किं प्रदीयताम् ।
ब्रूहि दास्यामि राजेन्द्र
विभवे सति मा चिरम् ॥ ४७
राजोवाच ।
यत्तद्वर्षशतं पूर्णं जप्यं वै जपता त्वया ।
फलं प्राप्तं तत्प्रयच्छ मम दित्सुर्भवान् यदि
ब्राह्मण उवाच ।
परमं गृह्यतां तस्य फलं यज्जपितं मया ।
अर्धं त्वमविचारेण फलं तस्य ह्यवाप्नुहि ॥४९
अथवा सर्वमेवेह मामकं जापकं फलम् ।
राजन्प्राप्नुहि कामं त्वं यदि सर्वमिहेच्छसि
राजोवाच ।
कृतं सर्वेण भद्रं ते जप्यं यद्याचितं मया ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि किञ्च तस्य फलं वद
ब्राह्मण उवाच ।
फलप्राप्तिं न जानामि दत्तं यज्जपितं मया
अयं धर्मश्च कालश्च यमो मृत्युश्च साक्षिणः ॥
राजोवाच ।
अज्ञातमस्य धर्मस्य फलं किं मे करिष्यति
फलं ब्रवीषि धर्मस्य न चेज्जप्यकृतस्य माम्
प्राप्नोतु तत्फलं विप्रो नाहमिच्छे ससंशयं
ब्राह्मण उवाच ।
नाददेऽपरवक्तव्यं दत्तं चास्य फलं मया ।
वाक्यं प्रमाणं राजर्षे ममाद्य तव चैव हि ५४
नाभिसन्धिर्मया जप्ये कृतपूर्वः कदाचन ।
जप्यस्य राजशार्दूल कथं वेत्स्याम्यहं फलम्
ददस्वेति त्वया चोक्तं ददानीति मया तथा
न वाचं दूषयिष्यामि सत्यं रक्ष स्थिरो भव
अथैवं वदतो मेऽद्य वचनं न करिष्यसि ।
महानधर्मो भविता तव राजन्मृषा कृतः ॥
न युक्तं तु मृषा वाणी त्वया वक्तुमरिन्दम ।
तथा मयाऽप्यभिहितं मिथ्या कर्तुं न शक्यते
संश्रुतं च मया पूर्वं ददानीत्यविचारितम् ।
तद्गृह्णीष्वाविचारेण यदि सत्ये स्थितो भवान्
इहागम्य हि मां राजन् जाप्यं फलमयाचथाः
तन्मे निसृष्टं गृह्णीष्व भव सत्ये स्थिरोऽपि च
नायं लोकोऽस्ति न परो
न च पूर्वान् स तारयेत् ।
कुत एव जनिष्यांस्तु
मृषावादपरायणः ॥ ६१
न यज्ञफलदानानि नियमास्तारयन्ति हि ।
यथा सत्यं परे लोके तथेह पुरुषर्षभ ॥ ६२
तपांसि यानि चीर्णानि चरिष्यन्ति च यत्तपः
शतैः शतसहस्रैश्च तैः सत्यान्न विशिष्यते ॥
सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यमेकाक्षरं तपः ।
सत्यमेकाक्षरो यज्ञः सत्यमेकाक्षरं श्रुतम् ६४
सत्यं वेदेषु जागर्ति फलं सत्ये परं स्मृतम् ।
सत्याद्धर्मो दमश्चैव सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ६५
सत्यं वेदास्तथाऽङ्गानि
सत्यं विद्यास्तथा विधिः ।
व्रतचर्या तथा सत्य-
मोङ्कारः सत्यमेव च ॥ ६६
प्राणिनां जननं सत्यं सत्यं सन्ततिरेव च ।
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः ६७
सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
सत्यं यज्ञस्तपो वेदाः स्तोभा मन्त्राः सरस्वती

---

कृतं अलं सर्वेण जपफलेन ॥ ५१ ॥ यज्जपितं जप्यं तस्येति शेषः ॥ ५२ ॥ अपरवक्तव्यं वाक्यान्तरं नाददे नाङ्गीकुर्वे ॥ ५४ ॥ अभिसन्धिः कामः निष्कामस्य जपस्यानन्तं फलमिति भावः ॥ ५५ ॥ दूषयिष्यामि अन्यथा करिष्यामि ॥ ५६ ॥ मे मया निसृष्टं दत्तम् ॥ ६० ॥ न विशिष्यते न विशेषः क्रियते ॥ ६३ ॥ एकः अतुल्यः अक्षरः अविनाशी ॥ ६४ ॥

तुलामारोपितो धर्मः सत्यं चैवेति नः श्रुतम्।
समकक्षां तुलयतो यतः सत्यं ततोऽधिकम्॥
यतो धर्मस्ततः सत्यं सर्वं सत्येन वर्धते ।
किमर्थमनृतं कर्म कर्तुं राजंस्त्वमिच्छसि ७०
सत्ये कुरु स्थिरं भावं मा राजन्ननृतं कृथाः ।
कस्मात्त्वमनृतं वाक्यं देहीति कुरुषेऽशुभम्॥
यदि जप्यफलं दत्तं मया नैषिष्यसे नृप ।
धर्मेभ्यः संपरिभ्रष्टो लोकाननुचरिष्यसि ७१
संश्रुत्य यो न दित्सेत
याचित्वा यश्च नेच्छति।
उभावानृतिकावेतौ
न मृषा कर्तुमर्हसि ॥ ७२
राजोवाच।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च
क्षत्रधर्मः किल द्विज ।
दातारः क्षत्रियाः प्रोक्ता
गृह्णीयां भवतः कथम् ॥
ब्राह्मण उवाच ।
न च्छन्दयामि ते राजन्नापि ते गृहमाव्रजम्
इहाऽऽगम्य तु याचित्वा न गृह्णीषे पुनः कथम्
धर्म उवाच ।
अविवादोऽस्तु युवयोर्वित्तं मां धर्ममागतम्
द्विजो दानफलैर्युक्तो राजा सत्यफलेन च ॥
स्वर्ग उवाच ।
स्वर्गं मां विद्धि राजेन्द्र रूपिणं स्वयमागतम्
अविवादोऽस्तु युवयोरुभौ तुल्यफलौ युवाम्
राजोवाच ।
कृतं स्वर्गेण मे कार्यं गच्छ स्वर्गं यथागतम्
विप्रो यदीच्छते गन्तुं चीर्णं गृह्णातु मे फलम्
ब्राह्मण उवाच ।
बाल्ये यदि स्यादज्ञाना-
न्मया हस्तः प्रसारितः।
निवृत्तलक्षणं धर्म-
मुपासे संहितां जपन् ॥ ७९
निवृत्तं मां चिराद्राजन्विप्रलोभयसे कथम्।
स्वेन कार्यं करिष्यामि त्वत्तो नेच्छे फलं नृप
तपःस्वाध्यायशीलोऽहं निवृत्तश्च प्रतिग्रहात्
राजोवाच ।
यदि विप्र विसृष्टं ते जप्यस्य फलमुत्तमम्।
आवयोर्यत्फलं किंचित्सहितं नौ तदस्त्विह
द्विजाः प्रतिग्रहे युक्ता दातारो राजवंशजाः।
यदि धर्मः श्रुतो विप्र सहैव फलमस्तु नौ ८२
मा वा भूत्सहभोज्यं नौ मदीयं फलमाप्नुहि ।
प्रतीच्छ मत्कृतं धर्मं यदि ते मय्यनुग्रहः ८३
भीष्म उवाच ।
ततो विकृतवेषौ द्वौ पुरुषौ समुपस्थितौ ।
गृहीत्वाऽन्योन्यमावेष्ट्य कुचैलावूचतुर्वचः॥
न मे धारयसीत्येको धारयामीति चापरः ।
इहास्ति नौ विवादोऽयमयं राजानुशासकः
सत्यं ब्रवीम्यहमिदं न मे धारयते भवान्।
अनृतं वदसीह त्वमृणं ते धारयाम्यहम् ८६
तावुभौ सुभृशं तप्तौ राजानमिदमूचतुः ।
परीक्ष्य त्वं यथा स्यावो नावामिह विगर्हितौ
विरूप उवाच ।
धारयामि नरव्याघ्र विकृतस्येह गोः फलम्
ददतश्च न गृह्णाति विकृतो मे महीपते ॥ ८८
विकृत उवाच ।
न मे धारयते किंचिद्विरूपोऽयं नराधिप ।
मिथ्या ब्रवीत्ययं हि त्वां सत्याभासं नराधिप
राजोवाच ।
विरूप किं धारयते भवानस्य ब्रवीतु मे ।
श्रुत्वा तथा करिष्येऽहमिति मे धीयते मनः

---

देहीति उक्त्वेति शेषः ॥७१॥ न च्छन्दयामि प्रतिगृह्णीष्वेति न प्रार्थितवानस्मि ॥ ७५ ॥ **अविवाद इति** । राहूपरागादौ प्रतिग्रहमनिच्छति ब्राह्मणे यत्प्रकारान्तरेण दानं तद्दातुः फलावहं प्रतिग्रहीतुश्च न दोषकरमिति भावः । तथा च स्मृतिः—

'मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्।
दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक्' ॥ इति

॥ ७६ ॥ **स्वर्गमिति** । पुण्यस्य दानेन पुण्यं वर्धते न तु धनमिव दानेन हीयत इत्यर्थः ॥ ७७ ॥ **द्वौ पुरुषौ** कामक्रोधौ ॥ ८४ ॥ प्रार्थना हि राज्ञोऽननुरूपेति तस्य कामो विकृतसंज्ञः । शान्तिस्वभावस्यापि जापकस्य याचित्वाऽपि दीयमानं न गृह्णातीति राजानं प्रति यः क्रोधः स विरूपसंज्ञः । गोः फलं वाचं धेनुमुपासीतेति श्रुतेर्धेनुसरूपाया वाचः जपस्य फलमित्यर्थः ॥ ८८ ॥

विरूप उवाच ।

शृणुष्वावहितो राजन् यथैतद्धारयाम्यहम्
विकृतस्यास्य राजर्षे निखिलेन नराधिप ९१
अनेन धर्मप्राप्त्यर्थं शुभा दत्ता पुराऽनघ ।
धेनुर्विप्राय राजर्षे तपःस्वाध्यायशीलिने ९२
तस्याश्चायं मया राजन् फलमभ्येत्य याचितः
विकृतेन च मे दत्तं विशुद्धेनान्तरात्मना ९३
ततो मे सुकृतं कर्म कृतमात्मविशुद्धये ।
गावौ च कपिले क्रीत्वा वत्सले बहुदोहने ॥
ते चोञ्छवृत्तये राजन्मया समपवर्जिते ।
यथाविधि यथाश्रद्धं तदस्याहं पुनः प्रभो ९५
इहाद्यैव गृहीत्वा तु
प्रयच्छेद्द्विगुणं फलम् ।
एवं स्यात्पुरुषव्याघ्र
कः शुद्धः कोऽत्र दोषवान् ॥ ९६
एवं विवदमानौ स्वस्त्वामिहाभ्यागतौ नृप ।
कुरु धर्ममधर्मं वा विनये नौ समादध ॥ ९७
यदि नेच्छति मे दानं यथा दत्तमनेन वै ।
भवानत्र स्थिरो भूत्वा मार्गे स्थापयिताऽद्य नौ

राजोवाच ।

दीयमानं न गृह्णासि ऋणं कस्मात्त्वमद्य वै
यथैव तेऽभ्यनुज्ञातं तथा गृह्णीष्व मा चिरम्

विकृत उवाच ।

धारयामीत्यनेनोक्तं ददानीति तथा मया।
नायं मे धारयत्यद्य गच्छतां यत्र वाञ्छति ॥

राजोवाच ।

ददतोऽस्य न गृह्णासि विषमं प्रतिभाति मे
दण्ड्यो हि त्वं मम मतो नास्त्यत्र खलु संशयः

विकृत उवाच ।

मयाऽस्य दत्तं राजर्षे गृह्णीयां तत्कथं पुनः।
काममत्रापराधो मे दण्डमाज्ञापय प्रभो ॥ २

विरूप उवाच ।

दीयमानं यदि मया नेषिष्यसि कथञ्चन ।
नियंस्यति त्वां नृपतिरयं धर्मानुशासकः ३

विकृत उवाच ।

स्वं मया याचितेनेह दत्तं कथमिहाद्य तत् ।
गृह्णीयां गच्छतु भवानभ्यनुज्ञां ददानि ते ४

ब्राह्मण उवाच ।

श्रुतमेतत्त्वया राजन्ननयोः कथितं द्वयोः ।
प्रतिज्ञातं मया यत्ते तद्गृहाणाविचारितम् ५

राजोवाच ।

प्रस्तुतं सुमहत्कार्यमनयोर्गह्वरं यथा ।
जापकस्य दृढीकारः कथमेतद्भविष्यति ॥ ६
यदि तावन्न गृह्णामि ब्राह्मणेनापवर्जितम् ।
कथं न लिप्येयमहं पापेन महताऽद्य वै ॥ ७
तौ चोवाच स राजर्षिः कृतकार्यौ गमिष्यथः
नेदानीं मामिहासाद्य राजधर्मो भवेन्मृषा ८
स्वधर्मः परिपाल्यस्तु राज्ञामिति विनिश्चयः
विप्रधर्मश्च गहनो मामनात्मानमाविशत् ९

ब्राह्मण उवाच ।

गृहाण धारयेऽहं च याचितं संश्रुतं मया ।
न चेद्ग्रहीष्यसे राजन् शपिष्ये त्वां न संशयः

राजोवाच ।

धिग्राजधर्मं यस्यायं कार्यस्येह विनिश्चयः
इत्यर्थं मे ग्रहीतव्यं कथं तुल्यं भवेदिति ११
एष पाणिरपूर्वं मे निक्षेपार्थं प्रसारितः ।
यन्मे धारयसे विप्र तदिदानीं प्रदीयताम् १२

ब्राह्मण उवाच ।

संहितां जपता यावान्
गुणः कश्चित्कृतो मया ।
तत्सर्वं प्रतिगृह्णीष्व
यदि किञ्चिदिहास्ति मे ॥ १३

राजोवाच ।

जलमेतन्निपतितं मम पाणौ द्विजोत्तम ।
सममस्तु सहैवास्तु प्रतिगृह्णातु वै भवान् १४

विरूप उवाच ।

कामक्रोधौ विद्धि नौ त्व-
मावाभ्यां कारितो भवान् ।
सहेति च यदुक्तं ते
समा लोकास्तवास्य च ॥ १५

---

धेनुर्वाक् विप्राय परमेश्वराय धर्मप्राप्त्यर्थं न तु स्वार्थम् ९२ ततो मे मया पशुद्वयदानेन मया जपयज्ञफलं प्राप्तं इदानीमस्मात्तदहं नेच्छामीत्यर्थः ॥ ९४ ॥ **इहेति** । प्रतिगृह्यापि पुनः प्रतिदानं करिष्यामीत्यर्थः ॥ ९६ ॥ **धारयामीति** । अप्रतिग्रहेणवाहमेतमृणं करोमीत्यर्थ १०० निक्षेपार्थं प्रतिगृह्य प्रदानार्थम् ॥ १२ ॥ समं दानस्य प्रतिदानेन तुल्यमस्तु सहैवेति तवैव तुभ्यं मया प्रतिदत्तमित्यर्थः । ॥ १४ ॥ **कामक्रोधाविति** । अत्र प्रतिग्रहीतुरनधिकारित्वाद्दातुर्दानसममेव पुण्यम्। अन्यथा पुण्यप्रदानेन बहुगुणा पुण्यवृद्धिरेव स्यादिति भावः । कारितः प्रवर्तितः त्वंपदार्थः राजाऽत्र संबोध्यः ॥ १५ ॥

नायं धारयते किञ्चि-
ज्जिज्ञासा त्वत्कृते कृता
कालो धर्मस्तथा मृत्युः
कामक्रोधौ तथा युवाम् । १६
सर्वमन्योन्यनिष्कर्षे
निघृष्टं पश्यतस्तव ।
गच्छ लोकान् जितान् स्वेन
कर्मणा यत्र वाञ्छसि ॥ १७

भीष्म उवाच ।

जापकानां फलावाप्तिर्मया ते संप्रदर्शिता
गतिः स्थानं च लोकाश्च जापकेन यथा जिताः
प्रयाति संहिताध्यायी ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
अथवाऽग्निं समायाति सूर्यमाविशतेऽपि वा
स तैजसेन भावेन यदि तत्र रमत्युत ।
गुणांस्तेषां समाधत्ते रागेण प्रतिमोहितः २०
एवं सोमे तथा वायौ भूम्याकाशशरीरगः ।
सरागस्तत्र वसति गुणांस्तेषां समाचरन् २१
अथ तत्र विरागी स गच्छति त्वथ संशयम्
परमव्ययमिच्छन्स तमेवाविशते पुनः ॥ २२
अमृताच्चामृतं प्राप्तः शान्तीभूतो निरात्मवान्
ब्रह्मभूतः स निर्द्वन्द्वः सुखी शान्तो निरामयः
ब्रह्मस्थानमनावर्तमेकमक्षरसंज्ञकम् ।
अदुःखमजरं शान्तं स्थानं तत्प्रतिपद्यते ॥ २४
चतुर्भिर्लक्षणैर्हीनं तथा षड्भिः सषोडशैः ।
पुरुषं तमतिक्रम्य आकाशं प्रतिपद्यते ॥ २५
अथ नेच्छति रागात्मा सर्वं तदधितिष्ठति ।
यच्च प्रार्थयते तच्च मनसा प्रतिपद्यते ॥ २६
अथवा चेक्षते लोकान्सर्वान्निरयसंज्ञितान् ।
निस्पृहः सर्वतो मुक्तस्तत्र वै रमते सुखम् २७
एवमेषा महाराज जापकस्य गतिर्यथा ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमर्हसि २८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जापकोपाख्याने नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

---

**नायमिति**। आख्यायिकातात्पर्यमाह-त्वत्कृते राज्ञे। बोधार्थम् ॥ १६ ॥ निघृष्टं परीक्षितम् ॥ १७॥ **जापकानामिति** । गतिर्मुक्तिः स्थानं ब्रह्मलोकः लोकाः सूर्यादिस्थानानि एते यथा जितास्तथा कीर्तयिष्ये इति शेषः॥१८ तेषु स्थानमाह-**प्रयातीति**।विरक्तस्य फलमुक्त्वा रागिणां लोकानाह-**अथवेति** । अग्निं अग्निलोकम् एवमुत्तरत्र ॥ १९॥ तैजसेन तेजोमयेन स्वप्नरूपेण ॥२०॥ भूमिशरीरे घनेऽपि गच्छति तथा आकाशशरीरे निरालम्बेऽपि गच्छति तेषां सूर्यादिलोकपालानां गुणान् प्रकाशकत्वादीन् ॥२१॥ **अथेति** । तत्राग्न्यादौ तमेवं परमेष्ठिनमेव परमुत्कृष्टं अव्ययं मोक्षं क्रमतः इच्छन् ॥ २२ ॥ अमृतात् परमेष्ठिभावात् आपेक्षिकामृतात् अमृतं कैवल्याख्यं मुख्यामृतम् । शान्तीभूतः निष्कामः। निरात्मवान् आत्मा बुद्धिस्तद्वान् अहंकारस्तद्वर्जितः। अत एव ब्रह्मभूतः निर्द्वन्द्वः सुखदुःखातीतः । निरामयः द्वैतदर्शनहीनः ॥ २३ ॥ ब्रह्मैव स्थानं ब्रह्मस्थानं अनावर्तं आवृत्तिशून्यम् ॥ २४ ॥ जापकानां पार्यन्तिकफलमाह-**चतुर्भिरिति** । चतुर्भिः प्रत्यक्षागमानुमानचेतोभिः लक्षणैः लक्ष्यतेऽनेनेतिव्युत्पत्त्या ज्ञापकैर्हीनं रूपगुणसम्बन्धजडत्वादिभिः पूर्वोक्तैर्विरहितं अत एव षड्भिरूर्मिभिः अशनापिपासाभ्यां प्राणधर्माभ्यां शोकमोहाभ्यां चित्तधर्माभ्यां जरामृत्युभ्यां देहधर्माभ्यां च हीनं च तदन्यत्वात् अत एव प्राणाद्यात्मकषोडशकगणेनैव तेऽशनादयः सहितास्तैः प्राणाद्याश्च प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोकेषु नाम चेति श्रुत्युक्ताः । आकाशं कारणं ब्रह्मातिक्रम्य पुरुषमनुपाधिचिन्मात्रं प्रतिपद्यत इति सम्बन्धः ॥ २५ ॥ **नेच्छति** । पुरुषप्राप्तिमिति शेषः । सर्वं सर्वात्मकं तत् आकाशाख्यं कारणम् अधितिष्ठति तदभिमानी भवति यच्चेत्यनेन 'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति ' इत्यादिश्रुतेरर्थः सत्यकामः सत्यसंकल्पश्च विद्वानिति दर्शितम् ॥ २६ ॥ **अथवेति** । परवैराग्यवतः सर्वलोकत्यागोऽपि भवतीत्याह-**तत्र निर्गुणे** ॥ २७॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

## २००—[२७]

युधिष्ठिर उवाच ।

किमुत्तरं तदा तौ स्म चक्रतुस्तस्य भाषिते
ब्राह्मणो वाऽथवा राजा तन्मे ब्रूहि पितामह
अथवा तौ गतौ तत्र यदेतत्कीर्तितं त्वया ।
संवादो वा तयोः कोऽभूत्किं वा तौ तत्र चक्रतुः

भीष्म उवाच ।

तथेत्येवं प्रतिश्रुत्य धर्मं संपूज्य च प्रभो ।
यमं कालं च मृत्युं च स्वर्गं सम्पूज्य चार्हतः३
पूर्वं ये चापरे तत्र समेता ब्राह्मणर्षभाः ।
सर्वान्संपूज्य शिरसा राजानं सोऽब्रवीद्द्विजः
फलेनानेन संयुक्तो राजर्षे गच्छ मुख्यताम् ।
भवता चाभ्यनुज्ञातो जपेयं भूय एव ह ॥ ५
वरश्च मम पूर्वं हि दत्तो देव्या महाबल ।
श्रद्धा ते जपतो नित्यं भवत्विति विशाम्पते

राजोवाच ।

यद्येवमफला सिद्धिः श्रद्धा च जपितुं तव ।
गच्छ विप्र मया सार्धं जापकं फलमाप्नुहि ७

ब्राह्मण उवाच ।

कृतः प्रयत्नः सुमहान्सर्वेषां सन्निधाविह ।
सह तुल्यफलावावां गच्छावो यत्र नौ गतिः
व्यवसायं तयोस्तत्र विदित्वा त्रिदशेश्वरः ।
सह देवैरुपययौ लोकपालैस्तथैव च ॥ ९
साध्याश्च विश्वे मरुतो वाद्यानि सुमहान्ति च
नद्यः शैलाः समुद्राश्च तीर्थानि विविधानि च
तपांसि संयोगविधिर्वेदाः स्तोभाः सरस्वती
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ ११
गन्धर्वश्चित्रसेनश्च परिवारगणैर्युतः ।
नागाः सिद्धाश्च मुनयो देवदेवः प्रजापतिः ॥
विष्णुः सहस्रशीर्षश्च देवोऽचिन्त्यः समागमत्
अवाद्यन्तान्तरिक्षे च भेर्यस्तूर्याणि वा विभो
पुष्पवर्षाणि दिव्यानि तत्र तेषां महात्मनाम् ।
ननृतुश्चाप्सरःसंघास्तत्र तत्र समन्ततः ॥ १४
अथ स्वर्गस्तथा रूपी ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत् ।
संसिद्धस्त्वं महाभागस्त्वं च सिद्धस्तथा नृप
अथ तौ सहितौ राजन्नन्योन्यविधिना ततः
विषयप्रतिसंहारमुभावेव प्रचक्रतुः ॥ १६
प्राणापानौ तथोदानं समानं व्यानमेव च ।
एवं तौ मनसि स्थाप्य दधतुः प्राणयोर्मनः ॥
उपस्थितकृतौ तौ च नासिकाग्रमधो भ्रुवोः ।
भ्रुकुट्या चैव मनसा शनैर्धारयतस्तदा ॥ १८
निश्चेष्टाभ्यां शरीराभ्यां
स्थिरदृष्टी समाहितौ ।
जितात्मानौ तथाऽऽधाय
मूर्धन्यात्मानमेव च ॥ १९
तालुदेशमथोद्दाल्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
ज्योतिर्ज्वाला सुमहती जगाम त्रिदिवं तदा

---

२००

**किमिति** । उत्तरं समालोकास्तवास्य चेति विरूपवाक्यश्रवणानन्तरम् । तौ इक्ष्वाकुपैप्पलादी तस्य विरूपस्य भाषिते वचने विषये ॥१॥ यदेतत्—सद्योमुक्तिक्रममुक्तिलोकान्तरप्राप्तिरिति त्रयम् ॥ २ ॥ अर्हतः पूज्यान्॥३॥ **यदीति** । अफला तव यदि यद्यपि मह्यं फलस्य दत्तत्वात् तथापि जपप्रदानजपुण्येनैव तव फलवृद्धेर्जातत्वात् जापकं जपार्जितं फलं त्वमपि प्राप्नुहीत्यर्थः ॥ ७ ॥ प्रयत्नः तुभ्यं जपदानार्थं नौ आवयोः ॥ ८ ॥ व्यवसायं निश्चयम् ॥ ९ ॥ **संयोगविधिः** जीवब्रह्मैक्यप्रतिपादका वेदान्ताः **स्तोभाः** सामगीतिपूरणार्थानि अक्षराणि हाइहावु इत्यादीनि ॥ ११ ॥ **अथेति** । अन्योन्यविधिना परस्परोपकारेण सहितौ एककाल एव विषयाणां रूपादीनां प्रतिसंहारं प्रतीपं संहारं विषयकारणभूतेन्द्रियसंहारेणैव संहारम् ॥ १६ ॥ तत्र क्रममाह—**प्राणेति** । मूलाधारात्कुण्डलिनीमुत्थाप्य ऊर्ध्वोर्ध्वचक्रजयक्रमेण मनसि हृदयेऽनाहतचक्रे स्थाप्य निरुध्य तत्रस्थं मनः एकीभूतयोः प्राणापानयोः स्थाप्य वशे कृत्वा दधतुः धारयत इत्यर्थः ॥ १७ ॥ उपस्थितं उपस्थं कुरुतः । तौ उपस्थितकृतौ । बद्धपद्मासनावित्यर्थः । भ्रुवोरधः नासिकाग्रं पश्यन्ताविति शेषः । स्वनासिकाग्रं स्वेन द्रष्टुमशक्यमतो 'य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपासे' इति श्रुतेः । आदर्शस्थनासिकाग्रदर्शनं मा प्रसञ्जीति भ्रुवोरध इति विशेषणम् । तेन नात्यन्तं निमीलिताक्षः स्यात् निद्राप्राप्तेः । नापि उद्घाटिताक्षः स्यात् । लोकदर्शनेन विक्षेपादित्युक्तम् । उपस्थाप्योदरे तौ चेति पाठे तौ प्राणापानौ । उदरे स्वाधिष्ठाने उपस्थाप्य मनसि च स्थाप्येति पूर्वेणान्वयः । ततश्च मनसा सह तौ प्राणापानौ भ्रुकुट्यां भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रे धारयतः ॥ १८ ॥ तथा उक्तप्रकारेण जितात्मानौ जितचित्तौ आत्मानं चित्तं प्राणसहितं मूर्धनि धारयत इति पूर्वेणान्वयः । सुषुम्नामार्गेणेति शेषः ॥१९॥ तालुदेशं ब्रह्मरन्ध्रम् ॥२०॥

हाहाकारस्तथा दिक्षु सर्वेषां सुमहानभूत् ।
तज्ज्योतिः स्तूयमानं स्म ब्रह्माणं प्राविशत्तदा
ततः स्वागतमित्याह तत्तेजः प्रपितामहः ।
प्रादेशमात्रं पुरुषं प्रत्युद्गम्य विशाम्पते ॥ २२
भूयश्चैवापरं प्राह वचनं मधुरं तदा ।
जापकैस्तुल्यफलता योगानां नात्र संशयः ॥
योगस्य तावदेतेभ्यः प्रत्यक्षं फलदर्शनम् ।
जापकानां विशिष्टं तु प्रत्युत्थानं समाहितम्
उष्यतां मयि चेत्युक्त्वा चेतयत्सततं पुनः ।
अथास्यं प्रविवेशास्य ब्राह्मणो विगतज्वरः ॥
राजाप्येतेन विधिना भगवन्तं पितामहम् ।
यथैव द्विजशार्दूलस्तथैव प्राविशत्तदा ॥ २६
स्वयंभुवमथो देवा अभिवाद्य ततोऽब्रुवन् ।
जापकानां विशिष्टं तु प्रत्युत्थानं समाहितम्
जापकार्थमयं यत्नो यदर्थं वयमागताः ।
कृतपूजाविमौ तुल्यौ त्वया तुल्यफलाविमौ
योगजापकयोर्दृष्टं फलं सुमहदद्य वै ।
सर्वाँल्लोकानतिक्रम्य गच्छेतां यत्र वाञ्छितम्

ब्रह्मोवाच ।

महास्मृतिं पठेद्यस्तु तथैवानुस्मृतिं शुभाम् ।
तावप्येतेन विधिना गच्छेतां मत्सलोकताम्
यश्च योगे भवेद्भक्तः सोऽपि नास्त्यत्र संशयः
विधिनाऽनेन देहान्ते मम लोकानवाप्नुयात्
साधये गम्यतां चैव यथास्थानानि सिद्धये ॥

भीष्म उवाच ।

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत ।
आमन्त्र्य च ततो देवा ययुः स्वं स्वं निवेशनम्
ते च सर्वे महात्मानो धर्मं सत्कृत्य तत्र वै ।
पृष्ठतोऽनुययू राजन्सर्वे सुप्रीतचेतसः ॥ ३३
एतत्फलं जापकानां गतिश्चैषा प्रकीर्तिता ।
यथाश्रुतं महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जापकोपाख्याने द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

---

## २०१–[२८]

युधिष्ठिर उवाच ।

किं फलं ज्ञानयोगस्य वेदानां नियमस्य च । भूतात्मा च कथं ज्ञेयस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१

---

योगानां योगिनाम् ॥ २३ ॥ योगस्य योगिनः एतेभ्यः एतेषां सभ्यानां समाहितं विहितम् ॥ २४ ॥ **उष्यतामिति** । अत्र चतुर्मुखास्ये प्रवेशोक्त्या दुःखहेतुव्यष्टिलिङ्गवियोगो जापकस्य ब्रह्मलोकं गतस्य सद्य एव भवतीत्युक्तम् । तत्र हेतुः—**अचेतयदिति** । तस्य ब्रह्मात्मैक्यं बोधितवानित्यर्थः । अयमर्थो भगवद्गीतासु संगृहीतः—

' सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुद्ध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ '

इति । **इतरे तु**—

' ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥ '

इति स्मृतेः । कल्पान्ते व्यष्टिलिङ्गान्मुच्यन्त इति भेदः ॥ २५ ॥ वयं त्रिदशेश्वरादयः त्वया चतुर्मुखेन ॥२८॥ वाञ्छितं अनन्तं सुखम् ॥ २९ ॥ संहिताध्यायिनां फल मुक्त्वा षडङ्गाध्यायिनां मन्वादिस्मृत्यध्यायिनां च फल माह—**महास्मृतिमिति** ॥ ३० ॥ साधये युष्मदिष्ट मिति शेषः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

२०१

पूर्वत्र जापकप्रसङ्गाद्योगस्यापि श्रेयस्त्वमुक्तं योगजापकयोर्दृष्टं फलं सुमहदद्य वा इति तथा उष्यतां मयि चेत्युक्त्वा चेतयत्सततं पुनरिति जपफलकाले ब्रह्मबोधस्यापि द्वारत्वमुक्तम् । एवं योगोऽपि ज्ञानसहाय एव उत ज्ञानफलकृदिति मत्वा पृच्छति—**किमिति** । ज्ञानं विचारस्तत्सहितो योगो ज्ञानयोगस्तस्य । विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नं तत्कारणं सांख्ययोगाभिपन्नमित्यादिलिङ्गाद्नयोः समुच्चयावगमात् वेदानां च किं फलं तथा नियमस्याग्निहोत्रादेः । भूतात्मा जीवः ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मनोः प्रजापतेर्वादं महर्षेश्च बृहस्पतेः ॥

प्रजापतिं श्रेष्ठतमं प्रजानां
देवर्षिसंघप्रवरो महर्षिः ।
बृहस्पतिः प्रश्नमिमं पुराणं
पप्रच्छ शिष्योऽथ गुरुं प्रणम्य ॥ ३

यत्कारणं यत्र विधिः प्रवृत्तो
ज्ञाने फलं यत्प्रवदन्ति विप्राः ।
यन्मन्त्रशब्दैरकृतप्रकाशं
तदुच्यतां मे भगवन्यथावत् ॥ ४

यच्चार्थशास्त्रागममन्त्रविद्भि-
र्यज्ञैरनेकैरथ गोप्रदानैः ।
फलं महद्भिर्यदुपास्यते च
किं तत्कथं वा भविता क्व वा तत् ५

मही महीजाः पवनोऽन्तरिक्षं
जलौकसश्चैव जलं दिवं च ।
दिवौकसश्चापि यतः प्रसूता-
स्तदुच्यतां मे भगवन्पुराणम् ॥ ६

ज्ञानं यतः प्रार्थयते नरो वै
ततस्तदर्था भवति प्रवृत्तिः ।
न चाप्यहं वेद परं पुराणं
मिथ्याप्रवृत्तिं च कथं नु कुर्याम् ७

ऋक्सामसंघांश्च यजूंषि चापि
च्छन्दांसि नक्षत्रगतिं निरुक्तम् ।
अधीत्य च व्याकरणं सकल्पं
शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि ॥ ८

स मे भवान् शंसतु सर्वमेत-
त्सामान्यशब्दैश्च विशेषणैश्च ।
स मे भवान् शंसतु तावदेत-
ज्ज्ञाने फलं कर्मणि वा यदस्ति ॥ ९

यथा च देहाच्च्यवते शरीरी
पुनः शरीरं च यथाऽभ्युपैति ।

मनुरुवाच ।

यद्यत्प्रियं यस्य सुखं तदाहु-
स्तदेव दुःखं प्रवदन्त्यनिष्टम् ॥ १०

इष्टं च मे स्यादितरच्च न स्या-
देतत्कृते कर्मविधिः प्रवृत्तः ।
इष्टं त्वनिष्टं च न मां भजेते-
त्येतत्कृते ज्ञानविधिः प्रवृत्तः ॥ ११

कामात्मकाश्छन्दसि कर्मयोगा
एभिर्विमुक्तः परमश्नुवीत ।
नानाविधे कर्मपथे सुखार्थी
नरः प्रवृत्तो निरयं प्रयाति ।

बृहस्पतिरुवाच ।

इष्टं त्वनिष्टं च सुखासुखे च
साशीस्त्ववच्छन्दति कर्मभिश्च ॥१२

मनुरुवाच ।

एभिर्विमुक्तः परमाविवेश
एतत्कृते कर्मविधिः प्रवृत्तः ।
कामात्मकांश्छन्दति कर्मयोग
एभिर्विमुक्तः परमाददीत ॥ १३

---

कारणं जगत इति शेषः। यत्र यन्निमित्तं विधिः कर्मकाण्डः ज्ञाने सति यत्फलं प्राप्यं मन्त्रशब्दैः वेदवाक्यैः वाङ्मनसातीतत्वात् अप्रकाशितम् ॥ ४ ॥ अर्थशास्त्रं त्रिवर्गशास्त्रम् । आगमो वेदः । मन्त्राः—इषेत्वादयो वेदान्तगतास्तद्विद्भिर्नैर्यत् यज्ञादिभिः फलं सुखं उपास्यते तत्किं वस्तु कथं केन प्रकारेण वा तत्प्राप्तिर्भविता क्व वा तत्सुखं देशान्तरे वा प्रत्यगात्मन्येव वा ॥५ ॥ महीजाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ६ ॥ ज्ञानं यतः यस्मिन्विषये ततः ज्ञानात् । तदर्था ज्ञानार्था मिथ्याप्रवृत्तिं तदज्ञात्वा प्रवृत्तिं तदवाप्तये कथं नु कुर्याम् ॥ ७ ॥ ' सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित् ' इति श्रुतेर्ऋक्सामादिज्ञानेऽपि भूतप्रकृतिं वियदाद्युपादानमात्मानं न वेद्मि ॥ ८ ॥ सामान्यशब्दैः अस्तीत्येवोपलब्धव्य इत्यादिभिः । विशेषणैः सत्यं ज्ञानमनन्तं विज्ञानमानन्दमित्यादिभिः ॥९॥

यत्र विधिः प्रवृत्त इत्यस्योत्तरमाह—**यदिति** ॥ १० ॥ ज्ञाने फलं यदित्यस्योत्तरमाह—**इष्टमिति** ॥ ११ ॥ यच्चार्थशास्त्रेत्यस्योत्तरमाह—**कामेति** । कामात्मकाः कामप्रधानाः । छन्दसि वेदे एभिः कामैः कर्मपथे वेदोक्ते लौकिके वा । निरयं स्वर्गं नरकं वा । एतदाक्षिपत्यर्धेन—**इष्टमिति** । इष्टानिष्टे प्रियाप्रिये सुखदुःखे ततः सुखमिष्टं प्राह्यं दुःखमनिष्टं त्याज्यम् । सा आशीः प्रार्थना । सा च कर्मभिः एनं प्रार्थयितारं अवच्छन्दति पूरयति व्याप्नोति । एतावदेव पुरुषः प्रार्थयते । नान्यत्कर्मफलमस्तीत्यर्थः। 'स्वर्गकामो यजेत श्येनेनाभिचरन्यजेत' इत्यादेरुत्पत्तिशिष्टस्य तस्यैव फलत्वेन श्रवणात् ॥ १२ ॥ 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इत्यादिवाक्यात् एभिः कामैर्विमुक्तः सन् कर्माण्यनुष्ठाय परं ब्रह्म विविदिषोत्पत्त्यादिद्वारा प्रविशेत् । एतदर्थमेव कर्मविधिः प्रवृत्तः । स्वर्गादि

आत्मादिभिः कर्मभिरिध्यमानो
धर्मे प्रवृत्तो द्युतिमान्सुखार्थी।
परं हि तत्कर्मपथादपेतं
निराशिषं ब्रह्मपरं ह्यवैति ॥ १४
प्रजाः सृष्टा मनसा कर्मणा च
द्वावेवैतौ सत्पथौ लोकजुष्टौ।
दृष्टं कर्म शाश्वतं चान्तवच्च
मनस्त्यागः कारणं नान्यदस्ति १५
स्वेनात्मना चक्षुरिव प्रणेता
निशात्यये तमसा संवृतात्मा।
ज्ञानं तु विज्ञानगुणेन युक्तं
कर्माशुभं पश्यति वर्जनीयम् ॥ १६
सर्पान्कुशाग्राणि तथोदपानं
ज्ञात्वा मनुष्याः परिवर्जयन्ति।
अज्ञानतस्तत्र पतन्ति केचि-
ज्ज्ञाने फलं पश्य यथा विशिष्टम् १७

कृत्स्नस्तु मन्त्रो विधिवत्प्रयुक्तो
यथा यथोक्तास्त्विह दक्षिणाश्च।
अन्नप्रदानं मनसः समाधिः
पञ्चात्मकं कर्मफलं वदन्ति ॥ १८
गुणात्मकं कर्म वदन्ति वेदा-
स्तस्मान्मन्त्रो मन्त्रपूर्वं हि कर्म
विधिर्विधेयं मनसोपपत्तिः
फलस्य भोक्ता तु तथा शरीरी १९
शब्दाश्च रूपाणि रसाश्च पुण्याः
स्पर्शाश्च गन्धाश्च शुभास्तथैव।
नरो नसंस्थानगतः प्रभुः स्या-
देतत्फलं सिद्ध्यति कर्मलोके ॥ २०
यद्यच्छरीरेण करोति कर्म
शरीरयुक्तः समुपाश्नुते तत।
शरीमेवायतनं सुखस्य
दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम् २१

---

फलश्रवणं तु कामात्मकानेव च्छन्दति आवृणोति। अतः एभिः कामैर्विमुक्तः परमेवाददीत ब्रह्मज्ञानार्थमेव कर्माण्यनुतिष्ठेन्न क्षुद्रफलार्थमित्यर्थः ॥१३॥ किं श्येनादीन्यपि ज्ञानार्थं अनुष्ठेयानि नेत्याह-**आत्मेति**। आत्मा चित्तम्। आदिभिः प्रथमैर्नित्यैरित्यर्थः। इध्यमानः रागादिदोषापनयेन आदर्शवद्दीप्यमानः द्युतिमान् सदसद्विषयप्रकाशवान् अत एव सुखार्थी मुमुक्षुः परं अत्यन्तं कर्मागोचरम्। निराशिषमित्यनेन साशीस्त्ववच्छन्दतीति परोक्तिर्निरस्ता अवैति उपैति स्ववृत्त्या व्याप्नोति ॥१४॥ ननु बन्धकानां कर्मणां कथं बन्धनिवर्तकत्वं न हि सुरया आचान्तः शुद्ध्यतीत्याशंक्याह प्रजाः सृष्टा इति। एतौ मनःकर्मणी संसारप्रदे अपि सत्पथौ ब्रह्मप्राप्तिमार्गौ कथं-तदाह—**दृष्टमिति**। दृष्टं प्रत्यक्षं श्रुतिबोधितमित्यर्थः, शाश्वतं च मोक्षहेतुरपि अन्तवच्च क्षुद्रफलमपि तत्र मनसा क्रियमाणस्त्यागः फलत्याग एव शाश्वतत्वे कर्मणां कारणं नान्यत् स्वरूपेण त्याग इत्यर्थः॥१५॥ **स्वेनेति**। यथा चक्षूरूपः प्रणेता नायकः निशात्यये रात्र्यंते तमसाऽसंवृतात्माऽनावृतस्वरूपः सन् स्वेनात्मना तैजसेन वा आलोकेन वर्जनीयं कंटकादिकं पश्यति एवं ज्ञानं बुद्धिः विज्ञानगुणेन विवेकेन युक्तं सत् अशुभं पश्यति ॥ १६ ॥ दृष्टान्तं विवृण्वन् ज्ञानफलस्य श्रैष्ठ्यमाह-**सर्पानिति**। उदपानं कूपम्॥१७॥ज्ञानपूर्वकं कृतं कर्म सफलमित्याह **कृत्स्न इति**। कर्म पंचात्मकं पञ्च मन्त्रादयः आत्मानः निष्पादका यस्य तथा समाधिः ऐकाग्र्यं देवताध्यानादौ। यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां ध्यायेत् इति श्रुतेः। फलं फलवत् ॥१८॥ कर्तृस्वभावभेदात्कर्मणां फलभेदमाह-गुणेति। गुणात्मकं सात्त्विकं राजसं तामसं च विधेयं कर्मेत्यर्थः। तस्माद्धेतोः मन्त्रोऽपि गुणात्मकः तत्र हेतुमन्त्रपूर्वं हि कर्म तत्र सात्त्विको मन्त्रः **अग्निमीळे**। राजसः **इषे त्वोर्जे त्वा**। तामसः-**सर्वं प्रविध्य हृदयं प्रविध्य** इत्यादिः। एवं विधिरपि त्रिविधः—**आत्मकामो यजेत, स्वर्गकामो यजेत, अभिचरन्यजेत,** इत्यादिः। कर्तृस्वभावभेदादपि तद्भेदमाह-**मनसोपपत्तिः फलस्येति**। तथाहि 'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति' इति विद्यादिमान् सात्त्विकः कर्ता विद्यादिहीनः केवलं प्रवृत्तिमात्रपरो राजसः दंभाभिसन्धिस्तामसः तेषां कर्म क्रमेण वीर्यवत्तरं वीर्यवत् निर्वीर्यं च भवति। यथा फलस्योपपत्तिस्तथा फलस्य भोक्ताऽपि सुखी दुःखी मूढश्च भवति ॥ १९ ॥ शब्दादयः कर्मफलं कर्मप्राप्ये लोके स्वर्गे सिद्ध्यति। नरः प्रभुरधिकारी ज्ञानफले इति शेषः। नसंस्थानगत इत्येकं पदम्। मरणं अप्राप्तो जीवन्नेव स्यात्। इह कृत्वाऽमुत्र भोक्तव्यमित्यदृष्टफलात्कर्मणोऽपेक्षया दृष्टफलं ज्ञानमेव श्रेय इति भावः ॥ २० ॥ ननु कर्मभ्य एव मोक्षः सिद्ध्येत्किं ज्ञानेनेत्यत आह—**यद्यदिति**। शरीरवता कृतं कर्म शरीरयुक्तेनैव भोक्तव्यं यतः कर्मफलस्य दुःखादेरायतनमाश्रयः शरीरं न त्वशरीर आत्माऽतोऽशरीरत्वलक्षणो मोक्षो न शारीरेण कर्मणा सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

वाचा तु यत्कर्म करोति किञ्चि-
द्वाचैव सर्वं समुपाश्नुते तत् ।
मनस्तु यत्कर्म करोति किञ्चि-
न्मनःस्थ एवायमुपाश्नुते तत् ॥ २२
यथा यथा कर्मगुणं फलार्थी
करोत्ययं कर्मफले निविष्टः ।
तथा तथाऽयं गुणसंप्रयुक्तः
शुभाशुभं कर्मफलं भुनक्ति ॥ २३
मत्स्यो यथा स्रोत इवाभिपाती
तथा कृतं पूर्वमुपैति कर्म ।
शुभे त्वसौ तुष्यति दुष्कृते तु
न तुष्यते वै परमः शरीरी ॥ २४

यतो जगत्सर्वमिदं प्रसूतं
ज्ञात्वाऽऽत्मवन्तो व्यतियान्ति यत्तत् ।
यन्मन्त्रशब्दैरकृतप्रकाशं
तदुच्यमानं शृणु मे परं यत् ॥ २५
रसैर्विमुक्तं विविधैश्च गन्धै-
रशब्दमस्पर्शमरूपवच्च ।
अग्राह्यमव्यक्तमवर्णमेकं
पञ्चप्रकारान्ससृजे प्रजानाम् ॥ २६
न स्त्री पुमान्नापि नपुंसकं च
न सन्न चासत्सदसच्च तन्न ।
पश्यन्ति यद्ब्रह्मविदो मनुष्या-
स्तदक्षरं न क्षरतीति विद्धि ॥ २७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मनुबृहस्पतिसंवादे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

## २०२–[२९]

मनुरुवाच ।
अक्षरात्खं ततो वायु-
स्ततो ज्योतिस्ततो जलम् ।
जलात्प्रसूता जगती
जगत्यां जायते जगत् ॥ १

एतैः शरीरैर्जलमेव गत्वा
जलाच्च तेजः पवनोऽन्तरिक्षम् ।
खाद्वै निवर्तन्ति न भाविनस्ते
मोक्षं च ते वै परमाप्नुवन्ति ॥ २

तर्हि वाचिकेन जपादिना मानसिकेन ध्यानादिना वा मोक्षः सिद्ध्यतां नेत्याह–**वाचेति** । वाङ्मनसाभ्यां कृतं कर्म तद्वतैव भोक्तव्यं न तु तदतीतं वस्तु गोचरयेदित्यर्थः ॥२२॥ कर्मणि गुणः सत्त्वं रजस्तमो वा कर्मगुणस्तम् २३ अयथा प्रतिकूलं स्रोतःप्रवाहं जलवेगेनाभिपाती भवति न त्विच्छया तथा कर्म पुरुषोऽप्युपैति अनुवर्तते । तत्रैवं सति शुभे तोषो न त्वशुभे इति मौढ्यमेवेत्यर्थः ॥ २४ ॥ एवं कर्मगतिमुक्त्वा ज्ञानं वक्ष्यामीति प्रतिजानीते-यत इति। आत्मवन्तो जितचित्ता जगद्व्यतिक्रम्य यत्तत्पदं यान्ति परं श्रेष्ठं यत् ॥ २५ ॥ यत् रसादिहीनमपि तान्पञ्चप्रकारान् रसादीन् जनानां भोक्तृणामर्थे ससृजे उत्पादितवत् अवर्णं लोहितशुक्लकृष्णवर्णं प्रधानं रजःसत्त्वतमोमयं तदन्यत् ॥ २६ ॥ सत् प्रधानपरमाण्वादि असत् शून्यं सदसत् अनिर्वचनीयं मायाशबलम्, अत एवाक्षरं अपरिणामि । 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्' इति श्रुतावपि सृष्टेः प्राक् सदसद्रजःशब्दोदितानां प्रधानशून्यपरमाणूनां युक्तिप्रसक्तानां परव्योमशब्दितस्य मायाशबलस्य च जगत्कारणश्रुतिप्रसक्तस्य निषेधात्॥२७॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

२०२

अक्षरात् मायासहायात् । ननु नो व्योमापरो यत् इति सृष्टेः प्राक् मायाशबलस्य निषेधात् कथं अक्षरे मायासहायादिति विशेषणं दीयते । सत्यम्। 'तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्' इति तत्रैव वाक्यशेषे तुच्छेन मिथ्याभूतेन तमसा आभु व्यापकं अपिहितं आच्छादितमित्युक्तेस्तमसश्च तुच्छत्वाभिधानात्। सर्पेण रज्वा इव न परमार्थतोऽक्षरस्य सद्वितीयत्वमिति ज्ञेयम्। एवं च तुच्छज्ञानावृताच्छुक्तिखण्डाद्रजतमिवाक्षरात् खाद्युत्पद्यते इति न कश्चिद्दोषः १ एवमक्षरे जगदारोप्य अपवदति—**एतैरिति** । पार्थिवैः शरीरैः लवणोदकन्यायेन शरीरिणः जलं गत्वेति सृष्टिविपरीतक्रमेण संहार उक्तः तेजसः पवनं ततोऽन्तरिक्षं गत्वेति योज्यम् । अन्तरिक्षं भूताकाशम् । खात् ल्यब्लोपे पञ्चमी। मायशबलं खशब्दोदितमतीत्य ये भाविनः भावो-

**नोष्णं न शीतं मृदुनापि तीक्ष्णं**
**नाम्लं कषायं मधुरं न तिक्तम् ।**
**न शब्दवन्नापि च गन्धवत्त-**
**न्न रूपवत्तत्परमस्वभावम् ॥ ३**

**स्पर्शं तनुर्वेद रसं च जिह्वा**
**घ्राणं च गन्धान् श्रवणौ च शब्दान् ।**
**रूपाणि चक्षुर्न च तत्परं यद्**
**गृह्णन्त्यनध्यात्मविदो मनुष्याः ॥ ४**

**निवर्तयित्वा रसनां रसेभ्यो**
**घ्राणं च गन्धाच्छ्रवणौ च शब्दात् ।**
**स्पर्शात्त्वचं रूपगुणात्तु चक्षु-**
**स्ततः परं पश्यति स्वं स्वभावम् ५**

**यतो गृहीत्वा हि करोति यच्च**
**यस्मिंश्च तामारभते प्रवृत्तिम् ।**
**यस्मिंश्च यद्येन च यश्च कर्ता**
**यत्कारणं ते समुदायमाहुः ॥ ६**

**यद्व्याप्यभूद्व्यापकं साधकं च**
**यन्मन्त्रवत्स्थास्यति चापि लोके ।**
**यः सर्वहेतुः परमात्मकारी**
**तत्कारणं कार्यमतो यदन्यत् ॥ ७**

**यथा हि कश्चित्सुकृतैर्मनुष्यः**
**शुभाशुभं प्राप्नुतेऽथाविरोधात् ।**
**एवं शरीरेषु शुभाशुभेषु**
**स्वकर्मजैर्ज्ञानमिदं निबद्धम् ॥ ८**

ऽक्षरं तद्येषामात्मत्वेनास्ति ते निर्विशेषं प्रत्यगात्मानं प्राप्तास्ते न निवर्तन्ति न संसरन्ति । किं तु ते परं मोक्षं प्राप्नुवन्ति । ये भाविनस्ते परमाप्नुवन्तीति पाठे तु ये न भाविनस्ते खात् खं प्राप्य निवर्तन्ति । ये तु भाविनस्ते खादपि परं यत्तदाप्नुवन्तीति योजना ॥ २ ॥ एवं ज्ञातस्यापि परस्य योगैकगम्यत्वं वक्तुं लक्षणमाह— **नोष्णमिति** । न शीतं न मृदु इति । नाम्लं न कषायं न मधुरमिति च सम्बन्धः । स्वभावः प्रमातृत्वादिस्तद्वर्जम् ॥ ३ ॥ कस्तर्हि रसादीनां वेदितेत्यत आह— **स्पर्शमिति** । तनुः त्वगिन्द्रियं त्वगादिभिस्तत्परं वस्तु न च गृह्णन्ति । यत् यतः अनध्यात्मविदः आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तो योगः अध्यात्मं तदनभिज्ञाः ॥ ४ ॥ योगमेवाह—**निवर्तयित्वेति** । गुरूक्तयुक्त्येति शेषः । न हि पुरुषकारेण शब्दात् श्रोत्रं निवर्तयितुं शक्यम् । यथोक्तं वार्तिके—' शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्' इति श्रुतेर्व्याख्याने—

'स्वातन्त्र्यं येषु कर्तुः स्यात् करणाकरणं प्रति ।
तान्येव तु निषिद्धानि कर्माणीह शमादिभिः ॥
अस्वातन्त्र्यं तु येषु स्यात् कर्तुः कर्मसु सर्वदा ।
समाहितोत्तयाऽथेदानीं तन्निरोधो विधीयते ।
पिण्डीकृत्येन्द्रियग्रामं बुद्धावारोप्य निश्चलम् ॥
विषयांस्तत्स्मृतीस्त्यक्त्वा तिष्ठेच्चिदनुरोधतः ।
एषोऽभ्युपायः सर्वत्र वेदान्तेषु प्रतिष्ठितः ।
तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थज्ञानोत्पत्त्यर्थमादरात् ॥ '

इति । ततो निवर्तकात्प्रमातुः परं तदुपाधिभूतबुद्ध्यादेः परं स्वं प्रत्यगभिन्नं स्वभावं स्वरूपसत्तां पश्यति ॥ ५ ॥ **कोऽसौ स्वभाव** इत्यत आह—**यत इति** । ते मुनयः समुदायं कर्त्रादिसंघातं यत्कारणं यद्धेतुकं आहुस्तं स्वभावं पश्यतीति पूर्वेणान्वयः । समुदायमाह—यः कर्ता प्रमाता येन ज्ञानकर्मकरणेन यत्प्राप्यमुद्दिश्य यस्मिन्देशे काले च यस्मिन्सुखे दुःखे वा निमित्तभूते । तां तदनुकूलां प्रवृत्तिं यत्नं आरभते यच्चारभ्य तत्कर्म दर्शनगमनादिकं करोति । किं कृत्वा करोति । यतः रागद्वेषादितः । अदृष्टात् ईश्वरेच्छातो वा गृहीत्वा अवलम्ब्येति योजना । ततश्च कर्ता कर्म करणं देशकालौ सुखदुःखे प्रवृत्त्यारंभाख्यो यत्नो गत्यादिकं रागादृष्टेश्वरादिकं च समुदायस्तस्य यत् हेतुः चिन्मात्रं तदेव स्वभाव इत्यर्थः ॥ ६ ॥ ननु किं तत्कारणं यदपेक्ष्य नित्ययोरपि जीवेशयोः कार्यत्वमुच्यते इत्याशंक्याह—**यद्वेति** । वा शब्द एवार्थे यदेव व्यापकं ईश्वराख्यं साधकं व्याप्यं जीवाख्यं चाभूत् । उभयोर्विभुत्वे नित्यत्वे च तुल्यत्वेन नियम्यनियामकभावो न स्यात् । तथा च 'अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' इत्यादयः श्रुतयो नोपरुध्येरन् । एकस्योभयात्मत्वे मानमाह—**मन्त्रवदिति** ।

'एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ '

इति मन्त्र एवात्र प्रमाणमित्यर्थः । भूतात्मा नित्यात्मा एकधेति व्यापकत्वेन बहुधेति साधकत्वेन । स्थास्यतीति स्थाणुत्वं कूटस्थत्वापरपर्यायमुच्यते । यः आत्मकारी आत्मनैव एकाद्वितीयेन करोति सर्वमित्यात्मकारी 'तदात्मानꣳस्वयमकुरुत ' इत्यादिश्रुतेः । तत्परं कारणं ' आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ' इत्यादिश्रुतेः । आनन्दमयाख्य ईश्वरस्तवान्तरकारणं शुद्धापेक्षया कार्यमित्यर्थः । तदिदमुक्तं कार्यमतो यदन्यदिति ॥ ७ ॥ एवं स्वभावस्य परमकारणत्वमुक्त्वा ज्ञानात्मतामप्याह त्रिभिः- **यथा हीति** । सुकृतैः सम्यगनुष्ठितैः पुण्यपापैः । **कर्मजैः**

यथा प्रदीप्तः पुरतः प्रदीपः
प्रकाशमन्यस्य करोति दीप्यन् ।
तथेह पञ्चेन्द्रियदीपवृक्षा
ज्ञानप्रदीप्ताः परवन्त एव ॥ ९

यथा च राज्ञो बहवो ह्यमात्याः
पृथक् प्रमाणं प्रवदन्ति युक्ताः ।
तद्वच्छरीरेषु भवन्ति पञ्च
ज्ञानैकदेशः परमः स तेभ्यः ॥ १०

यथार्चिषोऽग्नेः पवनस्य वेगो
मरीचयोऽर्कस्य नदीषु चापः ।
गच्छन्ति चायान्ति च सञ्चरन्त्य-
स्तद्वच्छरीराणि शरीरिणां तु ॥ ११

यथा च कश्चित्परशुं गृहीत्वा
धूमं न पश्येज्ज्वलनं च काष्ठे ।
तद्वच्छरीरोदरपाणिपादं
छित्वा न पश्यन्ति ततो यदन्यत् १२

तान्येव काष्ठानि यथा विमथ्य
धूमं च पश्येज्ज्वलनं च योगात् ।
तद्वत्सबुद्धिः सममिन्द्रियात्मा
बुद्धिं परं पश्यति तं स्वभावम् १३

यथात्मनोऽङ्गं पतितं पृथिव्यां
स्वप्नान्तरे पश्यति चात्मनोऽन्यत् ।
श्रोत्रादियुक्तः सुमनाः सुबुद्धि-
र्लिङ्गात्तथा गच्छति लिङ्गमन्यत् १४

उत्पत्तिवृद्धिव्ययसंनिपातै-
र्न युज्यतेऽसौ परमः शरीरी ।
अनेन लिङ्गेन तु लिङ्गमन्यद्
गच्छत्यदृष्टः फलसंनियोगात् । १५

न चक्षुषा पश्यति रूपमात्मनो
न चापि संस्पर्शमुपैति किञ्चित् ।
न चापि तैः साधयते तु कार्यं
ते तं न पश्यन्ति स पश्यते तान् १६

यथा समीपे ज्वलतोऽनलस्य
संतापजं रूपमुपैति कश्चित् ।
न चापरं रूपगुणं बिभर्ति
तथैव तद्दृश्यति रूपमस्य ॥ १७

तथा मनुष्यः परिमुच्य काय-
मदृश्यमन्यद्विशते शरीरम् ।
विसृज्य भूतेषु महत्सु देहं
तदाश्रयं चैव बिभर्ति रूपम् ॥ १८

---

पुण्यपापैः । शुभाशुभेषु शरीरेषु जडेषु । इदं अजडं स्वभावाख्यं परमकारणं ज्ञानं नित्यज्ञप्तिमात्रं निबद्धं शुभाशुभवज्जडाजडे अपि सह भवतोऽविरोधादित्यर्थः ॥८॥ **यथेति** । यथा वृक्षाग्रस्थो दीपः भूयांसं विषयमवभासयति न तथा वृक्षमूलस्थः । एवं पञ्चेन्द्रियरूपाश्चैतन्यप्रदीपयुक्ता वृक्षा इवाप्रकाशाः । ज्ञानदीपेन प्रदीप्ताः । परवन्तः । चित्प्रकाशाधीनतया प्रकाशकृतः । न स्वत इत्यर्थः । तथा च श्रुतयः—'येन वागभ्युद्यते येन चक्षूंषि पश्यन्ति येनाहुर्मनो मतम्' इत्याद्याः ॥ ९ ॥ तेभ्य इन्द्रियेभ्यः सः ज्ञानरूपः स्वभावः परमः ॥ १० ॥ अस्य ज्ञानस्य नित्यत्वं साधयति—**यथार्चिष इति** । शरीरेषु मनोद्वारा ज्ञानं निबद्धमपि शरीराण्येव नश्यन्ति न ज्ञानमित्यर्थः ॥ ११ ॥ उपाध्युपधेययोर्धीज्ञानयोरदृश्यत्वं सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम्-**यथा चेति** । गृहीत्वा व्यापारयित्वा ॥ १२ ॥ योगात् उपायात् पश्यामीत्यनुभवन्निन्द्रियात्मा जीवः । सबुद्धिः परं बुद्धिं च समं एककालं पश्यतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ देहनाशोत्पत्त्यादिना बुद्ध्युपाधिश्चिदात्मा न बाध्यते इत्याह द्वाभ्याम्—**यथात्मन इति** । अङ्गं शरीरं अन्यत् आत्मनः पृथक् स्वप्नान्तरे स्वप्नमध्ये यथा पश्यति । समनाः सबुद्धिः । मनोबुद्धियुक्तः श्रोत्रादिभिर्दशभिरिन्द्रियैः । पञ्चभिः प्राणैश्च सहितः सप्तदशात्मा । मरणे आत्मनः शरीरं पृथक् स्वस्मात्पश्यन्नपि तत्रात्मनोऽभिन्नत्वमजानन् शरीरान्तरयुक्तो भवति । लिङ्गात् स्थूलदेहात् लिङ्गं तदेव देहान्तरम् १४॥ सन्निपातो मरणम् । फलसंनियोगात् सुखदुःखप्रदकर्मसम्बन्धात् । अनेन लिंगेन शवभूतेन अदृष्टः अलक्षितः ॥ १५ ॥ एवमात्मनो बुद्धितादात्म्यभ्रान्तिकृतं संसारमुक्त्वा वस्तुतोऽसंगत्वमाह-**न चक्षुषेति** । इन्द्रियाग्राह्यत्वमुक्त्वा न स्पर्शमुपैतीत्यभोक्तृत्वद्वारा संगत्वमुक्तं न चापीत्यकर्तृत्वद्वारा ते चक्षुराद्याः । स पश्यते तानिति साक्षित्वमुक्तम् । साक्षिणोऽपि बुद्धिवृत्तिग्राह्यत्वात् । कर्मव्यतिहारे तङ् । फलद्वारा तु न पश्यन्तीत्युक्तम् ॥ १६ ॥ असंगस्यापि तप्तायःपिण्डवत् धीतादात्म्यभ्रान्त्या संसारप्रतीतिरित्याह-**यथेति** । रूपं पैङ्गल्यादिकं कश्चिदयःपिंडादिः तथापि सः वस्तुवृत्त्या दग्धृत्वपिङ्गलत्वाख्यं अपरं रूपं गुणं वा यथा न बिभर्ति । तथैव तदस्यात्मनः रूपं चैतन्यं देहे दृश्यते न तु देहो वस्तुतश्चेतनः । तथापि लोहगतं चतुष्कोणत्वादिकं वन्हाविवात्मनि देहगतं दुःखादिकं प्रतीयत इत्यर्थः ॥ १७ ॥ उक्तदृष्टान्तेनैव यद्यच्छरीरं आत्मा प्राप्नोति तस्य तस्य धर्मानात्मन्यभिमन्यत इत्याह-**तथेति** । अदृश्यं तटस्थैः तदाश्रयं देहान्तराश्रयम् ॥ १८ ॥

खं वायुमग्निं सलिलं तथोर्वीं
समंततोऽभ्याविशते शरीरी ।
नानाश्रयाः कर्मसु वर्तमानाः
श्रोत्रादयः पञ्च गुणान् श्रयन्ते ॥ १९
श्रोत्रं खतो घ्राणमथो पृथिव्या-
स्तेजोमयं रूपमथो विपाकः ।
जलाश्रयं तेज उक्तं रसं च
वाय्वात्मकः स्पर्शकृतो गुणश्च २०
महत्सु भूतेषु वसन्ति पञ्च
पञ्चेन्द्रियार्थाश्च तथेन्द्रियेषु ।
सर्वाणि चैतानि मनोनुगानि
बुद्धिं मनोऽन्वेति मतिः स्वभावम् २१
शुभाशुभं कर्म कृतं यदन्य-
त्तदेव प्रत्याददते स्वदेहे ।
मनोऽनुवर्तन्ति परावराणि
जलौकसः स्रोत इवानुकूलम् ॥ २२
चलं यथा दृष्टिपथं परैति
सूक्ष्मं महद्रूपमिवाभिभाति ।
स्वरूपमालोचयते च रूपं
परं तथा बुद्धिपथं परैति ॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मनुबृहस्पतिसंवादे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

अत्र प्रसंगात्पूर्वदेहत्यागं देहान्तरोपादानं च सप्रकारमाह —खमिति त्रिभिः। शरीरी म्रियमाणः खाद्युपादानकैर्देहांशैः खादीन् आविशते । एवं श्रोत्रादयोऽपि सप्तदश नानाश्रयाः स्वस्वोपादानगाः सन्तोऽपि कर्मसु पूर्वप्रज्ञासहितेषु वर्तमानाः श्लिष्टाः पञ्चगुणान् शब्दादीन् श्रयन्ते । अयमर्थः—स्थूलदेहनाशेऽपि कर्मणाऽवबद्धं सप्तदशात्मकं लिंगं न नश्यति किं तु देहान्तरं प्रविशति तृणजलायुकान्यायेन । तथा च श्रुतिः-'तमुत्क्रामन्तं प्राणोनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति' इति 'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा चेति' । तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरतीति' ॥ १९ ॥ तत्र किमिन्द्रियं कस्य भूतस्य गुणं श्रयते इति व्यवस्थामाह-श्रोत्रं खतः खस्य गुणं शब्दं श्रयते इत्यनुषंगः पृथिव्याः गुणं गंधं घ्राणं संश्रयते। विपाकः चक्षूरूपतेजःपरिणामः तेजोमयं रूपं श्रयते । जलाश्रयं तेजः रसप्रकाशकं रसनेन्द्रियं रसं संश्रयते । वाय्वात्मकः स्पर्शकृतः स्पर्शार्थं कृतः इन्द्रियविशेषः त्वक् तमेव वाय्वात्मकं गुणं स्पर्शं श्रयते । शब्दादिवासनासहिता एव श्रोत्रादयः कर्मसु श्लिष्टा भवन्तीत्यर्थः ॥२०॥ पञ्चानामिन्द्रियाणामर्थाः शब्दादयः भूतेषु खादिषु वसन्ति । तानि च पञ्च खादीनि इन्द्रियेषु वसन्ति । सर्वाणि चतानि शब्दादीनि खादीनि इन्द्रियाणि च मनोनुगानि। मनः बुद्धिमन्वेति। बुद्धिःस्वभावमन्वेति। तेन

'इन्द्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।'

इति गीता संगता । ततश्चार्थानां कारणमिन्द्रियाणि तेषां मनस्तस्य बुद्धिस्तस्याश्चिदात्मेति क्रमात्सर्ववासनावासितायां बुद्धौ सर्वमस्तीति तदवियोगाच्चिदात्मा पुनः पुनः संसरतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ एतदेवाह-शुभेति । स्वदेहे स्वकर्मार्जिते नूतनदेहे इन्द्रियादीनि तदेव कर्म आददते यत् ऐहिकात् अन्यत् पूर्वजन्मकृतं परावराणि अर्थबुद्ध्यादीनि पूर्वसंस्कारादुत्तरोत्तरदेहकर्माणि कुर्वन् न मुच्यत इत्यर्थः ॥ २२ ॥ नन्वेवमपरिहार्यत्वाद्वासनासन्ततेरलं मोक्षाशयेत्याशंक्यानादिकालागतमपि भ्रमं तत्त्वधीः समूलमुन्मूलयितुं क्षमते इति प्रतिपादयितुं सदृष्टान्तं संसारस्य भ्रमपूर्वकत्वमाह-चलमिति । यथा दृष्टिपथं दृग्ज्ञानं अनतिक्रान्तं सम्यक् प्रमितं वस्तु तस्य पन्था इव पन्थाः हानोपादानादिमार्गो यस्य तत् । यथा दृष्टिपथं भ्रान्तिज्ञानं तच्चलं बाधविषयतया अस्थिरं जनः परैति । पराकृत्य एति अवगच्छति वस्तुतत्त्वम् । यथा नौस्थः नौचाञ्चल्यं तीरतरौ आरोपयति नौस्थैर्ये च तद्बाधितं भवति एवं परं परमात्मानं कूटस्थमपि बुद्ध्युपधानादकूटस्थमिव भासमानं बुद्धिमार्गं भ्रान्तिजनकत्वरूपं धीनिरोधेन पराकृत्य परतत्त्वमभ्येति । एवं यथा सूक्ष्मं पुस्तकाक्षरं महद्रूपमिव महत्तररूपमिव लोचनोत्तेजनबलेनाभितो भाति । तथा सूक्ष्ममपि चिदात्मतत्त्वं बुद्धियोगात् स्थूलप्रपञ्चात्मना भाति । एवं यथा रूपं स्वमुखप्रतिबिम्बं स्वरूपं स्वस्य मुखस्य तत्त्वं स्वदृष्ट्ययोग्यमपि दर्पण आलोचयते दर्शयति । एवमेकमेव प्रत्यग्वस्तुस्वाज्ञानकल्पितधीदर्पणः पराग्भूतवियदाद्याकारेणावभासयति । तत्र यथा उपनेत्रदर्पणयोरपायेऽक्षरस्थौल्यं मुखस्य दृश्यत्वं चापैति एवं धीनिग्रहे चितः स्थूलत्वं दृश्यत्वं चापैति । तदेवं कूटस्थस्यात्मनो विकारित्वे सूक्ष्मस्य स्थूलत्वे दृग्रूपस्य दृश्यत्वे च क्रमेण दृष्टान्तत्रयम् । एवं चानादिरपि भ्रान्तिस्तत्त्वज्ञानेन पाश्चात्येनापि बाधितुं शक्या । न च भ्रान्तेरुन्मज्जनं संभवति । बुद्धेस्तत्त्वपक्षपातित्वात् । तस्माद्भ्रान्तिज्ञानापनयाय आत्मज्ञाने यतितव्यमिति भावः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

## २०३-[३०]

मनुरुवाच ।
यदिन्द्रियैस्तूपहितं पुरस्तात्
प्राप्तान्गुणान्संस्मरते चिराय ।
तेष्विन्द्रियेषूपहतेषु पश्चात्
स बुद्धिरूपः परमः स्वभावः ॥ १
यथेन्द्रियार्थान्युगपत्समन्ता-
न्नोपेक्षते कृत्स्नमतुल्यकालम् ।
तथा चलं संचरते स विद्वां-
स्तस्मात्स एकः परमः शरीरी ॥ २
रजस्तमः सत्त्वमथो तृतीयं
गच्छत्यसौ स्थानगुणान्विरूपान् ।
तथेन्द्रियाण्याविशते शरीरी
हुताशनं वायुरिवेन्धनस्थम् ॥ ३

२०३

ननु यदुक्तं निर्विकारस्य विकारित्वं सूक्ष्मस्य स्थूलत्वं अदृश्यस्य दृश्यत्वं च बुद्धियोगादिति तन्न बुद्ध्यतिरिक्तस्यात्मनोऽनुपलम्भादित्याशंक्याह-**यदिति** । 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति श्रुतेःसमनस्केन्द्रियैरुपहितं यज्जीवचैतन्यं तत् चिराय बहुकालं पुरस्तात् पूर्व प्राप्तान् गुणान् विषयान् कालान्तरे संस्मरते बाल्येऽहमिदमन्वभवमिति तदा मनोरथकाले विषयेन्द्रियसन्निकर्षाद्यभावात् । ज्ञेयज्ञानज्ञातृवासनावासिता बुद्धिरेव सर्वात्मतां प्राप्ता तदन्येन चैतन्येनावभास्यते इति अस्तिबुद्ध्यधिकश्चेतन इत्यर्थः । ननु तदा इन्द्रियाण्येव विषयवासनावासितानि बुद्ध्या प्रकाश्यन्त इत्याशंक्याह-**तेष्विति** । इन्द्रियेष्वप्युपहतेषु विलीनेषु शब्दाद्यग्रहात् पश्चात्स्वप्नकाले बुद्धेः रूपं त्रिपुटी ज्ञेयज्ञानज्ञात्रात्मिका तद्वद्रूपमस्य स बुद्धिरूपः । 'स समानः सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति । ध्यायतीव लेलायतीव' इति श्रुतेः समानो बुद्धितादात्म्यं प्राप्तः परमः सर्वोत्कृष्टः स्वभावः चिद्रूप आत्मा बुद्धेरन्योऽस्त्येव । अयं भावः-यथा जाग्रत्काले घटचक्षुषोर्भास्यभासकयोर्व्यतिरिक्तः कूटस्थो निर्विकार आदित्यः सत्तामात्रेण चक्षुषोऽनुग्रहं घटस्य च प्रकाशं करोति । एवं स्वप्नेऽपि मातृमेयात्मना स्थितां बुद्धिं तदन्य उदासीनः प्रकाशोऽवभासयेदिति । तस्मादस्ति बुद्धेरन्यस्तत्तादात्म्यभ्रान्त्या विकारित्वाद्याक्रान्त आत्मेति सिद्धम् ॥ १ ॥ ननु मनोरथ इव स्वप्नेऽपि वासनामयानीन्द्रियाणि सन्त्येवातस्तत्राप्यविशिष्टं बुद्धेरेव भासकत्वम् । तथा च श्रुतिः स्वप्नावस्थां प्रकृत्याह-'अथो खल्वाहुर्जागरितदेश एवास्येति' तच्च स्वप्नस्य जागररूपत्वमिन्द्रियाणामसत्त्वेऽनुपपन्नं इन्द्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरितमिति प्रसिद्धेः । अतो न मनोरथ इव स्वप्नेऽपि बुद्ध्यतिरिक्तचेतनासिद्धिरित्याशंक्याह-**यथेति**। स परमः युगपत् एककालम् । अतुल्यकालं अनेककालं च । अतीतानागतं पदार्थजातं कृत्स्नं इह परत्र वा जन्मनि दृष्टम् । अविशेषात्समंतान् सम्यक् अन्तः सन्निधिर्येषां तान् सन्निहितान् इन्द्रियार्थान् शब्दादीन्नोपेक्षते किं तु प्रकाशयत्येव यथेति हेतौ । तथा चलं परस्परव्यभिचारि अवस्थात्रयं सञ्चरते यतो विद्वान् साक्षी तस्मात् स व्यावृत्तेभ्योऽनुवृत्तं भिन्नं कुसुमेभ्यः सूत्रमिवेति न्यायात् एक इत्यर्थः । अयमर्थः-स्वप्नावस्थायां हि अतीतमनागतं च वस्तुजातं युगपत् सन्निहितमिव दृश्यते । तदा इन्द्रियाणां सत्त्वेऽतीतादिज्ञानं न स्यात् न ह्यतीतादिना तेषां सन्निकर्षोऽस्ति । असन्निकृष्टज्ञाने तु तदानीमिन्द्रियसद्भावकल्पना व्यर्था । न हि रज्जूरगादिष्विवाधिष्ठानज्ञानार्थं तदा इन्द्रियापेक्षास्ति आत्मनो बुद्धेर्वाधिष्ठानत्वेनाभिमतस्येन्द्रियायोग्यत्वात् । तस्मात् स्वप्ने धीरेवैका मातृमानमेयात्मना सती तदन्येन साक्षिणा भास्यते। तस्याश्चावस्थात्रयं चालमिति अविशेषात् जागरेऽपि सैव मात्राद्याकारेऽपि परिशिष्ट एक एव साक्षी शरीरी शरीरदर्शीति ज्ञेयमिति । अथो खल्विति श्रुतिस्तु पूर्वपक्षविषयैवेति श्रुत्यर्थविदां प्रसिद्धम् । अन्यथा चायं पुरुषः स्वयं ज्योतिरिति स्वप्ने आत्मनः स्वयंज्योतिष्ट्वज्ञापनार्थं प्रवृत्तस्य ज्योतिर्ब्राह्मणस्य निर्विषयत्वं स्यादिति दिक् ॥ २ ॥ चलं सञ्चरते इत्येतद्व्याचष्टे-**रज इति** । प्रत्येकं त्रिगुणात्मकानि जाग्रदादीनि बुद्धेः स्थानानि । तेषां गुणान् तद्गतसुखदुःखादीन् विरूपान् परस्परविलक्षणान् । गच्छति जानात्येव न भुंक्ते अवस्थान्तर्गतस्य दुःखादेरन्यत्रादर्शनात् । तथा च श्रुतिः-'स यत्तत्र पश्यत्यतिपुण्यं च पापं चानन्वागतस्तेन भवत्यसंगो ह्ययं पुरुषः' इति । अतो बुद्धेरेव दुःखादिभोक्तृत्वं तत एव च कर्तृत्वं न त्वात्मा भोक्ता कर्ता वा किंतूदासीनबोधमात्र एवेत्यर्थः । इममेव न्यायमिन्द्रियसंचारेऽप्यतिदिशति-**तथेति** । अवस्थापथेनेव इन्द्रियपथेनापि बुद्धिरेव सुखादिभोक्त्रीत्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः-**हुतेति** । यथा काष्ठस्थोऽग्निरेव काष्ठं दहति न वायुः । स त्वग्निं दीपयत्येव । एवमिन्द्रियस्था धीरे-

**न चक्षुषा पश्यति रूपमात्मनो**
**न पश्यति स्पर्शनमिन्द्रियेन्द्रियम् ।**
**न श्रोत्रलिङ्गं श्रवणेन दर्शनं**
**तथा कृतं पश्यति तद्विनश्यति ॥ ४**
**श्रोत्रादीनि न पश्यन्ति**
**स्वं स्वमात्मानमात्मना ।**
**सर्वज्ञः सर्वदर्शी च**
**सर्वज्ञस्तानि पश्यति ॥ ५**
**यथा हिमवतः पार्श्वं पृष्ठं चन्द्रमसो यथा ।**
**न दृष्टपूर्वं मनुजैर्न च तन्नास्ति तावता ॥ ६**
**तद्वद्भूतेषु भूतात्मा सूक्ष्मो ज्ञानात्मवानसौ ।**
**अदृष्टपूर्वश्चक्षुर्भ्यां न चासौ नास्ति तावता ॥**
**पश्यन्नपि यथा लक्ष्म जगत्सोमेन विन्दति ।**
**एवमस्ति न चोत्पन्नं न च तन्न परायणम् ८**
**रूपवन्तमरूपत्वादुदयास्तमने बुधाः ।**
**धिया समनुपश्यन्ति तद्गताः सवितुर्गतिम् ९**
**तथा बुद्धिप्रदीपेन दूरस्थं सुविपश्चितः ।**
**प्रत्यासन्नं निनीषन्ति ज्ञेयं ज्ञानाभिसंहितम्**

वेन्द्रियजं सुखादिकं भुंक्ते चितिस्तु बुद्धिं चेतयत एव न तु तदीयं सुखादिकं भुंक्ते इत्यर्थः ॥ ३ ॥ एवं बुद्धेः पृथक् प्रसाधितमात्मतत्त्वं चक्षुराद्यगोचरमित्याह-**न चक्षुषेति** । रूपं स्वरूपं चक्षुषा न पश्यति स्पर्शनं त्वगिन्द्रियं न पश्यति न स्पृशति । रूपस्पर्शराहित्यात् । अत्र हेतुः- यत इन्द्रियेन्द्रियं 'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः'इति श्रुतेरिन्द्रियप्रकाशकं नेन्द्रियप्रकाश्यत्वं यातीत्यर्थः । न हि दारुदाहकोऽग्निर्दारुदाह्यो भवति । इन्द्रियाणामिति पाठे निर्धारणे षष्ठी । इन्द्रियाणां मध्ये स्पर्शनं यत्तदपि न पश्यतीति योज्यम् श्रोत्रेण लिंग्यते गम्यत इति श्रोत्रगम्यमपि न अशब्दत्वात्। एतच्च प्रमाणान्तराणामप्युपलक्षणम्। कथं तर्हि तस्य 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इत्युपनिषद्गम्यत्वं ' दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या ' इति धीगम्यत्वं च श्रूयते इत्याशंक्याह- **श्रवणेन दर्शनं तथा कृतमिति** । तथा कथं येन पश्यति तद्विनश्यतीति तच्छब्दयोगाद्येनेत्यध्याहार्यम्। अयमर्थः-'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति आत्मदर्शनार्थत्वेन श्रवणादिकं विधीयते। तत्र विदिततत्त्वंपदार्थस्य तत्त्वमसीति वाक्यादात्मनो ब्रह्मभावावगतौ वेदा अवेदा इति वेदान्तानामपि बाधः श्रूयते । अन्यस्य तु वाक्यार्थध्यानेन तदवगतौ मनसोऽपि लयः श्रूयते। 'तावन्मनो निरोद्धव्यं हृदि यावत्क्षयं गतम्' इति। तदिदमुक्तम्-येन करणेन शब्देन मनसा वा सर्वं पश्यति आत्मानं तद्विनश्यति इति । एवं श्रवणेन वेदान्तवाक्यविचारेण आत्मनो दर्शनं तथा तादृशं प्रत्यस्तमितसमस्तक्रियाकारकादिद्वैतं कृतं विहितम् । तथा च श्रुतिः 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् ' इत्यादि॥४॥ **श्रोत्रेति** । स्वं स्वं आत्मानं न पश्यन्ति तत्र किमु वक्तव्यं परमात्मानं न पश्यन्तीत्यर्थः। सर्वश्चासौ ज्ञश्चेत्यद्वयचिन्मात्रत्वमुक्तम्। सर्वदर्शीति तस्यैव दृश्यद्रष्टात्मत्वमुक्तम्। पुनः सर्वज्ञ इति दृश्यद्रष्ट्रोर्नित्यसंबंधश्चोक्त इत्यपौनरुक्त्यम्॥५॥

एवमात्मनि साधकं प्रमाणं प्रदर्श्य बाधकाभावमप्याह- **यथेत्यादिना** ॥ ६ ॥ ज्ञानात्मवान् ज्ञानेनैव स्वरूपवान् ज्ञानस्वरूप इत्यर्थः ॥ ७ ॥ आत्मा प्रतीयमानोऽपि न प्रतीयत इति सदृष्टान्तमाह—**पश्यन्निति** । सोमे आदर्शतुल्ये प्रतिबिम्बितं जगत् लक्ष्म कलंकबुद्ध्या पश्यन्नपि न विन्दति इदं जगदेव चन्द्रे दृश्यत इति न जानाति एवं आत्मज्ञानमस्ति । यदाहुः न चायमेकान्तेनाविषयः अस्मत्प्रत्ययविषयत्वादिति अपरोक्षत्वाच्च प्रत्यगात्मप्रसिद्धेरिति च । तथापि ब्रह्माभिन्नत्वेनाज्ञातत्वात् न च उत्पन्नं ज्ञानमस्ति । ननु यद्यात्मैव ब्रह्म तर्हि स ज्ञात एव । न च तज्ज्ञानेऽपि शोकादिनिवृत्तिरूपं फलं दृश्यतेऽतः किं शास्त्रेणेत्याशंक्याह-**न च तन्न परायणम्**। तत् आत्मवेदनं न परायणमिति न च तदेव परायणमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति'इति ज्ञातोऽपि भर्जुवदन्यथात्वेन गृहीतत्वात्सम्यग्ज्ञानाय शास्त्रापेक्षास्तीत्यर्थः । भर्जुः किल राजवल्लभो दूरदेशस्थोऽभूत्सोऽन्यैरमात्यैर्भर्जुर्मृतो ब्रह्मराक्षसो जात इति राज्ञे ज्ञापितम् । तं च समीपगतं राजा पश्यन्नपि धीदोषान्न पश्यतीत्याचक्षते **वृद्धाः** ॥ ८ ॥ अपि चादृष्टमपि पदार्थमनुमानेन जानन्तीत्याह-**रूपेति**। स्थूलदृष्ट्या रूपवन्तमपि वृक्षं उदयास्तमने आद्यन्ते मृन्मात्रत्वेन अरूपत्वात् । बुधाः धिया अरूपं मृन्मात्रमेव समनुपश्यन्ति । यथाहुः—' आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ' इति । तथा तद्गता उदयास्तमयगतास्तद्दर्शिनः सवितुर्गतिं दूरत्वदोषात्प्रत्यक्षेण गृह्यमाणामपि देशान्तरप्राप्तिलिङ्गेन धिया पश्यन्ति । एवं दृश्यमानस्यासत्त्वेऽदृश्यमानस्य सत्त्वे च दृष्टान्तद्वयमुक्तम् ॥ ९ ॥ दार्ष्टान्तिकमाह—**तथेति** । यथेदं तथा दूरस्थं रविगतिवत् दुर्लक्ष्यं प्रकरणादात्मानं बुद्धिप्रदीपेन पूर्वोक्तरीत्या समनुपश्यन्तीत्यनुषज्यते । प्रत्यासन्नं निकटस्थमपि ज्ञेयं

न हि खल्वनुपायेन कश्चिदर्थोऽभिसिद्ध्यति
सूत्रजालैर्यथा मत्स्यान् बध्नन्ति जलजीविनः

मृगैर्मृगाणां ग्रहणं पक्षिणां पक्षिभिर्यथा।
गजानां च गजैरेव ज्ञेयं ज्ञानेन गृह्यते॥ १२

अहिरेव ह्यहेः पादान् पश्यतीति हि नः श्रुतं
तद्वन्मूर्तिषु मूर्तिस्थं ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति १३

नोत्सहन्ते यथा वेत्तुमिन्द्रियैरिन्द्रियाण्यपि
तथैवेह परा बुद्धिः परं बोध्यं न पश्यति १४

यथा चन्द्रो ह्यमावास्यामलिङ्गत्वान्न दृश्यते।
न च नाशोऽस्य भवति तथा विद्धि शरीरिणं

क्षीणकोशो ह्यमावास्यां चन्द्रमा न प्रकाशते
तद्वन्मूर्तिविमुक्तोऽसौ शरीरी नोपलभ्यते॥

यथाकाशान्तरं प्राप्य चन्द्रमा भ्राजते पुनः।
तद्वल्लिङ्गान्तरं प्राप्य शरीरी भ्राजते पुनः १७

जन्म वृद्धिः क्षयश्चास्य प्रत्यक्षेणोपलभ्यते।
सा तु चान्द्रमसी वृत्तिर्न तु तस्य शरीरिणः

उत्पत्तिवृद्धिवयसा यथा स इति गृह्यते।
चन्द्र एव त्वमावास्यां तथा भवति मूर्तिमान्

नोपसर्पद्विमुञ्चद्वा शशिनं दृश्यते तमः।
विसृजंश्चोपसर्पंश्च तद्वत्पश्य शरीरिणम् २०

यथा चन्द्रार्कसंयुक्तं तमस्तदुपलभ्यते।
तद्वच्छरीरसंयुक्तः शरीरीत्युपलभ्यते॥ २१

यथा चन्द्रार्कनिर्मुक्तः स राहुर्नोपलभ्यते।
तद्वच्छरीरनिर्मुक्तः शरीरी नोपलभ्यते॥ २२

---

प्रपञ्चं निनीषन्ति नेतुमिच्छन्ति। किं प्रति ज्ञानाभिसंहितं ज्ञानशब्देनाभिसंहितं ज्ञानशब्दाभिधेयं ब्रह्म। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिभ्यः। तत्प्रति ब्रह्मणि प्रविलापयितुमिच्छन्तीत्यर्थः॥ १०॥ एतच्चोपायेनैव सिद्ध्यतीति सदृष्टान्तमाह—**नहीति**॥ ११॥ उपादानोपादेययोरभेदात्। मृगेण इव ज्ञानेन स्वसजातीयेन ज्ञेयं गृह्यते वशीक्रियते। भूम्येव वृक्ष इत्यर्थः॥ १२॥ मूर्तिषु स्थूलदेहेषु। मूर्तिस्थं लिङ्गदेहस्थं ज्ञेयमात्मानं ज्ञानेन **धीवृत्त्या**॥ १३॥ नन्वात्मनो धीवृत्तिविषयत्वे जडत्वापत्तिरित्याशंक्याह—**नोत्सहन्त इति**। परा बुद्धिश्चरमा धीवृत्तिः। परं शुद्धं बोध्यं न पश्यति घटवत्। तथा च वृत्तिव्याप्तिरेव ब्रह्मण्यस्ति न तु फलव्याप्तिरित्यर्थः। यथोक्तम्—

' फलव्याप्यत्वमेवेह शास्त्रकृद्भिर्निराकृतम्।
ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्ष्यते '॥

इति॥ १४॥ वृत्तिरूपोपाधिलयेऽपि ब्रह्मास्ति न तु शून्यशेष इति सदृष्टान्तमाह—**यथेति**। अमावास्यां सूर्येण सहवासं प्राप्य। अलिङ्गत्वात् ज्ञापकोपाधिशून्यत्वात्। तथाऽनष्टं शरीरिणं विद्धि॥ १५॥ कोशः स्थूलशरीरं मूर्त्या वृत्त्या विमुक्तः॥ १६॥ एवं सुप्तिसमाध्योरात्मनः सत्त्वमुक्त्वा व्युत्थानलिङ्गेनापि तदाह—**यथेति**। आकाशान्तरं अवकाशभेदं लिगान्तरमित्युक्तेः समाधौ पूर्वलिङ्गनाश उक्तः। तथा दृष्टिसृष्टिन्यायेन लिङ्गान्तरोत्पत्तिरित्यर्थः॥१७॥ **जन्मेति**। चान्द्रमसी चन्द्रमण्डलस्य वृत्तिर्धर्मः। एवं शरीरस्यैव जन्मादिर्नात्मन इत्यर्थः॥१८॥ तत्र परमतेन युक्तिमाह—**उत्पत्तीति**। उत्पत्त्यादिकालभेदात् परिमाणादिभेदेन शरीरभेदेऽपि स एवायं देवदत्त इति शरीरिण ऐक्यं प्रत्यभिज्ञायते। एवममावास्यामित्यदर्शनं लक्ष्यते। तत् अदर्शनं गतोऽपि मूर्तिमान् लब्धदेहश्चन्द्रोप्येक एव। बाल्याद्यवस्थान्तरप्राप्ताविव देहान्तरप्राप्तावपि एक एव देहीत्यर्थः॥ १॥ देहदेहिनोः सम्बन्धोऽयं प्रतीयमानोऽपि कालत्रयेऽपि नास्तीत्याह—**नेति**। चिद्रूपं देहिनं अचिद्रूपो देहः। प्रकाशमन्धकार इव स्प्रष्टुं त्यक्तुं वा न शक्नोतीत्यर्थः॥२०॥ एवं सत्यपि देहं विना न देहिनः प्रकाशो नापि देहिनं विना देहप्रकाश इति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम्—**यथेति**। तमो राहुः अदृश्योऽपि दृश्येनार्कादिना युक्त एव प्रकाशते एवमात्मा देहेनेति ' अयमहमस्मि ' इति प्रकाशते। देहा-भावे तु सुषुप्तौ न स्पष्टं प्रकाशत इत्यर्थः। विनाशमेवापीतो भवतीत्यादिश्रुतेः॥२१॥ **यथेति**। दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्व्यत्ययः। यथा अर्कवियुक्तो राहुर्न प्रकाशते। एवं चैतन्यमन्तरेण जडो देहो न प्रकाशत इत्यर्थः। दार्ष्टान्तिकेऽक्षरयोजना तु—तद्वत् राहुवत् अप्रकाशमानं शरीरं स्वीयत्वेन यस्यास्तीति तद्वच्छरीरश्चिदात्मा तेन विनिर्मुक्तः शरीरी नोपलभ्यते इति। स्वर्गो ध्वस्त इत्यादौ स्वर्गमात्रध्वंस इव शरीरमात्रानुपलम्भो विवक्षितः। अनयैव रीत्या पूर्वश्लोकेऽपि शरीरोपलम्भे आत्मनोऽन्वयः प्रदर्शनीयः। यथाश्रुतरीत्या च उभयोरपि श्लोकयोरात्मोपलम्भे शरीरान्वयव्यतिरेकौ दर्शनीयौ॥ २२॥

**यथा चन्द्रो ह्यमावास्यां नक्षत्रैर्युज्यते गतः। तद्वच्छरीरनिर्मुक्तः फलैर्युज्यति कर्मणः ॥ २३**

**इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मनुबृहस्पतिसंवादे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥**

## २०४–[३१]

**मनुरुवाच ।**

**यथा व्यक्तमिदं शेते स्वप्ने चरति चेतनम्। ज्ञानमिन्द्रियसंयुक्तं तद्वत्प्रेत्य भवाभवौ ॥ १**

**यथाम्भसि प्रसन्ने तु रूपं पश्यति चक्षुषा। तद्वत्प्रसन्नेन्द्रियत्वाज्ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति ॥ २**

**स एव लुलिते तस्मिन् यथा रूपं न पश्यति तथेन्द्रियाकुलीभावे ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति ॥ ३**

**अबुद्धिरज्ञानकृता अबुद्ध्या कृष्यते मनः। दुष्टस्य मनसः पञ्च संप्रदुष्यन्ति मानसाः ४**

**अज्ञानतृप्तो विषयेष्ववगाढो न तृप्यते। अदृष्टवच्च भूतात्मा विषयेभ्यो निवर्तते ॥ ५**

**तर्षच्छेदो न भवति पुरुषस्येह कल्मषात्। निवर्तते तदा तर्षः पापमन्तगतं यदा ॥ ६**

**विषयेषु तु संसर्गाच्छाश्वतस्य तु संश्रयात्। मनसा चान्यथा काङ्क्षन्परं न प्रतिपद्यते ॥ ७**

**ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः। यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि**

**प्रसृतैरिन्द्रियैर्दुःखी तैरेव नियतैः सुखी। तस्मादिन्द्रियरूपेभ्यो यच्छेदात्मानमात्मना**

**इन्द्रियेभ्यो मनः पूर्वं बुद्धिः परतरा ततः। बुद्धेः परतरं ज्ञानं ज्ञानात्परतरं महत् ॥ १०**

---

नन्वेवं मरणे शरीराभावादात्मनोऽप्यभावः स्यादित्याशंक्य तत्रापि शरीरान्तरसम्बन्धोऽस्तीति सदृष्टान्तमाह—**यथेति**। अमावास्यां सूर्येण सहवासं गतश्चन्द्रोऽस्माभिर्नक्षत्रयुक्तत्वेन समयान्तरे इवादृश्यमानोऽपि तद्युक्तोऽस्त्येव। एवमेकशरीरनिर्मुक्त आत्मा कर्मणः फलभूतैः शरीरान्तरैर्युज्यत एवेति न शरीराभावादात्माभावोऽस्ति। हेत्वभावादित्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

**२०४**

देहसम्बन्धस्यापरिहार्यत्वं श्रुत्वा मुमुक्षोरुद्वेगो मा भूदिति तन्निवृत्तिसाधनं योगं वक्ष्यन् सदृष्टान्तं देहावियोगप्रकारमाह—**यथेति**। यथा व्यक्तं स्थूलशरीरं शेते स्वप्ने चेतनं लिङ्गशरीरं प्रेत्य व्यक्तात् वियुज्य चरति। तद्वद्भवः संसारः तथा इन्द्रियसंयुक्तं लिङ्गमपि शेते। सुषुप्तौ केवलं ज्ञानं प्रेत्य लिङ्गात् वियुज्य चरति। तद्वदभवो मोक्ष इत्यर्थः ॥ १ ॥ ज्ञेयमात्मानं ज्ञानेन बुद्ध्या आत्मज्ञानान्मुच्यते। तच्चेन्द्रियजयाद्भवतीत्यर्थः ॥ २ ॥ विपर्यये बन्धमाह—**स इति**। ज्ञाने बुद्धौ न पश्यति ॥ ३ ॥ अबुद्धिरविद्या अनित्याशुचिदुःखानात्मसु देहादिषु नित्यसुखशुचित्वात्मबुद्धिर्विपर्ययरूपा सा चाज्ञानजा तया मनः आकृष्यते रागाद्याक्रान्तं भवति। पञ्च श्रोत्रादयः। मानसाः मनःप्रधानाः ॥ ४ ॥ अज्ञानतृप्तः मोहपूर्णः। अवगाढोऽत्यन्तमग्नः अदृष्टवत् धर्माधर्मयुक्तं यथा स्यात्तथा। भूतात्मा जीवः। विषयेभ्यः शब्दादिभ्यो भोगार्थं निवर्तते मृतः पुनर्जायते ॥५॥ अन्तं नाशं गतं अन्तगतम्। द्वितीयाश्रितेति समासः तर्षः तृष्णा ॥ ६ ॥ शाश्वतस्येति भावप्रधानो निर्देशः। अन्यथा सुखदुःखसाधनयोर्विपरीतम् ॥ ७ ॥ प्रख्ये स्वच्छे आत्मनि बुद्धौ ॥ ८ ॥ प्रसृतैर्विषयेष्वनुगतैः नियतैर्निगृहीतैः इन्द्रियैः रूप्यन्ते निरूप्यन्ते इति इन्द्रियरूपेभ्यः शब्दादिभ्यो यच्छेत्। आत्मानं इन्द्रियसंज्ञं मनसैव निगृह्णीयात् ॥ ९ ॥ लवणोदकन्यायेन कारणे कार्यलयनियमादिन्द्रियमनोबुद्धिज्ञानमहतां पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरस्मिन्प्रविलयाय तेषां कार्यकारणभावमाह—**इन्द्रियेभ्य इति**। पूर्वं कारणं ज्ञानं जीवात्मा महत्परमात्मा तथा चानेनैव क्रमेण श्रुतावपि इन्द्रियादीनां प्रविलापनं दृश्यते।

'यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि'

इति। श्रुत्यर्थस्तु—वाक् वाचं वागादिप्राग्रेन्द्रियाणि मनसि नियच्छेत्। मनसी इति दैर्घ्यं छांदसम्। वागादिव्यापारमुत्सृज्य मनोमात्रेणावतिष्ठेतेत्यर्थः। मनोऽपि विषयविकल्पाभिमुखं ज्ञानशब्दोदितायां बुद्धौ नियच्छेत्। तां च महत्यात्मनि भोक्तरि नियच्छेत्। अस्मीत्येतावन्मात्रेणावतिष्ठेत। तमपि शान्ते परस्मिन्नात्मनि परस्यां काष्ठायां अपास्तसमस्तविशेषे नियच्छेदिति ॥१०॥

**अव्यक्तात्प्रसृतं ज्ञानं ततो बुद्धिस्ततो मनः ।**
**मनःश्रोत्रादिभिर्युक्तं शब्दादीन् साधु पश्यति**

**यस्तांस्त्यजति शब्दादीन्**
**सर्वाश्च व्यक्तयस्तथा ।**

**विमुञ्चेत्प्राकृतान्ग्रामां-**
**स्तान्मुक्त्वाऽमृतमश्नुते ॥ १२**

**उद्यन्हि सविता यद्वत्सृजते रश्मिमण्डलम् ।**
**स एवास्तमुपागच्छंस्तदेवात्मनि यच्छति ॥**

**अन्तरात्मा तथा देहमाविश्येन्द्रियरश्मिभिः**
**प्राप्येन्द्रियगुणान्पञ्च सोऽस्तमावृत्य गच्छति**

**प्रणीतं कर्मणा मार्गं नीयमानः पुनः पुनः ।**
**प्राप्नोत्ययं कर्मफलं प्रवृत्तं धर्ममाप्तवान् ॥ १५**

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।**
**रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ १६**

**बुद्धिः कर्मगुणैर्हीना यदा मनसि वर्तते ।**
**तदा संपद्यते ब्रह्म तत्रैव प्रलयं गतम् ॥ १७**

**अस्पर्शनमशृण्वानमनास्वादमदर्शनम् ।**
**अघ्राणमवितर्कं च सत्त्वं प्रविशते परम् ॥ १८**

**मनस्याकृतयो मग्ना मनस्त्वभिगतं मतिम् ।**
**मतिस्त्वभिगता ज्ञानं ज्ञानं चाभिगतं परम्**

प्रविलापनक्रमनियमाय उत्पत्तिक्रममाह—**अव्यक्तादिति** । अव्यक्तात् शुद्धाचिन्मात्रात् युक्तं व्यापृतं मनसः श्रोत्रादीनि श्रोत्रादिभ्यः शब्दादयः प्रसृता इत्यर्थः । तथा च सुषुप्तौ श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येतीत्यात्मनि सविषयाणामिन्द्रियमन आदीनां लयः । प्रबोधे च एतस्मादात्मनः सर्वे प्राणा यथाऽऽयतनं विप्रतिष्ठन्ते। प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका इति प्राणशब्दितेभ्य इन्द्रियेभ्यो देवानामादित्यादीनां तेभ्यो लोकानां चोत्पत्तिः श्रूयते । तस्मादुक्त एव शब्दार्थः । ननु किमर्थमयं क्रमो विवक्ष्यते असमाधौ समाधिभ्रमानिवृत्त्यर्थमिति ब्रूमः । तथाहि पूर्वपूर्वकक्षातः उत्तरोत्तरकक्षां प्रविविक्षतो योगिनो निरुद्ध्यमानं चित्तं दैनंदिनलयाभ्यासाल्लीयते त्रस्तपाक्षिवत् पूर्वावस्थां वा सहसा गच्छति । तावेतौ लयविक्षेपौ हेयतया श्रूयेते—

'लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ।
यदायात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्' इति ।

तत्र स्थूलप्रपञ्चात् सूक्ष्मं गच्छन्मध्ये लीनः सुषुप्त एव। सूक्ष्मात्कारणं गच्छन् लीनो विदेहः । कारणात् शुद्धं गच्छन् लीनः प्रकृतिलयः । शुद्धं प्राप्तो जीवन्मुक्तः। तत्राद्यः संसार्येव मध्यमौ क्रममुक्तिभाजौ अन्त्यः सद्योमुक्तिभागिति ॥ ११ ॥ तदेतदाह-**यस्तानिति** । त्यजति त्यजेत् । व्यक्तयः व्यक्तीः शब्दाद्याश्रयभूतानि वियदादीनि कारणशरीराणि मुक्त्वा हार्दाकाशे भासमानानि विमुञ्चेत् । प्राकृतान् प्रकृत्युत्थान् ग्रामान् ग्रामवदन्तःकरणपान्थस्य संश्लेषस्थानानि स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराणि मुक्त्वाऽमृतं कैवल्यमश्नुते ॥ १२ ॥ प्राकृतान् ग्रामानित्यत्र सांख्याभिमता प्रकृतिर्मा प्रसाङ्क्षीति आत्मन एवेन्द्रियाद्युदयास्तमयाविति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम्—**उद्यन्निति** । इन्द्रियगुणान् इन्द्रियभोग्यान् रूपादीन् आवृत्य अस्तं स्वरूपं गच्छतीति योजना ॥ १४ ॥ अस्य पुनः पुनर्देहावाप्तौ हेतुमाह-**प्रणीतमिति** । प्रणीतं कर्मणा उपस्थापितं मार्गं विषयं कर्मणैव नीयमानः कर्मफलं सुखादि प्राप्नोति । यतः प्रवृत्तं प्रवृत्तिप्रधानं धर्मं पुण्यपापात्मकं आप्तवान् कृतवान् । आत्मविदिति पाठे प्रारब्धकर्ममात्रविषयोऽयं श्लोकः ॥ १५ ॥ एतत्परिहारार्थं निवृत्तं धर्ममाह—**विषया इति** । आहरणं आहारो विषयभोगस्तद्वर्जितस्य विषयाः शब्दाद्यभिलाषाः विनिवर्तन्ते परं तु रसो वासनात्मको न निवर्तते सोऽपि परं आत्मानं दृष्ट्वा अवाप्तसकलकामस्य पुंसो निवर्तते । भोगेच्छां त्यक्त्वाऽऽत्मानं पश्यतो विषयबन्धो निवर्तत इत्यर्थः ॥ १६ ॥ कर्मगुणैः कर्माणि गुणभूतानि येषां तैर्विषयसङ्गैः मनसि मनःप्रधाने त्वंपदार्थेऽस्मितामात्रे तदा मनोऽपीति शेषः । ब्रह्म संपद्यते कुतः यतस्तत्रैव प्रलयं गतं भवति ॥ १७ ॥ ब्रह्मपदार्थमाह-**अस्पर्शनमिति** । स्पर्शादिहीनत्वात् स्पर्शनादिक्रियानाश्रयम् । अनिन्द्रियत्वात् श्रवणादिक्रियाहीनम् । अशृण्वानम् अवितर्कं अनुमानागम्यम् ईदृशं परं ब्रह्म सत्त्वं बुद्धिः प्रविशते ॥ १८ ॥ अध्यायार्थमुपसंहरति-**मनसीति** । आकृतयो घटादिव्यक्तयः मनःसंकल्पकृतत्वात्तत्रैव मग्ना भवन्ति । तथा चाक्षपादाचार्यप्रणीतं सूत्रम् । **दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृता इति ।** एवं मनसो बुद्धौ बुद्धेर्जीवे तस्य ब्रह्मणि च लय इत्यर्थः ॥ १९ ॥

इन्द्रियैर्मनसः सिद्धिर्न बुद्धिं बुध्यते मनः । न बुद्धिर्बुध्यते व्यक्तं सूक्ष्मं त्वेतानि पश्यति २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मनुबृहस्पतिसंवादे
चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

## २०५-[३२]

मनुरुवाच ।
दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते
यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तं नानुचिन्तयेत्
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि चाभ्येति भूयश्चापि प्रवर्तते २
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ३
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः
न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हति ।
अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमम् ॥ ५
सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः ।
स्निग्धस्य चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् ६
परित्यजति यो दुःखं
सुखं वाप्युभयं नरः ।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं
न ते शोचन्ति पण्डिताः ॥ ७
दुःखमर्था हि युज्यन्ते पालने न च ते सुखम् ।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत्
ज्ञानं ज्ञेयाभिनिर्वृत्तं विद्धि ज्ञानगुणं मनः ।
प्रज्ञाकरणसंयुक्तं ततो बुद्धिः प्रवर्तते ॥ ९
यदा कर्मगुणोपेता बुद्धिर्मनसि वर्तते ।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म ध्यानयोगसमाधिना १०
सेयं गुणवती बुद्धिर्गुणेष्वेवाभिवर्तते ।
अपरादभिनिःसृत्य गिरेः शृङ्गादिवोदकम्

---

सिद्धिर्नेति नकारः काकाक्षिवदुभयत्र संबध्यते । कार्येण कारणाव्याप्तेरिन्द्रियादयः स्वं स्वं कारणं न बुद्ध्यन्ते । सूक्ष्मं तु चिदात्मा सर्वं पश्यति तदनुविद्धा उत्तरे तु स्वं स्वं कार्यं पश्यन्तीत्यर्थः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

२०५

**दुःखोपघाते इति** । दुःखरूपे उपघाते प्रागुक्ते योगे विघ्ने सति शारीरे व्याध्यादौ मानसे शोकादौ च यस्मिन् सति यत्नो योगाभ्यासः कर्तुं न शक्यते तं दुःखोपघातं नानुचिन्तयेत् । अचिन्तयैव तं परिहरेदित्यर्थः ॥ १ ॥ एतदेवाह—**भैषज्यमिति** ॥ २ ॥ प्रज्ञामेवाह—**अनित्यमिति** । न गृध्येत् गर्धं न कुर्यात् ॥ ४ ॥ उपक्रमं प्रतीकारोपायम् ॥ ५ ॥ मरणं भवति ॥ ६ ॥ ते ब्रह्माभिगताः ॥ ७ ॥ पालने च ते सुखं नेति सम्बन्धः । दुःखेन च दुःखेऽपि च सति नाधिगम्यन्ते कदाचित् ॥८॥ एवं दुःखनिवृत्त्युपायं वैराग्यमुक्त्वा सुखप्राप्त्युपायं ब्रह्मात्मज्ञानमाह—**ज्ञानमिति** । ज्ञानं ब्रह्म- ज्ञेयं अहंकारादि घटान्तं तदात्मना अभिनिर्वृत्तं अविद्यया निष्पन्नं अत एव मनः ज्ञानगुणं ज्ञानस्य धर्मः । कनकस्येव कटकं प्रज्ञाकरणैः ज्ञानेन्द्रियैः संयुक्तं तद्यदा भवति ततोऽनन्तरं बुद्धिर्विषयाकारा वृत्तिर्भवति । एतेन 'यदेतद्धृदयं मनश्च' इत्युपक्रम्य सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्त्येष ब्रह्मैष इन्द्र इत्यादिना प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्मेत्यन्तेन करणदेवताभूतभौतिकानामर्थानां प्रज्ञात्मत्वं प्रज्ञाप्रतिष्ठात्वं च हाटककटकन्यायेनोक्त्वा तामेव प्रज्ञां ब्रह्मेति वदन्त्याः श्रुतेरर्थो ब्रह्माद्वैतं पादत्रयेण दर्शितम् । चतुर्थेन तत्कारणाविद्यावियोगहेतुर्बुद्धिरिति चोक्तम् ॥ ९ ॥ बुद्धेर्निग्रहस्तदभिव्यक्तिहेतुरित्याह—**यदेति** । यदा कर्मगुणैः कर्मोत्थैः संस्कारैः सहिता बुद्धिः मनसि मननात्मिकायां धीवृत्तौ वर्तते तदात्मना परिणमते तदा ब्रह्म प्रज्ञायते । तादृशधीवृत्त्युदये हेतुमाह—**ध्यानेति**। ध्यानं यमनियमादिभिः पूर्वाङ्गैः सहितं ध्यानं ध्येयाकारप्रत्ययसंततिः स एव योगाख्यस्ततो निष्पन्नेन समाधिना ब्रह्माकारवृत्तिविशेषेण । कर्मणोपेतेति पाठे कर्मणः बाह्यविषयप्रकाशनादपेतेति व्याख्येयम् ॥१०॥ गुणवती इन्द्रियादिमती गुणेषु रूपादिषु अपरात् अज्ञानात् ॥११॥

यदा निर्गुणमाप्नोति ध्यानं मनसि पूर्वजम् ।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म निकषं निकषे यथा ॥ १२
मनस्त्वपहृतं पूर्वमिन्द्रियार्थनिदर्शकम् ।
न समक्षगुणापेक्षि निर्गुणस्य निदर्शकम् १३
सर्वाण्येतानि संवार्य द्वाराणि मनसि स्थितः
मनस्येकाग्रतां कृत्वा तत्परं प्रतिपद्यते ॥ १४
यथा महान्ति भूतानि निवर्तन्ते गुणक्षये ।
तथेन्द्रियाण्युपादाय बुद्धिर्मनसि वर्तते ॥ १५
यदा मनसि सा बुद्धिर्वर्ततेऽन्तरचारिणी ।
व्यवसायगुणोपेता तदा संपद्यते मनः ॥ १६
गुणवद्भिर्गुणोपेतं यदा ध्यानगुणं मनः ।
तदा सर्वान् गुणान् हित्वा निर्गुणं प्रतिपद्यते
अव्यक्तस्येह विज्ञाने नास्ति तुल्यं निदर्शनम्
यत्र नास्ति पदन्यासः कस्तं विषयमाप्नुयात्
तपसा चानुमानेन गुणैर्जात्या श्रुतेन च ।
निनीषेत्परमं ब्रह्म विशुद्धेनान्तरात्मना १९

यदा अज्ञाननाशकाले ध्यानं ध्येयं वस्तु मनसि धीवृत्तौ प्राप्नोति अभिव्यज्यते पूर्वजामित्यज्ञानस्यापि कारणम् । तस्मादव्यक्तमुत्पन्नमित्यादिस्मृतेः। निकषे कषपाषाणे निकषं स्वर्णरेखा प्रकर्षेण निःसंशयं ज्ञायते॥१२॥विषयत्वेन निकषवत् ब्रह्म प्रज्ञायते चेत् जाड्यं ब्रह्मण आपद्येतेत्याशंक्याह—**मनस्त्विति** । मनोऽखण्डाकारा वृत्तिः। पूर्वं अखण्डचैतन्याभिव्यक्तेः प्रागेवापहृतं अखण्डप्रकाशेन तिरोभूतम् । कुतः । यस्मादिन्द्रियार्थानां शब्दादीनामेव तन्निदर्शकं तदपि अव्यवधानेनैवेत्याह समक्षं इन्द्रियसन्निकृष्टं गुणं रूपादि अपेक्षते तत्तथा अतो हेतोः निर्गुणस्य रूपादिहीनस्य तन्निदर्शकमतो न ब्रह्मणो जाड्यापत्तिः ॥ १३॥ उपसंहरति—**सर्वाणीति** । द्वाराणि इंद्रियाणि संवार्य पिधाय मनसि संकल्पमात्रेण स्थितः सन् तमपि मनसि बुद्धौ कृत्वा प्रविलाप्य एकाग्रतां अस्मीत्यात्ममात्राकारतां प्राप्य तत्परं ततः एकाग्रतातः परम् ॥ १४ ॥ तमेतं लयक्रमं युक्त्याऽप्युपपादयति—**यथेति** । गुणाः शब्दतन्मात्रादयोऽपञ्चीकृतभूतसंज्ञास्तेषां सुसूक्ष्मौ क्षये सति तत्कार्याणि महाभूतानि पञ्चीकृतस्थूलभूतानि नश्यन्ति । तथाहि श्रुतिः कारणनाशपूर्वकत्वं कार्यनाशस्य दर्शयति । —स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेतेति उदकं विलीनमनुखिल्यो लीयत इति श्रुत्यर्थः। तथा चानुभवः—जलप्रस्थे खिल्यप्रस्थप्रक्षेपे करकाप्रक्षेप इव परिमाणानतिरेकात् खिल्योपादानं जलं स्वोपादाने रसतन्मात्रे विलीयते न तु जलप्रस्थे। तस्य तदनुपादानत्वात् तस्मात्सुष्ठूक्तं श्रुत्या जलनाशात् खिल्यनाश इति स्मृत्या च गुणक्षयात् भूतक्षय इति । **यथाऽयं** दृष्टांतः तथा मनसि अहंकारे लीयमाना बुद्धिः स्वकार्याणीन्द्रियाणि गृहीत्वैव लीयते ॥ १५ ॥ ननु कारणे लीयमानं कार्यं स्वदोषेण कारणमपि दूषयेत् जलक्षिप्तलवणखिल्य इव जलं स्वरसेनेत्याशंक्याह—**यदेति** । बुद्धिर्व्यवसायो निश्चयः स एव गुणो धर्मस्तेन उपेतापि अन्तरेऽहंकारे चरतीति तथा । यथा आकृत्यन्तरोपेतमपि कुण्डलं स्वर्णस्थमेव तद्व-न्मनसि यदा बुद्धिर्भवति तदा सा मन एव भवति । मधुरं जलं तु न खिल्यस्य कारणमिति तेन तत् दूषणं विजातियसंसर्गकृतमेवेत्यर्थः ॥ १६ ॥ ननु त्रिगुणात्मको मनःशब्दितोऽहंकारो विजातीये निर्गुणे लीयमानः स्वधर्मेण तदपि दूषयेदेवेत्याशंक्याह—**गुणवद्भिरिति** । ध्यानेन गुणः सत्त्वोत्कर्षाख्यो यस्मिंस्तत् ध्यानगुणं मनोऽहंकारः गुणवद्भिः रूपादिमद्भिर्विषयैः सह यदा गुणोपेतं गुणान् सत्त्वादीन् मूलप्रकृतिमिति यावत् । तां अव्यक्ताख्यां उपेतं प्राप्तं भवति । तदा सर्वान् गुणान् सर्वं गुणात्मकमव्यक्तमपि हित्वा निर्गुणं धृत्वा प्रविलाप्य निर्गुणं प्रतिपद्यते यदि सत्त्वादयो न प्रविलाप्याः स्युस्तर्हि तेषु लीनं मनः सुप्तिप्रलययोरिव पुनरुन्मज्जेत् कारणस्यानाशात् । न चादृष्टाख्यनिमित्तान्तराभावान्नोन्मज्जतीति वाच्यम् । श्रुतहान्यश्रुतकल्पनाप्रसंगात् तत्त्वमसीतिवाक्यार्थज्ञानात् कृतकृत्यत्वं श्रूयते 'ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः'इतिश्रुतेः न त्वहंकारस्य प्रधाने प्रलयात् कृतकृत्यत्वं निमित्तमप्रयोजकमिति तव सूत्रकृतैवादृष्टस्य अप्रयोजकत्वाभिधानात् । तस्मात्सत्त्वमपि प्रविलापनीयम् । न च गुणात्मकस्य तस्य निर्गुणता भवति उक्तदोषापातात् । अतो रज्जूरगादिवद्बाध एवास्य प्रलयः। तदिदमुक्तम् मनो गुणान् हित्वा निर्गुणं प्रतिपद्यते । गुणान् उपादायेत्यर्थः । हित्वेति दधाते रूपं न तु जहातेः न हि कारणं मुक्त्वा कार्यस्यान्यप्राप्तिः संभवति तस्मान्न मनोलयाधिष्ठाने ब्रह्मणि मानसदोषप्रसक्तिरिति दिक् ॥ १७ ॥ अहंकाराद्युपादानं यदव्यक्ताख्यं गुणत्रयं तस्य स्वरूपं दुर्वचमित्याह-**अव्यक्तस्येति** । निदर्शनं दृष्टान्तः अव्यक्तं न सत् नेह नानास्ति किंचनेतिश्रुत्या बाधात्। नापि नरशृंगवदसत्। तत्कार्यस्योपलंभात् नापि सदसत् विरोधात् तस्मादनिर्वचनीयमित्याह—पदन्यासो वाग्व्यापारो यत्र नास्ति अतस्तत्र निदर्शनमपि नास्तीत्यर्थः। अत एव तदवाप्तिरपि न संभवतीत्याह-**क इति**॥१८॥ अतः श्रवणादिजन्येन साक्षात्कारेणैवात्मतत्त्वं निश्चिनुयादित्याह—**तपसेति** । तपसा आलोचनेन ध्यानजेन

गुणहीनो हि तं मार्गं बहिः समनुवर्तते ।
गुणाभावात्प्रकृत्या वा निस्तर्क्यं ज्ञेयसंमितम्
नैर्गुण्याद्ब्रह्म चाप्नोति सगुणत्वान्निवर्तते ।
गुणप्रचारिणी बुद्धिर्हुताशन इवेन्धने ॥ २१
यथा पञ्च विमुक्तानि इन्द्रियाणि स्वकर्मभिः
तथा हि परमं ब्रह्म विमुक्तं प्रकृतेः परम् २२
एवं प्रकृतितः सर्वे प्रवर्तन्ते शरीरिणः ।
निवर्तन्ते निवृत्तौ च स्वर्गं चैवोपयान्ति च ॥
पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिर्विषयाश्चेन्द्रियाणि च ।
अहंकारोऽभिमानश्च समूहो भूतसंज्ञकः २४
एतस्याद्या प्रवृत्तिस्तु प्रधानात्संप्रवर्तते ।
द्वितीया मिथुनव्यक्तिमविशेषान्नियच्छति ॥
धर्मादुत्कृष्यते श्रेयस्तथाऽश्रेयोऽप्यधर्मतः ।
रागवान्प्रकृतिं ह्येति विरक्तो ज्ञानवान् भवेत्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मनुबृहस्पतिसंवादे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

## २०६–[३३]

मनुरुवाच ।

यदा तैः पञ्चभिः पञ्च युक्तानि मनसा सह । अथ तद्द्रक्ष्यते ब्रह्म मणौ सूत्रमिवार्पितम् ॥ १

साक्षात्कारेण अनुमानेन मननाख्ययुक्त्यनुसन्धानेन गुणैः शमदमादिभिः जात्या जात्युचितस्वधर्मेण श्रुतेन वेदान्तश्रवणेन विशुद्धेनान्तरात्मना मनसा परमं ब्रह्म निनीषेत् ज्ञातुमिच्छेत् । परमं शोधितत्वंपदार्थं ब्रह्म तत्पदार्थं प्रति प्रापयितुमिच्छेदिति वा । नयतेर्द्विकर्मत्वात् ॥ १९ ॥ उक्तविधया तत्त्वदर्शिनोऽन्तर्बहिश्च तुल्यवद्भेदभानं नास्तीत्याह—**गुणहीन इति** । तं निष्प्रपञ्चं मार्गं बहिरन्वयेनापि सम्यक् अनुवर्तते अनुसरति द्वैतं तु पश्यन्नपि न पश्यतीत्यर्थः । ननु बहिः कार्यात्मना भेदः अन्तः कारणात्मनाऽभेदः । यथा सुवर्णं स्वरूपेण कुण्डलादिरूपेण चाभिन्नं भिन्नं चेति व्यपदेष्टुं शक्यम् । तद्वदिदमपि स्यात् किमिति बहिरपि भेदावभासः प्रत्यक्षादिप्रमाणासिद्धोऽपलप्यत इति चेन्न । ' स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव' इत्यात्मन ऐकरस्यश्रुतेः । अन्तरं कारणं बाह्यं कार्यं तयोरभावादयं कृत्स्नः प्रज्ञानमात्र इति श्रुत्यर्थः । बहिरपि ज्ञेयेन शुद्धेन चिदात्मना संमितम् । तत्र हेतुः गुणाभावात् मूलप्रकृतेस्तुच्छत्वात् प्रकृत्या वा चित्स्वाभाव्याद्वा तर्कैकगम्याः प्रधानपरमाणुस्वभावशून्यवादास्तर्क्यास्तद्रहितं निस्तर्क्यं तस्मादन्तर्बहिरेकरसं ब्रह्म । एकस्मिन्वस्तुनि परस्परविरुद्धयोः भेदाभेदयोः समानसत्ताकत्वं वक्तुमयुक्तमित्यवश्यहेयेऽन्यतरस्मिन् व्यभिचरितत्वाद्भेद एव हेय इति निर्विवादमैकात्म्यमित्याकरे विस्तरः॥ २० ॥ बुद्धिर्नैर्गुण्यान्निर्विषयत्वाद्ब्रह्म प्राप्नोति सगुणत्वात्सविषयत्वान्निवर्तते । ब्रह्मणः सकाशादिति शेषः । गुणेषु प्रचारिणी ॥२१॥ **यथेति** । सुषुप्तौ यथा कार्यत्यागेन कारणाज्ञानात्मनावस्थानम् । एवं तुरीये कारणत्यागेन चिन्मात्रात्मनावस्थानमपि संभवतीति भावः ॥ २२ ॥ एवमिति लौकिकदृष्टान्ताभिनयः प्रकृतितः अज्ञानात् । शरीरिणः चिदाभासा जीवाख्याः निवृत्तौ अज्ञानस्य यथाऽज्ञानाच्छुक्तिरजतादाविव प्रवर्तन्ते कर्मसु तन्निवृत्तौ निवर्तन्ते अनिवृत्तौ तु स्वर्गं प्रवृत्तिफलम् ॥ २३ ॥ पुरुषः जीवः अभिमानः इदमित्थमेवेति धीः विपर्ययो वा भूतसंज्ञाफलं विनाशित्वनिश्चयः ॥ २४ ॥ ननु प्रवाहनित्यस्य वियदादेः कुतो विनाश इत्याशंक्याह **एतस्येति** । एतस्य भूतसंघस्य आद्या प्रवृत्तिः प्रथमसर्गः प्रधानान्मायाशबलादव्याकृतादेव । तदनन्तरं मिथुनाद्बीजांकुरन्यायेन व्यक्तिमभिव्यक्तिम् अविशेषात् विशेषाः पञ्चमहाभूतानि तदन्ये अविशेषाः पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि अहंकारश्च । जात्यभिप्रायमेकवचनम् । द्वितीया प्रवृत्तिस्तु मिथुनादभिव्यक्तिं नियच्छति नियमयति न पुनर्यादृच्छिकी सृष्टिरित्यर्थः । एवं च यथा घटशरावोदञ्चनादीनां विशेषाणामविशेषो मृन्मात्रम् एवं वियदादिविशेषाणामप्यस्त्यविशेषः प्रधानमिति न प्रवाहनित्यत्वं सृष्टेरिति भावः ॥ २५ ॥ प्रकृतिं प्रलयकालेऽभ्येति । विरक्तस्तु ज्ञानवान् प्रकृतिबाधेनात्मज्ञानवान् भवति मुच्यत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५॥

२०६

धर्मादुत्कृष्यते **श्रेय** इत्युक्तं व्याकुर्वन्नुक्तमर्थमुपसंहरति यदा तैः पञ्चभिः पञ्चेत्यादिनाऽध्यायेन । पंचभिः शब्दादिभिः स्वविषयैः सह पञ्चेन्द्रियाणि मनसा कारणेनापि सह युक्तानि निगृहीतानि । मनसेत्यत्रैव बुद्धेरपि ग्रहणम्

तदेव च यथा सूत्रं सुवर्णे वर्तते पुनः ।
मुक्तास्वथ प्रवालेषु मृन्मये राजते तथा ॥ २
तद्वद्गोऽश्वमनुष्येषु तद्वद्धस्तिमृगादिषु ।
तद्वत्कीटपतङ्गेषु प्रसक्तात्मा स्वकर्मभिः ॥ ३
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोत्ययम् ।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ४
यथा ह्येकरसा भूमिरोषध्यर्थानुसारिणी ।
तथा कर्मानुगा बुद्धिरन्तरात्मानुदर्शिनी ५
ज्ञानपूर्वा भवेल्लिप्सा लिप्सापूर्वाऽभिसंधिता
अभिसन्धिपूर्वकं कर्म कर्ममूलं ततः फलम्६
फलं कर्मात्मकं विद्यात्कर्म ज्ञेयात्मकं तथा ।
ज्ञेयं ज्ञानात्मकं विद्याज्ज्ञानं सदसदात्मकम्
ज्ञानानां च फलानां च ज्ञेयानां कर्मणां तथा
क्षयान्ते यत्फलं विद्याज्ञानं ज्ञेयप्रतिष्ठितम्
महद्धि परमं भूतं यत्प्रपश्यन्ति योगिनः ।
अबुधास्तं न पश्यन्ति ह्यात्मस्थं गुणबुद्धयः
पृथिवीरूपतो रूपमपामिह महत्तरम् ।
अद्भ्यो महत्तरं तेजस्तेजसः पवनो महान्१०
पवनाच्च महद्व्योम तस्मात्परतरं मनः ।
मनसो महती बुद्धिर्बुद्धेः कालो महान्स्मृतः
कालात्स भगवान् विष्णु-
र्यस्य सर्वमिदं जगत् ।
नादिर्न मध्यं नैवान्त-
स्तस्य देवस्य विद्यते ॥ १२
अनादित्वादमध्यत्वादनन्तत्वाच्च सोऽव्ययः
अत्येति सर्वदुःखानि दुःखं ह्यन्तवदुच्यते ॥
तद्ब्रह्म परमं प्रोक्तं तद्धाम परमं पदम् ।
तद्गत्वा कालविषयाद्विमुक्ता मोक्षमाश्रिताः॥
गुणेष्वेते प्रकाशन्ते निर्गुणत्वात्ततः परम् ।
निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथाऽऽनन्त्याय कल्पते
ऋचो यजूंषि सामानि
शरीराणि व्यपाश्रिताः ।
जिह्वाग्रेषु प्रवर्तन्ते
यत्नसाध्या विनाशिनः ॥ १६

---

श्रुतिश्च-'यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् इति।' आत्मानात्मनोरत्यन्तविविक्तत्वं मणिसूत्रदृष्टान्तेनोक्तम् ॥ १ ॥ ऐकात्म्यसिद्ध्यर्थमनेनैव दृष्टान्तेन सर्वत्रात्मव्याप्तिमाह—**तदेवेति** ॥ २ ॥ प्रसक्तात्मा आसक्तचित्तः आसंगहेतुमाह—**स्वकर्मभिरिति**॥३॥ येन येन पित्र्येण दैवेन गान्धर्वेण प्राजापत्येन वा प्राप्येण हेतुभूतेन यस्य यस्य देहस्य प्राप्त्यर्थमित्यर्थः । यद्यत्कर्म यज्ञादिकम् ॥४॥ कर्मभेदाद्देहविशेषयोगे दृष्टान्तमाह-**यथेति**। अन्तरात्मा अनुदर्शी साक्षी यस्याः सा तथा साक्षिप्रकाश्यापि प्राक्कर्मानुसारिण्येव बुद्धिर्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ ज्ञानपूर्वा बुद्धिपूर्वा लिप्सा रागः ततोऽभिसन्धिता अभिसन्धिमत्त्वं अभिसन्धिरिति यावत् स च इदं साधयेयमिति यत्नः ततः कर्मस्पन्दः ततः फलावाप्तिः ॥ ६ ॥ **फलमिति** । अनेन क्रमेण तत्तद्देहप्राप्त्यादिरूपं फलं कर्मात्मकं कर्मप्रभवम् । कर्म तु ज्ञेयात्मकं अहमर्थोद्भवं अहमर्थोऽपि ज्ञानात्मा जीवरूपः सोऽपि सदसदात्मा चिज्जडरूपः ७ ज्ञानानां चिज्जडग्रंथीनां फलानां देहानां ज्ञेयानां बुद्धीनां कर्मणां सञ्चितानां च क्षयान्ते यत्फलमिव फलं आत्मतत्त्वप्रकाशः विद्यया ब्रह्माकारचरमान्तःकरणवृत्त्या ज्ञानं साक्षात्कारो यस्य तद्विद्याज्ञानम् । दिव्यज्ञानमिति पाठे दिवि हार्दाकाशाख्ये कारणे ब्रह्माणि भवं दिव्यं ज्ञेयवस्तुनि प्रतिष्ठितं ज्ञानम् ॥ ८ ॥ ज्ञेयस्वरूपमाह—**महदिति** । महत् त्रिविधपरिच्छेदशून्यं अत एव परमं मा बुद्धिः सा परा दूरे भूता यस्मात्तत् । भूतं नित्यसिद्धं आत्मस्थं बुद्धिस्थं गुणेषु विषयेषु बुद्धिर्येषाम् ॥ ९ ॥ महत्त्वं व्याचष्टे-**पृथिवीति** त्रिभिः ॥१०॥ कालः अव्यक्ताख्यं जगत्कारणम् ॥११॥ विष्णुः शुद्धं ब्रह्म॥१२॥ महत्त्वहेतुकं परमत्वं व्याचष्टे-**अनादित्वादिति** द्वाभ्याम्। अव्ययः अपक्षयशून्यः । अन्तवत् ज्ञातृज्ञेयविभागवत् । यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोति तदल्पम्। अथ यदल्पं तन्मर्त्यं तद्दुःखमिति तस्य दुःखत्वश्रुतेः ॥ १३ ॥ धामेव धाम आश्रयः प्राप्यं गत्वा ज्ञात्वा कालविषयादनित्याद्दुःखात्मकात् ॥ १४ ॥ **गुणेष्विति** । एते मुक्ताः शुद्धचिदात्मानः गुणेषु मानमेयव्यवहारेषु प्रकाशन्ते ज्ञानरूपेण मेयेषु वा सत्त्वेन घटः सन् पटः सन्नित्येवंरूपेण सुखात्मना वा। अत एवोक्तम्—

'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततोद्वयम्' इति ॥

ततः गुणेभ्यः परमुत्कृष्टं ब्रह्म निर्गुणत्वादेव निवृत्तिलक्षणः । शमदमोपरमादिरूपो धर्मो निर्विकल्पकः । स च ज्ञातः सन् आनन्त्याय मोक्षाय ॥ १५ ॥ ऋच इत्यध्ययनादिधर्मा लक्ष्यन्ते । शरीराणि लिङ्गशरीराणि व्यपाश्रिताः तत्संस्कारकत्वेन तद्गताः । न तु अनाधेयातिशये चिदात्मानि गताः । अत एव यत्नसाध्याः विनाशिनश्च ॥ १६ ॥

**न चैत्रमिष्यते ब्रह्म शरीराश्रयसंभवम् ।**
**न यत्नसाध्यं तद्ब्रह्म नादिमध्यं न चान्तवत्**
**ऋचामादिस्तथा साम्नां यजुषामादिरुच्यते।**
**अन्तश्चादिमतां दृष्टो न त्वादिर्ब्रह्मणः स्मृतः**
**अनादित्वादनन्तत्वात्तदनन्तमथाऽव्ययम् ।**

**अव्ययत्वाच्च निर्दुःखं द्वन्द्वाभावस्ततः परम्**
**अदृष्टतोऽनुपायाच्च प्रतिसन्धेश्च कर्मणः ।**
**न तेन मर्त्याः पश्यन्ति येन गच्छन्ति तत्पदं**
**विषयेषु च संसर्गाच्छाश्वतस्य च दर्शनात् ।**
**मनसा चान्यदाकांक्षन् परं न प्रतिपद्यते२१**

ब्रह्माणि तद्विपर्ययमाह—**न चेति** । शरीरमाश्रित्य सम्भव आविर्भावो यस्य तत्तादृशमपि यत्नसाध्यं न भवति धर्मवद्यतोऽनादिमध्यम्। नैकधेतिवत्समासः । ब्रह्मभावस्य साध्यत्वे निश्चितमनित्यत्वं स्यादित्यर्थः । यद्वा शरीरं लिङ्गं आश्रयते पुण्यापुण्यरूपेणेति शरीराश्रयं शरीरात्सम्भवति तादृशं च धर्मस्वरूपं ब्रह्म तु अशरीरं उदासीनं चेत्यर्थः ॥ १७ ॥ **ऋचामिति** । ब्रह्मभावस्यादिमत्त्वे ध्रुवं विनाश इति भावः ॥ १८ ॥ अनादित्वादजन्यत्वात् अनन्तत्वाद्ध्वंसशून्यत्वात् अत एव अनन्तं व्यापकं अव्ययं च व्योमवत् । द्वन्द्वानि मानापमानादीनि ॥ १९ ॥ ननु अयत्नसाध्यं नित्यं चात्मसुखं चेत्किमिति तत्र सर्वे न रज्यन्त इत्याशंक्याह—**अदृष्टत इति** । अदृष्टं भाग्यं तदालंब्य अनुपायात् उपायाभावात् अत्रादृष्टत इति चतुर्विधाध्यात्मिकतुष्टयुपलक्षणम् । तथा कर्मणो विषयभोगाख्यस्य प्रतिसन्धिः प्रतीपः सन्धिर्वियोगः विषयेभ्य उपरम इति यावत् । तेन पञ्चविधा बाह्या तुष्टिरुक्ता । तेन तुष्टिद्वयेन हेतुना उपायेष्वप्रवर्तमानाः पुरुषा येनोपायेन तत्पदं गच्छन्ति तन्न पश्यन्ति । तुष्टयस्तूक्ताः **सांख्यसप्तत्याम्**—

**आध्यात्मिकाश्चतस्रः**
**प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः ।**
**बाह्या विषयोपरमा-**
**त्पञ्च च तुष्टयोऽभिहिताः ॥**

इति । **अस्यार्थः**—शास्त्रात् प्रकृतिपुरुषयोर्विवेको ज्ञातस्तत्साक्षात्कारस्तु वृत्तिरूपः प्रकृतेः परिणामः स च स्वयमेव परिणामक्रमेण भाविष्यति किं ध्यानायासेनेति प्रकृत्याख्या तुष्टिरम्भ इत्युच्यते । एतावतापि न कृतकृत्यता सर्वस्याप्यनायासेन विवेकख्यात्यापत्तेरनर्थकः प्रव्रज्याविधिः स्यादतस्तन्मात्रेण कृतकृत्यता किं ध्यानेनेत्युपादानाख्या तुष्टिः सलिलमित्युच्यते । प्रव्रज्यापि कालविशेषापेक्षैव कैवल्यहेतुरित्यलमुत्तप्ततयेति तूष्णीमवस्थानं कालाख्यतुष्टिरोघ इत्युच्यते । कालोऽपि पूर्वपुण्यवशादेव विवेकसाक्षात्कारं मदालसापत्यानां बालानामिव जनयिष्यतीति किं ध्यानायासेनेति तुष्टिर्भाग्याख्या वृष्टिशब्देनोच्यते । सैवेह मुख्यत्वाददृष्टत इत्यनेन गृहीता अनयैव तत्पूर्वासां तुष्टीनामाक्षेपतो लाभादिति । विषयाः

पञ्च तेषु वैराग्याण्यपि पञ्च । तत्र धनार्जने दुःखं दृष्ट्वा या उपरतिः सा **पारम्** । राजचोरादिना धननाशे दुःखं दृष्ट्वा या सा **सुपारम्** । भोगेनापि धननाशं दृष्ट्वा यद्दुःखं तज्जा उपरतिः सा **पारापारम्** । भोगेऽपि क्षयित्वादिदोषदर्शनाद्या उपरतिः **सानुत्तमाम्भः** । 'नानुपहत्य भूतानि भोगः सम्भवति ' इति न्यायेन भोगे हिंसादोषदर्शनाद्या उपरतिः सा **उत्तमाम्भः** । एवं विषयोपरमात्पञ्च तुष्टयोऽत्र कर्मप्रतिसन्धिशब्देनोच्यन्ते । एवं नव तुष्टयः तन्मात्रेण कृतकृत्यतां मन्वानस्य उपायेष्वप्रवृत्तेरात्मदर्शनं न भवतीत्यर्थः ॥ २० ॥ कदाचित्तुष्टिनवकं जित्वा ध्यानेन प्रवृत्तोऽपि ध्यानजसिद्धिविपर्ययादध्यात्मतत्त्वं न पश्यतीत्याह—**विषयेषु चेति** । तत्र प्राणिनां स्वाभाविको विषयेषु सङ्गः । विषयाश्च दार्ढ्यकाशाख्यब्रह्मलोकगताः शाश्वताः मधुमत्यां योगभूमौ स्थितस्य योगिनः सङ्कल्पमात्रोपनताः । त इमे सत्याः कामा अनृतापिधाना देहेनोपाधिना आच्छादिताः। 'सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति ' इत्यादिश्रुतिभ्यः । अतो हेतोरविरक्तो योगी मनसाऽन्यद्योगैश्वर्यसुखं इच्छन् सकलकामनिर्धूननप्राप्यं परं ब्रह्म न प्रतिपद्यते न साक्षात्करोति । अत्र अन्यदित्यनेन सिद्धिविपर्ययो दर्शितः । तत्र सिद्धयः सांख्यसप्तत्युक्ताः—

**' ऊहः शब्दोऽध्ययनं**
**दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः ।**
**दानं च सिद्धयोऽष्टौ**
**सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः'** ॥ इति ।

**अस्यार्थः-ऊहः** वितर्कः। श्रुतस्यार्थस्य युक्त्या चिन्तनं मननमित्यर्थः । **शब्दः** शब्दजं ज्ञानं मोक्षशास्त्रस्य उपक्रमोपसंहारपर्यालोचनया तात्पर्यज्ञानम् । **अध्ययनं** उपनिषद्ग्रन्थस्यावाप्तिः । आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदेन त्रिविधं **दुःखं** अतस्त**द्विघाता अपि** त्रयः । ताश्च मुख्याः सिद्धयः । तथा सुहृत्प्राप्तिः परविद्याप्रदसदाचार्यलाभः । दानं चित्तशुद्धिजन्या विवेकप्राप्तिः । दैप् शोधने इत्यस्य रूपम् । एता अष्टौ सिद्धयः । तत्र ऊहशब्दाध्ययनसुहृत्प्राप्तयः तारं सुतारं तारतारं रम्यकं चेति क्रमेण गीयन्ते । दानाद्याः चतस्रस्तु सदामुदितं प्रमोदो मुदितं मोदमाना इति च गीयन्ते ।

गुणान्यदिह पश्यन्ति तदिच्छन्त्यपरे जनाः
परं नैवाभिकांक्षन्ति निर्गुणत्वाद्गुणार्थिनः २२
गुणैर्यस्त्ववरैर्युक्तः कथं विद्यात्परान्गुणान् ।
अनुमानाद्धि गन्तव्यं गुणैरवयवैः परम् २३
सूक्ष्मेण मनसा विद्मो वाचा वक्तुं न शक्नुमः
मनो हि मनसा ग्राह्यं दर्शनेन च दर्शनम् ॥
ज्ञानेन निर्मलीकृत्य बुद्धिं बुद्ध्या मनस्तथा ।
मनसा चेन्द्रियग्राममक्षरं प्रतिपद्यते ॥ २५
बुद्धिप्रहीणो मनसा समृद्धो
निराशिषं निर्गुणमभ्युपैति ।
परं त्यजन्तीह विलोभ्यमाना
हुताशनं वायुरिवेन्धनस्थम् ॥ २६
गुणादाने विप्रयोगे च तेषां
मनः सदा बुद्धिपरावराभ्याम् ।
अनेनैव विधिना संप्रवृत्तो
गुणापाये ब्रह्मशरीरमेति ॥ २७
अव्यक्तात्मा पुरुषोऽव्यक्तकर्मा
सोऽव्यक्तत्वं गच्छति ह्यन्तकाले ।
तैरेवायं चेन्द्रियैर्वर्धमानै-
र्ग्लायद्भिर्वा वर्ततेऽकामरूपः ॥ २८

एतास्तु प्रज्ञाप्रासादसोपानभूता अपि कुयोगिनं प्राप्य विपर्यस्तफलाः स्युः तदिदमुक्तम्—'सिद्धेः पूर्वोऽकुशस्त्रिविधः' सिद्धेर्मोक्षकरिण्या अंकुश इव निवारकस्त्रिविध एको विद्यादिः पञ्चविधो विपर्ययः। द्वितीयोऽशक्तिः सा च एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टेत्युक्ता बधिरत्वादय एकादशेन्द्रियवधाः । तुष्टीनां पूर्वोक्तानां सिद्धीनां चानुपदोक्तानां विपर्ययात्सप्तदश बुद्धिवधाः । तत्र गोबलीवर्दन्यायेन तुष्टीः पृथक्कृत्य विपर्यया शक्तितुष्टयस्त्रिविधोंकुशो मनसा चान्यदाकांक्षन्नित्यनेन सूचितः २१ अत्राप्यन्याकांक्षायां हेतुमाह-**गुणानिति** । गुणान् विषयान् यत् यस्मात् तत्तस्मात् परं निर्विषयं गुणार्थिनः पुरुषाः ॥ २२ ॥ अतिमौढ्याद्बाह्यगुणासक्तास्तु परान्योगिगम्यान्विषयान्नाप्नुवन्तीत्याह-**गुणैरिति** । उभयेषां तुल्यत्वेऽपि आन्तरैर्गुणैर्ब्रह्मणः स्वरूपभूतैः सत्यकामत्वादिभिः परं उपलक्ष्यते धूमेनेवाग्निं शाखाग्रेणेव वा चन्द्रकलामित्याह-**अनुमानादिति** ॥ २३ ॥ अत्र स्वानुभवं प्रमाणयति—**सूक्ष्मेणेति** । सूक्ष्मेण ध्याननिशितेन 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' इतिश्रुतेः । शब्दश्रोत्रगन्धघ्राणादिषु प्रकाश्यप्रकाशकयोराकाशभूम्यादिरूपैकोपादानकत्वनियमादुपादानोपादेययोश्चाभेदाद्घटादिरूपं मन एव चक्षुरादिरूपेण मनसा यथा गृह्यते एवं द्रष्टृदृश्ये अपि दर्शनमात्रोपादाने दर्शनादभिन्ने इत्यर्थः ॥ २४ ॥ ईदृगभेदग्रहे हेतुमनुभवमेवाह-**ज्ञानेनेति** । ज्ञानं ब्रह्मात्माकारा धीवृत्तिस्तया बुद्धिं देहाद्यात्मभ्रमकलुषितां निर्मलीकृत्य सर्वसंशयहीनां कृत्वा । तथा च श्रुतिः 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे' इति । तथा बुद्ध्या मनोऽपि संकल्पात्मकं संकल्प्य संकल्परूपेण स्वप्नादौ स्थितमिति निश्चित्य तथा जाग्रत्कालेऽपि मनसा इन्द्रियग्रामं शब्दादिसहितं मनोमात्रमिति निश्चित्य विलोमक्रमेणाक्षरं क्षरतीति व्युत्पत्त्या द्रष्टृदृश्ये परिणामितया विकारौ तद्भिन्नं चिन्मात्रं दर्शनं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥ बुद्ध्या चरमवृत्त्या ध्यानपरिपाकोत्थया प्रहीणः निर्वृत्तिकः मनसा विचारात्मकेन समृद्धः पूर्वमिति शेषः । श्रवणमननवानित्यर्थः । निराशिषं आशीरप्राप्तप्रार्थना तद्राहितं स्वेनैव रूपेण परमानन्दत्वात् । निर्गुणं आत्मानमुपैति प्राप्नोति । विलोभ्यमानाः आशीर्भिराकुलीक्रियमाणाः । यथा वायुः काष्ठान्तर्गतं वन्हिं नोद्दीपयति किं तु त्यजति एवमेतेऽपि अन्तस्थमात्मानं त्यजन्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥ उक्तमेवार्थं स्पष्टयति-**गुणेति** । विषयाणामादाने आभिमुख्येन खंडने आत्मनि प्रविलापने कृते सति मनः बुद्धिपराय बुद्ध्यपेक्षया यत्परं ब्रह्म तस्मै तत्प्राप्तये भवति । तेषां गुणानां विप्रयोगे पृथक्त्वेन ग्रहणे सति मनः सदा सर्वस्मिन्नपि युगे बुद्ध्यवराय बुद्ध्यपेक्षया यदवरं बुद्धिकल्पितं ब्रह्मलोकान्तमैश्वर्यं अर्वाच्यन्तमनैश्वर्यं च तत्प्राप्तये भवति । अनेन प्रकारेण विधिना 'बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मन' इत्यादिवचनेन गुणापाये संप्रवृत्तः ब्रह्मशरीरं ब्रह्मस्वरूपं प्राप्नोति । शारीरामिति पाठे शारीरो जीवस्तयोर्ब्रह्मशारीरयोरभेदे सामानाधिकरण्यम् ॥ २७ ॥ ननु लोके चतुर्धा भेदो दृश्यते यथा सुवर्णं कुण्डलम्' इति तयोरुपादानोपादेयभावेन । यथा वा—'शुक्लः पटः' इति तयोर्गुणगुणिभावेन। यथा वा 'शुक्ती रजतम्' इत्यधिष्ठानाध्यस्तभावेन । यथा वा 'सिंहो देवदत्तः' इति तद्गतगुणयोगेन । नाद्यः ब्रह्मणा विकारित्वापत्त्या कूटस्थत्वनाशापत्तेः । न द्वितीयः। आश्रयनाशं विना गुणनाशासंभवान्मुक्तौ जीवत्वनाशे ब्रह्मणोऽपि नाशापत्तेः । न तृतीयः। मिथ्याभूतस्य जीवस्य मुक्त्यन्वयायोगात्। परिशेषादन्त्य एव पक्षः शिष्यते । तत्रापि यथाऽनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वेदेवा इति बहुत्वसाम्यान्मनसि विश्वेदेवसंपत्तिस्तथा देहादिबृंहकत्वयोगाज्जीवेऽपि ब्रह्मशब्दः । यद्वा योषः

सर्वैरयं चेन्द्रियैः संप्रयुक्तो
देहं प्राप्तः पञ्चभूताश्रयः स्यात् ।
नासामर्थ्याद्गच्छति कर्मणेह
हीनस्तेन परमेणाव्ययेन ॥ २९

पृथ्व्यां नरः पश्यति नान्तमस्या
ह्यन्तश्चास्या भविता चेति विद्धि ।
परं नयन्तीह विलोड्यमानं
यथा प्लवं वायुरिवार्णवस्थम् ॥ ३०

दिवाकरो गुणमुपलभ्य निर्गुणो
यथा भवेदपगतरश्मिमण्डलः ।
तथा ह्यसौ मुनिरिह निर्विशेषवान्
स निर्गुणं प्रविशति ब्रह्म चाव्ययम् ॥ ३१

अनागतं सुकृतवतां परां गतिं
स्वयंभुवं प्रभवनिधानमव्ययम् ।
सनातनं यदमृतमव्ययं ध्रुवं
निचाय्य तत्परममृतत्वमश्नुते ॥ ३२

---

वा गौतमाग्निरित्यत्र स्त्रीरूपं प्रतीकमविद्यमानवत्कृत्वा तत्राग्निरुपासनम् । एवं जीवमविद्यमानवत्कृत्वा तत्र ब्रह्मोपास्यम्।यद्वा यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीतेति मन एव ब्रह्मभावारोपेणोपास्यम् एवं जीवेऽपि ब्रह्मभावमारोप्यामृतत्वकामस्यात्मोपासनं विधीयते 'आत्मेत्येवोपासीत' इत्यादिश्रुतिषु इत्याशंक्याह—**अव्यक्तात्मेति**। अव्यक्तेतिवाङ्मनसागोचरत्वोक्त्या मन आदिवत्प्रतीकत्वादिकं **निरस्यते** । आत्मेतिव्यापकप्रत्यक्चैतन्यरूपत्वोक्त्या कीटभृंगवद्यत्नान्तरस्यालभ्यत्वमुच्यते पुरुष इति।पुरि शेते इतिव्युत्पत्त्या गौणात्मत्वं निरस्यते व्यक्तकर्मेति । देहाद्युपाधियोगात्कर्मसमवायीव दृश्यते अत एव श्रूयते—'आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन' इति। अन्तकाले सुप्तिप्रलयमोक्षाणामन्यतमकाले वाऽव्यक्त एवातोऽस्य व्यक्तत्वमन्तरालेऽवगतं मृषैव। ततश्चाव्यक्तस्यात्मनोऽव्यक्तेन ब्रह्मणा सह लक्षणभेदाभावाद्भेदो न घटत इति बिम्बप्रतिबिम्बन्यायेनौपाधिक एव तयोर्भेदः स चोपाधिभूताया अविद्याया निवृत्तौ निरवशेषेण लीयत इति युक्तमुक्तं ब्रह्म शारीरमेतीति । नन्वेवंविधे आत्मनि कुतो दुःखित्वप्रतीतिरित्याशंक्याह—**तैरेवाति** । तैः प्रसिद्धैः अकामरूप इति च्छेदः । जलसूर्यन्यायेन मृषैवात्मनि दुःखित्वादिभ्रम इत्याह—**ग्लायद्भिर्वा** । वाशब्द उपमार्थे ग्लायद्भिरिव आवर्तते लोकद्वये संचरति घटाकाशवत् । आर्षो विभक्तिव्यत्ययः।तथाच सूत्रं—**अत एव चोपमा सूर्यप्रतिकृत्तिकादिव**दिति । सूर्यप्रतिकृतिः प्रतिबिम्बसूर्यः आदिपदाद्घटाकाशः तथा चात्मनि भेदं गतिं च वारयन्ति श्रुतयः'ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन् । उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा । घटसंवृतमाकाशं नीयमाने यथा घटे । घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः' इत्यादयः ॥ २८ ॥ **सर्वैरिति** । अयं चिदाभासः देहं लिंगशरीरं प्राप्तः पञ्चभूतानि स्थूलदेहाकारेण परिणतानि तदाश्रयश्च स्यात् अस्ति परमेण बिम्बभूतेन अंतर्यामिणा हीनः सन्न गच्छति । गतिरुपलक्षणं किमपि कर्तुं न शक्नोतीत्यर्थः । कुतः असामर्थ्यात्।कुत्र कर्मणे कर्मकर्तुमित्यर्थः।इहइति श्रौतीप्रसिद्धिं एष ह्येव साधु कर्म कारयतीत्यादिकां द्योतयति । अयं भावः—जलसूर्यघटाकाशयोश्चाचल्यगमने इवात्मनि दुःखित्वादिकं भासमानमपि परमार्थतो नास्ति। नाप्यस्य तत्परिहारे सामर्थ्यमस्ति उपाधिपक्षपातित्वात् उपाधेश्च प्राक्कर्मानुरोधीश्वरेच्छया चेष्टाश्रयत्वात्। अतोऽन्तर्यामित्वं चेश्वरस्य युक्तमिति ॥ २९ ॥ ननूपाध्यन्तर्यामिणोरनादित्वान्नित्ययोः प्रवर्त्यप्रवर्तकयोः सतोः कथञ्चिदाभासस्य दुःखान्मुक्तिः स्यादित्याशंक्याह-**पृथ्व्येति** । यथाऽन्यैरदृष्टोऽपि पृथिव्या अन्तोऽस्ति। अविभुद्रव्यत्वात्। एवं दुःखसंततेरप्यन्तोऽस्ति जन्यत्वात्। यथा वा वायुरर्णवस्थं तृणादिकं यथा प्लवं यथाप्रवाहं वायुनेव लोड्यमानं इतस्ततश्चाल्यमानं वायुरेव परं पारं नयति । एवं कर्म वायुभिरुह्यमानं संसारसमुद्रस्थं **जीव-पोतं** कर्माण्येव चित्तशुद्ध्यादिजननद्वारा परं पारं नयन्तीत्यर्थः। यथोक्तम्—'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः' इति। संसिद्धिं ज्ञानयोग्यताम्॥३०॥यथा सूर्यरश्मीनामुदयास्तमयौ एवं चैतन्यभासामपि स्त इत्याह—**दिवाकर इति**। गुणं रश्मिमण्डलेन जगद्व्यापित्वं एवं जीवः सत्यां चित्तशुद्धौ ज्ञानोदये सति रात्रिंदिववत्संसारलयोदयौ पश्यतीत्यर्थः । निर्गतः विशेषवान् सुखित्वादिधर्मवान् अहङ्कारो यस्मात्स निर्विशेषवान् ॥ ३१ ॥ प्रकरणार्थमुपसंहरति—**अनागतमिति**। अनादौ संसारे सर्वमपि सुखं पुरुषस्य क्वचिज्जन्मनि प्राप्तमेवास्ति । इदं त्वमृतत्वं अनागतम्। आगतस्य निवृत्त्ययोगात् । स्वयंभुवं अजन्यम्। जन्यस्यावश्यंविनाशित्वात् । प्रभवत्यस्मान्निधीयते लीयतेऽस्मिन् कार्यजातमिति प्रभवनिधानम् । एवमपि अव्ययं प्रधानवन्न परिणामि नित्यम् । परिणामिनो नाशावश्यंभावेन नित्यत्वायोगात् । सनातनं यदमृतम् । आदिमध्यान्तशून्यं मोक्षस्वरूपम् । अनादिमध्यामृतमित्यपि पाठः । अव्ययं नाशहीनं यतः ध्रुवं अविचाल्यम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मनुबृहस्पतिसंवादे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

---

## २०७–[ ३४ ]

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ।
कर्तारमकृतं विष्णुं भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥१
नारायणं हृषीकेशं गोविन्दमपराजितम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि केशवम् ॥ २

भीष्म उवाच ।

श्रुतोऽयमर्थो रामस्य जामदग्न्यस्य जल्पतः
नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ ३
असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयन्त्यद्भुतं महत् ४
केशवो भरतश्रेष्ठ भगवानीश्वरः प्रभुः ।
पुरुषः सर्वमित्येव श्रूयते बहुधा विभुः ॥ ५
किं तु यानि विदुर्लोके ब्राह्मणाः शार्ङ्गधन्वनि
महात्मनि महाबाहो शृणु तानि युधिष्ठिर ६
यानि चाहुर्मनुष्येन्द्र
ये पुराणविदो जनाः ।
कर्माणि त्विह गोविन्दे
कीर्तयिष्यामि तान्यहम् ॥ ७

---

ईदृशं प्रत्यगभिन्नं वस्तु निचाय्य ज्ञात्वा । तत् वेदप्रसिद्धं परं अगौणं अमृतत्वं मोक्षं अश्नुते प्राप्नोति । अपामसोमममृता अभूम इति। कर्मप्राप्यमप्यमृतत्वं श्रूयते। तच्च गौणं कर्मजस्य नित्यत्वायोगात् ।'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयत' इति श्रुतेश्च। यथाहुः 'आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते' इति । मुख्यममृतत्वं प्राप्तस्तु न पुनरावर्तते संसारमंडले । तस्मात्सनातनादिविशेषणविशिष्टं नित्यं सुखं मोक्षाख्यं स्वतःसिद्धमप्यज्ञानादप्राप्तमिव कंठगतविस्मृतचामीकरवत्प्राप्तव्यमज्ञानापगममात्रेणेति सिद्धम्॥३२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

२०७

पूर्वाध्यायान्ते निचाय्य तत्परममृतत्वमश्नुते इति ब्रह्मसाक्षात्कारस्य मोक्षहेतुत्वमुक्तम् । तत्र निर्गुणदर्शनं सगुणज्ञानपूर्वकमिति मत्वा सन्निहितं श्रीकृष्णं प्रागेव महर्षीणां मुखात्परमात्माऽयमिति जानन् राजा मातिसंवादाय कृष्णतत्त्वं पृच्छति- **पितामहेत्यादिना** । ननु इह पुंडरीकाक्षपदेन विग्रहमुपलक्ष्य तत्राच्युतत्वादिविशेषणमसंगतम्। नहि कृष्णशरीरं परादृष्टैरेवोत्पन्नमिति. पक्षेऽपि परादृष्टानां जन्मविनाशवत्वात्तत्कृतावेमहस्यापि तद्वत्त्वं ब्रत्याख्यातुं शक्यम् विग्रहाविवक्षायां त्वस्माकमप्यच्युतत्वादिकं समानमिति किं पुंडरीकाक्षेति विशेषणेनेति चेत् । अत्र ब्रूमः । भूबीजांकुरतरुफलोपमानि पञ्च परमेश्वररूपाणि शुद्धशबलसूत्रविराड्विष्णुसंज्ञानि यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्तीति श्रौतदृष्टान्तानुगुण्येन भूतुल्यायां चिति तदनतिरिक्ता बीजादितुल्या माया शबलादयः सन्ति।तत्र ब्रह्मारूढमपि फलनमेकबीजगर्भत्वाद्बीजाङ्कुरतरुभ्यो महत्तरम्। एवं विश्वाख्यविग्रहवद्ब्रह्मापि अनेकशबलादिगर्भत्वात् ईशसूत्रविराड्भ्यो महत्तरम्। अत एव च्छान्दोग्ये-'आदित्यरूपं पुरुषं हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः' इति विग्रहधर्मैर्विशेषयित्वा तस्यर्क्सामे च गेष्णाविति तदंगुलिपर्वत्वेन ऋक्सामशब्दाभिहितः कृत्स्नः प्रपञ्चो निरूपितः। न च तस्या मूर्तेरनित्यत्वं शक्यम्।

' देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ' ॥

इतिजीवादृष्टानुरोधेन नित्याया अपि तस्या आविर्भावतिरोभावावेव उत्पत्तिलयशब्देन व्यवह्रियेते इत्येतस्यार्थस्य प्रतिपादकेनागमेन विरोधात् । अत्र यद्वक्तव्यं तत्प्रागेवोक्तम् । तस्मात्पुंडरीकाक्षेऽप्यच्युतत्वादिकं विशेषणं युज्यत एव। तत्राच्युतं क्षयहीनम्। कर्तारं अर्थात् कार्यमात्रस्य। अकृतम् उत्पत्तिहीनम्। विष्णुं व्यापकं बीजफलन्यायेन कारणस्यापि कारणत्वात् । अत एव भूतानां वियदादीनां प्रभवाप्ययं योनिम् ॥ १ ॥ अपराजितं देहादिधर्मैर्जरादिभिरिति शेषः ॥ २ ॥ जल्पतः जल्पात् वचनात् ॥ ३ ॥ महत् माहात्म्यम् ॥ ४ ॥ **भगवान्** ' ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः। वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीङ्गना ' इत्युक्तलक्षणषड्गुणवान् । ईश्वरोऽन्तर्यामी । प्रभुः राजवद्बहिःस्थित्वा नियन्ता । विभुर्व्यापकः ॥ ५ ॥ **किं त्विति** । यानि कर्माणीत्युत्तरेण सम्बन्धः । अनन्तमपि हरेर्माहात्म्यं लेशतो वक्ष्ये इति भावः ॥ ६ ॥

महाभूतानि भूतात्मा
महात्मा पुरुषोत्तमः ।
वायुर्ज्योतिस्तथा चापः
खं च गां चान्वकल्पयत् ॥ ८
स सृष्ट्वा पृथिवीं चैव सर्वभूतेश्वरः प्रभुः ।
अप्स्वेव भवनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ॥ ९
सर्वतेजोमयस्तस्मिन् शयानः पुरुषोत्तमः ।
सोऽग्रजं सर्वभूतानां संकर्षणमकल्पयत् १०
आश्रयं सर्वभूतानां मनसेतीह शुश्रुम।
स धारयति भूतानि उभे भूतभविष्यती ॥
ततस्तस्मिन्महाबाहौ प्रादुर्भूते महात्मनि ।
भास्करप्रतिमं दिव्यं नाभ्यां पद्ममजायत ॥
स तत्र भगवान्देवः पुष्करे भ्राजयन् दिशः।
ब्रह्मा समभवत्तात सर्वभूतपितामहः ॥ १३
तस्मिन्नपि महाबाहौ प्रादुर्भूते महात्मनि ।
तमसा पूर्वजो जज्ञे मधुर्नाम महासुरः ॥ १४
तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रं कर्म समास्थितम् ।
ब्रह्मणोपचितिं कुर्वन् जघान पुरुषोत्तमः १५
तस्य तात वधात्सर्वे देव-दानव-मानवाः ।
मधुसूदनमित्याहुर्ऋषभं सर्वसात्वताम् ॥ १६
ब्रह्मानुससृजे पुत्रान् मानसान् दक्षसप्तमान् ।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् १७
मरीचिः कश्यपं तात पुत्रमग्रजमग्रजः ।
मानसं जनयामास तैजसं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १८
अंगुष्ठात्ससृजे ब्रह्मा मरीचेरपि पूर्वजम् ।
सोऽभवद्भरतश्रेष्ठ दक्षो नाम प्रजापतिः ॥१९
तस्य पूर्वमजायन्त दश तिस्रश्च भारत ।
प्रजापतेर्दुहितरस्तासां ज्येष्ठाऽभवद्दितिः २०
सर्वधर्मविशेषज्ञः पुण्यकीर्तिर्महायशाः ।
मारीचः कश्यपस्तात सर्वासामभवत्पतिः ॥
उत्पाद्य तु महाभागस्तासामवरजा दश ।
ददौ धर्माय धर्मज्ञो दक्ष एव प्रजापतिः ॥२२
धर्मस्य वसवः पुत्रा रुद्राश्चामिततेजसः ।
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च मरुत्वन्तश्च भारत ॥
अपराश्च यवीयस्यस्ताभ्योऽन्याः सप्तविंशतिः
सोमस्तासां महाभागः सर्वासामभवत्पतिः
इतरास्तु व्यजायन्त गन्धर्वांस्तुरगान् द्विजान्
गाश्च किंपुरुषान्मत्स्यानुद्भिज्जांश्च वनस्पतीन्

---

भूतात्मेत्यादिना क्रमेण पदत्रयोक्तानां जीवेशशुद्धानां वाय्वादिमहाभूतकल्पकत्वं सामानाधिकरण्यादभेदश्चोक्तः ॥८॥ तत्र तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् इति श्रुतामक्षिणादिप्रवेशान्तामैशीं सृष्टिमाह—**स इति**। चात् खादीन् अप्सु आपः पुरुषवचसः इति श्रुतेरब्बहुलेषु देहेषु ॥ ९ ॥ जाग्रदादिविमोक्षान्तां जैवीं सृष्टिमाह-**सर्वेत्यादिना**। तेजोमयः वासनामयः जाग्रद्वासनामये स्वप्नद्रष्टरि तैजसपदप्रयोगात् तस्मिन्नम्मये देहे संकर्षणं अहंकारम् ॥ १० ॥ मनसा सह अकल्पयदिति पूर्वेण सम्बन्धः। सः समनस्कोऽहंकारः सोऽहमित्यग्रे व्याहरत्ततोऽहं नामाऽभवदित्यहंकारसृष्टिमुक्त्वा सोऽबिभेत् स नारमतेति तदनुवादेन भयारत्यादेर्मनोधर्मस्य श्रवणात्तत्सृष्टेस्तत्र विवक्षणात्।'सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टिर्यन्मर्त्यः सन्नमृतानसृजत' इति श्रुतिसाम्यादपि जीवसृष्टिप्रकरणमिदमित्यवसीयते ॥११॥ नाभ्यां पद्ममिति। स्वप्नवद्बहिरिव भासमानमपि अन्तरेव ब्रह्माण्डमस्ति मानसत्वात्तस्येति दर्शितम्। नाभ्यामुपरि तिष्ठति 'विश्वस्यायतनं महत्' इति श्रुतेः ॥ १२ ॥ पुष्करे नाभिकमले 'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरपुंडरीके वेश्म' इत्यादिश्रुतेरान्तरमेव पुष्करमिह प्रतिपत्तव्यं न बाह्यम्। ब्रह्मपुरे ब्रह्मोपलब्धिस्थाने शरीरे दहरं सूक्ष्मं सः समनस्कोऽहंकारः पुष्करे स्थित्वा ब्रह्मा सर्वभूतस्रष्टा समभवदिति संबंधः। हृदयपुण्डरीकादौ निरुद्धं मन एव सर्वेश्वर इत्यसकृदावेदितम् ॥ १३ ॥ **तस्मिन्निति**। एवं हृत्पुण्डरीके ब्रह्मण आविर्भावे सति तमोगुणकार्यभूतो मधुर्नाम लयापरनामा योगविघ्नः दैनंदिनलयाभ्यासात्पूर्वजोऽनादिर्निद्राप्रासाय आविर्भवति ॥ १४ ॥ **तमिति**। अपचितिं उन्नतिम् पुरुषोत्तमश्चिदात्मा। योगे उपस्थितं लयं बोधेनैव शमयेदित्यर्थः। एतच्च विक्षेपादेरप्युपलक्षणम्। यदाहुः संप्रदायविदः- 'लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः' इत्यादि ॥ १५॥ तस्येत्यादिना आन्तरसृष्टिप्रपञ्चो यावदध्यायसमाप्ति । सात्वरमात्मा तद्वतां सात्वतां योगिनामित्यर्थः ॥ १६ ॥ **ब्रह्मेति** । मानसत्वं योगिसृष्टेर्मूढसृष्टेश्च यद्यपि तुल्यं तथाऽपि योगिनां जितमनस्कत्वात्सृष्टिर्न दुःखदा मूढानां अनर्थत्वाद्दुःखदा ज्ञानाज्ञानकृतावेव हि मोक्षबन्धाविति प्रसिद्धम्।'अत्र द्वयाह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च तत्र कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त' इति श्रुत्यनुसारेण शमादयो देवाः शास्त्रबलेन निष्पाद्यतया यत्नसाध्यत्वात् कनिष्ठाः । कामादयोऽसुराः स्वाभाविकत्वाज्ज्येष्ठाः। तेषां आत्मानं मोचयितुं मोहपाशैर्बद्धुं च मिथः स्पर्धमानानां यदा विष्णवाख्यं सत्त्वं वर्धते तदा देवानां जयोऽसुराणां पराजयश्चात्मविमोकहेतुर्भवतीत्याख्यायिकातात्पर्यम् । पदार्थः स्पष्टः ॥ १७ ॥ इतराः कश्यपस्त्रियः व्यजायन्त व्यजनयन्त ॥ २५ ॥

आदित्यानदितिर्जज्ञे देवश्रेष्ठान्महाबलान् ।
तेषां विष्णुर्वामनोऽभूद्गोविन्दश्चाभवत्प्रभुः ॥
तस्य विक्रमणाच्चापि देवानां श्रीर्व्यवर्धत ।
दानवाश्च पराभूता दैतेयी चासुरी प्रजा २७
विप्रचित्तिप्रधानांश्च दानवानसृजद्दनुः ।
दितिस्तु सर्वानसुरान्महासत्त्वानजीजनत् ॥
अहोरात्रं च कालं च यथर्तु मधुसूदनः ।
पूर्वाह्णं चापराह्णं च सर्वमेवान्वकल्पयत् ॥२९
प्रध्याय सोऽसृजन्मेघांस्तथा स्थावरजङ्गमान् ।
पृथिवीं सोऽसृजद्विश्वां सहितां भूरितेजसा
ततः कृष्णो महाबाहुः पुनरेव युधिष्ठिर ।
ब्राह्मणानां शतं श्रेष्ठं मुखादेवासृजत्प्रभुः ३१
बाहुभ्यां क्षत्रियशतं वैश्यानामूरुतः शतम् ।
पद्भ्यां शूद्रशतं चैव केशवो भरतर्षभ ॥ ३२
स एवं चतुरो वर्णान् समुत्पाद्य महातपाः ।
अध्यक्षं सर्वभूतानां धातारमकरोत्स्वयम् ३३
वेदविद्याविधातारं ब्रह्माणममितद्युतिम् ।
भूतमातृगणाध्यक्षं विरूपाक्षं च सोऽसृजत्
शासितारं च पापानां पितॄणां समवर्तिनम्
असृजत्सर्वभूतात्मा निधिपं च धनेश्वरम् ॥
यादसामसृजन्नाथं वरुणं च जलेश्वरम् ।
वासवं सर्वदेवानामध्यक्षमकरोत्प्रभुः ॥ ३६
यावद्यावदभूच्छ्रद्धा देहं धारयितुं नृणाम् ।
तावत्तावदजीवंस्ते नासीद्यमकृतं भयम् ॥३७
न चैषां मैथुनो धर्मो बभूव भरतर्षभ ।
संकल्पादेव चैतेषामपत्यमुपपद्यते ॥ ३८
ततस्त्रेतायुगे काले संस्पर्शाज्जायते प्रजा ।
न ह्यभून्मैथुनो धर्मस्तेषामपि जनाधिप ॥३९
द्वापरे मैथुनो धर्मः प्रजानामभवन्नृप ।
तथा कलियुगे राजन् द्वन्द्वमापेदिरे जनाः ॥
एष भूतपतिस्तात स्वध्यक्षश्च तथोच्यते ।
निरपेक्षांश्च कौन्तेय कीर्तयिष्यामि तच्छृणु
दक्षिणापथजन्मानः सर्वे नरवरान्ध्रकाः ।
गुहाः पुलिन्दाः शबराश्चुचुका मद्रकैः सह ॥
उत्तरापथजन्मानः कीर्तयिष्यामि तानपि ।
यौनकाम्बोजगान्धाराः किराता बर्बरैः सह
एते पापकृतस्तात चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।
श्वपाकबलगृध्राणां सधर्माणो नराधिप ॥४४
नैते कृतयुगे तात चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।
त्रेताप्रभृति वर्धन्ते ते जना भरतर्षभ ॥ ४५
ततस्तस्मिन्महाघोरे सन्ध्याकाल उपस्थिते ।
राजानः समसज्जन्त समासाद्येतरेतरम् ४६
एवमेष कुरुश्रेष्ठ प्रादुर्भूतो महात्मना ।
देवं देवर्षिराचष्ट नारदः सर्वलोकदृक् ॥ ४७
नारदोऽप्यथ कृष्णस्य परं मेने नराधिप ।
शाश्वतत्वं महाबाहो यथावद्भरतर्षभ ॥ ४८
एवमेष महाबाहुः केशवः सत्यविक्रमः ।
अचिन्त्यः पुण्डरीकाक्षो नैष केवलमानुषः ४९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि सर्वभूतोत्पत्तिकथने सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥

## २०८-[३५]

युधिष्ठिर उवाच ।

के पूर्वमासन्पतयः प्रजानां भरतर्षभ । के चर्षयो महाभागा दिक्षु प्रत्येकशः स्मृताः ॥ १

---

प्रध्याय आलोच्य सः मधुसूदनः पृथिवीमिति पृथिवीस्थसर्वभूतोपलक्षणम् ॥३०॥ शतमनन्तम् ॥३१॥ धातारं समष्ट्यहंकारम् ॥ ३३ ॥ तत एव चतुर्मुखादयो जाता इत्याह-**वेदेत्यादिना** ॥ ३४ ॥ समवर्तिनं यमं 'समवर्ती परेतराट्' इत्यमरः ॥३५॥ निरयमेव ईक्षन्ते तान् ॥ ४१ ॥ **एवमिति** । प्रादुर्भूतो नित्यसिद्ध एव सन् न त्वभूत्वा भूतः अत एव भूतोत्पत्तिरित्यध्यायनाम संगच्छते । महात्मना श्रीकृष्णेन हेतुना ॥४७॥ विग्रहविशिष्टस्य कृष्णस्य प्रतिपादितं जगद्धेतुत्वमुपसंहरति-**एवमेष इति** । केवलमानुषो न अपि तु परमात्मैव अत एव अचिन्त्यः॥४९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः २०७

२०८

पूर्वं ध्यानाय कृष्णमाहात्म्यमुक्तं तत्र ध्यानप्रतिपक्षाः कामादय आन्तराः शत्रवः सन्ति । तेषां प्रशमाय पूर्वेषां

भीष्म उवाच।

श्रूयतां भरतश्रेष्ठ
'यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
प्रजानां पतयो येऽस्मिन्
दिक्षु ये चर्षयः स्मृताः॥ २

एकः स्वयंभूर्भगवानाद्यो ब्रह्मा सनातनः।
ब्रह्मणः सप्त वै पुत्रा महात्मानः स्वयंभुवः॥ ३
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महाभागः सदृशो वै स्वयंभुवा॥ ४
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वानेव प्रजापतीन्॥ ५
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ब्रह्मयोनिः सनातनः।
प्राचीनबर्हिर्भगवांस्तस्मात्प्राचेतसो दश॥ ६
दशानां तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः।
तस्य द्वे नामनी लोके दक्षः क इति चोच्यते
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी स्मृते।
अरिष्टनेमिरित्येके कश्यपेत्यपरे विदुः॥ ८

अत्रेश्चैवौरसः श्रीमान्
राजा सोमश्च वीर्यवान्।
सहस्रं यश्च दिव्यानां
युगानां पर्युपासिता॥ ९

अर्यमा चैव भगवान् ये चास्य तनया विभो
एते प्रदेशाः कथिता भुवनानां प्रभावनाः॥ १०
शशबिन्दोश्च भार्याणां सहस्राणि दशाच्युत
एकैकस्यां सहस्रं तु तनयानामभूत्तदा॥ ११
एवं शतसहस्राणि दश तस्य महात्मनः।
पुत्राणां च न ते कश्चिदिच्छन्त्यन्यं प्रजापतिम्

प्रजामाचक्षते विप्राः
पुराणाः शाशबिन्दवीम्।
स वृष्णिवंशप्रभवो
महावंशः प्रजापतेः॥ १३

एते प्रजानां पतयः समुद्दिष्टा यशस्विनः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्॥ १४
भगोंशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा।
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते॥ १६
इत्येते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः॥
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि।
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य महात्मनः॥ १७

ते च पूर्वं सुराश्चेति
द्विविधाः पितरः स्मृताः।
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान्
विश्वरूपो महायशाः॥ १८

अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः॥ १९
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः।
पूर्वमेव महाभागा वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥ २०
एत एवंविधा देवा मनोरेव प्रजापतेः।
ते च पूर्वं सुराश्चेति द्विविधाः पितरः स्मृताः॥

शील-यौवनतस्त्वन्य-
स्तथाऽन्यः सिद्धसाध्ययोः।
ऋभवो मरुतश्चैव
देवानां चोदितो गणः।

एवमेते समाम्नाता विश्वेदेवास्तथाऽश्विनौ।
आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशश्च मरुतस्तथा
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समाश्रितौ
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम्।
एतान्वै प्रातरुत्थाय देवान् यस्तु प्रकीर्तयेत्॥
स्वजादन्यकृताच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते।
यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू॥ २६
औशिजश्चैव कक्षीवान् बलश्चाङ्गिरसः स्मृतः
ऋषिर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा॥
त्रैलोक्यभावनास्तात प्राच्यां सप्तर्षयस्तथा।
उन्मुचो विमुचश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान्॥
प्रमुचश्चेध्मवाहश्च भगवांश्च दृढव्रतः।
मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान्
एते ब्रह्मर्षयो नित्यमाश्रिता दक्षिणां दिशम्
उषंगुः कवषो धौम्यः परिव्याधश्च वीर्यवान्

---

गुरूणां स्मरणं कर्तव्यमित्येतदर्थोऽयमध्याय आरभ्यते। 'असतो मासद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय' इति वेदे अभ्यारोहमंत्र इवात्र चातुर्वर्ण्यसाधारण्येन योगारोहाय जप्योऽयं सर्वदिग्गतान् विघ्नान् शमयतीति दिशास्वस्तिकामित्यस्य नाम। के पूर्वमासन्पतय इत्यादिरक्षरयोजना स्पष्टा॥ १॥ प्रदेशाः प्रदिशन्ति आज्ञापयन्तीति प्रदेशा ईशनशीला इत्यर्थः। प्रभावनाः प्रकर्षेण स्रष्टारश्च॥१०॥ स्वजात् स्वयं कामतोऽकामतश्च कृतात् अन्यसंसर्गजात्॥ २६॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ।
अत्रेः पुत्रश्च भगवांस्तथा सारस्वतः प्रभुः ३१
एते चैव महात्मानः पश्चिमामाश्रिता दिशम्
आत्रेयश्च वसिष्ठश्च काश्यपश्च महानृषिः ३२
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः ३३
जमदग्निश्च सप्तैते उदीचीमाश्रिता दिशम् ।
एते प्रतिदिशं सर्वे कीर्तितास्तिग्मतेजसः ३४
साक्षिभूता महात्मानो भुवनानां प्रभावनाः
एवमेते महात्मानः स्थिताः प्रत्येकशो दिशम्
एतेषां कीर्तनं कृत्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते ।
यस्यां यस्यां दिशि ह्येते तां दिशं शरणं गतः
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वस्तिमांश्च गृहान्व्रजेत्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि दिशास्वस्तिकं नाम अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

## २०९–[३६]

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ
युधि सत्यपराक्रम ।
श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन
कृष्णमव्ययमीश्वरम् ॥ १
यच्चास्य तेजः सुमहद्यच्च कर्म पुरा कृतम् ।
तन्मे सर्वं यथातत्त्वं ब्रूहि त्वं पुरुषर्षभ ॥ २
तिर्यग्योनिगतो रूपं कथं धारितवान्प्रभुः ।
केन कार्यनिसर्गेण तमाख्याहि महाबल ॥ ३
भीष्म उवाच ।
पुराऽहं मृगयां यातो मार्कण्डेयाश्रमे स्थितः
तत्रापश्यं मुनिगणान् समासीनान्सहस्रशः
ततस्ते मधुपर्केण पूजां चक्रुरथो मयि ।
प्रतिगृह्य च तां पूजां प्रत्यनन्दमृषीनहम् ५
कथैषा कथिता तत्र कश्यपेन महर्षिणा ।
मनःप्रल्हादिनीं दिव्यां तामिहैकमनाः शृणु
पुरा दानवमुख्या हि क्रोधलोभसमन्विताः ।
बलेन मत्ताः शतशो नरकाद्या महासुराः ७
तथैव चान्ये बहवो दानवा युद्धदुर्मदाः ।
न सहन्ते स्म देवानां समृद्धिं तामनुत्तमाम्
दानवैरर्द्यमानास्तु देवा देवर्षयस्तथा ।
न शर्म लेभिरे राजन् विशमानास्ततस्ततः ८
पृथिवीमार्तरूपां ते समपश्यन् दिवौकसः ।
दानवैरभिसंस्तीर्णां घोररूपैर्महाबलैः ॥ १०
भारार्तामपहृष्टां च दुःखितां संनिमज्जतीम्
अथादितेयाः संत्रस्ता ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ११
कथं शक्ष्यामहे ब्रह्मन्दानवैरभिमर्दनम् ।
स्वयंभूस्तानुवाचेदं निसृष्टोऽत्र विधिर्मया ॥
ते वरेणाभिसंपन्ना बलेन च मदेन च ।
नावबुध्यन्ति संमूढा विष्णुमव्यक्तदर्शनम्१३
वराहरूपिणं देवमधृष्यममरैरपि ।
एष वेगेन गत्वा हि यत्र ते दानवाधमाः १४
अन्तर्भूमिगता घोरा निवसन्ति सहस्रशः ।
शमयिष्यति तच्छ्रुत्वा जहृषुः सुरसत्तमाः १५
ततो विष्णुर्महातेजा वाराहं रूपमास्थितः ।
अन्तर्भूमिं संप्रविश्य जगाम दितिजान्प्रति १६

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः २०८

२०९

एवं स्वस्त्ययनपूर्वकं कृष्णं ध्यायतः पुरुषस्यान्तराविर्भूतः कृष्णो हृद्गतान् कामादीन् योगप्रतिपक्षान्नाशयतीति अन्तर्भूमिविक्रीडनाख्येऽस्मिन्नध्याये वराहाख्यायिकामुखेन प्रतिपाद्यते-पितामह महाप्राज्ञेत्यादिना ॥ १ ॥ पृथिवीं बुद्धिं वासनारूपबीजानां क्षेत्रभूताम्। दानवैः कामक्रोधाद्यैरभिसंस्तीर्णां सर्वतो व्याप्ताम् ॥ १० ॥ वराहरूपिणं वरं च तदहश्चेति व्युत्पत्त्या श्रेष्ठक्रतुर्योगः तत्र रूपयितुं आविर्भवितुं शीलमस्य तम् । अहःशब्दस्य क्रतुवाचित्वं 'अन्हः खः क्रतौ' इत्यादिषु दृष्टम्। दानवाः कामक्रोधादयः ॥ १४ ॥ अन्तर्भूमिगताः देहस्थाः॥ १५ ॥ विष्णुः सत्त्वं वाराहं यागात्मकम् ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा च सहिताः सर्वे दैत्याः सत्त्वममानुषम्।
प्रसह्य तरसा सर्वे संतस्थुः कालमोहिताः॥
ततस्ते समभिद्रुत्य वराहं जगृहुः समम्।
संक्रुद्धाश्च वराहं तं व्यकर्षन्त समन्ततः १८
दानवेन्द्रा महाकाया महावीर्यबलोच्छ्रिताः
नाशक्नुवंश्च किञ्चित्ते तस्य कर्तुं तदा विभो॥
ततोऽगच्छन्विस्मयं ते दानवेन्द्रा भयं तथा
संशयं गतमात्मानं मेनिरे च सहस्रशः॥ २०
ततो देवाधिदेवः स योगात्मा योगसारथिः
योगमास्थाय भगवांस्तदा भरतसत्तम॥ २१
विननाद महानादं क्षोभयन् दैत्यदानवान्।
सन्नादिता येन लोकाः सर्वाश्चैव दिशो दश
तेन सन्नादशब्देन लोकानां क्षोभ आगमत्।
संत्रस्ताश्च भृशं लोके देवाः शक्रपुरोगमाः॥
निर्विचेष्टं जगच्चापि बभूवातिभृशं तदा।
स्थावरं जङ्गमं चैव तेन नादेन मोहितम् २४
ततस्ते दानवाः सर्वे तेन नादेन भीषिताः।
पेतुर्गतासवश्चैव विष्णुतेजःप्रमोहिताः॥ २५
रसातलगतश्चापि वराहस्त्रिदशद्विषाम्।
खुरैर्विदारयामास मांसमेदोस्थिसञ्चयान् २६
नादेन तेन महता सनातन इति स्मृतः।
पद्मनाभो महायोगी भूताचार्यः स भूतराट्

ततो देवगणाः सर्वे पितामहमुपाद्रवन्।
तत्र गत्वा महात्मानमूचुश्चैव जगत्पतिम् २८
नादोऽयं कीदृशो देव
नैतं विद्म वयं प्रभो।
कोऽसौ हि कस्य वा नादो
येन विह्वलितं जगत्॥ २९
देवाश्च दानवाश्चैव मोहितास्तस्य तेजसा।
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्वाराहं रूपमास्थितः।
उदतिष्ठन्महाबाहो स्तूयमानो महर्षिभिः ३०
पितामह उवाच।
निहत्य दानवपतीन् महावर्ष्मा महाबलः।
एष देवो महायोगी भूतात्मा भूतभावनः ३१
सर्वभूतेश्वरो योगी मुनिरात्मा तथाऽऽत्मनः
स्थिरीभवत कृष्णोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ३२
कृत्वा कर्मातिसाध्वेतदशक्यममितप्रभः।
समायातः स्वमात्मानं महाभागो महाद्युतिः
पद्मनाभो महायोगी महात्मा भूतभावनः।
न संतापो न भीः कार्या शोको वा सुरसत्तमाः
विधिरेष प्रभावश्च कालः संक्षयकारकः।
लोकान्धारयता तेन नादो मुक्तो महात्मना
स एष हि महाबाहुः सर्वलोकनमस्कृतः।
अच्युतः पुण्डरीकाक्षः सर्वभूतादिरीश्वरः॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि अन्तर्भूमिविक्रीडनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०९॥

## २१०-[३७]

युधिष्ठिर उवाच।
योगं मे परमं तात मोक्षस्य वद भारत। तमहं तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि वदतां वर॥ १॥

सत्त्वं सत्त्वगुणं विष्णुम्। अमानुषं दिव्यं व्यवहितादिग्राहकत्वात्। संतस्थुः नाशं गताः संपूर्वस्य तिष्ठतेः समाप्तिवाचित्वात्॥१७॥ नाशकममेवाह-**ततस्त इति**॥१८॥ सनात् सततं अनिति भक्तानुग्रहार्थं चेष्टत इति सनातनः। सनादन इत्यपेक्षिते दकारस्थाने तकारो नैरुक्तः नादेन सह वर्तमानः सनातन इति योगस्य दर्शितत्वात्॥२७॥ महावर्ष्मा महाकायः॥ ३१॥ आत्मा पारमार्थिकं स्वरूपम्। आत्मनो जीवस्य॥३२॥ स्वमात्मानं प्रत्यग्याथात्म्यं समायातः प्राप्तः॥ ३३॥ एष जीवः अत एव संतापादिकं न कार्यं तन्मूलस्यात्मादर्शनस्य नष्टत्वादिति भावः॥ ३६॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०९॥

२१०

एवमध्यायत्रयेण ईश्वरप्रणिधानमुक्तम्। येन शीघ्रतरं योगः सिद्ध्यति योगान्तरायाश्च व्याधिदुःखादयो नश्यन्ति। अथेदानीं प्रधानभूतं योगमेव जिज्ञासुः पृच्छति—**योगं मे इति**। परमं सबीजयोगात्परमं निर्बीजयोगं मोक्षस्य

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं मोक्षसंयुक्तं शिष्यस्य गुरुणा सह ॥ २
कश्चिद्ब्राह्मणमासीनमाचार्यमृषिसत्तमम् ।
तेजोराशिं महात्मानं सत्यसन्धं जितेन्द्रियम्
शिष्यः परममेधावी श्रेयोर्थी सुसमाहितः ।
चरणावुपसंगृह्य स्थितः प्राञ्जलिरब्रवीत ॥ ४
उपासनात्प्रसन्नोऽसि यदि वै भगवन्मम ।
संशयो मे महान्कश्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
कुतश्चाहं कुतश्च त्वं तत्सम्यग्ब्रूहि यत्परम् ५
कथं च सर्वभूतेषु समेषु द्विजसत्तम ।
सम्यग्वृत्तानि वर्तन्ते विपरीताः क्षयोदयाः६
वेदेषु चापि यद्वाक्यं लौकिकं व्यापकं च यत्
एतद्विद्वन् यथातत्त्वं सर्वं व्याख्यातुमर्हसि॥७

गुरुरुवाच ।

शृणु शिष्य महाप्राज्ञ ब्रह्म गुह्यमिदं परम् ।
अध्यात्मं सर्वविद्यानामागमानां च यद्वसु॥८
वासुदेवः परमिदं विश्वस्य ब्रह्मणो मुखम् ।
सत्यं ज्ञानमथो यज्ञस्तितिक्षा दम आर्जवम् ९
पुरुषं सनातनं विष्णुं यं तं वेदविदो विदुः ।
सर्गप्रलयकर्तारमव्यक्तं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १०
तादिदं ब्रह्म वार्ष्णेयमितिहासं शृणुष्व मे ।
ब्राह्मणो ब्राह्मणैः श्राव्यो राजन्यः क्षत्रियैस्तथा
वैश्यो वैश्यैस्तथा श्राव्यः
शूद्रः शूद्रैर्महामनाः ।
माहात्म्यं देवदेवस्य
विष्णोरमिततेजसः ॥ १२
अर्हस्त्वमसि कल्याणं वार्ष्णेयं शृणु यत्परम्
कालचक्रमनाद्यन्तं भावाभावस्वलक्षणम्॥ १३
त्रैलोक्यं सर्वभूतेशे चक्रवत्परिवर्तते ।
यत्तदक्षरमव्यक्तममृतं ब्रह्म शाश्वतम् ।
वदन्ति पुरुषव्याघ्र केशवं पुरुषर्षभम् ॥ १४
पितॄन्देवानृषींश्चैव तथा वै यक्षराक्षसान् ।
नागासुरमनुष्यांश्च सृजते परमोऽव्ययः ॥ १५
तथैव वेदशास्त्राणि लोकधर्मांश्च शाश्वतान् ।
प्रलयं प्रकृतिं प्राप्य युगादौ सृजते पुनः ॥ १६

---

हेतुं मोक्षं मे इति पाठे उपायोपेयविषयौ द्वौ प्रश्नौ तं सयोगं मोक्षम् ॥ १ ॥ कश्चिदिति श्लोकाभ्यां क्रमेण गुरुशिष्ययोर्गुणा दर्शिताः॥३॥ त्वं च अहं च कुतः उपादानात्कुतो वा निमित्तात् उत्पन्नौ स्वस्तद्ब्रूहि । यत्परं श्रेष्ठं उपादानं निमित्तं च न तु मातृपितृवत् पुण्यापुण्यवच्चान्तरालिकम् ॥ ५ ॥ भूतेषु पंचसु उपादानकारणेषु समेषु सत्सु विपरीता विषमाः कथं क्षयोदया निवर्तन्ते नितरां वर्तन्ते। वेदेषु यद्वाक्यं वर्णधर्मव्यवस्थापरं 'ब्राह्मणो बृहस्पतिसवेन यजेत राजा राजसूयेन यजेत वैश्यो वैश्यस्तोमेन यजेत तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः' इत्यादि लौकिकम्। स्मृतिवाक्यं तादृशं व्यापकं सर्ववर्णाश्रमसाधारणं 'न हिंस्यात्सर्वभूतानि' इत्यादि। इदमपि कथं हेतुसाम्येऽपि कार्यवैषम्ये किं बीजं तद्ब्रूहीत्यर्थः। श्लोकद्वयमेकं वाक्यम् ॥६॥ ब्रह्मगुह्यं वेदगोप्यम् वसु धनं तद्वत् रक्षणीयं उपकारकं वा ॥ ८ ॥ ब्रह्मणो मुखं वेदादिः प्रणवः । उपायोपेययोरभेदात्प्रणवादीनां वासुदेवत्वम् ॥ ९ ॥ उपेयस्वरूपमाह— **पुरुषमिति** ॥ १० ॥ एतदेवायं कृष्ण इत्याह— **तदिति** । वार्ष्णेयं वृष्णिषु कृतावतारम्। इतिहासं तत्स्वरूपप्रकाशनपरं ग्रन्थम् ॥ ११ वार्ष्णेयं कृष्णाख्यानं यत्परं कालचक्रं न त्वर्वाचीनं संवत्सराख्यम् । तत्केशवं वदन्तीत्युत्तरेणान्वयः । भावाभावौ सृष्टिप्रलयौ स्वलक्षणं स्वरूपज्ञापकौ यस्य-'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं निरूप्यते' इतिन्यायेनैव ज्ञातुं शक्यं न तु शृङ्गग्राहिकया गवाश्ववदित्यर्थः ॥ १३ ॥ सर्वभूतेशे यस्मिन् त्रैलोक्यं चक्रवत् चक्रारूढपिपीलिकावत् परवशत्वेन परिवर्तते केशैरिव चिद्रश्मिभिर्वाति सर्वं व्याप्नोतीति केशवस्तं पुरुषर्षभं पुरुषा अन्नमयादयः पञ्च तेषां ऋषभं श्रेष्ठमुत्तमं षष्ठमित्यर्थः ॥ १४ ॥ **पितॄनिति** । अव्ययः अपरिणामी ॥ १५ ॥ **तथैवेति** । वेदकर्तृत्वं ब्रह्मणो महतो भूतस्य निःश्वसि[illegible]तद्यदृग्वेद इत्यादिश्रुतिसिद्धम्। वाचा विरूपनित्ययेति वेदनित्यत्ववचनं तु वर्णपदाद्यानुपूर्व्यविभ्रंशमात्रपरम् । प्रलीयतेऽस्मिन्महदादिकार्यं स प्रलयस्तम् । प्रकरोतीति प्रकृतिः तां लयोत्पत्तिस्थानं मायाशबलमपि ससृजे इत्यर्थः तथा च श्रुतिः-' नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्' इति । सदसद्रजःशब्दितानां प्रधानशून्यपरमाणूनामानुमानिकानामिव श्रौतस्य परव्योम्नोऽपि मायाशबलापरनाम्नः सृष्टेः प्रागभावं वदन्ती तस्यापि जन्यत्वं दर्शयति मायायास्तुच्छत्वात् । ब्रह्मणश्चासंगत्वान्न तयोरेकीभावलक्षणं तात्त्विकं शाबल्यं संभवति ' तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् ' ' असंगो ह्ययं पुरुषः ' इतिश्रुतिभ्याम् । तस्मात्सृष्टेः प्राङ्मायाशबलं ब्रह्मासीदित्युक्तिर्मायायां स्थितैव युक्ता न तु वस्तुवृत्त्या। यथोक्तम् ' अस्या-

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु
अथ यद्यद्यदा भाति कालयोगाद्युगादिषु ।
तत्तदुत्पद्यते ज्ञानं लोकयात्राविधानजम् १८
युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान् महर्षयः
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥ १९
वेदविद्वेद भगवान् वेदाङ्गानि बृहस्पतिः ।
भार्गवो नीतिशास्त्रं तु जगाद जगतो हितम्
गान्धर्वं नारदो वेद भरद्वाजो धनुर्ग्रहम् ।
देवर्षिचरितं गार्ग्यः कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्
न्यायतन्त्राण्यनेकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभिः
हेत्वागमसदाचारैर्यदुक्तं तदुपास्यताम्॥ २२
अनाद्यं तत्परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः ।
एकस्तद्वेद भगवान् धाता नारायणः प्रभुः ॥
नारायणादृषिगणास्तथा मुख्याः सुरासुराः ।
राजर्षयः पुराणाश्च परमं दुःखभेषजम् ॥ २४

पुरुषाधिष्ठितान् भावान् प्रकृतिः सूयते यदा।
हेतुयुक्तमतः पूर्वं जगत्संपार्वततं ॥ २५
दीपादन्ये यथा दीपाः प्रवर्तन्ते सहस्रशः ।
प्रकृतिः सूयते तद्वदानन्त्यान्नापचीयते ॥ २६
अव्यक्तात्कर्मजा बुद्धिरहंकारं प्रसूयते ।
आकाशं चाप्यहंकाराद्वायुराकाशसंभवः॥२७
वायोस्तेजस्ततश्चाप अद्भ्योऽथ वसुधोद्गता ।
मूलप्रकृतयो ह्यष्टौ जगदेतास्ववस्थितम् ॥ २८
ज्ञानेन्द्रियाण्यतः पञ्च पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
विषयाः पञ्च चैकं च विकारे षोडशं मनः ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा
घ्राणं ज्ञानेन्द्रियाण्यथ ।
पादौ पायुरुपस्थश्च
हस्तौ वाक्कर्मणी अपि ॥ ३०

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
विज्ञेयं व्यापकं चित्तं तेषु सर्वगतं मनः ॥ ३१

विद्येत्यविद्यायामेवासित्वाप्रकल्प्यते ' इति । अतो युक्तमुक्तं प्रकृतिं सृजते इति । रज्जूरगवत् प्रतीतिसमकालाया एव तत्सृष्टेरुपगमादिति दिक् ॥ १६॥ **यथेति** । प्रत्यब्दं यथा वसन्ते आम्रवृक्षा ग्रीष्मे मल्लिका वर्षासु कदम्बा नियमेन पुष्पिता भवन्ति । एवं ब्रह्महरविष्ण्वादिषु प्रतिकल्पं सृष्टिप्रलयस्थितिकर्तृत्वं तदा तदा आविर्भवति॥१७॥ एतदेव व्याचष्टे-**अथेति** । तत्तत्तस्मिंस्तस्मिन् विषये। लोकयात्रा व्यवहारस्तस्य विधानं प्रमाणेन प्रमेयख्यापनं तज्जं तेन सोपाधिकमेव ज्ञानमुत्पद्यते न निरुपाधिकमित्युक्तं भवति ॥१८॥ युगान्ते युगादौ अन्तर्हितान् पूर्वयुगे येऽभूवन् तान् अनुज्ञाताः उपदिष्टाः स्वयंभुवा ब्रह्मणा ॥ १९ ॥ वेदवित् भगवान्ब्रह्मा वेदाङ्गानि बृहस्पतिर्वेदेति सम्बन्धः ॥ २० ॥ न्यायतन्त्राणि तार्किकवैशेषिककापिलपातञ्जलादीनि हेतुर्युक्तिः आगमो वेदः सदाचारः प्रत्यक्षं तैः प्रमाणैः कृत्वा एतैर्मुनिभिर्यद्ब्रह्म उक्तं तत् उपास्यतां अमुख्यत्वात् तदुपास्यमेव न वेदान्तविज्ञेयमित्यर्थः । तथा चोपास्यस्याब्रह्मत्वं श्रुतिराह—'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ' इति ॥ २२ ॥ अनाद्यं नास्ति आद्यं कारणं यस्य तत् । यद्वा आदौ विदितमाद्यं तदन्यदनाद्यं सर्गादौ अविदितमित्यर्थः । कथं तर्हि देवा न विदुरित्यत आह—**एक इत्यादि** ॥ २३ ॥ ब्रह्मज्ञानस्य आत्यन्तिकदुःखनिवर्तकत्वमुक्त्वाध्यारोपापवादन्यायेन ब्रह्म निरूपयति-**पुरुषेति** । पुरुषेण अधिष्ठितान् आलोचितान् ' सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतेः। तेन सांख्याभिमतं प्रकृतेः स्वातंत्र्यं निरस्तम् । अचेतने चेतनानधिष्ठिते शकटादौ प्रवृत्त्यदर्शनाच्च युक्तं तत् सूयते प्रसवोन्मुखीजायते । भावान्महदादीन् हेतुः धर्माधर्मौ ताभ्यां युक्तम्। अत एव सर्गादावपि तारतम्यं युक्तम् । अत ईशात् हेतुयुक्तामिति सांख्यमतं प्रकृतेर्धर्माद्यप्रवर्त्यत्वं निरस्तम् । तेषां हि जलवत्स्वतः प्रवर्तमानायाः प्रकृतेः पापं सुखपरिणामं प्रतिबध्नाति पुण्यं च दुःखपरिणामम्। तत्रान्यतरेणान्यतरस्य स्वोदये प्रतिबन्धशक्तिरपनीयत इति ॥२५॥**दीपादिति** । हेतुयुक्तामित्यत्रापि वर्तते । तैलवर्त्यादिहेतौ सति यथा दीपादनेके दीपाः प्रभवन्तीत्येवमदृष्टोपग्रहात् प्रकृतिर्महदादिकार्यं सूयते । दीपवदानन्त्याच्च नापचीयते ईशादृष्टाभ्यां प्रकृतिः प्रवर्त्यत इति श्लोकद्वयतात्पर्यम् ॥ २६॥ सृष्टिक्रममाह— **अव्यक्तादिति** । कर्मजेति ईशादपि कर्मप्राबल्यं दृश्यते तस्य कर्मापेक्षयैव सदसत्फलदत्वात् । बुद्धिर्महत्तत्त्वम् तथा च सर्गादौ कर्मैव प्रकृतिं प्रवर्तयतीत्यर्थः । आकाशादिपदैः शब्दतन्मात्रादीनि ज्ञेयानि ॥ २७ ॥ अतः पुरुषाधिष्ठितप्रकृत्याद्यष्टकात् विषया इति शब्दाद्याश्रयाः स्थूलाकाशादयः । वाय्वाकाशयोरपि स्पर्शशब्दलिंगानुमेयतया विषयत्वम् ॥ २९ ॥ वाक्कर्मणी इत्यत्र वागिंद्रियं कर्मशब्देन सर्वेषामिन्द्रियाणां कर्माणि वचनादानगतिविसर्गानन्दाख्यानि ज्ञेयानि ॥ ३० ॥ **शब्द इति** । शब्दादयः चित्तमिति विज्ञेयम्। चित्तमात्रोपादाना इत्यर्थः। यदाहुः- भगवन्तोऽक्षपादाचार्याः—'**दोषनिमित्तं रूपादयो- विषयाः संकल्पकृताः' इति** । प्रमेयस्य चित्तमात्र-

रसज्ञाने तु जिह्वेयं व्याहृते वाक् तथोच्यते
इन्द्रियैर्विविधैर्युक्तं सर्वं व्यक्तं मनस्तथा ३२
विद्यात्तु षोडशैतानि दैवतानि विभागशः।
देहेषु ज्ञानकर्तारमुपासीनमुपासते॥ ३३
तद्वत्सोमगुणा जिह्वा गन्धस्तु पृथिवीगुणः।
श्रोत्रं नभोगुणं चैव चक्षुरग्नेर्गुणस्तथा।
स्पर्शं वायुगुणं विद्यात्सर्वभूतेषु सर्वदा ३४
मनः सत्त्वगुणं प्राहुः सत्त्वमव्यक्तजं तथा।
सर्वभूतात्मभूतस्थं तस्माद्बुद्ध्येत बुद्धिमान्॥
एते भावा जगत्सर्वं वहन्ति सचराचरम्।
श्रिता विरजसं देवं यमाहुः प्रकृतेः परम् ३६
नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम्।
व्याप्य शेते महानात्मा तस्मात्पुरुष उच्यते॥
अजरः सोऽमरश्चैव व्यक्ताव्यक्तोपदेशवान्।
व्यापकः सगुणः सूक्ष्मः सर्वभूतगुणाश्रयः ३८

यथा दीपः प्रकाशात्मा
ह्रस्वो वा यदि वा महान्।
ज्ञानात्मानं तथा विद्यात्
पुरुषं सर्वजन्तुषु॥ ३९
श्रोत्रं वेदयते वेद्यं स शृणोति स पश्यति।
कारणं तस्य देहोऽयं स कर्ता सर्वकर्मणाम्॥
अग्निर्दारुगतो यद्वच्छिन्ने दारौ न दृश्यते।
तथैवात्मा शरीरस्थो योगेनैवानुदृश्यते ४१
अग्निर्यथा ह्युपायेन मथित्वा दारु दृश्यते।
तथैवात्मा शरीरस्थो योगेनैवात्र दृश्यते॥४२
नदीष्वापो यथा युक्ता यथा सूर्ये मरीचयः।
संततत्वाद्यथा यान्ति तथा देहाः शरीरिणाम्
स्वप्नयोगे यथैवात्मा पञ्चेन्द्रियसमायुतः।
देहमुत्सृज्य वै याति तथैवात्मोपलभ्यते ४४
कर्मणा बाध्यते रूपं कर्मणा चोपलभ्यते।
कर्मणा नीयतेऽन्यत्र स्वकृतेन बलीयसा॥ ४५

त्वमुक्त्वा प्रमाणस्यापि तदाह-**तेष्विति**। तेषु शब्दादिष्वपि सर्वेषु गतं श्रोत्रादिरूपेणोपगतं मन एव ॥३१॥ एतदेव स्पष्टयति-**रसेति**। रसज्ञाने मन एव इयं जिह्वेत्यर्थः-'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इत्यादिश्रुतेः। व्याहृते शब्दप्रयोगे इदम्। द्वयं ज्ञानकर्मेन्द्रियपञ्चकद्वयस्योपलक्षणमित्याह—**इंद्रियैरिति**। सर्वं आन्तरं बुद्धिसुखदुःखादि बाह्यं वियच्छब्दादि तथाऽव्यक्तं महदादि घटान्तं मन एव। तथा च श्रुतिः-'असतोऽधिमनोऽसृज्यत मनः प्रजापतिमसृजत प्रजापतिः प्रजा असृजत तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितं यदिदं किंच' इति ॥३२॥ षोडश दशेन्द्रियाणि मनः पञ्चभूतानि। ज्ञानकर्तारं विज्ञानात्मानं उपासीनं अर्थात्परात्मानं तस्यापि संहतत्वेन असंहतपुरुषशेषत्वात् ॥ ३३ ॥ रसात्मकत्वात्सोमो जलं तस्य गुणः कार्यं जिह्वा गन्धो गन्धग्राहकं घ्राणं ग्राह्यग्राहकयोरभेदात्स्पर्शं स्पर्शनेन्द्रियं जिह्वादीनां जलादिकार्यत्वं तद्गतरसादिग्राहकत्वाद्ग्राह्यग्राहकयोः समानजातीयत्वनियमोऽनेन सूचितः ॥ ३४ ॥ सत्त्वगुणं सत्त्वकार्यं अव्यक्तजं प्रधानकार्यं सर्वेषां भूतानामात्मभूत ईश्वरस्तत्स्थं उपाधित्वेन तत्र स्थितं सर्वान्तरङ्गं सत्त्वं जानीयात् सत्त्वाविशिष्टस्य ज्ञेयत्वेऽपि चिद्विवेके परिशेषादचितः सत्त्वस्यैव ज्ञेयत्वमस्तीति सत्त्वमेव बुद्ध्येतेत्युक्तम् ॥ ३५ ॥ एते सत्त्वादय ईशादयो वा विरजसं सर्वप्रवृत्तिशून्यं कूटस्थम् ॥ ३६ ॥ नव ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी देहप्राणौ च द्वाराणि विषयप्रापकाणि यस्मिन् तन्नवद्वारम्। भावैः शब्दादिभिः ॥ ३७ ॥ अजरामर इति देहधर्मा स्पर्श उक्तः। व्यक्तं मूर्तं अव्यक्तं अमूर्तं तदुभयात्मना उपदिश्यते वेदे। 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च' इत्यादिना यः स व्यक्ताव्यक्तोपदेशः कार्यकारणात्मा तद्वान् तदधिष्ठानभूतो नेतिनेतीत्यागमविषयः। एवंविधोऽपि व्यापकः कारणात्मा। सगुणो यः सर्वज्ञ इत्यादिश्रुतेः सार्वज्ञ्यादिगुणयुक्तः सूक्ष्मः दुर्लक्ष्यः सर्वाणि भूतानि गुणाश्च सत्त्वादयस्तेषामाश्रयोऽधिष्ठानम् ॥ ३८ ॥ **यथेति**। उपाधिवशान्महत्त्वमल्पत्वं वा प्राप्तोऽपि दीपवत्सर्वजन्तुषु स एवेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ येन श्रोत्रं वेद्यं स्वविषयं शब्दं वेदयते स एव शृणोति। एवं पश्यतीत्यादिष्वपि योज्यम् येन श्रोत्रं शृणोति हि येन चक्षुश्च पश्यतीत्यादिश्रुतिभ्यः। अयं देहस्तु तस्य शब्दादिवेदनस्य कारणं निमित्तं न तु वेत्ता किं तु स एव कर्ता॥४०॥ एवंविधस्यापि देहे कुतोऽनुपलंभ इत्याशंक्योपायाभावादित्याह—**अग्निरिति**। दारुभेदे कृतेऽपि न दृश्यते अयोगे योगाभावे सति नैवानुदृश्यते ॥४१॥ व्यतिरेकमुक्त्वा अन्वयमाह-दारु दारुणि योगेनैव नान्येनोपायेन ॥ ४२ ॥ योगाभावे देहसंबंधो न विच्छिद्यत इत्याह-**नदीष्विति**॥४३॥ देहान्तरप्रवेशोऽपि न शालाचैत्रवत् किं तु स्वप्नवदित्याह—**स्वप्नेति**। तथैव मरणान्ते देहमुत्सृज्य देहान्तरं प्राप्नोतीत्युपलभ्यते शास्त्रदृष्ट्या योगेन वा ज्ञायते ॥ ४४ ॥ केन हेतुना देहान्तरं यातीति तत्राह-**कर्मणेति**। रूपं प्राचीनं शरीरं बाध्यते न तु विवर्तते भ्रान्तिगृहीतस्य घटवान्निवृत्त्ययोगात्॥४५॥

**स तु देहाद्यथा देहं त्यक्त्वाऽन्यं प्रतिपद्यते। तथाऽन्यं संप्रवक्ष्यामि भूतग्रामं स्वकर्मजम् ४६**

**इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥**

## २११-[३८]

**भीष्म उवाच।**

**चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च**
**अव्यक्तप्रभवान्याहुरव्यक्तनिधनानि च।**
**अव्यक्तलक्षणं विद्यादव्यक्तात्मात्मकं मनः १**
**यथाऽश्वत्थकणीकायामन्तर्भूतो महाद्रुमः।**
**निष्पन्नो दृश्यते व्यक्तमव्यक्तात्संभवस्तथा २**
**अभिद्रवत्ययस्कान्तमयो निश्चेतनं यथा।**
**स्वभावहेतुजा भावा यद्वदन्यदपीदृशम् ॥३**
**तद्वदव्यक्तजा भावाः कर्तुः कारणलक्षणाः।**
**अचेतनाश्चेतयितुः कारणादभिसंहताः ॥ ४**
**न भूर्न खं द्यौर्भूतानि नर्षयो न सुरासुराः।**
**नान्यदासीदृते जीवमासेदुर्न तु संहतम् ॥ ५**
**पूर्वं नित्यं सर्वगतं मनोहेतुमलक्षणम्।**
**अज्ञानकर्मनिर्दिष्टमेतत्कारणलक्षणम् ॥ ६**
**तत्कारणैर्हि संयुक्तं कार्यसंग्रहकारकम्।**
**येनैतद्वर्तते चक्रमनादिनिधनं महत् ॥ ७**

एतदेव विशदयितुं प्रतिजानीते—**स त्विति** ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

२११

प्रतिज्ञातं निरूपयति—**चतुरिति**। न व्यक्तः प्रभवो देहान्तरप्राप्तिर्येषां अव्यक्तं निधनं पूर्वदेहवियोगो येषाम्। स्वप्नवत्पूर्वापरदेहे त्यागयोगौ न गृहात् गृहान्तरप्रवेशवत्स्पष्टावित्यर्थः। अत्र हेतुमाहार्धेन—**अव्यक्तेति**। यतः न व्यक्तं लक्षणं ज्ञापकमस्य तादृशं अतोऽव्यक्तलक्षणम्। अत्र हेतुः अव्यक्तात्मात्मकं अव्यक्तो य आत्मा तदात्मकं द्वितीयेन्दुवत्तत्रैव कल्पितम्। अतस्तत्कल्पिते प्रभवनिधने अपि अव्यक्ते एवेत्यर्थः ॥ १ ॥ नन्वेवं मध्येऽपि देहादिरव्यक्त एव स्यादाद्यन्तयोरव्यक्तत्वादित्यत आह—**यथेति**। प्रागूर्ध्वं चाव्यक्तोऽप्यश्वत्थो मध्ये व्यक्तो भवति। एवमव्यक्तान्मनसः संभवो व्यक्तिर्दृश्यस्येत्यर्थः ॥ २ ॥ **अभीति**। यथाऽयस्कान्तं लोहचुम्बकपाषाणं प्रत्यचेतनमप्ययोलोहमभिमुखं गच्छति एवं देहं व्यक्तिगतमनुस्वभावः पूर्वसंस्कारो हेतुर्येषां कर्मणां तज्जाः धर्माधर्मादयो भावाः अर्था अभिद्रवन्ति। यच्चान्यदपि ईदृशं अविद्यादिकं तदपि अभिद्रवति ॥ ३ ॥ इममेव न्यायमन्यत्राप्यतिदिशति—**तद्वदिति**। अव्यक्तजाः अविद्योत्थाः भावाः कामकर्मवासनादेहेन्द्रियादयश्चाचेतना अभितःसंहताः। एवं कर्तुः चेतनस्य कारणलक्षणाः कारणं ब्रह्म लक्षयन्ति ते कारणात् ब्रह्मणः सकाशात्सत्त्वचित्त्वानन्दत्वादयोऽपि भावा अभिसंगताः यथापूर्वं कृत्स्नोऽप्यात्मानात्मगुणगणो देहान्तरप्राप्तौ संहन्यत इत्यर्थः ॥ ४ ॥ ननु शुक्रशोणितसंयोगादिक्रमेण देहवृद्ध्यादिकं दृश्यते तत्कथं स्वाप्नदेहवदाकस्मिकी देहान्तरप्राप्तिरित्याशंक्याह—**न भूरिति** द्वाभ्याम्। जीवं चिद्धातुं विना भ्वादयो वा ऋषयः प्राणाः प्राणा वा ऋषय इतिश्रुतेः सुरासुराः शमकामादयः इत्येवमादिकं अन्यन्नैवासीत् प्रागुत्पत्तेः। संहतं अज्ञानोपाधिं जीवं एते राजानं भृत्या इव नाप्यासेदुः पश्चादपि नासादितवन्तः। भ्वादयो नित्यं जीवेनासंगता इत्यर्थः ॥ ५ ॥ कथं तर्हि तत्संबन्धस्य जीवे प्रतीतिरत आह—**पूर्वमिति**। एतज्जीवे भ्वादितादात्म्यं अज्ञानकर्म-मया कार्यं इति निर्दिष्टं वेदे'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्यादौ। पूर्वं अनादि नित्यं अज्ञाने सत्यनुच्छेद्यं सर्वगतं विद्वदविद्वत्साधारणं व्यवहारकाले। यथोक्तं **पश्वादिभिश्चाविशेषादिति**। मनोहेतुं मनोजन्यम्। अलक्षणं अनिर्वचनीयं कारणं पूर्ववासना सैव लक्षणं विशेषतो ज्ञापकं यस्य प्राग्भवीयवासनावशादेव तत्तन्नृपश्वादिदेहतादात्म्यमात्मनः प्रतीयते यथा स्वप्नेऽराज्ञोऽपि राजाऽस्मीति प्रतीतिः तद्वद्बालस्यापि बालोऽस्मीति देहान्तरप्राप्तौ प्रतीतिर्जायते इत्यर्थः ॥ ६ ॥ ततश्च किमित्यत आह—**तदिति**। तत् जीवस्वरूपं कारणैर्वासनाभिर्युक्तम्। कार्यस्य कर्मणः संग्रहं कारयति तथा जीवः प्राग्वासनावशात् कर्माणि प्रवर्तते इत्यर्थः। येन संग्रहेण

अव्यक्तनाभं व्यक्तारं विकारपरिमण्डलम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं चक्रं स्निग्धाक्षं वर्तते ध्रुवम्
स्निग्धत्वात्तिलवत्सर्वं
चक्रेऽस्मिन्पीड्यते जगत् ।
तिलपीडैरिवाक्रम्य
भोगैरज्ञानसंभवैः ॥ ९
कर्म तत्कुरुते तर्षादहंकारपरिग्रहात् ।
कार्यकारणसंयोगे स हेतुरुपपादितः ॥ १०
नाभ्येति कारणं कार्यं न कार्यं कारणं तथा
कार्यव्यक्तेन करणे कालो भवति हेतुमान् ॥
हेतुयुक्ताः प्रकृतयो विकाराश्च परस्परम् ।
अन्योन्यमभिवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठिताः सदा १२
राजसैस्तामसैर्भावैश्च्युतो हेतुबलान्वितः ।
क्षेत्रज्ञमेवानुयाति पांसुर्वातेरितो यथा ॥ १३
न च तैः स्पृश्यते भावैर्न ते तेन महात्मना ।
सरजस्कोऽरजस्कश्च नैव वायुर्भवेद्यथा १४
तथैतदन्तरं विद्यात्सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्बुधः ।
अभ्यासात्स तथा युक्तो न गच्छेत्प्रकृतिं पुनः
संदेहमेतमुत्पन्नमच्छिनद्भगवानृषिः ।
तथा वार्ता समीक्षेत कृतलक्षणसंमिताम् १६

---

तत्तादात्म्यं वर्तते अनुवर्तते । वासनावशात्कर्म कर्मवशाच्च वासना इति चक्रं चक्रवदनवरतप्रवाहम् ॥ ७ ॥ अव्यक्तं धीवासनावृन्दं नाभिवदन्तरङ्गं यस्य व्यक्तं देहेन्द्रियादि अराः नाभिनेमिसंधानकाष्ठानि तद्वद्बहिरङ्गं यस्य । विकारः ज्ञानक्रियादिः परिमण्डलं नेमिः तद्वत् व्यापकं स्निग्धं रञ्जनात्मकं रजः अक्ष इव चालकं यस्य । चक्रं जन्ममरणप्रवाहसंघातः । क्षेत्रज्ञेनाधिष्ठितम् ध्रुवं अविचाल्यं वर्तते ॥ ८ ॥ स्निग्धत्वात् रजोगुणाक्रान्तत्वात् । तिलपीडैस्तैलिकैः । भोगैः सुखदुःखयोगैः ॥ ९ ॥ **कर्मेति** । तत् संघातात्मकं चक्रं तर्षात्फलतृष्णया अहंकारोऽभिमानस्तत्परिग्रहात् तेन स्वीकृतं सत्कर्म कुरुते । कार्यकारणसंयोगे देहाज्ञानयोगे आगामिनि स हेतुः तत्कर्म कारणं विधेयापेक्षं पुंस्त्वम् । उपपादितः समर्थितः॥ १० ॥ ननु कारणाभिन्नं कार्यमिति सांख्याः न हि कुंडलं कनकादन्यत् । किं तु कनकमेव संस्थानविशेषविशिष्टं कुंडलमित्युच्यते । तथा कारणात्कार्यं भिन्नमभिन्नं चेत्यौडुलोमिः उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलोमिरिति शास्त्रे तदनुवादात् । प्रपञ्चः कार्यावस्थायां ब्रह्मणो भिन्नोऽपि कारणावस्थायामभिन्न इति सूत्रार्थः । अस्मिन्मतेऽपि कारणांशेन कार्यस्य कारणादभेदोऽस्ति । ये तु कार्यकारणयोर्गवाश्ववद्भेदमिच्छान्ति तेषामपि तयोरपृथक्सिद्धत्वमस्ति । अतो मल्लयोरिव न कार्यकारणयोः संयोगः कर्मनिमित्तो युज्यत इत्याशंक्य विवर्तवादाश्रयेण परिहरति—**नाभ्येतीति** । रज्जूरगयोरिव कार्यकारणयोर्विषमसत्ताकत्वादन्योन्यस्मिन्प्रवेशः कनककुण्डलादिवन्न घटत इत्यर्थः । नात्येतीति पाठेऽपि नातिक्रामति । न व्याप्नोतीत्यर्थः । कुतस्तर्हि गवाश्ववदत्यन्तभिन्नयोः कार्यकारणभाव इत्याशंक्याह—**कार्यव्यक्तेन करणे इति** । भावे निष्ठा । हेतौ तृतीया अधिकरणे ल्युट । करणे अधिष्ठाने कार्याभिव्यक्तये हेतुमान् अदृष्टादिसहायान्तरवान् कालः भवति प्रभवति । अयं भावः—न मृद्घटन्यायेन प्रतीचि प्रपंचाभिव्यक्तये कारकव्यापारोऽपेक्ष्यते किंतु भोगप्रदकर्मोद्बोधहेतुः काल एव रज्वामिवोरगोत्पत्ताविति कार्याणां तूपकरणे इति पाठे तु उपकरणे सत्ताप्रदानरूपोपकारे काल एव प्रभवति न कारकव्यापार इत्यर्थः । तथा च निरधिष्ठानकभ्रमासंभवात् अधिष्ठानाध्यस्तयोः सत्यमिथ्यावस्तुनोरत्यन्तभेदेऽपि कार्यकारणभावो युज्यते इत्यर्थः ॥ ११ ॥ एवमधिष्ठानाध्यस्तयोः सम्बन्धे कर्महेतुरित्युक्त्वाऽध्यस्तानामपि प्रकृत्यादीनां मिथः संयोगे कर्मैव हेतुरित्याह—**हेत्विति** । हेतुयुक्ताः कर्मयुक्ताः अभिवर्तन्ते संहन्यन्ते प्रकृतयोऽष्टौ विकाराः षोडशेति चतुर्विंशतिः पूर्वोक्ताः ॥ १२ ॥ एवं देहान्तरप्राप्तिव्युत्पादनप्रसंगात्कृत्स्नस्य कार्यस्य ब्रह्मविवर्तत्वमुक्त्वा प्रकृतमनुसरति—**राजसैरिति** । च्युतः पूर्वदेहाद्विभ्रष्टो जीवः भावैः प्राणैर्भूतसूक्ष्मैः संस्कारैः समन्वित इत्येकदेशोऽप्यपकृष्यते । हेतुना कर्मणा बलेन पूर्वप्रज्ञया विद्यया च समन्वितः । क्षेत्रज्ञं परमात्मानं अनुलक्ष्य याति लोकान्तरं प्रति 'प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्त उत्सर्जन्याति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च । तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणानूत्क्रामन्ति'इति श्रुतिभ्यः१३॥नाभ्येतीति श्लोकोक्ते कार्यकारणयोरध्यस्ताधिष्ठानत्वे देहदेहिनोरप्याह—**न चेति** । तैः रजःसत्वतमोजैः देहेन्द्रियभूतसूक्ष्माख्यैर्भावैः हेतुबलाभ्यां च पूर्वोक्ताभ्यां न स्पृश्यते अध्यस्तधर्माणामधिष्ठानेऽनन्वयात् तेन देहिना ते भावादयोऽपि न स्पृश्यन्ते असंगत्वात् यथा वायौ सरजस्कत्वं भ्रांत्या नीरजस्कत्वं स्वत एवमात्मनि देहादिसंगासंगौ ॥ १४ ॥ एतयोः वायुरजसो रन्तरं पृथक्भावः । अभ्यासात् देहादितादात्म्याभ्यासात् प्रकृतिं शुद्धं स्वरूपम् । न गच्छेन्न जानीयात् ॥ १५ ॥ अणुरात्मा स्वभावबद्ध इति केचित् । देहसंमित इत्यन्ये । विभुरपि स्वभावबद्ध इत्यपरे। असंग इत्यपरे । तत्र किं मत-

बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः। ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संपद्यते पुनः १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

## २१२-[३९]

भीष्म उवाच।

प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो यथा समुपलभ्यते। तेषां विज्ञाननिष्ठानामन्यत्तत्त्वं न रोचते ॥ १
दुर्लभा वेदविद्वांसो वेदोक्तेषु व्यवस्थिताः। प्रयोजनं महत्त्वात्तु मार्गमिच्छन्ति संस्तुतम्
सद्भिराचरितत्वात्तु वृत्तमेतदगर्हितम्। इयं सा बुद्धिरभ्येत्य यया याति परां गतिम्
शरीरवानुपादत्ते मोहात्सर्वान्परिग्रहान्। क्रोधलोभादिभिर्भावैर्युक्तो राजसतामसैः ४
नाशुद्धमाचरेत्तस्मादभीप्सन्देहयापनम्। कर्मणा विवरं कुर्वन्न लोकानाप्नुयाच्छुभान् ५
लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते। तथाऽपक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते ॥६
यश्चाधर्मं चरेल्लोभात्कामक्रोधावनुप्लवन्। धर्म्यं पन्थानमाक्रम्य सानुबन्धो विनश्यति ॥
शब्दादीन्विषयांस्तस्मान्न संरागादयं व्रजेत् क्रोधो हर्षो विषादश्च जायन्तेह परस्परात् ८

मुपादेयं किं हेयमित्येतं संदेहम् ऋषिमन्त्राः। 'अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' 'असंगो ह्ययं पुरुषः' इत्यादिः। अच्छिन्नत्वान्नु 'स्वर्गकामो यजेत' इति संगित्वमपि श्रूयते तत्कथमसंगत्वनिश्चय इत्याशंक्याह—**तथेति**। कृतं क्रियया निष्पादितं यल्लक्षणं मूर्धाभिषिक्तत्वादि तेन संमितां तदनुरोधिनीं वार्तां सुखदुःखप्राप्तिपरिहारोपायभूतां क्रियां समीक्षेत तद्वदात्मानं क्रियाविष्टं कर्तारमीक्षेत। यथा देहातिरिक्तमात्मानं जानन्नेव 'राजा राजसूयेन स्वाराज्यकामो यजेत' इतिवाक्यात् देहसंमितं कृत्रिमं मूर्धाभिषिक्तत्वरूपलक्षणं राजसूयाधिकारिविशेषणं क्रियाकालेऽपेक्षते। एवं कर्तृत्वादिविशेषणं मुमुक्षुरपि विद्यासाधनकाले। फलकाले तु राजा देहमिव मुमुक्षुः कर्तृत्वादुज्झतीति भावः ॥ १६ ॥ एतद्विज्ञानफलं मोक्षमाह—**बीजानीति**। क्लेशैः अविद्यादिभिः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

**२१२**

अस्मिन्नध्याये क्लेशोदयलयहेतू हानाय उपादानाय च प्रदर्श्येते—**प्रवृत्तीत्यादिना**। तेषां कर्मनिष्ठानां यथा धर्मः समुपलभ्यते तथा विज्ञाननिष्ठानां विज्ञानादन्यन्न रोचते ॥ १ ॥ वेदोक्तेषु अग्निहोत्रादिषु शमादिषु च यथाधिकारं व्यवस्थिताः निष्ठावन्तः प्रयोजनं स्वर्गमोक्षौ तयोर्मध्ये संस्तुतं प्रशस्ततरं मोक्षमार्गं निवृत्तिरूपं महत्त्वादिच्छन्ति बुद्धिमत्तरा इति शेषः ॥२ ॥ ननु जरामर्यमग्निहोत्रं भस्मान्तं शरीरमित्यादयो यावज्जीवं कर्मानुष्ठापका विधय उपरुध्येरन्निवृत्तिमार्गे इत्याशंक्याह-**सद्भिरिति**। 'एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसो महाशाला महाश्रोत्रिया अग्निहोत्रं न जुहुवांचक्रिरे' इत्यादिश्रुतेरेतत्कर्मत्यागात्मकं वृत्तं न निन्द्यम्।

'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यत' इति ॥

भगवतैव प्रवृत्तिनिवृत्तिमार्गयोरधिकारभेदेन व्यवस्थापितत्वात्। इयं निवृत्त्यात्मिका परां गतिं मोक्षम् ॥ ३ ॥ एतदभावेऽनिष्टमाह—**शरीरेति**। शरीरवान् शरीराभिमानवान् ॥ ४ ॥ देहयापनं देहसम्बन्धविच्छेदमशरीरताख्यं मोक्षम्। तत्रोपायमाह—**कर्मणेति**। विवरं आत्मविविदिषाख्यं द्वारम् शुभान् स्वर्गादीन् कर्मफलभूतान्नाप्नुयात् न स्वीकुर्यात्। फलत्यागपूर्वकं चित्तशुद्ध्यर्थं कर्माण्येवाचरेदित्यर्थः ॥ ५ ॥ चित्तशुद्ध्यभावे दोषमाह—**लोहेति**। विपक्वं पाकहीनम् भावे निष्ठा। अविपक्वकषाये पुंसि आख्या उपदेशो यस्य अजितरागादिदोषे उक्तमित्यर्थः ॥ ६ ॥ कषायाणामपाके दोषमाह—**यश्चेति**। अनुप्लवन् अनुसरन् आक्रम्य उपमृद्य उत्क्रम्येति पाठः स्वच्छः ॥ ७ ॥ संरागः रागाधिक्यं व्रजने दोषमाह—**क्रोध इति**। क्रोधो राजसः, हर्षः सात्त्विकः, विषादस्तामसः ॥ ८ ॥

पञ्चभूतात्मके देहे सत्त्वे राजसतामसे।
कमभिष्टुवते चायं कं वाऽऽक्रोशति किं वदन्
स्पर्श-रूप-रसाद्येषु सङ्गं गच्छन्ति बालिशाः
नावगच्छन्ति विज्ञानादात्मानं पार्थिवं गुणं
मृन्मयं शरणं यद्वन्मृदैव परिलिप्यते।
पार्थिवोऽयं तथा देहो मृद्विकारान्न नश्यति
मधु, तैलं, पयः, सर्पिर्मांसानि, लवणं, गुडः।
धान्यानि,फलमूलानि मृद्विकाराः सहांभसा
यद्वत्कान्तारमातिष्ठन्नौत्सुक्यं समनुव्रजेत्।
ग्राम्यमाहारमादद्यादस्वाद्वपि हि यापनम् १३
तद्वत्संसारकान्तारमातिष्ठन् श्रमतत्परः।
यात्रार्थमद्यादाहारं व्याधितो भेषजं यथा॥
सत्यशौचार्जवत्यागैर्वर्चसा विक्रमेण च।
क्षान्त्या, धृत्या च बुद्ध्या च मनसा तपसैव च
भावान्सर्वानुपावृत्तान्
समीक्ष्य विषयात्मकान्।
शान्तिमिच्छन्नदीनात्मा
संयच्छेदिन्द्रियाणि च॥ १६
सत्त्वेन रजसा चैव तमसा चैव मोहिताः।
चक्रवत्परिवर्तन्ते ह्यज्ञानाज्जन्तवो भृशम् १७
तस्मात्सम्यक् परीक्षेत दोषानज्ञानसंभवान्
अज्ञानप्रभवं दुःखमहंकारं परित्यजेत्॥ १८
महाभूतानीन्द्रियाणि गुणाः सत्त्वं रजस्तमः
त्रैलोक्यं सेश्वरं सर्वमहंकारे प्रतिष्ठितम्॥१९
यथेह नियतः कालो दर्शयत्यार्तवान् गुणान्
तद्वद्भूतेष्वहंकारं विद्यात्कर्मप्रवर्तकम्॥ २०
संमोहकं तमो विद्यात्कृष्णमज्ञानसंभवम्।
प्रीतिदुःखनिबद्धांश्च समस्तांस्त्रीनथो गुणान्

सत्त्वस्य रजसश्चैव
तमसश्च निबोध तान्।
प्रसादो हर्षजा प्रीति-
रसंदेहो धृतिः स्मृतिः।
एतान् सत्त्वगुणान् विद्या-
दिमान् राजसतामसान्॥ २२

कामक्रोधौ प्रमादश्च लोभमोहौ भयं क्लमः।
विषादशोकावरतिर्मानदर्पावनार्यता॥ २३
दोषाणामेवमादीनां परीक्ष्य गुरुलाघवम्।
विमृशेदात्मसंस्थानमेकैकमनुसंततम्॥ २४

युधिष्ठिर उवाच।

के दोषा मनसा त्यक्ताः
के बुद्ध्या शिथिलीकृताः।
के पुनः पुनरायान्ति
के मोहादफला इव॥ २५

---

अभिष्टुवते अभिष्टौति चितः अविकारित्वाद्विकारिणश्च चेतसो जडत्वात् स्तुत्याक्रोशौ निरास्पदावित्यर्थः॥ ९॥ विज्ञानात् विपर्ययबुद्धेः आत्मानं देहं पार्थिवं पृथ्वीविकारं गुणम्॥ १०॥ देहस्य पार्थिवत्वे युक्तिमाह द्वाभ्याम्—**मृन्मयमिति**। शरणं गृहं मृद्विकारान्मृद्विकारमन्नादिकं प्राप्य न नश्यति जीवतीत्यर्थः॥ ११॥ मृद्विकारानाह—**मध्विति**॥ १२॥ कान्तारमातिष्ठन्संन्यासी औत्सुक्यं मिष्टान्नादौ रागं न समनुव्रजेत् आहारं अन्नम्। यापनं देहनिर्वाहकम्॥१३॥संन्यासिवद्गृहिणाऽपि विरक्तेन स्थेयमित्याह-**तद्वदिति**। संसारो गृहम् यात्रार्थं वेदान्तश्रवणादिनिर्वाहार्थम्,न तु इन्द्रियप्रीत्यर्थम्॥ १४॥एवं द्वयोरपि मिष्टान्नादौ वैराग्यमुपपाद्याश्रमद्वयसाधारणान् मोक्षधर्मानाह-**सत्येति**। सत्यं यथार्थभाषणं शौचं मृज्जलाभ्यां बाह्यं भावशुद्धिरान्तरमिति द्विविधम् आर्जवं अकौटिल्यम्। त्यागो वैराग्यं वर्चः अध्ययनादिजं तेजस्तेन तत्कारणं लक्ष्यं विक्रमो मनोजये शौर्यम्। बुद्ध्या श्रवणजन्यया धृत्या क्लेशकालेऽपि चित्तविधारकयत्नेन मनसा क्रियमाणेन तपसा साध्वसाधुनोरालोचनेन भावान्समीक्ष्येत्युत्तरेणान्वयः॥ १५॥ संभवेत यथाक्रममिति पाठे यथाक्रमं संसारी चेत्कामादिना मुमुक्षुश्चेच्छमादिना संभवेत संयुज्येतेत्यर्थः। अदीनात्मा उदारचित्तः॥१६॥ विपक्षे दंडमाह—**सत्त्वेनेति**॥ १७॥ अज्ञानात्प्रभव उत्पत्तिर्यस्य तम्॥१८॥ **महेति**। ईश्वरादिकं **सर्वमहङ्कार**कल्पितमित्यर्थः॥ १९॥ नन्वेतदहंकारकल्पितं चेत्स्वप्नवन्नित्यमभिनवसंस्थानं स्यादित्याशंक्य **पूर्वसंस्कारानुरो**धात् समानरूपमेव कल्प्यते इति सदृष्टान्तमाह-**यथेति**। भूतेति भूतेन्द्रियादीनामुपलक्षणम्॥ २०॥ त्रिगुणात्मकस्याहंकारस्य गुणकार्याणि विभजते—**संमोहकमिति**। कृष्णं अन्धकारवदप्रकाशात्मकं प्रीतिदुःखे क्रमात्सात्त्विकराजसे॥ २१॥ तान् कार्यभूतान् विशेषगुणान्॥ २२॥ कामादयो राजसाः विषादादयस्तामसाः॥ २३॥ अस्य विभागस्य प्रयोजनमाह—**दोषाणामिति**। आत्मनि संस्थानं स्थितिं एकैकं प्रत्येकं अनुलक्षीकृत्य विमृशेत्को दोषः कियान् क्षीणः कियान् शिष्ट इति नित्यमालोचयेदित्यर्थः॥ २४॥ त्यक्ताः पूर्वैर्मुमुक्षुभिरिति शेषः। **के पुनरिति**। अपरिहार्या इत्यर्थः पश्चात्र प्रश्नाः अफला आगता अपि निष्फला इत्यर्थः॥ २५॥

केषां बलाबलं बुद्ध्या हेतुभिर्विमृशेद्बुधः ।
एष मे संशयस्तात तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२६

भीष्म उवाच ।

दोषैर्मूलादवच्छिन्नैर्विशुद्धात्मा विमुच्यते ।
विनाशयति संभूतमयस्मयमयो यथा ।
तथा कृतात्मा सहजैर्दोषैर्नश्यति तामसैः २७
राजसं तामसं चैव शुद्धात्मकमकल्मषम् ।
तत्सर्वं देहिनां बीजं सत्त्वमात्मवतः समम्
तस्मादात्मवता वर्ज्यं
रजश्च तम एव च ।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तं
सत्त्वं निर्मलतामियात् ॥ २९
अथवा मन्त्रवद्ब्रूयुरात्मादानाय दुष्कृतम् ।
स वै हेतुरनादाने शुद्धधर्मानुपालने ॥ ३०

दोषैरिति सार्धश्लोक एकं वाक्यम् । मूलात् मूलं अज्ञानं तदारभ्य अवच्छिन्नैर्लूनैः मूलच्छेदेनैव दोषाश्छिन्न्यास्ततश्च ते पश्चाच्छिन्नमूलतरुविलसितवत् । कञ्चित्कालमनुवर्तमाना अल्पफला एवेत्यर्थः । मूलच्छेदे उपायं सदृष्टान्तमाह-**विनाशयतीति** । संभूतमुत्पन्नमयस्मयं लोहनिगडम् । अयः वाऽस्य धारामयम् । एवं कृतात्मा ध्यानसंस्कृता बुद्धिः । तामसैः विपर्यासरूपैरविद्यादिदोषैः सहजैरनादिभिः सह नश्यति तान्नाशयित्वा स्वयमपि कतककरजोवत् शाम्यति । अत्र वास्य धारानिगडं छित्त्वा स्वयमपि नश्यतीति विवक्षया दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्यम् ॥२७॥ चतुर्थप्रश्नोत्तरमुक्त्वा तृतीयप्रश्नोत्तरं पादत्रयेणाह-**राजसमिति** । शुद्धात्मकं सत्त्वम् । तच्चाकल्मषं काममोहराहित्यात् गुणत्रयं देहिनां देहप्राप्तौ बीजम् आत्मवतो जितचित्तस्य तु सत्त्वं समं ब्रह्म तत्प्रापकम् । ' निर्दोषं हि समं ब्रह्म' इति समशब्दस्य ब्रह्मणि प्रयोगात् ॥ २८ ॥ प्रथमप्रश्नोत्तरमाह-**तस्मादिति** । सत्त्वं बुद्धिः ॥ २९ ॥ **अथवेति** । आत्मादानाय बुद्धिवशीकाराय विहितं मन्त्रवत् मन्त्रयुक्तं यज्ञादिकं कर्म केचिद्दुष्कृतमिति ब्रूयुः सांख्याः पशुबीजादिहिंसामिश्रत्वात् । तस्माज्जपादिरेव हिंसाहीनो धीशुद्ध्युपायः श्रेयानिति भावः । अत्रायं सांख्यवृद्धानामभिप्रायः । 'न हिंस्यात्सर्वभूतानि' इति निषेधः पुरुषार्थो न तु क्रत्वर्थः । येनास्याग्नीषोमीयं पशुमालभेतेत्यनेन समानविषयत्वं स्यात् । यथा आहवनीये जुहोतीति होमार्थस्याहवनीयस्य पदे जुहोतीति होमार्थेनैव पदेनापवादस्तद्वत् । न च पुरुषार्थस्य सतः क्रत्वर्थत्वमपि निषेधस्य वक्तुं युक्तं कर्त्रधिकरणविरोधात् । तत्र हि पुरुषार्थे नानृतं वदेदिति निषेधे सत्यपि दर्शपूर्णमासप्रकरणे पुनः क्रत्वर्थतया नानृतं वदेदित्यनृतवदनं निषिध्यते क्रतुमध्ये कारणविशेषात्पुरुषार्थनिषेधोल्लंघने तु क्रतुवैकल्यं माभूदिति । तस्माद्भिन्नविषयत्वाद्धिंसाविधितन्निषेधशास्त्रयोः परिहृत्यापवादमुत्सर्गाः प्रवर्तन्त इत्यस्य न्यायस्याप्रवृत्तिः । अधिकारिभेदादपि तत्र तदप्रवृत्तिः । गृहासक्तो हि हिंसाशास्त्रेऽधिक्रियते न तु विरक्तः तस्य यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् इति प्रव्रज्याविधानात् । न च गृहाश्रमोऽपि नित्यः तस्य रागतः प्राप्तत्वात् ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेदिति विधिविरोधाच्च । तस्माद्यथा श्येनेनाभिचरन्यजेतेतिशास्त्राच्छत्रुमारणकामस्य श्येनो विधीयमानो हिंसात्मकफलद्वारा न हिंस्यादिति शास्त्रं निरुन्धे । तद्वत्स्वर्गपश्वादिकामस्य गृहमेधिनो ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत,चित्रया यजेत पशुकामः इत्यादिविधिः पशुबीजादिहिंसात्मकसाधनद्वारा न हिंस्यादिति शास्त्रं निरुणद्धि ततश्च पुरुषः प्रत्यवैति । यथोक्तम्-**दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्त इति** । यथा दृष्टः सुखोपायो दोषादियुक्तः, एवं वैदिकोऽपीति सांख्यकारिकार्थः । स्वमतमाह-स वै इति । सैवेति पाठेऽपि सैष दाशरथीतिवत्सन्धिः । स मन्त्रवान् यज्ञादिधर्म अनादाने वैराग्ये हेतुर्निमित्तं भवति चित्तशुद्धिद्वारा नित्यानित्यवस्तुविवेकादिप्रनाड्या भवति । तथा शुद्धधर्मः क्षमादिस्तस्यापि रक्षणे स एव यज्ञादिधर्मो भवति । अयमर्थः– 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इत्यादिश्रुतेरश्वेन जिगमिषतीत्यादौ गतावश्वस्येव विद्यायां यज्ञादीनां हिंसायुक्तधर्माणां साधनत्वं गम्यते । तथा शान्तो दान्त इत्यादिना निवृत्तिरूपस्यापि अहिंसादेर्धर्मस्य विद्यासाधनत्वं गम्यते । यथा द्वावश्वौ रथे नियुक्तावविरुद्धदिक्क्रियौ सन्ताबेवेष्टं देशं रथिनं नयतो न तु तयोरन्यतरस्येषदपि विरुद्धदिक्क्रियत्वे एवं यज्ञ ईषदप्यहिंसाशास्त्रविरोधी चेत्तेन सद्वैकार्थ्यं न भजेदिति यज्ञादिव्यतिरिक्तहिंसाया एवाहिंसाशास्त्रेणानर्थहेतुता बोध्यते इति । तथा च सूत्रम्— **सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववदिति** । यस्तु काम्यो यज्ञस्तस्यांशतो दोषहेतुत्वं न नः किंचिच्छिन्नम् । स्वल्पः संकरः सपरिहारः सप्रत्यवमर्श इति सांख्याचार्यवचनमपि तद्विषयमेव पुण्ये कर्मणि स्वल्पो हिंसाजन्योऽधर्मसंकरः स्वल्पेनापि प्रायश्चित्तेन परिहर्तुं शक्योऽपरिहारे वा फलकाले सोढुं शक्यः सुखसमुद्रमग्नो हि दुःखकणिकां सोढुमर्हतीति सर्वमनवद्यम् ॥ ३० ॥

रजसाऽधर्मयुक्तानि कार्याण्यपि समाप्नुते।
अर्थयुक्तानि चात्यर्थं कामान् सर्वांश्च सेवते
तमसा लोभयुक्तानि क्रोधजानि च सेवते।
हिंसाविहाराभिरतस्तन्द्रीनिद्रासमन्वितः॥
सत्त्वस्थः सात्त्विकान् भावान्
शुद्धान्पश्यति संश्रितः।
स देही विमलः श्रीमान्
श्रद्धाविद्यासमन्वितः॥ ३३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने
द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१२॥

## २१३-[४०]

भीष्म उवाच।
रजसा साध्यते मोहस्तमसा भरतर्षभ।
क्रोधलोभौ, भयं, दर्प एतेषां सादनाच्छुचिः
परमं परमात्मानं देवमक्षयमव्ययम्।
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं विदुस्तं देवसत्तमम् २
तस्य मायापिनद्धाङ्गा नष्टज्ञाना विचेतसः।
मानवा ज्ञानसंमोहात्ततः क्रोधं प्रयान्ति वै ३
क्रोधात्काममवाप्याथ लोभमोहौ च मानवाः
मानदर्पावहङ्कारमहङ्कारात्ततः क्रियाः॥ ४
क्रियाभिः स्नेहसम्बन्धा-
त्स्नेहाच्छोकमनन्तरम्।
सुखदुःखक्रियारम्भा-
ज्जन्माज्जन्मकृतक्षणाः॥ ५
जन्मतो गर्भवासं तु शुक्रशोणितसंभवम्।
पुरीषमूत्रविक्लेदं शोणितप्रभवाविलम्॥ ६
तृष्णाभिभूतस्तैर्बद्धस्तानेवाभिपरिप्लवन्।
संसारतन्त्रवाहिन्यस्तत्र बुद्ध्येत योषितः॥ ७
प्रकृत्याः क्षेत्रभूतास्ता नराः क्षेत्रज्ञलक्षणाः।
तस्मादेवाविशेषेण नरोऽतीयाद्विशेषतः॥ ८
कृत्या ह्येता घोररूपा मोहयन्त्यविचक्षणान्
रजस्यन्तर्हिता मूर्तिरिन्द्रियाणां सनातनी ९

---

वैदिकेऽपि कर्मणि राजसं तामसं कामक्रोधादिहेतुकं त्याज्यं सात्त्विकं सेव्यमित्याह श्लोकत्रयेण—**रजसेति**। अधर्मेति च्छेदः। लौकिकं तु राजसं तामसं च कर्म सुतरां त्याज्यमिति भावः॥ ३१॥ सात्त्विकं तु मुमुक्षूणां पथ्यमित्यर्थः॥ ३३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वाणि मोक्षधर्मपर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१२॥

२१३

पूर्वाध्यायान्तिमं श्लोकत्रयं व्याख्यातुमयमध्याय आरभ्यते—**रजसेति**। रजस्तमसोः कार्यं मोहो विपर्ययः अनात्मनि आत्मबुद्धिः। अज्ञानस्य हि द्वे शक्ती आवरणशक्तिर्विक्षेपशक्तिश्च तत्राद्यया वस्तुस्वरूपं रज्ज्वादि आव्रियते। द्वितीयया सर्पादिस्वरूपं विक्षिप्यते। ते उभे अत्र क्रमेण तमोरजःशब्दाभ्यामुच्येते। मोहजाः क्रोधादयः॥ १॥ शुद्धेः फलं जीवब्रह्मात्मैक्यज्ञानमित्याह—**परममिति**। परमं आत्यन्तिकं परं ब्रह्म कोशपञ्चकातीतं आत्मानं प्रत्यक्षम्। परमात्मानमात्मानामिति पाठान्तरं स्पष्टार्थम्। अक्षयं नाशहीनं अव्ययं ह्रासहीनं विदुः प्राञ्चः। **शुचय इति**। इदानींतनोऽपि शुचिर्विन्दतीत्यर्थः॥ २॥ पिनद्धाङ्गा रूपादिभिर्जडीकृतेन्द्रियाः। अत एव नष्टज्ञानाः। ततो विचेतसः निर्विवेकाः। ज्ञानसंमोहात् बुद्धिवैक्लव्यात् ब्रह्माज्ञानाद्वा। क्रोधं विक्षिप्तचित्तताम्॥ ३॥ **मानः** आत्मनि पूज्यताबुद्धिः। **दर्पः** उच्छृङ्खलत्वम्। **अहंकारः** परेषां तुच्छीकरणम्॥ ४॥ जन्माजन्मकृतक्षणाः जन्ममरणयोः कृतस्वीकाराः॥ ५॥ तैः क्रोधादिभिः बद्धस्तान् अभितः परिप्लवन् तर्तुमिच्छन्। हेतौ शतृप्रत्ययः। प्रथमं योषितो हेयत्वेन जानीयात्। यतस्ताः संसारपटस्य तन्त्रामिव तन्त्रं तन्तुवितानं तन्तुवायवद्वहन्ति॥ ७॥ यथा प्रकृतिः क्षेत्रज्ञं बध्नाति। एवमेता अपत्योत्पत्तिक्षेत्रभूताः जीवं बध्नन्तीत्यर्थः। अतीयात् अतिक्रामेत् संन्यसेदित्यर्थः। न चाभीयुरिति पाठे नानुसरेयुरित्यर्थः॥ ८॥ शत्रुमारणार्थं मन्त्रमयी शक्तिः कृत्या सैव एताः रजसि रजोगुणैरन्तर्हिता। सूक्ष्मरूपेण मृदि घटा इव स्थिता इन्द्रियाणां मूर्तिरिन्द्रियैः कल्पितेत्यर्थः॥ ९॥

तस्मात्तदात्मकाद्रागा-
द्बीजाज्जायन्ति जन्तवः ।
स्वदेहजानस्वसंज्ञान्
यद्वदङ्गात्कृमींस्त्यजेत् ।
स्वसंज्ञानस्वकांस्तद्व-
त्सुतसंज्ञान् कृमींस्त्यजेत् ॥ १०
शुक्रतो रसतश्चैव देहाज्जायन्ति जन्तवः ।
स्वभावात्कर्मयोगाद्वा तानुपेक्षेत बुद्धिमान् ॥
रजस्तमसि पर्यस्तं सत्त्वं च रजसि स्थितम् ।
ज्ञानाधिष्ठानमव्यक्तं बुद्ध्यहङ्कारलक्षणम् १२
तद्बीजं देहिनामाहुस्तद्बीजं जीवसंज्ञितम् ।
कर्मणा कालयुक्तेन संसारपरिवर्तनम् ॥ १३
रमत्ययं यथा स्वप्ने मनसा देहवानिव ।
कर्मगर्भैर्गुणैर्देही गर्भे तदुपलभ्यते ॥ १४
कर्मणा बीजभूतेन चोद्यते यद्यदिन्द्रियम् ।
जायते तदहङ्काराद्रागयुक्तेन चेतसा ॥ १५
शब्दरागाच्छ्रोत्रमस्य जायते भावितात्मनः ।
रूपरागात्तथा चक्षुर्घ्राणं गन्धचिकीर्षया १६
स्पर्शने त्वक्तथा वायुः प्राणापानव्यपाश्रयः ।
व्यानोदानौ समानश्च पञ्चधा देहयापनम् १७
सञ्जातैर्जायते गात्रैः कर्मजैर्वर्ष्मणा वृतः ।
दुःखाद्यन्तैर्दुःखमध्यैर्नरः शारीरमानसैः १८
दुःखं विद्यादुपादानादभिमानाच्च वर्धते ।
त्यागात्तेभ्यो निरोधः स्यान्निरोधज्ञो विमुच्यते
इन्द्रियाणां रजस्येव प्रलयप्रभवावुभौ ।
परीक्ष्य संचरेद्विद्वान्यथावच्छास्त्रचक्षुषा २०
ज्ञानेन्द्रियाणीन्द्रियार्थान्नोपसर्पन्त्यतर्षुलम् ।
हीनैश्च करणैर्देही न देहं पुनरर्हति ॥ २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

## २१४-[४१]

**भीष्म उवाच ।**

**अत्रोपायं प्रवक्ष्यामि यथावच्छास्त्रचक्षुषा । तत्त्वज्ञानाच्चरन् राजन् प्राप्नुयात्परमां गतिम् ॥१**

तदात्मकात् स्त्रीप्रधानात् । एतेन सार्धश्लोकेन दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः सङ्कल्पकृता इति गौतमसूत्रार्थो दर्शितः । अस्वसंज्ञान् मानुषेति संज्ञाहीनान् । कृमीन् यूकालिक्षादीन् अस्वकान् अनात्मान् ॥ १० ॥ शुक्रतः रेतोरूपात् स्नेहाद्रवांशतः पुत्राः । रसतः स्वेदरूपात् स्नेहात् यूकादयः एषा जन्तूत्पत्तिः स्वभाववादेऽदृष्टवादे च समानैवेत्यर्थः ॥ ११ ॥ एवं हेयमुक्त्वा ज्ञेयमाह—**रज इति** । प्रवृत्तिप्रकाशात्मके रजःसत्त्वे तमसि लीयेते । तच्च तमः अज्ञानाख्यं ज्ञानाधिष्ठानं अधिष्ठानभूते ज्ञानेऽध्यस्तं सद्बुद्ध्यहङ्कारयोर्लक्षणं ज्ञापकं भवति ॥ १२ ॥ तत् बुद्ध्यहङ्कारविशिष्टमज्ञानं देहिनां जीवानां देहप्राप्तौ बीजम् । तस्य सकार्यस्याज्ञानस्य बीजं अधिष्ठानभूतं ज्ञानं तदेव जीवसंज्ञितं देहिशब्दवाच्यम् । तज्ज्ञानं बीजसंज्ञितमिति पाठे तत् अज्ञानविशिष्टं ज्ञानं बीजं ईश्वरस्तत्संज्ञम् । ऐश्वर्यमेवाह—**कर्मणेति** ॥ १३ ॥ अयं जीवः ईश्वरो वा गर्भे मातुरुदरे ॥ १४ ॥ तत्र मांसपिंडभूतोऽसौ पूर्ववासनावशाद्यं यं विषयं स्मरति तत्तद्ग्राहकमिन्द्रियमस्याविर्भवतीत्याह—**कर्मणेत्यादिना** ॥ १५ ॥ घ्राणं गन्धचिकीर्षयेति एतस्यैव वासनावशात्स्रष्टृत्वं दर्शितम् ॥ १६ ॥ यापनं देहयात्रानिर्वाहः ॥ १७ ॥ सञ्जातैः सम्यक् निष्पन्नैः गात्रैः श्रोत्रादिभिः कृत्वा नरो वर्ष्मणा शरीरेण वृतः सन् जायते ब्रह्मणा सहेति पाठान्तरम् ॥ १८ ॥ दुःखाद्यन्तैरित्येतद्व्याचष्टे—**दुःखमिति** । उपादानाद्देहेन्द्रियादीनां गर्भेऽङ्गीकारात् । अभिमानाज्जन्मानन्तरं दुःखं देहवत् वर्धते । एवं त्यागान्मरणादपि वर्धतेऽतस्तेभ्यो हेतुभ्यः निरोधो दुःखस्य स्यात् कर्तव्यः । यतो निरोधज्ञो विमुच्यते ॥ १९ ॥ रजस्यन्तर्हिता मूर्तिरिन्द्रियाणामित्युपक्रान्तमिन्द्रियाणां रजोमात्रत्वमुपसंहरति—**इन्द्रियाणामिति । परीक्ष्येति** रजोरूपप्रवृत्तिनिरोधेनेन्द्रियनिरोधाद्दुःखनिरोधो भवतीत्यर्थः ॥२०॥ अतर्षुलं तृष्णाहीनम् । ज्ञानेन्द्रियाणि नोपसर्पन्ति न व्याप्नुवन्ति इन्द्रियार्थान्प्राप्यापीति शेषः। तत्फलमाह—**हीनैरिति ।** हीनैः क्षीणैः करणैरिन्द्रियैः ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥

२१४

अत्र इन्द्रियजये ज्ञानात् ज्ञानं प्राप्य चरन् शमादीननुतिष्ठन् ॥ १ ॥

सर्वेषामेव भूतानां पुरुषः श्रेष्ठ उच्यते ।
पुरुषेभ्यो द्विजानाहुर्द्विजेभ्यो मन्त्रदर्शिनः २
सर्वभूतात्मभूतास्ते सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ।
ब्राह्मणा वेदशास्त्रज्ञास्तत्त्वार्थगतनिश्चयाः ॥३
नेत्रहीनो यथा ह्येकः
कृच्छ्राणि लभतेऽध्वनि ।
ज्ञानहीनस्तथा लोके
तस्माज्ज्ञानविदोऽधिकाः ॥ ४
तांस्तानुपासते धर्मान् धर्मकामा यथागमम् ।
न त्वेषामर्थसामान्यमन्तरेण गुणानिमान् ५
वाग्देहमनसां शौचं,क्षमा,सत्यं,धृतिः,स्मृतिः
सर्वधर्मेषु धर्मज्ञा ज्ञापयन्ति गुणाञ्छुभान् ६
यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ।
परं तत्सर्वधर्मेभ्यस्तेन यान्ति परां गतिम् ।
लिङ्गसंयोगहीनं यच्छब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
श्रोत्रेण श्रवणं चैव चक्षुषा चैव दर्शनम् ॥ ८
वाक्संभाषाप्रवृत्तं यत्तन्मनः परिवर्जितम् ।
बुद्ध्या चाध्यवसीयीत ब्रह्मचर्यमकल्मषम् ॥ ९
सम्यग्वृत्तिर्ब्रह्मलोकं
प्राप्नुयान्मध्यमः सुरान् ।
द्विजाग्र्यो जायते विद्वान्
कन्यसीं वृत्तिमास्थितः ॥ १०

सुदुष्करं ब्रह्मचर्यमुपायं तत्र मे शृणु ।
संप्रदीप्तमुदीर्णं च निगृह्णीयाद्द्विजो रजः ११
योषितां न कथा श्राव्या
न निरीक्ष्या निरम्बराः ।
कथञ्चिद्दर्शनादासां
दुर्बलानां विशेद्रजः ॥ १२
रागोत्पन्नश्चरेत्कृच्छ्रं महार्तिः प्रविशेदपः ।
मग्नः स्वप्ने च मनसा त्रिर्जपेदघमर्षणम् ॥ १३
पाप्मानं निर्दहेदेवमन्तर्भूतरजोमयम् ।
ज्ञानयुक्तेन मनसा सन्ततेन विचक्षणः १४
कुणपामेध्यसंयुक्तं यद्वदच्छिद्रबन्धनम् ।
तद्वद्देहगतं विद्यादात्मानं देहबन्धनम् ॥ १५
वात-पित्त-कफान्रक्तं त्वङ्मांसं स्नायुमस्थि च
मज्जां देहं शिराजालैस्तर्पयन्ति रसा नृणाम्
दश विद्याद्धमन्योऽत्र
पञ्चेन्द्रियगुणावहाः ।
याभिः सूक्ष्माः प्रतायन्ते
धमन्योऽन्याः सहस्रशः ॥ १७
एवमेताः शिरा नद्यो रसोदा देहसागरम् ।
तर्पयन्ति यथाकालमापगा इव सागरम् १८
मध्ये च हृदयस्यैका शिरा तत्र मनोवहा ।
शुक्रं संकल्पजं नृणां सर्वगात्रैर्विमुञ्चति १९

पुरुषो मनुष्यः द्विजाः त्रैवर्णिकाः मन्त्रदर्शिनो ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ तत्त्वार्थं प्रतिगतः निश्चयो येषाम् ॥ ३ ॥ ज्ञानविदो ब्रह्मविदः ॥ ४ ॥ एवं उपायज्ञानप्रशस्य तद्गुणानाह—**तांस्तानिति** । यथागमं यथाशास्त्रं तांस्तानिष्टापूर्तादीन् । अर्थसामान्यं फलसाम्यं मोक्षाख्यं निरतिशयं इमान् वक्ष्यमाणान् ॥ ५ ॥ गुणानेवाह—**वागिति** । अनृतहिंसाकामादिराहित्यं वागादीनां शौचम् । सर्वेषु प्रवृत्तिनिवृत्यात्मकेषु धर्मेषु ॥ ६ ॥ ब्रह्मणि चर्या ब्रह्मचर्यं योगधर्मः । ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मप्रापकत्वात्तदभिन्नं परां गतिं मोक्षम् ॥ ७ ॥ गतिमेव विशिनष्टि—**लिङ्गमिति** । लिङ्गं पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसंघातरूपम् । तेन यत्र संयोगो नास्ति अत एव शब्दादिहीनं श्रोत्रेण उपाधिना तदेव श्रवणं शब्दानुभवरूपमेव रूपाद्यनुभवात्मकम् । तथा च शब्दादीनां व्यभिचारित्वाद्यत्केवलानुभवरूपं तदेव मुख्यं ब्रह्म । निर्विकल्पकावस्था परब्रह्मप्रापिकेत्यर्थः ॥ ८ ॥ वाचा संभाषा कथनं प्रवृत्तं यस्मिन् तत्तथाभूतं यद्ब्रह्मचर्यं तत् मनः मनोमात्रेणावस्थानं परिवर्जितं विषयेन्द्रियहीनम् । शब्देन वक्तुं योग्या सविकल्पकावस्थेत्यर्थः । यद्बुद्ध्या श्रवणमननोत्थया अध्यवसीयीत निश्चिनुयात् । निर्विचिकित्सं परोक्षज्ञानमित्यर्थः ॥ ९ ॥ ब्रह्मचर्याणां क्रमेण फलमाह—**सम्यगिति** । ब्रह्मैव लोकस्तं मोक्षम् । सुरान् सत्यलोकं कन्यसीं कनीयसीम् ॥ १० ॥ संप्रदीप्तं समुत्पन्नं उदीर्णं वृद्धिं गतम् । रजः कामादिरूपम् ॥ ११ ॥ रजो रागः ॥ १२ ॥ कृच्छ्रं—

'त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्योऽयमुच्यते' ॥

इत्यादिना उक्तलक्षम् । महार्तिः शुक्रवृद्ध्याऽत्यन्तं पीडितः । अन्तस्त्रिरिति वा पाठः । स्वप्ने च रेतःस्रावेऽप्सु मग्नः अघमर्षणं ऋतं च सत्यं चेत्यृक्त्रयम् ॥ १३ ॥ रागयुक्तेनेत्यपपाठः । मनसा निर्दहेदिति सम्बन्धः ॥१४॥ कुणपेति शरीरान्तर्गतं मलान्त्रं तद्यथा दृढं बन्धनं एवं देह आत्मनो दृढबन्धनमित्यर्थः ॥ १५ ॥ शिरा नाड्यः तासां जालैः ॥ १६ ॥ दश वातादिदशकवहाः । धमन्यो नाड्यः पञ्चस्विन्द्रियेषु गुणं स्वस्वविषयग्रहणपाटवं अन्नरसार्पणद्वारा आवहन्तीति तथा । याभिरश्वत्थपर्णशंकुतुल्याभिः ॥ १७ ॥ हृदयस्य कदम्बकुसुमाकारस्य मांसपिण्डस्य मध्ये मनोवहा 'अन्नमयं हि सौम्यं मनः' इति श्रुतेरन्नरसैर्हृदयान्तर्वर्तिमनःप्रीणनकरी नाडी यथोक्तम्—

सर्वगात्रप्रतायिन्यस्तस्याह्यनुगताः शिराः ।
नेत्रयोः प्रतिपद्यन्ते वहन्त्यस्तैजसं गुणम् २०
पयस्यन्तर्हितं सर्पिर्यद्वन्निर्मथ्यते खजैः ।
शुक्रं निर्मथ्यते तद्वद्देहसंकल्पजैः खजैः ॥ २१
स्वप्नेऽप्येवं यथाऽभ्येति मनःसंकल्पजं रजः ।
शुक्रं संकल्पजं देहात् सृजत्यस्य मनोवहा ॥
महर्षिर्भगवानत्रिर्वेद तच्छुक्रसंभवम् ।
त्रिबीजमिन्द्रदैवत्यं तस्मादिन्द्रियमुच्यते २३
ये वै शुक्रगतिं विद्युर्भूतसंकरकारिकाम् ।
विरागा दग्धदोषास्ते नाप्नुयुर्देहसंभवम् ॥ २४
गुणानां साम्यमागम्य मनसैव मनोवहम् ।
देहकर्मा नुदन्प्राणानन्तकाले विमुच्यते ॥ २५
भविता मनसो ज्ञानं मन एव प्रजायते ।
ज्योतिष्मद्विरजो नित्यं मन्त्रसिद्धं महात्मनाम्
तस्मात्तदभिघाताय कर्म कुर्यादकल्मषम् ।
रजस्तमश्च हित्वेह यथेष्टां गतिमाप्नुयात् २७
तरुणाधिगतं ज्ञानं जरादुर्बलतां गतम् ।
विपक्वबुद्धिः कालेन आदत्ते मानसं बलम् २८
सुदुर्गमिव पन्थानमतीत्य गुणबन्धनम् ।
यथा पश्येत्तथा दोषानतीत्यामृतमश्नुते ॥ २९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने चतुर्दशाधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

## २१५-[४२]

भीष्म उवाच ।
दुरन्तेष्विन्द्रियार्थेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः
ये त्वसक्ता महात्मानस्ते यान्ति परमां गतिम्
जन्ममृत्युजरादुःखैर्व्याधिभिर्मानसक्लमैः ।
दृष्ट्वैव सन्ततं लोकं घटेन्मोक्षाय बुद्धिमान् २
वाङ्मनोभ्यां शरीरेण शुचिः स्यादनहंकृतः
प्रशान्तो ज्ञानवान् भिक्षुर्निरपेक्षश्चरेत्सुखम्

---

' अश्वत्थपत्रनाडीव द्विसप्ततिशताधिका ।
नाडी मनोवहेत्युक्ता योगशास्त्रविशारदैः ' इति ।
सा हि सर्वगात्रेभ्यः शुक्रमादायोपस्थोन्मुखं करोति ॥१९॥ एका शिरा कथं गात्रैः संबद्धेत्यत आह--**सर्वगात्रेति**। तैजसं गुणं ऊष्माणम् ॥ २० ॥ खजैः मन्थनदण्डैः देहस्थात् संकल्पात् खेभ्य इन्द्रियेभ्यश्च जातैः संकल्पजैः खजैः स्त्रीदर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ २१ ॥ शुक्रं संकल्पजमित्येतदुपपादयति-**स्वप्नेऽपीति**। स्त्रीसंगाभावेऽपि संकल्पजं रजः स्त्रीरागः यथा अभ्येति तथैव मनोवहा नाडी शुक्रं सृजति ॥ २२ ॥ त्रीणि अन्नरसो मनोवहा नाडी संकल्पश्चेति बीजानि यस्य । त्रबीजमित्यपपाठः ॥ २३ ॥ भूतानां शुक्रोद्रेकादनुलोमप्रतिलोमगमनाद्वर्णसंकरकारिकां विद्युर्विचारयेयुः । विचार्य विरागाः दग्धदोषाः निर्वासनाः ॥ २४ ॥ देहानवाप्तौ अनुष्ठेयान्तरमाह-**गुणानामिति** । मनसैव गुणसाम्यं निर्विकल्पत्वं आगम्य योगबलेनासाद्य मनोवहं सत्यलोकप्रदं पूर्वोक्तं सुषुम्नाख्यनाडीमार्गं प्रति अन्तकाले प्राणानुदन् प्रेरयन् विमुच्यते । कः यः देहकर्मा देहनिर्वाहमात्रार्थं कर्म यस्य बाह्यप्रवृत्तिशून्य इत्यर्थः ॥ २५ ॥ देहबन्धच्छेदे योगमार्गे क्रममुक्तिदमुक्त्वा जीवन्मुक्तिकरं ज्ञानमार्गमाह-**भवितेति**। मनसो विश्वात्मकस्य ज्ञानं भविता भविष्यति । कीदृशं तत् ज्ञानं मन एव प्रजायत इति स्वप्न इव सर्वविषयाकारं भवतीति । एतज्ज्ञानवतः फलमाह । मंत्रसिद्धं प्रणवोपास्तिसिद्धं मनः नित्यं अनादिमायामात्रं सत् विरजं निर्वासनं ज्योतिष्मत् प्रकाशवत् सर्वज्ञं सर्वशक्ति च भवति । यथोक्तं वासिष्ठे—

'विगतवासनमाशु विपाशता-
मुपगतं मन आत्मतयोदितम् ।
यदभिवाञ्छति तद्भवति क्षणा-
त्सकलशक्तिमयो हि महेश्वरः ' इति ॥ २६ ॥

तदभिघाताय मनोनाशाय अकल्मषं निवृत्तिरूपं यथा येन प्रकारेण इष्टां गतिं मोक्षम् ॥ २७ ॥ जरया दुर्बलतां 'तृतीया तत्कृतार्थेन'इति समासः। मानसं बलं संकल्पं आदत्ते संहरति काले पूर्वभाग्येन न तु दृश्ययोग्यतया ॥ २८ ॥ गुणा देहेन्द्रियादयस्तदेव बन्धनम् ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१४॥

२१५

पूर्वोक्तबन्धनेऽमृते चाधिकारिभेदानाह-**दुरन्तेष्विति** ॥ १ ॥ क्लमैः क्लेशैः सन्ततं व्याप्तं दृष्ट्वैव न तु मम इदानीं क्लेशो नास्तीत्युपेक्षेत ॥ २ ॥ घटनमेवाहाध्यायेन-**वागिति** ॥ ३ ॥

अथवा मनसः सङ्गं पश्येद्भूतानुकम्पया ।
तत्राप्युपेक्षां कुर्वीत ज्ञात्वा कर्मफलं जगत
यत्कृतं स्याच्छुभं कर्म पापं वा यदि वाऽश्नुते
तस्माच्छुभानि कर्माणि कुर्याद्वा बुद्धिकर्मभिः
अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
क्षमा चैवाप्रमादश्च यस्यैते स सुखी भवेत् ६
तस्मात्समाहितं बुद्ध्या मनो भूतेषु धारयेत् ।
यश्चैनं परमं धर्मं सर्वभूतसुखावहम् ॥ ७
दुःखान्निःसरणं वेद सर्वज्ञः स सुखी भवेत् ।
तस्मात्समाहितं बुद्ध्या मनो भूतेषु धारयेत् ८
नापध्यायेन्न स्पृहयेन्नाबद्धं चिन्तयेदसत् ।
अथामोघप्रयत्नेन मनो ज्ञाने निवेशयेत् ।
वाचा मोघप्रयासेन मनोज्ञं तत्प्रवर्तते ॥ ९
विवक्षता च सद्वाक्यं धर्मं सूक्ष्ममवेक्षता ।
सत्यां वाचमहिंस्रां च वदेदनपवादिनीम् ॥
कल्कापेतामपरुषामनृशंसामपैशुनाम् ।
ईदृगल्पं च वक्तव्यमविक्षिप्तेन चेतसा ॥ ११
वाक्प्रबद्धो हि संसारो विरागाद्व्याहरेद्यदि
बुद्ध्याप्यनुगृहीतेन मनसा कर्म तामसम् १२
रजोभूतैर्हि करणैः कर्मणि प्रतिपद्यते ।
स दुःखं प्राप्य लोकेऽस्मिन्नरकायोपपद्यते ।
तस्मान्मनोवाक्शरीरैराचरेद्धैर्यमात्मनः १३
प्रकीर्णमेष भारं हि यद्वद्धार्येत दस्युभिः ।
प्रतिलोमां दिशं बुद्ध्वा संसारमबुधास्तथा
तमेव च यथा दस्युः
क्षिप्त्वा गच्छेच्छिवां दिशम् ।
तथा रजस्तमःकर्मा-
ण्युत्सृज्य प्राप्नुयाच्छुभम् ॥ १५
निःसंदिग्धमनीहो वै मुक्तः सर्वपरिग्रहैः ।
विविक्तचारी लघ्वाशी तपस्वी नियतेन्द्रियः
ज्ञानदग्धपरिक्लेशः प्रयोगरतिरात्मवान् ।
निष्प्रचारेण मनसा परं तदधिगच्छति १७
धृतिमानात्मवान् बुद्धिं निगृह्णीयादसंशयम् ।
मनो बुद्ध्या निगृह्णीयाद्विषयान्मनसाऽऽत्मनः
निगृहीतेन्द्रियस्यास्य कुर्वाणस्य मनो वशे ।
देवतास्तत्प्रकाशन्ते हृष्टा यान्ति तमीश्वरम्

अथवेत्यप्यर्थे भूतानुकम्पयाऽपि मनसः संगं बन्धं पश्येत् यथोक्तम्—

'कृपयाऽपि कृतः संगः पतनायैव योगिनाम् ।
इति संदर्शयन्नाह भरतस्यैणपोषणम्' इति ॥ ४ ॥

शुभं कर्माह—**अहिंसेति** ॥ ६ ॥ बुद्ध्या इदं सर्वं यदयमात्मेति शास्त्रोत्थया समाहितं स्थिरं रागद्वेषशून्यं एनं अहिंसादिरूपम् ॥ ७ ॥ अशुभं वर्ज्यमित्याह सार्धेन—**नापेति** । नापध्यायेत परानिष्टं न चिन्तयेत् । अबद्धं स्वस्यायोग्यं राज्यादि रंको न स्पृहयेत् । असत् नष्टं भावि वा स्त्रीपुत्रादिकं न चिन्तयेत् । अथामोघेति यत्नस्यावश्यंभाविफलत्वं सूचितम् । ज्ञाने ज्ञानसाधनेऽमानित्वादौ श्रवणादौ च वाचा मोघप्रयासेनेतिपाठे वाचा वेदान्तवाक्येन अवागोघप्रयोगेणेति पाठे वागिति वागादीन्द्रियव्यापारो लक्ष्यते । ओघ इति कालपरिणाममपेक्ष्य ऋतुलिङ्गवत्स्वयमेव ज्ञानाख्यचित्तपरिणामो भविष्यति किमुत्तमतयेत्युपदेशे या श्रेयोबुद्धिः सा कालाख्या तुष्टिरोघशब्दार्थः । तदुभयं यत्र नास्ति तादृशो यमनियमादीनां योगांगानां प्रयोगस्तेन तत् ज्ञानं प्रवर्तते ॥ ९ ॥ सद्वाक्यं विवक्षता पुरुषेण ईदृक् वक्तव्यम् । ईदृक्कथं यत् अहिंस्रां वाचं वदेदिति द्वयोः सम्बन्धः ॥ १० ॥ कल्कापेतां शाठ्येन हीनाम् ॥ ११ ॥ संसारः ऐहिक आमुष्मिकोऽर्थः सर्वो वाचैव प्रबद्धोऽस्ति अतः साध्वीमेव वाचं वदेत् । वैराग्यं चेत् तामसं हिंसादिकं कर्मापि स्वीयं व्याहरेत् । पुण्यं पापं वा कर्म स्वमुखेन प्रकाशितं चेन्नश्यतीति भावः ॥ १२ ॥ रजोभूतैः प्रवृत्तिपरैः फलितमाहार्धेन—**तस्मादिति** । ॥१३॥ सदृष्टान्तं कर्मसंन्यासमाह—**प्रकीर्णेति** द्वाभ्याम् । आमिषभारं वहन्तश्चोराः गम्यां दिशं राजकीयाद्यवरोधात्प्रतिकूलां बुध्वा आमिषं त्यक्त्वाऽन्यां दिशं गच्छन्तो यथा न बध्यन्ते एवमाविद्यकं कर्मादाय कामाद्यभिमुखः संसारभयं बुध्वा कर्माणि त्यजन्न बध्यते इति तात्पर्यम् । प्रकीर्णमेषः विशस्तमेषः आमिषमित्यर्थः । तस्य भारः क्लीबत्वमार्षम् ॥ १४ ॥ अनीहः चेष्टाशून्यः तपस्वी मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः तद्वान् ॥ १६ ॥ प्रयोगो योगाङ्गानामनुष्ठानं तत्र रतिः प्रीतिर्यस्य निष्प्रचारेण निरुद्धेन 'बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्' इति श्रुतेः ॥ १७ ॥ आत्मवान् बुद्धिमान् बुद्धिम् 'अहं ब्रह्मास्मि' इतिवाक्यजां धीवृत्तिम् । **मनः** संकल्पविकल्पात्मकम् । बुद्ध्या तया वृत्त्या मनसा विषयान् शब्दादीन् तेषां विशेषणं आत्मन इति मनोरूपानित्यर्थः ॥ १८ ॥ योगावान्तरफलमाह—**निगृहीतेति** । तत् तस्यामवस्थायां देवताः इन्द्रियाणि तं योगिनं ईश्वरं यान्ति प्रविशन्ति एतेन तत उत्पन्नत्वमपि ज्ञेयम् ॥ १९ ॥

ताभिः संयुक्तमनसो ब्रह्म तत्संप्रकाशते ।
शनैश्चापगते सत्त्वे ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २०
अथवा न प्रवर्तेत योगतन्त्रैरुपक्रमेत् ।
येन तन्त्रयतस्तन्त्रं वृत्तिः स्यात्तत्तदाचरेत् ।
कण-कुल्माष-पिण्याक-शाक-यावक-सक्तवः।
तथा मूलफलं भैक्ष्यं पर्यायेणोपयोजयेत् २२
आहारनियमं चैव देशे काले च सात्त्विकम्।
तत्परीक्ष्यानुवर्तेत तत्प्रवृत्त्यनुपूर्वकम् ॥ २३
प्रवृत्तं नोपरुन्धेत शनैरग्निमिवेन्धयेत् ।
ज्ञानान्वितं तथा ज्ञानमर्कवत्संप्रकाशते २४
ज्ञानाधिष्ठानमज्ञानं त्रीँल्लोकानधितिष्ठति ।
विज्ञानानुगतं ज्ञानमज्ञानेनापकृष्यते ॥ २५
पृथक्त्वात्संप्रयोगाच्च नासूयुर्वेद शाश्वतम् ।
स तयोरपवर्गज्ञो वीतरागो विमुच्यते ॥ २६
वयोतीतो जरामृत्यू जित्वा ब्रह्म सनातनम्।
अमृतं तदवाप्नोति यत्तदक्षरमव्ययम् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

## २१६-[४३]

भीष्म उवाच ।
निष्कल्मषं ब्रह्मचर्यमिच्छता चरितुं सदा ।
निद्रा सर्वात्मना त्याज्या स्वप्नदोषानवेक्षता
स्वप्ने हि रजसा देही तमसा चाभिभूयते ।
देहान्तरमिवापन्नश्चरत्यपगतस्पृहः ॥ २
ज्ञानाभ्यासाज्जागरणं जिज्ञासार्थमनन्तरम्
विज्ञानाभिनिवेशात्तु स जागर्त्यनिशं सदा

ताभिर्देवताभिः संयुक्तं ऐकात्म्यं गतं मनो यस्य धीमात्रेण स्थायिनः सत्त्वे धीमात्रे ब्रह्मभूयाय ब्रह्मभावाय भुवो भावे इति क्यप् ॥ २० ॥ न प्रवर्तेत योगैश्वर्यं न प्रकाशेतेति पाठे ऐश्वर्येण योगी विदितो न भवेत् । योगतन्त्रैर्निरोधप्रधानैरेव यत्नैरुपक्रमेत् । सत्यसंकल्पादीन् न भावयेत् । किं तु अस्थूलत्वादीनेवेत्यर्थः । ननु कथमेकस्यात्मवस्तुनः सगुणत्वं निर्गुणत्वं चेत्यत आह—**येनेति** । तन्त्रं तन्त्रप्रतिपाद्यं योगम् । तन्त्रयतः अनुतिष्ठतः येन रूपेण विशिष्टा वृत्तिः स्यात्तत्तदाचरेत्। सविशेषत्वं वृत्त्युपाधिकृतं स्वतस्तु निर्विशेषत्वमेवेति भावः ॥ २१ ॥ **कणेति** । कणादीनपि भक्षयेन्न तु योगैश्वर्यं उपजीवेतेत्यर्थः । कुल्माषाः पक्वमाषाः यावकं यवचूर्णजं जलोष्मपक्वं सक्तवः सक्तून् ॥ २२ ॥ प्रवृत्तं कर्म तदनुरोधेन योगेऽन्तरायं न कुर्यात् । ज्ञानान्वितं कर्म क्रमेण इन्धयेत् वर्धयेत् । तथा कुर्वतो ज्ञानं ब्रह्म प्रकाशते ॥२४॥ नन्वात्माभिन्नस्य ज्ञानस्याप्रकाशायोगात् कथं प्रकाशत इत्युक्तिरत आह—**ज्ञानेति** । त्रींल्लोकान् जाग्रदादीन् विज्ञानं बुद्धिः तदनुगतम् । ' स धीः स्वप्नो भूत्वा ध्यायतीव लेलायतीव ' इत्यादिश्रुतेः । अज्ञानेन अनात्मादौ आत्मादिबुद्धिरूपेण विपर्ययेण प्रकाशमानमपि ज्ञानम् । अवस्थात्रयकालुष्यादप्रकाशमानमिवेत्यर्थः॥२५॥ ननु सांशं अंशतः प्रकाशते न तु निरंशमतोऽस्य सर्वात्मनाऽप्रकाशः प्रकाशो वा वाच्य इत्याशंक्याह—**पृथक्त्वादिति** । अवस्थात्रयातीतमपि तत्संप्रयुक्तत्वेन गृह्णन् **असूयुः** शाश्वतमनुपाधिमात्मानं दूषयन् तं न वेद तयोः पृथक्त्वापृथक्त्वयोरपवर्गपर्यन्तम् । रूपवृतेति पाठे रूपवृत्तं स्वभावरूपमबाध्यत्वेन बाध्यत्वेन च जानन् ॥ २६ ॥ वयोतीतः जितकालः ततो वीतजरामृत्युर्ज्ञात्वेति पाठान्तरं सुगमम् ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥

### २१६

पूर्वत्र योगैश्वर्यमनुभूयाननुभूय वा ब्रह्म प्रविशेदित्युक्तम् । तत्र ऐश्वर्यानुभवं निन्दितुमारभते-**निष्कल्मषमिति** । निष्कामं ब्रह्मचर्ययोगं निद्रा अविद्यामोहकत्वात्त्याज्या । **स्वप्नेति** । 'तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः ' इति श्रुतेः जाग्रत्स्वप्नाविव योगैश्वर्यमपि संप्रज्ञातकालिकं स्वप्न एव तत्र दोषाः देवाङ्गनामन्त्रणादयः तान् ॥ १ ॥ स्वप्ने द्विविधेऽपि देही योगी अयोगी वा ॥ २ ॥ उक्तनिद्राप्रतियोगि जागरणमाह--**ज्ञानाभ्यासादिति** ।

' तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ज्ञानाभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ '

इत्युक्तविधात् ज्ञानाभ्यासात् । जिज्ञासा विचारोऽर्थः प्रयोजनमस्य तज्जागरणमनन्तरमनवरतम् । ज्ञाततत्त्वस्य तु मुख्यं जागरणमित्याह--**विज्ञानेति** ॥ ३ ॥

अत्राह को न्वयं भावः स्वप्ने विषयवानिव ।
प्रलीनैरिन्द्रियैर्देही वर्तते देहवानिव ॥ ४

अत्रोच्यते यथा ह्येतद्वेद योगेश्वरो हरिः ।
तथैतदुपपन्नार्थं वर्णयन्ति महर्षयः ॥ ५

इन्द्रियाणां श्रमात्स्वप्नमाहुः सर्वगतं बुधाः ।
मनसस्त्वप्रलीनत्वात्तत्तदाहुर्निदर्शनम् ॥ ६

कार्ये व्यासक्तमनसः संकल्पो जाग्रतो ह्यपि ।
यद्वन्मनोरथैश्वर्यं स्वप्ने तद्वन्मनोगतम् ॥ ७

संसाराणामसंख्यानां कामात्मा तदवाप्नुयात्
मनस्यन्तर्हितं सर्वं स वेदोक्तमपूरुषः ॥ ८

गुणानामपि यद्येतत्कर्मणा चाप्युपस्थितम् ।
तत्तच्छंसन्ति भूतानि मनो यद्भावितं यथा ९
ततस्तमुपसर्पन्ति गुणा राजसतामसाः ।
सात्त्विका वा यथायोगमानन्तर्यफलोदयम्
ततः पश्यन्त्यसंबुद्ध्या वातपित्तकफोत्तरान् ।
रजस्तमोगतैर्भावैस्तदप्याहुर्दुरत्ययम् ॥ ११

प्रसन्नैरिन्द्रियैर्यद्यत्संकल्पयति मानसम् ।
तत्तत्स्वप्नेऽप्युपगते मनो दृष्ट्यन्निरीक्षते ॥ १२

व्यापकं सर्वभूतेषु वर्ततेऽप्रतिघं मनः ।
आत्मप्रभावात्तं विद्यात्सर्वा ह्यात्मनि देवताः
मनस्यन्तर्हितं द्वारं देहमास्थाय मानुषम् ।
यद्यत्सदसदव्यक्तं स्वपित्यस्मिन्निदर्शनम् ।
सर्वभूतात्मभूतस्थं तमध्यात्मगुणं विदुः ॥१४

---

अत्राह पूर्वपक्षीति शेषः । स्वप्ने दृश्यमानोऽयं देहादिर्भावः पदार्थः को नु दुर्वितर्कः किं सत्योऽसत्यो वेति विकल्पाद्ये बाधानुपपत्तिरिति सूचयति--**विषयवानिवेति** । इवकारेण वस्तुतो न विषयवानित्यर्थः । ननु यथा उपरिस्थोऽर्को जलेऽधस्थ इवाभाति । तद्वज्जाग्रद्देहादिरेवान्यथा स्वप्ने भातीति न तावता स्वप्नस्यानिर्विषयत्वमित्याशंक्याह--**प्रलीनैरिति** । दृष्टान्ते जलोपरि संहत्यस्थितेनार्कतेजसा प्रतिहतं चाक्षुषं तेजोऽप्रविलीनं प्रतिस्रोतः प्रवृत्तं सदुपरिस्थमप्यर्कं प्राक्प्रवृत्तिसंस्कारादध इव विषयीकरोति । अत्र त्विन्द्रियाणि विलीनानीति भेदः । अन्यथा प्रतिबिम्बभ्रमसमये पुरोवर्तिद्रव्यान्तरवद्वाह्यं देशादिकमपि स्वप्ने दृश्येत । तस्मात्स्वाप्नो भावो न सत्य इत्यर्थः । नाप्यसत्यः असत्यस्य शशशृंगादेर्भानायोगात् ॥ ४ ॥ एवं युक्त्या निरुद्धगतिकः सिद्धान्ती अनुभवबलेनैवोत्तरयति-**अत्रोच्यत इति** । योगेश्वर इति हरिरिति च हेतुगर्भं विशेषणद्वयम् । योगिसंकल्पमात्र एव स्वाप्नो भावः वस्तुवृत्त्या तु तदभाव एवेति भावः एतद्यथा हरिर्वेद तथा महर्षयो वर्णयन्ति उपपन्नार्थं युक्तिमच्चैतदित्यर्थः ' संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति ' इति श्रुतेः, यथा योगिसंकल्पजं पित्रादिकं तथाऽस्मत्संकल्पजं खादिकमिति सुवचमित्याशयः ॥ ५ ॥ सर्वगतं सर्वप्राणिप्रसिद्धं इन्द्रियाणामुपरमे संकल्पस्वभावस्य मनसोऽनुपरमः स्वप्न इत्यर्थः । तत् तस्मिन् स्वप्ने विषये तत्प्रसिद्धं वक्ष्यमाणं निदर्शनं दृष्टान्तः ॥ ६ ॥ तमेवाह—**कार्ये इति** । मनोरथवृत्तिवत्स्वाप्नवृत्तिरपि संकल्पमात्रशरीरा तथाऽप्याद्ये इन्द्रियैर्विक्षेपात्सम्यक् न प्रतिभासः स्वप्ने तदभावाजाग्रद्वदर्थानां सम्यग्भानमिति विशेष इत्यर्थः ॥ ७ ॥ स्वप्नादेर्मनोगतत्वं व्याचष्टे-**संसाराणामिति** । प्राचीनानन्तजन्मसंस्कारात् । कामात्मा विषयासक्तचित्तः तत् स्वप्नाद्यैश्वर्यं अवाप्नुयात् कथं तदवाप्तिरत आह—स उत्तमपूरुषः असंहतः साक्षी मातृमानमेयाकारं मनो वेद प्रकाशयति । न विक्रियारूपं भोक्तृत्वं साक्षिणः अपि तु साक्ष्यप्रकाशकत्वमात्रम् । यस्तु विक्रियावान् प्रमाता स दृश्यकोटिस्थ एव न तु साक्षीत्यर्थः ॥८॥ गुणानां सत्त्वादीनां मध्ये यद्यत्कर्मणा प्राचीनेन सत्त्वं रजस्तमो वा उपस्थितं भवति । येन च कर्मणा भावितं संस्कृतं मनो यदा भवति तदा भूतानि सूक्ष्माणि तत्तच्छंसन्ति तं तं स्त्र्याद्याकारं स्वप्ने निवेदयन्तीत्यर्थः ॥९॥ ततः आकारदर्शनानन्तरम्।आनन्तर्यफलोदयं अनन्तरमेव सुखाद्युदयं यथा स्यात्तथा समुपसर्पन्ति ॥ १० ॥ असंबुद्ध्याऽज्ञानात् वाताद्युत्तरान् त्रिधातुकान् देहान् पश्यन्ति तद्देहदर्शनान्तं दुरत्ययं प्राग्वासनाप्राबल्यात् योगं विनाऽपरिहार्यम् ॥ ११ ॥ तत् तत् तस्मिंस्तस्मिन् ॥ १२ ॥ व्यापकं उपादानत्वात् अप्रतिघं प्रतिघातशून्यम् तत्र हेतुः आत्मप्रभावात्तं आत्मानं देवताः आकाशाद्याः आत्मज्ञानात्सार्वज्ञ्यं सार्वात्म्यं च प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ एवं स्वप्नावस्थामुक्त्वा सुषुप्त्यवस्थामाह—**मनसीति** सार्धेन । द्वारं स्वप्नदर्शने द्वारभूतं स्थूलं देहं मनस्यन्तर्हितमास्थाय तत्रैव देहे स्वपिति स्वमात्मानं अपिति गच्छति । कुत्र अस्मिन्नव्यक्ते सदसदात्मके मायाशबले निदर्शनं निश्चितदर्शनं साक्षिरूपं तदेव सर्वेषां भूतानामात्मभूतोऽहंकारस्तत्र प्रतिबिम्बात्मना तिष्ठतीति तथा । अध्यात्मगुणं आत्मा अहंकारः गुणाश्च प्रकृतिरूपास्तेषामुपरीति अध्यात्मगुणम् । अहंकारादिगुणैरस्पृष्टं बिंबात्मकत्वात् । सुषुप्तौ शुद्धे साक्षिण्येवाहंकारादयो लीयन्त इत्यर्थः ॥ १४ ॥

लिप्सेत मनसा यश्च संकल्पादैश्वरं गुणम् ।
आत्मप्रसादं तं विद्यात्सर्वा ह्यात्मनि देवताः
एवं हि तपसा युक्तमर्कवत्तमसः परम् ।
त्रैलोक्यप्रकृतिर्देही तमसोऽन्ते महेश्वरः १६
तपो ह्यधिष्ठितं देवैस्तपोघ्नमसुरैस्तमः ।
एतद्देवासुरैर्गुप्तं तदाहुर्ज्ञानलक्षणम् ॥ १७
सत्त्वं रजस्तमश्चेति देवासुरगुणान्विदुः ।
सत्त्वं देवगुणं विद्यादितरावासुरौ गुणौ ॥१८
ब्रह्म तत्परमं ज्ञानममृतं ज्योतिरक्षरम् ।
ये विदुर्भावितात्मानस्ते यान्ति परमां गतिं
हेतुमच्छक्यमाख्यातुमेतावज्ज्ञानचक्षुषा ।
प्रत्याहारेण वा शक्यमक्षरं ब्रह्म वेदितुम् २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

## २१७-[४४]

भीष्म उवाच ।
न स वेद परं ब्रह्म यो न वेद चतुष्टयम् ।
व्यक्ताव्यक्तं च यत्तत्त्वं संप्रोक्तं परमर्षिणा ॥१
व्यक्तं मृत्युमुखं विद्यादव्यक्तममृतं पदम् ।
प्रवृत्तिलक्षणं धर्ममृषिर्नारायणोऽब्रवीत् ॥ २
तत्रैवावस्थितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
निवृत्तिलक्षणं धर्ममव्यक्तं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ३
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं प्रजापतिरथाब्रवीत् ।
प्रवृत्तिः पुनरावृत्तिर्निवृत्तिः परमा गतिः ॥ ४
तां गतिं परमामेति निवृत्तिपरमो मुनिः ।
ज्ञानतत्त्वपरो नित्यं शुभाशुभनिदर्शकः ॥ ५

दृष्टान्तभूते स्वप्नसुषुप्ती उक्त्वा दार्ष्टान्तिके सबीजनिर्बीजावस्थे योगिगम्ये तत्राद्यां संप्रज्ञातावस्थामाह-**लिप्सेतेति** । ऐश्वरं गुणं ज्ञानवैराग्यैश्वर्यधर्मेष्वन्यतमं आत्मप्रसादं चित्तप्रसादं शुद्धं मन एव ईश्वर इत्यर्थः ॥ १५ ॥ तपसा विषयाद्यालोचनेन युक्तं मनः एवंभूतं भवति । तमसः परं प्राप्तं तु मनः अर्कवज्ज्ञप्तिमात्रमेव भवति । तत्रोभयविधब्रह्मभावं देहिन आह-**त्रैलोक्येति** । देही जीवः त्रैलोक्यप्रकृतिः कारणं ब्रह्मेत्यर्थः । कारणीभूततमसोऽन्ते तु स एव महेश्वरः शुद्धब्रह्मभूत एवेत्यर्थः । यथोक्तम्—

'सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते ।

सोपाधिकः स्यात्सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः' इति ॥१६॥ **तप इति** । अग्निहोत्रादिकं तपः, तमः दंभदर्पादि । एतद्ब्रह्म तु देवासुरैर्हेतुभूतै रजस्तमोमयैर्न प्राप्यमिति गुप्तं प्रजापतिना कीदृशं ज्ञानलक्षणं ज्ञानस्वरूपम् ॥१७॥ इममेव विभागं विभजते-**सत्त्वमिति** ॥ १८ ॥ तत्परमं तेभ्यः सात्त्विकासात्विकेभ्यो भावेभ्य उत्कृष्टं ज्ञानमेव न तु ज्ञेयम्। अमृतं ज्ञानान्तराबाध्यम्। ज्योतिः स्वप्रकाशम् । अक्षरं व्यापकम् । भावितात्मानः ध्यानादिना शोधिताचित्ताः॥१९॥ उपसंहरति—**हेतुमदिति** । ज्ञानचक्षुषा तत्त्वदर्शिना एतावद्वाच्यवृत्त्या सगुणं लक्षणया च निर्गुणम्। हेतुमद्युक्तियुक्तं यथा स्यात्तथा आख्यातुं शक्यं न तु शृंगग्राहिकया प्रदर्शयितुम् । श्रवणमननाभ्यां विदितशाब्दयुक्तितत्त्वस्य प्रत्याहारेण विषयेभ्य इन्द्रियाणामाकर्षणेन ब्रह्म वेदितुं शक्यं योगाङ्गेषु प्रत्याहार एव दुःशकः इतरत्सुसंपादमतो ब्रह्मप्राप्तिकामेनेन्द्रियाणि जेतव्यानीत्यर्थः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

२१७

उक्तं वक्ष्यमाणं च साधनजातं समुच्चिनोति-**न स इति**। धर्ममिति पाठे ' अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्' इति याज्ञवल्क्योक्तलक्षणं धर्मम् । चतुष्टयं पूर्वोक्तं दृष्टान्तभूतं स्वप्नसुषुप्त्याख्यं द्वयं दार्ष्टान्तिकं च सगुणनिर्गुणब्रह्मभावाख्यं द्वयमिति चतुष्टयम् । व्यक्तं दृश्यं अव्यक्तं चिदात्मा यत्तत्त्वमनारोपितं रूपं यस्य तत् परमर्षिणा नारायणेन ॥ १ ॥ व्यक्ताव्यक्तयोस्तत्त्वं स्वरूपतः फलतश्चाह द्वाभ्यां-**व्यक्तमिति** । ऋषिर्वेदः स एव नारायणवाक्यत्वान्नारायणः ॥ २ ॥ ब्रह्माण्डाधिपत्यान्तं सर्वं कर्म फलान्तर्भूतमित्यर्थः। निवृत्तिर्देहेन्द्रियाद्यहंकारान्तानां बाधस्तल्लक्षणो धर्मस्तु ब्रह्मैव ॥ ३ ॥ प्रजापतिः स्रष्टा रजोमयत्वात् ॥ ४ ॥ तां एषोऽस्य परम आनन्द एषाऽस्य परमा संपदिति श्रुतिप्रसिद्धां कैवल्यावस्थां शुभाशुभे मुक्तिसंसारौ निश्चयेन द्रष्टुमिच्छन् 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' इति ण्वुल् । ज्ञानतत्त्वं चिदात्मतत्त्वं तद्विचारपरो नित्यं स्यात् ॥ ५॥

तदेवमेतौ विज्ञेयावव्यक्तपुरुषावुभौ।
अव्यक्तपुरुषाभ्यां तु यत्स्यादन्यन्महत्तरम् ६
तं विशेषमवेक्षेत विशेषेण विचक्षणः।
अनाद्यन्तावुभावेतावलिङ्गौ चाप्युभावपि ७
उभौ नित्यावविचलौ महद्भ्यश्च महत्तरौ।
सामान्यमेतदुभयोरेवं ह्यन्यद्विशेषणम् ॥ ८
प्रकृत्या सर्गधर्मिण्या तथा त्रिगुणधर्मया।
विपरीतमतो विद्यात् क्षेत्रज्ञस्य स्वलक्षणम्॥९
प्रकृतेश्च विकाराणां द्रष्टारमगुणान्वितम्।
अग्राह्यौ पुरुषावेतावलिङ्गत्वादसंहतौ ॥ १०
संयोगलक्षणोत्पत्तिः कर्मणा गृह्यते यथा।
करणैः कर्मनिर्वृत्तिः कर्ता यद्यद्विचेष्टते।
कीर्त्यते शब्दसंज्ञाभिः कोऽहमेषोऽप्यसाविति
उष्णीषवान्यथा वस्त्रैस्त्रिभिर्भवति संवृतः।
संवृतोऽयं तथा देही सत्त्व-राजस-तामसैः
तस्माच्चतुष्टयं वेद्यमेतैर्हेतुभिरावृतम्।
यथासंज्ञो ह्ययं सम्यगन्तकाले न मुह्यति॥१३
श्रियं दिव्यामभिप्रेप्सुर्वर्ष्मवान्मनसा शुचिः
शारीरैर्नियमैरुग्रैश्चरेन्निष्कल्मषं तपः ॥ १४
त्रैलोक्यं तपसा व्याप्तमन्तर्भूतेन भास्वता।
सूर्यश्च चन्द्रमाश्चैव भासतस्तपसा दिवि १५

तत् तत्र तत्त्वविचारे कर्तव्ये एवं वक्ष्यमाणं प्रकारं जानीयात्। अव्यक्तं प्रधानं पुरुषः क्षेत्रज्ञो जीवः महत्तरं ईश्वरः। प्रधानं क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश इति श्रुतिप्रसिद्धं त्रयम् ॥ ६॥ तेषु यन्महत्तरं तं विशेषं क्लेशादिभिरपरामृष्टतया विशिष्टं परमात्मानं अवेक्षेत साक्षात् कुर्यात्। विशेषेण बाध्यत्वाबाध्यत्वलक्षणेन वैपरीत्येन विशेषमेवाह-**अनादीति**। उभौ प्रधानक्षेत्रज्ञौ अनादी अनन्तौ अलिङ्गौ मानान्तराविषयौ ॥ ७॥ नित्यौ मूढस्यापरिहार्यौ एवमादिपुंप्रकृत्योः साधर्म्यं विशेषणं व्यावर्तकं वैधर्म्यं तु एवं विद्यात् ॥ ८ ॥ एवं कथं तदाह--**प्रकृत्येति**। अप्रसवधर्मा निर्गुणश्च पुरुष इति विपरीतम् ॥ ९ ॥ विकाराणां महदादीनां द्रष्टारं न तु दृश्यम्। एवं प्रधानक्षेत्रज्ञयोः साधर्म्यवैधर्म्ये उक्त्वा क्षेत्रज्ञेश्वरयोरपि साधर्म्यमाह—**अग्राह्याविति**। अग्राह्यौ यतः पुरुषौ चिद्रूपौ अलिङ्गौ लिंग्यते ज्ञाप्यतेऽनेनेति गुणादिकं प्रतिसम्बन्धि लिङ्गं तद्राहित्यादसंहतौ अत्यन्ताविविक्तौ ॥ १० ॥ नन्वलिङ्गयोर्जीवेशयोर्लिङ्गभेदप्रयुक्तो भेदः कुतः स्यादित्याशंक्यौपाधिकस्तयोर्भेदो न स्वत इत्याशयेनाह-**संयोगेति**। संयोगो दृग्दृश्यसम्बन्धः लक्षणं ज्ञापकं उत्पत्तिराविर्भावहेतुश्च यस्य स संयोगलक्षणोत्पत्तिः। कर्तेति कर्तुर्बुद्धौ चित्प्रतिबिम्बत्वं लक्षणमुक्तम्। ननु बुद्धिरेव चिच्छायापन्ना कर्त्री किं तदुभयेतरेण कर्त्रेत्याशंक्याह—**कर्मनिर्वृत्तिरिति**। कर्मणां शास्त्रीयाणां लौकिकानां च निर्वृत्तिर्निष्पत्तिर्यस्मात्। अयमर्थः—कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वादितिन्यायेन विधिनिषेधशास्त्राक्षिप्तः कश्चिन्नियोज्यस्तावदस्ति। स च न बुद्धिः तस्याः काष्ठलोष्ठसमत्वेनानियोज्यत्वात्। नापि पुरुषः अकर्तृत्वात्। अतः शास्त्रार्थवत्त्वाय तदुभयसंयोगजः कर्ताऽवश्यं प्रधानेश्वरव्यतिरिक्तलक्षणोऽभ्युपेय इति। सः कर्ता यद्यद्यथा यथा करणैरिन्द्रियादिभिः साधनैर्विचेष्टते कर्म कुरुते तथा तथा तत्तद्योनिप्रदेन कर्मणा सहितो गृह्यते अतः समानेऽपि दृग्दृश्यसंयोगे दृश्योपाधिस्वरूपभेदात् कर्तृभेद इत्यर्थः। एवं च कर्ता व्यवहारतस्तृतीयोऽपि परमार्थतो दृक्कोटिरेव न तु दृश्यकोटिरिति दृष्टान्तमुखेनाहार्धेन—**कीर्त्यत इति**। यथा स्वस्य कौन्तेयत्वमजानानः कर्णः 'कः कौन्तेय' इति पृच्छति स एव सूर्येण प्रबोधितोऽहं कौन्तेय इति वक्ति एवमज्ञः किं ब्रह्मेति पृच्छति ज्ञस्त्वहं ब्रह्मेति जानाति एवमेकस्मिन्नपि वस्तुन्युपाधिभेदाज्ज्ञानाज्ञानकृतभेदाद्विभिन्नौ शब्दप्रत्ययौ भवतः। संज्ञा प्रत्ययः एवं दृश्येप्येषोऽसाविति सामीप्यासामीप्यकृतौ शब्दप्रत्ययावेकत्रापि भिन्नौ भवत एवं जीवेशाविति ॥ ११ ॥ ननु विनिगमकाभावादृश्यकोटिरेव कर्ता कथं नेत्याशंक्याह—**उष्णीषवानिति**। वस्त्रैः वस्त्रवदाच्छादकैस्त्रिभिः स्थूलसूक्ष्मकारणदेहैः यथा उष्णीषी उष्णीषादन्य एवं देही गुणेभ्योऽन्य इत्यर्थः। न हि प्रतिबिम्बमुखं दर्पणे दृश्यमानपि दर्पणकोटिगतं तथा जीवोऽपीति भावः ॥१२॥ चतुष्टयं द्वे पुंप्रधानयोः साधर्म्यवैधर्म्ये द्वे जीवेश्वरयोश्च साधर्म्यवैधर्म्ये इति। एतैः पूर्वोक्तैः अनाद्यन्तत्वेन चिज्जडत्वेन असंहतत्वेन कर्तृत्वेन चेति चतुर्भिर्हेतुभिः आवृतमपि मया सम्यग्व्याख्यातमित्यर्थः। यथासंज्ञः उक्तविधं ज्ञानमनतिक्रान्तः अन्तकाले सिद्धान्तसमये ॥ १३ ॥ एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा यत्कर्तव्यं तदाह—**श्रियमिति**। दिव्यां दिवि हार्दाकाशे ब्रह्मणि भवां वर्ष्मवान् देहवान् शारीरैः शरीरानिर्वर्त्यैः नियमैः शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानाख्यैः। निष्कल्मषं निष्कामं तपः योगम् ॥ १४ ॥ तपसा योगेन तद्बलेनेत्यर्थः। अन्तर्भूतेन आन्तरेण न तु समित्कुशाज्यपयआदिबाह्यद्रव्यसाध्येन भास्वता चैतन्यप्रकाशवता दिवि हार्दाकाशे सूर्यादिकं तपसा योगेन भासते।

**प्रकाशस्तपसो ज्ञानं लोके संशब्दितं तपः ।**
**रजस्तमोघ्नं यत्कर्म तपसस्तत्स्वलक्षणम् १६**
**ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।**
**वाङ्मनोनियमः सम्यङ्मानसं तप उच्यते १७**
**विधिज्ञेभ्यो द्विजातिभ्यो ग्राह्यमन्नं विशिष्यते**
**आहारनियमेनास्य पाप्मा शाम्यति राजसः**
**वैमनस्यं च विषये यान्त्यस्य करणानि च ।**
**तस्मात्तन्मात्रमादद्याद्यावदत्र प्रयोजनम् ॥१९**
**अन्तकाले बलोत्कर्षाच्छनैः कुर्यादनातुरः ।**

**एवं युक्तेन मनसा ज्ञानं यदुपपद्यते २०**
**रजोवर्ज्योऽप्ययं देही देहवाञ्छब्दवच्चरेत् ।**
**कार्यैरव्याहतमतिर्वैराग्यात्प्रकृतौ स्थितः २१**
**आ देहादप्रमादाच्च देहान्ताद्विप्रमुच्यते ।**
**हेतुयुक्तः सदा सर्गो भूतानां प्रलयस्तथा २२**
**परप्रत्ययसर्गे तु नियतिर्नानुवर्तते ।**
**भावान्तप्रभवप्रज्ञा आसते ये विपर्ययम् २३**
**धृत्या देहान्धारयन्तो बुद्धिसंक्षिप्तचेतसः ।**
**स्थानेभ्यो ध्वंसमानाश्च सूक्ष्मत्वात्तानुपासते**

---

'यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते । उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसौ' इत्यादिश्रुतेः । सर्वस्य तदन्तर्गतत्वावगमात् । अत एव योगिनां व्यवहितादिसाक्षात्कार उपपद्यते ॥ १५ ॥ प्रकाशो विकसनं फलमित्यर्थः तपसो योगस्य संशब्दितं 'योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्' इति सर्वत्र ख्यातं ज्ञानहेतुत्वेन तस्य स्वलक्षणं असाधारणं रूपम् । रजस्तमोघ्नं प्रवृत्त्यावरणयोर्नाशकम् । कर्म वैराग्यपूर्वकं वेदान्तश्रवणम् ॥ १६ ॥ तपोविशेषावाह—ब्रह्मेति ॥ १७ ॥ वैमनस्यं वैराग्यं विषये शब्दादौ करणानि इन्द्रियाणि अस्य शिष्टान्नभुजः तन्मात्रं आहारमात्रं न तु धनादिकं शिष्टेभ्योऽप्याददद्यात् ॥ १९ ॥ एवंविधसाधनसंपत्त्यभावेऽपि मोक्षे उपायान्तरमस्तीत्याह—**अन्तेति ।** तत् ज्ञानं अन्तकाले बलोत्कर्षात्कुर्यात् यज्ज्ञानं योगयुक्तेन मनसा शनैः उपपद्यते इत्यन्वयः । अयमाशयः-आदिपर्वणि विष्ण्वनुग्रहाद्देवा अमृतं लेभिरे राहुस्तु च्छलेनामृतार्थी देवपंक्तिस्थो देहभेदेन सहैव तल्लेभे इत्युपाख्यातम् । तत्राख्यायिकानां स्वार्थे तात्पर्याभावात्ततः कश्चिद्विधेयोऽर्थ उन्नेयः । स च यथोक्तसाधनानुष्ठानात् सात्त्विका मुक्तिभाजः स्युः । असात्त्विकोऽपि मोक्षक्षेत्रे मरणकाले मुक्तिमाप्नोति इति । तथा आश्वमेधिके संवर्तमरुत्तीये काश्यां वसतः संवर्तस्य शवदर्शनेन शिवदर्शनसिद्धिः सूचिता । तेन काश्यां मृतस्य शिवत्वेन तत्प्रतिमावत्तच्छरीरस्य लिंगत्वं सूच्यते । तथा इहापि बलोत्कर्षात् अन्तकाले ज्ञानं कुर्यादित्युच्यते तेन सर्वेणैतेन वाक्यसंदर्भेण अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेताविमुक्तं न विमुञ्चेदित्यस्याः श्रुतेरर्थः काश्यां म्रियमाणस्य रुद्रमुखात्तारकोपदेशप्राप्त्या मुक्तिप्राप्तिरिति समस्तपुराणोपबृंहितः सूचित इति गम्यते । बलोत्कर्षादतियत्नेन काश्यां वासात् । अन्तकाले ज्ञानं कुर्यादीशोपदेशात्संपादयेत् ॥ २० ॥ एवं मोक्षे साधनान्तरमुक्त्वा आपेक्षिकत्वमप्याह—**रज इति ।** अयं देही रजोवर्ज्यः बाह्येन्द्रियप्रवृत्तिशून्यः समाधौ संत्यक्तस्थूलदेहोऽपि देही पुरुषः देहवान् भूत्वा शब्दवत् शब्दादिमत् कार्यं सूक्ष्मशरीरं चरेत् अनुचरेत् । यस्तु कार्यैरव्याहतमतिः स वैराग्यात् सूक्ष्मभोगेष्वपि निस्पृहः प्रकृतौ लीयते न तु प्रकृतेः परं पुरुषं प्राप्नोति । अयं भावः-स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरैर्मुक्तो योगी सद्यो मोक्षमश्नुते । स्थूलमात्रविहीनो विदेहः । स्थूलसूक्ष्माभ्यां विहीनः प्रकृतिलयः । एतौ हि सुषुप्तिस्थवत् उत्तरकक्ष्यां प्रविविक्षन्तौ मध्ये लयेनाभिभूतौ निर्विकल्पं पदमनुभवत इव । अत एव तयोरसंप्रज्ञातः संसारहेतुः । तथा च सूत्रितम्—**भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् इति** ॥२१॥ आदेहात् देहपातावधि अप्रमादात् अनवधानत्वाद्यभावात् । देहान्तां स्थूलसूक्ष्मकारणानां अन्तात् बाधात् । विशेषेण सद्य एव मुच्यते । पूर्वौ तु क्रममुक्तिभाजावित्याह—**हेत्विति ।** हेतुर्मूलाज्ञानं तदनाशाद्विदेहादीनां अन्येषां च भूतानां कर्माविनाशस्ततः सर्गप्रलयौ जन्ममरणे स्त इत्यर्थः ॥ २२ ॥ परप्रत्ययसर्गे शुद्धब्रह्मसाक्षात्कारोदये नियतिर्धर्माधर्मौ नानुवर्तते । शुद्धब्रह्मविदस्तदधिगम उत्तर पूर्वाघयोरश्लेषविनाशाविति न्यायेन पूर्वपापस्य नाश उत्तरस्यासंश्लेषश्च भवतीत्यागामिजन्मकारणाभावान्मुक्तिरित्यर्थः । परप्रत्ययाभावे संसारानर्थयोग इत्याह—**भावेति ।** ये विपर्ययं अनात्मसु प्रकृत्यादिदेहान्तेषु अन्यतमस्मिन् तत्समुदाये वा आत्मबुद्धिं कृत्वा आसते भावानां महदादीनां अन्तप्रभवयोर्नाशोदययोरेव प्रज्ञा बुद्धिर्येषां ते तथा भवन्ति । विपर्यस्तमतीनां मोक्षकथापि नास्तीत्यर्थः ॥ २३ ॥ धृत्या आसनाद्यप्रच्युत्या देहान् धारयन्तो योगिनः । बुद्ध्या संक्षिप्तं विषयेभ्यः प्रत्याहृतं चेतो यैस्ते । स्थानेभ्यः अक्ष्यादिभ्य इन्द्रियगोलकेभ्यो ध्वंसमानाः च्युताः त्यक्तान्नमयकोशाः । सूक्ष्म-

यथागमं च गत्वा वै बुद्ध्या तत्रैव बुध्यते।
देहान्तं कश्चिदन्वास्ते भावितात्मा निराश्रयं
युक्तं धारणया सम्यक् सतः केचिदुपासते।
अभ्यस्यन्ति परं देवं विद्युत्संशब्दिताक्षरम्
अन्तकाले ह्युपासन्ते तपसा दग्धकिल्बिषाः
सर्वे एते महात्मानो गच्छन्ति परमां गतिम्
सूक्ष्मं विशेषणं तेषामवेक्षेच्छास्त्रचक्षुषा।
देहान्तं परमं विद्याद्विमुक्तमपरिग्रहम् ॥ २८
अन्तरिक्षादन्यतरं धारणासक्तमानसम्।
मर्त्यलोकाद्विमुच्यन्ते विद्यासंसक्तचेतसः २९
ब्रह्मभूता विरजसस्ततो यान्ति परां गतिम्।
एवमेकायनं धर्ममाहुर्वेदविदो जनाः ॥ ३०
यथा ज्ञानमुपासन्तः सर्वे यान्ति परां गतिं
कषायवर्जितं ज्ञानं येषामुत्पद्यतेऽचलम्।
यान्ति तेऽपि पराँल्लोकान् विमुच्यंते यथाबलं
भगवन्तमजं दिव्यं विष्णुमव्यक्तसंज्ञितम्।
भावेन यान्ति शुद्धा ये ज्ञानतृप्ता निराशिषः
ज्ञात्वाऽऽत्मस्थं हरिं चैव
न निवर्तन्ति तेऽव्ययाः।
प्राप्य तत्परमं स्थानं
मोदन्तेऽक्षरमव्ययम् ॥ ३३

त्वात् अन्नमयापेक्षया। न तु वस्तुतः तान् प्राणेन्द्रियादीन् उपासते आत्मत्वेन चिन्तयन्ति। यथोक्तं पुराणान्तरे।

'दशमन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः।
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः।
बौद्धा दशसहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः
पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः
पुरुषं निर्गुणं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते' इति।

ब्रह्मलोके एते सर्वे तिष्ठन्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥ यस्मादेवं तस्मात् यथागमम्—

'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।'

इतीमं वेदमनतिक्रम्य ततस्ततः परं परं स्थानं गत्वा तत्र परस्यां काष्ठायां विषये स्वयमेव बुद्ध्या धीवृत्त्या बुद्ध्यते जानाति परां काष्ठां देहान्तं अव्यक्तादपि परम्। एवेनाव्यक्तात्पुरुषः पर इति श्रौतमव्यक्तपदं देहपरं न तु सांख्याभिमताव्यक्तपरमिति व्याख्यातम्। आनुमानिकाधिकरणे चैतत्स्पष्टम्। तं देहान्तं कश्चिदेव भावितात्मा योगशोधितमतिरन्वास्तेऽमुं शास्त्राचार्योपदेशमनुप्राप्यास्ते निराश्रयं स्वमहिमप्रतिष्ठं पराकाष्ठारूपत्वात् ॥२५॥ **युक्तमिति**। धारणया धारणाविषयेण मूर्तब्रह्मणा कृष्णादिना युक्तं तादात्म्यसम्बन्धेन सेव्यसेवकभावेन वा युक्तं निबद्धं आत्मानं कश्चिदुपास्ते। सत इति कर्माणि षष्ठी। अविद्याशबलं केचिदुपासते। अपरे परं शबलादुत्कृष्टं निर्गुणं ब्रह्म अभ्यस्यन्ति पुनः पुनरनुभवविषयतामापादयन्ति। विद्युत्संशब्दितं सकृद्विभातो ह्येष ब्रह्मलोक इति श्रुतेः विद्युद्वत्सकृद्विभातत्वेन विद्युत्संशब्दितं केनेषितमित्युपनिषत्प्रसिद्धमिदं विशेषणम्। अक्षरं अपरिणामि। ननु देहान्तपदेनैवैतदुक्तम्। सत्यम्। तत्र ज्ञेयत्वेनोक्तं इह तूपास्यत्वेनोच्यते कः पुनरेतावता भेदः। शृणु। आद्ये श्रवणादिप्रणाल्याऽध्यस्तानात्मनिरसनेनात्मतत्त्वावाप्तिः सर्पबाधेनेव रज्ज्ववगतिः, द्वितीये तु मूलप्रमाणाभावेऽपि तव पाणौ पञ्चरत्नानीति वदतो वाक्यं कदाचित्संवाद्यते तद्वत्त्वं ब्रह्मासीति गुरुवाक्ये विश्वासमात्रात्प्रवृत्त आत्मनो ब्रह्मभावं चिन्तयंस्तमनुभवति। सेयं संवादिभ्रमवदुपास्तिब्रह्मसाक्षात्कारफलेति॥२६॥ **अन्तेति**। तपसा अविमुक्तोपासनेन अन्तकाले उपासन्ते ब्रह्म प्राप्नुवन्ति **अस गता**- वित्यस्य रूपम्। एते पञ्च यथायोगं परमां निर्विशेषां गतिं क्रमेण सद्यो वा गच्छन्ति ॥ २७ ॥ **सूक्ष्ममिति**। विशेषणं व्यावर्तकं उपाधिभूतं तेषां सोपाधिकब्रह्मणां अवेक्षेत हेलनया हेयत्वेन पश्येत् यथोक्तं कल्पतरौ—

'निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः
ये मन्दास्तेऽनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः।
स्थिरीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मचिन्तनात्
तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम्' इति।

देहान्तं अव्यक्तलयाधिष्ठानम्। देहं त्विति पाठे अव्यक्तमेव। परमं चरमं विशेषणम्। न ततः परमन्यद्ध्येयमस्तीत्यर्थः। विमुक्तमपरिग्रहमित्यादिपादोनश्लोक एकं वाक्यम्। विमुक्तं स्थूलदेहाध्यासहीनम्। अपरिग्रहं संन्यासिनम् ॥ २८ ॥ धारणासक्तमानसं योगिनम् अन्तरिक्षात् अन्तरिक्षं हार्दाकाशस्तमारभ्य अन्यतरं ईशं सूत्रात्मानं वा विद्यादित्यर्थः। **मर्त्येति**। यत्किंचित् श्रौतोपास्तियुक्ताः मर्त्यदेहाद्विमुच्यन्ते ॥ २९ ॥ तत आरोहक्रमेण परां गतिं यान्ति एकायनं एकं ब्रह्मैवायनं प्राप्तिस्थानं यस्मिन् ॥ ३० ॥ **कषायेति**। रागादिहीनमचलं येषां शास्त्रीयं परोक्षमपि ज्ञानमुत्पद्यते तेऽपि यथाबलं यथावैराग्यं मुच्यन्ते ॥ ३१ ॥ भगवन्तं सर्वैश्वर्यवन्तम् ॥ ३२ ॥ **आत्मस्थं** कोशपञ्चकान्तर्गतम् ॥ ३३ ॥

एतावदेतद्विज्ञानमेतदस्ति च नास्ति च ।
तृष्णाबद्धं जगत्सर्वं चक्रवत्परिवर्तते ॥ ३४
बिसतन्तुर्यथैवायमन्तस्थः सर्वतो बिसे ।
तृष्णातन्तुरनाद्यन्तस्तथा देहगतः सदा ॥३५
सूच्या सूत्रं यथा वस्त्रे संसारयति वायकः ।
तद्वत्संसारसूत्रं हि तृष्णासूच्या निबद्ध्यते ३६
विकारं प्रकृतिं चैव पुरुषं च सनातनम् ।
यो यथावद्विजानाति स वितृष्णो विमुच्यते
प्रकाशं भगवानेतदृषिर्नारायणोऽमृतम् ।
भूतानामनुकंपार्थं जगाद जगतो गतिः ३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वार्ष्णेयाध्यात्मकथने सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

## २१८-[४५]

युधिष्ठिर उवाच ।
केन वृत्तेन वृत्तज्ञ जनको मिथिलाधिपः ।
जगाम मोक्षं मोक्षज्ञो भोगानुत्सृज्य मानुषान्
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
येन वृत्तेन धर्मज्ञः स जगाम महत्सुखम् ॥ २
जनको जनदेवस्तु मिथिलायां जनाधिपः ।
और्ध्वदेहिकधर्माणामासीद्युक्तो विचिन्तने
तस्य स्म शतमाचार्या वसन्ति सततं गृहे ।
दर्शयन्तः पृथग्धर्मान्नानाश्रमनिवासिनः ॥४
स तेषां प्रेत्य भावे च प्रेत्य जातौ विनिश्चये
आगमस्थः स भूयिष्ठमात्मतत्त्वेन तुष्यति ॥५
तत्र पञ्चशिखो नाम कापिलेयो महामुनिः ।
परिधावन्महीं कृत्स्नां जगाम मिथिलामथ ६
सर्वसंन्यासधर्माणां तत्त्वज्ञानविनिश्चये ।
सुपर्यवसितार्थश्च निर्द्वन्द्वो नष्टसंशयः ॥ ७
ऋषीणामाहुरेकं तं यं कामानावृतं नृषु ।
शाश्वतं सुखमत्यन्तमन्विच्छन्तं सुदुर्लभम् ८

संक्षेपेण ज्ञेयं हेयं चाह—**एतावदिति** । अस्ति च नास्ति चेत्यनेन रज्जूरगादिवज्जगद्भ्रान्ताभ्रान्तयोरस्ति च नास्ति चेत्यनिर्वचनीयमित्युक्तम् जगन्मिथ्यात्वं ज्ञेयं तृष्णा च त्याज्येत्यर्थः ॥ ३४ ॥ बिसं मृणालम् ॥ ३५ ॥ तृष्णात्यागोपायमाह-**विकारमिति** । कार्यं कारणं शुद्धं च जानन् वितृष्णो भूत्वा विमुच्यते ॥३७॥ प्रकाशं स्पष्टम् । अमृतं मोक्षसाधनम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

२१८

पूर्वं संक्षेपेण पुंप्रकृत्योर्वैधर्म्यमुक्तं तद्विवरणाय पञ्चशिखवाक्यमध्यायद्वयमारभते । तत्र तृष्णात्यागो मुख्यं मुक्तिसाधनं स च राज्ञां दुःशक इति मन्वानः मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किंचन दह्यतीति पूर्वोक्तं स्वमतविरुद्धं जनकवचनं स्मरंस्तद्वृत्तं पृच्छति—**केनेति** ॥ १ ॥ महत्सुखं मोक्षम् ॥ २ ॥ जनको जनकवंश्यः नाम्ना जनदेवः । ऊर्ध्वं देहादित्यूर्ध्वदेहमशरीरं ब्रह्म तत्प्राप्तिकराणां और्ध्वदेहिकानां विचिन्तने युक्तोऽवहित आसीत् ॥ ३॥ धर्मान् उपासनामार्गान् पाठान्तरे पाषंडाः लोकायतादयः तेषां वादिनः प्रतिभटत्वेन जेतारः पाषण्डवासिन इति पाठे पाषण्डान् वासयन्ति आच्छादयन्ति तिरस्कुर्वन्ति ते तथा ॥ ४ ॥ तत्र केचित्पाषण्डा देहनाशादात्मनाशमिच्छन्ति । अन्ये पुनर्देहस्यैव नाशं नेच्छन्ति । तत्राद्ये जगद्वैचित्र्यानुपपत्तिमन्त्ये प्रत्यक्षविरोधं चोद्भावयतां तेषां प्रेत्यभावे अस्माद्देहादुत्क्रम्य भावे सत्तायां प्रेत्य जातौ जन्मान्तरलाभे च विषये विनिश्चये स भूयिष्ठं न तुष्यति । यतः आगमस्थः तत्र तार्किकाणां विभूनामात्मनां पूर्वदेहेन्द्रियवियोगो मरणं अपूर्वदेहेन्द्रियसम्बन्धो जन्मेति विनिश्चयः। सांख्यानां तु आत्मनां करणानां च विभूनामेव सतां अरण्यामग्नेरिव तत्र तत्र वृत्तिलाभो जन्मवृत्तिविलयो मृत्युरिति विनिश्चयः । तथा कर्ता भोक्ता विभुरात्मेति पूर्वेषामात्मतत्त्वं परेषां तु भोक्तैव न कर्तेति । तत्रापाषण्डत्वात्किञ्चित्तुष्यन्नपि भूयिष्ठं न तुष्यति आगमविरोधात् । आगमो हि स्वप्रवत्पूर्वदेहनाशोत्तरदेहप्राप्ती वदति।आत्मानं चाकर्तारमभोक्तारमेकं च । न तेषामितिपाठे आत्मतत्त्वेनेति तृतीया ॥ ५ ॥ कापिलेयः कपिलायाः पुत्रः परिधावन् एकत्र वासमकुर्वन् ॥६॥ सुपर्यवसितार्थः सम्यक् निश्चितप्रयोजनः ॥ ७ ॥ कामैरनावृतम् कामादवसितामिति पाठे यदृच्छया स्थितम् । नृषु सुखं अन्विच्छन्तम् । स्थापयितुमिति शेषः ॥ ८ ॥

यमाहुः कपिलं सांख्याः परमर्षिं प्रजापतिम्
स मन्ये तेन रूपेण विस्मापयति हि स्वयम्
आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् ।
पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रिकम् १०
यत्र चासीनमागम्य कापिलं मण्डलं महत् ।
पञ्चस्रोतसि निष्णातः पञ्चरात्रविशारदः ॥
पञ्चज्ञः पञ्चकृत्पञ्चगुणः पञ्चशिखः स्मृतः ।
पुरुषावस्थमव्यक्तं परमार्थं न्यवेदयत् ॥ १२
इष्टसत्रेण संपृष्टो भूयश्च तपसाऽऽसुरिः ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्व्यक्तिं बुबुधे देवदर्शनः ॥ १३
यत्तदेकाक्षरं ब्रह्म नानारूपं प्रदृश्यते ।
आसुरिर्मण्डले तस्मिन्प्रतिपेदे तदव्ययम् १४
तस्य पञ्चशिखः शिष्यो मानुष्या पयसा भृतः
ब्राह्मणी कपिला नाम काचिदासीत्कुटुंबिनी
तस्याः पुत्रत्वमागम्य स्त्रियाः स पिबति स्तनौ

ततः स कापिलेयत्वं लेभे बुद्धिं च नैष्ठिकीम्
एतन्मे भगवानाह कापिलेयस्य संभवम् ।
तस्य तत्कापिलेयत्वं सर्ववित्त्वमनुत्तमम् १७
सामान्यं जनकं ज्ञात्वा धर्मज्ञो ज्ञानमुत्तमम्
उपेत्य शतमाचार्यान्मोहयामास हेतुभिः १८
जनकस्त्वभिसंरक्तः कापिलेयानुदर्शनात् ।
उत्सृज्य शतमाचार्यान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम्
तस्मै परमकल्याय प्रणताय च धर्मतः ।
अब्रवीत्परमं मोक्षं यत्तत्सांख्येऽभिधीयते ॥
जातिनिर्वेदमुक्त्वा स कर्मनिर्वेदमब्रवीत् ।
कर्मनिर्वेदमुक्त्वा च सर्वनिर्वेदमब्रवीत् ॥ २१
यदर्थं धर्मसंसर्गः कर्मणां च फलोदयः ।
तमनाश्वासिकं मोहं विनाशि चलमध्रुवम् ॥
दृश्यमाने विनाशे च प्रत्यक्षे लोकसाक्षिके ।
आगमात्परमस्तीति ब्रुवन्नपि पराजितः ॥ २३

---

सः कपिलः तेन पञ्चशिखसंज्ञेन तत्प्रशिष्यत्वात्तत्तुल्यत्वम् ॥ ९ ॥ पञ्च स्रोतांसि विषयकेदारप्रणालिका यस्य तस्मिन् मनसि मानसं सत्रमित्यर्थः ॥ १० ॥ यत्र यत्समीपे कापिलं कपिलमतानुसारि। मण्डलं मुनिसमूहं प्रति परमार्थं यः न्यवेदयदित्युत्तरेण संबन्धः पञ्चस्रोतसि मनसि निष्णातः ऊहापोहकौशलवान् पञ्चरात्रो नाम विष्णुत्वप्रापकः क्रतुः । 'पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयतात्यतिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदꣳ सर्वꣳ स्यामिति । स एतं पञ्चरात्रं पुरुषमेधं यज्ञक्रतुमपश्यत्' इति शतपथोक्तस्तत्र विशारदः अनुष्ठिताखिलकर्मेत्यर्थः ॥ ११ ॥ पञ्च अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयान् कोशान् मिथ आत्मनश्च विविक्तान् जानातीति पञ्चज्ञः अत एव पञ्चकृत् पञ्चतद्विषयाण्युपासनानि 'भृगुर्वै वारुणिः' इत्यस्यामुपनिषदि 'स तपस्तप्त्वाऽन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्' इत्यादिविहितानि करोति स पञ्चकृत् पञ्च 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' इति श्रुताः शान्त्यादयो गुणाः यस्मिन् स पञ्चगुणः । ततश्च 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः पञ्चभ्योऽतिरिच्यमानत्वात् शिखेवेति पञ्चशिखं पुच्छं ब्रह्म तज्ज्ञत्वान्मुनिरपि पञ्चशिखः । ननु पञ्चकृत् कथं षष्ठज्ञः स्यादिति चेत् शृणु । यथाऽन्नमयं विकारमुपासीनस्तत्प्रकृतिमन्नं विराडाख्यमेति । एवं माययाऽविकृतमानन्दमानन्दमयाख्यमुपास्याविकृतमानन्दं तत्प्रकृतिमेतीति न षष्ठोपास्तिः पृथगवरुध्या षष्ठज्ञानाय तस्य पञ्चमोपास्तिफलत्वात्, तदेतदाह —पुरुषेति । पुरुषा अन्नमयादयः पञ्च अवस्थतया बाधिततया तिष्ठन्तीत्यस्मिन्निति पुरुषावस्थम् । अत एव शिरआद्यवयवरहितत्वादव्यक्तं अबाध्यत्वाच्च परमार्थं अबोधयत् ॥१२॥ तस्यापि गुरुमाह—**अष्टेत्यादिना** । इष्टसत्रेण आत्मयज्ञेन हेतौ तृतीया अध्ययनेन वसतीतिवत् सम्यक् पृष्टः प्रश्नो यस्य संपृष्टः । आत्मज्ञानार्थं कृतप्रश्न इत्यर्थः । व्यक्तिं बाध्यत्वाबाध्यत्वेन स्पष्टतां देवदर्शनः दिव्यदृष्टिरित्यर्थः ॥ १३ ॥ सांख्यसंमतं गुणपुरुषान्तरज्ञानात्कैवल्यं प्रधानं चोपादानमिति पक्षं निरस्यति—**यत्तदिति** । अक्षरमेव जगदुपादानतया नानारूपं न तु क्षरं प्रधानम् । अव्ययं ब्रह्मैव प्रतिपेदे ज्ञातवान् न तु गुणपुरुषान्तरम् ॥१४॥ भगवान्मार्कण्डेयः सनत्कुमारो वा ॥१७ सामान्यं सर्वेष्वाचार्येषु समबुद्धिम् ॥ १८ ॥ अभिसंरक्तो भक्तः ॥ १९ ॥ कल्याय समर्थाय सांख्ये उपनिषत्काण्डे विधीयते अपूर्वतया ज्ञाप्यते न तु युक्त्या उन्नीयते ॥२०॥ जातिर्जन्म कर्म यागादि सर्वं ब्रह्मलोकान्तं तेषु निर्वेदो दुःखरूपत्वाद्दोषयुक्तत्वात्क्षयिष्णुत्वाच्च ॥ २१ ॥ तं मोहमब्रवीदिति पूर्वेणान्वयः । तं कं यस्य मोहस्यार्थे कर्म तत्फलं च कांक्षते अनाश्वासिकं अविश्वसनीयं शुक्तिरजतायसद्विषयप्रदर्शकत्वात् । विनाशि चञ्चलं ध्वंसिनमनियतकालं च अध्रुवं सत्त्वेनासत्त्वेन वा न निश्चितम् ॥ २२ ॥ तमिममतस्मिंस्तद्बुद्धिलक्षणं मोहं विवरीतुं लोकायतानां मतमुपन्यस्यति—**दृश्यमाने इत्यादिना** । ते हि पार्थिवाप्यतैजसवायवीयाः परमाणवः स्वस्नेहोष्णेरणस्वभावाः स्वयमेव देहाद्याकारेण संहन्यमाना मदशक्तिवच्चैतन्यं जनयन्ति देहे एव न तु घटादौ । स्वभावादिति

अनात्मा ह्यात्मनो मृत्युः क्लेशो मृत्युर्जरामयः
आत्मानं मन्यते मोहात्तदसम्यक् परं मतम्
अथ चेदेवमप्यस्ति यल्लोके नोपपद्यते ।
अजरोऽयममृत्युश्च राजाऽसौ मन्यते यथा ॥
अस्ति नास्तीति चाप्येतत्तस्मिन्नसति लक्षणे
किमधिष्ठाय तद्ब्रूयाल्लोकयात्राविनिश्चयम् २६
प्रत्यक्षं ह्येतयोर्मूलं कृतान्तैतिह्ययोरपि ।
प्रत्यक्षेणागमो भिन्नः कृतान्तो वा न किञ्चन

यत्र यत्रानुमानेऽस्मिन्
कृतं भावयतोऽपि च ।
नान्यो जीवः शरीरस्य
नास्तिकानां मते स्थितः ॥ २८
रेतो वटकणीकायां घृतपाकाधिवासनम् ।
जातिः स्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोम्बुभक्षणं
प्रेतीभूतेऽत्ययश्चैव देवताद्युपयाचनम् ।
मृते कर्मनिवृत्तिश्च प्रमाणमिति निश्चयः ३०

सन्तमात्मानं नास्तीत्याहुः । असन्तं च देहं सन्तमाहुस्तदेतदाह—विनाशे देहरूपारम्भध्वंसे प्रत्यक्षे सति देहात्परं आत्मतत्त्वं आगमप्रमाणादपि अस्तीति ब्रुवन् । लोकविरुद्धागमप्रामाण्यवादी पराजित एवेत्यर्थः ॥ २३ ॥ ननु देहस्यैवात्मत्वे 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादयः परलोकफलाश्चोदना उपरुद्ध्येरन्नित्याशंक्याह—**अनात्मेति** द्वाभ्याम् । आत्मनो मृत्युः अनात्मा स्वरूपाभाव एव । **क्लेशो** दुःखं **जरा** वयोहानिः **आमयो** रोगश्च आत्मनो मृत्युरेव अंशेन स्वरूपनाशः । गृहस्येव दुर्बलं दुर्बलमंगं पूर्वपूर्वतरं नश्यति सोंऽशेन गृहनाश एवमिन्द्रियादिनाशेनाप्यंशत आत्मैव नश्यतीत्यर्थः । एवं सति य आत्मानं मोहात् । परं देहादन्यं मन्यते तत् मतं असम्यक् ॥ २४ ॥ स्वर्गकामचोदना तु यथा राज्ञोऽजरत्वामरत्वाद्याशीरुपचार एवं दृष्टसुखे एव स्वर्गोपचारः । तस्माद्धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे नार्चिः । तस्मादर्चिरेवाग्नेर्नक्तं ददृशे न धूम इत्यादिवत्प्रत्यक्षविरुद्धा श्रुतिर्न स्वार्थे प्रमाणमित्याह—**अथेति** । तथा अग्निहोत्रादेर्वैयर्थ्यमुदाहरन्ति—

'अग्निहोत्रं त्रयीधर्मस्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः' । इति॥२५॥

एवं प्रत्यक्षविरोधात् श्रुतिप्रामाण्यं दूषयित्वा व्याप्त्यग्रहादनुमानस्यापि तद्दूषयति—**अस्ति नास्तीति** । यथा चन्द्रतारके गत्यभावोऽस्ति नास्तीति संशयेऽस्तिगत्यनुपलब्धेरिति प्राप्ते नास्ति देशान्तरप्राप्तेरित्यनुमानेन यत् गत्यादिसाधनम् तदपि असति लक्षणे ज्ञापके हेतौ शतशः सहचरितयोरपि व्यभिचारदर्शनादसति किं लिंगमधिष्ठाय आलम्ब्य लोकयात्राया वन्ह्यादिव्यवहारस्य विनिश्चयं ब्रूयान्न किमपीत्यर्थः ॥ २६ ॥ कृतान्तैतिह्ययोः अनुमानागमयोः भिन्नः बाधितः न किञ्चन प्रमाणमित्यर्थः ॥२७॥ फलितमाह—**यत्रेति** । यत्र कुत्राप्यनुमाने ईशादृष्टनित्यात्मान्यतमसाधके साध्यसिद्धिं भावयतः कृतं अलं भावनयाऽलमित्यर्थः । उक्तविधयाऽनुमानस्याप्रामाण्यात् शरीरस्य शरीरात् ॥२८॥ अनुमानस्य प्रामाण्योपगमे तु तत एव देहादनन्यात्मासिद्धिरित्याह—**रेत इति** । यथा समानेऽपि भूतचतुष्टयसंयोगे वटकणिकायां वटपत्रपुष्पफलमूलत्वगादिरूपरसादयोऽन्तर्हिताः । एवं तत्तद्रेतसि समानेप्युपष्टंभकभागे मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तशरीराकारगुणादयोऽन्तर्हिताः सन्त आविर्भवन्ति । यथा वा एकस्मादेव धेनूपभुक्तात्तृणोदकात् पयःसर्पिषी पृथक्स्वभावे यथा वा बहुद्रव्यकल्काद्विरात्रमधिवासितान्मदशक्तिरुत्पद्यत एवं रेतस उपलभ्योपलब्धांशो वा भूतसंयोगाद्वा चैतन्यं जन्यते । जातिर्जन्माभ्यादिः । यथा वा काष्ठद्वयसंश्लेषात्तत्प्रकाशकोऽग्निर्जायत एवं भूतयोगादपि तत्प्रकाशकं चैतन्यमुत्पद्यते इति जडद्वयादजडोत्पत्तौ दृष्टान्तान्तरं पराभिमतम् । **स्मृतिरिति** । यथा तर्कमते जडयोरप्यात्ममनसोर्योगादजडं स्मृत्यादिरूपं ज्ञानं जायते तद्वदत्रापि भविष्यति । एवमुत्पन्नं चैतन्यं अयस्कान्तमणिर्लोहमिव इन्द्रियसंघातं चालयिष्यति । कार्यवैचित्र्यमपि पार्थिवांशगतजातिभेदादेव भविष्यति । सूर्यकान्तयोगादेव सूर्यरश्मयोऽग्निं सुवते न पृथ्व्यन्तरयोगात्तद्वत्तत् । एवं भोक्तृत्वं वन्हेर्जलशोषकत्ववत्संघातस्यैव युज्यते इति युक्तं शरीरादन्यो जीवो नास्तीति ॥ २९ ॥ एतद्दूषयति—**प्रेतीति** । प्रेतीभूते देहे चैतन्यात्ययो देहातिरिक्तात्माऽस्तित्वे प्रमाणमित्यध्याहृत्य योज्यम् । यदि देहश्चेतनः स्यात्तर्हि मृतेऽपि देहे चैतन्यमुपलभ्येतातो न देहधर्मः चैतन्यमित्यर्थः। प्रेत्य भूतात्यय इति पाठे मृत्वा भूतनाशः यस्मिन्सति देहो न नश्यति असति च नश्यति स देहादन्य इत्यर्थः । तथा शीतज्वरनिवृत्त्यर्थं मन्त्रप्रतिपाद्या देवता लोकायतिकेन प्रार्थ्यते सा चेद्भूतमयी स्यात्तर्हि घटादिवद्दृश्येत । सूक्ष्मशरीरस्य लोकान्तरसञ्चारक्षमस्यास्वीकारात् । आदिपदात् भूतावेशोऽपि ग्राह्यः । यस्मिन् शरीरे भूतान्तरमाविशति तदा तद्देहपीडया मुख्यो देहपातिर्न बाध्यते । किं तु आविष्ट एव तदानीं तस्यैव देहाभिमानात् । तदपगमे तु मुख्य एव बाध्यतेऽतो न

नन्वेते हेतवः सन्ति ये केचिन्मूर्तिसंस्थिताः
अमूर्तस्य हि मूर्तेन सामान्यं नोपपद्यते ॥ ३१
अविद्याकर्मचेष्टानां केचिदाहुः पुनर्भवे ।
कारणं लोभमोहौ तु दोषाणां तु निषेवणम्
अविद्यां क्षेत्रमाहुर्हि कर्मबीजं तथा कृतम् ।
तृष्णासंजननं स्नेह एष तेषां पुनर्भवः ॥ ३३
तस्मिन् गूढे च दग्धे च भिन्ने मरणधर्मिणि
अन्योऽस्माज्जायते देहस्तमाहुः सत्त्वसंक्षयम्
यदा स्वरूपतश्चान्यो जातितः शुभतोऽर्थतः ।
कथमस्मिन्स इत्येवं सर्वं वा स्यादसंहितम्
एवं सति च का प्रीतिर्दान-विद्या-तपो-बलैः
यदस्याचरितं कर्म सर्वमन्यत्प्रपद्यते ॥ ३६
अपि ह्ययमिहैवान्यैः प्राकृतैर्दुःखितो भवेत् ।
सुखितो दुःखितो वाऽपि दृश्यादृश्यविनिर्णयः
तथाहि मुसलैर्हन्युः शरीरं तत्पुनर्भवेत् ।
पृथग्ज्ञानं यदन्यच्च येनैतन्नोपपद्यते ॥ ३८
ऋतुसंवत्सरौ तिष्यः शीतोष्णेऽथ प्रियाप्रिये
यथाऽतीतानि पश्यन्ति तादृशः सत्त्वसंक्षयः

देह आत्मा दृष्टविरोधादित्यर्थः । मृते कर्मनिवृत्तिः । कृतनाशः चात् उत्पत्तौ अकृताभ्यागमश्च दोष इत्यर्थः ॥ ३० ॥ एवं स्वमते साधकान्युक्त्वा परोक्तान्हेतूनाभासयति—**नन्वेत इति**। मूर्तिसंस्थिता जडमेवान्यादिकमिति सर्वे पूर्वोक्ता हेतवो जडाज्जडसिद्धावेव पर्यवस्यन्ति न त्वजडसिद्धौ हि यस्मान्मूर्तादमूर्तस्य ज्ञानस्योत्पत्तौ पृथिव्यादिचतुष्टयादाकाशोऽप्युत्पद्येतेत्यर्थः । सामान्यं सादृश्यं कार्यस्य कारणेन सहावगतं मृद्घटादौ न तु मूर्तामूर्तयोरत्यन्तविलक्षणयोस्तदुपपद्यते । यदपि तर्कमतं जडयोरात्ममनसोर्योगादजडं ज्ञानमुत्पद्यते । तदपि दृश्याद्दृष्टजन्मासंभवात्प्रत्याख्येयमेव ॥ ३१ ॥ एवं लोकायतमतं निरस्य सौगतमतं निरसितुमुपन्यस्यति—**अविद्येत्यादिभिस्त्रिभिः**। ते हि लोकायताभिमतात्संघाताद्बाह्यादन्यं आध्यात्मिकं संघातं रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्काराख्यपंचस्कंधात्मकमैहिकामुष्मिकव्यवहारास्पदमभ्युपगच्छन्ति । अतो न तेषां प्रेतीभूतात्ययादयो दोषाः सन्ति। यद्यप्येतेषामपीतरवत् स्थिरो भोक्ता प्रशासिता वा चेतनः संहन्ता नास्ति तथापि **१ अविद्या २ संस्कारो ३ विज्ञानं ४ नाम ५ रूपं ६ षडायतनं ७ स्पर्शो ८ वेदना ९ तृष्णा १० उपादानं ११ भवो १२ जातिः १३ जरा १४ मरणं १५ शोकः १६ परिदेवना १७ दुःखं १८ दुर्मनस्ता इत्यष्टादश** । क्वचित्संक्षेपेण क्वचिद्विस्तरेण चोक्ताः सर्वेषां सौगतानामप्रत्याख्येयाः पूर्वपूर्वं उत्तरेषां निमित्तभूताः घटीयन्त्रवदावर्तमानाः संघातं स्वाश्रयतयाऽऽक्षिपन्ति। षडायतनं शरीरं चेत्यस्य स्कन्धपञ्चकस्य तदुपादानस्य षष्ठस्य चित्तस्य च आश्रयभूतत्वात्। एवं च संघातोत्पत्तेर्लोकयात्रायाश्च निर्वाहे सति न स्थिर आत्माऽभ्युपेय इति वदन्ति। तत्राविद्या स्वशब्दोपात्ता कर्म चेष्टा लोभमोहशब्दैः संस्कारोपादानतृष्णादुर्मनस्ताः इतरे दोषपदेन संगृहीताः । केचित्सौगता अविद्यादिकं पुनर्भवे देहान्तरप्राप्तौ कारणमाहुरिति योजना ॥ ३२ ॥ एतदेव स्पष्टयति—**अविद्यामिति**। अविद्यां क्षेत्रं पूर्वकृतं कर्मबीजं तृष्णा स्नेहाश्रयजलरूपा । एष एवंप्रकारकस्तेषामविद्यादीनां पुनर्भवः पुनरुत्पत्तिप्रकारः ॥ ३३ ॥ तस्मिन् अविद्यादिकलापे गूढे सुप्तिप्रलययोः संस्कारात्मना स्थिते निमित्तभूते सति एकस्मिन्मरणधर्मिणि देहे भिन्ने विनष्टेऽपि अन्योऽस्मात्तत एवाविद्यादेर्देहोऽन्यो जायते । तस्मिन् ज्ञानेन दग्धे च सति देहनाशात् सत्त्वसंक्षयं मोक्षमाहुः । सत्त्वस्य धीधातोः संक्षयः सम्यगैश्वर्यं निर्विषयप्रवाहित्वं कैवल्यमित्याहुः ॥ ३४ ॥ एतद्दूषयति—**यदेति** । स्वरूपतोऽन्यत्वं मुक्तावपि क्षणिकानां विज्ञानादीनां यदा च जातितः आलयविज्ञानं बाह्यविज्ञानमिति तेषामन्यत्वम् यदा च शुभतः शुभाशुभतः पुण्यपापतः अर्थतः बन्धमोक्षतः विज्ञानानां पृथक्त्वं तदा बाह्ये कथं सोयमित्यभेदप्रत्यभिज्ञानम्। प्राग्दृष्टस्य घटस्येव वार्तमानिकादन्यत्वात्। एवं असंहितं अनभिसंहितं भोगमोक्षादि कथं वा स्यात् अन्यो मुमुक्षुरन्यः साधनाविष्टोऽन्यो मुक्त इत्यापत्तेः ॥ ३५ ॥ एवं च सति दानादप्यनर्थकं फलभोगकाले दातुरभावादित्याह—**एवमिति** । अन्येन विज्ञानेनाचरितं अन्याद्विज्ञानान्तरं प्रति प्रवर्तते फलं दातुं गच्छति ॥ ३६ ॥ इष्टापत्तिमाशंक्याह—**अपीति** । अन्यत्वाविशेषाच्चैत्रपुण्यैरपि मैत्रः सुखी भवेदित्यर्थः दृश्यः स्पष्टः ॥ ३७ ॥ **तथाहीति** । चैत्रज्ञानात् मैत्रज्ञानं पृथक् विसदृशं येन वैजात्येन एतत्पूर्वश्लोकोक्तं दूषणं नोपपद्यतेऽतश्चैत्रज्ञानधारैव सजातीया विवक्षितेति चेत्तर्हि उत्पद्यमानस्य सदृशज्ञानस्य किं उपादानम्? न तावत् पूर्वज्ञानं तस्य क्षणिकत्वेनोत्तरोत्पादे व्यापारायोगात् तन्नाशश्चेत् मुसलैर्हतात् शरीरादपि अन्यत् शरीरं पुनर्भवेत् ॥ ३८ ॥ किं च ऋत्वादिवज्जातोऽपि मोक्षः पुनः पुनरागत्य निवर्तेत ज्ञानधाराया आनन्त्यादित्याह—**ऋत्विति** । तिष्यः कलिरिति युगानामुपलक्षणम्। बहुदोषग्रस्तत्वात्क्षणिकविज्ञानवादोऽनुपपन्न इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

जरयाऽभिपरीतस्य मृत्युना च विनाशिना ।
दुर्बलं दुर्बलं पूर्वं गृहस्येव विनश्यति ॥ ४०
इन्द्रियाणि मनो वायुः शोणितं मांसमस्थि च
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति स्वं धातुमुपयान्ति च
लोकयात्राविघातश्च दानधर्मफलागमे ।
तदर्थं वेदशब्दाश्च व्यवहाराश्च लौकिकाः ॥
इति सम्यङ्मनस्येते बहवः सन्ति हेतवः ।
एतदस्तीदमस्तीति न किञ्चित्प्रतिदृश्यते ॥
तेषां विमृशतामेव तत्तत्समभिधावताम् ।
क्वचिन्निविशते बुद्धिस्तत्र जीर्यति वृक्षवत् ॥
एवमर्थैरनर्थैश्च दुःखिताः सर्वजन्तवः ।
आगमैरपकृष्यन्ते हस्तिपैर्हस्तिनो यथा ॥४५
अर्थास्तथाऽत्यन्तसुखावहांश्च
लिप्सन्त एते बहवो विशुष्काः ।
महत्तरं दुःखमनुप्रपन्ना
हित्वाऽऽमिषं मृत्युवशं प्रयान्ति ४६
विनाशिनो ह्यध्रुवजीवितस्य
किं बन्धुभिर्मित्रपरिग्रहैश्च ।
विहाय यो गच्छति सर्वमेव
क्षणेन गत्वा न निवर्तते च ॥ ४७
भूव्योमतोयानलवायवोऽपि
सदा शरीरं प्रतिपालयन्ति ।
इतीदमालक्ष्य रतिः कुतो भवे-
द्विनाशिनोऽप्यस्य न शर्म विद्यते ॥
इदमनुपधिवाक्यमच्छलं
परमनिरामयमात्मसाक्षिकम् ।
नरपतिरभिवीक्ष्य विस्मितः
पुनरनुयोक्तुमिदं प्रचक्रमे ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पञ्चशिखवाक्ये पाषण्डखण्डनं नाम अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥

## २१९-[४६]

भीष्म उवाच ।
जनको जनदेवस्तु ज्ञपितः परमर्षिणा ।
पुनरेवानुपप्रच्छ सांपराये भवाभवौ ॥ १

जनक उवाच ।
भगवन्यदि न प्रेत्य संज्ञा भवति कस्यचित्
एवं सति किमज्ञानं ज्ञानं वा किं करिष्यति

अस्तु तर्हि विज्ञानामाश्रयः स्थिरः कश्चिदात्मेति तर्कमतमाशंक्याह—**जरयेति** । उपयन्नपयन् धर्मो विकरोति हि धर्मिणमिति न्यायेनानित्यधर्माश्रयस्य धर्मिणोऽध्रुवमपक्षयादिना नाश इत्यर्थः ॥४०॥ अनित्यधर्माश्रयोऽप्याकाशादिवन्न नश्यतीत्याशंक्य इन्द्रियवन्नश्यत्येवेत्याह—**इन्द्रियाणीति** । मनसो नाशः सांख्यसंमतः प्रोक्तः ॥ ४१ ॥ अस्तु तर्हि बुद्ध्यादिगुणानामनाश्रयः शुद्धस्तर्हि अकर्तुरभोक्तुश्च तस्य दानादिफलाप्राप्तौ दानादिवैयर्थ्यम् ततश्च सर्वस्यापि आत्मसुखार्थस्य लोकवेदव्यवहारस्योच्छेद इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ **इतीति** । मनःप्रभवेष्वनेकेषु तर्केषु युक्त्याऽन्यतरोऽपि निर्धारयितुं न शक्यत इति भावः ॥४३॥ विमृशतां विचारयताम् ॥४४ निर्णायकं मानमाह—**एवमिति** ॥४५॥ वेदोदितज्ञानेऽग्रे विवक्षिते श्रोतुरधिकारसंपत्तिं विधत्ते—**अर्थानित्यादिना**॥४६॥ रतिः शरीरे ॥ ४८ ॥ अनुपधि भ्रमविप्रलम्भादिराहितं वेदमूलकत्वात् । अच्छलं वैदिककर्मकाण्डवन्न मायामूलकम् अनुयोक्तुं पूर्वपक्षं कर्तुम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥

२१९

**जनक इति** । ज्ञपितः निशामितः निशामनेमित्वात् ह्रस्वत्वम् । एतदस्तीदमस्तीति न किंचित्प्रतिदृश्यत इत्यनेकमतोपन्यासपूर्वकं जगतोऽनिर्वचनीयत्वं श्रावितः सांपराये मरणे भवाभवौ संसारमोक्षौ॥१॥ननु यदि सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयः संसारस्तर्हि रज्जूरगवन्मिथ्यात्वस्य तस्य विनाशाय यत्नो निष्फलो नित्यनष्टत्वात्तस्येति शंकते **भगवन्निति** । प्रेत्य प्रमातृत्वादेरुद्गत्य संज्ञाविशेषविज्ञानं सुषुप्तिमूर्च्छावत् । अत्यन्तविस्मृतिरूपे मोक्षेऽपि नास्ति चेत् ज्ञानाज्ञानकृतो न कश्चिद्विशेषोऽस्ति ॥ २ ॥

सर्वमुच्छेदनिष्ठं स्यात्पश्य चैतद्द्विजोत्तम।
अप्रमत्तः प्रमत्तो वा किं विशेषं करिष्यति ॥
असंसर्गो हि भूतेषु संसर्गो वा विनाशिषु।
कस्मै क्रियेत कल्प्येत निश्चयः कोऽत्र तत्त्वतः
भीष्म उवाच।
तमसा हि प्रतिच्छन्नं विभ्रान्तमिव चातुरम्
पुनः प्रशमयन्वाक्यैः कविः पञ्चशिखोऽब्रवीत्
उच्छेदनिष्ठा नेहास्ति भावनिष्ठा न विद्यते।
अयं ह्यपि समाहारः शरीरेन्द्रियचेतसाम्।
वर्तते पृथगन्योन्यमप्यपाश्रित्य कर्मसु ॥ ६
धातवः पञ्चभूतेषु खं वायुर्ज्योतिषो धरा।
ते स्वभावेन तिष्ठन्ति वियुज्यन्ते स्वभावतः
आकाशो वायुरूष्मा च स्नेहो यश्चापि पार्थिवः
एष पञ्चसमाहारः शरीरमपि नैकधा ॥ ८
ज्ञानमूष्मा च वायुश्च त्रिविधः कार्यसंग्रहः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना मनः
प्राणापानौ विकारश्च धातवश्चात्र निःसृताः
श्रवणं, स्पर्शनं, जिह्वा, दृष्टिर्नासा तथैव च।
इन्द्रियाणीति पञ्चैते चित्तपूर्वं गता गुणाः १०
तत्र विज्ञानसंयुक्ता त्रिविधा चेतना ध्रुवा।
सुखदुःखेति यामाहुरदुःखामसुखेति च ॥ ११
शब्दः, स्पर्शः, च रूपं,च रसो, गन्धश्च मूर्तयः
एते ह्यामरणात्पञ्च षड्गुणा ज्ञानसिद्धये ॥१२
तेषु कर्मविसर्गश्च सर्वतत्त्वार्थनिश्चयः।
तमाहुः परमं शुक्रं बुद्धिरित्यव्ययं महत् १३

---

ततश्च यत्नैनैष्फल्यमित्याशंक्याह-**सर्वमिति**। उच्छेदनिष्ठमात्मनाशपर्यवसायि सर्वं यमनियमादि॥३॥ **असंसर्ग इति**। यदि मोक्षे भूतेषु दिव्याङ्गनादिषु संसर्गो नास्ति सत्त्वपि संसर्गः स्वर्गवद्विनाशिष्वेव चेत्स्यात्तर्हि अतिशयाभावात् कस्मै फलाय कोऽत्र तत्त्वतो निश्चयः क्रियेत। क्रियमाणो वा कथं कल्पेत घटेत तस्मादविनाशि स्वर्गसुखमेव मोक्षः स च निर्वचनीय एवेत्याशयः ॥ ४ ॥ **कविः** क्रान्तदर्शी ॥५॥ 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति' इति देहाद्युत्थितस्य उपाधिविशिष्टस्वरूपस्य नाशाद्विशेषविज्ञानाभावे याज्ञवल्क्येनोक्ते मैत्रेयी आत्मोच्छेदबुद्ध्या अत्रैव मा भगवानमूमुहदिति तमुपालब्धवती 'न वा अरे मोहं प्रब्रवीमि' इत्यादिना पुनर्याज्ञवल्क्येन बोधिता। तद्वदिहापि व्याकुलं राजानं आश्वासयत्यर्धेन—**उच्छेदेति**। उच्छेदनिष्ठा नाशे पर्यवसानं न,नापि भावनिष्ठा विशेषे पर्यवसानमस्ति किं तु अविद्यया आत्मन्यारोपितं बुद्धीन्द्रियादिकं रज्जूरगवत् केवलमपोह्यते तावतैवानर्थनिवृत्तिः स्वरूपानंदस्य च कण्ठगतविस्मृतचामीकरवत्प्राप्तिरिति कृतकृत्यताऽस्ति अतस्तदर्थो यत्नो न निष्फल इति भावः तथा च श्रुतिः—'अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा मात्रासंसर्गस्त्वस्य भवति' इति। मात्रा प्रमात्रा अनर्थश्च प्रमातृता प्रमुखं कर्तृत्वभोक्तृत्वमिति तदसंसर्गो मोक्ष इति प्रतिपादयति आत्मनि देहाद्यध्यारोपमेवाह—**अयमित्यादिना**। समाहारः संघातः अस्मिन् त्रिकेऽन्यतरनाशेऽपि संघातनाश इत्यन्योन्यमपाश्रित्येत्यस्यार्थः ॥ ६ ॥ शरीरादीनामनात्मत्वं वक्तुं तत्प्रकृतीराह-**धातव इति**। धीयते निलीयते कार्यमेष्विति धातव उपादानानि। ज्योतिषो धरेत्यनयोर्मध्ये जलमित्यपि ज्ञेयम्।पञ्चधा तोयमिति पाठान्तरं सुगमम्। स्वभावेनेति सांख्यमताभिप्रायेण तेषां हीश्वरकालयोरभावात् जीवानां चोदासीनत्वात् अदृष्टस्य च कार्यत्वेन कारणाप्रवर्तकत्वात् स्वभावत एव गुणानां प्रवृत्तिरिति मतम् ॥७॥ प्रवृत्तानि भूतानि शरीराकारेण परिणमन्ते इत्याह–**आकाश इति**। यानि खानि स आकाशः, यः प्राणः स वायुः,य ऊष्मा सोऽग्निः,यल्लोहितादि स्नेहवत्तदापः, यत्कठिनमस्थ्यादि तत्पृथिवीत्यर्थः। नैकधेति जरायुजादिभेदेन ॥ ८ ॥ शरीरोत्पत्तिमुक्त्वा इन्द्रियोत्पत्तिमाह—**ज्ञानेति**। शरीरे बुद्धिर्जाठरः प्राणश्च सर्वकर्मसंग्राहको गणः कुतः यतोऽत्र इन्द्रियाद्यष्टकं निःसृतम्। अर्थाः शब्दादयः स्वभावोऽर्थप्रकाशकत्वं चेतना घटाद्याकारा वृत्तिः मनः संकल्पादिरूपं एतत् ज्ञानकार्यं वायुकार्यं तु प्राणापानौ तौ च व्यानादीनामप्युपलक्षणं विकारोऽशितपीतादिपाचनेनेन्द्रियादीनामाप्यायनादिर्जाठरकार्यम्॥९॥ श्रवणं श्रोत्रं, स्पर्शनं त्वगिन्द्रियं, नासा घ्राणम्, चित्तं पूर्वं कारणं, यस्यार्थगणस्य तं चित्तपूर्वं चित्तमात्रोपादानकं गताः प्राप्ताः गुणाः गुणकार्यभूताः ॥१०॥ विज्ञानसंयुक्ता चित्प्रतिबिम्बगर्भा चेतना वृत्तिः विषयस्योपादेयत्वहेयत्वोपेक्षणीयत्वैस्त्रिविधा ॥ ११ ॥ मूर्तयः रूपाश्रयद्रव्याणि वाय्वाकाशयोरमूर्तत्वश्रुतेर्बाह्येन्द्रियाग्राह्यत्वात् पञ्च शब्दाद्याः मूर्तिभिः सह षड् गुणाः विषयाः। ज्ञानं प्रमा तस्य सिद्ध्यै विषयकरणयोगाद्धि तज्जायते॥१२॥किं च तेषु श्रोत्रादिषु कर्म स्वर्गसाधनं विसर्गः संन्यासो ब्रह्मलोकदः संन्यासः ब्रह्मणः स्थानमिति स्मृतेः। सर्वतत्त्वार्थनिश्चयो मोक्षहेतुः तं तत्त्वनिश्चयं परमं श्रेष्ठं शुक्रं मोक्षबीजं बुद्धिरिति अव्ययं मोक्षदत्वादव्ययमिति चाहुः। महद्ब्रह्म तत्प्रदत्वात् ॥१३॥

**इमं गुणसमाहारमात्मभावेन पश्यतः ।**
**असम्यग्दर्शनैर्दुःखमनन्तं नोपशाम्यति १४**
**अनात्मेति च यद्दृष्टं तेनाहं न ममेत्यपि ।**
**वर्तते किमधिष्ठानात्प्रसक्ता दुःखसंततिः १५**
**अत्र सम्यग्वधो नाम त्यागशास्त्रमनुत्तमम् ।**
**शृणु यत्तव मोक्षाय भाष्यमाणं भविष्यति ॥**
**त्याग एव हि सर्वेषां युक्तानामपि कर्मणाम् ।**
**नित्यं मिथ्याविनीतानां क्लेशो दुःखवहो मतः**
**द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतान्यपि ।**
**सुखत्यागे तपोयोगं सर्वत्यागे समापना १८**
**तस्य मार्गोऽयमद्वैधः सर्वत्यागस्य दर्शितः ।**
**विप्रहाणाय दुःखस्य दुर्गतिस्त्वन्यथा भवेत्**
**पञ्चज्ञानेन्द्रियाण्युक्त्वा मनःषष्ठानि चेतसि**

**बलषष्ठानि वक्ष्यामि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि तु २०**
**हस्तौ कर्मेन्द्रियं ज्ञेयमथ पादौ गतीन्द्रियम् ।**
**प्रजनानन्दयोः शेफो निसर्गे पायुरिन्द्रियम्**
**वाक्च शब्दविशेषार्थमिति पञ्चान्वितं विदुः**
**एवमेकादशैतानि बुद्ध्याऽऽशु विसृजेन्मनः ॥**
**कर्णौ शब्दश्च चित्तं च त्रयः श्रवणसंग्रहे ।**
**तथा स्पर्शे तथा रूपे तथैव रसगन्धयोः॥ २३**
**एवं पञ्चत्रिका ह्येते गुणास्तदुपलब्धये ।**
**येनायं त्रिविधो भावः पर्यायात्समुपस्थितः ॥**
**सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चापि ते त्रयः**
**त्रिविधा वेदना येषु प्रसूताः सर्वसाधनाः ॥**
**प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता ।**
**अकुतश्चित्कुतश्चिद्वा चिन्तितः सात्त्विको गुणः**

---

**इममिति** । अस्मिन्संघाते अनात्मनि आत्मबुद्धिरनर्थहेतुरित्यर्थः ॥ १४ ॥ एवमध्यारोपमुक्त्वाऽपवादमाह—**अनात्मेत्यादिना** । इति यद्दृष्टं तदनात्मेति सम्बन्धः । स्वात्मनि वृत्तिविरोधादिदंतया यद्दृष्टं अहंकारादि तत् आत्मा नेत्यर्थः । नहि दृश्यं द्रष्टात्मेति युक्तम् । तेन कारणेन अहमिति ममेति च न वर्तते । यत्रात्माभेदेन प्रतीयेत तन्मिथ्या यथा शुक्तिरजतम् अहंकारदेहेन्द्रियादिकं चात्मन्यभेदेन प्रतीयतेऽयमहमस्मि काणोऽहं गौरोऽहमिति अतो मिथ्या ततस्तत्सम्बन्धि ममकारास्पदं पुत्रादिकमपि मिथ्या । अतोऽहमिति ममेति च न वर्तते इति युक्तमुक्तम् । अनात्मेति ह्यनिष्टं च नाहं न च ममेत्यपीति पाठे इति हि इदमित्येवमाकारा प्रतीतिरिति-द्यम् । स्वार्थे ष्यः । तत्र निष्ठा परिसमाप्तिर्यस्य तद्विषय इत्यर्थः। स सर्वोऽप्यनात्माऽतोऽहमिति न वर्तते ममेत्यपि न वर्तते इति योजना । पाठान्तरं त्वनाकरम् । एवं सति या प्रसक्ता प्रतीयमाना दुःखसन्ततिः सा किमधिष्ठाना आत्मनोऽसंगत्वात् । अहंकारस्य च मिथ्यात्वात् रज्जूरगभीषणत्ववन्निरधिष्ठानैव 'यादृशो यक्षस्तादृशो बलिः' इतिन्यायेनाहंकारवन्मिथ्यैवेत्यर्थः ॥१५॥ **अत्रेति**। हन्तिर्गुणनार्थे ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः सम्यग्वधो गुणनं पुनः पुनरभ्यस्यन्ते तत्त्वान्यस्मिन्निति **सम्यग्वधो** नाम **सांख्यशास्त्रम्** सम्यङ्मन इति पाठे सम्यक् संदेहानिर्मुक्तं मनो येनेति तदेव । त्यागप्रधानं शास्त्रं त्यागशास्त्रम् ॥ १६ ॥ तदेवाह—**त्याग इति** । युक्तानां मुक्त्यर्थं नित्योद्युक्तानां पुंसां सर्वकर्मत्याग एव नित्यं मतः कर्मणामिति धनादेरप्युपलक्षणम्। ये तु मिथ्याविनीतास्त्यागं विना शान्त्यादिपरास्तेषां क्लेशोऽविद्यादिरूपो मतः ॥१७॥ सर्वशास्त्रतात्पर्यं

त्यागे एवेत्याह—**द्रव्येति** । द्रव्यादित्यागनिमित्तं यज्ञकर्मादीन्युपदिशन्तीति शेषः । सर्वत्यागनिमित्तं योगं उपदिशन्ति यतः सा त्यागस्य समापना समाप्तिः । परा काष्ठेत्यर्थः ॥ १८ ॥ **तस्येति** । अयं वक्ष्यमाणो योगः अद्वैधः प्रकारभेदशून्यः । तथा च त्यागस्यैव प्राधान्यं भाल्लविशाखिनः समामनन्ति—

'त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम्
त्यजतैव हि तज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्परं पदम्' । इति

अन्यथा त्यागाभावे ॥ १९ ॥ त्याज्यं गणमाह—**पञ्चेति** । चेतसि बुद्धौ सन्तीति बुद्धित्यागे सर्वाणि त्यक्तानि स्युरिति भावः । बलं प्राणशक्तिः ॥२०॥ शेफः शिश्नम् । पायुर्गुदम् ॥२१॥ पञ्चान्वितं मन इति बुद्ध्वा बुद्ध्या विसृजेत् मनस्त्यजेत् । मनस्त्यागे सविषयाणां कर्मेन्द्रियाणां त्यागो बुद्धित्यागे समनस्कानां ज्ञानेन्द्रियाणां च त्यागः सिद्ध इति प्रघट्टकार्थः ॥२२॥ एतमेव स्पष्टयति—**कर्णावित्यादिना** । कर्णौ श्रोत्रं करणम् शब्दो विषयः चित्तं कर्ता श्रवणं क्रिया॥२३॥ पंच त्रिकाः सर्वाण्यपि विषयकरणद्वन्द्वानि समनस्कानीति त्रिका इत्युक्तम्। एते गुणास्तत्तदुपलब्धये शब्दादिज्ञानाभिव्यक्तये भवन्ति । येन अनुभवाभिव्यञ्जनेन निमित्तेनायं त्रिविधो भावः करणकर्मकर्तृरूपः पर्यायात् पृथगर्थतयास्ति ॥२४॥ त्रैविध्यमेवाह—**सात्त्विक इति** । वेदनाः अनुभवाः सर्वान्प्रहर्षादीन् साधयन्तीति सर्वसाधनाः ॥ २५ ॥ इष्टश्रवणदर्शनप्राप्तिपरिष्वङ्गजानि सुखानि प्रहर्षप्रीत्याऽऽनन्दसुखशब्दितानि संशान्तचित्तता अभुक्ते भुक्ते वानुत्सुकता अकुतश्चिद्वैराग्यात् स्वत एव कुतश्चिदिति इष्टलाभात् चिन्तितो विचारितः चित्तत इति पाठे चित्तजः ॥२६॥

अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथाऽक्षमा
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुतः ॥
अविवेकस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतन्द्रिता ।
कथञ्चिदपि वर्तन्ते विविधास्तामसा गुणाः ॥
अत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
वर्तते सात्त्विको भाव इत्यपेक्षेत तत्तथा २९
यत्त्वसंतोषसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
प्रवृत्तं रज इत्येवं ततस्तदपि चिन्तयेत् ॥ ३०
अथ यन्मोहसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ३१
श्रोत्रं व्योमाश्रितं भूतं शब्दः श्रोत्रं समाश्रितः
नोभयं शब्दविज्ञाने विज्ञानस्येतरस्य वा ३२

एवं त्वक्चक्षुषी जिह्वा
नासिका चेति पञ्चमी ।
स्पर्शे रूपे रसे गन्धे
तानि चेतो मनश्च तत् ॥ ३३
स्वकर्मयुगपद्भावो दशस्वेतेषु तिष्ठति ।
चित्तमेकादशं विद्धि बुद्धिर्द्वादशमी भवेत् ॥
तेषामयुगपद्भाव उच्छेदो नास्ति तामसे ।
आस्थितो युगपद्भावो व्यवहारः स लौकिकः
इन्द्रियाण्यपि सूक्ष्माणि दृष्ट्वा पूर्वश्रुतागमात्
चिन्तयन्नानुपर्येति त्रिभिरेवान्वितो गुणैः ॥
यत्तमोपहतं चित्तमाशु संहारमध्रुवम् ।
करोत्युपरमं काये तदाहुस्तामसं बुधाः ॥३७

अक्षमेति च्छेदः हेत्विति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ कथंचिदिति हेत्वहेतुभिरित्यर्थः ॥ २८ ॥ अपेक्षेतेत्युक्ते उत्तरयोर्हेयत्व-मुक्तम् ॥२९॥ एवं शब्दादीनां श्रोत्रादीनां च त्रिगुणात्मकचित्तमात्रत्वमुक्तम् चित्तत्यागेनैव गुणकरणविषयाणां त्यागो भवतीति ज्ञानाय इदानीं वियदादिभ्योऽनन्यत्वं शब्दश्रोत्रादीनामुच्यते । तत्प्रविलापनेनैव वियदादिप्रविलापनं भवत्वित्येतदर्थं श्रोत्रमिति द्वाभ्यामाकाशाश्रितं श्रोत्रं आकाशाख्यं भूतमेव कर्णशष्कुल्यवच्छेदेन नभस एव श्रोत्रत्वात्। एवं श्रोत्राश्रितः शब्दोऽपि परंपरया भूतमेव । एवं सति शब्दविज्ञाने उभयं व्योमश्रोत्रे विज्ञानस्य विषयौ न । न हि शब्दं जानता श्रोत्राकाशावपि ज्ञायेते तर्ह्यज्ञाताविव तौ भवेतां किं नश्छिन्नमित्याशंक्याह-इतरस्य विज्ञानादन्यस्याज्ञानस्य वा विषयौ श्रोत्राकाशौ न भवतः शब्दस्य तदुभयानन्यत्वात् । न हि घटरूपादिवदाश्रयाश्रिकुट्योः शब्दश्रोत्रयोराकाशगुणकार्ययोर्ग्रहणं प्रविलापनं वा कर्तुं शक्यम्। तस्मात् श्रोत्रादिप्रविलापनेनैव तदनन्यस्य शब्दाकाशादेरपि प्रविलापनं युक्तम्। श्रोत्रादीनां च चित्तादनन्यत्वात् तानि शब्दाकाशादीन्यपि स्मरणात्मकं चित्तमेव चित्तमपि मनसोऽध्यवसायात्मकादनन्यदिति धीमात्रं सर्वं मनसि लीने लीनं भवतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ सर्वेषां मनोमात्रत्वे युक्तिमाह-**स्वकर्मेति** । एतेषु दशसु विषयेन्द्रियपञ्चकद्वये एकादशं चित्तमनुगतं तिष्ठतीति विद्धि घटशरावादिष्विव मृत्स्ना । अत्र हेतुः-**स्वकर्मयुगपद्भाव इति** । पञ्चम्यर्थे प्रथमा स्वेषां इन्द्रियविषयाणां कर्माणि श्रवणस्पर्शनदर्शनादीनि तेषां यौगपद्यात् सुप्तोत्थितमात्रस्य पुंसो लब्धात्मकं मनो युगपदुपस्थितान् शब्दादीननुभवति तच्च तेषां मनआत्मकत्वाभावेन संगच्छते उपादानं हि स्वकार्यैर्युगपत्संगतं भवति अनुपदानं तु क्रमेणेति स्पष्टम्। ये तु युगपज्ज्ञानानुपलब्धिर्मनसो लिंगमिति ज्ञानायौगपद्यमेवानुपादानस्य मनसः साधकं लिंगमाहुस्तेषां गंगाह्रदनिमग्नस्य युगपत्सर्वांगीणशैत्यानुभवेन हेतोर्बाध इत्यास्तां तावत्। चित्तस्यापि व्यापिका बुद्धिर्द्वादशमी द्वादशी, आर्षो मट्प्रत्ययः ॥ ३४ ॥ तेषां द्वादशानामात्मन्यारोपितानां अयुगपद्भावः द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थमिति योगप्रसिद्धम्। चित्तस्य सर्वार्थत्वमिह बुद्ध्यादियुगपद्भाव इत्युच्यते। तदन्यो विशेषविज्ञानराहित्यलक्षणो ज्ञातृज्ञेयज्ञानयौगपद्याभावः तामसः निद्रारूपतमोमयः सुषुप्तिकालीनस्तस्मिन् सत्यपि आत्मन उच्छेदो नास्ति । उत्थितस्य 'सुखमहमस्वाप्सम्' इत्यादिपरामर्शात्। 'सता सोम्य तदा संपन्नो भवति' इति सुषुप्तौ ब्रह्मसंपत्तिश्रवणात् । स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्य इति न्यायाच्च अयुगपद्भाव एव आत्मनो वास्तवं तत्त्वं युगपद्भावस्तु स्वप्नवदज्ञानकृत इत्याह-**आस्थित इति** । लौकिको न तु पारमार्थिकः ॥३५॥ व्यावहारिकं युगपद्भावमुक्त्वा प्रातिभासिकं स्वाप्नकालिकं तमाहेन्द्रियाणीति। पूर्वं श्रुतं श्रवणक्रिया सा च स्पर्शनादीनामप्युपलक्षणम् । तया शब्दादीनां आगमः प्राप्तिः पूर्वानुभववासनात इत्यर्थः । सूक्ष्माणि इन्द्रियाण्येकादश दृष्ट्वा चिन्तयन् विषयसंगं भावयन् । ना पुरुषः स्वप्नदशां त्रिभिर्गुणैः सत्त्वादिभिर्युक्तः अनुपर्येति जाग्रदवस्थामनुसञ्चरति स्वप्ने । काये इत्युत्तरादपकृष्यते । स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्तत इति श्रुतेः ॥ ३६ ॥ तमोपहतं तमोगुणेनाभिभूतं चित्तं प्रवृत्तिप्रकाशात्मकं आशु संहारं शीघ्रं संहृत्य अध्रुवं मोक्षवदानन्त्यहीनमुपरमं पूर्वोक्तयुगपद्भावस्योच्छेदं करोति तत्सुखं तामसं अज्ञानप्रधानं शरीर एव सुषुप्तावनुभूयते ॥ ३७ ॥

यद्यदागमसंयुक्तं न कृच्छ्रमनुपश्यति ।
अथ तत्राप्युपादत्ते तमो व्यक्तमिवानृतम् ३८
एवमेष प्रसंख्यातः स्वकर्मप्रत्ययो गुणः ।
कथंचिद्वर्तते सम्यक्केषांचिद्वा निवर्तते ॥ ३९
एतदाहुः समाहारं क्षेत्रमध्यात्मचिन्तकाः ।
स्थितो मनसि यो भावः स वै क्षेत्रज्ञ उच्यते
एवं सति क उच्छेदः शाश्वतो वा कथं भवेत्
स्वभावाद्वर्तमानेषु सर्वभूतेषु हेतुतः ॥ ४१
यथार्णवगता नद्यो व्यक्तीर्जहति नाम च ।
नदाश्च तानि यच्छन्ति तादृशः सत्त्वसंक्षयः
एवं सति कुतः संज्ञा प्रेत्यभावे पुनर्भवेत् ।
जीवे च प्रतिसंयुक्ते गृह्यमाणे च सर्वतः ४३
इमां च यो वेद विमोक्षबुद्धि-
मात्मानमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
न लिप्यते कर्मफलैरनिष्टैः
पत्रं बिसस्येव जलेन सिक्तम् ॥ ४४

दृढैर्हि पाशैर्बहुभिर्विमुक्तः
प्रजानिमित्तैरपि दैवतैश्च ।
यदा ह्यसौ सुखदुःखे जहाति
मुक्तस्तदाग्र्यां गतिमेत्यलिङ्गः ॥ ४५
श्रुतिप्रमाणागममङ्गलैश्च-
शेते जरामृत्युभयादभीतः ।
क्षीणे च पुण्ये विगते च पापे
ततो निमित्ते च फले विनष्टे ।
अलेपमाकाशमलिङ्गमेव-
मास्थाय पश्यन्ति महत्यसक्ताः ॥ ४६
यथोर्णनाभिः परिवर्तमान-
स्तंतुक्षये तिष्ठति पात्यमानः ।
तथा विमुक्तः प्रजहाति दुःखं
विध्वंसते लोष्ट इवाद्रिमृच्छन् ॥ ४७

सुषुप्तिसादृश्यं कैवल्यस्याह—**यद्यदिति**। यत् सुखं आगमसंयुक्तम् । आनन्दो ब्रह्मेति वेदबोधितं यत् यस्मिन् कृच्छ्रं द्वैतदुःखं नानुपश्यति । न किंचिदनुशाम्यतीति पाठान्तरे यत्र न किंचित्सुखं दुःखं वा ज्ञाता ज्ञेयं वाऽस्ति किं तु दग्धेन्धनानलवत् आचार्योपदेशमनुशाम्यत्येव। तत्र तस्मिन्नपि सुखे अव्यक्तं अनृतं तम उपादत्त इव । वस्तुतस्तु तमो नास्ति तथापि द्वैतदर्शनाभावसाम्येन आवृतमव्यक्तं च ज्ञात्रादिविभागाभावात् ॥ ३८ ॥ एवं सुषुप्तिवत् मोक्षेऽपि एषोऽहङ्कारादिघटान्तो दृश्यमानो गुणो भोग्यवर्गः स्वकर्मप्रत्ययः कर्महेतुकाविर्भावः प्रसंख्यातः प्रत्याख्यातः केषांचिदविद्यावतां वज्रपञ्जरवद्वर्तते । केषांचिद्विद्यावतां कालत्रयेऽपि न ह्यस्ति ॥ ३९ ॥ एतत् एतं समाहारं संघातं क्षेत्रमाहुः । एतदिति विधेयापेक्षं क्लीबत्वम् । मनसि संघातबीजभूते यो भावो या सत्ता स क्षेत्रज्ञः । शुक्तिरजतवदध्यस्तस्य मनसः सत्तास्फूर्तिप्रदः ॥ ४० ॥ **एवमिति** । सर्वेषु भूतेषु चतुर्विधेषु हेतुतः अनाद्यविद्याकामकर्मवशतः स्वभावात् सत्यानृतयोरात्माऽनात्मनोर्मिथुनीकरणात् । व्यवहारे वर्तमानेषु सत्सु क उच्छेदः उच्छेदवान् । को वा शाश्वतः स्यात् । 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' इति न्यायेनासतः संघातस्य स्वरूपाभावादेव नोच्छेदप्रसङ्गः । अत एव शाश्वतत्वं चास्य नेत्यर्थः । यद्वा शाश्वत आत्मा वा कथं उच्छेदवान् भवेदिति या पूर्वं त्वया आत्मोच्छेदशंका कृता सा निरालम्बनेत्यर्थः ।

एतेन पुंप्रकृत्योरत्यन्तं वैधर्म्यमुपपादितम् ॥ ४१ ॥ **यथेति** । नद्यो नदाश्च व्यक्तीः रूपाणि नाम च जहति त्यजन्ति । नदाश्च ताः नदीः नियच्छन्ति स्ववशे कुर्वन्ति यथा क्षुद्रनदी महानद्यां नामरूपे जहाति महानदी च समुद्रे लीयते तद्वत्सत्त्वस्य महदादिघटान्तात्मना स्थितस्य उत्पत्तिविपरीतक्रमेण संक्षयः स्थूलं सूक्ष्मे लीयते सूक्ष्मं कारणे तच्च शुद्धे इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ प्रतिसंयुक्ते उपाधिमिश्रे जीवे सर्वतः सर्वात्मना दर्पणस्थमुखवत् गृह्यमाणे सति प्रेत्यभावे उपाध्यपाये संज्ञा अयमहं देवदत्तोऽस्मीति तद्ग्रहणं कुतः स्यान्न कुतश्चित् नापि ग्रहणाभावान्मुखस्येवात्मन उच्छेदोऽप्यस्तीति नोक्तशंकावकाश इत्यर्थः ॥ ४३ ॥ विद्याफलमाह—**इमामिति** । वेदशास्त्रतः अन्विच्छति शमादिपरो भवति । बिसस्य मृणालस्य ॥ ४४ ॥ पाशैः स्नेहकर्मनिमित्तैः तेषां ग्रहणं प्रजेत्यादिना । अलिङ्गः पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियात्मकलिङ्गहीनः ॥ ४५ ॥ श्रुतिप्रमाणं तत्त्वमसीतिवाक्यं आगमोक्तं मङ्गलं साधनं शमादि । निमित्ते मोहोत्थे फले सुखदुःखात्मके महति बुद्धितत्त्वेऽस्मितामात्रे पश्यन्ति । तत्रैव हि सांख्यानां गुणपुरुषान्तरज्ञानं अस्माकं च प्रतीचो ब्रह्मभावागमः प्रसिद्धः असक्ता विरक्ताः आकाशं हार्दाकाशाख्यं सगुणं ब्रह्मास्थाय आश्रित्य अलिङ्गं निर्गुणं पश्यन्तीति योजना ॥ ४६ ॥ **यथेति** । ऊर्णनाभिर्लूताकीटः तन्तुक्षये तन्तुमये गृहे यथा तिष्ठति । तथैव पात्यमानोऽविद्यावशो जीवः कर्मतन्तुगृहे तिष्ठति तथा चोर्णनाभि

यथा रुरुः शृङ्गमथो पुराणं
हित्वा त्वचं वाऽप्युरगो यथा च।
विहाय गच्छत्यनवेक्षमाण-
स्तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम् ४८
द्रुमं यथा वाऽप्युदके पतन्त-
मुत्सृज्य पक्षी निपतत्यसक्तः।
तथा ह्यसौ सुखदुःखे विहाय
मुक्तः परार्ध्यां गतिमेत्यलिंगः ॥ ४९
अपि च भवति मैथिलेन गीतं
नगरमुपाहितमग्निनाऽभिवीक्ष्य।
न खलु मम हि दह्यतेऽत्र किञ्चि-
त्स्वयमिदमाह किल स्म भूमिपालः॥
इदममृतपदं निशम्य राजा
स्वयमिह पञ्चशिखेन भाष्यमाणम्।
निखिलमभिसमीक्ष्य निश्चितार्थः
परमसुखी विजहार वीतशोकः ॥५१
इमं हि यः पठति मोक्षनिश्चयं
महीपते सततमवेक्षते तथा।
उपद्रवान्नानुभवत्यदुःखितः
प्रमुच्यते कपिलमिवैत्य मैथिलः ॥५२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पञ्चशिखवाक्यं नाम एकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

## २२०–[४७]

युधिष्ठिर उवाच।
किं कुर्वन्सुखमाप्नोति किं कुर्वन्दुःखमाप्नुयात्
किं कुर्वन्निर्भयो लोके सिद्धश्चरति भारत १
भीष्म उवाच।
दममेव प्रशंसन्ति वृद्धाः श्रुतिसमाधयः।
सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २
नादान्तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपपद्यते।
क्रिया तपश्च सत्यं च दमे सर्वं प्रतिष्ठितम् ३
दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उच्यते।
विपाप्मा निर्भयो दान्तः पुरुषो विन्दते महत्
सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं लोके विपर्येति मनश्चास्य प्रसीदति ५
तेजो दमेन ध्रियते तत्र तीक्ष्णोऽधिगच्छति
अमित्रांश्च बहून्नित्यं पृथगात्मनि पश्यति ॥ ६
क्रव्याद्भ्य इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम्
तेषां विप्रतिषेधार्थं राजा सृष्टः स्वयंभुवा ॥७
आश्रमेषु च सर्वेषु दम एव विशिष्यते।
यच्च तेषु फलं धर्मे भूयो दान्ते तदुच्यते ॥ ८
तेषां लिङ्गानि वक्ष्यामि येषां समुदयो दमः।
अकार्पण्यमसंरंभः संतोषः श्रद्दधानता ॥ ९
अक्रोध आर्जवं नित्यं
नातिवादोऽभिमानिता।
गुरुपूजाऽनसूया च
दया भूतेष्वपैशुनम् ॥ १०

---

स्तन्तुक्षयं प्रजहाति एवं विमुक्तोऽपि हाने फलमाह— **दुःखं विध्वंसत इति** दृष्टान्तो लोष्ट इति पांसुपिण्डः अद्रिं पाषाणं ऋच्छन् वेगेन प्राप्नुवन् ॥ ४७ ॥ रुरुर्मृगभेदः ॥ ४८ ॥ परार्ध्यां श्रेष्ठाम् ॥ ४९ ॥ केन वृत्तेन वृत्तज्ञो जनको मिथिलाधिप इति युधिष्ठिरप्रश्नबीजमुपन्यस्यति—**अपि चेति** ॥५०॥ अवेक्षते अर्थतः पर्यालोचयति कापिलं कपिलप्रशिष्यं पञ्चशिखम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

२२०

किं कुर्वन् सुखमाप्नोति किं कुर्वन् दुःखमाप्नुयादित्यारभ्य आद्यन्तं सर्वभूतानां ज्ञातुमिच्छामि कौरवेत्यतः प्राक्तनौ एकादशाध्यायौ उक्तवक्ष्यमाणस्वरूपज्ञानलाभार्थौ साधनसंपद्विधानार्थौ प्रायेण स्पष्टार्थौ। तथापि विषमाणि पदान्यत्र व्याख्यायन्ते ॥ १ ॥ श्रुतिसमाधयो वेदद्रष्टारः ॥ २ ॥ **दमो** बाह्येन्द्रियनिग्रहः तद्वर्जितः अदान्तः ॥३॥ तीक्ष्णो राजसः अमित्रान् कामादीन् ॥ ६ ॥ क्रव्याद्भ्यः व्याघ्रादिभ्यो मांसभक्षकेभ्यः ॥ ७ ॥ भूयोऽधिकम् ॥८॥ लिङ्गानि स्वरूपाणि समुदेत्यस्मादिति समुदयो हेतुः। अकार्पण्यमदीनत्वम्। असंरंभोऽभिनिवेशाभावः ॥ ९ ॥ अतिवादो लौकिकार्थभाषणम्। अभिमानिता गर्वः ॥ १० ॥

जनवादमृषावादस्तुतिनिन्दाविवर्जनम् ।
साधुकामश्च स्पृहयेन्नायतिं प्रत्ययेषु च ॥ ११
अवैरकृत्सूपचारः समो निन्दाप्रशंसयोः ।
सुवृत्तः शीलसंपन्नः प्रसन्नात्मात्मवान्प्रभुः १२
प्राप्य लोके च सत्कारं स्वर्गं वै प्रेत्य गच्छति
दुर्गमं सर्वभूतानां प्रापयन्मोदते सुखी ॥ १३
सर्वभूतहिते युक्तो न स्म यो द्विषते जनम् ।
महाह्रद इवाक्षोभ्यः प्रज्ञातृप्तः प्रसीदति १४
अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
नमस्यः सर्वभूतानां दान्तो भवति बुद्धिमान्
न हृष्यति महत्यर्थे व्यसने च न शोचति ।
स वै परिमितप्रज्ञः स दान्तो द्विज उच्यते ॥
कर्मभिः श्रुतसंपन्नः सद्भिराचरितः शुचिः ।
सदैव दमसंयुक्तस्तस्य भुंक्ते महाफलम् ॥ १७
अनसूया क्षमा शान्तिः संतोषः प्रियवादिता
सत्यं दानमनायासो नैष मार्गो दुरात्मनाम्
कामक्रोधौ च लोभश्च परस्येर्ष्याविकत्थना
कामक्रोधौ वशे कृत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः
विक्रम्य घोरे तमसि ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
कालाकांक्षी चरेल्लोकान्निरपाय इवात्मवान्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि दमप्रशंसायां विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

## २२१-[४८]

युधिष्ठिर उवाच ।
द्विजातयो व्रतोपेता यदिदं भुञ्जते हविः ।
अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
अवेदोक्तव्रतोपेता भुञ्जानाः कार्यकारिणः।
वेदोक्तेषु च भुञ्जाना व्रतलुब्धा युधिष्ठिर २
युधिष्ठिर उवाच ।
यदिदं तप इत्याहुरुपवासं पृथग्जनाः ।
एतत्तपो महाराज उताहो किं तपो भवेत् ३
भीष्म उवाच ।
मासपक्षोपवासेन मन्यन्ते यत्तपो जनाः ।
आत्मतन्त्रोपघातस्तु न तपस्तत्सतां मतम् ४
त्यागश्च सन्नतिश्चैव शिष्यते तप उत्तमम् ।
सदोपवासी स भवेद्ब्रह्मचारी सदा भवेत् ५
मुनिश्च स्यात्सदा विप्रो दैवतं च सदा भवेत्
कुटुम्बिको धर्मकामः सदाऽस्वप्नश्च भारत ६

---

जनवादो राजादिवार्ता साधुकामो मोक्षार्थी । प्रत्ययेषु सुखदुःखाद्यनुभवेषु । आयतिमुत्तरकालम् । न स्पृहयेत् प्राप्तं सुखादिकं भुञ्जीत न तु कालान्तरीयौ तज्जौ हर्षविषादौ चिन्तनीयावित्यर्थः । नायतिं प्रत्ययो नृष्विति पाठे फलसंवादेन विश्वस्तो नृषु आदरं न कुर्यात् । किं तु प्रागेव अकृतकार्येषु साधुष्वविश्वासो न कर्तव्य इत्यर्थः ॥ ११ ॥ सूपचारः शाठ्यवर्जितादरः प्रसन्नात्मा शुद्धचित्तः आत्मवान् धृतिमान् प्रभुर्जितकामादिदोषः ॥ १२ ॥ दुर्गमं दुष्काले दुर्लभमन्नादि प्रापयन् दयावानित्यर्थः ॥ १३ ॥ स्मेति पृथक्पदम् ॥१४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

२२१

भूतानामभयं यत इत्यहिंसाविधिः किं अग्नीषोमीयं पशुमालभेत सुराग्रहं गृह्णातीति वैदिकं ब्राह्मणं कर्मप्रवर्तनावाक्यम् तथा 'प्रीणये चण्डिकां भक्त्या मांसेन सुरया नृप' इत्यवैदिकं ब्राह्मणं स विधिः । किमेताभ्यां विरुध्यते न वेति प्रश्नार्थः । द्विजातयस्त्रैवर्णिकाः व्रतं यज्ञदीक्षा मन्त्रदीक्षा च तद्युक्ताः । हविर्देवताशेषम् । अन्नं अदनीयं मांसमद्यादि ब्राह्मणं पूर्वोक्तं द्विविधं तत्रोक्तो यः कामः स्वर्गपुत्रादिस्तस्मै । यत् भुञ्जते तदिदं कथं युक्तमयुक्तं वेति पदार्थः ॥ १ ॥ **अवेदोक्तेति** । भुञ्जाना अभोज्यं मांसादीति शेषः कार्यकारिणः कामाचारवन्तः इहैव पतिता इत्यर्थः । व्रतलुब्धाः दीक्षोक्तफलानुरागिणः स्वर्गं प्राप्य पतिष्यन्तीत्यर्थः लुप्ता इति पाठे व्रतविधिना वञ्चिता इत्यर्थः ॥ २ ॥ एवं परपीडाकरं यागादिकं विनिन्द्य देहपीडाकरमपि धर्मं मुमुक्षूणामनुपादेयं निन्दति प्रश्नोत्तराभ्याम्—**यदिति** ॥ ३ ॥ आत्मतन्त्रं आत्मविद्या तस्याः उपघातो विघ्नः ॥ ४ ॥ आत्मविद्योपकारकं तप आह—**त्याग इति** । भूतभयंकरकर्मसंन्यासस्त्यागः सन्नतिः भूताराधनं असंन्यासिनामपि मार्गमाह—**सदेति** । सकुटुंबिकोऽपि सदोपवासी इत्यादिविशेषणवान् भवेत् ॥५॥ धर्मकामः न तु फलकामः अस्वप्न इति च्छेदः॥६॥

अमांसादी सदा च स्यात्पवित्रश्च सदा भवेत्
अमृताशी सदा च स्याद्देवतातिथिपूजकः ७
विघसाशी सदा च स्यात्सदा चैवातिथिव्रतः
श्रद्दधानः सदा च स्याद्देवताद्विजपूजकः ८
युधिष्ठिर उवाच ।
कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी कथं भवेत्
विघसाशी कथं च स्यात्सदा चैवातिथिव्रतः
भीष्म उवाच ।
अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च ।
सदोपवासी स भवेद्यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः
भार्यां गच्छन्ब्रह्मचारी ऋतौ भवति वै द्विजः
ऋतवादी भवेन्नित्यं ज्ञाननित्यश्च यो नरः ॥
न भक्षयेद्वृथामांसममांसाशी भवत्यपि ।
दाननित्यः पवित्रश्च अस्वप्नश्च दिवाऽस्वपन् ॥
भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु सदा सदा
अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्धि युधिष्ठिर ॥
अभुक्तवत्सु नाश्नानः सततं यस्तु वै द्विजः ।
अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत ॥
देवताभ्यः पितृभ्यश्च भृत्येभ्योऽतिथिभिः सह
अवशिष्टं तु योऽश्नाति तमाहुर्विघसाशिनम्
तेषां लोका ह्यपर्यन्ताः सदने ब्रह्मणा सह ।
उपस्थिताश्चाप्सरोभिः परियान्ति दिवौकसः
देवताभिश्च ये सार्धं पितृभ्यश्चोपभुञ्जते ।
रमन्ते पुत्रपौत्रैश्च तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि अमृतप्राश्निको नाम
एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

## २२२–[४९]

युधिष्ठिर उवाच ।
यदिदं कर्म लोकेऽस्मिन्
शुभं वा यदि वा शुभम्
पुरुषं योजयत्येव
फलयोगेन भारत ॥
कर्ताऽस्ति तस्य पुरुष उताहो नेति संशयः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन त्वत्तः श्रोतुं पितामह २
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ३
असक्तं धूतपाप्मानं कुले जातं बहुश्रुतम् ।
अस्तब्धमनहङ्कारं सत्त्वस्थं समये रतम् ॥ ४
तुल्यनिन्दास्तुतिं दान्तं शून्यागारनिवासिनम्
चराचराणां भूतानां विदितप्रभवाव्ययम् ५
अक्रुध्यन्तमहृष्यन्तमप्रियेषु प्रियेषु च ।
काञ्चने वाऽथ लोष्ठे वा उभयोः समदर्शनम्
आत्मनि श्रेयसि ज्ञाने धीरं निश्चितनिश्चितम्
परावरज्ञं भूतानां सर्वज्ञं समदर्शनम् ॥ ७
शक्रः प्रह्लादमासीनमेकान्ते संयतेन्द्रियम् ।
बुभुत्समानस्तत्प्रज्ञामभिगम्येदमब्रवीत् ॥ ८

अतिथिर्वैश्वदेवान्ते प्राप्तः देवतावद्द्विजानां पूजकः ॥८॥ वृथा देवपितृशेषं विना अस्वप्नशीति च्छेदः ॥१२॥ अभुक्तवत्सु अतिथ्यादिषु नाश्नानः अनश्नन् ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

२२२

**यदिति** । इदं सदोपवासी स्यादित्यादिना विहितं कर्म ॥ १ ॥ तस्य कर्ता अस्तिर्भवत्यर्थे पुरुषस्तस्य कर्ता भवति न वेति प्रश्नार्थः । कर्तेति **काणादाः** । अकर्तेति **कापिलाः** । आद्ये मोक्षानुपपत्तिः । स्वाभाविकस्य कर्तृत्वस्य वन्ह्यौष्ण्यवदाश्रयनाशमंतरेणाविनाशात् । अंत्ये शास्त्रानर्थक्यापत्तिः जडस्याप्रेर्यत्वाच्चेतनस्याकर्तृत्वाच्च संशयः ॥ २ ॥ तत्त्वविदां लक्षणमेव ज्ञानसाधनमिति प्रह्लादं विशिनष्टि—**असक्तमित्यादिना** । असक्तं फलेच्छारहितं अस्तब्धं अनलसम् । अनहंकारं वीतगर्वं सत्त्वस्थं सात्विकं अत एव समये स्वोचिते शमादौ धर्मे रतम् ॥४ विदितः प्रभवश्चासौ अव्ययश्चेत्यपरिणाम्युपादानभूतः परमात्मा येन तम् ॥ ५ ॥ आत्मनि प्रतीचि श्रेयसि आनन्दरूपे ज्ञाने चिन्मात्रे धीरं कुतर्कानाभिभूतम् । अत एव निश्चितनिश्चयम् । परः हिरण्यगर्भः अवरो नीचो यस्मात् ईश्वरात् तज्ज्ञं अत एव सर्वज्ञं 'आत्मनो वा अरे दर्शनेनेदं सर्वं विदितम्'इत्यात्मज्ञानात्सर्वविदश्रुतेः । समं निर्विशेषं तद्दर्शनवन्तम् ॥ ७॥ बुभुत्समानः संबोद्धुमिच्छन् ॥ ८ ॥

यैः कश्चित्संमतो लोके
गुणैः स्यात्पुरुषो नृषु ।
भवन्त्यनपगान् सर्वा-
स्तान्गुणान् लक्षयामहे ॥ ९
अथ ते लक्ष्यते बुद्धिः समा बालजनैरिह ।
आत्मानं मन्यमानः सन् श्रेयः किमिह मन्यसे
बद्धः पाशैश्च्युतः स्थानाद्विषतां वशमागतः ॥
श्रिया विहीनः प्रह्लाद शोचितव्ये न शोचसि
प्रज्ञालाभात्तु दैतेय उताहो धृतिमत्तया ।
प्रह्लाद सुस्थरूपोऽसि पश्यन् व्यसनमात्मनः
इति सञ्चोदितस्तेन धीरो निश्चितनिश्चयः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा,स्वां प्रज्ञामनुवर्णयन्
प्रह्लाद उवाच ।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च
भूतानां यो न बुद्ध्यते ।
तस्य स्तंभो भवेद्बाल्या-
न्नास्ति स्तंभोऽनुपश्यतः ॥ १४
स्वभावात्संप्रवर्तन्ते निवर्तन्ते तथैव च ।
सर्वे भावास्तथाऽभावाः पुरुषार्थो न विद्यते
पुरुषार्थस्य चाभावे नास्ति कश्चिच्च कारकः ।
स्वयं न कुर्वतस्तस्य जातु मानो भवेदिह १६
यस्तु कर्तारमात्मानं मन्यते साध्वसाधु वा ।
तस्य दोषवती प्रज्ञा अतत्त्वज्ञेति मे मतिः ॥
यदि स्यात्पुरुषः कर्ता शक्रात्मश्रेयसे ध्रुवम्
आरंभास्तस्य सिद्ध्येयुर्न तु जातु पराभवेत्॥
अनिष्टस्य हि निर्वृत्तिरनिवृत्तिः प्रियस्य च ।
लक्ष्यते यतमानानां पुरुषार्थस्ततः कुतः ॥ १९
अनिष्टस्याभिनिर्वृत्तिमिष्टसंवृत्तिमेव च ।
अप्रयत्नेन पश्यामः केषांचित्तत्स्वभावतः २०
प्रतिरूपतराः केचिद्
दृश्यन्ते बुद्धिमत्तराः ।
विरूपेभ्योऽल्पबुद्धिभ्यो
लिप्समाना धनागमम् ॥ २१
स्वभावप्रेरिताः सर्वे निविशन्ते गुणा यदा ।
शुभाशुभास्तदा तत्र कस्य किं मानकारणम्

---

भवति त्वयि अनपगान् स्थिरान् ॥ ९ ॥ बालजनैः समा रागद्वेषादिराहित्यात् मन्यमानः जानन् आत्मज्ञानार्थं किं श्रेयः प्रशस्ततरं साधनम् ॥ १० ॥ अत्र सांख्यमतमादाय कर्तृत्वं निराकरोति—**प्रवृत्तिमित्यादिना** । प्रवर्तते इति प्रवृत्तिः निवर्तत इति निवृत्तिः पुरुषस्य भोगापवर्गौ साधयितुमनुलोमप्रतिलोमपरिणामवती मूलप्रकृतिः तां कर्तृकरणक्रियारूपां आत्मनोऽन्यां यो न बुद्ध्यते तस्यात्मनि बुद्धिधर्मान् कर्तृत्वादीनारोपयतः स्तंभो भवेत् न तु आत्मानं अनुपश्यतः । तथा च श्रुतिः—'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इति॥१४॥रथादिवदचेतना प्रकृतिराधिष्ठातारं विना कथं प्रवर्ततेत्याशंक्याह—**स्वभावादिति** । यथा वत्सोत्पत्तेः प्रागेव तद्बुद्धिनिमित्तं क्षीरं रुधिरपूर्णेऽपि गवामूधसि प्रवर्तते न च तदा वात्सल्यादिकं तत्प्रवर्तकमस्ति वत्सस्यैवाजातत्वात् । जाते तु वत्से वात्सल्यं त्वरयतां नाम प्रवृत्तिस्तु क्षीरे स्वाभाविक्येव । तद्वत्सर्वे भावाभावाः स्वभावादेव प्रकृतित एव संप्रवर्तन्ते नास्ति प्रवर्तकापेक्षेत्यर्थः । नन्वेवं जितं सांख्यैरित्याशंक्याह—भावाः महदाद्याः अभावास्तेषां प्रलयाश्च पुरुषार्थो न विद्यत इति । पुरुषार्थो भोगापवर्गात्मकः स आत्मनि नास्ति । न हि प्रकृतिः कर्त्री पुरुषो भोक्तेति वदामः। येन सिद्धान्ताद्भ्रश्येम। शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वादिति न्यायं न च पश्यामः । किं तु या कर्त्री सैव भोक्त्री आत्मनि तु भोक्तृत्वं जलचाञ्चल्यवद्भ्रान्तिरिति वदामः ॥ १५ ॥ नन्वयस्कान्तमणिवत् पुरुषस्य उदासीनस्यापि सत्तामात्रेण प्रवर्तकत्वमस्त्वित्याशंक्याह—**पुरुषार्थस्येति** । भोगापवर्गयोरभावे कारकः कारयिता कथं स्यात् । सत्तामात्रेण कारयितृत्वमपि विक्रियमाणसत्त्वाधीनं विक्रिया च न रज्जूरगायमानायाः प्रकृतेर्वास्त्वी संभवतीति न कारकत्वं आत्मनः । ततश्च न कुर्वतः अकुर्वतस्तस्य इह देहादौ स्वयं मानः अहमित्यभिमानो भवेत् अविद्ययेति शेषः । १६ ॥ कस्तावता दोष इत्यत आह—**य इति** ॥१७॥ आत्मनः कर्तृत्वे दृष्टविरोधमाह—**यदीत्यादिना** ॥ १८ ॥ नन्वदृष्टानुकूल्याभावादारंभविघात इत्यत आह—**अनिष्टस्येति** । हितार्थं यतमानानां स्वतन्त्राणामप्यानिष्टा दृष्टोत्पत्तिरप्ययुक्तैवेति भोक्तृत्वसमनियतस्य कर्तृत्वस्याभावे भोक्तृत्वस्याप्यभाव इत्यर्थः ॥ १९ ॥ ईशः कालश्चेति स्वभावस्यैव नामान्तरमित्यभिप्रेत्याह—**अनिष्टस्येति** । यथाऽनिष्टनिष्पत्तिरिष्टनिरोधानं चायत्नत एव स्वभावादापतति एवमन्यदपीत्यर्थः न हि स्वभावजमदृष्टं स्वभावप्रवर्तकं भवति कार्यस्य कारणाप्रवर्तकत्वादिति भावः ॥ २० ॥ प्रकृतेः स्वातन्त्र्यमुपसंहरति द्वाभ्याम्—**स्वभावेति** । गुणाः सुखदुःखादयः मानकारणं अहं सुखी कर्ता भोक्ता चेत्यभिमानहेतुर्न किमपीत्यर्थः॥ २२ ॥

स्वभावादेव तत्सर्वमिति मे निश्चिता मतिः।
आत्मप्रतिष्ठा प्रज्ञा वा मम नास्ति ततोऽन्यथा
कर्मजं त्विह मन्यन्ते फलयोगं शुभाशुभम्।
कर्मणां विषयं कृत्स्नमहं वक्ष्यामि तच्छृणु २४
यथा वेदयते कश्चिदोदनं वायसो ह्यदन्।
एवं सर्वाणि कर्माणि स्वभावस्यैव लक्षणम्
विकारानेव यो वेद
न वेद प्रकृतिं पराम्।
तस्य स्तंभो भवेद्बाल्या-
न्नास्ति स्तंभोऽनुपश्यतः २६
स्वभावभाविनो भावान्
सर्वानेवेह निश्चयात्।
बुद्ध्यमानस्य दर्पो वा
मानो वा किं करिष्यति ॥ २७
वेदधर्मविधिं कृत्स्नं भूतानां चाप्यनित्यताम्
तस्माच्छक्र न शोचामि सर्वं ह्येवेदमन्तवत्॥
निर्ममो निरहंकारो निराशीर्मुक्तबन्धनः।
स्वस्थो व्यपेतः पश्यामि भूतानां प्रभवाप्ययौ
कृतप्रज्ञस्य दान्तस्य वितृष्णस्य निराशिषः
नायासो विद्यते शक्र पश्यतो लोकमव्ययम्
प्रकृतौ च विकारे च न मे प्रीतिर्न च द्विषे।
द्वेष्टारं च न पश्यामि यो मामद्य ममायते॥
नोर्ध्वं नावाङ्न तिर्यक्च न क्वचिच्छक्र कामये
न हि ज्ञेये न विज्ञाने न ज्ञाने कर्म विद्यते॥
शक्र उवाच।
येनैषा लभ्यते प्रज्ञा येन शान्तिरवाप्यते।
प्रब्रूहि तमुपायं मे सम्यक् प्रह्लाद पृच्छतः॥
प्रह्लाद उवाच।
आर्जवेनाप्रमादेन प्रसादेनात्मवत्तया।
वृद्धशुश्रूषया शक्र पुरुषो लभते महत्॥ ३४
स्वभावाल्लभते प्रज्ञां शान्तिमेति स्वभावतः।
स्वभावादेव तत्सर्वं यत्किंचिदनुपश्यसि॥
इत्युक्तो दैत्यपतिना शक्रो विस्मयमागमत्।
प्रीतिमांश्च तदा राजंस्तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत्॥

---

आत्मप्रतिष्ठा मोक्षः प्रज्ञा आत्मज्ञानम्। तदपि स्वभावादेव बन्धस्यैवासत्त्वात्तत्प्रतियोगिनी मुक्तिरपि अज्ञानादेवेत्यर्थः। तथा च श्रुतिः 'न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता' इति ॥२३॥ ननु पर्जन्यवद्देशकालस्थानीया प्रकृतिः साधारणं कारणं कर्म तु बीजवदसाधारणमिति शंकते—**कर्मजमिति**। एतन्निरासं प्रतिजानीते—**कर्मणामिति**। विषयं विशेषकार्यम् ॥२४॥ तदेवाह—**यथेति**। काकोऽन्नमिव कर्माणि स्वभावं प्रकाशयन्ति न तु वर्तयन्तीत्यर्थः। लक्षणं ज्ञापकानि असाधारणो धर्म इति यावत्। अयं भावः—तन्तव एव पटस्य कारणं तद्गतशौक्ल्यादिकं तु पटगतवैचित्र्यस्य, एवं स्वभाव एव जन्यमात्रहेतुस्तद्गतं धर्मादिकं तद्वैचित्र्येऽसाधारणो हेतुः। एतदेवोक्तं योगैः—निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनामावरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवदिति। धर्मादिर्गुणानां न प्रवर्तकः किं तु तेन गुणप्रवाहस्याधर्मस्रोतः खिलीकुर्वता धर्मस्रोतस आवरणं दूरीक्रियते इति सूत्रार्थः। एतदेव कर्मणां स्वभावज्ञापकत्वमिति ॥२५॥ फलितमाह—**विकारानिति**। विकारान् धर्मान्। परां प्रकृतिं अर्वाचीनत्रिगुणमयप्रकृत्यपेक्षया श्रेष्ठां प्रकृतिमुपादानं ब्रह्म यो न वेद तस्य कर्मप्रधानस्य भेददर्शिनः स्तंभो भवति। न तु अनुपश्यतः परां प्रकृतिम् ॥२६॥ ब्रह्मविदः कुतः स्तंभो नास्तीत्याशंक्य प्रकृतिरेव कर्त्री न त्वात्मेति बोधादित्याह—**स्वभावेति**। कर्तृत्वाभिमानो हि दर्पादेः कारणं तदभावाद्दर्पाद्यभाव इत्यर्थः ॥२७॥ यस्मात् वेद जानामि सर्वमन्तवदिति तस्मान्न शोचामीत्यर्थः ॥२८॥ शोकाभावे हेतुमाह—**निर्मम इति**। मुक्तबन्धनः निर्वासनः स्वस्थः स्वरूपप्रतिष्ठः अव्यपेतः देहाद्यनभिमानेन स्वरूपादप्रच्युतः भूतानां प्रभवाप्ययौ परं ब्रह्म ॥२९॥ लोकं आत्मानम्। अव्ययं निरपायम् ॥३०॥ प्रकृतौ विश्वकर्त्र्याम्। विकारे धर्माधर्मफलयोः सुखदुःखयोः मम द्वेष्टारमहं न पश्यामि यश्च ममायते ममेव आचरति पुत्रमित्रादिरात्मीयस्तं च न पश्यामि ॥३१॥ ऊर्ध्वं स्वर्गं अवाक् पातालं तिर्यक् मर्त्यलोकं न कामये क्वचित्काले तत्र हेतुर्नहीति। ज्ञेये विज्ञाने कर्म पाठान्तरे शर्म वा न विद्यते इति न हि किं तु ज्ञाने एव न विद्यते इति योजना। विज्ञाने बुद्धौ ज्ञाने चिदात्मनि आत्मनो धर्माधर्मतत्फलाश्रयत्वाभावादहं न किमपि कामये इत्यर्थः ॥३२॥ प्रज्ञा ज्ञानम् शान्तिस्तत्फलम् ॥३३॥ प्रसादेन बुद्धेर्नैर्मल्येन आत्मवत्तया जितेन्द्रियतया महत् मोक्षम् ॥३४॥ अनात्मनः कर्तृत्वमुपपाद्योपसंहरति—**स्वभावादेवेति**। विद्या मुक्तिश्च मायिक्येवेत्यर्थः। यथोक्तं श्रीमद्भागवते—

'विद्याऽविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम्।
मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते' इति।

मम मायाविनः ॥३५॥

स तदाऽभ्यर्च्य दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यपतिरीश्वरः । असुरेन्द्रमुपामन्त्र्य जगाम स्वं निवेशनम् ३७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शक्रप्रह्लादसंवादो नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

## २२३–[५०]

युधिष्ठिर उवाच ।

यया बुद्ध्या महीपालो भ्रष्टश्रीर्विचरेन्महीम्
कालदण्डविनिष्पिष्टस्तन्मे ब्रूहि पितामह १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वासवस्य च संवादं बलेर्वैरोचनस्य च ॥ २
पितामहमुपागम्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
सर्वानेवासुरान् जित्वा बलिं पप्रच्छ वासवः
यस्य स्म ददतो वित्तं न कदाचन हीयते ।
तं बलिं नाधिगच्छामि ब्रह्मन्नाचक्ष्व मे बलिं
स वायुर्वरुणश्चैव स रविः स च चन्द्रमाः ।
सोऽग्निस्तपति भूतानि जलं च स भवत्युत
तं बलिं नाधिगच्छामि ब्रह्मन्नाचक्ष्व मे बलिं
स एव ह्यस्तमयते स स्म विद्योतते दिशः ६
स वर्षति स्म वर्षाणि यथाकालमतन्द्रितः ।
तं बलिं नाधिगच्छामि ब्रह्मन्नाचक्ष्व मे बलिं

ब्रह्मोवाच ।

नैतत्ते साधु मघवन्यदेनमनुपृच्छसि ।
पृष्टस्तु नानृतं ब्रूयात्तस्माद्वक्ष्यामि ते बलिम्
उष्ट्रेषु यदि वा गोषु खरेष्वश्वेषु वा पुनः ।
वरिष्ठो भविता जन्तुः शून्यागारे शचीपते

शक्र उवाच ।

यदि स्म बलिना ब्रह्मन् शून्यागारे समेयिवान्
हन्यामेनं न वा हन्यां तद्ब्रह्मन्ननुशाधि माम्

ब्रह्मोवाच ।

मा स्म शक्र बलिं हिंसीर्न बलिर्वधमर्हति
न्यायस्तु शक्र प्रष्टव्यस्त्वया वासव काम्यया

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तो भगवता महेन्द्रः पृथिवीं तदा ।
चचारैरावतस्कन्धमधिरुह्य श्रिया वृतः ॥१२
ततो ददर्श स बलिं खरवेषेण संवृतम् ।
यथाऽऽख्यातं भगवता शून्यागारकृतालयम्

शक्र उवाच ।

खरयोनिमनुप्राप्तस्तुषभक्षोऽसि दानव ।
इयं ते योनिरधमा शोचस्याहो न शोचसि
अदृष्टं बत पश्यामि द्विषतां वशमागतम् ।
श्रिया विहीनं मित्रैश्च भ्रष्टवीर्य-पराक्रमम् ॥
यत्तद्यानसहस्रैस्त्वं ज्ञातिभिः परिवारितः ।
लोकान्प्रतापयन्सर्वान्यास्यस्मानवितर्कयन्॥
त्वन्मुखाश्चैव दैतेया व्यतिष्ठंस्तव शासने ।
अकृष्टपच्या च मही तवैश्वर्ये बभूव ह ॥ १७
इदं च तेऽद्य व्यसनं शोचस्याहो न शोचसि
यदाऽऽतिष्ठः समुद्रस्य पूर्वकूले विलेलिहन्
ज्ञातीन् विभजतो वित्तं तदासीत्ते मनः कथं
यत्ते सहस्रसमिता ननृतुर्देवयोषितः ॥ १९
बहूनि वर्षपूगानि विहारे दीव्यतः श्रिया ।
सर्वाः पुष्करमालिन्यः सर्वाः काञ्चनसप्रभाः
कथमद्य तदा चैव मनस्ते दानवेश्वर
छत्रं तवासीत्सुमहत्सौवर्णं रत्नभूषितम् ॥२१
ननृतुस्तत्र गन्धर्वाः षट् सहस्राणि सप्तधा ।
यूपस्तवासीत्सुमहान्यजतः सर्वकाञ्चनः २२
यत्राददः सहस्राणि अयुतानां गवां दश ।
अनन्तरं सहस्रेण तदाऽऽसीद्दैत्य का मतिः॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

२२३

इन्द्रियनिग्रहोऽहंकर्तृत्वाभिमानत्यागश्च कार्य इत्यध्यायद्वयेनोक्त्वा संपदां चाञ्चल्यात् तत्प्राप्तिनाशयोर्हर्षशोकौ न कर्तव्याविति आख्यायिकामुखेनाध्यायत्रयेणाह—**यया-बुद्ध्येत्यादिना**। कालदण्डविनिष्पिष्टो विपद्ग्रस्तः ॥१ स्ववीर्यख्यापनाय बलिं स्तौति-**यस्येत्यादिना** ॥ ४ ॥ गोषु वृषभेषु ॥ ९ ॥ अकृष्टपच्या कर्षणं विना धान्यप्रसूः ॥ १७ ॥

यदा च पृथिवीं सर्वां
यजमानोऽनुपर्यगाः ।
शम्याक्षेपेण विधिना
तदाऽऽसीत्किं नु ते हृदि ॥ २४
न ते पश्यामि भृंगारं न च्छत्रं व्यजने न च
ब्रह्मदत्तां च ते मालां न पश्याम्यसुराधिप ॥
बलिरुवाच ।
न त्वं पश्यसि भृंगारं न च्छत्रं व्यजने न च
ब्रह्मदत्तां च मे मालां न त्वं द्रक्ष्यसि वासव
गुहायां निहितानि त्वं मम रत्नानि पृच्छसि
यदा मे भविता कालस्तदा त्वं तानि द्रक्ष्यसि
न त्वेतदनुरूपं ते यशसो वा कुलस्य च ।
समृद्धार्थो समृद्धार्थं यन्मां कत्थितुमिच्छसि
न हि दुःखेषु शोचन्ते न प्रहृष्यन्ति चर्धिषु ।
कृतप्रज्ञा ज्ञानतृप्ताः क्षान्ताः सन्तो मनीषिणः
त्वं तु प्राकृतया बुद्ध्या पुरंदर विकत्थसे ।
यदाऽहमिव भावी स्यास्तदा नैवं वदिष्यसि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि बलिवासवसंवादो नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

## २२४–[५१]

भीष्म उवाच ।
पुनरेव तु तं शक्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
निःश्वसन्तं यथा नागं प्रव्याहाराय भारत १
शक्र उवाच ।
यत्तद्यानसहस्रेण ज्ञातिभिः परिवारितः ।
लोकान्प्रतापयन्सर्वान्यास्यस्मानवितर्कयन् ।
दृष्ट्वा सुकृपणां चेमामवस्थामात्मनो बले ।
ज्ञातिमित्रपरित्यक्तः शोचस्याहो न शोचसि
प्रीतिं प्राप्यातुलां पूर्वं
लोकांश्चात्मवशे स्थितान् ।
विनिपातमिमं बाह्यं
शोचस्याहो न शोचसि ॥ ४
बलिरुवाच ।
अनित्यमुपलक्ष्येह कालपर्यायधर्मतः ।
तस्माच्छक्र न शोचामि सर्वं ह्येवेदमन्तवत्
अन्तवन्त इमे देहा भूतानां च सुराधिप ।
तेन शक्र न शोचामि नापराधादिदं मम ६
जीवितं च शरीरं च जात्यैव सह जायते ।
उभे सह विवर्धेते उभे सह विनश्यतः ॥ ७
न हीदृशमहं भावमवशः प्राप्य केवलम् ।
यदेवमभिजानामि का व्यथा मे विजानतः
भूतानां निधनं निष्ठा स्रोतसामिव सागरः ।
नैतत्सम्यग्विजानन्तो नरा मुह्यन्ति वज्रधृक्

**यदा चेति** । सूक्ष्माग्रस्थूलमूलः षट्त्रिंशदंगुलो दंडः शम्या सा बलवताक्षिप्ता यावद्दूरे पतेत्तावदेकं देवयजनम् । एवं सर्वापि पृथिवी शम्या प्रक्षेपविमिता तावदेव यजनानामप र्याप्ताऽभूदित्यर्थः । पर्यगाः परिहृत्य गतवान् ॥ २४ ॥ भृंगारः कनकालुकाख्यः सौवर्ण उदपात्रविशेषः ॥ २५ ॥ गुहायां मूलप्रकृतौ निहितानि अन्तर्हितानि ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

२२४

**पुनरिति** । प्रव्याहाराय प्रकृष्टोक्तये ॥ १ ॥ इदं खरत्वं न ममापराधादपि तु कालपर्ययादित्यर्थः ॥६॥ जीवितं जीवत्यनेनेति लिंगं शरीरं स्थूलम्। जात्या स्वभावेन देहाः. स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधाः तृणजलायुकान्यायेन मरणेऽपि लिंगस्य स्थूलदेहान्तरसंगतेरपरित्यक्तत्वात् स्थूलवल्लिङ्गमप्यन्नेनाप्याय्यते 'अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्' इति श्रुतेः । विनश्यतः मोक्षे । अयमर्थः— स्थूलसूक्ष्मदेहधर्मैः गर्दभत्वाशनायादिमत्त्वप्रभृतिभिर्देहस्थैर्द्रष्टाऽहं ततो विविक्तमात्मानं जानन्न व्याकुली भवामीत्यर्थः ॥७ ॥ एतदेवाह—**न हीति** । ईदृशं भावं गार्दभं देहं प्राप्याहं विवशो देहधर्मैः पराभूतो न ह्यस्मीति योजना । एवं आत्मनोऽसङ्गत्वम् ॥ ८ ॥ भूतानां स्थूलसूक्ष्माणां निधनं मरणं निष्ठा परा गतिः न त्वात्मनः न मुह्यन्तीति सम्बन्धः॥ ९ ॥

ये त्वेवं नाभिजानन्ति रजोमोहपरायणाः।
ते कृच्छ्रं प्राप्य सीदन्ति बुद्धिर्येषां प्रणश्यति
बुद्धिलाभात्तु पुरुषः सर्वं तुदति किल्बिषम्।
विपाप्मा लभते सत्त्वं सत्त्वस्थः संप्रसीदति
ततस्तु ये निवर्तन्ते जायन्ते वा पुनः पुनः।
कृपणाः परितप्यन्ते तैरथैंरभिचोदिताः १२
अर्थसिद्धिमनर्थं च जीवितं मरणं तथा।
सुखदुःखफले चैव न द्वेष्मि न च कामये १३
हतं हन्ति हतो ह्येव यो नरो हन्ति कश्चन।
उभौ तौ न विजानीतो यश्च हन्ति हतश्च यः
हत्वा जित्वा च मघवन् यः कश्चित्पुरुषायते
अकर्ता ह्येव भवति कर्ता ह्येव करोति तत्॥
को हि लोकस्य कुरुते विनाशप्रभवावुभौ।
कृतं हि तत्कृतेनैव कर्ता तस्यापि चापरः १६
पृथिवी ज्योतिराकाशमापो वायुश्च पञ्चमः।
एतद्योनीनि भूतानि तत्र का परिदेवना १७
महाविद्योऽल्पविद्यश्च बलवान् दुर्बलश्च यः।
दर्शनीयो विरूपश्च सुभगो दुर्भगश्च यः॥ १८
सर्वं कालः समादत्ते गम्भीरः स्वेन तेजसा।
तस्मिन्कालवशं प्राप्ते का व्यथा मे विजानतः
दग्धमेवानुदहति हतमेवानुहन्यते।
नश्यते नष्टमेवाग्रे लब्धव्यं लभते नरः॥ २०
नास्य द्वीपः कुतः पारो नावारः संप्रदृश्यते।
नान्तमस्य प्रपश्यामि विधेर्दिव्यस्य चिन्तयन्
यदि मे पश्यतः कालो भूतानि न विनाशयेत्
स्यान्मे हर्षश्च दर्पश्च क्रोधश्चैव शचीपते २२
तुषभक्षं तु मां ज्ञात्वा प्रविविक्तजने गृहे।
बिभ्रतं गार्दभं रूपमागत्य परिगर्हसे॥ २३
इच्छन्नहं विकुर्यां हि रूपाणि बहुधाऽऽत्मनः
विभीषणानि यानीक्ष्य पलायेथास्त्वमेव मे
कालः सर्वं समादत्ते कालः सर्वं प्रयच्छति।
कालेन विहितं सर्वं मा कृथाः शक्र पौरुषम्
पुरा सर्वं प्रव्यथितं मयि क्रुद्धे पुरंदर।
अवैमि त्वस्य लोकस्य धर्मं शक्र सनातनम्
त्वमप्येवमवेक्षस्व माऽऽत्मना विस्मयं गमः।
प्रभवश्च प्रभावश्च नात्मसंस्थः कदाचन॥ २७
कौमारमेव ते चित्तं तथैवाद्य यथा पुरा।
समवेक्षस्व मघवन्बुद्धिं विन्दस्व नैष्ठिकीम् २८
देवा मनुष्याः पितरो गन्धर्वोरगराक्षसाः।
आसन्सर्वे मम वशे तत्सर्वं वेत्थ वासव॥
नमस्तस्यै दिशेऽप्यस्तु यस्यां वैरोचनो बलिः
इति मामभ्यपद्यन्त बुद्धिमात्सर्यमोहिताः ३०
नाहं तदनुशोचामि नात्मभ्रंशं शचीपते।
एवं मे निश्चिता बुद्धिः शास्तुस्तिष्ठाम्यहं वशे
दृश्यते हि कुले जातो दर्शनीयः प्रतापवान्।
दुःखं जीवन्सहामात्यो भवितव्यं हि तत्तथा
दौष्कुलेयस्तथा मूढो दुर्जातः शक्र दृश्यते।
सुखं जीवन्सहामात्यो भवितव्यं हि तत्तथा
कल्याणी रूपसंपन्ना दुर्भगा शक्र दृश्यते।
अलक्षणा विरूपा च सुभगा दृश्यते परा ३४

---

मूढो नश्यति अमूढस्तरतीत्याह द्वाभ्याम्—**ये त्विति** ॥ १० ॥ सत्त्वस्थः बुद्धिमान् संप्रसीदति मोहजं कालुष्यं त्यजति॥११॥ततः सत्त्वान्निवर्तन्ते रजस्तमोभ्यामभिभूयन्त इत्यर्थः। अर्थैः कामादिभिः ॥ १२ ॥ स्वस्य तद्वैलक्षण्यमाह—**अर्थेति** ॥ १३ ॥ अत्र युक्तिमाह—**हतमिति**। हतं निर्जीवं देहं हन्ति न तु जीवम्। एतेन देहस्यात्मत्वं निरस्तम्। यो हन्ति देहादन्योऽहं हन्तेत्यभिमानी कर्ता सोऽपि हत एव दृश्यत्वाद्देहवदात्मत्वेन प्रतीयमानोऽपि जड एव। उभौ यो हन्ति बुद्ध्यात्मवादी यो हतो देहात्मवादी ॥ १४ ॥ हन्तीति हत्वा जयतीति जित्वा उभयत्राप्यन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति क्वनिप् तुगागमः। आर्येऽनुनासिकलोपोऽधिकः। हन्ता जेता च पुरुषाधमः धीतादात्म्यापन्नः कर्तृत्वाभिमानी पुरुषाभासः न तु मुख्यः पुरुषः स हि अकर्तैव। यो हि कर्ता धीधातुः स एव करोति तत् हननादिकम् ॥ १५ ॥ जगत्कर्तृत्वमपि पुरुषे नास्तीत्याह—**को हीति**। तल्लोकयूथम्। तेन जनिमता मनसा कृतम्। तस्य मनसोऽपि कर्ता परः ॥ १६ ॥ तमेवाह—**पृथिवीति**। मनोऽपि पाञ्चभौतिकमित्यर्थः। भूतानि स्थूलसूक्ष्मशरीराणि ॥१७॥ **महाविद्य इति**। विद्यावत्त्वबलवत्त्वादयो मनोदेहयोर्भौतिकयोर्विकारदाधिक्षीरादिवत्कालैकनिवर्त्या न त्वात्मसंबन्धिन इति जानतो मम न व्यथास्तीति श्लोकद्वयार्थः ॥ १८॥ तस्मिन् धीदेहविकारे पूर्वोक्ते ॥ १९ ॥ दग्धं कालात्मना ईश्वरेण अनुदहति वन्ह्यादिः 'मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः' इत्यादिस्मृतेः। एवमग्रेऽपि ॥ २० ॥अस्य कालस्य विधेर्विधातुः दिव्यस्य पुण्यपापेतरस्य ॥ २१ ॥ ईक्ष्य दृष्ट्वा ॥ २४ ॥ धर्मवृद्धिह्रासवत्त्वम् ॥ २६ ॥ प्रभव ऐश्वर्यम् प्रभावस्तदाविष्करणं नात्मसंस्थः न आत्माधीनः ॥२७॥ कौमारं बालस्येवाज्ञं तव चित्तम् ॥ २८ ॥ शास्तुः ईश्वरस्य ॥३१॥

नैतदस्मत्कृतं शक्र नैतच्छक्र त्वया कृतम् ।
यत्त्वमेवंगतो वज्रिन् यच्चाप्येवंगता वयम् ॥
न कर्म भविताऽप्येतत्कृतं मम शतक्रतो ।
ऋद्धिर्वाऽप्यथवा नार्द्धिः पर्यायकृतमेव तत् ॥
पश्यामि त्वां विराजन्तं देवराजमवस्थितम्
श्रीमन्तं द्युतिमन्तं च गर्जमानं ममोपरि ३७
एवं नैव न चेत्कालो मामाक्रम्य स्थितो भवेत्
पातयेयमहं त्वाद्य सवज्रमपि मुष्टिना ॥ ३८
न तु विक्रमकालोऽयं शान्तिकालोयमागतः
कालः स्थापयते सर्वं कालः पचति वै तथा ॥
मां चेदभ्यागतः कालो दानवेश्वरपूजितम् ।
गर्जन्तं प्रतपन्तं च कमन्यं नागमिष्यति ४०
द्वादशानां तु भवतामादित्यानां महात्मनाम्
तेजांस्येकेन सर्वेषां देवराज धृतानि मे ॥४१

अहमेवोद्वहाम्यापो विसृजामि च वासव ।
तपामि चैव त्रैलोक्यं विद्योताम्यहमेव च ४२
संरक्षामि विलुम्पामि ददाम्यहमथाददे ।
संयच्छामि नियच्छामि लोकेषु प्रभुरीश्वरः
तदद्य विनिवृत्तं मे प्रभुत्वममराधिप ।
कालसैन्यावगाढस्य सर्वं न प्रतिभाति मे ॥
नाहं कर्ता न चैव त्वं नान्यः कर्ता शचीपते
पर्यायेण हि भुज्यन्ते लोकाः शक्र यदृच्छया
मासमासार्धवेश्मानमहोरात्राभिसंवृतम् ।
ऋतुद्वारं वायुमुखमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ४६
आहुः सर्वमिदं चिन्त्यं
जनाः केचिन्मनीषया ।
अस्याः पञ्चैव चिन्तायाः
पर्येष्यामि च पञ्चधा ॥ ४७

नार्द्धिः ऋद्ध्यभावः नैकधेतिवत्समासः। पर्यायः कालक्रमः तेन कृतम् । कर्माण्यपि कालमनुरुद्ध्यैव फलन्ति । बीजानीव पर्जन्यं न तु स्वत इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ एवं मम गर्दभत्वादिकं नैव स्यादिति शेषः । **न चेदित्यादि** तत्रोपपत्तिः ॥३८॥ द्वादशानां 'अरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा' इत्युक्तरूपाणाम् ॥४१॥ उद्वहामि मेघो भूत्वा सूर्यो भूत्वा शोषयामीति वाऽर्थः आपः अपः॥४२॥ कालसैन्यं मासार्धमासादि॥४४॥नाहमिति जीवस्य न त्वमिति तटस्थेश्वरस्य नान्येति प्रकृतेश्च कर्तृत्वं निषिद्धं पर्यायेण कालक्रमेण भुज्यन्ते पाल्यन्ते संह्रियन्ते वा ॥४५॥ कोऽसौ कालस्तमाह—**मासेति** । मासाद्युपलक्षितस्तार्किकाभिमतद्रव्यविशेषः कालस्तस्य वेश्मेवाधिष्ठानं मायाशबलं ब्रह्मेत्यर्थः । अहःसंज्ञैः रात्रिसंज्ञैश्च ऋतुभिः संवृतं 'नवैतान्यहानि भवन्ति नव वै प्राणाः नव सुवर्गा लोकाः नवस्वेव तत्सुवर्गेषु लोकेषु प्रतितिष्ठन्तो यन्ति प्रतितिष्ठन्ति ह वै य एता रात्री रूपं यन्ति' इत्यर्थवादिकफलवता कर्मकाण्डेन गूहितमित्यर्थः। उक्तं च भगवता—यामिमां पुष्पितां वाचमित्यादिना।एवमपि ऋतुद्वारं ऋतवो वसन्ताद्याः।'ब्राह्मणोऽग्निमादधीत वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत' इति वसन्तादिकालविहिताधानज्योतिष्टोमादिकं कर्मैव द्वारं प्राप्तिसाधनं यस्य तदृतुद्वारम् । वायुः सूत्रात्मा 'वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम तत्सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि' इति श्रुतिप्रसिद्धः । मुखमिव प्रथमप्राप्यं यस्य तद्वायुमुखम् । वर्षमुखमिति पाठे वर्षतीति वर्षो धर्ममेघाख्यं ध्यानं तदेव मुखं यस्य निर्विषयध्यानैकगम्यं कालमाहुरिति प्रसिद्धेन विशेषेण क्रियया सम्बन्धः । 'तं मामायुरमृतमित्युपास्व' इति श्रुतेरायुर्ब्रह्म तत्प्रतिपादको वेद उपनिषत्तद्विदः ॥ ४६ ॥ **आहुरिति** । इदं सर्वं कालाख्यं ब्रह्मेत्याहुः 'इदं सर्वं यदयमात्मा ब्रह्मैवेदं सर्वम्' इति आगमबलेन तत् ब्रह्म चिन्त्यं ध्येयमिति केचिज्जैमिन्यादय आहुर्मनीषया बुद्ध्यैव न तु शास्त्रबलेन । अस्त्विदं सर्वं ब्रह्म न तु प्रत्यगभिन्नत्वेन तदुपास्यं किं तु वस्तुतत्त्वमेव तत्तथा ज्ञेयमित्यर्थः । 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इति श्रुत्याऽसकृदुपास्यस्य ब्रह्मभावनिषेधात् । ननु ज्ञेयत्वमपि ब्रह्मणो निषिद्धं 'यन्मनसा न मनुते' इत्यादि श्रुत्येत्यत आह—**अस्या इति**। अस्याश्चिन्तायाः पञ्चैव चिन्त्यान् विषयान् अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयान् कोशान् पञ्चधा प्रत्येकं पञ्चप्रकारान् पक्षद्वयशिरोमध्यदेशपुच्छाख्यपञ्चावयवविशिष्टान् पर्येष्यामि श्रुतावगच्छामि । तथा हि श्रूयन्ते—'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः,तस्येदमेव शिरः,अयं दक्षिणः पक्षः अयमुत्तरः पक्षः अयमात्मा इदं पुच्छं प्रतिष्ठा' इति प्रतिपुरुषं शिर आदयः पञ्चावयवाः। तदयमर्थः—यत् ज्ञेयं यच्चोपास्यं न तद्ब्रह्म अनात्मत्वात् आत्मा हि ब्रह्म कथं तर्हीदं सर्वं यदयमात्मेति बाधायां सामानाधिकरण्यमिदमिति ब्रूमः। यद्रजतमभात्सा शुक्तिरितिवत् । अपि चाहुर्वृद्धाः—

'योऽयं स्थाणुः पुमानेष पुंधिया स्थाणुधीरिव ।
ब्रह्मास्मीति धिया शेषाऽहंबुद्धिर्विनिवर्त्यते' इति ॥

अशेषाहंबुद्धिः समष्टयहंकारः पूर्वोक्तरीत्या यथा स्फटिके लौहित्यपद्मरागत्वेन्द्रनीलत्वान्यध्यस्यन् उत्तरोत्तररूपबोधे पूर्वपूर्वरूपमेव तात्विकं मन्यते। एवं शुद्धचैतन्ये ईशसूत्रविराजोऽध्यस्तास्तत्र देहपरिच्छेदाभिमाननिवृत्तौ विराडस्मी-

गम्भीरं गहनं ब्रह्म महत्तोयार्णवं यथा ।
अनादिनिधनं चाहुरक्षरं क्षरमेव च ॥ ४८
सत्त्वेषु लिङ्गमाविश्य निर्लिङ्गमपि तत्स्वयम् ।
मन्यन्ते ध्रुवमेवैनं ये जनास्तत्त्वदर्शिनः ॥ ४९
भूतानां तु विपर्यासं कुरुते भगवानिति ।
न ह्येतावद्भवेद्गम्यं न यस्मात्प्रभवेत्पुनः ॥ ५०
गतिं हि सर्वभूतानामगत्वा क्व गमिष्यति ।
यो धावता न हातव्यस्तिष्ठन्नपि न हीयते ॥
तमिन्द्रियाणि सर्वाणि नानुपश्यन्ति पञ्चधा
आहुश्चैनं केचिदग्निं केचिदाहुः प्रजापतिम् ॥
ऋतून् मासार्धमासांश्च दिवसांश्च क्षणांस्तथा
पूर्वाह्णमपराह्णं च मध्याह्नमपि चापरे ॥ ५३
मुहूर्तमपि चैवाहुरेकं सन्तमनेकधा ।
तं कालमिति जानीहि यस्य सर्वमिदं वशे ॥
बहूनीन्द्रसहस्राणि समतीतानि वासव ।
बलवीर्योपपन्नानि यथैव त्वं शचीपते ॥ ५५
त्वामप्यतिबलं शक्र देवराजं बलोत्कटम् ।
प्राप्ते काले महावीर्यः कालः संशमयिष्यति
य इदं सर्वमादत्ते तस्माच्छक्र स्थिरो भव ।
मया त्वया च पूर्वैश्च न स शक्योऽतिवर्तितुम्
यामेतां प्राप्य जानीषे राज्यश्रियमनुत्तमाम् ।
स्थिता मयीति तन्मिथ्या नैषा ह्येकत्र तिष्ठति
स्थिता हीन्द्र सहस्रेषु त्वद्विशिष्टतमेष्वियम्
मां च लोला परित्यज्य त्वामगाद्विबुधाधिप
मैवं शक्र पुनः कार्षीः शान्तो भवितुमर्हसि ।
त्वामप्येवंविधं ज्ञात्वा क्षिप्रमन्यं गमिष्यति

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि बलिवासवसंवादे चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

---

त्यध्यासोऽवशिष्यते । तन्निवृत्तौ सूत्रात्माऽस्मीति तस्यापि निवृत्तौ ईशोऽस्मीति तस्यापि निवृत्तौ वाङ्मनसातीतं किंचित्सन्मात्रं सुषुप्तिसदृशं शिष्यते इति॥४७॥तदेतदाह-**गंभीरमिति**। गंभीरं तर्कागम्यं गहनं शास्त्रतोऽधिगतमपि दुष्प्रवेशं ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यं महत्तोयार्णवं पारावारशून्यार्णवतुल्यम्। 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' इति श्रुत्या तादृशसलिलेनोपमितमेकरसमित्यर्थः । क्षरं शुक्तिरिव रजतरूपेण स्वतो जन्मनाशशून्यमपि जगद्रूपेण क्षरम्। अक्षरं जीवरूपेण निर्विशेषमेव वस्तु अविद्यया सर्वविशेषयुक्तं भवतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥ एतदेवाह-**सत्त्वेष्विति** । यथा दर्पणेषु मुखं प्रविश्य स्वरूपस्य अगमकमपि गमकं भवति एवं सत्वेषु बुद्धिसत्वेषु चित्प्रतिबिम्बरूपेणाविश्य लिङ्गं निरुपाधिचैतन्यस्य ज्ञापिका भवति । जीवस्यैवानुपाधिकं रूपं ब्रह्मेत्यर्थः । अत एव ध्रुवं उपाधिधर्मास्पर्शिनम् ॥ ४९ ॥ **भूतानामिति** । चित्ताद्याकारपरिणतपञ्चमहाभूतसम्बन्धिनं विपर्यासं सच्चिदानन्दानन्तविपरीतं अनृतजडदुःखपरिच्छिन्नाख्यं दुर्भगत्वं भगवानपि अविद्यया आत्मनि मन्यते न ह्येतावदविद्याप्रकाशितं दुःखित्वादिरूपमात्मनो गम्यं नित्यज्ञातत्वात्तस्य। किं तु यस्मात्प्रतीचो रूपात्पुनरन्यो ब्रह्मा रुद्रो विष्णुर्वा न प्रभवेत्तदेवात्मनो रूपम् । अत एव चानन्याधिपतिरिति न्यायात् ॥५०॥ **गतिमिति**। अगत्वा अप्राप्य नित्यप्राप्तत्वादिति भावः । अहेयत्वम. विकारित्वं चोत्तरार्धार्थः ॥ ५१ ॥ इन्द्रियाणीति चित्तवृत्तिमात्रोपलक्षणम्। पञ्चधा पञ्चभिः प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृत्याख्यैः प्रकारैः । एनं इन्द्रियाद्यगम्यम् । केचिदौपनिषदाः। अग्निं 'अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे' 'अहं वैश्वानरो भूत्वा'इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रसिद्धं जाठरे आरोप्योपास्यं आहुः । अपरे कर्मपरायणाः प्रजापतिं संवत्सरः प्रजापतिरिति श्रुतं कालाभिमानिनं सूत्रात्मानं सर्वकर्मसंतर्पणीयं प्रतिनियतकालसर्वफलप्रदातारं ऋतुमासाद्यभिमानिदेवतात्मानमाहुः । एकं सन्तं अनेकधा आहुः । तथा च श्रुतिः—' सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ' इत्याद्या 'तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः' इत्याद्या च। श्लोकत्रयम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

---

# २२५-[५२]

भीष्म उवाच ।

शतक्रतुरथापश्य-
द्बलेर्दीप्तां महात्मनः ।
स्वरूपिणीं शरीराद्धि
निष्क्रामन्तीं तदा श्रियम् ॥ १

तां दृष्ट्वा प्रभया दीप्तां भगवान् पाकशासनः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनो बलिं पप्रच्छ वासवः २

शक्र उवाच ।

बले केयमपक्रान्ता रोचमाना शिखण्डिनी
त्वत्तः स्थिता सकेयूरा दीप्यमाना स्वतेजसा

बलिरुवाच ।

न हीमामासुरीं वेद्मि न दैवीं च न मानुषीम्
त्वमेनां पृच्छ वा मा वा यथेष्टं कुरु वासव ४

शक्र उवाच ।

का त्वं बलेरपक्रान्ता रोचमाना शिखण्डिनी
अजानतो ममाचक्ष्व नामधेयं शुचिस्मिते ५
का त्वं तिष्ठसि मामेवं दीप्यमाना स्वतेजसा
हित्वा दैत्यवरं सुभ्रु तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ६

श्रीरुवाच ।

न मां विरोचनो वेद नायं वैरोचनो बलिः
आहुर्मां दुःसहेत्येवं विधित्सेति च मां विदुः
भूतिर्लक्ष्मीति मामाहुः
श्रीरित्येवं च वासव ।
त्वं मां शक्र न जानीषे
सर्वे देवा न मां विदुः ॥ ८

शक्र उवाच ।

किमिदं त्वं मम कृते उताहो बलिनः कृते।
दुःसहे विजहास्येनं चिरसंवासिनी सती ९

श्रीरुवाच ।

नो धाता न विधाता मां विदधाति कथञ्चन
कालस्तु शक्र पर्यायान्मैनं शक्रावमन्यथाः१०

शक्र उवाच ।

कथं त्वया बलिस्त्यक्तः
किमर्थं वा शिखण्डिनि ।
कथं च मां न जह्यास्त्वं
तन्मे ब्रूहि शुचिस्मिते ॥ ११

श्रीरुवाच ।

सत्ये स्थितास्मि दाने च व्रते तपसि चैव हि
पराक्रमे च धर्मे च पराचीनस्ततो बलिः १२
ब्रह्मण्योऽयं पुरा भूत्वा
सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
अभ्यसूयद्ब्राह्मणाना-
मुच्छिष्टश्चास्पृशद्घृतम् ॥ १३
यज्ञशीलः सदा भूत्वा मामेव यजते स्वयम् ।
प्रोवाच लोकान्मूढात्मा कालेनोपनिपीडितः
अपाकृता ततः शक्र त्वयि वत्स्यामि वासव
अप्रमत्तेन धार्यास्मि तपसा विक्रमेण च १५

शक्र उवाच ।

नास्ति देवमनुष्येषु सर्वभूतेषु वा पुमान् ।
यस्त्वामेको विषहितुं शक्नुयात्कमलालये १६

श्रीरुवाच ।

नैव देवो न गन्धर्वो नासुरो न च राक्षसः
यो मामेको विषहितुं शक्तः कश्चित्पुरंदर १७

शक्र उवाच ।

तिष्ठेथा मयि नित्यं त्वं यथा तद्ब्रूहि मे शुभे
तत्करिष्यामि ते वाक्यमृतं तद्वक्तुमर्हसि १८

श्रीरुवाच ।

स्थास्यामि नित्यं देवेन्द्र
यथा त्वयि निबोध तत् ।
विधिना वेददृष्टेन
चतुर्धा विभजस्व माम् ॥ १९

शक्र उवाच ।

अहं वै त्वां निधास्यामि
यथाशक्ति यथाबलम् ।
न तु मेऽतिक्रमः स्याद्वै
सदा लक्ष्मि तवान्तिके ॥ २०
भूमिरेव मनुष्येषु धारिणी भूतभाविनी ।
सा ते पादं तितिक्षेत समर्था हीति मे मतिः

श्रीरुवाच ।

एष मे निहितः पादो योऽयं भूमौ प्रतिष्ठितः
द्वितीयं शक्र पादं मे तस्मात्सुनिहितं कुरु२२

---

२२५

श्रीदर्पशमनाय श्रियश्चाञ्चल्यमाख्यायिकामुखेनाह । प्रसंगाच्च श्रीदान् श्रीघ्नांश्च धर्मान् कथयति—**शतक्रतु-रित्यध्यायेन** ॥ १ ॥

शक्र उवाच ।
आप एव मनुष्येषु द्रवन्त्यः परिचारिणीः ।
तास्ते पादं तितिक्षन्तामलमापस्तितिक्षितुम्
श्रीरुवाच ।
एष मे निहितः पादो योऽयमप्सु प्रतिष्ठितः
तृतीयं शक्र पादं मे तस्मात्सुनिहितं कुरु २४
शक्र उवाच ।
यस्मिन्वेदाश्च यज्ञाश्च यस्मिन्देवाः प्रतिष्ठिताः
तृतीयं पादमग्निस्ते सुधृतं धारयिष्यति २५
श्रीरुवाच ।
एष मे निहतः पादो योऽयमग्नौ प्रतिष्ठितः।
चतुर्थं शक्र पादं मे तस्मात्सुनिहितं कुरु २६
शक्र उवाच ।
ये वै सन्तो मनुष्येषु ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः
ते ते पादं तितिक्षन्तामलं सन्तस्तितिक्षितुं
श्रीरुवाच ।
एष मे निहितः पादो योऽयं सत्सु प्रतिष्ठितः
एवं हि निहितां शक्र भूतेषु परिधत्स्व माम्॥
शक्र उवाच ।
भूतानामिह यो वै त्वां मया विनिहितां सतीं
उपहन्यात् स मे धृष्यस्तथा शृण्वन्तु मे वचः॥
ततस्त्यक्तः श्रिया राजा दैत्यानां बलिरब्रवीत्
बलिरुवाच ।
यावत्पुरस्तात्प्रतपेत्तावद्वै दक्षिणां दिशम् ।
पश्चिमां तावदेवापि तथोदीचीं दिवाकरः
तथा मध्यंदिने सूर्यो नास्तमेति यदा तदा ।
पुनर्देवासुरं युद्धं भावि जेताऽस्मि वस्तदा३१
सर्वलोकान्यदादित्य एकस्थस्तापयिष्यति ।
तदा देवासुरे युद्धे जेताऽहं त्वां शतक्रतो ॥
शक्र उवाच ।
ब्रह्मणाऽस्मि समादिष्टो न हन्तव्यो भवानिति
तेन तेऽहं बले वज्रं न विमुञ्चामि मूर्धनि ३३
यथेष्टं गच्छ दैत्येन्द्र स्वस्ति तेऽस्तु महासुर।
आदित्यो नैव तपिता कदाचिन्मध्यतः स्थितः
स्थापितो ह्यस्य समयः पूर्वमेव स्वयंभुवा ।
अजस्रं परियात्येष सत्येनावतपन्प्रजाः ॥ ३५
अयनं तस्य षण्मासानुत्तरं दक्षिणं तथा ।
येन संयाति लोकेषु शीतोष्णे विसृजन् रविः
भीष्म उवाच ।
एवमुक्तस्तु दैत्येन्द्रो बलिरिंद्रेण भारत ।
जगाम दक्षिणामाशामुदीचीं तु पुरंदरः॥३७

---

वित्तं तीर्थादिपुण्यं यज्ञादिधर्मः विद्या चेति श्रियश्चत्वारः पादाः भूमौ जलेऽग्नौ विद्वत्सु च निहिताः तेषामुपधातस्तेयकामाशौचाशमैः ॥ २९ ॥ **यावत् पुरस्तादिति** । मेरोः पृष्ठे मध्ये ब्रह्मलोकः प्राच्यादिचतुर्दिक्षु इन्द्रयमवरुणकुबेराणां पुर्यश्च मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वता आदित्येन भास्यन्ते । तत्र भास्यापेक्षं भासकत्वमतो यस्याः पुर्या उच्छेदस्तत्रादित्यो न तपतीति व्यवहारः तथा सूर्यस्य उदयस्तद्देशवासिनां दर्शनमदर्शनं चास्तमयः तत्र प्राच्यामुदितः प्रतीच्यानामस्तं गतः उदीच्यानां मध्यंदिनगतः । दाक्षिणात्यानां तदा मध्यरात्रमिति च व्यवहारः एवं दक्षिणादिष्वपि ज्ञेयम् । एवं सति यदा प्राच्यां तपति तदा मेरुप्रदक्षिणायास्तुल्यत्वादितरास्वपि तपत्येव तेन यावत्प्राच्यां तपति तावदेव दक्षिणस्यामिति वदता प्राच्या उच्छेदो यावता कालेन ततो द्विगुणितेन कालेन दक्षिणस्या उच्छेद उक्तो भवति । एवमुत्तरयोस्तथा च ब्रह्मणो दिनस्य षोडशधा विभक्तस्य प्रथमेनांशेन ऐन्द्र्या उच्छेदः द्वाभ्यां संयमिन्याः चतुर्भिर्वारुण्याः अष्टाभिरुदीच्या उच्छेदस्तदा द्रष्टृणामभावात् सूर्यस्य दर्शनादर्शनरूपौ उदयास्तमयौ न स्तः । किं तु मध्यंदिन एव सन्ततं ब्रह्मलोकं प्रकाशयति न पुर्यन्तरं तदा तदभावात् । तदेतदाह—**एकस्थो** ब्रह्मलोकस्थः सर्वाँल्लोकान् मेरुपृष्ठादधस्तनान् तापयति । तदा ब्रह्मणो मध्यान्हावसाने वर्तमानवैवस्वतमनोराधिकारच्युतौ सत्यां भविष्ये सावर्णिकमनौ बलिरिन्द्रो भविष्यति । यद्वा । वैवस्वतमन्वन्तरमेवाष्टधा विभज्य तदन्ते उक्तक्रमेण सर्वपुर्युच्छेदे सति मन्वन्तरान्तरे बलिरिन्द्रो भविष्यतीति ज्ञेयम् । तदिदमुक्तम्—यावत्पुरस्तात्प्रतपेदित्यादिना श्लोकत्रयेण । अयं लोकनाशकमश्छान्दोग्ये मधुविद्यायां यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिण उदेतोत्तरतोऽस्तमेतेत्यादिना दर्शितः। स एवात्र बलिना स्वराज्यकालकथनायोदीर्यते ॥ ३० ॥ तत्र मन्वन्तरस्याष्टमांशकालेन स्वराज्योच्छेदं श्रुत्वा कुपितः कर्मफलस्येन्द्रपदस्य नित्यतां मन्वान इन्द्रः परषोक्तिपूर्वकं तद्दूषयति—**ब्रह्मणेत्यादिना** ॥ ३३ ॥ मध्यमास्थितः सन् नैव तपिता पुरीचतुष्टयोच्छेदो नैव भवितेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अजस्रं सत्येन कर्मणा । तथाहि । कर्मठाः प्राहुर्न कदाचिदनीदृशं जगदिति ॥ ३५ ॥ **एवमुक्तास्त्विति** । अयं भावः—

इत्येतद्बलिना गीतमनहंकारसंज्ञितम् । वाक्यं श्रुत्वा सहस्राक्षः खमेवारुरुहे तदा ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि श्रीसन्निधानो नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

## २२६-[५३]

भीष्म उवाच ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शतक्रतोश्च संवादं नमुचेश्च युधिष्ठिर ॥ १
श्रिया विहीनमासीनमक्षोभ्यमिव सागरम्
भवाभवज्ञं भूतानामित्युवाच पुरंदरः ॥ २
बद्धः पाशैश्च्युतः स्थानाद्द्विषतां वशमागतः
श्रिया विहीनो नमुचे शोचस्याहो न शोचसि

नमुचिरुवाच ।

अनिवार्येण शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति शोके नास्ति सहायता
तस्माच्छक्र न शोचामि सर्वं ह्येवेदमन्तवत्
सन्तापाद्भ्रश्यते रूपं सन्तापाद्भ्रश्यते श्रियः
सन्तापाद्भ्रश्यते चायुर्धर्मश्चैव सुरेश्वर ।
विनीय खलु तद्दुःखमागतं वै मनस्यजम् ॥ ६
ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं संविजानता
यदा यदा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तदा तस्य प्रसिध्यन्ति सर्वार्था नात्र संशयः
एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता
गर्भे शयानं पुरुषं शास्ति शास्ता ।
तेनानुयुक्तः प्रवणादिवोदकं
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा वहामि ॥ ८
भवाभवौ त्वभिजानन् गरीयो
ज्ञानाच्छ्रेयो न तु तद्वै करोमि ।
आशासु धर्म्यासु परासु कुर्वन्
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा वहामि ॥९
यथा यथास्य प्राप्तव्यं
प्राप्नोत्येव तथा तथा ।
भवितव्यं यथा यच्च
भवत्येव तथा तथा ॥ १०
यत्र यत्रैव संयुक्तो धात्रा गर्भे पुनः पुनः ।
तत्र तत्रैव वसति न यत्र स्वयमिच्छति ॥ ११
भावो योऽयमनुप्राप्तो भवितव्यमिदं मम ।
इति यस्य सदा भावो न स मुह्येत्कदाचन
पर्यायैर्हन्यमानानामभियोक्ता न विद्यते ।
दुःखमेतत्तु यद्द्वेष्टा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ १३

---

एकसप्तत्या चतुर्युगैः एको मनुर्नश्यति । तस्येदानीमष्टाविंशतितमो युगपर्यायोऽनुवर्तते । तत्रोक्तरीत्या चतुर्थांशेन ऐन्द्रीसंयमिन्योरुच्छेदो जात एव । वारुण्या अपि क्षयकालः प्रवृत्तः । उदीच्यास्तु न प्रवृत्त इत्याशयेन इन्द्र उदीचीं गतः बलिस्तु भ्रष्टश्रीस्तादृशीमेव दक्षिणां गतः न तु पूर्वां तस्याः भ्रष्टैश्वर्यत्वेऽपि शत्रुसन्निहितत्वादिति ॥ ३७ ॥ ननु पुराणान्तरे चतसृणामपि पुरीणां सहैवोच्छेदो दृश्यते नोक्तक्रमेणेत्याशंक्याह—**इत्येतदिति** । अनहंकार इति संज्ञामात्रं वाक्यस्य किं तु किंचित्साहंकारमेवेत्यर्थः । एवं चात्र त्रयः पक्षाः उपन्यस्ताः । निरहंकारस्य युगपत्सर्वोच्छेदः पुराणान्तरसंमतः साहंकारस्येन्द्रस्य तु न कदाचित्पुर्युच्छेदोऽस्ति । यथोक्तं वासिष्ठे—

'यत्राहं त्वं जगत्तत्र पूर्वमागत्य तिष्ठति ।
त्रसरेणूदरेपीन्द्रः पश्यति स्म जगत्त्रयम्' इति ।

साहंकारस्यापि विवेकिनो बलेः क्रमिकनाशयुक्तं जगदिति श्रुत्वा उदीचीं प्राप्य श्रुतियुक्तिबलेन पर्यालोच्य खं हार्दाकाशं आरुरोह ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥

२२६

**अत्रैवेति** अत्रैव अनहंकारत्वे एव ॥१॥ भवाभवज्ञं उत्पत्तिप्रलयज्ञम् ॥ २ ॥ सहायता शोकस्य दुःखापनोदे हेतुत्वं नास्तीत्यर्थः ॥४॥ श्रियः सकाशात् ॥५॥ विनीय निरस्य ॥ ६ ॥ हृद्यं हृत्स्थं स्वरूपं कल्याणं मोक्षम् ॥७॥ **एक इति** । अन्तर्यामिस्वरूपमेव कल्याणमित्यर्थः। प्रवणात् निम्नदेशात् ॥ ८ ॥ भवाभवौ बन्धमोक्षौ भावाभावाविति पाठे सत्यानृतौ तावेवाभिजानन् तयोरपि मध्ये श्रेयो मोक्षं गुरुतरत्वेन जानन्नपि न करोति श्रवणाद्यभ्यासेन न संपादयामि परासु अधर्म्यासु निमित्तभूतासु कुर्वन् कर्माणि नियुक्तः शास्त्रा ॥ ९ ॥ पर्यायैः कालक्रमागतैः सुखदुःखैः द्वेष्टा दुःखस्य कर्तृत्वाभिमान एव दुःखमित्यर्थः ॥ १३ ॥

ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च
त्रैविद्यवृद्धांश्च वने मुनींश्च ।
कोन्नापदो नोपनमन्ति लोके
परावरज्ञास्तु न संभ्रमन्ति ॥ १४

न पण्डितः क्रुध्यति नाभिपद्यते
न चापि संसीदति न प्रहृष्यति ।
न चार्थकृच्छ्रव्यसनेषु शोचते
स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥

यमर्थसिद्धिः परमा न मोहये-
त्तथैव काले व्यसनं न मोहयेत् ।
सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं
निषेवते यः स धुरंधरो नरः ॥ १६

यां यामवस्थां पुरुषोऽधिगच्छे-
त्तस्यां रमेतापरितप्यमानः ।
एवं प्रवृद्धं प्रणुदन्मनोजं
संतापयामास करं शरीरात् ॥ १७

न तत्सदः सत्परिषत्सभा च सा
प्राप्य यां न कुरुते सदा भयम् ।
धर्मतत्त्वमवगाह्य बुद्धिमा-
न्योऽभ्युपैति स धुरंधरः पुमान् ॥१८

प्राज्ञस्य कर्माणि दुरन्वयानि
न वै प्राज्ञो मुह्यति मोहकाले ।
स्थानाच्च्युतश्चेन्न मुमोह चोत्तम-
स्तावत्कृच्छ्रामापदं प्राप्य वृद्धः १९

न मन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेण च ।
न शीलेन न वृत्तेन तथा नैवार्थसंपदा ।
अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिदेवना ॥ २०

यदेवमनुजातस्य धातारो विदधुः पुरा ।
तदेवानुचरिष्यामि किं मे मृत्युः करिष्यति
लब्धव्यान्येव लभते गन्तव्यान्येव गच्छति ।
प्राप्तव्यान्येव चाप्नोति दुःखानि च सुखानि च
एतद्विदित्वा कार्त्स्न्येन यो न मुह्यति मानवः
कुशली सर्वदुःखेषु स वै सर्वधनो नरः २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शक्रनमुचिसंवादो नाम
षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

---

## २२७-[५४]

युधिष्ठिर उवाच ।

मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे किं श्रेयः पुरुषस्य हि
बन्धुनाशे महीपाल राज्यनाशेऽथवा पुनः १
त्वं हि नः परमो वक्ता लोकेऽस्मिन् भरतर्षभ
एतद्भवन्तं पृच्छामि तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि २

भीष्म उवाच ।

पुत्रदारैः सुखैश्चैव वियुक्तस्य धनेन वा ।
मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे धृतिः श्रेयस्करी नृप ३
धैर्येण युक्तं सततं शरीरं न विशीर्यते ।
विशोकता सुखं धत्ते धत्ते चारोग्यमुत्तमम् ४

---

आपदः कान् पुरुषान् नोपनमन्ति नानुसरन्ति । अपि तु सर्वानेव । परावरज्ञाः सदसद्वस्तुविदः न संभ्रमन्ति न बिभ्यति ॥ १४ ॥ नाभिपद्यते न सज्जते अतिकृच्छ्रव्यसनेषु दुर्निवार्येषु दुःखेषु ॥ १५ ॥ प्रणुदन् दूरीकुर्वन् ॥ १७ ॥ विवेकदौर्लभ्यमाह—**न तदिति** । श्रौतस्मार्तलौकिकन्यायान्यायविवेचका जनसमाजाः सदःपर्षत्सभाख्याः भयं धर्मविप्लवजं धुरंधरः सभ्यश्रेष्ठः धर्मतत्त्वमपि दुरवगाहं किमुत ब्रह्मतत्त्वमिति भावः ॥ १८ ॥ दुरन्वयानि दुर्ज्ञेयोदर्काणि । न मुमोह गौतम इति पाठे अहल्याजारस्य इन्द्रस्य त्रपाजननार्थं मर्मोद्घाटनं गौतमस्य च दारापहारेऽपि धैर्यवर्णनम् । स्थानादहल्यायाः शप्तत्वेन शिलारूपत्वात् गार्हस्थ्याच्च्युतः न त्वत्सदृशोऽहमजितचित्तोऽस्मि किं तु गौतमवज्जितचित्तोऽस्मीति भावः ॥ १९ ॥ अलभ्यं चित्तस्वास्थ्यम् ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥

२२७

**मग्नस्येति** मग्नस्य व्यसने कृच्छ्र इत्यादिनाऽध्यायेन विपदि धैर्यमेव श्रेय इति पुनर्बलिवासवसंवादाख्यायिकामुखेन प्रदर्श्यते ॥ १ ॥

आरोग्याच्च शरीरस्य स पुनर्विन्दते श्रियम् ।
यश्च प्राज्ञो नरस्तात सात्त्विकीं वृत्तिमाश्रितः
तस्यैश्वर्यं च धैर्यं च व्यवसायश्च कर्मसु ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥६
बलिवासवसंवादं पुनरेव युधिष्ठिर ।
वृत्ते देवासुरे युद्धे दैत्यदानवसंक्षये ॥ ७
विष्णुक्रान्तेषु लोकेषु देवराजे शतक्रतौ ।
इज्यमानेषु देवेषु चातुर्वर्ण्ये व्यवस्थिते ॥ ८
समृद्धमाने त्रैलोक्ये प्रीतियुक्ते स्वयंभुवि ।
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यामपि चर्षिभिः ॥ ९
गन्धर्वैर्भुजगेन्द्रैश्च सिद्धैश्चान्यैर्वृतः प्रभुः ।
चतुर्दन्तं सुदान्तं च वारणेन्द्रं श्रिया वृतम् ।
आरुह्यैरावतं शक्रस्त्रैलोक्यमनुसंययौ ॥ १०
स कदाचित्समुद्रान्ते कस्मिंश्चिद्गिरिगह्वरे ।
बलिं वैरोचनिं वज्री ददर्शोपससर्प च । ११
तमैरावतमूर्धस्थं प्रेक्ष्य देवगणैर्वृतम् ।
सुरेन्द्रमिन्द्रं दैत्येन्द्रो न शुशोच न विव्यथे
दृष्ट्वा तमविकारस्थं तिष्ठन्तं निर्भयं बलिम् ।
अधिरूढो द्विपश्रेष्ठमित्युवाच शतक्रतुः ॥ १३
दैत्य न व्यथसे शौर्यादथवा वृद्धसेवया ।
तपसा भावितत्वाद्वा सर्वथैतत्सुदुष्करम् १४
शत्रुभिर्वशमानीतो हीनस्थानादनुत्तमात् ।
वैरोचने किमाश्रित्य शोचितव्ये न शोचसि
श्रैष्ठ्यं प्राप्य स्वजातीनां महाभोगाननुत्तमान्
हृतस्वरत्नराज्यस्त्वं ब्रूहि कस्मान्न शोचसि ॥
ईश्वरो हि पुरा भूत्वा पितृपैतामहे पदे ।
तत्त्वमद्य हृतं दृष्ट्वा सपत्नैः किं न शोचसि १७
बद्धश्च वारुणैः पाशैर्वज्रेण च समाहतः ।
हृतदारो हृतधनो ब्रूहि कस्मान्न शोचसि ॥
नष्टश्रीर्विभवभ्रष्टो
यन्न शोचसि दुष्करम् ।
त्रैलोक्यराज्यनाशे हि
कोऽन्यो जीवितुमुत्सहेत ॥ १९
एतच्चान्यच्च परुषं ब्रुवन्तं परिभूय तम् ।
श्रुत्वा सुखमसंभ्रान्तो बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ॥

बलिरुवाच ।

निगृहीते मयि भृशं शक्र किं कत्थितेन ते
वज्रमुद्यम्य तिष्ठन्तं पश्यामि त्वां पुरंदर २१
अशक्तः पूर्वमासीस्त्वं कथञ्चिच्छक्ततां गतः
कस्त्वदन्य इमां वाचं सुक्रूरां वक्तुमर्हति २२
यस्तु शत्रोर्वशस्थस्य शक्तोऽपि कुरुते दयाम्
हस्तप्राप्तस्य वीरस्य तं चैव पुरुषं विदुः ॥ २३
अनिश्चयो हि युद्धेषु द्वयोर्विवदमानयोः ।
एकः प्राप्नोति विजयमेकश्चैव पराजयम् २४
मा च तेऽभूत्स्वभावोऽयमिति ते देवपुङ्गव ।
ईश्वरः सर्वभूतानां विक्रमेण जितो बलात् ॥
नैतदस्मत्कृतं शक्र नैतच्छक्र कृतं त्वया ।
यत्त्वमेवंगतो वज्रिन्यद्वाऽप्येवंगता वयम् २६
अहमासं यथाऽद्य त्वं भविता त्वं यथा वयम्
माऽवमंस्था मया कर्म दुष्कृतं कृतमित्युत २७
सुखदुःखे हि पुरुषः पर्यायेणाधिगच्छति ।
पर्यायेणासि शक्रत्वं प्राप्तः शक्र न कर्मणा ॥
कालः काले नयति मां
त्वां च कालो नयत्ययम् ।
तेनाहं त्वं यथा नाद्य
त्वं चापि न यथा वयम् ॥ २९
न मातृपितृशुश्रूषा न च दैवतपूजनम् ।
नान्यो गुणसमाचारः पुरुषस्य सुखावहः ३०
न विद्या न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ३१
नागामिनमनर्थं हि प्रतिघातशतैरपि ।
शक्नुवन्ति प्रतिव्योढुमृते बुद्धिबलान्नराः ३२
पर्यायैर्हन्यमानानां परित्राता न विद्यते ।
इदं तु दुःखं यच्छक्र कर्ताऽहमिति मन्यसे ३३
यदि कर्ता भवेत्कर्ता न क्रियेत कदाचन ।
यस्मात्तु क्रियते कर्ता तस्मात्कर्ताप्यनीश्वरः
कालेनाहं त्वामजयं कालेनाहं जितस्त्वया ।
गन्ता गतिमतां कालः कालः कलयति प्रजाः
इन्द्र प्राकृतया बुद्ध्या प्रलयं नावबुद्ध्यसे ।
केचित्त्वां बहु मन्यन्ते श्रैष्ठ्यं प्राप्तं स्वकर्मणा
कथमस्मद्विधो नाम जानन् लोकप्रवृत्तयः ।
कालेनाभ्याहतः शोचेन्मुह्येद्वाऽप्यथ विभ्रमेत्
नित्यं कालपरीतस्य मम वा मद्विधस्य वा ।
बुद्धिर्व्यसनमासाद्य भिन्ना नौरिव सीदति ॥
अहं च त्वं च ये चान्ये भविष्यन्ति सुराधिपाः
ते सर्वे शक्र यास्यन्ति मार्गमिन्द्रशतैर्गतम्
त्वामप्येवं सुदुर्धर्षं ज्वलन्तं परया श्रिया ।
काले परिणते कालः कालयिष्यति मामिव
बहूनीन्द्रसहस्राणि दैवतानां युगे युगे ।
अभ्यतीतानि कालेन कालो हि दुरतिक्रमः
इदं तु लब्ध्वा संस्थानमात्मानं बहु मन्यसे ।
सर्वभूतभवं देवं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ॥ ४२

न चेदमचलं स्थानमनन्तं वाऽपि कस्यचित्
त्वं तु बालिशया बुद्ध्या ममेदमिति मन्यसे
अविश्वस्ते विश्वसिषि मन्यसे वाऽध्रुवे ध्रुवम्
नित्यं कालपरीतात्मा भवत्येवं सुरेश्वर ॥ ४४
ममेयमिति मोहात्त्वं राजश्रियमभीप्ससि ।
नेयं तव न चास्माकं न चान्येषां स्थिरा सदा

अतिक्रम्य बहूनन्यां-
स्त्वयि तावदियं गता ।
कञ्चित्कालमियं स्थित्वा
त्वयि वासव चञ्चला ॥ ४६

गौर्निवासमिवोत्सृज्य पुनरन्यं गमिष्यति ।
राजलोका ह्यतिक्रान्ता यान्न संख्यातुमुत्सहे
त्वत्तो बहुतराश्चान्ये भविष्यन्ति पुरंदर ।
सवृक्षौषधिरत्नेयं सहसत्ववनाकरा ॥ ४८
तानिदानीं न पश्यामि यैर्भुक्तेयं पुरा मही ।
पृथुरैलो मयो भीमो नरकः शंबरस्तथा ॥ ४९
अश्वग्रीवः पुलोमा च स्वर्भानुरमितध्वजः ।
प्रह्लादो नमुचिर्दक्षो विप्रचित्तिर्विरोचनः ५०
ह्रीनिषेवः सुहोत्रश्च भूरिहा पुष्पवान् वृषः ।
सत्येषुर्ऋषभो बाहुः कपिलाश्वो विरूपकः ५१
बाणः कार्तस्वरो वह्निर्विश्वदंष्ट्रोऽथ नैर्ऋतिः
संकोचोऽथ वरीताक्षो वराहाश्वो रुचिप्रभः
विश्वजित्प्रतिरूपश्च वृषाण्डो विष्करो मधुः ।
हिरण्यकशिपुश्चैव कैटभश्चैव दानवः ॥ ५३
दैतेया दानवाश्चैव सर्वे ते नैर्ऋतैः सह ।
एते चान्ये च बहवः पूर्वे पूर्वतराश्च ये ॥ ५४
दैत्येन्द्रा दानवेन्द्राश्च यांश्चान्याननुशुश्रुम ।
बहवः पूर्वदैत्येन्द्राः संत्यज्य पृथिवीं गताः
कालेनाभ्याहताः सर्वे कालो हि बलवत्तरः ।
सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं न त्वमेकः शतक्रतुः ॥ ५६
सर्वे धर्मपराश्चासन् सर्वे सततसत्रिणः ।
अन्तरिक्षचराः सर्वे सर्वेऽभिमुखयोधिनः ॥
सर्वे संहननोपेताः सर्वे परिघबाहवः ।
सर्वे मायाशतधराः सर्वे ते कामरूपिणः ५८
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते पराजिताः ।
सर्वे सत्यव्रतपराः सर्वे कामविहारिणः ५९
सर्वे वेदव्रतपराः सर्वे चैव बहुश्रुताः ।
सर्वे संमतमैश्वर्यमीश्वराः प्रतिपेदिरे ॥ ६०
न चैश्वर्यमदस्तेषां भूतपूर्वो महात्मनाम् ।
सर्वे यथार्हदातारः सर्वे विगतमत्सराः ६१
सर्वे सर्वेषु भूतेषु यथावत्प्रतिपेदिरे ।
सर्वे दाक्षायणीपुत्राः प्राजापत्या महाबलाः
ज्वलन्तः प्रतपन्तश्च कालेन प्रतिसंहृताः ।
त्वं चैवेमां यदा भुक्त्वा पृथिवीं त्यक्ष्यसे पुनः
न शक्ष्यसि तदा शक्र नियन्तुं शोकमात्मनः
मुञ्चेच्छां कामभोगेषु मुञ्चेमं श्रीभवं मदम् ॥
एवं स्वराज्यनाशे त्वं शोकं संप्रसहिष्यसि ।
शोककाले शुचो मा त्वं हर्षकाले च मा हृषः
अतीतानागतं हित्वा प्रत्युत्पन्नेन वर्तय ।
मां चेदभ्यागतः कालः सदा युक्तमतन्द्रितः
क्षमस्व न चिरादिन्द्र त्वामप्युपगमिष्यति ।
त्रासयन्निव देवेन्द्र वाग्भिस्तक्षसि मामिह ॥
संयते मयि नूनं त्वमात्मानं बहु मन्यसे ।
कालः प्रथममायान्मां पश्चात्त्वामनुधावति ॥
तेन गर्जसि देवेन्द्र पूर्वं कालहते मयि ।
को हि स्थातुमलं लोके मम क्रुद्धस्य संयुगे ॥
कालस्तु बलवान्प्राप्तस्तेन तिष्ठसि वासव ।
यत्तद्वर्षसहस्रान्तं पूर्णं भवितुमर्हति ॥ ७०

यथा मे सर्वगात्राणि
न सुस्थानि महौजसः ।
अहमैन्द्राच्च्युतः स्थाना-
त्त्वमिन्द्रः प्रकृतो दिवि ॥ ७१
सुचित्रे जीवलोकेऽस्मि-
न्नुपास्यः कालपर्ययात् ।
किं हि कृत्वा त्वमिन्द्रोऽद्य
किं वा कृत्वा वयं च्युताः ॥ ७२

कालः कर्ता विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम् ।
नाशं विनाशमैश्वर्यं सुखं दुःखं भवाभवौ ७३
विद्वान्प्राप्यैवमत्यर्थं न प्रहृष्येन्न च व्यथेत् ।
त्वमेव हीन्द्र वेत्थास्मान्वेदाहं त्वां च वासव
किं कत्थसे मां किं च त्वं कालेन निरपत्रप
त्वमेव हि पुरा वेत्थ यत्तदा पौरुषं मम ॥ ७५
समरेषु च विक्रान्तं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ।
आदित्याश्चैव रुद्राश्च साध्याश्च वसुभिः सह
मया विनिर्जिताः पूर्वं मरुतश्च शचीपते ।
त्वमेव शक्र जानासि देवासुरसमागमे ७७
समेता विबुधा भग्नास्तरसा समरे मया ।
पर्वताश्चासकृत्क्षिप्ताः सवनाः सवनौकसः ॥
सटंकशिखरा भग्नाः समरे मूर्ध्नि ते मया ।
किं न शक्यं मया कर्तुं कालो हि दुरतिक्रमः
न हि त्वां नोत्सहे हन्तुं सवज्रमपि मुष्टिना
न तु विक्रमकालोऽयं क्षमाकालोऽयमागतः

तेन त्वां मर्षये शक्र दुर्मर्षणतरस्त्वया।
तं मां परिणते काले परीतं कालवन्हिना ८१
नियतं कालपाशेन बद्धं शक्र विकत्थसे।
अयं स पुरुषः श्यामो लोकस्य दुरतिक्रमः॥
बद्धा तिष्ठन्ति मां रौद्रः
पशुं रशनया यथा।
लाभालाभौ सुखं दुःखं
कामक्रोधौ भवाभवौ॥ ८३
वधबन्धप्रमोक्षं च सर्वं कालेन लभ्यते।
नाहं कर्ता न कर्ता त्वं कर्ता यस्तु सदा प्रभुः
सोऽयं पचति कालो मां वृक्षे फलमिवागतम्
यान्येव पुरुषः कुर्वन् सुखैः कालेन युज्यते ८५
पुनस्तान्येव कुर्वाणो दुःखैः कालेन युज्यते।
न च कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हति॥
तेन शक्र न शोचामि नास्ति शोके सहायता
यदा हि शोचतः शोको व्यसनं नापकर्षति
सामर्थ्यं शोचतो नास्ती-
त्यतोऽहं नाद्य शोचिमि।
एवमुक्तः सहस्राक्षो
भगवान्पाकशासनः॥ ८८
प्रतिसंहृत्य संरंभमित्युवाच शतक्रतुः।
सवज्रमुद्यतं बाहुं दृष्ट्वा पाशांश्च वारुणान् ८९
कस्येह न व्यथेद्बुद्धिर्मृत्योरपि जिघांसतः।
सा ते न व्यथते बुद्धिरचला तत्त्वदर्शिनी ९०
ध्रुवं न व्यथसेऽद्य त्वं धैर्यात्सत्यपराक्रम।
को हि विश्वासमर्थेषु शरीरे वा शरीरभृत्॥
कर्तुमुत्सहते लोके दृष्ट्वा संप्रस्थितं जगत्।
अहमप्येवमेवैनं लोकं जानाम्यशाश्वतम् ९२
कालाग्नावाहितं घोरे गुह्ये सततगेऽक्षरे।
न चात्र परिहारोऽस्ति कालस्पृष्टस्य कस्यचित्
सूक्ष्माणां महतां चैव भूतानां परिपच्यताम्।
अनीशस्याप्रमत्तस्य भूतानि पचतः सदा ९४
अनिवृत्तस्य कालस्य क्षयं प्राप्तो न मुच्यते।
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु कालो जागर्ति देहिषु ९५
प्रयत्नेनाप्यपक्रान्तो दृष्टपूर्वो न केनचित्।
पुराणः शाश्वतो धर्मः सर्वप्राणभृतां समः ९६
कालो न परिहार्यश्च
न चास्यास्ति व्यतिक्रमः।
अहोरात्रांश्च मासांश्च
क्षणान्काष्ठा लवान्कलाः॥ ९७
संपीडयति यः कालो वृद्धिं वार्धुषिको यथा
इदमद्य करिष्यामि श्वः कर्ताऽस्मीति वादिनम्
कालो हरति संप्राप्तो नदीवेग इव द्रुमम्।
इदानीं तावदेवासौ मया दृष्टः कथं मृतः ९९
इति कालेन ह्रियतां प्रलापः श्रूयते नृणाम्।
नश्यन्त्यर्थास्तथा भोगाः स्थानमैश्वर्यमेव च॥
जीवितं जीवलोकस्य
कालेनागम्य नीयते।
उच्छ्राया विनिपातान्ता
भावोऽभावः स एव च॥
अनित्यमध्रुवं सर्वं व्यवसायो हि दुष्करः।
सा ते न व्यथते बुद्धिरचला तत्त्वदर्शिनी २
अहमासं पुरा चेति
मनसाऽपि न बुद्ध्यते।
कालेनाक्रम्य लोकेऽस्मिन्
पच्यमाने बलीयसा॥ ३
अज्येष्ठमकनिष्ठं च क्षिप्यमाणो न बुद्ध्यते।
ईर्ष्याभिमानलोभेषु कामक्रोधभयेषु च॥ ४
स्पृहामोहाभिमानेषु लोकः सक्तो विमुह्यति
भवांस्तु भावतत्त्वज्ञो विद्वान् ज्ञानतपोन्वितः
कालं पश्यति सुव्यक्तं पाणावामलकं यथा।
कालचारित्रतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥ ६
विवेचने कृतात्मासि स्पृहणीयो विजानताम्
सर्वलोको ह्ययं मन्ये बुद्ध्या परिगतस्त्वया
विहरन्सर्वतो मुक्तो न क्वचित्परिषज्जते।
रजश्च हि तमश्च त्वां स्पृशते न जितेन्द्रियम्
निष्प्रीतिं नष्टसन्तापमात्मानं त्वमुपाससे।
सुहृदं सर्वभूतानां निर्वैरं शान्तमानसम्॥ ९
दृष्ट्वा त्वां मम संजाता त्वय्यनुक्रोशिनी मतिः
नाहमेतादृशं बुद्धं हन्तुमिच्छामि बन्धने १०
आनृशंस्यं परो धर्मो ह्यनुक्रोशश्च मे त्वयि।
मोक्ष्यन्ते वारुणाः पाशास्तवेमे कालपर्ययात्
प्रजानामुपचारेण स्वस्ति तेऽस्तु महासुर।
यदा श्वश्रूं स्नुषां वृद्धां परिचारेण योक्ष्यते॥
पुत्रश्च पितरं मोहात्प्रेषयिष्यति कर्मसु।
ब्राह्मणैः कारयिष्यन्ति वृषलाः पादधावनम्
शूद्राश्च ब्राह्मणीं भार्यामुपयास्यन्ति निर्भयाः
वियोनिषु विमोक्ष्यन्ति बीजानि पुरुषा यदा
सङ्करं कांस्यभाण्डैश्च बलिं चैव कुपात्रकैः।
चातुर्वर्ण्यं यदा कृत्स्नममर्यादं भविष्यति १५
एकैकस्ते तदा पाशः क्रमशः परिमोक्ष्यते।
अस्मत्तस्ते भयं नास्ति समयं प्रतिपालय।
सुखी भव निराबाधः स्वस्थचेता निरामयः॥

तमेवमुक्त्वा भगवाञ्छतक्रतुः
प्रतिप्रयातो गजराजवाहनः।
विजित्य सर्वानसुरान्सुराधिपो
ननन्द हर्षेण बभूव चैकराट् ॥ ११७
महर्षयस्तुष्टुवुरञ्जसा च तं
वृषाकपिं सर्वचराचरेश्वरम्।
हिमापहो हव्यमुवाह चाध्वरे
तथाऽमृतं चार्पितमीश्वरोऽपि हि ११८
द्विजोत्तमैः सर्वगतैरभिष्टुतो
विदीप्ततेजा गतमन्युरीश्वरः।
प्रशान्तचेता मुदितः स्वमालयं
त्रिविष्टपं प्राप्य मुमोद वासवः ११९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि बलिवासवसंवादे
सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

---

## २२८–[५५]

युधिष्ठिर उवाच ।
पूर्वरूपाणि मे राजन् पुरुषस्य भविष्यतः ।
पराभविष्यतश्चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।
भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥ २
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
श्रिया शक्रस्य संवादं तं निबोध युधिष्ठिर ३
महतस्तपसो व्युष्ट्या पश्यँल्लोकौ परावरौ ।
सामान्यमृषिभिर्गत्वा ब्रह्मलोकनिवासिभिः
ब्रह्मेवामितदीप्तौजाः शान्तपाप्मा महातपाः
विचचार यथाकामं त्रिषु लोकेषु नारदः ५
कदाचित्प्रातरुत्थाय पिस्पृक्षुः सलिलं शुचि
ध्रुवद्वारभवां गङ्गां जगामावततार च ॥ ६
सहस्रनयनश्चापि वज्री शम्बरपाकहा ।
तस्या देवर्षिजुष्टायास्तीरमभ्याजगाम ह ॥७
तावाप्लुत्य यतात्मानौ कृतजप्यौ समासतः ।
नद्याः पुलिनमासाद्य सूक्ष्मकाञ्चनवालुकम् ८
पुण्यकर्मभिराख्याता देवर्षिकथिताः कथाः ।
चक्रतुस्तौ तथाऽऽसीनौ महर्षिकथितास्तथा
पूर्ववृत्तव्यपेतानि कथयन्तौ समाहितौ ।
अथ भास्करमुद्यन्तं रश्मिजालपुरस्कृतम् १०
पूर्णमण्डलमालोक्य तावुत्थायोपतस्थतुः ।
अभितस्तूदयन्तं तमर्कमर्कमिवापरम् ॥ ११
आकाशे ददृशे ज्योतिरुद्यतार्चिः समप्रभम् ।
तयोः समीपं तं प्राप्तं प्रत्यदृश्यत भारत १२
तत्सुपर्णार्करचितमास्थितं वैष्णवं पदम् ।
भाभिरप्रतिमं भाति त्रैलोक्यमवभासयत् १३
तत्राभिरूपशोभाभिरप्सरोभिः पुरस्कृताम् ।
बृहतीमंशुमत्प्रख्यांबृहद्भानोरिवार्चिषम् १४
नक्षत्रकल्पाभरणां तां मौक्तिकसमस्रजम् ॥
श्रियं ददृशतुः पद्मां साक्षात्पद्मदलस्थिताम् ।
साऽवरुह्य विमानाग्रादङ्गनानामनुत्तमा १७
अभ्यागच्छत्त्रिलोकेशं देवर्षिं चापि नारदम्
नारदानुगतः साक्षान्मघवांस्तामुपागमत् ।
कृताञ्जलिपुटो देवीं निवेद्यात्मानमात्मना १७
चक्रे चानुपमां पूजां तस्याश्चापि स सर्ववित्
देवराजः श्रियं राजन् वाक्यं चेदमुवाच ह
शक्र उवाच ।
का त्वं केन च कार्येण संप्राप्ता चारुहासिनि
कुतश्चागम्यते सुभ्रु गन्तव्यं क्व च ते शुभे १९
श्रीरुवाच ।
पुण्येषु त्रिषु लोकेषु सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
ममात्मभावमिच्छन्तो यतन्ते परमात्मना २०
साऽहं वै पङ्कजे जाता सूर्यरश्मिविबोधिते ।
भूत्यर्थं सर्वभूतानां पद्मा श्रीः पद्ममालिनी २१
अहं लक्ष्मीरहं भूतिः श्रीश्चाहं बलसूदन ।
अहं श्रद्धा च मेधा च सन्नतिर्विजितिः स्थितिः
अहं धृतिरहं सिद्धिरहं त्वद्भूतिरेव च ।
अहं स्वाहा स्वधा चैव सन्नतिर्नियतिः स्मृतिः
राज्ञां विजयमानानां सेनाग्रेषु ध्वजेषु च ।
निवासे धर्मशीलानां विषयेषु पुरेषु च ॥ २४

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २२७

२२८
पूर्वरूपाणीति ॥ १ ॥

जितकाशिनि शूरे च संग्रामेष्वनिवर्तिनि ।
निवसामि मनुष्येन्द्रे सदैव बलसूदन ॥ २५
धर्मनित्ये महाबुद्धौ ब्रह्मण्ये सत्यवादिनि ।
प्रश्रिते दानशालि च सदैव निवसाम्यहम् २६
असुरेष्ववसं पूर्वं सत्यधर्मनिबन्धना ।
विपरीतांस्तु तान् बुध्वा त्वयि वासमरोचयम्
शक्र उवाच ।
कथं वृत्तेषु दैत्येषु त्वमवात्सीर्वरानने ।
दृष्ट्वा च किमिहागास्त्वं हित्वा दैतेयदानवान्
श्रीरुवाच ।
स्वधर्ममनुतिष्ठत्सु धैर्यादचलितेषु च ।
स्वर्गमार्गाभिरामेषु सत्त्वेषु निरता ह्यहम् २९
दानाध्ययनयज्ञेज्यापितृदैवतपूजनम् ।
गुरूणामतिथीनां च तेषां सत्यमवर्तत ॥ ३०
सुसंमृष्टगृहाश्चासन् जितस्त्रीका हुताग्नयः ।
गुरुशुश्रूषका दान्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥
श्रद्दधाना जितक्रोधा दानशीलाऽनसूयवः ।
भृतपुत्रा भृतामात्या भृतदारा ह्यनीर्षवः ३२
अमर्षेण न चान्योन्यं स्पृहयन्ते कदाचन ।
न च जातूपतप्यन्ति धीराः परसमृद्धिभिः ॥
दातारः संगृहीतार आर्याः करुणवेदिनः ।
महाप्रसादा ऋजवो दृढभक्ता जितेन्द्रियाः
संतुष्टभृत्यसचिवाः कृतज्ञाः प्रियवादिनः ।
यथार्हमानार्थकरा ह्रीनिषेवा यतव्रताः ३५
नित्यं पर्वसु सुस्नाताः स्वनुलिप्ताः स्वलंकृताः ।
उपवासतपःशीलाः प्रतीता ब्रह्मवादिनः ३६
नैनानभ्युदियात्सूर्यो न चाप्यासन् प्रगेशयाः
रात्रौ दधि च सक्तूंश्च नित्यमेव व्यवर्जयन् ॥
कल्यं घृतं चान्ववेक्षन्प्रयता ब्रह्मवादिनः ।
मङ्गल्यान्यपि चापश्यन् ब्राह्मणांश्चाप्यपूजयन्
सदा हि वदतां धर्मं सदा चाप्रतिगृह्णताम् ।
अर्धं च रात्र्याः स्वपतां दिवा चास्वपतां तथा
कृपणानाथवृद्धानां दुर्बलातुरयोषिताम् ।
दयां च संविभागं च नित्यमेवान्वमोदताम्
त्रस्तं विषण्णमुद्विग्नं भयार्तं व्याधितं कृशम् ।
हृतस्वं व्यसनार्तं च नित्यमाश्वासयन्ति ते
धर्ममेवान्ववर्तन्त न हिंसन्ति परस्परम् ।
अनुकूलाश्च कार्येषु गुरुवृद्धोपसेविनः ॥ ४२
पितॄन्देवातिथींश्चैव यथावत्तेऽभ्यपूजयन् ।
अवशेषाणि चाश्नन्ति नित्यं सत्यतपोधृताः
नैकेऽश्नन्ति सुसम्पन्नं न गच्छन्ति परस्त्रियम्
सर्वभूतेष्ववर्तन्त यथाऽऽत्मनि दयां प्रति४४
नैवाकाशे न पशुषु वियोनौ च न पर्वसु ।
इन्द्रियस्य विसर्गं ते रोचयन्ति कदाचन ४५
नित्यं दानं तथा दाक्ष्यमार्जवं चैव नित्यदा
उत्साहोऽथानहंकारः परमं सौहृदं क्षमा ४६
सत्यं दानं तपः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्रेषु चानभिद्रोहः सर्वं तेष्वभवत्प्रभो ४७
निद्रा तन्द्रीरसंप्रीतिरसूयाथानवेक्षिता ।
अरतिश्च विषादश्च स्पृहा चाप्यविशन्न तान्
साऽहमेवंगुणेष्वेव दानवेष्ववसं पुरा ।
प्रजासर्गमुपादाय नैकं युगविपर्ययम् ॥ ४९
ततः कालविपर्यासे तेषां गुणविपर्ययात् ।
अपश्यं निर्गतं धर्मं कामक्रोधवशात्मनाम्५०
सभासदां च वृद्धानां सतां कथयतां कथाः
प्राहसन्नभ्यसूयंश्च सर्ववृद्धान्गुणावराः ॥ ५१
युवानश्च समासीना वृद्धानपि गतान्सतः ।
नाभ्युत्थानाभिवादाभ्यां यथापूर्वमपूजयन् ॥
वर्तयन्त्येव पितरि पुत्राः प्रभवते तथा ।
अभृत्या भृत्यतां प्राप्य ख्यापयन्त्यनपत्रपाः
तथा धर्मादपेतेन कर्मणा गर्हितेन ये ।
महतः प्राप्नुवन्त्यर्थांस्तेषां तत्राभवत्स्पृहा ५४
उच्चैश्चाभ्यवदन् रात्रौ नीचैस्तत्राग्निरज्वलत
पुत्राः पितॄनत्यचरन्नार्यश्चात्यचरन् पतीन् ५५
मातरं पितरं वृद्धमाचार्यमतिथिं गुरुम् ।
गुरुत्वान्नाभ्यनन्दन्त कुमारान्नान्वपालयन्५६
भिक्षां बलिमदत्वा च स्वयमन्नानि भुञ्जते ।
अनिष्ट्वाऽसंविभज्याथ पितृदेवातिथीन् गुरून्
न शौचमनुरुध्यन्त तेषां सूदजनास्तथा ।
मनसा कर्मणा वाचा भक्ष्यमासीदनावृतम
विप्रकीर्णानि धान्यानि काकमूषिकभोजनम
अपावृतं पयोऽतिष्ठदुच्छिष्टाश्चास्पृशन् घृतम
कुद्दालं दात्रपिटकं प्रकीर्णं कांस्यभाजनम् ।
द्रव्योपकरणं सर्वं नान्ववैक्षत्कुटुम्बिनी ६०
प्राकारागारविध्वंसान्न स्म ते प्रतिकुर्वते ।
नाद्रियन्ते पशून्बध्वा यवसेनोदकेन च ६१
बालानां प्रेक्षमाणानां स्वयं भक्ष्यमभक्षयन् ।
तथा भृत्यजनं सर्वमसंतर्प्य च दानवाः ६२
पायसं कृसरं मांसमपूपानथ शष्कुलीः ।
अपाचयन्नात्मनोऽर्थे वृथामांसान्यभक्षयन् ॥
उत्सूर्यशायिनश्चासन् सर्वे चासन् प्रगेनिशाः
अवर्तन्कलहाश्चात्र दिवारात्रं गृहे गृहे ॥ ६४

अनार्याश्चार्यमासीनं पर्युपासन्न तत्र ह ।
आश्रमस्थान् विधर्मस्थाः प्राद्विषन्त परस्परम्
सङ्कराश्चाभ्यवर्तन्त न च शौचमवर्तत ।
ये च वेदविदो विप्रा विस्पष्टमनृचश्च ये ६६
निरन्तरविशेषास्ते बहुमानावमानयोः ।
हारमाभरणं वेषं गतं स्थितमवेक्षितम् ॥ ६७
असेवन्त भुजिष्या वै दुर्जनाचरितं विधिम्
स्त्रियः पुरुषवेषेण पुंसः स्त्रीवेषधारिणः ॥ ६८
क्रीडारतिविहारेषु परां मुदमवाप्नुवन् ।
प्रभवद्भिः पुरा दायानर्हेभ्यः प्रतिपादितान्
नाभ्यवर्तन्त नास्तिक्याद्वर्तन्तः सम्भवेष्वपि
मित्रेणाभ्यर्थितं मित्रमर्थसंशयिते क्वचित् ७०
वालकोट्यग्रमात्रेण स्वार्थेनाघ्नत तद्वसु ।
परस्वादानरुचयो विपणव्यवहारिणः ॥ ७१
अदृश्यन्तार्यवर्णेषु शूद्राश्चापि तपोधनाः ।
अधीयन्तेऽव्रताः केचिद्वृथा व्रतमथापरे ॥७२
अशुश्रूषुर्गुरोः शिष्यः कश्चिच्छिष्यसखो गुरुः
पिता चैव जनित्री च श्रान्तौ वृत्तोत्सवाविव
अप्रभुत्वे स्थितौ वृद्धावन्नं प्रार्थयतः सुतान् ॥
तत्र वेदविदः प्राज्ञा गांभीर्ये सागरोपमाः ७४
कृष्यादिष्वभवन्सक्ता मूर्खाः श्राद्धान्यभुञ्जत
प्रातः प्रातश्च सुप्रश्नं कल्पनं प्रेषणक्रियाः ७५
शिष्यानप्रहितास्तेषामकुर्वन् गुरवः स्वयम् ।
श्वश्रूश्वशुरयोरग्रे वधूः प्रेष्यानशासत ॥ ७६
अन्वशासच्च भर्तारं समाह्वायाभिजल्पति ।
प्रयत्नेनापि चारक्षच्चित्तं पुत्रस्य वै पिता ७७
व्यभजच्चापि संरम्भाद्दुःखवासं तथाऽवसत् ।
अग्निदाहेन चोरैर्वा राजभिर्वा हृतं धनम् ७८
दृष्ट्वा द्वेषात्प्राहसन्त सुहृत्सम्भाविता ह्यपि ।
कृतघ्ना नास्तिकाः पापा गुरुदाराभिमर्शिनः
अभक्ष्यभक्षणरता निर्मर्यादा हतत्विषः ।
तेष्वेवमादीनाचारानाचरत्सु विपर्यये ॥ ८०
नाहं देवेन्द्र वत्स्यामि दानवेष्विति मे मतिः
तन्मां स्वयमनुप्राप्तामभिनन्द शचीपते ॥ ८१
त्वयाऽर्चितां मां देवेश पुरो धास्यन्ति देवताः
यत्राहं तत्र मत्कान्ता मद्विशिष्टा मदर्पणाः ॥

सप्त देव्यो जयाद्यष्ट्यो
वासमेष्यन्ति तेऽष्टधा ।
आशा श्रद्धा धृतिः क्षान्ति-
र्विजितिः सन्नतिः क्षमा ॥ ८३

अष्टमी वृत्तिरेतासां पुरोगा पाकशासन ।
ताश्चाहं चासुरांस्त्यक्त्वा युष्मद्विषयमागताः
त्रिदशेषु निवत्स्यामो धर्मनिष्ठान्तरात्मसु ।
इत्युक्तवचनां देवीं प्रीत्यर्थं च ननन्दतुः ॥ ८५
नारदश्चात्र देवर्षिर्वृत्रहन्ता च वासवः ।
ततोऽनलसखो वायुः प्रववौ देववर्त्मसु ८६
इष्टगन्धः सुखस्पर्शः सर्वेन्द्रियसुखावहः ।

शुचौ वाऽभ्यर्थिते देशे
त्रिदशाः प्रायशः स्थिताः ॥ ८७

लक्ष्मीसहितमासीनं मघवन्तं दिदृक्षवः ८८

ततो दिवं प्राप्य सहस्रलोचनः
श्रियोपपन्नः सुहृदा महर्षिणा ।
रथेन हर्यश्वयुजा सुरर्षभः
सदः सुराणामभिसत्कृतो ययौ ८९
अथेङ्गितं वज्रधरस्य नारदः
श्रियश्च देव्या मनसा विचारयन् ।
श्रियै शशंसामरदृष्टपौरुषः
शिवेन तत्रागमनं महर्षिभिः ॥ ९०
ततोऽमृतं द्यौः प्रववर्ष भास्वती
पितामहस्यायतने स्वयंभुवः ।
अनाहता दुंदुभयोऽथ नेदिरे
तथा प्रसन्नाश्च दिशश्चकाशिरे ॥ ९१
यथर्तु सस्येषु ववर्ष वासवो
न धर्ममार्गाद्विचचाल कश्चन ।
अनेकरत्नाकरभूषणा च भूः
सुघोषघोषा भुवनौकसां जये ॥ ९२
क्रियाभिरामा मनुजा मनस्विनो
बभुः शुभे पुण्यकृतां पथि स्थिताः ।
नरामराः किन्नरयक्षराक्षसाः
समृद्धिमन्तः सुमनस्विनोऽभवन् ९३
न जात्वकाले कुसुमं कुतः फलं
पपात वृक्षात्पवनेरितादपि ।
रसप्रदाः कामदुघाश्च धेनवो
न दारुणा वाग्विचचार कस्यचित्
इमां सपर्यां सह सर्वकामदैः
श्रियाश्च शक्रप्रमुखैश्च दैवतैः ।
पठन्ति ये विप्रसदः समागताः
समृद्धकामाः श्रियमाप्नुवन्ति ते ९५
त्वया कुरूणां वर यत्प्रचोदितं
भवाभवस्येह परं निदर्शनम् ।
तदद्य सर्वं परिकीर्तितं मया
परीक्ष्य तत्त्वं परिगन्तुमर्हसि ९६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि श्री-वासवसंवादो नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥

## २२९-[५६]

युधिष्ठिर उवाच ।
किंशीलः किंसमाचारः
किंविद्यः किंपराक्रमः ।
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं
यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ १

भीष्म उवाच ।
मोक्षधर्मेषु नियतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं तत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् २
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
जैगीषव्यस्य संवादमसितस्य च भारत ३
जैगीषव्यं महाप्रज्ञं धर्माणामागतागमम् ।
अक्रुध्यन्तमहृष्यन्तमसितो देवलोऽब्रवीत् ४

देवल उवाच ।
न प्रीयसे वंद्यमानो निन्द्यमानो न कुप्यसे
का ते प्रज्ञा कुतश्चैषा किं ते तस्याः परायणम्

भीष्म उवाच ।
इति तेनानुयुक्तः स तमुवाच महातपाः ।
महद्वाक्यमसंदिग्धं पुष्कलार्थपदं शुचि ॥ ६

जैगीषव्य उवाच ।
या गतिर्या परा काष्ठा
या शान्तिः पुण्यकर्मणाम् ।
तां तेऽहं संप्रवक्ष्यामि
महतीमृषिसत्तम ॥ ७
निन्दत्सु च समा नित्यं प्रशंसत्सु च देवल ।
निन्हवन्ति च ये तेषां समयं सुकृतं च यत् ८
उक्ताश्च न वदिष्यन्ति वक्तारमहिते हितम्
प्रतिहन्तुं न चेच्छन्ति हन्तारं वै मनीषिणः९
नाप्राप्तमनुशोचन्ति प्राप्तकालानि कुर्वते ।
न चातीतानि शोचन्ति न चैव प्रतिजानते
संप्राप्तायां च पूजायां कामादर्थेषु देवल ।
यथोपपत्तिं कुर्वन्ति शक्तिमन्तः कृतव्रताः ११

पक्वविद्या महाप्राज्ञा
जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
मनसा कर्मणा वाचा
नापराध्यन्ति कर्हिचित् ॥ १२
अनीर्षवो न चान्योन्यं विहिंसन्ति कदाचन
न च जातूपतप्यन्ते धीराः परसमृद्धिभिः ॥
निन्दाप्रशंसे चात्यर्थं न वदन्ति परस्य ये ।
न च निन्दाप्रशंसाभ्यां विक्रियन्ते कदाचन
सर्वतश्च प्रशान्ता ये
सर्वभूतहिते रताः ।
न क्रुद्ध्यन्ति न हृष्यन्ति
नापराध्यन्ति कर्हिचित् ॥ १५
विमुच्य हृदयग्रन्थिं
चंक्रमन्ति यथासुखम् ।
न येषां बान्धवाः सन्ति
ये चान्येषां न बान्धवाः ॥ १६
अमित्राश्च न सन्त्येषां
ये चामित्रा न कस्यचित् ।
य एवं कुर्वते मर्त्याः
सुखं जीवन्ति सर्वदा ॥ १७
ये धर्मं चानुरुद्ध्यन्ते धर्मज्ञा द्विजसत्तम ।
ये ह्यतो विच्युता मार्गात्ते हृष्यन्त्युद्विजन्ति च
आस्थितस्तमहं मार्गमसूयिष्यामि कं कथम् ।
निन्द्यमानः प्रशस्तो वा हृष्येऽहं केन हेतुना
यद्यदिच्छन्ति तत्तस्मादपि गच्छन्तु मानवाः
न मे निन्दाप्रशंसाभ्यां ह्रासवृद्धी भविष्यतः
अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य तत्त्ववित् ।
विषस्येवोद्विजेन्नित्यं संमानस्य विचक्षणः
अवज्ञातः सुखं शेते इह चामुत्र चाभयम् ।
विमुक्तः सर्वदोषेभ्यो योऽवमन्ता स बुध्यते

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २२८

२२९
किंशील इति ॥ १ ॥

परां गतिं च ये केचित्प्रार्थयन्ति मनीषिणः
एतद्व्रतं समाहृत्य सुखमेधन्ति ते जनाः २३
सर्वतश्च समाहृत्य क्रतून् सर्वान् जितेन्द्रियः
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् २४
नास्य देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः
पदमन्ववरोहन्ति प्राप्तस्य परमां गतिम् २५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जैगीषव्यासितसंवादे ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

## २३०–[५७]

युधिष्ठिर उवाच ।
प्रियः सर्वस्य लोकस्य सर्वसत्त्वाभिनन्दिता
गुणैः सर्वैरुपेतश्च को न्वस्ति भुवि मानवः १
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि पृच्छतो भरतर्षभ ।
उग्रसेनस्य संवादं नारदे केशवस्य च ॥ २
उग्रसेन उवाच ।
यस्य संकल्पते लोको नारदस्य प्रकीर्तने ।
मन्ये स गुणसंपन्नो ब्रूहि तन्मम पृच्छतः ॥ ३
वासुदेव उवाच ।
कुकुराधिप यान्मन्ये शृणु तान्मे विवक्षतः
नारदस्य गुणान् साधून् संक्षेपेण नराधिप ४
न चारित्रनिमित्तोऽस्याहंकारो देहतापनः ।
अभिन्नश्रुतचारित्रस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ५
अरतिक्रोधचापल्ये भयं नैतानि नारदे ।
अदीर्घसूत्रः शूरश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ६
उपास्यो नारदो बाढं वाचि नास्य व्यतिक्रमः
कामतो यदि वा लोभात्तस्मात्सर्वत्र पूजितः
अध्यात्मविधितत्त्वज्ञः
क्षान्तः शक्तो जितेन्द्रियः ।
ऋजुश्च सत्यवादी च
तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ८
तेजसा यशसा बुद्ध्या ज्ञानेन विनयेन च ।
जन्मना तपसा वृद्धस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ९
सुशीलः सुखसंवेशः सुभोजः स्वादरः शुचिः
सुवाक्यश्चाप्यनीर्ष्यश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः
कल्याणं कुरुते बाढं पापमस्मिन्न विद्यते ।
न प्रीयते परानर्थैस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ११
वेदश्रुतिभिराख्यानैरर्थानभिजिगीषति ।
तितिक्षुरनवज्ञातस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः १२
समत्वाच्च प्रियो नास्ति नाप्रियश्च कथञ्चन ।
मनोनुकूलवादी च तस्मात्सर्वत्र पूजितः १३
बहुश्रुतश्चित्रकथः पण्डितोऽलालसोऽशठः ।
अदीनोऽक्रोधनोऽलुब्धस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः
नार्थे धने वा कामे वा
भूतपूर्वोऽस्य विग्रहः ।
दोषाश्चास्य समुच्छिन्ना-
स्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १५
दृढभक्तिरनिन्द्यात्मा श्रुतवाननृशंसवान् ।
वीतसंमोहदोषश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः १६
असक्तः सर्वसंगेषु सक्तात्मेव च लक्ष्यते ।
अदीर्घसंशयो वाग्मी तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥
समाधिर्नास्य कामार्थे
नात्मानं स्तौति कर्हिचित् ।
अनीर्षुर्मृदुसंवाद-
स्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १८
लोकस्य विविधं चित्तं प्रेक्षते चाप्यकुत्सयन्
संसर्गविद्याकुशलस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः १९
नासूयत्यागमं कञ्चित्स्वनयेनोपजीवति ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा तस्मात्सर्वत्र पूजितः
कृतश्रमः कृतप्रज्ञो न च तृप्तः समाधितः ।
नित्ययुक्तोऽप्रमत्तश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः २१
नापत्रपश्च युक्तश्च नियुक्तः श्रेयसे परैः ।
अभेत्ता परगुह्यानां तस्मात्सर्वत्र पूजितः २२
न हृष्यत्यर्थलाभेषु नालाभे तु व्यथत्यपि ।
स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तस्मात्सर्वत्र पूजितः२३
तं सर्वगुणसंपन्नं दक्षं शुचिमनामयम् ।
कालज्ञं च प्रियज्ञं च कः प्रियं न करिष्यति ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥

२३०

प्रिय इति ॥ १ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वासुदेवोग्रसेनसंवादे त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

## २३१-[५८]

युधिष्ठिर उवाच ।
आद्यं तं सर्वभूतानां ज्ञातुमिच्छामि कौरव
ध्यानं कर्म च कालं च तथैवायुर्युगे युगे ॥ १
लोकतत्त्वं च कार्त्स्न्येन भूतानामागतिं गतिम्
सर्गश्च निधनं चैव कुत एतत्प्रवर्तते ॥ २
यदि तेऽनुग्रहे बुद्धिरस्मास्विह सतां वर ।
एतद्भवन्तं पृच्छामि तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३
पूर्वं हि कथितं श्रुत्वा भृगुभाषितमुत्तमम् ।
भरद्वाजस्य विप्रर्षेस्ततो मे बुद्धिरुत्तमा ॥ ४
जाता परमधर्मिष्ठा दिव्यसंस्थानसंस्थिता ।
ततो भूयस्तु पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ५

भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
जगौ यद्भगवान्व्यासः पुत्राय परिपृच्छते ६
अधीत्य वेदानखिलान् सांगोपनिषदस्तथा ।
अन्विच्छन्नैष्ठिकं कर्म धर्मनैपुणदर्शनात् ॥ ७
कृष्णद्वैपायनं व्यासं पुत्रो वैयासकिः शुकः ।
पप्रच्छ संदेहमिमं छिन्नधर्मार्थसंशयम् ॥ ८
श्रीशुक उवाच ।
भूतग्रामस्य कर्तारं कालज्ञानेन निष्ठितम् ।
ब्राह्मणस्य च यत्कृत्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ९

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

२३१

एवं नानाख्यानमुखेनोक्तं अधिकारिणः स्वरूपं श्रुत्वाऽऽत्मनि तत्त्वज्ञानाधिकारं पश्यन् भृगुभरद्वाजसंवादादौ पूर्वं संक्षेपेण श्रुतमेवार्थं विस्तरेण श्रोतुमिच्छन् युधिष्ठिर उवाच-**आद्यन्तमिति**। आदिं संसारहेतुं अन्तं लयस्थानम्। भूतानां जीवानां अभिन्ननिमित्तोपादानत्वसूचनार्थः समासः साक्षाच्चोभयाम्नानात्। तदात्मानꣳस्वयमकुरुतेति न्यायेन श्रुत्या च ब्रह्मणस्तथात्वप्रतिपादनात्। किंलक्षणं ब्रह्मेति ध्यानकर्मणी तत्प्राप्तौ अन्तरङ्गबहिरङ्गसाधने। कालं—

**'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्' इति** श्रुतिप्रसिद्धं चतुर्विधं जीवं लोकतत्त्वं लोकस्य वास्तवं रूपम्। भूतानां वियदादीनाम्। आगतिं उद्गमस्थानम्। गतिं प्रवेशस्थानमूर्णनाभिमिव तन्तुजालस्य तदेतत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि। श्रुत्यर्थस्तु-**शयानः** अविद्यावृतः पुमान्कलिरित्युच्यते। **संजिहानः** विषयेषु जातवैराग्यः सन् अविद्यां सम्यक् हातुमिच्छन् मुमुक्षुर्द्वापर इत्युच्यते। **उत्तिष्ठन्** शमाद्यनुष्ठानाय सज्जीभवन् त्रेतेत्युच्यते। **चरन्** शमादिकमाचरन्कृतं कृतयुगं भवति पुमानेवेत्यर्थः। धर्मतारतम्याच्चायुस्तारतम्यं युगे युगे पुंसि पुंसि ज्ञेयं साधः ॥ १ ॥ सर्गनिधने भौतिकानां जरायुजादीनां चतुर्मुखादिरवान्तरकारणमपि किं ब्रह्मैव ततोऽन्यद्वेत्यभिप्रायः॥२॥ पौनरुक्त्यमाशंक्याह-**पूर्वं हीति** ॥ ४ ॥ परमधर्मिष्ठायोगधर्मनिष्ठा बुद्धिर्मे जातेति पूर्वेणान्वयः। दिव्यसंस्थानसंस्थिता अलौकिकस्वरूपनिष्ठावती भूयोऽधिकं विस्तरेणेत्यर्थः। तथा च संक्षेपेण श्रुतस्यापि विस्तरार्थं पुनः प्रश्न इत्यपौनरुक्त्यम् ॥ ५ ॥ संदेहं संदेहविषयं प्रश्नसमूहं छिन्नधर्मार्थसंशयं व्यासम् ॥ ८ ॥ तत्त्वंपदार्थौ पृच्छति—**भूतेति**। कर्तारं ईश्वरमेव सन्तं कालस्य पूर्वोदाहृतश्रुत्युक्तस्य शयानसंजिहानोत्तिष्ठसंचरद्रूपवतो जीवस्य ज्ञानेन शयानत्वादिधर्मज्ञानेन निष्ठा अन्धंतमआदिरूपप्राप्तिः सञ्जाताऽस्य तं कालज्ञानेन निष्ठितम्। ईशोऽपि अविद्यया जीवतां गतः केन धर्मेण कीदृशं भावमश्नुत इति प्रश्नार्थः। तत्त्वमस्यादिवाक्याध्येतृप्रसिद्धमेव जीवब्रह्माभेदमनुवदति प्रष्टा। 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' इति आथर्वणे एकविज्ञानात्सर्वविज्ञानप्रसिद्ध्यनुवादवत्। ब्राह्मणो ब्रह्मबुभूषुर्धर्माधर्माभ्यां मुक्तिमिच्छन् ॥ ९ ॥

भीष्म उवाच ।
तस्मै प्रोवाच तत्सर्वं पिता पुत्राय पृच्छते ।
अतीतानागते विद्वान्सर्वज्ञः सर्वधर्मवित् १०
व्यास उवाच ।
अनाद्यन्तमजं दिव्यमजरं ध्रुवमव्ययम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे संप्रवर्तते ॥ ११
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव
त्रिंशत्तु काष्ठा गणयेत्कलां ताम् ।
त्रिंशत्कलश्चापि भवेन्मुहूर्तो
भागः कलाया दशमश्च यः स्यात् १२
त्रिंशन्मुहूर्तं तु भवेदहश्च
रात्रिश्च संख्या मुनिभिः प्रणीता ।
मासः स्मृतो राज्यहनी च त्रिंश-
त्संवत्सरो द्वादशमास उक्तः ॥ १३
संवत्सरं द्वे त्वयने वदन्ति
संख्याविदो दक्षिणमुत्तरं च ॥ १४
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः १५
पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः
शुक्लोऽहः कर्म चेष्टायां कृष्णः स्वप्नाय शर्वरी
दैवे राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् १७
ये ते राज्यहनी पूर्वं कीर्तिते जीवलौकिके ।
तयोः संख्याय वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहःक्षपे
पृथक् संवत्सराग्राणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
कृते त्रेतायुगे चैव द्वापरे च कलौ तथा १९
चत्वार्याहुः सहस्राणि
वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या
सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ २०

---

सर्वज्ञः ब्रह्मज्ञः ॥ १० ॥ भूतग्रामकर्तुः स्वरूपं तावदाह— **अनाद्यन्तमिति** । दिव्यं द्योतमानं चिन्मात्रं ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यं वस्तु अग्रे सृष्टेः प्राक् संप्रवर्तते मायाशबलात् जगदाद्यन्तरूपाद्व्यवच्छिनत्ति—**अनाद्यन्तमिति** । अजं अजरं अव्ययमिति यास्कोक्तान् जायतेऽस्ति वर्धते विपरिणमतेऽपक्षीयते नश्यति चेति षड्भावविकारांश्चितौ निषेधति अत एव ध्रुवं अविकारं अप्रतर्क्यं कारणं हि कार्येणानुमीयते न चैतत्तथा अत एवाविज्ञेयं वृत्तेरप्यविषयः । कथं तर्हि दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्येति श्रुतिर्ब्रह्मणो बुद्धिगम्यत्वमाह । उच्यते । स्वमुखस्य स्वदृश्यत्वं यथा दर्पणद्वारा न स्वतः । एवं ब्रह्मणोऽपि धीप्रतिबिम्बितस्य धियो दृश्यत्वेनैव दृश्यत्वं न स्वत इति गृहाण । कारणत्वादिकं तु ब्रह्मण्याविद्यकं अविद्यादशायां स्थितेव कल्प्यत इत्यर्थः । एतच्चाक्षिप्य समाहितं वार्तिके—

'नन्वविद्यावदिष्टं चेद्ब्रह्मदोषो महानयम् ।
निरविद्ये च विद्याया आनर्थक्यं प्रसज्यते ।'
नास्या विद्येत्यविद्यायामेवासित्वा प्रकल्पते ।
ब्रह्मद्वारा त्वविद्येयं न कथञ्चन युज्यते ' इति ।

श्रुतिश्च—' नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ' इति । सृष्टेः प्राग्वस्तुवृत्तमनुरुध्य असत्सद्रजःशब्दितानां आनुमानिकानां शून्यप्रधानपरमाणूनामिव श्रौतस्य परव्योमशब्दितस्य जगत्कारणस्याप्यसत्त्वमाह । तस्मादुक्तमेव ब्रह्मणि अनाद्यन्तत्वादिविशेषणम् ॥ ११ ॥ कालज्ञानेन निष्ठितामिति द्वितीयप्रश्नोत्तरमाह— **काष्ठेति** । अत्र तस्माद्व्यक्तात्मकं मन इत्युपसंहारात् । कलाकाष्ठादिव्यंजकं यद्व्यक्तं सूर्यादिपदार्थजातं तत्सर्वं मनोमात्रमित्यवगतेः । कृतत्रेतादिरूपमपि तदेव सत्त्वादिगुणतारतम्यात् । तथा मानुषपैतृकदैवब्राह्मणामहोरात्राणामुत्तरोत्तरं प्रमाणाधिक्यमपि सत्त्वोत्कर्षादेव तदपि अस्मदृष्ट्यपेक्षमेव । तत्रत्यानां तु तदस्मदीयं घटीमात्रमेव । एतदेव रेवत्यर्थं वरार्थिना रैवतकेन ब्रह्मलोकस्थेन मुहूर्तमात्रत्वेनानुभूतः कालो लौकिकानामनेकसंवत्सरसंमितो व्यतीत इत्युपाख्यानेन व्यक्तीकृतं पुराणेषु । तस्मात्स्वस्वदृष्ट्या सर्वोऽपि सुखी स्वल्पायुर्दुःखी चिरायुः । साधारणदृष्ट्या तु पापिनामल्पमायुः कलिप्राधान्यात् । इतरेषां द्वापरादिप्राधान्यादधिकमिति विवेकः। तस्मात्कालजयार्थं मनोनिग्रहेणात्मैव शरणीय इत्यध्यायतात्पर्यम् । अक्षरार्थस्तु— भागः भगः सूर्यः तत्संबन्धी कलाया दशमोंऽशस्तेन सहितः त्रिंशत्कलो मुहूर्तः । स च सूर्यस्य उदयादुदयान्तरपर्यन्तं यावान्कालस्तस्य षोडशोंऽशः पादोननाडीचतुष्टयात्मकः । तस्यापि दशमांशः सार्धद्वाविंशतिपलात्मकः । एतेन—

' अष्टादशनिमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः ।
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशद्राज्यहनी तु ते ॥'

इत्यादिलोकप्रसिद्धक्रमः प्रतिमुहूर्तं सार्धपलाधिक्यात् स्थूल इति ज्ञेयम् । ' कला तु षोडशो भागः ' इत्यमरः । अन्ये तु काष्ठात्रयाधिकास्त्रिंशत्कलाः मुहूर्त इति व्याचख्युः ॥ १२ ॥ तावच्छती चतुःशती तथाविधः चतुःशतात्मकः कालः सन्ध्यायुगयोरन्तरं संध्यांशः युगान्तरयोरन्तरम् ॥ २० ॥

इतरेषु ससंध्येषु संध्यांशेषु ततस्त्रिषु ।
एकपादेन हीयन्ते सहस्राणि शतानि च २१
एतानि शाश्वताँल्लोकान्
धारयन्ति सनातनान् ।
एतद्ब्रह्मविदां तात
विदितं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २२
चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।
नाधर्मेणागमः कश्चित्परस्तस्य प्रवर्तते ॥ २३
इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोप्यते ।
चौर्यकानृतमायाभिरधर्मश्चोपचीयते ॥ २४
अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतायुगे त्वेषां पादशो ह्रसते वयः २५
वेदवादाश्चानुयुगं ह्रसन्तीतीह नः श्रुतम् ।
आयूंषि चाशिषश्चैव वेदस्यैव च यत्फलम् ॥
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः २७
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम् ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ २८
एतां द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां कवयो विदुः
सहस्रपरिवर्तं तद्ब्राह्मं दिवसमुच्यते ॥ २९
रात्रिमेतावतीं चैव
तदादौ विश्वमीश्वरः ।
प्रलये ध्यानमाविश्य
सुप्त्वा सोऽन्ते विबुद्ध्यते ॥ ३०
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः
प्रतिबुद्धो विकुरुते ब्रह्माऽक्षय्यं क्षपाक्षये ।
सृजते च महद्भूतं तस्माद्व्यक्तात्मकं मनः ३२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

---

एतत् कालाख्यं चतुर्युगात्मकं जीवस्वरूपं शाश्वतं आद्यन्तशून्यं मनोरूपोपाधियोगाच्चतुर्विधमपि स्वरूपतः सर्वविकारहीनं ब्रह्मैवास्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥ कृते युगे युज्यते वासनावरत्रया बद्ध्यतेऽस्मिन्पुरुषपशुरिति युगं स्वधर्मस्तस्मिन् कृते साकल्येन निष्पादिते तस्य कृतयुगात्मनः पुरुषस्य अधर्मेण श्येनाद्यभिचारकर्मणा । आगमः उपदेशवाक्यं स च पर इति विशेषणाद्वेद एव ॥ २३ ॥ चौर्यं च कानृतं च कुत्सितमनृतं वेदविरुद्धं हिंसादिकर्म । तेन वैदिकं कर्माप्यन्ते बन्धयोग्यत्वादनृतमेवेति दर्शितम् । माया शाठ्यादिरूपा उपचीयते वर्धते ॥ २४ ॥ तपः परं परविद्या ज्ञानं अपरविद्या ते च अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमित्यादिना तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद इत्यादिनाऽथर्वणे प्रसिद्धे ॥२८॥ **एतामिति** । अत्र कृतादिषु चतुस्त्रिद्व्येकक्रमेण धर्मस्य दश पादाः । अधर्मस्य षट् । एतेषामपि युगकालाल्पत्वबहुत्वाभ्यां फलतश्चतुर्युग्यां पादमात्रं अधर्मः पादत्रयं धर्मः । सेयं सहस्रगुणितां ब्राह्मं दिनं तावत्येव ब्राह्मी रात्रिश्चेति वदता 'अथ यत्रान्यत्पश्यति तदल्पं तन्मर्त्यम्' इति श्रुतेर्ब्राह्मं पदमपि दिवा द्वैतदुःखेन रात्रौ अज्ञानशेषेण चानुविद्धत्वात् क्षयिष्णुत्वाच्च क्षुद्रमेवेति दर्शितम् ॥२९॥ तदादौ दिनादौ ध्यानमाविश्य योगनिद्रया सुप्त्वा न त्विन्द्रियाणां जाड्येन ॥ ३० ॥ इममेव सृष्टिप्रलयप्रकारमस्मदादिष्वप्यतिदिशति—**प्रतिबुद्ध इति** । अक्षय्यं क्षेतुमशक्यम् । स्वतो निर्विकारस्वरूपमपि ब्रह्मा जीवः क्षपाक्षये निद्रानाशे सति प्रतिबुद्धः सन् विकुरुते मायया विकारयुक्तं करोति चकारो हेत्वर्थः । तस्मात् महद्भूतं अहंकारं सृजते तस्मादहंकारात् व्यक्तात्मकं वियदाद्यात्मकं मनश्च सृजते। मनोमात्रमेव कालाकाशादिकं सुप्तिप्रबोधावेव च सृष्टिप्रलयावित्यर्थः। तथा च श्रुतिः-'स यदा स्वपिति तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति' इत्यादिना सुषुप्तौ प्रत्यगात्मनि नामरूपप्रपञ्चप्रलयमुक्त्वा 'अथ यदा प्रबुद्ध्येत एतस्मादात्मनः सर्वे प्राणा यथाऽऽयतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः' इति प्रबोधे च तत एव प्राणदेवलोकशब्दितानामाध्यात्मिकाधिदैविकाधिलौकिकप्रपञ्चानामुत्पत्तिं दर्शयति ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

# २३२–[५९]

व्यास उवाच ।

ब्रह्म तेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत् ।
एकस्य भूतं भूतस्य द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥ १

अहर्मुखे विबुद्धः सन् सृजतेऽविद्यया जगत्
अग्र एव महद्भूतमाशु व्यक्तात्मकं मनः ॥ २

अभिभूयेह चार्चिष्मद्व्यसृजत्सप्त मानसान् ।
दूरगं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम् ॥ ३

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः
बलवान् जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः

वायोरपि विकुर्वाणाज्ज्योतिर्भवति भास्वरम्
रोचिष्णु जायते शुक्रं तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ६

ज्योतिषोऽपि विकुर्वाणा-
द्भवन्त्यापो रसात्मिकाः ।
अद्भ्यो गन्धस्तथा भूमिः
सर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥ ७

गुणाः सर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषां यावद्यथा यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥ ८

उपलभ्याप्सु चेद्गन्धं केचिद्ब्रूयुरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रितम्

एते सप्तविधात्मानो नानावीर्याः पृथक् पृथक्
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः १०

## २३२

ननु प्राक्सिद्धमज्ञातसत्ताकं जगत् समनस्केन्द्रियसंनिकर्षात् गृह्यते ह्यस्तन एवायं घट इति प्रत्यभिज्ञायते च तत्कथं मनोमात्रमित्याशंक्याह—**ब्रह्मेति** ।

'मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।
प्रज्ञासंविच्चितिश्चैव स्मृतिश्च परिपठ्यते ।
पर्यायवाचकाः शब्दा मनसः परिकीर्तिताः' ।

इति स्मृतेर्ब्रह्म महत्तत्त्वं सूक्ष्मबुद्धिः तच्च तेजोमयं सूक्ष्मवासनामयं स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददान इत्यादौ वासनासु तेजःशब्दप्रयोगात् तदेव शुक्रं बीजं विद्धीति शेषः । यस्य बीजस्य एकस्य द्रव्यान्तरवर्जितस्य भूतस्य जनिमतः । पञ्चम्यर्थे षष्ठी । यस्मादिदं जगत् भूतं उद्भूतं स्थावरं स्थास्नु नित्यं चेतनं जंगमं विनाशि अनित्यं अचेतनं स्वप्ने इव वासनामयं जगत् मनस्येव स्थितं पूर्वपूर्वसंस्कारवशात् इदमिति ज्ञायते । तदिदमिति प्रत्यभिज्ञायते चेत्यर्थः ॥ १ ॥ **अहरिति** । अविद्ययेति महत्तत्त्वस्यापि कारणमुक्तम् । सृष्टिक्रममाह–**अग्रे इति** । अग्रे सर्गादौ महत् महत्तत्त्वं भूतं उद्भूतं तदेव आशु शीघ्रं व्यक्तात्मकं वियदादिरूपं सत् मन इत्युच्यते । आशु इति सांख्याभिमतः सृष्टिक्रमो निरस्तः युगपत्सृष्टिरेव हि शास्त्रतत्त्वमिति दृष्टिसृष्टिवादिनां घंटाघोषः ॥ २ ॥ अभिभूयेति सार्धश्लोकः । मनः कर्तृ अर्चिष्मत् प्रकाशकं चिदात्मानं अभिभूय आवृत्य मानसान् सप्त व्यसृजत् । अर्चिष्मानिति पाठे तु ईश्वरः मानसान् पूर्वसर्गान्तेऽभिभूय उत्तरसर्गादौ व्यसृजादिति ज्ञेयम् । मनः प्रथमं सिसृक्षया बहुस्यां प्रजायेयेतिश्रुतिसिद्धया प्रार्थनारूपयाऽनेन मनसो रूपान्तरेणेति द्वितीयत्वमुक्तम् । विकुरुते विविधाकारां कुरुते । आकाशादयः पञ्चेति सप्त मानसाः ॥ ३ ॥ **गुणा इति** । आकाशादयः पञ्च क्रमेण एकद्वित्रिचतुःपञ्चगुणयुक्ता इत्यर्थः तेषां भूतानां मध्ये यद्भूतं यावत्कालपर्यन्तं यथा येन प्रकारेण वर्तते तद्भूतम् । एकस्तच्छब्दस्तावच्छब्दार्थः । तावत्कालपर्यन्तं तावद्गुणं स्मृतम् । अत्र पूर्वार्द्धोक्ता व्यवस्था सूक्ष्मभूतेष्वेव ज्ञेया । स्थूलेषु तु पञ्चीकरणादूर्ध्वं सर्वाण्यपि पञ्चगुणानि त्रिवृत्करणपक्षे च आकाशवायू क्रमेणैकद्विगुणकौ इतराणि पञ्चगुणान्येवेत्याशयः । तत्र पञ्चीकरणं तु आकाशादीन्प्रत्येकं द्वेधा विभज्य एकस्मिन् भागे स्वेतरभूतचतुष्टयस्य अर्धीकृतस्य चतुरश्चतुर्थांशान् प्रक्षिप्य एकैकं स्थूलभूतं भवति । तथा त्रिवृत्करणम् । तेजोबन्नानि प्रत्येकं द्वेधा विभज्य एकस्मिन्नर्धे स्वेतरयोरर्धार्धं प्राक्षिपेदिति । एवं संकीर्णेष्वपि आकाशादिसंज्ञाः स्वभागाधिक्यादिति ज्ञेयम् ॥ ८ ॥ ननु पञ्चीकरणपक्षे कथमाकाशे गन्धाद्यनुपलंभः । कथं वा त्रिवृत्करणपक्षे वायौ गन्धोपलंभ इत्याशंक्याद्ये स्थूलाकाशस्याप्रत्यक्षत्वेन तद्गतगन्धादीनामप्यप्रत्यक्षत्वमित्यभिसंधाय द्वितीयं प्रत्याह—**उपलभ्येति** । अप्स्विति दृष्टान्तार्थम् । यथाप्सु एलालवङ्गादिगन्ध उपलभ्यते एवं वायावपि आगन्तुकद्रव्यसम्पर्कज एव गन्धानुभवो न त्वाजानसिद्धद्रव्यसंपर्कज इत्यर्थः । अनैपुणादिति मूर्खाणामेवायं पूर्वपक्षो न विदुषां काणादादीनां ते हि युक्तिबलेनैव वायौ गन्धाभावं निश्चिन्वन्तीति दर्शितम् ॥ ९ ॥ सप्त मनः सिसृक्षाशब्दितौ महदहंकारौ सूक्ष्माकाशादयश्च असमागम्य अमिलित्वा ॥ १० ॥

ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यमभिसंश्रिताः
शरीराश्रयणं प्राप्तास्ततः पुरुष उच्यते ॥ ११
शरीरं श्रयणाद्भवति मूर्तिमत् षोडशात्मकम्
तमाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मणा
सर्वभूतान्युपादाय तपसश्चरणाय हि ।
आदिकर्ता स भूतानां तमेवाहुः प्रजापतिम्
स वै सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च
ततः स सृजति ब्रह्मा देवर्षिपितृमानवान् १४
लोकान्नदीः समुद्रांश्च दिशः शैलान्वनस्पतीन्
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम् १५

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः१६
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते१७
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगं च भूतानां धातैव विदधात्युत ॥
केचित्पुरुषकारं तु प्राहुः कर्मसु मानवाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिन्तकाः ॥
पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः ।
त्रय एतेऽपृथग्भूता न विवेकं तु केचन ॥ २०

महात्मानो व्यापकाः समेत्य त्रिदंडविष्टंभवदन्योन्यब-लमाश्रित्यैकीभूयेत्यर्थः । पूरिति शरीरस्य नाम तत्र वस-तीति पुरुष इत्यवयवार्थः॥११ ॥ षोडश पञ्च स्थूलभूतानि समनस्कान्येकादशेन्द्रियाणि च तदात्मकं शरीरं षोडशानां सृष्टिस्तु व्यक्तात्मकं मन इति मनःसृष्टचैवोक्तेति न तेषां पृथक्सिद्धिस्तार्किकाभिमता मन्तव्या। न षोडशात्मकं पुरुषं तदिति पाठे स्थूलशरीरापेक्षया क्लीबत्वम्। भूतानि सूक्ष्माणि महान्ति महत्तत्त्वानि भुक्तावशिष्टकर्मसहितानीति । बहुत्वं प्रतिपुरुषं महदादीनां भिन्नत्वप्रतिपादनार्थम्। तेन तत्तत्पु-रुषीया सूक्ष्मबुद्धिरेव कर्माश्रयस्तदुपलक्षितोऽहंकारश्चेति ज्ञेयं ॥१२॥एवं स्थूले शरीरे लिङ्गशरीरस्य प्रवेशमुक्त्वा तत्र चैत-न्यप्रवेशमाह-**सर्वेति**। आदिकर्ता सर्वभूतानि स्वोपाधि-मायैकदेशभूतानि उपादाय तमाविशतीति विपरिणामेना-नुषज्यते। एतेन 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ' इतिश्रुतेरर्थो दर्शितः। तपसः ज्ञानमयस्यालोचनस्य चरणाय । तथा च श्रुतिः परमेश्वरस्य तत्तदुपाध्यनुसरणं स्वस्वरूपज्ञानार्थमेवे-त्याह-'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय' इति तमेव उपाधिं प्रविश्य जीवभावमापन्नं प्रजापतिं ब्रह्मे-त्याहुः तत्त्वमसीत्यादयः श्रुतयः ॥ १३ ॥ तत्र हेतुमाह-**स वै इति**। सः शरीरान्तस्थः वै एव ततः शरीरप्रवे-शानन्तरम्। एतेन 'तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवदित्यादि सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्'इत्यन्तायाः श्रुतेरर्थो दर्शितः **सत्** पृथिव्यप्तेजांसि त्यत् वाय्वाकाशौ **सत्यानृते** घटर-ज्जूरगादि, **सत्यं** ब्रह्मैवाभवदिति श्रुतिपदानामर्थः। एव-मैश्वरीं भूतमयीं जैवीं च धीमयीमिति द्विविधां सृष्टिम-भिप्रेत्योक्तमभियुक्तैः। 'अन्या मांसमयी योषिदन्या काचि-न्मनोमयी'इति 'घटौ मृन्मयधीमयौ'इति च । तथा सृष्टि-द्वयवत् प्रलयद्वयमपि विदुषो विदेहकैवल्यकाले श्रूयते-'गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा । इति एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं यन्तीति च कलाः प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियमित्याद्याः तत्रैश्वरीं व्यावहारिकीं दृष्टिसृष्टिमभिप्रेत्य प्रतिष्ठासु वाय्वा-दिषु तत्तदुपादानेषु प्राणादीनां प्रलयः पुरुषान्तरप्रतीत्या उक्तः । विद्वत्प्रतीत्या तु जैवीं प्रातिभासिकीं दृष्टिसृष्टि-मभिप्रेत्य पुरुष एव कलाप्रलय उक्तः तस्माद्युक्तमुक्तं सृष्टि-द्वयम् ॥ १४ ॥ वयः पक्षी अव्ययं आकाशादिव्ययं घटादि अपक्षयधर्मि ॥ १५ ॥ तेषां नरकिन्नरादीनां प्राक्सृष्ट्यां ऐन्द्र्यां जैव्यां ..। यथा द्योहिंस्रस्याद्यापि हिंस्र-तैव दृश्यते।एवं पूर्वकल्पे हिंस्रस्य पुनः कल्पान्तरेऽपि हिंस्र-त्वमेवानुवर्तते ' सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः'इति श्रुतिरपि पूर्वक-ल्पसरूपामेवैश्वरीमपि सृष्टिमाह। न्यायोऽपि समाननामरूप-त्वाच्च वृत्तावप्यविरोध इति । प्रतिकल्पमिन्द्रादीनां नामानि रूपाणि कर्माणि च समानान्येव । अतस्तद्वाचिनां वैदिक-शब्दानां व्रीह्यादिशब्दवज्जातिवाचित्वेनानाद्यधुनिकत्वेन वेदस्य नित्यत्वं न विरुध्यते इति सूत्रार्थः । प्रतिकल्पं सृष्टिवैरूप्ये तु कृतहानाकृताभ्यागमौ प्रसज्येतामित्येव-कारार्थः॥ १६ ॥ **महाभूतेष्विति** । धाता जगदिन्द्र-जालविस्तारयिता नानात्वं शुक्तिरजतवत्प्रतिपुरुषं भिन्नत्वं महाभूतेषु वियदादिषु इंद्रियार्थेषु रूपादिषु मूर्तिषु द्रव्या-कृतिषु भूतानां जीवानां विनियोगं भोक्तृभोग्यभावेन सम्बन्धं सर्वदृष्टान्तार्थमिदम्। यथा सुखाद्यनुभवः प्रतिपुरुषं नाना एवमनुभवविषयोऽपि महाभूतादिर्नानेत्यर्थः॥१८॥ धातैवेत्येवकारव्यावर्त्यान् परपक्षानुपन्यस्यति **केचिदि-ति**। कर्मस्वेव पुरुषस्य सामर्थ्यमस्तीति कर्मैव प्रधानमिति **मीमांसकाः** । दैवं आदित्याद्या ग्रहा एव सदसत्फल-दातार इति **दैवज्ञाः** । स्वभाव एवेति स्वभाववादिनो **बाह्याः**॥१९॥ एतेषां समुच्चयमतमाह-**पौरुषमिति**। अपृथग्भूता इति च्छेदः । दैवं कर्म च स्वभावानुगृहीतं फलाय वर्तते।तत्त्रय एते समुदिता न तु तेषां विवेकं पृथग्भावं एकैकस्य प्राधान्यं इच्छन्ति केचन ॥ २० ॥

एतमेव च नैवं च न चोभे नानुभे न च ।
कर्मस्था विषयं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः २१
तपो निःश्रेयसं जन्तोस्तस्य मूलं शमो दमः ।
तेन सर्वानवाप्नोति यान्कामान्मनसेच्छति॥
तपसा तदवाप्नोति यद्भूतं सृजते जगत् ।
स तद्भूतश्च सर्वेषां भूतानां भवति प्रभुः॥ २४
ऋषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम् ।
अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा॥

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः ।
नानारूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम् २५
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः ।
नामधेयानि चर्षीणां याश्च वेदेषु सृष्टयः ।
शर्वर्यन्ते सुजातानामन्येभ्यो विदधात्यजः ॥
नामभेदतपःकर्मयज्ञाख्या लोकसिद्धयः ।
आत्मसिद्धिस्तु वेदेषु प्रोच्यते दशभिः क्रमैः

**आर्हतमतमाह-एतमिति** श्लोकपादत्रयेण । एतं विषयं भूतादीनां नानात्वे किं कारणमिति चिन्ताया विषयमेवमिति विशिष्य न ब्रूयुः । न निर्वक्तुं शक्यमित्यर्थः । एवं न चेत्यपि न ब्रूयुः अनिर्वाच्यत्वमपि नेत्यर्थः । नन्वेकैकश्येन कर्मदैवयोः कारणत्वं सुवचं दुर्वचं वास्तु । समुच्चितयोस्तु सुवचमित्याशंक्याह-**उभे च न ब्रूयुरिति**। अस्तु तर्हि तयोरपि दुर्वचमित्याशंक्याह-**अनुभे च न ब्रूयुरिति** । उभयव्यतिरिक्तमपि कारणं नेत्यर्थः। कर्मस्था इत्यार्हतानां यौगिकं नाम। ते हि कर्माष्टकवशादेव जीवानां बन्धस्तप्तशिलारोहणादिना निर्जराख्येन धर्मेणैव च मोक्ष इति वदन्ति। सिद्धांतमाह-**सत्त्वस्थाः समदर्शिन इति** । अयमर्थः-श्रुतौ किं कारणं ब्रह्मेत्युपक्रम्य कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यमिति काल इति **दैवज्ञानां**, स्वभाव इति परिणामवादिनां सांख्यानां नियतिरिति कर्मवादिनां **मीमांसकानां** यदृच्छेत्यनियमवादिना**मार्हतानां** भूतानीति **लोकायतानां**,पुरुष इति **तटस्थेश्वरवादिनां** च जगत्कारणविषये मतान्युपन्यस्य 'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' इत्यनुभवबलेन सिद्धान्तः कृतः । देवः प्रकाशमानो य आत्मा प्रत्यग्वस्तु तद्गतां शक्तिमेव कारणमाहुः स्वगुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्युक्तामपि परीक्षादशायां नितरां गूढाम्। तस्याः कार्यमात्मनो जगद्भानं प्रत्यक्षं सा तु न प्रत्यक्षा रज्जूरगहेत्वज्ञानवदिति श्रुत्यर्थस्तदेतदाह सत्त्वस्थाः रजस्तमोरहितेऽन्तःकरणे सत्त्वे संप्रज्ञातावस्थायां तिष्ठन्ति ते सत्त्वस्था योगिनः समं ब्रह्मैव कारणत्वेन द्रष्टुं शीलं येषां ते समदर्शिनः ब्रह्मैव कारणमिति पश्यन्तीत्यर्थः ॥ २१ ॥ ब्रह्मप्राप्तेः साधनं फलं चाह-सार्धद्वाभ्यां **तप इति**। तपो योगः निःश्रेयसं मोक्षहेतुः शमो मनोनिग्रहः दमो बाह्येन्द्रियनिग्रहः तेन तपसा तथा च श्रुतिर्योगिनां सर्वसकामावाप्तिं दर्शयति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामांस्तं तं लोकं जयते तांश्च कामान् इति। जयते प्राप्नोति । कामान् विषयान् ॥ २२ ॥ **तपसेति**। तत् ब्रह्मदर्शनं ब्रह्मभावः सर्वेश्वरत्वं च योगस्यैव फलमित्यर्थः ॥ २३ ॥ अध्यैषन्त प्राग्जन्मन्यधीतान् योगबलेनैव स्मृतवन्तः अनादीति श्लोकस्य उत्तरार्धे आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः' इति ज्ञेयं क्वचितद्दर्शनेऽपि **शारीरकसूत्रभाष्यादौ** पुस्तकान्तरेषु च दर्शनात्। स्वयंभुवा 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'इति श्रुतेः परमेश्वराल्लब्धवेदेन उत्सृष्टा शिष्यप्रशिष्यसंप्रदायक्रमेण प्रवर्तितः ॥ २४ ॥ **वेदशब्देभ्य एवेति** । लोके हि दृष्टादृष्टद्वारकं शब्दानामर्थकारणत्वं क्लृप्तम्। यथा विष्णवादिमूर्तिं सिसृक्षतः शिल्पिनस्तदाकृतिप्रतिपादकागमस्मरणं मूलम् । यथा वा तक्षकदष्टं वटं जीवयितुमिच्छतो विषमन्त्रोच्चारणं इन्द्रजालपुरं सिसृक्षता वा शाबरमन्त्रोच्चारणम्। एवमिहापि सभूरिति व्याहरन् स भूमिमसृजतेति श्रुत्या दृष्टद्वारैवार्थोत्पत्तिं प्रतिशब्दस्य हेतुत्वमुक्तम्। तथा 'एत इति वै प्रजापतिर्देवानसृजत असृजमिति मनुष्यान् इंदव इति पितॄन् तिरः पवित्रमिति ग्रहान्, आशव इति स्तोत्रम् विश्वानीति शस्त्रं, अभिसौभगायेत्यन्याः प्रजाः' इति श्रुतेस्तत्तत्पदोच्चारणत एव देवादिसृष्टिर्गम्यते । न तु तत्तदर्थस्मारकत्वरूपदृष्टद्वारेति सर्वथापि वेदशब्दादेव सृष्टिरित्यर्थः। शर्वर्यन्ते सर्गादावित्यर्थः ॥ २६ ॥ **नामेति** । आत्मसिद्धिः आत्मनो मुक्तिर्दशभिः क्रमैः साधनैर्नामादिभिः सहिता वेदेषु प्रोच्यते तत्र नाम वा ऋग्वेद इत्यादिश्रुतेर्नामेति वेदाध्ययनं भेदः अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नीतिश्रुतेः पूर्वं कृत्स्नस्य सतो दारकरणेनार्धत्वसंपादनम्। गार्हस्थ्यमिति यावत्। **तपः** कृच्छ्रचांद्रायणादि वानप्रस्थाश्रम इत्यर्थः, **कर्म** संध्योपासनादि सर्वाश्रमसाधारणम् **यज्ञो** ज्योतिष्टोमादिः। आख्या कीर्तिकरं तटाकारामादि आपूर्ताख्यम्, **आलोक** आलोचनं मानसो ध्यानादिधर्मः स च त्रिविधः । यज्ञांगेष्वश्वादिषु-उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर इत्यादिशास्त्रविहिता विराडादिदृष्टिरेका । अध्यात्मं जाठरादिप्रतीकेषु वैश्वानराख्यकारणब्रह्मदृष्टिरपरा

यदुक्तं वेदवादेषु गहनं वेददर्शिभिः ।
तदन्तेषु यथायुक्तं क्रमयोगेन लक्ष्यते ॥ २८
कर्मजोऽयं पृथग्भावो द्वंद्वयुक्तोऽपि देहिनः ।
तमात्मसिद्धिर्विज्ञानाज्जहाति पुरुषो बलात्॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
आलंभयज्ञाः क्षत्राश्च हविर्यज्ञा विशः स्मृताः
परिचारयज्ञाः शूद्रास्तु तपोयज्ञा द्विजातयः
त्रेतायुगे विधिस्त्वेष यज्ञानां न कृते युगे ।
द्वापरे विप्लवं यान्ति यज्ञाः कलियुगे तथा ॥
अपृथग्धर्मिणो मर्त्या ऋक्सामानि यजूंषि च
काम्या इष्टीः पृथग् दृष्ट्वा तपोभिस्तप एव च॥
त्रेतायां तु समस्ता ये प्रादुरासन्महाबलाः ।
संयन्तारः स्थावराणां जङ्गमानां च सर्वशः
त्रेतायां संहता वेदा यज्ञा वर्णाश्रमास्तथा ।
संरोधादायुषस्त्वेते भ्रश्यन्ते द्वापरे युगे॥ ३५
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः
उत्सीदन्ते सयज्ञाश्च केवला धर्मपीडिताः ॥
कृते युगे यस्तु धर्मो ब्राह्मणेषु प्रदृश्यते ।
आत्मवत्सु तपोवत्सु श्रुतवत्सु प्रतिष्ठितः ३७
सधर्मव्रतसंयोगं यथाधर्मं युगे युगे ।
विक्रियते स्वधर्मस्था वेदवादा यथागमम्॥३८
यथा विश्वानि भूतानि
वृष्ट्या भूयांसि प्रावृषि ।
सृज्यन्ते जङ्गमस्थानि
तथा धर्मा युगे युगे ॥ ३९

विधा । दहराद्यहंग्रहोपास्त्या शुद्धस्वरूपावगतिस्तृतीया । ततश्च सिद्धिः कैवल्याख्या जीवत एव मुक्तिरिति दशभिः क्रमैः क्रम्यते उल्लंध्यते संसारदुःखमेभिस्तैः ॥२७॥ इतोऽप्यन्तरङ्गं मोक्षसाधनमाह—**यदुक्तमिति**। गहनं दुरवगाहं ब्रह्म वेदवादेषु वेदोक्तकर्मसु प्रस्तावादिदेवतात्वेन उक्तम् । तदन्तेषु वेदवादान्तेषु उपनिषत्सु च यथायुक्तं विस्पष्टतरं उक्तं तद्ब्रह्म क्रमयोगेन पूर्वोक्तेन नामादिदशकेन लक्ष्यते तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्यस्तत्त्वंपदवाच्यार्थयोर्विशेषणांशभूतमायान्तःकरणांशप्रहाण्या 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यत्र तदेतद्देशकालरूपविशेषणांशप्रहाण्या अखंडं देवदत्तस्वरूपमिव प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म लक्ष्यते न तु शब्देन शृङ्गग्राहिकया अयं गौरयं महिष इतिवदावेद्यते 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इतिश्रुतेर्ब्रह्मणोऽपदार्थत्वादवाक्यार्थत्वाच्च ॥ २८ ॥ तत्र ब्रह्मणो लक्ष्यं स्वरूपं दर्शयति—**कर्मज इति** । देहिनः देहाभिमानिनो जीवस्य पृथग्भावः पृथक्त्वं द्वैतदर्शनमिति यावत्। तत्कर्मजं कर्मोपरमे सुप्तौ समाधौ च नास्तीत्यर्थः द्वन्द्वैः सुखदुःखशीतोष्णमानापमानादिभिर्युक्तम्। तं च पृथक्भावं आत्मसिद्धिः आत्ममोक्षरूपः पुरुषः । एतेन मुक्तमोक्षयोरभेदवचनेनानागन्तुकं स्वस्वरूपमात्रं मुक्तिरित्युक्तम्। विज्ञानात् सम्यग्वाक्यजाज्ज्ञानात् जहाति ज्ञातृज्ञानज्ञेयभावं रूपभेदं त्यजतीत्यर्थः॥२९॥ भेदत्यागोपायमाह—**द्वे इति** । शब्दब्रह्म प्रणवः निष्णातः प्रणवोपास्तिकुशलः परं मात्रात्रयातीतं तुरीयम् ॥ ३० ॥ प्रणवोपास्तिमेव इतरनिन्दापूर्वकं स्तौति—**आलंभेति**। आलंभः पशुहिंसा हविर्व्रीह्यादिकं परिचारस्त्रैवर्णिकसेवा तपो ब्रह्मोपासनम् ॥३१॥ विधिरप्रवृत्तप्रवर्तनम् । तच्च त्रेतायामेव न तु कृते स्वत एव तत्र तत्सिद्धेः अत्र धर्ममनुतिष्ठन् पुरुषः कृतं धर्मानुष्ठानमारभमाणस्त्रेता आरब्धुमिच्छन् द्वापरः तद्विमुखः कलिरिति पूर्वोदाहृतश्रुत्यर्थो न विस्मर्तव्यः । ॥ ३२ ॥ त्रेतायुगे इत्येतं श्लोकं व्याचष्टे—**अपृथगित्यादिना** । पृथक् धर्मः पृथक्त्वं भेदस्तद्वन्तः पृथक्धर्मिणोऽद्वैतनिष्ठा मर्त्यास्तप एव योगमेव कृतयुगेऽनुतिष्ठन्तीति शेषः ऋगादीनि काम्या इष्टीश्च सौर्यं चरुं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकाम इति शास्त्रोक्ताः पृथक्तपोभिरालोचनैः दृष्ट्वा तत्फलं अनात्मभूतस्वर्गादिरूपं दृष्ट्वा तत्परित्यज्य योगपरा एव बभूवुरित्यर्थः ॥ ३३ ॥ त्रेतायां धर्मे नृणां स्वतः प्रवृत्त्यभावात्तत्र संयन्तारो धर्मशास्तारो वेदाश्च संहता यज्ञाद्यनुष्ठापनाय सन्नद्धा आसन्निति सार्धश्लोकार्थः ॥ ३४ ॥ संरोधादिति सार्धः । स्पष्टार्थः ॥ ३५ ॥ कृतादिशब्दानां कालवाचित्वं सिद्धवत्कृत्याह—**कृते इति** । कृतयुगे यश्चतुष्पाद्धर्म उक्तः स इदानीमपि ब्राह्मणेषु दृश्यतेऽतस्ते एव कृतयुगरूपा इति भावः। आत्मवत्सु जितचित्तेषु तपोवत्सु योगनिष्ठेषु श्रुतवत्सु वेदान्तश्रवणादिमत्सु ॥ ३७ ॥ त्रेतायुगव्यवहारमाह—**सधर्मेति** । यथाधर्मं आचारायनतिक्रम्य स्वधर्मस्थाः अग्निहोत्रादिपराः ये वेदान् वदन्ति ते वेदवादाः वैदिकाः यथागमं वेदोक्तप्रमाणेन धर्मो यज्ञादिस्तत्सहितं व्रतमेकादश्युपवासादि संयोगस्तीर्थक्षेत्रप्राप्त्यादि तत्सर्वं तैर्विक्रियते कामपूर्वकं क्रियते वैदिका अपि स्वर्गकामा एव यक्ष्यन्ते । द्वापरे पुत्रादिकामा एव कलौ शत्रुमरणादिकामा एवेति युगे युगे इत्यस्यार्थः ॥ ३८ ॥ तिष्ठन्तीति स्थानि स्थावराणि जङ्गमानि च स्थानि च जंगमस्थानि भूयांसि वृद्धिमत्तराणि तथा युगे युगे धर्मा अधर्माश्च वर्धन्ते ह्रसन्ति च ॥ ३९ ॥

यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्महरादिषु ४०
विहितं कालनानात्वमनादिनिधनं तथा ।
कीर्तितं तत्पुरस्तात्ते तत्सूते चात्ति च प्रजाः
दधाति भवति स्थानं भूतानां समयो मतम् ।
स्वभावेनैव वर्तन्ते द्वंद्वयुक्तानि भूरिशः ॥ ४२
सर्गकालक्रिया वेदाः कर्ता कार्यं क्रिया फलम्
प्रोक्तं ते पुत्र सर्वं वै यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

## २३३-[६०]

व्यास उवाच ।
प्रत्याहारं तु वक्ष्यामि शर्वर्यादौ गतेऽहनि।
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः॥ १
दिवि सूर्यस्तथा सप्त दहन्ति शिखिनोऽर्चिषः
सर्वमेतत्तदार्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते जगत् २
पृथिव्यां यानि भूतानि जङ्गमानि ध्रुवाणि च
तान्येवाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥
ततः प्रलीने सर्वस्मिन् स्थावरे जङ्गमे तथा।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दृश्यते कूर्मपृष्ठवत्॥ ४
भूमेरपि गुणं गन्धमाप आददते यदा ।
आत्तगन्धा तदा भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ५
आपस्तत्र प्रतिष्ठन्ति ऊर्मिमत्यो महास्वनाः ।
सर्वमेवेदमापूर्य तिष्ठन्ति च चरन्ति च ॥ ६
अपामपि गुणं तात ज्योतिराददते यदा ।
आपस्तदा त्वात्तगुणा ज्योतिःषूपरमन्ति वै
यदादित्यं स्थितं मध्ये गूहन्ति शिखिनोऽर्चिषः
सर्वमेवेदमार्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते नभः ॥ ८
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुराददते यदा ।
प्रशाम्यति ततो ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान्॥
ततस्तु स्वनमासाद्य वायुः सम्भवमात्मनः ।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश॥
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते यदा ।
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठति नादवत्
अरूपमरसस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ।
सर्वलोकप्रणदितं खं तु तिष्ठति नादवत्॥१२

---

ऋतुलिङ्गानि शीतोष्णार्दानि तथा ब्रह्महरादिष्वपि सृष्टिसंहारसामर्थ्यानि वर्धन्ते ह्रसन्ति चेत्यर्थः ॥ ४० ॥ कालनानात्वं चतुर्युगात्मकस्य पुरुषस्य नानात्वं धर्मादिवुद्धिभेदेन पृथक्त्वम् । तच्चानादिनिधनं सत् प्रजाः सूते वर्धयति अत्ति च संहरति च ॥४१ ॥ **दधातीति** । यानि भूतानि चतुर्विधानि स्वभावेनैव द्वन्द्वयुक्तानि सुखदुःखादिमन्ति वर्तन्ते तेषां भूतानां समयः कालः। स्थानं अधिष्ठानं मतम् । स एव च तानि भूतानि दधाति धारयति पोषयति च तथा स एव भूतानि भवति स्वयमेव भूतात्मेत्यर्थः ॥ ४२ ॥ **सर्गेति** । समय एव सर्गादिकं दधाति भवतीति चानुषज्यते न केवलं भूतात्मैव कालः । अपि तु सर्गाद्यात्मापीत्यर्थः । सर्गः सृष्टिः कालो दर्शादिः क्रिया यज्ञश्राद्धादिः वेदास्तत्प्रकाशकाः कर्ता तदनुष्ठाता कार्यं देहादिपरिस्पंदः क्रियाफलं स्वर्गः सर्वमेतत्कालात्मा पुरुष एवेत्यर्थः । तथा च श्रुतिः- 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इति ॥४३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

२३३

क्रमप्राप्तं प्रलयमाह—**प्रत्याहारमिति** । प्रतीपं उत्पत्तिक्रमविपरीतमाहरणं प्रत्याहारः ईश्वरः कालात्मा अध्यात्मं आत्मनि सुसूक्ष्मं कारणावस्थम् ॥ १॥ संकर्षणमुखोद्भूतस्य शिखिनोऽग्नेरर्चिषः सप्तेति सम्बन्धः । आर्चिर्भिः सौरीभिराग्नेयीभिश्च ज्वालाभिः ॥ २ ॥ ध्रुवाणि स्थावराणि ॥ ३ ॥ गंधं काठिन्यहेतुं घृतवद्भूमिः काठिन्यं त्यक्त्वा जलमात्रं भवतीत्यर्थः । प्रलयत्वाय कारणभावाय ॥ ५ ॥ आपोऽपि आत्तगुणाः अग्निना शोषितरसा अग्निमात्रं भवन्ति ॥ ७ ॥ रूपं वायुराददते आङ्पूर्वस्य दद दाने इत्यस्य रूपम् ॥ ९ ॥ स्वनं शब्दतन्मात्रम् ॥१०॥ नादः शब्दस्य पूर्वरूपं वर्णविभागहीनम् ॥ ११ ॥ सर्वेषु लोकेषु वाय्वादिषु दग्धेषु प्रणदितं शब्दो यस्य तत्तथा ॥ १२ ॥

आकाशस्य गुणं शब्दमभिमव्यक्तात्मकं मनः
मनसो व्यक्तमव्यक्तं ब्राह्मः संप्रतिसंचरः १३
तदात्मगुणमाविश्य मनो ग्रसति चन्द्रमाः ।
मनस्युपरते चापि चन्द्रमस्युपतिष्ठते ॥ १४
तं तु कालेन महता संकल्पं कुरुते वशे ।
चित्तं ग्रसति संकल्पस्तच्च ज्ञानमनुत्तमम् १५
कालो गिरति विज्ञानं कालं बलमिति श्रुतिः
बलं कालो ग्रसति तु तं विद्या कुरुते वशे१६

आकाशस्य तदा घोषं
तं विद्वान् कुरुतेऽऽत्मनि ।
तदव्यक्तं परं ब्रह्म
तच्छाश्वतमनुत्तमम् ।
एवं सर्वाणि भूतानि
ब्रह्मैव प्रतिसंचरः ॥ १७
यथावत्कीर्तितं सम्यगेवमेतदसंशयम् ।
बोध्यं विद्यामयं दृष्ट्वा योगिभिः परमात्मभिः

मनसः सकाशात् व्यक्तं स्फुटीभूतं शब्दं मनो ग्रसति। अतः मन एव अभिव्यक्तात्मकं शब्दादिस्थूलसर्वदृश्यरूपम्। स्वतस्तु अव्यक्तं सूक्ष्मम्। एष मनोऽवसानः प्रतिसंचरः प्रलयः ब्राह्मः विराट्संबन्धी 'मनः प्रजापतिमसृजत' इतिश्रुतेः। मनःकल्पितो विराट् मनस्येव लीयत इत्यर्थः ॥ १३ ॥ सूत्रात्मप्रलयमाह—**तदात्मगुणमिति** द्वाभ्याम् । तद्विराडुपादानमस्मदीयं परिच्छेदाभिमानि मनो मुख्यं कर्म। आत्मगुणं निःसीमज्ञानवैराग्यैश्वर्यधर्मात्मकं गौणं कर्म आविश्य अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् । प्रवेश्य ग्रसति चन्द्रमाः हैरण्यगर्भीयं समष्टि मनः एवं व्यष्टिमनसि उपरते सति कुत्र चन्द्रमस्यधिष्ठाने ततश्च उपतिष्ठते एनं पुरुषम् ।आत्मगुण इति शेषः । अयमर्थः–'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये' इत्युपक्रमात् परब्रह्मप्राप्तिकामः प्रणवाख्यमपरं ब्रह्मोपासीनो भूतशुद्धौ उक्तक्रमेण स्थूलभूतात्मकं विराजं अकारार्थं संहृत्य सर्वात्मना स्थूलदेहं विस्मृत्य मनोमात्रेणावस्थायेति यावत् । तच्च मुक्तबन्धनं मनश्चन्द्रसंज्ञं उकारार्थतां प्रतिपन्नं सदैश्वर्ययुक्तं भवति । यथोक्तम्–

'विगतवासनमाशु विपाशता-
मुपगतं मन आत्मतयोदितम् ॥
यदभिवांछति तद्भवति क्षणात्
सकलशक्तिमयो हि महेश्वरः' इति ॥ १४ ॥

तं तु चन्द्राख्यसमष्टिमन उपाधिसंकल्पं संकल्पमात्रशरीरं उकारार्थं महता कालेन वशीकुरुते मकरार्थे कारणे प्रविलापयति योगी यतः स संकल्पश्चित्तं विचारात्मिकां चेतोवृत्तिं ग्रसति अतः संकल्पनिरोधो दुःशकः। तच्च संकल्पवशीकरणं मकारार्थत्वेनाहमेवेदं सर्वोऽस्मीत्येवंरूपेणावस्थानमेव ज्ञानं अनुत्तमं श्रेष्ठम् ॥ १५ ॥ ईशस्यापि लयमाह द्वाभ्यां **—काल इति** । कालः अर्धमात्रार्थः शोधितत्वंपदार्थः अस्मीत्येतावन्मात्रप्रत्ययात्मा विज्ञानं उक्तलक्षणं सार्वात्म्यानुभवात्मकमीशं गिरति गिलति ग्रसतीत्यर्थः । कालमपि बलाख्या शक्तिर्ग्रसति अयमर्थः–अर्धमात्रायाः परतः बिन्दुनादशक्तिशान्ताख्याश्चतस्रोऽवस्थाः तत्राकारउकारमकारानपेक्ष्य अर्धमात्रा तुरीयं तामप्यपेक्ष्य शक्तिर्भुरीया - नवती जीवन्मुक्त्याख्या तुरीया। शान्ता तु विदेहकैवल्यं पुनरुत्थानाभावान्न गणनीया तथा च ईश्वरग्रासस्तुरीयस्तुरीय इति श्रुतिः । अस्या अर्थः-विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयेषु अकारोकारमकारार्धमात्रार्थेषु प्रत्येकं एकैकस्मिन् विश्वादिचतुष्टयमस्ति, तेन षोडशभेदा भवन्ति । तत्र तुरीयोऽव्यक्तरूपो जागरणं विन्दुनादशक्तय उत्तरोत्तरं सूक्ष्मत्वात् स्वप्नसुषुप्तितुरीयरूपाः।तत्र मकारार्थस्य ईश्वरस्य ग्रासस्तुरीयोऽर्धमात्रा तस्यापि तुरीयः शक्तिरिति सा शक्तिरिह बलशब्देनोच्यते। बिन्दुनादयोः काले एवान्तर्भावं विवक्षित्वा कालं बलमित्युक्तम्। अत्र शङ्कते–बलं कालो ग्रसति तु इति तुशब्द उक्तार्थनिवारणार्थः। अस्मीति जीवानुभवेन ब्रह्मणोपलापः क्रियत इत्यर्थः उत्तरमाह–**तमिति** । तं कालं विद्या 'नेह नानास्ति किंचन' इति शास्त्ररूपा अस्मीत्यस्यापि बाधिका सुषुप्त्यादिदृष्टान्तेन वशे कुरुते अस्मितप्रलयस्य सुषुप्त्यादौ प्रत्यक्षत्वान्न तद्विशिष्ट आत्मेत्यर्थः ॥ १६ ॥ विद्याक्रममाह–**आकाशस्येति** । यदा विद्या कालं वशे कुरुते तदा आकाशस्य गुणं घोषं नादं अर्धमात्राबिन्दुनादक्रमेण तुरीयस्य तृतीयं ईश्वरं आत्मनि तुरीये कुरुते प्रविलापयति । तत् घोषलयाधिष्ठानं अव्यक्तम् । घोषादप्यतीतत्वात् । परं घोषान्तशब्दब्रह्मापेक्षया श्रेष्ठम्।तदेव च शाश्वतं नित्यनिर्मुक्तम्। अनुत्तमं नास्ति उत्तमं चरमं यस्मात्तत्तथा पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिरिति श्रुतेः । **एवमिति** । एवं प्रतिसञ्चरः प्रलय उक्तः । तत्स्वरूपं तु सर्वाणि भूतानि न ब्रह्मैवेति बाधायां सामानाधिकरण्यं रज्जुरगवदीश्वरान्तसर्वभूतबाधेन ब्रह्मैवावशिष्यते स प्रलयो न तु घटध्वंसवन्निवृत्तिमात्रम् ॥१७॥ एतदेव शास्त्रप्रतिपाद्यं वस्तुतत्त्वमित्याह–**यथावदिति** । बोध्यं बोधयितुं योग्यं अन्वर्थनामानं शिष्यं विद्यामयं अत्यौत्कण्ठ्येन विद्यार्थित्वात् विद्यामयं दृष्ट्वा ज्ञात्वा कीर्तितं 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः परमात्मवित्त्वाद्योगिनः परमात्मान इति दर्शयितुं परमात्मभिरिति तद्विशेषणम् १८

एवं विस्तारसंक्षेपौ ब्रह्माऽव्यक्ते पुनः पुनः। युगसाहस्रयोरादावहोरात्रस्तथैव च ॥ १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

## २३४-[६१]

व्यास उवाच।
भूतग्रामे नियुक्तं यत्तदेतत्कीर्तितं मया।
ब्राह्मणस्य तु यत्कृत्यं तत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु॥
जातकर्मप्रभृत्यस्य कर्मणां दक्षिणावताम्।
क्रिया स्यादासमावृत्तेराचार्ये वेदपारगे ॥ २
अधीत्य वेदानखिलान् गुरुशुश्रूषणे रतः।
गुरूणामनृणो भूत्वा समावर्तेत यज्ञवित् ॥ ३
आचार्येणाभ्यनुज्ञातश्चतुर्णामेकमाश्रमम्।
आविमोक्षाच्छरीरस्य सोऽवतिष्ठेद्यथाविधि
प्रजासर्गेण दारैश्च ब्रह्मचर्येण वा पुनः।
वने, गुरुसकाशे, वा यतिधर्मेण वा पुनः ॥ ५
गृहस्थस्त्वेष धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते।
यत्र पक्वकषायो हि दान्तः सर्वत्र सिध्यति ६
प्रजावान् श्रोत्रियो यज्वा
मुक्त एव ऋणैस्त्रिभिः।
अथान्यानाश्रमान्पश्चा-
त्पूतो गच्छेत कर्मभिः ॥ ७
यत्पृथिव्यां पुण्यतमं विद्यात्स्थानं तदावसेत्।
यतेत तस्मिन्प्रामाण्यं गन्तुं यशसि चोत्तमे८
तपसा वा सुमहता विद्यानां पारणेन वा।
इज्यया वा प्रदानैर्वा विप्राणां वर्धते यशः ९
यावदस्य भवत्यस्मिन्कीर्तिर्लोके यशस्करी।
तावत्पुण्यकृताँल्लोकाननन्तान्पुरुषोऽश्नुते॥ १०
अध्यापयेदधीयीत याजयेत यजेत वा।
न वृथा प्रतिगृह्णीयान्न च दद्यात्कथञ्चन ॥ ११
याज्यतः शिष्यतो वाऽपि
कन्याया वा धनं महत्।
यदा गच्छेद्यजेद्दद्या-
न्नैकोऽश्नीयात्कथञ्चन ॥ १२
गृहमावसतो ह्यस्य नान्यत्तीर्थं प्रतिग्रहात्।
देवर्षिपितृगुर्वर्थं वृद्धातुरबुभुक्षताम् ॥ १३
अन्तर्हितारितप्तानां यथाशक्ति बुभूषताम्।
द्रव्याणामतिशक्त्याऽपि देयमेषां कृतादपि ॥
अर्हतामनुरूपाणां नादेयं ह्यस्ति किंचन।
उच्चैःश्रवसमप्यश्वं प्रापणीयं सतां विदुः॥ १५
अनुनीय यथाकामं सत्यसन्धो महाव्रतः।
स्वैः प्राणैर्ब्राह्मणप्राणान्परित्राय दिवं गतः॥
रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय महात्मने।
अपः प्रदाय शीतोष्णा नाकपृष्ठे महीयते॥१७
आत्रेयश्चेन्द्रदमनो ह्यर्हते विविधं धनम्।
दत्वा लोकान्ययौ धीमाननन्तान्स महीपतिः
शिबिरौशीनरोऽङ्गानि सुतं च प्रियमौरसम्
ब्राह्मणार्थमुपाहृत्य नाकपृष्ठमितो गतः॥ १९
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय नयने स्वके।
ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाश्नुते२०
दिव्यमष्टशलाकं तु सौवर्णं परमर्धिमत्।
छत्रं देवावृधो दत्वा सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम्२१
सांकृतिश्च तथाऽऽत्रेयः
शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम्।
उपदिश्य महातेजा
गतो लोकाननुत्तमान्॥ २२
अंबरीषो गवां दत्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान्।
अर्बुदानि दशैकं च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् २३

---

उपसंहरति–**एवमिति**। विस्तारसंक्षेपौ सृष्टिप्रलयौ उक्ताविति शेषः। ब्रह्माव्यक्ते प्रणवप्रत्यगात्मानौ उपायोपेयौ पुनः पुनर्युगसहस्रान्ते रात्रिस्तथैवाहश्च ॥ १९ ॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥

२३४

अस्यैवार्थस्य वैशद्याय विस्तरेण सांख्ययोगौ विवक्षुस्तदधिकारिणं निरूपयत्यध्यायद्वयेन—**भूतग्रामे नियुक्तं यदित्यादिना** ॥ १ ॥ कृतात्पक्वान्नादपि॥१४॥

सावित्री कुण्डले दिव्ये शरीरं जनमेजयः ।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य जग्मतुर्लोकमुत्तमम् २४
सर्वरत्नं वृषादर्भिर्युवनाश्वः प्रियाः स्त्रियः ।
रम्यमावसथं चैव दत्वा स्वर्लोकमास्थितः२५
निमी राष्ट्रं च वैदेहो जामदग्न्यो वसुन्धराम्
ब्राह्मणेभ्यो ददौ चापि गयश्चोर्वी सपत्तनाम्
अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतानि भूतकृत ।
वसिष्ठो जीवयामास प्रजापतिरिव प्रजाः२७
करंधमस्य पुत्रस्तु कृतात्मा मरुतस्तथा ।
कन्यामङ्गिरसे दत्वा दिवमाशु जगाम ह २८
ब्रह्मदत्तश्च पाञ्चाल्यो
राजा बुद्धिमतां वरः ।
निधिं शंखं द्विजाग्रेभ्यो
दत्वा लोकानवाप्तवान् ॥ २९
राजा मित्रसहश्चापि वसिष्ठाय महात्मने ।
मदयन्तीं प्रियां दत्वा तया सह दिवं गतः॥
सहस्रजिच्च राजर्षिः प्राणानिष्टान् महायशाः
ब्राह्मणार्थं परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥
सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्वा वेश्म हिरण्मयम् ।
मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महीपतिः॥ ३२

नाम्ना च द्युतिमान्नाम
शाल्वराजः प्रतापवान् ।
दत्वा राज्यमृचीकाय
गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३३
लोमपादश्च राजर्षिः
शान्तां दत्वा सुतां प्रभुः ।
ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः
सर्वकामैरयुज्यत ॥ ३४
मदिराश्वश्च राजर्षि-
र्दत्वा कन्यां सुमध्यमाम् ।
हिरण्यहस्ताय गतो
लोकान्देवैरभिष्टुतान् ॥ ३५
दत्वा शतसहस्रं तु गवां राजा प्रसेनजित् ।
सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान्॥
एते चान्ये च बहवो
दानेन तपसैव च ।
महात्मानो गताः स्वर्गं
शिष्टात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ३७
तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत्स्थास्यति मेदिनी
दानयज्ञप्रजासर्गैरेते हि दिवमाप्नुवन् ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

## २३५-[६२]

व्यास उवाच ।
त्रयीं विद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तामथाङ्गतः ।
ऋक्सामवर्णाक्षरतो यजुषोऽथवर्णस्तथा ॥ १
तिष्ठत्येतेषु भगवान् षट्सु कर्मसु संस्थितः ।
वेदवादेषु कुशला ह्यध्यात्मकुशलाश्च ये ॥ २
सत्त्ववन्तो महाभागाः पश्यन्ति प्रभवाप्ययौ
एवं धर्मेण वर्तेत क्रियां शिष्टवदाचरेत ॥ ३
असंरोधेन भूतानां वृत्तिं लिप्सेत वै द्विजः ।
सद्भ्य आगतविज्ञानः शिष्टः शास्त्रविचक्षणः
स्वधर्मेण क्रियालोके कर्म सत्त्वस्थसंचरः ।
तिष्ठते तेषु गृहवान् षट्सु कर्मसु स द्विजः ५
पञ्चभिः सततं यज्ञैः श्रद्दधानो यजेत च ।
धृतिमानप्रमत्तश्च दान्तो धर्मविदात्मवान् ॥
वीतहर्षमदक्रोधो ब्राह्मणो नावसीदति ।
दानमध्ययनं यज्ञस्तपो ह्रीरार्जवं दमः ॥ ७
एतैर्वर्धयते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ।
धूतपाप्मा च मेधावी लघ्वाहारो जितेंद्रियः
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद्ब्रह्मणः पदम् ।
अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चार्चेद्देवताः प्रणमेत च ॥ ९
वर्जयेदुशतीं वाचं हिंसां चाधर्मसंहिताम् ।
एषा पूर्वगता वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ १०
ज्ञानागमेन कर्माणि कुर्वन्कर्मसु सिध्यति ।
पञ्चेन्द्रियजलां घोरां लोभकूलां सुदुस्तराम्॥
मन्युपङ्कामनाधृष्यां नदीं तरति बुद्धिमान् ।
कालमभ्युद्यतं पश्येन्नित्यमत्यन्तमोहनम् ॥ १२

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

२३५

त्रयीमिति ॥ १ ॥

महता विधिदृष्टेन बलेनाप्रतिघातिना ।
स्वभावस्रोतसा वृत्तमुह्यते सततं जगत्॥ १३
कालोदकेन महता वर्षावर्तेन संततम् ।
मासोर्मिणर्तुवेगेन पक्षोलपतृणेन च ॥ १४
निमेषोन्मेषफेनेन अहोरात्रजलेन च ।
कामग्राहेण घोरेण वेदयज्ञप्लवेन च ॥ १५
धर्मद्वीपेन भूतानां चार्थकामजलेन च ।
ऋतवाङ्मोक्षतीरेण विहिंसातरुवाहिना॥१६
युगह्रदौघमध्येन ब्रह्मप्रायभवेन च ।
धात्रा सृष्टानि भूतानि कृष्यन्ते यमसादनम्
एतत्प्रज्ञामयैर्धीरा निस्तरन्ति मनीषिणः ।
प्लवैरप्लववन्तो हि किं करिष्यन्त्यचेतसः १८
उपपन्नं हि यत्प्राज्ञो निस्तरेन्नेतरो जनः ।
दूरतो गुणदोषौ हि प्राज्ञः सर्वत्र पश्यति॥ १९
संशयं स तु कामात्मा चलचित्तोऽल्पचेतनः
अप्राज्ञो न तरत्येनं यो ह्यास्ते न स गच्छति
अप्लवो हि महादोषं मुह्यमानो नियच्छति ।
कामग्राहगृहीतस्य ज्ञानमप्यस्य न प्लवः॥ २१
तस्मादुन्मज्जनस्यार्थे प्रयतेत विचक्षणः ।
एतदुन्मज्जनं तस्य यदयं ब्राह्मणो भवेत्॥ २२
अवदातेषु सञ्जातस्त्रिसन्देहस्त्रिकर्मकृत् ।
तस्मादुन्मज्जने तिष्ठेत्प्रज्ञया निस्तरेद्यथा २३

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च ॥
वर्तेत तेषु गृहवानक्रुध्यन्ननसूयकः ।
पञ्चभिः सततं यज्ञैर्विघसाशी यजेत च २५
सतां धर्मेण वर्तेत क्रियां शिष्टवदाचरेत् ।
असंरोधेन लोकस्य वृत्तिं लिप्सेदगर्हिताम् ॥
श्रुतविज्ञानतत्त्वज्ञः शिष्टाचारो विचक्षणः ।
स्वधर्मेण क्रियावांश्च कर्मणा सोऽप्यसंकरः॥
क्रियावान् श्रद्दधानो हि
दान्तः प्राज्ञोऽनसूयकः ।
धर्माधर्मविशेषज्ञः
सर्वं तरति दुस्तरम् ॥ २८
धृतिमानप्रमत्तश्च दान्तो धर्मविदात्मवान् ।
वीतहर्षमदक्रोधो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ २९
एषा पुरातनी वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
ज्ञानवत्त्वेन कर्माणि कुर्वन्सर्वत्र सिद्ध्यति ३०
अधर्मं धर्मकामो हि करोति ह्यविचक्षणः ।
धर्मं वा धर्मसंकाशं शोचन्निव करोति सः
धर्मं करोमीति करोत्यधर्म-
मधर्मकामश्च करोति धर्मम् ।
उभेऽबलः कर्मणी न प्रजानन्
स जायते म्रियते चापि देही ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

## २३६-[६३]

### व्यास उवाच ।

अथ चेद्रोचयेदेतद्द्रुह्येत स्रोतसा यथा । उन्मज्जंश्च निमज्जंश्च ज्ञानवान् प्लववान्भवेत् ॥ १

ब्रह्मप्रायभवेन ब्रह्मकार्यभूतेन ॥ १७ ॥ अवदातेषु शुद्धेषु कुलेष्विति शेषः । त्रिषु अध्यापनयाजनप्रतिग्रहेषु संदेहवांस्तत्राप्रवृत्त इत्यर्थः । त्रिकर्मकृत् स्वाध्याययजनदानकृत् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

२३६

अथ अतीतानन्तराध्यायद्वयोक्तसाधनसंपत्तेरनन्तरं एतद्वक्ष्यमाणं शान्त्याख्यं कैवल्यं चेद्रोचयेत्तर्हि ज्ञानवान् भवेत् । एवं मुमुक्षावान् ज्ञानं साधयेदिति वदता बन्धस्याज्ञानकार्यत्वेन मिथ्यात्वं दर्शितम् । यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्तकं तन्निवृत्तौ तत्कृतस्य बन्धस्य निवृत्तिः संभाव्यते न तु बन्धसत्यत्वपक्षे । तथा च श्रुतिः–' तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्'इति । आत्मजिज्ञासासिद्ध्याक्षिप्तमावरणमनुवाद्य तस्य मिथ्यात्वं प्रसिद्धिविषयैवाह–'एतं ब्रह्मलोकं न विदन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः' इति । तथा 'असंगो ह्ययं पुरुषः' इति च । तथा चासंगस्यापि संगित्वभानं मिथ्यैव सत् ज्ञाननिवर्त्यं भविष्यतीति युक्तमुक्तं चेदेतद्रोचयेत्तर्हि ज्ञानवान्

प्रज्ञया निश्चिता धीरास्तारयन्त्यबुधान्प्लवैः ।
नाबुधास्तारयन्त्यन्यानात्मानं वा कथञ्चन
छिन्नदोषो मुनिर्योगान्मुक्तो युञ्जीत द्वादश ।
देशकर्मानुरागार्थानुपायापायनिश्चयः ॥ ३
चक्षुराहारसंहारैर्मनसा दर्शनेन च ।
यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या य इच्छेज्ज्ञानमुत्तमम्
ज्ञानेन यच्छेदात्मानं य इच्छेच्छान्तिमात्मनः
एतेषां चेदनुद्रष्टा पुरुषोऽपि सुदारुणः ॥ ५
यदि वा सर्ववेदज्ञो यदि वाप्यनृचो द्विजः ।
यदि वा धार्मिको यज्वा यदि वा पापकृत्तमः
यदि वा पुरुषव्याघ्रो यदि वा क्लैब्यधारितः ।
तरत्येवं महादुर्गं जरामरणसागरम् ॥ ७
एवं ह्येतेन योगेन युञ्जानो ह्येवमन्ततः ।
अपि जिज्ञासमानोऽपि शब्दब्रह्मातिवर्तते ८
धर्मोपस्थो ह्रीवरूथ उपायापायकूबरः ।
अपानाक्षः प्राणयुगः प्रज्ञायुर्जीवबन्धनः ॥ ९
चेतनाबन्धुरश्चारुश्चाचारग्रहनेमिमान् ।
दर्शनस्पर्शनवहो घ्राणश्रवणवाहनः ॥ १०
प्रज्ञानाभिः सर्वतन्त्रप्रतोदो ज्ञानसारथिः ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितो धीरः श्रद्धादमपुरःसरः ११
त्यागसूक्ष्मानुगः क्षेम्यः
शौचगो ध्यानगोचरः ।
जीवयुक्तो रथो दिव्यो
ब्रह्मलोके विराजते ॥ १२
अथ संत्वरमाणस्य रथमेवं युयुक्षतः ।
अक्षरं गन्तुमनसो विधिं वक्ष्यामि शीघ्रगम् ॥

भवेदिति । ज्ञानप्लवहीनः संसारस्रोतसा उह्यमान ऊर्ध्वाधोगतिर्गच्छतीत्यर्थः । एतेनाथातो ब्रह्मजिज्ञासेति सूत्रपदानामर्थः साधनसंपत्त्यनन्तरं बन्धस्य मिथ्यात्वात्तन्निवृत्त्यर्थं ब्रह्म जिज्ञास्यमित्येवंरूपो दर्शितः ॥ १ ॥ प्रज्ञया ध्यानजसाक्षात्कारेण ॥ २ ॥ छिन्नदोषः रागादिहीनः अत एव योगात् स्त्र्यादिसंगात् द्वादशदेशादीन् योगसहायान् वक्ष्यमाणान् युञ्जीत समादध्यात् । अनुसरेदित्यर्थः । तत्र देशयोगः —' समे शुचौ शर्करवह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः । मनोनुकूले न तु चक्षुःपीडने गुहानिवाताश्रयणेन योजयेत्' इति श्रुत्युक्तः । **कर्मयोगः**—
' युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा '
इति गीतोक्तः । अनुरागः सच्छिष्यः अर्थो द्रव्यं एधोदकाद्याहरणायासादिचिन्तानिरासार्थौ एतयोर्योगौ उपाय आसनादियोगः 'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः । अपायो रागाद्यपचयः । निश्चयः गुरुवेदवाक्यादौ फलावश्यंभावबुद्धिः । निश्चय इति सुपां सुलुगिति भिसः स्वादेशः । उपायापायनिश्चयैः चक्षुरादिभिश्च सहितान् देशादीन् द्वादश युञ्जीतेति पूर्वेण सम्बन्धः चक्षुः चक्षुरादीनि आहारः आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिरिति श्रुतिप्रसिद्धः संहारः स्वाभाविकविषयप्रवृत्तिसंकोचः मनः संकल्पविकल्पात्मकं दर्शनं जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् । एतानि द्वादश मुमुक्षुरनुसरेदित्यर्थः सार्धः ॥३॥ एवं द्वादशविशेषणविशिष्टस्याधिकारिणो यत्कर्तव्यं तदाह **—यच्छेदिति** । वागादिबाह्येन्द्रियव्यापारमुत्सृज्य मनोमात्रेणावतिष्ठेत । मनोऽपि विपर्यविकल्पाभिमुखं अध्यवसायस्वभावया बुद्ध्या नियच्छेत् । बुद्धिमात्रेणावतिष्ठेतेत्यर्थः । इदमेव उत्तमं ज्ञानं इन्द्रियमनोतिरिक्तकर्त्रात्मविषयं तेन ज्ञानेन सूक्ष्मतमया बुद्ध्या आत्मानं बुद्धिविविक्तं यच्छेत् बुद्धिमपि आत्मनि प्रविलापयेदित्यर्थः । कः यः शान्तिं कैवल्यं आत्मन इच्छेत् । एतेन ' यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि । ज्ञानमात्मनि महति तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ' इत्यस्याः श्रुतेरर्थो दर्शितः । अत्र श्रुत्युक्ताया महदाख्यसमष्टिबुद्धेरपि बुद्धिशब्देनैव संग्रहः अन्यत्समानम् । योगफलमाह**—एतेषामिति** । वागादीनामनुद्रष्टा शान्तात्मा येन ज्ञातः स पुरुषः साधुरसाधुर्वा मुच्यत एवेति सार्धश्लोकद्वयार्थः ॥ ४ ॥ एवं पूर्वश्लोकोक्तप्रकारेण एवमन्ततः शान्तात्मप्राप्त्यवधियोगं जिज्ञासमानोऽपि किमुतानुतिष्ठन् शब्दब्रह्मकर्मकाण्डमतिक्रम्य प्रवर्तते । परोक्षज्ञानवानपि स्वकर्मत्यागजं दोषं न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ अक्षरं ब्रह्म प्राप्तुकामस्य रथरूपकेण योगमुपायमुपदिशंस्तदङ्गानि बाह्यान्याह—धर्मोपस्थ इत्यादिना । धर्मो यज्ञादिः तदेव उपस्थं ज्ञानसारथेरुपवेशनस्थानं यस्य । ह्रीरकार्यान्निवृत्तिः सैव वरूथं रथगुप्तिर्यस्य उपायापायौ प्रागुक्तौ कूबरौ धूर्दण्डौ यस्य ॥ ९ ॥ चेतनासावधानता सैव बन्धुरः फलकद्वयसंश्लेषः । आचारः शीलं तस्य ग्रहोऽङ्गीकारः । दर्शनादिचतुष्टयं वाहनं अश्वादिरूपम् ॥ १० ॥ प्रज्ञा शमादिप्रावण्यं नाभिर्मध्यमभागः रथिन उपवेशनस्थानं तन्त्रं शास्त्रं ज्ञानं तदर्थनिश्चयः ॥ ११ ॥ सूक्ष्मानुगः चेटः संनिपत्योपकारी शौचमार्गेणैव गच्छतीति शौचगः । ध्यानं ध्येयैकतानता सैव गोचरः प्राप्योऽर्थो यस्य जीवयुक्तः जीवेन मुमुक्षुणा युक्तो योजितः ब्रह्मैव लोकस्तत्समीपे ॥ १२ ॥ रथं यांगं विधिं अन्तरङ्गसाधनम् ॥१३ ॥

**सप्त या धारणाः कृत्स्ना वाग्यतः प्रतिपद्यते**
**पृष्ठतः पार्श्वतश्चान्यास्तावत्यस्ताः प्रधारणाः**
**क्रमशः पार्थिवं यच्च वायव्यं खं तथा पयः।**
**ज्योतिषो यत्तदैश्वर्यमहङ्कारस्य बुद्धितः।**
**अव्यक्तस्य तथैश्वर्यं क्रमशः प्रतिपद्यते॥ १५**

**सप्तेति**। देशबन्धश्चित्तस्य धारणेति सूत्रितम्। एकस्मिन्विषये चित्तस्य स्थापनं धारणा सा च विषयभेदादनेकधेति सप्त धारणा इत्युक्तम्। वाग्यत इति यमनियमादीनामुपलक्षणम्। पृष्ठतः विप्रकृष्टतराः चन्द्रसूर्यध्रुवमण्डलादिधारणाः। पार्श्वतः किंचित्सन्निकृष्टा नासाग्रभ्रूमध्यकण्ठकूपादिधारणाः अन्याः सन्ति। तथापि ताः प्रधारणाः प्रशिष्यप्रपौत्रादिशब्दवदत्र प्रशब्दार्थः। ताः व्यवहिता इति। अत्यन्तमव्यवहिताः सप्तैव धारणा इत्यर्थः। अत्र पुराणान्तरे—

'दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः।
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः।
बौद्धा दशसहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः।
पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः'

इति भूतेष्वभिमानाख्याहङ्कारेऽव्यक्ते चेति सप्तकापेक्षया इन्द्रियबुद्धिधारणे आधिके उक्ते ते अपि अहङ्कारधारणायामन्तर्भवतः॥ १४॥ **क्रमश इति**। पयः पयसः जलस्य षष्ठ्यर्थे प्रथमा। बुद्धितः बुद्ध्या तत्र तत्र विषये स्थिरया तत्तदैश्वर्यं प्रतिपद्यते। अत्र पृथ्व्यादिधारणानां स्थानबीजदेवता योगियाज्ञवल्क्योक्ता ज्ञेयाः। यथा—

'पादादि जानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते।
आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम्।
आपायोर्हृदयान्तं यद्वान्हिस्थानं तदुच्यते।
हृन्मध्यात्तु भ्रुवोर्मध्यं यावद्वायुकुलं भवेत्।
आभ्रूमध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशमिति चोच्यते।
पृथिव्यां वायुमास्थाय लकारेण समन्वितम्।
ध्यायंश्चतुर्मुखाकारं ब्रह्माणं सृष्टिकारणम्।
धारयेत्पञ्च घटिकाः पृथिवीजयमाप्नुयात्।
वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम्।
स्मरन्नारायणं देवं चतुर्बाहुं शुचिस्मितम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं पीतवाससमच्युतम्।
धारयेत्पञ्चघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते।
वन्ह्यावानिलमारोप्य रेफाक्षरसमन्वितम्।
त्र्यक्षं वरप्रदं रुद्रं तरुणादित्यसंनिभम्।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन्।
धारयेद्घटिकाः पञ्च वन्हिनाऽसौ न दह्यते।

**विक्रमाश्चापि यस्यैते तथा युक्तेषु योगतः।**
**तथा योगस्य युक्तस्य सिद्धिमात्मनि पश्यतः**
**निर्मुच्यमानः सूक्ष्मत्वाद्रूपाणीमानि पश्यतः**
**शैशिरस्तु यथा धूमः सूक्ष्मः संश्रयते नभः १७**

मारुतं मरुतां स्थाने वर्णदेवसमन्वितम्।
धारयेत्पञ्चघटिका वायुवद्व्योमगो भवेत्।'

वर्णो यकारः देव ईश्वरः रूपं रुद्रवत्। 'आकाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शङ्करम्। बिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवं। चित्तेन चिन्तयेत्स्वस्थं मुहूर्तमपि धारयेत्'। अत्र लकारादिबीजस्थानेषु अकारोकारमकारार्धमात्रा बिन्दून्न्यसेत् अव्यक्तधारणायां षष्ठ्यां नादं तदन्ते शुद्धं ब्रह्मैव शिष्यते। तथा च तत्रैवोपसंहृतम्—

'एवं तस्मात्प्रणवेनैव प्राणायामैस्त्रिभिस्त्रिभिः।
ब्रह्मादिकार्यरूपाणि स्वे स्वे संहृत्य कारणे।
विशुद्धचेतसा पश्य नादान्ते परमेश्वरम्' इति।

अहङ्कारधारणास्वरूपं तु स्थूलदेहासङ्गेनाहमेवेदं सर्वोऽस्मीत्यभिमानः। अस्यैव तत्त्वमस्यादिवाक्यजां विद्यां विना प्रलयः अव्यक्तधारणा॥ १५॥ **विक्रमा इति**। योगत उपायतः युक्तेषु योगे प्रवृत्तेषु योगिनः एते वक्ष्यमाणा विक्रमा अनुभवक्रमाः यथा येन प्रकारेण भवन्ति तथा वक्ष्यामीति शेषः। आत्मनि देहाभ्यन्तरे पश्यतो ध्यायतः पुरुषस्य युक्तस्य योगस्य सिद्धिं सम्यक्प्रयुक्तयोगसंबन्धिनीं सिद्धिं भूजयादिकां वक्ष्यामीति शेषः॥ १६॥ तत्र विक्रमानाह—**निर्मुच्यमान इत्यादिना**। पश्यतः प्रत्यगात्मन इमानि वक्ष्यमाणानि रूपाणि। निर्मुच्यमानः गुरूक्तयुक्त्या स्थूलदेहाध्यासं त्यजन् सूक्ष्मत्वात्पश्यतीति शेषः। न त्वविमुच्यमानः स्थूलदृष्टिः शैशिरो धूमः अवश्यायो नीहाराख्यः नभः संश्रयते इत्यनेन तस्य भुवनकोशे व्याप्तिर्दर्शिता। अत्रायं प्रयोगः—शमादिसंपन्नो विविक्ते देशे स्थिरसुखमासनमध्यासीनः प्राणायामपुरःसरं गुरूक्तयुक्त्या स्थूलदेहासङ्गेन पादादिजानुपर्यन्ते भूस्थाने चित्तं धारयतः स्थानतिरोधानपूर्वकं नीहारमात्रमवभासते यथा रज्जूरगे चक्षुर्धारयत उरगतिरोधानेन रज्जुमात्रम्। तदा लुप्ताधरभागो जानूपरिष्टात्तन एव देहो नीहारमभोऽसंदिग्धाविपर्यस्ततया भाति सोऽयं भूमिजयः। अस्मिन् सिद्धे जान्वादिपाय्वन्ते जलस्थाने चित्तं धारयतः भूसःस्थानं च तिरोधीयते। पायूर्ध्वभागमात्रं च कल्पान्तार्णवमग्नं पूर्ववद्भाति। तदिदं द्वयं जले भूमिसंहारो जलजयश्चेत्युच्यते। एवमुत्तरत्रापि भूतसंहारजयौ ज्ञेयौ॥ १७॥

तथा देहाद्विमुक्तस्य पूर्वं रूपं भवत्युत ।
अथ धूमस्य विरमे द्वितीयं रूपदर्शनम् ॥ १८
जलरूपमिवाकाशे तथैवात्मनि पश्यति ।
अपां व्यतिक्रमे चास्य वन्हिरूपं प्रकाशते १९
तस्मिन्नुपरतेऽजोऽस्य पीतशस्त्रः प्रकाशते ।
ऊर्णारूपसवर्णस्य तस्य रूपं प्रकाशते ॥ २०
अथ श्वेतां गतिं गत्वा वायव्यं सूक्ष्ममप्युत ।
अशुक्लं चेतसः सौक्ष्म्यमप्युक्तं ब्राह्मणस्य वै
एतेष्वपि हि जातेषु फलजातानि मे शृणु ।
जातस्य पार्थिवैश्वर्यैः सृष्टिरत्र विधीयते २२
प्रजापतिरिवाक्षोभ्यः शरीरात्सृजते प्रजाः ।
अङ्गुल्यङ्गुष्ठमात्रेण हस्तपादेन वा तथा२३
पृथिवीं कम्पयत्येको गुणो वायोरिति श्रुतिः ।
आकाशभूतश्चाकाशे सवर्णत्वात्प्रकाशते ।
वर्णतो गृह्यते चापि कामात्पिबति चाशयान्
न चास्य तेजसां रूपं दृश्यते शाम्यते तथा ।
अहङ्कारेऽस्य विजिते पञ्चैते स्युर्वशानुगाः ॥
षण्णामात्मानि बुद्धौ च जितायां प्रभवत्यथ ।
निर्दोषप्रतिभा ह्येनं कृत्स्ना समभिवर्तते ॥ २६
तथैव व्यक्तमात्मानमव्यक्तं प्रतिपद्यते ।
यतो निःसरते लोको भवति व्यक्तसंज्ञकः ॥
तत्राव्यक्तमयीं विद्यां शृणु त्वं विस्तरेण मे ।
तथा व्यक्तमयं चैव सांख्ये पूर्वं निबोध मे२८
पञ्चविंशतितत्त्वानि तुल्यान्युभयतः समम् ।
योगे सांख्येऽपि च तथा विशेषं तत्र मे शृणु

आत्मनि देहाभ्यन्तरे वन्हिरूपं प्रकाशते लोहितान्धकारमग्नो भवतीत्यर्थः ॥ १९ ॥ **तस्मिन्निति** । अस्य योगिनः अजति गच्छति क्षिपति वा वृक्षानित्यजो वायुः पीतशस्त्रः पीतशस्त्रवत् पीतानि गिलितानि शस्त्रवद्विच्छेदकत्वात् वृक्षागारपर्वतादीनि शस्त्राणि येन तद्वत् । गिलिताखिलभूजलतेजोरूपः केवले नभसि सन्ततं दोधूयमानः प्रकाशते इत्यर्थः । तदेवोक्तं प्राक् । वायुर्दोधूयते महान् । तदा निराश्रयं ऊर्णातन्तोर्यद्रूपं अतिलघु तेन सवर्णस्य समानरूपस्य ऊर्णातन्तुवन्निरालम्बनेऽन्तरिक्षे स्थितस्य वायुवशस्येत्यर्थः । तस्य योगिनोऽपि रूपं हृन्मध्यादारभ्य उपरितनं प्रकाशते न त्वन्यत्किञ्चिद्वाय्वाकाशव्यतिरिक्तम् ॥ २० ॥ अथ तेजःसंहारवायुजयानन्तरं वायव्यं वायुसंबन्धि सूक्ष्मं रूपादिहीनं स्वरूपं कर्तृ श्वेतां प्रवृत्त्यावरणरूपरजस्तमोमलशून्यत्वात्प्रकाशमयत्वाच्च स्वच्छाम्। गतिः गम्यते तत्त्वं प्राप्यते अनयेति भ्रूमध्यादिमूर्धान्तं आकाशस्थानं गतिः। तां गत्वा तत्र विलयं प्राप्य अशुक्लं नीलरूपं सुषिरमाकाशमात्रं स्थानलयपूर्वकं पूर्ववत्प्रकाशते इति पूर्वेणान्वयः । तदिदमशुक्लं चेतसः सौक्ष्म्यं सौख्यमिति पाठे प्रसादकरं ब्राह्मणस्य ब्रह्मबुभूषोरुक्तं शास्त्रे । अपिः पादपूरणार्थः । अव्यक्तमिति पाठे लोकाप्रसिद्धं योगैकगम्यं सेयं व्योमसंवित् वायुलय आकाशजयश्चेत्युच्यते । अयमेव तान्त्रिकाणां भूतशुद्धिप्रकारः संप्रदायापरिज्ञानाद्यथावदिदानींतनैर्नानुष्ठीयते ॥ २१ ॥

'पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' ।

इतिश्रुत्युक्तं पञ्चभूतजयफलं पृथिवीवायुराकाश आपो ज्योतींषीति श्रुत्यन्तरोक्तक्रमेणोपबृंहयति-**एतेष्वित्यादिना** । जातस्य सिद्धस्य ॥ २२ ॥ आकाशभूतत्वे हेतुः-**सवर्णत्वादिति** । 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इतिश्रुतेराकाशेन समानरूपत्वात् । वर्णतः आकृतितः गृह्यतेऽपिधीयते अरूपत्वादेवान्तर्धानशक्तिमपि प्राप्नोतीत्यर्थः। जलजयफलमाह—**कामादिति**। इच्छया आशयान् वा जलस्य वापीकूपतटाकादीन् पिबति अगस्त्यवत् ॥ २४ ॥ **न चेति** । आकाशजये आकृतेरेव आकाशभूततया पिधानम् । अत्र तु सत्यामप्याकृतौ अदृश्यत्वमुच्यते । उक्तक्रमेण भूजयं विना वा पूर्वोक्ताहङ्कारधारणयाऽहङ्कारे विजितेनान्तरीयकत्वेनैवाकाशादयो जिताः स्युरित्यर्थः ॥ २५ ॥ **षण्णामिति** । पञ्चभूतानि अहंकारश्च तेषां आत्मभूतायां बुद्धौ। एतेनाहंकाराद्बुद्धेरव्यतिरेक उक्तः । तेन सप्तैव धारणाः प्रभवति ऐश्वर्यवान् भवति । निर्दोषप्रतिभा संशयविपर्ययशून्यं ज्ञानम् । सर्वेश्वरः सर्वज्ञश्च भवतीत्यर्थः ॥ २६ ॥ व्यक्तं बुद्ध्यादिरूपं आत्मानं अव्यक्तं अव्यक्तत्वेन जीवं जगत्कारणं ब्रह्मभावेन जानातीत्यर्थः ॥ २७ ॥ अव्यक्तमयीं अव्यक्तप्रधानाम् । मे मत्तः पूर्वं अव्यक्तबोधात्प्राक् व्यक्तं निबोध ॥ २८ ॥ **पञ्चेति**—

'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः' ।

इतिसांख्योक्तानि तत्त्वानि योगे पातञ्जलीये सांख्ये वेदान्तविचारे च तुल्यानि विशेषं शास्त्रभेदप्रयोजकम् ॥ २९ ॥

प्रोक्तं तद्व्यक्तमित्येव जायते वर्धते च यत्।
जीर्यते म्रियते चैव चतुर्भिर्लक्षणैर्युतम् ॥ ३०
विपरीतमतो यत्तु तदव्यक्तमुदाहृतम्।
द्वावात्मानौ च वेदेषु सिद्धान्तेष्वप्युदाहृतौ
चतुर्लक्षणजं त्वाद्यं चतुर्वर्गं प्रचक्षते।
व्यक्तमव्यक्तजं चैव तथा बुद्धमचेतनम्।
सत्त्वं क्षेत्रज्ञ इत्येतद्द्वयमप्यनुदर्शितम् ॥ ३२
द्वावात्मानौ च वेदेषु विषयेष्वनुरज्यतः।
विषयात्प्रतिसंहारः सांख्यानां विद्धि लक्षणं
निर्ममश्चानहङ्कारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः।
नैव क्रुद्ध्यति न द्वेष्टि नानृता भाषते गिरः३४
आक्रुष्टस्ताडितश्चैव मैत्रेण ध्याति नाशुभम्।
वाग्दण्डकर्ममनसां त्रयाणां च निवर्तकः ३५
समः सर्वेषु भूतेषु ब्रह्माणमभिवर्तते।
नैवेच्छति न चानिच्छो यात्रामात्रव्यवस्थितः
अलोलुपोऽव्यथो दान्तो न कृती न निराकृतिः
नास्येन्द्रियमनेकाग्रं नाविक्षिप्तमनोरथः ३७
सर्वभूतसदृङ्मैत्रः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः
अस्पृहः सर्वकामेभ्यो ब्रह्मचर्यदृढव्रतः।
अहिंस्रः सर्वभूतानामीदृक् सांख्यो विमुच्यते
यथा योगाद्विमुच्यन्ते कारणैर्यैर्निबोध तत्।
योगैश्वर्यमतिक्रान्तो यो निष्क्रामति मुच्यते

तत्र व्यक्तलक्षणमाह—**प्रोक्तमिति**। तच्च महदादिविकारान्तं त्रयोविंशकम् ॥ ३० ॥ विपरीतं जन्मवृद्ध्यादिहीनम्। अव्यक्तं चतुर्विंशम्। एतेभ्योऽन्यमेकमेव जीवात्मानं प्रतिशरीरं भिन्नमिति सांख्या मन्यन्ते ततो विशेषमाह—**द्वाविति**। द्वौ जीवेश्वरौ वेदेषु कर्मकाण्डेषु यजमानः यष्टव्यश्च। तेन यष्टव्यदेवतायाश्चेतनत्वमनिच्छन्तो **मीमांसकाः** परास्ताः। सिद्धान्तेषु वेदान्तेषु उदाहृतौ जीवब्रह्मरूपौ ॥ ३१ ॥ 'कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः' इति श्रुत्यनुसारेण जीवेश्वरविभागमाह—**चतुरिति**। चतुर्लक्षणं जन्मादिविकारवत्। महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रैकादशेन्द्रियपञ्चभूतानि तज्जं तदुपाधिकं चतुर्वर्गार्थिनं व्यक्तं जीवं अव्यक्तजं मायोपाधिमीश्वरम्। **तथेति**। तदुभयमपि बुद्धमचेतनं च चिदाचिदात्मकमित्यर्थः। अथ जलचन्द्रन्यायेन प्रतिबिम्बो जीवो बिम्बचैतन्यमीश्वर इति। द्वा सुपर्णा सयुजा सखायेत्यादिश्रुतिसंमतं जीवेश्वरविभागमाह—**सत्त्वमिति**। सत्त्वं बुद्धिः क्षेत्रज्ञश्चिदात्मा 'तदेतत्सत्त्वं येन स्वप्नं पश्यत्यथ योऽयं शारीर उपद्रष्टा स क्षेत्रज्ञस्तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञौ' इति पैङ्गिरहस्यब्राह्मणे व्याख्यानात्। यद्यपि तृतीयया कारणत्वेन निर्दिष्टस्याचेतनस्य सत्त्वस्य भोक्तृत्वं न घटते नाप्युपद्रष्टुः क्षेत्रज्ञस्य निर्विकारस्य तथापि तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्त्वस्य भोक्तृत्वश्रुत्यन्यथानुपपत्त्या चैतन्यानुविद्धत्वं वक्तव्यम्—

'यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वा-
नपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन्।
उपाधिना क्रियते भेदरूपो
देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा'।

इतिश्रुत्यन्तराच्च। एतद्द्वयं जीवेश्वरविभागे प्रकारद्वयमपि दर्शितं श्रुत्या ॥ ३२ ॥ अनयोः पक्षयोः क्रमेण मूढामूढदृष्टिभेदेन व्यवस्थामाह—**द्वाविति**। विषयात् घटादिविषयमारभ्य प्रतिसंहारः उत्पत्तिक्रमवैपरीत्येन संप्रविलापनं कर्तव्यमिति सांख्यानां औपनिषदानां लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं शास्त्रम्। अयमर्थः—मूढानां तात्त्विक एव जीवेश्वरादिभेदः, बुद्धानां तु बिम्बप्रतिबिम्बभावेनेति प्रतिबिम्बोपाधेः सत्त्वस्य प्रविलये चिन्मात्रमेव शिष्यते इति ॥ ३३ ॥ एवं ज्ञाततत्त्वस्य जीवन्मुक्तस्य लक्षणान्याह—**निर्मम इत्यादिना** ॥ ३४ ॥ ध्याति ध्यायति वाग्दंडः पारुष्यं कर्म तादृशमेव हिंस्रम्। तथा मनोऽपि परानिष्टार्थि तेषाम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्माणं चतुर्मुखम् ३६ कृती कार्यवान् निराकृतिः तुच्छवेषः न विक्षिप्तः संपादितः मनोरथो यस्य स तथा भवति। सत्यसंकल्प इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ योगमते विशेषं वक्तुं प्रतिजानीते—**यथेति**। योगैश्वर्यमणिमादिपरमार्थभूतं सदतिक्रान्तस्तदुल्लंघ्य गतः परवैराग्यबलेन न तु तत्त्वज्ञानबलेनानृतं सत् सांख्य इव शुक्तिरजतवद्बाधितवान् निष्क्रामति वृत्तिसारूप्यादपसरति न तु वृत्तिमूलमज्ञानमुच्छिनत्ति। अयमर्थः-अस्माकं मिथ्याज्ञानोद्भवो देहेन्द्रियादिः प्रपञ्चो विद्ययाऽज्ञानबाधे सति बाध्यते रज्जूरगादिवत्। योगानां तु सत्यात्प्रधानत उत्पन्नः प्रपञ्चः सत्यस्तदाकाराश्रितस्य वृत्तयोऽपि मत्याः वृत्तिसारूप्यं च चैतन्यस्य सत्यमेव तत्र वृत्तीनां निरोधे चितस्तदाकारतापि निवर्तते। तथा च सूत्रितम्-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं वृत्तिसारूप्यमितरत्रेति। सोऽयं सांख्ययोगयोर्विशेषो यथाप्रतिज्ञमुपपादितः ॥ ४० ॥

इत्येषा भावजा बुद्धिः कथिता ते न संशयः। एवं भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्माणं चाधिगच्छति ४१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥

## २३७-[६४]

व्यास उवाच।

अथ ज्ञानप्लवं धीरो गृहीत्वा शान्तिमात्मनः
उन्मज्जंश्च निमज्जंश्च ज्ञानमेवाभिसंश्रयेत् ॥ १

शुक उवाच।

किं तज्ज्ञानमथो विद्या यथा निस्तरते द्वयम्
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तिरिति वा वद २

व्यास उवाच।

यस्तु पश्यन्स्वभावेन विनाभावमचेतनः।
पुष्यते च पुनः सर्वान्प्रज्ञया मुक्तहेतुकान् ३

येषां चैकान्तभावेन स्वभावात्कारणं मतम्।
पूत्वा तृणमिषीकां वा ते लभन्ते न किञ्चन

---

उपसंहरति—**इतीति**। भावो वक्तृविवक्षा तद्विशेषजा बुद्धिः। फलतस्तु न तयोर्भेदोऽस्तीति भावः। यथोक्तं भगवता—

'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति' इति। ब्रह्माणं परं ब्रह्म पुंस्त्वमार्षम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥

### २३७

सांख्ययोगपक्षयोर्मध्ये सांख्यमेव श्रेय इत्याह-**अथेति**। शास्त्राचार्योपदेशजं परोक्षज्ञानरूपं प्लवं संसारसमुद्रतरणसाधनं गृहीत्वा धीरो ध्यानवान् आत्मनः शान्तिं मोक्षहेतुं ज्ञानमेवाश्रयेत्। 'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः' इति श्रुतेर्ज्ञानं शास्त्रतः संपाद्य तन्निष्ठो भवेदित्यर्थः ॥ १ ॥ अत्र ज्ञानशब्दार्थं पृच्छति-**किमिति**। तत्संश्रयणीयं ज्ञानं किं विद्यां रज्जूरगादिन्यायेनाविद्यामात्रनिरासेन वस्तुतत्त्वज्ञापिकां धीवृत्तिं वा ब्रूषे उत प्रवृत्तिलक्षणो ध्यानेन कीटभृंगवत् ध्येयसारूप्यप्रापको धर्म इति वा आत्मोच्छेदलक्षणा शून्यवादिलौकायतिकयोः संमता निवृत्तिरिति वा तद्वद। यथा येन प्रकारेण द्वयं जन्ममरणादि निस्तरते तथा वदेति ॥ २ ॥ अत्राहमित्यनुभवे जडोऽहंकारस्तत्प्रकाशश्च प्रथेते तदुभयात्मेति **भाट्टाः**। अहमर्थ एवात्मा प्रकाशस्तस्य गुणः स च त्रिक्षणावस्थायीति तार्किकाः। नित्यप्रकाश एवात्माऽहमर्थोऽनात्मेति **सांख्याः**। तत्राप्यात्मानात्मानौ द्वावपि तात्विकाविति **बहवः**। अनात्मैव स्थिरश्चिदात्मा तु देहनाशे नश्यतीति **लोकायतिकाः**। आत्मैव सत्योऽनात्मा मृषेति **वेदान्तवादाः**। द्वयमपि नास्तीति **शून्यवादिनः**। एवमात्माभावे सति ज्ञानानर्थक्यं स्यादित्यन्त तावद्दूषयति-**यस्त्विति**। यस्तु भावं अधिष्ठानसत्तां विना स्वभावेनैव अहंकारादिकं स्वरूपेणैव भातीति पश्यन् निरधिष्ठानकां स्वाभाविकीं जगद्भ्रान्तिं वदन् सर्वान् शिष्यान् प्रज्ञया मुक्ताः। ऊहापोहकौशलेन रहिताः हेतवो युक्तयो येषां तान् निर्बुद्धीनित्यर्थः। प्रज्ञयेति तृतीयाया आर्षोऽलुक्। पुष्यते पुष्णाति तादृशेन बोधेन रञ्जयति। अचेतनो मूढः स न किञ्चन तत्त्वं लभते इत्युत्तरेणान्वयः। निरधिष्ठानकभ्रमासंभवात् शून्यवादोऽत्यन्तं हेय इति भावः ॥ ३ ॥ एवं नैरात्म्यवादं दूषयित्वाऽऽत्मोच्छेदवादं लोकायतमतं दूषयति—**येषामिति**। येषां लोकायतानां एकान्तभावेन दृढत्वेन स्वभावादेव क्षीरादिकं दध्यादेः कारणं न तु ईशादृष्टादनुग्रहात्। ईशादिसत्त्वे प्रमाणाभावात्। प्रत्यक्षेण च तेषामदृष्टत्वादिति मतम्। ते किं तृणं मुञ्जं पूत्वा संशोध्य तदन्तर्गतां प्रागदृष्टामिषीकामपि किं वा न लभन्ते इति काका दृष्टविरुद्धवादित्वं तेषामुक्तम्। चनशब्दोऽप्यर्थो भिन्नक्रमश्च। न ह्यदर्शनमात्रेण वस्त्वभावो निश्चेतुं शक्यः। मुञ्जान्तस्थेषीकाया अप्यसत्त्वापत्तेः। श्रुतिश्च मुञ्जेषीकादृष्टान्तेनैव देहादन्यमात्मानमाह–'तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिव इषीकां धैर्येणेति'। श्रुत्वा तृणामृषीर्णा वेति पाठे ते श्रवणपूर्वकं किंचित्तत्त्वं न लभन्तेऽपि तु स्वयमेवानुपासिताचार्या इत्थं कल्पयन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥

ये चैनं पक्षमाश्रित्य निवर्तन्त्यल्पमेधसः ।
स्वभावं कारणं ज्ञात्वा न श्रेयः प्राप्नुवन्ति ते
स्वभावो हि विनाशाय मोहकर्म मनोभवः ।
निरुक्तमेतयोरेतत्स्वभावपरिभावयोः ॥ ६
कृष्यादीनीह कर्माणि सस्यसंहरणानि च ।
प्रज्ञावद्भिः प्रक्लृप्तानि यानासनगृहाणि च ७
आक्रीडानां गृहाणां च गदानामगदस्य च ।
प्रज्ञावन्तः प्रयोक्तारो ज्ञानवद्भिरनुष्ठिताः ८
प्रज्ञा संयोजयत्यर्थैः प्रज्ञा श्रेयोऽधिगच्छति ।
राजानो भुञ्जते राज्यं प्रज्ञया तुल्यलक्षणाः
परावरं तु भूतानां ज्ञानेनैवोपलभ्यते ।
विद्यया तात सृष्टानां विद्यैवेह परा गतिः १०
भूतानां जन्म सर्वेषां विविधानां चतुर्विधम्
जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजं चोपलक्षयेत् ॥
स्थावरेभ्यो विशिष्टानि जङ्गमान्युपधारयेत् ।
उपपन्नं हि यच्चेष्टा विशिष्येत विशेष्यया १२
आहुर्वै बहुपादानि जङ्गमानि द्वयानि तु ।
बहुपाद्भ्यो विशिष्टानि द्विपदानि बहून्यपि ॥
द्विपदानि द्वयान्याहुः पार्थिवानीतराणि च ।
पार्थिवानि विशिष्टानि तानि ह्यन्नानि भुञ्जते
पार्थिवानि द्वयान्याहुर्मध्यमान्युत्तमानि तु ।
मध्यमानि विशिष्टानि जातिधर्मोपधारणात्
मध्यमानि द्वयान्याहु-
र्धर्मज्ञानीतराणि च ।
धर्मज्ञानि विशिष्टानि
कार्याकार्योपधारणात् ॥ १६
धर्मज्ञानि द्वयान्याहुर्वेदज्ञानीतराणि च ।
वेदज्ञानि विशिष्टानि वेदो ह्येषु प्रतिष्ठितः ॥
वेदज्ञानि द्वयान्याहुः प्रवक्तृणीतराणि च ।
प्रवक्तृणि विशिष्टानि सर्वधर्मोपधारणात् १८
विज्ञायन्ते हि यैर्वेदाः सधर्माः सक्रियाफलाः
सधर्मा निखिला वेदाः प्रवक्तृभ्यो विनिःसृताः
प्रवक्तृणि द्वयान्याहु-
रात्मज्ञानीतराणि च ।
आत्मज्ञानि विशिष्टानि
जन्माजन्मोपधारणात् ॥ २०
धर्मद्वयं हि यो वेद स सर्वज्ञः स सर्ववित् ।
स त्यागी सत्यसङ्कल्पः सत्यः शुचिरथेश्वरः
ब्रह्मज्ञानप्रतिष्ठं हि तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातं परे च कृतनिश्चयम् २१
अन्तस्थं च बहिष्ठं च
साधियज्ञाधिदैवतम् ।
ज्ञानान्विता हि पश्यन्ति
ते देवास्तात ते द्विजाः ॥ २३
तेषु विश्वमिदं भूतं सर्वं च जगदाहितम् ।
तेषां माहात्म्यभावस्य सदृशं नास्ति किञ्चन
आद्यन्ते निधनं चैव कर्म चातीत्य सर्वशः ।
चतुर्विधस्य भूतस्य सर्वस्येशाः स्वयंभुवः २५

---

स्वभावादेव शून्ये जगद्भ्रान्तिः स्वभावादेव च देहाद्युत्पत्तिरिति पक्षद्वयमप्यनर्थकमित्याह-**ये चेति** ॥ ५ ॥ तदेव दूषयति—**स्वभावो हीति** । मोहकर्म मोहकार्यं यन्मनस्तद्भवः मूढैर्मनसा कल्पित इत्यर्थः । स्वस्यैव भावः सत्ताकारणमिति एकः पक्षः । परितः स्वस्य इतरेषां च भावः कारणमित्यन्यः । एतयोः स्वभावपरिभावयोर्निरुक्तं निर्वचनं तत्त्वं एतद्वक्ष्यमाणं शृणु इति शेषः ॥ ६ ॥ स्वभावादेव क्षीरदधिन्यायेन सर्वोत्पत्तौ कृष्यादिर्यत्नः प्रज्ञा कौशलं चानर्थकं स्यादित्याह--**कृष्यादीत्यादिना** ॥ ७ ॥ गदानां रोगाणां अगदस्य औषधस्य अनुष्ठिताः प्रयोजिताः ॥ ८ ॥ तुल्यलक्षणाः प्रज्ञाधिक्यादैश्वर्याधिक्यभाजः ॥ ९ ॥ भूतानां परं रूपं चिदात्मा अवरं माया तदुभयं ज्ञानेन धीवृत्त्यैव बाध्याबाध्यरूपया उपलभ्यते ज्ञायते विद्यया धीवृत्त्या परा गतिर्लयस्थानम् ॥ १० ॥ एवं धीमयौ सृष्टिप्रलयावुक्त्वा व्यावहारिकौ तावाह विद्वत्प्रशंसार्थम्—**भूतानामिति** । जरायुजं मनुष्यपश्वादि, अण्डजं पक्षिसर्पादि, उद्भिज्जं तृणवनस्पत्यादि, स्वेदजं यूकालिक्षादि ॥ ११ ॥ यत् यस्मात् विशेष्य विशेषं कृत्वा या चेष्टा सा विशिष्येत विशिष्टं कुर्यात् वृक्षादीनां पूर्वोक्तरीत्या दर्शनादिमत्त्वेऽपि प्रत्यक्षेण दर्शनादिमन्तो जंगमास्ततः श्रेष्ठा इत्यर्थः ॥ १२ ॥ पार्थिवानि पृथिवीचराणि मानुषाणि इतराणि खेचराणि ॥ १४ ॥ उत्तमानि निर्णेतुं मध्यमेष्वेवान्तरतारतम्यमाह--**मध्यमानीत्यादिना आत्मज्ञानि विशिष्टानीत्यन्तेन** ॥ १६ ॥ धर्मद्वयं प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपम् ॥ २१ ॥ तत्रापि ब्रह्मज्ञाने प्रतिष्ठा समाप्तिर्यस्य न तु प्रवृत्तिधर्मे शब्दब्रह्मणि वेदशास्त्रे ॥ २२ ॥ अंतस्थं परचित्तस्थं बहिष्ठं व्यवहितादि ते ज्ञानान्विताः द्विजाः देवाश्च अन्ये नाम ब्राह्मणा असुराश्चेत्यर्थः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

## २३८-[६५]

व्यास उवाच ।
एषा पूर्वतरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
ज्ञानवानेव कर्माणि कुर्वन् सर्वत्र सिद्ध्यति ॥
तत्र चेन्न भवेदेवं संशयः कर्मसिद्धये ।
किं तु कर्मस्वभावोऽयं ज्ञानं कर्मेति वा पुनः
तत्र वेदविधिः स स्याज्ज्ञानं चेत्पुरुषं प्रति ।
उपपत्त्युपलब्धिभ्यां वर्णयिष्यामि तच्छृणु ॥
पौरुषं कारणं केचिदाहुः कर्मसु मानवाः ।
दैवमेके प्रशंसन्ति स्वभावमपरे जनाः ॥ ४
पौरुषं कर्म दैवं च कालवृत्तिस्वभावतः ।
त्रयमेतत्पृथग्भूतमविवेकं तु केचन ॥ ५
एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा ।
कर्मस्था विषयं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ६
त्रेतायां द्वापरे चैव कलिजाश्च ससंशयाः ।
तपस्विनः प्रशान्ताश्च सत्त्वस्थाश्च कृते युगे ७
अपृथग्दर्शनाः सर्वे ऋक्सामसु यजुःषु च ।
कामद्वेषौ पृथक् कृत्वा तपः कृत उपासते ८

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

२३८

आत्मज्ञानं विना कर्मापि कृतमन्तवदेव भवति 'यो वा एदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिन्लोके यजति ददाति तपस्तप्यतेऽपि बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य भवति' इति श्रुतेः। अतः आत्मानं जिज्ञास्यं ज्ञात्वा तत्प्राप्त्यर्थं कर्माणि कुर्वीत 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इत्यादिश्रुतेरित्याह-**एषेति**। वृत्तिर्वर्तनं पूर्वतरा नित्या 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य' इति श्रुतेः ॥ १ ॥ तत्र कर्माणि संशयश्चेन्न भवेत्तर्हि कर्म कृतं सत्सिद्धये भवति । संशयस्वरूपं विवृणोति--**किंत्विति** । किं कर्मस्वभावो नित्यमेव उत ज्ञानं ज्ञानजनकत्वेन कर्म काम्यं वेत्यर्थः । नित्यं चेन्न काम्यं स्यात् काम्यं चेन्न तदकरणे प्रत्यवायः स्यादिति भावः ॥ २ ॥ तत्र तस्मिन्संशये सति पुरुषं प्रति ब्रह्मोद्देशेन ज्ञानं ज्ञानजनकं चेत् कर्म स्यात्तर्हि स एव वेदविधिर्नित्यविधिरपि स्यात् । आत्मविविदिषार्थैरपि कर्मभिर्नित्यप्रयोगस्यापि सिद्धिरस्तीत्यर्थः। अत्र हेतुद्वयम्-**उपपत्तेरुपलब्धेश्चेति**। यथा काम्योऽपि दारसंग्रहः क्रत्वर्थोऽपि भवति न हि कामार्थमन्या स्त्री क्रत्वर्थमन्या स्त्री परिणेयेत्युपपद्यते। उपलभ्यते च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यस्यापि खादिरत्वादेः काम्यत्वम्, तच्चोदाहृतम्। तत् कर्मणामुभयार्थत्वेन प्राधान्यं वर्णयिष्याम्यहं त्वं च शृणु ॥ ३ ॥ स्वभाववादनिरासमुपक्रान्तमुपसंहरिष्यन् मतान्तराण्युपन्यस्यति--**केचिदिति** । पौरुषं इहजन्मनि जन्मान्तरे वा कृतं कर्म दैवं ग्रहाः काल इति यावत् । स्वभावः स्वरूपमात्रम् ॥ ४ ॥ इति क्रमेण मीमांसकस्य दैवज्ञस्य शून्यवादिलोकायतयोश्च मतान्युपन्यस्यैतेषां विकल्पसमुच्चयावाह--**पौरुषमिति** । पौरुषं दैवं च कर्म दृष्टादृष्टयत्नः स्वभावमनुसृत्य कर्मकालौ फलदावित्यर्थः । अविवेकं समुच्चयम्। पृथक्भूतं एकमेव प्रधानं न त्वितरावित्यर्थः॥५॥ आर्हतमतमाह-**एतदिति** । तैर्हि १स्यादस्ति २ स्यान्नास्ति ३ स्यादस्ति च नास्ति च ४स्यादस्ति चावक्तव्यः ५स्यान्नास्ति चावक्तव्यः ६स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः ७स्यादवक्तव्य इति सप्तभङ्गीनयः सर्वत्र योज्यते । अत एतदेवमिति स्यादस्तीत्युक्तम् । चात् एतन्न एवं च नेति सम्बन्धेन स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्य इति चोक्तम् । न चोभे इत्यनेन स्यादस्ति च नास्ति च स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति चोक्तम्। नानुभे इति स्यादस्ति चावक्तव्यः स्यान्नास्ति चावक्तव्य इति चोक्तम्। कर्मस्थाः आर्हताः विषयं घटादिं एतदेवं अस्तीत्यादि ब्रूयुरिति संबंधः । एतेषु पक्षेषु कृतहानाकृताभ्यागमप्रसंगात्स्वभावमात्रपक्षस्तुच्छः । बन्धमोक्षादिवस्तुमात्रस्वरूपस्यास्ति नास्तीत्यादिविकल्पग्रस्तत्वेनानवधारणात्मक आर्हतपक्षोऽपि तुच्छ एव । परिशेषात्समुच्चय पक्ष एव श्रेयान् व्यवहारे परमार्थस्तु सत्त्वस्थाः योगिनः समदर्शिनः ब्रह्मैव कारणत्वेन पश्यन्ति ॥ ६ ॥ **त्रेतायामिति** । पापानुवेधादेवात्र श्रौते मते संशयो भवतीत्यर्थः। प्रशान्ताः निःसंशयाः ॥७॥ **अपृथगिति** । वेदत्रयेऽपि भेदमपश्यन्तः काम्यादीन्पृथक्कृत्य तपो ज्ञानं उपासते श्रयन्ति ॥ ८ ॥

तपोधर्मेण संयुक्तस्तपोनित्यः सुसंशितः।
तेन सर्वानवाप्नोति कामान्यान्मनसेच्छति ९
तपसा तुदवाप्नोति यद्भूत्वा सृजते जगत्।
तद्भूतश्च ततः सर्वभूतानां भवति प्रभुः ॥ १०
तदुक्तं वेदवादेषु गहनं वेददर्शिभिः।
वेदान्तेषु पुनर्व्यक्तं कर्मयोगेन लक्ष्यते ॥ ११
आलंभयज्ञाः क्षत्राश्च हविर्यज्ञा विशः स्मृताः
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञा द्विजातयः ॥
परिनिष्ठितकार्यो हि स्वाध्यायेन द्विजो भवेत्
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते १३
त्रेतादौ केवला वेदा यज्ञा वर्णाश्रमास्तथा।
संरोधादायुषस्त्वेते व्यस्यन्ते द्वापरे युगे १४
द्वापरे विप्लवं यान्ति वेदाः कलियुगे तथा।
दृश्यन्ते नापि दृश्यन्ते कलेरन्ते पुनः किल
उत्सीदन्ति स्वधर्माश्च तत्राधर्मेण पीडिताः
गवां भूमेश्च ये चापामोषधीनां च ये रसाः ॥
अधर्मान्तर्हिता वेदा वेदधर्मास्तथाऽऽश्रमाः
विक्रियन्ते स्वधर्मस्थाः स्थावराणि चराणि च
यथा सर्वाणि भूतानि वृष्टिर्भौमानि वर्षति।
सृजते सर्वतोऽङ्गानि तथा वेदा युगे युगे १८
निश्चितं कालनानात्वमनादिनिधनं च यत्।
कीर्तितं यत्पुरस्तान्मे सूते यच्चात्ति च प्रजाः
यच्चेदं प्रभवः स्थानं भूतानां संयमो यमः।
स्वभावेनैव वर्तन्ते द्वन्द्वसृष्टानि भूरिशः २०
सर्गः कालो धृतिर्वेदाः
कर्ता कार्यं क्रियाफलम्।
एतत्ते कथितं तात
यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने अष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥

---

## २३९-[६६]

भीष्म उवाच।

इत्युक्तोऽभिप्रशस्यैतत्परमर्षेस्तु शासनम्। मोक्षधर्मार्थसंयुक्तमिदं प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १

अतो ज्ञातारमेव स्तौति—**तप इति** ॥ ९ ॥ यद्भूत्वा ब्रह्म भूत्वा तद्भूतः ब्रह्मभूतः ॥ १० ॥ किं तज्ज्ञानमिति ज्ञानशब्देन विद्या वा कर्म जोऽतिशयो वा आत्मनाशो वेति पृष्टम्। तत्रान्त्यः स्वभाववादनिरासेन निरस्तः। आद्ये प्रमाणं प्रदर्शयन्मध्यमं निरस्यति—**तदिति**। तद्ब्रह्म वेदवादेषु कर्मकाण्डेष्वपि प्रस्तावादिदेवतात्वेन उक्तम्। तथापि गहनं अज्ञातमेव तत्र वेददर्शिभिरपि। वेदान्तेषु तु तदेव पुनर्विद्यैकप्राप्यं ब्रह्म व्यक्तमुक्तम्। कर्मयोगे भावनात्मके योगे तत्र लक्ष्यते न ह्युपासनया—कीटभृंगन्यायेन ब्रह्मभावस्य प्राप्यत्वं वक्तुं युक्तम्। जन्यत्वेनानित्यत्वापातादित्यर्थः ॥ ११ ॥ प्रमेयसिद्ध्यर्थं ब्रह्मणि प्रमाणभूतं वेदं स्तौति-**आलंभेत्यादिना** ॥ १२ ॥ स्वधर्मस्था आश्रमाः विक्रियन्ते भृतकाध्यापनक्रतुजन्यपुण्यसमर्पणादिना ॥ १७ ॥ वर्षति पुष्णाति अङ्गानि योगाङ्गानि यमादीनि वेदाध्यायिनं पुष्यन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ कालनानात्वं कालो जीवस्तस्य नानात्वं कृतत्रेतादिरूपेण। तथा हि सत्कर्मपराङ्मुखः शयानः पुरुषः कलिरित्युच्यते। अधर्मं हातुमिच्छन् संजिहानो द्वापरः। धर्ममनुष्ठातुमुद्युक्त उत्तिष्ठंस्त्रेता। धर्मं चरन् कृतं भवति तथा च श्रुतिः—'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्' इति स च कालोऽनादिनिधनः प्रजाः सूतेऽत्ति चेति जीवस्य तत्पदार्थभेद उक्तः ॥ १९ ॥ यच्चेदं कालाख्यं भूतानां प्रभव उत्पत्तिः स्थानं पोषणं संयमः प्रलयः यमः नियन्ताऽन्तर्यामी यत्र वर्तन्ते भूतानि स्वभावेन ब्रह्मभावेन न तु विकृतेन रूपेण ॥ २० ॥ काल एव सर्गादिकं तेन ज्ञानं नाम विद्यैव प्रतीचोऽज्ञानकृतजीवत्वबाधेन ब्रह्मभावप्रकाशिका न त्वात्मन्यतिशय आत्मोच्छेदो वेति अध्यायद्वयेन स्पष्टीकृतम् ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥

---

२३९

एवं ज्ञानपदार्थव्याख्यानप्रसंगादात्मनोऽनाधेयातिशयत्वमुक्तम्। तच्च न कर्त्रात्मपक्षे उच्छेदपक्षे वा युज्यते। अतः परिशेषात् असंगात्मवादिनोः सांख्ययोगयोरेव व्यवतिष्ठत

शुक उवाच ।

प्रज्ञावान् श्रोत्रियो यज्वा कृतप्रज्ञोऽनसूयकः
अनागतमनैतिह्यं कथं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया ।
सांख्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व मे
मनसश्चेन्द्रियाणां च यथैकाग्र्यमवाप्यते ।
येनोपायेन पुरुषैस्तत्त्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४

व्यास उवाच ।

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र सर्वसन्त्यागात्सिद्धिं विन्दति कश्चन
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टिः स्वयंभुवः ।
भूयिष्ठं प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥ ६
भूमेर्देहो जलात्स्नेहो
ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते ।
प्राणापानाश्रयो वायुः
खेष्वाकाशं शरीरिणाम् ॥ ७
क्रान्ते विष्णुर्बले शक्रः
कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति ।
कर्णयोः प्रदिशः श्रोत्रं
जिह्वायां वाक् सरस्वती ॥ ८
कर्णौ त्वक् चक्षुषी जिह्वा
नासिका चैव पञ्चमी ।
दर्शनीयेन्द्रियोक्तानि
द्वाराण्याहारसिद्धये ॥ ९
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं, रसो, गन्धश्च पञ्चमः।
इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा
इन्द्रियाणि मनो युंक्ते वश्यान्यन्तेव वाजिनः
मनश्चापि सदा युंक्ते भूतात्मा हृदयाश्रितः ११
इन्द्रियाणां तथैवैषां सर्वेषामीश्वरं मनः ।
नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मानसस्तथा १२
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना मनः।
प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु देहिनाम्
आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणाः शब्दो न चेतना
सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वै कथञ्चन १४

---

इति तयोरेव विभागार्थमध्यायद्वयमारभ्यते—**इत्युक्त इत्यादि** ॥ १ ॥ अनागतं प्रत्यक्षानुमानाभ्यामज्ञातम् अनैतिह्यं यूपाहवनीयादिवदलौकिकमपि इदमित्थमिति वेदेनापि न निर्देश्यम् ॥ २ ॥ यथा यत्प्रकारकमैकाग्र्यम् ॥ ४ ॥ विद्यादिपदैः क्रमेणाश्रमचतुष्टयधर्मा उक्ताः ॥ ५॥ स्वयंभुव ईश्वरस्य महाभूतानि पूर्वसृष्टिः तानि च प्राणभृद्ग्रामे जीवसंघे शरीरिषु शरीराभिमानिषु मूढजीवेषु भूयिष्ठं निविष्टानि तैरात्मत्वेन गृहीतानीत्यर्थः । पृथक्सृष्टिरिति पाठे भौतिकसृष्टेः पृथगेव भूतसृष्टिस्ततः प्राचीनत्वादिति स एवार्थः ॥६॥ खेषु नासादिरन्ध्रेषु ॥७॥ योगमते आत्मा भोक्तैव न तु कर्ता सांख्यमते तु न भोक्ता नापि कर्तेति तत्राद्यं दूषयति उत्तरस्यैव सिद्धान्तत्वं ज्ञापयितुम् **क्रान्ते** इति । क्रान्ते पादेन्द्रियबले पाणीन्द्रिये च विष्णुशक्रौ तत्प्रयोक्तारौ तिष्ठतः भटा इव राजकीयरथशकटादौ । तत्र यथा भटगतं जयपराजयादि रथगतं ह्रासवृद्ध्यादि च राजा आत्मन्यभिमानादध्यारोपयति । तद्वच्चिदात्मा देवतेन्द्रियगतं भोक्तृत्वखञ्जत्वादिकमविद्यया स्वस्मिन्नारोपयति अहं भोगी अहं खञ्ज इति।यथा च पराजयो न भृत्ये तदभिमानाभावात् । एवं भोगोऽपि विष्ण्वादौ नास्ति । आत्मनि स्वविद्ययैव तद्भावनमिति सिद्धमात्मनोऽकर्तृत्वमभोक्तृत्वं च। नन्वात्मैव कर्ता भोक्ता चास्तु किमन्तर्गडुभिर्विष्ण्वादिभिरिति चेन्न । अनिर्मोक्षापत्तेः । स्वाभाविकस्य कर्तृत्वादेर्वन्ह्यौष्ण्यवदाश्रयनाशमन्तरेण नाशायोगाच्च कर्णौ स्थानं श्रोत्रमिन्द्रियं दिशो देवताः जिह्वा स्थानम् वागिन्द्रियम् सरस्वती देवता । एतच्चान्येषामपि स्थानादीनामुपलक्षणम् ॥ ८ ॥ दर्शयन्ति तानि दर्शनीयानि कर्तरि कृत्यः तानि च तानीन्द्रियाणि चेति समासः । विभक्तिलोप आर्षः। आहारः शब्दादिग्रहः ॥ ९ ॥ इन्द्रियेभ्य एव इन्द्रियार्थान्कूर्माङ्गवत् पृथग्भूतान् विद्यात् ॥ १० ॥ मनः कर्तृ यन्ता सारथिः भूतात्मा बुद्ध्युपाधिर्जीवः ॥११ ॥एषां शब्दादीनां ईश्वरं उत्पत्तिस्थितिलयहेतुः नियमे संहारे विसर्गे सृष्टौ ॥ १२ ॥ इन्द्रियार्था घटादयः स्वभावः शीतोष्णादिधर्मः चेतना धीवृत्तिः देहेषु हृदयगुहायामेव वर्तन्ते स्वप्न इव कर्मोदये तत एवाविर्भवन्तीत्यर्थः ॥१३॥ ननु देहस्यापीन्द्रियार्थत्वाद्देहान्तर्गतबुद्धौ स्थितिः स्वस्कन्धारोहणन्यायमनुसरतीत्याह—**आश्रय इति** । सत्त्वस्य बुद्धेराश्रयो यः प्रागुक्तो देहः सोऽपि नास्ति । स्वाप्नदेहवत्तस्यापि प्रतिभानमात्रत्वात्। कस्तर्हि सत्त्वस्याश्रयः किं च तस्य रूपमत आह-**गुणा इति** । त्रिगुणात्मिका मूलप्रकृतिरेव स्वविकारस्य वाचारंभणं विकारो नामधेयमिति श्रुतेः । शब्दमात्रस्वरूपस्य सत्त्वस्याश्रय इत्यर्थः । न तु चेतना सत्त्वस्याश्रयः स्वरूपं वा। असंगत्वादविकारत्वाच्च। ननु गुणा बुद्धेरेव धर्माः सन्तु तथा च सात्त्विकोऽयं राजसोयमिति तेषां तदुपाधिकं पुरुषे व्यपदेशो युज्यत इत्या-

एवं सप्तदशं देहे वृतं षोडशभिर्गुणैः ।
मनीषी मनसा विप्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि
न ह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः ।
मनसा तु प्रदीपेन महानात्मा प्रकाशते १६
अशब्दस्पर्शरूपं तदरसागन्धमव्ययम् ।
अशरीरं शरीरेषु निरीक्षेत निरिन्द्रियम् १७
अव्यक्तं सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमाश्रितम् ।
योऽनुपश्यति स प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयसे १८
विद्याभिजनसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः
स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च ।
वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् २०
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म संपद्यते तदा २१
यावानात्मनि वेदात्मा
तावानात्मा परात्मनि ।
य एवं सततं वेद
सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ २२

सर्वभूतात्मभूतस्य विभोर्भूतहितस्य च ।
देवाऽपि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः२३
शकुन्तानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।
यथा गतिर्न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः ॥
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवात्मनात्मनि
यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तं वेदेह न कश्चन २५
न तदूर्ध्वं न तिर्यक्‌ च नाधो न च पुनः पुनः
न मध्ये प्रतिगृह्णीते नैव किंचित्कुतश्चन २६
सर्वेऽन्तस्था इमे लोका बाह्यमेषां न किञ्चन ।
यद्यजस्रं समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः २७
नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः ।
तस्मात्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति स्थूलतरं ततः
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ २९
तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम् ।
तदन्तः सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ३०
अक्षरं च क्षरं चैव द्वैधीभावोऽयमात्मनः ।
क्षरः सर्वेषु भूतेषु दिव्यं तमृतमक्षरम् ॥ ३१

शंक्याह—**सत्त्वं हीति** । तेजः वासना सत्त्वं सृजति न तु गुणान् अनादिवासना हि सत्त्वस्य कारणं सा च त्रिगुणात्मिकेति न सत्त्वकार्यत्वं गुणानां घटते सात्त्विकोऽयमित्यादिव्यपदेशस्तु परंपरयाऽपि युज्यते इति भावः॥१४ सप्तदशं चिदात्मानम् । षोडशभिः पंचेन्द्रियाणि पञ्चेन्द्रियार्थाः स्वभावादयश्च षट् तैः मनीषी मनोनिग्रहशीलः आत्मनि बुद्धौ ॥ १५ ॥ अशरीरं स्थूलसूक्ष्मकारणशरीररहितम् ॥ १७ ॥ मर्त्येषु मरणधर्मवत्सु अनुपश्यति गुरुवेदवाक्यमनु ब्रह्मभूयसे निर्विशेषब्रह्मभावाय ॥ १८ ॥ अभिजनः शिष्यकुलादिः समं ब्रह्मैव पश्यन्ति ते समदर्शिनः ॥ १९ ॥ एतदेव प्रसिद्धिविधया आह—**स हीति** । ध्रुवेषु स्थावरेषु ॥२०॥ योगफलमाह-**सर्वभूतेष्विति**। संप्रज्ञाते सोपाधिकावस्थायां सर्वभूतेष्वात्मानमनुस्यूतं पश्यति अहमेवेदं सर्वोऽस्मीत्यनुभवतीत्यर्थः । आत्मनि निष्कले असंप्रज्ञातावस्थायां सर्वभूतान्यात्मन्येव विलीनानि पश्यति 'तत्केन कं पश्येत्'इतिश्रुतेः। तथा च द्विविधो ब्रह्मभाव उक्तो भवति स चोक्तः-

'सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते ।
सोपाधिकः स्यात्सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः' इति।

॥ २१ ॥ वेदस्य आत्मा शब्दः स आत्मनि स्वस्वरूपे यावान् देशतः कालतश्च यावत्प्रमाणोऽस्ति तावान् आत्मा जीवः, सर्वोऽपि वाचो विषय आत्मेत्यर्थः । स च परात्मनि अधिष्ठाने स्वस्वरूपे। तथा च श्रुतिः—'यावद्ब्रह्म विष्ठितं तावती वागिति' । विष्ठितं विविधाकारेण स्थितम् ॥ २२ ॥ सर्वेषां भूतानां आत्मभूतस्य प्रत्यग्रूपस्य विभोः आकाशतुल्यस्य परिच्छेदाभिमानिनामेव देवयानः पितृयाणोऽन्यो वा मार्गोऽस्ति । अतस्तस्य मार्गेऽन्वेषणीये देवा अपि मुह्यन्ति देवापीत्यपेरार्षः सन्धिः। व्यवहितक्रियया सम्बन्धश्च अपदस्य मार्गरहितस्य पदैषिणः ब्रह्मबुभूषोः। तथा च श्रुतिः-'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते । ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति। अत्रैव स्वात्मन्येव समवनीयन्ते एकीभावेन लीयन्ते 'अस्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति'इति श्रुत्यन्तराच्च विदुष्येव प्राणमनःप्रभृतीनां कलानां प्रत्ययोऽध्यवसेयः ॥ २३ ॥ एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति—**शकुंतानामिति** । ज्ञानविदां ब्रह्मविदाम् ॥ २४ ॥ काल उक्तरूपो जीवः पचति जरयति पच्यते जीर्यते यस्मिन् तं परमात्मानम् ॥२५॥ तत् मुक्तस्वरूपं प्रतिगृह्णीते विषयी करोति।एतेन देशविशेषप्राप्तिर्मुक्तिरिति पक्षः परास्तः॥२६ अन्तस्थाः मुक्तस्वरूपान्तर्गताः। एषां लोकानां मध्ये बाह्यं किंचित्स्थानं नास्ति यद्गतिप्राप्यं स्यात् ॥ २७ ॥ अन्तं सन्निधिम् । अनन्तत्वात्तस्य ॥२८॥ कारणस्य ज्ञेयं स्वरूपमाह--**तस्मादिति सार्धाभ्याम्** ॥ २९ ॥ कालः पचतीत्यादिभिः षड्भिः श्लोकैः ब्रह्मणः प्रत्यगात्मत्वात्

नवद्वारं पुरं गत्वा हंसो हि नियतो वशी ।
ईशः सर्वस्य भूतस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥
हानिभङ्गविकल्पानां नवानां संचयेन च ।
शरीराणामजस्याहुर्हंसत्वं पारदर्शिनः ॥ ३३
हंसोक्तं चाक्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम् ।
तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ३४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

## २४०-[६७]

व्यास उवाच ।
पृच्छतस्तव सत्पुत्र यथावदिह तत्त्वतः ।
सांख्यज्ञानेन संयुक्तं यदेतत्कीर्तितं मया ॥ १
योगकृत्यं तु ते कृत्स्नं वर्तयिष्यामि तच्छृणु ।
एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः २
आत्मनो व्यापिनस्तात ज्ञानमेतदनुत्तमम् ।
तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ३
आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः ४

---

अविषयत्वात् सर्वलोकाश्रयत्वात् अनन्तत्वात्सूक्ष्मत्वात् विभुत्वाच्च ब्रह्मविदां देशान्तरप्राप्तिर्नास्तीत्युक्त्वा प्रकारान्तरेणाप्येतदाह—**अक्षरमिति** । अक्षरं अविनाशि चैतन्यम् । क्षरं विनाशि जडम् । सर्वेषु भूतेषु स्थावरजङ्गमशरीरेषु क्षरः क्षरत्वम् ॥ ३१ ॥ नव महदहंकारपञ्चतन्मात्राणि अविद्या कर्म चेति कामस्याहंकारधर्मस्य तद्ग्रहेणैव ग्रह इति नवैव गतिद्वाराणि यस्मिंस्तन्नवद्वारं पुरं गत्वा प्राप्य ईशोऽपि हंसो हन्ति गच्छतीति हंसो गतिमान् भवति 'स ईक्षांचक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रांतो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजतेति परस्मिन्प्राणोपाधिकस्यैव गमनस्य श्रवणात् नियतः अचंचलः वशी उपाधिदोषानाभिभूतः ईशो नियन्ता ॥ ३२ ॥ परं गत्वा हंसो भवतीत्येतद्विवृणोति—**हानीति** । अजस्य परमेश्वरस्य शरीराणां शरीरान्तर्गतानां नवानां पूर्वोक्तमहदादीनां सम्बन्धिनो ये हान्यादयस्तेषां संचयेन संग्रहेण हंसत्वमाहुः पारदर्शिनस्तत्त्वविदः । हानिर्गतिः । ओहाङ् गतावित्यस्य रूपम् । भंगो दुःखित्वादिकम् । विकल्पो मनुष्योऽयं पशुरयं वृक्षोऽयमिति विविधकल्पना च हंसत्वमित्युपलक्षणं भङ्गादेरपि ॥३३॥ एवमात्मनः क्षराक्षरयोरुत्पत्तिमक्षरस्य क्षरद्वारकं गत्यादिकं चेत्युक्त्वा तत्त्वमसिवाक्यार्थप्रतिपादनपुरःसरं विदुष उपाध्यभावाद्गत्यभावमाह—**हंसेति** । हंसपदेनोक्तं यदक्षरं जीवाख्यं तत् कूटस्थमेवाक्षरं न त्वन्यत् कूटस्थमक्षरं अन्यत् हंसाख्यमक्षरमिति भेदोऽस्ति 'अयमात्मा' 'अहं ब्रह्मास्मि'इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः । तत्तस्माद्धेतोः विद्वान् हंसः अक्षरं कूटस्थमात्मानं प्राप्य प्राणं उत्क्रान्त्यादिसाधने उपाधिं जन्म च जहाति जन्महेतोरविद्याया नाशात् ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥

२४०

एवं सांख्यतत्त्वमुक्त्वा योगिनां यत्कृत्यं तद्वक्तुं प्रतिजानीते-**पृच्छत इति** ॥१॥ ननु ज्ञानादेव तु कैवल्यं ' ' नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ' इति श्रुतेः सांख्यादन्यो मोक्षमार्गो नास्ति । तत्किं स्वातंत्र्येण योगकृत्यनिरूपणेनेत्याशंक्य योगमते ज्ञानशब्दार्थमाह-**एकत्वमिति** । घटादिवृत्तिद्वारं. इन्द्रियाणि दुःखादिवृत्तिद्वारं मनः । तेषामेकत्वं बुद्धिमात्रेणावस्थानं बुद्धिवृत्तिनिरोध इति यावत् । एतदेव ज्ञानं अनुत्तमं श्रेष्ठमित्यर्थः । नान्यदहं ब्रह्मास्मीति धीवृत्तिरूपं तथा च श्रुतिः—

'तावन्मनो निरोद्धव्यं हृदि यावत्क्षयं गतम् ।

एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः' इति ॥२॥ बोद्धव्यं गुरुमुखादवगन्तव्यम्, आचार्यवान् पुरुषो वेदेति श्रुतेः । तेन सुषुप्तौ घटदुःखादिवृत्त्यभावेन ज्ञानत्वं प्रसक्तं तन्निरस्तम् । आनंदभुक् चेतोमुखः प्राज्ञ इति श्रुतेस्तत्रापि निद्रारूपाया धीवृत्तेः सत्त्वात् प्राज्ञः सुषुप्तः उपशान्तो जितचित्तः दान्तो जितबाह्येन्द्रियः अध्यात्मशीली ध्याननिष्ठः आत्मारामः आत्मनि रतिमान् बुद्धः ज्ञातशास्त्रतत्त्वः शुचिकर्मा यमनियमादिमान् ॥ ३ ॥ समुच्छिद्य बोद्धव्यमिति पूर्वेणान्वयः ॥ ४ ॥

कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्
क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ५
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ।
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ६
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनोवाचं च कर्मणा ।
अप्रमादाद्भयं जह्याद्दंभं प्राज्ञोपसेवनात् ॥ ७
एवमेतान् योगदोषान् जयेन्नित्यमतन्द्रितः ।
अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चार्चेद्देवताः प्रणमेत च । ८
वर्जयेदुशतीं वाचं हिंसायुक्तां मनोनुदाम् ।
ब्रह्म तेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं रसः ॥ ९
एतस्य भूतं भव्यस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ।
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ॥
शौचमाचारसंशुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः ।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥ ११
सिद्ध्यन्ति चास्य सर्वार्था विज्ञानं च प्रवर्तते
समः सर्वेषु भूतेषु लब्धालब्धेन वर्तयन् १२
धूतपाप्मा तु तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद्ब्रह्मणः पदम् ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहितः ।
पूर्वरात्रापरार्धे च धारयेन्मन आत्मनि ॥ १४

जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य
यदेकं छिद्रमिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्रवते प्रज्ञा
दृतेः पादादिवोदकम् ॥ १५
मनस्तु पूर्वमादद्यात्कुमीनमिव मत्स्यहा ।
ततः श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वां घ्राणं च योगवित्
तत एतानि संयम्य मनसि स्थापयेद्यतिः ।
तथैवापोह्य सङ्कल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत्
पञ्चेन्द्रियाणि सन्धाय मनसि स्थापयेद्यतिः
यदैतान्यवतिष्ठन्ति मनःषष्ठान्यथात्मनि १८
प्रसीदन्ति च संस्थाय तदा ब्रह्म प्रकाशते ।
विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान् ॥
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे
दृश्यतेऽत्मा तथाऽऽत्मनि ।
सर्वस्तत्र स सर्वत्र
व्यापकत्वाच्च दृश्यते ॥ २०
तं पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिणः
धृतिमन्तो महाप्राज्ञाः सर्वभूतहिते रताः २१
एवं परिमितं कालमाचरन्संशितव्रतः ।
आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम्

सत्त्वेन बुद्ध्या संसेवनं परिशीलनं अर्थानां तेन धृत्या धैर्येण शिश्नोदरं व्यभिचारादिभ्यः । पाणिपादं कण्टकादिभ्यः ॥ ६ ॥ चक्षुःश्रोत्रे साभिलाषपरस्त्रीदर्शनादिभ्यः मनोवाचं दुर्ध्यानादिभ्यः कर्मणा यज्ञादिना । एतदेवाह— **अप्रमादादिति** । दंभं लोभमूलम् ॥ ७ ॥ उशतीं कामप्रधानां विटगोष्ठीरित्यर्थः । मनोनुदां मनोभंगकारिणीम् । ननु ब्रह्मज्ञानादेव मुक्तिः प्रसिद्धा न तु धीनिरोधमात्रादित्याशंक्य ब्रह्मशब्दार्थमाह—**ब्रह्मेति** । शुक्रं बीजभूतं प्रधानं तेजोमयं प्रकाशात्मकसत्त्वगुणप्रधानं महत्तत्त्वाख्यं तदेव ब्रह्म न ततोऽन्यत् यस्य शुक्रस्य रसः सारः ॥ ९ ॥ भव्यस्य जन्मवतः एतस्य दृष्टं ईक्षणं एतेन 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत् तदैक्षत बहुःस्यां प्रजायेय' इति । 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इत्यस्याः श्रुतेरर्थः—प्रधानं एकमेव सत् सत्त्वोद्रेकादीक्षणकर्तृत्वेन महत्तत्त्वात्मकं भूत्वा ईक्षणद्वारा सर्वात्मकत्वं गतमिति दर्शितः । अस्य ध्यानेनाध्ययनादिना च सत्त्वोत्कर्षे सति पापनाशः सर्वकामावाप्तिस्तत्त्वज्ञानं च जायत इत्याह द्वाभ्यां—**ध्यानमित्यादि** १० समः रागद्वेषशून्यः **लब्धालब्धेनेति** । यदृच्छालाभसंतुष्ट इत्यर्थः ॥ १२ ॥ तेजस्वी सत्त्ववान् ब्रह्मणो महत्तत्त्वस्य पदं लयस्थानं प्रकृतिं निनीषेत् वशीकर्तुमिच्छेत् ॥ १३ ॥ ऐकाग्र्यं विषयेभ्यो निरोधं कृत्वा आत्मनि बुद्धौ मनो धारयेत् संकल्पात्मकं मनो निरुन्ध्यादित्यर्थः ॥ १४ ॥ इंद्रियाणामनिरोधे दोषमाह—**जन्तोरिति** । प्रज्ञा शास्त्रजा बुद्धिः स्रवते विषयप्रावण्यात्क्षीयते दृतेश्चर्मकोशस्य ॥१५॥ **मन इति** । इन्द्रियाणां निग्रहो मनोनिग्रहपूर्वक एवेत्यर्थः । कुमीनं जालदंशक्षमं मीनम्॥१६॥ **तत इति** । संकल्पत्याग एव मनस आत्मनि बुद्धौ धारणं नाम ॥ १७ ॥ संधाय ध्येयवस्तुनः अभिसंधानं कृत्वा न तु सुप्ताविव तमोग्रस्तत्वेन मनसि स्थापयेत् आत्मनि बुद्धौ ॥ १८ ॥ प्रसीदन्ति संकल्पजं कालुष्यं त्यजन्ति । तत्र हेतुः संस्थाय नाशं प्राप्य वन्ह्यौष्ण्यवत्स्वरूपनाशानुविनाश्येव इन्द्रियाणां कालुष्यमित्यर्थः। ब्रह्म महत्तत्त्वं प्रकाशते निर्विषयवेदनमस्मीत्येतावत्प्रत्ययमात्रं स एव ब्रह्मप्रकाशो योगानां सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिः शुद्धत्वंपदार्थसाक्षात्कारः ॥ १९ ॥ आत्मा शुद्धत्वंपदार्थः आत्मनि सूक्ष्मबुद्धौ अस्मितामात्रायाम् सर्वोऽहंकारादिर्विकारस्तत्र महत्यात्मनि स च महानात्मा कारणत्वेन व्यापकत्वादेव सर्वत्रेत्यर्थः ॥ २० ॥ परिमितं षण्मासमात्रम्। तथा च श्रुतिः-'षड्भिर्मासैस्तु युक्तस्य नित्ययुक्तस्य

प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणं श्रवणदर्शने ।
अद्भुतानि रसस्पर्शौ शीतोष्णे मारुताकृतिः
प्रतिभामुपसर्गांश्चाप्युपसंगृह्य योगतः ।
तांस्तत्त्ववित्दनादृत्य आत्मन्येव निवर्तयेत् ॥
कुर्यात्परिचयं योगे त्रैकाल्ये नियतो मुनिः ।
गिरिशृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षाग्रेषु च योजयेत् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं कोष्ठे भाण्डमना इव ।
एकाग्रं चिन्तयेन्नित्यं योगान्नोद्विजयेन्मनः २६
येनोपायेन शक्येत संनियन्तुं चलं मनः ।
तं च युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्ततः २७
शून्या गिरिगुहाश्चैव देवतायतनानि च ।
शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत
नाभिष्वजेत्परं वाचा कर्मणा मनसाऽपि वा
उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धे समो भवेत
यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमपवादयेत् ।
समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम्

न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् ।
समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वनः ३१
एवं स्वस्थात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः ।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥३२
वेदनार्ताः प्रजा दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
एतस्मिन्विरतो मार्गे विरमेन्न च मोहितः ॥
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी ।
तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम् ॥
अजं पुराणमजरं सनातनं
यदिन्द्रियैरुपलभेत निश्चलैः ।
अणोरणीयो महतो महत्तरं
तदाऽऽत्मना पश्यति युक्तमात्मवान्
इदं महर्षेर्वचनं महात्मनो
यथावदुक्तं मनसाऽनुदृश्य च ।
अवेक्ष्य चेमां परमेष्ठिसाम्यतां
प्रयान्ति चाभूतगतिं मनीषिणः ३६

---

योगिनः। आनन्दः परमो गुह्यः सम्यग्योगः प्रवर्तते' इति । संशितव्रतः सम्यक् तीक्ष्णनियमः रागादिच्छेदकत्वमिह शितत्वं अक्षरं अस्मितानिर्मुक्तं शुद्धात्मस्वरूपं तेन साम्यतां समतां लक्षणभेदाभावं स्वार्थे ष्यञ् ॥ २२ ॥ योगविघ्नानाह-**प्रमोह इति** । प्रमोहो लयः भ्रमो विक्षेपः आवर्त उभयास्पर्शी कषायः । घ्राणेति दिव्यगन्धादिग्रहणं च मारुताकृतिरिति शीघ्रगतिः अदर्शनसिद्धिराकाशगमनं चेत्युक्तम् ॥ २३ ॥ प्रतिभां सकलशास्त्रार्थभानं उपसर्गाः दिव्याङ्गनासंगादयः तांश्च उपसंगृह्य योगबलेन लब्ध्वा अनादृत्य च आत्मनि बुद्धावेव निवर्तयेत् संहरेत् बुद्धिकल्पितत्वात्तेषां तत्रैव संहारस्य युक्तत्वात् ॥२४॥ त्रैकाल्ये प्रातः पूर्वरात्रे अपररात्रे च चैत्ये बद्धमूलतरौ वृक्षाग्रेषु वृक्षपुरतः ॥ २५ ॥ कोष्ठे हृदयपुण्डरीके एकाग्रं यथा स्यात्तथा नित्यं वस्तु भाण्डं धनाद्युपकरणं तन्मनाः भाण्डमिव नित्यमना नित्यं चिन्तयेत् ॥ २६ ॥ येनोपायेन पूर्वोक्तेन व्यक्तालम्बनेन अव्यक्तालम्बनेन वा ॥ २७ ॥ नाभिष्वजेत् न परिगृह्णीयात् परिग्रहो हि दुःखायेत्युक्तः ॥ २९ ॥ अपवादयेत् निन्देत् स्वार्थे णिच् ॥३०॥ मातरिश्वनः वायोः सधर्मा तुल्यधर्मा असङ्गोऽनिकेतश्च ॥ ३१ ॥ शब्दब्रह्म प्रणवः अतिवर्तते स्वार्थापरोक्षीकरणेन अत्यन्तं प्रकाशते ॥ ३२ ॥ प्रजाः काञ्चनलाभार्थे वेदनार्ताः दृष्ट्वा एतस्मिन् वित्तार्जनादिमार्गे विरतो विरक्तः विरमेत् वित्तार्जनादिभ्यः न च मोहितो भवेत् ॥ ३३ ॥ श्रद्धावानेवात्राधिकारीत्याह-**अपीति** । वर्णावकृष्टः शूद्रः एतेन तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थविचारात्मके सांख्ये त्रैवर्णिका एवाधिकारिणः मनोनिरोधाख्ये योगमार्गे तु स्त्रीशूद्रादयोऽप्यधिकारिण इति गम्यते ॥ ३४ ॥ योगविद्यामुपसंहरति **अजमिति** । इंद्रियैर्मनोबुद्धियुक्तैर्निश्चलैः साद्भिरुपलक्षितं यत् नामरूपातीतं स्वरूपं तदेव अजं जन्महीनं यतः पुराणं पुराऽपि नवं अत एव अजरं सर्वभावविकारहीनं अतः सनातनं नित्यमेकरूपं वस्तु उपलभेत तद्वस्तु अणोरप्यणीयः दुर्लक्ष्यमित्यर्थः । महतोऽपि महत्तरं अनन्तमित्यर्थः । तत् आत्मना बुद्ध्या युक्त आत्मवान् जितचित्तः पश्यति एतेन-

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ '

इतिश्रुतेरर्थो दर्शितः ॥ ३५ ॥ सांख्यविद्यामुपसंहरति-**इदमिति** । अनुदृश्य गुरुवचनमनुशब्दतोऽर्थतश्च ज्ञात्वा अवेक्ष्य स्वयं च युक्त्या परीक्ष्य इमां शास्त्रप्रसिद्धां परमेष्ठिसाम्यतां चतुर्मुखसमतां प्रयान्ति आभूतगतिं भूतसंप्लवपर्यन्तं ब्रह्मलोके ब्रह्मणा सह समान भोगभाजो भूत्वा ब्रह्मणा सह मुच्यन्ते । मनीषिणः शुद्धचित्ताः निर्विचिकित्सपरोक्षज्ञानस्यैव एतत्फलम् । अपरोक्षज्ञानिनामक्षरसाम्यतायाः प्रागुक्तत्वात् एतेन-

'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले
परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ' इति ।

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥

## २४१-[६८]

शुक उवाच ।
यदिदं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च ।
कां दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥ १
एतद्वै श्रोतुमिच्छामि तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ।
एतच्चान्योन्यवैरूप्ये वर्तेते प्रतिकूलतः ॥ २
भीष्म उवाच ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं पराशरसुतः सुतम् ।
कर्मविद्यामयावेतौ व्याख्यास्यामि क्षराक्षरौ
यां दिशं विद्यया यान्ति यां च गच्छन्ति कर्मणा ।
शृणुष्वैकमना वत्स गह्वरं ह्येतदन्तरम् ॥ ४
अस्ति धर्म इति प्रोक्तं नास्तीत्यत्रैव यो वदेत् ।
तस्य पक्षस्य सदृशमिदं मम भवेद्यथा ॥ ५
द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तौ च सुभाषितः ६
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ७
कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान्षोडशात्मकः ।
विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यव्ययात्मकम् ८
कर्म त्वेके प्रशंसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नराः ।
तेन ते देहजालानि रमयन्त उपासते ॥ ९
ये स्म बुद्धिं परां प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः ।
न ते कर्म प्रशंसन्ति कूपं नद्यां पिबन्निव १०
कर्मणः फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ ।
विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥
यत्र गत्वा न म्रियते यत्र गत्वा न जायते ।
न पुनर्जायते यत्र यत्र गत्वा न वर्तते ॥ १२
यत्र तद्ब्रह्म परममव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।
अव्याकृतमनायासमव्यक्तं चावियोगि च १३

---

इति श्रुतेरर्थो दर्शितः परान्तकाले ब्रह्मणो मोक्षकाले तन्मुक्त्यैव मुच्यन्ते ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥

२४१

**समाप्ता ब्रह्मविद्या** । तस्याः कर्मभिः समं समुच्चयं खण्डयति—**यदिदमिति** । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' इति, 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इति कर्मकरणत्यागविधी परस्परविरोधादेककार्यकारित्वमलभमानौ विसदृशकार्यगत्वं प्रतिपद्येतेऽतः पृच्छति-**कामिति** ॥ १ ॥ क्षराक्षरौ नश्वरानश्वरौ मार्गाविति शेषः ॥ ३ ॥ गह्वरं आकाशमिवानन्तं एतदन्तरं एतयोरन्तरम् ॥ ४ ॥ आस्तिकनास्तिकयोरिव पृच्छ्यमानं तारतम्यं यथास्तिकस्य क्लेशावहं तद्वदेतन्ममेत्यर्थः ॥ ५ ॥ **द्वाविति** । निवृत्तौ आत्मदर्शने च धर्मः सुभाषितः आत्यन्तिको धर्मः स उक्तः । 'अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्'इति ॥६ ॥ षोडशात्मकः देहः प्रेत्य मृत्वा पुनर्जायते उत्पद्यते विद्यया नित्यं अव्यक्तं द्वैतभिन्नं जायते आविर्भवति ॥ ८ ॥ रमयन्तः स्त्र्यादीन् रञ्जयन्तस्तद्वासनावासिताः देहशतानि प्राप्नुवन्ति ॥ ९ ॥ **यत्रेति** । यत्र निर्विशेषे ब्रह्मणि गत्वा प्रविश्य न जायते अयमहमस्मीति न जानात्यात्मानं तत्र हेतुर्न वर्तते गन्ता विशेषविज्ञानाभावात् जीव एव नश्यति । तथा च श्रुतिः— 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति' इति ॥ १२ ॥ न वर्तते इत्यत्रापि हेतुमाह— **यत्रेति** । यत्र यस्यामवस्थायाम् । तद्ब्रह्म अवियोगि- जीवेश्वरभेदेन वियोगवत् न भवति । उपाध्यभावेन ब्रह्माभेदादेव वर्तते न तु स्वरूपनाशादित्यर्थः । 'अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा मात्राऽसंसर्गस्त्वस्य भवति' इति श्रुतेः । मीयन्ते विषया अनया सा मात्राऽन्तःकरणवृत्तिस्तया असंसर्ग इति श्रुत्यर्थः । सूत्रप्रणवप्रकृतिभ्यो व्यवच्छिनत्ति परममव्यक्तमचलमिति । ध्रुवं कूटस्थं नित्यं अव्याकृतमविस्पष्टम्। अनायासं अक्लेशप्राप्यं प्रत्यगात्मत्वात् । अव्यक्त अहंकारादन्यत् । अमृतमिति पाठेऽपि स एवार्थः। व्यक्त आविर्भावतिरोभाववांश्चाहंकार एव ततोऽन्यद्ब्रह्मेत्यर्थः॥ १३ ॥

द्वन्द्वैर्न यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा ।
समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ १४
विद्यामयोऽन्यः पुरुषस्तात कर्ममयोऽपरः ।
विद्धि चन्द्रमसं दर्शे सूक्ष्मया कलया स्थितम् ॥
तदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुमीयते ।
नवजं शशिनं दृष्ट्वा वक्रतन्तुमिवाम्बरे ॥ १६
एकादशविकारात्मा कलासंभारसम्भृतः ।
मूर्तिमानिति तं विद्धि तात कर्म गुणात्मकम् ॥
देवो यः संश्रितस्तस्मिन्नब्बिन्दुरिव पुष्करे ।
क्षेत्रज्ञं तं विजानीयान्नित्यं योगजितात्मकम् ॥
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणात्मकम् ।
जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः ॥ १९
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति
स चेष्टते जीवयते च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति
प्राकल्पयद्यो भुवनानि सप्त ॥ २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

## २४२-[६९]

### शुक उवाच ।

क्षरात्प्रभृति यः सर्गः सगुणानीन्द्रियाणि च । बुद्धैश्वर्यातिसर्गोऽयं प्रधानश्चात्मनः श्रुतम् ॥ १

द्वन्द्वैः सुखदुःखादिभिः मानसेन कर्मणा संकल्पेन ॥ १४ ॥ चन्द्रमसं कर्ममयानां मध्ये उत्कृष्टतमं संवत्सराख्यं प्रजापतिं उपचयापचयवन्तं प्रतिमासं दर्शे कलामात्रशेषं तद्वदन्येषामपि कर्ममयानामैश्वर्यमित्यर्थः ॥ १५ ॥ दृष्टान्ते प्रमाणमाह—**तदेतदिति** । ऋषिणा बृहदारण्यकदर्शिना याज्ञवल्क्येन । 'स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलस्तस्य रात्रय एव पञ्चदशकला ध्रुवैवास्य षोडशी कला सा रात्रिभिरेवावपूर्यतेऽपचक्षीयते सोऽमावास्यां रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते' इति दृष्टान्तमुक्त्वा 'यो वै संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः अयमेव स योऽयमेवंवित्पुरुषस्तस्य वित्तमेव पञ्चदशकला आत्मैवास्य षोडशी कला स वित्तेनैवावपूर्यतेऽपचक्षीयते' इति दार्ष्टान्तिकं प्रोक्तम् । अनुमीयते च चन्द्रगतौ वृद्धिह्रासौ कर्मपूर्वकौ अस्मदीयवृद्धिह्रासवदिति ॥ १६ ॥ **एकादशेति** । वैराजं मनश्चन्द्रः तत्र अस्मदीयं मनः । 'मनसा ह्येव पश्यति' इत्यादिश्रुतेर्मन एकादशेन्द्रियात्मकं तद्वद्वैराजमपि अतस्तत्र रात्रय इवात्र वित्ताख्यं कर्मैव कलाः तासां संभारेण संभृतः मनोमयः सूत्रात्मा अस्मदादिभिश्च मूर्तिमान् इति हेतोः तं विराजं व्यष्टिजीवं च कर्म गुणात्मकं त्रिगुणात्मककर्मफलभूतं चन्द्रवत् वृद्धिह्रासभाजं विद्धि ॥ १७ ॥ तस्मिन् जीवोपाधिभूते मनसि च देवो द्योतनवान् चित्प्रकाशः तं क्षेत्रज्ञं परमात्मानं विजानीयात् । अयमेव स योऽयमेवंविदित्यनुपदोदाहृतश्रुतेरुपाधिद्वयस्थ एक एव क्षेत्रज्ञ इत्यर्थः । योगेन जितः निरुद्धः आत्मा चित्तं येन तं जीवं क्षेत्रज्ञं विजानीयादिति योजना ॥ १८ ॥ **तम इति** । तम आदिकं त्रयं जीवस्य विज्ञानमयकोशस्य गुणाः कर्तृत्वादयः । 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इत्यादिश्रुतेः । तदात्मकं गुणत्रयमेव कर्त्रादिधर्मकं न त्वात्मेत्यर्थः । जीवं विज्ञानं आत्मगुणं चिदाभासगुणश्चैतन्यं तद्युक्तं विद्धि । आत्मानं चिदाभासं परमात्मनः गुणैर्ज्ञानैश्वर्यादिभिर्युक्तं विद्धीत्यध्याहृत्य योज्यम् । चिदचिदात्मा जीवोऽचिदंशत्यागेन ब्रह्मैवेत्यर्थः ॥ १९ ॥ अध्यायार्थमुपसंहरति—**सचेतनमिति** । चेतनया सहितं स्वयमचेतनं देहं जीवगुणं जीवगुणेन चैतन्येन युक्तं वदन्ति यतः स जीवश्चेष्टते न तु देहः । जीवयते चेतयते च देहं न तु देहः स्वयं चेतनः ततो जीवादपि परं तं वदन्ति । यः सप्त भुवनानि भूर्भुव आदीनि प्राकल्पयत् परमात्मा प्रत्यगात्मत्वात् । ब्रह्म न ग्रामादिवत् क्रियाप्राप्यमिति ज्ञानकर्मणोर्ब्रह्मप्राप्तौ समसमुच्चयो न घटते इत्यर्थः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥

**२४२**

स्वबोधख्यापनार्थं वृत्तमनुवदति—**क्षरादिति** । क्षरात् प्रधानात् यः सर्गश्चतुर्विंशतितत्त्वात्मकः साधारणः स आत्मनः ईशादिति श्रुतं तथा सगुणानि सविषयाणीन्द्रियाणि बुद्धेः ऐश्वर्यं सामर्थ्यं तत्कृतः अतिसर्गः उत्कृष्टसृष्टिस्तत्तत्पुरुषकृतोऽसाधारणः अयं च बन्धकत्वेन प्रधानः

भूय एव तु लोकेऽस्मिन् सद्वृत्तिं कालहैतुकीं
यथा सन्तः प्रवर्तन्ते तदिच्छाम्यनुवर्तितुम् २
वेदे वचनमुक्तं तु कुरु कर्म त्यजेति च ।
कथमेतद्विजानीयां तच्च व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३
लोकवृत्तान्ततत्त्वज्ञः
पूतोऽहं गुरुशासनात् ।
कृत्वा बुद्धिं विमुक्तात्मा
द्रक्ष्याम्यात्मानमव्ययम् ॥ ४

व्यास उवाच ।

यथा वै विहिता वृत्तिः पुरस्ताद्ब्रह्मणा स्वयम्।
एषा पूर्वतरैः सद्भिराचीर्णा परमर्षिभिः ॥ ५
ब्रह्मचर्येण वै लोकान्
जयन्ति परमर्षयः ।
आत्मनश्च ततः श्रेयां-
स्यन्विच्छन्मनसाऽऽत्मनि
वने मूलफलाशी च तप्यन्सुविपुलं तपः ।
पुण्यायतनचारी च भूतानामविहिंसकः॥ ७
विधूमे सन्नमुसले वानप्रस्थप्रतिश्रये ।
काले प्राप्ते चरन्भैक्ष्यं कल्पते ब्रह्मभूयसे ॥ ८
निस्तुतिर्निर्नमस्कारः परित्यज्य शुभाशुभे ।
अरण्ये विचरैकाकी येन केनचिदाशितः॥ ९

शुक उवाच ।

यदिदं वेदवचनं लोकवादे विरुध्यते ।
प्रमाणे वाऽप्रमाणे च विरुद्धे शास्त्रता कुतः
इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि प्रमाणं तूभयं कथम् ।
कर्मणामविरोधेन कथं मोक्षः प्रवर्तते ॥ ११

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गन्धवत्याः सुतः सुतम्
ऋषिस्तत्पूजयन्वाक्यं पुत्रस्यामिततेजसः १२

व्यास उवाच ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
यथोक्तचारिणः सर्वे गच्छन्ति परमां गतिम्
एको वाऽप्याश्रमानेतान्योऽनुतिष्ठेद्यथाविधि
अकामद्वेषसंयुक्तः स परत्र विधीयते ॥ १४
चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता ।
एतामारुह्य निःश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते ॥ १५
आयुषस्तु चतुर्भागं ब्रह्मचार्यनसूयकः ।
गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद्धर्मार्थकोविदः॥ १६
जघन्यशायी पूर्वं स्यादुत्थाय गुरुवेश्मनि ।
यच्च शिष्येण कर्तव्यं कार्यं दासेन वा पुनः॥
कृतमित्येव तत्सर्वं कृत्वा तिष्ठेत पार्श्वतः ।
किंकरः सर्वकारी स्यात्सर्वकर्मसु कोविदः
कर्मातिशेषेण गुरावध्येतव्यं बुभूषता ।
दक्षिणोऽनपवादी स्यादाहूतो गुरुमाश्रयेत्॥
शुचिर्दक्षो गुणोपेतो ब्रूयादिष्टमिवान्तरा ।
चक्षुषा गुरुमव्यग्रो निरीक्षेत जितेन्द्रियः २०
नाभुक्तवति चाश्नीयादपीतवति नो पिबेत् ।
नातिष्ठति तथाऽऽसीत नासुप्ते प्रस्वपेत च२१
उत्तानाभ्यां च पाणिभ्यां
पादावस्य मृदु स्पृशेत् ।
दक्षिणं दक्षिणेनैव
सव्यं सव्येन पीडयेत् ॥ २२

---

श्रेष्ठः । ऐशी जैवी चेति द्विविधा सृष्टिस्तत्र जैवी धीमयी सृष्टिर्बन्धहेतुर्न तु ऐशी भूतमयीति प्राक् श्रुतमित्यर्थः ॥ १ ॥ सद्वृत्तिं सतामाचारम् । कालहैतुकीं युगानुसारिणीम् । अनुवर्तितुं पुनः श्रोतुम् ॥ २ ॥ कुरु कर्म त्यजेति श्रुत्योः एतत् एतं अविरोधं च कथं विजानीयां विषयविभागेन विविच्य कथं जानीयाम् ॥ ३ ॥ लोकवृत्तान्तो लोकरीतिः तस्य तत्त्वं धर्माधर्ममूलकत्वं तज्ज्ञः पूतो धर्मानुष्ठानेन बुद्धिं कृत्वा संस्कृत्य विमुक्तात्मा त्यक्तदेहः ॥ ४ ॥ तत्र माऽस्तु कर्मणां ज्ञानेन सह समुच्चयः । क्रमसमुच्चयस्तु भविष्यतीत्याशयमाह—**यथेति** । एषा कर्मभिर्बुद्धिं संस्कृत्य तयाऽऽत्मदर्शनामित्येवंरूपा ॥ ५ ॥ श्रेयांसि श्रेयोहेतून् यज्ञादीन् अन्विच्छन् 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इतिश्रुतेः ॥ ६ ॥ बुद्धिं कृत्वाऽऽत्मानं द्रक्ष्यामीति स्वामिप्रायं द्रढयितुं पृच्छति—**यदिदमिति** । कुरु कर्म त्यजेति वाक्यद्वयमपि प्रमाणं चेद्विरुद्धयोर्वाक्ययोरेशास्त्रत्वं अप्रमाणं चेत्सुतरामशास्त्रत्वं अतोऽनयोः शास्त्रयोः प्रामाण्यसिद्ध्यर्थं व्यवस्था वक्तव्येत्याशयः ॥ १० ॥ तत् वाक्यं कृत्वा बुद्धिं विमुक्तात्मा द्रक्ष्याम्यात्मानमात्मनीति कर्मणां चित्तसंस्कारार्थत्ववचनं पूजयन् सिद्धान्तत्वेन मानयन् चातुराश्रम्यधर्मानेव गन्धवत्याः योजनगन्धायाः सुतो व्यास उवाच ॥ १२ ॥ **ब्रह्मचारीति** । परमां गतिं मोक्षं तेन समुच्चितानामसमुच्चितानां वा आश्रमधर्माणां तत्त्वजिज्ञासाहेतुत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥ परत्र ब्रह्मणि विषये विधीयते ज्ञातुं योग्यः क्रियते ॥ १४ ॥ चतुष्पदी चातुराश्रम्यरूपा ॥ १५ ॥ कर्मातिशेषेण निःशेषं कर्म कृत्वेत्यर्थः ॥ १९ ॥ अभुक्तवति गुराविति शेषः ॥ २१ ॥

अभिवाद्य गुरुं ब्रूयादधीष्व भगवन्निति ।
इदं करिष्ये भगवन्निदं चापि कृतं मया॥ २३
अहंस्तदपि कर्ताऽस्मि यद्भवान्वक्ष्यते पुनः ।
इति सर्वमनुज्ञाप्य निवेद्य च यथाविधि २४
कुर्यात्कृत्वा च तत्सर्व-
माख्येयं गुरवे पुनः ।
यांस्तु गन्धान् रसान् वापि
ब्रह्मचारी न सेवते ॥ २५
सेवेत तान्समावृत्त इति धर्मेषु निश्चयः ।
ये केचिद्विस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिणः२६
तान्सर्वानाचरेन्नित्यं भवेच्चानपगो गुरोः ।
स एवं गुरवे प्रीतिमुपहृत्य यथाबलम् ॥ २७
आश्रमादाश्रमेष्वेव शिष्यो वर्तेत कर्मणा ।
वेदव्रतोपवासेन चतुर्थे चायुषो गते ॥ २८
गुरवे दक्षिणां दत्वा समावर्त्तेद्यथाविधि २९
धर्मलब्धैर्युतो दारैरग्नीनुत्पाद्य यत्नतः ।
द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधी भवेद्व्रती ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥

## २४३-[७०]

व्यास उवाच ।
द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधी गृहे वसेत् ।
धर्मलब्धैर्युतो दारैरग्नीनाहृत्य सुव्रतः ॥ १
गृहस्थवृत्तयश्चैव चतस्रः कविभिः स्मृताः ।
कुसूलधान्यः प्रथमः कुंभधान्यस्त्वनन्तरम् २
अश्वस्तनोऽथ कापोतीमाश्रितो वृत्तिमाहरेत्।
तेषां परः परो ज्यायान्धर्मतो धर्मजित्तमः ३
षट्कर्मा वर्तयत्येकस्त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रे व्यवस्थितः ॥ ४
गृहमेधिव्रतान्यत्र महान्तीह प्रचक्षते ।
नात्मार्थं पाचयेदन्नं न वृथा घातयेत्पशून्॥ ५
प्राणी वा यदि वाऽप्राणी
संस्कारं यजुषाऽर्हति ।
न दिवा प्रस्वपेज्जातु
न पूर्वापररात्रिषु ॥ ६
न भुञ्जीतान्तरा काले नानृतावाह्वयेत् स्त्रियम्
नास्यानश्नन् गृहे विप्रो वसेत्कश्चिदपूजितः॥
तथाऽस्यातिथयः पूज्या हव्यकव्यवहाः सदा
वेदविद्याव्रतस्नाताः श्रोत्रिया वेदपारगाः॥ ८
स्वधर्मजीविनो दान्ताः क्रियावन्तस्तपस्विनः
तेषां हव्यं च कव्यं चाप्यर्हणार्थं विधीयते ९
नखरैः संप्रयातस्य स्वधर्मज्ञापकस्य च ।
अपविद्धाग्निहोत्रस्य गुरोर्वालीककारिणः१०
संविभागोऽत्र भूतानां सर्वेषामेव शिष्यते ।
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिना ॥ ११
विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ।
अमृतं यज्ञशेषं स्याद्भोजनं हविषा समम् १२
भृत्यशेषं तु योऽश्नाति तमाहुर्विघसाशिनम् ।
विघसं भृत्यशेषं तु यज्ञशेषमथामृतम् ॥ १३

---

अधीष्व अध्यापय ॥२३॥ समावृतः समापितब्रह्मचर्यकृत्यः ॥ २६ ॥ अनपगः समीपस्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥

**२४३**

क्रमप्राप्तान् गृहस्थधर्मानाह-**द्वितीयमिति** ॥ १ ॥ वृत्तयो जिविकाः ॥ २ ॥ कापोतीं उंच्छवृत्तिम् ॥ ३ ॥ षट् यजनयाजनाध्ययनाध्यापनदानप्रतिग्रहाः कर्म यस्य एको गृहस्थः त्रिभिर्यजनाध्ययनदानैः अन्यो वानप्रस्थः द्वाभ्यां दानाध्ययनाभ्यां ब्रह्मसत्रे प्रणवोपास्तौ ॥४॥ अत्र गार्हस्थ्ये ॥ ५ ॥ प्राणी छागादिः अप्राणी अश्वत्थादिः यजुषा छेदनमन्त्रेणैव क्रत्वर्थमेव संस्कारमर्हति न तु भक्षणमात्रार्थं ॥ ६ ॥ अन्तरा भोजनद्वयमध्ये स्त्रियं मैथुनायेति शेषः ॥ ७ ॥ नखरैः नखैः दंभार्थं नखलोमधरस्य अपविद्धं अविधिना त्यक्तं अग्निहोत्रं येन तस्य एवंविधानां चाण्डालादीनां च भूतानां अत्र गार्हस्थ्ये संविभागोऽस्ति ॥ १० ॥ अपचमानेभ्यः ब्रह्मचारिसंन्यासिभ्यः ॥ ११ ॥ विघसामृते व्याख्याति-**अमृतमिति** ॥ १२ ॥

स्वदारनिरतो दान्तो ह्यनसूयुर्जितेन्द्रियः ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः
वृद्धबालातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः ।
मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ।
एतान्विमुच्य संवादान्सर्वपापैर्विमुच्यते १६
एतैर्जितस्तु जयति सर्वाँल्लोकान्न संशयः ।
आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः
अतिथिस्त्विन्द्रलोकस्य
देवलोकस्य चर्त्विजः ।
जामयोऽप्सरसां लोके
वैश्वदेवे तु ज्ञातयः ॥ १८
सम्बन्धिबान्धवा दिक्षु पृथिव्यां मातृमातुलौ
वृद्धबालातुरकृशास्त्वाकाशे प्रभविष्णवः १९
भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा
भार्या पुत्रः स्वका तनुः ।
छाया स्वा दासवर्गश्च
दुहिता कृपणं परम् ॥ २०
तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेन्नित्यमसंज्वरः ।
गृहधर्मपरो विद्वान् धर्मशीलो जितक्लमः २१
न चार्थबद्धः कर्माणि धर्मवान्कश्चिदाचरेत् ।
गृहस्थवृत्तयस्तिस्रस्तासां निःश्रेयसं परम्॥ २२
परं परं तथैवाहुश्चातुराश्रम्यमेव तत् ।
यथोक्ता नियमास्तेषां सर्वं कार्यं बुभूषता २३
कुंभधान्यैरुञ्छशिलैः
कापोतीं चास्थितास्तथा ।
यस्मिंश्चैते वसन्त्यर्हा-
स्तद्राष्ट्रमभिवर्धते ॥ २४
पूर्वान् दश दश परान् पुनाति च पितामहान्
गृहस्थवृत्तीश्चाप्येता वर्तयेद्यो गतव्यथः ॥२५
स चक्रधरलोकानां सदृशीमाप्नुयाद्गतिम् ।
जितेन्द्रियाणामथवा गतिरेषा विधीयते २६
स्वर्गलोको गृहस्थानामुदारमनसां हितः ।
स्वर्गो विमानसंयुक्तो वेददृष्टः सुपुष्पितः २७
स्वर्गलोको गृहस्थानां प्रतिष्ठा नियतात्मनाम्
ब्रह्मणा विहिता योनिरेषा यस्माद्विधीयते ।
द्वितीयं क्रमशः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते २८
अतः परं परममुदारमाश्रमं
तृतीयमाहुस्त्यजतां कलेवरम् ।
वनौकसां गृहपतिनामनुत्तमं
शृणुष्व संश्लिष्टशरीरकारिणाम्॥२९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥

## २४४–[७१]

भीष्म उवाच ।
प्रोक्ता गृहस्थवृत्तिस्ते विहिता या मनीषिभिः
तदनन्तरमुक्तं यत्तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १
क्रमशस्त्ववधूयैनां तृतीयां वृत्तिमुत्तमाम् ।
संयोगव्रतखिन्नानां वानप्रस्थाश्रमौकसाम् २
श्रूयतां पुत्र भद्रं ते सर्वलोकाश्रमात्मनाम् ।
प्रेक्षापूर्वं प्रवृत्तानां पुण्यदेशनिवासिनाम् ३

---

जामीभिः सगोत्रस्त्रीभिः ॥१५॥ संवादान् अंशाद्यर्थं कलहान् ॥ १६ ॥ जितः अंशात् च्यावितः आचार्यादयः सम्यगाराधिताः ब्रह्मलोकादीन् प्रति नयन्तीत्याहाचार्य इति सार्धाभ्याम् ॥ १७ ॥ **भ्रातेति** । एते स्वदेहवत्पोषणीया इत्यर्थः ॥२०॥ **न चेति** । अर्थाशयाऽग्निहोत्रादीन्न कुर्यात् तिस्रः वक्ष्यमाणाः कुंभधान्यं उञ्छशिलं कापोतीं च तासां परं उत्तरमुत्तरं श्रेयः ॥ २२ ॥ चातुराश्रम्यमध्येऽपि परंपरं श्रेयः परस्परामित्यपपाठः ॥ २३ ॥ चक्रधराश्चक्रवर्तिनो मान्धात्राद्यस्तल्लोकानां सदृशीं गतिं तत्तुल्यताम् ॥ २६ ॥ सुपुष्पितः रमणीयः ॥२७॥ एषा गार्हस्थ्यं योनिः स्वर्गस्य कारणं यस्मात्तस्मात् द्वितीयं गार्हस्थ्यम् ॥ २८ ॥ गृहपतिनां ह्रस्वत्वमार्षं गृहस्थेभ्यः श्रेष्ठं संश्लिष्टं अस्थिचर्ममात्रसंश्लेषवत् । तच्च तच्छरीरं च तस्य कारिणां शरीरशोषकाणामित्यर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥

२४४

**प्रोक्तेति** । प्रकर्षेण उक्ता प्रोक्ता शास्त्रे॥१॥ एनां गृहस्थवृत्तिं अवधूय तिरस्कृत्य कां तृतीयां कापोतीं वृत्तिमपि संयोगः सहधर्मचारिणीसंयोगस्तत्र यत् व्रतं तेन खिन्नानां वानप्रस्थाश्रमः ओक आश्रयो येषां तेषां वृत्तिः श्रूयतामिति द्वयोः सम्बन्धः ॥ २ ॥ सर्वे लोकाः आश्रमाश्च आत्मा येषाम् । संविभागशमादिमयत्वात् सर्वाश्रमफलमत्रैवान्तर्भूतामित्यर्थः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच ।
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदा श्रयेत् ॥ ४
तृतीयमायुषो भागं वानप्रस्थाश्रमे वसेत् ।
तानेवाग्नीन्परिचरेद्यजमानो दिवौकसः ॥ ५
नियतो नियताहारः षष्ठभक्तोऽप्रमत्तवान् ।
तदग्निहोत्रं ता गावो यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ६
अफालकृष्टं व्रीहियवं नीवारं विघसानि च ।
हवींषि संप्रयच्छेत मखेष्वत्रापि पञ्चसु ॥ ७
वानप्रस्थाश्रमेऽप्येताश्चतस्रो वृत्तयः स्मृताः ।
सद्यःप्रक्षालकाः केचित्केचिन्मासिकसंचयाः
वार्षिकं सञ्चयं केचित्केचिद्द्वादशवार्षिकम् ॥
कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थमेव वा ॥ ९
अभ्रावकाशा वर्षासु हेमन्ते जलसंश्रयाः ।
ग्रीष्मे च पञ्च तपसः शश्वच्च मितभोजनाः ॥
भूमौ विपरिवर्तन्ते तिष्ठन्ति प्रपदैरपि ।
स्थानासनैर्वर्तयन्ति स वनेष्वभिषिञ्चते ११
दन्तोलूखलिकाः केचिदश्मकुट्टास्तथा परे ।
शुक्लपक्षे पिबन्त्येके यवागूं कथितां सकृत् १२
कृष्णपक्षे पिबन्त्यन्ये भुञ्जते वा यथागतम् ।
मूलैरेके फलैरेके पुष्पैरेके दृढव्रताः ॥ १३
वर्तयन्ति यथान्यायं
वैखानसगतिं श्रिताः ।
एताश्चान्याश्च विविधा
दीक्षास्तेषां मनीषिणाम् ॥ १४
चतुर्थश्चौपनिषदो धर्मः साधारणः स्मृतः ।
वानप्रस्थाद्गृहस्थाच्च ततोऽन्यः संप्रवर्तते ॥ १५
अस्मिन्नेव युगे तात विप्रैः सर्वार्थदर्शिभिः ।
अगस्त्यः सप्त ऋषयो मधुच्छन्दोऽघमर्षणः ॥
सांकृतिः सुदिवा तण्डि-
र्यथावासो कृतश्रमः ।
अहोवीर्यस्तथा काव्य-
स्ताण्ड्यो मेधातिथिर्बुधः ॥ १७
बलवान्कर्णनिर्वाकः शून्यपालः कृतश्रमः ।
एवं धर्मं कृतवन्तस्ततः स्वर्गमुपागमन् ॥ १८
तात प्रत्यक्षधर्माणस्तथा यायावरा गणाः ।
ऋषीणामुग्रतपसां धर्मनैपुणदर्शिनाम् ॥ १९
अन्ये चापरिमेयाश्च ब्राह्मणा वनमाश्रिताः ।
वैखानसा वालखिल्याः सैकताश्च तथा परे
कर्मभिस्ते निरानन्दा धर्मनित्या जितेन्द्रियाः
गताः प्रत्यक्षधर्माणस्ते सर्वे वनमाश्रिताः २१
अनक्षत्रास्त्वनाधृष्या
दृश्यन्ते ज्योतिषां गणाः ।
जरया च परिद्यूनो
व्याधिना च प्रपीडितः ॥ २२
चतुर्थे चायुषः शेषे वानप्रस्थाश्रमं त्यजेत् ।
सद्यस्कारां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥
आत्मयाजी सोऽत्मरतिरात्मक्रीडात्मसंश्रयः॥
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहान्
साद्यस्कांश्च यजेद्यज्ञानिष्टीश्चैवेह सर्वदा ।
यदैव याजिनां यज्ञादात्मनीज्या प्रवर्तते २५
त्रींश्चैवाग्नीन्यजेत्सम्यगात्मन्येवात्ममोक्षणात्
प्राणेभ्यो यजुषः पञ्च षट् प्राश्नीयादकुत्सयन्

---

अत्रापि वनेऽपि पञ्चसु महायज्ञेषु अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोम इत्येतेषु वा ॥७॥ चतुर्थश्चतुर्थाश्रमे विहित औपनिषदः 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' इत्याद्युपनिषदि विदितो धर्मः साधारणः सर्वेष्वाश्रमेषु अन्यः असाधारणः ॥१५॥ प्रत्यक्षः धर्मो धर्मफलं सत्यसङ्कल्पत्वादिकं येषां ते प्रत्यक्षधर्माणः ॥ १९ ॥ निरानन्दाः कृच्छ्रचान्द्रायणादिपरत्वात् ॥ २१ ॥ अनक्षत्राः नक्षत्रग्रहताराभ्योऽन्येऽपान्तरतमःप्रभृतयः अनाधृष्या निर्भयाः ॥ २२ ॥ सद्यस्कारां एकाहसाध्यां इष्टिं प्राजापत्यां त्रैधातवीं वा सर्ववेदसदक्षिणां सर्वस्वदाक्षिणाम् । सर्वान्वेदान्सदक्षिणानित्यपपाठः ॥ २३ ॥ आत्मयाजी जीवच्छ्राद्धादिकृत् आत्मरतिरात्मनिष्ठः । सान्धिरार्षः । आत्मक्रीडश्च आत्मसंश्रयश्च न तु स्त्र्यादिक्रीडो राजाद्याश्रयः ॥२४॥ तीव्रतरवैराग्याभावे तु पक्षान्तरमाह—साद्यस्कान् सद्य एव क्रियन्ते तान् ब्रह्मयज्ञादीन् इष्टींश्च दर्शपूर्णमासमित्रविन्दादीः ताभिस्तावद्यजेत् यदैव यस्मिन्नेव काले याजिनां यज्वनां यज्ञात् कर्मभयादन्य आत्मनीज्या आत्मयज्ञो योगाभ्यासः प्रवर्तते तावदेव तान् कुर्यादित्यर्थः । यथोक्तं भगवता—

'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते । '

इति ॥ २५ ॥ आत्मनिज्यायाः स्वरूपमाह—**त्रींनिति** । 'हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः' इति वैश्वानरविद्योक्तप्रकारेण आत्ममोक्षणाद्देहपातावधि आत्मनि देहे एवाग्नीन्यजेत् प्राणाग्निहोत्रविधिना 'तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयं स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुया-

केश-लोम-नखान्वाप्य वानप्रस्थो मुनिस्ततः
आश्रमादाश्रमं पुण्यं पूतो गच्छति कर्मभिः
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यः प्रव्रजेद्द्विजः।
लोकास्तेजोमयास्तस्य प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥
सुशीलवृत्तो व्यपनीतकल्मषो
न चेह नामुत्र च कर्तुमीहते।
अरोषमोहो गतसन्धिविग्रहो
भवेदुदासीनवदात्मविन्नरः ॥ २९

यमेषु चैवानुगतेषु न व्यथे-
त्स्वशास्त्रसूत्राहुतिमन्त्रविक्रमः।
भवेद्यथेष्टागतिरात्मवेदिनि
न संशयो धर्मपरे जितेन्द्रिये ॥ ३०
ततः परं श्रेष्ठमतीव सद्गुणै-
रधिष्ठितं त्रीनधिवृत्तिमुत्तमम्।
चतुर्थमुक्तं परमाश्रमं शृणु
प्रकीर्त्यमानं परमं परायणम् ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥

## २४५-[७२]

श्रीशुक उवाच।
वर्तमानस्तथैवात्र
वानप्रस्थाश्रमे यथा।
योक्तव्योऽऽत्मा कथं शक्त्या
वेद्यं वै कांक्षता परम् ॥ १
व्यास उवाच।
प्राप्य संस्कारमेताभ्यामाश्रमाभ्यां ततः परम्
यत्कार्यं परमार्थं तु तदिहैकमनाः शृणु ॥ २
कषायं पाचयित्वाशु श्रेणिस्थानेषु च त्रिषु।
प्रव्रजेच्च परं स्थानं पारिव्राजमनुत्तमम् ॥ ३
तद्भवानेवमभ्यस्य वर्ततां श्रूयतां तथा।
एक एव चरेद्धर्मं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥ ४
एकश्चरति यः पश्यन् न जहाति न हीयते।
अनग्निरनिकेतश्च ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ ५
अश्वस्तनविधाता स्यान्मुनिर्भावसमाहितः।
लघ्वाशी नियताहारः सकृदन्ननिषेविता ६
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्भिक्षुलक्षणम् ॥ ७

---

त्प्राणाय स्वाहा' इत्यादिश्रुतेर्यजुष उच्चारणानन्तरं पञ्चग्रासान् प्राश्नीयात् षड्वा। अकुत्सयन् अन्नमनिन्दन् ॥ २६ ॥ वाप्य वापयित्वा ॥ २७ ॥ न चेह नामुत्र च इहलोकनिमित्तं परलोकनिमित्तं वा कर्तुं कर्मानुष्ठातुमीहते इच्छति ॥ २९ ॥ यमेषु—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाख्येषु चात्–शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानाख्येषु नियमेषु **स्वशास्त्रेति**। स्वस्य संन्यासविधेः शास्त्रं तत्रस्थं सूत्रं लोकानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेदित्येवंरूपम्। आहुतिमन्त्रः शिखां यज्ञोपवीतमित्येतत्सर्वं भूः-स्वाहेत्यप्सु प्रक्षिप्येति श्रुतिनिर्दिष्टः। तत्र उभयत्रापि विक्रमः पराक्रमो यस्य स तथा। यथेष्टा चिरजीविता वा सद्योमुक्तिर्वा क्रममुक्तिर्वा इच्छया भवतीत्यर्थः ॥ ३० ॥ त्रीनाश्रमानपेक्ष्याधिष्ठितमधिकत्वेन स्थितम्। यतोऽधिवृत्तिं अधिका शमाद्यात्मिका वृत्तिर्यस्मिंस्तं परमं मोक्षहेतुत्वात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥

२४५

पूर्वत्र सायस्कांश्च यजेद्यज्ञानिति श्लोकद्वयेन वानप्रस्थस्यापि वैश्वानरात्मोपासनमुक्तं तत्कर्मव्यग्रस्य दुःशकमिति मन्वानः पृच्छति—**वर्तमान इति**। यथा यथावत् आत्मा कथं योक्तव्यः सन्धिरार्षः। परं वेद्यं ब्रह्म ॥ १ ॥ उत्तरमाहार्धेन—**प्राप्येति**। एताभ्यामाश्रमाभ्यां ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्याभ्यां संस्कारं चित्तशुद्धिं प्राप्यात्मा योक्तव्य इति पूर्वेणान्वयः। चित्तशुद्धौ सत्यां वानप्रस्थाद्याश्रमेऽपि योगमभ्यस्येदित्यर्थः। ऋजुमार्गमाह—**यदिति**सार्धेन ॥ २ ॥ कषायं चित्तदोषं पाचयित्वा विध्वस्तं कृत्वा स्थानेषु आश्रमेषु अनुत्तमं इदं मतं श्रेष्ठमित्यर्थः ॥ ३ ॥ एवं वक्ष्यमाणरीत्या धर्मं योगम् ॥ ४ ॥ पश्यन् आत्मदृक् न जहाति कञ्चित्पदार्थं सर्वव्यापित्वात्। न हीयते मोक्षसुखात् ॥ ५ ॥ भावसमाहितः चित्तसमाधानवान् ॥ ६ ॥ कपालं पानपात्रं विवर्णं काषायवस्त्रं कुचैलमित्युच्यते। उपेक्षा प्रीतिद्वेषराहित्यम् ॥ ७॥

यस्मिन्वाचः प्रविशन्ति
कूपे त्रस्ता द्विपा इव ।
न वक्तारं पुनर्यान्ति
स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ ८
नैव पश्येन्न शृणुयादवाच्यं जातु कस्यचित् ।
ब्राह्मणानां विशेषेण नैव ब्रूयात्कथञ्चन ॥ ९
यद्ब्राह्मणस्य कुशलं तदेव सततं वदेत् ।
तूष्णीमासीत निन्दायां कुर्वन् भैषज्यमात्मनः
येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा ।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः ।
यत्र क्वचन शायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
अहेरिव गणाद्भीतः सौहित्यान्नरकादिव ।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः
न क्रुद्ध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः ।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ १४
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ॥ १५
अनभ्याहतचित्तः स्यादनभ्याहतवाग्भवेत् ।
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो निरमित्रस्य किं भयम्
अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयं ततः ।
तस्य मोहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥
यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे १८
एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते ।
अमृतः स नित्यं वसति योऽहिंसां न प्रपद्यते
अहिंसकः समः सत्यो धृतिमान्नियतेन्द्रियः
शरण्यः सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम् २०
एवं प्रज्ञानतृप्तस्य निर्भयस्य निराशिषः ।
न मृत्युरतिगो भावः स मृत्युमधिगच्छति
विमुक्तं सर्वसंगेभ्यो मुनिमाकाशवत्स्थितम् ।
अस्वमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः २२
जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो हर्यर्थमेव च ।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
निराशिषमनारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
निर्मुक्तं बन्धनैः सर्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
सर्वाणि भूतानि सुखे रमन्ते
सर्वाणि दुःखस्य भृशं त्रसन्ते ।
तेषां भयोत्पादनजातखेदः
कुर्यान्न कर्माणि हि श्रद्दधानः ॥ २५

---

**यस्मिन्निति** । आक्रुश्यमानो नाक्रोशेदित्यर्थः ॥ ८ ॥ एतदेवाह—**नैवेति** ॥ ९ ॥ भैषज्यं भवरोगचिकित्साम् ॥ १० ॥ येन संप्रज्ञातेऽहमेवेदं सर्वोऽस्मीति पश्यता । येन रूपादीनगृह्णता च जनपूर्णमपि स्थानं शून्यमिव भवति ब्राह्मणं ब्रह्मिष्ठम् ॥ ११ ॥ अहेः सर्पात् गणात् जनसमूहात् सौहित्यात् मृष्टान्नजनिततृप्तेः ॥१३॥ निदेशं आज्ञाम् ॥ १५ ॥ अभ्याहतं दोषाक्रान्तम् । निरमित्रस्य अजातशत्रोः ॥ १६ ॥ सर्वभूतेभ्यो यस्येति शेषः ॥१७॥ निर्भयत्वमुक्त्वा कृत्स्नानन्दप्राप्तिमप्याह—**यथेति** । नागपदे हस्तिपदे पदगामिनां मृगश्वादीनां पदानि अपिधीयन्ते तिरोधीयन्ते । तथा इन्द्रादीनां पदजातानि स्थानानि कौञ्जरे कुं पृथिवीं शरीररूपां जरयतीति कुञ्जरः । समाधिस्थो योगी तस्य स्थाने कौञ्जरे पदे । 'यथा कृताय विजितायाधरेऽयाः संयन्त्येवमेवैनं सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद' इति श्रुतेः । कृतायश्चतुरङ्कपाशः तत्र त्रिद्व्येकांकानामिव योगे कृत्स्नकर्मफलानामन्तर्भाव इति श्रुत्यर्थः ॥ १८ ॥ दार्ष्टान्तिकं विवृणोति—**एवमिति** । एवं दृश्यमानप्रकारं धर्मार्थम् । अहिंसायां सर्वभूताभयदानरूपे संन्यासयोगे ॥ १९ ॥ प्रज्ञानं आत्मानुभवस्तेन तृप्तस्य मृत्युरूपो भावस्तस्यातिगोऽतिक्रम्य गन्ता न भवति किं तु स एव मृत्युमतिक्रामतीत्यर्थः । 'स यथाऽश्मानमाखणमृत्वा लोष्टो विध्वंसेतैवं हैव ते विष्वञ्चो विनेशुः' इति श्रुतेः । ऋत्वा प्राप्य ते कामादयोऽसुरा मृत्युरूपा इति श्रुत्यर्थः । आखणः खननायोग्यः स्वार्थे तद्धितः । णत्वमार्षम् ॥ २१ ॥ सङ्गेभ्यः स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरेष्वहमित्यभिमानेभ्यः । आकाशवन्निर्विषयत्वात् । शून्यवत् अस्वं निर्द्रव्यम् । अत एव एकचरं ज्ञातृज्ञेयशून्यज्ञानमात्रम् ॥२२॥ यस्य कृतकृत्यस्य जीवन्मुक्तस्य जीवितं धर्मार्थं धर्ममेघाख्यनिर्विकल्पसमाधिजपुण्योत्पत्त्यर्थम् । तथा च श्रुतिः— 'क्षणमेकं क्रतुशतस्य चतुःसप्तत्या यत्फलं तदवाप्नोति' इति । धर्ममेघस्य फलमाह—सोऽपि धर्मो हर्यर्थं हरन्ति ते हरयस्तत्समीपवर्तिनस्तेषामर्थम् । योगिनो हि पुण्यं तद्भक्ता हरन्ति । 'तस्य पुत्रा दायमुपयान्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्' इति श्रुतेः । 'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' इत्यन्यनिष्ठं योगाङ्गफलं स्मर्यते च । रत्यर्थमिति पाठे परेषां सुखार्थं अहोरात्राः समाधयो व्युत्थानानि च पुण्यार्थं लोकशिक्षार्थम् ॥२३॥ **निरिति** । स्तुतिनमस्कारजन्यसुखासङ्गिनमित्यर्थः । बन्धनैः वासनाभिः ॥२४॥ **सर्वाणीति** । कर्ममात्रं हिंसाकरमतस्त्याज्यमित्यर्थः ॥ २५ ॥

दानं हि भूताभयदक्षिणायाः
सर्वाणि दानान्यधितिष्ठतीह ।
तीक्ष्णां तनुं यः प्रथमं जहाति
सोऽनन्त्यमाप्नोत्यभयं प्रजाभ्यः २६

उत्तान आस्येन हविर्जुहोति
लोकस्य नाभिर्जगतः प्रतिष्ठा ।
तस्याङ्गमङ्गानि कृताकृतं च
वैश्वानरः सर्वमिदं प्रपेदे ॥ २७

प्रादेशमात्रे हृदि निःसृतं य-
त्तस्मिन्प्राणानात्मयाजी जुहोति ।
तस्याग्निहोत्रं हुतमात्मसंस्थं
सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु ॥ २८

देवं त्रिधातुं त्रिवृतं सुपर्णं
ये विद्युरग्र्यां परमात्मतां च ।
ते सर्वलोकेषु महीयमाना
देवाः समर्त्याः सुकृतं वदन्ति ॥ २९

वेदांश्च वेद्यं तु विधिं च कृत्स्न-
मथो निरुक्तं परमार्थतां च ।
सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद
तस्यैव देवाः स्पृहयन्ति नित्यम् ३०

भूमावसक्तं दिवि चाप्रमेयं
हिरण्मयं योऽण्डजमण्डमध्ये ।
पतत्रिणं पक्षिणमन्तरिक्षे
यो वेद भोग्यात्मनि रश्मिदीप्तः ३१

---

अधितिष्ठति अधिकत्वेन वर्तते तीक्ष्णां तनुं हिंसामयं धर्मम् सोऽनन्त्यं स आनन्त्यं मोक्षम् । यतः प्रजाभ्यः प्रजानामभयम् ॥ २६ ॥ आनन्त्यावाप्त्युपायभूतां त्रींश्चैवाग्नीन्यजेदिति पूर्वाध्याये सूत्रितां वैश्वानरविद्यामनुवर्तयति—**उत्तान इत्यादिना** । वानप्रस्थ इव उत्ताने व्यात्ते आस्ये मुखे प्राणाय स्वाहेत्यादिमन्त्रैः पञ्च षट् वा आहुतीर्न जुहोति किं तर्हि प्राणानेव इन्द्रियमनआदीन् आत्मयाजी आत्मनि जुहोति प्रविलापयतीत्युत्तरेण सम्बन्धः । तत्प्रकारमाह—**लोकस्येति ।** लोकस्य चराचरस्य जन्तोर्नाभिः जगतस्त्रैलोक्यात्मनो वैश्वानरस्य प्रतिष्ठा स्थानम्। 'अधो निष्ट्या वितस्त्यान्ते नाभ्यामुपरि तिष्ठति । ज्वालमालाकुलं भाति विश्वस्यायतनं महत्' इति श्रुतेः । निष्ट्याः हृदयकपाटात् विश्वस्य वैश्वानरस्य। प्रकारान्तरेणायतनान्तरमाह—**तस्याङ्गमङ्गानीति** । तस्य लोकस्याङ्गं मूर्धादिचुबुकान्तं अङ्गानि वैश्वानरावयवाः मूर्धानमुपादिशन्नुवाचैष वा प्रतिष्ठा वैश्वानर इत्यादिना चुबुकमुपदिशन्नुवाचैष वै प्रतिष्ठा वैश्वानर इत्यन्तेन ग्रन्थेन श्रुत्या दर्शिताः । नाभ्यादिनिष्ट्यन्ते देशे वा चुबुकादिमूर्धान्तदेशे वा त्रैलोक्यात्मानः वैश्वानरमुपासीतेति पक्षद्वयमुपन्यस्तम् । एतच्च कृताकृतं वैकल्पिकं न तु समुच्चितम् । तात्पर्यमाह—**वैश्वानरः सर्वमिदमिति ।** प्रपेदे प्रतिपत्तव्यमित्यर्थः ॥२७॥ 'यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमात्ति' इत्यस्याः श्रुतेरर्थमाह—**प्रादेशेति।** हृदि नाभ्यादिहृदयपर्यन्ते देशे प्रादेशसंमिते निःसृतमाविर्भूतमिति श्रौतस्य प्रादेशमात्रपदस्यार्थः । तस्मिंश्चिन्मात्रे प्राणोपलक्षितं कृत्स्नं प्रपञ्चं आत्मयाजी योगी जुहोति प्रविलापयति यस्तस्याग्निहोत्रं प्राणाग्निहोत्रमात्मसंस्थं देहस्थितं हृदयं गार्हपत्य इत्यादिना उक्तप्रकारं सर्वेषु लोकेषु हुतं भवति। तस्य सर्वात्मकत्वात्तेन यदवदानं गृहीतं तेनावदानेन सर्वं ब्रह्माण्डं तृप्यतीत्यर्थः। तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेदित्यादिना ग्रंथेन श्रुतौ चैतदुपपादितम्॥२८॥ एवं प्रणवमात्रासु प्रथममकारार्थं वैश्वानरमुपासीना ये ते देवं त्रिधातुं द्योतमानं सूक्ष्मतेजोबन्नात्मकं सूत्रात्मानमुकारार्थं विदुः तथा त्रिवृतं त्रिभिर्गुणैर्वृतं सुपर्णं ईश्वरं मायोपाधिं मकारार्थमग्र्यां सूक्ष्मतमां परमो निरुपाधिरात्मा प्रत्यक्स्वरूपं तद्भावं च विदुः । अत एव तेषां सुकृतं देवादयो वदन्ति प्रशंसन्ति। व्रजन्तीति पाठे सुकृतं ब्रह्मानन्दम् । 'यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः' इति श्रुतेः ॥२९॥ विद्याफलमाह—**वेदानिति** । वेद्यं वियदादि विधिं कर्मकांडम्, निरुक्तं शब्दैकगम्यं परलोकादि परमार्थतां सत्यस्वभावतां चात्मनः एतत्सर्वं शरीरात्मनि प्रत्यग्रूपे एवास्तीति यो वेद तस्य तमेव सर्वेश्वरं देवाः सेवितुं स्पृहयन्ति ॥३०॥ अस्य सुपर्णत्वं व्याचष्टे—**भूमाविति** । अप्रमेयं प्रत्यगात्मत्वात् । हिरण्मयं चिन्मयं अण्डजं ब्रह्माण्डान्तराविर्भूतम् । अण्डमध्ये पिंडस्य मध्ये हृदंबुजे भोग्यात्मनि शरीरे अन्तरिक्षे हार्दाकाशे मायायाम् । एवं च देहपुंडरीकं मायाख्यमुपाधित्रयमाधारत्वेनाधेयाद्ब्रह्मणः पृथगुक्तं भवति। 'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुंडरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्' इति श्रुतेः। रश्मिभिरिव प्रसृमरैश्चक्षुःश्रोत्रादिभिर्दीप्तो जीवभावं गमितः । पतत्रिणं बहुपतत्रस्थानीयाभिरंगदेवताभिर्युक्तम् । 'यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः' इत्यादिभिर्युक्तम् । पक्षिणमिवासंगं मोदप्रमोदाख्यवृत्तिविशेषरूपपक्षद्वयवन्तं वा जीवप्रत्यग्भूतं ब्रह्म हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्मनामेति श्रुतम् । तत्त्वतो यो वेद तं देवा वदन्तीति पूर्वेणान्वयः ॥ ३१ ॥

आवर्तमानमजरं विवर्तनं
षण्णाभिकं द्वादशारं सुपर्व ।
यस्येदमास्योपरि याति विश्वं
तत्कालचक्रं निहितं गुहायाम् ॥ ३२
यः संप्रसादो जगतः शरीरं
सर्वान्स लोकानधिगच्छतीह ।
तस्मिन्हि तं तर्पयतीह देवां-
स्ते वै तृप्तास्तर्पयन्त्यास्यमस्य ॥ ३३
तेजोमयो नित्यमयः पुराणो
लोकाननन्तानभयानुपैति ।
भूतानि यस्मान्न त्रसन्ते कदाचि-
त्स भूतानां न त्रसते कदाचित्॥ ३४
अगर्हणीयो न च गर्हतेऽन्या-
न्स वै विप्रः परमात्मानमीक्षेत् ।
विनीतमोहो व्यपनीतकल्मषो
न चेह नामुत्र च सोऽन्नमर्छति ॥ ३५
अरोषमोहः समलोष्ठकाञ्चनः
प्रहीणकोशो गतसन्धिविग्रहः ।
अपेतनिन्दास्तुतिरप्रियाप्रिय-
श्चरन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

## २४६-[७३]

व्यास उवाच ।
प्रकृत्यास्तु विकारा ये क्षेत्रज्ञस्तैरधिष्ठितः ।
न चैनं ते प्रजानन्ति स तु जानाति तानपि॥
तैश्चैवं कुरुते कार्यं मनःषष्ठैरिहेन्द्रियैः ।
सुदान्तैरिव संयन्ता दृढैः परमवाजिभिः ॥ २
इन्द्रियेभ्यः परे ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ ३

---

विवर्तनमायुःक्षपणम् । षट् ऋतवो नाभयो यस्य द्वादश मासा अरा यस्मिन् शोभनानि दर्शसंक्रमादीनि पर्वाणि यत्र । आस्योपरि भक्ष्यमिव विश्वं याति गुहायां बुद्धौ ॥ ३२ ॥ संप्रसीदत्यस्मिन्निति संप्रसादः सुषुप्तं तदेव जगतः शरीरं मूलकारणत्वात् । यथोक्तं 'सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानं यद्बीजं स्वप्रबोधयोः' इति । सर्वान् लोकांश्च स्थूलसूक्ष्मान् अधिगच्छति व्याप्नोति कारणत्वादेव तस्मिन् संप्रसादाभिन्ने स्थूलसूक्ष्मदेहद्वये स जीवो देवान् प्राणादींस्तर्पयति ते च देवा अस्य आस्यं मुखं प्राप्य एनं तर्पयन्तीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः —'स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यति आदित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किञ्च द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेन ' इति ॥ ३३ ॥ यःपूर्वाक्तामप्यां परमात्मतामप्राप्य त्रिधातुके सोपाधिके एव रूपे तिष्ठति तस्य गतिमाह-**तेजोमय इति** । तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्तीति श्रुताविवेहापि लोकानिति बहुत्वं कार्यब्रह्मलोकगतप्रदेशभेदापेक्षया तेन कार्यब्रह्मलोकं गच्छतीत्यर्थः । अत एव कठवल्लीषु निर्गुणविद्याप्रकरणेऽपि गतिराम्नायते 'शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्य उत्क्रमणे भवन्ति' इति तत्राप्ययमेव श्रुतेराशयो न तु परब्रह्मविदामर्चिरादिगतिरस्तीति तत्र गत्याम्नानमिति व्यक्तमाकरे॥३४॥परमात्मतां प्राप्तस्य तु नेहामुत्र वा भोगोऽस्ति तद्धेतोर्मूलाज्ञानस्य नाशादित्याह—**अगर्हणीय इति**। विनीतमोहो नष्टाज्ञानः अत एव व्यपनीतं नष्टं कल्मषं स्थूलसूक्ष्मभेदेहद्वयं यस्य अन्नमदनीयं भोग्यं लोकं अर्च्छति गच्छति 'न तस्य प्राणा उत्क्रामंति'इति तस्य गत्यभावश्रुतेः ॥ ३५ ॥ अस्य जीवन्मुक्तावस्थामाह—**अरोषेति** । न स्तः प्रियाप्रिये यस्य सोऽप्रियाप्रियः उदासीनवन्न तु प्रीत्यप्रीतियुक्तं चरन् भुञ्जानो भोगान् ॥३६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः २४५

२४६

विस्तरेण ससाधनां ब्रह्मविद्यामुक्त्वा संक्षेपेण कठवल्लीनामर्थं संगृह्णन्नुपसंहरति-**प्रकृत्या इति**। विकारा देहेन्द्रियमनांसि तैरधिष्ठितः अधिष्ठातृत्वं कर्तृत्वभोक्तृत्वभावं प्रापितः 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इतिश्रुतेः॥१॥ जडत्वाच्चक्षुरादय आत्मानं न भासयन्ति आत्मा तु चेतनत्वात्तानेव भासयति। 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति श्रुतिभ्या।मित्याह-**तैश्चेति**। कार्यं विषयदेशं प्रति गमनम् ॥ २ ॥ परत्वं सूक्ष्मत्वं कारणत्वं चान्तरत्वं च । ननु 'इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्'इति तत्रैव कठवल्ल्यामिन्द्रियेभ्योऽर्थानां बाह्यत्वं श्रूयते तत्कथमिन्द्रियेभ्योऽर्थानां बाह्यत्वं श्रूयते तत्कथमि-

महतः परमव्यक्त-
मव्यक्तात्परतोऽमृतम् ।
अमृतान्न परं किंचि-
त्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ४

एवं सर्वेषु भूतेषु
गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या
सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ ५

अन्तरात्मनि संलीय मनःषष्ठानि मेधया ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च बहुचिन्त्यमचिन्तयत्
ध्यानेनोपरमं कृत्वा विद्यासंपादितं मनः ।
अनीश्वरः प्रशान्तात्मा ततोर्च्छत्यमृतं पदम्
इंद्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृतिः
आत्मनः संप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते ॥ ८
आहृत्य सर्वसंकल्पान् सत्त्वे चित्तं निवेशयेत्
सत्त्वे चित्तं समावेश्य ततः कालंजरो भवेत्
चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते
लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुखं स्वपेत् ।
निवाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते

एवं पूर्वापरे काले
युञ्जन्नात्मानमात्मनि ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा
पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १२

रहस्यं सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम् ।
आत्मप्रत्ययिकं शास्त्रमिदं पुत्रानुशासनम्॥१३
धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्याने च यद्वसु ।
दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् १४
नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैव च ।
तथैव विदुषां ज्ञानं पुत्रहेतोः समुद्धृतम् ॥ १५
स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम्
तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्तायातपस्विने१६

---

न्द्रियेभ्यः परे ह्यर्था इति तद्विरुद्धमुच्यते । सत्यम् । व्यवहारतस्त्वित्थमेव परमार्थतस्तु संकल्पमात्रकृता विषयाः । संकल्पश्च मनोधर्म इन्द्रियेभ्य आन्तर इति न किंचिदवद्यम् तथा चाक्षपादसूत्रम्–'दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः' इति। अर्थेभ्यो मनस्तत्कल्पकं मनसोऽपि बुद्धिर्निश्चयात्मिका परा ततोऽपि परं महानात्मा शुद्धत्वंपदार्थः स एव हैरण्यगर्भी बुद्धिः ॥ ३ ॥ ततः परं महत उपादानमव्यक्ताख्यं अज्ञानं न तु कापिलाभिमतं प्रधानम् । आनुमानिकाधिकरणे तस्याव्यक्तशब्दार्थत्वनिरासात् । ननु तत्र सूक्ष्मं शरीरमव्यक्तशब्देनोक्तं तदेवास्माकमज्ञानम् 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'इतिश्रुतेः पुरुषादव्यवहितं अमृतं चिदात्मा ॥ ४ ॥ एवमनेन प्रकारेण भूतेषु शरीराकारेषु आत्माऽनेककंचुकाक्रान्ततया गूढः सन्ननौपाधिकेन रूपेण प्रकाशते । तर्हि तत्सत्त्वे किं मानमत आह–**दृश्यते त्विति** । अग्रमिवाग्र्या तीक्ष्णा तया सूक्ष्मयेति तस्यैव व्याख्यानं सूक्ष्मदर्शिभिर्ब्रह्मदर्शनशीलैर्योगिभिः ॥ ५ ॥ इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थांश्च मेधया बुद्ध्या अन्तरात्मनि महत्तत्त्वे संलीय विलाप्य बहु चिन्त्यं ध्येयध्यानध्यातृरूपं त्रयं अचिन्तयत् ॥ ६ ॥ ध्यानेन तदेकताननतया विद्यासंपादितमहंब्रह्मास्मीति वाक्यजधीवृत्त्या विद्यया संस्कृतम्। उपरमं उपरतं कृत्वा अनीश्वरः ईशभावमपि प्रविलाप्यात एव प्रकर्षेण शान्तात्मा मुक्तचित्तः अमृतं कैवल्यं अर्च्छति प्राप्नोति ॥ ७ ॥ विपक्षे दोषमाह-इंद्रियाणां वश्यात्मा इन्द्रियैर्हृतचित्तः आत्मनः संप्रदानेन कामादिभ्यः समर्पणेन मर्त्योऽयं मृत्युमश्नुते ॥ ८ ॥ उपसंहरति–**आहृत्येति** । आहृत्य विनाश्य सत्त्वे सूक्ष्मायां बुद्धौ चित्तं स्थूलबुद्धिं कालञ्जरपर्वतवदप्रकम्प्यो भवेत् कालं क्षणमुहूर्तादिरूपं जरयति नाशयति तथा आत्मविदेव कालं नाशयति न तु तं काल इत्यर्थः ॥ ९ ॥ प्रसादेन द्वैतदर्शनाभावरूपेण नैर्मल्येन शुभाशुभं पुण्यपापम् । पुण्यस्यापि बन्धकत्वेन मोक्षापेक्षया पापत्वम् । तथा च जापकोपाख्याने इन्द्रादिलोकानामपि नरकत्वमुक्तम् । प्रसन्नात्मा शुद्धचित्तः आत्मनि स्वरूपे स्थित्वा द्वैतदर्शनकालीनं वृत्तिसारूप्यं परित्यज्य सुखं अत्यन्तं अन्तमतिक्रान्तं त्रिविधपरिच्छेदशून्यमश्नुते ॥ १० ॥ स्वप्ने सुषुप्तौ तथाहि द्वैतादर्शनं सुप्तिकैवल्ययोस्तुल्यवदाम्नायते **माध्यंदिनैः**–'यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्यद्विभक्तं पश्येत्'इत्यादिना । अनूदितं चैतन्सूत्रकारेण—स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हीति । स्वाप्ययः सुषुप्तं संपत्तिः कैवल्यं अनयोरन्यतरदपेक्ष्य द्वैतादर्शनमाविष्कृतं श्रुत्या क्वचित्षष्ठाध्यायादौ सुषुप्तिमपेक्ष्य मैत्रेयिब्राह्मणादौ कैवल्यमपेक्ष्येति सूत्रार्थः ॥ ११ ॥ अनैतिह्यं न केवलमनुमानतः अनागममागममात्रतो वा गम्यम्। किं तु अनुभवगम्यमित्यर्थः॥१३॥ वसु धनं सारभूतं दश किंचिदधिकानि ऋक्सहस्राणि तथा चोक्तं शाकलके–

'ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादैश्च तत्पारायणमुच्यते' इति

सर्ववेदश्रेष्ठादृग्वेदादयं सार उद्धृत इत्यर्थः ॥ १४ ॥

नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च।
नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे॥ १७
न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च।
श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय च।
रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कथञ्चन॥ १९
यद्यप्यस्य महीं दद्याद्रत्नपूर्णामिमां नरः।
इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित्॥ २०
अतो गुह्यतरार्थं तदध्यात्ममतिमानुषम्।
यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते॥ २१
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥
यच्च ते मनसि वर्तते परं
यत्र चास्ति तव संशयः क्वचित्।
श्रूयतामयमहं तवाग्रतः
पुत्र किं हि कथयामि ते पुनः॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४६॥

## २४७-[७४]

शुक उवाच।
अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व मे।
यदध्यात्मं यथा वेद भगवन्नृषिसत्तम॥ १
व्यास उवाच।
अध्यात्मं यदिदं तात पुरुषस्येह पठ्यते।
तत्तेऽहं वर्तयिष्यामि तस्य व्याख्यामिमां शृणु
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाश एव च।
महाभूतानि भूतानां सागरस्योर्मयो यथा ३
प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः।
तद्वन्महान्ति भूतानि यवीयःसु विकुर्वते ४
इति तन्मयमेवेदं सर्वं स्थावरजङ्गमम्।
सर्गे च प्रलये चैव तस्मिन्निर्दिश्यते तथा ५
महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत्।
अकरोत्तात वैषम्यं यस्मिन्यदनुपश्यति॥ ६
शुक उवाच।
अकरोद्यच्छरीरेषु कथं तदुपलक्षयेत्।
इन्द्रियाणि गुणाः केचित्कथं तानुपलक्षयेत्॥
व्यास उवाच।
एतत्ते वर्तयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः।
शृणु तत्त्वमिहैकाग्रो यथातत्त्वं यथा च तत्८
शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशसंभवम्
प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रयः ९

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः २४६

२४७

**अध्यात्ममिति**। आत्मा पुर्यष्टकं तच्च १कर्मेन्द्रियाणि २ ज्ञानेन्द्रियाणि ३ मनआदिचतुष्टयम् ४ पञ्च प्राणाः ५ पञ्चभूतानि ६ कामः ७ कर्म ८ अविद्या चेति पुनरिति शतकृत्वोऽपि पथ्यं वेदितव्यमिति न्यायेन विस्तरार्थं चोच्यते यथेति सप्रकारं वेद॥ १॥ भूतानां जरायुजादीनां सागरोर्मिन्यायेन प्रतिजीवं भूम्यादयः पृथक्कल्पिताः सन्तीत्यर्थः॥ ३॥ एतदेव दृष्टान्तान्तरपूर्वकमाह—**प्रसार्येति**। यवीयःस्वल्पेषु शरीराकारेषु महाभूतेषु स्थित्वा विकुर्वते सृष्टिलयाख्यं विकारं जनयन्ति॥ ४॥ अन्तःशरीरे एव बाह्यवद्ब्रह्माण्डोदयप्रलयौ भवत इति फलितमाह—**इतीति**। तन्मयं अल्पभूतमयं तस्मिन् शरीरान्तःस्थे। तथा सृष्टिप्रलयादिकं निर्दिश्यते इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति श्रुत्या॥ ५॥ यद्यपि सर्वस्मिन् शरीरे पञ्चैव भूतानि तथापि शरीरेषु सुरनरतिर्यगादिरूपेण वैषम्यमकरोत् तत्र हेतुः—यस्मिन्कर्मणि निमित्ते सति यदनुपश्यति अन्तकाले 'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति' इति स्मृतेः॥६॥ शरीरेषु शरीरावयवेषु बुद्धीन्द्रियादिषु यद्वैषम्यं कानिचिदिन्द्रियाणि केचिद्गुणाः शब्दादय इत्येवमादि तत्कथमिति स्वरूपतो गुणतश्च भेदं कथंशब्दद्वयेन पृच्छतीत्यर्थः॥ ७॥ तदेव वक्तुं प्रतिजानीते—**यथातत्त्वं यथा च तदिति**॥ ८॥ शब्दश्रोत्रदेहच्छिद्राणि स्वरूपतो भिन्नानि विषयत्वं करणत्वं तदुभयाश्रयत्वं चेति गुणतो भिन्नानि एवमग्रेऽपि ज्ञेयम्। स्पर्शः स्पर्शनेन्द्रियम्। वायुगुणाः वायुविकाराः॥९॥

रूपं चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते ।
रसोऽथ रसनं स्नेहो गुणास्त्वेते त्रयोऽम्भसः
ज्ञेयं घ्राणं शरीरं च भूमेरेते गुणास्त्रयः ।
एतावानिन्द्रियग्रामैर्व्याख्यातः पाञ्चभौतिकः
वायोः स्पर्शो रसोऽद्भ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते ।
आकाशप्रभवः शब्दो गन्धो भूमिगुणः स्मृतः ॥ १२
मनो बुद्धिः स्वभावश्च त्रय एते स्वयोनिजाः ।
न गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्यः परमागताः ॥ १३
यथा कूर्म इहाङ्गानि प्रसार्य विनियच्छति ।
एवमेवेन्द्रियग्रामं बुद्धिः सृष्ट्वा नियच्छति १४
यदूर्ध्वं पादतलयोरवाङ्मूर्ध्नश्च पश्यति ।
एतस्मिन्नेव कृत्ये तु वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥ १५
गुणान्नेनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि ।
मनःषष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्यभावे कुतो गुणाः
इन्द्रियाणि नरे पञ्च षष्ठं तु मन उच्यते ।
सप्तमीं बुद्धिमेवाहुः क्षेत्रज्ञं पुनरष्टमम् ॥ १७
चक्षुरालोचनायैव संशयं कुरुते मनः ।
बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते १८
रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजाः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत् ॥ १९
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव संशुद्धं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ २०
यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलक्षयेत् ॥ २१
यत्तु संमोहसंयुक्तमव्यक्तविषयं भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधार्यताम् ।
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः साम्यं स्वस्थात्मचित्तता
अकस्माद्यदि वा कस्माद्वर्तन्ते सात्त्विका गुणाः
अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथाऽक्षमा
लिङ्गानि रजसस्तानि वर्तन्ते हेत्वहेतुतः २४
तथा मोहः प्रमादश्च निद्रा तन्द्रा प्रबोधिता
कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणाः २५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥

## २४८–[७५]

व्यास उवाच ।

मनो विसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी । हृदयं प्रियाप्रिये वेद त्रिविधा कर्मचोदना ॥१

---

विपाकः जाठरः ॥ १० ॥ शरीरं कठिनांशबाहुल्यात् पार्थिवं इन्द्रियग्रामैः सह पाञ्चभौतिको विकारः ॥ ११ ॥ स्पर्शादयो वाय्वादीनां गुणास्तद्विकारैः स्पर्शनादीन्द्रियैर्गृह्यन्ते ॥ १२ ॥ **मनः** संकल्पविकल्पात्मकं, **बुद्धिर्**निश्चयात्मिका, **स्वभावः** पूर्ववासना स्वयोनिभूतान्येवातस्तानि सर्वाण्यपि भूतोत्थान्येव । अत्र हेतुमाह—**नेति**। गुणेभ्यः सत्त्वादिभ्यः परं श्रोत्रादिकार्यस्वरूपमागताः प्राप्ताः सन्तो गुणान् शब्दादीन्नातिवर्तन्ते । अत्रायमाशयः—यदिन्द्रियं यस्यार्थस्य ग्राहकं तत् ग्राह्यसजातीयगुणाश्रयं इति नियमश्चक्षुरूपादौ दृष्ट इति मनोबुद्ध्यहंकाराः पञ्चानामपि ग्राहका इति पञ्चगुणाश्रयत्वात् पाञ्चभौतिकाः ॥ १३ ॥ समनस्कानीन्द्रियाणि बुद्धिमात्रमेवेत्याह—**यथेति** ॥ १४ ॥ **यदिति** । ऊर्ध्वमित्यादिना कृत्स्नं शरीरं यत् पश्यति इदमहमिति यद्दर्शनं एतस्मिन्कृत्ये करणीये बुद्धिर्वर्तते । देहे अहमित्यनुभवो विषयो बुद्धेः स्वरूपमित्यर्थः ॥ १५ ॥ गुणान् शब्दादीन् भावप्रधानो निर्देशः। बुद्धिरेव शब्दात्मतामतिशयेन नीयते। कर्मकर्तरि प्रयोगः । बुद्ध्यभावे विषया इन्द्रियाणि च न प्रथन्तेऽतस्तदुभयं बुद्धिरेवेत्यर्थः ॥१६॥ **चक्षुरिति**। इदं रूपमिति ज्ञाने यथा चक्षुः करणम् एवमिदमित्थं न वेत्यान्तरे ज्ञाने इदमित्थमेवेति ज्ञाने च मनोबुद्धी करणे तेषां ज्ञानानां द्रष्टा तु साक्षी ततः पृथगित्यर्थः ॥ १८ ॥ **रज इति** । स्वयोनिजाः तत्तत्संस्कारसचिवाच्चित्तादाविर्भूताः अत एव चित्तं तज्जाश्चार्थेन्द्रियादयः सर्वे त्रिगुणात्मका एवेति मतम् । सर्वेषु सुरनरादिषु तान् गुणान् कार्यद्वारा उपलक्षयेत् ॥ १९ ॥ कार्याण्येवाह—**तत्रेत्यादिना** ॥ २० ॥ हेतुतः कारणात् अहेतुतः अकस्मात् ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥

२४८

एवं बुद्धेः स्वाभाविकं त्रिगुणात्मकत्वमुक्त्वा कर्मजं त्रैविध्यमाह—**मन इति** । विसृजते संकल्पमात्रेण भावं पदार्थं

**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परो मतः॥ २**
**बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवात्मनाऽऽत्मनि**
**यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः ३**
**इन्द्रियाणां पृथग्भावाद्बुद्धिर्विक्रियते ह्यतः।**
**शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते**
**पश्यती भवते दृष्टी रसती रसनं भवेत्।**
**जिघ्रती भवति घ्राणं बुद्धिर्विक्रियते पृथक् ५**
**इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेष्वदृश्योऽधितिष्ठति**
**तिष्ठती पुरुषे बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते॥ ६**
**कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति।**
**न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह युज्यते॥ ७**
**सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते॥**
**सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान्**
**यदा प्रार्थयते किञ्चित्तदा भवति सा मनः।**
**अधिष्ठानानि वै बुद्ध्यां पृथगेतानि संस्मरेत्।**
**इन्द्रियाण्येव मेध्यानि विजेतव्यानि कृत्स्नशः**
**सर्वाण्येवानुपूर्व्येण यद्यदानुविधीयते।**
**अविभागगता बुद्धिर्भावे मनसि वर्तते॥ १०**
**ये चैव भावा वर्तन्ते सर्वे एष्वेव ते त्रिषु।**
**अन्वर्थाः संप्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव॥ ११**
**प्रदीपार्थं मनः कुर्यादिन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः।**
**निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया॥ १२**

---

विविधं उत्पादयति बुद्धिरध्यवसायिनी तं पदार्थं बुद्धिर्निश्चिनोति—**इदमित्थमेवेति**। हृदयमहंकारं प्रियमनुकूलमप्रियं प्रतिकूलं च वेद ॥ १ ॥ अत एवेन्द्रियेभ्योऽर्था विषयाः पराः सूक्ष्माः संकल्पजत्वात्। तेभ्यो मनः परं तदुपादानत्वात्। ततोऽपि बुद्धिः परा। निश्चयात्मकत्वात्। ततोऽप्यात्मा परः। अदृश्यत्वेन प्रत्यक्तमत्वात् ॥ २ ॥ जन्तोर्व्यावहारिक आत्मा **बुद्धिः**। सा यदा भावं घटादिं विविधाकारं कुरुते तदा सा **मन** इत्युच्यते ॥ ३ ॥ पृथग्भावात् पृथग्विषयत्वात्। विक्रियते विकारं प्राप्नोति तानेव विकारानाह—**शृण्वतीति** ॥ ४ ॥ तानि बुद्धेर्विकारान् अदृश्यश्चिदात्मा भावेषु सात्त्विकादिषु ॥ ६ ॥ तानेवाह—**कदाचिदिति**। प्रीतिशोकोभयाभावाः क्रमेण सात्त्विकराजसतामसाः ॥ ७ ॥ एतान् भावान् अतिवर्तते बुद्धिः सरितां वेगान् सागरोर्मिरिव तिरोधत्ते निरोधकाले इत्यर्थः ॥ ८ ॥ **यदेति**। अधिष्ठानानि इन्द्रियगोलकानि बुद्ध्यामेवान्तर्भूतानि परस्परं पृथग्भूतानि। मेधा रूपादिज्ञानं तत्र हितानि मेध्यानि ॥ ९ ॥ **सर्वाणीति**। यदिन्द्रियं यदा अनुविधीयते बुद्ध्याऽनुगतं भवति तदा पूर्वं अविभागगता अपृथग्भूतापि बुद्धिः पश्चान्मनसि संकल्पात्मके भावे घटादौ वर्तते बुद्ध्याऽनुगृहीतमिन्द्रियं संकल्पजं घटं गृह्णाति एवं रूपादीनानुपूर्व्येण न तु यौगपद्येन ॥ १० ॥ भावाः सात्त्विकादयः त्रिषु मनोबुद्ध्यहंकारेषु अन्वर्था अर्थं अनुसृत्य वर्तन्त इत्यन्वर्थाः। एकस्मिंस्त्र्यादिपिण्डे भर्तुः प्रीतिः सपत्न्या द्वेषस्तामविन्दतश्चैत्रस्य मोह इत्यान्तरा एव भावा विषयदर्शनेनाविर्भवन्तीत्यर्थः। इत एवानुभववैषम्याद्विषय एव त्रिगुणात्मेति कापिलाः प्राहुस्तन्मन्दम्। न हि स्त्रीपिण्डे सदैव भर्त्रादीनां प्रीत्यादयोऽनुवर्तन्ते येन तान् प्रति तेषां सत्त्वाद्यात्मत्वं नियम्येत। न ह्येकः पदार्थ एकमेव भोक्तारं प्रति कदाचिदसत्त्वात्मा कदाचित्सत्त्वात्मेति युक्तम्। न हि हिमग्रीष्मयोः प्रीत्यप्रीतिविषयोऽपि वन्हिर्दाहात्म्यमतिवर्तते। तस्माद्बुध्यादय एव सत्त्वाद्यात्मानो न त्वर्थाः रज्जूरगादिवदनिर्वचनीयत्वात्तेषाम्। न हि व्यवहितघटादिसत्त्वे प्रत्यक्षं क्रमते तस्य तत्रासामर्थ्यात्। नाप्यनुमानं वन्हिधूमन्यायेन तत्सत्त्वसाधकस्य नियतस्य लिंगस्याभावात्। नापि लोकवाक्यं, तस्याप्रामाण्यादिदोषशंकाकलंकितत्वात्। नापि वेदवाक्यं 'नेह नानास्ति किञ्चन' इति सर्वसत्ताग्रासिनो वेदस्य यत्किंचित्पदार्थसत्त्वासाधकत्वात्। ननु 'अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनमत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे। येनासावमृतीभूत्वा मोक्षी भवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेताविमुक्तं न विमुञ्चेत्' इत्यादिश्रुतेरविमुक्तादीनां सद्भावं प्रभावं तदविमोकं च प्रकाशयन्त्याः का गतिः। अज्ञातवस्तुनः सत्त्वाभावे कर्मोपास्तिकाण्डयोरुच्छेदापत्तिरिति चेन्न। अविद्यावद्विषयत्वात्तयोः। यथा स्वाप्ने रज्जूरगभ्रमेऽपनीते रज्जुः सत्या सर्पो मृषेति सत्यासत्यविभाग आभिमानिकोऽविद्यापेक्षः परमार्थतस्तयोर्मिथ्यात्वाविशेषेऽप्यनुवर्तते तद्वदित्यवेहि। तस्मादविद्यावतां वज्रपञ्जरायितमपि जगद्विद्यावतां दृष्टिसमसमयमात्रमेवेति युक्तमुक्तं बुद्ध्यादय एव सत्त्वाद्यात्मानो न त्वर्था इति ॥ ११ ॥ नन्वर्थानां स्वरूपसत्त्वाभावे कथमिन्द्रियसन्निकर्षाद्धि तज्जं घटादिज्ञानं वा स्यादित्याशंक्याह–**प्रदीपार्थमिति**। इन्द्रियैः करणैः बुद्धिसत्तमैर्हेतुभिः। इयमत्र प्रक्रिया–त्रिविधं सत्त्वं शुक्तिरजतादीनां प्रातिभासिकं, घटादीनां व्यावहारिकं, ब्रह्मणः पारमार्थिकं चेति क्रमेण तानि सत्सत्तरसत्तमानि। तत्र सत्तमब्रह्माभिन्नत्वाद्विषया अपि सत्तमा इत्युच्यन्ते। बुद्धिसत्तमैरिति बुद्धिस्थविषयासिद्ध्यर्थं अध्ययनेन वसतीतिवत्तृतीया। इन्द्रियै रश्मिभूतैर्मनःप्रदीपार्थं सत्तमावरकाज्ञाननाशं कुर्यात्। ततः

एवंस्वभावमेवेदमिति विद्वान्न मुह्यति ।
अशोचन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥ १३
न चात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैः कामगोचरैः
प्रवर्तमानैरनघैर्दुष्करैरकृतात्मभिः ॥ १४
तेषां तु मनसा रश्मीन्
यदा सम्यङ्नियच्छति ।
तदा प्रकाशतेऽस्यात्मा
दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥ १५
सर्वेषामेव भूतानां तमस्यपगते यथा ।
प्रकाशं भवते सर्वं तथेदमुपधार्यताम् ॥ १६
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन्
विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते॥
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयांश्चरन् ।
असज्जमानः सर्वेषु कथंचन न लिप्यते ॥ १८
त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदात्मनि ।
सर्वभूतात्मभूतस्य गुणवर्गेष्वसज्जतः ॥ १९
सत्त्वमात्मा प्रसरति गुणान्वापि कदाचन ।
न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥
परिद्रष्टा गुणानां च परिस्रष्टा यथातथम् ।
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः ॥ २१
सृजतेऽत्र गुणानेक एको न सृजते गुणान् ।
पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्या-
त्संप्रयुक्तौ तथैव तौ ।
मशकोदुम्बरौ वाऽपि
संप्रयुक्तौ यथा सह ॥ २३
इषीका वा यथा मुञ्जे पृथक् च सह चैव च ॥
तथैव सहितावेतावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ २४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि अष्टचत्वारिं-
शदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥

---

स्वतः प्रकाशमाने सत्तमे विषया अध्यस्यन्ते । यथा इन्द्रियैः शुक्त्यादिमंशावरकाज्ञाने नाशिते शुक्तिबुद्धिस्थरजतभावेन शुक्त्यनतिरिक्तेन भाति । इन्द्रियान्वयव्यतिरेकयोरधिष्ठान-ग्रह एवोपक्षयः । एवं घटाद्यध्यासेऽपि इन्द्रियद्वारा मनसा सत्तमावरकाज्ञाने नाशिते स्वतः प्रकाशमानं सत्तमं बुद्धिस्थ-वियदादिभावेन सत्तमाऽनन्येन भाति अत इन्द्रियं सत्तम-स्यैव ग्रहार्थम् । वियदादिकं तु रज्ज्वामुरगवदविद्यामात्रभातं साक्षिमात्रभातं वा। तथा च श्रुतिः'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' इत्याधिष्ठानभानमन्वध्यस्तस्य घटादेर्भानमाह—लोकेऽपि घटानुभवः पटानुभव इत्यादावनुभवशब्दः प्राप्त्यर्थस्य भवते-र्ज्ञानार्थत्वेन पाश्चात्यप्रकाशवाचकोऽनुशब्दसामर्थ्यात् पूर्व-तरमधिष्ठानप्रकाशमाक्षिपति । इममेव तार्किका निर्विकल्पकं ज्ञानमित्याचक्षते भाषान्तरेण । तथा च विषयाणां स्वरूपसत्त्वाभावेऽपि रज्जूरगवदविद्याप्रकाश उपपद्यते इति सर्वमवदातम् ॥ १२ ॥ एतज्ज्ञानफलमाह **—एवमिति** । इदं जगत् एवंस्वभावं बुद्धि-मात्रकल्पितमिति जानन्न मुह्यति। न हि स्वाप्रधननाशादिना प्रबुद्धः शोकादिकं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ नन्वेवं घटमात्र-विदाऽप्यधिष्ठानब्रह्म ज्ञातमेवेति किं श्रवणादिनेत्याशंक्याह **—न चेति** । कामगोचरैः काम्यमानविषयगोचरैः अनघै-र्निर्दोषैरपीन्द्रियैः आत्मा स्वरूपेण ज्ञान एव पुरुषार्थो न पररूपेण । न हि रजतात्मना ज्ञाता शुक्तिः शुक्तिकार्याय प्रभवति तद्वत् । दुष्करैर्दुष्कृतिभिरकृतात्मभिरशोधितचित्तैः पुरुषैः ॥ १४ ॥ कथं तर्ह्यात्मा ज्ञेय इत्यत आह**—तेषा-मिति** । आकृतिर्घटादिरूपम् ॥ १५ ॥ भवते प्राप्नोति कण्ठगतविस्मृतचामीकरवदज्ञानापगममात्रलभ्य आत्मेत्यर्थः ॥ १६ ॥ विद्याफलमाह**—यथेति** । गुणदोषैः पुण्यपापैः प्राकृतैः ॥ १७ ॥ क्रियमाणैरपि न लिप्यत इत्याह**—एव-मिति** । विषयांश्चरन्नपि न लिप्यते तत्र हेतुरसज्जमान इति । सर्वेषु पुत्रादिष्वप्यसज्जमानस्तन्नाशादिजैः शोकादि-भिर्न लिप्यते एवं देहासंगी देहकृतैरपि कर्मभिर्न लिप्यत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ संन्यासपूर्वकमात्मध्यानशीलस्य सार्वात्म्यं प्राप्तस्य भोग्यानासक्तस्य बुद्धीन्द्रियाण्यात्माकाराण्येव भवन्ति तथापि चिदचितोर्विभाग एवास्ति न त्वैक्यं भवतीत्याह द्वाभ्याम् **। त्यक्त्वेति** ॥ १९ ॥ शेषं प्राग्व्याख्यातम् ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमो-ऽध्यायः ॥ २४८ ॥

## २४९-[७६]

**व्यास उवाच ।**

**सृजते तु गुणान् सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति**
**गुणान् विक्रियतः सर्वानुदासीनवदीश्वरः १**
**स्वभावयुक्तं तत्सर्वं यदिमान् सृजते गुणान् ।**
**ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणांस्तथा ॥ २**
**प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते ।**
**एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे ३**
**उभयं संप्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति ।**
**अनेनैव विधानेन भवेद्गर्भशयो महान् ॥ ४**
**अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा विचरेन्नरः**
**अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥ ५**
**इत्येवं हृदयग्रन्थिं बुद्धिचिन्तामयं दृढम् ।**
**अनित्यं सुखमासीत अशोचंश्छिन्नसंशयः ६**
**ताम्येयुः प्रच्युताः पृथ्व्या**
**यथा पूर्णां नदीं नराः ।**
**अवगाढा ह्यविद्वांसो**
**विद्धि लोकमिमं तथा ॥ ७**
**न तु ताम्यति वै विद्वान्**
**स्थले चरति तत्त्ववित् ।**
**एवं यो विन्दतेऽऽत्मानं**
**केवलं ज्ञानमात्मनः ॥ ८**
**एवं बुद्ध्वा नरः सर्वं भूतानामागतिं गतिम्**
**समवेक्ष्य च वैषम्यं लभते शममुत्तमम् ॥ ९**
**एतद्धि जन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।**
**आत्मज्ञानं शमश्चैव पर्याप्तं तत्परायणम् १०**
**एतद्बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् ।**
**विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ११**
**न भवति विदुषां महद्भयं**
**यदविदुषां सुमहद्भयं परत्र ।**
**न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचि-**
**द्भवति हि या विदुषः सनातनी १२**
**लोकमातुरमसूयते जन-**
**स्तत्तदेव च निरीक्ष्य शोचते ।**
**तत्र पश्य कुशलानशोचतो**
**ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥ १३**

---

### २४९

**सृजत इति** । गुणान् विषयान् । गुणान् सत्त्वादीन् विक्रियतः विकारं भजमानान् अनुलक्ष्य उदासीनस्याप्यधिष्ठातृत्वं अयस्कान्तमणिवज्ज्ञेयम् ॥ १ ॥ एतदेवाह—**स्वभावेति** । अभिन्ननिमित्तोपादानत्वसूचनाय ऊर्णनाभिदृष्टान्तः ॥२॥ एते गुणाः प्रध्वस्तास्तत्त्वज्ञानेन दर्शनं गताः सन्तो न निवर्तन्ते घटादिवन्न नश्यन्ति किं तु रज्जूरगादिवद्बाध एवात्र प्रध्वंसपदार्थ इत्यर्थः । तत्र हेतुः-**प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते इति** । निवृत्तस्य हि घटादेः कपालादिरूपेण प्रवृत्तिर्लभ्यतेऽत्र घटो ध्वस्त इति । इह तु तादृक्प्रवृत्त्यदर्शनान्निरन्वयनाश एव गुणानामित्यर्थः । एके मुख्याः अपरे तार्किकाः । निवृत्तिः आत्यन्तिकी दुःखानां आत्मगुणानां निवृत्तिर्भवतीत्याहुः । एवं सांख्यादयोऽपि संसारहेतोर्दृग्दृश्यसंयोगस्यानादिभावस्यापि नाशमिच्छन्ति ॥ ३ ॥ एवं निवृत्तिबाधपक्षौ संप्रधार्य युक्त्याऽऽलोच्य यथामति निश्चिनुयात् सिद्धान्तं कुर्यात् । एतदनुरोधेनैव गर्भशयः जन्मादिलाभोऽपि बाधपक्षे आध्यासिको निवृत्तिपक्षे तात्त्विक इति ॥ ४ ॥ **अनादीति** । हि शब्दो नित्यानित्ययोर्धर्मधर्मिभावासंभवप्रसिद्धिद्योतकः । उपयन्नपयन्धर्मो विकरोति हि धर्मिणमिति न्यायेन दुःखादिधर्मिणि विकारिणि नित्यत्वासंभवात् घटे यावद्रूपनाशादर्शनेन आत्मनि यावद्दुःखनाशलक्षणमोक्षस्याप्यसंभवाच्च साधीयानयं पक्ष इत्याशयः ॥ ५ ॥ बुद्धिधर्माश्चिन्तादयः तत्प्रधानं बुद्धिचिन्तामयम् 'ध्यायतीव लेलायतीव' इत्यादिश्रुतेः। दृढं कर्मभिद्यं अनित्यं नित्यं विद्याविनाश्यं छित्त्वेति शेषः ॥ ६ ॥ पृथ्व्याः सकाशान्नदीं प्रति च्युता अविद्वांसस्तरणविद्याहीना उन्मज्जननिमज्जनैस्ताम्येयुः क्लिश्येयुः ॥ ७ ॥ सार्धश्लोकेन दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाहार्धेन—**एवमिति** । आत्मनः स्वस्य आत्मानं प्रत्यञ्चं तस्य स्वरूपलक्षणं केवलं ज्ञानमिति शुद्धचिन्मात्रमित्यर्थः ॥ ८ ॥ शमं सुखम् ॥ ९ ॥ जन्मसामर्थ्यं लब्धजन्मनो यथोक्ताचारवतोऽवश्यंभावीत्यर्थः । पर्याप्तं पूर्णं परायणं मोक्षप्रापकम् ॥ १० ॥ शुद्धः पुण्यपापहीनः ॥ ११ ॥ भयं अधःपातजं या विदुषो गतिस्ततोऽधिका कस्यचिद्गतिर्नास्ति ॥ १२ ॥ लोक्यत इति लोको भोग्यं स्त्र्यादिस्तमातुरं दोषाक्रान्तं जनः असूयते दोषेण पश्यति भोगवैकल्यात् । तथा तत्तदेव लोकस्यातुरत्वं निरीक्ष्य शोचते—**तत्रेति** । बुद्धाबुद्धयोर्महद्वैलक्षण्यमित्यर्थः । ये पुरुषास्तदुभयं शोकाशोकरूपं कृताकृतं क्रमेण आरोपितानारोपितमिति विदुस्ते कुशला इत्यर्थः ॥ १३ ॥

यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं
तच्च निर्णुदति तत्पुराकृतम् ।
न प्रियं तदुभयं न चाप्रियं
तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥

---

## २५०–[७७]

शुक उवाच ।
यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन ।
यो विशिष्टश्च धर्मेभ्यस्तं भवान् प्रब्रवीतु मे १
व्यास उवाच ।
धर्मं ते संप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः कृतम् ।
विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यस्तमिहैकमनाः शृणु ॥ २
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि
बुद्ध्या संयम्य यत्नतः ।
सर्वतो निष्पतिष्णूनि
पिता बालानिवात्मजान् ॥ ३
मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः ।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते
तानि सर्वाणि संधाय मनःषष्ठानि मेधया ।
आत्मतृप्त इवासीत बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥५
गोचरेभ्यो निवृत्तानि
यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि ।
तदा त्वमात्मनाऽऽत्मानं
परं द्रक्ष्यसि शाश्वतम् ॥ ६
सर्वात्मानं महात्मानं विधूममिव पावकम् ।
तं पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिणः
यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः ।
आत्मनो नाभिजानीते क्व मे पुष्पं क्व मे फलम्
एवमात्मा न जानीते क्व गमिष्ये कुतस्त्वहम्
अन्यो ह्यत्रान्तरात्माऽस्ति यः सर्वमनुपश्यति
ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
दृष्ट्वा त्वमात्मनात्मानं निरात्मा भव सर्ववित्
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगः ।
परां बुद्धिमवाप्येह विपाप्मा विगतज्वरः ११
सर्वतःस्रोतसं घोरां नदीं लोकप्रवाहिनीम् ।
पञ्चेन्द्रियग्राहवतीं मनःसङ्कल्परोधसम् १२
लोभमोहतृणच्छन्नां कामक्रोधसरीसृपाम् ।
सत्यतीर्थानृतक्षोभां क्रोधपङ्कां सरिद्वराम् १३
अव्यक्तप्रभवां शीघ्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
प्रतरस्व नदीं बुद्ध्या कामग्राहसमाकुलाम् १४
संसारसागरगमां योनिपातालदुस्तराम् ।
आत्मकर्मोद्भवां तात जिह्वावर्तां दुरासदाम्

---

किमनेन कौशलेनेत्यत आह—**यदिति** । इहलोके कुर्वतो यन्निष्कामं कर्म तत्प्राचीनकर्मणां नाशकम् । न हि कर्मणा सर्वकर्मोच्छेदोऽस्तीत्यर्थः किं तु तदुभयं इहजन्मनि पूर्वजन्मनि च कृतं कर्म तस्य विदुषः प्रियमप्रियं वा न जनयतीत्यतो विद्या संपादनीयेति भावः । 'नैनं कृताकृते तपतः' 'न लिप्यते कर्मणा पापकेन'इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥

२५०

विद्याप्रापकं धर्मं पृच्छति—**यस्मादिति** ॥ १ ॥ अश्वमेधादिर्माभूदिति निवृत्तिधर्मलक्षणायाऽऽह—**विशिष्टमिति** ॥ २ ॥ निष्पातिष्णूनि निष्पतनशीलानि संनियम्यैकाग्र्यं कुर्यादिति संबंधः ॥ ३ ॥ बहुचिन्त्यं त्रिपुटीम् । ॥ ५ ॥ गोचरेभ्यो बाह्याभ्यन्तरविषयेभ्यः वेश्मनि परस्मिन्ब्रह्मणि सर्वाधिष्ठाने ॥६॥ विधूममिव निरुपाधिं ब्राह्मणाः ब्रह्मविदः ॥ ७ ॥ आत्मा बुद्धिरचेतनत्वाद्वृक्षवत् सर्वं बुद्ध्यादिकम् ॥ ९ ॥ ज्ञानदीपेन ब्रह्माकारान्तःकरणवृत्त्या आत्मानं ब्रह्म आत्मनि देहे आत्मनेति पाठे आत्मना ज्ञानदीपेनेति सामानाधिकरण्यम् । निरात्मा निरुपाधिः ॥१०॥ विपाप्मेति देहान्तरसम्बन्धनिरासः । विगतज्वर इति जीवन्मुक्तिसुखवान् ॥ ११ ॥ सर्वतःस्रोतसं अनेकधा प्रवहन्तीं नदीं संसारनदीं लोकान् वाहयन्तीं रोधस्तीरं ॥१२॥ बुद्ध्या ज्ञानेन ॥ १४ ॥ योनिर्वासना ॥ १५ ॥

यां तरन्ति कृतप्रज्ञा
धृतिमन्तो मनीषिणः ।
तां तीर्णः सर्वतो मुक्तो
विधूतात्माऽऽत्मविच्छुचिः ॥ १६
उत्तमां बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूयान्भविष्यसि ।
संतीर्णः सर्वसंसारात्प्रसन्नात्मा विकल्मषः
भूमिष्ठानीव भूतानि पर्वतस्थो निशामय ।
अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च न नृशंसमतिस्तथा ॥ १८
ततो द्रक्ष्यसि सर्वेषां भूतानां प्रभवाप्ययौ ।
एवं वै सर्वभूतेभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः ।
धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठा मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ १९
आत्मनो व्यापिनो ज्ञानमिदं पुत्रानुशासनम्
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च ॥ २०
आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ।
अब्रुवं यदहं तात आत्मसाक्षिकमञ्जसा ॥ २१
नैव स्त्री न पुमानेतन्नैव वेद नपुंसकम् ।
अदुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम् ॥ २२
नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुते ।
अभवप्रतिपत्त्यर्थमेतद्धर्मं विधियते ॥ २३
यथा मतानि सर्वाणि तथैतानि यथा तथा ।
कथितानि मया पुत्र भवन्ति न भवन्ति च ॥
तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन
पुत्रेण सत्पुत्र दमान्वितेन ।
पृष्टो हि संप्रीतिमना यथार्थं
ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥

## २५१–[७८]

व्यास उवाच ।
गन्धान् रसान्नानुरुन्ध्यात्सुखं वा
नालंकारांश्चाप्नुयात्तस्य तस्य ।
मानं च कीर्तिं च यशश्च नेच्छे-
त्स वै प्रचारः पश्यतो ब्राह्मणस्य १
सर्वान्वेदानधीयीत शुश्रूषुर्ब्रह्मचर्यवान् ।
ऋचो यजूंषि सामानि यो वेद न स वै द्विजः
ज्ञातिवत्सर्वभूतानां सर्ववित्सर्ववेदवित् ।
नाकामो म्रियते जातु न तेन न च वै द्विजः

ब्रह्मभूयान्ब्रह्मैव ॥ १७ ॥ भूतानि अज्ञानि निशामय पश्य पर्वतस्थो ज्ञानपर्वतारूढः । यथोक्तम्–
'प्रज्ञाप्रासादमारुह्य ह्यशोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान्प्राज्ञोऽनुपश्यति' इति ॥१८॥ एवं योगेनाज्ञाननदीतरणरूपम् ॥ १९ ॥ **नैवेति** । पुमान् एतद्ब्रह्म स्त्र्यादिरूपेण न वेद नामरूपशून्यत्वात् । भूतभव्ययोर्भव उत्पत्तिः कारणं तदात्मकम् ॥ २२ ॥ अभवोऽनुत्पत्तिरात्मा तस्य प्रतिपत्त्यर्थम् । एतद्धर्मं एष योगधर्मः ॥ २३ ॥ यद्यपि तन्त्रभेदेन जगदुत्पत्तिप्रकारा भिद्यन्ते तथापि शमादिसंपन्नस्य सर्वधर्मास्पर्शिसुषुप्तावस्थासदृशसुखदुःखसंपर्कशून्यतयाऽवस्थानं मुक्तिरिति सर्ववादिसंमतम् । वादिनो देहनाशो वा शून्यभावो वा दुःखनाशो वा लिङ्गभंगो वाऽविद्यानिवृत्तिर्वा स्वरूपप्रतिष्ठा चितिशक्तिर्वा परमानन्दावाप्तिर्वेति शब्दत एव विकल्पयन्ति तदेतदभिसंधायाह–**यथेति** । यथा सर्वाणि मतानि येन प्रकारेण मुक्तौ पर्यवस्यन्ति तथा तेनैव प्रकारेण मदीयान्येतानि वचांसि मुक्तौ पर्यवस्यन्तीति मया यथा तथेति भावप्रधानो निर्देशः याथातथ्येन कथितानीत्यर्थः । हे पुत्र तानि मतानि भवन्ति फलता विरोधाभावात् । न भवन्ति च निर्वक्तुमशक्यत्वात् । तस्मात्सर्वैरपि तान्त्रिकैरिदं शास्त्रमुपादेयमिति सिद्धम् ॥ २४ ॥ **तदिति** । तस्मादुक्तविशेषणवताऽधिकारिणा पृष्टो गुरुः प्रीतिपूर्वकमिदं वदेदित्यर्थः ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ ॥ २५० ॥

२५१

**गंधान्रसानित्याद्यध्यायः** साधनविधानार्थं जीवन्मुक्तलक्षणख्यापनार्थं च नानुरुन्ध्यात् नानुसरेत् नापि तस्य तस्य गन्धादेरलंकारान् वर्जनानि च प्राप्नुयात् गन्धादिरागद्वेषौ न कार्यौ किं तूदासीनैवेत्यर्थः । प्रचारो व्यवहारः पश्यतो विदुषः ॥१॥ द्विजो मुख्यो ब्राह्मणः ॥२॥ कस्तर्हि द्विज इत्यत आह–**ज्ञातिवदिति** । यो दयालु-

इष्टीश्च विविधाः प्राप्य क्रतूंश्चैवाप्तदक्षिणान्
प्राप्नोति नैव ब्राह्मण्यमविधानात्कथञ्चन ॥ ४
यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ५
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥६
कामबन्धनमेवैकं नान्यदस्तीह बन्धनम् ।
कामबन्धनमुक्तो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ७
कामतो मुच्यमानस्तु धूम्राभ्रादिव चन्द्रमाः
विरजाः कालमाकांक्षन् धीरो धैर्येण वर्तते८
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामः ९
स कामकान्तो न तु कामकामः
स वै कामात्स्वर्गमुपैति देही ॥ १०
वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः ।
दमस्योपनिषद्दानं दानस्योपनिषत्तपः ॥ ११
तपसोपनिषत्त्यागस्त्यागस्योपनिषत्सुखम् ।
सुखस्योपनिषत्स्वर्गः स्वर्गस्योपनिषच्छमः १२
क्लेदनं शोकमनसोः संतापं तृष्णया सह ।
सत्त्वमिच्छसि संतोषाच्छान्तिलक्षणमुत्तमम्
विशोको निर्ममः शान्तः
प्रसन्नात्मा विमत्सरः ।
षड्भिर्लक्षणवानेतैः
समग्रः पुनरेष्यति ॥ १४
षड्भिः सत्त्वगुणोपेतैः प्राज्ञैरधिगतं त्रिभिः ।
ये विदुः प्रेत्य चात्मानमिहस्थं तं गुणं विदुः१५
अकृत्रिममसंहार्यं प्राकृतं निरुपस्कृतम् ।
अध्यात्मं सुकृतं प्राप्तः सुखमव्ययमश्नुते ॥ १६
निष्प्रचारं मनः कृत्वा
प्रतिष्ठाप्य च सर्वशः ।
यामयं लभते तुष्टिं
सा न शक्याऽऽत्मनोऽन्यथा ॥ १७

---

ब्रह्मवित्स एव वेदवित् यश्चाकाम आत्मज्ञानेन तृप्तो जातु कदाचिन्न म्रियते तथा च श्रुतिः—'योऽकामो निष्काम आप्तकामः स्यान्न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति । तेनाकामत्वेन द्विजो नेति न च किं तु द्विज एव । यो निर्दयः सकामश्च नासौ वेदविन्न ब्राह्मणश्चेति भावः ॥ ३ ॥ अविधानात् दयानैष्काम्ययोरननुसरणात् ॥ ४ ॥ एतदेव विवृणोति—**यदेत्यादिना** ॥ ५ ॥ समुद्रेऽन्या आप इव यत्र पुंसि कामा लीयन्ते स मोक्षभाक् न तु कामकामो विषयाभिलाषी ॥ ९ ॥ तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीतिश्रुतेर्ब्रह्मविदेव पूर्णकामो न त्वन्य इत्याहार्धेन—**स इति** । सः विद्वान् कामैः संकल्पमात्रोपनतैः कान्तो मनोहरः न तु कामकामः स्वर्गाद्यर्थी कुतः—**स वा इति** । स्वर्गं प्राप्य 'संयोगा विप्रयोगान्ताः' इति नियमेन ततो भ्रश्यत इति भावः॥१०॥ उपनिषद्रहस्यं सत्यं हितकरं वाक्यम् । उत्तरोत्तराभावे पूर्वं पूर्वं व्यर्थमित्यर्थः ॥ ११ ॥ स्वर्गः सगुणब्रह्मभावः शमो निर्गुणब्रह्मभावः ॥ १२ ॥ **क्लेदनमिति** । सन्तोषाद्धेतोः सत्त्वं बुद्धिप्रसादं इच्छसि इच्छेत् पञ्चमलकारोयम् । एतदेव सत्त्वं शान्तिलक्षणं मोक्षस्य सूचकम् । कीदृशं सत्त्वं तृष्णया सह शोकमनसोः संकल्पः संशयो वाऽत्र मनःशब्दार्थः । संतापं सन्ताप्य क्लेदनं विक्लित्तीकरणम् । तण्डुलस्येव पाचकमित्यर्थः । सन्तापमिति णमुलन्तम् ॥ १३ ॥

षड्भिः संतोषसहितैर्विशोकत्वादिभिः समग्रो ज्ञानतृप्तः ॥ १४ ॥ एवं मुक्तलक्षणमुक्त्वा मुक्तिसाधनमाह—**षड्भिरिति** । फलभूतत्वात् सुखस्वर्गवर्जं पूर्वोक्तैः सत्यदमदानतपस्त्यागशमाख्यैरुपनिषत्संज्ञैः सत्यादिषु राजसतामसत्वे अपि संभाविते । अतस्तद्व्यावृत्तये:— सत्त्वगुणोपेतैरिति । त्रिभिश्च श्रवणमनननिदिध्यासनैरागमानुमानानुभवैर्वाऽधिगतं आत्मानं इहस्थं शरीरान्तस्थं प्रेत्य जीवत्येव देहे देहाभिमानाद्व्युत्थाय ये विदुर्जानीयुस्ते तं गुणं पूर्वोक्तं मुक्तलक्षणं विदुः प्राप्नुयुः ॥ १५ ॥ अकृत्रिमं अजन्यं अत एव असंहार्यम् । प्राकृतं स्वभावसिद्धम् । निरुपस्कृतं गुणाधानमलापकर्षणात्मकसंस्काररहितम् । अध्यात्मं आत्मनि देहे सुकृतं ब्रह्म 'तस्मात्तत्सुकृतमुच्यते' इति श्रुतिप्रसिद्धं प्राप्तः सुखमव्ययमश्नुते। यद्वा । अध्यात्मं ग्रन्थं यः प्राप्तः सोऽपि ध्यानादिक्रमेणाव्ययं सुखमश्नुते । ग्रंथेऽपि उपनिषद्रूपे नित्यत्वादकृत्रिमत्वमसंहार्यत्वं च । प्राकृतं वाक्यार्थमर्यादास्वरसतोऽर्थप्रत्यायकं निरुपस्कृतं द्वैतिनामिव हठानाकृष्टार्थम् । एतेन परोक्षज्ञानस्यापि पुण्यवृद्धिहेतुतया क्रममुक्त्यर्थत्वमुक्तम् । तथा च स्मृतिः—'दिने दिने तु वेदान्तश्रवणाद्भक्तिसंयुतात् ।

गुरुशुश्रूषया लब्धात्कृच्छ्राशीतिफलं लभेत्' इति १६ न केवलं शास्त्रीयज्ञानमात्रान्मुक्तिः किं तु साधनान्तरापेक्षाप्यस्तीत्याह—**निष्प्रचारमिति** । अन्यथा मनोनिरोधाभावे न शक्या प्राप्तुमिति शेषः ॥ १७ ॥

येन तृप्यत्यभुञ्जानो येन तृप्यत्यवित्तवान् ।
येनास्नेहो बलं धत्ते यस्तं वेद स वेदवित् १८
संगुप्तान्यात्मनो द्वाराण्यपिधाय विचिन्तयन्
यो ह्यास्ते ब्राह्मणः शिष्टः स आत्मरतिरुच्यते
समाहितं परे तत्त्वे क्षीणकाममवस्थितम् ।
सर्वतः सुखमन्वेति वपुश्चान्द्रमसं यथा ॥ २०
अविशेषाणि भूतानि गुणांश्च जहतो मुनेः ।
सुखेनापोह्यते दुःखं भास्करेण तमो यथा २१
तमतिक्रान्तकर्माणमतिक्रान्तगुणक्षयम् ।
ब्राह्मणं विषयाश्लिष्टं जरामृत्यू न विन्दतः ॥
स यदा सर्वतो मुक्तः समः पर्यवतिष्ठते ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च शरीरस्थोऽतिवर्तते२३
कारणं परमं प्राप्य अतिक्रान्तस्य कार्यताम्
पुनरावर्तनं नास्ति संप्राप्तस्य परं पदम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

## २५२-[७९]

व्यास उवाच ।
द्वन्द्वानि मोक्षजिज्ञासुरर्थधर्मावनुष्ठितः ।
वक्त्रा गुणवता शिष्यः श्राव्यः पूर्वमिदं महत्
आकाशं मारुतो ज्योतिरापः पृथ्वी च पञ्चमी
भावाभावौ च कालश्च सर्वभूतेषु पञ्चसु ॥ २

येन ब्रह्मणा ॥ १८ ॥ संगुप्तानि प्रमादात् सम्यक् रक्षितानि द्वाराणि इन्द्रियाणि अपिधाय निरुध्य विचिन्तयन् ध्यायन् ॥ १९ ॥ अन्वेति वर्धते ॥ २० ॥ **अविशेषाणीति** । विशेषाविशेषालिङ्गमात्रालिंगानि गुणपर्वाणीति योगोक्तेषु गुणावयवेषु । विशेषाः स्थूलपृथिव्यादय एकादशेन्द्रियाणि च । अविशेषः पञ्च तन्मात्राणि बुद्धिश्च । लिंगमात्रं महत्तत्त्वं अलिंगं प्रधानम् । तत्र पूर्वपूर्वत्यागेन उत्तरमुत्तरं प्रतिपद्यमानो योगी गुणानपि त्यजति । तत्राविशेषाणि भूतानीति पञ्चतन्मात्राणि गुणा इति महदव्यक्तं च जहतो मुनेः त्यजता मुनिना दुःखं संसाराख्यं अपोह्यते । सविशेषाणीति पाठे भूतशब्देन पञ्चतन्मात्राण्येव स्वकार्यस्थूलभूतसहितानीत्यर्थः ॥ २१ ॥ अतिक्रान्तं बाधितं गुणक्षयं गुणैश्वर्यं येन यम् । विषयैरश्लिष्टम् ॥ २२ ॥ मुक्तो विरक्तः समः रागद्वेषशून्यः पर्यवतिष्ठते स्थिरो भवति । शरीरस्थो जीवन्नेव सर्वार्थानतिक्रम्य वर्तते ॥ २३ ॥ परमं कारणं निर्गुणं ब्रह्म कार्यतां अव्यक्तताम् ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

**२५२**

विस्तरेणोक्तमध्यात्मं सुखसंग्रहार्थं संक्षिपति-**द्वंद्वानीत्यादिनाऽध्यायेन** । द्वंद्वानि मानापमानादीनि । अर्थधर्मौ चाधिष्ठितोऽपि पुरुषो यदि मोक्षार्थी स्यात्तर्हि स इदं महदध्यात्मं श्राव्यः ॥ १ ॥ भूतेषु जरायुजादिषु पञ्चसु पञ्चात्मकेषु एतेन भावाभावकालानामपि भौतिकत्वमुक्तम् । ननु पञ्चभ्यो भूतेभ्योऽधिकानि कालदिगात्ममनांसि चत्वारि द्रव्याणि गुणाश्च चतुर्विंशतिः कर्मसामान्यविशेषसमवायाश्च भावपदार्थाः सप्तमोऽभावपदार्थश्चेति काणादा मन्यन्ते । तत्कथं सर्वस्य पञ्चात्मकत्वं प्रतिज्ञायत इति चेत् । अत्रोच्यते-न तावत्कालो नाम पदार्थान्तरमतीतानागतत्वादिव्यवहारहेतुः किंचिदस्ति नूतनत्वपुराणत्वादिवद्द्रव्यगताभिरेवातीतत्वाद्यवस्थाभिस्तद्व्यवहारोपपत्तेः । नापि दिक् । आकाश एव सूर्योपाधिकी प्राच्यादिकल्पनेत्युपगमात् । नापि मनस्तस्य इन्द्रियत्वेन श्रोत्रादिवद्ग्राह्यसजातीयगुणाश्रयत्वस्यावश्यं वक्तव्यत्वेन पाञ्चभौतिकत्वात् । पराभिमतमनसस्तु ग्राह्यसजातीयगुणानाश्रयत्वेन दिक्कालवदनिन्द्रियत्वं युज्यते । गुणा अपि आश्रयानातिरिच्यन्ते इति न पृथक् पदार्थः । तथा द्रव्यस्यैव स्वास्थ्यप्रच्युतिः परिस्पंदात्माऽवस्थाविशेषः कर्मेति न तदपि पृथक्पदार्थः । तथा सत्सदिति व्यवहारविषयत्वस्य स्वकल्पितस्य सामान्यादिषु सद्भावेऽप्यनवस्थादिदोषभयात्तेभ्यो व्यावृत्तं द्रव्यगुणकर्मस्वेवानुगतं सामान्यमित्यप्यसत् । अधिष्ठानसत्त्वेनैव सत्सदिति व्यवहारस्योपपत्तौ सत्तामननुगतस्य तस्य कल्पनाया अनौचित्यात् । 'नित्यद्रव्यवृत्तयोऽनन्ता विशेषाः' इत्युपगमस्त्वैकात्म्ये नित्यद्रव्याणामेवाभावान्निरालम्बनो मानान्तरासिद्धश्च । समवायवद्रूपादिकमपि समवायं विनैव द्रव्ये स्थास्यतीति समवायकल्पनाऽप्यन-

अन्तरात्मकमाकाशं तन्मयं श्रोत्रमिन्द्रियम्।
तस्य शब्दं गुणं विद्यान्मूर्तिशास्त्रविधानवित्
चरणं मारुतात्मेति प्राणापानौ च तन्मयौ।
स्पर्शनं चेन्द्रियं विद्यात्तथा स्पर्शं च तन्मयम्
तापः पाकः प्रकाशश्च ज्योतिश्चक्षुश्च पञ्चमम्
तस्य रूपं गुणं विद्यात्ताम्रगौरासितात्मकम्
प्रक्लेदः क्षुद्रता स्नेह
इत्यपामुपदिश्यते।
असृङ्मज्जा च यच्चान्य-
त्स्निग्धं विद्यात्तदात्मकम् ॥ ६
रसनं चेन्द्रियं जिह्वा रसश्चापां गुणो मतः
संघातः पार्थिवो धातुरस्थिदन्तनखानि च ७
श्मश्रु रोम च केशाश्च शिरा स्नायु च चर्म च
इन्द्रियं घ्राणसंज्ञातं नासिकेत्यभिसंज्ञिता ८
गन्धश्चैवेन्द्रियार्थोऽयं विज्ञेयः पृथिवीमयः।
उत्तरेषु गुणाः सन्ति सर्वसत्त्वेषु चोत्तराः ९
पञ्चानां भूतसंघानां सन्ततिं मुनयो विदुः।
मनो नवममेषां तु बुद्धिस्तु दशमी स्मृता॥१०
एकादशस्त्वनन्तात्मा स सर्वः पर उच्यते।
व्यवसायात्मिका बुद्धिर्मनो व्याकरणात्मकम्
कर्मानुमानाद्विज्ञेयः स जीवः क्षेत्रसंज्ञकः ११
एभिः कालात्मकैर्भावैर्यः सर्वैः सर्वमन्वितम्
पश्यत्यकलुषं कर्म स मोहं नानुवर्तते ॥ १२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने
द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

## २५३-[८०]

व्यास उवाच।

शरीराद्विप्रमुक्तं हि सूक्ष्मभूतं शरीरिणम्। कर्मभिः परिपश्यन्ति शास्त्रोक्तैः शास्त्रवेदिनः १

र्थिका। यथा घटः पटान्योन्याभावः एवं भूतलं घटसंसर्गाभावोऽपि भविष्यति। तथा चोक्तम्—'भावान्तरमभावो हि कयाचित्तु व्यपेक्षया' इति। प्रागभावप्रध्वंसाभावयोस्त्वसत्प्रतियोगिकत्वादेवासिद्धिः सद्भ्यामभावो निरूप्यत इति न्यायेन तन्निरूपकाभावात्। तस्मादभौतिकः पदार्थ एव नास्तीति युक्तमुक्तं भावाभावकालानामपि पञ्चात्मकत्वम् ॥ २ ॥ अन्तरात्मकं अवकाशात्मकम्। मूर्तिः शरीरं तस्य शास्त्रं स्वरूपप्रकाशकं विधानं वेदवाक्यं तद्विन्मूर्तिशास्त्रविधानवित् ॥ ३ ॥ चरणं गमनं मारुतात्मकं वायुधर्मत्वात्तदात्मकम् ॥ ४ ॥ पाकोऽन्नादेः प्रकाशो दीपादेः ज्योतिः ऊष्मा ॥ ५ ॥ क्षुद्रता अन्तःप्रविश्य पार्थिवावयवसंयोगश्लथीकरणेन सूक्ष्मता ॥ ६ ॥ उत्तरेषु भूतेषु पूर्वभूतगुणाः सन्ति। तेन शब्द एवाकाशे, शब्दस्पर्शौ वायौ, शब्दस्पर्शरूपाणि तेजसि, शब्दस्पर्शरूपरसाः सलिले त एव सगंधाः पृथिव्यामिति। तथा सर्वसत्त्वेषु सर्वप्राणिषु उत्तरा गुणाः अविद्याकामकर्माख्याः। तथा चोक्तम्—

'तमःप्रधानः क्षेत्राणां चित्प्रधानश्चिदात्मनाम्
परः कारणतामेति भावनाज्ञानकर्मभिः' इति॥ ९ ॥

एतैर्भावनाज्ञानकर्मभिर्वाक्यशेषे दृष्टैः सह नवमं मनः ॥ १० ॥ व्यवसायात्मिका निश्चयात्मिका व्याकरणं संशयः। सः अनन्तात्मा कर्मानुमानात् सुखदुःखलिङ्गेन कर्मणामाश्रयत्वेनानुमेयो जीवः ॥ ११ ॥ **एभिरिति।** कालः कृतत्रेताद्वापरकलिरूपो जीवस्तदात्मकैः पुण्यापुण्यादिसंस्कारात्मभिः एभिः भावैर्भावनाभिः सर्वं प्राणिजातं समन्वितं यः पश्यति स्वरूपतस्त्वकलुषमिति जानाति सः समोहं सकामं कर्म नानुवर्तते। ज्ञातात्मतत्त्वतया निष्कामो भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

---

### २५३

एवं पञ्चभूतानि अविद्याकामकर्माणि मनोबुद्धी चेति दशकः क्षेत्रं ततोऽन्य एकादशोऽनन्तात्मा स च लिङ्गात्मैवेति भ्रमो माभूदिति तस्यापि दशकान्तर्गतत्वं साधयति-**शरीरादित्यादिना**। स्थूलशरीराद्विप्रमुक्तमपि शरीरिणं सूक्ष्मशरीरवन्तम्, अत एव सूक्ष्मभूतं दुर्लक्ष्यम्। शास्त्रोक्तैः कर्मभिर्योगानुष्ठानैः पश्यन्ति शास्त्रज्ञा योगिनः लिङ्गात्मानं समाधौ साक्षात्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥१॥

यथा मरीच्यः सहिताश्चरन्ति
सर्वत्र तिष्ठन्ति च दृश्यमानाः।
देहैर्विमुक्तानि चरन्ति लोकां-
स्तथैव सत्त्वान्यतिमानुषाणि ॥ २
प्रतिरूपं यथैवाप्सु तापः सूर्यस्य लक्ष्यते।
सत्त्ववत्सु तथा सत्त्वं प्रतिरूपं स पश्यति ३
तानि सूक्ष्माणि सत्त्वानि विमुक्तानि शरीरतः
स्वेन सत्त्वेन सत्त्वज्ञाः पश्यन्ति नियतेन्द्रियाः
स्वपतां जाग्रतां चैव सर्वेषामात्मचिन्तितम्।
प्रधानाद्वैधमुक्तानां जहतां कर्मजं रजः ॥ ५
यथाऽहनि तथा रात्रौ यथा रात्रौ तथाऽहनि
वशे तिष्ठति सत्त्वात्मा सततं योगयोगिनाम्
तेषां नित्यं सदा नित्यो भूतात्मा सततं गुणैः
सप्तभिस्त्वन्वितः सूक्ष्मैश्चरिष्णुरजरामरः ७
मनोबुद्धिपराभूतः स्वदेहपरदेहवित्।
स्वप्नेष्वपि भवत्येष विज्ञाता सुखदुःखयोः ८
तत्रापि लभते दुःखं तत्रापि लभते सुखम्।
क्रोधलोभौ तु तत्रापि कृत्वा व्यसनमृच्छति
प्रीणितश्चापि भवति महतोऽर्थानवाप्य हि।
करोति पुण्यं तत्रापि जीवन्निव च पश्यति
अहोष्मान्तर्गतश्चापि गर्भत्वं समुपेयिवान्।
दश मासान्वसन्कुक्षौ नैषोऽन्नमिव जीर्यते ११
तमेतमतितेजोंशं भूतात्मानं हृदि स्थितम्।
तमोरजोभ्यामाविष्टा नानुपश्यन्ति मूर्तिषु ॥
योगशास्त्रपरा भूत्वा तमात्मानं परीप्सवः।
अनुच्छ्वासान्यमूर्तानि यानि वज्रोपमान्यपि
पृथग्भूतेषु सृष्टेषु चतुर्थाश्रमकर्मसु।
समाधौ योगमेवैतच्छाण्डिल्यः शममब्रवीत्
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम्।
प्रधानविनियोगज्ञः परं ब्रह्मानुपश्यति ॥ १५

लिङ्गदेहसत्त्वे विद्वदनुभवं प्रमाणमुक्त्वा युक्तिमप्याह--**यथेति**। यथा गगनोदरे सूर्यमरीचिका निबिडाः सन्त्योऽपि स्थूलदृष्ट्या न गृह्यन्ते। गुरूक्तयुक्त्या तु दृश्यमानास्ता एवातिविस्पष्टं गृह्यन्ते। तथा देहैः स्थूलैर्निर्मुक्तानि रहितानि सत्त्वानि स्थूलदृष्ट्या न दृश्यन्त इत्यर्थः। लोकांश्चरन्तीति शत्रन्तम्॥२॥ प्रतिरूपं प्रत्युपाधि सूर्यस्य तापो रश्मिमंडलमप्सु लक्ष्यते एवं सत्त्ववत्सु जीववद्देहेषु सत्त्वं सत्त्वप्रधानं लिंगं प्रतिरूपं प्रतिव्यक्ति स योगी पश्यति ॥ ३ ॥ एतदेवाह—**तानीति** ॥ ४ ॥ सर्वेषां योगयोगिनां योगं युञ्जतां सत्त्वात्मा लिंगदेहो वशे तिष्ठति यथेष्टं परशरीरप्रवेशादावपि योग्यो भवति। आत्मनि चिन्तितं कल्पितं कर्मजं रजः कामादिव्यसनं जहताम्। प्रधानस्य जगत्कारणस्याद्वैधमपृथग्भावस्तादात्म्यं योगैश्वर्यं ततोऽपि मुक्तानां सर्वास्ववस्थासु सर्वकालेषु च योगिनां लिंगदेहो वशे तिष्ठतीति द्वयोः सम्बन्धः ॥५॥ **तेषामिति**। तेषां योगिनाम्। भूतात्मा जीवः सततं सर्वदा सूक्ष्मैः सप्तभिर्गुणैर्गुणकार्यैर्महदहंकारपञ्चतन्मात्राख्यैर्युतो नित्यं चरिष्णुरिन्द्रादिलोकेषु संचरणशीलः सदाऽनित्यः कालत्रयेऽपि मिथ्यात्वादनित्यो बाधितो व्यवहारतोऽजरामरश्च भवति ॥ ७ ॥ एवं योगिनां सूक्ष्मदेहापरोक्ष्यमुक्तं मूढानामपि तदस्तीत्याह-**मन इति**। मनोबुद्धिभ्यां पराभूतो जितः स्वप्नेष्वपि स्वदेहं परदेहं च स्थूलादन्यं वेत्तीति तथा ॥ ८ ॥ एवं स्वप्न इव गर्भे शयनं प्राप्तोऽपि तत्रत्यैर्जाठराग्न्यादिभिर्दुःखं नाप्नोति तदृष्टया तत्राग्न्यादेरभावादित्याह-**अहेति**। अहेति प्रसिद्धयर्थमव्ययम्। ऊष्मा जाठरीयस्तदन्तर्गतः ॥ ११ ॥ अस्यैव दुर्ज्ञेयत्वमाह-**तमिति**। तमेतमात्मानम्। अतितेजाः परमेश्वरस्तस्यांशमिवांशम् मूर्तिषु देहेषु ॥ १२ ॥ कथं तर्ह्यात्मप्राप्तिरत आह-**योगेति**। अनुच्छ्वासानि अचेतनानि स्थूलशरीराणि। अमूर्तानि सूक्ष्मशरीराणि। वज्रोपमानि ब्राह्मप्रलयेऽप्यविनाशीनि कारणशरीराणि अतिक्रामन्तीति शेषः। के तमात्मानं ये परीप्सवः प्राप्तुमिच्छवो भवन्ति योगेन देहत्रयमुल्लङ्घ्यतामात्मप्राप्तिरित्यर्थः ॥ १३ ॥ आश्रमकर्मसु कर्मच्छिद्रेषु एतन्मदुक्तं वाक्यं योगं योगप्रधानं शांडिल्यो मुनिरब्रवीत्। कीदृशं योगं समाधौ शमं समाधिकालीनं कारणभावात्परभूतं शमं सर्ववृत्त्युपशमात्मकम्। तत्र संन्यासिनां ध्यानार्थं एव संन्यास इतरेषामाश्रमिणामपि कर्मच्छिद्रेषु ध्यानं विहितमेवेत्यर्थः। सोऽयं शमश्छान्दोग्येऽपि शाण्डिल्यब्राह्मणे-'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत' इत्यादिना विहितः। तत्र ब्रह्मण एव जायते तत्रैव लीयते तेनैव अनिति चेष्टते चेति तज्जलानिति हेतोर्यतः सर्वं ब्रह्मत उत्पन्नमतो ब्रह्मैव। अतः ऐकात्म्यदर्शित्वेन रागद्वेषादिशून्यतया शान्तो भूत्वा उपासीतेति श्रुत्यर्थः ॥ १४ ॥ उपसंहरति-**विदित्वेति**। सप्त सूक्ष्माणि इन्द्रियार्थमनोबुद्धिमहत्तत्त्वाव्यक्तपुरुषान् शास्त्रतो विदित्वा षडंगं महेश्वरम् जगत्कारणं योगबलेन विदित्वा। षडङ्गानि तु-

**सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः**
**स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः**
**अनन्तशक्तिश्च विभोर्विभुज्ञाः**
**षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥**

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥

## २५४–[८१]

व्यास उवाच ।
हृदि कामद्रुमश्चित्रो मोहसञ्चयसंभवः ।
क्रोधमानमहास्कन्धो विधित्सापरिषेचनः १
तस्य चाज्ञानमाधारः
प्रमादः परिषेचनम् ।
सोऽभ्यसूयापलाशो हि
पुरा दुष्कृतसारवान् ॥ २
संमोहचिन्ताविटपः शोकशाखो भयांकुरः ।
मोहनीभिः पिपासाभिर्लताभिरनुवेष्टितः ३
उपासते महावृक्षं सुलुब्धास्तत्फलेप्सवः ।
आयसैः संयुताः पाशैः फलदं परिवेष्ट्य तं ४
यस्तान्पाशान्वशेकृत्वा तं वृक्षमपकर्षति ।
गतः स दुःखयोरन्तं त्यजमानस्तयोर्द्वयोः ५
संरोहत्यकृतप्रज्ञः सदा येन हि पादपम् ।
स तमेव ततो हन्ति विषग्रन्थिरिवातुरम् ६
तस्यानुगतमूलस्य मूलमुद्ध्रियते बलात् ।
योगप्रसादात्कृतिना साम्येन परमासिना ७
एवं यो वेद कामस्य केवलस्य निवर्तनम् ।
बन्धं वै कामशास्त्रस्य स दुःखान्यतिवर्तते ८
शरीरं पुरमित्याहुः स्वामिनी बुद्धिरिष्यते ।
तत्त्वबुद्धेः शरीरस्थं मनो नामार्थचिन्तकम्
इन्द्रियाणि मनःपौरास्तदर्थं तु पराकृतिः ।
तत्र द्वौ दारुणौ दोषौ तमो नाम रजस्तथा ।
तदर्थमुपजीवन्ति पौराः सह पुरेश्वरैः ॥ १०
अद्वारेण तमेवार्थं द्वौ दोषावुपजीवतः ।
तत्र बुद्धिर्हि दुर्धर्षा मनः सामान्यमश्नुते ॥ ११

---

इतिवायुपुराणोक्तानि । प्रधानं त्रिगुणात्मकमज्ञानं तस्य विनियोगो विपरिणाम इदं जगदिति जानन् परं ब्रह्म शाखाग्रस्थानीयादीश्वरादान्तरं चन्द्रस्थानीयम्। अनुगुरु वेदवाक्यमनु ध्यानेन पश्यति साक्षात्करोति ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५३॥

**२५४**

एवमध्यायद्वयेन स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यामात्मानं विविच्य मूलाज्ञानादपि तं विवेक्तुमारभते—**हृदीति**। हृदयक्षेत्रे मोहो वैचित्यं तदेव संचयो बीजं तस्मात्संभवो यस्य । विधित्सा कर्तुमिच्छा परिषिच्यतेऽस्मिन्निति परिषेचनं आलवालम् ॥ १ ॥ आधारः मूलं परिषिच्यतेऽनेनेति परिषेचनं जलम् ॥ २ ॥ तत्फलं रत्यादि तदिच्छवः आयसैः लोहमयवत् दृढैः पाशैर्बन्धकैः शरीरैर्वासनाभिर्वा ॥ ४ ॥ वासनाः जित्वा काममपकर्षति निकृन्तति दुःखयोः सुखदुःखयोः वैषयिकसुखमपि दुःखमेवेति मत्वा दुःखयोरित्युक्तम्। त्यजमानस्त्यजंस्त्यक्तुमिच्छन् हेतौ शानच् ॥ ५ ॥ येन स्त्र्यादिना हेतुना तं कामपादपं संरोहति वर्धयति स एव स्त्र्यादिस्तं वर्धकं हन्ति ॥ ६ ॥ मूलं अज्ञानं साम्येन निर्विकल्पसमाधिना एतेन तार्किकाणामात्मत्वेनाभिमतादानंदमयाख्यादज्ञानादप्यन्य आत्मेति कारणादपि विवेको दर्शितः ॥७॥ बन्धं बन्धकत्वम् । वधमिति पाठे त्यागम् ॥ ८ ॥ अग्रिमाध्याये विद्यां विवक्षुस्तन्निर्वर्त्यं संसारं पूर्वोक्ताज्ञानकृतं कुराज्यरूपकेणाह—**शरीरं पुरमित्यादिना**। भोगायतनत्वात् शरीरं पुरम् । भोगजसुखाभिमानित्वाद् बुद्धिः स्वामिनी। तत्त्वबुद्धेर्निश्चयात्मिकाया बुद्धेः स्वामिन्या अर्थचिन्तकं अमात्यस्थानीयं मनः विचारपरत्वात् ॥ ९ ॥ बुद्धेर्भोगार्थं विषयधनमर्पयन्तीन्द्रियाणि पौराः । ते च मनसाऽमात्येन प्रवर्त्या इति मनःपौरा इत्युच्यन्ते । तदर्थं तेषामिन्द्रियपौराणां पालनार्थं मनसः पराकृतिः महती क्रिया प्रवृत्तिः यज्ञदानक्षेत्रारामादिर्दृष्टादृष्टार्थसाधिका तत्र कृतौ द्वौ दोषौ रजस्तमसी राजसतामसाहंकारौ दारुणौ क्रियाफलमन्यथयन्तौ चित्तामात्यस्य कालुष्यं कुर्वन्तौ । तमेवार्थं क्रियाफलं सुखदुःखं मनसाऽमात्येन सदोषेण निर्मितं पौरा उपजीवन्ति श्रयन्ति पुरेश्वरैः मनोबुद्ध्यहंकारैः सह ॥ १० ॥ एवं सति अद्वारेण अविहितेन निषिद्धेन च मार्गेण पारदार्यादिना राजसतामसाहंकारौ कर्तारौ तं सुखादिरूपमप्यर्थं उपजीवतः तत्र एवं सति दुर्धर्षापि बुद्धिः शुद्धसत्त्वमयत्वेन रजस्तमसोरवशत्वात् साऽपि दोषकलुषितेन मनसा सह समानत्वं भजते मनसः प्रधानत्वात् एवं बुद्धिरपि सदोषत्वेन ।

'यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।

पौराश्चापि मनस्रस्तास्तेषामपि चला स्थितिः
तदर्थं बुद्धिरध्यास्ते सोऽनर्थः परिषीदति १२
यदर्थं पृथगध्यास्ते मनस्तत्परिषीदति।
पृथग्भूतं मनो बुद्ध्या मनो भवति केवलम् १३
तत्रैनं विधृतं शून्यं रजः पर्यवतिष्ठते।
तन्मनः कुरुते सख्यं रजसा सह सङ्गतम्।
तं चादाय जनं पौरं रजसे संप्रयच्छति १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५४॥

## २५५-[८२]

भीष्म उवाच।

भूतानां परिसंख्यानं भूयः पुत्र निशामय।
द्वैपायनमुखाद्भ्रष्टं श्लाघया परयाऽनघ॥ १
दीप्तानलनिभः प्राह भगवान्धूमवर्चसे।
ततोऽहमपि वक्ष्यामि भूयः पुत्र निदर्शनम् २
भूमेः स्थैर्यं गुरुत्वं च काठिन्यं प्रसवार्थता।
गन्धो गुरुत्वं शक्तिश्च संघातः स्थापना धृतिः
अपां शैत्यं रसः क्लेदो द्रवत्वं स्नेहसौम्यता।
जिह्वा विस्यन्दनं चापि भौमानां श्रपणं तथा

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी '
इति भगवदुक्तरूपवर्ती भवति ॥ ११ ॥ ततोऽपि किं स्यादित्यत आह-**पौरा इति**। दुष्टे मनसि इन्द्रियाण्यपि दुष्टानि भूत्वा न क्वचित् स्थैर्यं लभन्ते। एवं बुद्धिरपि दुष्टा सती यदर्थं यमर्थं धनपुत्रादिकं हितमिति अध्यवस्यति स एवानर्थो दुःखदायी भूत्वा परिषीदति नश्यति ॥ १२ ॥ नष्टोऽप्यर्थो दुःखद इत्याह-**यदिति**। यत् बुद्धिसहितं मनः अर्थं नाशादूर्ध्वं अध्यास्ते स्मरति तन्मनोऽपि परिषीदति। मनस्तापेन बुद्धिरपि तप्यत इत्याह--**पृथगिति**। संकल्परूपेण मनो यदा बुद्धेः सकाशात्पृथक् भवति तदा तत्केवलं मन इत्युच्यते। वस्तुतस्तु तदेव बुद्धिरतस्तत्तापेन बुद्धिरपि तप्यत इत्यर्थः ॥ १३ ॥ बुद्धिमनसोरनात्मनोस्तापे आत्मनः किं नष्टमत आह सार्धेन--**तत्रेति**। एनमात्मानं तत्र बुद्धौ विधृतं प्रतिबिंबरूपेण स्थापितं रजः बुद्धिगतो रजोगुणो दुःखैकफलदः पर्यवतिष्ठते व्याप्नोति तथा च बुद्धिधर्माः परिच्छेदपरितापादयस्तदुपहिते आत्मनि भान्तीत्यर्थः। ' बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः। स हि स्वप्नो भूत्वा ध्यायतीव लेलायतीव'इत्यादिश्रुतिभ्यः तैर्बुद्धिगुणैरात्मापि तप्यत एवेति। फलितमाह--**तदिति**। ततस्माद्धेतोः मनः रजसा सह सख्यं कुरुते प्रवृत्त्युन्मुखं संभवतीत्यर्थः। ततः किमत आह-**संगतं** मनउपाधिकं तं आत्मानं पौरं जनं इन्द्रियाणि चादाय स्ववशे कृत्वा मनः कर्तृ रजसे रजःफलाय दुःखाय प्रयच्छति। यथा दुष्टोऽमात्यो राजानं पौरं जनं च स्वाधीनं कृत्वा शत्रवेऽर्पयति तद्वद्राजसेन मनसा आत्मा बुद्धिरिन्द्रियाणि च बद्धानीत्यर्थः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥

२५५

एवं प्रसृतस्य बन्धस्य मोक्षार्थं व्यासेनोक्तमुपायं वक्तुं प्रतिजानीते भीष्मः--**भूतानामिति**। चिदात्मोपाधिभूतानां खादीनां परिसंख्यानं निवारणं भूय इति प्रागुक्तमेवाध्यात्मं पुनः श्लाघया धन्योऽहमीदृशमध्यात्मं ज्ञातवानिति बुद्ध्या निशामय शृणु ॥ १ ॥ **दीप्तेति**। अज्ञानेनानावृतो वह्निनिभः आवृतो धूमतुल्यः निदर्शनं निश्चितं शास्त्रमज्ञानापनोदकम् ॥ २ ॥ 'एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' इत्यादिश्रुत्या ब्रह्मणि निषिद्धानां चतुर्विधपरिमाणादिगुणानामाश्रयो भूतान्येवेत्यात्मनो निर्गुणत्वसिद्ध्यर्थं भूम्यादिगुणान्विभजते--**भूमेरिति**। स्थैर्यमचाञ्चल्यम् गुरुत्वं पतनप्रतियोगी गुणः प्रसवो धान्याद्युत्पत्तिस्तदर्थता गुरुत्वं प्रथमानता पिण्डपुष्टिः शक्तिर्गन्धग्रहणसामर्थ्यम्, संघातः श्लिष्टावयवत्वम्, स्थापना मनुष्याद्याश्रयत्वम्, धृतिः पाञ्चभौतिके मनसि यो धृत्यंशः स पार्थिवः स्थैर्यशब्देनैवोपात्त इति धृतिशब्देनात्र भूतान्तरप्रवेशस्थौनत्वमुच्यते ॥ ३ ॥ जिह्वा रसनेन्द्रियम्, विस्यन्दनं प्रस्रवणम्। चात् हिमकरकादिरूपेण संघातश्च। भौमानां तण्डुलादीनां श्रपणं पाचनम् ॥ ४ ॥

अग्नेर्दुर्धर्षता ज्योति-
स्तापः पाकः प्रकाशनम् ।
शोको रागो लघुस्तैक्ष्ण्यं
सततं चोर्ध्वभासिता ॥ ५
वायोरनियमस्पर्शो वादस्थानं स्वतन्त्रता ।
बलं शैघ्र्यं च मोक्षं च कर्म चेष्टात्मता भवः
आकाशस्य गुणः शब्दो
व्यापित्वं छिद्रताऽपि च ।
अनाश्रयमनालम्ब-
मव्यक्तमविकारिता ।
अप्रतीघातिता चैव भूतत्वं विकृतानि च ।
गुणाः पञ्चाशतं प्रोक्ताः पञ्चभूतात्मभाविताः
धैर्योपपत्तिर्व्यक्तिश्च विसर्गः कल्पना क्षमा ।
सदसच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः ॥ ९
इष्टानिष्टविपत्तिश्च व्यवसायः समाधिता ।
संशयः प्रतिपत्तिश्च बुद्धेः पञ्च गुणान्विदुः १०

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं पञ्चगुणा बुद्धिः कथं पञ्चेन्द्रिया गुणाः
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूक्ष्मज्ञानं पितामह ११

भीष्म उवाच ।

आहुः षष्टिं बुद्धिगुणान्वै
भूतविशिष्टा नित्यविषक्ताः ।
भूतविभूतीश्चाक्षरसृष्टाः
पुत्र न नित्यं तदिह वदन्ति ॥ १२
तत्पुत्र चिन्ताकलिलं तदुक्त-
मनागतं वै तव संप्रतीह ।
भूतार्थतत्त्वं तदवाप्य सर्वं
भूतप्रभावाद्भव शान्तबुद्धिः ॥ १३

---

ज्योतिर्ज्वलनकर्म । लघुः शीघ्रगामित्वम् ॥ ५ ॥ अनियमस्पर्शोऽनुष्णाशीतस्पर्शः वादस्थानं वागिन्द्रियगोलकानि । स्वतन्त्रता गमनादौ । मोक्षो मूत्रादेः कर्म उत्क्षेपणादि । चेष्टा श्वासप्रश्वासादिः । आत्मता प्राणरूपेण चिदुपाधित्वम् । भवो जन्ममरणे ॥ ६ ॥ अनाश्रयं आश्रयत्वाभावः । अनालम्बनं आश्रयान्तरशून्यत्वम् । अव्यक्तं रूपस्पर्शशून्यत्वात् । अविकारिता द्रव्यान्तरानारंभकत्वम् ॥ ७ ॥ भूतत्वं श्रोत्रेन्द्रियोपादानत्वात् । विकृतानि देहान्तर्गतच्छिद्राणि । अत्र भूतत्वविकृतत्वादयो भूतान्तरेऽपि संभवन्तीति अधिकगुणत्वं तत्रास्ति तथापि गुणाः पञ्चाशदेव पञ्चाशतमित्यार्षम् । पञ्चभूतात्मभाविताः । पंचानां भूतानामात्मा प्रातिस्विकं स्वरूपं तत्र लक्षिताः ॥ ८ ॥ धैर्योपपत्तिरूहापोहकौशलम् । व्यक्तिः स्मरणम् । विसर्गो विपरीतः सर्गो भ्रान्तिः कल्पना मनोरथवृत्तिः क्षमा प्रसिद्धा सत् वैराग्यादि, ?त रागद्वेषादि, आशुता अस्थिरत्वम् ॥ ९ ॥ इष्टानिष्टानां वृत्तिविशेषाणां विपत्तिर्नाशो निद्रारूपा वृत्तिरित्यर्थः । **व्यवसाय** उत्साहः, **समाधिता** चित्तस्थैर्यं निरोध इत्यर्थः । **संशयः** कोटिद्वयस्पृक् ज्ञानं, **प्रतिपत्तिः** प्रत्यक्षादिप्रमाणवृत्तिः ॥१०॥ अत्र बुद्धिमनसी एकीकृत्य शङ्कते—**कथमिति** । ननु भूम्यादीनां जडानां स्थैर्यादयो जडा एव गुणा इति युक्तम् इन्द्रियमनसां तु पश्याम्यहं दुःख्यहं जानाम्यहमित्यात्माभेदेन प्रतीयमानानां कथमनात्मत्वमनात्मत्वे वा कथं तद्गुणानां धैर्योपपत्त्यादीनां प्रतिपत्त्यन्तानां ज्ञानरूपत्वम् । न हि जडानामजडा गुणाः संभवन्तीति ऐन्द्रिया गुणाः रूपादिप्रकाशा इति बुद्धिगुणानामेवावयुत्यानुवादः ॥ ११ ॥ अत्रोत्तरं यदेतद्धृदयं मनश्चेत्यादि प्रज्ञानं ब्रह्मेत्यन्ता श्रुतिमनुसरन्नाह—**आहुरिति** । ननु पञ्चाशद्भूतगुणाः पञ्च बुद्धिगुणा इति पञ्चपञ्चाशद्वा चतुर्दशानुपदोक्ता बुद्धिगुणा इति पक्षे चतुःषष्टिर्वा बुद्धिगुणाः स्युरित्याशंक्याह—भूतविशिष्टाः पञ्चभूतान्यपि बुद्धेरेव गुणाः पूर्वे च पञ्चपञ्चाशदिति षष्टिं बुद्धिगुणानाहुः । ते च नित्येन चैतन्येन विषक्ताः मिश्रिताः । जडानामपि वृत्तीनां चिदनुबन्धनेनैव ज्ञानरूपत्वव्यवहार इति न कश्चिद्दोष इति भावः । वृत्तिभिश्चैतन्यस्य सम्बन्धो जतुकाष्ठवन्माभूदित्याशयेनाह—**भूतेति** । भूतानि पञ्च तद्विभूतयश्च मनोबुद्धिभ्यां सह उक्ताः । पट्त्रिंशदित्येकसप्ततिं पदार्थानक्षरेण ब्रह्मणा प्रशास्त्रा सृष्टान् वदन्ति वेदाः सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानितीत्यादयः । नन्वक्षरस्य सर्वस्रष्टृत्वे परिणामित्वं स्यादित्याशंक्याह—पुत्र न नित्यं तदिह वदन्तीति । तत् स्रष्टृत्वं अक्षरस्याक्षरत्वादपरिणामित्वादेव नित्यं न । यथा क्षीरस्य नित्यं दधिस्रष्टृत्वं तद्वन्न किं तर्हि शुक्तिकायां रजतं प्रति कादाचित्कं दृष्टिसमसमयं चितो विश्वस्रष्टृत्वमित्यर्थः । एवं चितोऽपरिणामित्वात्तज्जं जगद्रज्जूरगवन्मृषैवेति ब्रह्माद्वैतं सिद्ध्यतीति भावः । तथा च श्रुतिः—'अजायमानो बहुधा विजायते' इति । जन्मादिभावविकारमलभमान एव बहुरूपो भवतीति श्रुत्यर्थः ॥ १२ ॥ इदमेव मदुक्तं वेदसम्मतमित्याह—**तदिति** । तत् तस्मिन् पूर्वश्लोकोक्ते जगदुत्पत्त्यादिविषये यत् तव तुभ्यं अनागतं अनागमं वेदविरुद्धमुक्तमन्यैर्वादिभिः तत् चिन्ताकलिलं विचारतो दुष्टं यौक्तिकैरुक्तमपि युक्तिविरुद्धमेव श्रौतमेव मतं युक्तिमत्तरमित्यर्थः । त्वं संप्रति इहलोके तत् मदुक्तं भूतार्थस्य नित्यसिद्धस्य

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकानुप्रश्ने पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

## २५६-[८३]

युधिष्ठिर उवाच ।

य इमे पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
पृतनामध्य एते हि गतसंज्ञा महाबलाः ॥ १
एकैकशो भीमबला नागायुतबलास्तथा ।
एते हि निहताः संख्ये तुल्यतेजोबलैर्नरैः २
नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे परम् ।
विक्रमेणोपसंपन्नास्तेजोबलसमन्विताः ॥ ३
अथ चेमे महाप्राज्ञाः शेरते हि गतासवः ।
मृता इति च शब्दोऽयं वर्तत्येषु गतासुषु ॥ ४
इमे मृता नृपतयः प्रायशो भीमविक्रमाः ।
तत्र मे संशयो जातः कुतः संज्ञा मृता इति
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः केन मृत्युरिह प्रजाः
हरत्यमरसंकाश तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६

भीष्म उवाच ।

पुरा कृतयुगे तात राजा ह्यासीदकम्पनः*
स शत्रुवशमापन्नः संग्रामे क्षीणवाहनः ॥ ७
तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले ।
स शत्रुभिर्हतः संख्ये सबलः सपदानुगः ८
स राजा शत्रुवशगः पुत्रशोकसमन्वितः ।
यदृच्छया शान्तिपरो ददर्श भुवि नारदम्
तस्मै स सर्वमाचष्ट यथावृत्तं जनेश्वरः ।
शत्रुभिर्ग्रहणं संख्ये पुत्रस्य मरणं तथा ॥ १०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदोऽथ तपोधनः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं तदा ११

नारद उवाच ।

राजन् शृणु समाख्यानमद्येदं बहुविस्तरम्
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयेदं वसुधाधिप ॥ १२
प्रजाः सृष्ट्वा महातेजाः प्रजासर्गे पितामहः ।
अतीव वृद्धा बहुला नामृष्यत पुनः प्रजाः ॥
न ह्यन्तरमभूत्किञ्चित्क्वचिज्जन्तुभिरच्युत ।
निरुच्छ्वासमिवोन्नद्धं त्रैलोक्यमभवन्नृप ॥ १४
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति भूपते ।
चिन्तयन्नाध्यगच्छच्च संहारे हेतुकारणम् १५
तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो राजन् ददाह स पितामहः
ततो दिवं भुवं खं च जगच्च सचराचरम् ।
ददाह पावको राजन् भगवत्कोपसंभवः १७
तत्रादह्यन्त भूतानि जङ्गमानि ध्रुवाणि च ।
महता क्रोधवेगेन कुपिते प्रपितामहे ॥ १८
ततोऽध्वरजटः स्थाणुर्वेदाध्वरपतिः शिवः ।
जगाम शरणं देवो ब्रह्माणं परवीरहा ॥ १९
तस्मिन्नभिगते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया
अब्रवीत्परमो देवो ज्वलन्निव तदा शिवम् ॥
करवाण्यद्य कं कामं वरार्होऽसि मतो मम ।
कर्ता ह्यस्मि प्रियं शंभो तव यद्धृदि वर्तते २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादोपक्रमे षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

---

ब्रह्मणस्तत्त्वं याथात्म्यं सर्वं कृत्स्नमवाप्य भूतप्रभावात् ब्राह्मैश्वर्यात् । ल्यब्लोपे पञ्चमी तत्प्राप्य शान्ता निर्वृत्तिका बुद्धिर्यस्य तथा भव ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५॥

२५६

ननु शान्तबुद्धितैव श्रेयश्चेत् 'मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः' इति स्मृतेः सा मरणे स्वयमेव भवति किं साधनायासेनेत्याशंक्य ग्रामाद्ग्रामान्तरप्राप्तिवन्मृत्युजन्मनी न तु स्वरूपनाशोदयौ । कृतहानाकृताभ्यागमादिदोषप्रसक्तेः । स्मृतिस्तु स्थूलदेहमात्रविस्मरणपरेति निर्णयार्थं मृत्युप्रजापतिसंवादमारभते—य इमे पृथिवीपाला इत्यादिना ॥ १ ॥ वर्तति वर्तते ॥ ४ ॥ कस्येति । स्थूलस्य सूक्ष्मस्य वा देहस्य आत्मन एव वेति कुतः पुरुषात् केन निमित्तेन ॥ ६ ॥ आख्यायिकामुखेन कुत इत्यस्योत्तरं तावदाह—पुरेत्यादिना ॥ ७ ॥ खेभ्यः इन्द्रियच्छिद्रेभ्यः ॥ १६ ॥ खं खस्थं ग्रहनक्षत्रादि ॥ १७ ॥ ध्रुवाणि 'ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी' इत्यादिश्रुतेर्द्युपृथिव्यादीनि ॥ १८ ॥ अध्वरः 'ध्वृ हिंसायां' अहिंसैव जटा इव शिरसि धार्यत्वेन मान्या यस्य सोऽध्वरजटो दयालुः । हरिजट इति पाठेऽपि हरिशब्देन तद्गुणः पालकत्वमालक्ष्य पूर्ववदेवार्थः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिप० मोक्षधर्म० नैल० भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५६॥ *'राजासीदनुकम्पकः' इति पा०

## २५७–[८४]

स्थाणुरुवाच ।
प्रजासर्गनिमित्तं मे
कार्यवत्तामिमां प्रभो ।
विद्धि सृष्टास्त्वया हीमा
मा कुप्यासां पितामह ॥ १
तव तेजोग्निना देव प्रजा दह्यन्ति सर्वशः ।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं मा कुप्यासां जगत्प्रभो
प्रजापतिरुवाच ।
न कुप्ये न च मे कामो न भवेयुः प्रजा इति
लाघवार्थं धरण्यास्तु ततः संहार इष्यते ॥ ३
इयं हि मां सदा देवी भारार्ता समचोदयत् ।
संहारार्थं महादेव भारेणाप्सु निमज्जति ४
यदाहं नाधिगच्छामि बुद्ध्या बहु विचारयन्
संहारमासां वृद्धानां ततो मां क्रोध आविशत्
स्थाणुरुवाच ।
संहारार्थं प्रसीदस्व मा क्रुधो विबुधेश्वर ।
मा प्रजाः स्थावरं चैव जङ्गमं च व्यनीनशत्६
पल्वलानि च सर्वाणि सर्वं चैव तृणोलपम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ ७
तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत्सर्वमुपप्लुतम् ।
प्रसीद भगवन्साधो वर एष वृतो मया ॥ ८
नष्टा न पुनरेष्यन्ति प्रजा ह्येताः कथञ्चन ।
तस्मान्निवर्ततामेतत्तेन स्वेनैव तेजसा ॥ ९
उपायमन्यं संपश्य भूतानां हितकाम्यया ।
यथाऽमी जन्तवः सर्वे न दह्येरन्पितामह १०
अभावं हि न गच्छेयुरुच्छिन्नप्रजनाः प्रजाः ।
अधिदैवे नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेश्वरेश्वर
त्वद्भवं हि जगन्नाथ एतत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसाद्य त्वां महादेव याचाम्यावृत्तिजाः प्रजाः
नारद उवाच ।
श्रुत्वा तु वचनं देवः स्थाणोर्नियतवाङ्मनाः
तेजस्तत्संनिजग्राह पुनरेवान्तरात्मनि ॥ १३
ततोऽग्निमुपसंगृह्य भगवाँल्लोकपूजितः ।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कल्पयामास वै प्रभुः१४
उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तदा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यः खेभ्यो[1] नारी महात्मनः
कृष्णरक्ताम्बरधरा कृष्णनेत्रतलान्तरा ।
दिव्यकुण्डलसंपन्ना दिव्याभरणभूषिता १६
सा विनिःसृत्य वै खेभ्यो
दक्षिणामाश्रिता दिशम् ।
ददृशाते च तां कन्यां
देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥ १७
तामाहूय तदा देवो लोकानामादिरीश्वरः ।
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति
त्वं हि संहारबुद्ध्या मे
चिन्तिता रुषितेन च ।
तस्मात्संहर सर्वास्त्वं
प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ १९
अविशेषेण चैव त्वं प्रजाः संहर कामिनि ।
मम त्वं हि नियोगेन श्रेयः परमवाप्स्यसि ॥
एवमुक्ता तु सा देवी मृत्युः कमलमालिनी ।
प्रदध्यौ दुःखिता बाला साश्रुपातमतीव च
पाणिभ्यां चैव जग्राह तान्यश्रूणि जनेश्वरः ।
मानवानां हितार्थाय ययाचे पुनरेव ह ॥ २२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

---

२५७

**प्रजेति** । कार्यवत्तां अर्थित्वम् । मा कुप्य कोपं मा कुरु आसां आसु ॥ १ ॥ न भवेयुः नश्येयुः ॥३॥ उलपमपि तृणविशेषः ॥७॥ अधिदैवे अहङ्काराधिष्ठातृत्वे ॥११॥ आवृत्तिजाः प्रजा याचामि याचे आवृत्त्या जाताः मृत्वा मृत्वा पुनर्जायन्तामित्यर्थः ॥ १२ ॥ संनिजग्राह संहृतवान् ॥ १३ ॥ प्रवृत्तिं जन्म निवृत्तिं मरणं अनेनात्यन्तं प्रजानामुच्छेदो नाप्यन्यन्तं भूमेर्भार इति दर्शितम् ॥ १४ ॥ विश्वेभ्यः सर्वेभ्यः ॥ १५ ॥ उभौ ब्रह्मरुद्रौ ॥ १७ ॥ पाणिभ्यां अश्रूणि जग्राह । मृत्योरश्रुपाते युगपत् सर्वभूतक्षयो माभूदिति भावः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

[1] खेभ्यो मुखनासिकादिभ्य इत्यर्थः ।

## २५८-[८५]

नारद उवाच ।
विनीय दुःखमबला साऽऽत्मनैवायतेक्षणा
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा तमेवावर्जिता तदा १
त्वया सृष्टा कथं नारी मादृशी वदतां वर ।
रौद्रकर्माभिजायेत सर्वप्राणिभयङ्करी ॥ २
बिभेम्यहमधर्मस्य धर्म्यमादिश कर्म मे ।
त्वं मां भीतामवेक्षस्व शिवेनेक्षस्व चक्षुषा ३
बालान्वृद्धान्वयस्थांश्च न हरेयमनागसः ।
प्राणिनः प्राणिनामीश नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे
प्रियान्पुत्रान्वयस्यांश्च भ्रातॄन्मातॄः पितॄनपि
अपध्यास्यन्ति यद्येवं मृतास्तेषां बिभेम्यहम्॥
कृपणाश्रुपरिक्लेदो दहेन्मां शाश्वतीः समाः ।
तेभ्योऽहं बलवद्भीता शरणं त्वामुपागता ६
यमस्य भवने देव पात्यन्ते पापकर्मिणः ।
प्रसादये त्वां वरद प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ७
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ।
इच्छेयं त्वत्प्रसादार्थं तपस्तप्तुं महेश्वर ॥ ८
पितामह उवाच ।
मृत्यो सङ्कल्पिता मे त्वं प्रजासंहारहेतुना।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा च विचारय
एतदेवमवश्यं हि भविता नैतदन्यथा ।
क्रियतामनवद्याङ्गि यथोक्तं मद्वचोऽनघे ॥ १०
एवमुक्ता महाबाहो मृत्युः परपुरञ्जय ।
न व्याजहार तस्थौ च प्रह्वा भगवदुन्मुखी
पुनः पुनरथोक्ता सा गतसत्त्वेव भामिनी ।
तूष्णीमासीत्ततो देवो देवानामीश्वरेश्वरः१२
प्रससाद किल ब्रह्मा स्वयमेवात्मनाऽऽत्मनि
स्मयमानश्च लोकेशो लोकान्सर्वानवैक्षत ॥
निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु
भगवत्यपराजिते ।
सा कन्याऽथ जगामास्य
समीपादिति नः श्रुतम् ॥ १४
अपसृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणेव राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् १५
सा तत्र परमं देवी तपोऽचरत दुश्चरम् ।
समा ह्येकपदे तस्थौ दश पद्मानि पञ्च च १६
तां तथा कुर्वतीं तत्र तपःपरमदुश्चरम् ।
पुनरेव महातेजा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ १७
कुरुष्व मे वचो मृत्यो तदनादृत्य सत्वरा ।
तथैवैकपदे तात पुनरन्यानि सप्त सा ॥ १८
तस्थौ पद्मानि षट् चैव पञ्च द्वे चैव मानद ।
भूयः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा१९
द्वे चायुते नरश्रेष्ठ वायवाहारा महामते ।
पुनरेव ततो राजन्मौनमातिष्ठदुत्तमम् ॥ २०
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च पार्थिव ।
ततो जगाम सा कन्या कौशिकीं नृपसत्तम
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ।
ततो ययौ महाभागा गङ्गां मेरुं च केवलम् ॥
तस्थौ दार्विव निश्चेष्टा प्रजानां हितकाम्यया
ततो हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः समीजिरे ॥
तत्राङ्गुष्ठेन राजेन्द्र निखर्वमपरं ततः ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास यत्नतः
ततस्तामब्रवीत्तत्र लोकानां प्रभवाप्ययः ।
किमिदं वर्तते पुत्रि क्रियतां मम तद्वचः ॥ २५
ततोऽब्रवीत्पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ।
न हरेयं प्रजा देव पुनश्चाहं प्रसादये ॥ २६
तामधर्मभयाद्भीतां पुनरेव प्रयाचतीम् ।
तदाऽब्रवीद्देवदेवो निगृह्येदं वचस्ततः ॥ २७
अधर्मो नास्ति ते मृत्यो
संयच्छेमाः प्रजाः शुभे ।
मया ह्युक्तं मृषा भद्रे
भविता नेह किञ्चन ॥ २८
धर्मः सनातनश्च त्वामिहैवानुप्रवेक्ष्यति ।
अहं च विबुधाश्चैव त्वद्धिते निरताः सदा ॥
इममन्यं च ते कामं
ददानि मनसेप्सितम् ।
न त्वां दोषेण यास्यन्ति
व्याधिसंपीडिताः प्रजाः ॥ ३०

---

२५८

**विनीयेति** । विनीय प्रमार्ज्य आवर्जिता ऋजुभूता ॥१॥ प्रियान् पुत्रानित्यस्य न हरेयमिति पूर्वेणान्वयः । तत्र हेतुः येषां सम्बन्धिनो मृतास्ते यदि अपध्यास्यन्ति शप्स्यन्ते तर्हि तेषां तेभ्यो बिभेम्यहम् ॥५॥ बलवत् अत्यन्तम् ॥६॥ अप्रतिश्रुत्य अनङ्गीकृत्य धेनुकं गौतीर्थं मायान्तर्वर्ति ॥१५॥ कौशिकीं गंडकीं नदीम् ॥२१॥ दार्विव स्थाणुरिव ॥ २३ ॥ निगृह्य हठं कृत्वा ॥ २७ ॥ अपध्यास्यन्तीत्युक्तं तत्राह— **न त्वामिति** । त्वयि दोषं न वदिष्यन्तीत्यर्थः ॥३०॥

पुरुषेषु स्वरूपेण पुरुषस्त्वं भविष्यसि।
स्त्रीषु स्त्रीरूपिणी चैव तृतीयेषु नपुंसकम् ३१
सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरुवाच ह।
पुनरेव महात्मानं नेति देवेशमव्ययम् ॥ ३२
तामब्रवीत्तदा देवो मृत्यो संहर मानवान्।
अधर्मस्ते न भविता तथा ध्यास्याम्यहं शुभे
यानश्रुबिन्दून्पतितानपश्यं
ये पाणिभ्यां धारितास्ते पुरस्तात्।
ते व्याधयो मानवान् घोररूपाः
प्राप्ते काले कालयिष्यन्ति मृत्यो ॥
सर्वेषां त्वं प्राणिनामन्तकाले
कामक्रोधौ सहितौ योजयेथाः।
एवं धर्मस्त्वामुपैष्यत्यमेयो
न चाधर्मं लप्स्यसे तुल्यवृत्तिः ॥ ३५
एवं धर्मं पालयिष्यस्यथो त्वं
न चात्मानं मज्जयिष्यस्यधर्मे।
तस्मात्कामं रोचयाभ्यागतं त्वं
संयोज्याथो संहरस्वेह जन्तून् ३६
सा वै तदा मृत्युसंज्ञापदेशा-
द्भीता शापाद्बाढमित्यब्रवीत्तम्।
अथो प्राणान्प्राणिनामन्तकाले
कामक्रोधौ प्राप्य निर्मोह्य हन्ति ३७

मृत्योर्ये ते व्याधयश्चाश्रुपाता
मनुष्याणां रुज्यते यैः शरीरम्।
सर्वेषां वै प्राणिनां प्राणनान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा बुद्ध्य बुद्ध्या ॥
सर्वे जीवाः प्राणिनां प्राणनान्ते
गत्वा वृत्ताः सन्निवृत्तास्तथैव।
एवं सर्वे मानवाः प्राणनान्ते
गत्वा वृत्ता देववद्राजसिंह ॥ ३९
वायुर्भीमो भीमनादो महौजाः
स सर्वेषां प्राणिनां प्राणभृतः।
नानावृत्तिर्देहिनां देहभेदे
तस्माद्वायुर्देवदेवो विशिष्टः ॥ ४०
सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टाः
सर्वे मर्त्या देवसंज्ञाविशिष्टाः।
तस्मात्पुत्रं मा शुचो राजसिंह
पुत्रः स्वर्गं प्राप्यते मोदते ह ॥ ४१
एवं मृत्युर्देवसृष्टा प्रजानां
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्।
तस्याश्चैव व्याधयस्तेऽश्रुपाताः
प्राप्ते काले संहरन्तीह जन्तून् ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे
अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

---

**पुरुषेष्विति**। 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'इति श्रुतेः सर्वेषां प्रतिरूपं ब्रह्मतत्त्वं च तद्भावमप्राप्तस्य न भवतीति ब्रह्मभावं प्राप्स्यसीत्यर्थः। तेन च 'न ह वा एवंविदि पापं कर्माश्लिष्यते' इति श्रुतेर्ब्रह्मज्ञायास्ते पापलेपोऽपि न भविष्यतीति भावः ॥ ३१ ॥ यावद्देहपातं क्रोधवेगं धारयितुमशक्ततया हिंस्रस्य ब्रह्मनिष्ठापि नश्यति ततश्च पापलेशोऽपि प्रसक्त इत्याभिप्रेत्याह—**सैवमिति** ॥ ३२ ॥ कालयिष्यन्ति मारयिष्यन्ति ॥ ३४ ॥ तवापि मारकत्वं मरणनिदानयोः कामक्रोधयोः प्रेरकत्वेनेत्याह—**सर्वेषामिति**। नन्वेवमपि प्रयोजके मयि पापसम्बन्धः प्रसक्त इत्याशंक्याह—**एवमिति**। एवं कुर्वतीं त्वां प्रति धर्मोऽपि निमित्ततया उपैष्यति। प्राणिकर्मानुरोधेन कामक्रोधोद्भावनद्वारा भूतानि मारयन्त्यास्तव न दोषोऽस्ति यतस्त्वं तुल्यवृत्तिः रागद्वेषशून्याऽसि। तथा च सूत्रितम्—'वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात्' इति। परमेश्वरस्य विषमां सृष्टिं कुर्वतो वैषम्याददोषो नास्ति। कुतस्तत्प्राणिकर्मसापेक्षत्वाद्वैषम्यस्येति सूत्रार्थः ॥ ३५ ॥ अभ्यागतं अधिकारं रोचय कामं संयोज्य जन्तून् संहरस्वेति योजना ॥ ३६ ॥ प्राप्य प्रापय्य ॥ ३७ ॥ प्राणनान्ते जीवनान्ते बुद्ध्य जानीहि ॥ ३८ ॥ **सर्वे इति**। देवा इन्द्रियाणि प्राणनान्ते स्वव्यवहारान्ते जाग्रदवसाने सत् वस्तु गत्वा 'सता सोम्य तदा संपन्नो भवति' इति श्रुतेः। सुषुप्तौ ब्रह्माभेदं प्राप्य जागरे पुनरावृत्ताः तथैव पुनर्निवृत्ता इति। तथावस्थाभेदे दृष्ट एवं देहभेदेऽपि प्राणनान्ते जीवनान्ते परलोकं गत्वा आवृत्ता देववत्पुनर्वृत्ताश्च भवन्ति। सुप्तिप्रबोधवत्कर्मोपरमोद्भवकृते जन्ममरणे इत्यर्थः। एतेन केन मृत्युरित्यस्योत्तरमुक्तम् ॥ ३९ ॥ कस्य मृत्युरित्यस्योत्तरमाह—**वायुरिति**। वायुः पंचवृत्तिः प्राणः देहभेदे देहनाशे देवानामिन्द्रियाणां देवः राजा नानावृत्तिर्नानादेहगतः एतेन देहस्यैव मृत्युर्न प्राणानामात्मनो वा ॥४०॥ **सर्वे इति**। देवाः क्षीणपुण्या मर्त्यत्वं मर्त्याश्च कृतपुण्या देवत्वं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

## २५९-[८६]

युधिष्ठिर उवाच ।

इमे वै मानवाः सर्वे धर्मं प्रति विशङ्किताः
कोऽयं धर्मः कुतो धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह १
धर्मस्त्वयमिहार्थः किममुत्रार्थोऽपि वा भवेत्
उभयार्थो हि वा धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह २

भीष्म उवाच ।

सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्।
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥ ३
अपि ह्युक्तानि धर्म्याणि व्यवस्यन्त्युत्तरावरे।
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः ॥ ४
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च ।
अलब्ध्वा निपुणं धर्मं पापः पापेन युज्यते ५
न च पापकृतः पापान्मुच्यन्ते केचिदापदि।
अपापवादी भवति यथा भवति धर्मकृत्।
धर्मस्य निष्ठा त्वाचारस्तमेवाश्रित्य भोत्स्यसे
यथा धर्मसमाविष्टो धनं गृह्णाति तस्करः।
रमते निर्हरंस्तेनः परवित्तमराजके ॥ ७
यदाऽस्य तद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छति
तदा तेषां स्पृहयते ये वै तुष्टाः स्वकैर्धनैः ८
अभीतः शुचिरभ्येति राजद्वारमशंकितः।
न हि दुश्चरितं किञ्चिदन्तरात्मनि पश्यति ९
सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् १०

अपि पापकृतो रौद्राः
सत्यं कृत्वा पृथक् पृथक् ।
अद्रोहमविसंवादं
प्रवर्तन्ते तदाश्रयाः ११

ते चेन्मिथो धृतिं कुर्युर्विनश्येयुरसंशयम् ।
न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः १२
मन्यन्ते बलवन्तस्तं दुर्बलैः संप्रवर्तितम्।
यदा नियतिदौर्बल्यमथैषामेव रोचते ॥ १३
न ह्यत्यन्तं बलवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा
तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न कार्या ते कदाचन १४

असाधुभ्योऽस्य न भयं
न चौरेभ्यो न राजतः।
अकिञ्चित्कस्यचित्कुर्वन्
निर्भयः शुचिरावसेत् ॥ १५

सर्वतः शंकते स्तेनो मृगो ग्राममिवेयिवान्*
बहुधाऽऽचरितं पापमन्यत्रैवानुपश्यति ॥ १६

---

२५९

एवं प्राणिनां कर्माधीनो मृत्युव्याधिसम्बन्धः सन्तत इति ज्ञात्वा तन्निवृत्तिं धर्ममूलां मन्वानो धर्मतत्त्वेऽप्यार्य-जैन-म्लेच्छागमानां नानापथत्वेन संदिहानो धर्मस्वरूपं लक्षण-प्रमाणाभ्यां जिज्ञासमानः पृच्छति—**इमे वै इति** ॥१॥ तत्र 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इति स्मृतेर्मुख्यं धर्मस्य लक्षणं वेद एव इतरदपि तन्मूलतया धर्मलक्षणं न स्वत इति सिद्धं पूर्वतन्त्रे (पूर्वमीमांसाशास्त्रे)। कवयो विद्वांसः अथ प्रयोजनमेव धर्मलक्षणमाहुः । यथोक्तम्—

'परिनिर्मथ्य वाग्जालमिदमेव सुनिश्चितम् ।
नोपकारात्परं पुण्यं नापकारादघं परम्'इति ॥

अधर्मलक्षणमपकार इत्यपि प्रश्लेषेण ध्येयम् ॥ ३ ॥ एतदेव विवृणोति—**अपीति** । धर्म्याणि धर्माय हितानि कर्माणि उत्तरावरे व्यवस्यन्ति न्यूनाधिकभावेन विपरीतं च निश्चिन्वन्ति तथाहि गार्हस्थ्येऽपि मोक्षोऽस्ति अलसाः संन्यासमिच्छन्ति त्यागेनैव मोक्षः विषयलंपटा गार्हस्थ्यमिच्छन्तीति कस्तर्ह्यत्र निर्णय इत्याशंक्याह—**लोकेति** । लोकव्यवहारमनुरुध्यायं नियमः कृतः यथा अविक्षिप्तचित्तस्य पुरुषधौरेयस्य गार्हस्थ्येऽपि जनकवसिष्ठादिवन्मोक्षोऽस्ति अन्यस्य वेदान्तश्रवणादौ दृष्टविक्षेपनिवृत्त्यर्थः संन्यास इति ॥ ४ ॥ इह वा परत्रोभयत्र वा धर्मः फलतीति प्रश्नस्योत्तरमाह—**उभयत्रेति** ॥५॥ नैपुण्यमेवाह—**न चेति**। केचिदित्याहुरिति शेषः। आपदि तु यथा पापवाद्यपि अपापवादी भवति । अधर्मकृदपि धर्मकृद्भवति।तथैवोक्तमापद्धर्मेषु कर्णपर्वणि वा युधिष्ठिरं जिघांसोरर्जुनस्य बोधाय भगवता सत्यवादिनोऽहिंस्रस्य चाख्यानमुक्तं तदिहानुसंधेयम् । **भोत्स्यसे** ज्ञास्यसि ॥ ६ ॥ पुरुषः परपापमेव पश्यति प्रकाशयति न च स्वीयमिति सदृष्टान्तमाह—**यथेति त्रिभिः** ७॥ यद्यप्येवं तथापि सत्यमेव श्रेय इत्याह—**सत्यस्येति**॥ १०॥ पापिनामपि सत्यमत्याज्यमित्याह सार्धेन—**अपीति**। सत्यं शपथम् ॥ ११ ॥ अधृतिं समयत्यागम् ॥ १२ ॥ तं पूर्वार्धोक्तंधर्मम् नियतिदौर्बल्यं दैवप्रातिकूल्यम्,तदा त्वेषामेव स धर्मो रोचते ॥ १३ ॥ रुचौ हेत्वन्तरमाह—**न हीति** । उपसंहरति—**तस्मादिति** । अनार्जवे कौटिल्ये ॥ १४ ॥ मृग इव आचरितं स्वेन शठः परमपि शठं मन्यते इत्यर्थः ॥ १६ ॥ * एयिवानागतः इत्यर्थः ।

सुदितः शुचिरभ्येति सर्वतो निर्भयः सदा।
न हि दुश्चरितं किञ्चिदात्मनोऽन्येषु पश्यति
दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः।
तं मन्यन्ते धनयुताः कृपणैः संप्रवर्तितम् ॥१८
यदा नियतिकार्पण्यमथैषामेव रोचते।
न ह्यत्यन्तं धनवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा
यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥ २०
योऽन्यस्य स्यादुपपतिः स कं किं वक्तुमर्हति
यदन्यस्य ततः कुर्यान्न मृष्येदिति मे मतिः॥२१
जीवितुं यः स्वयं चेच्छे-
त्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत
तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥ २२
अतिरिक्तैः संविभजेद्भोगैरन्यानकिञ्चनान्।
एतस्मात्कारणाद्धात्रा कुसीदं संप्रवर्तितम् ॥
यस्मिंस्तु देवाः समये सन्तिष्ठेरंस्तथा भवेत्।
अथवा लाभसमये स्थितिर्धर्मेऽपि शोभना २४
सर्वं प्रियाभ्युपगतं धर्ममाहुर्मनीषिणः।
पश्यैतं लक्षणोद्देशं धर्माधर्मे युधिष्ठिर ॥ २५
लोकसंग्रहसंयुक्तं विधात्रा विहितं पुरा।
सूक्ष्मधर्मार्थनियतं सतां चरितमुत्तमम् २६
धर्मलक्षणमाख्यातमेतत्ते कुरुसत्तम।
तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न ते कार्या कथञ्चन २७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि धर्मलक्षणे एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

## २६०-[८७]

युधिष्ठिर उवाच।
सूक्ष्मं साधु समुद्दिष्टं नियतं ब्रह्मलक्षणम्।
प्रतिभा त्वस्ति मे काचित्तां ब्रूयामनुमानतः
भूयांसो हृदये ये मे प्रश्नास्ते व्याहृतास्त्वया।
इदं त्वन्यत्प्रवक्ष्यामि न राजन्निग्रहादिव २
इमानि हि प्राणयन्ति सृजन्त्युत्तारयन्ति च
न धर्मः परिपाठेन शक्यो भारत वेदितुम् ३

---

उक्तन्यायमन्यत्राप्यतिदिशति—**दातव्यमिति**। कृपणैर्निर्धनैः ॥ १८ ॥ सामान्यतो धर्मलक्षणमाह—**यदन्यैरिति** ॥ २० ॥ **य इति**। अन्यस्य भार्यायामिति शेषः। उपपतिर्जारः कं किं वक्तुमर्हति स्वस्यैव दुष्टत्वात् यत् यदि अन्यस्य अन्यं ततः तस्मिन्नेव औपपत्ये विषये कुर्याद्दृग्गोचरीकुर्यात् तदा न मृष्येदिति योजना अन्यस्येति द्वितीयार्थे षष्ठी ॥ २१ ॥ अतिरिक्तैः आवश्यकाधिकैर्भोगैर्भोगसाधनैर्धनादिभिः कुसीदं वृद्ध्यर्थं धनप्रयोगः स दीनपोषणार्थमेव कार्यो न धनमात्रवृद्ध्यर्थम् ॥२३॥ समये सन्मार्गे संतिष्ठेरन् संमुखा भवेयुस्तथा तन्मार्गाचरणशीलः दमदानदयापरो भवेदित्यर्थः। तत्र दाने विशेषमाह—**अथवेति**। धर्मे यज्ञदानादौ ॥२४॥ प्रियेण साम्ना न तु हिंसया अभ्युपगतं प्राप्तं प्रियाभ्युपगतम्। पश्य आलोचय। लक्षणोद्देशं लक्षणकीर्तनम्। एवं यदात्मनः प्रियं तदन्येषु कर्तव्यं यन्न तन्नेत्येवंविधम् ॥ २५ ॥ **लोकेति**। दयाप्रधानमित्यर्थः। सूक्ष्मधर्मार्थे सूक्ष्मधर्मलाभाय नियतं नियमितम् ॥ २६ ॥ अनार्जवे कौटिल्ये ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

२६०

अत्र प्रत्यवतिष्ठते—**सूक्ष्ममिति**। ब्रह्मलक्षणं चोदनालक्षणं वेदैकबोध्यं धर्मजातम्। प्रतिभा स्फूर्तिः सा चानुमानलक्षणा त्वदुक्तं युक्तिविरुद्धमित्यर्थः ॥ १ ॥ निग्रहात् कुतर्काग्रहेण ॥ २ ॥ इमानि भूतानि शरीरवन्ति हि प्रसिद्धम्। स्वेन स्वयमेव आत्मानं प्राणयन्ति जीवयन्ति सृजन्ति उत्तारयन्ति देहाकारात् च्यावयन्ति। तथा च श्रुतिः—'अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति'। त्वया हि परस्य सुखदुःखोत्पादनेन जातौ धर्माधर्मौ स्वस्यापि कालान्तरे सुखदुःखप्रदौ भवत इत्युक्तम्। तत्केवलं परिपाठेन आम्नायमात्रेण न निश्चेतुं शक्यम्। अन्नस्यैव जन्मसुखादिहेतुत्वदर्शनात्। दृष्टेनैव कारणेन स्वाभाविकेन धर्मेण जगद्वैचित्र्यसिद्धौ वैदिकधर्मस्यादृष्टस्य कल्पनाया अनुदयाच्चेत्याशयः ३

अन्यो धर्मः समस्थस्य विषमस्थस्य चापरः
आपदस्तु कथं शक्याः परिपाठेन वेदितुम् ४
सदाचारो मतो धर्मः सन्तस्त्वाचारलक्षणाः
साध्यासाध्यं कथं शक्यं सदाचारो ह्यलक्षणः
दृश्यते हि धर्मरूपेणाधर्मं प्राकृतश्चरन्।
धर्मं चाधर्मरूपेण कश्चिदप्राकृतश्चरन् ॥ ६
पुनरस्य प्रमाणं हि निर्दिष्टं शास्त्रकोविदैः।
वेदवादाश्चानुयुगं ह्रसन्तीतीह नः श्रुतम् ७
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे।
अन्ये कलियुगे धर्मा यथाशक्ति कृता इव ८
आम्नायवचनं सत्यमित्ययं लोकसंग्रहः।
आम्नायेभ्यः पुनर्वेदाः प्रसृताः सर्वतोमुखाः
ते चेत्सर्वप्रमाणं वै प्रमाणं ह्यत्र विद्यते।
प्रमाणेप्यप्रमाणेन विरुद्धे शास्त्रता कुतः १०
धर्मस्य क्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः।
या या विक्रियते संस्था ततः सापि प्रणश्यति
विद्म चैवं न वा विद्म शक्यं वा वेदितुं न वा
अणीयान् क्षुरधाराया गरीयानपि पर्वतात्
गन्धर्वनगराकारः प्रथमं संप्रदृश्यते।
अन्वीक्ष्यमाणः कविभिः पुनर्गच्छत्यदर्शनम्
निपानानीव गोभ्योऽपि क्षेत्रे कुल्ये च भारत
स्मृतिर्हि शाश्वतो धर्मो विप्रहीणो न दृश्यते
कामादन्येच्छया चान्ये कारणैरपरैस्तथा।
असंतोऽपि वृथाचारं भजन्ते बहवोऽपरे १५
धर्मो भवति स क्षिप्रं प्रलापस्त्वेव साधुषु।
अथैतानाहुरुन्मत्तानपि चावहसन्त्युत ॥ १६
महाजना ह्युपावृत्ता राजधर्मं समाश्रिताः।
न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्तते १७
तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः।
दृश्यते चैव स पुनस्तुल्यरूपो यदृच्छया १८
येनैवान्यः स भवति सोऽपरानपि बाधते।
आचाराणामनैकाग्र्यं सर्वेषामुपलक्षयेत् १९

व्यवस्थित्यभावादपि वैदिकधर्मो दुर्ज्ञेय इत्याह— **अन्य इति**। आपदामानन्त्यात्तद्धर्मा अप्यनन्ता इति दुर्ज्ञेय एव धर्म इत्याह—**आपदस्त्विति**। तस्मादव्यवस्थितरूपस्य वैदिकधर्मस्य न धर्मत्वमित्याशयः ॥ ४ ॥ सतामाचारो धर्मो धर्माचरणाच्च सत्त्वमित्यन्योन्याश्रयेण लक्ष्यलक्षणयोः साध्यासाध्ययोरविवेकादपि न सदाचारोऽपि धर्मे मानमित्याह—**सदाचार इति** ॥ ५ ॥ **दृश्यते हीति**। 'अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपूरणम्' इत्यादिनिषेधे श्रूयमाणेऽपि प्राकृताः शूद्रा मुमुक्षवो वेदान्तान्धर्मबुद्ध्या शृण्वन्ति। अगस्त्यादिरप्राकृतोऽपि बहुहिंसाकरं दण्डकारण्यशापाख्यमधर्मं चकार। अतो श्रेष्ठेषु शिष्टलक्षणदर्शनात् शिष्टेषु च भ्रष्टलक्षणदर्शनात्सदाचारोऽपि दुर्निर्णेय इत्यर्थः ॥ ६ ॥ कालभेदेन धर्ममन्यथयन्तो वेदा अप्यश्रद्धेया अनवस्थितत्वादित्याह—**वेदेति**॥ ७॥ लोकसंग्रहो लोकरञ्जनमात्रम्। वेदयन्त्याम्नायार्थमिति वेदाः स्मृतयः॥ ९॥ ते आम्नायाः अत्र स्मृतिषु प्रमाणं प्रमाणत्वं प्रमाणं श्रुतिर्निरपेक्षत्वात् अप्रमाणं स्मृतिर्मूलश्रुतिसापेक्षत्वात् तयोः परस्परविरोधे 'औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्या' 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायेत्' इति तत्र वेष्टनस्मृतिः सापेक्षत्वादप्रमाणं चेत् तत्सामान्यात्सर्वाऽपि स्मृतिरप्रमाणं ततश्च तन्मूलभूतायाः श्रुतेरप्यप्रमाणत्वेन विनिगमनाविरहात्प्रत्यक्षाप्रत्यक्षयोरपि श्रुत्योरप्रामाण्यमित्याह— **प्रमाणेऽपीति** ॥ १० ॥ **धर्मस्येति**। संस्था स्वरूपं जनमेजयाश्वमेधे इन्द्रापराधादश्वमेधसंस्थालोपो दृष्टः ॥ ११ ॥

स्वयं विद्म न वा विद्म उक्तं वा वेदितुं शक्यं न वा। दुर्ज्ञेयं धर्मतत्त्वमित्यर्थः ॥ १२ ॥ प्रथमं कर्मकांडे 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति। अपाम सोमममृता अभूम' इत्यादिश्रुतेर्गन्धर्वनगरवदद्भुत इव दृश्यते। कविभिरन्वीक्ष्यमाणः यत्कृतकं तदनित्यं कार्यत्वाद्घटवत्। 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इत्युपपत्तिपूर्वकमुपनिषत्सु ईक्ष्यमाणः अदर्शनं याति तुच्छ इव भवति ॥ १३ ॥ निपीयन्ते पशुभिर्जलमस्मिन्निति निपानं वाप्यादिसमीपस्थः क्षुद्रजलाधारः कुल्या वा केदारान्प्रति नीयमाना यथा सद्यः शुष्यति एव शाश्वतो वैदिको धर्मो विप्रहीणः सन् कलेरन्ते न दृश्यते इति स्मृतिरस्ति भविष्यविषया ॥ १४ ॥ विप्रहीणत्वमेवोपपादयति— **कामादिति**। कामात् काम्याग्निहोत्रादिः अन्येच्छया भृतकाध्यापनादिः अपरैः कारणैर्यज्ञाद्युद्देशेन धनलाभार्थं व्रतादिः असन्तो दाम्भिकाः वृथा श्रद्धाराहित्यात् ॥ १५ ॥ सकामादिभिः कृतो धर्मो भवति मूढदृष्ट्या साधुषु च धर्मः प्रलापमात्रं धर्मो नास्तीति वदन्ति मूढाः प्रलापमेवाहाथेति ॥ १६ ॥ महाजनाः द्रोणाचार्यादयः ब्रह्मकर्मादरे गुरुकार्यं न स्यात् अनादरे शिष्टाचारव्याकोप इति भावः ॥ १७ ॥ तेनैव आचारेणैव अन्यो विश्वामित्रादिः अपरं जामदग्न्यादिकं सः आचारवान् तुल्यरूपो वसिष्ठादिः ॥ १८ ॥ उक्तानुवादपूर्वकमाचाराणामनैकाग्र्यं व्यभिचारित्वमाह—**येनैवेति** ॥ १९ ॥

चिराभिपन्नः कविभिः पूर्वं धर्म उदाहृतः । तेनाचारेण पूर्वेण संस्था भवति शाश्वती २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि धर्मप्रामाण्याक्षेपे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

## २६१-[८८]

युधिष्ठिर उवाच ।

किं कृतं दुष्करं तात कर्म जाजलिना पुरा ।
येन सिद्धिं परां प्राप्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

भीष्म उवाच ।

अतीव तपसा युक्तो घोरेण स बभूव ह ।
तथोपस्पर्शनरतः सायं प्रातर्महातपाः ॥ १३
अग्नीन्परिचरन् सम्यक् स्वाध्यायपरमो द्विजः
वानप्रस्थविधानज्ञो जाजलिर्ज्वलितः श्रिया
वने तपस्यतिष्ठत्स न च धर्ममवैक्षत ।
वर्षास्वाकाशशायी च हेमन्ते जलसंश्रयः १५
वातातपसहो ग्रीष्मे न च धर्ममविन्दत ।
दुःखशय्याश्च विविधा भूमौ च परिवर्तते१६
ततः कदाचित्स मुनिर्वर्षास्वाकाशमास्थितः ।
अन्तरिक्षाज्जलं मूर्ध्ना प्रत्यगृह्णान्मुहुर्मुहुः ॥ १७
अथ तस्य जटाः क्लिन्ना बभूवुर्ग्रथिताः प्रभो ।
अरण्यगमनान्नित्यं मलिनोऽमलसंयुतः ॥ १८
स कदाचिन्निराहारो वायुभक्षो महातपाः ।
तस्थौ काष्ठवदव्यग्रो न चचाल च कर्हिचित्
तस्य स्म स्थाणुभूतस्य निर्विचेष्टस्य भारत ।
कुलिङ्गशकुनौ राजन्नीडं शिरसि चक्रतुः २०
स तौ दयावान्ब्रह्मर्षिरुपप्रैक्षत दम्पती ।
कुर्वाणौ नीडकं तत्र जटासु तृणतन्तुभिः २१

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
तुलाधारस्य वाक्यानि धर्मे जाजलिना सह१
वने वनचरः कश्चिज्जाजलिर्नाम वै द्विजः ।
सागरोद्देशमागम्य तपस्तेपे महातपाः ॥ २
नियतो नियताहारश्चीराजिनजटाधरः ।
मलपंकधरो धीमान्बहून्वर्षगणान्मुनिः ॥ ३
स कदाचिन्महातेजा जलवासो महीपते ।
चचार लोकान् विप्रर्षिः प्रेक्षमाणो मनोजवः
स चिन्तयामास मुनिर्जलवासे कदाचन ।
विप्रेक्ष्य सागरान्तां वै महीं सवनकाननाम्
न मया सदृशोऽस्तीह लोके स्थावरजङ्गमे ।
अप्सु वैहायसं गच्छेन्मया योऽन्यः सहेति वै
अदृश्यमानो रक्षोभिर्जलमध्ये वदंस्तथा ।
अब्रुवंश्च पिशाचास्तं नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ७
तुलाधारो वणिग्धर्मा वाराणस्यां महायशाः
सोऽप्येवं नार्हते वक्तुं यथा त्वं द्विजसत्तम ८
इत्युक्तो जाजलिर्भूतैः प्रत्युवाच महातपाः ।
पश्येयं तमहं प्राज्ञं तुलाधारं यशस्विनम् ॥ ९
इति ब्रुवाणं तमृषिं रक्षांस्युद्धृत्य सागरात् ।
अब्रुवन्गच्छ पन्थानमास्थायेमं द्विजोत्तम १०
इत्युक्तो जाजलिर्भूतैर्जगाम विमनास्तदा ।
वाराणस्यां तुलाधारं समासाद्याब्रवीदिदम्

---

एवं श्रुतिस्मृतिसदाचाराणामप्रामाण्यमुक्त्वा स्वमतमाह— **चिराभिपन्न इति**। अनाद्यविगानप्रवृत्तेन स्वभावेनैव सुखदुःखकार्याकार्यव्यवस्था न श्रुत्यादिप्रमाणकेन धर्मेणेत्यर्थः । संस्था मर्यादा ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

**२६१**

**अत्रेति**। अत्र सुखादिव्यवस्थायां स्वभाव एव नियामक उत धर्म इति विमर्शे तुलाधारवाक्यानि धर्मे प्रमाणत्वेनोदाहरन्तीत्यर्थः ॥ १ ॥ जलवासे महीं विप्रेक्ष्य तपोबलाद्दूरदर्शनादिसिद्धिं प्राप्येत्यर्थः ॥ ५ ॥ वैहायसं आकाशगतं ग्रहनक्षत्रादि गच्छेत् अवगच्छेत् मया सह गच्छेद्यः सोऽन्यः कोऽस्तीति योज्यम् ॥ ६ ॥ उपस्पर्शनरतः स्नानाचमनरतः ॥ १३ ॥ श्रिया वेदविद्यया ॥ १४ ॥ न च धर्ममवैक्षत धर्मवानस्मीति मानं न प्रापेत्यर्थः ॥ १५ ॥ अमलसंयुतः निष्पापः ॥ १८ ॥ उपप्रैक्षत उपेक्षां चक्रे न वारितवानित्यर्थः ॥ २१ ॥

यदा न स चलत्येव स्थाणुभूतो महातपाः ।
ततस्तौ सुखविश्वस्तौ सुखं तत्रोषतुस्तदा२२
अतीतास्वथ वर्षासु शरत्काल उपस्थिते ।
प्राजापत्येन विधिना विश्वासात्काममोहितौ
तत्रापातयतां राजन् शिरस्यण्डानि खेचरौ
तान्यबुध्यत तेजस्वी स विप्रः संशितव्रतः ॥
बुद्‌ध्वा च स महातेजा
न चचाल च जाजलिः ।
धर्मे कृतमना नित्यं
नाधर्मं स त्वरोचयत् ॥ २५
अहन्यहनि चागत्य ततस्तौ तस्य मूर्धनि ।
आश्वासितौ निवसतः संप्रहृष्टौ तदा विभो
अण्डेभ्यस्त्वथ पुष्टेभ्यः प्राजायन्त शकुन्तकाः
व्यवर्धन्त च तत्रैव न चाकम्पत जाजलिः ॥
स रक्षमाणस्त्वण्डानि कुलिङ्गानां धृतव्रतः
तथैव तस्थौ धर्मात्मा निर्विचेष्टः समाहितः
ततस्तु कालसमये बभूवुस्तेऽथ पक्षिणः ।
बुबुधे तांस्तु स मुनिर्जातपक्षान्कुलिङ्गकान् ॥
ततः कदाचित्तांस्तत्र पश्यन्पक्षीन्यतव्रतः ।
बभूव परमप्रीतस्तदा मतिमतां वरः ॥ ३०
तथा तानपि संवृद्धान्दृष्ट्वा चाप्नुवतां मुदम् ।
शकुनौ निर्भयौ तत्र ऊषतुश्चात्मजैः सह ३१
जातपक्षांश्च सोऽपश्यदुड्डीनान्पुनरागतान् ।
सायं सायं द्विजान्विप्रो न चाकम्पत जाजलिः
कदाचित्पुनरभ्येत्य पुनर्गच्छन्ति सन्ततम् ॥
त्यक्ता मातापितृभ्यां ते न चाकम्पत जाजलिः
तथा ते दिवसं चापि गत्वा सायं पुनर्नृप ।
उपावर्तन्त तत्रैव निवासार्थं शकुन्तकाः ३४
कदाचिद्दिवसान्पञ्च समुत्पत्य विहङ्गमाः ।
षष्ठेऽहनि समाजग्मुर्न चाकम्पत जाजलिः ॥
क्रमेण च पुनः सर्वे दिवसान् सुबहूनथ ।
नोपावर्तन्त शकुना जातप्राणाः स्म ते यदा
कदाचिन्मासमात्रेण समुत्पत्य विहङ्गमाः ।
नैवागच्छंस्ततो राजन् प्रातिष्ठत स जाजलिः
ततस्तेषु प्रलीनेषु
जाजलिर्जातविस्मयः ।
सिद्धोऽस्मीति मतिं चक्रे
ततस्तं मान आविशत् ॥ ३८
स तथा निर्गतान् दृष्ट्वा शकुन्तान्नियतव्रतः ।
संभावितात्मा संभाव्य भृशं प्रीतमनाऽभवत्
स नद्यां समुपस्पृश्य तर्पयित्वा हुताशनम् ।
उदयन्तमथादित्यमुपातिष्ठन्महातपाः ॥ ४०
संभाव्य चटकान्मूर्ध्नि जाजलिर्जपतां वरः ।
आस्फोटयत्तथाऽऽकाशे धर्मः प्राप्तो मयेति वै
अथान्तरिक्षे वागासीत्तां च शुश्राव जाजलिः
धर्मेण न समस्त्वं वै तुलाधारस्य जाजले४२
वाराणस्यां महाप्राज्ञस्तुलाधारः प्रतिष्ठितः ।
सोऽप्येवं नार्हते वक्तुं यथा त्वं भाषसे द्विज
सोऽमर्षवशमापन्नस्तुलाधारदिदृक्षया ।
पृथिवीमचरद्राजन् यत्र सायंगृहो मुनिः ४४
कालेन महता गच्छत्स तु वाराणसीं पुरीम्
विक्रीणन्तं च पण्यानि तुलाधारं ददर्श सः
सोऽपि दृष्ट्वैव तं विप्रमायान्तं भाण्डजीवनः
समुत्थाय सुसंहृष्टः स्वागतेनाभ्यपूजयत् ४६
तुलाधार उवाच ।
आयानेवासि विदितो मम ब्रह्मन्नसंशयः ।
ब्रवीमि यत्तु वचनं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ४७
सागरानूपमाश्रित्य तपस्तप्तं त्वया महत् ।
न च धर्मस्य संज्ञां त्वं पुरा वेत्थ कथञ्चन४८
ततः सिद्धस्य तपसा तव विप्र शकुन्तकाः ।
क्षिप्रं शिरस्यजायन्त ते च संभावितास्त्वया
जातपक्षा यदा ते च गताश्चारीमितस्ततः ।
मन्यमानस्ततो धर्मं चटकप्रभवं द्विज ॥ ५०
खे वाचं त्वमथाश्रौषीर्मां प्रति द्विजसत्तम ।
अमर्षवशमापन्नस्ततः प्राप्तो भवानिह ।
करवाणि प्रियं किं ते तद्ब्रूहि द्विजसत्तम ५१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि तुलाधारजाजलिसंवादे एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

---

प्राजापत्येन गर्भाधानविधिना ॥ २४ ॥ कालसमये कालमर्यादायां सत्यां ते शकुन्तकाः पक्षिणः पक्षवन्तो बभूवुः ॥२९॥पक्षीन् आर्षो मत्वर्थीय इः ॥३०॥ द्विजान् शकुंतान् ॥३२॥ प्रलीनेषु प्रडीनेषु मानो गर्वः॥३८॥ संभाव्य वर्धयित्वा आस्फोटयत् बाहुशब्दमकरोत्॥४१॥ भाण्डं मूलधनं तेन जीवनं यस्य 'स्याद्भाण्डमश्वाभरणामत्रे मूलवणिग्धने' इति विश्वः ॥ ४६ ॥ आयान् आगच्छन् ॥ ४७ ॥ सागरानूपं सागरसमीपस्थं सजलं प्रदेशं संज्ञां धर्मवानहमिति ज्ञानम् ॥ ४८ ॥ चारीं आहारार्थं संचरणम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥

# २६२-[८९]

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तदा तेन तुलाधारेण धीमता
प्रोवाच वचनं धीमान् जाजलिर्जपतां वरः १

जाजलिरुवाच ।

विक्रीणतः सर्वरसान् सर्वगन्धांश्च वाणिज
वनस्पतीनोषधीश्च तेषां मूलफलानि च २
अध्यगा नैष्ठिकीं बुद्धिं कुतस्त्वामिदमागतम्
एतदाचक्ष्व मे सर्वं निखिलेन महामते ॥ ३

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तस्तुलाधारो ब्राह्मणेन यशस्विना ।
उवाच धर्मसूक्ष्माणि वैश्यो धर्मार्थतत्त्ववित्४

तुलाधार उवाच ।

वेदाहं जाजले धर्मं सरहस्यं सनातनम् ।
सर्वभूतहितं मैत्रं पुराणं यं जना विदुः ॥ ५
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले
परिच्छिन्नैः काष्ठतृणैर्मयेदं शरणं कृतम् ।
अलक्तं पद्मकं तुङ्गं गन्धांश्चोच्चावचांस्तथा ७
रसांश्च तांस्तान्विप्रर्षे मद्यवर्ज्यान्बहूनहम् ।
क्रीत्वा वै प्रतिविक्रीणे परहस्तादमायया ८
सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः ।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ९
नानुरुध्ये विरुध्ये वा न द्वेष्मि न च कामये
समाहं सर्वभूतेषु पश्य मे जाजले व्रतम् ।
तुला मे सर्वभूतेषु समा तिष्ठति जाजले॥ १०
नाहं परेषां कृत्यानि प्रशंसामि न गर्हये ।
आकाशस्येव विप्रेन्द्र पश्यन्लोकस्य चित्रताम्

इति मां त्वं विजानीहि
सर्वलोकस्य जाजले ।
समं मतिमतां श्रेष्ठ
समलोष्टाश्मकाञ्चनम् ॥ १२

यथान्धबधिरोन्मत्ता उच्छ्वासपरमाः सदा ।
देवैरपिहितद्वाराः सोपमा पश्यतो मम १३
यथा वृद्धातुरकृशा निस्पृहा विषयान्प्रति ।
तथार्थकामभोगेषु ममापि विगता स्पृहा १४
यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा १५
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा॥ १६

न भूतो न भविष्योऽस्ति
न च धर्मोऽस्ति कश्चन ।
योऽभयः सर्वभूतानां
स प्राप्नोत्यभयं पदम् ॥ १७
यस्मादुद्विजते लोकः
सर्वो मृत्युमुखादिव ।
वाक्क्रूराद्दण्डपरुषा-
त्स प्राप्नोति महद्भयम् ॥ १८

यथावद्वर्तमानानां वृद्धानां पुत्रपौत्रिणाम् ।
अनुवर्तामहे वृत्तमहिंस्राणां महात्मनाम् ॥१९

---

२६२

**इतीति** ॥ १ ॥ वाणिज वणिक्पुत्रेति साधिक्षेपमाह अपण्यविक्रेतृत्वाद्दोषवानपीत्यर्थः ॥ २ ॥ अध्यगाः अधिगतवानसि ॥ ३ ॥ धर्मरहस्यमेवाह—**सर्वभूतहितमिति** ॥ ५ ॥ अल्पद्रोहेण आपदि वा 'नानुपहत्य भूतानि भोगः संभवतीति' न्यायेनाद्रोहेण वृत्त्यसंभवाद्वा ॥ ६ ॥ अलक्तं लाक्षारससारं पद्मक तुङ्ग च काष्ठविशेषौ कस्तूर्यादीन् गन्धान् ॥ ७ ॥ रसान् लवणादीन् क्रीत्वैव न तु स्वयमुत्पाद्य ॥ ८ ॥ ननु 'लाक्षालवणमांसानि पतनीयानि विक्रये' इति लाक्षादिविक्रये दोषस्मृतेस्त्वद्वतः कथं धार्मिकत्वमित्याशंक्याह—**सर्वेषामिति** । अयमर्थः—लोके हि उपकारिणं प्रत्युपकुर्वन्ति अद्रोहिणे न द्रुह्यन्ति चेत्युत्सर्गः । तत्सामान्यादैहिकौ उपकारापकारौ जन्मान्तरेऽपि सुखदुःखप्रदानाय प्रभवतो न त्वाकस्मिकं कस्यचित्सुखं दुःखं वाऽस्ति जन्मान्तरीयं कारणं विनेत्यनुमीयतेऽतः स्वभाववादस्तावदयुक्त एव श्रुत्यादीनां धर्मे प्रामाण्यमपि वक्ष्यमाणरीत्या युज्यत एवेति ॥ ९ ॥ आकाशस्य अभ्रपटलस्य चित्रतां विविधाकारत्वम् ॥ ११ ॥ अपिहितद्वारा आच्छादितेन्द्रियगोलकाः ॥ १३ ॥ विपक्षे दोषमाह—**यस्मादिति** ॥ १८ ॥ 'मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः' इति मन्त्रलिङ्गात्कुलाचारस्य प्रामाण्यं गम्यते तदप्यस्मास्वस्तीत्याह—**यथावदिति** । अहिंस्राणामिति हिंसामयः कुलाचारोऽप्यप्रमाणमित्युक्तम् । मन्त्रार्थस्तु—पित्र्यात् पित्रादिसंसेवितात् मानवात् मनुर्मन्त्रस्तत्प्रकाशितात् वेदाविरुद्धादित्यर्थः । पथो मार्गात् नः अस्मान् दूरं मा नष्ट नयत परावतः बह्वायुष्मतोऽस्मानिति ॥ १९ ॥

प्रनष्टः शाश्वतो धर्मः सदाचारेण मोहितः ।
तेन वैद्यस्तपस्वी वा बलवान्वा विमुह्यते २०
आचाराज्जाजले प्राज्ञः क्षिप्रं धर्ममवाप्नुयात् ।
एवं यः साधुभिर्दान्तश्चरेदद्रोहचेतसा ॥ २१
नद्यां चेह यथा काष्ठमुह्यमानं यदृच्छया ।
यदृच्छयैव काष्ठेन सन्धिं गच्छेत केनचित् ॥
तत्रापराणि दारूणि संसृज्यन्ते परस्परम् ।
तृणकाष्ठकरीषाणि कदाचिन्न समीक्षया २३
यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किञ्चित्कथंचन ।
अभयं सर्वभूतेभ्यः स प्राप्नोति सदा मुने ॥
यस्मादुद्विजते विद्वन् सर्वलोको वृकादिव ।
क्रोशतस्तीरमासाद्य यथा सर्वे जलेचराः ॥
एवमेवायमाचारः प्रादुर्भूतो यतस्ततः ।
सहायवान् द्रव्यवान्यः सुभगोऽथ परस्तथा
ततस्तानेव कवयः शास्त्रेषु प्रवदन्त्युत ।
कीर्त्यर्थमल्पहृल्लेखाः पटवः कृत्स्ननिर्णयाः ॥
तपोभिर्यज्ञदानैश्च वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा ।
प्राप्नोत्यभयदानस्य यद्यत्फलमिहाश्नुते ॥ २८
लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम् ।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ॥

न भूतानामहिंसाया
ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन ।
यस्मान्नोद्विजते भूतं
जातु किञ्चित्कथञ्चन ।
सोऽभयं सर्वभूतेभ्यः
संप्राप्नोति महामुने ॥ ३०

यस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद्वेश्मगतादिव ।
न स धर्ममवाप्नोति इहलोके परत्र च ३१
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ३२
दानं भूताभयस्याहुः सर्वदानेभ्य उत्तमम् ।
ब्रवीमि ते सत्यमिदं श्रद्धत्स्व च जाजले ३३
स एव सुभगो भूत्वा पुनर्भवति दुर्भगः ।
व्यापत्तिं कर्मणां दृष्ट्वा जुगुप्सन्ति जनाः सदा

शिष्टाचारं प्रमाणयति—**प्रनष्ट इति** द्वाभ्याम्।शाश्वतः शश्वद्भवः परंपरया वेदमूलकत्वादनादिर्धर्मः शिष्टाचारः स प्रनष्टः यतः सदाचारेण क्वचिद्देशे विरुद्धेन मोहितः मोहं प्रापितः यथा 'अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे' 'यःपूजयितुं पितृदेवमनुष्यान्पेच आन्त्राणि शुनः' इति श्रुतिस्मृतिभ्यां वामदेवस्य श्रेष्ठतमस्यापि बीभत्स आचार आपदि श्वमांसभक्षणरूपः प्रदर्शितः। पुराणे वा ऋषभादीनां महायोगिनामाचारं दृष्ट्वा आर्हतादयो मोहिताः पाषंडमार्गमनुगता इत्युक्तम् । तेन मोहरूपेण कारणेन वैद्यो विद्यावान् तपस्वी जितेन्द्रियः बलवान् जितकामक्रोधः सोऽपि विमुह्यते विमुच्यत इति पाठे तेन सदाचारेणेत्यर्थः। अयं भावः—

' सर्वनाशे समुत्पन्ने ह्यर्धं त्यजति पंडितः ।
अर्धनाशे समुत्पन्ने सर्वं त्यजति दुर्मतिः' ।

इतिन्यायेन मूढाः शिष्टाचारमंशे विगीतं दृष्ट्वा कृत्स्नमपि त्यजन्ति स्वभाववादं चानुरुन्धंते । बुद्धास्तु श्रुत्यन्तरविरुद्धं विरुद्धांशमात्रं त्यक्त्वा तेनैव सदाचारेण मुच्यन्त इति । ॥ २० ॥ एतदेवाह—**आचारादिति** । धर्मं मोक्षोपयोगिनमधिकारम्। उपसंहरति—एवमिति। साधुभिश्चीर्णे धर्मे यश्चरेत्स धर्ममाप्नुयादित्यन्वयः ॥ २१ ॥ **नद्यामिति** । नदीप्रवाहेण काष्ठानामिव कर्मप्रवाहेण पितृपुत्रादीनां संयोगवियोगावित्याशयः ॥ २२ ॥ लोकस्य कर्माधीनत्वात् सुखार्थी न कश्चिदुद्वेजयेदित्याह—**यस्मादिति** । एतत्फलमाह—**अभयमिति** ॥ २४ ॥ विपक्षे दोषमाह—**यस्मादिति** । वृकः हिंस्रपशुः दृष्टान्ते वडवाग्निः ॥२५॥ अयं अभयदानलक्षणः यतस्ततः सर्वोपायसाध्यः सहायादिसाध्यो बन्दीमोचनादिरूपः सुभगः ऐश्वर्यहेतुः परः परलोकहेतुश्च ॥ २६ ॥ ततोऽभयदानात् तान् सहायादियुक्तान् प्रवदन्ति प्रकृष्टान्वदन्ति ते च यदि अल्पहृल्लेखाः अलं बाह्यमुखं हृदि लेखेन प्रतिष्ठितं येषां ते बहिर्मुखाः कीर्त्यर्थमभयदानं कुर्युः ये पटवः कुशलाः कृत्स्नं ब्रह्म तन्मूलक एव तदर्थमेवाभयदानमिति निर्णयो येषां अभयदानं सर्वेषां संमतमित्यर्थः ॥ २७ ॥ तपआदिभिर्यद्यत्फलमश्नुते तत् अभयदानस्य अभयदानेन प्राप्नोति ॥ २८ ॥ एतदेव प्रशंसति—**लोके इत्यादिना** ॥ २९ ॥ अभयदानस्य पार्यन्तिकं फलमाह—**सर्वेति**। सर्वेषां भूतानां आत्मभूतस्य प्रत्यगात्मनः 'आत्मा ह्येषां स भवति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धा निर्विकल्पकावस्था उक्ता सर्वभूतानि पश्यत इति 'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' इति श्रुतिप्रसिद्धसार्वज्ञ्यफला सविकल्पावस्था उक्ता अत एवास्य विभुत्वेन गगनस्येव गत्यभावाद्देवा अपि सन्धिरार्षः । मार्गे मुह्यंति पदं ब्रह्मलोकादि तद्रहितस्य पदैषिणो देवाः ॥३२॥ अभयदानश्रैष्ठ्यमुपसंहरति—**दानमिति** ॥ ३३ ॥ अस्यैव स्तुत्यर्थं काम्यं कर्म क्षयिष्णुत्वेन निन्दति—**स एवेति** । सुभगः स्वर्गी व्यापत्तिं नाशं कर्मणां कर्मफलानां स्वर्गादीनाम् ॥ ३४ ॥

अकारणो हि नैवास्ति
धर्मः सूक्ष्मो हि जाजले।
भूतभव्यार्थमेवेह
धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ३५
सूक्ष्मत्वान्न स विज्ञातुं शक्यते बहुनिह्नवः।
उपलभ्यान्तरा चान्यानाचारानवबुध्यते ३६
ये च च्छिन्दति वृषणान्
ये च भिन्दन्ति नस्तकान्।
वहन्ति महतो भारान्
बध्नन्ति दमयन्ति च।
हत्वा सत्त्वानि खादन्ति तान्कथं न विगर्हसे
मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते ॥ ३८
वधबन्धनिरोधेन कारयन्ति दिवानिशम्।
आत्मनश्चापि जानाति यद्दुःखं वधबन्धने३९
पञ्चेन्द्रियेषु भूतेषु सर्वं वसति दैवतम्।
आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्ब्रह्मा प्राणः क्रतुर्यमः ॥
तानि जीवानि विक्रीय
का मृतेषु विचारणा।
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः
सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट् ॥ ४१
धेनुर्वत्सश्च सोमो वै विक्रीयैतन्न सिध्यति।
का तैले का घृते ब्रह्मन् मधुन्यप्स्वौषधेषु वा॥
अदंशमशके देशे सुखसंवर्धितान्पशून्।
तांश्च मातुः प्रियान् जानन्नाक्रम्य बहुधा नराः
बहुदंशाकुलान्देशान्नयन्ति बहुकर्दमान्।
वाहसंपीडिता धुर्याः सीदन्त्यविधिना परे
न मन्ये भ्रूणहत्यापि
विशिष्टा तेन कर्मणा।
कृषिं साध्विति मन्यन्ते
सा च वृत्तिः सुदारुणा ॥ ४५
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्।
तथैवानडुहो युक्तान्समवेक्षस्व जाजले ४६
अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत्तु यः४७
ऋषयो यतयो ह्येतन्नहुषे प्रत्यवेदयन्।
गां मातरं चाप्यवधीर्वृषभं च प्रजापतिम् ॥
अकार्यं नहुषाकार्षी-
र्लप्स्यामस्त्वत्कृते व्यथाम्।
शतं चैकं च रोगाणां
सर्वभूतेष्वपातयन् ॥ ४९
ऋषयस्ते महाभागाः प्रजास्वेव हि जाजले॥
भ्रूणहं नहुषं त्वाहुर्न ते होष्यामहे हविः ॥५०
इत्युक्त्वा ते महात्मानः सर्वे तत्त्वार्थदर्शिनः
ऋषयो यतयः शान्तास्तपसा प्रत्यवेदयन् ५१

---

अकारणः कारणं अनुष्ठानप्रयोजकं फलं तद्धीनः। सूक्ष्मः अभयदानात्मकः। भूतं ब्रह्म भव्यं स्वर्गादि उभयार्थमेव धर्माणां शमादीनां यज्ञादीनां च प्रवचनमध्ययनं वेदे कृतम् अतः स्थूलधर्माद्यज्ञादेरन्यः सूक्ष्मधर्मोऽस्तीति भावः॥३५॥ कुतः सूक्ष्मधर्मो दुर्ज्ञेयः यतो बहुनिह्नवः'सप्तदश प्राजापत्यान् पशूनालभते सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्या' इत्यादि-विधयः श्रेयःसाधनत्वेन हिंसामुपदिशन्तोऽहिंसाशास्त्रमुपघ्नन्तीत्यर्थः। तर्हि तदप्रमाणमेवेत्याशंक्याह-**उपलभ्येति** 'उक्षाणं वा वेहतं वाक्षदन्ते''महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्'इति श्रुतिस्मृतिविहितो मधुपर्के गवालंभ एक आचारः 'मा गामनागामदितिं वधिष्ट' इति मन्त्रलिङ्गावगतो गवोत्सर्गविधिस्तद्विरुद्धोऽन्य आचारः। तत्राऽनागामिति विशेषणात् क्रत्वर्थाहिंसाविधेरहिंसाविधिर्ज्यायानिति गम्यते। अनागस्त्वस्य प्राजापत्यपशुष्वपि तुल्यत्वादित्यास्तां तावत् ॥३६॥यदुक्तम-लक्तपद्मकादीन्यपण्यानि विक्रीणासीति तत्राह-**ये चेति**। नस्तकान् नासागर्भान् वहन्ति वाहयन्ति ॥ ३७ ॥ अविधिना क्रत्वर्थापि हिंसा दोषावहा किमुताऽक्रत्वर्थेत्यर्थः ४४ एतदेवाह—**न मन्ये इति** ॥ ४५ ॥ भूमिशयान्सर्पादीन् अधोमुखं काष्ठं लांगलम् ॥ ४६ ॥ आप्यायध्वमघ्न्यादेव भागमिति श्रुतिप्रसिद्धमघ्न्या इति गवां नाम न हन्तुं शक्या अघ्न्या इति योगात् गवामवध्यत्वं श्रौतमित्यर्थः। चकार कृतवान् आलभेत् हिंस्यात् पृषध्रो गां लभन्निवेति पाठे गां गोजातीयां पृषध्रो वाणः लभन्स्पृशन्निव व्याघ्रभ्रान्त्या निसृष्टो बाणो गवि पतितो न तु गवि विसृष्ट इत्यर्थः ॥४७॥-**शतमिति**। यथा इन्द्रस्य ब्रह्महत्यानार्यादिषु रजआदिरूपेण क्षिप्ता एवं नहुषकृता गोवृषहत्या सर्वभूतेष्वेकाधिकशतरोगरूपेण क्षिप्तेत्यर्थः ॥ ४९ ॥ **भ्रूणहमिति**।

'ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम्।
एकत्र मंत्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति' इति॥

स्मृतेर्गवां ब्राह्मणेन सह समानवंशत्वात् गोघ्नोऽपि भ्रूणहैवेत्यर्थः ॥ ५० ॥ एवमुक्त्वापि तपसा ध्यानेन तं प्रत्यवेदयन् प्रतीपं अवेदयन् हन्तारमपि धीपूर्वं अहन्तारं नहुषं ध्यानबलेन ज्ञात्वा तथैव लोकेऽपि प्रमादात्कृतोऽपि गोवधो व्याधिरूपेण सर्वलोकापकारायाभूत् किमुत बुद्धिपूर्वं कृत इति ज्ञापितवन्त इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

ईदृशानशिवान्घोरानाचारानिह जाजले ।
केवलाचरितत्वात्तु निपुणो नावबुध्यसे ५२
कारणाद्धर्ममन्विच्छेन्न लोकचरितं चरेत् ।
यो हन्याद्यश्च मां स्तौति तत्रापि शृणु जाजले
समौ तावपि मे स्यातां
न हि मेऽस्ति प्रियाप्रियम् ।
एतदीदृशकं धर्मं
प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ५४
उपपत्त्या हि संपन्नो यतिभिश्चैव सेव्यते ।
सततं धर्मशीलैश्च निपुणेनोपलक्षितः ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि तुलाधारजाजलिसंवादे द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

## २६३-[९०]

जाजलिरुवाच ।
अयं प्रवर्तितो धर्मस्तुलां धारयता त्वया ।
स्वर्गद्वारं च वृत्तिं च भूतानामवरोत्स्यते १
कृष्या ह्यन्नं प्रभवति ततस्त्वमपि जीवसि ।
पशुभिश्चौषधीभिश्च मर्त्या जीवन्ति वाणिज
ततो यज्ञः प्रभवति नास्तिक्यमपि जल्पसि ।
न हि वर्तेदयं लोको वार्तामुत्सृज्य केवलाम्
तुलाधार उवाच ।
वक्ष्यामि जाजले वृत्तिं
नास्मि ब्राह्मण नास्तिकः ।
न यज्ञं च विनिन्दामि
यज्ञवित्तु सुदुर्लभः ॥ ४
नमो ब्राह्मणयज्ञाय ये च यज्ञविदो जनाः ।
स्वयज्ञं ब्राह्मणा हित्वा क्षत्रयज्ञमिहास्थिताः ५
लुब्धैर्वित्तपरैर्ब्रह्मन्नास्तिकैः संप्रवर्तितम् ।
वेदवादानविज्ञाय सत्याभासमिवानृतम् ६
इदं देयमिदं देयमिति चायं प्रशस्यते ।
अतः स्तैन्यं प्रभवति विकर्माणि च जाजले ७

---

**केवलेति** । मधुपर्कादौ गवाद्यालम्भः पूर्वैः कृत इत्यंन्धपरंपरामात्रात्करोषि न तु तत्त्वबुद्ध्या ॥ ५२ ॥ कारणात् हेतुतः येन भूतानामभयं स धर्म इति जानीयान्न गतानुगतिकः स्यादित्यर्थः ॥ ५३ ॥ प्रियाप्रियं हर्षविषादौ तौ हि हिंसायां प्रवर्तयतः तथा चापस्तंबः-'हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति । धर्मातिक्रमान्नश्यति इति क्रुद्धो हन्यात्पितॄनपि' इति तस्मात्सर्वभूताभयप्रदानमेव महान् धर्म इत्याशयः ॥ ५४ ॥ सेव्यते धर्मः निपुणेन चक्षुषा उपलक्षितश्च ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

**२६३**

ये च छिन्दन्ति वृषणानित्यादिना कृषिं दूषयता त्वया लोकद्वयं नाशितमित्याह—**अयमिति** ॥ १ ॥ नास्तिक्यं हिंसात्मकत्वेन यज्ञनिन्दा ॥ ३ ॥ वृत्तिं अहिंस्रां जीविकां वक्ष्यामि वच्मि । अस्मद्वृत्त्या वानप्रस्थवृत्त्या वन्येन वा जीविकायाः संभवात् किं हिंसात्मकया कृष्येति भावः । न च कृषिद्रोहमात्रान्नास्तिक्यं यज्ञनिन्दा वा कृता भवतीत्याह —**नास्मीति** । तथापि यज्ञवित् 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेर्यो यज्ञभोक्तारं परमात्मानं वेद स दुर्लभः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणानां ब्रह्मविदां यज्ञः ब्रह्माग्नौ जीवहविषस्त्यागस्तस्मै योगायेत्यर्थः । स्वयज्ञं योगं क्षत्रयज्ञं हिंसामयं ज्योतिष्टोमादिम् ॥ ५ ॥ क्षत्रयज्ञं विशिनष्टि —**लुब्धैरिति** । हे ब्रह्मन् आस्तिकैः वेदप्रामाण्यवादिभिः वेदवादान् अर्थवादान् तेषां स्तुतिमात्रे तात्पर्यमित्यविज्ञाय सत्यवदाभासमानं स्वरूपतः अनृतं आविद्यकब्राह्मण्याद्यध्यासमूलत्वात् लुब्धैः संप्रवर्तितम् । तथा च श्रुतिः-' नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति' इति । अज्ञानेन आवृताः जल्प्या अर्थवादगिरा असुतृपः प्राणपोषकाः उक्थशासः कर्मानुशासनपराः ॥ ६ ॥ **इदमिति** । ' यज्ञ आयुष्मान् सदक्षिणाभिरायुष्मान् । प्राचीदिग्घोतुर्दक्षिणाध्वर्योः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिविहिता दक्षिणा देया 'षट् देया द्वादश देयाः ' इति तादृशश्च दक्षिणावानयं यज्ञः प्रशस्यते । अन्यथा अतो यज्ञादेव स्तैन्यं लुब्धस्य यजमानस्य

यदेव सुकृतं हव्यं तेन तुष्यन्ति देवताः।
नमस्कारेण हविषा स्वाध्यायैरौषधैस्तथा।
पूजा स्याद्देवतानां हि यथा शास्त्रनिदर्शनम्
इष्टापूर्तादसाधूनां विगुणा जायते प्रजा।
लुब्धेभ्यो जायते लुब्धः समेभ्यो जायते समः
यजमाना यथाऽऽत्मानमृत्विजश्च तथा प्रजाः
यज्ञात्प्रजा प्रभवति नभसोऽम्भ इवामलम् १०
अग्नौ प्रास्ताहुतिर्ब्रह्मन्नादित्यमुपगच्छति।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ११
तस्मात्सुनिष्ठिताः पूर्वे सर्वान्कामांश्च लेभिरे
अकृष्टपच्या पृथिवी आशीभिर्वीरुधोऽभवन्
न ते यज्ञेष्वात्मसु वा फलं पश्यन्ति किञ्चन
शङ्कमानाः फलं यज्ञे ये यजेरन्कथञ्चन ॥ १३
जायन्ते साधवो धूर्ता लुब्धा वित्तप्रयोजनाः
स स्म पापकृतां लोकान्गच्छेदशुभकर्मणा ॥
प्रमाणमप्रमाणेन यः कुर्यादशुभं नरः।
पापात्मा सोऽकृतप्रज्ञः सदैवेह द्विजोत्तम १५
कर्तव्यमिति कर्तव्यं वेत्ति वै ब्राह्मणो भयम्।
ब्रह्मैव वर्तते लोके नैव कर्तव्यतां पुनः ॥ १६

सामर्थ्ये सति यथोक्तदक्षिणामददतः प्रकर्षेण भवति। विकर्माणि तस्य कर्माणि विपरीतान्यश्रेयस्कराणि च भवन्ति। यथोक्तम्—

'प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति श्रुतिः स्मृतिः' इति।

'नास्ति यज्ञसमो रिपुः' इति च ॥७॥ एवं क्षत्रयज्ञं निन्दित्वा ब्राह्मणयज्ञस्वरूपमाह—**यदेवेति**। सुकृतं सुकृतार्जितं हव्यम्। तदेव त्रिविधमाह—**नम इति**। नमस्कारात्मकेन हविषेति सामानाधिकरण्यम्। 'यो नमसा स्वध्वरः' इति 'यज्ञो वै नम इति हि ब्राह्मणं भवति' इति श्रुतिस्मृतिभ्यां नमस्कारस्यैव यज्ञत्वावगतेः। तथा स्वाध्यायैर्हविषेति सम्बन्धः। 'वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चिन्तयेमाजनाँ अति' इति वेदस्यापि यज्ञत्वश्रुतेः। अर्वता अश्वेन ब्रह्मणा वेदेन वाऽग्ने त्वां चिन्तयेम जानीम। तथा चाश्वमेधतुल्यत्वं ब्रह्मयज्ञस्योक्तम्। आश्वलायनगृह्येऽपि 'आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टम्भरामसि। ते ते भवं तूक्षण ऋषभासो वशा उत' इत्येत एव उक्षाणश्च ऋषभाश्च वशाश्च भवन्ति य इमं स्वाध्यायमधीयत इति। तथा औषधैर्व्रीहियवादिभिः 'पशुभ्यो वै मेधा उदक्रामंस्तौ व्रीहिश्चैव यवश्च भूतावजायेतां तस्मादापुः पुरोडाशसत्रं लोक्यम्' इति च तयोर्हविष्ट्वावगमात् पुरुषाश्वगोऽजानां पशूनाममेध्यत्वश्रुतेश्च त एत उत्क्रान्तमेधा अमेध्याः पशव इति। तथा चैतैस्त्रिभिर्हविर्भिर्देवतापूजा यज्ञाख्या कर्तव्येति शास्त्रे वेदे निदर्शनं प्रत्यायकं वचनमस्ति तदप्युदाहृतमेव ॥ ८ ॥ ननु 'इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः' इति भगवता यज्ञानां धनपुत्रादिप्राप्त्यर्थत्वोक्तेः किं तैर्मोक्षानुपयोगिभिरित्याशंक्याह—**इष्टेति**। इष्टं इष्टिपशुसोमादि आपूर्तं तटाकारामादि असाधूनां कामनावतां यज्ञात्तादृगेव लुब्धमपत्यं भवति समेभ्यो रागद्वेषशून्येभ्य इष्टादिकर्तृभ्योऽनीप्सितापि तादृशी प्रजा जायत इत्यर्थः ॥९॥ अन्त्यमर्धं व्याचष्टे—**यजमाना इति**। ऋत्विजो यजमानाश्च यथा आत्मानं सकाममकामं वा पश्यन्ति तथा उभयेषामपि प्रजा भवति। तथाहि—ऋत्वग्नोपासनस्य ऋत्विक्कर्तृकस्यापि फलं उभयगामि दृष्टम्। 'आत्मने वा यजमानाय वा यं कामं कामयते तमागायति'ति ॥ १० ॥ यज्ञस्य प्रजाहेतुत्वे मनुवाक्यं प्रमाणयति—**अग्नाविति** ॥ ११ ॥ तस्मात् यज्ञात् सुनिष्ठिता यज्ञमात्रनिष्ठा न तु कामपराः। पूर्वे विनाऽपि फलाभिसन्धिं सर्वान्कामानान्तरीयकतया लेभिरे। 'यथोक्तमापस्तंबेन—'तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते च्छाया गन्ध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते' इति। एतदेवाह—**अकृष्टेति**। यथा च कर्षणाभावान्न गवां भुवो भूमिशयानां वा हिंसा भवति अभवन्फलपुष्पवत्य इति शेषः। आशीर्भिर्जगतः शुभानुध्यानेन ॥ १२ ॥ **न ते इति**। यज्ञानां स्वाभाविकत्वादात्मनश्चानाधेयातिशयत्वान्न कर्मणः फलं कर्तरि पश्यन्ति। शंकमाना यज्ञे फलमस्ति न वेति संदिहानाः ॥१३॥ असाधवः धूर्ताः दाम्भिकाः। स स्मेत्यादिसार्धः। अप्रमाणेन कुतर्केण प्रमाणं वेदं अशुभं कुर्यात् सः पापकृतां लोकान् गच्छेत् स्मेत्यन्वयः। स च सदैवाकृतप्रज्ञो भवति न कदाचिदपि मुच्यत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ एवं श्लोकत्रयेण फलाभिसन्धिशून्यं कर्म प्रशस्य दाम्भिककुतार्किकौ च निन्दितौ। इदानीं विद्वदभिसन्धिमाह—**कर्तव्यमिति**। कर्मेत्युत्तरश्लोकादपकृष्यते। कर्म कर्तव्यं नित्यमित्येव कर्तव्यम्। कुतो नित्यं यतः वै इति निश्चितं ब्राह्मणो वेदनिष्ठः भयं वेत्ति। कर्माकरणे इति शेषः। ब्राह्मणशब्दार्थमाह—**ब्रह्मेति**। लोके ऋत्विग्घविर्मन्त्राग्न्यादिरूपेण ब्रह्मैव वर्तते इति यो वेत्ति कर्तव्यतां कर्तुमर्हतां आत्मनि च यो वर्णाध्यासपूर्वकं कर्तृत्वं च पुनर्नैव वेत्ति स ब्राह्मण इत्यर्थः। कर्तृत्वाभिमानं फलाभिलाषं च त्यक्त्वा कर्माङ्गेषु ब्रह्मदृष्टिं कुर्वाणा अशनपानादाविव स्वरसेनैव कर्माणि कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥

**विगुणं च पुनः कर्म ज्याय इत्यनुशुश्रुम।**
**सर्वभूतोपघातश्च फलभावे च संयमः॥ १७**
**सत्ययज्ञा दमयज्ञा अर्थलुब्धार्थतृप्तयः।**
**उत्पन्नत्यागिनः सर्वे जना आसन्नमत्सराः**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञतत्त्वज्ञाः स्वयज्ञपरिनिष्ठिताः।**
**ब्राह्मं वेदमधीयन्तस्तोषयन्त्यपरानपि॥ १९**
**अखिल दैवतं सर्वं ब्रह्म ब्रह्मणि संश्रितम्।**
**तुष्यन्ति तृप्यतो देवास्तृप्तातृप्तस्य जाजले**
**यथा सर्वरसैस्तृप्तो नाभिनन्दति किञ्चन।**
**तथा प्रज्ञानतृप्तस्य नित्यतृप्तिः सुखोदया २१**
**धर्माधारा धर्मसुखाः कृत्स्नव्यवसितास्तथा।**
**अस्ति नस्तत्त्वतो भूय इति प्राज्ञस्त्ववेक्षते॥**
**ज्ञानविज्ञानिनः केचित्परं पारं तितीर्षवः।**
**अतीव पुण्यदं पुण्यं पुण्याभिजनसंहितम् २३**
**यत्र गत्वा न शोचन्ति**
**न च्यवन्ति व्यथन्ति च।**
**ते तु तद्ब्रह्मणः स्थानं**
**प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः॥ २४**
**नैव ते स्वर्गमिच्छन्ति न यजन्ति यशोधनैः।**
**सतां वर्त्मानुवर्तन्ते यजन्ते चाविहिंसया॥**
**वनस्पतीनोषधीश्च फलं मूलं च ते विदुः।**
**न चैतानृत्विजो लुब्धा याजयन्ति फलार्थिनः**
**स्वमेव चार्थं कुर्वाणा यज्ञं चक्रुः पुनर्द्विजाः।**
**परिनिष्ठितकर्माणः प्रजानुग्रहकाम्यया॥ २७**

यदुक्तमतः स्तैन्यं प्रभवतीति विगुणात्कर्मणो दोषोऽस्तीति तत्राह—**विगुणमिति**। एवंविदो ब्राह्मणस्य विगुणमपि कर्म ज्यायः। तथा चानुशुश्रुम वेदे—' यदु चैवास्मिन् शव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसम्भवन्तीति '। अन्त्येष्ट्यभावेऽपि विदुषोऽर्चिरादिगतिरस्त्येव किमुत तत्राङ्गवैगुण्ये इति श्रुत्यर्थः। किं चैवंविदः कर्मणि सर्वैर्भूतैः श्वसूकरादिभिर्मेध्यपशुभिरुपघातोऽपि ज्यायान् आत्मानुसन्धानहेतुत्वात् न तु मूढस्य साङ्गमपि कर्म ज्याय इति भावः। तथा फलभावे उपघातफलस्य इदं मे कर्मानेनोपघातेन नष्टमिति बुद्धिस्तत्सत्त्वे संयमः प्रायश्चित्तमुक्तं नान्यथा। चकारो हेत्वर्थः। तथा चाम्नातमैतरेयके—' तदाहुर्यस्य गार्हपत्याहवनीयावन्तरेणानो वा रथो वाऽश्वो वा प्रतिपद्येत का तत्र प्रायश्चित्तिरिति नैनन्मनसि कुर्यादित्याहुरात्मन्यस्य हि ता भवन्तीति तच्चेन्मनसि कुर्वीत गार्हपत्यादाविच्छिन्नामुदकधारां हरेत्तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहीत्याहवनीयात्सा तत्र प्रायश्चित्तिः' इति। अतः शकटं एनत् एतत् अस्य यजमानस्य आत्मनि स्वरूपे हि यस्मात् ता तानि अनआदीनि सुपां सुलुगिति सुपो डादेशः॥ १७॥ एवं विदुषः कर्मयज्ञं प्रशस्य यज्ञान्तरमप्याह-शिष्टाचारप्रदर्शनमुखेन-**सत्येति**। अर्थलुब्धाः परमपुरुषार्थे लोभवन्तः अर्थेषु धनेषु विषयेषु तृप्तिर्येषां ते वैराग्यतृप्ता इत्यर्थः। परमपुरुषार्थेनैव तृप्ता इति वा। उत्पन्नत्यागिनः श्वस्तनसंग्रहमकुर्वन्तः अमत्सरा इति च्छेदः॥१८॥ स्वयज्ञो योगः ब्राह्मं वेदं प्रणवम्॥ १९॥ कथं तोषयन्तीत्यत आह—**अखिलमिति**। सर्वं ब्रह्म प्रणवः कार्यकारणोभयरूपत्वात्। 'एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः' इति श्रुतेः। तत् अखिलं दैवतं सर्वदेवतात्मकं वाच्यवाचकयोरभेदात्। ओंकारः सर्वदैवत्य इत्यनुक्रमणिकायां कात्यायनवचनाच्च। तच्च ब्रह्मणि ब्रह्मविदि स्थितं अतस्तृप्यतोऽश्नतो ब्रह्मविदस्तृप्तस्य च सप्तम्यर्थे षष्ठी ब्रह्मविदि तृप्ते सति देवा विराडवयवभूता आदित्यादयस्तुष्यन्ति। तथा चोक्तं छान्दोग्ये-'प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यति ' इत्यादि भुञ्जानोऽपि विद्वान्विश्वं तर्पयति किमुतायजमान इत्याशयः॥ २०॥ किंचन रसान्तरं नाभिनन्दति दृष्ट्वा न तुष्यति॥ २१॥ ईदृक्प्रज्ञालाभे हेतुमाह—**धर्मेति**। धर्माधारा धर्मैकाश्रयाः धर्मसुखाः धर्मेणैव मुखं येषां कृत्स्नं कार्याकार्यं व्यवसितं निश्चितं यैः ईदृशा वयं स्मः। नः अस्माकं तत्त्वतः स्वरूपात् बुद्धौ चिदाभासात्मकात् सूत्रात्मकप्राणसंज्ञात् भूयः बहुतरं विश्वव्यापकत्वात् प्राण एव सर्वापेक्षया भूयान् तेनाऽपि बहुतरः। प्राणाद्युत्पत्तिस्थानं भूतात्माऽस्तीति प्राज्ञः कर्मभिः शुद्धान्तःकरण ईक्षते आलोचयति॥ २२॥ तितीर्षवो यत्र गत्वा न शोचन्ति तत् ब्रह्मणः स्थानं सात्त्विकाः प्राप्नुवन्तीति द्वयोः सम्बन्धः। ज्ञानं शास्त्रजं विज्ञानमनुभवस्तद्वन्तः॥ २३॥ **नैवेति**। ते तितीर्षवः तस्य नाम महद्यशः इति श्रुतेर्यशो ब्रह्म धनैर्धनसाध्यैः कर्मभिः सतां वर्त्म योगमनुवर्तन्ते यजन्ते चाविहिंसया॥ २५॥ विदुः हविष्ट्वेन एतान् निर्धनान् ऋत्विजो न याजयन्ति यतः फलार्थिनो धनार्थिनः॥ २६॥ कथं तर्हि ते यज्ञं संपादयन्तीत्यत आह—**स्वमेवेति**। स्वं आत्मानमेव अर्थं यज्ञोपकरणसामग्रीं संकल्पसमकालोत्थां कुर्वाणा मानसिकं यज्ञं चक्रुः। तथा चोपबृंहितं त्रिताख्यायिकया प्रागेव मन्त्रलिङ्गं च 'त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ' इति। ऊतये यज्ञसंतत्यविच्छेदाय परिनिष्ठितं समापितं कर्म यैस्ते तथाभूता अपि लोकानुग्रहार्थं मानसैर्यज्ञैर्यजन्ते इत्यर्थः॥ २७॥

तस्मात्तानृत्विजो लुब्धा
याजयन्त्यशुभान्नरान् ।
प्रापयेयुः प्रजाः स्वर्गं
स्वधर्माचरणेन वै ।
इति मे वर्तते बुद्धिः
समा सर्वत्र जाजले ॥ २८
यानि यज्ञेष्विहेज्यन्ति सदा प्राज्ञा द्विजर्षभाः
तेन ते देवयानेन पथा यान्ति महामुने २९
आवृत्तिस्तस्य चैकस्य
नास्त्यावृत्तिर्मनीषिणः ।
उभौ तौ देवयानेन
गच्छतो जाजले यथा ॥ ३०
स्वयं चैषामनड्वाहो युज्यन्ति च वहन्ति च ।
स्वयमुस्राश्च दुह्यन्ते मनःसङ्कल्पसिद्धिभिः ॥
स्वयं यूपानुपादाय यजन्ते स्वाप्तदक्षिणैः ।
यस्तथा भावितात्मा स्यात्स गामालब्धुमर्हति
ओषधीभिस्तथा ब्रह्मन्यजेरंस्तेन तादृशाः ।
इति त्यागं पुरस्कृत्य तादृशं प्रब्रवीमि ते ३३
निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
न श्रावयन्न च यज-
न्न ददद्ब्राह्मणेषु च ।
काम्यां वृत्तिं लिप्समानः
कां गतिं याति जाजले ।
इदं तु दैवतं कृत्वा
यथा-यज्ञमवाप्नुयात् ॥ ३५
जाजलिरुवाच ।
न वै मुनीनां शृणुमः स्म तत्त्वं
पृच्छामि ते वाणिज कष्टमेतत् ।
पूर्वे पूर्वे चास्य नावेक्षमाणा
नातः परं तमृषयः स्थापयन्ति ॥ ३६
यस्मिन्नेवात्मतीर्थेन पशवः प्राप्नुयुर्मखम् ।
अथ स्म कर्मणा केन वाणिज प्राप्नुयात्सुखम्
शंस मे तन्महाप्राज्ञ भृशं वै श्रद्दधामि ते ३७

---

यस्मादेवंविधान् लुब्धा ऋत्विजो न याजयन्ति ते च ताभिच्छन्ति तस्मात्तानेवाशुभान् मोक्षेच्छारहितांस्ते लुब्धा ऋत्विजो याजयन्तीत्याह–**तस्मादिति** । इतरे तु साधवः स्वधर्माचरणेन परान् उपकुर्वन्ति न तु धर्मफलं कामयन्ते समबुद्धित्वादित्याह–**प्रापयेयुरिति । इतीति** । इति हेतोः सदसद्वृत्त्योर्विभिन्नत्वादहं सद्वृत्तमेवानुसरामीत्यर्थः ॥ २८ ॥ **यानीति** । यानि मार्गदैवतानि धूमरात्र्यादीनि पुनरावृत्तिप्रदमार्गप्रदर्शकानि अर्चिरहरादीनि अपुनरावृत्तिप्रदमार्गप्रदर्शकानि वा । प्राज्ञाः कर्मठा उपासका वा इज्यन्ति यजन्ते तेन यजनेन 'तं यथायथोपासते तथेतः प्रेत्य भवन्ति' इतिश्रुतेस्ते यजमानाः यथाभावनं तेन तेन देवयानेन पथा मार्गेण अत्र पितृयाणोऽपि देवयानपदेनोच्यते ते पितृलोकं देवलोकं वा यान्ति । 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः' इति श्रुतेः ॥ २९ ॥ तस्य देवयानेन गतस्यापि एकस्य कर्मठस्यावृत्तिरस्ति अथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्त इति धूमादिमार्गेण गतानामावृत्तिश्रुतेः । मनीषिणः मनोरोधशीलस्योपासकस्य नास्त्यावृत्तिः । न च पुनरावर्तन्त इत्यर्चिरादिमार्गगतानामनावृत्तिश्रुतेः । उभौ कर्मठोपासकौ देवैः धूमाग्न्यादिभिरातिवाहिकैः सह यान्त्यस्मिन्निति देवयानस्तेन दिव्येन मार्गेण यद्यप्युभावपि गच्छतस्तथाऽपि संकल्पभेदात्तयोरावृत्त्यनावृत्ती भवत इति महद्वैलक्षण्यमित्याशयः ॥ ३० ॥ विदुषां सत्यसंकल्पानामैश्वर्यमाह–**स्वयमिति** । अनडुह इत्युपलक्षणम् । सर्वमेषां सौभर्यादीनामिव संकल्पेनैव सिद्ध्यतीत्यर्थः । उस्रा धेनवः ॥३१॥ तेषां क्रतवोऽपि मानसिका एवेत्याहार्धेन–**स्वयमिति** । सिद्धसंकल्पत्वाद्यूपदक्षिणादीन्मनसैव सृजन्तीत्यर्थः । ततश्च किमित्यत आह–**य इति** । भावितात्मा योगाभ्यासशोधितचित्तः स मधुपर्के गां आलब्धुं हिंसितुमर्हति । 'न कर्मणा लिप्यते पापकेन' इति विदुषि दोषालेपश्रुतेः ॥ ३२ ॥ इतरस्तु पशुबीजादिवधात्प्रत्यवैत्येवेत्याह–**न तादृशा इति** । मूढाः न गवौषधादिभिर्यष्टुमर्हा इत्यर्थः । **इतीति** । यस्मात्त्यागिनामीदृङ्माहात्म्यं तस्माद्धेतोरित्यर्थः ॥ ३३ ॥ संक्षेपेण त्यागिनो लक्षणमाह–**निराशिषमिति** ॥ ॥ ३४ ॥ कां गतिं याति 'तस्मादाहुरयजमानमददानमासुरो ते' इति श्रुतः । स आसुरः कामपि गतिं देवमार्गे पितृमार्गे वा न यातीत्यर्थः । कथं तर्हि गतिं यान्तीत्यत आहार्धेन–**इदमिति** । इदं निराशिषमिति श्लोकोक्तलक्षणं दैवतं दैवतमिव सेवनीयं कृत्वा यथा यथावत् यज्ञं परमात्मानम् । 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतः । अवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ मुनीनां स्वयं यूपानुपादाय 'यजन्ते स्वाप्तदक्षिणैः' इत्युक्तरूपाणामात्मयाजिनां एतत्तत्त्वं रहस्यं न स्म शृणुमो न श्रुतवन्तो वयं यतः कष्टं गहनं अतस्त्वां पृच्छामि अस्य योगधर्मस्य नावेक्षमाणाः न आलोचनं कृतवन्तः अवेक्षमाणा अपि अतः परमपि तं धर्मं न स्थापयन्ति लोके न प्रवर्तयन्ति रहस्यत्वादेव ॥ ३६ ॥ यस्मिन्निति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययं यदर्थे एव एवं यद्येवं त्वदुक्तप्रकारेण आत्मतीर्थे आत्मैव

तुलाधार उवाच ।
उत यज्ञा उतायज्ञा मखं नार्हन्ति ते क्वचित्
आज्येन पयसा दध्ना पूर्णाहुत्या विशेषतः ।
वालैः शृङ्गेण पादेन संभरत्येव गौर्मखम् ३८
पत्नीं चानेन विधिना प्रकरोति नियोजयन्
इष्टं तु दैवतं कृत्वा यथा यज्ञमवाप्नुयात् ३९
पुरोडाशो हि सर्वेषां पशूनां मेध्य उच्यते ।
सर्वा नद्यः सरस्वत्यः सर्वे पुण्याः शिलोच्चयाः
जाजले तीर्थमात्मैव मा स्म देशातिथिर्भव ।
एतानीदृशकान्धर्मानाचरन्निह जाजले ।
कारणैर्धर्ममन्विच्छन्स लोकानाप्नुते शुभान्
भीष्म उवाच ।
एतानीदृशकान् धर्मांस्तुलाधारः प्रशंसति
उपपत्त्याभिसंपन्नान्नित्यं सद्भिर्निषेवितान् ४२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि तुलाधारजाजलिसंवादे त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

## २६४-[९१]

तुलाधार उवाच ।
सद्भिर्वा यदि वाऽसद्भिः
पन्थानमिममास्थितम् ।
प्रत्यक्षं क्रियतां साधु
ततो ज्ञास्यसि तद्यथा ॥ १
एते शकुन्ता बहवः समन्ताद्विचरन्ति ह ।
तवोत्तमाङ्गे संभूताः श्येनाश्चान्याश्च जातयः
आहूयैनान्महाब्रह्मन्विशमानांस्ततस्ततः ।
पश्यैमान्हस्तपादैश्च श्लिष्टान्देहेषु सर्वशः ३

---

तीर्थं यज्ञभूमिस्तत्र पशवः पशुप्रायाः मन्दमतयो मखं मानसिकं क्रतुं न प्राप्नुयुः । तत्प्राप्तेर्बहुपुण्यसाध्यत्वात् । अथ तर्हि प्राप्नुयात् प्राप्नुयुः वचनव्यत्यय आर्षः । तत् कर्म ते तव वाक्यमिति शेषः ॥ ३७ ॥ **उतेति** । एक उतशब्दोऽधिकविवक्षायां अन्योऽप्यर्थे । किञ्च येषां दाम्भिकानां यज्ञा अपि श्रद्धादिराहित्यात् अयज्ञा भवन्ति । ते क्वचित् अन्तर्बहिर्वा मखं नार्हन्ति । श्रद्धानानां तु एकया गवैव बाह्यक्रतुसिद्धिरित्याह-**आज्येनेति** । दर्शपूर्णमासयोः श्रूयते-'सर्वस्मै वा एतद्यज्ञाय गृह्यन्ते यद्ध्रुवायामाज्यम् । ऐन्द्रं पयोऽमावास्यायां ऐन्द्रं दध्यमावास्यायाम्'। आधानप्रकरणे च ' द्वादशगृहीतेन स्रुचं पूरयित्वा सप्तवत्या पूर्णाहुतिं जुहोति'इति।आज्येनेति शेषः । ' सप्त ते अग्ने समिधः ' इत्यृचा । विशेषत इति श्रौतमखो दर्शितः । तत्राशक्तानां तु वालैः गोपुच्छे पितृतर्पणादिना शृङ्गेण गोशृङ्गेणाभिषेकादिना पादेनेति पादरजसेत्यर्थः । एतेषां गोस्पर्शनादीनां च सद्यः पापनाशकत्वं परलोकप्रदत्वं च स्मृत्युक्तं दर्शितम् ॥ ३८ ॥ ननु पत्न्यभावे विशेषवान् श्रौतो मखः कथं स्यादित्यत आह-**पत्नीमिति** । अनेन पशुहिंसारहितेन आज्यादिसाध्यक्रतुविधिना आज्यादिद्रव्यं देवतार्थे विनियोजयन् हेतौ शतृप्रत्ययः । विनियोगहेतोः पत्नीं च मानसीमेव करोति श्रद्धामिति शेषः । तस्मादपत्नीकोऽग्निहोत्रमाहरेत्तस्मादपत्नीकस्याधानं कुर्वन्तीत्युक्त्वा श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमान इति बह्वृचब्राह्मणे अपत्नीकस्याग्निहोत्राधानादौ श्रद्धायाः पत्नीत्वदर्शनात् । इष्टं भावे क्तः । यागमेव दैवतवदत्यन्तं सेवनीयं कृत्वा यथा यथावत् यज्ञं विष्णुं प्राप्नुयात् ॥ ३९ ॥ तत्र यागविशेषं नियमयति-**पुरोडाशो हीति** । हिशब्देन त एत उत्क्रान्तमेधा अमेध्याः पशव इति पशूनाममेध्यत्वं तस्मादाहुः पुरोडाशसत्रं लोक्यमिति पुरोडाशसत्रप्राशस्त्यं च श्रुतिप्रसिद्धं द्योत्यते मेधो यज्ञस्तदर्हो मेध्यः । 'सर्वेषां वा एष पशूनां मेधेन यजते यः पुरोडाशेन यजते ' इति श्रुतेः। मूले पशूनामिति न निर्द्धारणे षष्ठी। पशूनाममेध्यत्वात् पुरोडाशस्य चापशुत्वात् तेन पशुसम्बन्धी यो मेधस्तदर्हः पुरोडाश इति श्रुत्यनुसारेण स्मृत्यर्थो वर्णनीयः । एवं श्रद्धावतामविदुषां यज्ञमुक्त्वा विदुषां यज्ञमाह-**सर्वा इति** ॥४०॥ तीर्थं यज्ञभूमिः यत्रैवात्मसमाधानं तत्रैव सर्वाणि तीर्थानि सन्तीत्यर्थः । तीर्थमिति यज्ञाद्युपलक्षणं ईदृशकान् अहिंस्रान् । कारणैः अर्थित्वसमर्थत्वविद्वत्त्वतारतम्यैः ॥४१॥ उपपत्त्या युक्त्या ॥४२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६३॥

२६४

एवं श्रुत्यविरोधेनाहिंसात्मको धर्मः प्रतिपादितस्तत्र दृष्टप्रत्ययोत्पादनपूर्वकं श्रद्धां द्रढयितुमारभते-**सद्भिरिति** । क्रियतां कुरु पन्थानं आतिष्ठ अस्य फलं च त्वया प्रत्यक्षं क्रियतामित्यध्याहृत्य वा योज्यम्। आहूय तत्फलं यथा तथा ज्ञास्यसीति चतुर्थेन सम्बन्धः ॥ १ ॥ ततस्ततः तेषु तेषु नीडेषु प्रवेशाय श्लिष्टान् संकुचितहस्तपादान् ॥ ३ ॥

संभावयन्ति पितरं त्वया संभाविताः खगाः
असंशयं पिता वै त्वं पुत्रानाहूय जाजले ॥ ४
भीष्म उवाच ।
ततो जाजलिना तेन समाहूताः पतत्रिणः
वाचमुच्चारयन्ति स्म धर्मस्य वचनात्किल ५
अहिंसादिकृतं कर्म इह चैव परत्र च ।
श्रद्धां निहन्ति वै ब्रह्मन्सा हता हन्ति तं नरम्
समानां श्रद्दधानानां संयतानां सुचेतसाम् ।
कुर्वतां यज्ञ इत्येव न यज्ञो जातु नेष्यते ॥ ७
श्रद्धा वैवस्वती सेयं सूर्यस्य दुहिता द्विज ।
सावित्री प्रसवित्री च बहिर्वाङ्मनसी ततः ८
वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धं च भारत ।
श्रद्धावृद्धं वाङ्मनसी न कर्म त्रातुमर्हति ॥ ९
अत्र गाथा ब्रह्मगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः
शुचेरश्रद्दधानस्य श्रद्दधानस्य चाशुचेः ॥ १०
देवा वित्तममन्यन्त सदृशं यज्ञकर्मणि ।
श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ॥
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् १२
प्रजापतिस्तानुवाच विषमं कृतमित्युत ।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ।
भोज्यमन्नं वदान्यस्य कदर्यस्य न वार्धुषेः १३
अश्रद्दधान एवैको देवानां नार्हते हविः ।
तस्यैवान्नं न भोक्तव्यमिति धर्मविदो विदुः
अश्रद्धा परमं पापं
श्रद्धा पापप्रमोचिनी ।
जहाति पापं श्रद्धावान्
सर्पो जीर्णामिव त्वचम् ॥ १५
ज्यायसी या पवित्राणां निवृत्तिः श्रद्धया सह
निवृत्तशीलदोषो यः श्रद्धावान्पूत एव सः ॥
किं तस्य तपसा कार्यं किं वृत्तेन किमात्मना
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः
इति धर्मः समाख्यातः सद्भिर्धर्मार्थदर्शिभिः ।
वयं जिज्ञासमानास्तु संप्राप्ता धर्मदर्शनात् ॥
श्रद्धां कुरु महाप्राज्ञ ततः प्राप्स्यसि यत्परम्
श्रद्धावान् श्रद्दधानश्च धर्मश्चैव हि जाजले ।
स्ववर्त्मनि स्थितश्चैव गरीयानेव जाजले १९
भीष्म उवाच ।
ततोऽचिरेण कालेन तुलाधारः स एव च
दिवं गत्वा महाप्राज्ञौ विहरेतां यथासुखम्
स्वं स्वं स्थानमुपागम्य स्वकर्मपरिवर्जितम् ।
एवं बहुविधार्थं च तुलाधारेण भाषितम् २१
सम्यक्चेदमुपालब्धो
धर्मश्चोक्तः सनातनः ।
तस्य विख्यातवीर्यस्य
श्रुत्वा वाक्यानि स द्विजः ॥ २२

---

वाचमुच्चारयन्ति निःशंकं प्रत्युत्तरं प्रयच्छन्तीत्यर्थः। तत्र हेतुः धर्मस्य अहिंसात्मकस्य सम्बन्धिनो वचनात् प्रियवचनादित्यर्थः ॥ ५ ॥ एवं अहिंसाधर्मे प्रत्ययमुत्पाद्य फलितमाह— **अहिंसादीति** । हिंसा आदिपदार्थः इह परत्र च प्रत्यक्षफलमिति शेषः । तत्र हि फलमनुभवेन दर्शयित्वा हिंसाफलमाह—**श्रद्धामिति** । हिंसा श्रद्धां विश्वासं निहन्तीत्यध्याहृत्य योज्यम् । तं विश्वासघातिनम् ॥ ६ ॥ समानां लाभालाभयोस्तुल्यानां संयतानां दान्तानां सुचेतसां शान्तानाम् । यज्ञः कर्तव्य इत्येवाभिसन्धाय कुर्वतां यज्ञमनुतिष्ठतां न तु कर्तृत्वाभिमानं फलं चाभिसन्धायेति एवार्थः । तेषां यज्ञो जातु कदाचिन्नेष्यत इति न किंत्विष्यत एव ॥७॥ श्रद्धां स्तौति—**श्रद्धेत्यादिना** । विवस्वान् प्रकाशरूपश्चिदात्मा तत्सम्बन्धिनी वैवस्वती ब्रह्मविषयिणीति यावत् । सेयं सूर्यस्य सूर्यवत्प्रकाशधर्मिणः । सत्त्वस्य दुहितेव दुहिता सात्त्विकीत्यर्थः । सैव च श्रद्धा अवित्री पालयित्री प्रसवित्री विशुद्धजन्मप्रदा । तथा वाङ्मनसयोरपि सान्तरङ्गम् । निश्चयात्मिका हि श्रद्धा सङ्कल्पात्मकं संशयात्मकं मनस्ततो बहिरङ्गम् । ततोऽपि बाह्यतरा वाणी जपध्यानजधर्मापेक्षया श्रद्धैव श्रेष्ठेत्यर्थः ॥८॥ एतदेवाह—**वाग्वृद्धमिति** । वाचा स्वरवर्णविपर्यासेन यद्वृद्धं छिन्नं नष्टं मन्त्राद्युच्चारणे तत् श्रद्धा त्रायते समाधत्ते मनसा व्यग्रेण यन्नष्टं देवताध्यानादि तत् श्रद्धाहीनं तु व्यर्थमेव कर्म अतो न त्रातुमर्हति कश्चित् ॥९॥ श्रद्धाशुचित्वयोः श्रद्धाधिकेत्यत्राख्यायिकामाह—**अत्रेति** ॥१०॥ कदर्यस्य कृपणस्य वार्धुषेः धान्यविक्रयिणः ॥११॥ मीमांसित्वा विचार्य ॥ १२ ॥ हविर्दातुमिति शेषः ॥ १४ ॥ निवृत्तः शीलदोषः आचारलांछनं रागादिर्यस्य स निर्दोषशीलवान् ॥१६॥ यत् या सात्त्विकी राजसी तामसी वा श्रद्धा यस्य स यच्छ्रद्धः स एव सात्त्विको राजसस्तामसो वा ॥१७॥ धर्मदर्शनाख्यान्मुनेः धर्मं वयं प्राप्तवन्तः ॥ १८ ॥ श्रद्धावान्वेदवाक्ये श्रद्दधानस्तदर्थमनुष्ठातुं ममेदं श्रेय इति निश्चयवान् धर्मो धर्मात्मा गरीयान् श्रेष्ठतरः ॥ १९ ॥ अचिरेण अल्पेन दिवं हार्दाकाशाख्यं ब्रह्म विहरेतां सत्यकामः सत्यसंकल्प इति श्रुतेर्योगैश्वर्येण क्रीडामकुरुताम् । स्वं स्वं स्थानं वासदेशं स्वकर्मभिः परिवर्जितं अर्जितमुपागम्येति सार्धः२०

तुलाधारस्य कौन्तेय शान्तिमेवान्वपद्यत । एवं बहुमतार्थं च तुलाधारेण भाषितम् ।
यथौपम्योपदेशेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि तुलाधारजाजलिसंवादे
चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६४॥

## २६५-[९२]

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रजानामनुकंपार्थं गीतं राज्ञा विचख्नुना १
छिन्नस्थूणं वृषं दृष्ट्वा विलापं च गवां भृशम् ।
गोग्रहे यज्ञवाटस्य प्रेक्षमाणः स पार्थिवः ॥ २
स्वस्ति गोभ्योऽस्तु लोकेषु ततो निर्वचनं कृतम्
हिंसायां हि प्रवृत्तायामाशीरेषा तु कल्पिता ॥ ३
अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः ।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥ ४
सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः ५

यथौपम्योपदेशेन यथावद्दृष्टान्तकीर्तनेन ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥

२६५

एवं तुलाधारवाक्यैरहिंसात्मकस्य धर्मस्य श्रैष्ठ्यमुपपाद्य तस्यैव स्तुतये हिंसात्मकं धर्मं निन्दत्याख्यायिकामुखेन— **अत्रापीत्यादिना** । प्रजानां पुरुषादिपशूनाम् ॥ १ ॥ छिन्ना विशस्ता स्थूणा प्रतिमा शरीरं यस्य तम् ' स्थूणायासि स्मृता प्रतिमायां गृहस्तंभे' इति विश्वः । गोग्रहे गवालंभवति यज्ञे यज्ञवाटस्य कर्माणि षष्ठी यज्ञवाटस्थान् ब्राह्मणान्निर्दयान् प्रेक्षमाणः ॥ २ ॥ निश्चितं वचनं निर्वचनं एषा स्वस्ति गोभ्योऽस्त्विति ॥ ३ ॥ तदेवाह— **अव्यवस्थितेत्यादिना** । हिंस्रः क्षत्रयज्ञस्तदन्यो ब्राह्मणयज्ञ इति मर्यादा अव्यवस्थिता विचलिता मर्यादा येषां तैः यतो विमूढैः तत्रापि हेतुर्नास्तिकैः नास्ति ब्रह्मेति वदद्भिः संशयात्माभिः आत्मा देहोऽन्यो वा अन्योऽपि कर्ताऽकर्ता वा अकर्ताऽप्येकोऽनेको वा एकोऽपि संगवान् असंगो वा इत्यादिरूपः संशयस्तद्वान् आत्मा चित्तं येषां तैः अव्यक्तैः यज्ञादिद्वारैव ख्यातिमिच्छद्भिरिति भावः । हिंसा क्रतौ पश्वालम्भः श्रेष्ठः कृतः ॥ ४ ॥ **सर्वेति** । बहिर्वेद्यामिव सर्वकर्मसु ज्योतिष्टोमादिष्वपि नराः कामकारादेव पशून् हिंसन्ति न तु शास्त्रात् यतः धर्मात्मा मनुः सर्ववेदार्थतत्त्ववित् अहिंसामेव अब्रवीत् प्रशशंस । ननु 'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत' 'प्रतिसंवत्सरं सोमः'इति श्रुतिस्मृतिभ्यां नित्यत्वेन विहितेषु ज्योतिष्टोमादिषु विहितः पश्वालंभः कथं कामकारः स्यात् 'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः ' इत्यृणश्रुतेश्चानधीत्यानिष्ट्वा प्रजामनुत्पाद्य च कथमनृणो वा स्यात् अनाहिताग्नितायाश्चोपपातकेषु स्मरणात् कृताधानस्य समर्थस्य क्रत्वनारंभो वा कथं स्यादिति चेन्न गार्हस्थ्यस्यैव कामकारत्वेन तन्मूलकानामाधानादीनामपि तथात्वात् जायमानो वै इत्यत्रापि ना उत्पद्यमान इत्यर्थः । किं तु गृहस्थः अधिकारी वा संपद्यमान इति व्याख्येयम् । अन्यथा पित्रादिष्वकृताधानेषु पुत्रादीनामनाहिताग्निताजनितदोषभाक्त्वोपपत्तेः । किं च'यदहरेवैनं श्रद्धोपनमेदथादधीताथ यजेत' इति शतपथश्रुतेराधानादिविधिषु श्रद्धावानधिकारी । श्रद्धा चाधीतसाङ्गवेदस्य आपातप्रतिपन्नवेदार्थस्य—

' प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ॥
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥ '

इत्यादिश्रुत्या षोडश ऋत्विजो यजमानः पत्नी चेत्यष्टादशभिर्निष्पाद्यानां यज्ञानामदृढत्वं तत्कर्तॄणां च मूढत्वं दर्शयन्त्या ज्योतिष्टोमादिभ्यो हिंसावद्भ्यो यज्ञेभ्यः प्रागेवापनीता।तथा च 'वसन्ते वसन्ते'इति ज्योतिषा यजेतेति विधितो निन्दार्थवादानुमितनिषेधाच्च'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' इति विहितप्रतिषिद्धत्वात् षोडशिग्रहणवत् ज्योतिष्टोमोऽपि कृताकृत एवेति।अश्रद्दधानस्य तत्र प्रवृत्तिः कामकारकृतैव न चोपनिषदध्ययनात्प्रागेव ज्योतिष्टोमे प्रवृत्तिः संभवति । येन निन्दाश्रवणात् प्राक् तत्र श्रद्धा आवश्यकत्वबुद्धिश्च संभाव्यते । 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इति ब्रह्मचर्ये एवार्थज्ञानपर्यन्तस्योपनिषदध्ययनस्य सिद्धत्वात् । ननु कांडद्वया-

तस्मात्प्रमाणतः कार्यो धर्मः सूक्ष्मो विजानता
अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता
उपोष्य संशितो भूत्वा हित्वा वेदकृताः श्रुतीः
आचार इत्यनाचारः कृपणाः फलहेतवः ॥ ७
यदि यज्ञांश्च वृक्षांश्च यूपांश्चोद्दिश्य मानवाः
वृथा मांसं न खादन्ति नैष धर्मः प्रशस्यते ८
सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृसरौदनम् ।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥ ९
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्
विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः १०
पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम्
यज्ञियाश्चैव ये वृक्षा वेदेषु परिकल्पिताः ११
यच्चापि किञ्चित्कर्तव्यमन्यच्चोक्षैः सुसंस्कृतम्
महत्सत्त्वैः शुद्धभावैः सर्वं देवार्हमेव तत् १२

युधिष्ठिर उवाच ।

शरीरमापदश्चापि विविदन्त्यविहिंसतः ।
कथं यात्रा शरीरस्य निरारंभस्य सेत्स्यते

भीष्म उवाच ।

यथा शरीरं न ग्लायेन्नेयान्मृत्युवशं यथा
तथा कर्मसु वर्तेत समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि विचख्नुगीतायां पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

## २६६–[९३]

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं कार्यं परीक्षेत शीघ्रं वाऽथ चिरेण वा
सर्वथा कार्यदुर्गेऽस्मिन् भवान्नः परमो गुरुः

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
चिरकारेस्तु यत्पूर्वं वृत्तमांगिरसे कुले ॥२॥
चिरकारिक भद्रं ते भद्रं ते चिरकारिक ।
चिरकारी हि मेधावी नापराध्यति कर्मसु ३
चिरकारी महाप्राज्ञो गौतमस्याभवत्सुतः ।
चिरेण सर्वकार्याणि विमृश्यार्थान्प्रपद्यते ४
चिरं स चिन्तयत्यर्थांश्चिरं जाग्रच्चिरं स्वपन्
चिरं कार्याभिपत्तिं च चिरकारी तथोच्यते
अलसग्रहणं प्राप्तो दुर्मेधावी तथोच्यते ।
बुद्धिलाघवयुक्तेन जनेनादीर्घदर्शिना ॥ ६ ॥

---

ध्याम्यपि कर्मकांड एव श्रद्धावानहमस्मि न ज्ञानकांडे इति चेत् तर्हि मोहसर्पदष्टस्य तव कर्मनिंबं मधुरीकुर्वतस्तत्त्वज्ञानसितेयं तिक्तायेतां न नः किंचिच्छिन्नम् । सर्वथाऽप्यज्ञानाकामकारकृता हिंस्रकर्मणि प्रवृत्तिरिति सिद्धम्। तस्मादुक्तविध एव श्लोकार्थः ॥ ५ ॥ प्रमाणतः प्रमाणयोर्बलाबलं विजानता सूक्ष्मो धर्मः कार्यः। तमेवाह—**अहिंसेति**॥६॥ गृहस्थस्य पञ्चसूनानामपरिहार्यत्वात्कथम् अहिंसा कार्येत्यत आह—**उपोष्येति** । उप समीपे ग्रामस्य वासं कृत्वा भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशेदिति विधेः संन्यस्येत्यर्थः । संशितस्तीक्ष्णव्रतो भूत्वा वेदेन कृताः श्रुतीः फलश्रुतीः 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्याद्याः हित्वा। आचार इति बुद्ध्या अनाचारो गृहस्थाचारहीनः स्यात् पुरुषस्येदमेव श्रेय इति बुद्ध्या नैष्कर्म्यं श्रयेदित्यर्थः । कृपणाः क्षुद्राः फलमेव कर्मणि प्रवृत्तौ हेतुः कारणं येषां तथाभूताः ॥ ७ ॥ एतदेव कर्मनिन्दया स्तौति–**यदीति** । यज्ञादिपरा मानवा वृथामांसं न खादन्ति इति यः स एष धर्मो न प्रशस्यते ॥ ८॥ वैदिकं धर्मं निन्दित्वा कामकारकृतं कर्म निन्दति—**सुरामिति** सार्धेन । आसवं मद्यं कृसरौदनं तिलमिश्रौदनम् ॥ ९ ॥ एवं निरस्ताखिलदोषो विष्णुमात्मानमेव श्रयेदित्याह–**विष्णुमिति** ॥ १० ॥ तस्यार्चनार्थं च न शक्तेरिव सुरामांसाद्यपेक्षितामित्याह—**पायसैरिति** ॥ ११ ॥ चोक्षैर्विशुद्धैः ॥ १२ ॥ आपदः शरीरं शोषयन्ति शरीरं चापदां नाशमिच्छत्यतोऽत्यन्तं हिंसाशून्यस्य कथं शरीरनिर्वाह इत्याह—**शरीरमिति** ॥ १३ ॥ **यथेति**, शरीराविरोधेनैव धर्मं चरेन्न तु धर्मानुरोधेन शरीरं नाशयेत् ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

### २६६

एवमहिंसाधर्मस्यावश्यानुष्ठेयत्वमुक्त्वा कदाचित्परनिर्बन्धाद्धिंसामुपस्थितां कालविलम्बादिना परिहरेदिति प्रश्नपूर्वकमाख्यायिकामुखेनाह—**कथं कार्यमित्यादिना** । कार्यदुर्गे गुर्वादिवचनादवश्यकर्तव्ये हिंसामयत्वेन दुष्करे च सतीत्यर्थः ॥ १ ॥ चिरकारिनाम निर्वक्ति—**चिरामिति** । कार्याभिपत्तिः कार्याधिगमः तथा तेन हेतुना चिरकारीत्युच्यते ॥ ५ ॥ गृह्यते उपादीयते लोकेऽनेनेति ग्रहणं नामधेयम् । अलस इति ग्रहणं अलसग्रहणं प्राप्तः लाघवं नीचता जनेनोच्यत इति सम्बन्धः ॥ ६ ॥

व्यभिचारे तु कस्मिंश्चिद्व्यतिक्रम्यापरान्सुतान्
पित्रोक्तः कुपितेनाथ जहीमां जननीमिति ७
इत्युक्त्वा स तदा विप्रो गौतमो जपतां वरः
अविमृश्य महाभागो वनमेव जगाम सः ८
स तथेति चिरेणोक्त्वा स्वभावाच्चिरकारिकः
विमृश्य चिरकारित्वाच्चिन्तयामास वै चिरं
पितुराज्ञां कथं कुर्यां न हन्यां मातरं कथम् ।
कथं धर्मच्छलेनास्मिन्निमज्जेयमसाधुवत् १०
पितुराज्ञा परो धर्मः स्वधर्मो मातृरक्षणम् ।
अस्वतन्त्रं च पुत्रत्वं किं तु मां नानुपीडयेत्
स्त्रियं हत्वा मातरं च को हि जातु सुखी भवेत्
पितरं चाप्यवज्ञाय कः प्रतिष्ठामवाप्नुयात्
अनवज्ञा पितुर्युक्ता धारणं मातृरक्षणम् ।
युक्तक्षमावुभावेतौ नातिवर्तेत मां कथम् १३
पिता ह्यात्मानमाधत्ते जायायां जज्ञिवानिति
शीलचारित्रगोत्रस्य धारणार्थं कुलस्य च
सोऽहं मात्रा स्वयं पित्रा पुत्रत्वे प्रकृतः पुनः
विज्ञानं मे कथं न स्याद्द्वौ बुद्ध्ये चात्मसंभवम्
जातकर्माणि यत्प्राह पिता यच्चोपकर्मणि ।
पर्याप्तः स दृढीकारः पितुर्गौरवनिश्चये ॥१६॥
गुरुरग्र्यः परो धर्मः पोषणाध्यापनान्वितः ।
पिता यदाह धर्मः स वेदेष्वपि सुनिश्चितः
प्रीतिमात्रं पितुः पुत्रः सर्वं पुत्रस्य वै पिता ।
शरीरादीनि देयानि पिता त्वेकः प्रयच्छति
तस्मात्पितुर्वचः कार्यं न विचार्यं कदाचन
पातकान्यपि पूयन्ते पितुः शासनकारिणः
भोग्ये भोज्ये प्रवचने सर्वलोकनिदर्शने ।
भर्त्रा चैव समायोगे सीमन्तोन्नयने तथा २०

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीयन्ति देवताः
आशिषस्ता भजन्त्येनं पुरुषं प्राह यत्पिता ।
निष्कृतिः सर्वपापानां पिता यच्चाभिनन्दति
मुच्यते बन्धनात्पुष्पं फलं वृक्षात्प्रमुच्यते ।
क्लिश्यन्नपि सुतं स्नेहैः पिता पुत्रं न मुञ्चति
एतद्विचिन्तितं तावत् पुत्रस्य पितृगौरवम् ।
पिता नाल्पतरं स्थानं चिन्तयिष्यामि मातरं
यो ह्ययं मयि संघातो मर्त्यत्वे पाञ्चभौतिकः
अस्य मे जननी हेतुः पावकस्य यथाऽरणिः॥
माता देहारणिः पुंसां सर्वस्यार्तस्य निर्वृतिः
मातृलाभे सनाथत्वमनाथत्वं विपर्यये ॥२६॥
न च शोचति नाप्येनं स्थाविर्यमपकर्षति ।
श्रिया हीनोऽपि यो गेहमम्बेति प्रतिपद्यते ॥
पुत्रपौत्रोपपन्नोऽपि जननीं यः समाश्रितः ।
अपि वर्षशतस्यान्ते स द्विहायनवच्चरेत् २८
समर्थं वाऽसमर्थं वा कृशं वाप्यकृशं तथा ।
रक्षत्येव सुतं माता नान्यः पोष्टा विधानतः
तदा स वृद्धो भवति तदा भवति दुःखितः
तदा शून्यं जगत्तस्य यदा मात्रा वियुज्यते
नास्ति मातृसमा छाया
नास्ति मातृसमा गतिः
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया
कुक्षिसंधारणाद्धात्री जननाज्जननी स्मृता ।
अंगानां वर्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः ॥३२
शिशोः शुश्रूषणाच्छुश्रूर्माता देहमनन्तरम् ।
चेतनावान्नरो हन्याद्यस्य नासुषिरं शिरः॥३३
दम्पत्योः प्राणसंश्लेषे योऽभिसंधिः कृतः किल
तं माता च पिता चेति भूतार्थो मातरि स्थितः

पित्रा गौतमेन इमां जननीमहत्याम् ॥ ७ ॥ धर्मच्छले धर्मसंकटे ॥ १० ॥ युक्तं उचितम् । क्षमं सुखानुष्ठेयम् । इह तु द्वावपि धर्मौ परस्परविरुद्धौ मम युक्तक्षमौ कथमहमेतौ नातिवर्तेत मां अतिशयेन नातिवर्तेत किमेत्तिङ्व्ययघादितितिङन्तात्तमप आम् ॥ १३ ॥ गोत्रस्य नाम्नः ॥ १४ ॥ बुद्ध्ये जानामि संभवं उत्पत्तिहेतुम् ॥१५॥ जातकर्माणि 'अश्मा भव परशुर्भव' इति प्राह अश्मेवाच्छेद्यो भव परशुरिव मर्दयेषु शत्रुषु च्छेदको भवेति मन्त्रपदार्थः । उपकर्म औपनयनात्प्रवासादेत्य पुत्रस्य शिरः परिगृह्य जपतीति गृह्यविहितसर्वसंस्कारबहिर्भूतत्वादिदमुपकर्म तथा 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति प्राह पितुः पालयितुः एवं पितुराशिषमात्मभावं च दधतो गौरवं निश्चितमित्यर्थः ॥ १६ ॥ भोग्ये वस्त्रादौ भोज्येऽन्नादौ प्रवचने वेदाध्ययने लोकनिदर्शने लौकिकशिक्षायां भर्त्रेति गर्भाधानादिसर्वसंस्कारोपलक्षणम् ॥ २० ॥ निर्वृतिः सुखं तत्कर्त्री ॥२६॥ हे अम्ब इत्युक्त्वा ॥ २७ ॥ द्विहायनवत् द्विवर्षवान् भवेत् ॥ २८ ॥ वीरसूः वीरपुत्रसूः ॥ ३२ ॥ मातैव शुश्रूः तां अनन्तरमव्यवहितं आत्मनो देहं सः चेतनावान् न हन्यात् स कः यस्य शिरः सुषिरं मेदो मज्जादिना रिक्तं शुष्कालाबुवत् पथि पतितं तद्विपरीतमसुषिरं स्यात् ॥३३॥ प्राण उपस्थेन्द्रियं तत्संश्लेषे मैथुने इत्यर्थः । अभिसंधिः 'पुत्रो मे गौरो जायेत वेदमनुब्रवीत सर्वमायुर'-इत्यादिश्रुत्या प्रदर्शितोऽभिलाषः कृतो दंपतीभ्यामेव । तमभिलाषं माता पिता वा उभौ वा कुरुतस्तत्र भूतार्थो याथार्थ्यं

माता जानाति यद्गोत्रं माता जानाति यस्य सः ।
मातुर्भरणमात्रेण प्रीतिः स्नेहः पितुः प्रजाः ॥

पाणिबन्धं स्वयं कृत्वा
सह धर्ममुपेत्य च ।
यदा यास्यन्ति पुरुषाः
स्त्रियो नार्हन्ति याच्यताम् ॥ ३६

भरणाद्धि स्त्रियो भर्ता पात्या चैव स्त्रियः पतिः
गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पुनः पतिः॥

एवं स्त्री नापराध्नोति नर एवापराध्यति ।
व्युच्चरंश्च महादोषं नर एवापराध्यति ॥ ३८

स्त्रिया हि परमो भर्ता दैवतं परमं स्मृतम् ।
तस्यात्मना तु सदृशमात्मानं परमं ददौ ॥३९

नापराधोऽस्ति नारीणां नर एवापराध्यति।
सर्वकार्यापराध्यत्वान्नापराध्यन्ति चाङ्गनाः॥

यश्च नोक्तोऽथ निर्देशस्त्रिया मैथुनतृप्तये ।
तस्य स्मारयतो व्यक्तमधर्मो नास्ति संशयः॥

एवं नारीं मातरं च गौरवे चाधिके स्थिताम्
अवध्यां तु विजानीयुः पशवोऽप्यविचक्षणाः

देवतानां समावायमेकस्थं पितरं विदुः ॥
मर्त्यानां देवतानां च स्नेहादभ्येति मातरम्॥

एवं विमृशतस्तस्य
चिरकारितया बहु ।
दीर्घः कालो व्यतिक्रान्त-
स्ततोऽस्याभ्यागमत्पिता ॥ ४४

मेधातिथिर्महाप्राज्ञो गौतमस्तपसि स्थितः ।
विमृश्य तेन कालेन पत्न्याःसंस्थाव्यतिक्रमम्
सोऽब्रवीद्दुःखसन्तप्तो दुःखेनाश्रूणि वर्तयन् ।
श्रुतधैर्यप्रसादेन पश्चात्तापमुपागतः ॥ ४६

मातर्येव तत्कर्तृत्वं स्थितं निश्चितं पितरि तु सोऽभिलाषः पाक्षिको भवतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ भरणमात्रेण गर्भधारणमात्रेण सम्बन्धेन मातापुत्रे प्रीतिमाह्लादं स्नेहमासक्तिं च करोति । अतः प्रत्युपकाराय तस्यामपि प्रीतिस्नेहौ पुत्रेण कार्याविलर्थः । वस्तुतस्तु पितुरेव प्रजाः । यथोक्तं प्रागेव 'माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः' इति । भस्त्रा चर्मकोशः पितुराज्ञाऽनुल्लंघनीयेति भावः ॥ ३५ ॥ ननु 'न चैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मो वयमब्राह्मणा वा' इति श्रुतेः पितृत्वे एव संशयात्कथं तदाज्ञाऽनुल्लंघनीयेत्यत आह–**पाणीति** । 'धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरामि'इति प्रतिज्ञापूर्वकं स्वयं पाणिग्रहं कृत्वा यदि पुरुषाः स्त्रियः परदारान् प्रतियास्यन्ति तर्हि ते याच्यतां प्रार्थनीयतां पूज्यतामिति यावत् । नार्हन्ति धर्मत्यागात्। अयमाशयः–य एवंविधः पिता सोऽज्ञातत्वादशिष्टत्वाच्च नानुरोध्यः मम तु पिता सतीपतिरनुरोध्य एवेति ॥ ३६ ॥ किं तर्हि पित्राज्ञया माता हंतव्येत्याशंक्याह–**भरणादिति** । पत्युर्भावः कर्म वा पात्यं पालयितृत्वं तस्मात् तथा च भार्यां पत्नीं च प्राणैर्वियोजयितुमिच्छतोऽस्य भर्तृत्वादिगुणशून्यस्योन्मत्तस्येव वचनान्मातरं न हिंसिष्ये इत्याशयः ॥ ३७ ॥ ननु व्यभिचारिणी स्त्री हन्तव्यैवान्यथा कुलसंकरापत्तेरित्याशंक्याह– **एवमिति** । एवमपीत्यर्थः । व्युच्चरन् आचरन् महादोषं पारदार्यम् । यदि प्रार्थयितैव न स्यात्तर्हि नायं दोषः प्रसज्ज्येतातः प्रथमप्रवृत्ते पुंस्येवायं दोष इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ ननु स्त्रिया अपि तदनुमोदनादपराधोऽस्त्येवेत्याशंक्याह— **स्त्रिया हीति** । तस्य आत्मना शरीरेण सदृशं इन्द्रमालक्ष्येति शेषः । आत्मानं शरीरं परमं श्रेष्ठं ददौ । स्वपतिवेषेणागताय परस्मै पतिबुद्ध्या शरीरं प्रयच्छन्त्या मम मातुर्न व्यभिचारदोषोऽस्ति । गर्भानुत्पत्तेः कुलसंकराभावाच्च नेयं वध्येत्यर्थः ॥ ३९ ॥ उपसंहरति—**नापराध इति** । किं च सर्वेषु कार्येषु अपराध्यत्वात् अनुरोध्यत्वात् अल्पबलत्वेन सर्वथा पुरुषाधीनत्वात् । तथा च बलात्कारकृते व्यभिचारादौ स्त्रियो नापराध्यन्तीत्यर्थः ॥ ४० ॥ **यश्च नेति** । चनशब्दोऽप्यर्थे योऽपि मैथुनजन्यतृप्तये निर्देशो वचनं उक्तं इन्द्रं प्रतीति शेषः । एवं ह्युपाख्यायते त्वष्टुः पुत्रस्त्रिशिरा इन्द्रेण हतस्तद्धत्यायास्तृतीयांशः स्त्रीषु रजोरूपेण स्थापितो द्वौ वृक्षभूम्योर्निर्यासोषररूपौ स्थापितौ तदा स्त्रीभिर्वरः प्रार्थितः । काममाविजनितोः संभवामेति । अस्माकं जननपर्यन्तं पुरुषसंगोऽस्त्विति । सोऽयं निर्देशः स्त्रिया उक्तः तस्य तं स्मारयतः स्वहत्यांशनिधानेन तत्स्मरणप्रयोजकस्येन्द्रस्यैव व्यक्तमधर्मो न तु मम मातुः अत्र संशयो नास्ति । तस्मादिन्द्रस्यापराधान्मम मातुर्वधो न न्याय्य इति भावः ॥ ४१ ॥ यावत्कृत्स्नां नारीं अवध्यां जानीयुस्तत्रापि मातरं तत्रापि गौरवे पातिव्रत्यधर्मे स्थितम् । पशवोऽपि पशुप्राया अपि किमुत मादृशा इत्यर्थः ॥४२॥ समावायः समूहः । पितुस्तोषणेन स्वर्गप्राप्तिरित्यर्थः । मर्त्यानां देवतानां च समावायं मातरं स्नेहादभ्येतीति योजना । माता स्वदृष्टद्वारा लोकद्वयप्रदा इहलोकपालयित्री चेति भावः ॥ ४३ ॥ तेन तावता कालेन संस्था व्यतिक्रमं मरणानौचित्यम् ॥ ४५ ॥ श्रुतं अध्ययनम् । धैर्यं क्रोधादिजये स्थैर्यम् । तयोः प्रसादेन ॥ ४६ ॥

आश्रमं मम संप्राप्तस्त्रिलोकेशः पुरंदरः ॥
अतिथिव्रतमास्थाय ब्राह्मणं रूपमाश्रितः ॥४७
स मया सान्त्वितो वाग्भिः
स्वागतेनाभिपूजितः ।
अर्घ्यं पाद्यं यथान्यायं
मया च प्रतिपादितः ॥४८
परवानस्मि चेत्युक्तः प्रणयिष्यति तेन च ।
अत्र चाकुशले जाते स्त्रिया नास्ति व्यतिक्रमः
एवं न स्त्री न चैवाहं नाध्वगस्त्रिदशेश्वरः ।
अपराध्यति धर्मस्य प्रमादस्त्वपराध्यति ॥५०
ईर्ष्याजं व्यसनं प्राहुस्तेन चैवोर्ध्वरेतसः ।
ईर्ष्यया त्वहमाक्षिप्तो मग्नो दुष्कृतसागरे ॥
हत्वा साध्वीं च नारीं च
व्यसनित्वाच्च वासिताम्
भर्तव्यत्वेन भार्या च
को नु मां तारयिष्यति ॥ ५२
अन्तरेण मयाऽऽज्ञप्तश्चिरकारीत्युदारधीः।
यद्यद्य चिरकारी स्यात्स मां त्रायेत पातकात्
चिरकारिक भद्रं ते भद्रं ते चिरकारिक ।
यद्यद्य चिरकारी त्वं ततोऽसि चिरकारिकः
त्राहि मां मातरं चैव तपो यच्चार्जितं मया ।
आत्मानं पातकेभ्यश्च भवाद्य चिरकारिकः ॥
सहजं चिरकारित्वमतिप्रज्ञतया तव ।
सफलं तत्तथा तेऽस्तु भवाद्य चिरकारिकः
चिरमाशंसितो मात्रा चिरं गर्भेण धारितः ।
सफलं चिरकारित्वं कुरु त्वं चिरकारिक ॥
चिरायते च संतापाच्चिरं स्वपिति धारितः
आवयोश्चिरसंतापादवेक्ष्य चिरकारिक ५८
एवं स दुःखितो राजन्महर्षिर्गौतमस्तदा ।
चिरकारिं ददर्शाथ पुत्रं स्थितमथान्तिके ५९
चिरकारी तु पितरं दृष्ट्वा परमदुःखितः ।
शस्त्रं त्यक्त्वा ततो मूर्ध्ना प्रसादायोपचक्रमे
गौतमस्तं ततो दृष्ट्वा शिरसा पतितं भुवि ।
पत्नीं चैव निराकारां परामभ्यागमन्मुदम् ॥
न हि सा तेन संभेदं पत्नी नीता महात्मना ।
विजने चाश्रमस्थेन पुत्रश्चापि समाहितः ६२
हन्या इति समादेशः शस्त्रपाणौ सुते स्थिते ।
विनीते प्रसवत्यर्थे विवासे चात्मकर्मसु ॥ ६३
बुद्धिश्चासीत्सुतं दृष्ट्वा पितुश्चरणयोर्नतम् ।
शस्त्रग्रहणचापल्यं संवृणोति भयादिति ॥ ६४
ततः पित्रा चिरं स्तुत्वा चिरं चाघ्राय मूर्धनि
चिरं दोर्भ्यां परिष्वज्य चिरं जीवेत्युदाहृतः
एवं स गौतमः पुत्रं प्रीतिहर्षगुणैर्युतः ।
अभिनंद्य महाप्राज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ६६
चिरकारिक भद्रं ते चिरकारी चिरं भव ।
चिराय यदि ते सौम्य चिरमस्मि न दुःखितः
गाथाश्चाप्यब्रवीद्विद्वान् गौतमो मुनिसत्तमः ।
चिरकारिषु धीरेषु गुणोद्देशसमाश्रयाः ६८
चिरेण मित्रं बध्नीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत्
चिरेण हि कृतं मित्रं चिरं धारणमर्हति ६९
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते ७०
बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च
अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते ॥ ७१
एवं स गौतमस्तत्र प्रीतः पुत्रस्य भारत ।
कर्मणा तेन कौरव्य चिरकारितया तथा ७२
एवं सर्वेषु कार्येषु विमृश्य पुरुषस्ततः ।
चिरेण निश्चयं कृत्वा चिरं न परितप्यते ७३
चिरं धारयते रोषं चिरं कर्म नियच्छति ।
पश्चात्तापकरं कर्म न किञ्चिदुपपद्यते ॥ ७४
चिरं वृद्धानुपासीत चिरमन्वास्य पूजयेत् ।
चिरं धर्मं निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणं चिरम् ७५
चिरमन्वास्य विदुषश्चिरं शिष्टान्निषेव्य च ।
चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम्
ब्रुवतश्च परस्यापि वाक्यं धर्मोपसंहितम् ।
चिरं पृष्टोऽपि च ब्रूयाच्चिरं न परितप्यते ॥

---

सान्त्वितः विश्रांतिं प्रापितः प्रतिपादितः प्रापितः ॥ ४४ ॥ परवान् त्वयाऽहं नाथवानस्मीत्युक्तः । तेन सान्त्वनादिना तृप्तः सन् प्रणयिष्यति मयि प्रणयं करिष्यति। अत्रास्मिन्नर्थे चिन्तिते सति अकुशले इन्द्रलौल्येन स्त्रीदूषणे जाते विषये स्त्रिया अहल्याया व्यतिक्रमो नास्ति॥४९॥ अध्वग इति स्वर्गमार्गेण गच्छता इन्द्रेणाहल्यां दृष्ट्वा मोहं प्राप्तेनैतत्कृतमिति सूचितम्। धर्मस्य योगधर्मसम्बन्धि प्रमादोऽनवधानता । इन्द्रस्यानपराधत्वं द्वेषराहित्यान्मुनिनेहोक्तं न तु व्यवहारतः ॥५०॥ तेन प्रमादेन हेतुना ऊर्ध्वरेतसः मुनयः ॥ ५१ ॥ अन्तरेण प्रमादेन ॥ ५३ ॥ निराकारां लज्जया पाषाणभूताम् । पुराणान्तरे गौतमशापेनैव पाषाणभूतामिति स्मर्यते ॥६१॥

उपास्य बहुलास्तस्मिन्नाश्रमे सुमहातपाः। समाः स्वर्गं गतो विप्रः पुत्रेण सहितस्तदा॥ ७८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि चिरकारिकोपाख्याने षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

## २६७-[१४]

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं राजा प्रजा रक्षेन्न च किञ्चित्प्रघातयेत्
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
द्युमत्सेनस्य संवादं राज्ञा सत्यवता सह ॥ २
अव्याहृतं व्याजहार सत्यवानिति नः श्रुतम्
वधायोन्नीयमानेषु पितुरेवानुशासनात् ॥ ३
अधर्मतां याति धर्मो यात्यधर्मश्च धर्मताम्
वधो नाम भवेद्धर्मो नैतद्भवितुमर्हति ॥ ४

द्युमत्सेन उवाच ।

अथ चेदवधो धर्मो धर्मः को जातु चिद्भवेत्
दस्यवश्चेन्न हन्येरन् सत्यवन् संकरो भवेत्॥५
ममेदमिति नास्यैतत्प्रवर्तेत कलौ युगे ।
लोकयात्रा न चैव स्यादथ चेद्वेत्थ शंस नः॥

सत्यवानुवाच ।

सर्वं एते त्रयो वर्णाः कार्या ब्राह्मणबन्धनाः
धर्मपाशनिबद्धानामन्योऽप्येवं चरिष्यति ७
यो यस्तेषामपचरेत्तमाचक्षीत वै द्विजः ।
अयं मे न शृणोतीति तस्मिन्राजा प्रधारयेत्
तत्त्वाभेदेन यच्छास्त्रं तत्कार्यं नान्यथाविधम्
असमीक्ष्यैव कर्माणि नीतिशास्त्रं यथाविधि
दस्यून्निहन्ति वै राजा भूयसो वाप्यनागसः
भार्या माता पिता पुत्रो हन्यन्ते पुरुषेण ते ।
परेणापकृतो राजा तस्मात्सम्यक् प्रधारयेत्
असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलमेकदा ।
साधोश्चापि ह्यसाधुभ्यः शोभना जायते प्रजा
न मूलघातः कर्तव्यो नैष धर्मः सनातनः ।
अपि स्वल्पवधेनैव प्रायश्चित्तं विधीयते १२
उद्वेजनेन बन्धेन विरूपकरणेन च ।
वधदण्डेन ते क्लिश्या न पुरोहितसंसदि १३
यदा पुरोहितं वा ते पर्येयुः शरणैषिणः ।
करिष्यामः पुनर्ब्रह्मन्न पापमिति वादिनः १४
तदा विसर्गमर्हाः स्युरितीदं धातृशासनम् ।
बिभ्रद्दण्डाजिनं मुण्डो ब्राह्मणोऽर्हति शासनम्

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

२६७

एवमहिंसैव धर्मो हिंसैव च पापमिति स्थिते दण्ड्यान् दंडयतो राज्ञः कथमहिंसत्वं स्याददण्डयतो वा कथं प्रजासंरक्षणं स्यादिति पृच्छति—**कथमिति** ॥ १ ॥ अव्याहृतं दंड्यानामप्यदंड्यत्वं प्राक्केनचिदनुक्तम् । वधाय वध्येष्विति शेषः ॥ ३ ॥ 'वधो नाम स च धर्मः' इति वदतो व्याघात इत्यर्थः ॥ ४ ॥ संकरमेवाह—**ममेति** । लोकयात्रा तीर्थगमनवाणिज्यादिव्यवहारः । कलौ युगे अधर्मप्रधाने काले वेत्थ चेदहिंसयाऽप्यसंकरप्रकारमिति शेषः । नः अस्मभ्यं शंस कथय ॥ ६ ॥ त्रयः क्षत्रविट्शूद्राः ब्राह्मणाधीनाः कार्याः धर्मपाशनिबद्धानां तेषु धर्मपाशेन निबद्धेषु सत्सु अन्योऽपि प्रतिलोमानुलोमजातः सूतमागधादिः एवं त्रैवर्णिकवत् चरिष्यति धर्मम् ॥ ७ ॥ अपचरेत् ब्राह्मणवचनं अतिक्रामेत् प्रधारयेत् दण्डम् ॥ ८ ॥ तत्त्वात्मकत्वात्तत्त्वं शरीरं सत्त्वेति पाठे जन्तुः । तस्य अभेदेन अविनाशेन यत् प्रवृत्तं शास्त्रं तत् कार्यम् । एतदेव व्यतिरेकमुखेनाह—**नेति** । कर्मादीन्यसमीक्ष्य सम्यगनालोच्य अन्यथाविधं विपरीतप्रकारं छेदात्मकं शासनं न कार्यमिति योज्यम् ॥ ९ ॥ यतः एकस्मिंश्चोरे हते तत्संबन्धिनामनागसां बहूनां वधो भवतीत्याह—**दस्यूनिति** । पुरुषेण हतेन ते भार्यादयः यस्मादेकस्यापराधेन बहूनां वधोऽनुचितस्तस्मात् सम्यक् प्रधारयेद्विचारयेत् ॥ १० ॥ तमेवाह—**असाधुश्चेति** । साधोः सकाशात् शीलं लभते ॥ ११ ॥ फलितमाह—**न मूलेति** । यतो मूलघातो नैव धर्मः ॥ १२ ॥ उद्वेजनं सर्वस्वापहरणादभयप्रदर्शनेन परन्तु चोरस्य वधेन ते तदीया भार्यादयो न क्लिश्याः वृत्तिलोपेन क्लेशं न प्रापणीयाः ॥१३॥ **यदेति** । ते दस्यवः ॥१४॥ **बिभ्रदिति** । संन्यासिनोऽपि शास्या इत्यर्थः ॥ १५ ॥

गरीयांसो गरीयांसमपराधे पुनः पुनः।
तदा विसर्गमर्हन्ति न यथा प्रथमे तथा ॥ १६

द्युमत्सेन उवाच ।

यत्र यत्रैव शक्येरन्संयन्तुं समये प्रजाः।
स तावान्प्रोच्यते धर्मो यावन्न प्रतिलंघ्यते ॥
अहन्यमानेषु पुनः सर्वमेव पराभवेत्।
पूर्वे पूर्वतरे चैव सुशास्या ह्यभवन् जनाः १८
मृदवः सत्यभूयिष्ठा अल्पद्रोहाल्पमन्यवः।
पुरा धिग्दण्ड एवासीद्वाग्दण्डस्तदनन्तरम्
आसीदादानदण्डोऽपि वधदण्डोऽद्य वर्तते
वधेनापि न शक्यन्ते नियन्तुमपरे जनाः ॥
नैव दस्युर्मनुष्याणां न देवानामिति श्रुतिः।
न गन्धर्वपितॄणां च कः कस्येह न कश्चन २१
पद्मं श्मशानादादत्ते पिशाचाच्चापि दैवतम्।
तेषु यः समयं कश्चित्कुर्वीत हतबुद्धिषु ॥ २२

सत्यवानुवाच ।

तान्न शक्नोषि चेत्साधून्
परित्रातुमहिंसया।
कस्यचिद्भूतभव्यस्य
लाभेनान्तं तथा कुरु ॥ २३
राजानो लोकयात्रार्थं तप्यन्ते परमं तपः।
तेऽपत्रपन्ति तादृग्भ्यस्तथावृत्ता भवन्ति च
वित्रास्यमानाः सुकृतो
न कामात् घ्नन्ति दुष्कृतीन्।
सुकृतेनैव राजानो
भूयिष्ठं शासते प्रजाः ॥ २५
श्रेयसः श्रेयसोऽप्येवं वृत्तं लोकोऽनुवर्तते।
सदैव हि गुरोर्वृत्तमनुवर्तन्ति मानवाः ॥ २६
आत्मानमसमाधाय
समाधित्सति यः परान्।
विषयेष्विन्द्रियवशं
मानवाः प्रहसन्ति तम् ॥ २७
यो राज्ञो दम्भमोहेन किञ्चित्कुर्यादसांप्रतम्
सर्वोपायैर्नियम्यः स तथा पापान्निवर्तते २८
आत्मैवादौ नियन्तव्यो दुष्कृतं सन्नियच्छता
दण्डयेच्च महादण्डैरपि बन्धूननन्तरान् ॥ २९
यत्र वै पापकृत्क्लीबो न महद्दुःखमच्छति।
वर्धन्ते तत्र पापानि धर्मो ह्रसति च ध्रुवम्

---

गरीयांसमपि शास्युरिति शेषः। पुनः पुनरपराधे यदा कृते तदा ते विसर्गं नार्हन्ति । प्रथमापराधे इवेति व्यतिरेकदृष्टान्तः ॥ १६ ॥ यत्र यत्र समये मर्यादायां संयन्तुं नियन्तुम् ॥ १७ ॥ धर्मोल्लङ्घनेऽपि अहन्यमानेषु चोरेषु । पूर्वे पूर्वकाले ॥१८॥ सुशास्यत्वे हेतुमाह—**मृदव इति** ॥१९॥ अद्य कलौ एकस्मिन्हतेऽपीतरे न त्रस्यन्तीत्यर्थः । अतः सर्वेऽपि चोरपक्षीया हन्तव्या एवेत्याशयः ॥२०॥ **नैवेति**। कः कस्येहेति गत एव प्रश्नः न कश्चन कस्यापीत्युत्तरं च दस्युवधे तद्भार्यादीनां वधो नास्तीत्यर्थः । सम्बन्धाभावात् ॥ २१ ॥ चोरेषु मर्यादाकरणमपि न सम्भवतीत्याह-**पद्ममिति** । पद्मं शवालङ्कार आदत्ते पिशाचात् पिशाचोपहतात् । आदत्ते चैलादिकमिति शेषः । कीदृशं समयं दैवतं देवताशपथादिरूपम् । यः कश्चिन्मूढः न तु प्राज्ञ इत्यर्थः ॥२२॥ साधून्कर्तुमिति शेषः । 'भूतं भव्यायोपदिश्यते' इति न्यायेन सिद्धं पश्वादिकं साध्याय कर्मणे भवतीति भूतभव्यशब्देन क्रतुः कस्यचित् क्रतोर्लाभेन तेषां अन्तं नाशं कुरु । तथा हि सर्वमेधे ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभतेत्यादिना सर्वजातीयानां सर्वकर्मणां च नराणामालम्भ उक्तः । तथा च राजा बहून्वध्यान्निरोध्य काले सर्वमेधे आलभेतेत्यर्थः । तेन पापिष्ठा अपि यज्ञपशूभूय स्वर्गं यान्ति । 'पशुर्वै नीयमानः स मृत्युं प्रापश्यत्स देवान्नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमयिष्याम इति स तथेत्यब्रवीत्' इति श्रुतेः । वध्यानपि क्रतुप्रवेशेन उपकुर्यादेवेति भावः ॥ २३ ॥ ते राजानः तादृग्भ्यः स्तेनेभ्योऽपत्रपन्ते ममापि राज्ये स्तेन इति लज्जां कुर्वतेऽतस्तथावृत्ता लोकयात्रार्थं प्रजानां निर्दोषत्वं कामयानाः पितर इव तपस्विनो भवन्ति । तथा च राजानः प्रतिजानते छान्दोग्ये—

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः' इति

॥ २४ ॥ **वित्रास्यमाना इति**। त्रासेनैव प्रजाः साध्व्यो भवन्ति । न तु राजानः दुष्कृतीन् दुष्टान् कामान् घ्नन्ति अपि तु क्रतुप्रयोजनेनैव घ्नन्ति । एवं च सुकृतेनैव प्रजाः शासते ॥ २५ ॥ एवंविधे राज्ञि 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरे जनाः' इति न्यायेन उत्तरोत्तरं प्रजाः श्रेयस्यो भवन्तीत्याह—**श्रेयस इति** ॥ २६ ॥ राज्ञा स्वचित्तं जित्वैव प्रजाः शास्या अन्यथा ता एवैनमुपहसन्तीत्याह—**आत्मानमिति** ॥ २७ ॥ दुष्कृतं दुष्टकर्मकारिणं अनन्तरान् पुत्रसोदर्यादीन् ॥ २९॥ विपक्षे दोषमाह—**यत्रेति**। यत्र राज्ये अच्छति प्राप्नोति ॥ ३० ॥

इति कारुण्यशीलस्तु
विद्वान्वै ब्राह्मणोऽन्वशात् ।
इति चैवानुशिष्टोऽस्मि
पूर्वैस्तात पितामहैः । ३१
आश्वासयद्भिः सुभृशमनुक्रोशात्तथैव च
एतत्प्रथमकल्पेन राजा कृतयुगे यजेत् ॥ ३२
पादोनेनापि धर्मेण गच्छेत्त्रेतायुगे तथा ।
द्वापरे तु द्विपादेन पादेन त्वघरे युगे ॥ ३३
तथा कलियुगे प्राप्ते राज्ञो दुश्चरितेन ह ।
भवेत्कालविशेषेण कला धर्मस्य षोडशी ३४
अथ प्रथमकल्पेन
सत्यवन्संकरो भवेत् ।
आयुः शक्तिं च कालं च
निर्दिश्य तप आदिशेत् ॥ ३५
सत्याय हि यथा नेह जह्याद्धर्मफलं महत् ।
भूतानामनुकम्पार्थं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्३६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि द्युमत्सेनसत्यवत्संवादे सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

## २६८–[९५]

युधिष्ठिर उवाच ।
अविरोधेन भूतानां योगः षाड्गुण्यकारकः
यः स्यादुभयभाग्धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह १
गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य योगधर्मस्य चोभयोः
अदूरसंप्रस्थितयोः किंस्विच्छ्रेयः पितामह २
भीष्म उवाच ।
उभौ धर्मौ महाभागावुभौ परमदुश्चरौ ।
उभौ महाफलौ तौ तु सद्भिराचरितावुभौ ३
अत्र ते वर्तयिष्यामि प्रामाण्यमुभयोस्तयोः ।
शृणुष्वैकमनाः पार्थ छिन्नधर्मार्थसंशयम् ४
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कपिलस्य गोश्च संवादं तन्निबोध युधिष्ठिर
आम्नायमनुपश्यन्हि पुराणं शाश्वतं ध्रुवम् ।
नहुषः पूर्वमालेभे त्वष्टुर्गामिति नः श्रुतम् ६
तां नियुक्तामदीनात्मा सत्त्वस्थः संयमे रतः
ज्ञानवान्नियताहारो ददर्श कपिलस्तथा ॥ ७

---

स्वोक्तेः सांप्रदायिकत्वमाह—**इतीति** ॥ ३१ ॥ आश्वासयद्भिः प्रजा इति शेषः । एतत् भूमण्डलं प्रथमकल्पेन मुख्येनाहिंसामयेन दण्डेन जयेत् वशीकुर्यात्। धिग्दण्डं वाग्दण्डमादानदण्डं वधदण्डं च युगक्रमेण प्रजासु प्रवर्तयेदिति तात्पर्यम्॥३२॥ **अथेति**। निर्दिश्य निश्चित्य तपः दण्डं 'राजभिः कृतदण्डास्तु शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः' इति दण्डस्यापि तपोवत् शुद्धिहेतुत्वस्मृतेः॥३५॥ उक्तेऽर्थे प्रमाणमाह—**सत्यायेति** सत्याय ब्रह्मप्राप्तये हि प्रसिद्धं महत् धर्मफलं ज्ञानम् । स्वर्गादेः क्षुद्रत्वात् यथा येन प्रकारेण इह न जह्यात् तादृशमहिंसाख्यं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

---

### २६८

वृत्तमनूद्य पृच्छति—**अविरोधेनेति** । राज्ञामप्यहिंसाप्रधानः षाड्गुण्यकारकः षट् गुणा ऐश्वर्यादयो यैर्भगवच्छब्दभाग्भवति । उत्पत्त्यादयः प्रकृतिगुणा तेषां समूहः षाड्गुण्यं तस्य कारको हेतुर्योग उक्त इति शेषः ।

' ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीङ्गना ।
उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ' ॥ १ ॥

उभयभाक्त्वमेव विवृणोति—**गार्हस्थ्यस्येति** । गार्हस्थ्ये पञ्चसूना अनिवार्याः । योगे तु हिंसा सर्वात्मना त्याज्या । अदूरे समीपे एककार्यार्थत्वेन संप्रस्थितयोः प्रवृत्तयोः ।

' न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ।
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषान् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानैश्वरान्गुणान् । '

इतिस्मृतिभ्यां गुणान् जीवत्वादीन् अनयोस्तुल्यार्थयोरेतयोर्मध्ये किंस्विच्छ्रेयः ॥ २ ॥ उभौ गार्हस्थ्ययोगधर्मौ ॥ ३ ॥ **अत्रेति** । अक्षराधिक्यमार्षम् ॥ ५ ॥ 'तद्यथैवादो मनुष्यराज आगतेऽन्यस्मिन्वार्हत्युक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्ते ' इति श्रुतिमनुपश्यंस्त्वष्टुस्त्वष्ट्रे गृहागताय मधुपर्के गामालेभे वेहतं वंध्यां गां क्षदन्ते हिंसन्ति ॥ ६ ॥ नियुक्तां हन्तुं पुरस्कृतां दृष्ट्वा वेदा इत्यब्रवीदिति द्वयोः सम्बन्धः । दृष्ट्वेत्यस्याध्याहारश्च॥ ७ ॥

स बुद्धिमुत्तमां प्राप्तो नैष्ठिकीमकुतोभयाम् ।
सतीमशिथिलां सत्यां वेदा३इत्यब्रवीत् सकृत्
तां गामृषिः स्यूमरश्मिः प्रविश्य यतिमब्रवीत्
हंहो वेदा३ यदि मता धर्माः केनापरे मताः ९
तपस्विनो धृतिमन्तः श्रुतिविज्ञानचक्षुषः ।
सर्वमार्षं हि मन्यन्ते व्याहृतं विदितात्मनः
तस्यैवं गततृष्णस्य विज्वरस्य निराशिषः ।
का विवक्षाऽस्ति वेदेषु निरारंभस्य सर्वतः

कपिल उवाच ।

नाहं वेदान्विनिन्दामि
न विवक्ष्यामि कर्हिचित् ।
पृथगाश्रमिणां कर्मा-
ण्येकार्थानीति नः श्रुतम् ॥ १२
गच्छत्येव परित्यागी वानप्रस्थश्च गच्छति ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च उभौ तावपि गच्छतः
देवयाना हि पन्थानश्चत्वारः शाश्वता मताः
एषां ज्यायः कनीयस्त्वं फलेषूक्तं बलाबलम्
एवं विदित्वा सर्वार्थानारभेतेति वैदिकम् ।
नारभेतेति चान्यत्र नैष्ठिकी श्रूयते श्रुतिः १५
अनारंभे ह्यदोषः स्यादारम्भे दोष उत्तमः ।
एवं स्थितस्य शास्त्रस्य दुर्विज्ञेयं बलाबलम्
यद्यत्र किञ्चित्प्रत्यक्षमहिंसायाः परं मतम् ॥
ऋते त्वागमशास्त्रेभ्यो ब्रूहि तद्यदि पश्यसि

वेदा इति गर्हायां प्लुतिः ॥ ८ ॥ प्रविश्य योगबलेनेत्यर्थः । यतिं कपिलमुनिं हं हो इति विस्मये वेदा यदि मताः गर्हितत्वेन संमताः अत्रापि गर्हार्थायाः प्लुतेरनुवादः । अपरे हिंसाशून्या धर्माः केन मताः प्रामाण्यमप्रामाण्यं वा कर्मज्ञानकाण्डयोस्तुल्यमतो नान्यतरन्निन्देत्प्रशंसेद्वेति भावः ॥ ९॥ तपस्विनः आर्षं मन्यन्ते किं विदितात्मनः नित्यज्ञानवतः परमेश्वरस्य व्याहृतं'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः'इति श्रुतेर्निःश्वासवदयत्नोच्चारितं च वेदम् अतो ऽस्यैकमप्यक्षरमप्रमाणीकर्तुमशक्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ ननु 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते' इति श्रुत्या सतां मुक्तिं असतां बन्धं च दातुं विवक्षाभेदेन ज्ञानकर्मकाण्डे प्रवृत्ते इत्याशंक्याह—**तस्येति** । तस्य ईश्वरस्य गततृष्णस्य फलाशाहीनस्य विज्वरस्य द्वेषहीनस्य निराशिषः नीरागस्य निरारम्भस्य अवाप्तसकलकामत्वात् न वैषम्यविवक्षया वेदवचनं संभवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ **नाहमिति** । विवक्ष्यामि विषमान् वक्ष्यामि ॥ १२ ॥ एकार्थत्वमाह— **गच्छत्येवेति** । परित्यागी संन्यासी गच्छत्येव परं पदमिति शेषः ॥१३॥ देवयानाः देवं आत्मानं यान्त्येभिरिति तथाभूताश्चत्वार आश्रमाः । एषां ज्यायस्त्वकनीयस्त्वरूपं बलाबलं फलेषु निमित्तेषूक्तम् यथोक्तम्-

' संन्यासी मोक्षमाप्नोति ब्रह्मलोकं वनी तथा।
स्वर्लोकमृषिलोकं च गृहस्थब्रह्मचारिणौ ' इति

॥ १४ ॥ आरभेत सर्वार्थान् स्वर्गादिप्रदान् यज्ञादीन् इति वैदिकं मतं यथोक्तमापस्तंबेन त्रैविद्यवृद्धानां तु वेदाः प्रमाणमिति निष्ठा तत्र यानि श्रूयन्ते व्रीहियवपश्वाज्यपयः कपालपत्नीसंबद्धानि उच्चैर्नीचः कार्यमिति तैर्विरुद्ध आचारोऽप्रमाणमिति मन्यन्ते । अथापि प्रजापतेर्वचनम्-

'त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं
श्रद्धां तपो यज्ञमनुप्रदानम् ॥
य एतानि कुर्वते तैरित्सहस्मो ।
रजोभूता ध्वंसतेऽन्यत्प्रशंसन् ' ॥

इति श्रुतिश्च भस्मान्तं शरीरमिति आमरणमभिसाध्यकर्मानुष्ठानं कर्तव्यमिति दर्शयति । तथाऽन्यत्र प्रकरणान्तरे नारभेत कर्माणीति शेषः । तथा च वार्तिककारोदाहृतं भाल्लविशाखावचनम्—

' त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम् ।
त्यजतैव हि विज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्परं पदम्'इति ॥

नैष्ठिकीत्यनेनैतस्याः सिद्धान्तत्वं दर्शितम् ॥ १५ ॥ तदेवाहार्धेन-**अनारंभे इति** । अत्र शंकतेऽर्धेन-**एवमिति** । कर्मतत्त्यागविध्योर्बलाबलं दुर्ज्ञेयम्। उभयत्र निन्दास्तुत्योस्तुल्यत्वादिति भावः ॥ १६ एतद्दूषयति-**यद्यत्रेति** । अहिंसायाः परं अहिंसातोऽन्यत् यत्किंचित् हिंसाशास्त्रं आगमशास्त्रेभ्यः ऋते यदि प्रत्यक्षं दृष्टफलं मतं युक्त्या यदि वा तत् पश्यसि अनुभवेन तर्हि ब्रूहि। अयं भावः-योगफलं प्रत्यक्षं यथोक्तमापस्तम्बन-अथापि संकल्पसिद्धयो भवन्ति यथावर्षं प्रजादानं दूरे दर्शनं मनोजवता यच्चान्यदेवं युक्तं तस्मात् श्रुतितः प्रत्यक्षफलत्वाच्च विशिष्टानाश्रमानेतानेके ब्रुवत इति। अनुमानगम्यं च तथाहि नीहारेण प्रावृता अनृतेन हि प्रत्यूढा इत्यादिश्रुतिभ्यो रज्जूरगस्येव बन्धस्य मिथ्याज्ञानकार्यत्वं सिद्धम् । ततो ज्ञानमात्रापनोद्यत्वं युक्तम् । न हि रज्जूरगभीतस्य भयनिवृत्तिर्गंगास्नानसहस्रेणापि भवत्यधिष्ठानसाक्षात्कारजनिततद्बाधमन्तरेण । स्मृतिश्च—

' भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे'इति ॥

तथा च यथा प्रत्यक्षानुमानागमगम्यं तत्त्वज्ञानफलं कर्मफलं

स्यूमरश्मिरुवाच ।
स्वर्गकामो यजेतेति सततं श्रूयते श्रुतिः ।
फलं प्रकल्प्य पूर्वं हि ततो यज्ञः प्रतायते १८
अजश्चाश्वश्च मेषश्च गौश्च पक्षिगणाश्च ये ।
ग्राम्यारण्याश्चौषधयः प्राणस्यान्नमिति श्रुतिः
तथैवान्नं ह्यहरहः सायंप्रातर्निरूप्यते ।
पशवश्चाथ धान्यं च यज्ञस्याङ्गमिति श्रुतिः
एतानि सह यज्ञेन प्रजापतिरकल्पयत् ।
तेन प्रजापतिर्देवान् यज्ञेनायजत प्रभुः ॥ २१
तदन्योन्यवराः सर्वे प्राणिनः सप्त सप्तधा ।
यज्ञेषूपाकृतं विश्वं प्राहुरुत्तमसंज्ञितम् ॥ २२
एतच्चैवाभ्यनुज्ञातं
पूर्वैः पूर्वतरैस्तथा ।
को जातु न विचिन्वीत
विद्वान्स्वां शक्तिमात्मनः ॥ २३
पशवश्च मनुष्याश्च द्रुमाश्चौषधिभिः सह ।
स्वर्गमेवाभिकांक्षन्ते न च स्वर्गस्ततो मखात् ।
ओषध्यः पशवो वृक्षा वीरुदाज्यं पयो दधि
हविर्भूमिर्दिशः श्रद्धा कालश्चैतानि द्वादश२५
ऋचो यजूंषि सामानि यजमानश्च षोडश ।
अग्निर्ज्ञेयो गृहपतिः स सप्तदश उच्यते ॥ २६
अङ्गान्येतानि यज्ञस्य यज्ञो मूलमिति श्रुतिः ।
आज्येन पयसा दध्ना शकृताऽऽमिक्षया त्वचा
वालैः शृङ्गेण पादेन संभवत्येव गौर्मखम् ।
एवं प्रत्येकशः सर्वं यद्यदस्य विधीयते ॥ २८

---

तु श्रुत्यैकगम्यं न तत्र प्रत्यक्षानुमाने संक्रमत इति कर्मतत्त्यागविध्योर्बलाबलं सुज्ञेयमेव । यत्तु आपस्तंबेनोक्तम्–तत्र ये पुण्यकृतस्तेषां प्रकृतयः पराज्वलन्त्य उपलभ्यन्त इति तारारूपिणां कर्मकृतामपि प्रत्यक्षं ज्योतिर्मयत्वमिति तदपि श्रौतमेव न हि सुकृतां वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणीति श्रुतिमन्तरेण तेषां चेतनत्वमध्यवसातुं शक्यम् अचेतनत्वं तु जैमिनिसंमतमित्यास्तां तावत् । यत्तु तेनैव स्यात्तु कर्मावयवेन तपसा वा कश्चित्सशरीरोऽन्तवन्तं लोकं जयति । संकल्पसिद्धिश्च स्यान्न तु तज्ज्यैष्ठ्यमाश्रमाणामिति ज्ञानफलस्य प्रत्यक्षत्वमभ्युपेत्यापि तत्साधकाश्रमस्य ज्यैष्ठ्यं निषिद्धम् । यच्च गौतमेन–ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्येति भस्मान्तं शरीरं कुटुंबे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयान इति प्रत्यक्षश्रुतिमूलकतया गार्हस्थ्यस्य ज्यैष्ठ्यमुक्तम् । तत्सर्वं 'न हि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्ततेऽपि तु विधेयं स्तोतुम्' इति न्यायेन ज्ञानानधिकारिणामाश्रमधर्मेषु श्रद्धोत्पादनार्थमिति द्रष्टव्यमिति ॥ १७ ॥ अत्र प्रत्यवतिष्ठते–**स्वर्गेति** । यागविधौ उद्देश्यस्य स्वर्गस्य स्वरूपाविवक्षायां कृत्स्नं शास्त्रमनर्थकं स्यादित्यर्थः । प्रतायते प्रतन्यते ॥ १८ ॥ ननु स्वर्गो नास्तीति न ब्रूमः किं तु हिंसायुक्तं तत्साधनं निन्दाम इत्याशंक्य प्राणविद्यायां 'स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किंचिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य' इति श्रुतिं प्रत्यक्षं च सर्वस्यान्नत्वे प्रमाणयति–**अजश्चेति सार्धेन** । मेषो मुंडशिराः ग्राम्या ओषधयो यवाद्याः यस्य यदन्नं तद्भक्षणे तस्य दोषो नास्तीति भावः ॥ १९ ॥ यद्येवं तदा श्रौते कर्मणि हिंसादोषः कैमुतिकन्यायनिरस्त इत्याशयेनाह–**पशव इति** ॥ २० ॥ अन्योन्यवराः परस्परापेक्षया श्रेष्ठाः सप्तधा सप्तधेति धान्या-

आवृत्तिः ते च—
'गौरजो मनुजोऽश्वश्च मेषाश्वतरगर्दभाः ।
ग्राम्याः सप्त समाख्याताः पशवः साधुवेदिभिः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ।
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्तारण्याः प्रकीर्तिताः' इति ।
उत्तममिति संज्ञा संजाता यस्य 'पुरुषो वाव सुकृतम्' इतिश्रुतेरुत्तमसंज्ञितं पुरुषाख्यमपि यज्ञेषूपाकृतं विनियुक्तं 'पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्ते' इति वेदाः प्राहुस्तच्च शिष्टैरादृतम् । 'पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयतात्यतिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदं सर्वं स्यामिति । स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञक्रतुमपश्यत्' इति श्रुतेः पूर्वैर्ब्रह्मादिभिः पूर्वतरैर्नारायणादिभिः यत्र सर्वोत्कृष्टः पुरुषोऽपि श्रुतित आचाराच्च हिंस्यते तत्र का कथा इतरेषामिति भावः सार्धः ॥ २२ ॥ स्वां शक्तिं विद्वान् मयेदं अजस्याश्वस्य पुरुषस्य वा आलंभनं कर्तुं शक्यमिति जानन् कः पुमान् आत्मनः जीवान्न विचिन्वीत न विवेचयेत् आलंभार्थमिति शेषः । किं तु सर्वोऽप्यास्तिकः स्वस्य शक्यं क्रतुं कुर्यादेवेत्यर्थः ॥ २३ ॥ न चात्र हिंसादोषोऽस्ति प्रत्युत स्वर्गार्थिना पश्वादीनां 'न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः' इति मन्त्रवर्णादयमुपकार एवेत्याह—**पशवश्चेति** । मखात् मखं विना स्वर्गस्ततो विस्तृतो नास्ति जपादिजः स्वर्गः स्वल्प इति भावः । न रिष्यसि न हिंस्यसे देवाँ इत् देवानेव ॥ २४ ॥ यज्ञो मूलम् । लोकस्थितेरिति शेषः । श्रुतिर्यज्ञाद्भवति पर्जन्य इत्यादिर्भगवद्वचनरूपा । वेदस्यापीश्वरकर्तृकत्वाभ्युपगमेन भगवद्गीतानामुपनिषदामपि समानकर्तृकत्वेन श्रुतित्वौचित्यात् । शकृता गोमयेन आमिक्षया दाधिमिश्रेण पयसा त्वचा आनडुहे चर्मणि निर्वापादेर्विधानात् शेषं व्याख्यातम् ॥ २७ ॥ संहृत्य गुणोपसंहारन्या-

यज्ञं वहन्ति संभूय सहर्त्विग्भिः सदक्षिणैः ।
संहृत्यैतानि सर्वाणि यज्ञं निर्वर्तयन्त्युत २९
यज्ञार्थानि हि सृष्टानि यथार्था श्रूयते श्रुतिः
एवं पूर्वतराः सर्वे प्रवृत्ताश्चैव मानवाः ॥ ३०
न हिनस्ति नारभते नाभिद्रुह्यति किञ्चन ।
यज्ञो यष्टव्य इत्येव यो यजत्यफलेप्सया ३१
यज्ञाङ्गान्यपि चैतानि यज्ञोक्तान्यनुपूर्वशः ।
विधिना विधियुक्तानि धारयन्ति परस्परम्
आम्नायमार्षं पश्यामि
यस्मिन्वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
तं विद्वांसोऽनुपश्यन्ति
ब्राह्मणस्यानुदर्शनात् ॥ ३३
ब्राह्मणप्रभवो यज्ञो ब्राह्मणार्पण एव च ।
अनुयज्ञं जगत्सर्वं यज्ञश्चानुजगत्सदा ॥ ३४

ओमिति ब्रह्मणो योनिर्नमः स्वाहा स्वधा वषट्
यस्यैतानि प्रयुज्यन्ते यथाशक्ति कृतान्यपि ३५
न तस्य त्रिषु लोकेषु परलोकभयं विदुः ।
इति वेदा वदन्तीह सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ३६
ऋचो यजूंषि सामानि
स्तोभाश्च विधिचोदिताः ।
यस्मिन्नेतानि सर्वाणि
भवन्तीह स वै द्विजः ॥ ३७
अग्न्याधेये यद्भवति यच्च सोमे सुते द्विज ।
यच्चेतरैर्महायज्ञैर्वेद तद्भगवान् पुनः ॥ ३८
तस्माद्ब्रह्मन्यजेच्चैव याजयेच्चाविचारयन् ।
यजतः स्वर्गविधिना प्रेत्य स्वर्गफलं महत् ३९
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञानां परश्चेति विनिश्चयः
वेदवादविदश्चैव प्रमाणमुभयं तदा ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि गोकापिलीये अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥

---

येनैकीकृत्य आरभेतैव यज्ञमिति भावः ॥ २९ ॥ हिंसारंभयोरुपपादितमदोषत्वमुपसंहरति-**नेति** । फलार्थिनामेव हिंसारंभौ दोषावहौ न त्वफलार्थिनां ममेदमावश्यकमिति बुद्ध्या यज्ञमनुतिष्ठतामित्यर्थः ॥ ३१ ॥ यज्ञांगानि ओषध्यादीनि यज्ञोक्तानि यूपदार्वादिवत्समासः विधियुक्तानि अलौकिकानि यूपाहवनीयादीनि विधिना उच्छ्रयणप्रणयनादिरूपेण धारयन्ति स्वस्वकार्ये परस्परमुपकुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणस्य क्रियायां प्रवर्तकस्य वाक्यस्य ॥३३॥ ब्राह्मणप्रभवः वेदविप्रोद्भवः नपुंसकमनपुंसकेनेत्येकशेषपूर्वकोऽयं समासः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मणो वेदस्य तस्मात् प्रणवपूर्विका यज्ञादिक्रिया कर्तव्येत्यर्थः ॥ ३५ ॥ स्तोभाः सामपूरकाक्षराणि हाऽऽयि हाऽऽवु इत्यादीनि ॥ ३७ ॥ मानुषाद्दैव्यमुपैमीति मन्त्रवर्णादाधानकृदिहैव देवभावं प्राप्नोति सोमं सुनोति भवति द्युमाँअहेति मंत्रवर्णात् सोमं सुन्वन्तः स्वर्गाधिपत्यं प्राप्नुवन्तीत्येवमादि तद्भगवान् ज्ञानैश्वर्यसंपन्नतमः भवानेव वेद ॥ ३८ ॥ स्वर्गविधिना स्वर्गप्रदज्योतिष्टोमादिना यतः प्रेत्य महत्स्वर्गफलं भवति ॥ ३९ ॥ वेदवादविदः यो वेदगतानर्थवादान्वेद तस्योभयं फलसमर्पकमर्थवादद्वयं प्रमाणं स्तुत्यर्थत्वेनेत्यर्थः । यथा 'यस्य पर्णमयीजुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति' इति फलं क्रत्वंगजुहूसम्बन्धादविवक्षितस्वार्थे किं तु लक्षणया स्तुतिमात्रपरम्। एवं सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीत्यात्मज्ञानफलमपि ज्ञेयम्। ननु लोकवेदसाधारणस्य कर्त्रात्मनो जुहूवदव्यभिचरितक्रतुसम्बन्धाभावात् कथं तज्ज्ञानफलस्य जुहूफलवदर्थवादत्वं उच्यते देहातिरिक्त आत्मा वेदैकगम्यो यूपाहवनीयादिवदलौकिकोऽस्ति । तस्य च क्रतुसम्बन्धो न व्यभिचरति आमुष्मिकव्यवहारमात्रस्य तत्सापेक्षत्वात् । ऐहिकव्यवहारे च तदनपेक्षणाद्देहात्मवादेऽपि तदुपपत्तेः। यद्यपि 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत' इत्यादिविशेषणमात्रस्य पत्न्यादिवल्लोकवेदसाधारणत्वेऽपि फलभोक्तुर्न तथात्वमस्ति । तस्माज्जुहूवत्स्वर्गकामस्यापि अव्यभिचरितक्रतुसम्बन्धात् साप्तदश्यादिवदनारभ्याधीतमपि तज्ज्ञानं क्रतुप्रवेशं लभते तत्फलस्य चार्थवादत्वमिति युक्तमुत्पश्यामः। तथा च सूत्रम्—'शेषत्वात्पुरुषार्थवादो यथाऽन्येष्विति जैमिनिः' इति । यत्तु विद्याफलं प्रत्यक्षमिति तत्राप्युक्तमापस्तम्बेन—बुद्धे क्षेमप्रापणं तच्छास्त्रैर्विप्रतिषिद्धं बुद्धे चेत्क्षेमप्रापणमिहैव न दुःखमुपलभेतेति बुद्धे आत्मनि ज्ञाते क्षेमप्रापणमानन्दप्राप्तिर्नास्ति ज्ञातात्मतत्त्वस्यापि दुःखोपलंभात् अयुक्तं च तत् रजो भूत्वा ध्वंसतेऽन्यत्प्रशंसन्निति कर्ममार्गादन्यज्ज्ञानं प्रशंसतो निन्दाश्रवणात् । तस्माज्जुहात्मज्ञानफलयोः समानमर्थवादत्वमिति पूर्वः पक्षः ॥४०॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६८॥

# २६९-[९६]

**कपिल उवाच ।**

**एतावदनुपश्यन्ति यतयो यान्ति मार्गगाः**
**नैषां सर्वेषु लोकेषु कश्चिदस्ति व्यतिक्रमः १**
**निर्द्वन्द्वा निर्नमस्कारा निराशीर्बन्धना बुधाः**
**विमुक्ताः सर्वपापेभ्यश्चरन्ति शुचयोऽमलाः**
**अपवर्गेऽथ संत्यागे बुद्धौ च कृतनिश्चयाः ।**
**ब्रह्मिष्ठा ब्रह्मभूताश्च ब्रह्मण्येव कृतालयाः ३**
**विशोका नष्टरजसस्तेषां लोकाः सनातनाः**
**तेषां गतिं परां प्राप्य गार्हस्थ्ये किं प्रयोजनम्**

**स्यूमरश्मिरुवाच ।**

**यद्येषा परमा काष्ठा यद्येषा परमा गतिः ।**
**गृहस्थानव्यपाश्रित्य नाश्रमोऽन्यः प्रवर्तते**
**यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः**
**एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य वर्तन्त इतराश्रमाः ६**
**गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।**
**गार्हस्थ्यमस्य धर्मस्य मूलं यत्किंचिदेजते ७**
**प्रजनाद्याभिनिर्वृत्ताः सर्वे प्राणभृतो जनाः**
**प्रजनं चाप्युतान्यत्र न कथंचन विद्यते ८**
**यास्तु स्युर्बर्हिरोषध्यो बहिरन्यास्तथाद्रिजाः**
**ओषधिभ्यो बहिर्यस्मात्प्राणात्कश्चिन्न दृश्यते**

---

२६९

अत्रोत्तरमाह-**एतावदिति** । यतयो यमनियमादिमन्तो यान्ति प्रकरणादात्मानं प्राप्नुवन्ति । ते मार्गगाः प्रागेव शुद्धात्मप्राप्तेर्मार्गे सविशेषावस्थायां स्थिता एतावद्दृश्यत्वेन परिच्छिन्नं ब्रह्माण्डं पार्यन्तिकं कर्मफलं अनुपश्यन्ति गुरुशास्त्रोपदेशमनु साक्षात्कुर्वन्ति तथा च श्रुतिः-'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'इति महत्फलं उपक्षिप्य 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सह ' इति शरीरगुहास्थं सत्यादिलक्षणं ब्रह्म यो वेद सः परमे व्योमन्नव्याकृतावस्थां गतः सर्वकामभाग्भवतीति च दर्शयति । ननु फलश्रुतेरर्थवादत्वमुक्तमित्याशंक्याह-**नैषामिति** । एषां यतीनां सर्वेषु लोकेषु भोग्यपदार्थेषु कश्चिद्व्यतिक्रमः मिथ्यासंकल्पत्वं नास्ति । 'संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति'।'संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः'इति श्रुतिन्यायाभ्याम्। तथाहि। छान्दोग्ये-' सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्'इति प्रजापतिना आत्मज्ञानफलमुपन्यस्तं तदेवोद्दिश्य इन्द्रविरोचनौ प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमूषतुः । ' तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते । तस्मात्तेषां सर्वे च लोकाः सर्वे च कामा आप्ताः' इति परकृतिसरूपार्थवादेन सिद्धवन्निर्दिष्टम् । एतस्याविवक्षायां कृत्स्नं कर्मफलमप्यविवक्षितं स्यात्। न्यायसाम्यात् । प्राकरणिकफलत्वाच्च । ननूक्तं देहादन्यस्य कर्त्रात्मनो जुह्वा इव नित्यः क्रतुसम्बन्ध इति । सत्यम्। तथापि अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात् 'योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति'इति विदितवेदान्तवेद्यस्य धर्मायतीतस्याशनायादिरहितस्य आत्मनो ज्ञानं न कर्माङ्गत्वं प्रतिपद्यते । यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्'इति तदधिगमे द्वैतोपमर्दश्रवणात् । तस्मात् नात्मज्ञानफलस्यार्थवादत्वं पर्णमयीदृष्टान्तेन युज्यते । तथा च सूत्रम्-'अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात्'इति ॥१॥ यत्तु बुद्धे चेत् क्षेमप्रापणमिहैव न दुःखमुपलभेतेत्यार्षं वचनमुदाहृतं तत्राह—**निर्द्वन्द्वा इति** । निर्द्वन्द्वाः शीतोष्णादिजहर्षविषादशून्याः अत एव निर्नमस्काराः न कञ्चिन्नमस्कुर्वन्ति। यतः निराशीर्बन्धनाः प्रार्थनापाशशून्याः यतः पापेभ्यो वासनाहेतुभ्यो विमुक्ताः शुचयः स्वभावशुद्धाः अमला आगन्तुकदोषशून्याः यत एवंविधा भरतसंवर्तादयो बहव उपलभ्यन्तेऽतः आपस्तम्बोक्तिर्ज्ञानानधिकारिणां कर्मणि श्रद्धोत्पादनार्था । अन्यथा पूर्वोदाहृतेन तदीयेन ज्ञानफलाभ्युपगमवचनेन विरोधः स्यात् । एतेन गौतमोक्तिरपि ऐकाश्रम्यपरा व्याख्याता वेदितव्या ॥२॥ लोकाः लोक्यन्त इति लोकाः काम्यमाना विषयाः सनातनाः नित्यसिद्धाः 'त एते सत्याः कामा अनृतापिधानाः' इति श्रुतेः । अनृतं देहादितादात्म्याध्यासः गार्हस्थ्ये असत्यस्वर्गादिप्रदकर्माधिकारनिमित्ते किमपि प्रयोजनं नास्ति न हि प्राप्तसाम्राज्यो भिक्षामन्विच्छति ॥ ४ ॥ ननु तथापि कैकेयजनकादीनां गार्हस्थ्य एव विद्वत्त्वदर्शनात्कर्मसमुच्चितैव विद्या फलाय भवतीत्यभिप्रेत्याह—**यदीति** । यदि एषा निर्द्वन्द्वादिविशेषणवत्त्वैव ज्ञाननिष्ठा तर्हि सा गार्हस्थ्यमन्तरेण न भवति । प्रवर्तते एनां निष्ठां दातुं समर्थो भवति ॥ ५ ॥ एजते एजृ कंपने । यत्किंचित्सुखार्थी चेष्टते तस्य धर्मफलस्य सुखस्य मूलं गार्हस्थ्यमेव ॥ ७ ॥ जनाः येन प्रजनादिना प्रजोत्पादनादिना अभिनिर्वृत्ताः सर्वतः सुखिनो भवन्ति तत्प्रजनं प्रजनादि अन्यत्राश्रमान्तरे नास्ति ॥ ८ ॥ **यास्त्विति** । बर्हींषि तृणानि ओषध्यो धान्यानि बहिरन्या ओषध्योऽद्रिजाः सोमपूतिकाद्या यास्तासामपि मूलं वृष्ट्यादिगार्हस्थ्यमेवेति व्यवहितातीतेन सम्बन्धः । तथा ह्याह—

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ' इति ।

कस्यैषा वाग्भवेत्सत्या
मोक्षो नास्ति गृहादिति
अश्रद्दधानैरप्राज्ञैः सूक्ष्मदर्शनवर्जितैः ॥ १०
निरासैरलसैः श्रान्तैस्तप्यमानैः स्वकर्मभिः
शमस्योपरमो दृष्टः प्रव्रज्यायामपण्डितैः ११
त्रैलोक्यस्यैव हेतुर्हि मर्यादा शाश्वती ध्रुवा ।
ब्राह्मणो नाम भगवान् जन्मप्रभृति पूज्यते
प्राग्गर्भाधानान्मन्त्रा हि प्रवर्तन्ते द्विजातिषु
अविश्रंभेषु वर्तन्ते विश्रंभेष्वप्यसंशयम् १३
दाहे पुनः संश्रयणे संश्रिते पात्रभोजने ।
दाने गवां पशूनां वा पिंडानामप्सु मज्जने
अर्चिष्मन्तो बर्हिषदः क्रव्यादाः पितरस्तथा
मृतस्याप्यनुमन्यन्ते मन्त्रा मन्त्राश्च कारणम्
एवं क्रोशत्सु वेदेषु कुतो मोक्षोऽस्ति कस्यचित्
ऋणवन्तो यदा मर्त्याः पितृदेवद्विजातिषु ॥
श्रिया विहीनैरलसैः पण्डितैः संप्रवर्तितम् ।
वेदवादापरिज्ञानं सत्याभासमिवानृतम् १७
न वै पापैर्ह्रियते कृष्यते वा
यो ब्राह्मणो यजते वेदशास्त्रैः ॥
ऊर्ध्वं यज्ञैः पशुभिः सार्धमेति ।
संतर्पितस्तर्पयते च कामैः १८
न वेदानां परिभवान्न शाठ्येन न मायया ।
महत्प्राप्नोति पुरुषो ब्रह्मणि ब्रह्म विन्दति १९

कपिल उवाच

दर्शं च पौर्णमासं च अग्निहोत्रं च धीमतः ।
चातुर्मास्यानि चैवासंस्तेषु धर्मः सनातनः ॥
अनारंभाः सुधृतयः शुचयो ब्रह्मसंश्रिताः ।
ब्रह्मणैव स्म ते देवांस्तर्पयन्त्यमृतैषिणः ॥ २१

---

ओषधिभ्यः प्राणादिति समानाधिकरणे पञ्चम्यौ । औषध्यात्मकात् प्राणाद्बहिर्न कश्चिद्दृश्यते । अतो विश्वोत्पत्त्यादिहेतुर्गार्हस्थ्यमेवेति भावः ॥ ९ ॥ तथाऽपि मोक्षसाधनत्वं गार्हस्थ्यस्य नास्तीत्याशंक्याह—**कस्येति** ॥ १० ॥ निरासैः अप्रतिष्ठैः काणत्वादिदोषाद्गार्हस्थ्यं कर्तुमशक्तैरित्यर्थः । अत एव स्वकर्मभिः काणत्वादिप्रदैः प्राक्तैस्तप्यमानैः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणः वेदवित् ॥ १२ ॥ अविश्रंभेषु मानान्तरागम्येषु स्वर्गादिषु विश्रंभेषु ऐहिकेषु वृष्ट्यादिषु साध्येषु मन्त्रा एव साधयितुं प्रवर्तन्ते ॥ १३ ॥ **दाह इति** । मृतस्य दाहादिकं पितरो मन्त्राश्चानुमन्यन्त इति द्वयोः सम्बन्धः । तत्र 'मैनमग्ने विदह' इति दाहं प्रकाशयति मंत्रः । 'संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । हित्वा यावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः' इति मंत्रेऽवद्यं जीर्णदेहं हित्वाय हित्वा आर्षः क्त्वो यक् । पितृभिर्यमेन इष्टादिफलेन च स्वर्गे संगतिं संप्राप्य पुनरस्तं गृहं पौत्ररूपेण प्रपौत्ररूपेण वा एहि तन्वा देहेन संगच्छेति पुनर्देहप्राप्तिः प्रकाश्यते । तदिदं पुनः संश्रयणं देहस्येति शेषः । तस्मिन्निमित्ते दाह इति सम्बन्धः । देहे पुनः संश्रिते सति मृतस्य तृप्तये पात्रभोजने पयित इति पात्रं जलं भोजनं च ते उभे तर्पणनित्यश्राद्धादिरूपेण देये । तथा गवां वैतरण्यादीनां दानं पशूनां वा गोवृषादीनामुत्सर्गः । पिंडानां वाऽप्सु मज्जनं क्रियते । एतत्सर्वं मन्त्रमूलं न ह्यशरीरस्य मुक्तस्योपकाराय भवतीति न तादृशोऽशरीरतालक्षणो मोक्षोऽस्ति ॥ १४ ॥ अत्रैव हेत्वन्तरमाह—**ऋणवन्त इति** । तथा च श्रुतिः—'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः' इति ॥ १६ ॥ वेदवादानां 'प्रजामनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्' इति सन्तत्यविच्छेदस्यैवामृतत्वं वदतां न परिज्ञानं यस्मिंस्तत् सत्याभासमनृतमशरीरतालक्षणं मोक्षस्वरूपं दर्शितम् ॥ १७ ॥ प्रतिपादितमर्थमुपसंहरति—**न वा इति द्वाभ्याम्** ॥ १८ ॥ परिभवात् वेदोक्तकर्मानादरात् ब्रह्मणि वैदिककर्मणि । ब्रह्म 'य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः' इत्यष्टगुणयुक्तं प्राप्नोति । तथा च सूत्रम्—ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्य इति । ब्राह्मेण अपहतपाप्मत्वादिगुणाष्टकवता रूपेण मुक्तः संपद्यते । कुतः उपन्यासादिभ्यः उपन्यासोऽज्ञातज्ञापनं उद्देशः सिद्धवद्व्यपदेशश्चादिपदार्थः । ते च प्राग्व्याख्याताः । तथा चाग्निहोत्रादिकर्मसमुच्चितादुपासनारूपात् ज्ञानान्मोक्षः स च गार्हस्थ्ये एव सिध्यतीति निष्कृष्टोऽर्थः । जैमिनिमते सृष्टिप्रलययोरभावात् । इमं मानवमावर्तं नावर्तन्त इति देवयानेन पथा गतानामनावृत्तिश्रुतेश्च सगुणभाव एव नित्यः' वस्तुतस्तु इममिति विशेषणात् मानवान्तरे त एव बीजभूता आवर्तन्त इति गम्यते । तथा च पुनरस्तमेहीति प्रागुक्तं मन्त्रलिङ्गं संगच्छते । आपस्तम्बवचनं च—आभूतसंप्लवात्ते स्वर्गजितः पुनः सर्गे बीजार्था भवन्तीति ॥ १९ ॥ तत्र यदुक्तं कर्मभिरेव चेष्टादिकं करोति तदङ्गीकरोति । **दर्शं चेति** । चित्तशुद्ध्यर्थिना एतान्येव कर्माण्यनुष्ठेयानि न पुनर्हिंस्राणि पशुबन्धादीनीति भावः ॥ २० ॥ यत्पुनः संन्यासोऽलसैः कल्पित इति तत्राह—**अनारंभा इति** । ये कर्माणि नारभन्ते संन्यस्यन्ति त एव सुतरां धैर्यवन्तः । वैराग्यबलेन जितकामत्वात् । अत एव शुचयो रागादिमलरहिता ब्रह्मेति संज्ञां प्राप्ताः । ब्रह्मज्ञ

सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः २२

चतुर्द्वारं पुरुषं चतुर्मुखं
चतुर्धा चैनमुपयाति वाचा ।
बाहुभ्यां वाच उदरादुपस्था-
त्तेषां द्वारं द्वारपालो बुभूषेत् २३

नाक्षैर्दीव्येन्नाददीतान्यवित्तं
न वाऽयोनीयस्य शृतं प्रगृह्णात् ।
क्रुद्धो न चैव प्रहरेत धीमां-
स्तथाऽस्य तत्पाणिपादं सुगुप्तम् ॥२४

नाक्रोशमृच्छेन्न वृथा वदेच्च ।
न पैशुनं जनवादं च कुर्यात् ।
सत्यव्रतो मितभाषोऽप्रमत्त-
स्तथाऽस्य वाग्द्वारमथो सुगुप्तम् २५

नानाशनः स्यान्न महाशनः स्या-
दलोलुपः साधुभिरागतः स्यात् ।
यात्रार्थमाहारमिहाददीत
तथाऽस्य स्याज्जाठरी द्वारगुप्तिः २६

न वीरपत्नीं विहरेत नारीं
न चापि नारीमनृतावाह्वयीत ।
भार्याव्रतं ह्यात्मनि धारयीत ।
तथास्योपस्थद्वारगुप्तिर्भवेत २७

द्वाराणि यस्य सर्वाणि सुगुप्तानि मनीषिणः
उपस्थमुदरं बाहू वाक्चतुर्थी भवेद्द्विज ॥ २८
मोघान्यगुप्तद्वारस्य सर्वाण्येव भवन्त्युत ।
किं तस्य तपसा कार्यं किं यज्ञेन किमात्मना
अनुत्तरीयवसनमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यन्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः
द्वंद्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः ।
परेषामननुध्यायंस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ३१
येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ।
गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ३२

---

इत्यर्थः 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः । यत्तु ऋणत्रयवान्न मुच्यत इति तत्राह—ब्रह्मणैव साक्षात्कृतेन ते संन्यासिनो देवान् देवऋषिपितॄन् अमृतानि हविःस्वाध्यायप्रजाख्यानि इच्छन्ति तादृशांस्तर्पयन्ति । क्षणमेकं क्रतुशतस्य चतुःसप्तत्या यत्फलं तदवाप्नोतीत्यल्पकालकृतस्यापि ध्यानस्य महाफलत्वात् ॥ २१ ॥ यदुक्तमूर्ध्वं यज्ञैः पशुभिः सार्धमेतीति तत्र तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्त इति श्रुत्युक्तेन ब्रह्मविदां गत्यभावेन विरुद्धमित्याशयवानाह—**सर्वेति** । न हि सार्वात्म्यं सार्वज्ञ्यं च प्राप्तस्य गतिर्भोगो वा युज्यतेऽतस्तस्य मार्गे देवा अपि मुह्यन्ति । अपदस्य पद्यन्ते गम्यते वस्तुस्वरूपमेभिरिति पदानि गुणास्तद्रहितस्य पदैषिणः गुणकामा देवाः एतेन मुक्तस्य सोपाधिकावस्थायां सार्वात्म्यं वास्तवं तु चिन्मात्रत्वमिति दर्शितम् । तथा च सूत्रम्–एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायण इति । सगुणैकान्तवादी **जैमिनिः**, निर्गुणैकान्तवादी **औडुलोमिः**,अवस्थाभेदेन उभयमुपगच्छतो **बादरायणस्य** त्वविरोध इति भावः । तदिदं द्वयं सर्वभूतात्मभूतस्येत्यपदस्येति विशेषणाभ्यां दर्शितम् ॥ २२ ॥ ननु कथमात्मनो द्वैरूप्यं कथं वा तत्र देवानामपि मोह इत्याशंक्याह–**चतुर्द्वारमिति** । एवं सर्वात्मानं अपदं पुरुषं शरीरान्तःस्थं वाचा गुरूपदेशेन चतुर्धा विराट्सूत्रान्तर्यामिशुद्धरूपेण । उपयाति अवगच्छति । अतः सोपाधिकाऽनुपाधिकरूपेणात्मनो द्वैविध्यं युक्तम् । ननु सर्वेषामात्मत्वात्सर्वदैवायमवगत एवास्तीत्याशंक्याह—चतुर्द्वारं चत्वारि बाह्वादीनि द्वाराणीव पिधायकानि यस्य तं चत्वारि देहेन्द्रियमनोबुद्ध्याख्यानि मुखानीव भोगसाधनानि यस्य तम् । आत्मापि कर्मादिभिरावृतत्वाद्भोक्तृत्वादिरूपेण अन्यथा गृह्णादावृत एवेत्यर्थः । बाहुभ्यामिति कर्मोपलक्षणम् । भोगप्रदेन कर्मणेत्यर्थः । हेत्वर्थे पंचम्यः । वाच इति कर्मकाण्डतन्त्रान्तरीयसिद्धान्तानां ग्रहणम् । उदरोपस्थयोरपि विपरीतप्रवृत्तिहेतुतया आत्मावरकत्वम् । एतैश्चतुर्भिर्निमित्तैस्तेषां देवानामपि द्वारं पिधानमस्ति दुःस्थगने अस्माद्भावे घव् अतो द्वारपालो बाह्वादीनां पालको विनियन्ता बुभूषेत् भवितुमिच्छेत् ॥ २३ ॥ नियमनप्रकारमाह–**नाक्षैरित्यादिना** । अयोनीयस्य नास्ति योनीयं योनिसम्बन्धो यस्य स तथा तस्य शृतं हविर्न प्रगृह्णात् न प्रतिगृह्णीयात् पञ्चमलकारोऽयम् । लिङर्थे लेट् योनिसम्बन्धायोग्यं न तु याजयेदित्यर्थः । तथा च स्मृतिः–'यथा कन्या तथा हविः' इति ॥२४ **नेति** । हे वीर युधिष्ठिर पत्नीं यज्ञसम्बन्धवर्तीं नारीम् न विहरेत न विभजेत तदुपरि स्त्र्यन्तरकरणेन धर्मार्थकामेषु तां विभागवर्तीं न कुर्यात् तथोक्तमापस्तंबेन–धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीतान्यतराभावे कार्या प्रागग्न्याधेयादाधाने सति हि कर्मभिः सम्बध्यत इति । भार्याव्रतं परस्त्रीवर्जनम् ॥ २७ ॥ मोघानि निष्फलानि सर्वाणि तपआदीनि ॥२९ ॥ अननुध्यायन् सुखं दुःखं वा ॥ ३१ ॥ प्रकृतिर्ब्रह्म विकृतिर्द्वैतम् ॥ ३२ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः।
सर्वभूतात्मभूतो यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ३३
नान्तरेणानुजानन्ति दानयज्ञक्रियाफलम्।
अविज्ञाय च तत्सर्वमन्यद्रोचयते फलम् ३४
स्वकर्मभिः संश्रितानां तपो घोरत्वमागतम्।
तं सदाचारमाश्रित्य पुराणं शाश्वतं ध्रुवम् ॥
अशक्नुवन्तश्चरितुं किंचिद्धर्मेषु सूत्रितम्।
निरापद्धर्म आचारो ह्यप्रमादो पराभवः ३६
फलवन्ति च कर्माणि व्युष्टिमन्ति ध्रुवाणि च
विगुणानि च पश्यन्ति तथाऽनैकान्तिकानि च
गुणाश्चात्र सुदुर्ज्ञेया ज्ञाताश्चात्र सुदुष्कराः।
अनुष्ठिताश्चान्तवन्त इति त्वमनुपश्यसि ३८
स्यूमरश्मिरुवाच
यथा च वेदप्रामाण्यं त्यागश्च सफलो यथा
तौ पन्थानावुभौ व्यक्तौ भगवंस्तद्ब्रवीहि मे

कपिल उवाच।

प्रत्यक्षमिह पश्यन्ति भवन्तः सत्पथे स्थिताः
प्रत्यक्षं तु किमत्रास्ति यद्भवन्त उपासते ४०

स्यूमरश्मिरुवाच।

स्यूमरश्मिरहं ब्रह्मन् जिज्ञासार्थमिहागतः
श्रेयस्कामः प्रत्यवोचमार्जवान्न विवक्षया ४१
इमं च संशयं घोरं भगवान्प्रब्रवीतु मे।
प्रत्यक्षमिह पश्यन्तो भवन्तः सत्पथे स्थिताः
किमत्र प्रत्यक्षतमं भवन्तो यदुपासते ४२
अन्यत्र तर्कशास्त्रेभ्य आगमार्थं यथागमम्।
आगमो वेदवादास्तु तर्कशास्त्राणि चागमः

---

ईदृशं ब्राह्मण्यमज्ञात्वा मूढाः कर्मसु सज्जन्ते योगं चावमन्यन्ते इत्याह—**नेतिचतुर्भिः** । दानादिक्रियायाः फलं चित्तशुद्धिस्तामन्तरेण विना न अनुजानन्ति गुर्वादिभिरुक्तं नानुबुद्ध्यन्ते । ब्राह्मण्यमिति शेषः । अन्यत् स्वर्गादि ॥ ३४ ॥ यमाश्रित्य संश्रितानामश्रमाणां स्वकर्मभिः सहितं तपः वेदान्तश्रवणाद्यात्मकमात्मालोचनं घोरत्वं संसारमूलाज्ञानदाहकत्वं आगतं भवति तं सदाचारं चरितुमशक्नुवन्त एतानि विगुणानि अनैकान्तिकानि व्यभिचारीणि पश्यन्तीति त्रयाणां सम्बन्धः । पुराणं अनादिं शाश्वतं मुमुक्षूणां नित्यानुष्ठेयं ध्रुवं अव्यभिचारिफलम् ॥ ३५ ॥ अप्रमादः सावधानता अपराभवः कामाद्यनाक्रान्तता ॥ ३६ ॥ फलवन्ति प्रत्यक्षफलानि कर्माणि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्याख्यानि । व्युष्टिः पारमैश्वर्यं तद्वन्ति । ध्रुवाणि अविनाशीन्यपि । विगुणानि यज्ञादिकर्मत्यागान्निष्फलानि । अनैकान्तिकानि चेति पश्यन्ति ॥३७॥ गुणाः गुणकार्याणि यज्ञादीनि । यज्ञादीनामन्तवत्फलत्वं जानन् ज्ञाननिष्ठामेव श्रेयस्त्वेति भावः ॥ ३८ ॥ एवं श्रद्धोपपत्तिभ्यां कर्मतत्त्यागदिशोराकृष्यमाणतयाऽन्यतरस्य श्रेयस्त्वे संदिहानः स्यूमरश्मिः पृच्छति—**यथा चेति** । 'कुरु कर्म त्यज' इति चेति परस्परविरुद्धं पक्षद्वयमुपदिशतो वेदस्य प्रामाण्यं यथा निर्वहेत् । यथा च त्यागश्चादत्यागः । एतौ पक्षौ व्यक्तौ 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । त्यजतैव हि तज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक् परं पदम्' इति श्रुतिभ्यां विस्पष्टमुक्तौ । भगवन् सर्वैश्वर्यज्ञानादिसंपन्न तत् तयोस्तत्त्वं मे मह्यं ब्रवीहि ॥ ३९ ॥ अत्रानुभवमेव प्रमाणयन्नुत्तरमाह—**प्रत्यक्षमिति** । सतः पन्था ब्रह्मप्राप्तिमार्गो योगस्तत्र स्थिताः सन्तो भवन्त इह जीवत्येव देहे प्रत्यक्षं पश्यन्तु परीक्षयन्तु । विधौ लेट् । किं तत्परीक्षणीयं प्रत्यक्षं घटं प्रत्यक्षीकरोमि घटं प्रत्यक्षेण पश्यामीति विषयकरणयोरपि प्रत्यक्षशब्दप्रयोगादिति तत्राह—**प्रत्यक्षमिति** । यद्भवन्तः कर्मठा उपासते प्रार्थयन्ते । तत्प्रत्यक्षं सुखाद्यनुभवरूपं अत्रास्मिँल्लोके किं किंस्वरूपमस्तीति ॥ ४० ॥ तत्र सुखाद्यनुभवं परीक्षितुमशक्तः प्रतिवादित्वं परित्यज्य शिष्यत्वेन कपिलमनुसरन् स्यूमरश्मिरुवाच—**स्यूमेति** । इहागतो गवि प्रविष्टः । विवक्षया स्वपक्षनिर्वहेच्छया वहतेरिदं रूपम् । न प्रातिभव्येनेत्यर्थः ॥४१॥ संशयं किंविषयात्मकं प्रत्यक्षं ज्योतिष्टोमादिप्राप्यम् । उत इन्द्रियमनोबुद्ध्याख्यकरणात्मकम् । आद्ये एकस्यां युवत्यां कामुकसपत्न्यो रागद्वेषदर्शनेन विषयस्य सुखरूपत्वानियमेन काम्यत्वायोगात् । अन्त्ये सुखकरणत्वादेव तेषां सुखत्वाभावेनाकाम्यत्वात् । अथ स्वरूपसुखाभिव्यक्तये करणपाटवमेव काम्यं तदा विरक्तानां विनाऽपि विषयं सुखसिद्धेः स्वर्गकामादिपदवैयर्थ्यम् । पराभिमतचित्तसंस्कारपक्षानतिरेकादिति अन्यतरानिर्णयात्संशयस्य घोरत्वं विशेषं जिज्ञासुः कपिलोक्तिमनुवदति—**प्रत्यक्षमिति** । विषयः प्रत्यक्षं बुद्धिः प्रत्यक्षतरम् । प्रत्यक्षतमं तु किं बुद्धिविशिष्टश्चिदाभासः उत बुद्धिनिष्कृष्टोऽन्यः कश्चिदात्मेति । यं भवन्त उपासते तं मे ब्रुवन्त्विति विपरिणामेनानुषञ्जनीयम् ॥४२॥ स्वमतमाह—**अन्यत्रेति** । तर्कैकप्रधानानि वेदविरोधीनि लोकायतार्हतसौगतकापालिकादिशास्त्राणि तेभ्योऽन्यत्र तानि वर्जयित्वा आगमस्यार्थं यथा यथावत् अगमं अधिगतवानस्मि । तत्र आगमः किं पाशुपतपाञ्चरात्रादिरि-

यथाश्रममुपासीत आगमस्तत्र सिध्यति ।
सिद्धिः प्रत्यक्षरूपा च दृश्यत्यागमनिश्चयात्
नौर्नावीव निबद्धा हि स्रोतसा सनिबन्धना
ह्रियमाणा कथं विप्र कुबुद्धींस्तारयिष्यति ।
एतद्ब्रवीतु भगवानुपपन्नोऽस्म्यधीहि भो ४५
नैव त्यागी न संतुष्टो नाशोको न निरामयः
नानिर्विधित्सो नावृत्तो नापवृत्तोऽस्ति कश्चन
भवन्तोऽपि च हृष्यन्ति
शोचन्ति च यथा वयम् ।
इन्द्रियार्थाश्च भवतां
समानाः सर्वजन्तुषु ॥ ४७

एवं चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां प्रवृत्तिषु ।
एकमालम्बमानानां निर्णये किं निरामयम् ४८
कपिल उवाच ।
यद्यदाचरते शास्त्रमर्थ्यं सर्वप्रवृत्तिषु ।
यस्य यत्र ह्यनुष्ठानं तत्र तत्र निरामयम् ॥ ४९
ज्ञानं प्लावयते सर्वं यो ज्ञानं ह्यनुवर्तते ।
ज्ञानादपेत्य या वृत्तिः सा विनाशयति प्रजाः
भवन्तो ज्ञानिनो ह्यत्र सर्वतश्च निरामयाः ।
ऐकात्म्यं नाम कश्चिद्धि कदाचिदुपपद्यते ५१
शास्त्रं ह्यबुध्वा तत्त्वेन केचिद्वादबलाज्जनाः
कामद्वेषाभिभूतत्वादहङ्कारवशं गताः ॥ ५२

स्यैतां शंकां निरस्यति—**आगम इति** । तर्कशास्त्राणि वेदार्थनिर्णायकानि पूर्वोत्तरमीमांसे सांख्यपातञ्जले च यत्र वेदस्य स्वतःप्रामाण्यमस्थीयते नानुमानान्तरसंवादसापेक्षम् ॥ ४३ ॥ तान्येतानि यथाश्रममाश्रमधर्ममनतिक्रम्योपासीत । तत्राप्यागमो मीमांसाद्वयेोपगृहीतः सिद्ध्यति । सांख्यपातञ्जले त्वंशतो वेदविरोधान्न सिद्ध्यतः । तथा हि सांख्यैरहिंसैव प्रशस्यते पातञ्जलैश्च चित्तनिरोध एव । तावुभौ यागाद्यनुष्ठानप्रतिबन्धकावतो न सिद्ध्यतः । ननु

'पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तत्र रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ' इति ।

पञ्चभूतजयाद्योगिनामप्यजरत्वामरत्वादिसिद्धिः प्रत्यक्षागममूला दृश्यते । सत्यम् । प्रतिक्षणपरिणामिनो जन्मवतः शरीरस्याजरत्वामरत्वे प्रत्यक्षानुमानविरुद्धे । अतो या प्रत्यक्षस्य रूपमिव रूपं यस्या इति प्रत्यक्षा विरुद्धा चादनुमानाविरुद्धा च आगमनिश्चया दृश्यति दृश्यते गत्यागतिदिव्यभोगप्राप्त्यादिरूपा सैव सिद्धिरिति ॥ ४४ ॥ एवमुपन्यस्तं स्वमतं परमतजिज्ञासया निन्दति—**नौर्नावीति** । यथा नावि निबद्धा नौः स्रोतसा ह्रियमाणा न तारयत्येवमन्धपरंपरया कर्मनौकां सनिबन्धनां पूर्वपूर्वकर्मवासनाबन्धवतीमाश्रिता वयं जन्मजरामृत्युप्रवाहं न तर्तुं क्षमा इत्यर्थः । फलितमाह-**एतदिति** । एतत् प्रत्यक्षतमं उपपन्नः उपसन्नः शिष्योऽस्मि अधिकार्यस्मीति वा । अधीहि अध्यापय॥४५॥ ननु 'तरति शोकमात्मवित्' इति त्वयाऽप्यधीतमस्त्येव । निर्द्वंद्वा निर्नमस्कारा इत्यादिना मयाप्युक्तं च किमतः परमध्यापयितव्यमित्याशंक्य तत्र प्रत्यक्षविरोधमुपन्यस्यति—**नैवेति** । ना पुरुषः निर्विधित्सश्चिकीर्षाशून्यः आवृत्तः संगविमुखः अपवृत्तो निष्कर्मा॥ ४६ ॥

एकं सर्वेषामीप्सितं सुखमालम्बमानानां सुखार्थिनां वर्णादीनां निर्णये सिद्धान्ते किं सुखं निरामयमपचयहीनं तदब्रूहीति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ४८ ॥ अत्रोत्तरमाह—**यद्यदिति** । वैदिकमवैदिकं यद्यच्छास्त्रं यस्य यस्य मोक्षशास्त्रस्यार्थे आचरते सम्यगनुतिष्ठति । भावकर्मणोरिति कर्मणि तङ् । ततदर्थ्यं अर्थप्रयोजनादनपेतं सफलम् । एतत्प्रसिद्धमेवेत्याह—**यस्येति** । अयं भावः—सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्यय इति न्यायेन सर्वेषां घटस्वरूपे तत्साक्षात्कारसाधने चक्षुरुन्मीलनादौ च न विगानम् एवमात्मनि वादिविप्रतिपत्त्याऽनेकेषु विकल्पेषु शून्यं क्षणिकविज्ञानं कर्ता भोक्तेत्यादिषु सत्स्वपि मोक्षे तत्स्वरूपं निरस्ताशेषविषयदर्शनं तत्साधनं च शमदमोपरमतितिक्षाश्रद्धासमाधानात्मकमविगीतम् । एवं व्यावहारिकप्रक्रियायां विगानेऽपि फलसाधनयोरविगानात् । यत्र यत्र मते स्थित्वाऽस्य शमाद्यनुष्ठानं सम्पद्यते तेन तत्र तत्र निरामयं सर्वदोषशून्यं स्वरूपं लभ्यते । एतेनान्यत्र तर्कशास्त्रेभ्य इति पूर्ववाद्युक्तं शास्त्रान्तरविगानमुपादेयांशस्याविज्ञानादेवेत्युक्तम् उक्तं । च व्यावहारिकप्रक्रियाणां सर्वासामविगीतत्वमनवस्थितत्वं च—

'यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ।
सा सैव प्रक्रिया ज्ञेया साध्वी सा चानवस्थिता ' इति॥४९॥

**ज्ञानमिति** । यथोक्तसाधनानुष्ठानादुत्पन्नं ज्ञानं सर्वं संसारं नाशयति । कस्य यो ज्ञानं ह्यनुवर्तते तस्य ज्ञानं विना या वैदिक्यपि वृत्तिः सा प्रजा नाशयति । जन्ममरणप्रवाहपातनेन क्लेशयति ॥ ५० ॥ एक एव द्वैतदर्शनहीनः आत्मा यत्र भवति तदैकात्म्यं नाम ज्ञानं भवतां ज्ञानिनां मध्ये कश्चिदुपपद्यते उपसन्नो भूत्वा प्राप्नोति नैवेत्यर्थः । शमाद्यभावात् ॥५१॥ अतः सर्वे यूयं भ्रान्ता इत्याह -**शास्त्रं हीत्यादिना** ॥ ५२ ॥

याथातथ्यमविज्ञाय शास्त्राणां शास्त्रदस्यवः।
ब्रह्मस्तेना निरारम्भा दम्भमोहवशानुगाः॥५३
नैर्गुण्यमेव पश्यन्ति न गुणाननुयुञ्जते।
तेषां तमःशरीराणां तम एव परायणम्॥ ५४
यो यथा प्रकृतिर्जन्तुः प्रकृतेः स्याद्वशानुगः
तस्य द्वेषश्च कामश्च क्रोधो दम्भोऽनृतं मदः।
नित्यमेवाभिवर्तन्ते गुणाः प्रकृतिसंभवाः॥ ५५
एवं ध्यात्वाऽनुपश्यन्तः
सन्त्यजेयुः शुभाशुभम्।
परां गतिमभीप्सन्तो
यतयः संयमे रताः॥ ५६

स्यूमरश्मिरुवाच।

सर्वमेतन्मया ब्रह्मन्
शास्त्रतः परिकीर्तितम्।
न ह्यविज्ञाय शास्त्रार्थं
प्रवर्तन्ते प्रवृत्तयः॥ ५७
यः कश्चिन्न्याय्य आचारः
सर्वं शास्त्रमिति श्रुतिः।
यदन्याय्यमशास्त्रं त-
दित्येषा श्रूयते श्रुतिः॥ ५८
न प्रवृत्तिर्ऋते शास्त्रात्काचिदस्तीति निश्चयः
यदन्यद्वेदवादेभ्यस्तदशास्त्रमिति श्रुतिः॥ ५९
शास्त्रादपेतं पश्यन्ति बहवो व्यक्तमानिनः।
शास्त्रदोषान्न पश्यन्ति शोचन्ति च यथा वयम्
इन्द्रियार्थाश्च भवतां समानाः सर्वजन्तुषु॥ ६०
एवं चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां प्रवृत्तिषु।
एकमालम्बमानानां निर्णये सर्वतोदिशम्॥ ६१
आनन्त्यं वदमानेन शक्तेनावर्जितात्मना।
अविज्ञानहतप्रज्ञा हीनप्रज्ञास्तमोवृताः॥ ६२
शक्यं त्वेकेन युक्तेन कृतकृत्येन सर्वशः।
पिण्डमात्रं व्यपाश्रित्य चरितुं विजितात्मना
वेदवादं व्यपाश्रित्य मोक्षोऽस्तीति प्रभाषितुम्
अपेतन्यायशास्त्रेण सर्वलोकविगर्हिणा॥ ६४
इदं तु दुष्करं कर्म कुटुंबमभिसंश्रितम्।
दानमध्ययनं यज्ञः प्रजासंतानमार्जवम्॥ ६५
यद्येतदेवं कृत्वापि न विमोक्षोऽस्ति कस्यचित्
धिक्कर्तारं च कार्यं च श्रमश्चायं निरर्थकः॥ ६६
नास्तिक्यमन्यथा च स्या-
द्वेदानां पृष्ठतः क्रिया।
एतस्यानन्त्यमिच्छामि
भगवन् श्रोतुमञ्जसा॥ ६७
तत्त्वं वदस्व मे ब्रह्मन्नुपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः
यथा ते विदितो मोक्षस्तथेच्छाम्युपशिक्षितुम्

---

ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यं वस्तु तस्य स्तेनाः अपलापकर्तारः निरारंभाः शमाद्यारंभशून्याः॥ ५३॥ नैर्गुण्यं फलाभावं गुणान् ज्ञानैश्वर्यादीन् न अनुयुञ्जते आत्मसंवेद्यतामापाद्य परेषु न योजयन्ति पाषाणवत्स्वयं मज्जन्तो नान्यमुद्धर्तुं शक्नुवन्तीत्यर्थः॥५४॥संयमे धारणाध्यानसमाध्यात्मके समये इति पाठे सिद्धान्ते॥ ५६॥ एतत्कर्मणां प्राशस्त्यं संन्यासस्याप्राशस्त्यं च प्रवृत्तयः वाचां विलासः॥५७॥ यत्कं प्रत्यक्षसिद्धं तदेव मन्यन्त इति दृष्टमात्रपराः अत एव शास्त्रादपेतं इहलोकमेव पश्यन्ति। शास्त्रदोषान् शास्त्रोक्तान् कृतहानाकृताभ्यागमादिदोषान् अन्याय्यमवैदिकं च मतमाश्रित्य यथा लोकायताः शोचन्ति तथा वयमपि शोचाम इत्यर्थः। अत्र हेतुमाह—**इन्द्रियार्था इति**। शीतोष्णादीनां स्पर्शः सर्वेषां सुखादिप्रदः पशुपामरपंडितानां तुल्यरूप इत्यर्थः॥ ६०॥ एवमिति द्वयोः सम्बन्धः एकमुख्यार्थिनां वर्णादीनां मध्ये वयं त्वया आत्मना चित्तेन आवर्जिताः शान्तिं नीताः। सन्धिरार्षः। कीदृशेन त्वया निर्णये सिद्धान्ते सर्वतोदिशं सर्वतःप्रकारं सर्वशास्त्रसिद्धान्तत्वेन आनन्त्यं वदमानेन यद्यदाचरते शास्त्रमित्यत्र प्राग्व्याख्यातरीत्या प्रकाशयता भासनोपसंभाषेति वदेर्भासनार्थे तङ्। शक्तेन ऊहापोहकुशलेन। कीदृशा वयम्। अविज्ञानेन आत्माननुभवेन हता प्रज्ञा स्वरूपनिष्ठा येषाम्। अत एव हीने विषये एव प्रज्ञा धीर्येषाम्। एतयोरावरणविक्षेपयोः कारणमाह— **तमोवृता इति**॥ ६२॥ यद्यपि त्वया इयं निष्ठा उक्ता तथापि दुष्करेत्याह—शक्यं त्विति द्वयेन। येन सर्वशः सर्वतोदिशं चरितुं शक्यते। तेन मोक्षोऽस्तीति प्रभाषितुं युक्तमिति अध्याहृत्य व्यवहितेन योज्यम्। संन्यासं विना मोक्षो दुष्प्राप इत्यर्थः॥ ६३॥ अत्रानुपपत्तिमाह सार्धद्वयेन—**इदं त्विति**। कर्मकाण्डस्य वैयर्थ्यं प्रतिपत्तॄणां नास्तिक्यं चास्मिन्मते स्यादित्यर्थः॥ ६५॥ एतस्य कर्मकाण्डस्य आनन्त्यं आनन्त्यहेतुत्वम् अयं भावः- कर्मज्ञानकाण्डयोः पार्थगर्थ्ये वेदस्यैकस्मिन्नर्थे पर्यवसानाभावाद्वाक्यभेदः स्यात् स च संभवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि नेष्यत इतिन्यायेनायुक्तः अतः कर्मकाण्डस्यैव ज्ञानकांडशेषत्वं वाच्यं वैपरीत्यस्य प्रागेव निरस्तत्वादिति॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि गोकापिलीये एकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

## २७०-[९७]

कपिल उवाच ।
वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । १
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।
शरीरमेतत्कुरुते यद्वेदे कुरुते तनुम् ॥ २
कृतशुद्धशरीरो हि पात्रं भवति ब्राह्मणः ।
आनन्त्यमत्र बुद्ध्येदं कर्मणां तद्ब्रवीमि ते ॥ ३
अनागममनैतिह्यं प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम् ।
धर्म इत्येव ये यज्ञान्वितन्वन्ति निराशिषः ४
उत्पन्नत्यागिनो लुब्धाः
कृपासूयाविवर्जिताः ।
धनानामेष वै पन्था-
स्तीर्थेषु प्रतिपादनम् ॥ ५
अनाश्रिताः पापकर्म कदाचित्कर्मयोगिनः ।
मनःसंकल्पसंसिद्धा विशुद्धज्ञाननिश्चयाः ६
अक्रुध्यन्तोऽनसूयन्तो निरहङ्कारमत्सराः ।
ज्ञाननिष्ठास्त्रिशुक्लाश्च सर्वभूतहिते रताः ७
आसन् गृहस्था भूयिष्ठा
अव्युत्क्रान्ताः स्वकर्मसु ।
राजानश्च तथा युक्ता
ब्राह्मणाश्च यथाविधि ॥ ८
समा ह्यार्जवसंपन्नाः संतुष्टा ज्ञाननिश्चयाः ।
प्रत्यक्षधर्माः शुचयः श्रद्दधानाः परावरे ॥ ९
पुरस्ताद्भावितात्मानो यथावच्चरितव्रताः ।
चरन्ति धर्मं कृच्छ्रेऽपि दुर्गे चैवापि संहताः

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

### २७०

कर्मणां ज्ञानांगत्वं विवक्षुस्तद्वैयर्थ्यशंकां तावत्परिहरत्यर्धेन-**वेदा इति**। शब्दब्रह्मकर्मोपास्तिकांडः परं ब्रह्म प्रत्यगात्मा ॥ १ ॥ तत्र गर्भाधानमारभ्य कर्मकांडो ज्ञानशेषत्वं भजत इत्याह—**शरीरमिति**। वेदे उपनिषत्कांडे यत् तनुं शरीरं कुरुते गर्भाधानविधिना उत्पादयति

'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु
आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते'

इत्यादिमन्त्रैः तत् शरीरमेव कुरुते संस्कुरुते। विष्ण्वादिदेवतास्मरणपूर्वकमाहिते गर्भे विष्ण्वादिवज्ज्ञानैश्वर्यसंपन्न एव जीव आविर्भवति। शरीरसंस्कारेण शरीराभिमानिनः स्वास्थ्यदर्शनात् ॥२॥ अत्रैव वैदिकप्रसिद्धिमाह-**कृतेति**। कृतं श्रौतस्मार्तसंस्कारैः पित्रा संस्कृतं शुद्धं चाध्ययनादिना शरीरं यस्य स ब्राह्मणः पात्रं ब्रह्मविद्याया योग्यं भवति तत्र श्रौतः संस्कारो जातेष्ट्यादिः । 'यस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव स तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति' इति श्रुत्युक्तफलकः । स्मृत्यन्तरे-'यस्यैते अष्टाचत्वारिंशत्संस्काराः स ब्रह्मणः सायुज्यं सरूपतां सलोकतां जयति' इति 'महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः' इति च एतेन ज्ञानशेषत्वं कर्मकांडस्योक्तं भवति। कर्मणां फलं आनन्त्यं मोक्षोपयोगि चित्तशुद्धिरूपम्। अत्र अस्मिन्नेव लोके प्रत्यक्षं बुद्ध्य जानीहि । न हि चित्तशुद्धिः स्वसाक्षिकी स्वर्गवद्वेदैकगम्या पर्वतवन्हिवदनुमेया वेति वक्तुं शक्यम् ॥ ३ ॥ तदेतदाह—**अनागममनैतिह्यमिति**। येन क्रमेण कर्मणामानन्त्यहेतुत्वं स्यात्तमाह—**धर्म इति**। निराशिषः निष्कामाः॥४॥ उत्पन्नत्यागिनः धनसंग्रहशून्याः कृपासूयाभ्यां रागद्वेषौ लक्ष्यौ तद्वर्जिताः तीर्थेषु सत्पात्रेषु॥ ५ ॥ तल्लक्षणम्-**अनाश्रिता इति**।अग्निहोत्रादिमन्तः सर्वदा पापकर्मानाश्रितास्ते तीर्थभूता इत्यर्थः।एवं धर्ममनुतिष्ठन्त ईदृशा भवन्तीत्याह—**मन इत्यादिद्वाभ्याम्** । विशुद्धं निर्विषयं ज्ञानं ब्रह्म तत्र निश्चयो येषाम्॥ ६ ॥ ज्ञाने ज्ञानोपाये श्रवणमनननिदिध्यासनाख्ये निष्ठा येषां ते त्रिशुक्लाः जन्म कर्म विद्या चेति त्रीणि शुक्लानि शुद्धानि येषां ते ॥ ७ ॥ अव्युत्क्रान्ताः आदरवन्तः राजानो जनकादयः ब्राह्मणाः याज्ञवल्क्यादयः ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षः धर्मो धर्मफलं सत्यसंकल्पत्वादिकं येषां ते परं सोपाधिकं ब्रह्म अवरं नीचं यस्मात् तस्मिन्निरुपाधिके ब्रह्मणि ॥९॥

संहृत्य धर्मं चरतां पुराऽऽसीत्सुखमेव तत्।
तेषां नासीद्विधातव्यं प्रायश्चित्तं कथञ्चन११
सत्यं हि धर्ममास्थाय दुराधर्षतमा मताः।
न मात्रामनुरुध्यन्ते न धर्मच्छलमन्ततः ॥ १२
य एव प्रथमः कल्पस्तमेवाभ्याचरन्सह।
तेषां नासीद्विधातव्यं प्रायश्चित्तं कदाचन १३
तस्मिन्विधौ स्थितानां हि
प्रायश्चित्तं न विद्यते।
दुर्बलात्मन उत्पन्नं
प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १४
एवं बहुविधा विप्राः पुराणा यज्ञवाहनाः।
त्रैविद्यवृद्धाः शुचयो वृत्तवन्तो यशस्विनः १५
यजन्तोऽहरहर्यज्ञैर्निराशीर्बन्धना बुधाः।
तेषां यज्ञाश्च वेदाश्च कर्माणि च यथागमम्१६
आगमाश्च यथाकाले संकल्पाश्च यथाक्रमम्।
अपेतकामक्रोधानां दुश्चराचारकर्मणाम् १७
स्वकर्मभिः शंसितानां
प्रकृत्या शंसितात्मनाम्।
ऋजूनां शमनित्यानां
स्वेषु कर्मसु वर्तताम् ॥ १८

सर्वमानन्त्यमेवासीदिति नः शाश्वती श्रुतिः
तेषामदीनसत्त्वानां दुश्चराचारकर्मणाम् १९
स्वकर्मभिः संभृतानां तपो घोरत्वमागतम्।
तं सदाचारमाश्चर्यं पुराणं शाश्वतं ध्रुवम् २०
अशक्नुवद्भिश्चरितुं किञ्चिद्धर्मेषु सूक्ष्मताम्।
निरापद्धर्म आचारो ह्यप्रमादोऽपराभवः २१
सर्ववर्णेषु जातेषु नासीत्कश्चिद्व्यतिक्रमः।
व्यस्तमेकं चतुर्धा हि ब्राह्मणा आश्रमं विदुः॥
तं सन्तो विधिवत्प्राप्य
गच्छन्ति परमां गतिम्।
गृहेभ्य एव निष्क्रम्य
वनमन्ये समाश्रिताः ॥ २३
गृहमेवाभिसंश्रित्य ततोऽन्ये ब्रह्मचारिणः।
त एते दिवि दृश्यन्ते ज्योतिर्भूता द्विजातयः
नक्षत्राणीव धिष्ण्येषु बहवस्तारकागणाः।
आनन्त्यमुपसंप्राप्ताः सन्तोषादिति वैदिकम्
यद्यागच्छन्ति संसारं पुनर्योनिषु तादृशाः।
न लिप्यन्ते पापकृत्यैः कदाचित्कर्मयोनितः

मात्रां मीयन्ते विषया अनयेति मात्रा बुद्धिस्तां नानुरुध्यन्ते। अपि तु शास्त्रमेवानुरुद्ध्यन्ते धर्मे च्छलं वञ्चनाम् ॥ १२ ॥ छलाभावमेवाह--**य एवेति** ॥ १३ ॥ दुर्बलात्मनः अशक्तस्य ॥ १४ ॥ तेषां यज्ञादिकं सर्वं आनन्त्यमासीदिति तृतीयेनान्वयः ॥ १६ ॥ शंसितानां प्रख्यातानाम् ॥ १८ ॥ आनन्त्यं ब्रह्म शाश्वती श्रुतिर्गीता 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः'इत्यादिः॥१९॥ संभृतानां पूर्णानां घोरत्वं अविद्यानिवर्तनक्षमत्वम्। तमिति सार्धश्लोकद्वयमेकं वाक्यं पाठक्रममननुरुध्य अर्थक्रमेण व्याख्येयम्। यःसदाचारः सतां आपद्धर्माचारादन्य आचारः स सदाचार इति सदाचारलक्षणम्। स च अप्रमादः सावधानता अपराभवः कामक्रोधादिभिरनभिभूतता यत्र च पुरा व्यतिक्रमः अपूज्यपूजनं पूज्यानामपूजनं चेत्यादिर्नासीत्। तं सदाचारं एकं आश्रमं सन्तं चतुर्धा व्यस्तं ब्राह्मणा आहुः। कैर्व्यस्त धर्मेषु सूक्ष्मतां सूक्ष्मं धर्मं आचरितुमशक्नुवद्भिः। तथाहि मानसिकं व्यभिचारं वारयितुमक्षमैर्ब्रह्मचारिभिर्गार्हस्थ्यमाश्रितं तत्र कृतैर्यज्ञादिभिः कषायेषु ईषत् पक्वेषु वैराग्यबहुलं वानप्रस्थ्यमास्थितं तेष्वेव सम्यक् पक्वेषु पारिव्राज्यमित्यारोहक्रमेण चातुराश्रम्यं स्थितमित्यर्थः। शेषं व्याख्यातम् ॥ २० ॥ तमिति सार्धः श्लोकः। तं सदाचारं सन्तो गृहेभ्यो निष्क्रम्यैव संन्यासं कृत्वैव विधिवत्प्राप्य परमां गतिं गच्छन्ति। विधिवदित्यादि सर्वत्र योज्यम्। चतुर्ष्वप्याश्रमेषु उक्तरूपसदाचारवतां मोक्षोऽस्तीत्यर्थः ॥ २३ ॥ सन्तोषाद्वैराग्यात् आनन्त्यं ब्रह्मभावं प्राप्ताः अगस्त्यवसिष्ठादयः ॥ २५ ॥ तादृशा आधिकारिका यद्यागच्छन्ति संसारं तथापि पापैर्योनिप्रवेशजैर्दुःखैर्न लिप्यन्ते। गृहाद्गृहान्तरप्रवेशवदैच्छिकस्तेषां देहान्तरप्रवेशः। यथाऽऽम्नातमनुक्रमणिकायां मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुंभे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेतामिति। वसतीवर्यः सोमाभिषवार्था आपस्तत्सम्बन्धिनि वासतीवरे तेषां शुद्धब्रह्मविदामपि हिरण्यगर्भस्येव यावदधिकारसमाप्ति न विदेहकैवल्यमस्ति यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणामिति न्यायात्। ननु

'कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्।
सप्त जन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः'

इत्येकं कर्मानेकजन्मारंभकं दृष्टम्। तत्र प्रथमेऽस्मिन्नेव जन्मनि तत्त्वज्ञानोदयेऽपि प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति न्यायेन प्रारब्धकर्मबलादन्यानि षट् जन्मान्यनिवार्याण्येवेत्याशंक्याह--**कर्मयोनित इति**। अत्रेदं विचार्यते--किं सप्तजन्मानि तेषु च गर्भवासादीनि दुःखानि अशनपानादिजन्यानि सुखानि च किमेकमेव स्वामिदर्शनाख्यं कर्म-

एवमेव ब्रह्मचारी शुश्रूषुर्घोरनिश्चयः।
एवं युक्तो ब्राह्मणःस्यादन्यो ब्राह्मणको भवेत्
कर्मैवं पुरुषस्याह शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
एवं पक्वकषायाणामानन्त्येन श्रुतेन च ॥ २८
सर्वमानन्त्यमासीद्धि एवं नः शाश्वती श्रुतिः
तेषामपेततृष्णानां निर्णिक्तानां शुभात्मनाम्
चतुर्थोपनिषद्धर्मः साधारण इति स्मृतिः।
संसिद्धैः साध्यते नित्यं ब्राह्मणैर्नियतात्मभिः
संतोषमूलस्त्यागात्मा ज्ञानाधिष्ठानमुच्यते।
अपवर्गमतिर्नित्यो यतिधर्मः सनातनः ॥ ३१
साधारणः केवलो वा यथाबलमुपासते।
गच्छतां गच्छतां क्षेमं दुर्बलोऽत्रावसीदति।
ब्रह्मणः पदमन्विच्छन्संसारान्मुच्यते शुचिः

स्यूमरश्मिरुवाच।

ये भुञ्जते ये ददते यजन्तेऽधीयते च ये।
मात्राभिरुपलब्धाभिर्ये वा त्यागं समाश्रिताः
एतेषां प्रेत्यभावे तु कतमः स्वर्गजित्तमः।
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् यथातत्त्वेन पृच्छतः ३४

कपिल उवाच।

परिग्रहाः शुभाः सर्वे गुणतामभ्युपागताः।
न तु त्यागसुखं प्राप्ता एतत्त्वमपि पश्यसि३५

स्यूमरश्मिरुवाच।

भवन्तो ज्ञाननिष्ठा वै गृहस्थाः कर्मनिश्चयाः
आश्रमाणां च सर्वेषां निष्ठायामैक्यमुच्यते ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन विशेषो नात्र दृश्यते।
तद्यथावद्यथान्यायं भगवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३७

कपिल उवाच।

शरीरपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः।
कषाये कर्मभिः पक्वे रसज्ञाने च तिष्ठति ॥ ३८
आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम्
तद्विद्वाननुबुध्येत मनसा कर्मनिश्चयम् ॥ ४०
यां विप्राः सर्वतः शांता विशुद्धा ज्ञाननिश्चयाः
गतिं गच्छन्ति सन्तुष्टास्तामाहुः परमां गतिम्

---

प्रापयति उत कर्मान्तरसमवेतम्। आद्ये इष्टसाधनबुद्ध्याऽनुष्ठितस्य तस्य गर्भवासाद्यनिष्टप्रापकत्वे शास्त्रस्यानर्थकरत्वं स्यात्। अन्त्ये तत्त्वज्ञानेन कर्मान्तरनाशे सति जन्मायोगाद्दर्शनशास्त्रानर्थक्यं स्यात् तस्मात् 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' इति शास्त्रादविच्छिन्ने जन्ममरणप्रवाहे सप्तसु जन्मसु विप्रत्वादियोगो दर्शनफलं न तु सप्तजन्मान्यपि तस्मात्युक्तमुक्तं प्रारब्धकर्मोपस्थापितयोनिप्रवेशनिमित्ततः पापकृत्यैः पापफलैर्दुःखैस्ते न लिप्यन्त इति ॥२६॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवित्त्वेन यथार्थनामा अन्यो ब्राह्मणको ब्राह्मणप्रतिकृतिः। दारुगजवन्नाममात्रधारीत्यर्थः ॥२७॥ एवं ब्राह्मण इति ब्राह्मणक इति च कर्म सदसद्रूपं पुरुषस्य नाम आह। एवं निष्कामकर्मप्रनाड्या आनन्त्येन त्वंपदार्थसाक्षात्कारजेन श्रुतेन तत्त्वमसिवाक्यार्थज्ञानेन ॥ २८ ॥ सर्वं कृत्स्नं आनन्त्यं प्राक् श्रवात् ईश्वरो मदन्यः कश्चिदस्तीति शंकया समाधौ परिदृश्यमानमप्यानन्त्यमसर्वमभूत् श्रुतानन्तरं तु सर्वमित्यर्थः आसीदित्यनेन सर्वानन्त्यस्याकृत्रिमत्वमुक्तं शाश्वती श्रुतिः क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धीति तत्त्वमसीति च जीवस्य सिद्धवत् ब्रह्मभावकीर्तनात् निर्णिक्तानां विशुद्धानां शुभात्मनां मोक्षबुद्धीनाम् ॥ २९ ॥ चतुर्थः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभिमानिविश्वतैजसप्राज्ञान् अपेक्ष्य चतुर्थो निर्विशेषः परमात्मा तद्विषयिणी या उपनिषद्विद्या तदर्थो धर्मः शमदमोपरमतितिक्षाश्रद्धासमाध्यात्मकः साधारणो वर्णाश्रमाणामिति शेषः संसिद्धैः शुद्धचित्तैः। नियतात्मभिर्निरुद्धचित्तैः। नित्यं तुरीयं ब्रह्म-साध्यते प्राप्यते ज्ञानं शास्त्रीयं श्रवणमपि निर्विक्षेपं संन्यासे एव भवतीत्यर्थः ॥ ३० ॥ अपवर्गप्रदा मतिर्विद्या ब्रह्मसाक्षात्काररूपा वृत्तिर्यस्मिन्निति नित्यः आवश्यकः एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्येतिश्रुतेः। सनातनः संप्रदायागतः ॥ ३१ ॥ साधारण आश्रमान्तरधर्मसंमिश्रः यथाबलं यथावैराग्यं गच्छतां गच्छतामिति पुरुषमात्रस्य वणिग्व्याधादेरपि क्षेमं क्षेमहेतुः दुर्बलो रोगी ज्ञानफलमुपसंहरति–**ब्रह्मण इत्यर्धेन** ॥ ३२ ॥ मात्राभिर्धनैः त्यागं संन्यासं गार्हस्थ्ये संन्यासे वा यथोक्ताचारवतां यद्यपि निवृत्तिधर्मस्तुल्यस्तथापि प्रेत्यभावे मरणे कः स्वर्गजित्तमः ॥३३॥ **परीति।** द्वयोर्मोक्षे समानेऽपि त्यागी दृष्टसुखं तु प्राप्नोतीत्यर्थः ॥३५ ऐक्यं मोक्षैकफलत्वम् ॥ ३६ ॥ एकत्वेन ज्ञानकर्मणोः समप्राधान्येन पृथक्त्वेन प्रधानगुणभावेन ॥३७॥ शरीरपक्तिः स्थूलसूक्ष्मशरीरशुद्धिः कर्माणि कर्मप्रयोज्या साध्यसाधनयोरभेदोपचारः ज्ञानं तुशब्दः पूर्ववैलक्षण्यसूचनार्थः मोक्षसाधनमित्यर्थः। तत्र क्रममाह––**कषाये इति।** चित्तदोषे कर्मभिः पाचिते सति रसः प्रीतिर्ब्रह्मानन्दस्तस्य ज्ञाने शास्त्रजे तिष्ठति सति ॥ ३८ ॥आनृशंस्यादयः प्रवर्तन्ते तैश्च परं ब्रह्म प्राप्नोति। आनृशंस्यं भूतदया क्षमा अभिभवेप्यविक्षिप्तचित्तता शान्तिर्मनोजयः सत्यं यथार्थभाषणम् आर्जवं अवक्रत्वम् शमः कर्मभ्य उपरतिः ॥ ३९ ॥ कर्मनिश्चयं कर्मफलानिश्चयं कषायपक्तिं अनुवैराग्याद्युत्पत्तिमनुसंजातां बुद्ध्येत ॥ ४० ॥ यामिति परमगतेर्लक्षणम् ४१

**वेदांश्च वेदितव्यं च विदित्वा च यथास्थितिम्**
**एवं वेदविदित्याहुरतोऽन्यो वातरेचकः ४२**
**सर्वे विदुर्वेदविदो वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।**
**वेदे हि निष्ठा सर्वस्य यद्यदस्ति च नास्ति च**
**एषैव निष्ठा सर्वत्र यत्तदस्ति च नास्ति च ।**
**एतदन्तं च मध्यं च सच्चासच्च विजानतः**
**समाप्तं त्याग इत्येव सर्ववेदेषु निष्ठितम् ।**
**संतोष इत्यनुगतमपवर्गे प्रतिष्ठितम् ॥ ४५**

**ऋतं सत्यं विदितं वेदितव्यं**
**सर्वस्यात्मा स्थावरं जङ्गमं च ।**
**सर्वं सुखं यच्छिवमुत्तरं च**
**ब्रह्माव्यक्तं प्रभवश्चाव्ययं च ॥ ४६**
**तेजः क्षमा शान्तिरनामयं शुभं**
**तथाविधं व्योम सनातनं ध्रुवम् ।**
**एतैः सर्वैर्गम्यते बुद्धिनेत्रै-**
**स्तस्मै नमो ब्रह्मणे ब्राह्मणाय ॥ ४७**

यत्र ते वेदाः वेदितव्यं कर्म ब्रह्मस्वरूपम् यथा स्थितिं कर्मणा-मनुष्ठानं ब्रह्मणश्च ज्ञानं प्राप्य अनहंकारेणावस्थानं च दृश्यते स एव वेदवित् अन्यस्तु वातरेचको भस्त्रापरनामा चर्मकोशः वातवेटक इति गौडाः पठन्ति । व्याचक्षते च वातवशात् वेटकः भाषकः वेट परिभाषणे इति धातुः ॥ ४२ ॥ मानं मेयं मातृस्थितिं च वेदादिपदोपात्तां क्रमेण व्युत्पादयति । सर्वमित्यादिनाऽध्यायशेषेण । अस्ति वर्तमानं नास्ति अतीतानागतं तस्य सर्वस्य निष्ठा स्वरूपम् ॥ ४३ ॥ मान-मुक्त्वा मेयमाह--**एषैवेति** । सर्वत्र सर्वेषु शास्त्रेषु एषा एकैव निष्ठा काऽसौ एतत् जगत् अस्ति च प्रतीतिकाले नास्ति च बाधकाले । ननु घटादिरपि स्थितिकालेऽस्ति प्राक्प्रध्वंसाभावकाले नास्तीत्याशंकानिरासाय चकारद्वयेन समानकालिकमस्तित्वनास्तित्वधर्मद्वयं समुच्चिनोति । तेन बुद्धानां प्रतीयमानमपि मायापुरवन्नास्त्येव अबुद्धानां च तत्त्वतोऽत्यन्तासदपि वज्रपञ्जरवद्दृढतरमस्त्येव । एतदेव विवृणोति--**एतदिति** । विजानतः तत्त्वज्ञस्य एतत् परिदृश्यमानं वियदादि अन्तं च मध्यं च अनुवाद्यापेक्षं क्लीबत्वम् अन्तश्च मध्यश्च अन्तो निर्विशेषं लयस्थानम् । मध्यः सविशेषं लयस्थानम् । सत् सूत्राख्यं वस्तुतस्त्वसदिति । एतदुक्तं भवति-एतद्वैराजं रूपं शुद्धात् ब्रह्मणोऽनन्यदेव रजतमिव शुक्तेः । एतन्मायाशबलादप्यनन्यत् कुंडलमिव कनकात् । एतत् सूक्ष्मादप्यनन्यत् उपनेत्रदृशः स्थूलाक्षरमिव सूक्ष्मात् तेनैतदसत् अज्ञानमात्रमनिर्वचनीयमिति । नन्वेक एव मायावी सर्वलयस्थानमस्तु किमिति ततोन्यन्निर्मायं कल्प्यते इति चेत् श्रुतिप्रामाण्यादिति ब्रूमः । तथाहि श्रुतिः--'स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनम्' इति अप्समुद्रदृष्टान्तेन कार्यलयाधिष्ठानं मायाविनमुक्त्वा स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयत इति लवणोदकदृष्टान्तेन कार्यकारणोभयलयाधिष्ठानं चिन्मात्रं दर्शयति । यथा उदके प्रास्तः सैन्धवखिल्यस्तत्र स्वोपादानभूतमुदकं विलीयते न तु करकावत्स्वरूपमात्रेण परिमाणानतिरेकादेवं कार्यकारणे शुद्धे ब्रह्मणि लीयेते इति श्रुत्यर्थः ॥ ४४ ॥ एवंविदः समाधिव्युत्थानयोः स्थितिमाह-**समाप्तमिति** । त्याग इत्येव क्षेत्रारामगृहपशुपत्नीपुत्रशरीरेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्यहंकारान्तानां त्यागे निर्विकल्पसमाधौ सत्येव सम्यगाप्तं भवति एतदेव सर्ववेदार्थः । यथोक्तं वासिष्ठे--'निर्विकल्पसमाधिर्हि सिद्धान्तः सर्ववाङ्मयः' इति । अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यामिति सूत्रं च संराधने समाधौ प्रत्यक्षं श्रुतिप्रामाण्यं प्रत्यनपेक्षत्वात् अनुमानं श्रुतिः मूलसापेक्षत्वात् । दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या योगिनस्तं प्रपश्यन्तीति श्रुतिस्मृतिभ्यां समाधावात्मनः सम्यग्दर्शनं भवतीति सूत्रार्थः । व्युत्थानावस्थामाह-**संतोष इति** । श्रुतौ हि 'ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगंधर्वाणामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य' इत्यादिनोत्तरोत्तरं शतगुणेषु मानुषानन्दादिब्रह्मानन्दान्तेष्वानन्देषु श्रोत्रियत्वाकामहतत्वयोरनुगमो दृष्टः । तत्र श्रोत्रियत्वं सर्वत्र समानम् अकामहतत्वोत्कर्षादेव चानन्दोत्कर्षः तस्यैव सन्तोषशब्दितस्य सर्वानन्देष्वनुगतस्य परा काष्ठा व्युत्थिते ब्रह्मविदि ज्ञेयेत्यर्थः ॥ ४५ ॥ अपवर्गस्वरूपमाह--**ऋतमिति** । ऋतमबाधितं सत्यं सच्च त्यच्चेति सत्यं मूर्तामूर्तप्रपञ्चात्मकं तदधिष्ठानत्वात् । यतः सर्वस्यात्माऽतो विदितं यतः स्थावरं जङ्गमं च तत्तद्देहतादात्म्यापन्नमतो वेदितव्यं सर्वमविकलं सुखं दुःखासंभिन्नं सुखमित्यर्थः । उत्तरं सर्वोत्कृष्टं शिवं शान्तमद्वैतं तुरीयमित्यर्थः । 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति श्रुतेः । ब्रह्म त्रिविधपरिच्छेदशून्यम् अव्यक्तस्य प्रभव आविर्भावो यस्मात्तत् ईशस्याप्यधिष्ठानम् । अव्ययं अपरिणामित्वान्नित्यं चात् असंगम् ॥ ४६ ॥ प्रकरणार्थमुपसंहरति--**तेज इति** । **तेजः** इंद्रियजये सामर्थ्यं **क्षमा** अपकारिष्वपि क्रोधानुत्पत्तिः । **शान्ति**र्निष्कामत्वेन सर्वस्मात्कर्तव्यादुपरमः । एतत्त्रयं अनामयं शुभं निर्दुःखस्य सुखस्य प्राप्तौ हेतुः । तथेति प्राप्यप्रापकस्वरूपविभागार्थः । तथाविधं नास्ति विधो विधानं कर्तव्यता यत्र तत् अविधं अकृत्रिमं व्योम जगत्कारणं व्योमवदसङ्गं वा सनातनं नित्यैकरूपं ध्रुवमविनाशि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि गोकपिलीये सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

## २७१-[९८]

युधिष्ठिर उवाच ।
धर्ममर्थं च कामं च वेदाः शंसन्ति भारत
कस्य लाभो विशिष्टोऽत्र तन्मे ब्रूहि पितामह
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
कुण्डधारेण यत्प्रीत्या भक्तायोपकृतं पुरा २
अधनो ब्राह्मणः कश्चित्कामाद्धर्ममवैक्षत ।
यज्ञार्थं सततोऽर्थार्थी तपोऽतप्यत दारुणम्
स निश्चयमथो कृत्वा पूजयामास देवताः ।
भक्त्या न चैवाध्यगच्छद्धनं संपूज्य देवताः
ततश्चिन्तामनुप्राप्तः कतमद्दैवतं तु तत् ।
यन्मे द्रुतं प्रसीदेत मानुषैरजडीकृतम् ॥ ५
सोऽथ सौम्येन मनसा देवानुचरमन्तिके ।
प्रत्यपश्यज्जलधरं कुण्डधारमवस्थितम् ॥ ६
दृष्ट्वैव तं महाबाहुं तस्य भक्तिरजायत ।
अयं मे धास्यति श्रेयो वपुरेतद्धि तादृशम् ७
संनिकृष्टश्च देवस्य न चान्यैर्मानुषैर्वृतः ।
एष मे दास्यति धनं प्रभूतं शीघ्रमेव च ॥ ८
ततो धूपैश्च गन्धैश्च माल्यैरुच्चावचैरपि ।
बलिभिर्विविधाभिश्च पूजयामास तं द्विजः ९
ततस्त्वल्पेन कालेन तुष्टो जलधरस्तदा ।
तस्योपकारनियतामिमां वाचमुवाच ह १०
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च
चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः
कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ११
आशायास्तनयो धर्मः
क्रोधोऽसूया सुतः स्मृतः ।
लोभः पुत्रो निकृत्यास्तु
कृतघ्नो नार्हति प्रजाम् ॥ १२
ततः स ब्राह्मणः स्वप्ने कुण्डधारस्य तेजसा
अपश्यत्सर्वभूतानि कुशेषु शयितस्तदा ॥ १३
शमेन तपसा चैव भक्त्या च निरुपस्कृतः ।
शुद्धात्मा ब्राह्मणो रात्रौ निदर्शनमपश्यत १४
मणिभद्रं स तत्रस्थं देवतानां महाद्युतिम् ।
अपश्यत महात्मानं व्यादिशन्तं युधिष्ठिर१५
तत्र देवाः प्रयच्छन्ति राज्यानि च धनानि च
शुभैः कर्मभिरारब्धाः प्रच्छिन्दन्त्यशुभेषु च
पश्यतामथ यक्षाणां कुण्डधारो महाद्युतिः ।
निपत्य पतितो भूमौ देवानां भरतर्षभ १७
ततस्तदेव वचनान्मणिभद्रो महामनाः ।
उवाच पतितं भूमौ कुण्डधार किमिष्यते१९
कुण्डधार उवाच ।
यदि प्रसन्ना देवा मे भक्तोऽयं ब्राह्मणो मम
अस्यानुग्रहमिच्छामि कृतं किंचित्सुखोदयं
ततस्तं मणिभद्रस्तु पुनर्वचनमब्रवीत् ।
देवानामेव वचनात्कुण्डधारं महाद्युतिम् २०

---

एतैः तेजआदिभिस्त्रिभिः कारणैर्यत् गम्यतेऽधिगम्यतेऽज्ञानापनोदे सति । कैः बुद्धिनेत्रैः पुरुषैः तस्मै ब्रह्मणे नम इति विशाया वीर्यवत्त्वाय प्रचयगमनाय च नमस्करोति भगवान्कपिलः । ब्राह्मणाय ब्रह्मविदभिन्नाय ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

२७१

मोक्षधर्माननुष्ठातुमशक्तस्य त्रिवर्गे कः श्रेष्ठतम इति पृच्छति—**धर्ममिति** ॥१॥ तत्राख्यायिकापूर्वकं धर्मस्य प्राधान्यमाह—**अत्रेत्यादिना** । कामाद्धर्ममवैक्षत फलकामनया धर्मं करिष्यामीति चिन्तितवान् । धर्मश्चार्थसाध्य इत्यर्थार्थी घोरं तपोऽतप्यत ॥ २ ॥ जलधरं मेघं कुंडधारं नामतः ॥६॥ धास्यति विधास्यति ॥७॥ उपकारे नियमेन प्रवर्तयंतीं उपकारनियताम् ॥१०॥ तेजसा प्रभावेन ॥१३॥ निरुपस्कृतः भोगवर्जितः निदर्शनं कुण्डधारभक्तेः प्रत्ययम् ॥ १४ ॥ व्यादिशन्तं देवेभ्यः फलयाचकान् निवेदयन्तं देवाज्ञया याचकेभ्यः फलानि समर्पयन्तं वा ॥ १५ ॥ अशुभेषु कर्मसूपस्थितेषु प्राग्दत्तमपि राज्यादिकं प्रच्छिन्दन्ति हरन्ति ॥ १६ ॥ भूमौ पतितः ब्राह्मणहितार्थी१७

मणिभद्र उवाच।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते कृतकृत्यः सुखी भव।
धनार्थी यदि विप्रोऽयं धनमस्मै प्रदीयताम्
यावद्धनं प्रार्थयते ब्राह्मणोऽयं सखा तव।
देवानां शासनात्तावदसंख्येयं ददाम्यहम् ॥
विचार्य कुण्डधारस्तु मानुष्यं चलमध्रुवम्।
तपसे मतिमाधत्त ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर २३

कुण्डधार उवाच।

नाहं धनानि याचामि ब्राह्मणाय धनप्रद।
अन्यमेवाहमिच्छामि भक्तायानुग्रहं कृतम्
पृथिवीं रत्नपूर्णां वा महद्वा रत्नसञ्चयम्।
भक्ताय नाहमिच्छामि भवेदेष तु धार्मिकः
धर्मेऽस्य रमतां बुद्धिर्धर्मं चैवोपजीवतु।
धर्मप्रधानो भवतु ममैषोऽनुग्रहो मतः २६

मणिभद्र उवाच।

सदा धर्मफलं राज्यं सुखानि विविधानि च
फलान्येवायमश्नातु कायक्लेशविवर्जितः २७

भीष्म उवाच।

ततस्तदेव बहुशः कुण्डधारो महायशाः।
अभ्यासमकरोद्धर्मे ततस्तुष्टास्तु देवताः २८

मणिभद्र उवाच।

प्रीतास्ते देवताः सर्वा द्विजस्यास्य तथैव च
भविष्यत्येष धर्मात्मा धर्मे चाधास्यते मतिः
ततः प्रीतो जलधरः कृतकार्यो युधिष्ठिर।
ईप्सितं मनसो लब्ध्वा वरमन्यैः सुदुर्लभम्
ततोऽपश्यत चीराणि सूक्ष्माणि द्विजसत्तमः
पार्श्वतोऽभ्याशतो न्यस्तान्यथ निर्वेदमागतः

ब्राह्मण उवाच।

अयं न सुकृतं वेत्ति को न्वन्यो वेत्स्यते कृतं
गच्छामि वनमेवाहं वरं धर्मेण जीवितुम् ३२

भीष्म उवाच।

निर्वेदाद्देवतानां च प्रसादात्स द्विजोत्तमः
वनं प्रविश्य सुमहत्तप आरब्धवांस्तदा ३३
देवतातिथिशेषेण फलमूलाशनो द्विजः।
धर्मे चास्य महाराज दृढा बुद्धिरजायत ३४
त्यक्त्वा मूलफलं सर्वं पर्णाहारोऽभवद्द्विजः।
पर्णं त्यक्त्वा जलाहारः पुनरासीद्द्विजस्तदा
वायुभक्षस्ततः पश्चाद्बहून्वर्षगणानभूत्।
न चास्य क्षीयते प्राणस्तदद्भुतमिवाभवत् ३६
धर्मे च श्रद्दधानस्य तपस्युग्रे च वर्ततः।
कालेन महता तस्य दिव्या दृष्टिरजायत ३७
तस्य बुद्धिः प्रादुरासीद्यदि दद्यामहं धनम्।
तुष्टः कस्यचिदेवेह मिथ्यावाङ् न भवेन्मम
ततः प्रहृष्टवदनो भूय आरब्धवांस्तपः।
भूयश्चाचिन्तयत्सिद्धो यत्परं सोऽभिमन्यते
यदि दद्यामहं राज्यं तुष्टो वै यस्य कस्यचित्
स भवेदचिराद्राजा न मिथ्या वाग्भवेन्मम
तस्य साक्षात्कुण्डधारो दर्शयामास भारत
ब्राह्मणस्य तपोयोगात्सौहृदेनाभिचोदितः
समागम्य स तेनाथ पूजां चक्रे यथाविधि।
ब्राह्मणः कुण्डधारस्य विस्मितश्चाभवन्नृप ॥
ततोऽब्रवीत्कुण्डधारो दिव्यं ते चक्षुरुत्तमम्
पश्य राज्ञां गतिं विप्र लोकांश्चैव तु चक्षुषा
ततो राजसहस्राणि मग्नानि निरये तदा।
दूरादपश्यद्विप्रः स दिव्ययुक्तेन चक्षुषा ४४

कुण्डधार उवाच।

मां पूजयित्वा भावेन यदि त्वं दुःखमाप्नुयाः
कृतं मया भवेत्किं ते कश्च तेऽनुग्रहो भवेत्
पश्य पश्य च भूयस्त्वं कामानिच्छेत्कथं नरः
स्वर्गद्वारं हि संरुद्धं मानुषेषु विशेषतः ४६

भीष्म उवाच।

ततोऽपश्यत्स कामं च क्रोधं लोभं भयं मदम्
निद्रां तन्द्रीं तथालस्यमावृत्य पुरुषान् स्थितान्

कुण्डधार उवाच।

एतैर्लोकाः सुसंरुद्धा देवानां मानुषाद्भयम्
तथैव देववचनाद्विघ्नं कुर्वन्ति सर्वशः ४८
न देवैरननुज्ञातः कश्चिद्भवति धार्मिकः।
एष शक्तोऽसि तपसा दातुं राज्यं धनानि च

भीष्म उवाच।

ततः पपात शिरसा ब्राह्मणस्तोयधारिणे।
उवाच चैनं धर्मात्मा महान्मेऽनुग्रहः कृतः
कामलोभानुबन्धेन पुरा ते यदसूयितम्।
मया स्नेहमविज्ञाय तत्र मे क्षन्तुमर्हसि ५१

---

धर्मे धर्मनिमित्तम्। अभ्यासं पुनः पुनर्धर्ममेव विप्रार्थमयाचत तेन कामस्तदर्थौ धर्मोऽर्थश्चेति त्रयमपि तुच्छं निष्कामधर्म एव श्रेयानित्याख्यायिकातात्पर्यमुक्तं भवति ॥ २८ ॥ चीराणि अपश्यत उपादेयत्वेनैक्षत विरक्तोऽभूदित्यर्थः। शेषं स्पष्टार्थम् ॥ ३१ ॥

क्षान्तमेव मयेत्युक्त्वा कुण्डधारो द्विजर्षभम्
संपरिष्वज्य बाहुभ्यां तत्रैवान्तरधीयत ५२
ततः सर्वांस्तदा लोकान् ब्राह्मणोऽनुचचार ह
कुण्डधारप्रसादेन तपसा सिद्धिमागतः ५३
विहाय सा च गमनं तथा संकल्पितार्थता
धर्माच्छक्तिस्तथा तथा योगाद्या चैव परमा गतिः
देवता ब्राह्मणाः सन्तो यक्षा मानुषचारणाः
धार्मिकान्पूजयन्तीह न धनाढ्यान्न कामिनः
सुप्रसन्ना हि ते देवा यत्ते धर्मे रता मतिः
धर्मे सुखकला काचिद्धर्मे तु परमं सुखम् ५६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि कुण्डधारोपाख्याने
एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥

## २७२-[९९]

युधिष्ठिर उवाच ।
बहूनां यज्ञतपसामेकार्थानां पितामह ।
धर्मार्थं न सुखार्थार्थं कथं यज्ञः समाहितः १
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि नारदेनानुकीर्तितम् ।
उञ्छवृत्तेः पुरावृत्तं यज्ञार्थे ब्राह्मणस्य च २
नारद उवाच ।
राष्ट्रे धर्मोत्तरे श्रेष्ठे विदर्भेष्वभवद्द्विजः ।
उञ्छवृत्तिर्ऋषिः कश्चिद्यज्ञं यष्टुं समादधे ३
श्यामाकमशनं तत्र सूर्यपर्णी सुवर्चला ।
तिक्तं च विरसं शाकं तपसा स्वादुतां गतम्
उपगम्य वने शुद्धिं सर्वभूताविहिंसया ।
अपि मूलफलैरिष्टो यज्ञः स्वर्ग्यः परंतप ५
तस्य भार्या व्रतकृशा शुचिः पुष्करधारिणी ।
यज्ञपत्नी समानीता सत्येनानुविधीयते ६
सा तु शापपरित्रस्ता तत्स्वभावानुवर्तिनी ।
मायूरजीर्णपर्णानां वस्त्रं तस्याश्च वर्णितम् ७
अकामया कृतस्तत्र यज्ञो होत्रनुशासनात् ।
शुक्रस्य पुनराज्ञाभिः पर्णादो नाम धर्मवित्
तस्मिन्वने समीपस्थो मृगोऽभूत्सहवासिकः
वचोभिरब्रवीत्सत्यं त्वयेदं दुष्कृतं कृतम् ९

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥

२७२

निष्कामधर्मस्य श्रैष्ठ्यमुक्तं तद्धिंसाशून्यस्यैव तस्येति वक्तुं हिंस्रयज्ञनिंदार्थोऽयमध्याय आरभ्यते—**बहूनामिति** । एकं चित्तशुद्धिरीश्वरप्रीतिर्वा तदर्थानां मध्ये धर्मार्थं यो यज्ञः समाहितो विनियुक्तः स कथं कीदृक्स्वरूपः स्यात् । सुखार्थार्थं स्वर्गार्थं धनार्थं च यो न भवति तदर्थो हि हिंसां नानुरुध्यतेऽतोऽधर्ममात्रार्थस्य यज्ञस्य स्वरूपं ब्रूहीत्यर्थः ॥ १ ॥ उंच्छवृत्तेर्ब्राह्मणस्येति सम्बन्धः ॥ २ ॥ यज्ञं विष्णुं 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेः। समादधे समाहितोऽवहितोऽभूत् ॥ ३ ॥ श्यामाकमशनं अदनीयं सूर्यपर्णी सुवर्चलेति शाकविशेषौ त्रयमेतद्धन्यं यज्ञियद्रव्यम् ॥४॥ उपगम्य प्राप्य वने वानप्रस्थाश्रमे 'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः' इति श्रुतेरर्थमाह—**अपीति** ॥ ५ ॥ पुष्करधारिणी नामतः सत्ये सत्यसंज्ञे भर्तरि वक्ष्यमाणरीत्या हिंसाप्रधानेन यज्ञेन यष्टुमिच्छति । नानुविधीयते हिंसायज्ञमश्रेयस्त्वेन मन्यमाना अनुविधानं आनुकूल्यं न करोति ॥ ६ ॥ तथापि शापाद्भीता सती भर्तुः स्वभावमनुरुध्यास्ते इत्यर्थः। **मायूरेति** । मयूरपिच्छैः सन्निवेशविशेषेण गुंफितैस्तस्या वस्त्रं वर्णितं विस्तारितं जीर्णेति स्वयं गलितत्वं पर्णानां पिच्छानां च ॥ ७ ॥ अकामया यज्ञं यज्ञफलं वाऽनिच्छन्त्या पुष्करमालिन्या होतुर्भर्तुरनुशासनाद्यज्ञः कृतः । एतेन भार्याया अपि कर्तृत्वमुक्तं न त्वज्ञत्वमात्रम्। **शुक्रस्येति** । आज्ञाभिः असकृत्कृतया आज्ञया । आजातिरिति पाठे वंशजः ॥ ८ ॥ सहवासिको यजमानस्य सत्यसंज्ञस्य प्रतिवेशी सः मृगोऽभूत् मृगो भूत्वा च सत्यं मुनिमब्रवीत्। **दुष्कृतमिति** । यथा यवमये पुरोडाशे 'व्रीहीणां मध सुमनस्यमानः' इति मन्त्रस्य लिंगाभावाल्लोपः । यथा वा ज्योतिष्टोमे आनुबन्ध्यायां गोपशोः स्थाने पश्वभावे पयस्येत्याश्वलायनाद्युपदिष्टायां पयस्यायां हृदयाद्यवदानलोपो मन्त्रलोपश्च । एवं सति सामर्थ्ये मन्त्राङ्गहीनं यज्ञं कुर्वतो दुष्कृतं भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

यदि मन्त्राङ्गहीनोऽयं यज्ञो भवति वै कृतः।
मां भोः प्रक्षिप होत्रे त्वं गच्छ स्वर्गमनिन्दितः
ततस्तु यज्ञे सावित्री साक्षात्तं संन्यमन्त्रयत्
निमन्त्रयन्ती प्रत्युक्ता न हन्यां सहवासिनं
एवमुक्ता निवृत्ता सा प्रविष्टा यज्ञपावकम्।
किं नु दुश्चरितं यज्ञे दिदृक्षुः सा रसातलम्
स तु बद्धाञ्जलिं सत्यमयाचद्धरिणः पुनः।
सत्येन स परिष्वज्य संदिष्टो गम्यतामिति
ततः स हरिणो गत्वा पदान्यष्टौ न्यवर्तत।
साधु हिंसय मां सत्य हतो यास्यामि सद्गतिम्
पश्य ह्यप्सरसो दिव्या मया दत्तेन चक्षुषा
विमानानि विचित्राणि गन्धर्वाणां महात्मनां
ततः स सुचिरं दृष्ट्वा स्पृहालग्नेन चक्षुषा।
मृगमालोक्य हिंसायां स्वर्गवासं समर्थयत
स तु धर्मो मृगो भूत्वा बहुवर्षोषितो वने।
तस्य निष्कृतिमाधत्त न त्वसौ यज्ञसंविधिः
तस्य तेनानुभावेन मृगहिंसाऽऽत्मनस्तदा।
तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद्धिंसा न यज्ञिया
ततस्तं भगवान्धर्मो यज्ञं याजयतः स्वयम्।
समाधानं च भार्याया लेभे स तपसा परम्
अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाधर्मस्तथाहितः।
सत्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि नो धर्मः सत्यवादिनाम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि यज्ञनिन्दा नाम
द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

## २७३-[१००]

युधिष्ठिर उवाच।

कथं भवति पापात्मा कथं धर्मं करोति वा। केन निर्वेदमादत्ते मोक्षं वा केन गच्छति ॥ १

ननु दरिद्रेण मया पशुः क्रेतुं न शक्यतेऽतोऽनुकल्पेनैव श्यामाकचरुणा पशुकार्यं क्रियत इत्याशंक्याह-**यदीति**। होत्रे हूयतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या अग्नौ मां पर्णादं मृगभूतम् ॥ १०॥ सावित्री सवितृमंडलाधिष्ठात्री देवता। प्रत्यक्षमेत्य संन्यमन्त्रयत् मदर्थेऽयं पशुरग्नौ होतव्य इत्युक्तवती प्रत्युक्ता प्रत्याख्याता तत्र हेतुः-**न हन्यामिति** ॥ ११ ॥ रसातलं दिदृक्षुः सा यज्ञपावकं प्रविष्टेति सम्बन्धः। यज्ञे दुश्चरितं दुष्टमाचरितं किं नु इति समीपवर्तिमूढजनोत्प्रेक्षानिर्देशः ॥ १२ ॥ सत्यं सत्यसंज्ञम्। अयाचत मामग्नौ प्रक्षिपेति प्रार्थितवान् ततो हिंसायां दोषं पश्यता 'पर्यग्निकृतानारण्यानुत्सृजन्ति' इति शास्त्रदृष्ट्या सत्येन स मृगः परिष्वज्य स्पृष्ट्वा एतेन आलंभादिपर्यग्निकरणान्तं लक्ष्यते। तावत्कृत्वा संदिष्ट आज्ञप्तः ॥ १३ ॥ स हरिणः आत्मनो वधमात्रेण स्वस्य स्वर्गतिं पश्यन् ॥ १४ ॥ **तत इति**। पशूनां यजमानानां च सहैव स्वर्गतिं स्पृहालग्नेन ईदृशं सुखं मे भूयादिति स्पृहया लग्नेन विषयेषु मग्नेन चक्षुषा दृष्ट्वा मृगं च स्वर्गार्थिनमालोक्य हिंसायां कृतायामेव स्वर्गवासं प्राप्नोतीति समर्थयत् समर्थितवानिति सम्बन्धः ॥ १६ ॥ **स त्विति**। केनचिन्निमित्तेन मृगतां प्राप्तो धर्मस्तस्य निमित्तस्य निष्कृतिं प्रतीकारमाधत्त स्वात्मानं मोचितवान्। न त्वसौ यज्ञस्य समीचीनो विधिर्हिंसामयत्वात् ॥ १७ ॥ अनुभावेन पशुं हत्वा स्वर्गं प्राप्स्यामीत्यभिप्रायेण यज्ञिया यज्ञाय हिता ॥ १८ ॥ ननु धर्मस्यापीदृक्छलकरणमयुक्तमित्याशंक्याह-**तत इति**। याजयत अडभाव आर्षः। याजितवान्। भार्यायाः पुष्करधारिण्याः हिंसामययज्ञमनिच्छन्त्याः ॥१९॥ तथा तेन स्वर्गप्रदत्वेन रूपेण हितः सत्यवादिनां ब्रह्मवादिनां तु असौ नो धर्मः। यो धर्म इति पाठे ते तुभ्यं सत्यं वक्ष्यामि किं तत् सत्यं यः सत्यवादिनां धर्मः। य इति विधेयापेक्षं पुस्त्वम्। अत्राख्यायिकातात्पर्यं पशुकार्ये श्यामाकादिविकारांश्चरुपुरोडाशादीन्कुर्यादिति गम्यते। तथा च गृह्ये-'अथ श्वोभूतेष्टकाः पशुना स्थालीपाकेन वा' इति पशुस्थाने स्थालीपाकोऽपि विधीयते। एवमन्यत्र पुरोडाशामिक्षादीनामपि पशुस्थाने विधानमवगन्तव्यम्। तस्मान्न हिंसायज्ञः श्रेयानिति यज्ञनिन्देत्यध्यायनाम तत्र हिंसायज्ञनिन्देत्यवगन्तव्यम् ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥

२७३

अहिंसाधर्म एव वैराग्योत्पादनद्वारा मोक्षहेतुरिति निश्चित्य धर्मविरोधिनः पापस्योत्पत्तिपरिहाराय इतरस्योपादानाय जिज्ञासते-**कथमिति** ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

विदिताः सर्वधर्मास्ते स्थित्यर्थं त्वं तु पृच्छसि
शृणु मोक्षं सनिर्वेदं पापं धर्मं च मूलतः २
विज्ञानार्थं हि पञ्चानामिच्छा पूर्वं प्रवर्तते ।
प्राप्यैकं जायते कामो द्वेषो वा भरतर्षभ ३
ततस्तदर्थं यतते कर्म चारभते महत् ।
इष्टानां रूपगन्धानामभ्यासं च चिकीर्षति ४
ततो रागः प्रभवति द्वेषश्च तदनन्तरम् ।
ततो लोभः प्रभवति मोहश्च तदनन्तरम् ॥ ५
लोभमोहाभिभूतस्य रागद्वेषान्वितस्य च ।
न धर्मे जायते बुद्धिर्व्याजाद्धर्मं करोति च ॥
व्याजेन चरते धर्ममर्थं व्याजेन रोचते ।
व्याजेन सिद्ध्यमानेषु धनेषु कुरुनन्दन ॥ ७
तत्रैव कुरुते बुद्धिं ततः पापं चिकीर्षति ।
सुहृद्भिर्वार्यमाणोऽपि पण्डितैश्चापि भारत ८
उत्तरं न्यायसंबद्धं ब्रवीति विधिचोदितम् ।
अधर्मस्त्रिविधस्तस्य वर्धते रागमोहजः ॥ ९
पापं चिन्तयते चैव प्रब्रवीति करोति च ।
तस्याधर्मप्रवृत्तस्य दोषान्पश्यन्ति साधवः ॥
एकशीलाश्च मित्रत्वं भजन्ते पापकर्मिणः ।
स नेह सुखमाप्नोति कुत एव परत्र वै ॥ ११
एवं भवति पापात्मा धर्मात्मानं तु मे शृणु ।
यथा कुशलधर्मा स कुशलं प्रतिपद्यते ॥ १२
कुशलेनैव धर्मेण गतिमिष्टां प्रपद्यते ।
य एतान्प्रज्ञया दोषान्पूर्वमेवानुपश्यति ॥ १३
कुशलः सुखदुःखानां साधूंश्चाप्यथ सेवते ।
तस्य साधुसमाचारादभ्यासाच्चैव वर्धते १४
प्रज्ञा धर्मे च रमते धर्मं चैवोपजीवति ।
सोऽथ धर्मादवाप्तेषु धनेषु कुरुते मनः ॥ १६
तस्यैव सिञ्चते मूलं गुणान्पश्यति यत्र वै ।
धर्मात्मा भवति ह्येवं मित्रं च लभते शुभम्
स मित्रधनलाभात्तु प्रेत्य चेह च नन्दति ।
शब्दे, स्पर्शे, रसे, रूपे, तथा गन्धे च भारत
प्रभुत्वं लभते जन्तुर्धर्मस्यैतत्फलं विदुः ।
स तु धर्मफलं लब्ध्वा न हृष्यति युधिष्ठिर ॥
अतृप्यमाणो निर्वेदमादत्ते ज्ञानचक्षुषा ।
प्रज्ञाचक्षुर्यदा कामे, रसे, गन्धे, न रज्यते १९
शब्दे, स्पर्शे, तथा रूपे न च भावयते मनः ।
विमुच्यते तदा कामान्न च धर्मं विमुञ्चति ॥
धर्मत्यागे च यतते दृष्ट्वा लोकं क्षयात्मकम् ।
ततो मोक्षाय यतते नानुपायादुपायतः २१
शनैर्निर्वेदमादत्ते पापं कर्म जहाति च ।
धर्मात्मा चैव भवति मोक्षं च लभते परम् ॥
एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
पापं धर्मस्तथा मोक्षो निर्वेदश्चैव भारत २३
तस्माद्धर्मे प्रवर्तेथाः सर्वावस्थं युधिष्ठिर ।
धर्मे स्थितानां कौन्तेय सिद्धिर्भवति शाश्वती

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि चतुःप्राश्निको नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

---

पंचानां शब्दादीनां एकं प्राप्य तत्र रागद्वेषौ जायेते इत्यर्थः ॥३॥ तदर्थं काम्यस्य प्राप्तये द्वेष्यस्य हानाय च अभ्यासं पुनः पुनः सेवनम् ॥४॥ व्याजेन कपटेन अर्थं अर्थजातम् ॥७॥ पापं पित्रादिद्रोहम् ॥८॥ न्यायसंबद्धं 'आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्' इत्यादि । त्रिविधः कायिको वाचिको मानसश्च ॥ ९ ॥ पापं परानिष्टम् ॥१०॥ कुशलं कल्याणं परहितमित्यर्थः ॥ १२ ॥ सुखदुःखानां विवेचने कुशलश्चतुरः ॥ १४ ॥ मूलं सिञ्चते यत्र वै गुणान्पश्यति तदेव वर्धयति ॥ १६ ॥ प्रभुत्वं संकल्पसिद्धत्वम् ॥ १८ ॥ निर्वेदं वैराग्यम् ॥ १९ ॥ भावयते चिन्तावशं करोति ॥ २० ॥ धर्मत्यागे धर्मफलस्य स्वर्गादेस्त्यागे । नानुपायात् उपायाननुष्ठानात् किं तु उपायत एव ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

## २७४-[१०१]

युधिष्ठिर उवाच ।

मोक्षः पितामहेनोक्त उपायान्नानुपायतः ।
तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामि भारत १

भीष्म उवाच ।

त्वय्येवैतन्महाप्राज्ञ युक्तं निपुणदर्शनम् ।
येनोपायेन सर्वार्थं नित्यं मृगयसेऽनघ ॥ २
करणे घटस्य या बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता
एवं धर्माभ्युपायेषु नान्यद्धर्मेषु कारणम् ॥ ३
पूर्वे समुद्रे यः पन्थाः स न गच्छति पश्चिमम्
एकः पन्था हि मोक्षस्य तन्मे विस्तरतः शृणु
क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्कामं संकल्पवर्जनात्
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रां च च्छेत्तुमर्हति ५
अप्रमादाद्भयं रक्षेच्छ्वासं क्षेत्रज्ञशीलनात् ।
इच्छां द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ६
भ्रमं संमोहमावर्तमभ्यासाद्विनिवर्तयेत् ।
निद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित्
उपद्रवांस्तथा रोगान् हितजीर्णमिताशनात् ।
लोभं मोहं च सन्तोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात् ॥
अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममवेक्षया ।
आयत्या च जयेदाशामर्थं संगविवर्जनात् ॥ ९
अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधां योगेन पण्डितः ।
कारुण्येनात्मनो मानं तृष्णां च परितोषितः
उत्थानेन जयेत्तन्द्रीं वितर्कं निश्चयाज्जयेत् ।
मौनेन बहुभाष्यं च शौर्येण च भयं त्यजेत् ११
यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा
ज्ञानमात्मावबोधेन यच्छेदात्मानमात्मना

---

२७४

उपायस्वरूपं प्रश्नपूर्वकं वक्तुमारभते-**मोक्ष इति** ॥१॥ सर्वार्थं सर्वमर्थं धर्मादिं मोक्षमेव वा प्राज्ञ अर्थग्रहणसमर्थ निपुणं श्रुतार्थपरीक्षया क्षमं निदर्शनं प्रत्ययः मोक्षे स्वबुद्धिसाक्षिक उपाय इत्यर्थः ॥ २ ॥ तत्र उपायो द्विविधः प्रवृत्तिरूपो निवृत्तिरूपश्च । तयोर्दृष्टान्तमुखेन वैलक्षण्योपपादनपूर्वकं मोक्षे हेतुहेतुमद्भावमाह—**करणे इति** । साध्ये धर्मे चिकीर्षाबुद्धिरुत्पद्यते । सिद्धे तु ब्रह्मणि आवरणापगमेन ज्ञानमात्रमिति घटदृष्टान्तेनैव ज्ञेयमित्यर्थः । एवं धर्मेषु मोक्षधर्मेषु शमदमादिषु निवृत्तिरूपेषु आलोकवद्वस्तुतत्त्वाभिव्यञ्जकेषु अन्यत् प्रवृत्तिरूपो धर्मः कारणं न तस्योपयोगं विशेषणेनैवाह धर्माभ्युपायेषु धर्मो यागादिः स एवाभ्युपायो येषां तेषु निष्कामस्य यागादिभिश्चित्तशुद्धिद्वारा निवृत्तिहेतुर्भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ एवं प्रवृत्तिनिवृत्तिधर्मयोर्हेतुहेतुमद्भावेऽपि अत्यन्तवैलक्षण्यं दृष्टान्तेनैवाह— **पूर्वे इति** ॥ ४ ॥ निवृत्तिधर्मस्य पराकाष्ठा सर्ववृत्तिनिरोधरूपो योगस्तं विवक्षुस्तादृशानि क्षमादीनि त्रयोविंशतिसाधनानि पृथक् प्रयोजनवन्ति निर्दिशति—**क्षमयेत्यादिना** । सत्त्वसंसेवनादालस्यादित्यागपूर्वकं सात्त्विकभगवद्ध्यानादिधर्मसेवनात् ॥ ५ ॥ अप्रमादात्सावधानतया भयं लोकापवादजं लज्जामित्यर्थः । श्वासं प्राणचेष्टां क्षेत्रज्ञस्त्वंपदार्थस्तस्य शीलनाद्धेतोः तत्र मनसो धारणेत्यर्थः । रक्षेत् निरुन्ध्यादिति पूर्वेणान्वयः। 'प्राणान्प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत । दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयतेऽप्रमत्तः' इति वायुजयस्य मनोधारणार्थत्वश्रुतेः । कामं स्त्र्यभिलाषम् ॥ ६ ॥ भ्रमं विपरीतज्ञानं संमोहः अज्ञानम् । आवर्तमासमन्ताद्वर्तत इति व्युत्पत्त्याऽनेककोटिस्पर्शिनं संशयम् । अभ्यासात्तत्त्वाभ्यासात् निद्रामननुसंधानं प्रतिभामन्यानुसंधानं च ज्ञानाभ्यासेन ।

'तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ज्ञानाभ्यासं विदुर्बुधाः ।'

इत्युक्तलक्षणेन ॥ ७ ॥ उपद्रवान् श्लेष्माजीर्णादीन् रोगान् ज्वरातिसारादीन् । हितं दाहाद्यनुत्पादकं जीर्णं सात्म्यतां प्राप्तं तत्त्वं विषयाणां रूपमनर्थकरत्वं तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥ अनुक्रोशात् कृपातः अवेक्षया परिपालनेन आयत्या उत्तरकालेन संगोऽभिलाषः ॥ ९ ॥ योगेन वायुनिग्रहेण मानं चित्तसमुन्नतिम् ॥ १० ॥ उत्थानेन उद्योगेन तन्द्रीमालस्यम् । वितर्कं विपरीतं तर्कम्। निश्चयात् श्रुतिविश्वासात् शौर्येण षड्वर्गजयसामर्थ्येन भयं संसारम् ॥११॥ अंगान्युक्त्वा प्रधानं योगमाह-**यच्छेदिति** । निद्रायामिव युगपत्सर्वलयो माभूदित्यनुष्ठेयं लयक्रममनुरुद्ध्य वागादिबाह्येन्द्रियव्यापारमुत्सृज्य मनोमात्रेणावतिष्ठेत मनोऽपि विषयविकल्पाभिमुखमध्यवसायस्वरूपायां बुद्धौ धारयेत् । तदिदमुक्तम्-**यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्येति** । तां बुद्धिं ज्ञानचक्षुषा शुद्धत्वंपदार्थबोधेन समष्टिबुद्ध्या वा ज्ञानं शुद्धं त्वंपदार्थमप्यात्मावबोधेनायमात्मा ब्रह्मेत्यवबोधेन वाक्यजवृत्त्या यच्छेत् । आत्मानं धीवृत्तिमप्यात्मना परमचैतन्यप्रकाशेन नियच्छेत् इन्द्रियाणि मनसि मनो बुद्धौ बुद्धिं त्वंपदार्थे तं ब्रह्माकारवृत्तौ तां शुद्धात्मनि चेति क्रमेण प्रविलाप्य स्वरूपात्मनाऽवतिष्ठेतेत्यर्थः ॥ १२ ॥

तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्
परित्यज्य निषेवेत यतवाग्योगसाधनान् १४
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ।
शौचमाहारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ।
सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते
धूतपापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद्ब्रह्मणः पदम्
अमूढत्वमसंगित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ।
अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो व्यवस्थितिः ॥ १८
एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः
तथा वाक्कायमनसां नियमः कामतोऽन्यथा॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि योगाचारानुवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

## २७५–[१०२]

भीष्म उवाच ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं देवलस्यासितस्य च १
आसीनं देवलं वृद्धं बुद्ध्वा बुद्धिमतां वरम्
नारदः परिपप्रच्छ भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ २
नारद उवाच ।
कुतः सृष्टमिदं विश्वं ब्रह्मन् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३
असित उवाच ।
येभ्यः सृजति भूतानि काले भावप्रचोदितः
महाभूतानि पञ्चेति तान्याहुर्भूतचिन्तकाः ४
तेभ्यः सृजति भूतानि काल आत्मप्रचोदितः
एतेभ्यो यः परं ब्रूयादसद्ब्रूयादसंशयम् ॥ ५
विद्धि नारद पञ्चैतान्
शाश्वतानचलान् ध्रुवान् ।
महतस्तेजसो राशीन्
कालषष्ठान् स्वभावतः ॥

---

निनीषेत् नेतुमिच्छेदात्मानं कुत्र ब्रह्मणः पदं पदनीयं यत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽपि लीयते तत्स्थानं राहोः शिर इतिवदभेदे भेदोपचारात् षष्ठी ॥१७॥ अमूढत्वं वेदान्तश्रवणाद्यभ्यासात् असंगित्वं वैराग्यात् कामक्रोधविवर्जनं सन्तोषक्षमादाढ्यात् अदैन्यं परिपूर्णकामता अनुदीर्णत्वं दर्पाहंकाराराहित्यं अनुद्वेगो निर्भयत्वं अव्यवस्थितिरनिकेतत्वम् ॥ १८ ॥ कामतोऽन्यथाकामवैपरीत्येन नियमो योगो निष्कामः कर्तव्यः योगजसिद्धीर्नेच्छेदित्यर्थः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

**२७५**

अत्रैव निनीषेद्ब्रह्मणः पदमित्यत्रोक्ते ब्रह्मणः पदे विषये एव ॥ १ ॥ कुत इत्यवान्तरकारणप्रश्नः । कमभ्येतीति पार्यन्तिकोपादानकारणप्रश्नः ॥ ३ ॥ आद्यस्योत्तरमाह—**येभ्य इति** । भूतानि जरायुजादीनि काले कर्मोद्भवसमये भावो भावना निखिलप्राणिधीवासना तया प्रचोदितः प्रेरितः परमात्मा महाभूतानि खादीनि ॥ ४ ॥ कः सृजति कश्चास्य प्रवर्तको भाव इत्यत आह–**तेभ्य इति** । कालश्चतुर्युगात्मा । अधर्मे रतोऽधर्मं तिष्यस्त्रुर्धर्मारंभी धर्मे रत इति चतुर्विधः कलिद्वापरत्रेताकृतयुगसंज्ञो जीवः आत्मा बुद्धिस्तया प्रचोदितः । एतेभ्यः कालबुद्धिमहाभूतेभ्यः परं चेतनमंशं अचेतनं प्रधानं वाऽन्यदस्तीति यो ब्रूयात्सोऽसदलीकं ब्रूयात् । नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टेति द्रष्ट्रन्तरनिषेधश्रुतेः । 'तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तमसस्तन्महिनाऽजायतैकम्' इति तुच्छाज्ञानमाहात्म्याद्बुद्ध्यादिरूपेण ब्रह्मैवाजायतेति श्रुतेर्दृश्यमानकार्यमेवास्ति न तु परीक्षायां तिरोधीयमानं कारणमस्ति रज्जूरगोपादानाज्ञानवदतोऽन्येषां नित्यानुमेयत्वेनाभिमतं प्रधानं तटस्थेश्वरश्च तदुभयं दृश्यात् द्रष्टुश्चान्यदचेतनं चेतनं वा नास्तीति स्पष्टम् ॥ ५ ॥ एतान् खादीन् अचलान् परिणामशून्यान् ध्रुवान् आद्यन्तशून्यान् स्वप्नघट इवाजातत्वादेव त्वनाद्यंतवत्त्वदार्ढ्यीभूतेषु भ्रान्तिरेवेत्यर्थः । जात एव न जायते मायामात्रमिदं द्वैतमिति श्रुत्या च यो लोकदृष्ट्या जातो घटादिः स एव परमार्थतो न जायते स्वप्नघटवत् इत्याद्यश्रुतेरर्थः । द्वितीयायास्तु स्पष्ट एवार्थः । महतो महत्तत्त्वाख्यस्य बुद्धि-

**आपश्चैवान्तरिक्षं च पृथिवी वायुपावकौ ।**
**नासीद्धि परमं तेभ्यो भूतेभ्यो मुक्तसंशयम् ॥**
**नोपपत्त्या न वा युक्त्या त्वसद्ब्रूयादसंशयम्**
**वेत्थैतानभिनिर्वृत्तान्षडेते यस्य राशयः ॥ ८**
**पञ्चैव तानि कालश्च भावाभावौ च केवलौ**
**अष्टौ भूतानि भूतानां शाश्वतानि भवात्ययौ**
**अभावं यान्ति तेष्वेव तेभ्यश्च प्रभवन्त्यपि ।**
**विनष्टोऽप्यनु तान्येव जन्तुर्भवति पञ्चधा १०**
**तस्य भूमिमयो देहः श्रोत्रमाकाशसंभवम् ।**
**सूर्याच्चक्षुरसुर्वायोरद्भ्यस्तु खलु शोणितम्॥११**
**चक्षुषी नासिकाकर्णौ त्वक् जिह्वेति च पञ्चमी**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थानां ज्ञानानि कवयो विदुः**
**दर्शनं श्रवणं घ्राणं स्पर्शनं रसनं तथा ।**
**उपपत्त्या गुणान्विद्धि पञ्च पञ्चसु पञ्चधा १३**

सूक्ष्मस्य तेजसः । सत्त्वप्राधान्येन प्रकाशमयस्य राशीनिव राशीन् कार्याणि विद्धि । काल उक्तरूपो, जीवः स एव षष्ठो येषां तान् स्वभावत इति पूर्वकल्पादिप्राधान्येन ॥ ६ ॥ तानेवाह-**आप इति** । महत्तत्त्वस्यापि भौतिकत्वात्सात्मकेभ्यो भूतेभ्यः परमं उत्कृष्टं किमपि तत्त्वं नासीत् । उपपत्त्या श्रौतयुक्त्या लौकिकानुमानेन वा कश्चित्तदस्तीति यदि ब्रूयात्तर्हि अन्ते असत् अज्ञानमेव ब्रूयात् तथाहि दुःखस्य मूलं शरीरं तस्यापि कारणं कर्म कर्मण्यपि प्रवर्तको रागादिर्दोषः स चाज्ञानादेव भवतीति श्रौती उपपत्तिस्तामसूत्रयद्भगवानक्षपादः--दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनंतराभावादपवर्ग इति । तस्मान्मूलकारणमज्ञानमेव । ननु संसारकारणमज्ञानमस्तु तस्य वियदादिप्रपञ्चकारणत्वे किं मानमिति चेत् । अत्र पृच्छामः--किं तदज्ञानं यत्संसारकारणमुच्यते, न तावज्ज्ञानाभावमात्रं तस्य सुषुप्तावपि सत्त्वेन दोषाद्यजनकत्वात् । अभावाद्भावोत्पत्त्यसंभवाच्च । नापि संशयज्ञानम् । अनवधारणात्मकस्य तस्य प्रवृत्त्याद्यनुपयोगित्वात् । तस्मादतस्मिंस्तद्बुद्धिरूपविपरीतज्ञानं तत्रानात्मनि देहादावात्मबुद्धिरूपं संसारकारणमिति वाच्यम् । न च सिंहो माणवक इत्यादौ माणवके सिंहत्वबुद्धिरस्ति प्रयोक्तृप्रतिपत्तृभ्यां सिंहमाणवकयोर्भेदस्य प्रतिपन्नत्वात् । अस्मिंस्तच्छब्दप्रयोगमात्रं तत्तु माणवके सिंहगतशौर्यादिसम्बन्धप्रत्यायकं गौणमिति प्रसिद्धम् देहादिस्तु शुक्तिरजतवदात्मनि तादात्म्येनाध्यस्त इति कृशोऽहं गौरोऽहमिति तत्र देहधर्मस्य गौरत्वादेः प्रत्ययो न गौणः सिंहमाणवकयोरिव देहात्मनोर्भेदस्य लोकाप्रसिद्धत्वात् । ननु माऽस्तु तयोर्भेदप्रसिद्धिः । तथापि स्फटिकलौहित्यन्यायेन धर्ममात्राध्यासेनैव कृशोऽहमित्यादिव्यवहारोपपत्तावात्मनि किं देहाद्यध्यासकल्पनयेति चेत् । किमहमर्थमेवात्मानं ब्रूषे उत ततोऽन्यम् । आद्ये इष्टापत्तेः । न हि जडयोर्देहाहमोरन्यधर्मस्यान्यत्राध्यासे किञ्चिदस्माकं हीयते । अहमर्थस्य चैतन्याश्रयत्वेनाजडत्वाकर एव दृश्यत्वादिना हेतुनाऽनात्मत्वादेव निरस्तम् । अन्त्ये--

'निःसंगस्य ससंगेन कूटस्थस्य विकारिणा ।
आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते '

इति वृद्धवचनात् शुक्तिरजतवदनिर्वचनीय एव तयोरज्ञानकृतः सम्बन्ध इत्यज्ञानमेवान्ते शरणीकरणीयम् । तथा च स्वप्नवदज्ञानेनैव सर्वव्यवहारोपपत्तौ वियदादीनां पृथक्सत्त्वकल्पनं गरीयस्तरमित्युपेक्षणीयम् तस्माद्युक्तमुक्तम् असद्ब्रूयादसंशयमिति । आसिद्धेः परमिति पाठे तु यावन्मोक्षं भूतेभ्यः परमं अधिकं नोपपत्त्या न वा युक्त्या कश्चिद्ब्रूयाद्यदि ब्रूयात्तर्ह्यसदज्ञानमेव ब्रूयात् । मोक्षे तु न वा भूतानि नाप्यज्ञानमिति भावः । असिद्धिः परमेतेभ्य इति पाठेऽपि एतेभ्यः परमस्तीति यत्तत्रासिद्धिः प्रमाणाभावः यतः नोपपत्त्या न वा युक्त्या न ब्रूयात् किं त्वसदेव ब्रूयादिति योज्यम् सार्धः । ॥ ७ ॥ एतान् षट् अभिनिर्वृत्तान् सर्वत्र कार्येऽनुगतान्वेत्थ जानीषे । यस्य च एते राशयः कार्याणि तदसच्छब्दवाच्यमज्ञानं च वेत्थ । अहमज्ञ इत्यनुभवो नीहारेण प्रावृता जल्प्या चेति श्रुतिश्चाज्ञानसद्भावे प्रमाणमस्तीति भावः ॥ ८ ॥ भावो भावनं पूर्वसंस्कारः अभावोऽज्ञानम् । भावान्तरमभावो हि कयाचित्तु व्यपेक्षयेति न्यायेन तदपि भावरूपमेव न तु सप्तमपदार्थरूपमित्युक्तं प्रागेव । कालो जीवः पञ्चभूतानि चेत्यष्टौ भूतानि अनादीनि शाश्वतानि अखंडदंडायमानानि भूतानां स्थावरजङ्गमानां भवात्ययौ उत्पत्तिलयस्थानानि ॥ ९ ॥ एतदेव व्याचष्टे--**अभावमिति** । ननु स्थावरजंगमदेहावयवानां भूम्यादीनां स्वस्वकारणे लयो युज्यते । जीवस्य तु लयस्थानं नास्ति नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा इति द्रष्ट्रन्तरनिषेधादत आह --**विनष्ट इति** । तान्येव भूतानि नष्टान्यनुलक्षीकृत्य जन्तुरपि पञ्चधा भूत्वा नष्टोऽपि भवति । 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति 'इति जलचन्द्रन्यायेनोपाधिभूतभूतनाशेन तन्नाशस्यापि श्रवणात् ॥ १० ॥ पञ्चधात्वमेव विवृणोति--**तस्येत्यादिना** ॥ ११ ॥ इन्द्रियार्थानां शब्दादीनां ज्ञानानि ज्ञानकरणानि ॥ १२ ॥ पञ्च इन्द्रियाणि पञ्चसु रूपादिषु पञ्चधा दर्शनादिक्रियारूपेण वर्तमानानेतान् गुणानेव उपपत्त्या युक्त्या विद्धि । अयमर्थः--प्रकाश्यप्रकाशयोर्गन्धघ्राणयोः पार्थिवत्वमेव एकजातीयत्वावगमाद्विषयपञ्चकप्रकाशं

रूपं गन्धो रसः स्पर्शः शब्दश्चैवाथ तद्गुणाः
इन्द्रियैरुपलभ्यन्ते पञ्चधा पञ्च पञ्चभिः ॥ १४
रूपं गन्धं रसं स्पर्शं शब्दं चैवाथ तद्गुणान्।
इन्द्रियाणि न बुध्यन्ते क्षेत्रज्ञस्तैस्तु बुध्यते १५
चित्तमिन्द्रियसंघातात्परं तस्मात्परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः क्षेत्रज्ञो बुद्धितः परः १६
पूर्वं चेतयते जन्तुरिन्द्रियैर्विषयान्पृथक्।
विचार्य मनसा पश्चादथ बुद्ध्या व्यवस्यति।
इन्द्रियैरुपलब्धार्थान्बुद्धिमांस्तु व्यवस्यति १७
चित्तमिन्द्रियसंघातं
मनो बुद्धिस्तथाऽष्टमी।
अष्टौ ज्ञानेन्द्रियाण्याहु-
रेतान्यध्यात्मचिन्तकाः ॥ १८
पाणिपादं च पायुश्च मेहनं पञ्चमं मुखम्।
इति संशब्द्यमानानि शृणु कर्मेन्द्रियाण्यपि ॥
जल्पनाभ्यवहारार्थं मुखमिन्द्रियमुच्यते।
गमनेन्द्रियं तथा पादौ कर्मणः करणे करौ ॥
पायूपस्थं विसर्गार्थमिन्द्रिये तुल्यकर्मणी।
विसर्गे च पुरीषस्य विसर्गे चापि कामिके ॥
बलं षष्ठं षडेतानि वाचा सम्यग्यथा मम।
ज्ञानचेष्टेन्द्रियगुणाः सर्वेषां शब्दिता मया२२
इन्द्रियाणां स्वकर्मभ्यः श्रमादुपरमो यदा।
भवतीन्द्रियसन्न्यासादथ स्वपिति वै नरः २३
इन्द्रियाणां व्युपरमे मनो व्युपरतं यदि।
सेवते विषयानेव तं विद्यात्स्वप्नदर्शनम् ॥ २४
सात्त्विकाश्चैव ये भावास्तथा तामसराजसाः
कर्मयुक्तान्प्रशंसन्ति सात्त्विकानितरांस्तथा
आनन्दः कर्मणां सिद्धिः
प्रतिपत्तिः परा गतिः।
सात्त्विकस्य निमित्तानि
भावान् संश्रयते स्मृतिः ॥ २६
जन्तुष्वेकतमेष्वेवं भावा ये विधिमाश्रिताः।
भावयोरीप्सितं नित्यं प्रत्यक्षं गमनं तयोः

मनः पञ्चभूतात्मकं तत्प्रवर्तको विज्ञानमयोऽपि तादृश एव तस्यैव पूर्वापरीभावो दर्शनादिक्रिया। अतः द्रष्टृदर्शनदृश्यानां त्रयाणामपि गुणात्मत्वमुपपन्नमिति ॥ १३ ॥ **रूपमिति**। तद्गुणाः उपलब्धुर्विज्ञानमयस्य गुणाः पञ्चधा भूतेन तेनैवोपलब्ध्वा उपलभ्यन्ते। इन्द्रियैः करणैः ॥ १४॥ उपलब्धुः स्वरूपमाह--**रूपमिति सार्धत्रयेण**। मनःसहितानीन्द्रियाणीति ज्ञेयम्। क्षेत्रज्ञो विज्ञानात्मा क्षेत्रं च ज्ञश्च तयोः समाहारः। अथवा क्षेत्रयुक्तो ज्ञः क्षेत्रज्ञः बुद्धिविशिष्टश्चेतन इत्यर्थः ॥ १५ ॥ क्षेत्रात् क्षेत्रज्ञं विविनक्ति --**चित्तमिति** ॥ १६ ॥ चित्तादीनन्तःकरणवृत्तिभेदान्व्याचष्टे--**पूर्वमिति**। चेतयते जानाति सामान्यत इदमिति। ज्ञानमनवधृतविशेषं चित्तमिति पृथगिति कोटिद्वयमुपन्यस्य यद्विचारात्मकं ज्ञानमिदं वा इदं वेति तन्मनो व्यवस्यति निश्चिनोति यया सा वृत्तिर्बुद्धिः। य इन्द्रियैरर्थान्व्यवस्यति स उपलब्धा बुद्धिमान् बुद्ध्युपहितः ॥ १७ ॥ इंद्रियसंघातं श्रोत्रादिपञ्चकं एतेन बुद्धेरिन्द्रियत्वादुपलब्धा ततोऽपि निष्कृष्टोऽनुपाधिचिन्मात्रस्वरूपः क्षेत्रज्ञो दर्शितो भवति ॥ १८ ॥ मेहनं शिश्नं मुखं वागिन्द्रियं अदनसाधनं च ॥ १९ ॥ एतेषां विषयानाह--**जल्पनेति** ॥२०॥ पायूपस्थमिति पूर्वार्धस्योत्तरार्धं व्याख्यानम् ॥ २१ ॥ **बलमिति**। पञ्चवृत्तिः प्राणः यथा मम तथा सर्वेषां एतानि षट् इति मया वाचा उक्तानीति शेषः। चेष्टा कर्म यथागमं संशब्दिता मया इति पाठे स्पष्टोऽर्थः। तेन सामान्या करणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्चेति सांख्यानां संमतः प्राणस्येन्द्रियानतिरेकपक्षः परास्तः। निर्विशेषं न सामान्यमिति न्यायेन सुषुप्तौ सर्वेन्द्रियोपरमे प्राणानुपलंभापत्तेः तुल्यन्यायेन तथा मनसोऽप्यनिन्द्रियत्वापत्तेः ॥ २२ ॥ एवं जाग्रदवस्था परीक्षिता। सुषुप्तिस्वप्नयोः स्वरूपमाह--**इन्द्रियाणामिति**। इन्द्रियाण्यष्टौ चित्तमनोबुद्धिसहितानि प्राणव्यतिरिक्तानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च। तेषां सन्न्यासात्त्यक्तवास्यस्तत्क्षेव स्वरूपमात्रेण तदा क्षेत्रज्ञ आस्त इत्यर्थः। नर इति मूलाज्ञाननाशाभावाज्जीवत्वं दर्शितम् ॥ २३ ॥ अव्युपरतमिति च्छेदः ॥२४॥ ननु स्वप्ने विषयाणामभावात्कथं तद्भानमत आह--**सात्त्विका इति**। ये भावा भाव्यन्ते चिन्त्यत इति भावा वासनामया विषया ये जाग्रत्प्रसिद्धास्तानेव सात्त्विकादीन्कर्मयुक्तान् भोगप्रदकर्मयुक्तान् प्रशंसन्ति स्वप्नेऽपीति शेषः। जाग्रद्वासना एव कर्मोद्भवे स्वप्नेऽपि भान्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥ एतदेवाह--**आनन्द इति**। आनन्दः सुखं कर्मणां सिद्धिरैश्वर्यं प्रतिपत्तिर्ज्ञानं परा गतिः परं वैराग्यं धर्मो वा धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यं सात्त्विकमेतद्रूपमिति स्मृत्युक्तेः। सात्त्विकस्य पुरुषस्य स्मृतिर्निमित्तानि हेतुभूतानानन्दादीन् भावान् वासनाः संश्रयते। सात्त्विकः पुमान् जाग्रद्वासनाहेतुकानानन्दादीन् स्वप्ने स्मरतीति भावः ॥ २६ ॥ सात्त्विकस्येत्युपलक्षणत्वेन व्याचष्टे--**जन्तुष्विति**। सात्त्विकेषु राजसेषु तामसेषु वा जन्तुषु एकतमेषु येषु केषुचित् ये भावाः या वासनाः विधिं कर्मगतिमाश्रितास्तानेव भावान्स्मृतिः संश्रयत इति पूर्वेण सम्बन्धः। सात्त्विकादिसंस्कारेष्वन्यतमः प्राक्कर्मो-

इन्द्रियाणि च भावाश्च गुणाः सप्तदश स्मृताः
तेषामष्टादशो देही यः शरीरे स शाश्वतः
अथवा सशरीरास्ते गुणाः सर्वे शरीरिणाम्।
संश्रितास्तद्वियोगे हि सशरीरा न सन्ति ते
अथवा सन्निपातोऽयं शरीरं पाञ्चभौतिकम्।
एकश्च दश चाष्टौ च गुणाः सह शरीरिणा।
ऊष्मणा सह विंशो वा संघातः पाञ्चभौतिकः
महान्संधारयत्येतच्छरीरं वायुना सह।
तस्य प्रभावयुक्तस्य निमित्तं देहभेदने ॥ ३१

यथैवोत्पद्यते किञ्चित्पञ्चत्वं गच्छते तथा।
पुण्यपापविनाशान्ते पुण्यपापसमीरितः।
देहं विशति कालेन ततोऽयं कर्मसंभवम् ३२
हित्वा हित्वा ह्ययं प्रैति
देहाद्देहं कृताश्रयः।
कालसञ्चोदितः क्षेत्री
विशीर्णाद्वा गृहाद्गृहम् ॥ ३३
तत्र नैवानुतप्यन्ते प्राज्ञा निश्चितनिश्चयाः।
कृपणास्त्वनुतप्यन्ते जनाः सम्बन्धदर्शिनः ॥

पोद्बलितः स्वप्ने तादृशान् भावान्स्मारयतीत्यर्थः। स्मृतिरूपमपि तज्ज्ञानं भोगप्रदकर्मवशादेव प्रत्यक्षवदवभातीति भावः। जाग्रत्स्वप्नयोरुपपादनफलं दर्शयति—**भावयोरिति**। द्वित्वं जात्यभिप्रायम्, जाग्रद्भावजातीयस्य स्वाप्नभावजातीयस्य च गमनमपसरणं जागरीयभावस्य स्वप्ने स्वाप्नस्य जागरे च द्वयस्यापि सुषुप्तौ प्रत्यक्षं दृष्टम्। तदेव नित्यमपुनरावृत्तिस्वभावम्। ईप्सितं नित्या सुषुप्तिरेव मुक्तिः सैवापेक्षितव्या। उच्छेदशीलयोर्भावयोरात्यन्तिकोच्छेदस्यापि संभवादित्यर्थः ॥ २७ ॥ वहृयौष्ण्यवदात्मनि तयोरनुच्छेदमाशंक्याह—**इन्द्रियाणीति**। पूर्वोक्तानि चतुर्दशेन्द्रियाणि त्रयः सात्त्विकादयो भावाः। एते सप्तदश गुणा भोक्तुरष्टादशस्यात्मनो भोग्या अतो भोक्तृभोग्ययोः स्वस्वामिभावसम्बन्धो वहृयौष्ण्यवत्तादात्म्याभावादुच्छेद्यो भवतीत्यर्थः। शरीरे सप्तदशात्मिकायामविद्यायां प्रविष्टो योऽष्टादशः स शाश्वतो भोक्तेत्यर्थः ॥ २८ ॥ ननु भोक्तुर्विक्रियावतः कथं शाश्वतत्वमित्याशंक्याह—**अथवेति**। अविद्यया सहितास्ते अष्टादश गुणा भोग्या एव भोक्तुरपि अविद्यया संहतत्वात्पारार्थ्यमस्ति। अतः सोऽपि भोग्यवर्गेऽन्तर्भूत इत्यर्थः। शरीरिणां चिदात्मनां यस्यानुभवस्यार्थे भोक्ता भोग्यमिच्छति स सर्वशेषी परमप्रेमास्पदं तस्यैवैतेऽष्टादश भोग्याः। बहुत्वं भोक्तृभेदकृतानुभवभेदाभिप्रायं शरीरिणामिति कर्मणि षष्ठी। भोक्रादयोऽनुभवाश्रिताः अस्यानुभवस्य सत्त्वे प्रमाणमाह—**तद्वियोगे हीति**। यतोऽनुभवाभावे साविद्यास्ते न सन्ति। प्रमात्रादिभावाभावसाधकस्यानुभवस्याभावे प्रमात्रादय एव न सिद्ध्यन्त्यतः स प्रसिद्धतर इत्यर्थः। यथोक्तं वार्तिके-प्रमाणमप्रमाणं च प्रमाभावस्तथैव च। दाश्रिताः प्रवर्तेते तदा संभावना कुतः। इति अप्रमाणं मातृमेयात्मकम् ॥२९॥ नन्वनुभवोऽपि न प्रमोदास्पदं दुःखानुभवस्यापि प्रार्थ्यत्वापत्तेरित्यत आह—**अथवेति**। सन्निपातः एकीभावः शरीरं स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधम्। एकोऽनुभवः शरीरिणा भोक्त्रा सह दश चाष्टौ चेत्यष्टादश पूर्वोक्ता गुणाः ऊष्मणा जाठराग्निना सह विंशो विंशतेर्गणः। अयं कृत्स्नोऽपि पाञ्चभौतिकः संघातः अत्रानुभवस्य धीवृत्तिरूपत्वं वृत्तिवृत्तिमतोर्भेदं च विवक्षित्वा संघातमध्ये पाठः। तेन वृत्तिरूपोऽनुभवः क्षेत्रज्ञ इति शंकां परास्य यो मातृमानमेयप्रमाणानां तदाभासानां तदभावानां च प्रकाशको योऽखंडसंविद्रूपोऽनुभवः स क्षेत्रज्ञ इति स्थितम् ॥३०॥ अस्यैव देहे प्रवेशादिकमाह—**महानित्यादिना**। महान् एकविंशतितमः उक्तविधोऽनुभवः वायुना प्राणेन उपकरणेन सह शरीरं विंशात्मकं क्षेत्रं धारयति। ननु तत्प्राणे प्रयन्न उदातिष्ठदिति प्राणस्यैव मुख्यं शरीरधारकत्वमुच्यत इत्याशंक्याह—**तस्येति**। तस्य महतो निमित्तं उपकरणं देहभेदने देहनाशे यथा घटनाशे मुद्गरो निमित्तमात्रं भेत्ता तु पुरुष एवं महानेव धारयिता देहस्य वायुस्तु निमित्तमात्रम्। निमित्तमात्रपरतया च श्रुतिरप्युपपन्नैवेति न कश्चिद्दोषः। तथा च श्रुत्यन्तरम्—

'न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ' इति।

प्रभावयुक्तस्येत्यनेन—

'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति वेद्यं न तु तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' ॥

इत्यादिश्रुत्यर्थो दर्शितः ॥ ३१ ॥ एवं प्रविष्टस्य देहनाशोत्पत्ती अनुनाशोत्पत्ती अपि स्त इत्याह—**यथैवेति** सार्धेन। यथैव किंचित् घटादिकमुत्पद्यते नश्यति च तथैवायं प्रारब्धपुण्यपापविनाशान्ते पञ्चत्वं गच्छति सञ्चितपुण्यपापाभ्यां समीरितः कालेन देहं देहान्तरं विशति ॥ ३२ ॥ कृताश्रयः अविद्याकामकर्मभिर्निष्पादितदेहान्तरः। वाशब्द इवार्थे ॥३३॥ तत्र देहसम्बन्धकृते मरणादौ सति सम्बन्धदर्शिनः आत्मनोऽनात्मना देहपुत्रादिना सम्बन्धं वस्तुतोऽविद्यमानमपि भ्रान्त्या पश्यन्तः ॥ ३४ ॥

न ह्ययं कस्यचित्कश्चिन्नास्य कश्चन विद्यते ।
भवत्येको ह्ययं नित्यं शरीरसुखदुःखभुक् ३५
नैव संजायते जन्तुर्न च जातु विपद्यते ।
याति देहमयं मुक्त्वा कदाचित्परमां गतिम्
पुण्यपापमयं देहं क्षपयन्कर्मसंक्षयात् ।
क्षीणदेहः पुनर्देही ब्रह्मत्वमुपगच्छति ॥ ३७
पुण्यपापक्षयार्थं हि सांख्यज्ञानं विधीयते ।
तत्क्षये ह्यस्य पश्यन्ति ब्रह्मभावे परां गतिम्३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारदासितसंवादे पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥

## २७६–[१०३]

युधिष्ठिर उवाच ।
भ्रातरः पितरः पौत्रा ज्ञातयः सुहृदः सुताः
अर्थहेतोर्हताः क्रूरैरस्माभिः पापकर्मभिः ॥ १
येयमर्थोद्भवा तृष्णा कथमेतां पितामह ।
निवर्तयेयं पापानि तृष्णया कारिता वयम् २
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गीतं विदेहराजेन मांडव्यायानुपृच्छते ॥ ३
सुसुखं बत जीवामि यस्य मे नास्ति किंचन
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन४
अर्थाः खलु समृद्धा हि बाढं दुःखं विजानताम्
असमृद्धास्त्वपि सदा मोहयन्त्यविचक्षणान्
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्
यथैव शृङ्गं गोः काले वर्धमानस्य वर्धते ।
तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते ॥ ७
किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम् ।
तदेव परितापाय नाशे संपद्यते पुनः ॥ ८
न कामाननुरुध्येत दुःखं कामेषु वै रतिः ।
प्राप्यार्थमुपयुञ्जीत धर्मे कामान् विसर्जयेत् ९
विद्वान् सर्वेषु भूतेषु आत्मना सोपमो भवेत्
कृतकृत्यो विशुद्धात्मा सर्वं त्यजति चैव ह १०
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा शोकानन्दौ प्रियाप्रिये
भयाभयं च सन्त्यज्य स प्रशान्तो निरामयः

---

पुत्रादिसम्बन्धं तावन्निषेधति—**न हीति** ॥ ३५ ॥ देहादिसम्बन्धं निषेधति—**नैवेति** । कदाचित् विद्यया कर्मदाहे सति परमां गतिं मोक्षं याति ॥ ३६ ॥ तथापि प्रारब्धकर्मणामवश्यभोक्तव्यत्वमाह—**पुण्येति** ॥ ३७ ॥ सञ्चितकर्मणां ज्ञानेनैव दाह इत्याह—**पुण्येति** । तत्क्षये पुण्यपापक्षये सति । अस्य जीवस्य ब्रह्मभावे 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतिसिद्धे ब्रह्मविद्यया व्यक्तीभूते सति परां गतिं कैवल्यं पश्यन्ति पण्डिताः शास्त्रदृष्ट्या न त्वन्यस्य कैवल्यमन्येन द्रष्टुं शक्यत इति ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२७५॥

**२७६**

उक्तविधज्ञानप्रतिबन्धिका सर्वानर्थहेतुस्तृष्णा ममतात्यागेन नाशनीयेत्याह—**भ्रातर** इत्यादिनाऽध्यायेन ॥ १ ॥ अर्थाः ब्रह्मलोकान्ता विषयाः समृद्धाः संपन्नाः हि प्रसिद्धं विजानतां विवेकिनां दुःखमेव । यदाह भगवान् पतञ्जलिः । 'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः' इति । परिणामे दुःखं विनश्यदवस्थः पुत्रादिदुःखं ददाति विद्यमानोऽपि चैत्रपुत्रवन्नायं गुणवानिति तापयन् दुःखं ददाति । गुणवान् विनष्टोऽपि हा पुत्र इति स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखसंस्कारोद्बोधनेन दुःखं ददाति । सर्वथा रमणीयेऽपि तस्मिन् चलं गुणवृत्तमिति न्यायेन प्रतिक्षणपरिणामितया चित्तस्य सूक्ष्मं राजसं तामसं दुःखमोहहेतुं परिणामं योगिन एव जानन्ति न तु मन्दाः । अन्तःसंज्ञाः स्थावरवद्भारसहा मूढास्तद्दुःखमिति विद्वन्ते । अक्षिमात्रकल्पो हि विद्वान् अत्यन्तदुःखलेशेनाप्युद्विजतेऽतो विवेकिनः सर्वं ब्रह्मलोकान्तं दुःखमेवेति सूत्रार्थसंक्षेपः ॥ ५ ॥ **प्राप्येति** । धर्मार्थमपि वित्तं न लिप्सेत यथोक्तम्—

'धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ' इति ।

धर्ममपि अर्थं प्राप्यैव उपयुञ्जीत कामांस्तु अर्थं प्राप्यापि विसर्जयेदेव ॥ ९ ॥ आत्मना सोपमः आत्मौपम्येन सर्वेषां सुखमिच्छेत् । दुःखं च नेच्छेदित्यर्थः । सर्वं पुण्यपापसंचयम् ॥ १० ॥ ततोऽपि किमत आह—**उभे इति** । सत्यानृते जाग्रत्स्वप्नौ शोकानन्दौ इष्टवियोगसंयोगजौ त्यक्त्वा । कुतः यस्मात्प्रियाप्रियैः इष्टानिष्टे एव तन्मू-

या दुस्त्यजा दुर्मतिभि-
र्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोग-
स्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ १२
चारित्रमात्मनः पश्यंश्चन्द्रशुद्धमनामयम् ।
धर्मात्मा लभते कीर्तिं प्रेत्य चेह यथासुखम् १३
राज्ञस्तद्वचनं श्रुत्वा
प्रीतिमानभवद्द्विजः ।
पूजयित्वा च तद्वाक्यं
माण्डव्यो मोक्षमाश्रितः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि माण्डव्यजनकसंवादे षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

---

## २७७-[१०४]

युधिष्ठिर उवाच ।
अतिक्रामति कालेऽस्मिन् सर्वभूतभयावहे।
किं श्रेयः प्रतिपद्येत तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितुः पुत्रेण संवादं तं निबोध युधिष्ठिर ॥ २
द्विजातेः कस्यचित्पार्थ स्वाध्यायनिरतस्य वै
पुत्रो बभूव मेधावी मेधावी नाम नामतः ३
सोऽब्रवीत्पितरं पुत्रः स्वाध्यायकरणे रतम् ।
मोक्षधर्मेष्वकुशलं मोक्षधर्मविचक्षणः ॥ ४
पुत्र उवाच ।
धीरः किंस्वित्तात कुर्यात्प्रजानन्
क्षिप्रं ह्यायुर्भ्रश्यते मानवानाम् ।
पितस्तथाऽऽख्याहि यथार्थयोगं
ममानुपूर्व्या येन धर्मं चरेयम् ॥ ५
पितोवाच ।
अधीत्य वेदान्ब्रह्मचर्येण पुत्र
पुत्रानिच्छेत्पावनार्थं पितॄणाम् ।
अग्नीनाधाय विधिवच्चेष्टयज्ञो
वनं प्रविश्याथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ६
पुत्र उवाच ।
एवमभ्याहते लोके सर्वतः परिवारिते ।
अमोघासु पतन्तीषु किं धीर इव भाषसे ७
पितोवाच ।
कथमभ्याहतो लोकः
केन वा परिवारितः ।
अमोघाः काः पतन्तीह
किं नु भीषयसीव माम् ॥ ८
पुत्र उवाच ।
मृत्युनाऽभ्याहतो लोको जरया परिवारितः
अहोरात्राः पतन्तीमे तच्च कस्मान्न बुद्ध्यसे ॥
यदाहमेव जानामि न मृत्युस्तिष्ठतीति ह ।
सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये ज्ञानेनापिहितश्चरन्
रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं यदा।
गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्र गतमानसम् ।
अनवाप्तेषु कामेषु मृत्युरभ्येति मानवम् १२
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम्
अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो
मा त्वां कालोऽत्यगान्महान् ।
को हि जानाति कस्याद्य
मृत्युकालो भविष्यति ॥ १४
अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै संप्रकर्षति ।
युवैव धर्मशीलः स्यादनिमित्तं हि जीवितम्

---

लभते त्यजति । तेन च भयं संसारं अभयमैश्वर्यं प्रशान्तो निर्विकल्पः निरामयो निर्द्वन्द्वः ॥ ११ ॥ चारित्रं सदाचारम् ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

२७७

तृष्णात्यागिना चत्वार आश्रमा यथाक्रमं सेव्या न वेति पृच्छति—**अतिक्रामतीति** ॥ १ ॥ क्रमानुष्ठानमनियतायुषामशक्यमतो यत्र कुत्रचिदाश्रमे स्थितैर्मोक्षपरैर्भवितव्यमिति वक्ष्यन्पूर्वोक्तमेवेतिहासं प्रस्तौति—**अत्रापीति** ॥ २ ॥ स्वाध्यायनिरतस्य केवलाध्ययननिरतस्य ॥ ३ ॥

कृते धर्मे भवेत्प्रीतिरिह प्रेत्य च शाश्वती ।
मोहेन हि समाविष्टः पुत्रदारार्थमुद्यतः ॥ १६
कृत्वा कार्यमकार्यं वा तुष्टिमेषां प्रयच्छति ।
तं पुत्रपशुसंपन्नं व्यासक्तमनसं नरम् ॥ १७
सुप्तं व्याघ्रं महौघो वा मृत्युरादाय गच्छति
सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् १८
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् ॥ १९
एवमीहासमायुक्तं मृत्युरादाय गच्छति ।
कृतानां फलमप्राप्तं कार्याणां कर्मसंगिनाम् ॥
क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति ।
दुर्बलं बलवन्तं च प्राज्ञं शूरं जडं कविम् २१
अप्राप्तसर्वकामार्थं मृत्युरादाय गच्छति ।
मृत्युर्जरा च व्याधिश्च दुःखं चानेककारणम्
असंत्याज्यं यदा मर्त्यैः किं स्वस्थ इव तिष्ठसि
जातमेवान्तकोन्ताय जरा चाभ्येति देहिनम्
अनुषक्ता द्वयेनैते भावाः स्थावरजङ्गमाः ।
न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित्प्रबाधते ॥
बलात्सत्यमृते त्वेकं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम् ।
मृत्योर्वा गृहमेतद्वै या ग्रामे वसतो रतिः २६
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः ।
निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः
छित्वैनां सुकृतो यान्ति
नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ।
यो न हिंसति सत्त्वानि
मनोवाक्कर्महेतुभिः ॥ २७
जीवितार्थापनयनैः प्राणिभिर्न स बद्ध्यते ।
तस्मात्सत्यव्रताचारः सत्यव्रतपरायणः ॥ २८
सत्यकामः समो दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत्
अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम् २९
मृत्युरापद्यते मोहात्सत्येनापद्यतेऽमृतम् ।
सोऽहं सत्यमहिंसार्थी कामक्रोधबहिष्कृतः
समाश्रित्य सुखं क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमृत्युवत्
शान्तियज्ञरतो दान्तो ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः॥
वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युदगायने ।
पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति ॥ ३२
अन्तवद्भिरुत प्राज्ञः क्षत्रयज्ञैः पिशाचवत् ।
आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजःपितः
आत्मयज्ञो भविष्यामि न मां तारयति प्रजा
यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा
तपस्त्यागश्च योगश्च स तैः सर्वमवाप्नुयात् ।
नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं फलम्
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च ।
शीले स्थितिर्दण्डविधानमार्जवं
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥ ३७
किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते
किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताः पिता च ३८
भीष्म उवाच ।
पुत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा तथाऽकार्षीत्पिता नृप
तथा त्वमपि वर्तस्व सत्यधर्मपरायणः ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पितापुत्रसंवादे
सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

## २७८—[१०५]

युधिष्ठिर उवाच ।

किंशीलः किंसमाचारः किंविद्यः किंपरायणः । प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ १

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये [illegible] सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

२७८

तृष्णां त्यक्त्वा शीघ्रं मोक्षमिच्छेदिति श्रुत्वा मोक्षसाधनानि पृच्छति—**किंशील इति** । शीलं सुस्वभावः । आचरणमाचारः विद्या ज्ञानं परायणं अत्यन्तं प्राप्यम् । कार्यब्रह्मलोकव्यावृत्तये—**यत्परमिति** ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

मोक्षधर्मेषु निरतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २
स्वगृहादभिनिःसृत्य लाभेऽलाभे समो मुनिः
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ३
न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेदपि ।
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा दूषणं व्याहरेत्क्वचित् ४
न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ५
अतिवादांस्तितिक्षेत नाभिमन्येत कञ्चन ।
क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयादाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ६
प्रदक्षिणं च सव्यं च ग्राममध्ये च नाचरेत् ।
भैक्षचर्यामनापन्नो न गच्छेत्पूर्वकेतितः ॥ ७
अवकीर्णः सुगुप्तश्च न वाचा ह्यप्रियं वदेत् ।
मृदुः स्यादप्रतिक्रूरो विस्रब्धः स्यादकत्थनः
विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
अतीतपात्रसंचारे भिक्षां लिप्सेत वै मुनिः ।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रालाभेष्वनादृतः
अलाभे न विहन्येत लाभश्चैवं न हर्षयेत् १०
लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुञ्जीताभिपूजितः ।
अभिपूजितलाभं हि जुगुप्सेतैव तादृशः ११
न चान्नदोषान्निन्देत न गुणानभिपूजयेत् ।
शय्यासने विविक्ते च नित्यमेवाभिपूजयेत्
शून्यागारं वृक्षमूलमरण्यमथवा गुहाम् ।
अज्ञातचर्यां गत्वाऽन्यां ततोऽन्यत्रैव संविशेत्
अनुरोधविरोधाभ्यां समः स्यादचलो ध्रुवः
सुकृतं दुष्कृतं चोभे नानुरुध्येत कर्मणा ॥ १४
नित्यतृप्तः सुसंतुष्टः प्रसन्नवदनेन्द्रियः ।
विभीर्जप्यपरो मौनी वैराग्यं समुपाश्रितः ॥

अभ्यस्तं भौतिकं पश्यन्
भूतानामागतिं गतिम् ।
निस्पृहः समदर्शी च
पक्वापक्वेन वर्तयन् ।
आत्मना यः प्रशान्तात्मा
लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ १६
वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
हिंसावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान्वेगान्विषहेद्वै तपस्वी
निन्दा चास्य हृदयं नोपहन्यात् १७

मध्यस्थ एव तिष्ठेत प्रशंसानिन्दयोः समः ।
एतत्पवित्रं परमं परिव्राजक आश्रमे ॥ १८
महात्मा सर्वतो दान्तः सर्वत्रैवानपाश्रितः ।
अपूर्वचारकः सौम्यो अनिकेतः समाहितः १९

---

क्रमेणोत्तरं मोक्षधर्मेषु निरतः अध्यात्मविद्यापरिशीलनशीलः लघ्वाहारः हितं मितं मेध्यं चान्नादिकं स्वीकुर्वन् द्वयोरेकमुत्तरं- **जितेन्द्रिय इति** । इन्द्रियजय एव महती विद्या मुमुक्षूणां शरणं च प्रकृतेः परं निर्विशेषम् । अत एव ध्रुवं अविचलम् ॥ २ ॥ समो रागद्वेषहीनः समुपोढेषु उपस्थितेष्वपि परिव्रजेत् गृहं त्यक्त्वा मोक्षाश्रमं कुर्यात् ॥ ३ ॥ परिव्राड्धर्मानाह—**न चक्षुषेत्यादिना** ॥ ४ ॥ मैत्रायणगतः मित्रः सूर्यस्तस्येदं मैत्रं तदयनं गमनं तच्च मैत्रायणं तत्र गतः सूर्यवत्प्रत्यहं विभिन्नमार्गः अनिकेतो ग्रामैकरात्रविधिना चरेदित्यर्थः ॥५॥ कञ्चन उद्दिश्य नाभिमन्येत अभिमानमहंकारं दर्पं न कुर्यात् ॥ ६ ॥ ग्राममध्ये जनसमाजे प्रदक्षिणं अनुकूलं सव्यं प्रातिकूलं वा नाचरेत् भिक्षार्थं चर्यां अनेकगृहाटनं अनापन्नः अकुर्वन्नित्यर्थः । पूर्वकेतितः प्राङ्निमन्त्रितो न गच्छेद्भोजनार्थमिति शेषः ॥ ७ ॥ अवकीर्णः मूढैः पांसुभिश्छन्नः धिक्कृत इत्यर्थः । तथापि सुगुप्तः अचपलः स्वधर्मे निष्ठावान् यथोक्तम्—

‘तथा चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव संगमम्’ इति ।

मृदुः दयावान् अप्रतिक्रूरः क्रूरं जिघांसन्तं प्रत्यपि क्रूरो न स्यात् । विस्रब्धो निर्भयः । अविकत्थनः धन्योऽहमिति श्लाघामकुर्वन् ॥ ८ ॥ यदा पात्राणां परिवेषणपात्रहस्तानां संचारे अतीते सतीति वृत्ते शरावसंपाते इत्यनेनैतदेवोक्तम् ॥ ९ ॥ मात्रा आहारपूर्तिः । तत्राप्यनादृतः किमुत वस्त्रादौ अलाभे सति न विहन्येत हिंसितो न स्यात् ॥ १० ॥ साधारणं सर्वयोग्यं स्रक्चन्दनादिलाभम् ॥ ११ ॥ अन्नदोषान्पर्युषितत्वादीन् । **शय्येति** । एकान्ते शय्यां आसनं उपवेशनं च कांक्षेतेत्यर्थः ॥ १२ ॥ विविक्तमेवाह- **शून्येति** । अन्यां पैशाचीं अन्यत्रात्मनि ॥ १३ ॥ अनुरोधो योगस्य विरोधः संगस्य ताभ्यां समः ब्रह्म स्यात् ‘निर्दोषं हि समं ब्रह्म’ इति गीता। अचल उत्क्रान्तिगत्या गतिशून्यः ध्रुवः कूटस्थः नानुरुध्येत न कांक्षेत कर्मणा दयाद्वेषादिना ॥ १४ ॥ अभ्यस्तं पुनः पुनर्यथा स्यात्तथा भौतिकं तत्त्वजातम् । आत्मनो देहेन्द्रियादि पश्यन् अनात्मत्वेनालोचयन् भूतानां चान्येषां पक्वेन भक्तादिना अपक्वेन मूलादिना वर्तयन् जीविकां कुर्वन् पक्षापक्षेणेति पाठे मित्रामित्रसमूहेन वर्तयन् मित्रवदमित्रमपि पश्येदित्यर्थः । [illegible] तीतिवत् ॥ १६ ॥ अनपाश्रितः संगमकुर्वन् अपूर्वचारकः पूर्वाश्रमीयेषु देशग्रामादिषु चरतीति तदन्यः ॥ १९ ॥

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित
अज्ञातलिप्सं लिप्सेत न चैनं हर्ष आविशेत॥
विजानतां मोक्ष एष श्रमः स्याद्विजानताम्
मोक्षयानमिदं कृत्स्नं विदुषां हारितोऽब्रवीत
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा यः प्रव्रजेद्गृहात्।
लोकास्तेजोमयास्तस्य तथानन्त्याय कल्पते

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि हारीतगीतायां
अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७८ ॥

## २७९-[१०६]

युधिष्ठिर उवाच।
धन्या धन्या इति जनाः सर्वेऽस्मान्प्रवदन्त्युत
न दुःखिततरः कश्चित्पुमानस्माभिरस्ति ह १
लोकसंभावितैर्दुःखं यत्प्राप्तं कुरुसत्तम।
प्राप्य जातिं मनुष्येषु देवैरपि पितामह॥ २
कदा वयं करिष्यामः संन्यासं दुःखसंज्ञकम्
दुःखमेतच्छरीराणां धारणं कुरुसत्तम॥ ३
विमुक्ताः सप्तदशाभिर्हेतुभूतैश्च पञ्चभिः।
इन्द्रियार्थैर्गुणैश्चैव अष्टाभिश्च पितामह॥ ४
न गच्छन्ति पुनर्भावं मुनयः संशितव्रताः।
कदा वयं गमिष्यामो राज्यं हित्वा परंतप ५

भीष्म उवाच।
नास्त्यनन्तं महाराज
सर्वं संख्यानगोचरः।
पुनर्भावोऽपि विख्यातो
नास्ति किञ्चिदिहाचलम्॥ ६
न चापि मन्यसे राजन्नेष दोषः प्रसङ्गतः।
उद्योगादेव धर्मज्ञाः कालेनैव गमिष्यथ॥ ७

---

न संसृज्येत तयोर्गृहे न वसेत् अज्ञातं पूर्वमक्लृप्तं आहारादि लिप्सित्वैवेत्यज्ञातलिप्सं लिप्सेत लब्धुमिच्छेत् कषादित्वादनुप्रयोगः समूलकाषं कषतीतिवत्॥ २०॥ मोक्षसाधनं एषः संन्यासधर्मः। मोक्षयानं मोक्षप्रापकम्॥ २१॥ लोकाः विषयाः तेजोमयास्तैजसान्तःकरणमयाः 'सत्यकामः सत्यसंकल्पः' इति श्रुतेः तथा विदेहकैवल्यकाले आनन्त्याय वाङ्मनसातीतप्रत्यगात्मप्राप्तये कल्पते प्रव्रज्येति शेषः॥२२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७८॥

### २७९

उक्तः संन्यासो देवतांशभूतैः सार्वभौमैर्भगवद्भक्तैरपि प्रार्थ्यत इत्येतद्दर्शयितुं युधिष्ठिरप्रश्नमाह-**धन्या इति**॥१॥ देवैर्धर्मादिभिर्बीजप्रदैः जातिं जन्म प्राप्यापि। यत् यस्मात् अस्माभिरपि दुःखं प्राप्तम्। अतः शरीराणां धारणं दुःखमित्युत्तरेणान्वयः॥ २॥ यत एतद्दुःखं अतः दुःखसंज्ञकं दुःखनाशकं संन्यासं कदा करिष्यामः। मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञेति सूत्रे जानातेर्मारणार्थत्वानुवादात्पशुं संज्ञपयतीति ब्राह्मणदर्शनाच्च संज्ञपयतेर्ण्वुलि णेरनिटीति णिलोपे निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इति न्यायेन पुङ्निवृत्तिः॥ ३॥ सप्तदशाभिः पञ्च प्राणा द्वे मनोबुद्धी दश ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि तैः हेतुभूतैर्मुक्तिविरोधितया संसारवर्धकैः। पञ्चभिः 'कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्' इति प्रागुक्तैर्योगदोषैः इन्द्रियार्थैः शब्दादिभिः गुणैः सत्त्वादिभिः अष्टाभिः पञ्च स्थूलभूतानि अविद्याहंकारकर्माणि चेति अष्टत्रिंशता गणेन विमुक्ताः॥ ४॥ पुनर्भावं जन्म गमिष्यामः पारिव्राज्यं करिष्यामः॥ ५॥ एवं दुःखातुरं राजानं दुःखस्यान्तवत्तां बोधयन्नाश्वासयति-**नास्तीति**। अनन्तं नास्ति दुःखमिति शेषः। अस्त्येव दुःखान्ताख्यो मोक्ष इत्यर्थः यतः सर्वं संख्यानं परिच्छेदस्तस्य विषयः। ननु प्रलयेऽपि सर्वस्यान्तोऽस्ति न तावता संसारनिवृत्तिरस्त्यत आह—**पुनर्भावः** भावो भवनं पुनर्जन्म सोऽपि विख्यातः अन्तवत्त्वेन। 'न स पुनरावर्तते' इति श्रुत्या सर्ववादिसंप्रतिपत्त्या च प्रसिद्धोऽन्तः। ननु तथापि ऐश्वर्यलुब्धैरस्माभिः स कथं प्राप्तुं शक्य इत्यत आह—**नास्ति किंचिदिहाचलमिति**। 'अतोऽन्यदार्तम्' इति श्रुतेरैश्वर्यस्याप्यन्तो भविष्यतीत्यर्थः॥ ६॥ एषः ऐश्वर्ये दोष इति मन्यसे तदपि नेति न च तत्र हेतुः प्रसंगतः ऐश्वर्यस्यापि संगहेतुत्वेन मोक्षप्रतिबन्धकत्वात्तथापि धर्मज्ञा यूयमुद्योगात् शमाद्यभ्यासादेव कालेन कियतापि गमिष्यथ प्राप्स्यथ मोक्षमिति शेषः। 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते' इति गीतावचनात्॥ ७॥

नेशोऽयं सततं देही नृपते पुण्यपापयोः।
तत एव समुत्थेन तमसा रुध्यतेऽपि च ८
यथाऽञ्जनमयो वायुः पुनर्मानःशिलं रजः।
अनुप्रविश्य तद्वर्णो दृश्यते रञ्जयन्दिशः॥ ९
तथा कर्मफलैर्देही रञ्जितस्तमसावृतः।
विवर्णो वर्णमाश्रित्य देहेषु परिवर्तते॥ १०
ज्ञानेन हि यदा जन्तुरज्ञानप्रभवं तमः।
व्यपोहति तदा ब्रह्म प्रकाशति सनातनम् ११
अयत्नसाध्यं मुनयो वदन्ति
ये चापि मुक्तास्त उपासितव्याः।
त्वया च लोकेन च सामरेण
तस्मान्न शाम्यन्ति महर्षिसंघाः १२
अस्मिन्नर्थे पुरा गीतं शृणुष्वैकमना नृप।
यथा दैत्येन वृत्रेण भ्रष्टैश्वर्येण चेष्टितम्॥ १३
निर्जितेनासहायेन हृतराज्येन भारत।
अशोचता शत्रुमध्ये बुद्धिमास्थाय केवलाम्॥

भ्रष्टैश्वर्यं पुरा वृत्र-
मुशना वाक्यमब्रवीत्।
कच्चित्पराजितस्याद्य
न व्यथा तेऽस्ति दानव॥ १५

वृत्र उवाच।

सत्येन तपसा चैव विदित्वा संशयं ह्यहम्
न शोचामि न हृष्यामि भूतानामागतिं गतिम्
कालसंचोदिता जीवा मज्जन्ति नरकेऽवशाः
परितुष्टानि सर्वाणि दिव्यान्याहुर्मनीषिणः॥
क्षपयित्वा तु तं कालं गणितं कालचोदिताः
सावशेषेण कालेन संभवन्ति पुनः पुनः १८
तिर्यग्योनिसहस्राणि गत्वा नरकमेव च।
निर्गच्छन्त्यवशा जीवाः कामबन्धनबन्धनाः
एवं संसरमाणानि जीवान्यहमदृष्टवान्।
यथा कर्म तथा लाभ इति शास्त्रनिदर्शनम्॥

किंच अयं जीवः पुण्यपापयोः सुखदुःखयोर्नैशे न ईष्टे तत एव सुखदुःखोत्थेनैव तमसा रागद्वेषात्मकेनाज्ञानेन रुध्यते। दैवप्रापिताभ्यां सुखदुःखाभ्यामनुद्विग्नो मोक्षार्थमुद्योगं कुर्यादेवेत्यर्थः॥ ८॥ सुखदुःखयोरुच्छेद्यत्वं दर्शयितुमात्मधर्मत्वं दृष्टान्तपूर्वकं व्युदस्यति—**यथेति** द्वाभ्याम्। अञ्जनमयः कज्जलप्रचुरः मनःशिलाया इदं मानःशिलं रक्तपीतं रजः यथा स्वयमरूपोऽपि वायुरञ्जनादिसम्बन्धात्तद्वर्णवानिव भूत्वा स्वयोनिं दिक्शब्दितमाकाशं च तद्वर्णवन्तामिव करोति। एवं तमसावृतोऽविद्योपाधिः समष्टिजीवः स्वयं विवर्णो रागादिराहित्याद्दोषास्पृगपि देहद्वयसम्बन्धात्तद्धर्मैर्गौरत्वकाणत्वसुखित्वादिभिस्तद्वानिव भूत्वा स्वयोनिमन्तर्यामिणमवर्णं त्रिगुणातीतमप्याश्रित्य व्याप्य तद्वन्तामिव कृत्वा देहेषु भ्रमति बिम्बप्रतिबिम्बयोरनन्यत्वात्प्रतिबिम्बगतं कम्पादिकं वस्तुतो बिम्ब एवावभासते। एवं जीवगतोऽपि संसारो ब्रह्मण्येवास्ति तयोरभेदात्। अतो दुःखादेरात्मधर्मत्वाभावात्सुखेनोच्छेद्यत्वं स्यादित्यर्थः॥ ९॥ ननु देहात्मयोगोऽनादित्वादनुच्छेद्य इत्याशंक्याह—**ज्ञानेनेति**। तमः अतस्मिंस्तद्बुद्धिरूपो विपर्ययः। स च आत्मसंगेऽपि दुःखित्वादिभ्रमोऽज्ञानजो ज्ञानेन नश्यति यदा तदा प्रकाशते ब्रह्म सनातनं सदैकरूपम्। अनादिरपि देहात्मयोगो भ्रान्त्यात्मकस्तत्त्वज्ञानेनोच्छेत्तुं शक्य इत्यर्थः॥ ॥ ११॥ तच्च सनातनं ब्रह्म अयत्नसाध्यं कर्मप्राप्यं न। अनित्यत्वापत्तेः कर्मजं ह्युत्पाद्यमाप्यं संस्कार्यं विकार्यं वा स्यात्। न हि संयवनेन पिंड इवोपास्त्या ब्रह्मोत्पाद्यं अनित्यत्वापत्तेः नापि ग्रामवद्गमनेन प्राप्यं आत्मत्वात्। अन्यत्वे घटवज्जडत्वापत्तेः। नापि व्रीहिवदवघातेन उपास्त्या दोषापनयेन संस्कार्यम् असंगत्वात्संगित्वे वह्न्यौष्ण्यवत्तदनिवृत्त्यापत्तेः। नापि विकार्यम्। क्षीरादिवद्विकारयुक्तस्यानित्यत्वापत्तेः। अतो ज्ञानेनाज्ञानापनोदे सति कण्ठगतविस्मृतचामीकरवत्सिद्धमपि साध्यमिवोच्यते। तस्माद्युक्तमुक्तमयत्नसाध्यमिति—**ये इति**। अत्र विद्वदनुभव एव प्रमाणमिति भावः। न शाम्यन्ति ब्रह्मोपासनान्नोपरमन्ते। उद्योगिनोऽवश्यं ब्रह्मप्राप्तिरतस्त्वया उद्योगवता भवितव्यमिति भावः॥ ॥ १२॥ केवलां सन्नद्धीनाम्॥ १४॥ सत्येन अबाधितार्थेन वेदवाक्येन तपसा मननध्यानात्मकेनात्मालोचनेन च आगतिं संसारम् गतिं मोक्षं असंशयं विदित्वा न शोचामि न हृष्यामि तथा च मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति इति श्रुतिः॥ १६॥ **कालेति**। युगचतुष्टययोग्याः पुण्यपापाख्या धर्मा लक्ष्यन्ते केचिन्नरके कानिचिद्भूतानि दिव्यानि स्वर्गार्हाणि॥ १७॥ क्षपयित्वा भोगेन स्वर्गे नरके वा तं कालं नीत्वा पुण्यापुण्ये समाप्य। ताभ्यामेव नृतिर्यगादियोनिप्रापकाभ्यां चोदिताः सन्तः पुनः पुनर्भवन्ति। कालचोदिता इत्यस्य व्याख्यानं सावशेषेण कालेनेति॥ १८॥ कामबन्धनबन्धनाः कामपाशबद्धाः॥ १९॥ जीवानि जीववन्ति भूतानि अदृष्टवान् न दृष्टं अदृष्टं व्यवहितमतीतमनागतादि च तत् वाऽतिगच्छति प्राप्नोतीति जानातीत्यदृष्टवान् अतीन्द्रियज्ञानी अहं वेद्मीति शेषः संसरतो जीवान्। शास्त्रनिदर्शनं शास्त्रप्रत्ययं च जानामीत्यर्थः॥ २०॥

तिर्यग्गच्छन्ति नरकं मानुष्यं दैवमेव च ।
सुखदुःखे प्रिये द्वेष्ये चरित्वा पूर्वमेव ह २१
कृतान्तविधिसंयुक्तः सर्वो लोकः प्रपद्यते ।
गतं गच्छन्ति चाध्वानं सर्वभूतानि सर्वदा ॥
कालसंख्यानसंख्यातं सृष्टिस्थितिपरायणम् ।
तं भाषमाणं भगवानुशना प्रत्यभाषत ।
धीमन् दुष्टप्रलापांस्त्वं तात कस्मात्प्रभाषसे

वृत्र उवाच ।

प्रत्यक्षमेतद्भवतस्तथाऽन्येषां मनीषिणाम् ।
मया यज्जयलुब्धेन पुरा तप्तं महत्तपः ॥ २४
गन्धानादाय भूतानां रसांश्च विविधानपि ।
अवर्धं त्रीन्समाक्रम्य लोकान्वै स्वेन तेजसा
ज्वालामालापरिक्षिप्तो वैहायसचरस्तथा ।
अजेयः सर्वभूतानामासं नित्यमपेतभीः ॥ २६
ऐश्वर्यं तपसा प्राप्तं भ्रष्टं तच्च स्वकर्मभिः ।
धृतिमास्थाय भगवन्न शोचामि ततस्त्वहम् ॥
युयुत्सुना महेन्द्रेण पुंसा सार्धं महात्मना ।
ततो मे भगवान्दृष्टो हरिर्नारायणः प्रभुः २८
वैकुण्ठः पुरुषोऽनन्तः शुक्लो विष्णुः सनातनः
मुञ्जकेशो हरिश्मश्रुः सर्वभूतपितामहः ॥ २९
नूनं तु तस्य तपसः सावशेषमिहास्ति वै ।
यदहं प्रष्टुमिच्छामि भगवन्कर्मणः फलम् ३०
ऐश्वर्यं वै महद्ब्रह्म वर्णे कस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
निवर्तते चापि पुनः कथमैश्वर्यमुत्तमम् ॥ ३१
कस्माद्भूतानि जीवन्ति प्रवर्तन्ते यथा पुनः ।
किं वा फलं परं प्राप्य जीवस्तिष्ठति शाश्वतः
केन वा कर्मणा शक्यमथ ज्ञानेन केन वा ।
तदवाप्तुं फलं विप्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ३३

इतीदमुक्तः स मुनिस्तदानीं
प्रत्याह यत्तच्छृणु राजसिंह ।
मयोच्यमानं पुरुषर्षभ त्व-
मनन्यचित्तः सह सोदरीयैः ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वृत्रगीतासु एकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

एतदेवाह-**तिर्यगिति** । चरित्वा तादृशं कर्म कृत्वा सुखादिकं प्रपद्यते इति सार्धेन सम्बन्धः । कृतान्तविधिसंयुक्तः यमयातनान्ते ॥ २१ ॥ **गतमिति** । 'यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते' इति श्रुतेः संपतत्यनेनेति संपातः कर्म यावत्तावत्कालं स्थित्वा पुनरत्र यथागतमायान्तीति सर्वदेति जन्ममरणप्रवाहस्यानन्त्यमुक्तम् ॥ २२ ॥ एतच्चाज्ञं प्रत्येवेति वक्तुमध्वनो विशेषणम्—**कालेति** । कर्ममानेन मितम् । तेन नैष्कर्म्यं श्रयतो नायमध्वास्तीति दर्शितम् । एवं सृष्टिस्थित्योः परायणं परमात्मानं भाषमाणम् कथयन्तं तं वृत्रं प्रति भगवानुशना शुक्राचार्योऽसुरयोनिजातस्यापीदृशं ज्ञानमित्याश्चर्यं मत्वा तद्बुद्धिपरीक्षार्थं प्रत्यभाषत दुष्टप्रलापानसुरभावविनाशकाननर्थकान्वादानसुरो भूत्वा कथं भाषस इति ॥ २३ ॥ गन्धायादानं तदाश्रयोपमर्दनं । अवर्धं हिंसितवान् ॥ २५ ॥ वैहायसचरो विमानेन गच्छन् ॥ २६ ॥ युयुत्सुना योद्धुमिच्छुना ततस्तत्र युद्धकाले मे मया भगवान्सैश्वर्यसंपन्नो दृष्ट इन्द्रसाहाय्यार्थमागतः सन्नवलोकितः हरिः पापहर्ता नारायणः नारस्य जीवसंघस्य अयनं लयस्थानं पुंस्त्वं लोकात् प्रभुरंतर्यामी ॥ ॥ २८ ॥ वैकुंठः विकुंठाया अपत्यं 'विकुंठनामासुरींद्रतुल्यं पुत्रमिच्छन्ती महत्तपस्तेपे तस्याः स्वयमेवेन्द्रः पुत्रो जज्ञे'इत्यनुक्रमणिकावाक्यात् । विकुंठनं भूतानां मेलनं करोतीति विकुंठः स्वार्थे तद्धितः। तथा च नामनिर्वचनाध्याये वक्ष्यति 'संश्लेषिता मया भूमिरद्भिर्व्योमा च वायुना वायुना चैव तेजश्च वैकुंठत्वं ततो मम' इति **विद्यासागरीये**॥ पुरुषः पूर्णः । अतोऽनन्तस्त्रिविधपरिच्छेदशून्यः । शुक्लः शुद्धः विष्णुर्व्यापनशीलः सनातनः कूटस्थः मुञ्जकेशो मुञ्जवत् पीतकेशः हरिश्मश्रुः पिंगलश्मश्रुः हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश इति श्रुतेः सर्वभूतानि विराट् तस्य पिता मायावी तस्यापि पिता शुद्धं ब्रह्म॥२९॥ तस्य प्रासंगिकस्य विष्णुदर्शनात्मकस्य तपस इन्द्रविजयत्रैलोक्याधिपत्यहेतोः सावशेषं कर्मगतिजिज्ञासोत्पादकं शेषं किंचिदस्तीत्याह—**नूनमिति** ॥ ३० ॥ महदैश्वर्यं ब्रह्मवर्णे ब्राह्मणादिधर्मे उत्तममैश्वर्यं ब्राह्ममैश्वर्यं निवर्तते च कथम् । अयमर्थः—सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीत्यात्मसाक्षात्कारफलमैश्वर्यमनन्तवच्चेत् कर्मफलाविशेषः 'न च पुनरावर्तते' इति श्रुतिव्याकोपश्च । अनन्तं चेत् अस्थूलमनणु इत्यादि निर्विशेषब्रह्मप्रतिपादकश्रुतिविरोधः । निर्विशेषयोर्ब्रह्मणोः समसत्ताकत्वायोगादिति ॥ ३१ प्रवर्तन्ते चेष्टां कुर्वन्ति कोऽन्तर्यामीत्यर्थः । शाश्वतो ब्रह्म भूत्वेति शेषः । किं फलं शाश्वतप्रापकं ज्ञानं यज्ञादिफलम् ॥ ३२ ॥ कर्मणा यज्ञादिना ज्ञानेन उपास्त्या फलं विद्याख्यम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

## २८०-[१०७]

उशनोवाच ।
नमस्तस्मै भगवते देवाय प्रभविष्णवे ।
यस्य पृथ्वीतलं तात साकाशं बाहुगोचरः १
मूर्धा यस्य त्वनन्तं च स्थानं दानवसत्तम ।
तस्याहं ते प्रवक्ष्यामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्
तयोः संवदतोरेवमाजगाम महामुनिः ।
सनत्कुमारो धर्मात्मा संशयच्छेदनाय वै ३
स पूजितोऽसुरेन्द्रेण मुनिनोशनसा तथा ।
निषसादासने राजन्महार्हे मुनिपुङ्गवः ॥ ४
तमासीनं महाप्राज्ञमुशना वाक्यमब्रवीत् ।
ब्रूह्यस्मै दानवेन्द्राय विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्
सनत्कुमारस्तु ततः श्रुत्वा प्राह वचोऽर्थवत्
विष्णोर्माहात्म्यसंयुक्तं दानवेन्द्राय धीमते ६
शृणु सर्वमिदं दैत्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
विष्णौ जगत् स्थितं सर्वमिति विद्धि परंतप
सृजत्येष महाबाहो भूतग्रामं चराचरम् ।
एष चाक्षिपते काले काले विसृजते पुनः ८
अस्मिन् गच्छन्ति विलयमस्माच्च प्रभवन्त्युत
नैष ज्ञानवता शक्यस्तपसा नैव चेज्यया ।
संप्राप्तुमिन्द्रियाणां तु संयमेनैव शक्यते ॥ ९
बाह्ये चाभ्यन्तरे चैव कर्मणा मनसि स्थितः ।
निर्मलीकुरुते बुद्ध्या सोऽमुत्रानन्त्यमश्नुते १०
यथा हिरण्यकर्ता वै रूप्यमग्नौ विशोधयेत् ।
बहुशोऽतिप्रयत्नेन महताऽऽत्मकृतेन ह ॥ ११
तद्वज्जातिशतैर्जीवः शुद्ध्यतेऽनेन कर्मणा ।
यत्नेन महता चैवाप्येकजातौ विशुद्ध्यते १२
लीलयाऽल्पं यथा गात्रात्प्रमृज्यादात्मनो रजः
बहुयत्नेन महता दोषनिर्हरणं तथा ॥ १३
यथा चाल्पेन माल्येन वासितं तिलसर्षपम् ।
न मुञ्चति स्वकं गन्धं तद्वत्सूक्ष्मस्य दर्शनम् ॥
तदेव बहुभिर्माल्यैर्वास्यमानं पुनः पुनः ।
विमुञ्चति स्वकं गन्धं माल्यगन्धे च तिष्ठति
एवं जातिशतैर्युक्तो गुणैरेव प्रसङ्गिषु ।
बुद्ध्या निवर्तते दोषो यत्नेनाभ्यासजेन ह १६
कर्मणा स्वनुरक्तानि विरक्तानि च दानव ।
यथा कर्मविशेषांश्च प्राप्नुवन्ति तथा शृणु १७
यथावत्संप्रवर्तन्ते यस्मिंस्तिष्ठति वा विभो ।
तत्तेऽनुपूर्व्या व्याख्यास्ये तदिहैकमनाः शृणु
अनादिनिधनः श्रीमान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
देवः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च

---

२८०

दुर्वहं प्रश्नभारं निर्वोढुं हरिं शरणीकरोति-**नम इति**। तलं अधोभागः। साकाशं आकाशसहितं सर्वं उपरितनं बाहुगोचरो मध्यस्थमित्यर्थः ॥१॥ अनन्तं स्थानं मोक्षः ॥२॥ विष्ण्वनुग्रहमाह—**तयोरिति** ॥ ३ ॥ माहात्म्यं महांश्चासौ आत्मा च तस्य भावः। विष्णोर्जगज्जन्मादिकर्तृत्वं प्रत्यगभिन्नत्वं च शृणु उत्तमं तच्छ्रवणस्य मोक्षदत्वात्। तदेवाह—विष्णौ जगत् कनके कुंडलमिव स्थितं विद्धि चेतनाचेतनं सर्वं विष्णुरेवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ एतदेव व्युत्पादयति—**सृजतीति** ॥ ८ ॥ निमित्तत्वमुक्त्वा उपादानत्वमाहार्धेन—**अस्मिन्निति**। कार्यं यत्र लीयते यतश्चोद्भवति तदुपादानमित्यर्थः एवमभिन्ननिमित्तोपादानत्वलक्षणं जगत्कारणत्वं विष्णोरुक्त्वा तस्य दुर्ज्ञेयत्वमाह—**नेति**। संयमेन योगेन ॥ ९ ॥ संयमेनैवेत्येवशब्देन यज्ञादीनामात्मप्राप्तावसाधनत्वं माभूदित्याह—**बाह्ये इति**। यः पुमान्बाह्ये यज्ञादौ 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इत्यादिश्रुतेर्विविदिषाहेतौ। आभ्यन्तरे 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' इति श्रुतेर्दर्शनहेतुत्वेनान्तरङ्गे समाधौ। मनसि संकल्पे च 'इदं मेऽनेनाङ्गं संक्रियते' इति स्मृतेरात्मविविदिषाचित्तसंस्कारान्यतराभिसंधौ च बुद्ध्या निश्चयेन स्थितो निष्ठावान् तानि बाह्ययज्ञादीनि निर्मलीकुरुते नैश्चित्तं शोधयतीत्यर्थः। सोऽमुत्र देहाभिमानत्यागलभ्ये आत्मलोके गत्वा आनन्त्यं मोक्षमश्नुते ॥ १० ॥ निर्मलीकरणे दृष्टान्तान्तरमाह —**यथेति**। हिरण्यकर्ता स्वर्णकारः ॥ ११ ॥ जातिशतैर्जन्मशतैः। अनेन यज्ञादिना शमादिना अतियत्नेन त्वेकजातौ एकजन्मन्यपि ॥ १२ ॥ दृष्टान्तान्तरमाह—**लीलयेति** ॥ १३ नतु कर्मसु क्रियमाणेष्वपि चित्तशुद्धिर्न दृश्यतेऽतस्तत्करणं व्यर्थमित्याशंक्य दृष्टान्तपूर्वकमावृत्त्या फलं सिध्यतीत्याह त्रिभिः—**यथा चेति** ॥ १४ ॥ युक्तो योजितः गुणैः सत्त्वाद्यैः प्रसंगिषु स्त्र्यादिसंगिषु दोषः अभ्यासजेन बाह्याभ्यन्तरसाधनानां पुनः पुनरावृत्त्युत्थेन ॥ १६ ॥ रक्तानि जीवजातानीति शेषः। कर्मविशेषान् रागविरागहेतून् ॥ १७ ॥ यथा वा कर्मणि प्रवर्तन्तेऽविद्यादशायां यस्मिन्निमित्ते तिष्ठन्ति कर्मभ्यो निवर्तन्ते विद्यायां सत्याम्। आनुपूर्व्येति च्छेदः पूर्वरूपमार्षम् ॥ १८ ॥ एवं साधनाभिमुखीकृतस्य ज्ञेयमाह—**अनादीति**। अनादिनिधनः नित्यः। योतत ज्ञात दवाश्चन्मात्रः। ननु नित्यज्ञानं नास्त्येव घटज्ञानं जातं पटज्ञानं नष्टमित्यनुभवादित्या-

स वै सर्वेषु भूतेषु क्षरश्चाक्षर एव च ।
एकादशविकारात्मा जगत्पिबति रश्मिभिः
पादौ तस्य महीं विद्धि मूर्धानं दिवमित्युत
बाहवस्तु दिशो दैत्य श्रोत्रमाकाशमेव च २१
तस्य तेजोमयः सूर्यो मनश्चन्द्रमसि स्थितम् ।
बुद्धिर्ज्ञानगता नित्यं रसस्त्वप्सु प्रतिष्ठितः ॥
भ्रुवोरनन्तरास्तस्य ग्रहा दानवसत्तम ।
नक्षत्रचक्रं नेत्राभ्यां पादयोर्भूश्च दानव २३
रजस्तमश्च सत्त्वं च विद्धि नारायणात्मकम्
सोऽश्रमाणां फलं तात कर्मणस्तत्फलं विदुः
अकर्मणः फलं चैव स एव परमव्ययः ।
छन्दांसि यस्य रोमाणि ह्यक्षरं च सरस्वती
बह्वाश्रयो बहुमुखो धर्मो हृदि समाश्रितः ।

स ब्रह्म परमो धर्मस्तपश्च सदसच्च सः ॥ २६
श्रुतिशास्त्रग्रहोपेतः षोडशर्त्विक् क्रतुश्च सः ।
पितामहश्च विष्णुश्च सोऽश्विनौ स पुरंदरः ॥
मित्रोऽथ वरुणश्चैव यमोऽथ धनदस्तथा ।
ते पृथग्दर्शनास्तस्य संविदन्ति तथैकताम्
एकस्य विद्धि देवस्य सर्वं जगदिदं वशे २८
नानाभूतस्य दैत्येन्द्र तस्यैकत्वं वदत्ययम् ।
जन्तुः पश्यति विज्ञानात्ततो ब्रह्म प्रकाशते ॥
संहारविक्षेपसहस्रकोटी-
स्तिष्ठन्ति जीवाः प्रचरन्ति चान्ये ।
प्रजाविसर्गस्य च पारिमाण्यं
वापीसहस्राणि बहूनि दैत्य ॥ ३०

शंक्याह-**श्रीमानिति**। श्रीयते आश्रीयते इति श्रीरुपाधिस्तद्वान् । घटाकाशवदौपाधिकावुत्पत्तिलयौ न तु स्वत इत्यर्थः हरिः संहर्ता नारायणः सर्वाश्रयः प्रभुः सर्वनियन्ता ॥१९॥ अस्यैव सार्वात्म्यं वक्तुं नवविधसर्गोपादानत्वमाह--**स वा इति** । सर्वेषु भूतेषु शरीरिषु क्षरः संघातः अक्षरो जीव एकादश इन्द्रियाणि पिबति गृह्णाति रश्मिभिरिन्द्रियैः अत्र क्षर इति महतः सर्गः प्रथम उक्तः भूतेष्विति भूतसर्गो द्वितीय उक्तः । एकादशेति वैकारिकस्तृतीय ऐन्द्रियकः सर्ग उक्तः त एते त्रयः प्राकृताः सर्गाः । यथोक्तं वैष्णवे—

'प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्राह्मणस्तु यः
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः
इत्येष प्राकृतः सर्गः स स्मृतो बुद्धिपूर्वकः ' ॥

इति ॥ २० ॥ ऐकात्म्यसिद्धये नारायणावयवत्वेन कृत्स्नं जगन्निरूपयति-**पादावित्यादिना** । दिवं स्वर्लोकम् ॥ २१ ॥ तेजोमयश्चाक्षुषः मनश्चन्द्रमसीत्यादौ आधाराधेयभावो गङ्गायां जलमितिवदभेदविवक्षया ज्ञेयः बुद्धिर्महत्तत्वं ज्ञानगता वृत्तिरूपज्ञानाकारा रसस्त्वप्सु प्रतिष्ठितः आपो रसनेत्यर्थः ॥ २२ ॥ अनन्तराः सन्निहिताः नेत्राभ्यां नेत्ररश्मिभिर्निर्वृत्तमिति शेषः। पादयोः पादावेव भूः ॥ २३ ॥ **रज इति** । एते गुणा वक्ष्यमाणविधया षट्प्रकारा नारायणाख्यचैतन्यानुविद्धतया तदात्मनः षड्विधजीवसंज्ञा भवन्ति । आश्रमाणामिति सन्धिरार्षः । कर्मणो जपादेः फलं तत्प्राप्तिरेव सर्वस्य सुकृतस्य फलं सप्तस्वर्गात्मकं सुखमित्यर्थः ॥ २४ ॥ अकर्मणः नैष्कर्म्यस्य संन्या- ... ॥२५॥ बहवो वर्णा आश्रमाश्च आश्रयो यस्य परमो धर्म आत्मदर्शनम् । यथोक्तं याज्ञवल्क्येन—

'इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ' इति ।

**तपः** कृच्छ्रचान्द्रायणादि । तत्फलमप्ययमेवेत्यर्थः । सत् कार्यं असत् कारणम् ॥ २६ ॥ श्रुतिर्मन्त्राः शास्त्रं शास्तीति शास्त्रं प्रवर्तनावाक्यं ब्राह्मणम् । ग्रहा ऐन्द्रवाय्वाद्याः सोमपात्राणि षोडश ऋत्विजः-ब्रह्मा ब्राह्मणाच्छंस्याग्नीध्रः पोता एते सर्ववेदियाः । होता मैत्रावरुणोऽच्छावाको ग्रावस्तोता एते **ऋग्वेदिनः** । अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता नेष्टोन्नेता एते **याजुषाः** । उद्गाता प्रस्तोता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्य एते **सामगाः** ॥ २७ ॥ ते ऋत्विजः पृथग्दर्शना अपि इंद्राग्न्महेंद्रोऽग्न्योऽश्वैश्वानरोऽन्य इति शास्त्रेण पृथक्पितामहादीन्कर्मपृथक्त्ववशात्पश्यन्तोऽपि तस्यैकतां तथा कारणत्वेन संविदन्ति । तथा च **कात्यायनः**-'कर्मपृथक्त्वाद्धि पृथगभिधानाः स्तुतयो भवन्त्येकैव वा महात्मा देवता'इति । श्रुतिरपि 'तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः' इति ॥ २८ ॥ **नानेति** । अयमिति बुद्धिस्थ आम्नायः परामृश्यते । स च 'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति । यो देवानां नामधा एक एव' इत्यादिः । अनुभवेनैवैतज्जनो जानातीत्याह-**जन्तुरिति** । विज्ञानात् वृत्त्या सोपाधिकावस्थायां सार्वात्म्यं पश्यति । वृत्तिविलये तु ब्रह्म अद्वैतम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मप्राप्तेरतिदौर्लभ्यमाह-**संहारेति** । संहरत्यस्मिन् विक्षिपत्यस्मिन्निति व्युत्पत्त्या संहारविक्षेपशब्दाभ्यां जगल्लयोदयकालः कल्पसंज्ञक उच्यते । तस्य सहस्रकोटीः 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। तावत्कालपर्यन्तं केचिज्जीवास्तिष्ठन्ति स्थावरा भूत्वा आसते प्रचरन्ति जङ्गमा भवन्ति चान्ये । तत्राप्येकैकस्य कल्पस्यातिप्रमाणत्वं भंग्यन्तरेणाह-**प्रजाविसर्गस्येति** । पारिमाण्यं स्वार्थे तद्धितः । बहूनीत्यसंख्येयत्वमुक्तम् ॥ ३० ॥

वाप्यः पुनर्योजनविस्तृतास्ताः
क्रोशं च गंभीरतयाऽवगाढाः।
आयामतः पञ्चशताश्च सर्वाः
प्रत्येकशो योजनतः प्रवृद्धाः॥ ३१
वाप्या जलं क्षिप्यति वालकोट्या
त्वन्हा सकृच्चाप्यथ न द्वितीयम्।
तासां क्षये विद्धि परं विसर्गं
संहारमेकं च तथा प्रजानाम्॥ ३२
षड्जीववर्णाः परमं प्रमाणं
कृष्णो धूम्रो नीलमथास्य मध्यम्।
रक्तं पुनः सह्यतरं सुखं तु
हारिद्रवर्णं सुसुखं च शुक्लम्॥ ३३
परं तु शुक्लं विमलं विशोकं
गतक्लमं सिद्ध्यति दानवेन्द्र।'
गत्वा तु योनिप्रभवाणि दैत्य
सहस्रशः सिद्धिमुपैति जीवः॥ ३४
गतिं च यां दर्शनमाह देवो
गत्वा शुभं दर्शनमेव चापि।
गतिः पुनर्वर्णकृता प्रजानां
वर्णस्तथा कालकृतोऽसुरेन्द्र॥ ३५

वापील्येतद्याचष्टे-**वाप्य इति द्वाभ्याम्**। योजनविस्तृताः। पंचशता इति वाक्यशेषाद्विस्तारयोजनसंख्या ज्ञेया आयामतो दैर्घ्यतः योजनतः पञ्चशता इति सम्बन्धः। शता इति लिंगव्यत्यय आर्षः। पञ्चशतं योजनानीत्यर्थः। अवगाढाः नास्ति अवगाढोऽवगाहो यासां ताः दुरवगाहा इत्यर्थः। भागुरिमतेनावेत्युपसर्गस्याकारलोपं कृत्वा नञ्समासः। अत एव प्रत्येकशः प्रवृद्धाः॥३१॥ **वाप्या इति**। अयमर्थः-यदि वालकोट्या केशाग्रेण एकैकस्मिन्दिवसे एक एक एव बिन्दुरुद्ध्रियेत न द्वितीयः। तेन क्रमेण एकैकवाप्या उच्छोषणेन बहुसहस्रवाप्युच्छेदः स्यात्तर्हि संसारस्यापि विना ज्ञानमुच्छेदः स्यात्। एकस्य मुक्त्या एकस्य विसर्गस्य नाशेऽप्यनन्ता जीवाः सन्तीति सर्वथाऽपि संसारस्यानुच्छेद एव। तथोक्तं भगवता-'नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा'इति॥३२॥ एवं मुक्तिदौर्लभ्याय संसारस्यानन्त्यमुक्तम्। इदानीं रजःसत्त्वं तमश्चैव विद्धि नारायणात्मकमिति पूर्वोक्तं गुणत्रयं रञ्जकत्व--स्वच्छत्व-मलिनत्वसाम्याद्रक्तश्वेतकृष्णशब्दैर्विवक्षित्वा तेषां भागभेदेन षट् रूपाणि प्रकल्प्यन्ते तथाहि। त्रिदंडविष्टं भवद्गुणत्रयमन्योन्यव्यतिरेकेण न तिष्ठति। तत्र यदा तमस आधिक्यं सत्त्वरजसोर्न्यूनत्वसमत्वे तदा कृष्णो वर्णः। अन्त्ययोर्वैपरीत्ये धूम्रः। तथा रजस आधिक्ये सत्त्वतमसोर्न्यूनत्वसमत्वे नीलवर्णः। अन्त्ययोर्वैपरीत्ये मध्यं मध्यमो वर्णः। तच्च रक्तं लोकानां सह्यतरम्। लोकानां प्रवृत्तिकुशलानाममूढानां साहसिकानाम्। सत्त्वस्याधिक्ये रजस्तमसोर्न्यूनत्वसमत्वे हारिद्रः पीतवर्णस्तच्च सुखकरम्। अन्त्ययोर्वैपरीत्ये शुक्लं तच्चात्यन्तसुखकरम्। ततः कृष्णो मुख्यसर्गः स्थावरश्चतुर्थः धूम्रस्तैर्यग्योन्यः पञ्चमः पीतो देवसर्गः षष्ठः नीलो मानुषसर्गः सप्तमः मध्यमोऽनुग्रहसर्गोऽष्टमः। शुक्लः कौमारसर्गो नवमः। यथोक्तं वैष्णवे--

'मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः।
तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यः स उच्यते।
तदूर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः।
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
मध्यमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृता वैकृताश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।'

अत्रानुग्रहशब्देन 'द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च' इति श्रुतिप्रसिद्धाः शमकामादिचेतोवृत्त्यनुग्राहिका देवता उच्यन्ते। स चानुग्रहो जातिभेदाद्भिन्नः। यथोक्तं वायुपुराणे—

'अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्धा व्यवस्थितः।
विपर्ययेण वा शक्त्या सिद्ध्या तुष्ट्या तथैव च।
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तितः।
सिद्ध्यात्मना मनुष्येषु तुष्ट्या देवेषु कृत्स्नशः'

इति॥ ३३॥ **परन्त्विति**। एतेषु सर्गेषु शुक्लं कौमारसर्गः। रागद्वेषराहित्यात्। विमलं निष्पापं अत एव विशोकं विशोकत्वमपि कुतः यतो गतक्लमं प्रवृत्त्याख्यश्रमहीनम्। सिद्ध्यति मोक्षं साधयति एतच्चात्यन्तदुर्लभमित्याह—**गत्वेति**। योनिप्रभवाणि जन्मानि न त्वयोनिजानि धृष्टद्युम्नादिवत्। तेषां ह्यधिकारिकाणां नेतरवद्योनिजं जन्म गत्वा प्राप्य यथोक्तम्—

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः' इति॥३४॥

यां सिद्धिं जीव उपैति तां व्याचष्टे—**गतिमिति**। शुभं दर्शनं सच्छास्त्रं गत्वा प्राप्य देव इन्द्रो यां गतिं दर्शनमात्मानुभवात्मिकामाह उक्तवान् सैव शुक्लवर्णभूतां सिद्धिरित्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमिति। तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते' इति। ततमं ततममित्येकस्य तकारस्य छांदसो लोपः। [illegible] नदामह वाक्यं प्रमाणत्वेन दर्शितम्। इदमेवान्यत्रापि तुल्यमित्याह—**गतिरिति**। वर्णः सत्त्वादितारतम्यम्। वर्णोऽपि

शतं सहस्राणि चतुर्दशेह
परा गतिर्जीवगुणस्य दैत्य ।
आरोहणं तत्कृतमेव विद्धि
स्थानं तथा निःसरणं च तेषाम् ॥ ३६
कृष्णस्य वर्णस्य गतिर्निकृष्टा
स सज्जते नरके पच्यमानः ।
स्थानं तथा दुर्गतिभिस्तु तस्य
प्रजाविसर्गान्सुबहून्वदन्ति ॥ ३७
शतं सहस्राणि ततश्चरित्वा
प्राप्नोति वर्णं हरितं तु पश्चात् ।
स चैव तस्मिन्निवसत्यनीशो
युगक्षये तपसा संवृतात्मा ॥ ३८
स वै यदा सत्त्वगुणेन युक्त-
स्तमो व्यपोहन्घटते स्वबुद्ध्या ।
स लोहितं वर्णमुपैति नीला-
न्मनुष्यलोके परिवर्तते च ॥ ३९
स तत्र संहारविसर्गमेकं
स्वधर्मजैर्बन्धनैः क्लिश्यमानः ।
ततः स हारिद्रमुपैति वर्णं
संहारविक्षेपशते व्यतीते ॥ ४०
हारिद्रवर्णस्तु प्रजाविसर्गा-
न्सहस्रशस्तिष्ठति संचरन्वै ।
अविप्रमुक्तो निरये च दैत्य
ततः सहस्राणि दशापराणि ॥ ४१
गतीः सहस्राणि च पञ्च तस्य
चत्वारि संवर्तकृतानि चैव ।
विमुक्तमेनं निरयाच्च विद्धि
सर्वेषु चान्येषु च संभवेषु ॥ ४२

---

कालकृतः कालः प्रागुक्तश्चतुर्युगात्मा जीवो धर्मे रतो धर्ममालम्बमानोऽधर्माद्यावृत्तोऽधर्मे रत इति क्रमेण कृतत्रेताद्वापरकलिसंज्ञः तथा च जीवस्य प्राग्भवीयसंस्कारवशाद्यादृशः सत्त्वाद्याविर्भावस्तादृशी गतिरित्यर्थः ॥ ३५ ॥ **शतमिति** सेयं जीवगुणस्य गतिः परा पार्यन्तिकी दशानामिन्द्रियाणामन्तःकरणचतुष्टयस्य च करणगणस्य भेदाच्चतुर्दशसंख्याका सती तावन्ति शतानि सहस्राणि शतसहस्राणि लक्षाणि वा विषयभेदाद्भवति । तथाहि विषयभेदाद्वृत्तिभेदं श्रुतिराह-- 'अयं वै हरयोऽयं वै दश च शतानि च सहस्राणि च प्रयुतानि च'इत्यादि । आरोहणं उपर्युपरिसोपानारोहक्रमेण ऊर्ध्वगतिः । तैरेव चतुर्दशभिः सत्त्वतारतम्यप्रधानैः कृतं तत्कृतं स्थानं च तेषु तेषु पदेषु स्थैर्यम् । तथा निःसरणं तेभ्यः पदेभ्यश्च्युतिः तेषां जीवानां तत्कृतैव । तस्मादेते चतुर्दश सात्त्विकमार्गप्रवणाः कार्या इत्यर्थः ॥३६॥ अन्यथा दोषमाह--**कृष्णस्येति** । कृष्णस्य स्थावरत्वप्रापकस्य वर्णस्य निकृष्टा नीचा गतिः । यतः स भावी स्थावरो नरके नरकप्रदे कर्मणि सज्जते । अतो नरके पच्यमान एवास्ते । तत्रैव तस्य स्थानं स्थितिः दुर्गतिभिः तैरेव चतुर्दशभिर्दुर्मार्गप्रवृत्तैर्भवति । स्थानावधिमाह--**सुबहूनिति** । प्रजाविसर्गान् कल्पान् ॥ ३७॥ सुबहूनित्यस्य व्याख्या शतं सहस्राणि लक्षमित्यर्थः । हरितं धूम्रं तिर्यग्योनित्वम् । अनीशो दीनः शीतवाताद्यर्दितः सर्वतो मृत्युभयदर्शी च । युगक्षये पापभोगक्षये इदं हि वर्णद्वयं केवला भोगभूमिरेव । अतोऽत्र भोगेन क्षपितकलुषस्य दैवात्प्राचीनपुण्योदये सति जीवस्तपसा विवेकेन संवृतात्मा व्याप्तचित्तो भूत्वा ॥ ३८ ॥ सत्त्वगुणेन युक्तः सन्बुद्ध्या तमोगुणप्रवृत्तिं दूरीकुर्वन्घटते यतते श्रेयसे । तदा सर्वोत्कर्षे सति लोहितमश्रममनुग्रहसर्गमुपैति । शमकामाद्यभिमानिदेवताभावं प्राप्नोतीत्यर्थः । सत्त्वापकर्षे तु नीलात् नीलत्वं प्राप्य मनुष्यलोके परिवर्तते गतागतं करोति । चकारो वाशब्दस्यार्थे ॥ ३९ ॥ सः नीलत्वं प्राप्तः तत्र मानुषलोके संहारविसर्गं कल्पं बन्धनैर्विधिनिषेधनिगडैः क्लिश्यमानस्तपोवृद्धिं कुर्वाणो हारिद्रं षष्ठं सर्गं देवताभावमुपैति । तत्रापि संहारविक्षेपशते कल्पशते जाते सति व्यतीते व्यतिगच्छति । कर्मव्यतिहारे तङ् । गतिकान्त्यर्थस्य वीधातोरन्तः प्रश्लिष्टस्य इंधातोर्व्यतिपूर्वस्येदं रूपम् । तथा च देवो भूत्वा मनुष्यत्वमुपैति मानुषश्च भूत्वा देवत्वमुपैतीत्यर्थः ॥ ४० ॥ एतदेवाह-- **हारिद्रेत्यादिना** । देवः सहस्रशः कल्पान् संचरन्नप्यविप्रमुक्तो विषयवियोगहीनो निरये च संवर्तकृतानि कल्पे कल्पे कृतानि फलानि भुञ्जानो गतीः संचरंस्तिष्ठतीति पूर्वेणान्वयः । गतिसंख्या दशपञ्च चत्वारि चेत्येकोनविंशतिसहस्राणि । अयमर्थः--एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुगिति श्रुतेः स्वप्नोपमे स्वर्गेऽपि दशेन्द्रियाणि पञ्च प्राणा मन आदिचतुष्टयं चेत्येकोनविंशतिर्जाग्रद्वासनामयानि भोगसाधनानि वर्तन्ते । तान्येव पूर्ववत्तावन्ति शतानि सहस्राणि च भवन्ति । अत्र दिव्योऽपि भोगो रागहेतुत्वात्पुण्यक्षेपकत्वादनित्यत्वाच्च निरय एवेति स्वर्गोऽपि निरयभोग उक्तः । ततश्च एनं नरं निरयात् भोगप्रदकर्मणः सकाशात्तु विमुक्तं विद्धि । स्वर्गोऽपि क्षयवानित्यर्थः । अन्येष्वपि संभवेषु स्थावरतैर्यग्योन्यादिषु मानुषवर्ज्येषु तस्मात्तिर्यक्सर्गवद्देवसर्गोऽपि भोगभूमित्वाद्धेय एवेति भावः ॥ ४१ ॥

स देवलोके विरहत्यभीक्ष्णं
ततश्च्युतो मानुषतामुपैति ।
संहारविक्षेपशतानि चाष्टौ
मर्त्येषु तिष्ठत्यमृतत्वमेति ॥ ४३

सोऽस्मादथ भ्रश्यति कालयोगा-
त्कृष्णे तले तिष्ठति सर्वकष्टे ।
यथा त्वयं सिद्ध्यति जीवलोक-
स्तत्तेऽभिधास्याम्यसुरप्रवीर ॥ ४४

दैवानि स व्यूहशतानि सप्त
रक्तो हरिद्रोऽथ तथैव शुक्लः ।
संश्रित्य संधावति शुक्लमेत-
मष्टावरानर्च्यतमान्स लोकान् ॥ ४५

अष्टौ च षष्टिं च शतानि चैव
मनोविरुद्धानि महाद्युतीनाम् ।
शुक्लस्य वर्णस्य परा गतिर्या
त्रीण्येव रुद्धानि महानुभाव ॥ ४६

संहारविक्षेपमनिष्टमेकं
चत्वारि चान्यानि वसत्यनीशः ।
षष्ठस्य वर्णस्य परा गतिर्या
सिद्धावसिद्धस्य गतक्लमस्य ॥ ४७

सप्तोत्तरं तत्र वसत्यनीशः
संहारविक्षेपशतं सशेषम् ।
तस्मादुपावृत्त्य मनुष्यलोके
ततो महान्मानुषतामुपैति ॥ ४८

व्यतीते इत्यस्यार्थं स्पष्टयति—**स इति** । देवा मानुषत्वं मानुषाश्च देवत्वं भजन्त इत्यर्थः । अमृतत्वं अष्टौ पूर्वोक्तानि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणचित्तमनोबुद्ध्याख्यानि ज्ञानेन्द्रियाणि दृष्टिसृष्टिमाश्रित्य तान्येव स्वस्वविषयलयोदयकारणानीति विषयभेदात्तान्येव शतानि सहस्राणि वा लयोदयान्मर्त्येषु यस्तिष्ठति स उपैतीत्यन्वयः ॥ ४३ ॥ सोऽस्मात् संकल्पकृताल्लयोदयप्रवाहात् । कालः कलिरूपस्तद्योगाच्च प्रभ्रश्य कृष्णे तले तलवदधोगते सर्वकष्टे सर्वेभ्यो नीचे स्थावरे तिष्ठति । अयमारोहावरोहप्रवाहपातितः सिद्ध्यति मुच्यते ॥४४॥ मुक्त्युपायमेवाह—**दैवानीति** । स मुमुक्षुः सप्त व्यूहशतानि दैवानि संश्रित्य रक्तादिक्रमेण अन्ते शुक्ल एव सन्नवराँल्लोकान्संधावतीति सम्बन्धः । एकस्यानेकधाभावो व्यूहः । बुद्धेः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणमनोबुद्धिरूपेण सप्तधा भूतायास्तत्तदिन्द्रियवृत्तिभेदात् । व्यूहानां शतानि सहस्राणि वा पूर्ववद्भवन्ति । तत्र दैवानि सात्त्विकानि शमदमादीन्येव संश्रित्य प्रथमं रक्तः शमाद्यभिमानिदेवतारूपः । अत्यन्तं शमादिमान्भवति । ततो हारिद्रो दैवस्ततः शुक्लः कौमारो बालवद्रागद्वेषशून्यो भवति । ततः अष्टावरान् । अष्टौ पुर्यः अवरा अनुत्कृष्टाः पश्चाद्भूता वा येषु तान्सगुणात्मरूपान् लोकान् अर्च्यतमान् धूम्रादिमार्गं प्राप्य चन्द्रलोकादर्च्यादर्च्यतरोऽर्चिरादिमार्गप्राप्यो ब्रह्मलोकस्ततोऽप्यर्च्यतमान् । ज्ञानैकप्राप्यलोकान् योगफलभूतान् । तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकाम इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं तृतीयमैश्वर्यं प्राप्नोतीत्यर्थः॥४५॥ अष्टावरानित्येतद्व्याचष्टे—**अष्टाविति** । शतशब्दार्थः प्राग्वत् अयमर्थः—सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुख इति जाग्रत्स्वप्नयोस्तुल्यवच्छ्रवणात् सप्त जाग्रदवस्थापञ्चभूतात्मकः स्थूलदेहशब्दादिपञ्चकं च अस्य द्रष्टुः अंगमिवाङ्गं स्वरूपभूतमपि अविद्यादर्पणेन मुखवत्पराक्त्वं प्रापितस्य सतः प्राप्तये एकोनविंशतिः । दशेन्द्रियाणि प्राणपञ्चकं मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तचतुष्टयं चेति मुखानीव प्राप्तिद्वाराणि अविद्याकामकर्मात्मकत्रिंशकः सङ्घातः जाग्रद्वत्स्वप्नेऽपि तुल्य इति यान्यष्टावुक्तानि तान्येव षष्टिशतानीति योजना । यदा त्वविद्यादित्रयं त्रिंशकात्पृथग्गण्यते तदाऽपि सर्वेषामावृत्त्या षट्षष्टिः । सुषुप्तौ च आनन्दभुक्चेतोमुख इति श्रुतेर्भोग्य आनन्दः भोगसाधनं चेति द्वयं चेत्षट्षष्टिः तदात्वृजुतर एवार्थः । एतानि महाद्युतीनां पूर्णप्रकाशानामात्मविदां मनोविरुद्धानि मनसैव विशेषेण रुद्धानि मूढदृष्ट्या पृथग्भूतान्यपि विदुषां मनोमात्राण्येवेत्यर्थः । सेयं शुक्लस्य वर्णस्य गतिः सङ्क्षेपेण । त्रीणि जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यानि रुद्धानि चेत् 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः' इति श्रुतिप्रसिद्धस्य तुर्यस्य प्राप्तिः । एवशब्देन त्रयरोधात्मिकैव तुर्यप्राप्तिः तुर्यस्य प्रत्यक्त्वेनाप्राप्यत्वात् ॥ ४६ ॥ एवंविदो जीवन्मुक्तस्यापि प्रारब्धकर्मभोगस्यापरिहार्यत्वमाह—**संहारेति** । एकं संहारविक्षेपशतं अनिष्टं वसतीति एकं भोगायारब्धं जन्म दृष्टिसृष्ट्यभिप्रायेण लयोदयशतात्मकं इह देहे वसतीत्यध्याहृत्य योज्यम् अस्यैव योगिनः क्रममुक्तिमाह—**चत्वारीति** । अनीशः योगैश्वर्योपस्थापितान् दिव्यान्भोगांस्त्यक्तुमसमर्थो योगी अन्यानि चत्वारि महर्जनस्तपःसत्यलोकाख्यानि योगबलतारतम्येन ऐश्वर्यतारतम्यवन्ति क्रममुक्तिस्थानानि वसति अधिवसति । वासे निमित्तमाह—**षष्ठस्येति** । या गतिः सत्त्वशुद्ध्यात्मिका तस्याः सिद्धावपि असिद्धस्य शुद्धब्रह्मसाक्षात्कारेण जीवन्मुक्ततामप्राप्तस्य । गतक्लमस्य नष्टरागादिदोषस्य । योगसिद्धोऽपि ब्रह्मात्मैक्यज्ञानात्क्रममुक्तिभाग्भवतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥ योगभ्रष्टगतिमाह—**सप्तेति** । अनीशः सम्यग्योगमनुष्ठातुमशक्तः तत्र परोक्षत्वेन निर्दिष्टे स्वर्गलोके सप्त पूर्वोक्तानि श्रोत्रादिपञ्चकं मनोबुद्धी च तानि

तस्मादुपावृत्य ततः क्रमेण
सोऽग्रेण संतिष्ठति भूतसर्गम्।
स सप्तकृत्वश्च परैति लोकान्
संहारविक्षेपकृतप्रभावः ॥ ४९

सप्तैव संहारमुपप्लवानि
संभाव्य संतिष्ठति जीवलोके।
ततोऽव्ययं स्थानमनन्तमेति
देवस्य विष्णोरथ ब्रह्मणश्च।
शेषस्य चैवाथ नरस्य चैव
देवस्य विष्णोः परमस्य चैव ॥ ५०

संहारकाले परिदग्धकाया
ब्रह्माणमायान्ति सदा प्रजा हि।
चेष्टात्मनो देवगणाश्च सर्वे
ये ब्रह्मलोकादपराः स्म तेऽपि ॥ ५१

प्रजाविसर्गं तु सशेषकाले
स्थानानि स्वान्येव सरन्ति जीवाः।
निःशेषतस्तत्पदं यान्ति चान्ते
सर्वे देवा ये सदृशा मनुष्याः ॥ ५२

ये तु च्युताः सिद्धलोकात्क्रमेण
तेषां गतिं यान्ति यथाऽऽनुपूर्व्या।
जीवाः परे तद्बलतुल्यरूपाः
स्वं स्वं विधिं यान्ति विपर्ययेण ॥ ५३

उत्तराणि सत्त्वोत्कर्षबलेन उत्कृष्टानि यस्मिन्। तादृशं संहारविक्षेपशतं सशेषं कर्मशेषसहितम्। ध्येयब्रह्मसाक्षात्कारे हि 'तद्यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति निःशेषपापदाहश्रुतेस्ततः प्रागारब्धयोगस्य योगिनः कर्मशेषमस्तीति युक्तं शुद्धकर्मा सन् योगी प्राग्योगसिद्धेर्मृतश्चेत् भुवो लोकं स्वर्लोकं च गच्छतीत्यर्थः। ततश्च मानुषं जन्म प्राप्य महान् कुलशीलविद्यादिना पूज्यो भवति ॥ ४८ ॥ तस्मान्मानुषाद्भावादुपावृत्य निष्क्रम्य अग्रे उत्तरमुत्तरं भूतसर्गं प्रति गन्तुं सन्तिष्ठति प्रस्थानं करोति। पूर्वाभ्यासवशादुत्तरोत्तरां योगभूमिकामारोहतीत्यर्थः। स एवं प्रतिष्ठमानः सप्तकृत्वः सप्तवारं लोकान्परैति पर्यटति संहारविक्षेपयोः समाधिव्युत्थानाभ्यां कृतः संवादितः प्रभाव ऐश्वर्यं येन सः। अयमर्थः—प्रथमां भूमिमारूढो योगी मृतः स्वर्गं प्राप्य ततश्च्युतः सार्वभौमो राजा भवति। एवं सोऽयं भूलोकजयः। एवमुत्तरोत्तरयोगकलावृद्ध्या उत्तरमुत्तरं लोकं जयति। अन्ते ब्रह्मलोकं सप्तमं प्राप्यापि पुनरावर्तते यदि ध्येयवस्तुन्यहंग्रहं न कुर्वीत। तं कुर्वंस्तु ब्रह्मणा सहैव मुच्यते। तत्र प्रमाणानि—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन इति गीता।
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। इति च
ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥ इति च

॥ ४९ ॥ **सप्तेति**। एवशब्दो भिन्नक्रमः संहारमिति णमुलन्तं सप्त भूरादिसत्यलोकान्ताँल्लोकान्मनोबुद्धिसहितानि ज्ञानेन्द्रियाणि वा संहृत्यैव बोधेन बाधित्वा जीवलोके सन्तिष्ठति सम्यक् मोहशोकाभावादास्ते। संहारे बीजं उपप्लवानि सम्भाव्य तेषां बुद्ध्यादीनां भूरादीनां वा दुःखरूपत्वं निश्चित्य ततो देहान्ते अव्ययमपरिणामि स्थानम्। अत एवानन्तं त्रिविधपरिच्छेदशून्यं शुद्धं ब्रह्म एति प्राप्नोति। तत्तु स्थानं केचिद्देवस्य महादेवस्य सम्बन्धि कैलासमिति वदन्ति **शाम्भवाः**। विष्णोर्वैकुण्ठमिति **वैष्णवाः**। ब्रह्मणो ब्रह्मलोक इति **हैरण्यगर्भाः**। शेषस्य अनन्तस्येति **तद्भक्ताः**। नरस्य जीवस्यैव तत्परं स्थानमिति **सांख्याः**। देवस्य द्योतमानस्य चिन्मात्रस्य विष्णोर्व्यापकस्य परब्रह्मणः तुर्यमूर्तिस्वरूपस्य परमस्येति 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इति श्रुतिप्रसिद्धम् **इत्यौपनिषदाः** ॥५०॥ एवं शब्दजान्विकल्पान्मोक्षे उपन्यस्य सर्ववादिसम्मतं वस्तुवृत्तमाह—**संहारेति**। परितः सर्वात्मना दग्धा बोधेन भस्मीकृताः कायाः स्थूलसूक्ष्मकारणदेहा याभिस्ताः ब्रह्माणं ब्रह्म पुंस्त्वमार्षम्। देवगणा इन्द्रियाणि। ये ब्रह्मस्वरूपाल्लोकादपरा अर्वाचीनाः प्रकृत्यादयस्तेऽपि परिदग्धकायाः संहारकाले मोक्षे ब्रह्म प्राप्नुवन्ति ॥ ५१ ॥ एवमात्मबोधजमात्यन्तिकं प्रलयमुक्त्वाऽवान्तरप्रलयमाह—**प्रजेति**। प्रलयकाले आसन्नतरे ये देवत्वं प्राप्ता अभुक्तकृत्स्नकर्मफलास्ते पूर्वकल्पार्जितानि स्वानि स्थानानि कल्पान्तरेऽपि सरन्ति लभन्ते। सर्वेषां कल्पानां पूर्वपूर्वकल्पसादृश्यात्। 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' इति श्रुतेश्च। ये तु अन्ते कल्पान्ते निःशेषतः निःशेषितकालास्ते स्वर्गनाशे इतरवन्मनुष्यत्वमेव यान्तीत्यर्थः। प्रलयशतेनापि कृतं कर्म न नश्यति तत्त्वज्ञानमन्तरेणेति भावः ॥ ५२ ॥ विधिं अदृष्टं पुण्यपापं तत्फलं यान्ति प्राप्नुवन्ति एकस्मिन्नपि कल्पे असकृदारोहावरोहौ वर्ततेऽतः संसारभीरुणा तत्त्वज्ञानमेवाश्रयणयिमिति भावः ॥ ५३ ॥

स यावदेवास्ति सशेषभुक्के
प्रजाश्च देव्यौ च तथैव शुक्ले ।
तावत्तदङ्गेषु विशुद्धभावः
संयम्य पञ्चेन्द्रियरूपमेतत् ॥ ५४
शुद्धां गतिं तां परमां परैति
शुद्धेन नित्यं मनसा विचिन्वन् ।
ततोऽव्ययं स्थानमुपैति ब्रह्म
दुष्प्रापमभ्येति स शाश्वतं वै ॥ ५५
इत्येतदाख्यातमहीनसत्त्व
नारायणस्येह बलं मया ते ॥ ५६
वृत्र उवाच ।
एवं गते मे न विषादोऽस्ति कश्चित्
सम्यक्च पश्यामि वचस्तथैतत् ।
श्रुत्वा तु ते वाचमदीनसत्त्व
विकल्मषोऽस्म्यद्य तथा विपाप्मा ॥
प्रवृत्तमेतद्भगवन्महर्षे
महाद्युतेश्चक्रमनन्तवीर्यम् ।
विष्णोरनन्तस्य सनातनं तत्
स्थानं सर्गा यत्र सर्वे प्रवृत्ताः ।
स वै महात्मा पुरुषोत्तमो वै
तस्मिन् जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितम् ॥
भीष्म उवाच ।
एवमुक्त्वा स कौन्तेय वृत्रः प्राणानवासृजत्
योजयित्वा तथाऽऽत्मानं परं स्थानमवाप्तवान्
युधिष्ठिर उवाच ।
अयं स भगवान्देवः पितामह जनार्दनः ।
सनत्कुमारो वृत्राय यत्तदाख्यातवान्पुरा ६०
भीष्म उवाच ।
मूलस्थायी महादेवो भगवान् स्वेन तेजसा।
तत्स्थः सृजति तान्भावान्नानारूपान्महामनाः
तुरीयार्धेन तस्येमं विद्धि केशवमच्युतम् ।
तुरीयार्धेन लोकांस्त्रीन्भावयत्येव बुद्धिमान्

एवं सपरिकरां ब्रह्मविद्यामुक्त्वा तद्वतो दृष्टिमाह--**स इति**। स ब्रह्मवित् यावत्सशेषभुक् शेषं प्रारब्धकर्म तत् अपरित्यज्य भुंक्ते इति सशेषभुक् अस्ति तावत्तदंगेषु तत्स्वरूपे एव प्रजाः सर्वाः ते शुक्ले देव्यौ परापरविद्ये च वर्तेते इति शेषः । ब्रह्मविदो विशुद्धकैवल्यावधि कृत्स्नं जगदस्ति अनन्तरं नास्तीत्यर्थः । अत्र किं मानमत आह विशुद्धभावः योगसंशोधितचित्तो भूत्वा संयम्य धारणाध्यानसमाध्यात्मकं संयममनुष्ठाय एतत्परिदृश्यमानं वियदादि पञ्चेन्द्रियरूपमित्येव विद्धीति शेषः । तथाहि प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका इतीन्द्रियेभ्यः साक्षात्परंपरया च देवानां लोकानां च सृष्टिः श्रूयते । स्वप्नमायेन्द्रजालवदुपपद्यते चैतत् जगतः प्रतिभासमात्रत्वमित्युपपादितमधस्तात् ॥ ५४ ॥ उपसंहरति --**शुद्धामिति**। शुद्धां निरवद्यां परमां गतिं शुद्धचिन्मात्रभावं शुद्धेन मनसा विचिन्वन् श्रवणमननध्यानाभ्यासैर्ज्ञातुमिच्छन् परैति द्वैतजालं परावृत्य एति प्राप्नोति ततो ब्रह्मसाक्षात्कारानन्तरं अव्ययं स्थानं मोक्षं उपैति । ग्रामवत्प्राप्यत्वमस्त्वित्यत आह--ब्रह्म न हि त्रिविधपरिच्छेदशून्यस्य गगनस्येव प्राप्यत्वं संभवति । अथापि दुष्प्राप्यं अविद्यादिना व्यवधानात् शाश्वतं नित्यं प्राप्तमपि अभ्येति कंठगतचामीकरवदित्यर्थः तथाच श्रुतयः--' ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति 'तत्त्वमस्ययमात्मा ब्रह्म' इत्यादयः सिद्धवद्ब्रह्मभावं जविस्योपदिशन्ति ॥ ५५ ॥ हे अहीनसत्त्व ॥ ५६ ॥ एवं उक्तप्रकारेण गते जगतो मनोमात्रत्वे स्थिते सति वचः वचोऽर्थं ब्रह्माद्वैतं विकल्मषो निरवद्यः विपाप्मा शोकमोहहीनः ॥ ५७ ॥ श्रुतं विष्णुमाहात्म्यमनुसन्धत्ते प्रवृत्तमिति सार्धेन ॥ ५८ ॥--**एवमिति**। इंद्रेण सह युध्यन् अन्तकाले प्रवृत्तमेतदित्यादिसार्धश्लोकेन विष्णुमनुसन्धाय आत्मानं ब्रह्मणि योजयित्वा ॥ ५९ ॥ अयं स इति पुरोवर्तिनं कृष्णमंगुल्या निर्दिशति श्रीकृष्ण एव सर्वशास्त्रप्रतिपाद्य इत्यर्थः ॥ ६० ॥ राजवन्मूर्तिमांस्तत्स्थ ईश्वर इति युधिष्ठिरस्य भ्रमो मा भूदिति भीष्म उवाच--**मूलेति**। मूलं अधिष्ठानं तद्वन्निर्विकारेण रूपेण तिष्ठतीति मूलस्थायी । योऽधिष्ठानचिद्रूपः स महादेवो महान् चिदात्मा मायानिष्कृष्टो भूस्थानीयः--**प्रथमः**। स एव मायाशबलो भगवान्षड्विधैश्वर्यवान्कारणात्मा भवति। बीजस्थानीयश्चिदचिदुभयात्मा--**द्वितीयः**। सोऽपि स्वेन स्वकीयेन तेजसा उपलक्षितः तैजसाख्यकार्यब्रह्मतां प्राप्तः **तृतीयः**--वृक्षस्थानीयो भवति । तत्स्थस्तस्मिन्ब्रह्माण्डरूपे कार्ये तिष्ठन्नयं श्रीकृष्णोऽनेकबीजगर्भफलस्थानीयश्चतुर्थः । तान् भावान् कार्यकारणरूपान् वृक्षबीजाभावान् सृजति । महामनाः महत्परिच्छेदाभिमानशून्यं सत्यसंकल्पादिगुणकं मनो यस्य स तथा ॥६१॥ अस्य रूपमाह-- **तुरीयेति**।तस्य मूलस्थायिनश्चिन्मात्रस्य तुरीयार्धेन अष्टमांशेन निष्पन्नं इमं मूर्तिमन्तं केशवं विद्धि अच्युतमिति मूर्तिमत एव यावदविद्यं नित्यत्वमुक्तम् । तथाहि मूलस्थायि पूर्णचैतन्यं भगवति मायांशस्य

अर्वाक् स्थितस्तु यः स्थायी
कल्पान्ते परिवर्तते ।
स शेते भगवानप्सु
योऽसावतिबलः प्रभुः ।
तान्विधाता प्रसन्नात्मा
लोकांश्चरति शाश्वतान् ॥ ६३
सर्वाण्यशून्यानि करोत्यनन्तः
सनातनः संचरते च लोकान् ।
स चानिरुद्धः सृजते महात्मा
तत्स्थं जगत्सर्वमिदं विचित्रम् ६४
युधिष्ठिर उवाच ।
वृत्रेण परमार्थज्ञ दृष्टा मन्येऽऽत्मनो गतिः।
शुभा तस्मात्स सुखितो न शोचति पितामह
शुक्लः शुक्लाभिजातीयः साध्यो नावर्ततेऽनघ
तिर्यग्गतेश्च निर्मुक्तो निरयाच्च पितामह ६६
हारिद्रवर्णे रक्ते वा वर्तमानस्तु पार्थिव ।
तिर्यगेवानुपश्येत कर्मभिस्तामसैर्वृतः ॥ ६७
वयं तु भृशमापन्ना रक्ता दुःखसुखे सुखे ।
कां गतिं प्रतिपत्स्यामो नीलां कृष्णाधमामथ
भीष्म उवाच ।
शुद्धाभिजनसंपन्नाः पाण्डवाः संशितव्रताः।
विहृत्य देवलोकेषु पुनर्मानुषमेष्यथ ॥ ६९
प्रजाविसर्गं च सुखेन काले
प्रत्येत्य देवेषु सुखानि भुक्त्वा ।
सुखेन संयास्यथ सिद्धसंख्यां
मा वो भयं भूद्विमलाः स्थ सर्वे ७०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वृत्रगीतासु
अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

समप्राधान्यादधमम्। तैजसे त्वाविद्यके समष्टिकार्ये बीजांशस्यार्धस्यैव सत्त्वात्तुरीयांशश्चैतन्यस्यास्ति । व्यष्टिकार्ये तु परिच्छिन्ने देहाद्यभेदाभिमानात् अष्टमांशश्चैतन्यस्यास्ति । तदिदमुक्तं तुरीयार्धेन-**तस्येमं विद्धीति** । नन्वेवमस्मदादितुल्य एवायमिति तमुद्दिश्य अयं स भगवानिति युधिष्ठिरोक्तिरयुक्ता । उपाध्यंशाविवक्षायां त्वस्माकमपि तथात्वमस्तीत्याशंक्याह—**तुरीयार्धेनेति** । पूर्वोक्तरीत्या कृष्णे पक्वफलाभे ईशादिस्रष्टृत्वं युक्तम् । अपक्वफलाभेष्वस्मासु त्वनीशत्वं स्फुटमिति न तेन सहास्माकं साम्यप्रसङ्गः ॥ ६२ ॥ एतदेव कार्यकारणयोर्लयप्रतिपादनेन द्रढयति-**अर्वागिति** सार्धेन । अर्वाक् स्थितः स्थायी समष्टिकार्यात्मा तृतीयोऽस्मदादिशरीरापेक्षया नित्योऽपि कल्पान्ते परिवर्तते नश्यतीत्यर्थः। यस्तु भगवान् द्वितीयोऽतिबलोऽनेकब्रह्माण्डलयोदयबीजभूतः प्रभुरन्तर्यामी सोऽपि अप्सु आप इवापस्तासु । 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति'इति श्रुत्या परावरवर्जितसलिलाभत्वेन निरूपिते अखण्डैकरसे ब्रह्मणि शेते लीयते । ईश्वरस्यास्य नित्यत्वं व्यवहारापेक्षयैवोच्यते न तु परमार्थत इति न तल्लयोक्तिरसंगता । तानिति अनुवाद्यमप्शब्दमपेक्ष्य बहुत्वं विधेयलोकापेक्षं पुंस्त्वं च । तं अखण्डैकरसं लोकं आत्मानं शाश्वतं नित्यप्राप्तमेव विधाता चतुर्मुखः प्रसन्नात्मा शुद्धचित्तः सन् अविद्यापनयमात्रेण चरति गच्छति प्राप्नोति । ब्रह्मादीनां चेतनानामपि तदेव लयस्थानमित्यर्थः ॥ ६३ ॥ सोऽयं अनन्तः परमात्मा सर्वाणि कारणानि च अशून्यानि स्वसत्तास्फूर्तिप्रदानेन पूर्णानि करोति । सनातनः सर्वदैकरूपोऽपि मायिक उपाधिविशिष्टेन रूपेण श्रीकृष्णात्मना लोकान्संचरते। स चैवंभूतोऽप्यस्मदादिवदुपाधिधर्मेण न निरुध्यतेऽतोऽनिरुद्धोऽहंकारः सन् जगत्सृजते महात्मा सर्वाधारत्वयोग्यः तथा च श्रुतिः-'अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः' इति स्रष्टुर्मायासन्निरुद्धादन्यत्वमाह—तत्स्थं बीजे तरुरिव फले बीजानीव परमात्मनि कृष्णे सर्वं जगदस्ति । तथा च श्रुतिः—'हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः' इति। विग्रहधर्मवन्तमीश्वरमुपदिश्य इयमेवर्गग्निः सामेत्यृक्सामात्मना निरूपितं प्रपञ्चं तस्यर्क्च साम गेष्णाविति तदङ्गुलिपर्वत्वेन निर्दिशति अतस्तत्स्थं जगत् गङ्गातरङ्गन्यायेन युक्तम् ॥६४॥ एवं ब्रह्मविद्यां श्रुत्वा तत्र स्वस्याधिकारोऽस्ति नास्ति वेति संदिहानः पृच्छति-**वृत्रेणेति** । त्मनः आत्मनः तस्मात् आत्मगतिदर्शनात् ॥६५॥ शुक्लाभिजातीयः शुक्लवंश्यः साध्यः साध्यसंज्ञको देव इति नावर्तते ॥ ६६ ॥ हारिद्रवर्णे सत्त्वाधिक्ये तमःसाम्ये रजसोऽल्पत्वे च षष्ठे देवतासर्गे उक्ते । तथा रक्ते रजस आधिक्ये सत्त्वस्य साम्ये तमसो न्यूनत्वे च मध्यमेऽनुग्रहसर्गे च वर्तमानः। तमोरजसोः साम्यात्कदाचिदावरणस्य प्रवृत्तेर्वा उद्रेकः स्यात्तेन ततस्तिर्यगादि संभाव्यते ॥ ६७ ॥ वयं तु हारिद्राच्च्युता केवलरजःप्रधाने रक्ते वर्तमानां नीलां मानुषीं वा कृष्णां ततोऽप्यधमां तिर्यग्गतिं वा । कृष्णया सहितामधमां कृष्णाधमाम् ॥ ६८ ॥ एवं भीतं युधिष्ठिरमाश्वासयति—**शुद्धेति** । हे पाण्डवाः यूयं संपन्नाः स्थ ॥ ६९ ॥ सिद्धसंख्यां सिद्धेषु गणनाम् ॥ ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

## २८१-[१०८]

युधिष्ठिर उवाच ।
अहो धर्मिष्ठता तात वृत्रस्यामिततेजसः ।
यस्य विज्ञानमतुलं विष्णोर्भक्तिश्च तादृशी १
दुर्विज्ञेयं पदं तात विष्णोरमिततेजसः ।
कथं वा राजशार्दूल पदं तु ज्ञातवानसौ ॥ २
भवता कथितं ह्येतच्छ्रद्दधे चाहमच्युतम् ।
भूयस्तु मे समुत्पन्ना बुद्धिरव्यक्तदर्शनात् ॥ ३
कथं विनिहतो वृत्रः शक्रेण पुरुषर्षभ ।
धार्मिको विष्णुभक्तश्च तत्त्वज्ञश्च पदान्वये ४
एतन्मे संशयं ब्रूहि पृच्छते भरतर्षभ ।
वृत्रस्तु राजशार्दूल यथा शक्रेण निर्जितः ५
यथा चैवाभवद्युद्धं तच्चाचक्ष्व पितामह ।
विस्तरेण महाबाहो परं कौतूहलं हि मे ॥ ६
भीष्म उवाच ।
रथेनेन्द्रः प्रयातो वै सार्धं देवगणैः पुरा ।
ददर्शाथाग्रतो वृत्रं धिष्ठितं पर्वतोपमम् ॥ ७
योजनानां शतान्यूर्ध्वं पञ्चोच्छ्रितमरिंदम ।
शतानि विस्तरेणाथ त्रीण्येवाभ्यधिकानि वै
तत्प्रेक्ष्य तादृशं रूपं त्रैलोक्येनापि दुर्जयम् ।
वृत्रस्य देवाः संत्रस्ता न शान्तिमुपलेभिरे ९
शक्रस्य तु तदा राजन्नूरुस्तंभो व्यजायत ।
भयाद्वृत्रस्य सहसा दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम् १०
ततो नादः समभवद्वादित्राणां च निःस्वनः ।
देवासुराणां सर्वेषां तस्मिन्युद्ध उपस्थिते ११
अथ वृत्रस्य कौरव्य दृष्ट्वा शक्रमवस्थितम् ।
न संभ्रमो न भीः काचिदास्था वा समजायत
ततः समभवद्युद्धं त्रैलोक्यस्य भयंकरम् ।
शक्रस्य च सुरेन्द्रस्य वृत्रस्य च महात्मनः १३
असिभिः पट्टिशैः शूलैः शक्ति-तोमर-मुद्गरैः ।
शिलाभिर्विविधाभिश्च कार्मुकैश्च महास्वनैः
शस्त्रैश्च विविधैर्दिव्यैः पावकोल्काभिरेव च ।
देवासुरैस्ततः सैन्यैः सर्वमासीत्समाकुलम् ॥
पितामहपुरोगाश्च सर्वे देवगणास्तथा ।
ऋषयश्च महाभागास्तद्युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥ १६
विमानाग्र्यैर्महाराज सिद्धाश्च भरतर्षभ ।
गन्धर्वाश्च विमानाग्र्यैरप्सरोभिः समागमन्
ततोऽन्तरिक्षमावृत्य वृत्रो धर्मभृतां वरः ।
अश्मवर्षेण देवेन्द्रं समाकिरदतिद्रुतम् ॥ १८
ततो देवगणाः क्रुद्धाः सर्वतः शरवृष्टिभिः ।
अश्मवर्षमपोहन्त वृत्रप्रेरितमाहवे ॥ १९
वृत्रस्तु कुरुशार्दूल महामायो महाबलः ।
मोहयामास देवेन्द्रं मायायुद्धेन सर्वशः २०
तस्य वृत्रार्दितस्याथ मोह आसीच्छतक्रतोः ।
रथन्तरेण तं तत्र वसिष्ठः समबोधयत् ॥ २१
वसिष्ठ उवाच ।
देवश्रेष्ठोऽसि देवेन्द्र दैत्यासुरनिबर्हण ।
त्रैलोक्यबलसंयुक्तः कस्माच्छक्र विषीदसि ॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवश्चैव जगत्पतिः ।
सोमश्च भगवान्देवः सर्वे च परमर्षयः ॥ २३
माकार्षीः कश्मलं शक्र कश्चिदेवेतरो यथा ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि शत्रून्सुराधिप
एष लोकगुरुस्त्र्यक्षः सर्वलोकनमस्कृतः ।
निरीक्षते त्वां भगवांस्त्यज मोहं सुराधिप ॥
एते ब्रह्मर्षयश्चैव बृहस्पतिपुरोगमाः ।
स्तवेन शक्र दिव्येन स्तुवन्ति त्वां जयाय वै
भीष्म उवाच ।
एवं संबोध्यमानस्य वसिष्ठेन महात्मना ।
अतीव वासवस्यासीद्बलमुत्तमतेजसः ॥ २७
ततो बुद्धिमुपागम्य भगवान्पाकशासनः ।
योगेन महता युक्तस्तां मायां व्यपकर्षत ॥ २८
ततोऽङ्गिरःसुतः श्रीमांस्ते चैव सुमहर्षयः ।
दृष्ट्वा वृत्रस्य विक्रान्तमुपागम्य महेश्वरम् २९
ऊचुर्वृत्रविनाशार्थं लोकानां हितकाम्यया ।
ततो भगवतस्तेजो ज्वरो भूत्वा जगत्पतेः ॥
समाविशत्तदा रौद्रो वृत्रं लोकपतिं तदा ।
विष्णुश्च भगवान्देवः सर्वलोकाभिपूजितः ॥
ऐन्द्रं समाविशद्वज्रं लोकसंरक्षणे रतः ।
ततो बृहस्पतिर्धीमानुपागम्य शतक्रतुम् ।
वसिष्ठश्च महातेजाः सर्वे च परमर्षयः ॥ ३२
ते समासाद्य वरदं वासवं लोकपूजितम् ।
ऊचुरेकाग्रमनसो जहि वृत्रमिति प्रभो ॥ ३३

---

२८१

अहो इति ॥ १ ॥ पदं स्थानं पदं पदनीयम् ॥ ॥ २ ॥ वृत्रवधस्यापके त्वद्वचसि श्रद्धा च वैष्णवस्य वृत्रस्य वधानर्हत्वं चेति विरुद्धकोटिद्वयेन व्यक्तं स्पष्टं अन्यतरकोटिनिश्चायकं दर्शनं व्यक्तदर्शनं तदभावात् अव्यक्तदर्शनात् ॥ ३ ॥ पदान्वये व्यक्तदर्शनवेदान्तवाक्यार्थविचारे ४

महेश्वर उवाच ।
एष वृत्रो महान् शक्र बलेन महता वृतः ।
विश्वात्मा सर्वगश्चैव बहुमायश्च विश्रुतः ३४
तदेनमसुरश्रेष्ठं त्रैलोक्येनापि दुर्जयम् ।
जहि त्वं योगमास्थाय माऽवमंस्थाः सुरेश्वर॥
अनेन हि तपस्तप्तं बलार्थममराधिप ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि ब्रह्मा चास्मै वरं ददौ ॥
महत्त्वं योगिनां चैव महामायत्वमेव च ।
महाबलत्वं च तथा तेजश्चाग्र्यं सुरेश्वर ३७
एतत्त्वां मामकं तेजः समाविशति वासव ।
व्यग्रमेनं त्वमप्येनं वज्रेण जहि दानवम् ३८
शक्र उवाच ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन दितिजं सुदुरासदम् ।
वज्रेण निहनिष्यामि पश्यतस्ते सुरर्षभ ॥ ३९
भीष्म उवाच ।
आविश्यमाने दैत्ये तु ज्वरेणाथ महासुरे ।
देवतानामृषीणां च हर्षान्नादो महानभूत् ४०
ततो दुन्दुभयश्चैव शंखाश्च सुमहास्वनाः ।
मुरजा डिण्डिमाश्चैव प्रावाद्यन्त सहस्रशः ॥
असुराणां तु सर्वेषां स्मृतिलोपो महानभूत् ।
मायानाशश्च बलवान्क्षणेन समपद्यत ॥ ४२
तथाविष्टमथो ज्ञात्वा ऋषयो देवतास्तथा ।
स्तुवन्तः शक्रमीशानं तथा प्राचोदयन्नपि ४३
रथस्थस्य हि शक्रस्य युद्धकाले महात्मनः
ऋषिभिः स्तूयमानस्य रूपमासीत्सुदुर्दृशम्४४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वृत्रवधे एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

## २८२-[१०९]

भीष्म उवाच ।
वृत्रस्य तु महाराज ज्वराविष्टस्य सर्वशः ।
अभवन्यानि लिङ्गानि शरीरे तानि मे शृणु १
ज्वलितास्योऽभवद्घोरो वैवर्ण्यं चागमत्परम्
गात्रकम्पश्च सुमहान् श्वासश्चाप्यभवन्महान्
रोमहर्षश्च तीव्रोऽभूत्निःश्वासश्च महानृप ।
शिवा चाशिवसंकाशा तस्य वक्त्रात्सुदारुणा
निष्पपात महाघोरा स्मृतिः सा तस्य भारत
उल्काश्च ज्वलितास्तस्य दीप्ताः पार्श्वे प्रपेदिरे
गृध्राः कङ्का बलाकाश्च
वाचोऽमुञ्चन्सुदारुणाः ।
वृत्रस्योपरि संहृष्टा-
श्चक्रवत्परिबभ्रमुः ॥ ५
ततस्तं रथमास्थाय देवाऽप्यायित आहवे ।
वज्रोद्यतकरः शक्रस्तं दैत्यं समवैक्षत ॥ ६
अमानुषमथो नादं स मुमोच महासुरः ।
व्यजृंभच्चैव राजेन्द्र तीव्रज्वरसमन्वितः ॥ ७
अथास्य जृम्भतः शक्रस्ततो वज्रमवासृजत् ।
स वज्रः सुमहातेजाः कालाग्निसदृशोपमः ८
क्षिप्रमेव महाकायं वृत्रं दैत्यमपातयत् ।
ततो नादः समभवत्पुनरेव समन्ततः ॥ ९
वृत्रं विनिहतं दृष्ट्वा देवानां भरतर्षभ ।
वृत्रं तु हत्वा मघवा दानवारिर्महायशाः १०
वज्रेण विष्णुयुक्तेन दिवमेव समाविशत् ।
अथ वृत्रस्य कौरव्य शरीरादभिनिःसृता ११
ब्रह्मवध्या महाघोरा रौद्रा लोकभयावहा ।
करालदशना भीमा विकृता कृष्णपिङ्गला ॥
प्रकीर्णमूर्धजा चैव घोरनेत्रा च भारत ।
कपालमालिनी चैव कृत्येव भरतर्षभ ॥ १३
रुधिरार्द्रा च धर्मज्ञ चीरवल्कलवासिनी ।
साऽभिनिष्क्रम्य राजेन्द्र तादृग्रूपा भयावहा
वज्रिणं मृगयामास तदा भरतसत्तम ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य वृत्रहा कुरुनन्दन १५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८१ ॥

२८२
वृत्रस्येति ॥ १ ॥

स्वर्गायाभिमुखः प्रायाल्लोकानां हितकाम्यया
सा विनिःसरमाणं तु दृष्ट्वा शक्रं महौजसम् ॥
जग्राह वध्या देवेन्द्रं सुलग्ना चाभवत्तदा ।
स हि तस्मिन्समुत्पन्ने ब्रह्मवध्याकृते भये १७
नलिन्या बिसमध्यस्थ उवासाब्दगणान्बहून्
अनुसृत्य तु यत्नात्स तया वै ब्रह्महत्यया १८
तदा गृहीतः कौरव्य निस्तेजाः समपद्यत ।
तस्या व्यपोहने शक्रः परं यत्नं चकार ह १९
न चाशकत्तां देवेन्द्रो ब्रह्मवध्यां व्यपोहितुम्
गृहीत एव तु तया देवेन्द्रो भरतर्षभ ॥ २०
पितामहमुपागम्य शिरसा प्रत्यपूजयत् ।
ज्ञात्वा गृहीतं शक्रं स द्विजप्रवरवध्यया २१
ब्रह्मा स चिन्तयामास तदा भरतसत्तम ।
तामुवाच महाबाहो ब्रह्मवध्यां पितामहः २२
स्वरेण मधुरेणाथ सान्त्वयन्निव भारत।
मुच्यतां त्रिदशेन्द्रोऽयं मत्प्रियं कुरु भाविनि
ब्रूहि किं ते करोम्यद्य कामं किं त्वमिहेच्छसि

ब्रह्मवध्योवाच ।

त्रिलोकपूजिते देवे प्रीते त्रैलोक्यकर्तरि ।
कृतमेव हि मन्यामि निवासं तु विधत्स्व मे ॥
त्वया कृतेयं मर्यादा लोकसंरक्षणार्थिना ।
स्थापना वै सुमहती त्वया देव प्रवर्तिता २६
प्रीते तु त्वयि धर्मज्ञ सर्वलोकेश्वर प्रभो ।
शक्रादपगमिष्यामि निवासं संविधत्स्व मे ॥

भीष्म उवाच ।

तथेति तां प्राह तदा ब्रह्मवध्यां पितामहः।
उपायतः स शक्रस्य ब्रह्मवध्यां व्यपोहत २८
ततः स्वयंभुवा ध्यातस्तत्र वह्निर्महात्मना ।
ब्रह्माणमुपसंगम्य ततो वचनमब्रवीत् ॥ २९
प्राप्तोऽस्मि भगवन्देव त्वत्सकाशमनिन्दित ।
यत्कर्तव्यं मया देव तद्भवान्वक्तुमर्हसि ॥ ३०

ब्रह्मोवाच ।

बहुधा विभजिष्यामि ब्रह्मवध्यामिमामहम्
शक्रस्याघविमोक्षार्थं चतुर्भागं प्रतीच्छ वै ३१

अग्निरुवाच ।

मम मोक्षस्य कोऽन्तो वै
ब्रह्मन्ध्यायस्व वै प्रभो ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं
तत्त्वतो लोकपूजित ॥ ३२

ब्रह्मोवाच ।

यस्त्वां ज्वलन्तमासाद्य
स्वयं वै मानवः क्वचित् ।
बीजौषधिरसैर्वह्ने
न यक्ष्यति तमोवृतः ॥ ३३
तमेषा यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति ।
ब्रह्मवध्या हव्यवाह व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥
इत्युक्तः प्रतिजग्राह तद्वचो हव्यकव्यभुक् ।
पितामहस्य भगवांस्तथा च तदभूत्प्रभो ३५
ततो वृक्षौषधितृणं समाहूय पितामहः ।
इममर्थं महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ३६
ततो वृक्षौषधितृणं तथैवोक्तं यथातथम् ।
व्यथितं वह्निवद्राजन्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ३७
अस्माकं ब्रह्मवध्यायाः कोऽन्तो लोकपितामह
दैवेनाभिहतानस्मान्न पुनर्हन्तुमर्हसि ॥ ३८
वयमग्निं तथा शीतं वर्षं च पवनेरितम् ।
सहामः सततं देव तथा च्छेदनभेदने ॥ ३९
ब्रह्मवध्यामिमामद्य भवतः शासनाद्वयम् ।
ग्रहीष्यामस्त्रिलोकेश मोक्षं चिन्तयतां भवान्

ब्रह्मोवाच ।

पर्वकाले तु संप्राप्ते यो वै च्छेदनभेदनम् ।
करिष्यति नरो मोहात्तमेषाऽनुगमिष्यति ४१

भीष्म उवाच ।

ततो वृक्षौषधितृणमेवमुक्तं महात्मना ।
ब्रह्माणमभिसंपूज्य जगामाशु यथागतम् ४२
आहूयाप्सरसो देवस्ततो लोकपितामहः ।
वाचा मधुरया प्राह सान्त्वयन्निव भारत ॥
इयमिन्द्रादनुप्राप्ता ब्रह्मवध्या वराङ्गनाः ।
चतुर्थमस्या भागांशं मयोक्ताः संप्रतीच्छत ॥

अप्सरस ऊचुः ।

ग्रहणे कृतबुद्धीनां देवेश तव शासनात् ।
मोक्षं समयतोऽस्माकं चिन्तयस्व पितामह ॥

ब्रह्मोवाच ।

रजस्वलासु नारीषु यो वै मैथुनमाचरेत् ।
तमेषा यास्यति क्षिप्रं व्येतु वो मानसो ज्वरः

भीष्म उवाच ।

तथेति हृष्टमनस इत्युक्त्वाऽप्सरसां गणाः
स्वानि स्थानानि संप्राप्य रेमिरे भरतर्षभ ४७

---

**यस्त्वामिति**-यः आहिताग्निरधिकारी बीजैः पुरोडाशादिना ओषधिरसैः सोमेन पयआदिभिर्वा ॥ ३३ ॥

ततस्त्रिलोककृद्देवः पुनरेव महातपाः ।
अपःसञ्चिन्तयामास ध्यातास्ताश्चाप्यथागमन् ।
तास्तु सर्वाः समागम्य ब्रह्माणममितौजसम् ।
इदमूचुर्वचो राजन्प्रणिपत्य पितामहम् ४९
इमाः स्म देव संप्राप्तास्त्वत्सकाशमरिन्दम ।
शासनात्तव लोकेश समाज्ञापय नः प्रभो ५०
ब्रह्मोवाच ।
इयं वृत्रादनुप्राप्ता पुरुहूतं महाभया ।
ब्रह्मवध्या चतुर्थांशमस्या यूयं प्रतीच्छत ५१
आप ऊचुः ।
एवं भवतु लोकेश यथा वदसि नः प्रभो ।
मोक्षं समयतोऽस्माकं सञ्चिन्तयितुमर्हसि ॥
त्वं हि देवेश सर्वस्य
जगतः परमा गतिः ।
कोऽन्यः प्रसादो हि भवे-
द्यन्नः कृच्छ्रात्समुद्धरेत् ॥ ५३
ब्रह्मोवाच ।
अल्पा इति मतिं कृत्वा यो नरो बुद्धिमोहितः
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि युष्मासु प्रतिमोक्ष्यति ५४
तमियं यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति ।
तथा वो भविता मोक्ष इति सत्यं ब्रवीमि वः
ततो विमुच्य देवेन्द्रं ब्रह्मवध्या युधिष्ठिर ।
यथा विसृष्टं तं वासमगमद्देवशासनात् ५६
एवं शक्रेण संप्राप्ता ब्रह्मवध्या जनाधिप ।
पितामहमनुज्ञाप्य सोऽश्वमेधमकल्पयत् ५७
श्रूयते च महाराज संप्राप्ता वासवेन वै ।
ब्रह्मवध्या ततः शुद्धिं हयमेधेन लब्धवान् ॥५८
समवाप्य श्रियं देवो हत्वारींश्च सहस्रशः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे वासवः पृथिवीपते ॥ ५९
वृत्रस्य रुधिराच्चैव शिखण्डाः पार्थ जज्ञिरे ।
द्विजातिभिरभक्ष्यास्ते दीक्षितैश्च तपोधनैः १
सर्वावस्थं त्वमप्येषां द्विजातीनां प्रियं कुरु ।
इमे हि भूतले देवाः प्रथिताः कुरुनन्दन ॥ ६१
एवं शक्रेण कौरव्य बुद्धिसौक्ष्म्यान्महासुरः ।
उपायपूर्वं निहतो वृत्रो ह्यमिततेजसा ॥ ६२
एवं त्वमपि कौन्तेय पृथिव्यामपराजितः ।
भविष्यसि यथा देवः शतक्रतुरमित्रहा ॥ ६३
ये तु शक्रकथां दिव्या-
मिमां पर्वसु पर्वसु ।
विप्रमध्ये वदिष्यन्ति
न ते प्राप्स्यन्ति किल्बिषम् ॥ ६४
इत्येतद्वृत्रमाश्रित्य शक्रस्यात्यद्भुतं महत् ।
कथितं कर्म ते तात किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि ब्रह्महत्याविभागे द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

## २८३-[११०]

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
अस्मिन्वृत्रवधे देव विवक्षा मम जायते ॥ १
ज्वरेण मोहितो वृत्रः कथितस्ते जनाधिप ।
निहतो वासवेनेह वज्रेणेति तदाऽनघ ॥ २
कथमेष महाप्राज्ञ ज्वरः प्रादुर्बभौ कुतः ।
ज्वरोत्पत्तिं निपुणतः श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो
भीष्म उवाच ।
शृणु राजन् ज्वरस्येमं संभवं लोकविश्रुतम्
विस्तरं चास्य वक्ष्यामि यादृशश्चैव भारत ४
पुरा मेरोर्महाराज शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम् ।
ज्योतिष्कं नाम सावित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ५
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकेषु भारत ।
तत्र देवो गिरितटे हेमधातुविभूषिते ॥ ६

---

ब्रह्मविदां वधः इंद्रस्यापि अत्यंतदुःखदः नाशहेतुश्च भवतीत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

२८३

प्रसंगात् ज्वरोत्पत्तिं पृच्छति-**पितामहेत्यादिना**॥१

पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो बभूव ह ।
शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वे स्थिता बभौ
तथा देवा महात्मानो वसवश्चामितौजसः ७
तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ ।
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैरभिसंवृतः ॥ ८
यक्षाणामीश्वरः श्रीमान्कैलासनिलयः प्रभुः ।
उपासन्त महात्मानमुशना च महामुनिः ९
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव च महर्षयः ।
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे ॥ १०
विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ।
अप्सरोगणसंघाश्च समाजग्मुरनेकशः ॥ ११
ववौ सुखः शिवो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः
सर्वर्तुकुसुमोपेताः पुष्पवन्तो द्रुमास्तथा १२
तथा विद्याधराश्चैव सिद्धाश्चैव तपोधनाः ।
महादेवं पशुपतिं पर्युपासन्त भारत ॥ १३
भूतानि च महाराज नानारूपधराण्यथ ।
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः
बहुरूपधरा हृष्टा नानाप्रहरणोद्यताः ।
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थिरे चानलोपमाः १५
नन्दी च भगवांस्तत्र देवस्यानुमते स्थितः ।
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानः स्वतेजसा १६
गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ।
पर्युपासत तं देवं रूपिणी कुरुनन्दन ॥ १७
स एवं भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरर्षिभिः ।
देवैश्च सुमहातेजा महादेवो व्यतिष्ठत ॥ १८
कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः
पूर्वोक्तेन विधानेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत ॥१९
ततस्तस्य मखं देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ॥ २०
ते विमानैर्महात्मानो ज्वलनार्कसमप्रभैः ।
देवस्यानुमतेऽगच्छन्गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः २१
प्रस्थिता देवता दृष्ट्वा शैलराजसुता तदा ।
उवाच वचनं साध्वी देवं पशुपतिं पतिम् ॥
भगवन्क नु यान्त्येते देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् २३

महेश्वर उवाच ।

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः ।
हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥ २४

उमोवाच ।

यज्ञमेतं महादेव किमर्थं नाधिगच्छसि ।
केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते ॥ २५

महेश्वर उवाच ।

सुरैरेव महाभागे पूर्वमेतदनुष्ठितम् ।
यज्ञेषु सर्वेषु मम न भाग उपकल्पितः ॥ २६
पूर्वोपायोपपन्नेन मार्गेण वरवर्णिनि ।
न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥

उमोवाच ।

भगवन्सर्वभूतेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः ।
अजय्यश्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥
अनेन ते महाभाग प्रतिषेधेन भागतः ।
अतीव दुःखमुत्पन्नं वेपथुश्च ममानघ ॥

भीष्म उवाच ।

एवमुक्त्वा तु सा देवी तदा पशुपतिं पतिम्
तूष्णीं भूताऽभवद्राजन्दह्यमानेन चेतसा ३०
अथ देव्या मतं ज्ञात्वा हृद्गतं यच्चिकीर्षितम् ।
स समाज्ञापयामास तिष्ठ त्वमिति नन्दिनम्
ततो योगबलं कृत्वा सर्वयोगेश्वरेश्वरः ।
तं यज्ञं स महातेजा भीमैरनुचरैस्तदा ॥ ३२
सहसा घातयामास देवदेवः पिनाकधृक् ।
केचिन्नादानमुञ्चन्त केचिद्धासांश्च चक्रिरे ३३
रुधिरेणापरे राजंस्तत्राग्निं समवाकिरन् ।
केचिद्यूपान्समुत्पाट्य बभ्रमुर्विकृताननाः ३४
आस्यैरन्ये चाग्रसन्त तथैव परिचारकान् ।
ततः स यज्ञो नृपते वध्यमानः समन्ततः ३५
आस्थाय मृगरूपं वै खमेवाभ्यगमत्तदा ।
तं तु यज्ञं तथारूपं गच्छन्तमुपलभ्य सः ३६
धनुरादाय बाणेन तदाऽन्वसरत प्रभुः ।
ततस्तस्य सुरेशस्य क्रोधादमिततेजसः ३७
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदबिन्दुर्बभूव ह ।
तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदबिन्दौ तदा भुवि ॥
प्रादुर्बभूव सुमहानग्निः कालानलोपमः ।
तत्र चाजायत तदा पुरुषः पुरुषर्षभ ॥ ३९
ह्रस्वोऽतिमात्रं रक्ताक्षो हरिश्मश्रुर्विभीषणः
ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः श्येनोलूकस्तथैव च
करालकृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च ।
तं यज्ञं सुमहासत्त्वोऽदहत्कक्षमिवानलः ४१
व्यचरत्सर्वतो देवान्प्राद्रवत्स ऋषींस्तथा ।
देवाश्चाप्याद्रवन्सर्वे ततो भीता दिशो दश
तेन तस्मिन्विचरता पुरुषेण विशांपते ।
पृथिवी ह्यचलद्राजन्नतीव भरतर्षभ ॥ ४३
हाहाभूतं जगत्सर्वमुपलक्ष्य तदा प्रभुः ।
पितामहो महादेवं दर्शयन्प्रत्यभाषत ॥ ४४

ब्रह्मोवाच ।
भवतोऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो
क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया ॥ ४५
इमा हि देवताः सर्वा ऋषयश्च परंतप ।
तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे ४६
यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदात्ते विबुधोत्तम ।
ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति ४७
एकीभूतस्य न त्वस्य धारणे तेजसः प्रभो ।
समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम् ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा देवो भागे चापि प्रकल्पिते ।
भगवन्तं तथेत्याह ब्रह्माणममितौजसम् ॥ ४९
परां च प्रीतिमगमदुत्स्मयंश्च पिनाकधृक् ।
अवाप च तदा भागं यथोक्तं ब्रह्मणा भवः ५०
ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यसृजत्तदा ।
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणु तच्चापि पुत्रक ५१
शीर्षाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतु
अपां तु नीलिकां विद्यान्निर्मोकं भुजगेषु च ॥
खोरकः सौरभेयाणामूषरं पृथिवीतले ।
पशूनामपि धर्मज्ञ दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ॥ ५३
रन्ध्रागतमथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ।
नेत्ररोगः कोकिलस्य ज्वरः प्रोक्तो महात्मना
अवीनां पित्तभेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ।
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः
शार्दूलेष्वथ धर्मज्ञ श्रमो ज्वर इहोच्यते ।
मानुषेषु तु धर्मज्ञ ज्वरो नामैष भारत ॥ ५६
मरणे जन्मनि तथा मध्ये चाविशते नरम् ।
एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः ५७
नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ।
अनेन हि समाविष्टो वृत्रो धर्मभृतां वरः ५८
व्यजृंभत ततः शक्रस्तस्मै वज्रमवासृजत् ।
प्रविश्य वज्रं वृत्रं च दारयामास भारत ५९
दारितश्च स वज्रेण महायोगी महासुरः ।
जगाम परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः ॥ ६०
विष्णुभक्त्या हि तेनेदं
जगद्व्याप्तमभूत्तदा ।
तस्माच्च निहतो युद्धे
विष्णोः स्थानमवाप्तवान् ॥ ६१
इत्येष वृत्रमाश्रित्य ज्वरस्य महतो मया ।
विस्तरः कथितः पुत्र किमन्यत्प्रब्रवीमि ते ६२
इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः
पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ।
विमुक्तरोगः स सुखी मुदा युतो
लभेत कामान्स यथा मनीषितान् ६३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि ज्वरोत्पत्तिर्नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

## २८४–[१११]

जनमेजय उवाच ।
प्राचेतसस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेन्तरे । विनाशमगमद्ब्रह्मन्हयमेधः प्रजापतेः ॥ १

शिलाजतु धातुविशेषः नीलिका शैवालम् ॥ ५२ ॥ खोरकः पशूनां पादरोगः ॥ ५३ ॥ रंध्रागतं अश्वगलरंध्रगतं मांसखंडम् ॥५४॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

२८४

**प्राचेतसस्येति** । वृत्रगीतोपसंहारे-'अयं स भगवान्देवः पितामह जनार्दनः। सनत्कुमारो वृत्राय यत्तदाख्यातवान्पुरा' इति श्रीकृष्णस्य प्रकरणप्रतिपाद्यत्वोक्त्या निर्विशेषब्रह्मावाप्तिद्वारत्वमुक्तम्। तत्प्रसक्तानुप्रसक्तत्वेन वृत्रवधं ज्वरोत्पत्तिं चोक्त्वा पुनरपि तस्यैव मूर्तिमतः परमेश्वरस्य परमकारुणिकत्वं दर्शयितुं द्विषन्तमपि भगवान्दंडपूर्वकमनुगृह्णातीति दक्षाख्यायिकामुखेनोक्तम्। तत्र कैमुतिकन्यायेन भक्तेष्वनुग्रहः सिध्यतीति भक्त्या भगवत्तोषणार्थं नाम्नामष्टसहस्रं च वक्तुमयमध्याय आरभ्यते । मोक्षधर्मेषु पाठाच्चास्य स्तवस्य साक्षात्तत्त्वज्ञानहेतुतया शमदमादिवन्मोक्षोपयोगित्वम्। इतरेषां तु यज्ञादिवच्चित्तशुद्ध्युत्पादनद्वारा तद्धेतुत्वमिति अयमेव उपदेशः सम्यग्विभज्यते । तत्र प्राचेतसस्य दक्षस्येत्यादिर्नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजमित्यन्तः स्पष्टार्थो ग्रंथः । तस्य तात्पर्यं परमेश्वरद्रोहिणा कृतं कर्म अनर्थावहं तदनुग्रहमन्तरेण दुश्चिकित्स्यं चेति स एव प्रार्थ्य इति ॥१॥

देव्या मन्युकृतं मत्वा क्रुद्धः सर्वात्मकः प्रभुः
प्रसादात्तस्य दक्षेण स यज्ञः सन्धितः कथम्
एतद्वेदितुमिच्छेयं तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥ २

वैशम्पायन उवाच ।

पुरा हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमाहरत् ।
गङ्गाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते ॥ ३
गन्धर्वाप्सरसाकीर्णे नानाद्रुमलतावृते ।
ऋषिसङ्घैः परिवृतं दक्षं धर्मभृतां वरम् ॥ ४
पृथिव्यामन्तरिक्षे च ये च स्वर्लोकवासिनः ।
सर्वे प्रांजलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम् ५
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
हाहाहूहूश्च गन्धर्वौ तुम्बुरुर्नारदस्तथा ॥ ६
विश्वावसुर्विश्वसेनो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सह मरुद्गणैः
इन्द्रेण सहिताः सर्वे आगता यज्ञभागिनः ।
ऊष्मपाः सोमपाश्चैव धूमपा आज्यपास्तथा ८
ऋषयः पितरश्चैव आगता ब्रह्मणा सह ।
एते चान्ये च बहवो भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ॥ ९
जरायुजाण्डजाश्चैव सहसा स्वेदजोद्भिजैः ।
आहूता मन्त्रिताः सर्वे देवाश्च सह पत्निभिः
विराजन्ते विमानस्था
दीप्यमाना इवाग्नयः ।
तान्दृष्ट्वा मन्युनाऽऽविष्टो
दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ११
नायं यज्ञो न वा धर्मो
यत्र रुद्रो न इज्यते ।
वधबन्धं प्रपन्ना वै
किन्नु कालस्य पर्ययः ॥ १२
किन्नु मोहान्न पश्यन्ति विनाशं पर्युपस्थितम्
उपस्थितं महाघोरं न बुध्यन्ति महाध्वरे ॥ १३
इत्युक्त्वा स महायोगी पश्यति ध्यानचक्षुषा ।
स पश्यति महादेवं देवीं च वरदां शुभाम् ॥
नारदं च महात्मानं तस्या देव्याः समीपतः ।
संतोषं परमं लेभे इति निश्चित्य योगवित् ॥
एकमन्त्रास्तु ते सर्वे येनेशो न निमन्त्रितः ।
तस्माद्देशादपक्रम्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्
अपूज्यपूजनाच्चैव पूज्यानां चाप्यपूजनात् ।
नृघातकसमं पापं शश्वत्प्राप्नोति मानवः ॥ १७
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
देवतानामृषीणां च मध्ये सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥
आगतं पशुभर्तारं स्रष्टारं जगतः पतिम् ।
अध्वरे ह्यग्रभोक्तारं सर्वेषां पश्यत प्रभुम् १९

दक्ष उवाच ।

सन्ति नो बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः
एकादशस्थानगता नाहं वेद्मि महेश्वरम् ॥ २०

दधीचिरुवाच ।

सर्वेषामेव मन्त्रोऽयं येनासौ न निमन्त्रितः ।
यथाऽहं शंकरादूर्ध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम् ।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥

दक्ष उवाच ।

एतन्मखेशाय सुवर्णपात्रे
हविः समस्तं विधिमन्त्रपूतम् ।
विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य भागं
प्रभुर्विभुश्चाहवनीय एषः ॥ २२

देव्युवाच ।

किं नाम दानं नियमं तपो वा
कुर्यामहं येन पतिर्ममाद्य ।
लभेत भागं भगवानचिन्त्यो
ह्यर्धं तथा भागमथो तृतीयम् ॥ २३
एवं ब्रुवाणां भगवान्स पत्नीं
प्रहृष्टरूपः क्षुभितामुवाच ।
न वेत्सि मां देवि कृशोदराङ्गि
किं नाम युक्तं वचनं मखेशे ॥ २४
अहं विजानामि विशालनेत्रे
ध्यानेन हीना न विदन्त्यसन्तः ।
तवाद्य मोहेन च सेन्द्रदेवा
लोकास्त्रयः सर्वत एव मूढाः ॥ २५
मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति
रथन्तरं सामगाश्चोपगान्ति ।
मां ब्राह्मणा ब्रह्मविदो यजन्ते
ममाध्वर्यवः कल्पयन्ते च भागम् २६

देव्युवाच ।

सुप्राकृतोऽपि पुरुषः सर्वस्त्रीजनसंसदि ।
स्तौति गर्वायते चापि स्वमात्मानं न संशयः

भगवानुवाच ।

नात्मानं स्तौमि देवेशि पश्य मे तनुमध्यमे ।
यं स्रक्ष्यामि वरारोहे यागार्थे वरवर्णिनि २८
इत्युक्त्वा भगवान्पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम्
सोऽसृजद्भगवान्वक्त्राद्भूतं घोरं प्रहर्षणम् ॥
तमुवाचाक्षिप मखं दक्षस्येति महेश्वरः ।
ततो वक्त्राद्विमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया ३०

रुद्रतुल्या गणा रौद्रा रुद्रवीर्यपराक्रमाः ।
ते निपेतुस्ततस्तूर्णं दक्षयज्ञविहिंसया ॥
भीमरूपा महाकायाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३६॥—शान्तिपर्व अ० २८४ पृ० ५५३

देव्या मन्युव्यपोहार्थं हतो दक्षस्य वै क्रतुः ।
मन्युना च महाभीमा महाकाली महेश्वरी ॥
आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्धं सहानुगा
देवस्यानुमतं मत्वा प्रणम्य शिरसा ततः ३२
आत्मनः सदृशः शौर्याद्बलरूपसमन्वितः ।
स एव भगवान् क्रोधः प्रतिरूपसमन्वितः ३३
अनन्तबलवीर्यश्च अनन्तबलपौरुषः ।
वीरभद्र इति ख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्यो रौम्यान्नाम गणेश्वरान्
रुद्रतुल्या गणा रौद्रा रुद्रवीर्यपराक्रमाः ॥३५
ते निपेतुस्ततस्तूर्णं दक्षयज्ञविहिंसया ।
भीमरूपा महाकायाः शतशोऽथ सहस्रशः ३६
ततः किलकिलाशब्दैराकाशं पूरयन्निव ।
तेन शब्देन महता त्रस्तास्तत्र दिवौकसः ३७
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा ।
मारुताश्चैव घूर्णन्ते चुक्षुभे वरुणालयः ॥३८
अग्नयो नैव दीप्यन्ते नैव दीप्यति भास्करः ।
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न चन्द्रमाः ३९
ऋषयो न प्रकाशन्ते न देवा न च मानुषाः ।
एवं तु तिमिरीभूते निर्दहन्त्यपमानिताः ४०
प्रहरन्त्यपरे घोरा यूपानुत्पाटयन्ति च ।
प्रमर्दन्ति तथा चान्ये विमर्दन्ति तथा परे ४१
आधावन्ति प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः
चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि दिव्यान्याभरणानि च
विशीर्यमाणा दृश्यन्ते तारा इव नभस्तले ।
दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः ॥
क्षीरनद्योऽथ दृश्यन्ते घृतपायसकर्दमाः ।
दधिमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करवालुकाः

षड्रसा निवहन्त्येता
गुडकुल्या मनोरमाः ।
उच्चावचानि मांसानि
भक्ष्याणि विविधानि च ॥ ४३
पानकानि च दिव्यानि
लेह्यचोष्याणि यानि च ।
भुञ्जते विविधैर्वक्त्रै-
र्विलुम्पन्त्याक्षिपन्ति च ॥ ४६

रुद्रकोपान्महाकायाः कालाग्निसदृशोपमाः ।
क्षोभयन्सुरसैन्यानि भीषयन्तः समन्ततः ४७
क्रीडन्ति विविधाकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः
रुद्रक्रोधात्प्रयत्नेन सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥ ४८
तं यज्ञमदहच्छीघ्रं रुद्रकर्मा समन्ततः ।
चकार भैरवं नादं सर्वभूतभयंकरम् ॥ ४९
छित्वा शिरो वै यज्ञस्य ननाद च मुमोद च
ततो ब्रह्मादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ५०
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे कथ्यतां को भवानिति

वीरभद्र उवाच ।

नाहं रुद्रो न वा देवी नैव भोक्तुमिहागतः
देव्या मन्युकृतं मत्वा क्रुद्धः सर्वात्मकः प्रभुः
द्रष्टुं वा नैव विप्रेन्द्रान्नैव कौतूहलेन वा ५२
तव यज्ञविघातार्थं संप्राप्तं विद्धि मामिह ।
वीरभद्र इति ख्यातो रुद्रकोपाद्विनिःसृतः ॥

भद्रकालीति विख्याता
देव्याः कोपाद्विनिःसृता ।
प्रेषितौ देवदेवेन
यज्ञान्तिकमिहागतौ ॥ ५४

शरणं गच्छ विप्रेन्द्र देवदेवमुमापतिम् ।
वरं क्रोधोऽपि देवस्य वरदानं न चान्यतः ॥
वीरभद्रवचः श्रुत्वा दक्षो धर्मभृतां वरः ।
तोषयामास स्तोत्रेण प्रणिपत्य महेश्वरम् ५६
प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥
( दक्षप्रजापतेर्यज्ञे द्रव्यैस्तैः सुसमाहितैः ।
आहूता देवताः सर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ५८
देवो नाहूयते तत्र विश्वकर्मा महेश्वरः ।
तत्र क्रुद्धा महादेवी गणांस्तत्र व्यसर्जयत् ५९
प्रदीप्तयज्ञवाटे तु विद्रुतेषु द्विजातिषु ।
तारागणमनुप्राप्ते रौद्रे दीप्ते महात्मनि ॥ ६०
शूलनिर्भिन्नहृदयैः कूजद्भिः परिचारकैः ।
निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैरितस्ततः ॥ ६१
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृद्धिभिः ।
पक्षवातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ६२
यक्षगन्धर्वसंघैश्च पिशाचोरगराक्षसैः ) ।
प्राणापानौ संनिरुध्य *वक्त्रस्थानेन यत्नतः ॥
विचार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् ।
सहसा देवदेवेशो ह्यग्निकुण्डात्समुत्थितः ६४
बिभ्रत्सूर्यसहस्रस्य तेजः संवर्तकोपमः ।
स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते
श्राविते च मखाध्याये देवानां गुरुणा ततः ।
तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः ॥
भीतशंकितवित्रस्तः सबाष्पवदनेक्षणः ।
यदि प्रसन्नो भगवान्यदि चाहं भवत्प्रियः ॥

* पद्मासनापरपर्यायेण योगासनेनेत्यर्थः

यदि वाऽहमनुग्राह्यो यदि वा वरदो मम ।
यद्दग्धं भक्षितं पीतमशितं यच्च नाशितम् ६८
चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसंभारमीदृशम् ।
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन सुसञ्चितम् ।
तन्न मिथ्याभवेन्मह्यं वरमेतमहं वृणे ॥ ६९
तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः ।
धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्र्यक्षो देवः प्रजापतिः
जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम्
नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ७१

युधिष्ठिर उवाच ।
यैर्नामधेयैः स्तुतवान्दक्षो देवं प्रजापतिः ।
वक्तुमर्हसि मे तात श्रोतुं श्रद्धा ममानघ ॥ ७२
भीष्म उवाच ।
श्रूयतां देवदेवस्य नामान्यद्भुतकर्मणः ।
गूढव्रतस्य गुह्यानि प्रकाशानि च भारत ७३
नमस्ते देवदेवेश देवारिबलसूदन ।
देवेन्द्रबलविष्टंभ देवदानवपूजित ॥ ७४
सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय ।
सर्वतःपाणिपादान्त सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥

**यैर्नामधेयैरिति**। उत्तरार्धे तानीति शेषः॥७२॥ नन्विह नाम्नामष्टसहस्रेणेत्यष्टाधिकं सहस्रं नाम्नां वक्तव्यत्वेन प्रतिज्ञातम् । तत्र नामपाठे किञ्चिदधिकानि षट्शतनामान्युपलभ्यन्ते न च स्तुतिपदेभ्यो विपरिणामेन नामान्युन्नेतुं शक्यन्ते । अन्यशब्दस्यान्यार्थत्वकल्पने प्रमाणाभावात् । न च तावतापि संख्यापूर्तिः संभवति । तस्माद्गलित इह नामसमाम्नाय इत्यव्याख्येयमेतत्सहस्रनामस्तोत्रं नापि पठनीयम् न्यूनत्वेन वाग्वज्रत्वात् । वाग्वज्रो हि मन्त्रोऽध्येतारं नाशयति। तथा चोक्तं शिक्षायां-'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजामानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ' इति । इन्द्रं हन्तुकामेन त्वष्ट्रा पुत्रार्थिना 'स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्व'इति मन्त्रेण होमं कुर्वता इन्द्रपदं स्वेष्टसिद्धयेऽन्तोदात्तं प्रयोज्यं तच्च न प्रयुक्तं प्रत्युत आद्युदात्तमेव तत्पठितमिति इन्द्र एव तत्पुत्रस्य नाशको जात इत्युपाख्यायते त्वष्टा हतपुत्र इत्यनुवाके-तस्मादस्य स्तवस्य मोक्षमन्त्रत्वात् वर्णतश्चात्यन्तं हीनत्वादिष्टार्थप्रदत्वं युज्यतेऽपि तु पाठकानर्थकरत्वमेवेति चेत् उच्यते । इदमिह जाबालाः समामनन्ति-'अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किं जप्येनामृतत्वं ब्रूहीति स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरुद्रियेणेत्येतानि ह वा अमृतस्य नामधेयान्येतैर्ह वा अमृतो भवति' इति। अत्र नामजपस्यामृतसाधनत्वं गम्यते । तेषां च नाम्नां न्यूनाधिकभावेनानेकासु शाखासु पठितानां गुणोपसंहारन्यायेनैकत्रोपसंहारेण भवितव्यम्। तच्चास्मदादीनामशक्यमिति भगवान्बादरायणस्तैत्तिरीयकवाजसनेयकादिप्रसिद्धशाखास्वविद्यमानानां नाम्नामुपसंहारमिह कृतवान् । यथा हि आपस्तम्बादिः कल्पकारः स्वपरशाखास्थान्यङ्गान्युपदिश्य आग्नेयमष्टाकपालमिति यथा समाम्नातमिति मध्ये प्रधानं सिद्धवन्निर्दिश्य पुनरुपरिष्टात्त्वन्यान्यङ्गान्युपदिशति तद्वदिहापि । नमस्ते देवदेवेशेत्यादिना कानिचिन्नामान्युपदिश्य 'त्रिसौपर्णं तथा ब्रह्मयजुषां शतरुद्रियम्'इति त्रिसुपर्णशतरुद्रिये नाममालायां सिद्धवन्निर्दिश्य शेषमपि नामधेयगणं पठति। तथा च यथाप्रतिज्ञातमष्टोत्तरसहस्रनाम्नां संख्या पूर्यते नान्यथा । तदिदमभिप्रेत्योक्तम्-**गुह्यानीति** । गुह्यानि अश्रद्धाद्युपहतेषु अप्रकाश्यानि ॥ ७३ ॥ आदिपुरुषाय नमः। **नमस्ते देवेति** । ब्रह्मविद्याधिकारादध्यात्मपरतयैवैतानि व्याख्येयानि। तथाहि-हे देव जगन्निर्माणक्रीडापर ते तुभ्यं नमः ते इति युष्मदर्थस्य द्रष्टव्यस्य प्रमेयस्य निर्देशः । देवेश देवा इन्द्रियाणि ईशो बुद्धिः 'पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः 'इति स्मृतेः एतदुभयात्मक एतेन प्रमाणप्रमात्रो निर्देशः कृतः। एवं नामत्रयेण ज्ञेयज्ञानज्ञात्रात्मकत्वं देवस्योक्तम्। तत्प्राप्त्युपायं त्रयेणाह-**देवारीति।** देवाः शमाद्या इन्द्रियवृत्तयस्तेषामरयोऽसुराः कामादयस्तेषां बलस्य सूदन तथा च शमकामादिषु देवासुरशब्दयोः प्रयोगो दृष्टः 'द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च' इति देवानामिन्द्रियाणां इन्द्रो बुद्धिस्तस्या बलं विषयप्रावण्यं तद्विशेषेण स्तभ्नातीति देवेन्द्रबलविष्टंभ अत एव देवैरिन्द्राद्यैर्दानवैर्बाणाद्यैश्च पूजित आदरनैरन्तर्यसत्कारसेवित। एवं च कामादिजयो धीनिरोधस्तत्रादरादिश्च मेयाद्यात्मकस्य वस्तुनः प्रापक इत्युक्तं भवति७४ योगे प्रथमं प्राप्यायाः साम्बमूर्तेः स्वरूपमाह चतुर्भिः । सहस्रमक्षाणि युगपत् सर्वविषयप्रकाशकानीन्द्रियाणि यस्य **सर्वज्ञ**इत्यर्थः। अत एव विरूपाणि अस्मदादीन्द्रियेभ्यो विलक्षणानि व्यवहितादिग्राहकाणीन्द्रियाणि यस्य । त्र्यक्ष त्रीणि सोमसूर्याग्न्याख्यानि अक्षाणि यस्य,यक्षाधिपः कुबेरः स प्रियो यस्य । अथामूर्तज्ञेयं स्वरूपमाह-**सर्वत इति** चतुर्भिः । भगवद्गीतास्वपि ' ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि ' इति प्रतिज्ञाय ' सर्वतःपाणिपादं तत्'इत्यादिना इदमेव स्वरूपमुक्तम् । सर्वतः पाणयः पादाः अन्तः सन्निधिश्च यस्य स सर्वतःपाणिपादान्तः एवमुत्तरत्र । तथा च श्रुतिः-

'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

**सर्वतः श्रुतिमँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।**
**शंकुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ॥ ७६**
**गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते ।**
**शतोदर शतावर्त शतजिह्व नमोऽस्तु ते ७७**
**गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।**
**ब्रह्माणं त्वा शतक्रतुमूर्ध्वं खमिव मेनिरे ७८**
**मूर्तौ हि ते महामूर्ते समुद्राम्बरसंनिभ ।**
**सर्वा वै देवता ह्यस्मिन्गावो गोष्ठ इवासते ॥**
**भवच्छरीरे पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम् ।**
**आदित्यमथ वै विष्णुं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्**
**भगवान्कारणं कार्यं क्रिया करणमेव च ।**
**असतश्च सतश्चैव तथैव प्रभवाप्ययौ ॥ ८१**
**नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।**
**पशूनां पतये नित्यं नमोऽस्त्वन्धकघातिने॥**
**त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरपाणिने ।**
**त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ८३**
**नमश्चण्डाय कुण्डाय अण्डायाण्डधराय च ।**
**दण्डिने समकर्णाय दण्डिमुण्डाय वै नमः ॥**
**नमोऽर्ध्वदंष्ट्रकेशाय शुक्लायावतताय च ।**
**विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः ८५**
**नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।**
**सूर्याय सूर्यमालाय सूर्यध्वजपताकिने ॥ ८६**
**नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ।**
**शत्रुं दमाय दण्डाय पर्णचीरपटाय च ॥ ८७**
**नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ।**
**हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः ॥ ८८**
**नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः ।**
**सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने ॥ ८९**
**नमो होत्रेऽथ मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने ।**
**नमो नाभाय नाभ्याय नमः कटकटाय च ॥**
**नमोऽस्तु कृशनासाय कृशाङ्गाय कृशाय च ।**
**संहृष्टाय विहृष्टाय नमः किलकिलाय च ९१**

---

संबाहुभ्यां धमति संपतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः' इति ॥

धमति वशीकरोति । सर्वेषु संबोधनपदेषु नमस्ते इत्यनुषञ्जनीयम् । लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसीत्यत्र विपरिणामेन लोके सर्वमावृत्य तिष्ठन्निति सम्बोधनमूहनीयम्। सार्धः श्लोकः ८ ॥ ७५ ॥ शंकुकर्णादयः सप्त ईश्वरगणाः सर्वाभिन्नत्वादीशस्य तदात्मत्वमुच्यते ७ शतोदरेत्यर्धो वैश्वरूप्यप्रथनार्थः ३ ॥ ७६ ॥ अस्यैव त्रैवर्णिकोपास्यत्वे श्रुतिं पठति गायन्तीति गायत्रिणस्त्रिसंध्यं गायत्रीजपपराः त्वामेव गायंति गायत्रीप्रतिपाद्यस्त्वमेवासीत्यर्थः । अर्किणः अर्कोपासनपराः त्वां अर्कं सवितारं मण्डलाधिष्ठातारमर्चन्ति उपतिष्ठन्ते संध्यासु ब्रह्माणं ब्रह्मविदं चतुर्मुखम्। शतक्रतुं देवेन्द्रम्। ऊर्ध्वं सर्वोपाधिभ्य उद्गतम् खमिव आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः असंगश्च तादृशं मेनिरे मुनयः अत्रापि गायत्रिगेय अर्क अर्च्यर्च्य ब्रह्मन् शतक्रतो ऊर्ध्व खतुल्यत्वेन मत इति नामान्युन्नेयानि ७ ॥ ७८ ॥ मूर्तौ अष्टरूपायां भूम्यम्बुवन्हिवाय्वाकाशसूर्यचन्द्रयजमानात्मिकायां सर्वदेवतामूर्ते इत्यूह्यं नाम ॥ ७९ ॥ हे भवन् हे सोमशरीरेत्यादीनि अष्टौ नामान्यूह्यानि ८ ॥ ८० ॥ भगवन्नित्यादीनि पूर्वार्धे पञ्च सदसत्प्रभवाप्ययेत्युत्तरार्धे एकम् ६ ॥ ८१ ॥ भवत्यस्मादिति भवः शृणाति हिनस्तीति शर्वः रु पापं द्रावयतीति रुद्रः पशूनां ब्रह्मादिस्थावरान्तानां जीवानाम् ६ ॥ ८२ ॥ नानारूपत्वेन स्तौति-**त्रिजटायेत्यादिना।** त्रिशूलवरेण पणितुं व्यवहर्तुं शीलमस्य तस्मै त्रिशूलवरपाणिने त्रीणि शास्त्राचार्यध्यानानि अम्बकानि नेत्राणीव गमकानि बोधकानि यस्य स त्र्यम्बकः । त्रीणि सोमसूर्याग्न्याख्यानि नेत्राणि यस्य ६ ॥ ८३ ॥ चंडः सर्वसूदनक्षमः कुण्डः अमत्रवत्स्वस्मिन्सर्वं धारयितुं क्षमः । अण्डं ब्रह्माण्डं दण्डिने दंडधराय शासित्रे इत्यर्थः । समश्चासौ कर्णश्चेति समकर्णः ऋजुवक्रश्च दण्डी चासौ मुण्डः चेति दण्डिमुण्डः परिव्राजकः ७ ॥८४॥ ऊर्ध्वाः उच्चा दंष्ट्राः केशाश्च यस्य । शुक्लाय शुद्धाय असंगिने तथापि अवतताय अवसन्नेन बाध्यन रूपेण जगदात्मनांतताय विस्तृताय अत एव विलोहिताय रजोगुणिने धूम्राय तमोगुणिने नीलग्रीवाय जगद्रक्षणार्थं कण्ठे विषधारित्वेन सात्त्विकाय ६ ॥ ८५ ॥ नास्ति प्रतिरूपः सदृशो यस्य विविधानि रूपाणि यस्य शिवाय परमकल्याणाय तुर्यब्रह्मणे । सूर्याय सूर्यमंडलरूपाय सूर्यमालाय तस्मिन्मालते शोभते सूर्यमंडलान्तर्वर्तिने परमेश्वराय सूर्यवत्प्रख्याः ध्वजाः पताकाश्च यस्य ६॥८६॥ प्रमथाः शिवगणाः वृषस्येव स्कन्धो यस्य पर्णानि भूर्जत्वचः चीराणि वल्कलानि पटा यस्य शबररूपिणस्तापसस्य वा ६ ॥ ८७ ॥ नाभाय नाभौ जगदस्यास्तीति नाभः मत्वर्थीयोऽच् यस्येति चेतीकारलोपः नाभ्याय नाभिमर्हतीति नाभ्यः नाभिनभं चेति यत्प्रत्यये नभादेशः नाभिस्थानीयाय अस्य अरनेमिस्थाने कारणकार्यप्रपञ्चौ। तथा च श्रुतिः—'तद्यथारेषु नेमिरर्पितो नाभावरा अर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वं समर्पितम् ।' प्राणे ब्रह्मणि सर्वं कार्यं कारणं च कटानामावरकाणामपि कटाय आवरकाय नामद्वयेनान्तर्बहिर्व्याप्तिर्दर्शिता १ ॥ ९० ॥ किलकिलाय शब्दविशेषरूपाय ६ ॥ ९१ ॥

नमोऽस्तु शयमानाय शयितायोत्थिताय च।
स्थिताय धावमानाय मुण्डाय जटिलाय च॥
नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रवादिने।
नाद्योपहारलुब्धाय गीतवादित्रशालिने ९३
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च।
कालनाथाय कल्याय क्षयायोपक्षयाय च९४
भीमदुन्दुभिहासाय भीमव्रतधराय च।
उग्राय च नमो नित्यं नमोऽस्तु दशबाहवे ॥
नमः कपालहस्ताय चितिभस्मप्रियाय च।
विभीषणाय भीष्माय भीमव्रतधराय च ९६
नमो विकृतवक्त्राय खड्गजिह्वाय दंष्ट्रिणे।
पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च९७
नमो वृषाय वृष्याय गोवृषाय वृषाय च।
कटंकटाय दण्डाय नमः पचपचाय च ॥ ९८
नमः सर्ववरिष्ठाय वराय वरदाय च।
वरमाल्यगन्धवस्त्राय वरातिवरदे नमः॥९९
नमो रक्तविरक्ताय भावनायाक्षमालिने।
संभिन्नाय विभिन्नाय छायायातपनाय च ॥
अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च
एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्ष्णे नमोऽस्तु ते ।
रुद्राय क्षुद्रलुब्धाय संविभागप्रियाय च ॥ २
पञ्चालाय सिताङ्गाय नमः शमशमाय च।
नमश्चण्डिकघण्टाय घण्टायाघण्टघण्टिने
सहस्राध्मातघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च।
प्राणघण्टाय गन्धाय नमः कलकलाय च ४
हूंहूंहूंकारपाराय हूंहूंकारप्रियाय च।
नमः शमशमे नित्यं गिरिवृक्षालयाय च ॥ ५
गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च।
नमो यज्ञाय यजिने हुताय प्रहुताय च ॥ ६

सर्वक्रियाकर्तृत्वेन स्तौति—**नमोऽस्त्वित्यादिना** ७ ॥ ९२ ॥ नद्यां भवानि नाद्यानि कमलानि तान्येवो-पहारस्तत्र लुब्धाय। 'हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोः' इत्येतदनेन सूचितम् ४ ॥ ९३ ॥ ज्येष्ठो वयसाऽधिकः श्रेष्ठो गुणाधिकः। बलो बलाभिमानिनी देवता। इन्द्रः तस्य प्रमथनं पराजयस्तत्कर्त्रे । कालस्यापि नाथाय नियन्त्रे। कल्याय समर्थाय क्षयाय महाप्रलयाय उपक्षयाय अवान्तरप्रलयाय ७ ॥ ९४ ॥ भीमं व्रतं अन-शनादि तस्य धराय धर्त्रे ४ ॥ ९५ ॥ विभीषणाय निर्भ-याय। भीष्माय भयंकराय। हे भमि व्रतैः शमादिभिः धरणं आकल्पान्तं यस्य तस्मै व्रतधराय ६ ॥ ९६ ॥ पक्वं यज्ञे आमं अपक्वं श्मशाने उभयविधमांसलुब्धाय ५ ॥ ९७ ॥ वृषाय वृष्टिकर्त्रे वृष्याय वृषो धर्मस्तत्र हिताय धर्मवृद्धिकर्त्रे गोवृषाय नन्दिरूपाय वृषाय धर्माय कटंकटाय कटीगतौ नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वम्। मुमागम आर्षः। वाय्वादि-रूपेण नित्यं गमनशीलायेत्यर्थः। कालाय वा दण्डाय नि-यन्त्रे। पचपचाय नित्यं भूतानां पाककर्त्रे कटिपच्योः पचाद्यच् ७ ॥ ९८ ॥ गौर्वरः अतिवरो धेनुः ईप्सितमात्र-दानं **वरः**। ततोऽप्याधिकदान**मतिवरः**। वरदे वरदाय क्विबन्तस्यातो*धातोरित्यालोपे रूपम् ५ ॥ ९९ ॥ रक्तो रागवान् विरक्तस्तदन्यस्तदुभयात्मकाय भावनाय ध्यात्रे सम्भिन्नाय कारणरूपेण सर्वतोऽनुस्यूताय विभिन्नाय कार्य-रूपेण व्यावृत्ताय छायाय छायावते गृहतर्वादिरूपाय छाया-शब्दादर्श आद्यच्। आतपनः आतपः ७ ॥ १०० ॥ ५

॥१०१॥ एकपात् एकपदे ६ ॥१०२॥ पञ्चालाय विश्व-कर्मणे स्वर्णकारलोहकारतक्षादिकर्मकर्त्रे इत्यर्थः। शमशमाय नित्यं शाम्यतीति पचपचवत्। चण्डिका शत्रुभयङ्करी घण्टा यस्य तस्मै चण्डिकघण्टाय घण्टाय घण्टानादरूपाय अघण्ट-घण्टिने नादहेत्वभावेऽपि नादवते। अनाहतध्वनिरूपा-येत्यर्थः ६ ॥१०३॥ पुंसां सहस्रैर्युगपत् आध्माता एकाऽपि सती प्रतिबिम्बार्कवत् प्रत्येकं परिसमाप्ता घण्टाऽस्य योगबल-वतः स तथा । तादृशघण्टामालाप्रियाय प्राणः पञ्चवृत्ति-र्वायुः स एव घण्टावत् शब्दहेतुर्यस्य तस्मै प्राणघण्टाय गन्धः प्रसिद्धः कलकलः ऊष्मा कोलाहलो वा ५ ॥ १०४ ॥ हूंकारः क्रोधवर्णस्तस्य परोऽन्तः शमः हूंकारो याज्ञिकप्रसिद्धः। 'हूं इति हिंकृत्य भूर्भुवःस्वरोमिति जपत्येषोऽभिहिङ्कारः' इति आश्वलायनायुक्तोऽभिहिङ्कारस्तस्य पारः भूरादिलोकेभ्यः परं शान्तं ब्रह्म। हूंहकार आकाशः ऊकारः षष्ठी शिवमूर्तिः सूर्यस्ताभ्यां नामरूपात्मकः प्रपञ्चो लक्ष्यते। मकारस्तस्य कारणमीश्वरस्तस्य पारस्तुरीयं शान्तं ब्रह्म तादिदमुक्तं **हूंहूं-हूंकारपारायेति। हूंहूंकारप्रियायेति**। क्रोधवर्ज-हूंकारद्वयप्रियाय शमशम शान्तो भव शान्तो भवेत्याचष्टे शम-शमेति शाम्यशाम्येत्यपेक्षिते भौवादिकत्वमार्षम्। शम-शमतीति शमशम्। तस्मै शमशमे आचारक्विबन्तात्कर्तरि क्विप् ४ ॥ १०५ ॥ गर्भमांसं हृदयजिह्वावक्षआद्यवदानगतं मांसं तत्र सृगालवल्लुब्धाय। यद्वा गर्भमांसं वपा तस्यां लुब्धाय। अमृताहुतिर्वपाहुतिरिति ब्राह्मणात्। तारकाय यज्ञभोक्तृत्वेन पापमोचकाय तराय तरत्यनेनेतिव्युत्पत्त्या यज्ञोपकारणाय यजिने यजमानाय हुताय ब्राह्मणमुखेन तृप्ताय प्रहुताय अभिमुखेन तृप्ताय ७ ॥ १०६ ॥

* बाहुलकादिति बोध्यम्।

यज्ञवाहाय दान्ताय तप्यायातपनाय च ।
नमस्तटाय तट्याय तटानां पतये नमः ॥ ७
अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजे तथा ।
नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ॥ ८
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च ।
नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च ॥ ९
बालानुचरगोप्त्राय बालक्रीडनकाय च ।
नमो वृद्धाय लुब्धाय क्षुब्धाय क्षोभणाय च
तरङ्गाङ्कितकेशाय मुञ्जकेशाय वै नमः ।
नमः षट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरताय च ॥ ११
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथक्कर्मनिवर्तिने ।
नमो घुष्याय घोषाय नमः कलकलाय च१२
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च ।
प्राणभग्नाय दण्डाय स्फोटनाय कृशाय च ॥
धर्मकामार्थमोक्षाणां कथनीयकथाय च ।
सांख्याय सांख्यमुख्याय सांख्ययोगप्रवर्तिने
नमो रथ्यविरथ्याय चतुष्पथरथाय च ।
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने१५
ईशान वज्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ।
त्र्यम्बकाम्बिकनाथाय व्यक्ताव्यक्त नमोस्तु ते
काम कामद कामघ्न तृप्तातृप्तविचारिणे ।
सर्व सर्वद सर्वघ्न सन्ध्याराग नमोऽस्तु ते१७
महामेघचयप्रख्य महाकाल नमोऽस्तु ते ।
स्थूलदीर्णाङ्गजटिले वल्कलाजिनधारिणे १८
दीप्तसूर्याग्निजटिले वल्कलाजिनवाससे ।
सहस्रसूर्यप्रतिम तपोनित्य नमोऽस्तु ते ॥ १९
उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज ।
चन्द्रावर्त युगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते॥२०
त्वमन्नमत्ता भोक्ता च अन्नदोऽन्नभुगेव च ।
अन्नस्रष्टा च पक्ता च पक्वभुक्पवनोऽनलः२१
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्च तथोद्भिजाः।
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ १२२
चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता तथैव च ।
त्वामाहुर्ब्रह्मविदुषो ब्रह्म ब्रह्मविदां वर ॥ २३
मनसः परमा योनिः खं वायुर्ज्योतिषां निधिः
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः
हायिहायिहुवाहायिहावुहायि तथाऽसकृत् ।
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ सामगा ब्रह्मवादिनः॥
यजुर्मयो ऋङ्मयश्च त्वमाहुतिमयस्तथा ।
पठ्यसे स्तुतिभिश्चैव वेदोपनिषदां गणैः॥ २६
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः
शूद्रा वर्णावराश्च ये ।
त्वमेव मेघसंघाश्च
विद्युत्स्तनितगर्जितः ॥ २७
संवत्सरस्त्वमृतवो मासो मासार्धमेव च ।
युगं निमेषाः काष्ठास्त्वं नक्षत्राणि ग्रहाः कलाः

यज्ञवाहाय ऋत्विगादिरूपेण यज्ञनिर्वोढ्रे दान्ताय जितेन्द्रियाय तप्याय सत्त्वमयाय आतपनाय रजोमयाय तप्यं सत्त्वं तापकं रज इति सांख्यप्रसिद्धेः । तट्याय तटाहंनद्यादिरूपाय तटानां तटवतीनां नदीनां पतये समुद्राय ७ ॥१०७॥ अन्नादाय २००॥४॥१०८॥४॥१०९॥ बालाश्च ते अनुचराश्च तान् गोपायतीति बालानुचरगोप्ता तस्मै । गुपेरौणादिकस्तन् । एतेन चाम्भिपानादिश्रीकृष्णलीला सूचिता ६ ॥११० त्रीणि कर्माणि यजनाध्ययनदानानि४॥१११॥ कलकलः कोलाहलः ४ ॥११२॥ प्राणभग्नाय जितश्वासाय वाऽहिताम्न्यादिश्चिति विशेष्यस्यैव पूर्वनिपातः । दण्ड आयुधम् ६ ॥११३॥ सांख्याय कपिलाय निरीश्वरवादिने सांख्यमुख्याय सेश्वरपातञ्जलाय सांख्यं वेदान्तविचारः । योगो निदिध्यासनं अनुग्रहद्वारा एतयोः प्रवर्तकाय ४ ॥११४॥ रथः तदभावो विरथः तदुभयार्हाय रथ्यविरथ्याय चतुर्षु जलाग्निवाय्वाकाशेषु पन्था यस्य रथस्य तद्वते रथायेति पाठे प्रसिद्धोऽर्थः ४ ॥११५॥ ईशान हे ईशितः । वज्रसङ्घातवत्कठिनशरीर हरिकेश पिङ्गकेश त्र्यम्बका त्रिनेत्रा चासौ अम्बिका च तस्या नाथ ऱ्हस्वत्वमार्षम् । व्यक्तकार्यरूप अव्यक्तकारणरूप ६ ॥११६॥ कामेति द्वौ ८ ॥११७॥ हे स्थूल हे जीर्णाङ्ग जटिलवदाचरति जटिल् तस्मै जटिले ६ ॥११८॥ दीप्तौ यौ सूर्याग्नी तद्वद्दीप्यमान जटावत् ४ ॥११९॥ हे उन्मादन व्यामोहक शतं आवर्ता यस्मिन्गङ्गातोये तेनार्द्रमूर्धज चन्द्रं आवर्तयति पुनःपुनरिति चन्द्रावर्तेत्यर्धः ५ ॥ १२०॥ **त्वमिति** । अन्नभुक् अन्नपालकः ९ ॥ १२१ ॥ **जरेति** । जरायुजाण्डजा इति नामद्वयम् । सन्धिरार्षः । हे देव हे देवेश भूतग्रामश्चतुर्विध इत्येकं नाम ॥७॥१२२॥ **चरेति** । ब्रह्मेति ब्रह्मविदां वरेति च नामद्वयम् ॥ ४ ॥ १२३ ॥ **मनस इति** ६ ॥ १२४ ॥ हायि हायीति सामगीतिपुराणार्थाः **स्तोभाः** । ते प्रत्येकं चतुरक्षरात्रयः । सुरश्रेष्ठेत्येकं ब्रह्मवादिगेयेति पञ्चमुन्नेयम् ५ ॥ १२५ ॥ **यजुरिति**। वेदोपनिषद्गणस्तुतिपठनीयेति चतुर्थम्४।३००॥ ॥ १२६ ॥ वर्णावराः संकरजाः विद्युत् स्तनितं सनिर्घोषो मेघशब्दः गर्जितं निर्घोषिकः सः नव नामानि ९ ॥१२७॥ १० ॥ १२८ ॥

वृक्षाणां ककुदोऽसि त्वं
गिरीणां शिखराणि च ।
व्याघ्रो मृगाणां पततां
तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ॥ १२९
क्षीरोदो ह्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च ।
वज्रः प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च १३०
त्वमेव द्वेष इच्छा च रागो मोहः क्षमाक्षमे ।
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ
त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी झर्झरी तथा
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता त्वं नेता मन्ता पिता मतः
दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च ।
गङ्गा समुद्राः सरितः पल्वलानि सरांसि च
लता वल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ।
द्रव्यकर्मसमारम्भः कालः पुष्पफलप्रदः॥ १३४
आदिश्चान्तश्च देवानां गायत्र्योंकार एव च
हरितो रोहितो नीलः कृष्णो रक्तस्तथारुणः
कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ॥१३५
अवर्णश्च सुवर्णश्च वर्णकारो घनोपमः ।
सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥ १३६
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः ।
उपप्लवश्चित्रभानुः स्वर्भानुर्भानुरेव च ॥ १३७
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः ।
त्रिसौपर्णं तथा ब्रह्म यजुषां शतरुद्रियम् १३८
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
गिरिको हिंडुको वृक्षो जीवः पुद्गल एव च
प्राणः सत्त्वं रजश्चैव तमश्चाप्रमदस्तथा ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च
उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुतं जृंभितमेव च ।
लोहितान्तर्गता दृष्टिर्महावक्त्रो महोदरः ४१
सूचीरोमा हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ।
गीतवादित्रतत्त्वज्ञो गीतवादनकप्रियः ॥ ४२

---

**वृक्षाणामिति** । ककुदो मुख्याः न्यग्रोधाश्वत्थादयः पततां पक्षिणां द्वाभ्यामुपासनार्थे विभूतय उक्ताः ५ ॥ १२९ ॥ ४ ॥ १३० ॥ त्वमिति द्वौ झर्झरो वाद्यविशेषस्तद्वान् मतो ज्ञातः शास्त्रकृद्भिरिति शेषः २४ ॥ १३१ ॥ दशलक्षणसंयुक्तो धर्म इत्येकम् । लक्षणानि च —'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा **यमाः**' इति 'शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि **नियमाः**' इति च योगोक्तानि । क्षमासत्यादीनि मनूक्तानि वा ८ ॥ १३३ ॥ तृणौषध्य इति द्वे । मृगपक्षिण इति द्वे । द्रव्यकर्मणां समारंभ इत्येकं कालः पुष्पफलप्रद इत्येकम् ९ ॥ १३४ ॥ आदिश्चेत्यर्धः ४ हरितादिर्दशविधो वर्णः १० ॥ १३५ ॥ ६ ॥ १३६ ॥ त्वमिति उपप्लव उपरागः ९ ॥१३७॥ होत्रमित्यर्धे हूयतेऽस्मिन्निति होत्रं वह्निः होता यजमानः प्रभुर्हुतस्य फलद ईश्वरः ५ त्रिसौपर्णं त्रिसौपर्णे विदितं नामजातं शतरुद्रसम्बन्धि नामजातं यस्मिंस्तत् शतरुद्रियम् । तच्च ब्रह्म वेदरूपं तेन द्रोणपर्वस्थशतरुद्रियस्य शिवो महेश्वरः शंभुरिति नामाष्टोत्तरशतादेश्च व्यावृत्तिः । वेदान्तरेऽपि शतं रुद्रनामानि संभाव्यन्ते तद्व्यावृत्तये-**यजुषामिति** । यजुषां शतरुद्रियमित्येतावत्युक्ते द्रोणपर्वस्थस्यापि शतरुद्रियस्य मूलमूलिभावेन यजुःसंबन्धित्वसंभवाद्ब्रह्मेत्युक्तम् । तस्य तथात्वेऽपि साक्षाद्वेदत्वाभावात् । ततश्च हुतं चैव तथा प्रभुरित्यन्तानि अष्टाशीत्यधिकशतत्रयं नाम्नां भवति । तथा पवित्रं च पवित्राणामित्यादीनि निमेषोन्मेषकर्मेत्यन्तानि अष्टादशाधिकशतद्वयम् । तेन षडधिकषट्शतानि नाम्नामिहाम्नातानि । अष्टाधिकसहस्रस्य शेषं द्व्यधिकं नाम्नां शतचतुष्टयं त्रिसुपर्णशतरुद्रियाभ्यां पूरणीयम् । तथाहि । त्रिसुपर्णत्रये चतुर्दश मन्त्राः १४ सर्वशाखागतानां नाम्नामुपसंहार्यत्वात् । खिलसहितेषु नमकानुवाकेषु प्रथमे षोडशमन्त्रा एकादश नामानि चेति सप्तविंशतिः २७ द्वितीयेऽष्टाचत्वारिंशत् ४८ तृतीयचतुर्थयोः षट्सप्ततिः ७६ ततस्त्रिके द्विनवतिः ९२ ततो द्विके त्र्यशीति ८३ रितिनामान्येवान्त्ययोः चतुर्विंशतिः २४ मंत्राः । शेषं खिले १७ सप्तदश मंत्राः न ब्रह्मा न च गोविंद इत्यादयो मूलश्लोकाश्चैकविंशतिः २१ सर्वेषां संकलने द्व्यधिकं शतचतुष्टयं एतत्पूर्वोक्तषडधिकषट्शतयुतमष्टाधिकं सहस्रं भवति । तथा चामृतत्वकामस्यायं नामसमाम्नायस्त्रिसुपर्णत्रयशतरुद्रियाभ्यां समुच्चित एव श्रेयस्करो न त्वन्यथा । न्यूनत्वेन वाग्वज्रत्वापत्तेरिति शिवम् ॥१३८॥ **पवित्रमिति** । गिरिं गिरिवदचेतनं देहं कायति शब्दयतीति गिरिकः आतोऽनुपसर्गे क इति कः । अचेतनमपि देहादि चेतनं करोतीत्यर्थः । अचेतयदचितो देवो अयं इति मन्त्रलिंगं च । हिंडुकः हिंडते गत्यागतं कुरुते इति हिंडुकः। हिडिगतावित्यस्माद्बाहुलकादुकञ् चिदाभास इत्यर्थः । वृक्षः वृश्च्यते छेद्यत इति वृक्षः। उपाधिविशिष्टेन रूपेण नाशवान्। जीवः शुद्धस्वरूपेण जीवत्येव न नश्यतीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः- 'विज्ञानघन एवैतेभ्यः भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति' इति 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा'इति च पुद्गलः पूयते गलति चेति पुद्गलो देहः ७ ॥ १३९ ॥ अप्रमदः प्रमदया स्त्रिया हीनः ऊर्ध्वरेता इत्यर्थः १० ॥ १४० ॥ लोहिता अन्तर्गता च दृष्टिरस्य पुंवद्भावाभाव आर्षः ७ ॥ १४१ ॥ चलाचलः अत्यन्तं चलः 'तद्धावतोऽन्यानत्येति'इति श्रुतेः ६ ॥१४२॥

मत्स्यो जलचरो जाल्योऽ-
कलः केलिकलः कलिः।
अकालश्चातिकालश्च
दुष्कालः काल एव च ॥ ४३
मृत्युः क्षुरश्च कृत्यश्च पक्षो पक्षक्षयङ्करः।
मेघकालो महादंष्ट्रः संवर्तकबलाहकः ॥ ४४
घण्टोऽघण्टो घटी घण्टी
चरुचेली मिलीमिली।
ब्रह्मकायिकमग्नीनां
दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक् ॥ ४५
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्तकः।
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च यः ॥ ४६
सदा चाक्षप्रियो धूर्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरिशो गिरिकप्रियः॥
शिल्पिकः शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्तकः
भगनेत्राङ्कुशश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ४८
स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कारो नमो नमः
गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकस्तारकामयः ॥ ४९
धाता विधाता संधाता
विधाता धारणोऽधरः।
ब्रह्मा तपश्च सत्यं च
ब्रह्मचर्यमथार्जवम् ॥ ५०
भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः।
भूर्भुवः स्वरितश्चैव ध्रुवो दान्तो महेश्वरः ५१
दीक्षितोऽदीक्षितः क्षान्तो
दुर्दान्तोऽदान्तनाशनः।
चन्द्रावर्तयुगावर्तः
संवर्तः संप्रवर्तकः ॥ ५२
कामो बिन्दुरणुः स्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः।
नन्दीमुखो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः॥
चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वग्निमुखस्तथा।
हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट् १५४
अधर्महा महापार्श्वश्चण्डधारो गणाधिपः।
गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ॥ १५५

---

मत्स्य इव मत्स्यो जीवः संसारनदीजले चरतीति जाल्यो वासनाजालबद्धः बस्तुतस्तु अकलो दुर्धरः कलनं धरणं कलः केलिरिव कलो यस्य लीलयाऽस्य बद्धत्वं नान्यवशतयेत्यर्थः १० ॥१४३॥ क्षुरः छेदनसाधनं कृत्यः छेत्तुं योग्यः कृती छेदने इत्यस्य रूपम्। पक्षो मित्रम्। अपक्षः अमित्रं तस्य क्षयंकरः। संवर्तकबलाहकः कल्पान्तमेघः ८ ॥१४४॥ घण्टति द्योतते इति घंटः प्रकाशवान् अघण्टो मायावृतत्वेन प्रच्छन्नप्रकाशः घटयति कर्मफलैर्योजयति नरानिति घटी घंटी घंटावान् चरुचेली चरन्ति ते चरवः स्थावरजंगमा जीवास्तैः सारिभिरिव चेलति क्रीडत इति चरुचेली। मिली मिलनं संश्लेषणं मिलः। घञर्थे भावे कः। तदस्यास्तीति मिली। कारणतया सर्वकार्येष्वनुस्यूत इत्यर्थः। द्विर्वचनं नित्यव्याप्तिप्रदर्शनार्थम्। यद्वा मिली इति द्विवचनान्तेन मिलिमिलि इति मन्त्रपदं साभ्याससमुद्धृतं भवति। गौडास्तु रुद्रचीलिचिलीमिली इति पठन्ति। अस्मिन्पक्षे घण्टी प्रणवः। रुद्रेति संबुद्धिः। मिलीवच्चीलिचिलिशब्दावपि द्वित्वपरौ ज्ञेयौ। ब्रह्म प्रणवः। अग्नीनां कायिकं काये भवं कायिकं जाया। 'स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्' इति श्रुतेः। वन्हिजाया स्वाहेत्यर्थः। तेन—

ओंरुद्रचीलिचीलिचिलिचिलिमिलिमिलि। ओंस्वाहा'इति अष्टादशार्णो मन्त्र उद्धृतो भवति। दंडी मुंड इति परमहंसः **त्रिदंडधृगिति**। त्रिदंडी उक्तः १३ ॥ १४५ ॥ ॥ ५ ॥ १४६ ॥ गिरिकं काषायं तत्प्रियमस्य ७ ॥१४७॥ शिल्पिकः अल्पशिल्पी ६ ॥ १४८ ॥ नमस्कारस्यैव रूपान्तरं-**नमो नम इति** शिष्टप्रयोज्यम् तारकः प्रणवः। तारकामयः प्रचुरनक्षत्र आकाशरूपः ९॥ १४९ ॥ **धाता** आदिकर्ता विष्णुः। **विधाता** भौतिकस्रष्टा चतुर्मुखः। **संधाता** एकीकृत्य स्थापकः। **संहर्ता** महेश्वरः। **विधाता** विधिरदृष्टं कर्मेत्यर्थः। **धारणः** सर्वाधिष्ठानभूतकारणात्मा। **अधरः** नास्ति धरो धर्ता यस्येति सर्वबाधावधिभूतः शुद्धात्मा। ब्रह्मा ब्रह्मवित्। तपआदिचतुष्टयं ब्रह्मविद्यासाधनम् ११ ॥ १५० ॥ भूतानां जरायुजादीनामात्मा। भूतकृत् वियदाद्युत्पादकः भूतो नित्यसिद्धः भूतं अतीतं भव्यं भवतीति कर्तरि कृत्यः। वर्तमानं भविष्यं च तयोर्भव उत्पत्तिर्यस्मान्मायाशबलात्तस्याप्युद्भव उत्पत्तिस्थानम् भूर्भुवः स्वरिति नामत्रयम्। इतो ध्रुवश्चेत्येकं नाम। इतो दृश्यमानाद्वियदादेरपि ध्रुवः शाश्वत इत्यर्थः। दान्तो जितेन्द्रियः। अत एव महेश्वरः इतरेभ्यो ब्रह्मादिभ्य ईश्वरेभ्योऽपि महान् १० ॥ १५१ ॥ अदान्तनाशन इति च्छेदः चन्द्रमावर्तयति मासः युगमावर्तयति कल्पः स एव संवर्तः संप्रवर्तकः सृष्टिहेतुः ९ ॥ १५२ ॥ **कामः** स्त्र्यभिलाषः **बिंदुः** रेतोंशः पुत्रबीजभूतः स्रजः इति समासान्तष्टच् आर्षः नन्दीति दैर्घ्यमार्षम् अमुख इति च्छेदः १० ॥ १५३ ॥ शकुनिः पक्षिवदसङ्गः ७ ॥ १५४ ॥ गोनर्दः कृष्णावतारे गोपबाललीलायां गौरिव नर्दति शब्दं करोतीति तथा। गोप्रतारः गवां प्रकर्षेण तारको विषजलात् शिलावृष्टितश्च गोवर्धनोद्धरणेन आपत्तारकः गोवृषाणामीश्वरो नन्दी वाहनं यस्य ७ ॥ १५५ ॥

त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो
गोमार्गोऽमार्ग एव च ।
श्रेष्ठः स्थिरश्च स्थाणुश्च
निष्कम्पः कम्प एव च ॥ ५६
दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ।
दुर्धर्षो दुष्प्रकम्पश्च दुर्विषो दुर्जयो जयः ५७
शशः शशांकः शमनः शीतोष्णक्षुज्जराधिकृत
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिरेव च
मम यज्ञमृगव्याधो व्याधीनामागमो गमः ।
शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः
दण्डधारस्त्र्यम्बकश्च उग्रदण्डोऽण्डनाशनः ।
विषाग्निपाः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वं मरुत्पतिः
अमृतपास्त्वं जगन्नाथ देवदेव गणेश्वरः ।
विषाग्निपा मृत्युपाश्च क्षीरपाः सोमपास्तथा
मधुश्च्युतानामग्रपास्त्वं त्वमेव तुषिताद्यपाः
हिरण्यरेताः पुरुषस्त्वमेव
त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च नपुंसकं च ।
बालो युवा स्थविरो जीर्णदंष्ट्र-
स्त्वं नागेन्द्र शक्रस्त्वं विश्वकृद्विश्वकर्ता
विश्वकृद्विश्वकृतां वरेण्यस्त्वं विश्ववाहो
विश्वरूपस्तेजस्वी विश्वतोमुखः ।
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः ॥
महोदधिः सरस्वती वाग्बलमनलोऽ-
निलः अहोरात्रं निमेषोन्मेषकर्मा ॥
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव
या मूर्तयः सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं यान्ति दर्शनम्
त्राहि मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ६६
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते ।
भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि ॥
यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दृशः ।
तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यशः
यं विनिद्रा जितश्वासाः
सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जाना-
स्तस्मै योगात्मने नमः ॥ ६९

गोमार्गः गवामिन्द्रियाणां मार्ग इव गत्याश्रयः इन्द्रियचालक इत्यर्थः । अमार्गः इंद्रियाद्यग्राह्य इत्यर्थः । श्रेष्ठः प्रशस्यतमः स्थिरश्चलहीनः । स्थाणुस्त्रैलोक्यधारणस्तंभः निष्कंपः कंपः कंपवान् ९ ॥ १५६ ॥ दुर्वारणः मृत्युरूपेण आगतः सन्दुःखेनापि वारयितुमशक्यः। अमृतरूपेणानुगृह्णाति चेद्दुर्विषहो दुष्टस्यापि विषस्य हन्ता संग्रामे दुःसहः दुरतिक्रमश्च दुर्धर्षः भीषयितुमप्यशक्यः दुर्विषः दुःखेन वेष्टुं व्याप्तुं प्रवेष्टुमशः विष्लृक्यव्याप्तावित्यस्य कप्रत्यये रूपम् । जयो जयस्वरूपी नरो धर्मराजाख्यो वा ९ ॥ १५७ ॥ शशः शीघ्रगः शशांकश्चन्द्रः शमनो यमः ८ ॥१५८॥ यज्ञमृगस्य व्याध इव हन्ता व्याधीनां आगमः व्याधीनां गमश्च ६ ॥ १५९ ॥ त्रीणि वेदाख्यानि अम्बकानि चक्षूंषि यस्य विषरूपं अग्निं पिबतीति विषाग्निपाः । विषाग्रपादिति पाठे विषमेव अग्रपादस्त्रैलोक्याक्रमणार्हो यस्यास्ति स तथा ८ ॥ १६० ॥ विषाग्नेः सकाशात् पातीति विषाग्निपाः सर्वत्र पिबतीत्येव वा मधुश्च्युतानां स्वर्गादिसुखात् भ्रष्टानां अग्रे पूर्वं पातीति प्रथमरक्षकः । आपन्नत्रातेत्यर्थः । तुषितानां देवानामाद्यः ब्रह्मा तं पातीति तुषिताद्यपाः १० ॥ १६१ ॥ हिरण्यरेताः वन्हिः विश्वकृत् विश्वकर्ता १३ ॥ १६२ ॥ विश्वं कृन्तति छिनत्तीति विश्वकृत् विश्वसंहर्तेत्यर्थः । विश्वकृतां विश्वसृजां प्रजापतीनां वरेण्यः वरणीयः । विश्वं वहति पालनपोषणेन स्वस्मिन्धारयतीति विश्ववाहः । चन्द्रेत्यर्धः स्तुतिरेव ७ ॥ १६३ ॥ सरस्वती नदी वाग्वर्णरूपा बलं वैराग्यं निमेषोन्मेषादिकं कर्म यस्य सः निमेषोन्मेषकर्मा यं विना निमेषादिकमपि कर्तुं न कश्चिच्छक्नोतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः —'न हि त्वदारे निमिषश्च नेशे' इति । त्वत् त्वत्तः आरे दूरात् त्वां विनेत्यर्थः । निमिषश्च निमेषोऽपि न ईशे न ईशितवान् । पूर्वेषां ब्रह्मादीनामपि पक्षपातोऽपि त्वत्प्रेरणं विना नासीत्किमुत इदानींतनानामल्पसाराणामिति श्रुतिपदार्थः । ८ ॥ १६४ ॥ 'न ब्रह्मा न च गोविन्दः' इत्यादय एकविंशतिश्लोका जपहोमादौ एकैकनामगणनया पर्यवस्यन्तीति प्रागुक्तम् ॥१६५॥ पुंसां सहस्राण्यावृत्याज्ञानेनाभिभूय एकः ज्ञेयज्ञानज्ञातृभावशून्यः समुद्राणां कामानामन्ते नाशे सति तिष्ठति प्रकाशते । कामं समुद्रमाविश इति मन्त्रलिङ्गात्समुद्रशब्दः कामवचनः ।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।

इति कामान्ते ब्रह्मभावश्रुतेश्च ॥ १६८ ॥ ईदृग्रूपसत्त्वे विद्वदनुभवं प्रमाणयति-**यं विनिद्रा इति** । विनिद्रत्वे हेतुः-**जितश्वासा इति**। सनिद्रो हि श्वसित्येव एवमपि हठेन निरुद्धे वायौ सुषुप्तिसदृशी मूर्च्छा भवति । तां वारयितुं-**सत्त्वस्था इति** । तत्राप्यज्ञानमस्त्येवेति नासौ समाधिः । किं तु सत्त्वोत्कर्षस्य परस्यां काष्ठायां जायमानाहं ब्रह्मास्मीति वाक्यजा वृत्तिः कतकरजोवत्प्रपञ्चं प्रविलाप्य

**जटिले दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे ।**
**कमण्डलुनिषङ्गाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ७०**
**यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।**
**कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः७१**
**संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते पर्युपस्थिते ।**
**यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ७२**
**प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि ।**
**ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा मां सोऽभिरक्षतु७३**
**ये चानुपतिता गर्भा यथा भागानुपासते ।**
**नमस्तेभ्यः स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्तु मुदन्तु ते ॥**
**येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम्**
**रक्षन्तु ते हि मां नित्यं नित्यं चाप्याययन्तु माम्**
**येन रोदन्ति देहस्था देहिनो रोदयन्ति च ।**
**हर्षयन्ति न हृष्यन्ति नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः**
**ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च ।**
**वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारे गहनेषु च ॥ ७७**
**चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु तटेषु च ।**
**हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ७८**
**येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।**
**चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥**
**रसातलगता ये च ये च तस्मै परं गताः**
**नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः**
**येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च ।**
**असंख्येयगुणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः**

स्वयमपि संस्कारात्मना तिष्ठन्तीति सत्त्वशब्दवाच्या तस्यां तिष्ठन्तीति सत्त्वस्थाः । संयतेन्द्रिया इति जाग्रद्व्यावृत्तिः । ज्योतिः चितिम् तन्मात्रं युञ्जानाः योगिनः ॥ १६९ ॥ अस्मिन्योगे प्रथममालम्बनीयं मूर्तिमद्रूपमुपदिशति जटिले जटिलवदाचरन् जटिल् तस्मै । आचारक्विबन्ताद्धातोः कर्तरि क्विप् । लम्बोदरं यच्छरीरं तद्वते कमण्डलुर्जलपात्रं तदेव निषङ्गः बाणाधारो यस्य कमण्डलुजलेनैव यक्षराक्षसादीन् नाशयते इत्यर्थः । ब्रह्मा चतुर्मुखस्तदात्मने ॥ ७० ॥ इत-ऊर्ध्वं वैराजीं धारणामाह—**यस्येति** ॥ ७१ ॥ अस्याप्युप-संहारमाह—**संभक्ष्येति** । जलमिव जलं निर्विशेषं ब्रह्म तत्र यो मायावी शेते लीनो भवति । कथं सर्वभूतानि आका-शादीनि संभक्ष्य स्वात्मनि प्रविलाप्य स्वयमपि लयित इत्यर्थः ॥ ७२ ॥ इमं राजयोगमनुष्ठातुमसमर्थस्य हठयोग-माह—**प्रविश्येति** । मुखस्य ऊर्ध्वफलके यच्छिद्रं तत्र च मांसखण्डो लम्बते तत् घण्टिकेति लम्बिकेति च अन्यत्र उच्यते । सा इह चन्द्रसूर्यदैवत्ययोरिडापिङ्गलयोर्नाड्योः संहारकत्वात् राहोर्वदनमित्युच्यते। तत्र हि जिह्वाग्रे व्यावृत्य धारिते सति वायुर्निरुद्धो भवति । सेयं खेचरीनाम मुद्रा हठयोगिनां प्रसिद्धा । सोमं तत्रत्यं अमृतं पिबते निशि रात्रौ ज्ञानज्ञेयज्ञातृविभागाभावलक्षणायां सत्यां निशा-सद्भावे एतमेव हेतुमाह यतः स्वर्भानुः राहुरुक्तरूपः अर्कं चाचन्द्रम्। इडापिंगले ग्रसति तन्मार्गनिरोधेन द्रष्टृदृश्यविभागं गिलति यः स मां परमेश्वरोऽभितो रक्षतु । अत्र ग्रन्थान्तर-वाक्यानि सांख्ययोगे—

'इडायां पिंगलायां च चरतश्चन्द्रभास्करौ ।
इडायां चन्द्रमा ज्ञेयः पिंगलायां रविः स्मृतः'

इति शिवयोगे ।

अथ ते षोडशाधारान्प्रवक्ष्यामि विशेषतः' इत्युपक्रम्य ।

'नवमं घण्टिकाधारं जिह्वाग्रं तत्र दापयेत् ।
सुधाकलां स्रवत्येषा सा तु संतृप्तिकारिणी ।
या लम्बिका चालनदोहनाभ्यां
दीर्घा कृता सा विपरीतमार्गात् ।
यस्तालुमूलान्तरगर्भदेशे
प्रवेशयेत्सोन्मनतां प्रयाति '॥

ईश्वरप्रोक्ते—

'लम्बिकोर्ध्वस्थिते गर्ते रसनां विपरीतगाम् ।
संयोजयेत्प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणः ।
मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः ।
निरन्तरकृताभ्यासात्पीयूषं प्रत्यहं पिबेत् ।
तेन निग्रहसिद्धिः स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी 'इति ।

इयमेव भ्रूमध्यदृष्टिरित्याह दत्तात्रेयः—

'अंतः कपालविवरे जिह्वां व्यावृत्य धारयेत् ।
भ्रूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति खेचरी' इति

॥ १७३ ॥ द्विविधेऽपि योगे त्रिविधविघ्नविघातकं मन्त्रजातं पठति—**ये चेति** । गर्भा इव अत्यन्तं शिशवः अनुचतुर्मुखसृष्टिमनुपतिताः निर्गतास्त्वत्त इति शेषः । यथा यथावद्भागान् यज्ञे उपासते देवाः पितरश्च तेभ्यो नमः ते च स्वाहास्वधाशब्दाभ्यां दत्तेन हव्यकव्येन मुदं हर्षं प्राप्नुवन्तु७४ आधिदैवात् शान्तिं प्रार्थ्याध्यात्मभूतात्प्रार्थयते द्वाभ्यां—**येऽङ्गु-ष्ठेति**। अंगुष्ठमात्राः जीवाः॥७५॥ प्राणान्प्रणमति—**ये इति**। देहिनो जीवान् यतो रोदयन्त्यतो रुद्राख्या एते. प्राणाः श्रुताः ॥७६॥ आधिभौतिकेभ्यः सुखं प्रार्थयते—**ये नदी-ष्वित्यादिना** ॥ ७७ ॥ तस्मै तत्पदार्थाय ईश्वरार्थ-मित्यर्थः। परं उत्कृष्टं वैराग्यादिकं गताः प्राप्ताः । 'तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति ' इति श्रुत्या ईश्वरस्य तच्छब्दाभिधेयत्वमुक्तम् ॥ १८० ॥ येषामिति सार्वात्म्य-मेव भंग्यन्तरेण ईश्वरस्योक्तम् ॥ ८१ ॥

सर्वभूतकरो यस्मात्सर्वभूतपतिर्हरः ।
सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः
त्वमेव हीज्यसे यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥
अथवा मायया देव सूक्ष्मया तव मोहितः ।
एतस्मात्कारणाद्वापि तेन त्वं न निमन्त्रितः
प्रसीद मम भद्रं ते भव भावगतस्य मे ।
त्वयि मे हृदयं देव त्वयि बुद्धिर्मनस्त्वयि ॥
स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः ।
भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ॥ ८६
परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपे भविष्यसि ८७
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ८८
अथैनमब्रवीद्वाक्यं लोकस्याधिपतिर्भवः ।
आश्वासनकरं वाक्यं वाक्यविद्वाक्यसंमतम्
दक्ष दक्ष न कर्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं प्रति ।
अहं यज्ञहरस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुरातनम् ॥ १९०
भूयश्च ते वरं दाद्मि तं त्वं गृह्णीष्व सुव्रत ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा तदिहैकमनाः शृणु ॥ ९१
वेदात्षडंगादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च युक्तितः ।
तपः सुतप्तं विपुलं दुश्चरं देवदानवैः ॥ ९२
अपूर्वं सर्वतोभद्रं सर्वतोमुखमव्ययम् ।
अब्दैर्दशाहसंयुक्तं गूढमप्राज्ञनिन्दितम् ॥ ९३
वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम् ।
गतान्तैरध्यवसितमत्याश्रममिदंव्रतम् ॥ ९४

---

स्वयज्ञे ईश्वरस्यानिमन्त्रणे युक्तिमाह—**सर्वेति** । उपादानत्वात् अन्तर्यामित्वादन्तरात्मत्वाच्च न व्यवहितस्य पृथग्भूतस्येतरस्येव तव निमन्त्रणं युक्तमित्यर्थः ॥८२॥ ननु उपादानत्वादिना रूपेण मां जानन्कथं निन्दितवानसीत्याशंक्याह-**अथवेति** ॥ ८४ ॥ भावगतस्य सृष्ट्यावधिकृतत्वेन राजसभावगतस्य । सत्त्वैकग्राह्यं त्वामजानत इत्यर्थः । हृदयं चित्तं चिन्तनं निश्चयः संकल्पश्च त्वद्गोचर एव ममास्तीत्यर्थः ॥ ८५ ॥ वाक्यं वचनं वाक्यं वक्तुमुचितं वाक्यविदां वाक्यानि तेषु संमतं युक्तिमत्तमम् ॥८९॥ तुभ्यं तव दृष्टं पूर्वकल्पे अतः सर्वेषां कल्पानां समानरूपत्वात् अस्मिन्नपि कल्पे तवेह यज्ञहर्ताऽहं जातः अतो मन्युर्दैन्यं न कार्यम् । अप्रतिकार्यत्वाद्भाविन इत्यर्थः । पुरातनं पुराणम् ॥ १९० ॥ एतत्स्तोत्रजपाङ्गभूतं व्रतद्वयं विधित्सुस्तत्स्तुतये वैदिकं धर्ममनुवदति—**वेदादिति** ॥ ९२ ॥ वेदोक्तं तपो देवादिभिश्चीर्णं तदपेक्षया मया वक्ष्यमाणं व्रतं श्रेष्ठमित्याह-**अपूर्वमिति** । अपूर्वं वेदषडङ्गसांख्ययोगतकैरनधिगतम् । किं तर्हि कैवल्याद्युपनिषत्सु अत्याश्रमस्थपदेन प्रकाशितम् । सर्वतोभद्रं फलकाले साधनकाले च श्रेयोरूपम् सर्वतोमुखं सर्वेषु वर्णेष्वाश्रमेषु च अभिमुखम् । सर्वेषामिहाधिकारोऽस्तीत्यर्थः । अव्ययं मोक्षहेतुत्वात् । अब्दैः भूयसा कालेन अब्दसाध्यैः सहस्रसंवत्सरसत्रान्तैः कर्मभिर्वा दशाहैः संयुक्तम् । दश पञ्च यमाः पञ्च नियमाश्च त एवाहानि यज्ञक्रतवो येषाम् । अहःशब्दस्य क्रतुवाचित्वं न वैतान्यहानि भवन्तीत्यादौ प्रसिद्धम् । भूयसा कालेन पुण्येन वा यमनियमवाद्भिर्लब्धमित्यर्थः । दर्शाहेति पाठे तद्दत्तयागपूज्यैर्लब्धमित्यर्थः गौडास्तु दशार्धैति पठन्ति तदाब्दैः प्राप्तं दशार्धैः पञ्चभिः सद्योजातमित्यादिभिर्मन्त्रैः संयुक्तं आग्नेयं भस्म सद्योजातादिपञ्चमन्त्रैः परिगृह्य त्र्यम्बकमिति जलेन मिश्रयित्वेदित्यादिश्रुतेः आस्मिन्पक्षेऽत्याश्रमामिति पाशुपतव्रतस्यैव विशेषणम् । गूढं अत्याश्रमस्थ इति पदमात्रेण सूचितं अप्रकाशम् । अत एवाप्राज्ञैः कर्मठैर्निन्दितम् ॥९३॥ **वर्णेति** । सूतसंहितायामत्याश्रमस्थ इत्यत्रत्यमाश्रमपदं वर्णोपलक्षणीकृत्य वर्णाश्रमधर्मानतिक्रान्तमतिवर्णाश्रमं व्रतं तद्वानतिवर्णाश्रमीति तेन पदेन ब्रह्मविदं विवक्षित्वा—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः
अतिवर्णाश्रमी तेऽपि क्रमाच्छ्रेष्ठा विचक्षण ॥

इत्युपक्रम्य भूयसा ग्रन्थेन तल्लक्षणान्युक्त्वा

यस्य वर्णाश्रमाचारो गलितः स्वात्मदर्शनात् ।
स वर्णानाश्रमान्सर्वानतीत्य स्वात्मनि स्थितः

तथा

न विधिर्न निषेधश्च न वर्ज्यावर्ज्यकल्पना ।
आत्मविज्ञानिनामस्ति तथा चान्यज्जनार्दन

इति तस्य यथेष्टाचरणमप्यनुज्ञातम् । तदिदमभिप्रेत्य क्वचिद्ग्रन्थे वर्णादिधर्मैर्विपरीतमुक्तम् । एतेन स्वस्यैतदर्समतमिति सूचितम् । तथा च सूत्रम्-**सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात्** ( ब्र० सू० ३-४-२८ ) इति । छांदोग्ये—' उषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास स हेभ्यं कुल्माषान् खादन्तं बिभिक्षे तं होवाच नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्चयेम इमे उपनिहता इत्येतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हंतानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतं स्यादिति होवाच न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमा न खादन्निति कामो म उदपानम् ' इति ब्रह्मविद उषस्तस्य इभ्योच्छिष्टपक्वमाषभक्षणं तद्दत्तजलत्यागश्च प्राणात्ययकाले एव विदुषां निषिद्धाचरणं कामकारनिषेधं च दर्शयतः । अत एवोक्तम्—

मया पाशुपतं दक्ष शुभमुत्पादितं पुरा ।
तस्य चीर्णस्य तत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम्
तच्चास्तु ते महाभाग त्यज्यतां मानसो ज्वरः।
एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः सहानुगः ।
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः ॥ ९६
दक्षप्रोक्तं स्तवमिमं कीर्तयेद्यः शृणोति वा
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवाञ्छिवः ।
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां ब्रह्मसंमितः
यशोराज्यसुखैश्वर्यकामार्थधनकांक्षिभिः ।
श्रोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः
व्याधितो दुःखितो दीनश्चोरग्रस्तो भयार्दितः
राजकार्याभियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्
अनेनैव तु देहेन गणानां समतां व्रजेत् ।
तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः ॥
न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः
विघ्नं कुर्युर्गृहे तस्य यत्रायं पठ्यते स्तवः २०२
शृणुयाच्चैव या नारी तद्भक्ता ब्रह्मचारिणी ।
पितृपक्षे मातृपक्षे पूज्या भवति देववत् २०३
शृणुयाद्यः स्तवं कृत्स्नं
कीर्तयेद्वा समाहितः ।
तस्य सर्वाणि कर्माणि
सिद्धिं गच्छन्त्यभीक्ष्णशः ॥ २०४
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽनुकीर्तितम्
सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥
देवस्य च गुहस्यापि देव्या नन्दीश्वरस्य च
बलिं सुविहितं कृत्वा दमेन नियमेन च २०६
ततस्तु युक्तो गृह्णीया-
न्नामान्याशु यथाक्रमम् ।
ईप्सितान् लभते सोऽर्थान्
भोगान्कामांश्च मानवः ॥ २०७
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति तिर्यक्षु च न जायते ।
इत्याह भगवान्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः २०८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि दक्षप्रोक्तशिवसहस्रनामस्तवे चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

---

तथा चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथाऽवमन्येरन्गच्छेयुर्नैव संगतम्॥ इति ।
साक्षात्कृतात्मतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि ।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥ इति च । क्वचिद्विपरीतमपि वस्तुतः सममेव विदुषः कर्तृत्वाभिमानाभावेन तत्र विधिनिषेधयोरप्रवृत्तेः गतान्तैः ज्ञातसिद्धान्तैः अध्यवसितं निश्चितम् । अत्याश्रमं परमहंसपारिव्राज्यम् । यद्यपि आश्रमलिंगधारणं ब्राह्मणस्यैव तथापि तद्धर्माः शमादयः सर्ववर्णसाधारणाः अत एव गृहस्थादीनामप्यत्याश्रमित्वमुक्तं ब्रह्मचारीत्युदाहृतसूतसंहिताश्लोके । तत् विशिनष्टि—इदं व्रतं इदं वक्ष्यमाणं व्रतमस्त्यस्मिन्निति इदंव्रतामिति समस्तं पदम् ॥ १९४ ॥ किंतद्व्रतमित्यत आह—**मयेति** । मया वेदकर्त्रा उत्पादितं प्रकटीकृतम् । एतच्च श्रूयतेऽथर्वशिर उपनिषदि । व्रतमेतत्पाशुपतम्—' अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि अग्निः-' इत्यादिना भस्म गृहीत्वा निमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् । तस्माद्व्रतमेतत्पाशुपतं पशुपाशविमोक्षायेति । पशवो जीवाः पाशः अविद्या। यद्यपि संन्यासो भस्मोद्धूलनं च द्वयमपि विद्यार्थमुक्तं तथापि संन्यासस्य तीव्रतरवैराग्याधिकारिकत्वेन दुःशकत्वाद्भस्मधारणस्यैव मुख्यं विद्याङ्गत्वं ध्येयम् ॥९५॥ ब्रह्मसंमितो वेदेन तुलितः अस्मिन्स्तवेऽर्धं वेदभागोऽर्धं पौराणांश इति ॥९८॥ विद्याकामैः ब्रह्मसाक्षात्कारार्थिभिः ॥ ९९ ॥ नामजपे विशेषविधिमाह—**देवस्येति** । गुहस्य कार्तिकेयस्य अत्रायं प्रयोगः—शुचिः कृतनित्यक्रियः कालाग्निरुद्रोपनिषदुक्तप्रकारेण भस्म धृत्वा रुद्राक्षांश्च धृत्वा मुक्तसंगो भूतशुद्ध्यादिपूर्वं पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमंत्रेण त्रिभिश्चतुश्चतुश्चतुर्भिरन्त्ये त्रिभिश्च वर्णैः पञ्चाङ्गद्वयं कृत्वा पञ्चाक्षरोक्तविधिना वा न्यासध्यानपूजादिकं कृत्वा गुहादिभ्योऽङ्गदेवताभ्यः पूजापूर्वकं बलिं दत्वा यथाशक्ति अर्थानुसंधानपूर्वकं स्तवमावर्त्य उत्तरपूजां कृत्वा हृदि देवं विसर्जयेदिति ॥ २०६ ॥ इति श्रीमहाभारते मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दक्षप्रोक्तशिवसहस्रनामस्तवे चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

## २८५-[११२]

युधिष्ठिर उवाच ।
अध्यात्मं नाम यदिदं पुरुषस्येह विद्यते ।
यदध्यात्मं यतश्चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
सर्वज्ञानं परं बुद्ध्या
यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।
तद्व्याख्यास्यामि ते तात
तस्य व्याख्यामिमां शृणु ॥ २
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ ॥ ३
स तेषां गुणसंघातः शरीरं भरतर्षभ ।
सततं हि प्रलीयन्ते गुणास्ते प्रभवन्ति च ४
ततः सृष्टानि भूतानि तानि यान्ति पुनः पुनः
महाभूतानि भूतेभ्य ऊर्मयः सागरे यथा ।
प्रसारयित्वेहाङ्गानि कूर्मः संहरते यथा ।
तद्वद्भूतानि भूतानामल्पीयांसि स्थवीयसाम्
आकाशात्खलु यो घोषः संघातस्तु महीगुणः
वायोः प्राणो रसस्त्वद्भ्यो रूपं तेजस उच्यते
इत्येतन्मयमेवैतत्सर्वं स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च तमभ्येति तस्मादुद्दिश्यते पुनः ८
महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ।
विषयान्कल्पयामास यस्मिन्यदनुपश्यति ९
शब्दश्श्रोत्रे तथा खानि त्रयमाकाशयोनिजम्
रसः स्नेहस्य जिह्वा च अपामेते गुणाः स्मृताः
रूपं चक्षुर्विपाकश्च त्रिविधं ज्योतिरुच्यते ।
घ्रेयं घ्राणं शरीरं च एते भूमिगुणाः स्मृताः ॥
प्राणः स्पर्शश्च चेष्टा च
वायोरेते गुणाः स्मृताः ।
इति सर्वगुणा राजन्
व्याख्याताः पाञ्चभौतिकाः ॥ १२
सत्त्वं रजस्तमः कालः कर्म बुद्धिश्च भारत ।
मनःषष्ठानि चैतेषु ईश्वरः समकल्पयत् ॥ १३
यदूर्ध्वं पादतलयोरवाङ्मूर्ध्नश्च पश्यसि ।
एतस्मिन्नेव कृत्स्नेयं वर्तते बुद्धिरन्तरे ॥ १४
इन्द्रियाणि नरे पञ्च षष्ठं तु मन उच्यते ।
सप्तमीं बुद्धिमेवाहुः क्षेत्रज्ञः पुनरष्टमः ॥ १५

---

२८५

एवं स्तवपाठादिना विशुद्धचेतसो यज्ज्ञेयं तत् पृच्छति— **अध्यात्ममिति** । पुरुषस्य आत्मानि स्वरूपे वर्तत इत्यध्यात्मम् । दृश्यादृश्यविवेकार्थं शास्त्रं चाध्यात्मं तत् किं कुतश्चोत्पद्यत इति प्रश्नः ॥१॥ **सर्वज्ञानमिति** । पूर्वमसकृदुक्तमप्यध्यात्ममिह संक्षिप्य वक्ति उपसंहारार्थम् । तेन उपक्रमोपसंहारयोरैकरूप्येण अभ्यासेन च शास्त्रस्याध्यात्मपरत्वे निश्चिते मध्ये यद्वर्णाश्रमधर्मजपादिकमुक्तं तत् प्रकरणात्तदङ्गभावं भजत इति ज्ञाप्यते । तत्र यदध्यात्ममित्यस्योत्तरं **पृथिवीत्यादि** । ततश्चेत्यस्य उत्तरं पुरुषे तिष्ठन्ती बुद्धिरित्यादि अनयोः पुंबुद्ध्योर्विवेकार्थं शास्त्रमध्यात्मम् । सर्वं ज्ञायतेऽनेनेति सर्वज्ञानं तदेव परं सर्वश्रेष्ठम् । बुद्ध्या बुद्धिमत्तया **व्याख्यां** विस्पष्टं कथनम् ॥ २ ॥ भूतानां जरायुजादीनाम् ॥ ३ ॥ शरीरं स्थूलं सूक्ष्मं च तेषां भूतानां गुणसङ्घातः कार्यसमूहः । गुणा बुद्ध्यादयो भौतिकाः । परमकारणे आत्मनि प्रलीयन्ते ॥ ४ ॥ ततः आत्मनः सकाशाद्भूतानि जीवाः यान्ति लीयन्ते । यथा सौषुप्तादात्मनोऽहमर्थस्य जीवस्योद्भवस्तत्रैव च लयः । एवमहमर्थेषु भूतेषु महाभूतानामपि लयोदयौ भवत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ भूतानि खादीनि भूतानां जीवानां अल्पीयांसि कूर्माणां स्वाङ्गानीवानायासेनैव दृष्टिमात्रेणाविर्भावयितुं तिरोभावयितुं च शक्यानि ॥ ६ ॥ शरीरस्य भूतकार्यत्वमुक्तम् तत्र तत्तद्भूतांशान् विविनक्ति—**आकाशादिति** । घोषः शब्दः । यः शरीरे प्रसिद्धः सङ्घातः कठिनांशः रसो लोहितादिद्रवांशः रूपं गौरादि ऊष्मा च ॥ ७ ॥ एतन्मयं भूतमयं तस्मादुद्दिश्यते तस्माद्भूतकर्तुर्ब्रह्मणः सकाशात् उद्दिश्यते जायत इति शब्दमात्रेणोच्यते न तु वस्तुतस्तत्र लीयते उत्पद्यते वा रज्ज्वामुरग इव ॥ ८ ॥ भूतकृत् अहङ्कारः भूतेषु देहेषु भूतानि खादीनि यथा कल्पयामास यस्मिंश्च भूते देहान्तस्थे यत्कार्यमनुपश्यति तत् शृणु इति शेषः ॥ ९ ॥ तदेवाह त्रिभिः—**शब्देति** ॥ १० ॥ **सत्त्वमिति** । एतेषु शब्दादिषु पञ्चदशसु सात्त्विकादिकं कालोऽतीतत्वादिधर्मः प्रागुक्तरीत्या चतुर्युगात्मा चिदाभासरूपो जीवो वा कर्मबुद्धिः स्वविषयस्वरूपनिश्चयः । यद्वा कर्म व्यापारः शब्दस्य अर्थप्रत्यायनं श्रोत्रस्य शब्दप्रत्यायनमित्यादिः । बुद्धिः प्रतीतिगोचरस्येदमित्थमेवेत्यवधारणम् । मन इदमित्थं न वेति संशयः । कर्मसहितां बुद्धिं पञ्चमीमपेक्ष्य मनःषष्ठं ईश्वरो मायावी ॥ १३ ॥ अस्मिन्पादतलादिमूर्धान्ते शरीरे तत्स्था बुद्धिरेव शब्दादिमनोन्तैकविंशतितत्त्वरूपेत्याह—**यदूर्ध्वमिति** ॥१४॥ बुद्धेरेव सप्तरूपत्वमाह—**इन्द्रियाणीति** । पुनःशब्दो दृश्यात्सप्तकादष्टमस्य दृशेरत्यन्तवैलक्षण्यद्योतनार्थः ॥ १५ ॥

इन्द्रियाणि च कर्ता च विचेतव्यानि भागशः
तमः सत्त्वं रजश्चैव तेऽपि भावास्तदाश्रयाः
चक्षुरालोचनायैव संशयं कुरुते मनः ।
बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते १७
तमः सत्त्वं रजश्चेति कालः कर्म च भारत ॥
गुणैर्नेनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाणि च ।
मनःषष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्यभावे कुतो गुणाः
येन पश्यति तच्चक्षुः शृण्वती श्रोत्रमुच्यते ।
जिघ्रती भवति घ्राणं रसती रसना रसान् ॥
स्पर्शनं स्पर्शती स्पर्शान्बुद्धिर्विक्रियतेऽसकृत्।
यदा प्रार्थयते किञ्चित्तदा भवति सा मनः ॥
अधिष्ठानानि बुद्ध्या हि पृथगेतानि पञ्चधा ।
इन्द्रियाणीति तान्याहुस्तेषु दुष्टेषु दुष्यति २१
पुरुषे तिष्ठती बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते ।
कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति ॥
न सुखेन न दुःखेन कदाचिदपि वर्तते ।
सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतान्परिवर्तते ॥
सरितां सागरो भर्ता यथा वेलामिवोर्मिवान्
इति भावगता बुद्धिर्भावे मनसि वर्तते ॥ २४
प्रवर्तमानं तु रजस्तद्भावेनानुवर्तते ।
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता ॥
कथञ्चिदुपपद्यन्ते पुरुषे सात्त्विका गुणाः ।
परिदाहस्तथा शोकः सन्तापोऽपूर्तिरक्षमा ॥
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुभिः ।
अविद्या रागमोहौ च प्रमादः स्तब्धता भयम्
असमृद्धिस्तथा दैन्यं प्रमोहः स्वप्नतन्द्रिता ।
कथञ्चिदुपवर्तन्ते विविधास्तामसा गुणाः २८
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
वर्तते सात्त्विको भाव इत्युपेक्षेत तत्तथा २९
अथ यद्दुःखसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
प्रवृत्तं रज इत्येव तदसंरभ्य चिन्तयेत् ॥ ३०
अथ यन्मोहसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ३१
इति बुद्धिगतीः सर्वा व्याख्याता यावतीरिह
एतद्बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् ॥ ३२
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः ।
सृजतेऽत्र गुणानेक एको न सृजते गुणान् ॥
पृथग्भूतौ प्रकृत्या तु संप्रयुक्तौ च सर्वदा ।
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्यात्संप्रयुक्तो भवेत्तथा
न गुणा विदुरात्मानं स गुणान्वेद सर्वतः ।
परिद्रष्टा गुणानां तु संस्रष्टा मन्यते यथा ३५
आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणसर्गेण चेतना ।
सत्त्वमस्य सृजन्त्यन्ये गुणान्वेद कदाचन ॥
सृजते हि गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति ।
संप्रयोगस्तयोरेष सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्ध्रुवः ॥ ३७
इन्द्रियैस्तु प्रदीपार्थं क्रियते बुद्धिरन्तरा ।
निश्चक्षुर्भिरजानद्भिरिन्द्रियाणि प्रदीपवत् ३८

भागशः कार्यविभागेन तेऽपि भावाः सात्त्विकादयोऽर्थाः तदाश्रया इन्द्रियकर्त्राश्रयाः तत एवोत्थिता इत्यर्थः ॥१६॥ विभागमेवाह—**चक्षुरिति**। चक्षुः इन्द्रियमात्रं साक्षी इन्द्रियाद्यव्यवधानेन द्रष्टा चिन्मात्र उदासीनः ॥१७॥ गुणैः तम आदिपञ्चभिः नेनीयते पुनः पुनरतिशयेन वा विषयान् प्रति नीयते बुद्धिरेवेन्द्रियाणि चकारात् तमआदि पञ्च बुद्धिरेव अत्र हेतुः-**बुद्ध्यभावे कुतो गुणा इति** ॥१८॥ एतदेव व्याचष्टे—**येनेति द्वाभ्याम्**॥१९॥ एतानि मनः-षष्ठानि बुद्धया कल्पितानीति शेषः अवयवदोषेऽवयवीवेन्द्रियेषु दुष्टेषु बुद्धिर्दुष्यति ॥२१॥ पुरुषे साक्षिणि तिष्ठती आध्यासिकसम्बन्धेन वर्तमाना त्रिषु सात्त्विकादिषु सुखदुःखमोहात्मकेषु भावेषु विषयितया बुद्धिर्वर्तते ॥२२॥ एवं दृग्दृश्ययोः पुंबुध्योरत्यन्तभेदेऽप्याध्यासिकसंबन्धादैक्यं मन्वानास्तार्किकाः पुमांसमेव सुखादिमन्तमाहुः न सुखेनेति मोहावस्थोक्ता २३ एवं सर्वेषां भावानां धीमात्रत्वमुक्त्वा सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्भेदं व्याचष्टे-**सत्त्वेत्यादिना** ॥ ३३ ॥ संस्रष्टा संसर्गं कृतवान् आत्मनो गुणानां च गुणगुणिभावेन संसर्गोऽस्तीति मूढो यथा मन्यते तथाऽयं गुणानां परिद्रष्टा तादात्म्येनात्मनि गुणान्पश्यतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ ननु किमाश्रितास्तर्हि गुणाः प्रवर्तन्त इत्यत आह-**आश्रय इति**। सत्त्वस्य बुद्धिसत्त्वस्याश्रय उपादानं नास्ति। उपादानत्वेन क्लृप्तस्याज्ञानस्य स्वरूपतस्तुच्छत्वात्। गुणानां सत्त्वादीनां सर्गेण कार्येण महदादिना लिङ्गेन अन्ये कारणभूता गुणाः सृजन्तीत्यनुमीयते । कदाचिदपि गुणान् कश्चिदपि न वेद । यथा रज्जूरगोपादानमज्ञानं कार्यद्वारैवानुमीयते न त्वपरोक्षीक्रियते तद्वत् । ननु गुणानां तुच्छत्वे तत्कार्ये न दृश्येत खपुष्पसौरभवदत आह-**चेतना सत्त्वमस्येति** । अस्य गुणसर्गस्य सत्त्वं चेतना अधिष्ठानसत्तैवाध्यस्तसत्तेत्यर्थः । तथा च नात्यन्ततुच्छत्वं गुणानामनिर्वचनीयस्य तद्रूपस्याभ्युपगमात्। अतो नोक्तदोष इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ ध्रुवोऽनादिः ॥ ३७ ॥ प्रदीपार्थं प्रदीपप्रयोजनं आवरणभंगं निश्चक्षुर्भिः अचेतनैः अत एवाजानद्भिः इन्द्रियाणि प्रदीपवत्सहकारीणि बुद्धिरिन्द्रियवत्कारणं चिदात्मा तु प्रमातृवत्तृतीयः । एतेन बुद्ध्यतिरिक्तश्चेतनः **सिद्ध** इति भावः ॥३८॥

एवंस्वभावमेवैतत्स्वबुद्ध्वा विहरन्नरः ।
अशोचन्नप्रहृष्यंश्च स वै विगतमत्सरः ॥ ३९
स्वभावसिद्धमेवैतद्यदिमान्सृजते गुणान् ।
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं विज्ञेयास्तन्तुवद्गुणाः ४०
प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे ४१
इतीदं हृदयग्रन्थिं बुद्धिचिन्तामयं दृढम् ।
विमुच्य सुखमासीत विशोकश्छिन्नसंशयः ॥
ताम्येयुः प्रच्युताः पृथ्वीं मोहपूर्णां नदीं नराः
यथा गाधमविद्वांसो बुद्धियोगमयं तथा ४३
नैव ताम्यन्ति विद्वांसः प्लवन्तः पारमंभसः ।
अध्यात्मविदुषो धीरा ज्ञानं तु परमं प्लवः ४४
न भवति विदुषां महद्भयं
यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत् ।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचि-
त्सकृदुपदर्शयतीह तुल्यताम् ॥ ४५
यत्करोति बहुदोषमेकत-
स्तच्च दूषयति यत्पुरा कृतम् ।
नाप्रियं तदुभयं करोत्यसौ
यच्च दूषयति यत्करोति च ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पाञ्चभौतिके पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

## २८६–[११३]

युधिष्ठिर उवाच ।
सुदुःखाच्च सुमृत्योश्च त्रसन्ते प्राणिनः सदा
उभयं नो यथा न स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं समङ्गस्य च भारत ॥ २
नारद उवाच ।
उरसेव प्रणमसे बाहुभ्यां तरसीव च ।
संप्रहृष्टमना नित्यं विशोक इव लक्ष्यसे ॥ ३

---

दीपचक्षुर्भ्यां धीमान् रज्जूरगमिव इन्द्रियबुद्धिभ्यां चितिर्घटमवभासयतीत्याह–**एवमिति** ॥ ३९ ॥ ऊर्णनाभिदृष्टान्तोऽध्यारोपप्रसंगे परिणामवादमाश्रित्य ध्येयः ॥ ४० ॥ वस्तुतत्त्वमाह—**प्रध्वस्ता इति** । यथा प्रध्वस्तो घटो विहीनेन कपालाद्यात्मना रूपेण वर्तते नैवं गुणा विवर्तन्ते । यतो घटकपालवन्निवृत्तानां गुणानां प्रवृत्तिः सूक्ष्मावयवद्वारा नोपलभ्यतेऽतो रज्जूरगवदुच्छिद्यत एवेत्यर्थः । ये तु निवृत्तिं मन्यन्ते तेषां प्रवृत्त्यनुपलम्भो दोषो दुष्परिहर इति भावः ॥ ४१ ॥ हृदयग्रंथिं चिदचितोरात्ममनसोस्तादात्म्यं बुद्धिश्च चिन्ता च तदुभयप्रधानं बुद्धिचिन्तामयम् ॥४२॥ पृथ्वीं महतीं इमां संसाररूपां नदीमनुप्रच्युताः पतिताः । गाधं तलं अविद्वांसः अजानन्तः एवमयं जीवो बुद्धियोगमनुप्रच्युतस्ताम्येत् ॥ ४३ ॥ यथा विद्वदविदुषोरन्तरमेवं विदुषां मिथोऽन्तरं नास्तीत्याह–**न हीति**। तत्र हेतुः–**सकृदिति** । सकृद्विभातो ह्येष ब्रह्मलोक इति श्रुतिः प्रत्ययावृत्तिकृतं तारतम्यं मोक्षे नास्तीति दर्शयतीत्यर्थः ॥ ४५ ॥ एवंविदः फलमाह–**यदिति** । यदयं ज्ञानी बहुदोषं कर्म करोति । यच्चानेन पुरा ज्ञानात्पूर्वकाले कृतं तच्च एकतः एकेन ज्ञानेनैव दूषयति नाशयति । 'तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते । तद्यथैषीकतूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते ' इति श्रुतिभ्यां तत्त्वविदः क्रियमाणकर्माश्लेषपूर्वकर्मदाहयोरवगमात् दृष्टमपि फलमाह यच्चाज्ञानदशायामयमाप्रियमानिष्टं परकृतं दूषयति । यच्च रागादिदोषात्स्वयं करोति तदुभयं अप्रियदूषणकारणात्मकं न करोति । द्वैतदर्शनाभावात् । स्वयमदुष्टः परदोषमपि न पश्यतीत्यर्थः ४६ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८५॥

२८६

विद्वल्लक्षणानि वक्तुमारभते–**सुदुःखादिति** । यान्येव विद्वल्लक्षणानि तानि विद्यासाधनानीत्यभिप्रेत्य उभयं नोऽस्माकं कथं केन प्रकारेण स्यादिति प्रश्नः ॥ १ ॥ समङ्गं विद्वांसमुदाहृत्य तस्योत्तरमाह—**अत्रापीति** ॥२॥ अन्ये शिरसा नमन्ति त्वं तु उरसा प्रणमसेऽत्यन्तं विनीतोऽसीत्यर्थः । बाहुभ्यां तरसीव भवनदीं अत्यंतसंकटेऽपि निरपेक्षोऽसीत्यर्थः । एतत्सुखलिङ्गं ज्ञानतृप्तानाम् ॥ ३ ॥

उद्वेगं न हि ते किञ्चित्सुसूक्ष्ममपि लक्षये।
नित्यतृप्त इव स्वस्थो बालवच्च विचेष्टसे ॥ ४
समङ्ग उवाच।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वमेतत्तु मानद।
तेषां तत्त्वानि जानामि ततो न विमना ह्यहम्
उपक्रमानहं वेद पुनरेव फलोदयान्।
लोके फलानि चित्राणि ततो न विमना ह्यहम्
अगाधाश्चाप्रतिष्ठाश्च गतिमन्तश्च नारद।
अन्धा जडाश्च जीवन्ति पश्यास्मानपि जीवतः
विहितेनैव जीवन्ति अरोगाङ्गा दिवौकसः।
बलवन्तोऽबलाश्चैव तस्माद्स्मान्सभाजय ॥८
सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा
शाकेन चान्ये जीवन्ति पश्यास्मानपि जीवतः
यदा न शोचेमहि किं नु नः स्या-
द्धर्मेण वा नारद कर्मणा वा।
कृतान्तवश्यानि यदा सुखानि
दुःखानि वा यन्न विधर्षयन्ति ॥ १०
यस्मै प्राज्ञाः कथयन्ते मनुष्याः
प्रज्ञामूलं हीन्द्रियाणां प्रसादः।
मुह्यन्ति शोचन्ति तथेन्द्रियाणि
प्रज्ञालाभो नास्ति मूढेन्द्रियस्य ११
मूढस्य दर्पः स पुनर्मोह एव
मूढस्य नायं न परोऽस्ति लोकः।
न ह्येव दुःखानि सदा भवन्ति
सुखस्य वा नित्यशो लाभ एव १२
भवात्मकं संपरिवर्तमानं
न मादृशः संज्वरं जातु कुर्यात्।
इष्टान्भोगान्नानुरुध्येत्सुखं वा
न चिन्तयेद्दुःखमभ्यागतं वा ॥ १३
समाहितो न स्पृहयेत्परेषां
नानागतं चाभिनन्देच्च लाभम्।
न चापि हृष्येद्विपुलेऽर्थलाभे
तथाऽर्थनाशे च न वै विषीदेत् ॥ १४
न बान्धवा न च वित्तं न कौल्यं
न च श्रुतं न च मन्त्रा न वीर्यम्।
दुःखात्त्रातुं सर्व एवोत्सहन्ते
परत्र शीलेन तु यान्ति शान्तिम् १५
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नायोगाद्विन्दते सुखम्।
धृतिश्च दुःखत्यागश्चेत्युभयं तु सुखं नृप ॥ १६

---

बालवत् रागद्वेषशून्यः ॥ ४ ॥ भवतीति भव्यं वर्तमानं भव्यगेयेति कर्तरि कृत्यः। भूतभाविष्ययोस्तत्त्वं अविद्यमानत्वं 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' इति न्यायेन वर्तमानस्यापि तत्त्वं तदेव। यथोक्तं भगवता— 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' इति। नह्यैन्द्रजालिकप्रदर्शितधनवृद्धिह्रासाभ्यां विद्वान्मुह्यतीत्यर्थः ॥५॥ अभ्युपेत्यापि जगत्सत्यत्वं आरंभान् फलानि फलवैचित्र्यं दुःखहेतुरेवेति जानन्नपेतारंभादिरप्यहं न मुह्यामीत्याह—**उपक्रमानिति**॥६॥नन्वनारंभे कथं जीवितव्यमित्याशंक्याह—**अगाधाश्चेति**। अगाधाः निर्ग्रन्था मूर्खाः गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे चेति स्मृतेः अप्रतिष्ठाः धनदारादिशून्याः। गतिमन्तः ग्रन्थधनादिमन्तः जडा मत्तादयः अस्मान्निरारंभान् निरारंभा अपि जीवन्तीत्यर्थः ॥७॥ कुतस्ते जीवन्तीत्यत आह—**विहितेनैवेति**। प्राक्कर्मणैव जीवन्ति न त्वारंभादिति सभाजय पूजय ॥८॥ यदा वयं न शोचेम शोकमूलस्याज्ञानस्याभावात्। तदा नः अस्माकं धर्मेण आत्मनि ब्रह्मण्याद्यभ्यासोपजीविना यज्ञादिना वा कर्मणा लौकिकेन वा किं प्रयोजनं न किमपीत्यर्थः। 'एतद्ध स्म वैतद्विद्वांस आहुर्ऋषयः कावषेयाः किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं यक्ष्यामहे' इति श्रुतेस्तत्त्वविदो न धर्मान्यनुतिष्ठन्तीत्यर्थः। शोकाभावे हेतुः—**कृतान्तेति**। कृतान्तवश्यानि अन्तवन्ति यत् यस्मात्तस्मात्। न धर्षयन्ति अस्मानिति शेषः ॥ १० ॥ प्रसादो मोहादिराहित्यं प्रज्ञाया मूलम् इंद्रियाण्येव मुह्यन्ति शोचन्तीति यस्मै प्राज्ञाः कथयन्ते स प्राज्ञ इत्यध्याहृत्य योज्यम्। दृश्यो मोहादिर्दृश्यस्य बुद्ध्याद्यनेकभेदभिन्नस्याहंकारस्यैव धर्मो न त्वदृश्यस्य दृगात्मन इत्यर्थः ॥ ११ ॥ दर्पः आढ्योऽस्मीत्यादिगर्वः सः मोहश्चेत्का हानिरत आह—**मूढस्येति**। **नहीति**। तस्मात्सुखादेरागमापायित्वात्सुख्यहमिति दर्पो दुःख्यहमिति दैन्यं च न कार्यमिति भावः ॥ १२ ॥ भवात्मकं संसाररूपं भावेति पाठे दृश्यात्मकम्। संज्वरं मादृश आत्मज्ञो देहाभिमानशून्यो जातु कदाचिन्न कुर्यान्न स्वीकुर्यात्। तथा च श्रुतिः—

'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्' इति।

भोगाद्यचिन्तनमेव विज्वरत्वे हेतुरित्याह—**इष्टानिति**॥१३ अचिन्तायामपि हेतुः समाहितो योगारूढः अचिन्तत्वादेव न स्पृहादिमान्भवतीत्यर्थः परेषां सुखादीन्नेच्छेत् ॥ १४ ॥ समाहितत्वं च शमदमादिरूपेण शीलेनैव भवति न बान्धवादिभिरित्याह—**नेति**। शान्तिं निर्विकल्पताम् ॥ १५ ॥ योगं विना ज्ञानं सुखं च नास्तीत्याह—**नास्तीति**। योगसाधनमाह—**धृतीति**। धृतिर्मनःप्राणेन्द्रियक्रियाणां स्तंभसामर्थ्यम् ॥ १६ ॥

प्रियं हि हर्षजननं हर्ष उत्सेकवर्धनः ।
उत्सेको नरकायैव तस्मात्तान्सन्त्यजाम्यहम्
एतान् शोकभयोत्सेकान्
मोहनान्सुखदुःखयोः ।
पश्यामि साक्षिवल्लोके
देहस्यास्य विचेष्टनात् ॥ १८
अर्थकामौ परित्यज्य विशोको विगतज्वरः ।
तृष्णामोहौ तु सन्त्यज्य चरामि पृथिवीमिमाम्
न च मृत्योर्न चाधर्मान्न लोभान्न कुतश्चन ।
पीतामृतस्येवात्यन्तमिह वाऽमुत्र वा भयम्
एतद्ब्रह्मन् विजानामि
महत्कृत्वा तपोऽव्ययम् ।
तेन नारद संप्राप्तो
न मां शोकः प्रबाधते ॥ २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि समङ्गनारदसंवादे षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

---

## २८७-[११४]

युधिष्ठिर उवाच ।
अतत्त्वज्ञस्य शास्त्राणां सन्ततं संशयात्मनः
अकृतव्यवसायस्य श्रेयो ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।
गुरुपूजा च सततं वृद्धानां पर्युपासनम् ।
श्रवणं चैव शास्त्राणां कूटस्थं श्रेय उच्यते २

---

योगे प्रवृत्त्यर्थं लौकिकं प्रियं निन्दति—**प्रियमिति** । उत्सेको दर्पः । तान् प्रियहर्षोत्सेकान् ॥ १७ ॥ आ अस्येति च्छेदः । अस्य देहस्य आविचेष्टनादिति सम्बन्धः । विमुक्तश्च विमुच्यते भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरिति श्रुतिभ्यां द्विर्मुक्तिमायानिवृत्त्योः प्रतिपादनात्तत्त्वविदामिन्द्रजालत्वविदामिवावरणांशनिवृत्तावपि विक्षेपांशानुवृत्तिरस्तीति गम्यते । सा च प्रतिबिम्बभ्रमादौ दृष्टा । तेन जीवन्मुक्तिसिद्धौ रागद्वेषराहित्यासिद्धिश्च । अन्यथा ज्ञानसमकालमेव देहपातापत्तिः । यस्तु देहपातावधि साक्षिवन्न पश्यति विषयेषु सङ्गं च करोति तस्य जातमपि ज्ञानं नश्यतीति भावः । यथोक्तं भगवता—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥

इति बुद्धिनाशात्प्रणश्यति इति च ॥ १८ ॥ इह वा अमुत्र वा न भयमित्यन्वयः ॥ २० ॥ महद्ब्रह्म विजानामि अव्ययं तद्योगं कृत्वा संप्राप्तोऽपि न प्रबाधते शीतोष्णादिजः शोको देहस्वाभाव्यादवश्यं प्राप्नोति न च मूढेष्विव बुद्धेषु तस्यातीव प्रतापोऽस्तीति भावः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

२८७

एवमुपदेशप्रधानां ब्रह्मविद्यां श्रुत्वा तामेवोपपत्तिप्राधान्येन जिज्ञासमानः पृच्छति—**अतत्त्वज्ञस्य शास्त्राणामिति**। तस्य शास्त्रं तार्किकपाशुपतपाञ्चरात्रसांख्यपातञ्जलादि उपपत्तिप्रधानं उपदेशप्रधानं च । तत्र वैदिके शास्त्रे पूर्वोत्तरमिमांसे उपदेशप्रधाने वैशेषिकतार्किकपाशुपतपाञ्चरात्रसांख्यपातञ्जलादीनि उपपत्तिप्रधानानि अवैदिकेऽपि लौकायतं शास्त्रमुपपत्तिप्रधानम् । आर्हतसौगते शाक्यबुद्धमुनिप्रणीतागमप्रधाने तत्रापि सौगते चत्वारो भेदाः सौत्रान्तिकवैभाषिकयोगाचारमाध्यमिकाः सर्वाण्येतानि विभिन्नप्रस्थानानि मोक्षार्थं च प्रवृत्तानि मोक्षश्च 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति एकमार्गः श्रूयते । सर्वेषु च शास्त्रेषु स्वमते एव मोक्षोऽस्ति न परमते इति साटोपं प्रतिपाद्यते विनिगमनाविरहाच्च नैतेषामन्यतमस्य श्रैष्ठ्यमध्यवसातुं शक्यम् । नाप्येषामैकमत्यं वक्तुं शक्यं विभिन्नप्रस्थानतायाः स्पष्टत्वात् । ऐकशास्त्र्यापत्तेश्च । अतः शास्त्राणां तत्त्वानवधारणात्संशयः किमुपादेयमिति । ननु 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' इति श्रुतेः आत्मानुभव एव संशयोच्छेदं करिष्यति किमुत्तमतयेत्याशंक्याह—**अकृतव्यवसायस्येति**। व्यवसायः आत्मदर्शनार्थं शमदमाद्यनुष्ठानं तदकुर्वतः किं हितं स्यात्तद्ब्रूहि

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गालवस्य च संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ॥ ३

वीतमोहक्लमं विप्रं ज्ञानतृप्तं जितेन्द्रियः ।
श्रेयस्कामो यतात्मानं नारदं गालवोऽब्रवीत् ४

यैः कश्चित्संमतो लोके गुणैश्च पुरुषो मुने ।
भवत्यनपगान्सर्वांस्तान्गुणान् लक्षयामहे ५

भवानेवंविधोऽस्माकं संशयं छेत्तुमर्हति ।
अमूढश्चिरमूढानां लोकतत्त्वमजानताम् ॥ ६

ज्ञाने ह्येवं प्रवृत्तिः स्यात्कार्याणामविशेषतः
यत्कार्यं न व्यवस्यामस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ७

भगवन्नाश्रमाः सर्वे पृथगाचारदर्शिनः ।
इदं श्रेय इदं श्रेय इति सर्वे प्रबोधिताः ॥ ८

तांस्तु विप्रस्थितान्दृष्ट्वा
शास्त्रैः शास्त्राभिनन्दिनः ।
स्वशास्त्रैः परितुष्टाश्च
श्रेयो नोपलभामहे ॥ ९

शास्त्रं यदि भवेदेकं श्रेयो व्यक्तं भवेत्तदा ।
शास्त्रैश्च बहुभिर्भूयः श्रेयो गुह्यं प्रवेशितम् १०

एतस्मात्कारणाच्छ्रेयः कलिलं प्रतिभाति मे
ब्रवीतु भगवांस्तन्मे उपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ११

नारद उवाच ।

आश्रमास्तात चत्वारो
यथा संकल्पिताः पृथक् ।
तान्सर्वाननुपश्य त्वं
समाश्रित्यैव गालव ॥ १२

यद्यपि सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्यय इति न्यायेनाशरीरतालक्षणे मोक्षे तत्साधने शमादौ सर्वेषां शास्त्राणामैकमत्यमस्ति। तथा हि। शून्यदेहात्मवादिनौ माध्यमिकलौकायतिकौ संघातस्य तुच्छत्वं तस्यैव कर्तृत्वादिधर्माश्रयत्वं च प्रथयितुमेव सदात्मानमपलपतः एवं तार्किकादयोऽप्यहमर्थस्यैव कर्तृत्वादिकं प्रथयितुं चिदात्मानमपलपन्ति । अतो न तेषामात्मापलापे तात्पर्यं किं तु संघातादेस्तुच्छत्वादौ तथा सांख्या अपि आत्मनोऽसङ्गत्वमेव प्रथयितुं प्रधानादिकं कल्पयन्ति न तु तेषामात्मनः कर्तृत्वे प्रधानादिसत्यत्वे आत्मभेदे वा तात्पर्यमस्ति । एवं तन्त्रान्तरतात्पर्यमप्यूह्यम् सर्वथाऽपि देहनाशो वा दुःखनाशो वा निर्विषयज्ञानधारा वा चितितन्मात्रं वा परमानन्दो वा मोक्ष इति शब्दजविकल्पमात्रं सुषुप्तवद्द्वैतदर्शनाभावः सर्वेषां मोक्षे तुल्यः शमादीनां साधनत्वं च व्यावहारिकप्रक्रियाणामात्मतत्त्वप्रतिपादनप्रकारभेदानां च तेषां परस्परविरोधानैकशास्त्र्यं विधिमुखेनैव अखण्डसच्चिदानन्दैकरसं ब्रह्म वेदान्ताः विस्पष्टं प्रतिपादयन्तीति तेषामेव श्रैष्ठ्यं च स्पष्टम् । तथापि सर्वशास्त्राविरोधेनैवोत्तरमाह-**गुरुपूजेति** । गुरुपूजात्र ईश्वरे चेतःप्रणिधानम्। तस्यैव परमगुरुत्वात्। स पूर्वेषां गुरुः कालेनानवच्छेदादिति तस्य पातञ्जले परमगुरुत्वोक्तेः । वृद्धानामाचार्याणां तथा च—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इति श्रुत्यर्थो दर्शितः। शास्त्राणामविशेषात्सर्वेषां सर्वत्र मोक्षस्य प्रतिपादनात् श्रवणं गुरुमुखेन ग्रहणम्। एतच्च मनननिदिध्यासनयोरप्युपलक्षणम् । गुरुदेवपूजाश्रवणादिप्रपंचकूटस्थं अविकारि आत्यन्तिकमैकान्तिकं च यत् श्रेयः तद्रूपं तत्साधनत्वादुच्यते ॥२॥ **वीतेति**। जितेन्द्रियः श्रेयस्काम इति शिष्यलक्षणम् शेषं गुरुलक्षणम् ॥ ४ ॥ भवति त्वयि अनपगान् स्थिरान्॥ ५ ॥ लोकतत्त्वं आत्मयाथात्म्यम् ॥६॥ अज्ञानमेवाह-**ज्ञाने हीति**। कार्याणां तत्तच्छास्त्रोदितकर्तव्यानां चैत्यवन्दनतप्तशिलारोहणकृच्छ्रचान्द्रायणाग्निहोत्रादीनां अविशेषतः इदं श्रेय इदं नेति विशेषावधारणहेत्वभावेन साम्यात् एवं सत्येव प्रवृत्तिः स्यात् ततश्च परस्परविरुद्धधर्मद्वयाचरणादुभयभ्रष्टः स्यादित्यर्थः । अतस्तेषां कार्याणां मध्ये यत् अस्माकं कार्यं कर्तुमुचितं तन्न व्यवस्यामो न निश्चिनुमः सर्वत्र श्रेयोबुद्धिसाम्यात् अतो भवान् विशेषदर्शी तद्वक्तुमर्हति ॥ ७ ॥ एतदेवाह—**भगवन्निति** । नास्ति श्रमोऽनुष्ठानजो यस्मिन्नित्यश्रमं ज्ञानं तस्येमे साधका आश्रमाः शास्त्राणि पृथगाचारं पूर्वोक्तं दर्शयितुं शीलं येषां ते पृथगाचारदर्शिनः तैराश्रमैः सर्वे नराः प्रबोधिताः ॥ ८ ॥ तान्प्रबोधितान् विविधेन मार्गेण प्रस्थितान्शास्त्राभिनन्दिनः स्वे स्वे शास्त्रे अभिनन्दितुं शीलं येषां तान् दृष्ट्वा यथा वयं स्वशास्त्रैः परितुष्टास्तथा तानपि दृष्ट्वा संदिहानाः सन्तः श्रेयः प्रशस्ततरं नोपलभामहे न निश्चेतुं समर्थाः स्मः ॥९॥ कलिलं नानाशंकाकुलं अधीहि अध्यापय ॥ ११ ॥ आश्रमाः शास्त्राणि चत्वारि तत्र धर्मो नास्त्येवेत्येकं शास्त्रम्। अवैदिकः शाक्यादिकल्पितश्चैत्यवन्दनादिरेव धर्मो नान्य इत्यपरम् । वेदोक्त एव धर्मो नान्य इति तृतीयम्। धर्माधर्मातीतं वस्तुमात्रमस्तीति चतुर्थम्। यथासंकल्पिताः संकल्पितं संकल्पं अनतिक्रान्ताः यो येन श्रेयस्त्वेन भावितस्तस्य तदेव श्रेय इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः-'तं यथा यथोपासते तथैतः प्रेत्य भवति' इति संकल्पानुसारेण फलं दर्शयति तान्समाश्रित्य अनुपश्य गुरुभ्योऽधिगम्य सम्यगालोचय एतान्बुद्ध्या आलोचयन् स्वयमेवैतेषु प्रशस्तं यत्तत् ज्ञास्यसीति भावः ॥१२॥

तेषां तेषां तथा हि त्वमाश्रमाणां ततस्ततः।
नानारूपगुणोद्देशं पश्य विप्रस्थितं पृथक् ॥
न यान्ति चैव ते सम्यगभिप्रेतमसंशयम्।
अन्ये पश्यंस्तथा सम्यगाश्रमाणां परां गतिम्
यत्तु निःश्रेयसं सम्यक्
तच्चैवासंशयात्मकम्।
अनुग्रहं च मित्राणा-
ममित्राणां च निग्रहम् ॥ १५

संग्रहं च त्रिवर्गस्य श्रेय आहुर्मनीषिणः।
निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता
सद्भिश्च समुदाचारः श्रेय एतदसंशयम्।
मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम् ॥ १७
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्।
दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च संविभागोऽतिथिष्वपि ॥
असंत्यागश्च भृत्यानां श्रेय एतदसंशयम्।
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम् ॥
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं ब्रवीम्यहम्।
अहंकारस्य च त्यागः प्रमादस्य च निग्रहः।
संतोषश्चैकचर्या च कूटस्थं श्रेय उच्यते।
धर्मेण वेदाध्ययनं वेदान्तानां तथैव च ॥ २१
ज्ञानार्थानां च जिज्ञासा श्रेय एतदसंशयम्।
शब्द-रूप-रस-स्पर्शान्सह गन्धेन केवलान्
नात्यर्थमुपसेवेत श्रेयसोऽर्थी कथञ्चन ॥ २३
नक्तंचर्या दिवास्वप्नमालस्यं पैशुनं मदम्।
अतियोगमयोगं च श्रेयसोऽर्थी परित्यजेत् ॥

आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया।
स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग्जनात् ॥ २५
निर्गुणास्त्वेव भूयिष्ठमात्मसंभाविता नराः।
दोषैरन्यान्गुणवतः क्षिपन्त्यात्मगुणक्षयात् ॥
अनूच्यमानास्तु पुनस्ते मन्यन्तु महाजनात्।
गुणवत्तरमात्मानं स्वेन मानेन दर्पिताः ॥ २७
अब्रुवन्कस्यचिन्निन्दामात्मपूजामवर्णयन्।
विपश्चिद्गुणसंपन्नः प्राप्नोत्येव महद्यशः ॥ २८
अब्रुवन्वाऽतिसुरभिर्गन्धः सुमनसां शुचिः।
तथैवाव्याहरन्भाति विमलो भानुरम्बरे २९

एवमादीनि चान्यानि परित्यक्तानि मेधया।
ज्वलन्ति यशसो लोके यानि न व्याहरन्ति च
न लोके दीप्यते मूर्खः केवलात्मप्रशंसया।
अपि चापिहितः श्वभ्रे कृतविद्यः प्रकाशते ॥
असदुच्चैरपि प्रोक्तः शब्दः समुपशाम्यति।
दीप्यते त्वेव लोकेषु शनैरपि सुभाषितम् ३२
मूढानामवलिप्तानामसारं भाषितं बहु।
दर्शयत्यन्तरात्मानमग्निरूपमिवांशुमान् ॥ ३३
एतस्मात्कारणात्प्रज्ञां मृगयन्ते पृथग्विधाम्
प्रज्ञा लाभो हि भूतानामुत्तमः प्रतिभाति मे
नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नाप्यन्यायेन पृच्छतः।
ज्ञानवानपि मेधावी जडवत्समुपाविशेत् ॥
ततो वा संपरीक्षेत धर्मनित्येषु साधुषु।
मनुष्येषु वदान्येषु स्वधर्मनिरतेषु च ॥ ३६

---

गुणोद्देशं आत्मज्ञानगुणभूतानां धर्माणामुद्देशं संकीर्तनम्। पृथक् विरुद्धेन प्रकारेण प्रस्थितम्। यथा परेषां तप्तशिलारोहणादिर्धर्मः स एवास्माकमधर्मः यथा वाऽस्माकमग्नीषोमीयपश्वालम्भो धर्मः स एव परेषामधर्म इत्यर्थः ॥ १३ ॥ **नेति**। ते आश्रमाः स्थूलदृष्ट्या निरीक्ष्यमाणाः सम्यगभिप्रेतं धर्ममात्मतत्त्वं वा न यान्ति न प्रापयन्ति तेषामेव परां गतिमन्ये सूक्ष्मदृशः सम्यक् ऋजु यथा स्यात्तथाऽपश्यन् उत्तरत्रिया फलसाधनयोः सर्वत्राविगानात् ॥ १४ ॥ एतदेवाह-**यत्त्विति**। मित्राणां सर्वभूताभयप्रदानामनुग्रहम् अमित्राणां हिंस्राणां च निग्रहं श्रेय आहुरित्यग्रिमेणान्वयः। हिंस्रनिग्रहस्य श्रेयस्त्वोक्त्या हिंस्रसत्त्वस्यातिनिन्द्यत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥ सर्वतन्त्रसाधारणधर्मप्रसंगाद्दैदिकं धर्ममाह—**दैवतेभ्य इत्यर्धेन** ॥ १८ ॥ सत्यस्य अबाधितात्मतत्त्वस्य वचनं श्रवणादिकम् ॥ १९ ॥ सत्यं सत्यप्रापकम् ॥ २० ॥ जिज्ञासा अनुभवेच्छा ॥ २२ ॥

अतियोगम् आहारादीनाम्। यथोक्तम्—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन इति ॥ २४ ॥

**आत्मेति**। विप्रकर्षमुत्कर्षम्। नीचादुत्कर्षं नेच्छेदपि तूच्चादेवेति भावः ॥ २५ ॥ आत्मनो गुणाः क्षय ऐश्वर्यं तदुभयात्। गुणक्षयादिति समाहारः। क्षिपन्ति निन्दन्ति ॥ २६ ॥ अनूच्यमानाः शिक्ष्यमाणाः ॥ २७ ॥ विपश्चिद्गुणाः 'अद्वेष्टा सर्वभूतानामित्यादयः' महद्यशो ब्रह्म 'न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः' इति श्रुतिप्रसिद्धेः ॥ २८ ॥ असत् सारवर्जितं यथा स्यात्तथा प्रोक्तः ॥ ३२ ॥ **मूढानामिति**। यथा सूर्यः सूर्यकान्तयोगात्स्वस्याग्निरूपं दर्शयति। एवं क्षुद्रोऽपि कुशब्दयोगात्क्षुद्रमन्तरात्मानं दर्शयतीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ मृगयन्ते श्रेयोर्थिनः। पृथग्विधां नानाशास्त्रभेदभिन्नाम् ॥ ॥ ३४ ॥ वासं परीक्षेत वस्तुमिच्छेत् ॥ ३६ ॥

चतुर्णां यत्र वर्णानां धर्मव्यतिकरो भवेत् ।
न तत्र वासं कुर्वीत श्रेयोर्थी वै कथञ्चन ॥३७
निरारम्भोऽप्ययमिह यथालब्धोपजीवनः ।
पुण्यं पुण्येषु विमलं पापं पापेषु चाप्नुयात् ३८
अपामग्नेस्तथेन्दोश्च स्पर्शो वेदयते यथा ।
तथा पश्यामहे स्पर्शमुभयोः पुण्यपापयोः ३९
अपश्यन्तोऽनुविषयं भुञ्जते विघसाशिनः ।
भुञ्जानाश्चात्मविषयान्विषयान्विद्धि कर्मणाम्
यत्रागमयमानानामसत्कारेण पृच्छताम् ।
प्रब्रूयाद्ब्रह्मणो धर्मं त्यजेत्तं देशमात्मवान् ४१
शिष्योपाध्यायिकावृत्तिर्यत्र स्यात्सुसमाहिता
यथावच्छास्त्रसंपन्ना कस्तं देशं परित्यजेत् ॥
आकाशस्था ध्रुवं यत्र दोषं ब्रूयुर्विपश्चिताम् ।
आत्मपूजाभिकामो वै को वसेत्तत्र पण्डितः
यत्र संलोडिता लुब्धैः प्रायशो धर्मसेतवः ।
प्रदीप्तमिव चैलान्तं कस्तं देशं न सन्त्यजेत्
यत्र धर्ममनाशंकाश्चरेयुर्वीतमत्सराः ।
भवेत्तत्र वसेच्चैव पुण्यशीलेषु साधुषु ॥ ४५
धर्ममर्थनिमित्तं च चरेयुर्यत्र मानवाः ।
नताननुवसेज्जातु ते हि पापकृतो जनाः ४६
कर्मणा यत्र पापेन वर्तन्ते जीवितेप्सवः ।
व्यवधावेत्ततस्तूर्णं ससर्पाच्छरणादिव ४७
येन खट्वां समारूढः कर्मणाऽनुशयी भवेत् ।
आदितस्तन्न कर्तव्यमिच्छता भवमात्मनः ॥
यत्र राजा च राज्ञश्च पुरुषाः प्रत्यनन्तराः ।
कुटुम्बिनामग्रभुजस्त्यजेत्तद्राष्ट्रमात्मवान् ४९
श्रोत्रियास्त्वग्रभोक्तारो
धर्मनित्याः सनातनाः ।
याजनाध्यापने युक्ता
यत्र तद्राष्ट्रमावसेत् ॥ ५०
स्वाहा स्वधा वषट्कारा यत्र सम्यगनुष्ठिताः
अजस्रं चैव वर्तन्ते वसेत्तत्राविचारयन् ५१
अशुचीन्यत्र पश्येत ब्राह्मणान्वृत्तिकर्शितान् ।
त्यजेत्तद्राष्ट्रमासन्नमुपसृष्टमिवामिषम् ॥ ५२
प्रीयमाणा नरा यत्र प्रयच्छेयुरयाचिताः ।
स्वस्थचित्तो वसेत्तत्र कृतकृत्य इवात्मवान् ॥
दण्डो यत्राविनीतेषु सत्कारश्च कृतात्मसु ।
चरेत्तत्र वसेच्चैव पुण्यशीलेषु साधुषु ॥ ५४
उपसृष्टेषु दान्तेषु दुराचारेषु साधुषु ।
अविनीतेषु लुब्धेषु सुमहद्दण्डधारणम् ॥ ५५
यत्र राजा धर्मनित्यो राज्यं धर्मेण पालयेत् ।
अपास्य कामान्कामेशो वसेत्तत्राविचारयन्
यथा शीला हि राजानः सर्वान्विषयवासिनः
श्रेयसा योजयत्याशु श्रेयसि प्रत्युपस्थिते ॥
पृच्छतस्ते मया तात श्रेय एतदुदाहृतम् ।
न हि शक्यं प्रधानेन श्रेयः संख्यातुमात्मनः
एवं प्रवर्तमानस्य वृत्तिं प्राणिहितात्मनः ।
तपसैवेह बहुलं श्रेयो व्यक्तं भविष्यति ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि श्रेयोवाचिको नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥

---

व्यतिकरः संकरः ॥ ३७ ॥ आप्नुयात्संगमात्रेणेवेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ अत्र दृष्टान्तमाह-**अपामिति** । अबादीनां संगमात्रं यथा शीतोष्णसुखदुःखदं तथा सदसत्संग एव पुण्यपापद इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ विषयं विषयमनुवर्तत इत्यनुविषयो रसः । तमपश्यन्तः इदं मधुरमिदं तिक्तमित्यनालोचयन्तः । केवलं गर्तपूरणमात्रार्थे भुञ्जते विघसो देवतादिशेषं तदशनशीलाः शिष्टाः । ये तु आत्मविषयान्बुद्धेर्विशेषतो बन्धकान् रसविशेषान्परीक्षापूर्वकं भुञ्जते तान्कर्मणां विषयान्कर्मपाशगोचरान्विद्धि । इन्द्रियपोषकाणां कदाचिदपि न संसारोपरमसंभावनाऽस्तीत्यर्थः ॥ ४० ॥ गुरुशिष्यधर्मानाह—**यत्रेत्यादिना** । आगमं प्रमाणजं ज्ञानमात्मन इच्छतामागमयमानानाम् । क्यजन्तस्य रूपम् ॥ ४१ ॥ आकाशस्था निरालंबनाः अविद्यमानान् दोषान्ब्रूयुरित्यर्थः ॥ ४३ ॥ संलोडिताः आकुलीकृताः ॥४४॥ भवेत्तत्र सन्निहितः ॥ ४५ ॥ काम्यनिषिद्धे निन्दति—**धर्ममिति द्वाभ्याम्** ॥ ४६ ॥ अनुशयी पूर्वकर्मवासनावान् खट्वारूढस्तीव्रदुःखग्रस्तः ॥ ४८ ॥ उपसृष्टं सविषम् ॥ ५२ ॥ आत्मवान् जितचित्तः ॥ ५३ ॥ ये दान्तेषु उपसृष्टाः सक्रोधास्तेषु ये च साधुषु दुराचारास्तेषु ॥ ५५ ॥ कामान् विषयाभिलाषान् कामेशः सर्वसंपत्तिमान् ॥ ५६ ॥ विषयवासिनः स्वदेशस्थान् प्रत्युपस्थिते प्रतिपत्त्वेनोपस्थिते हीयमाने सतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥ प्रधानेन प्राधान्येन संख्यातुं कीर्तयितुम् ॥ ५८ ॥ एवं अनया दिशा वृत्तिं जीविकामुद्दिश्य तपसा स्वधर्मेण प्राणिहिते आत्मा चित्तं यस्य । पाठान्तरे प्रणिहितः समाहितः आत्मा चित्तं यस्य बहुलं श्रेयो मोक्षाख्यम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥

## २८८-[११५]

युधिष्ठिर उवाच ।
कथं नु युक्तः पृथिवीं चरेदस्मद्विधो नृपः ।
नित्यं कैश्च गुणैर्युक्तः संगपाशाद्विमुच्यते ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
अरिष्टनेमिना प्रोक्तं सगरायानुपृच्छते ॥ २
सगर उवाच ।
किं श्रेयः परमं ब्रह्मन्कृत्वेह सुखमश्नुते ।
कथं न शोचेन्न क्षुभ्येदेतदिच्छामि वेदितुम्
भीष्म उवाच ।
एवमुक्तस्तदा तार्क्ष्यः सर्वशास्त्रविदां वरः ।
विबुध्य संपदं चाग्र्यां सद्वाक्यमिदमब्रवीत् ४
सुखं मोक्षसुखं लोके न च मूढोऽवगच्छति ।
प्रसक्तः पुत्रपशुषु धनधान्यसमाकुलः ॥ ५
सक्तबुद्धिरशान्तात्मा
न शक्यं तच्चिकित्सितुम् ।
स्नेहपाशसितो मूढो
न स मोक्षाय कल्पते ॥ ६
स्नेहजानिह ते पाशान्वक्ष्यामि शृणु तान्मम
सकर्णकेन शिरसा शक्याः श्रोतुं विजानता
संभाव्य पुत्रान्कालेन यौवनस्थान्निवेश्य च ।
समर्थान् जीवने ज्ञात्वा मुक्तश्चर यथासुखम्
भार्यां पुत्रवतीं वृद्धां लालितां पुत्रवत्सलाम्
ज्ञात्वा प्रजहि कालेन परार्थमनुदृश्य च ॥ ९
सापत्यो निरपत्यो वा मुक्तश्चर यथासुखम् ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्त्वमनुभूय यथाविधि १०
कृतकौतूहलस्तेषु मुक्तश्चर यथासुखम् ।
उपपत्त्योपलब्धेषु लोकेषु च समो भव ॥ ११
एष तावत्समासेन तव संकीर्तितो मया ।
मोक्षार्थो विस्तरेणाथ भूयो वक्ष्यामि तच्छृणु
मुक्ता वीतभया लोके चरन्ति सुखिनो नराः
सक्तभावा विनश्यन्ति नरास्तत्र न संशयः ॥
आहारसंचयाश्चैव तथा कीटपिपीलिकाः ।
असक्ताः सुखिनो लोके सक्ताश्चैव विनाशिनः
स्वजनेन च ते चिन्ता कर्तव्या मोक्षबुद्धिना ।
इमे मया विनाभूता भविष्यन्ति कथं त्विति
स्वयमुत्पद्यते जन्तुः स्वयमेव विवर्धते ।
सुखदुःखे तथा मृत्युं स्वयमेवाधिगच्छति १६
भोजनाच्छादने चैव मात्रा पित्रा च संग्रहम्
स्वकृतेनाधिगच्छन्ति लोके नास्त्यकृतं पुरा ॥
धात्रा विहितभक्ष्याणि सर्वभूतानि मेदिनीम्
लोके विपरिधावन्ति रक्षितानि स्वकर्मभिः
स्वयं मृत्पिण्डभूतस्य परतन्त्रस्य सर्वदा ।
को हेतुः स्वजनं पोष्टुं रक्षितुं वाऽदृढात्मनः ॥
स्वजनं हि यदा मृत्युर्हन्त्येव तव पश्यतः ।
कृतेऽपि यत्ने महति तत्र बोद्धव्यमात्मना २०
जीवन्तमपि चैवैनं भरणे रक्षणे तथा ।
असमाप्ते परित्यज्य पश्चादपि मरिष्यसि २१

---

२८८

सर्वतन्त्रसाधारणानहिंसाप्रधानान्मोक्षधर्मान् श्रुत्वा राज्ञां तदनुष्ठानं दुःशकमिति मन्वानः पृच्छति—**कथमिति** ॥ १ ॥ सर्वस्यासारतां भावयन्नेव संगपाशाद्विमुच्यत इति वक्तुमाख्यायिकामुखेनाह—**अत्रेति** ॥ २ ॥ संपदं उपदेशयोग्यताश्रियम् ॥ ४ ॥ **सक्तेति** । सक्ता विषयनिमग्ना सा चासौ बुद्धिश्च । अशान्तश्चासौ आत्मा च तृष्णाकुलं मनः तत् द्वयं चिकित्सितुमशक्यम् । न स शक्यश्चिकित्सितुमिति पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः सितो बद्धः ॥ ६ ॥ सकर्णकेन शिरसेत्येताभ्यां पदाभ्यां सावधानेन जीवतेत्यर्थो लक्ष्यते ॥७॥ निवेश्य दारैः संयोज्य ॥८॥ परार्थे आन्तिमं पुरुषार्थं मोक्षम् । प्रजहि त्यज ॥ ९ ॥ कृतकौतूहलः छिन्नौत्सुक्यः कृ हिंसायां भ्वादिस्तस्य निष्ठायां कृतमिति रूपम् । उपपत्त्या यदृच्छया उपलब्धेषु लोकेषु विषयेषु समो रागद्वेषहीनः ॥ ११ ॥ एष भोगपूर्वकस्त्यागः मोक्षार्थो मोक्षप्रयोजनः ॥ १२ ॥ मुक्ताश्छिन्नस्नेहपाशाः सक्तभावाः विषयासक्तचित्ताः ॥ १३ ॥ उक्तेऽर्थे दृष्टान्तमाह—**आहारेति** । आहारं संचिन्वन्ति संगृह्णन्ति तादृशाः कीटादयो नश्यन्ति न त्वसंग्रहिण इत्यर्थः ॥ १४ ॥ ननु—

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः ।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥

इति स्मृतेः संग्रहं विना कथं मात्रादिजीवनं स्यादित्याशंक्याह—**स्वजने इति त्रिभिः** । यथा उत्पत्त्यादिकं तत्तत्कर्माधीनमेवं भोजनादिकमपीति मात्रादिविषये चिन्ता न कार्येत्यर्थः ॥१५॥ मात्रा पित्रा कृतेन स्वकृतेन वा संग्रहं अधिगच्छन्तीति योजना ॥ १७ ॥ धात्रा प्राक्कर्मफलविभाजकेन ॥ १८ ॥ स्वस्याकिंचित्करत्वादपि मात्रादिपोषणे चिन्ता न कार्येत्याह—**स्वयमित्यादिना** । अदृढेति च्छेदः ॥ १९ ॥ **जीवन्तमिति** । भरणे अन्ने रक्षणे गृहादौ असमाप्तेप्यन्नादौ वैनं भर्तारं जीवन्तमपि परि-

यदा मृतं च स्वजनं न ज्ञास्यासि कदाचन ।
सुखितं दुःखितं वाऽपि ननु बोद्धव्यमात्मना
मृते वा त्वयि जीवे वा यदा भोक्ष्यति वै जनः
स्वकृतं ननु बुद्ध्वैवं कर्तव्यं हितमात्मनः २३

एवं विजानन् लोकेऽस्मिन्
कः कस्येत्यभिनिश्चितः ।
मोक्षे निवेशय मनो
भूयश्चाप्युपधारय ॥ २४

क्षुत्पिपासादयो भावा जिता यस्येह देहिनः
क्रोधो लोभस्तथा मोहः सत्त्ववान्मुक्त एव सः
द्यूते पाने तथा स्त्रीषु मृगयायां च यो नरः ।
न प्रमाद्यति संमोहात्सततं मुक्त एव सः ॥
दिवसे दिवसे नाम रात्रौ रात्रौ पुमान्सदा ।
भोक्तव्यमिति यः खिन्नो दोषबुद्धिः स उच्यते
आत्मभावं तथा स्त्रीषु मुक्तमेव पुनः पुनः ।
यः पश्यति सदा युक्तो यथावन्मुक्त एव सः

संभवं च विनाशं च
भूतानां चेष्टितं तथा ।
यस्तत्त्वतो विजानाति
लोकेऽस्मिन्मुक्त एव सः ॥ २९

प्रस्थं वाहसहस्रेषु यात्रार्थं चैव कोटिषु ।
प्रासादे मञ्चकं स्थानं यः पश्यति स मुच्यते
मृत्युनाभ्याहतं लोकं व्याधिभिश्चोपपीडितम्
अवृत्तिकर्शितं चैव यः पश्यति स मुच्यते ३१
यः पश्यति स संतुष्टो नपश्यंश्च विहन्यते ।
यश्चाप्यल्पेन संतुष्टो लोकेऽस्मिन्मुक्त एव सः
अग्नीषोमाविदं सर्वमिति यश्चानुपश्यति ।
न च संस्पृश्यते भावैरद्भुतैर्मुक्त एव सः॥ ३३
पर्यङ्कशय्या भूमिश्च समाने यस्य देहिनः ।
शालयश्च कदन्नं च यस्य स्यान्मुक्त एव सः
क्षौमं च कुशचीरं च कौशेयं वल्कलानि च
आविकं चर्म च समं यस्य स्यान्मुक्त एव सः
पञ्चभूतसमुद्भूतं लोकं यश्चानुपश्यति ।
तथा च वर्तते दृष्ट्वा लोकेऽस्मिन्मुक्त एव सः
सुखदुःखे समे यस्य लाभालाभौ जयाजयौ ।
इच्छाद्वेषौ भयोद्वेगौ सर्वथा मुक्त एव सः३७
रक्तमूत्रपुरीषाणां दोषाणां सञ्चयांस्तथा ।
शरीरं दोषबहुलं दृष्ट्वा चैव विमुच्यते ॥ ३८
वलीपलितसंयोगे कार्श्यं वैवर्ण्यमेव च ।
कुब्जभावं च जरया यः पश्यति स मुच्यते॥
पुंस्त्वोपघातं कालेन दर्शनोपरमं तथा ।
बाधिर्यं प्राणमन्दत्वं यः पश्यति स मुच्यते।
गतानृषींस्तथा देवानसुरांश्च तथामतान् ।
लोकादस्मात्परं लोकं यः पश्यति स मुच्यते
प्रभावैरन्वितास्तैस्तैः पार्थिवेन्द्राः सहस्रशः
ये गताः पृथिवीं त्यक्त्वा इति ज्ञात्वा विमुच्यते
अर्थांश्च दुर्लभाँल्लोके क्लेशांश्च सुलभांस्तथा ।
दुःखं चैव कुटुम्बार्थे यः पश्यति स मुच्यते॥
अपत्यानां च वैगुण्यं जनं विगुणमेव च ।
पश्यन्भूयिष्ठशो लोके को मोक्षं नाभिपूजयेत्

---

त्यज्य स्वकर्मणैव यथा भार्यादिर्म्रियते पश्चात्तदुभयनाशादूर्ध्वमपि तथैव मरिष्यत्येवेत्यर्थः ॥ २१ ॥ **यदेति** । मृतं देशान्तरस्थं वा स्वजनं सुखितं दुःखितं वा न ज्ञास्यसि नाप्युपकरिष्यसि यथा एवं आत्मना इदं बोद्धव्यं मामपि मृतं देशान्तरगतं पुत्रदयो न ज्ञास्यन्ति नोपकरिष्यन्तीति ॥ २२ ॥ अत्यल्पमिदमुक्तं त्वयि मृते वा जीवति वा जनः पुत्रादिः स्वकृतं जरारोगादिकं भोक्ष्यति त्वं च न तद्दूरीकर्तुं शक्नोषि एवमन्येऽपि तवेति बुद्ध्वा ॥ २३ ॥ यस्य देहिनः येन पुंसा सत्ववान् सत्त्वाधिकः ॥ २५ ॥ द्यूते इत्यादयः सामीप्ये सप्तम्यः न प्रमाद्यति आत्मानं विस्मृत्य तत्राभिनिविष्टो न भवति ॥ २६ ॥ कियत्प्रत्यहं भोक्तव्यं कियत्प्रतिरात्रं भोक्तव्यमिति यो भोगात् खिन्नः ॥ २७ ॥ **आत्मेति** । आत्मभावं चित्तस्य स्वभावं स्त्रीषु विषयभूतासु मुक्तं स्त्र्यभिलाषाद्व्यावृत्तम् । सक्तमिति पाठे सक्तं संगस्तं भावे निष्ठा आत्मनो भवनं भावो जन्म स्त्रीसङ्गं जन्महेतुत्वेन यः पश्यतीत्यर्थः । युक्तः सावधानः ॥ २८ ॥ **संभवमिति** । जन्ममरणजीवनक्लेशज्ञो मुच्यते इत्यर्थः ॥ २९ ॥ वाहः धान्यपूर्णशकटं सहस्रेषु कोटिष्विति समानाधिकरणं प्रस्थं पुरुषाहारपरिमितं धान्यम् । यद्वा । पञ्चकृष्णलको **माषस्ते** षोडश **पलं**, तानि सार्धत्रयोदश **प्रस्थः**, प्रस्थशत**माढकस्ते** शतद्वयं **द्रोणः**, **कुंभस्ते** दश ते दश **वाह** इति। यात्रार्थे देहव्यवहारार्थे अधिकसंग्रहो व्यर्थ इति यः पश्यति ॥३०॥ अवृत्तिर्जीविकाया अभावः ॥ ३१ ॥ नपश्यन्नित्येकं पदं मृत्युनाभ्याहतं लोकमित्यनुकृष्यते ॥ ३२ ॥ **अग्नीषोमाविति** । अग्निर्जाठरो भोक्ता सोमोऽन्नं भोज्यम् । अहं तु ततोऽन्य इति योऽनुपश्यति स भावैः सुखदुःखादिभिरद्भुतैर्मायिकैर्न संस्पृश्यते सङ्गवान्न भवति ॥ ३३ ॥ क्षौमं अतसीसूत्रमयम् । कुशचीरं तृणवस्त्रम् । कौशेयं कोशजं आविकं कम्बलम् ॥ ३५ ॥ तथा च साम्येनेत्यर्थः ॥३६॥ प्राणमन्दत्वं दौर्बल्यम् ॥ ४० ॥

शास्त्रालोकाच्च यो बुद्धः सर्वं पश्यति मानवः
असारमिव मानुष्यं सर्वथा मुक्त एव सः ४५
एतच्छ्रुत्वा मम वचो भवांश्चरतु मुक्तवत् ।
गार्हस्थ्ये यदि वा मोक्षे कृता बुद्धिरविक्लवा
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा सम्यक्स पृथिवीपतिः ।
मोक्षजैश्च गुणैर्युक्तः पालयामास च प्रजाः४७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि सगरारिष्टनेमिसंवादे अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

## २८९-[११६]

युधिष्ठिर उवाच ।
तिष्ठते मे सदा तात कौतूहलमिदं हृदि ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः कुरुपितामह॥ १
कथं देवर्षिरुशनाः सदा काव्यो महामतिः ।
असुराणां प्रियकरः सुराणामप्रिये रतः ॥ २
वर्धयामास तेजश्च किमर्थममितौजसाम् ।
नित्यं वैरनिबद्धाश्च दानवाः सुरसत्तमैः ॥ ३
कथं चाप्युशनाः प्राप शुक्रत्वममरद्युतिः ।
ऋद्धिं च स कथं प्राप्तः सर्वमेतद्ब्रवीहि मे॥४
न याति च स तेजस्वी मध्येन नभसः कथम्
एतदिच्छामि विज्ञातुं निखिलेन पितामह ५
भीष्म उवाच ।
शृणु राजन्नवहितः सर्वमेतद्यथातथम् ।
यथामति यथा चैतच्छ्रुतपूर्वं मयाऽनघ ॥ ६
एष भार्गवदायादो मुनिर्मान्यो दृढव्रतः ।
सुराणां विप्रियकरो निमित्ते कारणात्मके ७
इन्द्रोऽथ धनदो राजा यक्षरक्षोधिपः सदा ।
प्रभविष्णुश्च कोशस्य जगतश्च तथा प्रभुः॥ ८
तस्यात्मानमथाविश्य योगसिद्धो महामुनिः
रुद्ध्वा धनपतिं देवं योगेन हृतवान्वसु ॥९
हृते धने ततः शर्म न लेभे धनदस्तथा ।
आपन्नमन्युः संविग्नः सोऽभ्यगात्सुरसत्तमम्
निवेदयामास तदा शिवायामिततेजसे ।
देवश्रेष्ठाय रुद्राय सौम्याय बहुरूपिणे ॥ ११
योगात्मकेनोशनसा रुद्ध्वा मम हृतं वसु ।
योगेनात्मगतं कृत्वा निःसृतश्च महातपाः१२
एतच्छ्रुत्वा ततः क्रुद्धो महायोगी महेश्वरः ।
संरक्तनयनो राजन्शूलमादाय तस्थिवान् १३
क्वासौ क्वासाविति प्राह गृहीत्वा परमायुधम्
उशना दूरतस्तस्य बभौ ज्ञात्वा चिकीर्षितम्
स महायोगिनो बुद्ध्वा तं रोषं वै महात्मनः
गतिमागमनं वेत्ति स्थानं चैव ततः प्रभुः ॥१५
सञ्चिन्त्योग्रेण तपसा महात्मानं महेश्वरम् ।
उशना योगसिद्धात्मा शूलाग्रे प्रत्यदृश्यत ॥
विज्ञातरूपः स तदा तपःसिद्धोऽथ धन्विना
ज्ञात्वा शूलं च देवेशः पाणिना समनामयत्

---

मोक्षजैः ज्ञानजैरद्वेष्टृत्वादिभिः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

२८९

एवं रागद्वेषहीनो वीतसङ्गो मुच्यत इत्युक्तम् । सङ्गदोषाजन्मना महानपि अधोगतिं स्वर्गमार्गप्रतिबन्धं च लभत इति वक्तुं शुक्रोपाख्यानं प्रस्तूयते-**तिष्ठते इति** । स्थेयाख्यायां तङ् । कौतूहलमाश्चर्यं चिरकालं मम हृदि वर्तते इत्यर्थः ॥ १ ॥ वर्धयामास चिच्छेद अमितौजसां देवानाम् ॥ ३ ॥ शुक्रत्वं शुक्रोत्पन्नत्वम् ॥ ४ ॥ **नेति** । तस्याकाशगतिः कुतः कुण्ठितेत्यर्थः । सप्तर्षिवाद्रिरूपेण स्थितस्य शुक्रस्य भूस्थमूर्तिविषयक एवायं प्रश्नो नभश्चक्रस्थमूर्तिविषयः तेन यथा भौमानां वसिष्ठादीनां स्वर्गेऽपि गतिरस्ति नैवं भौमस्य शुक्रस्यास्तीति गम्यते ॥५॥ कारणा क्रिया तदात्मके निमित्ते सति । एवं ह्युपाख्यायते—' असुराः किल देवान्बाधित्वा भृगुपत्न्या आश्रमं प्रविशन्ति तं च देवाः प्रवेष्टुमशक्नुवन्तो विष्णुं शरणमीयुस्ततो विष्णुश्चक्रेण भृगुपत्न्याः शिरश्चिच्छेद । ततो हतावशिष्टा असुरास्तत्पुत्रं शुक्रं शरणमीयुः । स च मातृवधखिन्नोऽसुरेभ्योऽभयं दत्वा देवान्बाधते ' इति ॥ ७ ॥ इन्द्रो जगतः प्रभुर्धनदस्तदीयकोशस्य प्रभुरित्यन्वयः ॥ ८॥ तस्य धनदस्य आत्मानं शरीरम् ॥९॥ आपन्नमन्युः प्राप्तदैन्यः ॥ १० ॥ बभौ आत्मानं दर्शितवान् ॥ १४ ॥ महायोगिनः शिवस्य प्रभुर्योगसिद्धः शुक्रः ॥१५॥ सः शुक्रः धन्विना रुद्रेण शूलं शुक्रयुतं शूलस्थे शूलं

आननेनाथ शूलेन पाणिनाऽमिततेजसा।
पिनाकमिति चोवाच शूलमुग्रायुधः प्रभुः१८
पाणिमध्यगतं दृष्ट्वा भार्गवं तमुमापतिः।
आस्यं विवृत्य ककुदी पाणिना प्राक्षिपच्छनैः
स तु प्रविष्ट उशना कोष्ठं माहेश्वरं प्रभुः।
व्यचरच्चापि तत्रासौ महात्मा भृगुनन्दनः२०

युधिष्ठिर उवाच।

किमर्थं व्यचरद्राजन्नुशना तस्य धीमतः।
जठरे देवदेवस्य किं चाकार्षीन्महाद्युतिः २१

भीष्म उवाच।

पुरा सोऽन्तर्जलगतः स्थाणुभूतो महाव्रतः
वर्षाणामभवद्राजन्प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ २२
उदतिष्ठत्तपस्तप्त्वा दुश्चरं च महाह्रदात्।
ततो देवातिदेवस्तं ब्रह्मा वै समसर्पत ॥ २३
तपोवृद्धिमपृच्छच्च कुशलं चैवमव्ययः।
तपः सुचीर्णमिति च प्रोवाच वृषभध्वजः२४
तत्संयोगेन वृद्धिं चाप्यपश्यत्स तु शंकरः।
महामतिरचिन्त्यात्मा सत्यधर्मरतः सदा२५
स तेनाढ्यो महायोगी तपसा च धनेन च।
व्यराजत महाराज त्रिषु लोकेषु वीर्यवान्॥
ततः पिनाकी योगात्मा
ध्यानयोगं समाविशत्।
उशना तु समुद्विग्नो
निलिल्ये जठरे ततः॥ २७
तुष्टाव च महायोगी
देवं तत्रस्थ एव च।
निःसारं कांक्षमाणः स
तेन स्म प्रतिहन्यते ॥ २८
उशना तु तथोवाच जठरस्थो महामुनिः।
प्रसादं मे कुरुष्वेति पुनः पुनररिन्दम॥ २९
तमुवाच महादेवो
गच्छ शिश्नेन मोक्षणम्।
इति सर्वाणि स्रोतांसि
रुद्ध्वा त्रिदशपुंगवः॥ ३०
अपश्यमानस्तद्द्वारं सर्वतः पिहितो मुनिः।
पर्यक्रामद्दह्यमान इतश्चेतश्च तेजसा॥ ३१
स वै निष्क्रम्य शिश्नेन शुक्रत्वमभिपेदिवान्।
कार्येण तेन नभसो नाध्यगच्छत मध्यतः॥
विनिष्क्रान्तं तु तं दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव तेजसा
भवो रोषसमाविष्टः शूलोद्यतकरः स्थितः॥
अवारयत तं देवी क्रुद्धं पशुपतिं पतिम्।
पुत्रत्वमगमद्देव्या वारिते शंकरे च सः॥ ३४

देव्युवाच।

हिंसनीयस्त्वया नैव मम पुत्रत्वमागतः।
न हि देवोदरात्कश्चिन्निःसृतो नाशमृच्छति
ततः प्रीतो भवो देव्याः प्रहसंश्चेदमब्रवीत्।
गच्छत्वेष यथाकाममिति राजन्पुनः पुनः॥
ततः प्रणम्य वरदं देवं देवीमुमां तथा।
उशना प्राप तद्धीमान्गतिमिष्टां महामुनिः३७
एतत्ते कथितं तात भार्गवस्य महात्मनः।
चरितं भरतश्रेष्ठ यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ३८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भवभार्गवसमागमे एकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८९॥

---

प्रयोक्तुमशक्यमिति तमेव शूलं धनूरूपं कर्तुं पाणिना समनामयत् संनामितवान् ॥१७॥ शूलमेव पिनाकपदेन उवाच यतः पाणिना अनामयत् अतः पिनाकं तेनाद्यपदस्याद्यन्तवर्णाभ्यां द्वितीयस्य मध्यमाभ्यां कप्रत्यययुक्ताभ्यां पिनाकपदं निष्पन्नमिति योगप्रदर्शनं कृतम् ॥ १८ ॥ पाणिमध्यगतो धनुषाऽपि वेद्धुमशक्य इति मत्वा ककुदी देवानां पट्टाधिपतिः रुद्रः प्राक्षिपत् आस्ये ॥ १९ ॥ कोष्ठं उदरम् ॥ २०॥ व्यचरदेव न त्वन्नवज्जीर्णतां गतः किंच तादृशं अकार्षीत्तप इति शेषः ॥ २१ ॥ वृद्धिं शुक्रस्योत्कर्षम्। तत्संयोगेन तपोयोगेन ॥ २५ ॥ सः शुक्रः ॥ २६ ॥ निलिल्ये नितरां गतिं जगाम बभ्रामेत्यर्थः ॥ २७ ॥ निःसारं निर्गमं तेन रुद्रेण ॥२८॥ **कार्येणेति**। तेन शिश्नान्निर्गमनेन कार्येण निमित्तेनास्मदादिवन्नभसो मध्यतः नाध्यगच्छत नाधिगम्यते कर्मणि तङ्। जामदग्न्यस्य रामस्येवास्य स्वर्गतिर्निरुद्धेत्यर्थः अन्ये तु भचक्रस्थोऽपि शुक्रः सूर्याद्विप्रकर्षात् खमध्यगतो न दृश्यत इति तन्मात्रपरतयैवैतद्व्याचख्युः। तस्मिन्पक्षे शुक्रत्वहेतुर्न सङ्गच्छत इत्यालोचनीयम् ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

## २९०–[११७]

युधिष्ठिर उवाच ।
अतः परं महाबाहो यच्छ्रेयस्तद्ब्रवीहि मे ।
न तृप्याम्यमृतस्येव वचसस्ते पितामह ॥ १
किं कर्म पुरुषः कृत्वा शुभं पुरुषसत्तम ।
श्रेयः परमवाप्नोति प्रेत्य चेह च तद्वद ॥ २
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि यथापूर्वं महायशाः ।
पराशरं महात्मानं पप्रच्छ जनको नृपः॥ ३
किं श्रेयः सर्वभूतानामस्मिँल्लोके परत्र च ।
यद्भवेत्प्रतिपत्तव्यं तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ४
ततः स तपसा युक्तः सर्वधर्मविधानवित् ।
नृपायानुग्रहमना मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ५
पराशर उवाच ।
धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परत्र च ।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः॥
प्रतिपद्य नरो धर्मं स्वर्गलोके महीयते ।
धर्मात्मकः कर्मविधिर्देहिनां नृपसत्तम ॥ ७
तस्मिन्नाश्रमिणः सन्तः स्वकर्माणीह कुर्वते॥ ८
चतुर्विधा हि लोकेऽस्मि-
न्यात्रा तात विधीयते ।
मर्त्या यत्रावतिष्ठन्ते
सा च कामात्प्रवर्तते ॥ ९
सुकृतासुकृतं कर्म निषेव्य विविधैः क्रमैः ।
दशार्धप्रविभक्तानां भूतानां बहुधा गतिः॥ १०
सौवर्णं राजतं चापि यथा भाण्डं निषिच्यते
तथा निषिच्यते जन्तुः पूर्वकर्मवशानुगः॥ ११
नाबीजाज्जायते किञ्चिन्नाकृत्वा सुखमेधते ।
सुकृतैर्विन्दते सौख्यं प्राप्य देहक्षयं नरः॥ १२
दैवं तात न पश्यामि नास्ति दैवस्य साधनम्
स्वभावतो हि संसिद्धा देवगन्धर्वदानवाः ॥
प्रेत्य यान्त्यकृतं कर्म न स्मरन्ति सदा जनाः
ते वै तस्य फलप्राप्तौ कर्म चापि चतुर्विधम्॥

---

२९०

रुद्रेणापि हन्तुमशक्यस्तस्य जठरेऽपि यो न जीर्णो यश्चाम्बायाः पुत्रत्वं गतस्तादृशस्यापि सङ्गदोषादूर्ध्वगतिः प्रतिबद्धा किमुतान्येषामिति मत्वा भीतो राजा पुनः सर्वसङ्गदोषघस्मरं श्रेयः किं तत्कारणं च किं कर्मेति पृच्छति— **अतः परमिति** ॥ १ ॥ अभ्यर्हितत्वात् प्रथमं श्रेयः कारणं कर्मैवाह पराशरगीतया—**अत्रेति** ॥ ३ ॥ प्रतिपत्तव्यं ज्ञातव्यं न त्वनुष्ठातव्यम् । क्रियासाध्यस्य श्रेयसो नित्यत्वापत्तेः । तथा च प्रयोगः—'यत्कृतकं तदनित्यं कार्यत्वाद्घटवत्' इति । श्रुतिश्च—'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षयित एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति ॥४॥ सर्वेषां वर्णाश्रमाणां धर्माणां विधानमाचारस्तद्वित् ॥५॥ धर्मस्य लक्षणमाह—**धर्मेति** । कर्मविधिर्यजेत जुहुयाद्दद्यादित्यादिः स एव धर्मः । एतेन चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इत्युक्तं भवति चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनं यजेतेत्यादि, इदमेव धर्मे प्रमाणं च ॥ ७ ॥ तस्मिन्धर्मे आश्रमिणः सन्तस्तन्निष्ठाः कुर्वते । विधौ लेट् ॥८॥ कर्मापेक्षितं वित्तार्जनं कथं स्यादित्यत आह— **चतुर्विधेति** । यात्रा जीविका ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहो, राजन्यस्य करादानं, वैश्यस्य कृष्यादि, शूद्रस्य भृतिर्वेतनमिति चतुर्विधा ॥ ९ ॥ सुकृतासुकृतं पुण्यपापं निषेव्य वृत्तिमिच्छतां । दशानामर्धं पञ्चभूतानि तेषु प्रविभक्तानां विभज्य स्थितानां पञ्चत्वं प्राप्तानां भूतानां प्राणिनां वृत्त्यनुरूपा चतुर्विधाऽपि अवान्तरतारतम्याद्बहुविधा गतिः श्रूयते । पापिनां तिर्यक्त्वं पुण्यवतां स्वर्गस्तयोः साम्ये मानुषत्वं तत्त्वज्ञानेनोच्छेदे मुक्तिरिति ॥ १० ॥ जीवानां कर्मानुरञ्जितत्वं सदृष्टान्तमाह—**सौवर्णमिति** । यथा ताम्रादिमयं पात्रं सौवर्णेन राजतेन वा रसेन निषिच्यते चेत् सौवर्णमिव राजतमिव वा दृश्यते तद्वज्जन्तुः पूर्वकर्मानुसारी निषिच्यते निषिक्तो भवति प्राक्कर्मणा ॥११॥ एतत्तर्कबलेन साधयति—**नाबीजादिति** । यथा ग्रीष्मे पांसुगुंठितं बीजमदृष्टमपि वर्षास्वंकुरोत्पादनेनानुमीयते एवं दृष्टादृष्टाभ्यां कारणाभ्यां सुखादिकं जायते देहक्षयं देहाधिपत्यं देहनाशं वा । कर्मभिरेव देहीह परत्र च सुखं प्राप्नोति । अन्यथा कृतनाशाकृताभ्यागमौ प्रसज्जेयातामिति भावः ॥ १२ ॥ अत्र प्रत्यवतिष्ठते चार्वाकः —**दैवमिति** । दैवं पुण्यपापलक्षणं न पश्याभि । नापि अनुमानं तस्य साधनमस्ति । ननु सुखादिवैचित्र्यान्यथानुपपत्तिरेव तत्र मानमित्याशंक्याह —**स्वभावत इति** । वह्न्यौष्ण्यादिवत्स्वभावत एव तज्जायते न कारणान्तरादित्यर्थः ॥ १३ ॥ तत्र सिद्धान्ती शंकते— **प्रेत्येति** । ननु प्रेत्य अकृतं कर्म कर्मफलं न यान्ति न प्राप्नुवन्ति । एवं सति कृतहानादिदोषप्रसंग इत्यर्थः । न चेष्टापत्तिः । लोकवादविरोधादित्याह—**स्मरन्तीति** । तस्य कर्मणः फलप्राप्तावकस्माद्राजमार्गपतितद्रव्यलाभे रोगाद्युत्पत्तौ च सत्यां ते जनाः सदा चतुर्विधं कर्म पुण्यं पापं

लोकयात्राश्रयश्चैव शब्दो वेदाश्रयः कृतः ।
शान्त्यर्थं मनसस्तात नैतद्वृद्धानुशासनम् १५
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥ १६
निरन्तरं च मिश्रं च
लभते कर्म पार्थिव ।
कल्याणं यदि वा पापं
न तु नाशोऽस्य विद्यते ॥ १७
कदाचित्सुकृतं तात कूटस्थमिव तिष्ठति ।
मज्जमानस्य संसारे यावद्दुःखाद्विमुच्यते॥ १८
ततो दुःखक्षयं कृत्वा सुकृतं कर्म सेवते ।
सुकृतक्षयाच्च दुष्कृतं तद्विद्धि मनुजाधिप १९
दमः क्षमा धृतिस्तेजः संतोषः सत्यवादिता ।
ह्रीरहिंसाऽव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः
दुष्कृते सुकृते चापि न जन्तुर्नियतो भवेत् ।
नित्यं मनःसमाधाने प्रयतेत विचक्षणः ॥ २१
नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते ।
करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥ २२
सुखदुःखे समाधाय पुमानन्येन गच्छति ।
अन्येनैव जनः सर्वः संगतो यश्च पार्थिवः २३
परेषां यदसूयेत न तत्कुर्यात्स्वयं नरः ।
यो ह्यसूयुस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति
भीरू राजन्यो ब्राह्मणः सर्वभक्ष्यो
वैश्योऽनीहावान्हीनवर्णोऽलसश्च ।
विद्वांश्चाशीलो वृत्तहीनः कुलीनः
सत्याद्विभ्रष्टो ब्राह्मणस्त्री च दुष्टा २५

नीतिरनीतिश्चेति तत्कारणत्वेन तुल्यवत्स्मरन्ति । अन्यथा नीतिमतापि दुःखमनीतिमतामपि सुखं च दृश्यमानं नोपपद्यते इत्यर्थः । अन्ये तु प्रेत्य जातिकृतं कर्मेति पठित्वा मृत्वा जन्मान्तरे कृतं कर्म जन्मान्तरे फलप्राप्तौ सत्यां चतुर्विधं नित्यनैमित्तिककाम्यनिषिद्धलक्षणं कारणत्वेन न स्मरन्तीति चार्वाकवचनत्वेनैतमपि श्लोकं व्याचक्षते ॥१४॥ **लोकेति** । पुण्यादिचतुष्टयं यत्सुखादिहेतुत्वेन स्मरन्ति। तथैव च वेदेऽपि शृण्वन्ति—'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति' 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत' इति । वेदशब्दोऽपि यः कर्मप्राधान्यपरः सोऽपि शान्त्यर्थं परर्द्धिं स्वस्य हानिं च दृष्ट्वोत्तप्तानां समाधानार्थं प्राक्कृतकर्मणा तव शत्रुः सुखी त्वं च दुःखीति नात्र तव दोषोऽस्तीति न सन्तापस्त्वया कार्य इति प्रयुज्यते । अत एतद्दैवप्रतिपादनं वृद्धानां बृहस्पत्यादीनां लोकायतागमप्रणेतृणां शासनं न भवति,न हि धर्मः प्रत्यक्षस्य विषयः। अयोग्यत्वात् । नाप्यनुमानस्य तस्यापि प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् । तदुभयाविषये यः शब्दः स केवलं वञ्चनार्थं इति भावः ॥ १५ ॥एतद्दूषयति-**चक्षुषा इति** । इन्द्रियमनोवाक्शरीरेषु प्रत्येकं चतुर्विधं पुण्यपापनीत्यनीत्याऽस्माकं तादृशं तत्प्रकारं फलं प्रतिपद्यते । अयमर्थः—कार्यवैचित्र्यात्कारणवैचित्र्यं तावदवश्यं कल्प्यम् तच्च कर्म वैचित्र्यकृतं लोके वेदे च क्लृप्तं विहाय समानेऽपि भौतिकत्वेऽनन्तानवस्थिताप्रामाणिकस्वभाववादं कल्पयतो विस्पष्टं मूर्खत्वमिति भावः ॥ १६ ॥ एतदेवाह—**निरन्तरमिति** । कर्मेति तत्फलं लक्ष्यते कदाचिन्निरन्तरं दुःखमेव लभते कदाचित्सुखमेव लभते कदाचिन्मिश्रं युगपदुभयं लभते पादे मे दुःखं हस्ते मे सुखमिति न चैतत्स्वभाववादे युज्यते । न हि वह्निरुष्णस्वभावः कश्चित्कालमुष्णः काश्चित्कालं शीतः काश्चित्कालमनुष्णाशीतश्च दृश्यते । नन्वाशुतरविनाशिनः कर्मणः कथं कालान्तरीयं फलं युज्यत इत्याशंक्याह—**न तु नाशोऽस्य विद्यत इति** । अस्य कर्मणः कर्मजन्यस्य पुण्यपापात्मकस्यापूर्वस्य ईश्वरप्रीतिरूपस्य वा भोगं विना नाशो नास्तीत्यर्थः ॥ १७ ॥ इमं श्लोकं व्याचष्टे—**कदाचिदिति**। कूटस्थं पक्षपातशून्यम् । दुष्कृता विरोधेनेत्यर्थः ॥ १८ ॥ अव्यसनितेति च्छेदः । सुखावहाः पुण्यपापयोः समूलोच्छेदे यत्सुखं तदावहन्तीति तथा ॥ २० ॥ नियतः यावज्जीवमेकैकभागी अतो द्वयोरप्यागमापायित्वान्नित्यं समाधाने ब्रह्मदर्शनहेतौ समाधौ प्रयतेत ॥ २१ ॥ न चैतत्पितुः पुत्रस्य वा सुकृतेनापि शक्यमित्याह—**नायमिति**। यो यथा करोति स तथा प्राप्नोतीत्युत्तरार्धार्थः ॥ २२ ॥ सुखदुःखहेतू पुण्यपापे समाधाय तत्त्वज्ञानेनात्मनि प्रविलाप्य पुमान् अन्येन ज्ञानवर्त्मना गच्छति इष्टं वस्तु प्राप्नोति यश्च संगतो जनः पार्थिवः पृथिवीस्थः स्त्रीपुत्रपशुगृहधनारामादिः स अन्यतो गच्छति । न तु स्वर्गेऽपवर्गे वा उपकरोतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ **परेषामिति** । यत्कर्म परकृतं असूयेत इदमयं निन्द्यं कर्म करोतीति दोषवत्तयाऽऽचक्षीत तत्स्वयं न कुर्यात् । तत्किमसूयाऽपि कर्तव्या नेत्याह— यो युक्तः योगी असूयुर्दोषदर्शी सः अवहासं निन्द्यतां नियच्छति नियमेन स्वीकरोति । तस्मात्संगासूयावर्जितो योगयुक्तो भवेदिति निष्कृष्टोऽर्थः ॥ २४ ॥ यथाऽसूयावान् योगी निन्द्यः एवं विरक्तोऽपि योगशून्यो निन्द्य एवेति बहुदृष्टान्तपूर्वकमाह—**भीरुरिति** द्वाभ्याम् । प्रजासु स्नेहहीन इति त्यक्तैषणत्वमुक्तम् । सोऽपि चेदयुक्तः योगाभ्यासहीनः तर्हि शोच्यतां याति तेन योगोऽभ्यसनीय इति भावः ॥ २५ ॥

रागी युक्तः पचमानोऽऽत्महेतो-
मूर्खो वक्ता नृपहीनं च राष्ट्रम् ।
एते सर्वे शोच्यतां यान्ति राजन्
यश्चायुक्तः स्नेहहीनः प्रजासु ॥ २६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां
नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

## २९१-[११८]

पराशर उवाच ।
मनोरथरथं प्राप्य इन्द्रियार्थहयं नरः ।
रश्मिभिर्ज्ञानसंभूतैर्यो गच्छति स बुद्धिमान्
सेवाश्रितेन मनसा वृत्तिहीनस्य शस्यते ।
द्विजातिहस्तान्निर्वृत्ता न तु तुल्यात्परस्परात्
आयुर्न सुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद्विशांपते ।
उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा ॥ ३
वर्णेभ्यो हि परिभ्रष्टो न वै संमानमर्हति ।
न तु यः सत्क्रियां प्राप्य राजसं कर्म सेवते
वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा ।
दुर्लभं तमलब्ध्वा हि हन्यात्पापेन कर्मणा ५
अज्ञानाद्धि कृतं पापं तपसैवाभिनिर्णुदेत् ।
पापं हि कर्म फलति पापमेव स्वयं कृतम् ।
तस्मात्पापं न सेवेत कर्म दुःखफलोदयम् ६
पापानुबन्धं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम् ।
तन्न सेवेत मेधावी शुचिः कुशलिनं यथा ७
किंकष्टमनुपश्यामि फलं पापस्य कर्मणः ।
प्रत्यापन्नस्य हि ततो नात्मा तावद्विरोचते ८
प्रत्यापत्तिश्च यस्येह बालिशस्य न जायते ।
तस्यापि सुमहांस्तापः प्रस्थितस्योपजायते ९
विरक्तं शोध्यते वस्त्रं न तु कृष्णोपसंहितम् ।
प्रयत्नेन मनुष्येन्द्र पापमेवं निबोध मे ॥ १०

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

**२९१**

एवं सुखादिहेतूनां प्राक्कर्मणामस्तित्वं बुद्ध्वा सकलकर्मोच्छेदाय योगमाश्रयेदिति सूचितं तदेव व्याचष्टे--**मन इति द्वाभ्याम्** । मनोमयो रथः शरीरं तदेव रथ इव लोकान्तरगतिसाधनम् । इन्द्रियार्थाः शब्दादयो हया इव वाहका यस्य तं प्राप्य यो ज्ञानसंभूतैस्तत्तदाकारवृत्तिसंवलितैरश्मिभिश्चिद्भाभिर्गच्छति विषयांश्चिन्मयत्वेनैव पश्यति स बुद्धिमान् देहं प्राप्य ब्रह्मभावेन विश्वं पश्यन्मुच्यत इत्यर्थः ॥१॥ अन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह--**सेवेति** । अश्रितेन यत्किञ्चिदालम्बनमनाश्रितेन निरालम्बेन मनसा स्थितस्य अत एव वृत्तिहीनस्य पुंसः सेवा भक्तिध्यानरूपेश्वरप्रणिधानं शस्यते निर्विकल्पसमाधिनाऽवस्थानं श्रेष्ठमित्यर्थः । हे द्विज कीदृशी सेवा अतिहस्तान्निर्वृता हस्तशब्देन तत्साध्यं कर्म लक्ष्यते । अतिहस्तोऽतिक्रान्तकर्मा । 'सर्वे पाप्मानं तरति नैनं कृताकृते तपतः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि' इत्यादिश्रुतिभ्यः क्षीणकर्मा ब्रह्मवित्तं प्राप्य निर्वृता निष्पन्ना सदाचार्यप्रसादाल्लब्धा न तु परस्परात्तुल्यान्निर्वृत्ता । परोक्षज्ञानिनां न परस्परोपदेशेऽधिकारः किंत्वपरोक्षज्ञान्येव उपदेष्टा युक्त इत्यर्थः। यथोक्तम्--'परोक्षज्ञानमात्रेण नाचार्यत्वे नियुज्यते' इति। 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' 'उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' इति श्रुतिस्मृत्योर्ब्रह्मनिष्ठं तत्त्वदर्शिन इति विशेषणाच्च ॥ २ ॥ एतदेव शीघ्रं साधनीयमित्याहायुरिति । न सुलभं किं तु दुर्लभम् नावकर्षेत् विषयसेवनैर्न नाशयेत् किंतु पुण्येन कर्मणा उत्कर्षार्थमुत्तरोत्तरश्रेष्ठभूमिलाभार्थं प्रयतेत ॥ ३ ॥ वर्णेभ्यो वृत्रगीतासूक्तेभ्यः षड्भ्यः कृष्णधूम्रनीलरक्तहारिद्रशुक्लेभ्यः सत्त्वरजस्तमसां ह्रासवृद्धितारतम्यात्कल्पितेभ्यः परिभ्रष्टः उच्चवर्णान्नीचवर्णं प्राप्तः संमानं श्रैष्ठ्यं नार्हति । परिभ्रष्टत्वमेव व्याचष्टे--**न त्विति** ॥ ४ ॥ तं वर्णोत्कर्षमलब्ध्वा कुपुरुषः पापेनात्मानं हन्यात् नानानरकपातेन हिंस्यात् ॥ ५ ॥ पापं दुःखं पापं कर्मेति सम्बन्धः ॥ ६ ॥ कुशलिनं कारुकं चण्डालविशेषमित्यर्थः ॥ ७ ॥ कुत्सितं च तत्कष्टं च किंकष्टं ततः पापाद्धेतोः प्रत्यासन्नस्य विपरीतदृष्टेः । अनात्मा देहादिरेव विशेषेण आत्मत्वेन रोचते ॥ ८ ॥ प्रत्यापत्तिः वैराग्यं प्रस्थितस्य योगे प्रवृत्तस्य उत्तरभूम्यलाभात्तापो जायते । प्रस्थितस्य मृतस्य वा तापो नरकजः ॥ ९ ॥ विरक्तं स्वतःशुद्धं सत् विपरीतेन रागेणाक्रान्तं वस्त्रं शोध्यते परं तु कृष्णेन भल्लातकेन उपसंहितं रक्तं न शोध्यते । एवं

स्वयं कृत्वा तु यः पापं शुभमेवानुतिष्ठति ।
प्रायश्चित्तं नरः कर्तुमुभयं सोऽश्नुते पृथक् ११
अज्ञानात्तु कृतां हिंसामहिंसा व्यपकर्षति ।
ब्राह्मणाः शास्त्रनिर्देशादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः १२
तथा कामकृतं नास्य विहिंसैवानुकर्षति ।
इत्याहुर्ब्रह्मशास्त्रज्ञा ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः १३
अहं तु तावत्पश्यामि कर्म यद्वर्तते कृतम् ।
गुणयुक्तं प्रकाशं वा पापेनानुपसंहितम् ॥ १४
यथा सूक्ष्माणि कर्माणि फलन्तीह यथातथम्
बुद्धियुक्तानि तानीह कृतानि मनसा सह ॥
भवत्यल्पफलं कर्म सेवितं नित्यमुल्बणम् ।
अबुद्धिपूर्वं धर्मज्ञ कृतमुग्रेण कर्मणा ॥ १६
कृतानि यानि कर्माणि दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
न चरेत्तानि धर्मात्मा श्रुत्वा चापि न कुत्सयेत्
सञ्चिन्त्य मनसा राजन्
विदित्वा शक्यमात्मनः ।
करोति यः शुभं कर्म
स वै भद्राणि पश्यति ॥ १८
नवे कपाले सलिलं संन्यस्तं हीयते यथा ।
नवेतरे तथाभावं प्राप्नोति सुखभावितम् १९
सतो येऽन्यत्तु यत्तोयं तस्मिन्नेव प्रसिच्यते ।
वृद्धे वृद्धिमवाप्नोति सलिले सलिलं यथा २०
एवं कर्माणि यानीह बुद्धियुक्तानि पार्थिव ।
समानि चैव यानीह तानि पुण्यतमान्यपि ॥
राज्ञा जेतव्याः शत्रवश्चोन्नताश्च
सम्यक्कर्तव्यं पालनं च प्रजानाम् ।
अग्निश्चेयो बहुभिश्चापि यज्ञै-
रन्त्ये मध्ये वा वनमाश्रित्य स्थेयम् ॥
दमान्वितः पुरुषो धर्मशीलो
भूतानि चात्मानमिवानुपश्येत् ।
गरीयसः पूजयेदात्मशक्त्या
सत्येन शीलेन सुखं नरेन्द्र ॥ २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

---

मे मत्तः पापं किंचिच्छोधितुं शक्यं किंचिदशक्यमिति निबोध बुध्यस्व ॥ १० ॥ धर्मपूर्वकृतं न नश्यतीत्याह— **स्वयमिति** ॥ ११ ॥ अहिंसा अहिंसया तृतीयालोप आर्षः । ब्रह्मण इति पाठे वेदसम्बन्धिनः ॥ १२ ॥ तथा अस्य पुंसः कर्म कामकृतं विहिंसा अहिंसा नैवानुकर्षति ब्रह्मवादिनः स्मृतिकाराः । यथोक्तम्—

प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञानकृतं भवेत्
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायत इति ।

कर्मकृतमिति पाठे कामत इत्यध्याहर्तव्यम् । तथा कामकृतं चास्येति पाठे तु अकामकृतवत् कामकृतमपि अहिंसैवापकर्षतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ एवं परमतमुपन्यस्य कामतोऽकामतो वा कृतं कर्म बहु अल्पं वा भोगमदत्त्वा नैव नश्यतीति स्वमतमाह-**अहं त्वित्यादिना**। गुणयुक्त पुण्यं कर्म प्रकाशं बुद्धिपूर्वकं प्रकाश्य ज्ञात्वेत्यर्थः। एतमुलन्तामिदम्॥१४॥ मनसा बुद्धियुक्तानि इदमित्थं कुर्यान्न वेति विमर्शपूर्वकं इदमित्थं कर्तव्यमेवेति निश्चित्येत्यर्थः । यथातथं स्थूलसूक्ष्मतारतम्येन फलन्ति सुखदुःखादिकं यच्छन्ति ॥ १५ ॥ नित्यं अव्यभिचारिफलं उल्बणं नरकावहम् । उग्रेण हिंस्रेण । यथा बुद्धिपूर्वकृतं कर्म नियमेन फलदमेवमबुद्धिपूर्वकृतमपि । तयोर्विशेषस्तु फलबहुत्वाल्पत्वकृतो न तु फलसदसद्भावकृत इति श्लोकत्रयार्थः ॥ १६ ॥ ननु कर्मफलस्यापरिहार्यत्वे कथं विश्वामित्रेण वसिष्ठस्य पुत्रशतं हतं तत्फलं नरकपातश्च न प्राप्त इत्याशंक्यालौकिकत्वान्न तदुदाहरणमित्याह—**कृतानीति** ॥ १७ ॥ नवे अपक्के सलिलं न्यस्तं चेद्धीयते कपालमेव नवेतरे पक्के जलं न्यस्तं चेत्तथाभावं यथा पूर्वरूपं स्थितं तथारूपत्वमेव प्राप्नोति न हीयते । एवं तेजस्विनं पापपुण्योदासीनं कर्म न हिनस्ति इतरं तु हिनस्त्येवेति भावः ॥ १९ ॥ समानि चात् विषमाणि ॥ २१ ॥ एवं साधारणं धर्ममुक्त्वा राज्ञां विशेषधर्मानाह—**राज्ञेति** । अन्त्ये वयसि अविरक्तेनापि मध्ये मध्यमे विरक्तेन ॥ २२ ॥ आत्मानमिवेत्यहिंसा सूचिता । गरीयसः गुरुतरान् ब्रह्मविद्याप्रदान् सत्येन ब्रह्मप्राप्त्यै । अध्ययनेन वसतीतिवद्धेतौ तृतीया ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

# २९२-[११९]

पराशर उवाच ।

कः कस्य चोपकुरुते कश्च कस्मै प्रयच्छति ।
प्राणीकरोत्ययं कर्म सर्वमात्मार्थमात्मना १
गौरवेण परित्यक्तं निःस्नेहं परिवर्जयेत् ।
सोदर्यं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम् ॥ २
विशिष्टस्य विशिष्टाच्च तुल्यौ दानप्रतिग्रहौ ।
तयोः पुण्यतरं दानं तद्द्विजस्य प्रयच्छतः ३
न्यायागतं धनं चैव न्यायेनैव विवर्धितम् ।
संरक्ष्यं यत्नमास्थाय धर्मार्थमिति निश्चयः ४
न धर्मार्थी नृशंसेन कर्मणा धनमर्जयेत् ।
शक्तितः सर्वकार्याणि कुर्यान्नर्द्धिमनुस्मरेत् ५
अपो हि प्रयतः शीतास्तापिता ज्वलनेन वा
शक्तितोऽतिथये दत्वा क्षुधार्तायाश्नुते फलम्
रन्तिदेवेन लोकेष्टा सिद्धिः प्राप्ता महात्मना
फलपत्रैरथो मूलैर्मुनीनर्चितवांश्च सः ॥ ७
तैरेव फलपत्रैश्च स माठरमतोषयत् ।
तस्माल्लेभे परं स्थानं शैब्योऽपि पृथिवीपतिः
देवतातिथिभृत्येभ्यः पितृभ्यश्चात्मनस्तथा ।
ऋणवान् जायते मर्त्यस्तस्मादनृणतां व्रजेत् ॥
स्वाध्यायेन महर्षिभ्यो देवेभ्यो यज्ञकर्मणा ।
पितृभ्यः श्राद्धदानेन नृणामभ्यर्चनेन च १०
वाचा शेषावहार्येण पालनेनात्मनोऽपि च ॥
यथावद्भृत्यवर्गस्य चिकीर्षेत्कर्म आदितः ११
प्रयत्नेन च संसिद्धा धनैरपि विवर्जिताः ।
सम्यग्घुत्वा हुतवहं मुनयः सिद्धिमागताः ॥
विश्वामित्रस्य पुत्रत्वमृचीकतनयोऽगमत् ।
ऋग्भिः स्तुत्वा महाबाहो देवान्वै यज्ञभागिन
गतः शुक्रत्वमुशना देवदेवप्रसादनात् ।
देवीं स्तुत्वा तु गगने मोदते यशसा वृतः १४
असितो देवलश्चैव
तथा नारदपर्वतौ ।
कक्षीवान् जामदग्न्यश्च
रामस्ताण्ड्यस्तथाऽऽत्मवान् ॥ १५
वसिष्ठो जमदग्निश्च विश्वामित्रोऽत्रिरेव च ।
भरद्वाजो हरिश्मश्रुः कुण्डधारः श्रुतश्रवाः ॥
एते महर्षयः स्तुत्वा विष्णुमृग्भिः समाहिताः
लेभिरे तपसा सिद्धिं प्रसादात्तस्य धीमतः

## २९२

नन्वहं राजा येषां मुनीनां पालयिताऽस्मि तेषां योगफलस्य षष्ठांशहर्ता चास्मि अतो मम ब्रह्मप्राप्तये न गुरुसेवाऽपेक्ष्यते तेषामहिंसादिभिर्मदीयाहिंसादेरपि वृद्धिसंभवात् । यथोक्तं पातञ्जले—अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। इत्याशंक्याह—**कः कस्येति**। सत्यम्। यदि कर्मजन्यो मोक्षः स्यात्तर्हि युज्येतैतत् ज्ञानैकप्राप्यो मोक्षः दृष्टार्थे च ज्ञानं भोजनादिवन्नेतरेण प्राप्तमितरस्योपकरोति कर्म दृष्टफलं भोजनादि आत्मना शरीरेन्द्रियवृद्धिरूपेण आत्मार्थं आत्मन एव तृप्त्यायर्थम्। न तु परार्थं कर्म कश्चित्करोतीत्यर्थः॥१॥ 'ननु मातृदेवो भव' 'पितृदेवो भव' इत्यादिश्रुतेर्देववदाराधितो मात्रादिरुपकरोत्येवेत्याशंक्यानुपकारिणं मात्रादिकमपि त्यजन्त्येव लोकेऽतो न कश्चित्कञ्चिदुपकरोतीत्याह—**गौरवेणेति** । यत्तु मात्राद्याराधनं तदप्यामुष्मिकायैहिकाय वा स्वहितायैव न तु मात्रादिहितायेति भावः ॥ २ ॥ कथं तर्ह्यात्महितमाचरेदित्यत आह —**विशिष्टस्येत्यादि** । विशिष्टात्प्रतिग्रहो निर्धनस्य दानेन तुल्यः सधनस्य तु दानं पुण्यतरमित्यर्थः ॥ ३ ॥ दानप्राशस्त्यप्रकारमाह—**न्यायेति** ॥ ४ ॥ ऋद्धिं धनसमृद्धिं नानुस्मरेत् धर्मार्थी इत्यनुषञ्जनीयम् ॥ ५ ॥ निर्धनस्यापि दानफलमस्तीत्याह—**अप इति** । फलं अन्नदानस्येति शेषः ॥ ६ ॥ अतिथिपूजाफलमुक्त्वा देवपूजाफलमाह—**तैरेवेति** । समाठरं माठरेण पारिपार्श्विकेण सहितं समाठरं सूर्यम् अतोषयच्छैब्य इति सम्बन्धः। 'माठरः पिङ्गलो दण्डश्चण्डांशोः पारिपार्श्विकाः' इत्यमरः ॥८॥ वाचा वेदशास्त्रमय्या श्रवणमननादिनेत्यर्थः । शेषावहार्येण पञ्चयज्ञशेषेणान्नेन,पालनेन भूतदयया आत्मनोऽपि अनृणतां व्रजेत् । तथा भृत्यवर्गस्य पुत्रादेः आदितः कर्म जातकर्मादि चिकीर्षेत् तेनाप्यात्मन एवानृणतां व्रजेत् ॥११॥ प्रयत्नेन ध्यानधारणादिना हुत्वा हुतवहं अग्निहोत्रं कृत्वेत्यर्थः ॥ १२ ॥ ऋचीकतनयोऽगमदित्यत्र अजीगर्तसुतोऽगमदिति पठनीयम्। 'शुनःशेपो ह्यजीगर्तपुत्रः सन् विश्वामित्रपुत्रतामाप' इति बह्वृचब्राह्मणे समाम्नायते। न च तनयशब्दो गोत्रपरः कर्तुं शक्यः ऋचीको हि भार्गवो जामदग्न्यस्य रामस्य पूर्वजः अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो राममब्रुवन्नित्यादिपर्वणि समन्तपञ्चकाख्याने लिंगदर्शनात् अजीगर्तस्तु आंगिरसः । यथैवांगिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रतामिति विश्वामित्रं प्रति बह्वृचब्राह्मणे शुनःशेपवचनात् यथाकथंचिद्वा एतत्समाधेयम्-यः विश्वामित्रपुत्रत्वं अगमत् स देवान्स्तुत्वा सिद्धिमागत इत्यध्याहृत्य पूर्वेण योज्यम् ॥ १३ ॥

अनर्हाश्चार्हतां प्राप्ताः
सन्तः स्तुत्वा तमेव ह ।
न तु वृद्धिमिहान्विच्छे-
त्कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥ १८
येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान्
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद्धनकांक्षया ॥
आहिताग्निर्हि धर्मात्मा यः स पुण्यकृदुत्तमः
वेदा हि सर्वे राजेन्द्र स्थितास्त्रिष्वग्निषु प्रभो
स चाप्यग्न्याहितो विप्रः क्रिया यस्य न हीयते
श्रेयो ह्यनाहिताग्नित्वमग्निहोत्रं न निष्क्रियम्
अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम् ॥ २२
मानं त्यक्त्वा यो नरो वृद्धसेवी
विद्वान्क्लीबः पश्यति प्रीतियोगात् ।
दाक्ष्येण हीनो धर्मयुक्तो नदान्तो
लोकेऽस्मिन्वै पूज्यते सद्भिरार्यः २३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

## २९३-[१२०]

पराशर उवाच ।
वृत्तिः सकाशाद्वर्णेभ्यस्त्रिभ्यो हीनस्य शोभना
प्रीत्योपनीता निर्दिष्टा धर्मिष्ठान्कुरुते सदा
वृत्तिश्चेन्नास्ति शूद्रस्य पितृपैतामही ध्रुवा ।
न वृत्तिं परतो मार्गेच्छुश्रूषा तु प्रयोजयेत् २
सद्भिस्तु सह संसर्गः शोभते धर्मदर्शिभिः ।
नित्यं सर्वास्ववस्थासु नासद्भिरिति मे मतिः
यथोदयगिरौ द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते ।
तथा सत्सन्निकर्षेण हीनवर्णोऽपि दीप्यते ४
यादृशेन हि वर्णेन भाव्यते शुक्लमम्बरम् ।
तादृशं कुरुते रूपमेतदेवमवेहि मे ॥ ५
तस्माद्गुणेषु रज्येथा मा दोषेषु कदाचन ।
अनित्यमिह मर्त्यानां जीवितं हि चलाचलम्
सुखे वा यदि वा दुःखे वर्तमानो विचक्षणः ।
यश्चिनोति शुभान्येव स तन्त्राणीह पश्यति
धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम् ।
न तत्सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते ८
यो हृत्वा गोसहस्राणि नृपो दद्यादरक्षिता ।
स शब्दमात्रफलभाक्र राजा भवति तस्करः
स्वयंभूरसृजच्चाग्रे धातारं लोकसत्कृतम् ।
धाताऽसृजत्पुत्रमेकं लोकानां धारणे रतम् ॥
तमर्चयित्वा वैश्यस्तु कुर्यादत्यर्थमृद्धिमत् ।
रक्षितव्यं तु राजन्यैरुपयोज्यं द्विजातिभिः ॥
अजिह्मैरशठक्रोधैर्हव्यकव्यप्रयोक्तृभिः ।
शूद्रैर्निर्माजनं कार्यमेवं धर्मो न नश्यति १२

---

**अग्निरिति** । जनयिता यः पिता स एव न त्वन्येऽन्नदातृभयत्रातृप्रभृतयः परिचर्याः सेव्याः ॥ २२ ॥ क्लीबः कामहीनः सन् यः प्रीतियोगात् केवलं कृपार्द्रया दृष्ट्या पश्यति । दाक्ष्येण स्पन्देन हीनः आयासशून्यः सन् यो धर्मपरः । नदान्त इत्येकं पदम् । दानति छिनत्ति दान्तः दान आर्जवच्छेदनयोरित्यस्मात्कर्तरि क्तः । तदन्यो नदान्तः नैकधेतिवत्समासः हिंसाशून्य इत्यर्थः ॥२३॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

**२९३**

पूर्वाध्याये यतः स्वस्योपकर्ताऽन्यो नास्त्यत आत्मोपकाराय स्वयं मानं त्यक्त्वाऽन्यान्सेवेतेत्युक्तम् । तत्र वृद्धसेवाप्रशंसार्थं शूद्रवृत्तिं महीकरोति-**वृत्तिरिति** । वर्णेभ्यो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्येभ्यः हीनस्य शूद्रस्य वृत्तिर्जीविका वृद्धसेवा सेवकान् धर्मिष्ठान्कुरुतेऽतः शोभना दृष्टादृष्टोभयार्थत्वात् । न हि याजनकरादानवाणिज्यादयो विप्रादिजीविकास्तेषां धर्मिष्ठतायै भवन्त्यतः सत्सेवया लोकद्वयं साधयेदिति भावः ॥१॥ परतः त्रैवर्णिकसेवाव्यतिरेकेण ॥२॥ शुश्रूषामेव स्तौति—**सद्भिरित्यादिना** ॥ ३ ॥ द्रव्यं मणिकाञ्चनादि दीप्यते सूर्यसन्निकर्षेण अत एव सन्ध्योः सूर्यरश्मयो द्रव्यप्रभाविच्छुरणाद्रक्ता दृश्यन्ते ॥ ४ ॥ तन्त्राणि शास्त्राणि स एव शास्त्रदर्शीत्यर्थः ॥७॥ पुत्रं पर्जन्यदेवताम् ॥ १० ॥ ऋद्धिमत् कृषिगोरक्ष्यादि ॥ ११ ॥ अजिह्मैर्दम्भहीनैः अशठक्रोधैर्वितशाठ्यक्रोधहीनैः निर्माजनं भूमिशुद्ध्यादि ॥१२॥

अप्रनष्टे ततो धर्मे भवन्ति सुखिताः प्रजाः ।
सुखेन तासां राजेन्द्र मोदन्ते दिवि देवताः ॥
तस्माद्यो रक्षति नृपः स धर्मेणेति पूज्यते ।
अधीते चापि यो विप्रो वैश्यो यश्चार्जने रतः
यश्च शुश्रूषते शूद्रः सततं नियतेन्द्रियः ।
अतोऽन्यथा मनुष्येन्द्र स्वधर्मात्परिहीयते १५
प्राणसन्तापनिर्दिष्टाः
काकिण्योऽपि महाफलाः ।
न्यायेनोपार्जिता दत्ताः
किमुतान्याः सहस्रशः ॥ १६
सत्कृत्य हि द्विजातिभ्यो यो ददाति नराधिपः
यादृशं तादृशं नित्यमश्नाति फलमूर्जितम् १७
अभिगम्य च तत्तुष्ट्या दत्तमाहुरभिष्टुतम् ।
याचितेन तु यद्दत्तं तदाहुर्मध्यमं बुधाः ॥ १८
अवज्ञया दीयते यत्तथैवाश्रद्धयाऽपि वा ।
तमाहुरधमं दानं मुनयः सत्यवादिनः ॥ १९
अतिक्रामेन्मज्जमानो विविधेन नरः सदा ।
तथा प्रयत्नं कुर्वीत यथा मुच्येत संश्रयात् २०
दमेन शोभते विप्रः क्षत्रियो विजयेन तु ।
धनेन वैश्यः शूद्रस्तु नित्यं दाक्ष्येण शोभते ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

## २९४-[१२१]

पराशर उवाच ।
प्रतिग्रहागता विप्रे क्षत्रिये युधि निर्जिताः ।
वैश्ये न्यायार्जिताश्चैव शूद्रे शुश्रूषयार्जिताः १
स्वल्पाप्यर्थाः प्रशस्यन्ते धर्मस्यार्थे महाफलाः
नित्यं त्रयाणां वर्णानां शुश्रूषुः शूद्र उच्यते २
क्षत्रधर्मा वैश्यधर्मा नावृत्तिः पतते द्विजः ।
शूद्रधर्मा यदा तु स्यात्तदा पतति वै द्विजः ३
वाणिज्यं पाशुपाल्यं च तथा शिल्पोपजीवनम्
शूद्रस्यापि विधीयन्ते यदा वृत्तिर्न जायते ४
रङ्गावतरणं चैव तथा रूपोपजीवनम् ।
मद्यमांसोपजीव्यं च विक्रयं लोहचर्मणोः ५
अपूर्विणा न कर्तव्यं कर्म लोके विगर्हितम् ।
कृतपूर्वं तु त्यजतो महान्धर्म इति श्रुतिः ६
संसिद्धः पुरुषो लोके यदाचरति पापकम् ।
मदेनाभिप्लुतमनास्तच्च न ग्राह्यमुच्यते ॥ ७
श्रूयन्ते हि पुराणेषु प्रजा धिग्दण्डशासनाः ।
दान्ता धर्मप्रधानाश्च न्यायधर्मानुवृत्तिकाः ८
धर्म एव सदा नृणामिह राजन्प्रशस्यते ।
धर्मवृद्धा गुणानेव सेवन्ते हि नरा भुवि ॥ ९
तं धर्ममसुरास्तात नामृष्यन्त जनाधिप ।
विवर्धमानाः क्रमशस्तत्र तेऽन्वाविशन्प्रजाः ॥

**तस्मादिति** । धर्मेण रक्षतीति पूज्यते न तु नृपत्वमात्रेणेत्यर्थः ॥ १४ ॥ प्राणसंतापपूर्वकमपि निर्दिष्टा दत्ताः काकिण्यो विंशतिवराटिकाः कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन बहुत्वं त्रित्वे पर्यवसन्नम् । तिस्रोऽपि काकिण्य इत्यर्थः ॥१६॥ यादृशं तादृशं सश्रद्धमश्रद्धं वा यो नित्यं ददाति तथा च श्रुतिः-'श्रद्धया देयं अश्रद्धयादेयं श्रिया देयं ह्रिया देयं भिया देयं संविदा देयम्' इति ॥ १७ ॥ तत्तुष्ट्या पात्रतुष्ट्यर्थं अभिष्टुतं सर्वतः प्रशस्तम् ॥ १८ ॥ तं धर्मं दानं दानात्मकम् ॥ ॥ १९ ॥ अतिक्रामेत् भवाब्धिं विविधेन उपायेन संश्रयाद्गृहपाशात् ॥ २० ॥ दाक्ष्येण सेवार्थोत्साहेन ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

२९४

दानं प्रशंसा प्राकृता प्राणसन्तापनिर्दिष्टा इत्यादिना । तदर्थमर्थार्जनोपायं नियमयन्नन्यानपि प्रसंगाद्धर्मान्वक्ष्यति **—प्रतिग्रहागता इत्यादि** ॥ १ ॥ न पतत इति सम्बन्धः ॥ ३ ॥ शिल्पं चित्रलेखनादि वृत्तिः सेवारूपा ॥ ॥४॥ रंगे स्त्र्यादिवेषेण अवतरणम् । रूपोपजीवनं जलमण्डपिकेति दाक्षिणात्येषु प्रसिद्धम् । यत्र सूक्ष्मवस्त्रं व्यवधाय चर्ममयैराकारैः राजामात्यादीनां चर्या प्रदर्श्यते ॥ ५ ॥ अपूर्विणा येन पूर्वं मद्याद्युपजीवनं न कृतम् । सोऽपूर्वी तेन तन्न कर्तव्यम् ॥ ६ ॥ संसिद्धो लब्धान्नवस्त्रादिः न ग्राह्यं वृद्धैराचरितमपि न स्वीकर्तव्यम् ॥ ७ ॥ मद एव कुतोऽभवदित्यत आह**—श्रूयन्ते हीत्यादिना** ॥८॥ असुराः कामक्रोधादयः ॥ १० ॥

तासां दर्पः समभवत्प्रजानां धर्मनाशनः।
दर्पात्मनां ततः पश्चात् क्रोधस्तासामजायत
ततः क्रोधाभिभूतानां वृत्तं लज्जासमन्वितम्
ह्रीश्चैवाप्यनशद्राजंस्ततो मोहो व्यजायत ॥
ततो मोहपरीतास्ता नापश्यन्त यथा पुरा।
परस्परावमर्देन वर्धयन्त्यो यथासुखम् ॥ १३
ताः प्राप्य तु स धिग्दण्डो न कारणमतोऽभवत्
ततोऽभ्यगच्छन्देवांश्च ब्राह्मणांश्चावमन्य ह ॥
एतस्मिन्नेव काले तु देवा देववरं शिवम्।
अगच्छन्शरणं धीरं बहुरूपं गुणाधिकम् ॥१५
तेन स्म ते गगनगाः सपुराः पातिताः क्षितौ
त्रिधाप्येकेन बाणेन देवाप्यायिततेजसा॥ १६
तेषामधिपतिस्त्वासीद्भीमो भीमपराक्रमः।
देवतानां भयकरः स हतः शूलपाणिना ॥१७
तस्मिन्हतेऽथ स्वं भावं प्रत्यपद्यन्त मानवाः।
प्रापद्यन्त च वेदान्वै शास्त्राणि च यथा पुरा

ततोऽभिषिच्य राज्येन देवानां दिवि वासवं
सप्तर्षयश्चान्वयुञ्जन्नराणां दण्डधारणे ॥ १९
सप्तर्षीणामथोर्ध्वं च विपृथुर्नाम पार्थिवः।
राजानः क्षत्रियाश्चैव मण्डलेषु पृथक्पृथक्२०
महाकुलेषु ये जाता वृद्धाः पूर्वतराश्च ये।
तेषामप्यासुरो भावो हृदयान्नापसर्पति ॥ २१
तस्मात्तेनैव भावेन सानुषङ्गेण पार्थिवाः।
आसुराण्येव कर्माणि न्यसेवन्भीमविक्रमाः॥
प्रत्यतिष्ठंश्च तेष्वेव तान्येव स्थापयन्त्यपि।
भजन्ते तानि चाद्यापि ये बालिशतरा नराः
तस्मादहं ब्रवीमि त्वां राजन्सञ्चिन्त्य शास्त्रतः
संसिद्धाधिगमं कुर्यात्कर्म हिंसात्मकं त्यजेत्
न संकरेण द्रविणं प्रचिन्वीयाद्विचक्षणः।
धर्मार्थं न्यायमुत्सृज्य न तत्कल्याणमुच्यते॥
स त्वमेवंविधो दान्तः क्षत्रियः प्रियबान्धवः
प्रजा भृत्यांश्च पुत्रांश्च स्वधर्मेणानुपालय॥ २६

अनशत् अनश्यत ॥ १२ ॥ न कारणं तासां नियमने इति शेषः। ततस्ताः प्रजा देवान्ब्राह्मणांश्चावमन्य अभ्यगच्छन्। विषयानसेवन्तेत्यर्थः ॥ १४ ॥ एवं कामक्रोधादिद्वारेण प्रजानां बन्धनं प्रदर्श्य संक्षेपेण तन्निवृत्त्युपायमाह—**एतस्मिन्निति** । देवाः शमदमादयः देव ईश्वरस्ततोऽपि वरं श्रेष्ठं शिवं तुर्यं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभिमानिभ्यो विश्वतैजसप्राज्ञेभ्यो विराट्सूत्रान्तर्यामिभ्यश्च परं चतुर्थं ब्रह्म। 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः' इति श्रुतिप्रसिद्धम्। बहुरूपं माययेति शेषः। 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इति श्रुतेः। गुणैर्नित्यज्ञानैश्वर्यादिभिरधिकम् ॥ १५ ॥ तेन शिवेन साक्षात्कृतेन तेऽसुराः कामक्रोधादयः गगनगाः मायाख्याव्याकृतान्तर्गताः सपुराः पुरैः स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरैः सहिताः क्षितौ ऐश्वर्ये शुद्धचिन्मात्रे पातिताः प्रविलापिताः एकेन बाणेन जीवात्मना शुद्धचिन्मात्रान्तःप्रविष्टेन। तथा च श्रुतिः—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ इति

देवैरिन्द्रियैराप्यायितेन तेजसा संस्कारशेषेणेत्यर्थः ॥ १६ ॥ नन्वेवं संस्कारशेषेण पुरां पतनं सुप्तिमूर्च्छयोरप्यस्तीत्यत आह—**तेषामिति** । तेषां कामादीनामधिपतिर्भीमो भयङ्करो महामोहः शूलपाणिना शूलवत्तीक्ष्णाग्रया बुद्ध्या आयुधभूतया पाणिस्थवत् स्वाधीनयेत्यर्थः ॥ १७ ॥ तस्मिन्महामोहे हते स्वं भावं ब्रह्मभावं मानवा जीवाः प्रत्यपद्यन्त 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति' इतिश्रुतेः। **यथा पुरेति** । सृष्ट्यादौ यथा मरीच्यादयो वेदैकनिष्ठा आसंस्तथा तत्त्वज्ञानोत्तरमपि जीवन्मुक्ता अनादिसद्वासनावशाद्वेदैकनिष्ठा एवासन्नित्यर्थः ॥ १८ ॥ **तत इति** । देवानां इन्द्रियाणां राज्ये वशित्वे दिवि हार्दाकाशे वासवं वासयति स्वरूपचैतन्येन शरीरेन्द्रियादीनिति वासवश्चिदात्मा तम्। अभिषिच्य ब्रह्मनिष्ठत्वेन जितेन्द्रिया भूत्वा सप्तर्षयो वसिष्ठाद्याः लोकशिक्षां कृतवन्त इत्यर्थः ॥ १९ ॥ आधिकारिकेभ्यः सप्तर्षिभ्योऽपि ब्रह्मविदः श्रैष्ठ्यमाह—**सप्तर्षीणामिति**—

'अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न-
स्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे
वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना ॥'

इति श्रुतेः। शिरसि सहस्रारे ब्रह्म निहितम्। तस्य समीपे श्रोत्रादिस्थानेषु 'इमावेव गौतमभरद्वाजौ'इत्यादिश्रुत्या ऋषिदृष्टिर्विधीयते ततोऽप्यधस्तनेषु मूलाधारादिषु चक्रेषु राजशब्दिततत्तद्देवताधिष्ठितेषु ब्रह्मैव विराजते इत्यर्थः। ऋषीणां श्रोत्रादीनां ऊर्ध्वं उपरि सहस्रारे विपृथुः विगतं पृथु प्रथनादवयवोपचयात्पृथुशरीरं तद्रहितोऽशरीरः परमात्माऽस्ति पार्थिवः पृथिवीं शरीरं तदाश्रितः। तथा च 'अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्' इति श्रुत्या शरीरस्यापि शरीरस्थत्वं श्रुतम् राजन्त इति राजानः षट्चक्राधिपा गणेशाद्याः क्षत्रिया योगविघ्नविनाशिन इत्यक्षरार्थः ॥ २० ॥ ईदृक्ज्ञाननिदानस्य कामादिजयस्य दौर्लभ्यमाहावधानार्थम्—**महाकुलेष्वित्यादिना** ॥ २१ ॥ संसिद्धो नित्यसिद्ध आत्मा तदधिगमं आत्मज्ञानं आसुरभावनिवृत्तये सम्पादनीयमित्यर्थः। तत्रोपायः कर्म हिंसात्मकं त्यजेदित्यादि ॥ २४ ॥

इष्टानिष्टसमायोगे वैरं सौहार्दमेव च ।
अथ जातिसहस्राणि बहूनि परिवर्तते ॥ २७
तस्माद्गुणेषु रज्येथा मा दोषेषु कथञ्चन ।
निर्गुणोऽपि हि दुर्बुद्धिरात्मनः सोऽतिरज्यते
मानुषेषु महाराज धर्माधर्मौ प्रवर्ततः ।
न तथाऽन्येषु भूतेषु मनुष्यरहितेष्विह ॥ २९
धर्मशीलो नरो विद्वानीहकोऽनीहकोपि वा
आत्मभूतः सदा लोके चरेद्भूतान्यहिंसया ३०
यदा व्यपेतहृल्लेखं मनो भवति तस्य वै ।
नानृतं चैव भवति तदा कल्याणमृच्छति ३१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥

## २९५-[१२२]

पराशर उवाच ।
एष धर्मविधिस्तात गृहस्थस्य प्रकीर्तितः ।
तपोविधिं तु वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥
प्रायेण च गृहस्थस्य ममत्वं नाम जायते ।
संगागतं नरश्रेष्ठ भावै राजसतामसैः ॥ २
गृहाण्याश्रित्य गावश्च क्षेत्राणि च धनानि च
दाराः पुत्राश्च भृत्याश्च भवन्तीह नरस्य वै ३
एवं तस्य प्रवृत्तस्य नित्यमेवानुपश्यतः ।
रागद्वेषौ विवर्धेते ह्यनित्यत्वमपश्यतः ॥ ४
रागद्वेषाभिभूतं च नरं द्रव्यवशानुगम् ।
मोहजाता रतिर्नाम समुपैति नराधिप ॥ ५
कृतार्थं भोगिनं मत्वा सर्वो रतिपरायणः ।
लाभं ग्राम्यसुखादन्यं रतितो नानुपश्यति ६
ततो लोभाभिभूतात्मा संगाद्वर्धयते जनम् ।
पुष्ट्यर्थं चैव तस्येह जनस्यार्थं चिकीर्षति॥ ७
स जानन्नपि चाकार्यमर्थार्थं सेवते नरः ।
बालस्नेहपरीतात्मा तत्क्षयाच्चानुतप्यते ॥ ८
ततो मानेन संपन्नो रक्षन्नात्मपराजयम् ।
करोति येन भोगी स्यामिति तस्माद्विनश्यति
तथा हि बुद्धियुक्तानां शाश्वतं ब्रह्मवादिनाम्
अन्विच्छतां शुभं कर्म नराणां त्यजतां सुखं
स्नेहायतननाशाच्च धननाशाच्च पार्थिव ।
आधिव्याधिप्रतापाच्च निर्वेदमुपगच्छति ११
निर्वेदादात्मसम्बोधः सम्बोधाच्छास्त्रदर्शनम्
शास्त्रार्थदर्शनाद्राजंस्तप एवानुपश्यति ॥ १२
दुर्लभो हि मनुष्येन्द्र नरः प्रत्यवमर्शवान् ।
यो वै प्रियसुखे क्षीणस्तपः कर्तुं व्यवस्यति ॥
तपः सर्वगतं तात हीनस्यापि विधीयते ।
जितेन्द्रियस्य दान्तस्य स्वर्गमार्गप्रवर्तकम् १४
प्रजापतिः प्रजाः पूर्वमसृजत्तपसा विभुः ।
क्वचित्क्वचिद्ब्रह्मपरो व्रतान्यास्थाय पार्थिव १५

---

**इष्टेति।** सर्वेष्वपि जन्मसु इष्टादियोगोऽस्त्येवेत्यर्थः ॥२७॥ आत्मनो गुणैरतिरज्यते अतीव तुष्टो भवति॥२८॥ ईहकोऽर्थार्थी ॥ ३० ॥ हृदि लिख्यत इवेति हृल्लेखा वासना नानृतं अनृतमहङ्कारोऽज्ञानं वा तद्रहितम् । नैकधेतिवत्समासः । निर्वासनं निरहङ्कारं निसर्गताज्ञानं वा मनो यदा भवति तदा कल्याणं ब्रह्मानन्दं ऋच्छति प्राप्नोति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि भारतभावदीपे चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥

**२९५**

उक्तवक्ष्यमाणयोः सङ्गतिमाह—**एष इति** ॥ १ ॥ तपः प्रशंसितुं गार्हस्थ्यं निन्दति—**प्रायेणत्यादिना** ॥ २ ॥ भोगिनं आत्मानमिति शेषः ॥ ६ ॥ जनं कुटुंबं दासीदासादिकं अर्थं धनम् विकीर्षति विक्षिपति वृद्ध्यर्थं कुसीदव्यापारं करोतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ येन स्रग्यादिना भोगी भोगसंपन्नः स्यामिति मनसि करोति तस्मादेव स्रग्यादितो विनश्यति ॥ ९ ॥ बुद्धियुक्तानां फलासंगिनां त्यजतां निषिद्धकाम्यकर्माणीति शेषः ॥ १० ॥ स्नेहायतनं स्त्रीपुत्रादि ॥ ११ ॥ तप एवानुपश्यति श्रेयस्त्वेन ॥ १२ ॥ प्रत्यवमर्शवान् सारासारविवेकवान् प्रियसुखे स्त्र्यादिजसुखनिमित्तं क्षीणः क्लेशं प्राप्तः तत्र दोषदृष्ट्या तपः कर्तुं निश्चिनोति॥१३॥ सर्वगतं साधारणं दमदयादानादिहीनस्य शूद्रादेरपि।१४। प्रजापतिः पूर्वं यजमानावस्थायां क्वचिज्जन्मनि क्वचिद्देशे व्रतानि सूत्रोपासनादीनि सोपासनानि कर्माणि वा आस्थाय फलावस्थायां प्रजा असृजदिति सम्बन्धः ॥१५॥

आदित्या वसवो रुद्रास्तथैवाग्न्यश्विमारुताः
विश्वेदेवास्तथा साध्याः पितरोऽथ मरुद्गणाः
यक्षराक्षसगन्धर्वाः सिद्धाश्चान्ये दिवौकसः।
संसिद्धास्तपसा तात ये चान्ये स्वर्गवासिनः
ये चादौ ब्राह्मणाः सृष्टा ब्रह्मणा तपसा पुरा
ते भावयन्तः पृथिवीं विचरन्ति दिवं तथा१८
मर्त्यलोके च राजानो ये चान्ये गृहमेधिनः।
महाकुलेषु दृश्यन्ते तत्सर्वं तपसः फलम् १९
कौशिकानि च वस्त्राणि शुभान्याभरणानि च
वाहनासनपानानि तत्सर्वं तपसः फलम्॥२०
मनोनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः सहस्रशः।
वासः प्रासादपृष्ठे च तत्सर्वं तपसः फलम् २१
शयनानि च मुख्यानि
भोज्यानि विविधानि च।
अभिप्रेतानि सर्वाणि
भवन्ति शुभकर्मिणाम् ॥ २२
नाप्राप्यं तपसः किञ्चित्
त्रैलोक्येऽपि परंतप।
उपभोगपरित्यागः
फलान्यकृतकर्मणाम् ॥ २३
सुखितो दुःखितो वाऽपि
नरो लोभं परित्यजेत्।
अवेक्ष्य मनसा शास्त्रं
बुद्ध्या च नृपसत्तम।
असन्तोषोऽसुखायेति लोभादिन्द्रियसंभ्रमः।
ततोऽस्य नश्यति प्रज्ञा विद्येवाभ्यासवर्जिता
नष्टप्रज्ञो यदा तु स्यात्तदा न्यायं न पश्यति।
तस्मात्सुखक्षये प्राप्ते पुमानुग्रं तपश्चरेत् ॥ २६
यदिष्टं तत्सुखं प्राहुर्द्वेष्यं दुःखमिहेष्यते।
कृताकृतस्य तपसः फलं पश्यस्व यादृशम् २७
नित्यं भद्राणि पश्यन्ति विषयांश्चोपभुञ्जते।
प्राकाश्यं चैव गच्छन्ति कृत्वा निष्कल्मषं तपः
अप्रियाण्यवमानांश्च दुःखं बहुविधात्मकम्।
फलार्थी तत्फलं त्यक्त्वा प्राप्नोति विषयात्मकं
धर्मे तपसि दाने च विधित्सा चास्य जायते
स कृत्वा पापकान्येवं निरयं प्रतिपद्यते॥ ३०
सुखे तु वर्तमानो वै दुःखे वापि नरोत्तम।
सुवृत्ताद्यो न चलते शास्त्रचक्षुः स मानवः३१
इषुप्रपातमात्रं हि स्पर्शयोगे रतिः स्मृता।
रसने दर्शने घ्राणे श्रवणे च विशाम्पते ॥ ३२
ततोऽस्य जायते तीव्रा वेदना तत्क्षयात्पुनः।
अबुधा न प्रशंसन्ति मोक्षं सुखमनुत्तमम्॥ ३३
ततः फलार्थं सर्वस्य भवन्ति ज्यायसे गुणाः
धर्मवृत्त्या च सततं कामार्थाभ्यां न हीयते ॥
अप्रयत्नागताः सेव्या गृहस्थैर्विषयाः सदा।
प्रयत्नेनोपगम्यश्च स्वधर्म इति मे मतिः ॥ ३५

एवमादित्यादयोऽपि पूर्वं यजमानास्तत्तत्पदप्रापकाणि कर्माणि कृत्वा आदित्यादिभावं प्राप्ता इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'अग्निर्वा अकामयत अन्नादो देवानां स्यामिति। स एतमग्नये कृत्तिकाभ्यः पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपत्' इत्यादि। यो निरवपत्स यजमानस्तस्मिन्नग्निशब्दप्रयोगो भाविनीं वृत्तिमाश्रित्य ज्ञेयः। यस्मै निरवपत्स देवतात्मा तद्भावश्च कल्पान्तरे प्राप्यत इति प्रसिद्धम् ॥ १६ ॥ **नाप्राप्यमिति**। अकृतकर्मणां कृतकृत्यत्वहीनानामनुत्पन्नतत्त्वज्ञानानां तपसः फलानि उपभोगपरित्यागो वैराग्यम् ॥ २३ ॥ शास्त्रं अवेक्ष्य लोभं त्यजेदिति सम्बन्धः ॥२४॥ ततः असंतोषाल्लोभाच्च ॥ २५ ॥ प्रज्ञानाशेऽपि किं स्यादत आह—**नष्टेति**। न्यायं कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयम्। यो वै प्रियसुखे क्षीण इत्युपक्रान्तमुपसंहरति—**तस्मादिति** ॥ २६ ॥ कृतस्य तपसः फलं सुखं अकृतस्य दुःखम् ॥२७॥ प्राकाश्यं विख्याततताम् ॥ २८ ॥ **धर्मे इति**। धर्मादौ यथाकालं कर्तव्ये सति अस्य विधित्सा अविहितकार्यचिकीर्षा जायते। तथा च नित्यकर्मकाले योऽन्यानि कर्माणि काम- कारेण करोति स तान्येव पापानि कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते। एतेन नित्याकरणमात्रात्प्रत्यवैतीति परास्तम्। अभावाद्भावोत्पत्त्यसंभवात् ॥ ३० ॥ **इष्विति**। यावता कालेन गुणच्युतो बाणो भूमौ पतति तावत्कालिकमेव स्त्र्यादिस्पर्शे सुखमित्यर्थः। स एव न्यायो रसनादावपीत्याह—**रसन इति** ॥३२॥ तत्क्षयात् सुखक्षयात् तर्हि नित्यं सुखमेव कुतो नरा न प्रार्थयन्ते इत्याशंक्याह—**अबुधा इति**। यतो मूढाः अतो नित्यं सुखं मोक्षाख्यं न प्रशंसन्त्यपि किमुत तदर्थं यतिष्यन्ते। बुधा येन प्रशंसन्तीति पाठे येन तीव्रवेदनादुःखेन हेतुना बुधाः मोक्षं प्रशंसन्तीति सम्बन्धः ॥ ३३ ॥ ततो विषयस्पर्शानां तीव्रवेदनाकरत्वाद्धेतोः सर्वस्य विवेकिनः ज्यायसे फलार्थं फलाय मोक्षाय गुणाः शमादयो भवन्ति उत्पद्यन्ते ततश्च तं कामार्थौ नाभिभवितुं शक्नुत इत्याह—**धर्मेति** ॥ ३४ ॥ ननु सर्वं प्रारब्धकर्माधीनं किमैहिकेन यत्नेनेत्याशंक्य प्रारब्धप्रयत्नयोर्विषयौ विभजते —**अप्रयत्नेति**। प्रारब्धकर्मोपस्थापिताः स्त्र्यन्नपानादयः सेव्याः तेषु हि क्वाचित्फलविसंवाददर्शनेन पुरुषकारस्य

मानिनां कुलजातानां नित्यं शास्त्रार्थचक्षुषां
क्रियाधर्मविमुक्तानामशक्त्या संवृतात्मनाम्
क्रियमाणं यदा कर्म नाशं गच्छति मानुषम्।
तेषां नान्यदृते लोके तपसः कर्म विद्यते ३७

सर्वात्मनाऽनुकुर्वीत गृहस्थः कर्मनिश्चयम्।
दाक्ष्येण हव्यकव्यार्थं स्वधर्मं विचरन्नृप ॥ ३८
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

## २९६–[१२३]

जनक उवाच ।
वर्णो विशेषवर्णानां महर्षे केन जायते।
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं तद्ब्रूहि वदतां वर ॥ १
यदेतज्जायतेऽपत्यं स एवायमिति श्रुतिः।
कथं ब्राह्मणतो जातो विशेषग्रहणं गतः ॥ २
पराशर उवाच ।
एवमेतन्महाराज येन जातः स एव सः।
तपसस्त्वपकर्षेण जातिग्रहणतां गतः ॥ ३
सुक्षेत्राच्च सुबीजाच्च पुण्यो भवति संभवः।
अतोऽन्यतरतो हीनादवरो नाम जायते ॥ ४
वक्त्राद्भुजाभ्यामूरुभ्यां पद्भ्यां चैवाथ जज्ञिरे।
सृजतः प्रजापतेर्लोकानिति धर्मविदो विदुः
मुखजा ब्राह्मणास्तात
बाहुजाः क्षत्रियाः स्मृताः।
ऊरुजा धनिनो राजन्
पादजाः परिचारकाः ॥ ६
चतुर्णामेव वर्णाना-
मागमः पुरुषर्षभ।
अतोऽन्ये त्वतिरिक्ता ये
ते वै संकरजाः स्मृताः ॥ ७
क्षत्रियातिरथाम्बष्ठा
उग्रा वैदेहकास्तथा।
श्वपाकाः पुल्कसाः स्तेना
निषादाः सूतमागधाः ॥ ८
अयोगाः करणा व्रात्या-
श्चाण्डालाश्च नराधिप।
एते चतुर्भ्यो वर्णेभ्यो
जायन्ते वै परस्परात् ॥ ९

---

दौर्बल्यात् । धेम हि पुरुषकारप्राबल्यम् । अन्यथा विधिनिषेधशास्त्रमनर्थकं स्यादिति भावः ॥ ३५ ॥ **मानिनामिति** । पूर्वार्धोक्तानामुचिता क्रिया उत्तरार्धोपात्तैः कर्तुमशक्येत्यर्थः । संवृतात्मनां मूढमनसाम् ॥ ३६ ॥ उभयेषां धर्मान्विभजते—**क्रियमाणमित्यादिना** । कर्म यज्ञादिकं मानुषं मनुष्योऽहमित्यभिमानवता कृतम् यस्मादेवं तस्मात्तेषां शास्त्रचक्षुषां तपसो विचारादन्यत् कर्म न विद्यते ॥ ३७ ॥ संवृतात्मनां धर्ममाह—**सर्वात्मनेति**। कर्मनिश्चयं यज्ञादौ बुद्धिम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

**२९६**

एवं धर्मान् श्रुत्वा उत्तरोत्तरमुत्कर्षं प्रपित्सुः पृच्छति —**वर्ण इति** । तत्र वर्णाः पूर्वोक्ताः षट् कृष्ण–धूम्र–नील–रक्त–पीत–श्वेताः क्रमेण बुद्धिसत्त्वे तमोरजोंशयोराधिक्य-साम्यापकर्षजाः। तत्र विशेषः स्वाभाविकवर्णादाधिक्यं तमोरजसोर्ह्रास इत्यर्थः ॥ १ ॥—**यदेतदिति** । सात्त्विकस्य ब्रह्मणोऽपत्यैर्लोकैः सात्त्विकैरेव ब्राह्मणैर्भवितव्यं कथं रज-आदिप्रधानं क्षत्रादिविशेषजातिग्रहणं तत उत्पन्नस्येत्याक्षेपार्थः ॥२॥ तपसोऽप्यपकर्षः कुत इत्यत आह–**सुक्षेत्रादिति** । सात्त्विकयोर्दम्पत्योः पुण्यः संभवस्तयोरन्यतरस्य हीनत्वे हीन इत्यर्थः ॥ ४ ॥ अन्यतरहीनत्वमपि कुत इत्याशंक्योत्पत्तिस्थानभेदादित्याह—**वक्त्रादिति** द्वाभ्याम् ॥ ५ ॥ अम्बष्ठादीनां स्वरूपं जातिविवेकाद्विवेक्यक्तम्—

सवर्णा ब्राह्मणान्सूते राज्ञी मूर्धावसिक्तकम्।
वैश्याऽम्बष्ठं निषादं तु शूद्रा पारसवश्च सः ॥

इत्यादिना ॥ ८ ॥

जनक उवाच ।
ब्रह्मणैकेन जातानां नानात्वं गोत्रतः कथम्।
बहूनीह हि लोके वै गोत्राणि मुनिसत्तम १०
यत्र तत्र कथं जाताः स्वयोनिं मुनयो गताः।
शुद्धयोनौ समुत्पन्ना वियोनौ च तथा परे ॥
पराशर उवाच ।
राजन्नैतद्भवेद्ग्राह्यमपकृष्टेन जन्मना ।
महात्मनां समुत्पत्तिस्तपसा भावितात्मनाम्
उत्पाद्य पुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र ह ।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः १३
पितामहश्च मे पूर्वमृष्यशृङ्गश्च काश्यपः ।
वेदस्ताण्ड्यः कृपश्चैव काक्षीवत्कमठादयः १४
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः ।
आयुर्मतङ्गो दत्तश्च द्रुमदो मात्स्य एव च १५
एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसोऽश्रयात् ।
प्रतिष्ठिता वेदविदो दमेन तपसैव हि ॥ १६
मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव।
अङ्गिराः कश्यपश्चैव वसिष्ठो भृगुरेव च १७
कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव
नामधेयानि तपसा तानि च ग्रहणं सताम् ॥
जनक उवाच ।
विशेषधर्मान्वर्णानां प्रब्रूहि भगवन्मम ।
ततः सामान्यधर्मांश्च सर्वत्र कुशलो ह्यसि ॥

पराशर उवाच ।
प्रतिग्रहो याजनं च तथैवाध्यापनं नृप ।
विशेषधर्मो विप्राणां रक्षा क्षत्रस्य शोभना
कृषिश्च पाशुपाल्यं च वाणिज्यं च विशामपि
द्विजानां परिचर्या च शूद्रकर्म नराधिप २१
विशेषधर्मा नृपते वर्णानां परिकीर्तिताः ।
धर्मान्साधारणांस्तात विस्तरेण शृणुष्व मे ॥
आनृशंस्यमहिंसा चाप्रमादः संविभागिता ।
श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च २३
स्वेषु दारेषु संतोषः शौचं नित्यानसूयता ।
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्माः साधारणा नृप
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः
अत्र तेषामधीकारो धर्मेषु द्विपदां वर ॥ २५
विकर्मावस्थिता वर्णाः पतन्ते नृपते त्रयः ।
उन्नमन्ति यथा सन्तमाश्रित्येह स्वकर्मसु २६
न चापि शूद्रः पततीति निश्चयो
न चापि संस्कारमिहार्हतीति वा ।
श्रुतिप्रवृत्तं न च धर्ममाप्नुते
न चास्य धर्मे प्रतिषेधनं कृतम् २७
वैदेह कं शूद्रमुदाहरन्ति
द्विजा महाराज श्रुतोपपन्नाः ।
अहं हि पश्यामि नरेन्द्र देवं
विश्वस्य विष्णुं जगतः प्रधानम् २८

---

ननु निरवयवादव्याकृताज्जगज्जातमिति सर्वत्र श्रूयते तत्र कुतोऽवयवकल्पनेति शंकते—**ब्रह्मणेति** । ब्राह्मणेति पाठे एकेन ब्रह्मणेत्यध्याहर्तव्यम् । नानात्वं ब्रह्मक्षत्रियादिभावेन भिन्नत्वम् । गोत्रतः अन्वयतः गोत्राणि ब्रह्मक्षत्रियादीनि उग्राम्बष्ठादीनि च तस्माज्जातितारतम्यमयुक्तमित्यर्थः ॥ १० ॥ तस्यादरेऽपि व्यभिचारमाह—**यत्रेति** । यथा काक्षीवता शूद्रायामुत्पादिताः पुत्रा ब्राह्मणत्वं नीता न तु ते निषादत्वं प्राप्ता इत्यर्थः । तस्मात्कारणद्वारा कार्यद्वारा वा जातिभेदो न युक्त इति भावः ॥ ११ ॥ तदेतदभ्युपगमेनैव परिहरिष्यन्नस्यार्थस्य दुर्ग्रहत्वमाह—**राजन्निति** । अपकृष्टेन वर्णतारतम्यदृष्टिमता रजस्तमोग्रस्तेन॥१२॥ **मूलेति** । मूलं कार्यं ब्रह्म तत्र चत्वारि गोत्राणि नामानि समुत्पन्नानि गुणयोगात् । तथा च श्रुतिः 'एतमङ्गिरा इत्याचक्षतेऽङ्गानां हि रसस्तेनेति तं देवा अब्रुवन्नयं वैनः सर्वेषां वसिष्ठ इति तस्माद्वसिष्ठ इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्' इत्यादिका ॥ १७ ॥ कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि 'तस्येदं विश्वं मित्रमासीद्यदिदं किं च तस्माद्विश्वामित्र इत्याचक्षत एतमेव सन्तम्' इत्यादिश्रुतिः कर्मजान्येव सर्वाणि गोत्राणि परमात्मनि कर्मजन्यैव वर्णाश्रमगोत्रकल्पनेति प्रघट्टकार्थः । तानि च गोत्राणि तपसार्जितनामधेयापरपर्यायाणि सतां ग्रहणं आर्षेयं वरणं विवाहादिश्रौतस्मार्तव्यवहारालम्बनं भवतीति शेषः ॥ १८ ॥ एवं वर्णानुत्पत्तिं ज्ञात्वा तदीयान्सामान्यविशेषधर्मान्पृच्छति—**विशेषेति** ॥ १९ ॥ आनृशंस्यादित्रयोदशको गणः सर्ववर्णाश्रमसाधारणः ॥ २३ ॥ अधीकारः । उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलमिति दीर्घः । धर्मेषु पूर्वोक्तेषु ॥ २५ ॥ विकर्म निषिद्धं कर्म स्वकर्मसु सन्तं नरमाश्रित्य वर्णाः सत्त्वादिगुणजा उन्नमन्ति ॥ २६ ॥ **न चेति** । संस्कारार्हो हि तदभावे पतेन्न त्वयं तथेत्यर्थः धर्मे आनृशंस्यादित्रयोदशकरूपे ॥ २७ ॥ हे **वैदेह** द्विजाः शूद्रं कं प्रजापतिं ब्राह्मणतुल्यमाहुः । अहं तु तं विष्णुं क्षत्रियतुल्यं पश्यामि ब्रह्मविष्णू हि ब्राह्मणक्षत्रियौ यथोक्तं द्रोणपर्वणि द्रोणं प्रकृत्य—' ब्रह्मकल्पोऽभवद्ब्राह्मे क्षात्रे नारायणोपमः ' इति **प्राञ्चः** । वस्तुतस्तु ये स्थूलं शरीरं त्यक्त्वा लिङ्गमेवात्मत्वेन प्रतिपन्नास्ते विदेहाः । ये तु

सतां वृत्तमधिष्ठाय
निहीना उद्दिधीर्षवः ।
मन्त्रवर्ज न दुष्यन्ति
कुर्वाणाः पौष्टिकीः क्रियाः ॥ २९
यथा यथा हि सद्वृत्तमालम्बन्तीतरे जनाः
तथा तथा सुखं प्राप्य प्रेत्य चेह च मोदते ॥
जनक उवाच ।
किं कर्म दूषयत्येनमथो जातिर्महामुने ।
संदेहो मे समुत्पन्नस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
पराशर उवाच ।
असंशयं महाराज उभयं दोषकारकम् ।
कर्म चैव हि जातिश्च विशेषं तु निशामय ३२
जात्या च कर्मणा चैव दुष्टं कर्म न सेवते ।
जात्या दुष्टश्च यः पापं न करोति स पूरुषः
जात्या प्रधानं पुरुषं कुर्वाणं कर्म धिक्कृतम् ।
कर्म तद्दूषयत्येनं तस्मात्कर्म न शोभनम् ३४

जनक उवाच ।
कानि कर्माणि धर्म्याणि
लोकेऽस्मिन्द्विजसत्तम ।
न हिंसन्तीह भूतानि
क्रियमाणानि सर्वदा ॥ ३५
पराशर उवाच ।
शृणु मेऽत्र महाराज यन्मां त्वं परिपृच्छसि
यानि कर्माण्यहिंस्राणि नरं त्रायन्ति सर्वदा
संन्यस्याग्नीनुदासीनाः पश्यन्ति विगतज्वराः
नैःश्रेयसं कर्मपथं समारुह्य यथाक्रमम् ॥ ३७
प्रश्रिता विनयोपेता दमनित्याः सुसंशिताः ।
प्रयान्ति स्थानमजरं सर्वकर्मविवर्जिताः ३८
सर्वे वर्णा धर्मकार्याणि सम्यक्
कृत्वा राजन्सत्यवाक्यानि चोक्त्वा
त्यक्त्वा धर्मं दारुणं जीवलोके
यान्ति स्वर्गं नात्र कार्यो विचारः ३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां
षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

## २९७-[१२४]

पराशर उवाच ।
पिता सखायो गुरवः स्त्रियश्च
न निर्गुणानां प्रभवन्ति लोके ।
अनन्यभक्ताः प्रियवादिनश्च
हिताश्च वश्याश्च तथैव राजन् ॥ १

पिता परं दैवतं मानवानां
मातुर्विशिष्टं पितरं वदन्ति ।
ज्ञानस्य लाभं परमं वदन्ति
जितेन्द्रियार्थाः परमाप्नुवन्ति ॥ २

स्थूलसूक्ष्मे त्यक्त्वा प्रधानाख्यं कारणमात्मत्वेन प्रतिपन्नास्ते प्रकृतिलयाः त्रयमतिक्रान्ताः ब्राह्मणाः । आद्यस्य मुक्तिर्जन्मद्वयेन व्यवहिता द्वितीयस्यैकेन अन्त्यस्य सद्यः । एवं सति द्विजाः शूद्रं वैदेहकं विदेहेषु विदितं प्राहुः । शूद्रो विट्क्षत्रजन्मनी प्राप्य ब्राह्मणो भवतीत्यर्थः । स्वमते तु स प्रधानं अत एकमेव जन्म प्राप्य मुच्यते इति ॥ २८ ॥ ननु अयज्ञस्य शूद्रस्य चित्तशुद्ध्यभावात्कथं विदेहत्वादिकं स्यादत आह—**सतामिति** । सतां वृत्तं दमदयादानादि निहीनाः शूद्राः उद्दिधीर्षवः आत्मानमुद्धर्तुमिच्छवः निहीनानुज्जिहीर्षव इति पाठे कामादीन् दोषान् उज्जिहीर्षवः उच्छेत्तुमिच्छव इत्यर्थः ॥ २९ ॥ मोदते मोदन्ते ॥ ३० ॥ एनं नरं दूषयति हीनतां नयति ॥ ३१ ॥ दुष्टकर्मत्यागे जातिकर्मणोर्द्वयोरन्यतरस्यापि च हेतुत्वमाह द्वाभ्याम्—**जात्येति** ॥ ३३ ॥ संन्यस्याग्नीन् पारिव्राज्यं कृत्वेत्यर्थः। यथाक्रमं वितर्कविचारानन्दास्मिताख्यासु योगभूमिषु पूर्वपूर्वभूमिकां त्यक्त्वोत्तरोत्तरभूमिकामारुह्य कर्मपथं योगम् ३७ प्रश्रिताः श्रद्धावन्तः सुसंशिताः अतिसूक्ष्मबुद्धयः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा अधर्ममिति च्छेदः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

२९७

कानि धर्मकार्याणीत्यपेक्षायामाह—**पितेति** । निर्गुणानां भक्त्यादिहीनानाम्। पित्रादयो यथोक्तसेवाफलं दातुं न प्रभवन्ति । ये तु भक्तास्ते पित्रादिसेवाफलं प्राप्नुवन्त्येवेत्यर्थः ॥ १ ॥ लाभं लाभहेतुं जिता इन्द्रियार्था यैस्ते शब्दादिविषयजयिनः ॥ २ ॥

रणाजिरे यत्र शराग्निसंस्तरे
नृपात्मजो घातमवाप्य दह्यते ।
प्रयाति लोकानमरैः सुदुर्लभा-
न्निषेवते स्वर्गफलं यथासुखम् ॥ ३
श्रान्तं भीतं भ्रष्टशस्त्रं रुदन्तं
पराङ्मुखं पारिबर्हैश्च हीनम् ।
अनुद्यन्तं रोगिणं याचमानं
न वै हिंस्याद्बालवृद्धौ च राजन् ॥ ४
पारिबर्हैः सुसंयुक्तमुद्यतं तुल्यतां गतम् ।
अतिक्रमेत्तं नृपतिः सङ्ग्रामे क्षत्रियात्मजम्
तुल्यादिह वधः श्रेयान्विशिष्टाच्चेति निश्चयः
निहीनात्कातराच्चैव कृपणाद्गर्हितो वधः ॥ ६
पापात्पापसमाचारान्निहीनाच्च नराधिप ।
पाप एव वधः प्रोक्तो नरकायेति निश्चयः ७
न कश्चित्त्राति वै राजन्दिष्टान्तवशमागतम् ।
सावशेषायुषं चापि कश्चिन्नैवापकर्षति ॥ ८
स्निग्धैश्च क्रियमाणानि कर्माणीह निवर्तयेत् ।
हिंसात्मकानि सर्वाणि नायुरिच्छेत्परायुषा
गृहस्थानां तु सर्वेषां विनाशमभिकाङ्क्षताम्
निधनं शोभनं तात पुलिनेषु क्रियावताम् १०
आयुषि क्षयमापन्ने पञ्चत्वमुपगच्छति ।
तथा ह्यकारणाद्भवति कारणैरुपपादितम् ११
तथा शरीरं भवति देहाद्येनोपपादितम् ।
अध्वानं गतकश्चायं प्राप्तश्चायं गृहाद्गृहम् ॥ १२
द्वितीयं कारणं तत्र नान्यत्किञ्चन विद्यते ।
तद्देहं देहिनां युक्तं मोक्षभूतेषु वर्तते १३
शिरास्नाय्वस्थिसंघातं बीभत्सामेध्यसंकुलम्
भूतानामिन्द्रियाणां च गुणानां च समागमं

पारिबर्हैः रथाश्वकवचादिभिः अनुद्यन्तं आयुधमप्रेरयन्तम् उदयहीनं वा ॥ ४ ॥ अतिक्रमेत् जयेत् ॥ ५ ॥ दिष्टान्तो मृत्युः ॥ ८ ॥ स्निग्धैर्मात्रादिभिः क्रियमाणानि अभ्यञ्जादीनि नायुरिति परप्राणैः प्राणान्न पोषयेत् ॥ ९ ॥ **गृहस्थानामिति**। विनाशं बन्धक्षयम् । यद्वा विः पक्षी परमात्मा 'पुरः स पक्षी भूत्वा हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्मनाम' ' द्वा सुपर्णा ' इत्यादिश्रुतिषु परमात्मनि पक्षिवाचिशब्दप्रयोगदर्शनात् । तेन इत्थंभावे तृतीया परमात्मभावेन शं परमानन्दमभिकांक्षतामित्यर्थः । पुलिनेषु पुलिनवत्सु तीर्थेषु निधनं मरणं श्रेयः क्रियावतां तीर्थवास्युचितकर्मवताम् । तथा च स्मृतिः—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ इति

पुलिनेष्वपि समुद्रगामिन्य एव नद्यः प्रशस्ताः । तथा च श्रुतिः—
'इदं तेऽन्याभिरसमानभाद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्रवहन्ति नद्यः। सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहाति पापं च सशिरस्कोऽभ्युपेत्य ' इति। योऽप्सु नावं प्रतिष्ठितां वेद प्रत्यवतिष्ठति इति च नावं तारकाख्यां प्रणवरूपां ब्रह्मविद्याम्। यद्यप्येवं सर्वासामपां ब्रह्मविद्याप्रदत्वं प्राप्तम् । तथापि यथा—' पुरोडाशं चतुर्धा करोति आग्नेयं चतुर्धा करोति ' इतिवत्सामान्यशास्त्रं विशेषेणावरुध्यते । 'एवमत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति' इति विशेषश्रुतेरविमुक्तान्तर्गतास्वेवाप्सु तन्नियम्यते । अत्रापि अप्सु इति श्रौतसप्तमी पुलिनेष्विति पदेन सामीप्ये व्याख्याता। तेन अपां समीपेऽपि मरणं युक्तम् १० तच्च न हठेन संपादनीयमित्याह-**आयुषीति**। तथाहि तेन हि यदृच्छामरणप्रकारेण यदकारणाद्भवति अज्ञानमात्रापनयेन स्वतःसिद्धं मोक्षरूपं तत् कारणैस्तीर्थमरणैर्हठादुपपादितं भवति । यथोक्तं वासिष्ठे खिलग्रंथे—

' मोक्षक्षेत्रे विमूढान्तःकरणा येऽथवा मृताः
क्षेत्रमाहात्म्यतस्तेऽपि सन्ति क्षेत्रफलान्विताः' इति ।

विमूढान्तःकरणाः इदं मुक्तिक्षेत्रमित्यप्यजानन्तः क्षेत्रफलं मोक्षस्तदन्विताः मुक्ता इत्यर्थः । अत्र हि जन्तोरित्युदाहृतश्रुत्या यद्यप्यत्राप्यज्ञानापनयोऽस्त्येव । तथापि स एवात्र शमादिकं विना मरणेन हठात्साध्यत इति मोक्षस्यापि हठसाध्यत्वमुपचारादुक्तं भवति ॥ ११ ॥ तीर्थेऽपि हठान्मरणं निन्दति—**तथेति** । देहात् ल्यब्लोपे पञ्चमी । देहं प्राप्य येन पुंसा पञ्चत्वमित्यनुकृष्यते । उपपादितं हठेन जलप्रवेशादिना संपादितम्। तस्य तथा शरीरं पूर्वदेहप्रकारमेव शरीरं भवति देहत्यागी यातनाशरीरं प्राप्नोतीत्यर्थः । सोऽयं अध्वानं मोक्षमार्गं गतोऽपि कुत्सितत्वादध्वानं गतकः । यतोऽयं मोक्षक्षेत्रेऽपि गृहाद्गृहं देहाद्देहं प्राप्तः ॥ १२ ॥ तत्किमस्य मोक्षो नास्त्येवेत्याशंक्याह—**द्वितीयमिति** । तत्र गृहाद्गृहान्तरं प्राप्तो द्वितीयं कारणं काश्यां मृतस्यापि यातनादेहप्राप्तौ एकं कारणं हठमरणमभूत् । ततोऽपि देहान्तरप्राप्तौ द्वितीयं कारणं नास्ति । तस्य यातनादेहस्य भोगदेहत्वेन कर्मदेहत्वाभावाद्देहान्तरोत्पादकत्वं नास्तीत्यर्थः । तद्देहं क्लीबत्वमार्षम् । देहिनां सोऽपि यातनादेहो मोक्षभूतेषु मोक्षयोग्येषु रुद्रपिशाचेषु युक्तं आत्महत्यापापनिर्हरणाय यातनार्थं योजितं वर्तते ॥ १३ ॥ यातनादेहस्य स्वरूपमेतद्देहतुल्यमित्याह—**शिरेति** । गुणानां विषयाणां वासनामयानाम् ॥ १४॥

त्वगन्तं देहमित्याहुर्विद्वांसोऽध्यात्मचिन्तकाः
गुणैरपि परिक्षीणं शरीरं मर्त्यतां गतम्॥ १५
शरीरिणा परित्यक्तं निश्चेष्टं गतचेतनम् ।
भूतैः प्रकृतिमापन्नैस्ततो भूमौ निमज्जति॥ १६
भावितं कर्मयोगेन जायते तत्र तत्र ह ।
इदं शरीरं वैदेह म्रियते यत्र यत्र ह ।
तत्स्वभावो परो दृष्टो विसर्गः कर्मणस्तथा १७
न जायते तु नृपते कञ्चित्कालमयं पुनः ।
परिभ्रमति भूतात्मा द्यामिवाम्बुधरो महान्॥
स पुनर्जायते राजन्प्राप्येहायतनं नृप ।
मनसः परमो ह्यात्मा इन्द्रियेभ्यः परं मनः॥
विविधानां च भूतानां जङ्गमाः परमा नृप।
जङ्गमानामपि तथा द्विपदाः परमा मताः ।
द्विपदानामपि तथा द्विजा वै परमाः स्मृताः
द्विजानामपि राजेन्द्र प्रज्ञावन्तः परा मताः।
प्राज्ञानामात्मसंबुद्धाः संबुद्धानाममानिनः२१
जातमन्वेति मरणं नृणामिति विनिश्चयः ।
अन्तवन्ति हि कर्माणि सेवन्ते गुणतः प्रजाः

आपन्ने तूत्तरां काष्ठांसूर्ये यो निधनं व्रजेत् ।
नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन्स पुण्यकृत२३
अयोजयित्वा क्लेशेन जनं प्लाव्य च दुष्कृतम्।
मृत्युनाऽऽत्मकृतेनेह कर्म कृत्वाऽऽत्मशक्तिभिः
विषमुद्बन्धनं दाहो दस्युहस्तात्तथा वधः ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च प्राकृतो वध उच्यते॥ २५
न चैभिः पुण्यकर्माणो युज्यन्ते चाभिसन्धिजैः
एवंविधैश्च बहुभिरपरैः प्राकृतैरपि ॥ २६
ऊर्ध्वं भित्त्वा प्रतिष्ठन्ते प्राणाः पुण्यवतां नृप
मध्यतो मध्यपुण्यानामधो दुष्कृतकर्मणाम् ॥
एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रु-
रज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन् ।
येनावृतः कुरुते संप्रयुक्तो
घोराणि कर्माणि सुदारुणानि ॥ २८
प्रबाधनार्थं श्रुतिधर्मयुक्तं
वृद्धानुपास्य प्रभवेत यस्य ।
प्रयत्नसाध्यो हि स राजपुत्र
प्रज्ञाशरेणोन्मथितः परैति ॥ २९

त्वगन्तं त्वगेव अन्ते समीपे यस्य त्वगस्थिमात्र मेदोमांसवर्जितमित्यर्थः।गुणैः सौन्दर्यादिभिः मर्त्यतां वायवीयमपि पूर्ववासनावशान्मनुष्यतामिव गतम् ॥१५॥ अत एव तन्नाशोऽपि मर्त्यशरीरनाशवदेवेत्याह—**शरीरिणेति**। कञ्चुकिना कञ्चुकमिव मुक्तेन परित्यक्तम् । भूतैः अपञ्चीकृतैः । प्रकृतिं स्वं स्वं कारणम्। यद्वा भूतैर्यातनदेहारंभकैः प्रकृतिं आत्मानं प्राप्तैः ' एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं यान्ति ' इति श्रुतेः। ततो भूमौ निमज्जति लोकदृष्ट्या तथा च 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते' इति प्राणानां प्रत्यगात्मनि विद्वद्दृष्ट्या लयं प्रदर्श्य स उच्छ्रयत्याध्मातो मृतः शेत इति लोकदृष्ट्या शरीरस्य भूमौ लयोऽपि श्रुत्या प्रदर्शितः इदमपि रुद्रपिशाचानामेव दृष्ट्या न त्वस्मद्दृष्ट्या तेष्वेव तस्य वर्तनादिति ध्येयम् ॥ १६ ॥ ननु पाद्मे माघमाहात्म्ये वाराणस्यां मृतस्यापि ब्राह्मणस्य दशजन्मानि स्मर्यन्ते तत्कथं द्वितीयं कारणं तत्रेति जन्मान्तरप्रापकं कारणान्तरं तस्य नास्तीत्युक्तमित्याशंक्याहार्धेन—**भावितमिति**। तत्पिशाचशरीरं कर्मयोगेन आत्महत्याया इव ब्रह्महत्यादीनामनेकजन्मप्रापकाणामनेकेषां कर्मणां काश्यां कृतानां संभवात्तत्कर्मवासनया तत्र तत्र यातनाशरीरे जायते । न चैवं देशान्तरमरणादविशेष इत्याशंक्याह—**इदमिति**। इदं यातनाशरीरादन्यत् यत्र यत्र विषये निमग्नं सत् म्रियते तत्तत्स्वभावस्तत्तद्रूपोऽपरो विसर्गो जन्मकर्मणः फलभूतो दृष्टः । यातनाशरीरविसर्गस्तु त्यक्तशरीरसजातीयो न भवतीत्यर्थः विमर्द इति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ १७ ॥ यातनादेहस्य तु ततो वैलक्षण्यमाह—**न जायत इति**। भूतात्मा रुद्रपिशाचः न जायते स्वेन रूपेण नाविर्भवति यावत्पापक्षयम् ॥ १८ ॥ आयतनं अधिष्ठानं प्राप्य उपाधिजनितकालुष्यत्यागेनावगम्य आयतनस्वरूपमाह—**मनस** इति । निःसंकल्पमेव मोक्षलक्षणमित्यर्थः । तस्मान्निःसंकल्पस्तटस्थास्तिष्ठेदेतन्मोक्षलक्षणमिति मैत्रायणीयश्रुतेः ॥ १९ ॥ एवं जन्तुतारतम्यवर्जितां देशविशेषायत्तां गतिमुक्त्वा कालायत्तां गतिं वक्तुं जन्तुतारतम्यं तावदाह—**विविधानामिति** ॥ २० ॥ आत्मसंबुद्धाः योगिनः अमानिनः योगैश्वर्यकृतदर्पहीनाः ॥ २१ ॥ दर्पत्यागमूलं विवेकमाह—**जातमिति** ॥ २२ ॥ पुण्यकृत् ब्रह्मलोकं गन्तुमधिकारीत्यर्थः ॥ २३ ॥ तत्र मुख्यं साधनं जनं क्लेशेन अयोजयित्वेति अत्रापि यादृच्छिकमेव मरणं श्रेय इत्याह—**मृत्युनेति**। आत्मकृतेन कालजेन ॥ २४ ॥ **विषमिति**। योगी अत्यन्तव्याधिपीडाग्रस्तोऽपि दुर्मरणं नेच्छेदित्यर्थः ॥ २५ ॥ उत्तरायणे मृतानां पुण्यकृतां गतिमाह—**ऊर्ध्वमिति**। सूर्यमण्डलं भित्त्वेत्यर्थः 'सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति' इतिश्रुतेः । मध्यतो मनुष्यलोके प्रासंगिकोऽयमर्धश्लोकः ॥ २७ ॥ देशकालनिरपेक्षा गतिस्तु केवलमज्ञानाख्यशत्रोरपगममात्रादेवेत्याह—**एक इति** द्वाभ्याम् ॥ २८ ॥ यस्य प्रबाधनार्थं श्रुतिधर्मयुक्तं यथा स्यात्तथ.

अधीत्य वेदं तपसा ब्रह्मचारी
यज्ञान् शक्त्या सन्निसृज्येह पञ्च।
वनं गच्छेत्पुरुषो धर्मकामः
श्रेयःस्थित्वा स्थापयित्वा स्ववंशम् ३०
उपभोगैरपि त्यक्तं नात्मानं सादयेन्नरः।
चण्डालत्वेऽपि मानुष्यं सर्वथा तात शोभनम्
इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः
कथं न विप्रणश्येम योनितोऽस्या इति प्रभो
कुर्वन्ति धर्मं मनुजाः श्रुतिप्रामाण्यदर्शनात्॥
यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः।
धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत्स खलु वञ्च्यते
यस्तु प्रीतिपुराणेन चक्षुषा तात पश्यति।
दीपोपमानि भूतानि यावदर्थान्न पश्यति ३५
सान्त्वेनान्नप्रदानेन प्रियवादेन चाप्युत।
समदुःखसुखो भूत्वा स परत्र महीयते॥ ३६

दानं त्यागः शोभना मूर्तिरद्भ्यो
भूयःप्लाव्यं तपसा वै शरीरम्।
सरस्वती नैमिषपुष्करेषु
ये चाप्यन्ये पुण्यदेशाः पृथिव्याम् ३७
गृहेषु येषामसवः पतन्ति
तेषामथो निर्हरणं प्रशस्तम्।
यानेन वै प्रापणं च श्मशाने
शौचेन नूनं विधिना चैव दाहः॥ ३८
इष्टिः पुष्टिर्यजनं याजनं च
दानं पुण्यानां कर्मणां च प्रयोगः।
शक्त्या पित्र्यं यच्च किञ्चित्प्रशस्तं
सर्वाण्यात्मार्थे मानवोऽयं करोति॥
धर्मशास्त्राणि वेदाश्च षडङ्गानि नराधिप।
श्रेयसोऽर्थे विधीयन्ते नरस्याक्लिष्टकर्मणः ४०
भीष्म उवाच।
एतद्वै सर्वमाख्यातं मुनिना सुमहात्मना।
विदेहराजाय पुरा श्रेयसोऽर्थे नराधिप॥ ४१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९७॥

## २९८—[१२५]

भीष्म उवाच।
पुनरेव तु पप्रच्छ जनको मिथिलाधिपः।
पराशरं महात्मानं धर्मे परमनिश्चयम्॥ १
जनक उवाच।
किं श्रेयः का गतिर्ब्रह्मन्किं कृतं न विनश्यति
क्व गतो न निवर्तेत तन्मे ब्रूहि महामते॥ २
पराशर उवाच।
असंगः श्रेयसो मूलं ज्ञानं ज्ञानगतिः परा।
चीर्णं तपो न प्रणश्येद्वापः क्षेत्रे न नश्यति ३

वृद्धानुपास्य प्रभवेत। सः अज्ञानशत्रुः प्रज्ञाशरेणोन्मथितः परैति नश्यति हे राजपुत्र॥ २९॥ आश्रमत्रयधर्मः प्रज्ञाप्रातावुपाय इत्याह—**अधीत्येति**। श्रेयःस्थित्वा श्रेयोऽर्थे तिष्ठति सन्नद्धो भवतीति श्रेयःस्थित्वा मोक्षकामः आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्चेति क्वनिबन्तोऽयं शब्दः॥३०॥ अध्ययनादियोग्यां नृयोनिं प्रशंसति—**उपभोगैरिति** चतुर्भिः॥ ३१॥ यो धर्मावमन्ता स कामात्मा भवेत् स च कामेन वञ्च्यते॥ ३४॥ प्रीतिपुराणेन प्रीत्या चिरन्तनेन। पुरोगेणेति पाठः स्वच्छः। दीपोपमानि स्नेहेन संवर्धनीयानि यावदर्थान् सर्वान्विषयान् दयावान् भूतानि पश्यति विरक्तोऽर्थान्न पश्यति यः स महीयते इत्युत्तरेण सम्बन्धः॥३५॥ पुनरावृत्तिमतीं गतिमाह—**दानमित्यादिना**। शोभना मूर्तिः शान्ता आकृतिः हे भूप अद्भ्यः आद्भिः तपसा च शरीरं प्लाव्यं शोधनीयं तत्र आपः स्यक्त्वा इत्यत आह—**सरस्वतीति**। अन्ये कुरुक्षेत्राद्याः॥३७॥ उक्त एवार्थे प्रकारान्तरमाह—**गृहेष्विति**॥३८॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९७॥

२९८

उक्तमर्थं संक्षेपेण वक्तुमारभते—**पुनरेवे**त्याद्यध्यायम्॥१॥ श्रेयः श्रेयःसाधनम्॥२॥ ज्ञानमेव परा गतिः हे ज्ञान हे चिन्मात्रस्वरूप प्रत्यक्चितिरेव परा गतिरित्यर्थः। वापः दानं क्षेत्रे सत्पात्रे बीजमिति पाठे बीजमिव न्युप्तमिति स एवार्थः॥ ३॥

छित्त्वाऽधर्ममयं पाशं यदा धर्मेऽभिरज्यते।
दत्त्वाऽभयकृतं दानं तदा सिद्धिमवाप्नुते ॥ ४
यो ददाति सहस्राणि गवामश्वशतानि च।
अभयं सर्वभूतेभ्यः सदा तमभिवर्तते ॥ ५
वसन्विषयमध्येऽपि न वसत्येव बुद्धिमान्।
संवसत्येव दुर्बुद्धिरसत्सु विषयेष्वपि ॥ ६
नाधर्मः श्लिष्यते प्राज्ञं पयः पुष्करपर्णवत्।
अप्राज्ञमधिकं पापं श्लिष्यते जतुकाष्ठवत् ॥ ७
नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ता खलु यथाकालं ततः समभिपद्यते ॥ ८
न भिद्यन्ते कृतात्मान आत्मप्रत्ययदर्शिनः।
बुद्धिकर्मेन्द्रियाणां हि प्रमत्तो यो न बुद्ध्यते।
शुभाशुभे प्रसक्तात्मा प्राप्नोति सुमहद्भयम् ९
वीतरागो जितक्रोधः सम्यग्भवति यः सदा
विषये वर्तमानोऽपि न स पापेन युज्यते १०
मर्यादायां धर्मसेतुर्निबद्धो नैव सीदति।
पुष्टस्रोत इवासक्तः स्फीतो भवति सञ्चयः ११
यथा भानुगतं तेजो मणिः शुद्धः समाधिना
आदत्ते राजशार्दूल तथा योगः प्रवर्तते ॥ १२
यथा तिलानामिह पुष्पसंश्रया-
त्पृथक्पृथग्याति गुणोऽतिसौम्यतां
तथा नराणां तु विभावितात्मनां
यथाऽऽश्रयं सत्त्वगुणः प्रवर्तते ॥ १३

जहाति दारांश्च जहाति संपदः
पदं च यानं विविधाश्च सत्क्रियाः।
त्रिविष्टपे जातमतिर्यदा नर-
स्तदाऽस्य बुद्धिर्विषयेषु भिद्यते ॥ १४
प्रसक्तबुद्धिर्विषयेषु यो नरो
न बुध्यते ह्यात्महितं कथञ्चन।
स सर्वभावानुगतेन चेतसा
नृपामिषेणेव झषो विकृष्यते ॥ १५
संघातवन्मर्त्यलोकः परस्परमपाश्रितः।
कदलीगर्भनिःसारो नौरिवाप्सु निमज्जति ॥
न धर्मकालः पुरुषस्य निश्चितो
न चापि मृत्युः पुरुषं प्रतीक्षते।
सदा हि धर्मस्य क्रियैव शोभना
यदा नरो मृत्युमुखेऽभिवर्तते ॥ १७
यथान्धः स्वगृहे युक्तो ह्यभ्यासादेव गच्छति
तथा युक्तेन मनसा प्राज्ञो गच्छति तां गतिम्
मरणं जन्मनि प्रोक्तं जन्म वै मरणाश्रितम्।
अविद्वान्मोक्षधर्मेषु बद्धो भ्रमति चक्रवत् १९
बुद्धिमार्गप्रयातस्य सुखं त्विह परत्र च।
विस्तराः क्लेशसंयुक्ताः संक्षेपास्तु सुखावहाः।
परार्थं विस्तराः सर्वे त्यागमात्महितं विदुः
यथा मृणालानुगतमाशु मुञ्चति कर्दमम्।
तथाऽऽत्मा पुरुषस्येह मनसा परिमुच्यते २१

---

किं कृतं न विनश्यतीत्यस्यैवोत्तरं प्रायेणाध्यायशेषः। अधर्मेति च्छेदः। अभयंकृतं अभयकरं दानं दत्वा संन्यासं कृत्वेत्यर्थः। सिद्धिं मोक्षं अनिवर्तनं स्थानम्। इदं चतुर्थप्रश्नस्योत्तरम् ॥ ४ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति तमभितः सदाऽभयं वर्तते॥ ५ ॥ बुद्धिमान् आसङ्गशून्यः दुर्बुद्धिर्मनसा विषयसंगवान् ॥ ६ ॥ श्लिष्यते आलिङ्गति तद्वार्षः पर्णवत् पर्णमिव ॥ ७ ॥ कारणा फलदानात्मिका क्रिया तन्निवृत्त्यपेक्षी समभिपद्यते फलं प्राप्नोति ततोऽधर्मात्। कर्ता कर्तृत्वाभिमानी ॥ ८ ॥ न भिद्यन्ते कर्मफलैर्न क्लिश्यन्ति तेषां कर्माश्लेषात् कस्तर्हि भिद्यतेऽत आह—**बुद्धीति**। न बुध्यते दुश्चेष्टितमिति शेषः ॥ ९ ॥ यथा नद्यां बद्धः सेतुर्नैव सीदति स्रोतःपुष्टिं करोति। एवं असक्तः धर्म एव सेतुर्यस्य सः। मर्यादायां बद्धो नैव सीदति। सञ्चयस्तपोवृद्धिश्च स्फीता भवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ समाधिना नियमेन दृष्टान्ते दार्ष्टान्तिके तु समाधिना ध्यानेन यथा मणिः सौरं तेज आदत्ते एवं जीवो ब्रह्मभावमादत्ते मणिद्वारा वन्हेरिव योगद्वारा ब्रह्मभावाभिव्यक्तिर्भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥ सौम्यतां रम्यतां यथाश्रयं पुनःपुनर्वासनाभ्यासाद्बहुलं तदभावेऽल्पः सत्त्वगुणः प्रवर्तते ॥ १३ ॥ भिद्यते शब्दादिभ्यो व्यावृत्ता भवति ॥ १४ ॥ आमिषेण बडिशगर्भितेन झषो मत्स्यः ॥१५॥ संघातवद्देहेन्द्रियादिसमुदायवत् मर्त्यलोकः स्त्रीपुत्रपश्वादिसमुदायः अपाश्रितः उपकारकः॥१६ **नेति**। सदा मृत्युः सन्निहितोऽस्तीति सदैव धर्मः कार्य इत्यर्थः ॥ १७ ॥ धर्मेण चित्तशुद्धौ सत्यां योगाभ्यासः कार्य इत्याह—**यथेति**। अगोचरेऽपि मार्गे गुरूक्तयुक्त्याऽभ्यासादेव गच्छतीत्यर्थः ॥ १८ ॥ योगाभावेऽनिष्टमाह—**मरणमिति**। जन्मनि जन्मनिमित्तं मोक्षधर्मेषु मोक्षधर्मान् अजानन् ॥ १९ ॥ ज्ञानमार्गे प्रवृत्तस्य तूभयत्रापि सुखमित्याहार्धेन—**बुद्धीति**। विस्तराः वैतानिकान्यग्निहोत्रादीनि संक्षेपास्त्यागादयः परार्थं अनात्मभूतफलार्थम् ॥ २० ॥ मृणालेति लुप्तविभक्तिकं बिसतन्तुः कर्दममिवात्मोपाधिभूतं मनस्त्यजतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

मनः प्रणयतेऽऽत्मानं स एनमभियुञ्जति ।
युक्तो यदा स भवति तदा तं पश्यते परम्२२
परार्थे वर्तमानस्तु स्वं कार्यं योऽभिमन्यते ।
इन्द्रियार्थेषु संयुक्तः स्वकार्यात्परिमुच्यते २३
अधस्तिर्यग्गतिं चैव स्वर्गे चैव परां गतिम् ।
प्राप्नोति सुकृतैरात्मा प्राज्ञस्येहेतरस्य च २४
मृन्मये भाजने पक्के यथा वै न श्यति द्रवः ।
तथा शरीरं तपसा तप्तं विषयमश्नुते ॥ २५
विषयानश्नुते यस्तु न स भोक्ष्यत्यसंशयम् ।
यस्तु भोगांस्त्यजेदात्मा स वै भोक्तुं व्यवस्यति
नीहारेण हि संवीतः शिश्नोदरपरायणः ।
जात्यन्ध इव पन्थानमावृतात्मा न बुद्ध्यते ॥
वणिग्यथा समुद्राद्वै यथार्थं लभते धनम् ।
तथा मर्त्यार्णवे जन्तोः कर्मविज्ञानतो गतिः॥
अहोरात्रमये लोके जरारूपेण संसरन् ।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा ॥ २९
स्वयं कृतानि कर्माणि जातो जन्तुः प्रपद्यते ।
नाकृत्वा लभते कश्चित्किञ्चिदत्र प्रियाप्रियम्
शयानं यान्तमासीनं प्रवृत्तं विषयेषु च ।
शुभाशुभानि कर्माणि प्रपद्यन्ते नरं सदा ३१
न ह्यन्यत्तीरमासाद्य पुनस्तर्तुं व्यवस्यति ।
दुर्लभो दृश्यते ह्यस्य विनिपातो महार्णवे ३२
यथा भावावसक्ना हि नौर्महांभसि तन्तुना ।
तथा मनोभियोगाद्वै शरीरं प्रचिकीर्षति ३३
यथा समुद्रमभितः संश्रिताः सरितो पराः
तथाऽद्या प्रकृतिर्योगादभिसंश्रियते सदा॥३४
स्नेहपाशैर्बहुविधैरासक्तमनसो नराः ।
प्रकृतिस्था विषीदन्ति जले सैकतवेश्मवत् ॥
शरीरगृहसंज्ञस्य शौचतीर्थस्य देहिनः ।
बुद्धिमार्गप्रयातस्य सुखं त्विह परत्र च ॥ ३६
विस्तराः क्लेशसंयुक्ताः संक्षेपास्तु सुखावहाः
परार्थं विस्तराः सर्वे त्यागमात्महितं विदुः ॥
संकल्पजो मित्रवर्गो ज्ञातयः कारणात्मकाः ।
भार्या पुत्रश्च दासश्च स्वमर्थमुपभुञ्जते ॥ ३८
न माता न पिता किञ्चित्कस्यचित्प्रतिपद्यते
दानपथ्यौदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते ॥ ३९

---

मनःकृतः संसारो मनसैव नश्यतीत्याह—**मन इति**। त्मानं आत्मानम् सान्धिरार्थः प्रणयते योगोन्मुखं करोति स योगी एनं मनोरूपमात्मानमभियुञ्जति परस्यां काष्ठायां युनक्ति प्रविलापयति युक्तः योगसिद्धः तं परं सर्वोपाधिहीनं आत्मानम् ॥२२॥ परार्थे इन्द्रियतृप्त्यर्थे एतदेव स्वं कार्यमिति यो मन्यते मूढः सः स्वकार्यात् योगात् ॥२३॥ योगाच्च्युतस्य गतिमाह—**अध इति**। स्वर्गे परां गतिं इन्द्रलोकम् ॥ २४ ॥ योगस्थस्य गतिमाह—**मृन्मये इति**। द्रवः द्रवद्रव्यं जलादि न श्यति न क्षीयते न क्षरतीत्यर्थः। श्यतीति शो तनूकरणे इत्यस्य रूपम्। शरीरं बुद्धिर्लिंगं वा तप्तं आलोचितम्। विषयं ब्रह्मलोकान्तम्। अश्नुते व्याप्नोति न तु त्यजतीत्यर्थः ॥ २५ ॥ शरीरपदेन लिंगस्यैव भोक्तृत्वं सूचितं तद्व्याचष्टे—**विषयानिति**। यो विषयान् अश्नुते आलोक इव व्याप्नोति प्रकाशयति साक्षी नासौ भोक्तेत्यर्थः यस्तु आत्मा बुद्धिप्रधानश्चिदाभासो जीवो भोक्ता भोगांस्त्यजेद्वैराग्यावेशात्। स एव भोक्तुं व्यवस्यति अध्यवसायं करोति। तथा च श्रुतिर्द्विविधमात्मानं दर्शयति—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' इति।

भोक्तुं विनश्यतीति पाठे भोगार्थं जन्मान्तरलाभायैव म्रियत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ नन्वभोक्तात्मा कुतो नोपलभ्यते इत्यत आह—**नीहारेणेति**। आवृतात्मा जीवः न बुद्ध्यते अनावृतं स्वस्वरूपमित्यर्थः। तथा च श्रुतिरभोक्तारमीशमावृतं दर्शयति—

'न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति' इति

२७ यथार्थं मूलधनानुसारेण यथा धनलाभः एवं कर्मविज्ञानानुसारेण गतिरित्यर्थः ॥ २८ ॥ तस्मादात्ममोक्षाय यतेतेत्याशयेनाह—**अहोरात्रेति**। अहोरात्रमये कालप्रधाने ॥ २९ ॥ ज्ञाततत्त्वस्य जन्मान्तरं नास्तीत्याह दृष्टान्तेनैव—**न हीति**। अन्यत् जलात्परम् ॥ ३२ ॥ भावेन धीवराभिप्रायेण। धीवरस्तन्तुना नावमिव मनः अभियोगेन भावनाभिनिवेशेन शरीरं प्रचिकीर्षति अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्। कारयितुमिच्छतीत्यर्थः ॥३३॥ अभियोगबलादेव नदीसमुद्रदृष्टान्तेन मनसो मूलप्रकृतौ लयमाह—**यथेति**। योगात् अभियोगात् अभिसंश्रियते मनसेति शेषः ॥ ३४॥ योगाभावे दोषमाह—**स्नेहेति**। प्रकृतिस्थाः अज्ञानवशाः ॥ ३५ ॥ शरीरगृहस्य संज्ञैव संज्ञा यस्य देहगतं नामरूपम् आत्मधर्मत्वेन मन्यमानस्य देहिनो देहाभिमानवतः शौचं आन्तरं भावशुद्धिः बाह्यं च प्रसिद्धम्। बुद्धिरात्मज्ञानं देवतोपासनं वा ॥ ३६ ॥ विस्तरा इति श्लोको व्याख्यातः ॥ ३७ ॥ योगविघ्नभूता कुटुम्बचिन्ता न कार्येत्याह—**संकल्पज इत्यादिना** ॥३८॥ दानमेव पथि स्वर्गमार्गे हितं ओदनस्थानीयं पाथेयं यस्य सः दानपथ्यौदनः ॥३९॥

माता पुत्रः पिता भ्राता भार्या मित्रजनस्तथा
अष्टापदपदस्थाने दक्षमुद्रेव लक्ष्यते ॥ ४०
सर्वाणि कर्माणि पुरा कृतानि
शुभाशुभान्यात्मनो यान्ति जन्तोः।
उपस्थितं कर्मफलं विदित्वा
बुद्धिं तथा चोदयतेऽन्तरात्मा ॥ ४१
व्यवसायं समाश्रित्य
सहायान्योऽधिगच्छति।
न तस्य कश्चिदारंभः
कदाचिदवसीदति ॥ ४२
अद्वैधमनसं युक्तं शूरं धीरं विपश्चितम्।
न श्रीः सन्त्यजते नित्यमादित्यमिव रश्मयः
आस्तिक्यव्यवसायाभ्या-
मुपायाद्विस्मयाद्धिया।
समारभेदनिन्द्यात्मा
न सोऽर्थः परिषीदति ॥ ४४
सर्वैः स्वानि शुभाशुभानि नियतं
कर्माणि जन्तुः स्वयम्
गर्भात्संप्रतिपद्यते तदुभयं
यत्तेन पूर्वं कृतम्।
मृत्युश्चापरिहारवान्समगतिः
कालेन विच्छेदिना
दारोश्चूर्णमिवाश्मसारविहितं
कर्मान्तिकं प्रापयेत् ॥ ४५
स्वरूपतामात्मकृतं च विस्तरं
कुलान्वयं द्रव्यसमृद्धिसञ्चयम्।
नरो हि सर्वो लभते यथाकृतं
शुभाशुभेनात्मकृतेन कर्मणा ॥ ४६

भीष्म उवाच।

इत्युक्तो जनको राजन् याथातथ्यं मनीषिणा
श्रुत्वा धर्मविदां श्रेष्ठः परां मुदमवाप ह ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पराशरगीतायां
अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥

॥ पराशरगीता समाप्ता ॥

## २९९-[१२६]

युधिष्ठिर उवाच।

सत्यं दमं क्षमां प्रज्ञां प्रशंसन्ति पितामह। विद्वांसो मनुजा लोके कथमेतन्मतं तव ॥ १

अष्टापदपदं सुवर्णकार्षापणस्तस्य स्थाने हे दक्ष यथा मुद्रा रेखाविशेषास्तद्वन्मात्रादय इत्यर्थः। स्वर्णवत् स्वादृष्टमेव स्वाभ्युदयहेतुः रेखावत् बान्धवादयो नाममात्रम् खर्परे रेखेव निर्दैवे मात्रादयो निष्फला इत्यर्थः। दक्षसूत्रेण लक्ष्यत इति पाठे सूत्रेण सूचकेन मुद्रयेति यावत्। यथा मुद्रया कार्षापणविशेषो लक्ष्यते एवं मात्रादिना जातिविशेष इत्यर्थः ॥ ४० ॥ यान्ति फलं दातुमिति शेषः ॥ ४१ ॥ व्यवसायं उद्योगम् ॥ ४२ ॥ अद्वैधमनसं एकाग्रचित्तम् ॥ ४३ ॥ विस्मयात् स्मयो गर्वस्तदभावात् ॥ ४४ ॥ गर्भात् गर्भप्रवेशमारभ्य यत् यस्मात्तदुभयं शुभाशुभम्। अपरिहारवान् परिहर्तुमशक्यः कालेन प्राभेन विच्छेदिना जीवननाशकेन सहायेन मृत्युः कर्मान्तिकं दिष्टान्तं विनाशाख्यं प्रापयेत् दारोः काष्ठस्य चूर्णं अश्मसारविहितं क्रकचकृतं समा शीतोष्णसाम्यवती गतिर्यस्य स समगतिर्वायुः। दारुचूर्णमिव मृत्युर्नरं कालेनान्तं नयतीत्यर्थः। तस्माद्यदृच्छयागतैरन्नादिभिः प्राणान्धारयित्वा मोक्षार्थं यतनीयमिति सिद्धम् ॥ ४५ ॥ स्वरूपतां स्वस्य रूपं हिरण्यं पशवो विवाहा इति श्रुतं रूपमिव रूपं यस्य स्वकुलानुसारि विवाहादिकं तदेव तत्ता तां आत्मकृतं विस्तरं पुत्रसन्तत्यादिपौष्कल्यं कुलान्वयं सत्कुले जन्म यथाकृतं कृतमनतिक्रम्य यस्मात्सर्वं प्राक्कर्मवशादेव लभ्यतेऽतस्तदर्थे यत्नमकुर्वन्नात्मलाभान्न परं विद्यत इति वचनादात्मतत्त्वसाक्षात्कारार्थं यतेतैवेति भावः ॥ ४६ ॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥

२९९

अन्नाद्यर्थं यत्नमकुर्वता यत्कर्तव्यं तन्निरूपयितुं **हंसगीता** आरभ्यते-**सत्यं दमं क्षमां प्रज्ञामित्यादिना** ॥ १ ॥

भीष्म उवाच।

अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्।
साध्यानामिह संवादं हंसस्य च युधिष्ठिर २
हंसो भूत्वाऽथ सौपर्ण-
स्त्वजो नित्यः प्रजापतिः।
स वै पर्येति लोकांस्त्री-
नथ साध्यानुपागमत् ॥ ३

साध्या ऊचुः।

शकुने वयं स्म देवा वै
साध्यास्त्वामनुयुंक्ष्महे।
पृच्छामस्त्वां मोक्षधर्मं
भवांश्च किल मोक्षवित् ॥ ४
श्रुतोऽसि नः पण्डितो धीरवादी
साधुशब्दश्चरते ते पतत्रिन्।
किं मन्यसे श्रेष्ठतमं द्विज त्वं
कस्मिन्मनस्ते रमते महात्मन् ॥ ५
तन्नः कार्यं पक्षिवर प्रशाधि
यत्कार्याणां मन्यसे श्रेष्ठमेकम्।
यत्कृत्वा वै पुरुषः सर्वबन्धै-
र्विमुच्यते विहगेन्द्रेह शीघ्रम् ॥ ६

हंस उवाच।

इदं कार्यममृताशाः शृणोमि
तपो दमः सत्यमात्माभिगुप्तिः।
ग्रन्थीन्विमुच्य हृदयस्य सर्वान्
प्रियाप्रिये स्वं वशमानयीत ॥ ७
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत।
ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥ ८
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति राज्यहानि।
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ९
परश्चेदेनमतिवादबाणै-
र्भृशं विध्येच्छम एवेह कार्यः।
संरोष्यमाणः प्रतिहृष्यते यः
स आदत्ते सुकृतं वै परस्य ॥ १०
क्षेपायमाणमभिषङ्गव्यलीकं
निगृह्णाति ज्वलितं यश्च मन्युम्।
अदुष्टचेता मुदितोऽनसूयुः
स आदत्ते सुकृतं वै परेषाम् ॥ ११
आक्रुश्यमानो न वदामि किञ्चित्
क्षमाम्यहं ताड्यमानश्च नित्यम्।
श्रेष्ठं ह्येतद्यत्क्षममाहुरार्याः
सत्यं तथैवार्जवमानृशंस्यम् ॥ १२
वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासनम् १३
वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान्वेगान्यो विषहेदुदीर्णां-
स्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥ १४
अक्रोधनः क्रुध्यतां वै विशिष्ट-
स्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषान्मानुषो वै विशिष्ट-
स्तथाऽज्ञानाज्ज्ञानविद्वै विशिष्टः १५
आक्रुश्यमानो नाक्रुश्येन्मन्युरेनं तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥
यो नात्युक्तः प्राह रूक्षं प्रियं वा
यो वा हतो न प्रतिहन्ति धैर्यात्।
पापं च यो नेच्छति तस्य हन्तु-
स्तस्येह देवाः स्पृहयन्ति नित्यम् १७
पापीयसः क्षमेतैव श्रेयसः सदृशस्य च।
विमानितो हतोत्क्रुष्ट एवं सिद्धिं गमिष्यति

---

हे द्विज पक्षिन् ॥ ५ ॥ भो अमृताशा अमृतभुजो देवाः तपः स्वधर्माचरणं, दमो बाह्येन्द्रियनियमः, सत्यं यथार्थभाषणम्, आत्माभिगुप्तिश्चित्तजयः ग्रंथीन् रागादीन् स्वं वशं स्वाधीनताम् प्रियाप्रिययोर्हर्षविषादौ न कर्तव्याविति थर्थः ॥७॥ अरुन्तुदो मर्मच्छित् नृशंसवादी निष्ठुरवादी च न स्यात् हीनतः नीचात् परं शास्त्ररहस्यं च नाददीत। उषतीं अकल्याणीं दाहकरीं पापलोक्यां नरकप्रदाम् ॥ ८ ॥ क्षेपायमाणं अधिक्षेपकारिणम् अभिषङ्गव्यलीकं अभिनिवेशवशादप्रियम् ॥ ११ ॥ उपनिषद्रहस्यं वेदाधिगमस्य फलं सत्यवचनमित्यर्थः। तस्यापि फलं दमः ॥ १३ ॥ विधित्सा विशिष्टा पिपासा धेट् पानेऽस्य रूपम्। तृष्णावेगमित्यर्थः। ब्राह्मणं ब्रह्मिष्ठं मुनिं ध्यायिनम् ॥ १४ ॥ अज्ञानात् ज्ञानहीनान्मूढात् ज्ञानवित् ब्रह्मवित् लब्धज्ञानो वा ॥ १५ ॥ अत्युक्तः अत्यन्तं निन्दितः स्तुतो वा रूक्षं प्रियं वा न प्राहेति योज्यम्। तस्य स्पृहयन्ति तं लिप्सन्ते इत्यर्थः ॥ १७ ॥

सदाऽहमार्यान्निभृतोऽप्युपासे
न मे विधित्सोत्सहते न रोषः।
न चाप्यहं लिप्समानः परैमि
न चैव किञ्चिद्विषयेण यामि॥ १९
नाहं शप्तः प्रतिशपामि कञ्चि-
द्दमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि।
गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित् २०
निर्मुच्यमानः पापेभ्यो घनेभ्य इव चन्द्रमाः।
विरजाः कालमाकांक्षन्धीरो धैर्येण सिद्ध्यति
यः सर्वेषां भवति ह्यर्चनीय
उत्सेधनस्तंभ इवाभिजातः।
यस्मै वाचं सुप्रसन्नां वदन्ति
स वै देवान्गच्छति संयतात्मा॥ २२
न तथा वक्तुमिच्छन्ति कल्याणान्पुरुषे गुणान्
यथैषां वक्तुमिच्छन्ति नैर्गुण्यमनुयुञ्जकाः॥ २३
यस्य वाङ्मनसी गुप्ते सम्यक्प्रणिहिते सदा।
वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्वमाप्नुयात्॥ २४
आक्रोशनविमानाभ्यां नाबुधान्बोधयेद्बुधः।
तस्मान्न वर्धयेदन्यं न चात्मानं विहिंसयेत्॥
अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य पण्डितः।
सुखं ह्यवमतः शेते योऽवमन्ता स नश्यति॥
यत्क्रोधनो यजति यद्ददाति
यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति।
वैवस्वतस्तद्धरतेऽस्य सर्वं
मोघः श्रमो भवति हि क्रोधनस्य॥
चत्वारि यस्य द्वाराणि सुगुप्तान्यमरोत्तमाः।
उपस्थमुदरं हस्तौ वाक्चतुर्थी स धर्मवित्॥ २८
सत्यं दमं ह्यार्जवमानृशंस्यं
धृतिं तितिक्षामतिसेवमानः।
स्वाध्यायनित्योऽस्पृहयन्परेषा-
मेकान्तशील्यूर्ध्वगतिर्भवेत्सः॥ २९
सर्वांश्चैनाननुचरन्वत्सवच्चतुरः स्तनान्।
न पावनतमं किंचित्सत्यादध्यगमं क्वचित्३०
आचक्षेऽहं मनुष्येभ्यो देवेभ्यः प्रतिसंचरन्।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥
यादृशैः संनिवसति यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः॥ ३२
यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥ ३३
सदा देवाः साधुभिः संवदन्ते
न मानुषं विषयं यान्ति द्रष्टुम्।
नेन्दुः समः स्यादसमो हि वायु-
रुच्चावचं विषयं यः स वेद॥ ३४
अदुष्टं वर्तमाने तु हृदयान्तरपूरुषे।
तेनैव देवाः प्रीयन्ते सतां मार्गस्थितेन वै ३५
शिश्नोदरे ये निरताः सदैव
स्तेना नरा वाक्परुषाश्च नित्यम्।
अपेतदोषानपि तान्विदित्वा
दूराद्देवाः संपरिवर्जयन्ति॥ ३६
न वै देवा हीनसत्त्वेन तोष्याः
सर्वाशिना दुष्कृतकर्मणा वा।
सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा
धर्मे रतास्तैः सह संभजन्ते॥ ३७

---

निभृतोऽपि पूर्णोऽपि विधित्सा तृष्णा उत्सहते उल्लसति परैमि धर्मादपगच्छामि विषयेण विषयलाभार्थम्। नयामि देवतादिकं प्रार्थयामि॥ १९॥ ब्रह्म महत्॥ २०॥ उत्सेधनः उत्तम्भनकरः ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भभूत इत्यर्थः॥ २२॥ नैर्गुण्यं दोषं अनुयुञ्जकाः स्पर्धावन्तः॥ २३॥ इदं सर्वं एतस्य सर्वस्य फलम्॥ २४॥ अबुधान् आक्रोष्टॄन् शुनकानिव न बोधयेत्। न वर्धयेत् न हिंसयेत्॥ २५॥ अस्पृहयन्परेषां आशां जितवान्॥ २९॥ वत्सश्चतुरः स्तनानिव एनान्सत्यादीननुपदोक्तान्व अनुचरेत्। सत्यं दमं क्षमां प्रज्ञामित्युपक्रान्तान्वा चतुःसंख्यान् आचक्षे कथयामि पारावारस्य समुद्रस्य॥ ३०॥ यादृशैरिति श्लोकं व्याचष्टे—**यदीति**॥ ३३॥ मानुषं विषयं भोगं द्रष्टुमपि नेच्छन्ति। विनाशित्वात्तस्येत्यर्थः। तदेवाह—इन्दुरमृतमयोऽपि न समः किंतूपचयापचयधर्मा तथा वायुरप्यसम एव मन्दमध्यमतीव्रभेदात्। एवं सर्वं विषयमुच्चावचमुपचयापचयवन्तं यो वेद स एव वेद नान्य इत्यर्थः॥ ३४॥ अदुष्टं रागद्वेषशून्यं यथा स्यात्तथा अन्तरपूरुषे अन्तर्यामिणि वर्तमाने सति। तेनैवान्तर्यामिणा ज्ञातेन देवाः प्रीयन्ते। कीदृशेन अधिकारावस्थायां सतां मार्गस्थितेन। योऽन्तर्यामी स एव जीव इत्यर्थः। तथा च श्रुतयः—'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' इत्याद्या जीवब्रह्मणोरभेदप्रतिपादिकाः॥ ३५॥ अपेतदोषान् प्रायश्चित्तेनेति शेषः॥ ३६॥ हीनसत्त्वेन नीचबुद्धिना सम्भजन्ते सुखं विभज्य सेवन्ते॥ ३७॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
धर्मं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं
प्रियं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ ३८

साध्या ऊचुः ।
केनायमावृतो लोकः केन वा न प्रकाशते ।
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति॥

हंस उवाच ।
अज्ञानेनावृतो लोको मात्सर्यान्न प्रकाशते
लोभात्त्यजति मित्राणि संगात्स्वर्गं न गच्छति

साध्या ऊचुः ।
कः स्विदेको रमते ब्राह्मणानां
कः स्विदेको बहुभिर्जोषमास्ते ।
कः स्विदेको बलवान्दुर्बलोऽपि
कः स्विदेषां कलहं नान्ववैति ॥ ४१

हंस उवाच ।
प्राज्ञ एको रमते ब्राह्मणानां
प्राज्ञश्चैको बहुभिर्जोषमास्ते ।
प्राज्ञ एको बलवान्दुर्बलोऽपि
प्राज्ञ एषां कलहं नान्ववैति ॥ ४२

साध्या ऊचुः ।
किं ब्राह्मणानां देवत्वं किं च साधुत्वमुच्यते
असाधुत्वे च किं तेषां किमेषां मानुषं मतम्

हंस उवाच ।
स्वाध्याय एषां देवत्वं व्रतं साधुत्वमुच्यते।
असाधुत्वं परीवादो मृत्युर्मानुष्यमुच्यते ४४

भीष्म उवाच ।
संवाद इत्ययं श्रेष्ठः साध्यानां परिकीर्तितः।
क्षेत्रं वै कर्मणां योनिः सद्भावः सत्यमुच्यते॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि हंसगीतासमाप्तौ नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

॥ हंसगीता समाप्ता ॥

## ३००–[१२७]

युधिष्ठिर उवाच ।
सांख्ये योगे च मे तात
विशेषं वक्तुमर्हसि ।
तव धर्मज्ञ सर्वं हि
विदितं कुरुसत्तम ॥ १

भीष्म उवाच ।
सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्ति
योगा योगं द्विजातयः ।
वदन्ति कारणं श्रेष्ठं
स्वपक्षोद्भावनाय वै ॥ २

---

अव्याहृतं मौनं श्रेयः प्रथममिति शेषः । यत्सत्यं वदेत्तत् द्वितीयं श्रेय इति व्याहृतं सद्भिरिति शेषः । मौनादपि श्रेष्ठमित्यर्थः । एवमग्रेऽपि योज्यम् ॥ ३८ ॥ एवं चेत्सर्वे कुतः श्रेय एव नाचरन्तीत्याशयेन पृच्छन्ति— **केनेति** ॥ ३९ ॥ नष्टाज्ञानस्य लक्षणं प्रकारचतुष्टयेन प्रश्नपूर्वकमाह—**कः स्विदिति** ॥ ४१ ॥ देवत्वं देवत्वहेतुः एवमग्रेऽपि ॥ ४३॥ क्षेत्रं स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधम् । तत्कर्मणां वयोवस्थाद्यभ्यासोपजीविनां योनिः कारणं सद्भावः सत्तामात्रं यत् तत् सत्यं अबाधितम् । तेन क्षेत्रस्य बाधितत्त्वमुक्तं भवति । विशेषविधिनिषेधयोः शेषनिषेधाभ्यनुज्ञाफलकत्वनियमात् ॥४५॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

३००

एवं पराशरहंसगीताभ्यामधिकारिविशेषणान्युक्त्वाऽन्ते सांख्यमतमनुरुध्य सद्भावः सत्यमुच्यत इति सत्तामात्रमबाध्यं जिज्ञास्यमुपक्षिप्तं इतरस्य बाध्यत्वं सूचितं तच्च प्रकृतिपरमार्थतावादिनां योगानां मते विरुद्धमिति मत्वा संदिहानः सांख्ययोगयोर्विशेषं पृच्छति–**सांख्य इति** ॥ १ ॥ अत्र सांख्यं नाम ऐकात्म्यज्ञानं इदं सर्वं यदयमात्मेति श्रुतिप्रसिद्धं न तु कापिलं षष्टितन्त्राख्यं 'संहृत्य सर्वं निजदेहसंस्थं कृत्वाऽप्सु शेते जगदन्तरात्मा' इत्युपसंहारात् । षष्टितन्त्रे तु प्रधाने एव सर्वलयो न त्वन्तरात्मनीति प्रसिद्धम् । योगमते तु नानात्मवादो जीवेश्वरयोर्भेदश्च । अत्रैवानीश्वरः कथं मुच्येदित्यादि । गुरुं तटस्थं ईश्वरं विना मोक्षदौर्लभ्यसूचनात् । कारणं हेतुः युक्तिरिति यावत् । स्वपक्षोद्भावनाय स्वपक्षोत्कर्षाय ॥ २ ॥

अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं शत्रुकर्शन ।
वदन्ति कारणश्रैष्ठ्यं योगाः सम्यङ्मनीषिणः
वदन्ति कारणं चेदं
सांख्याः सम्यग् द्विजातयः ।
विज्ञायेह गतीः सर्वा
विरक्तो विषयेषु यः ॥ ४
ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा
एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्यं वै मोक्षदर्शनम् ५
स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समये वचनं हितम् ।
शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं त्वद्विधैः शिष्टसंमतैः
प्रत्यक्षहेतवो योगाः
सांख्याः शास्त्रविनिश्चयाः ।
उभे चैते मते तत्त्वे
मम तात युधिष्ठिर ॥ ७
उभे चैते मते ज्ञाते नृपते शिष्टसंमते ।
अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमां गतिम् ॥ ८
तुल्यं शौचं तपोयुक्तं दया भूतेषु चानघ ।
व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं न समं तयोः ९

---

युक्तिमेवाह—**अनीश्वर इति** ।
एष ह्येव साधु कर्म कारयति
तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते ।
एष ह्येवासाधु कर्म कारयति
तं यमधो निनीषते ॥
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा
इति श्रुतिस्मृतिभ्यां क्षित्यंकुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद्घटवदिति युक्त्यनुगृहीताभ्यां अस्ति तटस्थ ईश्वरः। तदभावे हि स्वतन्त्रश्चेतनोऽनिष्टजनके कर्मणि न प्रवर्तेत । प्रवर्तते चेद्विद्वानप्यतोऽस्ति कश्चिच्चेतनोऽधिष्ठाता न च कर्मणः प्रेरकत्वं सम्भवति । तस्य प्रकृतिकार्यस्य प्रवर्तकत्वायोगात् । तथा च पातञ्जलं सूत्रम्—'निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनामावरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्' इति । निमित्तं पुण्यपापात्मकं कर्म प्रकृतीनां गुणानां प्रयोजकं न भवति किं तर्हि जलवत्स्वयं प्रवर्तमानायां प्रकृतौ कैदारिकवदावरणभङ्गायैव कर्माण्युपयुज्यन्ते । यथा दुरदृष्टप्रतिबद्धा गुणाः प्रातिकूल्येन परिणमन्ते सदृष्टेन तु तद्विपरीतं क्रियत इति सूत्रार्थः । तस्मादयस्कान्तमणिवदुदासीनोऽपीश्वरः स्वसत्तामात्रेण प्रधानं प्रवर्तयन् भक्ताननुगृह्णाति अतो मोक्षप्रदाता ईश्वरोऽवश्यमस्तीति ज्ञेयमिति योगानां युक्तिः ॥ ३ ॥ सांख्यानां युक्तिमाह-**वदन्तीति** द्वाभ्याम्। सर्वा गतीर्विज्ञाय साक्षात्कृत्य सांख्यमते हि यथा स्फटिकः स्वतःशुद्धो जपाकुसुमसान्निध्याद्रक्तः स एव स्फटिकांशे धीप्रमेषे पद्मरागः सोऽपि चन्द्रिकायामिन्द्रनील इत्यध्यासपरंपरा । तथा चिदात्मा स्वतः शुद्धो मायायोगादीश्वरोऽविद्यया ब्रह्मधीप्रमेषे सूत्रात्मा अविद्याप्राबल्ये विराट्। अतिप्राबल्ये विश्वो व्यष्टिदेहमात्राभिमानी । तत्र यथा घटान्तर्गता दीपप्रभा घटमात्रं भासयति घटच्छिद्राद्बहिर्गता कश्चिद्भवनगतं विषयं सर्वात्मना घटाद्बहिर्गता कृत्स्नं भवनोदरं व्याप्नोति तथा प्रत्यक्चितिर्देहावृता देहमात्रं भासयति देहेन्द्रियादिद्वारा देहाद्बहिर्गता सती ब्रह्माण्डान्तर्गतं कश्चिच्छब्दादिकं विषयं गुरूक्तयुक्त्या प्रत्यक्प्रवणस्य सर्वात्मना देहाध्यासनिवृत्तौ कृत्स्नं त्रिभुवनोदरं व्याप्नोति । तदानीमयं सर्वात्मको विराडस्मीत्यभिमन्यते । ततोऽविद्यायास्तानवे सूत्रात्मास्मीति । तस्या वशे ईशोऽस्मीति । मायायाश्च विशुद्धचिन्मात्रात्मना दीप्यत इत्ययमनुभवक्रमः । तत्र विश्वस्य विराट्सूत्रेशशुद्धप्रापिकाः क्रमेण चतस्रो गतयस्ताः सर्वाः साक्षात्कृताश्चेत् सुव्यक्तं सुतरां व्यक्तं देहाद्देहचतुष्टयादूर्ध्वं ब्रह्मवित् मुच्येत् । ब्रह्मण्यज्ञानबलक्रमेणेशादिविश्वान्ताध्यासस्तत्तानवक्रमेण नश्यति च पूर्वं पूर्वं रूपमुपतिष्ठति । सर्वात्मना त्वध्यासनिवृत्तौ स्फटिकवदनुपाधिप्रत्यक्त्वं प्रकाशत इत्यनुभवबलादेव सिद्ध्यति किं तटस्थेश्वरेणान्तर्गडुनेति सांख्या मन्यन्ते ॥४॥ **स्वपक्ष इति** । एवं पक्षद्वयेऽपि युक्तौ सत्यां यः स्वस्य संमतः पक्षस्तद्विषयैव युक्तिर्ग्राह्या । वचनमपीशमते प्रागुदाहृतमेव । समये स्वस्वपक्षे सांख्यमतेऽपि 'अयमात्मा ब्रह्म' सोऽयमात्मा चतुष्टयादित्युपक्रम्य विश्वतैजसप्राज्ञान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताभिमानिनः क्रमेण निर्दिश्य 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः'इति शुद्धात्मनो ज्ञेयत्वपरम्। तत्रैव प्राज्ञं प्रकृत्य एष सर्वेश्वर इत्याद्याम्नानान्न प्रतीचोऽन्य ईशोऽस्तीति गम्यते । तत्रापि स्वपक्षानुसारि यद्वचनं तदेव हितम् ॥ ६ ॥ किं तच्छिष्टसंमतमित्याकांक्षायां द्वयमपि हेतुविशेषयोः समबलत्वात्सममेवेत्याह—**प्रत्यक्षेति** । कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिरित्यादिकं तत्र तत्र धारणाफलं योगपक्षे प्रत्यक्षमेव प्रामाण्यहेतुः । सांख्यपक्षे तु पूर्वोदाहृतं शास्त्रमेवास्ति । अतः श्रुतिप्रत्यक्षयोस्तुल्यबलत्वाद्वयमपि शिष्टसंमतमेवेत्यर्थः ॥ ७ ॥ फलस्याविसंवादादपि द्वयोः साम्यमाह—**उभे चैते इति** ॥ ८ ॥ फलैक्ये हेतुं साधनैक्यमाह—**तुल्यमिति** । व्रतानां अहिंसासत्यास्तेयादीनां न ह्येकरूपे साधने गतिद्वयं संभवति । नापि द्वयोर्गत्योः परमत्वं संभवति अत उभयप्राप्या एकैव गतिः । यथोक्तं भगवता—

युधिष्ठिर उवाच ।
यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया चात्र फलं तथा
न तुल्यं दर्शनं कस्मात्तन्मे ब्रूहि पितामह १०
भीष्म उवाच ।
रागं मोहं तथा स्नेहं
कामं क्रोधं च केवलम् ।
योगाच्छित्त्वा ततो दोषान्
पञ्चैतान्प्राप्नुवन्ति तत् ॥ ११
यथा चानिमिषाः स्थूला
जालं छित्त्वा पुनर्जलम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा योगा-
स्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥ १२
तथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः ।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः १३
लोभजानि तथा राजन्
बन्धनानि बलान्विताः ।
छित्त्वा योगाः परं मार्गं
गच्छन्ति विमलं शिवम् ॥ १४
अबलाश्च मृगा राजन्वागुरासु तथा परे ।
विनश्यन्ति न संन्देहस्तद्वद्योगबलादृते १५
बलहीनाश्च कौन्तेय यथा जालं गता झषाः ।
वधं गच्छन्ति राजेन्द्र योगास्तद्वत्सुदुर्बलाः ॥

यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दम ।
तत्र सक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः
कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वद्योगाः परंतप ।
अबला वै विनश्यन्ति मुच्यन्ते च बलान्विताः
अल्पकश्च यथा राजन्वन्हिः शाम्यति दुर्बलः
आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगोऽबलः प्रभो
स एव च यदा राजन्वन्हिर्जातबलः पुनः ।
समीरणगतः क्षिप्रं दहेत् कृत्स्नां महीमपि ॥
तद्वज्जातबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः ।
अन्तकाल इवादित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत्
दुर्बलश्च यथा राजन्स्रोतसा न्हियते नरः ।
बलहीनस्तथा योगी विषयैर्न्हियतेऽवशः २२
तदेव च महास्रोतो विष्टम्भयति वारणः ।
तद्वद्योगबलं लब्ध्वा व्यूहते विषयान्बहून् २३
विशन्ति चावशाः पार्थ
योगाद्योगबलान्विताः ।
प्रजापतीनृषीन्देवान्
महाभूतानि चेश्वराः ॥ २४
न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः
ईशते नृपते सर्वे योगस्यामिततेजसः ॥ २५
आत्मनां च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ।
योगः कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥

---

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते इति । ननु तर्हि तयोर्विसंवाद इत्यत आह—**दर्शनं न समं तयोरिति** । दर्शनं शास्त्रम् । अयमर्थः—महदादि सकारणं जगत् रज्ज्वां सर्प इवात्मन्यध्यस्तं तत्सम्यगवेक्षणलक्षणेनाधिष्ठानज्ञानेन बाधितं चेत्संसारस्य सबीजस्योच्छेदो भवतीति **सांख्याः** । योगास्तु हेयं दुःखमनागतमिति हेयं वस्तूपन्यस्य द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुरिति तन्निमित्तमुक्तम् । तथा च महदादिदृश्याकारवृत्तिनिरोधेन द्रष्टृदृश्ययोर्वियोगे सति द्रष्टुर्वृत्तिसारूप्याभावात्स्वरूपेऽवस्थितिः कैवल्यं भवति। यथोक्तम्—' योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ' 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ' ' वृत्तिसारूप्यमितरत्र' इति । एवं च हेतुनाशे कार्यनाशाज्जगतो मिथ्यात्वनिरूपणं व्यर्थमिति मन्यन्ते इति यथोक्तं वासिष्ठे—

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव ।
योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित्तत्त्वनिश्चयः ।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमः शिवः इति ॥९॥

फलसाधनयोरैक्ये किमर्थोऽयं शास्त्रभेद इति शंकते—**यदीति** ॥ २० ॥ उत्तरमाह—**रागमिति** । अयं भावः—ज्ञानपक्षे वस्तुतत्त्वदर्शनेन सकृदपि बाधितस्य द्वैतसत्यत्वसंस्कारस्य पुनरुदयो न भवति प्रतिबिम्बादिवत्तन्मिथ्यात्वनिश्चयात् । तथा च रागाद्यनुदयान्न कर्म नापि देहो नापि तज्जं दुःखं च भवति। संसारकारणाभावात्सुखेन मुच्यते च यथोक्तम् —' दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग'इति। योगपक्षे तु निरोधसंस्कारबलेनैव दृश्यसंस्कारोपमर्दः कार्यः ततश्च रागाद्युच्छेदक्रमेण मुच्यते तदभावे त्वसकृन्निरोधाभ्यासेऽपि रागाद्याक्रान्ततया योगाद्भ्रश्यतीति योगमार्गे मोक्षे विघ्नसंभावनास्तीति नासौ मुख्य इति ॥ ११ ॥ एतदेव महामत्स्याद्यनेकदृष्टान्तैरुपपादयति—**यथा चेत्यादिना** । अनिमिषा मत्स्याः योगशब्दोऽत्र प्रायेण मत्वर्थीयोच्प्रत्ययान्तो योगिपरः प्रकरणाज्ज्ञेयः ॥ १२ ॥ वागुरां पाशवतीं स्नायुरज्जुम् ॥१३॥ योगोऽबलः योगी निर्बलः ॥ १९ ॥ व्यूहते विक्षिपति तुच्छीकरोतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ अवशाः स्वतंत्राः ॥ २४ ॥ स्वातन्त्र्यमेवाह—**न यम इति** ॥ २५ ॥ प्रत्यक्षहेतवो योगा इति स्वोक्तिं व्याचष्टे—**आत्मनामिति** । आत्मनां देहानां स एकधा भवति त्रिधा भवति इत्यादि-

प्राप्नुयाद्विषयान्कांश्चित्पुनश्चोग्रं तपश्चरेत् ।
संक्षिपेच्च पुनस्तात सूर्यस्तेजो गुणानिव २७
बलस्थस्य हि योगस्य बन्धनेशस्य पार्थिव ।
विमोक्षप्रभविष्णुत्वमुपपन्नमसंशयम् ॥ २८
बलानि योगप्राप्तानि मयैतानि विशाम्पते ।
निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनस्तव
आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा विभो
निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणु मे भरतर्षभ ३०
अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः
युक्तः सम्यक्तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्
स्नेहपूर्णे यथा पात्रे मन आधाय निश्चलम् ।
पुरुषो युक्त आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ३२
युक्तस्तथायमात्मानं योगः पार्थिव निश्चलम्
करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शनम् ३३
यथा च नावं कौन्तेय कर्णधारः समाहितः
महार्णवगतां शीघ्रं नयेत् पार्थिवसत्तम ॥ ३४
तद्वदात्मसमाधानं युक्त्वा योगेन तत्त्ववित्
दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं नृप ३५
सारथिश्च यथा युक्त्वा सदश्वान्सुसमाहितः
देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषर्षभ ॥ ३६
तथैव नृपते योगी धारणासु समाहितः ।
प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्षं मुक्त इवाशुगः ॥
अवेक्ष्यात्मनि चात्मानं
योगी तिष्ठति योऽचलः ।
पापं हन्ति पुनीतानां
पदमाप्नोति सोऽजरम् ॥ ३८
नाभ्यां कण्ठे च शीर्षे च
हृदि वक्षसि पार्श्वयोः ।
दर्शने श्रवणे चापि
घ्राणे चामितविक्रम ॥ ३९
स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः ।
आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युंक्ते सम्यग्विशांपते
स शीघ्रमचलप्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् ।
उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ४१

युधिष्ठिर उवाच ।

आहारान्कीदृशान्कृत्वा
कानि जित्वा च भारत ।
योगी बलमवाप्नोति
तद्भवान्वक्तुमर्हसि ॥ ४२

भीष्म उवाच ।

कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भारत
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ४३
भुञ्जानो यावकं रूक्षं दीर्घकालमरिन्दम ।
एकाहारो विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्
पक्षान्मासानृतूंश्चैतान्संवत्सरानहस्तथा ।
अपः पीत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात्
अखण्डमपि वा मांसं सततं मनुजेश्वर ।
उपोष्य सम्यक् शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्

---

कायव्यूहस्य वेदेऽपि श्रवणात्। सौभर्यादिवद्युगपदनेकदेहधारणं योगिनां दृष्टमित्यर्थः ॥ २६ ॥ काश्चित्कश्चिदुग्रमिति मूलपाठः ॥ २७ ॥ उपपादितमर्थं निगमयति—**बलस्थस्येति** । बन्धनेशस्य बन्धनं छेत्तुं समर्थस्य ॥ २८ ॥ मया उक्तानीति शेषः ॥ २९ ॥ समाधिसिद्ध्यर्थं धारणां नाभ्याद्यन्यतमे देशे चित्तस्य स्थिरीकरणं तां प्रति तद्विषये निदर्शनानि दृष्टान्तान् ॥ ३० ॥ पात्रे शिरसि धृते ॥३२॥ दार्ष्टान्तिकमाह—**तथैवेति** ॥ ३७ ॥ आत्मनि आत्मानं प्रवेश्य वृत्तिसारूप्यं त्यक्त्वेत्यर्थः। पुनीतानां 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते इति स्मृतेर्ज्ञानेन पवित्राणां सांख्यानामित्यर्थः ॥ ३८ ॥ नाभ्यां मणिपूरे कण्ठे विशुद्धौ शीर्षे सहस्रारे हृदि अनाहते एतच्च आज्ञादिचक्राणामुपलक्षणम् एते आन्तरा धारणाविषयाः वक्षःप्रभृतयो देहावयवा बाह्याः एते तालुनि रससंविदित्यादियोगशास्त्रप्रसिद्धतात्वादीनामुपलक्षणम् । दर्शने बाह्यतरे सूर्यरश्म्यादौ श्रवणे अनाहतध्वनौ घ्राणे नासाग्रे दृष्टिधारणम्। अत्र योगानुष्ठानप्रयोगो वेदस्तुतिटीकायां चतुर्दशे श्लोकेऽस्माभिः प्रदर्शितोऽनुसंधेयः ॥ ३९ ॥ अहिंसादय एव जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतामित्युच्यन्ते तत्र 'पाठीनरोहितावाद्यौ प्रशस्तौ हव्यकव्ययोः' इति स्मृतेः । पाठीनादीनेव भक्षयिष्ये न मत्स्यान् । 'मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा पुनः संस्कारमर्हति' इति मत्स्यभक्षणे प्रायश्चित्तगौरवस्मृतेः । सोऽयं हिंसायां जात्यवच्छेदः पाठीनादीनप्यतीर्थेष्वेव हिंसिष्ये न तीर्थे इति देशावच्छेदः । अतीर्थेऽपि दर्शादिव्यतिरिक्ते एव काले हिंसिष्ये नान्यदेति कालावच्छेदः । तत्रापि श्राद्धार्थमेव हिंसिष्ये नात्मार्थमिति समयावच्छेदः। एतैरनवच्छिन्नाः सर्वात्मनाऽपि हिंसात्यागात् अनापद्यापदि वा तत्त्यागः सोऽयं महाव्रतमित्युच्यते एवं सत्ये अस्तेये ब्रह्मचर्ये अपरिग्रहे च महाव्रतमुदाहर्तव्यम् ॥ ॥ ४० ॥ **यदीच्छतीति** । योगिनः स्वेच्छया ब्रह्मलोकादौ गमनं विदेहकैवल्यं देहधारणं चेति दर्शितम् ॥४१॥ यावकं जलोष्मपक्वं यवान्नं यवपिष्टमयं वा भक्ष्यम् ॥ ४४ ॥ पयोमिश्राः क्षीरमिश्राः ॥ ४५ ॥ अखण्डं सर्वकालं मांसं उपोष्य त्यक्त्वा मांसमित्यन्येषामप्युलक्षणम् । यथोक्तं हठयोगे—

कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतोष्णे वर्षमेव च
भयं शोकं तथा श्वासं पौरुषान्विषयांस्तथा
अरतिं दुर्जयां चैव घोरां तृष्णां च पार्थिव ।
स्पर्शं निद्रां तथा तन्द्रीं दुर्जयां नृपसत्तम४८
दीपयन्ति महात्मानः सूक्ष्ममात्मानमात्मना
वीतरागा महाप्रज्ञा ध्यानाध्ययनसंपदा ४९
दुर्गस्त्वेष महापन्था ब्राह्मणानां विपश्चिताम्
यः कश्चिद्व्रजति ह्यस्मिन्क्षेमेण भरतर्षभ ५०
यथा कश्चिद्वनं घोरं बहुसर्पसरीसृपम् ।
श्वभ्रवत्तोयहीनं च दुर्गमं बहुकण्टकम् ॥ ५१
अभक्षमटवीप्रायं दावदग्धमहीरुहम् ।
पन्थानं तस्कराकीर्णं क्षेमेणाभिपतेद्युवा ५२
योगमार्गं तथाऽऽसाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विजः
क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषो हि स स्मृतः ५३
सुस्थेयं क्षुरधारासु निशितासु महीपते ।
धारणासु तु योगस्य दुःस्थेयमकृतात्मभिः ॥
विपन्ना धारणास्तात नयन्ति न शुभां गतिम्
नेतृहीना यथा नावः पुरुषानर्णवे नृप ५५
यस्तु तिष्ठति कौन्तेय धारणासु यथाविधि ।
मरणं जन्मदुःखं च सुखं च स विमुञ्चति ॥
नानाशास्त्रेषु निष्पन्नं योगेष्विदमुदाहृतम् ।
परं योगस्य यत्कृत्यं निश्चितं तद्द्विजातिषु ५७
परं हि तद्ब्रह्ममयं महात्मन्
ब्रह्माणमीशं वरदं च विष्णुम् ।
भवं च धर्मं च षडाननं च
यद्ब्रह्मपुत्रांश्च महानुभावान् ॥ ५८
तमश्च कष्टं सुमहद्रजश्च
सत्त्वं विशुद्धं प्रकृतिं परां च ।
सिद्धिं च देवीं वरुणस्य पत्नीं
तेजश्च कृत्स्नं सुमहच्च धैर्यम् ॥ ५९
ताराधिपं खे विमलं सतारं
विश्वांश्च देवानुरगान्पितॄंश्च ।
शैलांश्च कृत्स्नानुदधींश्च घोरान्
नदीश्च सर्वाः सवनान्घनांश्च ॥ ६०
नागान्नगान् यक्षगणान् दिशश्च
गन्धर्वसंघान्पुरुषान् स्त्रियश्च ।
परस्परं प्राप्य महान्महात्मा
विशेत योगी न चिराद्विमुक्तः ॥ ६१
कथा च येयं नृपते प्रसक्ता
देवे महावीर्यमतौ शुभेयम् ।
योगी स सर्वानभिभूय मर्त्या-
न्नारायणात्मा कुरुते महात्मा ॥ ६२

'मांसं दधि कुलित्थं च लशुनं शाकमेव च ।
कट्वम्लतिक्तपिण्याकहिंगुसौवीरसर्षपाः
तैलं च वर्ज्यान्येतानि यत्नतो योगिना सदा ।
पुनरुष्णीकृतं द्रव्यमहितं चेति केचन इति ॥ ४६ ॥
पौरुषान्पुरुषप्रियाञ्शब्दान् ॥ ४७ ॥ अरतिः स्त्रीसंगाभावजमस्वास्थ्यं स्पर्शः स्त्र्यादिसंयोगजं सुखम् ॥ ४८ ॥ दीपयन्ति प्रकाशयन्ति । आत्मानं त्वंपदार्थं आत्मना बुद्ध्या'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' इति श्रुतेः। ध्यानं ध्येयाकारप्रत्ययप्रवाहः तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति सूत्रम्। अध्ययनं प्रणवजपः । यथोक्तम्—
'जपाच्छान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छान्तः पुनर्जपेत् ।
जपध्यानपरिश्रान्त आत्मानं च विचारयेत्'इति ॥ ४९॥
यः कश्चिदित्यनेनात्राधिकारिदौर्लभ्यमुक्तम् ॥ ५० ॥ सुस्थेयं सुखेन स्थातुं शक्यम् ॥ ५४ ॥ न शुभां रोगाद्याघातवतीम् ॥ ५५ ॥ योगेषु योगशास्त्रेषु कृत्यं कर्तुं योग्यं फलमिति यावत् ॥ ५७ ॥ ब्रह्म ब्रह्मविष्ण्वादि स्रष्टृ तुर्यमूर्तिरूपम् तत्प्रधानं परं कैवल्यात्मकं योगफलं तथा ब्रह्मविष्ण्वादिभावोऽपि योगफलमित्यर्थः । महानुभावान् ऋषभकपिलादीन् ॥ ५८ ॥ तमोरजसी लयविक्षेपौ योगविघ्नौ सत्त्वं च धर्मज्ञानैश्वर्यैर्विगर्मा भूदिति विशुद्धमित्युक्तम् । आत्मतत्त्वप्रकाशकत्वं विशुद्धता, विशेत योगीति अपकृष्यते परां प्रकृतिं प्रकृतिलयत्वं च विशते वरुणस्य पत्नीं सिद्धिं जलजयं तेजश्च विशते इत्यनेन तेजोजयं सुमहच्च धैर्यमिति पृथ्वीजयं च प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५९ ॥ ताराधिपादीनां मध्ये यद्भावं वाञ्छति तद्भावं इच्छया प्राप्नोतीत्यर्थः । यथोक्तं **निरुक्ते**—'अथागमो यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवतीति' ॥ ६० ॥ ननु यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्त्येवमेवैतस्मादात्मनः सर्व एत आत्मानो व्युच्चरन्ति इति पुरुषादेव ब्रह्मादीनां सृष्टिः श्रूयते तत्कथं ब्रह्मादीन्प्राक्सिद्धान्योगी विशत इत्युच्यते इत्याशंक्याह— **कथा चेति**। देवे परमात्मनि विषये येयं कथा जगत्कर्तृत्वादिनिरूपणात्मिका आत्मन आकाशः संभूतः इत्यादिश्रुतितः प्रसक्ता । सेयं शुभैव नास्मन्मतविरुद्धेत्यर्थः यतः योगी नारायणात्मा नारायणे तुर्यमूर्तौ ईश्वरे अयमहं नारायणइत्यहंग्रहेण प्रणिहित आत्मा येन स तथा । तं यथायथोपासते तथैतः प्रेत्य भवति इति श्रुतेर्नारायणभावं प्राप्तो महात्मा व्यापकचित्तः सर्वानभिभूय सर्वाधिको भूत्वा मर्त्यान्पाञ्चभौतिकान् जरायुजादीन् कुरुते संकल्पमात्रेण

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि योगविधौ त्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०० ॥

## ३०१-[१२८]

युधिष्ठिर उवाच ।
सम्यक् त्वयाऽयं नृपते वर्णितः शिष्टसंमतः
योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितैषिणा १
सांख्ये त्विदानीं कार्त्स्न्येन
विधिं प्रब्रूहि पृच्छते ।
त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं
सर्वं तद्विदितं हि ते ॥ २
भीष्म उवाच ।
शृणु मे त्वमिदं सूक्ष्मं
सांख्यानां विदितात्मनाम् ।
विहितं यतिभिः सर्वैः
कपिलादिभिरीश्वरैः ॥ ३
यस्मिन्न विभ्रमाः केचिद् दृश्यन्ते मनुजर्षभ ।
गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ४
ज्ञानेन परिसंख्याय सदोषान्विषयान्नृप ।
मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पैशाचान्विषयांस्तथा
राक्षसान्विषयाञ्ज्ञात्वा यक्षाणां विषयांस्तथा
विषयानौरगाञ्ज्ञात्वा गान्धर्वविषयांस्तथा
पितॄणां विषयाञ्ज्ञात्वा तिर्यक्षु चरतां नृप ।
सुपर्णविषयाञ्ज्ञात्वा मरुतां विषयांस्तथा ७
राजर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा ब्रह्मर्षिविषयांस्तथा ।
आसुरान्विषयाञ्ज्ञात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च ८
देवर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा योगानामपि चेश्वरान्
प्रजापतीनां विषयान्ब्रह्मणो विषयांस्तथा ९
आयुषश्च परं कालं लोके विज्ञाय तत्त्वतः ।
सुखस्य च परं तत्त्वं विज्ञाय वदतां वर १०
प्राप्ते काले च यद्दुःखं सततं विषयैषिणाम् ।
तिर्यक्षु पततां दुःखं पततां नरके च यत् ११
स्वर्गस्य च गुणान्कृत्स्नान्दोषान्सर्वांश्च भारत
वेदवादेऽपि ये दोषा गुणा ये चापि वैदिकाः
ज्ञानयोगे च ये दोषा गुणा योगे च ये नृप ।
सांख्यज्ञाने च ये दोषास्तथैव च गुणा नृप ॥

---

**सृजति** । अतो योगिनां संप्रज्ञाते भूतस्रष्टृत्वं व्युत्थाने भौतिकजन्तुस्रष्टृत्वं चास्तीति न कयाचित् श्रुत्या योगशास्त्रं विरुध्यते । वेदान्तिभिरप्यस्य योगैश्वर्यस्य हर्तुमशक्यत्वात् । शास्त्रान्त्यपादेऽभ्युपगतत्वाच्चेति न किंचिदवद्यम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥

**३०१**

सूचीकटाहन्यायेन योगमुक्त्वा सांख्यं वक्तुमारभते— **सम्यगिति** ॥ १ ॥ मे मत्तः इदं वक्ष्यमाणं तत्त्वमिति शेषः । यतिभिः ऋषभादिभिः विहितं प्रकाशितम् ॥ ३ ॥ तदेव स्तौति—**यस्मिन्निति** । 'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' इति श्रुत्या प्राणोपलक्षितस्य कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्य यावद्व्यवहारमबाध्यत्वलक्षणं सत्त्वमन्यत् सर्वथैवाबाध्यत्वं सत्त्वं प्रत्यगात्मन इति दर्शितम् । तत्राद्यमादाय कृत्स्नोऽपि कर्मोपास्त्यादिव्यवहारः सिद्ध्यति। अन्त्यमादाय नेह नानाऽस्ति किंचनेत्यादिर्जगतो बाधादिकं संगच्छते । मतान्तरे तु सर्वस्य भेदस्य पारमार्थिकत्वात् 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'नेह नानास्ति' इत्याद्या अध्यारोपापवादन्यायेनात्मैक्यप्रतिपादनपराः श्रुतय उपरुध्यन्त इति तेषां जगत्सत्यत्वविभ्रमो दृश्यते । केषांचिदात्मन्यप्यसत्त्वभ्रमोऽस्ति न त्वस्माकं क्वचिदप्यंशे विभ्रमोऽस्तीत्यर्थः । गुणाः कर्मज्ञानकांडयोर्दृष्टिभेदेनाविरोधादयः । दोषाश्च बह्वात्मवादे एकस्मिन्शरीरे सर्वात्मसान्निध्याविशेषादेकस्य भोगेन सर्वेषां भोगापत्तिरित्यादयस्तेषां हानिः ॥ ४ ॥ **ज्ञानेनेति** । तत्त्वदर्शनोन्मुखं चेतस्तत्त्वस्य तमःपिहिततयाऽनधिगमात्तत्र शुक्तौ रजतादिवन्मानुषत्वासुरत्वादिभावं पश्यति । तत्र उत्तरोत्तरज्ञानेन पूर्वपूर्वभ्रमान् परिसंख्याय बाधित्वा प्राप्नुवन्ति । शुभं मोक्षमिति त्रयोदशेन सम्बन्धः । सदोषान् आगमापायितया मिथ्यात्वदोषयुक्तान्। यथोक्तम् —'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' इति । 'नासतो विद्यते भावः' इति च । ज्ञात्वा परिसंख्यायेति सर्वत्र योज्यम् । तत्र यथा यथा तत्त्वावरकस्य तमसः सम्यगवेक्षणेनापगमस्तथा उत्तरोत्तरमुत्कृष्टविषयोपस्थितिर्यावत् ब्राह्मणो विषयान्पश्यति प्राग्वत् ॥ ५ ॥ अत्र गुणा अप्यागमापायितया दोषा एवेति तेऽपि हानार्थमेव ज्ञातव्याः ॥ १२ ॥ सांख्यज्ञानेऽपि दोषाः विद्वत्त्वाभिमानादयः गुणाः अद्वेष्टृत्वादयः ॥ १३ ॥

सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा।
तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा॥१४
षड्गुणं च मनो ज्ञात्वा नभः पञ्चगुणं तथा॥
बुद्धिं चतुर्गुणां ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं तथा १५
द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वमेकगुणं पुनः।
मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन प्रलये प्रेक्षणे तथा॥ १६
ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः कारणैर्भाविताः शुभाः।
प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम्॥
रूपेण दृष्टिं संयुक्तां घ्राणं गन्धगुणेन च।
शब्दे सक्तं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेषु च १८
तनुं स्पर्शे तथा सक्तां वायुं नभसि चाश्रितम्
मोहं तमसि संयुक्तं लोभमर्थेषु संश्रितम् १९
विष्णुं क्रान्ते बले शक्रं कोष्ठे सक्तं तथानलम्
अप्सु देवीं समासक्तामपस्तेजसि संश्रिताः॥
तेजो वायौ तु संसक्तं वायुं नभसि चाश्रितम्
नभो महति संयुक्तं महद्बुद्धौ च संश्रितम्२१
बुद्धिं तमसि संसक्तां तमो रजसि संश्रितम्।
रजः सत्त्वे तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽत्मनि
सक्तमात्मानमीशे च देवे नारायणे तथा।
देवं मोक्षे च संसक्तं मोक्षं सक्तं तु न क्वचित्
ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं वृतं षोडशभिर्गुणैः।
स्वभावं चेतनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिते॥
मध्यस्थमेकमात्मानं पापं यस्मिन्न विद्यते।
द्वितीयं कर्म विज्ञाय नृपते विषयैषिणाम् २५
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च
सर्वानात्मनि संश्रितान्।
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य
विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम्॥　　२६

सत्त्वमिति। 'आनन्दः प्रीतिरुद्रेकः प्राकाश्यं पुण्यशीलता। संतोषः श्रद्दधानत्वमार्जवं त्यागशीलता॥ ऐश्वर्यं चेति सत्त्वस्य गुणा दश निसर्गजाः। आस्तिकत्वमकार्पण्यं सुखदुःखोपसेवनम्। भेदः पुरुषता चैव कामक्रोधौ मदस्तथा। दर्पद्वेषातिवादाश्च नवैते राजसा गुणाः॥ तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धपञ्चमः। निद्रा प्रमाद आलस्यमित्यष्टौ तमसो गुणाः' इति॥ बुद्धिं सप्तगुणां महदहंकारपंचतन्मात्ररूपाम्॥ १४॥ मनः-श्रोत्रादिपञ्चकेन सह षड्रूपं,नभः वियदादिपञ्चकरूपं, बुद्धिः संशयनिश्चयगर्वस्मरणरूपा, तमः अप्रतिपत्तिविप्रतिपत्तिवि-परीतप्रतिपत्तिरूपम्॥१५॥ रजः प्रवृत्तिदुःखरूपं सत्त्वं प्रकाश-रूपं बुद्ध्यादीनां पुनर्ग्रहणं प्रातिलोम्येन सत्त्वे तत्प्रविलापना-र्थम्। एते पञ्चपञ्चाशत्। एतेषां मध्ये तत्त्वेन याथात्म्येन मार्गं आत्मप्रापकं सत्त्वादिप्रधानं विज्ञाय हानार्थं तत्प्रतिबन्धकं च रजस्तमःप्रधानं गुणजातं विज्ञाय प्रलये प्राकृतलये तथा प्रेक्षणे आत्मतत्त्वालोचने च॥ १६॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः एतान्सर्वान् ग्रन्थतोऽनुभवतश्च ज्ञात्वा कारणैर्मोक्षोपयोगिभिः सात्त्विकैर्भावैर्भावितात्मानो वासितचित्ताः मोक्षं प्राप्नुवन्ति सूक्ष्माः रविरश्मयो वायवो वा॥ १७॥ अत्र 'प्राणे-भ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः' इति श्रुत्यनुसारादिन्द्रिये-भ्यो देवतासृष्टिं देवताभ्यो लोकसृष्टिं चाभ्युपेत्य ब्रह्मणि सर्वलयमाह--**रूपेणेति**। रूपेण रूपवता द्रव्येण दृष्टिं चक्षुरिन्द्रियं संयुक्तं कुण्डलेन कनकमिव। चक्षुर्व्यतिरिक्तो रूपद्रव्यदेवतादिर्विषयो नास्तीत्यर्थः। एवमग्रेऽपि यावन्मोक्षं ज्ञेयम्॥ १८॥ वायुं त्वगिन्द्रियदेवतां नभसि स्वकारणे संश्रितम्। एतच्च सर्वदेवतोपलक्षणम्। मोहं वैचित्त्यं तमसि तमोगुणे लोभं रजःकार्यमर्थेषु तमसोऽर्थानां च वियोगे मोह-लोभौ न भवत इति दृष्टान्तमात्रमिदम्॥ १९॥ क्रान्ते पादविक्षेपे बले हस्तेन्द्रिये कोष्ठे उदरे देवीं पृथ्वीम्॥ २०॥ महति महत्तत्त्वकार्येऽहङ्कारे महत् बुद्धौ महत्तत्त्वे॥ २१॥ आत्मनि जीवे त्वंपदार्थे॥ २२॥ ईशे मायाविनि देवे नारायणे चेति तस्यैव विशेषणे।तत्पदार्थे मोक्षे कैवल्ये निर्वि-कल्पे वस्तुनि तच्च न क्वचित्सक्तम्। स्वे महिम्नि प्रतिष्ठित इति श्रुतेः॥ २३॥ ननु रूपादीनां मोक्षमात्रत्वोक्तिराग-ममात्रं न त्वत्र काचिदुपपत्तिरस्तीत्याशंक्याह--**ज्ञात्वेति**। सत्त्वगुणं देहबुद्धिसत्त्वमयं स्वाप्नं शरीरं षोडशभिर्गुणैः कार्यैः 'प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्ना-द्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोकेषु नाम च' इति श्रुत्युक्तैः प्राणादि-नामान्तैर्वृतं ज्ञात्वा स्वभावं प्राक्कर्म च तदुत्पत्तिकारणं चेतनां धीवृत्तिं च तद्भासिकां देहसमाश्रिते लिंगदेहाश्रिते ज्ञात्वा च मध्यस्थं उदासीनं एकं आत्मानं यस्मिन्पापं न विद्यत इति असङ्गं जानीयात्। यथैकेन कर्मणा स्वाप्नप्रपञ्च-विभ्रमे आत्मनः असङ्गत्वं स्थूलशरीरजदुःखाननुवृत्तेर्दृश्यते एवं जाग्रद्भ्रमेऽपि विषयैषिणां विषयवासनावतां द्वितीयं कर्म कारणं विज्ञाय इन्द्रियादीनात्माश्रितान् आत्मन्यविद्यया अध्यारोपितान् जानीयादित्यध्याहृत्य योज्यम्।अयमर्थः-यथा स्वप्ने एकस्यैवात्मनो वासनावशात्सर्वजगदात्मकत्वं आत्म-नश्चासङ्गत्वं दृश्यते,एवं जाग्रद्भ्रमेऽपि ज्ञेयमिति सार्धश्लोक-द्वयार्थः॥ २४॥ एतस्मादाग्रसनामयादवस्थात्रयमंचरादात्मनो मोक्षस्य दुर्लभत्वं वक्ष्यमाणैः कारणैर्विज्ञाय कश्चिन्मोक्षबुद्धिं समाश्रितो भवतीति चतुर्दशेनान्वयः॥२६॥

प्राणापानौ समानं च व्यानोदानौ च तत्त्वतः
अधश्चैवानिलं ज्ञात्वा प्रवहं चानिलं पुनः २७
सप्त वातांस्तथा ज्ञात्वा सप्तधा पिहितान्पुनः
प्रजापतीनृषींश्चैव मार्गांश्चैव बहून्वरान् ॥ २८
सप्तर्षींश्च बहून्ज्ञात्वा राजर्षींश्च परंतप ।
सुरर्षीन्महतश्चान्यान्ब्रह्मर्षीन्सूर्यसन्निभान् २९
ऐश्वर्याच्च्यावितान्दृष्ट्वा कालेन महता नृप ।
महतां भूतसंघानां श्रुत्वा नाशं च पार्थिव ॥
गतिं चाप्यशुभां ज्ञात्वा नृपते पापकर्मिणाम्
वैतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये ३१
योनीषु च विचित्रासु संसारानशुभांस्तथा ।
जठरे चाशुभे वासं शोणितोदकभाजने ३२
श्लेष्ममूत्रपुरीषे च तीव्रगन्धसमन्विते ।
शुक्रशोणितसंघाते मज्जास्नायुपरिग्रहे ॥ ३३
शिराशतसमाकीर्णे नवद्वारे पुरेऽशुचौ ।
विज्ञाय हितमात्मानं योगांश्च विविधान्नृप ॥
तामसानां च जन्तूनां रमणीयावृतात्मनाम्
सात्त्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं भरतर्षभ ॥
गर्हितं महतामर्थे सांख्यानां विदितात्मनाम्
उपप्लवांस्तथा घोरान् शशिनस्तेजसस्तथा ३६
ताराणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम् ।
द्वंद्वानां विप्रयोगं च विज्ञाय कृपणं नृप ३७
अन्योन्यभक्षणं दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ।
बाल्ये मोहं च विज्ञाय क्षयं देहस्य चाशुभम्
रागे मोहे च संप्राप्ते क्वचित्सत्त्वं समाश्रितम्
सहस्रेषु नरः कश्चिन्मोक्षबुद्धिं समाश्रितः३९
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम् ।
बहुमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थतां पुनः ॥ ४०
विषयाणां च दौरात्म्यं विज्ञाय नृपते पुनः ।
गतासूनां च कौन्तेय देहान्दृष्ट्वा तथाऽशुभान्
वासं कुलेषु जन्तूनां दुःखं विज्ञाय भारत ।
ब्रह्मघ्नानां गतिं ज्ञात्वा पतितानां सुदारुणाम्
सुरापाने च सक्तानां ब्राह्मणानां दुरात्मनाम्
गुरुदारप्रसक्तानां गतिं विज्ञाय चाशुभाम् ॥
जननीषु च वर्तन्ते येन सम्यग्युधिष्ठिर ।
सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवाः ॥ ४४
तेन ज्ञानेन विज्ञाय गतिं चाशुभकर्मणाम् ।
तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय गतयः पृथक् ॥
वेदवादांस्तथा चित्रानृतूनां पर्ययांस्तथा ।
क्षयं संवत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा
पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसानां च संक्षयम् ।
क्षयं वृद्धिं च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ४७
वृद्धिं दृष्ट्वा समुद्राणां क्षयं तेषां तथा पुनः ।
क्षयं धनानां दृष्ट्वा च पुनर्वृद्धिं तथैव च ॥ ४८
संयोगानां क्षयं दृष्ट्वा युगानां च विशेषतः ।
क्षयं च दृष्ट्वा शैलानां क्षयं च सरितां तथा ॥
वर्णानां च क्षयं दृष्ट्वा क्षयान्तं च पुनः पुनः ।
जरामृत्युस्तथा जन्म दृष्ट्वा दुःखानि चैव ह ॥
देहदोषांस्तथा ज्ञात्वा तेषां दुःखं च तत्त्वतः
देहविक्लवतां चैव सम्यग्विज्ञाय तत्त्वतः ५१

आत्मदोषांश्च विज्ञाय
सर्वानात्मनि संश्रितान् ।
स्वदेहादुत्थितान् गन्धां-
स्तथा विज्ञाय चाशुभान् ॥ ५२

युधिष्ठिर उवाच ।

कान्स्वगात्रोद्भवान्दोषान्पश्यस्यमितविक्रम
एतन्मे संशयं कृत्स्नं वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ५३

भीष्म उवाच ।

पञ्च दोषान्प्रभो देहे प्रवदन्ति मनीषिणः ।
मार्गज्ञाः कापिलाः सांख्याः शृणु तानरिसूदन

---

यः प्राणादीन्पञ्चैकीकृत्याधो नयति सोऽधोनिलः षष्ठः एवं प्रवह ऊर्ध्वनेता सप्तमः ॥२७॥ त एते सप्त वायवः प्रत्येकं सप्तधा विहिताः। अयं भावः—यथैकस्मिन्वटेऽनेकानि बीजानि तेषु च बीजेषु प्रतिबीजमनन्तानि बीजानि तद्वदेकस्मिन्देहे सप्त प्राणाः प्रतिप्राणं सप्त सप्त प्राणा एवमुत्तरोत्तरमिति जगदानन्त्यमुक्तम् । तस्मात्संसारबीजस्याज्ञानस्य तत्त्वज्ञानेनोच्छेदे यतितव्यमिति भावः ॥२८॥ ननु सन्त्यनेके प्राजापत्यादिदेहा एव सुखमयाः किं मोक्षेणेत्याशंक्य तेषामप्यैश्वर्यस्यान्तवत्त्वान्नेत्याह—**ऐश्वर्यादिति** ॥३०॥ उपप्लवान् उपरागान् तेजसः सूर्यस्य ॥३६॥ द्वंद्वानां दम्पतीनाम् ॥३७॥ क्वचित्पुंसि ॥३९॥ बहुमानं अत्यादरं मध्यस्थतां औदासीन्यम् ॥४०॥ दौरात्म्यं बन्धहेतुताम् ॥ ४१ ॥ कुलेषु गृहेषु ॥ ४२ ॥ संवत्सरक्षयो बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगयोरन्तराले सूर्यस्य द्विरेकराशिसंक्रमे भवति । मासक्षयो दर्शयोरन्तराले सूर्यसंक्रान्तिद्वयम् ॥४६॥ पक्षक्षयः सार्धचतुर्दशादिनमध्ये पर्वद्वयं तदा त्रयोदशाभिर्दिनैः पक्षो भवति दिवसक्षयः सूर्योदययोरन्तराले तिथित्रयस्पर्शः । कालाभिमानिदेवतानामपि क्षयोदयौ दृश्येते किमुत काल्यमानानामस्मदादीनामिति भावः ॥४७॥ बाह्यदोषानुक्त्वा देहजान्दोषानाह-**स्वदेहादिति** । उत्थितान्दोषानित्यनुषङ्गः ॥ ५२ ॥

कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते
एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ।
छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं संकल्पवर्जनात्
सत्त्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ।
छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमल्पाहारतया नृप ५७
गुणान्गुणशतैर्ज्ञात्वा दोषान्दोषशतैरपि ।
हेतून्हेतुशतैश्चित्रैश्चित्रान्विज्ञाय तत्त्वतः ॥ ५८
अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैर्वृतम् ।
चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनर्थकम् ५९
तमः श्वभ्रनिभं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसंनिभम् ।
नाशप्रायं सुखाद्धीनं नाशोत्तरमिहावशम् ॥
रजस्तमसि संमग्नं
पङ्के द्विपमिवावशम् ।
सांख्या राजन्महाप्राज्ञा-
स्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम् ॥ ६१
ज्ञानयोगेन सांख्येन
व्यापिना महता नृप ।
राजसानशुभान् गन्धां-
स्तामसांश्च तथाविधान् ॥ ६२
पुण्यांश्च सात्त्विकान् गन्धान्
स्पर्शजान्देहसंश्रितान् ।
छित्त्वाऽऽशु ज्ञानशस्त्रेण
तपोदण्डेन भारत ॥ ६३
ततो दुःखोदकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्रदम्
व्याधिमृत्युमहाग्राहं महाभयमहोरगम् ॥ ६४
तमःकूर्मं रजोमीनं प्रज्ञया सन्तरन्त्युत ।
स्नेहपङ्कं जरादुर्गं ज्ञानदीपमरिन्दम ॥ ६५
कर्मागाधं सत्यतीरं स्थितव्रतमरिन्दम ।
हिंसाशीघ्रमहावेगं नानारससमाकरम् ॥ ६६
नानाप्रीतिमहारत्नं दुःखज्वरसमीरणम् ।
शोकतृष्णामहावर्तं तीक्ष्णव्याधिमहागजम्
अस्थिसंघातसंघट्टं श्लेष्मफेनमरिन्दम ।
दानमुक्ताकरं घोरं शोणितह्रदविद्रुमम् ६८
हसितोत्क्रुष्टनिर्घोषं नानाज्ञानसुदुस्तरम् ।
रोदनाश्रुमलक्षारं संगत्यागपरायणम् ॥ ६९
पुत्रदारजलौकौघं मित्रबान्धवपत्तनम् ।
अहिंसासत्यमर्यादं प्राणत्यागमहोर्मिणम् ७०
वेदान्तगमनद्वीपं सर्वभूतदयोदधिम् ।
मोक्षदुर्लभविषयं वडवामुखसागरम् ॥ ७१
तरन्ति यतयः सिद्धा ज्ञानयानेन भारत ।
तीर्त्वाऽतिदुस्तरं जन्म विशन्ति विमलं नभः
तत्र तान्सुकृतीन्सांख्यान्
सूर्यो वहति रश्मिभिः ।
पद्मतन्तुवदाविश्य
प्रवहन्विषयान्नृप ॥ ७३
तत्र तान्प्रवहो वायुः
प्रतिगृह्णाति भारत ।
वीतरागान्यतीन् सिद्धान्
वीर्ययुक्तांस्तपोधनान् ॥ ७५
सूक्ष्मः शीतः सुगन्धी च सुखस्पर्शश्च भारत ।
सप्तानां मरुतां श्रेष्ठो लोकान्गच्छति यः शुभान्
स तान्वहति कौन्तेय नभसः परमां गतिम् ॥

नलसारं नलतृणवदन्तः सारहीनम् ॥ ५९ ॥ नाशप्रायं नाशबहुलम् ॥६०॥ शुभाशुभांश्च गंधान् तपोदण्डेन ज्ञानशस्त्रेण धीकुठारेण छित्त्वा यतयः सागरं तरन्तीति दशमेन सम्बन्धः ॥६३॥ **तीर्त्वा चेति** । जन्म इदृशेनालोचनेन जन्मयुक्तं स्थूलं शरीरं तीर्त्वा विस्मृत्य विमलं नभः प्रविशन्ति। देहाध्यासापाये व्योमसंविदुदेतीत्यर्थः ॥७२॥ **तत्रेति**। तस्मिन् हार्दे व्योम्नि पद्मतन्तुवत् । यथा कमलनालेनान्तःसुषिरेण जलं मुखेनाकृष्यमाणमन्तः प्रविशति तद्वत्। आत्मनि प्रणिधीयमानमनोद्वारा सूर्योऽन्तराविश्य तत्रैव हृदयाकाशे सांख्यान् प्रति स्वनाडीभिः सम्बन्धाच्चतुर्दशभुवनगतान्विषयान् वहति प्रापयति । प्रवहन्विषयानित्यनेन विषयैः सह सूर्यस्य नित्यसम्बन्धो दर्शितः । व्योमसंविदुदये सांख्यस्य सार्वज्ञ्यं सार्वात्म्यं सर्वभोगभाक्त्वं चोदेतीत्यर्थः । एतेन प्रत्यगात्मस्था एव विषया मुकुरमुखवदज्ञानवशात्पराक्त्वेन भान्तीत्यात्माद्वैतमुपपादितम् । हार्दनाडीनां सूर्यरश्मिभिः सम्बन्धस्तेषां च ब्रह्माण्डेन सम्बन्धश्छान्दोग्यादावुक्तः प्रागेवोदाहृतः ॥ ७३ ॥ **तत्रेति** । तत्र हार्दाकाशे तांस्तेजोवन्नात्मकान् विषयान्प्रवहसंज्ञको वायुः प्रतिगृह्णाति स्वात्मसात्करोति । तथा च श्रुतिः—'वायुर्ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्ते' इति । किं कृत्वा वीतरागान् यतीन् अपेक्ष्येति शेषः । संप्रज्ञातसुखास्वादसक्ते सांख्ये वायुर्विषयान्न संहरति अन्यथा तु संहरतीत्यर्थः । अत एव समाधि प्रकृत्योक्तं गौडपादीये—'नास्वादयेत्सुखं तत्र' इति ॥ ७४ ॥ **सूक्ष्म इति** । सूक्ष्मस्त्वगिन्द्रियग्राह्यस्पर्शः । ननु सूर्यरश्मिसम्बन्धेऽपि ब्रह्माण्डं न हार्दाकाशे प्रवेष्टुमर्हति । अत्रत्यानां घटादीनां सूर्यास्तोत्तरं लोकान्तरसम्बन्धादर्शनादित्याशंक्याह–**सप्तानामिति** । तान्पिण्डब्रह्माण्डरूपान् विषयान् । यथाऽयं प्रवहो वायुः देहेन सम्बन्धात्स्वयं लोकान्प्रतिगच्छति पिण्डं च

नभो वहति लोकेश रजसः परमां गतिम् ।
रजो वहति राजेन्द्र सत्त्वस्य परमां गतिम् ॥
सत्त्वं वहति शुद्धात्मन्परं नारायणं प्रभुम् ।
प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ७७
परमात्मानमासाद्य तद्भूतायतनाऽमलाः ।
अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति वा विभो
परमा सा गतिः पार्थ
निर्द्वन्द्वानां महात्मनाम् ।
सत्यार्जवरतानां वै
सर्वभूतदयावताम् ॥ ७९

युधिष्ठिर उवाच ।

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः ।
आजन्ममरणं वा ते स्मरन्त्युत न वाऽनघ ॥
यदत्र तथ्यं तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।
त्वदृते पुरुषं नान्यं प्रष्टुमर्हामि कौरव ॥ ८१
मोक्षे दोषो महानेष प्राप्य सिद्धिगतानृषीन्
यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥ ८२
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्यामि परमं नृप ।
मग्नस्य हि परं ज्ञानं किं न दुःखतरं भवेत् ॥

भीष्म उवाच ।

यथान्यायं त्वया तात प्रश्नः पृष्टः सुसंकटः।
बुधानामपि संमोहः प्रश्नेऽस्मिन्भरतर्षभ ८४
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणु सम्यङ्मयेरितम् ।
बुद्धिश्च परमा यत्र कापिलानां महात्मनाम् ॥
इन्द्रियाण्येव बुध्यन्ते
स्वदेहे देहिनां नृप ।
कारणान्यात्मनस्तानि
सूक्ष्मः पश्यति तैस्तु सः ॥ ८६
आत्मना विप्रहीणानि काष्ठकुड्यसमानि तु ।
विनश्यन्ति न सन्देहः फेना इव महार्णवे ८७

---

तत्तल्लोकान्प्रतिवहति एवं नभसः परमां गतिं हार्दाकाशं गच्छति ब्रह्माण्डं च तं प्रतिवहति । तथा च ब्रह्माण्डं वातरज्जुभिः सूर्यमण्डले निबद्धमतो हार्दनभसि सूर्यप्रवेशेन ब्रह्माण्डस्यापि प्रवेशो युज्यते । अत्रत्यघटादीनां तु रात्रावपि सूर्यरश्मिसम्बन्धविघटनं नास्तीति न तैः सह देशान्तरगमनप्रसक्तिरस्ति । अतो युक्तमुक्तं तत्र तान् सुकृतीनित्यादि ॥ ७५ ॥ **नभ इति**। तमसः सूक्ष्मतमःपरिणामो व्योमसंवित् । नभ आख्या रजसः परमां गतिमहंकारं नयति। सत्त्वस्य परमां गतिं महत्तत्त्वमस्मितामात्रं शुद्धत्वंपदार्थम् । तस्यापि परमा गतिः प्रभुस्तत्पदार्थस्तस्यापि निरुपाधिचिन्मात्रमित्यर्थः ॥ ७६ ॥ योगवत्सांख्येऽपि शौचादिकं तुल्यमित्युक्तं तदत्रोपसंहरति-**निर्द्वन्द्वानामिति**। सेयमात्मनिष्ठा योगैर्विषयेभ्याश्चित्तवृत्तेर्निरोध इत्युच्यते । सांख्यैस्तु तत्तद्विषयसहितानां वृत्तीनां लवणोदकन्यायेन प्रविलापनमित्युच्यते । एवमयं भाषाभेद एव । शमादिसाधनं कैवल्यं च फलं पक्षद्वयेऽपि समानमिति प्रागुक्तं न प्रस्मर्तव्यम् ॥ ७९ ॥ भगवन्तं षड्गुणैश्वर्यसंपन्नं परमात्मानमेव परं मोक्षाख्यं स्थानं प्राप्य आजन्ममरणं सर्वज्ञत्वाजन्ममरणादिकं तत्र स्मरन्ति न वा मोक्षे विशेषविज्ञानमस्ति न वेति प्रश्नः 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति । य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' इति मोक्षे सार्वज्ञ्यसार्वात्म्ययोः श्रवणात् 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति विशेषविज्ञानाभावश्रुतेश्च संशयः ॥ ८० ॥ एष द्विविधोऽपि मोक्षे महान्दोषः स्फुरति सिद्धिगतान्मोक्षप्रतिपादकान् । ऋषीन्मंत्रान् प्राप्य स्फुरति। परस्परविरुद्धस्यैकत्र पक्षद्वयस्यासंभवात्। अन्यतराङ्गीकारेऽवश्यकर्तव्येऽन्यतरश्रुतेर्बाधो भवतीत्यर्थः। **यदीति**। तत्रैव मोक्षेऽपि विज्ञाने विशेषदर्शने सति कर्मैव श्रेष्ठं किं संन्यासाद्यायासेनेत्यर्थः ॥ ८२ ॥ तदभावे तु महान्दोषः सुषुप्ताविव विगलितज्ञानस्यापि ज्ञानमस्तीत्युच्यते चेत् । इतो दुःखतरं अयुक्ततरं न किंचिदित्यर्थः ॥ ८३ ॥ बुधानां मैत्रेयीप्रभृतीनामप्यत्र संमोहो दृश्यते । तथाहि। मैत्रेयी मुक्तौ द्वैतदर्शने कर्मफलसाम्यं द्वैतादर्शनेन मूढतमत्वं च पश्यन्ती अन्यतरस्य श्रेयस्त्वमप्रतिपद्यमाना याज्ञवल्क्यमवोचत्— **अत्रैव मा भगवानमूमुहदिति** । मा माम् ॥८४॥ अत्र समाधानमाह-**इन्द्रियाणीति** । देहिनां प्राणिनां स्वदेहे स्वस्वरूपेऽधिष्ठाने स्थितानि इन्द्रियाण्येव मनःषष्ठानि बुध्यन्ते विशेषतः पश्यन्ति यतस्तानि आत्मनो विशेषविज्ञाने कारणानि हेतुभूतानि । कथम् । सूक्ष्मश्चिदात्मा तैः कर्तृकारणरूपैः पश्यति । बाह्यमाभ्यन्तरं वा विषयं प्रकाशयति । अयं भावः-प्रत्यक्षं हि बाह्यमर्थं चक्षुरेव पश्यति तदभावे न पश्यति । न च तावता आत्मनः प्रकाशनशक्तिर्हीयते तेन विनाऽपि स्वप्ने तद्दर्शनात् । एवं सुप्तिसमाध्योर्मनसा विनाऽपि नास्त्यात्मनो ज्ञशक्तिवियोगः । उपकरणस्य स्वातन्त्र्यविघातकत्वात् । तथा च करणाभावकृतमेवास्य विशेषविज्ञानराहित्यम्। न त्वज्ञत्वकृतमिति कैवल्येऽपि नात्मनः सार्वज्ञ्यहानिः । तथा च श्रुतिः-'यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति यद्वै तं न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति' इत्यादिका सुप्त्यादावप्यात्मनो द्रष्टृत्वादिकं दर्शयति ॥ ८६ ॥ आत्मनो ज्ञशक्त्यवियोगं दर्शयितुं इन्द्रियाणां जडत्वमाह—**आत्मनेति**। वस्तुत इन्द्रियाणि स्वरूपेणैव न सन्ति अध्यस्तत्वात् परमते स्थित्वा तत्तत्त्व-

इन्द्रियैः सह सुप्तस्य देहिनः शत्रुतापन ।
सूक्ष्मश्चरति सर्वत्र नभसीव समीरणः ॥ ८८
स पश्यति यथान्यायं
स्पर्शान्स्पृशति वा विभो ।
बुध्यमानो यथा पूर्व-
मखिलेनेह भारत ॥ ८९
इन्द्रियाणीह सर्वाणि स्वे स्वे स्थाने यथाविधि
अनीशत्वात्प्रलीयन्ते सर्पा हतविषा इव ९०
इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानेष्वेव सर्वशः ।
आक्रम्य गतयः सूक्ष्माश्चरत्यात्मा न संशयः
सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नान्रजसश्च गुणान्पुनः ।
गुणांश्च तमसः सर्वान्गुणान्बुद्धेश्च भारत ॥९२
गुणांश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणांश्च सः ।
गुणान्वायोश्च धर्मात्मन्स्नेहजांश्च गुणान्पुनः ॥
अपां गुणांस्तथा पार्थ पार्थिवांश्च गुणानपि ।
सर्वाण्येव गुणैर्व्याप्य क्षेत्रज्ञेषु युधिष्ठिर॥ ९४
आत्मा च व्याति क्षेत्रज्ञं कर्मणी च शुभाशुभे
शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च तं प्रभो
प्रकृतिं चाप्यतिक्रम्य गच्छत्यात्मानमव्ययम्॥
परं नारायणात्मानं निर्द्वन्द्वं प्रकृतेः परम् ९६
विमुक्तः पुण्यपापेभ्यः प्रविष्टस्तमनामयम् ।
परमात्मानमगुणं न निवर्तति भारत ॥ ९७
शिष्टं तत्र मनस्तात इन्द्रियाणि च भारत ।
आगच्छन्ति यथाकालं गुरोः संदेशकारिणः
शक्यं चाल्पेन कालेन शान्तिं प्राप्तुं गुणार्थिना
एवमुक्तेन कौन्तेय युक्तज्ञानेन मोक्षिणा॥ ९९
सांख्या राजन्महाप्राज्ञा
गच्छन्ति परमां गतिम् ।
ज्ञानेनानेन कौन्तेय
तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥ १००
अत्र ते संशयो माभू-
ज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम् ।
अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं
पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ १०१
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तृ शाश्वतम् ।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति मनीषिणः१०२
यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः ।
यच्च शंसन्ति शास्त्रेषु वदन्ति परमर्षयः॥ १०३

---

मुपेत्यापि तानि काष्ठवदचेतनान्येवातो विनश्यन्ति । तत्र फेनदृष्टान्तो यथायोग्यं योजनीयः । यथा फेनो जलेन विना स्वयं निरात्मैव सात्मत्वेन दृष्टोऽपि तेन विना न तिष्ठतीति ॥ ८७ ॥ इन्द्रियाणां जडत्वमुक्त्वाऽऽत्मनः स्वयंज्योतिष्ट्व-माह—**इन्द्रियैरिति** । देहाभिमानिनः सेन्द्रियस्य स्वप्ने प्रलीनस्यापि यः सूक्ष्मः अन्तरात्मा स सर्वत्र विषये चरति । जाग्रतीव स्वप्नेऽपि सर्वं विषयं भासयतीत्यर्थः ॥ ८८ ॥ एतदेवाह—**स इति** । यथापूर्वं जाग्रद्वदित्यर्थः ॥ ८९ ॥ इन्द्रियाणां सात्मत्वमात्मचैतन्यानुवेधादेवेत्यन्वयव्यतिरेका-भ्यामाह—**इन्द्रियाणीति** । इह स्वप्ने अनीशत्वान्नास्ति ईशः प्रवर्तको येषां तानि तथात्वात्॥९०॥ व्यतिरेकमुक्त्वा-ऽन्वयमाह—**इन्द्रियाणां त्विति** । स्वस्थाने स्थितानां गतयः गतीः सर्वा इन्द्रियवृत्तयश्चिद्व्याप्ता एव उद्यन्तीत्यर्थः ॥ ९१ ॥ सर्वत्र चिद्व्याप्तिं दर्शयति—**सत्त्वस्येति** । सत्त्वा-दीनां गुणान् व्याप्य आत्मा चरतीति पूर्वेणान्वयः। सत्त्वस्य गुणान् धर्मादीन् रजसः प्रवृत्त्यादीन् तमसः अप्रवृत्त्यादीन् बुद्धेरध्यवसायादीन् ॥ ९२ ॥ मनसः संकल्पादीन् नभ आदीनां श्रोत्रादीन् स्नेहजान्स्नेहो जलं जायते तस्मात्तेज-सस्तज्जान्॥९३॥ **सर्वाण्येवेति**। सर्वाणि उक्तान्यनुक्तानि च क्षेत्रज्ञेषु सन्निहितानि सत्त्वादीनि गुणैर्मायिकैश्चित्तसत्त्वा-नंदत्वाद्यैर्व्याप्य आत्मा ब्रह्म क्षेत्रज्ञं जीवं व्याति व्याप्नोति कर्मणी च तमेव क्षेत्रज्ञं व्याप्नुत इति सम्बन्धः ॥ ९४ ॥ इन्द्रियाणि मनःषष्ठानि एतच्च क्षेत्रज्ञस्य कर्मसम्बन्धे कारण-मुपन्यस्तम् ॥ ९५ ॥ मुक्तिकारणं चाह—**प्रकृतिमिति**। चादिन्द्रियाणि । इन्द्रियाणि कार्योपाधिं प्रकृतिं कारणोपाधिं चातीत्य क्षेत्रज्ञः अव्ययं वृद्धिह्रासशून्यं कूटस्थमात्मानं गच्छति तमेव विशिनष्टि—**परमिति** ॥९६॥ तत्प्राप्तिफल-माह—**विमुक्त इति** ॥ ९७ ॥ ननु परमात्मानं प्राप्त-स्यानिवृत्तौ पुनर्देहस्योत्थानं न स्यादित्याशंक्याह—**शिष्ट-मिति** । निवृत्तेऽपि कारणे चक्रभ्रमिन्यायेन शिष्टं मन आदिप्रानियोगिन आगच्छन्ति गच्छन्ति । यथाकालं समा-धिव्युत्थानकालभेदेन गुरोः संदेशकारिणः प्रारब्धकर्मानु-सारिणीश्वरप्रेरणा तां कर्तुं शीलं येषां ते ॥९८॥ एवं जीव-न्मुक्तिसद्भावमुक्त्वा विदेहकैवल्यमाह—**शक्यमिति**। अल्पेन वर्तमानदेहपातावधिना शान्तिं विदेहमुक्तिम् ॥ ९९ ॥ परं योगापेक्षया श्रेष्ठम्। एवं सांख्येन योगेन वा शोधितस्य त्वं-पदार्थस्य ब्रह्माद्वैतसिद्धये तत्पदार्थाभेदं वक्तुं तत्पदार्थस्वरूपमाह —**अक्षरमित्यादिना**। अक्षरं व्यापकं अश्नोतेः सरन् ध्रुवं अचञ्चलम्। अत एव पूर्णं ब्रह्म सर्वोत्कृष्टम्। सनातनं सदैकरूपम् १०१ निर्द्वंद्वं द्वैतवर्जितं कर्तृ जगज्जन्मादिहेतुः शाश्वतं अखंड-दंडायमानं कूटस्थं निर्विकारम् ॥ १०२ ॥

**सर्वे विप्राश्च देवाश्च तथा शमविदो जनाः ।**
**ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमच्युतम् ॥ १०४**
**प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा**
**वदन्ति गुणबुद्धयः ।**
**सम्यग्युक्तास्तथा योगाः**
**सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥ १०५**
**अमूर्तेस्तस्य कौन्तेय सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः**
**अभिज्ञानानि तस्याहुर्मतं हि भरतर्षभ॥१०६**
**द्विविधानीह भूतानि पृथिव्यां पृथिवीपते ।**
**जङ्गमागमसंज्ञानि जङ्गमं तु विशिष्यते ॥**
**ज्ञानं महद्यद्धि महत्सु राज-**
**न्वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे ।**
**यच्चापि दृष्टं विविधं पुराणे**
**सांख्यागतं तन्निखिलं नरेन्द्र ॥ १०८**
**यच्चेतिहासेषु महत्सु दृष्टं**
**यच्चार्थशास्त्रे नृपशिष्टजुष्टे ।**
**ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किंचित्**
**सांख्यागतं तच्च महन्महात्मन्॥१०९**
**शमश्च दृष्टः परमं बलं च**
**ज्ञानं च सूक्ष्मं च यथावदुक्तम् ।**
**तपांसि सूक्ष्माणि सुखानि चैव**
**सांख्ये यथावद्विहितानि राजन् ॥**
**विपर्यये तस्य हि पार्थ देवान्**
**गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन ।**
**तांश्चानुसंचार्य ततः कृतार्थाः**
**पतन्ति विप्रेषु यतेषु भूयः ॥ १११**
**हित्वा च देहं प्रविशन्ति देवं**
**दिवौकसो द्यामिव पार्थ सांख्याः ।**
**अतोऽधिकं तेऽभिरता महार्हे**
**सांख्ये द्विजाः पार्थिवशिष्टजुष्टे ११२**
**तेषां न तिर्यग्गमनं हि दृष्टं**
**नार्वाग्गतिः पापकृताधिवासः ।**
**न वा प्रधाना अपि ते द्विजातयो**
**ये ज्ञानमेतन्नृपतेऽनुरक्ताः ॥ ११३**
**सांख्यं विशालं परमं पुराणं**
**महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।**
**कृत्स्नं च सांख्यं नृपते महात्मा**
**नारायणो धारयतेऽप्रमेयम् ॥ ११४**
**एतन्मयोक्तं नरदेव तत्त्वं**
**नारायणो विश्वमिदं पुराणम् ।**
**स सर्गकाले च करोति सर्गं**
**संहारकाले च तदत्ति भूयः ॥ ११५**
**संहृत्य सर्वं निजदेहसंस्थं**
**कृत्वाऽप्सु शेते जगदन्तरात्मा ११६**

---

ब्रह्मण्यं ब्रह्मजातिहितम् ॥ १०४ ॥ प्रार्थयन्तः गुणेषु विषयेषु बुद्धिर्येषां ते । तं वदन्ति मायिकैर्गुणैः स्तुवन्ति सांख्या योगाश्च स्तुवन्ति जगत्कर्तृत्वेन आदिगुरुत्वेन चेति शेषः ॥ १०५ ॥ सांख्यज्ञानं शुद्धचिन्मात्रं तस्य स्वरूपमित्यर्थः । तत्सत्त्वे मानमाह—**अभिज्ञानानीति** । घटादीनां ज्ञानानि तान्येव तस्यामूर्तेर्ब्रह्मणो मतं ज्ञानम् मन ज्ञानेऽस्माद्भावे निष्ठा । निर्विषयघटादिज्ञानमेव परं ब्रह्मेत्यर्थः । यथोक्तं वार्तिके—

‘ परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता ।
संवित्सैवेह मेयार्थो वेदान्तोक्तिप्रमाणतः ’ ॥ इति

॥ १०६ ॥ यदुक्तविधं ब्रह्म तत्सच्चिदानन्दरूपं तत्र स्थावरेषु सदंशमात्राभिव्यक्तिः जङ्गमेषु सच्चिदंशयोर्विद्वत्सु सच्चिदानन्दांशानां त्रयाणामप्यभिव्यक्तिरिति तेषामुत्तरमुत्तरं श्रेष्ठमित्याह द्वाभ्याम्—**द्विविधानीति** । अगमं स्थावरम् ॥ १०७ ॥ महत्सु ब्रह्मवित्सु यन्महज्ज्ञानं तत्सांख्यागतं सांख्येऽन्तर्गतम् । एतेन सांख्यविज्ञानात्सर्वविज्ञानमुक्तम्। तथाच स्थावराज्जंगमं श्रेष्ठं जंगमेष्वपि विद्वान् श्रेष्ठतर इति भावः ॥ १०८ ॥ शमादिकं सर्वं सांख्ये सांख्यविज्ञाननिमित्तं विहितमित्यर्थः ॥ ११० ॥ विपर्यये किंचित्साधनवैकल्यात् ज्ञानानुत्पत्तौ । यतेषु यत्नशीलेषु तांश्चानुसंचार्य तेषामाधिपत्यं कृत्वा ॥ १११ ॥ महार्हे अतिपूज्येऽधिकमभिरतास्ते देवं तत्पदार्थं प्रविशन्ति क्रमेणेति शेषः ॥ ११२ ॥ कीदृशी गतिः या पापकृतानां अधिवासः एतत्परोक्षज्ञानफलमुक्तम् ॥ ११३ ॥ अपरोक्षज्ञानफलमाह—**सांख्यमिति** । कृत्स्नं सांख्यं यो धारयते साक्षात्कृत्यास्ते स नारायणः परं ब्रह्मैव तथा च श्रुतिः-‘ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति’इति ॥११४॥ हे नर मया एतत् देवस्यात्मनस्तत्त्वमुक्तम् । तच्च नारायणो विश्वमिति सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेरित्यर्थः । तत्र हेतुः—**स इति** । एतेन तज्जलानिति श्रुतेरर्थ उक्तः ॥११५॥ सांख्यसर्वस्वमाहार्धेन —**संहृत्येति** । सर्वं कार्यजातं वियदादिकं संहृत्य प्रविलाप्य कुत्र निजदेहे कारणात्मनि संस्था समाप्तिर्यस्य स तथा कृत्वा स्वयमपि कारणात्माऽप्सु निर्विशेषचिन्मात्रे शेते लीनो भवति जगदन्तरात्मा नारायणः सर्वप्रत्यग्भूतः एतेन योऽयं मायावी जगज्जन्मादिहेतुः स सर्वेषां प्रत्यग्भूत ईश्वरः चिन्मात्रे लीयत इति निर्विशेषब्रह्माद्वैतमुक्तं भवति ॥११६॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि सांख्यकथने एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥

## ३०२-[१२९]

युधिष्ठिर उवाच ।

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्मान्नावर्तते पुनः ।
किं च तत्क्षरमित्युक्तं यस्मादावर्तते पुनः १
अक्षरक्षरयोर्व्यक्तिं पृच्छाम्यरिनिषूदन ।
उपलब्धुं महाबाहो तत्त्वेन कुरुनन्दन ॥ २
त्वं हि ज्ञाननिधिर्विप्रैरुच्यसे वेदपारगैः ।
ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ३
शेषमल्पं दिनानां ते दक्षिणायनभास्करे ।
आवृते भगवत्यर्के गन्तासि परमां गतिम् ४
त्वयि प्रतिगते श्रेयः कुतः श्रोष्यामहे वयम् ।
कुरुवंशप्रदीपस्त्वं ज्ञानदीपेन दीप्यसे ५
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तः कुरुकुलोद्वह ।
न तृप्यामीह राजेन्द्र शृण्वन्नमृतमीदृशम् ६

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥ ७
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषीणां भास्करद्युतिम् ।
पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैःश्रेयसं परम् ८
परमध्यात्मकुशलमध्यात्मगतिनिश्चयम् ।
मैत्रावरुणिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ९
स्वक्षरं प्रश्रितं वाक्यं मधुरं चाप्यनुल्बणम् ।
पप्रच्छर्षिवरं राजा करालजनकः पुरा ॥ १०
भगवन् श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् ।
यस्मान्न पुनरावृत्तिमाप्नुवन्ति मनीषिणः॥ ११
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेदं क्षरते जगत् ।
यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेम्यमनामयम्१२

वसिष्ठ उवाच ।

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीदं यथा जगत् ।
यन्न क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन वाऽप्यथ॥१३
युगं द्वादशसाहस्रं कल्पं विद्धि चतुर्युगम् ।
दशकल्पशतावृत्तमहस्तद्ब्राह्ममुच्यते ॥ १४

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥

३०२

त्वंपदार्थशोधकौ सांख्ययोगावुक्त्वा तस्य पारमार्थिकं तत्पदार्थतत्त्वं वक्तुं अक्षरं ध्रुवमेवोक्तमित्यादिनाऽन्ते तत्पदार्थस्वरूपमुपक्षिप्तं तद्विवरणायारभते-**किं तदक्षरमित्यादि।** व्यक्तिं विवेकं तत्त्वेन याथात्म्येन उपलब्धुं पृच्छामीति द्वयोः सम्बन्धः ॥ १ ॥ करालनामा जनकः करालजनकस्तस्य ॥ ७ ॥ कुशलं ऊहापोहसमर्थम् गतिरनुभवस्तेन निश्चयोऽस्यास्तीति तथा। **अध्यात्मे** परोक्षापरोक्षोभयविधज्ञानवन्तमित्यर्थः । मैत्रावरुणिं मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुंभे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेतामिति बह्वृचानां ह्यनुक्रमणिकायां तस्य मैत्रावरुणित्वमुक्तम् ॥९॥ प्रश्रितं विनीतं मधुरं अर्थतः अनुल्बणं कुतर्कहीनम् ॥ १० ॥ **यच्चेति** । यत्राक्षरे क्षरते लवणोदकवल्लीयते । एतेन क्षराक्षरशब्दप्रवृत्तिनिमित्ते दर्शिते। शिवं आनन्दरूपम् क्षेम्यं संसारमोचकम्। यतः अनामयं निर्द्वन्द्वम् ॥ १२ ॥ यावत्कालेन कृत्स्नेनापि कालेन ॥ १३ ॥ कृत्स्नं क्षरं यावता कालेन क्षरति तत्प्रमाणमाह—**युगमिति** । युगं चतुर्युगं देवमानेन अब्दानां द्वादशसहस्रसंमितम्। तदेव चतुर्युगं दशशतावृत्तं कल्पं तदेव च ब्राह्ममहरुच्यते । अत्र योऽयं मानुषः संवत्सरः स देवानामहोरात्रस्तया गणनया द्वादशसहस्रं चतुर्युगं तेन एतत्षष्ठ्यधिकशतत्रयेण गुणितं त्रिचत्वारिंशल्लक्षाणि विंशतिसहस्राणि च । एतेषु दशधा भक्तेष्वेकोंऽशः । चतुर्लक्षं द्वात्रिंशत्सहस्राणि च कलेर्मानम् । तदेव द्विगुणं द्वापरस्य त्रिगुणं त्रेतायाः चतुर्गुणं कृतस्य। एतद्ब्रह्मदिनमानं गीतास्वप्युक्तम्—

' चतुर्युगसहस्रं तद्ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः '

इति ॥१४॥

रात्रिश्चैतावती राजन् यस्यान्ते प्रतिबुध्यते ।
सृजत्यनन्तकर्माणं महान्तं भूतमग्रजम् ॥ १५
मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शंभुः स्वयंभुवः ।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानं ज्योतिरव्ययम्
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति १७
हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतः ।
महानिति च योगेषु विरिञ्चिरिति चाप्यजः
सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ।
विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः
वृतं नैकात्मकं येन कृतं त्रैलोक्यमात्मना ।
तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ॥ २०
एष वै विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ।
अहङ्कारं महातेजाः प्रजापतिमहंकृतम् ॥ २१
अव्यक्ताद्व्यक्तमापन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम् ।
महान्तं चाप्यहङ्कारमविद्यासर्गमेव च ॥ २२

अविधिश्च विधिश्चैव समुत्पन्नौ तथैकतः ।
विद्याविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रार्थचिन्तकैः
भूतसर्गमहङ्कारात्तृतीयं विद्धि पार्थिव ।
अहङ्कारेषु सर्वेषु चतुर्थं विद्धि वैकृतम् ॥ २४
वायुर्ज्योतिरथाकाशमापोऽथ पृथिवी तथा ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥
एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् ।
पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमर्थवत् २६
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् ।
वाक्च हस्तौ च पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च २७
बुद्धीन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च
संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥ २८
एषा तत्त्वचतुर्विंशा
सर्वाकृतिषु वर्तते ।
यां ज्ञात्वा नाभिशोचन्ति
ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥ २९

---

यस्यान्ते यस्येति तद्धितप्रकृतेर्ग्रहणं ब्रह्मणोऽन्ते इत्यर्थः । प्रतिबुध्यते शम्भुरिति सम्बन्धः । अग्रजं हिरण्यगर्भम्—

'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ' ।

इति श्रुतेः ॥ १५ ॥ अणिमाद्या यत्र स्वयंभुवः नित्यं स्वतःसिद्धाः न तु हिरण्यगर्भादिष्विव तपसा आविर्भूताः । तत ईशानं सर्वनियन्तृज्योतिश्चिद्रूपमव्ययमपरिणामि ॥ १६ ॥ अमूर्तमेवाक्षरस्य ज्ञेयं रूपमाह—**सर्वत इति** ॥ १७ ॥ हिरण्यगर्भ इति योऽक्षर इति स्मृतः स एष हिरण्यगर्भः सूत्रात्मा भगवान्सर्वैश्वर्यसम्पन्नः । बुद्धिः समष्टिबुद्धिरिति वेदान्तिनः योगे तु एष एव महानिति प्रथमं कार्यम् ॥ १८ ॥ नैकात्मकं बहुरूपं त्रैलोक्यं कृतं वृतं च तदेव विश्वरूपो विराट् विश्वं रूपमस्य । तथा च श्रुतिः—

'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ' ॥

इति ॥ २० ॥ एष सूत्रात्मा अहङ्कारमुपाधिं अहंकृतं तदभिमानिनं विराजम् ॥ २१ ॥ अस्य द्वैविध्यमाह—**अव्यक्तादिति** । महान्तं समष्टिं चात् व्यष्ट्यहङ्कारमविद्यासर्गम् ॥२२॥ विद्याविद्ययोर्लक्षणमाह—**अविधिरिति** । अत्र अक्षरात्कारणात् हिरण्यगर्भसृष्टिः प्रथमा । विराट्सृष्टिर्द्वितीया एकतः एतेषां त्रयाणामन्यतमे एकस्मिन्विषये यो विधिः। आप्नोतेरादिमत्वात् । 'आप्नोति ह वा इदं सर्वमादिमांश्च भवति य एवं वेद ' इति । तत्तदुपास्तिविधानं साऽविद्या। यो विधिः 'तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म ' इति । सिद्धवत्कथनं सा विद्या । अयमर्थः—यथा रज्जुं सर्पत्वेन पश्यन्तं भीतं नरं प्रति कश्चिद्रज्जुरियं न सर्प इति सिद्धवद्रज्जुभावमुपदिशति । तेन च साक्षात्कृतेन सद्यो भयनिवृत्तिर्जायते सोऽयमविधिर्विद्या । आतिविक्षेपादाप्तवाक्ये श्रद्धाहीनं प्रति इमं सर्पं रज्जुत्वेन भावयतस्तव रज्जुरेव भविष्यति स च कर्मश्रद्धाजडो विधौ विश्वस्य भावनाबलेन तस्य रज्जुत्वं पश्यति सर्पदष्ट इव गरुडभावनेनात्मनो निर्विषत्वं तद्वत्सोऽयं विधिरविद्येति । तद्वदत्रापि ध्येयम् ॥२३॥ उपाहितयोर्महदहङ्कारयोः सूत्रविराडपरपर्याययोः सृष्टिमुक्त्वा तदुपाध्योः सृष्टिमाह—**भूतेति** । भूतानि पञ्चतन्मात्राख्यानि सूक्ष्मपञ्चभूतानि अपञ्चीकृतानि सर्वेषु सात्त्विकराजसतामसेषु वैकृतं विकृतमेव वैकृतम् ॥ २४ ॥ तमेवाह—**वायुरिति** । तत्र वाय्वादीनि पञ्चीकृतानि स्थूलानि भूतानि शब्दादिसहितानि तामसाहङ्काराच्चतुर्थः सर्गः ॥२५॥ युगपदित्याकाशाद्वायुः वायोरग्निरित्यादिः श्रौतक्रमोऽनादरणीय इत्युक्तं दृष्टिसृष्ट्यभिप्रायेण भौतिकं स्थूलभूतजम् २६ तमेवाह—**श्रोत्रमिति** ॥ २७ ॥ अत्र तामसानि भूतानि सात्त्विकानि मनःश्रोत्रादीनि राजसानि वागादीनि जाड्यप्रकाशप्रवृत्तिधर्मत्वादेतेषामयं विभागो बोध्यः ॥२८॥ एषा मूलप्रकृतिः चतुर्विंशा चतुर्विंशतितमी । चतुर्विंशीत्यृजुः पाठः । सर्वाकृतिषु सर्वासु विकृतिषु यां प्रकृतिं पुरुषात्पृथग्भूतां ज्ञात्वा ॥२९॥

**एतदेहं समाख्यातं त्रैलोक्ये सर्वदेहिषु ।**
**वेदितव्यं नरश्रेष्ठ सदेवनरदानवे ॥ ३०**
**सयक्षभूतगन्धर्वे सकिन्नरमहोरगे ।**
**सचारणपिशाचे वै सदेवर्षिनिशाचरे ॥ ३१**
**सदंशकीटमशके सपूतिकृमिमूषिके ।**
**शुनि श्वपाके चैणेये सचाण्डाले सपुल्कसे**
**हस्त्यश्वखरशार्दूले सवृक्षे गवि चैव ह ।**
**यच्च मूर्तिमयं किञ्चित्सर्वत्रैतन्निदर्शनम् ३३**
**जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः**
**स्थानं देहवतामासीदित्येवमनुशुश्रुम ॥ ३४**
**कृत्स्नमेतावतस्तात क्षरते व्यक्तसंज्ञितम् ।**
**अहन्यहनि भूतात्मा ततः क्षर इति स्मृतः ॥**
**एतदक्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत् ।**
**जगन्मोहात्मकं प्राहुरव्यक्ताद्व्यक्तसंज्ञकम् ३६**
**महांश्चैवाग्रजो नित्यमेतत्क्षरनिदर्शनम् ।**
**कथितं ते महाराज यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥**
**पञ्चविंशतिमो विष्णुर्निस्तत्त्वस्तत्त्वसंज्ञितः ।**
**तत्त्वसंश्रयणादेतत्तत्त्वमाहुर्मनीषिणः ॥ ३८**
**यन्मर्त्यमसृजद्व्यक्तं तत्तन्मूर्त्यधितिष्ठति ।**
**चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यमूर्तः पञ्चविंशकः ३९**
**स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्वातिष्ठतेऽऽत्मवान्**
**केवलश्चेतनो नित्यः सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ४०**
**सर्गप्रलयधर्मिण्या स सर्गप्रलयात्मकः ।**
**गोचरे वर्तते नित्यं निर्गुणं गुणसंज्ञितम् ४१**
**एवमेष महानात्मा सर्गप्रलयकोविदः ।**
**विकुर्वाणः प्रकृतिमानभिमन्यत्यबुद्धिमान् ४२**
**तमःसत्त्वरजोयुक्तस्तासु तास्विह योनिषु ।**
**लीयते प्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥ ४३**
**सहवासविनाशित्वान्नान्योऽहमिति मन्यते ।**
**योऽहं सोऽहमिति ह्युक्त्वा गुणानेवानुवर्तते**
**तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते ।**
**रजसा राजसांश्चैव सात्त्विकान्सत्त्वसंश्रयात्**
**शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि त्रीणि तु**
**सर्वाण्येतानि रूपाणि यानीह प्राकृतानि वै**

---

एतत् विकृत्यात्मकं देहं पिण्डब्रह्माण्डात्मकशरीरं क्लीबत्वमार्षम् ॥ ३० ॥ **जलेति** नान्यत्रेति च पञ्चमहाभूतान्तर्वर्त्येव देहवान् जीवस्तान्यतीतस्तु ब्रह्मैवेति भावः ॥३४॥ एतावतः एतावत्पर्यन्तं अक्षरावधि यद्व्यक्तं तत्क्षरते । भूतात्मा चतुर्विंशकः संघातः ॥ ३५ ॥ **एतदिति** । प्रत्यगात्मानं त्वंपदार्थमभिनीय दर्शयति --**इदमिति** । पराग्भूतं जगत् जगच्छब्दार्थमाह--**जगदिति** । एतेनाव्यक्तस्यापि क्षरत्वमुक्तम् ॥३६॥ अत्र युक्तिमाह-**महानिति** । यतो महान्सूक्ष्मा बुद्धिः साऽपि नित्यं क्षरत्यतस्तत्कारणमव्यक्तमपि क्षरत्येवेत्यर्थः। तथा च प्रयोगः। महान्क्षरोपादानकः क्षरात्मत्वात् घटवदिति । न चात्मधर्माणां दुःखादीनां क्षरत्वेऽपि क्षरोपादानकत्वं नास्ति आत्मनोऽनित्यत्वादिति वाच्यम् । दुःखादेरात्मधर्मत्वस्यैवासिद्धेः । तदभ्युपगमे वा वन्ह्यौष्ण्यवन्निवृत्त्यसंभवेन यावद्दुःखनिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्यासिद्धेरित्यास्तां तावत् ॥ ३७ ॥ पञ्चविंशतिमः तकारलोप आर्षः। विष्णुः शुद्धचिन्मात्रं स निर्गुणत्वान्निस्तत्त्वः कथं तर्हि पञ्चविंशतितत्त्वेषु तस्य गणनेत्यत आह —**तत्त्वेति** । तत्त्वाधिष्ठानत्वादेवास्य तत्त्वसंज्ञा न तु कार्यत्वात्कारणत्वाद्वाऽस्य तत्त्वान्तर्गतत्वमस्ति । एतेन ब्रह्मणो जगदुपादानत्वमपि तदुपादानज्ञानाश्रयत्वादेवेति व्याख्यातम्। अन्यथा तस्यापि पूर्वोक्तानुमानेन क्षरत्वापत्तिः । यथोक्तं संप्रदायविद्भिः—

‘ अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणम् ।
अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ’ इति ॥ ३८ ॥

निस्तत्त्वत्वादेवाधिष्ठातृत्वमपि नास्तीत्याह--**यदिति** । यत् यस्माद्धेतोः मर्त्यं क्षरणधर्मि प्रधानं कर्तृ व्यक्तं कार्यमसृजत् । तत्तस्माद्धेतोस्तन्मूर्तिमत् जगत्तेनैव प्रवर्त्यत इत्यर्थः । कोऽसावधिष्ठाता यश्चतुर्विंशतितमः अव्यक्तः। ननु कथमचेतनस्याधिष्ठातृत्वं संहतत्वादेवेति गृहाण । हि यतः पुरुषोऽमूर्तोऽसंहतः अतो नासावधिष्ठातेत्यर्थः ॥३९॥ ननु संहतमप्यव्यक्तं काष्ठलोष्टसमत्वान्नाधिष्ठातृ भवेदत आह—**स एवेति** । चतुर्विंशतितम एव आतिष्ठतेऽधितिष्ठति । यतः आत्मवान् चिच्छायावान् संधिरार्षः। केवलोऽनुपाधिरपि चेतनः सर्गप्रलयधर्मिण्या प्रकृत्या मूर्तिमान् भवति स्वतस्तु अमूर्तिमानेव॥४०॥ तथैव च निर्गुणमगोचरमपि गोचरे वर्तते दर्पणेनेव मुखं यदाहुः—न तावदयमेकान्तेनाविषयः अस्मत्प्रत्ययविषयत्वादिति ॥ ४१ ॥ तत्पदार्थनिरूपणमुपसंहरति---**एवमिति** । त्वंपदार्थं निरूपयति-**विकुर्वाण इति** । प्रकृतिमान् अविद्यावान् अबुद्धिमान् मूढः अभिमन्यते अहमिति आत्मानं मन्यते॥ ४२॥ लीयते योनिभिः सह तादात्म्यं प्राप्नोति॥४३॥ तत्र हेतुमाह —**सहेति** । सहवासेन विनष्टुं अदर्शनं गन्तुं शीलमस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् नान्योऽहं संघातादिति मन्यते । योऽहं सोऽहं अमुष्य पुत्रोऽहं अमुकजातीयोऽहमिति गुणान्ब्राह्मण्यादीनेव ॥४४॥ तामसान् क्रोधादीन् राजसान् प्रवृत्त्यादीन् सात्त्विकान् प्रकाशादीन्॥४५॥ शुक्लेति। क्रमेण स्वच्छत्वाद्रञ्जकत्वात् मालिनत्वाच्च सत्त्वादीनि शुक्ललोहितकृष्णानि तान्येव

तामसा निरयं यान्ति राजसा मानुषानथ ।
सात्त्विका देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिनः
निष्कैवल्येन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ।
पुण्यपापेन मानुष्यं पुण्येनैकेन देवताः ॥ ४८
एवमव्यक्तविषयं क्षरमाहुर्मनीषिणः ।
पञ्चविंशतिमो योऽयं ज्ञानादेव प्रवर्तते ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादे द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥

•:•••:•

## ३०३-[१३०]

वसिष्ठ उवाच ।
एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते ।
देहाद्देहसहस्राणि तथा समभिपद्यते ॥ १
तिर्यग्योनिसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्वपि ।
उपपद्यति संयोगाद्गुणैः सह गुणक्षयात् ॥ २
मानुषत्वाद्दिवं याति दिवो मानुष्यमेव च ।
मानुष्यान्निरयस्थानमानन्त्यं प्रतिपद्यते ॥ ३
कोशकारो यथाऽऽत्मानं कीटः समवरुन्धति
सूत्रतन्तुगुणैर्नित्यं तथाऽयमगुणो गुणैः ॥ ४
द्वन्द्वमेति च निर्द्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु ।
शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥ ५
जलोदरे तृषारोगे ज्वरगण्डे विषूचके ।
श्वित्रकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिध्मापस्मारयोरपि ६
यानि चान्यानि द्वन्द्वानि प्राकृतानि शरीरिषु
उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येषोऽप्यभिमन्यते
तिर्यग्योनिसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्वपि ।
अभिमन्यत्यभीमानात्तथैव सुकृतान्यपि ॥ ८
शुक्लवासाश्च दुर्वासाः शायी नित्यमधस्तथा
मण्डूकशायी च तथा वीरासनगतस्तथा ९
चीरधारणमाकाशे शयनं स्थानमेव च ।
इष्टकाप्रस्तरे चैव कण्टकप्रस्तरे तथा ॥ १०
भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्या तलेषु* च ।
वीरस्थानाम्बुपङ्के च शयनं फलकेषु च ॥ ११
विविधासु च शय्यासु फलगृद्ध्यान्वितस्तथा
मुञ्जमेखलनग्नत्वं क्षौमकृष्णाजिनानि च ॥ १२
शाणीवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः ।
सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च ॥ १३
फलकं परिधानश्च तथा कण्टकवस्त्रधृक् ।
कीटकावसनश्चैव चीरवासास्तथैव च ॥ १४

---

जलतेजोन्नानि एतानि दृश्यानि । 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्' इतिश्रुतेः प्राकृतानि प्रकृतिस्तेजोबन्नानि तत्सम्बधीनि ॥ ४६ ॥ तेजोबन्नोपाधिकेषु जीवेषु ये तामसा इति व्याख्येयम् ॥ ४७ ॥-**एवमिति** । यद्वा । योऽयं पञ्चविंशतितमस्तमेव अव्यक्तविषयं मायागोचरं सन्तं क्षरं विनाशिनं विकारिणं वा जातो देवदत्तो मृतो देवदत्तः सुखी दुःखी पुण्यवान् पापी चेत्यज्ञानादाहुः। कथं तर्हि तदुपलब्धिरत आह-ज्ञानादेव प्रवर्तते प्रकाशते । एतेन तत्पदार्थ एवाज्ञानाज्जीवत्वमापन्नो ज्ञानान्मुच्यत इति वदता तत्त्वमसीत्यादिवाक्यार्थो जीवब्रह्माभेदः साधितो भवति ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥

---

३०३

प्रकृतिसंयोगात्पुरुषस्तामेवानुवर्तत इत्युक्तं तत्प्रपञ्चयत्यध्यायद्वयेन—**एवमप्रतिबुद्धत्वा**दित्यादिना । अबुद्धं अबोधं अज्ञानं भावे निष्ठान्तेन नञ्समासः ॥१॥ गुणक्षयात् गुणसामर्थ्यात् क्षि क्षयैश्वर्ययोरित्यैश्वर्यार्थस्य क्षिधातो रूपम् एतच्च तामसा निरयं यान्तीति श्लोकेन प्रागेवोक्तम् ॥२॥ आनन्त्यं अनन्तम् ॥ ३ ॥ निर्द्वन्द्वः सुखदुःखादिहीनः ॥ ५ ॥ सिध्मा कासश्वासः ॥ ६ ॥ एष जीवोऽभिमन्यते अहमेव दुःखी रोगी चेति ॥ ७ ॥ मण्डूकवत्पाणिपादं संकोच्य न्युब्जः शेते इति मण्डूकशायी ॥ ९ ॥ आकाशे निरावरणे देशे ॥ १० ॥ फलगृद्धया फलाशा मुञ्जमेखलेति कौपीनवत्त्वं लक्ष्यते ॥ १२ ॥ बालेत्याविककम्बलो लक्ष्यते ॥ १३ ॥ फलकं भूर्जत्वगादि चिपिटकाष्ठं वा कौपीनरूपम् कण्टकवस्त्रं शाल्मल्यादितूलजम् । कटकेति पाठे तृणमयः कटः कीटकावसनः पट्टसूत्रजवस्त्रः ॥ १४ ॥

* वनेष्वित्यर्थः

वस्त्राणि चान्यानि बहू-
न्यभिमन्यत्यबुद्धिमान् ।
भोजनानि विचित्राणि
रत्नानि विविधानि च ॥ १५
एकरात्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम् ।
चतुर्थाष्टमकालश्च षष्ठकालिक एव च ॥ १६
षड्रात्रभोजनश्चैव तथैवाष्टाहभोजनः ।
सप्तरात्रदशाहारो द्वादशाहिकभोजनः ॥ १७
मासोपवासी मूलाशी फलाहारस्तथैव च ।
वायुभक्षोऽम्बुपिण्याकदधिगोमयभोजनः १८
गोमूत्रभोजनश्चैव शाकपुष्पाद एव च ।
शैवालभोजनश्चैव तथा चाऽऽमेन वर्तयन् ॥
वर्तयन् शीर्णपर्णैश्च प्रकीर्णफलभोजनः ।
विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकांक्षया
चान्द्रायणानि विधिव-
ल्लिङ्गानि विविधानि च ।
चातुराश्रम्यपन्थान-
माश्रयत्यपथानपि ॥ २१
उपाश्रमानप्यपरान्पाषण्डान्विविधानपि ।
विविक्ताश्च शिलाच्छायास्तथा प्रस्रवणानि च
पुलिनानि विविक्तानि
विविक्तानि वनानि च ।
देवस्थानानि पुण्यानि
विविक्तानि सरांसि च ॥ २३
विविक्ताश्चापि शैलानां
गुहा गृहनिभोपमाः ।
विविक्तानि च जप्यानि
व्रतानि विविधानि च ॥ २४
नियमान्विविधांश्चापि
विविधानि तपांसि च ।
यज्ञांश्च विविधाकारा-
न्विधींश्च विविधांस्तथा ॥ २५
वणिक्पथं द्विजं क्षत्रं
वैश्यशूद्रांस्तथैव च ।
दानं च विविधाकारं
दीनान्धकृपणादिषु ॥ २६
अभिमन्यत्यसंबोधात्तथैव त्रिविधान् गुणान्
सत्त्वं रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ काम एव च २७
प्रकृत्यात्मानमेवात्मा एवं प्रविभजत्युत ।
स्वधाकारवषट्कारौ स्वाहाकारनमस्क्रियाः
याजनाध्यापनं दानं तथैवाहुः प्रतिग्रहम् ।
यजनाध्ययने चैव यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ २९
जन्ममृत्युविवादे च तथा विशसनेऽपि च ।
शुभाशुभमयं सर्वमेतदाहुः क्रियापथम् ॥ ३०
प्रकृतिः कुरुते देवी भवं प्रलयमेव च ।
दिवसान्ते गुणानेतानभ्येत्यैकोऽवतिष्ठते ३१
रश्मिजालमिवादित्यस्तत्तत्काले नियच्छति ।
एवमेषोऽसकृत्पूर्वं क्रीडार्थमभिमन्यते ॥ ३२
आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्हृदयप्रियान् ।
एवमेतां विकुर्वाणः सर्गप्रलयधर्मिणीम् ॥३३
क्रियां क्रियापथे रक्तस्त्रिगुणां त्रिगुणाधिपः ।
क्रियां क्रियापथोपेतस्तथा तदिति मन्यते३४
प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदन्धीकृतं विभो ।
रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा ॥ ३५
एवं द्वन्द्वान्यथैतानि समावर्तन्ति नित्यशः ।
ममैवैतानि जायन्ते धावन्ते तानि मामिति
निस्तर्तव्यान्यथैतानि सर्वाणीति नराधिप ।
मन्यतेऽयं ह्यबुद्धत्वात्तथैव सुकृतान्यपि ॥ ३७
भोक्तव्यानि मयैतानि देवलोकगतेन वै ।
इहैव चैनं भोक्ष्यामि शुभाशुभफलोदयम् ३८
सुखमेव तु कर्तव्यं
सकृत्कृत्वा सुखं मम ।
यावदन्तं च मे सौख्यं
जात्यां जात्यां भविष्यति ॥ ३९
भविष्यति च मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम् ।
महद्दुःखं हि मानुष्यं निरये चापि मज्जनम् ४०
निरयाच्चापि मानुष्यं कालेनैष्याम्यहं पुनः ।
मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुषं पुनः॥ ४१

दशाहारो दशाहाहारः एको हाकारो लुप्तः । दशाहेनाहारो यस्येत्यर्थः ॥ १७ ॥ आचामेन भक्तमंडेन । 'मासराऽऽचामनिस्रावा मण्डे भक्तसमुद्भवे' इत्यमरः ॥ १९ ॥ उपाश्रमान् पाशुपतपाञ्चरात्राद्युक्तदीक्षायोगान् ॥ २२ ॥ गृहेषु ये निभाः नितरां भान्ति ते दिव्यगृहोपमा इत्यर्थः ॥ २४ ॥ प्रकृत्या उपकरणभूतया ॥२८॥ विशसने संग्रामे ॥३०॥भवं सृष्टिं अभ्येत्य प्रसित्वा ॥३१॥ आत्मरूपगुणान् आत्मनि कल्पितान् रूपं वयोवर्णाकृत्यादि गुणान् सत्त्वादीन् ॥३३॥ क्रियापथे कर्ममार्गे क्रियां तथा तदिति मन्यते इदं कर्म एवंगुणं एवंफलमित्यावश्यकत्वेन मानयति ॥ ३४ ॥

मनुष्यत्वाच्च निरयं पर्यायेणोपगच्छति ।
य एवं वेत्ति नित्यं वै निरात्मात्मगुणैर्वृतः ४२
तेन देवमनुष्येषु निरये चोपपद्यते ।
ममत्वेनावृतो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ॥ ४३
सर्गकोटिसहस्राणि मरणान्तासु मूर्तिषु ।
य एवं कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥ ४४
स एवं फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान् ।
प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ।
प्रकृतिश्च तदश्नाति त्रिषु लोकेषु कामगा ४५
तिर्यग्योनिमनुष्यत्वं
देवलोके तथैव च ।
त्रीणि स्थानानि चैतानि
जानीयात्प्राकृतानि ह ॥ ४६
अलिंगां प्रकृतिं त्वाहुर्लिङ्गैरनुमिमीमहे ।
तथैव पौरुषं लिंगमनुमानाद्धि मन्यते ॥ ४७
स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमव्रणम् ।
व्रणद्वाराण्यधिष्ठाय कर्मणाऽऽत्मनि मन्यते ॥
श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाण्यथ ।
वागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह गुणैः सह ४९
अहमेतानि वै सर्वं मय्येतानीन्द्रियाणि ह ।
निरिन्द्रियो हि मन्येत व्रणवानस्मि निर्व्रणः
अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालः कालमात्मनः
असत्त्वं सत्त्वमात्मानमतत्त्वं तत्त्वमात्मनः ५१
अमृत्युर्मृत्युमात्मानमचरश्चरमात्मनः ।
अक्षेत्रः क्षेत्रमात्मानमसर्गः सर्गमात्मनः ॥ ५२
अतपास्तप आत्मानमगतिर्गतिमात्मनः ।
अभवो भवमात्मानमभयो भयमात्मनः ५३
अक्षरः क्षरमात्मानमबुद्धिस्त्वभिमन्यते ५४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादे त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥

## ३०४-[१३१]

वसिष्ठ उवाच ।
एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ।
सर्गकोटिसहस्राणि पतनान्तानि गच्छति १
धाम्ना धामसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति
तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च ॥ २

---

निरात्मा निःस्वरूपः चिदाभासविशिष्टो देहेन्द्रियादिसंघातः दृश्यत्वेन शुक्तिरजतादिवन्मिथ्यात्वात् आत्मगुणैः चेतनत्व-सत्यत्वसुखत्वैः यथोक्तम्-आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सति धर्माः अपृथक्त्वेऽपि च तेषां चैतन्यात्पृथगिवावभासन्त इति ॥४२॥ **प्रकृतिरिति** । यद्यपि स्त्रीपुंसाभ्यामपत्यमिव पुंप्रकृतिभ्यामेव सर्वं कार्यं क्रियते नान्यतरेण तथापि विवक्षितविवेके प्रकृतावेव कर्तृत्वं पर्यवस्यति । तस्याः सविकारत्वात्तु पुंसि निर्विकारत्वादित्यर्थः ॥४५॥ अलिंगां नित्यानुमेयां न तु वह्निवत् कदाचित्प्रत्यक्षाम् । कथं तर्हि सा मन्यते दृष्टैर्लिंगैर्महदादिकार्यैस्तत्कारणभूतां तां अनुमिमीमहे पौरुषं लिंगं पुरुषस्यानुमापकं देहाद्यनुमतं चैतन्यम् चिदाभासलिंगेन चितिरनुमीयते इत्यर्थः । इति मन्यते निरीश्वरः सांख्यो न तु तत्तथेति भावः । 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वांतरः' इति चितोऽव्यवहितापरोक्षत्वश्रुतिविरोधात् ॥ ४७ ॥ **स इति** । अव्रणं प्राकृतं लिंगं निर्विकारं प्रकृतेरिदं लिंगं गमकं दृश्यायाः प्रकृतेः साधक इत्यर्थः । स लिङ्गान्तरं पुर्यष्टकं गर्भे प्राप्य क्षरणधर्मित्वाद्व्रणो लिंगं तस्य द्वाराणि श्रोत्रादीनि ॥ ४८ ॥ निर्व्रणोऽपि व्रणवानस्मीति मन्यते ॥ ५० ॥ अलिङ्गः लिंगादन्योऽपि लिंगं पुर्यष्टकं कालं मृत्युम् । मरणधर्माऽस्मीति मन्यते इत्यर्थः ॥ सत्त्वं बुद्धिं असत्त्वमवस्तु देहादिकम् आत्मनस्तत्त्वं अनारोपितं रूपम् ॥ ५१ ॥ मृत्युं हन्तारं चरं चरत्वं सर्गं पुत्रादिं आत्मसम्बन्धिनं मन्यते ॥ ५२ ॥ तपः तपस्विनं गतिं उत्क्रान्तिगत्या गतिम् भवं भववन्तं संसारिणम् ॥५३॥ अबुद्धिः विपर्यस्तबुद्धिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥ ॥ छ ॥

### ३०४

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण ॥१॥ धाम्ना षोडशकलः पुरुष इति प्रकृत्य ध्रुवैवास्य षोडशी कलेति श्रुतिप्रसिद्धया प्रकाशरूपया चित्कलया धामसहस्राणि स्थानसहस्राणि प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्त उत्सर्जयातीति ब्रह्मालिंगितस्यैव गत्यादिश्रवणात् ॥२

चन्द्रमा इव भूतानां पुनस्तत्र सहस्रशः ।
लीयते प्रतिबुद्धत्वादेवमेष ह्यबुद्धिमान् ॥ ३
कला पञ्चदशी योनिस्तद्धाम प्रतिबुध्यते ।
नित्यमेतद्विजानीहि सोमं वै षोडशीं कलाम् ॥ ४
कलायां जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान् ।
धाम तस्योपयुञ्जन्ति भूय एवोपजायते ॥ ५
षोडशी तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम् ।
न तूपयुज्यते देवैर्देवानुपयुनक्ति सा ॥ ६
एतामक्षपयित्वा हि जायते नृपसत्तम ।
सा ह्यस्य प्रकृतिर्दृष्टा तत्क्षयान्मोक्ष उच्यते ॥ ७
तदेव षोडशकलं देहमव्यक्तसंज्ञकम् ।
ममायमिति मन्वानस्तत्रैव परिवर्तते ॥ ८
पञ्चविंशो महानात्मा तस्यैवाप्रतिबोधनात् ।
विमलस्य विशुद्धस्य शुद्धाशुद्धनिषेवणात् ॥ ९
अशुद्ध एव शुद्धात्मा तादृग्भवति पार्थिव ।
अबुद्धसेवनाच्चापि बुद्धोऽप्यबुद्धतां व्रजेत् ॥ १०
तथैवाप्रतिबुद्धोऽपि विज्ञेयो नृपसत्तम ।
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु सेवनात्त्रिगुणो भवेत् ॥ ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादे चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह-**चंद्रमा इव** ॥ ३ ॥ योनिः साऽऽभासा मूलप्रकृतिः दशेन्द्रियाण्यन्तःकरणचतुष्टयं चापेक्ष्य सा पञ्चदशी सोमं अमृतं चिदात्मानं नित्यमेतद्धामेति सम्बन्धः ॥ ४ ॥ कलायां योनिभूतायां पञ्चदश्यामविद्यायां निमित्तभूतायां सत्यां अबुद्धिमान् मूढः विपर्यस्तमतिः जायते जन्म लभते । तस्य जायमानस्य पुरुषस्य धाम षोडशी कला तां आनन्दरूपां उपयुञ्जन्ति भूतानीति शेषः--एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति श्रुतेः । उपजायते एकवचनमार्षम्।युञ्जन्तीति प्रथमं सुप्तिचिदानन्दलेशं विषयसंपर्कजमुपजीव्य भूतानि संसरन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ चित्कला तु नैव संसरतीत्याह--**षोडशीति** । देवैरिन्द्रियैर्न उपयुज्यते पाल्यते किं तु देवानेव सत्तास्फूर्तिप्रदानेन उपयुनक्ति पालयति ॥ ६ ॥ एतां षोडशीं अक्षपयित्वा अविनाश्य जायते इदं सर्वं रज्जुमिव सर्पः । न तु पिण्डमिव घट उपमृद्य जायते तद्वत् । अक्षपणे हेतुमाह—**सा हीति** । यत्र कार्यं उत्पद्यते यत्र च लीयते सा प्रकृतिरिति प्रसिद्धं लोके न हि पिंडे घटो लीयते किं तु पिण्डस्य प्रकृतिभूतायां मृद्येव । न च कपालादिकार्यान्तरोत्पाद एव पूर्वकार्यप्रलय इति वाच्यम् । निराश्रयायाः कार्यधाराया अनुपपत्तेः। कुतः, घटशरावोदञ्चनादिषु पिण्डलोष्टपांसुपरमाणुषु व्यावृत्तेषु यन्मृदिति अनुस्यूतव्यवहारालम्बनं तत्कुसुमेभ्यः सूत्रमिव तेभ्यः पृथक्तदुदयलयस्थानं मन्तव्यम् । अतः प्रकृतित्वात्षोडश्याः क्षपणं न युज्यत इत्यर्थः । अस्य कार्यस्य । नान्वित एव दृष्टान्तात् षोडश्याः कार्याकारत्वं दुस्त्यजमित्याशंक्याह-**तत्क्षयादिति** । कार्यक्षयान्मुच्यत इत्यर्थः । सत्यं मृदोऽपि विकारविशेषत्वात् कतिपयविकारेष्वनुवृत्तावपि निर्विकारं रूपं न प्रत्यक्षं तथापि जलमेव तस्या निर्विकारं रूपम् एवं जलस्य तेजस्तेजसः सन्मात्रं यत्सर्वकार्येष्वनुस्यूतं तस्यैव सत्यत्वं वक्तव्यम् । इतरस्य विकारस्य मिथ्यात्वं 'वाचारंभणं विकारो नामधेयम्' इति श्रुतेः । सतोऽपि विकारत्वेऽनवस्थापत्तिः शून्याच्च जगदुत्पत्त्यसंभवस्य 'कथमसतः सज्जायेत' इति श्रुत्यैवाक्षिप्तत्वात् तस्मात्सर्वविकारक्षयेऽपि सन्मात्रं ब्रह्मास्तीति तद्भावापत्तिर्मोक्ष इति युक्तमुक्तं तत्क्षयान्मोक्ष उच्यत इति । गौडास्तु एवं तां क्षपयित्वेति पठन्ति । तदा पञ्चदशीपर एवायमृज्वर्थः श्लोकः ॥ ७ ॥ **तदेवेति** । यद्धामशब्देन मोक्षशब्देन चोच्यते तदेव आनन्दात्मकं वस्तु षोडशकलं चिदचित्संघातरूपं पिंडब्रह्माण्डात्मकम् । तथा च श्रुतिः--'आनदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति' । तत्रापि अव्यक्तसंज्ञकं पञ्चदशीकलया पूर्वं योनिशब्देनोक्ता तत्कार्यत्वात्तदभिन्नं देहं यो नरो ममायमिति देहे ममतां करोति । तत्रैव परिवर्तते देहेन न मुच्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥ यो मन्वानस्तमाह-**पञ्चविंश इति** । शुद्धाशुद्धनिषेवणात् क्रमेण शुद्धोऽशुद्धश्च भवतीति शेषः ॥ ९ ॥ तादृक् 'असंगो ह्ययं पुरुषः' इति श्रुतेरसंगोऽपि शुद्धात्मा अशुद्ध एव भवति । तत्र हेतुर्ममायमिति मन्वान इत्यनुवर्तते । तादृगित्यनेनैव वाऽर्थं हेतुरनुकृष्यते । अबुद्धः अज्ञः ॥ १० ॥ अप्रतिबुद्धः प्रतीपो बोधः प्रतिबोधस्तद्रहितो विपर्ययहीनः तथैवेत्यनेन तादृशजनसेवनात्तादृशो भवतीत्युक्तम् ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥

## ३०५-[१३२]

जनक उवाच ।

अक्षरक्षरयोरेष द्वयोः सम्बन्ध इष्यते।
स्त्रीपुंसोर्वापि भगवन्सम्बन्धस्तद्वदुच्यते ॥ १
ऋते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भं धारयत्युत।
ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तयेत्तथा ॥ २
अन्योन्यस्याभिसम्बन्धादन्योन्यगुणसंश्रयात
रूपं निर्वर्तयत्येतदेवं सर्वासु योनिषु ॥ ३
रत्यर्थमभिसम्बन्धादन्योन्यगुणसंश्रयात।
ऋतौ निर्वर्त्यते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ४
ये गुणाः पुरुषस्येह
ये च मातृगुणास्तथा।
अस्थि स्नायुश्च मज्जा च
जानीमः पितृतो गुणाः ॥ ५
त्वङ्मांसं शोणितं चेति मातृजान्यपि शुश्रुम
एवमेतद्द्विजश्रेष्ठ वेदे शास्त्रे च पठ्यते ॥ ६
प्रमाणं यत्स्ववेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते।
वेदशास्त्रद्वयं चैव प्रमाणं तत्सनातनम् ॥ ७
अन्योन्यगुणसंरोधादन्योन्यगुणसंश्रयात्।
एवमेवाभिसंबद्धौ नित्यं प्रकृतिपूरुषौ ॥ ८
पश्यामि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो न विद्यते।
अथवाऽनन्तरकृतं किञ्चिदेव निदर्शनम्।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा ९
मोक्षकामा वयं चापि कांक्षामो यदनामयम्
अदेहमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम् ॥ १०

वसिष्ठ उवाच ।

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम्।
एवमेतद्यथा चैतन्निगृह्णाति तथा भवान्॥ ११
धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः।
न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्वं नरेश्वर १२
यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः।
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा १३
भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा१४
ग्रन्थस्यार्थस्य पृष्टः संस्तादृशो वक्तुमर्हति।
यथा तत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति१५

---

३०५

तत्क्षयान्मोक्ष उच्यते इति प्रकृतिवियोगान्मोक्ष उक्तस्तं प्रकृतेः पुरुषतुल्यत्वेन निवृत्तिर्न संभवतीति मन्वान आक्षिपति—**अक्षरक्षरयोरिति** ॥ १ ॥ रूपं आकृतिम् ॥२॥ **ये गुणा इति**। द्रोणस्य मातुरभावेऽपि धृष्टद्युम्नस्य मातापित्रोर्द्वयोरप्यभावेऽपि त्वगस्त्यादिदर्शनेन व्याप्तिव्यभिचारो न शंक्यः 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः' इति स्मृतेर्दंपतीसाध्यस्य यज्ञस्य पर्जन्यादिद्वारा प्रजाहेतुत्वेन तत्राप्युभयसंबंधानपायात्। साधारणव्यवहारापेक्षया वा इयमुक्तिः ॥ ५ ॥ यत् वेदे शास्त्रे च प्रमाणत्वेन पठ्यते तद्वेदशास्त्रं प्रमाणमित्यर्थः। तस्माद्यद्वेदेषूक्तं तद्विद्वांस उपजीवन्तीति। तस्माद्ब्राह्मणो नावैदिकमभिधीयेत इति मैत्रायणीये वेदस्य प्रामाण्यं तदन्यस्याप्रामाण्यं श्रूयते। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं त इति च। ननु वेदशास्त्रस्य प्रामाण्यं स्वोक्त्यैव चेत् शाक्यग्रंथानामपि तथैव प्रामाण्यं स्यादित्याशंक्याह—**सनातनमिति**। वेदस्य हि दृष्टकर्तृस्मरणाभावात् अपौरुषेयतया नित्यत्वेनाप्रामाण्यशंकानास्पदत्वमस्ति न तु संभवद्भ्रमविप्रलंभानां शाक्यादिपुरुषाणां वाक्यस्येति भावः ॥ ७ ॥ एवं शास्त्रस्य प्रामाण्यमुक्त्वा तदर्थं विध्याद्यधिकारिणं भट्टाभिमतं चिदचिदात्मकं कर्तारमाह—**अन्योन्येति**। पुंसा प्रकृतेर्जाड्यं रुद्धं दुःखं चाश्रितम्। तया चास्य आनन्दादिकं रुद्धं चैतन्यादिकं चाश्रितम्। फलितमाह—**एवमिति**। चिदाचिद्ग्रन्थेर्दृढत्वान्न मोक्षसंभावनाऽप्यस्तीति भावः ॥ ८ ॥ अनन्तरकृतं साक्षात्कृतम्। निदर्शनं मोक्षे दृष्टान्तम्। प्रत्यक्षः प्रत्यक्षदर्शी ॥ ९ ॥ अनामयं निर्दुःखं यस्मात् अदेहं 'अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' इति श्रुतेः। अनीश्वरं ईशादपि परमित्यर्थः ॥ १० ॥ वेदप्रामाण्यमभ्युपेत्यापि वेदार्थं चिदाचितोस्त्रैकालिकं सम्बन्धं न जानासीत्याह—**यदेतदित्यादिना** ॥ ११ ॥ धारणं **वृथेति**। श्रुतिश्चात्र भवति—'यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति। यदीँशृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पंथाम्'इति। षच सेवायां सेवाविदं सखायं अन्तरात्मानं तित्याज त्यक्तवान् भागः फलांशोऽक्षरग्रहणजः यदीं यदेतत् अलकं अलीकं वृथेत्यर्थः। सुकृतस्य ब्रह्मणः पंथां पन्थानम् ॥ १३ ॥ **भारमिति**। श्रुतिश्च—

'स्थाणुरयं भारहारः किलाभू-
दधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा' इति ॥ १४ ॥

न यः संसत्सु कथयेद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान्
स कथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात्
निर्णयं चापि छिद्रात्मा न तं वक्ष्यति तत्त्वतः
सोपहासात्मतामेति यस्माच्चैवात्मवानपि ॥
तस्मात्त्वं श्रृणु राजेन्द्र यथैतदनुदृश्यते ।
याथातथ्येन सांख्येषु योगेषु च महात्मसु १८
यदेव योगाः पश्यन्ति
सांख्यैस्तदनुगम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च
यः पश्यति स बुद्धिमान् ॥ १९
त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः
पित्तं मज्जा च स्नायु च ।
अथ चैन्द्रियकं तात
तद्भवानिदमाह माम् ॥ २०
द्रव्याद्द्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियादिन्द्रियं तथा
देहाद्देहमवाप्नोति बीजाद्बीजं तथैव च ॥ २१
निरिन्द्रियस्याबीजस्य निर्द्रव्यस्याप्यदेहिनः
कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मनः
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव निविशन्ति च ।
एवं गुणाः प्रकृतितो जायन्ते निविशन्ति च
त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जास्थि स्नायु च
अष्टौ तान्यथ शुक्रेण जानीहि प्राकृतानि वै ॥
पुमांश्चैवापुमांश्चैव त्रैलिङ्ग्यं प्राकृतं स्मृतम् ।
न वा पुमान्पुमांश्चैव स लिंगीत्यभिधीयते २५

संसत्सु विद्वत्सभासु ॥ १६ ॥ छिद्रात्मा ज्ञानरिक्तचित्तभांडः । सोपहासेति पादपूरणार्थः सन्धिः ॥ १७ ॥ महात्मसु आत्मवित्सु ॥ १८ ॥ **यदेवेति** । फलतः साधनतश्च सांख्ययोगयोरैक्ये सति व्यवहारोपपादने निस्तात्पर्ये तयोर्विरोधो दृश्यमानोऽप्यकिंचित्कर इति भावः ॥१९॥

'अस्थि स्नायुश्च मज्जा च जानीमः पितृतो गुणाः ।
त्वङ्मांसं शोणितं चेति मातृजान्यपि शुश्रुम' इति ।

स्त्रीपुंसाभ्यामिव पुंप्रकृतिभ्यां शरीरं निर्वर्त्यत इत्युक्तं तदनुवदन्दृष्टान्तासिद्धिमाह—**त्वगित्यादिना** । ऐंद्रियकं इन्द्रियसमुदायश्चाधिकः ॥ २० ॥ सेन्द्रियकं धातुसप्तकं बीजाद्बीजान्तरमिव जायते । न ह्येकं कार्यं बीजद्वयोत्पत्तिकमिति दृष्टमस्तीत्याशयवानाह—**द्रव्यादिति** ॥ २१ ॥ दार्ष्टान्तिके पुंप्रकृत्योर्विषमस्वभावत्वात्सम्बन्धासंभवमाह—**निरिन्द्रियस्येति** । न तावत्पुंप्रकृत्योर्विषयविषयिभावलक्षणः सम्बन्धः । पुंसो निरिन्द्रियत्वात् प्रकृतेस्तुच्छत्वात् । नापि बीजांकुरवज्जन्यजनकभावः केवलत्वेन पुंसो बीजशक्तिशून्यत्वात् प्रकृतेरकार्यत्वाच्च नापि कुलालघटवत् पुंसोऽद्वितीयत्वेन उपादानान्तराभावात् । तत्कल्पनेऽनवस्थापत्तेश्च नापि अयस्कान्तमणिलोहवत्तयोः सम्बन्धः उभयोरप्यमूर्तत्वात् मूर्तिमतोर्हि द्वयोरुभयकर्मजोऽन्यतरकर्मजो वा सम्बन्धो युज्यते न त्वमूर्तयोः । नास्ति देही प्रतिसम्बन्धी यस्येति न देही च समासद्वयेनार्थद्वयमुन्नेयम् । नापि पराभिमतः समवायस्तादात्म्यं वा निर्गुणे गुणसंबंधासंभवात् । न ह्यस्पर्शे नभसि शीतोष्णादिस्पर्शवत्त्वं वक्तुं शक्यमेवं निरिन्द्रियस्येत्यादि हेतुपञ्चकं पुंप्रकृत्योः सम्बन्धासंभवार्थमुक्तम् । वार्तिके तु—

'निःसंगस्य ससंगेन कूटस्थस्य विकारिणा ।
आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते ।'

इत्येवोक्तिम् । तत्रासंगत्वकूटस्थत्वे प्रमाध्ये निरिंद्रियत्वादि हेतुचतुष्टयं तु बहुवादिसंमतमिति युक्ततरम् ॥ २२ ॥ कथं तर्हि एषा सृष्टिरत आह—**गुणा इति** । गुणाः खादयः गुणेषु त्रिगुणात्मिकायां मायायाम् ॥ २३ ॥ कथमसहायायास्तस्या जगज्जनकत्वमित्याशंक्य दृष्टान्तेन साधयति—**त्वगिति** । यथा द्रोणशरीरे मातरं विनाऽपि एकेनैव शुक्रेण मेद आदिवत्त्वगादिकमपि जातम् । एवं एकयैव दर्पणवत्परप्रतिबिम्बग्रहणशीलया कृत्स्नो जगज्जीवात्मा प्रपंचो जायते इति श्लोकद्वयार्थः ॥ २४ ॥ पुमान् अविद्यायामन्तःकरणे वा चित्प्रतिबिम्बो जीवः । अपुमान्वियदादिः त्रैलिंग्यं त्रीणि आत्मनो लिङ्गानि गमकानि प्रमातृप्रमाणप्रमेयानि एतैर्हि लिङ्गैरेतेषां साधकश्चिदात्मा गम्यते । स्वार्थे ष्यञ् । पुमानपुमानिति आभासोपाध्योः पृथग्ग्रहणम् । त्रैलिंग्ये तु तयोर्वैशिष्ट्यं विवक्षितम् । तथाहि अन्तःकरणविशिष्टं आभासचैतन्यं प्रमाता अन्तःकरणवृत्तिविशिष्टं प्रमाणं घटाद्यवच्छिन्नं प्रमेयम् इति प्रसिद्धम् । ननु प्रमातुर्योग्यतया घट एव प्रमेयं न तु घटावच्छिन्नमाभासचैतन्यं घटज्ञानाख्यम् । सत्यम् । प्रमाकरणप्रमाणस्य हि फलं प्रमेयम् । तच्चोक्तविधा प्रमैव । तत्सम्बन्धात्तु घटादिरपि प्रमेयम् । अतो मुख्यं प्रमेयं चैतन्यमेव । अज्ञानेन तस्यैवावृतत्वात् । जडे घटादौ आवरणकृत्याभावाच्च । घटाद्यनुभवस्यैव हि पुरुषार्थत्वमतस्तस्यैवावृतत्वमनावृतत्वं वा वाच्यं न घटादेरित्यास्तां तावत् । लिङ्गानां प्रमात्रादीनां प्राकृतत्वेऽपि लिङ्गी न प्राकृत इत्याह—**न वेति** । लिङ्गी पुमानिति अपुमानिति वा नाभिधीयत इति योजना । जीवजगतोरन्य इत्यर्थः ॥२५॥

अलिंगात्प्रकृतिर्लिङ्गैरुपालभ्यति सात्मजैः
यथा पुष्पफलैर्नित्यमृतवो मूर्तयस्तथा ॥ २६

एवमप्यनुमानेन ह्यलिंगमुपलभ्यते ।
पञ्चविंशतिमस्तात लिङ्गेषु नियतात्मकः २७

अनादिनिधनोऽनन्तः सर्वदर्शी निरामयः ।
केवलं त्वभिमानित्वाद्गुणेषु गुण उच्यते॥ २८

गुणा गुणवतः सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणाः ।
तस्मादेवं विजानन्ति ये जना गुणदर्शिनः२९

यदा त्वेष गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते ।
तदा स गुणहान्यै तं परमेवानुपश्यति ॥ ३०

यत्तद्बुद्धेः परं प्राहुः सांख्ययोगाश्च सर्वशः ।
बुद्ध्यमानं महाप्राज्ञमबुद्धपरिवर्जनात् ॥ ३१

अप्रबुद्धमथाव्यक्तमगुणं प्राहुरीश्वरम् ।
निर्गुणं चेश्वरं नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥ ३२

प्रकृतेश्च गुणानां च पञ्चविंशतिकं बुधाः ।
सांख्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमैषिणः ३३

ननु सम्बन्धाभावे प्रकृतिपुरुषयोः कथं लिङ्गलिङ्गिभाव इत्याशंक्याह--**अलिङ्गादिति** । ल्यब्लोपे पञ्चमी । अलिङ्गं पुरुषं प्राप्य सा प्रकृतिरात्मजैर्लिङ्गैर्महदादिभिः कार्यैर्गमकैरुपालभ्यति उपलभ्यते अमूर्तयः ऋतवो यथा फलादिव तद्वच्चैतन्यप्रकाशितैर्महदादिभिस्तत्कारणभूता प्रकृतिरनुमीयते । आलोकप्रकाशितैः पुष्पादिभिर्ऋतव इवेत्यर्थः । अलिङ्गेति पाठे स्पष्टोऽर्थः ॥ २६ ॥ यथा प्रकृतितत्कार्ययोर्लिङ्गिलिङ्गभाव एवमात्मानात्मनोरपीत्याह-**एवमिति** । दृश्यप्रकाशनेन दृगात्मापि सूर्यवद्दृश्यादन्योऽनुमेय इत्यर्थः । अलिङ्गं शुद्धचिन्मात्रं लिङ्गीत्यर्थः । तदेव पञ्चविंशतितमः तकारलोप आर्षः । लिङ्गेषु नियतात्मक इति लिङ्गलिङ्गिनोर्व्याप्तिर्दर्शिता । ननु शब्दान्तरेण जडाजडयोरयं विषयविषयिभावसम्बन्ध एवोक्तः । न यो हि विषयी स विषयस्य शुभाशुभत्वाभ्यां हर्षविषादादिविकारवान् भवति न तु लिङ्गी । न ह्यालोकः प्रकाश्याभ्यां मेध्यामेध्यवस्तुभ्यां विक्रियत इति तयोर्महान् भेद इति भावः ॥ २७ ॥ अनादीत्यनेन अलिङ्गस्य प्रकाशस्य तार्किकाद्यभिमतमनित्यत्वं निरस्तम् घटज्ञानं जातं पटज्ञानं नष्टमित्यनुभवस्य वृत्तिविषयत्वात् । अत एव मनोवृत्तिषु ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति धीशब्दितं वृत्तिज्ञानमपि पठ्यते । कालापरिच्छेदमुक्त्वा देशापरिच्छेदमाहानन्त इति। प्रकाशत्वादेव सर्वदर्शी निरामय इति स्वगतपरिच्छेदं गुणगुणिभावादिरूपं व्यावर्तयति । कथं तर्ह्यस्य गुणसम्बन्ध इत्यत आह-**केवलमिति** । वास्तवस्याभिमाननिमित्तस्याभावेऽपि शुक्तिरजते ममेदं रजतमित्यभिमानवत् गुणेषु देहाद्याकारेषु अहमिदं देहादीत्याभिमानित्वादयं गुणः देहादिसंघात एवात्मेत्युच्यते । एतेन लिङ्गलिङ्गिनोः सम्बन्धः केवलमाध्यासिक इति सिद्धम् ॥ २८ ॥ ननु निर्गुणमपि गुणादिकं गुणवता द्रव्येण सह सम्बध्यते एवं निर्गुणोऽप्यात्मा गुणवत्या प्रकृत्या संबध्यतामित्यत आह--**गुणा इति** । गुणाः संयोगादयः सम्बन्धा गुणवत एव सन्ति न त्वगुणस्य गुणिना सह संभवन्तीत्यर्थः । नन्वस्ति तादृशः समवायाख्यः सम्बन्ध इति चेत् । किं आत्मनि प्रकृतेः समवाय उत विपरीतम् । नाद्यः । अनिर्मोक्षापत्तेः । न ह्याश्रयनाशमन्तरेणाश्रितनाशोऽस्ति । नान्त्यः । रूपादीनामाश्रयतः पृथगदर्शनेन प्रकृतिनाशे आत्मनोऽपि नाशापत्तेः । अथ कारणनाशेऽपि यथा काञ्चित्कालं कार्यमस्ति । यथा वा प्रलये सर्वव्यक्तिनाशेऽपि जातिरस्ति । एवं प्रकृतिनाशेप्यात्मा न नश्यतीति विवक्षेत कार्यकारणयोर्जातिव्यक्त्योर्वा वन्ह्यौष्ण्यवद्वास्तवतादात्म्याभ्युपगमे ईदृग्विवक्षाया एवासिद्धेः । यया त्वनुपपत्त्या एवं विवक्ष्यते सैव तत्तादात्म्यस्य भ्रमत्वमाक्षिपतीति काणकमेलकस्त्वं न पश्यसीत्याश्चर्यम् । तादात्म्यस्य भ्रमत्वे तु उभयमप्युपपन्नम् । अविद्यानाशेऽपि तत्कार्यस्य देहादेः कञ्चित्कालमनुवृत्तिः संभवतीति जीवन्मुक्तिसिद्धिः । विदेहमुक्तौ च सदात्ममात्रावशेष इति । तस्माद्युक्तमुक्तं गुणा गुणवतः सन्तीति । तेन रज्जुः सर्पदण्डधाराऽभूच्छिद्राद्यात्मनेव सद्वस्तु घटपटनूतनपुराणातीतानागतश्वेतपीतशीतोष्णाद्यात्मना भाति । न तु क्वचित्किञ्चित्समवायसम्बन्धेनोत्पद्यते । समवायस्यैवानवस्थादोषेणाकरे निरस्तत्वादिति सिद्धम् । अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति--**तस्मादिति** ॥ २९ ॥ **यदा त्वेष इति** । अभिमन्यते हिनस्ति कामादीन् जयतीत्यर्थः । यदि वा एनमभिमंस्ये कनीयोऽनं करिष्य इत्यभिपूर्वस्य मन्यतेर्हिंसार्थत्वदर्शनात् । यदाऽन्विष्येति गौडपाठे अन्विष्य श्रवणमननाभ्यामालोच्य अभिमन्यते जानातीत्यर्थः । गुणहान्या देहाद्यात्मत्वभ्रमत्यागेन ॥ ३० ॥ किं तत्परमित्यत आह--**यत्तदिति** । सर्वशः सर्वेऽपि तान्त्रिकाः । अबुद्धस्य जडस्याहङ्कारादेः परित्यागाद्बुध्यमानं न त्वहंतया इदंतया वा ॥ ३१ ॥ अत एवाप्रबुद्धं अज्ञातं अगुणं गुणेभ्योऽन्यं निर्गुणं गुणसम्बन्धशून्यम् । ईश्वरं अन्तर्यामिणम् । अधिष्ठातारं सर्वकार्यनिर्मातारम् ॥ ३२ ॥ गुणानां महादादीनां प्रकृतिं गुणांश्चापेक्ष्य पञ्चविंशकमित्यर्थः ॥ ३३ ॥

यदा प्रबुद्धा ह्यव्यक्तमवस्थाजन्मभीरवः ।
बुध्यमानं प्रबुध्यन्ति गमयन्ति समं तदा ३४
एतन्निदर्शनं सम्यगसम्यगनिदर्शनम् ।
बुध्यमाना प्रबुद्धानां पृथक्पृथगरिन्दम ॥ ३५
परस्परेणैतदुक्तं क्षराक्षरनिदर्शनम् ।
एकत्वमक्षरं प्राहुर्नानात्वं क्षरमुच्यते ॥ ३६
पञ्चविंशतिनिष्ठोऽयं यदा सम्यक् प्रवर्तते ।
एकत्वं दर्शनं चास्य नानात्वं चाप्यदर्शनम् ।
तत्त्वनिस्तत्त्वयोरेतत्पृथगेव निदर्शनम् ।
पञ्चविंशतिसर्गं तु तत्त्वमाहुर्मनीषिणः ३८
निस्तत्त्वं पञ्चविंशस्य परमाहुर्निदर्शनम् ।
सर्गस्य वर्गमाचारं तत्त्वं तत्त्वात्सनातनम् ३९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादे पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥

## ३०६–[१३३]

जनक उवाच ।

नानात्वैकत्वमित्युक्तं त्वयैतदृषिसत्तम । पश्याम्येतद्धि संदिग्धमेतयोर्वै निदर्शनम् ॥ १

प्रबुद्धाः ज्ञानवन्तः अवस्थाः बाल्याद्या जाग्रदाद्याश्च बुद्ध्यमानं कर्तरि शानच् प्रमातारमेव प्रबुद्ध्यन्ति । प्रबोधेनैव च तं समं ब्रह्म गमयन्ति । प्रत्यगात्मैवाज्ञातो जीवो ज्ञातो ब्रह्मेत्यर्थः । यथोक्तम्—'अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात्प्राक्प्रमातृत्वमात्मनः । अन्विष्टः स्यात्प्रमातैव पाप्मदोषादिवर्जितः' इति । शमामिति पाठेऽपि शमप्राप्यं ब्रह्मैव शमशब्दार्थः ॥ ३४ ॥ **एतदिति** । एतज्जीवेश्वरभेददर्शनं बुद्ध्यमानेन सम्यगिति पृथक् उक्तमित्युत्तरादपकृष्यते एतन्निदर्शनं असम्यक् अनिर्दशनं अशास्त्रम् । अनुदर्शनमिति पाठे अमुख्यं दर्शनं इति पृथक् अप्रबुद्धेनोक्तमिति योजना ॥ ३५ ॥ एतत् क्षराक्षरनिदर्शनं जडाजडवस्तुतत्त्वप्रतिपादनपरं शास्त्रं परस्परेण स्वमतं सम्यक्परमसम्यगित्युक्तम् इति वादिनां विभ्रममुक्त्वा स्वसंमतं तत्त्वमाह—**एकत्वमिति** । एकत्वे हि विनाशहेतोर्द्वितीयस्याभावादक्षरत्वमविनाशित्वं युक्तम् । नानात्वं तु क्षरमेव । तथा च प्रयोगः—प्रधानाद्यनित्यं व्यावृत्तत्वात् घटादिवदिति ॥ ३६ ॥ एतच्चानुभववेद्यमित्याह—**पञ्चविंशतीति** । यदायं चिदाभाससहितेषु पंचविंशतितत्त्वेषु रज्जूरगकल्पेषु निष्ठां सम्यगवेक्षणं कर्तुं प्रवर्तते तदा तेषां बाधेन षड्विंशमात्मानं साक्षात्करोति । तदैव चैकत्वमेव शास्त्रं नानात्वमशास्त्रमिति निश्चिनोतीत्यर्थः तथाचात्मदर्शनफलं भिद्यन्ते सर्वसंशया इति श्रूयते ॥ ३७ ॥ ननु परे स्वशास्त्रमर्यादया योगेन आत्मानं जानन्तोऽपि कुत एवं न निश्चिन्वन्तीत्याशंक्याह—**तत्त्वेति** । तत्त्वं जन्यं निस्तत्त्वं तदन्यदजन्यम् । तनु विस्तारेऽस्मात्कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वन इतिछांदसस्त्वन्*। निदर्शनं अनुभवः येऽपि कर्तारमात्मानमाहुस्तेऽपि समाधौ बुद्ध्याद्यभावे आत्मनि कर्तृत्वं न पश्यन्तीति तत्र कर्तृत्वादिकं बुद्ध्यादियोगश्च दृश्यमानोऽपि कादाचित्कत्वाद्रज्जूरगवदसन्नेव । न हि धर्मान्निकृष्टो धर्मी क्वचित्केनचिदुपलब्धोऽस्ति । नहि दाहप्रकाशाभ्यां वियुक्तोऽपि वन्हिर्गोचरीभवति । तस्मात्तेऽनुभवविरुद्धं वदन्तीति भ्रान्ता एवेति भावः । तत्त्वनिस्तत्त्वशब्दौ व्याचष्टे —**पञ्चविंशतीति** ॥ ३८ ॥ पञ्चविंशस्य पञ्चविंशात् परं निदर्शनं अनुभूयमानान्निकृष्टं अनुभवं निस्तत्त्वमाहुः तमेव विशिनष्टि सर्गस्य पञ्चविंशत्यात्मकस्य वर्गस्येति पाठेऽप्ययमेवार्थः । वर्गप्रतिवर्गमित्यध्याहृत्य योज्यम् । वर्ग्यमिति पाठे वर्गे वर्गमर्हतीति वर्ग्यं आचारम् । आसमन्ताच्चार उपलब्धिः दृश्यस्य प्रतिविषयनियतताया उपलब्धिः स षड्विंश इत्यर्थः तत्र वर्गाः पञ्च । यथा पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चभूतानि पञ्च शब्दाद्या विषयाः मनोबुद्ध्यहंकारप्रकृतिचिदाभासा इति पञ्च प्रत्यञ्चः तत्त्वं तस्य भावस्तत्त्वं यथार्थं सत्यमिति यावत् सत्यादपि सत्यमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यं सत्यस्य सत्यमनु यत्र युज्यते ।' इत्यादि प्राणशब्दितस्य कृत्स्नप्रपञ्चस्य व्यवहारतः सत्यस्य पारमार्थिकं सत्यं ब्रह्म प्रतिभासतः सत्यस्य रजतस्य शुक्तिरिवेतिप्रतिपादयति । यतस्तत्त्वादपि तत्त्वं अत एव सनातनं सर्वदैकरूपं न तु कदाचित्सत्यं कदाचिदसत्यमित्यर्थः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥

३०६

यदुक्तमेकत्वमक्षरं नानात्वं क्षरमिति तत्रैकत्वे बन्धमोक्षव्यवस्थानुपपत्तिः । नानात्वे त्वात्मनाशप्रसंग इति एतयोः पक्षयोर्निदर्शनं तत्त्वावधारणं संदिग्धम् ॥ १ ॥

*नकारलोपोऽपि छान्दस इति बोध्यम् ।

तथाऽबुद्धप्रबुद्धाभ्यां बुद्ध्यमानस्य चानघ ।
स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमेतन्न संशयः २
अक्षरक्षरयोरुक्तं त्वया यदपि कारणम् ।
तदप्यस्थिरबुद्धित्वात्प्रनष्टमिव मेऽनघ ॥ ३
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानात्वैकत्वदर्शनम् ।
बुद्धं चाप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ॥ ४
विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं क्षरमेव च ।
सांख्यं योगं च कार्त्स्न्येन पृथक्चैवापृथक्च ह ५

वसिष्ठ उवाच ।

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि ।
योगकृत्यं महाराज पृथगेव शृणुष्व मे ॥ ६
योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम् ।
तच्चापि द्विविधं ध्यानमाहुर्विद्याविदो जनाः
एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च ।
प्राणायामस्तु सगुणो निर्गुणो मनसस्तथा ८
मूत्रोत्सर्गपुरीषे च भोजने च नराधिप ।
त्रिकालं नाभियुञ्जीत शेषं युञ्जीत तत्परः ॥ ९
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा शुचिः ।
दशद्वादशभिर्वापि चतुर्विंशात्परं ततः १०

---

यदुक्तं पञ्चविंशतिनिष्ठानुभवबलेनैव तत्त्वं निश्चिनोतीति तत्राह—**तथेति** । अबुद्धेति च्छेदः । बुध्यमानस्यात्मवस्तुनस्तत्त्वं न पश्यामीत्यत्र न संशय इति योजना । अनुभवस्य दुःसाध्यत्वान्न संदेहानिवर्तकत्वमतो युक्त्यैव तत्त्वं त्वया उपपादनयीमिति भावः ॥ २ ॥ यच्च अक्षरत्वकारणं एकत्वं क्षरत्वकारणं च नानात्वमुक्तं तदपि अस्थिरबुद्धित्वाद्विकल्पग्रस्तत्वात् । तत्रैकत्वं त्रिविधभेदशून्यत्वं चेत् हेतोः स्वरूपासिद्धिः । न हि क्वचिदीदृशमेकत्वं प्रसिद्धमस्ति एकव्यक्तिमात्रत्वं चेत् । आकाशस्याप्यक्षरत्वापत्तिस्तथा च सांख्यशास्त्रविरोधः । नानात्वमपि संहतत्वं चेत् । प्रधानपरमाण्वादीनामपि क्षरत्वापत्तिः । भिन्नत्वमात्रं चेत्सांख्यात्मनामपि क्षरत्वापत्तिरिति तथा चात्र न मम तत्त्वावधारणे सामर्थ्यमस्तीति भावः ॥ ३ ॥ तत्तस्माद्धेतोः बुद्धं ज्ञं अप्रतिबुद्धं प्रधानादि बुध्यमानं चिदचिदात्मानं जीवम् ॥४॥ विद्या ज्ञाधिगमः अविद्या ज्ञावरणं अक्षरं नित्यं क्षरमनित्यं सांख्यं वस्तुतत्त्वविवेकः । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः पृथक्भेदः अपृथगभेदः भेदाभेदश्च नानात्वैकत्वदर्शनमित्यनेन प्रथममुक्तः ॥ ५ ॥ हन्तेत्यालोचने प्रधानभूतयोः सांख्ययोगयोरेव निरूपणप्रसंगात् प्रश्नान्तराणामप्युत्तरं निरूपितं भवतीत्याशयेनाह—**योगेति** ॥ ६ ॥ योगानां योगिनां योगे योगशास्त्रे कृत्यं कर्तव्यमावश्यकम् । ध्यानमेव परं बलं अविद्याजये सामर्थ्यम् । ध्यानमपि द्विविधं भावनाप्रणिधानभेदेन द्विप्रकारम् । विविधामिति पाठेऽप्ययमेवार्थः ॥७॥ तत्र ध्यानस्य साधारणं लक्षणं मनस एकाग्रतेति । तथा प्राणायामोऽपि योगिनां योगकृत्यं बलम् । तस्य द्वैविध्यमाह—सगुणः सगर्भः निर्गुणो निर्गर्भः तयोर्मनसः सम्बन्धी प्रथमः मानस इति स्पष्टार्थः पाठः । तत्र भावना वस्तुतत्त्वनिरपेक्षा यथा योषितमग्निं ध्यायीतेत्यनग्नौ योषायामग्निदृष्टिकरणं यथा वाऽसतोऽपि कामिन्यादेर्विषयस्य भावनं तत्फलं चानित्यम् । यथोक्तम्—

'भावनाजं फलं यच्च यच्च स्यात्कर्मणः फलम् ।
न तत्स्थास्न्विति मन्तव्यं पण्यस्त्रीसंगतं यथा' इति ॥

एवं साम्बपीताम्बरादिमूर्तिभावनयाऽपि कीटभृंगन्यायेन प्राप्यं तत्सारूप्यमप्यस्थायीति ज्ञेयम् । प्रणिधानं तु वस्तुतत्त्वसापेक्षम् । यथा चक्षुषा रत्नगतसूक्ष्मविशेषे स्वेनागृहीते परेणोपदिष्टे सति तद्ग्रहणाय तस्यैव चक्षुषः प्रणिधानं तत्रैव विषयेऽत्यादरेण नियोजनं क्रियते । तथा मनसा गृह्यमाणे प्रतीचि श्रुत्या निर्विशेषचिन्मात्रोऽसीत्युपदिष्टे सति तद्ग्रहणाय तस्यैव मनसो गुरूक्तयुक्त्या प्रणिधाने प्रवर्तिते तद्बलाच्च तावुभौ वस्तुतत्त्वमवगच्छतः । तत्रापि भावनायां फलभेदो दक्षेण सूचितः—

'चतुर्णां सन्निधानेन यत्फलं तदशाश्वतम् ।
द्वयोस्तु सन्निधानेन शाश्वतं प्राप्यते फलम्' इति ॥

चतुर्णां आत्ममनःशरीरविषयाणाम् । द्वयोरात्ममनसोः देहसंगेन सांबादीन् भावयन् पुनरावर्तते देहासंगेन भावयंस्तु ध्येयसारूप्यं प्राप्य क्रमेण कैवल्यं प्राप्नोति उभयथाऽपि भावनाफलस्यास्थायित्वमुक्तमिति नोदाहृतं वार्तिकं विरुध्यते । प्राणायामोऽपि वायुसंहितायामुक्तः—

'जपध्यानं विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ।
अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः' ।

जपो मनसा प्रसख्यानम् नन्दिपुराणे—

'जाप्येन तु जपं कुर्यादविलम्बितमद्रुतम् ।
मनसैव प्रसंख्यानं प्राणायामविधौ सदा' ॥

जाप्येन प्रणवगायत्र्यादिना मन्त्रेण मानसो जप इति सगुणस्यैव प्राणायामस्य मानस इति विशेषणं युज्यते न त्वगुणस्य । विस्तरस्तु योगचिंतामणिप्रभृतिषु संग्रहग्रन्थेषु द्रष्टव्यः ॥ ८ ॥ शेषं कालम् । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । मूत्रादिव्यतिरिक्ते सर्वस्मिन्काले योगमनुतिष्ठेदित्यर्थः ॥९॥ तत्र योगाङ्गेषु प्राणायाम उक्तस्तेनैव ततः प्राचीनानि यमनियमासनान्याक्षिप्तानि । अथ प्रत्याहारमाह—**इन्द्रिया-**

सञ्चोदनाभिर्मतिमानात्मानं चोदयेदथ।
तिष्ठन्तमजरं तं तु यत्तदुक्तं मनीषिभिः ११
तैश्चात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुश्रुम।
व्रतं ह्यहीनमनसो नान्यथेति विनिश्चयः १२
विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः
पूर्वरात्रे पररात्रे धारयीत मनोऽऽत्मनि १३
स्थिरीकृत्येन्द्रियग्रामं मनसा मिथिलेश्वर।
मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पाषाण इव निश्चलः
स्थाणुवच्चाप्यकम्पः स्याद्गिरिवच्चापि निश्चलः
बुद्ध्या विधिविधानज्ञास्तदा युक्तं प्रचक्षते १५
न शृणोति न चाघ्राति न रस्यति न पश्यति
न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः॥
न चाभिमन्यते किंचिन्न च बुध्यति काष्ठवत्
तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिणः॥ १७
निर्वाते हि यथा दीप्यन्दीपस्तद्वत्प्रकाशते।
निर्लिङ्गोऽविचलश्चोर्ध्वं न तिर्यग्गतिमाप्नुयात्
तदा तमनुपश्येत यस्मिन्दृष्टे तु कथ्यते।
हृदयस्थोऽन्तरात्मेति ज्ञेयो ज्ञस्तात मद्विधैः॥

विधूम इव सप्तार्चि-
रादित्य इव रश्मिमान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे
दृश्यतेऽऽत्मा तथाऽऽत्मनि॥ २०

---

**णीति**। इन्द्रियार्थेभ्यः शब्दादिभ्यः मनसा निवर्त्येति मुख्यं प्रत्याहारं 'त्रिरुन्नतं प्राप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निरुध्य' इति श्रुत्युक्तमुक्त्वा हठसाध्यं प्रत्याहारादिकमाह—**दशेति**। दशयुक्ताभिर्द्वादशाभिर्द्वाविंशतिसंख्याभिः संचोदनाभिश्चित्ताश्वस्य प्रतोदस्थानीयाभिः प्रेरणाभिर्मतिमानात्मानं जीवं चतुर्विंशादज्ञानात् प्रकृतिसंज्ञात्परं पञ्चविंशं प्रतिगन्तुं चोदयेत्प्रेरयेत्। तत्राष्टादशसु स्थानेषु वायोः प्रत्याहरणं याज्ञवल्क्येनोक्तम्—

'अष्टादशसु यद्वायोर्मर्मस्थानेषु धारणम्।
स्थानात्स्थानात्समाकृष्य प्रत्याहारो निगद्यते'॥

इत्युपक्रम्य मर्मस्थानानि तेषामन्तरं चोक्त्वाह-

'संपूर्य कुंभवद्वायुमंगुष्ठान्मूर्ध्नि मध्यतः।
धारयत्यनिलं बुद्ध्या प्राणायामः प्रचोदितः॥
व्योमरन्ध्रात्समाकृष्य ललाटे धारयेत्पुनः।
ललाटाद्वायुमाकृष्य भ्रुवोर्मध्ये निरोधयेत्॥
भ्रूमध्याद्वायुमाकृष्य नेत्रस्थाने निरोधयेत्।
नेत्राद्वायुं समाकृष्य नासामूले निरोधयेत्॥
नासामूलात्तु जिह्वाया मूले प्राणं निरोधयेत्।
जिह्वामूलात्कंठकूपे ततो वायुं निरोधयेत्॥
कंठकूपात्तु हृन्मध्ये हृन्मध्यान्नाभिमध्यमे।
नाभिमध्यात्पुनर्मेढ्रे मेढ्राद्वन्ह्यालये ततः॥
देहमध्याद्गुदे गार्गि गुदाद्वै ऊरुमूलके।
ऊरुमध्यात्तयोर्मध्ये तस्माज्जान्वोर्निरोधयेत्॥
चितिमूले ततस्तस्माज्जंघयोर्मध्यमे तथा।
जंघां ततः समाकृष्य वायुं गुल्फे निरोधयेत्॥
गुल्फादंगुष्ठयोर्गार्गि पादयोस्तं निरोधयेत्
स्थानात्स्थानं समाकृष्य यस्त्वेवं धारयेद्धिया॥
सर्वपापविशुद्धात्मा जीवेदाचंद्रतारकम्।
एतत्तु योगसिद्ध्यर्थमगस्त्येनापि कीर्तितम्॥
प्रत्याहारेषु सर्वेषु प्रशस्तमिति योगिभिः' इति।

एवमष्टादशप्रत्याहारचोदनाः धारणाध्यानसमाधिसंज्ञास्तिस्रः ततः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिसंज्ञा द्वाविंशी चोदना। ततोऽपि संप्रेरितो जीवो नदीसमुद्रन्यायेन निर्विशेषचिन्मात्रतां प्रतिपद्यते सार्धः॥ १०॥ तं योगिनं तिष्ठन्तं जीवन्मुक्तं अजरं जराहीनं मनीषिभिर्योगिभिर्यत् यस्मात्तच्छब्देनोक्तम्—'तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति' इतिश्रुतेर्ब्रह्मत्वेन निर्दिष्टमतस्तद्भावापत्तये आत्मानं प्रत्यञ्चं नरः चतुर्विंशात्परं प्रति गन्तुं चोदयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः॥११ तैर्द्वाविंशत्या प्रेरणैः अहीनं कामादिभिरनास्कन्दितं मनो यस्य तस्यैव व्रतं योगाख्यं योग्यमिति शेषः॥१२॥संगेभ्यः अहंकर्तृत्वाद्यभिमानेभ्यः स्रगादिभ्यो वा॥ १३॥ पाषाणस्थाणुगिरिदृष्टान्ता निश्चलत्वोत्कर्षार्थाः॥ १४॥ विधेः शास्त्रस्य विधानं तात्पर्यं तज्जानन्तो विधिविधानज्ञाः बुद्ध्या स्वानुभवेनैव तदा आत्मप्राप्त्यवस्थायां युक्तं योगिनं प्रचक्षते न शृणोतीत्यादिना तदनुभवं वर्णयन्तीत्यर्थः॥१५॥ प्रकृतिं स्वस्य शुद्धं स्वरूपम्॥ १७॥ निर्लिंगो बुद्ध्यादिहीनः। अविचलो व्यापकत्वात् ऊर्ध्वं तिर्यगधो वा गतिं न प्राप्नुयात् तथा च श्रुतिः—'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते' इति॥ १८॥ **तदेति**। अन्तरात्मा अन्तर्यामी ईश्वरो हृदयस्थः अहमेव ब्रह्मेति यदा कथ्यतेऽनुभवबलात्तदैवात्मानमनुपश्यतेति ज्ञेयम्। नान्यथा त्वंपदार्थमात्रसाक्षात्कारेणात्मदर्शी भवतीत्यर्थः। न कथ्यत इति पाठे ज्ञो ज्ञेय इति यदा न कथ्यते सर्ववृत्तिनिरोधादात्मनश्च प्रत्यक्त्वेनाज्ञेयत्वात्तदात्मज्ञ इत्युच्यत इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'यदि मन्यसे सुवेदेति दहमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्' इति। सुवेद सम्यग्जानामि दहमल्पम्।

'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

इति च॥ १९॥ विधूम इत्यादिना शुद्धप्रकाशात्मत्वमुक्तम्॥ २०॥

ये पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ह्ययोनिममृतात्मकम् ॥
तदेवाहुरणुभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम् ।
तत्तत्त्वं सर्वभूतेषु ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥ २२
बुद्धिद्रव्येण दृश्येत मनोदीपेन लोककृत् ।
महतस्तमसस्तात पारे तिष्ठन्न तामसः ॥ २३
स तमोनुद इत्युक्तः सर्वज्ञैर्वेदपारगैः ।
विमलो वितमस्कश्च निर्लिङ्गोऽलिङ्गसंज्ञितः
योग एष हि योगानां किमन्यद्योगलक्षणम्
एवं पश्यं प्रपश्यन्ति आत्मानमजरं परम् २५
योगदर्शनमेतावदुक्तं ते तत्त्वतो मया ।
सांख्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसंख्यानदर्शनम् ॥
अव्यक्तमाहुः प्रकृतिं परां प्रकृतिवादिनः ।
तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम २७
अहङ्कारस्तु महतस्तृतीयमिति नः श्रुतम् ।
पञ्चभूतान्यहङ्कारादाहुः सांख्यात्मदर्शिनः ॥

एताः प्रकृतयश्चाष्टौ विकाराश्चापि षोडश ।
पञ्च चैव विशेषा वै तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥
एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः ।
सांख्ये विधिविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे रताः
यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते ।
लीयन्ते प्रतिलोमानि सृज्यन्ते चान्तरात्मना
अनुलोमेन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः ।
गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ३२
सर्गप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम ।
एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च यदाऽसृजत्
एवमेव च राजेन्द्र विज्ञेयं ज्ञानकोविदैः ।
अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम् ३४
एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरर्थतत्त्ववान् ।
एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात् ३५
बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्
तच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चविंशोऽधितिष्ठति ॥

---

ब्रह्मयोनिस्था ब्रह्मावगमहेतुशास्त्रनिष्ठाः ॥ २१ ॥ न दृश्यते चेत्कुतस्तदुपलब्धिरित्यत आह--**बुद्धीति** । बुद्धिद्रव्येण धीधनेन पुंसा अतामसः ईश्वरात्परः॥ २३ ॥ स ज्ञातः संस्तमोनुदः संसारच्छित् निर्लिंगः सूत्रात्मनोऽप्यन्यः । अलिंगेति च्छेदः । नास्ति लिंगं गमकं यस्य वाङ्मनसातीतत्वात् । निरुपाधिब्रह्मसंज्ञित इत्यर्थः । ॥ २४ ॥योगमुपसंहरति--**योग एष इति** । पश्यं द्रष्टारं प्रपश्यन्ति योगा इति शेषः ॥ २५ ॥ परिसंख्यानं परिवर्जनं रज्जूरगवत् । उत्तरोत्तरस्य कार्यस्य पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन्प्रविलापनं तेन दर्शनं साक्षात्कारो यस्मिंस्तत्तथा ॥ २६ ॥ एतदेवाहा-व्यक्तमिति षड्भिः । परां प्रथमां न तु अविकृतिम् ॥२७॥ पञ्चभूतानि सूक्ष्माणि पञ्चतन्मात्राख्यानि ॥ २८ ॥ एता अव्यक्ताद्याः प्रकृतयो विकृतयश्च षोडशविकारा एव न प्रकृतयः ते च एकादशेन्द्रियाणि स्थूलभूतानि च एतेषु पञ्च वियदादयो विशेषसंज्ञाः । शेषा एकादश तानीन्द्रियाणि तेषां विशेषणं पञ्चेति पञ्चयन्ति व्यक्तीकुर्वन्ति स्वं स्वं विषयं शब्दवचनादिकमिति पञ्चानि तानीन्द्रियाणि चेति कर्मधारयः ॥ २९ ॥ एतेषां प्रविलापनमाह--**यस्मादिति** । अन्तरात्मना सृज्यन्ते न तु निरीश्वरसांख्याभिमतया प्रकृत्या ॥ ३१ ॥ प्रकृतेरिति कर्मणि षष्ठी । एवं प्रकृत्यादिकमुत्पद्यते प्रलीयते चेत्यर्थः । तथा च प्रकृतेरप्युत्पत्तिप्रलयौ वक्ष्यति--'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम' इति । 'अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्कले संप्रलीयते' इति च ॥

एवं सांख्यमुक्त्वा नानात्वैकत्वे विभजते--**एकत्वमिति** । प्रतिलोमक्रमेण प्रकृतेरपि पुरुषे प्रलये सति मोक्षे असंप्रज्ञाते च एकत्वं अस्य पुरुषस्य भवति सृष्टिकाले तु नानात्वमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ नन्वेवं सृष्टिकाले नानात्वप्रापकशक्तिमतः कथमेकत्वमत आह--**अधिष्ठातारमिति** । अव्यक्तमव्याकृतमविद्या मायेति पर्यायाः । अव्यक्तमेव पुरुषं नानात्वं नयति । तथा च श्रुतिः--'मायया ह्यन्यदिव' **इति** । 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इति च । न हि तुच्छया मायया पुंसः सद्वितीयत्वमस्ति रज्ज्वा इव कल्पितभुजगेन । 'तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तमसस्तन्महिना जायतैकम्' इति श्रुतेः । आभु ब्रह्म तमसः अज्ञानस्य महिना माहात्म्येन एकमपि अजायत प्रपञ्चात्मना आविर्बभूवेत्यर्थः । अस्य व्यक्तस्यापि एतत् एकत्वं नानात्वं च सुप्तिप्रलययोरेकत्वं सृष्टिकाले नानात्वं चेति निदर्शनं दृष्टान्तः पृथिव्यादिष्वप्येवमेव द्रष्टव्यम् ॥ ३४ ॥ अर्थतत्त्ववान् अर्थतत्त्वं सम्यगधिगतवान्यः स जानीयादिति शेषः । नन्वेवमव्यक्तस्याधिष्ठातृत्वे जितं निरीश्वरसांख्यैरित्याशंक्याह--**एकत्वमिति** । प्रलये मोक्षे अयस्कान्तवत्स्वरूपसत्तामात्रेणायं प्रकृतिं प्रवर्तयन् तां बहुधा प्रकरोति अतश्चिदात्मैव मुख्योऽधिष्ठाता प्रकृतेस्तु गौणमधिष्ठातृत्वं स्वकार्यविषयमिति भावः सार्धः ॥ ३५ ॥ एतदेवाह--**तच्चेति** । तत्प्रकृतिविकृत्यात्मकम् ॥ ३६ ॥

**अधिष्ठातेति राजेन्द्र प्रोच्यते यतिसत्तमैः ।**
**अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति नः श्रुतम्**
**क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते**
**अव्यक्तिके प्रविशते पुरुषश्चेति कथ्यते ॥ ३८**
**अन्यदेव च क्षेत्रं स्यादन्यः क्षेत्रज्ञ उच्यते ।**
**क्षेत्रमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञातारं पञ्चविंशकम् ३९**
**अन्यदेव च ज्ञानं स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते ।**
**ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशकः ४०**
**अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तथेश्वरः ।**
**अनीश्वरमतत्त्वं च तत्त्वं तत्पञ्चविंशकम् ४१**

**सांख्यदर्शनमेतावत्परिसंख्यानुदर्शनम् ।**
**सांख्याः प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते ४२**
**तत्त्वानि च चतुर्विंशत्परिसंख्याय तत्त्वतः ।**
**सांख्याः सह प्रकृत्या तु निस्तत्त्वःपञ्चविंशकः**
**पञ्चविंशो प्रकृत्यात्मा बुध्यमान इति स्मृतः ।**
**यदा तु बुध्यतेऽऽत्मानं तदा भवति केवलः॥**
**सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषितं तव तत्त्वतः ।**
**एवमेतद्विजानन्तः साम्यतां प्रति यान्त्युत ॥**
**सम्यङ्निदर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा ।**
**गुणतत्त्वाद्यथैतानि निर्गुणेभ्यस्तथा भवेत् ॥**

---

पुंसो नामानि निर्वक्ति—अव्यक्तिके अधिष्ठानादिति आविद्यके क्षेत्र पुर्यष्टके अत्रोक्तं कतके—

' सूर्यकान्तमुपारुह्य सूर्य एव तृणं दहेत् ।
न त्वश्मा पार्थिवस्तं च न्यायं चित्तमसोर्दिशेत्' इति ॥

यथा स्वरूपसत्तामात्रेण तृणं प्रकाशयतः सूर्यस्य सूर्यकान्तद्वारा तृणदग्धृत्वं तृणे प्रवेशश्च न तु व्यापाराविष्टस्य एवं पुंसोऽप्यव्यक्तद्वारा सर्वकार्याधिष्ठातृत्वं तत्तप्रकाशत्वं च न तु कुलालवदधिष्ठातृत्वम् । नापि बुद्धिवदिन्द्रियव्यापाराधीनप्रकाशकत्वं नापि कुण्डबदरन्यायेन प्रविष्टत्वं किं तु वन्हिकाष्ठन्यायेनाभिव्यक्तत्वमात्रमिति भावः॥ ३८॥नामनिरुक्तेः फल पुंप्रकृत्योर्विवेकमाह—**अन्यदेवेति** । एवमधिष्ठातुरन्यदधिष्ठेयं प्रवेष्टुरन्यत्प्रवेशायतनमित्यपि द्रष्टव्यम् ॥ ३९ ॥ ज्ञानं प्रमाणजन्या वृत्तिः । ज्ञेयं प्रमारूपं फलम् । फलकरणयोश्छिद्रापरश्वोर्भेदस्य स्पष्टत्वात् । ज्ञानज्ञेयपदे व्याचष्टे—ज्ञानमिति ४० अधिष्ठातारमव्यक्तमित्यत्रोक्तमव्यक्तपदं व्याचष्टे —**अव्यक्तमिति** । सत्त्वं बुद्धिः क्षेत्रसत्त्वेश्वरशब्दाः पर्याया इत्यर्थः । ततश्च किमत आह—**अनीश्वरमिति** । ईश्वरादिपदोपात्ताद्दृश्यादन्यत् । तच्छब्दः परोक्षवाची । नास्ति तत्त्वं परोक्षत्वं यस्य तदतत्त्वं नित्यापरोक्षं द्रष्टुः स्वरूपं तदेव पञ्चविंशतेः पूरणं तत्त्वं अनारोपितं रूपम् । अन्यत् सर्वमीश्वरादिकं दृश्यमारोपितमित्यर्थः । अतोऽन्यदार्तम् इतिश्रुतेः ॥ ४१ ॥ उपसंहरति—**सांख्येति** । सांख्याः परिसंख्यानुदर्शनं प्रकुर्वते प्रकृतिं मायां च प्रचक्षते जगत्कारणत्वेन वदन्तीति सम्बन्धः । परिसंख्या स्थूलसूक्ष्मक्रमेण चिदात्मनि प्रपञ्चप्रविलापनं तामनुदर्शनं साक्षात्कारं संपादयन्तीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ प्रविलाप्यान्याह—**तत्त्वानीति** । प्रकृत्या सह चतुर्विंशत् चतुर्विंशतिस्तत्त्वानि परिसंख्यायेति योजना । निस्तत्त्वः निर्गतं तत्त्वं परोक्षत्वं यस्मात् यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्मेति श्रुतेर्नित्यापरोक्ष इत्यर्थः ॥ ४३ ॥ अप्रकृत्यात्मा प्रकृतितो निष्कृष्टः बुद्ध्यमानः कर्तरि शानच् जीव एव प्रकृतित्यागात्केवलो भवति एतेन अबुद्धं प्रकृतिः बुध्यमानो जीवः प्रबुद्धः केवल इति प्रश्नत्रयस्योत्तरं संक्षिप्योक्तम् ॥ ४४ ॥ समं ब्रह्म तस्य भावः साम्यं तस्यापि भावः साम्यता सा च ब्रह्मैव ' ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ' इति श्रुतेः ॥ ४५ ॥ प्रकृतेर्ब्रह्मणो ब्रह्मदर्शनमेव सम्यग्दर्शनं नाम न त्वब्रह्मदर्शनम् रज्जूरगदर्शनवद्भ्रान्तत्वात्तस्य न हि रज्जुं भुजङ्गत्वेन पश्यन्सम्यग्दर्शी भवति किंतु रज्जुत्वेनैव पश्यन् । एवं ब्रह्मण्यध्यस्तमहंकारादिकं पश्यन्न सम्यग्दर्शी अधिष्ठानं तु पश्यन् सम्यग्दर्शीत्यर्थः तथाशब्दः पादपूरणार्थः । यद्वा यथैतत्तथा श्रूयते इत्यध्याहृत्य श्रुत्यन्तरप्रदर्शनार्थः यथा दाशतय्यायाम्नायते—

' परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिंद्रः शरदस्तर्तरीति ' ॥

अस्यार्थः—**पूर्वेषाम्** । देवानां स्वाभाविकानां कामक्रोधादीनां **सख्या** । सख्यानि सुपां सुलुगिति सुपो डा **—परावृणक्ति** । परिवर्जयति व्यवहिताश्च इति च्छंदसि व्यवहितक्रिययाऽप्युपसर्गसम्बन्धस्मृतेः—**वितर्तुराणः** । अतिशयेन कालं तरतीति तर्तुराणः यङ्लुगन्तात्तरतेस्ताच्छीलिकश्चानश् उदोष्ठ्यपूर्वस्येत्यस्मादुदित्यनुवर्तमाने बहुलं छन्दसीत्युत्वं रपरत्वम् । अभ्यासगुणे रेफलोपाभावादिः छांदसः अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वे गतिकारकोपपदात्कृदिति प्रकृतिस्वरः । **अपरेभिः** । शास्त्रीयैः शमदमादिभिः सख्यानि एति प्राप्नोति मुक्तिकामः कामादीन् जित्वा शमादीनाश्रयेदित्यर्थः—**अनानुभूतिः** । अननुभवान् अनन्वित्यस्य मध्यमामिति प्रातिशाख्यसूत्राद्दीर्घमध्यत्वम् । रज्जूरगज्ञानतुल्यानि भ्रान्तिज्ञानानि **अवधून्वानः** कल्पितं देहादितादात्म्यं प्रविलापयन् पूर्वीरनादिं शरदः कालं **तर्तरीति** । बलेन तरतीति अस्यामृचि प्रपञ्चदर्शनमानुभूतिशब्देनोक्तम् अत आत्मदर्शनमेव सम्यग्दर्शनमितरदर्शनं भ्रान्तिदर्शनमिति सिद्धम् । सम्यग्दर्शनविषयस्य प्रत्यगात्मरूपस्याधिष्ठानस्य

न त्वेवं वर्तमानानामावृत्तिर्विद्यते पुनः।
विद्यतेऽक्षरभावत्वादपरं परमव्ययम्॥ ४७
पश्येरन्नैकमतयो न सम्यक्तेषु दर्शनम्।
तेऽव्यक्तं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनररिन्दम॥ ४८
सर्वमेतद्विजानन्तो न सर्वस्य प्रबोधनात्।
व्यक्तीभूता भविष्यन्ति व्यक्तस्य वशवर्तिनः
सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्वः पञ्चविंशकः।
य एनमभिजानन्ति न भयं तेषु विद्यते॥ ५०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादे षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०६॥

## ३०७-[१३४]

वसिष्ठ उवाच।
सांख्यदर्शनमेतावदुक्तं ते नृपसत्तम।
विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः
अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मि वै।
सर्गप्रलयनिर्मुक्तां विद्यां वै पञ्चविंशकः॥ २
परस्परस्य विद्यां वै त्वं निबोधानुपूर्वशः।
यथोक्तमृषिभिस्तात सांख्यस्याभिनिदर्शनम्

शून्यतां वारयन् सम्यग्दर्शनस्य नश्वरवनितासाक्षात्कारतुल्यतां निरस्यति--**गुणतत्त्वादिति**। निर्गुणेभ्यः पुरुषेभ्योऽन्यानि यथा एतानि महदादीनि गुणतत्त्वात् गुणानां तत्त्वं ताद्भाव्यं गुणत्वादश्यत्वादिति यावत्। यथैतानि व्यावहारिकप्रमारूपत्वेनाभ्रान्तानि प्रत्यक्षाणि एवं निर्गुणानां पुंसामपि अभ्रान्तं प्रत्यक्षं भवेदित्यर्थः। निर्गुणेभ्य इति बहुत्वं भूतपूर्वगत्या प्रमातृभेदाभिप्रायम् तस्माद्यथावस्त्वेवात्मज्ञानं न भावनादिजन्यं नश्वरवनिताज्ञानवदिति सिद्धम् ॥ ४६॥ आत्मज्ञानफलमाह--**न त्विति**। विगतदेहानां मुक्तानां पुनरावृत्तिर्न विद्यते सदेहानां तु अपरं सत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वाद्यैश्वर्यपरं च समाधिकाले निरुपाधिसुखं अव्ययं विद्यते। तत्र हेतुः--**अक्षरभावत्वादिति**। साम्यतापदव्याख्यानरीत्या भावशब्देन भावप्रत्ययेन चाक्षरमात्रं ग्राह्यम्। यतो ब्रह्मविदक्षरमेव भवति अतः अक्षरधर्माणां 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः। एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धानां प्रशासितृत्वास्थूलत्वादीनां तत्र सम्बन्धो युज्यत एवेत्यर्थः। तथा च प्रागेवोदाहृतं 'सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्वेधा ब्रह्मविदुच्यते।

सोपाधिकः स्यात्सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः।
जक्षत्क्रीडन्रतिं प्राप्त इति सोपाधिकस्य तु॥
छांदोग्ये सवकामाप्तिः सार्वात्म्यात्स्पष्टमीरिता।
अहमन्नं तथान्नादः श्लोककार्यप्यहो अहम्॥
इति तत्त्वविदः सामगाने सर्वात्मता श्रुता।
अत्रापि चक्रदृष्टान्तात्सोपाधित्वमवच्छ्रुतः॥
अपूर्वानपरादुक्त्या श्रोष्यते निरुपाधिकः'॥ इति

॥ ४७॥ के पुनरावर्तन्त इत्यत आह--**पश्येरन्निति**। नैकमतयो नानात्वदर्शिनो ये तेषु सम्यग्दर्शनं नास्ति व्यक्तं शरीरम्॥ ४८॥ 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' इत्येकविज्ञानात्सर्वविज्ञानं श्रुतं तत्समर्थयते--**सर्वमिति**। एतद्वाक्यजातं सर्वमर्थतो विजानन्तो ध्यानबलेन सर्वापरोक्ष्यव्यक्त्या देहस्य वशे न भविष्यन्तीति योज्यम् ॥ ४९॥ **सर्वमिति**। पञ्चविंशस्य विज्ञानात्सर्वज्ञो भवतीति श्लोकद्वयतात्पर्यम् भयं संसारदुःखम्॥ ५०॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०६॥

३०७

नानात्वैकत्वविज्ञानमित्यादिना कृतानां द्वादशानां प्रश्नानां मध्ये सांख्यं योगो नानात्वैकत्वविज्ञानं चेति त्रयं व्याख्यातम्। अबुद्धादित्रयमग्रिमाध्याये व्याकरिष्यते। विद्यादिषट्कमिह व्याख्यायते-**सांख्यदर्शनमिति**। योगादिसहितमिति शेषः॥ १॥ तत्त्वदर्शनं विद्या तत्त्वावरकं भावरूपमज्ञानादिकमविद्या न तु विद्याया अभावमात्रमित्याशयेनाह--**अविद्यामिति**। अभावात्सर्गाद्यसंभवात् भावरूपैवाविद्याऽव्यक्ताख्येत्यर्थः। विद्यामाह--**सर्गेति**। विद्यां पञ्चविंशक इत्याहुरिति योजना ॥ २॥ अस्या विद्यायाः परमत्वं वक्तुमवान्तरविद्याभेदमाह--**परस्परस्येति**॥ ३॥

कर्मेन्द्रियाणां सर्वेषां
विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम् ।
बुद्धीन्द्रियाणां च तथा
विशेषा इति नः श्रुतम् ॥ ४
विशेषाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः ।
मनसः पञ्चभूतानि विद्या इत्यभिचक्षते ॥ ५
अहङ्कारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः ।
अहङ्कारस्य च तथा बुद्धिर्विद्या नरेश्वर ॥ ६
विद्या प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वानां परमेश्वरी ।
विद्या ज्ञेया नरश्रेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः ७
अव्यक्तस्य परं प्राहुर्विद्यां वै पञ्चविंशकम् ।
सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयं ज्ञानस्य पार्थिव ८
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशकः ।
तथैव ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविंशकः ॥ ९
विद्या विद्यार्थतत्त्वेन मयोक्ता ते विशेषतः ।
अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥ १०
उभावेवाक्षरावुक्तावुभावेतावनक्षरौ ।
कारणं तु प्रवक्ष्यामि याथातथ्यं तु ज्ञानतः ॥
अनादिनिधनावेतावुभावेवेश्वरौ मतौ ।
तत्त्वसंज्ञावुभावेतौ प्रोच्येते ज्ञानचिन्तकैः ॥
सर्गप्रलयधर्मत्वादव्यक्तं प्राहुरक्षरम् ।
तदेतद्गुणसर्गाय विकुर्वाणं पुनः पुनः ॥ १३
गुणानां महदादीनामुत्पत्तिश्च परस्परम् ।
अधिष्ठानात्क्षेत्रमाहुरेतत्तत्पञ्चविंशकम् ॥ १४

कर्मेन्द्रियाणां व्यापारमुत्सृज्य केवलं बुद्धीन्द्रियाण्येवाहमिति चिन्तनं बुद्धीन्द्रियविद्येत्यर्थः । एवमुत्तरत्र विशेषाः स्थूलभूतानि देहारंभकाणि । तत्र पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानं जान्वादिपायुपर्यन्तमपां स्थानमित्यादिना प्राग्व्युत्पादितरीत्या उत्तरोत्तरस्य भूतस्य पूर्वपूर्वस्मिन्प्रविलापनेन तत्तन्मात्रात्मनाऽवस्थानेन पञ्चभूतविद्याः पृथक्फला अनुसन्धेयाः ॥४॥ विशेषाणां च मनसि प्रविलापनेन मनोमात्रेणावस्थानं मनोविद्या । मनोऽपि विषयविकल्पाभिमुखं वासनामात्रेषु शब्दादिषु प्रविलाप्य तन्मात्रेणावस्थानं सूक्ष्मभूतविद्या। एवमुत्तरत्र ज्ञेयम्। अत्र विशेषमनसोः सूक्ष्मभूताहंकारयोरन्तर्भावं विवक्षित्वा वायुपुराणे एतासां विद्यानां फलान्युक्तानि—
'दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः ।
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः ॥
बौद्धा दशसहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः ।
पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः ॥
पुरुषं निर्गुणं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते'॥
इति ॥ ५ ॥ बुद्धिर्महत्तत्वम् ॥ ६ ॥ तत्त्वानां महदादीनाम् ॥ ७ ॥ सर्वस्य ज्ञानस्य ज्ञेयं सर्वमव्यक्तमित्युक्तम् अव्यक्तज्ञानादेव सर्वज्ञो भवतीत्यर्थः । वेदान्तेष्वपि सार्वज्ञ्यं कारणज्ञानस्य मुख्यं फलम् । शुद्धज्ञानस्य तु नान्तरीयकमिति भावः ॥ ८ ॥ ज्ञानं धीवृत्तिः । ज्ञेयस्तदभिव्यंग्यो बोधः यो विज्ञाता प्रमाता स एव पञ्चविंशको बोध इत्यर्थः ॥ ९ ॥ विद्यासाहिताऽविद्या अर्थतत्त्वेन याथार्थ्येन 'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः' 'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च' 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः' इति श्रुतिस्मृत्युक्तं पुंत्रैविध्यमुपेत्य क्षराक्षरयोस्तावद्विभागमाहाक्षरं चेति । अमृतो जीवः अक्षरं इति श्रुतिपदयोरर्थः संधिश्छान्दसः ॥ १० ॥ उभौ प्रकृतिजीवौ अक्षरौ अनादित्वात् पुरुषोत्तमाख्यात् हरादनन्यत्वाच्च त्रयस्यापि ब्रह्ममात्रत्वाच्च । तथा च श्रुतिः—
'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मेतत्' इति ।
उभौ अनक्षरौ अक्षरभिन्नौ क्षरावित्यर्थः 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति' इति भूतशब्दितस्य क्षरस्य तदनुसारिणो विज्ञानघनस्य च नाशश्रुतेः भूतानि नष्टानि अनु विज्ञानघनोऽपि नश्यतीति श्रुत्यर्थः । उभयोरप्यक्षरत्वे हेतुमाह सार्धत्रिभिः—**कारणं त्विति** । ॥ ११ ॥ अनादित्वादनिधनौ अनादिभावस्यानित्यत्वायोगात् । ईश्वरौ मिश्रौ सन्तौ अखण्डदण्डायमानस्य प्रपञ्चस्योपादानभूतौ कथमनित्यौ स्यातां न कथञ्चिदित्यर्थः । ज्ञानचिन्तकैर्ब्रह्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥ ननु क्षरायाः प्रकृतेरक्षरत्वं क्षरं प्रधानं क्षरः सर्वाणि भूतानीति श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धिविरुद्धमित्याशंक्याह—**सर्गेति** । तस्याः क्षरत्वे संसारस्यान्तवत्त्वं स्यात्। तच्च 'नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा' इति तदानन्त्यस्मृतिविरुद्धम्। क्षरत्वश्रुत्यादिकं तु प्रतिक्षणपरिणामित्वमात्रान्न तु प्रवाहोच्छेदादिति भावः । प्रवाहानुच्छेदमाहार्धेन **—तदेतदिति** ॥१३॥ जीवस्याप्यक्षरत्वमाह—**गुणानामिति** । पञ्चविंशकं चिदाभासमपि गुणानां क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानमाहुः । कुतः परस्परमाधिष्ठानात् । चिच्छायामनवाप्य न केवला प्रकृतिर्वा प्रकृतिरूपमुपाधिमनवाप्य केवलः पुरुषो वा महदादीन् स्रष्टुमुत्सहते किं तु परस्परानुग्रहेणैवेत्यर्थः । अतः पञ्चविंशस्यापि क्षेत्रत्वात्प्रकृतिवदक्षरत्वमिति भावः ॥ १४ ॥

यदा तु गुणजालं तदव्यक्तात्मनि संक्षिपेत् ।
तदा सह गुणैस्तैस्तु पञ्चविंशो विलीयते १५
गुणा गुणेषु लीयन्ते तदैका प्रकृतिर्भवेत् ।
क्षेत्रज्ञोऽपि यदा तात तत्क्षेत्रे संप्रलीयते १६
तदा क्षरत्वं प्रकृतिर्गच्छते गुणसंश्रिता ।
निर्गुणत्वं च वैदेह गुणेष्वप्रतिवर्तनात् ॥ १७
एवमेव च क्षेत्रज्ञः क्षेत्रज्ञानपरिक्षये ।
प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम ॥ १८
क्षरो भवत्येष यदा तदा गुणवतीमथ ।
प्रकृतिं त्वभिजानाति निर्गुणत्वं तथाऽऽत्मनः
तदा विशुद्धो भवति प्रकृतेः परिवर्जनात् ।
अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान्
तदैष तत्त्वतामेति न चापि मिश्रतां व्रजेत् ।
प्रकृत्या चैव राजेन्द्र मिश्रो ह्यन्यश्च दृश्यते
यदा तु गुणजालं तत्प्राकृतं वै जुगुप्सते ।
पश्यते च परं पश्यं तदा पश्यन्न संत्यजेत्
किं मया कृतमेतावद्योऽहं कालमिमं जनम् ।
मत्स्यो जालं ह्यविज्ञानादनुवर्तितवानिह २३
अहमेव हि संमोहादन्यमन्यं जनाज्जनम् ।
मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तितवानहम् २४
मत्स्योऽन्यत्वं यथाऽज्ञानादुदकान्नाभिमन्यते
आत्मानं तद्वदज्ञानादन्यत्वं चैव वेद्म्यहम् ॥
ममास्तु धिगबुद्धस्य योऽहं मग्नमिमं पुनः ।
अनुवर्तितवान्मोहादन्यमन्यं जनाज्जनम् २६
अयमत्र भवेद्बन्धुरनेन सह मे क्षमम् ।
साम्यमेकत्वमायातो यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै ।
अयं हि विमलो व्यक्तमहमीदृशकस्तथा २८
योऽहमज्ञानसंमोहादज्ञया संप्रवृत्तवान् ।
ससङ्गयाऽहं निःसङ्गः स्थितः कालमिमं त्वहम्

---

उभयोः क्षरत्वमाह—**यदा त्वित्यादिना** । गुणजालं प्रकृत्यादि अव्यक्तात्मनि अहमनुभवागोचरे शुद्धे ब्रह्मणि संक्षिपेत् प्रविलापयेत् योगी—**तदेति** । उपाधिनाशमनु आभासोऽपि नश्यतीति द्वयोरपि क्षरत्वम् ॥ १५ ॥ ननु पञ्चविंशस्य लये नैरात्म्यं स्यादित्याशंक्याह —**गुणा इति** । यथा महदादीनां प्रकृतौ लये यथैका प्रकृतिः प्रलये शिष्यते । एवं क्षेत्रज्ञः पञ्चविंशोऽपि तत्क्षेत्रे स्वोत्पत्तिस्थाने षड्विंशे संप्रलीयते । अत आभासस्य लयेऽपि मुख्यो न नश्यतीति न नैरात्म्यवादप्रसंगः यदा तदेति च उभयत्राध्याहारः । तदैका प्रकृतिरित्यस्यानुकर्षश्चोत्तरार्धे ॥ १६ ॥ **तदेति** । यदा त्वसंप्रज्ञाते पुरुषो निर्गुणं प्राप्नोति हे वैदेह वै इति पृथक्पदं वा तदा प्रकृतिरपि क्षरत्वं विनाशित्वं गच्छते आर्षस्तङ् । गुणसंश्रिता महदादिभिः सहिता । तत्र क्षरत्वे हेतुः देहगुणेष्वप्रतिवर्तनादिति देहाश्रितेषु श्रोत्रादिषु प्रतिविषयं वर्तनं तदभावात् ॥ १७ ॥ अयमेव न्यायः क्षेत्रज्ञेऽपीत्याह—**एवमिति** । क्षरत्वं गच्छते इत्यनुषंगः । कार्येणाहंकारेणास्तित्वं गम्यते । यथा नद्याः पूरेण उपरिदेशे व्रध्निमत्त्वं पूराभावे तदभाव एवं गुणानामप्रवृत्तेरप्रकाशाच्च प्रकृतिक्षेत्रज्ञौ नश्येते । तत्रापि क्षेत्रज्ञे विशेषमाह—**प्रकृत्येति** । गुणगुणिनौ क्षेत्रक्षेत्रज्ञावनित्यौ । क्षेत्रज्ञस्य तु क्षेत्रान्निष्क्रष्टो निर्गुणो ज्ञानांशः स नित्य इत्यर्थः । अनुशुश्रुम 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' इति श्रुतवन्तो वयम् ॥ १८ ॥ एष क्षेत्रज्ञः साक्षित्वत्यागेन क्षरो यदाऽसंप्रज्ञातो भवति तदेति शेषं स्पष्टम् ॥१९ ॥ प्रकृतेः परिवर्जनात् प्रविलापनान्न तु शास्त्रजज्ञानमात्रात् । बुध्यति अपरोक्षीकरोति ॥२०॥ 'पृथक्चैवापृथक्च ह'इत्यस्योत्तरमाह—**तदैष इति**। तत्त्वतां आरोपशून्यताम्। चिदचिद्ग्रन्थिरपृथक्त्वं तस्य भेदः पृथक्त्वमित्यर्थः ॥ २१ ॥ इदं ज्ञानेन पश्यतीत्याह —**यदेति** । जुगुप्सते निन्दति पश्यं द्रष्टारं पश्यन्नसन्त्यजन्न विस्मरेत् । तत्त्वपक्षपातो हि धियां स्वभावः इति न्यायेन सकृज्जातमपि प्रमाणज्ञानं न नश्यति । अनादिकालीनमपि भ्रान्तिज्ञानं न पुनरुन्मिषतीति भावः । यदाहुर्बाह्या अपि—

> 'निरुपद्रवभूतार्थस्वभावस्य विपर्ययैः ।
> न बाधो यत्नवत्त्वेऽपि बुद्धेस्तत्पक्षपाततः' इति ।

अपरिणामिनो नित्यसिद्धस्य वस्तुनः सम्यक् ज्ञातस्य पुनर्बाधो नास्ति अयत्नवत्त्वेऽपि तद्विषयकप्रत्ययानावृत्तावपि तत्र हेतुर्बुद्धेरितीति बाह्यश्लोकार्थः ॥ २२ ॥ इमं प्राकृतं जनं देहं जालं हि जालमिव ॥ २३ ॥ उदकज्ञानात् इदं मम जीवनमिति ज्ञानात् । ह्रदाद्ध्रदं मत्स्य इव देहाद्देहमप्यनुवर्तितवान् ॥ २४ ॥ मत्स्य उदकादिवाहं पुत्रादिभ्योऽन्यमात्मानं न वेद्मीति नशब्दानुकर्षेण योज्यम् ॥ २५ ॥ मग्नं विपद्ग्रस्तम् ॥ २६ ॥ बन्धुः सखा एकत्वं अविसंवादम् । तस्यैव व्याख्या—**यादृश इति** ॥ २७ ॥ विमलो निष्कपटः ॥ २८ ॥ अज्ञया जडया प्रकृत्या ससङ्गानिःसङ्गयोर्मोहमन्तरेण सम्बन्धायोगादित्यर्थः ॥ २९ ॥

अनयाऽहं वशीभूतः कालमेतं न बुद्धवान् ।
उत्तममध्यमनीचानां तामहं कथमावसे ॥ ३०
समानयानया चेह सह वासमहं कथम् ।
गच्छाम्यबुद्धभावत्वादेषेदानीं स्थिरो भवे ३१
सहवासं न यास्यामि
कालमेतद्धि वञ्चनात् ।
वञ्चितोऽस्म्यनया यद्धि
निर्विकारो विकारया ॥ ३२
न चायमपराधोऽस्या ह्यपराधो ह्ययं मम ।
योऽहमत्राभवं सक्तः पराङ्मुखमुपस्थितः ३३
ततोऽस्मि बहुरूपासु स्थितो मूर्तिष्वमूर्तिमान्
अमूर्तश्चापि मूर्तात्मा ममत्वेन प्रधर्षितः ३४
प्राक् कृतेन ममत्वेन तासु तास्विह योनिषु ।
निर्ममस्य ममत्वेन किं कृतं तासु तासु च ॥
योनीषु वर्तमानेन नष्टसंज्ञेन चेतसा ।
न ममात्रानया कार्यमहङ्कारकृतात्मया ॥ ३६
आत्मानं बहुधा कृत्वा
येयं भूयो युनक्ति माम् ।
इदानीमेष बुद्धोऽस्मि
निर्ममो निरहंकृतः ॥ ३७

ममत्वमनया नित्यमहङ्कारकृतात्मकम् ।
अपेत्याहमिमां हित्वा संश्रयिष्ये निरामयम्
अनेन साम्यं यास्यामि नानयाऽहमचेतया ।
क्षेमं मम सहानेन नैकत्वमनया सह ॥ ३९
एवं परमसंबोधात्पञ्चविंशोऽनुबुद्धवान् ।
अक्षरत्वं नियच्छेत त्यक्त्वाऽक्षरमनामयम्
अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तथा ।
निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा तादृग्भवति मैथिल ॥ ४१
अक्षरक्षरयोरेतदुक्तं तव निदर्शनम् ।
मयेह ज्ञानसंपन्नं यथाश्रुति निदर्शनात् ॥ ४२
निःसंदिग्धं च सूक्ष्मं च विबुद्धं विमलं यथा
प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध यथाश्रुतम् ॥
सांख्ययोगौ मया प्रोक्तौ
शास्त्रद्वयनिदर्शनात् ।
यदेव शास्त्रं सांख्योक्तं
योगदर्शनमेव तत् ॥ ४४
प्रबोधनकरं ज्ञानं सांख्यानामवनीपते ।
विस्पष्टं प्रोच्यते तत्र शिष्याणां हितकाम्यया
बृहच्चैवमिदं शास्त्रमित्याहुर्विदुषो जनाः ।
अस्मिंश्च शास्त्रे योगानां पुनर्वेदे पुरःसरः ॥

उच्चादीनां देवमनुष्यतिरश्चां सम्बन्धिनीं तां अनेकविकारवतीमित्यर्थः । एतेन विकारित्वाविकारित्वे अपि सम्बन्धासम्भवाय दर्शिते । तथोदाहृतं प्रागेव—

'निःसङ्गस्य ससङ्गेन कूटस्थस्य विकारिणा ।
आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते' इति ॥ ३० ॥ समानया संयुतया एषेदानीमिति पादपूरणार्थः सन्धिः । स्थिरः सांख्ये योगे वा निष्ठायुक्तः सन् भवे प्राप्नुयां आत्मानं जानीयामित्यर्थः । भू प्राप्तावित्यस्य रूपम् ॥ ३१ ॥ वञ्चनात् विपर्ययज्ञानजात् अनया मूलाविद्यया विकारया विकारवत्या ॥३२॥पराङ्मुखं बहिर्मुखं विषयं उपस्थितः भोक्तुमुद्युक्तः ॥ ३३ ॥ ततः पराङ्मुखोपस्थानात् बाह्यार्थप्रावण्यात् मूर्तिषु देहेषु अमूर्तस्यापि मूर्तात्मत्वे हेतुर्ममत्वमित्यर्थः ॥ ३४ ॥ योनिषु निपातित इति शेषः । एतदेव प्रधर्षणं नाम—**निर्ममस्येति** । किं कृतं न किमपि ज्ञानस्यासाधनादित्यर्थः ॥ ३५ ॥ अहङ्कारेण कृतो हिंसित आत्मा यया सा तया आत्मयेति समासान्तो डच् ॥३६॥ बहुधाऽनेकदेहाकारम् ॥ ३७ ॥ **ममत्वमिति** । अपेत्य अपसृत्य प्रत्यक्प्रावण्येन इमां प्रकृतिं त्यक्त्वेत्यर्थः । निरामयं निर्द्वन्द्वं परमात्मानम् ॥ ३८ ॥ अनेन निरामयेण साम्यं ऐक्यं अचेतया जडया अनेन सहैकत्वं क्षेमम् । न त्वनया सहैकत्वम् ॥ ३९ ॥ परमस्य षड्विंशस्य संबोधात् । क्षरं त्यक्त्वा अक्षरत्वं नियच्छेत अक्षर एव भवेत् । ब्रह्मभावं न जह्यादित्यर्थः । कः यः पञ्चविंशः निरामयं अनुबुद्धवान् ॥ ४० ॥ प्रथमं अव्यक्तस्याप्यादिम् । तादृक् निर्गुणः प्रथमश्च भवति । निर्गुणत्वादेव व्यावर्तकधर्माभावात् ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ निदर्शनं अनुभवः यथाश्रुति श्रुतिमनतिक्रम्य निदर्शनादनुभवात् ॥ ४२ ॥ विबुद्धं विशिष्टं ज्ञानं विमलं निर्दोषम् ॥ ४३ ॥ **सांख्येति** । शमादिभिर्द्वैतादर्शनं मोक्षदमित्यस्यार्थस्योभयत्र साम्यात् साधनानुभवफलैः सांख्ययोगयोरैक्यमित्यर्थः॥४४॥ किमंशेन तर्हि तयोर्भेद इत्याशंक्याह—**प्रबोधनेत्यादिना** । अत्रायमर्थः—सांख्ये हि लवणोदकन्यायेन कार्यस्य कारणे प्रविलापनमिति क्रमेण अध्यायादौ निरूपितविद्याष्टकेन निर्विशेषप्रत्यङ्मात्रेणावस्थानं युक्तिपूर्वकमुपपादितम्॥४५ तदेतदुर्धिमतां शिष्याणामाशु सिद्धिदं बृहच्च शास्त्रं विदुषो विद्वांसः प्राहुः योगानां पुनरस्मिन्सांख्यशास्त्रे वेदे च पुरःसरः अत्यन्तं आदरोऽस्ति । तथाहि शास्त्रे अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यामिति शास्त्रे योगस्यादरो दृश्यते संराधनं भक्तिध्यानपूर्वकमात्मनि मनःप्रणिधानं तस्मिन् क्रियमाणे आत्मनः सम्यग्दर्शनं भवति तत्र प्रमाणं प्रत्यक्षं श्रुतिः,प्रामाण्यं

पञ्चविंशात्परं तत्त्वं पठ्यते न नराधिप।
सांख्यानां तु परं तत्त्वं यथावदनुवर्णितम् ४७
बुद्धमप्रतिबुद्धत्वाद्बुध्यमानं च तत्त्वतः।
बुध्यमानं च बुद्धं च प्राहुर्योगनिदर्शनम् ४८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादे सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥

## ३०८-[१३५]

वसिष्ठ उवाच।
अथ बुद्धमथाबुद्धमिमं गुणविधिं शृणु।
आत्मानं बहुधा कृत्वा तान्येव प्रविचक्षते १
एतदेवं विकुर्वाणो बुध्यमानो न बुध्यते।
गुणान्धारयते ह्येष सृजत्याक्षिपते तदा ॥ २

प्रत्यनपेक्षत्वात्। 'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति' इत्यादिका। अनुमानं स्मृतिः,प्रामाण्यं प्रति सापेक्षत्वात्, योगिनस्तं प्रपश्यन्तीत्यादिका। एताभ्यां प्रमाभ्यामित्यर्थः। तथा वेदेऽपि—

'विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नं'
'यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्'
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगे हि प्रभवाप्ययौ' इति।

अज्ञातो योगः संसारः ज्ञातो मोक्ष इति योगस्यादरो दृश्यते। तथा च सांख्यस्य शिष्यानुग्राहकत्वाद्योगस्य च वेदशास्त्रादृतत्वाद्द्वयमप्यपरित्याज्यमिति। ननु कथं तर्हि द्वाविमौ मार्गावित्युद्घोषः। प्रधानोपसर्जनभावेनेत्यवेहि। तथाहि द्विविधो मोक्षाधिकारी कृतोपास्तिरकृतोपास्तिश्च। तत्राद्यो वाक्यार्थविचारात्प्रागेवानुष्ठितयोग इति न तं प्रति ध्यानापेक्षा। विविक्तस्य त्वंपदार्थस्य प्रागेव दृष्टत्वात्। तस्य तत्पदार्थाभेदमात्रं वाक्यात्प्रतिपत्तव्यं तं प्रति योग उपसर्जनः सांख्यं प्रधानं चरमत्वात्। यस्त्वकृतोपास्तिरौत्सुक्यात् श्रवणादावेव प्रवर्तते तस्य वेदान्तैः परोक्षं ज्ञानं जायते तदर्थस्य निदिध्यासनादापरोक्ष्यं तं प्रति सांख्यमुपसर्जनं योगः प्रधानं, तदिदं मतद्वयं गृहीत्वा औपनिषदस्य पुरुषस्य क्वचिद्वेदैकगम्यत्वं क्वचिच्चित्तैकगम्यत्वमुच्यते। 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इति। 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' इति च। सूत्रमपि 'सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतः' इति ध्यानस्य पाक्षिकत्वं दर्शयत्यधिकारिभेदेन तद्वतः श्रवणमननवतः। तृतीयं निदिध्यासनं पक्षेण शुद्धचेतसामनपेक्षिततया विकल्पेन सहकार्यन्तरं विधीयते आत्मदर्शनार्थमिति सूत्रपदानामर्थः ॥ ४६ ॥ किमंशे तर्हि सांख्या योगं नाद्रियन्त इत्यत आह—**पंचविंशादिति**। तेषां पञ्चविंशे असंगात्मनि कर्तृत्वानुपगमाज्जडे च प्रकृत्यादौ कर्तृत्वासंभवाच्चिज्जडग्रन्थ्यात्मनः कर्त्रात्मापलापेन सर्वविधिप्रतिषेधमोक्षपरं शास्त्रमनर्थकमिति भावः। सांख्यानां तु षड्विंशस्याभ्युपगमात्। पञ्चविंशस्य कर्तृत्वान्नोक्तदोषस्तत्त्वमसीत्यादिजीवब्रह्माभेदवादानां सामंजस्यमित्याशयेनाह—**सांख्यानामिति** ॥ ४७ ॥ का तर्हि योगमते उक्तदोषगतिरित्याशंक्य यथाकथंचित्समाधत्ते—**बुद्धमिति**। यदेव नित्यप्रबुद्धं चिदात्मस्वरूपं तदेव वृत्तिसारूप्यदशायां तत्त्वतः केवलेन रूपेण अप्रतिबुद्धत्वात् बुद्ध्यमानं बुभुत्साविषयो भवति। न हि स्त्रीवेषच्छन्नो नटो बुद्धोऽपि न बुभुत्सितो भवतीति युज्यते। न च तावता तस्य द्वैरूप्यं भवति। यदपगमाय तत्त्वमसीत्यादयो भेदवादा अपेक्ष्यन्ते इत्याशयः। अत एव कर्त्रात्मापलापिनां योगानां द्वावेव पदार्थावित्याह—बुध्यमानं दृश्यं प्रधानं बुद्धं बोधश्चिदात्मा ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥

३०८

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वेति श्रुत्यनुसारात्पदार्थत्रयमुपेत्य बुद्धाबुद्धविभागमाह—**अथ बुद्धमित्यादिना**। बुद्धं बोधः परमात्मा। अबुद्धं तदन्यो जीवः अबुद्धस्य विशेषणं गुणविधिं गुणानां सत्त्वादीनामेव विधिं विधानं प्रभावमिमं शृणु दृश्यते हीदं गुणसामर्थ्यं ब्राह्मणोऽपि स्वप्ने राजाहमिति मन्यते न च ब्राह्मण्यमनुसंधत्ते इति। आत्मानं बहुधा विश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रान्तर्यामिरूपेण कृत्वा। माययेति शेषः। तान्येव च रूपाणि प्रविचक्षते तात्त्विकत्वेन पश्यति। नटस्तु स्त्रीवेषकालेऽप्यात्मनः पुंस्त्वमनुसंधत्ते इति परार्थभ्रमे तदुदाहरणं न प्रत्यक्तत्त्वभ्रमे। तस्मात् प्रधानादन्यौ बुद्धाबुद्धौ पृथगभ्युपेयौ। तथा चाबुद्धाधिकारिकं शास्त्रं न वैयर्थ्यमश्नुते ॥ १ ॥ नन्वेवं जितं भेदवादिना नेत्याह—**एतदिति**। बुध्यमानो जीवः। एतत् बुद्धं ब्रह्म

**अजस्रं त्विह क्रीडार्थं विकरोति जनाधिप ।**
**अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमानं वदन्त्यपि ॥ ३**
**न त्वेव बुध्यते व्यक्तं सगुणं तात निर्गुणम् ।**
**कदाचित्त्वेव खल्वेतदाहुरप्रतिबुद्धकम् ॥ ४**
**बुध्यते यदि वा व्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ।**
**बुध्यमानो भवत्येव सङ्गात्मक इति श्रुतिः ।**
**अनेनाप्रतिबुद्धेति वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ॥ ५**
**अव्यक्तबोधनाच्चापि बुध्यमानं वदन्त्युत ।**
**पञ्चविंशं महात्मानं न चासावपि बुध्यते ६**
**षड्विंशं विमलं बुद्धमप्रमेयं सनातनम् ।**
**सततं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च बुध्यते ॥ ७**
**दृश्यादृश्ये ह्यनुगतं स्वभावेन महाद्युते ।**
**अव्यक्तमत्र तद्ब्रह्म बुध्यते तात केवलम् ॥ ८**
**केवलं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं न पश्यति ।**
**बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्योऽहमिति मन्यते**
**तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचनः ।**
**बुध्यते च परां बुद्धिं विमलाममलां यदा १०**
**षड्विंशो राजशार्दूल तथा बुद्धत्वमाव्रजेत् ।**
**ततस्त्यजति सोऽव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मि वै ११**
**निर्गुणः प्रकृतिं वेद गुणयुक्तामचेतनाम् ।**
**ततः केवलधर्मासौ भवत्यव्यक्तदर्शनात् १२**
**केवलेन समागम्य विमुक्तोऽऽत्मानमाप्नुयात् ।**
**एतत्तु तत्त्वमित्याहुर्निस्तत्त्वमजरामरम् ॥ १३**
**तत्त्वसंश्रयणादेतत्तत्त्ववन्न च मानद ।**
**पञ्चविंशति तत्त्वानि प्रवदन्ति मनीषिणः ॥**
**न चैष तत्त्ववांस्तात निस्तत्त्वस्त्वेष बुद्धिमान्**
**एष मुञ्चति तत्त्वं हि क्षिप्रं बुद्धत्वलक्षणम् १५**

---

न बुध्यते । यत एवं अहं कर्ताऽहं भोक्तेति प्रकारेण विकुर्वाणो भवति । कुत एतद्विकुर्वाणत्वमत आह-**गुणानिति**। यतो गुणान्धारयतेऽतः सर्गादिकर्तृत्वेन विक्रियत इत्यर्थः ॥ २ ॥ एतद्विवृणोति—**अजस्रमिति**। बुध्यमानपदं निर्वक्ति—**अव्यक्तेति** । अव्यक्तं सकार्यमज्ञानं घटोऽयं मामहं न जानामीति घटादीनां स्वाश्रिताज्ञानस्य च बोधाज्जीवं बुध्यमानपदेन वदन्ति ॥ ३ ॥ नन्विदं बुध्यमानत्वं सत्त्वस्यैव धर्म इत्याशंक्याह—**न त्विति** । अव्यक्तं कर्तृ सगुणं रूपादिमत् निर्गुणं प्रधानपुरुषौ वा न बुध्यते अचेतनत्वादव्यक्तस्य । अत एव तत् अप्रतिबुद्धकं जडमित्याहुः ॥४॥ 'तुष्यतु दुर्जनः' इतिन्यायेनाभ्युपेत्याप्याह-**बुध्यत इति** । अव्यक्तं कर्तृ यदि जानाति तर्हि पञ्चविंशकं चिदाभासमेव उपाधिविशिष्टमयमहमस्मीति जानीयान्न तु षड्विंशमसंगम् । यत्स्वयं बुध्यमानः पञ्चविंशः ससंगात्मकश्चिदचिद्ग्रंथिरूपोऽहंकारः पुण्यपापसुखदुःखादिसंगी । तथा च श्रुतिः –'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' इति । अनेन संगात्मकत्वेन हेतुना अव्यक्तमस्फुटमच्युतमविकारिणमपि सन्तमेतं पुरुषमप्रतिबुद्धो मूढ इति वदन्ति । सन्धिरार्षः ॥ ५ ॥ बुध्यमानं जीवं पञ्चविंशं चिदाभासं न तु निष्कृष्टचैतन्यरूपं मुख्यं न चासावपि बुध्यते चिदाभासोऽपि दृश्यत्वान्नान्यं द्रष्टुमर्हति न हि घटो घटं बुध्यते । यदा त्वाभासेऽपि न ज्ञातृत्वं संभवति तदा नतरां तदुपाधिभूते सत्त्वे इत्यर्थः ॥ ६ ॥ कस्तर्हि बुध्यते इत्यत आह-**षड्विंशमिति** । निरुपाधिचैतन्यमेव सर्वप्रकाशकमित्यर्थः ॥ ७ ॥ षड्विंशस्य सत्त्वे मानमाह-**दृश्येति** । कार्ये कारणे च स्वभावेन स्वसत्तयाऽनुगतं शुक्तीदमंश इव स्वाध्यस्तं रजतं सर्वस्मिन्दृश्ये सत्सदित्यनुगमो यदनुवेधाद्दृश्यते तत्सन्मात्रं केवलं वस्तु षड्विंशशब्दितमित्यर्थः । अनुभवमप्यत्राह—**अव्यक्तमिति** । अव्यक्तं अस्फुटमपि अत्र जीवस्यैव देहे तत् केवलं निर्गुणं ब्रह्म बुध्यते ज्ञायते विद्वद्भिरिति शेषः ॥ ८ ॥ कुतस्तर्हि सर्वत्रानुगतोऽपि केवलोऽस्मदादिभिर्नानुभूयत इत्यत आह—**केवलमिति** । बुध्यमानो जीवो यदात्मानमहमन्योऽमुष्य पुत्रो ब्राह्मणोऽधीतीत्यादिरूपं मन्यते तदा केवलं षड्विंशं पञ्चविंशं च सर्वत्रैकरूपं जीवं चतुर्विंशं अव्यक्तं च न पश्यति कार्यापहृतदृष्टित्वात् ॥ ९ ॥ कथं तर्हि केवलज्ञः स्यादत आह—**तदेति** । अव्यक्ते अव्याकृते लोचनं दृष्टिरस्य अव्याकृतोपास्त्या प्रकृतिमान् प्रकृतिजयी यदा भवति तदा विमलां शुद्धब्रह्मविषयिणीं बुद्धिं विद्यां अमलां निर्द्वैतां परां सर्वोत्कृष्टां बुध्यते अवगच्छति ॥ १० ॥ तदैव परविद्योदयकाले षड्विंशबोधः प्रकृतित्यागश्च भवति इत्याह—**षड्विंश इति** ॥ ११ ॥ असौ जीवः अव्यक्तस्य स्वस्मात्पृथक्त्वेन दर्शनात् केवलधर्मा केवल एव भवति । यो निर्गुणः सन्प्रकृतिं वेद स केवल इति योज्यम् ॥ १२ ॥ आत्मानं केवलं विमुक्त उपाधित्रयान्मुक्तः तत्त्वं अनारोपितरूपं निस्तत्त्वं पारोक्ष्यरहितं नित्यापरोक्षमित्यर्थः ॥ १३ ॥ तत्त्वं दृश्यं शरीरादि तदाश्रयादस्यापि दृश्यत्वं वस्तुतस्तु न च दृश्यत्वमस्ति दृङ्मात्रत्वात् ॥ १४ ॥ एष षड्विंशः तत्त्ववान् पारोक्ष्यवान् कार्यभूतं महदादि तत्त्वमस्यास्तीति तत्त्ववान् न च यतो निस्तत्त्वः कार्यकारणवर्जितः बुद्धलक्षणं तत्त्वमहं ब्रह्मास्मीति वृत्तिमपि एष मुञ्चति ॥१५॥

षड्विंशोऽहमिति प्राज्ञो गृह्यमाणोऽजरामरः
केवलेन बलेनैव समतां यात्यसंशयम् ॥ १६
षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान् ।
एतन्नानात्वमित्युक्तं सांख्यश्रुतिनिदर्शनात् ॥
चेतनेन समेतस्य पञ्चविंशतिकस्य ह ।
एकत्वं वै भवत्यस्य यदा बुद्ध्या न बुध्यते ॥
बुध्यमानोऽप्रबुद्धेन समतां याति मैथिल ।
सङ्गधर्मा भवत्येष निःसङ्गात्मा नराधिप १९
निःसङ्गात्मानमासाद्य षड्विंशकमजं विभुम्
विभुस्त्यजति चाव्यक्तं यदा त्वेतद्विबुध्यते ॥
चतुर्विंशमसारं च षड्विंशस्य प्रबोधनात् ।
एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानश्च तेऽनघ ॥ २१
प्रोक्तो बुद्धश्च तत्त्वेन यथाश्रुति निदर्शनात् ।
नानात्वैकत्वमेतावद्द्रष्टव्यं शास्त्रदर्शनात् २२
मशकोदुम्बरे यद्वदन्यत्वं तद्वदेतयोः ।
मत्स्योदके यथा तद्वदन्यत्वमुपलभ्यते ॥ २३
एवमेवावगन्तव्यं नानात्वैकत्वमेतयोः ।
एतद्धि मोक्ष इत्युक्तमव्यक्तज्ञानसंहितम् २४
पञ्चविंशतिकस्यास्य योऽयं देहेषु वर्तते ।
एष मोक्षयितव्येति प्राहुरव्यक्तगोचरात् २५
सोऽयमेवं विमुच्येत नान्यथेति विनिश्चयः ।
परश्च परधर्मा च भवत्येष समेत्य वै ॥ २६
विशुद्धधर्मा शुद्धेन बुद्धेन च स बुद्धिमान् ।
विमुक्तधर्मा मुक्तेन समेत्य पुरुषर्षभ ॥ २७
वियोगधर्मिणा चैव विमुक्तात्मा भवत्यथ ।
विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्
शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितदीप्तिमान् ।
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना
केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ।
स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्नुते ॥ ३०
एतावदेतत्कथितं मया ते
तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम् ।
अमत्सरत्वं परिगृह्य चार्थं
सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम् ॥ ३१
न वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्
प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत् ।
विधित्समानाय विबोधकारणं
प्रबोधहेतोः प्रणतस्य शासनम् ॥ ३२
न देयमेतच्च तथाऽनृतात्मने
शठाय क्लीबाय न जिह्मबुद्धये ।
न पण्डितज्ञानपरोपतापिने
देयं तु देयं च निबोध यादृशे ॥ ३३

---

एतदेवाह-**षड्विंश इति**। ननु षड्विंशोऽहमिति यया वृत्त्या षड्विंशो गृह्यते तस्यानाशकस्य वृत्त्यन्तरस्याभावाद्भावे वाऽनवस्थापातात् कथं निरुपाधिकस्य साक्षात्कारो वृत्तिरूपस्यैवोपाधेर्विद्यमानत्वादित्याशंक्याह—**केवलेनेति** । बलेन स्वसामर्थ्येन तद्वृत्तिरूपं ग्रहणं समतां याति यथा कतकरजो रजोन्तरं शमयत्स्वयमपि शाम्यति तथा चरमा ब्रह्माकारा वृत्तिर्वृत्त्यन्तरं स्वात्मानं च शमयतीत्यर्थः ॥ १६ ॥ **षड्विंशेनेति** । येन केवलप्रकाशात्मना पञ्चविंशादीन् बुध्यते तमजानन्न बुद्धिमान् यतो भवति एतत्तस्याज्ञानमेव नानात्वं ब्रह्माज्ञानमूलक एव प्रपञ्च इत्यर्थः ॥ १७ ॥ षड्विंशानुभवस्वरूपमाह—**चेतनेनेति** । पञ्चविंशस्य अहंप्रत्ययगम्यस्य चेतनायुक्तस्य जडस्य तदा एकत्वं भवति यदा बुद्ध्याप्यहमित्यात्मानं न बुध्यते । धीनिरोधे सति गाढसुषुप्तिवत् षड्विंशानुभव इत्यर्थः ॥ १८ ॥ एतत्फलमाह—**बुध्यमान इति** । अहमिति गृह्यमाणः संगधर्मा सुखादिसंगी जीवः अप्रबुद्धेन वाङ्मनसातीततया अगोचरीकृतेन षड्विंशेन यदा समतामभेदं याति तदा निःसंगात्मा पुण्यापुण्यादिस्पर्शशून्यो भवति ॥१९॥ निःसंगात्मनः षड्विंशस्य संगासंगिनोऽपि जीवस्य निःसंगता भवति सा च अव्यक्तत्यागेनैवेत्यर्थः । एतदव्यक्तं दृष्टमात्रैव प्रकृतिर्लीयत इत्यर्थः यथोक्तं [सांख्य-]सप्तत्यां—'प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति। या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य' इति॥२०॥ असारं रज्जूरगवन्निःस्वरूपं भवति। 'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः' इतिश्रुत्यनुसारेण अप्रतिबुद्धः क्षरः बुध्यमानः अक्षरः बुद्ध ईशः एते यथाश्रुति प्रोक्ताः ॥ २१ ॥ **नानात्वेति** । यथोदुम्बरेण सह मशकस्य यथा वा जलेन सह मत्स्यस्य नानात्वैकत्वे एवं चतुर्विंशत्या तत्त्वैः सह पञ्चविंशस्येत्यर्थः । एतयोरसंमतं नानात्वैकत्वमुक्तम् ॥ २२ ॥ अव्यक्तज्ञानसंहितं अव्यक्तविषयं पुरुषात्पृथक्त्वेन ज्ञानं पुरुषमात्रावशेषमेकत्वं मोक्षोऽन्यन्नानात्वमित्यर्थः ॥ २४ ॥ सांख्यमतमाह—**पंचविंशतिकस्येति** । अव्यक्तादज्ञानात्तद्विषयान्महदादेश्च मोक्षयितव्यः ॥ २५ ॥ एवमज्ञानबाधे सत्येव विमुच्येत नान्यथेत्यर्थः । परोऽन्यश्चिदात्मा परधर्मा क्षेत्रधर्मा समेत्य क्षेत्रेणैकीभूय ॥ २६ ॥ परधर्मत्वमेव प्रपञ्चयति—**विशुद्धेत्यादिना** ॥ २७ ॥ वेदनिष्ठस्य निदाघवत्कर्मश्रद्धाजडस्य । नावेदनिष्ठस्येति पाठः स्वच्छः । विधित्समानाय विशेषेण तृष्णावते धेट्पाने इत्यस्य रूपम् ॥ ३२ ॥

श्रद्धान्विताायाथ गुणान्विताय
परापवादाद्विरताय नित्यम् ।
विशुद्धयोगाय बुधाय नित्यं
क्रियावते च क्षमिणे हिताय ॥ ३४
विविक्तशीलाय विधिप्रियाय
विवादहीनाय बहुश्रुताय ।
विजानते चैव न चाहितक्षमे
दमे च शक्ताय शमे च देयम् ॥ ३५
एतैर्गुणैर्हीनतमे न देय-
मेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः ।
न श्रेयसा योक्ष्यति तादृशे कृतं
धर्मप्रवक्तारमपात्रदानात् ॥ ३६
पृथ्वीमिमां यद्यपि रत्नपूर्णां
दद्यान्न देयं त्विदमव्रताय ।
जितेन्द्रियायैतदसंशयं ते
भवेत्प्रदेयं परमं नरेन्द्र ॥ ३७
कराल मा ते भयमस्तु किञ्चि-
देतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य ।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं
विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम् ॥ ३८
अगाधजन्मामरणं च राजन्
निरामयं वीतभयं शिवं च ।
समीक्ष्य मोहं त्यज वाऽद्य सर्व-
ज्ञानस्य तत्त्वार्थमिदं विदित्वा ३९
अवाप्तमेतद्धि मया सनातना-
द्धिरण्यगर्भाद्गदतो नराधिप ।
प्रसाद्य यत्नेन तमुग्रचेतसं
सनातनं ब्रह्म यथाऽद्य वै त्वया ४०
पृष्टस्त्वया चास्मि यथा नरेन्द्र
यथा मयेदं त्वयि चोक्तमद्य ।
तथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र
महाज्ञानं मोक्षविदां परायणम् ४१

भीष्म उवाच ।

एतदुक्तं परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः ।
पञ्चविंशो महाराज परमर्षिनिदर्शनात् ॥ ४२
पुनरावृत्तिमाप्नोति परं ज्ञानमवाप्य च ।
नावबुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम् ४३
एतन्निःश्रेयसकरं ज्ञानं ते परमं मया ।
कथितं तत्त्वतस्तात श्रुत्वा देवर्षितो नृप ४४
हिरण्यगर्भादृषिणा वसिष्ठेन महात्मना ।
वसिष्ठादृषिशार्दूलान्नारदोऽवाप्तवानिदम् ४५
नारदाद्विदितं मह्यमेतद्ब्रह्म सनातनम् ।
मा शुचः कौरवेन्द्र त्वं श्रुत्वैतत्परमं पदम् ॥
येन क्षराक्षरे वित्ते भयं तस्य न विद्यते ।
विद्यते तु भयं तस्य यो नैतद्वेत्ति पार्थिव ४७
अविज्ञानाच्च मूढात्मा पुनः पुनरुपाद्रवत् ।
प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्युपाश्नुते ॥
देवलोकं तथा तिर्यङ्मानुष्यमपि चाश्नुते ।
यदि शुध्यति कालेन तस्मादज्ञानसागरात्
अज्ञानसागरो घोरो ह्यव्यक्तोऽगाध उच्यते ।
अहन्यहनि मज्जन्ति यत्र भूतानि भारत ५०
यस्मादगाधादव्यक्तादुत्तीर्णस्त्वं सनातनात् ।
तस्मात्त्वं विरजाश्चैव वितमस्कश्च पार्थिव ५१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तौ अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

## ३०९-[१३६]

भीष्म उवाच ।

मृगयां विचरन्कश्चिद्विजने जनकात्मजः । वने ददर्श विप्रेन्द्रमृषिं वंशधरं भृगोः ॥ १

अगाधमप्रतिष्ठितं जन्म येन तत् । जन्मनिवर्तकमित्यर्थः नास्ति मरणं येन तत् अमरणम् ॥ ३९ ॥ किं तदक्षरमित्युक्तं यस्मान्नावर्तते पुनरिति उपक्रान्तमुपपाद्योपसंहरति-**एतदुक्तमिति**॥ ४२ ॥ वित्ते विज्ञाते ॥ ४७ ॥ उपाद्रवत् क्लेशवानभूत् अश्नुते च प्रेत्येत्युभयान्वयि ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

३०९

किं तदक्षरमिति पृष्टस्य व्याख्यानाय चतुर्विंशत्यात्मकं क्षरमुक्त्वा पञ्चविंशोऽक्षर इति योगमतमुक्तम् । सोऽपि धर्माद्यभिभूतत्वात्क्षर एवेति धर्माद्यस्पृष्टः षड्विंशोऽक्षरः सांख्यमतेनोपाक्षिप्तः । तं व्याचिख्यासुस्तदधिगमेऽधिकारहेतून्कांश्चिद्धर्मान्विधत्ते—**मृगयां विचरन्नित्यध्यायेन** ॥ १ ॥

उपासीनमुपासीनः प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
पश्चादनुमतस्तेन पप्रच्छ वसुमानिदम् ॥ २
भगवन्किमिदं श्रेयः प्रेत्य चापीह वा भवेत्।
पुरुषस्याध्रुवे देहे कामस्य वशवर्तिनः ॥ ३
सत्कृत्य परिपृष्टः सन्सुमहात्मा महातपाः।
निजगाद ततस्तस्मै श्रेयस्करमिदं वचः ॥ ४

ऋषिरुवाच।

मनसोऽप्रतिकूलानि प्रेत्य चेह च वांछसि।
भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः ५
धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रयः सताम्
धर्माल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः॥६
स्वादुकामुककामानां वैतृष्ण्यं किं न गच्छसि
मधु पश्यसि दुर्बुद्धे प्रपातं नानुपश्यसि ॥ ७
यथा ज्ञाने परिचयः कर्तव्यस्तत्फलार्थिना।
तथा धर्मे परिचयः कर्तव्यस्तत्फलार्थिना ८
असता धर्मकामेन विशुद्धं कर्म दुष्करम्।
सता तु धर्मकामेन सुकरं कर्म दुष्करम् ॥ ९
वने ग्राम्यसुखाचारो यथा ग्राम्यस्तथैव सः।
ग्रामे वनसुखाचारो यथा वनचरस्तथा ॥ १०
मनोवाक्कायिके धर्मे कुरु श्रद्धां समाहितः।
निवृत्तौ वा प्रवृत्तौ वा संप्रधार्य गुणागुणान्
नित्यं च बहु दातव्यं साधुभ्यश्चानसूयता।
प्रार्थितं व्रतशौचाभ्यां सत्कृतं देशकालयोः॥
शुभेन विधिना लब्धमर्हाय प्रतिपादयेत्।
क्रोधमुत्सृज्य दद्याच्च नानुतप्येन्न कीर्तयेत् ॥
अनृशंसः शुचिर्दान्तः सत्यवागार्जवे स्थितः।
योनिकर्मविशुद्धश्च पात्रं स्याद्वेदविद्द्विजः १४
सत्कृता चैकपत्नी च जात्या योनिरिहेष्यते।
ऋग्यजुःसामगो विद्वान्षट्कर्मा पात्रमुच्यते
स एव धर्मः सोऽधर्मस्तं तं प्रति नरं भवेत्।
पात्रकर्मविशेषेण देशकालाववेक्ष्य च ॥ १६
लीलयाऽल्पं यथा गात्रात्
प्रमृज्यात्तु रजः पुमान्।
बहुयत्नेन च महत्-
पापनिर्हरणं तथा ॥ १७
विरिक्तस्य यथा सम्यग्घृतं भवति भेषजम्।
तथा निर्हृतदोषस्य प्रेत्य धर्मः सुखावहः १८
मानसं सर्वभूतेषु वर्तते वै शुभाशुभम्।
अशुभेभ्यः सदाऽऽक्षिप्य शुभेष्वेवावतारयेत्
सर्वं सर्वेण सर्वत्र क्रियमाणं च पूजयेत्।
स्वधर्मे यत्र रागस्ते कामं धर्मे विधीयताम्२०
अधृतात्मन्धृतौ तिष्ठ दुर्बुद्धे बुद्धिमान्भव।
अप्रशान्तः प्रशाम्य त्वमप्राज्ञः प्राज्ञवच्चर २१
तेजसा शक्यते प्राप्तुमुपायः सहचारिणा।
इह च प्रेत्य च श्रेयस्तस्य मूलं धृतिः परा २२
राजर्षिरधृतिः स्वर्गात्
पतितो हि महाभिषः।
ययातिः क्षीणपुण्योऽपि
धृत्या लोकानवाप्तवान् ॥ २३
तपस्विनां धर्मवतां
विदुषां चोपसेवनात्।
प्राप्स्यसे विपुलां बुद्धिं
तथा श्रेयोऽभिपत्स्यसे ॥ २४

भीष्म उवाच।

स तु स्वभावसंपन्नस्तच्छ्रुत्वा मुनिभाषितम्
विनिवर्त्य मनः कामाद्धर्मे बुद्धिं चकार ह२५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि जनकानुशासने नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥

## ३१०-[१३७]

युधिष्ठिर उवाच ।

धर्माधर्मविमुक्तं यद्विमुक्तं सर्वसंशयात्। जन्ममृत्युविमुक्तं च विमुक्तं पुण्यपापयोः ॥१

---

योनिकर्मविशुद्धः पात्रमित्युक्तं तत्र योनिशुद्धिं कर्मशुद्धिं च व्याचष्टे—**सत्कृतेति** । एकस्यैव पत्नी एकपत्नी न त्वन्यपूर्वा, जात्याः पुत्रोत्पत्तेः योनिः स्थानम् ॥ १५ ॥ **विरिक्तस्येति** । विरेचनानन्तरमेव यथा घृतपानं भेजषं एवं दानेन निर्हृतदोषस्यैव यागादि-धर्मः सुखावह इत्यर्थः ॥ १८ ॥ इतिश्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९॥

३१०

यथा कठवल्लीषु येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके

यच्छिवं नित्यमभयं नित्यमक्षरमव्ययम् ।
शुचि नित्यमनायासं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ३
याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशाः ।
पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदां वरम् ४

जनक उवाच ।

कतीन्द्रियाणि विप्रर्षे कति प्रकृतयः स्मृताः
किमव्यक्तं परं ब्रह्म तस्माच्च परतस्तु किम् ५
प्रभवं चाप्ययं चैव कालसंख्यां तथैव च ।
वक्तुमर्हसि विप्रेन्द्र त्वदनुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ६
अज्ञानात्परिपृच्छामि त्वं हि ज्ञानमयो निधिः
तदहं श्रोतुमिच्छामि सर्वमेतदसंशयम् ॥ ७

याज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रूयतामवनीपाल यदेतदनुपृच्छसि ।
योगानां परमं ज्ञानं सांख्यानां च विशेषतः
न तवाविदितं किञ्चि-
न्मां तु जिज्ञासते भवान् ।
पृष्टेन चापि वक्तव्य-
मेष धर्मः सनातनः ॥ ९
अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराश्चापि षोडश ।
तत्र तु प्रकृतीरष्टौ प्राहुरध्यात्मचिन्तकाः ॥
अव्यक्तं च महान्तं च तथाऽहङ्कार एव च ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकारानपि मे शृणु ।
श्रोत्रं त्वक्चैव चक्षुश्च जिह्वा घ्राणं च पञ्चमम्
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
वाक्च हस्तौ च पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च ॥
एते विशेषा राजेन्द्र महाभूतेषु पञ्चसु ।
बुद्धीन्द्रियाण्यथैतानि सविशेषाणि मैथिल ॥
मनः षोडशकं प्राहुरध्यात्मगतिचिन्तकाः ।
त्वं चैवान्ये च विद्वांसस्तत्त्वबुद्धिविशारदाः
अव्यक्तश्च महानात्मा समुत्पद्यति पार्थिव ।
प्रथमं सर्गमित्येतदाहुः प्राधानिकं बुधाः १६
महतश्चाप्यहङ्कार उत्पन्नो हि नराधिप ।
द्वितीयं सर्गमित्याहुरेतद्बुद्ध्यात्मकं स्मृतम् ॥

---

नायमस्तीति चैके इत्यादिना प्रश्नप्रतिवचनेन स्थूलदेहनाशेप्यात्मास्तित्वं प्रसाधितम्।तस्यैव पुनरन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्। अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यासि तद्वद । इत्यादिना धर्माद्युपेतलिंगशरीरादन्यत्वं प्रश्नपूर्वकं साधितं तद्वदिहापि साधयति—**धर्माधर्मविमुक्तं यादित्यादिना** । धर्माधर्मौ सुखदुःखे तद्धेतू जन्ममृत्यू तद्धेतू पुण्यपापे प्रवृत्तिरूपे तद्धेतुः संशयशब्दितमवस्तुविषयं भ्रान्त्यादिज्ञानं रागादिजनकं तैर्विमुक्तं यत्प्रत्यगात्मवस्तु ॥ १ ॥ तदेव शिवं जाग्रदाद्यपेक्षया तुरीयम् । 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति श्रुतेः । नित्यमभयं सर्वदा भयशून्यं प्रलयादौ कारणब्रह्मभावं प्राप्तस्यापि जन्मान्तरसत्त्वात् । नित्यं अविनाशि हिरण्यगर्भादिवन्न नश्यतीत्यर्थः । अक्षरं अपचयशून्यम् । अत एवाव्ययं नाशहीनम्। शुचि स्वतो निर्दोषं नित्यमनायासं उपाधिसंपर्केऽप्यप्रच्युतकौटस्थ्यभावम् ॥ २ ॥ यत्पृष्टं यच्चापृष्टमपि पृष्टप्रतिपत्यर्थत्वादावश्यकं तत्सर्वं आख्यायिकामुखेन वक्तुं प्रतिजानीते—**अत्रेति** ॥ ३ ॥ अव्यक्तं कारणं ब्रह्म परं महदादेः तस्माच्च परतो निर्गुणम् ॥ ५ ॥ कांक्षिणः कांक्षिणे मह्यमिति शेषः ॥ ६ ॥ सांख्ययोगयोरैकार्थ्यस्य प्रागुक्तत्वादुभयसंमतामित्यर्थः । अव्यक्तं योगमते जडं सत्यं च सांख्यमते चित्प्रतिबिंबगर्भमीश्वराख्यं शुद्धब्रह्मज्ञानेन बाध्यं चेति । यद्यप्येषां अवान्तरधर्मभेदोऽस्ति तथाप्यव्यक्तादिधर्मिणः सर्वेषामप्रत्याख्येया इति भावः ॥ ८ ॥ पृथिव्यादिपदैस्तन्मात्राण्युच्यन्ते प्रकृतिशब्दितत्वात् ॥ ११ ॥ शब्दादयः स्थूलवियदाद्याः एषा प्राचां व्याख्या । शब्दादीनां भौतिकत्वोपपादकवाक्यशेषविरोधात्तु यथाश्रुतमेव साधु । सर्वत्र लक्षणायां च सर्वशास्त्रविप्लवः स्यात् ॥ १३ ॥ एते शब्दादयः दश विशेषाः विकारान्तरानुपादानत्वं विशेषत्वं तच्च शब्दादिष्वेव दृष्टं न स्थूलपृथिव्यादिषु । मनस्तु विकारान्तर्गतमपि न विशेषः । तस्य वक्ष्यमाणरीत्या महाभूतोपादानत्वात् । श्रोत्रादीनामपि विशेषत्वं निराचष्टे—**बुद्धीति** । सविशेषाणीत्यनेन श्रोत्रादयो न विशेषा इत्युक्तम् ॥ १४ ॥ षोडशकमिति बुद्ध्यहंकाराभ्यां मनः पृथक्करोति एतच्चानुभवबलात्तव च तार्किकादीनां च संमतमित्याह—**त्वं चेति** । तथाहि लौकिका अहंकारमात्मानं बुद्धिं तद्गुणं मनोऽन्तरिन्द्रियं चेति प्रतियन्ति । शास्त्रतत्त्वे तु 'मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमान्तरम् । संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया अमी' इति सर्वेषामन्तरिन्द्रियत्वमेव ॥ १५ ॥ सृष्टिक्रममाह—**अव्यक्तादिति** । 'सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानं यद्बीजं स्वप्नबोधयोः' इत्युक्तेरव्यक्तमिह सौषुप्तं तमः तस्मान्महानात्मा अयमहं ब्राह्मणोऽमुष्य पुत्र इति विशेषानालिंगितोऽस्मीत्येतावन्मात्रप्रत्ययाविषयो बुद्धिसूक्ष्माख्यो महान् उत्पद्यते ॥ १६ ॥ तत उक्तविशेषालिंगितोऽस्मीतिप्रत्ययविषयोऽहंकारः ॥ १७ ॥

अहङ्काराच्च संभूतं मनो भूतगुणात्मकम् ।
तृतीयः सर्ग इत्येष आहङ्कारिक उच्यते १८
मनसस्तु समुद्भूता महाभूता नराधिप ।
चतुर्थं सर्गमित्येतन्मानसं विद्धि मे मतम् ॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
पञ्चमं सर्गमित्याहुर्भौतिकं भूतचिन्तकाः २०
श्रोत्रं त्वक्चैव चक्षुश्च जिह्वा घ्राणं च पञ्चमम् ।
सर्गं तु षष्ठमित्याहुर्बहुचिन्तात्मकं स्मृतम् २१
अधः श्रोत्रेन्द्रियग्राम उत्पद्यति नराधिप ।
सप्तमं सर्गमित्याहुरेतदैन्द्रियकं स्मृतम् ॥ २२
ऊर्ध्वं स्रोतस्तथा तिर्यगुत्पद्यति नराधिप ।
अष्टमं सर्गमित्याहुरेतदार्जवकं स्मृतम् ॥ २३
तिर्यक्स्रोतस्त्वधःस्रोत उत्पद्यति नराधिप ।
नवमं सर्गमित्याहुरेतदार्जवकं बुधाः ॥ २४
एतानि नव सर्गाणि तत्त्वानि च नराधिप ।
चतुर्विंशतिरुक्तानि यथाश्रुति निदर्शनात् २५
अत ऊर्ध्वं महाराज गुणस्यैतस्य तत्त्वतः ।
महात्मभिरनुप्रोक्तां कालसंख्यां निबोध मे २६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥

## ३११-[१३८]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
अव्यक्तस्य नरश्रेष्ठ कालसंख्यां निबोध मे
पञ्चकल्पसहस्राणि द्विगुणान्यहरुच्यते ॥ १
रात्रिरेतावती चास्य प्रतिबुद्धो नराधिप ।
सृजत्योषधिमेवाग्रे जीवनं सर्वदेहिनाम् ॥ २

---

ततः संकल्पविकल्पात्मकं मनस्तच्च वियदादिभूततद्गुणशब्दाद्यात्मकम् ॥ १८ ॥ अत एव तस्मान्मनसो भूतोत्पत्तिरुच्यते । अतो मानसत्वाद्भूतानां स्थूलसूक्ष्मतारूपो विभागो नास्तीति विशेषेषु शब्दादय एव गणिता न स्थूलपृथिव्याद्याः । तेषां शब्दादिहेतुत्वेन विकारान्तरानुपादानत्वरूपाविशेषत्वायोगात् एतच्च तार्किकादीनामपि सम्मतं श्रुत्यनुगृहीतं च । तथाहि- तार्किका गुणिनः सकाशाद्गुणोत्पत्तिमिच्छन्त आकाशादिभ्य एव शब्दाद्युत्पत्तिमिच्छन्ति । श्रुतिश्च--

'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः' ॥

इति विलोमक्रमेण इममेवानुक्रमं प्रदर्शयति । परत्वं कारणत्वम् । अर्थाः खादयः ॥ १९ ॥ शब्दादीनां सर्गस्तु भौतिकः पञ्चमः ॥ २० ॥ बहुचिन्तात्मकं मानसमित्यर्थः । एतेन शब्दादीनां श्रोत्राद्यजनकत्वमुक्तं तेन च तेषां विशेषत्वं दृढीकृतं भवति ॥ २१ ॥ श्रोत्रादिभ्योऽधस्तनोऽधः- श्रोत्रः स चासाविन्द्रियग्रामश्च वागादिः । सोऽपि श्रोत्रादिवच्चिन्तात्मक एवेति भावः । ऐन्द्रियकं इन्द्रियसमुदायः ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वं स्रोतः प्रवाहोऽस्येति प्राण ऊर्ध्वस्रोताः । तिर्यगित्यत्रापि स्रोतःपदानुषङ्गो द्रष्टव्यः । तेन नाभिमध्यस्थस्य समानस्य सर्वाङ्गव्यापिनो व्यानस्य सर्वसन्धिगतस्योदानस्य च उपरिभागगतांशानां ग्रहणम् । एतदार्जवकं एतस्य ऐन्द्रियकस्य आर्जवकं ऋजुवृत्तिः । विशेषानाक्रान्तसामान्यवृत्तिरिति यावत् । यथोक्तं सांख्यसप्तत्याम्-'सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च' इति ॥ २३ ॥ तिर्यक्स्रोतः शब्देन तेषामेव समानोदानव्यानानां देहस्याधोभागगतानां ग्रहणम् । अधःस्रोता अपानः शेषं प्राग्वत् ॥ २४ ॥ सर्गाणि क्लीबत्वमार्षं चतुर्विंशतिरव्यक्तमहदहङ्कारमनांसि चत्वारि पञ्चभूतानि पञ्च शब्दाद्याः । पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । प्राणादिपञ्चकस्येन्द्रियेष्वेवान्तर्भावाच्चतुर्विंशतिरेवेत्यर्थः ॥ २५ ॥ गुणस्य गुणसर्गस्य तत्त्वतः तदुपासनया तत्तद्भावापत्तिं प्राप्य । ल्यब्लोपे पञ्चमी । यावन्तं यावन्तं कालं तिष्ठति तत्तत्कालस्य संख्यां निबोध बुध्यस्व मे मत्तः ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥

### ३११

मोक्षस्यानन्त्यं वक्तुं कर्मोपास्तिफलस्य सर्वस्य सावधिकत्वमाह—**अव्यक्तस्येत्यादिना** । अव्यक्तस्य उपासनयाऽव्यक्तभावं गतस्य ॥ १ ॥ **रात्रिरेतावतीति** । अनयैव संख्यया 'शतायुर्वै पुरुषः' इतिश्रुतेरस्य शतं वर्षाण्यायुरिति ज्ञेयम् । एवमुत्तरत्र अस्यैश्वर्यमाह-**सृजतीति** । ओषधिं अन्नं तत्कार्यं मनः 'अन्नमयं हि सोम्य मनः'

ततो ब्रह्माणमसृजद्धिरण्याण्डसमुद्भवम् ।
सा मूर्तिः सर्वभूतानामित्येवमनुशुश्रुम ॥ ३
संवत्सरमुषित्वाण्डे निष्क्रम्य च महामुनिः ।
संदधे स महीं कृत्स्नां दिवमूर्ध्वं प्रजापतिः ४
द्यावापृथिव्योरित्येष राजन्वेदेषु पठ्यते ।
तयोः शकलयोर्मध्यमाकाशमकरोत्प्रभुः ॥ ५
एतस्यापि च संख्यानं वेदवेदाङ्गपारगैः ।
दशकल्पसहस्राणि पादोनान्यहरुच्यते ॥ ६
रात्रिमेतावतीं चास्य प्राहुरध्यात्मचिन्तकाः
सृजत्यहङ्कारमृषिर्भूतं दिव्यात्मकं तथा ॥ ७
चतुरश्चापरान् पुत्रान्देहात्पूर्वं महानृषिः ।
ते वै पितॄणां पितरः श्रूयन्ते राजसत्तम ॥ ८
देवाः पितॄणां च सुता देवैर्लोकाः समावृताः
चराचरा नरश्रेष्ठ इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ९
परमेष्ठी त्वहङ्कारः सृजन् भूतानि पञ्चधा ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्
एतस्यापि निशामाहुस्तृतीयमिह कुर्वतः ।
पञ्चकल्पसहस्राणि तावदेवाहरुच्यते ॥ ११
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।

एते विशेषा राजेन्द्र महाभूतेषु पञ्चसु ॥ १२
यैराविष्टानि भूतानि अहन्यहनि पार्थिव ।
अन्योन्यं स्पृहयन्त्येते अन्योन्यस्य हिते रताः
अन्योन्यमतिवर्तन्ते अन्योन्यस्पर्धिनस्तथा ।
ते वध्यमाना ह्यन्योन्यं गुणैर्हारिभिरव्ययैः ॥
इहैव परिवर्तन्ते तिर्यग्योनिप्रवेशिनः ।
त्रीणि कल्पसहस्राणि एतेषामहरुच्यते ॥ १५
रात्रिरेतावती चैव मनसश्च नराधिप ।
मनश्चरति राजेन्द्र चारितं सर्वमिन्द्रियैः १६
न चेन्द्रियाणि पश्यन्ति मन एवानुपश्यति ।
चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा तु न चक्षुषा ॥
मनसि व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति ।
तथेन्द्रियाणि सर्वाणि पश्यन्तीत्यभिचक्षते
न चेन्द्रियाणि पश्यन्ति मन एवात्र पश्यति
मनस्युपरते राजन्निन्द्रियोपरमो भवेत् ॥ १९
तदिन्द्रियेषूपरमो मनस्युपरमो भवेत् ।
एवं मनःप्रधानानि इन्द्रियाणि प्रभावयेत् ॥
इन्द्रियाणां तु सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते ।
एतद्विशन्ति भूतानि सर्वाणीह महायशः २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥

---

इति श्रुतेः । 'असतोऽधिमनोऽसृज्यत' इति श्रुतेश्चास च्छब्दितादव्यक्तान्महत्तत्त्वापरनामकं सूक्ष्मं मनोऽसृजदित्यर्थः ॥ २ ॥ 'मनः प्रजापतिमसृजत' इति श्रुतेरर्थमाह— **तत इति** । मनोद्वाराऽव्यक्तमेव प्रजापतिमसृजदिति श्रुत्यर्थो दर्शितः । एवमन्यास्वपि श्रुतिषु आकाशादीनां वाय्वादिस्रष्टृत्वोक्तिर्व्याख्येया । अण्डं ब्रह्माण्डं वासनामयं सेति तच्छब्देनाण्डमुच्यते ॥ ३ ॥ महामुनिर्महान् सन्दधे अनुसन्धानं कृतवान् । अव्यक्तस्याव्याकृतस्य येयं 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति प्राणिकर्मानुरोधेन स्रष्टव्यब्रह्माण्डालोचनात्मकस्य ईक्षणस्य कर्त्री चिदाचिदात्मिका पारमेश्वरी शक्तिः । सैव महत्तत्त्वमिति प्रघट्टकार्थः ॥ ४ ॥ **सृजतीति** । ऋषिर्महान् भूतं महाभूतोपादानत्वात् ॥ ७ ॥ देहात् भौतिकदेहोत्पत्तेः पूर्वं चतुरो भौतिकान् व्यष्टिमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यान्पुत्रान्महानृषिरसृजत् । ते चत्वारः पुत्राः पितॄणां महाभूतानामपि पितर इति मन आदाय एव भूतानां कल्पका इत्यर्थः ॥ ८ ॥ एवं दृष्टिसृष्टिमुक्त्वा सृष्टिदृष्टिमाह—**देवा इति** । देवा इन्द्रियाणि अंतःकरणचतुष्टयसहिताः पितॄणां महाभूतानां सुताः । देवैर्भूतैः । लोकाश्चतुर्दशभुवनानि चराचराश्च तदन्तर्गता भूतैरेवावृताः ॥ ९ ॥ एतदेव विस्पष्टयति—**परमेष्ठीति** । चकारात् भौतिकानि मनआदीनि ॥ १० ॥ अहङ्कारोपासकस्यापि कालमानमाह—**एतस्येति** । तृतीयं आहङ्कारिकं सर्गम् ॥ ११ ॥ हारिभिर्हरणशीलैः गुणैः रूपादिभिः ॥१४॥ **त्रीणीति** । एतेषां विशेषोपासकानाम् ॥ १५ ॥ भूतादीनामुपास्तिर्मनआख्यान्महत उपासनान्नातिरिच्यत इत्याशयेन मनसः प्राधान्यं प्रतिपादयति—**मनश्चरतीत्यादिना** ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥

## ३१२-[१३९]

याज्ञवल्क्य उवाच ।

तत्त्वानां सर्वसंख्या च कालसंख्या तथैव च
मया प्रोक्ताऽऽनुपूर्व्येण संहारमपि मे शृणु १
यथा संहरते जन्तून्ससर्ज च पुनः पुनः ।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च २
अहःक्षयमथो बुद्ध्वा निशि स्वप्नमनास्तथा ।
चोदयामास भगवानव्यक्तोऽहंकृतं नरम् ३
ततः शतसहस्रांशु-
रव्यक्तेनाभिचोदितः ।
कृत्वा द्वादशधाऽऽत्मान-
मादित्यो ज्वलदग्निवत ॥ ४
चतुर्विधं महीपाल निर्दहत्याशु तेजसा ।
जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जं च नराधिप ५
एतदुन्मेषमात्रेण विनष्टं स्थाणु जङ्गमम् ।
कूर्मपृष्ठसमा भूमिर्भवत्यथ समन्ततः ॥ ६
जगद्दग्ध्वाऽमितबलः केवलां जगतीं ततः ।
अंभसा बलिना क्षिप्रमापूरयति सर्वशः ॥ ७
ततः कालाग्निमासाद्य
तदम्भो याति संक्षयम् ।
विनष्टेऽम्भसि राजेन्द्र
जाज्वलत्यनलो महान् ॥ ८
तमप्रमेयोऽतिबलं ज्वलमानं विभावसुम् ।
ऊष्माणं सर्वभूतानां सप्तार्चिषमथाञ्जसा ॥ ९
भक्षयामास भगवान् वायुरष्टात्मको बली ।
विचरन्नमितप्राणस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ १०
तमप्रतिबलं भीममाकाशं ग्रसतेऽऽत्मना ।
आकाशमप्यभिनदन्मनो ग्रसति चाधिकम्
मनो ग्रसति भूतात्मा सोऽहंकारः प्रजापतिः
अहंकारो महानात्मा भूतभव्यभविष्यवित्१२
तमप्यनुपमात्मानं विश्वं शंभुः प्रजापतिः ।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः
सर्वतःपाणिपादान्तः सर्वतोक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति १४
हृदयं सर्वभूतानां पर्वणाङ्गुष्ठमात्रकः ।
अथ ग्रसत्यनन्तो हि महात्मा विश्वमीश्वरः ।
ततः समभवत्सर्वमक्षयाव्ययमव्रणम् ।
भूतभव्यभविष्याणां स्रष्टारमनघं तथा ॥ १६
एषोऽप्ययस्ते राजेन्द्र यथावत्समुदाहृतः ।
अध्यात्ममधिभूतं च अधिदैवं च श्रूयताम् १७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥

---

३१२

विनाशिफलत्वेऽपि भोजनादिवत्तत्त्वानामुपास्तिरादर्तव्येत्याशंक्य तत्फलस्यान्ते बीभत्सतां दर्शयितुं प्रलयमाह—**तत्त्वानामित्यादिना** ॥ १ ॥ अहंकृतं नरं अहङ्काराभिमानिनं महारुद्रम् ॥ ३ ॥ सूर्यरूपी रुद्र एव शतसूर्यसमोऽभूत् ॥ ४ ॥ जाज्वलति अतिशयेन ज्वलति ॥ ८ ॥ अष्टात्मकः यथा द्वादशात्मा सूर्यः एवमष्टात्मको वायुः सर्वैः स्वरूपैर्युगपद्वातीत्यर्थः ॥ १० ॥ अहङ्कारः अहङ्कारं महानात्मा ग्रसतीत्यनुषज्जते ॥ १२ ॥ शम्भुः ईश्वरः तमेव विशिनष्टि—**अणिमेति** । सर्वसिद्धिरूप इत्यर्थः ॥ १३ ॥ सर्वत इत्यादिना ऐश्वरं ज्ञेयं रूपमुक्तम् ॥ १४ ॥ हृदयं हृदयस्थाया बुद्धेः प्रवर्तकः । पर्वणा एकदेशेन अंगुष्ठमात्रकः बुद्ध्युपाधिवशादंगुष्ठपर्वमात्र इत्यर्थः । ' अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा ' इत्यादिश्रुतेः । विश्वं महदन्तम् ॥ १५ ॥ महात्मनोऽपि नाशे सर्वं ब्रह्म समभवत् आविर्भवति । क्षयोऽपचयो व्ययो नाशो व्रणः परिणामस्तैः रहितं अनघं मायादोषास्पर्शिनम् ॥ १६ ॥ इमं च प्रलयं योगिनो नित्यमनुभवन्तीत्यहरहरनुष्ठेय इत्याशयेनाह—**अध्यात्ममिति** । अयं भावः—'अथातो विभूतयोऽस्य पुरुषस्य वाचा सृष्टौ पृथिवी चाग्निश्च ' इत्यादिश्रुत्याऽध्यात्मिकवाचः सकाशादाधिभौतिकानां पृथिव्यादीनामाधिदैविकानामग्न्यादीनां चोत्पत्तिः श्रुता अतो वाचो निग्रहे तत्कार्ययोः पृथिव्यग्न्योरपि प्रलयो भवतीति सर्वकारणलयात्सर्वलये सति केवलोऽद्वैतोऽवशिष्यते । ननु वागादेर्लयेऽपि व्यवहारानुच्छेदादग्न्यादिलयो न युज्यत इति चेत् भ्रान्तोऽसि। येऽन्यादीन्पश्यन्ति तेषां वागादयो लीनाः सन्ति यस्य तु वागादयो लीना नासौ वन्ह्यादीन्पश्यतीति । नन्वेवं प्रपञ्चस्य रज्जूरगतुल्यता स्यात् । योगिदृष्ट्या नाशेऽपीतरदृष्ट्यां तदभावादिति चेत् । इष्टापत्तिः । न हि नित्यसंनिहितं वस्तु बहूनामलुप्तदृशां मध्ये कश्चिन्न पश्यतीतरे तु पश्यन्तीति युज्यते । तस्माद्रज्जूरगसमस्यास्य संसारस्योच्छेदाय तत्त्वज्ञानार्थं यत्न आस्थेय इति ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥

# ३१३-[१४०]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
पादावध्यात्ममित्याहुर्ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः
गन्तव्यमधिभूतं च विष्णुस्तत्राधिदैवतम् १
पायुरध्यात्ममित्याहुर्यथा तत्त्वार्थदर्शिनः ।
विसर्गमधिभूतं च मित्रस्तत्राधिदैवतम् ॥ २
उपस्थोऽध्यात्ममित्याहुर्यथायोगप्रदर्शिनः ।
अधिभूतं तथाऽऽनन्दो दैवतं च प्रजापतिः ३
हस्तावध्यात्ममित्याहुर्यथा संख्यानदर्शिनः ।
कर्तव्यमधिभूतं तु इन्द्रस्तत्राधिदैवतम् ॥ ४
वागध्यात्ममिति प्राहुर्यथा श्रुतिनिदर्शिनः ।
वक्तव्यमधिभूतं तु वह्निस्तत्राधिदैवतम् ॥ ५
चक्षुरध्यात्ममित्याहुर्यथा श्रुतिनिदर्शिनः ।
रूपमत्राधिभूतं तु सूर्यश्चाप्यधिदैवतम् ॥ ६
श्रोत्रमध्यात्ममित्याहुर्यथा श्रुतिनिदर्शिनः ।
शब्दस्तत्राधिभूतं तु दिशश्चात्राधिदैवतम् ७
जिह्वामध्यात्ममित्याहुर्यथाश्रुतिनिदर्शिनः ।
रस एवाधिभूतं तु आपस्तत्राधिदैवतम् ॥ ८
घ्राणमध्यात्ममित्याहुर्यथाश्रुतिनिदर्शिनः ।
गन्ध एवाधिभूतं तु पृथिवी चाधिदैवतम् ९
त्वगध्यात्ममिति प्राहुस्तत्त्वबुद्धिविशारदाः ।
स्पर्शमेवाधिभूतं तु पवनश्चाधिदैवतम् ॥ १०
मनोऽध्यात्ममिति प्राहुर्यथा शास्त्रविशारदाः
मन्तव्यमधिभूतं तु चन्द्रमाश्चाधिदैवतम् ११
अहङ्कारिकमध्यात्ममाहुस्तत्त्वनिदर्शिनः ।
अभिमानोऽधिभूतं तु बुद्धिश्चात्राधिदैवतम् ॥
बुद्धिरध्यात्ममित्याहुर्यथावदभिदर्शिनः ।
बोद्धव्यमधिभूतं तु क्षेत्रज्ञश्चाधिदैवतम् ॥ १३
एषा ते व्यक्तितो राजन् विभूतिरनुदर्शिता ।
आदौ मध्ये तथान्ते च यथा तत्त्वेन तत्त्ववित्
प्रकृतिर्गुणान्विकुरुते स्वच्छन्देनात्मकाम्यया
क्रीडार्थं तु महाराज शतशोऽथ सहस्रशः १५
यथा दीपसहस्राणि दीपान्मर्त्याः प्रकुर्वते ।
प्रकृतिस्तथा विकुरुते पुरुषस्य गुणान्बहून् १६
सत्त्वमानन्द उद्रेकः प्रीतिः प्राकाश्यमेव च ।
सुखं शुद्धित्वमारोग्यं सन्तोषः श्रद्दधानता १७
अकार्पण्यमसंरंभः क्षमा धृतिरहिंसता ।
समता सत्यमानृण्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् १८
शौचमार्जवमाचारमलौल्यं हृद्यसंभ्रमः ।
इष्टानिष्टवियोगानां कृतानामविकत्थना १९
दानेन चात्मग्रहणमस्पृहत्वं परार्थता ।
सर्वभूतदया चैव सत्त्वस्यैते गुणाः स्मृताः २०
रजोगुणानां संघातो रूपमैश्वर्यविग्रहौ ।
अत्यागित्वमकारुण्यं सुखदुःखोपसेवनम् २१
परापवादेषु रतिर्विवादानां च सेवनम् ।
अहंकारमसत्कारश्चिन्तावैरोपसेवनम् ॥ २२
परितापोऽभिहरणं ह्रीनाशोऽनार्जवं तथा ।
भेदः परुषता चैव कामः क्रोधो मदस्तथा २३
दर्पो द्वेषोऽतिवादश्च एते प्रोक्ता रजोगुणाः ।
तामसानां तु संघातं प्रवक्ष्याम्युपधार्यताम् ॥
मोहोऽप्रकाशस्तामिस्रमन्धतामिस्रसंज्ञितम् ।
मरणं चान्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते २५
तमसो लक्षणानीह भक्षणाद्यभिरोचनम् ।
भोजनानामपर्याप्तिस्तथाऽपेयेष्वतृप्तता ॥ २६
गन्धवासो विहारेषु शयनेष्वासनेषु च ।
दिवास्वप्नेऽतिवादे च प्रमादेषु च वै रतिः २७
नृत्यवादित्रगीतानामज्ञानाच्छ्रद्दधानता ।
द्वेषो धर्मविशेषाणामेते वै तामसा गुणाः २८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥

---

३१३

**पादाविति** ॥ १ ॥ **एषेति** । आदौ मध्येऽन्ते चेति सृष्टिसमाधिप्रलयप्रपञ्चेनैकाद्वितीयस्यैव कृत्स्नं द्वैतं विभूतिः सर्प इव रज्ज्वामिति दर्शितामित्यर्थः ॥ १४ ॥ प्रकृतिरविद्या सुप्तिप्रबोधवद्रात्रिदिनवदुन्मीलननिमीलनवच्च गुणान् महदादीन् विकुरुते विशेषेणाविष्कुरुते तेन प्रकरोतीति प्रकृतिपदस्य व्युत्पत्तिर्दर्शिता 'क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्' इति क्तः संज्ञायां क्तिच् स्वच्छन्देनेति प्रेरकान्तराभाव उक्तः । आत्मकाम्यया क्रीडार्थं चेति मोक्षभोगौ तत्फलमुक्तम् ॥१५॥ दीपदृष्टान्तेन क्रीडाविषयाणामानन्त्यमुक्तम् । तेन परिणामक्रमेण मोक्षफलमपि यत्नं विना स्वयमेव भविष्यतीति प्रत्याशा न कार्येति दर्शितम् ॥ १६ ॥ गुणविकारानेवाह —**सत्त्वमित्यादिना** । सत्त्वं धैर्यं उद्रेक ऐश्वर्यं शेषं स्पष्टार्थम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥

# ३१४-[१४१]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
एते प्रधानस्य गुणास्त्रयः पुरुषसत्तम ।
कृत्स्नस्य चैव जगतस्तिष्ठन्त्यनपगाः सदा ॥ १
अव्यक्तरूपो भगवान् शतधा च सहस्रधा ।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ २
कोटिशश्च करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना ।
सात्त्विकस्योत्तमं स्थानं राजसस्येह मध्यमम्
तामसस्याधमं स्थानं प्राहुरध्यात्मचिन्तकाः ।
केवलेनेह पुण्येन गतिमूर्ध्वामवाप्नुयात् ॥ ४
पुण्यपापेन मानुष्यमधर्मेणाप्यधोगतिम् ।
द्वन्द्वमेषां त्रयाणां तु सन्निपातं च तद्वतः ॥ ५
सत्त्वस्य रजसश्चैव तमसश्च शृणुष्व मे ।
सत्त्वस्य तु रजो दृष्टं रजसश्च तमस्तथा ॥ ६
तमसश्च तथा सत्त्वं सत्त्वस्याव्यक्तमेव च ।
अव्यक्तः सत्त्वसंयुक्तो देवलोकमवाप्नुयात् ॥ ७
रजःसत्त्वसमायुक्तो मानुषेषु प्रपद्यते ।
रजस्तमोभ्यां संयुक्तस्तिर्यग्योनिषु जायते ८
राजसैस्तामसैः सत्त्वैर्युक्तो मानुषमाप्नुयात् ।
पुण्यपापवियुक्तानां स्थानमाहुर्महात्मनाम् ९
शाश्वतं चाव्ययं चैवमक्षयं चामृतं च तत् ।
ज्ञानिनां संभवं श्रेष्ठं स्थानमव्रणमच्युतम् ।
अतीन्द्रियमबीजं च जन्ममृत्युतमोनुदम् १०
अव्यक्तस्थं परं यत्तत्पृष्टस्तेऽहं नराधिप ।
स एष प्रकृतिस्थो हि तत्स्थ इत्यभिधीयते ११
अचेतना चैव मता प्रकृतिश्चापि पार्थिव ।
एतेनाधिष्ठिता चैव सृजते संहरत्यपि ॥ १२

जनक उवाच ।
अनादिनिधनावेतावुभावेव महामते ।
अमूर्तिमन्तावचलावप्रकंप्यगुणागुणौ ॥ १३
अग्राह्यावृषिशार्दूल कथमेको ह्यचेतनः ।
चेतनावांस्तथा चैकः क्षेत्रज्ञ इति भाषितः ॥
त्वं हि विप्रेन्द्र कार्त्स्न्येन मोक्षधर्ममुपाससे ।
साकल्यं मोक्षधर्मस्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
अस्तित्वं केवलत्वं च विनाभावं तथैव च ।
दैवतानि च मे ब्रूहि देहं यान्याश्रितानि वै ॥
तथैवोत्क्रामिणः स्थानं देहिनो वै विपद्यतः ।
कालेन यद्धि प्राप्नोति स्थानं तत्प्रब्रवीहि मे ॥
सांख्यज्ञानं च तत्त्वेन पृथग्योगं तथैव च ।
अरिष्टानि च तत्त्वानि वक्तुमर्हसि सत्तम ।
विदितं सर्वमेतत्ते पाणावामलकं यथा ॥ १८

---

३१४

एतैर्गुणविकारैस्तत्प्रकाशकः पुरुषोऽनेकधा विक्रियत इव प्रकाश इवाङ्गुल्याद्युपाधिभिराकाश इव काहलकलशनालिकाद्युपाधिभिर्दीर्घवर्तुलदंडाद्याकारतामिव प्रतिपद्यते । तद्वत्तत्तदाकारानुरूपाणि चोत्तममध्यमाधमानि स्थानानि प्राप्नोतीत्यत्र प्रतिपाद्यते-**एते प्रधानस्य गुणा इत्यादिना** ॥१॥ निरूपणतात्पर्यमाह--**पुण्येति** ॥ ९ ॥ पुण्यादिवियोगे हेतुं ज्ञानिनां मध्ये संभवमाह—**ज्ञानिनामिति** । तत्त्वज्ञसंगत्या तत्त्वं प्राप्य पुण्यपापविमुक्तो भवतीत्यर्थः । अबीजं निरविद्यम् ॥ १० ॥ अव्यक्तस्थं अव्यक्तेऽमूर्ते ब्रह्मणि तिष्ठतीति तथा । अव्यक्तद्वारा प्राप्यमित्यर्थः । किं मंजूषारत्नवदित्याह--**स एष इति** । प्रकृतिः स्वरूपं नित्यं कूटस्थ एव स उपचारात्प्रकृतिस्थ इत्युच्यते । घटाकाशे गतिरिवास्मिन्प्रकृतिस्थत्वमारोप्यते ॥ ११ ॥ एतेनायस्कान्तकल्पेन प्रकृतिर्लोहतुल्या ॥१२॥ उभयोरपि तुल्यवच्चेतनत्वं मन्वानः प्रकृतेरचेतनत्वमाक्षिपति-**अनादीत्यादिना** । अमूर्तत्वं अदृश्यत्वम् । तच्च नित्यानुमेये प्रधाने पुरुषे च तुल्यमतस्तयोरनादिनिधनत्वं ततश्चाप्रकंप्यगुणागुणत्वं अगुणः संगित्वादिदोषः गुणोऽसंगित्वादिः अप्रच्युतस्वभावादित्यर्थः ॥ १३ ॥ अग्राह्यत्वाच्च तयोर्वैलक्षण्यं न निश्चेतुं शक्यमित्याह--**अग्राह्याविति** ॥ १४ ॥ एवं पुंसश्चेतनत्वेऽपि अस्तित्वं कथं वन्ह्यौष्ण्ययोरिव पुंप्रकृत्योर्युगपन्नाशावश्यंभावात् । अस्तित्वे वा केवलत्वं प्रकृत्या वियुक्तत्वं कथं पुंसो विभुत्वेन प्रकृतेरविनाशेन च तदसंभवात् । ननु तर्कमते आत्ममनसोरिव पुंप्रकृत्योर्नित्ययोगेऽपि फलोपहितो विलक्षणः संयोगोऽन्यः स च कादाचित्क इति तदभावान्मोक्षे पुंसः केवलत्वं युज्यत इत्याशंक्याह—**विनाभावमिति** । निरवयवे पुंसि अव्याप्यवर्तिनः संयोगस्यैवासंभवात् अभ्युपगमेऽपि तत्वादिवत्प्रदेशभेदाभावेन तद्वैलक्ष्यण्यस्य सुतरामसंभवाच्च दृष्टान्ते दार्ष्टान्तिके च तुल्यवत्संयोगासिद्धौ दृश्यमानस्य संयोगस्य मिथ्यात्वमन्तरेण विनाभावो न संभवति । मिथ्यात्वं च प्रत्यक्षादिप्रमाणविरुद्धमित्याशयः ॥ १६ ॥ उत्क्रामिण उत्क्रान्तस्य विपद्यतो म्रियमाणस्य ॥ १७ ॥ अरिष्टानि मृत्युसूचकानि ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे चतुर्दशाधिकात्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥

## ३१५-[१४२]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
न शक्यो निर्गुणस्तात गुणीकर्तुं विशांपते
गुणवांश्चाप्यगुणवान्यथातत्त्वं निबोध मे ॥ १
गुणैर्हि गुणवानेव निर्गुणश्चागुणस्तथा ।
प्राहुरेवं महात्मानो मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ २
गुणस्वभावस्त्वव्यक्तो गुणान्नैवातिवर्तते ।
उपयुंक्ते च तानेव स चैवाज्ञः स्वभावतः ॥ ३
अव्यक्तस्तु न जानीते पुरुषोऽज्ञः स्वभावतः।
न मत्तः परमोऽस्तीति नित्यमेवाभिमन्यते ४
अनेन कारणेनैतदव्यक्तं स्यादचेतनम् ।
नित्यत्वाच्चाक्षरत्वाच्च क्षरत्वाच्च तदन्यथा ५
यदाऽज्ञानेन कुर्वीत गुणसर्गं पुनः पुनः ।
यदात्मानं न जानीते तदात्मापि न मुच्यते ६
कर्तृत्वाच्चापि सर्गाणां सर्गधर्मा तथोच्यते ।
कर्तृत्वाच्चापि योगानां योगधर्मा तथोच्यते ७
कर्तृत्वात्प्रकृतीनां च तथा प्रकृतिधर्मिता ॥ ८
कर्तृत्वाच्चापि बीजानां बीजधर्मा तथोच्यते
गुणानां प्रसवत्वाच्च प्रलयत्वात्तथैव च ॥ ९
उपेक्षत्वादनन्यत्वादभिमानाच्च केवलम् ।
मन्यन्ते यतयः सिद्धा अध्यात्मज्ञा गतज्वराः
अनित्यं नित्यमव्यक्तं व्यक्तमेतद्धि शुश्रुम १०
अव्यक्तैकत्वमित्याहुर्नानात्वं पुरुषास्तथा ।
सर्वभूतदयावन्तः केवलं ज्ञानमास्थिताः ११

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥

३१५

कथमेको ह्यचेतन इति चेतनाचेतनविभागमाक्षिपतस्त्वो-भावपि किं चेतनावचेतनौ वा सम्मतौ ।नान्त्यः। जगदान्ध्य-प्रसंगात्। नाद्यः दृश्यमानस्य दृग्दृश्यविभागस्य दुरपन्हवत्वात्। अथ यथा मलये चन्दनाचन्दनावपि चन्दनावेव भवत एवम-नादिसंयोगाच्चेतनाचेतनावपि तौ चेतनावेव भवत इति ब्रूषे तदपि न । स्वभावस्यापरिहार्यत्वादित्याह-**न शक्य इति** ॥१॥ स्वभावतः अज्ञोऽपि आरोपितेन ज्ञत्वेन उपयुंक्ते भुंक्ते तान् गुणान् ॥ ३ ॥ तर्हि मुख्यो भोक्ता किं पुरुष इत्याशंक्य नेत्याह-**अव्यक्त इति**। अव्यक्तोऽदृश्यो दृगात्मा न जानीते न भुंक्ते च यतः मत्त आत्मनोऽन्यं भोग्यमर्थं न पश्यति अभि-मन्यत इति व्युत्थानाभिप्रायेणोक्तम् ॥४॥ अनेन भोक्तृत्वा-भोक्तृत्ववैलक्षण्येन एतत् अव्यक्तं प्रधानं स्वभावतः अचेतन-मपि तदन्यथा ततो भोक्तुः सकाशादन्यथा विपरीतं अभोक्तृ न स्यात् । कथं जडे भोक्तृत्वमत आह-**अक्षरत्वात्क्षर-त्वाच्चेति** । क्षराक्षरात्मत्वात् चिदचिदात्मकत्वात्तस्य भोक्तृत्वं न तु काष्ठकुड्यवदचेतनांशमात्रस्येत्यर्थः । नित्यत्वाच्च भोग्यभोक्तृविभागस्य न कश्चिद्दोष इत्यर्थः ॥ ५ ॥ ननु जतुकाष्ठयोरिव तुल्यस्वभावयोः सं-श्लेषो दृष्टो न तु काष्ठाकाशयोरिति चिदचितोः सम्बन्धो दुर्निरूप इत्याशंक्याह—**यदेति** । अज्ञानेनेति च्छेदः गुण-सर्गे गुणसंसर्गं आद्यो यदाशब्दो यस्मादर्थे । यदिति पाठः स्वच्छः । यस्माद्वाध्यासिकोऽयमज्ञानकृत आत्मनि गुणसं-सर्गस्तस्माद्यावदात्मानमसंगं न जानाति तावन्न मुच्यते इत्यर्थः ॥ ६ ॥ अमुक्तिहेतुमाह-**कर्तृत्वादित्यादिना** । प्राकृतेन महदादितत्त्वकर्तृत्वेनायमपि कर्ता यतो भवत्यतो न मुच्यत इत्यर्थः ॥ ७ ॥ प्रकृतीनां प्रजानाम् ॥८॥ बीजानां स्थावराणां गुणानां कामशमादीनाम् ॥ ९ ॥ नन्वेवंविधस्य कथं केवलत्वं स्यादत आह—**उपेक्षत्वादिति** । उप समीपे स्थित्वा ईक्षते इत्युपेक्षः साक्षी न हि साक्ष्येण साक्षी विक्रियते घटेनालोक इवातः केवलत्वमस्य युज्यते यथोक्तम्

'नर्ते स्याद्विक्रिया दुःखी साक्षिता का विकारिणः ।
धीविक्रियासहस्राणां साक्ष्यतोऽहमविक्रियः' ॥ इति

ननु साक्षित्वमस्तु मा वा प्रतिकूलवेदनीयं दुःखं त्वपरि-हार्यमित्याशंक्याह—**अनन्यत्वादिति** । नास्त्यन्योऽस्मादित्यनन्यस्तत्त्वात् दुःखादेः स्वरूपेणाप्यसत्त्वान्नात्मनि तत्संबन्धः कदाचिदप्यस्तीत्यर्थः । कुतस्तर्हि दुःखभानमत आह-**अभिमानादिति** । यदा हि पुत्रमात्मीयं मन्यते तदा तद्दुःखेन दुःखी भवति नान्यथा । एवं धीतादात्म्याद्धीदुःखेनैवास्य दुःखित्वं धीत्यागे तु केवलत्वं नित्यसिद्ध-मिति एतेन अस्तित्वकेवलत्वविनाभावानामाक्षेपः परिहृतो ज्ञेयः—**अनित्यमिति** । अनित्यं परिणामि अव्यक्तं कारणं व्यक्तं कार्यमिति ॥ १० ॥ तत्र मतान्तरमाह **-अव्यक्तस्य** । एकत्वं पुरुषाः षष्ठ्यर्थे प्रथमा । **पुरुषाणां नानात्वमिति** । आहुर्निरीश्वरसांख्याः । तान्विशिनष्टि **—सर्वेत्यर्धेन** ॥ ११ ॥

अन्यः स पुरुषोऽव्यक्तस्त्वध्रुवो ध्रुवसंज्ञकः ।
यथा मुञ्ज इषीकाणां तथैवैतद्धि जायते ॥ १२
अन्यश्च मशकं विद्यादन्यच्चोदुम्बरं तथा ।
न चोदुम्बरसंयोगैर्मशकस्तत्र लिप्यते ॥ १३
अन्य एव तथा मत्स्यस्तदन्यदुदकं स्मृतम् ।
न चोदकस्य स्पर्शेन मत्स्यो लिप्यति सर्वशः
अन्यो ह्यग्निरुखाप्यन्या नित्यमेवमवेहि भोः ।
न चोपलिप्यते सोऽग्निरुखासंस्पर्शनेन वै १५
पुष्करं त्वन्यदेवात्र तथाऽन्यदुदकं स्मृतम् ।
न चोदकस्य स्पर्शेन लिप्यते तत्र पुष्करम् १६
एतेषां सहवासं च निवासं चैव नित्यशः ।
याथातथ्येन पश्यन्ति न नित्यं प्राकृता जनाः
ये त्वन्यथैव पश्यन्ति न सम्यक्तेषु दर्शनम् ।
ते व्यक्तं निरयं घोरं प्रविशन्ति पुनः पुनः १८
सांख्यदर्शनमेतत्ते परिसंख्यानमुत्तमम् ।
एवं हि परिसंख्याय सांख्याः केवलतां गताः
ये त्वन्ये तत्त्वकुशलास्तेषामेतन्निदर्शनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योगानामनुदर्शनम् २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

## ३१६-[२४३]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
सांख्यज्ञानं मया प्रोक्तं योगज्ञानं निबोध मे
यथाश्रुतं यथादृष्टं तत्त्वेन नृपसत्तम ॥ १
नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्
तावुभावेकचर्यौ तावुभावनिधनौ स्मृतौ २
पृथक् पृथक् प्रपश्यन्ति
येऽप्यबुद्धिरता नराः ।
वयं तु राजन् पश्याम
एकमेव तु निश्चयात् ॥ ३
यदेव योगाः पश्यन्ति
तत्सांख्यैरपि दृश्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च
यः पश्यति स तत्त्ववित् ॥ ४
रुद्रप्रधानानपरान्विद्धि योगानरिन्दम ।
तेनैव चाथ देहेन विचरन्ति दिशो दश ॥ ५
यावद्धि प्रलयस्तात सूक्ष्मेणाष्टगुणेन ह ।
योगेन लोकान्विचरन्सुखं संन्यस्य चानघ ६
वेदेषु चाष्टगुणिनं योगमाहुर्मनीषिणः ।
सूक्ष्ममष्टगुणं प्राहुर्नेतरं नृपसत्तम ॥ ७

---

पुंप्रकृत्योर्भेदमनेकदृष्टान्तपूर्वकमाह-**अन्य इत्यादिना** । अव्यक्त इति च्छेदः । इषीकाणां बाह्यो यथा मुञ्ज एवं पुंसो बाह्या अव्यक्ताद्या इत्यर्थः । श्रुतिश्च-

'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सान्निविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिव इषीकां
धैर्येण तं विद्याच्छुक्रममृतम्' ॥ इति

॥ १२ ॥ **उखा** मृत्पात्रविशेषः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहा. शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

**३१६**

**सांख्यज्ञानमिति** ॥ १ ॥ एकैव चर्या शमाद्यनुष्ठानं ययोस्तौ अनिधनौ मृत्युनाशकौ ॥ २ ॥ **पृथगिति**। उभाविति द्वितीयान्तमनुकृष्यते ॥ ३ ॥ उत्क्रमणकाले देहिनं रोदयन्तीति रुद्राः प्राणा इन्द्रियाणि च तान्येव प्रधानभूतान्यालम्बनानि येषु तान् । तथा च सूत्रम्-'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य विषयवती चाप्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी'। **प्रच्छर्दनं** रेचकः । **विधारणं** पूरकपूर्वकः कुंभकः । तथा नासिकाग्रे धारयतो गन्धसंवित् जिह्वाग्रे रससंवित् । तालुनि रूपसंवित् । जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित् जिह्वामूले शब्दसंवित् तत्र वायुधारणायाः फलं विचरान्ति दिशो दशेत्युक्तं खेचरत्वं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अष्टगुणेन पुर्यष्टकमयेन सूक्ष्मशरीरेण संन्यस्य संन्यासं च देहस्य सुखं यथेच्छं कुरु । एतद्दृष्टं फलं मोक्षान्तेषु योगधर्मेषु श्रद्धोत्पादनार्थमुक्तं न तु योगिनामवश्यादरणीयम् ॥ ६ ॥ **वेदेष्विति**। अष्टगुणिनं अणिमाद्यष्टगुणवन्तं नित्ययोगे मत्वर्थीयः । अष्टगुणं अष्टाङ्गम् । प्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानं धारणा तर्कः समाधिः षडंगा इति मैत्रायणीयोपनिषदि षडेवांगान्युक्तानि।

**द्विगुणं योगकृत्यं तु योगानां प्राहुरुत्तमम् ।**
**सगुणं निर्गुणं चैव यथा शास्त्रनिदर्शनम् ॥ ८**
**धारणं चैव मनसः प्राणायामश्च पार्थिव ।**
**एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च ॥ ९**
**प्राणायामो हि सगुणो निर्गुणं धारयेन्मनः ।**
**यद्यदृश्यति मुञ्चन्वै प्राणान्मैथिलसत्तम ।**
**वाताधिक्यं भवत्येव तस्मात्तं न समाचरेत्**
**निशायाः प्रथमे यामे चोदना द्वादश स्मृताः ।**
**मध्ये स्वप्नात्परे यामे द्वादशैव तु चोदनाः ११**

तथापि यमनियमाभ्यां श्रुत्यन्तरोक्ताभ्यां सहाष्टसंख्या बोध्या । अत्र सूक्ष्ममित्युक्तेः पूर्वस्य स्थूलत्वं मन्दाधिकारित्वं चोक्तम्। तर्को योगासिद्धिषूपस्थितासु दोषोन्नयनम्॥७॥ द्विगुणं द्विप्रकारम् । तदेवाह सगुणं सबीजं निर्गुणं निर्बीजम्॥८ सगुणमाह—**धारणमिति** । प्राणायामः प्राणनिग्रहपूर्वकं मनसः षोडशस्वाधारेषु धारणम् । ते च शिवयोगे प्रोक्ताः-'अथ ते षोडशाधारान्कथयामि विशेषतः' इत्यादिना पादांगुष्ठपार्ष्णिमूलप्रभृतयो नेत्राधारं षोडशं त्वित्यन्ताः । यद्वा याज्ञवल्क्योक्ताः प्राणुदाहृता अष्टादशस्थानात्स्थानं समाकृष्येत्यादिना दर्शिता ग्राह्याः । अथवा याज्ञवल्क्योक्ता एव पञ्चभूतधारणा ज्ञेयाः ।

पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते ।
आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥
आपायोर्हृदयान्तं यद्वह्निस्थानं तदुच्यते ।
हृन्मध्यात्तु भ्रुवोर्मध्ये यावद्वायुकुलं भवेत् ॥
आभ्रूमध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशस्थानमुच्यते ।
पृथिव्यां धारयेद्रार्गिं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥
विष्णुमप्स्वनले रुद्रमीश्वरं वायुमण्डले ।
सदाशिवं तथा व्योम्नि धारयेत्सुसमाहितः ॥
पृथिव्यां वायुमास्थाप्य लकारेण समन्वितम् ।
ध्यायंश्चतुर्मुखाकारं ब्रह्माणं सृष्टिकारणम् ॥
धारयेत्पञ्चघटिकाः पृथिवीजयमाप्नुयात् ।
वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम् ॥
स्मरन्नारायणं देवं चतुर्बाहुं शुचिस्मितम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ॥
धारयेत्पञ्चघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
वह्नावनिलमारोप्य रेफाक्षरसमन्वितम् ॥
त्र्यक्षं वरप्रदं रुद्रं तरुणादित्यसन्निभम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन् ॥
धारयेद्घटिकाः पञ्च वह्निनाऽसौ न दह्यते ।
मारुतं मरुतां स्था ने वर्णदेवसमन्विते ॥
धारयेत्पञ्च घटिका वायुवद्व्योमगो भवेत् ।
आकाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शंकरम् ॥
बिंदुरूपं महादेवं सर्वलोकैककारणम् ।
चित्तेन चिन्तयेत्स्वस्थं मुहूर्तमपि धारयेत् ।
स एव युक्त इत्युक्तस्तांत्रिकेष्वपि शिक्षितैः ॥

इति । निर्गुणमाह—**एकाग्रतेति** । एकमेव ध्यातृध्येयध्यानविभागशून्यं वस्तु अग्रे यस्य तदेकाग्रं निर्वृत्तिकं तस्य भावस्तत्ता मनसो बुद्धेः प्राणा इन्द्रियाणि समनस्कानि तेषामायामो निग्रहः प्राणायामः । तथा च श्रुतिः—

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ' इति ॥९॥

सगुणनिर्गुणयोरङ्गाङ्गिभावमाहार्धेन **प्राणायामो हीति ।** निर्गुणं निर्वृत्तिकं धारयेत्स्थिरं कुर्यात् । **यदीति ।** अदृश्यति अदृश्यमाने मोचनस्थाने यदि वायुं मुञ्चन्भवति तर्हि वाताधिक्यं भवत्येव । अयमर्थः—पूरकादीनां मूलाधारादीनां च देवतादिकं ध्यायन् यो वायुधारणां करोति स सिध्यति ध्यानवर्जितं त्वभ्यस्यन्नवश्यं बाध्यत इति । यथोक्तं पवनयोगसंग्रहे—

' प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन महारोगसमुद्भवः'इति ।

युक्तेन देवताध्यानयुक्तेन । देवताश्च याज्ञवल्क्योक्ताः—

' नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये व्यवस्थितम् ।
चतुर्भुजं महात्मानं पूरकेण विचिन्तयेत् ॥
कुंभकेन हृदि स्थानं ध्यायेत्तु कमलासनम् ।
ब्रह्माणं रक्तगौराङ्गं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥
रेचकेनेश्वरं विद्याल्ललाटस्थं महेश्वरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् ॥ इत्यादिना

**निशाया इति** । द्वादश पूर्वोक्ताः द्वाविंशतिचोदना एवात्र संक्षेपेण द्वादशग्रंथान्तरे गणिताः यथोक्तं शिवयोगे—

' मूलाधारे त्रिधावर्तं ब्रह्मचक्रं भगोपमम् ।
तत्कंदेऽग्निनिभे ध्यायेदधःशक्तिमभीष्टदाम् १
स्वाधिष्ठानं ततश्चक्रं तत्र चातुर्दलाम्बुजम् ।
तदेवोड्डीयनं ध्यायेत्पश्चिमाभिमुखं शिवम् २
पञ्चावर्तं नाभिचक्रे मेघाकारं तडिन्निभम् ।
तत्र कुंडलिनीं ध्यायेदधःशक्तिं सुसिद्धिदाम् ३
अधोमुखाष्टपत्राब्जयुक्तं हृच्चक्रमिष्टदम् ।
तन्मध्यकर्णिकां ध्यायेज्ज्योतिर्लिंगाकृतिं त्विमाम् ४
पञ्चमं कण्ठचक्रं तु तत्रांगुलचतुष्टयम् ।
इडापिंगलयोर्ध्यायेत्सुषुम्नां मध्यसंस्थिताम् ५

तदेवमुपशान्तेन दान्तेनैकान्तशीलिना ।
आत्मारामेण बुद्धेन योक्तव्योऽऽत्मा न संशयः
पञ्चानामिन्द्रियाणां तु दोषानाक्षिप्य पञ्चधा ।
शब्दं रूपं तथा स्पर्शं रसं गन्धं तथैव च ॥१३
प्रतिभामपवर्गं च प्रतिसंहृत्य मैथिल ।
इन्द्रियग्राममखिलं मनस्यभिनिवेश्य ह ॥ १४
मनस्तथैवाहंकारे प्रतिष्ठाप्य नराधिप ।
अहंकारं तथा बुद्धौ बुद्धिं च प्रकृतावपि ॥ १५
एवं हि परिसंख्याय ततो ध्यायन्ति केवलम् ।
विरजस्कममलं नित्यमनन्तं शुद्धमव्रणम् ॥ १६
तस्थुषं पुरुषं नित्यमभेद्यमजरामरम् ।
शाश्वतं चाव्ययं चैव ईशानं ब्रह्म चाव्ययम् ॥
युक्तस्य तु महाराज लक्षणान्युपधारय ।
लक्षणं तु प्रसादस्य यथा तृप्तः सुखं स्वपेत्१८
निर्वाते तु यथा दीपो ज्वलेत्स्नेहसमन्वितः ।
निश्चलोऽर्ध्वशिखस्तद्वद्युक्तमाहुर्मनीषिणः॥१९

पाषाण इव मेघोत्थैर्यथा बिन्दुभिराहतः ।
नालं चालयितुं शक्यस्तथा युक्तस्य लक्षणम्
शंखदुन्दुभिनिर्घोषैर्विविधैर्गीतवादितैः ।
क्रियमाणैर्न कम्पेत युक्तस्यैतन्निदर्शनम् ॥२१
तैलपात्रं यथा पूर्णं कराभ्यां गृह्य पूरुषः ।
सोपानमारुहेद्भीतस्तर्ज्यमानोऽसिपाणिभिः
संयतात्मा भयात्तेषां न पात्राद्बिन्दुमुत्सृजेत्
तथैवोत्तरमागम्य एकाग्रमनसस्तथा ॥ २३
स्थिरत्वादिन्द्रियाणां तु निश्चलत्वात्तथैव च ।
एवं युक्तस्य तु मुनेर्लक्षणान्युपलक्षयेत् ॥ २४
स्वयुक्तः पश्यते ब्रह्म यत्तत्परममव्ययम् ।
महतस्तमसो मध्ये स्थितं ज्वलनसंनिभम्२५
एतेन केवलं याति त्यक्त्वा देहमसाक्षिकम्
कालेन महता राजन् श्रुतिरेषा सनातनी२६
एतद्धि योगं योगानां किमन्यद्योगलक्षणम् ।
विज्ञाय तद्धि मन्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः२७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥

---

षष्ठं च घंटिकालिंगमूलं तद्राजदन्तकम् ।
ध्यायेत्तु दशमं द्वारं तत्र शून्यं सुसिद्धये ६
भ्रूचक्रं सप्तमं लेकनालकंदं स्ववाक्प्रदम् ।
ध्यायेद्दिव्यशिखाकारं यन्मध्ये ज्ञानलोचनम् ७
ब्रह्मरन्ध्रेऽष्टमं चक्रं निर्वाणाख्यं सुसूक्ष्मदम् ।
तत्र जालन्धरं ध्यायेत्सूक्ष्मं मोक्षप्रदं ततः ८
आकाशबीजं नवमं प्रशस्तं
त्रिकूटकं पूर्णगिरेश्च पृष्ठे ।
तत्रोर्ध्वशक्तिं शुभदां सुशून्यां
ध्यायेच्च साम्रारसरोजमध्ये ९ ॥'

आकाशबीजं हकारस्तत्स्मरणपूर्वकं शिरस उपरि भूताकाशमात्रं ध्यायेत् । एता नव चोदना वायुनिग्रहगर्भिताः ततः शून्यात्परं समाष्टिकार्ये मनो धारयेत् । ततः कारणे ततो निष्कले इति तिस्रः एवं द्वादश चोदनाः पूर्वरात्रे आवर्त्य एकां निद्रां गृहीत्वा पश्चात्पुनर्द्वादश एता एवाभ्यसेदित्यर्थः ॥ ११ ॥ एवं वायुधारणाद्युपायेन दुर्दान्तं मनो निगृह्य उपशान्तेन दान्तेन तत्त्वप्रतिपत्तियोग्येन एकान्तशीलिना एकाकिना संन्यासिनेत्यर्थः आत्मन्येव न तु स्त्र्यादौ आरमणं यस्य तेन आत्मारामेण बुद्धेन शास्त्रतत्त्वविदा आत्मा योक्तव्यः सन्निधरार्षः ॥ १२ ॥ कथं योक्तव्य इत्यत आह—**पञ्चानामिति** । दोषान् अप्राप्तः स्पृहारूपान् प्राप्तमपि शब्दादिकं च आक्षिप्य निरस्य । एतेन प्रत्याहार उक्तः ॥ १३ ॥ प्रतिभां विक्षेपं अपवर्गं लयम् । प्रतिसंहारे युक्तिमाह—**इन्द्रियेति** ॥ १४ ॥ बुद्धौ महत्तत्त्वे ॥ १५ ॥ परिसंख्याय प्रविलाप्य अलं अत्यर्थं नित्यं न त्वाकाशादिवद्व्यावहारिकनित्यम् ॥ १६ ॥ तस्थुषं तस्थिवांसं स्थाणुं कूटस्थमित्यर्थः । नित्यमभेद्यम् अज्ञानदशायां जीवेश्वरभावेन मायया भिद्यमानमप्याकाशवदभेद्यम्। अव्ययं अनश्वरं यतः अव्ययं ह्रासशून्यम् ॥ १७ ॥ युक्तस्य समाधिस्थस्य सुखं स्वपेदिति स्वसंवेद्यं लक्षणम् ॥ १८ ॥ पाषाण इवेति परसंवेद्यम् ॥ २० ॥ युक्तस्य लक्षणान्युक्त्वा युञ्जानस्याह—**तैलेति** । उत्तरं उत्कृष्टतरम् एकाग्रमनसः लक्षणमिति शेषः ॥ २२ ॥ स्थिरत्वात् बहिर्मुखत्वनिवृत्तेः निश्चलत्वात् अन्तरप्रकम्प्यत्वात् ॥ २४ ॥ महतः महत्तत्त्वस्य मध्ये स्थितं त्वंपदार्थे तमसो मध्ये स्थितं तत्पदार्थे ज्वलनसन्निभं चिन्मात्रं तदुभयनिष्क्रम् ॥ २५ ॥ एतेन दर्शनेन केवलं मोक्षं देहत्यागात्प्राक्किंचिदज्ञानानुवृत्तिरस्तीति भावः ॥ २६ ॥ योगं क्लीबत्वमार्षं वयं कृतकृत्या इति मन्यन्ते मनीषिणः अनुभवसिद्धं योगात्कैवल्यमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः—

'ऊर्ध्वमूलमवाक्शाखं वृक्षं यो वेद प्रंसति ।
न स जातु जनः श्रद्दध्यान्मृत्युर्मा मारयादिति'॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥

## ३१७–[१४४]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
तथैवोत्क्रममाणं तु शृणुष्वावहितो नृप ।
पद्भ्यामुत्क्रममाणस्य वैष्णवं स्थानमुच्यते॥ १
जंघाभ्यां तु वसून्देवा-
नाप्नुयादिति नः श्रुतम् ।
जानुभ्यां च महाभागान्
साध्यान्देवानवाप्नुयात् ॥ २
पायुनोत्क्रममाणस्तु
मैत्रं स्थानमवाप्नुयात् ।
पृथिवीं जघनेनाथ
ऊरुभ्यां च प्रजापतिम् ॥ ३
पार्श्वाभ्यां मरुतो देवान्नाभ्यामिन्द्रत्वमेव च
बाहुभ्यामिन्द्रमेवाहुरुरसा रुद्रमेव च ॥ ४
ग्रीवया तु मुनिश्रेष्ठं नरमाप्नोत्यनुत्तमम् ।
विश्वेदेवान्मुखेनाथ दिशः श्रोत्रेण चाप्नुयात्॥
घ्राणेन गन्धवहनं नेत्राभ्यामग्निमेव च ।
भ्रूभ्यां चैवाश्विनौ देवौ ललाटेन पितॄनथ ६
ब्रह्माणमाप्नोति विभुं मूर्ध्ना देवाग्रजं तथा ।
एतान्युत्क्रमणस्थानान्युक्तानि मिथिलेश्वर ७
अरिष्टानि प्रवक्ष्यामि विहितानि मनीषिभिः
संवत्सरवियोगस्य संभवन्ति शरीरिणः ॥ ८
योऽरुन्धतीं न पश्येत दृष्टपूर्वां कदाचन ।
तथैव ध्रुवमित्याहुः पूर्णेन्दुं दीपमेव च ॥ ९
खण्डाभासं दक्षिणतस्तेऽपि संवत्सरायुषः ।
परचक्षुषि चात्मानं ये न पश्यन्ति पार्थिव ॥
आत्मच्छायाकृतीभूतं तेऽपि संवत्सरायुषः ।
अतिद्युतिरतिप्रज्ञा अप्रज्ञा चाद्युतिस्तथा ११
प्रकृतेर्विक्रियापत्तिः षण्मासान्मृत्युलक्षणम् ।
दैवतान्यवजानाति ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥ १२
कृष्णश्यावच्छविच्छायः
षण्मासान्मृत्युलक्षणम् ।
ऊर्णनाभेर्यथा चक्रं
छिद्रं सोमं प्रपश्यति ॥ १३
तथैव च सहस्रांशुं
सप्तरात्रेण मृत्युभाक् ।
शवगन्धमुपाघ्राति
सुरभिं प्राप्य यो नरः ॥ १४
देवतायतनस्थस्तु सप्तरात्रेण मृत्युभाक् ।
कर्णनासावनमनं दन्तदृष्टिविरागिता ॥ १५
संज्ञालोपो निरूष्मत्वं सद्योमृत्युनिदर्शनम् ।
अकस्माच्च स्रवेद्यस्य वाममक्षि नराधिप ॥१६
मूर्धतश्चोत्पतेद्धूमः
सद्यो मृत्युनिदर्शनम् ।
एतावन्ति त्वरिष्टानि
विदित्वा मानवोऽऽत्मवान् ॥ १७
निशि चाहनि चात्मानं
योजयेत्परमात्मनि ।
प्रतीक्षमाणस्तत्कालं
यत्कालं प्रेतता भवेत् ॥ १८
अथास्य नेष्टं मरणं स्थातुमिच्छेदिमां क्रियाम्
सर्वगन्धान् रसांश्चैव धारयीत नराधिप ॥

---

३१७

कैवल्यप्राप्तिं राजयोगफलमुक्त्वा हठयोगफलमाह— **तथैवेत्यादिना** । अत्र यस्मिन्यस्मिन्नाधारे समनस्को वायुरामरणान्तं ध्रियते तत्तदाधारदेवतालोकं तेन तेनैवाधारद्वारेणोत्क्रम्य गच्छतीति प्रघट्टकतात्पर्यम् ॥ १ ॥ मूर्ध्ना सुषुम्नया नाड्या ब्रह्मरन्ध्रेण एतत्क्रममुक्तिस्थानं नान्यत् । तथा च श्रुतिः—

'शतं चैका हृदयस्य नाड्य-
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति' इति

मृत्युं संनिहितं ज्ञात्वापि हितमाचरेदित्याशयेनाह-**अरिष्टानीति** ॥ ८ ॥ प्रकृतेर्विक्रियादातुः कार्पण्यं कृपणस्य दातृत्वमित्यादिः ॥ १२ ॥ कृष्णस्य श्यावच्छविर्धूसरता तच्छायापतिर्मरणचिन्हं छिद्रं छिद्रवन्तम् ॥ १३ ॥ शवगन्धमिति सुरभिद्रव्ये शवगन्धग्रह इत्यर्थः ॥ १४ ॥ अरिष्टज्ञानफलमाह—**एतावन्तीति** ॥ १७ ॥ योगिनो मरणादन्यत् कर्तव्यं नास्तीत्याह—**प्रतीक्षमाण इति** ॥ १८ ॥ मृत्युमपि नेच्छेच्चेदिमां वक्ष्यमाणां क्रियां स्थातुं कर्तुमिच्छेदित्याह-**अथेति** । पूर्वोक्तरीत्या पृथिव्यादिजयाद्गन्धादिजयो भवतीति पञ्चभूतजयान्मृत्युं जयतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—

'पृथ्व्याप्यतेजोनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' इति ॥ १९ ॥

ससांख्यधारणं चैव विदितात्मा नरर्षभ ।
जयेश्च मृत्युं योगेन तत्परेणान्तरात्मना॥ २०
गच्छेत्प्राप्याक्षयं कृत्स्नमजन्म शिवमव्ययम् ।
शाश्वतं स्थानमचलं दुष्प्रापमकृतात्मभिः २१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादे सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥

## ३१८-[१४५]

याज्ञवल्क्य उवाच ।
अव्यक्तस्थं परं यत्तत्पृष्टस्तेऽहं नराधिप ।
परं गुह्यमिमं प्रश्नं शृणुष्वावहितो नृप ॥ १
यथाऽऽर्षेणेह विधिना चरताऽवनतेन ह ।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप
महता तपसा देवस्तपिष्णुः सेवितो मया ।
प्रीतेन चाहं विभुना सूर्येणोक्तस्तदाऽनघ ॥ ३
वरं वृणीष्व विप्रर्षे यदिष्टं ते सुदुर्लभम् ।
तत्ते दास्यामि प्रीतात्मा मत्प्रसादो हि दुर्लभः
ततः प्रणम्य शिरसा मयोक्तस्तपतां वरः ।
यजूंषि नोपयुक्तानि क्षिप्रमिच्छामि वेदितुम्
ततो मां भगवानाह वितरिष्यामि ते द्विज ।
सरस्वतीह वाग्भूता शरीरं ते प्रवेक्ष्यति ॥ ६
ततो मामाह भगवानास्यं स्वं विवृतं कुरु ।
विवृतं च ततो मेऽऽस्यं प्रविष्टा च सरस्वती॥
ततो विदह्यमानोऽहं प्रविष्टोऽम्भस्तदाऽनघ ।
अविज्ञानादमर्षाच्च भास्करस्य महात्मनः ॥ ८
ततो विदह्यमानं मामुवाच भगवान् रविः ।
मुहूर्तं सह्यतां दाहस्ततः शीतीभविष्यति ॥ ९
शीतीभूतं च मां दृष्ट्वा भगवानाह भास्करः ।
प्रतिष्ठास्यति ते वेदः सखिलः सोत्तरो द्विज॥
कृत्स्नं शतपथं चैव प्रणेष्यसि द्विजर्षभ ।
तस्यान्ते चापुनर्भावे बुद्धिस्तव भविष्यति॥११
प्राप्स्यसे च यदिष्टं तत्सांख्ययोगेप्सितं पदम्
एतावदुक्त्वा भगवानस्तमेवाभ्यवर्तत ॥ १२
ततोऽनुव्याहृतं श्रुत्वा गते देवे विभावसौ ।
गृहमागत्य संहृष्टोऽचिन्तयं वै सरस्वतीम् १३
ततः प्रवृत्तातिशुभा स्वरव्यञ्जनभूषिता ।
ओङ्कारमादितः कृत्वा मम देवी सरस्वती १४
ततोऽहमर्घ्यं विधिवत्सरस्वत्यै न्यवेदयम् ।
तपतां च वरिष्ठाय निषण्णस्तत्परायणः १५
ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम् ।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह ॥ १६
कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम्
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः
ततः सशिष्येण मया सूर्येणेव गभस्तिभिः ।
व्यस्तो यज्ञो महाराज पितुस्तव महात्मनः॥

---

सांख्ययोगयोर्मुख्यं फलमाह—**ससांख्येति** । सांख्यं च धारणेति योग उच्यते । ताभ्यां समुच्चिताभ्यां सहितं यथा स्यात्तथा विदितात्मा मृत्युं संसारम् ॥ २० ॥ **गच्छेदिति** । अक्षयं अविनाशि । अव्ययं अपचयशून्यम् । अचलं अपरिणामि । प्रकृतेरन्यदित्यर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥

३१८

अचलत्वेन प्रकृतेरन्यत्वं ब्रह्मणः प्रतिपादयितुमारभते- **अव्यक्तस्थमिति** । अत्र अव्यक्तमव्याकृतं मायाशबलं हार्दाकाश इति पर्यायास्त्रिगुणात्मकस्य कारणस्य ब्रह्मणो वाचकाः । चक्रे नाभिरिव श्रितेतिप्रयोगदर्शनात्तत्र विशिष्टे निष्कृष्टं चक्रनाभिन्यायेन श्रितं वस्तु अव्यक्तस्थम् । किमव्यक्तं परं ब्रह्म तस्माच्च परतस्तु किमिति पृष्टस्ते त्वयाऽहम् ॥ १ ॥ निष्कलब्रह्मविद्याया दौर्लभ्यं गोप्यत्वं देवताप्रसादप्राप्यत्वं च दर्शयितुमाख्यायिकामाह—**यथाऽऽर्षेणेत्यादिना** । आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त इति श्रुतेरादित्यप्रसादात् पञ्चदशशाखा द्रष्टुर्मम वचनमत्यन्तं पथ्यं ममापि गहनं च निष्कलब्रह्मकथनमभूदित्याख्यायिकातात्पर्यम् ॥ २ ॥ मेऽऽस्यं मम आस्यं सन्धिरार्षः ॥ ७ ॥ शीती भविष्यति त्वद्देह इति शेषः ॥ ९ ॥ खिलं परशाखीयं स्वशाखायामपेक्षावशात् पठ्यते तत् खिलमित्युच्यते यथा बह्वृचानां हिरण्यवर्णां हरिणीमिति श्रीसूक्तं सखिलं तत्सहितम् । सोत्तरं सोपनिषत्कम् ॥ १० ॥ अपुनर्भावे मोक्षे ॥ ११ ॥ चक्रे कर्मकर्तरि प्रयोगः । स्वयमेवाविर्भूदित्यर्थः ॥ १६ ॥ मातुलस्य वैशम्पायनस्य ॥ १७ ॥

मिषतो देवलस्यापि ततोऽर्धं कृतवाहनम् ।
स्ववेददक्षिणायार्थे विमर्दे मातुलेन ह ॥ १९
सुमन्तुनाऽथ पैलेन तथा जैमिनिना च वै ।
पित्रा ते मुनिभिश्चैव ततोऽहमनुमानितः २०
दश पञ्च च प्राप्तानि यजूंष्यर्कान्मयाऽनघ ।
तथैव रोमहर्षेण पुराणमवधारितम् ॥ २१
बीजमेतत्पुरस्कृत्य देवीं चैव सरस्वतीम् ।
सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥ २२
कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया ।
यथाभिलषितं मार्गं तथा तच्चोपपादितम् २३
शिष्याणामखिलं कृत्स्नमनुज्ञातं ससंग्रहम् ।
सर्वे च शिष्याः शुचयो गताः परमहर्षिताः ।
शाखाः पञ्चदशेमास्तु विद्या भास्करदेशिताः
प्रतिष्ठाप्य यथाकामं वेद्यं तदनुचिन्तयम् २४
किमत्र ब्रह्मण्यमृतं किं च वेद्यमनुत्तमम् ।
चिन्तयंस्तत्र चागत्य गन्धर्वो मामपृच्छत २६
विश्वावसुस्ततो राजन्वेदान्तज्ञानकोविदः ।
चतुर्विंशांस्ततोऽपृच्छत्प्रश्नान्वेदस्य पार्थिव ॥
पञ्चविंशतिमं प्रश्नं पप्रच्छान्वीक्षिकीं तदा ।
विश्वाविश्वं तथाश्वाश्वं मित्रं वरुणमेव च २८
ज्ञानं ज्ञेयं तथाज्ञोऽज्ञः कस्तपा अतपास्तथा ।
सूर्यादः सूर्य इति च विद्याविद्ये तथैव च २९

**मिषत इति** । देवलस्य मातुलपक्षीयस्य मिषतः पश्यतः पुरस्तात् । अर्थे अर्थनिमित्तं मातुलादिभिः सह विमर्दे सति समं विभज्य ग्राह्यमिति निर्बन्धे सति देवलसंमत्याऽहं दक्षिणाया अर्धं कृतवान् स्वीकृतवानित्यर्थः । दाक्षिणायार्थे इति सन्धिरार्षः ॥ १९ ॥ कर्तुं प्रकटीकर्तुम् ॥ २३ ॥ ब्रह्मण्यं ब्राह्मणजातेर्हितम् ॥ २६ ॥ प्रष्टरि सत्यत्यन्ताभिनिवेशेन विचारे प्रवर्तते इति दर्शयति—**विश्वावसुरित्यादिना** ॥ २७ ॥ **पञ्चविंशतिममिति** । श्रवणमनु ईक्षा युक्त्या आलोचनमन्वीक्षा मननं तत्प्रधानामान्वीक्षिकीम् । चतुर्विंशत्प्रश्नाः श्रुत्यवष्टंभेन पञ्चविंशो युक्त्यवष्टंभेनेत्यर्थः । अत्र कृत्स्नं शास्त्रं मायाशबलपरं निष्कलो नास्त्येवेति पूर्वः पक्षः । स एवास्ति मायैव नास्तीति सिद्धान्त इत्याशयेन विश्वाविश्वमित्यादिकः संदर्भः प्रवर्तते । अत्र यद्यप्येक एव प्रश्न एक एव सिद्धान्तस्तथापि विषयवाक्यानां प्रकारभेदात्प्रतिप्रकारं स्वपक्षस्थापनं परपक्षदूषणं चेति द्वौ द्वौ प्रश्नौ ज्ञेयौ । उत्तराणि च स्वपक्षसाधकानि परपक्षदूषणानीति द्विप्रकाराणि चतुर्विंशतिरिति ज्ञेयम् । **विश्वाविश्वमिति** । 'आत्मेत्येवोपासीत' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति' 'स इदं सर्वं भवति' इत्यव्याकृताख्यस्य कारणब्रह्मण आत्मत्वेनोपासनं विधाय तस्य प्रतिपत्तव्यं रूपमुपासनफलं च सार्वात्म्यमेवोक्तम् । अतः सविशेषाद्वैतमेव तत्त्वं न हि सर्वस्मादन्यदसर्वं वस्त्वस्तीति वक्तुं शक्यम् । वदतो व्याघातापत्तेरित्यर्थः । ननु 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्' इति परमव्योमशब्दिते मायाशबले सत्यादिशब्दितस्य निष्कलस्य कुण्डबदरन्यायेन सत्त्वमुक्तं कथं शुद्धं नास्तीत्युच्यते इत्यत आह-**तथाऽश्वाश्वमिति** । यथाऽश्वातोऽन्योऽश्वो रेतःसिगस्त्येवं मायायां स्वप्रतिबिम्बस्यार्पयिता द्वितीयोऽस्तीति यद्युच्येत तदपि न । 'को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इत्याकाशानन्दयोः सामानाधिकरण्यात् 'सैषानन्दस्य मीमांसा भवति' इत्यादिना कृत्स्नाया उपनिषद आनन्दमात्रे पर्यवसानं चानन्दानंदिनोरभेदाद्वा शुक्रः पट इति न्यायेन वा ज्ञेयम् । 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' इति सम्बन्धदर्शनात् । अत आनन्दादिगुणविशिष्टमेकमेव जगत्कारणं न तु ततो निष्कृष्टं कुण्डबदरवदन्यद्ब्रह्म निष्कलमस्तीति भावः । तथा च सर्वत्रैवं योज्यम् । विश्वमेव वर्तते न त्वविश्वस्तथाश्वोवास्ति न त्वश्व इति । ननु माण्डूक्ये एष सर्वेश्वर इत्यादिना तुरीयमानन्दमयं निरूप्य नान्तःप्रज्ञमित्यादिना 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति पृथक् तयोर्भेदेनोपपादनं दृष्टम् । न एष सर्वेश्वर इत्यादेरुत्तरान्वयित्वात् । तथा च विश्वतैजसप्राज्ञभेदेन त्रिविधं जीवमुक्त्वा चतुर्थं ब्रह्मोपदिष्टं एष सर्वेश्वर इत्यादिना स विज्ञेय इत्यन्तेन ग्रन्थेन । तथा च यथा वृक्षात्मनैकत्वं पत्रपुष्पफलाद्यात्मना च नानात्वमिति विशिष्टमेकमेव ब्रह्म । तथा च श्रुतिः—'आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतानि' इत्युपक्रम्य 'भूर्भुवःसुवराप ओम्' इति अबाख्यस्य जगत्कारणस्य ओमर्थत्वमाह । न ततोऽन्यद्दर्शयतीत्याह—**मित्रं वरुणं चेति** । वरुणशब्देनापः मित्रशब्देन सूर्यः ताभ्यां सगुणनिर्गुणे उच्येते । तथा च वरुण एवास्ति न तु मित्र इति ॥ २८ ॥ ननु घटादालोक इव ज्ञेयान्मायाशबलात् प्रकाशरूपं ज्ञानमन्यत् न तु तयोर्गुणगुणिभावो युज्यते इत्याशंक्याह—**ज्ञानं ज्ञेयमिति** । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति पूर्वप्रकान्तं ब्रह्म भृगुणा वरुणोऽधीहि भगवो ब्रह्मेति पृष्टो यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादिना ब्रह्मलक्षणमुक्त्वाऽऽह तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति इति तस्यैव ज्ञेयत्वमुक्तम् । अतो ज्ञानवदेव ब्रह्म । प्रकाशमात्रस्य जगज्जन्मादिहेतुत्वायोगात् । तस्माज्ज्ञेयान्निष्कृष्टं निष्कलं ज्ञानं नास्ति किं तु ज्ञेयमेवास्ति । ननु एकधा बहुधा चैव

**वेद्यावेद्यं तथा राजन्नचलं चलमेव च । अपूर्वमक्षयं क्षय्यमेतत्प्रश्नमनुत्तमम् ॥ ३०**

दृश्यते जलचन्द्रवत् इति श्रुतेः प्रकाशस्य पृथक्त्वे तस्योपाधिमालिन्याज्जीवेष्वल्पत्वमुपाधेः स्वच्छत्वाच्चेश्वरे पूर्णत्वमित्यज्ञो जीवो ज्ञ ईश्वर इति तयोर्विभागो युज्यते । अन्यथा जीवेशयोस्तुल्यज्ञानता स्यात् । मृद्धटयोरिव तुल्यगन्धतेत्याशंक्याह—**अज्ञो ज्ञ इति**। अज्ञत्वज्ञत्वे तयोः स्वाभाविके एव न त्वौपाधिके प्रमाणाभावात् । तस्मान्न केवलः प्रकाशः पृथगस्ति । ननु 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति कल्पादौ ईश्वरो जीवादृष्टानुरोधात्स्रष्टव्यं सर्वमीक्षते अत एव सर्वज्ञः शुद्धस्तु 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति स भूमा यो वै भूमा तत्सुखम् अथ यत्रान्यत्पश्यति तदल्पम् अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्'इति च तयोर्भेदः श्रुत इत्याह—**कस्तपा इति** । य एको भूमानन्दः स एव तपाः आलोचनकर्ता आकाशाख्यः । तथा च श्रुतिः—'यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कम्' इति कखयोरभेदमुक्त्वोपसंहरति—प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुरिति । तत्र प्राणस्य विजानाम्यहं प्राणो ब्रह्मेति वदता उपकोसलेन प्रागेव ज्ञातत्वादाकाशाख्यकारणब्रह्ममात्रपरोऽयं वाक्यसंदर्भ इत्यवसीयते । ननु सगुणब्रह्मपरैवोपकोसलविद्या तत्र तद्युक्तमेव । निर्गुणविद्याधिकारे तु अतपाः निर्गुणः । सूर्यादः सूते विश्वमिति सूर्यो मायावी तमत्तीति सूर्यादः स एव सूर्योऽपि मायावेशादिति तापनीये श्रूयते ईश्वरग्रासस्तुरीय इति मायया ह्यन्यदिवेति चेति । तस्मादस्तीश्वरात्पृथङ्निष्कल इत्याशंक्याह—अतपाः सूर्यादः सूर्य इति चेति । एकस्मिन्निर्गुणे सगुणादत्वं सगुणस्रष्टृत्वं च न युज्यते विरोधात् न हि काष्ठादस्य वह्नेः काष्ठोपादानत्वं घटते । कूर्माङ्गवन्निर्गुणात्सगुणस्याविर्भावतिरोभावावेव भवत इति चेत्तस्यैव तर्हि सगुणत्वापत्तेः । श्रुतिस्तु सुषुप्तिसमाधिकालिकसुखप्रशंसामात्रपरेति द्रष्टव्यम्। ननु यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदिति विद्यावस्थायां द्वैतदर्शनं निषेधति । यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यतीत्यविद्यावस्थायां द्वैतदर्शनमिति वदन्ती कथमुपचारान्नेया तस्मादस्ति सगुणात्सद्वयादद्वयमन्यत् ।रज्जूरगवत्तु तत्रेश्वरस्योदयलयाविति नोक्तदोष इत्याशंक्याह—**विद्याविद्ये इति** । उपासनैव विद्या तदभावोऽविद्या । तत्रापि देहमिव कृत्स्नं ब्रह्माण्डस्वरूपादनन्यत्वेन पश्यतीति नोक्तश्रुतिविरोध इति भावः ॥२९॥

ननु ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकत्रिपुटीभानमविद्या तदभानं विद्येति हि उदाहृतश्रुत्योरर्थो न त्वदुक्त इत्याशंक्याह—**वेद्यावेद्यमिति** । वेद्यविषया हि विद्या नावेद्यविषया भवितुमर्हति । न च त्रिपुट्यभाने वेद्यविषयत्वमस्ति विद्यायाः वदतो व्याघातात् । वेद्यं च ब्रह्मैव । 'आत्मा द्रष्टव्यः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः' इत्यादिश्रुतिभ्यः । यच्चावेद्यं तदब्रह्म अत एव छान्दोग्ये सत्यकामः सत्यसंकल्प आत्मा वेद्यत्वेन श्रूयते 'य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यो यस्तमात्मानमनुविद्य विजानाति स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानिति' अप्रियवेत्तैव भवति विनाशमेवापीतो भवतीति मूर्च्छामरणदृष्टान्तेन सुषुप्तं च निन्दितम् । त्रिपुट्या अभावान्निर्विकल्पकज्ञानान्मुक्तिरिति चेत्सर्वेऽपि सुषुप्तौ तादृशाः सन्तीति व्यर्थं साधनम् । सुषुप्तिसमाध्योर्भेदापादनं परिभाषामात्रम् । अनुभूयमानस्य त्रिपुट्यभावस्योभयत्र तुल्यत्वादतो वेद्यमेव ब्रह्म न त्ववेद्यम् । ननु वेद्यं चेद्ब्रह्मैव न भवति घटादिवदनात्मवत्त्वाज्जडत्वाच्च । आत्मा हि ब्रह्म ज्ञानमात्ररूपश्च 'अयमात्मा ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः। अतः स्वाभाविकानां देहादिधर्माणां स्थूलत्वादीनां योगजधर्माणामणुत्वादीनां च व्यभिचारिणां व्युदासेन 'अस्थूलमनणु..'इत्यादि वाक्येभ्यः सर्वदृश्यधर्मशून्यमक्षरं प्रत्यक्त्वं प्रतिपत्तव्यमित्याशंक्याह—**अचलं चलमिति**। द्विविधं हि ब्रह्मणि धर्मजातं श्रूयतेऽचलं चलं च । तत्रापहतपाप्मत्वादिसत्यसंकल्पत्वान्तमचलम् । अणुत्वस्थूलत्वादिकं यत्प्रसादाद्योगिनामपि वर्तते तदस्यानित्यमिति । न हि सत्यसंकल्पोऽप्यणुः स्यामिति ध्यायन् स्थूलत्वेन रोद्धुं शक्यो नापि स्थूलः स्यामिति ध्यायन्नणुत्वेन न हि युगपत्तद्द्वयं संभवति परस्परविरोधात् । तस्माद्यथा उच्छ्रायपरिणाहादयो वृक्षधर्मा एवं सुरभित्वमधुरत्वकषायत्वादयः परंपरया वृक्षगता अपि पुष्पफलशलाटूनामेव धर्मा न तु वृक्षस्य । अव्याप्यवृत्तित्वात्तेषां तथा सत्यसंकल्पादयोऽचला ब्रह्मधर्माः । स्थूलत्वाणुत्वादयस्तु तेन समरसीभूतस्य शक्त्यंशजातस्य अतस्तन्निषेधो ब्रह्मणि युज्यत एव वृक्षे सौरभादेरिव स्वाश्रयतादात्म्येन तत्र तत्प्रसक्तेरित्यर्थः । किं च आत्मैव चेद्ब्रह्म तर्हि शास्त्रस्य वैयर्थ्यं नित्यापरोक्षत्वात्तस्य तद्गुणानामपि ज्ञानैश्वर्यादीनां सर्वदैव भानापत्तेश्च । न हि मणिबुद्ध्याऽपि स्पृष्टः स्फुलिंगो न दहतीत्यास्ति अतो देहबुद्ध्या गृहीतोऽपि स्वाभाविकं धर्मं प्रकाशयेदेव । तस्मादयमात्मा ब्रह्मेति ममात्मा भद्रसेन इतिवदुपासनार्थमौपचारिकोऽभेद इत्याशयेनाह—**अपूर्वमिति** । उपास्तेः प्रागविज्ञातं उपास्त्या तु कीटभृंगन्यायेन प्राप्तुं शक्यमित्यर्थः । ननु उपास्त्या साध्यस्य मोक्षस्य कथं नित्यता स्यात् । नित्यश्च मोक्षः । क्रियासाध्यस्यानित्यत्वं च सर्वसिद्धमित्याशंक्याह—**अक्षयं**.

**अथोक्तश्च महाराज राजा गन्धर्वसत्तमः।**
**पृष्टवाननुपूर्वेण प्रश्नमर्थविदुत्तमम्॥ ३१**
**मुहूर्तमुष्यतां तावद्यावदेवं विचिन्तये।**
**बाढमित्येव कृत्वा च तूष्णीं गन्धर्व आस्थितः**
**ततोऽनुचिन्तयमहं भूयो देवीं सरस्वतीम्।**
**मनसा स च मे प्रश्नो दध्नो घृतमिवोद्धृतम्॥**
**तत्रोपनिषदं चैव परिशेषं च पार्थिव।**
**मथ्नामि मनसा तात दृष्ट्वा चान्वीक्षिकीं पराम्**
**चतुर्थी राजशार्दूल विद्यैषा साम्परायिकी।**
**उदीरिता मया तुभ्यं पञ्चविंशादधिष्ठिता॥**

**अथोक्तस्तु मया राजन् राजा विश्वावसुस्तदा**
**श्रूयतां यद्भवानस्मान्प्रश्नं संपृष्टवानिह॥ ३६**
**विश्वाविश्वेति यदिदं गन्धर्वेन्द्रानुपृच्छसि।**
**विश्वाऽव्यक्तं परं विद्याद्भूतभव्यभयंकरम् ३७**
**त्रिगुणं गुणकर्तृत्वाद्विश्वान्यो निष्कलस्तथा।**
**अश्वश्चाश्वा च मिथुनमेवमेवानुदृश्यते॥ ३८**
**अव्यक्तं प्रकृतिं प्राहुः पुरुषेति च निर्गुणम्।**
**तथैव मित्रं पुरुषं वरुणं प्रकृतिं तथा॥ ३९**
**ज्ञानं तु प्रकृतिं प्राहुर्ज्ञेयं निष्कलमेव च।**
**अज्ञश्च ज्ञश्च पुरुषस्तस्मान्निष्कल उच्यते ४०**

**क्षय्यमिति**। क्षययोग्यमपि न च पुनरावर्तत इति शास्त्रबलादक्षयमेव। न हि शास्त्रीयेऽर्थे युक्तिः संक्रमते येन क्रियासाध्यत्वादनित्यत्वं मोक्षस्यानुमीयेत। न हि भस्मीभूतेभ्यः सोमाज्यपयःप्रभृतिभ्यः स्वर्गोत्पत्तौ शास्त्रादृते किंचिन्मानमस्ति। तस्मादेतत्प्रश्नजातं श्रुत्युपष्टब्धमनुत्तमं युक्तिमत्तरम्। न ह्यात्यन्तिकं कैवल्यं पाषाणकल्पं नैरात्म्यवादादनतिरिच्यमानं पुरुषार्थो भवत्यपि त्वात्यन्तिकं सत्यसंकल्पत्वादिकमेव। लोकेऽपि न हि कश्चित्सुषुप्तिं पुरुषार्थत्वेनोपैत्यपि तु स्त्र्यादिभोगमेव। तत्सामान्याद्वेदेऽपि पुरुषार्थभूतस्यार्थस्य निर्णयः कर्तव्यः। तस्मादव्यक्तमेव मुख्यं ब्रह्म न तु ततोऽन्यान्निष्कलं नाम शून्यकल्पं किंचिदस्तीति सिद्धम्॥ ३०॥ अथान्वीक्षिक्या सहितायाश्चतुर्विंशतिग्रन्थ्याः श्रवणानन्तरम्॥३१॥ घृतमिवेति प्रश्नानां श्रुतिमारत्वेन गहनत्वमुक्तम्॥ ३३॥ परिशेषं श्रुतेर्वाक्यशेषभूतं तर्कम्। मथ्नामि श्रुतिं उपक्रमोपसंहारैकरूप्यादिना तात्पर्यलिंगषट्केन परिभावयामि। युक्तिमपि साधकबाधकतर्कबलेनालोडयामि। परामान्वीक्षिकीं श्रुतिदर्शितां युक्तिम्॥ ३४॥ चतुर्थी त्रयीं वार्तां दण्डनीतिं चापेक्ष्य। सांपरायिकी मोक्षाय हिता। हे राजशार्दूल हे जनक। उदीरिता तुभ्यम्। सा विश्वावसुनिकटेऽप्युक्तेत्यर्थः। गतग्रन्थेन पञ्चविंशात्पञ्चविंशः शारीरस्तमधिकृत्य स्थिता॥ ३५॥ उक्तप्रश्नानामुत्तराणि वक्तुमुपोद्धातयति—**अथेति**॥ ३६॥ **विश्वेति**। अव्यक्तमिति च्छेदः। भूतभव्यरूपं यद्भयं संसारस्तत्करोतीति भूतभव्यभयंकरम्॥ ३७॥ अविश्वो निष्कलस्तथेति गौडपाठः प्रामाणिकः 'आत्मेत्येवोपासीत' इत्यत्रोक्तस्य उपास्यस्यात्मनः 'तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा' इति सर्वान्तरत्वमयमिति प्रत्यगनन्यत्वं चोक्तम्। तदन्यस्य च विश्वस्य स योन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियं ते रोत्स्यतीति शोकहेतुत्वमुक्तम्। अतः पौर्वापर्यपर्यालोचनाद्दुःखदा विश्वा। तदन्योऽविश्वो निष्कल आत्मेति सिद्धम्। 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इति बाधायां सामानाधिकरण्यं योऽयं स्थाणुः स पुमानितिवत्। आत्मविदः सार्वात्म्योक्तिरपि बाधकालीनानुभवानुसन्धानमात्रमिति ज्ञेयम्। यदुक्तं यदेष आकाश आनन्दो न स्यादित्याकाशानन्दयोः सामानाधिकरण्यात् गुणगुणिभावेनाभेद इति तत्राह—**अश्वश्चेति**। मिथुनं अश्वा अश्वश्चेति द्वयमित्यर्थः॥ ३८॥ अव्यक्तं स्त्रीरूपां प्रकृतिम्। पुरुषं पुंरूपं रेतःसिचं यस्य प्रतिबिम्बं प्राप्य प्रकृतिः सर्वं करोति स बिम्बभूतोऽन्यो निष्कल इत्यर्थः। श्रुत्यर्थस्तु—आकाशे इति सप्तमी, तेन यदि कारणे आनन्दो न स्यात्तर्हि कार्ये सुतरां न स्यादित्याधाराधेयभावश्च कारणानन्दयोः सर्वत्र श्रूयत इति न गुणगुणिभावेन तयोः सम्बन्धः। 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' इति षष्ठ्यपि राहोः शिर इतिवदौपचारिकी वा बोध्या ब्रह्मण इति पदं ब्रह्मवित्परं वा कर्तव्यम्। यत्तूक्तम् आपो वा इदं सर्वमित्यादिश्रुतेर्वरुण एवास्ति न मित्रः। माण्डूक्योक्तं सर्वेश्वरत्वादिकमपि तुरीयान्वय्येवेति तत्राह—**तथैवेति**। उदाहृता श्रुतिः कारणमात्रपरा न तु शुद्धं निषेधतीति। न तथा माण्डूक्यश्रुतं सर्वेश्वरत्वादिकं तृतीयमानन्दमयं प्रकृत्य श्रूयमाणं चतुर्थनिष्कलपरतया नेतुं शक्यमतोऽस्ति वरुणादन्यो मित्र इत्यर्थः॥ ३९॥ यत्तूक्तं प्रकाशमात्रस्य जगज्जन्मादिहेतुत्वं न संभवतीति ज्ञानवदेव ब्रह्मेति तत्राह—**ज्ञानं तु प्रकृतिमिति**। यत्तादृशं जगज्जन्माद्युपयोगि ज्ञानं तन्मायाश्रितरूपत्वात्प्रकृतिरेव। सत्त्वधर्मो हि ज्ञानमिति सांख्यप्रसिद्धिः। यत्तु तेन ज्ञानेन प्रमाणश्रितरूपेण जन्यते तत्प्रमाणफलभूतं प्रमारूपं ज्ञानं वेदान्तेषु ज्ञेयमित्युच्यते। यथोक्तम्—

'परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता।
संवित्सैवेह मेयोऽर्थो वेदान्तोक्तिप्रमाणतः' इति।

तच्च ज्ञेयस्वरूपं ज्ञानं निष्कलं सत्यं ज्ञानमित्यादिश्रुतिविषय इत्यर्थः। यत्तु ज्ञत्वाज्ञत्वे ईशजीवयोः स्वाभाविके तान्नि-

**कस्तपा अतपाः प्रोक्तः कोऽसौ पुरुष उच्यते**
**तपास्तु प्रकृतिं प्राहुरतपा निष्कलः स्मृतः**
**तथैवावेद्यमव्यक्तं वेद्यः पुरुष उच्यते ।**
**चलाचलमिति प्रोक्तं त्वया तदपि मे शृणु४२**
**चलां तु प्रकृतिं प्राहुः कारणं क्षयसर्गयोः ।**
**आक्षेपसर्गयोः कर्ता निश्चलः पुरुषः स्मृतः४३**
**तथैव वेद्यमव्यक्तमवेद्यः पुरुषस्तथा ।**
**अज्ञावुभौ ध्रुवौ चैव अक्षयौ चाप्युभावपि४४**
**अजौ नित्यावुभौ प्राहुरध्यात्मगतिनिश्चयात्**

रस्यति—**अज्ञेति**। ज्ञाज्ञौ निष्कलमेव ब्रह्मेत्यर्थः। 'कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः' इति ब्रह्मण्यौपाधिकौ जीवेशभावौ श्रूयेते तेनोपाध्यपगमे तावुभावपि निष्कलमेव ब्रह्मेति भावः ॥ ४० ॥ यत्तु आनन्दाकाशयोरनदबोधकं वाक्यमुदाहृतं यद्वाव कं तदेव खमिति तत्प्रकरणिनः सगुणस्य स्तुतिमात्रमित्याशयेनाह—**क इति**। कः आनंदः तपाः अव्यक्तं तौ च क्रमेण पुंप्रकृती इत्यर्थः। यत्तूक्तम् अतपाः सूर्यादः सूर्य इति कूर्माङ्गवन्निर्गुणात्सगुणस्याविर्भावतिरोभावाविति चेन्निर्गुणस्यापि सगुणत्वापत्तिरिति तत्राह—**अतपा निष्कल इति**। निष्कलस्य रज्जूरगवत्सगुणलयोदयाधिष्ठानत्वमतो न निष्कलत्वव्याघात इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ ननु निष्कलस्य वेद्यत्वं न युज्यते। त्रिपुट्या अभानादित्युक्तमत आह—**तथैवेति**। यदज्ञानं पुरुषार्थप्रतिबन्धकं तदवेद्यम्।

'यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवः
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति' इति

श्रुत्या आत्मज्ञानस्य तथात्वादात्मैव वेद्यः प्रधानं तु परिशेषादवेद्यमेव तद्वेदनं च मनोनाशादेवेति। न तत्र त्रिपुटीभानप्रसक्तिरस्ति। तथा च श्रुतिः—

'तावन्मनो निरोद्धव्यं हृदि यावत् क्षयं गतम्।
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रंथविस्तरः॥'

इति। अन्यथा घटादिवदनात्मत्वं जडत्वं स्थौल्यादिमत्त्वं च ब्रह्मणः स्यात् तथा च-'अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमानन्दं ब्रह्म अस्थूलमनणु' इत्यादिश्रुतिविरोधः। न ह्यसति बाधके तासामौपचारिकत्वं वक्तुं युक्तम्। यद्वा अयमात्मेत्युपास्त्यर्थं गौणं सामानाधिकरण्यम्। छान्दोग्ये सगुणस्यैव वेद्यत्वलक्षणोपास्यत्वश्रवणात्। विदेहपास्त्यर्थत्वस्यापि यो वायुं दिशां वत्सं वेदेत्यादौ सर्वत्र प्रसिद्धेश्चेत्याशंक्याह-**तथैवेति**। यत् आवृतं तद्वेद्यम्। आवरणं च सत्येन मलेन दर्पणादेरिष्टम् असत्येनोरगेण रज्ज्वादेश्च पक्षद्वयेपि प्रत्यगात्मैव वेद्यो नत्वनात्मा तटस्थ ईश्वरो जडत्वापत्तेरिति नात्मब्रह्मणोरभेदो गौणः अथागौणोऽप्यभेद उपास्तिसाध्य इत्यपि न छान्दोग्ये एव सोऽन्वेष्टव्य इत्यात्मन्यन्वेषणविध्याक्षिप्तस्यावरणस्यानुवादेन एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढा इत्यनृतत्वविधानात् ब्रह्माभिन्नं लोकं ब्रह्मलोकमात्मानम् अतोऽनृताज्ञानमात्रापनोदेन ब्रह्म वेद्यमेव न तूपास्यम्। अव्यक्तं त्ववेद्यं तुच्छत्वात् ॥ ४२ ॥ यत्तूक्तं वृक्षदृष्टान्तेन ज्ञानैश्वर्यादीनां सत्त्वं स्थूलत्वादीनां निषेधश्च विशिष्टे ब्रह्मणि युज्यत इति तत्राह—**चलामिति**। चला प्रकृतिरचलः पुरुष इति तयोः परिणामित्वकूटस्थत्वादिकृतविशेषात्पारमार्थिकतादात्म्यायोगेन ब्रह्मणि प्राकृतानां ज्ञानैश्वर्यस्थौल्यादीनामाध्यासिकतादात्म्येन प्रसक्तानां मुख्यवृत्त्यैव निषेधो युज्यत इति भावः। प्रकृतिर्विक्रियमाणा जगल्लयोदयकर्त्री पुरुषस्त्वविक्रियमाण एव तत्कर्तेति श्लोकार्थः॥४३॥ यद्यपि शास्त्रतोऽवेद्यमव्यक्तं वेद्यः पुरुष इत्युक्तम्। तथापि वस्तुस्वभावतो वेद्यमव्यक्तं दृश्यत्वात्। अवेद्यः पुरुषोऽदृश्यत्वादिति तत्त्वमाह—**तथैवेति**। यत्तु आत्मा चेद्ब्रह्म तर्हि तस्य नित्यापरोक्षतया तज्ज्ञानफलं सार्वज्ञ्यं सर्वस्यैव स्यादिति तत्राह—**अज्ञाविति**। यथा प्रकृतिर्जडत्वात्स्वात्मानं न जानात्येवं निष्कलात्मापि स्वात्मनि वृत्तिविरोधात्स्वात्मानं न जानात्यत उभावज्ञौ। आत्मनो नित्यापरोक्षत्ववादस्तूदासीनबोधरूपतया न तु वृत्तिविषयतया। यौ हि सोपाधी जीवेशौ ज्ञातृज्ञेयौ तावधिकृत्य जीवस्यात्मज्ञानं तज्ज्ञानात्सार्वज्ञ्यमिति चोच्यते निष्कलज्ञानस्य तु सार्वज्ञ्यफलकत्वं 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह' इति श्रूयमाणं नान्तरीयकमिति ज्ञेयम्। ईशज्ञानस्य चन्द्रशाखान्यायेन तत्रोपलक्षणत्वात् तस्मादुपलक्षणस्य ईश्वरस्याज्ञानादज्ञातं ब्रह्मेति नापूर्वत्वव्याहतिस्तज्ज्ञानस्येति भावः। ध्रुवौ अनादी अक्षयौ परिणामिनित्यत्वाद्यवहारापेक्षया प्रकृतिरपि नित्या पुरुषस्त्वसाध्यत्वादेव नित्य इति ॥४४॥ यत्तु साध्योऽपि मोक्षः शास्त्रबलान्नित्यो भवतीति तत्राह—**अजौ नित्याविति**। द्वित्वमविवक्षितम् 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इतिश्रुत्या यत्कृतकं तदनित्यमिति तर्कोपगृहीतया कर्मफलं निन्दित्वा तद्य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीति विधीयमानमात्मज्ञानमुपासनारूपं चेत्तस्य कर्मान्तःपातित्वाद्ध्येवै कर्मनिन्दा। अकर्मरूपस्यान्यस्य तत उत्कृष्टविधेयस्याभावात् यदेतदपि वाक्यमुपासनपरमित्याग्रहस्तद।

अक्षयत्वात्प्रजनने अजमत्राहुरव्ययम् ।
अक्षयं पुरुषं प्राहुः क्षयो ह्यस्य न विद्यते ४६
गुणक्षयत्वात्प्रकृतिः कर्तृत्वादक्षयं बुधाः ।
एषा तेऽन्वीक्षिकी विद्या चतुर्थी सांपरायिकी
विद्योपेतं धनं कृत्वा कर्मणा नित्यकर्मणि ।
एकान्तदर्शना वेदाः सर्वे विश्वावसो स्मृताः
जायन्ते च म्रियन्ते च यस्मिन्नेते यतश्च्युताः
वेदार्थं ये न जानन्ति वेद्यं गन्धर्वसत्तम ४९
साङ्गोपाङ्गानपि यदि यश्च वेदानधीयते ।
वेदवेद्यं न जानीते वेदभारवहो हि सः ॥ ५०

यो घृतार्थी खरीक्षीरं मथेद्गन्धर्वसत्तम ।
विष्ठां तत्रानुपश्येत न मण्डं न च वै घृतम् ॥
तथा वेद्यमवेद्यं च वेदविद्यो न विन्दति ।
स केवलं मूढमतिर्ज्ञानभारवहः स्मृतः ॥ ५२
द्रष्टव्यौ नित्यमेवैतौ तत्परेणान्तरात्मना ।
तथाऽस्य जन्मनिधने न भवेतां पुनः पुनः ॥
अजस्रं जन्मनिधनं चिन्तयित्वा त्रयीमिमाम्
परित्यज्य क्षयमिह अक्षयं धर्ममास्थितः ॥ ५४
यदाऽनुपश्यतेऽत्यन्तमहन्यहनि काश्यप।
तदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति ५५

ऽथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुप-संपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति वाक्यमात्मविद्यापरं द्रष्टव्यम् । संप्रसादः सुषुप्ताभिमानी प्राज्ञः यं प्रकृत्य माण्डूक्ये 'एष सर्वेश्वरः' इत्यादि श्रूयते स परं ज्योतिःशब्दितं निष्कलं उत्तमं पुरुषं ज्ञात्वा स्वेन ऐश्वरेण रूपेण संयुज्यते एतदेव परं ज्योतिरमृतादिरूपमिति श्रुत्यर्थः । तेन यदकर्मफलं तदजं तदेव च नित्यमित्यर्थः ॥४५॥ एवं चतुर्विंशत्या प्रश्नैः श्रुतिबलेन प्रत्युत्थितस्य श्रुतिबलेनैवोत्तरं दत्तम् । इदानीमान्वीक्षिक्या केवलतर्कबलेन प्रत्यवस्थितस्य तर्कबलेनैवोत्तरं वक्तुमुपक्रमते—**अक्षयत्वादिति** सार्धेन । यत्तु नित्यः स्वर्ग उपास्तिसाध्यः पुरुषार्थो न कैवल्यं पाषाणकल्पं नैरात्म्यवादानतिरेकादिति तत्राह यतः प्रजननेऽक्षयत्वादजमत्राव्ययमाहुरिति योजना । प्रकृष्टं जननमस्येति प्रजननं तस्मिन्ननित्यस्वर्गे । ल्यब्लोपे पञ्चमी । अक्षयत्वं परोक्तं श्रुत्वा अक्षपादादय आचार्याः अत्र व्यवहारे यदजमाकाशादि तदेवाव्ययमित्याहुः । जायमानस्य घटादेर्व्ययो हि प्रत्यक्षस्तद्वत्पराभिमतस्य मोक्षस्यापीत्यर्थः । न ह्यागमशतेनापि वस्तुस्वभावोऽन्यथयितुं शक्यते इति भावः । पूर्षु अष्टसु वसतीति पुरुषस्तमक्षयं प्राहुः । न तु पुरामक्षयत्वं युक्तम्। तथा च कैवल्यमेव मुक्तिर्न त्वैश्वर्यं तारतम्यवत्त्वेन कार्यत्वेन परतन्त्रत्वेन च तस्यापि दुःखरूपत्वादिति भावः ॥ ४६ ॥ नन्वस्मदीया मोक्षिणोऽप्राकृतेषु लोकेषु स्थिताः प्रतिपदमभिनवं देहेन्द्रियादिकमुपादाय भगवदाराधनं वा स्त्र्यादिभोगं वा कुर्वन्त्यतो न तेषां प्रकृतिलयेऽपि प्रलयो नापि जराद्याघातोऽतस्तेषां प्रवाहानित्यमैश्वर्यम् । तथा च श्रीधरस्वामिभिर्वेदस्तुतिटीकायामुदाहृतमुपनिषद्वाक्यं 'यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा यं भजन्ते' इति तद्भाष्यं चोदाहृतमित्याशङ्क्याह-**गुणक्षयत्वादिति** । गुणानां क्षयवत्त्वादित्यर्थः । अप्राकृतेषु लोकेषु सत्त्वादयो गुणाः सन्ति न वा। अन्त्ये नामान्तरेण कैवल्यमेव तत् । आद्ये प्रलयकाले गुणसाम्यावस्थायां गुणकार्यत्वात्तेषामपि क्षयोऽवश्यंभावी । अथ तेषामनादित्वान्न क्षय इति तत्राह—**प्रकृतिः कर्तृत्वादिति** । काकाक्षिवदयं हेतुरुभयत्रापि सम्बध्यते । प्रकरोतीति प्रकृतिरिति व्युत्पत्तेस्तेषामकार्यत्वे प्राकृतत्वमेव न स्यात् । न चेष्टापत्तिः । ब्रह्मव्यतिरिक्ताप्राकृतवस्त्वन्तरकल्पने प्रमाणाभावात् । अतोऽन्यदार्तमिति श्रुत्या तन्नित्यत्वकल्पनाबाधाच्चेत्यर्थः । यत्त्वैश्वर्यं प्रवाहनित्यमिति तत्राह -**कर्तृत्वादक्षयमिति** । स हीदमन्नं पुनः पुनर्जनयतीति श्रुत्या भावनाज्ञानकर्मभिः पुनः पुनर्जायमानस्य भोग्यस्याक्षयत्वमुक्तम् । नच भोगभूमौ तानि सन्ति । तस्मादप्राकृतेषु लोके भोग्यस्याक्षयत्वं न युज्यते। कर्मभूमौ साधितस्य तस्य क्षयावश्यंभावात् । भोगभूमौ चानुष्ठानाभावादिति सिद्धम् । श्रीधरस्वामिभिरुदाहृतयोः श्रुतितद्भाष्ययोस्तु योगसिद्धजीवन्मुक्ताभिप्रायेणाप्युपपत्तिरिति नाप्राकृतलोककल्पनं युक्तमिति । उपसंहरति **—एषेति** । उक्तेति शेषः ॥ ४७ ॥ विद्योपेतं आन्वीक्षिक्या विद्यया सहितं धनं 'ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेः श्रीशब्दिता वेदविद्या धनम् । तां सोपपत्तिकां संपाद्य श्रवणमनने कृत्वेति भावः । कर्मणा गुरूपसदनादिना यत्नेन सर्वे वेदाः नित्यकर्मणि एकान्तदर्शना विज्ञेया इत्यर्थः ॥ ४८ ॥ एते वियदाद्याः यस्मिन्नधिष्ठाने जायन्ते लीयन्ते च तं वेदार्थं वेदप्रतिपाद्यं वेद्यं आत्मानं ये न जानन्ति ते यतश्च्युता भवन्ति तन्नित्यमिति पूर्वानुषङ्गः ॥ ४९ ॥ विष्ठां विष्ठासमं मण्डं पश्येत न तु घृतं मण्डं वा शुद्धम् ॥५१॥ अवेद्यं प्रकृतिः वेद्यं ब्रह्म यो वेदविन्न विन्दति न लभते नापरोक्षीकरोति ॥५२॥ यथा येन दर्शनेन ॥ ५३ ॥ त्रयीं कर्मकाण्डोक्तं धर्मं क्षयं क्षयवन्तं परित्यज्य अक्षयं धर्मं योगम् ॥ ५४ ॥ पश्यते दृश्यते कर्मणि तङ् । आत्मेति शेषः । शुद्धस्त्वंपदार्थो यदा

अन्यश्च शाश्वतोऽव्यक्तस्तथान्यः पञ्चविंशकः
तस्य द्वावनुपश्येतां तमेकमिति साधवः ५६
तेनैतं नाभिनन्दन्ति पञ्चविंशकमच्युतम् ।
जन्ममृत्युभयाद्योगाः सांख्याश्च परमैषिणः ॥
विश्वावसुरुवाच ।
पञ्चविंशं यदेतत्ते प्रोक्तं ब्राह्मणसत्तम ।
तथा तन्न तथा चेति तद्भवान्वक्तुमर्हति ५८
जैगीषव्यस्यासितस्य देवलस्य मया श्रुतम् ।
पराशरस्य विप्रर्षेर्वार्षगण्यस्य धीमतः ॥ ५९
भृगोः पञ्चशिखस्यास्य कपिलस्य शुकस्य च
गौतमस्यार्ष्टिषेणस्य गर्गस्य च महात्मनः ६०
नारदस्यासुरेश्चैव पुलस्त्यस्य च धीमतः ।
सनत्कुमारस्य ततः शुक्रस्य च महात्मनः ६१
कश्यपस्य पितुश्चैव पूर्वमेव मया श्रुतम् ।
तदनन्तरं च रुद्रस्य विश्वरूपस्य धीमतः ६२
दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च दैतेयेभ्यस्ततस्ततः ।
प्राप्तमेतन्मया कृत्स्नं वेद्यं नित्यं वदन्त्युत ६३
तस्मात्तद्वै भवद्बुद्ध्या श्रोतुमिच्छामि ब्राह्मण ।
भवान्प्रबर्हः शास्त्राणां प्रगल्भश्चातिबुद्धिमान्
न तवाविदितं किंचि-
द्भवान् श्रुतिनिधिः स्मृतः ।
कथ्यते देवलोके च
पितृलोके च ब्राह्मण ॥ ६५
ब्रह्मलोकगताश्चैव कथयन्ति महर्षयः ।
पतिश्च तपतां शश्वदादित्यस्तव भाषिता ६६
सांख्यज्ञानं त्वया ब्रह्मन्नवाप्तं कृत्स्नमेव च ।
तथैव योगशास्त्रं च याज्ञवल्क्य विशेषतः ६७
निःसंदिग्धं प्रबुद्धस्त्वं बुध्यमानश्चराचरम् ।
श्रोतुमिच्छामि तज्ज्ञानं घृतं मण्डमयं यथा ६८
याज्ञवल्क्य उवाच ।
कृत्स्नधारिणमेव त्वां मन्ये गन्धर्वसत्तम ।
जिज्ञाससे च मां राजंस्तन्निबोध यथाश्रुतम्
अबुध्यमानां प्रकृतिं बुध्यते पञ्चविंशकः ।
न तु बुध्यति गन्धर्व प्रकृतिः पञ्चविंशकम् ॥
अनेन प्रतिबोधेन प्रधानं प्रवदन्ति तत् ।
सांख्ययोगाश्च तत्त्वज्ञा यथाश्रुतिनिदर्शनात्
पश्यंस्तथैव चापश्यन्पश्यत्यन्यः सदाऽनघ ।
षड्विंशं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च पश्यति ॥
न तु पश्यति पश्यंस्तु यश्चैनमनुपश्यति ।
पञ्चविंशोऽभिमन्येत नान्योऽस्ति परतो मम
न चतुर्विंशको ग्राह्यो मनुजैर्ज्ञानदर्शिभिः ।
मत्स्यश्चोदकमन्वेति प्रवर्तेत प्रवर्तनात् ॥ ७४

---

प्रत्यहं दृश्यते तदा वाक्यजज्ञानेन केवलीभूतस्त्यक्ताविद्यः । षड्विंशं तत्पदार्थम् ॥ ५५ ॥ तत्त्वमसीति वाक्यार्थमेवाह-शाश्वत ईश्वरः पञ्चविंशको जीवः तस्य तेऽनेन मूढेन द्वावनुदृश्येताम् अत्रापि कर्मणि तङ् । संभावनायां लोट् । पृथगिव संभाव्येते इत्यर्थः । तामिति विधेयापेक्षया एकत्वं तावुभावपि एकमभिन्नं वस्त्विति साधवो वदान्तनिष्ठाः सांख्याः पश्यन्ति ५६ त इति-ते सांख्या योगाश्च एतज्जीवेशाभेददर्शनम् । नाभिनन्दन्तीति नापि त्वभिनन्दन्त्येव तत्र सांख्याः स्पष्टमेवाभेदमाहुः-योगा अपि मोक्षे पञ्चविंशं सर्वक्लेशशून्यं निर्विशेषचिन्मात्रमुपगच्छन्तस्तादृशं चेश्वरं मन्वानास्तयोश्च निर्विशेषयोर्विशेषकृतस्य भेदस्यायोगात् फलतोऽभेदमेवेच्छन्तीति भावः । भयोद्विग्ना इति पाठे भयादुद्वेगो येषां ते तथा । अस्मिन्पक्षे सांख्यमते एवायमभेद इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ पंचविंशं पञ्चविंशस्य तत्त्वं यत् अच्युतत्वं त्वया उक्तं तत्तथा उत न तथा । अयं भावः---यदि जीवत्वं सत्यं तर्हि तस्य ईश्वरत्वं दुर्वचम् । न ह्यागमोऽपि घटं पटयितुमीष्टेऽतस्तत्त्वमसीत्यभेदो गौणः स्यात् । यद्यसत्यं तदा ब्रह्मकाण्डस्याप्रामाण्यं बन्धमोक्षाद्यव्यवस्था चेति ॥ ५८ ॥ यद्यप्येतद्बहुभ्यः श्रुतं तथापि त्वय्येव मम विश्वासोऽस्तीत्याह-**जैगीषव्यस्येत्यादिना** ॥ ५९ ॥ प्रबर्हः श्रेष्ठः प्रगल्भो वक्ता ॥ ६४ ॥ मण्डमयं घृतमतिस्वादु इति हि प्रसिद्धम् ॥ ६८ ॥ जीवतत्त्वं वक्तुमुपक्रमते--**अबुध्यमानामिति** । जडा प्रकृतिः पुंसा प्रकाश्यते न तु पुमान्प्रकृत्या तेन जीवस्य बुद्ध्याद्यगोचरत्वेन निष्कलत्वमुक्तम् ॥ ७० ॥ अनेन पञ्चविंशेन प्रतिबोधेन बोधप्रातभ्यात्मना तत् तां प्रकृतिं प्रधानं प्रधीयतेऽस्मिंश्चितिच्छायेति योगात् प्रधानसंज्ञं प्रवदन्ति । एतेन चितिच्छायापन्ना बुद्धिरेवाहंप्रत्ययविषय इत्युक्तम् । यथाश्रुतिनिदर्शनात् ।

'एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्' इति ॥

जलचन्द्रदृष्टान्तादित्यर्थः ॥ ७१ ॥ **पश्यन्निति** । चिदाभासादन्यः साक्षी पश्यन् जाग्रदादौ पुंप्रकृत्योर्विवेकख्यातिकाले वा पश्यन्सविकारं चतुर्विंशं पञ्चविंशं च पश्यति अपश्यन् सुषुप्त्यादौ निर्विकल्पकसमाधौ च षड्विंशं पश्यति एतेन यः साक्षी स एव साक्ष्येण संबद्धश्चेत् पञ्चविंशो भवति साक्ष्येण वियुक्तः षड्विंश इत्युक्तम् ॥ ७२ ॥ षड्विंशस्यात्मत्वं वदन् चतुर्विंशस्यात्मत्वं लोकायतसौगतसंमतं निरस्यति **पंचविंश इति** ॥ ७३ ॥ न ग्राह्य आत्मभावेनेति शेषः ७४

यथैव बुध्यते मत्स्यस्तथैषोऽप्यनुबुध्यते ।
स स्नेहात्सहवासाच्च साभिमानाच्च नित्यशः॥
स निमज्जति कालस्य यदैकत्वं न बुध्यते ।
उन्मज्जति हि कालस्य समत्वेनाभिसंवृतः
यदा तु मन्यतेऽन्योहमन्य एष इति द्विजः ।
तदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति ७७
अन्यश्च राजन्यवरस्तथान्यः पञ्चविंशकः ।
तत्स्थानाच्चानुपश्यन्ति एक एवेति साधवः॥
तेनैतन्नाभिनन्दन्ति पञ्चविंशकमच्युतम् ।
जन्ममृत्युभयाद्भीता योगाःसांख्याश्च काश्यप
षड्विंशमनुपश्यन्तः शुचयस्तत्परायणाः ७९
यदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति ।
तदा स सर्वविद्विद्वान्न पुनर्जन्म विन्दति ८०
एवमप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानश्च तेऽनघ ।
बुद्धश्चोक्तो यथातत्त्वं मया श्रुतिनिदर्शनात् ॥
पश्यापश्यं यो न पश्येत्क्षेम्यं तत्त्वं च काश्यप
केवलाकेवलं चाद्यं पञ्चविंशं परं च यत् ८२

विश्वावसुरुवाच ।

तथ्यं शुभं चैतदुक्तं त्वया विभो
सम्यक् क्षेम्यं दैवताद्यं यथावत् ।
स्वस्त्यक्षयं भवतश्चास्तु नित्यं
बुद्ध्या सदा बुद्धियुक्तं मनस्ते ॥ ८३

याज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्त्वा संप्रयातो दिवं स
विभ्राजन्वै श्रीमता दर्शनेन ।
दृष्टश्च तुष्ट्या परयाऽभिनन्द्य
प्रदक्षिणं मम कृत्वा महात्मा ॥ ८४
ब्रह्मादीनां खेचराणां क्षितौ च
ये चाधस्तात्संवसन्ते नरेन्द्र ।
तत्रैव तद्दर्शनं दर्शयन्वै
सम्यक् क्षेम्यं ये पथं संश्रिता वै ८५
सांख्याः सर्वे सांख्यधर्मे रताश्च
तद्वद्योगा योगधर्मे रताश्च ।
ये चाप्यन्ये मोक्षकामा मनुष्या-
स्तेषामेतद्दर्शनं ज्ञानदृष्टम् ॥ ८६
ज्ञानान्मोक्षो जायते राजसिंह
नास्त्यज्ञानादेवमाहुर्नरेन्द्र ।
तस्माज्ज्ञानं तत्त्वतोऽन्वेषितव्यं
येनात्मानं मोक्षयेज्जन्ममृत्योः ८७
प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात्क्षत्रियाद्वा
वैश्याच्छूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम् ।
श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं
न श्रद्धिनं जन्ममृत्यू विशेताम् ८८
सर्वे वर्णा ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च
सर्वे नित्यं व्याहरन्ते च ब्रह्म ।
तत्त्वं शास्त्रं ब्रह्मबुद्ध्या ब्रवीमि
सर्वं विश्वं ब्रह्म चैतत्समस्तम् ॥ ८९
ब्रह्मास्यतो ब्राह्मणाः संप्रसूता
बाहुभ्यां वै क्षत्रियाः संप्रसूताः ।
नाभ्यां वैश्याः पादतश्चापि शूद्राः
सर्वे वर्णा नान्यथा वेदितव्याः ९०
अज्ञानतः कर्मयोनिं भजन्ते
तां तां राजंस्ते तथा यान्त्यभावम् ।
तथा वर्णा ज्ञानहीनाः पतन्ते
घोरादज्ञानात्प्राकृतं योनिजालम् ९१
तस्माज्ज्ञानं सर्वतो मार्गितव्यं
सर्वत्रस्थं चैतदुक्तं मया ते ।
तत्स्थो ब्रह्मा तस्थिवांश्चापरो य-
स्तस्मै नित्यं मोक्षमाहुर्नरेन्द्र ॥ ९२

---

कालस्य कालेन एकत्वं षड्विंशादभेदम् । मज्जनोन्मज्जने संसारमोक्षौ । समत्वेन ज्ञातेन ब्रह्मभावेन ॥ ७६॥ तमेव कालमाह—**यदेति** । अहं चिदात्मा एषोऽहमर्थादिरनात्मा॥७७॥ प्रागुक्तं जीवेशयोरभेदं परामृशति—**अन्य इति** । वरः षड्विंशः तत्स्थानादिति भावप्रधानो निर्देशः । वरस्यावराधिष्ठानत्वादित्यर्थः । अवरस्य रज्जूरगवद्बाधे सति वर एक एवेति साधवोऽनुभवन्तीति भावः ॥ ७८ ॥ तेनेति सार्धश्लोको व्याख्यातः ॥ ७९ ॥ अप्रतिबुद्धः प्रधानं बुध्यमानो जीवः बुद्धो ब्रह्म ॥ ८१ ॥ धीफलमाह—**पश्येति** । पश्यं द्रष्टारम्, अपश्यं दृश्यं क्षेम्यं क्षेमाय साधु तत्त्वं दृग्दृश्ययोरन्यत्वं च निर्विकल्पकतया यो न पश्येत् । स एव केवलं साक्ष्येणापि निर्मुक्तं अकेवलं साक्षिरूपं पञ्चविंशं चिदाभासरूपम् आद्यं जगत्कारणम् । परं महदादिकार्यम्। अनेन 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' इति श्रुतौ ब्रह्मपदेन निर्विशेषं सर्वपदेन केवलादिकं च ग्राह्यमिति दर्शितम् ॥ ८२ ॥ क्षेम्यं मोक्षाय हितम् दैवताद्यं ब्रह्म ॥ ८३ ॥ दर्शनं शास्त्रम्। दर्शयन् अदर्शयन् पथं पन्थानम् ॥ ८५ ॥ ज्ञानदृष्टं प्रत्यक्षफलमित्यर्थः ॥ ८६ ॥ श्रद्धिनं श्रद्धावन्तम् । आदन्तादपि मत्वर्थीय इनिः ॥८८॥ सर्वत्रस्थं सर्ववर्णगतम् । तत्स्थो ज्ञाननिष्ठो यः स एव ब्रह्मा ब्राह्मणः ।

यत्ते पृष्टं तन्मया चोपदिष्टं
याथातथ्यं तद्विशोको भवस्व ।
राजन्गच्छस्वैतदर्थस्य पारं
सम्यक् प्रोक्तं स्वस्ति ते त्वस्तु नित्यम्

भीष्म उवाच ।

स एवमनुशास्तस्तु याज्ञवल्क्येन धीमता ।
प्रीतिमानभवद्राजा मिथिलाधिपतिस्तदा ॥
गते मुनिवरे तस्मिन्कृते चापि प्रदक्षिणम् ।
दैवरातिर्नरपतिरासीनस्तत्र मोक्षवित् ९५
गोकोटिं स्पर्शयामास हिरण्यं तु तथैव च ।
रत्नाञ्जलिमथैकं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा ९६
विदेहराज्यं च तदा प्रतिष्ठाप्य सुतस्य वै ।
यतिधर्ममुपासंश्चाप्यवसन्मिथिलाधिपः ९७
सांख्यज्ञानमधीयानो योगशास्त्रं च कृत्स्नशः
धर्माधर्मं च राजेन्द्र प्राकृतं परिगर्हयन् ॥ ९८
अनन्त इति कृत्वा स नित्यं केवलमेव च ।
धर्माधर्मौ पुण्यपापे सत्यासत्ये तथैव च ९९
जन्ममृत्यू च राजेन्द्र प्राकृतं तदचिन्तयत् ।
व्यक्ताव्यक्तस्य कर्मेदमिति नित्यं नराधिप ॥

पश्यन्ति योगाः सांख्याश्च
स्वशास्त्रकृतलक्षणाः ।
इष्टानिष्टविमुक्तं हि
तस्थौ ब्रह्म परात्परम् ॥ १०१

नित्यं तदाहुर्विद्वांसः शुचि तस्माच्छुचिर्भव ।
दीयते यच्च लभते दत्तं यच्चानुमन्यते १०२
ददाति च नरश्रेष्ठ प्रतिगृह्णाति यच्च ह ॥
ददात्यव्यक्त इत्येतत्प्रतिगृह्णाति यच्च वै १०३

आत्मा ह्येवात्मनो ह्येकः
कोऽन्यस्तस्मात्परो भवेत् ।
एवं मन्यस्व सततं-
मन्यथा मा विचिन्तय ॥ १०४

यस्याव्यक्तं न विदितं सगुणं निर्गुणं पुनः ।
तेन तीर्थानि यज्ञाश्च सेवितव्या विपश्चिता ५
न स्वाध्यायैस्तपोभिर्वा यज्ञैर्वा कुरुनन्दन ।
लभतेऽव्यक्तिकं स्थानं ज्ञात्वाऽव्यक्तं महीयते
तथैव महतः स्थानमाहङ्कारिकमेव च ।
अहङ्कारात्परं चापि स्थानानि समवाप्नुयात्
ये त्वव्यक्तात्परं नित्यं जानते शास्त्रतत्पराः
जन्ममृत्युविमुक्तं च विमुक्तं सदसच्च यत् ८

एतन्मयाऽऽप्तं जनकात्पुरस्ता-
त्तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात् ।
ज्ञानं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा
ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥ ९
दुर्गं जन्म निधनं चापि राजन्
न भौतिकं ज्ञानविदो वदन्ति ।
यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्व्रतैश्च
दिवं समासाद्य पतन्ति भूमौ ॥ १०
तस्मादुपासस्व परं महच्छुचि
शिवं विमोक्षं विमलं पवित्रम् ।
क्षेत्रं ज्ञात्वा पार्थिव ज्ञानयज्ञ-
मुपास्य वै तत्त्वमृषिर्भविष्यसि ११
यदुपनिषदमुपाकरोत्तथासौ
जनकनृपस्य पुरा हि याज्ञवल्क्यः ।
यदुपगणितशाश्वताव्ययं त-
च्छुभममृतत्वमशोकमर्च्छति ॥ १२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि याज्ञवल्क्यजनकसंवादसमाप्तौ अष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१८ ॥

---

अपरः क्षत्रियादिरपि तस्थिवान् तस्थौ ज्ञाने इति शेषः । तस्मै तदर्थं मोक्षं नित्यं नित्यसिद्धम् ॥ ९२ ॥ स्पर्शयामास ददौ ॥ ९६ ॥ उपासन् उपासीनः ॥ ९७ ॥ प्राकृतं आविद्यकम् ॥ ९८ ॥ अनन्तः त्रिविधपरिच्छेदशून्योऽहमिति मनसि निश्चयं कृत्वा नित्यं सर्वदा यतो धर्मादिकं प्राकृतं मिथ्याऽतः केवलमेवाचिन्तयदिति सार्धः श्लोकः॥९९॥ इदं धर्मादि व्यक्तं बुद्ध्यादि अव्यक्तं अज्ञानम् ॥ १०० ॥ तस्थौ स्थाणुवदचलमस्तीत्यर्थः ॥ १०१ ॥ दीयमानं गवादिकं सर्वमात्मैवेत्यर्थः ॥ १०२ ॥ एवमुक्तप्रकारेण मन्यस्व जानीहि ॥ १०४ ॥ अव्यक्तादीनां मध्ये यद्यदुपास्ते तत्तादात्म्यं प्राप्नोतीत्याह—**लभत इत्यादिना** । व्यक्तं स्पष्टं आपरोक्ष्येणेत्यर्थः ॥ १०६ ॥ शेषं स्पष्टार्थम् ॥१०७॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१८ ॥

## ३१९–[१४६]

युधिष्ठिर उवाच ।
ऐश्वर्यं वा महत्प्राप्य धनं वा भरतर्षभ ।
दीर्घमायुरवाप्याथ कथं मृत्युमतिक्रमेत् ॥ १
तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा ।
रसायनप्रयोगैर्वा कैर्नोप्नोति जरान्तकौ ॥ २
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भिक्षोः पञ्चशिखस्येह संवादं जनकस्य च ३
वैदेहो जनको राजा महर्षिं वेदवित्तमम् ।
पर्यपृच्छत्पञ्चशिखं छिन्नधर्मार्थसंशयम् ॥ ४
केन वृत्तेन भगवन्नतिक्रामेज्जरान्तकौ ।
तपसा वाऽथ बुद्ध्या वा कर्मणा वा श्रुतेन वा
एवमुक्तः स वैदेहं प्रत्युवाचापरोक्षवित् ।
निवृत्तिर्न तयोरस्ति नानिवृत्तिः कथञ्चन ६
न ह्यहानि निवर्तन्ते न मासा न पुनः क्षपाः
सोऽयं प्रपद्यतेऽध्वानं चिराय ध्रुवमध्रुवः ७
सर्वभूतसमुच्छेदः स्रोतसेवोह्यते सदा ।
ऊह्यमानं निमज्जन्तमप्लवे कालसागरे ॥ ८
जरामृत्युमहाग्राहे न कश्चिदभिपद्यते ।
नैवास्य कश्चिद्भवति नासौ भवति कस्यचित्
पथि सङ्गतमेवेदं दारैरन्यैश्च बन्धुभिः ।
नायमत्यन्तसंवासो लब्धपूर्वो हि केनचित्
क्षिप्यन्ते तेन तेनैव निष्टनन्तः पुनः पुनः ।
कालेन जाता याता हि वायुनेवाभ्रसञ्चयाः
जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव
बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि ॥
एवं भूतेषु भूतात्मा नित्यभूतो ध्रुवेषु च ।
कथं हि हृष्येज्जातेषु मृतेषु च न संज्वरेत् ॥
कुतोऽहमागतः कोऽस्मि
क्व गमिष्यामि कस्य वा ।
कस्मिन् स्थितः क्व भविता
कस्मात्किमनुशोचसि ॥ १४
द्रष्टा स्वर्गस्य कोऽन्योऽस्ति
तथैव नरकस्य च ।
आगमांस्त्वनतिक्रम्य
दद्याच्चैव यजेत च ॥ १५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पञ्चशिखजनकसंवादे
एकोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१९ ॥

## ३२०–[१४७]

युधिष्ठिर उवाच ।
अपरित्यज्य गार्हस्थ्यं कुरु राजर्षिसत्तम ।
कः प्राप्तो विनयं बुद्ध्या मोक्षतत्त्वं वदस्व मे
संन्यस्यते यथाऽऽत्माऽयं
व्यक्तस्यात्मा यथा च यत् ।
परं मोक्षस्य यच्चापि
तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
जनकस्य च संवादं सुलभायाश्च भारत ॥ ३

---

३१९

**समाप्ता श्रुतियुक्तिप्रधाना ब्रह्मविद्या** ॥ अथ साधनप्रधानां वक्तुमुपक्रमते—**ऐश्वर्यं वा महत्प्राप्येत्यादिना**। स्वधर्माचरणपूर्वकं निवृत्तिमार्गनिष्ठो जरान्तकावतिक्रामति । नान्यथेत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१९ ॥

३२०

इदानीं गार्हस्थ्येऽपि निवृत्तिनिष्ठा मुक्तिबीजभूता सम्भवतीति दर्शयितुं सुलभाजनकसंवाद आरभ्यते—**अपरित्यज्येति** । बुद्ध्याः बुद्धेः विनीयते लीयतेऽस्मिन्निति विनयो लयस्थानं मोक्षतत्त्वम् ॥ १ ॥ आत्मा लिङ्गदेहः व्यक्तस्य स्थूलदेहस्य आत्मा स्वरूपं देहद्वयं यथा त्यज्यते यच्च मोक्षस्य परं तत्त्वं तद्वदेत्यर्थः ॥२॥

संन्यासफलिकः कश्चिद्बभूव नृपतिः पुरा ।
मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति श्रुतः ४
स वेदे मोक्षशास्त्रे च स्वे च शास्त्रे कृतश्रमः ।
इन्द्रियाणि समाधाय शशास वसुधामिमाम्
तस्य वेदविदः प्राज्ञाः
श्रुत्वा तां साधुवृत्तताम् ।
लोकेषु स्पृहयन्त्यन्ये
पुरुषाः पुरुषेश्वर ॥ ६
अथ धर्मयुगे तस्मिन्योगधर्ममनुष्ठिता ।
महीमनुचचारैका सुलभा नाम भिक्षुकी ॥ ७
तया जगदिदं कृत्स्नमटन्त्या मिथिलेश्वरः ।
तत्र तत्र श्रुतो मोक्षे कथ्यमानस्त्रिदण्डिभिः
साऽतिसूक्ष्मां कथां श्रुत्वा
तथ्यं नेति ससंशया ।
दर्शने जातसंकल्पा
जनकस्य बभूव ह ॥ ९
तत्र सा विप्रहायाथ पूर्वरूपं हि योगतः ।
अबिभ्रदनवद्याङ्गी रूपमन्यदनुत्तमम् ॥ १०
चक्षुर्निमेषमात्रेण लघ्वस्त्रगतिगामिनी ।
विदेहानां पुरीं सुभ्रूर्जगाम कमलेक्षणा ॥ ११
सा प्राप्य मिथिलां रम्यां प्रभूतजनसंकुलाम्
भैक्ष्यचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरम् ॥ १२
राजा तस्याः परं दृष्ट्वा सौकुमार्यं वपुस्तदा ।
केयं कस्य कुतो वेति बभूवागतविस्मयः १३
ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा
व्यादिश्य च वरासनम् ।
पूजितां पादशौचेन
वरान्नेनाप्यतर्पयत् ॥ १४
अथ भुक्तवती प्रीता राजानं मन्त्रिभिर्वृतम् ।
सर्वभाष्यविदां मध्ये चोदयामास भिक्षुकी
सुलभा त्वस्य धर्मेषु मुक्तो नेति ससंशया ।
सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपतेः १६
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन्संयम्य रश्मिभिः
सा स्म तं चोदयिष्यन्ती योगबन्धैर्बबन्ध ह

संन्यासफलं सम्यग्दर्शनं तदस्यास्तीति संन्यासफलिकः ॥४॥ स्वे शास्त्रे दण्डनीतौ ॥५॥ तस्य साधुवृत्ततां श्रुत्वा तां स्पृहयन्तीति सम्बन्धः॥६॥ धर्मयुगे सत्ययुगे अनुष्ठिता कर्तरि क्तः। भिक्षुकीत्यनेन स्त्रीणामपि प्राग्विवाहाद्वैधव्यादूर्ध्वं वा संन्यासेऽधिकारोऽस्तीति दर्शितम् । तेन भिक्षाचर्यं मोक्षशास्त्रश्रवणं एकान्ते आत्मध्यानं च ताभिरपि कर्तव्यम् । त्रिदण्डादिकं च धार्यम् ॥ ७ ॥ मोक्षे मोक्षशास्त्रे निष्णात इति शेषः ॥ ८ ॥ **नेति न वेति** ॥ ९ ॥ लघु शीघ्रं अस्त्रगत्या गच्छतीति सा ॥ ११ ॥ सौकुमार्यं सौन्दर्यम् ॥ १३ ॥ भाष्यविदां सूत्रार्थज्ञानां मध्ये ॥ १५ ॥ अस्य एनं जनकं धर्मेषु मोक्षधर्मेषु विषयेषु । अन्याननादृत्य चोदयामास पृष्टवती अयं मुक्तो नेति न वेति ससंशया । **सत्त्वमिति** । स्वस्य योगैश्वर्यख्यापनार्थं जनकस्य सत्त्वं बुद्धिं सत्त्वेन स्वया बुद्ध्या प्रविवेश ॥ १६ ॥ स्वबुद्धेर्बहिरस्वातन्त्र्यात् परबुद्धेश्चाप्रत्यक्षत्वात्कथं प्रविवेशेत्याशंक्याह– **नेत्राभ्यामिति** । बुद्धिसत्त्वं हि 'अन्नमयं हि सोम्य मनः' इति श्रुतेर्भौतिकं द्रव्यं रविप्रभावत्सूक्ष्मं तत् यदा चक्षुरादिच्छिद्रेभ्यो बहिर्निर्गत्य घटादिकं प्रकाशयति । घटच्छिद्रनिर्गतप्रदीपप्रभावत् ।× तदा चक्षुरिन्द्रियमित्युच्यते । तत्रैकस्मिन्देशे युगपत्प्रदीपयोरिव बुद्ध्योरंशवः संसृज्यन्ते । तत्र यक्षराक्षसादयो वीराः स्वीयेन बुद्ध्यस्त्रेण संसृष्टां परबुद्धिमभिभूय तदीयैर्देहादिभिर्व्यवहरन्तीति प्रसिद्धं लोके यदि तु द्वावपि योगिवीरौ बुद्ध्यस्त्रप्रयोगसंहाराभिज्ञौ तदा-

× अत्रार्थे श्रीमच्छंकराचार्याः प्रबोधसुधाकरे—

गाढध्वान्तगृहान्ततः क्षितितले
दीपं निधायोज्ज्वलम्
पश्चाच्छिद्रमधोमुखं हि कलशं
तस्योपरि स्थापयेत् ॥
तद्बाह्ये परितश्च नीरममलं
वीणां च कस्तूरिकां
सद्रत्नं व्यजनं न्यसेच्च कलश-
च्छिद्राध्वनिर्गच्छता-॥९३॥

-तेजोंशेन पृथक्पदार्थनिवह-
ज्ञानं हि यज्जायते
तद्रन्ध्रैः कलशेन वा ? किमु मृदो
भाण्डेन तैलेन वा ?
किं सूत्रेण ? न चैतदस्ति रुचिरं
प्रत्यक्षबाधादतो
दीपज्योतिरिहैकमेव शरणं
देहे तथाऽऽत्मा स्थितः ॥ ९४॥

अत्र विशेषस्तु-अस्मत्कृतप्रबोधसुधाकरव्याख्यानादवगन्तव्यः।

ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम् ।
पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत् ॥ —शान्तिपर्व अ० ३२० पृ० ६५४

जनकोऽप्युत्स्मयन् राजा
भावमस्या विशेषयन्।
प्रतिजग्राह भावेन
भावमस्या नृपोत्तम ॥ १८

तदेकस्मिन्नधिष्ठाने संवादः श्रूयतामयम्।
छत्रादिषु विमुक्तस्य मुक्तायाश्च त्रिदण्डके॥१९

जनक उवाच।

भगवत्याः क्व चर्येयं कृता क्व च गमिष्यसि।
कस्य च त्वं कुतो वेति पप्रच्छैनां महीपतिः
श्रुते, वयसि, जातौ च सद्भावो नाधिगम्यते
एष्वर्थेषूत्तरं तस्मात्प्रवेद्यं मत्समागमे ॥ २१

छत्रादिषु विशेषेषु
मुक्तं मां विद्धि तत्त्वतः।
स त्वां संमन्तुमिच्छामि
मानार्हा हि मताऽसि मे ॥ २२

यस्माच्चैतन्मया प्राप्तं
ज्ञानं वैशेषिकं पुरा।
यस्य नान्यः प्रवक्ताऽस्ति
मोक्षं तमपि मे शृणु ॥ २३

पराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य सुमहात्मनः।
भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमसंमतः॥

सांख्यज्ञाने च योगे च महीपालविधौ तथा
त्रिविधे मोक्षधर्मेऽस्मिन्गताध्वा छिन्नसंशयः
स यथा शास्त्रदृष्टेन मार्गेणेह परिव्रजन्।
वार्षिकांश्चतुरो मासान्पुरा मयि सुखोषितः॥

तेनाहं सांख्यमुख्येन
सुदृष्टार्थेन तत्त्वतः।
श्रावितस्त्रिविधं मोक्षं
न च राज्याद्धि चालितः ॥ २७

सोऽहं तामखिलां वृत्तिं
त्रिविधां मोक्षसंहिताम्।
मुक्तरागश्चराम्येकः
पदे परमके स्थितः ॥ २८

वैराग्यं पुनरेतस्य मोक्षस्य परमो विधिः।
ज्ञानादेव च वैराग्यं जायते येन मुच्यते॥ २९

ज्ञानेन कुरुते यत्नं यत्नेन प्राप्यते महत्।
महद्द्वन्द्वप्रमोक्षाय सा सिद्धिर्या वयोतिगा॥

सेयं परमिका बुद्धिः प्राप्ता निर्द्वन्द्वता मया।
इहैव गतमोहेन चरता मुक्तसंगिना ॥ ३१

यथा क्षेत्रं मृदूभूतमद्भिराप्लावितं तथा।
जनयत्यंकुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवम् ॥ ३२

---

द्वयवत् धीद्वयं मिथो नाभिभूयते तत एकस्मिन्देहे द्वयोः विवादो भवति। सत्त्वोदयिष्यन्ती प्रष्टुमिच्छन्ती। योगबन्धैः योगबलेन चित्तबन्धैर्बबन्ध वशीचकार ॥ १७ ॥ उत्स्मयन् स्वस्य अजेयत्वाभिमाने गर्वं कुर्वन्। अस्याः सुलभायाः भावं आशयं एनं मूकं करिष्यामीत्येवंरूपम्। विशेषयन् अभिभवन् भावेन भावं जग्राह ॥ १८ ॥ तया सह समत्वेन एकस्मिन्देहे उवास। अधिष्ठाने देहे—**छत्रेति**। उभावपि स्थूलदेहोपस्कारं त्यक्तवन्तावित्यर्थः ॥ १९ ॥ एतदाख्यानतात्पर्यं तु एकस्मिन् गेहे इव लिङ्गदेहेऽपि द्वयोर्जीवयोरवस्थानं भवति तेन स्थूलसूक्ष्मदेहौ गृहवज्जीवस्यानात्मानावित्युक्तम्। एवं सति स्वस्यानभिभूतत्वं दर्शयन् जनक उवाच—**भगवत्या इति** ॥ २० ॥ परकीयं श्रुतादिकमज्ञातमतः पृष्टेन तद्वदनीयमित्यर्थः ॥ २१ ॥ राजाऽप्यहं राज्यान्मुक्तोऽस्मीत्याह—**छत्रादिष्विति**। सम्मन्तुं सम्यक् ज्ञातुम् ॥ २२ ॥ मोक्षं मोक्षहेतुम् ॥ २३ ॥ सांख्ययोगविधिशब्दैः क्रमेण ज्ञानोपास्तिकर्मकाण्डार्था ज्ञेयाः। अयमेव त्रिविधो मोक्षधर्मस्तत्र विषये गताध्वा ज्ञानमार्गः ॥ २५ ॥ मयि मम समीपे ॥ २६ ॥ वैराग्यमिति द्वाभ्यां वैराग्यज्ञानयत्नानां वासिष्ठादौ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशशब्दितानां त्रिदण्डविष्टम्भवदन्योन्याश्रयेण सिद्धिरुक्ता। यथा:—

'तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च।
मिथःकारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितानि हि॥
यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः।
न क्षीणा वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति॥
यावन्न तत्त्वविज्ञानं तावच्चित्तशमः कुतः।
यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम्॥
यावन्न वासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः।
यावन्न तत्त्वसंप्राप्तिर्न तावद्वासनाक्षयः॥
एकैकशो निषेव्यन्ते यद्येते चिरमप्यलम्
तत्र सिद्धिं प्रयच्छन्ति मन्त्राः सङ्कीर्तिता इव' इति।

यथा षडङ्गमन्त्राणामेकैकमन्त्रावृत्त्या न सिद्धिः किं तु सहितानामावृत्त्या तद्वदित्यर्थः। मोक्षस्य तत्साधनस्य ज्ञानस्य विधिरुपायः ॥ २९ ॥ यत्नं योगाभ्यासं मनोनाशहेतुम्। महत् आत्मज्ञानम्। तेन च परं वैराग्यमिति सा एषा त्रयाणां सिद्धिर्निष्पत्तिर्महतां द्वन्द्वानां सुखदुःखादीनां मोक्षायेति जीवन्मुक्तिसुखाय वयोतिगेति मृत्युजयाय भवतीत्युक्तम् ॥ ३० ॥ ननु राज्यं कुर्वतस्तव कथं मुक्तसङ्गिता सम्भावितेत्यत आह—**यथेत्यादिना**। सबीजत्वादंकुरं जनयतीत्यध्याहृत्य योज्यम्। तद्वत् कर्म बीजस्थानीयम् ॥ ३२ ॥

यथा चोत्तापितं बीजं कपाले यत्र तत्र वा।
प्राप्याप्यंकुरहेतुत्वमबीजत्वान्न जायते ॥ ३३
तद्वद्भगवताऽनेन शिखा प्रोक्तेन भिक्षुणा।
ज्ञानं कृतमबीजं मे विषयेषु न जायते ॥ ३४
नाभिरज्यति कस्मिंश्चिन्नानर्थे न परिग्रहे।
नाभिरज्यति चैतेषु व्यर्थत्वाद्रागरोषयोः ३५
यश्च मे दक्षिणं बाहुं चन्दनेन समुक्षयेत्।
सव्यं वास्यापि यस्तक्षेत्समावेतावुभौ मम३६
सुखी सोऽहमवाप्तार्थः
समलोष्टाश्मकाञ्चनः
मुक्तसङ्गः स्थितो राज्ये
विशिष्टोऽन्यैस्त्रिदण्डिभिः॥ ३७
मोक्षे हि त्रिविधा निष्ठा
दृष्टाऽन्यैर्मोक्षवित्तमैः।
ज्ञानं लोकोत्तरं यच्च
सर्वत्यागश्च कर्मणाम् ॥ ३८
ज्ञाननिष्ठां वदन्त्येके मोक्षशास्त्रविदो जनाः।
कर्मनिष्ठां तथैवान्ये यतयः सूक्ष्मदर्शिनः॥ ३९
प्रहायोभयमप्येव ज्ञानं कर्म च केवलम्।
तृतीयेयं समाख्याता निष्ठा तेन महात्मना४०
यमे च नियमे चैव कामे द्वेषे परिग्रहे।
माने दंभे तथा स्नेहे सदृशास्ते कुटुम्बिभिः॥

त्रिदण्डादिषु यद्यस्ति मोक्षो ज्ञानेन कस्यचित्
छत्रादिषु कथं न स्यात्तुल्यहेतौ परिग्रहे॥ ४२
येन येन हि यस्यार्थः कारणेनेह कर्मणि।
तत्तदालम्बते सर्वद्रव्ये स्वार्थपरिग्रहे॥ ४३
दोषदर्शी तु गार्हस्थ्ये यो व्रजत्याश्रमान्तरे।
उत्सृजन्परिगृह्णंश्च सोऽपि संगान्न मुच्यते४४
आधिपत्ये तथा तुल्ये निग्रहानुग्रहात्मके।
राजभिर्भिक्षुकास्तुल्या मुच्यन्ते केन हेतुना
अथ सत्याधिपत्येऽपि ज्ञानेनैवेह केवलम्।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो देहे परमके स्थिताः॥
काषायधारणं मौण्ड्यं त्रिविष्टब्धं कमण्डलुम्
लिंगान्युत्पथभूतानि न मोक्षायेति मे मतिः
यदि सत्यपि लिंगेऽस्मिन् ज्ञानमेवात्र कारणं
निर्मोक्षायेह दुःखस्य लिंगमात्रं निरर्थकम्४८
अथवा दुःखशैथिल्यं वीक्ष्य लिंगे कृता मतिः
किं तदेवार्थसामान्यं छत्रादिषु न लक्ष्यते॥४९
आकिंचन्ये न मोक्षोऽस्ति
किञ्चन्ये नास्ति बन्धनम्।
किञ्चन्ये चेतरे चैव
जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते ॥ ५०
तस्माद्धर्मार्थकामेषु तथा राज्यपरिग्रहे।
बन्धनायतनेष्वेषु विद्ध्यबन्धे पदे स्थितम् ॥५१

---

ज्ञानं बुद्धिः अबीजं वासनाबीजशून्यम्। न जायते न प्रवर्तते शिखापदयुक्तं प्रोक्तं नाम यस्य तेन पञ्चशिखेनेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अनर्थे शत्रुवधादौ। परिग्रहे स्त्र्यादिसंग्रहे। एतेषु रागरोषयोर्विषयेषु स्त्रीशत्रुप्रभृतिषु व्यर्थत्वात्तेषां मिथ्यात्वेन निःस्वरूपत्वादित्यर्थः॥३५॥ **वास्येति** वास्यसंज्ञकेन शस्त्रेण विभक्तिलोप आर्षः। अल्पं वास्यं वासी तयेति वा ॥३६॥ उपपादितामात्मनो मुक्तसङ्गितामुपसंहरति–**सुखीति** ॥३७ त्रिविधा ज्ञानोपास्तिकर्मात्मिका एका अन्या ज्ञानोपास्त्यात्मिका। कर्मणां मानसानामपि तेन सांख्ययोगात्मिकेत्यर्थः ॥ ३८॥ ज्ञाननिष्ठां कर्मोपसर्जनां कर्मनिष्ठां ज्ञानोपसर्जनाम् ॥ ३९ ॥ एवं चत्वारः परपक्षा उपन्यस्ताः स्वमतमाह— **प्रहायेति**। उभयं समुच्चयविकल्पाख्यं पूर्वश्लोकद्वयोक्तं त्यक्त्वेत्यर्थः। ज्ञानस्य केवलत्वं कर्मकृतोपकारनैरपेक्ष्यम्। कर्मणः केवलत्वं प्रयोजनाभावेऽप्यत्यागः। सेयं तृतीया निष्ठा ज्ञानकर्मणोः समुच्चयपक्षाद्विकल्पपक्षाच्चान्या। तेन पञ्चशिखेन समाख्याता ॥ ४० ॥ इमामेव निष्ठां स्तौति— **यमे चेति**। ते त्रिदण्डिनः यमादौ सति गृहस्थः संन्यासितुल्यः कामादौ सति संन्यास्यपि गृहस्थतुल्य इत्यर्थः॥४१॥

**त्रिदण्डेति**। यदि ज्ञानेनैव मोक्ष इति सिद्धं तर्हि त्रिदण्डपरिग्रहवच्छत्रपरिग्रहोऽपि न बाधकः। ज्ञानेन सन्नाभावस्योभयत्रापि तुल्यत्वादित्यर्थः ॥ ४२ ॥ **येनेति**। आलम्बते प्रयोजनवत्तया आसक्तो भवति। कुत्र कर्मणि द्रव्ये पश्वादौ स्वं धनं अर्थाः स्त्र्यादयस्तेषां परिग्रहे किमर्थं येन येन कारणेन अन्नादिना यस्यार्थः प्रयोजनं क्षुन्निवृत्त्यादि तदर्थमित्यर्थः। तथा चार्थस्याल्पत्वबहुत्वे बन्धमोक्षहेतू न भवतः किन्तु तत्रासक्त्यनासक्ती एवेति भावः ॥४३॥ आधिपत्ये तुल्ये त्रिदण्डाद्यर्थे आसक्तिर्बाधिकेत्याह––**दोषेति** ॥४४॥ आसंगमेव विवृणोति—**आधिपत्य इति**। शिष्यादिष्विति शेषः ॥ ४५ ॥त्रिविष्टब्धं त्रिदण्डकम्। लिंगानि आश्रमपरिचायकानि ॥ ४७ ॥ **अथवेति**। दुःखाभावार्थं त्रिदण्डं चेत् कर्तव्यं तर्हि राज्यमपि तदर्थं कुतो न कर्तव्यमित्यर्थः। अत एवोक्तं भगवता–

'दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्' इति॥४९॥

फलितमाह—**आकिञ्चन्ये इति** ॥ ५० ॥ एषु सत्स्वपि अबन्धे पदे स्थितं मां विद्धि ॥ ५१ ॥

राज्यैश्वर्यमयः पाशः
स्नेहायतनबन्धनः ।
मोक्षाश्मनिशितेनेह
छिन्नस्त्यागासिना मया ॥ ५२

सोऽहमेवंगतो मुक्तो
जातास्थस्त्वयि भिक्षुकि ।
अयथार्थे हि ते वर्णे
वक्ष्यामि शृणु तन्मम ॥ ५३

सौकुमार्यं तथा रूपं वपुरग्र्यं तथा वयः ।
तवैतानि समस्तानि नियमश्चेति संशयः ५४
यच्चाप्यननुरूपं ते लिंगस्यास्य विचेष्टितम् ।
मुक्तोऽयं स्यान्नवेति स्याद्धर्षितो मत्परिग्रहः
न च कामसमायुक्ते युक्तेऽप्यस्ति त्रिदण्डके ।
न रक्ष्यते त्वया चेदं न मुक्तस्यास्ति गोपना ॥
मत्पक्षसंश्रयाच्चायं शृणु यस्ते व्यतिक्रमः ।
आश्रयन्त्याः स्वभावेन मम पूर्वपरिग्रहम् ॥५७
प्रवेशस्ते कृतः केन मम राष्ट्रे पुरेऽपि वा ।
कस्य वा सन्निकर्षात्त्वं प्रविष्टा हृदयं मम ५८
वर्णप्रवरमुख्याऽसि ब्राह्मणी क्षत्रियस्त्वहम् ।
नावयोरेकयोगोऽस्ति मा कृथा वर्णसंकरम् ॥
वर्तसे मोक्षधर्मेण त्वं गार्हस्थ्येऽहमाश्रमे ।
अयं चापि सुकष्टस्ते द्वितीयोऽऽश्रमसंकरः

सगोत्रां वाऽसगोत्रां वा
न वेद त्वां न वेत्थ माम् ।
सगोत्रमाविशंत्यास्ते
तृतीयो गोत्रसंकरः ६१

अथ जीवति ते भर्ता प्रोषितोऽप्यथवा क्वचित्
अगम्या परभार्येति चतुर्थो धर्मसंकरः ॥ ६२
सा त्वमेतान्यकार्याणि कार्यापेक्षा व्यवस्यसि
अविज्ञानेन वा युक्ता मिथ्याज्ञानेन वा पुनः ॥
अथवाऽपि स्वतंत्राऽसि स्वदोषेणेह कर्हिचित्
यदि किंचिच्छ्रुतं तेऽस्ति सर्वं कृतमनर्थकम् ६४
इदमन्यत्तृतीयं ते भावस्पर्शविघातकम् ।
दुष्टाया लक्ष्यते लिंगं विवृण्वत्या प्रकाशितम्
न मय्येवाभिसंधिस्ते जयैषिण्या जये कृतः ।
येयं मत्परिषत्कृत्स्ना जेतुमिच्छसि तामपि ॥
तथाऽर्हतस्ततश्च त्वं दृष्टिं स्वां प्रति मुञ्चसि ।
मत्पक्षप्रतिघाताय स्वपक्षोद्भावनाय च ॥ ६७
सा स्वेनामर्षजेन त्वमृद्धिमोहेन मोहिता ।
भूयः सृजसि योगास्त्वं विषामृतमिवैकताम्
इच्छतोरत्र यो लाभः स्त्रीपुंसोरमृतोपमः ।
अलाभश्चापि रक्तस्य सोऽपि दोषो विषोपमः
मा स्प्राक्षीः साधु जानीष्व स्वशास्त्रमनुपालय
कृतेयं हि विजिज्ञासा मुक्तो नेति त्वया मम ॥

---

राज्यैश्वर्यमयः राज्याद्यासक्त्या तत्प्रधानः । स्त्रीमयो जाल्म इतिवत् । स्नेहायतनैर्धनदारादिभिर्बध्नातीति तथा । एतेन संगी बध्यते त्यागी मुच्यते इत्युक्तम् ॥ ५२ ॥ त्वयि योगप्रभाववत्यां जातास्थो जातादरः अथापि अयथार्थे योगाननुरूपं वर्णे त्रिगुणजं रूपम् ॥ ५३ ॥ सौकुमार्यादिकं योगश्चैकस्यां त्वयि परस्परविरुद्धं कथं स्यादिति संशयः । त्वं योगसिद्धा ब्राह्मणी वा आजानसिद्धा यक्षराक्षसादियोनिजा वेति भावः ॥ ५४ ॥ लिंगस्य त्रिदण्डधारणस्य अननुरूपं शरीरशोषणाद्यभावात् । धर्षितः रूपादिनाभिभूतः । परिग्रहः स भाविकृतवेषत्वं पराभिभवश्च न मुक्तलक्षणमिति भावः ॥ ५५ ॥ नन्दिन्या दिलीप इवानुग्रहार्थमेवं धर्षितोऽसीत्याशंक्याह—**न चेति** । परानुग्रहनिग्रहकामे युक्ते योगिनि संन्यासफलं नास्तीत्यर्थः । मच्छरीरसंगाच्च त्वया इदमाश्रमलिंगमपि न रक्ष्यते । अनेन लिंगेनापि मुक्तस्य आरूढपतितस्य गोपना नास्ति । विमुक्तस्येति पाठे ज्ञाततत्त्वस्यापि गोपना व्यभिचाराद्यकृत्यादात्मरक्षा कर्तव्येत्यस्त्येवेत्यर्थः ॥ ५६ ॥ **मत्पक्षेति** । मच्छरीरप्रवेशात् । नन्वहं स्वासने एवास्मीत्याशंक्याह— **आश्रयन्त्या इति** । स्वभावेन स्वेन चित्तेन मम परिग्रहं शरीरं आश्रयन्त्याः । अतस्त्वयि व्यभिचारदोष इति भावः ॥ ५७ ॥ जारिण्योऽपि संकेतेनैव परपुरं गृहं वा प्रविशन्ति तत्रापि तवास्मान्धर्षयन्त्या अपराध इत्याह— **कस्य वेति** । सन्निकर्षात् संकेतात् ॥ ५८ ॥ इष्टापत्तिमाशंक्याह— **वर्णेति** ॥ ५९ ॥ आश्रमसंकरः संन्यासाद्गार्हस्थ्यं प्रति पुनरागमनम् ॥ ६० ॥ संन्यासिवेषेण गार्हस्थ्यार्थमेवाहमागताऽस्मीति चेद्गोत्राद्यनिर्णयात् प्रागेतन्नोचितमित्याह— **सगोत्रामिति** ॥ ६१ ॥ अविज्ञानेन ज्ञानाभावेन मिथ्याज्ञानेन विपर्ययेण ॥ ६३ ॥ ' न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ' इति शास्त्रोल्लंघनरूपेण स्वदोषेण । तर्हि शास्त्रातिक्रमणात्तव श्रुतं व्यर्थम् ॥ ६४ ॥ भावयोश्चित्तयोः स्पर्शः ऐक्यं प्रीतिरिति यावत् ॥ ६५ ॥ दोषलिंगमेवाह— **न मयीति** ॥ ६६ ॥ अर्हतः पूज्यान् उद्दिश्य ॥ ६७ ॥ अमर्षः परोत्कर्षासहिष्णुत्वं तज्जेन । योगान्परबुद्धिभिः स्वबुद्धेः सम्बन्धान् ॥ ६८ ॥ विषामृतशब्दौ व्याचष्टे— **इच्छतोरिति** । रक्तायास्तव रक्तस्य पुंसोऽलाभात् । तादृशयोर्योगो विषामृतमित्यर्थः ॥ ६९ ॥ स्वशास्त्रं संन्यासिशास्त्रम् ॥ ७० ॥

एतत्सर्वं प्रतिच्छन्नं मयि नार्हसि गूहितम्।
सा यदि त्वं स्वकार्येण यद्यन्यस्य महीपतेः।
तत्त्वं सत्रप्रतिच्छन्ना मयि नार्हसि गूहितम्॥
न राजानं मृषा गच्छेन्न द्विजातिं कथञ्चन।
न स्त्रियं स्त्रीगुणोपेतां हन्युर्ह्येते मृषा गताः॥
राज्ञां हि बलमैश्वर्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
रूपयौवनसौभाग्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ७३
अत एतैर्बलैरेव बलिनः स्वार्थमिच्छता।
आर्जवेनाभिगन्तव्या विनाशाय ह्यनार्जवम्
सा त्वं जातिं श्रुतं वृत्तं भावं प्रकृतिमात्मनः।
कृत्यमागमने चैव वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ ७५

भीष्म उवाच।

इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः।
प्रत्यादिष्टा नरेन्द्रेण सुलभा न व्यकम्पत॥७६
उक्तवाक्ये तु नृपतौ सुलभा चारुदर्शना।
ततश्चारुतरं वाक्यं प्रचक्रामाथ भाषितुम्७७

सुलभोवाच।

नवभिर्नवभिश्चैव दोषैर्वाग्बुद्धिदूषणैः।
अपेतमुपपन्नार्थमष्टादशगुणान्वितम्॥
सौक्ष्म्यं सांख्यक्रमौ चोभौ
निर्णयः सप्रयोजनः।
पञ्चैतान्यर्थजातानि
वाक्यमित्युच्यते नृप॥ ७९
एषामेकैकशोऽर्थानां
सौक्ष्म्यादीनां स्वलक्षणम्।
शृणु संसार्यमाणानां
पदार्थपदवाक्यतः॥ ८०
ज्ञानं ज्ञेयेषु भिन्नेषु यदा भेदेन वर्तते।
यत्राधिवासिनी बुद्धिस्तत्सौक्ष्म्यमिति वर्तते
दोषाणां च गुणानां च प्रमाणं प्रविभागतः।
कञ्चिदर्थमभिप्रेत्य सा संख्येत्युपधार्यताम्८२
इदं पूर्वमिदं पश्चाद्वक्तव्यं यद्विवक्षितम्।
क्रमयोगं तमप्याहुर्वाक्यं वाक्यविदो जनाः॥
धर्मकामार्थमोक्षेषु प्रतिज्ञाय विशेषतः।
इदं तदिति वाक्यान्ते प्रोच्यते स विनिर्णयः
इच्छाद्वेषभवैर्दुःखैः प्रकर्षो यत्र जायते।
तत्र या नृपते वृत्तिस्तत्प्रयोजनमिष्यते॥ ८५
तान्येतानि यथोक्तानि
सौक्ष्म्यादीनि जनाधिप।
एकार्थसमवेतानि
वाक्यं मम निशामय॥ ८६

---

सत्रप्रतिच्छन्ना वेषान्तरेण गुप्ता ॥७१॥ प्रत्यादिष्टा तिरस्कृता ॥ ७६ ॥ नवभिर्वाग्दूषणैर्गुर्वक्षरसंयुक्तत्वादिभिर्वक्ष्यमाणैः बुद्धिदूषणैश्च नवभिः कामादिभिर्वक्ष्यमाणैरेव । अष्टादशगुणाः नवैव वाग्दूषणादिविपर्यासेन मधुराक्षरत्वादयो गुणाः। नव दोषा अपि गुणत्वेन यत्रोच्यन्ते ते दोषगुणाश्च नव इत्येवमष्टादशगुणान्वितं वाक्यमित्युत्तरेणान्वयः ॥ ७८ ॥ सौक्ष्म्यं संशयस्य विषयीभूतं पदादिसंदिग्धार्थत्वमित्यर्थः । सांख्यं पूर्वपक्षे सिद्धान्ते च गुणदोषसंख्यानं क्रमः संख्यातानां गुणदोषाणां बलाबलविचारणम्। विनिर्णयः सिद्धान्तः प्रयोजनं अनुष्ठानम् एतानि पञ्च समुच्चितानि वाक्यं शब्दाख्यं प्रमाणमित्यर्थः ॥ ७९ ॥ स्वलक्षणं व्यावर्तकं धर्मवचनम् तच्च विषयभेदाच्चतुर्धा—पदतो वाक्यतः पदार्थतो वाक्यार्थत इति । एतेषामुदाहरणान्यनुपदमेव वक्ष्यन्ते ॥ ॥ ८० ॥ **ज्ञानमिति** । यत्र विषयवाक्ये ज्ञेयेषु वाक्यप्रमेयतया उपस्थितेषु भिन्नेषु अनेकेषु अर्थेषु सत्सु यदा ज्ञानं बुद्धिर्भेदेन निर्णयमप्राप्नुवती अधिवासिनी अनेककोटिस्पर्शिनी वर्तते तत् सौक्ष्म्यं वाक्यस्य दुर्ज्ञेयत्वमित्युच्यते॥८१॥ कञ्चित्पूर्वपक्षे सिद्धान्ते वा संमतं कंचिदनियतमर्थम् ॥८२॥ **इदमिति** । संख्यातानां गुणानां दोषाणां च मध्ये इदं पूर्वं वक्तव्यं इदं पश्चाद्विवक्षितमिति बलाबलविचारः क्रमः ॥ ८३ ॥ वाक्यान्ते वाक्यार्थविचारान्ते प्रोच्यते प्रकर्षेण युक्तिमत्तया उच्यते स निर्णयः ॥ ८४ ॥ प्रयोजनं लक्षयति—**इच्छेति** । तत्र इच्छाप्रभवं दुःखं यत्र विषये जायते इदमवश्यं कर्तव्यमित्यौत्सुक्यं द्वेषभवं दुःखं इदमवश्यं त्याज्यमित्यसह्यत्वम् । तत्र या प्रवृत्तिरूपा निवृत्तिरूपा वा वृत्तिः सा प्रयोजनं नाम॥८५॥ एकार्थसमवेतानि एकस्मिन्नर्थे पर्यवसितानि वाक्यमिति पञ्चाङ्गं वाक्यं मम वचनान्निश्चिनु सौक्ष्म्यादीनामुदाहरणानि तु तत्र पदतः सौक्ष्म्यादेरुदाहरणम्—' वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः ' इति विधायाम्नायते ' वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति स एवैनं भूतिं गमयति ' इति किं वायुर्वा इत्यादीनि पदानि ' समिधो यजति तनूनपातं जयति ' इत्यादिपदकदम्बवत् कञ्चिदर्थं विधाय प्रधानवाक्येन एकवाक्यतां प्रतिपद्यन्ते उत संभूय प्राशस्त्यमात्रं श्वेतालम्भस्यार्थे लक्षयन्ति । एतत्सौक्ष्म्यं अविशिष्टस्तु वाक्यार्थ इति न्यायेन तेषां प्रतीयमानस्यार्थस्य अपलपितुमशक्यत्वात्सभिदादिवाक्यवत्स्वार्थे पर्यवसानं प्राप्यैव महावाक्येनैकवाक्यतां लभन्ते इति पूर्वपक्षे गुणः । सिद्धान्ते दोषः । तथा

**उपेतार्थमभिन्नार्थं न्यायवृत्तं न चाधिकम् ।**
**नाश्लक्ष्णं न च संदिग्धं वक्ष्यामि परमं ततः**

सर्वस्याम्नायस्य प्रयोजनवदर्थपर्यवसायित्वात् वायोः शीघ्रगामित्वादिप्रतिपादने शास्त्रस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिकरत्वायोगात् आनर्थक्यलक्षणाप्रामाण्याद्वरं विधेयार्थप्राशस्त्यसमर्पणेनार्थवत्त्वमिति सिद्धान्ते गुणाः पूर्वपक्षे दोषाश्च । एतत्सांख्यं अत्रैव क्रमाख्यं पूर्वोत्तरपक्षयोर्बलाबलमुन्नेयम् । पूर्वपक्षे आनर्थक्यात् दुर्बलत्वं सिद्धान्तेऽर्थवत्त्वात्प्राबल्यमिति इत एव निर्णयः । अर्थवादानां प्रयाजादिवाक्यानामिव प्रधानविधिना वाक्यैकवाक्यता नास्ति अपि तु पदैकवाक्यतैवेति । तस्माद्वायुर्वा इत्यादिकमेव पदं अविधायकम् । अतः प्रशीघ्रगामिदेवताकं कर्म शीघ्रफलदमिति स्तुतिः सिद्धान्ते फलम् । पूर्वपक्षे तु यतो वायुः क्षेपिष्ठाऽतिशयेन क्षिप्रगामिनी देवतेति स्वयमपि धावनं कर्तव्यमिति । इदं पदैकत्वानेकत्वे सौक्ष्म्यादिकं वाक्यैकत्वानेकत्वे तु ' वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते यदष्टाकपालो भवत्यष्टाक्षरा गायत्री' इत्यादौ संशयः । किं द्वादशकपाले एव अष्टाकपालत्वादिवैकल्पिको गुणविधिरुत तस्यैवावयवद्वारा स्तुतिरिति । तत्र उत्पत्तिशिष्टद्वादशत्वावरुद्धे उत्पन्नाशिष्टानां अष्टत्वादीनां निवेशायोगात् । ' संभवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि नेष्यते ' इति न्यायेन ' पुत्रे जाते ' इत्युपक्रम्य यस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपतीत्युपसंहारेण उपक्रमोपसंहारयोरैकरूप्यान्नात्र वाक्यभेदे दोषापत्त्या गुणविधानं कर्तुं शक्यमिति । अत्रापि पूर्ववत्सौक्ष्म्यादिकं द्रष्टव्यम् । तथा पदार्थे सौक्ष्म्यादि ।

' इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥
महतः परमव्यक्तम्'

इत्यत्राव्यक्तपदेन सांख्याभिमतं प्रधानं ग्राह्यं रूढेरिति पूर्वः पक्षः ।

' आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् '

इति रथरूपककल्पनायां ये श्रूयन्ते इन्द्रियादयस्त एव क्रमव्युत्क्रमाभ्यां प्रत्यभिज्ञायन्तेऽतः परिशेषादव्यक्तशब्देन सूक्ष्मं शरीरमिति सिद्धान्तः । तथा वाक्यार्थेऽपि सौक्ष्म्यादिकं इन्द्रेण प्रतर्दनं प्रत्युच्यते प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्स्वेति किमिह वक्ता इन्द्र एवोपास्यः उत मुख्यः प्राणः श्रौतार्थलाभात् । उत प्रज्ञात्मेतिविशेषणाज्जीवः उत तद्यथा पुरेषु निमिरर्पितो नाभावरा अर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वं समर्पितमिति सर्वलयाधिष्ठानत्वोक्तेर्ब्रह्म वा । तत्र अन्यतमपरत्वमिति पूर्वः पक्षः । वाक्यभेदस्यायुक्तत्वेन एकस्मिन्नर्थे वाक्यपर्यवसानावश्यकत्वाद्धिततमं ब्रूहीति प्रक्रमात् ब्रह्मेतरस्य हिततमत्वायोगात् । वक्तात्मोपदेशस्य वामदेववदहं मनुरभवं सूर्यश्चेति प्रत्यक्तत्त्वानुसन्धानपरत्वे ब्रह्मपरत्वोपपत्तेः । प्राणादिधर्मवैशिष्ट्येनापि ब्रह्मोपास्तिसंभवादुदाहृतोपसंहाराच्च ब्रह्मपरत्वमिति सिद्धान्त इति दिक् ॥८६॥ एवं सौक्ष्म्याद्यङ्गपञ्चकं सलक्षणं अङ्गि च वाक्यं सलक्षणमुक्त्वा वाक्यगुणानाह--**उपेतार्थमिति त्रिभिः।**

**न गुर्वक्षरसंयुक्तं पराङ्मुखसुखं न च ।**
**नानृतं न त्रिवर्गेण विरुद्धं नाप्यसंस्कृतम् ८८**

अत्रालंकारिकैः श्लेषादयः शब्दगुणाश्चतुर्विंशतिः प्रतिपादिताः । तेऽत्र शब्दान्तरैः संक्षेपेण च अंतर्भावेण च पञ्चदश प्रोक्ताः । तत्र केन शब्देन को गुण उच्यते कस्मिंश्च कोऽन्तर्भवति तत्संक्षेपेण प्रकाश्यते । तत्र श्लेषादयस्तावद्भोजेन प्रोक्ताः—

**(१) श्लेषः (२) प्रसादः (३) समता (४) माधुर्यं (५) सुकुमारता । (६) अर्थव्यक्तिस्तथा (७) कान्ति (८) रुदारत्व (९) मुदात्तता ॥ (१०) ओज (११) स्तथान्यदौर्जित्यं (१२) प्रेयान (१३) थ सुशब्दता । (१४) तद्वत्समाधिः (१५) सौक्ष्म्यं (१६) च गांभीर्य (१७) मथ विस्तरः ॥ (१८) संक्षेपः (१९) संमितत्वं च (२०) भाविकत्वं (२१) गतिस्तथा । (२२) रीति (२३) रुक्ति (२४) स्तथा प्रौढिः इति ।**

' श्लेषः साम्यं कान्तिरोज और्जित्यौदार्यरीतयः ।
गतिश्चान्तर्भवन्त्यष्टौ श्लक्ष्णे बन्धगुणावने । '

**उपेतार्थं** अर्थव्यक्तिः संपूर्णवाक्यत्वरूपा १ अभिन्नार्थं अनानार्थम् । प्रसिद्धार्थपदत्वं प्रसादाख्यम् २ न्यायवृत्तं श्लाघ्यैर्विशेषणैर्योग उदात्तताख्यः ३ न चाधिकं संक्षिप्तम् । ४ नाश्लक्ष्णं श्लेषाद्यष्टगुणयुक्तम् ५ न संदिग्धं विविक्तपदतारूपमाधुर्यवत् ६ एते षट् वाक्यगुणाः ॥ ८७ ॥ अतः परं नव पददोषास्तेऽपि विपर्ययेण वाक्यगुणा एवेति नञ्सम्बन्धाद्बोध्याः । **न गुर्वक्षरसंयुक्तं** । अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमाराख्यम् । निष्ठुराक्षरं तु ' शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे ' एवमादि १ **पराङ्मुखानां सुखकरं** ग्राम्यम् । अश्लीलामंगलघृणावदर्थं ग्राम्यम् इदं च न तथा । अंतर्मुखग्राह्यं सूक्ष्मार्थमित्यर्थः । यथोक्तम्—

' अंतःसंजल्परूपत्वं शब्दानां सौक्ष्म्यमुच्यते । '

न न्यूनं कष्टशब्दं वा विक्रमाभिहितं न च।
न शेषमनुकल्पेन निष्कारणमहेतुकम् ॥ ८९
कामात्क्रोधाद्भयाल्लोभा-
द्दैन्यादानार्यकात्तथा।
ह्नीतोऽनुक्रोशतो माना-
न्न वक्ष्यामि कथञ्चन ॥ ९०
वक्ता श्रोता च वाक्यं च यदा त्वविकलं नृप
सममेति विवक्षायां तदा सोऽर्थः प्रकाशते॥
वक्तव्ये तु यदा वक्ता श्रोतारमवमन्य वै।
स्वार्थमाह परार्थं तत्तदा वाक्यं न रोहति॥
अथ यः स्वार्थमुत्सृज्य परार्थं प्राह मानवः।
विशंका जायते तस्मिन्वाक्यं तदपि दोषवत्
यस्तु वक्ता द्वयोरर्थमविरुद्धं प्रभाषते।
श्रोतुश्चैवात्मनश्चैव स वक्ता नेतरो नृप ॥ ९४
तदर्थवदिदं वाक्यं राजन्नेकमनाः शृणु।
यथा जतु च काष्ठं च पांसवश्चोदबिन्दवः९५
संश्लिष्टानि तथा राजन्प्राणिनामिह संभवः।
शब्दः स्पर्शो रसो रूपं गन्धः पञ्चेंद्रियाणि च

---

उदाहृतं च—

'केवलं दधति कर्तृवाचिनः
प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि।
धावतः सृजति संहृशास्तयः
स्तौतिरत्र विपरीतकारकः 'इति।

२ **अनृतं** पुराणाद्यमूलकं मेघसंदेशादिवत्। ततोऽन्यत् श्रुत्यादिमूलकतया प्रौढोक्तिरूपम्। ३ **त्रिवर्गेण विरुद्धम्**। असावनुपनीतोऽपि वेदानधिजगे गुरोरिति धर्मशास्त्रविरुद्धम्।

'कामोपभोगसाकल्यफलो राज्ञां महीजयः।'
इत्यर्थशास्त्रविरुद्धम्।

'तवोत्तरोष्ठे बिम्बोष्ठि दशनांको विराजते'।
इतिकामशास्त्रविरुद्धं च। तदन्यत्। श्रेयस्करं प्रेयःसंज्ञं ३ **असंस्कृतं** देश्यम् तद्यथा—

'गल्लौ लावण्यतल्लौ ते लडहौ मडहौ भुजौ।
नेत्रे सेवाक्कं दोल्लमोल्लायितसखे सखि।'

तदन्यत्। उक्तिसंज्ञं विशिष्टभणितिरूपम् ॥ ८८ ॥ **न्यूनं** असमर्थम्।

'असंगतं पदं यत्तदसमर्थमिति स्मृतम्।' इदं तदन्यत् समर्थं विस्तररूपम्। ६ **कष्टशब्दं** छन्दोव्याकरणदोषयुक्तं तदन्यत्। सुशब्दतारूपम्। ७ **विक्रमाभिहितं** उदारत्वम्। नृत्यद्भिरिव पदैर्वाक्यरचनं गुणः। न चेति चकारात्पूर्वनकारानुवृत्तिः। नकारद्वयेनौदार्याधिक्यं सूचितम्। तदन्यत्। **क्लिष्टं** यथोक्तम्।

'दूरं यस्यार्थसंवित्तिः क्लिष्टं नेष्टं हि तत्सताम्।'

उदाहृतं च—'**विजितात्मभवद्वेषी' इत्यादि**। विना गरुत्मता जित इन्द्रस्तस्यात्मभवोऽर्जुनस्तस्य द्वेषी कर्ण इत्यर्थः। ८ **न शेषं** शेषः पदान्तराध्याहारः। अनुकल्पो लक्षणा तया युक्तत्वम्। **निष्कारणं** निष्प्रयोजनम् **अहेतुकं** युक्तिशून्यम्। अध्याहारलक्षणाफलयुक्त्यपेक्षमित्यर्थः। यथा इषेत्वेतिवाक्यं छिनद्मीत्यध्याहारसापेक्षम्। मित्रं प्रति विषं भुंक्ष्वेति वचनं शत्रुगृहे भोजननिषेधलक्षणार्थम्। एतच्च।

'समाधिः सोऽन्यधर्माणां यदन्यत्र प्रकल्पनम्'
इत्यालंकारिकाणां गुणः। तथापि वेदार्थमर्यादाविदां मतेऽयं दोषः। प्रयोजनहीनं राजाऽसौ गच्छतीत्यादि, निर्युक्तिकम्

'गोरपत्यं बलीवर्दस्तृणमत्ति मुखेन सः' इति।
एतैर्दोषैर्हीनं भाविकत्वादिगुणान्तरयुक्तम्। त एते नव शब्दानां गुणा नव दोषाश्च तन्त्रेणैव नञ्वद्भिः पदैर्दर्शिताः। यद्यपि उपेतार्थमिति श्लोकेऽपि नञ्वन्ति पदानि वर्तन्ते तथापि तल्लक्ष्याणां दोषाणामेष्वेवान्तर्भावान्न तत्रापि तद्यर्थत्वं कल्पितम्। तथा निष्ठुराक्षरत्वादीनां दोषाणामपि गुणत्वं केनचिन्निमित्तेनोच्यते। यथा—

'यच्छ्रुतेर्विरसं कष्टं तस्य दुर्वचकादिषु।
गुणत्वमनुमन्यन्ते सानुप्रासस्य सूरयः' इति।
'भ्राष्ट्रास्त्वाष्ट्रारिराष्ट्रेन भ्राष्ट्रेनादंष्ट्रिणो जनाः।
धार्तराष्ट्राः सुराष्ट्रेण महाराष्ट्रे च नोष्ट्रिणः'

इत्यादि ग्रंथान्तरे द्रष्टव्यम् मोक्षकथाव्यवधायकत्वान्न नैतत्प्रपञ्चितम्। तदेतदभिप्रेत्योक्तं नव वाग्दोषा अष्टादश वाचो गुणा इति ॥८९॥ नव बुद्धिदोषानाह—**कामादिति**। अनार्यकात् दर्पात् ह्नीतः त्रपातः अनुक्रोशतः कृपातः ॥ ९० ॥ वाक्यगुणानुक्त्वा वक्तृगुणानाह—**वक्तेति**। अविकलं अव्यग्रं यथा स्यात्तथा विवक्षायां तत्त्वनिर्णयार्थायां कथायां समं सिद्धान्ताविरोधेन यदा एति प्रविशति तदा सः विवक्षितार्थः प्रकाशते। न तु उभयोरप्युत्पथगामित्वे ॥९१॥ तयोरेव स्वस्वपक्षाग्रहेऽर्थनिर्णयो न भवतीत्याह—**वक्तव्ये इति**। स्वार्थं स्वेन परिगृहीतमर्थं परार्थं उत्कृष्टमर्थम्। यदारोहति हृद्यारूढं भवति ॥ ९२ ॥ विशंका भ्रमविप्रलम्भकत्वादिबुद्धिरूपा ॥ ९३ ॥ जडाद्देहेन्द्रियादेर्वामदेववदात्मानं पृथक्पश्यन्ती सुलभा प्राणिनां चिदचित्संघातात्मनां जीवानां सम्बन्धी केवलश्चिदंश आकाशवत्त्वयि मयि च एको वाङ्मनसातीतश्चेति न प्रग्रन्थ एवं अचिदंशोऽपि काष्ठलोष्ठसमः

पृथगात्मान आत्मानं संश्लिष्टा जतुकाष्ठवत्
न चैषां चोदना काचिदस्तीत्येष विनिश्चयः
एकैकस्येह विज्ञानं नास्त्यात्मनि तथा परे।
न वेद चक्षुश्चक्षुष्टं श्रोत्रं नात्मनि वर्तते ॥ ९८
तथैव व्यभिचारेण न वर्तन्ते परस्परम्।
प्रश्लिष्टं च न जानन्ति यथाऽऽप इव पांसवः
बाह्यानन्यानपेक्षन्ते गुणांस्तानपि मे शृणु।
रूपं चक्षुः प्रकाशश्च दर्शने हेतवस्त्रयः ॥ १००
यथैवात्र तथाऽन्येषु ज्ञानज्ञेयेषु हेतवः।
ज्ञानज्ञेयान्तरे तस्मिन्मनो नामापरो गुणः ॥
विचारयति येनायं निश्चये साध्वसाधुनी।
द्वादशस्त्वपरस्तत्र बुद्धिर्नाम गुणः स्मृतः।
येन संशयपूर्वेषु बोद्धव्येषु व्यवस्यति ॥ १०२
अथ द्वादशके तस्मिन्सत्त्वं नामापरो गुणः।
महासत्त्वोऽल्पसत्त्वो वा जन्तुर्येनानुमीयते॥
अहं कर्तेति चाप्यन्यो गुणस्तत्र चतुर्दशः।
ममायमिति येनायं मन्यते न ममेति च ॥ ४
अथ पञ्चदशो राजन्गुणस्तत्रापरः स्मृतः।
पृथक्कलासमूहस्य सामग्र्यं तदिहोच्यते॥ १०५
गुणस्त्वेवापरस्तत्र संघात इव षोडशः।
प्रकृतिर्व्यक्तिरित्येतौ गुणौ यस्मिन्समाश्रितौ

स्वदेहवत् सुतरां न प्रष्टव्य इत्याह—**यथेत्यादिना** ॥९५॥ आत्मानं शब्दाद्यात्मकवियदादिसंघातम् पृथगात्मानः नानारूपाः सन्तः जतुकाष्ठं बालक्रीडनकम्। यथा पृथगात्मनी जतुकाष्ठे संश्रयतो न च ताभ्यामन्यत्तस्य रूपं गृह्यते तद्वदिहापीत्यर्थः। एषां व्यस्तानां संहतानां वा चोदना कोऽसीति वदेत्येवंरूपा प्रेरणा नास्त्यचेतनत्वादित्याह— **न चेति** ॥ ९७ ॥ व्यस्तानामचेतनत्वं परस्य स्वस्य चाज्ञानादित्याह—**एकैकस्येति**। आत्मानि वर्तते चक्षुर्वस्वरूपं न जानातीत्यर्थः ॥ ९८ ॥ अज्ञाने हेतुमाह— **तथेति**। संघातादन्यस्तत्प्रकाशको दृष्टो घटादिव सूर्यः। न चैते संघातात् पृथग्दृश्यन्तेऽतोऽप्रकाशात्मत्वादात्मानं परस्परमन्यं च न प्रकाशयन्तीत्यर्थः। संभूयाप्येते न जानन्तीत्याह—**प्रश्लिष्टमिति**। प्रश्लिष्टं यथा स्यात्तथा संश्लेषं प्राप्यापीत्यर्थः ॥ ९९ ॥ ननु चक्षुरादयोऽपि देहाश्रिताः सन्तो घटादीन्सूर्यादिवत्प्रकाशयन्त्येवेत्याह—**बाह्यानिति**। यथा चक्षुः स्वापेक्षया बाह्यमालोकं घटप्रकाशार्थमपेक्षते नैवं सूर्य इति तस्यैव प्रकाशकत्वं न बाह्यापेक्षस्य चक्षुष इत्यर्थः। बाह्यानेवाह—**रूपमिति**। यथा रूपं आलोकश्च तद्वच्चक्षुरपि सहकार्येव न तु प्रकाशकमिति भावः ॥ १०० ॥ ननु बाह्येत्यप्रयोजकं यथा सूर्यश्चक्षुरपेक्षोऽपि नाप्रकाशक एवं चक्षुः सूर्यापेक्षमपीत्याशंक्याह—**ज्ञानेति**। ज्ञानं प्रकाशो ज्ञेयं रूपादि तयोरन्तराले चक्षुरपेक्षयाऽपरो मनो नाम गुणोऽस्ति ॥ १०१ ॥ तत्सत्त्वे मानमाह— **विचारयतीति**। निश्चयनिमित्तं चक्षुर्निमीलनेऽपि येन करणेनायं भोक्ता साध्वसाधुनी विचारयति तन्मनः बाह्यानपेक्षप्रकाशकत्वमेव स्वप्रकाशत्वं तच्च दृष्टान्ते सूर्ये एवास्ति न चक्षुषि तस्य सूर्यापेक्षत्वात् नापि मनसि तस्यापि घटादौ चक्षुराद्यपेक्षत्वात्। अतः सुस्थितमिदं स्वप्रकाशत्वलक्षणम्। अस्य लक्षणस्य बुद्ध्यादिष्वपि सद्भावं वारयितुं तेषामपि बाह्यापेक्षत्वमाह—**द्वादशस्त्वित्यादिना**। ॥ १०२ ॥ संशयपूर्वेषु बुद्धिः स्वकार्ये निश्चये कर्तव्ये स्वस्माद्बाह्यं संशयात्मकं मनोऽपेक्षते इत्यर्थः। व्यवस्यति निश्चिनोति भूतेन्द्रियमनांस्यपेक्ष्य बुद्धेर्द्वादशत्वम्। बुद्धिद्रव्यस्योपादानं सत्त्वम्। तस्य रजस्तमोभ्यामत्यन्ताभिभवे मध्यत्वं किंचिदभिभवे महत्त्वम्। तस्याल्पत्वादिकं देहात्मकर्त्रात्मासंगचिदात्मादिनिश्चयद्वाराऽनुमीयते ज्ञायते। अक्षरार्थः स्पष्टः ॥ ३ ॥ **अहं कर्तेति**। येन सत्त्वेन अहं कर्ता ममायं निश्चय इति मन्यते स तत्र सत्त्वे चतुर्दशो गुणः। सत्त्वमपेक्ष्य बुद्धिनिश्चयप्रकाशकेऽहमर्थेऽपि बाह्यानपेक्षप्रकाशकत्वलक्षणं स्वप्रकाशत्वं नास्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥ कलाः प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नं अन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोकेषु नाम चेति श्रुत्युक्ताः षोडश। तासां समूहस्य सामग्र्यं वासनात्मकं जगदहंकर्तृत्वमस्ति। यथोक्तं वासिष्ठे—

'यत्राऽहं त्वं जगत्तत्र पूर्वमागत्य तिष्ठति।
त्रसरेणूदरेपीन्द्रो ह्यपश्यद्भुवनत्रयम्' इति।

वासनाप्यहंकारद्वारा स्वकार्यं जगत्प्रकाशयतीति न स्वप्रकाश्येत्यर्थः ॥ १०५ ॥ **गुण इति**। तत्र वासनायां तदुपादानभूतो गुणः। त्रिगुणात्मत्वात्संघात इव जगदंकुरबीजभूतोऽविद्यासंज्ञको गुणः षोडशोऽस्ति 'सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानं यद्बीजं स्वप्नबोधयोः' इति स्मृतेः सौषुप्ताज्ञानस्य संहतत्वेनाभासमानत्वात् संघातेऽपि लौकिकानुभवापेक्षा। संहतत्वाविवक्षया इव शब्दः।

'तत्राकस्मात्परित्यक्तपूर्वापरविचारणम्।
यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता' इति।

वासिष्ठोक्तोक्तलक्षणवासनाद्वारा सौषुप्ताविद्यापि अहमर्थं जनयतीति न तस्यामपि बाह्यानपेक्षप्रकाशकत्वमस्तीति नासावपि स्वप्रकाशा। तथा यस्मिन्षोडशे सौषुप्ताज्ञाने प्रकृतिः

सुखासुखे जन्ममृत्यू लाभालाभौ प्रियाप्रिये
इति चैकोनविंशोऽयं द्वन्द्वयोग इति स्मृतः ७
ऊर्ध्वं चैकोनविंशत्या कालो नामापरो गुणः
इतीमं विद्धि विंशत्या भूतानां प्रभवाप्ययम्
विंशकश्चैष संघातो महाभूतानि पञ्च च ।
सदसद्भावयोगौ तु गुणावन्यौ प्रकाशकौ॥ ९
इत्येवं विंशकश्चैव गुणाः सप्त च ये स्मृताः ।
विधिः शुक्रं बलं चेति त्रय एते गुणाः परे१०
विंशतिर्दश चैवं हि गुणाः संख्यानतः स्मृताः
समग्रा यत्र वर्तन्ते तच्छरीरमिति स्मृतम् ११

अव्यक्तं प्रकृतिं त्वासां
कलानां कश्चिदिच्छति ।
व्यक्तं चासां तथा चान्यः
स्थूलदर्शी प्रपश्यति ॥ १२
अव्यक्तं यदि वा व्यक्तं
द्वयीमथ चतुष्टयीम् ।
प्रकृतिं सर्वभूतानां
पश्यन्त्यध्यात्मचिन्तकाः ॥ ११३

येयं प्रकृतिरव्यक्ता कलाभिर्व्यक्ततां गता ।
अहं च त्वं च राजेन्द्र ये चाप्यन्ये शरीरिणः

बिन्दुन्यासादयोऽवस्थाः
शुक्रशोणितसंभवाः ।
यासामेव निपातेन
कललं नाम जायते ॥ १५

कललाद्बुद्बुदोत्पत्तिः पेशी च बुद्बुदात् स्मृता ।
पेश्यास्त्वङ्गाभिनिर्वृत्तिर्नखरोमाणि चाङ्गतः
संपूर्णे नवमे मासि जन्तोर्जातस्य मैथिल ।
जायते नामरूपत्वं स्त्री पुमान्वेति लिङ्गतः ॥
जातमात्रं तु तद्रूपं दृष्ट्वा ताम्रनखाङ्गुलि ।
कौमारं रूपमापन्नं रूपतो नोपलभ्यते ॥ १८
कौमाराद्यौवनं चापि स्थाविर्यं चापि यौवनात्
अनेन क्रमयोगेन पूर्वं पूर्वं न लभ्यते ॥ १९

मायाव्यक्तिस्तत्प्रकाश इत्येतौ द्वौ गुणौ आश्रितौ कल्पित-रजते इव शुक्तौ इदमंशः । मायाशबले ब्रह्मण्येव सौषुप्ता-ज्ञानमध्यस्तमित्यर्थः । अत एव सौषुप्तं प्रकृत्य तदीयपार-मार्थिकरूपापेक्षया एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ इत्यादि माण्डूक्ये तस्येश्वरत्वं समाम्नातं विवक्षाभेदाज्जीवमप्येनं वदन्ति । यदाहुर्बाह्या अपि जीवस्य देहाभिमानलये सार्वज्ञ्यमस्तीति ।

'मणिहुतवहतारासोमसूर्यादयोऽपि
क्षितिविषयमिहाल्पं बाह्यमुद्योतयन्ति ।
सहजलयसमुत्थं द्योतयेज्ज्योतिरन्त-
स्त्रिभुवनमपि सूक्ष्मस्थूलभेदं क्रमेण ' इति ।

एतयोश्च प्रकृतिव्यक्त्योर्गुणत्वं दृश्यत्वादेव तथाहि । दर्पणेन मुखमिव प्रकृत्या चिदात्मा दृश्यते चन्द्रेण राहुरिव चिदात्मना प्रकृतिः प्रकाश्यते । अतो यद्यस्य साधकं तत्तत आन्तरमित्यनुगमात् । एतयोः परस्परापेक्षया बाह्यत्वात् । स्वस्वकार्यप्रकाशे परस्परापेक्षत्वाच्च न द्वयोरपि बाह्यानपेक्ष-प्रकाशकत्वलक्षणं स्वप्रकाशकत्वमस्तीति प्रकृतेर्निष्कृष्टश्चेतनः स्वप्रकाश इति भावः ॥ ६ ॥ तत्र प्रकृतिकार्यमाह—**सुखेति** ॥ ७ ॥ व्यक्तिकार्यमाह—**ऊर्ध्वमिति** । कालः अविद्याख्यः षोडशो गुणयुक्तः । तदुपाधिर्जीवः कालसंज्ञः तस्य सदसद्वासनामयत्वात् कृतत्रेतादिकालरूपत्वं प्रागुक्तं न प्रस्मर्तव्यम् । विंशत्या संख्यातम् ॥ ८ ॥ महा-भूतानि देहारंभकांशव्यतिरिक्तानि । सद्भावयोगः इह घटोऽ-स्तीत्यादिर्व्यपदेशः । असद्भावयोगः इह घटो नास्तीत्यादि-र्व्यपदेशः । यद्वा प्रमाभ्रमविषयौ सदसद्भावयोगौ ज्ञेयौ ॥ ९ ॥ **विधिः** वासनाबीजभूतौ धर्माधर्मौ । शुक्रं वास-नोद्बोधकः संस्कारः **बलं** वासनाविषयप्राप्त्यनुकूलो यत्नः संघातधर्मत्वेन एतेषां पृथग्ग्रहणम् ॥ १० ॥ विंशतिर्दश चेति त्रिंशत्संघातः शरीरम् ॥ ११ ॥ अस्य त्रिंशकस्यो-त्पत्तौ मतान्तराण्याह—**अव्यक्तमिति** । अव्यक्तं प्रधा-नम् । प्रकृतिमुपादानं कलानां त्रिंशत्संख्यानाम् । कश्चि-न्निरीश्वरसांख्यः । व्यक्तं परमाणवः चकारात् अव्यक्तं कालादृष्टेश्वरादि स्थूलदर्शी कणादादिः ॥ १२ ॥ अव्यक्तं कापिलाः । व्यक्तं चतुर्विधाः परमाणव एवेति चार्वाकाः द्वयीं काणादाः चतुर्थीं व्यवहारे स्वयमभ्युपगतां जीवेशौ स्वस्वोपाधियुतौ पश्यन्ति वृत्त्या विषयीकुर्वन्ति । इदं सर्व-मप्यस्माकमध्यात्मविदामविरुद्धम् । व्यावहारिकेष्वर्थेष्वता-त्विकेषु नातीवाभिनिवेष्टव्यमित्याशयः ॥ ११३ ॥ क तर्ह्य-भिनिवेष्टव्यमत आह—**येयमिति** । इयमिति प्रत्यक्त्वे-नाभिनीय दर्शयति प्रकृतिराधिष्ठानमात्रत्वेनोपादानम् । अव्यक्ता त्रिंशकवत् वृत्त्या न गृहीता । अदृष्टो द्रष्टेत्यादि-श्रुतेर्वाङ्मनसातीतत्वात् कलाभिरुक्ताभिरेव त्रिंशत्संख्याभिः । इत्थंभावे तृतीया । मायया कलात्मना व्यक्ततां दृश्यतां गते-त्यर्थः । या च निष्कला बाह्यानपेक्षप्रकाशकतया सूर्यवत् त्रिंशकादन्या स्वयंज्योतिः सैव त्वं चाहं चान्ये च स्मः । सर्वेषां प्रत्यग्भूत आत्मेत्यर्थः । *घटमणिकमल्लिकाद्याकाशा-नामिवोपाधिप्रतिसन्धानमन्तरेण भेदस्याविभाव्यमानत्वात्स-र्वेषामस्माकं तन्मात्रत्वमिति भावः । नन्वस्यापि मुकुरमुख-वद्बाह्यापेक्षप्रकाशत्वमुक्तम् । न प्रतिबिम्बस्यैव स प्रकाशो न त्वस्येति दिक् ॥ १४ ॥ एवं चिदंशाभिप्रायेण कासीत्यादि-प्रश्नानुपपत्तिमुक्त्वा जडांशाभिप्रायेणापि तामाह-**बिन्द्विति** । बिन्दुन्यासो रेतःसेकः ततः शुक्रशोणितसंयोगाद्भवन्ति ताः । निपातेन मिश्रणेन कललं परस्पराविविक्तम् ॥ १५ ॥

* मल्लिका तृणशून्येऽपि मीनमृत्पात्रभेदयोरिति **मेदिनी** ।

कलानां पृथगर्थानां प्रतिभेदः क्षणे क्षणे ।
वर्तते सर्वभूतेषु सौक्ष्म्यात्तु न विभाव्यते २०
न चैषामप्ययो राजन् लक्ष्यते प्रभवो न च ।
अवस्थायामवस्थायां दीपस्येवार्चिषो गतिः२१
तस्याप्येवंप्रभावस्य सदश्वस्येव धावतः ।
अजस्रं सर्वलोकस्य कः कुतो वा न वा कुतः
कस्येदं कस्य वा नेदं कुतो वेदं न वा कुतः ।
सम्बन्धः कोऽस्ति भूतानां स्वैरप्यवयवैरिह
यथाऽऽदित्यान्मणेश्चापि वीरुद्भ्यश्चैव पावकः
जायन्त्येवं समुदयात्कलानामिव जन्तवः २४

आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं
　　यथा त्वमनुपश्यसि ।
एवमेवात्मनाऽऽत्मानं
　　यथा त्वमनुपश्यासि ।
एवमेवात्मनात्मान-
　　मन्यस्मिन्किं न पश्यसि ॥ २५

यद्यात्मनि परस्मिंश्च समतामध्यवस्यसि ।
अथ मां काऽसि कस्येति किमर्थमनुपृच्छसि
इदं मे स्यादिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तस्य मैथिल ।
काऽसि कस्य कुतो वेति वचनैः किं प्रयोजनम्
रिपौ मित्रेऽथ मध्यस्थे विजये सन्धिविग्रहे ।
कृतवान् यो महीपालः किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम्
त्रिवर्गं सप्तधा व्यक्तं यो न वेदेह कर्मसु ।
सङ्गवान् यस्त्रिवर्गेण किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम्
प्रिये वाऽप्यप्रिये वापि दुर्बले बलवत्यपि ।
यस्य नास्ति समं चक्षुः किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम्
तदयुक्तस्य ते मोक्षे योऽभिमानो भवेन्नृप ।
सुहृद्भिः सन्निवार्यस्तेऽविरक्तस्येव भेषजम्३१

तानि तानि तु सञ्चिन्त्य
　　सङ्गस्थानान्यरिन्दम ।
आत्मनाऽऽत्मनि संपश्ये-
　　त्किमन्यन्मुक्तलक्षणम् ॥ ३२
इमान्यन्यानि सूक्ष्माणि
　　मोक्षमाश्रित्य कानिचित् ।
चतुरङ्गप्रवृत्तानि
　　सङ्गस्थानानि मे शृणु ॥ ३३

य इमां पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्रां प्रशास्ति ह
एक एव स वै राजा पुरमध्यावसत्युत ३४
तत्पुरे चैकमेवास्य गृहं यदधितिष्ठति ।
गृहे शयनमप्येकं निशायां यत्र लीयते ॥ ३५
शय्यार्धं तस्य चाप्यत्र स्त्रीपूर्वमधितिष्ठति ।
तदनेन प्रसङ्गेन फलेनैवेह युज्यते ॥ ३६
एवमेवोपभोगेषु भोजनाच्छादनेषु च ।
गुणेषु परिमेयेषु निग्रहानुग्रहं प्रति ॥ ३७
परतन्त्रः सदा राजा स्वल्पेष्वपि प्रसज्जते ।
सन्धिविग्रहयोगे च कुतो राज्ञः स्वतन्त्रता ॥
स्त्रीषु क्रीडाविहारेषु नित्यमस्यास्वतन्त्रता ।
मन्त्रे चामात्यसमितौ कुतस्तस्य स्वतन्त्रता३९

---

कलानां परिणामवतीनां पृथगर्थानां रूपादिप्रकाशार्थानां प्रतिभेदो रूपभेदः ॥ २० ॥ सौक्ष्म्यादित्येव विवृणोति—**न चेति** ॥ २१ ॥ एवं परिणामभेदात् द्रव्यभेदमुपेत्य प्रश्नोत्तरक्षणयोर्देहभेदात्काऽसि कस्यासीति प्रश्नस्यानुपपत्तिमुक्त्वा देहस्यानित्वात्वादपि तदयोगमाह—**तस्येति** ॥ २२ ॥ आदित्यात् सूर्यकान्तेन । मणेर्लोहसंबंधात् । वीरुद्भ्यो मन्थनादिना कलानां समुदयात् इवशब्दोऽनर्थकः पादपूरणार्थः ॥ २४ ॥ आत्मनीति सार्धश्लोकः । आत्मनि देहे आत्मानं देहम् । आत्मानं निष्कलं देहात्मवन्निष्कलात्मानमपि यद्यसंदिग्धं पश्यासि तर्हि ब्राह्मिष्ठस्त्वम् । ऐकात्म्यावित्त्वात् अन्यास्मिन्नपि देहे निष्कलमेव कुतो न पश्यसीत्यर्थः'। 'देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् । ज्ञानं यस्य भवेदत्र स नेच्छन्नपि मुच्यते' इति देहज्ञानदृष्टान्तः शुद्धज्ञानेऽस्ति तमज्ञात्वा केचिदिह मध्यममर्धं न पठन्ति ॥ २५ ॥ कृतवान् उचितक्रियावान् । भावे निष्ठा ॥ २८ ॥ धर्मोऽर्थः काम इत्यसंकीर्णास्त्रयः । धर्मार्थयोर्धर्मकामयोः कामार्थयोश्चेति संकीर्णा द्विकास्त्रयः धर्मार्थकामानां त्रिसंकीर्णस्त्रिक एक इति सप्तधा । त्रिवर्गासक्तो न मुच्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥ अविरक्तस्य अपथ्यशीलस्य ॥ ३१ ॥ **तानीति** । संगस्थानानि स्त्र्यादीनि आत्मन्येव संपश्येत् न तु बहिः आत्मक्रीड आत्मरतिश्च यः स एव मुक्त इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ चतुर्वर्गेषु शयनोपभोगभोजनाच्छादनेषु प्रवृत्तानि संगस्थानानि पृथिव्यादीनि ॥ ३३ ॥ यदुक्तं प्रवेशस्ते कृतः केन मम राज्ये पुरेऽपि वेति तत्र तव पुरादिना सम्बन्ध एव नास्तीत्याह—**य इमामिति** । पृथ्वीपतिः पुरेऽस्तीति पृथ्वी व्यर्था पुरेशो गृहेऽस्तीति पुरं व्यर्थम् गृहेशोऽपि मञ्चेऽस्तीति गृहं व्यर्थं मञ्चस्थोऽप्येकदेशेऽस्तीति तदीयप्रदेशान्तरं व्यर्थम् । अल्पेनैव निर्वाहसिद्धेराधिके ममता मोहमात्रम् । यथोक्तम्—

'गोशतादपि गोक्षीरं प्रस्थं धान्यशतादपि ।
प्रासादादपि खट्वार्धं शेषाः परविभूतयः' इति ॥३४॥

यदा ह्याज्ञापयत्यन्यांस्तत्रास्योक्ता स्वतन्त्रता
अवशः कार्यते तत्र तस्मिंस्तस्मिन् क्षणे स्थितः
स्वप्नकामो न लभते स्वप्तुं कार्यार्थिभिर्जनैः।
शयने चाप्यनुज्ञातः सुप्त उत्थाप्यतेऽवशः ॥
स्नाह्यालभ पिब प्राश जुहुध्यग्नीन्यजेत्यपि।
ब्रवीहि शृणु चापीति विवशः कार्यते परैः ॥
अभिगम्याभिगम्यैवं याचन्ते सततं नराः।
न चाप्युत्सहते दातुं वित्तरक्षी महाजनान् ।
दाने कोषक्षयोऽप्यस्य वैरं चास्याप्रयच्छतः
क्षणेनास्योपवर्तन्ते दोषा वैराग्यकारकाः ॥
प्राज्ञान् शूरांस्तथैवाढ्यानेकस्थानपि शङ्कते।
भयमप्यभये राज्ञो यैश्च नित्यमुपास्यते ॥ ४५
तथा चैते प्रदुष्यन्ति राजन् ये कीर्तिता मया
तथैवास्य भयं तेभ्यो जायते पश्य यादृशम्

सर्वः स्वे स्वे गृहे राजा
सर्वः स्वे स्वे गृहे गृही।
निग्रहानुग्रहान्कुर्व-
स्तुल्यो जनक राजभिः ॥ ४७
पुत्रा दारास्तथैवात्मा
कोशो मित्राणि सञ्चयाः।
परैः साधारणा ह्येते
तैस्तैरेवास्य हेतुभिः। ४८

हतो देशः पुरं दग्धं प्रधानः कुञ्जरो मृतः।
लोकसाधारणेष्वेषु मिथ्याज्ञानेन तप्यते ४९
अमुक्तो मानसैर्दुःखैरिच्छाद्वेषभयोद्भवैः।
शिरोरोगादिभी रोगैस्तथैवाभिनियन्तृभिः
द्वन्द्वैस्तैस्तैरुपहतः सर्वतः परिशङ्कितः।
बहुप्रत्यर्थिकं राज्यमुपास्ते गणयन्निशाः ५१
तदल्पसुखमत्यर्थं बहुदुःखमसारवत्।
तृणाग्निज्वलनप्रख्यं फेनबुद्बुदसंनिभम् ॥ ५२

को राज्यमभिपद्येत प्राप्य चोपशमं लभेत्।
ममेदमिति यच्चेदं पुरं राष्ट्रं च मन्यसे ॥ ५३
बलं कोशममात्यांश्च कस्यैतानि न वा नृप।
मित्रामात्यपुरं राष्ट्रं दण्डः कोशो महीपतिः ॥
सप्ताङ्गस्यास्य राज्यस्य त्रिदण्डस्येव तिष्ठतः
अन्योन्यगुणयुक्तस्य कः केन गुणतोऽधिकः
तेषु तेषु हि कालेषु तत्तदङ्गं विशिष्यते।
येन यत्सिध्यते कार्यं तत्प्राधान्याय कल्पते
सप्ताङ्गश्चैव संघातस्त्रयश्चान्ये नृपोत्तम।
संभूय दशवर्गोऽयं भुंक्ते राज्यं हि राजवत्।
यश्च राजा महोत्साहः क्षत्रधर्मे रतो भवेत् ॥

स तुष्येद्दशभागेन
ततस्त्वन्यो दशावरैः।
नास्त्यसाधारणो राजा
नास्ति राज्यमराजकम् ॥ ५८

राज्येऽसति कुतो धर्मो धर्मेऽसति कुतः परम्
योऽप्यत्र परमो धर्मः पवित्रं राजराज्ययोः
पृथिवी दक्षिणा यस्य सोऽश्वमेधो न युज्यते
साऽहमेतानि कर्माणि राजदुःखानि मैथिल
समर्था शतशो वक्तुमथवाऽपि सहस्रशः।
स्वदेहेनाभिषङ्गो मे कुतः परपरिग्रहे ॥ ६१
न मामेवंविधां युक्तामीदृशं वक्तुमर्हसि।
ननु नाम त्वया मोक्षः कृत्स्नः पञ्चशिखाच्छ्रुतः
सोपायः सोपनिषदः सोपासङ्गः सनिश्चयः ॥
तस्य ते मुक्तसङ्गस्य पाशानाक्रम्य तिष्ठतः ॥
छत्रादिषु विशेषेषु पुनः सङ्गः कथं नृप।
श्रुतं ते न श्रुतं मन्ये मृषा वाऽपि श्रुतं श्रुतम्
अथवा श्रुतसंकाशं श्रुतमन्यच्छ्रुतं त्वया।
अथापीमासु संज्ञासु लौकिकीषु प्रतिष्ठसे ६५

---

एवं राज्ये दुःखान्युक्त्वा यत्तत्र सुखं तत्सर्वेषामप्यस्तीत्याह **स्वे स्वे इति** ॥ ४७ ॥ राज्याभिमाने तापोऽधिक इत्याह—**हत इति** ॥ ४९ ॥ अमुक्तः नित्यसंबद्धः ५० **क इति**। प्राप्य कोऽभिपद्येत न कोऽपीत्यर्थः। अत उपशममेव लभेत् प्राप्नुयात् ॥ ५३ ॥ त्रिदण्डविष्टंभो यथाऽन्योन्याश्रयेण तिष्ठति एवं मित्रादयः सप्त नात्र तेषां प्रधानगुणभावोऽस्तीत्यर्थः ॥ ५४ ॥ तत्र उदया वृद्धिक्षयस्थानाख्या नीतिशास्त्रोक्ताः ॥५६॥ **संभूयेति**। तथाऽचेतनः कोशः स्वपुष्ट्यै मित्रादीन् भुंक्ते एवं मित्रादयोऽपि कोशमिति जडयोरेवोपकार्योपकारकभावो न तु जडाजडयोः ५७ असतीति च्छेदः परं मोक्षसुखम् ॥ ५९ ॥ ईदृशं सत्वसम्बन्धेन संकरकर्तृत्वम् ॥ ६२ ॥ उपायो निदिध्यासनम् उपनिषत् श्रवणमनने उपासंगो ध्यानाङ्गानि यमादीनि निश्चयस्तद्धेतुर्ब्रह्मात्मैकत्वानुभवः। पाशानाक्रम्य कामादीन् जित्वा ॥ ६३ ॥ श्रुतं शास्त्रं ते त्वया न श्रुतं न ज्ञातं मृषा दम्भेन ॥ ६४ ॥ श्रुतसंकाशं शास्त्राभासरूपं श्रुतशास्त्रं त्वया श्रुतं आकर्णितम् संज्ञासु 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' इति श्रुतेर्नाममात्रासु संपत्सु ॥ ६५ ॥

आभिषङ्गावरोधाभ्यां बद्धस्त्वं प्राकृतो यथा।
सत्त्वे नानुप्रवेशो हि योऽयं त्वयि कृतो मया
किं तवापकृतं तत्र यदि मुक्तोऽसि सर्वशः।
नियमो ह्येषु वर्णेषु यतीनां शून्यवासिता ६७
शून्यमावेशयन्त्या च मया किं कस्य दूषितम्
न पाणिभ्यां न बाहुभ्यां पादोरुभ्यां न चानघ
न गात्रावयवैरन्यैः स्पृशामि त्वां नराधिप।
कुले महति जातेन ह्रीमता दीर्घदर्शिना।
नैतत्सदसि वक्तव्यं सद्वाऽसद्वा मिथः कृतम्
ब्राह्मणा गुरवश्चेमे तथा मान्या गुरूत्तमाः।
त्वं चाथ गुरुरप्येषामेव मन्योन्यगौरवम् ७०
तदेवमनुसंदृश्य
वाच्यावाच्यं परीक्षता।
स्त्रीपुंसोः समवायोऽयं
त्वया वाच्यो न संसदि॥ ७१
यथा पुष्करपर्णस्थं जलं तत्पर्णमस्पृशत्।
तिष्ठत्यस्पृशती तद्वत्त्वयि वत्स्यामि मैथिल॥
यदि चाद्य स्पृशन्त्या मे
स्पर्शं जानासि कञ्चन।
ज्ञानं कृतमबीजं ते
कथं तेनेह भिक्षुणा॥ ७३
स गार्हस्थ्याच्च्युतश्च त्वं
मोक्षं चानाप्य दुर्विदम्।
उभयोरन्तराले वै
वर्तसे मोक्षवार्तिकः॥ ७४
न हि मुक्तस्य मुक्तेन ज्ञस्यैकत्वपृथक्त्वयोः।
भावाभावसमायोगे जायते वर्णसंकरः ७५
वर्णाश्रमाः पृथक्त्वेन दृष्टार्थस्यापृथक्त्विनः ।
नान्यदन्यदिति ज्ञात्वा नान्यदन्यत्र वर्तते॥
पाणौ कुण्डं तथा कुण्डे पयः पयसि मक्षिका
आश्रिताश्रययोगेन पृथक्त्वेनाश्रिताः पुनः ७७
न तु कुण्डे पयोभावः पयश्चापि न मक्षिका।
स्वयमेवाप्नुवन्त्येते भावा न तु पराश्रयम् ७८
पृथक्त्वादाश्रमाणां च वर्णान्यत्वे तथैव च।
परस्परपृथक्त्वाच्च कथं ते वर्णसंकरः॥ ७९
नास्मि वर्णोत्तमा जात्या
न वैश्या नावरा तथा।
तव राजन्सवर्णाऽस्मि
शुद्धयोनिरविप्लुता॥ ८०
प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि माम्
द्रोणश्च शतशृङ्गश्च चक्रद्वारश्च पर्वतः।
मम सत्रेषु पूर्वेषां चिता मघवता सह॥ ८२
साहं तस्मिन्कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम् ८३
नास्मि सत्रप्रतिच्छन्ना न परस्वापहारिणी
न धर्मसंकरकरी स्वधर्मेऽस्मि धृतव्रता ८४
नास्थिरा स्वप्रतिज्ञायां नासमीक्ष्य प्रवादिनी
नासमीक्ष्यागता चेह त्वत्सकाशं जनाधिप
मोक्षे ते भावितां बुद्धिं श्रुत्वाऽहं कुशलैषिणी
तव मोक्षस्य चाप्यस्य जिज्ञासार्थमिहागता॥
न वर्गस्था ब्रवीम्येतत्स्वपक्षपरपक्षयोः।
मुक्तो व्यायच्छते यश्च शान्तौ यश्च न शाम्यति

---

शून्यं बोधशून्यं तव बुद्धिसत्त्वमिति भावः। शून्यागारे वासश्च संन्यासिनां धर्म इति न मम कश्चिद्दोषोऽस्ति ॥ ६८ ॥ मोक्षवार्तिकः वार्तामात्राभिज्ञो न तु मुक्तः ॥ ७४ ॥ मुक्तत्वे हि मा कृथा वर्णसंकरमित्युक्तिरयुक्तेत्याह—**न हीति**। एकत्वं चिदात्मनः। पृथक्त्वं पुंप्रकृत्योः भाव आत्मा अभावस्तुच्छरूपत्वात्प्रकृतिः। अनयोः समायोगे वर्णसंकरो न ह्यस्ति ॥ ७५ ॥ कथं तर्हि वर्णसंकरो निन्द्यत इत्याशंक्य वर्णाश्रमाभिमानवशादित्याह—**वर्णाश्रमा इति**। अपृथक्त्विनः पृथक्त्वं पुंप्रकृत्योर्विवेकस्तदस्यास्तीति पृथक्त्वी तदन्यस्य। अत एव पृथक्त्वेन नानात्वेन वर्णाश्रमाः यस्य भान्ति। दृष्टा अर्था येन सः। जगतः पृथक्त्वं मन्वानस्यैतद्दृष्टथा व्यभिचारात् वर्णसंकर इत्यर्थः। यदा त्वेवं जानाति अन्यत् शरीरं अन्यत् आत्मा न भवति इति तदा ज्ञात्वा एतदेवापरोक्षीकृत्य स्थिताया मम अन्यत् सत्त्वं अन्यत्र त्वयि न वर्तत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥ पाणिकुंडादयः एकदेशस्था अपि परस्परं न संकीर्यन्ते कुसराज्यवदेकलोलीभावं न गच्छन्ति एवमाश्रमाणां वर्णानां च आत्मनः सकाशात्ते तव ब्रह्मिष्ठस्य पृथक्त्वात्कथं वर्णसंकर इति श्लोकत्रयार्थः ॥ ७७ ॥ द्रोणादयः पर्वताः मम पूर्वेषां सत्रेषु मघवता सह चिताः चयने इष्टकास्थाने निवेशिता इत्यर्थः ॥ ८२ ॥ तस्मिन्विख्यातप्रभावे कुले विनीता गुरुभिः शिक्षिता मद्विधे भर्तर्यसति अप्राप्ते सति नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यमेवाश्रित्य संन्यासं कृतवत्यस्मीत्यर्थः ॥ ८३ ॥ सत्रप्रतिच्छन्ना कपटसंन्यासिनी ॥ ८४ ॥ स्वपक्षपरपक्षयोर्मध्ये वर्गस्था स्वपक्षे पक्षपातेन स्थिता सती नाहं ब्रवीमि अपि तु त्वद्धितार्थं ब्रवीमीति भावः। ननु ज्ञाततत्त्वस्य मे किं त्वदीयैर्वाक्यैरित्याशंक्याह—**मुक्त इति**।

यथा शून्ये पुराऽगारे
भिक्षुरेकां निशां वसेत् ।
तथाऽहं त्वच्छरीरेऽस्मि-
न्निमां वत्स्यामि शर्वरीम् ॥ ८८

साऽहं मानप्रदानेन वागातिथ्येन चार्चिता ।
सुप्ता सुशरणं प्रीता श्वो गमिष्यामि मैथिल

भीष्म उवाच ।

इत्येतानि स वाक्यानि हेतुमन्त्यर्थवन्ति च
श्रुत्वा नाधिजगौ राजा किञ्चिदन्यदतः परम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि सुलभाजनकसंवादे विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥

## ३२१-[१४८]

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं निर्वेदमापन्नः शुको वैयासकिः पुरा ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ॥ १
अव्यक्तव्यक्ततत्त्वानां निश्चयं बुद्धिनिश्चयम् ।
वक्तुमर्हसि कौरव्य देवस्याजस्य या कृतिः ॥

भीष्म उवाच ।

प्राकृतेन सुवृत्तेन
चरन्तमकुतोभयम् ।
अध्याप्य कृत्स्नं स्वाध्याय-
मन्वशाद्वै पिता सुतम् ॥ ३

व्यास उवाच ।

धर्मं पुत्र निषेवस्व सुतीक्ष्णौ च हिमातपौ ।
क्षुत्पिपासे च वायुं च जय नित्यं जितेन्द्रियः
सत्यमार्जवमक्रोधमनसूयां दमं तपः ।
अहिंसां चानृशंस्यं च विधिवत्परिपालय ॥
सत्ये तिष्ठ रतो धर्मे हित्वा सर्वमनार्जवम् ।
देवतातिथिशेषेण मात्रां प्राणस्य संलिह ॥ ६
फेनमात्रोपमे देहे जीवे शकुनिवत्स्थिते ।
अनित्ये प्रियसंवासे कथं स्वपिषि पुत्रक ॥ ७

---

नकारो भिन्नक्रमः । यो न व्यायच्छते मल्लवत् स्वजयार्थं व्यायामं वादश्रमं न करोति यश्च शान्तां ब्रह्मणि शाम्यति स मुक्तः। अतस्तव तत्त्वज्ञस्यापि आदरेण मद्वाक्यश्रवणं युक्तमिति भावः॥ ८७ ॥ स्वस्य ग्रामैकरात्रवासित्वं द्योतयति-**यथेति** ॥ ८८ ॥ हेतुमन्ति युक्तिमन्ति । अर्थवन्ति प्रयोजनवन्ति नाधिजगौ नाधिगतवान् । उत्तरं वक्तुं न समर्थो बभूवेत्यर्थः एतेन गार्हस्थ्ये मुक्तिर्दुर्लभाऽतः संन्यास एव श्रेयानिति सुलभामतमेव सिद्धान्त इति दर्शितम् ॥ १९० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥

### ३२१

संन्यासस्य श्रैष्ठ्यमुक्त्वा तद्धर्मान् शुकचरितेनैव दर्शयति प्रश्नोत्तरमुखेन--**कथमित्यादिना** । निर्वेदं वैराग्यं संन्यासे मुख्यं विशेषणम् ' यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ' इति श्रुतेः ॥ १ ॥ अव्यक्तं कारणं व्यक्तं कार्यं तत्त्वं तयोरनारोपितरूपं ब्रह्म तेषां निश्चयम् अजस्य नारायणस्य कृतिर्लीला आकृतिरिति च्छेदे सगुणं रूपम् अत्र प्रथमस्य प्रश्नस्योत्तरं शुकोत्पत्तिरितरयोरुत्तरं शेषग्रन्थ इति विभागः ॥ २ ॥ स्वाध्यायं पितृपितामहपरंपरया परिगृहीतं वेदभागं अध्याप्य शब्दतोऽर्थतश्च ग्राहयित्वा तत्रानधिगतान् शाखान्तरीयानर्थानन्वशात् अनुशासितवान् । न च अध्याप्येति शब्दत एव स्वाध्यायग्रहणमुच्यते । न त्वर्थतोपि मैत्रेयमधीत इत्यक्षरोच्चारणमात्रेऽधीतिशब्दप्रयोगादिति वाच्यम् । अध्ययनविधेर्वाक्योपक्रमेणोक्तार्थस्य दर्शितत्वात् तथा हि-

'यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् '

इति तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति सुकृतमार्गाज्ञाने वेदस्य श्रवणग्रहणे निष्फले इत्युक्त्वा विधीयमानस्यार्थज्ञानपर्यन्तताऽवसीयते । अयं मन्त्रः प्रागेव व्याख्यातः। काव्यमधीते पाणिनीयमधीते काणादमधीते इत्यर्थग्रहणेऽप्यधीतिप्रयोगदर्शनात् मैत्रायमधीत इत्यक्षरमात्रोच्चारणे स गौण इति मन्तव्यम् । अन्यथाऽध्याप्यान्वशादिति क्रममात्रं विधीयेत तच्च व्यर्थम्। आकांक्षितसमर्पणे तु वाक्यस्यार्थवत्त्वमिति दिक् ॥ ३ ॥ संलिह स्पृश । स्वाद्वस्वादुविवेकं मा कार्षीरित्यर्थः ॥ ६ ॥ स्वपिषि पुरुषार्थसाधने न प्रवर्तसे ॥७॥

अप्रमत्तेषु जाग्रत्सु नित्ययुक्तेषु शत्रुषु ।
अन्तरं लिप्समानेषु बालस्त्वं नावबुध्यसे ८
अहःसु गण्यमानेषु क्षीयमाणे तथाऽऽयुषि ।
जीविते लिख्यमाने च किमुत्थाय न धावसि
ऐहलौकिकमीहन्ते मांसशोणितवर्धनम् ।
पारलौकिककार्येषु प्रसुप्ता भृशनास्तिकाः १०
धर्माय येऽभ्यसूयन्ति बुद्धिमोहान्विता नराः
अपथा गच्छतां तेषामनुयाताऽपि पीड्यते ११
ये तु तुष्टाः श्रुतिपरा महात्मानो महाबलाः ।
धर्म्यं पन्थानमारूढास्तानुपास्स्व च पृच्छ च
उपधार्य मतं तेषां बुधानां धर्मदर्शिनाम् ।
नियच्छ परया बुद्ध्या चित्तमुत्पथगामि वै ॥
अद्यकालिकया बुद्ध्या दूरे श्व इति निर्भयाः
सर्वभक्ष्या न पश्यन्ति कर्मभूमिमचेतसः ॥
धर्मं निःश्रेणिमास्थाय किञ्चित्किञ्चित्समारुह
कोषकारवदात्मानं वेष्टयन्नानुबुध्यसे ॥ १५
नास्तिकं भिन्नमर्यादं कूलपातमिव स्थितम् ।
वामतः कुरु विस्रब्धो नरं वेणुमिवोद्धृतम् १६
कामं क्रोधं च मृत्युं च पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ।
मृत्युनाऽभ्याहते लोके जरया परिपीडिते ।
अमोघासु पतन्तीषु धर्मपोतेन संतर ॥ १८
तिष्ठन्तं च शयानं च मृत्युरन्वेषते यदा ।
निर्वृत्तिं लभते कस्मादकस्मान्मृत्युनाऽशितः
सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति २०
क्रमशः सञ्चितशिखो धर्मबुद्धिमयो महान् ।
अन्धकारे प्रवेष्टव्यं दीपो यत्नेन धार्यताम् ॥
संपतन्देहजालानि कदाचिदिह मानुषे ।
ब्राह्मण्यं लभते जन्तुस्तत्पुत्र परिपालय २२
ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं न कामार्थाय जायते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्य त्वनुपमं सुखम् ॥ २३
ब्राह्मण्यं बहुभिरवाप्यते तपोभि-
स्तल्लब्ध्वा न रतिपरेण हेलितव्यम् ।
स्वाध्याये तपसि दमे च नित्ययुक्तः
क्षेमार्थी कुशलपरः सदा यतस्व २४
अव्यक्तप्रकृतिरयं कलाशरीरः
सूक्ष्मात्मा क्षणत्रुटिशो निमेषरोमा
संवास्यः समबलशुक्लकृष्णनेत्रो
मासाङ्गो द्रवति वयोहयो नराणाम्
तं दृष्ट्वा प्रसृतमजस्रमुग्रवेगं
गच्छन्तं सततमिहान्ववेक्षमाणम् ।
चक्षुस्ते यदि न परप्रणेतृनेयं
धर्मे ते भवतु मनः परं निशाम्य २६
ये चात्र प्रचलितधर्मकामवृत्ताः
क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगाः ।
क्लिश्यन्तः परिगतवेदनाशरीरा
बह्वीभिः सुभृशमधर्मकारणाभिः २७
राजा सदा धर्मपरः शुभाशुभस्य गोप्ता
समीक्ष्य सुकृतिनां ददाति लोकान् ।
बहुविधमपि चरति प्रविशति
सुखमनुपगतं निरवद्यम् ॥ २८
श्वानो भीषणकाया अयोमुखानि वयांसि
बलगृध्र(कुरर)पक्षिणां च संघाः ।
नरकदने रुधिरपा गुरुवचन-
नुदमुपरतं विशन्त्यसन्तः ॥ २९

शत्रुषु कामादिषु अन्तरं छिद्रम् ॥ ८ ॥ न धावसि देवं गुरुं वा शरणं न यासि ॥ ॥ ९ ॥ अपथा अपथेन ॥११॥ आद्यकालिकया वर्तमानमात्रदर्शिन्या ॥ १४ ॥ कूलपातं महानदीपूरम् ॥ १६ ॥ धृतिः प्राणादिवेगधारणम् योग इत्यर्थः ॥ १७ ॥ अमोघासु आयुर्हरणेन सफलासु रात्रिषु धर्मपोतेन धर्मनौकया ॥ १८ ॥ सञ्चिन्वानकं धनादिसञ्चयपरम् ॥ २० ॥ अन्धकारे संसारे दीपो ज्ञानम् ॥ २१ ॥ संवास्यः छेत्तुं योग्यः । सन्धास्य इति पाठे उच्छेत्तुं योग्यः । सन्ध्यांस इति पाठे सन्ध्याद्वयमंसस्थानीयं यस्य । शुक्लकृष्णौ पक्षौ ॥ २५ ॥ चक्षुर्ज्ञानं परप्रणेतृनेयम् । अन्धवत् यदि न भवसीत्यर्थः । परं परलोकं आत्मानं वा ॥ २६ ॥ परिगतं प्राप्तं वेदनाशरीरं यमलोके यातनाशरीरं यैस्ते तथाभूता भवन्तीति शेषः । अधर्मकारणाभिः अधर्मक्रियाभिः ॥२७॥ एतत् भयं श्रुत्वा भीतं राजानमाश्वासयति—**राजेति** । शुभाशुभस्य उत्तमाधमवर्णजातस्य सुकृते प्रवर्तकत्वात् । सुकृतिनां लोकान् ददाति धारयते प्राप्नोतीत्यर्थः । अनुपगतं नानायोनिसहस्रेष्वप्राप्तं मोक्षं स्वर्गं मोक्षं च साधुर्नृपः प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २८ ॥ गुरुद्रोहिणां दुर्गतिमाह—**श्वान इति** । नराणां कदनं यत्र तस्मिन्नरके । रुधिरपाः कीटाः । गुरूणां मातृपितृप्रभृतीनां वचनं नुदति दूरीकरोति तं गुरुवचननुदं उपरतं मृतम् ॥ २९ ॥

मर्यादा नियताः स्वयंभुवा य इहेमाः
प्रभिनत्ति दश गुणा मनोऽनुगत्वात्।
निवसति भृशमसुखं पितृविषय-
विपिनमवगाह्य स पापः ॥ ३०
यो लुब्धः सुभृशं प्रियानृतश्च मनुष्यः
सततनिकृतिवञ्चनाभिरतिः स्यात् ।
उपनिधिभिरसुखकृत्स परमनिरयगो
भृशमसुखमनुभवति दुष्कृतकर्मा ३१
उष्णां वैतरणीं महानदी-
मवगाढोऽसि पत्रवनभिन्नगात्रः ।
परशुवनशयो निपातितो
वसति च महानिरये भृशार्तः ॥ ३२
महापदानि कत्थसे न चाप्यवेक्षसे परम् ।
चिरस्य मृत्युकारिकामनागतां न बुध्यसे ॥
प्रयायतां किमास्यते समुत्थितं महद्भयम् ।
अतिप्रमाथि दारुणं सुखस्य संविधीयताम् ॥
पुरा मृतः प्रणीयते यमस्य राजशासनात् ।
त्वमन्तकाय दारुणैः प्रयत्नमार्जवे कुरु ॥ ३५
पुरा समूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यदुःखवित् ।
तवेह जीवितं यमो न चास्ति तस्य वारकः॥
पुराऽभिवाति मारुतो यमस्य यः पुरःसरः ।
पुरैक एव नीयसे कुरुष्व सांपरायिकम् ३७
पुरा स हि क एव ते प्रवाति मारुतोऽन्तकः।
पुरा च विभ्रमन्ति ते दिशो महाभयागमे ३८
श्रुतिश्च सन्निरुध्यते पुरा तवेह पुत्रक ।
समाकुलस्य गच्छतः समाधिमुत्तमं कुरु ३९
शुभाशुभे पुरा कृते प्रमादकर्मविप्लुते ।
स्मरन्पुरा न तप्यसे निधत्स्व केवलं निधिम्
पुरा जरा कलेवरं विजर्जरी करोति ते ।
बलाङ्गरूपहारिणी निधत्स्व केवलं निधिम् ॥
पुरा शरीरमन्तको भिनत्ति रोगसारथिः।
प्रसह्य जीवितक्षये तपो महत्समाचर ॥ ४२
पुरा वृका भयंकरा मनुष्यदेहगोचराः ।
अभिद्रवन्ति सर्वतो यतस्व पुण्यशीलने ४३
पुरान्धकारमेकको ऽनुपश्यसि त्वरस्व वै ।
पुरा हिरण्मयान्नगान्निरीक्षसेऽद्रिमूर्धनि ४४
पुरा कुसङ्गतानि ते सुहृन्मुखाश्च शत्रवः ।
विचालयन्ति दर्शनाद्घटस्व पुत्र यत्परम् ४५
धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चोरतः
मृतं च यन्न मुञ्चति समर्जयस्व तद्धनम् ४६
न तत्र संवियुज्यते स्वकर्मभिः परस्परम् ।
यदेव यस्य यौतकं तदेव तत्र सोऽश्नुते ॥ ४७
परत्र येन जीव्यते तदेव पुत्र दीयताम् ।
धनं यदक्षरं ध्रुवं समर्जयस्व तत्स्वयम् ४८
न यावदेव पच्यते महाजनस्य यावकम् ।
अपक्व एव यावके पुरा प्रलीयसे त्वरम् ॥ ४९
न मातृपुत्रबान्धवा न संस्तुतः प्रियो जनः ।
अनुव्रजन्ति संकटे व्रजन्तमेकपातिनम् ॥ ५०
यदेव कर्म केवलं पुरा कृतं शुभाशुभम् ।
तदेव पुत्र सार्थिकं भवत्यमुत्र गच्छतः ॥ ५१
हिरण्यरत्नसञ्चयाः शुभाशुभेन सञ्चिताः ।
न तस्य देहसंक्षये भवन्ति कार्यसाधकाः ५२
परत्रगामिकस्य ते कृताकृतस्य कर्मणः ।
न साक्षि आत्मना समो नृणामिहास्ति कश्चन
मनुष्यदेहशून्यकं भवत्यमुत्र गच्छतः ।
प्रविश्य बुद्धिचक्षुषा प्रदृश्यते हि सर्वशः ५४

---

नियताः विहिताः स्वयंभुवा वेदेन 'ब्रह्म स्वयंभु' इति श्रुतेः । दशगुणाः दशविधाः शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि पञ्च विधिरूपाः । अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाख्या निषेधरूपाश्च पञ्च । पितृविषये यमलोके विपिनमसिपत्रवनं तदेवावगाह्य तत्रैव निवसति ॥ ३० ॥ निकृतिर्नीचकर्म वञ्चना चौर्यादि उपनिधिभिश्छलेन ॥३१॥ नरकादुद्विजेदित्युक्त्वा स्वर्गेऽपि न रज्येतेत्याह—**महापदानीत्यादिना** । ब्रह्मादीनां स्थानानि दृष्ट्वा कत्थसे धन्योऽहमिति श्लाघसे परं तु ब्रह्म नावेक्षसे मृत्युकारिकां जराम् ॥ ३३ ॥ प्रयायतां प्रचल्यतां मोक्षमार्गेण प्रस्थातव्यम् । सुखस्य प्रमाथि संविधीयतां प्रयत्यताम् ॥ ३४ ॥ अन्तकाय अयतिसुखाय दारुणैः कृच्छ्रादितपोभिः ॥ ३५ ॥ यावत् जीवितहरणं न जायते ततः प्रागेव सांपरायिकं परलोकहितं कुरुष्वेत्युत्तरेण सम्बन्धः॥३६॥ वृकाः कामादयः ॥ ४३ ॥ हिरण्मयवृक्षदर्शनं मरणचिह्नम् ॥ ४४ ॥ ते त्वां तव मतिं वा ॥ ४५ ॥ तद्धनं विद्याम् ॥ ४६ ॥ यौतकं विवाहाप्तं धनं दायादाग्राह्यं पाथेयमित्यर्थः ॥ ४७ ॥ यावके घृतखंडामिश्रे यवपिष्टविकारे त्वरं त्वरायुक्तं यथा स्यात्तथा प्रलीयसे म्रियसे। भोगान्भुक्त्वा मोक्षे यत्नं करिष्यामीति न मतव्यम् । अप्राप्त एव भोगे मृत्युभयमस्तीति भावः ॥ ४९ ॥ सार्थिकं देहेन्द्रियादिसार्थवाहकम् ॥ ५१॥ परत्र गामिकस्य गमनशीलस्य । साक्षि आत्मनेति 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' इति प्रकृतिभावे ह्रस्वः । साक्षितात्मनेति पाठः प्रामादिकः । मामन्यो न जानातीति मत्वा पापं न कर्तव्यमिति भावः ॥५३॥ ननु कर्त्रात्मनोतिरिक्तस्य साक्षिणः सत्त्वे मानं किमत आह—**मनुष्येति** ।

इहाग्निसूर्यवायवः शरीरमाश्रितास्त्रयः।
त एव तस्य साक्षिणो भवन्ति धर्मदर्शिनः
अहर्निशेषु सर्वतः स्पृशत्सु सर्वचारिषु।
प्रकाशगूढवृत्तिषु स्वधर्ममेव पालय ॥ ५६
अनेकपारिपन्थिके विरूपरौद्रमाक्षिके।
स्वमेव कर्म रक्ष्यतां स्वकर्म तत्र गच्छति ५७
न तत्र संविभज्यते स्वकर्मणा परस्परम्।
तथा कृतं स्वकर्मजं तदेव भुज्यते फलम् ५८
यथाऽप्सरोगणाः फलं सुखं महर्षिभिः सह।
तथाऽऽप्नुवन्ति कर्मजं विमानकामगामिनः॥
यथेह यत्कृतं शुभं विपाप्मभिः कृतात्मभिः।
तदाऽऽप्नुवन्ति मानवास्तथा विशुद्धयोनयः॥
प्रजापतेः सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः।
व्रजन्ति ते परां गतिं गृहस्थधर्मसेतुभिः॥ ६१
सहस्रशोऽप्यनेकशः प्रवक्तुमुत्सहाम ते।
अबुद्धिमोहनं पुनः प्रभुर्विनाय पावकः॥ ६४
गता त्रिरष्टवर्षता ध्रुवोऽसि पञ्चविंशकः।
कुरुष्व धर्मसञ्चयं वयो हि तेऽतिवर्तते ६३
पुरा करोति सोऽन्तकः प्रमादगोमुखां चमूम्
यथा गृहीतमुत्थितस्त्वरस्व धर्मपालने॥ ६४
यथा त्वमेव पृष्ठतस्त्वमग्रतो गमिष्यसि।
तथा गतिं गमिष्यतः किमात्मना परेण वा
यदेकपातिना सतां भवत्यमुत्र गच्छताम्।
भयेषु सांपरायिकं निधत्स्व केवलं निधिम्
सकूलमूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यसङ्गवान्।
न सन्ति यस्य वारकाः कुरुष्व धर्मसंनिधिम्
इदं निदर्शनं मया तवेह पुत्र सांप्रतम्।
स्वदर्शनानुमानतः प्रवर्णितं कुरुष्व तत्॥ ६८
दधाति यः स्वकर्मणा ददाति यस्य कस्यचित्
अबुद्धिमोहजैर्गुणैः स एक एव युज्यते॥ ६९
श्रुतं समस्तमश्नुते प्रकुर्वतः शुभाः क्रियाः।
तदेतदर्थदर्शनं कृतज्ञमर्थसंहितम्॥ ७०

निबन्धनी रज्जुरेषा
या ग्रामे वसतो रतिः।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति
नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः॥ ७१
किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते
किं ते पुत्रैः पुत्रक यो मरिष्यसि।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे॥ ७२

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वाऽकृतम्
अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते ह बान्धवाः।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा ७४
नास्तिकान्निरनुक्रोशान्नरान्पापमते स्थितान्
वामतः कुरु विस्रब्धं परं प्रेप्सुरतन्द्रितः ७५
एवमभ्याहते लोके कालेनोपनिपीडिते।
सुमहद्धैर्यमालम्ब्य धर्मं सर्वात्मना कुरु॥ ७६
अथेमं दर्शनोपायं सम्यग्यो वेत्ति मानवः।
सम्यक् स्वधर्मं कृत्वेह परत्र सुखमश्नुते ७७

---

अमुत्र साक्षिणि गच्छतो लीयमानस्य कर्तुर्मनुष्यदेहस्य शून्यमिव शून्यकं अभावो भवति। परदृश्या सन्नपि योगिदृष्ट्या मनुष्यदेहो नष्टो भवतीत्यर्थः। अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति— **प्रविश्येति**। हार्दाकाशमिति शेषः ॥५४॥ साक्ष्यन्तराण्याह—**इहेति** ॥५५॥ तत्र परलोकमार्गे। विरूपाः रौद्राश्च माक्षिकाः दंशा यस्मिन्। अनेके पारिपन्थिनः शत्रवो लोहतुण्डाः पक्षिवृकादयो यस्मिन्॥ ५७॥ अबुद्धीन् मोहयतीति तथा। पावकः पुनाति पवित्रीकरोतीतिव्युत्पत्त्या धर्मः। क्लीबपाठे पावकं सत्कर्म यावकमिति पाठेऽपि यावकमिव पाथेयरूपो धर्म एव॥ ६२॥ प्रमादगः प्रमादगृहवासी अन्तकः। चमूं चमति भक्षयतीति चमूरिन्द्रियसेना तां अमुखां अन्तकत्वादिदोषेण स्वस्वविषयभोगहीनां यावत् करोति ततः पुरैव गृहीतं देहं अनतिक्रम्येति यथा गृहीतं देहमात्रेणेत्यर्थः॥ ६४॥ **यथेति**। पुरः पश्चाच्च सर्वं आत्ममात्रं यथा भवति तथा गतिं आत्मज्ञानरूपाम्। आत्मना देहेन। परेण तत्सम्बन्धि पुत्रादिना ॥६५॥ भयेषु उपस्थितेषु एकपातिना एकाकिना यत् साम्परायिकं परलोके हितं तमेव धर्मं ज्ञानं वा निधिमिव निगूह्य निधत्स्व केवलं शुद्धं निष्कामं निर्गुणम्॥ ६६॥ कूलं अग्रं प्राक्कूलेषु दर्भेषूपविश्येति लिङ्गात्। बालवृद्धैर्वयस्यैः सहितं यथा स्यात्तथेत्यर्थः॥ ६७॥ यः स्वकर्मणा दधाति आत्मानं देहं पुष्णाति यस्य कस्यचित् फलस्य कृते ददाति च। अबुद्धिरज्ञानं मोहो विपरीतज्ञानम्। तदुभयजैर्गुणैर्दुःखादिभिः मुच्यत इति पाठे आत्मानं चित्तं दधाति एकस्मिंस्तत्त्वे धारयति। **यस्येति**। यत्किंचिद्ददाति सर्वं त्यजतीत्यर्थः॥ ६९॥ श्रुतं तत्त्वमस्यादिवाक्यजं ज्ञानं कर्तृ। समस्तं ब्रह्मांडं अश्नुते व्याप्नोति। 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति' इति ब्रह्मविदः सार्वात्म्यश्रुतेः। तदेतत्सार्वात्म्यं सार्वज्ञ्यं च अर्थस्य मोक्षाख्यपरमपुरुषार्थस्य दर्शनं नान्यत्। कृतज्ञे कृतज्ञे उपदिष्टं अर्थसंहितं पुरुषार्थसंगतं भवति न तु कृतघ्नादौ सार्वज्ञ्यसार्वात्म्यदा इयं विद्या उत्तमायैव दातव्येत्यर्थः॥ ७०॥

न देहभेदे मरणं विजानतां
न च प्रणाशः स्वनुपालिते पथि।
धर्मं हि यो वर्धयते स पण्डितो
य एव धर्माच्च्यवते स मुह्यति ७८
प्रयुक्तयोः कर्मपथि स्वकर्मणोः
फलं प्रयोक्ता लभते यथा कृतम्।
निहीनकर्मा निरयं प्रपद्यते
त्रिविष्टपं गच्छति धर्मपारगः ७९
सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
तथाऽऽत्मानं समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा॥
यस्य नोत्क्रामति मतिः स्वर्गमार्गानुसारिणी
तमाहुः पुण्यकर्माणमशोच्यं पुत्रबान्धवैः ८१
यस्य नोपहता बुद्धिर्निश्चये ह्यवलम्बते।
स्वर्गे कृतावकाशस्य नास्ति तस्य महद्भयम्॥
तपोवनेषु ये जातास्तत्रैव निधनं गताः।
तेषामल्पतरो धर्मः कामभोगानजानताम् ८३
यस्तु भोगान्परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत्।
न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तन्मे बहुमतं फलम् ८४
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम्
अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं तन्न पश्यामि यो मम
न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि।
स्वकृतैस्तानि जातानि भवांश्चैव गमिष्यति
इह लोके हि धनिनां स्वजनः स्वजनायते।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवतामपि नश्यति॥
संचिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः।
ततः क्लेशमवाप्नोति परत्रेह तथैव च॥ ८९
पश्यति च्छिन्नभूतं हि जीवलोकं स्वकर्मणा।
तत्कुरुष्व तथा पुत्र कृत्स्नं यत्समुदाहृतम् ९०
तदेतत्संप्रदश्यैव कर्मभूमिं प्रपश्यतः।
शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभीप्सता॥
मासर्तुसंज्ञापरिवर्तकेण
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
स्वकर्मनिष्ठा फलसाक्षिकेण
भूतानि कालः पचति प्रसह्य॥ ९२
धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते
बलेन किं येन रिपुं न बाधते।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरे-
त्किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी
भीष्म उवाच।
इदं द्वैपायनवचो हितमुक्तं निशम्य तु।
शुको गतः परित्यज्य पितरं मोक्षदैशिकम्९४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि पावकाध्ययनं नाम एकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३२१॥

## ३२२-[१४९]

युधिष्ठिर उवाच।
यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा तपस्तप्तं तथैव च।
गुरूणां वाऽपि शुश्रूषा तन्मे ब्रूहि पितामह॥१
भीष्म उवाच।
आत्मनाऽनर्थयुक्तेन पापे निविशते मनः।
स कर्म कलुषं कृत्वा क्लेशे महति धीयते॥ २

---

देहभेदेऽपि मरणं नास्तीति जानताम्। अनुपालिते शिष्टैराहृते पथि वर्तमानानाम्॥ ७८॥ नोत्क्रामति धर्ममिति शेषः॥ ८१॥ नोपहतेति नैकधेतिवत्समासः॥ ८२॥ मोक्षदैशिकं मोक्षोपदेष्टारम्॥ ९४॥ पावकस्य धर्मस्य अध्ययनं यावकेतिपाठेऽपि स एवार्थः यद्वा पावकाध्ययनं चित्तशोधकाध्ययनं नाम॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३२१॥

३२२

संन्यासोपयोगिवैराग्यहेतून्धर्मानुक्त्वा इतरेषां वैयर्थ्यमाशंक्य तेषामपि सदसत्फलत्वमनिवार्यमित्याह-**यद्यस्तीत्यादिना**। प्राग्व्याख्यातोऽयमध्यायः॥ १॥

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात्क्लेशं भयाद्भयम् ।
मृतेभ्यः प्रमृता यान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः
उत्सवादुत्सवं यान्ति
स्वर्गात्स्वर्गं सुखात्सुखम् ।
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च
धनस्थाः शुभकारिणः ॥ ४
व्यालकुञ्जरदुर्गेषु सर्पचौरभयेषु च ।
हस्तावापेन गच्छन्ति नास्तिकाः किमतः परं
प्रियदेवातिथेयाश्च वदान्याः प्रियसाधवः ।
क्षेम्यमात्मवतां मार्गमास्थिता हस्तदक्षिणाः
पुलाका इव धान्येषु पूत्यण्डा इव पक्षिषु ।
तद्विधास्ते मनुष्येषु येषां धर्मो न कारणम् ७
सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति ।
शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम् ॥ ८
पापं तिष्ठति तिष्ठन्तं धावन्तमनुधावति ।
करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते ॥ ९
येन येन यथा यद्यत्पुरा कर्म सुनिश्चितम् ।
तत्तदेवोत्तरं भुंक्ते नित्यं विहितमात्मना १०
समानकर्मविक्षेपविधानपरिरक्षणम् ।
भूतग्राममिमं कालः समन्तादपकर्षति ॥ ११
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च
स्वं कालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम्
समानश्चावमानश्च लाभोऽलाभः क्षयाव्ययौ ।
प्रवृत्ता न निवर्तन्ते निधनान्ताः पदे पदे १३
आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम्
गर्भशय्यामुपादाय भजते पूर्वदेहिकम् ॥ १४
बालो युवा वा वृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम्
तस्यां तस्यामवस्थायां भुंक्ते जन्मनि जन्मनि
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १६
मलिनं हि यथा वस्त्रं पश्चाच्छुद्ध्यति वारिणा
उपवासैः प्रतप्तानां दीर्घं सुखमनन्तकम् ॥१७
दीर्घकालेन तपसा सेवितेन महामते ।
धर्मनिर्धूतपापानां संसिध्यन्ते मनोरथाः १८
शकुनानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके ।
पदं यथा न दृश्येत तथा पुण्यकृतां गतिः १९
अलमन्यैरुपालम्भैः कीर्तितैश्च व्यतिक्रमैः ।
पेशलं चानुरूपं च कर्तव्यं हितमात्मनः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि धर्ममूलिको नाम
द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२२ ॥

## ३२३-[१५०]

युधिष्ठिर उवाच ।
कथं व्यासस्य धर्मात्मा शुको जज्ञे महातपाः
सिद्धिं च परमां प्राप्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥
कस्यां चोत्पादयामास शुकं व्यासस्तपोधनः
न ह्यस्य जननीं विद्म जन्म चाग्र्यं महात्मनः
कथं च बालस्य सतः
सूक्ष्मज्ञाने गता मतिः ।
यथा नान्यस्य लोकेऽस्मि-
न्द्वितीयस्येह कस्यचित् ॥ ३
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते ।
न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतोऽमृतमुत्तमम् ॥
माहात्म्यमात्मयोगं च विज्ञानं च शुकस्य ह
यथावदानुपूर्व्येण तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५
भीष्म उवाच ।
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्
तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि पाण्डव ।
तदिन्द्रियाणि संयम्य तपो भवति नान्यथा

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३२२॥

३२३

शकुनानामिवाकाश इति ब्रह्मनिष्ठानां निष्कलात्मत्वं श्रुत्वा संन्यासमहितब्रह्मनिष्ठावान् शुकः श्रुतिपथमवतीर्णस्तदीयेनैव मार्गेणाहं कृतकृत्यः स्यामिति मन्वानस्तस्य जन्मादिकं सर्वं पृच्छति—**कथं व्यासस्य धर्मात्मे-त्यादि** ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमर्च्छेत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव सिद्धिमाप्नोति मानवः
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
योगस्य कलया तात न तुल्यं विद्यते फलम्
अत्र ते वर्तयिष्यामि जन्मयोगफलं तथा ।
शुकस्याग्र्यां गतिं चैव दुर्विदामकृतात्मभिः
मेरुशृङ्गे किल पुरा कर्णिकारवनायुते ।
विजहार महादेवो भीमैर्भूतगणैर्वृतः ॥ ११
शैलराजसुता चैव देवी तत्राभवत्पुरा ।
तत्र दिव्यं तपस्तेपे कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ १२
योगेनात्मानमाविश्य योगधर्मपरायणः ।
धारयन्स तपस्तेपे पुत्रार्थं कुरुसत्तम ॥ १३
अग्नेर्भूमेरपां वायोरन्तरिक्षस्य वा विभो ।
धैर्येण संमितः पुत्रो मम भूयादिति स्म ह ॥
संकल्पेनाथ योगेन दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
वरयामास देवेशमास्थितस्तप उत्तमम् ॥ १५
अतिष्ठन्मारुताहारः शतं किल समाः प्रभुः ।
आराधयन्महादेवं बहुरूपमुमापतिम् ॥ १६
तत्र ब्रह्मर्षयश्चैव सर्वे राजर्षयस्तथा ।
लोकपालाश्च लोकेशं साध्याश्च वसुभिः सह
आदित्याश्चैव रुद्राश्च दिवाकरनिशाकरौ ।
वसवो मरुतश्चैव सागराः सरितस्तथा १८
अश्विनौ देवगन्धर्वास्तथा नारदपर्वतौ ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वः सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा
तत्र रुद्रो महादेवः कर्णिकारमयीं शुभाम् ।
धारयाणः स्रजं भाति ज्योत्स्नामिव निशाकरः
तस्मिन्दिव्ये वने रम्ये देवदेवर्षिसंकुले ।
आस्थितः परमं योगमृषिः पुत्रार्थमच्युतः २१
न चास्य हीयते प्राणो न ग्लानिरुपजायते ।
त्रयाणामपि लोकानां तदद्भुतमिवाभवत् २२
जटाश्च तेजसा तस्य वैश्वानरशिखोपमाः ।
प्रज्वलन्त्यः स्म दृश्यन्ते युक्तस्यामिततेजसः
मार्कण्डेयो हि भगवानेतदाख्यातवान्मम ।
स देव चरितानीह कथयामास मे सदा २४
एता अद्यापि कृष्णस्य तपसा तेन दीपिताः ।
अग्निवर्णा जटास्तात प्रकाशन्ते महात्मनः
एवंविधेन तपसा तस्य भक्त्या च भारत ।
महेश्वरः प्रसन्नात्मा चकार मनसा मतिम् ॥
उवाच चैवं भगवांस्त्र्यम्बकः प्रहसन्निव ।
एवंविधस्ते तनयो द्वैपायन भविष्यति २७
यथा ह्यग्निर्यथा वायुर्यथा भूमिर्यथा जलम् ।
यथा च खं तथा शुद्धो भविता ते सुतो महान्
तद्भावभावी तद्बुद्धि-
स्तदात्मा तदुपाश्रयः ।
तेजसाऽऽवृत्य लोकांस्त्री-
न्यशः प्राप्स्यति ते सुतः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ
त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥

## ३२४–[१५१]

भीष्म उवाच ।
स लब्ध्वा परमं देवाद्वरं सत्यवतीसुतः ।
अरणी सहिते गृह्य ममन्थाग्निचिकीर्षया ॥ १
अथ रूपं परं राजन्बिभ्रतीं स्वेन तेजसा ।
घृताचीं नामाप्सरसमपश्यद्भगवानृषिः ॥ २

---

योगेनात्मानमाविश्य अन्तर्हृदये इन्द्रियाणि निरुध्येत्यर्थः ॥१३॥ कृष्णस्य व्यासस्य ॥२५॥ **तद्भावभावीति** । तद्भावं ब्रह्मभावं ब्रह्माहमिति भावं आशयं भावतीति तद्भावभावी 'तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति' इति तच्छब्दस्य ब्रह्मनामधेयत्वश्रुतेः । न केवलभावनामात्रकृत् अपि तु तद्बुद्धिः तत्रैव बुद्धिर्निश्चयो यस्येत्यनेन श्रद्धावानुच्यते । तत्रैवात्मा चित्तं यस्येति आदरः । **तदुपाश्रय इति** । तत्र स्थैर्येण नैरन्तर्यमुच्यते ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥

३२४

**स इति** । अरणी द्वे अधरोत्तरे सहिते मिथुनरूपे ॥१॥

ऋषिरप्सरसं दृष्ट्वा सहसा काममोहितः ।
अभवद्भगवान्व्यासो वने तस्मिन्युधिष्ठिर ३
सा च दृष्ट्वा तदा व्यासं कामसंविग्नमानसम् ।
शुकी भूत्वा महाराज घृताची समुपागमत् ४
स तामप्सरसं दृष्ट्वा रूपेणान्येन संवृताम् ।
शरीरजेनानुगतः सर्वगात्रातिगेन ह ॥ ५
स तु धैर्येण महता निगृह्णन्हृच्छयं मुनिः ।
न शशाक नियन्तुं तद्व्यासः प्रविसृतं मनः ६
भावित्वाच्चैव भावस्य घृताच्या वपुषा हृतः ।
यत्नान्नियच्छतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया ॥ ७
अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमवापतत् ।
सोऽविशंकेन मनसा तथैव द्विजसत्तमः ॥ ८
अरणीं ममन्थ ब्रह्मर्षिस्तस्यां जज्ञे शुको नृप ।
शुक्रे निर्मथ्यमाने स शुको जज्ञे महातपाः ९
परमर्षिर्महायोगी अरणीगर्भसंभवः ।
यथाऽध्वरे समिद्धोऽग्निर्भाति हव्यमुदावहन् ।
तथारूपः शुको जज्ञे प्रज्वलन्निव तेजसा ।
बिभ्रत्पितुश्च कौरव्य रूपवर्णमनुत्तमम् ॥ ११
बभौ तदा भावितात्मा विधूम इव पावकः ।
तं गङ्गा सरितां श्रेष्ठा मेरुपृष्ठे जनेश्वर ॥ १२
स्वरूपिणी तदाऽभ्येत्य तर्पयामास वारिणा ।
अन्तरिक्षाच्च कौरव्य दण्डः कृष्णाजिनं च ह
पपात भूमिं राजेन्द्र शुकस्यार्थे महात्मनः ।
जेगीयन्ते स्म गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः
देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा तुम्बुरुनारदौ ॥ १५
हाहाहूहूश्च गन्धर्वौ तुष्टुवुः शुकसंभवम् ।
तत्र शक्रपुरोगाश्च लोकपालाः समागताः ॥
देवा देवर्षयश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽपि च ।
दिव्यानि सर्वपुष्पाणि प्रववर्ष च मारुतः ॥
जङ्गमाजङ्गमं चैव प्रहृष्टमभवज्जगत् ।
तं महात्मा स्वयं प्रीत्या देव्या सह महाद्युतिः
जातमात्रं मुनेः पुत्रं विधिनोपानयत्तदा ।
तस्य देवेश्वरः शक्रो दिव्यमद्भुतदर्शनम् १९
ददौ कमण्डलुं प्रीत्या देववासांसि वा विभो
हंसाश्च शतपत्राश्च सारसाश्च सहस्रशः २०
प्रदक्षिणमवर्तन्त शुकाश्चाषाश्च भारत ।
आरणेयस्ततो दिव्यं प्राप्य जन्म महाद्युतिः
तत्रैवोवास मेधावी व्रतचारी समाहितः ।
उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः २२
उपतस्थुर्महाराज यथाऽस्य पितरं तथा ।
बृहस्पतिं च वव्रे स वेदवेदाङ्गभाष्यवित् २३

उपाध्यायं महाराज
धर्ममेवानुचिन्तयन् ।
सोऽधीत्य निखिलान्वेदा-
न्सरहस्यान्ससंग्रहान् ॥ २४
इतिहासं च कार्त्स्न्येन
राजशास्त्राणि वा विभो ।
गुरवे दक्षिणां दत्वा
समावृत्तो महामुनिः ॥ २५

उग्रं तपः समारेभे ब्रह्मचारी समाहितः ।
देवतानामृषीणां च बाल्येऽपि स महातपाः
संमन्त्रणीयो मान्यश्च ज्ञानेन तपसा तथा ।
न त्वस्य रमते बुद्धिराश्रमेषु नराधिप ।
त्रिषु गार्हस्थ्यमूलेषु मोक्षधर्मानुदर्शिनः २७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ
चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥

---

शुक्रे निर्मथ्यमाने जातत्वात् शुक इति रेफलोपेनास्य नाम कृतम् ॥ ९ ॥ महात्मा महादेवः उपानयत् स्वशिष्यं कृतवानिति सम्बन्धः ॥ १८ ॥ ईश्वरप्रसादात् स्वयं भातवेदोऽपि शिष्टाचारपालनार्थं बृहस्पतिं गुरुं चकारेत्याह— बृहस्पतिमिति ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥

## ३२५–[१५२]

भीष्म उवाच ।
स मोक्षमनुचिन्त्यैव शुकः पितरमभ्यगात्।
प्राहाभिवाद्य च गुरुं श्रेयोर्थी विनयान्वितः॥
मोक्षधर्मेषु कुशलो भगवान्प्रब्रवीतु मे ।
यथा मे मनसः शान्तिः परमा संभवेत्प्रभो २
श्रुत्वा पुत्रस्य तु वचः परमर्षिरुवाच तम् ।
अधीष्व पुत्र मोक्षं वै धर्मांश्च विविधानपि ३
पितुर्नियोगाज्जग्राह शुको धर्मभृतां वरः ।
योगशास्त्रं च निखिलं कापिलं चैव भारत ४
स तं ब्राह्म्या श्रिया युक्तं
ब्रह्मतुल्यपराक्रमम् ।
मेने पुत्रं यदा व्यासो
मोक्षधर्मविशारदम् ॥ ५
उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम् ।
स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलं मिथिलेश्वरः
पितुर्नियोगमादाय जगाम मिथिलां नृप ।
प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम् ७
उक्तश्च मानुषेण त्वं पथा गच्छेत्यविस्मितः।
न प्रभावेण गन्तव्यमन्तरिक्षचरेण वै ॥ ८
आर्जवेणैव गन्तव्यं न सुखान्वेषिणा तथा ।
नान्वेष्टव्या विशेषास्तु विशेषा हि प्रसङ्गिनः
अहंकारो न कर्तव्यो याज्ये तस्मिन्नराधिपे ।
स्थातव्यं च वशे तस्य स ते छेत्स्यति संशयम्
स धर्मकुशलो राजा मोक्षशास्त्रविशारदः।
याज्यो मम स यद्ब्रूयात्तत्कार्यमविशंकया ॥
एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः।
पद्भ्यां शक्तोन्तरिक्षेण क्रान्तुं पृथ्वीं ससागराम्
स गिरींश्चाप्यतिक्रम्य नदीतीर्थसरांसि च ।
बहुव्यालमृगाकीर्णा श्चाटवीश्च वनानि च १३
मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैवं व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ॥ १४
स देशान्विविधान्पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान् ।
आर्यावर्तमिमं देशमाजगाम महामुनिः १५
पितुर्वचनमाज्ञाय तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
अध्वानं सोऽतिचक्राम खचरः खेचरन्निव ॥
पत्तनानि च रम्याणि स्फीतानि नगराणि च
रत्नानि च विचित्राणि पश्यन्नपि न पश्यति
उद्यानानि च रम्याणि तथैवायतनानि च ।
पुण्यानि चैव रत्नानि सोऽत्यक्रामदथाध्वगः
सोऽचिरेणैव कालेन विदेहानाससाद ह ।
रक्षितान्धर्मराजेन जनकेन महात्मना ॥ १९
तत्र ग्रामान्बहून्पश्यन्बह्वन्नरसभोजनान् ।
पल्लीघोषान्समृद्धांश्च बहुगोकुलसंकुलान् २०
स्फीतांश्च शालियवसैर्हंससारससेवितान् ।
पद्मिनीभिश्च शतशः श्रीमतीभिरलङ्कृतान्
स विदेहानतिक्रम्य समृद्धजनसेवितान् ।
मिथिलोपवनं रम्यमाससाद समृद्धिमत् २२
हस्त्यश्वरथसंकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ।
पश्यन्नपश्यन्निव तत्समतिक्रामदच्युतः २३
मनसा तं वहन्भारं तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
आत्मारामः प्रसन्नात्मा मिथिलामाससाद ह
तस्या द्वारं समासाद्य निःशंकः प्रविवेश ह ।
तत्रापि द्वारपालास्तमुग्रवाचा न्यषेधयन् २५
तथैव च शुकस्तत्र निर्मन्युः समतिष्ठत ।
न चातपाध्वसन्तप्तः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः
प्रताम्यति ग्लायति वा
नापैति च तथाऽऽतपात् ।
तेषां तु द्वारपालाना-
मेकः शोकसमन्वितः ॥ २७
मध्यं गतमिवादित्यं दृष्ट्वा शुकमवस्थितम् ।
पूजयित्वा यथान्यायमभिवाद्य कृताञ्जलिः
प्रावेशयत्ततः कक्ष्यां द्वितीयां राजवेश्मनः ।
तत्रासीनः शुकस्तात मोक्षमेवान्वचिन्तयत्॥
छायायामातपे चैव समदर्शी समद्युतिः ।
तं मुहूर्तादिवागम्य राज्ञो मन्त्री कृताञ्जलिः ॥

---

३२५

**स इति** । मोक्षं मोक्षशास्त्रम् । अनुचिन्त्य उपादेयत्वेन ज्ञात्वा ॥ १ ॥ **उवाचेति** । जनकं प्रति प्रेषणं मतिसंवादार्थं न त्वज्ञानापनयार्थम् । मोक्षार्थं मोक्षशास्त्रार्थम् ॥ ६ ॥ मेरोर्वर्षमिलावृतम् । हरेर्वर्षं हरिवर्षाख्यम् । हैमवन्तं वर्षं किंपुरुषाख्यम् ॥ १४ ॥ पश्यन्नपि न पश्यति तुच्छत्वनिश्चयात् वैराग्याद्वा ॥ १७ ॥ तं भारं जिज्ञासाख्यम् । अर्थं मोक्षम् ॥ २४ ॥ तस्या द्वारमित्यादिना अध्यायशेषेणास्य क्रोधकामजयौ व्याख्यायते ॥ २५ ॥

प्रावेशयत्ततः कक्ष्यां तृतीयां राजवेश्मनः ।
तत्रान्तःपुरसम्बद्धं महच्चैत्ररथोपमम् ॥ ३१
सुविभक्तजलाक्रीडं रम्यं पुष्पितपादपम् ।
शुकं प्रावेशयन्मन्त्री प्रमदावनमुत्तमम् ॥ ३२
स तस्यासनमादिश्य निश्चक्राम ततः पुनः ।
तं चारुवेषाः सुश्रोण्यस्तरुण्यः प्रियदर्शनाः ॥
सूक्ष्मरक्ताम्बरधरास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
संलापोल्लापकुशला नृत्यगीतविशारदाः ३४
स्मितपूर्वाभिभाषिण्यो रूपेणाप्सरसां समाः
कामोपचारकुशला भावज्ञाः सर्वकोविदाः ॥
परं पञ्चाशतं नार्यो वारमुख्याः समाद्रवन् ।
पाद्यादीनि प्रतिग्राह्य पूजया परयाऽर्चयन् ॥
कालोपपन्नेन तदा स्वाद्वन्नेनाभ्यतर्पयन् ।
तस्य भुक्तवतस्तात तदन्तःपुरकाननम् ३७
सुरम्यं दर्शयामासु-
रेकैकश्येन भारत ।
क्रीडन्त्यश्च हसन्त्यश्च
गायन्त्यश्चापि ताः शुभम् ॥ ३८
उदारसत्त्वं सत्त्वज्ञाः स्त्रियः पर्यचरंस्तथा ।
आरणेयस्तु शुद्धात्मा निःसंदेहः स्वकर्मकृत ॥
वश्येन्द्रियो जितक्रोधो न हृष्यति न कुप्यति
तस्मै शय्यासनं दिव्यं देवार्हं रत्नभूषितम् ॥
स्पर्ध्यास्तरणसंकीर्णं ददुस्ताः परमस्त्रियः ।
पादशौचं तु कृत्वैव शुकः सन्ध्यामुपास्य च
निषसादासने पुण्ये तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
पूर्वरात्रे तु तत्रासौ भूत्वा ध्यानपरायणः ४२
मध्यरात्रे यथान्यायं निद्रामाहारयत्प्रभुः ।
ततो मुहूर्तादुत्थाय कृत्वा शौचमनन्तरम् ।
स्त्रीभिः परिवृतो धीमान् ध्यानमेवान्वपद्यत
अनेन विधिना कार्ष्णिस्तदहःशेषमच्युतः ।
तां च रात्रिं नृपकुले वर्तयामास भारत ४५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ
पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥

## ३२६–[१५३]

भीष्म उवाच ।
ततः स राजा जनको मन्त्रिभिः सह भारत
पुरः पुरोहितं कृत्वा सर्वाण्यन्तःपुराणि च १
आसनं च पुरस्कृत्य रत्नानि विविधानि च
शिरसा चार्घमादाय गुरुपुत्रं समभ्यगात् ॥ २
स तदाऽऽसनमादाय बहुरत्नविभूषितम् ।
स्पर्ध्यास्तरणसंस्तीर्णं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ३
पुरोधसा संगृहीतं हस्तेनालभ्य पार्थिवः ।
प्रददौ गुरुपुत्राय शुकाय परमार्चितम् ॥ ४
तत्रोपविष्टं तं कार्ष्णिं शास्त्रतः प्रत्यपूजयत् ।
पाद्यं निवेद्य प्रथममर्घ्यं गां च न्यवेदयत् ५
स च तां मन्त्रवत्पूजां प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ।
प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकाद्द्विजसत्तमः ॥ ६
गां चैव समनुज्ञाय राजानमनुमान्य च ।
पर्यपृच्छन्महातेजा राज्ञः कुशलमव्ययम् ७
अनामयं च राजेन्द्र शुकः सानुचरस्य ह ।
अनुशिष्टस्तु तेनासौ निषसाद सहानुगः ८
उदारसत्त्वाभिजनो भूमौ राजा कृताञ्जलिः ।
कुशलं चाव्ययं चैव पृष्ट्वा वैयासकिं नृपः ।
किमागमनमित्येवं पर्यपृच्छत पार्थिवः॥ ९

शुक उवाच ।
पित्राऽहमुक्तो भद्रं ते मोक्षधर्मार्थकोविदः।
विदेहराजो याज्यो मे जनको नाम विश्रुतः
तत्र गच्छस्व वै तूर्णं
यदि ते हृदि संशयः ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा
स ते च्छेत्स्यति संशयम् ॥ ११
सोऽहं पितुर्नियोगात्त्वामुपप्रष्टुमिहागतः ।
तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १२

---

आरणेयः अरणिजः शुकः ॥ ३९ ॥ कार्ष्णिः शुकः अच्युतो धैर्यादिति शेषः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभाव- इति पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥

३२६

तत इति ॥ १ ॥

किं कार्यं ब्राह्मणेनेह मोक्षार्थश्च किमात्मकः।
कथं च मोक्षः प्राप्तव्यो ज्ञानेन तपसाऽथवा

जनक उवाच ।

यत्कार्यं ब्राह्मणेनेह जन्मप्रभृति तच्छृणु।
कृतोपनयनस्तात भवेद्वेदपरायणः॥ १४
तपसा गुरुवृत्त्या च ब्रह्मचर्येण वा विभो।
देवतानां पितृणां चाप्यनृणो ह्यनसूयकः १५
वेदानधीत्य नियतो दक्षिणामपवर्ज्य च।
अभ्यनुज्ञामथ प्राप्य समावर्तेत वै द्विजः १६
समावृत्तश्च गार्हस्थ्ये स्वदारनिरतो वसेत्।
अनसूयुर्यथान्यायमाहिताग्निस्तथैव च॥ १७
उत्पाद्य पुत्रपौत्रं तु वन्याश्रमपदे वसेत्।
तानेवाग्नीन्यथाशास्त्रमर्चयन्नतिथिप्रियः १८
स वनेऽग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित्
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा ब्रह्माश्रमपदे वसेत्॥

शुक उवाच ।

उत्पन्ने ज्ञानविज्ञाने निर्द्वन्द्वे हृदि शाश्वते।
किमवश्यं निवस्तव्यमाश्रमेषु भवेत्त्रिषु २०
एतद्भवन्तं पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति।
यथा वेदार्थतत्त्वेन ब्रूहि मे त्वं जनाधिप २१

जनक उवाच ।

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्
न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः
गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते।
विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत् २३
अनुच्छेदाय लोकानामनुच्छेदाय कर्मणाम्।
पूर्वैराचरितो धर्मश्चातुराश्रम्यसंकटः॥ २४

अनेन क्रमयोगेन बहुजातिषु कर्मणाम्।
हित्वा शुभाशुभं कर्म मोक्षो नामेह लभ्यते२५
भावितैः करणैश्चायं बहुसंसारयोनिषु।
आसादयति शुद्धात्मा मोक्षं वै प्रथमाश्रमे २६
तमासाद्य तु मुक्तस्य दृष्टार्थस्य विपश्चितः।
त्रिष्वाश्रमेषु को न्वर्थो भवेत्परमभीप्सतः
राजसांस्तामसांश्चैव नित्यं दोषान्विवर्जयेत्।
सात्त्विकं मार्गमास्थाय पश्येदात्मानमात्मना
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
संपश्यन्नोपलिप्येत जले वारिचरो यथा २९
पक्षिवत्प्रवणादूर्ध्वममुत्रानन्त्यमश्नुते।
विहाय देहान्निर्मुक्तो निर्द्वन्द्वः प्रशमं गतः ३०
अत्र गाथाः पुरा गीताः शृणु राज्ञा ययातिना
धार्यन्ते या द्विजैस्तात मोक्षशास्त्रविशारदैः
ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सर्वजन्तुषु तत्समम्
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ३२
न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा॥ ३३
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा॥ ३४

संयोज्य मनसाऽऽत्मान-
मीर्ष्यामुत्सृज्य मोहनीम्।
त्यक्त्वा कामं च मोहं च
तदा ब्रह्मत्वमश्नुते॥ ३५

यदा श्राव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाप्ययम्
समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म संपद्यते तदा॥ ३६

---

यत्कार्यमित्यादिना व्रती भूत्वा गृही भवेद्गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेदिति श्रुत्युक्तः क्रमसमुच्चयपक्षो दर्शितः॥ १४॥ वीतरागात्मा विरक्तचित्तः ब्रह्माश्रमः संन्यासाश्रमः तदेव पदं पत्स्थानं तत्र॥ १९॥ एतदाक्षिपति—**उत्पन्ने इति**। ज्ञानं शास्त्रजा धीः विज्ञानं अनुभवः तस्मिन्मोक्षाश्रमफले ब्रह्मचर्यात्प्रागेव उत्पन्ने सति त्रिषु ब्रह्मचर्यादिषु समुच्चयपक्षे 'यदि चेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इत्यनियमश्रुतिर्बाध्येतेति भावः॥ २०॥ तत्र ब्रह्मचर्यस्यावश्यकत्वं तावदाह—**न विनेति**॥ २२॥ प्लावयिता कर्णधारः। ज्ञानं शास्त्रं 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'। 'नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठा' इत्यादिश्रुतिभिरन्वयव्यतिरेकाभ्यां आचार्यकरणस्य विद्याहेतुत्वावगमात्तदावश्यकमिति भावः। तदुभयं आचार्यशास्त्रे॥ २३॥ वामदेववत् ब्रह्मचर्यात्प्रागेव ज्ञाने जाते सति किं तेनेत्याशंक्याह—**अनुच्छेदायेति**। लोकशिक्षार्थमपि तदावश्यकमिति भावः॥ २४॥ जातिषु जन्मसु॥ २५॥ भावितैः शोधितैः करणैः बुद्ध्यादिभिः॥ २६॥ **तमिति**। चित्तशुद्ध्यर्थमाश्रमधर्माः तच्छुद्धौ तु ते व्यर्था इत्यर्थः॥२७॥ सर्वभूतेष्वनुगतमात्मानं संप्रज्ञाते पश्यते पश्यति सर्वभूतानि च आत्मनि रज्जूरगवत् विलीनानि असंप्रज्ञाते पश्यति। वारिचरो हंसादिः॥ २९॥ प्रवणात् निम्नात् यथा भूचरः पर्वतात्पर्वतं गच्छन्निम्नं देशमनुसृत्य गच्छति नैवं पक्षी तद्वद्विद्वान्देहं नानुसरतीत्यर्थः॥ ३०॥ ज्योतिः चिन्मात्रं ब्रह्म आत्मनि बुद्धौ समं एकम् एकत्वेऽनुभव एव मानमित्याह—**स्वयमिति**। सुष्ठु समाहितं योगारूढं चेतो यस्य तेन॥३२॥ दर्शनालिङ्गमाह—**न बिभेतीत्यादिना**॥ ३३॥

यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेनैव पश्यति
काञ्चनं चायसं चैव सुखं दुःखं तथैव च ३७
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम् ।
जीवितं मरणं चैव ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३८
प्रसार्येह यथाऽङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः ।
तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा
तमःपरिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते ।
तथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम्
एतत्सर्वं च पश्यामि त्वयि बुद्धिमतां वर ।
यच्चान्यदपि वेत्तव्यं तत्त्वतो वेद तद्भवान् ४१
ब्रह्मर्षे विदितश्चासि विषयान्तमुपागतः ।
गुरोस्तव प्रसादेन तव चैवोपशिक्षया ॥ ४२
तस्यैव च प्रसादेन प्रादुर्भूतं महामुने ।
ज्ञानं दिव्यं ममापीदं तेनासि विदितो मम ॥
अधिकं तव विज्ञानमधिका च गतिस्तव ।
अधिकं तव चैश्वर्यं तच्च त्वं नावबुध्यसे॥४४
बाल्याद्वा संशयाद्वापि
भयाद्वाप्यविमोक्षजात् ।
उत्पन्ने चापि विज्ञाने
नाधिगच्छति तां गतिम् ॥ ४५
व्यवसायेन शुद्धेन मद्विधैश्छिन्नसंशयः ।
विमुच्य हृदयग्रन्थीनासादयति तां गतिम् ॥
भवांश्चोत्पन्नविज्ञानः स्थिरबुद्धिरलोलुपः ।
व्यवसायादृते ब्रह्मन्नासादयति तत्परम् ॥ ४७
नास्ति ते सुखदुःखेषु विशेषो नास्ति लोलुपः
नौत्सुक्यं नृत्यगीतेषु न राग उपजायते ४८
न बन्धुष्वनुबन्धस्ते न भयेष्वस्ति ते भयम् ।
पश्यामि त्वां महाभाग तुल्यलोष्टाश्मकाञ्चनं
अहं त्वामनुपश्यामि ये चाप्यन्ये मनीषिणः ।
आस्थितं परमं मार्गमक्षयं तमनामयम् ॥ ५०
यत्फलं ब्राह्मणस्येह मोक्षार्थश्च यदात्मकः ।
तस्मिन्वै वर्तसे ब्रह्मन्किमन्यत्परिपृच्छसि ५१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तौ
षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२६ ॥

## ३२७-[१५४]

भीष्म उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं
कृतात्मा कृतनिश्चयः ।
आत्मनाऽऽत्मानमास्थाय
दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ॥ १
कृतकार्यः सुखी शान्तस्तूष्णीं प्रायादुदङ्मुखः
शैशिरं गिरिमुद्दिश्य सधर्मा मातरिश्वनः॥२
एतस्मिन्नेव काले तु देवर्षिर्नारदस्तथा ।
हिमवन्तमियाद्द्रष्टुं सिद्धचारणसेवितम् ॥ ३
तमप्सरोगणाकीर्णं शान्तस्वननिनादितम् ।
किन्नराणां सहस्रैश्च भृङ्गराजैस्तथैव च ॥ ४
मद्गुभिः खञ्जरीटैश्च विचित्रैर्जीवजीवकैः ॥ ५
चित्रवर्णैर्मयूरैश्च केकाशतविराजितैः ।
राजहंससमूहैश्च कृष्णैः परभृतैस्तथा ॥ ६
पक्षिराजो गरुत्मांश्च यं नित्यमधितिष्ठति ।
चत्वारो लोकपालाश्च देवाः सर्षिगणास्तथा
तत्र नित्यं समायान्ति लोकस्य हितकाम्यया
विष्णुना यत्र पुत्रार्थे तपस्तप्तं महात्मना ॥ ८
तत्रैव च कुमारेण बाल्ये क्षिप्ता दिवौकसः ।
शक्तिर्न्यस्ता क्षितितले त्रैलोक्यमवमन्य वै
तत्रोवाच जगत्स्कन्दः
क्षिपन्वाक्यमिदं तदा ।
योऽन्योऽस्ति मत्तोऽभ्यधिको
विप्रा यस्याधिकं प्रियाः ॥ १०

तमःपरिगतं अन्धकारव्याप्तं अज्ञानव्याप्तं च वेश्म गृहं सर्वाधिष्ठानं ब्रह्म च ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२६ ॥

३२७

एतच्छ्रुत्वा तु वचनमित्यादिरध्यायस्य तात्पर्यं तु यत्र शिवविष्णुस्कन्दप्रह्लादादीनां महामहिम्नां समागमस्तत्र पुण्यतमे देशे योगिना ध्यानार्थं गन्तव्यं विद्या च गोपनीया गुरुशिष्याभ्यां च स्वोचितधर्मेण स्थेयमिति ॥ १ ॥ शैशिरं गिरिं हिमालयम् ॥ २ ॥

यो ब्रह्मण्यो द्वितीयोऽस्ति
त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ।
सोऽभ्युद्धरत्विमां शक्ति-
मथवा कम्पयत्विति ॥ ११
तच्छ्रुत्वा व्यथिता लोकाः
क इमामुद्धरेदिति ।
अथ देवगणं सर्वं
संभ्रान्तेन्द्रियमानसम् ॥ १२
अपश्यद्भगवान्विष्णुः
क्षिप्तं सासुरराक्षसम् ।
किन्त्वत्र सुकृतं कार्यं
भवेदिति विचिन्तयन् ॥ १३
अनामृष्य ततः क्षेपमवैक्षत च पावकिम् ।
संप्रगृह्य विशुद्धात्मा शक्तिं प्रज्वलितां तदा
कम्पयामास सव्येन
पाणिना पुरुषोत्तमः ।
शक्त्यां तु कम्प्यमानायां
विष्णुना बलिना तदा ॥ १५
मेदिनी कम्पिता सर्वा सशैलवनकानना ।
शक्तेनापि समुद्धर्तुं कम्पिता साऽभवत्तदा १६
रक्षिता स्कन्दराजस्य धर्षणा प्रभविष्णुना ।
तां कम्पयित्वा भगवान्प्रह्लादमिदमब्रवीत्१७
पश्य वीर्यं कुमारस्य नैतदन्यः करिष्यति ।
सोऽमृष्यमाणस्तद्वाक्यं समुद्धरणनिश्चितः१८
जग्राह तां तदा शक्तिं
न चैनां स व्यकम्पयत् ।
नादं महान्तं मुक्त्वा स
मूर्च्छितो गिरिमूर्धनि ॥ १९
विह्वलः प्रापतद्भूमौ हिरण्यकशिपोः सुतः ।
तत्रोत्तरां दिशं गत्वा शैलराजस्य पार्श्वतः ॥
तपोऽतप्यत दुर्धर्षं तात नित्यं वृषध्वजः ।
पावकेन परिक्षिप्तं दीप्यता यस्य चाश्रमम् ॥
आदित्यपर्वतं नाम दुर्धर्षमकृतात्मभिः ।
न तत्र शक्यते गन्तुं यक्षराक्षसदानवैः ॥ २२
दशयोजनविस्तारमग्निज्वालासमावृतम् ।
भगवान्पावकस्तत्र स्वयं तिष्ठति वीर्यवान्२३
सर्वान्विघ्नान्प्रशमयन्महादेवस्य धीमतः ।
दिव्यं वर्षसहस्रं हि पादेनैकेन तिष्ठतः ॥ २४
*देवान्संतापयंस्तत्र महादेवो महाव्रतः ।

ऐन्द्रीं तु दिशमास्थाय शैलराजस्य धीमतः ॥
विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः ।
वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान्महातपाः
सुमन्तुं च महाभागं वैशम्पायनमेव च ।
जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥
यत्र शिष्यैः परिवृतो व्यास आस्ते महातपाः
तत्राश्रमपदं रम्यं ददर्श पितुरुत्तमम् ॥ २८
आरणेयो विशुद्धात्मा नभसीव दिवाकरः ।
अथ व्यासः परिक्षिप्तं ज्वलन्तमिव पावकम्
ददर्श सुतमायान्तं दिवाकरसमप्रभम् ।
असज्जमानं वृक्षेषु शैलेषु विषयेषु च ।
योगयुक्तं महात्मानं यथा बाणं गुणच्युतम्
सोऽभिगम्य पितुः पादावगृह्णादरणीसुतः ।
यथोपजोषं तैश्चापि समागच्छन्महामुनिः ३१
ततो निवेदयामास पित्रे सर्वमशेषतः ।
शुको जनकराजेन संवादं प्रीतमानसः॥ ३२
एवमध्यापयञ्शिष्यान्व्यासः पुत्रं च वीर्यवान्
उवास हिमवत्पृष्ठे पाराशर्यो महामुनिः॥ ३३
ततः कदाचिच्छिष्यास्तं परिवार्यावतस्थिरे।
वेदाध्ययनसंपन्नाः शान्तात्मानो जितेन्द्रियाः
वेदेषु निष्ठां संप्राप्य साङ्गेष्वपि तपस्विनः ।
अथोचुस्ते तदा व्यासं शिष्याः प्राञ्जलयो गुरुं

शिष्या ऊचुः ।

महता तेजसा युक्ता यशसा चापि वर्धिताः
एकं त्विदानीमिच्छामो गुरुणाऽनुग्रहं कृतम्
इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मर्षिस्तानुवाच ह ।
उच्यतामिति तद्वत्सा यद्वः कार्यं प्रियं मया
एतद्वाक्यं गुरोः श्रुत्वा
शिष्यास्ते हृष्टमानसाः ।
पुनः प्राञ्जलयो भूत्वा
प्रणम्य शिरसा गुरुम् ॥ ३८
ऊचुस्ते सहिता राजन्निदं वचनमुत्तमम् ।
यदि प्रीत उपाध्यायो धन्याः स्मो मुनिसत्तम
काङ्क्षामस्तु वयं सर्वे वरं दातुं महर्षिणा ।
षष्ठः शिष्यो न ते ख्यातिं गच्छेदत्र प्रसीद नः
चत्वारस्ते वयं शिष्या गुरुपुत्रश्च पञ्चमः ।
इह वेदाः प्रतिष्ठेरन्नेष नः काङ्क्षितो वरः॥४१

* आसीदिति शेषः

शिष्याणां वचनं श्रुत्वा
व्यासो वेदार्थतत्त्ववित् ।
पराशरात्मजो धीमा-
न्परलोकार्थचिन्तकः ॥ ४२
उवाच शिष्यान्धर्मात्मा धर्म्यं नैःश्रेयसं वचः
ब्राह्मणाय सदा देयं ब्रह्म शुश्रूषवे तथा ॥ ४३
ब्रह्मलोके निवासं यो ध्रुवं समभिकांक्षते ।
भवन्तो बहुलाः सन्तु वेदो विस्तार्यतामयम्
नाशिष्ये संप्रदातव्यो नाव्रते नाकृतात्मनि ।
एते शिष्यगुणाः सर्वे विज्ञातव्या यथार्थतः
नापरीक्षितचारित्रे विद्या देया कथंचन ।
यथा हि कनकं शुद्धं तापच्छेदनिकर्षणैः ४६
परीक्षेत तथा शिष्यानीक्षेत्कुलगुणादिभिः ।
न नियोज्याश्च वः शिष्या अनियोगे महाभये
यथामति यथापाठं तथा विद्या फलिष्यति ।
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ४८
श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।
वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत्स्मृतम् ॥
स्तुत्यर्थमिह देवानां वेदाः सृष्टाः स्वयंभुवा ।
यो निर्वदेत संमोहाद्ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ ५०
सोऽभिध्यानाद्ब्राह्मणस्य पराभूयादसंशयम् ।
यश्चाधर्मेण विब्रूयाद्यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥ ५१
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ।
एतद्वः सर्वमाख्यातं स्वाध्यायस्य विधिं प्रति
उपकुर्याच्च शिष्याणामेतच्च हृदि वो भवेत् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि
सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३२७ ॥

## ३२८-[१५५]

भीष्म उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यं व्यासशिष्या महौजसः
अन्योन्यं हृष्टमनसः परिषस्वजिरे तदा ॥ १
उक्ताः स्मो यद्भगवता तदात्वायातिसंहितम् ।
तन्नो मनसि संरूढं करिष्यामस्तथा च तत् २
अन्योन्यं संविभाष्यैवं सुप्रीतमनसः पुनः ।
विज्ञापयन्ति स्म गुरुं पुनर्वाक्यविशारदाः॥ ३
शैलादस्मान्महीं गन्तुं कांक्षितं नो महामुने ।
वेदाननेकधा कर्तुं यदि ते रुचितं प्रभो ॥ ४
शिष्याणां वचनं श्रुत्वा पराशरसुतः प्रभुः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ५
क्षितिं वा देवलोकं वा गम्यतां यदि रोचते
अप्रमादश्च वः कार्यो ब्रह्म हि प्रचुरच्छलम् ६
तेऽनुज्ञातास्ततः सर्वे गुरुणा सत्यवादिना ।
जग्मुः प्रदक्षिणं कृत्वा व्यासं मूर्ध्नाभिवाद्य च
अवतीर्य महीं तेऽथ चातुर्होत्रमकल्पयन् ।
संयाजयन्तो विप्रांश्च राजन्यांश्च विशस्तथा८
पूज्यमाना द्विजैर्नित्यं मोदमाना गृहे रताः ।
याजनाध्यापनरताः श्रीमन्तो लोकविश्रुताः९
अवतीर्णेषु शिष्येषु व्यासः पुत्रसहायवान् ।
तूष्णीं ध्यानपरो धीमानेकान्ते समुपाविशत्
तं ददर्शाश्रमपदे नारदः सुमहातपाः ।
अथैनमब्रवीत्काले मधुराक्षरया गिरा ॥ ११
भो भो ब्रह्मर्षिवासिष्ठ ब्रह्मघोषो न वर्तते ।
एको ध्यानपरस्तूष्णीं किमास्से चिन्तयन्निव

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२७ ॥

३२८

**एतच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमित्यादेर्व्यासः** पुत्रमवारयीदित्यन्तस्य तात्पर्यं विद्याप्रचारः कर्तव्यो विदुषाऽपि. वेदाध्ययनं न त्याज्यं स्वाध्यायानध्यायपरिपालनं च कर्तव्यमिति ॥ १ ॥ तदात्वायातिसंहितं तदात्वे तत्काले आयतौ उत्तरकाले च संहितं सम्यक् हितम् ॥ २ ॥ चातुर्होत्रं चतुर्होतृसंज्ञका मंत्राः । चित्तिः स्रुक् चित्तमाज्यमित्यादयोऽध्यात्माधियज्ञयोरभेददर्शनार्थाः । तत्पूर्वकं प्रवृत्तं कर्म चातुर्होत्रं अग्निहोत्रादिकं सोमान्तं अकल्पयन् प्रवर्तितवन्तः॥८॥

ब्रह्मघोषैर्विरहितः पर्वतोऽयं न शोभते ।
रजसा तमसा चैव सोमः सोपप्लवो यथा १३
न भ्राजते यथापूर्वं निषादानामिवालयः ।
देवर्षिगणजुष्टोऽपि वेदध्वनिनिराकृतः ॥ १४
ऋषयश्च हि देवाश्च गन्धर्वाश्च महौजसः ।
वियुक्ता ब्रह्मघोषेण न भ्राजन्ते यथा पुरा ॥ १५
नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
महर्षे यत्त्वया प्रोक्तं वेदवादविचक्षण ॥ १६
एतन्मनोनुकूलं मे भवानर्हति भाषितुम् ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वत्र च कुतूहली ॥ १७
त्रिषु लोकेषु यद्वृत्तं सर्वं तव मते स्थितम् ।
तदाज्ञापय विप्रर्षे ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १८
यन्मया समनुष्ठेयं ब्रह्मर्षे तदुदाहर ।
वियुक्तस्येह शिष्यैर्मे नातिहृष्टमिदं मनः ॥ १९

नारद उवाच ।

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।
मलं पृथिव्या वाहीकाः स्त्रीणां कौतूहलं मलम्
अधीय तान्भवान्वेदान्सार्धं पुत्रेण धीमता ।
विधुन्वन्ब्रह्मघोषेण रक्षोभयकृतं तमः ॥ २१

भीष्म उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा व्यासः परमधर्मवित्
तथेत्युवाच संहृष्टो वेदाभ्यासदृढव्रतः ॥ २२
शुकेन सह पुत्रेण वेदाभ्यासमथाकरोत् ।
स्वरेणोच्चैः स शैक्ष्येण लोकानापूरयन्निव २३
तयोरभ्यसतोरेव नानाधर्मप्रवादिनोः ।
वातोऽतिमात्रं प्रववौ समुद्रानिलवेजितः २४
ततोऽनध्याय इति तं व्यासः पुत्रमवारयत् ।
शुको वारितमात्रस्तु कौतूहलसमान्वितः २५
अपृच्छत्पितरं ब्रह्मन्कुतो वायुरभूदयम् ।
आख्यातुमर्हति भवान्वायोः सर्वं विचेष्टितम्
शुकस्यैतद्वचः श्रुत्वा व्यासः परमविस्मितः ।
अनध्यायनिमित्तेऽस्मिन्निदं वचनमब्रवीत् ॥
दिव्यं ते चक्षुरुत्पन्नं स्वयं ते निर्मलं मनः ।
तमसा रजसा चापि त्यक्तः सत्त्वे व्यवस्थितः

आदर्शे स्वामिव च्छायां
पश्यस्यात्मानमात्मना ।
व्यवस्यात्मनि स्वयं वेदा-
न्बुद्ध्या समनुचिन्तय ॥ २९

देवयानचरो विष्णोः पितृयाणश्च तामसः ।
द्वावेतौ प्रेत्य पन्थानौ दिवं चाधश्च गच्छतः
पृथिव्यामन्तरिक्षे च यत्र संवान्ति वायवः ।
सप्तैते वायुमार्गा वै तान्निबोधानुपूर्वशः ३१

---

सोपप्लवो राहुग्रस्तः ॥ १३ ॥ नातिहृष्टमिदं मन इति विदुषामपि शिष्यादिसंयोगवियोगजं सुखं दुःखमपरिहार्यमिति भावः ॥ १९ ॥ अनाम्नायः अनावृत्तिः स एव मलो दूषणं येषु ॥ २० ॥ ततोऽनध्याय इत्यादिग्रन्थो योगिनां स्वेच्छया कृत्स्ने ब्रह्माण्डे संचारयोग्यता इच्छया देहत्यागश्च यया भवति तादृशीं विद्यां वक्तुं प्रवर्तते ॥ २५ ॥ **कुत इति** । वायोर्मूलकारणप्रश्नः विचेष्टितमिति वायुकर्मप्रश्नः ॥ २६ ॥ प्रश्नमभिनन्दन्नस्यार्थस्य जिज्ञासाऽतिदुर्लभेति सूचयति—**दिव्यमिति** । योगसंस्कृतं चक्षुर्व्यवहितार्थग्राहित्वात् मनश्च निर्मलमतीतादिग्राहि सत्त्वे सर्वज्ञत्वादिहेतौ स्थितस्त्वे ॥ २८ ॥ आत्मनि बुद्धौ वेदान् वेदार्थान् व्यस्य ऊहापोहाभ्यां परिभाव्य बुद्ध्या निश्चयेन समनुचिन्तय वायुः कुतोऽभूदित्यादिकं विचारय ॥ २९ ॥ **देवयानेति** । यो विष्णोर्व्यापकस्य परमात्मनः सम्बन्धी देवयानोऽर्चिरादिमार्गस्तत्र चरतीति तेन मार्गेण सात्त्विकान् उपासकान् विष्णुलोकं अपुनरावृत्तिपदं प्रापयतीत्यर्थः । पितृयानश्च धूमादिपितृयानमार्गप्रदश्चायमेव स तु तामसः पुनरावृत्तिप्रदत्वात् ॥ ३० ॥ **पृथिव्यामिति** । पृथिव्यां पिण्डे अन्तरिक्षे ब्रह्माण्डे संवान्ति संगच्छन्ति । वायुमार्गः वायुसंचारस्थानानि तत्र देहे । तावत् वायुस्थानवर्णबीजानि नकुलीशयोगपारायणे प्रोक्तानि—

‘प्राणो घ्राणाग्रहृन्नाभिपादाङ्गुष्ठान्तसंस्थितिः ।
नीलः सोंकाररेफादिबीजेन विनियोजितः ॥’

ओंयमित्यर्थः ।

‘कृष्णोऽपानः कृकाटिस्थः पृष्ठपृष्ठान्तपार्ष्णिग ।
सतारकनकारान्तबीजेन विनियोजितः ॥’

ओंपमित्यर्थः ।

‘शक्रचापनिभो व्यानस्त्वगिन्द्रियनिकेतनः ।
तारकोपेतथा तान्तबीजतेजोविराजितः ॥’

ओंलमित्यर्थः ।

‘मूर्धस्थो मध्यताल्वग्रकण्ठहृत्पनलाश्रयः ।
उदानो ग्रहणच्छायस्तारकाक्रान्तयान्तयुक् ॥’

ओंरमित्यर्थः ।

‘श्वेतः समानो हृन्नाभिसर्वसन्धिनिकेतनः ।
प्रणवाक्रान्तलान्तेन बीजेनात्यन्तमुज्ज्वलः’ इति ॥

ओंवमित्यर्थः । षष्ठसप्तममार्गौ तु जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिप्रदौ वक्ष्यति ॥ ३१ ॥

तत्र देवगणाः साध्या महाभूता महाबलाः ।
तेषामप्यभवत्पुत्रः समानो नाम दुर्जयः ३२
उदानस्तस्य पुत्रोऽभूद्व्यानस्तस्याभवत्सुतः ।
अपानश्च ततो ज्ञेयः प्राणश्चापि ततोऽपरः ३३
अनपत्योऽभवत्प्राणो दुर्धर्षः शत्रुतापनः ।
पृथक्कर्माणि तेषां ते प्रवक्ष्यामि यथातथम् ३४
प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टां वर्तयते पृथक् ।
प्राणनाच्चैव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते ३५
प्रेरयत्यभ्रसंघातान्धूमजांश्चोष्मजांश्च यः ।
प्रथमः प्रथमे मार्गे प्रवहो नाम योऽनिलः ३६
अम्बरे स्नेहमभ्येत्य विद्युद्भ्यश्च महाद्युतिः ।
आवहो नाम संवाति द्वितीयः श्वसनो नदन् ।
उदयं ज्योतिषां शश्वत्सोमादीनां करोति यः
अन्तर्देहेषु चादानं ये वदन्ति मनीषिणः ३८
यश्चतुर्भ्यः समुद्रेभ्यो वायुर्धारयते जलम् ।
उद्धृत्याददते चापो जीमूतेभ्योऽम्बरेऽनिलः
योऽद्भिः संयोज्य जीमूता-
न्पर्जन्याय प्रयच्छति ।
उद्वहो नाम बंहिष्ठ-
स्तृतीयः स सदागतिः ॥ ४०
स मुह्यमाना बहुधा येन नीताः पृथग्घनाः ।
वर्षमोक्षकृतारंभास्ते भवन्ति घनाघनाः ४१
संहता येन चाविद्धा भवन्ति नदतां नदाः ।
रक्षणार्थाय संभूता मेघत्वमुपयान्ति च ४२
योऽसौ वहति भूतानां
विमानानि विहायसा ।
चतुर्थः संवहो नाम
वायुः स गिरिमर्दनः ॥ ४३
येन वेगवता रुग्णा रूक्षेण रुवता नगान् ।
वायुना सहिता मेघास्ते भवन्ति बलाहकाः
दारुणोत्पातसञ्चारो नभसः स्तनयित्नुमान् ।
पञ्चमः स महावेगो विवहो नाम मारुतः ४५

---

देवगणाः अध्यात्मं इन्द्रियाणि तेषां पुत्रः समानः इन्द्रियाणां सामान्या वृत्तिरेव समानादयः तदुक्तं सांख्यसप्तत्याम्—'सामान्या करणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च' इति । एवमधिदैवमपि साध्यानां देवानां सामान्यं रूपं समानादय इत्यर्थः । पिण्डब्रह्माण्डयोरभेदात् ॥ ३२ ॥ **उदान इति** । एतेषामुत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वकार्यत्वात् उत्तरोत्तरं स्थूलत्वं ज्ञेयम् ॥ ३३ ॥ अनपत्य इति प्राणस्य कार्यान्तरं नास्ति सर्वापेक्षया स्थूलत्वं च दर्शितम् ॥ ३४ ॥ पिण्डे प्राणकार्यं प्राणशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं चाह–**प्राणिनामिति** । ॥ ३५ ॥ अस्यैवाधिदैवकर्मनामनी आह––**प्रेरयतीति सार्धेन** । धूमोष्मजान्मेघान् स्नेहं स्नेहत्वं अथवा स्नेहगुणयुक्तजलवृष्टिकालं प्राप्य अम्बरे प्रेरयतीति योजना । स एव वायुर्धूमज्योतिः स्नेहक्रमेण विद्युत्त्वं प्राप्य महाद्युतिश्च भवति विद्युद्भ्य इति पञ्चमी ल्यब्लोपे । प्रथमः विष्णुदेवसमानादिक्रमेण सप्तमोऽपि संहारक्रमेण प्रथम इत्यर्थः । अयं भावः–पूर्वोदाहृतघ्राणान्तहृन्नाभिपादांगुष्ठानां मध्येऽन्यतमे स्थाने प्राणं निरोध्य नीलवर्णं प्राणं ओंयामिति बीजशरीरं संचिन्तयन् योगी कियता कालेन सिद्धिं प्राप्तो जीवतैव शरीरेण प्रवहमार्गेण संचरति । देहान्ते च प्रवहेण तादात्म्यं प्राप्नोति । एवं सर्वत्र प्रयोगो ज्ञेय इति ॥ ३६ ॥ आध्यात्मिकस्यापानस्याधिदैवकर्मनामनी आह—**आवह इति** । 'भचक्रं आसमन्ताद्वहतीत्यावहः ॥ ३७ ॥ आदत्तेऽन्नमनेनोद्दीपकेन जठराग्निरित्यादानोऽपानः अपानस्य जाठरोद्दीपकत्वमाह याज्ञवल्क्यः ।

'स्वयं त्वपानं संप्राप्य तेनैव सह मारुतः ।
प्रवाति ज्वलनं तत्र प्राणो मध्यगतं पुनः ॥
वायुना वाजितो वह्निरपानेन शनैः शनैः ।
तदा ज्वलति विप्रेन्द्रे सकले देहमध्यमे ॥'

प्राणः अपानं प्राप्य प्रवर्त्य ज्वलनं प्रवाति प्रवर्तयति । अपानेन वायुना वाजितः वीजितः वो विधूनने जुकू इति जुगन्ताद्वाधातोर्निष्ठायां रूपम् । हे विप्रेन्द्रे गार्गि इति याज्ञवल्क्यश्लोकार्थः । आदान इत्यपानस्य नामान्तरं योगिप्रसिद्धमित्यर्थः । अन्तर्देहेष्वित्यर्धे उदानमिति पाठे उत्तरान्वयि ॥ ३८ ॥ उद्धृत्यादानसाम्यादुद्वहादानयोरैक्यम् ॥ ३९ ॥ पर्जन्याय वृष्ट्यभिमानिदेवतायै बंहिष्ठः अतिशयेन बहुः ॥ ४० ॥ वर्षमोक्षाय कृतः आरंभो यैस्ते रिच्यमानो मेघः पूर्णापूर्णत्वाद्घनाघन उच्यत इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ संहताः संधीभूता अपि येन हेतुना ते पृथक् आविद्धाः प्रक्षिप्ता भवन्ति । अतस्तेषां वाद्यमानवेणुवन्नदतां शब्दं कुर्वतां नदा इति नाम भवति । रक्षणार्थाय गोस्तनवत् सेचनात् रिक्ता अपि मेघत्वं यान्ति । मिह सेचन इति धातुः न तु नीरसफलवन्नश्यन्तीत्यर्थः ४२ **योऽसाविति**। वर्धनइति पाठेऽपि स एवार्थः वृधु हिंसायामिति धातो रूपं ४३ मर्दनमेवाह–**येनेति** । बलेन परोपमर्देन अंहन्ति गच्छन्ति ते बलाहकाः पृषोदरादित्वान्नकारलोपः । अहि गतौ इति धातुः ॥ ४४ ॥ **दारुणेति** । दारुणा लोकनाशसूचका धूमकेतुसंवर्तमेघादय उत्पातास्तेषां सञ्चारो येन स्तनयित्नुः सगर्जितो मेघस्तद्वान् विषमवहनाद्विवहः ॥ ४५ ॥

यस्मिन्पारिप्लवा दिव्या
वहन्त्यापो विहायसा ।
पुण्यं चाकाशगङ्गाया-
स्तोयं विष्टभ्य तिष्ठति ॥ ४६
दूरात्प्रतिहतो यस्मिन्नेकरश्मिर्दिवाकरः ।
योनिरंशुसहस्रस्य येन भाति वसुन्धरा ४७
यस्मादाप्यायते सोमः क्षीणः संपूर्णमण्डलः
षष्ठः परिवहो नाम स वायुर्जयतां वरः ॥ ४८
सर्वप्राणभृतां प्राणान् योऽनुकाले निरस्यति
यस्य वर्त्मानुवर्तेते मृत्युवैवस्वतावुभौ ॥ ४९
सम्यगन्वीक्षतां बुद्ध्या
शान्तयाऽध्यात्मचिन्तकाः ।
ध्यानाभ्यासाभिरामाणां
योऽमृतत्वाय कल्पते ॥ ५०

यं समासाद्य वेगेन दिशोऽन्तं प्रतिपेदिरे ।
दक्षस्य दशपुत्राणां सहस्राणि प्रजापतेः ५१
येन सृष्टः पराभूतो यात्येव न निवर्तते ।
परावहो नाम परो वायुः स दुरतिक्रमः ५२
एवमेतेऽदितेः पुत्रा मारुताः परमाद्भुताः ।
अनारतं ते संवान्ति सर्वगाः सर्वधारिणः ॥
एतत्तु महदाश्चर्यं यदयं पर्वतोत्तमः ।
कम्पितः सहसा तेन वायुनाऽतिप्रवायता ॥
विष्णोर्निःश्वासवातोऽयं यदा वेगसमीरितः
सहसोदीर्यते तात जगत्प्रव्यथते तदा ॥ ५५
तस्माद्ब्रह्मविदो वेदान्नाधीयन्तेऽतिवायति ।
वायोर्वायुभयं ह्युक्तं ब्रह्म तत्पीडितं भवेत् ५६
एतावदुक्त्वा वचनं पराशरसुतः प्रभुः ।
उक्त्वा पुत्रमधीष्वेति व्योमगङ्गामगात्तदा ५७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पत्तिर्नाम
अष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥

---

परितः उपर्येव यस्य वेगात्पतन्ति न त्वधः पतन्तीति परिप्लवाः । स्वार्थे तद्धितः यः तोयं विष्टभ्य आकाशे एवावस्थाप्य ॥ ४६ ॥ **दूरादिति** । येन प्रतिहतः सूर्यः सहस्ररश्मिरप्येकरश्मिरिव भातीत्यर्थः ॥ ४७ ॥ एवं पिण्डब्रह्माण्डान्तर्गतान् आधिकारिकान् पञ्चवायूनुक्त्वा षष्ठं तदन्तर्गतमपि तदस्पर्शिनं वायुमाह—**यस्मादिति** । यस्मात् सहस्रारस्थितात् चिच्चन्द्राख्यात् अयं सोमो ब्रह्माण्डान्तर्गत ओषधीशो ब्रह्माण्डाप्यायनकृत् पिण्डान्तर्गतं मनश्च पिण्डाप्यायनकृत् एतद्द्वयं यं प्राप्य आप्यायते वर्धते स परिवहः सर्वतो वहनाद्व्यापकः कारणात्मा षष्ठो वायुरित्यर्थः ॥ ४८ ॥ अनुकाले कल्पान्ते निरस्यति संहरति मृत्युवैवस्वतावपि यदनुरोधिनौ तयोरपि प्रेरक इत्यर्थः । एतेन मृत्युग्रस्तानां ब्रह्मादीनां तदधीनत्वं कैमुतिकन्यायसिद्धम् ॥ ४९ ॥ भो अध्यात्मचिन्तका इति पूजायां बहुत्वेन पुत्रसंबोधनम्। शान्तया बाह्याभ्यन्तरविषयेभ्य उपरतया बुद्ध्या सम्यगहं ब्रह्मास्मीति वाक्यार्थानुसन्धानपूर्वकमन्वीक्षतां श्रवणमननमनुध्यानेन पश्यतां ध्यानाभ्यासो निरन्तरं ध्यानमेव अभिरामं येषां तेषां योऽमृतत्वाय मोक्षाय कल्पते ॥ ५० ॥ दिशोन्तं प्रतिपेदिरे ब्रह्माण्डं निर्भिद्य गता इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ सप्तममाह—**येनेति** । सृष्टः उपसृष्टः एक एवायं निर्बीजसमाधिगम्यः यावदारब्धकर्मभोगं यस्मिन् लीनोऽपि योगी संस्कारशेषसत्त्वात्पुनरावर्तते । प्रारब्धभोगान्ते देहनाशे तु नावर्तते इति एतयोर्भेदः । अतो दक्षपुत्राणामपि आरब्धकर्मभोगान्तेऽनावृत्तिरेव ज्ञेया ॥ ५२ ॥ अदितेः खण्डनशून्याया अदीनायाः परमचितेः पुत्रा इव पुत्रा रूपभेदाः ॥ ५३ ॥ पर्वतकम्पने हेतुमाह—**विष्णोरिति** । यतोऽयं वेदो विष्णोर्निःश्वासवातः 'महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः'इत्यादिश्रुतेः स यदा वेगेन समीरितः सहसाऽकस्मात् उदीर्यते उच्चैः पठ्यते तदा जगद्व्यथते मूलपुरुषनिःश्वासः सहसोच्चैरुत्थितः कदाचित्सर्वं संहरेदिति हेतोरिति भावः ॥ ५५ ॥ आख्यायिकार्थं विधित्सितमाह-**तस्मादिति**। वायुर्वेदरूपो वेगेनोच्चार्यमाणः एवं बाह्यवायुकृतभयजनको भवति । तेन च तद्ब्रह्म जगद्रूपं वेदरूपं वा पीडितं भवति अतो महावायौ वायति वाति सति नाध्येतव्यमित्यर्थः ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥३२८॥

# ३२९–[१५६]

भीष्म उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे शून्ये नारदः समुपागमत् ।
शुकं स्वाध्यायनिरतं वेदार्थान्प्रष्टुमीप्सया १
देवर्षिं तु शुको दृष्ट्वा नारदं समुपस्थितम् ।
अर्घपूर्वेण विधिना वेदोक्तेनाभ्यपूजयत् ॥ २
नारदोऽथाब्रवीत्प्रीतो ब्रूहि धर्मभृतां वर ।
केन त्वां श्रेयसा वत्स योजयामीति हृष्टवत्
नारदस्य वचः श्रुत्वा शुकः प्रोवाच भारत ।
अस्मिँल्लोके हितं यत्स्यात्तेन मां योक्तुमर्हसि॥

नारद उवाच ।

तत्त्वं जिज्ञासतां पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम्
सनत्कुमारो भगवानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५
नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्
निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता ।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम् ॥ ७

मानुष्यमसुखं प्राप्य
यः सज्जति स मुह्यति ।
नालं स दुःखमोक्षाय
संयोगो दुःखलक्षणम् ॥ ८

सक्तस्य बुद्धिश्चलति मोहजालविवर्धनी ।
मोहजालावृतो दुःखमिह चामुत्र सोऽश्नुते ९
सर्वोपायात्तु कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।
कार्यः श्रेयोर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ
नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम् ।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं न सत्याद्विद्यते परम् १२
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् ।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं मतं मम ॥ १३
सर्वारम्भपरित्यागी निराशीर्निष्परिग्रहः ।
येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान् स च पण्डितः
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थान्यश्चरत्यात्मवशैरिह ।
असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः
आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च ।
स विमुक्तः परं श्रेयो न चिरेणाधिगच्छति ॥
अदर्शनमसंस्पर्शस्तथा संभाषणं सदा ।
यस्य भूतैः सह मुने स श्रेयो विन्दते परम् ॥
न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् १८
आकिञ्चन्यं सुसंतोषो निराशीस्त्वमचापलम्
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः १९
परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः ।
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम् ॥
निरामिषा न शोचन्ति त्यजेदामिषमात्मनः ।
परित्यज्यामिषं सौम्य दुःखतापाद्विमोक्ष्यसे
तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना ।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना २२
गुणसङ्गेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा ।
ब्राह्मणो न चिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम् २३
द्वन्द्वारामेषु भूतेषु य एको रमते मुनिः ।
विद्धि प्रज्ञानतृप्तं तं ज्ञानतृप्तो न शोचति॥२४
शुभैर्लभति देवत्वं व्यामिश्रैर्जन्म मानुषम् ।
अशुभैश्चाप्यधो जन्म कर्मभिर्लभतेऽवशः २५
तत्र मृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः ।
संसारे पच्यते जन्तुस्तत्कथं नावबुद्ध्यसे २६
अहिते हितसंज्ञस्त्वमध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः ।
अनर्थे चार्थसंज्ञस्त्वं किमर्थं नावबुद्ध्यसे ॥ २७
संवेष्ट्यमानं बहुभिर्मोहात्तन्तुभिरात्मजैः ।
कोषकार इवात्मानं वेष्टयन्नावबुध्यसे ॥ २८
अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः ।
कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स परिग्रहात् २९

---

३२९

आत्मज्ञानेन संचितक्रियमाणयोः कर्मणोर्दाहाश्वेयौ भवतः प्रारब्धं तु ज्ञानेनाप्यपरिहार्यमिति सर्वत्र प्रसिद्धम् । योगी तु निर्विकल्पकसमाध्यभ्यासेन वा गुलभावत् गृहाद्गृहान्तरमिव देहाद्देहान्तरं प्रविश्य वा शुकवद्यथेष्टं देहत्यागेन वा देहसिद्ध्या वा देहारंभकं कर्म प्रतिबध्नाति उच्छिनत्ति वेति दर्शयितुं शुकोत्पतनमारभ्यते। अत एव योगी ज्ञानिभ्योऽपि महानिति गीतास्वप्युक्तम्-'तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः' इति । तत्र तावल्लोकद्वयस्य हानार्थं तुच्छत्वं प्रदर्श्यते नारदवाक्येन एतस्मिन्नन्तरे इत्यादिना। शुकं नारद उपागमत् शुको वेदार्थान् प्रष्टुमीप्सया नारदमभ्यपूजयदिति सम्बन्धः ॥१॥ आत्मभूतैर्देहेन्द्रियादिभिः सह च वर्तते विनैव पृथक् च वर्तते कः अतद्भूतः देहादितादात्म्यं बाधित्वा केवलीभूतः ॥ १६ ॥

पुत्रदारकुटुम्बेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ३०
महाजालसमाकृष्टान्
स्थले मत्स्यानिवोद्धृतान् ।
स्नेहजालसमाकृष्टान्
पश्य जन्तून्सुदुःखितान् ॥ ३१
कुटुम्बं पुत्रदारांश्च शरीरं सञ्चयाश्च ये ।
पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृतदुष्कृतम् ३२
यदा सर्वान्परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते ।
अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं समर्थं नानुतिष्ठसि ३३
अविश्रान्तमनालम्बमपाथेयमदैशिकम् ।
तमःकान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि ॥
न हि त्वां प्रस्थितं कश्चित्पृष्ठतोऽनुगमिष्यति
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां यास्यन्तमनुयास्यति ॥
विद्या कर्म च शौचं च ज्ञानं च बहुविस्तरम्
अर्थार्थमनुसार्यन्ते सिद्धार्थश्च विमुच्यते ३६
निबन्धनी रज्जुरेषा
या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति
नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ ३७
रूपकूलां मनःस्रोतां स्पर्शद्वीपां रसावहाम् ।
गन्धपङ्कां शब्दजलां स्वर्गमार्गदुरावहाम् ३८
क्षमारित्रां सत्यमयीं
धर्मस्थैर्यवटारकाम् ।
त्यागवाताध्वगां शीघ्रां
नौतार्यां तां नदीं तरेत् ॥ ३९
त्यज धर्ममधर्मं च तथा सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज
त्यज धर्ममसङ्कल्पादधर्मं चाप्यलिप्सया ।
उभे सत्यानृते बुद्ध्या बुद्धिं परमनिश्चयात् ४१
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ४२
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यज ४३
इदं विश्वं जगत्सर्वमजगच्चापि यद्भवेत् ।
महाभूतात्मकं सर्वं महद्यत्परमाश्रयात् ४४
इन्द्रियाणि च पञ्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।
इत्येष सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः ॥ ४५
सर्वैरिहेन्द्रियार्थैश्च व्यक्ताव्यक्तैर्हि संहितः ।
चतुर्विंशक इत्येष व्यक्ताव्यक्तमयो गणः ४६
एतैः सर्वैः समायुक्तः पुमानित्यभिधीयते ।
त्रिवर्गं तु सुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा ४७
य इदं वेद तत्त्वेन स वेद प्रभवाप्ययौ ।
पारंपर्येण बोद्धव्यं ज्ञानानां यच्च किञ्चन ४८
इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः ।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तर्प्यते ।
लोके विततमात्मानं लोकांश्चात्मनि पश्यति
परावरदृशः शक्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति ।
पश्यतः सर्वभूतानि सर्वावस्थासु सर्वदा ५१
सर्वभूतस्य संयोगो नाशुभेनोपपद्यते ।
ज्ञानेन विविधान् क्लेशानतिवृत्तस्य मोहजान्
लोके बुद्धिप्रकाशेन लोकमार्गो न रिष्यते ।
अनादिनिधनं जन्तुमात्मनि स्थितमव्ययम् ॥
अकर्तारममूर्तं च भगवानाह तीर्थवित् ।
यो जन्तुः स्वकृतैस्तैस्तैः कर्मभिर्नित्यदुःखितः
स दुःखप्रतिघातार्थं हन्ति जन्तूननेकधा ।
ततः कर्म समादत्ते पुनरन्यन्नवं बहु ॥ ५५
तप्यतेऽथ पुनस्तेन भुक्त्वा पथ्यमिवातुरः ।
अजस्रमेव मोहान्धो दुःखेषु सुखसंज्ञितः ५६
वध्यते मथ्यते चैव कर्मभिर्मन्थवत्सदा ।
ततो निबद्धः स्वां योनिं कर्मणामुदयादिह ॥
परिभ्रमति संसारं चक्रवद्बहुवेदनः ।
स त्वं निवृत्तबन्धस्तु निवृत्तश्चापि कर्मतः ५८
सर्ववित्सर्वजित्सिद्धो भव भावविवर्जितः ।
संयमेन नवं बन्धं निवर्त्य तपसो बलात् ।
संप्राप्ता बहवः सिद्धिमप्यबाधां सुखोदयाम् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२९

---

क्षमैव अरित्राणि नौचालनदंडाः यस्याम् । धर्मस्थैर्यं वटारका नौकाकर्षणरज्जुर्यस्याम् ॥ ३९ ॥ **महाभूतेति** । पञ्चभूतानि महद्बुद्धिः यच्चाश्रयात् देहात्परं परलोकगामि एष सप्तदशकः इन्द्रियाणि पञ्च चकारात् पञ्च प्राणाः तमआदित्रयं एकमिति ॥ ४४ ॥ इन्द्रियार्थैः अष्टाभिः शब्दादिभिः पञ्चभिः मन्तव्यं बोद्धव्यं अहंकर्तव्यं च तैः सहाष्टाभिः एवं चतुर्विंशकः ॥ ४५ ॥ रिष्यते हिंस्यते ॥ ५३ ॥ तीर्थवित् मोक्षोपायवित् ॥ ५४ ॥ संयमेन धारणाध्यानसमाध्यात्मकेन नवं दृष्टिमात्रेणोत्पन्नम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२९ ॥

## ३३०–[१५७]

नारद उवाच ।
अशोकं शोकनाशार्थं शास्त्रं शान्तिकरं शिवम्
निशम्य लभते बुद्धिं तां लब्ध्वा सुखमेधते १
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् २
तस्मादनिष्टनाशार्थमितिहासं निबोध मे ।
तिष्ठते चेद्वशे बुद्धिर्लभते शोकनाशनम् ॥ ३
अनिष्टसंप्रयोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च ।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥ ४
द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान्न चिन्तयेत् ।
न तानाद्रियमाणस्य स्नेहबन्धः प्रमुच्यते ॥ ५
दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्तते ।
अनिष्टवर्धितं पश्येत्तथा क्षिप्रं विरज्यते ॥ ६
नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते ॥ ७
गुणैर्भूतानि युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथैव च ।
सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते॥८
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ९
नाश्रु कुर्वन्ति ये बुद्ध्या दृष्ट्वा लोकेषु सन्ततिम्
सम्यक्प्रपश्यतः सर्वं नाश्रुकर्मोपपद्यते ॥ १०
दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते ।
यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत्११
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते१२
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसञ्चयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥
न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हति ।
अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमम् ॥ १५
सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः ।
स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् ॥
परित्यजति यो दुःखं सुखं वाऽप्युभयं नरः ।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न तं शोचन्ति पंडिताः
त्यजन्ते दुःखमर्था हि पालनेन च ते सुखाः ।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत्
अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः
अतृप्ता यान्ति विध्वंसं सन्तोषं यांति पंडिताः
सर्वे क्षयान्ता निचयाः
पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता
मरणान्तं हि जीवितम् ॥ २०
अन्तो नास्ति पिपासाया-
स्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ।
तस्मात्सन्तोषमेवेह
धनं पश्यन्ति पण्डिताः ॥ २१
निमेषमात्रमपि हि वयो गच्छन्न तिष्ठति ।
स्वशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत् २२
भूतेषु भावं सञ्चिन्त्य ये बुध्वा मनसः परम् ।
न शोचन्ति गताध्वानः पश्यन्तः परमां गतिं
सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
व्याघ्रः पशुमिवासाद्य मृत्युरादाय गच्छति॥
तथाप्युपायं संपश्येद्दुःखस्य परिमोक्षणम् ।
अशोचन्नारभेच्चैव मुक्तश्चाव्यसनी भवेत् ॥ २५
शब्दे, स्पर्शे, च रूपे, च गन्धेषु च रसेषु च ।
नोपभोगात्परं किञ्चिद्धनिनो वाऽधनस्य च
प्राक्संप्रयोगाद्भूतानां नास्ति दुःखं परायणम्
विप्रयोगात्तु सर्वस्य न शोचेत्प्रकृतिस्थितः ॥
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च विद्यया
प्रणयं प्रतिसंहृत्य संस्तुतेष्वितरेषु च ।
विचरेदसमुन्नद्धः स सुखी स च पण्डितः २९
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत्स सुखी भवेत्॥ ३०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकाभिपतने
त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥

---

३३०

**अशोकमिति** ॥ १ ॥ द्वावनर्थौ इष्टस्यादिदेहविनाशः स्वशरीरतापश्च । शेषग्रंथः स्पष्टार्थो व्याख्यातप्रायश्चेति न व्याख्यायते ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥

## ३३१-[१५८]

नारद उवाच ।

सुखदुःखविपर्यासो यदा समनुपद्यते ।
नैनं प्रज्ञा सुनीतं वा त्रायते नापि पौरुषम् १
स्वभावाद्यत्नमातिष्ठेद्यत्नवान्नावसीदति ।
जरामरणरोगेभ्यः प्रियमात्मानमुद्धरेत् ॥ २
रुजन्ति हि शरीराणि रोगाः शारीरमानसाः
सायका इव तीक्ष्णाग्राः प्रयुक्ता दृढधन्विभिः
व्यथितस्य विधित्साभि-
स्ताम्यतो जीवितैषिणः ।
अवशस्य विनाशाय
शरीरमपकृष्यते ॥ ४
स्रवन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितामिव ।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्र्यहानि पुनः पुनः ५
व्यत्ययो ह्ययमत्यन्तं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
जातान्मर्त्याञ्जरयति निमेषान्नावतिष्ठते ॥ ६
सुखदुःखानि भूतानामजरो जरयत्यसौ ।
आदित्यो ह्यस्तमभ्येति पुनः पुनरुदेति च ॥ ७
अदृष्टपूर्वानादाय भावानपरिशङ्कितान् ।
इष्टानिष्टान्मनुष्याणामस्तं गच्छन्ति रात्रयः ८
योऽयमिच्छेद्यथाकामं कामानां तदवाप्नुयात् ।
यदि स्यान्न पराधीनं पुरुषस्य क्रियाफलम् ९
संयताश्च हि दक्षाश्च मतिमन्तश्च मानवाः ।
दृश्यंते निष्फलाः संतः प्रहीणाः सर्वकर्मभिः
अपरे बालिशाः सन्तो निर्गुणाः पुरुषाधमाः
आशीर्भिरप्यसंयुक्ता दृश्यन्ते सर्वकामिनः ॥
भूतानामपरः कश्चिद्धिंसायां सततोत्थितः ।
वञ्चनायां च लोकस्य स सुखेष्वेव जीर्यते ॥
अचेष्टमानमासीनं श्रीः कञ्चिदुपतिष्ठते ।
कश्चित्कर्मानुसृत्यान्यो नाप्राप्यमधिगच्छति
अपराधं समाचक्ष्व पुरुषस्य स्वभावतः ।
शुक्रमन्यत्र संभूतं पुनरन्यत्र गच्छति ॥ १४
तस्य योनौ प्रयुक्तस्य गर्भो भवति वा नवा ।
आम्रपुष्पोपमा यस्य निवृत्तिरुपलभ्यते ॥ १५
केषाञ्चित्पुत्रकामानामनुसन्तानमिच्छताम् ।
सिद्धौ प्रयतमानानां न चाण्डमुपजायते १६
गर्भाच्चोद्विजमानानां क्रुद्धादाशीविषादिव ।
आयुष्माञ्जायते पुत्रः कथं प्रेत्य इवाभवत् ॥
देवानिष्ट्वा तपस्तप्त्वा कृपणैः पुत्रगृद्धिभिः ।
दश मासान्परिधृता जायन्ते कुलपांसनाः ॥
अपरे धनधान्यानि भोगांश्च पितृसञ्चितान् ।
विपुलानभिजायन्ते लब्धास्तैरेव मङ्गलैः १९
अन्योन्यं समभिप्रेत्य मैथुनस्य समागमे ।
उपद्रव इवाविष्टो योनिगर्भः प्रपद्यते ॥ २०
शीघ्रं परशरीराणि छिन्नबीजं शरीरिणम् ।
प्राणिनं प्राणसंरोधे मांसश्लेष्मविचेष्टितम् ॥
निर्दग्धं परदेहेऽपि परदेहं चलाचलम् ।
विनश्यन्तं विनाशान्ते नावि नावमिवाहितम्
सङ्गत्या जठरे न्यस्तं रेतोबिन्दुमचेतनम् ।
केन यत्नेन जीवन्तं गर्भं त्वमिह पश्यसि २३
अन्नपानानि जीर्यन्ते यत्र भक्षाश्च भक्षिताः ।
तस्मिन्नेवोदरे गर्भः किं नान्नमिव जीर्यते ॥
गर्भे मूत्रपुरीषाणां स्वभावनियता गतिः ।
धारणे वा विसर्गे वा न कर्ता विद्यतेऽवशः ।
स्रवन्ति ह्युदराद्गर्भा जायमानास्तथा परे ।
आगमेन तथाऽन्येषां विनाश उपपद्यते २६
एतस्माद्योनिसम्बन्धाद्यो बीजं परिमुच्यते ।
प्रजां च लभते काञ्चित्पुनर्द्वन्द्वेषु सज्जति २७
स तस्य सहजातस्य सप्तमीं नवमीं दशाम् ।
प्राप्नुवन्ति ततः पञ्च न भवन्ति गतायुषः २८

---

### ३३१

**सुखेति** । विपर्यासः सुखे दुःखधी दुःखे सुखधीः १ विधित्साभिः पिपासाभिस्तृष्णाभिः ॥ ४ ॥ व्यत्ययः पौर्वापर्यम् ॥ ६ ॥ **शीघ्रमिति** । परशरीराणि शरीरान्तराणि-प्राप्नुवन्तीति शेषः । छिन्नं बीजं स्वर्गनरकांकुरबीजं स्थूलशरीरं यस्य तं शरीरिणं कदा प्राणसंरोधे सति कीदृशं शरीरिणं मांसशोणितादियुक्तेन बीभत्सेन देहेन चेष्टितं चेष्टा यस्य तं मरणेऽपि सद्यः शरीरान्तरमायातीति देहबन्धविच्छेदो न कदाचिदस्तीत्यर्थः ॥ २१ ॥ परदेहे देहान्तरे निर्दग्धं विनश्यन्तं जीवं अभिलक्ष्य परं देहं देहान्तरं चलाचलं परिणामितयातिचपलम् । आहितं उपस्थापितं भवति । कर्मणेति शेषः ॥ २२ ॥ देहधारणमप्याश्चर्यमित्याह— **संगत्येति** ॥ २३ ॥ **स तस्येति** । सह जातस्य अनादिप्रवाहसंबद्धस्य देहस्य गर्भवासो जन्म बाल्यं कौमारं पौगंडं यौवनं स्थाविर्यं जरा प्राणरोधो नाशश्चेति दश शरीरस्य दशास्तासु सप्तमी स्थाविर्यम् । तत्र कुटुम्बभरणादिचिन्तया

नाभ्युत्थाने मनुष्याणां योगाः स्युर्नात्र संशयः
व्याधिभिश्च विमथ्यन्ते व्याधैः क्षुद्रमृगा इव
व्याधिभिर्मथ्यमानानां त्यजतां विपुलं धनम्
वेदनां नापकर्षन्ति यतमानाश्चिकित्सकाः
ते चातिनिपुणा वैद्याः
कुशलाः संभृतौषधाः ।
व्याधिभिः परिकृष्यन्ते
मृगा व्याधैरिवार्दिताः ॥ ३१
ते पिबन्तः कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च
दृश्यन्ते जरया भग्ना नगा नागैरिवोत्तमैः ॥
के वा भुवि चिकित्सन्ते
रोगार्तान्मृगपक्षिणः ।
श्वापदानि दरिद्रांश्च
प्रायो नार्ता भवन्ति ते ॥ ३३
घोरानपि दुराधर्षान्नृपतीनुग्रतेजसः ।
आक्रम्याददते रोगाः पशून्पशुगणा इव ३४
इति लोकमनाक्रन्दं मोहशोकपरिप्लुतम् ।
स्रोतसा सहसाऽऽक्षिप्तं ह्रियमाणं बलीयसा
न धनेन न राज्येन नोग्रेण तपसा तथा ।
स्वभावमतिवर्तन्ते ये नियुक्ताः शरीरिणः ३६
न म्रियेरन्न जीर्येरन्सर्वे स्युः सर्वकामिनः ।
नाप्रियं प्रति पश्येयुरुत्थानस्य फले सति ३७
उपर्युपरि लोकस्य सर्वो गन्तुं समीहते ।
यतते च यथाशक्ति न च तद्वर्तते तथा ॥ ३८
ऐश्वर्यमदमत्तांश्च मत्तान्मद्यमदेन च ।
अप्रमत्ताः शठाः शूरा विक्रान्ताः पर्युपासते
क्लेशाः परिनिवर्तन्ते केषाञ्चिदसमीक्षिताः ।
स्वं स्वं च पुनरन्येषां न किञ्चिदधिगम्यते ४०
महच्च फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसन्धिषु ।
वहन्ति शिबिकामन्ये यान्त्यन्ये शिबिकागताः
सर्वेषामृद्धिकामानामन्ये रथपुरःसराः ।
मनुष्याश्च गतस्त्रीकाः शतशो विविधाः स्त्रियः
द्वन्द्वारामेषु भूतेषु गच्छन्त्येकैकशो नराः ।
इदमन्यत्पदं पश्य माऽत्र मोहं करिष्यसि ४३
त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज
एतत्ते परमं गुह्यमाख्यातमृषिसत्तम ।
येन देवाः परित्यज्य मर्त्यलोकं दिवं गताः
नारदस्य वचः श्रुत्वा शुकः परमबुद्धिमान् ।
सञ्चिन्त्य मनसा धीरो निश्चयं नाध्यगच्छत
पुत्रदारैर्महान्क्लेशो विद्याम्नाये महाञ्छ्रमः ।
किं नु स्याच्छाश्वतं स्थानमल्पक्लेशं महोदयम्
ततो मुहूर्तं सञ्चिन्त्य निश्चितां गतिमात्मनः
परावरज्ञो धर्मस्य परां नैःश्रेयसीं गतिम् ॥४८
कथं त्वहमसंश्लिष्टो गच्छेयं गतिमुत्तमाम् ।
नावर्तेयं यथा भूयो योनिसंकरसागरे ॥ ४९
परं भावं हि काङ्क्षामि यत्र नावर्तते पुनः ।
सर्वसङ्गान्परित्यज्य निश्चितो मनसा गतिम्
तत्र यास्यामि यत्रात्मा शमं मेऽधिगमिष्यति
अक्षयश्चाव्ययश्चैव यत्र स्थास्यामि शाश्वतः ॥
न तु योगमृते शक्या प्राप्तुं सा परमा गतिः
अवबन्धो हि बुद्धस्य कर्मभिर्नोपपद्यते ॥ ५२
तस्माद्योगं समास्थाय त्यक्त्वा गृहकलेवरम्
वायुभूतः प्रवेक्ष्यामि तेजोराशिं दिवाकरम्
न ह्येष क्षयतां याति सोमः सुरगणैर्यथा ।
कम्पितः पतते भूमिं पुनश्चैवाधिरोहति ॥५४
क्षीयते हि सदा सोमः पुनश्चैवाभिपूर्यते ।
नेच्छाम्येवं विदित्वैते ह्रासवृद्धी पुनः पुनः
रविस्तु सन्तापयते लोकान् रश्मिभिरुल्बणैः
सर्वतस्तेज आदत्ते नित्यमक्षयमण्डलः ॥ ५६
अतो मे रोचते गन्तुमादित्यं दीप्ततेजसम् ।
अत्र वत्स्यामि दुर्धर्षो निःशङ्केनान्तरात्मना

व्याकुलत्वं नवमी तु प्राणरोधः तां उभयीं पञ्चभूतान्येव प्राप्नुवन्ति न त्वात्मा ततः नवमीं प्राप्य न भवन्ति दशमीं अभावदशां च प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । गतायुषः सतः तस्येति सम्बन्धः ॥ २८ ॥ योगाः सामर्थ्यानि ॥ २९ ॥ अनाक्रन्दं वेदनया मूढम् ॥ ३५ ॥ असंश्लिष्टः सर्वोपाधिनिर्मुक्तः ॥ ४९ ॥ अवबन्धः नीचो देहबन्धः ॥ ५२ ॥ दिवाकरमित्यर्कमण्डलान्तर्वर्ती भर्गपदवाच्यः संसारबीजभर्जनकर्ता सर्वेषां प्राणिनां बुद्धेः प्रवर्तको गायत्रीप्रतिपाद्यो ग्राह्यो न त्वर्चिरादिमार्गपर्वभूतो मण्डलाभिमान्यादित्यः । कुत एतत्कार्यब्रह्मलोकं प्रति तद्गमनस्यादर्शनात् ।

'शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वाऽन्तरिक्षगाम् ।
दर्शयित्वा प्रभावं स्वं ब्रह्मभूतोऽभवत्तदा '

इति वाक्यशेषे शुद्धब्रह्मभावदर्शनाच्च । सूर्यमण्डलपर्यन्तं गमनं नु स्वस्य योगप्रभावदर्शनमात्रमिति तत्रैव स्पष्टमस्ति ॥५३॥ आवृत्तिमार्गं निन्दति—**न हीति** । सोमः धूमादिमार्गेण सोमलोकं गतः ॥ ५४ ॥ तल्लोकाधिपतेर्वृद्धिह्रासवत्त्वात्तत्र गता अपि तादृशा एव भवन्तीत्याह—**क्षीयते हीति** ॥५५॥ अत्र वत्स्यामीति लिङ्गात्तत्र मार्गपर्वभूत आदित्यो गृह्यते । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्तीति तस्य द्वारत्वमात्रश्रवणात् ॥५७॥

सूर्यस्य सदने चाहं
निक्षिप्येदं कलेवरम् ।
ऋषिभिः सह यास्यामि
सौरं तेजोऽतिदुःसहम् ॥ ५८
आपृच्छामि नगान्नागान्गिरिमुर्वीं दिशो दिवं
देवदानवगन्धर्वान्पिशाचोरगराक्षसान् ५९
लोकेषु सर्वभूतानि प्रवेक्ष्यामि न संशयः ।
पश्यन्तु योगवीर्यं मे सर्वे देवाः सहर्षिभिः ६०
अथानुज्ञाप्य तमृषिं नारदं लोकविश्रुतम् ।
तस्मादनुज्ञां संप्राप्य जगाम पितरं प्रति ६१
सोऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं मुनिम्
शुकः प्रदक्षिणं कृत्वा कृष्णमापृष्टवान्मुनिम्
श्रुत्वा चर्षिस्तद्वचनं शुकस्य
प्रीतो महात्मा पुनराह चैनम् ।
भो भो पुत्र स्थीयतां तावदद्य
यावच्चक्षुः प्रीणयामि त्वदर्थे ६३
निरपेक्षः शुको भूत्वा निःस्नेहो मुक्तसंशयः
मोक्षमेवानुसंचिन्त्य गमनाय मनो दधे ॥ ६४
पितरं संपरित्यज्य जगाम मुनिसत्तमः ।
कैलासपृष्ठं विपुलं सिद्धसंघनिषेवितम् ६५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकाभिगमने एकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३१ ॥

## ३३२-[१५९]

भीष्म उवाच ।
गिरिश्रृङ्गं समारुह्य सुतो व्यासस्य भारत
समे देशे विविक्ते स निःशलाक उपाविशत्
धारयामास चात्मानं यथाशास्त्रं यथाविधि
पादप्रभृतिगात्रेषु क्रमेण क्रमयोगवित् २
ततः स प्राङ्मुखो विद्वानादित्येनाचिरोदिते
पाणिपादं समादाय विनीतवदुपाविशत् ॥३
न तत्र पक्षिसंघातो न शब्दो नातिदर्शनम् ।
यत्र वैयासकिर्धीमान् योक्तुं समुपचक्रमे ४
स ददर्श तदाऽऽत्मानं सर्वसंगविनिःसृतम् ।
प्रजहास ततो हासं शुकः संप्रेक्ष्य तत्परम्
स पुनर्योगमास्थाय मोक्षमार्गोपलब्धये ।
महायोगेश्वरो भूत्वा सोऽत्यक्रामद्विहायसम्
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा देवर्षिं नारदं ततः ।
निवेदयामास च तं स्वं योगं परमर्षये ७
शुक उवाच ।
दृष्टो मार्गः प्रवृत्तोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु तपोधन
त्वत्प्रसादाद्गमिष्यामि गतिमिष्टां महाद्युते ८
नारदेनाभ्यनुज्ञातः शुको द्वैपायनात्मजः ।
अभिवाद्य पुनर्योगमास्थायाकाशमाविशत् ९
कैलासपृष्ठादुत्पत्य स पपात दिवं तदा ।
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्वायुभूतः सुनिश्चितः
तमुद्यन्तं द्विजश्रेष्ठं वैनतेयसमद्युतिम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि मनोमारुतरंहसम् ११
व्यवसायेन लोकांस्त्रीन्
सर्वान् सोऽथ विचिन्तयन् ।
आस्थितो दीर्घमध्वानं
पावकार्कसमप्रभः ॥१२
तमेकमनसं यान्तमव्यग्रमकुतोभयम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि जङ्गमानि चराणि च १३
यथाशक्ति यथान्यायं पूजां वै चक्रिरे तदा ।
पुष्पवर्षैश्च दिव्यैस्तमवचक्रुर्दिवौकसः १४
तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः
ऋषयश्चैव संसिद्धाः परं विस्मयमागताः १५
अन्तरिक्षगतः कोऽयं तपसा सिद्धिमागतः ।
अधःकायोर्ध्ववक्त्रश्च नेत्रैः समभिरज्यते ॥१६

---

सौरं आदित्यान्तर्यामि । 'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद' इत्यादिश्रुतेस्ततोऽन्यत् ॥ ५८ ॥
इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३१ ॥

३३२

गिरिश्रृंगमिति । निःशलाके निस्तृणे ॥ १ ॥ व्यवसायेन सार्वात्म्यनिश्चयेन ॥ १२ ॥ अधःकायात् ऊर्ध्वं वक्त्रं यस्य सूर्ये दत्तदृष्टिरतः स्वदेहस्याधोभागं न पश्यतीत्यर्थः ॥१६॥

ततः परमधर्मात्मा
त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
भास्करं समुदीक्षन्स
प्राङ्मुखो वाग्यतोऽगमत् ॥१७
शब्देनाकाशमखिलं पूरयन्निव सर्वशः ।
तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा सर्वाप्सरोगणाः १८
संभ्रान्तमनसो राजन्नासन्परमविस्मिताः ।
पञ्चचूडाप्रभृतयो भृशमुत्फुल्ललोचनाः १९
दैवतं कतमं ह्येतदुत्तमां गतिमास्थितम् ।
सुनिश्चितमिहायाति विमुक्तमिव निःस्पृहम्
ततः समभिचक्राम मलयं नाम पर्वतम् ।
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च यं नित्यमुपसेवतः २१
तस्य ब्रह्मर्षिपुत्रस्य विस्मयं ययतुः परम् ।
अहो बुद्धिसमाधानं वेदाभ्यासरते द्विजे २२
अचिरेणैव कालेन नभश्चरति चन्द्रवत् ।
पितृशुश्रूषया बुद्धिं संप्राप्तोऽयमनुत्तमाम् २३
पितृभक्तो दृढतपाः पितुः सुदयितः सुतः ।
अनन्यमनसा तेन कथं पित्रा विसर्जितः २४
उर्वश्या वचनं श्रुत्वा शुकः परमधर्मवित् ।
उदैक्षत दिशः सर्वा वचने गतमानसः २५
सोऽन्तरिक्षं महीं चैव सशैलवनकाननाम् ।
विलोकयामास तदा सरांसि सरितस्तथा
ततो द्वैपायनसुतं बहुमानात्समन्ततः ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वा निरीक्षन्ते स्म देवताः ॥
अब्रवीत्तास्तदा वाक्यं शुकः परमधर्मवित् ।
पिता यद्यनुगच्छेन्मां क्रोशमानः शुकेति वै ॥
ततः प्रतिवचो देयं सर्वैरेव समाहितैः ।
एतन्मे स्नेहतः सर्वे वचनं कर्तुमर्हथ ॥ २९
शुकस्य वचनं श्रुत्वा दिशः सर्वाः सकाननाः
समुद्राः सरितः शैलाः प्रत्यूचुस्तं समन्ततः
यथाऽऽज्ञापयसे विप्र बाढमेवं भविष्यति ।
ऋषेर्व्याहरतो वाक्यं प्रतिवक्ष्यामहे वयम् ३१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकाभिपतने द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३२ ॥

## ३३३–[१६०]

भीष्म उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं
ब्रह्मर्षिः सुमहातपाः ।
प्रातिष्ठत शुकः सिद्धिं
हित्वा दोषांश्चतुर्विधान् ॥ १
तमो ह्यष्टविधं हित्वा जहौ पञ्चविधं रजः ।
ततः सत्त्वं जहौ धीमांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २
ततस्तस्मिन्पदे नित्ये निर्गुणे लिङ्गवर्जिते ।
ब्रह्मणि प्रत्यतिष्ठत्स विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्
उल्कापाता दिशां दाहो भूमिकम्पस्तथैव च
प्रादुर्भूतः क्षणे तस्मिंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४
द्रुमाः शाखाश्च मुमुचुः शिखराणि च पर्वताः
निर्घातशब्दैश्च गिरिर्हिमवान्दीर्यतीव ह ॥ ५

---

इति श्रीमहाभारते शा.. ..पर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३२ ॥

३३३

**इत्येवमिति** । दोषान् सात्त्विकान्मोक्षप्रतिबन्धकान् धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यप्रदानेन किल्बिषसंसर्गानैश्वर्याख्यान्वा यदाह मनुः–

'प्राणायामैर्दहेदेनो धारणाभिश्च किल्बिषान् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानैश्वरान्गुणान्' इति ।

योगानिति पाठे वितर्कविचारानन्दास्मिताख्यान् संप्रज्ञातभेदान् तत्फलानीत्यर्थः ॥ १ ॥ अष्टविधं पुर्यष्टकप्रकारं तमः पञ्चविधं विषयपञ्चके प्रवर्तकं वासनामयं रजः । नवगुणं रज इति पाठे—

'अत्यागित्वमकार्पण्यं सुखदुःखोपसेवनम् ।
भेदः परुषता चैव कामः क्रोधस्तथैव च ।
दर्पो द्वेषोऽतिवादश्च एते प्रोक्ता रजोगुणाः' ॥

इति प्रोक्ता ज्ञेयाः । सत्त्वं बुद्धिसत्त्वेन सर्वं सन्त्यज्य सत्त्वमपि त्यक्तं येन त्यजसि तत्त्यजेति नारदेनोपदिष्टत्वात् ॥२॥ तस्मिन्नादित्यान्तर्यामिणि परब्रह्मणि नित्ये पुनरावृत्तिवर्जिते यतो निर्गुणे प्रत्यतिष्ठत् ॥३॥ महापुरुषस्योपरमे हि जगद्भाग्यसूचका उत्पाता भवन्तीत्याह–**उल्कापाता इति**४

न बभासे सहस्रांशुर्न जज्वाल च पावकः ।
ह्रदाश्च सरितश्चैव चुक्षुभुः सागरास्तथा ॥६
ववर्ष वासवस्तोयं रसवच्च सुगन्धि च ।
ववौ समीरणश्चापि दिव्यगन्धवहः शुचिः ७
स शृङ्गे प्रथमे दिव्ये हिमवन्मेरुसंभवे ।
संश्लिष्टे श्वेतपीते द्वे रुक्मरूप्यमये शुभे ॥ ८
शतयोजनविस्तारे तिर्यगूर्ध्वं च भारत ।
उदीचीं दिशमास्थाय रुचिरे संददर्श ह ॥ ९
सोऽविशङ्केन मनसा तथैवाभ्यपतच्छुकः ।
ततः पर्वतशृङ्गे द्वे सहसैव द्विधाकृते ॥ १०
अदृश्येतां महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततः पर्वतशृङ्गाभ्यां सहसैव विनिःसृतः॥११
न च प्रतिजघानास्य स गतिं पर्वतोत्तमः ।
ततो महानभूच्छब्दो दिवि सर्वदिवौकसाम्
गन्धर्वाणामृषीणां च ये च शैलनिवासिनः ।
दृष्ट्वा शुकमतिक्रान्तं पर्वतं च द्विधाकृतम् १३
साधु साध्विति तत्रासीन्नादः सर्वत्र भारत ।
स पूज्यमानो देवैश्च गन्धर्वैर्ऋषिभिस्तथा १४
यक्षराक्षससंघैश्च विद्याधरगणैस्तथा ।
दिव्यैः पुष्पैः समाकीर्णमन्तरिक्षं समन्ततः ॥
आसीत्किल महाराज शुकाभिपतने तदा ।
ततो मन्दाकिनीं रम्यामुपरिष्टादभिव्रजन् १६
शुको ददर्श धर्मात्मा पुष्पितद्रुमकाननाम् ।
तस्यां क्रीडन्त्यभिरतास्ते चैवाप्सरसां गणाः
शून्याकारं निराकाराः शुकं दृष्ट्वा विवाससः
तं प्रक्रामन्तमाज्ञाय पिता स्नेहसमन्वितः १८
उत्तमां गतिमास्थाय पृष्ठतोऽनुससार ह ।
शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वान्तरिक्षगाम्
दर्शयित्वा प्रभावं स्वं ब्रह्मभूतोऽभवत्तदा ।
महायोगगतिं त्वन्यां व्यासोत्थाय महातपाः
निमेषान्तरमात्रेण शुकाभिपतनं ययौ ।
स ददर्श द्विधा कृत्वा पर्वताग्रं शुकं गतम् २१
शशंसुर्ऋषयस्तत्र कर्म पुत्रस्य तत्तदा ।
ततः शुकेति दीर्घेण शब्देनाक्रन्दितस्तदा २२
स्वयं पित्रा स्वरेणोच्चैस्त्रींल्लोकाननुनाद्य वै ।
शुकः सर्वगतो भूत्वा सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥
प्रत्यभाषत धर्मात्मा भोः शब्देनानुनादयन् ।
तत एकाक्षरं नादं भोरित्येव समीरयन् २४
प्रत्याहरज्जगत्सर्वमुच्चैः स्थावरजङ्गमम् ।
ततः प्रभृति चाद्यापि शब्दानुच्चारितान्पृथक्
गिरिगह्वरपृष्ठेषु व्याहरन्ति शुकं प्रति ।
अन्तर्हितः प्रभावं तु दर्शयित्वा शुकस्तदा २६
गुणान्संन्त्यज्य शब्दादीन्पदमभ्यगमत्परम् ।
महिमानं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्यामिततेजसः ॥ २७
निषसाद गिरिप्रस्थे पुत्रमेवानुचिन्तयन् ।
ततो मन्दाकिनीतीरे क्रीडन्तोऽप्सरसां गणाः
आसाद्य तमृषिं सर्वाः संभ्रान्ता गतचेतसः ।
जले निलिल्यिरे काश्चित्काश्चिद्गुल्मान् प्रपेदिरे
वसनान्याददुः काश्चित्तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमम् ।
तां मुक्ततां तु विज्ञाय मुनिः पुत्रस्य वै तदा ॥
सक्ततामात्मनश्चैव प्रीतोऽभूद्व्रीडितश्च ह ३१
तं देवगन्धर्ववृतो महर्षिगणपूजितः ।
पिनाकहस्तो भगवानभ्यागच्छत शंकरः ३२
तमुवाच महादेवः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं कृष्णद्वैपायनं तदा ॥ ३३
अग्नेर्भूमेरपां वायोरन्तरिक्षस्य चैव ह ।
वीर्येण सदृशः पुत्रः पुरा मत्तस्त्वया वृतः ३४
स तथालक्षणो जातस्तपसा तव संभृतः ।
मम चैव प्रसादेन ब्रह्मतेजोमयः शुचिः ॥ ३५
स गतिं परमां प्राप्तो दुष्प्रापामजितेन्द्रियैः ।
दैवतैरपि विप्रर्षे तं त्वं किमनुशोचसि ॥ ३६

यावत्स्थास्यन्ति गिरयो
यावत्स्थास्यन्ति सागराः ।
तावत्तवाक्षया कीर्तिः
सपुत्रस्य भविष्यति ॥ ३७

---

ववर्षेत्यादयः शुकस्योत्पतने शकुनानि ॥ ७ ॥ द्विधाकृते भारेण समुद्रलंघने हनुमद्भारेण महेन्द्रपर्वत इव व्यथामापेत्यर्थः ॥ १० ॥ तत इति । पूर्वोक्तासु सप्तसु वायुविंधासु पञ्चम्याः ज्ञानकर्मसमुच्चयरूपायाः पार्यन्तिकं फलं पञ्चमवायुस्थानस्य मन्दाकिनीदेशस्य प्राप्तिः ॥ १६ ॥ **शुकस्त्विति** । मारुतात्सूत्रात्मनं ऊर्ध्वम् । 'वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्' इति श्रुतेः ॥ १९ ॥ व्यासः उत्थाय सन्धिरार्षः ॥२०॥ **शुकेति** । शुका ३ इति दूराद्धूते प्लुतिः । अप्लुतवदुपस्थित इत्यप्लुतवद्भावान्न प्रकृतिभावः ॥ २२ ॥ तमुवाच महादेव इत्यादिना छायाशुकस्य दानं व्यासादीनामपि पुत्रशोकोऽत्यन्तापरिहार्य इति च सूचनेन शुकदेव नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यमातिष्ठोदित्याशयो दर्शितः ॥ ३३ ॥

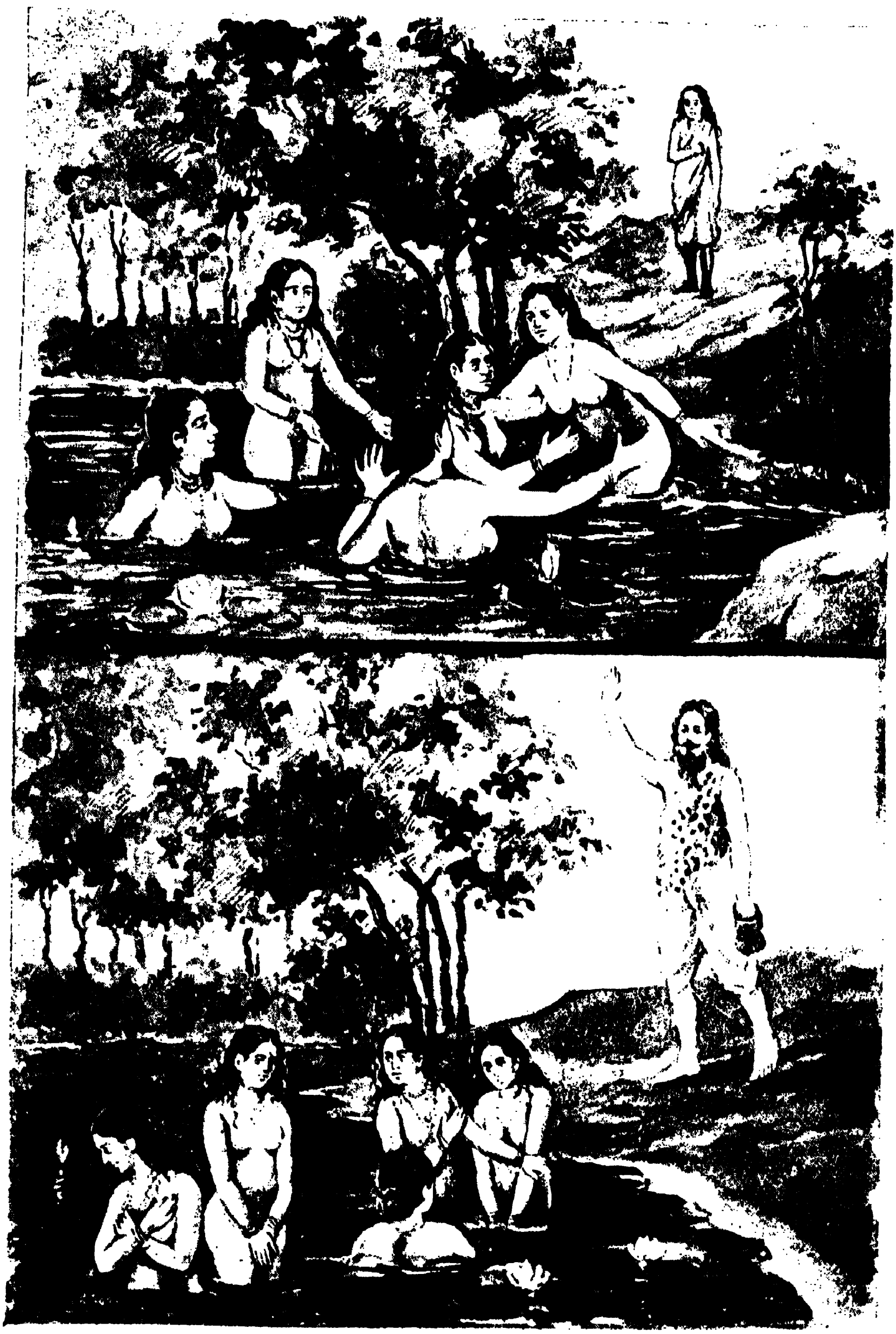

शुको ददर्श धर्मात्मा... ... ... ...
तस्यां क्रीडन्त्यभिरतास्ते चैवाप्सरसां गणाः ॥
× × × × × ×
आसाद्य तमृषिं सर्वाः संभ्रान्ता गतचेतसः ।
जले निलिल्यिरे काश्चित्काश्चिद्गुल्मान्प्रपेदिरे ॥२०॥ शान्तिपर्व अ. ३३३ पृ. ६२०

छायां स्वपुत्रसदृशीं सर्वतोऽनपगां सदा।
दृक्ष्यसे त्वं च लोकेऽस्मिन्मत्प्रसादान्महामुने
सोऽनुनीतो भगवता स्वयं रुद्रेण भारत।
छायां पश्यन्समावृत्तः स मुनिः परया मुदा
इति जन्म गतिश्चैव शुकस्य भरतर्षभ।
विस्तरेण समाख्याता यन्मां त्वं परिपृच्छसि
एतदाचष्ट मे राजन् देवर्षिर्नारदः पुरा।
व्यासश्चैव महायोगी संजल्पेषु पदे पदे ॥ ४१
इतिहासमिमं पुण्यं मोक्षधर्मोपसंहितम्।
धारयेद्यः शमपरः स गच्छेत्परमां गतिम् ४२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि शुकोत्पतनसमाप्तिर्नाम त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३३ ॥

## ३३४-[१६१]

युधिष्ठिर उवाच।
गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः
य इच्छेत्सिद्धिमास्थातुं देवतां कां यजेत सः
कुतो ह्यस्य ध्रुवः स्वर्गः कुतो नैःश्रेयसं परम्।
विधिना केन जुहुयाद्दैवं पित्र्यं तथैव च ॥ २
मुक्तश्च कां गतिं गच्छेन्मोक्षश्चैव किमात्मकः
स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते दिवः ॥ ३
देवतानां च को देवः पितॄणां च पिता तथा।
तस्मात्परतरं यच्च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४
भीष्म उवाच।
गूढं मां प्रश्नवित्प्रश्नं पृच्छसे त्वमिहानघ।
न ह्येतत्तर्कया शक्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ५
ऋते देवप्रसादाद्वा राजन् ज्ञानागमेन वा।
गहनं ह्येतदाख्यानं व्याख्यातव्यं तवारिहन्
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ७
नारायणो हि विश्वात्मा चतुर्मूर्तिः सनातनः
धर्मात्मजः संबभूव पितैवं मेऽभ्यभाषत ॥ ८
कृते युगे महाराज पुरा स्वायंभुवेऽन्तरे।
नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णः स्वयंभुवः ॥ ९
तेषां नारायणनरौ तपस्तेपतुरव्ययौ।
बदर्याश्रममासाद्य शकटे कनकामये ॥ १०
अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोरमम्।
तत्राद्यौ लोकनाथौ तौ कृशौ धमनिसन्ततौ
तपसा तेजसा चैव दुर्निरीक्ष्यौ सुरैरपि।
यस्य प्रसादं कुर्वाते स देवौ द्रष्टुमर्हति ॥ १२
नूनं तयोरनुमते हृदि हृच्छयचोदितः।
महामेरोर्गिरेः शृङ्गात्प्रच्युतो गन्धमादनम् १३

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३३३॥

३३४

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः' ॥
इति श्रुतेर्भक्त्या मामभिजानातीति भगवद्वचनाच्च भक्तेर्ज्ञानाङ्गत्वं बुध्वा भजनीयां देवतां पृच्छति-**गृहस्थ इति**। ॥१॥ कुतः कस्य प्रसादात् ध्रुवः अनावृत्तिफलको ब्रह्मलोकः ॥ २ ॥ तस्माद्देवादीनां जनकात् ॥ ४ ॥ तर्कया तर्केण आर्षो लिङ्गव्यत्ययः ॥ ५ ॥ ज्ञानागमेन ऋते विना ॥ ६ ॥ चतस्रो मूर्तयः नराद्याः ॥ ८ ॥ स्वयंभुव इत्यनेन वासुदेवस्यैवैते चत्वारो व्यूहा अजन्मानः तेन तु पाञ्चरात्राणामिव वासुदेवात्परमकारणात् संकर्षणाख्यो जीव उत्पद्यते ततः प्रद्युम्नाख्यं मनो जायते ततोऽनिरुद्धाख्योऽहंकार उत्पद्यत इति मतं निरस्तम्। तथा च सूत्रम्। 'उत्पत्त्यसंभवात्' इति। 'न च कर्तुः करणम्' इति च जीवस्योत्पत्तौ विनाशित्वं स्यात्तथा च मोक्षिणोऽभावः कर्तुः सकाशात्करणोत्पत्तिर्दृष्टा लोके इति सूत्रार्थः ॥ ९ ॥ शकटे शकटवत्परप्रेर्ये **शरीरे** कनकवन्मोहकत्वात् कनकामयं तन्मये स्थित्वेति **शेषः** ॥ १० ॥ अष्टौ अविद्याचक्रवत् वाहकानि यस्य **भूतैः** पञ्चभिर्युक्तम्। हिशब्दाल्लोकप्रसिद्धमिदं नरनारायणयोः **शरीरे** तु मायामये इत्यर्थः। वक्ष्यति च-
'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।
सर्वभूतगुणैर्युक्तमेवं मां ज्ञातुमर्हसि' इति ॥ ११ ॥
**नूनमिति**। हृच्छयोऽन्तर्यामी तेन प्रेरितः ॥ १३ ॥

नारदः सुमहद्भूतं सर्वलोकानचीचरत् ।
तं देशमगमद्राजन्बदर्याश्रममाशुगः ॥ १४
तयोराह्निकवेलायां तस्य कौतूहलं त्वभूत् ।
इदं तदास्पदं कृत्स्नं यस्मिंल्लोकाः प्रतिष्ठिताः
सदेवासुरगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ।
एका मूर्तिरियं पूर्वं जाता भूयश्चतुर्विधा १६
धर्मस्य कुलसन्ताने धर्मादेभिर्विवर्धितः ।
अहो ह्यनुगृहीतोऽद्य धर्म एभिः सुरैरिह॥ १७
नरनारायणाभ्यां च कृष्णेन हरिणा तथा ।
अत्र कृष्णो हरिश्चैव कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥
स्थितौ धर्मोत्तरौ ह्येतौ तथा तपसि धिष्ठतौ ।
एतौ हि परमं धाम काऽनयोराह्निकक्रिया ॥
पितरौ सर्वभूतानां दैवतं च यशस्विनौ ।
कां देवतां तु यजतः पितॄन्वा कान्महामती॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा भक्त्या नारायणस्य तु
सहसा प्रादुरभवत्समीपे देवयोस्तदा ॥ २१
कृते दैवे च पित्र्ये च ततस्ताभ्यां निरीक्षितः
पूजितश्चैव विधिना यथाप्रोक्तेन शास्त्रतः ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यमपूर्वं विधिविस्तरम् ।
उपोपविष्टः सुप्रीतो नारदो भगवानृषिः ॥२३
नारायणं संनिरीक्ष्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
नमस्कृत्वा महादेवमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २४

नारद उवाच ।

वेदेषु सपुराणेषु सांगोपाङ्गेषु गीयसे ।
त्वमजः शाश्वतो धाता माताऽमृतमनुत्तमम् ।
प्रतिष्ठितं भूतभव्यं त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
चत्वारो ह्याश्रमा देव सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः ।
यजन्ते त्वामहरहर्नानामूर्तिसमास्थितम् ।
पिता माता च सर्वस्य जगतः शाश्वतो गुरुः
कं त्वद्य यजसे देवं पितरं कम विद्महे ॥ २७

श्रीभगवानुवाच ।

अवाच्यमेतद्वक्तव्यमात्मगुह्यं सनातनम् ।
तव भक्तिमतो ब्रह्मन्वक्ष्यामि तु यथातथम् ॥
यत्तत्सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम् २९
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यते ।
त्रिगुणव्यतिरिक्तो वै पुरुषश्चेति कल्पितः ३०
तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम ।
अव्यक्ता व्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरव्यया

तां योनिमावयोर्विद्धि
योऽसौ सदसदात्मकः ।
आवाभ्यां पूज्यते सो हि
दैवे पित्र्ये च कल्प्यते ॥ ३२

---

आह्निकं ब्रह्मयज्ञादि आस्पदं अधिष्ठानम् ॥ १५ ॥ अवाच्यमपि भक्तिमत्त्वाद्वक्ष्यामीत्यर्थः ॥ २८ ॥ सूक्ष्मं दुर्लक्ष्यं यतः अविज्ञेयं न विज्ञेयं रूपादि यत्र । अत एव अव्यक्तं नास्ति व्यक्तं कार्यं यस्य कारणमपि नेत्यर्थः । यतः अचलं कूटस्थं विकारिण एव कारणत्वनियमात् । ध्रुवं शाश्वतं सद्रूपमित्यर्थः । एतेन तदसत्त्वशंका निरस्ता ॥ २९ ॥ पुरि शरीरे वसतीति योगात्पुरुष इति कल्पितः । न तु तस्य देहसंगित्वं वास्तवमस्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥ अव्यक्तं सांख्यैर्नित्यत्वेन कल्पितं प्रधानम् । ननु पुरुषस्य अव्यक्तजनकत्वे कौटस्थ्यव्याहतिरत आह—**अव्यक्तेति** । या सत्ता स्वयं अव्यक्ता घटादिभ्यो निष्कृष्टायास्तस्या अग्रहणात् । व्यक्तेषु च भावेषु घटः सन् पटः सन्निति सद्रूपेण तिष्ठति । सैव सत्ता अव्यया अपरिणामिनी प्रकृतिरुपादानम् । रज्जूरगवद्ब्रह्मण्यज्ञानं विवर्तत इत्यभ्युपगमान्न ब्रह्मणः कौटस्थ्यहानिरित्यर्थः । कल्पितस्य कार्यस्य कारणं कार्यसजातीयं कल्पितमेव भवति । तत्सत्त्वं च कल्पनासमानकालिकमेव । न हि रज्जूरगस्य सत्त्वं दर्शनात्प्रागप्यस्तीत्यत्र किंचिन्मानमस्ति । न च बाधकाभावात्कार्यस्य कल्पितत्वमेवासिद्धमिति वाच्यम् । यदत्र तात्त्विकरूपावरणपूर्वकमभेदेन भाति तत्तत्र कल्पितमिति नियमेनाहंकारादेर्मिथ्यात्वावगमात् । भाति च चिदात्मनोऽसंगरूपमावृत्य तदभेदेन प्रत्यगात्माऽयमहं सुखी दुःखी ब्राह्मणो गौरः काण इति । सुवर्णे कुण्डलस्य वाऽध्यस्तत्वं माभूदिति-**तात्त्विकेति**। ननु अहंकारधर्मा दुःखादयश्चिदात्मनि चिदात्मधर्माश्चैतन्यादयोऽहंकारे चाध्यस्यन्तां किं धर्म्यध्यासकल्पनेनेति चेन्न यत्र हि धर्ममात्रमध्यस्यते न तत्र धर्मिण उल्लेखो दृश्यते। यथा लोहितः स्फटिक इति लौहित्यमात्रमुल्लिख्यते न जपाकुसुममपि अहंकाराध्यासे तु अहं दुःखीति धर्म्युल्लेखपूर्वकं धर्माध्यासः प्रतीयमानस्तत्र धर्मिणोऽप्यध्यस्ततां विस्पष्टमाचष्टे । तस्मादध्यस्तत्वेनाहमादेर्मिथ्यात्वात्तत्कारणस्याव्यक्तस्यापि तथात्वेन दृष्टिसमसमयकल्पितत्वस्यावश्यवक्तव्यत्वात्तस्मादव्यक्तमुत्पन्नमित्यव्यक्तोत्पत्तिवचनं संगच्छतेतरामिति दिक् ॥ ३१ ॥ अस्य चाध्यस्तस्याव्यक्तस्य जीवेशविभागहेतुत्वमाह—**तां योनिमिति** । विधेयापेक्षं स्त्रीत्वम् । तां निष्कलचैतन्यरूपाम् । मायया आवयोर्जीवेश्वरयोः प्रकृतिं विद्धि । तथा च श्रुतिः—'जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' इति । योऽसौ निष्कलः सदसदा-

नास्ति तस्मात्परोऽन्यो हि
पिता देवोऽथ वा द्विज ।
आत्मा हि नः स विज्ञेय-
स्ततस्तं पूजयावहे ॥ ३३

तेनैषा प्रथिता ब्रह्मन्मर्यादा लोकभाविनी ।
दैवं पित्र्यं च कर्तव्यमिति तस्यानुशासनम् ॥
ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्धर्मस्तथा यमः ॥
मरीचिरङ्गिराऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
वसिष्ठः परमेष्ठी च विवस्वान्सोम एव च ।
कर्दमश्चापि यः प्रोक्तः क्रोधो विक्रीत एव च
एकविंशतिरुत्पन्नास्ते प्रजापतयः स्मृताः ।
तस्य देवस्य मर्यादां पूजयन्तः सनातनीम् ॥
दैवं पित्र्यं च सततं तस्य विज्ञाय तत्त्वतः ॥
आत्मप्राप्तानि च ततः प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः
स्वर्गस्था अपि ये केचित्तान्नमस्यन्ति देहिनः ।
ते तत्प्रसादाद्गच्छन्ति तेनादिष्टफलां गतिम्

ये हीनाः सप्तदशभिर्गुणैः कर्मभिरेव च ।
कलाः पञ्चदश त्यक्तास्ते मुक्ता इति निश्चयः
मुक्तानां तु गतिर्ब्रह्मन् क्षेत्रज्ञ इति कल्पिता ।
स हि सर्वगुणश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ॥ ४१
दृश्यते ज्ञानयोगेन आवां च प्रसृतौ ततः ।
एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयावः सनातनम्
तं वेदाश्चाश्रमाश्चैव नानामतसमाश्रिताः ।
भक्त्या संपूजयन्त्याशु गतिं चैषां ददाति सः

ये तु तद्भाविता लोके
ह्येकान्तित्वं समाश्रिताः ।
एतदभ्यधिकं तेषां
यत्ते तं प्रविशन्त्युत ॥ ४४
इति गुह्यसमुद्देश-
स्तव नारद कीर्तितः ।
भक्त्या प्रेम्णा च विप्रर्षे
अस्मद्भक्त्या च ते श्रुतः ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि
चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३४ ॥

---

## ३३५–[१६२]

भीष्म उवाच ।

स एवमुक्तो द्विपदां वरिष्ठो
नारायणेनोत्तमपूरुषेण ।
जगाद वाक्यं द्विपदां वरिष्ठं
नारायणं लोकहितादिवासम् ॥ १

नारद उवाच ।

यदर्थमात्मप्रभवेण जन्म
कृतं त्वया धर्मगृहे चतुर्धा ।
तत्साध्यतां लोकहितार्थमद्य
गच्छामि द्रष्टुं प्रकृतिं तवाद्याम् ॥ २

पूजां गुरूणां सततं करोमि
परस्य गुह्यं न तु भिन्नपूर्वम् ।
वेदाः स्वधीता मम लोकनाथ
तप्तं तपो नानृतमुक्तपूर्वम् ॥ ३

---

त्मकः सदसती कार्यकारणे तत्कल्पनाधिष्ठानत्वात्तदात्मकः । स एव पूज्यते आनन्दात्मा सर्वैरित्यर्थः ॥३२॥ तेन मायोपाधिना ॥३४॥ सप्तदशभिः पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियैः गुणैः सत्त्वादिभिः कर्मभिः शुक्लकृष्णैः यैश्च पञ्चदशकला वैराजीयास्त्यक्ताः पूर्वार्धे लिङ्गभङ्ग उक्तः उत्तरार्धे स्थूलभङ्ग उक्तः उभयोरप्येकोनविंशतिमुखत्वस्य मांडूक्ये तुल्यवच्छ्रवणात् । तान्येवैकोनविंशतिरन्तर्भावेण सप्तदश पञ्चदश च भवन्ति ॥ ४० ॥ क्षेत्रज्ञश्चिदात्मा सर्वगुणत्वं मायया निर्गुणत्वं स्वतः ॥४१॥ प्रसृतौ निर्गतौ ॥४२॥ अस्मिन्नेवाध्याये सर्वे प्रश्नाः समाहिता ज्ञेयाः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३४ ॥

३३५

**स एवेति** ॥ १ ॥ आत्मप्रभवेण स्वयंभुवा जन्म अवतारः आद्यां मूर्तिं श्वेतद्वीपस्थाम् ॥ २ ॥ तद्दर्शने स्वस्याधिकारसंपत्तिमाह—**पूजामिति** ॥ ३ ॥

गुह्यानि चत्वारि यथागमं मे
शत्रौ च मित्रे च समोऽस्मि नित्यम्
तं चादिदेवं सततं प्रपन्न
एकान्तभावेन वृणोम्यजस्रम् ॥ ४
एभिर्विशेषैः परिशुद्धसत्त्वः
कस्मान्न पश्येयमनन्तमीशम् ।
तत्पारमेष्ठ्यस्य वचो निशम्य
नारायणः शाश्वतधर्मगोप्ता ॥ ५
गच्छेति तं नारदमुक्तवान्स
संपूजयित्वाऽऽत्मविधिक्रियाभिः ।
ततो विसृष्टः परमेष्ठिपुत्रः
सोऽभ्यर्चयित्वा तमृषिं पुराणम् ६
खमुत्पपातोत्तमयोगयुक्त-
स्ततोऽधिमेरौ सहसा निलिल्ये ।
तत्रावतस्थे च मुनिर्मुहूर्त-
मेकान्तमासाद्य गिरेः स शृङ्गे ॥ ७
आलोकयन्नुत्तरपश्चिमेन
ददर्श चाप्यद्भुतमुक्तरूपम् ।
क्षीरोदधेर्योत्तरतो हि द्वीपः
श्वेतः स नाम्ना प्रथितो विशालः ८
मेरोः सहस्रैः स हि योजनानां
द्वात्रिंशतोर्ध्वं कविभिर्निरुक्तः ।
अनिन्द्रियाश्चानशनाश्च तत्र
निष्पन्दहीनाः सुसुगन्धिनस्ते ॥ ९
श्वेताः पुंमांसो गतसर्वपापा-
श्चक्षुर्मुषः पापकृतां नराणाम् ।
वज्रास्थिकायाः सममानोन्माना
दिव्यावयवरूपाः शुभसारोपेताः १०
छत्राकृतिशीर्षा मेघौघनिनादाः
समपुष्कचतुष्का राजीवच्छदपादाः
षष्ट्या दन्तैर्युक्ताः शुक्लैरष्टाभिर्दंष्ट्राभिर्ये
जिह्वाभिर्ये विश्ववक्त्रं लेलिह्यन्ते सूर्यप्रख्यम्
देवं भक्त्या विश्वोत्पन्नं
यस्मात्सर्वे लोकाः संप्रसूताः ।
वेदा धर्मा मुनयः शान्ता
देवाः सर्वे तस्य निसर्गः ॥ १२

युधिष्ठिर उवाच ।

अनिन्द्रिया निराहारा
अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ।
कथं ते पुरुषा जाताः
का तेषां गतिरुत्तमा ॥ १३
ये च मुक्ता भवन्तीह नरा भरतसत्तम ।
तेषां लक्षणमेतद्धि तच्छ्वेतद्वीपवासिनाम् ॥
तस्मान्मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे ।
त्वं हि सर्वकथारामस्त्वां चैवापाश्रिता वयम्

भीष्म उवाच ।

विस्तीर्णैषा कथा राजन् श्रुता मे पितृसंनिधौ
यैषा तव हि वक्तव्या कथासारो हि सा मता
राजोपरिचरो नाम बभूवाधिपतिर्भुवः ।
आखण्डलसखः ख्यातो भक्तो नारायणं हरिम्
धार्मिको नित्यभक्तश्च पितुर्नित्यमतन्द्रितः ।
साम्राज्यं तेन संप्राप्तं नारायणवरात्पुरा १८

---

चत्वारि पाणिपादोदरोपस्थानि ॥ ४ ॥ उत्तरपश्चिमेन वायव्यकोणतः योत्तरतः यः उत्तरतः ॥ ८ ॥ मेरुमूलात् द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनादूर्ध्वं अनिन्द्रियाः स्थूलदेहसङ्गहीनाः अत एव अनशनाः शब्दादिविषयभोगशून्याः निष्पन्दहीनाः निश्चेष्टाश्च । सुगन्धिः परमात्मा सुगन्धिं पुष्टिवर्धनमिति मन्त्रलिङ्गात् । शोभनः सुगन्धिः सुसुगन्धिः सोऽस्त्येषां ध्यानगोचर इति सुसुगन्धिनः ॥ ९ ॥ श्वेताः शुद्धसत्त्व-प्रधानाः । चक्षुर्मुषः तेजस्वित्वात् । मानश्च उन्मानोऽपमानश्च समौ येषां ते शुभः योगप्रभावजः सारो बलं तेन उपेताः ॥ १० ॥ छत्राकृतिशीर्षाः निर्मांसग्रीवत्वात् । समं पीनत्वरहितं मुष्कौ वृषणौ चतुष्कं अंसयोः कट्योश्चान्तरालं च मुष्कचतुष्कं बाहुचतुष्कं वा किमुत्त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसत इति लिंगान्मुष्को बाहुः शुष्कं काष्ठतुल्यं चतुष्कं येषां तेशुष्कचतुष्का इत्यपि पठन्ति । राजीवत्यः पंक्तियुक्ताः शिरारेखास्तासां शतैर्युक्ताः पादा येषां नाडीशतपादा इति पाठान्तरम् । षष्ट्या षष्टिसंख्यैर्दन्तैरिव जगच्चणकचर्वणक्षमैः संवत्सरैर्युक्ताः । अष्टौ दिशः सर्वेषामाश्रयभूतास्ताभिश्च युक्ता देशकालौ येषां मुखमध्ये प्रविष्टावित्यर्थः । सूर्येण प्रख्यायते स्फुटीक्रियते दिनमासर्तुसंवत्सरात्मा महाकालस्तं विश्ववक्त्रं विश्वं वक्त्रे यस्य तादृशम् जिव्हाभिरिव स्वांगभूताभी रसनाशक्तिभिर्लेलिह्यन्ते पायसमिव लिहन्ति ॥ ११ ॥ कुत एतेषामीदृशं कालग्रसनसामर्थ्यमत आह—**देवमिति** । यस्मात् हेतोः देवं परमेश्वरं संप्रसूताः ध्यानबलेन हृदये व्यक्तीकृतवन्तः सूत्यगारे माता पुत्रमिव । तमेव देवं विशिनष्टि-विश्वोत्पन्नं विश्वमुत्पन्नं यस्मात्। वेदादयस्तस्य निसर्गः अयत्नरचिताः ॥१२॥ श्वेतद्वीपनिवासिनां जीवन्मुक्तानां च निरिन्द्रियत्वादिकं एव लक्षणम्। कथम् । मूर्तब्रह्मध्यायिनां भक्तानां अमूर्तब्रह्मध्यायिनां च योगिनां तुल्यत्वं कथमिति भावः १४

सात्वतं विधिमास्थाय
प्राक्सूर्यमुखनिःसृतम् ।
पूजयामास देवेशं
तच्छेषेण पितामहान् ॥ १९
पितृशेषेण विप्रांश्च संविभज्याश्रितांश्च सः ।
शेषान्नभुक् सत्यपरः सर्वभूतेष्वहिंसकः २०
सर्वभावेन भक्तः स देवदेवं जनार्दनम् ।
अनादिमध्यनिधनं लोककर्तारमव्ययम् २१
तस्य नारायणे भक्तिं वहतोऽमित्रकर्षिणः ।
एकशय्यासनं देवो दत्तवान्देवराट् स्वयम् ॥
आत्मराज्यं धनं चैव कलत्रं वाहनं तथा ।
यत्तद्भागवतं सर्वमिति तत्प्रोक्षितं सदा २३
काम्यनैमित्तिका राजन्यज्ञियाः परमक्रियाः
सर्वाः सात्वतमास्थाय विधिं चक्रे समाहितः
पाञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः ।
प्रायणं भगवत्प्रोक्तं भुञ्जते वाऽग्रभोजनम् ॥२५
तस्य प्रशासतो राज्यं धर्मेणामित्रघातिनः ।
नानृता वाक् समभवन्मनो दुष्टं न चाभवत्
न च कायेन कृतवान्स पापं परमण्वपि ।
ये हि ते ऋषयः ख्याताः सप्त चित्रशिखण्डिनः
तैरेकमतिभिर्भूत्वा यत्प्रोक्तं शास्त्रमुत्तमम् ।
वेदैश्चतुर्भिः समितं कृतं मेरौ महागिरौ ॥ २८
आस्यैः सप्तभिरुद्गीर्णं लोकधर्ममनुत्तमम् ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिनः ॥
सप्त प्रकृतयो ह्येता-
स्तथा स्वायंभुवोऽष्टमः ।
एताभिर्धार्यते लोक-
स्ताभ्यः शास्त्रं विनिःसृतम् ॥ ३०
एकाग्रमनसो दान्ता मुनयः संयमे रताः ।
भूतभव्यभविष्यज्ञाः सत्यधर्मपरायणाः ३१
इदं श्रेय इदं ब्रह्म इदं हितमनुत्तमम् ।
लोकान्संचिन्त्य मनसा ततः शास्त्रं प्रचक्रिरे
तत्र धर्मार्थकामा हि मोक्षः पश्चाच्च कीर्तितः
मर्यादा विविधाश्चैव दिवि भूमौ च संस्थिताः
आराध्य तपसा देवं हरिं नारायणं प्रभुम् ।
दिव्यं वर्षसहस्रं वै सर्वे ते ऋषिभिः सह ३४
नारायणानुशास्ता हि तदा देवी सरस्वती ।
विवेश तानृषीन्सर्वान् लोकानां हितकाम्यया
ततः प्रवर्तिता सम्यक्तपोविद्भिर्द्विजातिभिः
शब्दे चार्थे च हेतौ च एषा प्रथमसर्गजा ॥ ३६
आदावेव हि तच्छास्त्रमोंकारस्वरपूजितम् ।
ऋषिभिः श्रावितं यत्र तत्र कारुणिको ह्यसौ
ततः प्रसन्नो भगवाननिर्दिष्टशरीरगः ।
ऋषीनुवाच तान्सर्वानदृश्यः पुरुषोत्तमः ३८
कृतं शतसहस्रं हि श्लोकानामिदमुत्तमम् ।
लोकतन्त्रस्य कृत्स्नस्य यस्माद्धर्मः प्रवर्तते ३९
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च यस्मादेतद्भविष्यति ।
यजुर्ऋक्सामभिर्जुष्टमथर्वाङ्गिरसैस्तथा ४०
यथाप्रमाणं हि मया कृतो ब्रह्मा प्रसादतः ।
रुद्रश्च क्रोधजो विप्रा यूयं प्रकृतयस्तथा ४१
सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्भूमिरापोऽग्निरेव च ।
सर्वे च नक्षत्रगणा यच्च भूताभिशब्दितम्
अधिकारेषु वर्तन्ते यथास्वं ब्रह्मवादिनः ।
सर्वे प्रमाणं हि यथा तथा तच्छास्त्रमुत्तमम्
भविष्यति प्रमाणं वै एतन्मदनुशासनम् ।
तस्मात्प्रवक्ष्यते धर्मान्मनुः स्वायंभुवः स्वयम्
उशना बृहस्पतिश्चैव यदोत्पन्नौ भविष्यतः ।
तदा प्रवक्ष्यतः शास्त्रं युष्मन्मतिभिरुद्धृतम् ॥
स्वायंभुवेषु धर्मेषु शास्त्रे चौशनसे कृते ।
बृहस्पतिमते चैव लोकेषु प्रतिचारिते
युष्मत्कृतमिदं शास्त्रं प्रजापालो वसुस्ततः ।
बृहस्पतिसकाशाद्वै प्राप्स्यते द्विजसत्तमाः
स हि सद्भावितो राजा मद्भक्तश्च भविष्यति
तेन शास्त्रेण लोकेषु क्रियाः सर्वाः करिष्यति
एतद्धि युष्मच्छास्त्राणां शास्त्रमुत्तमसंज्ञितम्
एतदर्थ्यं च धर्म्यं च रहस्यं चैतदुत्तमम् ४९
अस्य प्रवर्तनाच्चैव प्रजावन्तो भविष्यथ ।
स च राजश्रिया युक्तो भविष्यति महान्वसुः
संस्थिते तु नृपे तस्मिन् शास्त्रमेतत्सनातनम्
अन्तर्धास्यति तत्सर्वमेतद्वः कथितं मया ५१
एतावदुक्त्वा वचनमदृश्यः पुरुषोत्तमः ।
विसृज्य तानृषीन्सर्वान्कामपि प्रसृतो दिशं

सात्वतं सात्वतानां पाञ्चरात्राणां हितम् । तच्छेषेण विष्णुशेषेण ॥ १९ ॥ प्रायणं उपहारम् ॥ २५ ॥ सप्त प्रकृतयो महदहंकारादिमूर्तयः स्वायंभुवस्तु मूलप्रकृतिरेव । महत्कर्तृकत्वादिदं शास्त्रमुपादेयमिति पाञ्चरात्रागमस्तुतिः स्तुतिरध्यायशेषेण । स्पष्टार्थश्चाध्यायः ॥ ३० ॥

ततस्ते लोकपितरः सर्वलोकार्थचिन्तकाः ।
प्रावर्तयन्त तच्छास्त्रं धर्मयोनिं सनातनम् ५३
उत्पन्नेऽङ्गिरसे चैव युगे प्रथमकल्पिते ।
साङ्गोपनिषदं शास्त्रं स्थापयित्वा बृहस्पतौ
जग्मुर्यथेप्सितं देशं तपसे कृतनिश्चयाः ।
धारणाः सर्वलोकानां सर्वधर्मप्रवर्तकाः ॥५५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३५ ॥

## ३३६-[१६३]

भीष्म उवाच ।

ततोऽतीते महाकल्पे उत्पन्नेऽङ्गिरसः सुते ।
बभूवुर्निर्वृता देवा जाते देवपुरोहिते १
बृहद्ब्रह्म महच्चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः ।
एभिः समन्वितो राजन्गुणैर्विद्वान् बृहस्पतिः
तस्य शिष्या बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः
अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक् चित्रशिखंडिजं
स राजा भावितः पूर्वं दैवेन विधिना वसुः
पालयामास पृथिवीं दिवमाखण्डलो यथा
तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः ।
बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह ५
प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ६
धनुषाख्योऽथ रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू ।
ऋषिर्मेधातिथिश्चैव ताण्ड्यश्चैव महानृषिः ७
ऋषिः शान्तिर्महाभागस्तथा वेदशिराश्च यः ।
ऋषिश्रेष्ठश्च कपिलः *शालिहोत्रपिता स्मृतः
=आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशम्पायनपूर्वजः ।
कण्वोऽथ देवहोत्रश्च एते षोडश कीर्तिताः ९
संभूताः सर्वसंभारास्तस्मिन्राजन्महाक्रतौ ।
न तत्र पशुघातोऽभूत्स राजैवं स्थितोऽभवत् ॥
अहिंस्रः शुचिरक्षुद्रो निराशीः कर्मसंस्तुतः
आरण्यकपदोद्भूता भागास्तत्रोपकल्पिताः ११
प्रीतस्ततोऽस्य भगवान्देवदेवः पुरातनः ।
साक्षात्तं दर्शयामास सोऽदृश्योऽन्येन केनचित्
स्वयं भागमुपाघ्राय पुरोडाशं गृहीतवान् ।
अदृश्येन हृतो भागो देवेन हरिमेधसा १३
बृहस्पतिस्ततः क्रुद्धः स्रुचमुद्यम्य वेगितः ।
आकाशं घ्नन्स्रुचः पाते रोषादश्रूण्यवर्तयत
उवाच चोपरिचरं मया भागोऽयमुद्यतः ।
ग्राह्यः स्वयं हि देवेन मत्प्रत्यक्षं न संशयः

युधिष्ठिर उवाच ।

उद्यता यज्ञभागा हि साक्षात्प्राप्ताः सुरैरिह ।
किमर्थमिह न प्राप्तो दर्शनं स हरिर्विभुः १६

भीष्म उवाच ।

ततः स तं समुद्धूतं भूमिपालो महान्वसुः ।
प्रसादयामास मुनिं सदस्यास्ते च सर्वशः
ऊचुश्चैनमसंभ्रान्ता न रोषं कर्तुमर्हसि ।
नैष धर्मः कृतयुगे यस्त्वं रोषमचीकृथाः १८
अरोषणो ह्यसौ देवो यस्य भागोऽयमुद्यतः ।
न शक्यः स त्वया द्रष्टुमस्माभिर्वा बृहस्पते
यस्य प्रसादं कुरुते स वै तं द्रष्टुमर्हति ।
एकतद्वितत्रिताश्चोचुस्ततश्चित्रशिखण्डिनः ॥
वयं हि ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः परिकीर्तिताः ।
गता निःश्रेयसार्थं हि कदाचिद्दिशमुत्तराम्
तप्त्वा वर्षसहस्राणि चरित्वा ×तप उत्तमम्
एकपादाः स्थिताः सम्यक्काष्ठभूताः समाहिताः
मेरोरुत्तरभागे तु क्षीरोदस्यानुकूलतः ।
स देशो यत्र नस्तप्तं तपः परमदारुणम् २३
कथं पश्येम हि वयं देवं नारायणात्मकम् ।
वरेण्यं वरदं तं वै देवदेवं सनातनम् २४

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३३५॥

३३६

ततोऽतीते महाकल्पे इत्यध्यायः परमेश्वरदर्शनस्य दौर्लभ्यं तद्भक्तदर्शनाच्च तद्दर्शनसिद्धिरित्येतत्प्रतिपादयति स्पष्टार्थश्च ॥ १ ॥

*शालिहोत्रपिता कपिल एकः । =आद्यः कठः कठशाखादर्शी एकः वैशंपायनपूर्वजस्तैत्तिरिरेकः । ×तपो व्रतम् ।

कथं पश्येम हि वयं देवं नारायणं त्विति ।
अथ व्रतस्यावभृथे वागुवाचाशरीरिणी २५
स्निग्धगंभीरया वाचा प्रहर्षणकरी विभो ।
सुतप्तं वस्तपो विप्राः प्रसन्नेनान्तरात्मना २६
यूयं जिज्ञासवो भक्ताः कथं द्रक्ष्यथ तं विभुम्
क्षीरोदधेरुत्तरतः श्वेतद्वीपो महाप्रभः ॥ २७
तत्र नारायणपरा मानवाश्चन्द्रवर्चसः ।
एकान्तभावोपगतास्ते भक्ताः पुरुषोत्तमम् ॥
ते सहस्रार्चिषं देवं
प्रविशन्ति सनातनम् ।
अनिन्द्रिया निराहारा
अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ॥ २९
एकान्तिनस्ते पुरुषाः श्वेतद्वीपनिवासिनः ।
गच्छध्वं तत्र मुनयस्तत्रात्मा मे प्रकाशितः ॥
अथ श्रुत्वा वयं सर्वे वाचं तामशरीरिणीम् ।
यथाख्यातेन मार्गेण तं देशं *प्रतिपेदिरे॥ ३१
प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं तच्चित्तास्तद्दिदृक्षवः ।
ततोऽस्मद्दृष्टिविषयस्तदा प्रतिहतोऽभवत्॥३२
न च पश्याम पुरुषं तत्तेजोहृतदर्शनाः ।
ततो नः प्रादुरभवद्विज्ञानं देवयोगजम् ॥ ३३
न किलातप्ततपसा शक्यते द्रष्टुमञ्जसा ।
ततः पुनर्वर्षशतं तप्त्वा तात्कालिकं महत् ॥
व्रतावसाने च शुभान्नरान्ददृशिरे वयम् ।
श्वेतांश्चन्द्रप्रतीकाशान्सर्वलक्षणलक्षितान् ३५
नित्याञ्जलिकृतान्ब्रह्म जपतः प्रागुदङ्मुखान्
मानसो नाम स जपो जप्यते तैर्महात्मभिः ॥
तेनैकाग्रमनस्त्वेन प्रीतो भवति वै हरिः ।
याऽभवन्मुनिशार्दूल भाः सूर्यस्य युगक्षये ३७
एकैकस्य प्रभा तादृक्साऽभवन्मानवस्य ह ।
तेजोनिवासः स द्वीप इति वै मेनिरे वयम् ॥
न तत्राभ्यधिकः कश्चित्सर्वे ते समतेजसः ।
अथ सूर्यसहस्रस्य प्रभां युगपदुत्थिताम् ॥ ३९
सहसा दृष्टवन्तः स्म पुनरेव बृहस्पते ।
सहिताश्चाभ्यधावन्त ततस्ते मानवा द्रुतम्॥
कृताञ्जलिपुटा हृष्टा नम इत्येव वादिनः ।
ततो हि वदतां तेषामश्रौष्म विपुलं ध्वनिम्॥
बलिः किलोपह्रियते तस्य देवस्य तैर्नरैः ।
वयं तु तेजसा तस्य सहसा हृतचेतसः ॥ ४२
न किंचिदपि पश्यामो हतचक्षुर्बलेन्द्रियाः ।
एकस्तु शब्दो विततः श्रुतोऽस्माभिरुदीरितः
जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥ ४४
इति शब्दः श्रुतोऽस्माभिः
शिक्षाक्षरसमन्वितः ।
एतस्मिन्नन्तरे वायुः
सर्वगन्धवहः शुचिः ॥ ४५
दिव्यान्युवाह पुष्पाणि
कर्मण्याश्चौषधीस्तथा ।
तैरिष्टः ×पञ्चकालज्ञै-
र्हरिरेकान्तिभिर्नरैः ॥ ४६
भक्त्या परमया युक्तैर्मनोवाक्कर्मभिस्तदा ।
नूनं तत्रागतो देवो यथा तैर्वागुदीरिता ॥ ४७
वयं त्वेनं न पश्यामो मोहितास्तस्य मायया।
मारुते संनिवृत्ते च बलौ च प्रतिपादिते॥ ४८
चिन्ताव्याकुलितात्मानो
जाताः स्मोऽङ्गिरसां वर ।
मानवानां सहस्रेषु
तेषु वै शुद्धयोनिषु ॥ ४९
अस्मान्न कश्चिन्मनसा
चक्षुषा वाऽप्यपूजयत् ।
तेऽपि स्वस्था मुनिगणा
एकभावमनुव्रताः ॥ ५०
नास्मासु दधिरे भावं
ब्रह्मभावमनुष्ठिताः ।
ततोऽस्मान्सुपरिश्रान्तां-
स्तपसा चातिकर्शितान् ॥ ५१
उवाच स्वस्थं किमपि भूतं तत्राशरीरकम् ।

देव उवाच ।

दृष्टा वः पुरुषाः श्वेताः सर्वेन्द्रियविवर्जिताः
दृष्टो भवति देवेश एभिर्दृष्टैर्द्विजोत्तमैः ।
गच्छध्वं मुनयः सर्वे यथागतमितोऽचिरात्॥
न स शक्यस्त्वभक्तेन द्रष्टुं देवः कथञ्चन ।
कामं कालेन महता एकान्तित्वमुपागतैः ५४
शक्यो द्रष्टुं स भगवान्प्रभामण्डलदुर्दृशः ।
महत्कार्यं च कर्तव्यं युष्माभिर्द्विजसत्तमाः ५५
इतः कृतयुगेऽतीते विपर्यासं गतेऽपि च ।
वैवस्वतेऽन्तरे विप्राः प्राप्ते त्रेतायुगे पुनः ॥५६

* पुरुषव्यत्यय आर्षः एवमग्रेऽपि ददृशिरे इत्यादौ । × पञ्चकालज्ञैः पञ्चरात्रैः तत्रापि रात्रिपदेन दीक्षा नित्यनैमित्तिककाम्यपूजाप्रतिष्ठाकाला लक्ष्यन्ते । पञ्चयज्ञानां कालविद्भिर्वा ।

सुराणां कार्यसिद्ध्यर्थं सहाया वै भविष्यथ ।
ततस्तदद्भुतं वाक्यं निशम्यैवामृतोपमम् ५७
तस्य प्रसादात्प्राप्ताः स्मो देशमीप्सितमञ्जसा
एवं सुतपसा चैव हव्यकव्यैस्तथैव च ॥ ५८
देवोऽस्माभिर्न दृष्टः स कथं त्वं द्रष्टुमर्हसि ।
नारायणो महद्भूतं विश्वसृग्घव्यकव्यभुक् ५९
अनादिनिधनोऽव्यक्तो देवदानवपूजितः ।
एवमेकतवाक्येन द्वितत्रितमतेन च ॥ ६०
अनुनीतः सदस्यैश्च बृहस्पतिरुदारधीः ।
समापयत्ततो यज्ञं दैवतं समपूजयत् ॥ ६१
समाप्तयज्ञो राजाऽपि प्रजां पालितवान्वसुः।
ब्रह्मशापाद्दिवो भ्रष्टः प्रविवेश महीं ततः ॥६२
स राजा राजशार्दूल सत्यधर्मपरायणः ।
अन्तर्भूमिगतश्चैव सततं धर्मवत्सलः ॥ ६३
नारायणपरो भूत्वा नारायणजपं जपन् ।
तस्यैव च प्रसादेन पुनरेवोत्थितस्तु सः॥ ६४
महीतलाद्गतः स्थानं ब्रह्मणः समनन्तरम् ।
परां गतिमनुप्राप्त इति नैष्ठिकमञ्जसा ॥ ६५

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३६ ॥

## ३३७-[१६४]

युधिष्ठिर उवाच ।
यदा भागवतोऽत्यर्थमासीद्राजा महान्वसुः
किमर्थं स परिभ्रष्टो विवेश विवरं भुवः ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऋषीणां चैव संवादं त्रिदशानां च भारत २
अजेन यष्टव्यमिति
प्राहुर्देवा द्विजोत्तमान् ।
स च च्छागोऽप्यजो ज्ञेयो
नान्यः पशुरिति स्थितिः ॥ ३
ऋषय ऊचुः ।
बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः ।
अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ
नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ।
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः ५
भीष्म उवाच ।
तेषां संवदतामेवमृषीणां विबुधैः सह ।
मार्गागतो नृपश्रेष्ठस्तं देशं प्राप्तवान्वसुः ६
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्समग्रबलवाहनः ।
तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयान्तं वसुं ते त्वन्तरिक्षगम्

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३३६॥

३३७

**यदा भगवतोऽत्यर्थमि**त्यादिरध्यायो वैष्णवानां हिंस्रयज्ञवर्जनार्थः॥१॥ अजसंज्ञानि बीजानि तस्मादेष एतेषां पशूनां प्रयुक्ततमो यदजस्तेजमालभन्त सोऽजादालब्धादुदक्रामत्स इमां प्राविशत्तस्मादियं मेध्याऽभवत्तमस्यामन्ववायन्सोऽनुगतो व्रीहिरभवदिति बह्वृचब्राह्मणम् । सर्वेषां पशूनां स यज्ञो मेध्यताख्यः इमां पृथिवीं प्रविष्टः अन्ववायन् अन्वेषितवन्तः । इयं श्रुतिः पुरोडाशस्तुतिमात्रपरा न तु पशूनाममेध्यत्वप्रतिपादनपरा। न हि निन्दा निंद्यं निन्दितुं प्रवर्तते अपि तु विधेयं स्तोतुमिति न्यायात्। इति भोगलोलुपानां देवानां मतम् । वीतरागाणामृषीणां तु मानान्तराविसंवादादहिंसाशास्त्रानुग्रहाच्च अवान्तरतात्पर्येण प्रतीयमानोऽर्थो यथाभूत एव न तु स स्वार्थे अप्रमाणम् । यथाहुः संप्रदायविदः—
'विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते ।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः ' इति ।
तत्र यजमानः प्रस्तर इत्यादिः प्रस्तरयजमानयोरभेदस्य प्रत्यक्षविरोधात् प्रस्तरस्तुत्यर्थं गुणवादोऽयम् । 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' इति लोकावगतार्थत्वादनुवादः 'मेधातिथिं ह काण्वायनं मेषो भूत्वेन्द्रो जहार' इत्यादिर्विरोधानुवादयोरभावात् भूतार्थवाद इति वृद्धश्लोकार्थः । न चात्रापि क्रत्वर्थेनालंभविधिना पुरुषार्थनिषेधस्य विरोधोऽस्ति अतोऽर्थवादोऽप्ययं स्वार्थेऽवान्तरतात्पर्यविषया देवताधिकरणन्यायेन प्रामाण्यमश्नुवीत । अन्यथा भारतरामायणादीनामपि स्वार्थे प्रामाण्यं विहन्येतेति । तस्मादजस्थस्य मेधस्य बीजेषु संक्रमाद्बीजान्येवाजसंज्ञानीति युक्तम् ॥ ४ ॥

ऊचुर्द्विजातयो देवानेष च्छेत्स्यति संशयम् ।
यज्वा दानपतिः श्रेष्ठः सर्वभूतहितप्रियः ८
कथं स्विदन्यथा ब्रूयादेष वाक्यं महान्वसुः ।
एवं ते संविदं कृत्वा विबुधा ऋषयस्तथा ९
अपृच्छन्सहिताभ्येत्य वसुं राजानमन्तिकात्
भो राजन्केन यष्टव्यमजेनाहोस्विदौषधैः १०
एतन्नः संशयं छिन्धि प्रमाणं नो भवान्मतः ।
स तान्कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः ॥
कस्य वै को मतः कामो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमाः

ऋषय ऊचुः ।

धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप
देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन्वदस्व नः

भीष्म उवाच ।

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात्
छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ।
कुपितास्ते ततः सर्वे मुनयः सूर्यवर्चसः १४
ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनम् ।
सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद्दिवः पत १५
अद्यप्रभृति ते राजन्नाकाशे विहता गतिः ।
अस्मच्छापाभिघातेन महीं भित्त्वा प्रवेक्ष्यसि
ततस्तस्मिन्मुहूर्तेऽथ राजोपरिचरस्तदा ।
अधो वै संबभूवाशु भूमेर्विवरगो नृप १७
स्मृतिस्त्वेवं न हि जहौ तदा नारायणाज्ञया
देवास्तु सहिताः सर्वे वसोः शापविमोक्षणं
चिन्तयामासुरव्यग्राः सुकृतं हि नृपस्य तत् ।
अनेनास्मत्कृते राज्ञा शापः प्राप्तो महात्मना

अस्य प्रतिप्रियं कार्यं
सहितैर्नो दिवौकसः ।
इति बुद्ध्या व्यवस्याशु
गत्वा निश्चयमीश्वराः ॥२०

ऊचुः संहृष्टमनसो राजोपरिचरं तदा ।
ब्रह्मण्यदेवभक्तस्त्वं सुरासुरगुरुर्हरिः २१
कामं स तव तुष्टात्मा कुर्याच्छापविमोक्षणम्
मानना तु द्विजातीनां कर्तव्या वै महात्मनां
अवश्यं तपसा तेषां फलितव्यं नृपोत्तम ।
यतस्त्वं सहसा भ्रष्ट आकाशान्मेदिनीतलम्
एकं त्वनुग्रहं तुभ्यं दद्मो वै नृपसत्तम ।
यावत्त्वं शापदोषेण कालमासिष्यसेऽनघ ॥
भूमेर्विवरगो भूत्वा तावत्त्वं कालमाप्स्यसि
यज्ञेषु सुहुतां विप्रैर्वसोर्धारां समाहितैः २५

प्राप्स्यसेऽस्मदनुध्याना-
न्मा च त्वां ग्लानिरस्पृशत् ।
न क्षुत्पिपासे राजेन्द्र
भूमेश्छिद्रे भविष्यतः ॥२६

वसोर्धाराभिपीतत्वात्तेजसाऽऽप्यायितेन च
स देवोऽस्मद्वरात्प्रीतो ब्रह्मलोकं हि नेष्यति
एवं दत्त्वा वरं राज्ञे सर्वे ते च दिवौकसः ।
गताः स्वभवनं देवा ऋषयश्च तपोधनाः २८
चक्रे वसुस्ततः पूजां विष्वक्सेनाय भारत
जप्यं जगौ च सततं नारायणमुखोद्गतम् २९
तत्रापि पञ्चभिर्यज्ञैः पञ्चकालानरिन्दम ।
अयजद्धरिं सुरपतिं भूमेर्विवरगोऽपि सन् ॥
ततोऽस्य तुष्टो भगवान्भक्त्या नारायणो हरिः
अनन्यभक्तस्य सततं तत्परस्य जितात्मनः ॥
वरदो भगवान्विष्णुः समीपस्थं द्विजोत्तमम्
गरुत्मन्तं महावेगमाबभाषेप्सितं तदा ३२
द्विजोत्तम महाभाग पश्यतां वचनान्मम ।
सम्राड्राजा वसुर्नाम धर्मात्मा संशितव्रतः
ब्राह्मणानां प्रकोपेन प्रविष्टो वसुधातलम् ।
मानितास्ते तु विप्रेन्द्रास्त्वं तु गच्छ द्विजोत्तम
भूमेर्विवरसंगुप्तं गरुडेह ममाज्ञया ।
अधश्चरं नृपश्रेष्ठं खेचरं कुरु मा चिरम् ३५
गरुत्मानथ विक्षिप्य पक्षौ मारुतवेगवान् ।
विवेश विवरं भूमेर्यत्रास्ते पार्थिवो वसुः ३६
तत एनं समुत्क्षिप्य सहसा विनतासुतः ।
उत्पपात नभस्तूर्णं तत्र चैनममुञ्चत ३७
अस्मिन्मुहूर्ते संजज्ञे राजोपरिचरः पुनः ।
सशरीरो गतश्चैव ब्रह्मलोकं नृपोत्तमः ३८
एवं तेनापि कौन्तेय वाग्दोषाद्देवताज्ञया ।
प्राप्ता गतिरधस्तात्तु द्विजशापान्महात्मना
केवलं पुरुषस्तेन सेवितो हरिरीश्वरः ।
ततः शीघ्रं जहौ शापं ब्रह्मलोकमवाप च ४०

अत्र राज्ञः शापहेतुत्वात् हिंस्रयज्ञोऽधर्मोऽपि वसोर्धाराभाग-प्रापकदेवानुग्रहवशात्किंचित्फलमपि जनयतीत्यत्रैव सूचितम्। वसोर्धारेत्यलुक्समासः ॥२४॥ अध्यायतात्पर्यमाह–केवलमिति ॥ ४० ॥

भीष्म उवाच ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं संभूता मानवा यथा ।
नारदोऽपि यथा श्वेतं द्वीपं स गतवानृषिः ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ४१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३७ ॥

## ३३८-[१६५]

भीष्म उवाच ।
प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं नारदो भगवानृषिः ।
ददर्श तानेव नरान् श्वेतांश्चन्द्रसमप्रभान् १
पूजयामास शिरसा मनसा तैश्च पूजितः ।
दिदृक्षुर्जप्यपरमः सर्वकृच्छ्रगतः स्थितः ॥ २
भूत्वैकाग्रमना विप्र ऊर्ध्वबाहुः समाहितः ।
स्तोत्रं जगौ स विश्वाय निर्गुणाय गुणात्मने
नारद उवाच ।
१ नमस्ते देवदेवेश २ निष्क्रिय ३ निर्गुण ४ लोकसाक्षिन् ५ क्षेत्रज्ञ ६ पुरुषोत्तम ७ अनन्त ८ पुरुष ९ महापुरुष १० पुरुषोत्तम ११ त्रिगुण १२ प्रधान १३ अमृत १४ अमृताख्य १५ अनन्ताख्य १६ व्योम १७ सनातन १८ सदसद्व्यक्ताव्यक्त १९ ऋतधामन् २० आदिदेव २१ वसुप्रद २२ प्रजापते २३ सुप्रजापते २४ वनस्पते २५ महाप्रजापते २६ ऊर्जस्पते २७ वाचस्पते २८ जगत्पते २९ वनस्पते ३० दिवस्पते ३१ मरुत्पते ३२ सलिलपते ३३ पृथिवीपते ३४ दिक्पते ३५ पूर्वनिवास ३६ गुह्य ३७ ब्रह्मपुरोहित ३८ ब्रह्मकायिक ३९ महाराजिक ४० चातुर्महाराजिक ४१ भासुर ४२ महाभासुर ४३ सप्तमहाभाग

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३३७॥

### ३३८

**प्राप्येति** ॥ १ ॥ ( १ ) देवैरिन्द्रियैर्दीव्यतीति जीवो देवदेवस्तस्येशोऽन्तर्यामी, ( २ ) निष्क्रियः व्यापकत्वात्, ( ३ ) निर्गुणः असंगत्वात्, ( ४ ) लोकसाक्षी उदासीनबोधरूपत्वात्, ( ५ ) क्षेत्रज्ञः देहद्वयप्रकाशको जीवः, ( ६ ) पुरुषोत्तमः शरीरजीवेशेभ्यो ज्यायान्, ( ७ ) अत एवानन्तो देशतः कालतो वस्तुतश्च परिच्छेदशून्यः, ( ८ ) पुराणि व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीराणि ओषति दहतीति पुरुषः अत एवानन्त इत्युक्तम्, ( ९ ) महापुरुषसमष्टिस्थूलादिदाहकत्वात्, ( १० ) अत एव पुरुषेषु अन्नमयादिषु उत्तमः सत्यज्ञानानन्तानन्दरूपः, ( ११ ) त्रिगुणेत्यादिना मायिकं रूपं स्तौति सत्त्वरजस्तमोरूप, ( १२ ) प्रधानतत्संघातरूप, ( १३ ) अमृतं सुधा, ( १४ ) अमृता देवास्तदाख्य, (१५) अनन्ताख्य **शेषशर्मन्**, ( १६ ) व्योम अव्याकृताख्य, ( १७ ) सनातनोऽनादिः, ( १८ ) सदसतोः कार्यकारणयोः रूपेण व्यक्तोऽव्यक्तश्च ग्राह्योऽग्राह्यश्चेत्यर्थः, ( १९ ) ऋतं सत्यं अविकारं धाम प्रकाशो यस्य, ( २० ) आदिदेवो नारायणः, ( २१ ) वसुप्रदः कर्मफलदाता, ( २२ ) प्रजापतिर्दक्षादिः, ( २३ ) सुप्रजापतिः सनकादिः मोक्षगुरुत्वात्, ( २४ ) वनस्पतिः अश्वत्थादिः, ( २५ ) महाप्रजापतिः चतुर्मुखः, ( २६ ) ऊर्जस्पते ऊर्जः ब्रह्मादयो जीवरूपाः पशवस्तेषां पते अलुक्समासः एकत्वं जात्यभिप्रायम्, ( २७ ) वाचस्पतिः वाचः प्रवर्तको देवाचार्यो वा, ( २८ ) जगत्पतिरिन्द्रः, ( २९ ) मनस्पतिः सूत्रात्मा, ( ३० ) दिवस्पतिः सूर्यः, ( ३१ ) मरुत्पतिः प्राणवायुः, ( ३२ ) सलिलपतिर्वरुणः ( ३३ ) पृथिवीपतिः राजा, ( ३४ ) दिक्पतिः इन्द्राग्न्यादिः, ( ३५ ) पूर्वनिवास महाप्रलये जगदाधार, ( ३६ ) गुह्य अप्रकाश्य, ( ३७ ) ब्रह्मपुरोहित ब्रह्मणे वेदप्रद । 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इति श्रुतेः । ( ३८ ) ब्रह्मकायिक ब्राह्मणशरीर साध्ययज्ञाध्ययनादिरूप, ( ३९ ) ( ४० ), ( ४१ ), ( ४२ ), महाराजिकादयश्चत्वारो देवानां गणविशेषाः ( ४३ ) सप्तभिर्गायत्र्यादिभिरर्पणीयाः सप्तैव महान्तो यज्ञभागा यस्य स सप्तमहाभागः,

**४४ याम्य ४५ महायाम्य ४६ संज्ञासंज्ञ ४७ तुषित ४८ महातुषित ४९ प्रमर्दन ५० परिनिर्मित ५१ अपरिनिर्मित ५२ वशवर्तिन् ५३ अपरिनिन्दित ५४ अपरिमित ५५ वशवर्तिन् ५६ अवशवर्तिन् ५७ यज्ञ ५८ महायज्ञ ५९ यज्ञसंभव ६० यज्ञयोने ६१ यज्ञगर्भ ६२ यज्ञहृदय ६३ यज्ञस्तुत ६४ यज्ञभागहर ६५ पञ्चयज्ञ ६६ पञ्चकालकर्तृपते ६७ पाञ्चरात्रिक ६८ वैकुण्ठ ६९ अपराजित ७० मानसिक ७१ नामनामिक ७२ परस्वामिन् ७३ सुस्नात ७४ हंस ७५ परमहंस ७६ महाहंस ७७ परमयाज्ञिक ७८ सांख्ययोग ७९ सांख्यमूर्ते ८० अमृतेशय ८१ हिरण्येशय ८२ देवेशय ८३ कुशेशय ८४ ब्रह्मेशय ८५ पद्मेशय ८६ विश्वेश्वर ८७ विष्वक्सेन ८८ त्वं जगदन्वयः ८९ त्वं जगत्प्रकृतिः ९० तवाग्निरास्यम् ९१ वडवामुखोऽग्निः ९२ त्वमाहुतिः ९३ सारथिः ९४ त्वं वषट्कारः ९५ त्वमोङ्कारः ९६ त्वं तपः ९७ त्वं मनः ९८ त्वं चन्द्रमाः ९९ त्वं चक्षुराज्यम् १०० त्वं सूर्यः १०१ त्वं दिशां गजः १०२ त्वं दिग्भानो १०३ विदिग्भानो १०४ हयशिरः १०५ प्रथमत्रिसौपर्णः १०६ वर्णधरः १०७ पञ्चाग्ने १०८ त्रिणाचिकेत १०९ षडङ्गनिधान ११० प्राग्ज्योतिष १११ ज्येष्ठसामग ११२ सामिकव्रतधर ११३ अथर्वशिराः ११४ पञ्चमहाकल्प ११५ फेनपाचार्य ११६ वालखिल्य ११७ वैखानस-११८ अभग्नयोग ११९ अभग्नपरिसंख्यान १२० युगादे १२१ युगमध्य**

---

( ४४ ) याम्य यमगण, ( ४५ ) महायाम्य चित्रगुप्तादिरूप, ( ४६ ) संज्ञा यमपत्नी तन्नामक, ( ४७ ) ( ४८ ) तुषितमहातुषितौ देवगणविशेषौ, ( ४९ ) प्रमर्दनो मृत्युः, ( ५० ) परिनिर्मितं मृत्युसहायत्वेन कल्पितं कामरोगादि, ( ५१ ) अपरिनिर्मितं तदन्यत् शमारोग्यादि ( ५२ ) वशवर्ती कामादिग्रस्तः, ( ५३ ) अपरिनिन्दितः शमादिमत्त्वात्, ( ५४ ) अपरिमितः सर्वजातीयेष्वपि रूपेषु अनंतः, ( ५५ ) वशवर्ती शास्यः, ( ५६ ) अवशवर्ती शास्ता, ( ५७ ) यज्ञोऽग्निहोत्रादिः, ( ५८ ) महायज्ञो ब्रह्मयज्ञादिः, ( ५९ ) यज्ञसंभवो ऋत्विगादिः, ( ६० ) यज्ञयोनिर्वेदः, ( ६१ ) यज्ञगर्भोऽग्निः, ( ६२ ) यज्ञहृदयं यज्ञाङ्गोपासनारूपः, ( ६६ ) पञ्चकाला अहोरात्रमासर्त्वयनसंवत्सराः, पञ्च कर्तारः—

'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्
विविधा च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।
शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः' ।

इतिगीतोक्तास्तेषां पते, ( ६७ ) पञ्चरात्रागमगम्य, ( ६८ ) वैकुण्ठ अकुण्ठित विकुंठायाः पुत्रेति वा, ( ७० ) मानसिक मनउपाधिक, ( ७१ ) नामनामिक नाम्नि नाम्नि विदित 'नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति' इति श्रुतेः, ( ७२ ) परो ब्रह्मा तस्य स्वामी, ( ७३ ) सुस्नात समाप्तवेदव्रत, ( ७४ ) हंसस्त्रिदण्डी, ( ७५ ) परमहंस एकदण्डी, ( ७६ ) महाहंसो दंडादिहीनः, ( ८० ), ( ८१ ), ( ८२ ), ( ८३ ), ( ८४ ), ( ८५ ), ( ८६ ), अमृतं जीवः हिरण्यं हृदयं देवा इन्द्रियाणि कुशं समुद्रजलं ब्रह्म वेदः पद्मं ब्रह्माण्डं एतेषु शयनादमृतेशयादिषट्संज्ञकः, ( ८७ ) विष्वक् सर्वतो गमनशीला भक्तपालनार्थं सेना यस्य, ( ८८ ) जगति सत्तारूपेणान्वयो यस्य, ( ९१ ), ( ९२ ) वडवामुखजोऽग्निस्त्वमेव ( ९३ ), साराथिरग्निश्च त्वं सारथिरस्य केशीति मन्त्रवर्णात् । अग्निर्वायुःसूर्यश्च केशिन इति स्मृतौ सत्यामप्यत्राग्निरेव प्रकरणाद्ग्राह्यः ( ९९ ) चक्षुराज्यं अवेक्षणेन संस्कृतं यज्ञियं सर्पिः, ( १०२ ) भानुर्भासकः, ( १०३ ) विदिक् दिक्कोणः, ( १०५ ) ब्रह्ममेतु मामित्यादीनि त्रीणि सुपर्णानि तैत्तिरीयोपनिषदि पठ्यन्ते । तत्र प्रथमं सवितृदैवत्यं त्वं जगत्कर्तेत्यर्थः चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा इत्यादिऋग्वेदमन्त्रत्रयं वा प्रथमत्रिसुपर्णं, ( १०६ ) वर्णाः ब्राह्मणदयस्तेषां धारकः, ( १०७ ) पञ्च गार्हपत्यदक्षिणाहवनीयसभ्यावसथ्याख्याग्निरूप, ( १०८ ) त्रिणाचिकेत नाचिकेताख्योऽग्निः त्रिवारं चितो येन स त्रिणाचिकेतसंज्ञ, ( १०९ ) षडंगानि शिक्षादीनि निधीयन्तेऽस्मिन्निति सांगवेदरूप, ( ११० ), ( १११ ) प्राग्ज्योतिषं ज्येष्ठसामेति च द्वे सामनी ताभ्यां गेय । जोतोवाहायीति सामप्राग्ज्योतिः मूर्द्धानं दिव इत्यस्यामृचि गीयमानं साम ज्येष्ठसाम, ( ११२ ) सामिकानां सामगानां व्रतं वेदव्रतं धारयतीति सामिकव्रतधर, ( ११३ ) अथर्वशिरःसंज्ञा उपनिषत् तद्रूप ( ११४ ) पञ्चमहाकल्पाः सौरशाक्तगाणेशशैववैष्णवागमास्तत्प्रतिपाद्य ( ११९ ) परिसंख्यानं विचारः

१२२ युगनिधन १२३ अखण्डल १२४ प्राचीनगर्भ १२५ कौशिक १२६ पुरुष्टुत १२७ पुरुहूत १२८ विश्वकृत् १२९ विश्वरूप १३० अनन्तगते १३१ अनन्तभोग १३२ अनन्त १३३ अनादे १३४ अमध्य १३५ व्यक्तमध्य १३६ अव्यक्तनिधन १३७ व्रतावास १३८ समुद्राधिवास १३९ यशोवास १४० तपोवास १४१ दमावास १४२ लक्ष्म्यावास १४३ विद्यावास १४४ कीर्त्यावास १४५ श्रीवास १४६ सर्वावास १४७ वासुदेव १४८ सर्वच्छन्दक १४९ हरिहय १५० हरिमेध १५१ महायज्ञभागहर १५२ वरप्रद १५३ सुखप्रद १५४ धनप्रद १५५ हरिमेध १५६ यम १५७ नियम १५८ महानियम १५९ कृच्छ्र १६० अतिकृच्छ्र १६१ महाकृच्छ्र १६२ सर्वकृच्छ्र १६३ नियमधर १६४ निवृत्तभ्रम १६५ प्रवचनगत १६६ पृश्निगर्भप्रवृत्त १६७ प्रवृत्तवेदक्रिय १६८ अज १६९ सर्वगते १७० सर्वदर्शिन् १७१ अग्राह्य १७२ अचल १७३ महाविभूते १७४ माहात्म्यशरीर १७५ पवित्र १७६ महापवित्र १७७ हिरण्यमय १७८ बृहत् १७९ अप्रतर्क्य १८० अविज्ञेय १८१ ब्रह्माग्र्य १८२ प्रजासर्गकर १८३ प्रजानिधनकर १८४ महामायाधर १८५ चित्रशिखण्डिन् १८६ वरप्रद १८७ पुरोडाशभागहर १८८ गताध्वर १८९ छिन्नतृष्ण १९० छिन्नसंशय १९१ सर्वतोवृत्त १९२ निवृत्तिरूप १९३ ब्राह्मणरूप १९४ ब्राह्मणप्रिय १९५ विश्वमूर्ते १९६ महामूर्ते १९७ बान्धव १९८ भक्तवत्सल १९९ ब्रह्मण्यदेव भक्तोऽहं त्वां दिदृक्षुरेकान्तदर्शनाय नमो नमः ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि अष्टात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३८ ॥

## ३३९–[१६६]

भीष्म उवाच ।

एवं स्तुतः स भगवान् गुह्यैस्तथ्यैश्च नामभिः
तं मुनिं दर्शयामास नारदं विश्वरूपधृक् ॥ १

किञ्चिच्चन्द्राद्विशुद्धात्मा
किञ्चिच्चन्द्राद्विशेषवान् ।
कृशानुवर्णः किञ्चिच्च
किञ्चिद्धिष्ण्याकृतिः प्रभुः ॥ २

( १२२ ) युगनिधनं युगान्तः ( १२३ ) आखण्डल इन्द्रः ( १२४ ) प्राचीनगर्भकौशिकौ मुनी ( १२६ ) पुरु बहु ( १३१ ) भोगः शरीरम् ( १४८ ) सर्वच्छन्दक सर्वमनोरथप्रद ( १४९ ) हरिः कपिः स एव रामावतारे हयोऽश्वो यस्य ( १५० ) हरिमेध अश्वमेध (१५१) महायज्ञो योगः तत्र भागो हौम्यं द्रव्यं जीवः तस्य हर्तः ( १५५ ) हरौ मेधा बुद्धिर्यस्य हरिभक्त ( १५८ ) महानियमो यमादीनामेव परा काष्ठा ( १६५ ) प्रवचने अध्ययने गतः स्थितो ब्रह्मचारी ( १७३ ) महती वियदादिसृष्टिरूपा विभूतिरस्य ( १७४ ) माहात्म्ययुक्तं विराडाख्यं शरीरमस्य (१७५) पवित्राणि शुक्रियारण्यकादीनि महापवित्राणि पावमानीसूक्तादीनि हिरण्मयानि मण्डलब्राह्मणादीनि बृहद्वेदाख्यं ब्रह्म इति जप्यचतुष्टयात्मकेत्यर्थः ( १७९ ) अप्रतर्क्यस्तर्काागम्यः ( १८० ) अविज्ञेयो रूपादिहीनत्वात् ( १८१ ) ब्रह्मणां कार्यकारणमहाकारणानां मध्ये अग्र्यं श्रेष्ठं महाकारणम् ( १८८ ) गताध्वर प्राप्तयज्ञ (१९१) सर्वतो वृत्तं वृत्तिर्वर्तनं यस्य । दिदृक्षुरस्मि एकमेव ज्ञेयज्ञानज्ञातृविभागहीनं वस्तु अग्र्यते गम्यते यस्मिन् तत् निर्विकल्पकं दर्शनं तस्मै मोक्षायेत्यर्थः ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३३८॥

३३९

**एवमिति** । विश्वानि सर्वाणि रूपाणि धारयतीति विश्वरूपधृक् ॥ १ ॥ एतदेव स्पष्टयति—**किंचिदित्यादिना** ॥ २ ॥

शुकपत्रनिभः किञ्चित्
किञ्चित्स्फटिकसन्निभः ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यो
जातरूपप्रभः क्वचित् । ३
प्रवालांकुरवर्णश्च श्वेतवर्णस्तथा क्वचित् ।
क्वचित्सुवर्णवर्णाभो वैदूर्यसदृशः क्वचित् ॥ ४
नीलवैदूर्यसदृश इन्द्रनीलनिभः क्वचित् ।
मयूरग्रीववर्णाभो मुक्ताहारनिभः क्वचित् ॥ ५
एतान्बहुविधान् वर्णान् रूपैर्बिभ्रत्सनातनः ।
सहस्रनयनः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रपात् ६
सहस्रोदरबाहुश्च अव्यक्त इति च क्वचित् ।
ओङ्कारमुद्गिरन्वक्त्रात्सावित्रीं च तदन्वयाम्
शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदान् गिरन्बहून् ।
आरण्यकं जगौ देवो हरिर्नारायणो वशी ८
वेदिं कमण्डलुं शुभ्रान्मणीनुपानहौ कुशान् ।
अजिनं दण्डकाष्ठं च ज्वलितं च हुताशनम्
धारयामास देवेशो हस्तैर्यज्ञपतिस्तदा ।
तं प्रसन्नं प्रसन्नात्मा नारदो द्विजसत्तमः १०
वाग्यतः प्रणतो भूत्वा ववन्दे परमेश्वरम् ।
तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ११

श्रीभगवानुवाच ।

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ।
इमं देशमनुप्राप्ता मम दर्शनलालसाः ॥ १२
न च मां ते ददृशिरे न च द्रक्ष्यति कश्चन ।
ऋते ह्येकान्तिकश्रेष्ठात्त्वं चैवैकान्तिकोत्तम
ममैतास्तनवः श्रेष्ठा जाता धर्मगृहे द्विज ।
तास्त्वं भजस्व सततं साधयस्व यथागतम् ॥
वृणीष्व च वरं विप्र मत्तस्त्वं यदिहेच्छसि ।
प्रसन्नोऽहं तवाद्येह विश्वमूर्तिरिहाव्ययः ॥१५

नारद उवाच ।

अद्य मे तपसो देव यमस्य नियमस्य च ।
सद्यः फलमवाप्तं वै दृष्टो यद्भगवान्मया ॥ १६
वर एष ममात्यन्तं दृष्टस्त्वं यत्सनातनः ।
भगवन्विश्वदृक् सिंहः सर्वमूर्तिर्महान्प्रभुः १७

भीष्म उवाच ।

एवं संदर्शयित्वा तु नारदं परमेष्ठिनम् ।
उवाच वचनं भूयो गच्छ नारद मा चिरम्
इमे ह्यनिन्द्रियाहारा मद्भक्ताश्चन्द्रवर्चसः ।
एकाग्राश्चिन्तयेयुर्मां नैषां विघ्नो भवेदिति १९
सिद्धा ह्येते महाभागाः
पुरा ह्येकान्तिनोऽभवन् ।
तमोरजोभिर्निर्मुक्ता
मां प्रवेक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ २०
न दृश्यश्चक्षुषा योऽसौ न स्पृश्यः स्पर्शनेन च
न घ्रेयश्चैव गन्धेन रसेन च विवर्जितः २१
सत्त्वं रजस्तमश्चैव न गुणास्तं भजन्ति वै ।
यश्च सर्वगतः साक्षी लोकस्यात्मेति कथ्यते
भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।
अजो नित्यः शाश्वतश्च निर्गुणो निष्कलस्तथा
द्विर्द्वादशेभ्यस्तत्त्वेभ्यः ख्यातो यः पञ्चविंशकः
पुरुषो निष्क्रियश्चैव ज्ञानदृश्यश्च कथ्यते ॥२४
यं प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता वै द्विजसत्तमाः ।
स वासुदेवो विज्ञेयः परमात्मा सनातनः २५
पश्य देवस्य माहात्म्यं महिमानं च नारद ।
शुभाशुभैः कर्मभिर्यो न लिप्यति कदाचन ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणानेतान्प्रचक्षते ।
एते सर्वशरीरेषु तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥२७
एतान्गुणांस्तु क्षेत्रज्ञो भुंक्ते नैभिः स भुज्यते ।
निर्गुणो गुणभुक्चैव गुणस्रष्टा गुणाधिकः ॥ २८
जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते ।
ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते

---

जातरूपस्वर्णयोरवान्तरवैजात्यकृतो भेदो ज्ञेयः ॥ ४ ॥ सहस्रनयन इत्यादिना विश्वं वेदा यज्ञाश्च मम तनुरिति दर्शितम् ॥ ६ ॥ ददृशिरे ददृशुः पदव्यत्यय आर्षः ॥ १३ ॥ मां प्रवेक्ष्यन्तीत्युक्तं तत्र प्रवेशार्हं आत्मस्वरूपमाह—**न दृश्य इत्यादिना** । न घ्रेयः चात् रसनीयत्वादिवर्जितः यतो गन्धादिना विवर्जितः ॥ २१ ॥ रूपाद्यभावमुक्त्वा सत्त्वाद्यभावमाह—**सत्त्वमिति** । कार्यकारणातीतामित्यर्थः ॥ २२ ॥ अस्योपाधिधर्मास्पर्शित्वमाह—**भूतेति** । अजो नित्य इति जन्मादिसर्वभावविकारानिषेधः । शाश्वत इति प्रकृतिवत्परिणामराहित्यम् । यतो निर्गुणः । चलं गुणवृत्तमिति न्यायेन साम्यदशायामपि गुणानां परिणामरूपत्वापरित्यागात् गुणा अपि गुणवन्तो न भवन्त्यनवस्थापातादत आह-**निष्कल इति** । एकगुणशरीरे गुणान्तरस्यापि उपसर्जनत्वेन प्रवेशसत्त्वान्न गुणानां निष्कलत्वलक्षणं निरवयवत्वमस्तीति ततोऽप्यन्यत्क्रमेत्यर्थः ॥ २३ ॥ द्विर्द्वादशेभ्यश्चतुर्विंशतिभ्यः ज्ञानदृश्यः सूक्ष्मबुद्धिग्राह्यः दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्येति श्रुतेः॥ २४ प्रवेशार्हं रूपमुपपाद्योपसंहरति—**यमिति** । तं प्रविष्टो यः स न लिप्यत इत्यर्थः ॥ २५ ॥ गुणाधिकः गुणेभ्योऽतिरिक्तः ॥२८॥ निर्गुणत्वं वक्तुमव्यक्तस्य कार्यस्य प्रलयमाह-**जगदित्यादिना** ॥ २९ ॥

खे वायुः प्रलयं याति मनस्याकाशमेव च ।
मनो हि परमं भूतं तदव्यक्ते प्रलीयते ॥ ३०
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्क्रिये संप्रलीयते ।
नास्ति तस्मात्परतरः पुरुषाद्वै सनातनात् ३१
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्
ऋते तमेकं पुरुषं वासुदेवं सनातनम् ॥ ३२
सर्वभूतात्मभूतो हि वासुदेवो महाबलः ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्॥
ते समेता महात्मानः शरीरमिति संज्ञितम् ।
तदा विशति यो ब्रह्मन्नदृश्यो लघुविक्रमः ३४
उत्पन्न एव भवति शरीरं चेष्टयन्प्रभुः ।
न विना धातुसंघातं शरीरं भवति क्वचित् ॥
न च जीवं विना ब्रह्मन् वायवश्चेष्टयन्त्युत ।
स जीवः परिसंख्यातः शेषः संकर्षणः प्रभुः॥
तस्मात्सनत्कुमार त्वं योऽलभत्स्वेन कर्मणा ।
यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षयम्३७
स मनः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिपठ्यते ।
तस्मात्प्रसूतो यः कर्ता कारणं कार्यमेव च३८
तस्मात्सर्वं संभवति जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सोऽनिरुद्धः स ईशानो व्यक्तः स सर्वकर्मसु॥
यो वासुदेवो भगवान्क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ।
ज्ञेयः स एव राजेन्द्र जीवः संकर्षणः प्रभुः ॥
संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते ।
प्रद्युम्नाद्योऽनिरुद्धस्तु सोऽहंकारः स ईश्वरः
मत्तः सर्वं संभवति जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
अक्षरं च क्षरं चैव सच्चासच्चैव नारद ॥ ४२
मां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता भक्तास्तु ये मम ।
अहं हि पुरुषो ज्ञेयो निष्क्रियः पञ्चविंशकः ॥
निर्गुणो निष्कलश्चैव निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति दृश्यते ॥ ४४
इच्छन्मुहूर्तान्नश्येयमीशोऽहं जगतो गुरुः ।
माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि ।
मयैतत्कथितं सम्यक्तव मूर्तिचतुष्टयम् ॥ ४६
अहं हि जीवसंज्ञातो मयि जीवः समाहितः।
नैवं ते बुद्धिरत्राभूद्दृष्टो जीवो मयेति वै ॥ ४७

---

**अव्यक्तमिति** । अव्यक्तस्यापि लयं वदता सांख्यमतमपास्तम् ॥ ३१ ॥ एतदेव व्यतिरेकमुखेन द्रढयति **नित्यमिति** । नित्यं अविनाशिभूतं नित्यसिद्धं परस्मादन्यन्नास्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ एवं तत्पदार्थस्वरूपमुक्त्वा त्वंपदार्थस्वरूपमाह—**सर्वेति** । सर्वेषां भूतानामात्मभूतः प्रत्यग्रूपो वासुदेवः एतदेव कथमित्यत आह–**पृथिवीत्यादिना** ॥३३॥ स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्य इति श्रुतेरर्थं संगृह्णाति–**तदिति** । आविशतीति प्रवेशोक्त्या पाञ्चरात्राभिमतो जीवोत्पत्तिपक्षोऽपास्तः लघुविक्रमः शीघ्रकारी एतेन दृष्टिसृष्टिरुक्ता ॥३४॥ घटाकाशवदुपाध्युत्पत्त्या उत्पन्न इति एव शब्दोऽनवधारणे प्रवेशाभावे चेष्टानुपपत्तिमाह—**न विनेति** ॥ ३५ ॥ **स इति** । योऽयं प्रविष्टः स जीवः संकर्षणाख्यो विश्वविधारको भगवतो व्यूहः॥३६॥ स जीव एव सनत्कुमारत्वं जीवन्मुक्तत्वं स्वेन ध्यानार्चनादिकर्मणा लभते । एवमविद्योपाधिकं जीवमुपपाद्य तस्मादेव जीवात् प्रद्युम्नाख्यं मन उत्पद्यते इत्याह—**यस्मिन्नित्याद्यर्धद्वयेन** । प्रद्युम्नसंज्ञके मनसि सर्वेषां भूतानां लयोदयौ उक्तौ अतो मानस्येव इयं सृष्टिरिति भावः ॥३७ **तस्मात्प्रसूत इति** । तच्छब्देन संकर्षणः परामृश्यते ॥ ३८ ॥ **तस्मात्सर्वमिति** तच्छब्देन प्रद्युम्नः स एव चानिरुद्धाख्योऽहंकारः ॥ ३९ ॥ एवं त्वंपदार्थं प्रद्युम्नादिजनकं जीवमुक्त्वाऽस्य पूर्वोक्तेन तत्पदार्थेनाभेदमाह–**यो वासुदेव इति** ॥ ४० ॥ परमकारणत्वं स्वस्यैवाह—**मत्त इति** । अक्षरं जीवः क्षरं प्रकृतिमहदहंकारादि सत्कारणम् ॥ ४२ ॥ मां प्रविश्येत्युक्तः प्रवेशो नदीसमुद्रदृष्टान्तेन मा भूदिति स्वस्य उपाधिशबलत्वं निराचष्टे **अहं हीति** । पुरुषश्चिन्मात्रः निष्क्रियः कूटस्थः ज्ञेय एव न तु प्राप्यः सर्वभूतप्रत्यगात्मत्वात् ॥ ४३ ॥ निर्गुणत्वात्सुषुप्ताविव वासनाशेषवती प्राप्तिः निष्कलत्वान्न संयोगरूपा अत एव निर्द्वन्द्वः । महाकाशघटाकाशयोरिवोपाध्यपगममात्रकृतत्वादभेदस्य। अत एवोपाध्यभावाद्वासनादिरूपः परिग्रहोऽपि नास्ति । ननु विश्वरूपस्य तव कथं निष्कलत्वमत आह—**एतदिति** । अयं रूपवानिति यत् एतत् त्वया न ज्ञातव्यम् ॥ ४४ ॥ यतोऽहं मुहूर्तान्नश्येयं अदृश्यो भवेयम् इच्छन्निति मदीक्षामात्रं सृष्टिसंहारावित्यर्थः । देवतादिवददर्शनेऽपि विश्वरूपत्वं नापैतीत्याशंक्याह—**मायेति** । निष्कलस्य मम वैश्वरूप्यमेव मायेत्यर्थः ॥ ४५ ॥ सर्वभूतगुणैः स्वरूपादिभिरेवं प्रकारेण युक्तं मां ज्ञातुं नार्हसि निर्गुणत्वान्ममेत्यर्थः ॥४६॥ संज्ञातः जीवत्वेन सम्यक् ज्ञातः पाठान्तरे जीवस्योपकरणभूतः संघातः जडवर्गोऽप्यहमेव जीवलयाधिष्ठानत्वाज्जीवोऽप्यहमेवेति भावः । यतः जडाजडवर्गात्माऽहमेव ततो हेतोश्चक्षुषा मां दृष्ट्वा सोपाधिकः समष्टिजीव एव मया दृष्टो न त्वीश्वर इति न मन्तव्यं जीवादिरूपेण ममैवावस्थानादित्याह–**नैवमिति** ।

अहं सर्वत्रगो ब्रह्मन्भूतग्रामान्तरात्मकः।
भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न नशाम्यहम् ॥ ४८
सिद्धा हि ते महाभागा
नरा ह्येकान्तिनोऽभवन्।
तमोरजोभ्यां निर्मुक्ताः
प्रवेक्ष्यन्ति च मां मुने ॥ ४९
हिरण्यगर्भो लोकादिश्चतुर्वक्त्रो निरुक्तगः।
ब्रह्मा सनातनो देवो मम बह्वर्थचिन्तकः॥ ५०
ललाटाच्चैव मे रुद्रो
देवः क्रोधाद्विनिःसृतः।
पश्यैकादश मे रुद्रा-
न्दक्षिणं पार्श्वमास्थितान् ॥ ५१
द्वादशैव तथाऽऽदित्यान्
वामपार्श्वे समास्थितान्।
अग्रतश्चैव मे पश्य
वसूनष्टौ सुरोत्तमान् ॥५२
नासत्यं चैव दस्रं च भिषजौ पश्य पृष्ठतः।
सर्वान्प्रजापतीन्पश्य पश्य सप्त ऋषींस्तथा ॥
वेदान्यज्ञांश्च शतशः पश्यामृतमथौषधीः।
तपांसि नियमांश्चैव यमानपि पृथग्विधान् ५४
तथाऽष्टगुणमैश्वर्यमेकस्थं पश्य मूर्तिमत्।
श्रियं लक्ष्मीं च कीर्तिं च पृथिवीं च ककुद्मिनीं
वेदानां मातरं पश्य मत्स्थां देवीं सरस्वतीं
ध्रुवं च ज्योतिषां श्रेष्ठं पश्य नारद खेचरम्
अंभोधरान्समुद्रांश्च सरांसि सरितस्तथा।
मूर्तिमन्तः पितृगणांश्चतुरः पश्य सत्तम ५७
त्रींश्चैवेमान्गुणान्पश्य
मत्स्थान्मूर्तिविवर्जितान्।
देवकार्यादपि मुने
पितृकार्यं विशिष्यते ॥५८
देवानां च पितॄणां च पिता ह्येकोऽहमादितः।
अहं हयशिरा भूत्वा समुद्रे पश्चिमोत्तरे ५९
पिबामि सुहुतं हव्यं कव्यं च श्रद्धयाऽन्वितम्
मया सृष्टः पुरा ब्रह्मा मां यज्ञमयजत्स्वयम् ६०
ततस्तस्मिन्वरान्प्रीतो दत्तवानस्म्यनुत्तमान्।
मत्पुत्रत्वं च कल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव च ॥
अहंकारकृतं चैव नाम पर्यायवाचकम्।
त्वया कृतां च मर्यादां नातिक्रंस्याति कश्चन
त्वं चैव वरदो ब्रह्मन्वरेप्सूनां भविष्यसि।
सुरासुरगणानां च ऋषीणां च तपोधन ६३
पितॄणां च महाभाग सततं संशितव्रत।
विविधानां च भूतानां त्वमुपास्यो भविष्यसि
प्रादुर्भावगतश्चाहं सुरकार्येषु नित्यदा।
अनुशास्यस्त्वया ब्रह्मन्नियोज्यश्च सुतो यथा
एतांश्चान्यांश्च रुचिरान्ब्रह्मणेऽमिततेजसे।
अहं दत्वा वरान्प्रीतो निवृत्तिपरमोऽभवम् ६६
निर्वाणं सर्वधर्माणां निवृत्तिः परमा स्मृता।
तस्मान्निवृत्तिमापन्नश्चरेत्सर्वाङ्गनिर्वृतः ६७
विद्यासहायवन्तं च आदित्यस्थं समाहितम्।
कपिलं प्राहुराचार्याः सांख्यनिश्चितनिश्चयाः
हिरण्यगर्भो भगवानेष च्छन्दसि सुष्टुतः।
सोऽहं योगरतिर्ब्रह्मन्योगशास्त्रेषु शब्दितः ६९
एषोऽहं व्यक्तिमागत्य तिष्ठामि दिवि शाश्वतः
ततो युगसहस्रान्ते संहरिष्ये जगत्पुनः ७०
कृत्वाऽऽत्मस्थानि भूतानि
स्थावराणि चराणि च।
एकाकी विद्यया सार्धं
विहरिष्ये जगत्पुनः ॥७१
ततो भूयो जगत्सर्वं करिष्यामीह विद्यया।
अस्मन्मूर्तिश्चतुर्थी या साऽसृजच्छेषमव्ययम्
स हि संकर्षणः प्रोक्तः प्रद्युम्नं सोऽप्यजीजनत्
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽहं सर्गो मम पुनः पुनः ७३
अनिरुद्धात्तथा ब्रह्मा तन्नाभिकमलोद्भवः।
ब्रह्मणः सर्वभूतानि चराणि स्थावराणि च ॥
एतां सृष्टिं विजानीहि कल्पादिषु पुनः पुनः
यथा सूर्यस्य गगनादुदयास्तमने इह ७५
नष्टे पुनर्बलात्काल आनयत्यमितद्युतिः।
तथा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ॥७६
सत्त्वैराक्रान्तसर्वाङ्गां नष्टां सागरमेखलाम्।
आनयिष्यामि स्वस्थानं वाराहं रूपमास्थितः
हिरण्याक्षं वधिष्यामि दैतेयं बलगर्वितम्।
नारसिंहं वपुः कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुनः ७८
सुरकार्ये हनिष्यामि यज्ञघ्नं दितिनन्दनम्।
विरोचनस्य बलवान्बलिः पुत्रो महासुरः ७९

अवध्यः सर्वलोकानां
सदेवासुररक्षसाम् ।
भविष्यति स शक्रं वा
स्वराज्याच्च्यावयिष्यति ॥ ८०
त्रैलोक्येऽपहृते तेन
विमुखे च शचीपतौ ।
अदित्यां द्वादशादित्यः
संभविष्यामि कश्यपात् ॥ ८१
ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे ।
देवताः स्थापयिष्यामि स्वस्वस्थानेषु नारद
बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम् ।
दानवं च बलिश्रेष्ठमवध्यं सर्वदेवतैः ८३
त्रेतायुगे भविष्यामि रामो भृगुकुलोद्वहः ।
क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि समृद्धबलवाहनम् ॥
संध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च ।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः
त्रितोपघाताद्वैरूप्यमेकतोऽथ द्वितस्तथा ।
प्राप्स्यते वानरत्वं हि प्रजापतिसुतावृषी ८६
तयोर्ये त्वन्वये जाता भविष्यन्ति वनौकसः
महाबला महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः ८७
ते सहाया भविष्यन्ति सुरकार्ये मम द्विज ।
ततो रक्षःपतिं घोरं पुलस्त्यकुलपांसनम् ८८
हरिष्ये रावणं रौद्रं सगणं लोककण्टकम् ।
द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पार्यवसानिके ८९
प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति ।
तत्राहं दानवान्हत्वा सुबहून् देवकण्टकान्
कुशस्थलीं करिष्यामि निवेशं द्वारकां पुरीम्
वसानस्तत्र वै पुर्यामदितेर्विप्रियंकरम् ९१
हनिष्ये नरकं भौमं मुरुं पीठं च दानवम् ।
प्राग्ज्योतिषं पुरं रम्यं नानाधनसमन्वितम्
कुशस्थलीं नयिष्यामि हत्वा वै दानवोत्तमम्
महेश्वरमहासेनौ बाणप्रियहितैषिणौ ९३
पराजेष्याम्यथोद्युक्तौ देवौ लोकनमस्कृतौ ।
ततः सुतं बलेर्जित्वा बाणं बाहुसहस्रिणम्
विनाशयिष्यामि ततः सर्वान्सौभनिवासिनः
यः कालयवनः ख्यातो गर्गतेजोभिसंवृतः॥
भविष्यति वधस्तस्य मत्त एव द्विजोत्तम ।
जरासन्धश्च बलवान्सर्वराजविरोधनः ॥९६
भविष्यत्यसुरः स्फीतो भूमिपालो गिरिव्रजे
मम बुद्धिपरिस्पन्दाद्वधस्तस्य भविष्यति ९७
शिशुपालं वधिष्यामि यज्ञे धर्मसुतस्य वै ।
समागतेषु बलिषु पृथिव्यां सर्वराजसु ९८
वासविः सुसहायो वै मम ह्येको भविष्यति
युधिष्ठिरं स्थापयिष्ये स्वराज्ये भ्रातृभिः सह
एवं लोका वदिष्यन्ति नरनारायणावृषी ।
उद्युक्तौ दहतः क्षत्रं लोककार्यार्थमीश्वरौ १००
कृत्वा भारावतरणं वसुधाया यथेप्सितम् ।
सर्वसात्वतमुख्यानां द्वारकायाश्च सत्तम ॥
करिष्ये प्रलयं घोरमात्मज्ञानाभिसंहितः ।
कर्माण्यपरिमेयाणि चतुर्मूर्तिधरो ह्यहम् १०२
कृत्वा लोकान्गमिष्यामि स्वानहं ब्रह्मसत्कृतान्
हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद्विजोत्तम ॥
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च ।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च ॥
यदा वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुनः ।
सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृताः पूर्वं कृते युगे१०५
अतिक्रान्ताः पुराणेषु श्रुतास्ते यदि वा क्वचित्
अतिक्रान्ताश्च बहवः प्रादुर्भावा ममोत्तमाः
लोककार्याणि कृत्वा च
पुनः स्वां प्रकृतिं गताः ।
न ह्येतद्ब्रह्मणा प्राप्त-
मीदृशं मम दर्शनम् ॥ १०७
यत्त्वया प्राप्तमद्येह एकान्तगतबुद्धिना ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं ब्रह्मन्भक्तिमतो मया ॥ ८
पुराणं च भविष्यं च सरहस्यं च सत्तम ।

भीष्म उवाच ।

एवं स भगवान्देवो विश्वमूर्तिधरोऽव्ययः९
एतावदुक्त्वा वचनं तत्रैवान्तर्दधे पुनः ।
नारदोऽपि महातेजाः प्राप्यानुग्रहमीप्सितम्
नरनारायणौ द्रष्टुं बदर्याश्रममाद्रवत् ।
इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ ११
सांख्ययोगकृतं तेन पञ्चरात्रानुशब्दितम् ।
नारायणमुखोद्गीतं नारदोऽश्रावयत्पुनः १२
ब्रह्मणः सदने तात यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

एतदाश्चर्यभूतं हि माहात्म्यं तस्य धीमतः
किं वै ब्रह्मा न जानीते यतः शुश्राव नारदात्
पितामहोऽपि भगवांस्तस्माद्देवादनन्तरः १४
कथं स न विजानीयात्प्रभावममितौजसः ।

भीष्म उवाच ।

महाकल्पसहस्राणि महाकल्पशतानि च
समतीतानि राजेन्द्र सर्गाश्च प्रलयाश्च ह ।
सर्गस्यादौ स्मृतो ब्रह्मा प्रजासर्गकरः प्रभुः१६

जानाति देवप्रवरं भूयश्चातोऽधिकं नृप।
परमात्मानमीशानमात्मनः प्रभवं तथा ॥ १७
ये त्वन्ये ब्रह्मसदने सिद्धसंघाः समागताः।
तेभ्यस्तच्छ्रावयामास पुराणं वेदसंमितम् ॥
तेषां सकाशात्सूर्यस्तु
श्रुत्वा वै भावितात्मनाम्।
आत्मानुगामिनां राजन्
श्रावयामास वै ततः ॥ १९
षट्षष्टिर्हि सहस्राणि
ऋषीणां भावितात्मनाम्।
सूर्यस्य तपतो लोकान्
निर्मिता ये पुरःसराः ॥ २०
तेषामकथयत्सूर्यः सर्वेषां भावितात्मनाम्।
सूर्यानुगामिभिस्तात ऋषिभिस्तैर्महात्मभिः
मेरौ समागता देवाः श्राविताश्चेदमुत्तमम्।
देवानां तु सकाशाद्वै ततः श्रुत्वाऽसितो द्विजः
श्रावयामास राजेन्द्र पितॄणां मुनिसत्तमः।
मम चापि पिता तात कथयामास शान्तनुः
ततो मयाऽपि श्रुत्वा च कीर्तितं तव भारत
सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं यैरिदं श्रुतम् २४
सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ते समन्ततः।
इदमाख्यानमार्षेयं पारंपर्यागतं नृप ॥ २५
नावासुदेवाभक्ताय त्वया देयं कथञ्चन।
मत्तोऽन्यानि च ते राजन्नुपाख्यानशतानि वै
यानि श्रुतानि सर्वाणि तेषां सारोऽयमुद्धृतः
सुरासुरैर्यथा राजन्निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् ॥ २७
एवमेतत्पुरा विप्रैः कथामृतमिहोद्धृतम्।
यश्चेदं पठते नित्यं यश्चेदं शृणुयान्नरः ॥ २८
एकान्तभावोपगत एकान्तेषु समाहितः।
प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं भूत्वा चन्द्रप्रभो नरः ॥
स सहस्रार्चिषं देवं
प्रविशेन्नात्र संशयः।
मुच्येदार्तस्तथा रोगा-
च्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् ॥ ३०
जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तो भक्तगतिं व्रजेत्।
त्वयाऽपि सततं राजन्नभ्यर्च्यः पुरुषोत्तमः
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः
ब्रह्मण्यदेवो भगवान्प्रीयतां ते सनातनः ३२
युधिष्ठिर महाबाहो महाबुद्धिर्जनार्दनः।

वैशम्पायन उवाच।

श्रुत्वैतदाख्यानवरं धर्मराड्जनमेजय ॥३३
भ्रातरश्चास्य ते सर्वे नारायणपराऽभवन्।
जितं भगवता तेन पुरुषेणेति भारत ॥ ३४
नित्यं जप्यपरा भूत्वा सरस्वतीमुदीरयन्।
यो ह्यस्माकं गुरुश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ३५
जगौ परमकं जप्यं नारायणमुदीरयन्।
गत्वाऽन्तरिक्षात्सततं क्षीरोदममृताशयम् ॥
पूजयित्वा च देवेशं पुनरायात्स्वमाश्रमम्।

भीष्म उवाच।

एतत्ते सर्वमाख्यातं नारदोक्तं मयेरितम्३७
पारंपर्यागतं ह्येतत्पित्रा मे कथितं पुरा।

सौतिरुवाच।

एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्तितम्३८
जनमेजयेन तच्छ्रुत्वा कृतं सम्यग्यथाविधि
यूयं हि तप्ततपसः सर्वे च चरितव्रताः ॥ ३९
सर्वे वेदविदो मुख्या नैमिषारण्यवासिनः।
शौनकस्य महासत्रं प्राप्ताः सर्वे द्विजोत्तमाः
यजध्वं सुहुतैर्यज्ञैः शाश्वतं परमेश्वरम्।
पारंपर्यागतं ह्येतत्पित्रा मे कथितं पुरा १४१

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
ऊनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३९ ॥

## ३४०-[१६७]

शौनक उवाच ।

कथं स भगवान्देवो यज्ञेष्वग्रहरः प्रभुः ।
यज्ञधारी च सततं वेदवेदाङ्गवित्तथा ॥ १
निवृत्तं चास्थितो धर्मं क्षमी भागवतः प्रभुः ।
निवृत्तिधर्मान्विदधे स एव भगवान्प्रभुः २
कथं प्रवृत्तिधर्मेषु भागार्हा देवताः कृताः ।
कथं निवृत्तिधर्माश्च कृता व्यावृत्तबुद्धयः ॥ ३
एतं नः संशयं सौते छिन्धि गुह्यं सनातनम् ।
त्वया नारायणकथाः श्रुता वै धर्मसंहिताः

सौतिरुवाच ।

जनमेजयेन यत्पृष्टः शिष्यो व्यासस्य धीमतः
तत्तेऽहं कथयिष्यामि पौराणं शौनकोत्तम ५
श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्य देहिनां परमात्मनः ।
जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत् ॥ ६

जनमेजय उवाच ।

इमे सब्रह्मका लोकाः ससुरासुरमानवाः ।
क्रियास्वभ्युदयोक्तासु सक्ता दृश्यन्ति सर्वशः ७
मोक्षश्चोक्तस्त्वया ब्रह्मन्निर्वाणं परमं सुखम् ।
ये तु मुक्ता भवन्तीह पुण्यपापविवर्जिताः ॥ ८
ते सहस्रार्चिषं देवं प्रविशन्तीह शुश्रुम ।
अयं हि दुरनुष्ठेयो मोक्षधर्मः सनातनः ॥ ९
यं हित्वा देवताः सर्वा हव्यकव्यभुजोऽभवन्
किं च ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्च बलभित्प्रभुः १०
सूर्यस्ताराधिपो वायुरग्निर्वरुण एव च ।
आकाशं जगती चैव ये च शेषा दिवौकसः ॥
प्रलयं न विजानन्ति आत्मनः परिनिर्मितम् ।
ततस्तेनास्थिता मार्गं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ १२
स्मृतिकालपरीमाणं प्रवृत्तिं ये समास्थिताः ।
दोषः कालपरीमाणे महानेष क्रियावताम् ॥ १३
एतन्मे संशयं विप्र हृदि शल्यमिवार्पितम् ।
छिन्धीतिहासकथनात्परं कौतूहलं हि मे १४
कथं भागहराः प्रोक्ता देवताः क्रतुषु द्विज ।
किमर्थं चाध्वरे ब्रह्मन्निज्यन्ते त्रिदिवौकसः ॥
ये च भागं प्रगृह्णन्ति यज्ञेषु द्विजसत्तम ।
ते यजन्तो महायज्ञैः कस्य भागं ददन्ति वै ॥

वैशम्पायन उवाच ।

अहो गूढतमः प्रश्नस्त्वया पृष्टो जनेश्वर ।
नातप्ततपसा ह्येष नावेदविदुषा तथा ॥ १७
नापुराणविदा चैव शक्यो व्याहर्तुमञ्जसा ।
हन्त ते कथयिष्यामि यन्मे पृष्टः पुरा गुरुः १८
कृष्णद्वैपायनो व्यासो वेदव्यासो महानृषिः ।
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च सुदृढव्रतः ॥ १९
अहं चतुर्थः शिष्यो वै
पञ्चमश्च शुकः स्मृतः ।
एतान्समागतान्सर्वा-
न्पञ्च शिष्यान्दमान्वितान् ॥ २०
शौचाचारसमायुक्ता-
ञ्जितक्रोधाञ्जितेन्द्रियान् ।
वेदानध्यापयामास
महाभारतपञ्चमान् ॥ २१
मेरौ गिरिवरे रम्ये
सिद्धचारणसेविते ।
तेषामभ्यस्यतां वेदान्
कदाचित्संशयोऽभवत् ॥ २२
एष वै यस्त्वया पृष्टस्तेन तेषां प्रकीर्तितः ।
ततः श्रुतो मया चापि तवाख्येयोऽद्य भारत
शिष्याणां वचनं श्रुत्वा सर्वाज्ञानतमोनुदः ।
पराशरसुतः श्रीमान्व्यासो वाक्यमथाब्रवीत्
मया हि सुमहत्तप्तं तपः परमदारुणम् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च जानीयामिति सत्तमाः
तस्य मे तप्ततपसो निगृहीतेन्द्रियस्य च ।
नारायणप्रसादेन क्षीरोदस्यानुकूलतः ॥ २६

---

३४०

**कथं स इति** । यज्ञधारी यज्ञकृत् । एकस्यैव यज्ञभोक्तृत्वं यज्ञकर्तृत्वं च विरुद्धमित्यर्थः । तथा परस्परविरुद्धयोः प्रवृत्तिनिवृत्तिधर्मयोः एकस्य शास्त्रत्वं विरुद्धं प्रतारकत्वापत्तेरिति प्रश्नार्थः । एतेन जीवेशयोरभेदस्तत्प्रतिपत्त्यर्थो निवृत्तिधर्मश्चाक्षिप्त इति ज्ञेयम् ॥ १ ॥ देहिनां परमात्मनः अन्तरात्मनः ॥ ६ ॥ सहस्रार्चिषं सूर्यान्तर्यामिणम् अनन्तचिद्रूपं वा ॥ ९ ॥ **यमिति** । निवृत्तिधर्मश्चेच्छ्रेयांस्तर्हि येऽस्मदपेक्षया जगत्तत्त्वमधिकं जानन्ति तेऽपि ब्रह्मरुद्रादयः सृष्टिसंहारादौ न प्रवर्तेयुरतः प्रतारणामात्रं निवृत्तिधर्म इत्यर्थः ॥ १० ॥ **कथमिति** । यथा देवा देवान्तराभावादितरेभ्यो भागमदत्वा स्वयं सुखमेधन्ते एवं वयमपि सुखं स्थास्याम इति प्रवृत्तिमार्गोऽप्याक्षिप्तः ॥ १५ ॥

त्रैकालिकमिदं ज्ञानं प्रादुर्भूतं यथेप्सितम् ।
तच्छृणुध्वं यथान्यायं वक्ष्ये संशयमुत्तमम् २७
यथा वृत्तं हि कल्पादौ दृष्टं मे ज्ञानचक्षुषा ।
परमात्मेति यं प्राहुः सांख्ययोगविदो जनाः
महापुरुषसंज्ञां स लभते स्वेन कर्मणा ।
तस्मात्प्रसूतमव्यक्तं प्रधानं तं विदुर्बुधाः॥ २९
अव्यक्ताद्व्यक्तमुत्पन्नं लोकसृष्ट्यर्थमीश्वरात् ।
अनिरुद्धो हि लोकेषु महानात्मेति कथ्यते ॥
योऽसौ व्यक्तत्वमापन्नो निर्ममे च पितामहम्
सोऽहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोमयो हि सः
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्,
अहंकारप्रसूतानि महाभूतानि पञ्चधा ॥ ३२
महाभूतानि सृष्ट्वैव तान्गुणान्निर्ममे पुनः ।
भूतेभ्यश्चैव निष्पन्ना मूर्तिमन्तश्च तान् शृणु ॥
मरीचिरङ्गिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महात्मा वै मनुः स्वायंभुवस्तथा३४
ज्ञेयाः प्रकृतयोऽष्टौ ता
यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
वेदवेदाङ्गसंयुक्तान्
यज्ञयज्ञाङ्गसंयुतान् ॥ ३५
निर्ममे लोकसिद्ध्यर्थं
ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अष्टाभ्यः प्रकृतिभ्यश्च
जातं विश्वमिदं जगत् ॥ ३६
रुद्रो रोषात्मको जातो
दशान्यान्सोऽसृजत्स्वयम् ।
एकादशैते रुद्रास्तु
विकारपुरुषाः स्मृताः ॥ ३७
ते रुद्राः प्रकृतिश्चैव सर्वे चैव सुरर्षयः ।
उत्पन्ना लोकसिद्ध्यर्थं ब्रह्माणं समुपस्थिताः ३८
वयं सृष्टा हि भगवंस्त्वया च प्रभविष्णुना ।
येन यस्मिन्नधीकारे वर्तितव्यं पितामह ॥ ३९
योऽसौ त्वयाऽभिनिर्दिष्टो
ह्यधिकारोऽर्थचिन्तकः ।
परिपाल्यः कथं तेन
साहंकारेण कर्तृणा ॥ ४०
प्रदिशस्व बलं तस्य
योऽधिकारार्थचिन्तकः ।
एवमुक्तो महादेवो
देवांस्तानिदमब्रवीत् ॥ ४१

ब्रह्मोवाच ।

साध्वहं ज्ञापितो देवा युष्माभिर्भद्रमस्तु वः
ममाप्येषा समुत्पन्ना चिन्ता या भवतां मता
लोकत्रयस्य कृत्स्नस्य कथं कार्यः परिग्रहः ।
कथं बलक्षयो न स्याद्युष्माकं ह्यात्मनश्च मे ॥
इतः सर्वेऽपि गच्छामः शरणं लोकसाक्षिणम्
महापुरुषमव्यक्तं स नो वक्ष्यति यद्धितम्॥४४
ततस्ते ब्रह्मणा सार्धमृषयो विबुधास्तथा ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जग्मुर्लोकहितार्थिनः ॥
ते तपः समुपातिष्ठन्ब्रह्मोक्तं वेदकल्पितम् ।
स महानियमो नाम तपश्चर्यासु दारुणः ॥ ४६
ऊर्ध्वा दृष्टिर्बाहवश्च एकाग्रं च मनोऽभवत् ।
एकपादाः स्थिताः सर्वे काष्ठभूताः समाहिताः
दिव्यं वर्षसहस्रं ते तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
शुश्रुवुर्मधुरां वाणीं वेदवेदाङ्गभूषिताम् ॥ ४८

श्रीभगवानुवाच ।

भो भोः सब्रह्मका देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
स्वागतेनार्च्य वः सर्वान् श्रावये वाक्यमुत्तमं
विज्ञातं वो मया कार्यं तच्च लोकहितं महत्
प्रवृत्तियुक्तं कर्तव्यं युष्मत्प्राणोपबृंहणम् ५०
सुतप्तं च तपो देवा ममाराधनकाम्यया ।
भोक्ष्यथास्य महासत्त्वास्तपसः फलमुत्तमम्
एष ब्रह्मा लोकगुरुर्महान् लोकपितामहः ।
यूयं च विबुधश्रेष्ठा मां यजध्वं समाहिताः

---

मयेति । श्रुत्यनुमानाभ्यां पारोक्ष्येण गृहीतार्थो योगिनां प्रत्यक्षः । अतो योगजं प्रत्यक्षं प्रकृत्योक्तं योगभाष्ये— 'तत्परं प्रत्यक्षं तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्' इति योगसिद्ध्यभावे तु आत्माऽऽगमगम्य एवायमर्थ इत्याशयः ॥ २५ ॥ परमात्मनः प्रतिबिम्बभूता देवा बिम्बभूतं परमात्मानं येन रूपेण महीचकुस्तेन तेन रूपेण स्वयं पूजां यज्ञभागादिरूपां लब्धवन्तः । यथोक्तं भागवते—

'यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मनः प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः' इति ।

अतः फलावस्थायां स्वयमकुर्वन्तोऽपि देवा अस्मद्दत्तान्यज्ञभागान्भुञ्जते । अस्माकं च तेभ्योऽप्रदाने महान्दोषः—

'इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः' ॥

इति गीतावचनात् । अतः प्रवृत्तिमार्गोऽवश्यमनुसरणीय इत्याह—परमात्मेति यं प्राहुरित्यादिना सनः सनत्सुजातश्चेत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन ॥ २८ ॥

सर्वे भागान्कल्पयध्वं यज्ञेषु मम नित्यशः ।
तथा श्रेयोऽभिधास्यामि यथाधीकारमीश्वराः
वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वैतद्देवदेवस्य वाक्यं हृष्टतनूरुहाः ।
ततस्ते विबुधाः सर्वे ब्रह्मा ते च महर्षयः ५४
वेददृष्टेन विधिना वैष्णवं क्रतुमाहरन् ।
तस्मिन्सत्रे सदा ब्रह्मा स्वयं भागमकल्पयत्
देवा देवर्षयश्चैव स्वं स्वं भागमकल्पयन् ।
ते कार्तयुगधर्माणो भागाः परमसत्कृताः ५६
प्रापुरादित्यवर्णं तं पुरुषं तमसः परम् ।
बृहन्तं सर्वगं देवमीशानं वरदं प्रभुम् ५७
ततोऽथ वरदो देवस्तान्सर्वानमरान्स्थितान् ।
अशरीरो बभाषेदं वाक्यं खस्थो महेश्वरः ५८
येन यः कल्पितो भागः स तथा मामुपागतः
प्रीतोऽहं प्रदिशाम्यद्य फलमावृत्तिलक्षणम्
एतद्वो लक्षणं देवा मत्प्रसादसमुद्भवम् ।
यूयं यज्ञैर्यजमानाः समाप्तवरदक्षिणैः ६०
युगे युगे भविष्यध्वं प्रवृत्तिफलभागिनः ।
यज्ञैर्ये चापि यक्ष्यन्ति सर्वलोकेषु वै सुराः
कल्पयिष्यंति वो भागांस्ते नरा वेदकल्पितान्
यो मे यथा कल्पितवान्भागमस्मिन्महाक्रतौ
स तथा यज्ञभागार्हो वेदसूत्रे मया कृतः ।
यूयं लोकान्भावयध्वं यज्ञभागफलोचिताः
सर्वार्थचिन्तका लोके यथाधीकारनिर्मिताः
याः क्रियाः प्रचरिष्यन्ति प्रवृत्तिफलसत्कृताः
आभिराप्यायितबला लोकान्वै धारयिष्यथ
यूयं हि भाविता यज्ञैः सर्वयज्ञेषु मानवैः ६५
मां ततो भावयिष्यध्वमेषा वो भावना मम
इत्यर्थं निर्मिता वेदा यज्ञाश्चौषधिभिः सह
एभिः सम्यक् प्रयुक्तैर्हि
प्रीयन्ते देवताः क्षितौ ।
निर्माणमेतद्युष्माकं
प्रवृत्तिगुणकल्पितम् ॥ ६७
मया कृतं सुरश्रेष्ठा यावत्कल्पक्षयादिह ।
चिन्तयध्वं लोकहितं यथाधीकारमीश्वराः
मरीचिरंगिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठ इति सप्तैते मानसा निर्मिता हि ते
एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिताः
प्रवृत्तिधर्मिणश्चैव प्राजापत्ये च कल्पिताः७०
अयं क्रियावतां पन्था व्यक्तीभूतः सनातनः ।
अनिरुद्ध इति प्रोक्तो लोकसर्गकरः प्रभुः ७१
सनः सनत्सुजातश्च सनकः ससनन्दनः ।
सनत्कुमारः कपिलः सप्तमश्च सनातनः ७२
सप्तैते मानसाः प्रोक्ता ऋषयो ब्रह्मणः सुताः ।
स्वयमागतविज्ञाना निवृत्तिं धर्ममास्थिताः
एते योगविदो मुख्याः सांख्यज्ञानविशारदाः
आचार्या धर्मशास्त्रेषु मोक्षधर्मप्रवर्तकाः ७४
यतोऽहं प्रसृतः पूर्वमव्यक्तात्त्रिगुणो महान् ।
तस्मात्परतरो योऽसौ क्षेत्रज्ञ इति कल्पितः
सोऽहं क्रियावतां पन्थाः पुनरावृत्तिदुर्लभः ।
यो यथा निर्मितो जन्तुर्यस्मिन्यस्मिंश्च कर्मणि
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा तत्फलं सोऽश्नुते महत्
एष लोकगुरुर्ब्रह्मा जगदादिकरः प्रभुः ७७
एष माता पिता चैव युष्माकं च पितामहः ।
मयाऽनुशिष्टो भविता सर्वभूतवरप्रदः ७८
अस्य चैवात्मजो रुद्रो ललाटाद्यः समुत्थितः
ब्रह्मानुशिष्टो भविता सर्वभूतधरः प्रभुः ७९
गच्छध्वं स्वानधीकारांश्चिन्तयध्वं यथाविधि
प्रवर्तन्तां क्रियाः सर्वाः सर्वलोकेषु मा चिरम्
प्रदिश्यन्तां च कर्माणि प्राणिनां गतयस्तथा
परिनिष्ठितकालानि आयूंषीह सुरोत्तमाः ८१
इदं कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तितः ।
अहिंस्या यज्ञपशवो युगेऽस्मिन्न तदन्यथा ८२
चतुष्पात्सकलो धर्मो भविष्यत्यत्र वै सुराः ।
ततस्त्रेतायुगं नाम त्रयी यत्र भविष्यति ८३
प्रोक्षिता यत्र पशवो वधं प्राप्स्यन्ति वै मखे
यत्र पादश्चतुर्थो वै धर्मस्य न भविष्यति ८४

---

एवं रजःप्रधानानां प्रवृत्तिमार्गमुक्त्वा सत्त्वप्रधानानां योग्यं निवृत्तिमार्गमाह—**सन इति** ॥ ७२ ॥ कुत एवं मार्गभेदोऽधिकारिभेदश्चेत्याशंक्याह-**यतोऽहमिति** । अहङ्कारो यतस्त्रिगुणः सात्त्विको राजसस्तामसश्चातः सृष्टेस्त्रैविध्यं जातम् । येऽत्यन्तं सात्त्विकास्ते धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यबलेनाहङ्कारात्परं क्षेत्रज्ञं संहारक्रमेण प्रविशन्ति । ये राजसास्तेऽहङ्कारात्पराचीनमेव शब्दादिकं पुरुषार्थत्वेन पश्यन्तः प्रवृत्तावधिक्रियन्त इत्यर्थः ॥ ७५ ॥ **सोऽहमिति** । सोहं निवृत्तिमार्गरूपः आत्यन्तिकी निवृत्तिरात्ममात्रावशेषैवेत्यात्मैव निवृत्तिरूपः पन्थाः । स क्रियावतां पुनरावृत्तिमतां दुर्लभः पुनरावृत्तिदुर्लभः मध्यमपदलोपी समासः मार्गद्वैविध्यादिकमुपसंहरति—**यो यथेति** ॥ ७६ ॥ एष लोकगुरुरित्यादि स्पष्टार्थम् ॥ ७७ ॥

ततो वै द्वापरं नाम मिश्रः कालो भविष्यति
द्विपादहीनो धर्मश्च युगे तस्मिन् भविष्यति
ततस्तिष्येऽथ संप्राप्ते युगे कलिपुरस्कृते।
एकपादस्थितो धर्मो यत्र तत्र भविष्यति ८६
देवा देवर्षयश्चोचुस्तमेवंवादिनं गुरुम्।
एकपादस्थिते धर्मे यत्र क्वचन गामिनि ८७
कथं कर्तव्यमस्माभिर्भगवंस्तद्वदस्व नः।

श्रीभगवानुवाच।

यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च तपः सत्यं दमस्तथा ८८
अहिंसाधर्मसंयुक्ताः
प्रचरेयुः सुरोत्तमाः।
स वो देशः सेवितव्यो
मा वोऽधर्मः पदा स्पृशेत् ॥८९

व्यास उवाच।

तेऽनुशिष्टा भगवता देवाः सर्षिगणास्तथा
नमस्कृत्वा भगवते जग्मुर्देशान्यथेप्सितान्
गतेषु त्रिदिवौकःसु ब्रह्मैकः पर्यवस्थितः।
दिदृक्षुर्भगवन्तं तमनिरुद्धतनौ स्थितम् ९१
तं देवो दर्शयामास कृत्वा हयशिरो महत्।
साङ्गानावर्तयन्वेदान्कमण्डलुत्रिदण्डधृक् ९२
ततोऽश्वशिरसं दृष्ट्वा तं देवममितौजसम्।
लोककर्ता प्रभुर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया
मूर्ध्ना प्रणम्य वरदं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः।
स परिष्वज्य देवेन वचनं श्रावितस्तदा ९४

श्रीभगवानुवाच।

लोककार्यगतीः सर्वास्त्वं चिन्तय यथाविधि
धाता त्वं सर्वभूतानां त्वं प्रभुर्जगतो गुरुः॥
त्वय्यावेशितभारोऽहं
धृतिं प्राप्स्याम्यथाञ्जसा।
यदा च सुरकार्यं ते
अविषह्यं भविष्यति॥ ९६
प्रादुर्भावं गमिष्यामि तदाऽऽत्मज्ञानदैशिकः
एवमुक्त्वा हयशिरास्तत्रैवान्तरधीयत ९७
तेनानुशिष्टो ब्रह्मापि स्वलोकमचिराद्गतः।
एवमेष महाभाग पद्मनाभः सनातनः॥ ९८
यज्ञेष्वग्रहरः प्रोक्तो यज्ञधारी च नित्यदा।
निवृत्तिं चास्थितो धर्मं गतिमक्षयधर्मिणाम्
प्रवृत्तिधर्मान्विदधे कृत्वा लोकस्य चित्रताम्
स आदिः स मध्यः स चान्तः प्रजानां
स धाता स धेयं स कर्ता स कार्यम्
युगान्ते प्रसुप्तः सुसंक्षिप्य लोकान्
युगादौ प्रबुद्धो जगद्ध्युत्ससर्ज १००
तस्मै नमध्वं देवाय निर्गुणाय महात्मने।
अजाय विश्वरूपाय धाम्ने सर्वदिवौकसाम् १
महाभूताधिपतये रुद्राणां पतये तथा।
आदित्यपतये चैव वसूनां पतये तथा॥ २
अश्विभ्यां पतये चैव मरुतां पतये तथा।
वेदयज्ञाधिपतये वेदाङ्गपतयेऽपि च॥ ३
समुद्रवासिने नित्यं हरये मुञ्जकेशिने।
शान्ताय सर्वभूतानां मोक्षधर्मानुभाषिणे ४
तपसां तेजसां चैव पतये यशसामपि।
वचसां पतये नित्यं सरितां पतये तथा॥ ५
कपर्दिने वराहाय एकशृङ्गाय धीमते।
विवस्वतेऽश्वशिरसे चतुर्मूर्तिधृते सदा॥ ६
गुह्याय ज्ञानदृश्याय अक्षराय क्षराय च।
एष देवः सञ्चरति सर्वत्रगतिरव्ययः॥ ७
एष चैतत्परं ब्रह्म ज्ञेयो विज्ञानचक्षुषा।
एवमेतत्पुरा दृष्टं मया वै ज्ञानचक्षुषा॥ ८
कथितं तच्च वै सर्वं मया पृष्टेन तत्त्वतः।
क्रियतां मद्वचः शिष्याः सेव्यतां हरिरीश्वरः
गीयतां वेदशब्दैश्च पूज्यतां च यथाविधि ९

वैशम्पायन उवाच।

इत्युक्तास्तु वयं तेन वेदव्यासेन धीमता।
सर्वे शिष्याः सुतश्चास्य शुकः परमधर्मवित्
स चास्माकमुपाध्यायः सहास्माभिर्विशांपते
चतुर्वेदोद्गताभिस्तमृग्भिः समभितुष्टुवे॥ ११
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
एवं मेऽकथयद्राजन्पुरा द्वैपायनो गुरुः १२
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं यश्चैनं परिकीर्तयेत्।
नमो भगवते कृत्वा समाहितमतिर्नरः॥ १३
भवत्यरोगो मतिमान्बलरूपसमन्वितः।
आतुरो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्

एवमुक्त्वेत्यादि व्यासवाक्यम्॥ ९७॥ प्रश्नानां क्रमेणोत्तराण्युक्त्वा उपसंहरति—एवमेष इत्यादिना॥९८॥ भक्त्यतिशयात्प्रश्नोत्तरमुक्त्वा स्मृतं परमात्मानं स्तौति—स आदिरिति। धाता दधाति धारयति पोषयति वा धेयं धारणीयं पोषणीयं च॥ १००॥ नाम्नां निर्वचनं तु स्वयमेव करिष्यतीति न व्याख्यायन्ते॥ १॥

कामान्कामी लभेत्कामं दीर्घं चायुरवाप्नुयात
ब्राह्मणः सर्ववेदी स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत्
वैश्यो विपुललाभः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात
अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चैवेप्सितं पतिम् ॥
लग्नगर्भा विमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ।
वन्ध्या प्रसवमाप्नोति पुत्रपौत्रसमृद्धिमत् १७
क्षेमेण गच्छेदध्वानमिदं यः पठते पथि ।
योऽयं कामं कामयते स तमाप्नोति च ध्रुवम्
इदं महर्षेर्वचनं विनिश्चितं
महात्मनः पुरुषवरस्य कीर्तितम् ।
समागमं चर्षिदिवौकसामिमं
निशम्य भक्ताः सुसुखं लभन्ते ॥ १९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४० ॥

## ३४१-[१६८]

जनमेजय उवाच ।
अस्तौषीद्यैरिमं व्यासः सशिष्यो मधुसूदनम्
नामभिर्विविधैरेषां निरुक्तं भगवन्मम ॥ १
वक्तुमर्हसि शुश्रूषोः प्रजापतिपतेर्हरेः ।
श्रुत्वा भवेयं यत्पूतः शरच्चन्द्र इवामलः ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
शृणु राजन्यथाचष्ट फाल्गुनस्य हरिः प्रभुः।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनो नाम्नां निरुक्तं गुणकर्मजम्
नामभिः कीर्तितैस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
पृष्टवान्केशवं राजन् फाल्गुनः परवीरहा ४
अर्जुन उवाच ।
भगवन्भूतभव्येश सर्वभूतसृगव्यय ।
लोकधाम जगन्नाथ लोकानामभयप्रद ॥ ५
यानि नामानि ते देव कीर्तितानि महर्षिभिः
वेदेषु सपुराणेषु यानि गुह्यानि कर्मभिः ॥ ६
तेषां निरुक्तं त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि केशव
न ह्यन्यो वर्णयेन्नाम्नां निरुक्तं त्वामृते प्रभो ७
श्रीभगवानुवाच ।
ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु ।
पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्योतिषेऽर्जुन ॥ ८
सांख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः ९
गौणानि तत्र नामानि
कर्मजानि च कानिचित् ।
निरुक्तं कर्मजानां त्वं
शृणुष्व प्रयतोऽनघ ॥ १०
कथ्यमानं मया तात
त्वं हि मेऽर्धं स्मृतः पुरा ।
नमोऽतियशसे तस्मै
देहिनां परमात्मने ॥
नारायणाय विश्वाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रश्च क्रोधसंभवः १२
योऽसौ योनिर्हि सर्वस्य
स्थावरस्य चरस्य च ।
अष्टादशगुणं यत्त-
त्सत्त्वं सत्त्ववतां वर ॥ १३
प्रकृतिः सा परा मह्यं रोदसी योगधारिणी।
ऋतासत्याऽमराजय्यालोकानामात्मसंज्ञिता

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३४०॥

३४१

**अस्तौषीदिति** । निरुक्तं निर्वचनम् ॥ १ ॥ गुणकर्मजं गुणः सर्वज्ञत्वादिस्तज्जं कर्म जगत्स्रष्ट्रयादि तज्जम् ॥ ३ ॥ अष्टादशगुणं सत्त्वम्—
'प्रीतिः प्राकाश्यमुद्रेको लघुता सुखमेव च ।
अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता ।
क्षमा धृतिरहिंसा च शौचमक्रोध एव च ।
आर्जवं समता सत्यमनसूया तथैव च ॥ ' इति ।
तत्तद्गुणोपाधिःप्रीत्यादिशब्दितो भवतीति गौणनामनिर्वचनम् साष्टादशगुणमयी मह्यं मम परा प्रकृतिः स्वरूपम् । रोदसी द्यावापृथिव्यात्मिका योगेन लोकान्धारयतीति योगधारिणी ऋता कर्मफलभूता ब्रह्मलोकान्ता सत्या अबाधिताचिन्मात्ररूपा ॥ १४ ॥

तस्मात्सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः ।
तपो यज्ञश्च यष्टा च पुराणः पुरुषो विराट् ॥
अनिरुद्ध इति प्रोक्तो लोकानां प्रभवाप्ययः ।
ब्राह्मे रात्रिक्षये प्राप्ते तस्य ह्यमिततेजसः॥ १६
प्रसादात्प्रादुरभवत्पद्मं पद्मनिभेक्षण ।
ततो ब्रह्मा समभवत्स तस्यैव प्रसादजः॥ १७
अह्नः क्षये ललाटाच्च सुतो देवस्य वै तथा ।
क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः १८
एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजावुभौ ।
तदादेशितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥ १९
निमित्तमात्रं तावत्र सर्वप्राणिवरप्रदौ ।
कपर्दी जटिलो मुण्डः श्मशानगृहसेवकः॥२०
उग्रव्रतचरो रुद्रो योगी परमदारुणः ।
दक्षक्रतुहरश्चैव भगनेत्रहरस्तथा ॥ २१
नारायणात्मको ज्ञेयः पाण्डवेय युगे युगे ।
तस्मिन्हि पूज्यमाने वै देवदेवे महेश्वरे ॥ २२
संपूजितो भवेत्पार्थ देवो नारायणः प्रभुः ।
अहमात्मा हि लोकानां विश्वेषां पाण्डुनन्दन
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं संपूजयाम्यहम् ।
यद्यहं नार्चयेयं वै ईशानं वरदं शिवम् ॥ २४
आत्मानं नार्चयेत्कश्चिदिति मे भावितात्मनः
मया प्रमाणं हि कृतं लोकः समनुवर्तते ॥ २५
प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तं पूजयाम्यहम् ।
यस्तं वेत्ति स मां वेत्ति योऽनु तं स हि मामनु
रुद्रो नारायणश्चैव सत्त्वमेकं द्विधाकृतम् ।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु २७
न हि मे केनचिद्देयो वरः पाण्डवनन्दन ।
इति सश्चिन्त्य मनसा पुराणं रुद्रमीश्वरम्॥२८
पुत्रार्थमाराधितवानहमात्मानमात्मना ।
न हि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधाय च
ऋते आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम् ।
सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवाः सहर्षिभिः
अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम् ।
भविष्यतां वर्ततां च भूतानां चैव भारत ३१
सर्वेषामग्रणीर्विष्णुः सेव्यः पूज्यश्च नित्यशः।
नमस्व हव्यदं विष्णुं तथा शरणदं नमः॥ ३२
वरदं नमस्व कौन्तेय हव्यकव्यभुजं नमः।
चतुर्विधा मम जना भक्ता एव हि मे श्रुतम् ॥
तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्यदेवताः।
अहमेव गतिस्तेषां निराशीःकर्मकारिणाम् ॥
ये च शिष्टास्त्रयो भक्ताः फलकामा हि ते मताः
सर्वे च्यवनधर्मास्ते प्रतिबुद्धस्तु श्रेष्ठभाक् ३५
ब्रह्माणं शितिकण्ठं च
याश्चान्या देवताः स्मृताः ।
प्रबुद्धचर्याः सेवन्तो
मामेवैष्यन्ति यत्परम् ॥ ३६
भक्तं प्रति विशेषस्ते एष पार्थानुकीर्तितः ।
त्वं चैवाहं च कौन्तेय नरनारायणौ स्मृतौ ॥
भारावतरणार्थं तु प्रविष्टौ मानुषीं तनुम् ।
जानाम्यध्यात्मयोगांश्च योऽहं यस्माच्च भारत
निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथाऽभ्युदयिकोऽपि च
नराणामयनं ख्यातमहमेकः सनातनः ॥ ३९
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं मम तत्पूर्वमतो नारायणो ह्यहम् ॥ ४०

---

तस्मात् ऋताद्यात्मकात्परमात्मन्यध्यस्तात्सत्त्वात् तपआदिरूपोऽनिरुद्ध एव ॥ १५ ॥ चतुर्विधाः आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चेति गीतोक्ताः ॥ ३३ ॥ अन्या आत्मातिरिक्ता देवतास्यास्तीत्यन्यदेवतः । तथा च श्रुतिः 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्' इति अन्योपास्तिं निन्दति । अनन्याऽऽत्मैव देवता येषां 'आत्मेत्येवोपासीत' इत्यादिश्रुतेः । ते ज्ञानिन इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ प्रतिज्ञातं नामनिर्वचनं करोति—**नराणामित्यादिना** । नरा जीवाः बिम्बे प्रतिबिम्बमिव यत्राध्यस्ताः । अतस्तेषामयनं नरायणः स्वार्थे तद्धित इत्येकोऽर्थः । दर्पणादि स्वच्छं द्रव्यं प्राप्य रविरश्मिवत् प्रतिस्रोतः प्रवृत्तैर्नयनरश्मिभिर्ग्रीवास्थमेव मुखं पूर्वप्रवृत्तनयनसंस्कारात् प्रत्यङ्मुखत्वाद्युपाधिधर्मविशिष्टं गृह्यते । अन्यथाऽत्यन्ताननुभूतपुरुषादिदर्शनं दर्पणे न स्यात् । तद्विषयकसंस्काराभावात् योऽयं दर्पणे दृष्टः स एवायमित्यबाधितप्रत्यभिज्ञाबलाच्च न दर्पणेऽभिनवमुखाध्यास इति व्युत्पादितं **वेदान्तकतके**ऽस्माभिः । श्रुतिश्च ईशजीवयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावं दर्शयति—
'यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन् उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा' इति। तस्माद्बिम्बचैतन्येऽध्यस्तस्य जीवाख्यप्रतिबिम्बस्याविद्यादर्पणापनये तत्रैव विलय इति युक्तम् ॥ ३९ ॥ तस्य नारायणत्वे निर्वचनान्तरमाह—**आप इति** । नरो जीवस्तदविद्याकल्पितं अम्बुप्रधानत्वादापः पुरुषवचसो भवन्तीति-

छादयामि जगद्विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ॥ ४१
गतिश्च सर्वभूतानां
प्रजनश्चापि भारत ।
व्याप्ता मे रोदसी पार्थ
कान्तिश्चाभ्यधिका मम ॥ ४२
अधिभूतानि चान्तेषु
तदिच्छंश्चास्मि भारत ।
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ
विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥ ४३
दमात्सिद्धिं परीप्सन्तो
मां जनाः कामयन्ति ह ।
दिवं चोर्वीं च मध्यं च
तस्माद्दामोदरो ह्यहम् ॥ ४४
पृश्निरित्युच्यते चान्नं वेद आपोऽमृतं तथा ।
ममैतानि सदा गर्भः पृश्निगर्भस्ततो ह्यहम् ४५
ऋषयः प्राहुरेवं मां त्रितं कूपनिपातितम् ।
पृश्निगर्भ त्रितं पाहीत्येकतद्वितपातितम् ॥ ४६
ततः स ब्रह्मणः पुत्र आद्यो ऋषिवरस्त्रितः ।
उत्ततारोदपानाद्वै पृश्निगर्भानुकीर्तनात् ॥ ४७
सूर्यस्य तपतो लोकानग्नेः सोमस्य चाप्युत ।
अंशवो यत्प्रकाशन्ते ममैते केशसंज्ञिताः ॥ ४८
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः ।
स्वपत्न्यामाहितो गर्भ उतथ्येन महात्मना ४९
उतथ्येऽन्तर्हिते चैव कदाचिद्देवमायया ।
बृहस्पतिरथाविन्दत्पत्नीं तस्य महात्मनः ॥५०
ततो वै तमृषिश्रेष्ठं मैथुनोपगतं तथा ।
उवाच गर्भः कौन्तेय पञ्चभूतसमन्वितः ॥ ५१
पूर्वागतोऽहं वरद नार्हस्यम्बां प्रबाधितुम् ।
एतद्बृहस्पतिः श्रुत्वा चुक्रोध च शशाप च ५२
मैथुनायागतो यस्मा-
त्त्वयाऽहं विनिवारितः ।
तस्मादन्धो यास्यसि त्वं
मच्छापान्नात्र संशयः ॥ ५३
स शापादृषिमुख्यस्य दीर्घं तम उपेयिवान् ।
स हि दीर्घतमा नाम नाम्ना ह्यासीदृषिः पुरा
वेदानवाप्य चतुरः सांगोपांगान्सनातनान् ।
प्रयोजयामास तदा नाम गुह्यमिदं मम ॥ ५५
आनुपूर्व्येण विधिना केशवेति पुनः पुनः ।
स चक्षुष्मान्समभवद्गोतमश्चाभवत्पुनः ॥ ५६
एवं हि वरदं नाम केशवेति ममार्जुन ।
देवानामथ सर्वेषामृषीणां च महात्मनाम् ५७

---

श्रुतेश्चाप इति शरीरमुच्यते । तदस्य पूर्वमयनं प्रवेशस्थानम् उपाधिसृष्टिसमकालं हि घटाकाशवदुपाधौ चितेः प्रवेशः उपाध्यभिमानानन्तरं च जीवत्वमिति विवेकः । अत उक्तं मम तत्पूर्वमयनमिति ॥ ४० ॥ वासयत्याच्छादयति विश्वं वसत्यस्मिन्विश्वमिति वा वासुः वस आच्छादने वस निवासे इत्यनयो रूपे । स चासौ देवश्चेति वासुदेव इत्यर्थः । एतेन 'ईशावास्यमिदं सर्वं कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः' इति श्रुत्योर्थः संगृहीतः ॥ ४१ ॥ विच्छ गतौ तुदादिः विच्छ दीप्तौ चुरादिः विषु सेचने भ्वादिः । विष्लृ व्याप्तौ जुहोत्यादिः । विश प्रवेशने तुदादिः । ष्णु प्रस्रवणेऽदादिः । एतेषामन्यतमस्य रूपं विष्णुरित्यभिप्रेत्याह—**गतिरिति** । विच्छन्ति गच्छन्ति लीयन्तेऽस्मिन्विच्छन्त्यस्माल्लोका इति वा वेवेष्टि व्याप्नोतीति वा विच्छयति दीप्यत इति वा ॥ ४२ ॥ अधिभूतानि सर्वाणि प्राणिजातानि दिव्यादिव्यानि अन्तेषु देहावसानेषु यद् ब्रह्म इच्छन् । ऐच्छन् अडभाव आर्षः इच्छितवान्ति तदस्मि सर्वकामप्रपूरकमिति विशेषेण स्नौति प्रस्रवति कामक्षीरमिति वा चकारात्सिंचति जीवनं प्रविशति हृदयं क्रामति कार्यमिति वा विष्णुरित्यर्थः । एतेन 'गच्छन्त्यास्मिन्नागच्छन्ति च यस्मात्प्रजाः येनावृतं खं च दिवं महीं च तस्य भासा सर्वमिदं विभाति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तद्भावतोऽन्यानत्येतीति । अन्नादो वसुदानः ' इत्यादिश्रुत्यर्थ उक्तः ॥ ४३ ॥ दमनं दामस्तेन उत् उत्कर्षेण ऋच्छन्ति प्राप्नुवन्ति स्वर्गादिकं यस्मादिति दामोदर इत्यभिप्रेत्याह—**दमादिति** ॥ ४४ ॥ पृच्छन्त्येनं जिज्ञासवो धर्मजातमिति पृच्छन्त्येनं क्षुधितादय इति वा पृश्निर्वेदोऽन्नादि वा गर्भा गर्भस्थानि अतः पृश्निगर्भोऽहमित्यर्थः ॥ ४५ ॥ ऋषय इति द्वौ एतन्नामजपफलमाहतुः ॥ ४६ ॥ केशैः केशवत्सूक्ष्मैः सूर्यादिरश्मिभिस्तद्रूपेण वा वाति गच्छतीति केशव इत्याह—**सूर्यस्येति**—

' यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥'

इति भगवद्वचनार्थः केशवपदव्युत्पत्त्युक्त्या सिद्धः ॥ ४८ ॥ केशवशब्दजपफलमन्धस्य चक्षुःप्राप्तिरित्याह—**स्वपत्न्यामित्यादिना** ॥ ४९ ॥ गोतमः गोशब्देन चक्षुरुच्यते चक्षुष्मत्तम इत्यर्थः ॥ ५६ ॥ तापनादाप्यायनाच्च लोकं हर्षयत इति हृषी अग्नीषोमौ जाठराग्निरूपौ तौ केशा इव केशा यस्येति हृषीकेश इत्येतमर्थं व्युत्पादयितुमग्नीषोमयोर्भोक्तृभोग्ययोरैक्योनित्वमाह—**देवानामित्यादिना** ॥५७॥

अग्निः सोमेन संयुक्त एकयोनित्वमागतः ।
अग्नीषोममयं तस्माज्जगत्कृत्स्नं चराचरम् ॥ ५८
अपि हि पुराणे भवति एकयोन्यात्मकाव-
ग्नीषोमौ देवाश्चाग्निमुखा इति एकयोनित्वाच्च
परस्परमर्हन्तो लोकान्धारयन्त इति ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
एकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४१ ॥

## ३४२-[१६९]

अर्जुन उवाच ।
अग्नीषोमौ कथं पूर्वमेकयोनी प्रवर्तितौ ।
एष मे संशयो जातस्तं छिन्धि मधुसूदन ॥ १

श्रीभगवानुवाच ।
हन्त ते वर्तयिष्यामि पुराणं पाण्डुनन्दन ।
आत्मतेजोद्भवं पार्थ शृणुष्वैकमना मम ॥ २

संप्रक्षालनकालेऽतिक्रान्ते चतुर्युगसहस्रान्ते अव्यक्ते सर्वभूते प्रलये सर्वभूतस्थावरजङ्गमे । ज्योतिर्धरणिवायुरहिते अन्धे तमसि जलैकार्णवे लोके ॥ ३
आप इत्येवं ब्रह्मभूतसंज्ञकेऽद्वितीये प्रतिष्ठितेषु ४
न वै रात्र्यां न दिवसे न सति नासति न व्यक्ते न चाप्यव्यक्ते व्यवस्थिते ॥ ५

एवमस्यां व्यवस्थायां नारायणगुणाश्रयादजरामरादनिन्द्रियादग्राह्यादसंभवात्सत्यादहिंस्राल्ललामाद्विविधप्रवृत्तिविशेषाद्वैरादक्षयादमरादजरादमूर्तितः सर्वव्यापिनः सर्वकर्तुः शाश्वतस्तमसः पुरुषः प्रादुर्भूतो हरिरव्ययः ६
निदर्शनमपि ह्यत्र भवति— ७

---

एकयोनित्वं विना भोक्तृभोग्यभावासंभवः। अन्यथा वाय्वग्नियोरन्योन्योः स्पर्शचक्षुषोरपि भोग्यभोक्तृभावः स्यादित्याशयेनाह-**परस्परमर्हन्त इति** । भोक्तृभोग्यत्वामिति शेषः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४१ ॥

३४२

**अग्नीषोमाविति** ॥ १ ॥ तेजोद्भवं सन्धिरार्षः॥२॥ संप्रक्षालनकाले प्रलयकाले चतुर्युगानां सहस्रं तदन्ते जलैकार्णवे सलिलवच्चिदेकसमुद्रे ॥३॥ **आप इत्येवमिति** । सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवतीति श्रुतौ ब्रह्मभूतस्य अप्पर्यायसलिलशब्देनोपादानात् । एकार्णववदद्वितीये इत्यर्थः । प्रतिष्ठिते स्वमहिम्नीति शेषः ॥४॥ 'न रात्र्यां' अह्न आसीत्प्रकेतः नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्' इत्येतावतः श्रुतिभागस्यार्थं संगृह्णाति-**न वै रात्र्यामिति**। सति प्रधाने असति शून्ये व्यक्ते परमाण्वादौ अव्यक्ते मायाशबले परव्योमाख्ये ॥ ५ ॥ एवं निर्विशेषसन्मात्रे ब्रह्मणि व्यवस्थिते सत्यनिर्वचनीयात्तमसः सृष्टिमाह—**एवमस्यामित्यादिना** । नारायणगुणानामैश्वर्यादीनामाश्रयात् अजरामरत्वं भूताकाशेऽस्ति न तु तस्य श्रोत्रेन्द्रियात्मनो निरिन्द्रियत्वमस्तीत्यत उक्तम**निन्द्रियादिति** । तदपि कालेऽस्तीत्यत आह—**अग्राह्यादिति**। कालस्यापि षडिन्द्रियवेद्यत्वमस्ति इदानीं घटं पश्यामीत्याद्यनुभवात् । विशिष्टप्रत्यक्षस्य च विशेषणप्रत्यक्षं विनाऽसंभवादित्यर्थः । अथवा तार्किकाभिमतमनःप्रत्यक्षात्मव्यावृत्त्यर्थमिदं तटस्थेश्वरे वारणार्थमाह-**असंभवादिति**। तत्र हि क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद्घटवदित्यनुमानतः संभवोऽस्ति । न चैतन्यस्याऽस्य जडत्वाभ्युपगमात् । सत्यात् व्यवहारत इति शेषः । न तु परीक्षातः सत्यत्वमस्यास्ति । तत्र हेतुः—**अहिंस्रादिति** । स्वप्नव्याघ्रो हि निद्राद्योर्णिपिप्लुतं भीषयत्येव न तु हिनस्ति तद्वदेतत् । सत्यत्वे अहिंस्रत्वं नोपपद्यतेत्यर्थः । नन्वेवं नामान्तरेण असद्वेवोक्तं नेत्याह—**ललामादिति** । चिन्तामणिरत्नवद्भावरूपादित्यर्थः । अत एव विविधाः प्रवृत्तिविशेषा यस्मात् । भावरूपत्वेऽपि जडत्वात्तुच्छत्वाच्च वैरक्षयजरामृत्युमूर्तयोऽस्य न संभवन्ति । ईदृशमपि सर्वव्यापकं सर्वकर्तृ चेति शश्वद्भवं अनादि पञ्चम्यर्थे प्रथमा । तमसः सकाशाच्चिदात्मा प्रादुर्भूतो व्यक्तता

नासीदहो न रात्रिरासीन्न सदासीन्नासदासीत्तम एव पुरस्तादभवद्विश्वरूपम् ॥ सा विश्वरूपस्य रजनी हि एवमस्यार्थोऽनुभाष्यः ॥ ८

तस्येदानीं तमसः संभवस्य पुरुषस्य ब्रह्मयोनेर्ब्रह्मणः प्रादुर्भावे स पुरुषः प्रजाः सिसृक्षमाणो नेत्राभ्यामग्नीषोमौ ससर्ज ॥ ततो भूतसर्गेषु सृष्टेषु प्रजाक्रमवशाद्ब्रह्मक्षत्रमुपातिष्ठत्॥ यः सोमस्तद्ब्रह्म यद्ब्रह्म ते ब्राह्मणा योऽग्निस्तत्क्षत्रं क्षत्राद्ब्रह्म बलवत्तरम्॥ कस्मादिति लोकप्रत्यक्षगुणमेतत्तद्यथा ॥ ब्राह्मणेभ्यः परं भूतं नोत्पन्नपूर्वं दीप्यमानेऽग्नौ जुहोति॥ यो ब्राह्मणमुखे जुहोतीति कृत्वा ब्रवीमि भूतसर्गः कृतो ब्रह्मणा भूतानि च प्रतिष्ठाप्य त्रैलोक्यं धार्यत इति मन्त्रवादोऽपि हि भवति ॥ ९

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितो देवानां मानुषाणां च जगत इति ॥ १०

निदर्शनं चात्र भवति विश्वेषामग्ने यज्ञानां त्वं होतेति ॥ त्वं हितो देवैर्मनुष्यैर्जगत इति ॥ ११

अग्निर्हि यज्ञानां होता कर्ता स चाग्निर्ब्रह्म १२

न ह्यृते मन्त्राणां हवनमस्ति न विना पुरुषं तपः सम्भवति ॥ हविर्मन्त्राणां संपूजा विद्यते देवमानुषऋषीणामनेन त्वं होतेति नियुक्तः॥ ये च मानुषहोत्राधिकारास्ते च ब्राह्मणस्य हि याजनं विधीयते न क्षत्रवैश्ययोर्द्विजात्योस्तस्माद्ब्राह्मणा ह्यग्निभूता यज्ञानुद्वहन्ति ॥ यज्ञास्ते देवांस्तर्पयन्ति देवाः पृथिवीं भावयन्ति शतपथेऽपि हि ब्राह्मणमुखे भवति ॥ १३

अग्नौ समिद्धे स जुहोति यो विद्वान् ब्राह्मणमुखेनाहुतिं जुहोति ॥ १४

एवमप्यग्निभूता ब्राह्मणा विद्वांसोऽग्निं भावयन्ति । अग्निर्विष्णुः सर्वभूतान्यनुप्रविश्य प्राणान्धारयन्ति ॥ १५

अपि चात्र सनत्कुमारगीताः श्लोका भवन्ति
ब्रह्मा विश्वं सृजत्पूर्वं सर्वादिर्निरवस्कृतम् ।
ब्रह्मघोषैर्दिवं गच्छन्त्यमरा ब्रह्मयोनयः ॥ १६

ब्राह्मणानां मतिर्वाक्यं कर्म श्रद्धा तपांसि च
धारयन्ति महीं द्यां च शैक्यो वागमृतं तथा

नास्ति सत्यात्परो धर्मो
नास्ति मातृसमो गुरुः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति
प्रेत्य चेह च भूतये ॥ १८

नैषामुक्षा वहति नोत वाहा
न गर्गरो मथ्यति संप्रदाने ।
अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति
येषां राष्ट्रे ब्राह्मणा वृत्तिहीनाः ॥ १९

वेदपुराणेतिहासप्रामाण्यान्नारायणमुखोद्गताः सर्वात्मानः सर्वकर्तारः सर्वभावाश्च ब्राह्मणाश्च ॥ २०

वाक्संयमकाले हितस्य वरप्रदस्य देवदेवस्य ब्राह्मणाः प्रथमं प्रादुर्भूता ब्राह्मणेभ्यश्च शेषा वर्णाः प्रादुर्भूताः ॥ २१

इत्थं च सुरासुरविशिष्टा ब्राह्मणा य एव मया ब्रह्मभूतेन पुरा स्वयमेवोत्पादिताः सुरासुरमहर्षयो भूतविशेषाः स्थापिता निगृहीताश्च २२

---

गतः । अहंप्रत्ययविषयत्वं गतः हरिरव्ययः ॥६॥ निदर्शनं श्रुतिरूपं प्रमाणम् ॥७॥ तदेव पठति-**नासीदिति** । तम एव पुरस्तादभवद्विश्वरूपमित्यस्मिन्नर्थे श्रुत्यन्तरमप्यस्ति । 'तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तमसस्तन्महिनाऽजायतैकम्' इति एषा श्रुतिः प्राग्व्याख्याता। एवमस्यार्थोऽनुभाष्यः अग्नीषोमयोरैक्योनित्वं भाषितमेव शुद्धात्मावशेषोक्त्या पुनरप्यनुभाष्यः हरिप्रभवत्वेनेत्यर्थः॥८॥तदेवाह-**तस्येदानीमित्यादिना**। स पुरुषः ब्रह्मणा ब्राह्मणेन मन्त्रवादोऽपि ब्राह्मणमाहात्म्यप्रख्यापकः ॥९॥ हे अग्ने त्वं देवादीनां हितोऽसि यतस्त्वं यज्ञानां होता होतृस्वरूपो ऋत्विगसि होतृत्वेनाग्निं स्तुवन्नमितोऽपि होता ब्राह्मणोऽधिक इति दर्शितम्॥१०॥ संक्षिप्य मन्त्रं व्याचष्टे-**निदर्शनमिति** ॥ ११ ॥ विस्तरेण व्याचष्टे—**अग्निर्हीति**। होता ऋत्विक् कर्ता यजमानः। उभौ होतृशब्दार्थः उभयरूपी अग्निर्ब्रह्म ब्राह्मणः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणस्य वेदधारित्वेन ब्रह्मभावमुपपादयति—**न हीत्यादिना** ॥ १३ ॥ **अग्नाविति** । अग्नौ हुते सति ब्राह्मणो न तृप्यति ब्राह्मणमुखे हुतं चेदग्न्यादयो देवता ब्राह्मणशरीरं प्रविश्य धारयन्त्यतस्तत्तृप्त्या तृप्यन्तीति शतपथवाक्यार्थः ॥ १४ ॥ शैक्य इव शैक्यः शिक्यसमुदायः । यथा शिक्यं गव्यादीन्धारयति । एवं ब्राह्मणो मत्यादीनि इत्यर्थः ॥ १७ ॥ **गर्गरः** दधीक्षुतैलादिनिपीडनयन्त्रम्। येषां राज्ञां कृष्यादिहीनत्वात्तादृशा राजानो नष्टाश्चोराश्च भवन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥

अहल्याधर्षणनिमित्तं हि गौतमाद्धरिश्मश्रुतामिन्द्रः प्राप्तः कौशिकनिमित्तं चेन्द्रो मुष्कवियोगं मेषवृषणत्वं चावाप ॥ २३

अश्विनोर्ग्रहप्रतिषेधोद्यतवज्रस्य पुरन्दरस्य च्यवनेन स्तंभितौ बाहू ॥ २४

क्रतुवधप्राप्तमन्युना च दक्षेण भूयस्तपसा चात्मानं संयोज्य नेत्राकृतिरन्या ललाटे रुद्रस्योत्पादिता ॥ २५

त्रिपुरवधार्थं दीक्षामुपगतस्य रुद्रस्य उशनसा जटाः शिरस उत्कृत्य प्रयुक्तास्ततः प्रादुर्भूता भुजगास्तैरस्य भुजगैः पीड्यमानः कण्ठो नीलतामुपगतः, पूर्वे च मन्वन्तरे स्वायंभुवे नारायणहस्तग्रहणान्नीलकण्ठत्वमेव च ॥ २६

अमृतोत्पादनपुरश्चरणतामुपगतस्याङ्गिरसो बृहस्पतेरुपस्पृशतो न प्रसादं गतवत्यः किलापः, अथ बृहस्पतिरपां चुक्रोध यस्मान्ममोपस्पृशतः कलुषीभूता न च प्रसादमुपगतास्तस्मादद्यप्रभृति झषमकरकच्छपजन्तुभिः कलुषी भवितेति, तदा प्रभृत्यापो यादोभिः संकीर्णाः संप्रवृत्ताः ॥ २७

विश्वरूपो हि वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत्, स्वस्रीयोऽसुराणां स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमदात्परोक्षमसुरेभ्यः ॥ २८

अथ हिरण्यकशिपुं पुरस्कृत्य विश्वरूपमातरं स्वसारमसुरा वरमयाचन्त हे स्वसरयन्ते पुत्रस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपस्त्रिशिरा देवानां पुरोहितः प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमदात् परोक्षमस्माकं ततो देवा वर्धन्ते वयं क्षीयामस्तदेनं त्वं वारयितुमर्हसि तथा यथाऽस्मान् भजेदिति ॥ २९

अथ विश्वरूपं नन्दनवनमुपगतं मातोवाच पुत्र किं परपक्षवर्धनस्त्वं मातुलपक्षं नाशयसि, नार्हस्येवं कर्तुमिति स विश्वरूपो मातुर्वाक्यमनतिक्रमणीयमिति मत्वा संपूज्य हिरण्यकशिपुमगात् ॥ ३०

हैरण्यगर्भाच्च वसिष्ठाद्धिरण्यकशिपुः शापं प्राप्तवान्यस्मात्त्वयाऽन्यो वृतो होता तस्मादसमाप्तयज्ञस्त्वमपूर्वात्सत्त्वजाताद्वधं प्राप्स्यसीति तच्छापदानाद्धिरण्यकशिपुः प्राप्तवान्वधम् ॥ ३१

अथ विश्वरूपो मातृपक्षवर्धनोऽत्यर्थं तपस्यभवत्तस्य व्रतभङ्गार्थमिन्द्रो बह्वीः श्रीमत्योऽप्सरसो नियुयोज ताश्च दृष्ट्वा मनः क्षुभितं तस्याभवत्तासु चाप्सरःसु न चिरादेव सक्तोऽभवत्सक्तं चैनं ज्ञात्वा अप्सरस ऊचुर्गच्छामहे वयं यथागतमिति ॥ ३२

तास्त्वाष्ट्र उवाच क्व गमिष्यथास्यतां तावन्मया सह श्रेयो भविष्यतीति तास्तमब्रुवन्वयं देवस्त्रियोऽप्सरस इन्द्रं देवं वरदं पुरा प्रभविष्णुं वृणीमह इति ॥ ३३

अथ ता विश्वरूपोऽब्रवीदद्यैव सेन्द्रा देवा न भविष्यन्तीति ततो मंत्रान् जजाप तैर्मन्त्रैर्वर्धत त्रिशिरा एकेनास्येन सर्वलोकेषु यथावद्द्विजैः क्रियावद्भिर्यज्ञेषु सुहुतं सोमं पपावेकेनान्नमेकेन सेन्द्रान्देवानथेन्द्रस्तं विवर्धमानं सोमपानाप्यायितसर्वगात्रं दृष्ट्वा चिन्तामापेदे सह देवैः ॥ ३४

ते देवाः सेन्द्रा ब्रह्माणमभिजग्मुस्त ऊचुर्विश्वरूपेण सर्वयज्ञेषु सुहुतः सोमः पयिते वयमभागाः संवृत्ता असुरपक्षो वर्धते वयं क्षीयामस्तदर्हसि नो विधातुं श्रेयोऽनन्तरामिति ३५

तान्ब्रह्मोवाच ऋषिर्भार्गवस्तपस्तप्यते दधीचः स याच्यतां वरं स यथा कलेवरं जह्यात्तथा विधीयतां तस्यास्थिभिर्वज्रं क्रियतामिति ३६

ततो देवास्तत्रागच्छन्यत्र दधीचो भगवानृषिस्तपस्तेपे सेन्द्रा देवास्तं तथाऽभिगम्योचुर्भगवंस्तपः सुकुशलमविघ्नं चेति ॥ ३७

तान्दधीच उवाच स्वागतं भवद्भ्य उच्यतां किं क्रियतामिति यद्वक्ष्यथ तत्करिष्यामि ३८

ते तमब्रुवन् शरीरपरित्यागं लोकहितार्थं भगवान्कर्तुमर्हतीति ॥ ३९

अथ दधीचस्तथैवाविमनाः सुखदुःखसमो महायोगी आत्मानं समाधाय शरीरपरित्यागं चकार ॥ ४०

तस्य परमात्मन्यपसृते तान्यस्थीनि धाता संगृह्य वज्रमकरोत्तेन वज्रेणाभेद्येनाप्रधृष्येण ब्रह्मास्थिसंभूतेन विष्णुप्रविष्टेनेन्द्रो विश्वरूपं जघान शिरसां चास्य छेदनमकरोत्तस्मादनन्तरं विश्वरूपगात्रमथनसंभवं त्वाष्ट्रोत्पादितमेवारिं वृत्रमिन्द्रो जघान ॥ ४१

तस्यां द्वैधीभूतायां ब्रह्मवध्यायां भयादिन्द्रो देवराज्यं पर्यत्यजदप्सु संभवां च शीतलां मानससरोगतां नलिनीं प्रतिपेदे तत्र चैश्वर्ययोगादणुमात्रो भूत्वा बिसग्रन्थिं प्रविवेश अथ ब्रह्मवध्याभयप्रनष्टे त्रैलोक्यनाथे शचीपतौ जगदनीश्वरं बभूव देवान् रजस्तमश्चाविवेश मन्त्रा न प्रावर्तन्त महर्षीणां रक्षांसि प्रादुरभवन् ब्रह्म चोत्सादनं जगामानिन्द्राश्चाबला लोकाः सुप्रधृष्या बभूवुः ॥ ४३

अथ देवा ऋषयश्चायुषः पुत्रं नहुषं नाम देवराज्येऽभिषिषिचुर्नहुषः पञ्चभिः शतैर्ज्योतिषां ललाटे ज्वलद्भिः सर्वतेजोहरैस्त्रिविष्टपं पालयांबभूव ॥ ४४

अथ लोकाः प्रकृतिमापेदिरे स्वस्थाश्च हृष्टाश्च बभूवुः ॥ ४५

अथोवाच नहुषः सर्वं मां शक्रोपभुक्तमुपस्थितमृते शचीमिति स एवमुक्त्वा शचीसमीपमगमदुवाचैनां सुभगेऽहमिन्द्रो देवानां भजस्व मामिति तं शची प्रत्युवाच प्रकृत्या त्वं धर्मवत्सलः सोमवंशोद्भवश्च नार्हसि परपत्नीधर्षणं कर्तुमिति ॥ ४६

तामथोवाच नहुष ऐन्द्रं पदमध्यास्यते मयाऽहमिन्द्रस्य राज्यरत्नहरो नात्राधर्मः कश्चित्त्वमिन्द्रोपभुक्तेति सा तमुवाचास्ति मम किञ्चिद्व्रतमपर्यवसितं तस्यावभृथे त्वामुपगमिष्यामि कैश्चिदेवाहोभिरिति स शच्यैवमभिहितो जगाम ॥ ४७

अथ शची दुःखशोकार्ता भर्तृदर्शनलालसा नहुषभयगृहीता बृहस्पतिमुपागच्छत्स च तामत्युद्विग्नां दृष्ट्वैव ध्यानं प्रविश्य भर्तृकार्यतत्परां ज्ञात्वा बृहस्पतिरुवाचानेनैव व्रतेन तपसा चान्विता देवीं वरदामुपश्रुतिमाह्वय तदा सा ते इन्द्रं दर्शयिष्यतीति साऽथ महानियमस्थिता देवीं वरदामुपश्रुतिं मन्त्रैराह्वयाति सोपश्रुतिः शचीसमीपमगादुवाच चैनामियमस्मीति त्वयाऽऽहूतोपस्थिता किं ते प्रियं करवाणीति तां मूर्ध्ना प्रणम्योवाच शची भगवत्यर्हसि मे भर्तारं दर्शयितुं त्वं सत्या ऋता चेति सैनां मानसं सरोऽनयत्तत्रेन्द्रं बिसग्रन्थिगतमदर्शयत् ॥ ४८

तामथ पत्नीं कृशां ग्लानां चेन्द्रो दृष्ट्वा चिन्तयांबभूव अहो मम दुःखमिदमुपगतं नष्टं हि मामियमन्विष्य यत्पत्न्यभ्यगमद्दुःखार्तेति तामिन्द्र उवाच कथं वर्तयसीति सा तमुवाच नहुषो मामाह्वयति पत्नीं कर्तुं कालश्चास्य मया कृत इति तामिन्द्र उवाच गच्छ नहुषस्त्वया वाच्योऽपूर्वेण मामृषियुक्तेन यानेन त्वमधिरूढ उद्वहस्वेति इन्द्रस्य महान्ति वाहनानि सन्ति मनःप्रियाण्यधिरूढानि मयात्वमन्येनोपयातुमर्हसीति सैवमुक्ता हृष्टा जगामेन्द्रोऽपि बिसग्रंथिमेवाविवेश भूयः ॥ ४९

अथेन्द्राणीमभ्यागतां दृष्ट्वा तामुवाच नहुषः पूर्णः स काल इति तं शच्यब्रवीच्छक्रेण यथोक्तं स महर्षियुक्तं वाहनमधिरूढः शचीसमीपमुपागच्छत् ॥ ५०

अथ मैत्रावरुणिः कुंभयोनिरगस्त्यऋषिवरो महर्षीन् धिक्क्रियमाणांस्तान्नहुषेणापश्यत् पद्भ्यां च तमस्पृशत् ततः स नहुषमब्रवीदकार्यप्रवृत्त पाप पतस्व महीं सर्पो भव यावद्भूमिर्गिरयश्च तिष्ठेयुस्तावदिति स महर्षिवाक्यसमकालमेव तस्माद्यानादवापतत् ॥ ५१

अथानिन्द्रं पुनस्त्रैलोक्यमभवत् ततो देवा ऋषयश्च भगवन्तं विष्णुं शरणमिन्द्रार्थेऽभिजग्मुरूचुश्चैनं भगवन्निन्द्रं ब्रह्महत्याभिभूतं त्रातुमर्हसीति ततः स वरदस्तानब्रवीदश्वमेधं यज्ञं वैष्णवं शक्रोऽभियजतां ततः स्वस्थानं प्राप्स्यतीति ततो देवा ऋषयश्चेन्द्रं नापश्यन्यदा तदा शचीमूचुर्गच्छ सुभगे इन्द्रमानयस्वेति सा पुनस्तत्सरः समभ्यगच्छादिन्द्रश्च तस्मात्सरसः प्रत्युत्थाय बृहस्पतिमभिजगाम बृहस्पतिश्चाश्वमेधं महाक्रतुं शक्रायाहरत् तत्र कृष्णसारङ्गं मेध्यमश्वमुत्सृज्य वाहनं तमेव कृत्वा इन्द्रं मरुत्पतिं बृहस्पतिः स्वं स्थानं प्रापयामास ॥ ५२

ततः स देवराट् देवैर्ऋषिभिः स्तूयमानस्त्रिविष्टपस्थो निष्कल्मषो बभूव ह ब्रह्मवध्यां चतुर्षु स्थानेषु वनिताग्निवनस्पतिगोषु व्यभजद्देवमिन्द्रो ब्रह्मतेजःप्रभावोपबृंहितः शत्रुवधं कृत्वा स्वं स्थानं प्रापितः ॥ ५३

आकाशगङ्गागतश्च पुरा भरद्वाजो महर्षिरुपास्पृशत्त्रीन् क्रमान् क्रमता विष्णुनाऽभ्यासादितः स भरद्वाजेन ससलिलेन पाणिनोरसि ताडितः सलक्षणोरस्कः संवृत्तः ॥५४

भृगुणा महर्षिणा शप्तोऽग्निः सर्वभक्षत्वमुपानीतः ॥ ५५

अदितिर्वै देवानामन्नमपचदेतद्भुक्त्वाऽसुरान्हनिष्यन्तीति तत्र बुधो व्रतचर्यासमाप्तावागच्छददितिं चावोचद्भिक्षां देहीति तत्र देवैः पूर्वमेतत्प्राश्यं नान्येनेत्यादितिर्भिक्षां नादादथ भिक्षाप्रत्याख्यानरुषितेन बुधेन ब्रह्मभूतेनादितिः शप्ता अदितेरुदरे भविष्यति व्यथा विवस्वतो द्वितीयजन्मन्यण्डसंज्ञितस्य अण्डं मातुरदित्या मारितं स मार्तण्डो विवस्वानभवच्छ्राद्धदेवः ॥ ५६

दक्षस्य या वै दुहितरः षष्टिरासंस्ताभ्यः कश्यपाय त्रयोदश प्रादाद्दश धर्माय दश मनवे सप्तविंशतिमिन्दवे तासु तुल्यासु नक्षत्राख्यां गतासु सोमो रोहिण्यामभ्यधिकं प्रीतिमानभूत्ततस्ताः शिष्टाः पत्न्य ईर्ष्यावत्यः पितुः समीपं गत्वेममर्थं शशंसुर्भगवन्नस्मासु तुल्यप्रभावासु सोमो रोहिणीं प्रत्यधिकं भजतीति सोऽब्रवीद्यक्ष्मैनमाविश्येतेति दक्षशापात्सोमं राजानं यक्ष्मा विवेश स यक्ष्मणाऽऽविष्टो दक्षमगाद्दक्षश्चैनमब्रवीन्न समं वर्तयसीति तत्रर्षयः सोममब्रुवन्क्षीयसे यक्ष्मणा पश्चिमायां दिशि समुद्रे हिरण्यसरस्तीर्थं तत्र गत्वा आत्मानमभिषेचयस्वेत्यथागच्छत्सोमस्तत्र हिरण्यसरस्तीर्थं गत्वा चात्मनः सेचनमकरोत् स्नात्वा चात्मानं पाप्मनो मोक्षयामास तत्र चावभासितस्तीर्थं यदा सोमस्तदा प्रभृति च तीर्थं तत्प्रभासमिति नाम्ना ख्यातं बभूव ॥ ५७

तच्छापादद्यापि क्षीयते सोमोऽमावास्यान्तरस्थः पौर्णमासीमात्रेऽधिष्ठितो मेघलेखाप्रतिच्छन्नं वपुर्दर्शयति मेघसदृशं वर्णमगमत्तदस्य शशलक्ष्म विमलमभवत् ॥ ५८

स्थूलशिरा महर्षिर्मेरोः प्रागुत्तरे दिग्विभागे तपस्तेपे ततस्तस्य तपस्तप्यमानस्य सर्वगन्धवहः शुचिर्वायुर्वायमानः शरीरमस्पृशत्स तपसा तापितशरीरः कृशो वायुनोपवीज्यमानो हृदये परितोषमगमत्तत्र किल तस्यानिलव्यजनकृतपरितोषस्य सद्यो वनस्पतयः पुष्पशोभां निदर्शितवन्त इति स एतान् शशाप न सर्वकालं पुष्पवन्तो भविष्यथेति ॥ ५९

नारायणो लोकहितार्थं वडवामुखो नाम पुरा महर्षिर्बभूव तस्य मेरौ तपस्तप्यतः समुद्र आहूतो नागतस्तेनामर्षितेनात्मगात्रोष्मणा समुद्रः स्तिमितजलः कृतः स्वेदप्रस्यन्दनसदृशश्चास्य लवणभावो जनितः ॥ ६० उक्तश्चाप्यपेयो भविष्यस्येतच्च ते तोयं वडवामुखसंज्ञितेन पेपीयमानं मधुरं भविष्यति तदेतदद्यापि वडवामुखसंज्ञितेनानुवर्तिना तोयं समुद्रात्पीयते ॥ ६१

हिमवतो गिरेर्दुहितरमुमां कन्यां रुद्रश्चकमे भृगुरपि च महर्षिर्हिमवन्तमागत्याब्रवीत् कन्यामिमां मे देहीति तमब्रवीद्धिमवानभिलक्षितो वरो रुद्र इति तमब्रवीद्भृगुर्यस्मात्त्वयाऽहं कन्यावरणकृतभावः प्रत्याख्यातस्तस्मान्न रत्नानां भवान्भाजनं भविष्यतीति ६२ अद्यप्रभृत्येतदवस्थितमृषिवचनं तदेवंविधं माहात्म्यं ब्राह्मणानाम् ॥ ६३

क्षत्रमपि च ब्राह्मणप्रसादादेव शाश्वतीमव्ययां च पृथिवीं पत्नीमभिगम्य बुभुजे ॥ ६४

यदेतद्ब्रह्माग्नीषोमीयं तेन जगद्धार्यते ॥ ६५

उच्यते—

> सूर्याचन्द्रमसौ चक्षुः
> केशाश्चैवांशवः स्मृताः ।
> बोधयंस्तापयंश्चैव
> जगदुत्तिष्ठते पृथक् ॥ ६६

---

ब्राह्मणमाहात्म्यकथनपरो ग्रन्थः स्पष्टार्थः ॥ ६३ ॥ क्षत्रियमाहात्म्यमप्याह—**क्षत्रमिति** ॥ ६४ ॥ उपसंहरति—**यदेतदिति** । यदेतद्ब्रह्म क्षत्रगतं तेजोऽग्नीषोमीयमतस्तेनैव तेजसा जगद्धार्यतेऽतो जगदप्याग्नीषोमीयमित्यर्थः ॥ ६५ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ अग्नीषोमौ चक्षुः परमेश्वरनेत्राभ्यामुत्पन्नत्वात् केशाः अंशवः किरणाः बोधयंश्चन्द्रः तापयन्सूर्यः ॥ ६६ ॥

बोधनात्तापनाच्चैव जगतो हर्षणं भवेत् ।
अग्नीषोमकृतैरेभिः कर्मभिः पाण्डुनन्दन ।
हृषीकेशोऽहमीशानो वरदो लोकभावनः ६७
इळोपहूतयोगेन हरे भागं क्रतुष्वहम् ।
वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः ६८
धाम सारो हि भूतानामृतं चैव विचारितम्
ऋतधामा ततो विप्रैः सत्यश्चाहं प्रकीर्तितः ॥
नष्टां च धरणीं पूर्वमविन्दं वै गुहागताम् ।
गोविन्द इति तेनाहं देवैर्वाग्भिरभिष्टुतः ७०
शिपिविष्टेति चाख्यायां
हीनरोमा च यो भवेत् ।
तेनाविष्टं तु यत्किञ्चि-
च्छिपिविष्टेति च स्मृतः ॥ ७१
यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान् ।
शिपिविष्ट इति ह्यस्माद्गुह्यनामधरो ह्यहम् ॥
स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधीः
मत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमभिजग्मिवान् ७३
न हि जातो न जायेयं न जनिष्ये कदाचन ।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां तस्मादहमजः स्मृतः ७४
नोक्तपूर्वं मया क्षुद्रमश्लीलं वा कदाचन ।
ऋता ब्रह्मसुता सा मे सत्या देवी सरस्वती
सच्चासच्चैव कौन्तेय मयावेशितमात्मनि ।
पौष्करे ब्रह्मसदने सत्यं मामृषयो विदुः ७६
सत्त्वान्न च्युतपूर्वोऽहं सत्त्वं वै विद्धि मत्कृतम्
जन्मनीहा भवेत्सत्त्वं पौर्विकं मे धनंजय ॥
निराशीःकर्मसंयुक्तः सत्त्वतश्चाप्यकल्मषः ।
सात्त्वतज्ञानदृष्टोऽहं सत्त्वतामिति सात्त्वतः
कृषामि मेदिनीं पार्थ
भूत्वा कार्ष्णायसो महान् ।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मा-
त्तस्मात्कृष्णोऽहमर्जुन ॥ ७९
मया संश्लेषिता भूमिरद्भिर्व्योम च वायुना ।
वायुश्च तेजसा सार्धं वैकुण्ठत्वं ततो मम ॥
निर्वाणं परमं ब्रह्म धर्मोऽसौ पर उच्यते ।
तस्मान्न च्युतपूर्वोऽहमच्युतस्तेन कर्मणा ८१
पृथिवीनभसी चोभे विश्रुते विश्वतोमुखे ।
तयोः सन्धारणार्थं हि मामधोक्षजमञ्जसा ॥
निरुक्तं वेदविदुषो वेदशब्दार्थचिन्तकाः ।
ते मां गायन्ति प्राग्वंशे अधोक्षज इति स्थितिः

---

तौ जगत् हर्षयतः यस्मात्तस्मात्तौ हृषी हृष्यतेरिन् तस्य हृषुप-धात् किदिति कित्त्वम् । अलुक्समासः । हृषी अग्नीषोमौ केशौ अंशू इवांशू यस्य सः हृषीकेश इत्यर्थः ॥६७॥ हरिनाम निर्वक्ति—**इळेति** । इळोपहूता सह दिवेत्यादिमन्त्रेणा-हूतोऽहं तद्योगात् यज्ञभागं हरे हरणं कुर्वे अतोऽहं हरि-रित्यर्थः । वर्णश्च हारिर्हारिन्माणितुल्यस्तस्माद्धरिरिति ॥६८॥ ऋतधामशब्दं निर्वक्ति—**धामेति** । धामशब्दो लोकसार-वाची ऋतमबाधितं धाम सत्तास्फूर्तिरूपं यस्य स ऋतधामे-त्यर्थः ॥६९॥ नष्टां जले मग्नां गां धरणीं विन्दति लभत इति गोविन्द इत्यर्थः ॥७०॥ हीनानि त्यक्तानि रोमाणीव रोमाणि अंशवः अवयवाः येन स शिपिर्निष्कल इत्यर्थः । तेन शिपिना रूपेण यत्किञ्चित् आविष्टं येन अतोऽयं शिपिविष्ट इत्यर्थः ॥ ७१ ॥ अधो नष्टं वेदहरणवेलायां पातालेऽन्तर्हितम् ॥ ७३॥ अजशब्दं निर्वक्ति—**न हीति** । ॥ ७४ ॥ **नोक्तेति** । सत्यभाषित्वात् ॥ ७५ ॥ पृथिव्य-पतेजांसि सत् वाय्वाकाशौ त्यत्तदुभयात्मत्वाद्वा सत्त्यनामाह-मित्यर्थः । पौष्करे मन्नाभिकमलोत्थे ॥ ७६ ॥ सत्त्वेन तायते पाल्यते वा सत्त्वं तनोति विस्तारयति वा सत्त्वतः सत्त्वमस्त्यस्मिन्निति सत्त्वतः सत्त्वपूर्वकमेव सर्वं कर्माचर-तीति सत्त्वतः । सत्त्वत एव सात्त्वतः । तायृ सन्तान-पालनयोस्तनु विस्तारे आभ्यां सत्त्वशब्दपूर्वाभ्यां डः । तप्पर्वमरुद्भ्यामित्यत्र श्रुतो मत्वर्थीयस्तप्प्रत्ययो बाहुलका-त्सत्त्वशब्दादपि अन्ते तद्धितान्तानुकरणमेव प्रातिपदिकं सत् ब्रह्म तद्वन्तः सत्त्वन्तः आर्षं मत्वम् । तेषामिदं तन्त्रं सात्वतं पाञ्चरात्रादि तज्जन्यज्ञानेन दृष्टोऽहं सात्त्वतो वेत्यभिप्रेत्याह—**सत्त्वादिति** ॥ ७७ ॥ निराशीःकर्म निष्कामकर्म ॥७८॥ **कृषामीति** । कृष्णायसो लाङ्गल-कीलरूपी ॥ ७९ ॥ विशब्दः पक्षिवाची व्योमचारित्व-सामान्याद्वायुतेजसोर्मेघरूपास्वप्सु च वर्तते । कुः पृथ्वी ठ-शब्द आकाशवचनः एतेषां समाहारो विकुंठम् । वर्णागमेन विकुण्ठशब्द उत्पन्नः । विकुण्ठानामयं श्लेषणकर्ता वैकुण्ठ इत्यभिसन्धायाह—**मयेति** । विगता कुण्ठा पञ्चानां भूतानां मेलने असामर्थ्यं यस्य सः विकुण्ठः स्वार्थे तद्धितः इति स्पष्टोऽर्थः॥८०॥ अध इति पृथिवी । अक्षू व्याप्तौ इत्यतोऽक् आकाशः ते उभे सञ्जयति सङ्गेन धारयतीति अधोक्षज इत्याह—**पृथिवीति** । अधोक् शब्दपूर्वात्सञ्जेः कः आनिदितामिति नकारलोपः* ॥८२॥ निर्वचनान्तरमाह—**निरुक्तमिति** प्राग्वंशे यज्ञशालैकदेशे ॥ ८३ ॥

---

* गुषामादित्वात्षत्वम् ।

शब्द एकपदैरेष
व्याहृतः परमर्षिभिः ।
नान्यो ह्यधोक्षजो लोके
ऋते नारायणं प्रभुम् ॥ ८४
घृतं ममार्चिषो लोके जन्तूनां प्राणधारणम् ।
घृतार्चिरहमव्यग्रैर्वेदज्ञैः परिकीर्तितः ॥ ८५
त्रयो हि धातवः ख्याताः
कर्मजा इति ते स्मृताः ।
पित्तं श्लेष्मा च वायुश्च
एष संघात उच्यते ॥ ८६
एतैश्च धार्यते जन्तुरेतैः क्षीणैश्च क्षीयते ।
आयुर्वेदविदस्तस्मात्त्रिधातुं मां प्रचक्षते ८७
वृषो हि भगवान्धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
नैघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम् ८८
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः
न चादिं न मध्यं तथा चैव नान्तं
कदाचिद्विदन्ते सुराश्चासुराश्च ।
अनाद्यो ह्यमध्यस्तथा चाप्यनन्तः
प्रगीतोऽहमीशो विभुर्लोकसाक्षी ९०
शुचीनि श्रवणीयानि शृणोमीह धनञ्जय ।
न च पापानि गृह्णामि ततोऽहं वै शुचिश्रवाः
एकशृङ्गः पुरा भूत्वा वराहो नन्दिवर्धनः ।
इमां चोद्धृतवान्भूमिमेकशृङ्गस्ततो ह्ययम्॥९२
तथैवासं त्रिककुदो वाराहं रूपमास्थितः ।
त्रिककुत्तेन विख्यातः शरीरस्य तु मापनात्
विरिञ्च इति यत्प्रोक्तं कापिलं ज्ञानचिन्तकैः
स प्रजापतिरेवाहं चेतनात्सर्वलोककृत् ९४

विद्यासहायवन्तं मा-
मादित्यस्थं सनातनम् ।
कपिलं प्राहुराचार्याः
सांख्या निश्चितनिश्चयाः ॥ ९५
हिरण्यगर्भो द्युतिमान्य एष च्छन्दसि स्तुतः।
योगैः संपूज्यते नित्यं स एवाहं भुवि स्मृतः
एकविंशतिसाहस्रं ऋग्वेदं मां प्रचक्षते ।
सहस्रशाखं यत्साम ये वै वेदविदो जनाः ॥
गायन्त्यारण्यके विप्रा मद्भक्तास्ते हि दुर्लभाः
षट्पञ्चाशतमष्टौ च सप्तत्रिंशतमित्युत ॥ ९८
यस्मिञ्शाखा यजुर्वेदे सोऽहमाध्वर्यवे स्मृतः
पञ्चकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिबृंहितम् ९९
कल्पयन्ति हि मां विप्रा अथर्वाणविदस्तथा
शाखाभेदाश्च ये केचिद्याश्च शाखासु गीतयः
स्वरवर्णसमुच्चाराः सर्वास्तान्विद्धि मत्कृतान्
यत्तद्धयशिरः पार्थ समुदेति वरप्रदम् ॥ १०१
सोऽहमेवोत्तरे भागे क्रमाक्षरविभागवित् ।
वामादेशितमार्गेण मत्प्रसादान्महात्मना २
पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तस्तस्माद्भूतात्सनातनात्
बाभ्रव्यगोत्रः स बभौ प्रथमं क्रमपारगः ३
नारायणाद्वरं लब्ध्वा प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
क्रमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः
कण्डरीकोऽथ राजा च ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्
जातीमरणजं दुःखं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः
सप्तजातिषु मुख्यत्वाद्योगानां संपदं गतः ।
पुराऽहमात्मजः पार्थ प्रथितः कारणान्तरे॥६
धर्मस्य कुरुशार्दूल ततोऽहं धर्मजः स्मृतः ।
नरनारायणौ पूर्वं तपस्तेपतुरव्ययम् ७

---

एकपदैः पृथक्पदैः अतान्ति सततं गच्छन्त्यस्मिन्निति अः अत सातत्यगमनेऽस्माड्डः धोक्षः दुह प्रपूरणेऽस्मात् औणादिक सः गुणभष्भावौ जायतेऽस्मात् सर्वमिति जः जगल्लयस्थितिजन्मस्थानमित्यर्थः ॥ ८४ ॥ मम वह्निस्वरूपस्यार्चिषो वर्धकमिति शेषः ॥ ८५ ॥ त्रयो धातव उपाधिभूताः सन्त्यस्य स त्रिधातुः ॥ ८७ ॥ विभुपदं व्याचष्टे—**न चादिमिति** ॥ ९० ॥ त्रीणि ककुदानि उच्चप्रदेशाः स्कन्धपोत्रदंष्ट्रा यस्य त्रिककुदः शरीरस्येति सामानाधिकरण्यम् ॥ ९३ ॥ विशेषेण रिणक्ति तत्त्वानां परिसंख्यानाख्यं प्रविलयं करोति इति विरिञ्चि इत्यर्थः । रेचनादिति पाठे रेचनद्वारा तत्साध्यं चेतनमेव लक्षणीयम् ९४ कापिलं पीतं आदित्यपुरुषं प्रकृत्य च्छान्दोग्ये आप्रणखात्सर्व एव सुवर्ण इति श्रुतेः ॥ ९५ ॥ छन्दसि समाष्टिलिङ्गाभिमानी सूत्रात्मा भुवि चतुर्मुखः ॥ ९६ ॥ क्रमविभागः पदद्वयमादाय पूर्वं विसृज्य उत्तरमुत्तरेण संदध्यात् । यथा–' अग्निमीळे ईळे पुरोहितं पुरोहितं यज्ञस्य ' इत्यादि । अक्षरविभागः पदविभागः–**वामेति** । वामदेवादिष्टेन ध्यानमार्गेण मामाराधयता पाञ्चालेन मुनिनेति सम्बन्धः ॥ १०२ ॥ कण्डरीक इति कुलनाम । साप्तजन्मिकं जन्मादिदुःखं स्मृत्वा तीव्रतमवैराग्याच्छीघ्रं योगिनां सम्पदं ऐश्वर्यं गतः प्राप्त इति सार्धः ॥ ५ ॥

धर्मयानं समारूढौ पर्वते गन्धमादने ।
तत्कालसमये चैव दक्षयज्ञो बभूव ह ८
न चैवाकल्पयद्भागं दक्षो रुद्रस्य भारत ।
ततो दधीचिवचनाद्दक्षयज्ञमपाहरत् ९
ससर्ज शूलं कोपेन प्रज्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
तच्छूलं भस्मसात्कृत्वा दक्षयज्ञं सविस्तरम्
आवयोः सहसाऽगच्छद्बदर्याश्रममन्तिकात्
वेगेन महता पार्थ पतन्नारायणोरसि ११
ततस्तत्तेजसाऽऽविष्टाः केशा नारायणस्य ह
बभूवुर्मुञ्जवर्णास्तु ततोऽहं मुञ्जकेशवान् १२
तच्च शूलं विनिर्धूतं हुंकारेण महात्मना ।
जगाम शंकरकरं नारायणसमाहतम् १३
अथ रुद्र उपाधावत्तावृषी तपसान्वितौ ।
तत एनं समुद्धूतं कण्ठे जग्राह पाणिना १४
नारायणः स विश्वात्मा तेनास्य शितिकण्ठता
अथ रुद्रविघातार्थमिषीकां नर उद्धरन् १५
मन्त्रैश्च संयुयोजाशु सोऽभवत्परशुर्महान् ।
क्षिप्तश्च सहसा तेन खण्डनं प्राप्तवांस्तदा १६
ततोऽहं खण्डपरशुः स्मृतः परशुखण्डनात् ।

अर्जुन उवाच ।

अस्मिन्युद्धे तु वार्ष्णेय त्रैलोक्यशमने तदा
को जयं प्राप्तवांस्तत्र शंसैतन्मे जनार्दन ।

श्रीभगवानुवाच ।

तयोः संलग्नयोर्युद्धे रुद्रनारायणात्मनोः १८
उद्विग्नाः सहसा कृत्स्नाः
सर्वे लोकास्तदाऽभवन् ।
नागृह्णात्पावकः शुभ्रं
मखेषु सुहुतं हविः ॥ १९
वेदा न प्रतिभान्ति स्म ऋषीणां भावितात्मनां
देवान् रजस्तमश्चैव समाविविशतुस्तदा २०
वसुधा संचकम्पे च नभश्च विपफाल ह ।
निष्प्रभाणि च तेजांसि ब्रह्मा चैवासनच्युतः
अगाच्छोषं समुद्रश्च हिमवांश्च व्यशीर्यत ।
तस्मिन्नेवं समुत्पन्ने निमित्ते पाण्डुनन्दन २२
ब्रह्मा वृतो देवगणैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ।
आजगामाशु तं देशं यत्र युद्धमवर्तत २३
सोऽञ्जलिप्रग्रहो भूत्वा चतुर्वक्त्रो निरुक्तगः ।
उवाच वचनं रुद्रं लोकानामस्तु वै शिवम् २४
न्यस्यायुधानि विश्वेश जगतो हितकाम्यया
यदक्षरमथाव्यक्तमीशं लोकस्य भावनम् २५
कूटस्थं कर्तृ निर्द्वन्द्वमकर्तेति च यं विदुः ।
व्यक्तिभावगतस्यास्य एका मूर्तिरियं शुभा
नरो नारायणश्चैव जातौ धर्मकुलोद्वहौ ।
तपसा महता युक्तौ देवश्रेष्ठौ महाव्रतौ २७
अहं प्रसादजस्तस्य कुतश्चित्कारणान्तरे ।
त्वं चैव क्रोधजस्तात पूर्वसर्गे सनातनः २८
मया च सार्द्धं वरद विबुधैश्च महर्षिभिः ।
प्रसादयाशु लोकानां शान्तिर्भवतु मा चिरम्
ब्रह्मणा त्वेवमुक्तस्तु रुद्रः क्रोधाग्निमुत्सृजन् ।
प्रसादयामास ततो देवं नारायणं प्रभुम् ।
शरणं च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं प्रभुम् ३०
ततोऽथ वरदो देवो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
प्रीतिमानभवत्तत्र रुद्रेण सह संगतः ॥ ३१
ऋषिभिर्ब्रह्मणा चैव विबुधैश्च सुपूजितः ।
उवाच देवमीशानमीशः स जगतो हरिः ३२
यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु
नावयोरन्तरं किञ्चिन्मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा
अद्यप्रभृति श्रीवत्सः शूलाङ्को मे भवत्वयम्
मम पाण्यङ्कितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि

श्रीभगवानुवाच ।

एवं लक्षणमुत्पाद्य परस्परकृतं तदा ।
सख्यं चैवातुलं कृत्वा रुद्रेण सहितावृषी ३४
तपस्तेपतुरव्यग्रौ विसृज्य त्रिदिवौकसः ।
एष ते कथितः पार्थ नारायणजयो मृधे ॥३५
नामानि चैव गुह्यानि निरुक्तानि च भारत ।
ऋषिभिः कथितानीह यानि सङ्कीर्तितानि ते
एवं बहुविधै रूपैश्चरामीह वसुन्धराम् ।
ब्रह्मलोकं च कौन्तेय गोलोकं च सनातनम्
मया त्वं रक्षितो युद्धे महान्तं प्राप्तवाञ्जयम्
यस्तु ते सोऽग्रतो याति युद्धे संप्रत्युपस्थिते

---

अपाहरत् नाशितवान् रुद्र इति शेषः ॥ ९ ॥ तत् शूलं कर्तृ ॥ १० ॥ आवयोर्नरनारायणयोरन्तिकात् आगच्छत् आगतम् ॥ ११ ॥ तत्तेजसा शूलतेजसा ॥ १२ ॥ एनं समुद्धतं उच्छ्रीयागतं रुद्रम् ॥ १४ ॥ शितिकण्ठता कृष्णवर्णस्य नारायणस्य सम्बन्धान्नीलकण्ठत्वं रुद्रो गत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ इषीकैव परशुतां प्राप्ता क्षिप्तः आक्षिप्तः तेन रुद्रशूलेन रुद्रेण वा ॥ १६ ॥ रुद्रस्य खण्डपरशुत्वप्रसिद्धिस्तु मदनन्यत्वादित्यर्थः ॥ १७ ॥

तं विद्धि रुद्रं कौन्तेय देवदेवं कपर्दिनम् ।
कालः स एव कथितः क्रोधजेति मया तव
निहतास्तेन वै पूर्वं हतवानसि यान् रिपून् ।
अप्रमेयप्रभावं तं देवदेवमुमापतिम् ।
नमस्व देवं प्रयतो विश्वेशं हरमक्षयम् ॥ ४१
यश्च ते कथितः पूर्वं क्रोधजेति पुनः पुनः ।
तस्य प्रभाव एवाग्रे यच्छ्रुतं ते धनञ्जय ॥४२

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४२ ॥

## ३४३-[१७०]

शौनक उवाच ।
सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् ।
यच्छ्रुत्वा मनुयः सर्वे विस्मयं परमं गताः १
सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
न तथा फलदं सौते नारायणकथा यथा २
पाविताङ्गाः स्म संवृत्ताः श्रुत्वेमामादितः कथां
नारायणाश्रयां पुण्यां सर्वपापप्रमोचनीम् ३
दुर्दर्शो भगवान्देवः सर्वलोकनमस्कृतः ।
सब्रह्मकैः सुरैः कृत्स्नैरन्यैश्चैव महर्षिभिः ४
दृष्टवान्नारदो यत्तु देवं नारायणं हरिम् ।
नूनमेतद्ध्यनुमतं तस्य देवस्य सूतज ५
यद्दृष्टवान् जगन्नाथमनिरुद्धतनौ स्थितम् ।
यत्प्राद्रवत्पुनर्भूयो नारदो देवसत्तमौ ६
नरनारायणौ द्रष्टुं कारणं तद्ब्रवीहि मे ।
सौतिरुवाच ।
तस्मिन्यज्ञे वर्तमाने राज्ञः पारिक्षितस्य वै
कर्मान्तरेषु विधिवद्वर्तमानेषु शौनक ।
कृष्णद्वैपायनं व्यासमृषिं वेदनिधिं प्रभुम् ८
परिपप्रच्छ राजेन्द्रः पितामहपितामहम् ।
जनमेजय उवाच ।
श्वेतद्वीपान्निवृत्तेन नारदेन सुरर्षिणा ९
ध्यायता भगवद्वाक्यं चेष्टितं किमतः परम् ।
बदर्याश्रममागम्य समागम्य च तावृषी ॥ १०
कियन्तं कालमवसत्कां कथां पृष्टवांश्च सः ।
इदं शतसहस्राद्धि भारताख्यानविस्तरात् ११
आमन्थ्य मतिमन्थेन ज्ञानोदधिमनुत्तमम् ।
नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ॥ १२
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ।
समुद्धृतमिदं ब्रह्मन्कथामृतमिदं तथा ॥ १३
तपोनिधे त्वयोक्तं हि नारायणकथाश्रयम् ।
स ईशो भगवान्देवः सर्वभूतात्मभावनः॥ १४
अहो नारायणं तेजो दुर्दर्शं द्विजसत्तम ।
यत्राविशन्ति कल्पान्ते सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥
ऋषयश्च सगन्धर्वा यच्च किञ्चिच्चराचरम् ।
न ततोऽस्ति परं मन्ये पावनं दिवि चेह च ॥
सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
न तथा फलदं चापि नारायणकथा यथा १७
सर्वथा पाविताः स्मेह श्रुत्वेमामादितः कथां
हरेर्विश्वेश्वरस्येह सर्वपापप्रणाशनीम् ॥ १८
न चित्रं कृतवांस्तत्र यदार्यो मे धनञ्जयः ।
वासुदेवसहायो यः प्राप्तवाञ्जयमुत्तमम् ॥ १९
न चास्य किञ्चिदप्राप्यं
मन्ये लोकेष्वपि त्रिषु ।
त्रैलोक्यनाथो विष्णुः स
यथाऽऽसीत्साह्यकृत्स वै ॥ २०
धन्याश्च सर्व एवासन् ब्रह्मंस्ते मम पूर्वजाः ।
हिताय श्रेयसे चैव येषामासीज्जनार्दनः ॥ २१
तपसाऽथ सुदृश्यो हि भगवान् लोकपूजितः
यं दृष्टवन्तस्ते साक्षाच्छ्रीवत्साङ्कविभूषणम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४२ ॥

३४३
सौते इति ॥ १ ॥

तेभ्यो धन्यतरश्चैव नारदः परमेष्ठिजः।
न चाल्पतेजसमृषिं वेद्मि नारदमव्ययम्॥ २३
श्वेतद्वीपं समासाद्य येन दृष्टः स्वयं हरिः।
देवप्रसादानुगतं व्यक्तं तत्तस्य दर्शनम्॥ २४
यद्‌दृष्टवांस्तदा देवमनिरुद्धतनौ स्थितम्।
बदरीमाश्रमं यत्तु नारदः प्राद्रवत्पुनः॥ २५
नरनारायणौ द्रष्टुं किं तु तत्कारणं मुने।
श्वेतद्वीपान्निवृत्तश्च नारदः परमेष्ठिजः॥ २६
बदरीमाश्रमं प्राप्य समागम्य च तावृषी।
कियन्तं कालमवसत्प्रश्नान् कान् पृष्टवांश्च ह
श्वेतद्वीपादुपावृत्ते तस्मिन्वा सुमहात्मनि।
किमब्रूतां महात्मानौ नरनारायणावृषी॥ २८
तदेतन्मे यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि।

वैशम्पायन उवाच।

नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे२९
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम्।
प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं दृष्ट्वा च हरिमव्ययम् ३०
निवृत्तो नारदो राजंस्तरसा मेरुमागमत्।
हृदयेनोद्वहन् भारं यदुक्तं परमात्मना॥ ३१
पश्चादस्याभवद्राजन्नात्मनः साध्वसं महत्।
यद्गत्वा दूरमध्वानं क्षेमी पुनरिहागतः॥ ३२
मेरोः प्रचक्राम ततः पर्वतं गन्धमादनम्।
निपपात च खात्तूर्णं विशालां बदरीमनु॥३३
ततः स ददृशे देवौ पुराणावृषिसत्तमौ।
तपश्चरन्तौ सुमहदात्मनिष्ठौ महाव्रतौ॥ ३४
तेजसाऽभ्यधिकौ सूर्यात्सर्वलोकविरोचनात्
श्रीवत्सलक्षणौ पूज्यौ जटामण्डलधारिणौ॥
जालपादभुजौ तौ तु पादयोश्चक्रलक्षणौ।
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ तथा मुष्कचतुष्किणौ
षष्टिदन्तावष्टदंष्ट्रौ मेघौघसदृशस्वनौ।
स्वास्यौ पृथुललाटौ च सुभ्रू सुहनुनासिकौ॥
आतपत्रेण सदृशे शिरसी देवयोस्तयोः।
एवंलक्षणसंपन्नौ महापुरुषसंज्ञितौ॥ ३८
तौ दृष्ट्वा नारदो हृष्टस्ताभ्यां च प्रतिपूजितः।
स्वागतेनाभिभाष्याथ पृष्टश्चानामयं तथा॥३९
बभूवान्तर्गतमतिर्निरीक्ष्य पुरुषोत्तमौ।
सदोगतास्तत्र ये वै सर्वभूतनमस्कृताः॥ ४०
श्वेतद्वीपे मया दृष्टास्तादृशावृषिसत्तमौ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्
स चोपविविशे तत्र पीठे कुशमये शुभे।
ततस्तौ तपसां वासौ यशसां तेजसामपि ४२
ऋषी शमदमोपेतौ कृत्वा पौर्वाह्णिकं विधिम्
पश्चान्नारदमव्यग्रौ पाद्यार्घ्याभ्यामथार्चतः४३
पीठयोश्चोपविष्टौ तौ कृतातिथ्याह्निकौ नृपौ
तेषु तत्रोपविष्टेषु स देशोऽभिव्यराजत॥ ४४
आज्याहुतिमहाज्वालैर्यज्ञवाटो यथाऽग्निभिः।
अथ नारायणस्तत्र नारदं वाक्यमब्रवीत्॥ ४५

सुखोपविष्टं विश्रान्तं
कृतातिथ्यं सुखस्थितम्।
नरनारायणावूचतुः॥

अपीदानीं स भगवान्परमात्मा सनातनः ४६
श्वेतद्वीपे त्वया दृष्ट आवयोः प्रकृतिः परा।

नारद उवाच।

दृष्टो मे पुरुषः श्रीमान्विश्वरूपधरोऽव्ययः४७
सर्वे लोका हि तत्रस्थास्तथा देवाः सहर्षिभिः
अद्यापि चैनं पश्यामि युवां पश्यन्सनातनौ
यैर्लक्षणैरुपेतः स हरिरव्यक्तरूपधृक्।
तैर्लक्षणैरुपेतौ हि व्यक्तरूपधरौ युवाम्॥४९
दृष्टौ युवां मया तत्र तस्य देवस्य पार्श्वतः।
इहैव चागतोऽस्म्यद्य विसृष्टः परमात्मना५०
को हि नाम भवेत्तस्य तेजसा यशसा श्रिया
सदृशस्त्रिषु लोकेषु ऋते धर्मात्मजौ युवाम्॥
तेन मे कथितः कृत्स्नो धर्मः क्षेत्रज्ञसंज्ञितः।
प्रादुर्भावाश्च कथिता भविष्या इह ये यथा॥
तत्र ये पुरुषाः श्वेताः पञ्चेन्द्रियविवर्जिताः।
प्रतिबुद्धाश्च ते सर्वे भक्ताश्च पुरुषोत्तमम्॥ ५३
तेऽर्चयन्ति सदा देवं तैः सार्धं रमते च सः।
प्रियभक्तो हि भगवान्परमात्मा द्विजप्रियः॥
रमते सोऽर्च्यमानो हि सदा भागवतप्रियः।
विश्वभुक् सर्वगो देवो माधवो भक्तवत्सलः
स कर्ता कारणं चैव कार्यं चातिबलद्युतिः।
हेतुश्चाज्ञा विधानं च तत्त्वं चैव महायशाः५६
तपसा योज्य सोत्मानं श्वेतद्वीपात्परं हि यत्
तेज इत्यभिविख्यातं स्वयंभासाऽवभासितम्

---

जालपादा हंसास्तदंकितभुजौ हंसपादांकितभुजौ चक्रलक्षणौ चक्रांकितपादौ॥ ३६॥

शान्तिः सा त्रिषु लोकेषु
विहिता भावितात्मना ।
एतया शुभया बुद्ध्या
नैष्ठिकं व्रतमास्थितः ॥ ५८
न तत्र सूर्यस्तपति न सोमोऽभिविराजते ।
न वायुर्वाति देवेशे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ५९
वेदीमष्टनलोत्सेधां भूमावास्थाय विश्वकृत् ।
एकपादस्थितो देव ऊर्ध्वबाहुरुदङ्मुखः ॥ ६०
साङ्गानावर्तयन्वेदांस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ।
यद्ब्रह्मा ऋषयश्चैव स्वयं पशुपतिश्च यत् ॥ ६१
शेषाश्च विबुधश्रेष्ठा दैत्यदानवराक्षसाः ।
नागाः सुपर्णा गन्धर्वाः सिद्धा राजर्षयश्च ये
हव्यं कव्यं च सततं विधियुक्तं प्रयुञ्जते ।
कृत्स्नं तु तस्य देवस्य चरणावुपतिष्ठतः ॥ ६३
याः क्रियाः संप्रयुक्ताश्च एकान्तगतबुद्धिभिः
ताः सर्वाः शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम्
न तस्याऽन्यः प्रियतरः प्रतिबुद्धैर्महात्मभिः ।
विद्यते त्रिषु लोकेषु ततोऽस्म्यैकान्तिकं गतः
इह चैवागतस्तेन विसृष्टः परमात्मना ।
एवं मे भगवान्देवः स्वयमाख्यातवान्हरिः ।
आसिष्ये तत्परो भूत्वा युवाभ्यां सह नित्यशः

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४३ ॥

## ३४४-[१७१]

नरनारायणावूचतुः ।
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यत्ते दृष्टः स्वयं प्रभुः
न हि तं दृष्टवान्कश्चित्पद्मयोनिरपि स्वयम् १
अव्यक्तयोनिर्भगवान्दुर्दर्शः पुरुषोत्तमः ।
नारदैतद्धि नौ सत्यं वचनं समुदाहृतम् ॥ २
नास्य भक्तात्प्रियतरो लोके कश्चन विद्यते ।
ततः स्वयं दर्शितवान्स्वमात्मानं द्विजोत्तम ३
तपो हि तप्यतस्तस्य यत्स्थानं परमात्मनः ।
न तत्संप्राप्नुते कश्चिदृते ह्यावां द्विजोत्तम ॥ ४
या हि सूर्यसहस्रस्य समस्तस्य भवेद्द्युतिः ।
स्थानस्य सा भवेत्तस्य स्वयं तेन विराजता
तस्मादुत्तिष्ठते विप्र देवाद्विश्वभुवः पतेः ।
क्षमा क्षमावतां श्रेष्ठ यया भूमिस्तु युज्यते ६
तस्माच्चोत्तिष्ठते देवात्सर्वभूतहिताद्रसः ।
आपो हि तेन युज्यन्ते द्रवत्वं प्राप्नुवन्ति च ८
तस्मादेव समुद्भूतं तेजो रूपगुणात्मकम् ।
येन संयुज्यते सूर्यस्ततो लोके विराजते ॥ ९
तस्माद्देवात्समुद्भूतः स्पर्शस्तु पुरुषोत्तमात् ।
येन स्म युज्यते वायुस्ततो लोकान्विवात्यसौ
तस्माच्चोत्तिष्ठते शब्दः सर्वलोकेश्वरात्प्रभोः ।
आकाशं युज्यते येन ततस्तिष्ठत्यसंवृतम् १०

अष्टनलोत्सेधामित्यत्र नलवत्पर्वयुक्तत्वान्नलशब्देन अंगुलं माह्यम्। तलेति पाठेऽपि हस्तस्य तलमंगुलोच्छ्रायमेव भवति ॥ ६० ॥ एकान्तगतबुद्धिभिः अव्यभिचरितबुद्धिभिः ॥ ॥ ६४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४३ ॥

३४४

धन्योऽसीत्यध्याये भूतपञ्चकात्मकं शरीरं समनस्कं येन सृष्टं यो विद्यासहायो विद्यैकलभ्यस्तं सूर्यद्वारेण विशन्तीत्युक्तं तत्रायमर्थः–आदित्यमंडलान्तःस्थे नारायणे सम्यग्दत्तदृष्टिः पुरुषस्तदेकाग्रतया यदा शरीरं सर्वात्मना विस्मरति तदा दग्धसर्वाङ्गो भवति । तत आदित्यपुरुषाकारं मनः क्रमेण पुरुषाकृतिं परित्यज्य अणुः स्मितमात्राकारो नखचन्द्रमात्राकारो वा भवेत् । एवं सूक्ष्मीकृतं मनः अकारार्थे विराजि अनिरुद्धाख्येऽहंकारे प्रवेशयेत् तदपि अनिरुद्धाकारतां परित्यज्य उकारार्थे सूत्रात्मनि प्रद्युम्नाख्ये मनसि तदपि मकारार्थे अन्तर्यामिसंकर्षणाख्ये जीवे शुद्धत्वंपदार्थे प्रविशति तमपि परित्यज्य चतुर्थेऽर्धमात्रार्थे शुद्धे ब्रह्मणि वासुदेवाख्ये महाकाशकल्पे घटाकाशवत्प्रविशेदिति ॥ १ ॥

तस्माद्योऽस्तिष्ठते देवात्सर्वभूतगतं मनः।
चन्द्रमा येन संयुक्तः प्रकाशगुणधारणः ॥ ११
सद्भूतोत्पादकं नाम तत्स्थानं वेदसंज्ञितम्।
विद्यासहायो यत्रास्ते भगवान्हव्यकव्यभुक्
ये हि निष्कलुषा लोके पुण्यपापविवर्जिताः
तेषां वै क्षेममध्वानं गच्छतां द्विजसत्तम १३
सर्वलोके तमो हन्ता आदित्यो द्वारमुच्यते।
आदित्यदग्धसर्वाङ्गा अदृश्याः केनचित्क्वचित्
परमाणुभूता भूत्वा तु तं देवं प्रविशन्त्युत।
तस्मादपि च निर्मुक्ता अनिरुद्धतनौ स्थिताः॥
मनोभूतास्ततो भूत्वा प्रद्युम्नं प्रविशन्त्युत।
प्रद्युम्नाच्चापि निर्मुक्ता जीवं संकर्षणं ततः १६
विशन्ति विप्रप्रवराः सांख्या भागवतैः सह
ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमञ्जसा ॥ १७
प्रविशन्ति द्विजश्रेष्ठाः क्षेत्रज्ञं निर्गुणात्मकम्।
सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः १८
समाहितमनस्काश्च नियताः संयतेन्द्रियाः।
एकान्तभावोपगता वासुदेवं विशन्ति ते १९
आवामपि च धर्मस्य गृहे जातौ द्विजोत्तम।
रम्यां विशालामाश्रित्य तप उग्रं समास्थितौ
ये तु तस्यैव देवस्य
प्रादुर्भावाः सुरप्रियाः।
भविष्यन्ति त्रिलोकस्था-
स्तेषां स्वस्तीत्यथो द्विज ॥ २१
विधिना स्वेन युक्ताभ्यां यथापूर्वं द्विजोत्तम।
आस्थिताभ्यां सर्वकृच्छ्रं व्रतं सम्यगनुत्तमम् ॥
आवाभ्यामपि दृष्टस्त्वं श्वेतद्वीपे तपोधन।
समागतो भगवता संकल्पं कृतवांस्तथा २३
सर्वं हि नौ संविदितं त्रैलोक्ये सचराचरे
यद्भविष्यति वृत्तं वा वर्तते वा शुभाशुभम्।
सर्वं स ते कथितवान्देवदेवो महामुने ॥ २४

वैशम्पायन उवाच।

एतच्छ्रुत्वा तयोर्वाक्यं तपस्युग्रे च वर्ततोः।
नारदः प्राञ्जलिर्भूत्वा नारायणपरायणः ॥२५
जजाप विधिवन्मन्त्रान्नारायणगतान्बहून्।
दिव्यं वर्षसहस्रं हि नरनारायणाश्रमे ॥ २६
अवसत्स महातेजा नारदो भगवानृषिः।
तमेवाभ्यर्चयन्देवं नरनारायणौ च तौ ॥ २७

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४४ ॥

## ३४५–[१७२]

वैशम्पायन उवाच।

कस्यचित्त्वथ कालस्य नारदः परमेष्ठिजः।
दैवं कृत्वा यथान्यायं पित्र्यं चक्रे ततः परम्
ततस्तं वचनं प्राह ज्येष्ठो धर्मात्मजः प्रभुः।
क इज्यते द्विजश्रेष्ठ दैवे पित्र्ये च कल्पिते॥ २
त्वया मतिमतां श्रेष्ठ तन्मे शंस यथागमम्।
किमेतत्क्रियते कर्म फलं चास्य किमिष्यते ॥३

नारद उवाच।

त्वयैतत्कथितं पूर्वं दैवं कर्तव्यमित्यपि।
दैवतं च परो यज्ञः परमात्मा सनातनः ॥ ४
ततस्तद्भावितो नित्यं यजे वैकुण्ठमव्ययम्।
तस्माच्च प्रसृतः पूर्वं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५

---

विशालां बदरीम् ॥ २० ॥ भगवदवताराणां स्वस्तीत्याशिषा तत्पालनयित्वा विवस्य कल्याणं चिन्तितं भवति ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४४ ॥

३४५

देवतां कां यजेतेत्यादि प्रश्नजातस्योत्तरमुक्तं विधिना केन जुहुयाद्दैवं पित्र्यं तथैव चेत्यस्योत्तरमाह—कस्यचित्त्वथेत्यादिना ॥ १ ॥

मम वै पितरं प्रीतः परमेष्ठ्यप्यजीजनत् ।
अहं संकल्पजस्तस्य पुत्रः प्रथमकल्पितः ॥ ६
यजामि वै पितॄन्साधो नारायणविधौ कृते ।
एवं स एव भगवान्पिता माता पितामहः ७
इज्यते पितृयज्ञेषु तथा नित्यं जगत्पतिः ।
श्रुतिश्चाप्यपरा देवी पुत्रान्हि पितरोऽयजन् ८
वेदश्रुतिः प्रनष्टा च पुनरध्यापिता सुतैः ।
ततस्ते मन्त्रदा पुत्राः पितृत्वमुपपेदिरे ॥ ९
नूनं सुरैस्तद्विदितं युवयोर्भावितात्मनोः ।
पुत्राश्च पितरश्चैव परस्परमपूजयन् ॥ १०
त्रीन्पिण्डान्न्यस्य वै पृथ्व्यां
पूर्वं दत्वा कुशानिति ।
कथं तु पिण्डसंज्ञां ते
पितरो लेभिरे पुरा ॥ ११

नरनारायणावूचतुः ।

इमां हि धरणीं पूर्वं नष्टां सागरमेखलाम् ।
गोविन्द उज्जहाराशु वाराहं रूपमास्थितः १२
स्थापयित्वा तु धरणीं स्वे स्थाने पुरुषोत्तमः ।
जलकर्दमलिप्ताङ्गो लोककार्यार्थमुद्यतः ॥ १३
प्राप्ते चाह्निककाले तु मध्यदेशगते रवौ ।
दंष्ट्राविलग्नांस्त्रीन्पिण्डान्विधूय सहसा प्रभुः
स्थापयामास वै पृथ्व्यां कुशानास्तीर्य नारद
स तेष्वात्मानमुद्दिश्य पित्र्यं चक्रे यथाविधि
संकल्पयित्वा त्रीन्पिण्डा-
न्स्वेनैव विधिना प्रभुः ।
आत्मगात्रोष्मसंभूतैः
स्नेहगर्भैस्तिलैरपि ॥ १६
प्रोक्ष्यापवर्गं देवेशः प्राङ्मुखः कृतवान्स्वयम्
मर्यादास्थापनार्थं च ततो वचनमुक्तवान् ॥ १७

वृषाकपिरुवाच ।

अहं हि पितरः स्रष्टुमुद्यतो लोककृत्स्वयम् ।
यस्य चिन्तयतः सद्यः पितृकार्यविधीन्परान्
दंष्ट्राभ्यां प्रविनिर्धूता ममैते दक्षिणां दिशम् ।
आश्रिता धरणीं पिण्डास्तस्मात्पितर एव ते
त्रयो मूर्तिविहीना वै पिण्डमूर्तिधरास्त्विमे ।
भवन्तु पितरो लोके मया सृष्टाः सनातनाः २०
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
अहमेवात्र विज्ञेयस्त्रिषु पिण्डेषु संस्थितः ॥ २१
नास्ति मत्तोऽधिकः कश्चि-
त्को वान्योऽर्च्यो मया स्वयम् ।
को वा मम पिता लोके
अहमेव पितामहः ॥ २२
पितामहपिता चैव अहमेवात्र कारणम् ।
इत्येतदुक्त्वा वचनं देवदेवो वृषाकपिः ॥ २३
वराहपर्वते विप्र दत्वा पिण्डान्सविस्तरान् ।
आत्मानं पूजयित्वैव तत्रैवादर्शनं गतः ॥ २४
एषा तस्य स्थितिर्विप्र पितरः पिण्डसंज्ञिताः ।
लभन्ते सततं पूजां वृषाकपिवचो यथा ॥ २५
ये यजन्ति पितॄन्देवान्गुरूंश्चैवातिथींस्तथा ।
गाश्चैव द्विजमुख्यांश्च पृथिवीं मातरं यथा २६
कर्मणा मनसा वाचा विष्णुमेव यजन्ति ते ।
अन्तर्गतः स भगवान्सर्वसत्त्वशरीरगः ॥ २७
समः सर्वेषु भूतेषु ईश्वरः सुखदुःखयोः ।
महान्महात्मा सर्वात्मा नारायण इति श्रुतः २८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४५ ॥

---

मम पितरं प्रजापतिं ब्रह्मा परमेष्ठीति सम्बन्धः । नारदो दक्षशापात्प्रजापतेः सकाशात्पुनर्जन्म प्राप इति हरिवंशेऽस्ति तस्य ब्रह्मणः ॥ ६ ॥ नारायणविधौ तान्त्रिके पूजादौ ॥ ७ ॥ **श्रुतिश्चेति** । अग्निष्वात्तादीन्पुत्रान् पितरो देवा अध्याप्यासुरैः सह युद्धार्थं गतास्ततश्चिरोषितानां तेषां श्रुतिः प्रनष्टा प्रतिभाति ततस्ते पुत्रेभ्य एव वेदमधीतवन्त इत्याख्यायिका पुराणान्तरप्रसिद्धा सूचिता ॥ ८ ॥ **पूर्वं** पृथ्व्यां कुशान्दत्वा तत्र पित्रांशुद्देशेन पिण्डान्न्यस्य अपूजयन्निति सम्बन्धः ॥ ११ ॥ **अहं हीति** । पितरः पितॄन् ॥ १८ ॥ विष्णोः शालग्राम इव पितॄणां मूर्तयः पिण्डा एवेत्याह—**दंष्ट्राभ्यामिति** ॥ १९ ॥ पिता पितामहश्चेत्यादिना श्राद्धं सर्वं विष्णुदैवत्यमेवेति पित्र्यप्रकारो दर्शितः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४५ ॥

## ३४६-[१७३]

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वैतन्नारदो वाक्यं नरनारायणेरितम् ।
अत्यन्तं भक्तिमान्देवे एकान्तित्वमुपेयिवान् १
प्रोष्य वर्षसहस्रं तु नरनारायणाश्रमे ।
श्रुत्वा भगवदाख्यानं दृष्ट्वा च हरिमव्ययम् ॥ २
हिमवन्तं जगामाशु यत्रास्य स्वक आश्रमः ।
तावपि ख्याततपसौ नरनारायणावृषी ॥ ३
तस्मिन्नेवाश्रमे रम्ये तेपतुस्तप उत्तमम् ।
त्वमप्यमितविक्रान्तः पाण्डवानां कुलोद्वहः ४
पावितात्माऽद्य संवृत्तः श्रुत्वेमामादितः कथाम्
नैव तस्यापरो लोको नायं पार्थिवसत्तम ॥ ५
कर्मणा मनसा वाचा यो द्विष्याद्विष्णुमव्ययम्
मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः ६
यो द्विष्याद्विबुधश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम् ।
कथं नाम भवेद्द्वेष्य आत्मा लोकस्य कस्यचित्
आत्मा हि पुरुषव्याघ्र
ज्ञेयो विष्णुरिति स्थितिः ।
य एष गुरुरस्माकं
ऋषिर्गन्धवतीसुतः ॥ ८
तेनैतत्कथितं तात माहात्म्यं परमव्ययम् ।
तस्माच्छ्रुतं मया चेदं कथितं च तवानघ ॥ ९
नारदेन तु संप्राप्तः सरहस्यः ससंग्रहः ।
एष धर्मो जगन्नाथात्साक्षान्नारायणान्नृप ॥ १०
एवमेष महान्धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम ।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः ११
कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं भुवि ।
को ह्यन्यः पुरुषव्याघ्र महाभारतकृद्भवेत् ॥ १२
धर्मान्नानाविधांश्चैव को ब्रूयात्तमृते प्रभुम् १३
वर्ततां ते महायज्ञो यथा संकल्पितस्त्वया ।
संकल्पिताश्वमेधस्त्वं श्रुतधर्मश्च तत्त्वतः ॥ १४

सौतिरुवाच ।

एतत्तु महदाख्यानं श्रुत्वा पार्थिवसत्तमः ।
ततो यज्ञसमाप्त्यर्थं क्रियाः सर्वाः समारभत
नारायणीयमाख्यानमेतत्ते कथितं मया ।
पृष्टेन शौनकाद्येह नैमिषारण्यवासिषु १६
नारदेन पुरा यद्धि
गुरवे तु निवेदितम् ।
ऋषीणां पाण्डवानां च
शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः १७
स हि परमर्षिर्जनभुवनपतिः
पृथुधरणिधरः श्रुतिविनयविधिः ।
शमनियमनिधिर्यमनियमपरो द्विजवर-
सहितस्तव च भवतुगतिर्हरिरमरहितः
असुरवधकरस्तपसां निधिः
सुमहतां यशसां च भाजनम् ।
मधुकैटभहा कृतधर्मविदांगतिदोऽ-
भयदोमखभागहरोऽस्तु शरणं स ते
त्रिगुणो विगुणश्चतुरात्मधरः
पूर्तेष्टयोश्च फलभागहरः ।
विदधातु नित्यमजितोऽतिबलो
गतिमात्मगां सुकृतिनामृषीणाम् २०
तं लोकसाक्षिणमजं पुरुषं पुराणं
रविवर्णमीश्वरं गतिं बहुशः ।
प्रणमध्वमेकमनसो यतः
सलिलोद्भवोऽपि तमृषिं प्रणतः २१
स हि लोकयोनिरमृतस्य पदं
सूक्ष्मं परायणमचलं हि पदम् ॥
तत्सांख्ययोगिभिरुदारवृतं
बुद्ध्या यतात्मभिरिदं सनातनम् २२

---

३४६

**श्रुत्वेति।** अस्य तात्पर्यं सर्वभूतात्मके विष्णौ द्रोहमकुर्वाणेन परमेश्वरः सम्यगाराधनीय इति ॥१॥ गुरवे बृहस्पतये ॥१७॥ **स हीति।** स नारायणः शमस्य नियमो निग्रहस्तत्परः यमाः नियमाश्च पञ्च पञ्च अहिंसादयः सत्यादयश्च॥१८॥ कृतधर्मः कृतयुगधर्मः सत्यादिस्तद्विदाम् ॥ १९ ॥ चत्वारो वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाख्या आत्मानस्तान्धारयति स तथा पूर्तं वाप्यादि इष्टमग्निहोत्रादि आत्मगां प्रत्यक्त्वगामिनीम् ॥२०॥ सलिलं उद्भवो यस्य स नारायणः शेषशायी तमृषिं वासुदेवम् ॥२१॥ लोकस्य अव्यक्तादेर्योनिः अमृतस्य मोक्षस्य पदं स्थानं पदं पदनीयम् । हे उदार तत् अतं घृतमिति पाठान्तरे ध्यातम् यतात्मभिर्निरुद्धचित्तैः ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४६ ॥

## ३४७-[१७४]

शौनक उवाच ।

श्रुतं भगवतस्तस्य माहात्म्यं परमात्मनः ।
जन्म धर्मगृहे चैव नरनारायणात्मकम् १
महावराहसृष्टा च पिण्डोत्पत्तिः पुरातनी ।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च यो यथा परिकल्पितः
तथा च नः श्रुतो ब्रह्मन्कथ्यमानस्त्वयाऽनघ ।
हव्यकव्यभुजो विष्णुरुदक्पूर्वे महोदधौ ३
यच्च तत्कथितं पूर्वं त्वया हयशिरो महत् ।
तच्च दृष्टं भगवता ब्रह्मणा परमेष्ठिना ४
किं तदुत्पादितं पूर्वं हरिणा लोकधारिणा ।
रूपं *प्रभावं महतामपूर्वं धीमतां वर ५
दृष्ट्वा हि विबुधश्रेष्ठमपूर्वममितौजसम् ।
तदश्वशिरसं पुण्यं ब्रह्मा किमकरोन्मुने ६
एतन्नः संशयं ब्रह्मन्पुराणं ज्ञानसंभवम् ।
कथयस्वोत्तममते महापुरुषनिर्मितम् ७
पाविताः स्म त्वया ब्रह्मन्पुण्यां कथयता कथां

सौतिरुवाच ।

कथयिष्यामि ते सर्वं पुराणं वेदसंमितम्८
जगौ यद्भगवान् व्यासो राज्ञः पारिक्षितस्य वै
श्रुत्वाऽश्वशिरसो मूर्तिं देवस्य हरिमेधसः ९
उत्पन्नसंशयो राजा एतदेवमचोदयत् ।

जनमेजय उवाच ।

यत्तद्दर्शितवान्ब्रह्मा देवं हयशिरोधरम् १०
किमर्थं तत्समभवत्तन्ममाचक्ष्व सत्तम ।

वैशंपायन उवाच ।

यत्किञ्चिदिह लोके वै देहबद्धं विशांपते
सर्वं पञ्चभिराविष्टं भूतैरीश्वरबुद्धिभिः ।
ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणो विराट्१२
भूतान्तरात्मा वरदः सगुणो निर्गुणोऽपि च ।
भूतप्रलयमत्यन्तं शृणुष्व नृपसत्तम १३
धरण्यामथ लीनायामप्सु चैकार्णवे पुरा ।
ज्योतिर्भूते जले चापि लीने ज्योतिषि चानिले
वायौ चाकाशसंलीने आकाशे च मनोनुगे ।
व्यक्ते मनसि संलीने व्यक्ते चाव्यक्ततां गते
अव्यक्ते पुरुषं याते पुंसि सर्वगतेऽपि च ।
तम एवाभवत्सर्वं न प्राज्ञायत किंचन १६
तमसो ब्रह्म संभूतं तमोमूलामृतात्मकम् ।
तद्विश्वभावसंज्ञान्तं पौरुषीं तनुमाश्रितम् १७
सोऽनिरुद्ध इति प्रोक्तस्तत्प्रधानं प्रचक्षते ।
तदव्यक्तमिति ज्ञेयं त्रिगुणं नृपसत्तम १८

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३४६

३४७

**श्रुतं भगवतस्तस्येत्यादि**रध्यायो हयग्रीवावतारस्य प्रयोजनं माहात्म्यं च प्रतिपादयति तस्य तात्पर्यं रजस्तमोभ्यां वेदा नष्टास्तिरोहितार्था भवन्ति । सत्त्वेन त्वर्थतः सम्यक्प्रकाशन्त इति ॥ १ ॥ हव्यकव्यभुजः मूलविभुजादित्वात्कः अकारान्तः शब्दः उदक्पूर्वे ऐशानकोणे महोदधौ तत्समीपे इदमुत्तरान्वयि ॥३॥ अपूर्वं प्रागदृष्टम् ॥५॥ अपूर्वं अद्भुतम् ॥ ६ ॥ दर्शितवांस्तत् अश्वशिरोरूपम् ॥ १० ॥ वेदो वेदहर्ता वेदाध्यायी वेदहरणमित्यादिकं सर्वं भगवल्लीलामात्रमिति पृष्टस्योत्तरं वक्ष्यंस्तज्जत्वेन सृष्टिमेव तावदुपक्रमते **यत्किंचिदिति** ॥ ११ ॥ ईश्वरबुद्धिभिः ईश्वरसंकल्पमात्रैः ॥ १२ ॥ लयमाह—**भूतेति** ॥ १३ ॥ व्यक्ते महत्तत्त्वे मनो लीनं तत् व्यक्तेऽपि अव्यक्ततां गुणसाम्यावस्थां गते सति ॥ १५ ॥ पुरुषं त्वमर्थं पुंसि सर्वगते ब्रह्मणि लीने सति प्रलयावस्थायां तम एवाभवत्सर्वं विशेषविज्ञानं सर्वं लुप्तमित्यर्थः ॥ १६ ॥ तमसः सकाशात् ब्रह्म जगत्कारणं परव्योमाख्यमुत्पन्नम् । तमः कुत उत्पन्नमित्याकांक्षायामाह—**तमोमूलामृतात्मकमिति** । अधिष्ठानमात्रात्मकं उरग इव रज्जुमात्रात्मकः । तन्मूलामृतं स्वाध्यस्ततमसा उपेतं सद्विश्वे भावाः सर्वे रूपं संज्ञा नाम तदन्तं प्रपञ्चात्मकमित्यर्थः । पौरुषीं वैराजीम् ॥ १७ ॥ अनिरुद्ध एव सूक्ष्मरूपोऽव्यक्तसंज्ञितो ज्ञेयः ॥ १८ ॥

* अर्श आयच् ।

विद्यासहायवान्देवो विष्वक्सेनो हरिः प्रभुः
अप्स्वेव शयनं चक्रे निद्रायोगमुपागतः १९
जगतश्चिन्तयन्सृष्टिं चित्रां बहुगुणोद्भवाम् ।
तस्य चिन्तयतः सृष्टिं महानात्मगुणः स्मृतः
अहंकारस्ततो जातो ब्रह्मा स तु चतुर्मुखः ।
हिरण्यगर्भो भगवान्सर्वलोकपितामहः २१
पद्मोऽनिरुद्धात्संभूतस्तदा पद्मनिभेक्षणः ।
सहस्रपत्रे द्युतिमानुपविष्टः सनातनः २२
ददृशेऽद्भुतसंकाशो लोकानापोमयान्प्रभुः ।
सत्त्वस्थः परमेष्ठी स ततो भूतगणान्सृजन् २३
पूर्वमेव च पद्मस्य पत्रे सूर्यांशुसप्रभे ।
नारायणकृतौ बिन्दू अपामास्तां गुणोत्तरौ ॥
तावपश्यत्स भगवाननादिनिधनोऽच्युतः ।
एकस्तत्राभवद्बिन्दुर्मध्वाभो रुचिरप्रभः ॥ २५
स तामसो मधुर्जातस्तदा नारायणाज्ञया ।
कठिनस्त्वपरो बिन्दुः कैटभो राजसस्तु सः
तावभ्यधावतां श्रेष्ठौ तमोरजगुणान्वितौ ।
बलवन्तौ गदाहस्तौ पद्मनालानुसारिणौ २७
ददृशातेऽरविन्दस्थं ब्रह्माणममितप्रभम् ।
सृजन्तं प्रथमं वेदांश्चतुरश्चारुविग्रहान् ॥ २८
ततो विग्रहवन्तौ तौ वेदान् दृष्ट्वा सुरोत्तमौ ।
सहसा जगृहतुर्वेदान्ब्रह्मणः पश्यतस्तदा २९
अथ तौ दानवश्रेष्ठौ वेदान् गृह्य सनातनान्
रसां विविशतुस्तूर्णमुदक्पूर्वे महोदधौ ॥ ३०
ततो हृतेषु वेदेषु ब्रह्मा कश्मलमाविशत् ।
ततो वचनमीशानं प्राह वेदैर्विनाकृतः ३१

ब्रह्मोवाच ।

वेदा मे परमं चक्षुर्वेदा मे परमं बलम् ।
वेदा मे परमं धाम वेदा मे ब्रह्म चोत्तरम् ॥
मम वेदा हृताः सर्वे दानवाभ्यां बलादितः ।
अन्धकारा हि मे लोका जाता वेदैर्विनाकृताः
वेदानृते हि किं कुर्यां लोकानां सृष्टिमुत्तमाम्
अहो बत महद्दुःखं वेदनाशनजं मम ॥ ३४
प्राप्तं दुनोति हृदयं तीव्रं शोकपरायणम् ।
को हि शोकार्णवे मग्नं मामितोऽद्य समुद्धरेत्
वेदांस्तांश्चानयेन्नष्टान्कस्य चाहं प्रियो भवे ।
इत्येवं भाषमाणस्य ब्रह्मणो नृपसत्तम ॥ ३६
हरेः स्तोत्रार्थमुद्भूता बुद्धिर्बुद्धिमतां वर ।
ततो जगौ परं जप्यं साञ्जलिप्रग्रहः प्रभुः ३७

ब्रह्मोवाच ।

ॐ नमस्ते ब्रह्महृदय नमस्ते मम पूर्वज ।
लोकाद्य भुवनश्रेष्ठ सांख्ययोगनिधे प्रभो ३८
व्यक्ताव्यक्तकराचिन्त्य क्षेमं पन्थानमास्थित ।
विश्वभुक्सर्वभूतानामन्तरात्मन्नयोनिज ।
अहं प्रसादजस्तुभ्यं लोकधाम स्वयंभुवः ३९
त्वत्तो मे मानसं जन्म प्रथमं द्विजपूजितम् ।
चाक्षुषं वै द्वितीयं मे जन्म चासीत्पुरातनम्
त्वत्प्रसादात्तु मे जन्म तृतीयं वाचिकं महत् ।
त्वत्तः श्रवणजं चापि चतुर्थं जन्म मे विभो ॥
नासत्यं चापि मे जन्म त्वत्तः परममुच्यते ।
अण्डजं चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम्

---

विद्या निर्विशेषाचिन्मात्राकारा चेतोवृत्तिः । अप्सु निर्विशेषे ब्रह्मणि शयनं चक्रे विलयं जगाम ॥ १९ ॥ स एव चिद्रूपो जगतः सृष्टिं चिन्तयन् । 'बहु स्यां प्रजायेय' इतीक्षणं कुर्वन् ॥ २० ॥ पद्मे ब्रह्माण्डे अनिरुद्धादहंकारात् संभूत आविर्भूतो ब्रह्मा ॥ २२ ॥ पद्मस्य पत्रे अण्डैकदेशे ॥२४॥ रजस्तमोभ्यामभिभूतैर्नष्टज्ञानैरीश्वर एव जपध्यानादिना ज्ञानलाभार्थमनुसरणीय इत्याशयेनाह—**ओं नमस्ते इति** ॥ ३८ ॥ तुभ्यं तव लोकधामप्रकाशकः स चासौ स्वयंभूश्च तस्य ॥ ३९ ॥ **त्वत्तो म इति** । ननु—

'ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयम् ॥ '

इति स्मृत्या ' स हायमीक्षांचक्रे यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमि इति कस्माद्ध्यभेष्यत् द्वितीयाद्वै भयं भवति ' इति श्रुत्या तद्भाष्येण च ब्रह्मणः स्वतःसिद्धज्ञानत्वमुक्तम् सति च ज्ञाने जन्मान्तरं नास्तीति कथं तस्य सप्तजन्मान्युच्यन्ते । अभ्युपगमे त्वाजानसिद्धज्ञानस्य वैफल्यम् । अतो व्यर्थं मोक्षधर्मान्वाख्यानमिति चेदत्र ब्रूमः—अत्र ह्यहंकारादुत्पन्नश्चतुर्मुखः स्वस्य वैराजं रूपं सर्वनामरूपात्मकमनुसन्दधानो मन्यते यदा यदा यद्यत्प्रकाशते तत्तदैवोत्पन्नमिति तावन्ति वैराजानि जन्मानीति । स्थूलप्रपञ्चात्मकं मानसं भोगद्वारा मनस्तृप्तिकरं प्रथमं वैराजं जन्म । रूपप्रपञ्चात्मकं चाक्षुषं ततोऽपि बाह्यत्वाद्द्वितीयम् ॥ ४० ॥ वचनमात्रोपस्थापितमेरुस्वर्गाद्यात्मकं ततोऽपि बाह्यत्वात्तृतीयम् । अस्य भोग्यतयाऽन्तरङ्गस्योपस्थापको वेदात्मा नाम प्रपञ्चस्ततोऽपि बाह्यत्वाच्चतुर्थः ॥ ४१ ॥ **नासत्यमिति** । अश्विदैवत्यघ्राणजं जन्म गन्धप्रपञ्चात्मकं नामोल्लेखपूर्वकरूपस्मारकतया ततोऽपि बहिरङ्गत्वात्पञ्चमम् । अण्डं ब्रह्माण्डं तद्दर्शनसंस्कारजं वासनात्मकं स्वाप्नप्रपञ्चमयं ततोऽपि बाह्यं षष्ठम् ॥ ४२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्! देवो हयशिरोधरः।
जग्राह वेदानखिलान् रसातलगतान् हरिः॥ —शान्तिपर्व अ० ३४७ पृ० ७३१

इदं च सप्तमं जन्म पद्मजन्मेति वै प्रभो ।
सर्गे सर्गे ह्यहं पुत्रस्तव त्रिगुणवर्जित ॥ ४३
प्रथमं पुण्डरीकाक्षः प्रधानगुणकल्पितः ।
त्वमीश्वरः स्वभावश्च कर्मबन्धः स्वयंभुवः ४४
त्वया विनिर्मितोऽहं वै वेदचक्षुर्वयोतिगः ।
ते मे वेदा हृताश्चक्षुरन्धो जातोऽस्मि जागृहि
ददस्व चक्षूंषि मम प्रियोऽहं ते प्रियोऽसि मे ।
एवं स्तुतः स भगवान्पुरुषः सर्वतोमुखः ४६
जहौ निद्रामथ तदा वेदकार्यार्थमुद्यतः ।
ऐश्वर्येण प्रयोगेण द्वितीयां तनुमास्थितः ४७
सुनासिकेन कायेन भूत्वा चन्द्रप्रभस्तदा ।
कृत्वा हयशिरः शुभ्रं वेदानामालयं प्रभुः ४८
तस्य मूर्धा समभवद्द्यौः सनक्षत्रतारका ।
केशाश्चास्याभवन्दीर्घा रवेरंशुसमप्रभाः ४९
कर्णावाकाशपाताले ललाटं भूतधारिणी ।
गङ्गा सरस्वती+ श्रोण्यौ भ्रुवावास्तां महोदधी
चक्षुषी सोमसूर्यौ ते नासा संध्या पुनःस्मृता
ॐकारस्त्वथ संस्कारो विद्युज्जिह्वा च निर्मिता
दन्ताश्च पितरो राजन्सोमपा इति विश्रुताः
गोलोको ब्रह्मलोकश्च ओष्ठावास्तां महात्मनः
ग्रीवा चास्याभवद्राजन्कालरात्रिर्गुणोत्तरा ।
एतद्धयशिरः कृत्वा नानामूर्तिभिरावृतम् ॥
अन्तर्दधौ स विश्वेशो विवेश च रसां प्रभुः ।
रसां पुनः प्रविष्टश्च योगं परममास्थितः ॥ ५४
शैक्ष्यं स्वरं समास्थाय उद्गीतं प्रासृजत्स्वरम् ।
स स्वरः सानुनादी च सर्वशः स्निग्ध एव च
बभूवान्तर्महीभूतः सर्वभूतगुणो हितः ।
ततस्तावसुरौ कृत्वा वेदान्समयबन्धनान् ॥
रसातले विनिक्षिप्य यतः शब्दस्ततो द्रुतौ ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन्देवो हयशिरोधरः॥५७
जग्राह वेदानखिलान् रसातलगतान्हरिः ।
प्रादाच्च ब्रह्मणे भूयस्ततः स्वां प्रकृतिं गतः ५८
स्थापयित्वा हयशिर उदक्पूर्वे महोदधौ ।
वेदानामालयं चापि बभूवाश्वशिरास्ततः ५९
अथ किञ्चिदपश्यन्तौ दानवौ मधुकैटभौ ।
पुनराजग्मतुस्तत्र वेगितौ पश्यतां च तौ॥ ६०
यत्र वेदा विनिक्षिप्तास्तत्स्थानं शून्यमेव च ।
तत उत्तममास्थाय वेगं बलवतां वरौ ॥ ६१
पुनरुत्तस्थतुः शीघ्रं रसानामालयात्तदा ।
ददृशाते च पुरुषं तमेवादिकरं प्रभुम् ॥ ६२
श्वेतं चन्द्रविशुद्धाभमनिरुद्धतनौ स्थितम् ।
भूयोऽप्यमितविक्रान्तं निद्रायोगमुपागतम् ६३
आत्मप्रमाणरचिते अपामुपरि कल्पिते ।
शयने नागभोगाढ्ये ज्वालामालासमावृते ६४
निष्कल्मषेण सत्त्वेन संपन्नं रुचिरप्रभम् ।
तं दृष्ट्वा दानवेन्द्रौ तौ महाहासममुञ्चताम् ६५
ऊचतुश्च समाविष्टौ रजसा तमसा च तौ ।
अयं स पुरुषः श्वेतः शेते निद्रामुपागतः ॥ ६६
अनेन नूनं वेदानां कृतमाहरणं रसात् ।
कस्यैष को नु खल्वेष किं च स्वापिति भोगवान्
इत्युच्चारितवाक्यौ तौ बोधयामासतुर्हरिम् ।
युद्धार्थिनौ हि विज्ञाय विबुद्धः पुरुषोत्तमः ६८
निरीक्ष्य चासुरेन्द्रौ तौ ततो युद्धे मनो दधे ।
अथ युद्धं समभवत्तयोर्नारायणस्य वै ॥ ६९
रजस्तमोविष्टतनू तावुभौ मधुकैटभौ ।
ब्रह्मणोपचितिं कुर्वन् जघान मधुसूदनः ॥ ७०
ततस्तयोर्वधेनाशु वेदापहरणेन च ।
शोकापनयनं चक्रे ब्रह्मणः पुरुषोत्तमः ॥ ७१
ततः परिवृतो ब्रह्मा हरिणा वेदसत्कृतः ।
निर्ममे स तदा लोकान्कृत्स्नान्स्थावरजङ्गमान्
दत्वा पितामहायाग्र्यां मतिं लोकविसर्गिकीं
तत्रैवान्तर्दधे देवो यत एवागतो हरिः ॥ ७३
तौ दानवौ हरिर्हत्वा कृत्वा हयशिरस्तनुम् ।
पुनः प्रवृत्तिधर्मार्थं तामेव विदधे तनुम् ॥ ७४
एवमेव महाभागो बभूवाश्वशिरा हरिः ।
पौराणमेतत्प्रख्यातं रूपं वरदमैश्वरम् ॥ ७५
यो ह्येतद्ब्राह्मणो नित्यं शृणुयाद्धारयीत वा ।
न तस्याध्ययनं नाशमुपगच्छेत्कदाचन ॥ ७६
आराध्य तपसोग्रेण देवं हयशिरोधरम् ।
पञ्चालेन क्रमः प्राप्तो देवेन पथि देशिते ॥ ७७

ततोऽपि बाह्यं पद्यते गम्यत इति वा पद्मनीयं वा पाद्यं सर्वप्राणिधीवासनोद्बोधकं कारणात्मकमिदं सप्तमम्। इतोऽपि बाह्यस्त्वं शुद्धचिन्मात्रोऽष्टमः सर्वेषु कार्येष्वनुगतत्वात्पिताऽहं च त्वत्सत्तयैव कार्यसप्तकरूपेण मानसतया त्वत्पुत्रोऽस्मीत्याह- सर्गे सर्गे इति ॥४३॥ प्रधानं मुख्यो गुणः सत्त्वं तेन कल्पितः शुद्धसत्त्वमयशरीर इत्यर्थः ॥ ४४ ॥ यतो वेदचक्षुरहं अतो वयोतिगः कालवित् अध्यायशेषः स्पष्टार्थः॥४५॥

+ छान्दसः पूर्वसवर्णः ।

एतद्धयशिरो राजन्नाख्यानं तव कीर्तितम् ।
पुराणं वेदसमितं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥७८
यां यामिच्छेत्तनुं देवः कर्तुं कार्यविधौ क्वचित्
तां तां कुर्याद्विकुर्वाणः स्वयमात्मानमात्मना
एष वेदनिधिः श्रीमानेष वै तपसो निधिः ।
एष योगश्च सांख्यं च ब्रह्म चाग्र्यं हविर्विभुः ॥
नारायणपरा वेदा यज्ञा नारायणात्मकाः ।
तपो नारायणपरं नारायणपरा गतिः ॥ ८१
नारायणपरं सत्यमृतं नारायणात्मकम् ।
नारायणपरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः ॥ ८२
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः ।
नारायणात्मको गन्धो भूमौ श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥
अपां चापि गुणा राजन्रसा नारायणात्मकाः ।
ज्योतिषां च परं रूपं स्मृतं नारायणात्मकम् ॥
नारायणात्मकश्चापि स्पर्शो वायुगुणः स्मृतः ।
नारायणात्मकश्चैव शब्द आकाशसंभवः ॥ ८५
मनश्चापि ततो भूतमव्यक्तगुणलक्षणम् ।
नारायणपरः कालो ज्योतिषामयनं च यत् ८६
नारायणपरा कीर्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च देवताः ।
नारायणपरं सांख्यं योगो नारायणात्मकः ८७
कारणं पुरुषो ह्येषां प्रधानं चापि कारणम् ।
स्वभावश्चैव कर्माणि दैवं येषां च कारणम् ८८
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधा च तथा चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ८९
पञ्चकारणसंख्यातो निष्ठा सर्वत्र वै हरिः ।
तत्त्वं जिज्ञासमानानां हेतुभिः सर्वतोमुखैः ॥
तत्त्वमेको महायोगी हरिर्नारायणः प्रभुः ।
ब्रह्मादीनां स लोकानामृषीणां च महात्मनाम्
सांख्यानां योगिनां चापि यतीनामात्मवेदिनां
मनीषितं विजानाति केशवो न तु तस्य ते ॥
ये केचित्सर्वलोकेषु दैवं पित्र्यं च कुर्वते ।
दानानि च प्रयच्छन्ति तप्यन्ते च तपो महत्
सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वरं विधिमास्थितः ।
सर्वभूतकृतावासो वासुदेवेति चोच्यते ॥ ९४
अयं हि नित्यः परमो महर्षि-
र्महाविभूतिर्गुणवर्जिताख्यः ।
गुणैश्च संयोगमुपैति शीघ्रं
कालो यथर्तावृतुसंप्रयुक्तः ॥ ९५
नैवास्य विन्दन्ति गतिं महात्मनो
न चागतिं कश्चिदिहानुपश्यति ।
ज्ञानात्मकाः सन्ति हि ये महर्षयः
पश्यन्ति नित्यं पुरुषं गुणाधिकम् ९६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये
सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४७ ॥

## ३४८-[१७५]

जनमेजय उवाच ।
अहो ह्येकान्तिनः सर्वान्प्रीणाति भगवान्हरिः
विधिप्रयुक्तां पूजां च गृह्णाति भगवान्स्वयम्
ये तु दग्धेन्धना लोके पुण्यपापविवर्जिताः ।
तेषां त्वयाऽभिनिर्दिष्टा पारंपर्यागता गतिः
चतुर्थ्यां चैव ते गत्यां गच्छन्ति पुरुषोत्तमम् ।
एकान्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमं पदम् ३
नूनमेकान्तधर्मोऽयं श्रेष्ठो नारायणप्रियः ।
अगत्वा गतयस्तिस्रो यद्गच्छन्त्यव्ययं हरिम् ॥ ४

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४७ ॥

३४८

यान्येतानि ब्रह्मणः सप्तजन्मान्युक्तानि मानसं चाक्षुषं वाचिकं श्रावणं नासत्यमंडजं पाद्मं चेति तान्येव परब्रह्मणः स्वरूपाणि तेषामेकोपास्तिस्तुतिद्वारा चरमस्तुतयेऽयमध्याय आरभ्यते—**अहो ह्येकान्तिन इत्यादि** । सर्वान्सप्तविधब्रह्मणो व्यस्तोपासकान्समस्तोपासकांश्च ॥ १ ॥ दग्धेन्धनाः नष्टवासनाः पारंपर्यागता गुरुसंप्रदायागता गतिर्ज्ञानम् ॥ २ ॥ चतुर्थ्यां अनिरुद्धप्रद्युम्नसंकर्षणानपेक्ष्य **चतुर्थ्यां** वासुदेवाख्यायां हरिभक्तानां विशेषमाह—**एकान्तिनस्त्विति** । एकान्तिनो निष्कामभक्ताः ॥ ३ ॥ गतयः गतीः अनिरुद्धादींस्त्रीननुपास्यैव वासुदेवं गच्छन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥

सहोपनिषदान्वेदान्ये विप्राः सम्यगास्थिताः
पठन्ति विधिमास्थाय ये चापि यतिधर्मिणः
तेभ्यो विशिष्टां जानामि गतिमेकान्तिनां नृणां
केनैष धर्मः कथितो देवेन ऋषिणाऽपि वा ६
एकान्तिनां च का चर्या
कदा चोत्पादिता विभो।
एतन्मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे ७
वैशम्पायन उवाच।
समुपोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ८
अगतिश्च गतिश्चैव पूर्वं ते कथिता मया।
गहनो ह्येष धर्मो वै दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ९
संमितः सामवेदेन पुरैवादियुगे कृतः।
धार्यते स्वयमीशेन राजन्नारायणेन च १०
एतदर्थं महाराज पृष्टः पार्थेन नारदः।
ऋषिमध्ये महाभागः शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः
गुरुणा च मयाऽप्येष कथितो नृपसत्तम।
यथा तत्कथितं तत्र नारदेन तथा शृणु १२
यदासीन्मानसं जन्म नारायणमुखोद्गतम्।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल तदा नारायणः स्वयम् १३
तेन धर्मेण कृतवान्दैवं पित्र्यं च भारत।
फेनपा ऋषयश्चैव तं धर्मं प्रतिपेदिरे १४
वैखानसाः फेनपेभ्यो धर्मं तं प्रतिपेदिरे।
वैखानसेभ्यः सोमस्तु ततः सोऽन्तर्दधे पुनः
यदासीच्चाक्षुषं जन्म द्वितीयं ब्रह्मणो नृप।
यदा पितामहेनैव सोमाद्धर्मः परिश्रुतः १६
नारायणात्मको राजन्रुद्राय प्रददौ च तम्।
ततो योगस्थितो रुद्रः पुरा कृतयुगे नृप १७
वालखिल्यानृषीन्सर्वान्धर्ममेतदपाठयत्।
अन्तर्दधे ततो भूयस्तस्य देवस्य मायया १८
तृतीयं ब्रह्मणो जन्म यदासीद्वाचिकं महत्।
तत्रैष धर्मः संभूतः स्वयं नारायणान्नृप १९
सुपर्णो नाम तमृषिः प्राप्तवान्पुरुषोत्तमात्।
तपसा वै सुतप्तेन दमेन नियमेन च २०
त्रिःपरिक्रान्तवानेतत्सुपर्णो धर्ममुत्तमम्।
यस्मात्तस्माद्व्रतं ह्येतत्त्रिसौपर्णमिहोच्यते २१
ऋग्वेदपाठपठितं व्रतमेतद्धि दुश्चरम्।
सुपर्णाच्चाप्यधिगतो धर्म एष सनातनः २२

---

जापकेभ्योऽपि भक्तानां श्रेष्ठां गतिमाह—**सहेति** ॥ ५ ॥ अगतिर्गतिशून्यो ज्ञानधर्मः गतिर्गतिमान् उपासनाधर्मः ॥८॥सामवेदेन संमितः सामवेदोक्तं तत्त्वमसीति वाक्यं यथाधिकारिणः सद्योज्ञानजनकं एवं वैष्णवधर्मोऽपि शमादिमतां सद्यः कैवल्यहेतुरित्यर्थः। तथाच योगशास्त्रे तीव्रवैराग्यवतामासन्नं समाधिलाभं प्रस्तुत्य मृदुमध्यातिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेष इति मृदुतीव्रमध्यतीव्रातिमात्रतीव्रवैराग्यवतामासन्न आसन्नतर आसन्नतमः समाधिलाभ इत्युक्त्वा ईश्वरप्रणिधानाद्वेतीश्वरप्रणिधानस्य सर्वाधिक्यमुच्यते । ईशेन महादेवेन ॥१०॥**यदासीदिति**। अत्र मानसादीनां सप्तानां पूर्वपूर्वस्मिन्नुत्तरेषां सर्वेषामनुगमोऽस्ति न तूत्तरस्मिन्नुत्तरस्मिन्पूर्वपूर्वस्य। कारणं हि कार्येऽनुगतं न तु कार्यस्य कारणेऽनुगमोऽस्तीति प्रसिद्धं लोके। तत्र मानसं नाम स्थूलं सभिन्कुशाज्यगन्धपुष्पधूपदीपाद्युपकरणं शालग्रामब्राह्मणादिप्रतिमालम्बनं दैवं पित्र्यं च धर्मं नारायणेनोपदिष्टं फेनपादयोऽनुवर्तन्ते इति श्लोकत्रयार्थः। अयं भावः—अग्न्यर्कतोयशालग्रामप्रतिमादिषु स्थूलालम्बनेष्वैकाग्र्येणादरनैरन्तर्यदीर्घकालोपोद्बलितां दृष्टिं दत्त्वोपासीनस्याग्न्यादीनां चेतनं रूपं दृष्टिगोचरं भवति । तत्र हि जडमध्यस्तं रज्वामिव सर्पः स यथा चिरं निरीक्ष्यमाणो लयिते रज्जुश्च प्रकाशते तद्वदिहाप्यग्न्यादीनां तीव्राभिनिवेशेन निरीक्ष्यमाणानां जाड्यं लीयते चैतन्यं च प्रकाशते। सेयं महाविदेहा नाम धारणा। यां प्रकृत्योक्तं योगसूत्रकृता—बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततःप्रकाशावरणक्षय इति। देहविस्मरणे सति या बाह्याकारा वृत्तिः सा अकल्पिता अन्या कल्पिता अस्यां सिद्धायामेव प्रतिमादीनां जाड्यं तिरोधीयते नान्यथा। तद्वदनन्ते चैतन्ये परिच्छेदोऽध्यस्तस्तत्त्वेक्षणेन प्रविलापनीयस्तेन तदीयमानन्त्यं प्रकाशते। यत्कृष्णशरीरे यशोदयाऽर्जुनेन च दृष्टं तस्यापि सविशेषत्वमेव प्रविलाप्य निर्विशेषचिन्मात्रात्मना तिष्ठेदिति ॥ १३ ॥ **यदासीच्चाक्षुषमिति**। चाक्षुषं चक्षुर्ग्राह्यं तेजः सूर्यादिरश्मिरूपं तत्र निबिडतरशुक्लभास्वरान्धकारकल्पे प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषरूपे दृष्टिं धारयतोऽपि पूर्ववद्देहविस्मरणे सति तत्रैव विश्वरूपं प्रकाशते। ततश्चिन्मात्रमिति द्वितीयो योगप्रकारः। एतौ द्वौ बाह्यालम्बनौ योगौ ॥ १६ ॥ आन्तरालम्बनं तृतीयमाह—**तृतीयमिति**। वाचिकं वाङ्निर्वर्त्यं मन्त्रार्थचिन्तनपूर्वकं जपं तत्रापि मातृकास्मरणमतीत्य मन्त्रार्थमात्रं ध्यायतस्तदाकारायां चित्तवृत्तौ पुनः पूर्ववद्विश्वरूपाधिगमद्वारा चिन्मात्रेणावस्थानम् ॥ १८ ॥ त्रिःपरिक्रान्तवान् त्रिरावर्तितवान् प्रत्यहमिति शेषः ॥ २० ॥ ऋग्वेदपाठपठितं त्रिसौपर्णं चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा इत्यादिसुपर्णलिङ्गकं मन्त्रत्रयम् ॥ २१ ॥

वायुना द्विपदां श्रेष्ठ कथितो जगदायुषा ।
वायोः सकाशात्प्राप्तश्च ऋषिभिर्विघसाशिभिः
ततो महोदधिश्चैव प्राप्तवान्धर्ममुत्तमम् ।
अन्तर्दधे ततो भूयो नारायणसमाहितः २४
यदा भूयः श्रवणजा सृष्टिरासीन्महात्मनः ।
ब्रह्मणः पुरुषव्याघ्र तत्र कीर्तयतः शृणु २५
जगत्स्रष्टुमना देवो हरिर्नारायणः स्वयम् ।
चिन्तयामास पुरुषं जगत्सर्गकरं प्रभुम् २६
अथ चिन्तयतस्तस्य कर्णाभ्यां पुरुषः स्मृतः ।
प्रजासर्गकरो ब्रह्मा तमुवाच जगत्पतिः २७
सृज प्रजाः पुत्र सर्वा मुखतः पादतस्तथा ।
श्रेयस्तव विधास्यामि बलं तेजश्च सुव्रत २८
धर्मं च मत्तो गृह्णीष्व सात्वतं नाम नामतः ।
तेन सृष्टं कृतयुगं स्थापयस्व यथाविधि २९
ततो ब्रह्मा नमश्चक्रे देवाय हरिमेधसे ।
धर्मं चाग्र्यं स जग्राह सरहस्यं ससंग्रहम् ॥३०
आरण्यकेन सहितं नारायणमुखोद्भवम् ।
उपदिश्य ततो धर्मं ब्रह्मणेऽमिततेजसे ३१
त्वं कर्ता युगधर्माणां निराशीःकर्मसंज्ञितम्
जगाम तमसः पारं यत्राव्यक्तं व्यवस्थितम् ३२
ततोऽथ वरदो देवो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
असृजत्स ततो लोकान्कृत्स्नान्स्थावरजङ्गमान्
ततः प्रावर्तत तदा
आदौ कृतयुगं शुभम् ।
ततो हि सात्वतो धर्मो
व्याप्य लोकानवस्थितः ३४
तेनैवाद्येन धर्मेण ब्रह्मा लोकविसर्गकृत् ।
पूजयामास देवेशं हरिं नारायणं प्रभुम् ३५
धर्मप्रतिष्ठाहेतोश्च मनुं स्वारोचिषं ततः ।
अध्यापयामास तदा लोकानां हितकाम्यया॥
ततः स्वरोचिषः पुत्रं स्वयं शंखपदं नृप ।
अध्यापयत्पुराऽव्यग्रः सर्वलोकपतिर्विभुः
ततः शंखपदश्चापि पुत्रमात्मजमौरसम् ।
दिशां पालं सुवर्णाभमध्यापयत भारत ।
सोऽन्तर्दधे ततो भूयः प्राप्ते त्रेतायुगे पुनः ३८
नासत्ये जन्मनि पुरा ब्रह्मणः पार्थिवोत्तम ।
धर्ममेतं स्वयं देवो हरिर्नारायणः प्रभुः ३९
तज्जगादारविन्दाक्षो ब्रह्मणः पश्यतस्तदा ।
सनत्कुमारो भगवांस्ततः प्राधीतवान्नृप ४०
सनत्कुमारादपि च वीरणो वै प्रजापतिः ।
कृतादौ कुरुशार्दूल धर्ममेतदधीतवान् ४१
वीरणश्चाप्यधीत्यैनं रैभ्याय मुनये ददौ ।
रैभ्यः पुत्राय शुद्धाय सुव्रताय सुमेधसे ४२
कुक्षिनाम्ने स प्रददौ दिशां पालाय धर्मिणे ।
ततोऽप्यन्तर्दधे भूयो नारायणमुखोद्भवः ॥
अण्डजे जन्मनि पुनर्ब्रह्मणे हरियोनये ।
एष धर्मः समुद्भूतो नारायणमुखात्पुनः ४४
गृहीतो ब्रह्मणा राजन्प्रयुक्तश्च यथाविधि ।
अध्यापिताश्च मुनयो नाम्ना बर्हिषदो नृप ४५
बर्हिषद्भ्यश्च संप्राप्तः सामवेदान्तगं द्विजम् ।
ज्येष्ठं नामाभिविख्यातं ज्येष्ठसामव्रतो हरिः
ज्येष्ठाच्चाप्यनुसंक्रान्तो राजानमविकम्पनम् ।
अन्तर्दधे ततो राजन्नेष धर्मः प्रभो हरेः ४७
यदिदं सप्तमं जन्म पद्मजं ब्रह्मणो नृप ।
तत्रैष धर्मः कथितः स्वयं नारायणेन ह ४८
पितामहाय शुद्धाय युगादौ लोकधारिणे ।
पितामहश्च दक्षाय धर्ममेतं पुरा ददौ ४९
ततो ज्येष्ठे तु दौहित्रे प्रादाद्दक्षो नृपोत्तम ।
आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे विवस्वाञ्जगृहे ततः ५०
त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान्मनवे ददौ ।
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ५१

---

**यदा भूय इति** । श्रवणजा अनाहतध्वनिरूपा । एतदेव नादब्रह्म हंसोपनिषत्प्रसिद्धम् ॥ २४ ॥ तदुपासनाज्जगत्स्रष्टयादिसामर्थ्यं भवतीत्याह—**अथेति** ॥ २६ ॥ **नासत्ये जन्मनीति** । नासत्येति पूर्वोक्तरीत्या गन्धसंवित् । सारसादिसंविदां प्रागुक्तानामुपलक्षणम् । अनाहतध्वानिश्चितैकाग्र्याभावेऽपि गुरूक्तयुक्त्या स्फुरति गन्धादिसंविदस्तु चित्तवैयग्र्यलक्षणेन स्फुरन्तीति पूर्वस्मात्सूक्ष्माः तत्रापि गन्धांशं त्यक्त्वा संविन्मात्रे स्थैर्यमिति योगः ॥ ३९ ॥ अण्डजे जन्मनि सूत्रात्मनि अत्र धारणायां सिद्धायामहं ब्रह्मास्मीति वाक्यश्रवणमात्रात्कृतकृत्यतेति न निर्विकल्पापेक्षाऽपीत्ययं सर्वापेक्षया श्रेयान् ॥ ४४ ॥ **यदिदं सप्तममिति** । अन्तर्यामिरूपं जन्म इदमेव ममुपोढेष्वनीकेषु इत्यादिना उपक्रान्तं गीतायामुक्तमिति प्रत्यभिज्ञानार्थम्—

'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्'

इति तत्रत्यवंशकीर्तनेन द्रढयति-**विवस्वान् जगृहे तत इत्यादिना** ॥ ४८ ॥

इक्ष्वाकुना च कथितो व्याप्य लोकानवस्थित
गमिष्यति क्षयान्ते च पुनर्नारायणं नृप ५२
यतीनां चापि यो धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः
नारदेन सुसंप्राप्तः सरहस्यः ससंग्रहः।
एष धर्मो जगन्नाथात्साक्षान्नारायणान्नृप ५४
एवमेष महान्धर्म आद्यो राजन्सनातनः।
दुर्विज्ञेयो दुष्करश्च सात्वतैर्धार्यते सदा ५५
धर्मज्ञानेन चैतेन सुप्रयुक्तेन कर्मणा।
अहिंसाधर्मयुक्तेन प्रीयते हरिरीश्वरः ५६
एकव्यूहविभागो वा क्वचिद्द्विव्यूहसंज्ञितः।
त्रिव्यूहश्चापि संख्यातश्चतुर्व्यूहश्च दृश्यते ५७
हरिरेव हि क्षेत्रज्ञो निर्ममो निष्कलस्तथा।
जीवश्च सर्वभूतेषु पञ्चभूतगुणातिगः ५८
मनश्च प्रथितं राजन्पञ्चेन्द्रियसमीरणम्।
एष लोकविधिर्धीमानेष लोकविसर्गकृत् ५९
अकर्ता चैव कर्ता च कार्यं कारणमेव च।
यथेच्छति तथा राजन्क्रीडते पुरुषोऽव्ययः
एष एकान्तधर्मस्ते कीर्तितो नृपसत्तम।
मया गुरुप्रसादेन दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ६१
एकान्तिनो हि पुरुषा दुर्लभा बहवो नृप।
यद्येकान्तिभिराकीर्णं जगत्स्यात्कुरुनन्दन ६२
अहिंसकैरात्मविद्भिः सर्वभूतहिते रतैः।
भवेत्कृतयुगप्राप्तिराशीःकर्मविवर्जिता ६३
एवं स भगवान्व्यासो गुरुर्मम विशांपते।
कथयामास धर्मज्ञो धर्मराज्ञे द्विजोत्तमः ६४
ऋषीणां संनिधौ राजन्
शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः।
तस्याप्यकथयत्पूर्वं
नारदः सुमहातपाः ६५
देवं परमकं ब्रह्म श्वेतं चन्द्राभमच्युतम्।
यत्र चैकान्तिनो यान्ति नारायणपरायणाः

जनमेजय उवाच।
एवं बहुविधं धर्मं प्रतिबुद्धैर्निषेवितम्।
न कुर्वन्ति कथं विप्रा अन्ये नानाव्रते स्थिताः
वैशम्पायन उवाच।
तिस्रः प्रकृतयो राजन्देहबन्धेषु निर्मिताः।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चैव भारत
देहबन्धेषु पुरुषः श्रेष्ठः कुरुकुलोद्वह।
सात्त्विकः पुरुषव्याघ्र भवेन्मोक्षाय निश्चितः
अत्रापि स विजानाति पुरुषं ब्रह्मवित्तमम्।
नारायणपरो मोक्षस्ततो वै सात्त्विकः स्मृतः
मनीषितं च प्राप्नोति चिन्तयन्पुरुषोत्तमम्
एकान्तभक्तिः सततं नारायणपरायणः॥ ७१
मनीषिणो हि ये केचिद्यतयो मोक्षधर्मिणः।
तेषां विच्छिन्नतृष्णानां योगक्षेमवहो हरिः
जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः।
सात्त्विकस्तु स विज्ञेयो भवेन्मोक्षे च निश्चितः
सांख्ययोगेन तुल्यो हि धर्म एकान्तसेवितः।
नारायणात्मके मोक्षे ततो यान्ति परां गतिं
नारायणेन दृष्टस्तु प्रतिबुद्धो भवेत्पुमान्।
एवमात्मेच्छया राजन्प्रतिबुद्धो न जायते ७५
राजसी तामसी चैव व्यामिश्रे प्रकृती स्मृते
तदात्मकं हि पुरुषं जायमानं विशांपते॥ ७६
प्रवृत्तिलक्षणैर्युक्तं नावेक्षति हरिः स्वयम्।
पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा लोकपितामहः ७७
रजसा तमसा चैव मानसं समभिप्लुतम्।
कामं देवा ऋषयश्च सत्त्वस्था नृपसत्तम ॥७८
हीनाः सत्त्वेन सूक्ष्मेण
ततो वैकारिकाः स्मृताः।
जनमेजय उवाच।
कथं वैकारिको गच्छे-
त्पुरुषः पुरुषोत्तमम्॥ ७९

---

**एकव्यूहेति**। अत्रानिरुद्धश्चतुष्टयानुगतः प्रद्युम्नस्त्रितयानुगतः संकर्षणो द्वितयानुगतो वासुदेव एक एव। एतदेव व्युत्क्रमेणात्रोक्तम्। अधिकारतारतम्यादेषामुपासनानां व्यवस्था ॥ ५७ ॥ जीवश्च हरिरेवेति सम्बन्धः ॥ ५८ ॥ मनश्चादहंकारोऽपि हरिरेवेत्यन्वयः। एष हरिः लोकविधिः लोकप्रवर्तकोऽन्तर्यामी ॥ ५९ ॥ एकान्तधर्मः निष्कामानां भक्तानां धर्मः ॥ ६१ ॥ आशीःकर्म काम्यं कर्म ॥ ६३ ॥ योगधर्मानादरहेतुमविद्यां दर्शयति—**एवमित्यादिना** ॥ ६७ ॥ देहबन्धेषु देह एव बन्धो येषां तेषु जीवेषु पुरुषः सात्त्विकः श्रेष्ठ इति योजना ॥ ६९ ॥ सात्त्विकलक्षणमाह—**अत्रापीत्यादिना** ॥ ७० ॥ **जायमानमिति**। जन्ममरणादिदुःखभाजं पश्येत्। कृपयेति शेषः ॥ ७३ ॥ ईशकृपयैव ज्ञानं जायते न त्वात्मेच्छयेत्याह—**नारायणेनेति**। तस्माद्भक्तिरास्थेयेति भावः ॥ ७५ ॥ भक्त्यभावे दोषमाह—**राजसीति**। व्यामिश्रे सदोषे ॥ ७६॥ एनं राजसं ब्रह्मा पश्यति प्रवृत्तिमार्गे नियोजयतीत्यर्थः ॥ ७७ ॥ वैकारिकाः सात्त्विकाहंकारजाः सूक्ष्मेणापि सत्त्वेन त्यक्ताः सन्तः कदाचिन्मुच्यन्त

वद सर्वं यथादृष्टं प्रवृत्तिं च यथाक्रमम्।
वैशम्पायन उवाच।
सुसूक्ष्मं तत्त्वसंयुक्तं संयुक्तं त्रिभिरक्षरैः॥८०
पुरुषः पुरुषं गच्छेन्निष्क्रियः पञ्चविंशकः।
एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च॥ ८१
परस्पराङ्गान्येतानि पाञ्चरात्रं च कथ्यते।
एष एकान्तिनां धर्मो नारायणपरात्मकः ८२
यथा समुद्रात्प्रसृता जलौघा-
स्तमेव राजन् पुनराविशन्ति।
इमे तथा ज्ञानमहाजलौघा-
नारायणं वै पुनराविशन्ति॥ ८३
एष ते कथितो धर्मः सात्वतः कुरुनन्दन।
कुरुष्वैनं यथान्यायं यदि शक्नोऽसि भारत॥
एवं हि स महाभागो नारदो गुरवे मम।
श्वेतानां यतिनां चाह एकान्तगतिमव्ययाम्
व्यासश्चाकथयत्प्रीत्या धर्मपुत्राय धीमते।
स एवायं मया तुभ्यमाख्यातः प्रसृतो गुरोः॥
इत्थं हि दुश्चरो धर्म एष पार्थिवसत्तम।
यथैव त्वं तथैवान्ये भवन्तीह विमोहिताः॥
कृष्ण एव हि लोकानां भावनो मोहनस्तथा
संहारकारकश्चैव कारणं च विशांपते॥ ८८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये एकान्तिकभावे अष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३४८॥

## ३४९-[१७६]

जनमेजय उवाच।
सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदारण्यकमेव च।
ज्ञानान्येतानि ब्रह्मर्षे लोकेषु प्रचरन्ति ह॥ १
किमेतान्येकनिष्ठानि पृथङ्निष्ठानि वा मुने।
प्रब्रूहि वै मया पृष्टः प्रवृत्तिं च यथाक्रमम्॥ २
वैशम्पायन उवाच।
जज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं
यं द्वीपमध्ये सुतमात्मयोगात्।
पराशरात्सत्यवती महर्षिं
तस्मै नमोऽज्ञानतमोनुदाय॥ ३
पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं
महर्षिमार्षेयविभूतियुक्तम्।
नारायणस्यांशजमेकपुत्रं
द्वैपायनं वेद महानिधानम्॥ ४

---

इत्यर्थः। अत एव इन्द्रादीनां तत्त्वज्ञानं श्रूयते छान्दोग्यादिषु। वैकारिकोऽहंकारः जीवः पुरुषोत्तमं कथं गच्छेत्। अन्यस्यान्यात्मताऽयोगान्न जीवस्य ब्रह्मभावो घटत इत्यर्थः॥७९॥ अत्रानुभव एव मानमित्याह—**सुसूक्ष्ममिति**। सुसूक्ष्मं दुर्ग्राह्यम्। तत्त्वेन अनारोपितेन रूपेण संयुक्तं अधिष्ठानमात्रम् अथवा ब्रह्मैव चतुर्विंशतितत्त्वरूपोपाधियुतम्। तदेव त्रिभिरक्षरैरकारोकारमकारैः संयुक्तं सम्यक्समाहितं उपाधित्यागेन॥ ८०॥ एतदेव पुरुषः पुरुषं गच्छेदित्युच्यते न तत्र प्राप्यप्राप्तृत्वलक्षणो नगरनरवद्भेदोऽस्ति किं तूपाधिवियोग एव तत्प्राप्तिरित्यर्थः। एवमेकं समुच्चितम्। सांख्यमात्मानात्मविवेकः। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। वेदारण्यकं जीवब्रह्माभेदपरं तत्त्वमस्यादिवाक्यजं ज्ञानम्॥८१॥ पाञ्चरात्रं भक्तिमार्गः परमगुरौ कृतानां वैदिकानां कर्मणामर्पणम्। एतत्सर्वमेककार्यकारित्वात्समुच्चितमेव न तु विकल्पितमित्यर्थः। उपसंहरति—**एष इति**। नारायणपरात्मकः नारायणनिष्ठः॥ ८२॥ श्वेतानां गृहस्थादीनाम्। यतीनां काषायधारिणाम्॥८५॥ कृष्णाद्वैतं प्रतिपादितं निगमयति—**कृष्ण एवेति**। भावनः पालकः॥ ८८॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३४८॥

**३४९**

कृष्णाद्वैतमुक्तं तत्सांख्यादिभिः सर्वैः प्राप्यमेवेति चोक्तम्। तत्र तैः समुच्चितैर्विकल्पितैर्वा प्राप्यं तदिति संदिहानः पृच्छति—**सांख्यमिति**॥ १॥ अज्ञानतमोनुदायेति च्छेदः॥३॥ पितामहस्य आद्यो नारायणस्तं यं षष्ठं नारायणावतारं वदन्तीत्यर्थः। तथाहि। कार्यस्य कारणानन्यत्वाद्वा आत्मा वै पुत्र नामाऽसि इति गौणाभेदाद्वा व्यासस्य नारायणांशत्वाद्वा षष्टे नारायणत्वम्। ऋषिर्हिरण्यगर्भस्तदीयैश्वर्य-

तमादिकालेषु महाविभूति-
नारायणो ब्रह्म महानिधानम् ।
ससर्ज पुत्रार्थमुदारतेजा
व्यासं महात्मानमजं पुराणम् ॥ ५

जनमेजय उवाच ।

त्वयैव कथितं पूर्वं संभवे द्विजसत्तम ।
वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तिपुत्रः पराशरः ६
पराशरस्य दायादः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
भूयो नारायणसुतं त्वमेवैनं प्रभाषसे ॥ ७
किमतः पूर्वजं जन्म व्यासस्यामिततेजसः ।
कथयस्वोत्तममते जन्म नारायणोद्भवम् ॥ ८

वैशम्पायन उवाच ।

वेदार्थान्वेत्तुकामस्य धर्मिष्ठस्य तपोनिधेः ।
गुरोर्मे ज्ञाननिष्ठस्य हिमवत्पाद आसतः ॥ ९
कृत्वा भारतमाख्यानं तपःश्रान्तस्य धीमतः
शुश्रूषां तत्परा राजन् कृतवन्तो वयं तदा १०
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च सुदृढव्रतः ।
अहं चतुर्थः शिष्यो वै शुको व्यासात्मजस्तथा
एभिः परिवृतो व्यासः शिष्यैः पञ्चभिरुत्तमैः
शुशुभे हिमवत्पादे भूतैर्भूतपतिर्यथा ॥ १२
वेदानावर्तयन्सांगान्भारतार्थांश्च सर्वशः ।
तमेकमनसं दान्तं युक्ता वयमुपास्महे ॥ १३
कथान्तरेऽथ कस्मिंश्चि-
त्पृष्टोऽस्माभिर्द्विजोत्तमः ।
वेदार्थान्भारतार्थांश्च
जन्म नारायणात्तथा ॥ १४
स पूर्वमुक्त्वा वेदार्थान्
भारतार्थांश्च तत्त्ववित् ।
नारायणादिदं जन्म
व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १५
शृणुध्वमाख्यानवरमिदमार्षेयमुत्तमम् ।
आदिकालोद्भवं विप्रास्तपसाऽधिगतं मया ॥
प्राप्ते प्रजाविसर्गे वै सप्तमे पद्मसंभवे ।
नारायणो महायोगी शुभाशुभविवर्जितः १७
ससृजे नाभितः पूर्वं ब्रह्माणममितप्रभः ।
ततः स प्रादुरभवदथैनं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८
मम त्वं नाभितो जातः
प्रजासर्गकरः प्रभुः ।
सृज प्रजास्त्वं विविधा
ब्रह्मन् सजडपण्डिताः ॥ १९
स एवमुक्तो विमुखश्चिन्ताव्याकुलमानसः ।
प्रणम्य वरदं देवमुवाच हरिमीश्वरम् ॥ २०
का शक्तिर्मम देवेश प्रजाः स्रष्टुं नमोऽस्तु ते
अप्रज्ञावानहं देव विधत्स्व यदनन्तरम् । २१
स एवमुक्तो भगवान्भूत्वाऽथान्तर्हितस्ततः ।
चिन्तयामास देवेशो बुद्धिं बुद्धिमतां वरः ॥
स्वरूपिणी ततो बुद्धिरुपतस्थे हरिं प्रभुम् ।
योगेन चैनां निर्योगः स्वयं नियुयुजे तदा २३
स तामैश्वर्ययोगस्थां *बुद्धिं गतिमतीं सतीम् ।
उवाच वचनं देवो बुद्धिं वै प्रभुरव्ययः ॥ २४
ब्रह्माणं प्रविशस्वेति लोकसृष्ट्यर्थसिद्धये ।
ततस्तमीश्वरादिष्टा बुद्धिः क्षिप्रं विवेश सा
अथैनं बुद्धिसंयुक्तं पुनः स ददृशे हरिः ।
भूयश्चैव वचः प्राह सृजेमा विविधाः प्रजाः
बाढमित्येव कृत्वाऽसौ
यथाऽऽज्ञां शिरसा हरेः ।
एवमुक्त्वा स भगवां-
स्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७
प्राप चैनं मुहूर्तेन संस्थानं देवसंज्ञितम् ।
तां चैव प्रकृतिं प्राप्य एकीभावगतोऽभवत् ।
अथास्य बुद्धिरभवत्पुनरन्या तदा किल ।
सृष्टाः प्रजा इमाः सर्वा ब्रह्मणा परमेष्ठिना २९
दैत्यदानवगन्धर्वरक्षोगणसमाकुला ।
जाता हीयं वसुमती भाराक्रान्ता तपस्विनी
बहवो बलिनः पृथ्व्यां
दैत्यदानवराक्षसाः ।
भविष्यन्ति तपोयुक्ता
वरान् प्राप्स्यन्ति चोत्तमान् ॥ ३१
अवश्यमेव तैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितैः ।
बाधितव्याः सुरगणा ऋषयश्च तपोधनाः ३२
तत्र न्यायमिदं कर्तुं भारावतरणं मया ।
अथ नानासमुद्भूतैर्वसुधायां यथाक्रमम् ॥ ३३

---

युक्तं नारायणस्यांशजं 'कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणांशजम्' इति स्मृतेः । पितामहाद्यमारभ्य यं षष्ठं वदन्तीति वा यस्मात् पितामहाद्यं षष्ठं वदन्तीति वाऽध्याहृत्य योज्यम् । सर्वथाऽपि पितामहाद्यमित्येकं पदम् ॥ ४ ॥ नारायणः पुत्रार्थं व्यासं ससर्जेत्येतदाक्षिपति—**त्वयैवेति** । अत आरभ्य भक्तानां स्नेहतो मयेत्यन्तो ग्रंथः स्पष्टार्थः ॥ ६ ॥

* इदं पूर्वान्वयि ।

निग्रहेण च पापानां साधूनां प्रग्रहेण च ।
इयं तपस्विनी सत्या धारयिष्यति मेदिनी ॥
मया ह्येषा हि ध्रियते पातालस्थेन भोगिना ।
मया धृता धारयति जगद्धि विश्वं चराचरम् ३५
तस्मात्पृथ्व्याः परित्राणं करिष्ये संभवं गतः
एवं स चिन्तयित्वा तु भगवान्मधुसूदनः ३६
रूपाण्यनेकान्यसृजत्प्रादुर्भावे भवाय सः ।
वाराहं नारसिंहं च वामनं मानुषं तथा ३७
एभिर्मया निहन्तव्या दुर्विनीताः सुरारयः ॥
अथ भूयो जगत्स्रष्टा भोःशब्देनानुनादयन् ।
सरस्वतीमुच्चचार तत्र सारस्वतोऽभवत् ।
अपान्तरतमा नाम सुतो वाक्संभवः प्रभुः ॥
भूतभव्यभविष्यज्ञः सत्यवादी दृढव्रतः ।
तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ४०
वेदाख्याने श्रुतिः कार्या त्वया मतिमतां वर
तस्मात्कुरु यथाज्ञप्तं ममैतद्वचनं मुने ॥ ४१
तेन भिन्नास्तदा वेदा मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे ।
ततस्तुतोष भगवान्हरिस्तेनास्य कर्मणा ४२
तपसा च सुतप्तेन यमेन नियमेन च ।
मन्वन्तरेषु पुत्रत्वमेवमेव प्रवर्तकः ॥ ४३
भविष्यस्यचलो ब्रह्मन्नप्रधृष्यश्च नित्यशः ।
पुनस्तिष्ये च संप्राप्ते कुरवो नाम भारताः ॥
भविष्यन्ति महात्मानो राजानः प्रथिता भुवि
तेषां त्वत्तः प्रसूतानां कुलभेदो भविष्यति ॥
परस्परविनाशार्थं त्वामृते द्विजसत्तम ।
तत्राप्यनेकधा वेदान्भेत्स्यसे तपसाऽन्वितः
कृष्णे युगे च संप्राप्ते कृष्णवर्णो भविष्यसि ।
धर्माणां विविधानां च कर्ता ज्ञानकरस्तथा
भविष्यसि तपोयुक्तो न च रागाद्विमोक्ष्यसे
वीतरागश्च पुत्रस्ते परमात्मा भविष्यति ।
महेश्वरप्रसादेन नैतद्वचनमन्यथा ॥ ४८

यं मानसं वै प्रवदन्ति विप्राः
पितामहस्योत्तमबुद्धियुक्तम् ।
वसिष्ठमग्र्यं च तपोनिधानं
यस्यातिसूर्यं व्यतिरिच्यते भाः ॥ ४९
तस्यान्वये चापि ततो महर्षिः
पराशरो नाम महाप्रभावः ।
पिता स ते वेदनिधिर्वरिष्ठो
महातपा वै तपसो निवासः ॥ ५०
कानीनगर्भः पितृकन्यकायां
तस्मादृषेस्त्वं भविता च पुत्रः ॥ ५१

भूतभव्यभविष्याणां छिन्नसर्वार्थसंशयः ।
ये ह्यतिक्रान्तकाः पूर्वं सहस्रयुगपर्ययाः ५१
तांश्च सर्वान्मयोद्दिष्टान्द्रक्ष्यसे तपसाऽन्वितः
पुनर्द्रक्ष्यसि चानेकसहस्रयुगपर्ययान् ॥ ५३
अनादिनिधनं लोके चक्रहस्तं च मां मुने ।
अनुध्यानान्मम मुने नैतद्वचनमन्यथा ॥ ५४
भविष्यति महासत्त्व ख्यातिश्चाप्यतुला तव ।
*शनैश्चरः सूर्यपुत्रो भविष्यति मनुर्महान् ५५
तस्मिन्मन्वन्तरे चैव मन्वादिगणपूर्वकः ।
त्वमेव भविता वत्स मत्प्रसादान्न संशयः ५६

यत्किञ्चिद्विद्यते लोके
सर्वं तन्मद्विचेष्टितम् ।
अन्यो ह्यन्यं चिन्तयति
स्वच्छन्दं विदधाम्यहम् ॥ ५७

एवं सारस्वतमृषिमपान्तरतमं तथा ।
उक्त्वा वचनमीशानः साधयस्वेत्यथाब्रवीत्
सोऽहं तस्य प्रसादेन देवस्य हरिमेधसः ५८
अपान्तरतमा नाम ततो जातोऽऽज्ञया हरेः ।
पुनश्च जातो विख्यातो वसिष्ठकुलनन्दनः ॥
तदेतत्कथितं जन्म मया पूर्वकमात्मनः ।
नारायणप्रसादेन तथा नारायणांशजम् ६०
मया हि सुमहत्तप्तं तपः परमदारुणम् ।
पुरा मतिमतां श्रेष्ठाः परमेण समाधिना ६१
एतद्वः कथितं सर्वं यन्मां पृच्छत पुत्रकाः ।
पूर्वजन्म भविष्यं च भक्तानां स्नेहतो मया ६२

वैशम्पायन उवाच ।

एष ते कथितः पूर्वं संभवोऽस्मद्गुरोर्नृप ।
व्यासस्याक्लिष्टमनसो यथा पृष्टः पुनः शृणु ॥
सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै
सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः

---

अत्रैव केचिदध्यायं समापयन्ति ॥६२॥ प्रासंगिकोपसंहारपूर्वकं प्रश्नस्योत्तरं वक्तुं प्रतिजानीते—**एष त इति** ॥ ६३ ॥ नानामतानि भिन्नप्रस्थानानि ॥ ६४ ॥ सर्वेषां प्रामाण्यसिद्धये विशिष्टकर्तृत्वेन सर्वाणि स्तौति—**सांख्यस्येत्यादिना** ॥ ६५ ॥

* शनैश्चरभ्राता ।

अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते ।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥ ६६
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः ।
उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ६७
पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वेत्ता तु भगवान्स्वयम्
सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते ॥ ६८
यथागमं यथाज्ञानं निष्ठा नारायणः प्रभुः ।
न चैनमेवं जानन्ति तमोभूता विशांपते ६९
तमेव शास्त्रकर्तारः प्रवदन्ति मनीषिणः ।
निष्ठां नारायणमृषिं नान्योऽस्तीति वचो मम
निःसंशयेषु सर्वेषु नित्यं वसति वै हरिः ।
ससंशयान्हेतुबलान्नाध्यावसति माधवः ७१
पाञ्चरात्रविदो ये तु यथा क्रमपरा नृप ।
एकान्तभावोपगतास्ते हरिं प्रविशन्ति वै ७२
सांख्यं च योगं च सनातने द्वे
वेदाश्च सर्वे निखिलेन राजन् ।
सर्वैः समस्तैर्ऋषिभिर्निरुक्तो
नारायणो विश्वमिदं पुराणम् ॥ ७३
शुभाशुभं कर्म समीरितं य-
त्प्रवर्तते सर्वलोकेषु किञ्चित् ।
तस्मादृषेस्तद्भवतीति विद्या-
द्दिव्यन्तरिक्षे भुवि चाप्सु चेति ७४

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि द्वैपायनोत्पत्तौ एकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४९ ॥

## ३५०–[१७७]

जनमेजय उवाच ।
बहवः पुरुषा ब्रह्मन्नुताहो एक एव तु ।
को ह्यत्र पुरुषः श्रेष्ठः को वा योनिरिहोच्यते
वैशम्पायन उवाच ।
बहवः पुरुषा लोके सांख्ययोगविचारणे ।
नैतदिच्छन्ति पुरुषमेकं कुरुकुलोद्वह ॥ २

---

आगमं वेदं ज्ञानमनुभवं चानतिक्रम्य एतेषां सर्वेषां निष्ठा परमतात्पर्यविषयीभूतोऽर्थस्तु नारायणः परमात्मैवेति दृश्यत इत्यर्थः । अत्र भिन्नप्रस्थानत्वाभिमानो मूढानामेवेत्याह— **न चेति** ॥ ६९ ॥ स्वमतमाह–**तमेवेति** ॥ ७० ॥ निःसंशयेषु श्रुत्यनुभवबलादिति शेषः । हेतुबलात्कुतर्कबलात् ससंशयान् ॥ ७१ ॥ ईदृशा एव पाञ्चरात्रा अपि मुच्यन्त इत्याह—**पाञ्चरात्रेति** ॥ ७२ ॥ सनातने श्रुतिप्रतिपादितत्वादाद्यन्तशून्ये उभे अपि । तेन पाञ्चरात्रस्य पुंप्रणीतत्वं वेदविरुद्धत्वं च सूचितं तथाऽपि अवान्तरतात्पर्यभेदेऽपि परमतात्पर्यं त्वेकमेवेत्याह–**सर्वैरिति** । ‘इदं विश्वं नारायणः’ इति । इदं सर्वं यदयमात्मा ब्रह्मैवेदं सर्वम्’ इत्यादिश्रुतेरर्थो ब्रह्माद्वैतरूपो दर्शितः ॥ ७३ ॥ **शुभाशुभमिति**। सर्वत्र नारायण एव प्रवर्तकोऽन्तर्यामीत्यर्थः । समीरितं वेदे विहितम् । तस्मादृषेर्नारायणात् ॥ ७४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४९ ॥

३५०

पुरुषभेदमन्तरेण बन्धमोक्षव्यवस्थानुपपत्तेः श्रूयमाणस्यात्मैक्यस्य चानतिलंघनीयत्वात्संदिहानः पृच्छति—**बहव इति** । नन्वेकस्मिन्नाकाशे कर्णशष्कुलीरूपोपाधिभेदात् श्रोत्रभेदः कल्पितो बाधिर्यसुश्रवस्त्वादिव्यवहारहेतुः शब्दग्रहासंकरहेतुश्च एवमेकस्मिन्नात्मनि अन्तःकरणभेदाज्जीवभेदः कल्पितो बद्धमुक्तव्यवहारहेतुर्भोगासंकरहेतुश्च भविष्यतीति व्यवहारपरमार्थदृष्ट्या पुरुषबहुत्वैकत्वे संभवत इति न तत्र प्रष्टव्यमस्तीत्याशंक्याह–**को ह्यत्रेति** । योषा वाव गौतमाग्निरितिवदात्मैवेदं सर्वमित्यात्माभेदश्रुतेरुपासनार्थे गौणाभेदपरत्वेनाप्युपपत्तेरात्मैक्यासिद्धौ शष्कुलीदृष्टान्तेनापि उक्तव्यवस्थाकल्पनस्य निर्मूलत्वात् मानान्तरेण चाद्वैतासिद्धेः कः श्रेष्ठः पुरुषोऽस्ति को वा योनिरस्ति न कोऽपीत्यर्थः ॥ १ ॥ लोके व्यवहारे एतदेतस्मिन्व्यवहारे बहव एव पुरुषा न त्वेक इत्यर्थः । परमार्थतस्त्वेक एव न बहव इति भावः ॥ २ ॥

बहूनां पुरुषाणां च यथैका योनिरुच्यते ।
तथा तं पुरुषं विश्वं व्याख्यास्यामि गुणाधिकं
नमस्कृत्वा च गुरवे व्यासाय विदितात्मने
तपोयुक्ताय दान्ताय वन्द्याय परमर्षये ॥ ४
इदं पुरुषसूक्तं हि सर्ववेदेषु पार्थिव ।
ऋतं सत्यं च विख्यातमृषिसिंहेन चिन्तितम्
उत्सर्गेणापवादेन
ऋषिभिः कपिलादिभिः ।
अध्यात्मचिन्तामाश्रित्य
शास्त्राण्युक्तानि भारत ॥ ६
समासतस्तु यद्व्यासः पुरुषैकत्वमुक्तवान् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि प्रसादादमितौजसः ७
अत्राप्युदाहरन्तीमामितिहासं पुरातनम् ।
ब्रह्मणा सह संवादं त्र्यम्बकस्य विशांपते ॥ ८
क्षीरोदस्य समुद्रस्य मध्ये हाटकसप्रभः ।
वैजयन्त इति ख्यातः पर्वतप्रवरो नृप ॥ ९
तत्राध्यात्मगतिं देव एकाकी प्रविचिन्तयन्
वैराजसदनान्नित्यं वैजयन्तं निषेवते ॥ १०
अथ तत्रासतस्तस्य चतुर्वक्त्रस्य धीमतः ।
ललाटप्रभवः पुत्रः शिव आगाद्यदृच्छया ११
आकाशेन महायोगी पुरा त्रिनयनः प्रभुः ।
ततः खान्निपपाताशु धरणीधरमूर्धनि ॥ १२
अग्रतश्चाभवत्प्रीतो ववन्दे चापि पादयोः ।
तं पादयोर्निपतितं दृष्ट्वा सव्येन पाणिना १३
उत्थापयामास तदा प्रभुरेकः प्रजापतिः ।
उवाच चैनं भगवांश्चिरस्यागतमात्मजम् १४

पितामह उवाच ।

स्वागतं ते महाबाहो
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मेऽन्तिकम् ।
कच्चित्ते कुशलं पुत्र
स्वाध्यायतपसोः सदा ॥ १५
नित्यमुग्रतपास्त्वं हि ततः पृच्छामि ते पुनः

रुद्र उवाच ।

त्वत्प्रसादेन भगवन्स्वाध्यायतपसोर्मम ।
कुशलं चाव्ययं चैव सर्वस्य जगतस्तथा १७
चिरदृष्टो हि भगवान्वैराजसदने मया ।
ततोऽहं पर्वतं प्राप्तस्त्विमं त्वत्पादसेवितम्
कौतूहलं चापि हि मे एकान्तगमनेन ते ।
नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति पितामह १९
किं नु तत्सदनं श्रेष्ठं क्षुत्पिपासाविवर्जितम्
सुरासुरैरध्युषितं ऋषिभिश्चामितप्रभैः ॥ २०
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सततं संनिषेवितम् ।
उत्सृज्येमं गिरिवरमेकाकी प्राप्तवानसि २१

---

स्वमतमाह—**बहूनामिति** । पूर्षु उपाधिषु वसतां पुरुषाणां घटमठाकाशदर्पणमणिकृपाणप्रतिबिम्बाद्यात्मनां यथैका योनिर्महाकाशबिम्बपुरुषादिरूपा तथैव तं अस्मदादीनां योनिं एकं पुरुषं व्याख्यास्यामीत्यर्थः । अयं भावः—ऐकात्म्यं श्रुतेस्तात्पर्याभावाद्वा मानान्तरविरोधाद्वा त्यज्येत । नान्त्यः । एकस्मादपि प्राणिकर्मवासनागर्भिताज्ञानसहायात्स्वप्रवद्वियदाद्युत्पत्तेरविरोधात् । शष्कुलीन्यायेनैकस्मिन्नप्यौपाधिकभेदकल्पनया बन्धमोक्षादिव्यवस्थोपपत्तेश्च । नाद्यः ।

'उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये ।'

इत्येतैर्लिंगैः श्रुतेरैकात्म्ये एव तात्पर्यदर्शनात् । तथा हि । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्युपक्रम्य 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इति चोपक्रमोपसंहारयोरैकरूप्यं ऐतदात्म्यमित्यादेरसकृत् श्रवणमभ्यासः मानान्तरानवगतत्वादात्मैकतत्त्वस्य अपूर्वता उत तमादेशमप्राक्षीर्येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमित्येकविज्ञानात्सर्वविज्ञानं फलम् । यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यादिति दृष्टान्ता उपपत्तयः । लवणमेतदुदकेऽवधाय न्यग्रोधफलमत आहरेतीत्यादिरर्थवादः । लवणोदकन्यायेन ब्रह्मणि जगल्लयं न्यग्रोधकणिकान्यायेन ततो जगदुदयं च प्रतिपादयंस्तस्यैकाद्वितीयत्वमवगमयति एवमैकात्म्यं प्रतिपाद्य ।

'घटसंवृतमाकाशं नीयमाने यथा घटे ।
घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः ।
एक एव तु भूतात्मा भूते भूते प्रकाशते ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत्' ।

'अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः' इत्यादिश्रुतिभिर्घटाकाशजलचन्द्रादिदृष्टान्तपूर्वकं बन्धस्याज्ञानकार्यत्वं प्रतिपाद्यतेऽतो न श्रुतेरुपासनायां तात्पर्यमस्ति । प्रत्युत ऐकात्म्ये एवेति व्यक्तमाकरे ॥ ३ ॥ इदमेव गुरुनमस्कारपूर्वकमाख्यायिकासुखेनोपपादयति—**नमस्कृत्वेत्यादिना** । आख्यायिका स्पष्टार्था ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच ।
वैजयन्तो गिरिवरः सततं सेव्यते मया ।
अत्रैकाग्रेण मनसा पुरुषश्चिन्त्यते विराट् २२
रुद्र उवाच ।
बहवः पुरुषा ब्रह्मंस्त्वया सृष्टाः स्वयंभुवा
सृज्यन्ते चापरे ब्रह्मन्स चैकः पुरुषो विराट्
को ह्यसौ चिन्त्यते ब्रह्मंस्त्वयैकः पुरुषोत्तमः ।
एतन्मे संशयं ब्रूहि महत्कौतूहलं हि मे ॥२४

ब्रह्मोवाच ।
बहवः पुरुषाः पुत्र त्वया ये समुदाहृताः ।
एवमेतदतिक्रान्तं द्रष्टव्यं नैवमित्यपि ॥ २५
आधारं तु प्रवक्ष्यामि एकस्य पुरुषस्य ते ।
बहूनां पुरुषाणां स यथैका योनिरुच्यते ॥ २६
तथा तं पुरुषं विश्वं परमं सुमहत्तमम् ।
निर्गुणं निर्गुणा भूत्वा प्रविशन्ति सनातनम्

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीये ब्रह्मरुद्रसंवादे पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५० ॥

## ३५१–[१७८]

ब्रह्मोवाच ।
शृणु पुत्र यथा ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वगश्च निरुच्यते ॥ १
न स शक्यस्त्वया द्रष्टुं मयाऽन्यैर्वापि सत्तम
सगुणैर्निर्गुणैर्विश्वो ज्ञानदृश्यो ह्यसौ स्मृतः २
अशरीरः शरीरेषु सर्वेषु निवसत्यसौ ।
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्यति कर्मभिः ॥३
ममान्तरात्मा तव च
ये चान्ये देहसंज्ञिताः ।
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ
न ग्राह्यः केनचित्क्वचित् ॥ ४
विश्वमूर्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः
एकश्चरति क्षेत्रेषु स्वैरचारी यथासुखम् ॥ ५
क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभं
तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते
नागतिर्न गतिस्तस्य ज्ञेया भूतेषु केनचित् ।
सांख्येन विधिना चैव योगेन च यथाक्रमम्

---

**बहवः पुरुषा ब्रह्मन्निति** । पुरुषाणां बहुत्वेऽपि पुरुषान्तरं प्रणमतीत्याश्चर्यम् । संघातादन्यः पुरुषो नास्तीति भावः ॥ २३ ॥ **बहवः पुरुषाः पुत्रेति** । ये संघातात्मानस्त्वया उदाहृताः । एतदतिक्रान्तं प्रत्यक्षेणैवापह्नवविषयं वेदाप्रतिपाद्यं नैतद्द्रष्टव्यमित्यर्थः । **अनधिगतार्थज्ञापकं हि प्रमाणम्** । आत्मभेदश्चाधिगत एवेति न शास्त्रस्य विषयः । तत्परत्वेऽग्निर्हिमस्य भेषजमितिवत् शास्त्रस्यानुवादकत्वापत्तेः । अतस्तत्त्वमस्यादिवाक्यं न गौणाभेदपरमित्यर्थः ॥ २५ ॥ आधारोऽधिष्ठानम् । एकस्य विराजः सोपाधिकत्वेऽपि पुरुषस्यैकत्वमस्ति किमुत निरुपाधिकत्वे इति भावः ॥ २६ ॥ विश्वं विराजं परमं सूत्रात्मानं सुमहत्तमं कारणम् । निर्गुणं शुद्धम् । अनेनानिरुद्धप्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवाः क्रमेणोक्ताः । तत्र निर्गुणस्यैव निर्गुणे वासुदेवे प्रवेश इत्यर्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५० ॥

३५१

इदमेव पुरुषैकत्वं दृष्टान्तैरुपपादयन् कृत्स्नस्य मोक्षशास्त्रस्यार्थमुपसंहरति–**शृणु पुत्रेत्यादिना** । पुरुषः पूर्णत्वात् शाश्वतः आद्यन्तशून्यत्वात् । अव्ययः अपरिणामित्वात् । अत एव अक्षयः अपचयहीनः । अप्रमेयः वाङ्मनसातीतत्वात् । सर्वगः सर्वोपादानत्वात् ॥१॥ सगुणैः बुद्धीन्द्रियादिसहितैः । निर्गुणैः शमादिहीनैर्मूढैः । विश्वो विश्वात्मा ज्ञानेन चिन्मात्रेणैव दृश्यः । स्वयंप्रकाश इत्यर्थः ॥ २ ॥ अशरीरः स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरैर्विरहितः न लिप्यति न लिप्यते आकाश इव घटान्तर्गतैर्दीर्घत्वह्रस्वत्वादिभिर्गत्यादिभिर्वा ॥ ३ ॥ अस्य तटस्थतां वारयति–**ममेति** । अन्तरात्माऽपि न ग्राह्यः उपाध्यभिनिवेशात् ॥ ४ ॥ अयमेव विश्वरूप इत्याह—**विश्वेति** । सर्वेषां शरीरैरयमेव शरीरीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अस्यैव क्षेत्रज्ञत्वं सनिरुक्तमाह–**क्षेत्राणीति** ॥ ६ ॥ नन्वयमेव क्षेत्रज्ञश्चेदुत्क्रान्तिगत्यागत्यादिकमस्यैव प्रसक्तमित्याशंक्याह–**नागतिरिति** । घटा-

चिन्तयामि गतिं चास्य न गतिं वेद्मि चोत्तरां।
यथाज्ञानं तु वक्ष्यामि पुरुषं तु सनातनम् ८
तस्यैकत्वं महत्त्वं च स चैकः पुरुषः स्मृतः।
महापुरुषशब्दं स बिभर्त्येकः सनातनः॥ ९
एको हुताशो बहुधा समिध्यते
एकः सूर्यस्तपसो योनिरेका।
एको वायुर्बहुधा वाति लोके
महोदधिश्चांभसां योनिरेकः।
पुरुषश्चैको निर्गुणो विश्वरूप-
स्तं निर्गुणं पुरुषं चाविशन्ति॥ १०
हित्वा गुणमयं सर्वं कर्म हित्वा शुभाशुभम्
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा एवं भवति निर्गुणः॥
अचिन्त्यं चापि तं ज्ञात्वा भावसूक्ष्मं चतुष्टयं
विचरेद्योऽसमुन्नद्धः स गच्छेत्पुरुषं शुभम् १२
एवं हि परमात्मानं केचिदिच्छन्ति पण्डिताः
एकात्मानं तथाऽऽत्मानमपरे ज्ञानचिन्तकाः
तत्र यः परमात्मा हि स नित्यं निर्गुणः स्मृतः
स हि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मा पुरुषो हि सः
न लिप्यते फलैश्चापि
पद्मपत्रमिवांभसा।
कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ
मोक्षबन्धैः स युज्यते॥ १५
स सप्तदशकेनापि
राशिना युज्यते च सः।
एवं बहुविधः प्रोक्तः
पुरुषस्ते यथाक्रमम्॥ १६
यत्तत्कृत्स्नं लोकतंत्रस्य धाम
वेद्यं परं बोधनीयः स बोद्धा।
मन्ता मन्तव्यं प्राशिता प्राशनीयं
घ्राता घ्रेयं स्पर्शिता स्पर्शनीयम् १७

---

काशस्यैवाप्रतीतितोऽगत्यादिमत्त्वेऽपि वस्तुतो नैवास्ति। अतो नैव सा ज्ञेया। आत्मनि गतिरस्तीति न ज्ञातव्यमित्यर्थः॥ ७॥ का तर्हि गतिप्रतीतेर्गतिरित्याशंक्यानिर्वचनीयाऽस्मिन्गतिप्रतीतिरित्याह—**चिन्तयामीति**। गतेर्निर्वचनं सत्त्वेनासत्त्वेन वा दुर्निरूपम्। पुरुषं यथाज्ञानं श्रुतियुक्त्यनुभूतीरनतिक्रम्य वक्ष्यामि यतः सनातनं नित्यैकरूपम् यद्धि नानारूपं तदिदमित्थमेवेति दुर्निरूपमित्यर्थः॥८॥ अस्य महापुरुषत्वं निर्वक्ति—**तस्येति**। पुरुषान्तरसत्त्वे एकस्य महत्त्वं न स्यात्। समत्वात्पुरुषाणाम्॥ ९॥ ननु क्लेशादिभिरपरामृष्ट ईश्वर इति योगा वदन्ति स च महानित्याशंक्यैकस्यैवोपाध्यावेशात्संसारस्तटस्थेश्वरस्य पूर्वमेव निरस्तत्वादित्याशयेनाह—**एक इति**। आद्यो दृष्टान्त उपाधितादात्म्ये ज्ञेयः। द्वितीयस्त्वौपाधिकधर्माणामुपहिते प्रतिबिम्बे जलचाञ्चल्यवत् प्रतीतावसंगित्वेऽप्युपाधिप्रकाशकत्वे च। तपसः प्रकाशस्य श्रुतौ तु 'एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः। एकैवोषाः सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं विबभूव सर्वम्' इति दृष्टान्तत्रयं पृथगुक्तम्। सर्वेऽप्येकस्यानेकत्वे दृष्टान्ता एते। वायुदृष्टान्तोऽप्यसंगत एव। समुद्रदृष्टान्तस्तूत्पत्तिलयस्थानत्वे इति विवेकः दृष्टान्तानुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाहार्धेन। **पुरुषश्चेति**। निर्गुणोऽपि मायया विश्वरूपो भवति। विश्वानि च रूपाणि तमेवाविशन्ति। समुद्रादुद्भूता आपः समुद्रमिवेत्यर्थः॥१०॥ कदा निर्गुणं पुरुषं विशन्तीत्यत आह—**हित्वेति**। गुणमयं देहेन्द्रियाद्यहंकारान्तं हित्वा तद्धानाच्च शुभाशुभं कर्म त्यक्त्वा ततः सत्यानृते सत्यमक्षरं जीवाख्यं अनृतं प्रधानं भोक्तारं भोग्यं च त्यक्त्वेत्यर्थः।

'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः' इति *अमृतोऽक्षर इति वक्तव्ये अमृताक्षरमिति च्छान्दस उत्वाद्यभावः॥ ११॥ तं निर्गुणमचिन्त्यं मनोतीतं ज्ञात्वा साक्षात्कृत्य चतुष्टयं भावसूक्ष्मं विचरेत्। भावस्य सत्तामात्रस्य सूक्ष्मं सूक्ष्मरूपभूतं चतुष्टयमनिरुद्धप्रद्युम्नसङ्कर्षणवासुदेवापरपर्यायमधिदैवं विराट्सूत्रान्तर्यामिशुद्धब्रह्मरूपमध्यात्मं विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयसंज्ञमवस्थाचतुष्टयं यः संचरेत्। स्थूलसूक्ष्मप्रविलापनक्रमेण यो नित्यं समाधिमनुतिष्ठेदित्यर्थः। तस्य लक्षणम्—असमुन्नद्धः अत्यन्तं शान्तः स एव परमं पुरुषं गच्छेन्नान्य इत्यर्थः॥ १२॥ एवं योगमार्गेण केचित् योगाः। अपरे सांख्याः आत्मानं प्रत्यञ्चमेकात्मानं ब्रह्माभिन्नमिच्छन्ति॥१३॥ पक्षद्वयेऽपि परमात्मशब्दार्थमाह सार्धेन—**तत्रेति**॥१४॥ आत्मशब्दार्थमाह—**कर्मेति**॥ १५॥ सप्तदशकेन राशिना लिङ्गशरीरेण सः सोपाधिरात्मा जीवः स च कर्मभेदाद्देवतिर्यगादिभावमापन्नो बहुविध इत्याह—**एवमिति**। एवमौपाधिके पुरुषबहुत्वे सति ये स्वत एव पुंबहुत्वं प्राहुर्निरीश्वरसांख्यादयस्ते भ्रान्ता इत्यर्थः॥ १६॥ एवं बहवः पुरुषा राजन्नुताहो एक एव चेत्यस्य प्रश्नस्योत्तरं सिद्धान्ते पुरुषैक्यमुक्तम्। सम्प्रति ब्रह्मविद्यासमाप्तौ मङ्गलार्थं तदेवानुसंदधानो—

* इदं च भाष्यविरुद्धम्। तत्र अमृतं च तदक्षरं चेति विग्रहपूर्वकं व्याख्यानात्।

**द्रष्टा द्रष्टव्यं श्राविता श्रावणीयं**
**ज्ञाता ज्ञेयं सगुणं निर्गुणं च।**
**यद्वै प्रोक्तं तात सम्यक्प्रधानं**
**नित्यं चैतच्छाश्वतं चाव्ययं च ॥ १८**
**यद्वै सूते धातुराद्यं विधानं**
**तद्वै विप्राः प्रवदन्तेऽनिरुद्धम्।**
**यद्वै लोके वैदिकं कर्म साधु**
**आशीर्युक्तं तद्धि तस्यैव भाव्यम् १९**
**देवाः सर्वे मुनयः साधु शान्ता-**
**स्तं प्राग्वंशे यज्ञभागं भजन्ते।**
**अहं ब्रह्मा आद्य ईशः प्रजानां**
**तस्माज्जातस्त्वं च मत्तः प्रसूतः॥ २०**
**मत्तो जगज्जङ्गमं स्थावरं च।**
**सर्वे वेदाः सरहस्या हि पुत्र ॥ २१**
**चतुर्विभक्तः पुरुषः स क्रीडति यथेच्छति।**
**एवं स भगवान्स्वेन ज्ञानेन प्रतिबोधितः २२**
**एतत्ते कथितं पुत्र यथावदनुपृच्छतः।**
**सांख्यज्ञाने तथा योगे यथावदनुवर्णितम् २३**

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्'

इतिश्रुतेरर्थे भोक्तृभोग्ययोर्ब्रह्माभेदं दर्शयति—**यत्तादि-त्यादिना**। धाम प्रकाशकं चिज्ज्योतिः। तदेव परं वेद्यं तदेव च बोद्धा योऽयं बोद्धा जीवः स एव बोधनीय ईश्वर इत्यर्थः। यथोक्तं वृद्धैः—

'अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात्प्राक्प्रमातृत्वमात्मनः।
अन्विष्टः स्यात् प्रमातैव पाप्मदोषादिवर्जितः'॥

इति। न केवलं आत्मन एव मन्तृमन्तव्यत्वादिकं अपि तु घ्रेयत्वादिकमपि तस्यैवेत्याह—**घ्रातेत्यादिना** ॥१७॥ किं बहुना यत् प्रधानं अनात्मत्वेन प्रसिद्धं घ्रेयादीनामुपादानं तदपि आत्मैवेत्याह—**यद्वै प्रोक्तमिति**। यत् प्रधानमिति प्रोक्तं यदपि धातुः आद्यं विधानं महत्तत्त्वं सूते तदपि एतदेवेत्यन्वयः। एतदेव विशिनष्टि—नित्यं ध्वंसहीनम्। अत एव शाश्वतं अनादि अव्ययं अपरिणामि परिणामिनो हि विकारवत्त्वादाद्यन्तवत्त्वं प्रधानस्य युज्यते न त्वतादृशस्य पुरुषस्य ॥ १८ ॥ तदेवं परेषां महत्त्वेनाभिमतम्। विप्राः पूर्णज्ञाना ब्राह्मणा अनिरुद्धमहङ्काराख्यमाहुः। अयमेव वैदिककर्मणामधिष्ठात्री देवतेत्याह—**यद्वै लोके इति**। आशीर्युक्तं काम्यं तस्यैव तादर्थ्येनैव भाव्यं चिन्तनीयम्। अनेनाग्निहोत्रेण अनिरुद्धात्मा वासुदेवः प्रीयतामिति कर्मावसरेऽनुसन्धानं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १९ ॥ इदमेव सदाचारप्रदर्शनेन द्रढयति—**देवा इत्यादिना** ॥ २० ॥ **मत्त इति**। मम आराध्या देवता मज्जैरपि स्थावरजङ्गमात्मकैर्जीवैराराधनीयेत्यर्थः ॥ २१ ॥ पाञ्चरात्रमार्गमुपसंहरति—**चतुर्विभक्त इति**। चतुर्विभक्तः चतुर्धा वासुदेवादिरूपेण विभक्तः क्रीडति शास्यशासितृभावेन भोग्यभोक्तृभावेन चेत्यर्थः। एवं स भगवान्वासुदेव उपाध्यावेशादबुद्ध इव सन् स्वेन स्वरूपाभिन्नेन ज्ञानेन प्रतिबोधितः सन् जीवत्वं परित्यज्य वासुदेव एव भवतीत्यर्थः।

ननु चतुर्विभक्त इत्युपसंहारो न युज्यते। पाञ्चरात्रमतस्यावैदिकस्य श्रौते सांख्ययोगमतेऽनुपसंहार्यत्वादिति चेत्। कृत्स्नभावादिति ब्रूमः। तथाहि। भगवदाराधनं विना संन्यासपूर्वकं सांख्यमनुतिष्ठतश्चित्तैकाग्र्यस्याभावाद्बुद्धिर्भ्रश्यति ततश्चारूढपतितास्ते उभयभ्रष्टा भवन्ति। यथोक्तं श्रीभागवते—

'श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधो नादृतयुष्मदङ्घ्रयः' इति।

यथा योगिनामपि प्रत्यक्त्वाधिगमोऽन्तरायाभावश्च न भगवदाराधनं विना भवतीति स्मर्यते। ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। अन्तरायास्तु योगैरेवोक्ताः-व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव इति।

'तथा न ते माधव तावकाः क्वचित्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः।
त्वयाऽभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो' इति।

तस्माद्भक्तौ कृत्स्नस्य शास्त्रफलस्यान्तर्भावोऽस्ति अतस्तयैवोपसंहारो युक्तः ॥ २२ ॥ परमप्रकृतौ सांख्ययोगावुपसंहरति—**एतत्त इति**। तथा च ज्ञानस्यैव प्राकरणिकत्वात्तत्प्रकरणे पठिता भक्तिस्तदङ्गभावं भजत इति भावः। तथा चोक्तं भगवता–भक्त्या मामभिजानातीति। श्रुतिरपि—

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः'

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नारायणीयसमाप्तौ एकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५१ ॥

## ३५२-[१७९]

युधिष्ठिर उवाच ।
धर्माः पितामहेनोक्ता मोक्षधर्माश्रिताः शुभाः
धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हति मे भवान् ॥ १
भीष्म उवाच ।
सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्गः सत्यफलं महत्
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया २
यस्मिन्यस्मिंश्च विषये यो यो याति विनिश्चयं
स तमेवाभिजानाति नान्यं भरतसत्तम ॥ ३
इमां च त्वं नरव्याघ्र श्रोतुमर्हसि मे कथाम् ।
पुरा शक्रस्य कथितां नारदेन महर्षिणा ॥ ४
महर्षिर्नारदो राजन्सिद्धस्त्रैलोक्यसंमतः ।
पर्येति क्रमशो लोकान् वायुरव्याहतो यथा॥
स कदाचिन्महेष्वास देवराजालयं गतः ।
सत्कृतश्च महेन्द्रेण प्रत्यासन्नगतोऽभवत् ॥ ६
तं कृतक्षणमासीनं पर्यपृच्छच्छचीपतिः ।
महर्षे किंचिदाश्चर्यमस्ति दृष्टं त्वयाऽनघ ॥ ७
यदा त्वमपि विप्रर्षे त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
जातकौतूहलो नित्यं सिद्धश्चरसि साक्षिवत्
न ह्यस्त्यविदितं लोके देवर्षे तव किञ्चन ।
श्रुतं वाऽप्यनुभूतं वा दृष्टं वा कथयस्व मे ॥ ९
तस्मै राजन्सुरेन्द्राय नारदो वदतां वरः ।
आसीनायोपपन्नाय प्रोक्तवान्विपुलां कथाम्
यथा येन च *कल्पेन स तस्मै द्विजसत्तमः ।
कथां कथितवान्पृष्टस्तथा त्वमपि मे शृणु ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५२ ॥

---

इति भक्तेर्ज्ञानाङ्गत्वं दर्शयति । तदयं संग्रहः—
'कर्मभिर्भगवद्भक्तिर्भक्त्येश्वरकृपा तथा ।
ज्ञानं तेन विमुक्तिश्च मोक्षधर्मार्थसंग्रहः'
॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५१ ॥

३५२

यद्यपि सुलभाजनकसंवादे संन्यासस्यैव श्रैष्ठ्यं स्थितम् । तथापि सर्वैः प्रकारैः सुखहेतुत्वेन श्रेष्ठतरः को वा आश्रम इति जिज्ञासया पृच्छति-**धर्मा इति** । आश्रमिणां आश्रमवतां मध्ये श्रेष्ठं प्रशस्यतमं धर्मं आश्रमधर्मं वक्तुमर्हति भवान् । अयं भावः—संन्यासः श्रेष्ठोऽपि तद्धर्माणामत्यन्तं दुरनुष्ठेयत्वात् । यथोक्तं तत्रैव सुलभाजनकसंवादे-
'आधिपत्ये तथा तुल्ये निग्रहानुग्रहात्मके ।
राजाभिर्भिक्षुकास्तुल्या मुच्यन्ते केन हेतुना' इति।
तत्रारूढपातित्यं कलौ सम्भावितमतो न शयानः पतत्यध इति न्यायेन यत्र पातित्यं नास्ति ऊर्ध्वगतिश्च सर्वैः प्रकारैः सम्भाव्यते तादृश आश्रमः प्रशस्ततरः क इति प्रष्टुरभिप्राय इति ॥ १ ॥ सर्वत्राश्रमेषु विहितो धर्मः । स्वर्गः स्वर्गसाधनं सत्यफलं अबाधितमोक्षाख्यफलसाधनं च भवति । साधने साध्योपचारः । बहूनि यज्ञदानादीनि द्वाराणि यस्य ॥२॥ **यस्मिन्निति** । सर्वेष्वाश्रमेषु स्वर्गो मोक्षश्चास्ति तेषु यत्र यस्य रुचिस्तेन स कृतकृत्यो नान्यं धर्मं बहु मन्यते इति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ एवं सत्यपि न्यायागतधनस्य गृहस्थस्य श्रेष्ठतमत्वं प्रतिपादयितुमुञ्छवृत्त्युपाख्यानमारभते—**इमां च त्वं नरव्याघ्रेत्यादिना** ॥ ४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५२ ॥

* कल्पेन न्यायेनेत्यर्थः ।

## ३५३-[१८०]

भीष्म उवाच ।
आसीत्किल नरश्रेष्ठ महापद्मे पुरोत्तमे ।
गङ्गाया दक्षिणे तीरे कश्चिद्विप्रः समाहितः १
सौम्यः सोमान्वये वेदे गताध्वा छिन्नसंशयः
धर्मनित्यो जितक्रोधो नित्यतृप्तो जितेन्द्रियः
तपःस्वाध्यायनिरतः सत्यः सज्जनसंमतः ।
न्यायप्राप्तेन वित्तेन स्वेन शीलेन चान्वितः ३
ज्ञातिसम्बन्धिविपुले सत्वाद्याश्रयसंमिते ।
कुले महति विख्याते विशिष्टां वृत्तिमास्थितः
स पुत्रान्बहुलान्दृष्ट्वा विपुले कर्मणि स्थितः ।
कुलधर्माश्रितो राजन्धर्मचर्यास्थितोऽभवत्
ततः स धर्मं वेदोक्तं तथा शास्त्रोक्तमेव च ।
शिष्टाचीर्णं च धर्मं च त्रिविधं चिन्त्य चेतसा
किंनु मे स्याच्छुभं कृत्वा किं कृतं किं परायणं
इत्येवं खिद्यते नित्यं न च याति विनिश्चयम्
तस्यैवं खिद्यमानस्य धर्मं परममास्थितः ।
कदाचिदतिथिः प्राप्तो ब्राह्मणः सुसमाहितः ८
स तस्मै सत्क्रियां चक्रे क्रियायुक्तेन हेतुना ।
विश्रान्तं सुखमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने
त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५३ ॥

---

## ३५४-[१८१]

ब्राह्मण उवाच ।
समुत्पन्नाभिधानोऽस्मि वाङ्माधुर्येण तेऽनघ
मित्रत्वमभिपन्नस्त्वं किंचिद्वक्ष्यामि तच्छृणु १
गृहस्थधर्मं विप्रेन्द्र कृत्वा पुत्रगतं त्वहम् ।
धर्मं परमकं कुर्यां को हि मार्गो भवेद्द्विज ॥ २
अहमात्मानमास्थाय एक एवात्मनि स्थितिम्
कर्तुं कांक्षामि नेच्छामि बद्धः साधारणैर्गुणैः
यावदेतदतीतं मे वयः पुत्रफलाश्रितम् ।
तावदिच्छामि पाथेयमादातुं पारलौकिकम् ४
अस्मिन्हि लोकसंभारे परं पारमभीप्सतः।
उत्पन्ना मे मतिरियं कुतो धर्ममयः प्लवः ॥ ५
संयुज्यमानानि निशम्य लोके
निर्यात्यमानानि च सात्त्विकानि ।
दृष्ट्वा तु धर्मध्वजकेतुमालां
प्रकीर्यमाणामुपरि प्रजानाम् ॥ ६
न मे मनो रज्यति भोगकाले
दृष्ट्वा यतीन्प्रार्थयतः परत्र ।
तेनातिथे बुद्धिबलाश्रयेण
धर्मेण धर्मे विनियुंक्ष्व मां त्वम् ॥ ७
सोऽतिथिर्वचनं तस्य श्रुत्वा धर्माभिभाषिणः
प्रोवाच वचनं श्लक्ष्णं प्राज्ञो मधुरया गिरा ८

---

३५३

**आसीदिति** ॥ १ ॥ सोमान्वये अत्रिगोत्रे गताध्वा ज्ञातमार्गः ॥ २ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५३ ॥

३५४

**समुत्पन्नेति** । अभिधानी बन्धनरज्जुः अश्वाभिधानीमादत्त इति ब्राह्मणात् । तेनाभिधानशब्दोऽपि बन्धनवाची जातबन्धन इत्यर्थः ॥ १ ॥ आत्मानं अवस्थाय आलम्ब्य एक एव आत्मनि स्थितिं आत्मज्ञानार्थमेकाकितया स्थातुं संन्यासं कर्तुमिच्छामि । गुणैर्विषयपाशैर्निबद्धश्च तं नेच्छामि । यथा मन्दाग्निर्बह्वाहारं कामयानोऽप्यौदर्यदोषेण भोक्तुं नेच्छति तद्वदित्यर्थः ॥३ ॥ कुतो धर्ममयः प्लवः कुतः कुत्राश्रमे प्लवः संसाराब्धितरणसाधनम् ॥ ५ ॥ धर्मप्लवापेक्षायां हेतुमाह--**संयुज्यमानानीति** । निशम्य आलोच्य निर्यात्यमानानि निपीड्यमानानि सात्त्विकानि देवादीनि।धर्मस्य यमस्य ध्वजाः केतवः पताका दण्डोपमा रोगादयस्तेषां माला सन्तातिस्तां दृष्ट्वा मे मनो भोगकाले न रज्यतीत्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ ६ ॥ तर्हि किं भोगत्यागे रज्यति नेत्याह-यतीन् परिव्राजकानपि परत्र गृहे वस्त्राना-दिकं प्रार्थयतः प्रार्थयमानान् दृष्ट्वा च यतिधर्मेऽपि मे मनो न रज्यति अतः दोलायमानं मां धर्मे नियुंक्ष्व ॥ ७॥

अतिथिरुवाच ।

अहमप्यत्र मुह्यामि ममाप्येष मनोरथः ।
न च संनिश्चयं यामि बहुद्वारे त्रिविष्टपे ॥ ९

केचिन्मोक्षं प्रशंसन्ति
केचिद्यज्ञफलं द्विजाः ।
वानप्रस्थाश्रयाः केचि-
द्गार्हस्थ्यं केचिदास्थिताः ॥ १०

राजधर्माश्रयं केचि-
त्केचिदात्मफलाश्रयम् ।
गुरुधर्माश्रयं केचि-
त्केचिद्वाक्संयमाश्रयम् ॥ ११

मातरं पितरं केचिच्छुश्रूषन्तो दिवं गताः ।
अहिंसया परे स्वर्गं सत्येन च तथा परे ॥ १२

आहवेऽभिमुखाः केचिन्निहतास्त्रिदिवं गताः
केचिदुञ्छव्रतैः सिद्धाः स्वर्गमार्गं समाश्रिताः

केचिदध्ययने युक्ता वेदव्रतपराः शुभाः ।
बुद्धिमन्तो गताः स्वर्गं तुष्टात्मानो जितेन्द्रियाः

आर्जवेनापरे युक्ता निहतानार्जवैर्जनैः ।
ऋजवो नाकपृष्ठे वै शुद्धात्मानः प्रतिष्ठिताः ॥

एवं बहुविधैर्लोकैर्धर्मद्वारैरनावृतैः ।
ममापि मतिराविग्ना मेघलेखेव वायुना ॥ १६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने
चतुःपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५४ ॥

## ३५५-[१८२]

अतिथिरुवाच ।

उपदेशं तु ते विप्र करिष्येऽहं यथाक्रमम् ।
गुरुणा मे यथाख्यातमर्थतत्त्वं तु मे शृणु ॥ १

यत्र पूर्वाभिसर्गे वै धर्मचक्रं प्रवर्तितम् ।
नैमिषे गोमतीतीरे तत्र नागाह्वयं पुरम् ॥ २

समग्रैस्त्रिदशैस्तत्र इष्टमासीद्द्विजर्षभ ।
यत्रेन्द्रातिक्रमं चक्रे मान्धाता राजसत्तमः ३

कृताधिवासो धर्मात्मा तत्र चक्षुःश्रवा महान्
पद्मनाभो महानागः पद्म इत्येव विश्रुतः ॥ ४

स वाचा कर्मणा चैव मनसा च द्विजर्षभ ।
प्रसादयति भूतानि त्रिविधे वर्त्मनि स्थितः

साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनेति *चतुर्विधम् ।
विषमस्थं समस्थं च चक्षुर्ध्यानेन रक्षति ॥ ६

तमतिक्रम्य विधिना प्रष्टुमर्हसि काङ्क्षितम् ।
स ते परमकं धर्मं न मिथ्या दर्शयिष्यति ७

स हि सर्वातिथिर्नागो बुद्धिशास्त्रविशारदः ।
गुणैरनुपमैर्युक्तः समस्तैराभिकामिकैः ॥ ८

प्रकृत्या नित्यसलिलो नित्यमध्ययने रतः ।
तपोदमाभ्यां संयुक्तो वृत्तेनानवरेण च ॥ ९

यज्वा दानपतिः क्षान्तो वृत्ते च परमे स्थितः
सत्यवागनसूयुश्च शीलवान्नियतेन्द्रियः ॥ १०

शेषान्नभोक्ता वचनानुकूलो
हितार्जवोत्कृष्टकृताकृतज्ञः ।
अवैरकृद्भूतहिते नियुक्तो
गङ्गान्हृदांभोऽभिजनोपपन्नः ॥ ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने
पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५५ ॥

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भा० भा० चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५४ ॥

३५५

उपदेशं त्विति ॥ १ ॥ चक्षुःश्रवाः सर्पः ॥ ४ ॥ त्रिविधे कर्मज्ञानोपास्त्यात्मके ॥५॥ चक्षुः चक्षुरादिध्यानेन वस्तुतत्त्वानुसन्धानेन ॥६॥ अतिक्रम्य अपगम्य ॥७॥ आभिकामिकैः अभीप्सितैः ॥८॥ नित्यं सलिलवन्निर्मलो नित्यसलिलः ॥९॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैल० भारतभा० पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३५५

* चतुर्विधं यथा स्यात्तथा प्रसादयतीति पूर्वेणान्वयः ।

## ३५६-[१८३]

ब्राह्मण उवाच ।
अतिभारोऽद्य तस्यैव भारावतरणं महत् ।
पराश्वासकरं वाक्यमिदं मे भवतः श्रुतम् १
अध्वक्लान्तस्य शयनं
स्थानक्लान्तस्य चासनम् ।
तृषितस्य च पानीयं
क्षुधार्तस्य च भोजनम् ॥ २
ईप्सितस्येव संप्राप्तिरन्नस्य समयेऽतिथेः ।
एषितस्यात्मनः काले वृद्धस्यैव सुतो यथा ३
मनसा चिन्तितस्येव प्रीतिस्निग्धस्य दर्शनम्
प्रह्लादयति मां वाक्यं भवता यदुदीरितम् ४
दत्तचक्षुरिवाकाशे पश्यामि विमृशामि च ।
प्रज्ञानवचनाद्योऽयमुपदेशो हि मे कृतः ॥ ५
बाढमेवं करिष्यामि यथा मे भाषते भवान् ।
इमां हि रजनीं साधो निवसस्व मया सह
प्रभाते यास्यति भवान् पर्याश्वस्तः सुखोषितः
असौ हि भगवान्सूर्यो मन्दरश्मिरवाङ्मुखः
भीष्म उवाच ।
ततस्तेन कृतातिथ्यः सोऽतिथिः शत्रुसूदन
उवास किल तां रात्रिं सह तेन द्विजेन वै ८
चतुर्थधर्मसंयुक्तं तयोः कथयतोस्तदा ।
व्यतीता सा निशा कृत्स्ना सुखेन दिवसोपमा
ततः प्रभातसमये सोऽतिथिस्तेन पूजितः ।
ब्राह्मणेन यथाशक्त्या स्वकार्यमभिकांक्षता ॥
ततः स विप्रः कृतकर्मनिश्चयः
कृताभ्यनुज्ञः स्वजनेन धर्मकृत् ।
यथोपदिष्टं भुजगेन्द्रसंश्रयं*
जगाम काले सुकृतैकनिश्चयः ॥ ११

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५६ ॥

## ३५७-[१८४]

भीष्म उवाच ।
स वनानि विचित्राणि तीर्थानि च सरांसि च
अभिगच्छन् क्रमेण स्म कञ्चिन्मुनिमुपस्थितः
तं स तेन यथोद्दिष्टं नागं विप्रेण ब्राह्मणः ।
पर्यपृच्छद्यथान्यायं श्रुत्वैव च जगाम सः २
सोऽभिगम्य यथान्यायं नागायतनमर्थवित् ।
प्रोक्तवानहमस्मीति भोः शब्दालंकृतं वचः ३
ततस्तस्य वचनं श्रुत्वा रूपिणी धर्मवत्सला ।
दर्शयामास तं विप्रं नागपत्नी पतिव्रता ॥ ४
सा तस्मै विधिवत्पूजां चक्रे धर्मपरायणा ।
स्वागतेनागतं कृत्वा किं करोमीति चाब्रवीत्
ब्राह्मण उवाच ।
विश्रान्तोऽभ्यर्चितश्चास्मि
भवत्या श्लक्ष्णया गिरा ।
द्रष्टुमिच्छामि भवति
देवं नागमनुत्तमम् ॥ ६
एतद्धि परमं कार्यमेतन्मे परमेप्सितम् ।
अनेन चार्थेनास्म्यद्य संप्राप्तः पन्नगाश्रमम् ७
नागभार्योवाच ।
आर्यः सूर्यरथं वोढुं गतोऽसौ मासचारिकः
सप्ताष्टभिर्दिनैर्विप्र दर्शयिष्यत्यसंशयम् ॥ ८
एतद्विदितमार्यस्य विवासकरणं तव ।
भर्तुर्भवतु किञ्चान्यत् क्रियतां तद्वदस्व मे ॥ ९

---

३५६
**अतिभारेति** ॥ १ ॥ चतुर्थधर्मो मोक्षधर्मस्तेन संयुक्तम् ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५६ ॥

३५७
**स वनानीति** ॥१॥ विवासकरणं प्रवासकारणम्॥९॥

* संश्रयं गृहम् ।

ब्राह्मण उवाच ।
अनेन निश्चयेनाहं साध्वि संप्राप्तवानिह ।
प्रतीक्षन्नागमं देवि वत्स्याम्यस्मिन्महावने ॥
संप्राप्तस्यैव चाव्यग्रमावेद्योऽहमिहागतः ।
ममाभिगमनं प्राप्तो वाच्यश्च वचनं त्वया ११
अहमप्यत्र वत्स्यामि गोमत्याः पुलिने शुभे ।
कालं परिमिताहारो यथोक्तं परिपालयन् १२
ततः स विप्रस्तां नागीं समाधाय पुनः पुनः ।
तदेव पुलिनं नद्याः प्रययौ ब्राह्मणर्षभः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५७ ॥

## ३५८-[१८५]

भीष्म उवाच ।
अथ तेन नरश्रेष्ठ ब्राह्मणेन तपस्विना ।
निराहारेण वसता दुःखितास्ते भुजङ्गमाः १
सर्वे संभूय सहिता ह्यस्य नागस्य बान्धवाः
भ्रातरस्तनया भार्या ययुस्तं ब्राह्मणं प्रति ॥ २
तेऽपश्यन्पुलिने तं वै विविक्ते नियतव्रतम् ।
समासीनं निराहारं द्विजं जप्यपरायणम् ३
ते सर्वे समतिक्रम्य विप्रमभ्यर्च्य चासकृत् ।
ऊचुर्वाक्यमसंदिग्धमातिथेयस्य बान्धवाः ४
षष्ठो हि दिवसस्तेऽद्य प्राप्तस्येह तपोधन ।
न चाभिभाषसे किञ्चिदाहारं धर्मवत्सल ५
अस्मानभिगतश्चासि वयं च त्वामुपस्थिताः
कार्यं चातिथ्यमस्माभिर्वयं सर्वे कुटुम्बिनः
मूलं फलं वा पर्णं वा पयो वा द्विजसत्तम ।
आहारहेतोरन्नं वा भोक्तुमर्हसि ब्राह्मण ॥७
त्यक्ताहारेण भवता वने निवसता त्वया ।
बालवृद्धमिदं सर्वं पीड्यते धर्मसंकरात् ॥ ८
न हि नो भ्रूणहा कश्चिज्जातापद्यनृतोऽपि वा
पूर्वाशी वा कुले ह्यस्मिन् देवतातिथिबंधुषु

ब्राह्मण उवाच ।
उपदेशेन युष्माकमाहारोऽयं कृतो मया ।
द्विरूनं दशरात्रं वै नागस्यागमनं प्रति ॥ १०
यद्यष्टरात्रेऽतिक्रान्ते नागमिष्यति पन्नगः ।
तदाहारं करिष्यामि तन्निमित्तमिदं व्रतम् ११
कर्तव्यो न च संतापो गम्यतां च यथागतम्
तन्निमित्तमिदं सर्वं नैतद्भेत्तुमिहार्हथ ॥ ११
ते तेन समनुज्ञाता ब्राह्मणेन भुजंगमाः ।
स्वमेव भवनं जग्मुरकृतार्था नरर्षभ ॥ १३

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने अष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५८ ॥

## ३५९-[१८६]

भीष्म उवाच ।
अथ काले बहुतिथे पूर्णे प्राप्तो भुजंगमः । दत्ताभ्यनुज्ञः स्वं वेश्म कृतकर्मा विवस्वता ॥ १

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५७ ॥

३५८

**अथेति** ॥ १ ॥ समतिक्रम्य उपेत्य ॥ ४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५८ ॥

३५९

**अथेति** ॥ १ ॥

तं भार्याप्युपचक्राम पादशौचादिभिर्गुणैः ।
उपपन्नां च तां साध्वीं पन्नगः पर्यपृच्छत ॥ २
अथ त्वमासि कल्याणि देवतातिथिपूजने ।
पूर्वमुक्तेन विधिना युक्तियुक्तेन तत्समम् ॥ ३
न खल्वस्य कृतार्थेन स्त्रीबुद्ध्या मार्दवी कृता
मद्वियोगेन सुश्रोणि वियुक्ता धर्मसेतुना ॥ ४

नागभार्योवाच ।

शिष्याणां गुरुशुश्रूषा विप्राणां वेदधारणम्
भृत्यानां स्वामिवचनं राज्ञो लोकानुपालनम्
सर्वभूतपरित्राणं क्षत्रधर्म इहोच्यते ।
वैश्यानां यज्ञसंवृत्तिरातिथेयसमन्विता ॥ ६
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषा शूद्रकर्म तत् ।
गृहस्थधर्मो नागेन्द्र सर्वभूतहितैषिता ॥ ७
नियताहारता नित्यं व्रतचर्या यथाक्रमम् ।
धर्मो हि धर्मसम्बन्धादिन्द्रियाणां विशेषतः
अहं कस्य कुतो वाऽपि कः को मे ह भवेदिति
प्रयोजनमतिर्नित्यमेवं मोक्षाश्रमे वसेत् ॥ ९
पतिव्रतात्वं भार्यायाः परमो धर्म उच्यते ।
तवोपदेशान्नागेन्द्र तच्च तत्त्वेन वेद्मि वै ॥ १०
साहं धर्मं विजानन्ती धर्मनित्ये त्वयि स्थिते
सत्पथं कथमुत्सृज्य यास्यामि विपथं पथः ११
देवतानां महाभागधर्मचर्या न हीयते ।
अतिथीनां च सत्कारे नित्ययुक्तास्म्यतन्द्रिता
सप्ताष्टदिवसास्त्वद्य विप्रस्येहागतस्य वै ।
तच्च कार्यं न मे ख्याति दर्शनं तव कांक्षति ॥
गोमत्यास्त्वेष पुलिने त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
आसीनो वर्तयन्ब्रह्म ब्राह्मणः संशितव्रतः १४
अहं त्वनेन नागेन्द्र सत्यपूर्वं समाहिता ।
प्रस्थाप्यो मत्सकाशं स संप्राप्तो भुजगोत्तमः
एतच्छ्रुत्वा महाप्राज्ञ तत्र गन्तुं त्वमर्हसि ।
दातुमर्हसि वा तस्य दर्शनं दर्शनश्रवः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने ऊनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५९ ॥

## ३६०–[१८७]

नाग उवाच ।

अथ ब्राह्मणरूपेण कं तं समनुपश्यसि ।
मानुषं केवलं विप्रं देवं वाऽथ शुचिस्मिते १
को हि मां मानुषः शक्तो द्रष्टुकामो यशस्विनि
संदर्शनरुचिर्वाक्यमाज्ञापूर्वं वदिष्यति ॥ २
सुरासुरगणानां च देवर्षीणां च भाविनि ।
ननु नागा महावीर्याः सौरभेयास्तरस्विनः ३
वन्दनीयाश्च वरदा वयमप्यनुयायिनः ।
मनुष्याणां विशेषेण नावेक्ष्या इति मे मतिः

नागभार्योवाच ।

आर्जवेन विजानामि नासौ देवोऽनिलाशन ।
एकं तस्मिन्विजानामि भक्तिमानतिरोषण
स हि कार्यान्तराकांक्षी
जलेप्सुः स्तोकको यथा ।
वर्षं वर्षप्रियः पक्षी
दर्शनं तव कांक्षति ॥ ६
हित्वा त्वद्दर्शनं किंचिद्विघ्नं न प्रतिपालयेत्
तुल्योऽप्यभिजने जातो न कश्चित्पर्युपासते

---

अकृतार्थेन धर्मसेतुना ॥ ४ ॥ मे मां प्रति ख्याति कथयति ॥ १३ ॥ वर्तयन् आवर्तयन् ब्रह्म वेदम् ॥१४॥ दर्शनश्रवः हे सर्प ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५९ ॥

३६०

अथेति॥१॥ सौरभेयाः दिव्यगन्धवहाः॥३॥स्तोककश्चातकः ॥ ६ ॥ हित्वा विना प्रतिपालयेत् प्राप्नुयात् त्वद्दर्शनं विनाऽस्य कोऽपि विघ्नो माभूदित्यर्थः । अभिजने सद्वंशे जातस्तुल्योऽपि अन्यो नागोऽपि कश्चित् न पर्युपासते परित्यज्य न आस्ते अतिथिं त्यक्त्वा न कश्चित्स्वकुले आस्ते इत्यर्थः ॥ ७ ॥

तद्रोषं सहजं त्यक्त्वा त्वमेनं द्रष्टुमर्हसि ।
आशाच्छेदेन तस्याद्य नात्मानं दग्धुमर्हसि ८
आशया ह्यभिपन्नानामकृत्वाऽश्रुप्रमार्जनम् ।
राजा वा राजपुत्रो वा भ्रूणहत्यैव युज्यते ९
मौने ज्ञानफलावाप्तिर्दानेन च यशो महत् ।
वाग्मित्वं सत्यवाक्येन परत्र च महीयते १०
भूप्रदानेन च गतिं लभत्याश्रमसंमिताम् ।
न्याय्यस्यार्थस्य संप्राप्तिं कृत्वा फलमुपाश्नुते
अभिप्रेतामसंक्लिष्टां कृत्वा चात्महितां क्रियां
न याति निरयं कश्चिदिति धर्मविदो विदुः

नाग उवाच ।

अभिमानैर्न मानो मे
जातिदोषेण वै महान् ।
रोषः संकल्पजः साध्वि
दग्धो वागग्निना त्वया ॥ १३

न च रोषादहं साध्वि पश्येयमधिकं तमः ।
*तस्य वक्तव्यतां यान्ति विशेषेण भुजङ्गमाः
रोषस्य हि वशं गत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
तथा शक्रप्रतिस्पर्धी हतो रामेण संयुगे ॥ १५
अन्तःपुरगतं वत्सं श्रुत्वा रामेण निहृतम् ।
धर्षणारोषसंविग्नाः कार्तवीर्यसुता हताः १६
जामदग्न्येन रामेण सहस्रनयनोपमः ।
संयुगे निहतो रोषात्कार्तवीर्यो महाबलः १७
तदेष तपसां शत्रुः श्रेयसां विनिपातकः ।
निगृहीतो मया रोषः श्रुत्वैवं वचनं तव १८
आत्मानं च विशेषेण प्रशंसाम्यनपायिनी ।
यस्य मे त्वं विशालाक्षि भार्या गुणसमन्विता
एष तत्रैव गच्छामि यत्र तिष्ठत्यसौ द्विजः ।
सर्वथा चोक्तवान्वाक्यं स कृतार्थः प्रयास्यति

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६० ॥

## ३६१-[१८८]

भीष्म उवाच ।

स पन्नगपतिस्तत्र प्रययौ ब्राह्मणं प्रति ।
तमेव मनसा ध्यायन्कार्यवत्तां विचारयन् १
तमतिक्रम्य नागेन्द्रो मतिमान् स नरेश्वर ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं प्रकृत्या धर्मवत्सलः २
भो भो क्षाम्याभिभाषे त्वां न रोषं कर्तुमर्हसि
इह त्वमभिसंप्राप्तः कस्यार्थे किं प्रयोजनम् ३
आभिमुख्यादभिक्रम्य स्नेहात्पृच्छामि ते द्विज
विविक्ते गोमतीतीरे कं वा त्वं पर्युपाससे ४

ब्राह्मण उवाच ।

धर्मारण्यं हि मां विद्धि नागं द्रष्टुमिहागतम्
पद्मनाभं +द्विजश्रेष्ठ तत्र मे कार्यमाहितम् ॥ ५
तस्य चाहमसांनिध्ये श्रुतवानस्मि तं गतम् ।
स्वजनात्तं प्रतीक्षामि पर्जन्यामिव कर्षकः ६
तस्य चाक्लेशकरणं स्वस्तिकारसमाहितम् ।
आवर्तयामि तद्ब्रह्म योगयुक्तो निरामयः ॥ ७

नाग उवाच ।

अहो कल्याणवृत्तस्त्वं साधुः सज्जनवत्सलः
अवाच्यस्त्वं महाभाग परं स्नेहेन पश्यसि ८
अहं स नागो विप्रर्षे यथा मां विन्दते भवान्
आज्ञापय यथा स्वैरं किं करोमि प्रियं तव ९
भवन्तं स्वजनादस्मि संप्राप्तं श्रुतवानहम् ।
अतस्त्वां स्वयमेवाहं द्रष्टुमभ्यागतो द्विज १०
संप्राप्तश्च भवानद्य कृतार्थः प्रतियास्यति ।
विस्रब्धो मां द्विजश्रेष्ठ विषये योक्तुमर्हसि ॥
वयं हि भवता सर्वे गुणक्रीता विशेषतः ।
यस्त्वमात्महितं त्यक्त्वा मामेवेहानुरुध्यसे ॥

ब्राह्मण उवाच ।

आगतोऽहं महाभाग तव दर्शनलालसः ।
कञ्चिदर्थमनर्थज्ञः प्रष्टुकामो भुजङ्गम ॥ १३

---

सहजं सर्पत्वजातिजम् ॥ ८ ॥ भ्रूणहत्यैव भ्रूणहत्ययैव ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६० ॥

+ द्विजानामण्डजानां सर्पाणां श्रेष्ठ ।

३६१

स पन्नगपतिरिति ॥ १ ॥ क्षाम्य क्षमापनं कृत्वा ॥ ३ ॥ धर्मारण्यं मुनिं मां विद्धि पद्मनाभं नागं द्रष्टुमागतम् ॥ ५ ॥ अक्लेशकरणं क्लेशनिवारकम् ॥ ७ ॥ अनर्थज्ञः अर्थानभिज्ञः १३

* तस्य रोषस्य विशेषेणाधिक्येन ।

अहमात्मानमात्मस्थो
मार्गमाणोऽऽत्मनो गतिम् ।
वासार्थिनं महाप्रज्ञं
चलच्चित्तमुपास्मि ह ॥ १४

प्रकाशितस्त्वं सगुणैर्यशोगर्भगभस्तिभिः ।
शशाङ्ककरसंस्पर्शैर्हृद्यैरात्मप्रकाशितैः ॥ १५
तस्य मे प्रश्नमुत्पन्नं छिन्धि त्वमनिलाशन ।
पश्चात्कार्यं वदिष्यामि श्रोतुमर्हति तद्भवान् ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने एकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६१ ॥

## ३६२-[१८९]

ब्राह्मण उवाच ।
विवस्वतो गच्छति पर्ययेण
वोढुं भवांस्तं रथमेकचक्रम् ।
आश्चर्यभूतं यदि तत्र किञ्चित्
दृष्टं त्वया शंसितुमर्हसि त्वम् ॥ १
नाग उवाच ।
आश्चर्याणामनेकानां प्रतिष्ठा भगवान्रविः ।
यतो भूताः प्रवर्तन्ते सर्वे त्रैलोक्यसंमताः २
यस्य रश्मिसहस्रेषु शाखास्विव विहङ्गमाः ।
वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ३
यतो वायुर्विनिःसृत्य सूर्यरश्म्याश्रितो महान्
विजृम्भत्यम्बरे तत्र किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ४
विभज्य तं तु विप्रर्षे प्रजानां हितकाम्यया ।
तोयं सृजति वर्षासु किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ५
यस्य मण्डलमध्यस्थो महात्मा परमत्विषा ।
दीप्तः समीक्षते लोकान् किमाश्चर्यमतः परम्
शुक्रो नामासितः पादो यश्च वारिधरोऽम्बरे
तोयं सृजति वर्षासु किमाश्चर्यमतः परम् ७
योऽष्टमासांस्तु शुचिना किरणेनोक्षितं पयः
प्रत्यादत्ते पुनः काले किमाश्चर्यमतः परम् ८
यस्य तेजोविशेषेषु स्वयमात्मा प्रतिष्ठितः ।
यतो बीजं मही चेयं धार्यते सचराचरा ॥ ९
यत्र देवो महाबाहुः शाश्वतः पुरुषोत्तमः ।
अनादिनिधनो विप्र किमाश्चर्यमतः परम् १०
आश्चर्याणामिवाश्चर्यमिदमेकं तु मे शृणु ।
विमले यन्मया दृष्टमम्बरे सूर्यसंश्रयात् ॥ ११
पुरा मध्यान्हसमये लोकांस्तपति भास्करे ।
प्रत्यादित्यप्रतीकाशः सर्वतः समदृश्यत १२
स लोकांस्तेजसा सर्वान्
स्वभासा निर्विभासयन् ।
आदित्याभिमुखोऽभ्येति
गगनं पाटयन्निव ॥ १३
हुताहुतिरिव ज्योतिर्व्याप्य तेजोमरीचिभिः।
अनिर्देश्येन रूपेण द्वितीय इव भास्करः॥१४
तस्याभिगमनप्राप्तौ हस्तौ दत्तौ विवस्वता ।
तेनापि दक्षिणो हस्तो दत्तः प्रत्यर्चितार्थिना॥
ततो भित्त्वैव गगनं प्रविष्टो रश्मिमण्डलम् ।
एकीभूतं च तत्तेजः क्षणेनादित्यतां गतम् १६
तत्र नः संशयो जात-
स्तयोस्तेजःसमागमे ।
अनयोः को भवेत्सूर्यो
रथस्थो योऽयमागतः ॥ १७

---

आत्मानं ब्रह्म आत्मनो जीवस्य गतिं विश्रान्तिस्थानम्। आत्मस्थो विषयेभ्यो व्यावृत्तः एवंविधोऽपि चलच्चित्तं वासार्थिनं गृहासक्तमपि महाप्रज्ञं गृहदोषदर्शिनं उपास्मि ह तथा च न रक्तो नापि विरक्तोस्मीत्यर्थः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६१॥

३६२

**विवस्वत इति**।। १ ।। तं वातं पुरोवातादिरूपेण विभज्य पारिणामं नीत्वा ।। ५ ।। महात्माऽन्तर्यामी ।।६।। पाद इव पादोऽवयवः नीलमेघरूपेणाप्ययमेव वर्षतीत्यर्थः ।। ७ ।। यतः सूर्यात् बीजं औषधम् ।। ९ ।। प्रत्यादित्यप्रतीकाशः आदित्यान्तरतुल्यतेजस्कः समदृश्या दृष्टः ।।१२।। **स इति** । तदेवभूतं परामृश्यते ।। १३ ।।

ते वयं जातसंदेहाः *पर्यपृच्छामहे रविम् । क एष दिवमाक्रम्य गतः सूर्य इवापरः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६२ ॥

## ३६३-[१९०]

सूर्य उवाच ।
नैष देवोऽनिलसखो नासुरो न च पन्नगः ।
उञ्छवृत्तिव्रते सिद्धो मुनिरेष दिवं गतः ॥ १
एष मूलफलाहारः शीर्णपर्णाशनस्तथा ।
अब्भक्षो वायुभक्षश्च आसीद्विप्रः समाहितः २
भवश्चानेन विप्रेण संहिताभिरभिष्टुतः ।
स्वर्गद्वारे कृतोद्योगो येनासौ त्रिदिवं गतः ३
असंगतिरनाकांक्षी नित्यमुञ्छशिलाशनः ।
सर्वभूतहिते युक्त एष विप्रो भुजङ्गमाः ॥ ४
न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च पन्नगाः ।
प्रभवन्तीह भूतानां प्राप्तानामुत्तमां गतिम् ॥ ५
एतदेवंविधं दृष्ट-
माश्चर्यं तत्र मे द्विज ।
संसिद्धो मानुषः कामं
योऽसौ सिद्धगतिं गतः ।
सूर्येण सहितो ब्रह्म-
न्पृथिवीं परिवर्तते ॥ ६

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६३ ॥

## ३६४-[१९१]

ब्राह्मण उवाच ।
आश्चर्यं नात्र संदेहः सुप्रीतोऽस्मि भुजङ्गम
अन्वर्थोपगतैर्वाक्यैः पन्थानं चास्मि दर्शितः
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि साधो भुजगसत्तम
स्मरणीयोऽस्मि भवता संप्रेषणनियोजनैः २
नाग उवाच ।
अनुक्त्वा हृद्गतं कार्यं केदानीं प्रस्थितो भवान्
उच्यतां द्विज यत्कार्यं यदर्थं त्वमिहागतः ३
उक्तानुक्ते कृते कार्ये मामामन्त्र्य द्विजर्षभ ।
मया प्रत्यभ्यनुज्ञातस्ततो यास्यसि सुव्रत ॥ ४
न हि मां केवलं दृष्ट्वा त्यक्त्वा प्रणयवानिह ।
गन्तुमर्हसि विप्रर्षे वृक्षमूलगतो यथा ॥ ५
त्वयि चाहं द्विजश्रेष्ठ
भवान्मयि न संशयः ।
लोकोऽयं भवतः सर्वः
का चिन्ता मयि तेऽनघ ॥ ६

---

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६२ ॥

३६३

**नैष इति** । अनिलसखो वन्हिः ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६३ ॥

३६४

**आश्चर्यमिति** ॥ १ ॥ उक्तानुक्ते पृष्टेऽपृष्टेऽपि मयैव वात्सल्यात्कृते सति ॥ ४ ॥ अहं त्वयि भक्तिमानिति शेषः मयि मित्रे सति का चिन्ता न काऽपीत्यर्थः ॥ ६ ॥

* हे ब्राह्मण रविं पर्यपृच्छामेत्यन्वयः

ब्राह्मण उवाच ।
एवमेतन्महाप्राज्ञ विदितात्मन्भुजङ्गम ।
नातिरिक्तास्त्वया देवाः सर्वथैव यथातथम्॥
स एव त्वं स एवाहं योऽहं स तु भवानपि ।
अहं भवांश्च भूतानि सर्वे यत्र गताः सदा ॥ ८
आसीत्तु मे भोगपते संशयः पुण्यसंचये ।
सोऽहमुञ्छव्रतं साधो चरिष्याम्यर्थसाधनम्९
एष मे निश्चयः साधो कृतं कारणमुत्तमम्
आमन्त्रयामि भद्रं ते कृतार्थोऽस्मि भुजङ्गम१०

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६४ ॥

## ३६५-[१९२]

भीष्म उवाच ।
स चामन्त्र्योरगश्रेष्ठं ब्राह्मणः कृतनिश्चयः ।
दीक्षाकांक्षी तदा राजंश्च्यवनं भार्गवं श्रितः
स तेन कृतसंस्कारो धर्ममेवाधितस्थिवान् ।
तथैव च कथामेतां राजन्कथितवांस्तदा ॥ २
भार्गवेणापि राजेन्द्र जनकस्य निवेशने ।
कथैषा कथिता पुण्या नारदाय महात्मने ३
नारदेनापि राजेन्द्र देवेन्द्रस्य निवेशने ।
कथिता भरतश्रेष्ठ पृष्टेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ ४
देवराजेन च पुरा कथितैषा कथा शुभा ।
समस्तेभ्यः प्रशस्तेभ्यो विप्रेभ्यो वसुधाधिप
यदा च मम रामेण युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
वसुभिश्च तदा राजन् कथेयं कथिता मम॥ ६
पृच्छमानाय तत्त्वेन मया चैवोत्तमा तव ।
कथेयं कथिता पुण्या धर्म्या धर्मभृतां वर ७
यदयं परमो धर्मो यन्मां पृच्छसि भारत ।
आसीद्वीरो ह्यनाकांक्षी धर्मार्थकरणे नृप ८

**स एव त्वमिति**—
'यत्र देवो महाबाहुः शाश्वतः पुरुषोत्तमः
अनादिनिधनो विप्र किमाश्चर्यमतः परम्'
इति यः पूर्वमादित्यान्तर्वर्ती पुरुषोत्तम उक्तः स एव त्वं स एव चाहम् । स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एक इति हृदयादित्यपुरुषयोरभेदावगमात् कारणात्मना अभेदेऽपि कार्यात्मना आवयोर्भेदो भविष्यतीत्याशंक्याह—**योऽहं स तु भवानपि** । तुशब्दोऽवधारणे।एतेन भेदाभेदपक्षो निरस्तः। भूतानि वियदादीनि सर्वे यत्र गताः [illegible]ले तदेव ब्रह्म स्म इत्यर्थः । एतच्च उञ्छवृत्तेः सूर्ये प्रवेशमात्रश्रवणेनैव ज्ञातं निश्चितं च वेदवाक्यादिति भावः ॥ ८ ॥ भोगपते भोगोऽहिकुलं तत्पते भोगिपते इति स्व[illegible] ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मप[illegible] कण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६४ ॥

३६५

**स चेति** । दीक्षा क्षौरप्रायश्चित्तादिपूर्वमुञ्छव्रतस्वीकारस्तदर्थी ॥१॥ तदनेन प्रबन्धेन यद्यपि सर्वेष्वाश्रमेषु मोक्षोऽस्ति तथापि गार्हस्थ्यमेव स्वाध्यायव्रतयमनियमशमदमाद्युपेतमाश्रमान्तरधर्माणामाश्रय इति तत्रैव कार्त्स्न्येन सर्वे धर्माः संभवन्तीति तेनैवोपसंहारः। कृतः यथा छान्दोग्ये 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' इति संन्यासोत्कर्षप्रतिपादके वाक्ये सत्यपि आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वाणि भूतान्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते इति गृहिणैवोपसंहारः कृतः तत्रैव कृत्स्नाश्रमधर्मसमाप्तेः । यथोक्तं भगवता बादरायणेन-'कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः' इति। तथेहापि मूलभाजनकसंवादे संन्यासस्याधिक्ये सिद्धेऽपि उञ्छवृत्त्युपाख्यानेन गृहिणैवोपसंहारः प्रदर्शितः। अतिशेषेण निःशेषेण कृत्वेत्यध्याहारः। धार्मिकान् पुण्यावहान् धर्मान् सर्वेन्द्रियाणि प्रतिष्ठाप्येत्यनेन योग उक्तः । तीर्थेभ्यः यज्ञेभ्यः इति श्रुतिपदानामर्थः । यत्र कुत्राप्याश्रमे जितेन्द्रियो ध्याननिष्ठो मुच्यत इत्युक्तं भवति । तथैव च कथामेतामित्यादिना वंश उक्तः ॥ २ ॥ परकृतिस्वरूपेणार्थवादेन निष्कामं स्वकर्मैव जितेन्द्रियेण कर्तव्यं तदेव गोचरमित्याशयेनाह्नेनाह—**आसीदिति** ॥ ८ ॥

स च किल कृतनिश्चयो द्विजो भुजगपतिप्रतिदेशितात्मकृत्यः। यमनियमसहो वनान्तरं परिगणितोञ्छशिलाशनः प्रविष्टः ९

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि उञ्छवृत्त्युपाख्याने पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६५ ॥

उपसंहरति—**स चेति**। यमाः अहिंसादयः नियमाः शौचादयः वनान्तरं वनमध्यं प्रविष्टः 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' परिगणितं परिमितमुञ्छशिलार्जितमन्नमश्नन् फणिपत्युक्तामुञ्छवृत्तेर्गतिं प्रापेति शेषः ॥ ९ ॥

वेदान्ते लक्ष्मणार्यं क्रतुविधिविवृतौ तीर्थनारायणार्यं
तर्के श्रीरेशमिश्रान् फणिपतिभणितौ पोलगंगाधरार्यम् ॥
वेदे सांगे पितृव्यं शिवमथ पितरं दक्षिणामूर्त्युपास्तौ
श्रौते चिन्तामणिं यः शरणमुपगतो भूम्नि गोपालदेवम् ॥ १ ॥
व्याकरोन्मोक्षधर्मान् स नीलकण्ठः समासतः। अनेन प्रीयतां देवो गिरिजापतिरव्ययः ॥ २ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे मोक्षधर्मपर्वार्थप्रकाशे-
पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३६५ ॥

समाप्तेयं शान्तिपर्वटीका शुभमस्तु ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अस्यानन्तरमनुशासनपर्व भविष्यति—
तस्यायमाद्यः श्लोकः।
युधिष्ठिर उवाच।
शमो बहुविधाकारः सूक्ष्म उक्तः पितामह। न च मे हृदये शान्तिरस्ति श्रुत्वेदमीदृशम् ॥ १

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपव समाप्तम् ॥

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितराम-चन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितष्टिप्पण्यादिना परिष्कृतश्च ॥ भारती जयतु ॥ शाके १८५४ ॥

# श्रीः महाभारतम् ।

चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

**पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर**

इत्येतैः पाठान्तरटिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्

## १३. अनुशासनपर्व



ORIENTAL REPRINT

ओरियण्टल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन

# प्रास्ताविकम् ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

श्रीमत· करुणावरुणालयस्य यस्य भगवतो रमाजाने· कृपापाङ्गात्समाप्तिमगमच्छ्रीमन्महाभारतस्य नीलकण्ठीयभारतभावदीपाख्यटीकासमन्वितस्य प्रकाशनमिति प्रथमं तमेव परमेशं हृदि भावयाम· । तत एतत्कार्यसंपादने यै· खलु आरम्भप्रभृत्येतत्क्षणपर्यन्तं साहाय्यमाचरितं तेभ्य· कृतज्ञताभराक्रान्ता वयं परस्सहस्रान् धन्यवादान् वितराम· । अस्य महाभारतस्य संशोधनकर्मणि यानि किलादर्शपुस्तकान्यस्माभि· स्वीकृतानि तेषा निर्देशो द्वितीयभागे व्यधायि । तदपेक्षया तु द्वे पुस्तके आधिकेऽस्माभिर्लब्धे, तयोर्नामनी—**अर्जुनमिश्रविरचित**टीकासंवलित महाभारतं, कलिकातायां बेंगाल एशियाटिक सोसायटी संस्थया १८३७ तमे खिस्ताब्दे मुद्रितं मूलमात्रं महाभारतम् । तत्राद्यं पुस्तकं त्वपूर्णमितरत्तु पूर्णम् । द्वितीयभागप्रदर्शितपुस्तकवदनयोरप्यादर्शपुस्तकयोः संशोधनेऽस्माकं साहाय्यमभूत् अत एतत्पुस्तकद्वयाधिपतीना नैकविधप्राच्यहस्तलिखितपुस्तकसंग्रहपराणां **डॉ. न. गो. सरदेसाई** महोदयानामुपकृतिभरं शिरसि धारयाम· । अपि चाधुनापि कालेऽस्मिन् कलकलबहुले काले सोढ्वाऽपि महान्तं द्रविणव्ययम्, अविगणय्य च प्रत्यवायस्तोमान् यदेतत् प्राय· संप्रति दुष्प्रापस्य नीलकण्ठकृतव्याख्यासहितस्य महाभारतस्य मुद्रणं प्रकाशनं च **चित्रशाला**संस्थाव्यवस्थापकैः श्रीमद्भिर्महामहिमशालिभिर्यदद्य संपूर्णता नीतं यत्सत्यं तेन जगदुपकारिणा कार्येण सर्वेऽपि विद्वांसोऽधमर्णीकृता इति निश्चप्रचम् । अतश्चित्रशालाव्यवस्थापकेभ्यः सुकृतिभ्यः श्रीशो दीर्घमायुः स्थास्नुतमं विपुलं च यशो वितरत्विति भूयो भूय· प्रार्थये ।

अयि प्रेष्ठाश्चित्रशालासंस्थाप्रणयिनो विद्वांसः । यथा खलु **चित्रशाला**कार्यधूर्वहैरिदं संपूर्णं, नैकविधचित्रचित्रितं, सटीकं महाभारत भवद्भ्य उपहारीकृतं तथैवाचिरादेवाल्पमूल्येन नीलकण्ठीयव्याख्यासंवलितो '**हरिवंशः**' '**महाभारतभूमिका**' इत्येतद्ग्रन्थद्वयं यथाक्रमं संमुद्र्य प्रकटीक्रियेत इति निवेदयन्तो वयमति हि नाम प्रमोदामहे। तदेतद्ग्रन्थद्वयसंजिघृक्षुभिस्तत्रभवद्भिः स्वीयं नामादि यथायथं **चित्रशालाव्यवस्थापक**सविधे प्रेषणीयम्। अन्ततश्च पाठकमहोदयेभ्य· साञ्जलिबन्धं सप्रश्रयं चेदमप्यवश्यं विज्ञाप्यं यदस्मिन्ग्रन्थपरिशोधनकर्माणि दृष्टिदोषवशात्, प्रमादाद्वा, व्युत्पत्त्यपरिकराद्वा, अक्षरयोजकभ्रमाद्वा, मुद्रायन्त्रसंघर्षाद्वा यदि कानिचन स्खलितानि नयनसरणिमवतरेयुस्तदपि भ्रान्तेः पुरुषधर्मत्वमाकलय्य क्षन्तव्योऽयं जन इति निवेदयति—

विद्वज्जनविधेय·

**किंजवडेकरोपाह्वो रामचंद्रशास्त्री**
पुण्यपत्तनस्थभुवनभारतीनिवासी

आषाढ वदि पंचम्याम्
शा. शाके १८५५

# आदर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

१ ( क ) कलकत्तानगरे मुद्रितं मूलमात्रम् ।

२ ( ख ) कुम्भघोणनगरे दाक्षिणात्यकोशानुसारि मुद्रितं सटिप्पणम् ।

३ ( ग ) मोहमय्यां 'गोपाळ नारायण' इत्येतैर्मुद्रितं सटीकम् ।

४ ( घ ) पुण्यपत्तनस्थ—मीमांसाविद्यालयस्थं लिखितं सटीकम् ।

५ ( ङ ) मोहमय्यां 'गणपत कृष्णाजी' इत्येतैर्मुद्रित सटीकम् ।

६ ( च ) मोहमय्या गुजराथ प्रिंटिंग प्रेसद्वारा मुद्रितं सटीकमपूर्णम् ।

७ ( छ ) अर्जुनमिश्रटीकासवलितं लिखितमपूर्णम् ।

८ ( ज ) बेंगालएशियाटिकसंस्थया मुद्रितं मूलमात्रम् ।

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## अनुशासनपर्व ।

### -१३-

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १ | ८३ | 'शमो बहुविधाकारः (१) इत्यादिना हतान्भीष्मादीनुद्दिश्य विलपता युधिष्ठिरेण 'नूनं हि पापकर्माणः' (१३) इत्यादिना किल्बिषाद्यथा मुच्येम तथाऽनुशाधि इत्यनुयुक्तो भीष्मो मृत्युगौतमीकाललुब्धकपन्नगसंवादरूपमितिहासं व्याजहार । कस्याश्चिद्गौतम्याः पुत्रं घातितवन्तं सर्पं। पाशेन बद्ध्वा तेन सह गौतमीसमीपमागत्य लुब्धकः 'अय ते पुत्रहा पन्नगाधमः' (१९)इत्याद्युवाच। गौतमीलुब्धकयोः संवदतोर्गौतमी स्वस्य सर्पहननाभावाभिप्रायं प्रकटीचकार। सर्पलुब्धकयोः संवदतोर्गौतमीलुब्धकपन्नगसमीपमागतो मृत्युः पन्नगं प्रति 'प्रचोदितोऽहं कालेन' (५०) इत्याद्युवाच । सर्पश्च 'निर्दोषं दोषवन्तं वा' (५८) इत्यादिना मृत्युं प्रत्युक्त्वा लुब्धकं प्रति 'श्रुतं ते मृत्युभाषितम्' (६१) इत्याद्युक्तवतो लुब्धकस्य मृत्युना सह संवादे प्रवृत्ते समागतः कालो लुब्धकादीन् प्रति 'न ह्ययं नाप्ययं मृत्युः'(७०) इत्याद्याचष्ट। कालवाक्यं श्रुत्वा लुब्धकं प्रति 'नैव कालो न भुजगो न मृत्युरिह कारणम्। स्वकर्मभिरयं बालः कालेन निधनं गतः' (७८) इत्याद्युक्तवत्या गौतम्या वाक्यं श्रुत्वा मृत्युप्रभृतयः सर्वेऽपि स्वस्वस्थानानि जग्मुः। .. ... .. ... | ६ |
| २ | ९६ | 'केन मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः।इत्येतत्सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेनापि च पार्थिव' (३) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्म इक्ष्वाकुवंशविस्तारमभिधाय तद्वंश्याद्दुर्योधनात्सुदर्शनानाम्न्याः कन्याया जन्मादिवृत्तान्तमवदत् । सुदर्शनारूपेण मोहितोऽग्निर्ब्राह्मणरूपेण तां याचमानो दुर्योधनेन प्रत्याख्यातो विततेऽस्य यज्ञे विनाशमवाप। नष्टेऽग्नौ राजप्रार्थनयाग्निं शरणं गतैर्ब्राह्मणैस्तस्याभिप्रायमवबुद्ध्य ज्ञापितो राजा हृष्टः सन्नग्नेर्नित्यसान्निध्यरूपं शुल्कमवाप्य विधिपूर्वकं तस्मै कन्यां ददौ। अग्नेः सकाशात्सुदर्शनायामुत्पन्नः सुदर्शन ओघवतो नृपस्यौघवतीं कन्यां परिणीय गृहस्थधर्मानाचरन् कदाचित् 'गृहस्थश्चावजेष्यामि मृत्युमित्येव' | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

(४१) इति प्रतिज्ञायौघवती प्रति 'अतिथेः प्रतिकूलं ते न कर्तव्यम्' (४२)इत्याद्यादिश्य समिदाहरणार्थं जगाम। सुदर्शनप्रतिज्ञाश्रवणेन तद्रन्ध्रान्वेषिणि मृत्यौ तस्मिन्समिदाहरणार्थं धर्मो ब्राह्मणरूपेण तद्गृहमागत्य 'प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम्' (५४) इत्युवाच, सा च भर्तृवाक्यं स्मृत्वा तथाऽकरोत्। समिधो गृहीत्वा गृहमागत्यौघवतीमाह्वयति सुदर्शने लज्जया प्रत्युत्तरमददत्यां तस्यामतिथिना निःशङ्कं लज्जाकारणे निवेदितेऽपि ईर्ष्यारहितं यथा स्यात्तथा तदभिनन्दति सति तं प्रति धर्मः 'धर्मोऽहमस्मि भद्रं ते' (७९) इत्यादिना स्वप्रत्यभिज्ञाकथनपूर्वकं 'विजितश्च त्वया मृत्युः' इत्याद्युवाच। भीष्म 'एतत्ते कथितं पुत्र' (९४) इत्यादिना गृहस्थस्यातिथिसत्कारं विना नान्यत्किमप्याचरणीयमित्याद्युवाच... . .. ९

३ १९ त्रिभिर्वर्णैर्यदि दुष्प्रापं ब्राह्मण्य तर्हि विश्वामित्रेण कथं तत्प्राप्तम्? इत्यादीन् प्रश्नांश्चकार युधिष्ठिरः ... . . . .. १०

४ ६२ 'श्रूयतां पार्थ तत्त्वेन' (१) इत्यारभ्य क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः' (४८) इत्यन्तेन ग्रन्थेन विश्वामित्रोपाख्यानमाख्याय 'तस्य पुत्रा महात्मानः' (४९) इत्यादिना गोत्रप्रवर्तकान् मधुच्छन्दःप्रभृतींस्तत्पुत्रान्नामतोऽकथयद्भीष्मः... .. ... १२

५ ३२ 'आनृशंस्यस्य भक्तजनस्य गुणान् श्रोतुमिच्छामि' इति युधिष्ठिरेणापृष्टो भीष्मो वासवशुकसंवादेतिहासकथनेनोत्तरमाह स्म, काशिराजविषयस्थेन लुब्धकेन सविषबाणेन विद्धे महति वृक्षे शोषमाप्नुवत्यपि तत्कोटरस्थः शुको यदा भक्त्या तं नाजहात्तदा तेन सह शुष्यन्त तं दृष्ट्वा चिंतयन्निन्द्रो ब्राह्मणवेषेणागत्य 'कस्मादेनं न त्यजसि' (१३) इति पप्रच्छ। उत्तरं ददतः शुकस्य 'अनतिक्रमणीयानि' (२१) इत्यादिक वाक्यं श्रुत्वा तुष्टेनेन्द्रेणोज्जीवितो वृक्षः श्रीमत्तामवाप। शुकोऽप्यायुषोऽन्ते स्वर्गमवाप . ... १४

६ ४९ 'दैवे पुरुषकारे च किंस्विच्छ्रेष्ठतरं भवेत्' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः पुरुषकारस्य श्रेष्ठत्वं प्रतिपादयितुं वसिष्ठब्रह्मणोः संवादरूपमितिहासं व्याजहार। दैवपुरुषकारयोः श्रेष्ठत्वविषये वसिष्ठेन पृष्टो ब्रह्मा 'नाबीजं जायते किञ्चित्' (५) इत्यादिना कर्मणः श्रेष्ठत्वमभिधाय पुण्यपापकर्मणोर्गतिं ययातिप्रभृतिनिदर्शनं दर्शयित्वा कर्मव्यतिरेकेण धनाद्युपभोगाभावमभिदधाति स्म १६

७ २९ 'कर्मणां च समस्तानां शुभानां भरतर्षभ। फलानि महतां श्रेष्ठ प्रब्रूहि परिपृच्छतः' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्तान्युपदिश्य 'या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्' (२१) इत्यादिनाऽऽशात्यागमुपदिदेश . .. १८

८ २९ 'के पूज्याः के नमस्कार्याः' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने 'स्पृहयामि द्विजातिभ्यः' (३) इत्यादिना ब्राह्मणानां पूज्यत्वादिकमभ्यभाषत भीष्मः .. ... ... . १९

९ २८ 'ब्राह्मणेभ्यः प्रतिश्रुत्य ये न ददाति तेषां का गतिः' (१) इति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति प्रतिश्रुत्यादा-

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

दुर्गतिमभिधातुं शृगालवानरसंवादरूपमितिहासमुदैरयद्भीष्मः। पूर्वजन्मनि सखिभावापन्नयोः केनचित्कर्मणा शृगालवानरयोनी प्राप्नुवतोः कदाचित् श्मशाने मृतमासं भक्षयञ्शृगालो वानरेण 'किं त्वया पापकं पूर्वं कृतं कर्म सुदारुणम्' (११) इति पृष्टः सन् 'ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य न मया तदुपाहृतम्' (१२) इत्याद्युवाच। एवमेव शृगालेन पृष्टो वानरः 'सदा चाहं फलाहारो ब्राह्मणाना प्लवङ्गमः' (१५) इत्याद्याख्याय ब्राह्मणस्वं कदापि न हर्तव्यमित्याह स्म। इत्यभिधाय भीष्मो युधिष्ठिरं प्रति 'न हर्तव्यं विप्रधनं क्षन्तव्य तेषु नित्यशः'(१८) इत्याद्युपदिदेश ... २१

१० ७५ 'हीनजातेरुपदेशं कुर्वतो दोषो भवति वा न वा' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने राजपुरोहितसंवादरूपमितिहासं व्याहरन्नुत्तरमाह स्म भीष्मः। हिमालयस्य पार्श्वे पूर्वमेकदा ब्रह्माश्रमे तपस्यन्तं कुलपतिं प्रति कश्चिच्छूद्रः आगत्य 'त्वं मां प्रति धर्मान्वक्तुं प्रव्राजयितुं चार्हसि' (१५)इत्युवाच ततः कुलपतिना 'न शक्यमिह शूद्रेण लिंगमाश्रित्य वर्तितुम्' (१६) इत्यादिना प्रत्याख्यातः शूद्रः स्थानान्तरे आश्रमं निर्माय तत्र तपश्चचार। ततः कदाचिदृषिरेकस्तदाश्रम आजगाम। ततः स ऋषिः 'अहं श्राद्धं करोम्यनुगृहाण' (२७) इति शूद्रेण प्रार्थितः सन् पित्र्ये कर्माणि तमादिदेश। कालान्तरेण तपःप्रभावात्स शूद्रो राजाऽभूत् ब्राह्मणश्च तत्पुरोहितोऽभवत्। राजपुरोहितभावेन वर्तमानयोस्तयोः पुण्याहकर्मणि पुरोहितं दृष्ट्वा सर्वदा राजा हसन्पुरोहितेनैकान्ते पृष्टः पूर्वजन्मवृत्तान्तमाख्याय 'पुरोहितत्वमुत्सृज्य यतस्व त्व पुनर्भवे' (६१) इत्याद्युपदिदेश। एवमुपशिशिक्षितो बहु धनं दत्वा राज्ञा विसर्जितः पुरोहितस्तीर्थादिषु ब्राह्मणेभ्यो गवादीनि दत्वा तपः कुर्वन्सिद्धिमवाप। इममितिहासमाख्याय भीष्मोऽधमं प्रत्युपदेशो न कर्तव्यः इत्याद्युपदिदेश २३

११ २१ 'कीदृशे पुरुषे कीदृश्यां स्त्रियां वा लक्ष्मीर्वसति' (१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः श्रीरुक्मिणीसंवादरूपमितिहासं कथयति स्म। श्रीकृष्णाङ्कगता श्रीः रुक्मिण्या 'कानीह भूतान्युपसेवसे त्वम्' (४) इत्यादि पृष्टा सती 'वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे' (६) इत्यादिना स्वनिवासयोग्यानि स्थानान्याचख्यौ २५

१२ ५४ 'स्त्रीपुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको भवेत्' (१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो भंगास्वनशक्रसंवादरूपमितिहासं व्याहरन्नुत्तरमाह स्म--शक्रमायया स्त्रीत्वं प्राप्तो भङ्गास्वनश्चिन्तयन्पौरान्प्रति स्त्रीत्वप्राप्तिवृत्तान्तमाख्याय पुत्रेषु राज्यं न्यस्य वनं जगाम। राज्यं कुर्वत्सु भङ्गास्वनपुत्रेषु वैरमुत्पाद्य तान्नाशयामासेन्द्रस्तच्छ्रुत्वा शोचन्ती तापसी ब्राह्मणरूपिणा तेन पृष्टा स्वस्य पूर्ववृत्तान्तं कथयति स्म। पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा प्रणामपूर्वकं क्षमां याचित इन्द्रः प्रसन्नः सन् 'स्त्रीभावे जातान्पुत्रांञ्जीवयाम्युत पुरुषभावे जातान्' (४३)इति पृष्टा स्त्रीभावे जातान्पुत्रान्सञ्जीवयेत्युवाच तापसी। 'स्त्रीभावे जातेषु पुत्रेषु कथमभ्यधिकः स्नेहः' (४६) इती

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | न्द्रेण पृष्टा तापसी 'स्त्रियास्त्वभ्यधिकः स्नेहो न तथा पुरुषस्य' (४७) इत्युवाच । तापसीवाक्येन तुष्टो देवेन्द्रः सर्वान्पुत्रान्सञ्जीव्य 'पुनः स्त्रीत्वं पुरुषत्वं वा वृणु'(४९) इति तेन उक्ता सा स्त्रीत्वमेव वव्रे । तत इन्द्रेण 'पुरुषत्वं कथं त्यक्त्वा स्त्रीत्वं चोदयसे' (५१) इति पृष्टा सा 'स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्यधिका सदा' (५२) इत्युवाच . | . .२७ |
| १३ | ६ | 'किं कर्तव्यं मनुष्येण लोकयात्राहितार्थिना ' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'कायवाङ्मनोभिरशुभं कदापि न विधेयम्' (२-६) इत्याद्युपदिदेश ... ... . | २७ |
| १४ | ४२९ | 'त्वयाऽऽपगेय नामानि' (१)इत्यादिना महादेवस्य नामानि कथयेत्यनुयुक्तो भीष्मः स्वस्य महादेवगुणकथनासामर्थ्यमुद्भाव्य तत्कथनार्थं श्रीकृष्णं प्रेरयति स्म। भीष्मेण प्रेरितः श्रीकृष्णः श्रीमहादेवस्य माहात्म्यं कथयन् जाम्बवत्या पुत्रार्थं प्रार्थितस्य स्वस्योपमन्य्वाश्रमे गमनं कथयति स्म । तत्र गतं मां प्रत्युपमन्युर्महादेवमाराधय तत्प्रसादात्ते पुत्रो भविष्यति इत्युक्त्वा तस्य माहात्म्यं कथयन् महादेवाराधनाद्धिरण्यकशिपुप्रभृतीनां वरलाभादिकमाख्याय 'पुरा कृतयुगे तात ऋषिरासीन्महायशाः' (१११) इत्यारभ्य 'ईशानः स वरान् दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत' (३६३) इत्यन्तेन ग्रन्थेन जनन्युपदेशात्स्वस्य महादेवाराधनं, तत्स्तवनं, तुष्टात्तस्माद्वरलाभादिकं चोदीर्य त्वमपि षष्ठे मासि षोडश वरान् सपत्नीकात्तस्मात्प्राप्स्यसि; जप्यमुपदेक्ष्यामीत्युक्त्वा मां दीक्षयामास, उपमन्युना दत्तदीक्षस्य मम तपसा तुष्टः प्रत्यक्षमागतो महादेवो 'नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने' (४०७)इत्यादिना स्तुतः सन् 'वृणीष्वाष्टौ वरान्कृष्ण' (४२९) इत्याद्यभ्यधान्माम् . | ४५ |
| १५ | ११ | 'धर्मे दृढत्वम्' (२) इत्यादिषु मत्प्रार्थितेष्वष्टसु वरेषु शिवेन दत्तेषु तदनन्तरमुमापि मत्प्रार्थितान् 'द्विजेष्वकोपम्' (६) इत्यादीनष्ट वरानदात् । तत उभयोरन्तर्हितयोः सतोरुपमन्युर्मत्कथित वरवृत्तं श्रुत्वा 'नास्ति शर्वसमो देवः' (११) इत्याद्युवाच... | ४६ |
| १६ | ७६ | पूर्वं जप्यमुपदेक्ष्यामीत्यनेन प्रतिज्ञातं शिवसहस्रनामस्तोत्रमाख्यातुमुपोद्घाततया तण्डिनस्तपःकरणं 'पवित्राणां पवित्रस्त्वम्' (१०) इत्यारभ्य 'यत्पुरा लोककृज्जगौ' (६६) इत्यन्तेन तत्कृतं स्तवमभिधाय विशेषेण शिवदत्तवरादिकं चाचष्टोपमन्युः. . . . . . | ५० |
| १७ | १८२ | उपमन्युः सहस्रनाम्नां वेदसारत्वं ब्रह्मलोकात्प्रथमं तण्डिना प्राप्तत्वाच्चंडिकृतत्वादिकं चोदीर्य 'स्थिरः स्थाणुः' (३१) इत्यारभ्य 'श्रीवर्धनो जगत्' (१५३) इत्यन्तेन तान्युपदिश्यैतत्प्रशंसापूर्वकं प्राप्तिपरंपरां चाख्यायैतत्पाठफलमन्वाचष्ट . .. . . | . .७८ |
| १८ | ८३ | 'महायोगी ततः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः । पठस्व पुत्र भद्रं ते प्रीयतां ते महेश्वरः' (१) इत्यादिनाऽध्यायेन व्यासादीनां शिवमाहात्म्यकथनं कृष्णस्य च तत्कथनपूर्वकं सहस्रनामपाठफलकथनं चाख्यातवान्वैशम्पायनः... | ८१- |
| १९ | १०३ | 'यदिदं सहधर्मेति प्रोच्यते भरतर्षभ। पाणिग्रहणकाले तु स्त्रीणा- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मेतत्कथं स्मृतम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो दिशाष्टावक्रसंवादरूपमितिहासमभिदधदुत्तरमाह स्म--वदान्यनामकः कश्चिदृषिः स्वकन्यां याचितुमागतायाष्टावक्राय 'उत्तरां दिशं गत्वा तत्र स्थितां वृद्धां स्त्रियं दृष्ट्वा ततो विनिवृत्तो मत्कन्यायाः पाणिं ग्रहीष्यसि' (२४) इत्यभ्यभाषत । वदान्यवाक्यान्निर्गतोऽष्टावक्र उत्तरस्यां हिमालयमारभ्य कैरातस्थानपर्यन्तं गत्वा ततोऽधस्ताद्रमणीये वनोद्देशे काञ्चनगृहमपश्यत् । कुत्र मम वासो भवेदिति चिन्तनपूर्वकं काञ्चनगृहद्वारागतस्याष्टावक्रस्य 'अतिथिं समनुप्राप्तम्' (६७) इत्यादिकं वाक्यं श्रुत्वा पूर्वोक्ताद्गृहान्निर्गताः सप्त कन्या 'गृहं प्रविश' इत्यूचुस्तं प्रति । ततोन्तर्गृहगतोऽष्टावक्रः स्ववाक्यान्निर्गतासु कन्यासु निद्रां कुर्वंस्तत्र स्थितामेकाकिनीं वृद्धां प्रति 'रजन्यतिवर्तते त्वमपि स्वपिहि' (७६) इत्युवाच, तच्छ्रुत्वा सापि द्वितीये शयने सुष्वाप । रात्रौ शीतजामार्तिं व्यपदिश्याष्टावक्रशयनमारुह्य तमालिङ्ग्य मां भजस्वेत्याद्युक्तवतीं 'परदारानहं भद्रे' (८८) इत्यादिना प्रत्याख्याय 'वत्स्येऽहं यावदुत्साहः' (९७) इत्यादिना तत्र निवासमंगीकृत्य 'देवतेयं गृहस्यास्य' (१००) इत्यादि चिन्तयंस्तां रात्रिमतिवाहयति स्म | ८५ |
| २० | २६ | ततः प्रभाते स्त्रिया आनीतेनोदकादिना स्नानादि विधाय रात्रौ शयने सुप्तेऽष्टावक्रे पुनस्तच्छयनमागताया वृद्धायास्तस्य चोक्तिप्रत्युक्तयः ... ... ... | ८७ |
| २१ | १९ | 'न बिभेति कथं सा स्त्री शापाच्च परमद्युतेः' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरमाह भीष्मः । 'रूपं विकुरुषे कथम्' (२) इत्यष्टावक्रेण पृष्टा वृद्धा 'जिज्ञासेयं प्रवृत्ता मे' (४) इत्यादिना त्वद्बुद्धिस्थिरीकरणार्थमागतां मामुत्तरां दिशं विद्धि स्त्रीणां चापलं त्वया दृष्टं, कन्यापित्रा प्रेषिताहं त्वामुपदिष्टवती, गच्छ इत्यप्युवाच । तच्छ्रुत्वा परावृत्तोऽष्टावक्रो वदान्यकन्यां परिणीय स्वाश्रमे सुखं वसति स्म .. | ८८ |
| २२ | ४१ | 'किमाहुर्भरतश्रेष्ठ पात्रं विप्राः सनातनाः । ब्राह्मणं लिङ्गिनं चैव ब्राह्मणं वाऽप्यलिंगिनम्' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिङ्गिने चेतराय च' (२) इत्यादिना ब्राह्मणानां पात्रत्वं तद्विषये पृथ्वीकाश्यपाग्निमार्कण्डेयानां मतं व्याजहार । 'यदि ते ब्राह्मणा लोके' (१६) इत्यादिनाऽध्यायशेषेण युधिष्ठिरभीष्मयोः प्रश्नोत्तराणि. . . . | ९० |
| २३ | १०३ | 'श्राद्धकाले च दैवे च पित्र्येऽपि च पितामह । इच्छामीह त्वयाऽऽख्यातं विहितं यत्सुरर्षिभिः' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो दैवादिकर्मणां कालम्, श्राद्धे योग्यायोग्यब्राह्मणान्, श्राद्धे अदेयं द्रव्यम्, श्राद्धाद्यवसाने ब्राह्मणदेयप्रतिवचने विशेषं, दातृप्रतिग्रहीत्रोर्धर्माधर्मौ च निरूपयति स्म । 'दैवं पित्र्यं वा केषु दत्तं महाफलम्' (४८) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो दानयोग्यं पात्रं, निरयस्वर्गयोः साधनभूतानि कर्माणि चाचष्ट | ९५ |
| २४ | १२ | 'हिंसां विनाऽपि केन कर्मणा ब्रह्महत्या भवति' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने ब्राह्मणघातिनो जनान्व्यरूपयन्भीष्म . ... ... ... ... | ९५ |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| २५ | ७१ | 'पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि वक्तुमर्हसि' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो गौतमाङ्गिरःसंवादमुखेन तान्यभ्यधात | ९८ |
| २६ | १०६ | शरशय्याधिष्ठितं भीष्मं द्रष्टुमागतानत्रिवसिष्ठप्रभृतीनभिवाद्य युधिष्ठिरः 'के देशाः के जनपदाः' (२५) इत्यादि पप्रच्छ भीष्मं प्रति। भीष्मः शिलोञ्छवृत्तिसिद्धयोः संवादमुखेन सर्वप्रश्नोत्तराण्यभिधाय तद्दृष्टान्तेन युधिष्ठिरमुपदिदेश... .. .. . . . | १०२ |
| २७ | ३० | युधिष्ठिरो भीष्मं प्रशस्य 'ब्राह्मण्यं प्राप्नुयाद्येन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि' (३) इति पप्रच्छ। भीष्मो ब्राह्मणस्य दुष्प्राप्यत्वमाख्याय बहुषु योनीषु भ्रमतः कस्मिंश्चिज्जन्मनि तत्प्राप्यते इत्येतद्विषये मतंगगर्दभीसंवादरूपमितिहासं व्याजहार। गर्दभयुक्ते रथे स्थित्वा गच्छन् मतङ्गो गर्दभं नासिकायां प्रतोदेनातुदत्तदा दुःखव्याकुला गर्दभी 'मा शुचः पुत्र चाण्डालस्त्वधितिष्ठति' (११) इत्याद्युवाच गर्दभं प्रति। मतङ्गः प्रश्नमुखेन स्वजन्मवृत्तान्तं तस्याः श्रुत्वा स्वगृहमागत्य स्वपित्रे तन्निवेद्य तपश्चचार। तपसा तुष्ट इन्द्रो ब्राह्मण्यं वृण्वानं तं प्रत्याचख्यौ . . . ... .. . ... | १०४ |
| २८ | १६ | पुनर्ब्राह्मण्यप्रेप्सया कठोरं तपः कुर्वन्तं मतङ्गं प्रति पुनरिन्द्र आगत्य ब्राह्मण्यं प्राप्ते दौर्लभ्यं प्रत्यपादयत् ... . . | १०५ |
| २९ | २६ | पुनस्तपः कुर्वन् मतंगः 'चण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं वै कथञ्चन' (४)इतीन्द्रेणोक्तस्तं 'किं मां तुदसि दुःखार्तम्' (१३) इत्याद्युवाच। वरार्थं प्रार्थितेनेन्द्रेण वृणीष्वेत्युक्तो मतंगः 'यथा कामविहारी स्याम्'(२२)इत्यादिकं वरं ययाचे। 'छन्दोदेव इति ख्यातः' (२४)इत्यादिना छंदोदेवनाम्ना प्रासिद्ध स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसीति वरं दत्वेन्द्रोऽन्तर्दधे... ... | १०६ |
| ३० | ६७ | 'वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः । तदेव तावद्गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो' (२) इत्यादियुधिष्ठिरप्रश्ने तत्कथयति स्म भीष्मः। मनुवंशे शर्यातिमारभ्य प्रचलिते तत्र सुदेवस्य तनयो दिवोदासो राज्येऽभिषिक्तो वैतहव्यैः पराजितः पलायमानो भरद्वाजाश्रमं जगाम। तत्र गत्वा दिवोदासेन 'भगवन्वैतहव्यैर्मे युद्धे वंशः प्रणाशितः। अहमेकः परिद्यूनो भवन्तं शरणं गतः'(२६)इत्युक्तो भरद्वाजः पुत्रेष्टिं चकार। तत्प्रसादाद्दिवोदासादुत्पन्नः प्रतर्दननामा पुत्रो जातमात्रस्त्रयोदशवर्षवयस्को वैतहव्यैः सह युद्धार्थं जगाम। वैतहव्यैः सह युद्धे प्रवृत्ते प्रतर्दनेन पराजितो वीतहव्यो भृगोराश्रमं जगाम। तमनुगच्छता प्रतर्दनेन 'विसृज वीतहव्यम्'(५०) इत्युक्तो भृगुः 'नात्र कश्चित्क्षत्रियः' (५३)इत्युवाच। भृगुवाक्यं श्रुत्वा 'मया स्वजातिं त्याजितो वीतहव्यः' (५६)इति सहर्षं वदन् प्रतर्दनो भृगुणानुमोदितो यथागतमगच्छत् । भृगुवचनात्प्राप्तब्राह्मण्याद्वीतहव्याद्गृत्समदमारभ्य शौनकपर्यन्तां ब्राह्मणसृष्टिमभिधायैवमित्यादिनोपसंजहार भीष्मः . .. . . . . .. . | १०८ |
| ३१ | ३६ | 'के पूज्या वै त्रिलोकेऽस्मिन्' (१) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो नारदवासुदेवसंवादानुवादमुखेनोत्तरमभ्याचष्ट । ब्राह्मणान् | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | संपूज्य बद्धाञ्जलिर्नारदः श्रीकृष्णेन 'भगवन्कान्नमस्यसि' (३) इति पृष्टो नमस्करणयोग्यान् निर्दिश्य तेषां पूजनार्थमुपदिदेश | १०९ |
| ३२ | ३९ | 'शरणागतं ये रक्षंति'(२)इत्यनेन शरणागतरक्षकस्य किं फलमिति पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मः श्येनकपोतीयाख्यानं विवृण्वन्नुत्तरमुदैरयत् । श्येनभयात्स्वसमीपे शरणागतं कपोतं मोचयितुं वृषदर्भे राजनि श्येनं प्रार्थयति स तं प्रति 'एतत्तुल्यं तुलया धृतं स्वमांसं देहि'(२२) इत्युवाच। तथा कर्तुं प्रवृत्तो राजा यदा स्वमांसं तत्पर्याप्तं नाभवत्तदा स्वं देहं तुलायामधृत। तेन तुष्टैरिन्द्रादिभिरमृतवर्षणेनोज्जीवितो राजा विमानमारुह्य स्वर्गं जगाम । एतद्दृष्टान्तेनान्यस्यापि शरणागतरक्षकस्यैवं फलं भविष्यतीत्युक्त्वैतदाख्यानश्रवणपठनफलमपि—व्यादिशद्भीष्मः . | १११ |
| ३३ | २७ | 'किं राज्ञः सर्वकृत्यानां गरीयः' (१) इति पृच्छतं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मो ब्राह्मणपूजायाः कृत्यतमं वक्तुं ब्राह्मणानां पूज्यत्व विवृण्वन् प्रशंसामाहस्म... . . | ११२ |
| ३४ | ३१ | पुनर्ब्राह्मणानां माहात्म्यं कथयन् भीष्मो 'मातरं सर्वभूतानाम्'(२१) इत्यादिनाऽध्यायशेषेण वासुदेवपृथ्वीसंवादरूपमितिहासमाख्यायैतन्निदर्शनेन 'त्वमपि ब्राह्मणान् पूजयेथाः' (३१) इत्युपदिदेश | ११३ |
| ३५ | २३ | 'जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते । नमस्यः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक्' (१)इत्यादिनाऽध्यायेन ब्राह्मणानेव प्रशशंस भीष्मः .. . . | ११४ |
| ३६ | १९ | पुनर्ब्राह्मणप्रशंसामेव कुर्वन्नसुराणामपि श्रीर्ब्राह्मणप्रसादलभ्येत्यभिप्रायेण शक्रशंबरसंवादरूपमितिहासं व्याजहार भीष्मः | ११५ |
| ३७ | २८ | 'अपूर्वश्च भवेत्पात्रम्' (१) इत्यादिना पात्रविशेषं पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मः 'क्रिया भवति केषांचित्' इत्यादिना अपूर्वादीनां सर्वेषां पात्रत्वमाख्यातवान् ।'अपीडया च भूतानां इत्यादिना' दीयमानद्रव्याभिमानिनी देवता न दुःखं कुर्यान्मादृशं पात्रं किमिति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः 'ऋत्विक्पुरोहिताचार्याः'(६)इत्यनेन मुख्यं तथाविधं पात्रमभिधाय 'अतोऽन्यथावर्तमानाः' (७)इत्यादिनाऽपात्रताबीजं च विवृत्य 'एवं नरो वर्तमानः' इत्यादिनोपसंजहार . | ११६ |
| ३८ | ३० | 'स्त्रीणां स्वभावं श्रोतुमिच्छामि' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरं वदन् भीष्मो नारदपंचचूडासंवादमुदीरयति स्म। स्त्रीस्वभावं परिज्ञातुं नारदेन पृष्टा पञ्चचूडा स्त्रीणां स्वभावमकथयत् ... | ११८ |
| ३९ | १४ | 'इमे वै मानवा लोके'(१) इत्यादिना स्त्रीनिंदापूर्वकं 'कस्ताः शक्तो रक्षितुं स्यात्' (१३) इति युधिष्ठिरः पप्रच्छ . | ११८ |
| ४० | ६० | पूर्वाध्यायगतप्रश्नोत्तरं वदन् भीष्मः स्त्रीणां स्वभावादिकं विवृत्य 'प्रमदाश्च यथा सृष्टाः' (३) इत्यादिना तासां सर्जनादिविधानं सकारणमभिधाय तद्रक्षणस्याशक्यत्वं निरूप्य 'यथा रक्षा कृता पूर्वम्'(१६)इत्यादिना विपुलकृतगुरुस्त्रीरक्षणाख्यान—माचख्यौ। देवशर्मा कश्चिदृषिर्यज्ञार्थमन्यत्र गच्छन् स्वभार्यां रुचिनाम्नीमिन्द्राद्रक्षितुं स्वशिष्यं विपुलमादिश्येन्द्रस्य वञ्चकत्वस्फुटीकरणार्थं तस्यानेकवि- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | धानि रूपाणि व्याचख्यौ। गुरुवाक्यं श्रुत्वा रुचिरक्षणोपायं चिन्तयन् विपुलो योगधारणया तस्याः शरीरमलक्षितः प्रविश्य सर्वाण्यङ्गान्यरुणत् . ... ... | १२० |
| ४१ | ३९ | देवशर्मण आश्रममागत इन्द्रो विपुलयोगबलेन रुद्धाया रुच्या उत्थानाद्यसामर्थ्यं दृष्ट्वा दिव्यचक्षुषा तच्छरीरे विपुलमालोच्य शापभीतः 'अजितेन्द्रिय दुर्बुद्धे' (२०) इत्यादिकं विपुलवाक्यं श्रुत्वाऽन्तर्दधे। इन्द्रे गते मुहूर्तानन्तरं यज्ञं निर्वर्त्याश्रममागताय देवशर्मणे शरीरप्रवेशवर्ज्यं सर्वमिन्द्रवृत्तं निवेद्य भार्यामनिन्दितां न्यवेदयद्विपुलः। तेन तुष्टेन गुरुणा वरदानपूर्वकमनुज्ञातोऽनुत्तमं तपश्चचार .. . | १२१ |
| ४२ | ३३ | अथ कदाचिद्रुचिभगिन्या चित्ररथपत्न्या प्रभावत्या विवाहोत्सवार्थमाहूता रुचिर्गच्छन्ती मध्येमार्गं कस्याश्चिद्विहायसा गच्छन्त्या अप्सरसः शरीरात्पतितानि दिव्यपुष्पाणि धृत्वा तद्गृहमगमत्। तया धृतानि पुष्पाणि दृष्टवत्या भगिन्या प्रेरिता सा भर्तारं व्यजिज्ञपत्। तद्वाक्याद्देवशर्मा पुष्पाण्यानेतुं स्वशिष्यं विपुलमादिदेश। गुरुणा प्रेरितो विपुलः पुष्पपतनदेशं गत्वा स्वतपःप्रभावात्पुष्पाण्यादाय परावृत्तः पथि विवदमानस्य मिथुनस्य 'यद्यावयोर्मध्ये योऽनृतं ब्रूयात्स विपुलप्राप्यां गतिं गच्छेत्' (२१) इति शपथं श्रुत्वाग्रे गच्छन्नक्षैर्दीव्यमानानां षण्णां पुरुषाणां तथैव शपथं श्रुत्वाऽनुतप्तश्चंपानगरीमेत्य गुरवे पुष्पाणि ददाति स्म .. | १२३ |
| ४३ | २७ | मार्गे त्वया किं दृष्टमिति गुरुणा पृष्टो विपुलो 'ब्रह्मर्षे मिथुनं किं तत्के च ते पुरुषा विभो' (३) इत्याद्युवाच। शिष्योक्तिं श्रुत्वा देवशर्मा 'यद्वैतन्मिथुनं ते राज्यहनी, ये च ते पुरुषास्ते षड् ऋतवः, एते पुरुषस्य रहस्यकृतं जानन्ति' (७) इत्याद्याख्याय भार्यया शिष्येण च सह स्वर्गमास्थाय मुमोद। भीष्म इदमाख्यानं मार्कण्डेयेन मा प्रति कथितामित्युक्त्वा स्त्रीणां रक्षणस्यावश्यकर्तव्यत्वमुपदिश्य पुनः स्त्रीरक्षणस्याशक्यत्वमभिदधाति स्म. . ... | १२४ |
| ४४ | ५६ | 'यन्मूलं सर्वधर्माणाम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः शीलवृत्तादिसम्पन्नाय कन्या देयेति प्रतिपाद्य ब्राह्मादीन् विवाहभेदान् ब्राह्मणादिवर्णान् विवाहसंख्यादिकं चाचष्ट। 'शुल्कमन्येन दत्तं स्यात्' (१९) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने 'यत्किञ्चित्कर्म मानुष्यम्' (२१) इत्यादिनोत्तरं व्याजहार भीष्मः। कन्यायां प्राप्तशुल्कायाम्' (२८) इत्यादि पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति 'नैव निष्ठाकरं शुल्कम्' (३१) इत्यादिना विवाहनिष्ठां प्रतिपाद्य 'अहं विचित्रवीर्यस्य (३८) इत्यादिना वीर्यस्यापि शुल्कत्वं निरूप्य बाल्हीकेनोक्तं सत्यवज्ञनसंवादं कथयति स्म भीष्मः. .. . . | ...१२७ |
| ४५ | २३ | 'कन्यायाः शुल्कं दत्वा तत्पतिर्नागतश्चेत्तदा तस्याः का गतिः?' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने 'याऽपुत्रकस्य ऋद्धस्य' (२) इत्यादिना तदुत्तरमभ्यभाषत भीष्मः। 'अथ केन प्रमाणेन' (१०) इत्यादिना कन्यायाः पितृधनहारित्वविषयके युधिष्ठिरप्रश्ने 'यथैवात्मा तथा पुत्रः' (११) इत्यादिना तदुत्तरं कथयन्भीष्मः कन्यायाः पुत्रतुल्यत्वेन त- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | स्यास्तत्पुत्रस्य दौहित्रस्य च धनहारित्वं प्रतिपाद्य विक्रयपूर्वकमासुरेण विधिना परिणीतायां कन्यायां तत्पुत्रो धनहारी नेत्युक्त्वाऽऽसुरविवाहनिन्दाविषये यमगीतां गाथामाह स्म . | १२९ |
| ४६ | १५ | 'प्राचेतसस्य वचनम्'(१)इत्यादिना कन्याज्ञातयो धनं स्वयं न गृह्णन्ति किन्तु कन्यालङ्काराद्यर्थं विनियुञ्जते स न विक्रय इति प्रतिपाद्य 'पितृभिर्भ्रातृभिश्चैव' (३) इत्यादिना स्त्रियं प्रशशंस भीष्मः ... ... . . ... ... .. | १३० |
| ४७ | ६१ | 'यथा नरेण कर्तव्यम्' (३) इत्यादिना ब्राह्मणस्य वर्णचतुष्टयसम्बन्धिनीषु चतसृषु भार्यासूत्पन्नानां पुत्राणां कथं दायभागत्वमिति पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मस्तत्प्रकारं कथयित्वा तत्र शूद्रापुत्रस्य दशमभागहारित्वमाख्याय स्त्रीणां भर्तृदाय उपभोगफल इत्याद्याह स्म। 'शूद्रायां जातस्य कथं दशमो भागः' (२७) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो 'दारा इत्युच्यते लोके नाम्नैकेन परन्तप। प्रोक्तेन चैव नाम्नाऽयं विशेषः सुमहान् भवेत्' (३०) इत्यादिना शूद्या अपि दारत्वाविशेषात्तत्पुत्रस्य दशमभागहारित्वमिति फलतोऽभिधाय युधिष्ठिरप्रश्नानुरोधेन क्षत्रियादीनामपि विभागनियमं व्याजहार. . . . . . | १३२ |
| ४८ | ५० | 'अर्थाल्लोभाद्वा कामाद्वा' (१) इत्यादिना वर्णसंकरकारणकथनपूर्वकं संकरजातानां धर्म-कर्मविषयेऽनुयुञ्जाने युधिष्ठिरे भीष्मो 'भार्याश्च तस्रः' (४) इत्यादिना पारशवादि नामकथनपूर्वकं संकरजातीयानाख्याय तद्धर्माणामनियतत्वं प्रदर्श्य 'आनृशंस्यमनुक्रोशः' (३४) इत्यादिना तेषां साधारणधर्मानाभाष्य स्त्रीषु प्रसङ्गवर्जनमुपदिशति स्म। 'सङ्करयोनिजो नरः कथं ज्ञेयः' (३९) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः कर्मानुरोधेन योनिशुद्ध्यादिकं जानीयादित्याचष्ट ... | १३५ |
| ४९ | २८ | 'ब्रूहि तात कुरुश्रेष्ठ वर्णानां त्वं पृथक् पृथक्। कीदृश्याः कीदृशाश्चापि पुत्राः कस्य च के च ते' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्म 'आत्मा पुत्रश्च विज्ञेयः' (३)इत्यादिना • विंशतिप्रकारान् पुत्रान् प्रदर्श्य पुनः प्रश्नोत्तरभावेन तेषां स्वरूपादिकं वर्णयति स्म... | १३७ |
| ५० | ९७ | 'दर्शने कीदृशः स्नेहः' (१) इत्यादिना परपीडादर्शने परैः सह संवासे च कीदृशः स्नेह आनृशंस्यं च कर्तव्यं तत् गवां माहात्म्यं चेति युधिष्ठिरेण कृते प्रश्नद्वये तत्रोणोभयोरुत्तरं वदन्नहुषच्यवनसंवादरूपमितिहासं व्याहरद्भीष्मः। द्वादशवर्षपर्यन्तं जले निरुध्य तपः कुर्वंश्च्यवनः कदाचिन्निषादैर्जालं प्रसार्य मत्स्यैः सहाकृष्टो व्याकुलान्मत्स्यानालोक्य कृपाविष्टो बभूव। च्यवनं दृष्ट्वा प्रसादं प्रार्थयन्तो निषादाः 'प्राणोत्सर्गं विसर्गं वा मत्स्यैर्यास्याम्यहं सह' (२५) इत्यादिकं तद्वाक्यं श्रुत्वा नहुषाय राज्ञे न्यवेदयन्. . | १३८ |
| ५१ | ४८ | निषादवाक्यं श्रुत्वा च्यवनसमीपमागत्य 'करवाणि प्रियं किं ते' (४)इत्याद्यभिदधानो नहुषो 'मूल्यं दत्वा निषादेभ्यो मां मोचय' (५) इति तेनोक्तो मूल्यत्वेन स्वराज्यं सर्वं कल्पयति स्म। 'समग्रमपि ते राज्यं न मम मूल्यमतोऽपि भूयः प्रकल्पय' (१३) इत्युक्तवति च्यवने तद्वाक्यं श्रुत्वा चि- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | न्तयति नहुषे तं प्रति गवि जातो वनचरो मुनिरागत्य गां मूल्यत्वेन कल्पयेत्यब्रवीत् । गवि जातस्य मुनेरुपदेशाद्धृष्टेन नहुषेणागत्य 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवा क्रीतोऽसि भार्गव' (२५) इत्युक्तश्च्यवनस्तदङ्गीकृत्य गोमाहात्म्यं वर्णयामास । च्यवनप्रसादान्मत्स्यैः सह निषादेषु स्वर्गं गतेषु विस्मितो नहुषश्च्यवनगविजाताभ्यां वरं लब्ध्वा स्वकीयं पुरं जगाम | १४० |
| ५२ | ३९ | 'संशयो मे महाप्राज्ञ' (१) इत्यादिना परशुरामविश्वामित्रयोरुत्पत्तिविषये पृष्टो भीष्मश्च्यवनकुशिकसंवादरूपमितिहासं कथयितुमारेभे । च्यवनः स्ववंशे क्षत्रधर्मिणो रामस्य जननं कुशिकवंशे ब्राह्मणस्य विश्वामित्रस्य जननं च पूर्वमेवागत्य कुशिकवंशं दग्धुकामः कुशिकमागत्य त्वद्गृहे वस्तुमिच्छामीत्यवादीत् । तच्छ्रुत्वा कुशिकेन मधुपर्कसमर्पणादिना सत्कृत्य प्रार्थितश्च्यवनः 'अहं कंचिन्नियममारप्स्ये' (२१) इत्याद्युवाच । दंपतीभ्यां तदङ्गीकृत्य निवेदिते गृहोद्देशे प्रवेशितश्च्यवनो रात्रौ स्वाभिलषितमन्नं भुक्त्वा स्वप्स्याम्यहं युवाभ्यां पादसंवाहनं कार्यं न चाहं बोधयितव्यः' (३१) इत्युक्त्वा सुष्वाप, तौ च यथाज्ञप्तमकुरुताम् । एवमेकविंशतिदिनान्येकपार्श्वे सुप्तो निराहाराभ्यां दम्पतीभ्यां सेव्यमानोऽकस्मादुत्थाय गृहान्निष्क्रम्य ताभ्यामनुगतो गच्छन्नकस्मादन्तर्हितो बभूव ... | १४१ |
| ५३ | ६८ | च्यवनेऽन्तर्हिते राजा किमकरोदिति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मस्तदुत्तरमाह—अन्तर्हिते च्यवने तं गवेषयन्तौ दम्पती श्रान्तौ यदा स्वगृहमागत्य पश्यतस्तदा शयनस्थं तं दृष्ट्वा पूर्ववदेव तत्पादसंवाहनं चक्रतुः । पुनः प्रतिबुद्धश्च्यवनः स्वाज्ञया राजानीतामभ्यङ्गसामग्रीमनादृत्यान्तर्धाय पुनः स्नातं सिंहासनारूढमात्मानं दर्शयन् राज्ञा प्रार्थनापूर्वकं समानीतानानाविधान्भोज्यपदार्थान् शयनासनादिभिः सह दाहयामास । एवमप्यविकृतौ तौ दंपती दृष्ट्वा 'भार्यया सह त्वं मां साङ्ग्रामिक् रथेन वह' (२७) इत्याज्ञप्तेन राज्ञा सज्जीकृते रथे आरुह्य तौ दंपती धुर्यस्थाने संयोज्य गच्छन् कशाप्रहारादिकं सहन्तावपि निर्विकारौ तावालोच्य राज्ञोऽनेकविधं वसु विततार । एवमप्यविकृतौ तावालोक्य प्रसन्नश्च्यवनो 'रमणीये गंगातीरेऽद्य वसामि त्वं गृहं गच्छ श्वो मामत्रैव द्रक्ष्यसि'(५७) इत्युक्तो राजा भार्यया सह गृहं गत्वा सुखं सुष्वाप | १४३ |
| ५४ | ४० | प्रातरुत्थितो राजा भार्यया सह पूर्वसङ्केतिते वने यावदागच्छति तावत्तस्मिन्वने दिव्यं प्रासादं पर्वतसरिद्वृक्षप्रभृतीन् दिव्यभावसमन्वितान् दृष्ट्वा भार्यायै तत्रत्यमाश्चर्यं कथयति स्म । अनेकेषु स्थलेषु दृश्यमानं पुनर्वनादिना सहान्तर्हितमालोच्य विस्मितं राजानमाहूय वरं याचस्वेत्युवाच च्यवनः । कुशिकस्तु 'अग्निमध्य इव त्वत्सन्निधौ वसन्नदग्धो यच्च मे कुलं तत्त्वया त्रातमयमेव मे वरः' (३७) इत्यभिधाय यदि प्रसन्नस्त्वं तर्हि मे कश्चित्संशयोऽस्ति तं व्याख्यातुमर्हसीत्युवाच | १४५ |
| ५५ | ३७ | 'वरश्च गृह्यतां मत्तः' (१) इत्यादि च्यवनवाक्यं श्रुत्वा 'यदि | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | प्रीतोऽसि भगवन्' (२) इत्यादिना स्वगृहवासादिविषये कारणं पृच्छति कुशिके च्यवनः 'शृणु सर्वमशेषेण' (१०) इत्यादिना तत्कथयित्वा 'एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वम्' (३०)इत्यादिना त्वत्तस्तृतीयो ब्राह्मणो भविष्यतीत्याह । मे कुलं विप्रत्वं कथमेष्यतीति पप्रच्छ कुशिकश्च्यवनम् .. | १४६ |
| ५६ | २१ | 'अवश्यं कथनीयं मे' इत्यादिना च्यवनस्तत्कथयति सर्वम् | १४७ |
| ५७ | ४४ | 'मुह्यामीव निशम्याद्य' (१) इत्यादिना अनुतापपूर्वकं 'शरीरं योक्तुमिच्छामि'(५) इत्यादि युधिष्ठिरवाक्यं श्रुत्वा भीष्मो 'रहस्यमद्भुतं चैव' (७) इत्यादिना मरणानन्तरं यत्फलं येन साधनेन प्राप्यते तत्कथयामीति प्रतिजज्ञे । 'तपसा प्राप्यते स्वर्गः' (८) इत्यादिना तपःफलं 'पानीयस्य प्रदानेन' (२०) इत्यादिना पानीयदानादिफलं 'सुवर्णशृङ्गैस्तु' (२७) इत्यादिना गवादिदानफलं चाभ्यधाद्भीष्मः . | १४९ |
| ५८ | ३३ | 'आरामाणां तडागानाम्' (१) इत्यादिना आरामतडागादिकरणे फलं पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मस्तडागकरणफलमभिधाय 'अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि' (२२) इत्यादिना षड्विधवृक्षजातीनां रोपणे फलं चोक्त्वा तडागारामयज्ञानां करणस्य स्वर्गावाप्तिरूपं फलमुपदिदेश .. | १५० |
| ५९ | ४१ | 'यानीमानि बहिर्वेद्याम्' (१) इत्यादिना दानानां मध्ये श्रेष्ठतमं दान किमिति युधिष्ठिरानुयुक्तो भीष्मः 'अभयं सर्वभूतेभ्यः'(३) इत्यादिना श्रेष्ठानि दानान्यभिधाय दानपात्रत्वेन ब्राह्मणानां श्रैष्ठ्यं वर्णत्रयपूज्यत्वं चाभ्यभाषत | १५२ |
| ६० | २० | आचरणादिना तुल्ययोर्याचमानायाचमानयोर्मध्ये कस्मै दानं श्रेष्ठमिति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मोऽयाचमानाय यद्दानं तच्छ्रेष्ठमित्याचख्यौ . | १५३ |
| ६१ | ३८ | 'दानयज्ञयोर्मध्ये परलोके महाफलं किम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो दानश्रैष्ठ्यकथनपूर्वक 'समृद्धः संप्रयच्छ त्वम्' (१२) इत्यादिना देयानि दानान्याख्याय राज्ञोऽवश्यकर्तव्यं चोपदिश्यारक्षतो राज्ञः पापचतुर्थांशभागित्वं जगाद . | १५४ |
| ६२ | ९६ | 'इदं देयमिदं देयम्' (१) इत्यादिना बहुदेयानां राज्ञां किंस्विच्छ्रेष्ठं दानमिति युधिष्ठिरेणापृष्टो भीष्मो भूमिदानस्य श्रेष्ठत्वमभिदधत्तद्विषये भूमिगीता गाथाः शक्रबृहस्पतिसंवादरूपमितिहासं भूमिदानफलादिकं चाचष्ट | १५७ |
| ६३ | ५२ | 'कानि दानानि लोकेऽस्मिन्' इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो नारदोपदिष्टमन्नदानस्य श्रेष्ठत्वमुपदिश्य त्वमप्येतत्कुर्वित्यभिधायान्नदानप्राप्यान् लोकान् कथयति स्म . . | १५९ |
| ६४ | ३ | 'नक्षत्रयोगस्येदानीं दानकल्पं ब्रवीहि मे' (१) इति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मो देवकीनारदसंवादेतिहासकथनमुखेन तमुपादिक्षत | १६० |
| ६५ | १९ | सुवर्णादिदानफलानि . | १६० |
| ६६ | ६५ | उपानद्दानविषये युधिष्ठिरप्रश्ने तत्फलमभिधाय पुनर्युधिष्ठिरप्रश्नानुरोधेन तिलोत्पत्तिकथनपूर्वकं तिलदानफलं ब्रह्मदत्तभूमिभागे देवानां यज्ञकथनपूर्वकं भूमिदानफलं गोदानफलमन्नदानफलं चाभ्यधाद्भीष्मः ... | १६३ |
| ६७ | १९ | विस्तरेणान्नादिदानफलं श्रोतुं | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तदब्रवीत् | १६४ |
| ६८ | ३४ | तिलादीनां दानफलश्रवणार्थं पुनर्युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मस्तद्विषये यमब्राह्मणसंवादरूपमितिहासमाचख्यौ। मध्यदेशे गङ्गायमुनयोर्मध्ये पर्णशालाख्यग्रामे निवसन्तं शर्मिनामानं ब्राह्मणमानय, तन्निकटवासिनं तत्सदृशं तन्नामानं नानय' (७) इति यमाज्ञां गृहीत्वा निर्गतेन दूतेनाज्ञाविपरीतमानीतं ब्राह्मणं संपूज्य तत्प्रश्नानुरोधेन तिलदानादिमाहात्म्यमुपदिश्य तं विसर्जयति स्म यमः। पुनरानीतमभीष्टं शर्मिणं प्रतिपूज्य तथैवोपदिश्य विसर्जयित्वा दीपादिदानं प्रशशंस यमः ... ... ... | १६५ |
| ६९ | २२ | 'भूय एव कुरुश्रेष्ठ दानानां विधिमुत्तमम्। कथयस्व महाप्राज्ञ भूमिदानं विशेषतः' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने गोभूमिसरस्वतीनां दाने तुल्यफलत्वमभिधाय गोदानं प्रशशंस। 'देयाः किंलक्षणा गावः' (१४) इत्यादिना किंलक्षणा देयाः कीदृशा न देया इत्यनुयुञ्जाने युधिष्ठिरे 'असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने। हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन' (१५) इत्यादिनान्त्ययोरुत्तरमभिधाय ब्राह्मणस्वापहारे दोषमाह स्म... . ... . | १६६ |
| ७० | ३३ | ब्राह्मणस्वापहारविषये नृगोपाख्यानमाख्यायान्ते यादवान्प्रति 'ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यम्' (३१) इत्यादिकं श्रीकृष्णेन कृतमुपदेशं कथयति स्म भीष्मः..... . | १६८ |
| ७१ | ५७ | विस्तरेण गोदानफलं श्रोतुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्म उद्दालकनाचिकेतसंवादरूपमितिहासं व्याजहार। कदाचिदुद्दालको नियमं समाप्य 'नदीतीरे विस्मृतं मदीयमिध्मादिकमानय' (५) इत्याज्ञापयत्स्वपुत्रं नाचिकेतम्। स च नद्या प्लावितं तदनुपलभ्यागत्य 'तत्र तन्न पश्यामि' (६) इत्युवाच पितरम्। ततः स क्रुद्धेन पित्रा यमं पश्येत्याज्ञप्तो तं जगाम। ततः पिताऽनुतप्तः सन् यावदश्रूण्यमुञ्चत्तावद्यमेन सत्कारपूर्वकं विसर्जितो नाचिकेत आजगाम। ततः पित्रा पृष्टस्तत्रत्यं यमसंवादादिकं तत्र यमेनोक्तं गोदानमाहात्म्यं गवामभावे घृतधेन्वादिदानादिकं च व्याजहार नाचिकेतः . . ... . | १७० |
| ७२ | १२ | 'उक्तं ते गोप्रदानं वै' (१) इत्यादिनोक्तानुवादपूर्वकं गोप्रदातॄणां प्राप्यान् लोकान् ज्ञातुं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः शक्रब्रह्मसंवादरूपमितिहासमाख्यत्। 'स्वर्लोकवासिनां लक्ष्मीम्' (६) इत्यादिना 'कीदृशा गवां लोकाः (७) इत्यादीन् प्रश्नांश्चकारेन्द्रः... ... ... ... | १७१ |
| ७३ | ५० | एतत्प्रश्नाभिनन्दनपूर्वकमुत्तरं ददद्ब्रह्मा गोलोकं तत्र वसतां सुखं च निरूप्य तत्र गमनागमनाधिकारिणो गोप्रदानफलं, गोदानपात्रमनडुद्दानं तत्फलं चाख्यातवान् .. ... ... .. ... ... | १७३ |
| ७४ | १५ | 'जानन् यो गामपहरेत्' (१) इति शक्रप्रश्ने ब्रह्मा गवामपहारादौ दोषमभिधाय गोदाने दक्षिणात्वेन सुवर्णं देयमित्यब्रवीत्। भीष्म एतदाख्यानप्राप्तिपरम्परामाख्यायैतत्पठनफलं कथयति स्म युधिष्ठिरं प्रति... . . .. | १७४ |
| ७५ | ४१ | 'व्रतानां किं फलं प्रोक्तम्' (२) इत्यादिना युधिष्ठिरेण कृतानां | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | प्रश्नानां भीष्मेण दत्तान्युत्तराणि . .. ... .. | १७५ |
| ७६ | ३१ | गोदानविधिश्रवणार्थं युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो गोदानं प्रशस्य तद्विधिमाख्याय गोदातुः फलं तद्विषये निदर्शनार्थमुशीनरादीनां गोदानेन स्वर्गप्राप्तिं चाभ्याचष्ट ... ... . .. | १७८ |
| ७७ | ३५ | 'गोप्रदानगुणान् सम्यक् पुनर्मे ब्रूहि भारत' (१) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो 'वत्सलां गुणसम्पन्नाम्' (४) इत्यादिनोत्तरं वदन् कपिलादानस्य श्रैष्ठ्यमाह। कपिलादानस्य विशेषफलश्रवणार्थं युधिष्ठिरानुयोगे भीष्मस्तत्कथयन्कपिलाया गोरुत्पत्त्यादिविषये वृद्धकथितमितिहासमाह। अमृतं पिबता प्रजापतिना निर्मितया सुरभ्या सौरभेयीषु निर्मितासु तद्वत्समुखनिर्गते फेने महादेवस्य शिरसि पतिते क्रुद्धं तं ध्वजवाहनयोर्वृषप्रदानेन पशुपतिं चक्रे प्रजापतिः। 'एवमव्यग्रवर्णानाम्' (३०) इत्यादिना कपिलादानमाहात्म्यमाख्यायोत्पत्त्याख्यानपठने फलं व्याजहार भीष्मः .. ... .. . | १७९ |
| ७८ | २५ | एतद्विषय एव भीष्मो वसिष्ठसौदाससंवादरूपमितिहासमाचष्ट। 'त्रैलोक्ये परम पवित्रं किम्' (३) इति सौदासेन पृष्टो वसिष्ठो गवां परमपवित्रत्वं व्याहृत्य तद्दानफलमभिदधाति स्म. | १८० |
| ७९ | २७ | श्रेष्ठत्वप्राप्त्यर्थं गवां तपश्चरणं ताभ्यः प्रजापतेर्वरदानं चाख्याय कपिलादिगोदानफलं कथयति स्म वसिष्ठः ... . | १८१ |
| ८० | १७ | 'घृतक्षीरप्रदा गावः' (१) इत्यादिना पुनर्वसिष्ठेन कथितं गोदानमाहात्म्यं श्रुत्वा सौदासो ब्राह्मणेभ्यो बहु धनं दत्वा लोकानवापेत्याह भीष्मः ... .. | १८२ |
| ८१ | ४७ | 'पवित्राणां पवित्रं यत्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो गवां परमपवित्रत्वं प्रतिपाद्य तद्विषये व्यासशुकसंवादरूपमितिहासं व्याजहार ... ... ... | १८४ |
| ८२ | २७ | गवां पुरीषस्य पावित्र्यमुद्दिश्य युधिष्ठिरेणापृष्टो भीष्मो गोभिः श्रियाः संवादरूपमितिहासमभ्यधात्। गोभिः 'काऽसि देवि कुतो वा त्वम्' (४) इति पृष्टा श्रीः स्ववृत्तान्तमाख्याय स्वनिवासार्थं स्थानमयाचत। गवां श्रियाश्चोक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरमस्मच्छकृन्मूत्रयोर्निवस (२४) इति गोभिरुक्ता श्रीः सहर्षं तदङ्गीचकार | १८५ |
| ८३ | ५२ | भीष्मः पुनर्गोदानं प्रशस्य गवां परमपवित्रत्वविषये पितामहशक्रसंवादरूपमितिहासमाचष्ट। 'गवां लोको देवानामुपरिष्टात्कुतः' (१३) इति शक्रेण पृष्टो ब्रह्मा दक्षदुहितुः सुरभ्यास्तपश्चरणं वरप्रदानादिकं चाचख्यौ तच्छ्रुत्वेन्द्रोऽपि गाः संमानयति स्म | १८७ |
| ८४ | ८२ | 'उक्तं पितामहेनेदम्' (१) इत्यादिना पूर्वोक्तानुवादपूर्वकं सुवर्णस्योत्पत्त्यादिविषयके युधिष्ठिरानुयोगे भीष्मः सुवर्णोत्पत्तिकथनं प्रतिज्ञाय स्वस्य शांतनौ मृते तत्पिण्डदानार्थं गंगाद्वारगमनं पिण्डग्रहणार्थं भुवं भित्वा पित्रा निष्कासितो हस्तं शास्त्रविचारेणानादृत्य कृतं दर्भेषु पिण्डदानं तेन तुष्टानां पितॄणां स्वप्ने दर्शनं तत्कथितं पित्रुद्धारफलकं स्वर्णदानं च कथयित्वा तदुपदेशेनाहं तथाऽकरवमित्युक्त्वैतद्विषये एव जामदग्न्यर्षिसंवादेतिहासमाह। | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | जामदग्न्य एकविंशतिवारं निःक्षत्रियां पृथ्वीं विधाय पावनार्थं हयमेधेनेष्ट्वाऽप्यात्मनोऽपावित्र्यं मन्वानो मुनीनापृच्छ्य तदनुज्ञया वसिष्ठादीन् प्रति स्वपावित्र्यसाधनं पप्रच्छ। वसिष्ठादयः प्रशंसापूर्वकं सर्वदानेभ्यः श्रेष्ठं सुवर्णदानं पावित्र्यहेतुत्वेनाभिधाय सुवर्णमाहात्म्यविषये इतिहासं कथयन्तो हिमालये शिवपार्वत्योर्विवाहे निर्वृत्ते तत उभयोः समागमे उत्पद्यमानादपत्यात्पराभवमाशङ्कमानैर्देवैः प्रार्थिते रुद्रे ऊर्ध्वरेतसि संपन्ने प्रजोत्पादननिरोधेन कुपितायाः पार्वत्या अग्निरहितान् देवान् प्रति प्रजोच्छेदरूपं शापं चाभ्यदधुः। रुद्रेण धृतं रेतः किञ्चिद्भुवि स्कन्नमग्नौ पतितं सद्ववृधे। एतस्मिन्काले तारकासुरतापिता देवा ब्रह्माणं शरणं जग्मुः . ... | १८९ |
| ८५ | १६८ | तारकासुरवृत्तान्तं श्रुतवता ब्रह्मणा 'हुताशनो न तत्रासीत्' (८) इत्यादिना पार्वतीशापकालेऽग्निस्तत्र नासीदिति 'सोऽपत्यमुत्पाद्य युष्माकं कार्यं करिष्यति' (१२) इति कथितं श्रुत्वाऽग्निशोधार्थं देवा निर्जग्मुः। अग्निमन्विष्यन्तो देवा जलेऽश्वत्थे शमीगर्भे चाग्निस्थितिं क्रमेणाख्यातवतोऽग्निशप्तान् मण्डूकाद्विरदशुकान्वरदानेनानुगृह्य शमीगर्भेऽग्निं ददृशुः। 'ब्रूत यद्भवतां कार्यम्' (५०) इत्याद्यग्निवाक्यं श्रुत्वा दैत्यवधसमर्थापत्योत्पादनार्थं देवैः प्रार्थितेनाग्निना गङ्गया मिश्रीभूय निहितं गर्भं सोढुमसमर्था सा मेरुपर्वते तमुत्सृज्याग्निप्रश्नानुरोधेन 'जातरूपः स गर्भो वै' (७२) इत्यादिना तद्वृत्तान्तमाख्यायान्तरधात्। अग्निरपि देवकार्यं विधायेष्टं देशं जगाम। स एव गर्भः शरवणं प्राप्य वृद्धः सन् स्कन्नत्वात्स्कन्द इति कृत्तिकाभिः पोषितत्वात्कार्तिकेय इति गुहावासाद्गुहावास इति नामान्यवाप्येत्यभिधाय 'एव सुवर्णमुत्पन्नम्' (८३) इत्यादिना सुवर्णोत्पत्तिमुपसंजहार वसिष्ठः। 'अपि चेद पुरा राम श्रुतं मे ब्रह्मदर्शनम्' (८७) इत्यादिना वारुणीं तनुं बिभ्रतो युधिष्ठिरस्य यज्ञवृत्तान्तं तत्र प्रकारान्तरेणाग्नेः सकाशात्सुवर्णोत्पत्तिं चाभिधाय सुवर्णदान प्रशस्य कार्तिकेयस्य सेनापतित्वेन तत्कृतं तारकासुरवधवृत्तान्तं वरणं चाचष्ट वसिष्ठः। एवं वसिष्ठेनोपदिष्टं सुवर्णदानं विधाय जामदग्न्यो निष्किल्बिषोऽभवदित्याह भीष्मः . | १८५ |
| ८६ | ३५ | तारकासुरवधप्रकारं श्रोतुं युधिष्ठिरेणापृष्टो भीष्मस्तं कथयति स्म .. ... | १९६ |
| ८७ | १९ | श्राद्धविधिशुश्रूषया युधिष्ठिरेण प्रश्ने कृते भीष्मः श्राद्धविधिं प्रशस्य प्रतिपदादितिथिषु श्राद्धकरणे फलानि कथयति स्म | १९७ |
| ८८ | १५ | 'किं स्विद्दत्तं पितृभ्यो वै' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो द्रव्यविशेषेण पितॄणां तृप्तिविशेषमाख्याय 'अपि नः स्वकुले' (१२) इत्यादिकाः पितृगीता गाथाः कथयति स्म ... | १९८ |
| ८९ | १५ | भीष्मो यमेन शशबिन्दवे कथितानि कृत्तिकादिभरण्यन्तेषु कर्तव्यानि काम्यानि श्राद्धानि व्याजहार ... . | १९८ |
| ९० | ५४ | 'कीदृशेभ्यः प्रदातव्यम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने श्राद्धे वर्जनीयत्वेनापाङ्क्तेयान्ब्राह्मणानु- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कत्वा 'इमे तु भरतश्रेष्ठ'(२४) इत्यादिना पंक्तिपावनान्ब्राह्मणांश्चाभिधायोभयोः श्राद्धे नियोजने दोषादोषावभ्यधाद्भीष्मः... | २०१ |
| ९१ | ४५ | 'केन संकल्पितं श्राद्धम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः श्राद्धोत्पत्तिं कथयति स्म। स्वायंभुवस्यात्रेः पुत्रस्य दत्तात्रेयस्य पुत्रो निमिः श्रीमन्नामान स्वपुत्रं मृतमुद्दिश्य शोचन् फलमूलादिभिरमावास्यायां श्राद्धं चकार। कृत्वा चैतदद्यावधि ऋषिभिरनाचीर्णं मया चरितमिति चिन्तयानं त प्रत्यत्रिरागत्य श्राद्धविधिं श्राद्धभागार्हाणां देवानां नामान्यश्राद्धेयानि धान्यादीनि चाकथयत् . . | २०२ |
| ९२ | २३ | निमिप्रवर्तितं श्राद्धविधिं कुर्वाणेषु मुनिषु निवापान्नं निषेव्याजीर्णेन पीडिता देवाः पितरश्च सोमप्रेरणया ब्रह्माणं गत्वा निवापान्नेन वयं पीड्यामह इत्यूचुः। ततोऽग्निर्युष्मच्छ्रेयो विधास्यतीति तद्वाक्यं श्रुतवतोऽग्नेः 'सहितास्तात भोक्ष्यामः' (१०) इत्यादि वाक्यं श्रुत्वा सर्वे विज्वरा अभवन्। अतो हेतोः पूर्वमग्नये दद्ति' (११) इत्यभिधाय पिण्डदानक्रमं चान्वाख्याय 'रजस्वला च या नारी' (१५) इत्यादिना रजस्वलादर्शननिषेधादिकं कथयति स्म भीष्मः ... ... ... | २०३ |
| ९३ | १४९ | 'द्विजातयो व्रतोपेताः' (१) इत्यादिना युधिष्ठिरभीष्मयोरुक्तिप्रत्युक्त्योः प्रवृत्तयोः 'दातृप्रतिग्रहीत्रोर्वै को विशेषः पितामह' (१८) इति युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरं वदन् भीष्मो वृषादर्भे राज्ञः सप्तर्षीणां च संवादरूपमितिहासमाचष्ट। कश्यपात्रिवसिष्ठभरद्वाजगौतमविश्वामित्रजमदग्नयः सप्तर्षयोऽरुन्धती चेत्येते गण्डानाम्न्या दास्या पशुसखनामकपतिसहितया सह महत्यामनावृष्ट्यां क्षुधापीडिता भ्रमन्तः पूर्वं कस्मिंश्चिद्यज्ञे शैब्येन दक्षिणात्वेन दत्तं मृतं पुत्रं परिवार्य स्वशरीराणि रक्षितुं तमपचन्त। एतस्मिन्काले शैब्यो राजा वृषादर्भिरागत्य 'परिग्रहस्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्यताम्। मयि यद्विद्यते वित्तं तच्छृणुध्वं तपोधनाः' (३०) इत्याद्युवाच। तच्छ्रुत्वा राजप्रतिग्रहं विनिन्द्य 'कुशलं सह दानेन' (३७) इत्यादिना राजोक्तं प्रत्याख्यायापक्वं राजपुत्रमांसं परित्यज्याहारकाङ्क्षिणो निर्जग्मुः। राजाज्ञया तन्मंत्रिषु हिरण्यगर्भाण्युदुम्बरफलान्यर्पयत्सु तानि गुरूणि दृष्ट्वा इमान्युपधियुक्तानीत्युक्त्वा तानि परित्यज्य ययुः। राजा च मन्त्रिभिराख्यातमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा क्रुद्धः सन्नभिचारेण कृत्यां निर्माय तेषां नामानि ज्ञात्वा सर्वान्मारयेत्यादिदेश तां प्रति। सा च राजाज्ञया यत्र वने सप्तर्षयो विचेरुस्तद्वनं जगाम। वने चरतो मुनीन् प्रति कश्चित्परिव्राट् शुना सहित आजगाम। तं दृष्ट्वाऽरुन्धत्या पृष्टास्ते तस्य परिव्राजः पीनत्वकारणान्याख्याय तेन प्रार्थितां स्वपरिचर्यामङ्गीकृत्य भ्रमन्तो घनवृक्षमध्यस्थां पद्मयुतां पद्मिनीं दृष्ट्वा तत्रागत्य तद्रक्षणकर्त्रीं राक्षसीं दृष्ट्वा का त्वमित्यादिप्रश्नपूर्वकं बिसान्ययाचन्त। तया राक्षस्या 'स्वस्वनामानि कथयित्वा यथेच्छं बिसान्याहरत' (८४) इत्युक्तास्ते सर्वे गण्डातत्पतिपशुसख- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | सहिताः स्वस्वनामनिर्वचनान्याचख्युः। सा च नामार्थमनवबुद्ध्यानुजज्ञे। एवं शुनः सखेनापि स्वनाम्नि कथिते सत्यपि पुनः कथयेत्युक्तवती राक्षसी त्रिदण्डप्रहारेण घातयति स्म सः। तत ऋषयो बिसान्याहृत्य तीरे निक्षिप्य तर्पणं कृत्वा बहिरागतास्तान्यपश्यन्तोऽभिशंकमानाः शपथांश्चक्रुः। तथैव शुनः सखस्य शपथं श्रुत्वा तस्मिन् बिसस्तैन्यमारोपयामासुः। सोऽपि तदङ्गीकृत्य 'अहं युष्मत्परीक्षार्थमागतो वृषादर्भिप्रयुक्तां कृत्यामहनं, मां वासवं वित्त, लोभपरित्यागेन संपादितान् लोकानवाप्नुत' (१४३) इत्याद्युवाच। ते चेन्द्रेण सह स्वर्गं जग्मुः। स्वधर्मनिष्ठः कुप्रतिग्रहपराङ्मुखो निषिद्धवर्जितो मुख्यं पात्रमित्यध्यायतात्पर्यम् .. .. .. | २११ |
| ९४ | ५४ | शपथेन निषिद्धार्थप्रकाशनविषये ब्रह्मर्षिराजर्ष्यादितीर्थयात्रेतिहासमकथयद्भीष्मः। प्रभासक्षेत्रे मिलिताः शुक्राङ्गिरःप्रभृतयो ब्रह्मर्षयो नारदप्रभृतयो देवर्षयः शिबिप्रभृतयो राजर्षयश्च पृथ्वीतीर्थयात्रां सङ्कल्प्य निर्गतास्तीर्थान्यटन्तो ब्रह्मसर एत्य तत्र बिसादीनि भुक्त्वाऽगस्त्यहृतं पुष्करमिन्द्रेण ह्रियमाणं ददृशुः। पुष्करमपश्यतागस्त्येनापहारशङ्कयाऽऽक्षिप्तेषु शुक्रप्रभृतिषु देवर्षिब्रह्मर्षिराजर्षिषु शपथान्विदधत्सु इष्ट इन्द्रः 'अध्वर्यवे दुहितरं ददातु' (४४) इत्याशीरूपं शपथमकरोत्। 'आशीर्वादस्त्वया प्रोक्तः'(४६) इत्यादिनाऽगस्त्येन पुष्करं याच्यमान इन्द्रो 'न मया भगवँल्लोभात्' (४७) इत्यादिना क्षमापनपूर्वकं तस्मै तद्ददाति स्म। पुष्करप्राप्त्या हृष्टेऽगस्त्ये ते सर्वे तीर्थानि जग्मुः ........ | २१४ |
| ९५ | २८ | श्राद्धादिषु छत्रोपानहृदानं केन प्रवर्तितमित्यादिकेषु युधिष्ठिरप्रश्नेषु भीष्मस्तदुत्तराभिधानं प्रतिज्ञाय जमदग्निसूर्यसंवादरूपमितिहासमुवाच। पुरा किल जमदग्निर्धनुषा क्रीडन् संधाय संधाय शरान्मुमोच रेणुका च क्षिप्तान् क्षिप्तान् शरानानीय तस्मै प्रादात्। एवं क्रीडायां प्रवृत्तायां शरानानयन्ती रेणुका सूर्यतापव्याकुला किंचिच्छायायां विश्रम्यागता क्रुद्धेन तेनाक्षिप्ता सती 'सूर्यतापतप्ताह किञ्चिद्विश्राममकरवम्' (१७) ततः क्रुद्धो जमदग्निः सूर्यं हन्तुं बाणं यावत्संदधे तावद्भीतः सूर्यो ब्राह्मणरूपेणागत्य 'किं ते सूर्योऽपराध्यते' (२०) इत्यादिना तं प्रसादयामास........ .... | २१५ |
| ९६ | २५ | जमदग्निसूर्ययोरुक्तिप्रत्युक्त्योः प्रचलितयोः सूर्यस्य 'अपकारिणं मां विद्धि' (७) इति वाक्यं श्रुत्वा प्रसन्नेन जमदग्निना 'यथा सुखगमः पन्थाः' (१२) तापनिवृत्त्युपाययोजने प्रेरितः सूर्यस्तस्मै छत्रं चर्मपादुके च दत्वा तद्दानं प्रशशंस। भीष्मश्चैतदाख्याय त्वमपि छत्रोपानहृदानं कुर्वित्युपदिदेश युधिष्ठिरं प्रति। .. ... .. | २१६ |
| ७ | २५ | गृहस्थधर्मं जिज्ञासोर्युधिष्ठिरस्य प्रश्ने भीष्मो वासुदेवपृथिवीसंवादरूपेतिहासं व्याहृत्य तमुपदिदेश ... ... | २१७ |
| ९८ | ६६ | आलोकदानस्योत्पत्त्यादिशुश्रूषया युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मस्तदुत्तरं कथयन् मनुसुवर्णर्षिसंवादरूपमितिहासमाचचक्षे। 'सुम- | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

नोर्भिर्देवतार्चनं कथमुत्पन्नम्' (९) इति सुवर्णर्षिणा पृष्टो मनुः शक्रबलिसंवादरूपेतिहासनिदर्शनेन तदुत्तरमाह स्म। 'सुमनोधूपदीपानां प्रदाने किं फलम्' (१५) इति बलिनाऽनुयुक्तः शक्रः सुमनसामुत्पत्त्यादिकमसुरादिप्रियत्वेन तद्भेदान् धूपानां नानाप्रकारान् दीपदानस्य फलादिकं बलिकर्मगुणांश्चाब्रवीत.. ..२१९

९९ २९ पुनः पुष्पादिदानफलशुश्रूषया युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मोऽगस्त्यनहुषसंवादेतिहासं कथयन्नुत्तरमाह स्म। स्वर्गं गत्वा देवराज्यमनुप्राप्तो नहुषो दैवीर्मानुषीश्च क्रिया दीपदानादिकं च कुर्वन् देवेन्द्रोऽहमित्यभिमानमावहन् सर्वक्रियाभ्यो भ्रंशं प्राप्त ऋषीन् वाहयामास। ऋषिवाहनक्रमेणागस्त्यस्य पर्याये प्राप्ते भृगुस्तदाश्रममागत्य 'एवं वयमसत्कारम्' (१५) इत्याद्युवाच। अगस्त्येन नहुषस्य वरप्रदानादिकथनपूर्वकं तद्भ्रंशस्याशक्यत्वेऽभिहिते ततो भृगुः पुनस्तद्भ्रंशकरणं प्रतिजज्ञे ... ...२२०

१०० ४१ 'कथं वै स विपन्नश्च' (१) इत्यादिना युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो नहुषभ्रंशप्रकारं ब्रवीति स्म। वाहनार्थं नहुषेणाहूतोऽगस्त्यः स्वजटानिविष्टभृगुस्तं प्रत्यागत्य क्षिप्रं मां योजयेत्युवाच। ततो योजितेऽगस्त्ये तेन शिरसि पादेन ताडिते तत्रस्थो भृगुः 'सर्पो भूत्वा महीं गच्छ' (२५) इति तं शशाप। ततोऽगस्त्यद्वारा तेन प्रसादितो भृगुः शापान्तमभिधाय ब्रह्माणं प्रति जगाम। स च तच्छ्रुत्वेन्द्रं स्वाराज्येऽभिषिषेच ... ... ... २२१

१०१ २९ 'ब्राह्मणस्वापहारिणां का गतिः' (१) इति युधिष्ठिरानुयुक्तो भीष्मः क्षत्रबन्धुचाण्डालसंवादेतिहासकथनेन तदुत्तरमाह स्म। 'श्वखररजोव्याप्तशरीरस्त्वं गोरजोव्याप्तं शरीरं किमिति क्षालयसि' (३-४) इति राजन्येन पृष्टश्चाण्डालो गोग्रहे हृतानां ब्राह्मणगवीनां दुग्धेन मिश्रीभूतेन रजसा व्याप्तं सोमं पिबतामृत्विजां दीक्षितस्य राज्ञश्च नरकपातं गोहर्तुर्पुरे वसतां दुग्धभोक्तॄणामल्पायुष्ट्वादिकं तत्र स्थितस्य ब्रह्मचारिणः स्वस्य तद्रजोमिश्रभिक्षाभक्षणेन चाण्डालत्वप्राप्तिं चाख्याय ब्रह्मस्वहरणदोषानुद्भाव्य चाण्डालयोनितः स्वमुक्त्युपायं प्रश्नमुखेन राज्ञः सकाशाच्छ्रुत्वा ब्राह्मणार्थं स्वशरीरं परित्यज्येष्टां गतिमवाप ... .. ... २२३

१०२ ६३ 'सुकृतिनामेके लोका उत भिन्नाः' (१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः कर्मानुरोधेन लोकानां नानात्वमभिधाय तदेव विवरीतुं गौतमवासवसंवादरूपमितिहासमाख्याय तन्मुखेन ब्रह्मलोकं गतमपि ब्राह्मणस्वं न मुञ्चतीति तात्पर्यविषयाऽऽह... ... २२६

१०३ ४५ 'दानं बहुविधाकारम्' (१) इत्यादिनोक्तानुवादपूर्वकं तपसां मध्ये यत्परं तत्कथयेति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मोऽनशनस्य परमतपस्त्वमाख्याय तद्विषये भगीरथब्रह्मणोः संवादं कथयति स्म। ब्रह्मलोकं गतो भगीरथः 'केन साधनेनात्र त्वमगाः' (७) 'निष्काणां वै ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः शतम्' (८) इत्यादिना 'साधनान्तराणि निरस्यान्तेऽनशनं परमं तपः' (४२) एतदाख्याय भीष्मः 'तस्मा-

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दनशनैः (४४) इत्यादिना युधिष्ठिरमुपदिदेश . . . | २२८ |
| १०४ | १५७ | 'शतायुरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च जायते' (१) इत्यादिना आयुष्मान् केन भवत्यल्पायुश्च केन भवतीत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्। आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च' (६) इत्यादिना आचारस्यायुःश्रीकीर्तिकामहेतुत्वमनाचारस्यायुरादिनाशकत्वं चाभिधाय 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्। उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः'(१६) इत्यादिनाऽऽचारलक्षणं प्रतिपादयन् मध्ये आयुरादिनाशहेतूनप्याख्यायान्ते 'एष ते लक्षणोद्देशः' (५४) इत्यादिनोपसंजहार। . . ... | २३३ |
| १०५ | १९ | 'यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने 'ज्येष्ठवत्तात वर्तस्व' (२) इत्यादिना ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वर्तनमभिदधाति स्म भीष्मः ... ... | २३४ |
| १०६ | ७२ | 'सर्वेषामेव वर्णानाम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मोऽङ्गिरसा कथितमुपवासविधिं व्याजहार ... .. ... | २३७ |
| १०७ | १४४ | '' पितामहेन विधिवद्यज्ञाः प्रोक्ता महात्मना। गुणाश्चैषां यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः' (१) इत्यादिनोक्तयज्ञानुवादपूर्वकं दरिद्राणामर्थन्यूनत्वादिविशिष्टानां कर्तुं योग्यं यज्ञतुल्यफलकं विधिं कथयेति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो 'यस्तु कल्यं तथा सायं भुंजानो नान्तरा पिबेत्। अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम्' (६) इत्यादिनाऽध्यायशेषेण तथाविधमुपवासविधिं व्याजहार . | २४१ |
| १०८ | २१ | 'यद्वरं सर्वतीर्थानां, यत्र चैव परं शौच तन्मे व्याख्यातुमर्हसि' (१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो 'अगाधे विमले शुद्धे' (३) इत्यादिना प्रश्नद्वयस्योत्तरं जगाद | २४१ |
| १०९ | १७ | 'सर्वेषामुपवासानां यच्छ्रेयः सुमहत्फलम्। यच्चाप्यसंशयं लोके तन्मे व्याख्यातुमर्हसि' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरमभिधास्यन् भीष्मः स्वयंभुगीतकथनमुखेन मार्गशीर्षप्रभृतिद्वादशमासेषु केशवादिद्वादशनामभिरर्चनादि कथयित्वा 'अतःपरं नोपवासः' (१७) इत्यादिनोपसजहार ... ... .. | २४२ |
| ११० | १० | 'अङ्गानां रूपसौभाग्यम्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने तदुत्तरं कथयन् भीष्मो 'मार्गशीर्षस्य मासस्य' (३) इत्यादिना चान्द्रव्रतमुपदिदेश . . ... | २४३ |
| १११ | १३३ | 'श्रोतुमिच्छामि मर्त्यानां संसारविधिमुत्तमम्' (१) इत्यादिषु युधिष्ठिरप्रश्नेषु भीष्मस्तत्कालमागच्छन्तं बृहस्पतिं दृष्ट्वैनमनुयुंक्ष्वेत्यब्रवीत्। तत आगतं बृहस्पतिं संपूज्य 'मर्त्यस्य कः सहायो वै' (९) इत्यादिना मर्त्यस्य कः सहायः को वैनं मृतमनुगच्छतीति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति सः 'एकः प्रसूयते राजन्' (११) इत्यादिनाऽसहायत्वं प्रतिपाद्य 'धर्म एकोऽनुगच्छति' (१४) इत्युवाच। 'शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिस्तु मम जायते' (२०) इत्यादिना धर्मानुगमनमाक्षिपति युधिष्ठिरे 'पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तगः। बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा' (२१) इत्यादिना तदुपपत्तिं व्याजहार बृहस्पतिः। | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | 'कथं रेतः प्रवर्तते' (२७) इति युधिष्ठिरेणापृष्टो बृहस्पतिः 'अन्नमश्नन्ति यद्देवाः' (२८) इत्यादिना रेतःप्रादुर्भावादिकमाचचक्षे। 'जातः पुरुषो यथा प्रपद्यते तदुच्यताम्' (३१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो बृहस्पतिः 'आसन्नमात्रः पुरुषः' (३२) इत्यादिना तदुत्तरमाह स्म। 'जीवः स भगवन्कस्थः सुखदुःखे समश्नुते' (३४) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो बृहस्पतिः 'कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते। जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे निगदतः शृणु' (४१) इत्यादिना जीवस्य सुखदुःखभागित्वमाख्याय कर्मानुरोधेन प्राप्यान् गतिविशेषानप्याचष्ट... .. | २४७ |
| ११२ | ३१ | 'धर्मस्य गतिं श्रोतुमिच्छामि' (१) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो बृहस्पतिः 'कृत्वा पापानि कर्माणि' (३) इत्यादिनाऽधर्मगतिमनूद्य धर्मगतिं प्रदर्श्य दानप्रशंसापूर्वकमन्नदानादिना शुभगतिप्राप्त्यादिकं व्याहार्षीत्... ... | २४८ |
| ११३ | ११ | 'अहिंसादीनां मध्ये किं श्रेयः' (१) इति पृच्छन्तं युधिष्ठिरं प्रति 'सर्वाण्येतानि धर्म्याणि' (२) इत्याद्यभिधाय स्वर्गं जगाम बृहस्पतिः .. .. | २४९ |
| ११४ | १९ | 'कर्मणा मनसा वाचा' हिंसां कुर्वन् कथं दुःखान्मुच्यते' (२-३) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः 'चतुर्विधेयं निर्दिष्टा' (४) इत्यादिना अहिंसाधर्ममाख्याय मांसभक्षणनिषेधं तद्भक्षणे दोषं चाभ्यधात् ... ... . | २५० |
| ११५ | ८५ | 'अहिंसा परमो धर्मः' (१) इत्यादिना इदानीमहिंसाधर्मं प्रतिपादयतः पूर्वं मांसैर्बहुविधैः श्राद्धविधिं प्रतिपादितवतश्च विरोधमुद्भाव्य 'दोषो भक्षयतः कः स्यात्' (३) इत्यादि पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मः 'मांसस्याभक्षणाद्राजन्' (७) इत्यादिना अहिंसाधर्मं प्रतिपादयन्मांसभक्षणाभक्षणयोर्दोषगुणावभ्यधात् | २५३ |
| ११६ | ४२ | 'इमे वै मानवा लोके' (१) इत्यादिना मांसाभक्षणे ये गुणास्तद्भक्षणे ये च दोषास्तान् कथयेति पुनर्युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'न मांसात्परम किंचित्' (७) इत्यादिना मांसस्य गुणान् 'विवर्जिते तु बहवः' (१०) इत्यादिना तद्विवर्जने गुणांस्तद्भक्षणे बहून् दोषांश्चाभिधाय मृगयायां क्षत्रियाणां तद्भक्षणे दोषाभावं सर्वेषु दयावतः प्रशंसापूर्वकं मांसमभक्षयतः स्वर्गादिफलं च प्रतिपाद्य 'अहिंसा परमो धर्मः' (३८) इत्याद्युपदिदेश... .. .. .. | २५४ |
| ११७ | २९ | युद्धे मृतानां गतिज्ञानार्थं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः 'समृद्धौ वाऽसमृद्धौ वा' (३) इत्यादिनाऽस्मिन्संसारे समायाताः प्राणिनो येन भावेन शुभे वाऽशुभे वा निरतास्तत्र कारणं कथयामीति प्रतिज्ञायैतद्विषये व्यासकीटसंवादरूपमितिहासमाह स्म। शकटमार्गे संत्रस्तो धावन् कीटः सर्वज्ञेन व्यासेन 'कीट संत्रस्तरूपोऽसि' (९) इति पृष्टः 'शकटो मां न हन्यादिति भयेन पलायनं करोमि' (११) इत्युवाच। पुनः 'कीटयोनौ ते कुतः सुखम्' (१५) इति व्यासेन पृष्टः स तद्योनावपि सुखं प्रतिपाद्य स्वस्य पूर्वजन्मनो वृत्तान्तं तत्स्मृतिकारणं चाख्याय स्वस्यागामिसुखं पप्रच्छ ... | २५५ |
| ११८ | २४ | 'शुभेन कर्मणा यद्वै' (१) इत्यादिना व्यासेनोपदिष्टः कीटश्चक्रेण | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

भिन्नशरीरः क्षत्रियकुले जन्म प्राप। तत्रापि पुनर्व्यास आगत्य 'गोब्राह्मणकृते संग्रामे प्राणांस्त्यक्त्वा ब्राह्मण्यं प्राप्य ब्रह्मभूतो भविष्यसि' (२२-२३) इत्युवाच .. .. २५६

११९ १५ व्यासप्रसादाद्राजत्वं प्राप्तः कीटस्तपस्यस्तुष्टेन व्यासेन प्रजापालने नियुक्तस्तत्कुर्वंस्ततो वनं गतः प्रेत्य ब्राह्मण्यामवाप। तत्रापि व्यासोपदेशाद्धर्माचरणं कुर्वन्सनातनं ब्रह्म प्राप. २५७

१२० २७ 'विद्यातपोदानानां किं विशिष्यते' (१) इति युधिष्ठिरानुयुक्तो भीष्मो मैत्रेयव्याससंवादरूपेतिहासकथनमुखेनोत्तरमाह स्म। यदृच्छया चरन्व्यासः कदाचिद्वाराणस्यां मैत्रेयमागत्य तेन सत्कारपूर्वकं दत्तमन्नं भुक्त्वा विस्मितः सन्प्रातिष्ठत। तदा तेन विस्मयकारणं पृष्टस्तदाख्याय दानं प्रशशंस ... .. २५८

१२१ १७ व्यासादनुज्ञां संप्रार्थ्य भाषमाणो मैत्रेयः 'निर्दोषं निर्मलं चैवं वचनं दानसंहितम्' (४) इत्यादिना पात्रगुणाधीनत्वं दानफलस्याभिधाय 'तपः श्रुतं च योनिश्च'(७) इत्यादिना तात्पर्यविधया तपःश्रुते प्रशशंस ... .. . २५९

१२२ २० व्यासो मैत्रेयप्रसंसापूर्वकम् 'अहं दानं प्रशंसामि' (५) इत्यादिना तपोविद्ये अपि प्रशस्य दानप्रशंसापूर्वकं पुनरुपदिदेश। मैत्रेयश्च तं प्रणम्य प्रदक्षिणीकृत्य च गमनमनुजज्ञे . २६०

१२३ २२ 'सत्स्त्रीणां समुदाचारम्' (१) इत्यादिना सत्स्त्रीसमुदाचारं पृच्छति युधिष्ठिरे भीष्मः सुमनानाम्न्याः कैकेय्याः शाण्डिल्याश्च संवाद द्वारीकृत्य तं व्याजहार २६१

अ० श्लो० विगय पृष्ठम्

१२४ ३९ 'सामदानयोर्मध्ये किं ज्यायः' (१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः साम्नो गुणानभिधाय तद्विषये केनचिद्रक्षसा धृतस्य साम प्रयोजयतो ब्राह्मणस्य 'केनास्मि हरिणः कृशः' (७) इति राक्षसप्रश्नोत्तरं दानाख्यानमाख्याति स्म २६२

१२५ ८४ 'श्रेयोर्थिना दरिद्रेण किं कर्तव्यम्' (१) इति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मः 'शृणुष्वावहितो राजन् धर्मगुह्यानि भारत' (४) इत्यादिना धर्मगुह्यानि कथयन् देवदूतपितृसवादमुखेन श्राद्धविधिं शक्रविद्युत्प्रभबृहस्पतिवाक्यानि तथा देवतर्षिपितृसंवादमुखेन पितृतृप्तिप्रदं नीलवृषोत्सर्गं तद्विधिं चाचष्ट . .. २६५

१२६ ५० 'केन ते च भवेत्प्रीतिः' (१) इत्यादिनेन्द्रविष्णुसंवादमुखेन ब्राह्मणादिपूजनस्य विष्णुतुष्टिहेतुत्वं बलदेववाक्यात्प्रातर्गवादिस्पर्शस्य पापनाशहेतुत्वं देवानां वाक्यादुपवासग्रहणव्रतसंकल्पादिविधिं धर्मवाक्यादतिथिपूजनमग्निवाक्याद्गोब्राह्मणाग्नीनां पादस्पर्शनिषेधं विश्वामित्रवाक्याद्गजच्छायाश्राद्धमाहात्म्यं गोवाक्यात् 'बहुले समङ्गे' (३८) इति मन्त्रेण गोवन्दनादिकं सप्तर्षिब्रह्मसंवादमुखेन दरिद्रस्य यज्ञफलप्राप्तिसाधनं चाभिदधाति स्म भीष्मः ... ... . २६७

१२७ १९ विभावसुवाक्येन सोमस्यार्घ्यदानादिकं, श्रीवाक्येन प्रकीर्णभाजनादिवर्जनमङ्गिरोवाक्येन सुवर्चलामूलहस्तेन करञ्जके संवत्सरं दीपदानस्य प्रजावर्धकत्वं, गार्ग्यवाक्येनातिथ्यदीपदानादिकं, धौम्यवाक्येन भिन्नभाण्डा

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | दिवर्जनं, जमदग्निवाक्येन हृदयशुद्धेः कर्मफलशुद्धिहेतुत्वं चाभ्यधाद्भीष्मः . . | २६८ |
| १२८ | ११ | 'किञ्चिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि' (१) इत्यादिना वायूक्तं मनुष्यसुखावहं धर्मरहस्यमब्रवीद्भीष्मः | २६९ |
| १२९ | १२ | लोमशोक्तं परदारवर्जनादिकं धर्मरहस्यम् .. . | २६९ |
| १३० | ४० | अरुंधतीकथितं कपिलादानादिकं धर्मरहस्यम्। ऋषीन्प्रति यमेनाभिहितं चित्रगुप्तोक्तधर्मरहस्यम् .. ... | २७१ |
| १३१ | १२ | देवर्षिपितृप्रश्नानुरोधेन प्रमथैः कथितं धर्मरहस्यम् . | २७१ |
| १३२ | १७ | रेणुकप्रश्नानुरोधेन दिग्गजैः कथितं धर्मरहस्यम् ... | २७१ |
| १३३ | ९ | महादेवाभिहितं धर्मरहस्यम् ... ... .. | २७३ |
| १३४ | १७ | स्कंदेनोपादिष्टं धर्मरहस्यं विष्णुकथितं सर्वधर्मरहस्यश्रवणफलं च ... ... . | २७३ |
| १३५ | २१ | 'के भोज्या ब्राह्मणस्येह' (१) इत्यादिना युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो ब्राह्मणादीना भोज्यानाख्याय शूद्राद्यन्नभोजने दोषानप्यभ्यधात् . | २७४ |
| १३६ | २५ | ब्राह्मणस्य हव्यकव्ययोः प्रतिग्रहे भोज्ये च प्रायश्चित्तानि शुश्रूषुर्युधिष्ठिरो यदपृच्छत्तस्योत्तरं वदन्भीष्मो घृतादिप्रतिग्रहप्रायश्चित्तान्याख्याय मृतकस्य तृतीयदिनभोजनादीनां तान्याचष्ट . | २७५ |
| १३७ | ३२ | 'दानेन वर्ततेत्याह' (१) इत्यादिना दानतपसोर्मध्ये किं श्रेष्ठमित्यभिप्रायके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'शृणु यैर्धर्मनिरतैः' इत्यादिना दानं प्रशंसंस्तेनात्रेयादीनामुत्तमलोकावाप्तिमाख्यत् . . | २७६ |
| १३८ | ११ | 'दानं कतिविधं देयम्' (२) इत्यादिना युधिष्ठिरेण कृतेषु प्रश्नेषु भीष्मः 'शृणु तत्त्वेन कौन्तेय' (४) इत्यादिना दानस्य पंचविधत्वकथनपूर्वकं तत्फलादिकं व्याजहार . . | २७७ |
| १३९ | ५० | 'पितामह महाप्राज्ञ' (१) इत्यादिना प्रशंसापूर्वकं युधिष्ठिरेणोक्तो भीष्मस्तद्वाक्यं श्रुत्वा 'अस्य विष्णोः शंकरस्य च प्रभावं रुद्ररुद्राणीसंवाद च कथयामि' (८-९) इति प्रतिजज्ञे। द्वादशवार्षिकं व्रतं चरन्तं श्रीकृष्णं द्रष्टुं नारदादय आजग्मुः, ते च श्रीकृष्णेन सत्कृतास्तत्समीप उपविश्य मधुरा धर्मसहिताः कथाश्चक्रुः। एतदन्तरेऽकस्माद्भगवन्नेत्रनिर्गतो वह्निः सर्वं पर्वत दग्ध्वा भगवत्पादावस्पृशत्। भगवांश्चाग्निना दग्धं पर्वतं सौम्यैर्दृष्टिपातैः पुनः प्रकृतिस्थं चकार। एतदाश्चर्यदर्शनेन विस्मिता मुनयो भगवता विस्मयकारणं पृष्टाः सन्तः 'प्रथम वह्नेर्निर्गमनादिक ब्रूहि पश्चाद्यच्छ्रुतं यच्च दृष्टं तद्वक्ष्यामहे' (२६-२९) इत्यूचुः। भगवान्वासुदेवः 'व्रतचर्यापरीतस्य' (३२) इत्यादिना आत्मसमपुत्रलाभार्थं व्रत चरितवतो ममायमात्मा मद्वक्त्रादग्निरूपेण निःसृत्य ब्रह्माण द्रष्टुं गतस्तेन 'तेजसोऽर्धेन पुत्रस्ते भवितेति वृषध्वजः' इत्युक्तो ममांतिकमागत्य शान्तोऽभूदित्याख्याय तान्प्रति यच्छ्रुतं यच्च वो दृष्टं तद्ब्रुवन्तु भवन्त इत्युवाच। तैश्च तत्कथयितु प्रेरितो नारदो वक्तुमुपचक्रमे . . | २७९ |
| १४० | ५१ | पुण्ये हिमवति गिरौ तपश्चरन् महादेवो महर्षिभिरभिवंदितचरणः सभायामुपविवेश। तदोमा पार्श्वत आगत्य नर्मार्थं महादेव- | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

स्य नेत्रे पाणिभ्यां समावृणोत्। तदा सर्वस्मिँल्लोके नष्टालोकेऽकस्मात्तस्य ललाटे तृतीयं नेत्रं समभूत्। तत्तेजसा दग्धं हिमालयं पुनरुमाप्रार्थनया भगवान्प्रकृतिस्थं चक्रे। तत उमाप्रश्नानुरोधेन तृतीयनेत्रोत्पत्तिकारणादिकमभिधाय 'भगवन् केन ते वक्त्रम्' (४६) इत्यादिना पुनरुमयाऽनुयुक्तो महादेवस्तदाख्यातुमुपचक्रमे.. २८०

१४१ ११५ उमया पृष्टो महादेवः 'तिलोत्तमा नाम पुरा' (१) इत्यादिना स्वस्य वक्त्रचतुष्टयप्रादुर्भावकारणं जटिलत्वनीलकण्ठत्वकारणे वृषभध्वजत्वकारणं चाख्यातवान्। 'निवासा बहुरूपास्ते' (१३) इत्यादिनोमया श्मशाननिवासकारणे पृष्टे महादेवो 'मेध्यान्वेषी' (१६) इत्यादिना तदब्रवीत्। 'धर्मः किंलक्षणः प्रोक्तः' (२३) इत्यादिना धर्मलक्षणे उमया पृष्टे महादेवः 'अहिंसा, सत्यवचनम्' (२५) इत्यादिना धर्मस्य पञ्चविधत्वमाख्याय पुनरुमाप्रश्नानुरोधेन 'रहस्यश्रवण धर्मः' (३५) इत्यादिना चातुर्वर्ण्यधर्मानाचष्ट। सर्वसाधारणं धर्मं श्रोतुमुमया पृष्टो महेश्वरः 'ब्राह्मणा लोकसारेण' (६२) इत्यादिना ब्राह्मणधर्मकथनपुरःसरं त्रिवर्गसाधारणं धर्ममाख्याय मोक्षसाधनभूतं निवृत्तिधर्मं 'निवृत्तिलक्षणस्त्वन्यः' (८०) इत्यादिना बभाषे। ऋषिधर्मं ज्ञातुमुमया पृष्टो महेश्वरो 'हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि' (९५) इत्यादिना तमब्रवीत् ... ... ... २८४

१४२ ५९ 'देशेषु रमणीयेषु' (१) इत्यादिना वानप्रस्थधर्मेषु मया पृष्टेषु महादेवः 'वानप्रस्थेषु यो धर्मः' (४) इत्यादिना समुदैरयत्। 'ज्ञानगोष्ठीषु ये संसिद्धा वनवासिनः। स्वैरिणो दारसंयुक्तास्तेषां धर्मं कथय' (२०-२१) इत्युमयाऽनुयुक्तो महेश्वरः 'स्वैरिणस्तपसा देवि सर्वे दाराविहारिणः' (२२) इत्यादिना तमभ्यधात्। 'आश्रमाभिरतास्तापसादयः केन कर्मणा फलं प्राप्नुवन्ति' (३४) इत्यादिके उमाप्रश्ने 'उपवासव्रतैर्दान्ता' (३८) इत्यादिनोत्तरमाह स्म महादेवः २८६

१४३ ५९ 'केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम्' (२) इत्यादिना केन कर्मविपाकेन वैश्यः शूद्रतां, क्षत्रियो वैश्यतां, द्विजः क्षत्रियतां, विप्रः शूद्रतां, क्षत्रियश्च शूद्रतां, यातीत्यादिके उमाप्रश्ने 'ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापम्' (६) इत्यादिना ब्राह्मणादिकर्मकथनपूर्वकं तत्तत्कर्मव्यत्ययादिना तत्तदन्नभक्षणादिना च प्रातिलोम्यं भवतीत्याह स्म महादेवः . ... २८८

१४४ ६० 'धर्माधर्मौ नृणां ब्रूहि' (१) इत्यादिनोमया कृतेषु प्रश्नेषु तदुत्तरं वदन्महादेवः 'देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे' (४) इत्यादिना कर्मबन्धनिवृत्तिहेतूनि कर्माण्यभिदधदर्थात्तद्विपरीतानि बन्धहेतूनीत्यभ्यधात्। 'वाचा तु बध्यते येन' (१८) इत्यादिनोमया पृष्टो महादेवः 'आत्महेतोः परार्थे वा' (१९) इत्यादिना बंधनिवृत्तिहेतुं वाचमभिदधदर्थात्तद्विपरीतां बन्धहेतुं व्याजहार। 'मनसा बध्यते येन' (२८) इत्यादिनोमया पृष्टो महादेवः 'मानसेनेह धर्मेण' (२९) इत्यादिना बन्धनिवृत्तिहेतून् मानसव्यापारानभिदधदर्थात्तद्विपरीतान्बन्धहेतूनवोचत्। 'केनायुर्लभते दीर्घम्' (४२) इत्यादिना दीर्घायुष्ट्वाल्पायुष्ट्वादिकारणे उमया

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

पृष्टे महादेवः 'हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि' (४८) इत्यादिना तत्कथयति स्म . . . . २९०

१४५ ६४ 'किंशीलः किंसमचारः' (१) इत्यादिना पार्वत्या पृष्टो महादेवः 'दाता ब्राह्मणसत्कर्ता' (२) इत्यादिना स्वर्गगामिनस्तत्प्रसंगेन निरयगामिनश्चाचष्ट। 'इमे मनुष्या दृश्यन्ते' (४३) इत्यादिना केन कर्मविशेषेण प्रज्ञावदादयो भवन्तीति पार्वतीप्रश्ने महादेवः 'ब्राह्मणान्वेदविदुषः' (४७) इत्यादिना तदुत्तरमाख्याय 'सावद्यं किंतु वै कर्म' (५४) इत्यादि पार्वतीप्रश्ने पुनस्तदुत्तरं पुनः 'अपरे स्वल्पविज्ञानाः' इत्यादिप्रश्ने तदुत्तरं चाचख्यौ . २९२

१४६ ६१ स्त्रीधर्मान् ज्ञातुं महादेवेन पृष्टा पार्वती 'त्वद्दर्शनार्थमागताभिर्गंगादिभिः सह विचार्य कथयामि' (१३-१४) इत्यभिधाय ततो गङ्गयाऽनुज्ञाता सती स्त्रीधर्मान् कथयति स्म .. ... २९४

१४७ ६२ 'वासुदेवस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामः' (१) इति मुनिभिः पृष्टो महादेवो ब्रह्माणमारभ्य वसुदेवपर्यन्तं वंशपरंपरामभिधाय वसुदेवात्कृष्णजन्मादिवृत्तान्तं चाख्याय 'तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञः' (४५) इत्यादिना नमस्यत्वादिकमवादीत् ... ... .. २९६

१४८ ६६ 'अथ व्योम्नि महाञ्शब्दः' (१) इत्यादिना नारदेन शिवपार्वतीसंवादकथनोपसंहारे कृते मुनयः श्रीकृष्णं प्रणम्य प्रदक्षिणीकृत्य जग्मुः। भीष्म एतत्सर्वमाख्याय 'सोऽयं नारायणः' (१९) इत्यादिना श्रीकृष्णमाहात्म्यमभिधाय 'भगवांश्चाप्यार्जवपरः' (३७) इत्यादिना युधिष्ठिरमुपदिश्य 'एतदत्यद्भुतं वृत्तम्' (५४) इत्यादिनोपसञ्जहार। एतदाकर्ण्य धृतराष्ट्रादयो जहृषुः . .. २९८

१४९ १४२ 'किमेकं दैवतं लोके' (२) इत्यादिषु युधिष्ठिरप्रश्नेषु भीष्मः 'जगत्प्रभुं देवदेवम्' (४) इत्यादिनोत्तराण्यभिधाय 'विष्णोर्नामसहस्रं मे' (१२) इत्याद्युक्त्वा 'ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारः' (२४) इत्यादिना विष्णुसहस्रनामान्याख्याय तच्छ्रवणादिफलं चाचख्यौ ... ३०३

१५० ८२ 'किं जप्यं जपतो नित्य भवेद्धर्मफलं महत्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो 'व्यासप्रोक्तां सावित्रीं शृणु' (४) इत्युक्त्वा 'नमो वसिष्ठाय' (१०) इत्यारभ्य 'पापस्य सुकृतस्य च' (५८) इत्यन्तेन सावित्रीमुपदिश्य 'एतान्वै कल्यमुत्थाय' (५९) इत्यादिना तत्पाठफलमब्रवीत् ३०५

१५१ २३ 'के पूज्याः के नमस्कार्याः' (१) इत्यादिना युधिष्ठिरेणानुयुक्तो भीष्मो ब्राह्मणानां परिभवः' (२) इत्यादिना प्रशंसापूर्वकं ब्राह्मणानां पूज्यत्वादिकमनुजगाद ३०६

१५२ २८ 'कां तु ब्राह्मणपूजायाम्' (१) इत्यादिना किं फलं कं च कर्मोदयं दृष्ट्वा ब्राह्मणानर्चयसीति युधिष्ठिरस्यानुयोगे भीष्मः 'अत्राप्युदाहरन्तीमम्' (२) इत्यादिना ब्राह्मणाना पूज्यत्वे पवनार्जुनसंवादेतिहासं कथयति स्म। दत्तात्रेयवरप्रदानेन लब्धसहस्रबाहुरर्जुनो वीर्यमदात् 'को वाऽस्ति सदृशो मम' (१२) इत्याद्युवाच। तद्वाक्यान्ते 'न त्वं मूढ विजानीषे' (१४) इत्याद्याकाशवाणीं श्रुत्वा 'कुर्यां भूतानि तुष्टोऽहम्' (१५) इत्यादिना तामाक्षिपन्तं तं प्रत्यन्तरिक्षस्थो वायुः 'त्यजैनं

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कलुषं भावम्' (२४) इत्याद्युवाच। तेन पुनः कस्त्वमित्युक्तो वायुरात्मानं कथयति स्म। स च पुनस्तं पप्रच्छ . ... ... | ३०७ |
| १५३ | १९ | 'शृणु मूढ गुणान् कांश्चित्' (१) इत्यादिना कश्यपादिनिदर्शनकथनपूर्वकं ब्राह्मणान् प्रशशंस वायुः ... ... ... . | ३०८ |
| १५४ | ३२ | 'इमां भूमिं द्विजातिभ्यो दित्सुर्वै दक्षिणां पुरा' (१) इत्यादिनाङ्गराजेन द्विजातिभ्यो दाक्षिणात्वेन दीयमाना पृथ्वी क्रुद्धा सती स्थूलं स्वशरीरं त्यक्त्वा यदा ब्रह्मलोकं जगाम तदा कश्यपो मह्या त्यक्तं देहं योगबलेन प्राविश्य दिव्यानि त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स्वयं भूमिरभूत्। ततः प्रभृति भूः काश्यपी जज्ञे इत्याख्यायिकामाह वायुः। पुनर्वायुरुतथ्यकथां कथयन् वरुणकृतमुतथ्यभार्याहरणमुतथ्यप्रेषितस्य नारदस्य वरुणकृतं प्रत्याख्यानमुतथ्यदत्तं वरुणशापं शापभीतेन वरुणेन कृतमुतथ्याय तद्भार्यासमर्पणमुतथ्यकृतवरुणमोचनादिकं चाख्यायोतथ्यो वरः क्षत्रियो वा वर इति ब्रूहीत्युवाच .. .. .. .. ... | ३१० |
| १५५ | २६ | तूष्णींभूते सहस्रार्जुने वायुर्देवप्रार्थनयाऽगस्त्येन स्वतेजसा कृतं दानवहननं तथा इन्द्रप्रार्थितेन वसिष्ठेन कृतं खलिदानवहननादिकं चाभिधाय वसिष्ठो वरः क्षत्रियो वा वर इति वदेत्यवादीत ... . . ... .. | ३१० |
| १५६ | ३५ | तूष्णींभूतेऽर्जुने पुनर्वायुस्तमसि प्रवृत्ते दानवैर्युध्यमाना देवा यदा पराबभूवुस्तदेन्द्रप्रार्थनयाऽत्रिः सोमसूर्यात्मको भूत्वा दानवान्ददाह । तत्तेजसा देवा अपि तान् जघ्नुरित्युक्त्वा च्यवनेऽश्विनोः सोमग्रहं दातुं प्रवृत्ते तं हन्तुमिन्द्रेणोद्यतं वज्रं स्तम्भयित्वेन्द्रपराभवार्थं तत्कृतं मदासुरनिर्माणादिकं चाख्याय 'ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं क्षत्रियं ब्राह्मणाद्वरम्' (३५) इत्युवाच .. | ३१२ |
| १५७ | २७ | तूष्णींभूतेऽर्जुने पुनर्वायुः 'मदास्यगतेषु देवेषु तत्काले च्यवनेन भूमौ हृतायां देवा ब्रह्माणं शरणं गत्वा द्यौः कपैराक्रान्ता भूश्च च्यवनेनाक्रान्ता' इत्याचख्युः। ततो ब्राह्मणान् शरणं गच्छतेति ब्रह्माज्ञया शरणमागत्य देवैः कपहननार्थं प्रार्थिता ब्राह्मणा ज्वालितानग्नीन् पृष्ट्वा कपान् जघ्नुरित्याद्याह स्म । वायूपदेशादर्जुनो 'जीवाम्यहं ब्राह्मणार्थम्' (२४) इत्याद्युवाच । वायुश्च तं प्रति ब्राह्मणान् क्षात्रधर्मेण इत्याद्युवाच ... ... ... | ३१३ |
| १५८ | ४६ | 'ब्राह्मणानर्चसे राजन्' (१) इत्यादिके युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मः 'एष ते केशवः सर्वमाख्यास्यति महामतिः' (३) इत्याद्युक्त्वा भगवन्माहात्म्यं व्याजहार | ३१६ |
| १५९ | ५६ | 'ब्रूहि ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं त्वं मधुसूदन। वेत्ता त्वमस्य चार्थस्य वेद त्वां हि पितामहः' (१) इति युधिष्ठिरेण पृष्टः कृष्णः 'प्रद्युम्नं प्रति यदहमब्रुवं तत्कथयामि' (२-६) इत्याह स्म। 'किं फलं ब्राह्मणेष्वस्ति' (३) इत्यादि पृच्छन्तं प्रद्युम्नं प्रति 'व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायाम् (७) इत्याद्युक्त्वा ब्राह्मणान् प्रशस्य 'अवसन्मद्गृहे तात ब्राह्मणो हरिपिङ्गलः' (१४) इत्याद्यवोचम्। 'दुर्वाससं वासयेत्को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे' (१६)इत्यादिगाथा गायन्तं दुर्वाससमहं स्वगृहे | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

ऽवासयं स च कदाचिद्बहूनां सहस्राणामन्नं बुभुजे, कदाचित्स्वल्पम्। कदाचित्स गृहान्निर्गतो न पुनराजगाम। कदाचिद्गृहमागत्य सशय्यास्तरणं गृहं दग्ध्वा निर्गतः पुनरागत्य 'कृष्ण पायसमिच्छामि' (२२) इत्युवाच। ततो मया निवेदितं पायसं भुक्त्वा अवशिष्टेन पायसेनाङ्गानि लिम्पस्व इति तेनाज्ञप्तोऽविमृश्याङ्गानि न्यलेपयं तदनुज्ञया त्वन्मातू रुक्मिण्या अप्यङ्गानि न्यलेपयम्। उभावप्यावां रथे धुर्यवद्योजयित्वा स्वयंरथारूढो रुक्मिणी प्रतोदेन तुदन् राजमार्गेण निर्जगाम। व्रजति तस्मिञ्श्रमाद्रुक्मिण्यां स्खलितायां रथात्प्रस्कद्योत्पथेन धावन्तं तमन्वहमप्यधावम्। तदा जितक्रोधं मां दृष्ट्वा सुप्रसन्नो मह्यं रुक्मिण्यै च वरान् दत्त्वाऽन्तर्दधे। अहं च 'यत्किंचिद्ब्राह्मणो ब्रूयात्तत्सर्वं कुर्याम्' (५१) इत्येतद्व्रतं कृत्वा गृहं प्राविशम् .. ... ३१८

१६० ४४ 'दुर्वाससः प्रसादाद्यद्विज्ञानं प्राप्तं तदाख्यातुमर्हसि' (१) इति युधिष्ठिरप्रश्ने प्रातः स्वेन क्रियमाणं शतरुद्रीयजपं दक्षयज्ञविध्वंसनप्रकारं, त्रिपुरहननप्रकारं, चाचष्ट श्रीकृष्णः ३१९

१६१ २९ पुनः श्रीकृष्णो 'युधिष्ठिरमहाबाहो' (१) इत्यादिना रुद्रस्य महाभाग्य निबोधेत्युक्त्वा तस्य घोरसौम्ये तनू निरूप्येश्वरादिनाम्नां निर्वचनादिक व्यवृणोत् ... ३२०

१६२ ६३ 'निर्णयविषये प्रत्यक्षागमयोर्मध्ये किं कारणम्' (२) इति युधिष्ठिरानुयोगे 'नास्त्यत्र संशयः कश्चिदिति मे वर्तते मतिः। शृणु वक्ष्यामि ते प्राज्ञ सम्यक्त्वं मेऽनुपृच्छसि' (३) इत्यादिनाऽऽगमबलीयस्त्वतात्पर्यकमुत्तरं जगाद भीष्मः। प्रत्यक्षानुमानागमानां मध्ये किं प्रबलं प्रमाणमिति युधिष्ठिरप्रश्ने भीष्मो 'धर्मस्य ह्रियमाणस्य' (११) इत्यादिना वेदस्यैव मुख्यं प्रामाण्यं प्रत्यक्षानुमानयोर्व्यभिचारित्वादित्येतत्तात्पर्यकमुत्तरमब्रवीत्। 'वेदप्रत्यक्षाचाररूपप्रमाणत्रैविध्ये धर्मस्यैकत्वं कथम्' (१७ १८) इति युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मो 'धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः। यद्येवं मन्यसे राजंस्त्रिधा धर्मविचारणा' (१९) इत्यादिना एक एव धर्मः प्रमाणत्रितयसंवादेन परीक्षणीय इत्येतत्तात्पर्यकमुत्तरमदात्। धर्ममसूयतां तत्पर्युपासकानां च गतिं पृष्टो भीष्मो 'रजसा तमसा चैव' (२८) इत्यादिना तां कथयति स्म। युधिष्ठिरस्यासाधुसाधुरूपादिजिज्ञासया प्रश्ने 'दुराचाराश्च दुर्धर्षाः' (३३) इत्यादिनोत्तरमभिदधदसाधून् साधूंश्चाख्याय तेषामाचरणं चाह भीष्मः... .. .. .. ३२३

१६३ १४ 'नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि' इत्याद्यभिदधानं युधिष्ठिरं प्रति भीष्मः ईहमानः समारम्भानित्यादिना सुखाद्याप्तौ प्रमाणं कर्मैवेति बुद्ध्वा स्थिरो भवेत्युवाच .. .... ३२४

१६४ १५ 'कार्यते यच्च क्रियते' (१) इत्यादिनाऽध्यायेन धर्मप्रशंसापूर्वकं भीष्मस्योपदेशः . .......३२५

१६५ ८ किं श्रेयः पुरुषस्येह किं कुर्वन्सुखमेधते। विपाप्मा स भवेत्केन किं वा कल्मषनाशनम्' (२) इति युधिष्ठिरानुयुक्तो भीष्मो 'अयं दैवतवंशो वै' (३) इत्यादिना

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | त्रिसन्ध्यं पठनात्कल्मषहरं दैवतवंशं गङ्गादिनदीर्हिमवदादिपर्वतान्पूर्वादिदिग्गवस्थितान्यवक्रीतादिऋषीन् नृगादिराजर्षींश्चाकथयत् . . . ... . | ३२७ |
| १६६ | १७ | जनमेजयस्य 'शरतल्पगते भीष्मे' (१) इत्यादिके प्रश्ने वैशम्पायनः 'अभून्मुहूर्तं स्तिमितम्' (४) इत्यादिना सर्वेषु तूष्णीं भूतेषु व्यासप्रेरितेन भीष्मेणानुज्ञातो युधिष्ठिरो धृतराष्ट्रादीन् पुरस्कृत्य हस्तिनापुर जगामेत्याह स्म | ३२७ |


---

## (२) भीष्मस्वर्गारोहणपर्व ३२८–३३२


| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १६७ | ५२ | युधिष्ठिरो हस्तिनापुरमागत्य नारीः सान्त्वयित्वा उदगयने प्रवृत्ते भीष्मसंस्कारार्थं सामग्रीसहितो निर्गत्य भीष्मं प्रति 'युधिष्ठिरोऽहं नृपते' (१९) इत्याद्युवाच। भीष्मो भारतादीन्दृष्ट्वा युधिष्ठिरं प्रति 'दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय' (२६) इत्याद्यभिधाय धृतराष्ट्रं प्रति 'राजन्विहितधर्मोऽसि' (३०) इत्याद्युपदिश्य श्रीकृष्णं प्रति 'भगवन्देवदेवेश' (३७) इत्यादिना 'त्वयाऽहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम्' (४५) इत्यन्तमभ्यधात्। वसुलोकप्राप्त्यर्थं श्रीकृष्णेन प्रशंसापूर्वकमनुज्ञातो भीष्मः पाण्डवान्प्रति 'प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि' (४९) इत्याद्युवाच . .. . . . . | ३२९ |
| १६८ | ३७ | योगेन प्राणधारणां कृत्वा भीष्मे स्वर्गमारूढे युधिष्ठिरादयश्चन्दनादिना भीष्मशरीर दाहेन संस्कृत्योदकदानार्थं गङ्गां जग्मुः। युधिष्ठिरादिभिरुदकदाने कृते उदकान्निर्गत्य भीष्मपराक्रमकथनपूर्वकं विलापं कुर्वती गङ्गा कृष्णव्यासाभ्यां बोधिता विशोका सती पुनर्जलं प्रविवेश। गङ्गयाऽनुज्ञाताश्च सर्वे न्यवर्तन्त | ३३१ |


॥ इत्यनुशासनपर्वविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

# अनुशासनपर्व

१३

ॐ

# ॥ महाभारतम् ॥

## अनुशासनपर्व ।

## -१३-

### दानधर्मपर्व १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।
शमो बहुविधाकारः सूक्ष्म उक्तः पितामह ।
न च मे हृदये शान्तिरस्ति श्रुत्वेदमीदृशम् १
अस्मिन्नर्थे बहुविधा शान्तिरुक्ता पितामह ।
स्वकृते का नु शान्तिः स्याच्छमाद्बहुविधादपि

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
यज्ज्योतिस्तमसः परं महदहो
निर्माय रूपाणि त-
न्नामानि प्रविभज्य च व्यवहर-
त्येतैर्गुहायां गतम् ॥
आनन्दैकरसं तदद्वयमथो
तन्मायया देवकी-
कुन्तीसत्यवतीषु जन्म धृतवत्
कृष्णत्रयं पातु नः ॥ १ ॥
गोपाल-नारायण-लक्ष्मणार्यान्
धीरेश-गंगाधर-नीलकण्ठान् ॥
चिन्तामणिं साम्बशिवं च नत्वा
व्याकुर्महे भारतदानधर्मान् ॥ २ ॥
धर्मे त्रिषु द्रविणमप्सु काममोक्षा-
वेकत्र पर्वणि निरूपितवान्मुनीन्द्रः ।
तत्साधनानि सुबहूनि सहप्रमाणा-
न्यत्रानुशासनिकपर्वणि वर्णितानि ३

तत्र पूर्वस्मिन्पर्वणि शोकतरणोपायः सम्यङ्निरूपितस्तथाऽपि दृष्टदुःखं निदिध्यासनमन्तरेण न निवर्तत इति तत्प्रधानं प्रकरणमारभमाणः पूर्वं तावत्कृताकृतसंतापनिमित्तं कर्तृत्वाभिमानं त्याजयितुं प्रथममध्यायमारभते। तत्रापि युक्तिशतेनापि कर्तृत्वाभिमानस्य दुस्त्यजत्वं युधिष्ठिरप्रश्नमुखेनावतारयति-**युधिष्ठिर उवाच शमो बहुविधाकार इत्यादिना**। शमः शोकतरणोपायः बहुविधः कालादृष्टेश्वराद्यधीनोऽयं लोको न किंचित्कर्तुमीष्ट इत्यादिविवेकप्रकारः बह्वाकारः सर्वसंकल्पसंन्यासादिस्वरूपः सूक्ष्मो निर्विकल्पक उक्तः। तथापि तत्साक्षात्काराभावात् कृतं गोत्रवधाख्यं पापं मा तपत्येव तस्मात्कर्तृत्वादिदोषमपनेतुं निदिध्यासनाधिकारसिद्ध्यर्थं चेतःशुद्धिकरान्धर्मान् ब्रूहि यैर्विना पूर्वोक्तं सर्वं हृदये नावतिष्ठत इत्यभिप्रायः ॥१॥ **अस्मिन्निति**। यदि अचिंतितमेव जायते तत्कालादिकृत-

शराचितशरीरं हि तीव्रव्रणमुदीक्ष्य च ।
शर्म नोपलभे वीर दुष्कृतान्येव चिन्तयन् ३
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रस्रवन्तं यथाचलम् ।
त्वां दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्र सीदे वर्षास्विवांबुजम् ४
अतः कष्टतरं किं नु मत्कृते यत्पितामहः ।
इमामवस्थां गमितः प्रत्यमित्रै रणाजिरे ॥ ५
तथा चान्ये नृपतयः सहपुत्राः सबान्धवाः ।
मत्कृते निधनं प्राप्ताः किं नु कष्टतरं ततः ६
वयं हि धार्तराष्ट्राश्च कालमन्युवशंगताः ।
कृत्वेदं निन्दितं कर्म प्राप्स्यामः कां गतिं नृप
इदं तु धार्तराष्ट्रस्य श्रेयो मन्ये जनाधिप ।
इमामवस्थां संप्राप्तं यदसौ त्वां न पश्यति ८

सोऽहं तव ह्यन्तकरः
सुहृद्वधकरस्तथा ।
न शान्तिमधिगच्छामि
पश्यंस्त्वां दुःखितं क्षितौ ॥ ९

दुर्योधनो हि समरे सहसैन्यः सहानुजः ।
निहतः क्षत्रधर्मेऽस्मिन्दुरात्मा कुलपांसनः ॥

न स पश्यति दुष्टात्मा
त्वामद्य पतितं क्षितौ ।
अतः श्रेयो मृतं मन्ये
नेह जीवितमात्मनः ॥ ११
अहं हि समरे वीर
गमितः शत्रुभिः क्षयम् ।
अभविष्यं यदि पुरा
सह भ्रातृभिरच्युत ॥ १२

न त्वामेवं सुदुःखार्तमद्राक्षं सायकार्दितम् ।
नूनं हि पापकर्माणो धात्रा सृष्टाः स्म हे नृप

अन्यस्मिन्नपि लोके वै
यथा मुच्येम किल्बिषात् ।
तथा प्रशाधि मां राजन्
मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १४

भीष्म उवाच ।

परतन्त्रं कथं हेतु-
मात्मानमनुपश्यसि ।
कर्मणां हि महाभाग
सूक्ष्मं ह्येतदतीन्द्रियम् ॥ १५

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं मृत्युगौतम्योः काललुब्धकपन्नगैः १६
गौतमी नाम कौन्तेय स्थविरा शमसंयुता ।
सर्पेण दष्टं स्वं पुत्रमपश्यद्गतचेतनम् ॥ १७
अथ तं स्नायुपाशेन बद्ध्वा सर्पममर्षितः ।
लुब्धकोऽर्जुनको नाम गौतम्याः समुपानयत्
स चाब्रवीदयं ते स पुत्रहा पन्नगाधमः ।
ब्रूहि क्षिप्रं महाभागे वध्यतां केन हेतुना १९
अग्नौ प्रक्षिप्यतामेष छिद्यतां खण्डशोऽपि वा
न ह्ययं बालहा पापश्चिरं जीवितुमर्हति ॥ २०

गौतम्युवाच ।

विसृजैनमबुद्धिस्त्व-
मवध्योऽर्जुनक त्वया ।
को ह्यात्मानं गुरुं कुर्यात्
प्राप्तव्यमविचिन्तयन् ॥ २१
प्लवन्ते धर्मलघवो
लोकेऽम्भसि यथा प्लवाः ।
मज्जन्ति पापगुरवः
शस्त्रं स्कन्नमिवोदके ॥ २२

---

मिति मत्वा न धीमता शोकाय भवति यत्तु बुद्धिपूर्वं पापं कृतं तत्कथं मादृशान् आस्तिकान् शाब्दिकविवेकमात्रेण न तपेत् अपरोक्षस्य कर्तृत्वादिप्रत्ययस्य परोक्षेणाकर्तृत्वादिज्ञानेन निवर्तयितुमशक्यत्वादिति भाव. ॥ २ ॥ एतदेव शोककारणं विवृणोति—**शरेति**। त्वामिति शेष ॥३॥ सीदे सीदामि ॥ ४ ॥ मत्कृते मन्निमित्तं प्रत्यमित्रै अमित्राणा प्रतिकूलैरस्मदीयैरर्जुनशिखंडिप्रभृतिभि. ॥५॥**वयं हीति**। हिश्चार्थे काल ईश्वर मन्यु क्रोधः का गतिमूर्ध्वलोकं प्राप्स्यामो न कामपीत्यर्थ ॥७॥ अयशोग्रस्तानामस्माकं त्वयमपि लोको नष्टो न तु परेषामित्याह—**इदं त्वित्यादिना** ८ अभविष्यं ईश्वरश्चेत्स्याम्॥ १२ ॥ **अन्यस्मिन्निति**। जन्मान्तरेऽपि येन किल्बिषात् रागादिदोषान्मुच्येम तादृशं धर्मं ब्रूहि। शोकनाशकस्य तत्त्वज्ञानस्यानेकजन्मसाध्यत्वादिति भाव. ॥ १४ ॥ यदुक्तं स्वकृते का नु शांतिरिति तत्राह—**परेति** परतंत्रं कालादृष्टेश्वराधीनमात्मानं त्वं कथं कर्मणा हेतुं पुण्यपापयो कारण अनुपश्यसि न कथंचिदात्मनः कर्तृत्वं संभवतीति भाव.।कुतस्तर्ह्यहं करोमीत्यनुभव इत्याशंक्याह—**सूक्ष्म हीति**। आत्मन कर्तृत्ववदकर्तृत्वं न मानसप्रत्यक्षं किं त्वतींद्रियं। मनस्तु चक्षुरादिवदुष्टं सदन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यत इति भावः ॥ १५ ॥ कर्मप्रयोजकं देहेंद्रियादिसंघात प्रयोज्यस्तयोश्च बीजाकुरवदन्योन्यजन्यजनकत्वं परिशेषात्तु आत्मनोऽकर्तृत्वं सिद्ध्यतीत्यस्मिन्नर्थे आख्यायिकामाह—**अत्रापीति**॥१६॥ हेतुमेवाह—**अग्नाविति**॥२०॥ गुरुं पापभारेण नरके मज्जनयोग्यं प्राप्तव्यं लोकम्॥२१॥ प्लवन्ते दुःखार्णवं तरन्ति मज्जन्ति च तत्रैव ॥२२॥

हत्वा चैनं नामृतः स्यादयं मे
जीवत्यस्मिन्कोऽव्ययः स्यादयं ते।
अस्योत्सर्गे प्राणयुक्तस्य जन्तो-
र्मृत्योर्लोकं को नु गच्छेदनन्तम् ॥२३
लुब्धक उवाच।
जानाम्यहं देवि गुणागुणज्ञे
सर्वार्तियुक्ता गुरवो भवन्ति।
स्वस्थस्यैते तूपदेशा भवन्ति
तस्मात्क्षुद्रं सर्पमेनं हनिष्ये ॥ २४
शमार्थिनः कालगतिं वदन्ति
सद्यः शुचं त्वर्थविदस्त्यजन्ति।
×श्रेयःक्षयं शोचति नित्यमोहा-
त्तस्माच्छुचं मुञ्च हते भुजङ्गे ॥ २५
गौतम्युवाच।
आर्तिर्नैवं विद्यतेऽस्मद्विधानां
धर्मात्मानः सर्वदा सज्जना हि।
नित्यायस्तो बालकोऽप्यस्य तस्मा-
दीशे नाहं पन्नगस्य प्रमाथे ॥ २६
न ब्राह्मणानां कोपोऽस्ति
कुतः कोपाच्च यातनाम्।
मार्दवात्क्षम्यतां साधो
मुच्यतामेष पन्नगः ॥ २७
लुब्धक उवाच।
हत्वा लाभः श्रेय एवाव्ययः स्या-
ल्लभ्यो लाभ्यः स्याद्बलिभ्यः प्रशस्तः।
कालाल्लाभो यस्तु सत्यो भवेत
श्रेयोलाभः कुत्सितेऽस्मिन्न ते स्यात्

गौतम्युवाच।
का नु प्राप्तिर्गृह्य शत्रुं निहत्य
का कामाप्तिः प्राप्य शत्रुं न मुक्त्वा।
कस्मात्सौम्याहं न क्षमे नो भुजङ्गे
मोक्षार्थं वा कस्य हेतोर्न कुर्याम् २९
लुब्धक उवाच।
अस्मादेकाद्बहवो रक्षितव्या
नैको बहुभ्यो गौतमि रक्षितव्यः।
कृतागसं धर्मविदस्त्यजन्ति
सरीसृपं पापमिमं जहि त्वम् ॥ ३०
गौतम्युवाच।
नास्मिन् हते पन्नगे पुत्रको मे
संप्राप्स्यते लुब्धक जीवितं वै।
गुणं चान्यं नास्य वधे प्रपश्ये
तस्मात्सर्प लुब्धक मुञ्च जीवम् ॥३१
लुब्धक उवाच।
वृत्रं हत्वा देवराट् श्रेष्ठभाग्वै
यज्ञं हत्वा भागमवाप चैव।
शूली देवो देववृत्तं चर त्वं
क्षिप्रं सर्पं जहि मा भूत्ते विशङ्का ३२
भीष्म उवाच।
असकृत्प्रोच्यमानाऽपि
गौतमी भुजगं प्रति।
लुब्धकेन महाभागा
पापे नैवाकरोन्मतिम् ॥ ३३
ईषदुच्छ्वसमानस्तु कृच्छ्रात्संस्तभ्य पन्नगः।
उत्ससर्ज गिरं मन्दां मानुषीं पाशपीडितः ॥

---

**हत्वेति** ।।करणत्वं क्त्वार्थ. । भुक्त्वैव हि तृप्तो न तु पीत्वेतिवत् । एनं हत्वा एतस्य हननेनायं मे पुत्रो नामृत स्यात्किंतु मृत स मृत एव आस्मिन् जीवति ते तव कोऽर्थं अन्ययो नाश स्यान्न कोपीत्यर्थ । उत्सर्गे प्राणोत्सर्गे मृत्योर्लोकं नरकम् ॥ २३ ॥ सर्वार्तियुक्ता सर्वेषा पीडया पीडिता. स्वस्थस्यैव न तु दु खितस्य ॥ २४ ॥ **शमेति** । शमयुक्ता कालेनैवायं नाशित इति मत्वा शोकं त्यजन्ति । अर्थविद प्रतीकारज्ञा शत्रु हत्वैव सद्य शोकं त्यजन्तीत्यर्थ अन्यस्तु श्रेय क्षय सुखनाशं नित्य मोहाच्छोचति ॥ २५ ॥ आर्ति पुत्रशोकजा पीडा नित्यायस्तो नित्यमृत न ईशे न समर्थोऽस्मि ॥ २६ ॥ यातना पीडा परस्य ते कुत कुर्युर्न कुताश्चिदित्यर्थ । मार्दवात् मार्दवमवलम्ब्य ॥ २७ ॥ श्रेय परलोकहितं तदेव अव्ययो लाभ स च शत्रून् हत्वैव लभ्य इत्यध्याहृत्य योज्यम्। यथा यजमान पशुं निघ्नन्पशुमात्मानं च स्वर्गं नयत्येवं शूर परं स्वं चेत्यर्थ । ततश्च लाभ्यो लाभार्ह पुमाश्च बलिभ्य सर्वेभ्य प्रशस्त श्रेष्ठश्च स्यात्। शत्रुवधाल्लोकत्रयेऽपि मान्यो भवतीत्यर्थ. । यस्तु आस्मिन्सर्पे कुत्सिते बह्वपकारिणि हन्तव्ये कालाल्लाभोऽस्य मरणादिष्टसिद्धि स एव सत्यः शाश्वत श्रेयोलाभ स च ते तव एनं हन्तुमनिच्छन्त्या न स्यात्, तस्माद्धन्तव्य एवायमित्यर्थ ॥ २८ ॥ गृह्य निगृह्य कामाप्ति इष्टलाभ न मुक्त्वा दृटं बद्ध्वा नोऽस्माकमशत्रौ भुजंगे कस्मादहं न क्षमे अपि तु क्षमे एव। मोक्षणार्थं श्रेय कुर्यामिवेत्यर्थ ॥२९॥ त्यजन्ति नाशयन्ति ३० मे पुत्रको जीवितं न संप्राप्स्यते गुणं पुण्यं जीवं जीवन्तम् ॥३१॥ शूली यज्ञं हत्वेति संबध ॥३२॥ संस्तभ्य धैर्यमालंब्य ॥३४॥ ×'श्रिय क्षय शोचता नित्यशोहि' इति पा-

सर्प उवाच ।
को न्वर्जुनक दोषोऽत्र विद्यते मम बालिश
अस्वतन्त्रं हि मां मृत्युर्विवशं यदचूचुदत् ३५
तस्यायं वचनाद्दष्टो न कोपेन न काम्यया ।
तस्य तत्किल्बिषं लुब्ध विद्यते यदि किल्बिषं
लुब्धक उवाच ।
यद्यन्यवशगेनेदं कृतं ते पन्नगाशुभम् ।
कारणं वै त्वमप्यत्र तस्मात्त्वमपि किल्बिषी॥
मृत्पात्रस्य क्रियायां हि दण्डचक्रादयो यथा ।
कारणत्वे प्रकल्प्यन्ते तथा त्वमपि पन्नग॥ ३८
किल्बिषी चापि मे वध्यः
किल्बिषी चासि पन्नग ।
आत्मानं कारणं ह्यत्र
त्वमाख्यासि भुजङ्गम ॥ ३९
सर्प उवाच ।
सर्वं एते ह्यस्ववशा दण्डचक्रादयो यथा ।
तथाऽहमपि तस्मान्मे नैष दोषो मतस्तव ॥
अथवा मतमेतत्ते तेऽप्यन्योन्यप्रयोजकाः ।
कार्यकारणसन्देहो भवत्यन्योन्यचोदनात्॥
एवं सति न दोषो मे
नास्मि वध्यो न किल्बिषी ।
किल्बिषं समवाये स्या-
न्मन्यसे यदि किल्बिषम् ॥ ४२

लुब्धक उवाच ।
कारणं यदि न स्याद्वै
न कर्ता स्यास्त्वमप्युत ।
विनाशकारणं त्वं च
तस्माद्वध्योऽसि मे मतः ॥ ४३
असत्यपि कृते कार्ये नेह पन्नग लिप्यते ।
तस्मान्नात्रैव हेतुः स्याद्वध्यः किं बहु मन्यसे ॥
सर्प उवाच ।
कार्याभावे क्रिया न स्या-
त्सत्यसत्यपि कारणे ।
तस्मात्समेऽस्मिन्हेतौ मे
वाच्यो हेतुर्विशेषतः ॥ ४५
यद्यहं कारणत्वेन मतो लुब्धक तत्त्वतः ।
अन्यः प्रयोगे स्यादत्र किल्बिषी जन्तुनाशने
लुब्धक उवाच ।
वध्यस्त्वं मम दुर्बुद्धे बालघाती नृशंसकृत् ।
भाषसे किं बहु पुनर्वध्यः सन्पन्नगाधम॥ ४७
सर्प उवाच ।
यथा हवींषि जुह्वाना मखे वै लुब्धकर्त्विजः
न फलं प्राप्नुवन्त्यत्र फलयोगे तथा ह्यहम् ४८
भीष्म उवाच ।
तथा ब्रुवति तस्मिंस्तु पन्नगे मृत्युचोदिते ।
आजगाम ततो मृत्युः पन्नगं चाब्रवीदिदम् ॥

---

अचूचुदत् प्रेरितवान् ॥ ३५ ॥ किल्बिषं चेदस्ति तर्हि प्रयोक्तुरेव न प्रयोज्यस्य मम शरस्येवेत्यर्थ ॥३६॥ **यदीति।** प्रयोजकत्वप्रयोज्योऽपि वधकारणत्वाद्वध्य एवेत्यर्थ. ॥३७॥ **मृदिति** । यद्यपि दंडादिवत्त्वं अन्यवशस्तथाऽपि चेतनत्वात्किल्बिषीत्यवश्यं वध्योऽसीत्यर्थ. ॥ ३८ ॥ **सर्वे इति** चेतनत्वेपि गजादिवत्परप्रेर्यत्वेनावशत्वाद्दंडादितुल्यत्वमेव ममेत्यर्थ. ॥ ४० ॥ **अथवेति** । तेऽपि आयुधादयोऽपि। अयमर्थ·—आयुधं हि अयस्कान्तवत्प्रहर्तारं प्रयोजयति तेनायुधकर्तापि प्रयोजकस्तस्य चायं कारयिता प्रहर्तुकाम· प्रयोजक इत्यन्योन्यप्रयोज्यत्वान्न कस्यचिद्धन्तृत्वमित्यर्थ ।।४१।। फलितमाह-**एवमिति** । चेतनत्वाद्वध्यत्वं मम चेन्मन्यसे तर्ह्येकस्मिन्वधकार्ये साक्षात्परंपरया बहूना प्रयोजकत्वमस्तीति सर्वेषु यथाविभागं किल्बिषं न मय्येवेत्यर्थ । समवाये समुदाये ॥४२॥ कर्ता प्रस्तुतक्रियाया त्वमेव वध्योऽसीत्यर्थ ॥४३॥ **असतीति**। यत कृतेऽपि असति दुष्टे कार्ये दोषे हेतु· कर्ता न लिप्यते तव मते । तस्मात् चोरादिरत्रैव राज्ञा वध्य. प्रायश्चित्ती च न स्यात् । तथा च शास्त्रानर्थक्यं प्रेत्य खादन्ति ते च तानित्यादेरप्रामाण्यं च स्यादिति भाव ॥ ४४ ॥ **कार्येति** । कारणे कर्तरि सति कुठारोद्यमनादिकार्येण छिदिक्रिया जायते असत्यपि कर्तरि तरुशाखान्तनिघर्षेण कायण तज्जेनाग्निना वनदाहक्रिया जायते । तस्माच्छाखाया इव ममापि कर्तृत्वं अप्रयोजकत्वान्न दोषहेतु विशेषाभावादित्यर्थः ॥ ४५ ॥ यदीति कारणत्वेन प्रेयाज्यकर्तृत्वेन तव मतोहं तर्हि शाखाया वायुरिव ममापि प्रयोगे प्रवर्तनेऽन्योऽस्ति कर्ता स एव जंतुनाशने किल्बिषी भवेत् । वस्तुतस्तु वायोरिव तस्यापि न किल्बिषित्वमिति भाव ॥ ४६ ॥ वध्य इति । धीपूर्वकारी हिंस्रस्वभावस्त्वं कुतर्कैर्वृक्षसाधर्म्यमात्मनो ब्रुवाणो दुर्बुद्धित्वाद्वध्योऽसीत्यर्थः ॥४७॥ एवमृत्विगादिवदन्यप्रेर्यत्वान्नाहं किल्बिषी किंतु मम प्रयोजक एव । शास्त्रफलं प्रयोक्तरीति न्यायादिति सर्प उवाच-**यथेति** ॥४८॥ यथा स्तेनं गजो हन्ति गज च महामात्र. प्रेरयति महामात्रं च प्रभु प्रयुंक्ते प्रभुं च स्तेनापराध इति स्तेन स्वापराधेनव हन्यते न तत्र राजमहामात्रगजाना दोषगंधोऽस्ति । एवं

मृत्युरुवाच ।

प्रचोदितोऽहं कालेन पन्नग त्वामचूचुदम् ।
विनाशहेतुर्नास्य त्वमहं न प्राणिनः शिशोः
यथा वायुर्जलधरान्विकर्षति ततस्ततः ।
तद्वज्जलदवत्सर्प कालस्याहं वशानुगः ॥ ५१
सात्त्विका राजसाश्चैव तामसा ये च केचन ।
भावाः कालात्मकाः सर्वे प्रवर्तन्ते ह जन्तुषु
जङ्गमाः स्थावराश्चैव दिवि वा यदि वा भुवि
सर्वे कालात्मकाः सर्प कालात्मकमिदं जगत्
प्रवृत्तयश्च लोकेऽस्मिंस्तथैव च निवृत्तयः ।
तासां विकृतयो याश्च सर्वं कालात्मकं स्मृतं
आदित्यश्चन्द्रमा विष्णुरापो वायुः शतक्रतुः ।
अग्निः खं पृथिवी मित्रः पर्जन्यो वसवोऽदितिः
सरितः सागराश्चैव भावाभावौ च पन्नग ।
सर्वे कालेन सृज्यन्ते ह्रियन्ते च पुनः पुनः ५६
एवं ज्ञात्वा कथं मां त्वं सदोषं सर्प मन्यसे ।
अथ चैवगते दोषे मयि त्वमपि दोषवान् ५७

सर्प उवाच ।

निर्दोषं दोषवन्तं वा न त्वां मृत्यो ब्रवीम्यहम्
त्वयाऽहं चोदित इति ब्रवीम्येतावदेव तु ५८
यदि काले तु दोषोऽस्ति यदि तत्रापि नेष्यते
दोषो नैव परीक्ष्यो मे न ह्यत्राधिकृता वयम्
निर्मोक्षस्त्वस्य दोषस्य मया कार्यो यथा तथा
मृत्योरपि न दोषः स्यादिति मेऽत्र प्रयोजनम्

भीष्म उवाच ।

सर्पोऽथार्जुनकं प्राह श्रुतं ते मृत्युभाषितम् ।
नानागसं मां पाशेन सन्तापयितुमर्हसि ॥ ६१

लुब्धक उवाच ।

मृत्योः श्रुतं मे वचनं तव चैव भुजङ्गम ।
नैव तावद्दोषत्व भवति त्वयि पन्नग ॥ ६२
मृत्युस्त्वं चैव हेतुर्हि बालस्यास्य विनाशने ।
उभयं कारणं मन्ये न कारणमकारणम् ॥ ६३
धिङ्मृत्युं च दुरात्मानं क्रूरं दुःखकरं सताम्
त्वां चैवाहं वधिष्यामि पापं पापस्य कारणम्

मृत्युरुवाच ।

विवशौ कालवशगावावां निर्दिष्टकारिणौ
नावां दोषेण गन्तव्यौ यदि सम्यक्प्रपश्यसि

लुब्धक उवाच ।

युवामुभौ कालवशौ यदि मे मृत्युपन्नगौ ।
हर्षक्रोधौ यथा स्यातामेतदिच्छामि वेदितुम्

मृत्युरुवाच ।

या काचिदेव चेष्टा स्यात्सर्वा कालप्रचोदिता
पूर्वमेवैतदुक्तं हि मया लुब्धक कालतः ॥ ६७
तस्मादुभौ कालवशावावां निर्दिष्टकारिणौ ।
नावां दोषेण गन्तव्यौ त्वया लुब्धक कर्हिचित्

भीष्म उवाच ।

अथोपगम्य कालस्तु तस्मिन् धर्मार्थसंशये
अब्रवीत्पन्नगं मृत्युं लुब्धं चार्जुनकं तथा ॥६९

काल उवाच ।

न ह्यहं नाप्ययं मृत्युर्नायं लुब्धक पन्नगः ।
किल्बिषी जन्तुमरणे न वयं हि प्रयोजकाः ॥

---

भीष्मादीन्निघ्नतोऽपि तत्र गजस्यत्र न दोषोऽस्तीति शेषग्रथ-तात्पर्यम्। मृत्यु प्राणानामपहर्त्री देवता ॥ ४९ ॥ कालेन ईश्वरेण ॥ ५० ॥ कालात्मका कालस्यैव आत्मा स्वभावो येषा ते कालानुसारिण इत्यर्थ ॥५२॥ भावाभावौ ऐश्वर्या-नैश्वर्ये ॥ ५६ ॥ आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिरिति न्यायेन आत्मने च यजमानाय च यं कामं कामयते तमागायतीति श्रुतेश्चात्मवट्।त्विजोऽपि फलाशभाक्त्वमतो मृत्युसर्पौ वधस्य कारणं सन्तौ न अकारणं भवत इत्याह-**मृत्युरिति**॥६३॥ आवा दोषेण द्वेषादिना युक्ता त्वया न मन्तव्यौ किंतु विवशौ अत. घ्नतोरप्यावयोर्गजमहामात्रगोरिव न किल्बिष-मस्तीत्याहतु -**विवशाविति** ऋत्विजोऽपि फलरागिण एव फलमस्ति न विरक्तस्येति भाव ॥ ६५ ॥ **युवामिति** । भो मृत्युपन्नगौ यदि युवा कालवशौ तर्हि मे मम तटस्थस्य परोपकर्तरि हर्ष अपकर्त्रोश्च युवयोरुपरि द्वेषो वा यथा स्याता तथा ब्रूतम्। एतत् अहं वेदितुमिच्छामीत्यध्याहारपूर्वकं योज्यम्। एवं सर्वस्य परवशत्वे उपकर्त्रपकर्त्रोः स्तुतिनिंदे न स्यातामिति भाव ॥ ६६ ॥ परमार्थतः परिहारमाह—**येति** । ईश्वराधीनो जन सदसद्वा कुर्वाणो न स्तुत्यो न वा निंद्य इति भाव ॥६७॥ व्यवहारतस्तु मृत्यु पूर्वोक्तमेव परिहारमाह-**तस्मादिति**। दोषेण युक्ताविति शेष । गन्तव्यौ ज्ञातव्यौ यो हि रागादिमान् हन्ति स पापेन लिप्यते तं प्रति शास्त्रं प्रवर्तते यस्तु न तथा नासौ दोषभाग्भवति यथोक्तं भगवता 'यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते । हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' इति ॥ ६८ ॥ प्राणिकर्मानुरोधात्सदसद्वा फलं ददत् ईश्वरस्तत्प्रयुक्ता अन्ये वा न वैषम्यादिभाजो भवन्तीत्याह-**अथेत्यादिना**। धर्म-स्यार्थ. फलं तत्र विषये सर्वस्य कर्तु परवशत्वादधर्मवद्धर्मोपि किं फलं ददाति न वेति संशये छेत्तव्ये अब्रवीत्काल ॥ ६९ ॥ सज्ञिनामेव धर्माधर्मफलं भवति न त्वसज्ञा-नामस्माकमित्याशयवानाह-**न हीति** ॥ ७० ॥

अकरोद्यदयं कर्म तन्नोऽर्जुनक चोदकम् ।
विनाशहेतुर्नान्योऽस्य वध्यतेऽयं स्वकर्मणा ॥
यदनेन कृतं कर्म तेनायं निधनं गतः ।
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम् ७२
कर्मदायादवाँल्लोकः कर्मसम्बन्धलक्षणः ।
कर्माणि चोदयन्तीह यथाऽन्योन्यं तथा वयम्
यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥ ७४
यथा च्छायातपौ नित्यं
सुसम्बद्धौ निरन्तरम् ।
तथा कर्म च कर्ता च
सम्बद्धावात्मकर्मभिः ॥ ७५
एवं नाहं न वै मृत्युर्न सर्पो न तथा भवान् ।
न चेयं ब्राह्मणी वृद्धा शिशुरेवात्र कारणम्७६
तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु ब्राह्मणी गौतमी नृप ।
स्वकर्मप्रत्ययाँल्लोकान्मत्वाऽर्जुनकमब्रवीत् ७७

गौतम्युवाच ।
नैव कालो न भुजगो न मृत्युरिह कारणम्
स्वकर्मभिरयं बालः कालेन निधनं गतः ७८
मया च तत्कृतं कर्म येनायं मे मृतः सुतः ।
यातु कालस्तथा मृत्युर्मुञ्चार्जुनक पन्नगम्॥ ७९
भीष्म उवाच ।
ततो यथागतं जग्मुर्मृत्युः कालोऽथ पन्नगः
अभूद्विशोकोऽर्जुनको विशोका चैव गौतमी ॥
एतच्छ्रुत्वा शमं गच्छ मा भूः शोकपरो नृप ।
स्वकर्मप्रत्ययाँल्लोकान् सर्वे गच्छन्ति वै नृप
नैव त्वया कृतं कर्म नापि दुर्योधनेन वै ।
कालेनैतत्कृतं विद्धि निहता येन पार्थिवाः ॥
वैशम्पायन उवाच ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा बभूव विगतज्वरः ।
युधिष्ठिरो महातेजाः पप्रच्छेदं च धर्मवित्८३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गौतमीलुब्धकव्यालमृत्युकालसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
श्रुतं मे महदाख्यानमिदं मतिमतां वर ॥ १
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मार्थसहितं नृप ।
कथ्यमानं त्वया किञ्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
केन मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ।
इत्येतत्सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेनापि च पार्थिव ॥ ३
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ४

मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत्सुतः ।
तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ॥ ५
दशमस्तस्य पुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत ।
माहिष्मत्यामभूद्राजा धर्मात्मा सत्यविक्रमः ६
दशाश्वस्य सुतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।
सत्ये तपसि दाने च यस्य नित्यं रतं मनः ७
मदिराश्व इति ख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।
धनुर्वेदे च वेदे च निरतो योऽभवत्सदा ८
मदिराश्वस्य पुत्रस्तु द्युतिमान्नाम पार्थिवः ।
महाभागो महातेजा महासत्त्वो महाबलः ९

---

कर्मैव दायादः पुत्रवत्तारकं तद्वान् कर्मसंबंध कर्मफलयोग तदेव लक्षणं पुण्यपापवत्ताज्ञापकं यस्य तथा ॥ ७३ ॥ कर्मैव प्रत्यय कारणं येषां तान् लोकान् स्वर्गनरकादीन्॥ ७७॥ तत्कर्म पुत्रशोकप्रदम् ॥ ७९ ॥ आख्यायिकाफलमाह द्वाभ्या— **एतदिति** ॥८१॥ इति श्रीमहाभारते आनु० प० दानधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्याय ॥१॥

२

अनिवार्यस्यापि मृत्योर्जयमूर्ध्वरेता करोति गृहस्थस्त्वतिथिभक्त्यैव तं जयतीत्यातिथ्यप्रशंसार्थोऽयमध्याय **पितामहेत्यादिः** ॥१॥ धर्मेणैव अर्थ प्रयोजनं यत्र तादृशया कथया सहितं किञ्चिदाख्यानं श्रोतुमिच्छामीत्यर्थ ॥ २ ॥ तत्त्वेन याथातथ्येन। न त्वात्मवपोत्खननादिवदभूतार्थत्वेन३

पुत्रो द्युतिमतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः।
सर्वलोकेषु विख्यातः सुवीरो नाम नामतः॥
धर्मात्मा कोषवांश्चापि देवराज इवापरः।
सुवीरस्य तु पुत्रोऽभूत्सर्वसंग्रामदुर्जयः॥ ११
स दुर्जय इति ख्यातः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
दुर्जयस्येन्द्रवपुषः पुत्रोऽग्निसदृशद्युतिः॥ १२
दुर्योधनो नाम महान् राजा राजर्षिसत्तमः।
तस्येन्द्रसमवीर्यस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः १३
विषये वासवस्तस्य सम्यगेव प्रवर्षति।
रत्नैर्धनैश्च पशुभिः सस्यैश्चापि पृथग्विधैः १४
नगरं विषयश्चास्य प्रतिपूर्णस्तदाऽभवत्।
न तस्य विषये चाभूत्कृपणो नापि दुर्गतः १५
व्याधितो वा कृशो वाऽपि
तस्मिन्नाभून्नरः क्वचित्।
सुदक्षिणो मधुरवागनसूयुर्जितेन्द्रियः।
धर्मात्मा चानृशंसश्च
विक्रान्तोऽथाविकत्थनः। १६
यज्वा च दान्तो मेधावी
ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।
न चावमन्ता दाता च
वेदवेदाङ्गपारगः॥ १७
तं नर्मदा देवनदी पुण्या शीतजला शिवा।
चकमे पुरुषव्याघ्रं स्वेन भावेन भारत॥ १८
तस्यां जज्ञे तदा नद्यां कन्या राजीवलोचना
नाम्ना सुदर्शना राजन् रूपेण च सुदर्शना १९
तादृग्रूपा न नारीषु भूतपूर्वा युधिष्ठिर।
दुर्योधनसुता यादृगभवद्वरवर्णिनी॥ २०
तामग्निश्चकमे साक्षाद्राजकन्यां सुदर्शनाम्।
भूत्वा च ब्राह्मणो राजन्वरयामास तं नृपम्
दरिद्रश्चासवर्णश्च ममायमिति पार्थिवः।
न दित्सति सुतां तस्मै तां विप्राय सुदर्शनाम्
ततोऽस्य वितते यज्ञे नष्टोऽभूद्धव्यवाहनः।
ततः सुदुःखितो राजा वाक्यमाह द्विजांस्तदा
दुष्कृतं मम किं नु स्याद्भवतां वा द्विजर्षभाः
येन नाशं जगामाग्निः कृतं कुपुरुषेष्विव २४
न ह्यल्पं दुष्कृतं नोऽस्ति येनाग्निर्नाशमागतः
भवतां चाथवा मह्यं तत्त्वेनैतद्विमृश्यताम् २५
तत्र राज्ञो वचः श्रुत्वा विप्रास्ते भरतर्षभ।
नियता वाग्यताश्चैव पावकं शरणं ययुः २६
तान् दर्शयामास तदा भगवान् हव्यवाहनः
स्वं रूपं दीप्तिमत्कृत्वा शरदर्कसमद्युतिः २७
ततो महात्मा तानाह दहनो ब्राह्मणर्षभान्।
वरयाम्यात्मनोऽर्थाय दुर्योधनसुतामिति॥ २८
ततस्ते कल्यमुत्थाय तस्मै राज्ञे न्यवेदयन्।
ब्राह्मणा विस्मिताः सर्वे यदुक्तं चित्रभानुना
ततः स राजा तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मवादिनाम्।
अवाप्य परमं हर्षं तथेति प्राह बुद्धिमान्॥ ३०
अयाचत च तं शुल्कं भगवन्तं विभावसुम्।
नित्यं सान्निध्यमिह ते चित्रभानो भवेदिति
तमाह भगवानग्निरेवमस्त्विति पार्थिवम्।
ततः सान्निध्यमद्यापि माहिष्मत्यां विभावसोः
दृष्टं हि सहदेवेन दिशं विजयता तदा।
ततस्तां समलंकृत्य कन्यामाहतवाससम् ३३
ददौ दुर्योधनो राजा पावकाय महात्मने।
प्रतिजग्राह चाग्निस्तु राजकन्यां सुदर्शनाम्
विधिना वेददृष्टेन वसोर्धारामिवाध्वरे।
तस्या रूपेण, शीलेन, कुलेन, वपुषा, श्रिया,
अभवत्प्रीतिमानग्निर्गर्भं चास्या मनो दधे।
तस्याः समभवत्पुत्रो नाम्नाऽऽग्नेयः सुदर्शनः
सुदर्शनस्तु रूपेण पूर्णेन्दुसदृशोपमः।
शिशुरेवाध्यगात्सर्वं परं ब्रह्म सनातनम् ३७
अथौघवान्नाम नृपो नृगस्यासीत्पितामहः।
तस्याथौघवती कन्या पुत्रश्चौघरथोऽभवत् ३८
तामोघवान् ददौ तस्मै स्वयमोघवती सुताम्
सुदर्शनाय विदुषे भार्यार्थे देवरूपिणीम् ३९
स गृहस्थाश्रमरतस्तया सह सुदर्शनः।
कुरुक्षेत्रेऽवसद्राजन्नोघवत्या समन्वितः॥ ४०
गृहस्थश्चावजेष्यामि मृत्युमित्येव स प्रभो।
प्रतिज्ञामकरोद्धीमान्दीप्ततेजा विशांपते ४१
तामथौघवतीं राजन् स पावकसुतोऽब्रवीत्।
अतिथेः प्रतिकूलं ते न कर्तव्यं कथञ्चन॥ ४२

दुर्गत दरिद्र॥ १५॥ चकमे कामयामास॥ २१॥ असवर्ण अक्षात्रिय न दित्सति न दातुमिच्छति॥ २२॥ वितते त्रेताभिसाध्ये नष्ट. अदर्शनं गत॥२३॥ कल्यं प्रात॥२९॥ दिशं दक्षिणा विजयता विजेतुमिच्छता आहतं नवं वासो यस्यास्ताम्॥३३॥ वसोर्धारा सन्तता घृतधाराम्॥३५॥ गर्भं पुत्रप्रदाने॥३६॥ दृशाभ्या दृग्भ्या सहितं सदृशं वक्त्र पूर्णेन्दोरिव वक्त्रे उपमा सादृश्यं यस्य पूर्णेन्दुसदृशोपम॥३७॥ गृहस्थश्च गृहस्थ एव ४१ प्रतिज्ञामेवाह-अतिथेरिति४२

येन येन च तुष्येत नित्यमेव त्वयाऽतिथिः ।
अप्यात्मनः प्रदानेन न ते कार्या विचारणा
एतद्व्रतं मम सदा हृदि संपरिवर्तते ।
गृहस्थानां च सुश्रोणि नातिथेर्विद्यते परम् ॥
प्रमाणं यदि वामोरु वचस्ते मम शोभने ।
इदं वचनमव्यग्रा हृदि त्वं धारयेः सदा ४५
निष्क्रान्ते मयि कल्याणि तथा संनिहितेऽनघे
नातिथिस्तेऽवमन्तव्यः प्रमाणं यद्यहं तव॥४६
तमब्रवीदोघवती तथा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
न मे त्वद्वचनात्किंचिन्न कर्तव्यं कथंचन ४७
जिगीषमाणस्तु गृहे तदा मृत्युः सुदर्शनम् ।
पृष्ठतोऽन्वगमद्राजन्रन्ध्रान्वेषी तदा सदा ४८
इध्मार्थं तु गते तस्मिन्नग्निपुत्रे सुदर्शने।
अतिथिर्ब्राह्मणः श्रीमांस्तामाहौघवतीं तदा
आतिथ्यं कृतमिच्छामि त्वयाऽद्य वरवर्णिनि
प्रमाणं यदि धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसंमतः ॥ ५०
इत्युक्त्वा तेन विप्रेण राजपुत्री यशस्विनी ।
विधिना प्रतिजग्राह वेदोक्तेन विशांपते ५१
आसनं चैव पाद्यं च तस्मै दत्त्वा द्विजातये ।
प्रोवाचौघवती विप्रं केनार्थः किं ददामि ते ॥
तामब्रवीत्ततो विप्रो राजपुत्रीं सुदर्शनाम् ।
त्वया ममार्थः कल्याणि निर्विशङ्कैतदाचर ।
यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसंमतः ।
प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ५४
स तया छन्द्यमानोऽन्यैरीप्सितैर्नृपकन्यया ।
नान्यमात्मप्रदानात्स तस्या वव्रे वरं द्विजः ५५
सा तु राजसुता स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः ।
तथेति लज्जमाना सा तमुवाच द्विजर्षभम् ५६
ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवाथ विवेश ह ।
संस्मृत्य भर्तुर्वचनं गृहस्थाश्रमकाङ्क्षिणः ॥ ५७
अथेध्मानुपादाय स पावकिरुपागमत् ।
मृत्युना रौद्रभावेन नित्यं बन्धुरिवान्वितः ॥
ततस्त्वाश्रममागम्य स पावकसुतस्तदा ।
तां व्याजहारौघवतीं क्वासि यातेति चासकृत्
तस्मै प्रतिवचः सा तु भर्त्रे न प्रददौ तदा ।
कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृव्रता सती ॥
उच्छिष्टाऽस्मीति मन्वाना लज्जिता भर्तुरेव च
तूष्णीं भूताऽभवत्साध्वी न चोवाचाथ किंचन
अथ तां पुनरेवेदं प्रोवाच स सुदर्शनः ।
क्व सा साध्वी क्व सा याता गरीयः किमतो मम
पतिव्रता सत्यशीला नित्यं चैवार्जवे रता ।
कथं न प्रत्युदेत्यद्य स्मयमाना यथा पुरा ६३
उटजस्थस्तु तं विप्रः प्रत्युवाच सुदर्शनम् ।
अतिथिं विद्धि संप्राप्तं ब्राह्मणं पावके च माम्
अनया छन्द्यमानोऽहं भार्यया तव सत्तम ।
तैस्तैरतिथिसत्कारैर्ब्रह्मन्नेषा वृता मया ॥ ६५
अनेन विधिना सेयं मामर्चति शुभानना ।
अनुरूपं यदत्रान्यत्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ ६६
कूटमुद्गरहस्तस्तु मृत्युस्तं वै समन्वगात् ।
हीनप्रतिज्ञमत्रैनं वधिष्यामीति चिन्तयन् ६७
सुदर्शनस्तु मनसा, कर्मणा, चक्षुषा, गिरा ।
त्यक्तेर्ष्यस्त्यक्तमन्युश्च स्मयमानोऽब्रवीदिदम्
सुरतं तेऽस्तु विप्राग्र्य प्रीतिर्हि परमा मम ।
गृहस्थस्य हि धर्मोऽग्र्यः संप्राप्तातिथिपूजनम्
अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति
नान्यस्तस्मात्परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः ॥
प्राणा हि मम दाराश्च यच्चान्यद्विद्यते वसु ।
अतिथिभ्यो मया देयमिति मे व्रतमाहितम् ॥
निःसंदिग्धं यथा वाक्यमेतन्मे समुदाहृतम् ।
तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे ॥ ७२
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
बुद्धिरात्मा मनः कालो दिशश्चैव गुणा दश७३

---

आत्मन शरीरस्य ॥ ४३ ॥ प्रमाणं हितज्ञापकम् ॥ ४५ ॥ किंचिन्न कर्तव्यमिति न अपि तु कर्तव्यमेव ॥ ४७ ॥ पृष्ठत तस्याप्रत्यक्षं गृहेऽन्वगमत् तदा गार्हस्थ्यकाले तदा इध्माहरणकाले ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणस्तद्रूपी मृत्यु ॥ ४९ ॥ **तामिति** । एतत् रतप्रदानम् ॥ ५३ ॥ राज्ञि राजकन्ये ॥ ५४ ॥ छंद्यमान· प्रलोभ्यमान. ॥ ५५ ॥ भर्तुर्वचनं येन येन तु तुष्येत नित्यमेव सदाऽतिथि· ।अप्यात्मन· प्रदानेन न ते कार्या विचारणेति पूर्वोक्तम् ॥ ५६ ॥ विवेश गृहमिति शेष । विहस्येत्यत्र रह स इति पाठ स्पष्टार्थ· ॥ ५७ ॥ ऋषेरपीर्ष्या नासीदित्याह—**अथेति** ॥ ५८ ॥ अनया त्वद्भार्यया छंद्यमान प्रार्थ्यमान इति वैपरीत्योक्ति ॥ ६५ ॥ अनेन मैथुनरूपेण मामर्चति मा आयाति अनुरूपं स्त्रीदूषणानुगुणं दण्डम् ॥ ६६ ॥ **कूटमुद्गरो** लोहदण्ड **हीनप्रतिज्ञं** त्यक्तातिथिव्रतम् ॥ ६७ ॥ गुणा. इन्द्रियाणि तदभिमानिन्यो देवताः पृथिव्याद्या इत्यर्थ· ॥७३॥

नित्यमेव हि पश्यन्ति देहिनां देहसंश्रिताः ।
सुकृतं दुष्कृतं चापि कर्म धर्मभृतां वर ॥ ७४
यथैषा नानृता वाणी मयाऽद्य समुदीरिता ।
तेन सत्येन मां देवाः पालयन्तु दहन्तु वा ७५
ततो नादः समभवद्दिक्षु सर्वासु भारत ।
असकृत्सत्यमित्येवं नैतन्मिथ्येति सर्वतः ७६
उटजात्तु ततस्तस्मान्निश्चक्राम स वै द्विजः ।
वपुषा द्यां च भूमिं च व्याप्य वायुरिवोद्यतः
स्वरेण विप्रः शैक्षेण त्रीन् लोकाननुनादयन्
उवाच चैनं धर्मज्ञं पूर्वमामंत्र्य नामतः ॥ ७८
धर्मोऽहमस्मि भद्रं ते जिज्ञासार्थं तवानघ ।
प्राप्तः सत्यं च ते ज्ञात्वा प्रीतिर्मे परमा त्वयि
विजितश्च त्वया मृत्युर्योऽयं त्वामनुगच्छति
रन्ध्रान्वेषी तव सदा त्वया धृत्या वशी कृतः
न चास्ति शक्तिस्त्रैलोक्ये कस्यचित्पुरुषोत्तम
पतिव्रतामिमां साध्वीं तवोद्वीक्षितुमप्युत ८१
रक्षिता त्वद्गुणैरेषा पतिव्रतगुणैस्तथा ।
अधृष्या यदियं ब्रूयात्तथा तन्नान्यथा भवेत् ॥
एषा हि तपसा स्वेन संयुक्ता ब्रह्मवादिनी ।
पावनार्थं च लोकस्य सरिच्छ्रेष्ठा भविष्यति
अर्धेनौघवती नाम त्वामर्धेनानुयास्यति ।
शरीरेण महाभागा योगो ह्यस्या वशे स्थितः
अनया सह लोकांश्च गन्ताऽसि तपसार्जितान्
यत्र नावृत्तिमभ्येति शाश्वतांस्तान्सनातनान्
अनेन चैव देहेन लोकांस्त्वमभिपत्स्यसे ।
निर्जितश्च त्वया मृत्युरैश्वर्यं च तवोत्तमम् ८६
पञ्चभूतान्यतिक्रान्तः स्ववीर्याच्च मनोजवः ।
गृहस्थधर्मेणानेन कामक्रोधौ च ते जितौ ८७
स्नेहो रागश्च तन्द्री च मोहो द्रोहश्च केवलः
तव शुश्रूषया राजन् राजपुत्र्या विनिर्जिताः

भीष्म उवाच ।

शुक्लानां तु सहस्रेण वाजिनां रथमुत्तमम् ।
युक्तं प्रगृह्य भगवान् वासवोऽभ्याजगाम तम्
मृत्युरात्मा च लोकाश्च जिता भूतानि पञ्च च
बुद्धिः कालो मनो व्योम कामक्रोधौ तथैव च
तस्माद् गृहाश्रमस्थस्य नान्यद्दैवतमस्ति वै ।
ऋतेऽतिथिं नरव्याघ्र मनसैतद्विचारय ॥ ९१
अतिथिः पूजितो यद्धि ध्यायते मनसा शुभम्
न तत्क्रतुशतेनापि तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ९२
पात्रं त्वतिथिमासाद्य
शीलाढ्यं यो न पूजयेत् ।
स दत्वा दुष्कृतं तस्मै
पुण्यमादाय गच्छति ॥ ९३
एतत्ते कथितं पुत्र मयाऽऽख्यानमनुत्तमम् ।
यथा हि विजितो मृत्युर्गृहस्थेन पुराऽभवत् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमिदमाख्यानमुत्तमम् ।
बुभूषताऽभिमन्तव्यं सर्वदुश्चरितापहम् ॥ ९५
इदं यः कथयेद्विद्वानहन्यहनि भारत ।
सुदर्शनस्य चरितं पुण्याँल्लोकानवाप्नुयात् ॥ ९६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि सुदर्शनोपाख्याने
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

शैक्षेण उदात्तादिधर्मवता ॥७८॥ **अर्धेनेति** । ओघवती नाम नदी भविष्यतीति शेषः । **योगो हीति** । योगसिद्धेयमतः शरीरद्वयं करिष्यतीत्यर्थः ॥ ८४ ॥ पञ्चेति स्थूलभूतान्यतिक्रम्य आतिवाहिकान् सूक्ष्मभूतमयान् लोकान् प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥ ८७ ॥ राजन्नित्यृषिराजत्वात् राजजामातृत्वाद्वा सम्बोधनम् ॥ ८८ ॥ बुद्धिरित्यादावपि जितेत्यनुषङ्गः ॥ ९० ॥ आख्यायिकातात्पर्यमाह—**तस्मादिति** ॥९१॥ क्रतुशतेनापि न तुल्यं किन्तु ततोऽप्याधिकमित्यर्थः । यद्वा तत्क्रतुशतेनेति । प्रथमातृतीययोर्व्यत्यासः तेन क्रतुशतमपि न तुल्यमित्यर्थः ॥ ९२ ॥ सः अतिथिं यो न पूजयेत्तस्मै दुष्कृतं दत्वा ॥ ९३ ॥ बुभूषता भूतिमिच्छता ॥ ९५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

युधिष्ठिर उवाच ।
ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप ।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥ १
विश्वामित्रेण धर्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २
तेन ह्यमितवीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः ।
हतं पुत्रशतं सद्यस्तपसाऽपि पितामह ॥ ३
यातुधानाश्च बहवो राक्षसास्तिग्मतेजसः ।
मन्युनाऽऽविष्टदेहेन सृष्टाः कालान्तकोपमाः ॥ ४
महान्कुशिकवंशश्च ब्रह्मर्षिशतसंकुलः ।
स्थापितो नरलोकेऽस्मिन्विद्वन्ब्राह्मणसंस्तुतः ॥
ऋचीकस्यात्मजश्चैव शुनःशेपो महातपाः ।
विमोक्षितो महासत्रात्पशुतामप्युपागतः ॥ ६
हरिश्चन्द्रक्रतौ देवास्तोषयित्वाऽऽत्मतेजसा ।
पुत्रतामनुसंप्राप्तो विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ७
नाभिवादयते ज्येष्ठं देवरातं नराधिप ।
पुत्राः पञ्चाशदेवापि शप्ताः श्वपचतां गताः ८
त्रिशङ्कुर्बन्धुभिर्मुक्त
ऐक्ष्वाकः प्रीतिपूर्वकम् ।
अवाक्शिरा दिवं नीतो
दक्षिणामाश्रितो दिशम् ॥ ९
विश्वामित्रस्य विपुला नदी देवर्षिसेविता ।
कौशिकी च शिवा पुण्या ब्रह्मर्षिसुरसेविता ॥
तपोविघ्नकरी चैव पञ्चचूडा सुसंमता ।
रम्भा नामाप्सराः शापाद्यस्य शैलत्वमागता
तथैवास्य भयाद्बध्वा
वसिष्ठः सलिले पुरा ।
आत्मानं मज्जयन् श्रीमान्
विपाशः पुनरुत्थितः ॥ १२
तदाप्रभृति पुण्या हि विपाशाऽभून्महानदी
विख्याता कर्मणा तेन वसिष्ठस्य महात्मनः ॥
वाग्भिश्च भगवान्येन देवसेनाग्रगः प्रभुः ।
स्तुतः प्रीतमनाश्चासीच्छापाच्चैनममुञ्चत ॥ १४
ध्रुवस्यौत्तानपादस्य
ब्रह्मर्षीणां तथैव च ।
मध्ये ज्वलति यो नित्य-
मुदीचीमाश्रितो दिशम् ॥ १५
तस्यैतानि च कर्माणि तथान्यानि च कौरव
क्षत्रियस्येत्यतो जातमिदं कौतूहलं मम ॥ १६
किमेतदिति तत्त्वेन प्रब्रूहि भरतर्षभ ।
देहान्तरमनासाद्य कथं स ब्राह्मणोऽभवत् १७
एतत्तत्त्वेन मे तात सर्वमाख्यातुमर्हसि ।
मतङ्गस्य यथातत्त्वं तथैवैतद्वदस्व मे ॥ १८
स्थाने मतङ्गो ब्राह्मण्यं नालभद्भरतर्षभ ।
चण्डालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मण्यमाप्तवान्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विश्वामित्रोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

३

**ब्राह्मण्यमिति** ॥ १ ॥ ऋचीकस्यात्मज इत्यत्र अजीगर्तात्मज इति बोध्यम् । सोऽजीगर्तं सौयवसिमृषिमशनया परीतं तस्य ह त्रय पुत्रा आसु शुन पुच्छ· शुन शेप शुनो लाङ्गूल इति श्रुते । शुन शेपस्य पिताऽजीगर्त इत्यवगमात् । कल्पान्तराभिप्रायेण वा इदं ज्ञेयम् ॥ ६ ॥ देवास्तोषयित्वा तैर्मोक्षितः सन्पुत्रता विश्वामित्रस्यानुसंप्राप्त इति सम्बन्ध ॥७॥ नाभिवादयते न नमस्कुर्वन्ति । अनुस्वारलोप आर्ष । देवरातं देवैर्विश्वामित्राय दत्तं तेन च ज्येष्ठं कृतं सन्तम् । शप्ता येनेति शेष ॥८॥ बन्धुभिर्मुक्त वसिष्ठशापेन चाण्डालता गतत्वात् दिवं येन नीतः ॥ ९ ॥ पञ्चचूडाः वलयभेदा यस्या· सा । चूडा वलयभेदे स्यादिति **मेदिनी** ॥ ११ ॥ **वाग्भिरिति** । त्रिशंकुं याजयन्विश्वामित्रो वसिष्ठपुत्रै· शप्त श्वपचस्य याजकस्त्वं श्वपचो भविष्यसीति तं शापमृतं कर्तुं विश्वामित्र कस्याचिदापदि श्वजाघनीं चौर्येणार्जयित्वा पक्तुमारेभे तामिन्द्र श्येनरूपेण हृतवान् तावतैवायं शापान्मुक्तो ववर्ष चेन्द्र इति देवसेनानामग्रग श्रेष्ठ इन्द्रः ॥ १४ ॥ ज्वलति ताराूपेण ॥ १५ ॥ मतङ्गस्य ब्राह्मण्या शूद्राज्जातस्य चाण्डालस्य यथा महताऽपि तपसा ब्राह्मण्यमप्राप्यं जातं तथैवैतन्मम भाति त्वं तु यथा जातं तथा वदस्व ॥१८॥ स्थाने युक्तं कथं ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्विश्वामित्र इति शेष· ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दान० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

## ४

भीष्म उवाच ।
श्रूयतां पार्थ तत्त्वेन विश्वामित्रो यथा पुरा।
ब्राह्मणत्वं गतस्तात ब्रह्मर्षित्वं तथैव च ॥ १
भरतस्यान्वये चैवाजमीढो नाम पार्थिवः ।
बभूव भरतश्रेष्ठ यज्वा धर्मभृतां वरः ॥ २
तस्य पुत्रो महानासीज्जह्नुर्नाम नरेश्वरः ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता गङ्गा यस्य महात्मनः ॥ ३
तस्यात्मजस्तुल्यगुणः सिन्धुद्वीपो महायशाः
सिन्धुद्वीपाच्च राजर्षिर्बलाकाश्वो महाबलः ॥४
वल्लभस्तस्य तनयः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
कुशिकस्तस्य तनयः सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ५
कुशिकस्यात्मजः श्रीमान्
गाधिर्नाम जनेश्वरः ।
अपुत्रः प्रसवेनार्थी
वनवासमुपावसत् ॥ ६
कन्या जज्ञे सुतास्तस्य वने निवसतः सतः ।
नाम्ना सत्यवती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ७
तां वव्रे भार्गवः श्रीमांश्च्यवनस्यात्मसंभवः ।
ऋचीक इति विख्यातो विपुले तपसि स्थितः
स ता न प्रददौ तस्मै ऋचीकाय महात्मने ।
दरिद्र इति मत्वा वै गाधिः शत्रुनिबर्हणः ॥ ९
प्रत्याख्याय पुनर्यातमब्रवीद्राजसत्तमः ।
शुल्कं प्रदीयतां मह्यं ततो वत्स्यसि मे सुताम्
ऋचीक उवाच ।
किं प्रयच्छामि राजेन्द्र तुभ्यं शुल्कमहं नृप।
दुहितुर्ब्रूह्यसंसक्तो माऽभूत्तत्र विचारणा ॥ ११
गाधिरुवाच ।
चन्द्ररश्मिप्रकाशानां हयानां वातरंहसाम् ।
एकतः श्यामकर्णाना सहस्रं देहि भार्गव ॥१२
भीष्म उवाच ।
ततः स भृगुशार्दूलश्च्यवनस्यात्मजः प्रभुः।
अब्रवीद्वरुण देवमादित्यं पतिमम्भसाम् ॥ १३
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
सहस्र वातवेगानां भिक्षे त्वां देवसत्तम॥ १४
तथेति वरुणो देव आदित्यो भृगुसत्तमम् ।
उवाच यत्र ते च्छन्दस्तत्रोत्थास्यंति वाजिनः
ध्यातमात्रे ऋचीकेन हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
गङ्गाजलात्समुत्तस्थौ सहस्रं विपुलौजसाम् १६
अदूरे कान्यकुब्जस्य गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ।
अश्वतीर्थं तदद्यापि मानवैः परिचक्ष्यते ॥ १७
ततो वै गाधये तात सहस्रं वाजिनां शुभम् ।
ऋचीकः प्रददौ प्रीतः शुल्कार्थं तपतां वरः ॥
ततः स विस्मितो राजा गाधिः शापभयेन च
ददौ तां समलङ्कृत्य कन्यां भृगुसुताय वै ॥
जग्राह विधिवत्पाणिं तस्या ब्रह्मर्षिसत्तमः ।
सा च तं पतिमासाद्य परं हर्षमवाप ह । २०
स तुतोष च ब्रह्मर्षिस्तस्या वृत्तेन भारत ।
छन्दयामास चैवैनां वरेण वरवर्णिनीम् ॥ २१
मात्रे तत्सर्वमाचख्यौ सा कन्या राजसत्तम।
अथ तामब्रवीन्माता सुतां किञ्चिदवाङ्मुखी
ममापि पुत्रि भर्ता ते प्रसादं कर्तुमर्हति ।
अपत्यस्य प्रदानेन समर्थश्च महातपाः ॥ २३
ततः सा त्वरितं गत्वा तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।
मातुश्चिकीर्षितं राजन् ऋचीकस्तामथाब्रवीत्
गुणवन्तमपत्यं सा आचिराज्जनयिष्यति ।
मम प्रसादात्कल्याणि माऽभूत्ते प्रणयोऽन्यथा
तव चैव गुणश्लाघी पुत्र उत्पत्स्यते महान् ।
अस्मद्वंशकरः श्रीमान्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २६
ऋतुस्नाता च साऽश्वत्थं त्वं च वृक्षमुदुम्बरम्
परिष्वजेथाः कल्याणि तत एवमवाप्स्यथः ॥
चरुद्वयमिदं चैव मन्त्रपूतं शुचिस्मिते ।
त्वं च सा चोपभुञ्जीतं ततः पुत्राववाप्स्यथः ॥
ततः सत्यवती हृष्टा मातरं प्रत्यभाषत ।
यदृचीकेन कथित तच्चाचख्यौ चरुद्वयम् २९
तामुवाच ततो माता सुतां सत्यवतीं तदा ।
पुत्रि पूर्वोपपन्नायाः कुरुष्व वचनं मम ॥ ३०

---

४

**श्रूयतामिति**। ब्राह्मणेष्वपि ऋषित्व मन्त्रद्रष्टृत्वं गोत्रप्रवर्तकत्व वा ॥ १ ॥ वल्लभो नाम ॥ ५ ॥ प्रसवेन सोमाभिषवनिमित्तेन अर्थी पुत्रार्थी ॥ ६ ॥ सुतात् सोमाभिषवोपलक्षितायज्ञात् वन्यद्रव्यविहितात्तादृशी वनवासयोग्यैव कन्या जज्ञे ॥ ७ ॥ भार्गवो भृगोर्गोत्रापत्यम् ॥८॥ वत्स्यसि उद्वाहेन प्राप्स्यसि ॥ १० ॥ असंसक्तो निःसंशय ॥ ११ ॥ एकतः एकम् ॥ १२ ॥ आदित्यं अदितेः पुत्रम् ॥ १३ ॥ छन्द इच्छा ॥ १५ ॥ वरेण पुत्र ते दास्यामीत्यनुग्रहेण ॥२१॥ पूर्वोपपन्नाया भर्तु सम्बन्धात्पूर्व उपपन्नाया

भर्त्रा य एष दत्तस्ते चरुर्मन्त्रपुरस्कृतः ।
एनं प्रयच्छ मह्यं त्वं मदीयं त्वं गृहाण च ३१
व्यत्यासं वृक्षयोश्चापि करवाव शुचिस्मिते ।
यदि प्रमाणं वचनं मम मातुरनिन्दिते ॥ ३२
स्वमपत्यं विशिष्टं हि सर्व इच्छत्यनाविलम् ।
व्यक्त भगवता चात्र कृतमेव भविष्यति ॥ ३३
ततो मे त्वच्चरौ भावः पादपे च सुमध्यमे ।
कथं विशिष्टो भ्राता मे भवेदित्येव चिन्तय ॥
तथा च कृतवत्यौ ते माता सत्यवती च सा ।
अथ गर्भावनुप्राप्ते उभे ते वै युधिष्ठिर ॥ ३५
दृष्ट्वा गर्भमनुप्राप्तां भार्यां स च महानृषिः ।
उवाच तां सत्यवतीं दुर्मना भृगुसत्तम ॥ ३६
व्यत्यासेनोपयुक्तस्ते चरुर्व्यक्तं भविष्यति ।
व्यत्यासः पादपे चापि सुव्यक्तं ते कृतः शुभे
मया हि विश्वं यद्ब्रह्म त्वच्चरौ सन्निवेशितम् ।
क्षत्रवीर्यं च सकलं चरौ तस्या निवेशितम् ॥
त्रैलोक्यविख्यातगुणं त्वं विप्रं जनयिष्यसि ।
सा च क्षत्रं विशिष्टं वै तत एतत्कृतं मया ३९
व्यत्यासस्तु कृतो यस्मात्त्वया मात्रा च ते शुभे
तस्मात्सा ब्राह्मण श्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति
क्षत्रियं तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि ।
न हि ते तत्कृतं साधु मातृस्नेहेन भाविनि ४१
सा श्रुत्वा शोकसंतप्ता पपात वरवर्णिनी ।
भूमौ सत्यवती राजञ्छिन्नेव रुचिरा लता ॥
प्रतिलभ्य च सा संज्ञां शिरसा प्रणिपत्य च
उवाच भार्या भर्तारं गाधेयी भार्गवर्षभम् ॥ ४३
प्रसादयन्त्यां भार्यायां मयि ब्रह्मविदां वर ।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे न मे स्यात्क्षत्रियः सुतः ४४
कामं ममोग्रकर्मा वै पौत्रो भवितुमर्हति ।
न तु मे स्यात्सुतो ब्रह्मन्नेष मे दीयतां वरः ४५
एवमस्त्विति होवाच स्वां भार्यां सुमहातपाः ।
ततः सा जनयामास जमदग्निं सुतं शुभम् ४६
विश्वामित्रं चाजनयद्गाधिभार्या यशस्विनी ।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मवादिनम् ॥ ४७
ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः ।
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः ॥
तस्य पुत्रा महात्मानो ब्रह्मवंशविवर्धनाः ।
तपस्विनो ब्रह्मविदो गोत्रकर्तार एव च ॥ ४९
मधुच्छन्दश्च भगवान् देवरातश्च वीर्यवान् ।
अक्षीणश्च शकुन्तश्च बभ्रुः कालपथस्तथा ॥ ५०
याज्ञवल्क्यश्च विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः
उलूको यमदूतश्च तथर्षिः सैन्धवायनः ॥ ५१
वल्गुजङ्घश्च भगवान् गालवश्च महानृषिः ।
ऋषिर्वज्रस्तथा ख्यातः सालंकायन एव च ॥
लीलाढ्यो नारदश्चैव तथा कूर्चामुखः स्मृतः ।
वादुलिर्मुसलश्चैव वक्षोग्रीवस्तथैव च ॥ ५३
आंघ्रिको नैकदृक्चैव शिलायूपः शितः शुचिः ।
चक्रको मारुतन्तव्यो वातघ्नोऽथाश्वलायनः ५४
श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा
कारीषिरथ संश्रुत्यः परपौरवतन्तवः ॥ ५५
महानृषिश्च कपिलस्तथर्षिस्ताडकायनः ।
तथैव चोपगहनस्तथर्षिश्चासुरायणः ॥ ५६
मार्दमर्षिर्हिरण्याक्षो जङ्गारिर्बाभ्रवायणिः ।
भूतिर्विभूतिः सूतश्च सुरकृत्तु तथैव च ॥ ५७
अरालिर्नाचिकश्चैव चांपेयोज्जयनौ तथा ।
नवतन्तुर्बकनखः सेयनो यतिरेव च ॥ ५८
अम्भोरुहश्चारुमत्स्यः शिरीषी चाथ गार्दभिः
ऊर्जयोनिरुदापेक्षी नारदी च महानृषिः ५९
विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः
तथैव क्षत्रियो राजन् विश्वामित्रो महातपाः
ऋचीकेनाहितं ब्रह्म परमेतद्युधिष्ठिर ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ६१
विश्वामित्रस्य वै जन्म सोमसूर्याग्नितेजसः ।
यत्र यत्र च सन्देहो भूयस्ते राजसत्तम ।
तत्र तत्र च मां ब्रूहि च्छेत्ताऽस्मि तव संशयम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विश्वामित्रोपाख्याने
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

गुरुत्वेन प्रसायाः तव भर्त्रपेक्षयाऽहं गरीयसीत्यर्थः ॥ ३० ॥ क्षत्रियः क्षत्रियवदुग्रकर्मा ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रात्मजा इति क्षत्रियात् ब्रह्मवादिनः कथमुत्पन्ना इत्याशंक्याह— **ऋचीकेनेति** । चरौ पूर्वं ब्रह्मैवाहित अतः क्षत्रबीजोद्भवस्यापि ब्राह्मण्यलाभो जात । बीजापेक्षया संस्कारस्य बलवत्त्वात् । तथाहि । दावाग्निदग्धेभ्यो वेत्रबीजेभ्य कदलीकाण्डोत्पत्तिमुदाहरन्ति न ब्राह्मण्यं क्षत्रियादैस्तप कोट्यापि लभ्यते । विश्वामित्रस्य तत्प्राप्तिर्मात्रा ब्रह्मौदनाशनात् ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥ ९ द्विषष्टिसंख्याकाः

# ५

युधिष्ठिर उवाच ।
आनृशंस्यस्य धर्मज्ञ गुणान् भक्तजनस्य च।
श्रोतुमिच्छामि धर्मज्ञ तन्मे ब्रूहि पितामह १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वासवस्य च संवादं शुकस्य च महात्मनः २
विषये काशिराजस्य ग्रामान्निष्क्रम्य लुब्धकः
सविषं काण्डमादाय मृगयामास वै मृगम् ३
तत्र चामिषलुब्धेन लुब्धकेन महावने ।
अविदूरे मृगान् दृष्ट्वा बाणः प्रतिसमाहितः ४
तेन दुर्वारितास्त्रेण निमित्तचपलेषुणा ।
महान्वनतरुस्तत्र विद्धो मृगजिघांसया ॥ ५
स तीक्ष्णविषदिग्धेन शरेणातिबलात्क्षतः ।
उत्सृज्य फलपत्राणि पादपः शोषमागतः ६
तस्मिन्वृक्षे तथाभूते कोटरेषु चिरोषितः ।
न जहाति शुको वासं तस्य भक्त्या वनस्पतेः
निष्प्रचारो निराहारो ग्लानः शिथिलवागपि
कृतज्ञः सह वृक्षेण धर्मात्मा सोऽप्यशुष्यत ८
तमुदारं महासत्त्वमतिमानुषचेष्टितम् ।
समदुःखसुखं दृष्ट्वा विस्मितः पाकशासनः ९
ततश्चिन्तामुपगतः शक्रः कथमयं द्विजः ।
तिर्यग्योनावसंभाव्यमानृशंस्यमवस्थितः ॥
+अथवा नात्र चिन्त्यं हि अभवद्वासवस्य तु।
प्राणिनामपि सर्वेषां सर्वं सर्वत्र दृश्यते ॥ ११
ततो ब्राह्मणवेषेण मानुषं रूपमास्थितः ।
अवतीर्य महीं शक्रस्तं पक्षिणमुवाच ह ॥ १२
शुक भो पक्षिणां श्रेष्ठ दाक्षेयी सुप्रजा त्वया
पृच्छे त्वां शुकमेनं त्वं कस्मान्न त्यजसि द्रुमम्
अथ पृष्टः शुकः प्राह मूर्ध्ना समभिवाद्य तम्
स्वागतं देवराज त्वं विज्ञातस्तपसा मया १४
ततो दशशताक्षेण साधु साध्विति भाषितम्
अहो विज्ञानमित्येवं मनसा पूजितस्ततः १५
तमेवं शुभकर्माणं शुकं परमधार्मिकम् ।
विजानन्नपि तां प्रीतिं पप्रच्छ बलसूदनः १६
निष्पत्रमफलं शुष्कमशरण्यं पतत्रिणाम् ।
किमर्थं सेवसे वृक्षं यदा महदिदं वनम् ॥ १७
अन्येऽपि बहवो वृक्षाः पत्रसंछन्नकोटराः ।
शुभाः पर्याप्तसञ्चारा विद्यन्तेऽस्मिन्महावने
गतायुषमसामर्थ्यं क्षीणसारं हतश्रियम् ।
विमृश्य प्रज्ञया धीर जहीमं स्थविरं द्रुमम् १९
भीष्म उवाच ।
तदुपश्रुत्य धर्मात्मा शुकः शक्रेण भाषितम्
सुदीर्घमतिनिःश्वस्य दीनो वाक्यमुवाच ह२०
अनतिक्रमणीयानि दैवतानि शचीपते ।
यत्राभवस्तव प्रश्नस्तन्निबोध सुराधिप ॥ २१
अस्मिन्नहं द्रुमे जातः साधुभिश्च गुणैर्युतः।
बालभावेन संगुप्तः शत्रुभिश्च न धर्षितः २२
किमनुक्रोश्य वैफल्यमुत्पादयसि मेऽनघ ।
आनृशंस्याभियुक्तस्य भक्तस्यानन्यगस्य च ॥
अनुक्रोशो हि साधूनां महद्धर्मस्य लक्षणम् ।
अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति२४
त्वमेव दैवतैः सर्वैः पृच्छ्यसे धर्मसंशयात् ।
अतस्त्वं देवदेवानामाधिपत्ये प्रतिष्ठितः ॥२५
नार्हसे मां सहस्राक्ष द्रुमं त्याजयितुं चिरात्
समर्थमुपजीव्येमं त्यजेयं कथमद्य वै ॥ २६
तस्य वाक्येन सौम्येन हर्षितः पाकशासनः
शुकं प्रोवाच धर्मात्मा आनृशंस्येन तोषितः
वरं वृणीष्वेति तदा स च वव्रे वरं शुकः ।
आनृशंस्यपरो नित्यं तस्य वृक्षस्य संभवम् ॥

---

५

एवं दुष्प्रापमपि ब्राह्मण्यमानृशंस्यं विना व्यर्थमित्याशयवानानृशंस्याध्यायमारभते—**आनृशंस्येति** ॥१॥ विषये देशे काण्डं बाणम् ॥ ३ ॥ तत्र मृगयायाम् ॥४॥ दुर्वारितास्त्रेण दुर्वार्यशस्त्रेण निमित्ताल्लक्ष्याच्चपलश्चलित इषुर्यस्य तेन ॥५॥ दिग्धेन लिप्तेन ॥ ६ ॥ द्विज पक्षी आनृशंस्यं परदुःखेन दुःखित्वम् ॥ १० ॥ चिन्त्यं आश्चर्यं सर्वेषां मृगादीनां सर्वत्र जातौ सर्वं कृपानैष्ठुर्यादिकम् ॥ ११ ॥ दाक्षेयी दक्षदौहित्री शुकी नाम ॥ १३ ॥ तपसा ज्ञानदृष्ट्या ॥ १४ ॥ तां प्रीतिं वृक्षे तत् सौहार्दम् ॥ १६ ॥ अनुक्रोश्य कृपायित्वा वैफल्यं जन्मन इति शेषः ॥ २३ ॥ संशयात् संशयं प्राप्य अतः संशयच्छेत्तृत्वात् ॥ २५ ॥ अद्य असामर्थ्यकाले ॥ २६ ॥ संभवं सम्यगैश्वर्यं वरं वव्रे ॥ २८ ॥

+ 'अथवा नात्र चित्रं हीत्यभवद्वासवस्य तु' इति पाठः ।

विदित्वा च दृढां भक्तिं तां शुके शीलसम्पदम्
प्रीतः क्षिप्रमथो वृक्षममृतेनावसिक्तवान् २९
ततः फलानि पत्राणि शाखाश्चापि मनोहराः
शुकस्य दृढभक्तित्वाच्छ्रीमत्तां प्राप स द्रुमः
शुकश्च कर्मणा तेन आनृशंस्यकृतेन वै ।
आयुषोऽन्ते महाराज प्राप शक्रसलोकताम्॥
एवमेव मनुष्येन्द्र भक्तिमन्तं समाश्रितः ।
सर्वार्थसिद्धिं लभते शुकं प्राप्य यथा द्रुमः ३२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि शुकवासवसंवादे
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद
दैवे पुरुषकारे च किंस्विच्छ्रेष्ठतरं भवेत् ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वसिष्ठस्य च संवादं ब्रह्मणश्च युधिष्ठिर ॥ २
दैवमानुषयोः किंस्वित्कर्मणोः श्रेष्ठमित्युत ।
पुरा वासिष्ठो भगवान् पितामहमपृच्छत ३
ततः पद्मोद्भवो राजन् देवदेवः पितामहः ।
उवाच मधुरं वाक्यमर्थवद्धेतुभूषितम् ॥ ४
ब्रह्मोवाच ।
नाबीजं जायते किंचिन्न बीजेन विना फलम्
बीजाद्बीजं प्रभवति बीजादेव फलं स्मृतम् ५
यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः ।
सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ६
यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम् ।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ७
क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम् ।
क्षेत्रबीजसमायोगात्ततः सस्यं समृद्ध्यते ॥ ८
कर्मणः फलनिर्वृत्तिं स्वयमश्नाति कारकः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके कृतस्यापकृतस्य च ॥ ९
शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा ।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् १०
कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यसंयुताम् ।
अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम् ११
तपसा रूपसौभाग्यं रत्नानि विविधानि च
प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मना १२
तथा स्वर्गश्च भोगश्च निष्ठा या च मनीषिता ।
सर्वं पुरुषकारेण कृतेनेहोपलभ्यते ॥ १३
ज्योतींषि त्रिदशा नागा यक्षाश्चन्द्रार्कमारुताः
सर्वे पुरुषकारेण मानुष्याद्देवतां गताः ॥ १४
अर्था वा मित्रवर्गा वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम्
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः १५
शौचेन लभते विप्रः क्षत्रियो विक्रमेण तु ।
वैश्यः पुरुषकारेण शूद्रः शुश्रूषया श्रियम् १६
नादातारं भजन्त्यर्था न क्लीबं नापि निष्क्रियम्
नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम् १७
येन लोकास्त्रयः सृष्टा दैत्याः सर्वाश्च देवताः
स एष भगवान्विष्णुः समुद्रे तप्यते तपः १८

---

आनृशंस्यफलमाह—**शुकश्चेति** ॥ ३१ ॥ आख्यायिकातात्पर्यमाह—**एवमिति** ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

६

**पितामहेत्यादि**रध्यायो दैवमूलमपीदं सर्वं पुरुषकारादृते न सिध्यतीत्यवश्यं पुरुषकारे भोगमोक्षार्थिना यतितव्यमित्येवंपर द्वयो श्रेष्ठयोर्मध्ये किमतिश्रेष्ठमित्यर्थ ॥१॥ दैवं प्राक्कर्म मानुषं साम्प्रतिकं कम ॥ ३ ॥ दैवश्रैष्ठ्यमाह—**नाबीजमिति** ॥५॥ सुकृते बीजभूते सति ॥६॥ पुरुषकारश्रैष्ठ्यमाह-**यथेति**॥७॥ उद्यमापेक्षायामाह—**क्षेत्रमिति** ॥८॥सिद्धान्त **कर्मण इत्यादिना** निर्वृत्तिं सिद्धिम् ९॥ कर्मदैवयो प्राबल्यदौर्बल्ये उपसंहरति-**प्राप्यत इति**॥१२ मानुष्यात् मानुष्यसुकृत्य ॥ १४ ॥ लभते श्रियमिति सर्वत्र संबन्ध ॥१६॥ शिष्टाचारोऽपि कर्मणा प्राबल्ये मानमित्याह-**येनेति** ॥ १८ ॥

सर्वं चेत्कर्मफलं न स्यात्सर्वमेवाफलं भवेत् ।
लोको दैवं समालक्ष्य उदासीनो भवेन्नु १९
अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्तते ।
वृथा श्राम्यति संप्राप्य पतिं क्लीबमिवाङ्गना
न तथा मानुषे लोके भयमस्ति शुभाशुभे ।
यथा त्रिदशलोके हि भयमन्येन जायते २१
कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते ।
न दैवमकृते किञ्चित्कस्यचिद्दातुमर्हति ॥ २२
यथा स्थानान्यनित्यानि दृश्यन्ते दैवतेष्वपि
कथं कर्म विना दैवं स्थास्यति स्थापयिष्यतः
न दैवतानि लोकेऽस्मिन्
व्यापारं यान्ति कस्यचित् ।
व्यासङ्गं जनयन्त्युग्र-
मात्माभिभवशङ्कया ॥ २४
ऋषीणां देवतानां च सदा भवति विग्रहः ।
कस्य वाचा ह्यदैवं स्याद्यतो दैवं प्रवर्तते २५
कथं तस्य समुत्पत्तिर्यतो दैवं प्रवर्तते ।
एवं त्रिदशलोकेऽपि प्राप्यन्ते बहवो गुणाः॥
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च
कृतं चाप्यकृतं किञ्चित्कृते कर्मणि सिद्ध्यति
सुकृतं दुष्कृतं कर्म न यथार्थं प्रपद्यते ॥ २८
देवानां शरणं पुण्यं सर्वं पुण्यैरवाप्यते ।
पुण्यशील नरं प्राप्य किं दैवं प्रकरिष्यति२९
पुरा ययातिर्विभ्रष्टश्च्यावितः पतितः क्षितौ
पुनरारोपितः स्वर्गं दौहित्रैः पुण्यकर्मभिः ३०
पुरूरवाश्च राजर्षिर्द्विजैरभिहितः पुरा ।
ऐल इत्यभिविख्यातः स्वर्गं प्राप्तो महीपतिः
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैः सत्कृतः कोसलाधिपः
महर्षिशापात्सौदासः पुरुषादत्वमागतः ३२
अश्वत्थामा च रामश्च मुनिपुत्रौ धनुर्धरौ ।
न गच्छतः स्वर्गलोकं सुकृतेनेह कर्मणा ३३
वसुर्यज्ञशतैरिष्ट्वा द्वितीय इव वासवः ।
मिथ्याभिधानेनैकेन रसातलतलं गतः ३४
बलिर्वैरोचनिर्बद्धो धर्मपाशेन दैवतैः ।
विष्णोः पुरुषकारेण पातालसदनः कृतः ३५
शक्रस्योद्यम्य चरणं प्रस्थितो जनमेजयः ।
द्विजस्त्रीणां वधं कृत्वा किं दैवेन न वारितः
अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा स्पृष्टो बालवधेन च ।
वैशम्पायनविप्रर्षिः किं दैवेन न वारितः ॥ ३७
गोप्रदानेन मिथ्या च ब्राह्मणेभ्यो महामखे ।
पुरा नृगश्च राजर्षिः कृकलासत्वमागतः ॥३८
धुन्धुमारश्च राजर्षिः सत्रेष्वेव जरां गतः ।
प्रीतिदायं परित्यज्य सुष्वाप स गिरिव्रजे ३९
पाण्डवानां हृतं राज्यं धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद्भुजसंश्रयात् ॥ ४०

---

ननु निश्चितम् ॥१९॥ **अकृत्वेति** । केवलं दैवं निष्फलमित्यर्थः ॥ २० ॥ **न तथेति** । दैवदौःस्थ्ये ऐहिकी हानिः सुसहा पुरुषकारदौःस्थ्ये तु परलोकहानिर्दुरन्तेत्यर्थः अन्येन पापेन ॥ २१ ॥ अकृते कर्माभावे सति आकस्मिकनिधिलाभादावपि किंचित्कर्मास्त्येवेति भावः ॥ २२ ॥ **यथेति** । स्थानानि इंद्रादिलोकाः अप्यनित्या दृश्यन्ते ताराहूपिणां देवानामधःपातदर्शनादित्यर्थः । कर्म विना पुण्येन कर्मणा विना दैवं देवसमूहः कथं स्थास्यति दैवमपि कर्ममूलमेवेत्यर्थः ॥२३॥ व्यापारं पुण्यरूपं यान्ति अनुमोदन्ते उग्रं धर्मविघ्नकरम् ॥२४॥ विग्रहो वैरं तथाहि ऋषीणां तपसि देवा विघ्नमाचरन्ति । ऋषयश्च च्यवनादय इंद्रादीनामभिभवं कुर्वन्तीति **सौकन्ये** प्रसिद्धम् । यद्यप्येवं कर्मपरत्वं देवर्षीणामस्ति तथापि अदैवं दैवाभावो न वक्तुं शक्य इत्यर्थः ॥२५॥ अत्र मानमाह-**कथमिति** । यतो यस्माद्दैवं प्रवर्तते तस्य कर्मणोऽपि दैवं विना कथमुत्पत्तिः स्यात्र कथमपि पुण्यवन्त एव धर्मे प्रवर्तन्ते धर्माच्च पुण्यं वर्धते। अन्यथा सर्वेऽपि धर्मे प्रवर्तेरन्नित्यर्थः ।एवं लोकवदेव स्वर्गेऽपि गुणा भोगा यथा बहुधनो भूयसा वाणिज्येन भूयांसं लाभं लभते नेतरः इतिवदेतदिति भावः ॥ २६ ॥ **आत्मेति** । एवं प्रवृत्तेरपि दैवाधीनत्वेऽपि कर्मैव कर्तव्यमित्यर्थः कृतस्य पुण्यपापादेः ॥ २७ ॥ **कृतमिति** । पुण्यमपि पापेन प्रतिहन्यते पापमपि पुण्येनेति तयोः फलं यथोक्तं स्वर्गं नरकं वा न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २८ ॥ शरणं गृहं यथा ह्यस्तनोऽपराधः श्वस्तनेन सत्कारेणापनीयते एवं दैवमपि पुण्यातिशयात्प्रतिहन्यते इत्यर्थः ॥ २९ ॥ अत्रैवार्थे दृष्टान्तानाह-**पुरेत्यादिना** ॥३०॥ विपर्ययेऽपि दृष्टान्तमाह-**अश्वेति** ॥ ३२ ॥ मिथ्याभिधानेन पशुयज्ञश्रुतिरप्रमाणमित्येवरूपेण रसातलस्य भूमेस्तलमधोभागम् ॥ ३४ ॥ पापमपि तेजीयसा न दोषायेत्याह-**शक्रस्येति द्वाभ्याम्** चरणं द्विजस्त्रीदूषणरूपं कर्म कृत्वा प्रस्थित इति संबंधः ॥३६॥ पुण्यमपि केषांचिन्न त्राणायेत्याह-**गोप्रदानेनेति**। कृकलासत्वं सरठत्वम्॥३८॥ प्रीतिदायं देवैर्दत्तं वरं सुष्वाप मत्रफलं नाप्तवानित्यर्थः ॥ ३९ ॥ न दैवात् प्रत्याहृतमपि तु भुजसंश्रयादेवेत्यर्थः ॥ ४० ॥

तपोनियमसंयुक्ता मुनयः संशितव्रताः ।
किं त दैवबलाच्छापमुत्सृजन्ते न कर्मणा ४१
पापमुत्सृजते लोके सर्वं प्राप्य सुदुर्लभम् ।
लोभमोहसमापन्नं न दैवं त्रायते नरम् ॥ ४२
यथाऽग्निः पवनोद्धूतः सुसूक्ष्मोऽपि महान्भवेत्
तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्धते ॥ ४३
यथा तैलक्षयाद्दीपः प्रह्लासमुपगच्छति ।
तथा कर्मक्षयाद्दैवं प्रह्लासमुपगच्छति ॥ ४४
विपुलमपि धनौघं प्राप्य भोगान् स्त्रियो वा
पुरुष इह न शक्तः कर्महीनो हि भोक्तुम् ।
सुनिहितमपि चार्थं दैवतै रक्ष्यमाणं
पुरुष इह महात्मा प्राप्नुते नित्ययुक्तः ॥ ४५
व्ययगुणमपि साधुं कर्मणा संश्रयन्ते
भवति मनुजलोकाद्देवलोको विशिष्टः ।
बहुतरसुसमृद्ध्या मानुषाणां गृहाणि
पितृवनभवनाभं दृश्यते चामराणाम् ॥४६
न च फलति विकर्मा जीवलोके न दैवं
व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम् ।
गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवं
नयति पुरुषकारः संचितस्तत्र तत्र ॥ ४७
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै मुनिसत्तम ।
फलं पुरुषकारस्य सदा संदृश्य तत्त्वतः ॥ ४८
अभ्युत्थानेन दैवस्य समारब्धेन कर्मणा ।
विधिना कर्मणा चैव स्वर्गमार्गमवाप्नुयात् ४९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि दैवपुरुषकारनिर्देशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

युधिष्ठिर उवाच ।

कर्मणां च समस्तानां शुभानां भरतर्षभ । फलानि महतां श्रेष्ठ प्रब्रूहि परिपृच्छतः ॥ १

किं दैवबलाच्छापमुत्सृजन्ते कर्मणा न अपि तु कर्मणैवोत्सृजन्ते न तु दैवबलादित्यर्थ ॥ ४१ ॥ पापं पापिनं प्रति सर्वं ऐश्वर्यादिकं गुणजातं लोके प्राप्य उपेत्यापि तं उत्सृजते इति योजना । तथा चाभाणक दैवेन दत्तं कर्मणा नाशितमिति । एतदेव स्पष्टयति-**लोभेति** ॥४२॥ दैवस्य कर्माधीनत्वमाह द्वाभ्या-**यथेति** ॥ ४३ ॥ कर्महीनः पाकरत्वाद्यप्रवृत्त सुनिहितं पातालस्थं निधिं नित्ययुक्त अंजनादिसाधनोद्युक्त ॥ ४५ ॥ व्यय एव गुण स्वभावो यस्य तं रिक्तं व्ययगतमितिपाठेपि स एवार्थ । निर्धनत्वान्नैस्त्यक्तमपि साधुं कर्मणा सदाचारेण निमित्तेन श्रद्धैकप्रिया देवा संश्रयन्ते स्वस्वभागार्थमुपजीवन्तीत्यर्थ । ततश्च श्रेष्ठफलैरेनं योजयन्तीत्याह-**भवतीति** विशिष्टत्वमेवाह-**बह्विति**। समृद्धया उपेतं गृहाणि गृहं बहुत्वमार्षं पितृवनभवनाभं श्मशानगृहतुल्यं अमराणा अमरै. ॥ ४६ ॥ विकर्मा कर्महीन. न च फलति फल तृप्त्यादिकं न प्राप्नोति नापि केवलं दैवं विमार्गगामिनं नरं व्यपनयति विमार्गादन्यत्र नयति अत एव दैवे प्रभुत्वं नास्ति। किं तु दैवं कर्तृ कर्म संयाति पुरुषकारमनुसरति गुरुं शिष्य इवेत्यर्थ । अत एव पुरुषकारो यत्र यत्र विषये संचित सम्यगनुष्ठितस्तत्र तत्र दैवं नयति आविर्भावयति पुरुषकारेण सिद्धेर्ये लोका दैवानुकूल्यादेतत्सिद्धमिति वदतीत्यर्थ । गुरुमित्यत्र अनुपहतमदीन कामकारेण दैवमिति पाठे कामकारेण इच्छया यत्र पुरुषकार. संचितस्तत्रैव दैवं अदीनमनुपहतं चेति नयति प्रापयतीत्यर्थ ॥ ४७ ॥ संदृश्य सम्यक् योगजदृष्ट्याऽनुभूय ॥ ४८ ॥ ननु कृषिपर्जन्यन्यायेन दैवापेक्षा कर्मणोदिर्ने कर्मापेक्षं दैवमिति प्रत्यक्षं तत्कथं विपरीतमुच्यत इत्याशङ्क्याह-**अभीति** । दैवस्य प्राक्कर्मण अभ्युत्थानं व्यापारो द्विविध । संचितरूपेणावस्थानं एक ,भोगार्थं समारम्भो द्वितीय । तत्र समारब्धेन उत्थानेन तदनुकूलेन कर्मणा च ऐहिकं फलमाप्नुयात्। विधिना शास्त्रेण कर्मणा च तदनुसारिणा स्वर्गमार्गमवाप्नुयात् । **दैवाधीनो भोगः, कर्माधीनः संचय** इति निष्कर्ष । **कृष्यादावपि दैवप्रतीक्षणं कापुरुषकर्म** सेचनादिनापि फलस्योत्पादयितुं शक्यत्वादिति भाव ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

अद्विषन् गौतमीवारीन् ज्ञात्वा दुःखं स्वदोषजम् ।
दत्वाऽपि दाराननिथीन्सुदर्शन इवार्चयन् ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि यन्मां पृच्छसि भारत
रहस्यं यदृषीणां तु तच्छृणुष्व युधिष्ठिर ।
या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे चिरेप्सिता २
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३
यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुंक्ते जन्मनि जन्मनि
न नश्यति कृतं कर्म सदा पञ्चेन्द्रियैरिह ।
ते ह्यस्य साक्षिणो नित्यं षष्ठ आत्मा तथैव च
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम् ।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ ६
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ७
स्थण्डिलेषु शयानानां गृहाणि शयनानि च ।
चीरवल्कलसंवीते वासांस्याभरणानि च ॥ ८
वाहनानि च यानानि योगात्मनि तपोधने ।
अग्नीनुपशयानस्य राज्ञः पौरुषमेव च ॥ ९
रसानां प्रतिसंहारे सौभाग्यमनुगच्छति ।
आमिषप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विन्दति ॥ १०
अवाक्शिरास्तु यो लम्बेदुदवासं च यो वसेत्
सततं चैकशायी यः स लभतेप्सितां गतिम् ॥
पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ।
दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ १२
वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपागतः ।
अक्षयास्तस्य वै लोकाः सर्वकामगमास्तथा ॥
धनं लभेत दानेन मौनेनाज्ञां विशांपते ।
उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १४
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ।
फलमूलाशिनो राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्
प्रायोपवेशिनो राजन्सर्वत्र सुखमुच्यते ।
गवाढ्यः शाकदीक्षायां स्वर्गगामी तृणाशनः
स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा
वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ।
स्वर्गं सत्येन लभते
दीक्षया कुलमुत्तमम् ॥ १७
सलिलाशी भवेद्यस्तु सदाग्निः संस्कृतो द्विजः
मन्त्रं साधयतो राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥ १८
उपवासं च दीक्षायामभिषेकं च पार्थिव ।
कृत्वा द्वादश वर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥
अधीत्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखाद्विमुच्यते ।
मानसं हि चरन् धर्मं स्वर्गलोकमुपाश्नुते ॥ २०
या दुस्त्यजा दुर्मतिभि-
र्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोग-
स्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ २१
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ २२
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च
स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम् २३

---

ब्राह्मण्यं दुर्लभं जानन् विश्वामित्रनिदर्शनात् आनृशंस्यपरो धर्म इति य. शुकवत् स्थित ॥२॥ दैवेन रक्ष्यते देह इति धर्मेऽतियत्नवान् धर्माधिकारी ग्रट्सूक्तो धर्मोथ मुनिनोच्यते ॥३॥ धर्मात्सुखं भवतीत्युक्तं तत्र को धर्म किं फलमिति जिज्ञासुर्युधिष्ठिर उवाच-**कर्मणामिति** ॥१॥ गति फलं येन कर्मणा प्रेत्यभावे मरणोत्तर देहान्तरप्राप्तौ ॥ २ ॥ **येनेति** । मनसा कृतस्य कर्मण फलं मनसैव स्वप्नादौ भुङ्क्ते । कायेन कृतस्य फलं कायेनैव भुङ्क्ते जाग्रदादावित्यर्थ ॥ ३ ॥ अवस्थाया बाल्ययौवनादिरूपाया आपद्यनापदि वा ॥ ४ ॥ **नेति** । नाशो नैष्फल्यं अस्य कर्तु साक्षिणामभावे हि कृतं व्यर्थैव स्यान्न तु तत्सत्त्वे इति भाव ॥ ५ ॥ दद्यादभ्यागतायेति शेष. ॥६॥ महत् अपरिमितम् ॥७॥ वानप्रस्थधर्माणा फलान्याह-**स्थंडिलेष्वित्यादिना** ॥ ८ ॥ योगात्मनि योगयुक्तचित्ते ॥ ९ ॥ एकशायी ब्रह्मचर्यवान् ॥११॥ वीरा आसतेऽस्मिन्निति वीरासनं रणदेश उपेत्य वीरशय्या तत्र दीर्घनिद्रा च प्राप्य वीरस्थानं स्वर्गलोकं य उपागतो भवति तस्याक्षया लोका इत्यर्थ' ॥ १३ ॥ आज्ञा अविच्छिन्नामिति शेष । तपसा कृच्छ्रादिना जीवितं आयु ॥१४॥ शाकदीक्षाया शाकमात्राशननियमे ॥ १६ ॥ स्त्रियः स्त्रियं त्यक्त्वेत्यर्थ॰। क्रतुं संकल्पं सत्यसंकल्पत्वमिति यावत् दीक्षया यज्ञेन ॥ १७ ॥ सदाग्नि. अविच्छिन्नाग्निहोत्र मन्त्रं गायत्र्यादिमंत्रं पाठातरे मेरुसाधनं तपोविशेष अनाशके हितमितमेध्याशनेऽनशने वा ॥ १८ ॥ द्वादशवार्षिक्या दीक्षायां उपवासं व्रतार्थं क्षीराद्याहारं व्रतं च। 'पयो ब्राह्मणस्य व्रतं यवागू राजन्यस्यामिक्षा वैश्यस्य' इति श्रुतिप्रसिद्धं अभिषेकं द्वादशवार्षिकं तीर्थाटनं वा वीरस्थानात्स्वर्गादपि विशिष्यते ब्रह्मलोकप्रदमेतत् द्वयमित्यर्थ॰॥१९॥ कायिकं धर्ममुक्त्वा वाचिकमाह-**अधीत्येति** २० मानसं धर्मं विवृणोति-**येति**२१

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा
दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते
तृष्णैका न तु जीर्यते ॥ २४
येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः ।
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता ।
येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद्ब्रह्म पूजितम् ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः

वैशम्पायन उवाच ।
भीष्मस्यैतद्वचः श्रुत्वा विस्मिताः कुरुपुङ्गवाः
आसन् प्रहृष्टमनसः प्रीतिमन्तोऽभवंस्तदा २७
यन्मन्त्रे भवति वृथोपयुज्यमाने
यत्सोमे भवति वृथाभिषूयमाणे ।
यच्चाग्नौ भवति वृथाभिहूयमाने
तत्सर्वं भवति वृथाभिधीयमाने ॥ २८
इत्येतदृषिणा प्रोक्तमुक्तवानस्मि यद्विभो ।
शुभाशुभफलप्राप्तौ किमतः श्रोतुमिच्छसि २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि कर्मफलिकोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

युधिष्ठिर उवाच ।
के पूज्याः के नमस्कार्याः
कान्नमस्यसि भारत ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व
येभ्यः स्पृहयसे नृप ॥ १
उत्तमापद्गतस्यापि यत्र ते वर्तते मनः ।
मनुष्यलोके सर्वस्मिन् यदमुत्रेह चाच्युत ॥ २
भीष्म उवाच ।
स्पृहयामि द्विजातिभ्यो येषां ब्रह्म परं धनम्
येषां स्वप्रत्ययः स्वर्गस्तपःस्वाध्यायसाधनम् ३
येषां बालाश्च वृद्धाश्च पितृपैतामहीं धुरम् ।
उद्वहन्ति न सीदन्ति तेभ्यो वै स्पृहयाम्यहम्
विद्यास्वभिविनीतानां
दान्तानां मृदुभाषिणाम् ।
श्रुतवृत्तोपपन्नानां
सदाक्षरविदां सताम् ॥ ५

संसत्सु वदतां तात हंसानामिव सङ्घशः ।
मङ्गल्यरूपा रुचिरा दिव्यजीमूतनिःस्वनाः ६
सम्यगुच्चरिता वाचः श्रूयन्ते हि युधिष्ठिर ।
शुश्रूषमाणे नृपतौ प्रेत्य चेह सुखावहाः ॥ ७
ये चापि तेषां श्रोतारः सदा सदसि संमताः
विज्ञानगुणसंपन्नास्तेभ्यश्च स्पृहयाम्यहम् ॥ ८
सुसंस्कृतानि प्रयताः शुचीनि गुणवन्ति च ।
ददत्यन्नानि तृप्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ॥ ९
ये चापि सततं राजंस्तेभ्यश्च स्पृहयाम्यहम् ।
शक्यं ह्येवाहवे योद्धुं न दातुमनसूयितम् १०
शूरा वीराश्च शतशः सन्ति लोके युधिष्ठिर ।
येषां सङ्ख्यायमानानां दानशूरो विशिष्यते ॥
धन्यः स्यां यद्यहं भूयः
सौम्य ब्राह्मणकोऽपि वा ।
कुले जातो धर्मगति-
स्तपोविद्यापरायणः ॥ १२

---

मंत्रोच्चारणं जिगीषाद्यर्थं वृथा सोमाभिषवो दाक्षिणा विना वृथा होमो मंत्रं विना वृथा । एतैस्त्रिभिर्यत्पापं तत्सर्वं मिथ्यावादिनो भवतीत्यर्थ ॥२८॥ प्राप्तौ प्राप्त्यर्थम् ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्याय ॥७॥ * 'वृथापयुज्यमाने' इति पाठ·।

८

**के पूज्या इत्यादिना** पूर्वोक्तधर्मान् विवृणोति तत्रापि चक्षुर्दद्यादित्यादिना आतिथ्यं कर्तव्यमुक्तं तद्विवृणोत्यध्यायेन ॥ १ ॥ यदमुत्रेह च हितं तद्वदेति शेष ॥२॥ ब्रह्म आनदात्मा स्वर्गः सत्यसंकल्पत्वादिसिद्धि· तप स्वाध्यायौ साधनं यस्य स्वर्गस्य यस्तमात्मानमनुविद्य विजानाति सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानिति श्रुते· स स्वप्रत्यय· ॥३॥ अक्षरं ब्रह्म तद्विदाम् ॥ ५ ॥ हंससादृश्यं क्षीरनीरयोरिवात्मानात्मनोर्विवेचनात् ॥ ६ ॥ नृपतौ नृपते समीपे उच्चरिता ॥ ७ ॥ अनसूयितं· असूयावर्ज्यं यथा स्यात्तथा ॥ १० ॥ ब्राह्मणकः कुत्सितब्राह्मणोऽपि यद्यहं स्या तर्हि धन्य किमुत कुले जात· ॥ १२ ॥

न मे त्वत्तः प्रियतरो लोकेऽस्मिन् पांडुनन्दन
त्वत्तश्चापि प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १३
यथा मम प्रियतमास्त्वत्तो विप्राः कुरूत्तम ।
तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्यत्र स शान्तनुः ॥
न मे पिता प्रियतरो ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽभवत् ।
न मे पितुः पिता वापि ये चान्येऽपि सुहृज्जनाः
न हि मे वृजिनं किञ्चिद्विद्यते ब्राह्मणेष्विह ।
अणु वा यदि वा स्थूलं विद्यते साधु कर्मसु ॥
कर्मणा मनसा वापि वाचा वापि परन्तप
यन्मे कृतं ब्राह्मणेभ्यस्तेनाद्य न तपाम्यहम् १७
ब्रह्मण्य इति मामाहुस्तया वाचाऽस्मि तोषितः
एतदेव पवित्रेभ्यः सर्वेभ्यः परमं स्मृतम् १८
पश्यामि लोकानमला-
ञ्छुचीन्ब्राह्मणयायिनः ।
तेषु मे तात गन्तव्य-
महाय च चिराय च ॥ १९
यथा भर्त्राश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके युधिष्ठिर ।
स देवः सा गतिर्नान्या क्षत्रियस्य तथा द्विजाः
क्षत्रियः शतवर्षी च दशवर्षी द्विजोत्तमः ।
पितापुत्रौ च विज्ञेयौ तयोर्हि ब्राह्मणो गुरुः २१
नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम् ।
पृथिवी ब्राह्मणालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम् २२
पुत्रवच्च ततो रक्ष्या उपास्या गुरुवच्च ते ।
अग्निवच्चोपचर्या वै ब्राह्मणाः कुरुसत्तम ॥ २३
ऋजून्सतः सत्यशीलान्सर्वभूतहिते रतान् ।
आशीविषानिव क्रुद्धान्द्विजान्परिचरेत्सदा
तेजसस्तपसश्चैव नित्यं बिभ्येद्युधिष्ठिर ।
उभे चैते परित्याज्ये तेजश्चैव तपस्तथा ॥ २५
व्यवसायस्तयोः शीघ्रमुभयोरेव विद्यते ।
हन्युः क्रुद्धा महाराज ब्राह्मणा ये तपस्विनः ॥
भूयः स्यादुभयं दत्तं ब्राह्मणाद्यदकोपनात् ।
कुर्यादुभयतः शेषं दत्तशेषं न शेषयेत् ॥ २७
दण्डपाणिर्यथा गोषु पालो नित्यं हि रक्षयेत्
ब्राह्मणा ब्रह्म च तथा क्षत्रियः परिपालयेत् २८
पितेव पुत्रान् रक्षेथा ब्राह्मणान् धर्मचेतसः ।
गृहे चैषामवेक्षेथाः किंस्विदस्तीति जीवनम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## ९

युधिष्ठिर उवाच ।
ब्राह्मणानां तु ये लोकाः प्रतिश्रुत्य पितामह
न प्रयच्छन्ति मोहात्ते के भवन्ति महाद्युते १
एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि धर्मं धर्मभृतां वर ।
प्रतिश्रुत्य दुरात्मानो न प्रयच्छन्ति ये नराः

---

वृजिनं सकटं फलाशेति यावत् पूज्यत्वादेव तान्पूजयामि न तु फलायेत्यर्थः ॥ १६ ॥ तेन ब्राह्मणाराधनेन अद्य शरपंजरस्थोऽपि न तपामि न व्यथां प्राप्नोमीति स्वानुभवं दर्शयति ॥ १७ ॥ ब्रह्मण्यो ब्रह्मजातौ आसक्तः ॥ १८ ॥ यायिनोऽनुचरस्य मे ॥ १९ ॥ **तेजस** इति । ब्राह्मणाद्बिभ्येत् न तु तत्र तेजस्तपसी स्वीये प्रकाशयेदित्यर्थः । तेजः क्रोधबलम् तपो योगबलम् ॥२५॥ तयोस्तपस्तेजसोर्ब्राह्मणक्षत्रियस्थयोर्व्यवसायः फलं अभिभवरूपं शीघ्रं तीव्रं तथापि तपस्विन एवेतरान् हन्युर्न तेजस्विन इत्यर्थः ॥ २६ ॥ **भूय इति** । ल्यब्लोपे पंचमी अकोपनं ब्राह्मणं प्राप्य यद्भूय बहुतर उभयं तपस्तेज आख्यं स्यात् तद्दत्तं खंडितं भवतीति शेषः । क्षमावत्सु प्रयुक्तं तत्तेजो बह्वपि तूलराशिवत्सद्यो नश्यतीत्यर्थः उभयत उभयं चेत् शेषं कुर्यात् न तद्दत्तशेषं शेषयेदित्यन्वयः । द्वाभ्यां अन्योन्यास्मिन्प्रयुक्तं तेज आदिद्वयं न निःशेषं नश्यति किंतु शेषं क्षमावता खंडितस्य तस्यावशिष्टं तु न शेषयेत् शिष्यते अपि तु निःशेषमेव नश्यतीत्यर्थः ॥ २७ ॥ **अस्तीति** । अभावे तद्देयमित्यर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

**ब्राह्मणानामिति** ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

यो न दद्यात्प्रतिश्रुत्य
स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
आशास्तस्य हताः सर्वाः
क्लीबस्येव प्रजाफलम् ॥ ३

यां रात्रिं जायते जीवो
यां रात्रिं च विनश्यति ।
एतस्मिन्नन्तरे यद्यत्
सुकृतं तस्य भारत ॥ ४

यच्च तस्य हुतं किञ्चिद्दत्तं वा भरतर्षभ ।
तपस्तप्तमथो वापि सर्वं तस्योपहन्यते ॥ ५

अथैतद्वचनं प्राहुर्धर्मशास्त्रविदो जनाः ।
निशम्य भरतश्रेष्ठ बुद्ध्या परमयुक्तया ॥ ६

अपि चोदाहरन्तीमं धर्मशास्त्रविदो जनाः ।
अश्वानां श्यामकर्णानां सहस्रेण स मुच्यते ७

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शृगालस्य च संवादं वानरस्य च भारत ॥ ८

तौ सखायौ पुरा ह्यास्तां मानुषत्वे परन्तप ।
अन्यां योनिं समापन्नौ शार्गालीं वानरीं तथा

ततः परासून् खादन्तं शृगालं वानरोऽब्रवीत्
श्मशानमध्ये संप्रेक्ष्य पूर्वजातिमनुस्मरन् १०

किं त्वया पापकं पूर्वं
कृतं कर्म सुदारुणम् ।
यस्त्वं श्मशाने मृतकान्
पूतिकानत्सि कुत्सितान् ॥ ११

एवमुक्तः प्रत्युवाच शृगालो वानरं तदा ।
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य न मया तदुपाहृतम् १२

तत्कृते पापकां योनिमापन्नोऽस्मि प्लवङ्गम ।
तस्मादेवंविधं भक्ष्यं भक्षयामि बुभुक्षितः १३

भीष्म उवाच ।

शृगालो वानरं प्राह पुनरेव नरोत्तम ।
किं त्वया पातकं कर्म कृतं येनासि वानरः ॥

वानर उवाच ।

सदा चाहं फलाहारो ब्राह्मणानां प्लवङ्गमः

तस्मान्न ब्राह्मणस्वं तु हर्तव्यं विदुषा सदा ।
समं विवादो मोक्तव्यो दातव्यं च प्रतिश्रुतम्

भीष्म उवाच ।

इत्येतद्ब्रुवतो राजन्ब्राह्मणस्य मया श्रुतम् ।
कथां कथयतः पुण्यां धर्मज्ञस्य पुरातनीम् १६

श्रुतश्चापि मया भूयः कृष्णस्यापि विशांपते ।
कथां कथयतः पूर्वं ब्राह्मणं प्रति पाण्डव ॥१७

न हर्तव्यं विप्रधनं क्षन्तव्यं तेषु नित्यशः ।
बालाश्च नावमन्तव्या दरिद्राः कृपणा अपि ॥

एवमेव च मां नित्यं ब्राह्मणाः सन्दिशन्ति वै
प्रतिश्रुत्य भवेद्देयं नाशा कार्या द्विजोत्तमे १९

ब्राह्मणो ह्याशया पूर्वं कृतया पृथिवीपते ।
सुसमिद्धो यथा दीप्तः पावकस्तद्विधः स्मृतः

यं निरीक्षेत संक्रुद्ध आशया पूर्वजातया ।
प्रदहेच्च हि तं राजन् कक्षमक्षय्यभुग्यथा २१

स एव हि यदा तुष्टो वचसा प्रतिनन्दति ।
भवत्यगदसंकाशो विषये तस्य भारत ॥ २२

पुत्रान् पौत्रान् पशूंश्चैव
बान्धवान् सचिवांस्तथा ।
पुरं जनपदं चैव
शान्तिरिष्टेन पोषयेत् ॥ २३

एतद्धि परमं तेजो ब्राह्मणस्येह दृश्यते ।
सहस्रकिरणस्येव सवितुर्धरणीतले ॥ २४

तस्माद्दातव्यमेवेह प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिर ।
यदीच्छेच्छोभनां जातिं प्राप्तुं भरतसत्तम २५

ब्राह्मणस्य हि दत्तेन ध्रुवं स्वर्गो ह्यनुत्तमः ।
शक्यः प्राप्तुं विशेषेण दानं हि महती क्रिया ॥

इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा ।
तस्माद्दानानि देयानि ब्राह्मणेभ्यो विजानता ॥

महद्धि भरतश्रेष्ठ
ब्राह्मणस्तीर्थमुच्यते ।
वेलायां न तु कस्यांचि-
द्गच्छेद्विप्रो ह्यपूजितः ॥ २८

---

निशम्य विचार्य ॥ ६ ॥ **अपि चेति** । तत्र प्रायश्चित्त सहस्रश्यामकर्णदानं अशक्यमनुष्ठातुमत एतत् पापं दुर्जरमिति भावः ॥ ७ ॥ अत्रैव प्रतिश्रुतस्य अप्रदाने विषये ॥ ८ ॥ ब्रुवतोऽध्यापकस्य कथा कथयतो मुखात् श्रुतम् ॥ १६ ॥ श्रुतश्चायमितिहासः कृष्णस्य व्यासस्य नृगकथा कथयतो वासुदेवस्य वा मुखात् श्रुतोऽयमर्थ ॥ १७ ॥ आशा वंध्याशा ॥ १९ ॥ अक्षय्यं पित्रर्थमुद्दिष्टं दानं भुंक्ते इत्यक्षय्यभुगग्निः ॥ २१ ॥ अगदसंकाशः चिकित्सकतुल्यः ॥२२॥ शान्तिरिष्टेन शान्त्या हितेन क्षेमेण । रिष्टं क्षेमे इति **मेदिनी** ॥२३॥ इत अस्मिल्लोके ब्राह्मण एव दानपात्रमिति प्रघट्टकार्थ ॥ २७ ॥ तीर्थमपि ब्राह्मण एवेत्याह— **महदिति** ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि शृगालवानरसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

युधिष्ठिर उवाच ॥

मित्रसौहार्दयोगेन उपदेशं करोति यः ।
जात्याऽधरस्य राजर्षे दोषस्तस्य भवेन्न वा ॥
एतदिच्छामि तत्त्वेन व्याख्यातुं वै पितामह ।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य यत्र मुह्यंति मानवाः २

भीष्म उवाच ॥

अत्र ते वर्तयिष्यामि शृणु राजन् यथाक्रमम्
ऋषीणां वदतां पूर्वं श्रुतमासीत् यथा पुरा ३
उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कस्यचित् ।
उपदेशे महान् दोष उपाध्यायस्य भाष्यते ४
निदर्शनमिदं राजन् शृणु मे भरतर्षभ ।
दुरुक्तवचने राजन् यथापूर्वं युधिष्ठिर ॥ ५
ब्रह्माश्रमपदे वृत्तं पार्श्वे हिमवतः शुभे ।
तत्राश्रमपदं पुण्यं नानावृक्षगणायुतम् ॥ ६
नानागुल्मलताकीर्णं मृगद्विजनिषेवितम् ।
सिद्धचारणसंयुक्तं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥ ७
व्रतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपसेवितम् ।
ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ ८
नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः ।
दीक्षितैर्भरतश्रेष्ठ यताहारैः कृतात्मभिः ॥ ९
तपोध्ययनघोषैश्च नादितं भरतर्षभ ।
वालखिल्यैश्च बहुभिर्यतिभिश्च निषेवितम् १०
तत्र कश्चित्समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः ।
आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥११
तांस्तु दृष्ट्वा मुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः ।
विविधां वहतो दीक्षां संप्राहृष्यत भारत १२
अथास्य बुद्धिरभवत्तपस्ये भरतर्षभ ।
ततोऽब्रवीत्कुलपतिं पादौ संगृह्य भारत ॥१३
भवत्प्रसादादिच्छामि धर्मं वक्तुं द्विजर्षभ ।
तन्मां त्वं भगवन्वक्तुं प्रव्राजयितुमर्हसि ॥ १४
वर्णावरोऽहं भगवन् शूद्रो जात्यास्मि सत्तम
शुश्रूषां कर्तुमिच्छामि प्रपन्नाय प्रसीद मे ॥१५

कुलपतिरुवाच ।

न शक्यमिह शूद्रेण लिंगमाश्रित्य वर्तितुम्
आस्यतां यदि ते बुद्धिः शुश्रूषानिरतो भव१६
शुश्रूषया पराँल्लोकानवाप्स्यसि न संशयः १७

भीष्म उवाच ॥

एवमुक्तस्तु मुनिना स शूद्रो चिंतयन्नृप ।
कथमत्र मया कार्यं श्रद्धा धर्मपरा च मे ॥१८
विज्ञातमेवं भवतु करिष्ये प्रियमात्मनः ।
गत्वाऽऽश्रमपदाद्दूरमुटजं कृतवांस्तु सः ॥१९
तत्र वेदीं च भूमिं च देवतायतनानि च ।
निवेश्य भरतश्रेष्ठ नियमस्थोऽभवन्मुनिः २०
अभिषेकांश्च नियमान् देवतायतनेषु च ।
बलिं च कृत्वा हुत्वा च देवतां चाप्यपूजयत्२१

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

१०

**मित्रसौहार्देत्यध्यायेन** नीचाय धर्मरहस्यं न दद्यादित्युक्तं मित्रं उपकारमपेक्ष्य उपकर्ता । **सुहृत्** उपकारमनपेक्ष्योपकर्ता लोभात् कृपया वेत्यर्थ ॥ १ ॥ उपाध्यायस्य उपदेशकर्तु भाष्यते न शूद्राय मतिं दद्यादित्यादिशास्त्रेण ॥४॥ दुरुक्तं दु खम्थं नीचं प्रति उक्तं वचनम् ॥५॥ व्रतिभिर्ब्रह्मचारिभि तापसैर्वानप्रस्थै ॥ ८ ॥ यतिभि संन्यासिभि ॥ १० ॥ दयान्वित सर्वभूताभयदानेन प्रव्रज्या कृतवानित्यर्थ. ॥ ११ ॥ दीक्षा नियमम् ॥१२॥ तपस्ये तप करिष्ये ॥१३॥ वक्तुं अविगंतुं वज गतावित्यस्य रूपं प्रव्राजयितुं विधिवत् स्वोचित कर्म त्याजयितुम् ॥१४॥ लिंग संन्यासिचिन्हं सेवकस्य तव प्रव्रज्यानाधिकारान्न युक्तम् ॥ १६ ॥ आत्मन· प्रियं विक्षेपकस्य शुश्रूषाख्यस्य स्वधर्मस्य त्यागं लिंगधारणानधिकारेऽपि त्यागमात्रे सर्वस्याधिकारात् उटज पर्णशालाम् ॥ १९ ॥ वेदीं पूजार्थं भूमिं शयनाद्यर्थम् ॥ २० ॥ अभिषेकान् त्रिसध्यं स्नानानि ॥ २१ ॥ सक-

संकल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेंद्रियः ।
नित्यं सन्निहिताभिस्तु ओषधीभिः फलैस्तथा
अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ।
एवं हि सुमहान्कालो व्यत्यक्रामत तस्य वै २३
अथास्य मुनिरागच्छत्संगत्या वै तमाश्रमम् ।
संपूज्य स्वागतेनर्षिं विधिवत्समतोषयत् ॥ २४
अनुकूलाः कथाः कृत्वा यथागतमपृच्छत ।
ऋषिः परमतेजस्वी धर्मात्मा संशितव्रतः २५
एवं सुबहुशस्तस्य शूद्रस्य भरतर्षभ ।
सोऽगच्छदाश्रममृषिः शूद्रं द्रष्टुं नरर्षभ ॥ २६
अथ तं तापसं शूद्रः सोऽब्रवीद्भरतर्षभ ।
पितृकार्यं करिष्यामि तत्र मेऽनुग्रहं कुरु ॥२७
बाढमित्येव तं विप्र उवाच भरतर्षभ ।
शुचिर्भूत्वा स शूद्रस्तु तस्यर्षेः पाद्यमानयत् २८
अथ दर्भांश्च वन्याश्च ओषधीर्भरतर्षभ ।
पवित्रमासनं चैव बृसीं च समुपानयत् ॥ २९
अथ दक्षिणमावृत्य बृसीं चरमशीर्षिकीम् ।
कृतामन्यायतो दृष्ट्वा तं शूद्रमृषिरब्रवीत् ॥३०
कुरुष्वैतां पूर्वशीर्षां भवाश्चोदङ्मुखः शुचिः ।
स च तत्कृतवान् शूद्रः सर्वं यदृषिरब्रवीत् ३१
यथोपदिष्टं मेधावी दर्भार्घादि यथातथम् ।
हव्यकव्यविधिं कृत्स्नमुक्तं तेन तपस्विना ३२
ऋषिणा पितृकार्ये च स च धर्मपथे स्थितः ।
पितृकार्ये कृते चापि विसृष्टः स जगाम ह ३३
अथ दीर्घस्य कालस्य स तप्यन् शूद्रतापसः ।
वने पञ्चत्वमगमत्सुकृतेन च तेन वै ॥ ३४
अजायत महाराज वंशे स च महाद्युतिः ३५
तथैव स ऋषिस्तात कालधर्ममवाप ह ॥ ३६
पुरोहितकुले विप्र आजातो भरतर्षभ ।
एवं तौ तत्र संभूतावुभौ शूद्रमुनी तदा ॥ ३७
क्रमेण वर्धितौ चापि विद्यासु कुशलावुभौ ।
अथर्ववेदे वेदे च बभूवर्षिः सुनिष्ठितः ।
कल्पप्रयोगे चोत्पन्ने ज्योतिषे च परं गतः ॥३८
सांख्ये चैव परा प्रीतिस्तस्य चैवं व्यवर्धत ।
पितर्युपरते चापि कृतशौचस्तु पार्थिवः ॥३९॥
अभिषिक्तः प्रकृतिभी राजपुत्रः स पार्थिवः ।
अभिषिक्तेन स ऋषिरभिषिक्तः पुरोहितः ॥४०
स तं पुरोधाय सुखमवसद्भरतर्षभ ।
राज्यं शशास धर्मेण प्रजाश्च परिपालयन् ४१
पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकार्येषु चासकृत् ।
उत्स्मयन्प्राहसच्चापि दृष्ट्वा राजा पुरोहितम् ॥
एवं स बहुशो राजन् पुरोधसमुपाहसत् ।
लक्षयित्वा पुरोधास्तु बहुशस्तं नराधिपम् ॥
उत्स्मयन्तं च सततं दृष्ट्वाऽसौ मन्युमाविशत् ।
अथ शून्ये पुरोधास्तु सह राज्ञा समागतः ४४
कथाभिरनुकूलाभी राजानं चाभ्यरोचयत् ।
ततोऽब्रवीन्नरेन्द्रं स पुरोधा भरतर्षभ ॥ ४५
वरमिच्छाम्यहं त्वेकं त्वया दत्तं महाद्युते ॥४६

राजोवाच ।

वराणां ते शतं दद्यां किं बतैकं द्विजोत्तम ।
स्नेहाच्च बहुमानाच्च नास्त्यदेयं हि मे तव ४७

पुरोहित उवाच ।

एकं वै वरमिच्छामि यदि तुष्टोऽसि पार्थिव
प्रतिजानीहि तावत्त्वं सत्यं यद्वद नानृतम् ४८

भीष्म उवाच ।

बाढमित्येव तं राजा प्रत्युवाच युधिष्ठिर ।
यदि ज्ञास्यामि वक्ष्यामि अजानन्न तु संवदे ॥

पुरोहित उवाच ।

पुण्याहवाचने नित्यं
धर्मकृत्येषु चासकृत् ।
शान्तिहोमेषु च सदा
किं त्वं हससि वीक्ष्य माम् ॥ ५०
सव्रीडं वै भवति हि मनो मे हसता त्वया ।
कामया शापितो राजन्नान्यथा वक्तुमर्हसि ५१
सुव्यक्तं कारणं ह्यत्र न ते हास्यमकारणम् ।
कौतूहलं मे सुभृशं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ५२

राजोवाच ।

एवमुक्ते त्वया विप्र यदवाच्यं भवेदपि ।
अवश्यमेव वक्तव्यं शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५३
पूर्वदेहे यथा वृत्तं तन्निबोध द्विजोत्तम ।
जातिं स्मराम्यहं ब्रह्मन्नवधानेन मे शृणु ॥ ५४
शूद्रोऽहमभवं पूर्वं तापसो भृशसंयुतः ।
ऋषिरुग्रतपास्त्वं च तदाऽभूर्द्विजसत्तम ॥ ५५
प्रीयता हि तदा ब्रह्मन्ममानुग्रहबुद्धिना ।
पितृकार्ये त्वया पूर्वमुपदेशः कृतोऽनघ ॥ ५६
बृस्यां दर्भेषु हव्ये च कव्ये च मुनिसत्तम ।
एतेन कर्मदोषेण पुरोधास्त्वमजायथाः ॥ ५७

स्वस्य नियमो निग्रह चित्तवृत्तिनिरोध इति यावत् तेन उपेतः ॥२२॥ बृसी चरमशीर्षिकीं आसनकूर्चं पश्चिमाग्रम ॥३०॥ वेदे ऋग्वेदादित्रये कल्पप्रयोगे सूत्रोक्तयज्ञप्रयोगे ॥ ३८ ॥

अद्य राजा च विप्रेन्द्र पश्य कालस्य पर्ययम् ।
मत्कृतस्योपदेशस्य त्वयाऽऽवाप्तमिदं फलम्
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मन्प्रहसे त्वां द्विजोत्तम।
न त्वां परिभवन्ब्रह्मन्प्रहसामि गुरुर्भवान् ५९
विपर्ययेण मे मन्युस्तेन सन्तप्यते मनः ।
जातिं स्मराम्यहं तुभ्यमतस्त्वां प्रहसामि वै॥
एवं तवोग्रं हि तप उपदेशेन नाशितम् ।
पुरोहितत्वमुत्सृज्य यतस्व त्वं पुनर्भवे ॥ ६१
इतस्त्वमधमामन्यां मा योनिं प्राप्स्यसे द्विज।
गृह्यतां द्रविणं विप्र पूतात्मा भव सत्तम ६२
भीष्म उवाच ।
ततो विसृष्टो राज्ञा तु विप्रो दानान्यनेकशः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं भूमिं ग्रामांश्च सर्वशः
कृच्छ्राणि चीर्त्वा च ततो
यथोक्तानि द्विजोत्तमैः ।
तीर्थानि चापि गत्वा वै
दानानि विविधानि च ॥ ६४
दत्त्वा गाश्चैव विप्रेभ्यः पूतात्माऽभवदात्मवान्
तमेव चाश्रमं गत्वा चचार विपुलं तपः ॥६५
ततः सिद्धिं परां प्राप्तो ब्राह्मणो राजसत्तम ।
संमतश्चाभवत्तेषामाश्रमे तन्निवासिनाम् ॥६६
एवं प्राप्तो महत्कृच्छ्रमृषिः सन्नृपसत्तम ।
ब्राह्मणेन न वक्तव्यं तस्माद्वर्णावरे जने ॥ ६७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
एतेषु कथयन्राजन्ब्राह्मणो न प्रदुष्यति ॥ ६८
तस्मात्सद्भिर्न वक्तव्यं कस्यचित्किंचिदग्रतः।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुर्ज्ञेया ह्यकृतात्मभिः ॥
तस्मान्मौनेन मुनयो दीक्षां कुर्वन्ति चादृताः
दुरुक्तस्य भयाद्राजन्नाभाषन्ते च किञ्चन॥७०
धार्मिका गुणसंपन्नाः सत्यार्जवसमन्विताः ।
दुरुक्तवाचाभिहितैः प्राप्नुवन्तीह दुष्कृतम् ७१
उपदेशो न कर्तव्यः कदाचिदपि कस्यचित् ।
उपदेशाद्धि तत्पापं ब्राह्मणः समवाप्नुयात् ७२
विमृश्य तस्मात्प्राज्ञेन वक्तव्यं धर्ममिच्छता।
सत्यानृतेन हि कृत उपदेशो हिनस्ति हि ॥७३
वक्तव्यमिह पृष्टेन विनिश्चित्य विनिश्चयम् ।
स चोपदेशः कर्तव्यो येन धर्ममवाप्नुयात्॥७४
एतत्ते सर्वमाख्यातमुपदेशकृते मया ।
महान् क्लेशो हि भवति तस्मान्नोपदिशेदिह७५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि शूद्रमुनिसंवादे
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

युधिष्ठिर उवाच ।
कीदृशे पुरुषे तात
स्त्रीषु वा भरतर्षभ ।
श्रीः पद्मा वसते नित्यं
तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।
रुक्मिणी देवकीपुत्रसन्निधौ पर्यपृच्छत ॥ २
नारायणस्याङ्कगतां ज्वलन्तीं
दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानवर्णाम् ।
कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा
पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३
कानीह भूतान्युपसेवसे त्वं
सन्तिष्ठसे *कानिव सेवसे त्वम् ।
तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते
तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकल्पे ॥ ४

---

मत्कृतस्य मह्यं कृतस्य ॥ ५८ ॥ विपर्ययेण शूद्रोप्यहं जातिस्मरो जात मुनिरपि त्वं पुरोहितो जात इति वैपरीत्येन मन्युर्दैन्यम् ॥ ६० ॥ भवे भवनिमित्तम् ॥ ६१ ॥ सत्यानृतेन वाणिज्येन धनलोभेनेत्यर्थ । सत्यानृतं तु वाणिज्यमिति स्मृति ॥ ७३ ॥ विनिश्चयं निश्चेतव्यम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

११

**कीदृशे इति** । श्रीमानेव उदारातति श्रीकरान्योगान् कथयितुमध्याय । श्री. रूपौदार्यादिशोभा तद्युता पद्मा धन समृद्धि श्री. पद्मेत्युच्यते ॥ १ ॥ पर्यपृच्छत श्रियामित्यपकृष्यते ॥ २ ॥ उपसेवसे गजतुरगादिरूपेण सतिष्ठसे धैर्यौदार्यसौंदर्यशौर्यादिरूपेण पुरुषे वससि ॥ ४ ॥ *'कानि च' इत्यपि पाठ ।

एवं तदा श्रीरभिभाष्यमाणा
देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य ।
उवाच वाक्यं मधुराभिधानं
मनोहरं चन्द्रमुखी प्रसन्ना ॥ ५

श्रीरुवाच ।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे
दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे
जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
न नास्तिके साङ्करिके कृतघ्ने ।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे
न चापि चौरे न गुरुष्वसूये ॥ ७

ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः
क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु
नरेषु संगुप्तमनोरथेषु ॥ ८

यश्चात्मनि प्रार्थयते न किञ्चि-
द्यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा ।
तेष्वल्पसन्तोषपरेषु नित्यं
नरेषु नाहं निवसामि सम्यक् ॥ ९

स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु
वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते ।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे
क्षान्तासु दान्तासु तथाऽबलासु १०

सत्यस्वभावार्जवसंयुतासु
वसामि देवद्विजपूजिकासु ।
प्रकीर्णभाण्डामनवेक्ष्यकारिणीं
सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम् ॥ ११

परस्य वेश्माभिरतामलज्जा-
मेवंविधां तां परिवर्जयामि ।
पापामचोक्षामवलेहिनीं च
व्यपेतधैर्यां कलहप्रियां च ॥ १२

निद्राभिभूतां सततं शयानां
एवंविधां तां परिवर्जयामि ॥
सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु
सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु ॥ १३

वसामि नारीषु पतिव्रतासु
कल्याणशीलासु विभूषितासु ।
यानेषु कन्यासु विभूषणेषु
यज्ञेषु मेघेषु च वृष्टिमत्सु ॥ १४

वसामि फुल्लासु च पद्मिनीषु
नक्षत्रवीथीषु च शारदीषु ॥
गजेषु गोष्ठेषु तथाऽऽसनेषु
सरःसु फुल्लोत्पलपङ्कजेषु ॥ १५

नदीषु हंसस्वननादितासु
क्रौञ्चावघुष्टस्वरशोभितासु ॥
विकीर्णकूलद्रुमराजितासु
तपस्विसिद्धद्विजसेवितासु ॥ १६

वसामि नित्यं सुबहूदकासु ॥
सिंहैर्गजैश्चाकुलितोदकासु ॥
मत्ते गजे गोवृषभे नरेन्द्रे
सिंहासने सत्पुरुषेषु नित्यम् ॥ १७

यस्मिन् जनो हव्यभुजं जुहोति
गोब्राह्मणं चार्चति देवताश्च ॥
काले च पुष्पैर्बलयः क्रियन्ते
तस्मिन् गृहे नित्यमुपैमि वासम् ॥ १८

स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु
क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव ॥
वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि
शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते ॥ १९

नारायणे त्वेकमना वसामि
सर्वेण भावेन शरीरभूता ॥
तस्मिन् हि धर्मः सुमहान्निविष्टो
ब्रह्मण्यता चात्र तथा प्रियत्वम् ॥ २०

---

देव्या रुक्मिण्या ॥ ५ ॥ प्रगल्भे वाग्मिनि दक्षे अनलसे देवपरे देवाराधननिष्ठे ॥ ६ ॥ नृशंसवर्णे निष्ठुराक्षरभाषिणि असूये असूयावति ॥ ७ ॥ तेज. शौर्यं सत्त्वं बुद्धिः यत्र तत्र विशिष्टपुरुषे संगुप्तमनोरथेषु अन्यत् ध्यायन्त्यन्यद्दर्शयन्ति तादृशेषु ॥ ८ ॥ स्वभावेत्यादे- मौढ्योपहतचित्त इत्यर्थः ॥ ९ ॥ **स्वधर्मेति ।** सार्द्धश्लोकः ॥ १० ॥ पापा निर्दया अचोक्षां अशुचिं अवलेहिनीं सृक्किणी लेलिहाना सदा क्षुद्धामित्यर्थ ॥ १२ ॥ यानादिषु रमणीयेषु सर्वेषु वसामीत्यर्थ ॥ १४ ॥ **यस्मिन्निति ।** लक्ष्मीं प्राप्तुमुपाया एत इत्यर्थ ॥ १८ ॥ भावेन आदरेण शरीरभूता शरीरवती ॥ २० ॥

।

नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम्॥
भावेन यस्मिन्निवसामि पुंसि स वर्धते धर्मयशोर्थकामैः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्रीरुक्मिणीसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

युधिष्ठिर उवाच ॥
स्त्रीपुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको भवेत्
एतस्मिन् संशये राजन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १

भीष्म उवाच ॥
अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।
भंगास्वनेन शक्रस्य यथा वैरमभूत्पुरा ॥ २
पुरा भंगास्वनो नाम राजर्षिरतिधार्मिकः ।
अपुत्रः पुरुषव्याघ्र पुत्रार्थं यज्ञमाहरत् ॥ ३
अग्निष्टुतं स राजर्षिरिंद्रद्विष्टं महाबलः ॥
प्रायश्चित्तेषु मर्त्यानां पुत्रकामेषु चेष्यते ॥ ४
इन्द्रो ज्ञात्वा तु तं यज्ञं महाभागः सुरेश्वरः ।
अन्तरं तस्य राजर्षेरन्विच्छन्नियतात्मनः ॥ ५
न चैवास्यान्तरं राजन् स ददर्श महात्मनः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य मृगयां गतवान्नृपः ॥ ६
इदमन्तरमित्येव शक्रो नृपममोहयत् ।
एकाश्वेन च राजर्षिर्भ्रान्त इंद्रेण मोहितः ॥ ७
न दिशोऽविन्दत नृपः क्षुत्पिपासार्दितस्तदा
इतश्चेतश्च वै राजन् श्रमतृष्णान्वितो नृप ॥ ८
सरोऽपश्यत्सुरुचिरं पूर्णं परमवारिणा ।
सोऽवगाह्य सरस्तात पाययामास वाजिनं ९
अथ पीतोदकं सोऽश्वं वृक्षे बध्वा नृपोत्तमः ।
अवगाह्य ततः स्नातस्तत्र स्त्रीत्वमवाप्तवान् १०
आत्मानं स्त्रीकृतं दृष्ट्वा व्रीडितो नृपसत्तमः ।
चिन्तानुगतसर्वात्मा व्याकुलेन्द्रियचेतनः॥११
आरोहिष्ये कथं त्वश्वं कथं यास्यामि वै पुरम्
इष्टेनाग्निष्टुना चापि पुत्राणां शतमौरसम् ॥१२
जातं महाबलानां मे तान्प्रवक्ष्यामि किं त्वहम्
दारेषु चात्मकीयेषु पौरजानपदेषु च ॥ १३
मृदुत्वं च तनुत्वं च विक्लवत्वं तथैव च ।
स्त्रीगुणा ऋषिभिः प्रोक्ता धर्मतत्त्वार्थदर्शिभिः॥
व्यायामे कर्कशत्वं च वीर्यं च पुरुषे गुणाः ।
पौरुषं विप्रनष्टं वै स्त्रीत्वं केनापि मेऽभवत् १५
स्त्रीभावात्पुनरश्वं तं कथमारोढुमुत्सहे ।
महता त्वथ यत्नेन आरुह्याश्वं नराधिपः ॥१६
पुनरायात्पुरं तात स्त्रीकृतो नृपसत्तमः ।
पुत्रा दाराश्च भृत्याश्च पौरजानपदाश्च ते ॥१७
किंस्विदं त्विति विज्ञाय विस्मयं परमं गताः
अथोवाच स राजर्षिः स्त्रीभूतो वदतां वरः१८
मृगयामस्मि निर्यातो बलैः परिवृतो दृढम् ।
उद्भ्रान्तः प्राविशं घोरामटवीं दैवचोदितः ॥१९
अटव्यां च सुघोरायां तृष्णार्तो नष्टचेतनः ।
सरः सुरुचिरप्रख्यमपश्य पक्षिभिर्वृतम् ॥ २०

---

**नाहमिति** । नारायणादन्यत्र धर्मादिवृद्धिरूपेणैव वसामि न शरीरेणेत्यर्थ ॥२१॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

१२

**स्त्रीपुंसयोरिति** । पूर्वाध्यायान्ते स वर्द्धते धर्मयशोर्थकामैरिति कामसुखवृद्धिरपि लक्ष्मीवत्स्वस्तीत्युक्तं तत्र स्त्रीषु पुमर्थेऽक्षया कामसुखवृद्धिरस्तीति लक्ष्मीकामेन कामिन्य· प्रीतिमत्यो लक्ष्मीबुद्ध्या पूजनीया इत्यध्यायतात्पर्यम् । स्पर्श वैषयिक सुखम् ॥ १ ॥ वैरमूलमाह—**अग्निष्टुतमिति** । त्रिगुणितोऽग्निष्टोमोऽग्निष्टुत् तत्र ह्यग्निरेव स्तूयते स च 'पुत्रं ददाति दाशुषे' इति मन्त्रवर्णात्पुत्रप्रद· क्रतु स चेन्द्रद्विष्टस्तत्रेन्द्रस्य प्राधान्याभावात् ॥ ४ ॥ यज्ञं कृतमिति शेष· ॥ ५ ॥ मृदुत्वादय स्त्रीगुणा आगता ॥ १४ ॥ कर्कशत्वादय पुरुषगुणा नष्टा केन निमित्तेन मे मम स्त्रीत्वमभवदिति सम्बन्ध· ॥ १५ ॥ स्त्रीकृत इन्द्रेण स्त्रीत्वं प्रापित ॥ १७ ॥

तत्रावगाढः स्त्रीभूतो दैवेनाहं कृतः पुरा ।
नामगोत्राणि चाभाष्य दाराणां मंत्रिणां तथा
आह पुत्रांस्ततः सोऽथ स्त्रीभूतः पार्थिवोत्तमः
संप्रीत्या भुज्यतां राज्यं वनं यास्यामि पुत्रकाः
एवमुक्त्वा पुत्रशतं वनमेव जगाम ह ।
गत्वा चैवाश्रम सा तु तापस प्रत्यपद्यत ॥२३
तापसेनास्य पुत्राणामाश्रमेष्वभवच्छतम् ।
अथ साऽऽदाय तान्सर्वान् पूर्वपुत्रानभाषत२४
पुरुषत्वे सुता यूयं स्त्रीत्वे चेमे शतं सुताः ।
एकत्र भुज्यतां राज्य भ्रातृभावेन पुत्रकाः २५
सहिता भ्रातरस्तेऽथ राज्यं बुभुजिरे तदा ।
तान् दृष्ट्वा भ्रातृभावेन भुंजानान् राज्यमुत्तमं
चिन्तयामास देवेन्द्रो मन्युनाऽथ परिप्लुतः ।
उपकारोऽस्य राजर्षेः कृतो नापकृतं मया २७
ततो ब्राह्मणरूपेण देवराजः शतक्रतुः ।
भेदयामास तान् गत्वा नगरं वै नृपात्मजान्२८
भ्रातॄणां नास्ति सौभ्रात्रं येप्येकस्य पितुःसुताः
राज्यहेतोर्विवादिताः कश्यपस्य सुरासुराः २९
यूयं भङ्गास्वनापत्यास्तापसस्येतरे सुताः ।
कश्यपस्य सुराश्चैव असुराश्च सुतास्तथा ॥ ३०
युष्माकं पैतृकं राज्यं भुज्यते तापसात्मजैः ।
इन्द्रेण भेदितास्ते तु युद्धेऽन्योन्यमपातयन् ॥
तच्छ्रुत्वा तापसी चापि संतप्ता प्ररुरोद ह ।
ब्राह्मणच्छद्मनाभ्येत्य तामिन्द्रोऽथान्वपृच्छत
केन दुःखेन संतप्ता रोदिषि त्वं वरानने ।
ब्राह्मणं तं ततो दृष्ट्वा सा स्त्री करुणमब्रवीत् ३३
पुत्राणां द्वे शते ब्रह्मन् कालेन विनिपातिते ।
अहं राजाऽभवं विप्र तत्र पूर्वं शतं मम ॥ ३४
समुत्पन्नं स्वरूपाणां पुत्राणां ब्राह्मणोत्तम ।
कदाचिन्मृगयां यात उद्भ्रान्तो गहने वने ३५
अवगाढश्च सरसि स्त्रीभूतो ब्राह्मणोत्तम ।
पुत्रान् राज्ये प्रतिष्ठाप्य वनमस्मि ततो गतः
स्त्रियाश्च मे पुत्रशतं तापसेन महात्मना ।
आश्रमे जनितं ब्रह्मन्नीतं तन्नगरं मया ॥ ३७
तेषां च वैरमुत्पन्नं कालयोगेन वै द्विज ।
एतच्छोचाम्यहं ब्रह्मन् दैवेन समभिप्लुता ३८
इन्द्रस्तां दुःखितां दृष्ट्वा अब्रवीत्परुष वचः ।
पुरा सुदुःसहं भद्रे मम दुःखं त्वया कृतम् ॥
इन्द्रद्विष्टेन यजता मामनाहूय धिष्ठितम् ।
इन्द्रोहमस्मि दुर्बुद्धे वैरं ते पातितं मया ॥ ४०
इन्द्र दृष्ट्वा तु राजर्षिः पादयोः शिरसा गतः ।
प्रसीद त्रिदशश्रेष्ठ पुत्रकामेन स क्रतुः ॥ ४१
इष्टस्त्रिदशशार्दूल तत्र मे क्षन्तुमर्हसि ।
प्रणिपातेन तस्येन्द्रः परितुष्टो वरं ददौ ॥ ४२
पुत्रास्ते कतमे राजन् जीवन्त्वेतत्प्रचक्ष्व मे ।
स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः पुरुषस्याथ येऽभवन्
तापसी तु ततः शक्रमुवाच प्रयताञ्जलिः ।
स्त्रीभूतस्य हि ये पुत्रास्ते मे जीवन्तु वासव॥
इन्द्रस्तु विस्मितो दृष्ट्वा स्त्रियं पप्रच्छ तां पुनः
पुरुषोत्पादिता ये ते कथं द्वेष्याः सुतास्तव ॥
स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः
स्नेहस्तेभ्योऽधिकः कथम् ।
कारण श्रोतुमिच्छामि
तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ ४६

स्त्र्युवाच ।

स्त्रियास्त्वभ्यधिकः स्नेहो
न तथा पुरुषस्य वै ।
तस्मात्ते शक्र जीवन्तु
ये जाताः स्त्रीकृतस्य वै ॥ ४७

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तस्ततस्त्विन्द्रः प्रीतो वाक्यमुवाच ह
सर्वे एवेह जीवन्तु पुत्रास्ते सत्यवादिनि ॥४८
वरं च वृणु राजेन्द्र यं त्वमिच्छसि सुव्रत ।
पुरुषत्वमथ स्त्रीत्वं मत्तो यदभिकांक्षसे ॥ ४९

स्त्र्युवाच ।

स्त्रीत्वमेव वृणे शक्र पुंस्त्वं नेच्छामि वासव ।
एवमुक्तस्तु देवेन्द्रस्तां स्त्रियं प्रत्युवाच ह ॥५०
पुरुषत्वं कथं त्यक्त्वा स्त्रीत्वं चोदयसे विभो
एवमुक्तः प्रत्युवाच स्त्रीभूतो राजसत्तमः ५१
स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्यधिका सदा ।
एतस्मात्कारणाच्छक्र स्त्रीत्वमेव वृणोम्यहम्
रमिताऽभ्यधिकं स्त्रीत्वे सत्यं वै देवसत्तम ।
स्त्रीभावेन हि तुष्यामि गम्यतां त्रिदशाधिप

---

प्रत्यपद्यत भर्तृत्वेन स्वीकृतवती ॥ २३ ॥ स्त्रीत्वदानेन द्विगुणितपुत्रप्राप्तिरूप उपकार एव जातो न स्त्रीत्वकृतोपकार इत्यर्थ ॥२७॥ स्वरूपाणा स्वस्येव रूपं येषा तेषाम् ॥३५॥ स्त्रिया स्त्रीभूतस्य मे मम ॥ ३७॥ इन्द्रद्विष्टेन अभिष्टुता यज्ञेन धिष्ठितं अधिष्ठितं क्रतुनिति शेष ॥ ४० ॥ अध्यायतात्पर्यमाह—स्त्रिया इति ॥ ५२ ॥

एवमस्त्विति चोक्त्वा ता-
मापृच्छ्य त्रिदिवं गतः ।
एवं स्त्रिया महाराज
अधिका प्रीतिरुच्यते ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि भङ्गास्वनोपाख्याने
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

युधिष्ठिर उवाच ।
किं कर्तव्यं मनुष्येण लोकयात्राहितार्थिना।
कथं वै लोकयात्रां तु किंशीलश्च समाचरेत्
भीष्म उवाच ।
कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम्
मनसा त्रिविधं चैव दशकर्मपथांस्त्यजेत् ॥ २
प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदारानथापि च ।
त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत् ३
असत्प्रलाप पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा ।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत्
अनभिध्या परस्वेषु सर्वसत्त्वेषु सौहृदम् ।
कर्मणां फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत् ५
तस्माद्वाक्कायमनसा
नाचरेदशुभं नरः ।
शुभाशुभान्याचरन् हि
तस्य तस्याश्नुते फलम् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि लोकयात्राकथने
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

युधिष्ठिर उवाच ।
त्वयाऽऽपगेय नामानि श्रुतानीह जगत्पतेः । पितामहेशाय विभो नामान्याचक्ष्व शंभवे॥१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

१३

तदेवं गौतमीसुदर्शनशुकप्रभृतीनामाख्यानैर्यदृच्छोपगतेषु तु खेषु अनुद्विग्नमना अतिथिभक्त आनृशंस्यादिधर्मवान् श्रियं प्राप्नोति तस्याश्च फलं काम इन्द्रियप्रीतिरूप सा च स्त्रीणामेव भूयसी पुंसस्त्वल्पतरेत्येतावता ग्रन्थेनोक्तम् । तमिमं कामं तुच्छीकृत्य परमसुखावाप्तिकामस्य पूर्वोक्तानुद्वेगादीनुपासीनस्य वक्ष्यमाणविधिना परमेश्वरमाराधयिष्यतो हेयं दोषजातं वक्तुमयमध्याय आरभ्यते—**किमिति** । लोकयात्रा ऐहिकाशिष्टव्यवहार, हितं च पारलौकिकं श्रेयस्तदर्थिना किं कर्तव्यं किमवश्यमनुष्ठेयं लोकयात्रा लोकद्वयश्रेय साधनम्॥१॥ कर्मपथान् स्वाभाविककर्ममार्गान् ॥ २ ॥ प्राणातिपातो **हिंसा** ॥ ३ ॥ **असत्प्रलापं** ग्राम्यवार्तादि **पारुष्यं** निष्ठुरभाषणं **पैशुन्यं** राजद्वारादौ परदोषसूचनं **अनृतं** मिथ्यावाद· परपीडाकर मनसाप्येवं वदिष्यामीति नानुचिन्तयेत् ॥४॥ **अनभिध्येति** श्लोकेन परद्रव्येष्वभिध्यानं परस्यानिष्टचिन्तनं वेदवादेषु नास्तिक्यमिति त्रीणि त्याज्यानि लक्षयेत् दश त्यजेदित्युपक्रमात् ॥५॥ शुभं अहिंसादि आस्तिक्यान्तं अशुभं हिंसादि नास्तिक्यान्तं फलं अभयदु खादि स्वर्गनरकान्तम् ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

१४

अशुभानि परित्यज्य शुभान्याचरता यज्जप्तव्यं तज्जानन् स्वयमेव पृच्छति—**त्वयाति** । आपगेय गाङ्गेय पितामहस्यापि ईशाय अन्तर्यामिणे सर्वत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी शं सुखं भवत्यस्मादित्यानन्दायेत्यर्थ ॥१॥

बभ्रवे विश्वरूपाय महाभाग्यं च तत्त्वतः ।
सुरासुरगुरौ देवे शंकरेऽव्यक्तयोनये ॥ २

भीष्म उवाच ।

अशक्तोऽहं गुणान्वक्तुं महादेवस्य धीमतः ।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥३
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च ।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते ४

प्रकृतीनां परत्वेन
पुरुषस्य च यः परः ।
चिन्त्यते यो योगविद्भि-
र्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म
असच्च सदसच्च यः ॥ ५

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षोभयित्वा स्वतेजसा ।
ब्रह्माणमसृजत्तस्माद्देवदेवः प्रजापतिः ॥ ६
को हि शक्तो गुणान्वक्तुं देवदेवस्य धीमतः ।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः ॥७
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम् ।
ऋते नारायणात्पुत्र शंखचक्रगदाधरात् ॥ ८
एष विद्वान् गुणश्रेष्ठो विष्णुः परमदुर्जयः ।
दिव्यचक्षुर्महातेजा वीक्ष्यते योगचक्षुषा ॥ ९
रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना ।
तं प्रसाद्य तदा देवं बदर्यां किल भारत ॥१०
अर्थात्प्रियतरत्वं च सर्वलोकेषु वै तदा ।
प्राप्तवानेव राजेन्द्र सुवर्णाक्षान्महेश्वरात्॥११
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तप्तवानेष माधवः ।
प्रसाद्य वरदं देवं चराचरगुरुं शिवम् ॥ १२
युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः ।
भक्त्या परमया चैव प्रीतश्चैव महात्मनः॥ १३
ऐश्वर्यं यादृशं तस्य जगद्योनेर्महात्मनः ।
तदयं दृष्टवान् साक्षात्पुत्रार्थे हरिरच्युतः ॥१४
यस्मात्परतरं चैव नान्यं पश्यामि भारत ।
व्याख्यातुं देवदेवस्य शक्तो नामान्यशेषतः १५
एष शक्तो महाबाहुर्वक्तुं भगवतो गुणान् ।
विभूतिं चैव कार्त्स्न्येन सत्यां माहेश्वरीं नृप

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तदा भीष्मो वासुदेवं महायशाः
भवमाहात्म्यसंयुक्तमिदमाह पितामहः ॥ १७

बभ्रवे विशालाय । बभ्रुर्वैश्वानर इत्यादिर्विशाले पिङ्गलेऽन्यवदिति मेदिनी, महाभाग्यं ऐश्वर्यं गुराविन्यादि सप्तम्यपि षष्ठ्यर्थे अव्यक्तं जगत्कारणं अव्याकृताख्यं तस्य योनये उत्पत्तिप्रलयस्थानाय ॥२॥ **यो हीति** । सर्वगत सर्वोपादानत्वात् सर्वत्र न दृश्यते इज्ञात्रशरीरत्वादात्मत्वाच्च ॥ ३ ॥ ब्रह्मा विराट् विष्णु सूत्रात्मा सुरेश. प्राज्ञः तेषा स्रष्टा उपादानं प्रभुर्निमित्तं उपासते स्वस्वोपाधित्यागेन आधिच्छान्ति ॥४॥ प्रकृतीना पञ्चतन्मात्राहङ्कारमहदव्यक्ताना विश्वकारणाना पुरुषस्य जीवात् भोक्तुरित्यर्थ । पञ्चम्यर्थे षष्ठी ।

'इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं मन ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्पर ॥
महत परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष पर ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गति' ' इति ।

'आत्मेन्द्रियमनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिण.' इति च श्रुतेभ्यस्तत्त्वेभ्य पर निष्कल: 'चिन्त्यते न किञ्चिदपि चिन्तयेत्' इति स्मृते सर्वचिन्तात्यागेन प्राप्यते योगविद्भि' योगो बुद्ध्याद्यसङ्गस्ताद्विद्भि अक्षरं अपरिणामि परमं ब्रह्म अत्यन्तं परिच्छेदत्रयशून्यम् । तदेव असत् अव्याकृतद्रव्यं कारणम् । सत् रज्जुसर्पवद्भासमानमप्यसदनिर्वचनीयमित्यर्थ ॥५॥ प्रकृतिं माया पुरुषं तत्र प्रतिबिम्बितं चैतन्यं मायाशबलमव्याकृतमित्यर्थ । क्षोभयित्वा प्राणिकर्मानुरोधेन साम्यावस्थात प्रच्याव्य स्वतेजसा स्वसत्तास्फूर्तिप्रदानेन ब्रह्माणं महान्तमसृजत् । तस्मान्महत' सकाशात् देवाना सूर्यादीना देव स्वामी प्रजापतिश्चतुर्मुख अभवदिति शेष ॥ ६ ॥ य असृजतस्य गुणान्वक्तुं क शक्त इति योजना । धीमत धिया बुद्ध्याऽहमिति मतो ज्ञातोऽहंप्रत्ययगम्यो जीव इत्यर्थ । नहि बुद्ध्यादिपरिच्छिन्नस्तदगोचरं ब्रह्म परिच्छेत्तुमीष्टे इत्यर्थ ॥ ७ ॥ भक्त्या आराधनेन व्योमाद्यष्टमूर्तेर्ध्यानेन तद्भावं गत्वा जगद्व्याप्तमित्यर्थ' ॥ १० ॥ **अर्थादिति** । अर्थ्यत इत्यर्थो भोग्यवस्तुजातम । तावत्प्रियं ततोऽपि प्रियतर प्रत्यगात्म' तत्त्व सर्वेषामन्तरात्मत्वं प्राप्त इत्यर्थ. । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेस्तादात्म्य प्राप्त इति भाव' । अत्रादिति पाठेऽपि स एवार्थ सुवर्णाक्षात् दिव्यदृशे' ॥ ११ ॥ शिवं प्रसाद्य तप्तवान् तपोऽपि शिवप्रसादं विना कर्तुं दु शकमित्यर्थ ॥ १२ ॥ तोषोऽलंबुद्धि प्रीति' प्रसादोन्मुखत्व तदुभयं प्रापित. ॥१३॥ पुत्र साम्ब तत्प्राप्त्यर्थं तपस्यन् ॥ १४॥ यस्मात् ऐश्वर्यात् नमन्त्येभिरीश्वरं भक्ता इति नामानि शाम्भवान् मन्त्रान् व्याख्यातुं अर्थतो विवरीतु तत्र हेतु ॥१५॥ **यतो गुणान्वक्तुं शक्त इति** । विभूतिं ऐश्वर्यं कार्त्स्न्येन गुणज्ञानं त्वात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्वं विदितमिति श्रुतेरात्मज्ञस्यैव भवति तथाविधोऽयमेव न त्वन्य इत्यर्थ' ॥१६॥

भीष्म उवाच ।
सुरासुरगुरो देव विष्णो त्वं वक्तुमर्हसि ।
शिवाय विष्णुरूपाय यन्मां पृच्छद्युधिष्ठिरः ॥
नाम्नां सहस्रं देवस्य तंडिना ब्रह्मयोनिना ।
निवेदितं ब्रह्मलोके ब्रह्मणो यत्पुराऽभवत् ॥१९
द्वैपायनप्रभृतयस्तथा चेमे तपोधनाः ।
ऋषयः सुव्रता दान्ताः श्रृण्वन्तु गदतस्तव २०
ध्रुवाय नंदिने होत्रे गोप्त्रे विश्वसृजेऽग्नये ।
महाभाग्यं विभोर्ब्रूहि मुंडिनेऽथ कपर्दिने॥२१
वासुदेव उवाच ।
न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः
हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्षयः ॥२२
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः ।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः२३
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद्भगवतो गुणान् ।
भवतां कीर्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम् २४
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा तु भगवान् गुणांस्तस्य महात्मनः
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः २५
वासुदेव उवाच ।
शुश्रूषध्वं ब्राह्मणेंद्रास्त्वं च तात युधिष्ठिर
त्वं चापगेय नामानि श्रृणुष्वेह कपर्दिने ॥ २६
यदवाप्तं च मे पूर्वं सांबहेतोः सुदुष्करम् ।
यथावद्भगवान् दृष्टो मया पूर्वं समाधिना २७
शंबरे निहते पूर्वं रौक्मिणेयेन धीमता ।
अतीते द्वादशे वर्षे जांबवत्यब्रवीद्धि माम् २८
प्रद्युम्नचारुदेष्णादीन्रुक्मिण्या वीक्ष्य पुत्रकान्
पुत्रार्थिनी मामुपेत्य वाक्यमाह युधिष्ठिर २९
शूरं बलवतां श्रेष्ठं कान्तरूपमकल्मषम् ।
आत्मतुल्यं मम सुतं प्रयच्छाच्युत माचिरम् ॥
न हि तेऽप्राप्यमस्तीह त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
लोकान् सृजेस्त्वमपरानिच्छन्यदुकुलोद्वह ३१
त्वया द्वादशवर्षाणि व्रतीभूतेन शुष्यता ।
आराध्य पशुभर्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेशो यशोधरः ।
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः शंभुरेव च ॥३२

विष्णुरूपायेत्यनेन शिवाभिन्नो विष्णुरेव शिवस्य गुणान्वक्तुमीष्टे तयोरैकात्म्यात् भिन्नत्वे तु लोकेऽपीतरगुणानितरो न जानाति किमुत ईश्वरस्येति भावः । विश्वरूपायेति पाठेऽपि विश्वं विष्णुरेव नारायण सर्वमिदं पुराणः नारायण एवेदं सर्वं विश्वं विष्णुरित्यादिश्रुतिस्मृतिभ्य पृच्छत् अपृच्छत् ॥ १८ ॥ **नाम्नामिति** । यद्यपि मोक्षधर्मेषु शिवसहस्रनामस्तोत्रमुक्तमत एतत्कथनमनर्थकप्रायं तथापि तत्र चतुरधिकानि षट्शतानि नामानि सन्ति तेषामुक्तसंख्यापूरणमपि तत्रैव त्रिसुपर्णं तथा ब्रह्मयजुषा शतरुद्रियमिति वाक्यात्तत्रैव श्रुतात्रिसुपर्णशतरुद्रियाभ्यामुक्तम् । अतस्तत् स्तोत्रं मोक्षाधिकारपाठात् वेदमन्त्रगर्भितत्वाच्च नात्रैवर्णिकस्य ब्रह्मलोकान्तफलार्थिनो ध्येयं युक्तमिति। एतद्दानधर्मप्रसङ्गात् काम्यं 'वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु जपेत्कृप पार्थ महीं च कृत्स्नां वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च' इत्युपसंहारात् सर्ववर्णाधिकारिकं च तत पृथक् पठितम्। एवं 'विश्वं विष्णुर्वषट्कार' इत्यादि विष्णुसहस्रनामापि ज्ञेयम् । तत्रापि शूद्र सुखमवाप्नुयादित्यन्ते स्मरणात् न तेनैतद्गतार्थमिति पुनरत्रापि शिवाराधनमुक्तमित्याशय ॥ १९ ॥ ध्रुवाय कूटस्थाय नंदिने आनंदमयाय होत्रे कर्तृरूपाय विज्ञानमयाय गोप्त्रे कर्मफलप्रदानद्वारा रक्षित्रे विश्वसृजे दक्षादिरूपाय अग्नये गार्हपत्यादिरूपाय षष्ठ्यर्थे चतुर्थ्य. महाभाग्यं ऐश्वर्यं मुंडिने वस्तुतो निश्चूडाय कपर्दिने उपाधितश्चूडावते । अयं भाव –'तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानं वृत्तिसारूप्यमितरत्र' इति योगसूत्राभ्या यदा सर्वासा चित्तवृत्तीनामभावस्तदा चितिर्निश्चूडेव स्वरूपमात्रेणावतिष्ठते यदा तु तत्तद्वृत्तिसारूप्यं भजते तदा चूडावती विशेषविज्ञानरूपा भवतीति तदिदमुक्तं–मुंडिनेऽथ कपर्दिने इति ॥ २१ ॥ भवनं हार्दाकाशाख्यं शंभुराकाशमध्य इति श्रुते । आदित्याः इंद्रियाख्या देवाः निवनमादिं वेति पाठे लयमुदयं चेत्यर्थ २३ व्रतेशाय व्रतपूर्वकाणा यज्ञादिना फलप्रदात्रे ॥२४॥ धीमतः धिया ब्रह्मविद्यया मतो ज्ञात ॥२५॥ गीतासु–'तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये' 'तमेव शरणं गच्छ' इति प्रोक्ताय कपर्दिने सगुणायैव । निर्गुणस्य तु गौणाना नाम्नामभावादित्यर्थः२६यदवाप्तं सुदुष्करं दुर्लभं समाधिना योगेन ॥२७॥ **आराध्येति ।** आराध्यस्य माहात्म्यं वासुदेव उवाच शुश्रूषध्वमित्यादिना । ननु 'मन्मना भव' 'मामेव शरणं व्रज' इति स्वस्यैवोपेयत्वं वदत कथमन्य आराध्य स्यादिति चेन्न मामेव विजानीहीतिवत् शास्त्रदृष्ट्या परमात्मनोप्यस्मदर्थत्वोपपत्तेर्मामुपास्वेति वदत इंद्रस्येव देवस्योपेयत्वाभावात् उपाधिनिष्कृष्टस्योपेयत्वं त्वस्मदादिसाधारणं न वासुदेवस्योत्कर्षमर्हतीति शैवाः। वस्तुतस्तु यत्सर्वोपाधिशून्यं ब्रह्म अस्मदार्थतरतरं तदेव मुख्यमस्मच्छब्दालम्बनं वासुदेवशब्दितं मायया मानुषवद्भूत्वा स्वप्राप्त्युपायभूतमुपास्यरूपमात्मन. स्वशास्त्रतस्त्वं स्वयमेव लोकानुग्रहार्थमुपदिशतीति न तयोर्भेदगन्धोऽपीति

यथा ते जनिताः पुत्रा रुक्मिण्यां चारुविक्रमाः
तथा ममापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन ॥ ३४
इत्येवं चोदितो देव्या तामवोचं सुमध्यमाम् ।
अनुजानीहि मां राज्ञि करिष्ये वचनं तव ३५
सा च मामब्रवीद्गच्छ शिवाय विजयाय च ।
ब्रह्मा शिवः काश्यपश्च नद्यो देवा मनोनुगाः
क्षेत्रौषध्यो यज्ञवाहाश्छंदांस्यृषिगणाध्वराः ।
समुद्रा दक्षिणास्तोभा ऋक्षाणि पितरो ग्रहाः
देवपत्न्यो देवकन्या देवमातर एव च ।
मन्वन्तराणि गावश्च चन्द्रमाः सविता हरिः ॥
सावित्री ब्रह्मविद्या च ऋतवो वत्सरास्तथा
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च निमेषा युगपर्ययाः ॥३९
रक्षन्तु सर्वत्र गतं त्वां यादव सुखाय च ।
अरिष्टं गच्छ पंथानमप्रमत्तो भवानघ ॥ ४०

एवं कृतस्वस्त्ययनस्तयाऽहं
ततोऽभ्यनुज्ञाय नरेन्द्रपुत्रीम् ।
पितुः समीपं नरसत्तमस्य
मातुश्च राज्ञश्च तथाऽऽहुकस्य ॥ ४१
गत्वा समावेद्य यदब्रवीन्मां
विद्याधरेन्द्रस्य सुता भृशार्ता ।
तानभ्यनुज्ञाय तदातिदुःखा-
द्गदं तथैवातिबलं च रामम् ।
अथोचतुः प्रीतियुतौ तदानीं
तपःसमृद्धिर्भवतोस्त्वविघ्नम् ॥ ४२

प्राप्यानुज्ञां गुरुजनादहं तार्क्ष्यमचिन्तयम् ।
सोऽवहद्धिमवन्तं मां प्राप्य चैनं व्यसर्जयम्
तत्राहमद्भुतान् भावानपश्यं गिरिसत्तमे ।
क्षेत्रं च तपसां श्रेष्ठं पश्याम्यद्भुतमुत्तमम् ४४
दिव्यं वैयाघ्रपद्यस्य उपमन्योर्महात्मनः ।
पूजितं देवगन्धर्वैर्ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम्

धव-ककुभ-कदंब-नारिकेलैः
कुरवक-केतक-जंबु-पाटलाभिः ।
वट-वरुणक-वत्सनाभ-बिल्वैः
सरल-कपित्थ-प्रियाल-साल-तालैः ॥

बदरी कुंद-पुन्नागैरशोकाम्रातिमुक्तकैः ।
मधूकैः कोविदारैश्च चंपकैः पनसैस्तथा ॥ ४७
वन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युतम् ।
पुष्पगुल्मलताकीर्णं कदलीषंडशोभितम् ॥ ४८
नानाशकुनिसंभोज्यैः फलैर्वृक्षैरलंकृतम् ।
यथास्थानविनिक्षिप्तैर्भूषितं भस्मराशिभिः ४९
रुरु-वानर-शार्दूल-सिंह-द्वीपि-समाकुलम् ।
कुरङ्ग-बर्हिणाकीर्णं मार्जार-भुजगावृतम् ।
पूगैश्च मृगजातीनां महिषर्क्षनिषेवितम् ॥ ५०

सकृत्प्रभिन्नैश्च गजैर्विभूषित
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम् ।
सुपुष्पितैरम्बुधरप्रकाशै-
र्महीरुहाणां च वनैर्विचित्रैः ॥ ५१

नानापुष्परजोमिश्रो गजदानाधिवासितः ।
दिव्यस्त्रीगीतबहुलो मारुतोऽभिमुखो ववौ ॥

धारानिनादैर्विहगप्रणादैः
शुभैस्तथा बृंहितैः कुञ्जराणाम् ।
गीतैस्तथा किन्नराणामुदारैः
शुभैः स्वनैः सामगानां च वीर ५३

अचिंत्यं मनसाऽप्यन्यैः सरोभिः समलंकृतम्
विशालैश्चाग्निशरणैर्भूषितं कुसुमावृतैः ॥ ५४

विभूषितं पुण्यपवित्रतोयया
सदा च जुष्टं नृप जन्हुकन्यया ।
विभूषितं धर्मभृतां वरिष्ठै-
र्महात्मभिर्वन्हिसमानकल्पैः ॥ ५५
वाय्वाहारैरंबुपैर्जप्यनित्यैः
संप्रक्षालैर्योगिभिर्ध्याननित्यैः ।
धूमप्राशैरूष्मपैः क्षीरपैश्च
संजुष्टं च ब्राह्मणेन्द्रैः समंतात् ॥ ५६

गोचारिणोऽथाश्मकुट्टा दन्तोलूखलिकास्तथा
मरीचिपाः फेनपाश्च तथैव मृगचारिणः ॥५७
अश्वत्थफलभक्षाश्च तथा ह्युदकशायिनः ।
चीरचर्माम्बरधरास्तथा वल्कलधारिणः ५८

---

ते त्वया ॥ ३४ ॥ यज्ञवाहा इति च्छंदसामेव विशेषणं छंदांसि वै देवेभ्यो हव्यमूढ्वेति ब्राह्मणात् तेषां यज्ञवाहत्वसिद्धि स्तोभा सामपूरणान्यक्षराणि हुं मा इत्यादीनि ॥ ३७ ॥ नरेन्द्रपुत्रीं अभ्यनुज्ञाय स्थितं मामिति शेष अथोचतुरित्यर्ध ॥ ४२ ॥ तपसा धर्मोणा तपस्विना वा ॥ ४४ ॥ भस्मराशिभिरिति भस्मच्छन्नैरग्निभि ॥ ४९ ॥ संप्रक्षालै मैत्र्यादिभिश्चित्तशोधनं कुर्वद्भि ॥ ५६ ॥ गोचारिण गोवन्मुखेनैव चरन्त हस्तव्यापारशून्या इत्यर्थ मरीचिपाश्चंद्ररश्मिपानेनैव जीवन्त ॥ ५७ ॥

सुदुःखान्नियमांस्तांस्तान्वहतः सुतपोधनान्।
पश्यन् मुनीन्बहुविधान् प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ५९
सुपूजितं देवगणैर्महात्मभिः
शिवादिभिर्भारत पुण्यकर्मभिः।
रराज तच्चाश्रममंडलं सदा
दिवीव राजन् शशिमंडलं यथा ॥६०
क्रीडन्ति सर्पैर्नकुला मृगैर्व्याघ्राश्च मित्रवत्।
प्रभावाद्दीप्ततपसां सन्निकर्षान्महात्मनाम् ६१
तत्राश्रमपदे श्रेष्ठे सर्वभूतमनोरमे।
सेविते द्विजशार्दूलैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ६२
नानानियमविख्यातैर्ऋषिभिः सुमहात्मभिः।
प्रविशन्नेव चापश्यं जटाचीरधरं प्रभुम् ॥ ६३
तेजसा तपसा चैव दीप्यमानं यथाऽनलम्।
शिष्यैरनुगतं शान्तं युवानं ब्राह्मणर्षभम् ॥६४
शिरसा वन्दमानं मामुपमन्युरभाषत ॥ ६५
स्वागतं पुंडरीकाक्ष सफलानि तपांसि नः।
यः पूज्यः पूजयसि मां द्रष्टव्यो द्रष्टुमिच्छसि
तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मृगपक्षिष्वथाग्निषु।
धर्मे च शिष्यवर्गे च समपृच्छमनामयम् ॥६७
ततो मां भगवानाह साम्ना परमवल्गुना।
लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यमसंशयम् ६८
तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमीश्वरम्।
इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षज ॥६९
इहैनं दैवतश्रेष्ठं देवाः सर्षिगणाः पुरा।
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ ७०
तोषयित्वा शुभान्कामान् प्राप्तवन्तो जनार्दन
तेजसां तपसां चैव निधिः स भगवानिह ७१
शुभाशुभान्वितान् भावा-
न्विसृजन् संक्षिपन्नपि।
आस्ते देव्या सदाचिन्त्यो
यं प्रार्थयसि शत्रुहन् ॥ ७२

हिरण्यकशिपुर्योऽभूद्दानवो मरुकम्पनः।
तेन सर्वामरैश्वर्यं शर्वात्प्राप्तं समार्बुदम् ॥ ७३
तस्यैव पुत्रप्रवरो मंदारो नाम विश्रुतः।
महादेववराच्छक्रं वर्षार्बुदमयोधयत् ॥ ७४
विष्णोश्चक्रं च तद्घोरं वज्रमाखण्डलस्य च।
शीर्णं पुराऽभवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ७५
यत्तद्भगवता पूर्वं दत्तं चक्रं तवानघ।
जलान्तरचरं हत्वा दैत्यं च बलगर्वितम् ७६
उत्पादितं वृषाङ्केन दीप्तज्वलनसन्निभम्।
दत्तं भगवता तुभ्यं दुर्धर्षं तेजसाऽद्भुतम् ॥७७
न शक्यं द्रष्टुमन्येन वर्जयित्वा पिनाकिनम्।
सुदर्शनं भवत्येवं भवेनोक्तं तदा तु तत् ॥ ७८
सुदर्शनं तदा तस्य लोके नाम प्रतिष्ठितम्।
तज्जीर्णमभवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ७९
ग्रहस्यातिबलस्याङ्गे वरदत्तस्य धीमतः।
न शस्त्राणि वहन्त्यङ्गे चक्रवज्रशतान्यपि ८०
अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुबलीयसा।
शिवदत्तवरान् जघ्नुरसुरेन्द्रान् सुरा भृशम् ॥
तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रिलोकेश्वरतां ददौ।
शतं वर्षसहस्राणां सर्वलोकेश्वरोऽभवत् ॥८२
ममैवानुचरो नित्यं भवितासीति चाब्रवीत्।
तथा पुत्रसहस्राणामयुतं च ददौ प्रभुः ॥ ८३
कुशद्वीपं च स ददौ राज्येन भगवानजः।
तथा शतमुखो नाम धात्रा सृष्टो महासुरः ८४
येन वर्षशतं साग्रमात्ममांसैर्हुतोऽनलः।
तं प्राह भगवांस्तुष्टः किं करोमीति शङ्करः ८५
तं वै शतमुखः प्राह योगो भवतु मेऽद्भुतः।
बलं च दैवतश्रेष्ठ शाश्वतं संप्रयच्छ मे ॥ ८६
तथेति भगवानाह तस्य तद्वचनं प्रभुः।
स्वायंभुवः क्रतुश्चापि पुत्रार्थमभवत्पुरा ॥ ८७

---

तास्तान्महत इति पाठे वहत इत्यध्याहार ॥ ५९ ॥ **क्रीडन्तीति**। 'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' इति योगसूत्रात् सर्पनकुलादीनां वैरत्यागलिंगेन तत्रस्थानां मुनीनां अत्यंतं अहिंसादियमनियमनिष्ठावत्त्वं दर्शितम् ॥ ६१ ॥ नियमा अंबुपानादयस्तैरेवांबुपैः क्षरिपैरित्यादिनामभिः ख्यातैः प्रविशन्नेवापश्यं उपमन्युमिति शेषः ॥ ६३ ॥ पूज्य सगुण द्रष्टव्यो निर्गुण ॥६६॥ भावान् शमकामादीन् चित्ताभिप्रायान् सृजन्नित्यनेनान्तर्यामित्वं दर्शितम् ॥ ७२ ॥ समाना संवत्सराणामर्बुदं समार्बुदम् ॥ ७३ ॥ ग्रहस्य मंदारनाम्न ॥ ७५ ॥ भगवता महादेवेन ॥ ७६ ॥ उत्पादितं तस्यैव दैत्यस्य हननार्थम् ॥ ७७ ॥ न द्रष्टुं शक्यं दुर्दर्शत्वात् ॥ ७८ ॥ जीर्णं जीर्णतृणवद्व्यर्थमित्यर्थः ॥७९॥ वरदत्तस्य सर्वशस्त्रावध्यत्वं भवेति दत्तवरस्य ॥८०॥ अर्द्यमाना सुरा असुरेंद्रान् जघ्नुः तेऽन्योन्यं कलहमकुर्वन्नित्यर्थः ॥८१॥ **योगः** चंद्रसूर्यपर्जन्यपृथिव्यादिसृष्टिसामर्थ्यं शाश्वतं बलं ब्रह्मविद्योत्थम्॥८६॥

आविश्य योगेनात्मानं त्रीणि वर्षशतान्यपि।
तस्य चोपददौ पुत्राःसहस्रं क्रतुसंमितान् ८८
योगेश्वर देवगतिं वेत्थ कृष्ण न संशयः।
याज्ञवल्क्य इति ख्यात ऋषिः परमधार्मिकः
आराध्य स महादेवं प्राप्तवानतुलं यशः।
वेदव्यासश्च योगात्मा पराशरसुतो मुनिः ९०
सोऽपि शङ्करमाराध्य प्राप्तवानतुलं यशः।
वालखिल्या मघवता ह्यवज्ञाताः पुरा किल॥
तैः क्रुद्धैर्भगवान् रुद्रस्तपसा तोषितो ह्यभूत्।
तांश्चापि दैवतश्रेष्ठः प्राह प्रीतो जगत्पतिः ९२
सुपर्णं सोमहर्तारं तपसोत्पादयिष्यथ।
महादेवस्य रोषाच्च आपो नष्टाः पुराऽभवन्॥
ताश्च सप्तकपालेन देवैरन्याः प्रवर्तिताः।
ततः पानीयमभवत्प्रसन्ने त्र्यंबके भुवि॥ ९४
अत्रेर्भार्याऽपि भर्तारं सन्त्यज्य ब्रह्मवादिनी।
नाहं तस्य मुनेर्भूयो वशगा स्यां कथञ्चन ९५
इत्युक्त्वा सा महादेवमगच्छच्छरणं किल।
निराहारा भयादत्रेस्त्रीणि वर्षशतान्यपि ९६
अशेत मुसलेष्वेव प्रसादार्थं भवस्य सा।
तामब्रवीद्धसन्देवो भविता वै सुतस्तव॥ ९७
विना भर्त्रा च रुद्रेण
भविष्यति न संशयः।
वंशे तवैव नाम्ना तु
ख्यातिं यास्यति चेप्सिताम्॥ ९८
विकर्णश्च महादेवं तथा भक्तसुखावहम्।
प्रसाद्य भगवान् सिद्धिं प्राप्तवान्मधुसूदन ९९
शाकल्यः संशितात्मा वै नववर्षशतान्यपि।
आराधयामास भवं मनोयज्ञेन केशव॥ १००
तं चाह भगवांस्तुष्टो ग्रन्थकारो भविष्यसि।
वत्साक्षया च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये वै भविष्यति
अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलङ्कृतम्।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठः सूत्रकर्ता सुतस्तव॥१०२
सावर्णिश्चापि विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे
इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतान्यथ॥ १०३
तमाह भगवान् रुद्रः साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ
ग्रन्थकृल्लोकविख्यातो भविताऽस्यजरामरः॥
शक्रेण तु पुरा देवो वाराणस्यां जनार्दन।
आराधितोऽभूद्भक्तेन दिग्वासा भस्मगुण्ठितः
आराध्य स महादेवं देवराजमवाप्तवान्।
नारदेन तु भक्त्याऽसौ भव आराधितः पुरा
तस्य तुष्टो महादेवो जगौ देवगुरुर्गुरुः।
तेजसा तपसा कीर्त्या त्वत्समो न भविष्यति
गीतेन वादितव्येन नित्यं मामनुयास्यसि।
मयाऽपि च यथा दृष्टो देवदेवः पुरा विभो ८
साक्षात्पशुपतिस्तात तच्चापि शृणु माधव।
यदर्थं च मया देवः प्रयतेन तथा विभो॥ ९
प्रबोधितो महातेजास्तं चापि शृणु विस्तरम्
यदवाप्तं च मे पूर्वं देवदेवान्महेश्वरात्॥ १०
तत्सर्वं निखिलेनाद्य कथयिष्यामि तेऽनघ।
पुरा कृतयुगे तात ऋषिरासीन्महायशाः ११
व्याघ्रपाद इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः।
तस्याहमभव पुत्रो धौम्यश्चापि ममानुजः १२
कस्यचित्त्वथ कालस्य धौम्येन सह माधव।
आगच्छमाश्रमं क्रीडन्मुनीनां भावितात्मनाम्
तत्रापि च मया दृष्टा दुह्यमाना पयस्विनी।
लक्षितं च मया क्षीरं स्वादुतो ह्यमृतोपमम्॥
ततोऽहमब्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तथा।
क्षीरोदनसमायुक्तं भोजनं हि प्रयच्छ मे॥ १५
अभावाच्चैव दुग्धस्य दुःखिता जननी तदा।
ततः पिष्टं समालोड्य तोयेन सह माधव १६
आवयोः क्षीरमित्येव पानार्थं समुपानयत्।
अथ गव्यं पयस्तात कदाचित्प्राशितं मया॥
पित्राऽहं यज्ञकाले हि नीतो ज्ञातिकुलं महत्
तत्र सा क्षरते देवी दिव्या गौः सुरनन्दिनी
तस्याहं तत्पयः पीत्वा रसेन ह्यमृतोपमम्।
ज्ञात्वा क्षीरगुणांश्चैव उपलभ्य हि संभवम्॥
स च पिष्टरसस्तात न मे प्रीतिमुपावहत्।
ततोऽहमब्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तदा॥२०
नेदं क्षीरोदनं मातर्यत्त्वं मे दत्तवत्यसि।
ततो मामब्रवीन्माता दुःखशोकसमन्विता॥

आत्मानं हिरण्यगर्भं आविश्याभवत् आविष्टोऽभूत् सूत्रात्मनो ध्यानं कुर्वन्नित्यर्थ. ॥ ८८॥ सप्तकपालेन त्र्यंबकदैवत्येन हेतुना देवै सप्तकपालेन रुद्रमिष्ट्वा आपो निर्मिता इत्यर्थ। देवेनेति पाठे इंद्रेण ॥ ९४॥ **अत्रेरिति**। पतिद्वेषिण्योऽपि स्त्रियो महादेवं प्राप्य कृतकृत्या भवन्तीति भावः ॥ ९५ ॥ मुसलेषु अयोग्रेषु काष्ठकीलेषु 'अयोग्रे मुसलं मतम्' इति विश्वलोचनः ॥९७॥ **विनेति**। चरुद्र· चरोर्द्रव. मंड इति यावत् चरुशब्दपूर्वाद्द्रवतेरन्येभ्योऽपि दृश्यत इति डः। भर्तारं विनापि चरुद्रवपानमात्रेण तव पुत्रो भविष्यतीत्यर्थ। तवैव नाम्ना आनसूयव इति ॥९८॥

पुत्रस्नेहात्परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय माधव ।
कुतः क्षीरोदनं वत्स मुनीना भावितात्मनाम् ॥
वने निवसतां नित्यं कन्दमूलफलाशिनाम् ।
आस्थितानां नदीं दिव्यां वालखिल्यैर्निषेवितां ॥
कुतः क्षीरं वनस्थानां मुनीनां गिरिवासिनाम् ॥
पावनानां वनाशानां वनाश्रमनिवासिनाम् ॥
ग्राम्याहारनिवृत्तानामारण्यफलभोजिनाम् ।
नास्ति पुत्र पयोऽरण्ये सुरभीगोत्रवर्जिते २५
नदीगह्वरशैलेषु तीर्थेषु विविधेषु च ।
तपसा जप्यनित्यानां शिवो नः परमा गतिः ॥
अप्रसाद्य विरूपाक्षं वरदं स्थाणुमव्ययम् ।
कुतः क्षीरोदनं वत्स सुखानि वसनानि च ॥
तं प्रपद्य सदा वत्स सर्वभावेन शङ्करम् ।
तत्प्रसादाच्च कामेभ्यः फलं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन् ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा इदमम्बामचोदयम् २९
कोऽयमम्ब महादेवः स कथं च प्रसीदति ।
कुत्र वा वसते देवो द्रष्टव्यो वा कथञ्चन ॥ ३०
तुष्यते वा कथं शर्वो रूपं तस्य च कीदृशम् ।
कथं ज्ञेयः प्रसन्नो वा दर्शयेज्जननि मम ॥ ३१
एवमुक्ता तदा कृष्ण माता मे सुतवत्सला ।
मूर्धन्याघ्राय गोविन्द सबाष्पाकुललोचना ॥
प्रमार्जन्ती च गात्राणि मम वै मधुसूदन ।
दैन्यमालम्ब्य जननी इदमाह सुरोत्तम ॥ ३३

अम्बोवाच ।

दुर्विज्ञेयो महादेवो दुराधारो दुरन्तकः ।
दुराबाधश्च दुर्ग्राह्यो दुर्दृश्यो ह्यकृतात्मभिः ॥
यस्य रूपाण्यनेकानि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
स्थानानि च विचित्राणि प्रसादाश्चाप्यनेकशः ॥
को हि तत्त्वेन तद्वेद ईशस्य चरितं शुभम् ।
कृतवान्यानि रूपाणि देवदेवः पुरा किल ।
क्रीडते च तथा शर्वः प्रसीदति यथा च वै ३६
हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः ।
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनं च यथाश्रुतम् ॥ ३७
मुनीनां ब्रुवतां दिव्यमीशानचरितं शुभम् ।
कृतवान्यानि रूपाणि कथितानि दिवौकसैः ॥
अनुग्रहार्थं विप्राणां शृणु वत्स समासतः ।
तानि ते कीर्तयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि

अम्बोवाच ।

ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि
विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ॥ ४०
नराणां देवनारीणां तथा प्रेतपिशाचयोः ।
किरातशबराणां च जलजानामनेकशः ॥ ४१
करोति भगवान् रूपमाटव्यशबराण्यपि ।
कूर्मो मत्स्यस्तथा शङ्खः प्रवालाङ्कुरभूषणः ॥
यक्षराक्षससर्पाणां दैत्यदानवयोरपि ।
वपुर्धारयते देवो भूयश्च बिलवासिनाम् ॥ ४३
व्याघ्रसिंहमृगाणां च तरक्ष्वृक्षपतत्रिणाम् ।
उलूकश्वश्रृगालानां रूपाणि कुरुतेऽपि च ४४
हंसकाकमयूराणां कृकलासकसारसाम् ।
रूपाणि च बलकानां गृध्रचक्रांगयोरपि ४५
करोति वा स रूपाणि धारयत्यपि पर्वतम् ।
गोरूपं च महादेवो हस्त्यश्वोष्ट्रखराकृतिः ४६
छागशार्दूलरूपश्च अनेकमृगरूपधृक् ।
अंडजानां च दिव्यानां वपुर्धारयते भवः ४७
दंडी छत्री च कुंडी च द्विजानां वारणस्तथा
षण्मुखो वै बहुमुखस्त्रिनेत्रो बहुशीर्षकः ॥ ४८
अनेककटिपादश्च अनेकोदरवक्त्रधृक् ।
अनेकपाणिपार्श्वश्च अनेकगणसंवृतः ॥ ४९
ऋषिगन्धर्वरूपश्च सिद्धचारणरूपधृक् ।
भस्मपाण्डुरगात्रश्च चन्द्रार्धकृतभूषणः ॥ ५०
अनेकरावसंघुष्टश्चानेकस्तुतिसंस्कृतः ।
सर्वभूतान्तकः सर्वः सर्वलोकप्रतिष्ठितः ॥ ५१
सर्वलोकान्तरात्मा च सर्वगः सर्ववाद्यपि ।
सर्वत्र भगवान् ज्ञेयो हृदिस्थः सर्वदेहिनाम् ५२

---

पावनाना पवनाशिना वनाशाना अब्भक्षाणाम् ॥ २४ ॥ प्रपद्य प्रपन्नो भव ॥ २८ ॥ दुर्विज्ञेय शास्त्रतोऽपि ज्ञातुमशक्य दुराधार शास्त्रात् ज्ञातोऽपि मनसि धर्तुमशक्य दुराबाध ध्रियमाणोऽपि लयविक्षेपादिविघ्नैः सकट । यतो दुरंतक. दुष्टानि अंतकानि बंधकानि यस्मिन् विघ्नाभावेऽपि दुर्ग्राह्य दिव्यविषयवैवश्येन परवैराग्याभावात् सत्यपि वैराग्ये दुर्दृश्य. आत्मनीव प्रकृतावपि चेतसो लयस्य संभवात् ॥ ३४ ॥ एवं निर्विशेषरूपस्य दुर्ज्ञेयत्वमुक्त्वा सविशेषमेव रूपमाह-**यस्य रूपाण्यनेकानीत्यादिना** ॥ ३५ ॥ दिवौकसैर्देवै. ॥ ३८ ॥ अनुग्रहार्थमेव नीरूपस्यापि रूपधारणं न स्वत ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादिपुत्रिकान्तमस्यैव रूपमित्याह-**ब्रह्मेत्यादिना** ४० **कूर्मो मत्स्य इति** । अवतारान्तराणामुपलक्षणम् । प्रवालांकुरभूषणो वसंत. तेन कालोऽप्ययमेवेत्यर्थ ॥ ४२ ॥

यो हि यं कामयेत्कामं यस्मिन्नर्थेऽर्च्यते पुनः
तत्सर्वं वेत्ति देवेशस्तं प्रपद्य यदीच्छसि ५३
नन्दते कुप्यते चापि तथा हुङ्कारयत्यपि ।
चक्री शूली गदापाणिर्मुसली खड्गपट्टिशी ५४
भूधरो नागमौञ्जी च नागकुण्डलकुण्डली ।
नागयज्ञोपवीती च नागचर्मोत्तरच्छदः ॥ ५५
हसते गायते चैव नृत्यते च मनोहरम् ।
वादयत्यपि वाद्यानि विचित्राणि गणैर्युतः ५६
वल्गते जृम्भते चैव रुदते रोदयत्यपि ।
उन्मत्तमत्तरूपं च भाषते चापि सुस्वरः ॥ ५७
अतीव हसते रौद्रस्त्रासयन्नयनैर्जनम् ।
जागर्ति चैव स्वपिति जृम्भते च यथासुखम् ॥
जपते जप्यते चैव तपते तप्यते पुनः ।
ददाति प्रतिगृह्णाति युञ्जते ध्यायतेऽपि च ५९
वेदीमध्ये तथा यूपे गोष्ठमध्ये हुताशने ।
दृश्यते दृश्यते चापि बालो वृद्धो युवा तथा ६०
क्रीडते ऋषिकन्याभिर्ऋषिपत्नीभिरेव च ।
ऊर्ध्वकेशो महाशेफो नग्नो विकृतलोचनः ६१

गौरः श्यामस्तथा कृष्णः
पाण्डुरो धूमलोहितः ।
विकृताक्षो विशालाक्षो
दिग्वासाः सर्ववासकः ॥ ६२

अरूपस्याद्यरूपस्य अतिरूपाद्यरूपिणः ।
अनाद्यन्तमजस्यान्तं वेत्स्यते कोऽस्य तत्त्वतः
हृदि प्राणो मनो जीवो योगात्मा योगसंज्ञितः
ध्यानं तत्परमात्मा च भावग्राह्यो महेश्वरः ६४
वादको गायनश्चैव सहस्रशतलोचनः ।
एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रोऽनेकवक्त्रकः

तद्भक्तस्तद्गतो नित्यं तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
भज पुत्र महादेवं ततः प्राप्स्यसि चेप्सितम् ॥
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन्
मम भक्तिर्महादेवे नैष्ठिकी समपद्यत ॥ ६७
ततोऽहं तप आस्थाय तोषयामास शङ्करम् ।
एकं वर्षसहस्रं तु वामाङ्गुष्ठाग्रविष्ठितः ॥ ६८
एकं वर्षशतं चैव फलाहारस्ततोऽभवम् ।
द्वितीयं शीर्णपर्णाशी तृतीयं चाम्बुभोजनः ६९
शतानि सप्त चैवाहं वायुभक्षस्तदाऽभवम् ।
एकं वर्षसहस्रं तु दिव्यमाराधितो मया ॥ ७०
ततस्तुष्टो महादेवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
एकभक्त इति ज्ञात्वा जिज्ञासां कुरुते तदा ७१
शक्ररूपं स कृत्वा तु सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।
सहस्राक्षस्तदा भूत्वा वज्रपाणिर्महायशाः ७२
सुधावदातं रक्ताक्षं स्तब्धकर्णं मदोत्कटम् ।
आवेष्टितकरं घोरं चतुर्दंष्ट्रं महागजम् ॥ ७३
समास्थितः स भगवान् दीप्यमानः स्वतेजसा
आजगाम किरीटी तु हारकेयूरभूषितः ॥ ७४
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
सेव्यमानोऽप्सरोभिश्च दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥
ततो मामाह देवेन्द्रस्तुष्टस्तेऽहं द्विजोत्तम ।
वरं वृणीष्व मत्तस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ७६
शक्रस्य तु वचः श्रुत्वा नाहं प्रीतमनाऽभवम्
अब्रुवंश्च तदा हृष्टो देवराजमिदं वचः ॥ ७७
नाहं त्वत्तो वरं कांक्षे नान्यस्मादपि दैवतात्
महादेवादृते सौम्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७८
सत्यं सत्यं हि नः शक्र वाक्यमेतत्सुनिश्चितम्
न यन्महेश्वरं मुक्त्वा कथाऽन्या मम रोचते ॥

---

नन्दते आनन्दयते कुप्यते कोपं करोति मित्रामित्ररूपेणाग्यय-मेवानुगृह्णाति निगृह्णाति चेत्यर्थ ॥५४॥ भूधर शेषनाग. ॥ ५५ ॥ महाशेफो महालिंग ॥ ६१ ॥ सर्ववासक सर्वस्याच्छादकः ॥ ६२ ॥ अरूपस्य निष्कलस्य आद्यरूपस्य मायाविन अतिरूपस्य नानाकार्याकारस्य आद्यरूपिणो हिरण्यगर्भस्य अनाद्यं कारणशून्यम्। अजस्य अन्तं को वेद न कोऽपीत्यर्थ ,तस्य नाशकाभावादन्तो नास्तीत्यर्थः ६३ अयमेव प्रत्यगात्मेत्याह- हृदीति । अत्र हृदादिशब्दै क्रमेणान्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमया कोशा उच्यन्ते। योगाश्चिदचिद्ग्रन्थिस्तदात्मा आनन्दमय. स एव योगसंज्ञितो योगी मुक्त. शुद्धस्त्वंपदार्थ इत्यर्थ । ध्यान योग तत्परं शुद्धस्त्वंपदार्थावसानम्। महेश्वर मायावी तत्पदार्थ ।भावेन सूक्ष्मया चेतोवृत्त्या ग्राह्य. । किं दृश्यत्वेन-नेत्याह । आत्मा प्रत्यग्रूप इत्यर्थ. । एतेनायमात्मा ब्रह्मेति महावाक्यार्थो दर्शित. ६४ ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा इत्यादिश्रुतेरर्थमाह— वादक इति । वादकादि सर्वोऽपि जीवो ब्रह्मैवेत्यर्थ । एकवक्त्र आनन्दभुक् चेतोमुख प्राज्ञस्तृतीय पाद इत्यर्थ । द्विवक्त्र. लिंगदेहो जीवश्चेति द्वे वक्त्रे सुखग्राहके यस्य स तैजस त्रिवक्त्र. स्थूलदेहेन सार्द्धं पूर्वे द्वे चेति त्रीणि वक्त्राणि यस्य स विश्व. अनेकवक्त्रको विराट् स एव सहस्रं शतानि लक्ष अनन्तामिति यावत् । तावन्ति लोचनानि यस्य ॥६५॥ एकभक्त मुख्यो भक्त ॥ ७१ ॥ अभवं संधिरार्ष. ॥ ७७ ॥

पशुपतिवचनाद्भवामि सद्यः
कृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः ।
अपशुपतिवरप्रसादजा मे
त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥८०
जन्म श्वपाकमध्येऽ-
पि मेऽस्तु हरचरणवन्दनरतस्य
मा वाऽनीश्वरभक्तो
भवानि भवनेऽपि शक्रस्य
वाय्वम्बुभुजोऽपि सतो
नरस्य दुःखक्षयः कुतस्तस्य ।
भवति हि सुरासुरगुरौ
यस्य न विश्वेश्वरे भक्तिः ॥ ८२
अलमन्याभिस्तेषां
कथाभिरप्यन्यधर्मयुक्ताभिः ।
येषां न क्षणमपि रुचितो
हरचरणस्मरणविच्छेदः ॥ ८३
हरचरणनिरतमतिना
भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य ।
संसारभयं न भवति
हरभक्तिरसायनं पीत्वा ॥ ८४ ॥
दिवसं दिवसार्धं वा मुहूर्तं वा क्षणं लवम् ।
न ह्यलब्धप्रसादस्य भक्तिर्भवति शङ्करे ॥ ८५
अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयं शङ्कराज्ञया ।
न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये ८६
श्वाऽपि महेश्वरवचना-
द्भवामि स हि नः परः कामः ।
त्रिदशगणराज्यमपि खलु
नेच्छाम्यमहेश्वराज्ञप्तम् ॥ ८७ ।
न नाकपृष्ठं न च देवराज्यं
न ब्रह्मलोकं न च निष्कलत्वम् ।
न सर्वकामानखिलान् वृणोमि
हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ।। ८८ ॥
यावच्छशाङ्कधवलामलबद्धमौलि-
र्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान्ममेशः ।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातै-
र्दुःखानि देहविहितानि समुद्वहामि
दिवसकरशशाङ्कवह्निदीप्तं
त्रिभुवनसारमसारमाद्यमेकम् ।
अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं
जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम्
यदि नाम जन्म भूयो
भवति मदीयैः पुनर्दोषैः ।
तस्मिंस्तस्मिन् जन्मनि
भवे भवेन्मेऽक्षया भक्तिः ॥ ९१ ॥

शक्र उवाच ।

कः पुनर्भवने हेतुरीशे कारणकारणे ।
येन शर्वादृतेऽन्यस्मात्प्रसादं नाभिकांक्षसि ९२

उपमन्युरुवाच ।

सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः ।
नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९३

पशुपतिवचनादित्यादिर्ग्रन्थस्य तात्पर्यम्—परमकारणस्य भगवतो महादेवस्यानुग्रहे सति तिर्यग्योनिप्राप्तावपि भयं नास्ति यथा काकस्य भुशुंडस्य । इंद्रेण तु स्वयं नष्टप्रायेण दत्तं त्रैलोक्यराज्यमपि महाभयजनकं यथा नहुषस्येति ॥ ८० ॥ मा वा मैव भवानि भूयासम् ॥ ८१ ॥ अनार्जवं वक्रं युगं कलियुगम् ॥ ८४ ॥ असारं नास्ति सारो यस्मादन्य केवलानन्द इत्यर्थस्तम् ॥ ९० ॥ **क इति** । ईशे ईशस्य भवने सताया को हेतु का युक्ति । ईशसत्त्वे प्रमाण नास्तीत्यर्थ । तत्र हेतु —**कारणकारणे इति** । कारणं हि कलशस्य कपालकुलालादिवत् जगत परमाणुमहेश्वरादिकं वा त्रिगुणात्मकं प्रधानं वा क्षीरादिवज्जगदाकारेण परिणममाण तादृशकार्यद्वाराऽनुमातुं शक्यम् । कारणकारण तु न क्वचित्प्रसिद्ध नापि कल्पयितु शक्यं कारणकल्पनयैव अर्थापत्तिपरिक्षयादिति भाव । पुन.शब्दो वाक्यालंकारे । सप्तमी षष्ठ्यर्थे, भवने इति भावे ल्युट । येन यतो हेतो· शर्वात् श्णाति हिनस्ति प्रलयकाले कृत्स्नं संहरति तस्मात् । वर काक्षति तस्मात् दाहोपशान्त्यै वन्हिमिव संहर्तारं वरार्थमागधयन् मूढोऽसीति भाव ॥ ९२ ॥ एतद्दूषयत्युपमन्यु. **सदसदिति** । सदिति प्रवाहानादित्वं **मीमांसकमतम्** । असदिति शून्यं **माध्यमिकमतं** व्यक्तं परमाणव. **तार्किकमतं** अव्यक्त प्रधानं **सांख्यमतं** एतच्चतुष्कमपि यदभिन्नमाहु तत् नित्यं अविनाशि एकं असंहतं परमाशिवाख्यम् । अनेकं कार्यकारणात्मक तस्माद्वरं वृणीमहे । अयं भाव —यथा बीजशक्तेर्विलसितं अकुरकाडस्कंधशाखापल्लवपत्रपुष्पफलबीजान्तं विकार उत्पत्तिप्रलयवान् तस्य च प्रकृतिरेका नित्या सर्वविशेषशून्या मृदस्ति सा च बीजशक्त्यस्पृष्टाऽनेकरूपा च भवति । एवं अव्यक्तादिकं सर्वं बीजादिस्थानीयं यत्र लीयते तत्परमशिवाख्यं तत्त्व कारणकारण मस्तीति न तदपन्होतुं शक्यमिति ॥ ९३ ॥

अनादिमध्यपर्यन्तं ज्ञानैश्वर्यमचिन्तितम् ।
आत्मानं परमं यस्मात्वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९४
ऐश्वर्यं सकलं यस्मादनुत्पादितमव्ययम् ।
अबीजाद्वीजसंभूतं वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९५
तमसः परमं ज्योतिस्तपस्तद्वृत्तिनां परम् ।
यं ज्ञात्वा नानुशोचन्ति वरं तस्माद्वृणीमहे ९६
भूतभावनभावज्ञं सर्वभूताभिभावनम् ।
सर्वगं सर्वदं देवं पूजयामि पुरन्दर ॥ ९७
हेतुवादैर्विनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदं परम् ।
यमुपासंति तत्त्वज्ञा वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९८
मघवन्मघवात्मानं यं वदंति सुरेश्वरम् ।
सर्वभूतगुरुं देवं वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९९
यत्पूर्वमसृजद्देवं ब्रह्माणं लोकभावनम् ।
अण्डमाकाशमापूर्य वरं तस्माद्वृणीमहे ॥२००
अग्निरापो निलः पृथ्वी खं बुद्धिश्च मनो महान्
स्रष्टा चैषां भवेद्योन्यो ब्रूहि कः परमेश्वरात् १
मनो मतिरहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
ब्रूहि चैषां भवेच्छक्र कोन्योस्ति परमं शिवात् -
स्रष्टारं भुवनस्येह वदन्तीह पितामहम् ।
आराध्य स तु देवेशमश्नुते महतीं श्रियम् ॥ ३
भगवत्युत्तमैश्वर्यं ब्रह्मविष्णुपुरोगमम् ।
विद्यते वै महादेवाद्ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ ४

अचिन्तितं चिन्तया निर्वृत्तं ज्ञेय ईशितव्यं च ताभ्यां रहितं स्वरूपभूतमेव ज्ञानैश्वर्यम् । परमं च आत्मानं यस्मात्तमाहुर्ब्रह्मवादिनोऽतस्तस्माद्वरं वृणीमहे । इतरत् ज्ञानैश्वर्यं त्वनात्मभूतमित्यर्थः ॥९४॥ एतदेवाह-**ऐश्वर्यमिति** । बीजं मायाशक्त्यवच्छिन्नं चैतन्यं तस्माज्जातं सकलं ऐश्वर्यं बीजसंभूतं ईशेशितव्यसापेक्षम् । तच्चाव्ययं संसारप्रवाहाविच्छेदात् अत एतत् य स्मात् शिवात् अबीजात् बीजादन्यस्मान्मृत्सामान्यस्थानीयात् अनुत्पादितं तस्मादीश्वरग्रासस्तुरीय इति श्रुतिप्रसिद्धात् वरं वृणीमहे । तथा च श्रुतौ—सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्मेति । समष्टिव्यष्टिब्रह्मणी उपक्षिप्य स्थूलसूक्ष्मकारणोपाधित्वसामान्यात् व्यष्टौ समष्टिमन्तर्भाव्य विश्वतैजसप्राज्ञान् चतुष्पद आत्मन त्रीन्पादान्निरूप्य प्राज्ञं तृतीयं पादं प्रक्रम्य-एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानामिति प्राज्ञस्यैव योन्यपरपर्यायं बीजत्वमुक्तम् । तथा चतुर्थं पादं अबीजं सर्वोपाध्युपहितभिन्नं पंचदशभिर्विशेषणैः पृथग्दर्शयति श्रुतिः-'नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यं एकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः' इति। अत्र जलचन्द्रन्यायेन षडुपहितचैतन्यानि षडुपाधयश्च तेषां मध्ये नान्तःप्रज्ञमिति समष्टिसूक्ष्मोपाध्युपहितस्य सूत्रात्मनो निरासः । न बहिःप्रज्ञमिति विराजः. नोभयतःप्रज्ञमित्यात्मनो निष्कलत्वं सकलत्वं च जानत ईश्वरस्य। न प्रज्ञमिति विशेषविज्ञानवतो विश्वस्य नाप्रज्ञमिति प्रज्ञभिन्नत्वेऽपि तत्सदृशस्य तैजसस्य। न प्रज्ञानघनमिति प्राज्ञस्य। तथा अदृष्टमिति सर्वेन्द्रियग्राह्यस्य विराडुपाधेः अव्यवहार्यमिति वाचिकव्यवहारार्हस्य सूत्रोपाधेः। अग्राह्यमिति योगिग्राह्यस्य ईश्वरोपाधेः अलक्षणमिति शिरःपाण्यादिलक्षणवतो विश्वोपाधेः अचिन्त्यमिति चिन्तनमात्रनिर्वृत्तस्य तैजसोपाधेः । अव्यपदेश्यमिति अहमज्ञ इति व्यपदेशार्हस्य ज्ञानस्य प्राज्ञोपाधेश्च निरासः। एकात्मप्रत्ययसारमिति षण्णामुपहितानां प्रपञ्चोपशम इति षण्णामुपाधीनां अद्वैतमिति सर्वेषां निरासः । शिवं सर्वबाधावधिभूतमानन्दमात्रं परिशिनष्टि तस्माद्युक्तमुक्तं सकलमैश्वर्यं अबीजादनुत्पादितं बीजसंभूतं चेति । तस्मात्कारणकारणस्य शिवस्य सत्त्वे युक्तिः श्रुतिश्च प्रमाणमस्तीति भाव. ९५ एवमीशस्य कारणकारणत्वं निरूप्य इदानीं कारणत्वं कार्यत्वं च निरूपयति-**भूतभावनेत्यादिना** । भूतानां खादीनां जीवानां च भावनं स्रष्टारं भावमभिप्रायं सर्वज्ञं सर्वशक्तिं चेत्यर्थः ९७ यत्पुनरुक्तं ईशसत्तायां को हेतुरिति तत्राह-**हेत्विति**। कारणात्माऽपि श्रुतिं विना युक्तिमात्रेण न सिध्यति किंपुनः कारणकारणमित्याशयः । सांख्ययोगयोः सम्यगालोचनं सांख्यं वृत्तिनिरोधो योगस्तयोरर्थः प्रयोजनं तत्त्वसाक्षात्कारस्तत्प्रदं अत एव उपास्यम् ९८ मघवतस्त्वैव आत्मानं जीवानामन्तरात्मानमित्यर्थः । मघवात्मानमिति वर्णलोप आर्षः. नान्तमेव वा प्रातिपदिकम् ।। ९९ ॥ यत् वस्तु मृत्स्थानीयं तदेव आकाशं बीजभूतमव्याकृतं आपूर्य स्वसत्तया व्याप्य तद्द्वारा पाञ्चभौतिकं अण्डं ब्रह्माण्डं सृष्ट्वा तदन्तर्ब्रह्माणमसृजदित्यन्वयः ।। २०० ।। अण्डसृष्टिक्रममेवाह—**अग्निरिति** । अग्न्यादिशब्दैरत्र पञ्च तन्मात्राणि शब्दतन्मात्रादीनि सूक्ष्मभूतान्युच्यन्ते। बुद्धिरित्यहंकारः । मन इत्यव्यक्तं, एषां अण्डोपादानभूतानाम् ॥१॥ यत्र मनःशब्दितमव्यक्तमुक्तं तदेव महच्छब्दिता मतिरहङ्कारादिकं च तदेवेत्यर्थः। एषां मनआदीनां परमं परायणं यः भवेत् स शिवादन्यः कोऽस्तीति योजना। यथा बीजशक्त्युपहिता मृदेव वृक्षः. एवमज्ञानशक्त्युपहितः शिव एव सर्वं अतो वृक्षस्य मृदिव सर्वस्य शिव एव परायणमपीति भाव. ॥२॥ ब्रह्मादिष्वपि जगत्कर्तृत्वासिद्धिः शिवप्रसादायत्तैवेत्याह—**स्रष्टारमिति** । एतेन भौतिकार्थस्रष्टृत्वमपि शिवस्यैवेति दर्शितम् ॥ ३ ॥

दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनात् ।
कोऽन्यः शक्नोति देवेशाद्दितेः संपादितुं सुतान्
दिक्कालसूर्यतेजांसि ग्रहवाय्विन्दुतारकाः ।
विद्धि त्वेते महादेवाद्ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥६
अथोत्पत्तिविनाशे वा यज्ञस्य त्रिपुरस्य वा ।
दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनः ॥ ७
किं चात्र बहुभिः सूक्तैर्हेतुवादैः पुरन्दर ।
सहस्रनयनं दृष्ट्वा त्वामेव सुरसत्तम ॥ ८
पूजित सिद्धगन्धर्वैर्देवैश्च ऋषिभिस्तथा ।
देवदेवप्रसादेन तत्सर्वं कुशिकोत्तम ॥ ९
अव्यक्तमुक्तकेशाय सर्वगस्येदमात्मकम् ।
चेतनाचेतनाद्येषु शक्र विद्धि महेश्वरात् ॥ १०
भुवाद्येषु महान्तेषु लोकालोकान्तरेषु च ।
द्वीपस्थानेषु मेरोश्च विभवेष्वन्तरेषु च
भगवन्मघवन्देवं वदन्ते तत्त्वदर्शिनः । ११
यदि देवाः सुराः शक्र पश्यन्त्यन्यां भवाकृतिं
किं न गच्छन्ति शरणं मर्दिताश्चासुरैः सुराः।
अभिघातेषु देवानां सयक्षोरगरक्षसाम् ॥ १३
परस्परविनाशेषु स्वस्थानैश्वर्यदो भवः ।
अन्धकस्याथ शुक्रस्य दुन्दुभेर्माहिषस्य च १४
यक्षेन्द्रबलरक्षःसु निवातकवचेषु च ।
वरदानावघाताय ब्रूहि कोऽन्यो महेश्वरात्१५
सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम् ।
कस्य वाऽन्यस्य रेतस्तद्येन हैमो गिरिः कृतः
दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो
लोके कश्चोर्ध्वरेतसः ।
कस्य चार्धे स्थिता कान्ता
अनङ्गः केन निर्जितः ॥ १७
ब्रूहीन्द्र परमं स्थानं कस्य देवैः प्रशस्यते ।
श्मशाने कस्य क्रीडार्थं नृत्ते वा कोभिभाष्यते
कस्यैश्वर्यं समानं च भूतैः को वाऽपि क्रीडते
कस्य तुल्यबला देवगणाश्चैश्वर्यदर्पिताः ॥ १९
घुष्यते ह्यचलं स्थानं कस्य त्रैलोक्यपूजितम् ।
वर्षते तपते कोऽन्यो ज्वलते तेजसा च कः
कस्मादोषधिसंपत्तिः को वा धारयते वसु ।
प्रकामं क्रीडते को वा त्रैलोक्ये सचराचरे२१
ज्ञानसिद्धिक्रियायोगैः सेव्यमानश्च योगिभिः
ऋषिगन्धर्वसिद्धैश्च विहितं कारणं परम् २२
कर्मयज्ञक्रियायोगैः सेव्यमानः सुरासुरैः ।
नित्यं कर्मफलैर्हीनं तमहं कारणं वदे ॥ २३

---

भगवति एकैकगुणप्रधानोपाधीना ब्रह्मविष्णुरुद्राणा स्रष्टरि सर्वगुणोपाधौ तुर्यमूर्तौ महेश्वरेऽपि यदुत्तममैश्वर्यं विद्यते तदपि महादेवादेव तेन प्राप्तमतः कस्तस्मात्परमेश्वरादन्य ईश्वरोऽस्तीति ब्रूहि न कोऽप्यस्तीति भाव ॥ ४ ॥ दिते सुतान् हिरण्याक्षादीन् संपादितुं ऐश्वर्येण योजयितुं दैत्यादीना च यत्परपीडानुग्रहसामर्थ्यं तत्सर्वमीश्वरायत्तमेवेति भाव ॥ ५ ॥ यज्ञत्रिपुरयोरुत्पत्तौ विनाशे च तथा दैत्यादीनामुपरि आधिपत्य एत्य जित्वा अरिमर्दन परमेश्वरादन्य कोऽस्तीति पूर्वेण संबंध ॥७॥ **किंचेति**। देवप्रसादाद्देवै पूजित त्वा दृष्ट्वा बहुभि सूक्तै किमिति द्वयो संबंध ॥ ८ ॥ **अव्यक्तेति**। एषु लोकेषु सर्वगस्य व्यापकस्य इदमात्मकं व्याप्यं कृत्स्नं दृश्य चेतनाचेतनादि सजीव निर्जीव आदिपदात् परोक्षं स्वर्गादि अहमर्थश्च देहेंद्रियादि एतत्सर्वं भोग्यं महेश्वरात् महेश्वरानुग्रहात् अव्यक्तमुक्तकेशाय जीवाय जीवार्थं तस्य भोगाय भवतीति विद्धि हे शक्र अव्यक्तं अस्पष्ट यथा स्यात्तथा मुक्त भ्रान्तितिरोहितं नित्यमुक्तत्वमस्येत्यर्थ । स चासौ केश इव केश शिवाश इति अव्यक्तमुक्तकेश । यत्किंचिद्भोग्यं य कश्चन जतु । शिवादेवाप्नोति नान्यो भवदादिस्तत्प्रद इति भाव ॥१०॥ एष्विति पद व्याचष्टे–**भुवाद्येष्विति**। भूरादिष्विति द्रष्टव्य तेन भूर्भुव स्वर्मह शब्दिता लोका· भूरिति वा अय लोक इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धा । तथा आलोका भूरिति वा अग्नि भूरिति वा ऋच इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धा । तथा अंतरा भूरिति वै प्राण इत्याद्या सूर्यचन्द्रग्रहाम्नातास्तेषु विभवेषु दिव्यप्रदेशु । अथ यदत परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वत पृष्ठेषु सर्वत पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विति श्रुत ज्योति शब्दितं देव वदंते तत्त्वदर्शिनो वैदिका इत्यर्थ सार्ध श्लोक ॥ ११ ॥ भवाकृति भवतुल्या मूर्त्ति शरणं तामेवेति शेष ॥ १२ ॥ अभिघातेषु युद्धेषु अन्योन्यं विनाशवत्सु ऐश्वर्यं नास्ति किंतु विनाश एवास्तीत्यर्थः । अत. स्वस्थाने वाऽभिलक्ष्य भव ऐश्वर्यदो भवतीति भाव ॥१३॥ वरदानसहितोऽवघातोऽवमर्दन तस्मै समर्थ इति शेष ॥ १५ ॥ **सुरेति**। रुद्रस्य रेतो वन्हौ स्कन्नं तेन च दूरीकृतं सत् कनकत्वं प्राप्तमिति पुराणान्तरस्था कथा सूचिता ॥ १६ ॥ **दिग्वासा इति**। विग्रहवतोऽपि शिवस्य चरितं निरुपमं किमुताविग्रहस्येति शेषग्रन्थतात्पर्यम् ॥ १७ ॥ श्मशाने द्वे अविमुक्ते मुक्तिस्थाने अधिलोकं वाराणसी अध्यात्मं भ्रूघ्राणमध्ये कस्य क्रीडार्थं शास्त्रे क्लृप्ते इति शेष ।१८। **घुष्यते इति**। अचलं कैलासम् ॥ २० ॥ विहितं अज्ञातं सत् ज्ञापित परं कारणं अव्यक्तस्यापि कारणम् ॥ २२ ॥ कर्मफलै शरीरैस्तत्संबन्धिभि सुखदु खैश्च हीनम। अशरीर वाव संतं न प्रियाप्रिये स्पृशत इति श्रुत्युक्तोयमर्थ ॥ २३ ॥ गुणिन ईश्वरात् परं

स्थूलं सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम् ।
गुणहीन गुणाध्यक्ष परं माहेश्वरं पदम् ॥ २४
विश्वेशं कारणगुरुं लोकालोकान्तकारणम् ।
भूताभूतभविष्यच्च जनकं सर्वकारणम् ॥ २५
अक्षराक्षरमव्यक्त विद्याविद्ये कृताकृते ।
धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं ब्रुवे ॥ २६
प्रत्यक्षमिह देवेन्द्र पश्य लिङ्गं भगाङ्कितम् ।
देवदेवेन रुद्रेण सृष्टिसंहारहेतुना ॥ २७
मात्रा पूर्वं ममाख्यातं कारणं लोकलक्षणम् ।
नास्ति चेशात्परं शक्र तं प्रपद्य यदीच्छसि॥२८
प्रत्यक्षं ननु ते सुरेश विदित
संयोगलिंगोद्भवम् ।
त्रैलौक्यं सविकारनिर्गुणगणं
ब्रह्मादिरेतोद्भवम् ॥
यद्ब्रह्मेन्द्रहुताशविष्णुसहिता
देवाश्च दैत्येश्वरा ।
नान्यत्कामसहस्रकल्पितधियः
शंसन्ति ईशात्परम् ॥
तं देवं सचराचरस्य जगतो
व्याख्यातवेद्योत्तमम् ।
कामार्थी वरयामि संयतमना
मोक्षाय सद्यः शिवम् ॥ २९
हेतुभिर्वा किमन्यैस्तैरीशः कारणकारणम् ।
न शुश्रुम यदन्यस्य लिङ्गमभ्यर्चितं सुरैः ॥३०
कस्यान्यस्य सुरैः सर्वैर्लिङ्गं मुक्त्वा महेश्वरम्
अर्च्यतेऽर्चितपूर्वं वा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः॥
यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।
अर्चयध्वं सदा लिंगं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः३२
न पद्मांका न चक्रांका न वज्रांका यतः प्रजाः
लिंगांका च भगाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा
देव्याः कारणरूपभावजनिताः
सर्वा भगाङ्काः स्त्रियो
लिंगेनापि हरस्य सर्वपुरुषाः
प्रत्यक्षचिह्नीकृताः ।
योऽन्यत्कारणमीश्वरात् प्रवदते
देव्या च यन्नाङ्कितम् ।
त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान्
बाह्यो भवेद्दुर्मतिः ॥ ३४

श्रेष्ठं अत एव गुणहीनम् । तथापि अयस्कान्तन्यायेन गुणाध्यक्षं गुणाना नियामकं माहेश्वरं महेश्वरस्यापि पदं पदनीयम् । ईश्वरग्रास इति श्रुते ॥ २४ ॥ कारणस्य ईश्वरस्य गुरुं नियन्तारं लोकश्च लोकान्तश्च तयो कारणं अभूतं वर्तमानम्॥२५ अक्षरं जीवस्ततोप्यक्षरं शिव स एवाक्षराक्षर अव्यक्तं प्रधानं यत उपादानादक्षरादिकं भवति तमहं कारणं ब्रुवे २६ **प्रत्यक्षमिति** । लिंगं शिवमूर्तेर्ज्ञापकं विग्रहं भगेन अंकित प्रत्यक्षं पश्य । पिंडिका लिंगाकारा जलधारा च भगाकारेति लौकिकं प्रत्यक्षम् । शास्त्रीयं प्रत्यक्षं तु श्रुति प्रामाण्यं प्रत्यनपेक्षत्वात् तच्च पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनामिति । अस्यार्थ —यत् यतो हेतो विष्णो. पदं स्थान प्रतिमेति यावत् तत त्वष्टुपस्थ विष्णुर्योनिं कल्पयत्विति मंत्रवर्णात् उपमं निकटे स्थित्वा माति वेष्टयतीत्युपमं कृत्वा निधायि निहितं अडभावश्छान्दस. तेन हेतुना त्वं गोना इंद्रियाणा मध्ये यद्गोप्यमवाच्यमिन्द्रियं भगं लिंगं पासि रक्षसि तन्नाम च पासि । तत्रापि भगसंयोगात् भगवानिति नाम धारयसि लिंगरूपत्वाच्च लिंगमिति विवेक. । भगलिंगसमुदायेऽपि लिंगमिति नाम च्छत्रिणो यातीतिवल्लिंगसमवायादेव ज्ञेयं तच्च **भगांकितं** लिंगं रुद्रेण रुद्रात्मनाविर्भूतम् ॥२७॥ एतदेव विवृणोति । **मात्रेत्यादिना** लोको भगलिंगसंयोगजो यस्माद्दृश्यते तस्मादस्य कारणमपि तादृशमेवानुमेयमित्यर्थ । लक्षणं ज्ञापकम् ॥२८॥ **प्रत्यक्षमिति** । सार्धं संयोगलिंगोद्भवं भगलिंगयो. संयोगात्मक यल्लिंगं तदुद्भव विकारो माया भगं निर्गुणं चैतन्यं तयोर्गण समुदाय ईश्वरस्तत्सहितं सविकारनिर्गुणं त्रैलोक्य ब्रह्मादीना रेतसा उद्भवो यस्य तत्तथा संधिरार्ष. । ननु मनो प्राक् मानसिकी सृष्टिस्तत ऊर्ध्वं मैथुनी स्मर्यते तत्कथं ब्रह्मादिरेतोद्भवमिति तत्राह—कामसहस्रकल्पितधिय इति । तत्रापि काम इच्छा तया सह सम्प्र इच्छावता ब्रह्ममहेन्द्रादिना पुरुषेण वियोमात्रा पुत्रादय कल्पिता इति कामो योनि कामी बीजप्रद इति अस्ति लिंगोद्भवत्वमित्यर्थ । अतस्ते ब्रह्मादयोऽपि ईशाद्भगलिंगसंघातरूपात्परं कारण स्वल्पमात्रं न शंसन्ति असंधिरार्ष फलितमाह—**तमिति** ॥ २९ ॥ शिष्टैरभ्यर्चनीयत्वादपि लिंगस्य कारणत्वमित्याह—**हेतुभिरिति** ३० उक्तमर्थं निगमयति—**नेति** । ननु भगलिंगवत् पद्मचक्रवज्राणा शरीरावयवत्वाभावात्तदंकितत्वं प्रजासु असत्त्वमेव कथं निषिध्यते इति चेत् शृणु । एवं हि पुराणान्तरे उपाख्यायते कामं दग्ध्वा दिगंबरे भवानीशे भिक्षामटति सति कदाचिदृषिपत्न्या पतत्वेतत्तव लिंगमप्रच्छादितमिति उक्ते शिवस्य लिंगं पतितं तेन च त्रैलोक्ये व्याकुलीकृते सति चिरकामप्रतप्तया देव्या योनिरूपं गृहीत्वा तल्लिङ्गं रुद्धमिति तेन तयोरपि पद्मादिवत्पृथग्भूतत्वाविशेषात्तदंकिता प्रजा माहेश्वर्येव अयं च भगलिङ्गयो पृथग्भावः शूलं शूलाद्विनिष्कृष्येतिवददोष अन्यथा निर्लिङ्गत्वमन्यजन्यत्वं वा प्रजाया आपद्येतेति दिक् ॥ ३३ ॥

पुंलिगं सर्वमीशानं स्त्रीलिंगं विद्धि चाप्युमाम्
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत्
तस्माद्वरमहं कांक्षे निधनं वाऽपि कौशिक ।
गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन ॥ ३६
काममेष वरो मेऽस्तु शापो वाऽथ महेश्वरात्
न चान्यां देवतां कांक्षे सर्वकामफलामपि ३७
एवमुक्त्वा तु देवेन्द्रं दुःखादाकुलितेन्द्रियः ।
न प्रसीदति मे देवः किमेतदिति चिन्तयन् ॥
अथापश्यं क्षणेनैव तमेवैरावतं पुनः ।
हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालरजतप्रभम् ॥ ३९
वृषरूपधरं साक्षात् क्षीरोदमिव सागरम् ।
कृष्णपुच्छं महाकायं मधुपिङ्गललोचनम् ४०
वज्रसारमयैः शृंगैर्निष्टप्तकनकप्रभैः ।
सुतीक्ष्णैर्मृदुरक्ताग्रैरुत्किरन्तमिवावनिम् ॥४१
जाम्बूनदेन दाम्ना च सर्वतः समलंकृतम् ।
सुवक्त्रखुरनासं च सुकर्णं सुकटीतटम् ॥ ४२
सुपार्श्वं विपुलस्कन्धं सुरूपं चारुदर्शनम् ।
ककुदं तस्य चाभाति स्कंधमापूर्य धिष्ठितम् ॥
तुषारगिरिकूटाभं सिताभ्रशिखरोपमम् ।
तमास्थितश्च भगवान् देवदेवः सहोमया ४४
अशोभत महादेवः पौर्णमास्यामिवोडुराट् ।
तस्य तेजोभवो वन्हिः समेघः स्तनयित्नुमान्
सहस्रमिव सूर्याणां सर्वमापूर्य धिष्ठितः ।
ईश्वरः सुमहातेजाः संवर्तक इवानलः ॥ ४६
युगान्ते सर्वभूतानां दिधक्षुरिव चोद्यतः ।
तेजसा तु तदा व्याप्तं दुर्निरीक्ष्यं समन्ततः ॥
पुनरुद्विग्नहृदयः किमेतदिति चिन्तयम् ।
मुहूर्तमिव तत्तेजो व्याप्य सर्वा दिशो दश ४८
प्रशान्तं दिक्षु सर्वासु देवदेवस्य मायया ।
अथापश्यं स्थितं स्थाणुं भगवन्तं महेश्वरम् ॥४९
नीलकण्ठं महात्मानमसक्तं तेजसां निधिम् ।
अष्टादशभुजं स्थाणुं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ५०
शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।
शुक्लध्वजमनाधृष्यं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ५१
गायद्भिर्नृत्यमानैश्च वादयद्भिश्च सर्वशः ।
वृतं पार्श्वचरैर्दिव्यैरात्मतुल्यपराक्रमैः ॥ ५२
बालेन्दुमुकुटं पाण्डुं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतं त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥
अशोभतास्य देवस्य माला गात्रे सितप्रभे ।
जातरूपमयैः पद्मैर्ग्रथिता रत्नभूषिता ॥ ५४
मूर्तिमन्ति तथाऽस्त्राणि सर्वतेजोमयानि च ।
मया दृष्टानि गोविन्द भवस्यामिततेजसः ॥
इन्द्रायुधसवर्णाभं धनु तस्य महात्मनः ।
पिनाकमिति विख्यातमभवत्पन्नगो महान् ॥
सप्तशीर्षो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो विषोल्बणः ।
ज्यावेष्टितमहाग्रीवः स्थितः पुरुषविग्रहः ५७
शरश्च सूर्यसंकाशः कालानलसमद्युतिः ।
एतदस्त्रं महाघोरं दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ ५८
अद्वितीयमनिर्देश्यं सर्वभूतभयावहम् ।
सस्फुलिङ्गं महाकायं विसृजन्तमिवानलम् ॥
एकपादं महादंष्ट्रं सहस्रशिरसोदरम् ।
सहस्रभुजजिह्वाक्षमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ ६०
ब्राह्मान्नारायणाच्चैन्द्रादाग्नेयादपि वारुणात् ।
यद्विशिष्टं महाबाहो सर्वशस्त्रविघातनम् ॥६१
येन तत्त्रिपुरं दग्ध्वा क्षणाद्भस्मीकृतं पुरा ।
शरेणैकेन गोविन्द महादेवेन लीलया ॥ ६२
निर्दहेत च यत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
महेश्वरभुजोत्सृष्टं निमेषार्धान्न संशयः ॥ ६३
नावध्यो यस्य लोकेऽस्मिन् ब्रह्मविष्णुसुरेष्वपि
तदहं दृष्टवांस्तत्र आश्चर्यमिदमुत्तमम् ॥ ६४
गुह्यमस्त्रवरं नान्यत्तत्तुल्यमधिकं हि वा ।
यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः ॥
दारयेद्यां महीं कृत्स्नां शोषयेद्वा महोदधिम् ।
संहरेद्वा जगत्कृत्स्नं विसृष्टं शूलपाणिना ६६
यौवनाश्वो हतो येन मान्धाता सबलः पुरा
चक्रवर्ती महातेजास्त्रिलोकविजयी नृपः ॥ ६७
महाबलो महावीर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
करस्थेनैव गोविन्द लवणस्येह रक्षसः ॥ ६८
तच्छूलमतितीक्ष्णाग्रं सुभीमं लोमहर्षणम् ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा तर्जमानमिव स्थितम्
विधूमं सार्चिषं कृष्णं कालसूर्यमिवोदितम् ।
सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम् ७०
दृष्टवानस्मि गोविन्द तदस्त्रं रुद्रसन्निधौ ।
परशुस्तीक्ष्णधारश्च दत्तो रामस्य यः पुरा ७१

---

समेघ इति मेघादीन् व्याप्य स्थित इत्यर्थ ॥४५॥ भूताना-मिति कर्माणि षष्ठी ॥४६॥ शुक्लध्वजं शुक्लवृषमध्वजम् ॥५१॥ अस्त्राणि अष्टादशभुजस्थानि तावन्त्येवायुधानि तेषा मध्ये धनु शरौ शूलसर्पौ परशुश्च कण्ठोक्ता. । खट्वांगखड्गचर्म-पाशांकुशडमरुगदाशक्तिभिन्दिपालतोमरमुसलमुद्गरादीनि यथासंभवं ग्रन्थान्तरतोऽवगम्यानि ॥ ५५ ॥

महादेवेन तुष्टेन क्षत्रियाणां क्षयंकरः ।
कार्तवीर्यो हतो येन चक्रवर्ती महामृधे ॥ ७२
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी येन निःक्षत्रिया कृता ।
जामदग्न्येन गोविन्द रामेणाक्लिष्टकर्मणा ७३
दीप्तधारः सुरौद्रास्यः सर्पकण्ठाग्रधिष्ठितः ।
अभवच्छूलिनोऽभ्याशे दीप्तवन्हिशतोपमः ॥
असंख्येयानि चास्त्राणि
तस्य दिव्यानि धीमतः ।
प्राधान्यतो मयैतानि
कीर्तितानि तवानघ ॥ ७५
सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
दिव्यं विमानमास्थाय हंसयुक्तं मनोजवम् ॥
वामपार्श्वगतश्चापि तथा नारायणः स्थितः ।
वैनतेयं समारुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७७
स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः समीपतः
शक्तिघण्टे समादाय द्वितीय इव पावकः ॥
पुरस्ताच्चैव देवस्य नन्दिं पश्याम्यवस्थितम् ।
शूलं विष्टभ्य तिष्ठन्तं द्वितीयमिव शङ्करम् ७९
स्वायंभुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा ।
शक्राद्या देवताश्चैव सर्वे एव समभ्ययुः ॥ ८०
सर्वभूतगणाश्चैव मातरो विविधाः स्थिताः ।
तेऽभिवाद्य महात्मानं परिवार्य समंततः ८१
अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं सुरास्तदा ।
ब्रह्मा भवं तदाऽस्तौषीद्रथन्तरमुदीरयन् ॥ ८२
ज्येष्ठसाम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा ८३
गृणन्ब्रह्म परं शक्रः शतरुद्रियमुत्तमम् ।
ब्रह्मा नारायणश्चैव देवराजश्च कौशिकः॥ ८४
अशोभन्त महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
तेषां मध्यगतो देवो रराज भगवाञ्छिवः ८५
शरदभ्रविनिर्मुक्तः परिधिस्थ इवांशुमान् ।
अयुतानि च चन्द्रार्कानपश्यं दिवि केशव ८६
ततोऽहमस्तुवं देवं विश्वस्य जगतः पतिम् ।

उपमन्युरुवाच ।

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः ८७
शक्ररूपाय शक्राय शक्रवेषधराय च ।
नमस्ते वज्रहस्ताय पिङ्गलायारुणाय च ॥ ८८
पिनाकपाणये नित्यं शङ्खशूलधराय च ।
नमस्ते कृष्णवासाय कृष्णकुञ्चितमूर्धजे ॥ ८९
कृष्णाजिनोत्तरीयाय कृष्णाष्टमिरताय च ।
शुक्लवर्णाय शुक्लाय शुक्लाम्बरधराय च ॥ ९०
शुक्लभस्मावलिप्ताय शुक्लकर्मरताय च ।
नमोऽस्तु रक्तवर्णाय रक्ताम्बरधराय च ॥ ९१
रक्तध्वजपताकाय रक्तस्रगनुलेपिने ।
नमोऽस्तु पीतवर्णाय पीताम्बरधराय च ॥ ९२
नमोऽस्तूच्छ्रितच्छत्राय किरीटवरधारिणे ।
अर्धहारार्धकेयूर अर्धकुण्डलकर्णिने ॥ ९३
नमः पवनवेगाय नमो देवाय वै नमः ।
सुरेन्द्राय मुनीन्द्राय महेन्द्राय नमोऽस्तु ते ९४
नमः पद्मार्धमालाय उत्पलैर्मिश्रिताय च ।
अर्धचन्दनलिप्ताय अर्धस्रगनुलेपिने ॥ ९५
नम आदित्यवक्त्राय आदित्यनयनाय च ।
नम आदित्यवर्णाय आदित्यप्रतिमाय च ९६
नमः सोमाय सौम्याय सौम्यवक्त्रधराय च
सौम्यरूपाय मुख्याय सौम्यदंष्ट्राविभूषिणे ॥
नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्धपाण्डवे ।
नारीनरशरीराय स्त्रीपुंसाय नमोऽस्तु ते ॥ ९८
नमो वृषभवाहाय गजेन्द्रगमनाय च ।
दुर्गमाय नमस्तुभ्यमगम्यागमनाय च ॥ ९९
नमोऽस्तु गणगीताय गणवृन्दरताय च ।
गणानुयातमार्गाय गणनित्यव्रताय च ॥ ३००
नमः श्वेताभ्रवर्णाय संध्यारागप्रभाय च ।
अनुद्दिष्टाभिधानाय स्वरूपाय नमोऽस्तु ते ॥ १
नमो रक्ताग्रवासाय रक्तसूत्रधराय च ।
रक्तमालाविचित्राय रक्ताम्बरधराय च ॥ २
मणिभूषितमूर्धाय नमश्चन्द्रार्धभूषिणे ।
विचित्रमणिमूर्धाय कुसुमाष्टधराय च ॥ ३
नमोऽग्निमुखनेत्राय सहस्रशशिलोचने ।
अग्निरूपाय कान्ताय नमोऽस्तु गहनाय च ॥ ४
खचराय नमस्तुभ्यं गोचराभिरताय च ।
भूचराय भुवनाय अनन्ताय शिवाय च ॥ ५
नमो दिग्वाससे नित्यमधिवाससुवाससे ।
नमो जगन्निवासाय प्रतिपत्तिसुखाय च ६
नित्यमुद्बद्धमुकुटे महाकेयूरधारिणे ।
सर्पकंठोपहाराय विचित्राभरणाय च ७
नमस्त्रिनेत्रनेत्राय सहस्रशतलोचने ।
स्त्रीपुंसाय नपुंसाय नमः सांख्याय योगिने ८

रथन्तरज्येष्ठे सामनी ॥ ८२ ॥ शुक्लं कर्म हिंसारहितो ध्यानादिधर्मः ॥ ९१ ॥ मिश्रिताय मिश्रितमालाय ॥ ९५ ॥ अधिवासेन पुष्पादिवासनावासिततया सुवाससे प्रतिपत्तिर्ज्ञानं सुखं च तदुभयात्मने ॥ ६ ॥ मुकुटे मुकुटाय ॥ ७ ॥ त्रीणि नेत्राणीव नेत्राणि लोकयात्रानिर्वाहकानि अग्निचन्द्रसूर्याख्यानि नेत्राणि यस्य तस्मै त्रिनेत्रनेत्राय लोचने लोचनाय ८

शंयोरभिस्रवन्ताय अथर्वाय नमो नमः ।
नमः सर्वार्तिनाशाय नमः शोकहराय च ९
नमो मेघनिनादाय बहुमायाधराय च ।
बीजक्षेत्राभिपालाय स्रष्टाराय नमो नमः १०
नमः सुरासुरेशाय विश्वेशाय नमो नमः ।
नमः पवनवेगाय नमः पवनरूपिणे ११
नमः काञ्चनमालाय गिरिमालाय वै नमः ।
नमः सुरारिमालाय चण्डवेगाय वै नमः १२
ब्रह्मशिरोपहर्ताय महिषघ्नाय वै नमः ।
नमः स्त्रीरूपधाराय यज्ञविध्वंसनाय च १३
नमस्त्रिपुरहर्ताय यज्ञविध्वंसनाय च ।
नमः कामाङ्गनाशाय कालदण्डधराय च १४
नमस्कन्दविशाखाय ब्रह्मदण्डाय वै नमः ।
नमो भवाय शर्वाय विश्वरूपाय वै नमः १५
ईशानाय भवघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ।
नमो विश्वाय मायाय चिंत्याचिंत्याय वै नमः
त्वं नो गतिश्च श्रेष्ठश्च त्वमेव हृदयं तथा ।
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः१७
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यते ।
ऋषभस्त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः
गृहस्थस्त्वमाश्रमिणामीश्वराणां महेश्वरः ।
कुबेरः सर्वयक्षाणां क्रतूनां विष्णुरुच्यते १९
पर्वतानां भवान्मेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः ।
वसिष्ठस्त्वमृषीणां च ग्रहाणां सूर्य उच्यते२०
आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः ।
ग्राम्याणां गोवृषश्चासि भवाँल्लोकप्रपूजितः
आदित्यानां भवान्विष्णुर्वसूनां चैव पावकः ।
पक्षिणां वैनतेयस्त्वमनन्तो भुजगेषु च ॥ २२
सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम् ।
सनत्कुमारो योगानां सांख्यानां कपिलो ह्यसि
शक्रोऽसि मरुतां देव पितॄणां हव्यवाडसि ।
ब्रह्मलोकश्च लोकानां गतीनां मोक्ष उच्यसे२४
क्षीरोदः सागराणां च शैलानां हिमवान्गिरिः
वर्णानां ब्राह्मणश्चासि विप्राणां दीक्षितो द्विजः
आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्ता काल एव च
यच्चान्यदपि लोके वै सर्वतेजोधिकं स्मृतम्॥
तत्सर्वं भगवानेव इति मे निश्चिता मतिः ।
नमस्ते भगवन् देव नमस्ते भक्तवत्सल ॥ २७
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसंभव ।
प्रसीद मम भक्तस्य दीनस्य कृपणस्य च ॥२८
अनैश्वर्येण युक्तस्य गतिर्भव सनातन ।
यच्चापराधं कृतवानज्ञात्वा परमेश्वर ॥ २९
मद्भक्त इति देवेश तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।
मोहितश्चास्मि देवेश त्वया रूपविपर्ययात् ३०
नार्घ्यं ते न मया दत्त पाद्यं चापि महेश्वर ।
एवं स्तुत्वाऽहमीशानं पाद्यमर्घ्यं च भक्तितः३१
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयम्
ततः शीतांबुसंयुक्ता दिव्यगन्धसमन्विता ३२
पुष्पवृष्टिः शुभा तात पपात मम मूर्धनि ।
दुन्दुभिश्च तदा दिव्यस्ताडितो देवकिङ्करैः ।
ववौ च मारुतः पुण्यः शुचिगन्धः सुखावहः ॥
ततः प्रीतो महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ।
अब्रवीत्त्रिदशांस्तत्र हर्षयन्निव मां तदा ॥ ३४
पश्यध्वं त्रिदशाः सर्वे उपमन्योर्महात्मनः ।
मयि भक्तिं परां नित्यमेकभावादवस्थिताम्३५
एवमुक्तास्तदा कृष्ण सुरास्ते शूलपाणिना ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥
भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्पते ।
लभतां सर्वकामेभ्यः फलं त्वत्तो द्विजोत्तमः॥
एवमुक्तस्ततः शर्वः सुरैर्ब्रह्मादिभिस्तथा ।
आह मां भगवानीशः प्रहसन्निव शङ्करः ॥३८

भगवानुवाच ।

वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि पश्य मां मुनिपुङ्गव
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि
अनया चैव भक्त्या ते
अत्यर्थं प्रीतिमानहम् ।
तस्मात्सर्वान् ददाम्यद्य
कामांस्तव यथेप्सितान् ॥ ४०
एवमुक्तस्य चैवाथ महादेवेन धीमता ।
हर्षादश्रूण्यवर्तन्त रोमहर्षस्त्वजायत ॥ ४१
अब्रुवं च तदा देवं हर्षगद्गदया गिरा ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥

---

शंयोर्यज्ञमात्रुप्यकर्त्र्या देवताया अभिस्रवन्ताय प्रमादरूपाय ॥ ९ ॥ स्रष्टाराय औणादिक. सृजेस्तारन् स्रष्ट्रे इत्यर्थ. ॥ १० ॥ गिरिमालाय गिरौ क्रीडापराय ॥ १२ ॥ हर्ताय हर्त्रे ॥ १४ ॥ मायाय मायाविने ॥ १६ ॥ गति प्राप्यं स्थान श्रेष्ठ पूज्यतम ब्रह्मादिस्तव विभूतिर्विशेषाभिव्यक्तिस्थानम ॥ १७ ॥ कामेभ्य कामान् काम्यमानान् अर्थान् ॥ ३७ ॥

अद्य जातो ह्यहं देव सफलं जन्म चाद्य मे ।
सुरासुरगुरुर्देवो यस्तिष्ठति ममाग्रतः ॥ ४३
यं न पश्यन्ति चैवाद्धा देवा ह्यमितविक्रमम् ।
तमहं दृष्टवान् देवं कोऽन्यो धन्यतरो मया ॥
एवं ध्यायन्ति विद्वांसः परं तत्त्वं सनातनम् ।
तद्विशेषमिति ख्यातं यदजं ज्ञानमक्षरम् ॥४५
स एष भगवान् देवः सर्वसत्त्वादिरव्ययः ।
सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषः परः ॥ ४६
योऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद्ब्रह्माणं लोकसंभवम् ।
वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः॥४७
युगान्ते चैव संप्राप्ते रुद्रमीशोऽसृजत्प्रभुः ।
स रुद्रः संहरन् कृत्स्नं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥४८
कालो भूत्वा महातेजाः संवर्तक इवानलः ।
युगान्ते सर्वभूतानि ग्रसन्निव व्यवस्थितः ४९
एष देवो महादेवो जगत्सृष्ट्वा चराचरम् ।
कल्पान्ते चैव सर्वेषां स्मृतिमाक्षिप्य तिष्ठति
सर्वगः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः ।
आस्ते सर्वगतो नित्यमदृश्यः सर्वदैवतैः ॥५१
यदि देयो वरो मह्यं यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।
भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥ ५२
अतीतानागतं चैव वर्तमानं च यद्विभो ।
जानीयामिति मे बुद्धिः प्रसादात्सुरसत्तम॥५३
क्षीरोदनं च भुञ्जीयामक्षयं सह बान्धवैः ।
आश्रमे च सदाऽस्माकं सान्निध्यं परमस्तु ते
एवमुक्तः स मां प्राह भगवाँल्लोकपूजितः ।
महेश्वरो महातेजाश्चराचरगुरुः शिवः ॥ ५५

श्रीभगवानुवाच ।

अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः ।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥
ऋषीणामभिगम्यश्च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ।
शीलवान् गुणसंपन्नः सर्वज्ञः प्रियदर्शनः ॥५७
अक्षयं यौवनं तेऽस्तु तेजश्चैवानलोपमम् ।
क्षीरोदः सागरश्चैव यत्र यत्रेच्छसि प्रियम् ५८
तत्र ते भविता कामं सान्निध्यं पयसो निधेः ॥
क्षीरोदनं च भुंक्ष्व त्वममृतेन समन्वितम् ५९
बंधुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि ।
अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा ६०
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ।
सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम
तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि
स्मृतस्त्वया पुनर्विप्र करिष्यामि च दर्शनम् ॥
एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः ।
ईशानः स वरान् दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६३
एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना ।
तदवाप्तं च मे सर्वं यदुक्तं तेन धीमता ॥ ६४
प्रत्यक्षं चैव ते कृष्ण पश्य सिद्धान्व्यवस्थितान्
ऋषीन् विद्याधरान् यक्षान् गंधर्वाप्सरसस्तथा
पश्य वृक्षलतागुल्मान् सर्वपुष्पफलप्रदान् ।
सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान्सुखपत्रान् सुगन्धिनः ॥ ६६
सर्वमेतन्महाबाहो दिव्यभावसमन्वितम् ।
प्रसादाद्देवदेवस्य ईश्वरस्य महात्मनः॥ ६७

वासुदेव उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यक्षमिव दर्शनम्
विस्मयं परमं गत्वा अब्रुवं तं महामुनिम्॥६८
धन्यस्त्वमासि विप्रेन्द्र
कस्त्वदन्योऽस्ति पुण्यकृत् ।
यस्य देवाधिदेवस्ते
सान्निध्यं कुरुतेऽऽश्रमे ॥ ६९
अपि तावन्ममाप्येवं दद्यात्स भगवाञ्छिवः ।
दर्शनं मुनिशार्दूल प्रसादं चापि शंकरः ॥ ७०

उपमन्युरुवाच ।

द्रक्ष्यसे पुंडरीकाक्ष महादेवं न संशयः ।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयाऽनघ ॥ ७१
चक्षुषा चैव दिव्येन पश्याम्यमितविक्रमम् ।
षष्ठे मासि महादेवं द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम ॥ ७२
षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात्
सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७३
अतीतानागतं चैव वर्तमानं च नित्यशः ।
विदितं मे महाबाहो प्रसादात्तस्य धीमतः७४
एतान्सहस्रशश्चान्यान्समनुध्यातवान्हरः ।
कस्मात्प्रसादं भगवान्न कुर्यात्तव माधव ॥ ७५

---

एवं पुरोवर्तिमूर्तिरूपं यत् अजं अनाविर्भूतं अक्षरं व्यापकं ज्ञानं तदेव इति एवंप्रकारेण ख्यातं प्रथां गतं विशेषं विशिष्टं देवतान्तरापेक्षया **सनातनमिति** मूर्तेरपि नित्यत्वं व्यवहारापेक्षया प्रोक्तम् ॥ ४५ ॥ षोडश वरान् सपत्नीकात् महेश्वरात् तत्रापि अष्टौ महेश्वरात् परिशेषादष्टौ पत्नीत इति षोडशेत्यर्थः । यद्वाऽष्टौ पत्नीतः प्रार्थिता अष्टौ तया स्वयं दत्ता इति षोडश अष्टौ चेत्यर्थः ॥ ७२ ॥ एतान् इहस्थान् मुनीन् समनुध्यातवान् कृपया आलोचितवान् एतेष्वपि दयावांस्त्वयि आत्मनि दया कथं न करिष्यतीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

त्वादृशेन हि देवानां श्लाघनीयः समागमः।
ब्रह्मण्येनानृशंसेन श्रद्दधानेन चाच्युत॥ ७६

जप्यं तु त प्रदास्यामि येन द्रक्ष्यसि शंकरम्।

श्रीकृष्ण उवाच।

अब्रुवं तमहं ब्रह्मन् त्वत्प्रसादान्महामुने ७७
द्रक्ष्ये दितिजसंघानां मर्दनं त्रिदशेश्वरम्।
एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रिता कथाम् ७८

दिनान्यष्टौ ततो जग्मुर्मुहूर्तमिव भारत।
दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि॥

दंडी मुंडी कुशी चीरी घृताक्तो मेखली कृतः
मासमेकं फलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः८०

तृतीयं च चतुर्थं च पंचमं चानिलाशनः।
एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः॥ ८१

तेजः सूर्यसहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत।
तस्य मध्यगतं चापि तेजसः पाण्डुनन्दन॥८२

इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गं विद्युन्मालागवाक्षकम्।
नीलशैलचयप्रख्यं बलाकाभूषिताम्बरम्॥ ८३

तत्र स्थितश्च भगवान् देव्या सह महाद्युतिः।
तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भार्यया
रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः।
सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा॥८५

संहृष्टरोमा कौन्तेय विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
अपश्यं देवसंघानां गतिमार्तिहरं हरम्॥ ८६

किरीटिनं गदिनं शूलपाणिं
व्याघ्राजिनं जटिलं दण्डपाणिम्।
पिनाकिनं वज्रिणं तीक्ष्णदंष्ट्रं
शुभाङ्गदं व्यालयज्ञोपवीतम्॥ ८७
दिव्यां मालामुरसाऽनेकवर्णां
समुद्वहन्तं गुल्फदेशावलम्बाम्।
चन्द्रं यथा परिविष्टं ससन्ध्यं
वर्षात्यये तद्वदपश्यमेनम्॥ ८८
प्रमथानां गणैश्चैव
समन्तात्परिवारितम्।
शरदीव सुदुष्प्रेक्ष्यं
परिविष्टं दिवाकरम्॥ ८९
एकादशशतान्येवं
रुद्राणां वृषवाहनम्
अस्तुवं नियतात्मानं
कर्मभिः शुभकर्मिणम्॥ ९०
आदित्या वसवः साध्या
विश्वेदेवास्तथाऽश्विनौ।
विश्वाभिस्तुतिभिर्देवं
विश्वदेवं समस्तुवन्॥ ९१

शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ।
ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके॥९२
योगीश्वराः सुबहवो योगदं पितरं गुरुम्।
ब्रह्मर्षयश्चससुतास्तथा देवर्षयश्च वै॥ ९३

पृथिवी चान्तरिक्षं च
नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
मासार्धमासा ऋतवो
रात्रिः संवत्सराः क्षणाः॥ ९४

मुहूर्ताश्च निमेषाश्च तथैव युगपर्ययाः।
दिव्या राजन्नमस्यन्ति विद्याः सत्त्वविदस्तथा

सनत्कुमारो देवाश्च इतिहासास्तथैव च।
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥

मनवः सप्त सोमश्च अथर्वा सबृहस्पतिः।
भृगुर्दक्षः कश्यपश्च वसिष्ठः काश्य एव च९७

छन्दांसि दीक्षा यज्ञाश्च
दक्षिणाः पावको हविः।
यज्ञोपगानि द्रव्याणि
मूर्तिमन्ति युधिष्ठिर॥ ९८

प्रजानां पालकाः सर्वे सरितः पन्नगा नगाः।
देवानां मातरः सर्वा देवपत्न्यः सकन्यकाः॥

सहस्राणि मुनीनां च अयुतान्यर्बुदानि च।
नमस्यन्ति प्रभुं शान्तं पर्वताः सागरा दिशः

गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतवादित्रकोविदाः।
दिव्यतालेषु गायन्तः स्तुवन्ति भवमद्भुतम् १

---

तेजो वर्णयति-**इन्द्रेति**। यस्य तेजसो मध्येऽनेकानि इंद्रधनूंषि विद्युतो नीलमेघा श्वेतमेघाश्च पर्वतबलाकाकारा भान्ति तादृशं चित्ररूपं तेज इत्यर्थः॥ ८३॥ **रराजेति**। नीले तेजसि सोमसूर्यप्रभौ भवानीशंकरौ प्रतिभात इत्यर्थः॥८४॥

परिविष्टं परिवेषवन्तम्॥ ८८॥ विश्वाभि ब्रह्मपरत्वेन स्तुतिरेव कृत्स्नस्तुति, इतरा तु एकदेशस्तुतिरित्यर्थं विश्वदेवं सर्वेश्वरम्॥ ९१॥ पृथिव्यादयोऽत्र मूर्तिमन्तो ज्ञेयाः॥ ९४॥

विद्याधरा दानवाश्च गुह्यका राक्षसास्तथा ।
सर्वाणि चैव भूतानि स्थावराणि चराणि च
नमस्यन्ति महाराज वाङ्मनःकर्मभिर्विभुम् २
पुरस्ताद्धिष्ठितः शर्वो ममासीत्त्रिदशेश्वरः ।
पुरस्ताद्धिष्ठितं दृष्ट्वा ममेशानं च भारत ॥ ३
सप्रजापतिशक्रान्तं जगन्मामभ्युदैक्षत ।
ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा ॥ ४
ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च ।
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः ५

त्वत्समो नास्ति मे कश्चि-
त्त्रिषु लोकेषु वै प्रियः ।
शिरसा वन्दिते देवे
देवी प्रीता ह्युमा तदा ।
ततोऽहमब्रुवं स्थाणुं
स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ॥ ६

कृष्ण उवाच ।

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः ॥ ७
त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च
वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ।
धाता त्वष्टा विधाता च
त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ॥ ८
त्वत्तो जातानि भूतानि
स्थावराणि चराणि च ।
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं
त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ९
यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं
ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः ।
ये देवसंस्थास्तवदेवताश्च
तस्मात्परं त्वामृषयो वदन्ति ॥ १०
वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः
यज्ञोपगं च यत्किञ्चिद्भगवांस्तदसंशयम् ११

इष्टं दत्तमधीतं च
व्रतानि नियमाश्च ये ।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः
सिद्धिश्चैव तदर्पणी ॥ १२
कामः क्रोधो भयं लोभो
मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः ।
आधयो व्याधयश्चैव
भगवंस्तनवस्तव ॥ १३
कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम् ।
मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः ॥
अव्यक्तः पावनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः
आदिर्गणानां सर्वेषां भवान्वै जीविताश्रयः ॥

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा
विश्वः शम्भुः स्वयंभुवः ।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च
संवित्ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ॥ १६

---

शाश्वतोऽपरिणामी सन् सर्वयोनि ब्रह्मणो वेदस्याधिप स्तव्य· तप चित्तेन्द्रियाणामैकाग्र्यम् ॥ ७ ॥ धाता ईश्वर त्वष्टा रूपनिर्माता विधाता धर्माधर्मरूपं कर्म ॥ ८ ॥ स्थावराणि चिरकालस्थायीनि महदादीनि चराणि स्थूलभूतादीनि चराचरं लोकप्रसिद्धम् ॥ ९ ॥ वायवः पञ्चप्राणा सप्ताग्नय· गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयसभ्यावसथ्या· पञ्च श्रौता स्मार्त्त· षष्ठ· लौकिक· सप्तम । यद्वा सप्तवायव आवहाद्या अंतरिक्षे ये भुवआदीन् सत्यान्तान् लोकान् धारयंति। अग्नय आदित्यादिज्योतींषि एते· सर्वेऽन्ये च ये देवसंस्था· देवे सूत्रात्मनि संस्था समाप्तिर्येषा ते तथा। स्तवदेवता स्तुतियोग्या देवा· तस्मात् एतेषा समुदायात् परं वाचामगोचरं रूपादिहीनं **त्वां ऋषयो वदन्ति** ॥ १० ॥ स्रुक्स्रुवसमित्कुशदेशकालादिकं यज्ञोपगं यज्ञोपयोगि ॥ ११ ॥ सिद्धिर्योगपरिपाक· तदर्पणी तस्य त्वत्स्वरूपस्य प्रापिका ॥१२॥ कृति क्रिया विकारस्तत्फलभूतो हर्षादि, प्रणयस्तदभाव प्रधीयतेऽस्मिन्सर्वमिति प्रधानं वासनावीजं अज्ञान तदेवाव्यय मनसो योनिश्च। अन्न मय ८ सौम्य मन इति श्रुतेरन्नस्यापि मनोयोनित्वं उपष्टभकत्वमात्रेण न तु मुख्यमिति वक्तुं-**परमेति** योनिविशेषणं प्रभाव ऐश्वर्य शाश्वत अकर्मज ॥ १४ ॥ हिरण्मयः चिज्ज्योतीरूप· गण्यते संख्यायंत इति गणास्तत्त्वानि अव्यक्तादीनि तेषामादि जीविताश्रय· नदीसमुद्रवज्जीवस्य प्राप्यं स्थानम्॥ १५ ॥ **महानिति** महदाद्यैश्चतुर्दशभि· पर्यायशब्दैः वेदे महानात्मा भवानेव विभाव्यते विचार्यते वेदार्थविद्भि एतै शब्दैस्त्वा वेदाद्बुध्वा मोहं संसारमूलं अज्ञान नियच्छति नितरा नाशयति ॥ १६ ॥

पर्यायवाचकैः शब्दै-
मैहानात्मा विभाव्यते ।
त्वां बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदा-
त्प्रमोहं विनियच्छति । १७
हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः ।
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुखः ॥
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु १९
त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः ।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः
प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये ।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च
सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः ॥ २१
यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं
प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम् ।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति २२
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः २३
एवमुक्ते मया पार्थ भवे चार्तिविनाशने ।
चराचरं जगत्सर्वं सिंहनादं तदाऽकरोत् २४
तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च
नागाः पिशाचाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे
महर्षयश्चैव तदा प्रणेमुः ॥ २५
मम मूर्ध्नि च दिव्यानां
कुसुमानां सुगन्धिनाम् ।
राशयो निपतन्ति स्म
वायुश्च सुसुखो ववौ ॥ २६
निरीक्ष्य भगवान् देवीं
ह्युमां मां च जगद्धितः ।
शतक्रतुं चाभिवीक्ष्य
स्वयं मामाह शङ्करः ॥ २७
विद्मः कृष्ण परां भक्ति-
मस्मासु तव शत्रुहन् ।
क्रियतामात्मनः श्रेयः
प्रीतिर्हि त्वयि मे परा ॥ २८
वृणीष्वाष्टौ वरान् कृष्ण
दाताऽस्मि तव सत्तम ।
ब्रूहि यादवशार्दूल
यानिच्छसि सुदुर्लभान् ॥ ४२९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

हृदयं हृदयस्थ क्षेत्रं महाभूतादि धृत्यंतं तज्ज्ञस्तत्प्रकाशकः ऋषिभिर्मंत्रैः स्तुत स्तुतिमेवाह-**सर्वत इति** ॥ १८ ॥ तिग्मांशो कर्मसु फलं स्वर्गसुखं च त्वमसि ॥१९॥ तिग्मांशोः प्रभार्चिश्च अणिमा दुर्लक्ष्यसन्मात्रम् १ महिमा त्रिविधपरिच्छेदशून्यं सत्तामात्रं अत्र प्रकृत्यर्थौ दुर्लक्ष्यत्वादि प्रत्ययार्थः. **सत्तेति** विवेक ॥२०॥ सत्यसत्वाः सत्यसंकल्पाः २१ **य इति**। वेदयते जानाति ज्ञात्वा शिष्यान् ज्ञापयतीति वा विग्रहं विशिष्टानुभवरूपं निष्कलज्ञप्तिमात्रमित्यर्थः ॥२२॥ विदित्वा उपास्य सप्तसूक्ष्माणि महदहंकारपञ्चतन्मात्राणि षडंगं 'सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः अनंतशक्तिश्च विभोर्विभुज्ञा. षडाहुरंगानि महेश्वरस्य' इति अंगषट्कमुक्तं, प्रधान चित्तसत्त्व तस्य आत्माभिमतत्वेन नित्यं गृहीतस्य पृथक्त्वेनाज्ञातस्य ज्ञापनं विधिः. सत्त्वस्य पुरुषात् भिन्नत्वेन ज्ञानं तदस्मात्तादृशो योगो वृत्तिनिरोधस्तत्रस्थस्तन्मात्रनिष्ठस्त्वा निष्कलं विशते आरोहक्रमेण योगी भूम्यादीनि महदंतानि तत्वानि जित्वा जयसाधनं धीसत्त्वमप्यात्मनः पृथक्त्वेन ज्ञात्वा प्रत्यक् तत्वमात्रनिष्ठो निलीने सत्त्वे परं ब्रह्म संपद्यत इत्यर्थः ॥२३॥ मेघवाहन इंद्ररूपी महादेवः तस्य माहात्म्यप्रतिपादकं पर्व मेघवाहनपर्व तत्राद्यमध्यायः । इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्याय. ॥ १४ ॥

## १५

कृष्ण उवाच ।

मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजःसन्निचये ततः ।
परमं हर्षमागत्य भगवन्तमथाब्रुवम् ॥ १

धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं
यशस्तथाऽग्र्यं परमं बलं च ।
योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं
वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥ २

एवमस्त्विति तद्वाक्यं मयोक्तः प्राह शङ्करः ।
ततो मां जगतो माता धारिणी सर्वपावनी ३
उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः
दत्तो भगवता पुत्रः साम्बो नाम तवानघ ॥ ४
मत्तोप्यष्टौ वरानिष्टान् गृहाण त्वं ददामि ते
प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पाण्डुनन्दन ५

द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसाद
शतं सुतानां परमं च भोगम् ।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं
शमप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम् ॥ ६

उमोवाच ।

एवं भविष्यत्यमरप्रभाव
नाहं मृषा जातु वदे कदाचित ।
भार्यासहस्राणि च षोडशैव
तासु प्रियत्वं च तथाऽक्षयं च ॥ ७
प्रीतिं चाग्र्यां बान्धवानां सकाशा-
द्ददामि तेऽहं वपुषः काम्यतां च ।
भोक्ष्यन्ते वै सप्तति वै शतानि
गृहे तुभ्यमतिथीनां च नित्यम् ॥ ८

वासुदेव उवाच

एवं दत्वा वरान् देवो
मम देवी च भारत ।
अन्तर्हितः क्षणे तस्मिन्
सगणो भीमपूर्वज ॥ ९

एतदत्यद्भुतं पूर्वं ब्राह्मणायातितेजसे ।
उपमन्यवे मया कृत्स्नं व्याख्यातं पार्थिवोत्तम
नमस्कृत्वा तु स प्राह देवदेवाय सुव्रत ॥ १०

उपमन्युरुवाच ।

नास्ति शर्वसमो देवो
नास्ति शर्वसमा गतिः ।
नास्ति शर्वसमो दाने
नास्ति शर्वसमो रणे ॥ ११

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

उपमन्युरुवाच ।

ऋषिरासीत्कृते तात तण्डिरित्येव विश्रुतः
दशवर्षसहस्राणि तेन देवः समाधिना ॥ १
आराधितोऽभूद्भक्तेन तस्योदर्कं निशामय ।
स दृष्टवान्महादेवमस्तौषीच्च स्तवैर्विभुम् ॥ २

---

१५

**मूर्ध्नेति** । सन्निचये स्थितमिति शेषः ॥१॥ योगेन सहितं प्रियत्वं इति द्वौ वरौ ॥ २ ॥ धारिणी पोषिका ॥३॥ एवं भविष्यतीति प्रार्थितान्वरानभ्यनुज्ञाय स्वयं भवानी वराष्टकं ददाति तत्रामरप्रभावेति सबोधनेनैको वरः सूचितः । नाहं मृषा जातु वदे इति त्वमपि मृषा मा वदेति द्वितीयः । षोडशसहस्रभार्या इति तृतीयः । तासु प्रियत्वमिति चतुर्थः । पूर्वोक्तात्सर्वप्रियत्वादन्यः अक्षयं धनधान्यादीत्यर्थादिति पञ्चमः ॥ ७ ॥ अन्यत् त्रयं स्पष्टार्थं एवं च उपक्रमस्थाना षोडशाष्टाना वचनमुपपद्यते ॥ ८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः १५

१६

**ऋषिरिति** । अयमध्यायो यत्पूर्वमुपमन्युना कृष्णं प्रत्युक्तं जप्यं तु ते प्रदास्यामीति तत् जप्यं शिवसहस्रनामस्तोत्रं विवक्षुरुपमन्युमुखेन तदुपोद्घातार्थमारभ्यते समाधिना ध्यानयोगेन ॥ १ ॥ उदर्कं फलोदयम् ॥ २ ॥

इति तण्डिस्तपोयोगात्परमात्मानमव्ययम्।
चिन्तयित्वा महात्मानमिदमाह सुविस्मितः
यं पठन्ति सदा सांख्याश्चिन्तयन्ति च योगिनः
परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम् ॥ ४
उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते ॥ ५
अजं तमहमीशानमनादिनिधनं प्रभुम्।
अत्यन्तसुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे ॥ ६
एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम्।
तमव्ययमनौपम्यमचिन्त्यं शाश्वतं ध्रुवम् ॥ ७
निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुणगोचरम्।
योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम् ॥ ८
मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम्।
अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम् ॥ ९
दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः।
योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम् १०
यः प्राणवन्तमात्मानं ज्योतिर्जीवस्थितं मनः
तं देवं दर्शनाकांक्षी बहून्वर्षगणानृषिः।
तपस्युग्रे स्थितो भूत्वा दृष्ट्वा तुष्टाव चेश्वरम्११

तण्डिरुवाच।
पवित्राणां पवित्रस्त्वं गतिर्गतिमतां वर॥
अत्युग्रं तेजसां तेजस्तपसां परमं तपः।
विश्वावसुहिरण्याक्षपुरुहूतनमस्कृत ॥ १३
भूरिकल्याणद विभो परं सत्यं नमोऽस्तु ते।
जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो १४
निर्वाणद सहस्रांशो नमस्तेऽस्तु सुखाश्रय।
ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः॥ १५
न विदुस्त्वां तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्यामहे वयम्
त्वत्तः प्रवर्तते सर्वं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् १६
कालाख्यः पुरुषाख्यश्च ब्रह्माख्यश्च त्वमेव हि।
तनवस्ते स्मृतास्तिस्रः पुराणज्ञैः सुरर्षिभिः१७
अधिपौरुषमध्यात्ममधिभूताधिदैवतम्।
अधिलोकाधिविज्ञानमधियज्ञस्त्वमेव हि १८
त्वां विदित्वात्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि।
विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः परं भावमनामयम्
अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकतः।
द्वारं तु स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च२०

---

इदं वक्ष्यमाणप्रकारेण ॥ ३ ॥ यं पठंतीत्यादि श्लोकत्रयं ध्यानबलात्तंडिना दृष्टं तदुच्चारणस्य फलमाह–**एवमिति**। अन्योप्येतै श्लोकै स्तुवन्वक्ष्यमाणरूपमीश्वरं पश्यतीति भाव । शाश्वतं शश्वद्भवं ध्रुव कूटस्थम् ॥ ७ ॥ निष्कलन्वादेर्व्याख्यानं निर्गुणत्वादि अक्षरं अविनाशी ॥ ८ ॥ मनोमयं मनसो धर्मै कर्तृत्वादिभिर्वशीकृत जलचंद्रवत् ॥ ९ ॥ य इति सार्ध श्लोक । यो देव आत्मानं प्राणवंत जीवरूपिणं कृत्वा तत्र आवृते जीवे मनोरूपं ज्योतिर्भूत्वा जीवस्थितं बभूव तं देवं दृष्ट्वा तुष्टावेति संबंध ॥ ११ ॥ पवित्राणां पावनाना गंगादीनामपि पावनम् ॥ १२ ॥ तेजसां चक्षुरादीनामपि तेज प्रकाशकम् ॥ १३ ॥ भूरिकल्याणं मोक्षस्तत्प्रदं पर सत्यं अत्यन्तं अबाध्यम् ॥ १४ ॥ तिस्रस्तनव कालाद्या एव ब्रह्माविष्णुरुद्रा वा ॥ १७ ॥ **अधीति**। अत्र सप्तभिरधिपौरुषादिसंहिताभि कृत्स्न हेयमुपादेयं च त्वमेवेति कथ्यते—तथा हि पुरुष शिर पाण्यादिमान् देहस्तमधिकृत्य प्रवृत्तं विज्ञानं अधिपौरुषं तत्र च माता पूर्वरूपं पितोत्तररूपं प्रजा सन्धि । प्रजनन सन्धानमिति श्रुतौ क्षेत्रबीजरूपाभ्या मातापितृभ्या सकाशादन्योन्यमिथुनीभावेन निमित्तेन अंकुररूपा प्रजा जायते एवं प्रकृतिपुरुषाभ्यां जगदिति तत्र मिथुनीभावस्याभावेन ब्रह्मचर्येण प्रजावज्जगन्नोत्पद्यत इति पुप्रकृत्योर्विवेकमिच्छता उपस्थनिग्रहः कर्तव्य इति विधीयते। एवं अध्यात्मं आत्मनि देहे अधरा हनुः पूर्वरूप उत्तरा हनुरुत्तररूपं वाक्सन्धि जिह्वा सन्धानमिति श्रुतौ जिह्वानिग्रहेण तूष्णींभावोऽपि पूर्वोक्तविवेकार्थं विधीयते अन्यथा वागादीन् प्रवर्तयतो विवेको न संपद्यतेऽपि तु संसार एवानवच्छिन्नोनुतन्यते इति एता संहिता वेदितव्या । तथा अधिभूताधिदैवतं भूताना देहाद्यारम्भकाणा देवताना प्राणचक्षुराद्यधिष्ठात्रीणा भूतदेवताना चान्योन्याश्रयेण मिथुनीभावेनावस्थानं संसारः तन्मूलं च अधिलोकाधिविज्ञानं लोक्यत इति लोका भूतमात्रा दशशब्दादयो विषया । विज्ञानं प्रज्ञामात्रा दश श्रोत्रादीनींद्रियाणि ज्ञानकरणानि उभयेषा मिथुनीभावो यदि भूतमात्रा न स्युर्न प्रज्ञामात्रा. स्युर्यदि प्रज्ञामात्रा न स्युर्न भूतमात्राः स्युर्न ह्यन्यतरतो रूपं किञ्चन सिध्यतीति श्रुतिप्रसिद्ध । ततश्च ब्रह्मचर्यपूर्वकं वागादिनिग्रहे क्रियमाणे जीवब्रह्मणोर्भेदहेतूनामधिभूताधिदैवानामनुत्पत्तेराधियज्ञो घटनाशे घटाकाशमहाकाशयोरिव तयो सगतिकरणे एकीभावलक्षणो यज्ञो मोक्षापरनामा सिध्यति। एतत्सर्वं त्वमेवेति श्लोकार्थ ॥१८॥ नव त्वा अनिच्छत ज्ञातुमिति शेष । जन्म मृत्युश्च अनेकतो अनन्त पुन पुनर्भवतीत्यर्थ ॥ २० ॥

त्वं वै स्वर्गश्च मोक्षश्च कामः क्रोधस्त्वमेव च
सत्त्वं रजस्तमश्चैव अधश्चोर्ध्वं त्वमेव हि २१
ब्रह्मा भवश्च विष्णुश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः
वरुणेन्दू मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः २२
भूर्वायुः सलिलाग्निश्च
खं वाग्बुद्धिः स्थितिर्मतिः
कर्म सत्यानृते चोभे
त्वमेवास्ति च नास्ति च ॥ २३
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम्।
विश्वाविश्वपरो भावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेव हि
यच्चैतत्परमं ब्रह्म यच्च तत्परमं पदम् ।
या गतिः सांख्ययोगानां स भवान्नात्र संशयः
नूनमद्य कृतार्थाः स्म नूनं प्राप्ताः सतां गतिम्
यां गतिं प्रार्थयन्तीह ज्ञाननिर्मलबुद्धयः ॥ २६
अहो मूढाः स्म सुचिरमिमं कालमचेतसा ।
यन्न विद्मः परं देवं शाश्वतं यं विदुर्बुधाः २७
सेयमासादिता साक्षात्त्वद्भक्तिर्जन्मभिर्मया ।
भक्तानुग्रहकृद्देवो यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २८
देवासुरमुनीनां तु यच्च गुह्यं सनातनम् ।
गुहायां निहितं ब्रह्म दुर्विज्ञेयं मुनेरपि ॥ २९
स एष भगवान् देवः सर्वकृत्सर्वतोमुखः ।
सर्वात्मा सर्वदर्शी च सर्वगः सर्ववेदिता ३०
देहकृद्देहभृद्देही देहभुग्देहिनां गतिः ।
प्राणकृत्प्राणभृत्प्राणी प्राणदः प्राणिनां गतिः
अध्यात्मगतिरिष्टानां ध्यायिनामात्मवेदिनाम्
अपुनर्भवकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः ३२
अयं च सर्वभूतानां शुभाशुभगतिप्रदः ।
अयं च जन्ममरणे विदध्यात्सर्वजन्तुषु ।
अयं संसिद्धिकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः
भूराद्यान्सर्वभुवनानुत्पाद्य सदिवौकसः ।
दधाति देवस्तनुभिरष्टाभिर्यो बिभर्ति च ३४
अतः प्रवर्तते सर्वमस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
अस्मिंश्च प्रलयं याति अयमेकः सनातनः ३५
अयं स सत्यकामानां सत्यलोकः परं सताम् ।
अपवर्गश्च मुक्तानां कैवल्यं चात्मवेदिनाम् ३६
अयं ब्रह्मादिभिः सिद्धैर्गुहायां गोपितः प्रभुः ।
देवासुरमनुष्याणामप्रकाशो भवेदिति ॥ ३७
तं त्वां देवासुरनरास्तत्त्वेन न विदुर्भवम् ।
मोहिताः खल्वनेनैव हृदिस्थेनाप्रकाशिना ३८
ये चैनं प्रतिपद्यन्ते भक्तियोगेन भाविताः ।
तेषामेवात्मनाऽऽत्मानं दर्शयत्येष हृच्छयः ३९
यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते ।
यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते ४०
यं लब्ध्वा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः ।
यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयम् ४१
यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः
सांख्यशास्त्रविशारदाः ।
सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं
ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः ॥ ४२
यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् ।
प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च ॥

अस्ति च नास्ति चेति रज्जुभुजङ्गाभं प्रतीतितोऽस्ति स्वतो नास्ति तादृशं जगत्कारणमज्ञानमुच्यते ॥२२॥ विश्वाविश्वपरः कार्यकारणाभ्यामन्यः भावः सत्तामात्ररूपः चिन्त्याचिन्त्यश्च चिन्त्यः सोपाधिकरूपेण अचिन्त्यो निरुपाधिकेन ॥ २४ ॥ अचेतसा अज्ञानेन यत्परं देवं न विद्मः अतो मूढाः स्म ॥२७॥ देहकृत् यज्ञादि देहभृत् देहपोषकोऽन्नादिः देही जीवः देहभुक् देहसंहर्ता प्राणो लिङ्गशरीरं तस्यानादित्वेऽपि तत्कर्तृत्वं तदाविर्भावनिमित्तत्वं दृष्टिसृष्टिन्यायेन मुख्यं वा ज्ञेयम्॥३१॥अष्टाभिः भूम्यम्बुवन्हिवायुव्योमसूर्यचन्द्रयजमानाख्याभिः ॥३४॥ **अयमिति**। सत्यं अव्यभिचारि वेदोक्तं कर्मफलं स्वर्गं सता ऊर्ध्वरेतसा परं स्वर्लोकादुपरि महर्लोकादि अपवर्गः क्रममुक्तिस्थानं ब्रह्मलोकाख्यं मुक्तानां विदेहाख्यानां योगिविशेषाणां कैवल्यं मुख्या मुक्तिः ॥ ३६ ॥ गुहायां शास्त्रे गोपितः तत्र हेतुमाह—**देवेति**। उक्तोऽपि सुखज्ञेयो माभूदिति भङ्ग्यन्तरेण निरूपितः ब्रह्माद्यैर्मन्त्रव्याख्यातृभिः तथाहि-चत्वारि शृङ्गेति मन्त्रो यास्केन यज्ञपरतया, पतञ्जलिना शब्दपरतया, गौतमेन तटस्थेश्वरपरतया च व्याख्यातः । वस्तुतस्त्वध्यात्मपरोस्तीति स्पष्टम् ॥३७॥ अनेन अहंकारेण अप्रकाशिना जडेन जडानृतरूपस्याप्यस्य चित्सद्रूपेण त्वयैव प्रकाशः सत्ता च भवतीति भावः । तथा च मंत्रवर्णः—अयं रोचयद्रुचो रुचानोऽयं वासयदृतेन पूर्वीरिति। अयं आत्मा रोचयत् प्रकाशयति अरुचः अप्रकाशान् अहंकारादीन् रुचानः स्वयंप्रकाशमानः अयं आत्मा पूर्वीः अहमादिसृज्यानि विशेषतः पृथक् विविक्तनया ऋतेन स्वसत्तया वासयत् आच्छादयति अनृतानप्येतान् स्वसत्तयैव सत्तावतः करोति रज्जुरिव सर्पादीनिति मंत्रपदानामर्थः ॥ ३८ ॥ गच्छन् गच्छति तं बुधः ॥ ४१ ॥ सूक्ष्मं लिङ्गं ज्ञानेन तरन्ति अतिक्रम्य गच्छन्ति ते सूक्ष्मज्ञानतराः । सूक्ष्माज्ञानेति पाठे प्रकृतिं तीर्त्वा गता इत्यर्थः । सूक्ष्मं पुरुषम् ॥४२॥

ओंकारस्थमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम् ।
अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते ॥४४
अयं च पितृयानानां चंद्रमा द्वारमुच्यते ।
एष काष्ठा दिशश्चैव संवत्सरयुगादि च ॥ ४५
दिव्यादिव्यः परो लाभ अयने दक्षिणोत्तरे ।
एनं प्रजापतिः पूर्वमाराध्य बहुभिः स्तवैः ४६
प्रजार्थं वरयामास नीललोहितसंज्ञितम् ।
ऋग्भिर्यमनुशासन्ति तत्त्वे कर्माणि बह्वृचाः ॥
यजुर्भिर्यंत्रिधा वेद्यं जुह्वत्यध्वर्यवोऽध्वरे ।
सामभिर्यं च गायन्ति सामगाः शुद्धबुद्धयः ॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म स्तुवन्त्याथर्वणा द्विजाः ।
यज्ञस्य परमा योनिः पतिश्चायं परः स्मृतः ॥
रात्र्यहःश्रोत्रनयनः पक्षमासशिरोभुजः ।
ऋतुवीर्यस्तपोधैर्यो ह्यब्दगुह्योरुपादवान् ॥ ५०
मृत्युर्यमो हुताशश्च कालः संहारवेगवान् ।
कालस्य परमा योनिः कालश्चायं सनातनः ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ ग्रहाश्च सह वायुना ।
ध्रुवः सप्तर्षयश्चैव भुवनाः सप्त एव च ॥ ५२
प्रधानं महदव्यक्तं विशेषान्तं सवैकृतम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं भूतादि सदसच्च यत् ॥५३
अष्टौ प्रकृतयश्चैव प्रकृतिभ्यश्च यः परः ।
अस्य देवस्य यद्भागं कृत्स्नं संपरिवर्तते ॥ ५४
एतत्परममानन्दं यत्तच्छाश्वतमेव च ।
एषा गतिर्विरक्तानामेष भावः परः सताम् ५५
एतत्पदमनुद्विग्नमेतद्ब्रह्म सनातनम् ।
शास्त्रवेदाङ्गविदुषामेतद्ध्यानं परं पदम् ॥ ५६
इयं सा परमा काष्ठा इयं सा परमा कला ।
इयं सा परमा सिद्धिरियं सा परमा गतिः५७
इयं सा परमा शान्तिरियं सा निर्वृतिः परा॥
यं प्राप्य कृतकृत्याः स्म इत्यमन्यन्त योगिनः
इयं तुष्टिरियं सिद्धिरियं श्रुतिरियं स्मृतिः ।
अध्यात्मगतिरिष्टानां विदुषा प्राप्तिरव्यया५९
यजतां कामयानानां मखैर्विपुलदक्षिणैः ।
या गतिर्यज्ञशीलानां सा गतिस्त्वं न संशयः
सम्यक् योगजपैः शान्तिर्नियमैर्देहतापनैः ।
तप्यतां या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥
कर्मन्यासकृतानां च विरक्तानां ततस्ततः ।
या गतिर्ब्रह्मसदने सा गतिस्त्वं सनातन ६२
अपुनर्भवकामानां वैराग्ये वर्तता च या ।
प्रकृतीनां लयानां च सा गतिस्त्वं सनातन॥
ज्ञानविज्ञानयुक्तानां निरुपाख्या निरंजना ।
कैवल्या या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान्॥

वेदशास्त्रपुराणोक्ताः
पञ्चैता गतयः स्मृताः ।
त्वत्प्रसादाद्धि लभ्यन्ते
न लभ्यन्तेऽन्यथा विभो ॥ ६५

इति तण्डिस्तपोराशिस्तुष्टावेशानमात्मना ।
जगौ च परमं ब्रह्म यत्पुरा लोककृज्जगौ ६६

उपमन्युरुवाच ।

एवं स्तुतो महादेवस्तण्डिना ब्रह्मवादिना ।
उवाच भगवान् देव उमया सहितः प्रभुः॥६७
ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः ।
न विदुस्त्वामिति ततस्तुष्टः प्रोवाच तं शिवः

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षयश्चाव्ययश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥

---

दिव्यो लाभ ऐन्द्रं आदिव्यो लाभ सार्वभौमत्वम् ॥ ४६ ॥ अनुशंसन्तीति पाठ स्वच्छ. । तत्त्वे अनारोपिते रूपे विषये कथयन्ति ॥४७॥ त्रिधा पाकयज्ञत्रये श्रौतस्मार्तध्यानयज्ञैरित्यर्थ· ॥ ४८ ॥ ऋतं यज्ञ सत्यं तत्फलं योनिः श्रद्धास्ये ॥४९॥ यज्ञपते श्रोत्रादिभावेन रात्र्यादीनि निरूपयतिरात्रीति ॥५०॥ कालस्य योनिमेवाह चन्द्रेति ॥ ५२ ॥ सत् भूम्यम्बुतेजासि असत् वाय्वाकाशौ॥५३॥ अष्टौ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरहंकारश्च पर· मायावी अस्य मायाविन. भागं अंशं कृत्स्नं प्रपञ्चजातम्॥५४॥ एतस्मात्परमं आनन्दमयादीश्वरादपि परं शुद्धं आनन्दं आनंदमात्रं तदेव शाश्वतं तेन पूर्वेषामशाश्वतत्वं दर्शितम्॥५५॥ ध्यानं परं पदं पदप्रापकम्॥५६॥ सेति सा काष्ठा सा परा गतिरिति श्रुतिप्रसिद्धा ॥ ५७ ॥ निर्वृतिः सुखम्॥५८॥ श्रुतिरिति श्रोत्रादिजन्याऽनुभूति· इष्टाना योगिना अध्यात्मगति· प्रत्यक्प्रावण्यरूपा गति विदुषा अहं ब्रह्मास्मीति जानता अव्यया अपुनरावर्तिनी प्राप्तिः ॥ ५९ ॥ परमा गतिमपरमा गतिपूर्विकां व्याचष्टे—**यजतामिति** । यज्ञशीलाना गतिः स्वर्गादिलोकः ॥६०॥ योगजपादिपराणा तपस्विना नक्षत्रलोकाख्या परमा भास्वती गतिर्द्वितीया ॥६१॥ संन्यासिना ब्रह्मलोक. पुनरावृत्तिरूपा गतिस्तृतीया ॥६२॥ प्रकृतीना ये लयमभ्यस्यंति तेषा दहरादिरूपकारणब्रह्मोपासकाना अपुनरावृत्तिरूपा गतिश्चतुर्थी ॥६३॥ **ज्ञानेति** । निष्कलब्रह्मविदा मोक्षाख्या या गतिः सा भवान् पूर्वास्तु गतयोऽनात्मभूता इति भाव· ॥ ६४ ॥ तत· ब्रह्मादयस्त्वा न विदुरिति वाक्यात् ॥६८॥

ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्ता सुतस्तव ।
मत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ७०
कं वा कामं ददाम्यद्य ब्रूहि यद्वत्स कांक्षसे ।
प्राञ्जलिः स उवाचेदं त्वयि भक्तिर्दृढाऽस्तु मे

उपमन्युरुवाच ।

एतान् दत्वा वरान्देवो वन्द्यमानः सुरर्षिभिः
स्तूयमानश्च विबुधैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७२
अन्तर्हिते भगवति सानुगे यादवेश्वर ।
ऋषिराश्रममागम्य ममैतत्प्रोक्तवानिह ॥ ७३
यानि च प्रथितान्यादौ तण्डिराख्यातवान्मम
नामानि मानवश्रेष्ठ तानि त्वं शृणु सिद्धये७४
दशनामसहस्राणि देवेष्वाह पितामहः ।
सर्वस्य शास्त्रेषु तथा दशनामशतानि च ७५
गुह्यानीमानि नामानि तण्डिर्भगवतोऽच्युत ।
देवप्रसादाद्देवेशः पुरा प्राह महात्मने ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

वासुदेव उवाच ।

ततः स प्रयतो भूत्वा मम तात युधिष्ठिर ।
प्राञ्जलिः प्राह विप्रर्षिर्नामसंग्रहमादितः ॥ १

उपमन्युरुवाच ।

ब्रह्मप्रोक्तैर्ऋषिप्रोक्तैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः ।
सर्वलोकेषु विख्यातं स्तुत्यं स्तोष्यामि नामभिः
महद्भिर्विहितैः सत्यैः सिद्धैः सर्वार्थसाधकैः ।
ऋषिणा तण्डिना भक्त्या कृतैर्वेदकृतात्मना॥
यथोक्तैः साधुभिः ख्यातैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः
प्रवरं प्रथमं स्वर्ग्यं सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ४
श्रुतैः सर्वत्र जगति ब्रह्मलोकावतारितैः ।
सत्यैस्तत्परमं ब्रह्म ब्रह्मप्रोक्तं सनातनम् ॥ ५
वक्ष्ये यदुकुलश्रेष्ठ शृणुष्वावहितो मम ।
वरयैनं भवं देवं भक्तस्त्वं परमेश्वरम् ॥ ६
तेन ते श्रावयिष्यामि यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
न शक्यं विस्तरात्कृत्स्नं वक्तुं सर्वस्य केनचित् ७
युक्तेनापि विभूतीनामपि वर्षशतैरपि ।
यस्यादिर्मध्यमन्तं च सुरैरपि न गम्यते ॥ ८
कस्तस्य शक्नुयाद्वक्तुं गुणान् कार्त्स्न्येन माधव
किं तु देवस्य महतः संक्षिप्तार्थपदाक्षरम् ॥ ९
शक्तितश्चरितं वक्ष्ये प्रसादात्तस्य धीमतः ।
अप्राप्य तु ततोऽनुज्ञां न शक्यः स्तोतुमीश्वरः
यदा तेनाभ्यनुज्ञातः स्तुतो वै स तदा मया ।
अनादिनिधनस्याहं जगद्योनेर्महात्मनः ॥ ११
नाम्नां कञ्चित्समुद्देशं वक्ष्याम्यव्यक्तयोनिनः ।
वरदस्य वरेण्यस्य विश्वरूपस्य धीमतः १२
शृणु नाम्नां चयं कृष्ण यदुक्तं पद्मयोनिना ।
दशनामसहस्राणि यान्याह प्रपितामहः ॥ १३
तानि निर्मथ्य मनसा दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ।
गिरेः सारं यथा हेम पुष्पसारं यथा मधु १४
घृतात्सारं यथा मण्डस्तथैतत्सारमुद्धृतम् ।
सर्वपापापहमिदं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ १५
प्रयत्नेनाधिगन्तव्यं धार्यं च प्रयतात्मना ।
माङ्गल्यं पौष्टिकं चैव रक्षोघ्नं पावनं महत् १६
इदं भक्ताय दातव्यं श्रद्दधानास्तिकाय च ।
नाश्रद्दधानरूपाय नास्तिकायाजितात्मने॥१७

---

सूत्रकर्ता ताण्डिन इति यजुर्वेदे शाखाविशेषस्तत्र कल्पसूत्रकर्ता ॥ ७० ॥ प्रथितानि मया तुभ्यं येषां मध्ये एकं उपदिष्टं तानि सर्वाणि त्वं शृणु सिद्धये मोक्षान्तसकलप्राप्तये ॥ ७४ ॥ देवेशो ब्रह्मा यानि नामानि महात्मने पुरा प्राह गुह्यानि तानीमानि नामानि देवप्रसादात्तंडि. प्राह मह्यमिति शेषः ॥७६॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

१७

तत इति ॥१॥ सत्यैरन्वर्थैः वेदे कृतात्मना दत्तचित्तेन कृतैः वेदात्पृथक्कृतैः ॥३॥ यथोक्तैरिति स्तुत्यं सिंहावलोकनन्यायेन विशिनष्टि प्रवरमित्यर्धेन ॥ ४ ॥ श्रुतैरिति ब्रह्मप्रोक्तैः वेदोक्तैः ॥ ५ ॥ वरय प्रार्थय उपसन्नो भव एनं मंत्रात्मकमीश्वरं लब्धुम् ॥६॥ तेन विधिना ॥ ७ ॥ युक्तेन सन्नद्धेन ॥८॥ योनिन योने ब्रह्मण इति शेष ॥१२॥

यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम् ।
स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मजैः१८
इदं ध्यानमिदं योगमिदं ध्येयमनुत्तमम् ।
इदं जप्यमिदं ज्ञानं रहस्यमिदमुत्तमम् ॥ १९
य ज्ञात्वा अन्तकालेऽपि गच्छेत परमां गतिं
पवित्रं मङ्गलं मेध्यं कल्याणमिदमुत्तमम् ॥२०
इदं ब्रह्मा पुरा कृत्वा सर्वलोकपितामहः ।
सर्वस्तवानां राजत्वे दिव्यानां समकल्पयत्२१
तदाप्रभृति चैवायमीश्वरस्य महात्मनः ।
स्तवराज इति ख्यातो जगत्यमरपूजितः॥२२
ब्रह्मलोकादयं स्वर्गे स्तवराजोऽवतारितः ।
यतस्तण्डिः पुरा प्राप तेन तंडिकृतोऽभवत्॥
स्वर्गाच्चैवात्र भूर्लोकं तण्डिना ह्यवतारितः ।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २४
निगदिष्ये महाबाहो स्तवानामुत्तमं स्तवम् ।
ब्रह्मणामपि यद्ब्रह्म पराणामपि यत्परम् ॥ २५
तेजसामपि यत्तेजस्तपसामपि यत्तपः ।
शांतानामपि यः शांतो द्युतीनामपि या द्युतिः
दांतानामपि यो दांतो धीमतामपि या च धीः
देवानामपि यो देव ऋषीणामपि यस्त्वृषिः२७
यज्ञानामपि यो यज्ञः शिवानामपि यः शिवः
रुद्राणामपि यो रुद्रः प्रभा प्रभवतामपि ॥२८
योगिनामपि यो योगी कारणानां च कारणम्
यतो लोकाः संभवन्ति न भवन्ति यतः पुनः
सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नां शर्वस्य मे शृणु ।
यच्छ्रुत्वा मनुजव्याघ्र सर्वान्कामानवाप्स्यसि

स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो वरः ।

---

**इदमिति** । एतज्जप एव ध्यानादिफलप्रद इत्यर्थ ॥ १९ ॥ य स्तवं सकृदधिगमेनाप्यस्य परमा गतिं गच्छेत्तैवेत्यर्थ । पवित्र पापनाशकं मेध्यं यज्ञादिफलप्रद मंगलं अभ्युदयकर उत्तमं कल्याणं परमानन्दरूपम् ॥२०॥ ब्रह्मणा वेदाना वाचामपि यो वागित्यर्थ । पराणामिंद्रियार्थमनोबुद्धिमहदव्यक्तानामपि य· पर पुरुष इत्यर्थ ॥ २५ ॥ तेजसा चक्षुरादीनामपि यच्चक्षु तपसा पुण्याना गङ्गादीनामपि यत्पुण्य शान्ताना उपरतचित्तानामपि आत्यंतिकी उपरतिर्मोक्षाख्या द्युतीना ज्ञानाना वृत्तिरूपाणामपि ज्ञान साक्षिरूपं अनुव्यवसायापरपर्यायम् ॥ २६ ॥ दान्ताना जितेन्द्रियाणा मध्येऽत्यन्तं जितेन्द्रिय । धीमता ज्ञानिना धी आत्मा अनुभवरूप ज्ञानम् । देवाना पूज्यानामपि पूज्य । ऋषीणा काव्यकर्तृणामपि काव्यकर्ता वेदकर्तृत्वात् ॥ २७ ॥ यज्ञाना यज्ञभोक्तृणा यज्ञ यज्ञस्य आराधनस्य भोक्ता शिवाना कल्याणानामपि कल्याण रुणाद्धि एनामिति वा रोदित्यनेन वा रौत्यनेन वा रवणं वा रुत् अज्ञानं वा विपर्ययो वा शोको वा दुःखं वा रुत् ता द्रावयतीति रुद्र । ज्ञानं आनंदो वा तेषामप्यानन्द· । प्रभवतामीश्वराणामपि प्रभा ऐश्वर्यम् ॥२८॥ योगिना ब्रह्मादीनामपि यो योगी ध्येयसंकल्पमात्रेण स्रष्टा । कारणाना अव्यक्तादीना कारणं निष्कलम् ॥ २९ ॥

यद्यप्यत्र सहस्रनामस्तोत्रे नाम्ना शब्दतोऽर्थतश्च पौनरुक्त्यमस्ति तथापि अर्थैक्येऽपि शब्दभेदात्क्वचित् क्वचित् शब्दैक्येऽप्यर्थभेदाच्चापौनरुक्त्य द्रष्टव्य अपूर्वार्थत्वात् । न हि सर्वात्मपदोच्चारणजन्यमपूर्वं विश्वात्मपदोच्चारणादुत्पद्यते अन्यथा 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' इत्यत्र वह्नये जुष्टमिति उच्चारणेऽपि तदपूर्वोत्पत्त्यापत्तेर्विधिगत एव शब्द प्रयोक्तव्य इति **मीमांसकमुद्रा**भंग स्यात् । अर्थभेदेऽपि शब्दैक्यं न पौनरुक्त्यावहं इन्द्रशब्दस्यान्यार्थस्यापि ऐन्द्या गार्हपत्यमुपतिष्ठतेति विधानाद्योगेनाग्निपरत्वप्रदर्शनात् । तथा च शब्दैक्येऽप्यर्थैक्यं नास्ति तथा वयमस्या व्याख्याया प्रदर्शयिष्याम —

१—**[स्थिरः]** तिष्ठतीति स्थिर· तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थाणुश्च । अजिरशिशिरेत्यादिना स्थाणुरिति च तिष्ठते किरच् टिलोपौ नुप्रत्ययश्च विधीयते । स्थिर अचञ्चल । कूटस्थ नित्य ।

२—**स्थाणुः** गृहस्तंभवत्सर्वाश्रय । यथोक्तं–'संसारमंडपस्यास्य मूलस्तम्भाय शंभवे' इति ।

३—**प्रभुः** ईश्वरोऽन्तर्यामीत्यर्थ प्रकृष्टं भवन सत्ता यस्येति वा परमार्थसत्य इत्यर्थ । प्रकर्षेण भावयति विश्वं +चरयति जानाति वा विश्वकर्त्ता सर्वज्ञो वेत्यर्थ· । 'विप्रसंभ्योड्वसंज्ञायाम्' (पा ३।२।१८०) इति प्रपूर्वाद्भवतेर्डु । पाचकपाठकादिवद्गुणशब्दोऽयं न तु संज्ञाशब्द· । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ।

४—**भीमः** संहर्त्ता बिभेत्यस्माज्जगदिति व्युत्पत्ते 'भीमादयोऽपादाने' (पा ३।४।७४) इति सूत्रात्सिद्धि ।

५—**प्रवरः** श्रेष्ठ प्रकर्षेण भोगमोक्षकामैर्वरणीय ।

६—अत एव **वरदः** इष्टप्रद 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा ३।२।३) इति सुप्पूर्वाद्दाते क

७—**वरः** वृणोति आच्छादयति सर्वमिति वर । पचाद्यच् ।

---

\+ रचयति ।

**सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः**
**जटी चर्मी शिखंडी च सर्वांगः सर्वभावनः ।**
**हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ ३२**
**प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो ध्रुवः ।**
**श्मशानवासी भगवान् खचरो गोचरोऽर्दनः ३३**
**अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः ।**
**उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ ३४**

८—**सर्वात्मा** सततमनेनेति सर्व स चात्मा चेति सर्वात्मा व्यापक· प्रत्यग्रूप प्राणभृन्मात्रस्यान्तरात्मेत्यर्थ । सर्वनिघृष्वेत्यादिना सर्तेर्वक्तत्व निपात्यते आप्नोति सर्व भोग्यं स्वार्थत्वेन लभते आदत्ते स्वीकरोति अत्ति भुंक्ते अतति सततमेकरूपेण वर्तत इति च आत्मा तथा च स्मृति —

'यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानयम् ।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति गीयते

इति ।

९—**सर्वविख्यातः** सर्वत्र देशे काले च सर्वेषा प्राणिना वा विख्यात प्रत्यक्त्वेन प्रसिद्ध ।

१०—**सर्वः** व्यापक 'सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व ' इति भगवद्वचनात् ।

११—सर्वं करोतीति **सर्वकरः** विश्वस्य कर्ता एतेन नामद्वयेन उपादानत्वं निमित्तत्वं चोक्तम् ।

१२—अत एव भवत्यस्मादनन्यापेक्षाद्विश्वमिति भव-त्यस्मिन्प्रलय इति वा **भवः** सर्वस्योत्पत्तिप्रलयस्थानं ' ऋदोरप्' (पा.३।३।५७) इत्यप् भवति अस्तीति सत्तार्था-द्भवते पचाद्यच् सत्तामात्रस्वरूप इत्यर्थ· ॥ ३१ ॥

१३—**जटी** जटझटसंघातेऽस्मात्पचाद्याचि केशान सं-घातो जटा तद्वान् ।

१४—**चर्मी** चर्म व्याघ्रस्य गजस्य वा कृत्तिस्तद्वान् ।

१५—**शिखंडी** मयूरशिखावत् जटासंनिवेशोपरि कृतो जटाग्रगुच्छ शिखण्डस्तद्वान् ।

१६—सर्व जगदङ्गं अवयवभूतं यस्य स· **सर्वांगः** विराडित्यर्थ ।

१७—**सर्वभावनः** विश्वकर्ता ।

१८—**हरः** हरति सर्वं संहरतीति हर हरते पचाद्यच् ।

१९—**हरिणाक्षः** मृगनेत्रः ।

२०—सर्वाणि भूतानि हरतीति **सर्वभूतहरः** हरते-रनुद्यमनेऽजित्यच् ।

२१—**प्रभुः** प्रकर्षेण भवते प्राप्नोति विश्वं भोग्यत्वे-नेति सर्वभोक्ता पूर्ववत् डु ॥ ३२ ॥

२२—**प्रवृत्तिः** प्रकर्षेण कुर्वद्रूपतया वर्तनं प्रवृत्ति· ।

२३—निकर्षेण निरुद्यमतया वर्तनम् । **निवृत्तिः** निपूर्वात् वृतु वर्तनेऽस्मात् क्रिया क्तिन् ।

२४—यतन्ते विषयग्रहणाय स्वय प्रवर्तन्ते तानि यतानि इन्द्रियाणि यती प्रयत्नेऽस्मात् पचाद्यच् । निगृहीतानि यतानि येन स **नियतः** तपस्वीत्यर्थ ।

२५—**शाश्वतः** शश्वद्भव नित्य इत्यर्थ ।

२६—**ध्रुवः** अचलः ।

२७—**श्मशानवासी** श्मान शवा मृतजीवाः शेरतेऽस्मिन् पुनरुत्थानवर्जितं शयनं कुर्वन्त्यस्मिन्निति श्म-शानं वाराणसी तत्र वस्तुं शीलमस्य स श्मशानवासी । शवदाहस्थले तु श्मशानशब्दो गौण । नहि तत् मृतानां देहाना देहिना वा मृद्भस्मीभूताना यातनावशाना वा सुषुप्तिवद्विश्रान्तिस्थान देहाना जडत्वेन विश्रान्त्यनर्हत्वात् देहिना शरीरान्तरवारिणा विश्रान्त्यभावात् वाराणस्या मृतास्तु न पुन संसरन्तीति सहस्रश प्रमाणान्यस्मत्कृते **अविमुक्तनिरुक्तिसारे** द्रष्टव्यानि ।

२८—**भगवान्**

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशस श्रिय ।
वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णा भग इतीङ्गना ॥

इति स्मृतानि भगानि विद्यन्तेऽस्मिन्निति भगवान् ।

२९—**खचरः** हार्दाकाशचारी ।

दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यन्दतस्तदन्वेष्टव्यं शम्भु-राकाशमध्य ' इति श्रुतिप्रसिद्ध । चरेष्ट ।

३०—**गोचरः** गोषु इन्द्रियेषु विषयतया चरतीति वा गोभि करणैर्वा चरति विषयान् भुंक्त इति वा गोचर । सर्वात्मत्वात्सर्वेन्द्रियगम्य इन्द्रियद्वारा विषयभुगिति वाऽर्थः ।

३१—अर्दयति जनं पापिनं पीडयति कालान्तकरूपे-णेति **अर्दनः** । नन्द्यादिल्यु· ॥ ३३ ॥

३२—**अभिवाद्यः** सर्वेषा नमस्कार्य· स्तुत्यो वा ।

३३—महत् सृष्ट्यादिकं कर्मास्येति **महाकर्मा** ।

३४—तप एव स्वं धनं तद्वान् **तपस्वी** ।

३५—भूतानि खादीनि भावयति संकल्पमात्रेण सृजतीति **भूतभावनः** ।

३६—**उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः** उन्मत्तवेषेण दिग्वा-सस्त्वादिरूपेण प्रच्छन्नो दुर्ज्ञेय ।

३७—लोका· स्थानानि प्रजास्तत्र निवसन्तश्चेतनाः सर्वासा लोकप्रजाना पति· स्वामी [ **सर्वलोकप्रजापतिः** । ]

महारूपो महाकायो वृषरूपो महायशाः।
महात्मा सर्वभूतात्मा विश्वरूपो महाहनुः ३५
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादो हयगर्दभिः।
पवित्रं च महांश्चैव नियमो नियमाश्रितः ॥३६
सर्वकर्मा स्वयंभूत आदिरादिकरो निधिः।
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः।
अत्रिरत्र्या नमस्कर्ता मृगबाणार्पणोऽनघः ३८
महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः।

३८—महत् अपरिच्छेद्य रूपमस्य स **महारूपः**।

३९—महान् काय स्थूलं रूपं वैराजं यस्य स **महाकायः**।

४०—वृषो धर्मस्तद्रूपो **वृषरूपः**।

४१—महच्च तद्यशश्च **महायशाः** 'तस्य नाम महद्यश ' इति श्रुते· परमेश्वर ।

४२—**महात्मा** महामना ।

४३—सर्वाणि भूतानि आत्मा मन संकल्पमात्रं यस्य स **सर्वभूतात्मा** तदीक्षणमात्रत्वात्सर्वस्य ।

४४—विश्वं रूपमस्य विश्वस्मिन् रूप्यते प्रकटी भवतीति वा **विश्वरूपः** ।

४५—**महाहनुः** महत्यौ विश्वग्राससमर्थे हनू अधरोत्तरे मुखफलके यस्य स महाहनु· ॥ ३५ ॥

४६—**लोकपालः** इन्द्रादिरूप ।

४७—**अन्तर्हितात्मा** अविद्याकल्पितेन अहंकारादिना तिरोहिताखण्डैकरसस्वभाव. सर्पेणेव रज्जु ।

४८—**प्रसादः** अभिरतिरानन्द इति यावत्।

४९—**हयगर्दभिः** हयं अश्वं गर्दभीं च स्वयोनेत्वेन आचक्षते ता अश्वगर्दभ्य अश्वतर्यः ता रथस्थं वहन्त्येनमिति हयगर्दभि । क्विन्नन्तात्कर्तरि क्विप् तत इञ् वृद्ध्यभावश्चार्ष । रुद्रो वा एष यदग्नि । अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावदिति श्रुतिभ्या अग्निरूपी देवोऽश्वतरीरथवाहन इति गम्यते ।

५०—**पवित्रं** पवेरिव पवे· संसारवज्रपातात्त्रायत इति पवित्रम्।

५१—अत एव **महान्** पूज्य ।

५२—**नियमः** शौचसन्तोषतप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानाख्यैर्नियमै प्राप्यते इति नियम ।

५३—[**नियमाश्रितः**] नियमैस्तैरेव आश्रित नारायणदक्षिणामूर्त्यादिरूपेण नियमानामाश्रयभूत इत्यर्थ·॥३६॥

५४—**सर्वकर्मा** सकलशिल्पाचार्यो विश्वकर्मा।

५५—**स्वयंभूतः** नित्यसिद्ध· ।

५६—अत एव **आदिः** सर्वस्मात्प्रथम ।

५७—**आदिकरः** हिरण्यगर्भस्रष्टा। ' स वै शरीरी प्रथम ' इति श्रुतेस्तस्यादित्वम्।

५८—**निधिः** पद्मशखादिरूपोऽक्षयैश्वर्य इत्यर्थ ।

५९—**सहस्राक्षः** अनन्तकरचरणादिमान् 'सर्वत· पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ' इत्यादिशास्त्रात् देवेन्द्रो वा सर्वस्य तदभिन्नत्वात् ब्रह्मैवेदं सर्वमित्यादिश्रुते· ।

६०—विशालगने अतीतादिप्रकाशकत्वेन विपुलान्यक्षाणि इन्द्रियाणि यस्य स **विशालाक्षः**।

६१—**सोमः** चंद्र लतारूपं याज्ञियं हविर्वा यत्पुरुषेण हविषेति तस्यैव हविष्ट्वदर्शनात्।

६२—**नक्षत्रसाधकः** सुकृता वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणीति श्रुतेराकाशे दीप्यमानानि शरीराणि नक्षत्राणि तेषां साधक । इष्टादिकारिणा सोमलोके दिव्यशरीरलाभस्य दर्शनात् ॥ ३७ ॥

६३—**चंद्रः**।

६४—**सूर्यः**।

६५—**शनिः**।

६६—**केतुः** च प्रसिद्ध ।

६७—चंद्रार्कौ गृह्णातीति **ग्रहो** राहु ।

६८—ग्रहाणा पति· [**ग्रहपतिः**] क्रूरत्वात् मंगल ।

६९—**वरो** वरणीय।पूज्यो बृहस्पति स एव शुक्र । बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वेति मैत्रायणीयश्रुतौ शुक्रस्य बृहस्पत्यवतारत्वश्रवणात्।

७०—**अत्रिः** आत्रिगोत्रापत्यत्वाद्बुध तेन सर्वग्रहस्वरूपीत्यर्थ ।

७१—**अत्र्याः** अत्रिपत्न्या अनसूयाया **नमस्कर्ता** दत्तदुर्वासोरूपेण तत्पुत्रत्वात्।

७२—**मृगबाणार्पणः** मृगरूपधारिणि यज्ञे बाण अर्पयतीति तथा।

७३—**अनघः** यज्ञघ्नोऽपि निष्पाप तेजीयस्त्वात्स्वतंत्रत्वाच्च ॥ ३८ ॥

७४—महत् विश्वसृष्टिक्षमं तप आलोचनं यस्य **महातपाः** स ऐक्षत लोकान्नु सृजा इति स इमाँल्लोकानसृजतेति श्रुते ।

७५—घोर विश्वसंहारक्षमं तपो यस्येति **घोरतपाः** यो ह्येव प्रभव स एवाप्यय इति श्रुते ।

७६—**अदीनः** महामना सुग्रीवबिभीषणादिभ्य· प्रणतिमात्रेण राज्यप्रदः।

७७—**दीनसाधकः** दीनाना शरणागताना इष्टसाधक ।

**संवत्सरकरो मन्त्रः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३९**
**योगी योज्यो महाबीजो महारेता महाबलः।**
**सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो बीजवाहनः ॥४०**
**दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः।**
**विश्वरूपः स्वयं श्रेष्ठो बलवीरो बलो गणः ४१**
**गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम एव च।**
**मन्त्रवित्परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः ४२**
**कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान्**

७८—सवत्सरस्य कर कर्ता [**संवत्सरकरः**] कालचक्रप्रवर्तको ध्रुवादिज्योतिर्गणरूप ।

७९—**मन्त्रः** मननात्रायत इति प्रणवादिरूप ।

८०—**प्रमाणं** वेदशास्त्रादिरूप ।

८१—**परमं तपः** अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनमिति **याज्ञवल्क्योक्तो** धर्म ॥ ३९ ॥

८२—**योगी** योगनिष्ठ ।

८३—**योज्यः** योगे ब्रह्मणि प्रविलापनीय ।

८४—**महाबीजः** कारणस्यापि कारणम् ।

८५—**महारेताः** महत् जडानृतस्यापि अव्यक्तस्य स्फूर्तिसत्ताप्रदं रेत प्रतिबिंबो यस्य स महारेता ।

८६—अत एव **महाबलः** उत्कृष्टसामर्थ्य ।

८७—**सुवर्णरेताः**

अप एव ससर्जाग्रे तासु वीर्यमवासृजत्
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभमिति ।

स्कादात् हिरण्मयब्रह्माण्डस्रष्टा अग्निरूपेण सुवर्णरेता एव वा।

८८—**सर्वज्ञः** मायावृत्त्या सर्वं जानन् सर्वश्चासौ ज्ञश्चेति वा ।

८९—**सुबीज** सुष्टु अविकारी बीजभूत सर्वकारण भवतीत्यर्थ ।

९०—**बीजवाहन** बीज अविद्याकामकर्मात्मकं तदेव वाहनं इहलोकपरलोके संचारार्थं यस्येति तथा यथोक्त—

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु' इति । शरीरपदमत्राव्यक्तपरमिति सिद्धान्त ॥ ४० ॥

९१—**दशबाहुः** स्पष्टम् ।

९२—**अनिमिषः** न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वादिति श्रुते क्षणमपि दृग्लोपहीनः ।

९३—**नीलकण्ठः** त्रैलोक्यसंहारक्षमस्य हालाहलस्य कंठे धारणान्नीलकण्ठ परमकारुणिक ।

९४—अत एव **उमापतिः** उमा हैमवतीति केनोपनिषत्प्रसिद्धा ब्रह्मविद्या उमा तस्या पति. प्रदाता पक्षे पार्वतीश ।

९५—विश्वानि रूपाणि यस्माज्जायन्ते स **विश्वरूपः।**

९६—**स्वयंश्रेष्ठः** स्वय अनागन्तुकं श्रेष्ठत्वं प्रशस्यतमत्व यस्य स तथा ।

९७—**बलवीरः** बलेन सामर्थ्येन वीरो विक्रान्तः त्रिपुरपातनादनन्यसाध्यकर्मकर्ता ।

९८—**अबलः** नि सामर्थ्य चेतनप्रयुक्तिं विना चलनाक्षम गण्यते संख्यायत इति गणस्तत्त्वसमूह पञ्चविंशतिजडतत्त्वात्मेत्यर्थ । स्वयं तु षड्विंश तत्त्वानि च साङ्ख्यसप्तत्या अव्यक्तं महान् अहंकार पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि पञ्चविंशो भोक्तेति ॥ ४१ ॥

९९—एवंभूतस्यापि गणस्य कर्ता पतिर्नियन्ता चेति **गणकर्ता।**

१००—**गणपतिः** च उच्यते ।

## इति प्रथम शतम् ।

१०१—**दिग्वासाः** दारुकावने मुनिपत्नीमोहनार्थं नग्नत्वं कृतमिति ज्ञेयं वस्तुतस्तु दिशा अनन्तानामपि वास इव वास अच्छादक तथा च श्रुति ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्या जगदिति । ईशा ईश्वरेणावास्यमाच्छादनीयमिति ।

२—**कामः** स्मरोऽभिलाषो वा तद्रूप ।

३—मंत्रान् इषेत्वादीन् पाठतोऽर्थतश्च वेत्तीति वा तैर्वित् वेदनमस्येति वा **मंत्रवित्** यस्य ज्ञानमयं तप नावेदविन्मनुते तं बृहंतमिति श्रुतिभ्याम् ।

४—**परमो मंत्रः** आत्मतत्त्वालोचनरूपो विचार. ।

५—तस्य अध्यारोपापवादात्मकत्वात्तद्द्वुगुणं नामद्वयं **सर्वभावकरः** जगत्कारणमित्यर्थ ।

६—**हरः** तत्प्रविलापनस्थानं सर्वभावन हर इति च पूर्वं कालरूपेण सर्वकर्तृत्वसंहर्तृत्वे उक्ते इदानीं तत्त्वदृष्ट्येति भेद ॥ तथा हि चतुर्विध प्रलय प्राकृतो ब्रह्मावसाने महदन्ताना कार्याणा नाश । दैनंदिनो ब्रह्मदिनावसाने त्रैलोक्यनाश । नित्योऽस्मदादिसुषुप्तौ सर्वनाश । एते त्रय. सबीजा इति उत्पत्तिमन्त आत्यन्तिकस्तु तत्त्वज्ञानेन सकारणस्य कार्यस्य नाश पुनरुत्पत्तिहीनो मोक्षाख्य इति शास्त्रप्रसिद्धि. ॥ ४२ ॥

७—दशबाहुरित्युक्ताना बाहूनामायुधान्याह **कमंडलुधरः।**

८—**धन्वी** धनुष्मान् ।

९—**बाणहस्तः** ।

११०—**कपालवान्** ब्रह्मण शिरश्छित्वा तत्कपालं धारयतीत्यर्थ ।

**अशनी शतघ्नी खड्गी पट्टिशी चायुधी महान्।**
**स्रुवहस्तः सुरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः।**
**उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा ४४**
**दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च।**
**शृगालरूपः सिद्धार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः ४५**

११—अशनिर्वज्रं तद्वान् [ **अशनी** ]।

१२—**शतघ्नी** शक्तिस्तद्वान्।

१३—उभयत्र व्रीह्यादिभ्यश्चेति मत्वर्थीय इनि. **खड्गी**

१४—पट्टिश खड्गविशेषस्तद्वान् [ **पट्टिशी** ]।

१५—आयुधं स्वस्य असाधारण शूल तद्वान् [ **आयुधी** ] शूलीत्यर्थ ।

१६—**महान्** पूज्य ॥ ४३ ॥

१७—स्रुवो यज्ञपात्र तद्धस्त' [ **स्रुवहस्तः** ]

१८—**सुरूपः** शोभनरूप ।

१९—**तेजः** तेजस्वी।

२०—**तेजस्करो निधिः** भक्ताना कान्तिप्रदो निधिरिव निधिरनुच्छेद्य ।

२१—**उष्णीषी** शिरोवेष्टनवान्।

२२—**सुवक्त्रः**।

२३—**उदग्रः** ऊर्जितरूप ।

२४—**विनतः** विनयवान्। ॥ ४४ ॥

२५—**दीर्घः** अत्युच्च ।

२६—**हरिकेशः** हरय इन्द्रियाण्येव केशा इव केशा रश्मयो यस्य स हरिकेश इन्द्रियद्वारा तत्तदर्थप्रकाशकर्ता यद्वा हरिश्च कश्च ईशश्च तेषा समाहार त्रिमूर्तिरित्यर्थ ।

२७—शोभनश्चासौ तीर्थं च **सुतीर्थः** महागुरु । क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वरस्तस्य वाचक प्रणव स पूर्वेषामपि गुरुरिति पतञ्जलिस्मरणात्।

२८—**कृष्णः**।

कृषिर्भूवाचक शब्दो णश्च निर्वृतिवाचक ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

इति श्रुतेरानन्दसन्मात्र इत्यर्थ. । ब्रह्मोत्तरखण्डे वा गोपशिशुं प्रति महादेवेन तवान्वये सप्तमोऽहं भविष्यामीति वरदानान्महादेवस्यैवावतार कृष्ण इत्यवगमात्।

२९—**शृगालरूपः** वणिजाऽवमानित ब्राह्मण प्रायोपविष्टं सान्त्वितुमिन्द्रेणैतद्रूपं धृतमिति मोक्षधर्मेषूपाख्यायते तेन शृगालरूप इन्द्रस्तदभिन्न इत्यर्थ ।

३०—**सिद्धार्थः** सिद्धा एव न तु साध्या अर्था अर्थनीया पदार्था यस्य।

३१—**मुण्डः** परिव्राट्।

३२—अत एव **सर्वशुभङ्करः** सर्वभूताभयप्रद ॥ ४५ ॥

**अजश्च बहुरूपश्च गन्धधारी कपर्द्यपि।**
**ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिङ्ग ऊर्ध्वशायी नभःस्थलः॥**
**त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः।**
**अहश्चरो नक्तंचरस्तिग्ममन्युः सुवर्चसः ॥ ४७**

३३—**अजः** अजात ब्रह्मादिष्वजन्व आपेक्षिकं देवेष्वमरत्ववत्

'हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्। विष्णुरित्थापरमस्य विद्वान् जातो बृहन्नभिपाति तृतीयम्' इति ब्रह्मविष्ण्वादिषु जात इति विशेषणात्। अजात इत्येनं कश्चिद्भीरु प्रपद्यते रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मा पाहीति रुद्रे एवाजातत्वदर्शनात्।

३४—**बहुरूपः** स्पष्टम्।

३५—**गन्धधारी** कुंकुमकस्तूर्यादिसुरभिद्रव्यधर्ता।

३६—**कपर्दी** कं जल पिबतीति कप ऋति सौत्रो धातु स्पर्धायामैश्वर्ये चास्ति ऋत्स्पर्धनैश्ययोरिति बोपदेव अस्मात् भावे क्विप् ऋतं ऐश्वर्य ददातीति ऋद कपश्चासौ ऋदश्चेति समास आङ्गण कपर्द महादेवस्य हि जटाजूटेन स्वर्गात्पतन्ती गङ्गा प्रथमं पीता पश्चाद्भगीरथप्रार्थनया तस्या निर्गमनसामर्थ्यं च दत्तमत स कपर्द' तद्वान् महेश्वर कपर्दी।

३७—**ऊर्ध्वरेताः** अविप्लुतब्रह्मचर्य ।

३८—तत्र हेतु' **ऊर्ध्वलिङ्गः** अधोलिङ्गो हि रेत सिञ्चति न तूर्ध्वलिङ्ग.।

३९—अत्रापि हेतु **ऊर्ध्वशायी** उत्तानशय ।

४०—एतेन नामत्रयेण उमया शिवो न ग्रस्तो न च स्पृष्ट यत असङ्ग इत्यर्थत्रयं दर्शितम् एव। सत्यपि नभ एव आकाशशब्दिता शक्तिरेव स्थलं आवासो यस्य स **नभःस्थलः** यथोक्तमार्भयुक्तै –

शक्ति शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञान क्रिया करणमासनजालमिच्छा।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं कि न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौले ॥इति ॥४६॥

४१—**त्रिजटी**।

४२—**चीरवासाः** स्पष्टे द्वे।

४३—**रुद्रः** प्राणा वाव रुद्रा एते हीद सर्वं रादयन्तीति श्रुते सर्वेषा प्राणरूप ।

४४—**सेनापतिः**।

४५—**विभुः** व्यापी।

४६—**अहश्चरः** देवादि ।

४७—**नक्तंचरः** राक्षसादिस्तदुभयरूपः।

४८—**तिग्ममन्युः** तीक्ष्णक्रोध

४९—**सुवर्चसः** सुतरा वर्चोऽध्ययनतपआदिज तेजो यस्मिन् समासान्तोऽच् आर्ष ॥ ४७ ॥

**गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः ।**
**सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्माम्बरावृतः ॥ ४८**
**कालयोगी महानादः सर्वकामश्चतुष्पथः ।**
**निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ॥ ४९**
**बहुभूतो बहुधरः स्वर्भानुरमितो गतिः ।**
**नृत्यप्रियो नित्यनर्तो नर्तकः सर्वलालसः ॥५०**
**घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिरुहो नभः**
**सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यतन्द्रितः॥५१**
**अधर्षणो धर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशकः ।**
**दक्षयागापहारी च सुसहो मध्यमस्तथा ॥ ५२**
**तेजोपहारी बलहा मुदितोऽर्थो जितोऽवरः**

५०—**गजहा**

वाराणस्यां पुरा यातो गजरूपी महासुरः ।
जघ्ने तं कुञ्जरं भीममवृष्यमपि शङ्करः ॥

इति स्कान्दे उपाख्यानात् गजासुरहन्ता ।

५१—**दैत्यहा** ।

५२—**कालः** मृत्युः संवत्सरादिर्वा ।

५३—**लोकधाता** लोकानामीश्वरः ।

५४—गुणानां दीनदयालुत्वज्ञानैश्वर्यादीनामाकरः खनिः [**गुणाकरः**] ।

५५—**सिंहशार्दूलरूपः** सर्वहिंस्रपशुरूपः ।

५६—आर्द्रचर्म गजकृत्तिस्तदेवाम्बरं तेनावृतः [**आर्द्रचर्माम्बरावृतः** ] ॥ ४८ ॥

५७—कालचक्रको योगी **कालयोगी** ।

५८—**महानादः** अनाहतध्वनिरूपः स च ईशोपनिषत्प्रसिद्धः ।

५९—सर्वे कामा विषया अस्मिन्निति **सर्वकामः** अस्मिन् सर्वे कामाः समाहिता इति श्रुतिः ।

६०—**चतुष्पथः** चत्वारः उपासनार्थं पन्थानोऽस्य स तथा ते च विश्वतैजसप्राज्ञाशिवध्यानरूपाः ।

६१—**निशाचरः** वेतालादिः ।

६२—प्रेतैर्भूतैश्च सह चरतीति **प्रेतचारी** ।

६३— **भूतचारी** ।

६४—**महेश्वरः** इन्द्रादिभ्य ईश्वरेभ्यो महान् ॥४९॥

६५—**बहुभूतः** सच्च त्यच्चाभवदिति सत्यं चानृतं च सत्यमभवदित्यन्तेन श्रुतमस्य बहुभवनम् ।

६६—**बहुधरः** महतः प्रपञ्चस्य धर्ता ।

६७—**स्वर्भानुः** मूलाज्ञानरूपस्तमःशब्दितो राहुः ।

६८—**अमितः** अनन्तः भूमेत्यर्थः ।

६९—**गतिः** मुक्तप्राप्यः ।

७०—**नृत्यप्रियः** ताण्डवेश्वरश्चिदम्बरमूर्तिः ।

७१—नित्यं सन्ततं नर्तो नर्तनं यस्य **नित्यनर्तः** ।

७२—**नर्तकः** नर्तयिता ।

७३—सर्वेषु लालसा प्रीतिरस्य [**सर्वलालसः**]विश्वबन्धुरित्यर्थः ॥ ५० ॥

७४—**घोरः** शिवस्य द्वे तन्वौ घोराऽन्या क्षुत्तृषादिरघोराऽन्या सन्तोषादिस्तद्रूपत्वाद् घोरः ।

७५—**महातपाः** महत्सृष्टिसंहारक्षमं तपः आलोचनं यस्य ।

७६—पाशयति स्वमायया बध्नातीति **पाशः** ।

७७—**नित्यः** ध्वंसरहितः ।

७८— **गिरिरुहः** पर्वतारूढः कैलासवासीत्यर्थः

७९—**नभः** व्योमवदसङ्गः ।

८०—**सहस्रहस्तः** ।

८१—**विजयः** ।

८२—**व्यवसायो** निश्चयः उद्योगो वा जयहेतुः ।

८३—अत एव **तन्द्रितः** तन्द्रा तमोमयी वृत्तिःप्रवृत्तिनिरोधिनी तद्रहितः अनिन्दित इति पाठे व्यवसायस्य विशेषणम् ॥ ५१ ॥

८४—**अधर्षणः** अप्रकम्प्यः ।

८५—**धर्षणात्मा** भयरूपः ।

८६—**यज्ञहा** बलिं यज्ञघ्नं बौद्धावताररूपेण वा यज्ञघ्नं विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्त्विति मन्त्रवर्णेन विष्ण्वाद्यनन्यत्वाच्छिवस्य तद्विवक्षयेदमुक्तम् ।

८७—**कामनाशकः** स्मरस्य भक्तकामप्रदत्वेन इच्छाया वा नाशकः ।

८८—**दक्षयागापहारी** स्पष्टम् ।

८९—**सुसहः** सौम्यः ।

९०—**मध्यम** ईषत्सौम्यः ॥ ५२ ॥

९१—**तेजोपहारी** अतिक्रूरः ।

९२—**बलहा** इन्द्ररूपेण बलनामानं दैत्यं हन्तीति तथा ।

९३—**मुदितः** कारणरूपेण नित्यमानन्दयुक्तः ।

९४—**अर्थः** धनरूपेणार्थनीयः ।

९५—**अजितः** संग्रामादौ कृष्णेन तु बाणासुरयुद्धे शिवाज्ञयैव शिवो जितो न स्वबलेन यथा भीष्मेण कृष्णः स्वप्रतिज्ञां समर्थयताऽनृतं कृतं भक्तपारवश्यदर्शनाय तद्वत् एतच्च पुराणे प्रसिद्धम् ।

९६—**अवरः** नास्ति वरो वरणीयो यस्मादन्य इत्यवरः ।

गंभीरघोषो गंभीरो गम्भीरबलवाहनः ॥ ५३
न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो वृक्षकर्णस्थितिर्विभुः ।
सुतीक्ष्णदशनश्चैव महाकायो महाननः ॥ ५४
विष्वक्सेनो हरिर्यज्ञः संयुगापीडवाहनः ।

तीक्ष्णतापश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित् ।
विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः ।
हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः ॥ ५६

१७—गम्भीरघोषो दुन्दुभिसमुद्रादिरूपेण ।

१८—गम्भीरो दुरवगाहतात्पर्यो वेदरूपेण ।

• १९—गभीर अगाध परैरनासादिततल बल सेना शारीर सामर्थ्यं वा वाहन वृषभश्च धर्मरूपो यस्य स गम्भीरबलवाहनः ॥५३॥

२००—न्यग्रोधरूपः न्यक् नीचै रोहतीति ऊर्ध्व-मूलो ह्यवाक् शाख एषोऽश्वत्थ सनातन इति श्रुतिप्रसिद्ध ससारवृक्ष ।

इति द्वितीयं शतकम् ।

१—न्यग्रोधः वटरूप वटनिकटवासी दक्षिणामूर्ति-रूप इत्यर्थ मार्कण्डेयदृष्टो वा एकार्णवस्थो वटस्थशायी बालकृष्णरूपी महाविष्णुर्वा ।

२-वृक्षस्य कर्ण इव कर्ण एकदेश पर्ण तत्र स्थितिर्यस्य स वृक्षकर्णस्थितिः वृक्षफलस्थितिरिति पाठे यथैकस्मा-द्बीजादेको वटस्ततोऽनन्तानि बीजानि तेभ्यस्तावन्तो वटा इति उत्तरोत्तरवृद्धिमत कार्यस्यानन्त्य तत्फलात तन्-ईषन्न्यूना स्थिति ससारवृक्षपालन यस्य स न्यूनत्व ज्ञानेन मार्जिते बीजे पुन प्ररोहाऽसम्भवात् अमार्जिते च तस्यानि-वार्यत्वादिति सूचयितु कल्प्य । मार्कण्डेयस्यापि एकार्णवे ब्रह्माण्डैकदेशे समारवटोऽप्येषोऽप्यनन्तप्ररोहोऽस्तीति भगवता समायारूपं वटव्याजेन प्रदर्शितम् । अत्र शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णु पितामह । संसारवैद्य सर्वज्ञ परमात्मेति मुख्यत नामाष्टकमिदं तस्य प्रतिपादकत्वात्शिवादिगति शैवे । विष्णुपितामहयोरपि शिवादनन्यत्वात्तदाचिनिरपि शब्दै शिव एवाभिधीयत इति दर्शनात् हरिवंशे कैलासयात्राया-नामानि तव गोविंद यानि लोके महाति च । नान्येन मम नामानि नात्र कार्या विचारणेति शिववचनाच्च । मत्सिन् पुराणे शिवपर्यायैर्विष्णुपर्यायैर्वा एक एव ईश्वरोऽभिधीयते शिवविष्ण्वोर्भेदमुत्तमानुत्तमभावं च कल्पयत पाषण्डिन शिरसि पततु वज्रपात यथोक्तं सूतसंहितायाम्—ब्रह्माण केशव विष्णु भेदभावेन मोहिता । पश्यन्त्येक न जानन्ति पाषण्डोपहता जना इति । अत एव माता धाता पितामह रुद्रो बहुशिरा बभ्रुरिति विष्णुनामसु ब्रह्मरुद्रनामानि पठ्यन्ते । तथा महादेवोऽव्ययो हरि , गणनाथ प्रजापतिरिति शिव-नामसु विष्णुप्रजापतिनामानि इतरेषामितरत्र गौणमुख्यवृत्ति-भेदेन प्रवृत्तिरिति कल्पनाया उदाहृतशैवस्कान्दवाक्यबाधि-तत्वेनानुत्थानात् । ' यो देवाना नामधा एक एव नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति । एक सन् बहुधा कल्पयन्ति एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यममातरिश्वानमाहु ' इत्याद्यागम-परिभूतत्वाच्चैन उपेक्ष्या एवेति दिक् । निपुणतरमुपपादितमे-तदादित्यविष्णुपोद्धाते ।

३- विभुः त्रिविधरूपेण हरिहरदुर्गागणेशार्कादिभि-रावताररूपेण भक्तानामनुग्रहाय भवतीति विभु ।

४—सुतीक्ष्णा अनेकब्रह्माण्डचर्वणक्षमा दशना यस्य सुतीक्ष्णदशनः ।

५—महाकायः ।

६—महाननः इति नदनु पूर्णे शरीरमुखे अनु-वर्णिते ॥ ५४ ॥

७—विष्वक् विषु सर्वत असुरानि पलायन्ते यस्य प्रयाणोद्योगे दैत्याना सेना इति विष्वक्सेनः सर्वत-पूज्यते सेना यस्येति वा अचु गतिपूजनयोरिति धातु ।

८—हरिः गजेन्द्रमोक्षणे आपद हरतीति हरि सर्व-सहर्ता वा ।

९ —यज्ञः सृष्टिबीजभूत तथा च श्रुति —

अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं तत प्रजा इति ।

१०—संयुगे सङ्ग्रामे आपाड इव आपीडो गजभूत वाहन वृषरूप यस्य [संयुगापीडवाहनः] वृषरूपे गज एव वाहनमपीत्यर्थ ।

११—तीक्ष्णतापोऽग्नि तदात्मा ।

१२—हरय अतिवेगवाहिन अश्वा यस्य स हर्यश्वः सूर्यस्तदात्मा ।

१३—सहायः जीवात्मा सखा द्वा सुपर्णा सयुजा सखायेति मन्त्रवर्णात् ।

१४—कर्मणा दर्शादीना काल यथोक्त वेत्तीति कर्मकालवित् ॥ ५५ ॥

१५—विष्णुना प्रसादितश्चक्रलाभार्थिनेति विष्णुप्रसादितः ।

१६—यज्ञः विष्णुरूपो यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुते ।

१७—समुद्रः ।

१८—वडवामुख वह्निविशेषो य सामुद्रं जल नित्यं शोषयति ।

१९—हुताशनसहाय वायु ।

२० --प्रशान्तात्मा निस्तरङ्गसागरस्वरूप ।

२१—हुताशनः अग्नि ॥ ५६ ॥

उग्रतेजा महातेजा जन्यो विजयकालवित्।
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सर्वविग्रह एव च ॥५७
शिखी मुंडी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्द्धगो बली
वेणवी पणवी ताली खली कालकटंकटः ५८
नक्षत्रविग्रहमतिर्गुणबुद्धिर्लयोऽगमः।
प्रजापतिर्विश्वबाहुर्विभागः सर्वगोऽमुखः ५९
विमोचनः सुसरणो हिरण्यकवचोद्भवः।
मेढ्रजो बलचारी च महीचारी स्रुतस्तथा ६०
सर्वतूर्यनिनादी च सर्वातोद्यपरिग्रहः।
व्यालरूपो गुहावासी गुहो माली तरङ्गवित्॥

२२—स एव **उग्रतेजाः** दु सहस्पर्श ।

**२३—महातेजाः** विश्वत प्रकाश

२४—जन्ये संग्रामे साधु **जन्यः**।

२५—यतो **विजयकालवित्** तेन शूरोऽपि कालज्ञानाभावे पराजितो भवतीति गम्यते।

२६—ज्योतिषा ग्रहनक्षत्राणामयनं गमनं वर्ण्यते तच्छास्त्रं **ज्योतिषामयनं** कालवित्कालरूपश्चेति नामद्वयार्थ ।

**२७—सिद्धिः** जयरूपा।

२८—सर्वं कालादिकं विग्रहो देहो यस्य स **सर्वविग्रहः** सन्धीति पाठे सन्धिविग्रहयानासनादिरूप॥५७॥

**२९—शिखी** शिखावान् गृहस्थ ।

**३०—मुण्डी** तद्रहित सन्यासी। एतेन नैष्ठिकब्रह्मचारिणोऽपि ग्रहणम्। दण्डीति पाठेपि पालाशं वैणव च दण्ट धारयतस्तावेव।

**३१—जटी** जटावान् वानप्रस्थ ।

**३२—ज्वाली** ज्वालावान् अर्चिरादिमार्ग शिखिप्रभृतिभि प्राप्यं।

३३—मूर्तौ शरीरे जायते आविर्भवतीति **मूर्तिजः**।

**३४—मूर्धगः** मूर्धनि सहस्रारे वा गच्छतीति मूर्धग ।

**३५—बली** बलवान् वलीति पाठे वलिमान् वृद्ध ।

३६—वेणुपणवतालाख्या वाद्यविशेषास्तद्वान **वेणवी**।

**३७—पणवी**।

**३८—ताली**।

३९—खल धान्यस्थान तद्वान् [ **खली** ] ।

**४०—कालकटंकटः** कालस्य यमस्य कटो वेष्टक आवरणमीश्वरीया माया तामपि कटत्यावृणोतीति कालकटंकट कटे वर्षावरणयोरिति धातु। शालेति पाठे वृक्षाणामावरको वायुस्तस्याप्यावरको व्योमरूपी ॥ ५८ ॥

४१—नक्षत्रविग्रहं ग्रहतारादिशरीरं कालचक्रं तदनुसारिणी मतिर्यस्य स दैवज्ञो वा [**नक्षत्रविग्रहमतिः**]। पाठान्तरे गमयति चालयति वा नक्षत्रविग्रहगम मतिर्वा।

४२—गुणेषु गुणकार्येषु विषयेषु बुद्धिर्यस्य [ **गुणबुद्धिः** ] जीवरूपीत्यथ ।

४३—लीयतेऽस्मिन् सर्वमिति **लय** ईश्वर ।

**४४—अगमः** अचञ्चल कूटस्थश्चिन्मात्र । यम इति पाठेऽपि तयोर्यमयिताऽयस्कान्ततुल्य स एव।

**४५—प्रजापतिः** विराट्।

४६—अत एव **विश्वबाहुः** विश्वेषा बाहव एव बाहवो यस्य स तथा।

**४७—विभागः** विभज्यते पृथक् क्रियत इति व्यष्टिकार्यरूप ।

**४८—सर्वगः** समष्टिकार्यरूप ।

४९—अत एव **अमुखः** भोगसाधनहीन अभोक्तेति यावत्। सर्वतोमुख इति पाठे त्वेकं नाम ॥ ५९ ॥

**५०—विमोचनः** संसारमोचक ।

**५१—सुसरणः** सुप्राप । सुशरण इति पाठे शोभनं शरणं रक्षितृत्वं यस्य अपुनरावृत्तिगृहमित्यर्थ ।

५२—हिरण्यकवच- हरतीति हिरण्य माया तद्विकारभूतं कवचमिव कवच आवरकं शरीरम्। हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखमिति श्रुतेस्तत्र उद्भव आविर्भावो यस्य स **हिरण्यकवचोद्भवः**।

**५३—मेढ्रजः** मेढ्रे लिङ्गे आविर्भवतीति मेढ्रज ।

**५४—बलचारी** वनेचर शबर । देवा वै बले गा- पर्यपश्यन्निति ब्राह्मणाद्बलशब्दस्य वनवाचित्वम्।

५५—महीं कृत्वा चरतीति **महीचारी** ।

**५६—स्रुतः** सर्वत्र गत प्राप्त, कर्मणि क्त ॥ ६० ॥

**५७—सर्वतूर्यनिनादी** स्पष्टम्।

**५८—सर्वातोद्यपरिग्रहः** आतोद्या प्रतोदनार्हा जीवपशवस्ते एव सर्वे परिग्रह- कुटुम्बं यस्य, पशुपतिरित्यर्थ।

**५९—व्यालरूपः** शेषात्मा ।

**६०—गुहावासी** योगी जैगीषव्यादि ।

**६१—गुहः** कार्तिकेय ।

**६२—माली** वनमालाधारी।

**६३—तरङ्गवित्** तरङ्गतुल्यानि विषयसुखानि विन्दति लभते इति तथा तरङ्गवित्॥ ६१ ॥

**त्रिदशस्त्रिकालधृक्कर्मसर्वबन्धविमोचनः ।**
**बंधनस्त्वसुरेंद्राणां युधि शत्रुविनाशनः ॥ ६२**
**सांख्यप्रसादो दुर्वासाः सर्वसाधुनिषेवितः ।**
**प्रस्कन्दनो विभागज्ञो अतुल्यो यज्ञभागवित्६३**
**सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः ।**
**हैमो हेमकरोऽयज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ॥६४**
**लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः**
**संग्रहो निग्रहः कर्ता सर्पचीरनिवासनः ॥ ६५**
**मुख्योऽमुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः ।**
**सर्वकालप्रसादश्च सुबलो बलरूपधृक् ॥ ६६**

६४—**त्रिदशः** तिस्रो दशा जन्मस्थितिनाशा प्राणिना यस्मादिति ।

६५—त्रिकालजातं वस्तु धारयतीति **त्रिकालधृक्।** यथोक्तं—

अनागतमतीतं च भाविष्यत् स्थूलमण्वपि ।
तथा दूरमदूरं च निमेष कल्प इत्यपि ॥
चिदात्मनि स्थितान्येव पश्य मायाविजृंभितमिति ।

६६—कर्माणि सञ्चितक्रियमाणानि बन्धाश्चाविद्याकामात्मका तेभ्यो मोचयतीति **कर्मसर्वबन्धविमोचनः ।**

६७—**बन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां** वामनरूपेण बलेर्बन्धकर्ता बहुवचनं कल्पभेदाभिप्रायम् ।

६८—**युधि शत्रुविनाशनः** स्पष्टार्थम् ॥६२॥

६९—**सांख्यप्रसादः** आत्मानात्मविवेक साख्यं तेनैव प्रसीदति ज्ञानैकलभ्य इत्यर्थ., अथवा साख्यज्ञानप्रदो दत्तात्रेय इत्यर्थ ।

७०—**दुर्वासाः** तस्यैव सोदर्यो रुद्राश ।

७१—**सर्वसाधुनिषेवितः** इति ब्राह्मणाना राजा सोम उक्त ।

७२—**प्रस्कन्दनः** ब्रह्मादीनामपि च्यावयिता। मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानामिति मन्त्रवर्ण ।

७३—**विभागज्ञः** प्राणिना यथोचितं तत्तत्कर्म फलाना विभाजक ।

७४—अत एव **अतुल्यः** न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिक कुतोऽन्य इति **गीतावचनात।**

७५—**यज्ञविभागवित्** यज्ञियाना हविषा विभागाभिज्ञ ॥ ६३ ॥

७६—सर्वत्र वासो वसतिस्थानमस्य **सर्ववासः** ।

७७—**सर्वचारी** ।

७८—**दुर्वासाः** दुस्थं आर्द्रगजकृत्तिरूपं वासो यस्य दुर्लभं वा वासो यस्य अनन्तपारत्वादिति दुर्वासा ।

७९—**वासवः।**

८०—**अमरः।**

८१—**हैमो** हिमस्यायं समूहो हैमो हिमालयरूपी ।

८२—**हेमकरो** जाम्बूनदस्य सुवर्णस्य कर्ता जंबुद्वीपचिन्हभूतो जबूवृक्ष , तस्य हि फलं प्रस्कन्नं सुवर्णत्वं भजतीत्युपाख्यायते पुराणेषु ।

८३—**अयज्ञः** निष्कर्मा ।

८४—अथ च **सर्वधारी** सकलकर्मफलधर्ता ।

८५—धराणा दिग्गजशेषकूर्मादीनामप्युत्तम [ **धरोत्तमः** ] अनन्याधार सन् तै सर्वै सहितस्य ब्रह्माडस्य धर्ता ॥ ६४ ॥

८६—**लोहिताक्षः** रक्तनेत्र. ।

८७—महांति विश्वव्यापकानि अक्षाणि इंद्रियाणि यस्य स **महाक्षः** ।

८८—विजयावह अक्षोपलक्षितो रथो यस्य स **विजयाक्षः** ।

८९—**विशारदः** पडित. ।

९०—**संग्रहः** संगृह्णाति बाणादीन् दासान् स्वीकरोतीति संग्रह ।

९१—**निग्रहः** निगृह्णाति इन्द्रादीनुत्सिक्तान् दंडयतीति निग्रह ।

९२—अत एव **कर्ता** ।

९३—सर्पा एव चीरस्य वस्त्रस्य निवासनं विष्टम्भकं यस्य स **सर्पचीरनिवासनः** वसु स्तम्भेऽस्य रूपम् ॥ ६५ ॥

९४—**मुख्यः** परम ।

९५—**अमुख्यः** अवम , देवानामित्यर्थ अग्निर्वै देवानामवमो विष्णु परमस्तदंतरेण सर्वा अन्या देवता इति ब्राह्मणात् सर्वदेवतामय इत्यर्थ ।

९६—**देहः** उपचित अत्यंतपुष्ट इति यावत् ।

९७—काहला वाद्यविशेषस्तद्वान् **काहलि** आर्षत्वादिञ् प्रत्यय देहःरिरित्यपि पठन्ति ।

९८—**सर्वकामदः** ।

९९—**सर्वकालप्रसाद** ।

३००—**सुबलः** शोभनं परपीडापहारि बलं सामर्थ्यं यस्य दयानिधिरित्यर्थ ।

### इति तृतीयं शतकम् ।

१—बलो बलरामस्तद्रूपधारी **बलरूपधृक्** बलं च रूप च तयोर्धर्ता वा ॥ ६६ ॥

सर्वकामवरश्चैव सर्वदः सर्वतोमुखः ।
आकाशनिर्विरूपश्च निपाती ह्यवशः खगः ६७
रौद्ररूपोऽंशुरादित्यो बहुरश्मिः सुवर्चसी ।
वसुवेगो महावेगो मनोवेगो निशाचरः ॥ ६८

सर्ववासी श्रियावासी उपदेशकरोऽकरः ।
मुनिरात्मनिरालोकः संभग्नश्च सहस्रदः ॥६९
पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो विशांपतिः ।
उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः

२—**सर्वकामवरः** सर्वेषा काम्यमानाना वर श्रेष्ठ मोक्ष इत्यर्थ ।

३—**सर्वदः** स्पष्टम् ।

४—**सर्वतोमुखः** इति सर्वत पाणिपादत्वादेरुप-लक्षणम् ।

५—**आकाशनिर्विरूपश्च** आकाशादिव निर्गच्छंति विविधानि रूपाण्यस्मादिति स तथा । अनेन वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपं संपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्त एवमेवैष संप्रसादोस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपं संपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तम· पुरुष इति श्रुतेरर्थो दर्शित , स च यथा आकाशतादात्म्यं प्राप्ता वाय्वादयोऽशरीरा अविभाव्यमानस्वरूपा· संतोऽपि प्रावृडारम्भे तत· पृथग्भूय स्वेन रूपेणोपसंपन्ना भूत्वा निर्वाणदीपवत् पर ज्योतिरात्मनाभिनिष्पन्ना भवन्ति एवं देहतादात्म्यापन्नः संप्रसादाख्यो जीवो देहात्पृथगाविभाव्यमानस्वरूपोऽपि ध्यानकाले देहातरवद्देहाद्व्युत्थाय स्वेनापहतपाप्मादिगुणाष्टकयुक्तेन रूपेणाभिनिष्पन्नस्तद्वदेव परं ज्योतिर्निर्विशेषं ब्रह्माभिमुख्येन प्रत्यगभेदेन निष्पद्यत इति ।

६—देहगर्ते निपतितुं तत्तादात्म्यं प्राप्तु शीलमस्येति **निपाती** ।

७—अत एव **अवशः** देहसंबंधादपरिहार्यदु खादि-संबंध ।

८—**खगः** हार्दाकाशग शुद्धेन रूपेणेत्यर्थ·, हार्दाकाश एव तावदसंगस्तदन्तर्गतस्तु सुतरामसंग· सन् निपाती अवशश्च भवत्यहो मोहस्य माहात्म्यमपारमिति भाव· ॥ ६७ ॥

९—**रौद्ररूपो** महाभैरव ।

१०—**अंशुः** देवताभेद ।

११—**आदित्यः** तत्सहचारी भगापरनामा देव , तस्या अंशुश्च भगश्चाजायेतामिति ब्राह्मणात् ।

१२—**बहुरश्मिः** सूर्य एव ।

१३—शोभनं वर्चस्तेज सुवर्चसं तद्वान् **सुवर्चसी** ।

१४—**वसुवेगः** वासयति स्थापयत्येतत्सर्वं आत्मनीति वसुर्वायुः वायुर्ह्येवैतान्संवृङ्क्ते इति श्रुते· तस्य वेग इव वेगो यस्य स तथा ।

१५—**महावेगः** ततोऽप्यधिकवेग ।

१६—**मनोवेगः** मनसोऽप्यधिकवेग मनसो जवीय इति मंत्रवर्णात् ।

१७—**निशाचरः** निशेव निशा अविद्या तया चरति विषयान् भुंक्ते स तथा ॥ ६८ ॥

१८—सर्वेषु शरीरेषु वसतीति **सर्ववासी** ।

१९—श्रिया सह वसतीति **श्रियावासी** अलुकसमास श्रीरत्र–ऋच सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सतामिति श्रुत्युक्तविद्या ग्राह्या ।

२०—अत एव **उपदेशकरः** ।

२१—**अकरः** उपदेशमपि तूष्णींभावेनास्थानं यथोक्तं—

चित्र वटतरोर्मूले वृद्धा शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यान शिष्यास्तु च्छिन्नसंशया ॥

इति । बाष्कलिना च बाध्व पृष्ट· पुन· पुनस्तूष्णींभूत एव स्थित्वा तृतीये प्रश्ने प्राह–ब्रूम खलु त्वं तु न विजानास्युपशान्तोऽयमात्मेति ।

२२—अकरत्वादेव **मुनिः** मौनवान् ।

२३—आत्मनि जीवे निश्चित्य देहादुपाधेर्वा निर्गत्य आलोचयतीति **आत्मनिरालोकः** ।

२४—**संभग्नः** सम्यक् सेवित , भज सेवायामित्यस्य रूप न तु भंजे ।

२५—अत एव **सहस्रदः** अनन्तस्य धनादेर्दाता ॥ ६९ ॥

२६—**पक्षी** गरुत्मान् ।

२७—**पक्षरूपः** मित्ररूपेण सहाय ।

२८—**अतिदीप्तः** कोटिसूर्यप्रतीकाश शत्रुतेजोभिभावक ।

२९—अत एव सर्वासा विशा प्रजाना पति [**विशांपतिः**] सार्वभौम· ।

३०—उन्मादयतीति **उन्मादः** मोहक ।

३१—यत· **मदनः** अनङ्ग· ।

३२—**कामः** काम्यमान· स्त्र्यादिविषयरूप· ।

३३—**अश्वत्थः** संसारवृक्ष· कामप्रदो वा वृक्ष एव

३४—**अर्थकरः** धनादिप्रद ।

३५—**यशः** कीर्तिप्रदश्च ॥ ७० ॥

**वामदेवश्च वामश्च प्राग्दक्षिणश्च वामनः।**
**सिद्धयोगी महर्षिश्च सिद्धार्थः सिद्धसाधकः**
**भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विपणो मृदुरव्ययः।**
**महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवां पतिः ७२**
**वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च।**
**वृत्तावृत्तकरस्तालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ७३**
**वाचस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः।**
**ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी विचारवित्**
**ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकवान्**

३६—**वामदेवः** वामाना कर्मफलाना देव इव देवो राजा विभाजक ।

३७—**वामः** कर्मफलरूप विषयसंपर्कजानन्दमात्र-स्वरूप इत्यर्थ ।

३८—**प्राक्** सर्वेषामाद्य ।

३९—**दक्षिणः** त्रैलोक्याक्रमणसमर्थ ।

४०—**वामनः** बलिबन्धनकर्ता ।

४१—**सिद्धयोगी** सनत्कुमारादि ।

४२—**महर्षिः** वसिष्ठादि ।

४३—**सिद्धार्थः** ऋषभदत्तात्रेयादि ।

४४—सिद्धश्चासौ साधकश्च [**सिद्धसाधकः**] ज्ञानो-त्तरं संन्यासमभीप्सन् याज्ञवल्क्यादिर्विद्वत्संन्यासी ॥ ७१ ॥

४५—**भिक्षुः** लिङ्गधारी हंस ।

४६—**भिक्षुरूपः** अलिङ्ग. परमहंस ।

४७—अत एव **विपणो** निर्व्यवहार दण्डादि-रहितः ।

४८—**मृदुः** सर्वभूताभयदाता ।

४९—**अव्ययः** निर्विकार मानापमानादिप्राप्तावपि हर्षविषादशून्य ।

५०—**महासेनः** कार्तिकेयो देवसेनापति ।

५१—**विशाखः** तत एव इन्द्रेण वज्रप्रहारे कृते जातस्तत्सहाय ।

५२—**षष्टिभागः** षष्टिस्तत्त्वानि यस्य भागो भोज्य अतिथिभाग इतिवत् स षष्टिभाग तानि च जागरितस्थान इत्यादिना माण्डूक्यादौ प्रसिद्धानि यथा जाग्रदवस्था बहि-र्मुख प्रज्ञानं सप्त शब्दादय पञ्च मन्तव्यबोद्धव्याभ्या सहिता स्वसङ्कल्पोत्था विषया एकोनविंशतिभोगद्वाराणि दशेन्द्रियाणि पञ्चप्राणमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि चेति स्थूलं भोग्यं शब्दाद्याश्रयभूतामिति एकोनत्रिंशत्। तथा स्वप्ना-वस्था अंतर्मुखं प्रज्ञानं वामनामयाश्च इतरे सर्वे सूक्ष्मभो-ग्याता एकोनत्रिंशदेव। तथा सुषुप्त स्थानं चेतश्च सूक्ष्मतरं मुखं इति षष्टि भोग्यवर्ग यस्तु भोक्ता स साक्षी आनन्द-रूपोऽस्यामवस्थाया प्रत्यगानन्दसूक्ष्माभिश्चेतोवृत्तिभिर्भुङ्क्ते इति षष्टिभाग ।

५३—[ **गवां पतिः** ] गवामिन्द्रियाणा पतिश्चालक ॥ ७२ ॥

५४—**वज्रहस्तः** पर्वतभेत्ता शक्र ।

५५—विष्कम्भो विस्तारस्तद्वान् **विष्कम्भी**।

५६—**चमूस्तम्भनो** दैत्यसेनास्तम्भनकृत् ।

५७—वृत्तं युद्धे रथेन मण्डलाना करणं आवृत्तं परसना भित्त्वा पुनरक्षतेन आगमनं तयो कर कर्ता **वृत्तावृत्त-करः**। ऋतावृत्तेति पाठे निष्कपटमावृत्तकर्ता ।

५८—**तालः** संसारसिन्धोस्तलं आधारं स्थानं वेत्तीति ताल शुद्धब्रह्मवित् ।

५९—**मधुः** वसन्त ।

६०—मधुक कोयष्टिकाख्य पक्षी तद्वल्लोचने यस्य स **मधुकलोचनः** मध्वेव, मधुकं क्षौद्रं तद्वत्पिङ्गनेत्र इति वा ॥ ७३ ॥

६१—वाचस्पतिं देवपुरोहितं अनुजात **वाचस्पत्यः** पुरोहितकर्मकर्ता बृहस्पतिर्हि वै देवाना पुरोहितस्तमन्वन्ये मनुष्यराज्ञा पुरोहिता इति ब्राह्मणे बृहस्पतिं य सुभृतं बिभर्तीति मन्त्रस्थबृहस्पतिपदस्य व्याख्यानात् ।

६२—**वाजसनः** शाखाविशेषप्रवर्तकोऽध्वर्युकर्म-कर्ता ।

६३—**नित्यमाश्रमपूजितः** स्पष्टम् ।

६४—**ब्रह्मचारी** ब्रह्मणि चरतीति ब्रह्मनिष्ठ ।

६५—लोकेषु ब्राह्मणादिगृहेषु चरति भक्षयतीति **लोकचारी** भिक्षु ।

६६—**सर्वचारी** सर्वग 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति' 'स इदं सर्वं भवति' इति श्रुतेरात्मज्ञानात् सार्वात्म्यं प्राप्त इत्यर्थ ।

६७—**विचारवित्** विपरीतं चरणं अन्तर्मुखतया गमनं तद्वेत्ता ॥ ७४ ॥

६८—ईष्टे इति **ईशानो** नियन्ताऽन्तर्यामीत्यर्थ. । लट शानच ।

६९—**ईश्वरः** अश्नोति व्याप्नोतीति । अश्नोतेराशुक-र्मणि वरट् चेत्युणादिसूत्रेण अशूङ् व्याप्ताविल्यस्मात् वरट् चात् क्लिशेरीचोपधाया इति पूर्वसूत्रादनुवृत्त्या उपधाया ईत्वं च ।

७०—**कालः** कलयति सर्वेषा पुण्यपापादिकं तत्तत्फल-प्रदानार्थं संख्यातीति काल चित्रगुप्तात्मा ।

७१—**निशाचारी** ब्राह्मया निशाया महाप्रलयरूपा-यामपि चरति प्रत्यगानन्दं अनुभवतीति निशाचारी ।

७२—पाति रक्षतीति पिनाको धनुर्विशेषस्तद्वान् [**पिनाकवान्**] पिनाकी । पिनाकादयश्चेति पातेरित्वमा-कप्रत्ययो नुडागमश्च निपात्यते ।

**निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नन्दिकरो हरिः॥७५**
**नन्दीश्वरश्च नन्दी च नन्दनो नन्दिवर्द्धनः।**
**भगहारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहः॥७६**
**चतुर्मुखो महालिंगश्चारुलिंगस्तथैव च।**
**लिंगाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः**

**बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः**
**इतिहासः सकल्पश्च गौतमोऽथ निशाकरः॥७८**
**दम्भो ह्यदम्भो वैदम्भो वश्यो वशकरः कलिः**
**लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यनौषधः॥ ७९**
**अक्षरं परमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च।**

---

७३—[ **निमित्तस्थः** ] निमित्तं लक्ष्य दैत्यादि नत्रस्थस्तदन्तर्यामी।

७४—**निमित्त** तद्रूपश्च विश्वरूपत्वात्।

७५—**नन्दिः** समृद्धि एषाऽस्य परमा संपदिति श्रुतेर्ज्ञानसंपद्रूप।

७६—**नन्दिकरः** सपत्कर।

७७—**हरिः** हनुमान् रामरूपस्य विष्णो सहाय **७५**

७८—नन्दी शिवस्य गणो वाहनं वा तस्येश्वर [ **नन्दीश्वरः** ]।

७९—**नन्दी** गणरूपश्च।

८०—**नन्दन** आनन्दयिता।

८१—**नन्दिवर्धनः** दत्ताया अपि सपदश्छेदक।

८२—भगानि इन्द्रादीनामैश्वर्याणि तान्यपि हरतीति **भगहारी**।

८३—**निहन्ता** मृत्युरूपेण।

८४—**कालः** कलाना चतुःषष्ठिसंमिताना निवास काल।

८५—अत एव **ब्रह्मा** अतिशयेन महान्।

८६—**पितामहः** पितुर्विष्णोरपि पिता। इन्दिरा लोकमाता मेति लक्ष्म्या लोकमातृत्वस्य प्रसिद्धत्वेन तद्भर्तुर्विष्णोर्लोकपितृत्वात्॥ ७६॥

८७—**चतुर्मुखः** विधाता।

८८—महत् सर्वदेवासुरादिपूज्य लिङ्गमस्य स **महालिङ्गः**।

८९—**चारुलिङ्गः** रमणीयवेष।

९०—**लिङ्गाध्यक्षः** लीनमावृत्तमर्थं गमयन्तीति लिङ्गानि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि तेषामध्यक्षः प्रवृत्तिनिवृत्तिनियामकः।

९१—**सुराध्यक्षः** चक्षुरादिप्रमाणानामधिष्ठातार सुरास्तेषामप्यध्यक्ष।

९२—**योगाध्यक्षः** तेषामेवेन्द्रियदेवताना हार्दाकाशे एकीकरणं योगः अत्र ह्येते सर्वे एक भवन्तीति श्रुते तस्याप्यध्यक्षः एतत्कृपयैव योगः प्राप्य इत्यर्थः।

९३—**युगावहः** युगानि पुण्यपापतारतम्यवन्ति कृतत्रेताद्वापरकालिमज्ञानि आवहति निर्वर्तयतीति तथा॥७७॥

९४—बीज धर्माधर्मौ तयोरध्यक्ष फलदाता **बीजाध्यक्षः**।

९५—**बीजकर्ता** स्पष्टम्।

९६—**अध्यात्मानुगतः** आत्मानमाधिकृत्य प्रवृत्तं शास्त्रं अनुसरन् साधक इत्यर्थ।

९७—**बलः** बलानि धृत्यादीनि वर्त्तन्तेऽस्मिन्निति बल मत्वर्थीयार्श आद्यजन्तम्।

९८—**इतिहासो** भारतादि।

९९—**सकल्पः** यज्ञकल्पकेन प्रयोगविधिविचारेण सहितो मीमासान्यायसंघ।

४००—**गौतमः** तर्कशास्त्रप्रणेता।

**इति चतुर्थं शतकम्।**

—०:०—

१—**निशाकरः** चंद्रश्चान्द्रव्याकरणप्रणेता॥ ७८॥

२—**दभः** दभ्नाति शत्रून् दमयतीति तथा।

३—**अदंभः** नास्ति दम्भो दमको यस्य।

४—**वैदभः** दभो धर्मध्वजित्व तद्विरहिता विदंभास्तेषामयं स्वभूतो वैदभ।

५—**वश्यो** भक्तपराधीन।

६—**वशकरः** अन्यान्वशेकर्तुं समर्थ वंश्यो, वशकर इति पाठे स्पष्टोर्थ।

७ **कलिः** अन्योन्यं देवासुरादीना वैरकर्ता।

८—**लोककर्ता** भौतिकचतुर्दशभुवननिर्माता।

९—**पशुपतिः** ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताना जीवपशूना पति पालक।

१०—**महाकर्ता** पंचभूतानामपि स्रष्टा।

११—**अनौषधः** व्रीह्याद्यन्नजातीयरहितः अभोक्तेति यावत्॥ ७९॥

१२—**अक्षरं** अव्ययम्।

१३—**परमं ब्रह्म** अन्नाद्यवरब्रह्मापेक्षया परमं उत्कृष्ट आनंदमात्रस्वरूपम्।

१४ **बलवत्** बलाभिमानिदेवतारूपम्।

१५—अत एव शक्नोतीति **शक्रः** शतक्रतुशब्दावयवयोरन्त्यवर्णयोर्लोपेन वा शक्र।

नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो गतागतः
बहुप्रसादः सुस्वप्नो दर्पणोऽथ त्वमित्रजित् ।
वेदकारो मन्त्रकारो विद्वान्समरमर्दनः ॥ ८१
महामेघनिवासी च महाघोरो वशीकरः ।
अग्निज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो हविः
वृषणः शङ्करो नित्यं वर्चस्वी धूमकेतनः ।
नीलस्तथाङ्गलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः ॥ ८३

स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः
उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भपरायणः ॥ ८४
कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इंद्रियं सर्वदेहिनाम् ।
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः ८५
महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो निशालयः ।
महान्तको महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः ॥ ८६

१६—**नीतिः** दंड्येषु दण्डप्रणयनादि ।

१७—**अनीतिः** तद्विपर्यय ।

१८—**शुद्धात्मा** विमलचित्त ।

१९—**शुद्धः** दोषास्पर्शी ।

२०—**मान्यः** मानार्ह ।

२१—**गतागतः** यातायातवान्ससार' । ॥ ८० ॥

२२—**बहुप्रसादः** ।

२३—**सुस्वप्नः** स्वप्नावस्थाभिमानी तैजसोऽप्ययमेव ।

२४—**दर्पणः** दर्पण इव विश्वप्रतिबिंबदर्शनास्पदम् ।

२५—**अमित्रजित्** बाह्याभ्यन्तरशत्रुजित् ।

२६—**वेदकारो** नि श्वसितमेतद्यदृग्वेद इत्यादिश्रुते- र्वेदाना कर्ता ।

२७—[**मन्त्रकारः**] मन्त्रा वेदादन्ये तान्त्रिकपौरा- णिका देशभाषामया तेषा कर्ता मन्त्रकर्ता ।

२८—**विद्वान्** ।

२९—**समरमर्दनः** समरे शत्रूणा मर्दन । ॥८१॥

३०—महान्तो मेघा प्रलयकालिकास्तेषु तदधिष्ठातृ- देवतात्वेन वसतीति **महामेघनिवासी** ।

३१—**महाघोरः** प्रलयकर्तृत्वात् ।

३२—वशो सर्वमस्यास्तीति **वशी** ।

३३—कृणोति हिनस्ति जगदिति **करः** सहारकर्ता ।

३४—अग्नेरिव ज्वाला तेजो यस्य स **अग्निज्वालः**।

३५—ततोऽपि **महाज्वालः** ।

३६—**अतिधूम्रः** कालाग्निरूपेण सर्वदाहकालेऽत्यन्तं धूम्रमय ।

३७—**हुतः** आदिकर्मणि क्त होमेन प्रीत ।

३८—**हविः** पयआदिरूप ॥ ८२ ॥

३९—**वृषणः** वर्षति कर्मफलानीति वृषणो वर्म गुणा- भाव आर्ष , यद्वा वृषो धर्मोस्त्यस्मिन्निति।वृषण पामा- दित्वान्न प्रत्यय. ।

४०—**शङ्करः** सुखप्रद ।

४१—**नित्यं वर्चस्वी** ।

४२—**धूमकेतनः** वन्हिरूप ।

४३—**नीलः** मरकतवर्ण ।

४४—तथेति तत एव हेतो **अङ्गलुब्धः** अङ्ग स्वीयोऽ- वयव लिङ्गमिति यावत् । तत्र लुब्ध नीलेऽनिले वा लिङ्गे नित्यं सन्निहित इत्यर्थ ।

४५—**शोभनः** कल्याणहेतु ।

४६—**निरवग्रहः** प्रतिबन्धशून्यो मनोरथवृष्टि- कर्ता ॥ ८३ ॥

४७—**स्वस्तिदः** ।

४८—**स्वस्तिभावः** सुतरा आस्ते भाव सत्ताऽ- स्येति स्वस्तिभाव ।

४९—**भागी** यज्ञे भागवान् ।

५०—**भागकरः** यज्ञियहविषा विभाजक' ।

५१—**लघुः** शीघ्र. ।

५२—**उत्सङ्गः** असङ्ग' ।

५३—**महाङ्गः** महालिङ्ग. ।

५४—महान् गर्भ उत्पादनीयन्वे परायण अवश्यं गम्यं यस्य स **महागर्भपरायणः** प्रजननात्मक' कन्दर्प इत्यर्थ' ॥ ८४ ॥

५५—**कृष्णवर्णो** विष्णुरूपेण ।

५६—**सुवर्णः** श्वेतवर्ण साम्बरूपेण ।

५७—**सर्वदेहिनामिन्द्रियं** सर्वेन्द्रियरूप ।

५८—**महापादः** ।

५९—**महाहस्तः** ।

६०—**महाकायः** ।

६१—**महायशाः** ॥ ८५ ॥

६२—**महामूर्धा** ।

६३—**महामात्रः** महाप्रमाण ।

६४—**महानेत्रः** ।

६५—**निशालयः** निशेव निशा अविद्या तस्या लयो यत्र ।

६६—**महान्तकः** मृत्युमृत्यु ।

६७—**महाकर्णः** ।

६८—**महोष्ठः** ।

६९—**महाहनुः** ॥ ८६ ॥

महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानभाक्
महावक्षा महोरस्को ह्यन्तरात्मा मृगालयः ॥
लंबनो लंबितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः ।
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः॥८८
महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः ।
प्रसन्नश्च प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः ॥ ८९
स्नेहनोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः ।
वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः ॥ ९०
गण्डली मेरुधामा च देवाधिपतिरेव च ।
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ९१
यजुः पादभुजो गुह्यः प्रकाशो जङ्गमस्तथा ।
अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यः सुदर्शनः ९२
उपकारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनच्छविः॥

७०—**महानासः** ।
७१—**महाकम्बुः** महाकण्ठ ।
७२—**महाग्रीवः** ।
७३—**श्मशानभाक्** श्मना शरीराणा शान तन्करणं भजतीति श्मशानभाक् देहबन्धच्छेत्तेति यावत् ।
७४—**महावक्षाः** रक्ष इति पाठे महती रक्षा रक्षणं यस्य स तथा ।
७५—**महोरस्कः** ।
७६—**अन्तरात्मा** ।
७७—**मृगालयः** अङ्काधिरोपितमृग इत्यर्थ. ॥८७॥
७८—लम्बन्तेऽस्मिन्ननेकानि तरौ फलानीव ब्रह्माण्डानीति **लम्बनः** ।
७९—**लम्बितोष्ठः** प्रलयकाले विश्वं ग्रसितुं लम्बितौ दीर्घाकृतौ ओष्ठौ येन सः ।
८०—महती ब्रह्मादिभिरप्यजय्या माया यस्य स **महामायः** ।
८१—**पयोनिधिः** क्षीरसमुद्र ।
८२—**महादन्तः** ।
८३—**महादंष्ट्रः** ।
८४—**महाजिह्वः** ।
८५—**महामुखः** ॥ ८८ ॥
८६—**महानखः** नृसिंह· ।
८७—**महारोमा** वराह ।
८८—**महाकोशः** महोदर ।
८९—**महाजटः** ।
९०—**प्रसन्नः** ।
९१—**प्रसादः** प्रसन्नता ।
९२—**प्रत्ययः** अनुभव ।
९३—**गिरिसाधनः** पर्वत एव साधनं रणे जय हेतुर्यस्य गिरिधन्वेत्यर्थ. ॥ ८९ ॥
९४—स्निह्यतीति **स्नेहनः** पितृवत्प्रजासु स्नेहवान् ।
९५—**अस्नेहनः** तद्विपरीत· ।
९६—**अजितः** ।
९७—**महामुनिः** अत्यन्त मौनवान् मननशीलो वा ।
९८—**वृक्षाकारः** संसारवृक्ष एवाकारो यस्य ।
९९—**वृक्षकेतुः** संसारवृक्ष एव केतुर्ज्ञापको यस्य न हि देहेन्द्रियाण्यनुपादाय ब्रह्म जिज्ञासितुं शक्यम् ।
५००—**अनलो** नास्ति अलं पूर्तिर्यस्य भुञ्जानस्य सोऽनलोऽग्नि ।

इति पञ्चमं शतकम ।

१—वायुरेव वाहनं देशाद्देशान्तरं प्रति गते साधन स **वायुवाहनः** ॥ ९० ॥
२—गण्ड इव गण्डो भूमेरुच्छूनप्रदेशः क्षुद्रशैलास्तेषु लीयते गच्छतीति **गण्डली**: गण्डशब्दपूर्वात् लीं गतावस्मात् क्विप् । विभक्तिलोप सुपा सुलुगिति पूर्वसवर्णो वा आर्ष ।
३—**मेरुधामा** ।
४—**देवाधिपतिः** ।
५—**अथर्वशीर्षः** ।
६—**सामास्यः** ।
७—**ऋक् सहस्रामितेक्षणः** ॥ ९१ ॥
८—**यजुः पादभुजः**
९—**गुह्यः** उपनिषद्वेद्य ।
१०—**प्रकाशः** कर्मकाण्ड ।
११—**जङ्गमः** नृपश्वादिरूप ।
१२—अर्थोऽर्थनं याच्ञा अमोघोऽर्थो यत्र स **अमोघार्थः** ।
१३—**प्रसादः** प्रसीदतीति दयालु· ।
१४—**अभिगम्यः** सुखप्राप्य ।
१५—**सुदर्शनः** मङ्गलावहं दर्शनं यस्य ॥ ९२ ॥
१६—**उपकारः** प्रणिनरूप ।
१७—**प्रियः** सुखदायी ।
१८—**सर्वः** सरत्याभिमुख आयातीति सर्व ।
१९—**कनकः** स्वर्णादिप्रियवस्तुरूप· ।
२०—**काञ्चनच्छविः** ।

**नाभिर्नन्दिकरो भावः पुष्करस्थपतिः स्थिरः**
**द्वादशस्त्रासनश्चाद्यो यज्ञो यज्ञसमाहितः ।**
**नक्तं कलिश्च कालश्च मकरः कालपूजितः ९४**
**सगणो गणकारश्च भूतवाहनसारथिः ।**
**भस्मशयो भस्मगोप्ता भस्मभूतस्तरुर्गणः ॥९५**
**लोकपालस्तथाऽलोको महात्मा, सर्वपूजितः**
**शुक्लस्त्रिशुक्लः संपन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः ॥९६**
**आश्रमस्थः क्रियावस्थो विश्वकर्ममतिर्वरः ।**

२१—**नाभिः** भुवनस्य मध्यदेश । अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिर्यज्ञरूप अत्यूर्ध्वगतिहेतुत्वाभावाद्यज्ञस्य नाभित्वम् ।

२२—**नन्दिकरः** यज्ञफलसमृद्धिकर्ता ।

२३—**भावः** क्रतुश्रद्धारूप. ।

२४—[ **पुष्करस्थपतिः** ] पुष्करस्य ब्रह्माण्डस्य स्थपति स्वामी ।

२५—**स्थिरः** स्थावर पर्वतादिरूप. ॥ ९३ ॥

२६—**द्वादशः** नृणा दशगर्भवासादयो दशास्तासा मृत्युर्दशमी स्वर्ग एकादशी मोक्षो द्वादशीति द्वादश इति ससारापेक्षया मोक्ष उच्यते ।

२७—**त्रासनः** आन्तराळिकदशारूपेण भयजनन ।

२८—**आद्यः** संसारात्प्राचीन शुद्ध आद्यन्तमध्यरूप इति नामत्रयार्थ ।

२९—**यज्ञः** जीवेशयो सङ्गतिकरणरूपो योग ।

३०—अत एव **यज्ञसमाहितः** तत्रस्थस्तदेकलभ्य इत्यर्थ· ।

३१—नक्तमिव **नक्तं** अप्रकाशात्मा महामोह ।

३२—**कलिः** तत्कार्यभूत कामक्रोधलोभादिरूप ।

३३—**कालः** तस्यापि कार्यं जन्ममरणप्रवाह कालयति संवलयतीति योगात् ।

३४—**मकरः** मकराकार शिशुमारचक्रं कालस्य ज्ञापकं तत्स्वरूप ।

३५—कालेन मृत्युना पूजित **कालपूजितः** ॥९४॥

३६—**सगणः** प्रमथादियुक्त· ।

३७—**गणकारः** बाणादीन् भक्तान् स्वगणान् करोतीति गणकार. ।

३८—भूताना वाहनो योगक्षेमनिर्वाहको ब्रह्मा सारथिर्यस्य **भूतवाहनसारथिः** ।

३९—**भस्मशयः** भस भर्त्सनदीप्त्योरिति जौहोत्यादिकाद्धातोरन्येभ्योऽपि दृश्यत इति मानिन् बभास्ति भर्त्सयति दोषान् भासयति वा आत्मानामिति भस्म। तथा चोक्तं वासिष्ठलैङ्गे ‘ भर्त्सनात्सर्वपापाना पाशाना च महामुने । भस्मेति कीर्त्यते रक्षा रोगाणा चापि भर्त्सनात्’ इति। तत्रैव बाह्यमोक्षेण किं भस्मधारणं मोक्षलक्षणम्। भस्मना नित्ययुक्तस्य ज्ञानमुत्पद्यतेऽचिरात्। इति श्रुतावप्यथर्वशिरासि अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वाऽभिमृज्याङ्गानि संम्पृशेद्व्रतमेतत्पाशुपतं पशुपाशविमोक्षायेति । भस्मनि शेते भस्मशय तेन उद्धूलनादिकमपि कर्तव्यं, यथाह वृद्धशातातप ‘स्तेयं कृत्वा गुरुदाराश्च गत्वा मद्यं पीत्वा ब्रह्महत्या च कृत्वा। भस्मच्छन्नो भस्मशय्या शयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापै.’ इति ।

४०—**भस्मगोप्ता** भस्मना गोपायति जगदिति भस्मगोप्ता, वक्ष्यति चात्रैव ‘रक्षार्थं मङ्गलार्थं च पवित्रार्थं च भामिनि । लाञ्छनार्थं च भक्ताना भस्म दत्तं मया पुरा’इति।

४१—**भस्मभूतः** एतच्च मङ्कणकनाम्नि मुनौ करात् च्युतं शाकरस दृष्ट्वा नृत्यति सति तन्नृत्योपशमार्थं महादेवेन स्वमङ्गुलिं भित्वा तज्ज भस्म दर्शितं तेन स्वस्य वपु. केवलं भस्ममयमिति ज्ञाप्यते ।

४२—**तरुः** कल्पवृक्षादि ।

४३—**गणः** भृंगिरिटिनंदिकेश्वरादिस्तद्रूप ॥ ९५ ॥

४४—लोकाश्चतुर्दशभुवनानि तेषा पालो **लोकपालः** ।

४५—**अलोकः** लोकातीत. ।

४६—**महात्मा** पूर्ण.

४७—**सर्वपूजितः** ।

४८—**शुक्लः** शुद्ध. ।

४९—**त्रिशुक्लः** त्रीणि कायवाङ्मनासि शुक्लानि यस्य ।

५०—अत एव **संपन्नः** कैवल्यं प्राप्त ।

५१—**शुचिः** आगन्तुकमपि मलं न स्पृशति असङ्ग इत्यर्थ. ।

५२—भूतै पूर्वाचार्यैर्निषेवित **भूतनिषेवितः** ९६

५३—आश्रमेषु चतुर्षु धर्मरूपेण तिष्ठतीति **आश्रमस्थः** ।

५४—**क्रियावस्थः** धर्मस्यैव पूर्वरूप क्रियायागादिस्तदवस्थापन्न ।

५५—**विश्वकर्ममतिः** देवशिल्पिनो यत्कौशलं तद्रूप इत्यर्थ. ।

५६—**वरः** व्रियत इति वरो लक्ष्म्यादिरूपः ।

विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः सुनिश्चलः
कपिलः कपिशः शुक्ल आयुश्चैव परोऽपरः।
गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यः सुविज्ञेयः सुशारदः ॥
परश्वधायुधो देव अनुकारी सुबान्धवः।
तुम्बवीणो महाक्रोध ऊर्ध्वरेता जलेशयः ९९

उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः।
सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोऽनलः ॥
बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः।
स यज्ञारिः स कामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः॥
बहुधा निन्दितः शर्वः शङ्करः शङ्करोऽधनः।

५७—**विशालशाखः** दीर्घबाहुः 'शाखा पक्षान्तरे बाहौ' ( खान्तवर्गे ६ ) इति **मेदिनी**।

५८—**ताम्रोष्ठः**।

५९—**अम्बुजालः** जलसमूहः सागर इत्यर्थः. 'जाल गवाक्ष आनाये क्षारके दम्भवृन्दयोः' (लान्तवर्गे १९) इति **मेदिनी**।

६०—**सुनिश्चलः** पर्वतादिरूपः ॥ ९७ ॥

६१—**कपिलः**।

६२—**कपिशः**।

६३—**शुक्ल** इति त्रयोऽपि वर्णवाचिनस्तद्वान्।

६४—**आयुः** जीवनकालः।

६५—**परः** प्राचीनः।

६६—**अपरः** अर्वाचीनः।

६७—**गन्धर्वः** चित्ररथादिः।

६८—**आदितिः** देवमाता 'इयं वा अदितिः' इति श्रुतेः पृथ्वी वा।

६९—**तार्क्ष्यः** वैनतेयः।

७०—**सुविज्ञेयः** सुखेन ज्ञातुं योग्यः।

७१—**सुशारदः** शोभनवाक्॥ ९८ ॥

७२—**परश्वधायुधः**।

७३—**देवः** विजिगीषुः।

७४—**अनुकारी** भीष्मं हन्तुं आयुधं प्रक्षेप्तुमनुकरोति वा सोऽनुकारी।

७५—शोभनश्चासौ बान्धवश्च **सुबान्धवः** अर्जुनसखा।

७६—**तुम्बवीणः** तुम्बीफलद्वययुक्ता वीणा यस्य सैव रुद्रवीणेति लोके प्रसिद्धा।

७७—**महाक्रोधः** प्रलयकाले।

७८—**ऊर्ध्वरेताः** ऊर्ध्वं देवमनुष्येभ्य उपर्यपि रेतः प्रजा ब्रह्मविष्ण्वादिरूपा यस्य सः।

७९—**जलेशयः** विष्णुरूपी शेषपर्यङ्के जलशायी ९९

८०—**उग्रः** उत्कर्षेण प्रमतीत्युग्रः।

८१—**वंशकरः**।

८२—**वंशः** च प्रसिद्धः।

८३—**वंशनादः**।

८४—**अनिन्दितः**।

८५—**सर्वाङ्गरूपः** सर्वेष्वङ्गेषु रूपं सौन्दर्यमस्यास्तीति 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये' (पान्तवर्गे ९ ) इति **मेदिनी**।

८६—**मायावी** मायाविशिष्टः 'मायिनं तु महेश्वरम्' इति प्रसिद्धः।

८७—**सुहृदः** अदन्तत्वमार्षम् प्रत्युपकारमनपेक्ष्य उपकर्ता।

८८—**अनिलः** वायुः।

८९—**अनलः** अग्निः ॥ १०० ॥

९०—बध्नात्यनेनेति **बन्धनः** संसारपाशः

९१—**बन्धकर्ता** संसारनिर्माता।

९२—**सुबन्धनविमोचनः** सुतरां बन्धनस्य मायापाशस्य मोचनकर्ता।

९३—यज्ञारयो दैत्यास्तैः महापि वसतीति सः **यज्ञारिः**।

९४—कामारयो जितकामा योगिनः तेऽत्र महास्तीति स **कामारिः**।

९५—**महादंष्ट्रः**।

९६—**महायुधः** ॥ १०१ ॥

९७—**बहुधा निन्दितः** दारुकावने अतिकमनीयं रूपं धृत्वा नग्नः सन्नयं पापिष्ठोऽस्मत्पत्नीनां चित्तं मोहयितुमागतोस्तीऽति सर्वैर्ऋषिभिर्निन्दितः।

९८—शृणोति हिनस्ति दारुकावनस्थान्मुनीन् माहयतीति **शर्वः**।

९९—**शङ्करः** तेषामपि कुशलं करे यस्य स्वाधीनं यस्येत्यर्थः।

६००—शङ्काना समूहः शङ्कं तस्य र इव र **शङ्करः** सर्वसंशयदाहकः रोऽर्ककामानिले वह्नाविति **विश्वलोचनः**। यैर्मुनिभिर्दारुकावनस्थैर्निन्दितो याश्च मोहितवान् तेषामेव कारुण्यात्कल्याणं सर्वसंशयोच्छेदं च तत्त्वज्ञानदानेन कृतवानिति नामचतुष्कतात्पर्यम्।

इति षष्ठं शतकम्।

१—**अधनः** दिगम्बरत्वात्।

**अमरेशो महादेवो विश्वदेवः सुरारिहा १०२**
**अहिर्बुध्न्योऽनिलाभश्च चेकितानो हविस्तथा**
**अजैकपाच्च कापाली त्रिशङ्कुरजितः शिवः ३**
**धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा ।**

**धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः**
**प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः ।**
**उषंगुश्च विधाता च मान्धाता भूतभावनः॥५**
**विभुर्वर्णविभावी च सर्वकामगुणावहः ।**

२—एवमप्यमराणा ईश **अमरेशः** ।

३—**महादेवो** देवेन्द्रादीनामपि पूज्य । यथोक्तं साम्बपुराणे—

'पूज्यते य सुरै सर्वैर्महाश्चैव प्रमाणत ।
महेति धातु पूजाया महादेवस्तत स्मृत ' इति ।

४—**विश्वदेवः** विश्वं विष्णुर्वषट्कार इति वक्ष्यमाणत्वाद्विश्वं विष्णु तस्यापि देव आराध्य ।

५—**सुरारिहा** ॥ १०२ ॥

६—**अहिर्बुध्न्यः** अहि सर्प , तस्य विशेषणं बुध्न्य बुध्ने मूले साधुरिति ब्रह्माण्डमूलं पातालं तत्र वर्तत इति यावत् । शेषस्वरूप इत्यर्थ । यथोक्तं विष्णुपुराणे—

संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम्'इति पदद्वयात्मकमेकं नाम ।

७—**अनिलाभः** वायुर्यथा अप्रत्यक्षोपि स्पर्शेन ज्ञायते एवमयं विषयसंस्पर्शजन्यानुभवरूप. । यथोक्तम्—

'परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता
संवित्सैवेह मेयोऽर्थो वेदान्तोक्तिप्रमाणत । ' इति

८—**चेकितानः** कित ज्ञाने अदादि अस्मात् यङ्लुकि शानच् आतिशयेन चिकेति जानातीति चेकितान युगपदशेषविशेषविज्ञानवानित्यर्थ ।

९—हविरिव **हविः** तस्यैव . कुभोग्यजातम् हरिरिति पाठेऽपि तस्यैव हर्तव्य वस्त्विति स एवार्थ । हुन औणादिक सर्वधातुभ्य इति कर्मणि बाहुलकादिन् ।

१०—**अजैकपात्** एकादशसु रुद्रेषु कश्चित् ।

११—**कापाली** कपालाभ्या द्युपृथिवीरूपाभ्या निर्वृत्तं कापालं ब्रह्माण्डं तदस्यास्तीति कापाली ब्रह्माण्डाधीश ।

१२—**त्रिशंकुः** त्रयो गुणा कीला इव यस्य विष्टंभका स त्रिशंकु संसारी ।

' न तदस्ति पृथिव्या वा दिवि देवेषु वा पुन
सत्त्व प्रकृतिजैर्मुक्त यदेभि स्यात्त्रिभिर्गुणै '

इति गीतावचनात् सर्वजीवरूप इत्यर्थ ।

१३—**अजितः** तैरेव शक्तुभिरवशीकृत ।

१४—अत एव **शिवः** शुद्ध निरुपाधिरित्यर्थ । यथोक्तं वायुसंहितायाम्—विशुद्धि शिवता स्वत इति ॥१०३

१५—**धन्वन्तरिः** महावैद्य 'भिषक्तमं त्वा भिषजा शृणोमि' इति मंत्रप्रसिद्ध ।

१६—**धूमकेतुः** उत्पातविशेष ।

१७—**स्कन्दः** ।

१८—**वैश्रवणः** ।

१९—**धाता** ।

२०—**शक्रः** ।

२१—**विष्णुः** ।

२२—**मित्रः** ।

२३—**त्वष्टा** ।

२४—**ध्रुवः** ।

२५—**धरः** ॥ १०४ ॥

२६—**प्रभावः** प्रभावाख्यो वसु ।

२७—**सर्वगो वायुः** सूत्रात्मा । 'वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोक परश्च लोक सर्वाणि च भूतानि सदृब्धानि ' इति श्रुते पदद्वयात्मकमेकं नाम ।

२८—**अर्यमा** ।

२९—**सविता** ।

३०—**रविः** ।

३१—**उषंगुः** नृपविशेष मान्धातृसाहचर्यात् । यद्वा उष दाहेऽस्मात् 'इगुपधज्ञाप्रीकिर क' इति कप्रत्यये उष दाहकं गाव किरणा यस्येत्युषंगु ,विभक्त्यलोप आर्ष वेदा प्रमाणमितिवल्लिंगवचनभेदेऽपि पदयो सामानाधिकरण्य धन्वतर्यादय शब्दा देवताविशेषवाचिन शिवे सार्वात्म्योपपादनार्था एवेति सर्वत्र ज्ञेयं पुनरुक्तानामपि तत्तद्यौगिकार्थभेदादपौनरुक्त्यं ज्ञेयं सत्यपि पौनरुक्त्ये स्तुत्यर्थत्वान्न दोष ।

३२—**विधाता** विविधप्रकारेण पोषक ।

३३—**मान्धाता** अस्मच्छब्दार्थं जीव धयति पाययतीति मान्धाता जीवस्य तृप्तिकर ।

३४—भूताना भावनं रज्ज्वामुरगस्येवास्मिन्निति **भूतभावनः** ॥ १०५ ॥

३५—**विभुः** विविधरूपेण भवति अस्तीति विभु भवते सत्तार्थकत्वात्पूर्ववत् डुप्रत्यय ।

३६—वर्णान् श्वेतपीतादीन् विविधरूपेण भावयतीति **वर्णविभावी** तस्मिन् । शुक्लमुत नीलमाहुरित्यादिश्रुते एतदन्तर्मुखाना नाडीमार्गगतं प्रत्यक्षम् श्रुत्यन्तरं च नीहारधूमार्कानिलानलाना खद्योतविद्युत्स्फाटिकशशीना एतानि रूपाणि पुर सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योग इति ।

३७—**सर्वकामगुणावहः** तत्रैव अन्तर्मुखत्वकाले सर्वान्कामान्काम्यमानान् विषयान्गुणाश्च शान्तघोरमूढान् योगविघ्नकरान्सुखास्वादविक्षेपलयापरनामधेयान् ध्यायिभ्य आवहति साकल्येन प्रापयतीति तथा ।

पद्मनाभो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रोऽनिलोऽनलः ६
बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचञ्चुरी ।
कुरुकर्ता कुरुवासी कुरुभूतो गुणौषधः ॥ ७
सर्वाशयो दर्भचारी सर्वेषां प्राणिनां पतिः ।
देवदेवः सुखासक्तः सदसत्सर्वरत्नवित ॥ ८
कैलासगिरिवासी च हिमवद्गिरिसंश्रयः ।
कूलहारी कूलकर्ता बहुविद्यो बहुप्रदः ॥ १०९
वणिजो वर्धकी वृक्षो बकुलश्चन्दनश्छदः ।
सारग्रीवो महाजत्रुरलोलश्च महौषधः ॥ ११०
सिद्धार्थकारी सिद्धार्थश्छन्दोव्याकरणोत्तरः
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः ॥ ११
प्रभावात्मा जगत्कालस्थालो लोकहितस्तरुः

३८—**पद्मनाभः** पद्मं विश्वस्यायतनं नाभौ तत्रस्थे मणिपूरचक्रेऽस्यास्तीति पद्मनाभ.। नाभ्यामुपरि तिष्ठति विश्वस्यायतनं महदिति श्रुते ।

३९—**महागर्भः** महान्तो ब्रह्मादयो गर्भा उदरान्तर्गता यस्य स तथा ।

४०—**चन्द्रवक्त्रः** रम्यरूप ।

४१—**अनिलः** ।

४२—**अनलश्च** । पूर्वं भूतरूपेणोक्तावत्र तदभिमानिदेवतारूपाविति विशेष ॥ १०६ ॥

४३—**बलवान्** ।

४४—**उपशान्तः** ।

४५—**पुराणः** ।

४६—स्पष्टार्थं नामत्रयं **पुण्यचञ्चुः** पुण्येन ज्ञात 'तेन वित्तश्चञ्चुप् चणपौ' इति चञ्चुप् ।

४७—ई लक्ष्मीरित्येकाक्षरं नाम । ई विषादेऽनुकम्पाया लक्ष्म्या च पुनरव्ययम् ( अव्ययवर्गे ) इति **मेदिनी** ।

४८—**कुरुकर्ता** अत्र नामैकदेशग्रहणेन नामग्रहणं भामासत्यभामेतिवत् कुरुपदेन कुरुक्षेत्रमुच्यते तेन अविमुक्त वै कुरुक्षेत्रमिति श्रुते. सर्वलोकप्रसिद्धेश्च तद्द्विविधं तयो कर्मोपस्तिस्थानयोर्निर्माता ।

४९—**कुरुवासी** कुरुक्षेत्रद्वयवासी ।

५०—**कुरुभूतः** कुरुक्षेत्रद्वयात्मा ।

५१—**गुणौषधः** ऐश्वर्यज्ञानवैराग्यधर्मादीनामौषधवदुद्दीपक ॥ १०७ ॥

५२—**सर्वाशयः** सर्वे आशेरतेऽस्मिन्निति अत्र ह्येते सर्व एकं भवन्तीति श्रुते सर्वस्य सुषुप्तिस्थानं प्राज्ञ इत्यर्थ ।

५३—दर्भेषु अन्तर्वेदिस्थबर्हिरूपेषु आसादितानि हवींषि चरति भक्षयतीति **दर्भचारी** ।

५४—**सर्वेषां प्राणिनां पतिः** ।

५५—**देवदेवः** ।

५६—**सुखासक्तः** ।

५७—**सत** कार्यम् ।

५८—**असत्** कारणम् ।

५९—**सर्वरत्नवित** सर्वाणि रत्नानि तत्तज्जातिप्रकृष्टवस्तूनि विन्दते लभते इति तथा ॥ १९८ ॥

६०—**कैलासगिरिवासी** ।

६१—**हिमवद्गिरिसंश्रयः** ।

६२—**कूलहारी** महाप्रवाहरूपेण तीरस्थद्रुमहारी ।

६३—**कूलकर्ता** पुष्करादीना महातटाकाना कर्ता कूलं प्रतीरे सैन्यस्य पृष्ठे कूपतटाकयोरिति **विश्वलोनचः**

६४—**बहुविद्यः** ।

६५—**बहुप्रदः** ॥ १०९ ॥

६६—**वणिजो** वणिक् अकारान्तत्वं आर्षम् ।

६७—**वर्धकी** तक्षा ।

६८—**वृक्षः** तक्षणीय संसारवृक्ष ।

६९—**बकुलः** वृक्षविशेष ।

७०—**चन्दनः**

७१—**छदः** सप्तपर्ण ।

७२—**सारग्रीवः** दृढकन्धर ।

७३—**महाजत्रुः** जत्रुग्रत्र, कण्ठस्कन्धयोरधोऽस्थि ।

७४—**अलोलः** ।

७५—**महौषधः** व्रीहियवरूप ॥ ११० ॥

७६—**सिद्धार्थकारी** ।

७७—**सिद्धार्थः** पूर्वपक्षं निरस्य यो निष्पन्नोऽर्थ स सिद्धार्थ उच्यते स एव सिद्धान्त इति प्रसिद्धस्तस्यैव विशेषणं छन्दोव्याकरणोत्तर इति वेदव्याख्यानोपबृंहित इत्यर्थ ।

७८—**सिंहनादः** ।

७९—**सिंहदंष्ट्रः** ।

८०—**सिंहगः** सिंहारूढ ।

८१—**सिंहवाहनः** सिंहयुक्तं वाहनं रथोऽस्य १११

८२—**प्रभावात्मा** प्रकृष्टो भाव सत्ता तद्रूप इत्यर्थ. । 'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' इति श्रुते. सत्यस्य सत्य इत्यर्थ ।

८३—जगत. काल. ग्रासकर्ता जगत्काल स एव स्थालो भोजनपात्रं यस्य [**जगत्कालस्थालः**] ।

८४—**लोकहितः** ।

८५—**तरुः** तारक. ।

**सारङ्गो नवचक्राङ्गः केतुमाली सभावनः॥११२**
**भूतालयो भूतपतिरहोरात्रमनिन्दितः॥ ११३**
**वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः।**
**अमोघः संयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारणः॥११४**
**धृतिमान्मतिमान् दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः**
**गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरिः ११५**
**हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम्।**
**प्रकृष्टारिर्महाहर्षो जितकामो जितेन्द्रियः ११६**
**गान्धारश्च सुवासश्च तपःसक्तो रतिर्नरः।**
**महागीतो महानृत्यो ह्यप्सरोगणसेवितः ११७**
**महाकेतुर्महाधातुर्नैकसानुचरश्चलः।**
**आवेदनीय आदेशः सर्वगन्धसुखावहः॥११८**
**तोरणस्तारणो वातः परिधी पतिखेचरः।**

८६—**सारङ्गः** पक्षिविशेष ।
८७—नवश्चासौ चक्राङ्गो हंसश्च **नवचक्राङ्गः**।
८८—केतुरिव केतु शिखा तया मालते शोभते इति **केतुमाली** मयूरकुक्कुटादिपक्षिरूप. ।
८९—सभा धर्मपरीक्षास्थानं अवतीति **सभावनः** ॥ ११२ ॥
९०— **भूतालयः**।
९१—**भूतपतिः**।
९२—**अहोरात्रम्**।
९३—**अनिन्दितः** ॥ ११३ ॥
९४—वाहिता वोढा सर्वभूतानामित्युभयत्र सम्बध्यते **सर्वभूतानां वाहित** इत्येकं नाम ।
९५—**सर्वभूतानां निलयः** सदनमित्यपरम्।
९६—**विभुः** विगतं भूर्भुवनं यस्मादित्यजन्मा भावार्थे पूर्ववत् भवतेर्डु ।
९७—**भवः** अस्तीति भव अस्ते पचाद्यचि भूभाव ।
९८—**अमोघः** नैष्फल्यरहित ।
९९—**संयतः** धारणाध्यानसमाधिमान् ।
७००—**अश्वः** उच्चैश्रवादिरूप ।

**इति सप्तमं शतकम्।**

१—भोजयतीति **भोजनः** अन्नदाता ।
२—अत एव **प्राणधारणः** ॥ ११४ ॥
३— **धृतिमान्**।
४—**मतिमान्**।
५ **दक्षः** उत्साही ।
६—**सत्कृतः** आदृत ।
७—**युगाधिपः** युगशब्देन धर्माधर्मौ लक्ष्येते तयो फलदः ।
८—**गोपालिः** इन्द्रियाणा पालयिता ।
९—**गोपतिः** रश्मीना पति सूर्यादि ।
१०—**ग्रामः** समूह ।
११—**गोचर्मवसनः**।
१२—**हरिः** हरति भक्ताना दु खमिति हरि ॥११५॥
१३—**हिरण्यबाहुः** रमणीयबाहु ।
१४—[ **गुहापालः प्रवेशिनां** ] अन्त. प्रवेशशीलाना योगिना चिरकालं काष्ठवत्स्थायिना गुहा शरीर तस्य रक्षक ।
१५—प्रकृष्टाः प्रकर्षेण तनूकृता अरय कामाद्यो येन स **प्रकृष्टारिः** साधकोत्तम ।
१६—**महाहर्षः**।
१७—**जितकामः**।
१८—**जितेन्द्रियः** ॥ ११६ ॥
१९—**गान्धारः** स्वरविशेष. ।
२०—**सुवासः** शोभन वसतिस्थानं कैलासाख्यमस्य ।
२१—**तपःसक्तः**।
२२—**रतिः** प्रीतिरूप ।
२३ —**नरः** नयति प्रापयति ब्रह्माडमिति नरो विराट्।
२४—**महागीतः**।
२५—**महानृत्यः**।
२६—**अप्सरोगणसेवितः** ॥ ११७ ॥
२७—महान् केतुर्वृषरूपी यस्य स **महाकेतुः**।
२८—**महाधातुः** मेरुपर्वत ।
२९—तस्यैव **नैकसानुचरः** अनेकशिखरसचारी ।
३०—**चलः** दुर्ग्रह ।
३१—**आवेदनीयः** वाचामगोचरोऽपि गुरुभिरुपदेष्टु शक्य ।
३२—**आदेशः** साक्षादुपदेशरूप ।
३३—**सर्वगन्धसुखावहः** युगपत्सर्वेषा गन्धाना विषयस्पर्शाना सुखं आवहतीति तथा ॥ ११८ ॥
३४—**तोरणः** पुरद्वारादिरूप ।
३५—**तारणः** परिखादीस्तारयति जिगीषून् ।
३६—**वातः**।
३७—परिधी परिधिरस्यास्तीति **परिधी** दुर्गरूप ।
३८—पतिश्चासौ खेचरश्चेति [**पतिखेचरः**] खेचरेश्वरो गरुड ।

संयोगो वर्धनो वृद्धो अतिवृद्धो गुणाधिकः
नित्य आत्मसहायश्च देवासुरपतिः पतिः ।
युक्तश्च युक्तबाहुश्च देवो दिविसुपर्वणः ॥ १२०
आषाढश्च सुषाढश्च ध्रुवोऽथ हरिणो हरः ।
वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः ॥ १२१
शिरोहारी विमर्शश्च सर्वलक्षणलक्षितः ।
अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः ॥ २२
समाम्नायोऽसमाम्नायस्तीर्थदेवो महारथः ।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो बहुकर्कशः ॥
रत्नप्रभूतो रत्नाङ्गो महार्णवनिपानवित् ।
मूलं विशालो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः
आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महायशाः

---

३९—**संयोगो वर्धनः** वृद्धिहेतुभूत सयोग स्त्रीपुंमयो सम्बन्ध प्रजनश्चास्मि कन्दर्प इत्युक्त. ।

४०—**वृद्धो गुणाधिकः** गुणैर्ज्ञानैश्वर्यादिभिरधिकत्वेन वृद्ध इत्यर्थ न तु वलीपलितादिना । यथोक्तं—

विप्राणा ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणा तु शौर्यत ।
वैश्याना धनबाहुल्याच्छूद्राणा वयसाऽधिक इति ।

४१—**अतिवृद्धः** ।

४२—**गुणाधिकः** ॥ ११९ ॥

४३—**नित्य आत्मसहायः** च इत्येकं नाम नित्यश्चासावात्मसहायश्चेति समासे विभक्त्यलोप आर्ष ।

४४—**देवासुरपतिः** ।

४५—**पतिः** अर्थात्सर्वस्य ।

४६—**युक्तः** सन्नद्ध सङ्ग्रामादौ ।

४७—**युक्तबाहुः** शत्रुमर्दनयोग्यौ बाहू यस्य ।

४८—**देवो दिवि सुपर्वणः** दिवि स्वर्गे य· सुपर्वा इन्द्रसंज्ञो महान् तस्य देव आराधनीय ॥ १२० ॥

४९—**आषाढः** साह्यते· कर्तरि निष्ठा,आ समन्तात्सर्वं साहयति सहनं कारयतीत्याषाढ सर्वसहनसामर्थ्यप्रद इत्यर्थ· ।

५०—सुषाढ ईषत्कर पूर्वोक्तिं यस्य स **सुषाढः** ।

५१—**ध्रुवः** अचञ्चल· ।

५२—**हरिणः** श्वेत· शुद्ध इत्यर्थ ।

५३—**हरः** हन्तीति हा शूलस्तं राति आदत्ते स हर । हन्ते· कर्तरि क्विप् तत्पूर्वात् 'राते· आतोऽनुपसर्गे क·' इति क· । हर· शूलीत्यर्थ ।

५४—वपु वपु·प्रदाता आवर्तमानेभ्य स्वर्गच्युतेभ्य **[वपुरावर्तमानेभ्यः]** वसुरिति पाठे सेवकेभ्यो धनप्रद इत्यथ· ।

५५—**वसुश्रेष्ठः** धनाद्याधिक· । प्रेयो वित्तादिति श्रुते ।

५६—**महापथः** शिष्टाचाररूप ॥ १२१ ॥

५७—शिरोहारी ब्रह्मण· शिरश्छेत्ता विमर्शः विशेषेण विचारवान् **[शिरोहारी विमर्शश्च]** विवेकेनैव ब्रह्मशिरश्छिन्नं न तु क्रोधमात्रेणेति भाव· । पदद्वयात्मकमेकं नाम ।

५८—**सर्वलक्षणलक्षितः** सामुद्रिकोक्तशुभलक्षणयुक्त सवाणि लक्ष्यन्ते ज्ञायन्तेऽर्थजातानि एतैरिति प्रमाणानि लक्षणान्युच्यन्ते तैर्लक्ष्यते न तु साक्षात्क्रियत इत्यर्थ ।

५९—अक्ष रथसन्धानदारु अत एव रथयोगी रथेन सम्बद्ध **[अक्षश्च रथयोगी]** ।

६०—**सर्वयोगी** सर्वसंस्पर्शी विभुत्वात् ।

६१—**महाबलः** महान्चासौ बलश्च महाबल बलशब्दान्मत्वर्थीयोऽर्श आद्यच्प्रत्यय बलवान् वीर इत्यर्थ· ॥ १२२ ॥

६२—**समाम्नायो** वेद ।

६३—**असमाम्नायः** तदन्य स्मृतीतिहासपुराणागमादि ।

६४—**तीर्थदेवः** ।

६५—**महारथः** पृथिवीस्यन्दन ।

६६—**निर्जीवः** अचेतनप्रपञ्चात्मा ।

६७—**जीवनः** अचेतनस्यापि देहादेश्चैतन्यप्रदाता ।

६८—**मन्त्रः** प्रणवादिर्मृतसञ्जीवनो वा ।

६९—**शुभाक्षः** शान्तदृष्टि ।

७०—**बहुकर्कशः** सहर्तृत्वात् ॥ १२३ ॥

७१—**रत्नप्रभूतः** प्रभूतानि बहूनि रत्नानि उत्तमवस्तून्यस्मिन् रत्नप्रभूत । आहिताग्न्यादित्वात्पूर्वनिपात ।

७२—**रक्ताङ्गः** ।

७३—**महार्णवनिपानवित्** निपान कूपाद्बहि· पशूना पानार्थं कृतं कुंडं महार्णवा एव सर्वे यस्य निपानभूतास्तान् शोषणीयान् विन्दति लभते इति ।

७४—**मूलं** संसारतरोरधिष्ठानम् ।

७५—**विशालः** अत्यन्तं शोभमान ।

७६—**अमृतः** सुधारूप ।

७७—**व्यक्ताव्यक्तः** कार्यकारणात्मा ।

७८—**तपोनिधिः** महामुनि· ॥ १२४ ॥

७९—**आरोहणः** परं पदं आरुरुक्षु ।

८०—**अधिरोहः** तदेव अधिरूढ ।

८१—**शीलधारी** सदाचार ।

८२—**महायशाः** पुण्यकीर्ति· ।

**सेनाकल्पो महाकल्पो योगो युगकरो हरिः॥**
**युगरूपो महारूपो महानागहनो वधः।**
**न्यायनिर्वपणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः॥**
**बहुमालो महामालः शशी हरसुलोचनः।**
**विस्तारो लवणः कूपस्त्रियुगः सफलोदयः२७**
**त्रिलोचनो विषण्णाङ्गो मणिविद्धो जटाधरः**
**बिन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरः सर्वायुधः सहः २८**
**निवेदनः सुखाजातः सुगन्धारो महाधनुः।**
**गन्धपाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम्२९**
**मन्थानो बहुलो वायुः सकलः सर्वलोचनः।**
**तलस्तालः करस्थाली ऊर्ध्वसंहननो महान्**

• ८३—**सेनाकल्पः** सेनाया आकल्प अलङ्कार पराक्रम इत्यर्थ ।

८४—**महाकल्पः** दिव्यभूषण ।

८५—**योगः** चित्तवृत्तिनिरोध ।

८६—[**युगकरः**] युगानि कल्पादीनि करे यस्य कल्पादिप्रद ।

८७—हरति शरीरं देशाद्देशान्तरं प्रति नयतीति **हरिः** पादाभिमानिनी देवता त्रिविक्रम इत्यर्थ ॥ १२५ ॥

८८—**युगरूपः** धर्माधर्मतत्संकररूप ।

८९—**महारूपः** महाश्चासौ अरूपश्चेति तथा ।

९०—**महानागहनः** गजासुरघ्न ।

९१—**वधः** मृत्यु. ।

९२—**न्यायनिर्वपणः** न्याययुक्त निर्वपणं दानं यस्य यथाधर्मं मनोरथप्रद ।

९३—**पादः** पद्यत इति गम्य ।

९४—**पण्डितः** परोक्षज्ञानी ।

९५—**अचलोपमः** निश्चल· तत्त्वज्ञानीत्यर्थ ॥१२६

९६—[**बहुमालः**] बहु निरवधि मालते शोभते इति अनन्तलीलः ।

९७—**महामालः** महता आपादलम्बिनी अम्लानत्वादिगुणयुक्ता वा माला यस्य ।

९८—शशी चन्द्र स एव हरसुलोचन· महादेवस्य शान्तदृष्टिरूप· [**शशी हरसुलोचनः**]।

९९—**विस्तारो लवणः कूपः** विशिष्टस्तार आच्छादनं यस्य सोऽतिविस्तीर्णः. लवण. क्षाररस. कूप इव कूपः महाकूपतुल्य· क्षारसमुद्ररूपीत्यर्थ· त्रिपदमेकं नाम ।

८००—**त्रियुगः** कालबहिर्भूत. ।

**इति अष्टमं शतकम्।**

१— अत एव **सफलोदयः** ॥ १२७ ॥

२—**त्रिलोचनः** त्रीणि शास्त्राचार्यध्यानानि लोचनानि दर्शनसाधनानि यस्य स त्रिलोचन ।

३—**विषण्णाङ्गः** विशेषेण सन्ना निरन्वयमुच्छिन्नाः अङ्गाख्या भूम्यादयोऽष्टौ मूर्तयो यस्य। अमूर्ते हि सूक्ष्मरूपेण मूर्तानामन्वयोऽस्ति ततोऽप्ययमन्तरङ्ग· शुद्धो भूमेत्यर्थः ।

४—**मणिविद्धः** मणिपिधानार्थं कर्णदेशे विद्ध· कृतच्छिद्र कुण्डलीत्यर्थ ।

५—**जटाधरः** ।

६—**बिन्दुः** अनुस्वार ।

७—**विसर्गः** विसर्जनीय· ।

८—**सुमुखः** व्यक्तवर्ण· ।

९—**शरः** बाण ।

१०—**सर्वायुधः** ।

११—**सहः** सर्वं सहते मर्षयतीति सह ॥ १२८ ॥

१२—**निवेदनः** निर्हीनं सर्ववृत्त्युपरमेण वेदनं ज्ञानं यस्य ।

१३—**सुखाजातः** सुखरूपेण आजात वृत्तिविलये सति आविर्भूत ।

१४—**सुगन्धारः** शोभनो गन्धारदेशोद्भव· ।

१५—**महाधनुः** पिनाकधन्वा ।

१६—[**गन्धपाली च भगवान्**] गन्धा लेशाः सूक्ष्मा प्रपञ्चवासना. ता· पालयतीति गन्धपाली सर्वप्राणिधीवासनामय इत्यर्थ । स एव भगवान् ईश्वर एकं नाम ।

१७—**उत्थानः सर्वकर्मणां** उत्तिष्ठन्त्यस्मादित्युत्थान· ॥ १२९ ॥

१८—[**मन्थानो बहुलो वायुः**] मन्थानो विश्वविलोडनसमर्थो बहुलो निरवधिर्वायु· महान्प्रलयानिल इत्येकं नाम त्रिपदम् ।

१९—**सकलः** पूर्ण. ।

२०—**सर्वलोचनः** सर्वद्रष्टा ।

२१—**तलः** तालः करतलोत्थ एव ताल्वाद्यविशेष ।

२२—करावेव स्थालो भोजनभाजन तदस्यास्तीति **करस्थाली**।

२३—**ऊर्ध्वसंहननः** श्रेष्ठो दृढशरीरश्चेत्यर्थ·।

२४—**महान्** अत्युच्च ॥ १३० ॥

छत्रं सुच्छत्रो विख्यातो लोकः सर्वाश्रयः क्रमः
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः
हर्यक्षः ककुभो वज्री शतजिह्वः सहस्रपात् ।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः ॥ १३२
सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत् ।
पवित्रं त्रिककुन्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः ३३
ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नीपाशशक्तिमान् ।
पद्मगर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः ॥ १३४
गभस्तिर्ब्रह्मकृद्ब्रह्मी ब्रह्मविद्ब्राह्मणो गतिः ।

२५—छत्रम् ।
२६—सुच्छत्रः ।
२७—विख्यातो लोकः प्राणिभून्मात्रप्रसिद्धः प्रकाश ।
२८—सर्वाश्रयः क्रमः सर्वस्य आश्रय आधारभूत· क्रम. पादविक्षेप त्रैविक्रमेण रूपेण पादाक्रान्तजगत्त्रय इत्यर्थः।
२९—मुण्डः मुण्डितशिरा ।
३०—अत एव विरूपः विकटरूप ।
३१—विकृतः सर्वां विक्रिया प्राप्त. ।
३२—दण्डी ।
३३—कुण्डी ।
३४—विकुर्वणः करोतीति कुर्वा विगत कुर्वा यस्मात् विकुर्वणः कर्माप्राप्य इत्यर्थ समासान्त आर्ष १३१
३५—हर्यक्षः सिंह· ।
३६—ककुभः सर्वदिग्रूप ।
३७—वज्री ।
३८—शतजिह्वः।
३९—सहस्रपात् सहस्रमूर्धा ।
४०—देवेन्द्रः ।
४१—सर्वदेवमयः ।
४२—गुरुः ॥ १३२ ॥
४३—सहस्रबाहुः ।
४४—सर्वाङ्गः सर्व अङ्गति प्राप्नोतीति सर्वाङ्ग ।
४५—शरण्यः शरणाय साधुः ।
४६—सर्वलोककृत् ।
४७—पवित्रं पावनस्तीर्थादिरूप· ।
४८—त्रिककुन्मन्त्रः त्रीणि कुकुन्दीव ककुन्दि उच्चस्थानानि बीजशक्तिकीलकानि यस्य तादृशो मन्त्र· ।
४९—कनिष्ठः अदितिपुत्राणा मध्ये य. कनिष्ठो वामनरूपी विष्णुस्तद्रूप. ।
५०—कृष्णपिङ्गलः हरिहरमूर्ति· विष्णुर्नारायणः कृष्ण इति कृष्णशब्दस्य हरौ निधिभेदे कपौ रुद्रे पिङ्गलः कपिलेऽन्यवदिति नानार्थकोशात्, पिङ्गलशब्दस्य हरे च प्रसिद्धिदर्शनात् पुरुषं कृष्णपिङ्गलं दरिद्रं नीललोहिते-त्यादिश्रुतेरप्ययमेवार्थ , नीलग्रीवो विलोहित इति लोहितपदेन रुद्रस्यापि ग्रहणात् । यदि तु नीललोहितत्वं रुद्रस्य पूर्वं लोहित पश्चान्नील इति कालभेदेन वा कण्ठे नील सर्वाङ्गे लोहित इति वा वामाङ्गे नीलो दाक्षिणाङ्गे लोहित इति देशभेदेन वा आवरकप्रकृत्यंशेन नीलस्तत्प्रवर्तकपुरुषांशेन लोहित इति गुणभेदेन वा गृह्यते, तदा गुणवाचिनो शब्दयोर्द्रव्यवाचित्वं तद्वत्त्वाच्च तदेकदेशवाचित्वमिति विप्रकृष्टार्थकल्पना । अस्माकं तु विलोहितकृष्णपदयोर्मुख्यवृत्त्यैव शिवकेशववाचित्वं दृष्टं तेन तत्पर्याययोर्नीलपिङ्गलपदयोरपि हरिहरवाचित्वं वक्तुं युज्यते। तथा च कृष्णपिङ्गलपदेन नीललोहितपदेन वा हरिहरावेव ग्राह्यौ । निर्णीतार्थकपदान्तरसमभिव्याहारसामर्थ्यादनिर्णीतार्थकस्यापि पदस्यार्थौ व्यवस्थापयितुं शक्य एवेति युक्तमुत्पश्याम. । यद्यपि पूर्ववाक्येष्वप्यर्थेषु कुशकाशावलम्बने न किञ्चित्प्रमाणमुखेतुं शक्य तथापि ऋजुमार्गेण सिद्धयत्यर्थे वक्रेण साधनायोगात् शिवविष्णुनाम्नामन्योन्यस्मिन्प्रयोगदर्शनाच्च तयोरेकस्यैव व्यूहद्वयात्मत्वादत्र इदमेव व्याख्यानमिष्टम् । न चैवमिन्द्राग्निपदवत् द्विवचनेन भाव्यं तत्पुरुषादिपदेष्विव कृष्णश्चासौ पिङ्गलश्चेत्यभेदेनैव पदयोरन्वयोपपत्तौ भेदसूचकद्विवचनायोगात् । हरिहरयोरभेदस्य च प्रागेव प्रतिपादितत्वादिति दिक् । तदयं सङ्ग्रह ॥ १३३ ॥
५१—ब्रह्मदण्डविनिर्माता ।
५२—शतघ्नीपाशशक्तिमान् ।
५३—पद्मगर्भो ब्रह्मा ।
५४—महागर्भो महान् गर्भोऽन्तरवकाशो यस्य ।
५५—ब्रह्मगर्भो वेदगर्भित. ।
५६—जलोद्भवः जले 'सलिल एकोऽद्रष्टा' इति श्रुतेरेकार्णवे उद्भव आविर्भावो यस्य मायावीत्यर्थ ॥ १३४ ॥
५७—गभस्तिः रश्मिमान् ।
५८—ब्रह्मकृत् वेदकर्ता ।
५९—ब्रह्मी वेदाध्यायी ।
६०—ब्रह्मवित् वेदार्थवित् ।
६१—ब्राह्मणः ब्रह्मिष्ठ· ।
६२—गतिः ब्रह्मिष्ठानामेव परायणम् ।

अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयंभुवः ३५
ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातरंहा मनोजवः ।
चन्दनी पद्मनालाग्रः सुरभ्युत्तरणो नरः ॥ ३६
कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः पिनाकधृत्
उमापतिरुमाकान्तो जान्हवीधृदुमाधवः ३७

वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः ।
महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिङ्गलः ॥ ३८
पीतात्मा परमात्मा च प्रयतात्मा प्रधानधृत् ।
सर्वपार्श्वमुखस्त्र्यक्षो धर्मसाधारणो वरः ३९

६३—अनन्तं रूपमस्य स **अनन्तरूपः** ।

६४—अत एव **नैकात्मा** अनेकशरीरधारी ।

६५—**तिग्मतेजाः स्वयंभुवः** ब्रह्मणो दृष्टया तिग्मतेजा दु सहपराक्रम स्वशिरश्छेदकत्वात् ॥ १३५ ॥

६६—**ऊर्ध्वगात्मा** उपाधित्रयादुपरिगत आत्मा स्वरूपं यस्य । ' स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ' इति श्रुते. ।

६७—**पशुपतिः** जीवानामीश्वर ।

६८—**वातरंहाः** ।

६९—**मनोजवः** ।

७०—**चन्दनी** चन्दनालिप्तगात्र ।

७१—**पद्मनालाग्रः** पद्मनालमस्याग्रेऽस्तीति तथा । कदाचिद्ब्रह्मा स्वाश्रयभूतपद्मनालस्यान्त द्रक्ष्ये इति बुद्धया नालमार्गेण गच्छंस्तदादि न प्राप्तवान् अतोऽर्वाचीनस्यापि नालस्यान्तो न दृष्ट किमुत नालक्षेत्रस्य भूस्थानीयस्येति भाव ।

७२—**सुरभ्युत्तरणः** कदाचिद्विष्णुस्पर्धया ब्रह्मा शिवस्य शिरोदेशो मया दृष्टस्तत्र त्वया साक्ष्यं देयमिति कामधेनुमुक्तवान् सा च ब्रह्मभयादनृतं साक्ष्यं दत्तवती ततो महादेवेन शप्ताऽमेध्याशिर्ना ते सन्ततिर्भविष्यतीति तादिदमुक्तं सुरभिं कामधेनु ऊर्ध्वपदादध उत्तारयतीति सुरभ्युत्तरण ।

७३—एव मूर्तिद्वयस्याप्यन्तो येन न दृष्ट सोऽप्ययमेवेत्याह--**नर इति**। न राति आदत्ते प्राप्नोत्यन्तमिति **नरः** ' आतोऽनुपसर्गे क ' ॥ १३६ ॥

७४—कर्णिकारपुष्पमयी महती स्रक् माला तद्वान् **कर्णिकारमहास्रग्वी** ।

७५ **नीलमौलिः** नीलमणिमयं किरीटं मौलौ यस्य।

७६—**पिनाकधृत्** पिंत' प्राप्त नाको द्यौर्येन स पिनाक । पि गतावित्यतो निष्ठातस्य लोप. । त्रिपुरासुरेण हृत स्वर्गो देवैर्यद्बलात् प्राप्तस्तन्महादेवस्य शैलेन्द्ररूपं धनु' पिनाकस्तस्य धर्ता पिनाकधृत् यथा नमुचिं फेनेन निघ्नत इन्द्रस्य फेने यथा वज्रप्रवेश एवं शैलेऽपि पिनाकप्रवेशात्सोऽपि पिनाक इत्यर्थ. ।

७७—[**उमापतिः**]उमा ब्रह्मविद्या तस्या पतिर्यथेष्टविनियोगात्स्वामी ।

७८—उमया तयैव ब्रह्मविद्यया कान्त कामित वशीकृत [**उमाकान्तः**] ।

७९—**जान्हवीधृत्** ।

८०—उमाया शैलपुत्र्या धवो भर्ता **उमाधवः** । ॥ १३७ ॥

८१—**वरो वराहः** आद्यो भूमेरुद्धर्ता यज्ञरूपी वराह ।

८२—वरै श्रेष्ठै रूपैर्दयते नानावतारैर्जगत्पालयतीति **वरदः** ।

८३—अत एव वरेण्य **वरणीयः** ।

८४—**सुमहास्वनः** वेदगर्जितो हयग्रीव. ।

८५—**महाप्रसादः** ।

८६—दमन इव सुरभित्वात् **दमनः** तत्पूज्यत्वाद्वा ।

८७—शत्रून् कामादीन् हन्तीति **शत्रुहा**।

८८—**श्वेतपिङ्गलः** अर्द्धनारीनटेश्वरो दक्षिणार्द्धे कर्पूरगौर वामार्द्धे कनकपिङ्गल । ये तु श्वेतपिङ्गलपदस्यार्थं कृष्णपिङ्गलपदेन ब्रुवते ते श्वेतमपि कृष्णीकर्तुं समर्था महान्तो भवन्तीति ॥ १३८ ॥

८९—**पीतात्मा** सुवर्णवर्णशरीर य एषोन्तरादित्यो हिरण्मय. पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्ण इति श्रुत्युक्त' ।

९०—**परमात्मा** अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमयानन्दमयेभ्य पञ्चभ्योऽपरमेभ्य आत्मभ्योऽन्य. षष्ठ आनन्दमात्रस्वरूप ।

९१—**प्रयतात्मा** शुद्धचित्त ।

९२—**प्रधानधृत्** त्रिगुणात्मकं जगत्कारणं प्रधानाख्यमज्ञानं तदधिष्ठानभूत ।

९३—**सर्वपार्श्वमुखः** चतसृषु दिक्षु ऊर्ध्वं च मुखं यस्येति पञ्चवक्त्र उक्त ।

९४—**त्र्यक्षः** त्रीणि सोमसूर्याग्निरूपाणि अक्षाणि नेत्राणि यस्य ।

९५—**धर्मसाधारणो वरः** पुण्यानुरूपप्रसादात्मा ॥ १३९ ॥

चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा अमृतो गोवृषेश्वरः।
साध्यर्षिर्वसुरादित्यो विवस्वान्सवितामृतः
व्यासः सर्गः सुसंक्षेपो विस्तरः पर्ययो नरः।
ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्यासमापनः
कला काष्ठा लवा मात्रा मुहूर्ताहः क्षपाः क्षणाः
विश्वक्षेत्रं प्रजाबीजं लिङ्गमाद्यस्तु निर्गमः ४२
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥१४३
निर्वाणं ह्लादनश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः।
देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः॥ ४४

९६—**चराचरात्मा** रलयोरैक्यात् चलाचलात्मा दिवि पन्थाश्चलाचल इति श्रुत्युक्तौ यावावृत्त्यनावृत्तिमार्गौ तद्रूपश्चराचरात्मा कर्मानुरूपः प्रसादानुरूपो मार्गोऽप्ययमेवेति नामद्वयार्थ.।

९७—**सूक्ष्मात्मा** मार्गद्वयागोचरस्वरूप ।

९८—अमृतो मरणवर्जितो निष्काम गोवृष· पृथिवीपतिर्धर्म. तस्य ईश्वरः [**अमृतो गोवृषेश्वरः**] निष्कामधर्मस्यामृतं मोक्षरूप फल दातुं समथ.।

९९—साध्या· देवानामपि देवा· तेषामपि ऋषि· आचार्य **साध्यर्षिः**।

१००—**वसुः** देवताविशेष उपरिचरस्य राज्ञो व्यावृत्त्यर्थं तस्यैव विशेषणं **आदित्य** इति अदितेः पुत्रो वसु र्नामेत्यर्थ ॥

**इति नवमं शतकम्।**

---

१—**विवस्वान्** विशेषेण वस्ते आच्छादयत्यनेन भुवनमिति विव अंशुजालं तद्वान् सूयते इति **सविता** कृतो बहुलमिति वार्तिकात्कर्मणि तृच् बाहुलकात् यज्ञेऽभिषूयमाण· **अमृतः** सोमः अंशुरंशुष्टेदेवसोमेति मन्त्रलिङ्गात्। अपाम सोममममृता अभूमेति अमृतत्वसाधनत्वश्रुतेश्च सोमस्य विवस्वत्त्वममृतत्वं च ज्ञेयं तेन त्रिपदमेकं नाम ॥ १४० ॥

२—**व्यासः** पुराणेतिहासादेः स्रष्टा।

३—**सर्गः** तस्यैव सृज्यं पुराणादि अस्य विशेषणे **सुसंक्षेपो विस्तर** इति च सूत्रादिरूपो भाष्यादिरूप इत्यर्थः। इदमपि त्रिपदं नाम एवं सति होमे एकैकनामजपे वा एवं मन्त्र ऊह्यः ओं सर्गाय सुसंक्षेपाय विस्तराय स्वाहेति ओं नमः सर्गाय सुसंक्षेपाय विस्तरायेति च भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहेतिवदनेकपदतोऽप्येकनामत्वं ज्ञेयम्।

४—**पर्ययो नरः** परितः अयते व्याप्नोतीति पर्यय स च नरो जीवः समष्टिजीवो वैश्वानर इत्यर्थः।

५—**ऋतुः**।

६—**संवत्सरः**।

७—**मासः**।

८—**पक्षः**।

९—**संख्यासमापनः** ऋत्वादिसंख्यासमाप्तिरूपः मत्क्रान्तिदर्शपूर्णमासादिरूप ॥ १४१ ॥

१०—**कलाः**।

११—**काष्ठा**।

१२—**लवाः**।

१३—**मात्रा**।

१४—**मुहूर्ताहःक्षपा** इति समस्तं नाम।

१५—**क्षणाः** ऋत्वाद्या. कालावयवाः स्पष्टार्थाः।

१६—**विश्वक्षेत्रं** ब्रह्माण्डवृक्षस्यालवालं चिन्मात्रम्।

१७—**प्रजाबीजं** प्रजाना बीजं मायाविशिष्टचैतन्यरूपं अव्यक्तम्।

१८—**लिङ्गं** महत्तत्त्वम्।

१९—**आद्यो निर्गमः** अंकुररूपी अहमिति प्रथमोऽध्यास. ॥ १४२ ॥

२०—**सत् कार्यम्**।

२१—**असत्** कारणम्।

२२—**व्यक्तं** इन्द्रियग्राह्यम्।

२३—**अव्यक्तं** अहं न जानामीत्यनुभवैकवेद्यमज्ञानम्।

२४—**पिता**।

२५—**माता**।

२६—**पितामहः**।

२७—**स्वर्गद्वारं** तप·।

२८—**प्रजाद्वारं** राग.।

२९—**मोक्षद्वारं** वैराग्यम्।

३०—**त्रिविष्टपं** स्वर्गसाधनधर्मः ॥ १४३ ॥

३१—**निर्वाणं** मोक्ष·।

३२—**ह्लादनः** आनन्दयिता एष ह्येवानन्दयातीति श्रुतेः।

३३—**ब्रह्मलोकः** सत्यलोक.।

३४—**परा गतिः** ततोऽप्यधिका गतिर्गन्तव्य·।

३५—**देवासुरविनिर्माता**।

३६—**देवासुरपरायणः** पुंस्त्वमार्गम्॥१४४॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः॥ ४५
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः।
देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः॥ ४६
देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्माऽऽत्मसंभवः॥ ४७

उद्भित्त्रिविक्रमो वैद्यो विरजो नीरजोऽमरः।
ईड्यो हस्तीश्वरो व्याघ्रो देवसिंहो नरर्षभः॥४८
विबुधोऽग्रवरः सूक्ष्मः सर्वदेवस्तपोमयः।
सुयुक्तः शोभनो वज्री प्रासानां प्रभवोऽव्ययः॥४९
गुहः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्वपावनः।
शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः॥ ५०

३७—**देवासुरगुरुः** बृहस्पतिशुक्ररूप।
३८—**देवो** विजिगीषुः।
३९—**देवासुरनमस्कृतः**।
४०—**देवासुरमहामात्रः** महामात्रः श्रेष्ठः।
४१—**देवासुरगणाश्रयः** आश्रणीय ॥ १४५ ॥
४२—**देवासुरगणाध्यक्षः** इन्द्रविरोचनादिरूप।
४३—**देवासुरगणाग्रणीः** स्वामिकार्तिकेयकोशिदेत्यरूपः।
४४—**देवातिदेवः** इन्द्रियाण्यतिक्रम्य स्वयमेव प्रकाशमान।
४५—**देवर्षिः** नारदादिरूपः।
४६—**देवासुरवरप्रदः** ब्रह्मरुद्रादिरूपेण ॥१४६॥
४७—**देवासुरेश्वरः** तेषामन्तर्यामी।
४८—**विश्वः** विशत्यस्मिन्निति विश्वं जगद्गर्भाशय।
४९—**देवासुरमहेश्वरः** अन्तर्यामिण ईश्वरस्याप्यधिष्ठानं अतो महेश्वर।
५०—**सर्वदेवमयः** अग्निर्मूर्धा चक्षुर्षी चन्द्रसूर्यावित्यादि श्रुते।
५१—**अचिन्त्यः** नास्ति चिन्त्योऽन्यो यस्य यस्माद्वा।
५२—**देवतात्मा** देवतानामन्तरात्मा प्रत्यग्रूप।
५३—**आत्मसम्भवः** स्वतः सिद्ध ॥ १४७ ॥
५४—**उद्भित** उद्भिद्याविर्भवतीति वा फलं उद्भिनत्तीति वा स्थावररूपो यज्ञादिरूपो वा।
५५—**त्रिविक्रमः** त्रीणि भुवनानि क्रमत इति वामन।
५६—**वैद्यो** विद्यावान्।
५७—**विरजः** निर्मल।
५८—**नीरजः** रजोगुणहीनः।
५९—**अमरः** विनाशहीन।
६०—**ईड्यः** स्तुत्य.।
६१—**हस्तीश्वरः** कालहस्तीश्वराख्यवायव्यलिङ्गरूप।
६२—**व्याघ्रो** व्याघ्रेश्वरनामकलिङ्गरूप।
६३—**देवसिंहः** देवेषु पराक्रमी।
६४—**नरर्षभः** नरेष्वपि श्रेष्ठ ॥ १४८ ॥
६५—**विबुधः** विशेषेण प्राज्ञः।
६६—**अग्रवरः** अग्रे वृणोति यज्ञभागादिकमित्यग्रवर।
६७—**सूक्ष्मः** दुर्लक्ष्य।
६८—**सर्वदेवः** तत्तद्देवतासु कात्स्न्येन परिसमाप्त।
६९—**तपोमयः** तप प्रधान।
७०—**सुयुक्तः** सुतरा युक्त सन्नद्ध।
७१—**शोभनः** कल्याण।
७२—**वज्री** वज्रायुध।
७३—**प्रासानां** आयुधविशेषाणा **प्रभव** उत्पत्तिस्थानम्।
७४—**अव्ययः** न विविधेन रूपेण एति प्राप्नोत्येन साधक इत्यव्यय एकाग्रचित्तप्राप्य। एरच्प्रत्ययान्तोयम् ॥ १४९ ॥
७५—**गुहः** कुमार।
७६—**कान्तः** कस्य सुखस्य अन्त सीमा आनन्दस्य परा काष्ठेत्यर्थ।
७७—**निजः सर्गः** सृज्यते इति सर्गस्तस्य विशेषण निज स्वस्मादनन्यः।
७८—**पवित्रं** पविर्वज्रं तत्तुल्यं मृत्युदु.ख तस्मात् त्रायत इति पवित्रम्।
७९—अत एव **सर्वपावनः** सर्वेषा ब्रह्मादीनामपि शुद्धिकरः।
८०—**शृङ्गी** वृषभादिरूप।
८१—**शृङ्गप्रियः** पर्वतशिखराश्रय।
८२—**बभ्रुः** शनैश्चरः।
८३—**राजराजः** कुबेर.।
८४—**निरामयः** निर्दोष. ॥ १५० ॥

अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेवो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ५१
स्थावराणां पतिश्चैव
नियमेन्द्रियवर्धनः ।
सिद्धार्थः सिद्धभूतार्थोऽ-
चिन्त्यः सत्यव्रतः शुचिः ॥ ५२
व्रताधिपः परं ब्रह्म
भक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्ततेजाश्च
श्रीमान् श्रीवर्धनो जगत् ॥ ५३

यथा प्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया
यन्न ब्रह्मादयो देवा विदुस्तत्त्वेन नर्षयः ॥५४
स्तोतव्यमर्च्यं वन्द्यं च
कः स्तोष्यति जगत्पतिम् ।
भक्त्या त्वेवं पुरस्कृत्य
मया यज्ञपतिर्विभुः ॥ ५५
ततोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य स्तुतो मतिमतां वरः।
शिवमेभिः स्तुवन् देवं नामभिः पुष्टिवर्धनैः५६
नित्ययुक्तः शुचिर्भक्तः
प्राप्नोत्यात्मानमात्मना ॥ ५७

८५—**अभिरामः** प्रीतिजनक ।

८६—**सुरगणः** देवसङ्घरूप ।

८७—**विरामः** सर्वोपरमरूप ।

८८—**सर्वसाधनः** सर्वाणि आश्रमकर्माणि यद्वा-श्रये साधनानि यस्मिन्निति ।

८९—**ललाटाक्षः** ।

९०—**विश्वदेवः** विश्वैर्ब्रह्माण्डकन्दुकैर्दीव्यति क्रीडत इति ।

९१—**हरिणः** मृगरूप. ।

९२—[ **ब्रह्मवर्चसः** ] ब्रह्मवर्चसं विद्यातप समुद्भवं तेज तद्वान् अर्शआद्यच्प्रत्ययान्तोऽयम् ॥ १५१ ॥

९३—**स्थावराणां पतिः** हिमाचलादिरूप ।

९४—**नियमेन्द्रियवर्धनः** नियमैर्निग्रहै कृत्वा इन्द्रियाणा समनस्काना वर्धनो हिंसक क्षीणमना लब्ध-समाधिरित्यर्थः ।

९५—**सिद्धार्थः** नित्यसिद्ध एव मोक्षो ज्ञानापगम-मात्रेण कण्ठगतविस्मृतचामीकरवदर्थोऽर्थनीयो यस्य स सिद्धार्थः तत्त्वज्ञानार्थी ।

९६—अत एव **सिद्धभूतार्थः** पूर्वं सिद्ध. पश्चा-द्भूत. साधित. सिद्धभूत' पूर्वकालैकेति समास , स चासौ अर्थश्च सिद्धभूतार्थः उक्तविधो मोक्ष. ।

९७—अत एव **अचिन्त्यः** चिन्त्यादुपास्यादन्यः प्रत्यगात्मत्वात् 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते'इति श्रुतेश्च ।

९८—**सत्यव्रतः** सत्यं ब्रह्म तदर्थान्येव व्रतानि तपासि यस्य ।

९९—**शुचिः** निर्मलचित्तः ॥ १५२ ॥

१०००—**व्रताधिपः** तत्तद्व्रतफलप्रद ।

**इति दशमं शतकम् ।**

१—**परं** विश्वतैजसप्राज्ञेभ्योऽपरब्रह्मभ्य पर तुरीय शिवाख्य 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति श्रुतिप्रसिद्धम् ।

२—अत एव **ब्रह्म** देशत कालतो वस्तुतश्च परिच्छेद-शून्यम् । 'नेह नानास्ति किंचन' इति श्रुतेर्विश्वादीनामनृतत्वेन स्वगतभेदस्याप्यभावादखण्डैकरस वस्तु तन्मात्रम् ।

३—**भक्तानां परमा गतिः** भज्यो आमर्दनेऽस्य रूप भक्ताना विश्वादिषु पूर्वपूर्वस्य उत्तरस्मिन्नुत्तरास्मिन्प्रविलापन-लक्षणं आमर्दनं सैन्धवखिल्यसलिलन्यायेन कुर्वता परमा निरतिशया गति कैवल्यरूपा विश्रान्ति ।

४—**विमुक्तः** देहान्ते विशेषेण मुक्त ।

५—कुतो विमुक्तत्वमत आह-**मुक्ततेजा** इति। तेज -पदेनात्र लिङ्गशरीरमुच्यते । तत् मुक्तं तेजोऽनेनेति तथा ।

६—मुक्ततेजस्त्वमपि कुत यत **श्रीमान्** योगैश्वर्य-वान् तथाहि-योगी जितमृत्युर्यथाकामं भीष्मवदिहैव तिष्ठति ब्रह्मलोकं वा मूर्धन्यनाड्या गच्छति। इहैव लिङ्गशरीर कवचवद्वा त्यक्त्वा विशुद्धं कैवल्यमाप्नोति ।

७—श्रीमत्त्वमपि कुत. यत. **श्रीवर्धनः** 'ऋच सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतेर्वेदत्रय-रूपा श्रियं कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डात्मिका वर्धयति तत्तदुक्ता-र्थानुष्ठानेन सम्यक् परिपोषयति स श्रीवर्धनः ।

८—**जगत्** अव्याकृतादिघटान्तनश्वरवस्तुरूप. गच्छाति नित्यं रूपान्तरं प्राप्नोतीति जगदिति व्युत्पत्ते प्रधानादी-नामपि जगत्त्वं चलं गुणवृत्तमिति कापिलसिद्धान्ताच्च एवं च य आदौ स्थिर उक्त स एव जगदित्युक्ते स्थिरे भूमात्म-नि जगत्कल्पितमित्युक्तं भवति, ततश्च 'आत्मैवेदं सर्वं ब्रह्मैवेदं सर्वं तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्म्ययमात्मा'इत्यादि शास्त्रसिद्धं ब्रह्माद्वैतं प्रतिपादितं भवतीति शिवम् ॥ १५३ ॥

**इति नाम्नामष्टाधिकं दशमं शतकं समाप्तम् ।**

**यथेति** । बहूना मध्ये सहस्रं प्रधानानि नामान्युद्धृत्य स्तुतोऽसीत्यर्थस्यार्थ ॥ १५४ ॥

एतद्धि परमं ब्रह्म परं ब्रह्माधिगच्छति ।
ऋषयश्चैव देवाश्च स्तुवन्त्येतेन तत्परम् ॥५८
स्तूयमानो महादेवस्तुष्यते नियतात्मभिः ।
भक्तानुकम्पी भगवानात्मसंस्थाकरो विभुः ॥
तथैव च मनुष्येषु ये मनुष्याः प्रधानतः ।
आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च बहुभिर्जन्मभिः स्तवैः
भक्त्या ह्यनन्यमीशानं परं देवं सनातनम् ।
कर्मणा मनसा वाचा भावेनामिततेजसः ६१
शयाना जाग्रमाणाश्च व्रजन्नुपविशंस्तथा ।
उन्मिषन्निमिषंश्चैव चिन्तयन्तः पुनः पुनः ६२
शृण्वन्तः श्रावयन्तश्च कथयन्तश्च ते भवम् ।
स्तुवन्तः स्तूयमानाश्च तुष्यन्ति च रमन्ति च
जन्मकोटिसहस्रेषु नानासंसारयोनिषु ।
जन्तोर्विगतपापस्य भवे भक्तिः प्रजायते॥६४
उत्पन्ना च भवे भक्तिरनन्या सर्वभावतः ।
भाविनः कारणे चास्य सर्वयुक्तस्य सर्वथा ।
एतद्देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते ।
निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी
तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम् ।
येन यान्ति परां सिद्धिं तद्भागवतचेतसः ॥
ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम् ।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात्तान्समुद्धरेत् ६८
एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम् ।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम्
इति तेनेन्द्रकल्पेन
भगवान्सदसत्पतिः ।
कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्ण
तण्डिना शुभबुद्धिना ॥ ७०
स्तवमेतं भगवतो ब्रह्मा स्वयमधारयत् ।
गीयते च स बुद्ध्येत ब्रह्मा शङ्करसन्निधौ१७१

इदं पुण्यं पवित्रं च सर्वदा पापनाशनम् ।
योगदं मोक्षदं चैव स्वर्गदं तोषदं तथा ॥ ७२
एवमेतत्पठन्ते य एकभक्त्या तु शङ्करम् ।
या गतिः सांख्ययोगानां व्रजन्त्येतां गतिं तदा
स्तवमेतं प्रयत्नेन सदा रुद्रस्य सन्निधौ ।
अब्दमेकं चरेद्भक्तः प्राप्नुयादीप्सितं फलम्७४
एतद्रहस्यं परमं ब्रह्मणो हृदि संस्थितम् ।
ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय शक्रः प्रोवाच मृत्यवे७५
मृत्युः प्रोवाच रुद्रेभ्यो
रुद्रेभ्यस्तण्डिमागमत् ।
महता तपसा प्राप्त-
स्तण्डिना ब्रह्मसद्मनि ॥ ७६
तण्डिः प्रोवाच शुक्राय गौतमाय च भार्गवः
वैवस्वताय मनवे गौतमः प्राह माधव ॥ ७७
नारायणाय साध्याय
समाधिष्ठाय धीमते ।
यमाय प्राह भगवान्
साध्यो नारायणोऽच्युतः ॥ ७८
नाचिकेताय भगवानाह वैवस्वतो यमः ।
मार्कण्डेयाय वार्ष्णेय नाचिकेतोऽभ्यभाषत
मार्कण्डेयान्मया प्राप्तो नियमेन जनार्दन ।
तवाप्यहममित्रघ्न स्तवं दद्यां ह्यविश्रुतम् ॥८०
स्वर्ग्यमारोग्यमायुष्यं
धन्यं वेदेन संमितम् ।
नास्य विघ्नं विकुर्वन्ति
दानवा यक्षराक्षसाः ।
पिशाचा यातुधाना वा
गुह्यका भुजगा अपि ॥ ८१
यः पठेत शुचिः पार्थ ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
अभग्नयोगो वर्षं तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् १८२

**एतद्धीति** । परमं ब्रह्म उत्कृष्टा ब्रह्मप्राप्तिसाधनभूता विद्या । एता जपन् पर ब्रह्म कैवल्यं अधिगच्छतीत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ५८ ॥ आत्मसंस्थाकर आत्मनि प्रतीचि संस्थाऽनन्यव्यापाररूपा परिसमाप्ति ता करोति मोक्षप्रद इत्यर्थः ॥ ५९ ॥ **तथैवेति** । बहुभिर्जन्मभिरीशानं स्तवै स्तुवन्तस्तुष्यन्ति च रमन्ति चेति प्रथमद्वितीयचतुर्थस्थैरन्वय ॥ ६० ॥ भक्त्या आराध्योऽयमिति निश्चयेन भावेन प्रीत्या ॥ ६१ ॥ व्रजन्नित्याद्येकवचनानि बहुवचनार्थानि सुपा सुलुगिति वा विभक्तेरार्ष सु ॥ ६२ ॥ अनन्या अभेदेन शिवोऽहमस्मीति भावनया । तथा च श्रुति —' अथ योऽन्या देवातामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमिति न स वेद यथा पशुरेव स देवतानाम् ' इति, भेदेनोपासनं निन्दति–भवे शिवे कारणे भक्तिरस्य पुंसः भाविनो भाग्यात् सर्वयुक्तस्य सर्वसाधनवत· सर्वथा सर्वैः प्रकारैरुत्पन्ना भवतीति संबन्ध ॥ ६५ ॥ **एवमिति** । संसारमोचनं देवं ऋते अन्ये देवा· मनुष्याणा तपोबलं विकुर्वन्ति नाशयन्तीति सम्बन्ध·। तेषा यतोऽन्या शक्तिर्नास्ति ॥ ६९ ॥ इति हेतो तेन तण्डिना ॥ ७० ॥ गीयते च संस्तवो ब्रह्मणा शङ्करसन्निधौ अतस्तं ब्रह्मा ब्राह्मणो बुद्ध्येत जानीयात् ॥ १७१ ॥ स्पष्टार्थो ग्रन्थशेष ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि महादेवसहस्रनामस्तोत्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

वैशम्पायन उवाच ।
महायोगी ततः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः
पठस्व पुत्र भद्रं ते प्रीयतां ते महेश्वरः ॥ १
पुरा पुत्र मया मेरौ तप्यता परमं तपः ।
पुत्रहेतोर्महाराज स्तव एषोऽनुकीर्तितः ॥ २
लब्धवानीप्सितान्कामानहं वै पाण्डुनन्दन ।
तथा त्वमपि शर्वाद्धि सर्वान्कामानवाप्स्यसि
कपिलश्च ततः प्राह सांख्यर्षिर्देवसंमतः ।
मया जन्मान्यनेकानि भक्त्या चाराधितो भवः
प्रीतश्च भगवान् ज्ञानं ददौ मम भवान्तकम् ।
चारुशीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः सखा ।
आलम्बायन इत्येवं विश्रुतः करुणात्मकः ५
मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः
अयोनिजानां दान्तानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम्
अजराणामदुःखानां शतवर्षसहस्रिणाम् ।
लब्धं पुत्रशतं शर्वात्पुरा पाण्डुनृपात्मज ॥ ७
वाल्मीकिश्चाह भगवान्युधिष्ठिरमिदं वचः ।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति ।
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत ।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः ॥ ९
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः ।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति॥
जामदग्न्यश्च कौन्तेयमिदं धर्मभृतां वरः ।
ऋषिमध्ये स्थितः प्राह ज्वलन्निव दिवाकरः॥
पितृविप्रवधेनाहमार्तो वै पाण्डवाग्रज ।
शुचिर्भूत्वा महादेवं गतोऽस्मि शरणं नृप १२
नामभिश्चास्तुवं देवं ततस्तुष्टोऽभवद्भवः ।
परशुं च ततो देवो दिव्यान्यस्त्राणि चैव मे॥
पापं च ते न भविता अजेयश्च भविष्यसि ।
न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि ॥ १४
आह मां भगवानेवं शिखण्डी शिवविग्रहः ।
तदवाप्तं च मे सर्वं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥१५
विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाऽभवम्
ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितो भवः
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत् ।
असितो देवलश्चैव प्राह पाण्डुसुतं नृपम् ॥१७
शापाच्छक्रस्य कौन्तेय विभो धर्मोऽनशत्तदा
तन्मे धर्मं यशश्चाग्र्यमायुश्चैवाददत्प्रभुः ॥ १८
ऋषिर्गृत्समदो नाम शक्रस्य दयितः सखा ।
प्राहाजमीढं भगवान् बृहस्पतिसमद्युतिः १९
वरिष्ठो नाम भगवांश्चाक्षुषस्य मनोः सुतः ।
शतक्रतोरचिन्त्यस्य सत्रे वर्षसहस्रिके ॥ २०
वर्तमानेऽब्रवीद्वाक्यं साम्नि ह्युच्चारिते मया ।
रथन्तरे द्विजश्रेष्ठ न सम्यगिति वर्तते ॥ २१
समीक्षस्व पुनर्बुद्ध्या पापं त्यक्त्वा द्विजोत्तम
अयज्ञवाहिनं पापमकार्षीस्त्वं सुदुर्मते ॥ २२
एवमुक्त्वा महाक्रोधः प्राह शंभुं पुनर्वचः ।
प्रज्ञया रहितो दुःखी नित्यभीतो वनेचरः २३
दशवर्षसहस्राणि दशाष्टौ च शतानि च ।
नष्टपानीयपवने मृगैरन्यैश्च वर्जिते ॥ २४

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

**महायोगीति** । पठस्व स्तवमिति शेषः । हे पुत्र युधिष्ठिर ॥१॥ आलम्बायन आलम्बगोत्र ॥५॥ हे पुत्र शतं पुत्राणामिति शेषः ॥ ७ ॥ विवादे वेदविपरीतवादे अग्निसहितैर्मुनिभिरुक्त इति सम्बन्धः ॥८॥ तेन वेदविरोधजेन ॥९॥ पितृतुल्या विप्राः 'ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः' इति स्मृतेर्ज्येष्ठा भ्रातरस्तेषां वधेन ॥ १२ ॥ शिखण्डी कपर्दी शिवविग्रहः कल्याणशरीरः ॥ १५ ॥ शक्रस्य धर्मशाले क्वचिदन्यथाकरणात् कुपितस्य प्रभुः प्राधिनः सन्निति शेषः ॥ १८ ॥ उच्चारिते अन्यथेति शेषः ॥ २१ ॥ पापं वितथाभिनिवेशं त्यक्त्वा समीक्षस्व विचारय । अयज्ञवाहिनं न यज्ञं वहति तं पापं अवाक्षरपाठजमपराधम् ॥ २२ ॥

अयज्ञीयद्रुमे देशे रुरुसिंहनिषेविते ।
भविता त्वं मृगः क्रूरो महादुःखसमन्वितः२५
तस्य वाक्यस्य निधने पार्थ जातो ह्यहं मृगः
ततो मां शरणं प्राप्तं प्राह योगी महेश्वरः २६
अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।
साम्यं ममास्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः
अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान् विभुः ।
परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा
अचिन्त्य एष भगवान्कर्मणा मनसा गिरा ।
न मे तात युधिश्रेष्ठ विद्यया पण्डितः समः२९
वासुदेवस्तदोवाच पुनर्मतिमतां वरः ।
सुवर्णाक्षो महादेवस्तपसा तोषितो मया ३०
ततोऽथ भगवानाह प्रीतो मा वै युधिष्ठिर ।
अर्थात्प्रियतरः कृष्ण मत्प्रसादाद्भविष्यसि ३१
अपराजितश्च युद्धेषु तेजश्चैवानलोपमम् ।
एवं सहस्रशश्चान्यान्महादेवो वरं ददौ ॥ ३२
मणिमन्थेऽथ शैले वै पुरा संपूजितो मया ।
वर्षायुतसहस्राणां सहस्रं शतमेव च ॥ ३३
ततो मां भगवान्प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥३४
ततः प्रणम्य शिरसा इदं वचनमब्रुवम् ।
यदि प्रीतो महादेवो भक्त्या परमया प्रभुः३५
नित्यकालं तवेशान भक्तिर्भवतु मे स्थिरा ।
एवमस्त्विति भगवान्स्तत्रोक्त्वाऽन्तरधीयत

जैगीषव्य उवाच ।

ममाष्टगुणमैश्वर्यं दत्तं भगवता पुरा ।
यत्नेनान्येन बलिना वाराणस्यां युधिष्ठिर३७

गर्ग उवाच ।

चतुःषष्ट्यङ्गमददत्कलाज्ञानं ममाद्भुतम् ।
सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पाण्डव ॥ ३८
तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम् ।
आयुश्चैव सपुत्रस्य संवत्सरशतायुतम् ॥ ३९

पराशर उवाच ।

प्रसाद्येह पुरा शर्वं मनसाऽचिन्तयं नृप ।
महातपा महातेजा महायोगी महायशाः॥४०
वेदव्यासः श्रियावासो ब्राह्मणः करुणान्वितः
अप्यसावीप्सितः पुत्रो मम स्याद्वै महेश्वरात्
इति मत्वा हृदि मतं
प्राह मां सुरसत्तमः ।
मयि संभावना यास्याः
फलात्कृष्णो भविष्यति ॥ ४२
सावर्णस्य मनोः सर्गे सप्तर्षिश्च भविष्यति ॥
वेदानां च स वै वक्ता कुरुवंशकरस्तथा ॥४३
इतिहासस्य कर्ता च पुत्रस्ते जगतो हितः ।
भविष्यति महेन्द्रस्य दयितः स महामुनिः ॥
अजरश्चामरश्चैव पराशरसुतस्तव ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥४५
युधिष्ठिर महायोगी वीर्यवानक्षयोऽव्ययः ।

माण्डव्य उवाच ।

अचौरश्चौरशङ्कायां शूले भिन्नो ह्यहं तदा ।
तत्रस्थेन स्तुतो देवः प्राह मां वै नरेश्वर ।
मोक्षं प्राप्स्यसि शूलाच्च
जीविष्यसि समार्बुदम् ॥ ४७
रुजा शूलकृता चैव
न ते विप्र भविष्यति ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव
वर्जितस्त्वं भविष्यसि ॥ ४८
पादाच्चतुर्थात्संभूत आत्मा यस्मान्मुने तव ।
त्वं भविष्यस्यनुपमो जन्म वै सफलं कुरु ४९
तीर्थाभिषेकं सकलं त्वमविघ्नेन चाप्स्यसि ।
स्वर्गं चैवाक्षयं विप्र विदधामि तवोर्जितम्५०
एवमुक्त्वा भगवान् वरेण्यो वृषवाहनः ।
महेश्वरो महाराज कृत्तिवासा महाद्युतिः ५१

---

निधने अन्ते मम एवैश्वर्यं ॥ २६ ॥ साम्यं अवैषम्य युवयो गृत्समदशतक्रत्वो ॥२७॥ परं उत्कृष्ट यथा स्यात्तथा ॥२८॥न मे मया सम पण्डितोऽस्ति विद्यया हेतुना॥२९॥ अर्थात् धर्मस्य फलं कामस्य मूलं चार्थ. सर्वस्मात्प्रियस्ततोऽपि प्रियोऽन्तरात्मा तत्तुल्य सर्वेषा भविष्यसीत्यर्थ ३१ पुरा पूर्वावतारे ॥ ३३ ॥ चतु षष्टिः अङ्गानि अवयवा यस्य कला समूहज्ञानस्य तत् मनोयज्ञेन मानसेन पूजनेन ॥३८॥

इति मम हृदि स्थितं मत मत्वा सुरसत्तम मा प्राह या तव मयि संभावना एतस्मात्फलमह प्राप्स्ये इति अस्या फलात् पुण्यात्तव कृष्णो नाम पुत्रो भविष्यति ॥ ४२ ॥ पादाच्चतुर्थात् ' **तपः शौचं दया सत्यम्** ' इति चत्वारो धर्मस्य पादास्तेषा चतुर्थात्सत्यादेव तत्रात्मा शरीरम् ॥ ४९ ॥

सगणो दैवतश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत।

गालव उवाच।

विश्वामित्राभ्यनुज्ञातो ह्यहं पितरमागतः ५२
अब्रवीन्मां ततो माता दुःखिता रुदती भृशम्
कौशिकेनाभ्यनुज्ञातं पुत्रं वेदविभूषितम् ॥ ५३
न तात तरुणं दान्तं पिता त्वां पश्यतेऽनघ।
श्रुत्वा जनन्या वचनं निराशो गुरुदर्शने ॥ ५४
नियतात्मा महादेवमपश्यं सोऽब्रवीच्च माम्।
पिता माता च ते त्वं च पुत्र मृत्युविवर्जिताः
भविष्यथ विश क्षिप्रं द्रष्टासि पितरं क्षये।
अनुज्ञातो भगवता गृहं गत्वा युधिष्ठिर ॥ ५६
अपश्यं पितरं तात इष्टिं कृत्वा विनिःसृतम्
उपस्पृश्य गृहीत्वेध्मं कुशांश्च शरणाकुरून् ॥
तान्विसृज्य च मां प्राह पिता सास्राविलेक्षणः
प्रणमन्तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डव ५८
दिष्ट्या दृष्टोऽसि मे पुत्र कृतविद्य इहागतः।

वैशम्पायन उवाच

एतान्यत्यद्भुतान्येव कर्माण्यथ महात्मनः॥ ५९
प्रोक्तानि मुनिभिः श्रुत्वा
विस्मयामास पाण्डवः।
ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं
पुनर्मतिमतां वरः ॥ ६०
युधिष्ठिरं धर्मनिधिं पुरुहूतमिवेश्वरः।

वासुदेव उवाच।

उपमन्युर्मयि प्राह तपन्निव दिवाकरः ॥ ६१
अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः ॥
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः ॥ ६२
ईश्वरं संप्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे ६३
सदृशोऽरण्यवासीनां
मुनीनां भावितात्मनाम्।
ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा
शक्रत्वं वा सुरैः सह ॥ ६४

त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति
मनसाऽपि शिवं तात ये प्रपद्यन्ति मानवाः ॥
विधूय सर्वपापानि
देवैः सह वसन्ति ते।
भित्त्वा भित्त्वा च कूलानि
हुत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६६
यजेद्देवं विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते।
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः ६७
सर्वं नुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मना।
कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव ॥ ६८
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित्।
एवमेव महादेव भक्ता ये मानवा भुवि ॥ ६९
न ते संसारवशगा इति मे निश्चिता मतिः।
ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ७०

विष्णुरुवाच।

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
द्यौर्भूमिरापो वसवोऽथ विश्वे।
धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च
रुद्राः ससाध्या वरुणोऽथ गोपः ७१
ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं
वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः
सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च
रक्षा दीक्षा संयमा ये च केचित् ७२
स्वाहा वौषट् ब्राह्मणाः सौरभेयी
धर्मं चाग्र्यं कालचक्रं बलं च।
यशो दमो बुद्धिमतां स्थितिश्च
शुभाशुभं ये मुनयश्च सप्त ॥ ७३
अग्र्या बुद्धिर्मनसा दर्शने च
स्पर्शश्चाग्र्यः कर्मणां या च सिद्धिः।
गणा देवानामूष्मपाः सोमपाश्च
लेखाः सुयामास्तुषिता ब्रह्मकायाः ७४

---

पितरं द्रक्ष्ये इति बुद्ध्या गृहमागत ॥ ५२ ॥ दुःखिता वैधव्यदुःखेन ॥ ५३ ॥ क्षये गृहे विश प्रविश ॥ ५६ ॥ शरणाकुरून् वाय्वाघातेन वा स्वयं वा पक्वतया फलानामध पतनेन विशरणं शरणा तत्प्रधानाः कुरवोऽन्नानि शरणाकुरवस्तान् शॄ विशरणेऽस्माद्भावे ल्युः. 'कुरुर्नृपान्तरे भक्ते' (रान्तवर्गे १६) इति मेदिनी। भक्त ओदनः॥५७॥ सास्रत्वादाविले ईक्षणे यस्य ॥५८॥ ईश्वरो विष्णुः ॥६१॥

कूलानि गृहतटाकादीनि। गृहे +कूलं तटे कूपे सैन्यपृष्ठतटाकयोरिति (लान्तवर्गे १०) मेदिनी ६६ आत्मना चित्तेन ६८ आदित्यचन्द्राविन्यादि सर्वं शर्वाज्जात विद्धीति सप्तमस्थेनान्वय ॥७१॥ सत्यं ब्रह्मतत्त्वविदको वेद उपनिषत् प्राधान्यात् पृथक्कीर्तनं वेदवाहा वेदपाठकाः हव्य हविर्दैवो भागः ॥७२॥ अग्र्या सूक्ष्मा ब्रह्माकारा धीवृत्ति ॥ ७४ ॥

+ 'अथ कूलम्—' इति मूलपाठः।

आभासुरा गन्धपा धूमपाश्च
वाचा विरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः ।
शुद्धाश्च निर्माणरताश्च देवाः
स्पर्शाशना दर्शपा आज्यपाश्च ॥ ७५
चिन्त्यद्योता ये च देवेषु मुख्या
ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ ।
सुपर्ण-गन्धर्व-पिशाच-दानवा
यक्षास्तथा चारण-पन्नगाश्च ॥ ७६
स्थूलं सूक्ष्मं मृदु चाप्यसूक्ष्मं
दुःखं सुखं दुःखमनन्तरं च ।
सांख्यं योगं तत्पराणां परं च
शर्वाज्जातं विद्धि यत्कीर्तितं मे ॥ ७७
तत्संभूता भूतकृतो वरेण्याः
सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः ।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्
पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम् ॥ ७८
विचिन्वन्तस्तपसा तत्स्थवीयः
किञ्चित्तत्त्वं प्राणहेतोर्नतोऽस्मि ।
ददातु देवः स वरानिहेष्टा-
नभिष्टुतो नः प्रभुरव्ययः सदा ॥ ७९
इमं स्तवं संनियतेन्द्रियश्च
भूत्वा शुचिर्यः पुरुषः पठेत ।
अभग्नयोगो नियतो मासमेकं
संप्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत् ॥ ८०
वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु
जयेन्नृपः पार्थ महीं च कृत्स्नाम् ।
वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च
शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च ॥ ८१
स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः ।
सर्वदोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनः ॥ ८२
यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि भारत ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि स्वर्गे वसति मानवः ॥ ८३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

युधिष्ठिर उवाच ।

यदिदं सहधर्मेति प्रोच्यते भरतर्षभ । पाणिग्रहणकाले तु स्त्रीणामेतत्कथं स्मृतम् ॥ १

धूमपा धूमेनैव तृप्यन्त वाचा विरुद्धा वाङ्नियमनशीला निर्माणं अनेकधाभवनं योगेनानेकशरीरधारणं तत्र रता ॥७५॥ चिन्त्यद्योता संकल्पितमात्रं वस्तु येषां सद्य पुरत प्रकाशते तादृशा ॥७६॥ तत्संभूता इति भूमे सकाशाद्बीजानी-वाव्याकृताकाशाख्या ईश्वरा भूतकृतो वियदादिस्रष्टारस्तत एवानन्दमात्रशरीराच्चतुर्थात्संभूता ते च वरेण्या उपासकै शुद्धतत्त्वप्रेप्सुभिर्वरणीया. । पूर्वबीजाद्बीजान्तरमिवानादौ सृष्टिप्रवाहे पूर्वपूर्वस्मादीशादुत्तर उत्तर ईशो भूमभूमौ उत्पद्यते इत्याशयेनोक्तम्--पुरातनीमिति । यथा बीज-शक्त्या शुद्धाया भुवि विद्यमानया मृत् वृक्षीक्रियत एवं ईश्वरशक्त्या आनन्दाचिन्मात्र वस्तु विश्वाकारं क्रियत इति तेन शक्तिं विना कथं केवलादुत्पत्तिरित्यपास्तं शक्त्यनादि-त्वस्याभ्युपगमात्। एतेन बीजशक्तेर्भर्जनेनेव ज्ञानेन जीवगता-विद्याशक्तेर्विद्याग्निना दाहे सति मुक्ताना पुनरनुत्पत्तिः केव-लीभावश्च व्याख्यातः ॥ ७८ ॥ यत् तपसा ध्यानेन विचि-न्वन्त· विचिन्वन्ति आलोचयन्ति ईश्वरं सूत्रं विराजं वा तत्सर्वं तत· स्थवीयः स्थूलतरमेव अतः कारणात् प्राणहेतोः जीवनार्थं मोक्षार्थं किंचिद्वाङ्मनसयोरगोचरं तत्त्वं नतोऽस्मि शरणीभूय प्राप्तोऽस्मि । स एव ईश्वरो भूत्वा वरान्ददातु भूमिर्बीजाद्यात्मता गत्वा जनास्तर्पयति तद्वत् ॥ ७९ ॥ इमं भीष्मवाक्यादारभ्य एतावत्पर्यन्तम् ॥८०॥ कृत्वा शरणी-कृत्य रुद्राय रुद्रे निदधिरे प्रविलापितवन्त ॥ ८२ ॥

नामूर्तं मूर्तिभेद· कखमिव लिपिभिद्रेतुमीष्टे कथंचि-
द्वीजं चामूर्तभेदो ध्वनिमिव कखभिद्याञ्जकान्यत्वजन्मा।
को भिद्याद्बीजबीजं खमिव लिपिभिदा मूर्तिभेदेन मन्द-
स्तेनाद्वैतं चतुर्थं शिवमुपनिषदि ज्ञातमात्मानमीहे ॥१॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे दानधर्मपर्वणि मेघवाहनोपाख्याने अष्टादशोऽध्याय. ॥ १८ ॥

१९

तमेव शरणं व्रजेत्यथ तमेव चाद्यं परं
प्रपद्य इति सूचितं विवृतवान्हरि. पूरुषम् ।
अथैतदुपलब्धये विविधधर्मजातं वदन्
विकुत्सयति योषितः परविरक्ततावाप्तये ॥

आर्ष एष भवेद्धर्मः प्राजापत्योऽथवाऽऽसुरः
यदेतत्सहधर्मेति पूर्वमुक्तं महर्षिभिः ॥ २
सन्देहः सुमहानेष विरुद्ध इति मे मतिः ।
इह यः सहधर्मो वै प्रेत्यायं विहितः क नु ॥ ३
स्वर्गो मृतानां भवति सहधर्मः पितामह ।
पूर्वमेकस्तु म्रियते क चैकस्तिष्ठते वद ॥ ४
नानाधर्मफलोपेता नानाकर्मनिवासिताः ।
नानानिरयनिष्ठान्ता मानुषा बहवो यदा ॥५
अनृताः स्त्रिय इत्येवं सूत्रकारो व्यवस्यति ।
यदानृताः स्त्रियस्तात सहधर्मः कुतः स्मृतः ६
अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते ।
धर्मोऽयं पूर्विका संज्ञा उपचारः क्रियाविधिः
गह्वरं प्रतिभात्येतन्मम चिन्तयतोऽनिशम् ।
निःसन्देहमिदं सर्वं पितामह यथाश्रुति ॥ ८
यदेतद्यादृशं चैतद्यथा चैतत्प्रवर्तितम् ।
निखिलेन महाप्राज्ञ भवानेतद्ब्रवीतु मे ॥ ९

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अष्टावक्रस्य संवादं दिशाया सह भारत ॥ १०
निर्वेष्टुकामस्तु पुरा अष्टावक्रो महातपाः ।
ऋषेरथ वदान्यस्य वव्रे कन्यां महात्मनः ११
सुप्रभां नाम वै नाम्ना रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
गुणप्रभावशीलेन चारित्रेण च शोभनाम् ॥१२
सा तस्य दृष्ट्वैव मनो जहार शुभलोचना ।
वनराजी यथा चित्रा वसन्ते कुसुमाचिता१३
ऋषिस्तमाह देया मे सुता तुभ्यं हि तच्छृणु ।
गच्छ तावद्दिशं पुण्यामुत्तरां द्रक्ष्यसे ततः१४

अष्टावक्र उवाच ।

किं द्रष्टव्यं मया तत्र वक्तुमर्हति मे भवान् ।
तथेदानीं मया कार्यं यथा वक्ष्यति मां भवान्

वदान्य उवाच ।

धनदं समतिक्रम्य हिमवन्तं च पर्वतम् ।
रुद्रस्यायतनं दृष्ट्वा सिद्धचारणसेवितम् ॥ १६
संहृष्टैः पार्षदैर्जुष्टं नृत्यद्भिर्विविधाननैः ।
दिव्याङ्गरागैः पैशाचैरन्यैर्नानाविधैः प्रभोः१७
पाणितालसुतालैश्च शंपातालैः समैस्तथा ।
संप्रहृष्टैः प्रनृत्यद्भिः शर्वस्तत्र निषेव्यते ॥ १८
इष्टं किल गिरौ स्थानं तद्दिव्यमिति शुश्रुम ।
नित्यं सन्निहितो देवस्तथा ते पार्षदाः स्मृताः
तत्र देव्या तपस्तप्तं शङ्करार्थं सुदुश्चरम् ।
अतस्तदिष्टं देवस्य तथोमाया इति श्रुतिः २०

---

ज्ञेयं वस्तु श्रुत्वा तज्ज्ञानसाधनं धर्मं शुश्रूषुः सहोभौ चरतां धर्मं' 'क्षौमे वसानौ जायापती अग्निमादधीयाताम्' इति धर्मपत्नीसाहित्य शास्त्रे दृश्यमानमाक्षिपति—**यदिदमिति**। पाणिग्रहणात्प्राक्साहित्याभावात्सहोभाविति वाक्यं व्याकुप्येतेति भाव ॥१॥ धर्मविशेषे एव साहित्यमपेक्ष्यते न सर्वत्रेत्याशङ्क्य धर्मं विकल्पयति—**आर्ष इति**। ऋषिभिर्मन्त्रैः प्रकाशितः श्रौतस्मार्तक्रियारूप आर्षः केवलं वेदविहितत्वाद्वा। प्राजपत्य प्रजापतिना सन्तानकर्मणा प्रथितः 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' इति श्रुतत्वादकरणेऽनिष्टदर्शनाद्वा आसुरः असुषु रमन्ते तेऽसुरास्तेषामयमासुरः केवलमिन्द्रियप्रीतिदर्शनाद्वा साहित्यमुक्तमित्यर्थः ॥ २ ॥ आद्यमाक्षिप्य सन्देहमाहार्धेन—**सन्देह इति**। अत्र दोषं स्पष्टयति इहैव साहित्यं दम्पत्योर्दृश्यते परलोके तयोः साहित्यं क नु न क्वापीत्यर्थ. ॥३॥ एतदेवोपपादयति—**पूर्वमिति सार्धेन**। सत्यपि कर्मणि साहित्ये दंपत्यो. स्वस्ववासनाभेदकृतो धर्मभेदो दुर्वार इत्यार्षे प्रमाणं निर्युक्तिकमित्यर्थः ॥ ४ ॥ प्रजार्थे साहित्यमिति द्वितीयं पक्षं दूषयति—**अनृताः स्त्रिय इति**। सूत्रकारो धर्मप्रवक्ता अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ' इति स्त्रीधर्मानाह । एवं च प्रजार्थं साहित्यमप्यनुपपन्नं कुण्डगोलकादीनामप्युत्पत्तिदर्शनात् ॥ ६ ॥ पूर्विका पूर्ववर्ती गौणी धर्मसंज्ञा दांपत्यविधौ। यथा भिक्षुकाणामयं धर्मो धूलिः परगृहादितिवदधर्मेऽपि धर्मपदप्रयोग इत्यर्थः। तत्र च पाणिग्रहणादेर्वेदविहितत्वमपि श्येनादिवत्पुरुषेच्छामनुरुध्यैव न तु वस्तुतस्तस्य धर्मत्वमित्याह—**उपचारः क्रियाविधिरिति** ॥७॥ गह्वरं गहनं दुर्बोधमित्यर्थ ॥ ८ ॥ कामुकयो. रागतः प्राप्तो मिथुनीभाव इति न तत्र विधिरित्याख्यायिकामुखेनाह—**अत्रेत्यादिना**। अयं भावः—यथा दर्शपूर्णमासात्पूर्वप्रयुक्तमपां प्रणयनमाश्रित्य 'गोदोहनेन पशुकामस्य प्रणयेत्' इत्यादिविधयः प्रवर्तन्ते। एवं रागप्रयुक्तं दारसंग्रहमाश्रित्य धर्मप्रजाविधय. प्रवर्तन्ते नीरागस्य तु न दारसंग्रहो विधीयते नतरां तदुत्तरकालीना धर्मप्रजादिविधय इति दिशया दिगभिमानिदेवतया ॥ १० ॥ निर्वेष्टुकामः दारसंग्रहार्थी ॥११॥ मनोजहारेत्यनेन भर्तुः कामुकत्वं प्रदर्श्य स्त्रिया· कामुकत्वं विवरीतुं कथामाह—**ऋषिरित्यादिना** ॥ १४ ॥ तालैः कांस्यमयैर्वाद्यभाण्डैः शंपातालैः विद्युद्वत्चपलैर्भ्रमणादिघटितैर्गीतनृत्यक्रियामानविशेषै· समैर्भ्रमणादिरहितैस्तैरेव ॥ १७ ॥

पूर्वे तत्र महापार्श्वे देवस्योत्तरतस्तथा ।
ऋतवः कालरात्रिश्च ये दिव्या ये च मानुषाः
देवं चोपासते सर्वे रूपिणः किल तत्र ह ।
तदतिक्रम्य भवनं त्वया यातव्यमेव हि २२
ततो नीलं वनोद्देशं द्रक्ष्यसे मेघसन्निभम् ।
रमणीयं मनोग्राहि तत्र वै द्रक्ष्यसे स्त्रियम् २३
तपस्विनीं महाभागां वृद्धां दीक्षामनुष्ठिताम् ।
द्रष्टव्या सा त्वया तत्र संपूज्या चैव यत्नतः
तां दृष्ट्वा विनिवृत्तस्त्वं ततः पाणिं ग्रहीष्यसि
यद्येष समयः सर्वः साध्यतां तत्र गम्यताम् ॥
अष्टावक्र उवाच ।
तथास्तु साधयिष्यामि तत्र यास्याम्यसंशयम्
यत्र त्वं वदसे साधो भवान् भवतु सत्यवाक्
भीष्म उवाच ।
ततोऽगच्छत् स भगवानुत्तरामुत्तरां दिशम्
हिमवन्तं गिरिश्रेष्ठं सिद्धचारणसेवितम् २७
स गत्वा द्विजशार्दूलो हिमवन्तं महागिरिम्
अभ्यगच्छन्नदीं पुण्यां बाहुदां धर्मशालिनीम्
अशोके विमले तीर्थे स्नात्वा वै तर्प्य देवताः
तत्र वासाय शयने कौशे सुखमुवास ह ॥२९
ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय स द्विजः
स्नात्वा प्रादुश्चकाराग्निं स्तुत्वा चैनं प्रधानतः
रुद्राणी रुद्रमासाद्य ह्रदे तत्र समाश्वसत् ।
विश्रान्तश्च समुत्थाय कैलासमभितो ययौ ॥
सोऽपश्यत्काञ्चनद्वारं दीप्यमानमिव श्रिया ।
मन्दाकिनीं च नलिनीं धनदस्य महात्मनः ॥
अथ ते राक्षसाः सर्वे येऽभिरक्षन्ति पद्मिनीम्
प्रत्युत्थिता भगवन्तं मणिभद्रपुरोगमाः ३३
स तान्प्रत्यर्चयामास राक्षसान्भीमविक्रमान्
निवेदयत मां क्षिप्रं धनदायेति चाब्रवीत् ३४
ते राक्षसास्तथा राजन् भगवन्तमथाब्रुवन् ।
असौ वैश्रवणो राजा स्वयमायाति तेऽन्तिकम्
विदितो भगवानस्य कार्यमागमनस्य यत् ।
पश्यैनं त्वं महाभागं ज्वलन्तमिव तेजसा३६

ततो वैश्रवणोऽभ्येत्य अष्टावक्रमनिन्दितम् ।
विधिवत्कुशलं पृष्ट्वा तता ब्रह्मर्षिमब्रवीत् ॥३७
सुखं प्राप्तो भवान्कच्चित्किं वा मत्तश्चिकीर्षति
ब्रूहि सर्वं करिष्यामि यन्मां वक्ष्यसि वै द्विज
भवनं प्रविश त्वं मे यथाकामं द्विजोत्तम ।
सत्कृतः कृतकार्यश्च भवान् यास्यत्यविघ्नतः
प्राविशद्भवनं स्वं वै गृहीत्वा तं द्विजोत्तमम्
आसनं स्वं ददौ चैव पाद्यमर्घ्यं तथैव च ४०
अथोपविष्टयोस्तत्र मणिभद्रपुरोगमाः
निषेदुस्तत्र कौबेरा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ ४१
ततस्तेषां निषण्णानां धनदो वाक्यमब्रवीत् ।
भवच्छन्दं समाज्ञाय नृत्येरन्नप्सरोगणाः॥ ४२
आतिथ्यं परमं कार्यं शुश्रूषा भवतस्तथा ।
संवर्ततामित्युवाच मुनिर्मधुरया गिरा ॥ ४३।
अथोर्वरा मिश्रकेशी रम्भा चैवोर्वशी तथा ।
अलम्बुषा घृताची च चित्रा चित्राङ्गदा रुचिः॥
मनोहरा सुकेशी च सुमुखी हासिनी प्रभा ।
विद्युता प्रशमी दान्ता विद्योता रतिरेव च ॥
एताश्चान्याश्च वै बह्व्यः प्रनृत्ताप्सरसः शुभाः
अवादयंश्च गन्धर्वा वाद्यानि विविधानि च॥
अथ प्रवृत्ते गान्धर्वे दिव्ये ऋषिरुपाविशत् ।
दिव्यं संवत्सरं तत्रारमतैष महातपाः ॥ ४७
ततो वैश्रवणो राजा भगवन्तमुवाच ह ।
साग्रः संवत्सरो जातो विप्रेह तव पश्यतः॥४८
हार्योऽयं विषयो ब्रह्मन् गान्धर्वो नाम नामतः
छन्दतो वर्ततां विप्र यथा वदति वा भवान्॥
अतिथिः पूजनीयस्त्वमिदं च भवतो गृहम् ।
सर्वमाज्ञाप्यतामाशु परवन्तो वयं त्वयि ॥५०
अथ वैश्रवणं प्रीतो भगवान्प्रत्यभाषत ।
अर्चितोऽस्मि यथान्यायं गमिष्यामि धनेश्वर
प्रीतोऽस्मि सदृशं चैव तव सर्वं धनाधिप ।
तव प्रसादाद्भगवन् महर्षेश्च महात्मन. ॥ ५२
नियोगादद्य यास्यामि वृद्धिमानृद्धिमान् भव
अथ निष्क्रम्य भगवान् प्रययावुत्तरामुखः॥५३

महापार्श्वे पर्वते ॥ २१ ॥ उत्तरा श्रेष्ठाम् ॥ २७ ॥ प्रधानत· प्रधानैर्वेदमन्त्रैः ॥ ३० ॥ भवच्छन्दं भवदिच्छाम् ॥ ४२ ॥ प्रनृत्ताप्सरस· पदार्थाभिनयो वाक्यार्थाभिनयश्च यत्र वर्तते तत्प्रनृत्तम् । तत्प्रियाः अप्सरसः प्रनृत्ताप्सरस. मध्यमपदलोपी समास. ॥ ४६ ॥ हायः हरतीति हार्य· ॥ ४९ ॥ भगवान् अष्टावक्रः ।

उत्पत्तिं च निरोधं च भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।
दिव्यैर्भोगैरजितोऽपि सर्वज्ञोऽपि वदान्यकन्यालाभार्थं दिगन्तं प्रति गत इति अहो कष्टं कामपिशाचो दुर्जय इति भावः ॥ ५१ ॥ वृद्धिरुपचयस्तद्वान् ऋद्धि· संपत् तद्वान् ॥ ५३ ॥

कैलासं मन्दरं हैम सर्वाननुचचार ह ।
तानतीत्य महाशैलान् कैरातं स्थानमुत्तमम्॥
प्रदक्षिणं तथा चक्रे प्रयतः शिरसा नतः ।
धरणीमवतीर्याथ पूतात्माऽसौ तदाऽभवत्५५
स तं प्रदक्षिणं कृत्वा त्रिः शैलं चोत्तरामुखः ।
समेन भूमिभागेन ययौ प्रीतिपुरस्कृतः ॥ ५६
ततोऽपरं वनोद्देशं रमणीयमपश्यत
सर्वर्तुभिर्मूलफलैः पक्षिभिश्च समन्वितैः ॥५७
रमणीयैर्वनोद्देशैस्तत्र तत्र विभूषितम् ।
तत्राश्रमपदं दिव्यं ददर्श भगवानथ ॥ ५८
शैलांश्च विविधाकारान्
काञ्चनान् रत्नभूषितान् ।
मणिभूमौ निविष्टाश्च
पुष्करिण्यस्तथैव च ॥ ५९
अन्यान्यपि सुरम्याणि पश्यतः सुबहून्यथ ।
भृशं तस्य मनो रेमे महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६०
स तत्र काञ्चनं दिव्यं सर्वरत्नमयं गृहम् ।
ददर्शाद्भुतसङ्काशं धनदस्य गृहाद्वरम् ॥ ६१
महान्तो यत्र विविधा
मणिकाञ्चनपर्वताः ।
विमानानि च रम्याणि
रत्नानि विविधानि च ॥ ६२
मन्दारपुष्पैः सङ्कीर्णां
तथा मन्दाकिनीं नदीम्
स्वयंप्रभाश्च मणयो
वज्रैर्भूमिश्च भूषिता ॥ ६३
नानाविधैश्च भवनैर्विचित्रमणितोरणैः
मुक्ताजालविनिक्षिप्तैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ ६४
मनोदृष्टिहरै रम्यैः सर्वतः संवृतं शुभैः ।
ऋषिभिश्चावृतं तत्र आश्रमं तं मनोहरम् ॥ ६५
ततस्तस्याभवच्चिन्ता
कुत्र वासो भवेदिति ।
अथ द्वारं समभितो
गत्वा स्थित्वा ततोऽब्रवीत् ॥ ६६
अतिथिं समनुप्राप्तमभिजानन्तु येऽत्र वै ।
अथ कन्याः परिवृता गृहात्तस्माद्विनिर्गताः६७
नानारूपाः सप्त विभो
कन्याः सर्वा मनोहराः ।
यां यामपश्यत्कन्यां वै
सा सा तस्य मनोऽहरत् ।
न च शक्तो वारयितुं मनोऽस्याथावसीदति ।
ततो धृतिः समुत्पन्ना तस्य विप्रस्य धीमतः६९
अथ त प्रमदाः प्राहुर्भगवान्प्रविशत्विति ।
स च तासां सुरूपाणां तस्यैव भवनस्य हि ७०
कौतूहलं समाविष्टः प्रविवेश गृहं द्विजः ।
तत्रापश्यज्जरायुक्तामरजोम्बरधारिणीम् ॥७१
वृद्धां पर्यङ्कमासीनां सर्वाभरणभूषिताम् ।
स्वस्तीति तेन चैवोक्ता सा स्त्री प्रत्यवदत्तदा ॥
प्रत्युत्थाय च तं विप्रमास्यतामित्युवाच ह ।
अष्टावक्र उवाच ।
सर्वाः स्वानालयान् यान्तु एका मामुपतिष्ठतु
प्रज्ञाता या प्रशान्ता या
शेषा गच्छन्तु च्छन्दतः ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य
कन्यास्तास्तमृषिं तदा ॥ ७४
निश्चक्रमुर्गृहात्तस्मात्सा वृद्धाऽथ व्यतिष्ठत ।
अथ तां संविशन् प्राह शयने भास्वरे तदा७५
त्वयापि सुप्यतां भद्रे रजनी ह्यतिवर्तते ।
संलापात्तेन विप्रेण तथा सा तत्र भाषिता७६
द्वितीये शयने दिव्ये संविवेश महाप्रभे ।
अथ सा वेपमानाङ्गी निमित्तं शीतजं तदा७७
व्यपदिश्य महर्षेर्वै शयनं व्यवरोहत ।
स्वागतेनागता तां तु भगवानभ्यभाषत ॥७८
सोपागूहद्भुजाभ्यां तु ऋषिं प्रीत्या नरर्षभ ।
निर्विकारमृषिं चापि काष्ठकुड्योपमं तदा७९
दुःखिता प्रेक्ष्य सञ्जल्पमकार्षीदृषिणा सह ।
ब्रह्मन्न कामतोऽन्यास्ति स्त्रीणां पुरुषतो धृतिः
कामेन मोहिता चाहं
त्वां भजन्ती भजस्व माम् ।
प्रहृष्टो भव विप्रर्षे
समागच्छ मया सह ॥ ८१

कैरातं किरातवेषधारिणो महादेवस्य ॥५४॥ धरणीमवतीर्येत्यनेनाकाशमार्गेणाष्टावक्रो गच्छतीति गम्यते ॥ ५५ ॥ सप्त इत्यदिग्देवता ॥६८॥ उत्तराधिष्ठात्री तु देवता मुख्याऽष्टमी सैव जरायुक्ता ॥७१॥ प्रज्ञाता अत्यन्तं ज्ञानवती प्रशान्ता निर्जितचित्ता ॥ ७४ ॥ अथेति । अतिवृद्धाया अपि स्त्रिय इयं गतिः' किमु वक्तव्यं युवत्या अधैर्यमिति ॥ ७७ ॥ उपागूहत् आलिङ्गितवती ॥ ७९ ॥ अकामतोऽनिच्छातः स्वभावत इत्यर्थः पुरुषत. पुरुषं प्राप्य स्त्रीणां धृतिर्धैर्यं अन्या परकीयाऽस्ति पुंयोगे स्त्रीणा धृति. स्वकीया सर्वथा नास्तीत्यर्थः ॥ ८० ॥ प्रहृष्टः कामुको भव ॥८१ ॥

उपगूह च मां विप्र कामार्ताऽहं भृशं त्वयि।
एतद्धि तव धर्मात्मंस्तपसः पूज्यते फलम्८२
प्रार्थितं दर्शनादेव भजमानां भजस्व माम्।
मम चेदं धनं सर्वं यच्चान्यदपि पश्यसि॥८३
प्रभुस्त्वं भव सर्वत्र मयि चैव न संशयः।
सर्वान्कामान्विधास्यामि रमस्व सहितो मया
रमणीये वने विप्र सर्वकामफलप्रदे।
त्वद्वशाहं भविष्यामि रंस्यसे च मया सह८५
सर्वान्कामानुपाश्नीमो ये दिव्या ये च मानुषाः
नातः परं हि नारीणां विद्यते च कदाचन८६
यथा पुरुषसंसर्गः परमेतद्धि नः फलम्।
आत्मच्छन्देन वर्तन्ते नार्यो मन्मथचोदिताः
न च दह्यन्ति गच्छन्त्यः सुतप्तैरपि पांसुभिः।
अष्टावक्र उवाच।
परदारानहं भद्रे न गच्छेयं कथंचन॥ ८८
दूषितं धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम्।
भद्रे निर्वेष्टुकामं मां विद्धि सत्येन वै शपे८९
विषयेष्वनभिज्ञोऽहं धर्मार्थं किल सन्ततिः।
एवं लोकान् गमिष्यामि पुत्रैरिति न संशयः
भद्रे धर्मं विजानीहि ज्ञात्वा चोपरमस्व ह।
स्त्र्युवाच।
नानिलोऽग्निर्न वरुणो न चान्ये त्रिदशा द्विज
प्रियाः स्त्रीणां यथा कामो
रतिशीला हि योषितः।
सहस्रे किल नारीणां
प्राप्येतैका कदाचन॥ ९२
तथा शतसहस्रेषु यदि काचित्पतिव्रता।
नैता जानन्ति पितरं न कुलं न च मातरम्९३
न भ्रातॄन्न च भर्तारं
न च पुत्रान्न देवरान्।
लीलायन्त्यः कुलं घ्नन्ति
कूलानीव सरिद्वराः।
दोषान्सर्वांश्च मत्वाऽऽशु
प्रजापतिरभाषत॥ ९४
भीष्म उवाच।
ततः स ऋषिरेकाग्रस्तां स्त्रियं प्रत्यभाषत।
आस्यतां रुचितश्छन्दः किं च कार्यं ब्रवीहि मे
सा स्त्री प्रोवाच भगवन् द्रक्ष्यसे देशकालतः
वस तावन्महाभाग कृतकृत्यो भविष्यसि९६
ब्रह्मर्षिस्तामथोवाच स तथेति युधिष्ठिर।
वत्स्येऽहं यावदुत्साहो भवत्या नात्र संशयः
अथर्षिरभिसंप्रेक्ष्य स्त्रियं तां जरयाऽर्दिताम्।
चिन्तां परमिकां भेजे सन्तप्त इव चाभवत्॥
यद्यदङ्गं हि सोऽपश्यत्तस्या विप्रर्षभस्तदा।
नारमत्तत्र तत्रास्य दृष्टी रूपविरागिता॥ ९९
देवतेयं गृहस्यास्य शापात्किं नु विरूपिता।
अस्याश्च कारणं वेत्तुं न युक्तं सहसा मया
इति चिन्ता विविक्तस्य तमर्थं ज्ञातुमिच्छतः
व्यगच्छत्तदहःशेषं मनसा व्याकुलेन तु १०१
अथ सा स्त्री तथोवाच भगवन्पश्य वै रवेः।
रूपं सन्ध्याभ्रसंरक्तं किमुपस्थाप्यतां तव॥२
स उवाच ततस्तां स्त्रीं
स्नानोदकमिहानय।
उपासिष्ये ततः सन्ध्यां
वाग्यतो नियतेन्द्रियः॥ १०३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे ऊनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

उपगूह आलिङ्गस्व ॥ ८२ ॥ अनभिज्ञोऽप्रीतिमान् ॥९०॥ एका रतिशीलेति शेष ॥ ९२ ॥ लीलायन्त्यः लीला रतिं आत्मन इच्छन्त्य· अभाषत नैता इत्यादिसार्धश्लोकम् ॥ ९४ ॥ एकाग्र· स्त्रीदोषान् अनुसन्दधान. स्त्रियं प्रति आस्यता तूष्णीं स्थीयताम्। रुचितः रुचिं प्राप्य छन्द. इच्छा भवतीति अभाषत त्व रुचिज्ञा मामिच्छसि अहं तस्त्रिज्ञो न त्वा स्प्रष्टुमिच्छामीति भाव·। एवमपि यत्कार्यं कर्तव्यं तव तन्मे ब्रवीहि ॥ ९५ ॥ द्रक्ष्यसे सर्वसुखं ज्ञास्यसे ॥ ९६ ॥ रूपे विरागिता वैराग्यवती दृष्टिर्नारमत् न रेमे ॥ ९९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

भीष्म उवाच।
अथ सा स्त्री तमुवाच बाढमेवं भवत्विति।
तैलं दिव्यमुपादाय स्नानशाटीमुपानयत् ॥ १
अनुज्ञाता च मुनिना सा स्त्री तेन महात्मना
अथास्य तैलेनाङ्गानि सर्वाण्येवाभ्यमृक्षत २
शनैश्चोत्सादितस्तत्र स्नानशालामुपागमत्।
भद्रासनं ततश्चित्रं ऋषिरन्वगमन्नवम् ॥ ३
अथोपविष्टश्च यदा तस्मिन्भद्रासने तदा।
स्नापयामास शनकैस्तमृषिं सुखहस्तवत् ॥ ४
दिव्यं च विधिवच्चक्रे सोपचारं मुनेस्तदा।
स तेन सुसुखोष्णेन तस्या हस्तसुखेन च ॥ ५
व्यतीतां रजनीं कृत्स्नां नाजानात्स महाव्रतः।
तत उत्थाय स मुनिस्तदा परमविस्मितः ॥ ६
पूर्वस्यां दिशि सूर्यं च सोऽपश्यदुदितं दिवि
तस्य बुद्धिरियं किन्तु मोहस्तत्त्वमिदं भवेत् ७
अथोपास्य सहस्रांशुं किं करोमीत्युवाच तां।
सा चामृतरसप्रख्यं ऋषेरन्नमुपाहरत् ॥ ८
तस्य स्वादुतयाऽन्नस्य न प्रभूतं चकार सः।
व्यगमच्चाप्यहःशेषं ततः सन्ध्यागमत्पुनः
अथ सा स्त्री भगवन्तं सुप्यतामित्यचोदयत्।
तत्र वै शयने दिव्ये तस्य तस्याश्च कल्पिते १०
पृथक्चैव तथा सुप्तौ सा स्त्री स च मुनिस्तदा।
तथार्धरात्रे सा स्त्री तु शयनं तदुपागमत् ॥ ११
अष्टावक्र उवाच।
न भद्रे परदारेषु मनो मे संप्रसज्जति।
उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते स्वयं वै विरमस्व च ॥ १२
भीष्म उवाच।
सा तदा तेन विप्रेण तथा तेन निवर्तिता।
स्वतन्त्राऽस्मीत्युवाचर्षिं न धर्मच्छलमस्ति ते
अष्टावक्र उवाच।
नास्ति स्वतन्त्रता स्त्रीणा-
मस्वतन्त्रा हि योषितः।
प्रजापतिमतं ह्येत-
न्न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १४
स्त्र्युवाच।
बाधते मैथुनं विप्र मम भक्तिं च पश्य वै।
अधर्मं प्राप्स्यसे विप्र यस्मा त्वं नाभिनन्दसि
अष्टावक्र उवाच।
हरन्ति दोषजातानि नरं जातं यथेच्छकम्
प्रभवामि सदा धृत्या भद्रे स्वशयनं व्रज १६
स्त्र्युवाच।
शिरसा प्रणमे विप्र प्रसादं कर्तुमर्हसि।
भूमौ निपतमानायाः शरणं भव मेऽनघ १७
यदि वा दोषजातं त्वं परदारेषु पश्यसि।
आत्मानं स्पर्शयाम्यद्य पाणिं गृह्णीष्व मे द्विज
न दोषो भविता चैव
सत्येनैतद्ब्रवीम्यहम्।
स्वतन्त्रां मां विजानीहि
योऽधर्मः सोऽस्तु वै मयि
त्वय्यावेशितचित्ता च
स्वतन्त्राऽस्मि भजस्व माम् ॥ १९
अष्टावक्र उवाच।
स्वतन्त्रा त्वं कथं भद्रे
ब्रूहि कारणमत्र वै।
नास्ति त्रिलोके स्त्री काचि-
द्या वै स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ २०
पिता रक्षति कौमारे
भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे काले
नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥ २१
स्त्र्युवाच।
कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः।
पत्नीं कुरुष्व मां विप्र श्रद्धां विजहि मा मम

---

२०

अथेति। अथ सा स्त्रीत्यादिरध्यायस्य तात्पर्यं कुत्सिताया जीर्णाया अपि स्त्रिया करस्पर्शमात्रेण विरक्तोऽपि विज्ञानवानप्यष्टावक्रोऽतीतं कालं न बुबुधे का कथा युवत्यां रतिसक्ता मूढा गतमायुरवभोत्स्यन्त इति॥१॥ अभ्यमृक्षत अभ्यक्षितवती ॥ २ ॥ उत्सादितः चालितः ॥ ३ ॥ नाजानात् न ज्ञातवान् ॥ ६ ॥ न प्रभूतं चकार पूर्णमिति नाभ्यवददित्यर्थः। स्पर्शासक्तो गता रात्रिमिव रसासक्तो गतं दिनमपि नाबुध्यतेति भावः ॥ ९ ॥ सेति। स्वातन्त्र्यान्मम न तव पारदार्यदोषोऽस्तीत्यर्थः। धर्मच्छलं परपुरुषप्रलोभनम् ॥ १३ ॥ नास्तीति। अप्रदत्ता त्वा न कामये इत्यर्थः ॥ १४ ॥ दोषाः कामक्रोधादयः यथेच्छकं स्वैरिणम् ॥ १६ ॥ स्वतन्त्रा आत्मप्रदाने इति शेषः। यो धर्मः पाणिग्रहणादिसंस्कारः मयि सन्निमित्तं सोऽस्तु ॥१९॥ विजहि मा मम नाशय ॥ २२ ॥

अष्टावक्र उवाच ।
यथा मम तथा तुभ्यं यथा तुभ्यं तथा मम ।
जिज्ञासेयमृषेस्तस्य विघ्नः सत्य न किं भवेत्
आश्चर्यं परमं हीदं किंनु श्रेयो हि मे भवेत् ।
दिव्याभरणवस्त्रा हि कन्येयं मामुपस्थिता२४
किं त्वस्याः परमं रूपं जीर्णमासीत्कथं पुनः।
कन्यारूपमिहाद्यैव किमिवात्रोत्तरं भवेत् ।
यथा परं शक्तिधृतेर्न व्युत्थास्ये कथञ्चन ।
न रोचते हि व्युत्थानं सत्येनासादयाम्यहम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे विंशोऽध्यायः॥ २० ॥

## २१

युधिष्ठिर उवाच ।
न बिभेति कथं सा स्त्री शापाच्च परमद्युतेः।
कथं निवृत्तो भगवांस्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १
भीष्म उवाच ।
अष्टावक्रोऽन्वपृच्छत्तां रूपं विकुरुषे कथम् ।
न चानृतं ते वक्तव्यं ब्रूहि ब्राह्मणकाम्यया ॥२
स्त्र्युवाच ।
द्यावापृथिव्योर्यत्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम ।
शृणुष्वावहितः सर्वं यदिदं सत्यविक्रम ॥ ३
जिज्ञासेयं प्रयुक्ता मे स्थिरीकर्तुं तवानघ ।
अव्युत्थानेन ते लोका जिताः सत्यपराक्रम
उत्तरां मां दिशं विद्धि दृष्टं स्त्रीचापलं च ते
स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः ॥ ५
तुष्टः पितामहस्तेऽद्य तथा देवाः सवासवाः ।
स त्वं येन च कार्येण संप्राप्तो भगवानिह ॥ ६
प्रेषितस्तेन विप्रेण कन्यापित्रा द्विजर्षभ ।
तवोपदेशं कर्तुं वै तच्च सर्वं कृतं मया ॥ ७
क्षेमैर्गमिष्यसि गृहं
श्रमश्च न भविष्यति ।
कन्यां प्राप्स्यसि तां विप्र
पुत्रिणी च भविष्यति ॥ ८
काम्यया पृष्टवांस्त्वं मां ततो व्याहृतमुत्तमम्
अनतिक्रमणीया सा कृत्स्नैर्लोकैस्त्रिभिः सदा ९
गच्छस्व सुकृतं कृत्वा
किं चान्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।
यावद्ब्रवीमि विप्रर्षे
अष्टावक्र यथातथम् ॥ १०
ऋषिणा प्रसादिता चास्मि
तव हेतोर्द्विजर्षभ ।
तस्य संमाननार्थं मे
त्वयि वाक्यं प्रभाषितम् ॥ ११

---

**यथेति**। अहं आत्मदृष्टान्तेन त्वा स्मरातुरा वेद्मि त्वमपि स्वदृष्टान्तेन मा तथाभूतं विद्धीति भाव.। तुभ्यं तव सङ्गम-श्रद्धेति उभयत्र शेष.। किं तस्य मया कन्यार्थिना प्रार्थितस्य तत्कर्तृका इयं जिज्ञासा मम परीक्षा किमयं साधुरसाधुर्वेति उत किं नेति काकुः। विघ्न एवायं किं न भवेत् अपि तु विघ्न एवेत्यर्थ ॥२३॥विघ्नत्वमेवाह-**आश्चर्यमिति**। पूर्वं अति-जीर्णत्वेन दृष्टा पुनः कन्येव दृश्यत इति मायारूपमाश्चर्यम् ॥ २४ ॥ एतदेवाह-**किमिति**। अत्र अस्मिन्विषये किं उत्तरं श्रेष्ठतरं पूर्वपरिगृहीतस्यात्यागः उत एतस्याः स्वीकार कर्तव्य इति भाव. ॥ २५ ॥ स्वमतमाह—**यथेति**। **शक्तिः**कामदमनसामर्थ्यं **धृतिः**पूर्वप्राप्तस्यात्याग· तदुभयं धृत्वा न व्युत्थास्ये।अस्या. स्वीकारं न करिष्ये व्युत्थानं धर्मातिक्रमं मम न रोचते किं तु सत्येनासादयाम्यहं दारानिति शेष ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्याय· ॥ २० ॥

२१

**न बिभेतीति** ॥१॥ विकुरुषेऽन्यथाऽन्यथा करोषि ब्राह्मणकाम्यया ब्राह्मणमानलिप्सया ॥ २ ॥ द्यावापृथिव्यो. दिवि पृथिव्यां च यत्र स्थीयते तत्र एषा काम्या स्त्रीपुंसयोः अन्योन्याभिलाषरूपा इच्छास्ति मोक्षादन्यत्रेति कार्यं पदं वाक्यमित्यर्थः ॥३॥ मे मया तव त्वाम् ॥४॥ सा काम्याऽनतिक्रमणीया ॥९॥ ऋषिणा वदान्येन ॥११॥

भीष्म उवाच ।

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः
स विप्रः प्राञ्जलिः स्थितः ।
अनुज्ञातस्तया चापि
स्वगृहं पुनराव्रजत् ॥ १२

गृहमागत्य विश्रान्तः स्वजनं परिपृच्छय च
अभ्यगच्छच्च तं विप्रं न्यायतः कुरुनन्दन १३
पृष्टश्च तेन विप्रेण दृष्टं त्वेतन्निदर्शनम् ।
प्राह विप्रं तदा विप्रः सुप्रीतेनान्तरात्मना १४
भवता समनुज्ञातः प्रस्थितो गन्धमादनम् ।
तस्य चोत्तरतो देशे दृष्टं मे दैवतं महत् ॥ १५
तया चाहमनुज्ञातो भवांश्चापि प्रकीर्तितः ।
श्राविततश्चापि तद्वाक्यं गृहं चाभ्यागतः प्रभो
तमुवाच तदा विप्रः सुतां प्रति गृहाण मे ।
नक्षत्रविधियोगेन पात्रं हि परमं भवान् १७

भीष्म उवाच ।

अष्टावक्रस्तथेत्युक्त्वा प्रतिगृह्य च तां प्रभो
कन्यां परमधर्मात्मा प्रीतिमांश्चाभवत्तदा १८
कन्यां तां प्रतिगृह्यैव भार्यां परमशोभनाम् ।
उवास मुदितस्तत्र स्वाश्रमे विगतज्वरः १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

युधिष्ठिर उवाच ।

किमाहुर्भरतश्रेष्ठ पात्रं विप्राः सनातनाः ।
ब्राह्मणं लिंगिनं चैव ब्राह्मणं वाऽप्यलिंगिनम्

भीष्म उवाच ।

स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिंगिने चेतराय च ।
देयमाहुर्महाराज उभावेतौ तपस्विनौ ॥ २

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रद्धया परया पूतो यः प्रयच्छेद्द्विजातये ।
हव्यं कव्यं तथा दानं को दोषः स्यात्पितामह

भीष्म उवाच ।

श्रद्धापूतो नरस्तात दुर्दान्तोऽपि न संशयः ।
पूतो भवति सर्वत्र किमु तत्त्व महाद्युते ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवेषु सततं नरः ।
कव्यप्रदाने तु बुधाः परीक्ष्यं ब्राह्मणं विदुः॥५

भीष्म उवाच ।

न ब्राह्मणः साधयते हव्यं दैवात्प्रसिद्ध्यति।
देवप्रसादादिज्यन्ते यजमानैर्न संशयः ॥ ६
ब्राह्मणान् भरतश्रेष्ठ सततं ब्रह्मवादिनः ।
मार्कण्डेयः पुरा प्राह इति लोकेषु बुद्धिमान्॥

---

यथा कृषिकृतामेव राजदेयं भवत्येवं श्रीमतामेव दैवं पित्र्यं च ऋणमापतति । श्रीमत्त्वं तु कामकृतं च न वैधमिति स्त्यभावेऽयं कस्यापि ऋणी न भवतीति प्रघट्टकार्थ ॥ १९ ॥ श्रीमहाभारते इति अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

एवं गार्हस्थ्यहेतुं काममुक्त्वा गृहस्थोचितान् दानधर्मान्वक्तुं श्रोतुं पात्रादिगुणान्पृच्छति—**किमित्यादिना**। ब्राह्मणं ब्रह्मविदं लिङ्गिनं ब्रह्मचारिणं सन्यासिनं च दण्डादिलिङ्गवन्तम् ॥ १ ॥ स्ववृत्तिं जीवनार्थं स्वोचितां वृत्तिं अभिपन्नाय शरणीकुर्वते लिङ्गी अलिङ्गी वा स्वधर्मसेवी यः स एव तपस्वी पात्रं चेत्यर्थः ॥ २ ॥ स्वधर्मनिष्ठत्वं पात्रगुणमुक्त्वा श्रद्धावत्त्वं दातृगुणमाह—**श्रद्धयेति द्वाभ्याम्**। अपूतोऽपि परया श्रद्धया यदि प्रयच्छति तर्हि तस्य दातुरपूतत्वप्रयुक्तः को दोषः स्यात्तं वद ॥ ३ ॥ **श्रद्धेति** । श्रद्धैवास्य पूतत्वं करोतीत्यर्थः ॥ ४ ॥ **नेति** श्रद्धैव पूतत्वं कर्त्री चेत् कव्ये पात्रपरीक्षा न विधेया स्यादित्याशयः ॥५॥ देवाना समूहाद्दैवात् श्रद्धादिभ्य इत्यर्थः । हव्यं दैवं कर्म । सिध्यति फलदं भवति न तु ब्राह्मणगुणादिति भावः । इज्यन्ते देवा इति शेषः दैवं कर्म देवानुग्रहादेव पूर्णं भवति । श्रद्धामात्रप्रियत्वाद्देवानामिति भावः ॥ ६ ॥ पित्र्यं तु कर्म ब्राह्मणानुग्रहादेव पूर्णं भवतीति तत्रानुग्रहकर्तारं तपोबलमावश्यकमित्याशयेनाह—**ब्राह्मणानिति** । लोकेषु पितृपितामहादिषु पूजनीयेषु ब्राह्मिष्ठेष्वेव ब्राह्मण्यमस्तीति विद्या-

युधिष्ठिर उवाच ।
अपूर्वोऽप्यथवा विद्वान् संबंधी वा यथा भवेत्
तपस्वी यज्ञशीलो वा कथं पात्रं भवेत्तु सः॥८
भीष्म उवाच ।
कुलीनः कर्मकृद्वैद्यस्तथैवाप्यानृशंस्यवान् ।
ह्रीमानृजुः सत्यवादी पात्रं पूर्वे च ये त्रयः ॥९
तत्रेमं शृणु मे पार्थ चतुर्णां तेजसां मतम् ।
पृथिव्याः काश्यपस्याग्नेर्मार्कण्डेयस्य चैव हि॥
पृथिव्युवाच ।
यथा महार्णवे क्षिप्तः क्षिप्रं लेष्टुर्विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं त्रिवृत्यां च निमज्जति॥११
काश्यप उवाच ।
सर्वे च वेदाः सह षड्भिरङ्गैः
साङ्ख्यं पुराणं च कुले च जन्म ।
नैतानि सर्वाणि गतिर्भवन्ति
शीलव्यपेतस्य नृप द्विजस्य ॥ १२
अग्निरुवाच ।
अधीयानः पण्डितं मन्यमानो
यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम् ।
प्रभ्रश्यतेऽसौ चरते न सत्यं
लोकास्तस्य ह्यन्तवन्तो भवन्ति॥१३
मार्कण्डेय उवाच ।
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
नाभिजानामि यद्यस्य सत्यस्यार्धमवाप्नुयात् ॥
भीष्म उवाच ।
इत्युक्त्वा ते जग्मुराशु चत्वारोऽमिततेजसः
पृथिवी काश्यपोऽग्निश्च प्रकृष्टायुश्च भार्गवः१५
युधिष्ठिर उवाच ।
यदि ते ब्राह्मणा लोके व्रतिनो भुञ्जते हविः
दत्तं ब्राह्मणकामाय कथं तत्सुकृतं भवेत् ॥ १६
भीष्म उवाच ।
आदिष्टिनो ये राजेन्द्र ब्राह्मणा वेदपारगाः
भुञ्जते ब्रह्मकामाय व्रतलुप्ता भवन्ति ते ॥ १७
युधिष्ठिर उवाच ।
अनेकान्तं बहुद्वारं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
किंनिमित्तं भवेदत्र तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१८
भीष्म उवाच ।
अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम् १९
ये तु धर्मं प्रशंसन्तश्चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।
अनाचरन्तस्तद्धर्मं सङ्करेऽभिरताः प्रभो॥ २०
तेभ्यो हिरण्यं रत्नं वा गामश्वं वा ददाति यः
दश वर्षाणि विष्ठां स भुङ्क्ते निरयमाश्रितः

---

दित्यर्थः । 'अग्निमुखा वै देवाः पाणिमुखाः पितरः' इत्याश्वलायनोदाहृतश्रुतेः श्रौतं स्मार्तं औदर्योऽप्यग्नि स्वतः शुद्धो देवांस्तर्पयति । पाणिस्तु सत्कर्मवानेव पितॄंस्तर्पयितुं शक्नोति नान्यथेति कव्येष्वावश्यकी पात्रपरीक्षेति भावः ॥ ७ ॥ कथं केन हेतुनाऽपूर्वादीनां पञ्चानां पात्रत्वमिति प्रश्नार्थः ॥ ८ ॥ उत्तरे तु—त्रय अपूर्वसम्बन्धितपस्विनः कुलीनत्वादिगुणसप्तकयुक्ता एव पात्रत्वं भजन्ते परिशेषात् । यज्ञशीलविद्वांसौ कर्मकृद्वैद्यपदोदितौ कुलीनत्वादिगुणपञ्चकयुक्तावेव । एतेषां गुणानामभावे पात्रत्वं न कस्यापीत्यर्थः ॥९॥ एतदेव शिष्टसंमत्या द्रढयति—**तत्रेति** । तेजसा तेजस्विनां सर्वज्ञानामिति यावत् ॥ १० ॥ लेष्टुः पांसुपिण्डः त्रिभिरेव वृत्तिः जीवनं यस्याः सा ब्राह्मी सम्पत् तस्यां त्रिवृत्यां याजनाध्यापनप्रतिग्रहैरेव जीवति स महान् । एतेन कुलीनत्वं वैद्यत्वं च संगृहीतम् ॥ ११ ॥ ह्रीमत्त्वमृजुत्वं शीलपदेन संगृह्णाति—**सर्वे चेति** ॥ १२ ॥ आनृशंस्यं कर्मकृत्वं च संगृह्णाति—**अधीयान इति** । सत्यं यज्ञादिकमव्यभिचरितफलं कर्म न चरते न करोति ॥ १३ ॥ अश्वमेधेति ९ त्ससंग्रहः । एतेषां गुणानामेकतमस्याप्यभावे पात्रत्वं न भवतीति चतुर्णामपि मतं न तु चत्वारि पृथग्भूतानि उपक्रमे तेजसां मतमित्येकवचनाद्न्ते च विसंवादादर्शनादिति भावः ॥ १४ ॥ व्रतिनः ब्रह्मचारिणः कथं तत्सुकृतमिति तदीयव्रतनाशात्स्वीयं श्राद्धं दुष्यति न वेति प्रश्नः ॥ १६ ॥ आदिष्टं द्वादशवर्षाणि ब्रह्मचर्यं चरेति गुर्वादेशस्तद्वन्तः भोक्तुरेव व्रतं लुप्यते न तु दाता प्रत्यवैति अपितु 'कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः । 'पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः' इति । 'व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्' इति च स्मरणात्पुण्यभागेव भवतीति भावः । एतेन श्राद्धादन्यत्र लोभादिप्रदर्शनेन परव्रतं नाशयतो दानेऽपि किञ्चिद्वैगुण्यं जायत इति गम्यते।' 'अत एव मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्। दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक्'इति पात्रादर्शे कल्पान्तरं स्मर्यते। अन्यथैतत्र स्मर्येत नाप्येवं युधिष्ठिरेणाशङ्क्येतेति दिक् ॥ १७ ॥ अन्तो निष्ठा अनेकान्तं अनेकफलाकारमित्यर्थः । पात्रगुणानामनन्तत्वात्के गुणा नियमेन पात्रताया निमित्तं तानेवं सङ्क्षेपेण ब्रूहीति प्रश्नार्थः ॥ १८ ॥ उत्तरमाह त्रिभिः—**अहिंसेति** ॥ १९ ॥

* ' तत्तन्म ' ति पाठ

मेदानां पुल्कसानां च तथैवान्तेवसायिनाम्
कृतं कर्माकृतं वापि रागमोहेन जल्पताम् २२
वैश्वदेवं च ये मूढा विप्राय ब्रह्मचारिणे ।
ददते नेह राजेन्द्र ते लोकान् भुञ्जतेऽशुभान्
युधिष्ठिर उवाच ।
किं परं ब्रह्मचर्यं च किं परं धर्मलक्षणम् ।
किं च श्रेष्ठतमं शौचं तन्मे ब्रूहि पितामह २४
भीष्म उवाच ।
ब्रह्मचर्यात्परं तात मधुमांसस्य वर्जनम् ।
मर्यादायां स्थितो धर्मः शमश्चैवास्य लक्षणं२५
युधिष्ठिर उवाच ।
कस्मिन्काले चरेद्धर्मं कस्मिन्कालेऽर्थमाचरेत्
कस्मिन्काले सुखी च स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह
भीष्म उवाच ।
कल्यमर्थं निषेवेत ततो धर्ममनन्तरम् ।
पश्चात्कामं निषेवेत न च गच्छेत्प्रसक्तितां२७
ब्राह्मणांश्चैव मन्येत गुरूंश्चाप्यभिपूजयेत् ।
सर्वभूतानुलोमश्च मृदुशीलः प्रियंवदः ॥ २८
अधिकारे यदनृतं यच्च राजसु पैशुनम् ।
गुरोश्चालीककरणं तुल्यं तद्ब्रह्महत्यया ॥ २९
प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न हन्याद्गां तथैव च ।
भ्रूणहत्यासमं चैव उभयं यो निषेवते ॥ ३०
नाग्निं परित्यजेज्जातु न च वेदान् परित्यजेत् ।
न च ब्राह्मणमाक्रोशेत्समं तद्ब्रह्महत्यया ॥३१
युधिष्ठिर उवाच ।
कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलं
कीदृशानां च भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह३२
भीष्म उवाच
अक्रोधना धर्मपराः सत्यनित्या दमे रताः
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्
अमानिनः सर्वसहा दृढार्था विजितेन्द्रियाः।
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्३४
अलुब्धाः शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः
स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम् ३५
साङ्गांश्च चतुरो वेदानधीते यो द्विजर्षभः ।
षड्भ्यः प्रवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः
ये त्वेवंगुणजातीयास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ।
सहस्रगुणमाप्नोति गुणार्हाय प्रदायकः ॥ ३७
प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च समन्वितः ।
तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजर्षभः ॥ ३८
गामश्वं वित्तमन्नं वा तद्विधे प्रतिपादयेत् ।
द्रव्याणि चान्यानि तथा प्रेत्यभावे न शोचति
तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजोत्तमः ।
किमङ्ग पुनरेवैते तस्मात्पात्रं समाचरेत् ।४०
निशम्य च गुणोपेतं ब्राह्मणं साधुसंमतम् ।
दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्वतश्चापि पूजयेत्४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि बहुप्राश्निके द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

मेदादीना स विष्ठा भुङ्क्ते इति सम्बन्ध.। **मेदा** गोमाहिष्यादीना मृताना मांसमश्नन्त. । **पुल्कसाः** ये ब्राह्मणादीनपि स्वभावादेव हिंसन्ति। **अन्तेवसायिनः** चर्मकारादय· । कृतमकृतं वा परकीयं पाप कर्म ये प्रकाशयन्ति ब्राह्मणादयोऽपि ते मेदादितुल्या एवेति तेषामपीतिपदार्थ ॥ २२ ॥ वैश्वदेवं तत्सम्बन्धिन हन्तकारं ब्रह्मचारिणे इति संन्यासिनोऽप्युपलक्षणम् । यतिश्च ब्रह्मचारि च पक्वान्नस्वामिनावुभाविति स्मृतेः अशुभानिति च्छेदः ॥२३॥ परं श्रेष्ठम्॥२४॥ **शमः** विषयेभ्य इन्द्रियाणा निवृत्तिरेतदेव श्रेष्ठतरं शौचं धर्मस्य लक्षणं मर्यादान्तर्गतम् ॥ २५ ॥ कल्यं पूर्वाह्णे ॥ २६ ॥ षड्भ्य अनुपदोक्त मधुमांसवर्जनमर्यादापालनशौचै सहाध्ययनयागदानेभ्य तान्यनुष्ठातु प्रवृत्त इत्यर्थ ॥ ३६ ॥ न शोचति प्रतिपादयन् ॥ ३९ ॥ द्विजोत्तम· निर्दोष । एते पूर्वोक्ता गुणाश्च तत्र यदि लभ्यन्ते तर्हि तारयेतेति किमु ॥ ४० ॥ निशम्य ज्ञात्वा ईदृशपात्रप्राप्तौ समीपस्थस्याल्पगुणस्यातिक्रमेऽपि दोषो नास्तीति भाव. ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

युधिष्ठिर उवाच ।
श्राद्धकाले च दैवे च पित्र्येऽपि च पितामह ।
इच्छामीह त्वयाऽऽख्यातं विहितं यत्सुरर्षिभिः ।
भीष्म उवाच ।
दैवं पौर्वाह्णिकं कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम् ।
मङ्गलाचारसम्पन्नः कृतशौचः प्रयत्नवान् ॥ २
मनुष्याणां तु मध्याह्ने प्रदद्यादुपपत्तिभिः ।
कालहीनं तु यद्दानं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ३
लङ्घितं चावलीढं च कलिपूर्वं च यत्कृतम् ।
रजस्वलाभिर्दृष्टं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ४
अवघुष्टं च यद्भुक्तमव्रतेन च भारत ।
परामृष्टं शुना चैव तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ५
केशकीटावपतितं क्षुतं श्वभिरवेक्षितम् ।
रुदितं चावधूतं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ६
निरोङ्कारेण यद्भुक्तं सशस्त्रेण च भारत ।
दुरात्मना च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ७
परोच्छिष्टं च यद्भुक्तं परिभुक्तं च यद्भवेत् ।
दैवे पित्र्ये च सततं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ८
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यच्छ्राद्धं परिविष्यते ।
त्रिभिर्वर्णैर्नरश्रेष्ठ तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ९
आज्याहुतिं विना चैव यत्किंचित्परिविष्यते ।
दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ १०
ये भागा रक्षसां प्रोक्तास्त उक्ता भरतर्षभ ।
अत ऊर्ध्वं विसर्गस्य परीक्षां ब्राह्मणे शृणु ११
यावन्तः पतिता विप्रा जडोन्मत्तास्तथैव च ।
दैवे वाप्यथ पित्र्ये वा राजन्नार्हन्ति केतनम्
श्वित्री क्लीबश्च कुष्ठी च तथा यक्ष्महतश्च यः ।
अपस्मारी च यश्चापि राजन्नार्हन्ति केतनम्
चिकित्सका देवलका वृथा नियमधारिणः ।
सोमविक्रयिणश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् १४
गायना नर्तकाश्चैव प्लवका वादकास्तथा ।
कथका योधकाश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् १५
होतारो वृषलानां च वृषलाध्यापकास्तथा ।
तथा वृषलशिष्याश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् १६
अनुयोक्ता च यो विप्रो अनुयुक्तश्च भारत ।
नार्हतस्तावपि श्राद्धं ब्रह्मविक्रयिणौ हि तौ १७
अग्रणीर्यः कृतः पूर्वं वर्णावरपरिग्रहः ।
ब्राह्मणः सर्वविद्योऽपि राजन्नार्हति केतनम् ॥
अनग्नयश्च ये विप्रा मृतनिर्यातकाश्च ये ।
स्तेनाश्च पतिताश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् १९
अपरिज्ञातपूर्वाश्च गणपूर्वाश्च भारत ।
पुत्रिकापूर्वपुत्राश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ २०
ऋणकर्ता च यो राजन्यश्च वार्धुषिको नरः ।
प्राणिविक्रयवृत्तिश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ २१
स्त्रीपूर्वाः काण्डपृष्ठाश्च यावन्तो भरतर्षभ ।
अजपा ब्राह्मणाश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥

---

२३

**श्राद्धेति** । कालादौ विहितं विशेषमिति शेषः ॥ १ ॥ उपपत्तिभिः आदरादिभिर्युक्तः सन् ॥ ३ ॥ क्षुतं क्षुतेन दूषितम् ॥ ६ ॥ निरोङ्कारेण अननुज्ञातेन शूद्रेण वा ॥ ७ ॥ परिभुक्तं देवातिथिपितृबालकादीन् वर्जयित्वा भुक्तं स्वेनैव ॥ ८ ॥ आज्याहुतिं पात्राभिघारणं विना ॥ १० ॥ विसर्गस्य ब्राह्मणे दानस्य पात्रभूते ॥ ११ ॥ पतिता महापातकेन जातिबहिर्भूताः । **केतनं** निमन्त्रणम् ॥ १२ ॥ श्वित्री श्वेतकुष्ठी कुष्ठी मण्डलकुष्ठी यक्ष्महतो महारोगी अपस्मारी ग्रहग्रस्तः ॥ १३ ॥ देवलका देवार्चनवृत्तिजीविनः वृथा नियमधारिणो दम्भवन्तः ॥ १४ ॥ **प्लवकाः** कूर्दनपराः **कथकाः** वृथालापिनः **योधकाः** मल्लाः ॥ १५ ॥ **वृषलानां** शूद्राणां **होतारो** याजकाः **वृषलशिष्याः** शूद्रदासाः ॥ १६ ॥ **अनुयोक्ता** भृतकाध्यापकः **अनुयुक्तः** भृतकाध्येता ॥ १७ ॥ **वर्णावरपरिग्रहः** शूद्रापतिः ॥ १८ ॥ **अनग्नयः** श्रौतस्मार्तकर्मरहिताः

ये चापेताः स्वकर्मभ्यः स्तेनास्ते परिकीर्तिताः ।
कर्मणा देहदोषैश्च योनितश्चैव कुत्सिताः ।
पतितांस्तान्विजानीयान्महापातकिनश्च ये इति

**स्तेनपतितौ** यमोक्तौ न ग्राह्यौ ॥ १९ ॥ **गणपूर्वाः** ग्रामण्यः **पुत्रिकापूर्वपुत्राः** अस्यामुत्पन्नः पुत्रो मदीय इति नियमेन या दीयते तस्यां च यो जातः स पुत्रिकापूर्वपुत्रः । स पितृगोत्राद्भ्रष्टो मातृगोत्रोपजीवित्वान्निन्द्यः ॥ २० ॥ ऋणकर्ता वृद्ध्यर्थं धनप्रयोक्ता **कुसीद**नामा वार्धुषिकः । "समर्घं धान्यमादाय महर्घं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम हव्यकव्यबहिष्कृतः ॥" इति **स्मृति**प्रसिद्धः ॥ २१ ॥ **स्त्रीपूर्वाः** स्त्रीजिताः स्त्रीपण्योपजीविनो वा **काण्डपृष्ठाः** वेश्यापतिः 'काण्डपृष्ठः सद्भिरेव निगद्यते' इति यमेन व्याख्यातः । **अजपाः** सन्ध्यावन्दनहीनाः ॥ २२ ॥

श्राद्धे दैवे च निर्दिष्टो ब्राह्मणो भरतर्षभ ।
दातुः प्रतिग्रहीतुश्च शृणुष्वानुग्रहं पुनः ॥ २३
चीर्णव्रता गुणैर्युक्ता भवेयुर्येऽपि कर्षकाः ।
सावित्रीज्ञाः क्रियावन्तस्ते राजन्केतनक्षमाः
क्षात्रधर्मिणमप्याजौ केतयेत्कुलजं द्विजम् ।
न त्वेव वणिजं तात श्राद्धे च परिकल्पयेत् ॥
अग्निहोत्री च यो विप्रो ग्रामवासी च यो भवेत्
अस्तेनश्चातिथिज्ञश्च स राजन् केतनक्षमः २६
सावित्रीं जपते यस्तु त्रिकालं भरतर्षभ ।
भिक्षावृत्तिः क्रियावांश्च स राजन्केतनक्षमः ॥
उदितास्तमितो यश्च तथैवास्तमितोदितः ।
अहिंस्रश्चाल्पदोषश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २८
अकल्कको ह्यतर्कश्च ब्राह्मणो भरतर्षभ ।
संसर्गे भैक्ष्यवृत्तिश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २९
अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयिको वणिक्
पश्चाच्च पीतवान्सोमं स राजन्केतनक्षमः ३०
अर्जयित्वा धनं पूर्वं दारुणैरपि कर्माभिः ।
भवेत्सर्वातिथिः पश्चात्स राजन्केतनक्षमः ३१
ब्रह्मविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया यच्चार्जितं धनम्
अदेयं पितृविप्रेभ्यो यच्च क्लैब्यादुपार्जितम् ॥
क्रियमाणेऽपवर्गे च यो द्विजो भरतर्षभ ।
न व्याहरति यद्युक्तं तस्याधर्मो गवानृतम् ३३
श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः प्राप्तं दधि घृतं तथा
सोमक्षयश्च मांसं च यदारण्यं युधिष्ठिर ॥३४
श्राद्धापवर्गे विप्रस्य स्वधा वै मुदिता भवेत् ।
क्षत्रियस्यापि यो ब्रूयात्प्रीयन्तां पितरस्त्विति
अपवर्गे तु वैश्यस्य श्राद्धकर्माणि भारत ।
अक्षय्यमभिधातव्यं स्वस्ति शूद्रस्य भारत ॥
पुण्याहवाचनं दैवं ब्राह्मणस्य विधीयते ।
एतदेव निरोङ्कारं क्षत्रियस्य विधीयते ॥ ३७॥
वैश्यस्य दैवे वक्तव्यं प्रीयन्तां देवता इति ।
कर्मणामानुपूर्व्येण विधिपूर्वं कृतं शृणु ॥ ३८
जातकर्मादिकाः सर्वास्त्रिषु वर्णेषु भारत ।
ब्रह्मक्षत्रे हि मन्त्रोक्ता वैश्यस्य च युधिष्ठिर ॥
विप्रस्य रशना मौञ्जी मौर्वी राजन्यगामिनी
बाल्वजी ह्यत्र वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर ४०
दातुः प्रतिग्रहीतुश्च धर्माधर्माविमौ शृणु ।
ब्राह्मणस्यानृतेऽधर्मः प्रोक्तः पातकसञ्ज्ञितः ।
चतुर्गुणः क्षत्रियस्य वैश्यस्याष्टगुणः स्मृतः ४१
नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्नीयात्पूर्वं विप्रेण केतितः ।
यवीयान्पशुहिंसायां तुल्यधर्मो भवेत्स हि ॥
तथा राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्नीयात्तु केतितः ।
यवीयान् पशुहिंसायां भागार्धं समवाप्नुयात्
दैवं वाऽप्यथवा पित्र्यं योऽश्नीयाद्ब्राह्मणादिषु
अस्नाता ब्राह्मणो राजंस्तस्याधर्मो गवानृतम्

अनुग्रहं निषिद्धानामपि केनचिद्गुणेनाभ्यनुज्ञानम् ॥ २३ ॥ वणिजं वणिग्वृत्तिम् ॥२५॥ **उदितः** आढ्यः **अस्तमितः** दरिद्रः पूर्वाह्णे लाभकाले आढ्यः । सद्यस्तस्य व्यये दरिद्रः । एवं प्रातरलाभकाले **अस्तमितः** मध्याह्ने लाभे सति **उदितः** । अल्पदोषो विद्वत्त्वादिविशेषगुणरहितः **अदाता** वा ॥ २८ ॥ **अकल्कका** अदाम्भिकः अपापो वा । 'कल्कः पापे च दम्भे च' इति **कोशः** । अकल्पक इति पाठे स्वेच्छया धर्माधर्मकल्पकः । **अतर्कः** अहेतुकः शुष्कतर्कपरः संसर्गे सङ्गत्यर्हे गृहे ज्ञाते भैक्ष्यवृत्तिः ॥ २९ ॥ कितवो द्यूतः ॥ ३० ॥ सर्वं देवतादिकं अतिथिरेव यस्य स सर्वातिथिः ॥ ३१ ॥ **ब्रह्म** वेदः क्लैब्यात् दीनभाषणेन मिथ्याशपथादिना वा ॥ ३२ ॥ अपवर्गे श्राद्धसमाप्तौ ह्रीयमाण इति पाठे लज्जमानः युक्तं अस्तु स्वधेत्यादिवचनं गवानृतं अनृतगोशपथस्य पापम् ॥ ३३ ॥ सोमक्षयो दर्शः आरण्यं मृगादिमांसं च यदा प्राप्तं तदैव श्राद्धस्य कालः ॥३४॥ स्वधोच्यतामिति प्रदात्रा उक्ते अस्तु स्वधेति ब्राह्मणो वदेत् एवमुत्तरत्र मुदिता प्रीतिकरी पितृणामित्यर्थात् ॥ ३५ ॥ **पुण्येति** । पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्विति यजमानेन प्रोक्ते ओं पुण्याहमस्त्विति ब्राह्मणा ब्रूयुः । दैवं सोङ्कारम् ॥३७॥ दैवे ओङ्कारस्थाने प्रीयन्तां देवताः पुण्याहमस्त्विति प्रतिवदेदित्यर्थः कृतं क्रिया अनुष्ठानक्रमामिति यावत् वैश्यस्य च मन्त्रोक्ता इत्यनुषङ्गः ॥ ३८ ॥ रशना मेखला मौञ्जी मुञ्जमयी मौर्वी धनुर्ज्या बाल्वजी बल्वजस्तृणविशेषस्तन्मयी ॥ ४० ॥ धर्मो दातुः अधर्मः प्रतिग्रहीतुरिति तावुभौ शृणु तत्राधर्ममेव सामान्यत आह—**ब्राह्मणस्येति** एककार्षापणार्थे अनृतवक्तुर्ब्राह्मणस्य यावानधर्मो भवति स एव चतुर्गुणः क्षत्रियस्याष्टगुणो वैश्यस्य तावन्मात्रार्थे भवतीत्यर्थः । सार्धश्लोकः ॥ ४१ ॥ **नेति** । यः पूर्वस्य निमन्त्रयितुरश्नाति स ज्यायान् परस्याश्नन् यवीयान् तत्र ब्राह्मणेन केतितः सन् यदि यवीयान् भवेत्तर्हि वृथापशुहिंसायाः पूर्णं पापं प्राप्नुयात् । क्षत्रियादिना केतितः सन् यदि यवीयान्स्यात्तर्हि वृथापशुहिंसाया अर्धं पापं प्राप्नुयादिति श्लोकद्वयार्थः ४२

आशौचो ब्राह्मणो राजन्योऽश्नीयाद्ब्राह्मणादिषु
ज्ञानपूर्वमथो लोभात्तस्याधर्मो गवानृतम्॥४५
अर्थेनान्येन यो लिप्सेत्कर्मार्थं चैव भारत।
आमन्त्रयति राजेन्द्र तस्याधर्मोऽनृतं स्मृतम्
अवेदव्रतचारित्रास्त्रिभिर्वर्णैर्युधिष्ठिर।
मन्त्रवत्परिविष्यन्ते तस्याधर्मो गवानृतम्४७

युधिष्ठिर उवाच।

पित्र्यं वाऽप्यथवा दैवं दीयते यत्पितामह
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं दत्तं केषु महाफलम् ४८

भीष्म उवाच।

येषां दाराः प्रतीक्षन्ते सुवृष्टिमिव कर्षकाः।
उच्छेषपरिशेषं हि तान्भोजय युधिष्ठिर ४९
चारित्रनिरता राजन्ये कृशाः कृशवृत्तयः।
अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥५०
तद्भक्तास्तद्गृहा राजंस्तद्बलास्तदपाश्रयाः।
अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम्॥ ५१
तस्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर।
अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्
अकल्ककस्य विप्रस्य रौक्ष्यात्करकृतात्मनः।
बटवो यस्य भिक्षन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम्
हृतस्वा हृतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे।
अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥
व्रतिनो नियमस्थाश्च ये विप्राः श्रुतसंमताः।
तत्समाप्त्यर्थमिच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम्
अत्युत्क्रान्ताश्च धर्मेषु पाषण्डसमयेषु च।
कृशप्राणाः कृशधनास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्
कृतसर्वस्वहरणा निर्दोषाः प्रभविष्णुभिः।
स्पृहयन्ति च भुक्त्वान्नं तेषु दत्तं महाफलम्
तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तेषां भैक्षचराश्च ये।
अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्
महाफलविधिर्दाने श्रुतस्ते भरतर्षभ।
निरयं येन गच्छन्ति स्वर्गं चैव हि तच्छृणु५९
गुर्वर्थमभयार्थं वा वर्जयित्वा युधिष्ठिर।
येऽनृतं कथयन्ति स्म ते वै निरयगामिनः ६०
परदाराभिहर्तारः परदाराभिमर्शिनः।
परदारप्रयोक्तारस्ते वै निरयगामिनः॥ ६१
ये परस्वापहर्तारः परस्वानां च नाशकाः।
सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः॥६२
प्रपाणां च सभानां च सङ्क्रमाणां च भारत
अगाराणां च भेत्तारो नरा निरयगामिनः६३
अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम्
वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः६४
वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत।
मित्रच्छेदं तथाऽऽशायास्ते वै निरयगामिनः
सूचकाः सेतुभेत्तारः परवृत्त्युपजीवकाः।
अकृतज्ञाश्च मित्राणां ते वै निरयगामिनः ६६
पाषण्डा दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः।
ये प्रत्यवसिताश्चैव ते वै निरयगामिनः॥ ६७
विषमव्यवहाराश्च विषमाश्चैव वृद्धिषु।
लाभेषु विषमाश्चैव ते वै निरयगामिनः॥ ६८
द्यूतसंव्यवहाराश्च निष्परीक्षाश्च मानवाः।
प्राणिहिंसाप्रवृत्ताश्च ते वै निरयगामिनः॥६९

---

आशौच जननमरणाशौचवान् ॥ ४५ ॥ अर्थेन प्रयोजनेन तीर्थयात्राव्यपदेशेन जीविकाद्यर्थी यो धनं लिप्सेत् यो वा कर्मार्थं मे भिक्षां देहीत्यामन्त्रयति दातारमभिमुखीकरोति तस्यापि अनृतं गवानृतमेव स्मृतम् ॥ ४६ ॥ वेदव्रतं चारित्रं च येषां नास्ति ते येन मन्त्रवत् मन्त्रयुक्तं यथा स्यात्तथा श्राद्धे परिविष्यन्ते तस्य ॥ ४७ ॥ भोजनपात्रेऽवशिष्टमुच्छेषः तेन सहितं परिशेषं स्थाल्यामवशिष्टं प्रतीक्षन्ते, येषां पाकपर्याप्तमेव धान्यादिकमस्ति न कुसूलादौ तान् भोजय ॥ ४९ ॥ तद्भक्ता चारित्रमेव भक्तोऽन्नं तद्वज्जीवनं येषां ते। तद्गृहाः तदेव गृहे स्त्र्यादौ येषां ते, बलं इह लोके दोषाभिभवसामर्थ्यं, अपाश्रयः परलोकगमनालम्बनं अर्थे प्रयोजने सत्येवार्थिनो भवन्ति न सग्रहार्थम् ॥ ५१ ॥ रौक्ष्यात् दारिद्र्यात् करे कृतः आत्मैवात्मा जीवनमन्नं हस्ते गृहीतान्नस्य बटवः क्षुधार्ताः मह्यं देहि मह्यं देहीति याचन्ते तेभ्योऽतिदरिद्रेभ्य ॥ ५३ ॥ कृतेति पाठेऽपि कृतं हिंसितं दूरीकृतं हृतमित्येवार्थः ॥ ५४ ॥ च. पादपूरणार्थः । पाषण्डानां समयो मर्यादा येषु धर्मेषु तत्र अत्युत्क्रान्ताः अत्यन्तं ततो दूरे स्थिताः ॥ ५६ ॥ भुक्त्वाऽन्नमेव स्पृहयन्ति न स्वादु, अत एव न चतुर्थी स्वादुत्वेनानीप्सितत्वादन्नस्य किन्तु गर्तापूरणं यथाकथंचित्कर्तव्यं तच्च स्वयमेवेश्वरेण कर्तव्यमित्याशयवन्त इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ अभयार्थं भयनिवृत्तिरूपं प्रयोजनम् ॥ ६० ॥ आभिमर्शिनो जाराः प्रयोक्तारः हर्त्रभिमर्शिनोर्दूताः ॥ ६१ ॥ परेषां दोषस्येति शेषः ॥ ६२ ॥ आशायाश्छेदमित्येकदेशानुषंगः कुर्वन्तीति शेषः ॥ ६५ ॥ सूचकाः राजगामिपैशुन्यवादिनः सेतुः आर्यमर्यादा ॥ ६६ ॥ पाषण्डाः वेदविरोधिनः शाक्यादयः दूषकाः सतां निन्दकाः समयानां धर्मसङ्केतानां प्रत्यवसिताः आरूढपतिताः ॥ ६७ ॥ विषमाः जनविरोधिनो व्यवहारादयो येषां ते ॥ ६८ ॥

कृताश कृतनिर्देशं कृतभक्तं कृतश्रमम् ।
भेद्वैर्यं ऽयपकर्षन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७०
पर्यश्नन्ति च ये दारानग्निभृत्यातिथींस्तथा ।
उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः ॥ ७१
वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव दूषकाः ।
वेदानां लेखकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७२
चातुराश्रम्यबाह्याश्च श्रुतिबाह्याश्च ये नराः ।
विकर्मभिश्च जीवन्ति ते वै निरयगामिनः ७३
केशविक्रयिका राजन् विषविक्रयिकाश्च ये ।
क्षीरविक्रयिकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ७४
ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर ।
यऽन्तरं यान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ॥
शस्त्रविक्रयिकाश्चैव कर्तारश्च युधिष्ठिर ।
शल्यानां धनुषां चैव ते वै निरयगामिनः ७६
शिलाभिः शङ्कुभिर्वापि श्वभ्रैर्वा भरतर्षभ ।
ये मार्गमनुरुंधंति ते वै निरयगामिनः ॥ ७७
उपाध्यायांश्च भृत्यांश्च भक्तांश्च भरतर्षभ ।
ये त्यजंत्यविकारांस्तांस्ते वै निरयगामिनः ७८
अप्राप्तदमकाश्चैव नासानां वेधकाश्च ये ।
बन्धकाश्च पशूनां ये ते वै निरयगामिनः ७९
अगोप्तारश्च राजानो बलिषड्भागतस्कराः ।
समर्थाश्चाप्यदातारस्ते वै निरयगामिनः ८०

क्षान्तान् दान्तांस्तथा प्राज्ञान्
दीर्घकालं सहोषितान् ।
त्यजन्ति कृतकृत्या ये
ते वै निरयगामिनः ॥ ८१

बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः ।
अदत्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः ८२
एते पूर्वं विनिर्दिष्टाः प्रोक्ता निरयगामिनः ।
भागिनः स्वर्गलोकस्य वक्ष्यामि भरतर्षभ ८३
सर्वेष्वेव तु कार्येषु दैवपूर्वेषु भारत ।
हन्ति पुत्रान् पशून्कृत्स्नान्ब्राह्मणातिक्रमः कृतः
दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर ।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिन ॥ ८५
शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च विद्यामादाय भारत ।
ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ८६
भयात्पापात्तथा बाधाद्दारिद्र्याद्व्याधिधर्षणात्
यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ८७
क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः ।
मङ्गलाचारसम्पन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥८८
निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च ।
निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः ८९
आश्रमाणां च कर्तारः कुलानां चैव भारत
देशानां नगराणां च ते नराः स्वर्गगामिनः९०
वस्त्राभरणदातारो भक्तपानान्नदास्तथा ।
कुटुम्बानां च दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥
सर्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये ।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९२
मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः ।
भ्रातॄणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः९३
आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।
ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः
अपराधिषु सस्नेहा मृदवो मृदुवत्सलाः ।
आराधनसुखाश्चापि पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥९५
सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः ।
त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ९६
सुवर्णस्य च दातारो गवां च भरतर्षभ ।
यानानां वाहनानां च ते नराः स्वर्गगामिनः
वैवाहिकानां द्रव्याणां प्रेष्याणां च युधिष्ठिर
दातारो वाससां चैव ते नराः स्वर्गगामिनः
विहारावसथोद्यानकूपारामसभाप्रपाः ।
वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥९९

---

कृताशं दासमार्थिनं वा कृतनिर्देशं निर्देशः तुभ्यमिदं दास्यामीति प्रतिज्ञा सा कृता यस्मै इति समासः । भक्तं वेतनं व्यपकर्षन्ति पत्युः सकाशाद्दूरीकुर्वन्ति ॥ ७० ॥ पर्यश्नन्ति परित्यज्याश्नन्ति ॥ ७१ ॥ विकर्मभिः स्वस्य निषिद्धैः कर्मभिः ॥ ७३ ॥ केशाश्चामरकम्बलादृग. ॥ ७४ ॥ अन्तरं यान्ति अन्तराया भवन्ति ॥७५॥ कर्तारः शस्त्रशल्यादीनाम् ॥७६॥ अप्राप्त अदान्तः । 'प्राप्त लब्धे समञ्जसे' (तवर्गे ३२) इति मेदिनी । पशूना युगेन योग्या अण्डमर्दनेन वा बलवीर्ययोर्नाशका अप्राप्तदमकाः ॥ ७९ ॥ सर्वेष्वेति । ये ब्राह्मणातिक्रमं न कुर्वन्ति ते स्वर्गगामिन इत्यर्थ ॥ ८४ ॥ आबाधात् सङ्कटात् ॥ ८७ ॥ मधु क्षौद्रम् ॥ ८९ ॥ कर्तारः पालनकर्तारः ॥ ९० ॥ कुटुम्बानां दातारः परविवाहकर्तारः ॥ ९१ ॥ आराधनेन इतरान् सुखयन्ति ते तथा ॥ ९५ ॥ द्रव्याणां वस्त्रालङ्कारादीनां प्रेष्याणां दासीदासानाम् ॥ ९८ ॥

निवेशनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत ।
दातारः प्रार्थितानां च ते नराः स्वर्गगामिनः
रसानां चाथ बीजानां धान्यानां च युधिष्ठिर
स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ १
यस्मिंस्तस्मिन् कुले जाता बहुपुत्राः शतायुषः
सानुक्रोशा जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥
एतदुक्तममुत्रार्थं दैवं पित्र्यं च भारत ।
दानधर्मं च दानस्य यत्पूर्वमृषिभिः कृतम्१०३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि स्वर्गनरकगामिवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

युधिष्ठिर उवाच ।
इदं मे तत्त्वतो राजन् वक्तुमर्हसि भारत ।
अहिंसयित्वाऽपि कथं ब्रह्महत्या विधीयते॥१
भीष्म उवाच
व्यासमामन्त्र्य राजेन्द्र पुरा यत्पृष्टवानहम्।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तदिहैकमनाः शृणु ॥ २
चतुर्थस्त्वं वसिष्ठस्य तत्त्वमाख्याहि मे मुने ।
अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते ॥ ३
इति पृष्टो मया राजन् पराशरशरीरजः ।
अब्रवीन्निपुणो धर्मे निःसंशयमनुत्तमम् ॥ ४
ब्राह्मणं स्वयमाहूय भिक्षार्थे कृशवृत्तिनम् ।
ब्रूयान्नास्तीति यः पश्चात्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम्
मध्यस्थस्येह विप्रस्य योऽनूचानस्य भारत ।
वृत्तिं हरति दुर्बुद्धिस्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥६
गोकुलस्य तृषार्तस्य जलार्थे वसुधाधिप ।
उत्पादयति यो विघ्नं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ७
यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक् शास्त्रं वा मुनिभिः कृतं
दूषयत्यनभिज्ञाय तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ८
आत्मजां रूपसंपन्नां महतीं सदृशे वरे ।
न प्रयच्छति यः कन्यां तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम्
अधर्मनिरतो मूढो मिथ्या यो वै द्विजातिषु।
दद्यान्मर्मातिगं शोकं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम्१०
चक्षुषा विप्रहीणस्य पंगुलस्य जडस्य वा ।
हरेत यो वै सर्वस्वं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ११
आश्रमे वा वने वाऽपि ग्रामे वा यदि वा पुरे
अग्निं समुत्सृजेन्मोहात्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम्१२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्रह्मघ्नकथने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## २५

युधिष्ठिर उवाच ।
तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ । श्रवणं च महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १

---

दानस्य प्रत्यर्पणस्य दानं च तद्धर्मं चेति शोधको धर्मः । 'स्याद्धर्ममस्त्रियाम्' (१।४।२४) इत्यमरः । अमुत्राथ परलोकफलम् ॥ ३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

**इदं मे** इत्यध्याय' स्पष्टार्थः ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

**तीर्थानामित्यध्यायस्य** तात्पर्यं दरिद्राणां नार्थ धर्मसाधनं तीर्थाटनादन्यन्नास्तीति श्रोतुमिच्छामि तीर्थानामर्थात् ॥ १ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ ॥
वक्तुमर्हसि मे तानि श्रोतास्मि नियतं प्रभो २
भीष्म उवाच ।
इममंगिरसा प्रोक्तं तीर्थवंशं महाद्युते ।
श्रोतुमर्हसि भद्रं ते प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ॥ ३
तपोवनगतं विप्रमभिगम्य महामुनिम् ।
पप्रच्छाङ्गिरसं धीरं गौतमः संशितव्रतः ॥ ४
अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे शंस महामुने ॥५
उपस्पृश्य फलं किं स्यात्तेषु तीर्थेषु वै मुने ।
प्रेत्यभावे महाप्राज्ञ तद्यथाऽस्ति तथा वद ६
आङ्गिरा उवाच ।
सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तामूर्मिमालिनीम्
विगाह्य वै निराहारो निर्मलो मुनिवद्भवेत् ७
काश्मीरमण्डले नद्यो याः पतन्ति महानदम्
ता नदीः सिंधुमासाद्य शीलवान्स्वर्गमाप्नुयात्
पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदकम् ।
देविकामिन्द्रमार्गं च स्वर्णबिन्दुं विगाह्य च
विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सरोभिरभिष्टुतः
हिरण्यबिन्दुं विक्षोभ्य प्रयतश्चाभिवाद्य च१०
कुशेशयं च देवं तं धूयते तस्य किल्बिषम् ।
इंद्रतोयां समासाद्य गन्धमादनसन्निधौ ॥ ११
करतोयां कुरङ्गे च त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
अश्वमेधमवाप्नोति विगाह्य प्रयतः शुचिः १२
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।
तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ।
अपां ह्रद उपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत् ।
ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यसंधस्त्वहिंसकः
यत्र भागीरथी गङ्गा पतते दिशमुत्तराम् ।
महेश्वरस्य त्रिस्थाने यो नरस्त्वभिषिच्यते १५
एकमासं निराहारः स पश्यति हि देवताः ।
सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च इन्द्रमार्गे च तर्पयन् ॥ १६
सुधां वै लभते भोक्तुं यो नरो जायते पुनः ।
महाश्रम उपस्पृश्य योऽग्निहोत्रपरः शुचिः १७
एकमासं निराहारः सिद्धिं मासेन स व्रजेत् ।

महाह्रद उपस्पृश्य भृगुतुङ्गे त्वलोलुपः ॥ १८
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया
कन्याकूप उपस्पृश्य बलाकायां कृतोदकः १९
देवेषु लभते कीर्तिं यशसा च विराजते ॥ २०
देविकायामुपस्पृश्य तथा सुन्दरिकाह्रदे ।
अश्विन्यां रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते नरः २१
महागङ्गामुपस्पृश्य कृत्तिकाङ्गारके तथा ।
पक्षमेकं निराहारः स्वर्गमाप्नोति निर्मलः २२
वैमानिक उपस्पृश्य किङ्किणीकाश्रमे तथा ।
निवासेऽप्सरसां दिव्ये कामचारी महीयते२३
कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदकः ।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं मुच्यते भवात्२४
आश्रमे कृत्तिकानां तु स्नात्वा यस्तर्पयेत्पितॄन्
तोषयित्वा महादेवं निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् २५
महापुर उपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।
त्रसानां स्थावराणां च द्विपदानां भयं त्यजेत्
देवदारुवने स्नात्वा धूतपाप्मा कृतोदकः ।
देवलोकमवाप्नोति सप्तरात्रोषितः शुचिः २७
शरस्तम्बे कुशस्तम्बे द्रोणशर्मपदे तथा ।
अपां प्रपतनासेवी सेव्यते सोऽप्सरोगणैः॥२८
चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले ।
विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते
श्यामायास्त्वाश्रमं गत्वा
उषित्वा चाभिषिच्य च
एकपक्षं निराहार-
स्त्वन्तर्धानफलं लभेत् ॥ ३०
कौशिकीं तु समासाद्य वायुभक्षस्त्वलोलुपः।
एकविंशतिरात्रेण स्वर्गमारोहते नरः ॥ ३१
मतङ्गवाप्यां यः स्नायादेकरात्रेण सिद्ध्यति ।
विगाहति ह्यनालम्बमन्धकं वै सनातनम् ३२
नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः ।
फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः ॥ ३३
गङ्गाह्रद उपस्पृश्य तथा चैवोत्पलावने ।
अश्वमेधमवाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः ॥ ३४

---

तीर्थवंशं तीर्थसङ्घम् ॥ ३ ॥ तीर्थेभ्यः तीर्थान्युद्दिश्य पावनानि न वेति धर्मसंशयोऽस्ति ॥ ५ ॥ प्रेत्यभावे जन्मान्तरे ॥ ६ ॥ मुनिवत् भवेत् मुनीना गतिं लभेतेत्यर्थः ॥ ७ ॥ नदं सिन्धुम् ॥ ८ ॥ गङ्गाद्वारादयोऽत्र ब्रह्मगिरौ गोदावर्यनुगता एव प्राह्याः भागीरथीमाहात्म्यस्य अग्रे स्वातन्त्र्येण वर्ण्यमानत्वात् ॥ १३ ॥ त्रिस्थाने स्वर्गमृत्युपाताले ॥ १५ ॥ रूपवर्चसोः समाहारः रूपवर्चस्कं वर्चस्तेजः ॥ २१ ॥ त्रसानां जङ्गमानाम् ॥ २६ ॥ अन्तर्धानफलं गन्धर्वादिभोगम् ॥ ३० ॥

गङ्गायमुनयोस्तीर्थे तथा कालञ्जरे गिरौ ।
दशाश्वमेधानाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः ॥३५
षष्टिह्रद उपस्पृश्य चान्नदानाद्विशिष्यते ।
दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः ॥
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ ।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ॥३७
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
मरुद्गण उपस्पृश्य पितृणामाश्रमे शुचिः ॥ ३८
वैवस्वतस्य तीर्थे च तीर्थभूतो भवेन्नरः ।
तथा ब्रह्मसरो गत्वा भागीरथ्यां कृतोदकः ३९
एकमासं निराहारः सोमलोकमवाप्नुयात् ४०
उत्पातके नरः स्नात्वा अष्टावक्रे कृतोदकः ।
द्वादशाहं निराहारो नरमेधफलं लभेत् ॥ ४१
अश्मपृष्ठे गयायां च निरविन्दे च पर्वते ।
तृतीयां क्रौञ्चपद्यां च ब्रह्महत्यां विशुध्यते॥४२
कलविङ्क उपस्पृश्य विद्याच्च बहुशो जलम् ।
अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा अग्निकन्यापुरे वसेत् ॥
करवीरपुरे स्नात्वा विशालायां कृतोदकः ।
देवह्रद उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते ॥ ४४
पुनरावर्तनन्दां च महानन्दां च सेव्य वै ।
नन्दने सेव्यते दान्तस्त्वप्सरोभिरहिंसकः ४५
उर्वशीं कृत्तिकायोगे गत्वा चैव समाहितः ।
लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा पुंडरीकफलं लभेत्
रामह्रद उपस्पृश्य विपाशायां कृतोदकः ।
द्वादशाहं निराहारः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ॥४७
महाह्रद उपस्पृश्य शुद्धेन मनसा नरः ।
एकमासं निराहारो जमदग्निगतिं लभेत् ॥४८
विंध्ये संताप्य चात्मानं सत्यसन्धस्त्वहिंसकः
विनयात्तप आस्थाय मासेनैकेन सिध्यति ४९
नर्मदायामुपस्पृश्य तथा शूर्पारकोदके ।
एकपक्षं निराहारो राजपुत्रो विधीयते ॥ ५०
जम्बूमार्गे त्रिभिर्मासैः संयतः सुसमाहितः ।
अहोरात्रेण चैकेन सिद्धिं समधिगच्छति ५१
कोकामुखे विगाह्याथ गत्वा चाञ्जलिकाश्रमम्
शाकभक्षश्चीरवासाः कुमारीर्विन्दते दश ॥५२
वैवस्वतस्य सदनं न स गच्छेत्कदाचन ।
यस्य कन्याह्रदे वासो देवलोकं स गच्छति
प्रभासे त्वेकरात्रेण अमावास्यां समाहितः ।
सिध्यते तु महाबाहो यो नरो जायतेऽमरः ५४
उज्जानक उपस्पृश्य आर्ष्टिषेणस्य चाश्रमे ।
पिङ्गायाश्चाश्रमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ५५
कुल्यायां समुपस्पृश्य जप्त्वा चैवाघमर्षणम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥५६
पिंडारक उपस्पृश्य एकरात्रोषितो नरः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ५७
तथा ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोभितम् ।
पुण्डरीकमवाप्नोति उपस्पृश्य नरः शुचिः ५८
मैनाके पर्वते स्नात्वा तथा सन्ध्यामुपास्य च
कामं जित्वा च वै मासं सर्वयज्ञफलं लभेत् ५९
कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम् ।
अभ्येत्य योजनशताद्भ्रूणहा विप्रमुच्यते ॥ ६०
नन्दीश्वरस्य मूर्तिं तु दृष्ट्वा मुच्येत किल्बिषैः ।
स्वर्गमार्गे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति
विख्यातो हिमवान्पुण्यः शङ्करश्वशुरो गिरिः
आकरः सर्वरत्नानां सिद्धचारणसेवितः ६२
शरीरमुत्सृजेत्तत्र विधिपूर्वमनाशके ।
अध्रुवं जीवितं ज्ञात्वा यो वै वेदान्तगो द्विजः
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र नमस्कृत्य मुनींस्तथा ।
ततः सिद्धो दिवं गच्छेद्ब्रह्मलोकं सनातनम् ६४
कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत्
न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत् ६५
यान्यगम्यानि तीर्थानि दुर्गाणि विषमाणि च
मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमीक्षया ६६

---

गयायां गयान्तर्गतेऽश्मपृष्ठे प्रेतशिलाया एका ब्रह्महत्या व्यपोह्य निरविन्दे निश्चितोऽविन्दोऽलाभो यत्र तस्मिन् सुखगन्धहीने प्रेतपर्वते द्वितीयां ब्रह्महत्या निरस्य क्रौञ्चपदीति सर्वेषा विष्णुपदादीनामुपलक्षणं तेषु तृतीया ब्रह्महत्या सङ्ख्या गत एव विशुध्यते हत्या नाशयित्वा पूतो भवति ॥ ४२ ॥ उर्वशीं उर्वशीतीर्थे कृत्तिकायोगे कार्तिक्या पौर्णमास्याम् ॥ ४६ ॥ कुमारीः कुमारीसंज्ञकं तीर्थम् ॥ ५२ ॥ **शरीरमिति** । विधिपूर्वकं आत्मश्राद्धादिकं कृत्वा अनाशके अनशनव्रते कृते सति बुद्धिपूर्वकं अत्रैव शरीरमुत्सृजेत् । तीव्ररोगाद्यनभिभूतस्याप्येतन्मरणं विधीयते, अध्रुवमिति वाक्यशेषात् । तदपि वेदान्तगस्य ज्ञाततत्त्वस्य शरीरधारणे प्रयोजनमपश्यत एव । इतरेषा त्विह मरणं रोगादिमहानिमित्त सत्येव महापातकप्रायश्चित्तार्थं वा उचितं नान्यथेति व्याख्यातं प्रागेव वनपर्वणि ॥ ६३ ॥

इदं मेध्यमिदं पुण्यमिदं स्वर्ग्यमनुत्तमम् ।
इदं रहस्यं वेदानामाप्लाव्यं पावनं तथा ॥ ६७
इदं दद्याद्द्विजातीनां साधोरात्महितस्य च ।
सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ६८
दत्तवान् गौतमस्यैतदङ्गिरा वै महातपाः ।
अङ्गिराः समनुज्ञातः काश्यपेन च धीमता ६९
महर्षीणामिदं जप्यं पावनानां तथोत्तमम् ।
जपंश्चाभ्युत्थितः शश्वन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्
इदं यश्चापि शृणुयाद्रहस्यं त्वङ्गिरोमतम् ।
उत्तमे च कुले जन्म लभेज्जातीश्च संस्मरेत् ७१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि आङ्गिरसतीर्थयात्रायां
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

## २६

वैशम्पायन उवाच ।

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया ब्रह्मणः समम् ।
पराक्रमे शक्रसममादित्यसमतेजसम् ॥ १
गाङ्गेयमर्जुनेनाजौ निहतं भूरितेजसम् ।
भ्रातृभिः सहितोऽन्यैश्च पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः २
शयानं वीरशयने कालाकाङ्क्षिणमच्युतम् ।
आजग्मुर्भरतश्रेष्ठं द्रष्टुकामा महर्षयः ॥ ३
अत्रिर्वसिष्ठोऽथ भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिः सुयतात्मवान् ।
विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तः प्रमतिर्दमः ।
बृहस्पत्युशनोव्यासाश्च्यवनः काश्यपो ध्रुवः ५
दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः ।
भरद्वाजोऽथ रैभ्यश्च यवक्रीतस्त्रितस्तथा ॥ ६
स्थूलाक्षः शबलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः कृशः
नारदः पर्वतश्चैव सुधन्वाऽथैकतो द्विजः ॥ ७
नितंभूर्भुवनो धौम्यः शतानन्दोऽकृतव्रणः ।
जामदग्न्यस्तथा रामः कचश्चेत्येवमादयः ॥८
समागता महात्मानो भीष्मं द्रष्टुं महर्षयः ।
तेषां महात्मनां पूजामागतानां युधिष्ठिरः ॥९
भ्रातृभिः सहितश्चक्रे यथावदनुपूर्वशः ।
ते पूजिताः सुखासीनाः कथाश्चक्रुर्महर्षयः ॥१०
भीष्माश्रिताः सुमधुराः
सर्वेन्द्रियमनोहराः ।
भीष्मस्तेषां कथाः श्रुत्वा
ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ११
मेने दिविष्ठमात्मानं तुष्ट्या परमया युतः ।
ततस्ते भीष्ममामन्त्र्य पाण्डवांश्च महर्षयः १२
अन्तर्धानं गताः सर्वे सर्वेषामेव पश्यताम् ।
तानृषीन्सुमहाभागानन्तर्धानगतानपि ॥ १३
पाण्डवास्तुष्टुवुः सर्वे प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः ।
प्रसन्नमनसः सर्वे गाङ्गेयं कुरुसत्तमम् ॥ १४
उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मन्त्रकोविदाः ।
प्रभावात्तपसस्तेषामृषीणां वीक्ष्य पांडवाः १५
प्रकाशन्तो दिशः सर्वा विस्मयं परमं ययुः ।
महाभाग्यं परं तेषामृषीणामनुचिन्त्य ते ।
पांडवाः सह भीष्मेण कथाश्चक्रुस्तदाश्रयाः१६

वैशम्पायन उवाच ।

कथान्ते शिरसा पादौ स्पृष्ट्वा भीष्मस्य पांडवः
धर्म्यं धर्मसुतः प्रश्नं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच ।

के देशाः के जनपदा आश्रमाः के च पर्वताः
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यः पितामह १८

---

इदं तीर्थसेवनं मेध्यं यज्ञफलप्रदं पुण्यं पापघ्नं अत एव स्वर्ग्यं आप्लाव्यं आप्लव स्नानमित्यर्थः । आभाष्यमिति पाठे रहस्यत्वादवाच्यं स्वार्थे ष्यञ् ॥ ६७ ॥ समनुज्ञातः प्रार्थित काश्यपेन एतद्विज्ञातुकामेनेति शेषः ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

२६

**बृहस्पतीत्यध्यायः** सर्वतीर्थश्रेष्ठा गङ्गा कथयितुं प्रवर्तते इनोऽन्यत्तीर्थान्तरं नास्तीति स्पष्टयन् ॥ १ ॥ यदाऽपृच्छत्तदैवाजग्मुरिति द्वितीयेन यत्तदोरध्याहारेणान्वयः । यस्य प्रश्नमात्रेण सिद्धाना दर्शनं भवति किमुत तद्दर्शनादिनेति भावः ॥ २ ॥ महाभाग्यं योगैश्वर्यं खेचरत्वान्तर्धानशक्त्यादिसिद्धिमत्त्वम् ॥ १६ ॥ देशाः भूमिभागा जनपदा महाजननिवासस्थानानि आश्रमाः ऋषिस्थानानि १८

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शिलोञ्छवृत्तेः संवादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर १९
इमां कश्चित्परिक्रम्य पृथिवीं शैलभूषणाम् ।
असकृद्द्विपदां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्य गृहमेधिनः ॥ २०
शिलवृत्तेर्गृहं प्राप्तः स तेन विधिनाऽर्चितः ।
उवास रजनीं तत्र सुमुखः सुखभागृषिः ॥२१
शिलवृत्तिस्तु यत् कृत्यं प्रातस्तत्कृतवाञ्छुचिः
कृतकृत्यमुपातिष्ठत् सिद्धं तमतिथिं तदा २२
तौ समेत्य महात्मानौ सुखासीनौ कथाः शुभाः
चक्रतुर्वेदसंबद्धास्तच्छेषकृतलक्षणाः ॥ २३
शिलवृत्तिः कथान्ते तु सिद्धमामन्त्र्य यत्नतः ।
प्रश्नं पप्रच्छ मेधावी यन्मां त्वं परिपृच्छसि

शिलवृत्तिरुवाच ।

के देशाः के जनपदाः के श्रमाः के च पर्वताः
प्रकृष्टा पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम् ।

सिद्ध उवाच ।

ते देशास्ते जनपदास्तेऽऽश्रमास्ते च पर्वताः
येषां भागीरथी गङ्गा मध्येनैति सरिद्वरा २६
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत्
स्पृष्टानि येषां गाङ्गेयैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम्
न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद्विधीयते
सर्वाणि येषां गांगेयैस्तोयैः कार्याणि देहिनाम्
गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठंति ते जनाः
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः
पश्चाद्गंगां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम्
स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गांगेयैः प्रयतात्मनाम्
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि॥३१
यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२
अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहत्य पाप्मानं भाति गंगाजलोक्षितः
विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा ।
तद्वद्देशा दिशश्चैव हीना गंगाजलैः शिवैः ३४
वर्णाश्रमा यथा सर्वे धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
क्रतवश्च यथाऽसोमास्तथा गंगां विना जगत्
यथा हीनं नभोऽर्केण भूः शैलैः खं च वायुना
तथा देशा दिशश्चैव गंगाहीना न संशयः ३६
त्रिषु लोकेषु ये केचित् प्राणिनः सर्व एव ते ।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति गंगाजलैः शुभैः
यस्तु सूर्येण निष्टप्तं गांगेयं पिबते जलम् ।
गवां निर्हारनिर्मुक्ताद्यावकात्तद्विशिष्यते॥३८
इन्दुव्रतसहस्रं तु यश्चरेत्कायशोधनम् ।
पिबेद्यश्चापि गंगांभः समौ स्यातां न वा समौ
तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पदेनैकेन यः पुमान् ।
मासमेकं तु गंगायां समौ स्यातां न वा समौ
लंबतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ।
तिष्ठेद्यथेष्टं यश्चापि गंगायां स विशिष्यते ४१
अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।
तथा गंगावगाढस्य सर्वपापं प्रधूयते ॥ ४२
भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् ।
गतिमन्वेषमाणानां न गंगासदृशी गतिः ४३
भवंति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्
गंगाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४४
अप्रतिष्ठाश्च ये केचिदधर्मशरणाश्च ये ।
तेषां प्रतिष्ठा गंगेह शरणं शर्म वर्म च ॥ ४५
प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्ताननेकैः पुरुषाधमान् ।
पततो नरके गंगा संश्रितान्प्रेत्य तारयेत् ॥४६
ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः ।
येऽभिगच्छंति सततं गङ्गां मतिमतां वर ॥४७
विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः ।
ते भवंति शिवा विप्र ये वै गङ्गामुपाश्रिताः
यथा सुराणाममृतं पितॄणां च यथा स्वधा ।
सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम्
उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयाऽर्दिताः ।
श्रेयस्कामास्तथा गङ्गामुपासन्तीह देहिनः५०
स्वायंभुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते ।
स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते ५१

आश्रमा इलाकारस्य पूर्वस्वमार्षम् ॥ २५ ॥ ते देशा इति प्रकृष्टा पुण्यत इत्यनुषङ्गः ॥ २६ ॥ गात्राणि अस्थीनि न्यस्तानि गङ्गायाम् ॥ २८ ॥ व्युष्टि पुण्यवृद्धिः 'व्युष्टि फले समृद्धौ च' इति (टान्तवर्गे २८) मेदिनी ॥३१॥ गवा निहार आहारनिर्गमनमार्गस्ततो निर्मुक्तं यावकं यवविकारस्तस्मात् गा यवानादयित्वा तच्छकृदन्तर्गतान् यवान् पक्त्वा भुञ्जानो यावकव्रतीत्युच्यते ॥ ३८ ॥ इन्दुव्रतं चान्द्रायणम् ॥ ३९ ॥ धूयते दूरे जायते भस्मीभूयापि न शिष्यते इत्यर्थ ॥ ४२ ॥

यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता ।
तथोपजीविनां गंगा सर्वप्राणभृतामिह॥५२॥
देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा सत्रादिभिर्मखैः
अमृतान्युपजीवन्ति तथा गंगाजलं नराः ५३
जाह्नवीपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितम्
आत्मानं मन्यते लोको दिविष्ठमिव शोभितम्
जाह्नवीतीरसंभूता मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः ।
बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय निर्मलम्
गंगोर्मिभिरथो दिग्धः पुरुषं पवनो यदा ।
स्पृशते सोऽस्य पाप्मानं सद्य एवापकर्षति५६
व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य विनशिष्यतः ।
गंगादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति ॥ ५७
हंसारावैः कोकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम् ।
पस्पर्ध गङ्गा गंधर्वान् पुलिनैश्च शिलोच्चयान्॥
हंसादिभिः सुबहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्वृताम् ।
गंगां गोकुलसम्बाधां दृष्ट्वा स्वर्गोपि विस्मृतः
न सा प्रीतिर्दिविष्ठस्य सर्वकामानुपाश्नतः ।
संभवेद्या परा प्रीतिर्गंगायाः पुलिने नृणाम्
वाङ्मनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।
वीक्ष्य गंगां भवेत्पूतो अत्र मे नास्ति संशयः
सप्तावरान् सप्त परान् पितृंस्तेभ्यश्च ये परे ।
पुमांस्तारयते गंगां वीक्ष्य स्पृष्ट्वाऽवगाह्य च ६२
श्रुताभिलषिता पीता स्पृष्टा दृष्टावगाहिता ।
गंगा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः ॥ ६३
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गंगेति कीर्तनात्
पुनात्यपुण्यान्पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ६४
य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च ।
स पितॄंस्तर्पयेद्गंगामभिगम्य सुरांस्तथा ॥ ६५
न सुतैर्न च वित्तेन कर्मणा न च तत्फलम् ।
प्राप्नुयात्पुरुषोऽत्यंतं गंगां प्राप्य यदाप्नुयात् ॥
जात्यंधैरिह तुल्यास्ते मृतैः पंगुभिरेव च ।
समर्था ये न पश्यन्ति गंगां पुण्यजलां शिवाम्
भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम् ।
देवैः सेन्द्रैश्च को गंगां नोपसेवेत मानवः ६८
वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।
विद्यावद्भिः श्रितां गंगां पुमान्को नाम नाश्रयेत्
उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणः प्रयतः शिष्टसंमतः ।
चिन्तयेन्मनसा गंगां स गतिं परमां लभेत् ७०
न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः ।
आ देहपतनाद्गंगामुपास्ते यः पुमानिह ॥ ७१
महापुण्यां च गगनात्पतंतीं वै महेश्वरः ।
दधार शिरसा गंगां तामेव दिवि सेवते ॥७२
अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः ।
यस्तु तस्या जलं सेवेत्कृतकृत्यः पुमान् भवेत्
दिवि ज्योतिर्यथाऽऽदित्यः पितॄणां चैव चंद्रमाः
देवेशश्च तथा नृणां गंगा च सरितां तथा ७४
मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्विमुक्तस्य धनेन वा ।
न भवेद्धि तथा दुःखं यथा गंगावियोगजम् ॥
नारण्यैर्नेष्टविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः ।
तथा प्रसादो भवति गंगां वीक्ष्य यथा भवेत्
पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ।
तथा त्रिपथगां दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ७७
तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
गंगां योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत्
भूस्थैः खस्थैर्दिविष्ठैश्च भूतैरुच्चावचैरपि ।
गंगा विगाह्या सततमेतत्कार्यतमं सताम् ७९
विश्वलोकेषु पुण्यत्वाद्गंगायाः प्रथितं यशः ।
यत्पुत्रान्सगरस्यैतो भस्माख्याननयद्दिवम् ८०
वार्य्वीरिताभिः सुमनोहराभि-
र्द्रुताभिरत्यर्थसमुत्थिताभिः ।
गंगोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धाः
सहस्ररश्मिप्रतिमा भवन्ति ॥ ८१

सोमसंस्थानि अमृतानि देवा उपजीवन्तीति ' प्रथमा पिबते वह्निर्द्वितीया पिबते रविः ' इत्यादिना स्पष्टम् । अर्कसंस्थानीत्यपि च्छान्दोग्ये रोहितादीनि पञ्चामृतानि आस्वाद्य उपजीवन्तीति प्रसिद्धम् ॥ ५३ ॥ व्यसनैः द्यूतपानादिव्यसनजैर्दुःखैः ॥ ५७ ॥ कामान् भोगान् ॥ ६० ॥ उपस्थिता नित्यं सेविताम् ॥ ६८ ॥ भयेभ्यः घोरेभ्यो व्याघ्रादिभ्यः. पिशाचादिभ्यो वा । पापेभ्यः ब्रह्मवधादिभ्यः ॥ ७१ ॥ दिवि देवानामिति शेषः । देवेशः राजेन्द्रः ॥७४॥ आरश्चण्यश्चारण्यौ तृतीयस्यामितो दिवीति श्रुतेररण्याख्यसरोद्वयवान् ब्रह्मलोकः अरण्यस्तत्र भवैरारण्यैविषयैः । इष्टं यागादि तत्प्राप्यैरिष्टविषयैः स्वर्ग्यैः ॥ ७६ ॥ तद्भावः तस्यामेव भावः श्रद्धा यस्य स तथा । धर्मे श्रद्धावानपि स्त्रीपुत्रादिमना भवति तद्व्यावृत्त्यर्थं तद्गतमना इति श्रद्धा मनश्च कदाचित्केऽपि यागादौ भवति न त्वाराध्यदेवतायामिव तत्र नैरन्तर्येण नितरां स्थितिर्भवति तदर्थं तन्निष्ठ इति । त्र्यमपि स्वर्गाद्यर्थं कस्यचिद्भवति तथा न भवति किन्तु परायणं प्राप्यमपि गङ्गैव यस्य स तत्परायणः । एवं भूत्वा योऽनुगतः अनुसृतः भक्त्या आराध्यत्वज्ञानेन स गङ्गायाः प्रियो भवेत् ॥ ७८ ॥ भस्माख्यान् भस्मीभूतान् ॥८०॥ इद्धाः निर्दोषत्वेन दीप्ताः ॥८१

पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां
समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम् ।
गंगां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं
गता धीरास्ते विबुधैः समत्वम् ॥८२

अन्धान् जडान्द्रव्यहीनांश्च गंगा
यशस्विनी बृहती विश्वरूपा ।
देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च
निषेविता सर्वकामैर्युनक्ति ॥ ८३

ऊर्जावतीं महापुण्यां मधुमतीं त्रिवर्त्मगाम् ।
त्रिलोकगोप्त्रीं ये गंगां संश्रितास्ते दिवं गताः

यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्य-
स्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः ।
तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन
इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति ॥ ८५

दक्षां पृश्निं बृहतीं विप्रकृष्टां
शिवामृद्धां भागिनीं सुप्रसन्नाम् ।
विभावरीं सर्वभूतप्रतिष्ठां
गंगां गता ये त्रिदिवं गतास्ते ॥ ८६

ख्यातिर्यस्याः खं दिवं गां च नित्यं
पुरा दिशो विदिशश्चावतस्थे ।
तस्या जलं सेव्य सरिद्वराया
मर्त्याः सर्वे कृतकृत्या भवन्ति ॥ ८७

इयं गंगेति नियतं प्रतिष्ठा
गुहस्य रुक्मस्य च गर्भयोषा ।
प्रातस्त्रिवर्गा घृतवहा विपाप्मा
गंगावतीर्णा वियतो विश्वतोया ८८

सुतावनीध्रस्य हरस्य भार्या
दिवो भुवश्चापि कृतानुरूपा
भव्या पृथिव्यां भागिनी चापि राजन्
गंगा लोकानां पुण्यदा वै त्रयाणाम्

मधुस्रवा घृतधारा घृतार्चि-
र्महोर्मिभिः शोभिता ब्राह्मणैश्च ।
दिवश्च्युता शिरसाऽऽप्ता शिवेन
गंगाऽवनीध्रास्त्रिदिवस्य माता ॥ ९०

योनिर्वरिष्ठा विरजा वितन्वी
शय्या चिरा॰वारिवहा यशोदा
विश्वावती चाकृतिरिष्टसिद्धा
गंगोक्षितानां भुवनस्य पन्थाः ९१

क्षान्त्या मह्या गोपने धारणे च
दीप्त्या कृशानोस्तपनस्य चैव ।
तुल्या गंगा संमता ब्राह्मणानां
गुहस्य ब्रह्मण्यतया च नित्यं ॥ ९२

ऋषिष्टुतां विष्णुपदीं पुराणां
सुपुण्यतोयां मनसाऽपि लोके ।
सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्ना-
स्ते ब्रह्मणः सदनं संप्रयाताः ॥ ९३

---

पयोघृते यागीये हविषी समृद्धिर्यागफलं तद्वतीं यागादिजं पुण्यं तत्फलं स्वर्गादि च गङ्गाप्राप्त्यैव लभ्यत इत्यर्थ ॥ ८२ ॥ बृहती श्रेष्ठा विश्वं देवादीना रूपं सौभाग्यं यया प्राप्यते सा विश्वरूपा ॥ ८३ ॥ ऊर्क् अन्नपश्वादि· ऊर्जेति भागुरिमताट्टाप् तत्प्रदामित्यर्थ. । मधु कर्मफलं ब्रह्म वा तत्प्रदां मधुमतीम् ॥ ८४ ॥ यो गङ्गामिति शेषः तया गङ्गया भाविता महत्वं गता· देवा. स्पर्शनदर्शनेन गङ्गाया एव ॥ ८५ ॥ दक्षा तारणसमर्था पृश्निं त्रिष्णुमातर बृहतीं वाचं ' वाग्वै बृहती ' इति श्रुते. । भागिनीं भगानामैश्वर्यादीनां षण्णां समूहो भागं तद्वतीं विभावरीं प्रकाशिकाम् ॥ ८६ ॥ ख्याति· पुण्यत्वकीर्ति. सेव्य निषेव्य ॥ ८७ ॥ गङ्गां दृष्ट्वा इयं गङ्गेति अन्यान् गङ्गा दर्शयत· पुरुषस्य नियतं नियमेन गङ्गैव प्रतिष्ठा संसारावसानहेतुर्भवति । गुहस्य कार्तिकेयस्य रुक्मस्य स्वर्णस्य च गर्भयोषा गर्भधारिणी स्त्री । वियतः सकाशात्प्रातरवतीर्णा तेनास्या प्रात स्नान अतिप्रशस्तमिति सूचितम् । त्रिवर्गा धर्मार्थकामदा घृतवहा जलवाहिनी विश्वतोया विश्वप्रियतोया ॥ ८८ ॥ अवनीध्रस्य मेरोः हिमवतो वा पर्वतस्य कृतं अनुरूपं अलङ्कारो यया सा कृतानुरूपा ॥ ८९ ॥ मधुस्रवा धर्मद्रवा घृतधारा तेजोधारा घृतार्चिः आज्यस्येव अर्चिर्वर्चो यस्या· सा 'घृतं दीप्ताज्यवारिषु' इति **विश्वलोचनः** अवनीध्रात् पृथिवीं प्राप्तेति शेष· ॥ ९० ॥ वरिष्ठा योनि परमकारणं विरजा निर्मला वितन्वी विशेषेण तन्वी सूक्ष्मा । शय्या दीर्घनिद्रातल्प 'मरणं जाह्नवीतटे' इति वचनात् अचिरा शीघ्रा विश्वावती विश्वं अवन्ती पालयन्ती नुमभाव आर्ष । आकृति· सत्तासामान्यरूपा । 'आकृतिस्तु स्त्रिया रूपे सामान्यवपुषोरपि ' (तान्ते ९४) इति **मेदिनी** इष्टसिद्धा इष्टा सिद्धा यस्या सा सिद्धानामिष्टा इति वा उक्षिताना स्नाताना भुवनस्य स्वर्गस्य ॥९१॥ क्षान्त्यादित्रये मह्या तुल्येति सम्बन्ध. । गुहस्य कुमारस्य संमता ब्रह्मण्यतया ब्राह्मणजात्यनुग्राहकतया ॥ ९२ ॥ मनसाऽपि प्रपन्नाः किमुत साक्षात् ॥ ९३ ॥

लोकानवेक्ष्य जननीव पुत्रान्
सर्वात्मना सर्वगुणोपपन्नान् ।
तत्स्थानकं ब्राह्ममभीप्समानै-
र्गंगा सदैवात्मवशैरुपास्या ॥ ९४
उस्रां पुष्टां मिषतीं विश्वभोज्या-
मिरावती धारिणी भूधराणाम् ।
शिष्टाश्रयाममृतां ब्रह्मकान्तां
गङ्गां श्रयेदात्मवान् सिद्धिकामः ९५
प्रसाद्य देवान् सविभून्समस्तान्
भगीरथस्तपसोग्रेण गङ्गाम् ॥
गामानयत्तामभिगम्य शश्वत्
पुंसां भयं नेह चामुत्र विद्यात् ॥ ९६
उदाहृतः सर्वथा ते गुणानां
मयैकदेशः प्रसमीक्ष्य बुद्ध्या ।
शक्तिर्न मे काचिदिहास्ति वक्तुं
गुणान्सर्वान्परिमातुं तथैव ॥ ९७
मेरोः समुद्रस्य च सर्वरत्नैः
संख्योपलानामुदकस्य वापि ।
शक्यं वक्तुं नेह गंगाजलानां
गुणाख्यानं परिमातुं तथैव ॥ ९८
तस्मादेतान्परया श्रद्धयोक्तान्
गुणान्सर्वान् जाह्नवीयान् सदैव ।
भवेद्वाचा मनसा कर्मणा च
भक्त्या युक्तः श्रद्धया श्रद्दधानः ॥९९
लोकानिमांस्त्रीन्यशसा वितत्य
सिद्धिं प्राप्य महतीं तां दुरापाम् ।
गङ्गाकृतानचिरेणैव लोकान्
यथेष्टमिष्टान् विहरिष्यसि त्वम् १००
तव मम च गुणैर्महानुभावा
जुषतु मतिं सततं स्वधर्मयुक्तैः ।
अभिमतजनवत्सला हि गंगा
जगति युनक्ति सुखैश्च भक्तिमन्तम् १

भीष्म उवाच ।

इति परममतिर्गुणानशेषान्
शिलरतये त्रिपथानुयोगरूपान् ।
बहुविधमनुशास्य तथ्यरूपान्
गगनतलं द्युतिमान् विवेश सिद्धः ॥ २
शिलवृत्तिस्तु सिद्धस्य
वाक्यैः संबोधितस्तदा ।
गंगामुपास्य विधिव-
त्सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ ३
तथा त्वमपि कौन्तेय भक्त्या परमया युतः ।
गंगामभ्येहि सततं प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम् ४

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वेतिहासं भीष्मोक्तं गंगायाः स्तवसंयुतम्
युधिष्ठिरः परां प्रीतिमगच्छद्भ्रातृभिः सह ५
इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाद्यः पठेत वा ।
गंगायाः स्तवसंयुक्तं स मुच्येत्सर्वकिल्बिषैः ६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गङ्गामाहात्म्यकथने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

जननीवोपास्येति सम्बन्धः । अवेक्ष्य नश्वरानिति शेषः ॥ ९४ ॥ उस्रां धेनुं अमृतदुघामिति यावत् । मिषतीं पश्यन्तीं सर्वज्ञामित्यर्थः । इरावतीं अन्नवतीं 'इरा तु मदिरावारिभारत्यशनभूमिषु' इति **विश्वलोचनः** । धारिणीमित्यत्र रेवतीमिति पाठे मातरम् । 'रेवती हरिभार्यायां ताराभिन्मातृभेदयोः' इति **मेदिनी** ब्रह्मणोऽपि कान्ता चेतोहरा सिद्धिर्मोक्षः ॥ ९५ ॥ सविभून् सेश्वरान् गां पृथ्वीम् ॥ ९६ ॥ गुणानां गङ्गाया इति शेषः ॥ ९७ ॥ मदुक्तान् गङ्गागुणान् ज्ञात्वा वागादिभिः स्तोत्रध्यानस्नानादिषु श्रद्दधानो भवेदिति सम्बन्धः ॥ ९९ ॥ गङ्गाकृतान् गङ्गासेवनप्राप्तान् इष्टान् सङ्कल्पसिद्धान् । पाठान्तरं यथेष्टं मृष्टं मधुरं यथा स्यात्तथा ॥ १०० ॥ महानुभावा गङ्गा मतिं जुषतु प्रीणातु गङ्गादर्शनादिना मतिः प्रसीदत्वित्यर्थः । अभिमतः श्रद्धालुः ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

युधिष्ठिर उवाच।
प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च यथा भवान्
गुणैश्च विविधैः सर्वैर्वयसा च समन्वितः ॥ १
भवान् विशिष्टो बुद्ध्या च प्रज्ञया तपसा तथा
तस्माद्भवन्तं पृच्छामि धर्मं धर्मभृतां वर ॥ २
नान्यस्त्वदन्यो लोकेषु प्रष्टव्योऽस्ति नराधिप
क्षत्रियो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम
ब्राह्मण्यं प्राप्नुयाद्येन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यमथ चेदिच्छेत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४
भीष्म उवाच।
ब्राह्मण्यं तात दुष्प्राप्यं वर्णैः क्षत्रादिभिस्त्रिभिः
परं हि सर्वभूतानां स्थानमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५
बह्वीस्तु संसरन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः।
पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मणो नाम जायते ६
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
मतङ्गस्य च संवादं गर्दभ्याश्च युधिष्ठिर ॥ ७
द्विजातेः कस्यचित्तात तुल्यवर्णः सुतस्त्वभूत्
मतङ्गो नाम नाम्ना वै सर्वैः समुदितो गुणैः॥८
स यज्ञकारः कौन्तेय पित्रोत्सृष्टः परन्तप।
प्रायाद्गर्दभयुक्तेन रथेनाप्याशुगामिना ॥ ९
स बालं गर्दभं राजन् वहन्तं मातुरन्तिके।
निरविध्यत्प्रतोदेन नासिकायां पुनः पुनः॥१०
तत्र तीव्रं व्रणं दृष्ट्वा गर्दभी पुत्रगृद्धिनी।
उवाच मा शुचः पुत्र चाण्डालस्त्वधितिष्ठति
ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
आचार्यः सर्वभूतानां शास्ता किं प्रहरिष्यति
अयं तु पापप्रकृतिर्बाले न कुरुते दयाम्।
स्वयोनिं मानयत्येष भावो भावं नियच्छति१३
एतच्छ्रुत्वा मतङ्गस्तु दारुणं रासभीवचः।
अवतीर्य रथात्तूर्णं रासभीं प्रत्यभाषत ॥ १४
ब्रूहि रासभि कल्याणि माता मे येन दूषिता
कथं मां वेत्सि चंडालं क्षिप्रं रासभि शंस मे
कथं मां वेत्सि चंडालं ब्राह्मण्यं येन नश्यते॥
तत्त्वेनैतन्महाप्राज्ञे ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ १६
गर्दभ्युवाच।
ब्राह्मण्यां वृषलेन त्वं मत्ताया नापितेन ह।
जातस्त्वमसि चांडालो ब्राह्मण्यं तेन तेऽनशत्
एवमुक्तो मतङ्गस्तु प्रतिप्रायाद्गृहं प्रति।
तमागतमभिप्रेक्ष्य पिता वाक्यमथाब्रवीत्॥१८
मया त्वं यज्ञसंसिद्धौ नियुक्तो गुरुकर्मणि।
कस्मात्प्रतिनिवृत्तोऽसि कच्चिन्न कुशलं तव१९
मतङ्ग उवाच
अन्त्ययोनिरयोनिर्वा कथं स कुशली भवेत्
कुशलं तु कुतस्तस्य यस्येयं जननी पितः २०
ब्राह्मण्यां वृषलाज्जातं पितर्वेदयतीव माम्।
अमानुषी गर्दभीयं तस्मात्तप्स्ये तपो महत् २१
एवमुक्त्वा स पितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः।
ततो गत्वा महारण्यमतपत्सुमहत्तपः ॥ २२
ततः स तापयामास विबुधांस्तपसान्वितः।
मतङ्गः सुखसंप्रेप्सुः स्थानं सुचरितादपि ॥ २३
तं तथा तपसा युक्तमुवाच हरिवाहनः।
मतङ्ग तप्यसे किं त्वं भोगानुत्सृज्य मानुषान्

---

**२७**

तुल्या गङ्गा ममता ब्राह्मणानामिति ब्रह्मविदा कृतकृत्यानामपि गङ्गा पूज्यत्वेन संमतेत्युक्तं तेन ब्राह्मण्यं महदिति मत्वा पृच्छति—**प्रज्ञेति** । वृत्तमाचारः शीलं विनय ॥१॥ चेदिच्छेत्तर्हि केन प्राप्नुयादिति अनुपज्य व्याख्येयोऽयमर्थः ॥ ४ ॥ पर्याये आवृत्तौ जन्मनाम् ॥ ६ ॥ तुल्यवर्णे अन्यवर्णजोऽपि जातकर्मादिसंस्कारयोगात्तुल्यवर्णत्वं गत । नाम प्रसिद्धम् ॥ ८ ॥ यज्ञकार यज्ञ कारयन् आर्त्विज्य कुर्वन्नित्यर्थ । प्रायात् अग्निचयनार्थमिष्टका आनेतुमित्यर्थाद्गम्यते ॥ ९ ॥ बाल अशिक्षितम् ॥ १० ॥ आवाप इति पाठे आलवाल पितृमातृतुल्य इत्यर्थ । 'आवापो भाण्डचयने परिक्षेपालवालयोः' (पान्ते १४) इति **मेदिनी** ॥ १२ ॥ बाले त्वयि भाव जातिस्वभाव भावं बुद्धिं नियच्छति मार्गान्तरादपकर्षति ॥१३॥ ब्राह्मण्य लोकदृश्यं नश्यते अन्तर्धीयते येन लक्षणेन तत्कथ यत मा चण्डालं वेत्सि ॥ १६ ॥ अनशत् नष्टं क्रूरत्वालिङ्गेन ॥१७॥ संसिद्धौ ससिद्ध्यर्थम् ॥ १९ ॥ अन्त्ययोनिश्चण्डालजाति अयोनिस्तदन्य कुत्सितयोनि , तयोर्हीनकर्मतया कुशलित्व न स्तीत्यर्थ ॥२०॥ सुचरितात्तपसश्च हेतो स्थानं ब्राह्मण्यम् सुखेन प्रेप्सु विबुधांस्तापयामासेति सम्बन्ध ॥ २३ ॥ हरिवाहन इन्द्र ॥ २४ ॥

वरं ददामि ते हंत वृणीष्व त्वं यदिच्छसि ।
यच्चाप्यवाप्यं हृदि ते सर्वं तद्ब्रूहि माचिरम्

मतङ्ग उवाच ।

ब्राह्मण्यं कामयानोऽहमिदमारब्धवांस्तपः
गच्छेयं तदवाप्येह वर एष वृतो मया ॥ २६

भीष्म उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तमुवाच पुरंदरः ।
मतङ्ग दुर्लभमिदं विप्रत्वं प्रार्थ्यते त्वया २७
ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः ।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम माचिरम् २८
श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोर्थं नातिवर्तते ।
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि ॥२९
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम् ।
चण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथञ्चन३०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रमतङ्गसंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः ।
अतिष्ठदेकपादेन वर्षाणां शतमच्युतः ॥ १
तमुवाच ततः शक्रः पुनरेव महायशाः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात प्रार्थयानो न लप्स्यसे २
मतङ्ग परमं स्थानं प्रार्थयन्विनशिष्यसि ।
मा कृथाः साहसं पुत्र नैष धर्मपथस्तव ॥ ३
न हि शक्यं त्वया प्राप्तुं ब्राह्मण्यमिह दुर्मते।
अप्राप्यं प्रार्थयानो हि न चिराद्विनशिष्यसि
मतङ्ग परमं स्थानं वार्यमाणोऽसकृन्मया ।
चिकीर्षस्येव तपसा सर्वथा न भविष्यसि ५
तिर्यग्योनिगतः सर्वो मानुष्यं यदि गच्छति।
स जायते पुल्कसो वा चण्डालो वाऽप्यसंशयः
पुल्कसः पापयोनिर्वा यः कश्चिदिह लक्ष्यते ।
स तस्यामेव सुचिरं मतङ्ग परिवर्तते ॥ ७
ततो दशशते काले लभते शूद्रतामपि ।
शूद्रयोनावपि ततो बहुशः परिवर्तते ॥ ८
ततस्त्रिंशद्गुणे काल लभते वैश्यतामपि ।
वैश्यतायां चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ ९
ततः षष्टिगुणे काले राजन्यो नाम जायते ।
ततः षष्टिगुणे काले लभते ब्रह्मबन्धुताम्॥१०
ब्रह्मबन्धुश्चिरं कालं ततस्तु परिवर्तते ।
ततस्तु द्विशते काले लभते काण्डपृष्ठताम्॥११
काण्डपृष्ठश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ।
ततस्तु त्रिशते काले लभते जपतामपि ॥ १२
तं च प्राप्य चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ।
ततश्चतुःशते काले श्रोत्रियो नाम जायते ।
श्रोत्रियत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ १३
तदेवं शोकहर्षौ तु कामद्वेषौ च पुत्रक ।
अतिमानातिवादौ च प्रविशन्ते द्विजाधमम्१४
तांश्चेज्जयति शत्रून्स तदा प्राप्नोति सद्गतिम् ।
अथ ते वै जयन्त्येनं तालाग्रादिव पात्यते ॥१५
मतङ्ग संप्रधार्यैवं यदहं त्वामचूचुदम् ।
वृणीष्व काममन्यं त्वं ब्राह्मण्यं हि सुदुर्लभम्॥

---

श्रेष्ठतारूपमर्थं ब्राह्मण्यं तपः नातिवर्तते न वशीकर्तुमर्हति ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

२८

एवमुक्त इति ॥ १ ॥ काण्डपृष्ठतां शस्त्रजीवित्वम् । 'शस्त्राजीवी काण्डपृष्ठः' (२।८।६७) इत्यमरः । 'वेश्यापतिः काण्डपृष्ठः सद्भिरेव निगद्यते' इति यमः । ११॥ जपता गायत्रीमात्रसेविना कुले जन्मेति शेषः ॥ १२ ॥ श्रोत्रिय अधीतवेद. ॥१३॥ तत् तदा श्रोत्रियत्वलाभेऽपि ॥ १४ ॥ ते शोकादयः एनं श्रोत्रियं पात्यते अत्यन्तं नीचयोनिं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रमतङ्गसंवादे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

भीष्म उवाच ।
एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः ।
सहस्रमेकपादेन ततो ध्यानि व्यतिष्ठत ॥ १
तं सहस्रावरे काले शक्रो द्रष्टुमुपागमत् ।
तदेव च पुनर्वाक्यमुवाच बलवृत्रहा ॥ २
मतङ्ग उवाच ।
इदं वर्षसहस्रं वै ब्रह्मचारी समाहितः ।
अतिष्ठमेकपादेन ब्राह्मण्यं नाप्नुयां कथम् ॥ ३
शक्र उवाच ।
चण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं वै कथञ्चन
अन्यं कामं वृणीष्व त्वं मा वृथा तेऽस्त्वयं श्रमः
एवमुक्तो मतङ्गस्तु भृशं शोकपरायणः ।
अभ्यतिष्ठद्गयां गत्वा सोऽङ्गुष्ठेन शतं समाः ॥ ५
सुदुर्वहं वहन्योगं कृशो धमनिसन्ततः ।
त्वगस्थिभूतो धर्मात्मा स पपातेति नः श्रुतम्
तं पतन्तमभिद्रुत्य परिजग्राह वासवः ।
वराणामीश्वरो दाता सर्वभूतहिते रतः ॥ ७
शक्र उवाच ।
मतङ्ग ब्राह्मणत्वं ते विरुद्धमिह दृश्यते
ब्राह्मण्यं दुर्लभतरं संवृतं परिपन्थिभिः ॥ ८
पूजयन्सुखमाप्नोति दुःखमाप्नोत्यपूजयन् ।
ब्राह्मणः सर्वभूतानां योगक्षेमसमर्पिता ॥ ९
ब्राह्मणेभ्योऽनुतृप्यन्ते पितरो देवतास्तथा ।
ब्राह्मणः सर्वभूतानां मतङ्ग पर उच्यते ॥ १०
ब्राह्मणः कुरुते तद्धि यथा यद्यच्च वाञ्छति ।
बह्वीस्तु संविशन्योनीर्जायमानः पुनःपुनः ११
पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मण्यमिह विन्दति ।
तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः १२
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः ।
मतङ्ग उवाच ।
किं मां तुदसि दुःखार्तं मृतं मारयसे च मां
त्वां तु शोचामि यो लब्ध्वा ब्राह्मण्यं न बुभूषसे
ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्रापं त्रिभिर्वर्णैः शतक्रतो १४
सुदुर्लभं सदाऽवाप्य नानुतिष्ठन्ति मानवाः ।
यः पापेभ्यः पापतमस्तेषामधम एव सः ॥ १५
ब्राह्मण्यं यो न जानीते धनं लब्ध्वेव दुर्लभम् ।
दुष्प्रापं खलु विप्रत्वं प्राप्तं दुरनुपालनम् ॥१६
दुरावापमवाप्यैतन्नानुतिष्ठन्ति मानवाः ।
एकारामो ह्यहं शक्र निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः १७
अहिंसादमदास्थाय कथं नार्हामि विप्रताम् ।
दैवं तु कथमेतद्वै यदहं मातृदोषतः ॥ १८
एतामवस्थां संप्राप्तो धर्मज्ञः सन्पुरन्दर ।
नूनं दैवं न शक्यं हि पौरुषेणातिवर्तितुम् १९
यदर्थं यत्नवानेव न लभे विप्रतां विभो ।
एवंगते तु धर्मज्ञ दातुमर्हसि मे वरम् ॥ २०
यदि तेऽहमनुग्राह्यः किञ्चिद्वा सुकृतं मम
वैशम्पायन उवाच ।
वृणीष्वेति तदा प्राह ततस्तं बलवृत्रहा २१

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

**एवमुक्त इति** । सहस्रं वत्सरान् ॥ १ ॥ अभिद्रुत्य गत्वा ॥ ७ ॥ दुर्लभतरमपि परिपन्थिभिः कामाद्यैश्चौरैः संवृतमतो दुःसंरक्ष्यमपात्यर्थः ॥ ८ ॥ पूजयन् ब्राह्मणमिति शेषः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तद्द्वारा देवादयस्तृप्यन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥ यद्यद्वांच्छति तत्तत्कुरुते ॥ ११ ॥ लब्ध्वाऽपि न बुभूषसे न प्राप्नोषि मादृशोऽपि तपस्विनि कारुण्याभावात्तन्नाशयसीति भावः ॥ १४ ॥ दुर्लभं ब्राह्मण्यं प्राप्यापि नानुतिष्ठन्ति तदुचितान् ।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।

इति भगवदुक्तान् ( भ. गी अ. १८ श्लो. ४२ ) न सेवन्तेऽतः प्राप्तमपि दुःसंरक्ष्यमिति भावः ॥ १५ ॥ न जानीते रक्षितुमिति शेषः ॥ १६ ॥ दैवं प्राक्कर्म यत् यतः ॥ १८ ॥ एता अब्राह्मणत्वरूपाम् ॥ १९ ॥

चोदितस्तु महेन्द्रेण मतङ्गः प्राब्रवीदिदम् ।
यथा कामविहारी स्यां कामरूपी विहङ्गमः २२
ब्रह्मक्षत्राविरोधेन पूजां च प्राप्नुयामहम् ।
यथा ममाक्षया कीर्तिर्भवेच्चापि पुरन्दर २३
कर्तुमर्हसि तद्देव शिरसा त्वां प्रसादये ।
शक्र उवाच ।
छन्दोदेव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि
कीर्तिश्च तेऽतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति
एवं तस्मै वरं दत्वा वासवोऽन्तरधीयत २५
प्राणांस्त्यक्त्वा मतङ्गोपि संप्राप्तः स्थानमुत्तमम्
एवमेतत्परं स्थानं ब्राह्मण्यं नाम भारत ।
तच्च दुष्प्रापमिह वै महेन्द्रवचनं यथा ॥ २६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रमतङ्गसंवादे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुतं मे महदाख्यानमेतत्कुरुकुलोद्वह ।
सुदुष्प्राप यद्ब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदतां वर ॥ १
विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत ।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥ २
वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः ।
तदेव तावद्गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ॥ ३
स केन कर्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तमः ।
वरेण तपसा वापि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥४
भीष्म उवाच ।
शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः
राजर्षिर्दुलभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम्५
मनोर्महात्मनस्तात प्रजा धर्मेण शासतः ।
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः॥६
तस्यान्ववाये द्वौ राजन् राजानौ सम्बभूवतुः
हैहयस्तालजंघश्च वत्सस्य जयतां वर ॥ ७
हैहयस्य तु राजेन्द्र दशसु स्त्रीषु भारत ।
शतं बभूव पुत्राणां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ८
तुल्यरूपप्रभावानां बलिनां युद्धशालिनाम् ।
धनुर्वेदे च वेदे च सर्वत्रैव कृतश्रमाः ॥ ९
काशिष्वपि नृपो राजन् दिवोदासपितामहः ।
हर्यश्व इति विख्यातो बभूव जयतां वरः १०
स वीतहव्यदायादैरागत्य पुरुषर्षभ ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये संग्रामे विनिपातितः ॥ ११
तं तु हत्वा नरपतिं हैहयास्ते महारथाः ।
प्रतिजग्मुः पुरीं रम्यां वत्सानामकुतोभयाः१२
हर्यश्वस्य च दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत
सुदेवो देवसङ्काशः साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ १३
स पालयामास महीं धर्मात्मा काशिनन्दनः।
तैर्वीतहव्यैरागत्य युधि सर्वैर्विनिर्जितः ॥ १४
तमथाजौ विनिर्जित्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
सौदेवस्त्वथ काशीशो दिवोदासोऽभ्यषिच्यत
दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां यतात्मनाम्
वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात्१६
विप्रक्षत्रियसम्बाधां वैश्यशूद्रसमाकुलाम् ।
नैकद्रव्योच्चयवतीं समृद्धविपणापणाम् ॥ १७
गङ्गाया उत्तरे कूले वप्रान्ते राजसत्तम ।
गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम्१८
तत्र तं राजशार्दूलं निवसन्तं महीपतिम् ।
आगत्य हैहया भूयः पर्यधावन्त भारत ॥ १९

---

एतत्परं एतस्माद्देवताभावात्परं श्रेष्ठं तपसा देवभावोऽपि लब्धुं शक्यो न विप्रता इत्येतत्कथयामास मतङ्गकथया मुनिरिति ॥२६॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

श्रुतमिति॥१॥ तस्य शर्यातेरन्ववाये वत्सस्य पुत्रौ द्वौ राजानाविति योजना॥७॥वीतहव्यदायादैः हैहयस्यैव नामान्तरं वीतहव्य इति तत्पुत्रैः ॥ ११ ॥ वत्सानां वत्सवंश्यानां राज्ञाम्॥१२॥ वप्रान्ते तटसमीपे। 'वप्रस्याने पुमान्स्त्री रेणौ क्षेत्रे चये तटे' इति (रान्तवर्गे ८२) मेदिनी ॥ १८ ॥

स निष्क्रम्य ददौ युद्धं तेभ्यो राजा महाबलः
देवासुरसमं घोरं दिवोदासो महाद्युतिः ॥ २०
स तु युद्धे महाराज दिनानां दशतीर्दश ।
हतवाहनभूयिष्ठस्ततो दैन्यमुपागमत् ॥ २१
हतयोधस्ततो राजन् क्षीणकोशश्च भूमिपः ।
दिवोदासः पुरीं त्यक्त्वा पलायनपरोऽभवत्
गत्वाऽऽश्रमपदं रम्यं भरद्वाजस्य धीमतः ।
जगाम शरणं राजा कृताञ्जलिररिंदम ॥ २३
तमुवाच भरद्वाजो ज्येष्ठः पुत्रो बृहस्पतेः ।
पुरोधाः शीलसम्पन्नो दिवोदासं महीपतिम् ॥
किमागमनकृत्यं ते सर्वं प्रब्रूहि मे नृप ।
यत्ते प्रियं तत्करिष्ये न मेऽत्रास्ति विचारणा

राजोवाच ।

भगवन्वैतहव्यैर्मे युद्धे वंशः प्रणाशितः ।
अहमेकः परिद्यूनो भवन्तं शरणं गतः ॥ २६
शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि ।
एकशेषः कृतो वंशो मम तैः पापकर्मभिः २७
तमुवाच महाभागो भरद्वाजः प्रतापवान् ।
न भेतव्यं न भेतव्यं सौदेव व्येतु ते भयम्
अहमिष्टिं करिष्यामि पुत्रार्थं ते विशांपते ।
वीतहव्यसहस्राणि येन त्वं प्रहरिष्यसि ॥२९
तत इष्टिं चकारर्षिस्तस्य वै पुत्रकामिकीम् ।
अथास्य तनयो जज्ञे प्रतर्दन इति श्रुतः ॥ ३०
स जातमात्रो ववृधे समाः सद्यस्त्रयोदश ।
वेदं चापि जगौ कृत्स्नं धनुर्वेदं च भारत॥३१
योगेन च समाविष्टो भरद्वाजेन धीमता ।
तेजो लोक्यं स संगृह्य तस्मिन्देशे समाविशत्
ततः स कवची धन्वी स्तूयमानः सुरर्षिभिः ।
बन्दिभिर्वन्द्यमानश्च बभौ सूर्य इवोदितः ॥३३
स रथी बद्धनिस्त्रिंशो बभौ दीप्त इवानलः ।
प्रययौ स धनुर्धुन्वन् खड्गी चर्मी शरासनी ३४
तं दृष्ट्वा परमं हर्षं सुदेवतनयो ययौ ।
मेने च मनसा दग्धान् वैतहव्यान्स पार्थिवः ।
ततोऽसौ यौवराज्ये च स्थापयित्वा प्रतर्दनम्
कृतकृत्यं तदाऽऽत्मानं स राजा अभ्यनन्दत

ततस्तु वैतहव्यानां वधाय स महीपतिः ।
पुत्रं प्रस्थापयामास प्रतर्दनमरिंदमम् ॥ ३७
सरथः स तु सन्तीर्य गंगामाशु पराक्रमी ।
प्रययौ वीतहव्यानां पुरीं परपुरंजयः ॥ ३८
वैतहव्यास्तु संश्रुत्य रथघोषं समुद्धतम् ।
निर्ययुर्नगराकारै रथैः पररथारुजैः ॥ ३९
निष्क्रम्य ते नरव्याघ्रा दंशिताश्चित्रयोधिनः ।
प्रतर्दनं समाजघ्नुः शरवर्षैरुदायुधाः ॥ ४०
शस्त्रैश्च विविधाकारै रथौघैश्च युधिष्ठिर ।
अभ्यवर्षन्त राजानं हिमवन्तमिवाम्बुदाः ४१
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां राजा प्रतर्दनः ।
जघान तान्महातेजा वज्रानलसमैः शरैः ॥४२
कृत्तोत्तमांगास्ते राजन् भल्लैः शतसहस्रशः
अपतन् रुधिरार्द्रांगा निकृत्ता इव किंशुकाः
हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यः सुतेष्वथ ।
प्राद्रवन्नगरं हित्वा भृगोराश्रममप्युत ॥ ४४
ययौ भृगुं च शरणं वीतहव्यो नराधिपः ।
अभयं च ददौ तस्मै राज्ञे राजन् भृगुस्तदा४५
अथानुपदमेवाशु तत्रागच्छत्प्रतर्दनः ।
स प्राप्य चाश्रमपदं दिवोदासात्मजोऽब्रवीत्
भो भो केऽत्राश्रमे संति भृगोः शिष्या महात्मनः
द्रष्टुमिच्छे मुनिमहं तस्याचक्षत मामिति ४७
स तं विदित्वा तु भृगुर्निश्चक्रामाश्रमात्तदा ।
पूजयामास च ततो विधिना नृपसत्तमम् ४८
उवाच चैनं राजेन्द्र किं कार्यं ब्रूहि पार्थिव ।
स चोवाच नृपस्तस्मै यदागमनकारणम् ४९

राजोवाच ।

अयं ब्रह्मन्नितो राजा वीतहव्यो विसर्ज्यताम्
तस्य पुत्रैर्हि मे कृत्स्नो ब्रह्मन्वंशः प्रणाशितः५०
उत्सादितश्च विषयः काशीनां रत्नसञ्चयः ।
एतस्य वीर्यदृप्तस्य हतं पुत्रशतं मया ॥ ५१
अस्येदानीं वधादद्य भविष्याम्यनृणः पितुः ।
तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्मभृतां वरः ॥ ५२
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित्सर्वे हीमे द्विजातयः।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ॥ ५३

---

दशतीर्दश सहस्रमित्यर्थ । षष्टिसप्ततिनवतिवद्दशतिशब्दोऽपि दशगुणितान्दश ब्रूते॥२१॥ परिद्यून सर्वतो निरस्त ॥२६॥ सद्यो ववृधे त्रयोदशवार्षिकोऽभूत् सद्यश्च वेदान् जगौ॥ ३१॥

योगेन योगबलेन लोक्यं लोकेषु सर्वेषु विद्यमान तस्मिन् देशे प्रतर्दनदेहे समाविशत् समावेशितवान् ॥ ३२ ॥ तस्य त प्रति मा आगतं आचक्षत कथयत ॥ ४७ ॥

पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ।
एवमप्यस्मि भगवन् कृतकृत्यो न संशयः ५४
य एष राजा वीर्येण
स्वजातिं त्याजितो मया ।
अनुजानीहि मां ब्रह्मन्
ध्यायस्व च शिवेन माम् ५५
त्याजितो हि मया जातिमेव राजा भृगूद्वह
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः ॥५६
यथागतं महाराज मुक्त्वा विषमिवोरगः ।
भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ॥ ५७
वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च ।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ॥ ५८
शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत्
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः ॥
यत्र गृत्समदो राजन् ब्राह्मणैः स महीयते ।
स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत्
पुत्रो गृत्समदस्यापि सुचेता अभवद्द्विजः ।
वर्चाः सुतेजसः पुत्रो विहव्यस्तस्य चात्मजः
विहव्यस्य तु पुत्रस्तु वितत्यस्तस्य चात्मजः ।
वितत्यस्य सुतः सत्यः संतः सत्यस्य चात्मजः
श्रवास्तस्य सुतश्चर्षिः श्रवसश्चाभवत्तमः ।
तमसश्च प्रकाशोऽभूत्तनयो द्विजसत्तमः ।
प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतां वरः ६३
तस्यात्मजश्च प्रमितिर्वेदवेदाङ्गपारगः ॥
घृताच्यां तस्य पुत्रस्तु रुरुर्नामोदपद्यत ॥ ६४
प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत ।
शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः६५
एवं विप्रत्वमगमद्वीतहव्यो नराधिपः ।
भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ ६६
तथैव कथितो वंशो मया गार्त्समदस्तव ।
विस्तरेण महाराज किमन्यदनुपृच्छसि ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि वीतहव्योपाख्यानं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

युधिष्ठिर उवाच ।

के पूज्या वै त्रिलोकेऽस्मिन्मानवा भरतर्षभ
विस्तरेण तदाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यतः१

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं वासुदेवस्य चोभयोः ॥२
नारदं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा पूजयानं द्विजर्षभान् ।
केशवः परिपप्रच्छ भगवन् कान्नमस्यसि ॥३
बहुमानपरस्तेषु भगवन्यान्नमस्यसि ।
शक्यं चेच्छ्रोतुमस्माभिर्ब्रूह्येतद्धर्मवित्तम ॥ ४

नारद उवाच ।

शृणु गोविन्द यानेतान् पूजयाम्यरिमर्दन ।
त्वत्तोऽन्यः कः पुमाँल्लोके श्रोतुमेतदिहार्हति ५
वरुणं वायुमादित्यं पर्जन्यं जातवेदसम् ।
स्थाणुं स्कन्दं तथा लक्ष्मीं विष्णुं ब्रह्माणमेव च
वाचस्पतिं चन्द्रमसमपः पृथ्वीं सरस्वतीम् ।
सततं ये नमस्यन्ति तान्नमस्याम्यहं विभो॥ ७
तपोधनान्वेदविदो नित्यं वेदपरायणान् ।
महार्हान्वृष्णिशार्दूल सदा सम्पूजयाम्यहम् ८

---

आख्यायिकातात्पर्यमाह—**भृगोरिति** ॥५७॥ श्रुतिः— ' तदु गार्त्समदमेतेन वै गृत्समद इन्द्रस्य प्रियं धामोपागच्छत् ' इत्यादिका ॥ ५९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

**के पूज्या इति** । ब्राह्मणस्य दुष्प्रापत्वं विप्रानुग्रहैकलभ्यत्वं चोक्त्वा पूज्यत्वहेतून् साधारणानसाधारणान् स्वधर्मानाहानेनाध्यायेन ॥ १ ॥ तेषु मानवेषु बहुमानपरः सन् कान्नमस्यसीति योज्यम् ॥ ४ ॥ महार्हान् महान् अर्हः पूजा एषाम् अतिपूज्यानित्यर्थः ॥ ८ ॥

अभुक्त्वा देवकार्याणि कुर्वते येऽविकत्थनाः।
सन्तुष्टाश्च क्षमायुक्तास्तान्नमस्याम्यहं विभो
सम्यग्यजन्ति ये चेष्टीः क्षांता दांता जितेंद्रियाः
सत्यं धर्मं क्षितिं गाश्च तान्नमस्यामि यादव१०
ये वै तपसि वर्तंते वने मूलफलाशनाः।
असञ्चयाः क्रियावन्तस्तान्नमस्यामि यादव११
ये भृत्यभरणे शक्ताः सततं चातिथिव्रताः।
भुञ्जते देवशेषाणि तान्नमस्यामि यादव ॥ १२
ये वेदं प्राप्य दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मचारिणः।
याजनाध्यापने युक्ता नित्यं तान्पूजयाम्यहम्॥
प्रसन्नहृदयाश्चैव सर्वसत्त्वेषु नित्यशः।
आपृष्ठतापात्स्वाध्याये युक्तास्तान्पूजयाम्यहम्
गुरुप्रसादे स्वाध्याये यतन्तो ये स्थिरव्रताः।
शुश्रूषवोऽनसूयन्तस्तान्नमस्यामि यादव ॥१५
सुव्रता मुनयो ये च ब्राह्मणाः सत्यसंगराः।
वोढारो हव्यकव्यानां तान्नमस्यामि यादव
भैक्ष्यचर्यासु निरताः कृशा गुरुकुलाश्रयाः।
निःसुखा निर्धना ये तु तान्नमस्यामि यादव१७
निर्ममा निष्प्रतिद्वन्द्वा निर्ह्रीका निष्प्रयोजनाः
ये वेदं प्राप्य दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मवादिनः१८
अहिंसानिरता ये च ये च सत्यव्रता नराः।
दांताः शमपराश्चैव तान्नमस्यामि केशव ॥ १९
देवतातिथिपूजायां युक्ता ये गृहमेधिनः।
कपोतवृत्तयो नित्यं तान्नमस्यामि यादव ॥२०
येषां त्रिवर्गः कृत्येषु वर्तते नोपहीयते।
शिष्टाचारप्रवृत्ताश्च तान्नमस्याम्यहं सदा ॥२१
ब्राह्मणाः श्रुतसम्पन्ना ये त्रिवर्गमनुष्ठिताः।
अलोलुपाः पुण्यशीलास्तान्नमस्यामि केशव
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च सुधाभक्षाश्च ये सदा।
व्रतैश्च विविधैर्युक्तास्तान्नमस्यामि माधव २३
अयोनीनग्नियोनींश्च ब्रह्मयोनींस्तथैव च।
सर्वभूतात्मयोनींश्च तान्नमस्याम्यहं सदा २४
नित्यमेतान्नमस्यामि कृष्ण लोककरानृषीन्।
लोकज्येष्ठान्कुलज्येष्ठांस्तमोघ्नाँल्लोकभास्करान्
तस्मात्त्वमपि वार्ष्णेय द्विजान् पूजय नित्यदा
पूजिताः पूजनार्हा हि सुखं दास्यन्ति तेऽनघ
अस्मिन् लोके सदा ह्येते परत्र च सुखप्रदाः।
चरन्ते मान्यमाना वै प्रदास्यन्ति सुखं तव२७
ये सर्वातिथयो नित्यं गोषु च ब्राह्मणेषु च।
नित्यं सत्ये चाभिरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥
नित्यं शमपरा ये च तथा ये चानसूयकाः।
नित्यस्वाध्यायिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते
सर्वान्देवान्नमस्यन्ति ये चैकं वेदमाश्रिताः।
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते३०
तथैव विप्रप्रवरान्नमस्कृत्य यतव्रताः।
भवन्ति ये दानरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ३१
तपस्विनश्च ये नित्यं कौमारब्रह्मचारिणः।
तपसा भावितात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां चार्चने रताः।
शिष्टान्नभोजिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते३३
अग्निमाधाय विधिवत्प्रणता धारयन्ति ये।
प्राप्ताः सोमाहुतिं चैव दुर्गाण्यतितरन्ति ते३४
मातापित्रोर्गुरुषु च सम्यग्वर्तन्ति ये सदा।
यथा त्वं वृष्णिशार्दूलेत्युक्त्वैवं विरराम सः
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय पितृदेवद्विजातिथीन्।
सम्यक्पूजयसे नित्यं गतिमिष्टामवाप्स्यसि३६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि कृष्णनारदसंवादे
एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१ ॥

अविकत्थना श्लाघाहीनाः ॥ ९ ॥ सत्यं धर्मं च यजन्ति पूजयन्ति क्षितिं गाश्च यजन्ति ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति । यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु एतेऽर्था यथासम्भवमिह ग्राह्याः ॥ १० ॥ आपृष्ठतापात् यावन्मध्याह्नम् ॥ १४ ॥ स्वाध्याये ब्रह्मयज्ञे मन्त्रजपे वा ॥१५॥ निर्ह्रीकाः दिगम्बराः कौपीनमात्रमपि परिग्रहं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ कपोतवृत्तयः कणश आदाय ये सग्रहं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ २० ॥ त्रिवर्गो धर्मार्थकामाः. कृत्येषु कर्तुं योग्येषु कर्मसु वर्तते उत्तममध्यमाधमभावेन वर्तते न तु हीयते अधममध्यमोत्तमभावेनेत्यर्थः ॥ २१ ॥ अलोलुपा इत्यनेन धर्ममपेक्ष्य अर्थानादर उक्तः पुण्यशीला इत्यनेन धर्मव्यतिरिक्तकामपरिहार उक्तः । 'ऋतौ भार्यामुपेयात् इत्येतावानेव कामो धर्ममयो नान्यः' ॥ २२ ॥ सुधा वैश्वदेवशेषः ॥ २३ ॥ अयोनीन् अकृतदारान् अग्नियोनीन् दाराग्निहोत्रयुतान् ब्रह्मणो वेदस्य योनीन् आश्रयभूतान् ॥ २४ ॥ सर्वानिति । स्वाध्याये सर्वे यज्ञा अन्तर्भवन्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥ भिक्षुचर्येति द्वौ श्लोकौ पुनः पाठादुपेक्षितौ गौडैः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि धर्मं भरतसत्तम ॥ १
शरणागतं ये रक्षन्ति भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
किं तस्य भरतश्रेष्ठ फलं भवति तत्त्वतः ॥ २
भीष्म उवाच ।
इदं शृणु महाप्राज्ञ धर्मपुत्र महायशः ।
इतिहासं पुरावृत्तं शरणार्थं महाफलम् ॥ ३
प्रपात्यमानः श्येनेन कपोतः प्रियदर्शनः ।
वृषदर्भं महाभागं नरेन्द्रं शरणं गतः ॥ ४
स तं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्रासादङ्कमुपागतम् ।
आश्वास्याश्वसिहीत्याह न तेऽस्ति भयमंडज
भयं ते सुमहत्कस्मात्कुत्र किं वा कृतं त्वया
येन त्वमिह संप्राप्तो विसंज्ञो भ्रान्तचेतनः ॥६
नवनीलोत्पलापीड चारुवर्ण सुदर्शन ।
दाडिमाशोकपुष्पाक्ष मा त्रसस्वाभयं तव ॥ ७
मत्सकाशमनुप्राप्तं न त्वां कश्चित्समुत्सहेत् ।
मनसा ग्रहणं कर्तुं रक्षाध्यक्षपुरस्कृतम् ॥ ८
काशिराज्यं तदद्यैव त्वदर्थं जीवितं तथा ।
त्यजेयं भव विस्रब्धः कपोत न भयं तव ॥ ९
श्येन उवाच ।
ममैतद्विहितं भक्ष्यं न राजंस्त्रातुमर्हसि ।
अतिक्रान्तं च प्राप्तं च प्रयत्नाच्चोपपादितम् १०
मांसं च रुधिरं चास्य मज्जा मेदश्च मे हितम्
परितोषकरो ह्येष मम माऽस्याग्रतो भव ११
तृष्णा मे बाधतेऽत्युग्रा क्षुधा निर्दहतीव माम्
मुञ्चैनं न हि शक्ष्यामि राजन्मन्दयितुं क्षुधाम्
मया ह्यनुसृतो ह्येष मत्पक्षनखविक्षतः ।
किंचिदुच्छ्वासनिःश्वासं न राजन् गोप्तुमर्हसि
यदि स्वविषये राजन् प्रभुस्त्वं रक्षणे नृणाम्
खेचरस्य तृषार्तस्य न त्वं प्रभुरथोत्तम ॥ १४
यदि वैरिषु भृत्येषु स्वजनव्यवहारयोः ।
विषयेष्विन्द्रियाणां च आकाशे मा पराक्रम
प्रभुत्वं हि पराक्रम्य सम्यक् पक्षहरेषु ते ।
यदि त्वमिह धर्मार्थी मामपि द्रष्टुमर्हसि १६
भीष्म उवाच ।
श्रुत्वा श्येनस्य तद्वाक्यं राजर्षिर्विस्मयं गतः
संभाव्य चैनं तद्वाक्यं तदर्थी प्रत्यभाषत ॥१७
राजोवाच ।
गोवृषो वा वराहो वा मृगो वा महिषोऽपि वा
त्वदर्थमद्य क्रियतां क्षुधाप्रशमनाय ते ॥ १८
शरणागतं न त्यजेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
न मुञ्चति ममाङ्गानि द्विजोऽयं पश्य वै द्विज
श्येन उवाच ।
न वराहं न चोक्षाणं
न चान्यान्विविधान्द्विजान् ।
भक्षयामि महाराज
किमन्नाद्येन तेन मे ॥ २०
यस्तु मे विहितो भक्ष्यः स्वयं देवैः सनातनः
श्येनाः कपोतान् खादंति स्थितिरेषा सनातनी
उशीनर कपोते तु यदि स्नेहस्तवानघ ।
ततस्त्वं मे प्रयच्छाद्य स्वमांसं तुलया धृतम्
राजोवाच ।
महाननुग्रहो मेऽद्य यस्त्वमेवमिहात्थ माम्
बाढमेव करिष्यामीत्युक्त्वाऽसौ राजसत्तमः
उत्कृत्योत्कृत्य मांसानि तुलया समतोलयत् ।
अन्तःपुरे ततस्तस्य स्त्रियो रत्नविभूषिताः २४
हाहाभूता विनिष्क्रांताः श्रुत्वा परमदुःखिताः
तासां रुदितशब्देन मन्त्रिभृत्यजनस्य च ॥ २५
बभूव सुमहान्नादो मेघगम्भीरनिःस्वनः ।
निरुद्धं गगनं सर्वं शुभ्रं मेघैः समन्ततः ॥ २६

---

३२

**पितामहेत्यादे**रध्यायस्य पक्षिमात्रस्यापि स्वशरीरदानेन रक्षणं कार्यं किमुत पूर्वोक्तानां पूज्यानामर्थादिनेति तात्पर्यम् ॥ १ ॥ प्रपात्यमानः आकाशादिति शेषः । वृषदर्भं औशीनरं शिबिम् ॥ ४ ॥ नवं नीलं च यदुत्पलं तस्य आपीड इवालङ्कारभूतश्चारुवर्णो यस्य ॥ ७ ॥ अतिक्रान्तं गतप्रायजीवितम् ॥१०॥ अस्य मदन्नस्याग्रतोऽन्तरायभूतो मा भव ॥११॥ तृष्णा एतद्रुधिरपिपासा ॥ १२ ॥ यदि वैर्यादिषु पराक्रमसे तद्युक्तं न त्वाकाशे आकाशचारिषु ॥ १५ ॥ पक्षहरेषु आज्ञाभङ्गिषु शत्रुषु मा अशत्रुमपि जीवनहरणेन बाधमानस्य तव धर्मार्थिनोऽप्यधर्मो भविष्यतीति भावः ॥ १६ ॥ एनं श्येनं तद्वाक्यं च सम्भाव्य स्तुत्वा तदर्थी कपोतार्थी ॥ १७ ॥

महीं अचलिता चासीत्तस्य सत्येन कर्मणा ।
स राजा पार्श्वतश्चैव बाहुभ्यामूरुतश्च यत् २७
तानि मांसानि संछिद्य तुलां पूरयतेऽशनैः ।
तथापि न समस्तेन कपोतेन बभूव ह ॥ २८
अस्थिभूतो यदा राजा निर्मांसो रुधिरस्रवः ।
तुलां ततः समारूढः स्वं मांसक्षयमुत्सृजन् ।
ततः सेन्द्रास्त्रयो लोकास्तं नरेन्द्रमुपस्थिताः ।
भेर्यश्चाकाशगैस्तत्र वादिता देवदुन्दुभिः ३०
अमृतेनावसिक्तश्च वृषदर्भो नरेश्वरः ।
दिव्यैश्च सुसुखैर्माल्यैरभिवृष्टः पुनः पुनः ।
देवगन्धर्वसंघातैरप्सरोभिश्च सर्वतः ।
नृत्तश्चैवोपगीतश्च पितामह इव प्रभुः ॥ ३२
हेमप्रासादसम्बाधं मणिकाञ्चनतोरणम् ।
स वैदूर्यमणिस्तम्भं विमानं समधिष्ठितः ॥३३
स राजर्षिर्गतः स्वर्गं कर्मणा तेन शाश्वतम् ।
शरणागतेषु चैवं त्वं कुरु सर्वं युधिष्ठिर ॥३४
भक्तानामनुरक्तानामाश्रितानां च रक्षिता ।
दयावान्सर्वभूतेषु परत्र सुखमेधते ॥ ३५
साधुवृत्तो हि यो राजा सद्वृत्तमनुतिष्ठति ।
किं न प्राप्तं भवेत्तेन सव्याजेनेह कर्मणा ॥३६
स राजर्षिर्विशुद्धात्मा धीरः सत्यपराक्रमः ।
काशीनामीश्वरः ख्यातस्त्रिषु लोकेषु कर्मणा
योऽप्यन्यः कारयेदेवं शरणागतरक्षणम् ।
सोऽपि गच्छेत तामेव गतिं भरतसत्तम ॥३८
इदं वृत्तं हि राजर्षेर्वृषदर्भस्य कीर्तयन् ।
पूतात्मा वै भवेल्लोके शृणुयाद्यश्च नित्यशः ३९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्येनकपोतसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## ३३

युधिष्ठिर उवाच ।
किं राज्ञः सर्वकृत्यानां गरीयः स्यात्पितामह
कुर्वन् किं कर्म नृपतिरुभौ लोकौ समश्नुते १
भीष्म उवाच ।
एतद्राज्ञः कृत्यतममभिषिक्तस्य भारत ।
ब्राह्मणानामनुष्ठानमत्यन्त सुखमिच्छता ॥ २
कर्तव्य पार्थिवेन्द्रेण तथैव भरतर्षभ ।
श्रोत्रियान् ब्राह्मणान् वृद्धान्नित्यमेवाभिपूजयेत्
पौरजानपदांश्चापि ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् ।
सांत्वेन भोगदानेन नमस्कारैस्तथाऽर्चयेत् ४
एतत्कृत्यतमं राज्ञो नित्यमेवोपलक्षयेत् ।
यथाऽऽत्मानं यथा पुत्रांस्तथैतान्प्रतिपालयेत्
ये चाप्येषां पूज्यतमास्तान् दृढं प्रति पूजयेत्
तेषु शान्तेषु तद्राष्ट्रं सर्वमेव विराजते ॥ ६
ते पूज्यास्ते नमस्कार्या मान्यास्ते पितरो यथा
तेष्वेव यात्रा लोकानां भूतानामिव वासवे ७
अभिचारैरुपायैश्च दहेयुरपि चेतसा ।
निःशेषं कुपिताः कुर्युरुग्राः सत्यपराक्रमाः ८
नान्तमेषां प्रपश्यामि न दिशश्चाप्यपावृताः ।
कुपिताःसमुदीक्षन्ते दावेष्वग्निशिखा इव ॥९
बिभ्यत्येषां साहसिका गुणास्तेषामतीव हि।
कूपा इव तृणच्छन्ना विशुद्धा द्यौरिवापरे १०

---

अशनैः शीघ्रम् ॥ २८ ॥ मांसक्षयं मांसालयं शरीरम् ॥२९॥ नृत्तः नृत्येन तोषितः एवमुपगीतः ॥३२॥ साधुवृत्तः सुशीलः सद्वृत्तं शिष्टाचारं सव्याजेन सुतरां निष्कपटेन ॥ ३६ ॥ अस्या कथाया विधेयमाह—**योऽपीति** ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

**३३**

**किं राज्ञ** इत्यध्यायस्य तात्पर्यं स्पष्टम् ॥ १ ॥ अनुष्ठानं आराधनम् ॥ २ ॥ एषां ब्राह्मणानां मध्ये ॥ ६ ॥ वासवे पर्जन्ये ॥ ७ ॥ अभिचारैः श्येनादिभिः उपायैः कौलिकशास्त्रप्रसिद्धैः चेतसा सङ्कल्पमात्रेण ॥ ८ ॥ अन्तं नाशकरं दिशश्चैषां न अपावृताः सर्वत्राकुण्ठिता गतिरेतेषामित्यर्थः अग्निशिखा इव दहन्तः ॥ ९ ॥ एषां एभ्यः साहसिका अकार्यकारिणोऽपि बिभ्यति किमुत विवेकिनः छन्नाः केचिज्जडभरतादयः । अपरे वसिष्ठादयः ॥ १० ॥

प्रसह्यकारिणः केचित्कार्पासमृदवो परे ।
सन्ति चैषामतिशठास्तथैवान्ये तपस्विनः ११
कृषिगोरक्ष्यमप्येके भैक्ष्यमन्येऽप्यनुष्ठिताः ।
चौराश्चान्येऽनृताश्चान्ये तथान्ये नटनर्तकाः
सर्वकर्मसहाश्चान्ये पार्थिवेष्वितरेषु च ।
विविधाकारयुक्ताश्च ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १३
नानाकर्मसु रक्तानां बहुकर्मोपजीविनाम् ।
धर्मज्ञानां सतां तेषां नित्यमेवानुकीर्तयेत् १४
पितृणां देवतानां च मनुष्योरगरक्षसाम् ।
पुराध्येते महाभागा ब्राह्मणा वै जनाधिप १५
नैते देवैर्न पितृभिर्न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ।
नासुरैर्न पिशाचैश्च शक्या जेतुं द्विजातयः १६
अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् ।
यमिच्छेयुः स राजा स्याद्यो नेष्टः स पराभवेत्
परिवादं च ये कुर्युर्ब्राह्मणानामचेतसः ।
सत्यं ब्रवीमि ते राजन् विनश्येयुर्न संशयः१८
निंदाप्रशंसाकुशलाः कीर्त्यकीर्तिपरायणाः ।
परिकुप्यति ते राजन् सततं द्विषतां द्विजाः
ब्राह्मणा यं प्रशंसन्ति पुरुषः स प्रवर्धते ।
ब्राह्मणैर्यः पराकृष्टः पराभूयात्क्षणाद्धि सः२०
शका यवनकांबोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ।
द्राविडाश्च कलिङ्गाश्च पुलिंदाश्चाप्युशीनराः
कोलिसर्पा महिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ।
श्रेयान् पराजयस्तेभ्यो न जयो जयतां वर
यस्तु सर्वमिदं हन्यात् ब्राह्मणं च न तत्समम्
ब्रह्मवध्या महान्दोष इत्याहुः परमर्षयः ॥ २४
परिवादो द्विजातीनां न श्रोतव्यः कथंचन ।
आसीताधोमुखस्तूष्णीं समुत्थाय व्रजेत वा
न स जातोऽजनिष्यद्वा पृथिव्यामिह कश्चन
यो ब्राह्मणविरोधेन सुखं जीवितुमुत्सहेत् ॥ २६
दुर्ग्राह्यो मुष्टिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी
दुर्धरा पृथिवी राजन् दुर्जया ब्राह्मणा भुवि

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्राह्मणप्रशंसा नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

भीष्म उवाच ।
ब्राह्मणानेव सततं भृशं सम्परिपूजयेत् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः॥१
एते भोगैरलङ्कारैरन्यैश्चैव किमिच्छकैः ।
सदा पूज्या नमस्कारै रक्ष्याश्च पितृवन्नृपैः॥२
ततो राष्ट्रस्य शान्तिर्हि भूतानामिव वासवात्
जायतां ब्रह्मवर्चस्वी राष्ट्रे वै ब्राह्मणः शुचिः ३
महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः ।
ब्राह्मणं जातिसम्पन्नं धर्मज्ञं संशितव्रतम् ॥ ४
वासयेत गृहे राजन्न तस्मात्परमस्ति वै ।
ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्तं प्रतिगृण्हन्ति देवताः॥ ५

---

प्रसह्यकारिणः दुर्वास प्रभृतय । मृदवो गौतमादय ये पादचारेऽपि हिंसाभयात्पादयोरेवाक्षि चक्षुरित्यक्षपादत्वं गताः । अतिशठा अगस्त्यादय । वातापिं जरयितु मासे लोलुपता दर्शयन्त. ॥ ११ ॥ कृषिं कुर्वन्तः उद्दालकगुर्वादय । गोरक्ष्यम् । गुरोरेव उपमन्युप्रभृतय भैक्ष्यं दत्तात्रेयादय. । चौराः वाल्मीकिविश्वामित्रादय. अनृता. कलहप्रिया नारदादयः नटनर्तका. भरतादय. ॥ १२ ॥ सर्वकर्मसहा' समुद्रशोषणादावपि समर्था. ॥ १३ ॥ **नानेति** । स्वरूपप्रच्छादनार्थं लोकरक्षार्थं वा निषिद्धेनापि कर्मणा वर्तमानाः । वस्तुतस्तु धर्मज्ञास्तेषा तान् नित्यमेवानुकीर्तयेत् ॥ १४ ॥ एते पूज्या इति शेष' यतो महाभागा. ॥ १५ ॥ परायणा हेतव ॥ १९ ॥ अदर्शनात् अननुग्रहात् ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३३ ॥

३४

**ब्राह्मणानित्याद्यध्यायत्रयेण** दानपात्रत्वं ब्राह्मणानामुच्यते । सोमो राजा येषा ते **सोमराजानः** ॥१॥ किमिच्छसीति प्रश्नपूर्वकं यत्तदिष्टं दीयते तत्किमिच्छकम् २

पितरः सर्वभूतानां नैतेभ्यो विद्यते परम् ।
आदित्यश्चन्द्रमा वायुरापो भूरम्बरं दिशः ॥६
सर्वे ब्राह्मणमाविश्य सदाऽन्नमुपभुञ्जते ।
न तस्याश्नन्ति पितरो यस्य विप्रा न भुञ्जते
देवाश्चाप्यस्य नाश्नन्ति पापस्य ब्राह्मणद्विषः ।
ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रीयन्ते पितरः सदा ॥ ८
तथैव देवता राजन्नात्र कार्या विचारणा ।
तथैव तेऽपि प्रीयन्ते येषा भवति तद्धविः ॥९
न च प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छन्ति च परां गतिम्
येन येनैव हविषा ब्राह्मणांस्तर्पयेन्नरः ॥ १०
तेन तेनैव प्रीयन्ते पितरो देवतास्तथा ।
ब्राह्मणादेव तद्भूतं प्रभवन्ति यतः प्रजाः ॥ ११
यतश्चायं प्रभवति प्रेत्य यत्र च गच्छति ।
वेदैष मार्गं स्वर्गस्य तथैव नरकस्य च ॥ १२
अगतानागते चोभे ब्राह्मणो द्विपदां वरः ।
ब्राह्मणो भरतश्रेष्ठ स्वधर्मं चैव वेद यः ॥ १३
ये चैनमनुवर्तन्ते ते न यान्ति पराभवम् ।
न ते प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छन्ति न पराभवम्
यद्ब्राह्मणमुखात्प्राप्तं प्रतिगृह्णन्ति वै वचः ।
भूतात्मानो महात्मानस्ते न यान्ति पराभवम्
क्षत्रियाणां प्रतपता तेजसा च बलेन च ।
ब्राह्मणेष्वेव शाम्यन्ति तेजांसि च बलानि च
भृगवस्तालजंघांश्च नीपानाङ्गिरसोऽजयन् ।
भरद्वाजो वैहतव्यानैलांश्च भरतर्षभ ॥ १७
चित्रायुधांश्चाप्यजयन्नेते कृष्णाजिनध्वजाः ।
प्रक्षिप्याथ च कुंभान्वै पारगामिनमारभेत
यत्किंचित्कथ्यते लोके श्रूयते पठ्यतेऽपि वा
सर्वं तद्ब्राह्मणेष्वेव गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १९

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं वासुदेवस्य पृथ्व्याश्च भरतर्षभ ॥ २०
वासुदेव उवाच ।
मातरं सर्वभूतानां पृच्छे त्वां संशयं शुभे ।
केनस्वित्कर्मणा पापं व्यपोहति नरो गृही
पृथिव्युवाच ।
ब्राह्मणानेव सेवेत पवित्रं ह्येतदुत्तमम् ।
ब्राह्मणान्सेवमानस्य रजः सर्वं प्रणश्यति ।
अतो भूतिरतः कीर्तिरतो बुद्धिः प्रजायते २२
महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः ।
इति मां नारदः प्राह सततं सर्वभूतये ॥ २३
ब्राह्मणं जातिसम्पन्नं धर्मज्ञं संशितं शुचिम् ।
अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चैव येऽपरे ॥ २४
ब्राह्मणा यं प्रशंसन्ति स मनुष्यः प्रवर्धते ।
अथ यो ब्राह्मणान् कुष्टः पराभवति सोऽचिरात्
यथा महार्णवे क्षिप्ता सीता नेष्टुर्विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं पराभावाय कल्पते ॥ २६
पश्य चन्द्रे कृतं लक्ष्म समुद्रो लवणोदकः ।
तथा भगसहस्रेण महेन्द्रः परिचिह्नितः ॥ २७
तेषामेव प्रभावेन सहस्रनयनो ह्यसौ ।
शतक्रतुः समभवत्पश्य माधव यादृशम् २८
इच्छन् कीर्तिं च भूतिं च लोकांश्च मधुसूदन ।
ब्राह्मणानुमते तिष्ठेत्पुरुषः शुचिरात्मवान् २९
भीष्म उवाच ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा मेदिन्या मधुसूदनः ।
साधु साध्विति कौरव्य मेदिनीं प्रत्यपूजयत्॥
एतां श्रुत्वोपमां पार्थ प्रयतो ब्राह्मणर्षभान् ।
सततं पूजयेथास्त्वं ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ३१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पृथ्वीवासुदेवसंवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

तेऽपि दातारोऽपि तत् प्रदेयं द्रव्यम् ॥ ९ ॥ तत् यज्ञादिकं भूतमुत्पन्नम् ।

'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥'

इति स्मृतेः ॥ ११ ॥ भूतात्मानः भूतः प्राप्तो वशीकृत आत्मा चित्तं यैस्ते ॥ १५ ॥ **प्रक्षिप्येति** । कुं पृथिवीं ब्राह्मणाय प्रक्षिप्य दत्त्वा पारगामिनं परलोकहितं कर्म आरभेदाचरेत् भान् दीप्तिं कुर्वन्नुभयलोके इति शेषः ॥१८॥ यत्किंचिदतीतानागतं व्यवहितं स्थूलसूक्ष्मं ब्राह्मणे हार्दाकाशाख्यब्रह्मविदि काष्ठाभिवद्ध्यानानिर्मथनादभिव्यज्यत इत्यर्थः १९ रजः स्थानेऽन्तरायभूतो विक्षेपः भूतिरैश्वर्यं बुद्धिरात्मज्ञानं सार्वश्लोकः ॥ २२ ॥ अपरे ब्राह्मणं सर्वभूतये इच्छेदित्याहुरिति विपरिणामेनानुषङ्गः ॥ २४ ॥ कुष्टः क्रोशति कर्तरि क्तः ॥ २५ ॥ सीता नेष्टुर्लाङ्गलपद्धतिगतः पांसुपिण्डः लोष्टो लेष्टुरिति कोशकाराः अन्तस्थादिमिमं शब्दं पठन्ति दुश्चरितं ब्राह्मणद्रोहः ॥ २६ ॥ विधेयमाह—**ब्राह्मणेत्यर्धेन** ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

भीष्म उवाच ।

जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते ।
नमस्यः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् ॥१
सर्वार्थाः सुहृदस्तात ब्राह्मणाः सुमनोमुखाः ।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिरनुध्यायन्ति पूजिताः ॥२
सर्वान्नो द्विषतस्तात ब्राह्मणा जातमन्यवः ।
गीर्भिर्दारुणयुक्ताभिरभिध्यासुरपूजिताः ॥ ३
अत्र गाथाः पुरागीताः कीर्तयन्ति पुराविदः
सृष्ट्वा द्विजातीन् धाता हि यथापूर्वं समादधत्
न चान्यदिह कर्तव्यं किञ्चिदूर्ध्वं यथाविधि ।
गुप्तो गोपायते ब्रह्मा श्रेयो वस्तेन शोभनम् ५
स्वमेव कुर्वतां कर्म श्रीर्वो ब्राह्मी भविष्यति ।
प्रमाणं सर्वभूतानां प्रग्रहाश्च भविष्यथ ॥ ६
न शौद्रं कर्म कर्तव्यं ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
शौद्रं हि कुर्वतः कर्म धर्मः समुपरुध्यते ॥ ७
श्रीश्च बुद्धिश्च तेजश्च विभूतिश्च प्रतापिनी ।
स्वाध्याये चैव माहात्म्यं विपुलं प्रतिपत्स्यते८

हुत्वा चाहवनीयस्थ
महाभाग्ये प्रतिष्ठिताः ।
अग्रभोज्याः प्रसूतीनां
श्रिया ब्राह्म्यानुकल्पिताः ॥ ९

श्रद्धया परया युक्ता ह्यनभिद्रोहलब्धया ।
दमस्वाध्यायनिरताः सर्वान्कामानवाप्स्यथ१०
यच्चैव मानुषे लोके यच्च देवेषु किञ्चन ।
सर्वं तु तपसा साध्यं ज्ञानेन नियमेन च ॥ ११
इत्येवं ब्रह्मगीतास्ते समाख्याता मयाऽनघ ।
विप्राणामनुकम्पार्थं तेन प्रोक्तं हि धीमता १२
भूयस्तेषां बलं मन्ये यथा राजस्तपस्विनः ।
दुरासदाश्च चण्डाश्च रभसाः क्षिप्रकारिणः१३
सन्त्येषां सिंहसत्त्वाश्च व्याघ्रसत्त्वास्तथापरे ।
वराहमृगसत्त्वाश्च जलसत्त्वास्तथापरे ॥ १४
सर्पस्पर्शसमाः केचित्तथान्ये मकरस्पृशः ।
विभाष्यघातिनः केचित्तथा चक्षुर्हणोऽपरे १५
सन्ति चाशीविषसमाः सन्ति मन्दास्तथापरे
विविधानीह वृत्तानि ब्राह्मणानां युधिष्ठिर१६

मेकला द्राविडा लाटाः
पौण्ड्राः कान्वशिरास्तथा ।
शौण्डिका दरदा दार्वा-
श्चौराः शबरबर्बराः १७

किराता यवनाश्चैव तास्ताः क्षत्रियजातयः
वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानाममर्षणात् ॥ १८
ब्राह्मणानां परिभवादसुराः सलिलेशयाः ।
ब्राह्मणानां प्रसादाच्च देवाः स्वर्गनिवासिनः

अशक्यं स्प्रष्टुमाकाश-
मचाल्यो हिमवान् गिरिः
अधार्या सेतुना गङ्गा
दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥ २०

न ब्राह्मणविरोधेन शक्या शास्तुं वसुन्धरा ।
ब्राह्मणा हि महात्मानो देवानामपि देवताः२१
तान्पूजयस्व सततं दानेन परिचर्यया ।
यदीच्छसि महीं भोक्तुमिमां सागरमेखलाम्॥
प्रतिग्रहेण तेजो हि विप्राणां शाम्यतेऽनघ ।
प्रतिग्रहं ये नेच्छेयुस्तेभ्यो रक्ष्यं त्वया नृप २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्राह्मणप्रशंसायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

---

३५

**जन्मनेति** । जन्मनैव सत्काराद्यभावेऽपि ब्राह्मणो नमस्य एव । प्रसृतं प्राश्निं पक्कमन्नं तत्स्त्राग्रे भोक्तुमर्हः. प्रसृताग्रभुक् ॥ १ ॥ सर्वे अर्था· धर्मादयो येभ्यस्ते सुमनसा देवाना मुखमिव भूताः सुमनोमुखा ॥ २ ॥ नोऽस्माकं द्विषत शत्रून् तैरपूजिता ब्राह्मणा दारुणयुक्ताभि. नव शत्रवो नश्यन्त्वित्यादिभिर्गीर्भिः अभिध्यासु अभिध्यायन्तु अभिहन्युरिति स्पष्टार्थ पाठ. ॥ ३ ॥ समादधत् समाधि नियमं कृतवान् ॥ ४ ॥ ब्रह्मा ब्राह्मण व शोभनं श्रेयस्तेनैव ॥ ५ ॥ स्वं कर्म ब्राह्मणगोपनं प्रग्रहा दमनक्षमा रज्जव इव ॥ ६ ॥ शौद्रं कर्म सेवा कर्तव्य कारयितव्यं कुर्वत कारयत· ॥ ७ ॥ श्रीश्चेत्यादे· श्रियामित्यर्थः ॥ ८ ॥ आहवनीयस्थं देवतागणं प्रसूतीना शिशुभ्योऽप्यग्रे भोज्यं येषा ते ब्राह्मया श्रिया विद्ययाऽनुकल्पिता. पात्रीभूताः ॥९॥ **भूय इति** । चण्डत्वादिदोषवन्तोऽपि पूज्या एवेत्यर्थ· ॥ १३ ॥ अमर्षणात् ब्राह्मणकोपासहनात् ॥ १८ ॥ तेभ्यो रक्ष्यं स्वकुलमिति शेषः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्याय· ॥ ३५ ॥

## ३६

भीष्म उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
शक्रशम्बरसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर॥ १
शक्रो ह्यज्ञातरूपेण जटी भूत्वा रजोगुणः।
विरूपं रथमास्थाय प्रश्नं पप्रच्छ शम्बरम्॥ २
शक्र उवाच।
केन शम्बर वृत्तेन स्वजात्यानधितिष्ठसि।
श्रेष्ठं त्वां केन मन्यन्ते तन्मे प्रब्रूहि तत्त्वतः॥ ३
शम्बर उवाच।
नासूयामि यदा विप्रान्ब्राह्ममेव च मे मतम्।
शास्त्राणि वदतो विप्रान्संमन्यामि यथासुखम्
श्रुत्वा च नावजानामि
नापराध्यामि कर्हिचित्।
अभ्यर्च्याभ्यनुपृच्छामि
पादौ गृह्णामि धीमताम्॥ ५
ते विश्रब्धाः प्रभाषन्ते संपृच्छन्ते च मा सदा
प्रमत्तेष्वप्रमत्तोऽस्मि सदा सुप्तेषु जागृमि॥ ६
ते मां शास्त्रपथे युक्तं
ब्रह्मण्यमनसूयकम्।
समासिञ्चन्ति शास्तारः
क्षौद्रं मध्विव मक्षिकाः॥ ७
यच्च भाषन्ति सन्तुष्टास्तच्च गृह्णामि मेधया।
समाधिमात्मनो नित्यमनुलोममचिन्तयम् ८
सोऽहं वागग्रमृष्टानां रसानामवलेहकः।
स्वजात्यानधितिष्ठामि नक्षत्राणीव चन्द्रमाः९
एतत्पृथिव्याममृतमेतच्चक्षुरनुत्तमम्।
यद्ब्राह्मणमुखाच्छास्त्रमिह श्रुत्वा प्रवर्तते १०
एतत्कारणमाज्ञाय दृष्ट्वा देवासुरं पुरा।
युद्धं पिता मे हृष्टात्मा विस्मितः समपद्यत ११
दृष्ट्वा च ब्राह्मणानां तु महिमानं महात्मनाम्।
पर्यपृच्छत्कथममी सिद्धा इति निशाकरम् १२
सोम उवाच।
ब्राह्मणास्तपसा सर्वे सिध्यन्ते वाग्बलाः सदा
भुजवीर्याश्च राजानो वागस्त्राश्च द्विजातयः १३
प्रणवं चाप्यधीयीत ब्राह्मीर्दुर्वसतीर्वसन्।
निर्मन्युरपि निर्वाणो यदि स्यात्समदर्शनः १४
अपि च ज्ञानसम्पन्नः सर्वान्वेदान् पितुर्गृहे।
श्लाघमान इवाधीयाद्ग्राम्य इत्येव तं विदुः॥
भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाप्ययोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥
अभिमानः श्रियं हन्ति पुरुषस्याल्पमेधसः।
गर्भेण दुष्यते कन्या गृहवासेन च द्विजः॥ १७
इत्येतन्मे पिता श्रुत्वा सोमादद्भुतदर्शनात्।
ब्राह्मणान्पूजयामास तथैवाहं महाव्रतान्॥ १८
भीष्म उवाच।
श्रुत्वैतद्वचनं शक्रो दानवेन्द्रमुखाच्च्युतम्।
द्विजान्सम्पूजयामास महेन्द्रत्वमवाप च १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्राह्मणप्रशंसायामिन्द्रशंबरसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

---

३६

**अत्रापीत्यध्यायस्य तात्पर्यं** असुराणामपि श्रीर्ब्राह्मणप्रसादलभ्यैवेति॥ १॥ मां मयि मधु अमृततुल्यां विद्यां समासिञ्चन्ति क्षौद्रं मधुपटलं मक्षिका मध्विवेत्यावृत्त्या योज्यम्॥ ७॥ समाधिं ब्राह्मणेषु निष्ठाम्॥ ८॥ वागग्रे जिह्वाग्रे मृष्टं विद्यामृतं येषां ब्राह्मणानां रसानामुक्तिसुधानाम्॥ ९॥ ब्राह्मीर्वेदार्थाः दुर्वसती गुरुकुलवासक्लेशात्। अपि अपि वा सति वैराग्ये यतिः स्यात् नैष्ठिकब्रह्मचर्यात् पारिव्राज्यमेव कुर्यादित्यर्थः॥ १४॥ पितुर्गृहे वेदाध्ययनं निन्दति —अपीति॥ १५॥ अप्रवासिनं वेदार्थं ग्रामान्तरे वासमकुर्वाणम्॥ १६॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

## ३७

युधिष्ठिर उवाच ।
अपूर्वं वा भवेत्पात्रमथवापि चिरोषितः ।
दूरादभ्यागतं चापि किं पात्रं स्यात्पितामह१
भीष्म उवाच ।
क्रिया भवति केषांचिदुपांशुव्रतमुत्तमम् ।
यो यो याचेत यत्किञ्चित्सर्वं दद्याम इत्यपि२
अपीडयन् भृत्यवर्गमित्येवमनुशुश्रुम ।
पीडयन् भृत्यवर्गं हि आत्मानमपकर्षति ॥ ३
अपूर्वं भावयेत्पात्रं यश्चापि स्याच्चिरोषितम् ।
दूरादभ्यागतं चापि तत्पात्रं च विदुर्बुधाः ४
युधिष्ठिर उवाच ।
अपीडया च भूतानां धर्मस्याहिंसया तथा ।
पात्रं विद्यात्तु तत्त्वेन यस्मै दत्तं न सन्तपेत्॥५
भीष्म उवाच ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्याः शिष्यसंबंधिबांधवाः
सर्वे पूज्याश्च मान्याश्च श्रुतवन्तोऽनसूयकाः६
अतोऽन्यथा वर्तमानाः सर्वे नार्हंति सत्क्रियाम्
तस्मान्नित्यं परीक्षेत पुरुषान्प्रणिधाय वै ॥ ७
अक्रोधः सत्यवचनमहिंसा दम आर्जवम् ।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः
यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते न चाकार्याणि भारत
स्वभावतो निविष्टानि तत्पात्रं मानमर्हति ॥९
तथा चिरोषितं चापि संप्रत्यागतमेव च ।
अपूर्वं चैव पूर्वं च तत्पात्रं मानमर्हति ॥ १०
अप्रामाण्यं च वेदानां शास्त्राणां चाभिलङ्घनम्
अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ११
भवेत्पण्डितमानी यो ब्राह्मणो वेदनिन्दकः
आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम्
हेतुवादान्ब्रुवन्सत्सु विजेताऽहेतुवादिकः ।
आक्रोष्टा चातिवक्ता च ब्राह्मणानां सदैव हि
सर्वाभिशङ्की मूढश्च बालः कटुकवागपि ।
बोद्धव्यस्तादृशस्तात नरंश्वानं हि तं विदुः
यथा श्वा भषितुं चैव हन्तुं चैवावसज्जते ।
एवं संभाषणार्थाय सर्वशास्त्रवधाय च १५
लोकयात्रा च द्रष्टव्या धर्मश्चात्महितानि च
एवं नरो वर्तमानः शाश्वतीर्वर्धते समाः १६
ऋणमुन्मुच्य देवानामृषीणां च तथैव च ।
पितॄणामथ विप्राणामतिथीनां च पञ्चमम् १७
पर्यायेण विशुद्धेन सुविनीतेन कर्मणा ।
एवं गृहस्थः कर्माणि कुर्वन्धर्मान्न हीयते ॥ १८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पात्रपरीक्षायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

३७

अपूर्वश्चेत्यध्यायो ब्राह्मणेष्वपि पात्रविशेषपरीक्षार्थः ॥१॥ तत्र अपूर्वश्चिरोषितो दूरादागतश्च पात्रं तेषां मध्ये कश्चिद्यज्ञार्थं कश्चित् गुरुदक्षिणार्थं कश्चित्कुटुम्बभरणार्थमिति एवंरूपा क्रिया केषांचित्पात्रत्वे प्रधानं भवति केषांचिदुपांशुव्रतं मौनं पारिव्राज्यमिति । तथा क्रियामौनयोस्तारतम्यादेषां तारतम्यं न स्वरूपत इत्याह—**क्रियेति** । दद्याम दद्याम इत्येव वक्तव्यं न त्वेतेषु कश्चित्प्रत्याचक्षीतेत्यर्थः ॥ २ ॥ दत्तं प्रदेयवस्त्वभिमानिनी देवता न सन्तपेत् यथा तादृशाय देयं नान्यस्मै स्मर्यते हि—

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ।

दीयमानं रुदत्यन्नं किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥ इति ।

अतः कस्तादृश इति प्रश्नः ॥ ५ ॥ मुख्यं पात्रविशेषेण श्रुतवन्तोऽनसूयका इति ॥ ६ ॥ तथा अक्रोधादिगुणविशिष्टम् ॥ १० ॥ अपात्रताबीजमाह—**अप्रामाण्यमिति** । आत्मन पात्रताया इति शेषः ॥ ११ ॥ निरर्थिका श्रुतिविरोधित्वेन मोक्षानुपयोगिनीम् ॥ १२ ॥ हेतुवादान् ब्रुवन् युक्त्या जगत्कारणगोष्ठीः कुर्वन्नपि अहेतुवादिक शास्त्रोक्तहेतुवादविरोधात् ॥ १३ ॥ बोद्धव्य अस्पृश्यत्वेनेति शेष. । तत्र हेतुमाह—**श्वानं हि तं विदुः** । शिष्टा इति शेष ॥ १४ ॥ एतदेवोपपादयति—**यथेति** ॥१५॥लोकयात्रा शिष्टाचारादिव्यवहार. धर्म. श्रुतिस्मृत्युक्त' आत्महितानि शमदमादीनि॥१६॥ देवानामृणं यज्ञेन, ऋषीणा वेदाधिगमेन पितॄणां, प्रजोत्पादनेन, विप्राणां दानमानेन, अतिथीनां वैश्वदेवान्ते आगताना सम्यगातिथ्येन, च उन्मुच्य अपाकृत्य कर्माणि कुर्वन्नित्युत्तरेणान्वय ॥ १७ ॥ पर्यायेण यथाक्रमेण सुविनीतेन सुशिक्षितेन कर्मणा यत्नेन कर्माणि यज्ञादीनि ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्याय' ॥ ३७ ॥

## ३८

युधिष्ठिर उवाच ।

स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि
श्रोतुं भरतसत्तम ।
स्त्रियो हि मूलं दोषाणां
लघुचित्ता हि ताः स्मृताः ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पञ्चचूडया ॥ २
लोकाननुचरन् सर्वान् देवर्षिर्नारदः पुरा ।
ददर्शाप्सरसं ब्राह्मीं पञ्चचूडामनिन्दिताम् ३
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं पप्रच्छाप्सरसं मुनिः ।
संशयो हृदि कश्चिन्मे ब्रूहि तन्मे सुमध्यमे ॥४

भीष्म उवाच ।

एवमुक्ताऽथ सा विप्रं प्रत्युवाचाथ नारदम्
विषये सति वक्ष्यामि समर्थं मन्यसे च माम्५

नारद उवाच ।

न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथंचन ।
स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं वरानने

भीष्म उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा ।
प्रत्युवाच न शक्ष्यामि स्त्री सती निंदितुं स्त्रियः
विदितास्ते स्त्रियो याश्च यादृशाश्च स्वभावतः
न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं कार्य ईदृशे ॥ ८
तामुवाच स देवर्षिः सत्यं वद सुमध्यमे ।
मृषावादे भवेद्दोषः सत्ये दोषो न विद्यते ।
इत्युक्ता सा कृतमतिरभवच्चारुहासिनी ।
स्त्रीदोषाञ्छाश्वतान् सत्यान्भाषितुं संप्रचक्रमे

पञ्चचूडोवाच ।

कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः ।
मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद११
न स्त्रीभ्यः किञ्चिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति वै
स्त्रियो हि मूलं दोषाणां तथा त्वमपि वेत्थ ह
समाज्ञातानृद्धिमतः प्रतिरूपान्वशे स्थितान् ।
पतीनन्तरमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम्१३
असद्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो ।
पापीयसो नरान् यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजामहे
स्त्रियं हि यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति ।
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ॥ १५
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च ।
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु १६
नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः
विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १७
न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेतोः कथंचन ।
न ज्ञातिकुलसम्बन्धात्स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु
यौवने वर्तमानानां मृष्टाभरणवाससाम् ।
नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः१९
याश्च शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः ।
अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामनैः२०
पङ्गुष्वथ च देवर्षे
येचान्ये कुत्सिता नराः ।
स्त्रीणामगम्यो लोकेऽस्मि-
न्नास्ति कश्चिन्महामुने
यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन् कथंचिन्नोपपद्यते ।
अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते नहि तिष्ठन्ति भर्तृषु २२
अलाभात्पुरुषाणां हि भयात्परिजनस्य च ।
वधबन्धभयाच्चापि स्वयं गुप्ता भवन्ति ताः२३
चलस्वभावा दुःसेव्या दुर्ग्राह्या भावतस्तथा ।
प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथा वाचस्तथा स्त्रियः २४
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः

---

३८

पूर्वं मेघवाहनपर्वणि वेदं वस्तूक्त तद्वेदन धर्मबलादेव भवतीति यज्ञादिधर्मो वक्तव्य स च कामकाराविहितदार-परिग्रहाधीन इत्यष्टावक्रदिक्संवादे प्रदर्शित. तत्रापि ऋत्वि-गात्मा धनं जाया शुद्धं यस्य चतुष्टयम्' तस्याग्निहोत्रं स्वर्गाय नरकायेतरस्य चेति स्मृतेर्यज्ञाङ्गभूतात्मशुद्धि' ऋत्विक्शुद्धिश्च तीर्थब्राह्मणमाहात्म्याभ्या उक्ता । अथ स्त्रीशुद्धिर्द्रव्यशुद्धिश्च महता प्रबन्धेन प्रस्तूयते तत्र तावदस्मिन्नध्याये स्त्रीदोषानेव दर्शयति—**स्त्रीणामित्यादिना** । लघुचित्ताः वायुवत् चलचित्ता ॥ १ ॥ ब्राह्मीं ब्रह्मलोकस्थाम् ॥ ३ ॥ विषये वक्तुं योग्यत्वे ॥ ५ ॥ कृतमति. वक्ष्यामीति कृतनिश्चयाऽभवत् ॥ १० ॥ गति' प्राप्ति' अन्योन्यं कृत्रिमलिङ्गधारिण्यो भूत्वा मैथुनार्थं प्रवर्तन्ते । एतच्च लोकप्रसिद्धं भर्तृषु दूरस्थेषु इति शेष. । नहि तिष्ठन्ति धैर्ये इति शेषः ॥ २२ ॥ चल-स्वभावा' सालावृकाणा हृदयान्येता इति श्रुतेर्यथा वृकवि-शेषा. प्रत्यहं नवं नव मासमिच्छन्ति ह्यस्तने न रमन्त एवं स्त्रिय. पुरुषमित्यर्थ. ॥ २४ ॥ काष्ठानां काष्ठै ॥ २५ ॥

इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ २६
कामानामपि दातारं कर्तारं मनसां प्रियम् ।
रक्षितारं न मृष्यन्ति स्वभर्तारमलं स्त्रियः २७
न कामभोगान्विपुलान्नालंकारान्न संश्रयान्
तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम् ॥ २८
अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ॥
यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च
यतश्च लोका विहिता विधात्रा ।
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिता-
स्तदैव दोषाः प्रमदासु नारद ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पञ्चचूडानारदसंवादे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

युधिष्ठिर उवाच ।
इमे वै मानवा लोके स्त्रीषु सज्जन्त्यभीक्ष्णशः
मोहेन परमाविष्टा देवसृष्टेन पार्थिव ॥ १
स्त्रियश्च पुरुषेष्वेव प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम् ।
अत्र मे संशयस्तीव्रो हृदि संपरिवर्तते ॥ २
कथमासां नराः सङ्गं कुर्वते कुरुनन्दन ।
स्त्रियो वा केषु रज्यन्ते विरज्यन्ते च ताः पुनः
इति ताः पुरुषव्याघ्र कथं शक्यास्तु रक्षितुम्
प्रमदाः पुरुषेणेह तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४
एता हि रममाणास्तु वञ्चयन्तीह मानवान् ।
न चासां मुच्यते कश्चित्पुरुषो हस्तमागतः ॥५
गावो नवतृणानीव गृह्णन्त्येता नव नवम् ।
शंबरस्य च या माया माया या नमुचेरपि ६
बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः
हसन्तं प्रहसन्त्येता रुदन्तं प्ररुदन्ति च ॥ ७
अप्रिय प्रियवाक्यैश्च गृह्णते कालयोगतः ।
उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ॥ ८
स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येत तास्तु रक्ष्याः कथं नरैः
अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम्
इति यास्ताः कथं वीर संरक्ष्याः पुरुषैरिह ।
स्त्रीणां बुद्ध्यर्थनिष्कर्षादर्थशास्त्राणि शत्रुहन्
बृहस्पतिप्रभृतिभिर्मन्ये सद्भिः कृतानि वै ।
संपूज्यमानाः पुरुषैर्विकुर्वन्ति मनो नृषु ॥ ११
अपास्ताश्च तथा राजन् विकुर्वन्ति मनः स्त्रियः
इमाः प्रजा महाबाहो धार्मिक्य इति नः श्रुतम्
सत्कृतासत्कृताश्चापि विकुर्वन्ति मनः सदा ।
कस्ताः शक्तो रक्षितुं स्यादिति मे संशयो महान्
तथा ब्रूहि महाभाग कुरूणां वंशवर्धन ।
यदि शक्या कुरुश्रेष्ठ रक्षा तासां कदाचन ।
कर्तुं वा कृतपूर्वं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि स्त्रीस्वभावकथने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

अन्तकादिवत्सद्योनाशका इत्यर्थः ॥ २९ ॥ **यत इति ।** वन्ह्यौष्ण्यवत्स्वाभाविका एते स्त्रीणां दोषा इत्यर्थः । यथोक्तं नीतौ—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ इति ।

कामश्चाष्टगुणः स्मृत इति च ॥ ३० ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

**इम इति ।** एवं स्वभावदुष्टा अपि स्त्रियः परेभ्यो दु संरक्ष्या इत्याख्यायिकातात्पर्यम् ॥ १ ॥ **स्त्रीणामिति ।** स्त्रीबुद्धिमनुसृत्यैव बृहस्पत्यादिभिर्वञ्चनाशास्त्रं प्रवर्तितमित्यत्युक्तिः ॥ १० ॥ एताः पूजिता धिक्कृता वा तुल्यवद्विकारं जनयन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥ एतदेवाह—**इमा इति ।** इमाः स्त्रीरूपाः धार्मिक्य इति श्रुतिमात्रं सावित्र्यादिषु दृष्टम् ॥ १२ ॥ अनुभवस्तु न तथेत्याह—**सत्कृतेति** ॥ १३ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

भीष्म उवाच

एवमेव महाबाहो नात्र मिथ्याऽस्ति किञ्चन
यथा ब्रवीषि कौरव्य नारीं प्रति जनाधिप १
अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन महात्मना ॥ २
प्रमदाश्च यथा सृष्टा ब्रह्मणा भरतर्षभ ।
यदर्थं तच्च ते तात प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥ ३
न हि स्त्रीभ्यः परं पुत्र पापीयः किञ्चिदस्ति वै
अग्निर्हि प्रमदा दीप्तो मायाश्च मयजा विभो४
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ।
प्रजा इमा महाबाहो धार्मिक्य इति नः श्रुतम्
स्वयं गच्छन्ति देवत्वं ततो देवानियाद्भयम् ।
अथाभ्यगच्छन् देवास्ते पितामहमरिन्दम ६
निवेद्य मानस चापि तूष्णीमासन्नधोमुखाः ।
तेषामन्तर्गतं ज्ञात्वा देवाना स पितामहः ७
मानवाना प्रमोहार्थं कृत्या नार्योऽसृजत्प्रभुः
पूर्वसर्गे तु कौन्तेय साध्व्यो नार्य इहाभवन्

आसाध्व्यस्तु समुत्पन्नाः
कृत्या॰ सर्गात्प्रजापतेः ।
ताभ्यः कामान्यथाकामं
प्रादाद्धि स पितामहः ॥ ९

ताः कामलुब्धाः प्रमदाः प्रबाधन्ते नरान्सदा
क्रोधं कामस्य देवेशः सहायं चासृजत्प्रभुः॥
असज्जन्त प्रजाः सर्वाः कामक्रोधवशं गताः ।
न च स्त्रीणां क्रियाःकाश्चिदिति धर्मो व्यवस्थितः
निरिन्द्रिया ह्यशास्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति श्रुतिः
शय्यासनमलंकारमन्नपानमनार्यताम् ॥ १२
दुर्वाग्भावं रतिं चैव ददौ स्त्रीभ्यः प्रजापतिः
न तासां रक्षणं शक्य कर्तुं पुसा कथंचन १३
अपि विश्वकृता तात कुतस्तु पुरुषैरिह ।
वाचा च वधबंधैर्वा क्लेशैर्वा विविधैस्तथा१४
न शक्या रक्षितुं नार्यस्ता हि नित्यमसंयताः
इदं तु पुरुषव्याघ्र पुरस्ताच्छ्रुतवानहम् ॥१५
यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन गुरुस्त्रियाः ।
ऋषिरासीन्महाभागो देवशर्मेति विश्रुतः १६
तस्य भार्या रुचिर्नाम रूपेणाऽसदृशी भुवि ।
तस्या रूपेण सम्मत्ता देवगन्धर्वदानवाः ॥१७
विशेषेण तु राजेन्द्र वृत्रहा पाकशासनः ।
नारीणां चरितज्ञश्च देवशर्मा महामुनिः ॥ १८
यथाशक्ति यथोत्साहं भार्यां तामभ्यरक्षत ।
पुरन्दरं च जानीते परस्त्रीकामचारिणम् ॥१९
तस्माद्बलेन भार्याया रक्षणं स चकार ह ।
स कदाचिद्दृषिस्तात यज्ञं कर्तुमनास्तदा २०
भार्यासंरक्षणं कार्यं कथं स्यादित्यचिन्तयत् ।
रक्षाविधानं मनसा स सञ्चिन्त्य महातपाः
आहूय दयितं शिष्यं विपुलं प्राह भार्गवम् ।

देवशर्मोवाच ।

यज्ञकारो गमिष्यामि रुचिं चेमा सुरेश्वरः२२
यतः प्रार्थयते नित्य तां रक्षस्व यथाबलम् ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यं सदा प्रति पुरन्दरम् ॥२३
स हि रूपाणि कुरुते विविधानि भृगूत्तम ।

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तो विपुलस्तेन तपस्वी नियतेन्द्रियः
सदैवोग्रतपा राजन्नग्न्यर्कसदृशद्युतिः ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च तथेति प्रत्यभाषत ॥ २५
पुनश्चेदं महाराज पप्रच्छ प्रस्थितं गुरुम् ।

विपुल उवाच ।

कानि रूपाणि शक्रस्य भवन्त्यागच्छतो मुने
वपुस्तेजश्च कीदृग्वै तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।

भीष्म उवाच ।

ततः स भगवांस्तस्मै विपुलाय महात्मने॥
आचचक्षे यथातत्त्वं माया शक्रस्य भारत

देवशर्मोवाच ।

बहुमायः स विप्रर्षे भगवान्पाकशासनः ॥
तांस्तान्विकुरुते भावान्बहूनथ मुहुर्मुहुः ।
किरीटी वज्रधृग्धन्वी मुकुटी बद्धकुण्डलः२९
भवत्यथ मुहूर्तेन चण्डालसमदर्शनः ।
शिखी जटी चीरवासाः पुनर्भवति पुत्रक ३०
बृहच्छरीरश्च पुनश्चीरवासाः पुनः कृशः ।
गौरं श्यामं च कृष्णं च वर्णं विकुरुते पुनः३१
विरूपो रूपवांश्चैव युवा वृद्धस्तथैव च ।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव वैश्यः शूद्रस्तथैव च ३२

---

४०

**एवमेवेत्यध्यायस्य** तात्पर्यं नानारूपेभ्यो विटे-भ्यो योगबलेनैव स्वभावचपला स्त्रिय संरक्षितुं शक्या नान्यथेति ॥ १ ॥

प्रतिलोमोऽनुलोमश्च भवत्यथ शतक्रतुः ।
शुकवायसरूपी च हंसकोकिलरूपवान् ॥३३
सिंहव्याघ्रगजानां च रूपं धारयते पुनः ।
दैवं दैत्यमथो राज्ञां वपुर्धारयतेऽपि च ॥ ३४
अकृशो वायुभग्नाङ्गः शकुनिर्विकृतस्तथा ।
चतुष्पाद्बहुरूपश्च पुनर्भवति बालिशः ॥ ३५
मक्षिकामशकादीनां वपुर्धारयतेऽपि च ।
न शक्यमस्य ग्रहणं कर्तुं विपुल केनचित् ३६
अपि विश्वकृता तात येन सृष्टमिदं जगत् ।
पुनरन्तर्हितः शक्रो दृश्यते ज्ञानचक्षुषा ॥ ३७
वायुभूतश्च स पुनर्देवराजो भवत्युत ।
एवं रूपाणि सततं कुरुते पाकशासनः ॥ ३८
तस्माद्विपुल यत्नेन रक्षेमां तनुमध्यमाम् ।
यथा रुचिं नावलिहेद्देवेन्द्रो भृगुसत्तम ॥ ३९
क्रतावुपहिते न्यस्तं हविः श्वेव दुरात्मवान् ।
एवमाख्याय स मुनिर्यज्ञकारोऽगमत्तदा ॥४०
देवशर्मा महाभागस्ततो भरतसत्तम ।
विपुलस्तु वचः श्रुत्वा गुरोश्चिन्तामुपेयिवान्
रक्षां च परमां चक्रे देवराजान्महाबलात् ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं गुरुदाराभिरक्षणे ४२
मायावी हि सुरेन्द्रोसौ दुर्धर्षश्चापि वीर्यवान्
नापिधायाश्रमं शक्यो रक्षितुं पाकशासनः४३
उटजं वा तथा ह्यस्य नानाविधसरूपता ।
वायुरूपेण वा शक्रो गुरुपत्नीं प्रधर्षयेत् ॥ ४४
तस्मादिमां सम्प्रविश्य रुचिं स्थास्येहमद्य वै ।
अथवा पौरुषेणेयं न शक्या रक्षितुं मया ॥४५
बहुरूपो हि भगवाञ्छ्रूयते पाकशासनः ।
सोहं योगबलादेनां रक्षिष्ये पाकशासनात्४६
गात्राणि गात्रैरस्याहं संप्रवेक्ष्ये हि रक्षितुम् ।
यद्युच्छिष्टामिमां पत्नीमद्य पश्यति मे गुरुः४७
शप्स्यत्यसंशयं कोपाद्दिव्यज्ञानो महातपाः ।
न चेयं रक्षितुं शक्या यथाऽन्या प्रमदा नृभिः
मायावी हि सुरेन्द्रोऽसावहो प्राप्तोस्मि संशयम्
अवश्यं करणीयं हि गुरोरिह हि शासनम्४९
यदि त्वेतदहं कुर्यामाश्चर्यं स्यात्कृतं मया ।
योगेनाथ प्रवेशो हि गुरुपत्न्याः कलेवरे ।
एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः
अशक्तः पद्मपत्रस्थो जलबिन्दुर्यथा चलः ॥५१
निर्मुक्तस्य रजोरूपान्नापराधो भवेन्मम ।
यथा हि शून्यां पथिकः सभामध्यावसेत्पथि
तथाद्यावासयिष्यामि गुरुपत्न्याः कलेवरम् ।
एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः
इत्येवं धर्ममालोक्य वेदवेदांश्च सर्वशः ।
तपश्च विपुलं दृष्ट्वा गुरोरात्मन एव च ॥ ५४
इति निश्चित्य मनसा रक्षां प्रति स भार्गवः ।
अन्वतिष्ठत्परं यत्नं यथा तच्छृणु पार्थिव ॥५५
गुरुपत्नीं समासीनो विपुलः स महातपाः ।
उपासीनामनिन्द्याङ्गीं यथार्थं समलोभयत्५६
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्या रश्मिं संयोज्य रश्मिभिः
विवेश विपुलः कायमाकाशं पवनो यथा ५७
लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च ।
अविचेष्टन्नतिष्ठद्वै छायेवान्तर्हितो मुनिः ॥ ५८
ततो विष्टभ्य विपुलो गुरुपत्न्याः कलेवरम् ।
उवास रक्षणे युक्तो न च सा तमबुध्यत ५९
यं कालं नागतो राजन् गुरुस्तस्य महात्मनः ।
क्रतुं समाप्य स्वगृहं तं कालं सोऽभ्यरक्षत६०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विपुलोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

भीष्म उवाच ।
ततः कदाचिद्देवेन्द्रो दिव्यरूपवपुर्धरः ।
इदमन्तरमित्येवमभ्यगात्तमथाश्रमम् ॥ १
रूपमप्रतिमं कृत्वा लोभनीयं जनाधिप ।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ २

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

तत इति । १ ॥

स ददर्श तमासीनं विपुलस्य कलेवरम् ।
निश्चेष्टं स्तब्धनयनं यथा लेख्यगतं तथा ॥ ३
रुचिं च रुचिरापांगीं पीनश्रोणिपयोधराम् ।
पद्मपत्रविशालाक्षीं संपूर्णेन्दुनिभाननाम् ॥ ४
सा तमालोक्य सहसा प्रत्युत्थातुमियेष ह ।
रूपेण विस्मिता कोऽसीत्यथ वक्तुमिवेच्छती
उत्थातुकामा तु सती विष्टब्धा विपुलेन सा ।
निगृहीता मनुष्येन्द्र न शशाक विचेष्टितुम् ६
तामाबभाषे देवेन्द्रः साम्ना परमवल्गुना ।
त्वदर्थमागतं विद्धि देवेन्द्रं मां शुचिस्मिते ७
क्लिश्यमानमनङ्गेन त्वत्संकल्पभवेन ह ।
तत्सम्प्राप्तं हि मां सुभ्रु पुरा कालोऽतिवर्तते ८
तमेवंवादिनं शक्रं शुश्राव विपुलो मुनिः ।
गुरुपत्न्याः शरीरस्थो ददर्श त्रिदशाधिपम् ९
न शशाक च सा राजन्प्रत्युत्थातुमनिन्दिता ।
वक्तुं च नाशकद्राजन्विष्टब्धा विपुलेन सा ॥
आकारं गुरुपत्न्यास्तु स विज्ञाय भृगूद्वहः ।
निजग्राह महातेजा योगेन बलवत्प्रभो ॥ ११
बबन्ध योगबन्धैश्च तस्याः सर्वेन्द्रियाणि सः ।
तां निर्विकारां दृष्ट्वा तु पुनरेव शचीपतिः १२
उवाच व्रीडितो राजंस्तां योगबलमोहिताम् ।
एह्येहीति ततः सा तु प्रतिवक्तुमियेष तम् १३
स तां वाचं गुरोः पत्न्या विपुलः पर्यवर्तयत्
भोः किमागमने कृत्यमिति तस्यास्तु निःसृता
वक्त्राच्छशांकसदृशाद्वाणी संस्कारभूषणा ।
व्रीडिता सा तु तद्वाक्यमुक्त्वा परवशा तदा
पुरन्दरश्च तत्रस्थो बभूव विमना भृशम् ।
स तद्वैकृतमालक्ष्य देवराजो विशांपते ॥ १६
अवैक्षत सहस्राक्षस्तदा दिव्येन चक्षुषा ।
स ददर्श मुनिं तस्याः शरीरान्तरगोचरम् ॥
प्रतिबिम्बमिवादर्शे गुरुपत्न्याः शरीरगम् ।
स तं घोरेण तपसा युक्तं दृष्ट्वा पुरन्दरः ॥ १८
प्रावेपत सुसन्त्रस्तः शापभीतस्तदा विभो ।
विमुच्य गुरुपत्नीं तु विपुलः सुमहातपाः ।
स्वकलेवरमाविश्य शक्रं भीतमथाब्रवीत् ॥ १९

विपुल उवाच ।

अजितेन्द्रिय दुर्बुद्धे पापात्मक पुरन्दर ।
न चिरं पूजयिष्यन्ति देवास्त्वां मानुषास्तथा
किं नु तद्विस्मृतं शक्र न तन्मनसि ते स्थितम् ।
गौतमेनासि यन्मुक्तो भगाङ्कपरिचिह्नितः २१
जाने त्वां बालिशमतिमकृतात्मानमस्थिरम् ।
मयेयं रक्ष्यते मूढ गच्छ पाप यथागतम् ॥ २२
नाहं त्वामद्य मूढात्मन्दहेयं हि स्वतेजसा ।
कृपायमानस्तु न ते दग्धुमिच्छामि वासव ॥
स च घोरतमो धीमान्गुरुस्त्वं पापचेतसम् ।
दृष्ट्वा त्वां निर्दहेदद्य क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ॥ २४
नैवं तु शक्र कर्तव्यं पुनर्मान्याश्च ते द्विजाः ।
मा गमः ससुतामात्यः क्षयं ब्रह्मबलार्दितः १५
अमरोऽस्मीति यद्बुद्धिं समास्थाय प्रवर्तसे ।
मावमंस्था न तपसा न साध्यं नाम किञ्चन ॥

भीष्म उवाच ।

तच्छ्रुत्वा वचनं शक्रो विपुलस्य महात्मनः ।
अकिञ्चिदुक्त्वा व्रीडातैस्तत्रैवान्तरधीयत २७
मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु देवशर्मा महातपाः ।
कृत्वा यज्ञं यथाकाममाजगाम स्वमाश्रमम् २८
आगतेऽथ गुरौ राजन्विपुलः प्रियकर्मकृत् ।
रक्षितां गुरवे भार्यां न्यवेदयदनिन्दिताम् ॥२९
अभिवाद्य च शान्तात्मा स गुरुं गुरुवत्सलः ।
विपुलः पर्युपातिष्ठद्यथापूर्वमशङ्कितः ॥ ३०
विश्रान्ताय ततस्तस्मै सहासीनाय भार्यया ।
निवेदयामास तदा विपुलः शक्रकर्म तत् ॥३१
तच्छ्रुत्वा स मुनिस्तुष्टो विपुलस्य प्रतापवान्
बभूव शीलवृत्ताभ्यां तपसा नियमेन च ॥ ३२
विपुलस्य गुरौ वृत्तिं भक्तिमात्मनि तत्प्रभुः ।
धर्मे च स्थिरतां दृष्ट्वा साधु साध्वित्यभाषत ॥
प्रतिलभ्य च धर्मात्मा शिष्यं धर्मपरायणम् ।
वरेण छन्दयामास देवशर्मा महामतिः ॥ ३४
स्थितिं च धर्मे जग्राह स तस्माद्गुरुवत्सलः ।
अनुज्ञातश्च गुरुणा चचारानुत्तमं तपः ॥ ३५
तथैव देवशर्मापि सभार्यः स महातपाः ।
निर्भयो बलवृत्रघ्नाच्चचार विजने वने ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विपुलोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४१ ॥

## ४२

भीष्म उवाच ।

विपुलस्त्वकरोत्तीव्रं तपः कृत्वा गुरोर्वचः ।
तपोयुक्तमथात्मानममन्यत स वीर्यवान् ॥ १
स तेन कर्मणा स्पर्धन्पृथिवीं पृथिवीपते ।
चचार गतभीः प्रीतो लब्धकीर्तिर्वरो नृप॥२
उभौ लोकौ जितौ चापि तथैवामन्यत प्रभुः
कर्मणा तेन कौरव्य तपसा विपुलेन च ॥ ३
अथ काले व्यतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्कुरुनन्दन ।
रुच्या भगिन्या आदानं प्रभूतधनधान्यवत् ४
एतस्मिन्नेव काले तु दिव्या काचिद्वराङ्गना
बिभ्रती परमं रूपं जगामाथ विहायसा ॥ ५
तस्याः शरीरात्पुष्पाणि पतितानि महीतले।
तस्याश्रमस्याविदूरे दिव्यगन्धानि भारत ॥ ६
तान्यगृह्णात्ततो राजन् रुचिर्ललितलोचना।
तदा निमन्त्रकस्तस्या अङ्गेभ्यः क्षिप्रमागमत
तस्या हि भगिनी तात ज्येष्ठा नाम्ना प्रभावती
भार्या चित्ररथस्याथ बभूवाङ्गेश्वरस्य वै ॥ ८
पिनह्य तानि पुष्पाणि केशेषु वरवर्णिनी ।
आमन्त्रिता ततोऽगच्छद्रुचिरङ्गपतेर्गृहम् ॥ ९
पुष्पाणि तानि दृष्ट्वा तु तदाङ्गेन्द्र वरांगना ।
भगिनीं चोदयामास पुष्पार्थं चारुलोचना ॥
सा भर्त्रे सर्वमाचष्ट रुचिः सुरुचिरानना ।
भगिन्या भाषितं सर्वमृषिस्तच्चाभ्यनन्दत ११
ततो विपुलमानाय्य देवशर्मा महातपाः ।
पुष्पार्थे चोदयामास गच्छ गच्छेति भारत ॥
विपुलस्तु गुरोर्वाक्यमविचार्य महातपाः ।
स तथेत्यब्रवीद्राजंस्तं च देशं जगाम ह ॥१३

यस्मिन्देशे तु तान्यासन् पतितानि नभस्तलात्
अम्लानान्यपि तत्रासन् कुसुमान्यपराण्यपि
स ततस्तानि जग्राह दिव्यानि रुचिराणि च
प्राप्तानि स्वेन तपसा दिव्यगन्धानि भारत १५
संप्राप्य तानि प्रीतात्मा गुरोर्वचनकारकः ।
तदा जगाम तूर्णं च चम्पां चंपकमालिनीम्
स वने निर्जने तात ददर्श मिथुनं नृणाम् ।
चक्रवत्परिवर्तन्तं गृहीत्वा पाणिना करम् ॥
तत्रैकस्तूर्णमगमत्तत्पदे च विवर्तयन् ।
एकस्तु न तदा राजंश्चक्रतुः कलहं ततः ॥ १८
त्वं शीघ्रं गच्छसीत्येकोऽब्रवीन्नेति तथा परः ।
नेति नेति च तौ राजन् परस्परमथोचतुः १९
तयोर्विस्पर्धतोरेवं शपथोऽयमभूत्तदा ।
सहसोद्दिश्य विपुलं ततो वाक्यमथोचतुः २०
आवयोरनृतं प्राह यस्तस्याभूद्द्विजस्य वै ।
विपुलस्य परे लोके या गतिः सा भवेदिति
एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो विषण्णवदनोऽभवत् ।
एवं तीव्रतपाश्चाहं कष्टश्चायं परिश्रमः ॥ २२
मिथुनस्यास्य किं मे स्यात्कृतं पापं यथा गतिः
अनिष्टा सर्वभूतानां कीर्तिताऽनेन मेऽद्य वै ॥
एवं सञ्चिन्तयन्नेव विपुलो राजसत्तम ।
अवाङ्मुखो दीनमना दध्यौ दुष्कृतमात्मनः
ततः षडन्यान्पुरुषानक्षैः काञ्चनराजतैः ।
अपश्यद्दीव्यमानान्वै लाभहर्षान्वितांस्तथा ॥
कुर्वतः शपथं तेन यः कृतो मिथुनेन तु ।
पिपुलं वै समुद्दिश्य तेऽपि वाक्यमथाब्रुवन्

---

४२

**विपुलस्त्वित्यध्यायस्य** तात्पर्यं पद्मपत्राम्बुवदसङ्गस्यापि योगिनो मातुरपि स्पर्शमात्राद्दोषो भवतीति गुरावशुभमपि कर्मानिवेद्य न स्थातव्यमिति च ॥१॥ आदीयतेऽस्मिन्बान्धवैर्दत्तं उपायनादिकं म आदानं विवाहाद्युत्सव प्रभूतं बहुधनादिकं यत्र ॥ ४ ॥ निमन्त्रक आकारणार्थं दूत· ॥ ७ ॥ चोदयामास मदर्थमप्येतानि पुष्पाणि आनयेति प्रेरितवती ॥ १० ॥ परिवर्तन्तमिति पुंस्त्वमात्मनेपदाभावश्चार्षः ॥ १७॥ तत्पदे इतरस्य पदे पादुष्यु व्यक्तो आकर्षणेन विवर्तयन् विषमता नयन ॥ १८ ॥ **नेति नेति** अन्योन्यवचन दूषयन्तावित्यर्थ । **अयं भाव** –मिथुनस्थेऽर्कः शीघ्र गच्छन्तीं रात्रिमहर्देवता शीघ्रं गच्छसीति लोकदृष्ट्या पर्यनुयुङ्क्ते । रात्रिस्तु स्वमानेनैवाहं गच्छामि न शीघ्रामिति परिहरति एवमुभावपि सत्यवादिनौ नानृतं शपथं चक्रतुरिति ॥ १९ ॥ अयं मिथुनस्य परिश्रम कष्ट इत्यन्वय गतिरनिष्टेति सार्धः ॥ २२ ॥ षड्ऋतवो दीव्यमानान् अन्योन्यं जेतुमिच्छन्तः वसन्तादयो हि वृषादीन्समराशीनाभिसन्धायायं मदीयोऽयं मदीय इति विवदन्ते तेऽपि मतभेदाश्चानृतवादिन । मीनादिर्वसन्त इति पक्षे हि वृषो ग्रीष्मान्तर्गत मेषादिपक्षे वसन्तान्तर्गत इति ॥ २५ ॥

लोभमास्थाय योऽस्माकं विघ्नं कर्तुमुपस्थितः।
विपुलस्य परे लोके या गतिस्तामवाप्नुयात् ॥
एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो नापश्यद्धर्मसङ्करम्।
जन्मप्रभृति कौरव्य कृतपूर्वमथात्मनः ॥ २८
सम्प्रदध्यौ तथा राजन्नग्नाविवाग्निरिवाहितः।
दह्यमानेन मनसा शापं श्रुत्वा तथाविधम् २९
तस्य चिन्तयतस्तात बह्व्यो दिननिशा ययुः
इदमासीन्मनसि च रुच्या रक्षणकारितम् ॥
लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च।
विधाय न मया चोक्तं सत्यमेतद्गुरोस्तथा ३१
एतदात्मनि कौरव्य दुष्कृतं विपुलस्तदा।
अमन्यत महाभाग तथा तच्च न संशयः ॥ ३२
स चंपां नगरीमेत्य पुष्पाणि गुरवे ददौ।
पूजयामास च गुरुं विधिवत्स गुरुप्रियः ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विपुलोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

भीष्म उवाच।
तमागतमभिप्रेक्ष्य शिष्यं वाक्यमथाब्रवीत्।
देवशर्मा महातेजा यत्तच्छृणु जनाधिप ॥ १
देवशर्मोवाच।
किं ते विपुल दृष्टं वै तस्मिन् शिष्य महावने
ते त्वां जानन्ति विपुल आत्मा च रुचिरेव च
विपुल उवाच।
ब्रह्मर्षे मिथुनं किं तत्के च ते पुरुषा विभो।
ये मां जानन्ति तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि
देवशर्मोवाच।
यद्वै तन्मिथुनं ब्रह्मन्नहोरात्रं हि विद्धि तत्।
चक्रवत्परिवर्तेत तत्ते जानाति दुष्कृतम् ॥ ४
ये च ते पुरुषा विप्र अक्षैर्दीव्यन्ति हृष्टवत्।
ऋतूंस्तानभिजानीहि ते ते जानन्ति दुष्कृतम्
न मां कश्चिद्विजानीत इति कृत्वा न विश्वसेत्
नरो रहसि पापात्मा पापकं कर्म वै द्विज ६
कुर्वाणं हि नरं कर्म पापं रहसि सर्वदा।
पश्यन्ति ऋतवश्चापि तथा दिननिशोऽप्युत ७
तथैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा।
कृत्वा नाचक्षतः कर्म मम तच्च यथाकृतम् ॥ ८
ते त्वां हर्षस्मितं दृष्ट्वा गुरोः कर्मानिवेदकम्
स्मारयन्तस्तथा प्राहुस्ते यथा श्रुतवान् भवान्
अहोरात्रं विजानाति ऋतवश्चापि नित्यशः।
पुरुषे पापकं कर्म शुभं वा शुभकर्मिणः ॥ १०
तत्त्वया मम यत्कर्म व्यभिचाराद्भयात्मकम्।
नाख्यातमिति जानन्तस्ते त्वा प्राहुस्तथा द्विज
तेनैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा।
कृत्वा नाचक्षतः कर्म मम यच्च त्वया कृतम् ॥
त्वयाशक्या च दुर्वृत्या रक्षितुं प्रमदा द्विज
न च त्वं कृतवान् किञ्चिदतः प्रीतोऽस्मि तेन ते
यदि त्वहं त्वां दुर्वृत्तमद्राक्षं द्विजसत्तम।
शपेयं त्वामहं क्रोधान्न मेऽत्रास्ति विचारणा
सज्जन्ति पुरुषे नार्यः पुंसां सोऽर्थश्च पुष्कलः।
अन्यथा रक्षतः शापोऽभविष्यत्ते मतिश्च मे ॥
रक्षिता च त्वया पुत्र मम चापि निवेदिता।
अहं ते प्रीतिमांस्तात स्वस्थः स्वर्गं गमिष्यसि
इत्युक्त्वा विपुलं प्रीतो देवशर्मा महानृषिः
मुमोद स्वर्गमास्थाय सहभार्यः सशिष्यकः १७
इदमाख्यातवांश्चापि ममाख्यानं महामुनिः।
मार्कण्डेयः पुरा राजन् गङ्गाकूले कथान्तरे ॥

---

रुच्या गुरुभार्यया ॥ ३० ॥ लक्षणं स्त्रीपुंसयोरसाधारणं चिह्नं विधाय एकीकृत्य। पिधायेति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

**४३**

**तमागतमित्यध्यायेन** पूर्वोक्तार्थविवरणपूर्वकमाख्यायिकाथमुपसंहरति ॥ १ ॥ ते त्वया ॥ २ ॥ त्वया यथा गुरुपत्नीरक्षणं कृतं तथा न कल्पितमिति पापकृतो यथा लोकास्तथा तव भविष्यन्तीत्याह—**तथैवेति** ॥ ७ ॥ हर्षस्मितं हर्षेण गर्वितम् ॥ ९ ॥ उपसंहारमुखेनाह—**तेनेति**। तेनैव अनाख्यानेनैव ॥ १२ ॥ अशक्येति च्छेदः ॥ १३ ॥

तस्माद्ब्रवीमि पार्थ त्वां स्त्रियो रक्ष्याः सदैव च
उभयं दृश्यते तासु सततं साध्वसाधु च १९
स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः संमता लोकमातरः
धारयन्ति महीं राजन्निमां सवनकाननाम्२०
असाध्व्यश्चापि दुर्वृत्ताः कुलघ्नाः पापनिश्चयाः
विज्ञेया लक्षणैर्दुष्टैः स्वगात्रसहजैर्नृप ॥ २१
एवमेतासु रक्षा वै शक्या कर्तुं महात्मभिः ।
अन्यथा राजशार्दूल न शक्या रक्षितुं स्त्रियः॥
एता हि मनुजव्याघ्र तीक्ष्णास्तीक्ष्णपराक्रमाः
नासामस्ति प्रियो नाम मैथुने सङ्गमेति यः ॥
एताः कृत्याश्च कार्याश्च कृताश्च भरतर्षभ।
न चैकस्मिन् रमन्त्येता पुरुषे पाण्डुनन्दन२४
नासां स्नेहो नरैः कार्यस्तथैवेर्ष्या जनेश्वर।
खेदमास्थाय भुञ्जीत धर्ममास्थाय चैव ह २५
निहन्यादन्यथाकुर्वन्नरः कौरवनन्दन ।
सर्वथा राजशार्दूल मुक्तिः सर्वत्र पूज्यते २६
तेनैकेन तु रक्षा वै विपुलेन कृता स्त्रियाः।
नान्यः शक्तस्त्रिलोकेऽस्मिन् रक्षितुं नृप योषित

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विपुलोपाख्याने
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

युधिष्ठिर उवाच ।
यन्मूलं सर्वधर्माणां स्वजनस्य गृहस्य च ।
पितृदेवातिथीनां च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
अयं हि सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः।
कीदृशाय प्रदेया स्यात्कन्येति वसुधाधिप २
भीष्म उवाच ।
शीलवृत्ते समाज्ञाय विद्यां योनिं च कर्म च।
सद्भिरेवं प्रदातव्या कन्या गुणयुते वरे ॥ ३
ब्राह्मणानां सतामेष ब्राह्मो धर्मो युधिष्ठिर।
आवाह्यमावहेदेवं यो दद्यादनुकूलतः ॥ ४
शिष्टानां क्षत्रियाणां च धर्म एष सनातनः ।
आत्माभिप्रेतमुत्सृज्य कन्याभिप्रेत एव यः ॥
अभिप्रेता च या यस्य तस्मै देया युधिष्ठिर ।
गान्धर्वमिति तं धर्मं प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥ ६
धनेन बहुधा क्रीत्वा संप्रलोभ्य च बान्धवान्
असुराणां नृपैतं वै धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥ ७
हत्वा छित्त्वा च शीर्षाणि रुदतां रुदतीं गृहात्
प्रमह्य हरणं तात राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ८
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथञ्चन ॥ ९

---

सहजैः पाणिपादरेखादिभिः ॥ २१ ॥ यः सङ्गमेति स एव प्रियो नाम नास्तीति योजना ॥ २३ ॥ कृत्याः प्राणग्राहिदेवतारूपाः कार्याः कृताश्च पूर्वमेकेन कृताः स्वीकृता अपि पश्चादन्येनापि कर्तुं योग्याः व्यभिचारिण्यः प्राणग्राहिण्यश्चेत्यर्थः ॥ २४ ॥ खेदमास्थाय अप्रीत्या विष्टिगृहीतवत् भुञ्जीत न तु प्रीत्या धर्मं ऋतुकालानुरोधम् ॥ २५ ॥ निहन्यात् वधं प्राप्नुयात् मुक्तिः अनासक्तिः युक्तिरिति पाठे समाधिः २६ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

**४४**

**यन्मूलमिति** ॥ १ ॥ योनिं मातृतः पितृतश्च शुद्धिम् ॥ ३ ॥ अत्र ब्राह्म इत्यनेनार्षदैवयोरपि ग्रहणं ब्राह्मणयोग्या एते विवाहाः। यदाहाश्वलायनः—'अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यादेष **ब्राह्मो** विवाहः । ऋत्विजे वितते कर्मणि दद्यादलंकृत्य स **दैवः**। गोमिथुनं दत्त्वोपगच्छेत स **आर्षः**' इति। एवं उक्तगुणवन्तं आवाह्यं विवाहयोग्यं आवहेत् आकारयेत । ततश्च अनुकूलतो धनदानादिना अभिमुखीकृताय दद्यात्। अयं चतुर्थः **प्राजापत्यो** ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां च प्रशस्ततरो द्वितीयत्वेनात्र गण्यते ॥४॥ वरवध्वोरन्योन्यप्रीत्या यो विवाहः स **गान्धर्वस्**तृतीयः । आत्मेत्यादि सार्धश्लोकः ॥ ५ ॥ आसुरं चतुर्थमाह-**धनेनेति** ॥७॥ हत्वेति **राक्षसः** पञ्चमः । अत्रैव प्रमत्तानां बन्धूनां कन्याहरणात् **पैशाचो** हरणसामान्यादन्तर्भवति ॥ ८ ॥ त्रयः ब्राह्मक्षात्रगान्धर्वाः। द्वौ आसुरराक्षसौ । तत्रापि आसुरः स्वरूपेण राक्षसान्तर्गतः पैशाचश्चात्यन्तं न कर्तव्यौ। अर्थाद्राक्षसः कर्तव्यः क्षत्रियाणामित्यर्थः ॥९॥

ब्राह्मः क्षात्रोऽथ गान्धर्व एते धर्म्या नरर्षभ ।
पृथग्वा यदि वा मिश्राः कर्तव्या नात्र संशयः
तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु
वैश्यः स्वजात्यां विन्देत तास्वपत्यं सम भवेत्
ब्राह्मणी तु भवेज्ज्येष्ठा क्षत्रिया क्षत्रियस्य तु।
रत्यर्थमपि शूद्रा स्यान्नेत्याहुरपरे जनाः ॥१२
अपत्यजन्म शूद्रायां न प्रशंसन्ति साधवः ।
शूद्रायां जनयन्विप्रः प्रायश्चित्ती विधीयते १३
त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां भार्यां विन्देत नग्निकाम् ।
एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥ १४
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता पिता वा भरतर्षभ ।
नोपयच्छेत तां जातु पुत्रिकाधर्मिणी हि सा
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती ।
चतुर्थे त्वथ संप्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत् ॥ १६
प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ ।
अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः १७
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः
इत्येतामनुगच्छेत तं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥ १८

युधिष्ठिर उवाच ।

शुल्कमन्येन दत्तं स्याद्ददानीत्याह चापरः।
बलादन्यः प्रभाषेत धनमन्यः प्रदर्शयेत् ॥ १९
पाणिग्रहीता चान्यःस्यात्कस्य भार्या पितामह
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान्

भीष्म उवाच ।

यत्किञ्चित्कर्म मानुष्यं संस्थानाय प्रदृश्यते।
मन्त्रवन्मन्त्रितं तस्य मृषावादस्तु पातकः २१
भार्यापत्यर्त्विगाचार्याः शिष्योपाध्याय एव च
मृषोक्ते दण्डमर्हन्ति नेत्याहुरपरे जनाः ॥ २२

---

दमयन्त्यां स्वयंवरे ब्राह्मक्षात्रयोर्मिश्रत्वं, रुक्मिणी-विवाहो राक्षसगान्धर्वमिश्र । सुभद्रायास्तु क्षात्रराक्षसमिश्र इत्यादयूह्यम् ॥ १० ॥ **तिस्र इति** । सर्वेषां शूद्रा वर्ज्या इतरयोरुत्कृष्टवर्णा च वर्ज्येति ज्ञेयम् ॥ ११ ॥ वैश्यस्य त्वेकैव भार्येति सैव ज्येष्ठा उक्ताभ्योऽधिका शूद्रापि चतुर्णामपि स्यात् सा च रत्यर्थमेव नतु धर्मप्रजार्थम् । अपरे याज्ञवल्क्यादयो नेत्याहु । यथा–

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसङ्ग्रह ।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रात्मा जायते स्फुटम् ॥ इति तदुक्तेः.

॥१२॥ स्वमतं तिस्र इत्यत्र सूचितं स्फुटीकरोति— **अपत्येति** ॥१३॥ नग्निका एकवासस अजातस्त्रीव्यञ्जनामिति यावत् । नग्न स्यादेकवासा इति स्मृतिः । यस्या दशानेऽपि वर्षे कुचोद्भेदस्त प्रतिषेधार्थमेतद्विशेषणम् ॥१४॥ पुत्रिकाधर्मिण्यां हि सा इत्यत्र पुत्रिकाधर्मशङ्कयेति मनु पपाठ यस्या पिता इयनेव दुहिता मम पुत्रस्थाने इत्यभिप्रायवाक्-वेति न ज्ञायते तां नोपयच्छेदिति तद्व्याख्यातार ॥ १५ ॥ वाच्या निन्द्या भवेत् ॥ १७ ॥ **असपिण्डेति** । अत्र चकारद्वयादुभयमुभयत्रानुषज्य व्याचक्षते । या मातुरसपिण्डा असगोत्रा चेति केचित् । अन्ये तु

एकत्वं सा गता भर्तु. पिण्डे गोत्रे च सूतके

इति वचनान्मातुर्गोत्रान्तराभावाद्या मातुरसपिंडा इत्येव ग्राह्यं न त्वत्राप्यसगोत्रेति विशेषणं योज्यमिति। अन्ये तु यस्या माता स्वपित्रा पुत्रत्वेन कल्पिता तस्या मातुरसगोत्रत्वविवक्षया एतद्व्याख्यानमिति । तत्र सापिण्ड्यनिवृत्तिसङ्ग्रहश्लोक —

वध्वा वरस्य वा तात कूटस्थाद्यदि सप्तम ।
पंचमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्य निवर्तत इति ।

असगोत्रामित्यत्र असमानार्षगोत्रामिति द्रष्टव्यम् । असमानार्षगोत्रजामिति स्मृते । आर्षविषये प्रतिप्रसवश्च स्मर्यते—

पञ्चाना त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयो ।
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेदिति ।

अनुगच्छेत विवाहमनु मैथुनाय एतामेव गच्छेत् । एतेनास्य श्लोकस्य मनुपठितमुत्तरार्धं—

सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।

इति तद्व्याख्यातम् । अत्र मातृपितृसम्बन्धात्सवर्णैव दारकर्मणि यज्ञादौ मैथुने च प्रशस्ता । एवं सति पुनर्मैथुनग्रहण स्मृत्यन्तरे दृष्टार्थत्वान्मैथुने स्मृतं सर्वासां साधारण्यं निवर्तितुम् । मैथुनेऽपि यज्ञादाविव सवर्णैव मुख्या ननु तस्या इतरसाधारण्यमिति । एतदेवाभिसन्धायात्रोक्तम् **इत्येतामनुगच्छेतेति** । ये तु मैथुनस्य पृथग्ग्रहणाद्दारकर्मपदेन तद्व्यतिरिक्ते यज्ञादावेव सवर्णाया प्राधान्यं मैथुने त्वितरसाधारण्यमिति व्याचक्षते तदनेन विरुध्यते । हीनवर्णाया जातस्यात्मनोऽपि हीनत्वापत्तेश्च । तत्रात्मा जायते स्वयमिति वचनात् ॥ १८ ॥ शुल्कमिति पञ्चानां पक्षाणामुपन्यासः ॥१९॥ तत्र तृतीयचतुर्थौ दातुर्न दोषावहावित्युपेक्ष्य द्वितीये भार्यात्वानुत्पत्तिर्वक्तुर्दोषमात्रं चाह–**यत्किञ्चिदिति** मानुष्यं मानुषाणां हितं साबन्धिकं संस्थानाय इयमस्य भार्येत्यादि व्यवस्थार्थम् । मन्त्रवन्मन्त्रितं वाग्वाद्भिः सर्वैरेकीभूय मन्त्रितं इयमस्मै देयेति विचारितं तस्य मृषाकरणं पातकपातयितृ भवतीत्यर्थ. ॥२१॥ मृषोक्ते तवाहं भार्येत्याद्युक्त्वा परावृत्तौ दण्डं प्रायश्चित्तम् ॥ २२ ॥

न ह्यकामेन सवासं मनुरेवं प्रशंसति ।
अयशस्यमधर्म्यं च यन्मृषा धर्मकोपनम् ॥२३
नैकान्तो दोष एकस्मिंस्तदा केनोपपद्यते ।
धर्मतो यां प्रयच्छन्ति यां च क्रीणन्ति भारत
बन्धुभिः समनुज्ञाते मन्त्रहोमौ प्रयोजयेत् ।
तथा सिद्ध्यन्ति ते मन्त्रा नादत्तायाः कथञ्चन
यस्त्वत्र मन्त्रसमयो भार्यापत्योर्मिथः कृतः ।
तमेवाहुर्गरीयांसं यश्चासौ ज्ञातिभिः कृतः २६
देवदत्तां पतिर्भार्यां वेत्ति धर्मस्य शासनात् ।
स दैवीं मानुषीं वाचमनृतां पर्युदस्यति ॥ २७

युधिष्ठिर उवाच ।

कन्यायां प्राप्तशुल्कायां ज्यायांश्चेदावजेद्वरः
धर्मकामार्थसंपन्नो वाच्यमत्रानृतं न वा ॥ २८
तस्मिन्नुभयतोदोषे कुर्वञ्छ्रेयः समाचरेत् ।
अथ नः सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः २९
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ।
तदेतत्सर्वमाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥

भीष्म उवाच ।

नैव निष्ठाकरं शुल्कं ज्ञात्वाऽऽसीत्तेन नाहृतम्
न हि शुल्कपराः सन्तः कन्यां ददति कर्हिचित्
अन्यैर्गुणैरुपेतं तु शुल्कं याचन्ति बान्धवाः ।
अलंकृत्वा वहस्वेति यो दद्यादनुकूलतः ॥ ३२
यच्च तां च ददत्येवं न शुल्कं विक्रयो न सः
प्रतिगृह्य भवेद्देयमेष धर्मः सनातनः ॥ ३३
दास्यामि भवते कन्यामिति पूर्वं न भाषितम्
ये चाहुर्ये च नाहुर्ये ये चावश्यं वदन्त्युत ३४
तस्मादा ग्रहणात्पाणेर्याचयन्ति परस्परम् ।
कन्यावरः पुरा दत्तो मरुद्भिरिति नः श्रुतम् ३५
नानिष्टाय प्रदातव्या कन्या इत्यृषिचोदितम्
तन्मूलं काममूलस्य प्रजनस्येति मे मतिः ३६
समीक्ष्य च बहून्दोषान्संवासाद्विद्धि पाणयोः
यथा निष्ठाकरं शुल्कं न जात्वासीत्तथा शृणु
अहं विचित्रवीर्यस्य
द्वे कन्ये समुदावहम् ।
जित्वा च मागधान्सर्वान्
काशीनथ च कोसलान ॥ ३८
गृहीतपाणिरेकाऽऽसीत्प्राप्तशुल्का पराऽभवत्
कन्या गृहीता तत्रैव विसर्ज्या इति मे पिता
अब्रवीदितरां कन्यामावहेति स कौरवः ।
अप्यन्याननुपप्रच्छ शंकमानः पितुर्वचः ॥ ४०

---

तत्र नेति पक्षं निन्दंस्त्यागमङ्गीकरोति-**न हीति** २३ **नेति** । प्रथमचरमपक्षयोर्यथेष्टं एकेनेतरबाधेऽपि न दोषोस्तीत्यर्थ । धर्मतः पाणिग्रहणविधित. प्रयच्छन्ति बान्धवा इति शेष । तस्या हरणे नात्यन्तं दोष । नापि गृहीतशुल्काया इत्यर्थ. ॥२४॥तत्राद्यमुपपादयति—**बन्धुभिरिति** । क्रीतायास्तु हरणे दोषाभावमग्रे वक्ष्यति ॥२५॥ उभयसन्निपाते सिद्धान्तमाह—**यस्त्वति** । यद्यपि ज्ञातिभि कृत समयो गुरुस्तथापि मन्त्रपूर्वकः समयो गुरुतर इत्यर्थ· ॥ २६ ॥ अत्रागम मानमाह—**देवेति** । देव प्राक्कर्म ईश्वरो वा वेत्ति लभते ॥ २७ ॥ उभयतोदोषे शिष्टातिक्रमात् बन्धुसम्मतिपूर्वकविक्रयातिक्रमाच्च दोषे सति कुर्वन् कर्ता श्रेय प्रशस्ततरं किं समाचरेदित्यध्याहृत्य योज्यम् । चिन्त्यतमः सान्दिग्धत्वेन विचार्यतम ॥२९॥आचक्ष्व यतो नहि तृप्यामि तस्मात्कथ्यतामित्यादरसूचनार्था पुनरुक्ति· ॥३०॥ **नैवेति** । तेन क्रेत्रा शुल्कं मौल्यं निष्ठाकरं क्रीतत्वनिश्चयकरमिति ज्ञात्वा नाहृतं किन्तु क्रयार्थं न क्रयमात्रेण भार्यात्वं सिध्यतीत्यर्थ । नापि शुल्कपराः ददति दानं कुर्वन्ति अपि तु विक्रीणन्ति तस्माद्यादृच्छिकेऽस्मिन क्रयविक्रयव्यवहारे कन्यापहारजो दोषो नास्तीत्यर्थ ॥ ३१ ॥ गुणैर्वयोधिकत्वादिभि कन्यार्थालङ्कारग्रहणे न दोषोऽस्तीत्याह सार्धेन **अलंकृत्वेति** ॥३२॥ नभाषितमित्येकं पदम् । ये पूर्वं दास्यामीत्याहुर्ये च न दास्यामीत्याहुर्ये च अवश्यं दास्यामीति वदन्ति तत्सर्वं नभाषितं अनुक्तवदेवेत्यर्थ ॥ ३४ ॥ यस्मादेवं तस्मात् आ पाणिग्रहणात्कन्या याचेनेति मरुता वरस्तेन तत· पूर्वं विशिष्टवरार्थमपहारेऽपि न दोष इति भाव । यथोक्तं—

दत्तामपि हरेत्कन्या श्रेयाश्चेद्वर आव्रजेदिति ॥ ३५ ॥

तत्कन्या कामो मूलं यस्य तस्मादुत्तमदौहित्रार्थिना श्रेयसे एव कन्या प्रदेयेति भाव ॥ ३६ ॥ संवासात् चिरपरिचयात् पाणयोः क्रयविक्रययोः ॥ ३७ ॥ वीर्यमपि शुल्कं भवतीत्यभिप्रायेणाह-**अहमिति** । अम्बिकाम्बालिकयोरेकत्वविवक्षया द्वे इत्युक्तम् ॥ ३८ ॥ प्राप्तशुल्का वीर्येण निर्जिताऽपि कन्या अगृहीता अप्राप्तपाणिग्रहा इयं अंबा विसर्ज्या उत्स्रष्टुं योग्या इति पिता पितृव्यो बाल्हीकोऽब्रवीदित्युत्तरेणान्वय ॥ ३९ ॥ अनुपप्रच्छ अनुपृष्टवानहं शङ्कमान इति वै चित्र्यात्सारोक्ष्यमाभिसधायोत्तमपुरुषप्रयोगः । बहु जगद किलाहं तस्य मता पुरस्तादितिवत् ४०

अतीव ह्यस्य धर्मेच्छा पितुर्मेऽभ्यधिकाभवत्
ततोऽहमब्रुवं राजन्नाचारेप्सुरिदं वचः।
आचारं तत्त्वतो वेत्तुमिच्छामि च पुनः पुनः
ततो मयैवमुक्ते तु वाक्ये धर्मभृतां वरः।
पिता मम महाराज बाह्लीको वाक्यमब्रवीत्
यदि वः शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा
लाजान्तरमुपासीत प्राप्तशुल्क इति स्मृतिः॥
न हि धर्मविदः प्राहुः प्रमाणं वाक्यतः स्मृतम्
येषां वै शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा
प्रसिद्धं भाषितं दाने नैषां प्रत्यायकं पुनः।
ये मन्यन्ते क्रयं शुल्कं न ते धर्मविदो नराः ४५
न चैतेभ्यः प्रदातव्या न वोढव्या तथाविधा
न ह्येव भार्या क्रेतव्या न विक्रय्या कथञ्चन
ये च क्रीणन्ति दासीं च विक्रीणन्ति तथैव च
भवेत्तेषा तथा निष्ठा लुब्धानां पापचेतसाम्
अस्मिन्नर्थे सत्यवन्त पर्यपृच्छन्त वै जनाः।
कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः शुल्कदः प्रशमं गतः
पाणिग्रहीता वाऽन्यः स्यादत्र नो धर्मसंशयः।
तन्नश्छिन्धि महाप्राज्ञ त्व हि वै प्राज्ञसंमतः
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान्।
तानेवं ब्रुवतः सर्वान्सत्यवान्वाक्यमब्रवीत् ५०
यत्रेष्टं तत्र देया स्यान्नात्र कार्या विचारणा।
कुर्वते जीवतोऽप्येव मृते नैवास्ति संशयः ५१
देवरं प्रविशेत्कन्या तप्येद्वाऽपि तपः पुनः।
तमेवानुगता भूत्वा पाणिग्राहस्य काम्यया॥
लिखन्त्येव तु केषांचिदपरेषां शनैरपि।
इति ये संवदन्त्यत्र त एतं निश्चयं विदुः ५३
तत्पाणिग्रहणात्पूर्वमन्तरं यत्र वर्तते।
सर्वमङ्गलमन्त्रं वै मृषा वादस्तु पातकः॥ ५४
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे।
पाणिग्रहस्य भार्या स्याद्यस्य चाद्भिः प्रदीयते
इति देयं वदन्त्यत्र त एनं निश्चयं विदुः।
अनुकूलामनुवंशां भ्रात्रा दत्तामुपाग्निकाम्।
परिक्रम्य यथान्यायं भार्यां विन्देद्द्विजोत्तमः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विवाहधर्मकथने
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

**यदीति**। प्राप्त शुल्कं येन। पाठान्तरे यस्या सा कन्यापिता कन्या वा लाजान्तर वरान्तरमुपासीत इति या स्मृतिस्तर्हि बाध्येतेत्यध्याहृत्य योजना लाजा विद्यन्ते हौम्यद्रव्यमस्य स इति लाजशब्दोऽर्श आद्यच्प्रत्ययान्त ॥४३॥ येषा शुल्कतो निष्ठा तेषा वाक्यत· वाक्यं प्रमाणं स्मृतमिति धर्मविदो न हि आहुरित्यन्वय ॥ ४४ ॥ एवं बाधकसद्भावं साधकाभावं चोक्त्वा लोके विरोधमप्याहार्वेन-**प्रसिद्धमिति**। कन्याया दानं इत्येवोच्यते न तु क्रयो जयो वेति। एषा शुल्कवादिना प्रत्यायकं भार्यात्वज्ञापकं किमपि नास्ति। परिणयनादेव भार्या भवति न शुल्कमात्रादिति लोकव्यवहारस्य स्पष्टत्वादित्यर्थ.। एतदेवोपपादयति—**य इति**। क्रयमिति जयस्याप्युपलक्षणम् ॥ ४५ ॥ जीवत इत्यनादरे षष्ठी। जीवन्तमपि शुल्कदं अनादृत्य शिष्टा एवं यथेष्टदानं कुर्वत इत्यर्थ· ॥ ५१ ॥ देवरमिति युगान्तरधर्म। कलौ देवरात्सुतोत्पत्तेर्निषेधात् ॥ ५२ ॥ **लिखन्तीति**। केषाचिन्मते देवरादयः अलिखिता भ्रातृभार्या लिखन्त्येव सुरतेन योजयन्त्येव। अपरेषा मते शनैर्मन्थरा इयं प्रवृत्ति ऐच्छिकी ननु वैधीत्यर्थ ॥ ५३ ॥ अस्मिन्पक्षद्वये नियममाह—**तदिति**। सर्वाणि मङ्गलानि हरिद्रास्नानादीनि मंत्राश्च प्राक् पाणिग्रहणीया यत्र निष्पन्नात्तादृशमप्यन्तरं कालव्यवधान यत्र वर्तते तत्रैव पूर्वोक्तौ नियमविकल्पौ प्रवर्तेते न तु पाणिग्रहणादूर्ध्वम्। तत्र सङ्कल्पपूर्वकं दत्ताया अपि कन्याया योऽपहारस्तज्जन्यो मृषावाद पातको भवति दातुर्न तु तावन्मात्रेण तस्या भार्यात्वमुत्पन्नमित्यर्थ ॥५४॥ कदा तर्हि तदुत्पद्यतेऽत आह—**पाणीति**। यत्र तु दानादूर्ध्वं सप्तमपदात्प्राक् भर्तुर्मरणं सगोत्रत्वादिज्ञानं वा जातं तत्रान्यस्मै दाने मृषावाददोषोऽपि नास्तीत्यर्थ ॥५५॥ देयं दान एनं वक्ष्यमाणं तमेवाह-**अनुकूलामिति**। अनुवंशा स्ववंशानुरूपाम्। अयं भाव·—यथाऽधानपावमानेष्टिभ्या समुच्चिताभ्यामग्नय उत्पद्यन्ते न त्वेकैकेन। एवं दानपाणिग्रहाभ्या भार्यात्वमुत्पद्यते तत्राद्याभावे चौर्येणाहृताया न धर्मपत्नीत्वम्। परस्याभावे तु तस्या दासीत्वान्न कर्मसम्बन्ध इति॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४४।

## ४५

युधिष्ठिर उवाच ।
कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः पतिश्चेन्नास्ति कश्चन
तत्र का प्रतिपत्तिः स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह १
भीष्म उवाच ।
याऽपुत्रकस्य ऋद्धस्य प्रतिपाल्या तदा भवेत्
अथ चेन्नाहरेच्छुल्कं क्रीता शुल्कप्रदस्य सा२
तस्यार्थेऽपत्यमीहेत येन न्यायेन शक्नुयात् ।
न तस्मान्मन्त्रवत्कार्यं कश्चित्कुर्वीत किञ्चन ३
स्वयंवृतेन साऽऽज्ञप्ता पित्रा वै प्रत्यपद्यत ।
तत्तस्यान्ये प्रशंसन्ति धर्मज्ञा नेतरे जनाः ॥ ४
एतत्तु नापरे चक्रुरपरे जातु साधवः ।
साधूनां पुनराचारो गरीयान्धर्मलक्षण. ॥ ५
अस्मिन्नेव प्रकरणे सुक्रतुर्वाक्यमब्रवीत् ।
नप्ता विदेहराजस्य जनकस्य महात्मनः ॥ ६
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्तनम् ।
अत्र प्रश्नः संशयो वा सतामेवमुपालभेत् ॥७
असदेव हि धर्मस्य प्रदानं धर्म आसुरः ।
नानुशुश्रुम जात्वेतामिमां पूर्वेषु कर्मसु ॥ ८
भार्यापत्योर्हि सम्बन्धः स्त्रीपुंसोः स्वल्प एव तु
रतिः साधारणो धर्म इति चाह स पार्थिवः
युधिष्ठिर उवाच ।
अथ केन प्रमाणेन पुंसामादीयते धनम् ।
पुत्रवद्धि पितुस्तस्य कन्या भवितुमर्हति ॥ १०
भीष्म उवाच ।
यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्
मातुश्च यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः
दौहित्र एव तद्रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ॥ १२
ददाति हि सपिण्डान्वै पितुर्मातामहस्य च
पुत्रदौहित्रयोरेव विशेषो नास्ति धर्मतः ॥ १३
अन्यत्र जामया सार्धं प्रजानां पुत्र ईहते ।
दुहिताऽन्यत्र जातेन पुत्रेणापि विशिष्यते १४
दौहित्रकेण धर्मेण नात्र पश्यामि कारणम् ।
विक्रीतासु हि ये पुत्रा भवन्ति पितुरेव ते १५

---

४५

**कन्याया इति** । शुल्कदश्चेत्प्रोषितर्मृतस्त्यजेद्वा दन्यश्च न वृणुते तदा तत्पित्रा किं कर्तव्यमिति प्रश्नार्थ ॥ १ ॥ या कन्या पितु प्रतिपाल्यो पिता च यदि तत् शुल्कं परपक्षीयेभ्य परावृत्य न दद्यात्तर्हि सा कन्या शुल्कप्रदस्यैव ज्ञेया । न तु पितुस्तस्या अन्यस्मै दातुमधिकारोऽस्तीत्यर्थ ॥ २ ॥ तस्य शुल्कदस्यार्थे न्यायेन उत्तमात् रेतस क्रमेण पुत्रं ईहेत, स चास्य पुत्रस्य शुल्कदस्य चोपकाराय भवति । न तु तस्मात् शुल्कदादन्य कश्चिन्मन्त्रवत्कार्यं विधिवत्तस्या पाणिग्रहणं कुर्वीत ॥३॥ एवं प्राप्तशुल्कायाः कर्तव्यमुक्त्वा अप्राप्तशुल्कायास्तादृश्या का गतिरित्यत आह—**स्वयमिति** । पित्रा आज्ञप्ता सती स्वयं वृतेनैव भर्त्रा योगं प्रत्यपद्यत तच्च इतरे धर्मज्ञा न प्रशंसन्ति ॥ ४ ॥ तत्र हेतु — **एतत्तु नापरे जातु चक्रुरिति** । अपरे पुन· शिष्टाचारत्वादिदमपि गरीय इत्याहु· ॥ ५ ॥ नेतर इत्यस्मिन्पक्षे शिष्टाचारं प्रमाणयति—**अस्मिन्निति** ॥ ६ ॥ न सद्भिराचरिते मार्गे सति पितरि यत्कन्या वरमन्वेषयति इदं वचनं न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीति शास्त्रविरुद्धम् । कथमत्र शास्त्रार्थो वक्तव्य प्रश्नः संशयो वा असन्दिग्धत्वादस्यार्थस्य नायं संशय उत्तिष्ठतीत्यर्थ. । उपालभेत् उपालम्भ कथं कुर्यादित्यर्थ. ॥ ७ ॥ धर्मस्य स्त्रीणामस्वातन्त्र्यलक्षणस्य धर्मस्य प्रदानं खण्डनं यत् स आसुरो धर्मः । एता·पद्धतिं पूर्वेषु वृद्धेषु कर्मसु विवाहेषु ॥८॥ स्वल्पोऽदृष्टमन्वानस्य सूक्ष्म शास्त्रैकगम्य स च सर्वांशोपसंहारमन्तरेण न सिध्यति । अतस्त विना केवलरत्यर्थं यथा कथंचिद्दारान्नोद्वहेदित्यर्थ ॥ ९ ॥ पुंसा पुरुषै तस्य अपुत्रस्य ॥ १० ॥ अन्यो भ्रात्रादि एतच्चासत्या मातरि ज्ञेयम् ॥ ११ ॥ **मातुरिति** । सति असति वा पुत्रे मातुर्यौतकं पृथक्कृतं धन तत्पित्रादिभिर्दत्त विवाहकाले वा तस्यै यच्छ्वशुरादिभिर्दत्तं भर्त्रा वा तद्वेदमिति पृथग्दत्तं कर्तनाद्यर्जित वा तत्सर्वं कुमारीभाग एव न पुत्राणामित्यर्थ । तद्रिक्थं धनं मातु पितु मातामहस्य ॥ १२ ॥ अत्र हेतुमाह—**ददातीति** । य पिंडद स रिक्थहारीत्यर्थ· । पिंडार्थे इति पाठे पिंड अर्थ्यतेऽस्मिंस्तत्र श्राद्धे ॥ १३ ॥ **अन्यत्रेति** । पुत्रवतो धने विभजनीये जामया कन्ययाऽपि तामपेक्ष्येत्यर्थ । तत्र कन्या पूर्वं पुत्रीकृता तत पुत्रोऽपि जातस्तत्र पञ्चधा विभक्तस्य धनस्य द्वौ कन्याऽर्हति त्रीन्पुत्रस्ततश्च कन्यामपेक्ष्य पुत्र· सार्धं अंश ईहते । अन्यत्र जातेन औरसादन्येन दत्तक्रीतादिना स्वय संस्कृतेन पुत्रेण तमपेक्ष्य औरसी कन्या विशिष्यते अत्रापि पञ्चानामंशाना त्रीन् कन्या हरेत् द्वौ पुत्र इत्यर्थ· ॥ १४ ॥ अत्र वक्ष्यमाणस्थले कारणं निमित्तं तदेव स्थलमाह—**विक्रीतास्विति** । अयमर्थ —विक्रीताया· कन्याया· पुत्रोऽनौरसेऽपि पुत्रे सति न दायभाग्भवतीति ॥१५॥

अत्युवस्त्वधर्मिष्ठाः परस्वादायिनः शठाः ।
आसुरादधिसम्भूता धर्माद्विषमवृत्तयः ॥ १६
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
धर्मज्ञा धर्मशास्त्रेषु निबद्धा धर्मसेतुषु ॥ १७
यो मनुष्यः स्वकं पुत्रं विक्रीय धनमिच्छति ।
कन्यां वा जीवितार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति
सप्तावरे महाघोरे निरये कालसाह्वये ।
स्वेदं मूत्रं पुरीषं च तस्मिन्मूढः समश्नुते ॥ १९
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ।
अल्पो वा बहु वा राजन् विक्रयस्तावदेव सः
यद्यप्याचरितः कैश्चिन्नैष धर्मः सनातनः ।
अन्येषामपि दृश्यन्ते लोकतः संप्रवृत्तयः ॥२१
वश्यां कुमारीं बलतो ये तां समुपभुञ्जते ।
एते पापस्य कर्तारस्तमस्यन्धे च शेरते ॥२२
अन्योऽप्यथ न विक्रेयो मनुष्यः किं पुनः प्रजाः
अधर्ममूलैर्हि धनैस्तैर्न धर्मोऽथ कश्चन ॥ २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विवाहधर्मे यमगाथा नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

भीष्म उवाच ।
प्राचेतसस्य वचनं कीर्तयन्ति पुराविदः ।
यस्याः किञ्चिन्नाददते ज्ञातयो न स विक्रयः
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यतमं च तत् ।
सर्वं च प्रतिदेयं स्यात्कन्यायै तदशेषतः ॥२
पितृभिर्भ्रातृभिश्चापि श्वशुरैरथ देवरैः ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ३
यदि वै स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनो न प्रवर्धते ॥ ४
पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप
स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥५
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।
तदा चैतत्कुलं नास्ति यदा शोचन्ति जामयः
जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया ।
नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिव
स्त्रियः पुंसां परिददे मनुर्जिगमिषुर्दिवम् ।
अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृदः सत्यजिष्णवः
ईर्षवो मानकामाश्च चण्डाश्च सुहृदोऽबुधाः ।
स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयत मानवाः॥ ९
स्त्रीप्रत्ययो हि वै धर्मो रतिभोगाश्च केवलाः
परिचर्या नमस्कारास्तदायत्ता भवन्तु वः १०
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः पश्यत स्त्रीनिबन्धनम्
संमान्यमानाश्चैता हि सर्वकार्याण्यवाप्स्यथ ।
विदेहराजदुहिता चात्र श्लोकमगायत ॥ १२
नास्ति यज्ञक्रिया काचिन्न श्राद्धं नोपवासकम्
धर्मः स्वभर्तृशुश्रूषा तया स्वर्गं जयन्त्युत ॥ १३
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति
श्रिय एताः स्त्रियो नाम
सत्कार्या भूतिमिच्छता ।
पालिता निगृहीता च
श्रीः स्त्री भवति भारत ॥ १५

आसुराद्विवाहात्कन्याक्रयपूर्वात् ॥ १६ ॥ अत्र आसुरविवाहनिन्दायाम् ॥१७॥ कालसाह्वये कालसूत्राख्ये ॥१९॥ अन्येषां बलात्कन्याहरणशीलानां राक्षसानाम् ॥ २१ ॥ एतानपि निन्दति—**वश्यामिति**। बलतो वश्या न तु स्वच्छन्दत इत्यर्थः ॥ २२ ॥ अन्योऽपि पशुरपि ॥ २३ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

**प्राचेतसस्य** दक्षस्य। ज्ञातयः कन्यापक्षीयाः स्वयं नाददतेऽथ च कन्यालङ्कारार्थमिच्छन्ति स विक्रयो न भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥ न रोचेत न कामयेत न प्रमोदयेत्कामुकं न कुर्यात् प्रजनः संततिः ॥ ४ ॥ स्वल्पः ईषदायासेन अपनेयः कौपीनो गुह्याच्छादनपटो यासां सद्योहार्या इत्यर्थः । सुहृदः सौहार्दयुक्ता न बुध्यन्त इत्यबुधाः ॥८॥ स्त्रीप्रत्ययः स्त्रीहेतुकः ॥ १० ॥ अत्र स्त्रीधर्मविषये ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विवाहधर्मे स्त्रीप्रशंसा नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## ४७

युधिष्ठिर उवाच ।
सर्वशास्त्रविधानज्ञ राजधर्मविदुत्तम ।
अतीव संशयच्छेत्ता भवान्वै प्रथितः क्षितौ १
कश्चित्तु संशयो मेऽस्ति तन्मे ब्रूहि पितामह ।
जातेऽस्मिन्संशये राजन्नान्यं पृच्छेम कञ्चन २
यथा नरेण कर्तव्यं धर्ममार्गानुवर्तिना ।
एतत्सर्वं महाबाहो भवान्व्याख्यातुमर्हति ॥ ३
चतस्रो विहिता भार्या ब्राह्मणस्य पितामह ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च रतिमिच्छतः
तत्र जातेषु पुत्रेषु सर्वासां कुरुसत्तम ।
आनुपूर्व्येण कस्तेषां पित्र्यं दायादमर्हति ॥५
केन वा किं ततो हार्यं पितृवित्तात्पितामह ।
एतदिच्छामि कथितं विभागस्तेषु यः स्मृतः
भीष्म उवाच ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः
एतेषु विहितो धर्मो ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ७
वैषम्यादथवा लोभात्कामाद्वापि परंतप ।
ब्राह्मणस्य भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता ८
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
प्रायश्चित्तीयते चापि विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९
तत्र जातेष्वपत्येषु द्विगुणं स्याद्युधिष्ठिर ।
आपद्यमानमृक्थं तु संप्रवक्ष्यामि भारत ॥ १०
लक्षण्यं गोवृषो यानं यत्प्रधानतमं भवेत् ।
ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्पुत्र एकांशं वै पितुर्धनात् ११
शेषं तु दशधा कार्यं ब्राह्मणस्वं युधिष्ठिर ।
तत्र तेनैव हर्तव्याश्चत्वारोऽशाः पितुर्धनात्१२
क्षत्रियायास्तु यः पुत्रो ब्राह्मणः सोऽप्यसंशयः
स तु मातुर्विशेषेण त्रींनंशान्हर्तुमर्हति ॥ १३
वर्णे तृतीये जातस्तु वैश्यायां ब्राह्मणादपि ।
द्विरंशस्तेन हर्तव्यो ब्राह्मणस्वाद्युधिष्ठिर १४
शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो नित्यादेयधनः स्मृतः
अल्पं चापि प्रदातव्यं शूद्रापुत्राय भारत १५
दशधा प्रविभक्तस्य धनस्यैष भवेत्क्रमः ।
सवर्णासु तु जातानां समान् भागान्प्रकल्पयेत्
अब्राह्मणं तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात् ।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद्ब्राह्मणो भवेत् ॥
स्मृताश्च वर्णाश्चत्वारः पञ्चमो नाधिगम्यते ।
हरेच्च दशमं भागं शूद्रापुत्रः पितुर्धनात् ॥ १८
तत्तु दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ।
अवश्यं हि धनं देयं शूद्रापुत्राय भारत ॥ १९
आनृशंस्यं परो धर्म इति तस्मै प्रदीयते ।
यत्र तत्र समुत्पन्नं गुणायैवोपपद्यते ॥ २०
यद्यप्येष सपुत्रः स्यादपुत्रो यदि वा भवेत् ।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय भारत ॥ २१

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

**४७**

**सर्वेति** ॥ १ ॥ एवमृत्विगात्मस्त्रीशुद्धिमुक्त्वा धनशुद्ध्यर्थं दायविभागं प्रस्तौति ॥ ३ ॥ रतिमिच्छत एव विहिता न तु धर्मम्। शूद्रा शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिं। अपत्यं जनयित्वाऽस्या ब्राह्मण्यादेव हीयत इति निन्दास्मरणात् ॥ ४ ॥ किं कियत्प्रमाणम् ॥ ७ ॥ दृष्टान्त शास्त्रतः ॥ ८ ॥ आवेदितमप्यनिषिद्धं चेत्तत्राह—**शूद्रामिति** । कूष्माण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनौ रेतः सिञ्चतीति क्षत्रियायां वैश्याया चोत्पन्नस्य साक्षाद्वा कतिपयपुरुषव्यवधानाद्वा ब्राह्मण्यलाभो दृश्यते इति तयोरस्ति योनित्वं शूद्रायास्तथात्वादयोनित्वं ततस्तस्या रेत सेके प्रायश्चित्ती भवत्येव कूष्माण्डै यद्देवा देवहेडनमिति यजुर्वेदप्रसिद्धैर्मन्त्रविशेषैः । अनेनैव विधिना वेदेन दृष्टेन कर्मणा प्रायश्चित्तमात्मन इच्छति प्रायश्चित्तीयते अन्यथाऽधोगतिं यातीत्यर्थ ॥ ९ ॥ द्विगुणं प्रायश्चित्तम् ॥ १० ॥ एकांशं मुख्यांशम् ॥ ११ ॥ तेनैव ब्राह्मणीपुत्रेणैव ॥ १२ ॥ नित्यं सर्वथा अदेयं धनमस्य स नित्यादेयधन । अथापि अल्पं एकोऽशः ॥ १५ ॥ अब्राह्मणं त्विति दीर्घतमसः पुत्रेषु शूद्राया जातेषु काक्षीवदादिषु ब्राह्मण्यादर्शनादिति भाव । एवं च तस्य अमन्त्रका संस्कारा अपि भवन्ति त्रिषु क्षत्रियादिषु एतच्च दायार्थं अवध्यत्वार्थं चोक्तम् । विप्रात् वैश्यायां शूद्राया च जातस्य मातृजातीयत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥ १७ ॥ समुत्पन्नं आनृशंस्यम् ॥ २० ॥ **यद्यपीति** । एतेन बन्धुषु अपुत्रात्सपुत्रोऽधिकं भागमर्हतीति ज्ञायते ॥ २१ ॥

त्रैवार्षिकाद्यदा भक्तादधिकं स्याद्द्विजस्य तु ।
यजेत तेन द्रव्येण न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २२
त्रिसहस्रपरो दायः स्त्रियै देयो धनस्य वै ।
भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति ॥ २३
स्त्रीणां तु पतिदायाद्यमुपभोगफलं स्मृतम् ।
नापहारं स्त्रियः कुर्युः पतिवित्तात्कथञ्चन २४
स्त्रियास्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं युधिष्ठिर ।
ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्कन्या यथा पुत्रस्तथा हि सा
सा हि पुत्रसमा राजन्विहिता कुरुनन्दन ।
एवमेव समुद्दिष्टो धर्मो वै भरतर्षभ ।
एवं धर्ममनुस्मृत्य न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २६

युधिष्ठिर उवाच ।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो यद्यदेयधनः स्मृतः
केन प्रतिविशेषेण दशमोऽप्यस्य दीयते ॥ २७
ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः
क्षत्रियायां तथैव स्याद्वैश्यायामपि चैव हि ॥
कस्मात्तु विषमं भागं भजेरन्नृपसत्तम ।
यदा सर्वे त्रयो वर्णास्त्वयोक्ता ब्राह्मणा इति॥

भीष्म उवाच ।

दारा इत्युच्यते लोके नाम्नैकेन परन्तप ।
प्रोक्तेन चैव नाम्नाऽयं विशेषः सुमहान्भवेत
तिस्रः कृत्वा पुरो भार्याः
पश्चाद्विन्देत ब्राह्मणीम् ।
सा ज्येष्ठा सा च पूज्या स्या-
त्सा च भार्या गरीयसी ॥ ३१
स्नानं प्रसाधनं भर्तुर्दन्तधावनमञ्जनम् ।
हव्यं कव्यं च यच्चान्यद्धर्मयुक्तं गृहे भवेत् ३२
न तस्यां जातु तिष्ठन्त्यामन्या तत्कर्तुमर्हति ।
ब्राह्मणी त्वेव कुर्याद्वा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर३३
अन्नं पानं च माल्यं च वासांस्याभरणानि च
ब्राह्मण्यैतानि देयानि भर्तुः सा हि गरीयसी३४
मनुनाभिहितं शास्त्रं यच्चापि कुरुनन्दन ।
तत्राप्येष महाराज दृष्टो धर्मः सनतनः ॥ ३५
अथ चेदन्यथा कुर्याद्यदि कामाद्युधिष्ठिर ।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥३६
ब्राह्मण्याः सदृशः पुत्रः क्षत्रियायाश्च यो भवेत्
राजन्विशेषो यस्त्वत्र वर्णयोरुभयोरपि ॥३७
न तु जात्या समा लोके ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत्
ब्राह्मण्याः प्रथमः पुत्रो भूयान्स्याद्राजसत्तम
भूयो भूयोपि संहार्यः पितृवित्ताद्युधिष्ठिर ।
यथा न सदृशी जातु ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत्
क्षत्रियायास्तथा वैश्या न जातु सदृशी भवेत्
श्रीश्च राज्यं च कोशश्च क्षत्रियाणां युधिष्ठिर
विहितं दृश्यते राजन्सागरान्तां च मेदिनीम् ।
क्षत्रियो हि स्वधर्मेण श्रियं प्राप्नोति भूयसीम्
राजा दण्डधरो राजन् रक्षा नान्यत्र क्षत्रियात्
ब्राह्मणा हि महाभागा देवानामपि देवताः ।
तेषु राजन्प्रवर्तेत पूजया विधिपूर्वकम् ॥ ४२
प्रणीतमृषिभिर्ज्ञात्वा धर्मं शाश्वतमव्ययम् ।
लुप्यमानं स्वधर्मेण क्षत्रियो ह्येष रक्षति ॥४३
दस्युभिर्ह्रियमाणं च धनं दारांश्च सर्वशः ।
सर्वेषामेव वर्णानां त्राता भवति पार्थिवः ४४
भूयान्स्यात्क्षत्रियापुत्रो वैश्यापुत्रान्न संशयः ।
भूयस्तेनापि हर्तव्यं पितृवित्ताद्युधिष्ठिर ॥ ४५

---

वृथा यज्ञादिप्रयोजनं विना न साधयेत् प्रतिग्रहादिना वाऽऽदाय हरणेन वा न लिप्सेत् ॥ २२ ॥ **त्रीति** । सहस्रत्रयाद्बहुवित्तवताऽपि स्त्रियोऽधिको दायो न देय इत्यर्थः। तदपि तथा दत्तं चेत् भर्त्रा भोक्तुं शक्नोति न त्वदत्तम् ॥२३॥ कुर्युः पुत्रा इति शेषः। पतिवित्तात्पत्या दत्ताद्वित्तात् ॥२४॥ धर्मो विभागप्रकारः वृथा अन्यायेन साधितैर्द्रव्यैः कृतमपि यागादि निष्फलं भवतीति भावः ॥ २६ ॥ **शूद्रायामिति** । तस्य प्रागुक्तनित्यादेयधनत्वं तच्चानन्तरोक्तदशमांशदानविधिना विरुद्धमित्यर्थः ॥ २७ ॥ यदा तिसृणामपि पुत्रा ब्राह्मणा एव तदा किमर्थमेषां भागवैषम्यमिति द्वितीय आक्षेपः ॥ २८ ॥ आद्रियन्ते त्रिवर्गार्थिभिरिति दारपदप्रवृत्तिनिमित्तं आदरः स च भोगार्थायां शूद्रायामप्यस्ति अतस्तत्पुत्रोऽपि दायमर्हति । यतश्च भर्तुरादरस्ताभिर्वर्णक्रमेण यथायोग्यं तारतम्यक्रमेण क्रियत इति तत्पुत्राणां भागवैषम्यं चास्तीत्यभिप्रायवानाह—**प्रोक्तेन चैवेति** । नामनिर्वचनमपेक्ष्यैवायं विशेषोऽस्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥ विशेषमेवाह—**तिस्र इति** । पश्चात्परिणीतापि वयसा कनिष्ठाऽपि पितृगौरवाद्ब्राह्मणीमेव सर्वेषु लौकिकवैदिकेषु कार्येष्वाद्रियेतेत्यर्थः ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणचाण्डालः ब्राह्मणक्षेत्रे शूद्राज्जातः पूर्वोक्तो मातङ्गस्तद्वत्स तेन कर्मणा ज्ञेय इत्यर्थः ।

**कर्मणा ज्ञायते जातिर्भोगेन ज्ञायते कृतम्**

इति न्यायात् ॥ ३६ ॥ भूयो भूयोपि अधिकमधिकं संहार्यः संविभजनीयः ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच।
उक्त ते विधिवद्राजन्ब्राह्मणस्य पितामह।
इतरेषां तु वर्णानां कथं वै नियमो भवेत् ४६
भीष्म उवाच।
क्षत्रियस्यापि भार्ये द्वे विहिते कुरुनन्दन।
तृतीया च भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता॥
एष एव क्रमो हि स्यात्क्षत्रियाणां युधिष्ठिर।
अष्टधा तु भवेत्कार्यं क्षत्रियस्वं जनाधिप ४८
क्षत्रियाया हरेत्पुत्रश्चतुरोंशान्पितुर्धनात्।
युद्धावहारिकं यच्च पितुः स्यात्स हरेत्तु तत्॥
वैश्यापुत्रस्तु भागांस्त्रीन् शूद्रापुत्रस्तथाऽष्टमम्
सोपि दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति॥ ५०
एकैव हि भवेद्भार्या वैश्यस्य कुरुनन्दन।
द्वितीया तु भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता॥
वैश्यस्य वर्तमानस्य वैश्यायां भरतर्षभ।
शूद्रायां चापि कौन्तेय तयोर्विनियमः स्मृतः
पञ्चधा तु भवेत्कार्यं वैश्यस्वं भरतर्षभ।
तयोरपत्ये वक्ष्यामि विभागं च जनाधिप ५३
वैश्यापुत्रेण हर्तव्याश्चत्वारोंशाः पितुर्धनात्।
पञ्चमस्तु स्मृतो भागः शूद्रापुत्राय भारत॥५४
सोपि दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति।
त्रिभिर्वर्णैः सदा जातः शूद्रोऽदेयधनो भवेत्॥
शूद्रस्य स्यात्सवर्णैव भार्या नान्या कथञ्चन।
समभागाश्च पुत्राः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ५६
जातानां समवर्णायाः पुत्राणामविशेषतः।
सर्वेषामेव वर्णानां समभागो धनात्स्मृतः५७
ज्येष्ठस्य भागो ज्येष्ठः स्यादेकांशो यः प्रधानतः
एष दायविधिः पार्थ पूर्वमुक्तः स्वयम्भुवा ५८
समवर्णासु जातानां विशेषोस्त्यपरो नृप।
विवाहवैशिष्ट्यकृतः पूर्वपूर्वो विशिष्यते ५९
हरेज्ज्येष्ठः प्रधानांशमेकं तुल्यासु तेष्वपि।
मध्यमो मध्यमं चैव कनीयांस्तु कनीयसम्॥
एवं जातिषु सर्वासु सवर्णः श्रेष्ठतां गतः।
महर्षिरपि चैतद्वै मारीचः काश्यपोऽब्रवीत्६१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विवाहधर्मे रिक्थविभागो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

## ४८

युधिष्ठिर उवाच।
अर्थाल्लोभाद्वा कामाद्वा
वर्णानां चाप्यनिश्चयात्।
अज्ञानाद्वापि वर्णानां
जायते वर्णसंकरः॥ १
तेषामेतेन विधिना जातानां वर्णसंकरे।
को धर्मः कानि कर्माणि तन्मे ब्रूहि पितामह २
भीष्म उवाच।
चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि चातुर्वर्ण्यं च केवलम्
असृजत्स हि यज्ञार्थं पूर्वमेव प्रजापतिः॥ ३

---

उक्तं दायविभागादि नियमो दायविभागे। अत्रापि क्षत्रियस्य षोढा वैश्यस्य त्रेधा च धनं विभज्यैकैकांशहीना इतरभागा उत विशेषोऽस्तीति प्रष्टुरभिप्राय. ॥ ४६ ॥ क्षत्रियाणां क्षत्रियस्त्रीणां एष एव क्रमो भर्तु स्नानादिप्रदाने तस्या सवर्णाया सत्या हीनवर्णा तत्र कुर्यादित्यर्थ ॥४८॥ युद्धेऽवन्हियते तद्रथगजायुधकवचादिकं युद्धावहारिकम् ॥४९॥ शूद्रस्य अदेयधनत्वे हेतुस्त्रिभिर्वर्णैर्जात इति ॥५५॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्याय. ॥ ४७ ॥

४८

एवमनुलोमजातिजाना पुत्राणा तारतम्यमुक्त्वा विलोमजातिजानामपि तदाहाध्यायेन—**अर्थादिति**। लोभात्कामाद्वा उत्तमवर्णा स्त्री हीनवर्णानुगा भवतीति प्रसिद्धम्। तेन गूढोत्पत्तिसम्भवात् वर्णाना निश्चयो न जायते। ननु कर्मणा ज्ञायते जातिरित्यभियुक्तैरुच्यते एव न निषेककाले दुर्मुहूर्तदुष्टवस्तुस्मरणादिनाऽपि निमित्तेन असदुत्पत्तिसम्भवात्। प्रच्छन्नविलोमजेष्वपि क्वचित्सदाचारदर्शनेन वर्णानामज्ञानाच्चावश्यं वर्णसंकरो भवत्येवेत्यर्थ ॥ १ ॥ एतेन उक्तेन विधिना प्रकारेण ॥ २ ॥ तत्र प्रथमं चत्वार एव वर्णा यज्ञार्थं सृष्टास्तत्र शूद्राणा सेवाद्वारा यज्ञार्थत्वं न तु साक्षात्। तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्त इति श्रुते ॥ ३ ॥

भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते ।
आनुपूर्व्याद्द्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः ॥४

परंशवाद्ब्राह्मणस्यैव पुत्रः
शूद्रापुत्रं *पारशवं तमाहुः ।
शुश्रूषकः स्वस्य कुलस्य स स्या-
त्स्वचारित्रं नित्यमथो न जह्यात ॥ ५

सर्वानुपायानथ सम्प्रधार्य
समुद्धरेत् स्वस्य कुलस्य तन्त्रम् ।
ज्येष्ठो यवीयानपि यो द्विजस्य
शुश्रूषया दानपरायणः स्यात् । ६

तिस्रः क्षत्रियसम्बन्धाद्द्वयोरात्माऽस्य जायते
हीनवर्णास्तृतीयायां शूद्रा उग्रा× इति स्मृतिः
द्वे चापि भार्ये वैश्यस्य द्वयोरात्माऽस्य जायते
शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते ॥ ८
=अतोऽपि शिष्टस्त्वधमो गुरुदारप्रधर्षकः ।
बाह्यं वर्णं जनयति चातुर्वर्ण्यविगर्हितम् ॥ ९
विप्रायां क्षत्रियो बाह्यं सूतं स्तोमक्रियापरम् ।

वैश्यो वैदेहकं चापि मौद्गल्यमपवार्जितम् १०
शूद्रश्चांडालमत्युग्रं वध्यघ्नं बाह्यवासिनम् ।
ब्राह्मण्यां संप्रजायन्त इत्येते कुलपांसनाः ।
एते मतिमतां श्रेष्ठ वर्णसंकरजाः प्रभो ॥ ११
बन्दी तु जायते वैश्यान्मागधो वाक्यजीवनः
शूद्रान्निषादो मत्स्यघ्नः क्षत्रियायां व्यतिक्रमात्
शूद्रादायोगवश्चापि वैश्यायां ग्राम्यधर्मिणः ।
ब्राह्मणैरप्रतिग्राह्यस्तक्षा स्वधनजीवनः ॥ १३
एतेऽपि सदृशान् वर्णान् जनयन्ति स्वयोनिषु
मातृजात्याः प्रसूयन्ते ह्यवरा हीनयोनिषु १४
यथा चतुर्षु वर्णेषु द्वयोरात्मास्य जायते ।
आनन्तर्यात्प्रजायन्ते तथा बाह्याः प्रधानतः
ते चापि सदृशं वर्णं जनयन्ति स्वयोनिषु ।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥१६
यथा शूद्रोऽपि ब्राह्मण्यां जन्तुं बाह्यं प्रसूयते ।
एवं बाह्यतराद्बाह्यश्चातुर्वर्ण्यात्प्रजायते ॥ १७

---

आत्मा ब्राह्मण एव क्षत्रियायामपि जायत इत्यर्थः । स च किञ्चिन्नीच । यदाह मनु — (१०।६)

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् इति ।

मातृजात्यौ वैश्याया वैश्योऽम्बष्ठो नाम शूद्राया शूद्रो निषादो नाम पारशवाख्यो भवति । मनु —(१०।८)

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषाद शूद्रकन्याया य पारशव उच्यत इति ॥ ४ ॥

एतद्व्याचष्टे—**परामिति** । शवात् पशु वा एतत् श्मशान यच्छूद्र इति श्रुते शवस्थानतुल्यात् शूद्रात्परं उत्कृष्टं पद्भ्या युतं पशु पादयुक्तं जङ्गमं श्मशान शूद्र इति श्रुत्यर्थ ॥ ५ ॥ तन्त्रं उपकरणं वयसा ज्येष्ठोऽपि पारशवो द्विजस्य त्रिवर्णजस्य यवीयान् कनीयानेवेति सम्बन्ध ॥ ६ ॥ वैश्यायामपि क्षत्रियात्क्षत्रिय एव भवतीत्याह—**द्वयोरिति** । उग्रा शूद्रविशेषा ॥ ७ ॥ वैश्यात् शूद्रायामपि वैश्य एव भवतीत्याह—**द्वे इति** ॥ ८ ॥ अत स्वपितुरविशिष्टो नाधिक सन्नधम शूद्रो गुरूणा ब्राह्मणादीना दारप्रधर्षकश्चेत् बाह्य चाण्डालादिम् ॥ ९ ॥ **विप्रायामिति** । सूत सारथि जातित कर्मतश्च सूतानामश्वसारथ्यमित्युक्ते । स्तोमक्रिया स्तोत्रकरण च राजादीनाम् । यथोक्तम्—

सूता पौराणिका मता इति । मौद्गल्यं स्त्रीकार्यमन्त - पुररक्षणादि तत्कारित्वम् । वैदेहकाना स्त्रीकार्यमित्युक्ते । अपवर्जितं संस्कारानर्हम् ॥ १० ॥ वध्याना चोरादीना शिरश्छेदादिकार्यकारिणं वध्यघ्नम् ॥ ११ ॥ **बन्दीति** । मागधाना वणिक्पथ इति मनु । वाक्यं प्रस्तावसदृशी उक्ति निषादस्तथा क्षत्ता नाम । यदाह मनु —(१०।१२)

शूद्रादायोगव क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकरा इति ।

अस्य वृत्तिं मनुरन्यामाह—( १०।४९ )

क्षत्तुग्रपुल्कसाना तु बिलौको वधबन्धनमिति ।

अत्र मनुना निषादोऽनुलोमजेषु क्षत्ता च प्रतिलोमजेषूक्तः । व्यासेन तु विपरीतमुक्तं विदुरे क्षत्तृशब्द तत्र तत्र प्रयुञ्जानेन । अत एव शूद्रा निषादो जात पारशवोऽपि वा, क्षत्रिया मागधं वैश्यात् शूद्रात्क्षत्तारमेव चेति **याज्ञवल्क्य** उभयत्र वाशब्दं पठन्ननयोर्निषादत्वक्षत्तृत्वे सूचयति । तेन विप्रात् शूद्राया क्षत्ता शूद्रात्क्षत्रियाया निषाद इत्यपि साधु ॥ १२ ॥ ग्राम्यधर्मिण ग्राम्यधर्मो मैथुनं तद्वत तक्षा वर्धकि ॥ १३ ॥ एते नव अम्बष्ठपारशवोग्रा सूतवैदेहकचण्डाला मागधनिषादायोगवा तेषा स्वयोनौ अनन्तरयोनौ च स्वात्मैव जायते पूर्ववत् । व्यवहितनीचयोनौ तु मातृजाताया इति श्लोकद्वयार्थ ॥ १४ ॥ ते चापि संकरजा अपि विगर्हितान् अधमादुत्तमाया उत्तमादधमाया वा सूताम्बष्ठादिवद्विगर्हितानेव जनयन्तीत्यर्थ ॥ १६ ॥

---

* स्वर्णकारम् । × राउत इति भाषाया प्रसिद्धा ।
= अतोऽविशिष्ट इति पाठ ।

प्रतिलोमं तु वर्धन्ते बाह्याद्बाह्यतरात्पुनः।
हीनाद्धीनाः प्रसूयन्ते वर्णाः पंचदशैव तु १८
अगम्यागमनाच्चैव जायते वर्णसङ्करः।
बाह्यानामनुजायन्ते सैरन्ध्र्यां मागधेषु च।
प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ॥१९
अतश्चायोगवं सूते वागुराबन्धजीवनम्।
मैरेयकं च वैदेहः संप्रसूतेऽथ माधुकम् ॥ २०
निषादो मद्गुरं सूते दासं नावोपजीविनम्।
मृतपं चापि चाण्डालः श्वपाकमिति विश्रुतम्
चतुरो मागधी सूते क्रूरान्मायोपजीविनः।
मांसं स्वादुकरं क्षौद्रं सौगन्धमिति विश्रुतम्
वैदेहकाच्च पापिष्ठा क्रूरं मायोपजीविनम्।
निषादान्मद्रनाभं च खरयानप्रयायिनम् २२
चांडालात्पुल्कसं चापि खराश्वगजभोजिनम्
मृतचैलप्रतिच्छन्नं भिन्नभाजनभोजिनम् २४
आयोगवीषु जायन्ते हीनवर्णास्तु ते त्रयः।
क्षुद्रो वैदेहकादन्ध्रो बहिर्ग्रामप्रतिश्रयः ॥ २५

कारावरो निषाद्यां तु
चर्मकारः प्रसूयते।
चांडालात्पांडुसौपाक-
स्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥ २६
आहिण्डको निषादेन वैदेह्यां संप्रसूयते।
चण्डालेन तु सौपाकश्चण्डालसमवृत्तिमान्
निषादी चापि चाण्डालात्पुत्रमन्तेवसायिनम्
श्मशानगोचरं सूते बाह्यैरपि बहिष्कृतम् २८
इत्येते संकरे जाताः पितृमातृव्यतिक्रमात्।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः
चतुर्णामेव वर्णानां धर्मो नान्यस्य विद्यते।
वर्णानां धर्महीनेषु संख्या नास्तीह कस्यचित्
यदृच्छयोपसंपन्नैर्यज्ञसाधुबहिष्कृतैः।
बाह्या बाह्यैश्च जायन्ते यथावृत्ति यथाश्रयम्॥
चतुष्पथश्मशानानि शैलांश्चान्यान्वनस्पतीन्
कार्ष्णायसमलंकारं परिगृह्य च नित्यशः ३२

पञ्चदश बाह्या उक्तास्तान् व्याचष्टे—**बाह्यानामित्यादिना**। मागधेषु सैरन्ध्र्यामित्यभेदेनान्वयः। सैरन्ध्र्यकर्म व्याचष्टे—**प्रसाधनेति**। प्रसाधनं राजादीना पुसां अलङ्करणं पुरुषै सैरन्ध्रै। राजस्त्रीणा च सैरन्ध्रीभि उपचारस्तेषा दिव्याङ्गरागाद्यर्पणेन स्तवादिना च सन्तोषणं तदभिज्ञं अदासमिति सामान्ये नपुंसकम्॥ १९॥ अतः अत्र मागधविशेषे सैरन्ध्रयोनौ आयोगवं आयोगवस्यापत्यं सैरन्ध्रं नाम सूतेऽर्थादायोगवं रौरन्ध्रं वागुराबन्धीति मनु। तस्यामेव मागध्यं मैरेयकं नामत माधुकं मद्यकरं कर्मतश्च पुत्रं वैदेह सूते॥ २०॥ मद्गुर मद्गून्मीनविशेषान् राति आदत्ते तं मद्गुरं दासं नामत मृतपं श्मशानाधिकारिणम्॥ २१॥ एते मागध्या आयोगवादिभ्यश्चतुर्भ्यः क्रमाज्जायन्ते इत्युपसंहरति—**चतुर इति**। एते चत्वारो वागुरादिना जीवन्तीति मायोपजीविन अन्येऽपि चत्वारो मागध्या विश्रुता सजातीया उत्पद्यन्ते तेषा नामानि मासमित्यादि मासं मासविक्रेतारं स्वादुकरं मासस्यैव संस्कारिकम्। क्षौद्रं सूदं शूद्रमिति पाठत्रयेऽपि शाकाद्यन्नपाककरं सौगन्धं उक्तलक्षणं सैरन्ध्रं एकस्यैव मागधस्यैतद्वृत्तिचतुष्टयमुक्तमिति ज्ञेयम्॥ २२॥ आयोगव्या वैदेहकादिभ्यो जातांस्त्रीन् भेदानाह सार्धद्वयेन—**वैदेहकादिति॥ २३॥ क्षुद्र इति**। निषाद्या वैदेहकात् क्षुद्रो भेदः अंध्रश्च आरण्यपशुहिंसकौ कारावराख्यश्चर्मकारश्चेति त्रयो भवन्तीत्यर्थ॥ २५॥ चण्डालात् निषाद्यामेव त्वक्सारो वेणुः॥ २६॥

आहिण्डक इति स्पष्टार्थौ श्लोकौ॥ २७॥ **इतीति**। अत्र मागध्या आयोगववैदेहकनिषादचण्डालैश्चत्वारस्तैरेवायोगव्या स्वीयवर्जितैस्त्रयो निषाद्या चण्डालवैदेहाभ्या द्वौ वैदेह्या चण्डालनिषादाभ्या द्वौ निषाद्या चण्डालाच्चैक इति द्वादश भेदा उक्ता।

शूद्राज्जातो निषाद्या तु स वै कुक्कुटक स्मृत।
वैदेहकेन त्वम्बष्ठयामुत्पन्नो वेन उच्यते॥ इति द्वौ।
द्विजातय सवर्णासु जनयन्त्यव्रतास्तु यान्।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यानित्यभिनिर्दिशेत् इति।

व्रात्यजातीय एक इत्येवं मनूक्तैस्त्रिभि सह पञ्चदश संकरजाता। व्रात्यस्यापि धर्मसाकर्याद्देतेष्वेव गणना प्रच्छन्ना अज्ञातयोनयोऽपि पूर्वोक्तै कर्मभिस्तेऽमुकयोनय इति वेदितव्या.॥२९॥ चातुर्वर्ण्यस्यैव धर्मा. शास्त्रे विहिता. इतरेषा तु जातिभेदाना धर्मनियम इयत्ता च नास्ति। तथाहि—चतुर्भ्यो वर्णेभ्य षडनुलोमजा षड्विलोमजाश्चेति द्वादश, तेभ्योऽपि षट्षष्टिरनुलोमजा षट्षष्टिर्विलोमजा इति द्वात्रिंशदधिकं शतं, तेभ्य एवं प्रातिलोम्यानुलोम्यगणनाया तेभ्यस्तेभ्यश्चैवमनन्ता भेदा भवन्ति ते च सर्वे पञ्चदशस्वेवान्तर्भवन्तीतितावतामेव परिगणनं कृतमित्यर्थ॥ ३०॥ यदृच्छया जात्यनियमेन उपसंपन्नैर्मैथुनीभावं गतैर्यज्ञेभ्य साधुभ्यश्च बहिष्कृतै. यथावृत्ति यथाश्रयं जीविका जातिविशेषं च यदृच्छया तत्तत्कर्मणा प्राप्ता इत्यर्थ॥ ३१॥

वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ।
युञ्जन्तो वाप्यलंकारांस्तथोपकरणानि च ३३
गोब्राह्मणाय साहाय्यं कुर्वाणा वै न संशयः ।
आनृशंस्यमनुक्रोशः सत्यवाक्यं तथा क्षमा
स्वशरीरैरपि त्राणं बाह्यानां सिद्धिकारणम् ।
भवन्ति मनुजव्याघ्र तत्र मे नास्ति संशयः ॥
यथोपदेशं परिकीर्तितासु
नरः प्रजायेत विचार्य बुद्धिमान् ।
निहीनयोनिर्हि सुतोऽवसादये-
त्तितीर्षमाणं हि यथोपलो जले ॥३६
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
नयन्ति ह्युत्पथं नार्यः कामक्रोधवशानुगम् ॥
स्वभावश्चैव नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अत्यर्थं न प्रसज्जन्ते प्रमदासु विपश्चितः ॥ ३८

युधिष्ठिर उवाच ।

वर्णापेतमविज्ञाय नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कथं विद्यामहे वयम् ३९

भीष्म उवाच ।

योनिसंकलुषे जातं नानाभावसमन्वितम्
कर्मभिः सज्जनाचीर्णैर्विज्ञेया योनिशुद्धता ४०
अनार्यत्वमनाचारः क्रूरत्वं निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ४१
पित्र्यं वा भजते शीलं मातृजं वा तथोभयम् ।
न कथंचन संकीर्णः प्रकृतिं स्वां नियच्छति
यथैव सदृशो रूपे मातापित्रोर्हि जायते ।
व्याघ्रश्चित्रैस्तथा योनिं पुरुषः स्वां नियच्छति
कुले स्रोतसि सच्छन्ने यस्य स्याद्योनिसंकरः
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमथवा बहु ॥४४
आर्यरूपसमाचारं चरन्तं कृतके पथि ।
सुवर्णमन्यवर्णं वा स्वशीलं शास्ति निश्चये ४५
नानावृत्तेषु भूतेषु नानाकर्मरतेषु च ।
जन्मवृत्तसमं लोके सुश्लिष्टं न विरज्यते ॥४६
शरीरमिह सत्त्वेन न तस्य परिकृष्यते ।
ज्येष्ठमध्यावरं सत्त्वं तुल्यसत्त्वं प्रमोदते ॥४७
ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत् ।
अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमभिपूजयेत् ॥ ४८
आत्मानमाख्याति हि कर्मभिर्नरः
सुशीलचारित्रकुलैः शुभाशुभैः ।
प्रनष्टमप्याशु कुलं तथा नरः
पुनः प्रकाशं कुरुते स्वकर्मतः ॥ ४९
योनिष्वेतासु सर्वासु संकीर्णास्वितरासु च ।
यत्रात्मानं न जनयेद्बुधस्तां परिवर्जयेत् ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विवाहधर्मे वर्णसङ्करकथने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

तेषां साधारणान् धर्मानाह—**गावेति** ॥ ३४ ॥ **यथेति** । निहीनासु रेतःसेकं न कुर्यादिति भाव. ॥ ३६ ॥ तदर्थमेव चौरेभ्य इव स्त्रीभ्य आत्मानं रक्षेदित्याह द्वाभ्याम्—**अविद्वांसमिति** ॥ ३७ ॥ कलुषयोनिजं संकरयोनिजं आर्यगृहे जातत्वादार्यरूपमिव भासमानमपि उत्पत्तितोऽनार्यम् ॥ ३९ ॥ नानाभावै आर्येभ्य पृथग्भूताभिश्चेष्टाभि समन्वितं नरं संकरयोनिजं जानीयात् ॥ ४० ॥ अनार्यत्वादिष्वेकैकमपि कलुषयोनित्वव्यञ्जकं किमुत द्वे त्रीणि सर्वाणि चेति भावः ॥ ४१ ॥ प्रकृतिं योनिं नियच्छति गूहितुं शक्नोतीत्यर्थ ॥ ४२ ॥ व्याघ्र इत्युपलक्षणं बीजादेरपि यथा तिर्यक्स्थावरादिकं बीजगुणं न त्यजत्येवं मनुष्योऽपीत्यर्थ ॥ ४३ ॥ संच्छन्ने सुगुप्तेऽपि यस्य जन्मनीति शेष । स तच्छीलं सङ्करवत्तु स्वभावम् ॥ ४५ ॥ स्वस्य शीलं स्वभावो निश्चये कार्यस्य निष्ठाया सुवर्णं शोभनवर्णं अन्यवर्णं वा पुरुषं शास्ति कथयति सुवर्णो बहि क्रूरोऽपि कार्यकाले दयालुर्भवति, दुर्वर्णश्च नित्यं मृदुरपि फलकाले दारुणो भवतीति भाव· ॥ ४५ ॥ सुश्लिष्टं शोभनवृत्तेन न विरज्यते उपचितं वृत्तं विहाय जन्मान्यथा तिष्ठतीत्यर्थ· ॥ ४६ ॥ तस्य संकरजस्य शरीरं सत्त्वेन शास्त्रीयबुद्ध्या न परिकृष्यते न नीचमार्गादपकृष्यते बीजगुणस्य प्राबल्यात् । सत्त्वस्य कालभेदेन ज्येष्ठत्वादिभावेऽपि यत्तुल्यसत्त्वं शरीरारम्भकं यत्सत्त्वं ज्येष्ठाद्यन्यतमं तदेव प्रमोदते अन्यत्तु उत्पन्नमपि सत्त्वं शारदिकाभ्रवल्लीयत इति भाव ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## ४९

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्रूहि तात कुरुश्रेष्ठ वर्णानां त्वं पृथक् पृथक्
कीदृश्यां कीदृशाश्चापि पुत्राः कस्य च के च ते
विप्रवादाः सुबहवः श्रूयन्ते पुत्रकारिताः ।
अत्र नो मुह्यतां राजन्संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ २

भीष्म उवाच ।

आत्मा पुत्रश्च विज्ञेयस्तस्यानन्तरजश्च यः ।
निरुक्तजश्च विज्ञेयः सुतः प्रसृतजस्तथा ॥ ३
पतितस्य तु भार्याया भर्त्रा सुसमवेतया ।
तथा दत्तकृतौ पुत्रावध्यूढश्च तथाऽपरः ॥ ४
षडपध्वंसजाश्चापि कानीनापसदास्तथा ।
इत्येते वै समाख्यातास्तान्विजानीहि भारत

युधिष्ठिर उवाच ।

षडपध्वंसजाः के स्युः के वाप्यपसदास्तथा
एतत्सर्वं यथातत्त्वं व्याख्यातुं मे त्वमर्हसि ६

भीष्म उवाच ।

त्रिषु वर्णेषु ये पुत्रा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ।
वर्णयोश्च द्वयोः स्यातां यौ राजन्यस्य भारत॥
एको विड्वर्ण एवाथ तथाऽत्रैवोपलक्षितः ।
षडपध्वंसजास्ते हि तथैवापसदान् शृणु ॥ ८
चाण्डालो व्रात्यवैद्यौ च ब्राह्मण्यां क्षत्रियासु च
वैश्यायां चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽपसदास्त्रयः ९
मागधो वामकश्चैव द्वौ वैश्यस्योपलक्षितौ ।
ब्राह्मण्यां क्षत्रियायां च क्षत्रियस्यैक एव तु ॥
ब्राह्मण्यां लक्ष्यते सूत इत्येतेऽपसदाः स्मृताः ।
पुत्रा ह्येते न शक्यन्ते मिथ्याकर्तुं नराधिप ११

युधिष्ठिर उवाच ।

क्षेत्रजं केचिदेवाहुः सुतं केचित्तु शुक्रजम् ।
तुल्यावेतौ सुतौ कस्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

भीष्म उवाच ।

रेतजो वा भवेत्पुत्रस्त्यक्तो वा क्षेत्रजो भवेत् ।
अध्यूढः समयं भित्त्वेत्येतदेव निबोध मे ॥ १३

युधिष्ठिर उवाच ।

रेतजं विद्म वै पुत्रं क्षेत्रजस्यागमः कथम् ।
अध्यूढं विद्म वै पुत्रं भित्त्वा तु समयं कथम् ॥

भीष्म उवाच ।

आत्मजं पुत्रमुत्पाद्य यस्त्यजेत्कारणान्तरे ।
न तत्र कारणं रेतः स क्षेत्रस्वामिनो भवेत् १५

---

### ४९

पूर्वं ऋत्विक्शुद्धिज्ञानार्थमनार्यत्वमनाचार क्रूरत्वं निष्क्रियात्मतेति संकरजस्य लक्षणान्युक्तानि । इदानीम्—

यन्मे माता प्रममाद यच्चचारानन्तुव्रतम् ।
तन्मे रेत' पिता वृङ्क्ताम् इति ।

मन्त्रलिङ्गात् माता प्रमादात् कामकाराद्वा यदननुव्रतं प्रतिकूलं परस्य रेतसो धारणं चचार कृतवती तद्रेत मे मम पिता वृङ्क्ता स्वीयं करोतु पालनसस्कारादिकर्तृत्वात् । यथा उत्पतत' पक्षिणो मुखात् पतित बीजं परक्षेत्रे आधिरूढ क्षेत्रपतेरेव न तु बीजपतेस्तद्वत् । तथा—

अप्रमत्ता रक्षत तन्तुमेतं मा व क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सु ।
जनयितुः पुत्रो भवति साम्पराये मोघं वेत्ता कुरुते तन्तुमेतम् ।

इति द्विविधशास्त्रश्रवणात् । क्षेत्रजः पुत्र संस्कार्यो न वेति संदिहान पृच्छति—**ब्रूहीति** ॥ १ ॥ विप्रवादा' विविधा' प्रवादाः पूर्वोक्ता एव ॥ २ ॥ अत्रोत्तरमाह—**आत्मेति** । अनन्तरज' औरस निरुक्तज स्वक्षेत्रे अन्यो रेत सेकार्थमुक्तस्तज्जः, प्रसृत. अनिरुक्तोऽपि यो लौल्यात्परक्षेत्रे रेत' सिञ्चति तज्ज' प्रसृतज' ॥ ३ ॥ तथा पतितात्स्वभार्यायामेव जात' भार्याया तृतीयार्थे षष्ठी । दत्त पञ्चम कृत क्रीत स्वयमुपायगम्यो वा षष्ठ । अध्यूढ यस्य माता गर्भवत्येव ऊढा तादृश सप्तम ॥ ४ ॥ षडपध्वंसजा वक्ष्यमाणाः कानीन कन्याया विवाहात् प्राक् उत्पन्नश्चतुर्दश अपसदा वक्ष्यमाणा षट् । एते विंशति तान्सर्वान् पुत्रानिति विजानीहि ॥ ५ ॥ परवर्णासु अनुलोमजा षट् अपध्वंसजा विलोमजा अपसदा षडिति ज्ञेयम् ॥ ८ ॥ मिथ्याकर्तुं एते पुत्रा न भवन्तीति वक्तुं न शक्यन्त इत्यर्थ' । अयं भाव – **अप्रमत्तेति**, श्रुतिरनौरसस्याप्राशस्त्यमात्रपरा । यन्मे मातेति श्रुतिस्तु अनौरसस्यापि पुत्रत्वमस्तीत्येवंपरेति न कश्चिद्विरोध । तथा च अनौरस औरसो वा सुशील. श्राद्धपर पितृणा स्वर्गाय भवति विपरीतस्तु नरकायेति ॥ ११ ॥ कस्य द्वयो पित्रो क्षेत्रपतिनिषेक्त्रोर्मध्ये कस्यायं पुत्र उभयो पितृत्वाविशेषादित्यर्थ' ॥ १२ ॥ यथा रेतोज औरस पुत्र एवं क्षेत्रजोऽपि बीजदेन त्यक्तश्चेत्स्वीय एव भवति । एवमध्यूढोऽपि रेत पतिना त्यक्तश्चेद्वोढुरेव अत्यक्तौ तु द्वावपि रेत प्रदस्यैवेत्यर्थ ॥ १३ ॥ एतदेव प्रश्नोत्तराभ्यां व्याचष्टे—**रेतजमिति** । आगम' पुत्रत्वप्रापकं शास्त्रं कथं कीदृशं समयभेदश्च कथमित्यर्थ' ॥ १४ ॥ कारणान्तरे लोकापवादादिभये सति ॥ १५ ॥

पुत्रकामो हि पुत्रार्थे यां वृणीते विशांपते ।
क्षेत्रजं तु प्रमाणं स्यात्स वै तत्रात्मजः सुतः १६
अन्यत्र क्षेत्रजः पुत्रो लक्ष्यते भरतर्षभ ।
न ह्यात्मा शक्यते हन्तु दृष्टान्तोपगतो ह्यसौ
कश्चिच्च कृतकः पुत्रः सग्रहादेव लक्ष्यते ।
न तत्र रेतः क्षेत्रं वा यत्र लक्ष्येत भारत ॥ १८

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशः कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते ।
शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्यं न भारत १९

भीष्म उवाच ।

मातापितृभ्यां यस्त्यक्तः पथि यस्तं प्रकल्पयेत्
न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां स हि कृत्रिमः ॥
अस्वामिकस्य स्वामित्व यस्मिन्संप्रति लक्ष्यते
यो वर्णः पोषयेत्तं च तद्वर्णस्तस्य जायते ॥ २१

युधिष्ठिर उवाच ।

कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्य वा कथम् ।
देया कन्या कथं चेति तन्मे ब्रूहि पितामह २२

भीष्म उवाच ।

आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तया
त्यक्तो मातापितृभ्यां यः सवर्णं प्रतिपद्यते २३
तद्गोत्रबन्धुजं तस्य कुर्यात्संस्कारमच्युत ।
अथ देया तु कन्या स्यात्तद्वर्णस्य युधिष्ठिर ॥
संस्कर्तुं वर्णगोत्रं च मातृवर्णविनिश्चये ।
कानीनाध्यूढजौ वापि विज्ञेयौ पुत्र किल्बिषौ
तावपि स्वाविव सुतौ संस्कार्याविति निश्चयः
क्षेत्रजो वाप्यपसदो येऽध्यूढास्तेषु चाप्युत२६
आत्मवद्वै प्रयुञ्जीरन्संस्कारान्ब्राह्मणादयः ।
धर्मशास्त्रेषु वर्णानां निश्चयोऽयं प्रदृश्यते ॥ २७
एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि२८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विवाहधर्मे पुत्रप्रतिनिधिकथने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## ५०

युधिष्ठिर उवाच

दर्शने कीदृशः स्नेहः संवासे च पितामह ।
महाभाग्यं गवां चैव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १

भीष्म उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं महाद्युते ।
नहुषस्य च संवादं महर्षेश्च्यवनस्य च ।

---

आगममुक्त्वा समयभेदमाह—**पुत्रेति** । या गर्भवती कन्या वृणीते तत्र स पुत्रो वोढुरेव क्षेत्रजो न तु स क्षेत्तुरात्मज ॥ १६ ॥ अन्यत्रेति त्रल् अनर्थक , परक्षेत्रे जात पुत्रोऽमुकसदृशो अमुकसदृशोऽयमिति तदीयत्वेन लक्ष्यते हन्तुं गूहितुं दृष्टान्तं प्रत्यक्षमेवोपगतो ज्ञात । दृश्यते चापि सारूप्यमिति स्मृतेः । एवं चाप्यूढो वोढु पुत्रकाम्याभावे रेत एतेरेव भवतीत्युक्तम् ॥ १७ ॥ शुक्रक्षेत्रयोरन्यतरदपि यत्र पुत्रत्वे प्रमाणं न लक्ष्यं भवति स कृतक' पुत्र कीदृश इत्यर्थ. ॥ १९ ॥ तस्य पोषयितु' पुत्रः स तद्वर्ण पोषयितृवर्णः ॥ २१ ॥ कथं केन प्रकारेण कस्य वाऽयमिति ज्ञातव्यं कथं वाऽस्य संस्कार प्रयोक्तव्य इति प्रश्न ॥ २२ ॥ स स्वामिवद्वर्ण प्रतिपद्यते अत स्वामी तस्यात्मवत्संस्कार करोति ॥ २३ ॥ ननु अन्यवर्णत्वशंकाया कथमेतत्स्यादित्याशक्याह—**तदिति** । अन्यवर्णत्वनिश्चये तद्गोत्रवर्णजषु गोत्रादियोग्यमेव तस्य संस्कारं स्वामी कुर्यात् । अनिश्चये तु येन संस्कृतस्तस्यैव वर्णो गोत्रं च संस्कारसामर्थ्याद्भवतीत्यर्थ । अन्यगोत्रोऽप्यन्यवर्णोऽपि संस्कर्तुरेव वर्णगोत्रे भजत इति भाव ॥२४॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशतमोऽध्याय' ॥ ४९ ॥

५०

एवं यज्ञाङ्गाना श्रोधनन्विगात्मना शुद्धिमुक्त्वा यज्ञे दक्षिणात्वेनोपस्थिताना गवा माहात्म्यं पृच्छति—**दर्शने इति** । परपीडादर्शने परै सह सवासे च कीदृश स्नेह आनृशस्यं च कर्तव्य गवा माहात्म्यं च ब्रूहीति प्रश्नद्वयम् ॥ १ ॥ तस्योत्तरं तन्त्रेणाह—**हन्त इत्यादिना**॥२॥

पुरा महर्षिश्च्यवनो भार्गवो भरतर्षभ ।
उदवासकृतारम्भो बभूव स महाव्रतः ॥ ३
निहत्य मानं क्रोधं च प्रहर्षं शोकमेव च ।
वर्षाणि द्वादश मुनिर्जलवासे धृतव्रतः ॥ ४
आदधत्सर्वभूतेषु विश्रम्भं परमं शुभम् ।
जलेचरेषु सर्वेषु शीतरश्मिरिव प्रभुः ॥ ५
स्थाणुभूतः शुचिर्भूत्वा दैवतेभ्यः प्रणम्य च ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये जलं संप्रविवेश ह ॥ ६
गङ्गायमुनयोर्वेगं सुभीमं भीमनिःस्वनम् ।
प्रतिजग्राह शिरसा वातवेगसमं जवे ॥ ७
गङ्गा च यमुना चैव सरितश्च सरांसि च ।
प्रदक्षिणमृषिं चक्रुर्न चैनं पर्यपीडयन् ॥ ८
अन्तर्जलेषु सुष्वाप काष्ठभूतो महामुनिः ।
ततश्चोर्ध्वस्थितो धीमानभवद्भरतर्षभ ॥ ९
जलौकसां स सत्त्वानां बभूव प्रियदर्शनः ।
उपाजिघ्रन्त च तदा तस्योष्ठं हृष्टमानसाः १०
तत्र तस्यासतः कालः समतीतोऽभवन्महान्
ततः कदाचित्समये कस्मिंश्चिन्मत्स्यजीविनः
तं देशं समुपाजग्मुर्जालहस्ता महाद्युते ।
निषादा बहवस्तत्र मत्स्योद्धरणनिश्चयाः १२
व्यायता बलिनः शूराः सलिलेष्वनिवर्तिनः ।
अभ्याययुश्च तं देशं निश्चिता जालकर्मणि १३
जालं ते योजयामासुर्निःशेषेण जनाधिप ।
मत्स्योदकं समासाद्य तदा भरतसत्तम ॥ १४
ततस्ते बहुभिर्योगैः कैवर्ता मत्स्यकाङ्क्षिणः ।
गङ्गायमुनयोर्वारि जालैरभ्यकिरंस्ततः ॥ १५
जालं सुवितत तेषां नवसूत्रकृतं तथा ॥
विस्तारायामसम्पन्नं यत्तत्र सलिलेऽक्षिपन् १६
ततस्ते सुमहच्चैव बलवच्च सुवर्तितम् ।
अवतीर्य ततः सर्वे जालं चकृषिरे तदा ॥ १७
अभीतरूपाः संहृष्टा अन्योन्यवशवर्तिनः ।
बबन्धुस्तत्र मत्स्यांश्च तथाऽन्यान् जलचारिणः
तथा मत्स्यैः परिवृतं च्यवनं भृगुनन्दनम् १९
आकर्षयन्महाराज जालेनाथ यदृच्छया १९
नदीशैवलदिग्धाङ्गं हरिश्मश्रुजटाधरम् ।
लग्नैः शङ्खनखैर्गात्रे क्रोडैश्चित्रैरिवार्पितम् २०
तं जालेनोद्धृतं दृष्ट्वा ते तदा वेदपारगम् ।
सर्वे प्राञ्जलयो दाशाः शिरोभिः प्रापतन्भुवि
परिखेदपरित्रासाज्जालस्याकर्षणेन च ।
मत्स्या बभूवुर्व्यापन्नाः स्थलसंस्पर्शनेन च २२
स मुनिस्तत्तदा दृष्ट्वा मत्स्यानां कदनं कृतम् ।
बभूव कृपयाविष्टो निःश्वसंश्च पुनः पुनः २३

निषादा ऊचुः ।

अज्ञानाद्यत्कृतं पाप प्रसादं तत्र नः कुरु ।
करवाम प्रियं किं ते तन्नो ब्रूहि महामुने ॥२४
इत्युक्तो मत्स्यमध्यस्थश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ।
यो मेऽद्य परमः कामस्तं शृणुध्वं समाहिताः
प्राणोत्सर्गं विसर्गं वा मत्स्यैर्यास्याम्यहं सह
संवासान्नोत्सहे त्यक्तुं सलिलेऽध्युषितानहम्
इत्युक्तास्ते निषादास्तु सुभृशं भयकम्पिताः ।
सर्वे विवर्णवदना नहुषाय न्यवेदयन् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

भीष्म उवाच ।

नहुषस्तु ततः श्रुत्वा च्यवनं तं तथागतम् ।
त्वरितः प्रययौ तत्र सहामात्यपुरोहितः ॥ १
शौचं कृत्वा यथान्यायं प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ।
आत्मानमाचचक्षे च च्यवनाय महात्मने ॥ २

ऊर्ध्वस्थितः उपविष्ट ॥ ९ ॥ आसतः आसीनस्य ॥११॥ अभ्यकिरन् व्याप्तवन्त ॥ १५ ॥ शंखाना जलजन्तुविशेषाणा नखानि तै ॥२०॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५० ॥

५१

नहुष इति ॥ १ ॥

अर्चयामास तं चापि तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
सत्यव्रतं महात्मानं देवकल्पं विशांपते ॥ ३

नहुष उवाच ।

करवाणि प्रियं किं ते तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम
सर्वं कर्तास्मि भगवन्यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ।

च्यवन उवाच ।

श्रमेण महता युक्ताः कैवर्ता मत्स्यजीविनः
मम मूल्यं प्रयच्छैभ्यो मत्स्यानां विक्रयैः सह

नहुष उवाच ।

सहस्रं दीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहित ।
निष्क्रयार्थं भगवतो यथाऽऽह भृगुनन्दनः ॥६

च्यवन उवाच ।

सहस्रं नाहमर्हामि किंवा त्वं मन्यसे नृप ।
सदृशं दीयतां मूल्यं स्वबुद्ध्या निश्चयं कुरु ॥ ७

नहुष उवाच ।

सहस्राणां शतं विप्र निषादेभ्यः प्रदीयताम्
स्यादिदं भगवन्मूल्यं किंवाऽन्यन्मन्यते भवान्

च्यवन उवाच ।

नाहं शतसहस्रेण निमेयः पार्थिवर्षभ ।
दीयतां सदृशं मूल्यममात्यैः सह चिन्तय ॥ ९

नहुष उवाच ।

कोटिः प्रदीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहित
यदेतदपि नो मूल्यमतो भूयः प्रदीयताम् १०

च्यवन उवाच ।

राजन्नार्हाम्यहं कोटिं भूयो वाऽपि महाद्युते
सदृशं दीयतां मूल्यं ब्राह्मणैः सह चिन्तय ११

नहुष उवाच ।

अर्धं राज्यं समग्रं वा निषादेभ्यः प्रदीयताम्
एतन्मूल्यमहं मन्ये किंवाऽन्यन्मन्यसे द्विज१२

च्यवन उवाच ।

अर्धं राज्यं समग्रं च मूल्यं नार्हामि पार्थिव
सदृशं दीयतां मूल्यमृषिभिः सह चिन्त्यताम् ।

भीष्म उवाच ।

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नहुषो दुःखकर्शितः ।
स चिन्तयामास तदा सहामात्यपुरोहितः १४
तत्र त्वन्यो वनचरः कश्चिन्मूलफलाशनः ।
नहुषस्य समीपस्थो गविजातोऽभवन्मुनिः १५
स तमाभाष्य राजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः ।
तोषयिष्याम्यहं क्षिप्रं यथा तुष्टो भविष्यति
नाहं मिथ्यावचो ब्रूयां स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा
भवतो यदहं ब्रूयां तत्कार्यमविशङ्कया ॥ १७

नहुष उवाच ।

ब्रवीतु भगवान्मूल्यं महर्षेः सदृशं भृगोः ।
परित्रायस्व मामस्माद्विषयं च कुलं च मे ॥ १८
हन्याद्धि भगवान् क्रुद्धस्त्रैलोक्यमपि केवलम्
किं पुनर्मां तपोहीनं बाहुवीर्यपरायणम् ॥ १९
अगाधाम्भसि मग्नस्य सामात्यस्य सऋत्विजः
प्लवो भव महर्षे त्वं कुरु मूल्यविनिश्चयम् ॥ २०

भीष्म उवाच ।

नहुषस्य वचः श्रुत्वा गविजातः प्रतापवान्
उवाच हर्षयन्सर्वानमात्यान्पार्थिवं च तम्२१
अनर्घेया महाराज द्विजा वर्णेषु चोत्तमाः ।
गावश्च पुरुषव्याघ्र गौर्मूल्यं परिकल्प्यताम् २२
नहुषस्तु ततः श्रुत्वा महर्षेर्वचनं नृप ।
हर्षेण महता युक्तः सहामात्यपुरोहितः ॥ २३
अभिगम्य भृगोः पुत्रं च्यवनं संशितव्रतम् ।
इदं प्रोवाच नृपते वाचा सन्तर्पयन्निव ॥ २४

नहुष उवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवा क्रीतोऽसि भार्गव
एतन्मूल्यमहं मन्ये तव धर्मभृतां वर ॥ २५

च्यवन उवाच ।

उत्तिष्ठाम्येष राजेन्द्र सम्यक् क्रीतोऽस्मि तेऽनघ
गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ।
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः ॥ २८
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ।
गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम्
अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च ।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ३०
तेजसा वपुषा चैव गावो वह्निसमा भुवि ।
गावो हि सुमहत्तेजः प्राणिनां च सुखप्रदाः ॥
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् ।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति ॥ ३२
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत्किंचित्परं स्मृतं
इत्येतद्गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं भरतर्षभ ।
गुणैकदेशवचनं शक्यं पारायणं न तु ॥ ३४

निषादा ऊचुः ।

दर्शनं कथनं चैव सहास्माभिः कृतं मुने ।
सतां साप्तपदं मैत्रं प्रसादं नः कुरु प्रभो ॥ ३५

हवींषि सर्वाणि यथा ह्युपभुङ्क्ते हुताशनः ।
एवं त्वमपि धर्मात्मन्पुरुषाग्निः प्रतापवान् ३६
प्रसादयामहे विद्वन्भवन्तं प्रणता वयम् ।
अनुग्रहार्थमस्माकमियं गौः प्रतिगृह्यताम् ॥३७
च्यवन उवाच ।
कृपणस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च ।
नरं समूलं दहति कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३८
प्रतिगृह्णामि वो धेनुं कैवर्ता मुक्तकिल्बिषाः ।
दिवं गच्छत वै क्षिप्रं मत्स्यैः सह जलोद्भवैः
भीष्म उवाच ।
ततस्तस्य प्रभावात्ते महर्षेर्भावितात्मनः ।
निषादास्तेन वाक्येन सह मत्स्यैर्दिवं ययुः ४०
ततः स राजा नहुषो विस्मितः प्रेक्ष्य धीवरान्
आरोहमाणांस्त्रिदिवं मत्स्यांश्च भरतर्षभ ॥ ४१
ततस्तौ गविजश्चैव च्यवनश्च भृगूद्वहः ।
वराभ्यामनुरूपाभ्यां छन्दयामासतुर्नृपम् ॥ ४२
ततो राजा महावीर्यो नहुषः पृथिवीपतिः।
परमित्यब्रवीत्प्रीतस्तदा भरतसत्तम ॥ ४३
ततो जग्राह धर्मे स स्थितिमिन्द्रनिभो नृपः ।
तथेति चोदितः प्रीतस्तावृषी प्रत्यपूजयत् ४४
समाप्तदीक्षश्च्यवनस्ततोऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ।
गविजश्च महातेजाः स्वमाश्रमपदं ययौ ॥ ४५
निषादाश्च दिवं जग्मुस्ते च मत्स्या जनाधिप
नहुषोऽपि वरं लब्ध्वा प्रविवेश स्वकं पुरम्४६
एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
दर्शने यादृशः स्नेहः संवासे वा युधिष्ठिर ४७
महाभाग्यं गवां चैव तथा धर्मविनिश्चयम् ।
किं भूयः कथ्यतां वीर किं ते हृदि विवक्षितम्॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## ५२

युधिष्ठिर उवाच ।
संशयो मे महाप्राज्ञ सुमहान्सागरोपमः ।
तं मे शृणु महाबाहो श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हसि१
कौतूहलं मे सुमहज्जामदग्न्यं प्रति प्रभो ।
रामं धर्मभृतां श्रेष्ठं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २
कथमेष समुत्पन्नो रामः सत्यपराक्रमः ।
कथं ब्रह्मर्षिवंशोऽयं क्षत्रधर्मा व्यजायत ॥ ३
तदस्य संभवं राजन्निखिलेनानुकीर्तय ।
कौशिकाच्च कथं वंशात्क्षत्राद्वै ब्राह्मणो भवेत्
अहो प्रभावः सुमहानासीद्वै सुमहात्मनः ।
रामस्य च नरव्याघ्र विश्वामित्रस्य चैव हि ५
कथं पुत्रानतिक्रम्य तेषां नप्तृष्वथाभवत् ।
एष दोषः सुतान् हित्वा तत्त्वं व्याख्यातुमर्हसि
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
च्यवनस्य च संवादं कुशिकस्य च भारत॥ ७
एतं दोषं पुरा दृष्ट्वा भार्गवश्च्यवनस्तदा ।
आगामिनं महाबुद्धिः स्ववंशे मुनिसत्तमः ॥ ८
निश्चित्य मनसा सर्वं गुणदोषबलाबलम् ।
दग्धुकामः कुलं सर्वं कुशिकानां तपोधनः ९
च्यवनः समनुप्राप्य कुशिकं वाक्यमब्रवीत् ।
वस्तुमिच्छा समुत्पन्ना त्वया सह ममानघ१०
कुशिक उवाच ।
भगवन्सहधर्मोऽयं× पण्डितैरिह धार्यते ।
प्रदानकाले कन्यानामुच्यते च सदा बुधैः ११
यत्तु* तावदतिक्रान्तं धर्मद्वारं तपोधन ।
तत्कार्यं प्रकरिष्यामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १२
भीष्म उवाच ।
अथासनमुपादाय च्यवनस्य महामुनेः ।
कुशिको भार्यया सार्धमाजगाम यतो मुनिः ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

**संशयो मे** इत्यादिग्रन्थस्य कुशिकवद्ब्राह्मणभाक्क्षिमतो वंशे दिव्या ब्राह्मणा उत्पद्यन्त इति तात्पर्यम् ॥१॥

× अतिथिसेवा धर्म एव सहधर्मं स्त्रीसहितधर्मं ।

* एतावत्पर्यन्तमेतन्मत्तो न जातं परं तु इदानीं करिष्यामीत्यर्थः ।

प्रगृह्य राजा भृङ्गारं पाद्यमस्मै न्यवेदयत् ।
कारयामास सर्वाश्च क्रियास्तस्य महात्मनः ॥
ततः स राजा च्यवनं मधुपर्कं यथाविधि ।
ग्राहयामास चाव्यग्रो महात्मा नियतव्रतः १५
सत्कृत्य तं तथा विप्रमिदं पुनरथाब्रवीत् ।
भगवन्परवन्तौ स्वो ब्रूहि किं करवावहे ॥ १६
यदि राज्यं यदि धनं यदि गाः संशितव्रत ।
यज्ञदानानि च तथा ब्रूहि सर्वं ददामि ते १७
इदं गृहमिदं राज्यमिदं धर्मासनं च ते ।
राजा त्वमसि शाध्युर्वीमहं तु परवांस्त्वयि ॥
एवमुक्ते ततो वाक्ये च्यवनो भार्गवस्तदा ।
कुशिकं प्रत्युवाचेदं मुदा परमया युतः ॥ १९
न राज्यं कामये राजन्न धनं न च योषितः ।
न च गा न च वै देशान्न यज्ञं श्रूयतामिदम् २०
नियमं किञ्चिदारप्स्ये युवयोर्यदि रोचते ।
परिचर्योऽस्मि यत्ताभ्यां युवाभ्यामविशङ्कया ॥
एवमुक्ते तदा तेन दम्पती तौ जहर्षतुः ।
प्रत्यब्रूतां च तमृषिमेवमस्त्विति भारत ॥ २२
अथ तं कुशिको हृष्टः प्रावेशयदनुत्तमम् ।
गृहोद्देशं ततस्तस्य दर्शनीयमदर्शयत् ॥ २३
इयं शय्या भगवतो यथाकाममिहोष्यताम् ।
प्रयतिष्यावहे प्रीतिमाहर्तुं ते तपोधन ॥ २४
अथ सूर्योऽतिचक्राम तेषां संवदतां तथा ।
अथर्षिश्चोदयामास पानमन्नं तथैव च ॥ २५
तमपृच्छत्ततो राजा कुशिकः प्रणतस्तदा
किमन्नजातमिष्टं ते किमुपस्थापयाम्यहम् ॥२६
ततः स परया प्रीत्या प्रत्युवाच नराधिपम् ।
औपपत्तिकमाहारं प्रयच्छस्वेति भारत ॥ २७
तद्वचः पूजयित्वा तु तथेत्याह स पार्थिवः ।
यथोपपन्नमाहारं तस्मै प्रादाज्जनाधिप ॥ २८
ततः स भुक्त्वा भगवान्दंपती प्राह धर्मवित् ।
स्वप्तुमिच्छाम्यहं निद्रा बाधते मामिति प्रभो ॥
ततः शय्यागृहं प्राप्य भगवानृषिसत्तमः ।
संविवेश नरेशस्तु सपत्नीकः स्थितोऽभवत् ३०
न प्रबोध्योऽस्मि संसुप्त इत्युवाचाथ भार्गवः ।
संवाहितव्यौ मे पादौ जागृतव्यं च तेऽनिशम्
अविशङ्कस्तु कुशिकस्तथेत्येवाह धर्मवित् ।
न प्रबोधयतां तौ च दम्पती रजनीक्षये ॥ ३२
यथादेशं महर्षेस्तु शुश्रूषापरमौ तदा ।
बभूवतुर्महाराज प्रयतावथ दम्पती ॥ ३३
ततः स भगवान्विप्रः समादिश्य नराधिपम् ।
सुष्वापैकेन पार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम् ३४
स तु राजा निराहारः सभार्यः कुरुनन्दन ।
पर्युपासत तं हृष्टश्च्यवनाराधने रतः ॥ ३५
भार्गवस्तु समुत्तस्थौ स्वयमेव तपोधनः ।
अकिञ्चिदुक्त्वा तु गृहान्निश्चक्राम महातपाः॥
तमन्वगच्छतां तौ च क्षुधितौ श्रमकर्शितौ ।
भार्यापती मुनिश्रेष्ठस्तावेतौ नावलोकयत् ३७
तयोस्तु प्रेक्षतोरेव भार्गवाणां कुलोद्वहः ।
अन्तर्हितोऽभूद्राजेन्द्र ततो राजाऽपतत्क्षितौ
स मुहूर्तं समाश्वस्य सह देव्या महाद्युतिः ।
पुनरन्वेषणे यत्नमकरोत्परमं तदा ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनकुशिकसंवादे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

युधिष्ठिर उवाच ।
तस्मिन्नन्तर्हिते विप्रे राजा किमकरोत्तदा ।
भार्या चास्य महाभागा तन्मे ब्रूहि पितामह १

भीष्म उवाच ।
अदृष्ट्वा स महीपालस्तमृषिं सह भार्यया ।
परिश्रान्तो निववृते व्रीडितो नष्टचेतनः ॥ २

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५२ ॥

५३

तस्मिन्निति ॥ १ ॥

स प्रविश्य पुरीं दीनो नाभ्यभाषत किञ्चन।
तदेव चिन्तयामास च्यवनस्य विचेष्टितम्॥ ३
अथ शून्येन मनसा प्रविश्य स्वगृहं नृपः।
ददर्श शयने तस्मिन् शयानं भृगुनन्दनम्॥ ४
विस्मितौ तमृषिं दृष्ट्वा तदाश्चर्यं विचिन्त्य च।
दर्शनात्तस्य तु तदा विश्रान्तौ सम्बभूवतुः॥ ५
यथास्थानं च तौ स्थित्वा भूयस्तं संववाहतुः।
अथापरेण पार्श्वेन सुष्वाप स महामुनिः॥ ६
तेनैव च स कालेन प्रत्यबुद्ध्यत वीर्यवान्।
न च तौ चक्रतुः किञ्चिद्विकारं भयशङ्कितौ ७
प्रतिबुद्धस्तु स मुनिस्तौ प्रोवाच विशाम्पते।
तैलाभ्यङ्गो दीयतां मे स्नास्येऽहमिति भारत
तौ तथेति प्रतिश्रुत्य क्षुधितौ श्रमकर्शितौ।
शतपाकेन तैलेन महार्हेणोपतस्थतुः॥ ९
ततः सुखासीनमृषिं वाग्यतौ संववाहतुः।
न च पर्याप्तमित्याह भार्गवः सुमहातपाः॥१०
यदा तौ निर्विकारौ तु लक्षयामास भार्गवः।
तत उत्थाय सहसा स्नानशालां विवेश ह ११
क्लृप्तमेव तु तत्रासीत्स्नानीयं पार्थिवोचितम्
असत्कृत्य च तत्सर्वं तत्रैवान्तरधीयत॥ १२
स मुनिः पुनरेवाथ नृपतेः पश्यतस्तदा।
नासूयां चक्रतुस्तौ च दम्पती भरतर्षभ॥ १३
अथ स्नातः स भगवान्सिंहासनगतः प्रभुः।
दर्शयामास कुशिकं सभार्यं कुरुनन्दन॥ १४
संहृष्टवदनो राजा सभार्यः कुशिको मुनिम्।
सिद्धमन्नमिति प्रह्वो निर्विकारो न्यवेदयत् १५
आनीयतामिति मुनिस्तं चोवाच नराधिपम्।
स राजा समुपाजह्रे तदन्नं सह भार्यया॥ १६
मांसप्रकारान्विविधान्
शाकानि विविधानि च।
*वेसवारविकारांश्च
पानकानि लघूनि च॥ १७
रसालापूपकांश्चित्रान्मोदकानथ खाण्डवान्।
रसान्नानाप्रकारांश्च वन्यं च मुनिभोजनम्॥ १८
फलानि च विचित्राणि
राजभोज्यानि भूरिशः।
बदरेङ्गुदकाश्मर्य-
भल्लातकफलानि च॥ १९
गृहस्थानां च यद्भोज्यं यच्चापि वनवासिनाम्
सर्वमाहारयामास राजा शापभयात्ततः २०
अथ सर्वमुपन्यस्तमग्रतश्च्यवनस्य तत्।
ततः सर्वं समानीय तच्च शय्यासनं मुनिः २१
वस्त्रैः शुभैरवच्छाद्य भोजनोपस्करैः सह।
सर्वमादीपयामास च्यवनो भृगुनन्दनः २२
न च तौ चक्रतुः क्रोधं दम्पती सुमहामती।
तयोः संप्रेक्षतोरेव पुनरन्तर्हितोऽभवत्॥ २३
तथैव च स राजर्षिस्तस्थौ तां रजनीं तदा।
सभार्यो वाग्यतः श्रीमान्न च कोपं समाविशत्
नित्यसंस्कृतमन्नं तु विविधं राजवेश्मनि।
शयनानि च मुख्यानि परिषेकाश्च= पुष्कलाः॥
वस्त्रं च विविधाकारमभवत्समुपार्जितम्।
न शशाक ततो द्रष्टुमन्तरं च्यवनस्तदा २६
पुनरेव च विप्रर्षिः प्रोवाच कुशिकं नृपम्।
सभार्यो मां रथेनाशु वह यत्र ब्रवीम्यहम् २७
तथेति च प्राह नृपो निर्विशङ्कस्तपोधनम्।
क्रीडारथोऽस्तु भगवन्नुत सांग्रामिको रथः २८
इत्युक्तः स मुनी राज्ञा तेन हृष्टेन तद्वचः।
च्यवनः प्रत्युवाचेदं हृष्टः परपुरञ्जयम्॥ २९
सज्जीकुरु रथं क्षिप्रं यस्ते सांग्रामिको मतः।
सायुधः सपताकश्च शक्तीकनकयष्टिमान् ३०
किङ्किणीस्वननिर्घोषो युक्तस्तोरणकल्पनैः।
जाम्बूनदनिबद्धश्च परमेषुशतान्वितः॥ ३१
ततः स तं तथेत्युक्त्वा कल्पयित्वा महारथम्
भार्यां वामे धुरि तदा चात्मानं दक्षिणे तथा
त्रिदण्डं वज्रसूच्यग्रं प्रतोदं तत्र चादधत्।
सर्वमेतत्तथा दत्वा नृपो वाक्यमथाब्रवीत् ३३
भगवन्क्व रथो यातु ब्रवीतु भृगुनन्दन।
यत्र वक्ष्यसि विप्रर्षे तत्र यास्यति ते रथः ३४
एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाचाथ तं नृपम्।
इतः प्रभृति यातव्यं पदकं पदकं शनैः ३५
श्रमो मम यथा न स्यात्तथा मच्छन्दचारिणौ।
सुसुखं चैव वोढव्यो जनः सर्वश्च पश्यतु ३६
नोत्सार्याः पथिकाः केचित्तेभ्यो दास्ये वसून्यहम्
ब्राह्मणेभ्यश्च ये कामानर्थयिष्यन्ति मां पथि३७
सर्वान्दास्याम्यशेषेण धनं रत्नानि चैव हि।
क्रियतां निखिलेनैतन्मा विचारय पार्थिव ३८

* व्यञ्जनं ज्ञेयं वेसवार उपस्कर इति हलायुध.। = परिषेचनपात्रविशेषाः।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा भृत्यांस्तथाऽब्रवीत्
यद्यद्ब्रूयान्मुनिस्तत्तत्सर्वं देयमशङ्कितैः ॥ ३९
ततो रत्नान्यनेकानि स्त्रियो युग्यमजाविकम्
कृताकृतं च कनकं गजेन्द्राश्चाचलोपमाः ४०
अन्वगच्छन्त तमृषिं राजामात्याश्च सर्वशः ।
हाहाभूतं च तत्सर्वमासीन्नगरमार्तवत् ॥ ४१
तौ तीक्ष्णाग्रेण सहसा प्रतोदेन प्रतोदितौ ।
पृष्ठे विद्धौ कटे चैव निर्विकारौ तमूहतुः ४२
वेपमानौ निराहारौ पञ्चाशद्रात्रकर्शितौ ।
कथञ्चिदूहतुर्वीरौ दम्पती तं रथोत्तमम् ४३
बहुशो भृशविद्धौ तौ क्षरन्तौ च क्षतोद्भवम्
ददृशाते महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ४४
तौ दृष्ट्वा पौरवर्गस्तु भृशं शोकसमाकुलः ।
अभिशापभयत्रस्तो न च किञ्चिदुवाच ह ४५
द्वन्द्वशश्चाब्रुवन्सर्वे पश्यध्वं तपसो बलम् ।
क्रुद्धा अपि मुनिश्रेष्ठं वीक्षितुं नेह शक्नुमः ४६
अहो भगवतो वीर्यं महर्षेर्भावितात्मनः ।
राज्ञश्चापि सभार्यस्य धैर्यं पश्यत यादृशम् ४७
श्रान्तावपि हि कृच्छ्रेण रथमेनं समूहतुः ।
न चैतयोर्विकारं वै ददर्श भृगुनन्दनः ॥ ४८

भीष्म उवाच ।

ततः स निर्विकारौ तु दृष्ट्वा भृगुकुलोद्वहम्।
वसु विश्राणयामास यथा वैश्रवणस्तथा ॥४९
तत्रापि राजा प्रीतात्मा यथादिष्टमथाकरोत् ।
ततोऽस्य भगवान्प्रीतो बभूव मुनिसत्तमः ५०
अवतीर्य रथश्रेष्ठाद्दम्पती तौ मुमोच ह ।
विमोच्य चैतौ विधिवत्ततो वाक्यमुवाच ह
स्निग्धगम्भीरया वाचा भार्गवः सुप्रसन्नया ।
ददानि वां वरं श्रेष्ठं तं ब्रूतामिति भारत ॥ ५२
सुकुमारौ च तौ विद्धौ कराभ्यां मुनिसत्तमः
पस्पर्शामृतकल्पाभ्यां स्नेहाद्भरतसत्तम ॥ ५३
अथाब्रवीन्नृपो वाक्यं श्रमो नास्त्यावयोरिह ।
विश्रान्तौ च प्रभावात्ते ऊचतुस्तौ तु भार्गवम्
अथ तौ भगवान्प्राह प्रहृष्टश्च्यवनस्तदा ।
न वृथा व्याहृतं पूर्वं यन्मया तद्भविष्यति ५५
रमणीयः समुद्देशो गङ्गातीरमिदं शुभम् ।
किञ्चित्कालं व्रतपरो निवत्स्यामीह पार्थिव
गम्यतां स्वपुरं पुत्र विश्रान्तः पुनरेष्यसि ।
इहस्थं मां सभार्यस्त्वं द्रष्टासि श्वो नराधिप
न च मन्युस्त्वया कार्यः श्रेयस्ते समुपस्थितम् ५७
यत्काङ्क्षितं हृदिस्थं ते तत्सर्वं हि भविष्यति ।
इत्येवमुक्तः कुशिकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५८
प्रोवाच मुनिशार्दूलमिदं वचनमर्थवत् ।
न मे मन्युर्महाभाग पूतौ स्वो भगवंस्त्वया ५९
संवृत्तौ यौवनस्थौ स्वो वपुष्मंतौ बलान्वितौ
प्रतोदेन व्रणा ये मे सभार्यस्य त्वया कृताः ६०
तान्न पश्यामि गात्रेषु स्वस्थोऽस्मि सह भार्यया
इमां च देवीं पश्यामि वपुषाऽप्सरसोपमाम्
श्रिया परमया युक्तां तथा दृष्टा पुरा मया ।
तव प्रसादसंवृत्तमिदं सर्वं महामुने ॥ ६२
नैतच्चित्रं तु भगवंस्त्वयि सत्यपराक्रम ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं कुशिकं च्यवनस्तदा ६३
आगच्छेथाः सभार्यश्च त्वमिहेति नराधिप ।
इत्युक्तः समनुज्ञातो राजर्षिरभिवाद्य तम् ६४
प्रययौ वपुषा युक्तो नगरं देवराजवत् ।
तत एनमुपाजग्मुरमात्याः सपुरोहिताः ६५
बलस्था गणिकायुक्ताः सर्वाः प्रकृतयस्तथा ।
तैर्वृतः कुशिको राजा श्रिया परमया ज्वलन्
प्रविवेश पुरं हृष्टः पूज्यमानोऽथ बंदिभिः।
ततः प्रविश्य नगरं कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः
भुक्त्वा सभार्यो रजनीमुवास स महाद्युतिः

ततस्तु तौ नवमभिवीक्ष्य यौवनं
　परस्परं विगतरुजाविवामरौ ।
ननन्दतुः शयनगतौ वपुर्धरौ
　श्रिया युतौ द्विजवरदत्तया तदा ६७
अथाप्यृषिर्भृगुकुलकीर्तिवर्धन-
　स्तपोधनो वनमभिराममृद्धिमत् ।
मनीषया बहुविधरत्नभूषितं
　ससर्ज यन्न पुरि शतक्रतोरपि ॥ ६८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनकुशिकसंवादे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

भीष्म उवाच ।

ततः स राजा रात्र्यन्ते प्रतिबुद्धो महामनाः
कृतपूर्वाह्णिकः प्रायात्सभार्यस्तद्वनं प्रति ॥ १
ततो ददर्श नृपतिः प्रासादं सर्वकाञ्चनम् ।
मणिस्तम्भसहस्राढ्यं गन्धर्वनगरोपमम् ।
तत्र दिव्यानभिप्रायान्ददर्श कुशिकस्तदा ॥ २
पर्वतान् रूप्यसानूंश्च नलिनीश्च स पङ्कजाः ।
चित्रशालाश्च विविधास्तोरणानि च भारत
शाद्वलोपचितां भूमिं तथा काञ्चनकुट्टिमाम् ३
सहकारान्प्रफुल्लांश्च केतकोद्दालकान्वरान् ।
अशोकान्सहकुन्दांश्च फुल्लांश्चैवातिमुक्तकान्
चम्पकांस्तिलकान् भव्यान्पनसान्वंजुलानपि
पुष्पितान्कर्णिकारांश्च तत्र तत्र ददर्श ह ॥ ५
श्यामान्वारणपुष्पांश्च तथाऽष्टपदिका लताः ।
तत्र तत्र परिक्लृप्ता ददर्श स महीपतिः ॥ ६
रम्यान्पद्मोत्पलधरान्सर्वर्तुकुसुमांस्तथा ।
विमानप्रतिमांश्चापि प्रासादाञ्शैलसन्निभान्
शीतलानि च तोयानि क्वचिदुष्णानि भारत
आसनानि विचित्राणि शयनप्रवराणि च ॥ ८
पर्यङ्कान् रत्नसौवर्णान्परार्ध्यास्तरणावृतान् ।
भक्ष्यं भोज्यमनन्तं च तत्र तत्रोपकल्पितम् ९
वाणीवादाञ्शुकांश्चैव सारिकान्भृङ्गराजकान्
कोकिलाञ्छतपत्रांश्च सकोयष्टिककुक्कुभान् १०
मयूरान्कुक्कुटांश्चापि दात्यूहान् जीवजीवकान्
चकोरान्वानरान्हंसान्सारसांश्चक्रसाह्वयान्॥
समन्ततः प्रमुदितान्ददर्श सुमनोहरान् ।
क्वचिदप्सरसां संघान् गन्धर्वाणां च पार्थिव
कान्ताभिरपरांस्तत्र परिष्वक्तान्ददर्श ह ।
न ददर्श च तान्भूयो ददर्श च पुनर्नृपः ॥ १३
गीतध्वनिं सुमधुरं तथैवाध्यापनध्वनिम् ।
हंसान्सुमधुरांश्चापि तत्र शुश्राव पार्थिवः १४
तं दृष्ट्वाऽत्यद्भुतं राजा मनसाऽचिन्तयत्तदा ।
स्वप्नोऽयं चित्तविभ्रंश उताहो सत्यमेव तु १५
अहो सह शरीरेण प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
उत्तरान्वा कुरून्पुण्यानथवाऽप्यमरावतीम् १६
किञ्चेदं महदाश्चर्यं संपश्यामीत्यचिन्तयत् ।
एवं संचिन्तयन्नेव ददर्श मुनिपुङ्गवम् ॥ १७
तस्मिन्विमाने सौवर्णे मणिस्तम्भसमाकुले ।
महार्हे शयने दिव्ये शयानं भृगुनन्दनम् १८
तमभ्ययात्प्रहर्षेण नरेन्द्रः सह भार्यया ।
अन्तर्हितस्ततो भूयश्च्यवनः शयनं च तत् १९
ततोऽन्यस्मिन्वनोद्देशे पुनरेव ददर्श तम् ।
कौश्यां बृस्यां समासीनं जपमानं महाव्रतम्
एवं योगबलाद्विप्रो मोहयामास पार्थिवम् ।
क्षणेन तद्वनं चैव ते चैवाप्सरसां गणाः २१
गन्धर्वाः पादपाश्चैव सर्वमन्तरधीयत ।
निःशब्दमभवच्चापि गङ्गाकूलं पुनर्नृप ॥ २२
कुशवल्मीकभूयिष्ठं बभूव च यथा पुरा ।
ततः स राजा कुशिकः सभार्यस्तेन कर्मणा
विस्मयं परमं प्राप्तस्तद्दृष्ट्वा महदद्भुतम् ।
ततः प्रोवाच कुशिको भार्यां हर्षसमन्वितः २४
पश्य भद्रे यथा भावाश्चित्रा दृष्टाः सुदुर्लभाः ।
प्रसादाद्भृगुमुख्यस्य किमन्यत्र तपोबलात् २५
तपसा तदवाप्यं हि यत्तु शक्यं मनोरथैः ।
त्रैलोक्यराज्यादपि हि तप एव विशिष्यते २६
तपसा हि सुतप्तेन शक्यो मोक्षस्तपोबलात्
अहो प्रभावो ब्रह्मर्षेश्च्यवनस्य महात्मनः २७
इच्छयैष तपोवीर्यादन्याँल्लोकान्सृजेदपि ।
ब्राह्मणा एव जायेरन्पुण्यवाग्बुद्धिकर्मणः २८
उत्सहेदिह कृत्वैव कोऽन्यो वै च्यवनादृते ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं लोके राज्यं हि सुलभं नरैः २९
ब्राह्मण्यस्य प्रभावाद्धि रथे युक्तौ स्वधुर्यवत् ।
इत्येवं चिन्तयानः स विदितश्च्यवनस्य वै ३०
संप्रेक्ष्योवाच नृपतिं क्षिप्रमागम्यतामिति ।
इत्युक्तः सहभार्यस्तु सोऽभ्यगच्छन्महामुनिम्
शिरसा वन्दनीयं तमवन्दत च पार्थिवः ।
तस्याशिषः प्रयुज्याथ स मुनिस्तं नराधिपम्
निषीदेत्यब्रवीद्धीमान्सान्त्वयन्पुरुषर्षभः ॥ ३२
ततः प्रकृतिमापन्नो भार्गवो नृपते नृपम् ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा तर्पयन्निव भारत ३३
राजन्सम्यग्जितानीह पञ्च पञ्च स्वयं त्वया ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि कृच्छ्रान्मुक्तोऽसि तेन वै ॥

५४

तत इति ॥ १ ॥

सम्यगाराधितः पुत्र त्वया प्रवदतां वर ।
न हि ते वृजिनं किञ्चित्सुसूक्ष्ममपि विद्यते ३५
अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि यथागतम् ।
प्रीतोस्मि तव राजेन्द्र वरश्च प्रतिगृह्यताम् ३६
कुशिक उवाच ।
अग्निमध्ये गतेनेव भगवन्सन्निधौ मया ।
वर्तितं भृगुशार्दूल यन्न दग्धोऽस्मि तद्वहु ३७
एष एव वरो मुख्यः प्राप्तो मे भृगुनन्दन ।
यत्प्रीतोऽसि मया ब्रह्मन् कुलं त्रातं च मेऽनघ
एष मेऽनुग्रहो विप्र जीविते च प्रयोजनम् ।
एतद्राज्यफलं चैव तपसश्च फलं मम ॥ ३९
यदि त्वं प्रीतिमान्विप्र मयि वै भृगुनन्दन ।
अस्ति मे संशयः कश्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनकुशिकसंवादे
चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

च्यवन उवाच ।
वरश्च गृह्यतां मत्तो यश्च ते संशयो हृदि ।
तं प्रब्रूहि नरश्रेष्ठ सर्वं सम्पादयामि ते ॥ १
कुशिक उवाच ।
यदि प्रीतोसि भगवंस्ततो मे वद भार्गव ।
कारणं श्रोतुमिच्छामि मद्गृहे वासकारितम्
शयनं चैकपार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम् ।
अकिञ्चिदुक्त्वा गमनं बहिश्च मुनिपुङ्गव ॥३
अन्तर्धानमकस्माच्च पुनरेव च दर्शनम् ।
पुनश्च शयनं विप्र दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४
तैलाभ्यक्तस्य गमनं भोजनं च गृहे मम ।
समुपानीय विविधं यद्दग्धं जातवेदसा ॥ ५
निर्याणं च रथेनाशु सहसा यत्कृतं त्वया ।
धनानां च विसर्गस्य वनस्यापि च दर्शनम् ६
प्रासादानां बहूनां च काञ्चनानां महामुने ।
मणिविद्रुमपादानां पर्यङ्काणां च दर्शनम् ॥ ७
पुनश्चादर्शनं तस्य श्रोतुमिच्छामि कारणम् ।
अतीव ह्यत्र मुह्यामि चिन्तयानो भृगूद्वह ॥ ८
न चैवात्राधिगच्छामि सर्वस्यास्य विनिश्चयम्
एतदिच्छामि कार्त्स्न्येन सत्यं श्रोतुं तपोधन
च्यवन उवाच ।
शृणु सर्वमशेषेण यदिदं येन हेतुना ।
न हि शक्यमनाख्यातुमेवं पृष्टेन पार्थिव ॥१०
पितामहस्य वदतः पुरा देवसमागमे ।
श्रुतवानस्मि यद्राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ११
ब्रह्मक्षत्रविरोधेन भविता कुलसङ्करः ।
पौत्रस्ते भविता राजंस्तेजोवीर्यसमन्वितः १२
ततस्ते कुलनाशार्थमहं त्वां समुपागतः ।
चिकीर्षन्कुशिकोच्छेदं सन्दिधक्षुः कुलं तव१३
ततोऽहमागम्य पुरे त्वामवोचं महीपते ।
नियमं कञ्चिदारप्स्ये शुश्रूषा क्रियतामिति १४
न च ते दुष्कृतं किञ्चिदहमासादयं गृहे ।
तेन जीवसि राजर्षे न भवेथास्त्वमन्यथा १५
एवं बुद्धिं समास्थाय दिवसानेकविंशतिम् ।
सुप्तोस्मि यदि मां कश्चिद्बोधयेदिति पार्थिव
यदा त्वया सभार्येण संसुप्तो न प्रबोधितः ।
अहं तदैव ते प्रीतो मनसा राजसत्तम ॥ १७
उत्थाय चास्मि निष्क्रांतो यदि मां त्वं महीपते
पृच्छेः क यास्यसीत्येवं शपेयं त्वामिति प्रभो ॥
अन्तर्हितः पुनश्चास्मि पुनरेव च ते गृहे ।
योगमास्थाय संसुप्तो दिवसानेकविंशतिम् १९
क्षुधितौ मामसूयेथां श्रमाद्वेति नराधिप ।
एवं बुद्धिं समास्थाय कर्शितौ वां क्षुधा मया

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्याय. ॥ ५४ ॥

५५

वरश्चेति—

न च तेऽभूत्सुसूक्ष्मोऽपि मन्युर्मनसि पार्थिव।
सभार्यस्य नरश्रेष्ठ तेन ते प्रीतिमानहम् ॥ २१
भोजनं च समानाय्य यत्तदा दीपितं मया।
क्रुद्ध्येथा यदि मात्सर्यादिति तन्मर्षितं च मे
ततोऽहं रथमारुह्य त्वामवोचं नराधिप।
सभार्यो मां वहस्वेति तच्च त्वं कृतवांस्तथा २३
अविशङ्को नरपते प्रीतोऽहं चापि तेन ह।
धनोत्सर्गेऽपि च कृते न त्वां क्रोधः×प्रधर्षयत्
ततः प्रीतेन ते राजन् पुनरेतत्कृतं तव।
सभार्यस्य वनं भूयस्तद्विद्धि मनुजाधिप २५
प्रीत्यर्थं तव चैतन्मे स्वर्गसंदर्शनं कृतम्।
यत्ते वनेऽस्मिन्नृपते दृष्टं दिव्यं निदर्शनम् २६
स्वर्गोद्देशस्त्वया राजन् सशरीरेण पार्थिव।
मुहूर्तमनुभूतोऽसौ सभार्येण नृपोत्तम ॥ २७
निदर्शनार्थं तपसो धर्मस्य च नराधिप।
तत्र याऽऽसीत्स्पृहा राजंस्तच्चापि विदितं मया
ब्राह्मण्य काङ्क्षसे हि त्वं तपश्च पृथिवीपते।
अवमन्य नरेन्द्रत्वं देवेन्द्रत्वं च पार्थिव ॥ २९
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वं ब्राह्मण्यं तात दुर्लभम्।
ब्राह्मणे सति चर्षित्वमृषित्वे च तपस्विता ३०
भविष्यत्येष ते कामः कुशिकात्कौशिको द्विजः
तृतीयं पुरुषं ×तुभ्यं ब्राह्मणत्वं गमिष्यति ३१
वंशस्ते पार्थिवश्रेष्ठ भृगूणामेव तेजसा।
पौत्रस्ते भविता विप्र तपस्वी पावकद्युतिः ३२
यः स देवमनुष्याणां भयमुत्पादयिष्यति।
त्रयाणामेव लोकानां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३३
वरं गृहाण राजर्षे यत्ते मनसि वर्तते।
तीर्थयात्रां गमिष्यामि पुरा कालोऽभिवर्तते

कुशिक उवाच।

एष एव वरो मेऽद्य यत्त्वं प्रीतो महामुने
भवत्वेतद्यथाऽऽत्थ त्वं भवेत्पौत्रो ममानघ ३५
ब्राह्मण्यं मे कुलस्यास्तु भगवन्नेष मे वरः।
पुनश्चाख्यातुमिच्छामि भगवन्विस्तरेण वै ३६
कथमेष्यति विप्रत्वं कुलं मे भृगुनन्दन।
कश्चासौ भविता बन्धुर्मम कश्चापि संमतः ३७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनकुशिकसंवादो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## ५६

च्यवन उवाच।

अवश्यं कथनीयं मे तवैतन्नरपुङ्गव।
यदर्थं त्वाहमुच्छेत्तुं संप्राप्तो मनुजाधिप ॥ १
भृगूणां क्षत्रिया याज्या नित्यमेतज्जनाधिप।
ते च भेदं गमिष्यन्ति दैवयुक्तेन हेतुना ॥ २
क्षत्रियाश्च भृगून्सर्वान्वधिष्यन्ति नराधिप।
आ गर्भादनुकृन्तन्तो दैवदण्डनिपीडिताः ३
तत उत्पत्स्यतेऽस्माकं कुले गोत्रविवर्धनः।
ऊर्वो नाम महातेजा ज्वलनार्कसमद्युतिः ॥ ४
स त्रैलोक्यविनाशाय कोपाग्निं जनयिष्यति
महीं सपर्वतवनां यः करिष्यति भस्मसात् ५
कञ्चित्कालं तु वह्निं च स एव शमयिष्यति।
समुद्रे वडवावक्त्रे प्रक्षिप्य मुनिसत्तमः ॥ ६
पुत्रं तस्य महाराज ऋचीकं भृगुनन्दनम्।
साक्षात्कृत्स्नो धनुर्वेदः समुपस्थास्यतेऽनघ ७
क्षत्रियाणामभावाय दैवयुक्तेन हेतुना।
स तु तं प्रतिगृह्यैव पुत्रे संक्रामयिष्यति ॥ ८
जमदग्नौ महाभागे तपसा भावितात्मनि।
स चापि भृगुशार्दूलस्तं वेदं धारयिष्यति ॥९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

२ अत्रभाव आर्ष ४ त्वत्त

५६

अवश्यमिति ॥ १ ॥

कुलात्तु तव धर्मात्मन्कन्यां सोऽधिगमिष्यति
उद्भावनार्थं भवतो वंशस्य भरतर्षभ ॥ १०
गाधेर्दुहितरं प्राप्य पौत्रीं तव महातपाः ।
ब्राह्मणं क्षत्रधर्माणं पुत्रमुत्पादयिष्यति ॥ ११
क्षत्रियं विप्रकर्माणं बृहस्पतिमिवौजसा ।
विश्वामित्रं तव कुले गाधेः पुत्रं सुधार्मिकम्१२
तपसा महता युक्तं प्रदास्यति महाद्युते ।
स्त्रियौ तु कारणं तत्र परिवर्ते भविष्यतः ॥१३
पितामहनियोगाद्वै नान्यथैतद्भविष्यति ।
तृतीये पुरुषे तुभ्यं ब्राह्मणत्वमुपैष्यति ।
भविता त्वं च संबंधी भृगूणां भावितात्मनाम्
भीष्म उवाच ।
कुशिकस्तु मुनेर्वाक्यं च्यवनस्य महात्मनः।
श्रुत्वा हृष्टोऽभवद्राजा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥
एवमस्त्विति धर्मात्मा तदा भरतसत्तम ।
च्यवनस्तु महातेजाः पुनरेव नराधिपम् १६
वरार्थं चोदयामास तमुवाच स पार्थिवः ।
बाढमेवं करिष्यामि कामं त्वत्तो महामुने १७
ब्रह्मभूतं कुलं मेऽस्तु धर्मे चास्य मनो भवेत्१८
एवमुक्तस्तथेत्येवं प्रत्युक्त्वा च्यवनो मुनिः ।
अभ्यनुज्ञाय नृपतिं तीर्थयात्रां ययौ तदा १९
एतत्ते कथितं सर्वमशेषेण मया नृप ।
भृगूणां कुशिकानां च अभिसम्बन्धकारणम्
यथोक्तमृषिणा चापि तदा तदभवन्नृप ।
जन्म रामस्य च मुनेर्विश्वामित्रस्य चैव हि २१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि च्यवनकुशिकसंवादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

युधिष्ठिर उवाच ।
मुह्यामीव निशम्याद्य चिन्तयानः पुनः पुनः
हीनां पार्थिवसंघातैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम्
प्राप्य राज्यानि शतशो महीं जित्वाऽथ भारत
कोटिशः पुरुषान्हत्वा परितप्ये पितामह २
का नु तासां वरस्त्रीणां समवस्था भविष्यति
या हीनाः पतिभिः पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा ३
वयं हि तान् कुरून्हत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि वा
अवाक्शीर्षाः पतिष्यामो नरके नात्र संशयः
शरीरं योक्तुमिच्छामि तपसोग्रेण भारत ।
उपदिष्टमिहेच्छामि तत्त्वतोऽहं विशांपते ॥ ५
वैशम्पायन उवाच ।
युधिष्ठिरस्य तद्वाक्य श्रुत्वा भीष्मो महामनाः
परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या युधिष्ठिरमभाषत ॥ ६
रहस्यमद्भुतं चैव शृणु वक्ष्यामि यत्त्वयि ।
या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे विशांपते ७
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
आयुःप्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो ८
ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं संपत्तथैव च ।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ ॥ ९
धनं प्राप्नोति तपसा मौनेनाज्ञां प्रयच्छति ।
उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १०
अहिंसायाः फलं रूपं दीक्षाया जन्म वै कुले
फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्
पयोभक्षो दिवं याति दानेन द्रविणाधिकः ।
गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्राद्धेन संततिः १२

---

आख्यायिकातात्पर्यं सङ्गृह्णाति-**यथोक्तमिति** । ब्राह्मणस्यापि रामस्य क्रौर्यं, क्षत्रियस्यापि विश्वामित्रस्य ब्राह्मण्यमिति वैपरीत्यं प्राकृतऋषिसङ्कल्पानुसारादेव न त्वन्यथा स्वभावविपर्ययोऽस्तीति भाव ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५६ ॥

५७

एव ब्राह्मण्यस्यातिश्रेष्ठत्वेऽपि दौर्लभ्यं क्षत्रियधर्मस्य हिंस्रत्वेन स्वस्य निन्द्यत्वं मन्वान' शङ्कते—**मुह्यामीत्यादिना**। त्वदुक्तं निशम्य तस्य तात्पर्यं चिन्तयान. ॥१॥ वीरधर्मस्य श्रैष्ठ्यं विवक्षुस्तपआदीना तावत्प्राशस्त्यं दर्शयन् भीष्म उवाच—**रहस्यमित्यादिना** । या गति. फल येन साधनेन प्रेत्यभावे मरणानन्तरम् ॥ ६ ॥ मौनेन जगदाज्ञाकारी भवतीत्यर्थ. । जीवितं आयु ॥ १० ॥

गवाढ्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशिनां
स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत्
नित्यस्नायी भवेद्दक्षः सन्ध्ये तु द्वे जपन्द्विजः
मरुं साधयतो राजन्नाकपृष्ठमनाशके ॥ १४
स्थंडिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च ।
चीरवल्कलवासोभिर्वासांस्याभरणानि च
शय्यासनानि यानानि योगयुक्ते तपोधने ।
अग्निप्रवेशो नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६
रसानां प्रतिसंहारात्सौभाग्यमिह विन्दति ।
आमिषप्रतिसंहारात्प्रजा ह्यायुष्मती भवेत् ॥
उदवासं वसेद्यस्तु स नराधिपतिर्भवेत् ।
सत्यवादी नरश्रेष्ठ दैवतैः सह मोदते ॥ १८
कीर्तिर्भवति दानेन तथाऽऽरोग्यमहिंसया ।
द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं चापि पुष्कलम्
पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती ।
अन्नस्य तु प्रदानेन तृप्यन्ते-कामभोगतः ॥ २०
सान्त्वदः सर्वभूतानां सर्वशोकैर्विमुच्यते ।
देवशुश्रूषया राज्यं दिव्यं रूपं नियच्छति २१
दीपालोकप्रदानेन चक्षुष्मान्भवते नरः ।
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति २२
गन्धमाल्यप्रदानेन कीर्तिर्भवति पुष्कला ।
केशश्मश्रु धारयतामग्र्या भवति संततिः॥२३
उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च पार्थिव ।
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते२४
दासीदासमलङ्कारान्क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
ब्रह्मदेयां सुतां दत्वा प्राप्नोति मनुजर्षभ ॥ २५
क्रतुभिश्चोपवासैश्च त्रिदिवं याति भारत ।
लभते च शिवं ज्ञानं फलपुष्पप्रदो नरः २६

सुवर्णशृंगैस्तु विराजिताना
गवां सहस्रस्य नरः प्रदानात् ।
प्राप्नोति पुण्यं दिवि देवलोक-
मित्येवमाहुर्दिवि देवसंघाः ॥ २७
प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां
कांस्योपदोहां कनकाग्रशृङ्गीम् ।
तैस्तैर्गुणैः कामदुहास्य भूत्वा
नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ॥ २८
यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा-
स्तावत्कालं प्राप्य स गोप्रदानात् ।
पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्व-
मासप्तमं तारयते परत्र ॥ २९
सदक्षिणां काञ्चनचारुशृङ्गीं
कांस्योपदोहां द्रविणोत्तरीयाम् ।
धेनुं तिलानां ददतो द्विजाय
लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥ ३०
स्वकर्मभिर्मानवं संनिरुद्धं
तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम् ।
महार्णवे नौरिव वायुयुक्ता
दानं गवां तारयते परत्र ॥ ३१
यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्या
भूमिप्रदानं च करोति विप्रे ।
ददाति चान्नं विधिवच्च यश्च
स लोकमाप्नोति पुरन्दरस्य ॥ ३२
नैवेशिकं सर्वगुणोपपन्नं
ददाति वै यस्तु नरो द्विजाय ।
स्वाध्यायचारित्र्यगुणान्विताय
तस्यापि लोकाः कुरुषूत्तरेषु । ३३
धुर्यप्रदानेन गवां तथा वै
लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम् ।
स्वर्गाय चाहुस्तु हिरण्यदानं
ततो विशिष्टं कनकप्रदानम् ॥ ३४
छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं
यानं तथोपानहसंप्रदाने ।
वस्त्रप्रदानेन फलं स्वरूपं
गंधप्रदानात्सुरभिर्नरः स्यात् ॥ ३५
पुष्पोपगं वाऽथ फलोपगं वा
यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय ।
सस्त्रीकमृद्धं बहुरत्नपूर्णं
लभत्ययत्नोपगतं गृहं वै ॥ ३६

---

क्रतुं प्रजापतिं प्राणायामैः प्रजापतिलोकं प्राप्नोतीत्यर्थः १३ दक्षोऽपि प्रजापतिविशेषः मरुं अनुदकं अनाशकं अनाहारः ॥ १४ ॥ प्रतिसंहारात्त्यागात् ॥ १७ ॥ उपवासः सर्वभोगत्यागः दीक्षा जपादिनियमस्वीकारः अभिषेकस्त्रिषवणं स्नानं त्रयाणां समुच्चयः ॥ २४ ॥ शिवं बन्धविच्छेदहेतुर्ज्ञानं फलपुष्पादिना परमेश्वराराधनात्प्राप्यत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ नैवेशिकं गृहोपस्कर शय्यादि ॥ ३३ ॥ उपानहेत्यदन्तत्वमार्षम् ॥ ३५ ॥

भक्ष्यान्नपानीयरसप्रदाता
सर्वान्समाप्नोति रसान्प्रकामम् ।
प्रतिश्रयाच्छादनसंप्रदाता
प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र ॥ ३७
स्रग्धूपगन्धानुलेपनानि
स्नानानि माल्यानि च मानवो यः ।
दद्याद्द्विजेभ्यः स भवेदरोग-
स्तथाभिरूपश्च नरेन्द्रलोके ॥ ३८
बीजैरशून्यं शयनैरुपेतं
दद्याद्गृहं यः पुरुषो द्विजाय ।
पुण्याभिरामं बहुरत्नपूर्णं
लभत्यधिष्ठानवरं स राजन् ॥ ३९
सुगन्धचित्रास्तरणोपधानं
दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय ।
रूपान्वितां पक्षवतीं मनोज्ञां
भार्यामयत्नोपगतां लभेत्सः ॥ ४०
पितामहस्यानवरो वीरशायी भवेन्नरः ।
नाधिकं विद्यते यस्मादित्याहुः परमर्षयः ४१

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतात्मा कुरुनन्दनः
नाश्रमेऽरोचयद्वासं वीरमार्गाभिकांक्षया ४२
ततो युधिष्ठिरः प्राह पांडवान्पुरुषर्षभ ।
पितामहस्य यद्वाक्यं तद्वो रोचत्विति प्रभुः
ततस्तु पांडवाः सर्वे द्रौपदी च यशस्विनी ।
युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं बाढमित्यभ्यपूजयन् ४४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

युधिष्ठिर उवाच ।

आरामाणां तडागानां यत्फलं कुरुपुङ्गव ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽद्य भरतर्षभ ॥ १

भीष्म उवाच ।

सुप्रदर्शा बलवती चित्रा धातुविभूषिता ।
उपेता सर्वभूतैश्च श्रेष्ठा भूमिरिहोच्यते ॥ २
तस्याः क्षेत्रविशेषाश्च तडागानां च बन्धनम् ।
औदकानि च सर्वाणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ३
तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयस्तडागवान् ॥ ४
अथवा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम् ।
कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥ ५
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ।
तडागसुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम् ॥ ६
चतुर्विधाना भूतानां तडागमुपलक्षयेत् ।
तडागानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम्
देवा मनुष्यगन्धर्वाः पितरोरगराक्षसाः ।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम्
तस्मात्तांस्ते प्रवक्ष्यामि तडागे ये गुणाः स्मृताः
या च तत्र फलावाप्तिर्ऋषिभिः समुदाहृता ९

---

अधिष्ठानवरं ध्रुवपदम् ॥ ३९ ॥ पक्षवतीं महाकुलोद्भवाम् ॥ ४० ॥ तात्पर्यमाह-**पितामहस्येति** अनवर समान यस्मात् पितामहात् ॥ ४१ ॥ **तस्येति** । यज्ञादिष्वरुचिं वीरमार्गे चापेक्षा लेभे इत्यर्थ ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

५८

एवं विशोकीकृत स्वस्थश्च राजा सर्ववर्णसाधारणान् धनसाध्यान्धर्मांस्तावत्पृच्छति-**आरामाणामिति** ॥ १ ॥ बलवती बहुसस्योत्पादिका ॥ २ ॥ **औदकानि** खातानि तडागानि ॥ ३ ॥ त्रिषु पृथिव्यन्तरिक्षस्वर्गेषु तडागवान् तडागकृत् ॥ ४ ॥ मित्राणा सदनमिवोपकारकं सस्योत्पादनादिना मैत्रं मित्रस्य सूर्यस्येदं प्रीतिकरं मित्राणा देवाना विवर्धनं पोषकम् ॥ ५ ॥ क्षेत्रवृद्धिहेतुत्वात्तडागं महाश्रयमुपलक्षयेदित्युत्तरेणापि सम्बन्ध ॥ ६ ॥

॰ भीष्म उवाच इति पाठ ।

वर्षाकाले तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १०
शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।
गोसहस्रस्य स प्रेत्य लभते फलमुत्तमम् ॥ ११
हेमन्तकाले सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥ १२
यस्य वै शैशिरे काले तडागे सलिलं भवेत् ।
तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १३
तडागं सुकृतं यस्य वसंते तु महाश्रयम् ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते ॥ १४
निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति ।
वाजिमेधफलं तस्य फलं वै मुनयो विदुः १५
स कुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये ।
गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा ॥
तडागे यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्
मृगपक्षिमनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् १७
यत्पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च ।
तडागे यस्य तत्सर्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते १८
दुर्लभं सलिलं तात विशेषेण परत्र वै ।
पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती १९
तिलान्ददत पानीयं दीपान्ददत जाग्रत ।
ज्ञातिभिः सह मोदध्वमेतत्प्रेत्य सुदुर्लभम् २०
सर्वदानैर्गुरुतरं सर्वदानैर्विशिष्यते ।
पानीयं नरशार्दूल तस्माद्दातव्यमेव हि २१

एवमेतत्तडागस्य कीर्तितं फलमुत्तमम् ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वृक्षाणामवरोपणम् ॥ २२
स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥
एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम् ॥
लभते नाम लोके च पितृभिश्च महीयते ।
देवलोके गतस्यापि नाम तस्य न नश्यति २५
अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत ।
तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षांश्च रोपयेत् ॥ २६
तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ।
परलोकगतः स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान्
पुष्पैः सुरगणान्वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितॄन्
छायया चातिथिं तात पूजयन्ति महीरुहः २८
किंनरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः ।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान् २९
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान् ।
वृक्षदं पुत्रवद्वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु ॥ ३०
तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोर्थिना सदा
पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥
तडागकृद्वृक्षरोपी इष्टयज्ञश्च यो द्विजः ।
एते स्वर्गे महीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः ३२
तस्मात्तडागं कुर्वीत आरामांश्चैव रोपयेत् ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैः सत्यं च सततं वदेत् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि आरामतडागवर्णनं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

युधिष्ठिर उवाच ।

यानीमानि बहिर्वेद्यां दानानि परिचक्षते । तेभ्यो विशिष्टं किं दानं मतं ते कुरुपुङ्गव ॥ १

वृक्षाः वटादयः गुल्माः कुशस्तम्बादय लता वृक्षाद्यारूढाः पाटल्यादयः वल्यः भूम्या प्रतताः कूश्माण्डादय त्वक्सारा वेण्वादयः तृणजातयः उलपादय ॥ २३ ॥ **पुत्रास्ते धर्मतः स्मृता इति** । अपुत्रेणावश्यं पुत्रफलार्थिना तडागा आरामाश्च कर्तव्या इति दर्शितम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

५९

दातारं कथं दानमन्वेतीति पृच्छति—**यानीति** । दातृप्रतिग्रहीत्रोः परलोके सम्बन्धाभावादिति भावः ॥ १॥

कौतूहलं हि परमं तत्र मे विद्यते प्रभो।
दातारं दत्तमन्वेति यद्दानं तत्प्रचक्ष्व मे ॥ २

भीष्म उवाच।

अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः।
यच्चाभिलषितं दद्यात्तृषितायाभियाचते ॥ ३
दत्तं मन्येत यद्दत्वा तद्दानं श्रेष्ठमुच्यते।
दत्तं दातारमन्वेति यद्दानं भरतर्षभ ॥ ४
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च।
एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम्५
एतानि पुरुषव्याघ्र साधुभ्यो देहि नित्यदा।
दानानि हि नरं पापान्मोक्षयन्ति न संशयः६
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ७
प्रियाणि लभते नित्यं प्रियदः प्रियकृत्तथा।
प्रियो भवति भूतानामिह चैव परत्र च ॥ ८
याचमानमभीमानादनासक्तमकिञ्चनम्।
यो नार्चति यथाशक्ति स नृशंसो युधिष्ठिर९
अमित्रमपि चेद्दीनं शरणैषिणमागतम्।
व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः॥ १०
कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात्क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः॥११
क्रियानियमितान्साधून् पुत्रदारैश्च कर्शितान्
अयाचमानान्कौन्तेय सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत्१२
आशिषं ये न देवेषु न च मर्त्येषु कुर्वते।
अर्हन्तो नित्यसन्तुष्टास्तथा लब्धोपजीविनः
आशीविषसमेभ्यश्च तेभ्यो रक्षस्व भारत।
तान्युक्तैरुपजिज्ञास्यस्तथा द्विजवरोत्तमान् ॥
कृतैरावसथैर्नित्यं संप्रेष्यैः सपरिच्छदैः।
निमन्त्रयेथाः कौरव्य सर्वकामसुखावहैः १५
यदि ते प्रतिगृह्णीयुः श्रद्धापूतं युधिष्ठिर।
कार्यमित्येव मन्वाना धार्मिकाः पुण्यकर्मिणः॥
विद्यास्नाता व्रतस्नाता ये व्यपाश्रित्य जीविनः
गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणाः संशितव्रताः १७
तेषु शुद्धेषु दान्तेषु स्वदारपरितोषिषु।
यत्करिष्यसि कल्याणं तत्ते लोके युधांपते॥
यथाग्निहोत्रं सुहुतं सायंप्रातर्द्विजातिना।
तथा दत्तं द्विजातिभ्यो भवत्यथ यतात्मसु १९
एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः।
विशिष्टः सर्वयज्ञेभ्यो ददतस्तात वर्तताम् २०
निवापदानसलिलस्तादृशेषु युधिष्ठिर।
निवसन्पूजयंश्चैव तेष्वानृण्यं नियच्छति॥ २१
य एवं नैव कुप्यन्ते न लुभ्यन्ति तृणेष्वपि।
त एव नः पूज्यतमा ये चापि प्रियवादिनः२२
एते न बहु मन्यन्ते न प्रवर्तन्ति चापरे।
पुत्रवत्परिपाल्यास्ते नमस्तेभ्यस्तथाऽभयम्॥
ऋत्विक्पुरोहिताचार्या मृदुब्रह्मधरा हि ते।
क्षात्रेणापि हि संसृष्टं तेजः शाम्यति वै द्विजे
अस्ति मे बलवानस्मि राजास्मीति युधिष्ठिर
ब्राह्मणान्मा च पर्यश्नीर्वासोभिरशनेन च २५
यच्छोभार्थं बलार्थं वा वित्तमस्ति तवानघ।
तेन ते ब्राह्मणाः पूज्याः स्वधर्ममनुतिष्ठता॥
नमस्कार्यास्तथा विप्रा वर्तमाना यथातथम्।
यथासुखं यथोत्साहं ललन्तु त्वयि पुत्रवत् २७
को ह्यक्षयप्रसादानां सुहृदामल्पतोषिणाम्।
वृत्तिमर्हत्यवक्षेप्तुं त्वदन्यः कुरुसत्तम ॥ २८

---

**अभयमिति**। यथा स्वय कस्मैचिदभय दीयते व्यसने वाऽनुग्रह क्रियते स पुन काले सति सामर्थ्ये आनृण्यार्थं स्वस्मै अभयं ददात्यनुग्रहं च करोति एवं परत्रापीत्यर्थ· ॥ ३ ॥ यद्दत्वा दत्तं मन्येत नत्विद मदीयं दानमिति मन्यते स आस्तिक श्रद्धावान्दानफलं लभत इत्यर्थ· ॥४॥ अभीमानात् अतिसमर्थोऽयामित्यभिमानं स्वमनस्येव कृत्वा याचमानम् ॥९॥ कृशायेत्यादिचतुर्थी षष्ठ्यर्थे ॥११॥ क्रियानियमितान् स्वधर्मयन्त्रितान् ॥ १२ ॥ येऽन्नार्थं देवादीन्नार्थयन्ते तेभ्य आत्मानं रक्षस्वेत्युक्तम् तत्र रक्षणप्रकारमाह—**तानिति**। युक्तैश्चारै· मुक्तैरिति पाठे निसृष्टैर्नरै उपजिज्ञास्य निमन्त्रयेथा इति सम्बन्ध ॥१४॥ आवसथैरावसथादिसमर्पणेन ॥१५॥ **कार्यमिति**। धर्मार्थमेव धर्मं कुर्वन्ति न तु फलान्तरार्थमिति भाव ॥ १६ ॥ व्यपाश्रित्य प्रभोराश्रयमकृत्वा जीवितुं स्वभावाः ॥ १७ ॥ ददतः दातुस्तव वर्तता सर्वदाऽस्तु ॥ २० ॥ यज्ञविशेषणं **निवापदानसलिल इति**। निवाप पितृतर्पण तद्वदेव दानादि यस्मिन्स तथा तादृशेषु निवसन् तानाश्रित्य स्थित सन् आनृण्य देवादीना निवापो दानमदश इति पाठे दानं महादानम् ॥ २१ ॥ एते दातारं न बहु मन्यन्ते निःस्पृहत्वात् तेभ्यो नमोऽस्तु तथाऽभयमस्तु नमोभयमिति पाठे तेभ्यस्तुष्टेभ्यो रुष्टेभ्यश्च उभयं स्वर्गो नरकश्च भवतीति शेष ॥ २३ ॥ मृदव शिष्येषु स्नेहवत्त्वात् ते च ते ब्रह्मधराश्च वेदधरा क्षात्रेण संसृष्टमपि ब्राह्मं तेज शाम्यति शान्ते द्विजेऽदीप्यमान अस्त्येवेत्यर्थ ॥ २४॥ मा पर्यश्नी परित्यज्य मा भुङ्क्ष्व ॥ २५ ॥ ते त्वया ॥ २६ ॥ ललन्तु रमन्ताम् ॥ २७ ॥ अवक्षेप्तुं समर्पितुम् ॥ २८ ॥

यथा पत्याश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके सनातनः।
सदैव सा गतिर्नान्या तथाऽस्माकं द्विजातयः
यदि नो ब्राह्मणास्तात संत्यजेयुरपूजिताः।
पश्यन्तो दारुणं कर्म सततं क्षत्रिये स्थितम् ॥
अवेदानामयज्ञानामलोकानामवर्तिनाम्।
कस्तेषां जीवितेनार्थस्त्वां विना ब्राह्मणाश्रयं
अत्र ते वर्तयिष्यामि यथा धर्मः सनातनम्।
राजन्यो ब्राह्मणान् राजन्पुरा परिचचार ह॥
वैश्यो राजन्यमित्येव शूद्रो वैश्यमिति श्रुतिः
दूराच्छूद्रेणोपचर्यो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥
संस्पर्शपरिचर्यस्तु वैश्येन क्षत्रियेण च।
मृदुभावान्सत्यशीलान्सत्यधर्मानुपालकान् ॥
आशीविषानिव क्रुद्धांस्तानुपाचरत द्विजान्।
अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चापि ये परे ॥ ३५
क्षत्रियाणां प्रतपतां तेजसा च बलेन च।
ब्राह्मणेष्वेव शाम्यन्ति तेजांसि च तपांसि च
न मे पिता प्रियतरो न त्वं तात तथा प्रियः।
न मे पितुः पिता राजन्न चात्मा न च जीवितम्
त्वत्तश्च मे प्रियतरः पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
त्वत्तोऽपि मे प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ॥ ३८
ब्रवीमि सत्यमेतच्च यथाऽहं पाण्डुनन्दन।
तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्यत्र च शान्तनुः ॥
पश्येयं च सतां लोकाञ्छुचीन्ब्रह्मपुरस्कृतान्।
तत्र मे तात गन्तव्यमह्नाय च चिराय च ४०
सोऽहमेतादृशाँल्लोकान्दृष्ट्वा भरतसत्तम।
यन्मे कृतं ब्राह्मणेषु न तप्ये तेन पार्थिव ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## ६०

युधिष्ठिर उवाच।
यौ च स्यातां चरणेनोपपन्नौ
यौ विद्यया सदृशौ जन्मना च।
ताभ्यां दानं कतमस्मै विशिष्ट-
मयाचमानाय च याचते च ॥ १
भीष्म उवाच।
श्रेयो वै याचतः पार्थ दानमाहुरयाचते।
अर्हत्तमो वै धृतिमान्कृपणादधृतात्मनः ॥ २
क्षत्रियो रक्षणधृति-
र्ब्राह्मणोऽनर्थनाधृतिः।
ब्राह्मणो धृतिमान्विद्वा-
न्देवान्प्रीणाति तुष्टिमान् ॥ ३
याच्यमाहुरनीशस्य अभिहारं च भारत।
उद्वेजयन्ति याचन्ति सदा भूतानि दस्युवत्
म्रियते याचमानो वै न जातु म्रियते ददत्।
ददत्संजीवयत्येनमात्मानं च युधिष्ठिर ॥ ५
आनृशंस्यं परो धर्मो याचते यत्प्रदीयते।
अयाचतः सीदमानान्सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत ॥ ६
यदि वै तादृशा राष्ट्रान्वसेयुस्ते द्विजोत्तमाः
भस्मच्छन्नानिवाग्नींस्तान्बुध्येथास्त्वं प्रयत्नतः
तपसा दीप्यमानास्ते दहेयुः पृथिवीमपि।
अपूज्यमानाः कौरव्य पूजार्हास्तु तथाविधाः
पूज्या हि ज्ञानविज्ञानतपोयोगसमन्विताः।
तेभ्यः पूजां प्रयुञ्जीथा ब्राह्मणेभ्यः परंतप ॥ ९
ददद्बहुविधान्दायानुपागच्छन्नयाचताम्।
यदग्निहोत्रे सुहुते सायंप्रातर्भवेत्फलम् ॥ १०
विद्यावेदव्रतवति तद्दानफलमुच्यते।
विद्यावेदव्रतस्नातानव्यपाश्रयजीविनः ॥ ११

---

अवर्तिना अवृत्तीना आर्यो गुण अकीर्तिनामिति पाठे व्रीह्या-दित्वादिनि· अकीर्तिमताम् ॥ ३१ ॥ पुरा पूर्वम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्टितमोऽध्याय ॥ ५९ ॥

६०

**यौ चेति**। चरणेनाचरणेन ॥ १ ॥ अयाचत श्रेष्ठ्यमाह द्वाभ्याम्—**श्रेय इति** ॥ २ ॥ अनर्थना अयाच्ञा ॥ ३ ॥ याच्य याचनारूपं कर्म अनीशस्य दरिद्रस्य अभिहार तिरस्कारमाहु। यदा यत याचन्ति याचमानानि भूतानि दस्युवल्लोकानुद्वेजयन्ति ॥ ४ ॥ राष्ट्रान् राष्ट्रम् ॥ ७॥ ददद्दित्यर्थ। अयाचता अयाचमानाना उपागच्छन्समीपमुपसर्पन् दायान्धनादीन् ददत् दाता भवेति शेष· ॥ १० ॥

गूढास्वध्यायतपसो ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ।
कृतैरावसथैर्हृद्यैः सप्रेष्यैः सपरिच्छदैः ॥ १२
निमन्त्रयेथाः कौरव्य कामैश्चान्यैर्द्विजोत्तमान् ।
अपि ते प्रतिगृह्णीयुः श्रद्धोपेतं युधिष्ठिर ॥ १३
कार्यमित्येव मन्वाना
धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ।
अपि ते ब्राह्मणा भुक्त्वा
गताः सोद्धरणान् गृहान् ॥ १४
येषां दाराः प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ।
अन्नानि प्रातःसवने नियता ब्रह्मचारिणः १५
ब्राह्मणास्तात भुञ्जानास्त्रेताग्निं प्रीणयन्त्युत ।
माध्यन्दिनं ते सवनं ददतस्तात वर्तताम् १६
गोहिरण्यानि वासांसि तेनेन्द्रः प्रीयतां तव ।
तृतीयं सवनं ते वै वैश्वदेवं युधिष्ठिर ॥ १७
यद्देवेभ्यः पितृभ्यश्च विप्रेभ्यश्च प्रयच्छसि ।
अहिंसा सर्वभूतेभ्यः संविभागश्च भागशः १८
दमस्त्यागो धृतिः सत्यं भवत्ववभृथाय ते ।
एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः १९
विशिष्टः सर्वयज्ञानां नित्यं तात प्रवर्तताम् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## ६१

युधिष्ठिर उवाच ।
दानं यज्ञः क्रिया चेह किंस्वित्प्रेत्य महाफलम्
कस्य ज्यायः फलं प्रोक्तं कीदृशेभ्यः कथं कदा
एतदिच्छामि विज्ञातुं याथातथ्येन भारत ।
विद्वन् जिज्ञासमानाय दानधर्मान्प्रचक्ष्व मे २
अन्तर्वेद्यां च यद्दत्तं श्रद्धया चानृशंस्यतः ।
किंस्विन्निःश्रेयसं तात तन्मे ब्रूहि पितामह ३
भीष्म उवाच ।
रौद्रं कर्म क्षत्रियस्य सततं तात वर्तते ।
तस्य वैतानिकं कर्म दानं चैवेह पावनम् ॥ ४
न तु पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ।
एतस्मात्कारणाद्यज्ञैर्यजेद्राजाऽऽप्तदक्षिणैः ५
अथ चेत्प्रतिगृह्णीयुर्दद्यादहरहर्नृपः ।
श्रद्धामास्थाय परमां पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ६
ब्राह्मणांस्तर्पयन्द्रव्यैस्ततो यज्ञे यतव्रतः ।
मैत्रान् साधून्वेदविदः शीलवृत्ततपोर्जितान् ७
यत्ते तेन करिष्यन्ति कृतं तेन भविष्यति ।
यज्ञान्साधय साधुभ्यः स्वाद्वन्नान्दक्षिणावतः
इष्टं दत्तं च मन्येथा आत्मानं दानकर्मणा ।
पूजयेथा याययूकांस्तवाप्यंशो भवेद्यथा ॥ ९
प्रजावतो भरेथाश्च ब्राह्मणान् बहुकारिणः ।
प्रजावांस्तेन भवति यथा जनयिता तथा १०
यावतः साधुधर्मान्वै सन्तः संवर्धयन्त्युत ।
सर्वस्वैश्चापि भर्तव्या नरा ये बहुकारिणः ११
समृद्धः संप्रयच्छ त्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।
धेनूरनडुहोऽन्नानि च्छत्रं वासांस्युपानहौ १२

---

**अपीति**।सोद्धरणान्स्वामिन्यागते दास्यामीति याचमानेभ्यो बालकेभ्य आशाप्रदर्शनमुद्धरण तत्साहितान् अत एव दारास्तेषा प्रतीक्षन्त इत्युक्तम् ॥ १४ ॥ एष ते विततो यज्ञ इति प्रागुक्त यज्ञ सवनत्रयकल्पनया व्याचष्टे —**अन्नानीत्यादिना** ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

६१

**दानमिति**। यज्ञ क्रियेत्येकं यज्ञरूपा क्रियेत्यर्थ । कीदृशेभ्यो दानं कथ यज्ञक्रियेति । कदेत्युभयत्र सम्बन्ध ॥ १ ॥ आनृशस्यतो बहिर्वेद्या दानम ॥ ३ ॥ यज्ञाद्दानस्याधिक्य वर्णयति—**न त्विति द्वाभ्याम्** ॥ ५ ॥ एतद्दानम् ॥ ६ ॥ तपोर्जितान् सान्विरार्ष ॥ ७ ॥ यद्यपि ते ब्राह्मणास्ते नव न करिष्यन्ति प्रतिग्रहामिति शेषः । तर्हि कृत सुकृत ते तत न भविष्यति तदा सुकृतोत्पत्त्यर्थं यज्ञान् साधय ॥ ८ ॥ **इष्टमिति** । दाने यज्ञादिकमन्तर्भवति याजिकेभ्यो दत्तं चेत्तत्कृतस्य यज्ञस्य श्रेयोंऽशस्तत्रापि भविष्यतीति न यज्ञार्थमत्युत्सुको भूरित्यर्थ ॥ ९ ॥ जनयिता प्रजापति ॥ १० ॥ धर्मान् पञ्चातिथिभि समेत एव भोक्ष्ये इत्यादीन् यं मन्त सवर्धयन्ति ते सर्वस्वैर्भर्तव्या राज्ञा तस्य राज्ञस्ते मन्तो बहुकारिणोऽत्यन्तमुपकर्तारो भवन्ति ॥ ११ ॥

आज्यानि यजमानेभ्यस्तथाऽन्नानि च भारत
अश्ववन्ति च यानानि वेश्मानि शयनानि च
एते देया व्युष्टिमन्तो लघूपायाश्च भारत ।
अजुगुप्सांश्च विज्ञाय ब्राह्मणान् वृत्तिकर्शितान्
उपच्छन्नं प्रकाशं वा वृत्त्या तान्प्रतिपालयेत् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां श्रेयस्तत्क्षत्रियान्प्रति १५
एवं पापैर्विनिर्मुक्तस्त्वं पूतः स्वर्गमाप्स्यसि ।
सञ्चयित्वा पुनः कोशं यद्राष्ट्रं पालयिष्यसि
तेन त्वं ब्रह्मभूयत्वमवाप्स्यसि धनानि च ।
आत्मनश्च परेषां च वृत्तिं संरक्ष भारत १७
पुत्रवच्चापि भृत्यान्स्वान् प्रजाश्च परिपालय ।
योगः क्षेमश्च ते नित्यं ब्राह्मणेष्वस्तु भारत १८
तदर्थं जीवितं तेऽस्तु मा तेभ्योऽप्रतिपालनम्
अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यद्वित्तनिचयो महान् १९
श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो दर्पयेत्संप्रमोहयेत् ।
ब्राह्मणेषु प्रमूढेषु धर्मो विप्रणशेद्ध्रुवम् ।
धर्मप्रणाशे भूतानामभावः स्यान्न संशयः २०
यो रक्षिभ्यः संप्रदाय राजा राष्ट्रं विलुंपति
यज्ञे राष्ट्राद्धनं तस्मादानयध्वमिति ब्रुवन् ॥ २१
यच्चादाय तदाज्ञप्तं भीतं दत्तं सुदारुणम् ।
यजेद्राजा न तं यज्ञं प्रशंसन्त्यस्य साधवः २२
अपीडिताः सुसंवृद्धा ये ददत्यनुकूलतः ।
तादृशेनाप्युपायेन यष्टव्यं नोद्यमाहृतैः ॥ २३
यदा परिनिषिच्येत निहितो वै यथाविधि ।
तदा राजा महायज्ञैर्यजेत बहुदक्षिणैः ॥ २४
वृद्धबालधनं रक्ष्यमन्धस्य कृपणस्य च ।
न खातपूर्वं कुर्वीत न रुदन्ती धनं हरेत् ॥ २५
हृतं कृपणवित्तं हि राष्ट्रं हन्ति नृपश्रियम् ।
दद्याच्च महतो भोगान् क्षुद्भयं प्रणुदेत्सताम् ॥
येषां स्वादूनि भोज्यानि समवेक्ष्यन्ति बालकाः
नाश्नन्ति विधिवत्तानि किं नु पापतरं ततः ॥
यदि ते तादृशो राष्ट्रे विद्वान्सीदेत्क्षुधा द्विजः
भ्रूणहत्यां च गच्छेथाः कृत्वा पापमिवोत्तमम्
धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रे यस्यावसीदति
द्विजोऽन्यो वा मनुष्योऽपि शिबिराह वचो यथा
यस्य स्म विषये राज्ञः स्नातकः सीदति क्षुधा
अवृद्धिमेति तद्राष्ट्रं विन्दते सहराजकम् ॥ ३०
क्रोशन्त्यो यस्य वै राष्ट्राद्ध्रियन्ते तरसा स्त्रियः
क्रोशतां पतिपुत्राणां मृतोऽसौ न च जीवति
अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम् ।
तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम्
अहं वो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिपः
स संहत्य निहन्तव्यः श्वेव सोन्माद आतुरः ॥
पापं कुर्वन्ति यत्किञ्चित्प्रजा राज्ञा ह्यरक्षिताः
चतुर्थं तस्य पापस्य राजा विन्दति भारत ३४
अथाहुः सर्वमेवेति भूयोऽर्धमिति निश्चयः ।
चतुर्थं मतमस्माकं मनोः श्रुत्वाऽनुशासनम् ३५
शुभं वा यच्च कुर्वन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः
चतुर्थं तस्य पुण्यस्य राजा चाप्नोति भारत ॥
जीवन्तं त्वाऽनुजीवन्तु प्रजाः सर्वा युधिष्ठिर
पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिवाण्डजाः ३७
कुबेरमिव रक्षांसि शतक्रतुमिवामराः ।
ज्ञातयस्त्वाऽनुजीवन्तु सुहृदश्च परन्तप ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

---

देया. दानानि व्युष्टि समृद्धिः ॥ १४ ॥ ब्रह्मणो भूय भावोस्यास्ति स ब्राह्मणो ब्रह्मभूयस्तस्य भावो ब्रह्मभूयत्वं ब्राह्मणत्वम् ॥ १७ ॥ य इति । युग्मम् । यो राजा रक्षिभ्यः संग्रहपरेभ्यो धनं दत्वा यज्ञे यज्ञार्थं धनमानयध्वमिति ब्रुवन् राष्ट्रं विलुंपति ॥ २१ ॥ यच्चासौ तत् धनिभिर्भीतं भययुक्तं यथा स्यात्तथा दत्तं प्रजाभ्य आदाय सुदारुणं यथा स्यात्तथा यजेत्तं यज्ञं न प्रशंसन्ति ॥ २२ ॥ उद्यमः प्रजापीडनात्मकोऽतियत्नः ॥ २३ ॥ निहितः प्रजाना नितरां हितो राजा यदा प्रजाभिः पूर्णोद्रिक्ताभिर्निषिच्येत धनैरभिषिच्येत ॥ २४ ॥ खातपूर्वं धनं न कुर्वीत अनावृष्टौ कूपादिकनिष्पादितैर्धान्यैर्जीवता धनं स्वाधीनं न कुर्वीतेत्यर्थः ॥ २५ ॥ समवेक्ष्यन्त्येव न तु लभंते ॥ २७ ॥ सह युगपत् राजकं राजसमूहं प्रतिपक्षभूतं विन्दते ॥ ३० ॥ सर्वं पापं एति राजानम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

युधिष्ठिर उवाच ।
इदं देयमिदं देयमिति यं श्रुतिरादरात् ।
बहुदेयाश्च राजानः किंस्विद्दानमनुत्तमम् ॥ १
भीष्म उवाच ।
अतिदानानि सर्वाणि पृथिवी दानमुच्यते
अचला ह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामानिहोत्तमान्
दोग्ध्री वासांसि रत्नानि पशून्व्रीहियवांस्तथा
भूमिदः सर्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः ॥ ३
यावद्भूमेरायुरिह तावद्भूमिद एधते ।
न भूमिदानादस्तीह परं किंचिद्युधिष्ठिर ॥ ४
अप्यल्पं प्रददुः सर्वे पृथिव्या इति नः श्रुतम् ।
भूमिमेव ददुः सर्वे भूमिं ते भुञ्जते जनाः ॥ ५
स्वकर्मैवोपजीवन्ति नरा इह परत्र च ।
भूमिर्भूतिर्महादेवी दातारं कुरुते प्रियम् ॥ ६
य एतां दक्षिणां दद्यादक्षयां राजसत्तम ।
पुनर्नरत्वं संप्राप्य भवेत्स पृथिवीपतिः ॥ ७
यथा दानं तथा भोग इति धर्मेषु निश्चयः ।
संग्रामे वा तनुं जह्याद्दद्याद्वा पृथिवीमिमाम् ८
इत्येतत्क्षत्रबन्धूनां वदन्ति परमां श्रियम् ।
पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमिति शुश्रुम ॥ ९
अपि पापसमाचारं ब्रह्मघ्नमपि चानृतम् ।
सैव पापं प्लावयति सैव पापात्प्रमोचयेत् १०
अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ।
पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं जननी यथा ॥
नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनम्
दानं वाऽप्यथवाऽऽदानं नामास्याः प्रथमं प्रियं
य एतां विदुषे दद्यात्पृथिवीं पृथिवीपतिः ।
पृथिव्यामेतदिष्टं स राजा राज्यमितो व्रजेत् ॥
पुनश्चासौ जनिं प्राप्य राजवत् स्यान्न संशयः
तस्मात्प्राप्यैव पृथिवीं दद्याद्विप्राय पार्थिवः ॥
नाभूमिपतिना भूमिरधिष्ठेया कथंचन ।
न चापात्रेण वा ग्राह्या दत्तदाने न चाचरेत् ॥
ये चान्ये भूमिमिच्छेयुः कुर्युरेवं न संशयः ।
यः साधोर्भूमिमादत्ते न भूमिं विन्दते तु सः ॥
भूमिं दत्वा तु साधुभ्यो विन्दते भूमिमुत्तमाम्
प्रेत्य चेह च धर्मात्मा संप्राप्नोति महद्यशः ॥
यस्य विप्रास्तु शंसन्ति साधोर्भूमिं सदैव हि
न तस्य शत्रवो राजन् प्रशंसन्ति वसुन्धराम्
यत्किञ्चित्पुरुषः पापं कुरुते वृत्तिकर्शितः ।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते ॥ १९
येऽपि संकीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः
तेभ्यः पवित्रमाख्येयं भूमिदानमनुत्तमम् २०
अल्पान्तरमिदं शश्वत्पुराणा मेनिरे जनाः ।
यो यजेताश्वमेधेन दद्याद्वा साधवे महीम् २१
अपि चेत्सुकृतं कृत्वा शङ्केरन्नपि पण्डिताः ।
अशक्यमेकमेवैतद्भूमिदानमनुत्तमम् ॥ २२
सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिमुक्तावसूनि च ।
सर्वमेतन्महाप्राज्ञो ददाति वसुधां ददत् ॥ २३
तपो यज्ञः श्रुतं शीलमलोभः सत्यसन्धता ।
गुरुदैवतपूजा च एता वर्तन्ति भूमिदम् ॥ २४
भर्तृनिःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः ।
ब्रह्मलोकगताः सिद्धा नातिक्रामन्ति भूमिदं
यथा जनित्री स्वं पुत्रं क्षीरेण भरते सदा ।
अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥ २६
मृत्युर्वैकिङ्करो दण्डस्तमो वह्निः सुदारुणः
घोराश्च दारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम्
पितॄंश्च पितृलोकस्थान्देवलोकाच्च देवताः ।
सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धरां

---

६२

**इदमिति** ॥ १ ॥ कामानेवाह—**दोग्ध्रीति** ॥३॥ प्रिय स्वपतिम् ॥ ६ ॥ तदेवाह—**य इति** ॥ ७ ॥ प्रियेण प्रियाय वा दत्तेति योगात्तस्या दानमादानं वा कुर्वन् प्रियदत्ताया अस्याः प्रियो भवतीत्यथ. । नामेति नामार्थं उभयरूप उच्यते ॥ १२ ॥ एतत्पृथ्वीदानम् ॥१३॥ दत्तदाने दत्तदेशे न चाचरेन्न संचरेत् न वा गूहेदन्तर्धाने-न चाचरेदिति पाठे तु भूमिदानं दानान्तरवन्न गूहनीयं किन्तु प्रख्यापयेदेवेत्याह—**न चेति** । अन्तर्धानेन चाचरेत् भूमिमुपविश्य दानमाचरेत् ॥ १५ ॥ शंसन्ति अमुकदत्ते गृहे तिष्ठाम इति कथयन्ति ॥ १८ ॥ सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डानिवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म दत्वा स्वर्गे महीयते ॥ १९ ॥ अर्पितदानान्तरवद्भूमिदाने पुण्योत्पत्तौ शङ्कैव नास्तीत्यर्थ ॥ २२ ॥ एता एतानि सुपो डादेश वर्तन्ति अनुसरन्ति ॥ २४ ॥ वैकिंकर· विपरीतं कुत्सितं च करोति विकिंकर कालस्तत्संबंधी कालमृत्युरित्यर्थ· ॥ २७ ॥

कृशाय म्रियमाणाय वृत्तिग्लानाय सीदते ।
भूमिं वृत्तिकरीं दत्वा सत्री भवति मानवः २९
यथा धावति गौर्वत्सं स्रवन्ती वत्सला पयः
एवमेव महाभाग भूमिर्भवति भूमिदम् ॥ ३०
फालकृष्टां महीं दत्वा सबीजां सफलामपि ।
उदीर्णं वापि शरणं यथा भवति कामदः॥ ३१
ब्राह्मणं वृत्तिसंपन्नमाहिताग्निं शुचिव्रतम् ।
नरः प्रतिग्राह्य महीं न याति परमापदम् ३२
यथा चन्द्रमसो वृद्धिरहन्यहनि जायते ।
तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते ३३
अत्र गाथा भूमिगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
याः श्रुत्वा जामदग्न्येन दत्ता भूः काश्यपाय वै
मामेवादत्त मां दत्त मा दत्वा मामवाप्स्यथ ।
अस्मिन् लोके परे चैव तद्दत्तं जायते पुनः ३५
य इमां व्याहृतिं वेद ब्राह्मणो वेदसंमिताम् ।
श्राद्धस्य क्रियमाणस्य ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥
कृत्यानामभिशस्तानामरिष्टशमनं महत् ।
प्रायश्चित्तं महीं दत्वा पुनात्युभयतो दश ३७
पुनाति य इदं वेद वेदवादं तथैव च ।
प्रकृतिः सर्वभूतानां भूमिर्वैश्वानरी मता ३८
अभिषिच्यैव नृपतिं श्रावयेदिममागमम् ।
यथा श्रुत्वा महीं दद्यान्नादद्यात्साधुतश्च ताम्
सोऽयं कृत्स्नो ब्राह्मणार्थो राजार्थश्चाप्यसंशयः
राजा हि धर्मकुशलः प्रथमं भूतिलक्षणम् ४०
अथ येषामधर्मज्ञो राजा भवति नास्तिकः ।
न ते सुखं प्रबुध्यन्ति न सुखं प्रस्वपन्ति च४१
सदा भवन्ति चोद्विग्नास्तस्य दुश्चरितैर्नराः ।
योगक्षेमा हि बहवो राष्ट्रं नास्याविशंति तत्
अथ येषां पुनः प्राज्ञो राजा भवति धार्मिकः
सुखं ते प्रतिबुध्यन्ते सुसुखं प्रस्वपन्ति च ॥४३
तस्य राज्ञः शुभै राज्यैः कर्मभिर्निर्वृता नराः ।
योगक्षेमेण वृष्ट्या च विवर्धन्ते स्वकर्मभिः४४
स कुलीनः स पुरुषः स बन्धुः स च पुण्यकृत्
स दाता स च विक्रांतो यो ददाति वसुंधराम्
आदित्या इव दीप्यन्ते तेजसा भुवि मानवाः
ददन्ति वसुधां स्फीतां ये वेदविदुषि द्विजे४६
यथा सस्यानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ।
तथा कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः
शूलपाणिश्च भगवान् प्रतिनन्दन्ति भूमिदम्४८
भूमौ जायन्ति पुरुषा भूमौ निष्ठां व्रजन्ति च ।
चतुर्विधो हि लोकोऽयं योऽयं भूमिगुणात्मकः
एषा माता पिता चैव जगतः पृथिवीपते ।
नानया सदृशं भूतं किंचिदस्ति जनाधिप ५०
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ५१
इष्ट्वा क्रतुशतेनाथ महता दक्षिणावता ।
मघवा वाग्विदां श्रेष्ठं पप्रच्छेदं बृहस्पतिं ५२

मघवोवाच ।

भगवन् केन दानेन स्वर्गतः सुखमेधते ।
यदक्षयं महार्घं च तद्ब्रूहि वदतां वर ॥ ५३

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स सुरेन्द्रेण ततो देवपुरोहितः ।
बृहस्पतिर्बृहत्तेजाः प्रत्युवाच शतक्रतुम् ॥ ५४

बृहस्पतिरुवाच ।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वृत्रहन् ।
ददद्देतान्महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते ५५
न भूमिदानाद्देवेन्द्र परं किंचिदिति प्रभो ।
विशिष्टमिति मन्यामि यथा प्राहुर्मनीषिणः५६
ये शूरा निहता युद्धे स्वर्याता रणगृद्धिनः ।
सर्वे ते विबुधश्रेष्ठ नातिक्रामन्ति भूमिदम् ५७
भर्तुर्निःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः ।
ब्रह्मलोकगता मुक्ता नातिक्रामन्ति भूमिदम्॥
पञ्च पूर्वा हि पुरुषाः षडन्ये वसुधां गताः ।
एकादश ददद्भूमिं परित्रातीह मानवः ॥ ५९
रत्नोपकीर्णां वसुधां यो ददाति पुरंदर ।
स मुक्तः सर्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥ ६०
महीं स्फीतां ददद्राजन् सर्वकामगुणान्विताम्
राजाधिराजो भवति तद्धि दानमनुत्तमम्६१
सर्वकामसमायुक्तां काश्यपीं यः प्रयच्छति ।
सर्वभूतानि मन्यन्ते मां ददातीति वासव ६२
सर्वकामदुघां धेनुं सर्वकामगुणान्विताम् ।
ददाति यः सहस्राक्ष स्वर्गं याति स मानवः

मन्त्री मन्त्रकृत् ॥ २९ ॥ उदीर्णं महत् शरणं गृहम् ॥३१॥ ब्रह्मभूयं बृहत्त्वं फलमिति यावत् । गच्छति प्राप्नोति ॥३६॥ कृत्यानामन्त्रमयीनां मारणार्थशक्तीनां अभिशस्तानां प्रबलानां मेवाधि यदरिष्टं तच्छमनम् ॥३७॥इदं भूमिदानं यो वेदवादं भूमिवाक्यं यो वेद सोऽपि पुनाति दशपुरुषानिति शेषः ॥ ३८॥ भूतिलक्षणं ऐश्वर्यसूचकम् ॥ ४० ॥

मधुसर्पिःप्रवाहिण्यः पयोदधिवहास्तथा ।
सरितस्तर्पयन्तीह सुरेन्द्र वसुधाप्रदम् ६४
भूमिप्रदानान्नृपतिर्मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ।
न हि भूमिप्रदानेन दानमन्यद्विशिष्यते ६५
ददाति यः समुद्रान्तां पृथिवीं शस्त्रनिर्जिताम्
त जनाः कथयन्तीह यावद्भवति गौरियम् ॥
पुण्यामृद्धिरसां भूमिं यो ददाति पुरंदर ।
न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणान्विताः
सर्वदा पार्थिवेनेह सततं भूतिमिच्छता ।
भूर्देया विधिवच्छक्र पात्रे सुखमभीप्सुना ६८
अपि कृत्वा नरः पापं भूमिं दत्वा द्विजातये
समुत्सृजति तत्पाप जीर्णां त्वचमिवोरगः ६९
सागरान्सरितः शैलान् काननानि च सर्वशः
सर्वमेतन्नरः शक्र ददाति वसुधां ददत् ॥ ७०
तडागान्युदपानानि स्रोतांसि च सरांसि च ।
स्नेहान्सर्वरसांश्चैव ददाति वसुधां ददत् ॥ ७१
ओषधीर्वीर्यसंपन्ना नगान्पुष्पफलान्वितान् ।
काननोपलशैलांश्च ददाति वसुधां ददत् ॥ ७२
अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वा च स्वाप्तदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते ॥ ७३
दाता दशानुगृह्णाति दश हन्ति तथा क्षिपन् ।
पूर्वदत्तां हरन् भूमिं नरकायोपगच्छति ॥ ७४
न ददाति प्रतिश्रुत्य दत्वाऽपि च हरेत्तु यः ।
स बद्धो वारुणैः पाशैस्तप्यते मृत्युशासनात्
आहिताग्निं सदायज्ञं कृशवृत्तिं प्रियातिथिम्
ये भजन्ति द्विजश्रेष्ठं नोपसर्पन्ति ते यमम् ७६
ब्राह्मणेष्वनृणीभूतः पार्थिवः स्यात्पुरंदर ।
इतरेषां तु वर्णानां तारयेत्कृशदुर्बलान् ॥ ७७
नाच्छिन्द्यात्स्पर्शितां भूमिं परेण त्रिदशाधिप
ब्राह्मणस्य सुरश्रेष्ठ कृशवृत्तेः कदाचन ॥ ७८
यथाऽश्रु पतितं तेषां दीनानामथ सीदताम् ।
ब्राह्मणानां हृते क्षेत्रे हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ७९
भूमिपालं च्युतं राष्ट्राद्यस्तु संस्थापयेन्नरः ।
तस्य वासः सहस्राक्ष नाकपृष्ठे महीयते ॥८०
इक्षुभिः संततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
गोऽश्ववाहनपूर्णां वा बाहुवीर्यादुपार्जिताम् ॥
निधिगर्भां ददद्भूमिं सर्वरत्नपरिच्छदाम् ।
अक्षयाँल्लभते लोकान् भूमिसत्रं हि तस्य तत्
विधूय कलुषं सर्वं विरजाः संमतः सताम् ।
लोके महीयते सद्भिर्यो ददाति वसुंधराम् ।
यथाऽप्सु पतितः शक्र तैलबिन्दुर्विसर्पति ।
तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते ८४
ये रणाग्रे महीपालाः शूराः समितिशोभनाः ।
वध्यन्तेऽभिमुखाः शक्र ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥
नृत्यगीतपरा नार्यो दिव्यमाल्यविभूषिताः ।
उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र तथा भूमिप्रदं दिवि ॥८६
मोदते च सुखं स्वर्गे देवगन्धर्वपूजितः ।
यो ददाति महीं सम्यग्विधिनेह द्विजातये८७
शतमप्सरसश्चैव दिव्यमाल्यविभूषिताः ।
उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र ब्रह्मलोके धराप्रदम् ८८
उपतिष्ठन्ति पुण्यानि सदा भूमिप्रदं नरम् ।
शङ्खभद्रासनं छत्रं वराश्वा वरवाहनम् ८९
भूमिप्रदानात्पुष्पाणि हिरण्यनिचयास्तथा ।
आज्ञा सदाऽप्रतिहता जयशब्दा वसूनि च ९०
भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरंदर ।
हिरण्यपुष्पाश्चौषध्यः कुशकाञ्चनशाद्वलाः ९१
अमृतप्रसवां भूमिं प्राप्नोति पुरुषो ददत् ।
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः
नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः
एतदाङ्गिरसाच्छ्रुत्वा वासवो वसुधामिमाम् ।
वसुरत्नसमाकीर्णां ददावाङ्गिरसे तदा ९३
य इदं श्रावयेच्छ्राद्धे भूमिदानस्य संभवम् ।
न तस्य रक्षसां भागो नासुराणां भवत्युत ९४
अक्षयं च भवेद्दत्त पितृभ्यस्तन्न संशयः ।
तस्माच्छ्राद्धेष्विदं विद्वान् भुञ्जतःश्रावयेद्द्विजान्
इत्येतत्सर्वदानानां श्रेष्ठमुक्तं तवानघ ।
मया भरतशार्दूल किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ९६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रबृहस्पतिसंवादे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

---

क्षिपन् हरन् ॥ ७४ ॥ स्पर्शिता दत्ताम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्याय ॥ ६२ ॥

## ६३

युधिष्ठिर उवाच ।
कानि दानानि लोकेस्मिन्दातुकामो महीपतिः
गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दद्याद्भरतसत्तम ॥ १
केन तुष्यन्ति ते सद्यः किं तुष्टाः प्रदिशन्ति च ।
शंस मे तन्महाबाहो फलं पुण्यकृतं महत् २
दत्तं किं फलवद्राजन्निह लोके परत्र च ।
भवतः श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ३
भीष्म उवाच ।
इममर्थं पुरा पृष्टो नारदो देवदर्शनः ।
यदुक्तवानसौ वाक्यं तन्मे निगदतः शृणु ४
नारद उवाच ।
अन्नमेव प्रशंसन्ति देवा ऋषिगणास्तथा ।
लोकतन्त्रं हि संज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥५
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति ।
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः ६
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः ।
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं प्रभो ॥ ७
अन्नाद्गृहस्था लोकेऽस्मिन्
भिक्षवस्तापसास्तथा ।
अन्नाद्भवन्ति वै प्राणाः
प्रत्यक्षं नात्र संशयः ॥ ८
कुटुम्बिने सीदते च ब्राह्मणाय महात्मने ।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता
ब्राह्मणायाभिरूपाय यो दद्यादन्नमर्थिने ।
विदधाति निधिं श्रेष्ठं पारलौकिकमात्मनः ॥
श्रान्तमध्वनि वर्तन्तं वृद्धमर्हमुपस्थितम् ।
अर्चयेद्भूतिमन्विच्छन् गृहस्थो गृहमागतम् ॥
क्रोधमुत्पतितं हित्वा सुशीलो वीतमत्सरः ।
अन्नदः प्राप्नुते राजन् दिवि चेह च यत्सुखम्
नावमन्येदभिगतं न प्रणुद्यात्कदाचन ।
अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।
आर्तायादृष्टपूर्वाय स महद्धर्ममाप्नुयात् ॥ १४
पितॄन्देवानृषीन्विप्रानतिथींश्च जनाधिप ।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत् १५
कृत्वाऽतिपातकं कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन मुह्यते ॥ १६
ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महाफलम् ।
अन्नदानं हि शूद्रे च ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव च ।
भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं प्रयाचितः ॥१८
अन्नदस्यान्नवृक्षाश्च सर्वकामफलप्रदाः ।
भवन्ति चेह चामुत्र नृपतेर्नात्र संशयः ॥ १९
आशंसन्ते हि पितरः सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।
अस्माकमपि पुत्रो वा पौत्रो वाऽन्नं प्रदास्यति
ब्राह्मणो हि महद्भूतं स्वयं देहीति याचति ।
अकामो वा सकामो वा दत्वा पुण्यमवाप्नुयात्
ब्राह्मणः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् ।
विप्रा यदधिगच्छन्ति भिक्षमाणा गृहं सदा
सत्कृताश्च निवर्तन्ते तदतीव प्रवर्धते ।
महाभागे कुले प्रेत्य जन्म चाप्नोति भारत २३
दत्वा त्वन्नं नरो लोके तथा स्थानमनुत्तमम् ।
नित्यं मिष्टान्नदायी तु स्वर्गे वसति सत्कृतः
अन्नं प्राणा नराणां हि सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ।
अन्नदः पशुमान्पुत्री धनवान् भोगवानपि ॥२५
प्राणवांश्चापि भवति रूपवांश्च तथा नृप ।
अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदः प्रोच्यते तु सः
अन्नं हि दत्वाऽतिथये ब्राह्मणाय यथाविधि ।
प्रदाता सुखमाप्नोति दैवतैश्चापि पूज्यते ॥२७
ब्राह्मणो हि महद्भूतं क्षेत्रभूतं युधिष्ठिर ।
उप्यते तत्र यद्बीजं तद्धि पुण्यफलं महत् ॥२८
प्रत्यक्षं प्रीतिजननं भोक्तुर्दातुर्भवत्युत ।
सर्वाण्यन्यानि दानानि परोक्षफलवन्त्युत ॥
अन्नाद्धि प्रसवं यान्ति रतिरन्नाद्धि भारत ।
धर्मार्थावन्नतो विद्धि रोगनाशं तथाऽन्नतः ३०
अन्नं ह्यमृतमित्याह पुराकल्पे प्रजापतिः ।
अन्नं भुवं दिवं खं च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ३१
अन्नप्रणाशे भिद्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः ।
बलं बलवतोऽपीह प्रणश्यत्यन्नहानितः ॥ ३२
आवाहाश्च विवाहाश्च यज्ञाश्चान्नमृते तथा ।
निवर्तन्ते नरश्रेष्ठ ×ब्रह्म चात्र प्रलीयते ॥ ३३

६३

कानीति ॥ १ ॥ संज्ञा बुद्धय ॥ ५ ॥ * वेद ।

अन्नतः सर्वमेतद्धि यत्किंचित्स्थाणु जंगमम् ।
त्रिषु लोकेषु धर्मार्थमन्नं देयमतो बुधैः ॥ ३४
अन्नदस्य मनुष्यस्य बलमोजो यशांसि च ।
कीर्तिश्च वर्धते शश्वत्त्रिषु लोकेषु पार्थिव ३५
मेघेषूर्ध्वं संनिधत्ते प्राणानां पवनः पतिः ।
तच्च मेघगतं वारि शक्रो वर्षति भारत ॥३६
आदत्ते च रसान्भौमानादित्यः स्वगभस्तिभिः
वायुरादित्यतस्तांश्च रसान्देवः प्रवर्षति ३७
तद्यदा मेघतो वारि पतितं भवति क्षितौ ।
तदा वसुमती देवी स्निग्धा भवति भारत ३८
ततः सस्यानि रोहन्ति येन वर्तयते जगत् ।
मांसमेदोस्थिशुक्राणां प्रादुर्भावस्ततः पुनः ॥
संभवन्ति ततः शुक्रात्प्राणिनः पृथिवीपते ।
अग्नीषोमौ हि तच्छुक्रं सृजतः पुष्यतश्च ह ४०
एवमन्नाद्धि सूर्यश्च पवनः शुक्रमेव च ।
एक एव स्मृतो राशिस्ततो भूतानि जज्ञिरे
प्राणान्ददाति भूतानां तेजश्च भरतर्षभ ।
गृहमभ्यागतायाथ यो दद्यादन्नमर्थिने ॥ ४२
भीष्म उवाच ।
नारदेनैवमुक्तोऽहमदामन्नं सदा नृप ।
अनसूयुस्त्वमप्यन्नं तस्माद्देहि गतज्वरः ॥ ४३

दत्त्वाऽन्नं विधिवद्राजन्विप्रेभ्यस्त्वमिति प्रभा
यथावदनुरूपेभ्यस्ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ४४
अन्नदाना हि ये लोकास्तांस्त्वं शृणु जनाधिप
भवनानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम्
तारासंस्थानि रूपाणि नानास्तम्भान्वितानि च
चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किंकिणीजालवन्ति च
तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ।
अनेकशतभौमानि सान्तर्जलचराणि च ॥४७
वैदूर्यार्कप्रकाशानि रौप्यरुक्ममयानि च ।
सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः ४८
वाप्यो वीथ्यः सभाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः
घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः
भक्ष्यभोज्यमयाः शैला वासांस्याभरणानि च
क्षीरं स्रवन्ति सरितस्तथा चैवान्नपर्वताः ५०
प्रासादाः पाण्डुराभ्राभाः
शय्याश्च कांचनोज्ज्वलाः ।
तान्यन्नदाः प्रपद्यन्ते
तस्मादन्नप्रदो भव ॥ ५१
एते लोकाः पुण्यकृता अन्नदानां महात्मनाम्
तस्मादन्नं प्रयत्नेन दातव्यं मानवैर्भुवि ५२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अन्नदानप्रशंसायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## ६४

युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुतं मे भवतो वाक्यमन्नदानस्य यो विधिः
नक्षत्रयोगस्येदानीं दानकल्पं ब्रवीहि मे ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
देवक्याश्चैव संवादं महर्षेर्नारदस्य च २
द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम् ।
पप्रच्छेदं वचः प्रश्नं देवकी धर्मदर्शनम् ३

तस्याः संपृच्छमानाया देवर्षिर्नारदस्ततः ।
आचष्ट विधिवत्सर्वं तच्छृणुष्व विशांपते ४
नारद उवाच ।
कृत्तिकासु महाभागे पायसेन ससर्पिषा ।
संतर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकानाप्नोत्यनुत्तमान्
रोहिण्यां प्रसृतैर्मार्गैर्मांसैरन्नेन सर्पिषा ।
पयोनुपानं दातव्यमनृणार्थं द्विजातये ॥ ६

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

श्रुतं मे इति ॥ १ ॥ मार्गैर्मृगसंबंधिभिः ॥ ६ ॥

दोग्ध्रीं दत्त्वा सवत्सां तु नक्षत्रे सोमदैवते ।
गच्छन्ति मानुषाल्लोकात्स्वर्गलोकमनुत्तमम् ७
आर्द्रायां कृसरं दत्त्वा तिलमिश्रमुपोषितः ।
नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥ ८
पूपान्पुनर्वसौ दत्त्वा तथैवान्नानि शोभने ।
यशस्वी रूपसंपन्नो बह्वन्नो जायते कुले ॥ ९
पुष्येण कनकं दत्त्वा कृतं वा कृतमेव च ।
अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥१०
आश्लेषायां तु यो रूप्यमृषभं वा प्रयच्छति ।
स सर्वभयनिर्मुक्तः सम्भवानधितिष्ठति ॥ ११
मघासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि मानवः ।
प्रदाय पुत्रपशुमानिह प्रेत्य च मोदते ॥ १२
फल्गुनीपूर्वसमये ब्राह्मणानामुपोषितः ।
भक्ष्यान्फाणितसंयुक्तान्
दत्त्वा सौभाग्यमृच्छति ॥ १३
घृतक्षीरसमायुक्तं विधिवत्षष्टिकौदनम् ।
उत्तराविषये दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ १४
यद्यत्प्रदीयते दानमुत्तराविषये नरैः ।
महाफलमनन्तं तद्भवतीति विनिश्चयः ॥ १५
हस्ते हस्तिरथं दत्त्वा चतुर्युक्तमुपोषितः ।
प्राप्नोति परमाल्लोकान्पुण्यकामसमन्वितान्
चित्रायां वृषभं दत्त्वा पुण्यगन्धांश्च भारत ।
चरन्त्यप्सरसां लोके रमन्ते नन्दने तथा १७
स्वात्यामथ धनं दत्त्वा यदिष्टतममात्मनः ।
प्राप्नोति लोकान्स शुभानिह चैव महद्यशः१८
विशाखायामनड्वाहं धेनुं दत्त्वा च दुग्धदाम् ।
सप्रासंगं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंयुतम् १९
पितॄन्देवांश्च प्रीणाति प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।
न च दुर्गाण्यवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति
दत्त्वा यथोक्तं विप्रेभ्यो वृत्तिमिष्टां स विन्दति
नरकादींश्च संक्लेशान्नाप्नोतीति विनिश्चयः ॥
अनुराधासु प्रावारं वरान्नं समुपोषितः ।
दत्त्वा युगशतं चापि नरः स्वर्गे महीयते ॥२२
कालशाकं तु विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्यः समूलकम्
ज्येष्ठायामृद्धिमिष्टां वै गतिमिष्टां स गच्छति
मूले मूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।
पितॄन्प्रीणयते चापि गतिमिष्टां च गच्छति ॥
अथ पूर्वास्वषाढासु दधिपात्राण्युपोषितः ।
कुलवृत्तोपसंपन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २५
पुरुषो जायते प्रेत्य कुले सुबहुगोधने ।
उदमन्थं ससर्पिष्कं प्रभूतमधिफाणितम् २६
दत्त्वोत्तरास्वषाढासु सर्वकामानवाप्नुयात् ।
दुग्धं त्वभिजिते योगे दत्त्वा मधुघृतप्लुतम् ।
धर्मनित्यो मनीषिभ्यः स्वर्गलोके महीयते २७
श्रवणे कम्बलं दत्त्वा वस्त्रान्तरितमेव वा ।
श्वेतेन याति यानेन स्वर्गलोकानसंवृतान् २८
गोप्रयुक्तं धनिष्ठासु यानं दत्त्वा समाहितः ।
वस्त्रराशिधनं सद्यः प्रेत्य राज्यं प्रपद्यते ॥ २९
गन्धाञ्छतभिषायोगे दत्त्वा सागुरुचन्दनान्
प्राप्नोत्यप्सरसां संघान्प्रेत्य गन्धांश्च शाश्वतान्
पूर्वाभाद्रपदायोगे राजमाषान्प्रदाय तु ।
सर्वभक्षफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत् ३१
औरभ्रमुत्तरायोगे यस्तु मांसं प्रयच्छति ।
स पितॄन्प्रीणयति वै प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ ३२
कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति ।
सा प्रेत्य कामानादाय दातारमुपतिष्ठति ३३
रथमश्वसमायुक्तं दत्त्वाऽश्विन्यां नरोत्तमः ।
हस्त्यश्वरथसंपन्ने वर्चस्वी जायते कुले ॥३४
भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलधेनुं प्रदाय वै ।
गाः सुप्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा

भीष्म उवाच ।

इत्येष लक्षणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः ।
देवक्या नारदेनेह सा स्नुषाभ्योऽब्रवीदिदम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि नक्षत्रयोगदानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सौम्यनक्षत्रे मृगशिरसि ॥ ७ ॥ पूपान् पिष्टमयान् घृतपाचितपिंडान् ॥ ९ ॥ अनालोकेषु आलोकातरवर्जितेषु स्वयप्रकाशोऽपित्यर्थ ॥ १० ॥ फाणितं गोरसविकार ॥ १३ ॥ प्रासंगो धान्यादि पिधानयोग्य चतुरस्रम् ॥ १९ ॥ उदमंथं उदकुंभयुक्तं सक्तुविकारम् ॥२६॥ उरभ्र पशुविशेष· अजो वा ॥३२॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतु षष्टितमोऽध्याय· ॥ ६४ ॥ यावता वस्त्रेण कृत्स्ना धेनुराच्छादिता भवति तद्वस्त्रपूरिततिलास्तिलधेनु ।

## ६५

भीष्म उवाच ।
सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनं
इत्येवं भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥ १
पवित्रमथ चायुष्यं पितृणामक्षयं च तत् ।
सुवर्णं मनुजेन्द्रेण हरिश्चन्द्रेण कीर्तितम् ॥ २
पानीयं परमं दानं दानानां मनुरब्रवीत् ।
तस्मात्कूपांश्च वापीश्च तडागानि च खानयेत्
अर्धं पापस्य हरति पुरुषस्येह कर्मणः ।
कूपः प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तश्च नित्यशः ॥ ४
सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये ।
गावः पिबंति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा ५
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् ।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुते ॥ ६
बृहस्पतेर्भगवतः पूष्णश्चैव भगस्य च ।
अश्विनोश्चैव वह्नेश्च प्रीतिर्भवति सर्पिषा ॥ ७
परमं भेषजं ह्येतद्यज्ञानामेतदुत्तमम् ।
रसानामुत्तमं चैतत्फलानां चैतदुत्तमम् ॥ ८
फलकामो यशस्कामः पुष्टिकामश्च नित्यदा ।
घृतं दद्याद्द्विजातिभ्यः पुरुषः शुचिरात्मवान् ९
घृतं मासे आश्वयुजि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति
तस्मै प्रयच्छतो रूपं प्रीतौ देवाविहाश्विनौ ॥
पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति
गृहं तस्य न रक्षांसि धर्षयन्ति कदाचन ॥ ११
पिपासया न म्रियते सोपच्छन्दश्च जायते ।
न प्राप्नुयाच्च व्यसनं करकान्यः प्रयच्छति १२
प्रयतो ब्राह्मणाग्रे यः श्रद्धया परया युतः ।
उपस्पर्शनषड्भागं लभते पुरुषः सदा ॥ १३
यः साधनार्थं काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति
प्रतापनार्थं राजेन्द्र वृत्तवद्भ्यः सदा नरः ॥ १४
सिद्ध्यंत्यर्थाःसदातस्य कार्याणि विविधानि च
उपर्युपरि शत्रूणां वपुषा दीप्यते च सः ॥ १५
भगवांश्चापि संप्रीतो वह्निर्भवति नित्यशः ।
न तं त्यजन्ति पशवः संग्रामे च जयत्यपि १६
पुत्राञ्छ्रियं च लभते यश्छत्रं संप्रयच्छति ।
न चक्षुर्व्याधिं लभते यज्ञभागमथाश्नुते ॥ १७
निदाघकाले वर्षे वा यश्छत्रं संप्रयच्छति ।
नास्य कश्चिन्मनोदाहः कदाचिदपि जायते ॥
कृच्छ्रात्स विषमाच्चैव क्षिप्रं मोक्षमवाप्नुते ।
प्रदानं सर्वदानानां शकटस्य विशांपते ।
एवमाह महाभागः शांडिल्यो भगवानृषिः १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

युधिष्ठिर उवाच ।
दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।
यत्फलं तस्य भवति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
भीष्म उवाच ।
उपानहौ प्रयच्छेद्यो ब्राह्मणेभ्यः समाहितः
मर्दते कण्टकान्सर्वान्विषमान्निस्तरत्यपि ॥ २
स शत्रूणामुपरि च सन्तिष्ठति युधिष्ठिर ।
यानं चाश्वतरीयुक्तं तस्य शुभ्रं विशांपते ॥ ३
उपतिष्ठति कौन्तेय रौप्यकांचनभूषितम् ।
शकटं दम्यसंयुक्तं दत्तं भवति चैव हि ॥ ४
युधिष्ठिर उवाच ।
यत्फलं तिलदाने च भूमिदाने च कीर्तितम्
गोदाने चान्नदाने च भूयस्तद्ब्रूहि कौरव ॥ ५

---

६५

**सर्वानीति** ॥ १ ॥ सोपच्छंद सोपकरण. करकापात्रविशेषान् ॥ १२ ॥ अग्रं वृत्तिक्षेत्रादि तदर्थं उत्कोचं विना उपस्पर्शनं दानम् ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

**दह्यमानायेति** ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

शृणुष्व मम कौन्तेय तिलदानस्य यत्फलम्
निशम्य च यथान्यायं प्रयच्छ कुरुसत्तम ॥ ६
पितॄणां परमं भोज्यं तिलाः सृष्टाः स्वयंभुवा ।
तिलदानेन वै तस्मात्पितृपक्षः प्रमोदते ॥ ७
माघमासे तिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति
सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥ ८
सर्वसत्रैश्च यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् ।
न चाकामेन दातव्यं तिलश्राद्धं कदाचन ९
महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः ।
ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिल[illegible]मो ॥
पौष्टिका रूपदाश्चैव तथा पापविनाशनाः ।
तस्मात्सर्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते ११
आपस्तंबश्च मेधावी शङ्खश्च लिखितस्तथा ।
महर्षिर्गौतमश्चापि तिलदानैर्दिवं गताः ॥ १२
तिलहोमरता विप्राः सर्वे संयतमैथुनाः ।
समा गव्येन हविषा प्रवृत्तिषु च संस्थिताः १३
सर्वेषामिति दानानां तिलदानं विशिष्यते ।
अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते ॥ १४
उच्छिन्ने तु पुरा हव्ये कुशिकर्षिः परंतपः ।
तिलैरग्नित्रयं हुत्वा प्राप्तवान् गतिमुत्तमाम् १५
इति प्रोक्तं कुरुश्रेष्ठ तिलदानमनुत्तमम् ।
विधानं येन विधिना तिलानामिह शस्यते १६
अत ऊर्ध्वं निबोधेदं देवानां यष्टुमिच्छताम् ।
समागमे महाराज ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा ॥ १७
देवाः समेत्य ब्रह्माणं भूमिभागे यियक्षवः ।
शुभं देशमयाचन्त यजेम इति पार्थिव ॥ १८

देवा ऊचुः ।

भगवंस्त्वं प्रभुर्भूमेः सर्वस्य त्रिदिवस्य च ।
यजेमहि महाभाग यज्ञं भवदनुज्ञया ॥ १९
नाननुज्ञातभूमिर्हि यज्ञस्य फलमश्नुते ।
त्वं हि सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च २०
प्रभुर्भवसि तस्मात्त्वं समनुज्ञातुमर्हसि ।

ब्रह्मोवाच ।

ददानि मेदिनीभागं भवद्भ्योऽहं सुरर्षभाः॥
यस्मिन्देशे करिष्यध्वं यज्ञान्काश्यपनन्दनाः।

देवा ऊचुः ।

भगवन्कृतकार्याः स्म यक्ष्महे स्वाप्तदक्षिणैः २२
इमं तु देशं मुनयः पर्युपासन्ति नित्यदा ।
ततोऽगस्त्यश्च कण्वश्च भृगुरत्रिर्वृषाकपिः २३
असितो देवलश्चैव देवयज्ञमुपागमन् ।
ततो देवा महात्मान ईजिरे यज्ञमच्युतम् २४
तथा समापयामासुर्यथाकालं सुरर्षभाः ।
त इष्टयज्ञास्त्रिदशा हिमवत्यचलोत्तमे ॥ २५
षष्ठमंशं क्रतोस्तस्य भूमिदानं प्रचक्रिरे ।
प्रादेशमात्रं भूमेस्तु यो दद्यादनुपस्कृतम् २६
न सीदति स कृच्छ्रेषु न च दुर्गाण्यवाप्नुते ।
शीतवातातपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम् २७
प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यान्तेऽपि न चाल्यते
मुदितो वसति प्राज्ञः शक्रेण सह पार्थिव २८
प्रतिश्रयप्रदानाच्च सोऽपि स्वर्गे महीयते ।
अध्यापककुले जातः श्रोत्रियो नियतेन्द्रियः २९
गृहे यस्य वसेत्तुष्टः प्रधानं लोकमश्नुते ।
तथा गवार्थे शरणं शीतवर्षसहं दृढम् ॥ ३०
आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ।
क्षेत्रभूमिं ददल्लोके शुभां श्रियमवाप्नुयात् ३१
रत्नभूमिं प्रदद्यात्तु कुलवंशं प्रवर्धयेत् ।
न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात्कथंचन ३२
न श्मशानपरीतां च न च पापनिषेविताम् ।
पारक्ये भूमिदेशे तु पितॄणां निर्वपेत्तु यः ३३
तद्भूमिं वापि पितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ।
तस्मात्क्रीत्वा महीं दद्यात्स्वल्पामपि विचक्षणः
पिंडः पितृभ्यो दत्तो वै तस्यां भवति शाश्वतः
अटवीपर्वताश्चैव नद्यस्तीर्थानि यानि च ३५
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तत्र परिग्रहः ।
इत्येतद्भूमिदानस्य फलमुक्तं विशांपते ॥ ३६
अतः परं तु गोदानं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ
गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात्सर्वेभ्य एव च
तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः सहास्थितः ।
ब्राह्मे लोके वसन्त्येताः सोमेन सह भारत ३८
यां तां ब्रह्मर्षयः सिद्धाः प्रार्थयन्ति परां गतिम्
पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा ३९

---

इमं हिमवत्सान्निहितम् ॥ २३ ॥ हिमवति हिमवत्समीपे कुरुक्षेत्रं येषा कुरुक्षेत्रे वेदिरासीदिति श्रुते ॥ २५ ॥ प्रतिश्रयो वासार्थं स्थलम् ॥ २९ ॥ प्रधानं लोकं ब्रह्मलोकम् ॥ ३० ॥ तद्भूमिं परकीयां भूमिं वा यो निर्वपेत् पितृभिः पितृभ्यो दद्यातर्हि तच्छ्राद्धं तद्भूमिशनाख्यं कर्म च उभयं निहन्यते वृथा भवति ॥३४॥ तस्यां क्रीतायाम् ॥३५

अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृङ्गैर्वालैश्च भारत ।
नासां शीतातपौ स्यातां सदैताः कर्म कुर्वते
न वर्षविषयं वापि दुःखमासां भवत्युत ।
ब्राह्मणैः सहिता यान्ति तस्मात्पारमकं पदम्
एकं गोब्राह्मणं तस्मात्प्रवदन्ति मनीषिणः ।
रन्तिदेवस्य यज्ञे ताः पशुत्वेनोपकल्पिताः ॥
अतश्चर्मण्वती राजन् गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता ।
पशुत्वाच्च विनिर्मुक्ताः प्रदानायोपकल्पिताः
ता इमा विप्रमुख्येभ्यो यो ददाति महीपते ।
निस्तरेदापदं कृच्छ्रां विषमस्थोऽपि पार्थिव ॥
गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं न प्रपद्यते ।
सर्वत्र विजयं चापि लभते मनुजाधिप ॥ ४५
अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति ४६
अग्नीनामव्ययं ह्येतद्धौम्यं वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं स हौम्यं संप्रयच्छति ॥
स्वर्गो वै मूर्तिमानेष वृषभं यो गवां पतिम् ।
विप्रे गुणयुते दद्यात्स वै स्वर्गे महीयते ॥ ४८
प्राणा वै प्राणिनामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं प्राणानेष प्रयच्छति ४९
गावः शरण्या भूतानामिति वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं शरणं संप्रयच्छति ५०
न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके
गोजीविने न दातव्या तथा गौर्भरतर्षभ ५१
ददत्स तादृशानां वै नरो गां पापकर्मणाम् ।
अक्षयं नरकं यातीत्येवमाहुर्महर्षयः ॥ ५२

न कृशां नापवत्सां वा वंध्यां रोगान्वितां तथा
न व्यङ्गां न परिश्रान्तां दद्याद्गां ब्राह्मणाय वै
दशगोसहस्रदो हि शक्रेण सह मोदते ।
अक्षयाँल्लभते लोकान्नरः शतसहस्रशः ॥ ५४
इत्येतद्गोप्रदानं च तिलदानं च कीर्तितम् ।
तथा भूमिप्रदानं च शृणुष्वान्ने च भारत ॥ ५५
अन्नदानं प्रधानं हि कौन्तेय परिचक्षते ।
अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ५६
श्रान्ताय क्षुधितायान्नं यः प्रयच्छति भूमिपः
स्वायंभुवं महत्स्थानं स गच्छति नराधिप ५७
न हिरण्यैर्न वासोभिर्नान्यदानेन भारत ।
प्राप्नुवन्ति नराः श्रेयो यथा ह्यन्नप्रदाः प्रभो ॥
अन्नं वै प्रथमं द्रव्यमन्नं श्रीश्च परा मता ।
अन्नात्प्राणः प्रभवति तेजो वीर्यं बलं तथा ५९
सद्यो ददाति यश्चान्नं सदैकाग्रमना नरः ।
न स दुर्गाण्यवाप्नोतीत्येवमाह पराशरः ६०
अर्चयित्वा यथान्यायं देवेभ्योऽन्नं निवेदयेत्
यदन्ना हि नरा राजंस्तदन्नास्तस्य देवताः ६१
कौमुदे शुक्लपक्षे तु योऽन्नदानं करोत्युत ।
स संतरति दुर्गाणि प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ६२
अभुक्त्वाऽतिथये चान्नं प्रयच्छेद्यः समाहितः
स वै ब्रह्मविदां लोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ॥ ६३
सुकृच्छ्रामापदं प्राप्तश्चान्नदः पुरुषस्तरेत् ।
पापं तरति चैवेह दुष्कृतं चापकर्षति ॥ ६४
इत्येतदन्नदानस्य तिलदानस्य चैव ह ।
भूमिदानस्य च फलं गोदानस्य च कीर्तितम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुतं दानफलं तात यत्त्वया परिकीर्तितम्
अन्नदानं विशेषेण प्रशस्तमिह भारत ॥ १
पानीयदानमेवैतत्कथं चेह महाफलम् ।
इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण पितामह २
भीष्म उवाच ।
हन्त ते वर्तयिष्यामि यथावद्भरतर्षभ ।
गदतस्तन्ममाद्येह शृणु सत्यपराक्रम ॥ ३

---

कौमुदे कार्तिके ॥६२॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

श्रुतमिति ॥ १ ॥

पानीयदानात्प्रभृति सर्वं वक्ष्यामि तेऽनघ।
यद्दत्त्वा यच्च पानीयं संप्रदायाश्नुते नरः॥ ४
न तस्मात्परमं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतः।
अन्नात्प्राणभृतस्तात प्रवर्तन्ते हि सर्वशः॥५
तस्मादन्नं परं लोके सर्वलोकेषु कथ्यते।
अन्नाद्बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्धते सदा॥ ६
अन्नदानमतस्तस्माच्छ्रेष्ठमाह प्रजापतिः।
सावित्र्या ह्यपि कौन्तेय श्रुतं ते वचनं शुभम्
यतश्च यद्यथा चैव देवसत्रे महामते।
अन्ने दत्ते नरेणेह प्राणा दत्ता भवन्त्युत॥ ८
प्राणदानाद्धि परमं न दानमिह विद्यते।
श्रुतं हि ते महाबाहो लोमशस्यापि तद्वचः ९
प्राणान्दत्त्वा कपोताय यत्प्राप्तं शिबिना पुरा।
तां गतिं लभते दत्त्वा द्विजस्यान्नं विशांपते १०
तस्माद्विशिष्टां गच्छन्ति प्राणदा इति नः श्रुतं
अन्नं चापि प्रभवति पानीयात्कुरुसत्तम।
नीरजातेन हि विना न किंचित्संप्रवर्तते ११
नीरजातश्च भगवान्सोमो ग्रहगणेश्वरः।
अमृतं च सुधा चैव सुधा चैवामृतं तथा १२
अन्नौषध्यो महाराज वीरुधश्च जलोद्भवाः।
यतः प्राणभृतां प्राणाः संभवन्ति विशांपते॥
देवानाममृतं ह्यन्नं नागानां च सुधा तथा।
पितॄणां च स्वधा प्रोक्ता पशूनां चापि वीरुधः
अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहुर्मनीषिणः।
तच्च सर्वं नरव्याघ्र पानीयात्संप्रवर्तते॥ १५
तस्मात्पानीयदानाद्वै न परं विद्यते क्वचित्।
तच्च दद्यान्नरो नित्यं यदीच्छेद्भूतिमात्मनः १६
धन्यं यशस्यमायुष्यं जलदानमिहोच्यते।
शत्रूंश्चाप्यधि कौन्तेय सदा तिष्ठति तोयदः १७
सर्वकामानवाप्नोति कीर्तिं चैव हि शाश्वतीम्
प्रेत्य चानन्त्यमश्नाति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते १८
तोयदो मनुजव्याघ्र स्वर्गं गत्वा महाद्युते।
अक्षयान्समवाप्नोति लोकानित्यब्रवीन्मनुः॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पानीयदानमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

## ६८

युधिष्ठिर उवाच।
तिलानां कीदृशं दानमथ दीपस्य चैव हि
अन्नानां वाससां चैव भूय एव ब्रवीहि मे॥१
भीष्म उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ब्राह्मणस्य च संवादं यमस्य च युधिष्ठिर॥२
मध्यदेशे महान्ग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह।
गंगायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः॥ ३
पर्णशालेति विख्यातो रमणीयो नराधिप।
विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसंस्तथा॥४
अथ प्राह यमः कंचित्पुरुषं कृष्णवाससम्।
रक्ताक्षमूर्ध्वरोमाणं काकजंघाक्षिनासिकम् ५
गच्छ त्वं ब्राह्मणग्रामं ततो गत्वा तमानय।
अगस्त्यं गोत्रतश्चापि नामतश्चापि शर्मिणम्
शमे निविष्टं विद्वांसमध्यापकमनावृतम्।
मा चान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः
स हि तादृग्गुणस्तेन तुल्योऽध्ययनजन्मना।
अपत्येषु तथा वृत्ते समस्तेनैव धीमता॥ ८
तमानय यथोद्दिष्टं पूजा कार्या हि तस्य वै।
स गत्वा प्रतिकूलं तच्चकार यमशासनम्।
तमाक्रम्यानयामास प्रतिषिद्धो यमेन यः।
तस्मै यमः समुत्थाय पूजां कृत्वा च वीर्यवान्
प्रोवाच नीयतामेष सोऽन्य आनीयतामिति
एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन स द्विजः॥ ११
उवाच धर्मराजानं निर्विण्णोऽध्ययनेन वै।
यो मे कालो भवेच्छेषस्तं वसेयमिहाच्युत १२

नीरजातेन जलोद्भवेन धान्यादिना॥ ११॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

६८

तिलानामिति॥ १॥ इह यमलोके॥ १२॥

ब्राह्मण उवाच ।

नाहं कालस्य विहितं प्राप्नोमीह कथंचन ।
यो हि धर्मं चरति वै तं तु जानामि केवलम् ॥
गच्छ विप्र स्वभवनं आलयं स्व महाद्युते ।
ब्रूहि सर्वं यथा स्वैरं करवाणि किमच्युत ॥ १४

ब्राह्मण उवाच ।

यत्तत्कृत्वा सुमहत्पुण्यं स्यात्तद्ब्रवीहि मे ।
सर्वस्य हि प्रमाणं त्वं त्रैलोक्यस्यापि सत्तम ॥

यम उवाच ।

शृणु तत्त्वेन विप्रर्षे प्रदानविधिमुत्तमम् ।
तिलाः परमकं दानं पुण्यं चैवेह शाश्वतम् ॥ १६
तिलाश्च संप्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ ।
नित्यदानात्सर्वकामांस्तिला निर्वर्तयन्त्युत ॥
तिलान् श्राद्धे प्रशंसन्ति दानमेतद्ध्यनुत्तमम् ।
तान्प्रयच्छस्व विप्रेभ्यो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १८
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु तिलान्दद्याद्द्विजातिषु ।
तिला भक्षयितव्याश्च सदा त्वालंभनं च तैः ॥
कार्यं सततमिच्छद्भिः श्रेयः सर्वात्मना गृहे ।
तथाऽऽपः सर्वदा देयाः पेयाश्चैव न संशयः ॥
पुष्करिण्यस्तडागानि कूपांश्चैवात्र खानयेत् ।
एतत्सुदुर्लभतरमिहलोके द्विजोत्तम ॥ २१
आपो नित्यं प्रदेयास्ते पुण्यं ह्येतदनुत्तमम् ।
प्रपाश्च कार्याः पानार्थं नित्यं ते द्विजसत्तम ।
भुक्तेऽप्यन्नं प्रदेयं तु पानीयं वै विशेषतः ॥ २२

भीष्म उवाच ।

इत्युक्ते स तदा तेन यमदूतेन वै गृहान् ।
नीतश्च कारयामास सर्वं तद्यमशासनम् ॥
नीत्वा तं यमदूतोऽपि गृहीत्वा शर्मिणं तदा ।
ययौ स धर्मराजाय न्यवेदयत चापि तम् ॥ २४
तं धर्मराजो धर्मज्ञं पूजयित्वा प्रतापवान् ।
कृत्वा च संविदं तेन विससर्ज यथागतम् ॥ २५
तस्यापि च यमः सर्वमुपदेशं चकार ह ।
प्रेत्यैत्य च ततः सर्वं चकारोक्तं यमेन तत् ॥
तथा प्रशंसते दीपान्यमः पितृहितेप्सया ।
तस्माद्दीपप्रदो नित्यं संतारयति वै पितॄन् ॥
दातव्याः सततं दीपास्तस्माद्भरतसत्तम ।
देवतानां पितृणां च चक्षुष्यं चात्मनां विभो ॥
रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं जनाधिप ।
यस्तान् विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयंकरम् ॥ २९
यद्वै ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै ।
उभयोः स्यात्तदक्षय्यं दातुरादातुरेव च ॥ ३०
यो ददाति स्थितः स्थित्यां तादृशाय प्रतिग्रहम् ।
उभयोरक्षयं धर्मं तं मनुः प्राह धर्मवित् ॥ ३१
वाससां संप्रदानेन स्वदारनिरतो नरः ।
सुवस्त्रश्च सुवेषश्च भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ३२
गावः सुवर्णं च तथा तिलाश्चैवानुवर्णिताः ।
बहुशः पुरुषव्याघ्र वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ ३३
विवाहांश्चैव कुर्वीत पुत्रानुत्पादयेत च ।
पुत्रलाभो हि कौरव्य सर्वलाभाद्विशिष्यते ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्येनकपोतसंवादे
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

युधिष्ठिर उवाच ।

भूय एव कुरुश्रेष्ठ दानानां विधिमुत्तमम् । कथयस्व महाप्राज्ञ भूमिदानं विशेषतः ॥ १ ॥

कालस्य विहितं आयु प्रमाण न प्राप्नोमि न जानामि । कालेनाप्रवर्तितं त्वामिह स्थापयितुं न शक्नोमीत्यर्थः ॥१३॥ ब्रूहि पृच्छ ॥ १४ ॥ निर्वर्तयन्ति साधयन्ति ॥ १७ ॥ आलम्भनं सर्वत स्पर्शनं उद्वर्तनमित्यर्थः ॥१९॥ रत्नेति । तस्मै रत्नदानं कर्तव्यं यस्तान् तानि विक्रीय यज्ञं करोति । एतद्धि तस्याभयकरं प्रतिग्रहविभ्रमजदोषघ्नम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

भूय इति ॥ १ ॥

पृथिवीं क्षत्रियो दद्याद्ब्राह्मणायेष्टिकर्मिणे ।
विधिवत्प्रतिगृह्णीयान्न त्वन्यो दातुमर्हति ॥ २
सर्ववर्णैस्तु यच्छक्यं प्रदातुं फलकाङ्क्षिभिः ।
वेदे वा यत्समाख्यातं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ३

भीष्म उवाच ।

तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च
सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ४
यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्यां ब्राह्मीं सरस्वतीं
पृथिवीगोप्रदानाभ्यां तुल्यं स फलमश्नुते ॥ ५
तथैव गाः प्रशंसन्ति न तु देयं ततः परम् ।
सन्निकृष्टफलास्ता हि लघ्वर्थाश्च युधिष्ठिर ६
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।
वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः
संताड्या न तु पादेन गवां मध्ये न च व्रजेत् ।
मङ्गलायतनं देव्यस्तस्मात्पूज्याः सदैव हि ॥८
प्रचोदनं देवकृतं गवां कर्मसु वर्तताम् ।
पूर्वमेवाक्षरं चान्यदभिधेयं ततः परम् ॥ ९
प्रचारे वा निवाते वा बुधो नोद्वेजयेत गाः ।
तृषिता ह्यभिवीक्षन्त्यो नरं हन्युः सबान्धवम्
पितृसद्मानि सततं देवतायतनानि च ।
पूयन्ते शकृता यासां पूतं किमधिकं ततः ॥ ११
ग्रासमुष्टिं परगवे दद्यात्संवत्सरं तु यः ॥
अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत्सार्वकामिकम् १२
स हि पुत्रान्यशोऽर्थं च श्रियं चाप्यधिगच्छति
नाशयत्यशुभं चैव दुःस्वप्नं चाप्यपोहति १३

युधिष्ठिर उवाच ।

देयाः किंलक्षणा गावः काश्चापि परिवर्जयेत्
कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय च १४

भीष्म उवाच ।

असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने ।
हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ॥ १५
भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
दत्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान्
यश्चैव धर्मं कुरुते तस्य धर्मफलं च यत् ।
सर्वस्यैवांशभाग्दाता तं निमित्तं प्रवृत्तयः १७
यश्चैनमुत्पादयते यश्चैनं त्रायते भयात् ।
यश्चास्य कुरुते वृत्तिं सर्वे ते पितरस्त्रयः १८
कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्ति मानो महद्यशः ।
अपुत्रतां त्रयः पुत्रा अवृत्तिं दश धेनवः ॥ १९

वेदान्तनिष्ठस्य बहुश्रुतस्य
प्रज्ञानतृप्तस्य जितेन्द्रियस्य ।
शिष्टस्य दान्तस्य यतस्य चैव
भूतेषु नित्यं प्रियवादिनश्च ॥ २०
यः क्षुद्भयाद्वै न विकर्म कुर्या-
न्मृदुश्च शान्तो ह्यतिथिप्रियश्च ।
वृत्तिं द्विजायातिसृजेत तस्मै
यस्तुल्यशीलश्च सपुत्रदारः २१
शुभे पात्रे ये गुणा गोप्रदाने
तावान्दोषो ब्राह्मणस्वापहारे ।
सर्वावस्थं ब्राह्मणस्वापहारा
दाराश्चैषां दूरतो वर्जनीयाः २२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोदानमाहात्म्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

---

इष्टिकर्मिणे याज्ञिकाय ॥ २ ॥ तुल्यनामानि गोपदवाच्यानि ॥ ४ ॥ देयं दानयोग्यं परं श्रेष्ठम् ॥ ६ ॥ प्रचोदनमिति गवां बलीवर्दानां कर्मसु यज्ञार्थेषु कृष्यार्थेषु कर्षणादिषु वर्तता प्रचोदनं प्रतोदेन प्रेरणं देवैः कृतमिति न तत्र दोष इति भावः । तथापि पूर्वं यज्ञार्थमेव चोदनं अक्षरं श्रेयस्करम् । अन्यत्कृष्याद्यर्थे तु ततः परं वैदिककर्षणमनुप्रवृत्तं अभिधेयं वाच्यं निन्द्यमित्यर्थः । तथा च स्मृतिः हलान्तं ब्रह्मवर्चसमिति । तेन गोद्रोहकारित्वात्कृष्यर्थं कर्षणं दोषावहमित्यर्थः ॥ ९ ॥ प्रचारे पलायने । निवाते कठिनोपवेशने अभिवीक्षन्त्यो जलमलभमानाः ॥१०॥ आहारं तदीयतत्काहरणमकृत्वा ॥ १२ ॥ वेदान्तनिष्ठस्य वृत्तिं अतिसृजेतेत्युत्तरेणान्वयः चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ २० ॥ य इति । ब्राह्मणो यदि क्षुद्भयाद्विकर्म करोति तर्हि राज्ञस्तत्पापमित्यर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

## ७०

भीष्म उवाच ।

अत्रैव कीर्त्यते सद्भिर्ब्राह्मणस्वाभिमर्शने ।
नृगेण सुमहत्कृच्छ्रं यदवाप्तं कुरूद्वह ॥ १
निविशन्त्यां पुरा पार्थ द्वारवत्यामिति श्रुतिः
अदृश्यत महाकूपस्तृणवीरुत्समावृतः ॥ २
प्रयत्नं तत्र कुर्वाणास्तस्मात्कूपाज्जलार्थिनः ।
श्रमेण महता युक्तास्तस्मिंस्तोये सुसंवृते ॥ ३
ददृशुस्ते महाकायं कृकलासमवस्थितम् ।
तस्य चोद्धरणे यत्नमकुर्वंस्ते सहस्रशः ॥ ४
प्रग्रहैश्चर्मपट्टैश्च तं बद्ध्वा पर्वतोपमम् ।
नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं ततो जग्मुर्जनार्दनम् ५
खमावृत्योदपानस्य कृकलासः स्थितो महान् ।
तस्य नास्ति समुद्धर्तेत्यथ कृष्णे न्यवेदयन् ६

स वासुदेवेन समुद्धृतश्च
पृष्टश्च कार्यं निजगाद राजा ।
नृगस्तदाऽऽत्मानमथो न्यवेदयत्
पुरातनं यज्ञसहस्रयाजिनम् ७
तथा ब्रुवाणं तु तमाह माधवः
शुभं त्वया कर्म कृतं न पापकम् ।
कथं भवान्दुर्गतिमीदृशीं गतो
नरेन्द्र तद्ब्रूहि किमेतदीदृशम् ॥ ८
शतं सहस्राणि गवां शतं पुनः
पुनः शतान्यष्टशतायुतानि ।
त्वया पुरा दत्तमितीह शुश्रुम
नृप द्विजेभ्यः क्व नु तद्गतं तव ९

नृगस्ततोऽब्रवीत्कृष्णं ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ।
प्रोषितस्य परिभ्रष्टा गौरेका मम गोधने १०
गवां सहस्रे संख्याता तदा सा पशुपैर्मम ।
सा ब्राह्मणाय मे दत्ता प्रेत्यार्थमभिकाङ्क्षता ११
अपश्यत्परिमार्गंश्च तां गां परगृहे द्विजः ।
ममेयमिति चोवाच ब्राह्मणो यस्य साऽभवत्
तावुभौ समनुप्राप्तौ विवदन्तौ भृशज्वरौ ।
भवान्दाता भवान्हर्तेत्यथ तौ मामवोचताम् ।
शतेन शतसंख्येन गवां विनिमयेन वै ।
याचे प्रतिग्रहीतारं स तु मामब्रवीदिदम् ।
देशकालोपसंपन्ना दोग्ध्री शान्तातिवत्सला
स्वादुक्षीरप्रदा धन्या मम नित्यं निवेशने १५
कृशं च भरते सा गौर्मम पुत्रमपस्तनम् ।
न सा शक्या मया दातुमित्युक्त्वा स जगाम ह
ततस्तमपरं विप्रं याचे विनिमयेन वै ।
गवां शतसहस्रं हि तत्कृते गृह्यतामिति १७

ब्राह्मण उवाच ।

न राज्ञां प्रतिगृह्णामि शक्तोऽहं स्वस्य मार्गणे
सैव गौर्दीयतां शीघ्रं ममेति मधुसूदन ॥ १८
रुक्ममश्वांश्च ददतो रजतस्यन्दनांस्तथा ।
न जग्राह ययौ चापि तदा स ब्राह्मणर्षभः १९
एतस्मिन्नेव काले तु चोदितः कालधर्मणा ।
पितृलोकमहं प्राप्य धर्मराजमुपागमम् ॥ २०
यमस्तु पूजयित्वा मां ततो वचनमब्रवीत् ।
नान्तः संख्यायते राजंस्तव पुण्यस्य कर्मणः
अस्ति चैव कृतं पापमज्ञानात्तदपि त्वया ।
चरस्व पापं पश्चाद्वा पूर्वं वा त्वं यथेच्छसि ॥
रक्षितास्मीति चोक्तं ते प्रतिज्ञा चानृता तव
ब्राह्मणस्वस्य चादानं द्विविधस्ते व्यतिक्रमः ॥
पूर्वं कृच्छ्रं चरिष्येऽहं पश्चाच्छुभमिति प्रभो ।
धर्मराजं ब्रुवन्नेवं पतितोऽस्मि महीतले ॥ २४
अश्रौषं पतितश्चाहं यमस्योच्चैः प्रभाषतः ।
वासुदेवः समुद्धर्ता भविता ते जनार्दनः २५
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते क्षीणे कर्मणि दुष्कृते ।
प्राप्स्यसे शाश्वताँल्लोकाञ्जितान्स्वेनैव कर्मणा
कूपेऽऽत्मानमधःशीर्षमपश्यं पतितश्च ह ।
तिर्यग्योनिमनुप्राप्तं न च मामजहात्स्मृतिः ॥
त्वया तु तारितोऽस्म्यद्य किमन्यत्र तपोबलात्
अनुजानीहि मां कृष्ण गच्छेयं दिवमद्य वै ॥
अनुज्ञातः स कृष्णेन नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
दिव्यमास्थाय पन्थानं ययौ दिवमरिन्दमः ॥
ततस्तस्मिन्दिवं याते नृगे भरतसत्तम ।
वासुदेव इमं श्लोकं जगाद कुरुनन्दन ॥ ३०
ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
ब्राह्मणस्वं हृतं हन्ति नृगं ब्राह्मणगौरिव ३१

---

७०

**अत्रैवेति** ॥ १ ॥ जलार्थिन तस्मिन्कृकलासं ददृशुरित्यग्रिमेणान्वयः ॥ ३ ॥ अनृता ब्राह्मणधेनोर्नाशात् तस्या एव त्वया आदानात् ॥ २२ ॥ कृच्छ्रं चरिष्ये पापफलं भोक्ष्ये ॥ २४ ॥ त्वया आत्मानं [illegible] ॥ २७ ॥

सतां समागमः सद्भिर्नाफलः पार्थ विद्यते ।
विमुक्तं नरकात्पश्य नृगं साधुसमागमात् ३२
प्रदानफलवत्तत्र द्रोहस्तत्र तथाफलः ।
अपचारं गवां तस्माद्वर्जयेत युधिष्ठिर ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि नृगोपाख्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

युधिष्ठिर उवाच ।
दत्तानां फलसंप्राप्तिं गवां प्रब्रूहि मेऽनघ ।
विस्तरेण महाबाहो न हि तृप्यामि कथ्यताम्
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऋषेरुद्दालकेर्वाक्यं नाचिकेतस्य चोभयोः २
ऋषिरुद्दालकिर्दीक्षामुपगम्य ततः सुतम् ।
त्वं मामुपचरस्वेति नाचिकेतमभाषत ॥ ३
समाप्ते नियमे तस्मिन्महर्षिः पुत्रमब्रवीत् ।
उपस्पर्शनसक्तस्य स्वाध्यायाभिरतस्य च ॥ ४
इध्मा दर्भाः सुमनसः कलशश्चातिभोजनम् ।
विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज ॥ ५
गत्वाऽनवाप्य तत्सर्वं नदीवेगसमाप्लुतम् ।
न पश्यामि तदित्येवं पितरं सोऽब्रवीन्मुनिः ६
क्षुत्पिपासाश्रमाविष्टो मुनिरुद्दालकिस्तदा ।
यमं पश्येति तं पुत्रमशपत्स महातपाः ॥ ७
तथा स पित्राऽभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः
प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्त्वोऽपतद्भुवि ॥ ८
नाचिकेतं पिता दृष्ट्वा पतितं दुःखमूर्च्छितः ।
किं मया कृतमित्युक्त्वा निपपात महीतले ९
तस्य दुःखपरीतस्य स्वं पुत्रमनुशोचतः ।
व्यतीतं तदहःशेषं साचोग्रा तत्र शर्वरी १०
पित्र्येणाश्रुप्रपातेन नाचिकेतः कुरूद्वह ।
प्रास्पन्दच्छयने कौश्ये वृष्ट्या सस्यमिवाप्लुतम्
स पर्यपृच्छत्तं पुत्रं श्लीणं पर्यागतं पुनः ।
दिव्यैर्गन्धैः समादिग्धं क्षीणस्वप्नमिवोत्थितम्
अपि पुत्र जिता लोकाः शुभास्ते स्वेन कर्मणा
दिष्ट्या चासि पुनः प्राप्तो न हि ते मानुषं वपुः
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पित्रा पृष्टो महात्मना ।
स तां वार्तां पितुर्मध्ये महर्षीणां न्यवेदयत् ॥

कुर्वन् भवच्छासनमाशु यातो
ह्यहं विशालां रुचिरप्रभावाम् ।
वैवस्वतीं प्राप्य सभामपश्यं
सहस्रशो योजनहेमभासम् ॥ १५
दृष्ट्वैव मामभिमुखमापतन्तं
देहीति स ह्यासनमादिदेश ।
वैवस्वतोऽर्घ्यादिभिरर्हणैश्च
भवत्कृते पूजयामास मां सः ॥ १६
ततस्त्वहं तं शनकैरवाचं
वृतः सदस्यैरभिपूज्यमानः ।
प्राप्तोऽस्मि ते विषयं धर्मराज
लोकानर्हो यानहं तान्विधत्स्व ॥ १७
यमोऽब्रवीन्मां न मृतोऽसि सौम्य
यमं पश्येत्याह स त्वां तपस्वी ।
पिता प्रदीप्ताग्निसमानतेजा
न तच्छक्यमनृतं विप्रकर्तुम् ॥ १८
दृष्टस्तेऽहं प्रतिगच्छस्व तात
शोचत्यसौ तव देहस्य कर्ता ।
ददानि किं चापि मनःप्रणीतं
प्रियातिथेस्तव कामान्वृणीष्व ॥ १९

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१

दत्तानामिति ॥ १ ॥ अतिभोजनं भोजनसामग्रिकं शाकादि ॥ ५ ॥ गतसत्त्वो मृत. ॥ ८ ॥ सस्यं शुष्यमाणम् ॥ ११ ॥ योजनेति लुप्ततृतीयान्तं पदम् । योजनैः सहस्रश· संमितामिति शेष· ॥ १५ ॥ अस्मै आसनं देहीति स्वभृत्यमादिदेश ॥ १६ ॥

तेनैवमुक्तस्तमहं प्रत्यवोचं
प्राप्तोऽस्मि ते विषय दुर्निवर्त्यम् ।
इच्छाम्यहं पुण्यकृतां समृद्धाँ-
ल्लोकान्द्रष्टुं यदि तेऽहं वरार्हः ॥ २०
यानं समारोप्य तु मां स देवो
वाहैर्युक्तं सुप्रभं भानुमत्तत् ।
संदर्शयामास तदात्मलोकान्
सर्वांस्तथा पुण्यकृतां द्विजेन्द्र ॥ २१
अपश्यं तत्र वेश्मानि तैजसानि महात्मनाम् ।
नानासंस्थानरूपाणि सर्वरत्नमयानि च २२
चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किङ्किणीजालवन्ति च ।
अनेकशतभौमानि सान्तर्जलवनानि च ॥ २३
वैदूर्यार्कप्रकाशानि रूप्यरुक्ममयानि च ।
तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ॥
भक्ष्यभोज्यमयान्शैलान्वासांसि शयनानि च
सर्वकर्मफलांश्चैव वृक्षान्भवनसंस्थितान् २५
नद्यो वीथ्यः सभा वाप्यो दीर्घिकाश्चैव सर्वशः
घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः
क्षीरस्रवा वै सरितो गिरींश्च
सर्पिस्तथा विमलं चापि तोयम् ।
वैवस्वतस्यानुमतांश्च देशा-
नदृष्टपूर्वान्सुबहूनपश्यम् ॥ २७
सर्वान्दृष्ट्वा तदहं धर्मराज-
मवोचं वै प्रभविष्णुं पुराणम् ।
क्षीरस्यैताः सर्पिषश्चैव नद्यः
शश्वत्स्रोताः कस्य भोज्याः प्रदिष्टाः
यमोऽब्रवीद्विद्धि भोज्यास्त्वमेता
ये दातारः साधवो गोरसानाम् ।
अन्ये लोकाः शाश्वता वीतशोकैः
समाकीर्णा गोप्रदाने रतानाम् ॥ २९
न त्वेतासां दानमात्रं प्रशस्तं
पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
ज्ञात्वा देयं विप्र गवान्तरं हि
दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥ ३०
स्वाध्यायवान् योऽतिमात्रं तपस्वी
वैतानस्थो ब्राह्मणः पात्रमासाम् ।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च
द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ३१
तिस्रो रात्र्यस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ
तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।
वत्सैः प्रीताः सुप्रजाः सोपचारा-
स्त्र्यहं दत्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥ ३२
दत्वा धेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां
कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या-
स्तावद्वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम् ॥ ३३
तथाऽनड्वाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय
दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।
कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं
भुङ्क्ते लोकान्संमितान्धेनुदस्य ॥ ३४
गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं
वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ।
वृद्धे ग्लाने संभ्रमे वा महार्थे
कृष्यर्थे वा होम्यहेतोः प्रसूत्याम् ॥ ३५
गुर्वर्थे वा बालपुष्ट्याभिषङ्गां
गां वै दातुं देशकालोऽविशिष्टः ।
अन्तर्ज्ञाताः सक्रयज्ञानलब्धाः
प्राणक्रीता निर्जिता यौतकाश्च ॥ ३६
नाचिकेत उवाच ।
श्रुत्वा वैवस्वतवचस्तमहं पुनरब्रुवम् ।
अभावे गोप्रदातृणां कथं लोकान् हि गच्छति
ततोऽब्रवीद्यमो धीमान् गोप्रदानपरां गतिम् ।
गोप्रदानानुकल्पं तु गामृते सन्ति गोप्रदाः ॥
अलाभे यो गवां दद्यात घृतधेनुं यतव्रतः ।
तस्यैता घृतवाहिन्यः क्षरन्ते वत्सला इव ३९
घृतालाभे तु यो दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः ।
स दुर्गात्तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ४०

अनेकशतानि भौमानि उपर्युपरिभूमिसमूहा येषु तानि प्रासादमण्डलानि ॥ २३ ॥ गवामन्तरं अन्योन्यं तारतम्यं अवद् ॥ ३० ॥ कृच्छ्रोत्सृष्टा सङ्कटात् निरोधात् मुक्ताः । पोषणार्थं दरिद्रागारादागताः तादृशीनां पालनं प्रशस्ततरमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ **तिस्र इति** । त्र्यहमम्मात्राहारो भूमिशायी भूत्वा चतुर्थे दिनमारभ्य त्र्यहमेकैका गा दत्वा गोरसैर्वृत्तिं कुर्यात् । एवं व्रतपूर्वकं गोत्रयं ददत उक्तं वक्ष्यमाणं च फलं भवतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ वृद्धे ग्लाने रोगिणि पथ्याशनार्थं संभ्रमे दुर्भिक्षे महार्थे यज्ञार्थे च प्रसूत्या पुत्रजन्मनि ॥ ३५ ॥ बालपुष्ट्या बालपुष्ट्यभिप्रायेण वा अन्तः बहुदुग्धाः शान्तेत्यादिगुणवत्त्वेन ज्ञाताः । क्रयलब्धाः ज्ञानलब्धाः । प्राणव्ययेन क्रीताः यौतकाः पाणिग्रहणादिकाले श्वशुरादिभ्यः प्राप्ताः ॥ ३६ ॥

तिलालाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं यतव्रतः ।
स कामप्रवहां शीतां नदीमेतामुपाश्नुते ॥ ४१
एवमेतानि मे तत्र धर्मराजो न्यदर्शयत् ।
दृष्ट्वा च परमं हर्षमवापमहमच्युत ॥ ४२
निवेदये चाहमिमं प्रियं ते
क्रतुर्महानल्पधनप्रचारः ।
प्राप्तो मया तात स मत्प्रसूतः
प्रपत्स्यते वेदविधिप्रवृत्तः ॥ ४३
शापो ह्ययं भवतोऽनुग्रहाय
प्राप्तो मया यत्र दृष्टो यमो वै ।
दानव्युष्टिं तत्र दृष्ट्वा महात्म-
न्निःसन्दिग्धान्दानधर्मांश्चरिष्ये ॥ ४४
इदं च मामब्रवीद्धर्मराजः
पुनः पुनः संप्रहृष्टो महर्षे ।
दानेन यः प्रयतोऽभूत्सदैव
विशेषतो गोप्रदानं च कुर्यात् ॥ ४५
शुद्धो ह्यर्थो नावमन्यस्व धर्मान्
पात्रे देयं देशकालोपपन्ने ।
तस्माद्गावस्ते नित्यमेव प्रदेया
मा भूच्च ते संशयः कश्चिदत्र ॥ ४६
एताः पुरा ह्यददन्नित्यमेव
शान्तात्मानो दानपथे निविष्टाः ।
तपांस्युग्राण्यप्रतिशंकमाना-
स्ते वै दानं प्रददुश्चैव शक्त्या ॥ ४७
काले च शक्त्या मत्सरं वर्जयित्वा
शुद्धात्मानः श्रद्धिनः पुण्यशीलाः ।
दत्त्वा गा वै लोकममुं प्रपन्ना
देदीप्यन्ते पुण्यशीलास्तु नाके ॥ ४८
एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः
पात्रे दत्तं प्रापणीयं परीक्ष्य ।
*काम्याष्टम्यां वर्तितव्यं दशाहं
रसैर्गवां शकृता प्रस्नवैर्वा ॥ ४९
देवव्रती स्याद्वृषभप्रदाने
वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने ।
तीर्थावाप्तिर्गोप्रयुक्तप्रदाने
पापोत्सर्गः कपिलायाः प्रदाने ॥ ५०
गामप्येकां कपिलां संप्रदाय
न्यायोपेतां कलुषाद्विप्रमुच्येत् ।
गवां रसात्परमं नास्ति किंचि-
द्गवां प्रदानं सुमहद्वदन्ति ॥ ५१
गावो लोकांस्तारयन्ति क्षरन्त्यो
गावश्चान्नं सञ्जनयन्ति लोके ।
यस्तं जानन्न गवां हार्दमेति
स वै गन्ता निरयं पापचेताः ॥ ५२
यैस्तद्दत्तं गोसहस्रं शतं वा
दशार्धं वा दश वा साधुवत्सम् ।
अप्येका वै साधवे ब्राह्मणाय
साऽस्यामुष्मिन्पुण्यतीर्था नदी वै ५३
प्राप्त्या पुष्ट्या लोकसंरक्षणेन
गावस्तुल्याः सूर्यपादैः पृथिव्याम् ।
शब्दश्चैकः संततिश्चोपभोगा-
स्तस्माद्गोदः सूर्य इवावभाति ॥ ५४
गुरुं शिष्यो वरयेद्गोप्रदाने
स वै गन्ता नियतं स्वर्गमेव ।
विधिज्ञानां सुमहान्धर्म एषो
विधिं ह्याद्यं विधयः संविशन्ति ५५
इदं दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः
पात्रे दत्त्वा प्रापयेथाः परीक्ष्य ।
त्वय्याशंसन्त्यमरा मानवाश्च
वयं चापि प्रसृते पुण्यशीले ॥ ५६
इत्युक्तोऽहं धर्मराजं द्विजर्षे
धर्मात्मानं शिरसाऽभिप्रणम्य ।
अनुज्ञातस्तेन वैवस्वतेन
प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि यमवाक्यं नाम
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

क्रतु गोदानरूप ॥४३॥ प्रापणीय गो आहारादि ॥४९॥ गोप्रयुक्त रथशकटादि ॥ ५० ॥ हार्द हृत्स्थ भक्ष्यपानकण्डूयनादिकं कर्तुं न एति नानुसरति ॥ ५२॥ गवा सूर्यरश्मिसाम्याद्गोद. सूर्य इत्याह—प्राप्त्येति ॥ ५४ ॥ विधिं गुर्वाराधनपर विधयो गोदानविधय· संविशन्तीति पुण्यदृष्टिगम्यमुक्तम् ॥ ५५ ॥ द्विजेभ्यस्त्रैवर्णिकेभ्यो न्यायलब्ध दत्वा समर्प्य प्रापयेथाः न तु पोषणमात्रार्थं प्रापयेथा इत्यर्थ ॥५६
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७१ ॥

*कामे इच्छापूरणे साधु· काम्या या अष्टमी शुक्लकृष्णान्यतरा तस्यामिति मिश्राः ॥

## ७२

युधिष्ठिर उवाच ।
उक्तं ते गोप्रदानं वै नाचिकेतमृषिं प्रति
माहात्म्यमपि चैवोक्तमुद्देशेन गवां प्रभो ॥ १
नृगेण च महद्दुःखमनुभूतं महात्मना ।
एकापराधादज्ञानात्पितामह महामते ॥ २
द्वारवत्यां यथा चासौ निविशन्त्यां समुद्धृतः
मोक्षहेतुरभूत्कृष्णस्तदप्यवधृतं मया ॥ ३
किं त्वस्ति मम सन्देहो गवां लोकं प्रति प्रभो
तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि गोदा यत्र वसन्त्युत ४
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथाऽपृच्छत्पद्मयोनिमेतदेव शतक्रतुः ॥ ५
शक्र उवाच ।
स्वर्लोकवासिनां लक्ष्मीमभिभूय स्वयार्चिषा ।
गोलोकवासिनः पश्ये व्रजतः संशयोऽत्र मे ६
कीदृशा भगवँल्लोका गवां तद्ब्रूहि मेऽनघ ।
यानावसन्ति दातार एतदिच्छामि वेदितुम्
कीदृशाः किंफलाः किंस्वित्परमस्तत्र को गुणः
कथं च पुरुषास्तत्र गच्छन्ति विगतज्वराः ८
कियत्कालं प्रदानस्य दाता च फलमश्नुते ।
कथं बहुविधं दानं स्यादल्पमपि वा कथम् ९
बह्वीनां कीदृशं दानमल्पानां वाऽपि कीदृशम्
अदत्वा गोप्रदाः सन्ति केन वा तच्च शंस मे
कथं वा बहुदाता स्यादल्पदात्रा समः प्रभो ।
अल्पप्रदाता बहुदः कथं स्वित्स्यादिहेश्वर ११
कीदृशी दक्षिणा चैव गोप्रदाने विशिष्यते ।
एतत्तथ्येन भगवन्मम शंसितुमर्हसि ॥ १२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोप्रदानिके
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

पितामह उवाच ।
योऽयं प्रश्नस्त्वया पृष्टो
गोप्रदानादिकारितः ।
नास्ति प्रष्टाऽस्ति लोकेऽस्मि-
स्त्वत्तोऽन्यो हि शतक्रतो ॥ १
सन्ति नानाविधा लोका
यांस्त्वं शक्र न पश्यसि ।
पश्यामि यानहं लोका-
नेकपत्न्यश्च याः स्त्रियः ॥ २
कर्मभिश्चापि सुशुभैः सुव्रता ऋषयस्तथा ।
सशरीरा हि तान्यान्ति ब्राह्मणाः शुभबुद्धयः
शरीरन्यासमोक्षेण मनसा निर्मलेन च ।
स्वप्नभूतांश्च ताँल्लोकान्पश्यन्तीहापि सुव्रताः ४
ते तु लोकाः सहस्राक्ष शृणु यादृग्गुणान्विताः
न तत्र क्रमते कालो न जरा न च पावकः ५
तथा नास्त्यशुभं किञ्चिन्न व्याधिस्तत्र न क्लमः
यद्यच्च गावो मनसा तस्मिन्वांछन्ति वासव
तत्सर्वं प्राप्नुवन्ति स्म मम प्रत्यक्षदर्शनात् ।
कामगाः कामचारिण्यः कामात्कामांश्च भुञ्जते
वाप्यः सरांसि सरितो विविधानि वनानि च
गृहाणि पर्वताश्चैव यावद्द्रव्यं च किञ्चन ॥ ८

---

**७२**

**उक्तमिति** ॥ १ ॥ पश्ये पश्यामि ॥ ६ ॥ को गुण स च किंस्वित्परम का तस्या. परा काष्ठेत्यर्थः ॥८॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ।

**७३**

**योऽयमिति** ॥ १ ॥ शरीरस्य न्यास. समाधिकाले मोक्षः मरणे निर्मलेन मनसा योगिनो न्यासे मोक्षे च ताँल्लोकान्पश्यन्ति ॥ ८ ॥

मनोज्ञं सर्वभूतेभ्यः सर्वतन्त्रं प्रदृश्यते ।
ईदृशाद्विपुलाल्लोकान्नास्ति लोकस्तथाविधः ९
तत्र सर्वसहाः क्षान्ता वत्सला गुरुवर्तिनः ।
अहङ्कारैर्विरहिता यान्ति शक्र नरोत्तमाः १०

यः सर्वमांसानि न भक्षयीत
पुमान्सदा भावितो धर्मयुक्तः ।
मातापित्रोरर्चिता सत्ययुक्तः
शुश्रूषिता ब्राह्मणानामनिन्द्यः ॥ ११

अक्रोधनो गोषु तथा द्विजेषु
धर्मे रतो गुरुशुश्रूषकश्च ।
यावज्जीवं सत्यवृत्ते रतश्च
दाने रतो यः क्षमी चापराधे ॥ १२

मृदुर्दान्तो देवपरायणश्च
सर्वातिथिश्चापि तथा दयावान् ।
ईदृग्गुणो मानवस्तं प्रयाति
लोकं गवां शाश्वतं चाव्ययं च १३

न पारदारी पश्यति लोकमेतं
न वै गुरुघ्नो न मृषा संप्रलापी ।
सदा प्रवादी ब्राह्मणेष्वात्तवैरो
दोषैरेतैर्यश्च युक्तो दुरात्मा ॥ १४

न मित्रध्रुङ्नैकृतिकः कृतघ्नः
शठोऽनृजुर्धर्मविद्वेषकश्च ।
न ब्रह्महा मनसापि प्रपश्येद्
गवां लोकं पुण्यकृतां निवासम् १५

एतत्ते सर्वमाख्यातं निपुणेन सुरेश्वर ।
गोप्रदानरतानां तु फलं शृणु शतक्रतो ॥ १६
दायाद्यलब्धैरर्थैर्यो गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।
धर्मार्जितान्धनैः क्रीतान्स लोकानाप्नुतेऽक्षयान्
यो वै द्यूते धनं जित्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति
स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥ १८
दायाद्याद्याः स्म वै गावो न्यायपूर्वैरुपार्जिताः
प्रदद्यास्ताः प्रदातॄणां सम्भवन्त्यपि च ध्रुवाः
प्रतिगृह्य तु यो दद्याद्गाः संशुद्धेन चेतसा ।
तस्यापीहाक्षयाँल्लोकान्
ध्रुवान् विद्धि शचीपते ॥
जन्मप्रभृति सत्यं च यो ब्रूयान्नियतेन्द्रियः ।
गुरुद्विजसहः क्षान्तस्तस्य गोभिः समा गतिः

न जातु ब्राह्मणो वाच्यो यदवाच्यं शचीपते ।
मनसा गोषु न द्रुह्येद्गोवृत्तिर्गोऽनुकम्पकः २२
सत्ये धर्मे च निरतस्तस्य शक्र फलं शृणु ।
गोसहस्रेण समिता तस्य धेनुर्भवत्युत ॥ २३
क्षत्रियस्य गुणैरेतैरपि तुल्यफलं शृणु ।
तस्यापि द्विजतुल्या गौर्भवतीति विनिश्चयः
वैश्यस्यैते यदि गुणास्तस्य पञ्चशतं भवेत् ।
शूद्रस्यापि विनीतस्य चतुर्भागफलं स्मृतम् ॥

एतच्चैनं योऽनुतिष्ठेत युक्तः
सत्ये रतो गुरुशुश्रूषया च ।
दक्षः क्षान्तो देवतार्थी प्रशान्तः
शुचिर्बुद्धो धर्मशीलोऽनहंवाक् ॥ २६

महत्फलं प्राप्यते स द्विजाय
दत्वा दोग्ध्रीं विधिनाऽनेन धेनुम् ।
नित्यं दद्यादेकभक्तः सदा च
सत्ये स्थितो गुरुशुश्रूषिता च ॥ २७

वेदाध्यायी गोषु यो भक्तिमांश्च
नित्यं दत्वा योऽभिनन्देत गाश्च ।
आजातितो यश्च गवां नमेत
इदं फलं शक्र निबोध तस्य ॥ २८

यत्स्यादिष्ट्वा राजसूये फलं तु
यत्स्यादिष्ट्वा बहुना काञ्चनेन ।
एतत्तुल्यं फलमप्याहुरग्र्यं
सर्वे सन्तस्त्वृषयो ये च सिद्धाः २९

योऽग्रं भक्तं किञ्चिदप्राश्य दद्या-
द्गोभ्यो नित्यं गोव्रती सत्यवादी ।
शान्तोऽलुब्धो गोसहस्रस्य पुण्यं
संवत्सरेणाप्नुयात्सत्यशीलः ॥ ३०

यदेकभक्तमश्नीयाद्दद्यादेकं गवां च यत्
दशवर्षाण्यनन्तानि गोव्रती गोऽनुकम्पकः ३१
एकेनैव च भक्तेन यः क्रीत्वा गां प्रयच्छति ।
यावन्ति तस्या रोमाणि संभवन्ति शतक्रतो
तावत्प्रदानात्स गवां फलमाप्नोति शाश्वतम्
ब्राह्मणस्य फलं हीदं क्षत्रियस्य तु वै शृणु ३३
पञ्चवार्षिकमेवं तु क्षत्रियस्य फलं स्मृतम् ।
ततोऽर्धेन तु वैश्यस्य शूद्रो वैश्यार्धतः स्मृतः ।
यश्चात्मविक्रयं कृत्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति
यावत्संदर्शयेद्गां वै स तावत्फलमश्नुते ॥ ३५

---

नैकृतिको वञ्चकः शठः समर्थोऽपि दारिद्र्यभाषी ॥ १५ ॥ गुरूणां द्विजानां वाऽपराधं सहते इति गुरुद्विजसहः ॥२१॥ गोवृत्तिरसंग्रहपरः गवां घासादिरनुकल्पकः संपादको गोनुकल्पकः ॥ २२ ॥ संदर्शयेत्पश्येत् । यावद्ब्रह्माण्डे गोजातीयमस्ति तावत्तत्र वसेदित्यर्थः ॥ ३५ ॥

रोम्णि रोम्णि महाभाग
लोकाश्चास्याऽक्षयाः स्मृताः ।
सङ्ग्रामेष्वर्जयित्वा तु
यो वै गाः सम्प्रयच्छति ।
आत्मविक्रयतुल्यास्ताः
शाश्वता विद्धि कौशिक ॥ ३६

अभावे यो गवां दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः ।
दुर्गात्स तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ३७

न त्वेवासां दानमात्रं प्रशस्तं
पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
कालज्ञानं विप्र गवान्तरं हि
दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥
स्वाध्यायाढ्यं शुद्धयोनिं प्रशान्तं
वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ।
गोषु क्षान्तं नातितीक्ष्णं शरण्यं
वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ३९
वृत्तिग्लाने सीदति चातिमात्रं
कृष्यर्थं वा होम्यहेतोः प्रसूतेः ।
गुर्वर्थं वा बालसंवृद्धये वा
धेनुं दद्याद्देशकाले विशिष्टे ॥ ४०
अन्तर्ज्ञाताः सक्रयज्ञानलब्धाः
प्राणैः क्रीतास्तेजसा यौतकाश्च ।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च
द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ४१
बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः
सर्वाः प्रशंसन्ते सुगन्धवत्यः ।
यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा
तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ॥ ४२
तिस्रो रात्रीस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ
तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।
वत्सैः पुष्टैः क्षीरपैः सुप्रचारा-
स्त्र्यहं दत्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥ ४३
दत्वा धेनुं सुव्रतां साधुदोहां
कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या
स्तावन्ति वर्षाणि भवन्त्यमुत्र ॥ ४४
तथाऽनड्वाहं ब्राह्मणाय प्रदाय
धुर्यं युवानं बलिनं विनीतम् ।
हलस्य वोढारमनन्तवीर्यं
प्राप्नोति लोकान् दशधेनुदस्य ॥ ४५

कान्तारे ब्राह्मणान्गाश्च यः परित्राति कौशिक
क्षणेन विप्रमुच्येत तस्य पुण्यफलं शृणु ४६
अश्वमेधक्रतोस्तुल्यं फलं भवति शाश्वतम् ।
मृत्युकाले सहस्राक्ष या वृत्तिमनुकाङ्क्षते ॥
लोकान्बहुविधान्दिव्यान्यच्चास्य हृदि वर्तते
तत्सर्वं समवाप्नोति कर्मणैतेन मानवः ४८
गोभिश्च समनुज्ञातः सर्वत्र च महीयते ।
यस्त्वेतेनैव कल्पेन गां वनेष्वनुगच्छति ४९
तृणगोमयपर्णाशी निस्पृहो नियतः शुचिः ।
अकामं तेन वस्तव्यं मुदितेन शतक्रतो ॥ ५०
मम लोके सुरैः सार्धं लोके यत्रापि चेच्छति

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पितामहेन्द्रसंवादे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

## ७४

इन्द्र उवाच ।
जानन्यो गामपहरेद्विक्रीयाद्वार्थकारणात् ।
एतद्विज्ञातुमिच्छामि क्व नु तस्य गतिर्भवेत् १

पितामह उवाच ।
भक्षार्थं विक्रयार्थं वा येऽपहारं हि कुर्वते ।
दानार्थं ब्राह्मणार्थाय तत्रेदं श्रूयतां फलम् ॥२

---

अर्जुनीनां गवाम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

जानन्निति ॥ १ ॥

विक्रयार्थं हि यो हिंस्याद्भक्षयेद्वा निरंकुशः।
घातयानं हि पुरुषं येऽनुमन्येयुरर्थिनः ॥ ३
घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते।
यावंति तस्या रोमाणि तावद्वर्षाणि मज्जति४
ये दोषा यादृशाश्चैव द्विजयज्ञोपघातके।
विक्रये चापहारे च ते दोषा वै स्मृताः प्रभो५
अपहृत्य तु यो गां वै ब्राह्मणाय प्रयच्छति।
यावद्दानफलं तस्यास्तावन्निरयमृच्छति ॥ ६
सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाद्युते।
सुवर्णं परमित्युक्तं दाक्षिणार्थमसंशयम् ॥ ७
गोप्रदानात्तारयते सप्त पूर्वास्तथा परान्।
सुवर्णं दक्षिणां कृत्वा तावद्द्विगुणमुच्यते ८
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
सुवर्णं पावनं शक्र पावनानां परं स्मृतम् ९
कुलानां पावनं प्राहुर्जातरूपं शतक्रतो।
एषा मे दक्षिणा प्रोक्ता समासेन महाद्युते १०

भीष्म उवाच।

एतत्पितामहेनोक्तमिन्द्राय भरतर्षभ।
इन्द्रो दशरथायाह रामायाह पिता तथा ११
राघवोऽपि प्रियभ्रात्रे लक्ष्मणाय यशस्विने।
ऋषिभ्यो लक्ष्मणेनोक्तमरण्ये वसता प्रभो १२
पारंपर्यागतं चेदमृषयः संशितव्रताः।
दुर्धरं धारयामासू राजानश्चैव धार्मिकाः १३
उपाध्यायेन गदितं मम चेदं युधिष्ठिर।
य इदं ब्राह्मणो नित्य वदेद्ब्राह्मणसंसदि १४
यज्ञेषु गोप्रदानेषु द्वयोरपि समागमे
तस्य लोकाःकिलाक्षय्या दैवतैः सह नित्यदा

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

## ७५

युधिष्ठिर उवाच।

विस्रंभितोऽहं भवता धर्मान्प्रवदता विभो।
प्रवक्ष्यामि तु संदेहं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १
व्रतानां किं फलं प्रोक्तं कीदृशं वा महाद्युते।
नियमानां फलं किं च स्वधीतस्य च किं फलम्
दत्तस्येह फलं किं च वेदानां धारणे च किम्।
अध्यापने फलं किं च सर्वमिच्छामि वेदितुम्
अप्रतिग्राहके किं च फलं लोके पितामह।
तस्य किं च फलं दृष्टं श्रुतं यस्तु प्रयच्छति ॥४
स्वकर्मनिरतानां च शूराणां चापि किं फलं
शौचे च किं फलं प्रोक्तं ब्रह्मचर्ये च किं फलम्
पितृशुश्रूषणे किं च मातृशुश्रूषणे तथा।
आचार्यगुरुशुश्रूषास्वनुक्रोशानुकंपने ॥ ६
एतत्सर्वमशेषेण पितामह यथातथम्।
वेत्तुमिच्छामि धर्मज्ञ परं कौतूहलं हि मे ॥ ७

भीष्म उवाच।

यो व्रतं वै यथोद्दिष्टं तथा संप्रतिपद्यते।
अखण्डं सम्यगारभ्य तस्य लोकाः सनातनाः
नियमानां फलं राजन्प्रत्यक्षमिह दृश्यते।
नियमानां क्रतूनां च त्वयाऽवाप्तमिदं फलम्
स्वधीतस्यापि च फलं दृश्यतेऽमुत्र चेह च।
इहलोकेऽथवा नित्यं ब्रह्मलोके च मोदते १०
दमस्य तु फलं राजञ्छृणु त्वं विस्तरेण मे।
दान्ताः सर्वत्र सुखिना दान्ताः सर्वत्र निर्वृताः
यत्रेच्छागामिनो दान्ताः सर्वशत्रुनिषूदनाः।
प्रार्थयन्ति च यद्दान्ता लभन्ते तन्न संशयः ॥
युज्यन्ते सर्वकामैर्हि दान्ताः सर्वत्र पाण्डव।
स्वर्गे यथा प्रमोदन्ते तपसा विक्रमेण च १३
दानैर्यज्ञैश्च विविधैस्तथा दान्ताः क्षमान्विताः
दानाद्दमो विशिष्टो हि ददत्किंचिद्द्विजातये ॥

---

विक्रयार्थं यो नियुङ्क्ते इति शेष ॥ ३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

७५

विस्रम्भित इति॥१॥ अनुक्रोशः परदुःखेन दुखितत्वं अनुकम्पा तत्प्रतीकारकरणम् ॥६॥ व्रतं एकभक्तादिनियमम् ॥ ८ ॥ फलं ऐश्वर्यमेव प्रत्यक्षम् ॥ ९ ॥

दाता कुप्यति नो दान्तस्तस्माद्दानात्परं दमः
यस्तु दद्यादकुप्यन्हि तस्य लोकाः सनातनाः॥
क्रोधो हन्ति हि यद्दानं तस्माद्दानात्परं दमः
अदृश्यानि महाराज स्थानान्ययुतशो दिवि
ऋषीणां सर्वलोकेषु यानि ते यान्ति देवताः।
दमेन यानि नृपते गच्छन्ति परमर्षयः ॥ १७
कामयाना महत्स्थानं तस्माद्दानात्परं दमः।
अध्यापकः परिक्लेशादक्षयं फलमश्नुते ॥ १८
विधिवत्पावकं हुत्वा ब्रह्मलोके नराधिप।
अधीत्यापि हि यो वेदान्न्यायविद्भ्यः प्रयच्छति
गुरुकर्मप्रशंसी तु सोऽपि स्वर्गे महीयते।
क्षत्रियोऽध्ययने युक्तो यजने दानकर्मणि।
युद्धे यश्च परित्राता सोऽपि स्वर्गे महीयते २०
वैश्यः स्वकर्मनिरतः प्रदानाल्लभते महत्।
शूद्रः स्वकर्मनिरतः स्वर्गं शुश्रूषयाऽर्च्छति २१
शूरा बहुविधाः प्रोक्तास्तेषामर्थांस्तु मे शृणु।
शूरान्वयानां निर्दिष्टं फलं शूरस्य चैव हि॥
यज्ञशूरा दमे शूराः सत्यशूरास्तथाऽपरे।
युद्धशूरास्तथैवोक्ता दानशूराश्च मानवाः २३
सांख्यशूराश्च बहवो योगशूरास्तथाऽपरे।
अरण्ये गृहवासे च त्यागे शूरास्तथाऽपरे २४
आर्जवे च तथा शूराः शमे वर्तन्ति मानवाः।
तैस्तैश्च नियमैः शूरा बहवः सन्ति चापरे।
वेदाध्ययनशूराश्च शूराश्चाध्यापने रताः॥२५
गुरुशुश्रूषया शूराः पितृशुश्रूषयाऽपरे।
मातृशुश्रूषया शूरा भैक्ष्यशूरास्तथाऽपरे २६

अरण्ये गृहवासे च
शूराश्चातिथिपूजने।
सर्वे यान्ति परांल्लोकान्
स्वकर्मफलनिर्जितान्॥ २७

धारणं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्यं च ब्रुवतो नित्यं समं वा स्यान्न वा समं
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥ २९
सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्निः प्रदीप्यते।
सत्येन मरुतो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्
सत्येन देवाः प्रीयन्ते पितरो ब्राह्मणास्तथा।
सत्यमाहुः परो धर्मस्तस्मात्सत्यं न लंघयेत्
मुनयः सत्यनिरता मुनयः सत्यविक्रमाः।
मुनयः सत्यशपथास्तस्मात्सत्यं विशिष्यते॥
सत्यवन्तः स्वर्गलोके मोदन्ते भरतर्षभ।
दमः सत्यफलावाप्तिरुक्ता सर्वात्मना मया॥
असशयं विनीतात्मा स वै स्वर्गे महीयते।
ब्रह्मचर्यस्य च गुणं शृणु त्वं वसुधाधिप॥ ३४
आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।
न तस्य किंचिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप
बह्व्यः कोट्यस्त्वृषीणां तु ब्रह्मलोके वसन्त्युत
सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्॥
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्।
ब्राह्मणेन विशेषेण ब्राह्मणो ह्यग्निरुच्यते॥ ३७
प्रत्यक्षं हि तथा ह्येतद्ब्राह्मणेषु तपस्विषु।
बिभेति हि यथा शक्रो ब्रह्मचारिप्रधर्षितः ३८
तद्ब्रह्मचर्यस्य फलमृषीणामिह दृश्यते।
मातापित्रोः पूजने यो धर्मस्तमपि मे शृणु ३९
शुश्रूषते यः पितरं न चासूयेत्कदाचन।
मातरं भ्रातरं वापि गुरुमाचार्यमेव च॥ ४०
तस्य राजन्फलं विद्धि स्वर्लोके स्थानमर्चितम्
न च पश्येत नरकं गुरुशुश्रूषयाऽऽत्मवान्॥४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

## ७६

युधिष्ठिर उवाच ।
विधिं गवां परं श्रोतुमिच्छामि नृप तत्त्वतः
येन तान् शाश्वताँल्लोकानर्थिनां प्राप्नुयादिह १
भीष्म उवाच ।
न गोदानात्परं किंचिद्विद्यते वसुधाधिप ।
गौर्हि न्यायागता दत्ता सद्यस्तारयते कुलम्
सतामर्थे सम्यगुत्पादितो यः
स वै क्लृप्तः सम्यगाभ्यः प्रजाभ्यः ।
तस्मात्पूर्वं ह्यादिकालप्रवृत्तं
गोदानार्थं शृणु राजन्विधिं मे ॥ ३
पुरा गोषूपनीतासु गोषु सन्दिग्धदर्शिना ।
मांधात्रा प्रकृतं प्रश्नं बृहस्पतिरभाषत ॥ ४
द्विजातिमभिसत्कृत्य श्वः कालमभिवेद्य च ।
गोदानार्थे प्रयुञ्जीत रोहिणीं नियतव्रतः ॥ ५
आह्वानं च प्रयुञ्जीत समङ्गे बहुलेति च ।
प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ६
गौर्मे माता वृषभः पिता मे
दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा ।
प्रपद्यैवं शर्वरीमुष्य गोषु
पुनर्वाणीमुत्सृजेद्गोप्रदाने ॥ ७
स तामेकां निशां गोभिः समसख्यः समव्रतः
ऐकात्म्यगमनात्सद्यः कलुषाद्विप्रमुच्यते ॥ ८
उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्यदर्शने ।
त्रिदिवं प्रतिपत्तव्यमर्थवादाशिषस्तव ॥ ९
ऊर्जस्विन्य ऊर्जमेधाश्च यज्ञे
गर्भोऽमृतस्य जगतोऽस्य प्रतिष्ठा ।
क्षिते रोहः प्रवहः शश्वदेव
प्राजापत्याः सर्वमित्यर्थवादाः ॥ १०
गावो ममैनः प्रणुदन्तु सौर्या-
स्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु ।
आत्मानं मे मातृवच्चाश्रयन्तु
तथाऽनुक्ताः सन्तु सर्वाशिषो मे ११
शेषोत्सर्गे कर्मभिर्देहमोक्षे
सरस्वत्यः श्रेयसे संप्रवृत्ताः ।
यूयं नित्यं सर्वपुण्योपवाह्याः
दिशध्वं मे गतिमिष्टां प्रसन्नाः ॥ १२
या वै यूयं सोऽहमद्यैव भावो
युष्मान्दत्वा चाहमात्मप्रदाता ।
मनश्च्युता मन एवोपपन्नाः
सन्धुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः ॥ १३
एवं तस्याग्रे पूर्वमर्धं वदेत
गवां दाता विधिवत्पूर्वदृष्टः ।
प्रतिब्रूयाच्छेषमर्धं द्विजातिः
प्रतिगृह्णन्वै गोप्रदाने विधिज्ञः १४
गोप्रदानीति वक्तव्यमर्घ्यवस्त्रवसुप्रदः ।
ऊर्ध्वास्या भवितव्या च वैष्णवीति च चोदयेत

---

### ७६

**विधिमिति** ॥ १ ॥ यो विधिरुत्पादित. ॥ ३ ॥ स्वकालमिति पाठे स्वकालं स्वस्य मृत्युं आकस्मिकं ज्ञात्वा रोहिणीं लोहितवर्णाम् ॥ ५ ॥ बहुले इति च्छेद· सान्धिरार्षः ॥ ६ ॥ दिवं स्वर्गं शर्म ऐहिकं सुखं प्रयच्छत्विति शेष ।जगती गौ । 'पशवो जगति इति श्रुते ।एवमनेन मन्त्रेण गोष्ठं प्रपद्य गत्वा मौनेन तत्र वासं कृत्वा द्वितीयेऽह्नि गोप्रदानकाल एव वाचं विसृजेत् इदं गोप्रदानस्य पूर्वाङ्गं व्रतम् ॥ ७ ॥ समसख्यो गा अनिवारयन् समव्रत भूतलशायित्वदंशाद्यनिवारकत्वादिगुणयुक्त ॥ ८ ॥ उत्सृष्ट· वृषवत्सो यया सार्धं सा उत्सृष्टवृषवत्सेति **गौडाः** । त्वया दात्रा प्रदेया त्रिदिवं च प्रतिपत्तव्यं गन्तव्यम् । अर्थवादमंत्रोक्ता आशिषश्च तव भविष्यन्तीति योज्यम् ॥ ९ ॥ आशिषमेवाह—**ऊर्जस्विन्य इति** । ऊर्जस्तु कार्तिकोत्साहबलेषु प्राणनेऽपि च इति **मेदिनी** । बलवत्यः उत्साहवत्यो वा ऊर्जस्विन्यः ऊर्जमेधा उपगतप्रज्ञा । यज्ञे अमृतस्य तत्साधनस्य हविषो गर्भ इव गर्भ क्षेत्रभूता । क्षितेः ऐश्वर्यस्य रोह । शश्वत् शाश्वत. क्षिते· प्रवह प्रवाहरूपाश्च ॥१०॥ अनुक्ता मन्त्रद्वयेन उक्ताश्च आशिषो मे सन्तु ॥ ११ ॥ 'शेषोत्सर्गे क्षयरोगोपतापापनये शोषो यक्ष्माणि शोषणे'इति **मेदिनी** । क्षयरोगादिनिवृत्तौ देहमोक्षे च कर्मभि पञ्चगव्यादिभि· सेविता· सत्यः सरस्वत्यो नद्य इव श्रेयसे संप्रवृत्ता ॥ १२ ॥ **येति** । गवा स्वस्य चाभेदेन गोदानात् आत्मदानफलं लभ्यमित्यर्थ । मनश्च्युताः दातुर्ममत्वाभिमानात् च्युता· । मन एव उपपन्ना· मदीयममतास्पदीभूता । संधुक्षध्वं दातारं मा च इष्टैर्भोगै. प्रकाशयध्वम् ॥ १३ ॥ **एवमिति** । अयं श्लोको दातृप्रतिग्रहीतृभ्या क्रमेणार्धशः पठनीय इत्यर्थ ॥ १४ ॥ **गोप्रदानीति** । अर्घ्यवस्त्रवसुप्रदोऽपि गोप्रदानीति वक्तव्यमिति योजना । यो गोः प्रतिनिधित्वेन अर्घ्यं वस्त्रं सुवर्णं वा प्रयच्छति सोऽपि गोप्र·

नाम सङ्कीर्तयेत्तस्या यथासंख्योत्तरं स वै ।
फलं षट्त्रिंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः
एवमेतान् गुणान्विद्याद्गवादीनां यथाक्रमम् ।
गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे १७

गोदः शीली निर्भयश्चार्घदाता ।
न स्याद्दुःखी वसुदाता च कामम् ।
उपस्योढा भारते यश्च विद्वान्
विख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोकाः १८

गा वै दत्वा गोव्रती स्यात्त्रिरात्रं
निशां चैकां संवसेतेह ताभिः ।
कामाष्टम्यां वर्तितव्यं त्रिरात्रं
रसैर्वा गोः शकृता प्रस्नवैर्वा ॥ १९

देवव्रती स्याद्वृषभप्रदाने
वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने ।
तथा गवां विधिमासाद्य यज्वा
लोकानग्र्यान्विन्दते नाविधिज्ञः २०

कामान्सर्वान्पार्थिवानेकसंस्था-
न्यो वै दद्यात्कामदुघां च धेनुम् ।
सम्यक्ताः स्युर्हव्यकव्यौघवत्य-
स्तासामुक्ष्णां ज्यायसां संप्रदानम् २१

न चाशिष्यायाव्रतायोपकुर्या-
न्नाश्रद्दधानाय न वक्रबुद्धये ।
गुह्यो ह्ययं सर्वलोकस्य धर्मो
नेमं धर्मं यत्र तत्र प्रजल्पेत् ॥ २२

सन्ति लोके श्रद्दधाना मनुष्याः
सन्ति क्षुद्रा राक्षसमानुषेषु ।
एषामेतद्दीयमानं ह्यनिष्टं
ये नास्तिक्यं चाश्रयन्तेऽल्पपुण्याः ॥

बार्हस्पत्यं वाक्यमेतन्निशम्य
ये राजानो गोप्रदानानि दत्वा ।
लोकान्प्राप्ताः पुण्यशीलाः प्रवृत्ता-
स्तान्मे राजन्कीर्त्यमानान्निबोध २४

उशीनरो विष्वगश्वो नृगश्च
भगीरथो विश्रुतो यौवनाश्वः ।
मान्धाता वै मुचुकुन्दश्च राजा
भूरिद्युम्नो नैषधः सोमकश्च ॥ २५

पुरूरवो भरतश्चक्रवर्ती
यस्यान्ववाये भरताः सर्व एव ।
तथा वीरो दाशरथिश्च रामो
ये चाप्यन्ये विश्रुताः कीर्तिमन्तः २६

तथा राजा पृथुकर्मा दिलीपो
दिवं प्राप्तो गोप्रदानैर्विधिज्ञः ।
यज्ञैर्दानैस्तपसा राजधर्मै-
र्मान्धाताऽभूद्गोप्रदानैश्च युक्तः ॥ २७

तस्मात्पार्थ त्वमपीमां मयोक्तां
बार्हस्पतीं भारतीं धारयस्व ।
द्विजाग्र्येभ्यः संप्रयच्छस्व प्रीतो
गाः पुण्या वै प्राप्य राज्यं कुरूणाम्

वैशम्पायन उवाच ।

तथा सर्वं कृतवान्धर्मराजो
भीष्मेणोक्तो विधिवद्गोप्रदाने ।
स मान्धातुर्वेद देवोपदिष्टं
सम्यग्धर्मं धारयामास राजा ॥ २९

---

दानी भवतीत्यर्थः । अर्घ्यं अर्घो व्यावहारिकं गोमूल्यं वस्त्र-मपि आधानप्रकरणे **बौधायनेन** गोप्रतिनिधित्वेनोक्तम् । 'यावतीर्गा दद्यात्तावन्ति वासांसि तावदोदनान् वा दद्यात्' इति । ' सुवर्णं तु गोस्तु मात्रा न विद्यते ' इति श्रुतेरपरि-मितम् । अर्घादिकं यावच्छक्ति देयम् । तत्र अर्घगोप्रदाने इमा ऊर्ध्वास्याम् । पाठान्तरे ऊधस्या तुभ्य संप्रददे त्वं गृहा-णेति चोदयेत् । वस्त्रधेनुं भवितव्येतिपाठान्तरे नमितव्येति वा वसु धेनुं वैष्णवीति कीर्तयेदित्यर्थः ॥ १५ ॥ गवादीनां गोप्रतिनिधीनां एव तत्फलं प्रत्यक्षगोदाने गोप्रतिग्रहीतुर्गृहं गच्छन्त्या अष्टमे पदे भवन्ति किमु तद्गृहगमने तदीय-बालकातिथ्यग्निहोत्रादीनां चिरकालनिर्वाह इति भावः ॥ १७ ॥ **गोद इति** । शीली शीलवान् अर्घदाता निर्भय इति संबन्धः । निकृष्टत्वाद्वस्त्रदातुः फलं नोक्तम् । एवं त्रयाणामैहिकं फलमुक्त्वा आमुष्मिकं फलमाह—**उप-स्योढेति** । उपस्यं प्रातःस्नानादि कर्म ऊढं प्राप्तं यैः ; 'उपस्योढ स विज्ञेयो ब्रह्मदेयायुतस्तु यः' भारते विद्वान् **भारतवेत्ता** वैष्णवा विष्णुभक्ता चन्द्रवत् लोक आलोको येषां एवं विख्याता कथिता इति **केचित्** । त्रयोऽपि वैष्णवा विष्णुदत्ताश्चन्द्रवदमृतस्रवा लोका विदो विद्यन्ते ऽस्मिन्स विद्वान् ॥१८॥ देवव्रती ब्रह्मचारी सूर्यमण्डलभेत्ता ॥ २० ॥ एकसस्थान् एकीकृतान् गजग्रामादिसर्वदानतुल्य-मेकधेनुदानं किमुत बह्वयो हव्यादिमन्यो देया तासां ताभ्योऽधिकमिति शेषः । उक्ष्णां ज्यवराणाम् ॥ २१ ॥ उपकुर्यात् एतत्कथनेन ॥ २२ ॥

इति नृप सततं गवां प्रदाने
यवशकलान्सह गोमयैः पिबानः ।
क्षितितलशयनः शिखी यतात्मा
वृष इव राजवृषस्तदा बभूव ॥ ३८

नरपतिरभवत्सदैवताभ्यः
प्रयतमनास्त्वभिसंस्तुवंश्च ताः स्म ।
नृपतिधुरि च गामयुक्त भूप-
स्तुरगवरैरगमच्च यत्र तत्र ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोदानकथने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

वैशम्पायन उवाच ।
ततो युधिष्ठिरो राजा भूयः शान्तनवं नृपम् ।
गोदानविस्तरं धर्मात्पप्रच्छ विनयान्वितः १

युधिष्ठिर उवाच ।
गोप्रदानगुणान्सम्यक् पुनर्मे ब्रूहि भारत ।
न हि तृप्याम्यहं वीर शृण्वानोऽमृतमीदृशम्

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तो धर्मराजेन तदा शान्तनवो नृपः ।
सम्यगाह गुणांस्तस्मै गोप्रदानस्य केवलान् ३

भीष्म उवाच ।
वत्सलां गुणसंपन्नां तरुणीं वस्त्रसंयुताम् ।
दत्त्वेदृशीं गां विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ४
असुर्या नाम ते लोका गां दत्त्वा तान्न गच्छति
पीतोदकां जग्धतृणां नष्टक्षीरां निरिन्द्रियाम्
जरारोगोपसंपन्नां जीर्णां वापीमिवाजलाम् ।
दत्त्वा तमः प्रविशति द्विजं क्लेशेन योजयेत् ६

रुष्टा दुष्टा व्याधिता दुर्बला वा
नो दातव्या याश्च मूल्यैरदत्तैः ।
क्लेशैर्विप्रं योऽफलैः संयुनक्ति
तस्यावीर्याश्चाफलाश्चैव लोकाः ॥ ७
बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः
सर्वे प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः ।
यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा
तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।
कस्मात्समाने बहुलाप्रदाने
सद्भिः प्रशस्तं कपिलाप्रदानम् ।
विशेषमिच्छामि महाप्रभावं
श्रोतुं समर्थोऽस्मि भवान्प्रवक्तुम् ॥ ९

भीष्म उवाच ।
वृद्धानां ब्रुवतां तात श्रुतं मे यत्पुरातनम् ।
वक्ष्यामि तदशेषेण रोहिण्यो निर्मिता यथा॥
प्रजा सृजेति चादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयंभुवा ।
असृजद्वृत्तिमेवाग्रे प्रजानां हितकाम्यया ॥
यथा ह्यमृतमाश्रित्य वर्तयन्ति दिवौकसः ।
तथा वृत्तिं समाश्रित्य वर्तयन्ति प्रजा विभो
अचरेभ्यश्च भूतेभ्यश्चराः श्रेष्ठाः सदा नराः ।
ब्राह्मणाश्च ततः श्रेष्ठास्तेषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥
यज्ञैरवाप्यते सोमः स च गोषु प्रतिष्ठितः ।
ततो देवाः प्रमोदन्ते पूर्वं वृत्तिस्ततः प्रजाः॥
प्रजातान्येव भूतानि प्राक्रोशन्वृत्तिकांक्षया ।
वृत्तिदं चान्वपद्यन्त तृषिताः पितृमातृवत ॥
इतीदं मनसा गत्वा प्रजासर्गार्थमात्मनः ।
प्रजापतिस्तु भगवानमृतं प्रापिबत्तदा ॥ १६
स गतस्तस्य तृप्तिं तु गन्धं सुरभिमुद्गिरन् ॥
ददर्शोद्गारसंवृत्तां सुरभिं मुखजां सुताम् १७
साऽसृजत्सौरभेयीस्तु सुरभिर्लोकमातृकाः ।
सुवर्णवर्णाः कपिलाः प्रजानां वृत्तिधेनवः १८

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

तत इति ॥ १ ॥

तासाममृतवर्णानां क्षरन्तीनां समंततः।
बभूवामृतजः फेनः स्रवन्तीनामिवोर्मिजः १९
स वत्समुखविभ्रष्टो भवस्य भुवि तिष्ठतः।
शिरस्यवाप तत्क्रुद्धः स तदैक्षत च प्रभुः २०
ललाटप्रभवेणाक्ष्णा रोहिणीं प्रदहन्निव।
तत्तेजस्तु ततो रौद्रं कपिलास्ता विशांपते॥
नानावर्णत्वमनयन्मेघानिव दिवाकरः।
यास्तु तस्मादपक्रम्य सोममेवाभिसंश्रिताः२२
यथोत्पन्नाः स्ववर्णास्थास्ता नीताश्चान्यवर्णतां
अथ क्रुद्धं महादेवं प्रजापतिरभाषत॥ २३
अमृतेनावसिक्तस्त्वं नोच्छिष्टं विद्यते गवाम्
यथा ह्यमृतमादाय सोमो विस्यन्दते पुनः २४
तथा क्षीरं क्षरन्त्येता रोहिण्योऽमृतसंभवम्।
न दुष्यत्यनिलो नाग्निर्न सुवर्णं न चोदधिः॥
नामृतेनामृतं पीतं वत्सपीता न वत्सला।
इमाल्लोँकान्भरिष्यन्ति हविषा प्रस्रवेण च॥
आसामैश्वर्यमिच्छन्ति सर्वेऽमृतमयं शुभम्।
वृषभं च ददौ तस्मै सह गोभिः प्रजापतिः२७
प्रसादयामास मनस्तेन रुद्रस्य भारत।
प्रीतश्चापि महादेवश्चकार वृषभं तदा॥ २८
ध्वजं च वाहनं चैव तस्मात्स वृषभध्वजः।
ततो देवैर्महादेवस्तदा पशुपतिः कृतः।
ईश्वरः स गवां मध्ये वृषभाङ्कः प्रकीर्तितः२९

एवमव्यग्रवर्णानां कपिलानां महौजसाम्।
प्रदाने प्रथमः कल्पः सर्वासामेव कीर्तितः ३०
लोकज्येष्ठा लोकवृत्तिप्रवृत्ता
रुद्रोपेताः सोमविष्यन्दभूताः।
सौम्याः पुण्याः कामदाः प्राणदाश्च
गा वै दत्वा सर्वकामप्रदः स्यात् ३१
इदं गवां प्रभवविधानमुत्तमं
पठन्सदाऽशुचिरपि मङ्गलप्रियः।
विमुच्यते कलिकलुषेण मानवः
श्रियं सुतान् धनपशुमाप्नुयात्सदा ३२
हव्यं कव्यं तर्पणं शान्तिकर्म
यानं वासो वृद्धबालस्य तुष्टिः।
एतान्सर्वान् गोप्रदाने गुणान्वै
दाता राजन्नाप्नुयाद्वै सदैव॥ ३३
वैशम्पायन उवाच।
पितामहस्याथ निशम्य वाक्यं
राजा सह भ्रातृभिराजमीढः
सुवर्णवर्णानडुहस्तथा गाः
पार्थो ददौ ब्राह्मणसत्तमेभ्यः॥ ३४
तथैव तेभ्योऽपि ददौ द्विजेभ्यो
गवां सहस्राणि शतानि चैव।
यज्ञान्समुद्दिश्य च दक्षिणार्थे
लोकान्विजेतुं परमां च कीर्तिम् ३५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोप्रभवकथने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

## ७८

भीष्म उवाच।
एतस्मिन्नेव काले तु वसिष्ठमृषिसत्तमम्।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा सौदासो वदतां वरः१
सर्वलोकचरं सिद्धं ब्रह्मकोशं सनातनम्।
पुरोहितमभिप्रष्टुमभिवाद्योपचक्रमे॥ २
सौदास उवाच।
त्रैलोक्ये भगवन्किंस्वित्पवित्रं कथ्यतेऽनघ
यत्कीर्तयन्सदा मर्त्यः प्राप्नुयात्पुण्यमुत्तमम् ३
भीष्म उवाच।
तस्मै प्रोवाच वचनं प्रणताय हितं तदा।
गवामुपनिषद्विद्वान्नमस्कृत्य गवां शुचिः॥ ४
गावः सुरभिगन्धिन्यस्तथा गुग्गुलुगन्धयः।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

७८

एतस्मिन्निति॥ १॥

गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी
गावो लक्ष्म्यास्तथा मूलं गोषु दत्तं न नश्यति
अन्नं हि परमं गावो देवानां परमं हविः ।
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ
गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः
गावो भविष्यं भूतं च गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिता
सायं प्रातश्च सततं होमकाले महाद्युते ।
गावो ददति वै हौम्यमृषिभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ९
यानि कानि च दुर्गाणि दुष्कृतानि कृतानि च
तरन्ति चैव पाप्मानं धेनुं ये ददति प्रभो १०
एकां च दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ॥ ११
अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
समृद्धो यश्च कीनाशो नार्घमर्हन्ति ते त्रयः ॥
कपिलां ये प्रयच्छन्ति सवत्सां कांस्यदोहनाम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामुभौ लोकौ जयन्ति ते ॥
युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन शतयूथपम् ।
गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृंगमलंकृतम् ॥ १४
वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप ।
ऐश्वर्यं तेऽधिगच्छन्ति जायमानाः पुनः पुनः
नाकीर्तयित्वा गाः सुप्या-
त्तासां संस्मृत्य चोत्पतेत् ।
सायंप्रातर्नमस्येच्च
गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात् ॥ १६
गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कथंचन ।
न चासां मांसमश्नीयाद्गवां पुष्टिं तथाप्नुयात्
गाश्च संकीर्तयेन्नित्यं नावमन्येत तास्तथा ।
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः संप्रकीर्तयेत् १८
गोमयेन सदा स्नायात्करीषे चापि संविशेत् ।
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत् ॥ १९
सार्द्रे चर्मणि भुञ्जीत निरीक्षन्वारुणीं दिशम्
वाग्यतः सर्पिषा भूमौ गवां पुष्टिं सदाऽश्नुते ॥
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं दद्याद्घृतं प्राशेद्गवां पुष्टिं सदाऽश्नुते २१
गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानामभिमन्त्र्य यः
सर्वरत्नमयीं दद्यान्न स शोचेत्कृताकृते ॥ २२
गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृंग्यः पयोमुचः ।
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा २३
गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम्
एवं रात्रौ दिवा चापि समेषु विषमेषु च ।
महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयात् २५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोप्रदानिके
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

वसिष्ठ उवाच ।
शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्तं सुदुष्करम् ।
गोभिः पूर्वं विसृष्टाभिर्गच्छेम श्रेष्ठतामिति १
लोकेऽस्मिन्दक्षिणानां च सर्वासां वयमुत्तमाः
भवेम न च लिप्येम दोषेणेति परन्तप ॥ २
अस्मत्पुरीषस्नानेन जनः पूयेत सर्वदा ।
शकृता च पवित्रार्थं कुर्वीरन्देवमानुषाः ॥ ३
तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च
प्रदातारश्च लोकान्नो गच्छेयुरिति मानद ॥ ४
ताभ्यो वरं ददौ ब्रह्मा तपसोऽन्ते स्वयं प्रभुः ।
एवं भवत्विति प्रभुर्लोकांस्तारयतेति च ॥ ५

---

कीनाश· कर्षकः कृपणो वा ॥ १२ ॥ गोसमृद्धिकरं कर्म व्रतपूर्वकमाह-सार्द्रेति । चर्मणि गोरेव सार्द्रे प्रोक्षणेनार्द्रीकृते उपविश्येति शेष । भूमाविति कांस्यनिवृत्ति ॥२०॥ जुहुयाद्धोमत्येत्यपकृष्यते गोमाँ अग्ने विमाँ अश्वीति मन्त्रो गोमती ॥ २१॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥७८॥

७९

शतमिति ॥ १ ॥

उत्तस्थुः सिद्धकामास्ता भूतभव्यस्य मातरः
प्रातर्नमस्यास्ता गावस्ततः पुष्टिमवाप्नुयात् ६
तपसोऽन्ते महाराज गावो लोकपरायणाः।
तस्माद्गावो महाभागाः पवित्रं परमुच्यते ॥७
तथैव सर्वभूतानां समतिष्ठन्त मूर्धनि।
समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८
लोहितां तुल्यवत्सां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सूर्यलोके महीयते ॥ ९
समानवत्सां शबलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सोमलोके महीयते ॥ १०
समानवत्सां श्वेतां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ॥ ११
समानवत्सां कृष्णां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामग्निलोके महीयते ॥ १२
समानवत्सां धूम्रां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां याम्यलोके महीयते ॥ १३
अपां फेनसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वारुणं लोकमाप्नुते ॥ १४
वातरेणुसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते ॥ १५
हिरण्यवर्णां पिंगाक्षीं सवत्सां कांस्यदोहनां
प्रदाय वस्त्रसंवीतां कौबेरं लोकमश्नुते ॥ १६
पलालधूम्रवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते ॥ १७
सवत्सां पीवरीं दत्वा दतिकण्ठामलंकृताम्
वैश्वदेवमसम्बाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते॥ १८
समानवत्सां गौरीं तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम्
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूना लोकमाप्नुयात् १९
पाण्डुकम्बलवर्णाभां सवत्सां कांस्यदोहनाम्
प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमाप्नुते २०
वैराटपृष्ठमुक्षाणं सर्वरत्नैरलंकृतम्।
प्रदद‌न्मरुतां लोकान्स राजन् प्रतिपद्यते ॥ २१
वयोपपन्नं लीलाङ्गं सर्वरत्नसमन्वितम्।
गन्धर्वाप्सरसां लोकान्दत्वा प्राप्नोति मानवः
दतिकण्ठमनड्वाहं सर्वरत्नैरलंकृतम्।
दत्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते॥
गोप्रदानरतो याति भित्त्वा जलदसंचयान्।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन्विराजते ॥ २४
तं चारुवेषाः सुश्रोण्यः सहस्रं सुरयोषितः।
रमयन्ति नरश्रेष्ठ गोप्रदानरतं नरम् ॥ २५
वीणानां वल्लकीनां च नूपुराणां च सिञ्जितैः
हासैश्च हरिणाक्षीणां सुप्तः स प्रतिबोध्यते ।

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा-
स्तावन्ति वर्षाणि महीयते सः।
स्वर्गच्युतश्चापि ततो नृलोके
प्रसूयते वै विपुले गृहे सः २७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोप्रदानिके
एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

वसिष्ठ उवाच
घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे १
घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम्।
घृतं सर्वेषु गात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम्॥ २

लोकपरायणा बभूवुरिति शेषः ॥ ७ ॥ दतिकण्ठा प्रलंबगलकबलाम् ॥१८॥ वैराटं वृद्धं पृष्ठं यस्य रटति क्रन्दत्यनेनेति राटं क्षतं विगत राटं यस्मात्तद्विराटं स्वार्थे तद्धित ॥२१॥ लीलागं विलसिताङ्गम् ॥२२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

घृतेति। घृतयोन्यः घृतयोनयः ॥ १ ॥

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ३
इत्याचम्य जपेत्सायं प्रातश्च पुरुषः सदा।
यदह्ना कुरुते पापं तस्मात्स परिमुच्यते ४
प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा
गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः॥५
नवनीतपङ्काः क्षीरोदा दधिशैवलसंकुलाः।
वहन्ति यत्र वै नद्यस्तत्र यान्ति सहस्रदाः ६
गवां शतसहस्रं तु यः प्रयच्छेद्यथाविधि।
परां वृद्धिमवाप्याथ स्वर्गलोके महीयते ७
दश चोभयतः पुत्रो मातापित्रोः पितामहान्।
दधाति सुकृताँल्लोकान्पुनाति च कुलं नरः ८

धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणां
धेनुं तिलानामपि च प्रदाय।
पानीयदाता च यमस्य लोके
न यातनां काश्चिदुपैति तत्र ९
पवित्रमग्र्यं जगतः प्रतिष्ठा
दिवौकसां मातरोऽथाप्रमेयाः।
अन्वालभेद्दक्षिणतो व्रजेच्च
दद्याच्च पात्रे प्रसमीक्ष्य कालम् १०
धेनुं सवत्सां कपिलां भूरिशृङ्गीं
कांस्योपदोहां वसनोत्तरीयाम्।
प्रदाय तां गाहति दुर्विगाह्यां
याम्यां सभां वीतभयो मनुष्यः॥ ११
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः।
गावो मामुपतिष्ठन्तामिति नित्यं प्रकीर्तयेत्॥
नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं फलम्।
नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति १३
त्वचा लोम्नाऽथ शृङ्गैर्वा वालैः क्षीरेण मेदसा।
यज्ञं वहति संभूय किमस्त्यभ्यधिकं ततः १४
यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम् १५
गुणवचनसमुच्चयैकदेशो
नृवर मयैष गवां प्रकीर्तितस्ते।
न च परमिह दानमस्ति गोभ्यो
भवति न चापि परायणं तथाऽन्यत्

भीष्म उवाच।

वरमिदमिति भूमिदो विचिन्त्य
प्रवरमृषेर्वचनं ततो महात्मा।
व्यसृजत नियतात्मवान्द्विजेभ्यः
सुबहु च गोधनमाप्तवांश्च लोकान्॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोप्रदानिके
अशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

## ८१

युधिष्ठिर उवाच।

पवित्राणां पवित्रं यच्छिष्टं लोके च यद्भवेत्
पावनं परमं चैव तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १

भीष्म उवाच।

गावो महार्थाः पुण्याश्च तारयंति च मानवान्
धारयन्ति प्रजाश्चेमा हविषा पयसा तथा २
न हि पुण्यतमं किञ्चिद्गोभ्यो भरतसत्तम।
एताः पुण्याः पवित्राश्च त्रिषु लोकेषु सत्तमाः
देवानामुपरिष्टाच्च गावः प्रतिवसन्ति वै।
दत्त्वा चैतास्तारयते यान्ति स्वर्गं मनीषिणः४
मांधाता यौवनाश्वश्च ययातिर्नहुषस्तथा।
गा वै ददन्तः सततं सहस्रशतसंमिताः॥ ५
गताः परमकं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम्।
अपि चात्र पुरागीतां कथयिष्यामि तेऽनघ ६
ऋषीणामुत्तमं धीमान्कृष्णद्वैपायनं शुकः।
अभिवाद्याह्निककृतः शुचिः प्रयतमानसः ७

---

वसोर्धारा मंदाकिनी॥ ५॥ पानीयदाता जलधेनुदाता॥९॥ भूमिदः सौदासो नाम राजा॥ १७॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपेऽशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

८१

पवित्राणामिति। शिष्टं उक्तादन्यत्॥ १॥ पुरागीता पौराणीं कथाम्॥ ६॥ आह्निककृत् कृताह्निक॥ ७॥

पितरं परिपप्रच्छ इहलोकपरावरम् ।
को यज्ञः सर्वयज्ञानां वरिष्ठोऽभ्युपलक्ष्यते ॥८
किं च कृत्वा परं स्थानं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः
केन देवाः पवित्रेण स्वर्गमश्नन्ति वा विभो ९
किं च यज्ञस्य यज्ञत्वं क्व च यज्ञः प्रतिष्ठितः ।
देवानामुत्तमं किं च किं च सत्रमितः परम् १०
पवित्राणां पवित्रं च यत्तद्ब्रूहि पितर्मम ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः परमधर्मवित् ।
पुत्रायाकथयत्सर्वं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ११

व्यास उवाच ।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां तथा गावः परायणम्
गावः पुण्याः पवित्राश्च गोधनं पावनं तथा
पूर्वमासन्नशृङ्गा वै गाव इत्यनुशुश्रुम ।
शृङ्गार्थे समुपासन्त ताः किल प्रभुमव्ययम् ॥
ततो ब्रह्मा तु गाः प्रायमुपविष्टाः समीक्ष्य ह
ईप्सितं प्रददौ ताभ्यो गोभ्यः प्रत्येकशः प्रभुः
तासां शृङ्गाण्यजायन्त यस्या यादृङ्मनोगतम्
नानावर्णाः शृङ्गवन्त्यस्ता व्यरोचन्त पुत्रक ॥
ब्रह्मणा वरदत्तास्ता हव्यकव्यप्रदाः शुभाः ।
पुण्याः पवित्राः सुभगा दिव्यसंस्थानलक्षणाः
गावस्तेजो महद्दिव्यं गवां दानं प्रशस्यते ।
ये चैताः संप्रयच्छन्ति साधवो वीतमत्सराः॥
ते वै सुकृतिनः प्रोक्ताः सर्वदानप्रदाश्च ते ।
गवां लोकं तथा पुण्यमाप्नुवन्ति च तेऽनघ१८
यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि दिव्यानि द्विजसत्तम१९
सर्वा मणिमयी भूमिः सर्वकाञ्चनवालुकाः ।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का निरजाः शुभाः
रक्तोत्पलवनैश्चैव मणिखण्डैर्हिरण्मयैः ।
तरुणादित्यसंकाशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः ॥
महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ।
नीलोत्पलविमिश्रैश्च सरोभिर्बहुपङ्कजैः ॥ २२
करवीरवनैः फुल्लैः सहस्रावर्तसंवृतैः ।
सन्तानकवनैः फुल्लैर्वृक्षैश्च समलंकृताः ॥ २३
निर्मलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाप्रभैः ।
उद्धूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥ २४
सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा द्रुमोत्तमैः ।
जातरूपमयैश्चान्यैर्हुताशनसमप्रभैः ॥ २५
सौवर्णा गिरयस्तत्र मणिरत्नशिलोच्चयाः ।
सर्वरत्नमयैर्भान्ति शृङ्गैश्चारुभिरुच्छ्रितैः ॥ २६
नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ।
दिव्यगन्धरसैः पुष्पैः फलैश्च भरतर्षभ ॥ २७
रमन्ते पुण्यकर्माणस्तत्र नित्यं युधिष्ठिर ।
सर्वकामसमृद्धार्था निःशोका गतमन्यवः २८
विमानेषु विचित्रेषु रमणीयेषु भारत ।
मोदन्ते पुण्यकर्माणो विहरन्तो यशस्विनः २९

उपक्रीडन्ति तान् राजन्
शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।
एतांल्लोकानवाप्नोति
गां दत्त्वा वै युधिष्ठिर ॥ ३०

येषामधिपतिः पूषा मारुतो बलवान्बली ।
ऐश्वर्ये वरुणो राजा नाममात्रं युगन्धरः ३१
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः ।
प्राजापत्यमिति ब्रह्मन् जपेन्नित्यं यतव्रतः ३२
गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः ।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्
द्रुह्येन्न मनसा वापि गोषु नित्यं सुखप्रदः ।
अर्चयेत सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत् ॥ ३४
दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाऽश्नुते
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ३५
गवामुष्णं पयः पीत्वा त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत्
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो भवेत् त्र्यहम्
येन देवाः पवित्रेण भुञ्जते लोकमुत्तमम् ।
यत्पवित्रं पवित्राणां तद्घृतं शिरसा वहेत् ॥
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं प्राशेद्घृतं दद्याद्गवां पुष्टिं तथाऽश्नुते ॥३८
निर्हृतैश्च यवैर्गोभिर्मासं प्रश्रितयावकः ।
ब्रह्महत्यासमं पापं सर्वमेतेन शुध्यते ॥ ३९
पराभवाच्च दैत्यानां देवैः शौचमिदं कृतम् ।
ते देवत्वमपि प्राप्ताः संसिद्धाश्च महाबलाः ॥

---

अशृंगा इत्यखुरा इत्यस्याप्युपलक्षणं गावो वै सत्रमासत शफान् शृंगाणि सिषासन्त्यस्तासां दशमे मासि शफाः शृंगाण्यजायन्तेति श्रुतेः ॥ १३ ॥ उद्धूतपुलिना अङ्कुरिततीराः ॥ २४ ॥ नगा वृक्षाः पत्ररथाः पक्षिणः ॥ २७ ॥ नाममात्रं जपेदिति सबन्धः युगंधराः सत्यादियुगं धारयन्ति ताः ॥ ३१ ॥ प्राजापत्यं प्रजापतिनोक्तम् ॥ ३२ ॥ जुहुयात् पूर्वोक्तगोमत्या ॥ ३८ ॥ निर्हृतैः गोमयनिर्गतैः ॥ ३९ ॥

गावः पवित्राः पुण्याश्च पावनं परमं महत् ।
ताश्च दत्वा द्विजातिभ्यो नरः स्वर्गमुपाश्नुते ॥
गवां मध्ये शुचिर्भूत्वा गोमतीं मनसा जपेत्
पूताभिरद्भिराचम्य शुचिर्भवति निर्मलः ४२
अग्निमध्ये गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संसदि ।
विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पुण्यकर्मिणः ४३
अध्यापयेरन् शिष्यान्वै गोमतीं यज्ञसंमिताम्
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा गोमतीं लभते वरम्
पुत्रकामश्च लभते पुत्रं धनमथापि वा ।
पतिकामा च भर्तारं सर्वकामांश्च मानवः ।
गावस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सेविता वै न संशयः
एवमेता महाभागा यज्ञियाः सर्वकामदाः ।
रोहिण्य इति जानीहि नैताभ्यो विद्यते परम्
इत्युक्तः स महातेजाः शुकः पित्रा महात्मना
पूजयामास गा नित्यं तस्मात्त्वमपि पूजय ४७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोप्रदानिके
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

युधिष्ठिर उवाच ।
मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम्।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं संशयोऽत्र पितामह ॥१
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गोभिर्नृपेह संवादं श्रिया भरतसत्तम ॥ २
श्रीः कृत्वेह वपुः कान्तं गोमध्येषु विवेश ह ।
गावोऽथ विस्मितास्तस्या दृष्ट्वा रूपस्य संपदम्
गाव ऊचुः ।
काऽसि देवि कुतो वा त्वं रूपेणाप्रतिमा भुवि
विस्मिताः स्म महाभागे तव रूपस्य सम्पदा॥
इच्छाम त्वा वयं ज्ञातुं का त्वं क्व च गमिष्यसि
तत्त्वेन वरवर्णा मे सर्वमेतद्ब्रवीहि नः ॥ ५
श्रीरुवाच ।
लोककान्तास्मि भद्रं वः
श्रीर्नामाऽहं परिश्रुता ।
मया दैत्याः परित्यक्ता
विनष्टाः शाश्वतीः समाः ॥ ६
मयाऽभिपन्ना देवाश्च मोदन्ते शाश्वतीः समाः
इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च विष्णुरापोऽग्निरेव च
मयाभिपन्नाः सिध्यन्ते ऋषयो देवतास्तथा ।
याश्चाविशाम्यहं गावस्ते विनश्यन्ति सर्वशः
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मया जुष्टाः सुखान्विताः ।
एवंप्रभावा मा गावो विजानीत सुखप्रदाः ९
इच्छामि चापि युष्मासु वस्तुं सर्वासु नित्यदा
आगत्य प्रार्थये युष्माञ्छ्रीजुष्टा भवताऽथ वै
गाव ऊचुः ।
अध्रुवा चपला च त्वं सामान्या बहुभिः सह
न त्वामिच्छाम भद्रं ते गम्यतां यत्र रंस्यसे
वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाद्य वै
यथेष्टं गम्यतां तत्र कृतकार्या वय त्वया ॥ १२
श्रीरुवाच ।
किमेतद्वः क्षमं गावो यन्मां नेहाभिनन्दथ ।
न मां संप्रति गृह्णीध्वं कस्माद्वै दुर्लभां सतीम्
सत्यं च लोकवादोऽयं लोक चरति सुव्रताः ।
स्वयं प्राप्ते परिभवो भवतीति विनिश्चयः १४
महदुग्रं तपः कृत्वा मां निषेवन्ति मानवाः ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥१५
प्रभाव एष वो गावः प्रतिगृह्णीत मामिह ।
नावमन्या ह्यहं सौम्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥

---

गोमतीं गोमत्या ऋचा प्रकाशितमर्थं वरं लभते ॥ ४८ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्याय ॥ ८१ ॥

८२
मयेति ॥ १ ॥

गाव ऊचुः ।
नावमन्यामहे देवि न त्वां परिभवामहे ।
अध्रुवा चलचित्ताऽसि ततस्त्वां वर्जयामहे ॥
बहुना च किमुक्तेन गम्यतां यत्र वांछसि ।
वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाऽनघे
श्रीरुवाच ।
अवज्ञाता भविष्यामि सर्वलोकस्य मानदाः
प्रत्याख्यानेन युष्माकं प्रसादः क्रियतां मम ॥
महाभागा भवत्यो वै शरण्याः शरणागताम् ।
परित्रायन्तु मां नित्यं भजमानामनिन्दिताम्
माननामहमिच्छामि भवत्यः सततं शिवाः ।
अप्येकाङ्गेष्वधो वस्तुमिच्छामि च सुकुत्सिते
न वोऽस्ति कुत्सितं किञ्चिदङ्गेष्वालक्ष्यतेनघाः
पुण्याः पवित्राः सुभगा ममादेशं प्रयच्छथ २२
वसेय यत्र वो देहे तन्मे व्याख्यातुमर्हथ ।
एवमुक्तास्ततो गावः शुभाः करुणवत्सलाः ।
समन्त्र्य सहिताः सर्वाः श्रियमूचुर्नराधिप ॥
अवश्य मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि
शकृन्मूत्रे निवस त्वं पुण्यमेतद्धि नः शुभे २४
श्रीरुवाच ।
दिष्ट्या प्रसादो युष्माभिः कृतो मेऽनुग्रहात्मकः
एवं भवतु भद्रं वः पूजितास्मि सुखप्रदाः २५
एवं कृत्वा तु समयं श्रीर्गोभिः सह भारत ।
पश्यन्तीनां ततस्तासां तत्रैवान्तरधीयत २६
एवं गोशकृतः पुत्र माहात्म्यं तेऽनुवर्णितम् ।
माहात्म्यं च गवां भूयः श्रूयतां गदतो मम २७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्रीगोसंवादो नाम
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

## ८३

भीष्म उवाच ।
ये च गा संप्रयच्छन्ति हुतशिष्टाशिनश्च ये
तेषा सत्राणि यज्ञाश्च नित्यमेव युधिष्ठिर ॥ १
ऋते दधिघृतेनेह न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
तेन यज्ञस्य यज्ञत्वमतो मूलं च कथ्यते ॥ २
दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते ।
गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम् ३
पुष्ट्यर्थमेताः सेवेत शान्त्यर्थमपि चैव ह ।
पयोदधिघृतं चासां सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ४
गावस्तेजः परं प्रोक्तमिह लोके परत्र च ।
न गोभ्यः परमं किञ्चित्पवित्रं भरतर्षभ ॥ ५
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितामहस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ६
पराभूतेषु दैत्येषु शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रजाः समुदिताः सर्वाः सत्यधर्मपरायणाः ७
अथर्षयः सगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ।
देवासुरसुपर्णाश्च प्रजानां पतयस्तथा ॥ ८
पर्युपासन्त कौन्तेय कदाचिद्वै पितामहम् ।
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ ९
दिव्यतानेषु गायन्तः पर्युपासन्त तं प्रभुम् ।
तत्र दिव्यानि पुष्पाणि प्रावहत्पवनस्तदा ॥
आजह्रुर्ऋतवश्चापि सुगन्धीनि पृथक् पृथक् ।
तस्मिन्देवसमावाये सर्वभूतसमागमे ॥ ११
दिव्यवादित्रसंघुष्टे दिव्यस्त्रीचारणावृते ।
इन्द्रः पप्रच्छ देवेशमभिवाद्य प्रणम्य च १२
देवानां भगवन्कस्माल्लोकेशानां पितामह ।
उपरिष्टाद्गवां लोक एतदिच्छामि वेदितुम् १३
किं तपो ब्रह्मचर्यं वा गोभिः कृतमहेश्वर ।
देवानामुपरिष्टाद्धसन्त्यरजसः सुखम् ॥ १४
ततः प्रोवाच ब्रह्मा तं शक्रं बलनिषूदनम् ।
अवज्ञातास्त्वया नित्यं गावो बलनिषूदन १५

एका अहम् अंगेषु मध्ये कुत्सिते ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८२ ॥

८३

ये चेति ॥ १ ॥

तेन त्वमासां माहात्म्यं न वेत्सि शृणु यत्प्रभो
गवां प्रभावं परमं माहात्म्यं च सुरर्षभ ॥ १६
यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव ।
एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथञ्चन ॥ १७
धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा ।
एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥ १८
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥
पयोदधिघृतं चैव पुण्याश्चैताः सुराधिप ।
वहन्ति विविधान्भारान्क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः
मुनींश्च धारयन्तीह प्रजाश्चैवापि कर्मणा ।
वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च २१
उपरिष्टात्ततोऽस्माकं वसन्त्येताः सदैव हि ।
एवं ते कारणं शक्र निवासकृतमद्य वै ॥ २२
गवां देवोपरिष्टाद्धि समाख्यातं शतक्रतो ।
एता हि वरदत्ताश्च वरदाश्चापि वासव २३
सुरभ्यः पुण्यकर्मिण्यः पावनाः शुभलक्षणाः ।
यदर्थं गां गताश्चैव सुरभ्यः सुरसत्तम ॥ २४
तच्च मे शृणु कात्स्न्येन वदतो बलसूदन ।
पुरा देवयुगे तात देवेन्द्रेषु महात्मसु ॥ २५
त्रैँल्लोकाननुशासत्सु विष्णौ गर्भत्वमागते ।
अदित्यास्तप्यमानायास्तपो घोरं सुदुश्चरम् ॥
पुत्रार्थममरश्रेष्ठ पादेनैकेन नित्यदा ।
तां तु दृष्ट्वा महादेवीं तप्यमानां महत्तपः ॥ २७
दक्षस्य दुहिता देवी सुरभी नाम नामतः ।
अतप्यत तपो घोरं हृष्टा धर्मपरायणा ॥ २८
कैलासशिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते ।
व्यतिष्ठदेकपादेन परमं योगमास्थिता ॥ २९
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
सन्तप्तास्तपसा तस्या देवाः सर्षिमहोरगाः ॥
तत्र गत्वा मया सार्धं पर्युपासन्त तां शुभाम्
अथाहमब्रुवं तत्र देवीं तां तपसान्विताम् ३१
किमर्थं तप्यसे देवि तपो घोरमनिन्दिते ।
प्रीतस्तेऽहं महाभागे तपसाऽनेन शोभने ३२
वरयस्व वरं देवि दातास्मीति पुरन्दर ॥ ३३

सुरभ्युवाच ।

वरेण भगवन्मह्यं कृतं लोकपितामह ।
एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ ३४

ब्रह्मोवाच ।

तामेवं ब्रुवतीं देवीं सुरभिं त्रिदशेश्वर ।
प्रत्यब्रुवं यद्देवेन्द्र तन्निबोध शचीपते ॥ ३५
अलोभकाम्यया देवि तपसा च शुभानने ।
प्रसन्नोऽहं वरं तस्मादमरत्वं ददामि ते ॥ ३६
त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्टान्निवत्स्यसि ।
मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः संभविष्यति
मानुषेषु च कुर्वाणाः प्रजाः कर्म शुभास्तव ।
निवत्स्यन्ति महाभागे सर्वा दुहितरश्च ते ३८
मनसा चिन्तिता भोगास्त्वया वै दिव्यमानुषाः
यच्च सर्वं सुखं देवि तत्ते सम्पत्स्यते शुभे ३९
तस्या लोकाः सहस्राक्ष सर्वकामसमन्विताः ।
न तत्र क्रमते मृत्युर्न जरा न च पावकः ॥४०
न दैवं नाशुभं किञ्चिद्विद्यते तत्र वासव ।
तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च
विमानानि सुयुक्तानि कामगानि च वासव ।
ब्रह्मचर्येण तपसा यत्नेन च दमेन च ॥ ४२
दानैश्च विविधैः पुण्यैस्तथा तीर्थानुसेवनात् ।
तपसा महता चैव सुकृतेन च कर्मणा ॥ ४३
शक्यः समासादयितुं गोलोकः पुष्करेक्षण ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया शक्रानुपृच्छते ४४
न ते परिभवः कार्यो गवामसुरसूदन ॥ ४५

भीष्म उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षः पूजयामास नित्यदा
गाश्चक्रे बहुमानं च तासु नित्यं युधिष्ठिर ४६

---

वासव अकूटवाहिन्य अमायाव्यवहरिण्य ॥ २१ ॥ निवासार्थं कृतं निवासकृतम् ॥ २२ ॥ त्रयाणामुपरिष्टात् ब्रह्मलोके इत्यर्थ । तत परस्य तप फलस्याभावात् तत्रैव च गोलोक. श्रूयते—

ता वा वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण परमं पदमवभाति भूरि ॥

इति। ता तानि वा युवयोरिन्द्राविष्ण्वोर्नरनारायणयोः प्रसादाद्वास्तूनि स्थानानि उश्मसि कामयामहे गमध्यै गन्तुं यत्र येषु स्थानेषु गाव भूरिशृङ्गा अत्यन्तं मानवत्य. अयास गतवत्य अत्र अस्मिन् गोलोके अह एव तत्प्रसिद्धं उरुगायस्य विष्णो वृष्ण कामपूरकस्य परमं पदं सर्वोत्कृष्टं स्थानं अवभाति अल्पमिव भाति भूरि अत्यंतं सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपरि गोलोक इति सिद्धम्। अन्यथा चतुर्थो महर्लोक एवाप्नोति न च तस्य परमपरत्वमस्तीति मन्त्रानुसाराद्ब्रह्मलोक एव गाव सन्तीति ज्ञेयम् ॥ ३६ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं पावनं च महाद्युते ।
पवित्रं परमं चापि गवां माहात्म्यमुत्तमम् ४७
कीर्तितं पुरुषव्याघ्र सर्वपापविमोचनम् ।
य इदं कथयेन्नित्यं ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ४८
हव्यकव्येषु यज्ञेषु पितृकार्येषु चैव ह ।
सार्वकामिकमक्षय्यं पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ४९
गोषु भक्तश्च लभते यद्यदिच्छति मानवः ।
स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात् ।
धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्५१
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात्सुखं
न किञ्चिद्दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ॥५२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गोलोकवर्णने
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

युधिष्ठिर उवाच ।
उक्तं पितामहेनेदं गवां दानमनुत्तमम् ।
विशेषेण नरेन्द्राणामिह धर्ममवेक्षताम् ॥ १
राज्यं हि सततं दुःखं दुर्धरं चाकृतात्मभिः ।
भूयिष्ठं च नरेन्द्राणां विद्यते न शुभा गतिः २
पूयन्ते तत्र नियतं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम् ।
सर्वे च कथिता धर्मास्त्वया मे कुरुनन्दन ॥३
एवमेव गवामुक्तं प्रदानं ते नृगेण ह ।
ऋषिणा नाचिकेतेन पूर्वमेव निदर्शितम् ॥ ४
वेदोपनिषदश्चैव सर्वकर्मसु दक्षिणाः ।
सर्वक्रतुषु चोद्दिष्टं भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम् ५
तत्र श्रुतिस्तु परमा सुवर्णं दक्षिणेति वै ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पितामह यथातथम् ॥६
किं सुवर्णं कथं जातं कस्मिन्काले किमात्मकं
किं दैवं किं फलं चैव कस्माच्च परमुच्यते ७
कस्माद्दानं सुवर्णस्य पूजयन्ति मनीषिणः ।
कस्माच्च दक्षिणार्थं तद्यज्ञकर्मसु शस्यते ॥ ८
कस्माच्च पावनं श्रेष्ठं भूमेर्गोभ्यश्च काञ्चनम् ।
परमं दक्षिणार्थे च तद्ब्रवीहि पितामह ॥ ९
भीष्म उवाच ।
शृणु राजन्नवहितो बहुकारणविस्तरम् ।
जातरूपसमुत्पत्तिमनुभूतं च यन्मया ॥ १०
पिता मम महातेजाः शान्तनुर्निधनं गतः ।
तस्य दित्सुरहं श्राद्धं गङ्गाद्वारमुपागमम् ११
तत्राऽऽगम्य पितुः पुत्र श्राद्धकर्म समारभम् ।
माता मे जाह्नवी चात्र साहाय्यमकरोत्तदा ॥
ततोऽग्रतस्ततः सिद्धानुपवेश्य बहूनृषीन् ।
तोयप्रदानात्प्रभृति कार्याण्यहमथारभम् १३
तत्समाप्य यथोद्दिष्टं पूर्वकर्म समाहितः ।
दातुं निर्वपणं सम्यग्यथावदहमारभम् ॥ १४
ततस्तं दर्भविन्यासं भित्त्वा सुरुचिराङ्गदः ।
प्रलम्बाभरणो बाहुरुदतिष्ठद्विशाम्पते ॥ १५
तमुत्थितमहं दृष्ट्वा परं विस्मयमागमम् ।
प्रतिग्रहीता साक्षान्मे पितेति भरतर्षभ ॥ १६
ततो मे पुनरेवासीत्संज्ञा सञ्चिन्त्य शास्त्रतः ।
नायं वेदेषु विहितो विधिर्हस्त इति प्रभो १७
पिण्डो देयो नरेणेह ततो मतिरभून्मम ।
साक्षान्नेह मनुष्यस्य पिण्डं हि पितरः क्वचित्
गृह्णन्ति विहितं चेत्थं पिण्डो देयः कुशेष्विति
ततोऽहं तदनादृत्य पितुर्हस्तनिदर्शनम् ॥ १९
शास्त्रप्रामाण्यसूक्ष्मं तु विधिं पिण्डस्य संस्मरन्
ततो दर्भेषु तत्सर्वमददं भरतर्षभ ॥ २०
शास्त्रमार्गानुसारेण तद्विद्धि मनुजर्षभ ।
ततः सोऽन्तर्हितो बाहुः पितुर्मम जनाधिप॥२१

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८३ ॥

८४

उक्तमिति ॥ १ ॥ न शुभा अशुभा ॥ २ ॥ पूयन्ते शुद्ध्यन्ति ॥ ३ ॥

ततो मा दर्शयामासुः स्वप्नान्ते पितरस्तथा ।
प्रीयमाणास्तु मामूचुः प्रीताः स्म भरतर्षभ॥२२
विज्ञानेन तवानेन यन्न मुह्यसि धर्मतः ।
त्वया हि कुर्वता शास्त्रं प्रमाणमिह पार्थिव॥२३
आत्मा धर्मः श्रुतं वेदाः पितरश्चर्षिभिः सह ।
साक्षात्पितामहो ब्रह्मा गुरवोऽथ प्रजापतिः
प्रमाणमुपनीता वै स्थिताश्च न विचालिताः ।
तदिदं सम्यगारब्धं त्वयाऽद्य भरतर्षभ ॥ २५
किं तु भूमेर्गवां चार्थे सुवर्णं दीयतामिति ।
एवं वयं च धर्मज्ञ सर्वे चास्मत्पितामहाः २६
पाविता वै भविष्यन्ति पावनं हि परं हि तत्
दशपूर्वान्दशैवान्यांस्तथा सन्तारयन्ति ते॥२७
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति एवं मत्पितरोऽब्रुवन् ।
ततोऽहं विस्मितो राजन्प्रतिबुद्धो विशांपते॥२८
सुवर्णदानेऽकरवं मतिं च भरतर्षभ ।
इतिहासमिमं चापि शृणु राजन्पुरातनम् २९
जामदग्न्यं प्रति विभो धन्यमायुष्यमेव च ।
जामदग्न्येन रामेण तीव्ररोषान्वितेन वै ॥ ३०
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा
ततो जित्वा महीं कृत्स्नां रामो राजीवलोचनः
आजहार क्रतुं वीरो ब्रह्मक्षत्रेण पूजितम् ।
वाजिमेधं महाराज सर्वकामसमन्वितम् ३२
पावनं सर्वभूतानां तेजोद्युतिविवर्धनम् ।
विपाप्मा च स तेजस्वी तेन क्रतुफलेन च ॥
नैवात्मनोऽथ लघुतां जामदग्न्योऽभ्यगच्छत
स तु क्रतुवरेणेष्ट्वा महात्मा दक्षिणावता ३४
पप्रच्छागमसंपन्नानृषीन्देवांश्च भार्गव ।
पावनं यत्परं नृणामुग्रे कर्मणि वर्तताम् ॥ ३५
तदुच्यतां महाभागा इति जातघृणोऽब्रवीत् ।
इत्युक्ता वेदशास्त्रज्ञास्तमूचुस्ते महर्षयः ॥ ३६
राम विप्राः सत्क्रियन्तां वेदप्रामाण्यदर्शनात्
भूयश्च विप्रर्षिगणाः प्रष्टव्याः पावनं प्रति ३७
ते यद् ब्रूयुर्महाप्राज्ञास्तच्चैव समुदाचर ।
ततो वसिष्ठं देवर्षिमगस्त्यमथ काश्यपम् ॥३८
तमेवार्थं महातेजाः पप्रच्छ भृगुनन्दनः ।
जाता मतिर्मे विप्रेन्द्राः कथं पूयेयमित्युत ॥३९
केन वा कर्मयोगेन प्रदानेनेह केन वा ।
यदि वोऽनुग्रहकृता बुद्धिर्मां प्रति सत्तमाः ॥
प्रब्रूत पावनं किं मे भवेदिति तपोधनाः ॥४०

ऋषय ऊचुः ।

गाश्च भूमिं च वित्तं च दत्वेह भृगुनन्दन ।
पापकृत्पूयते मर्त्य इति भार्गव शुश्रुम ॥ ४१
अन्यद्दानं तु विप्रर्षे श्रूयतां पावनं महत् ।
दिव्यमत्यद्भुताकारमपत्यं जातवेदसः ॥ ४२
दग्ध्वा लोकान्पुरा वीर्यात्संभूतमिह शुश्रुम
सुवर्णमिति विख्यातं तद्ददत्सिद्धिमेष्यसि ४३
ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भगवान्संशितव्रतः ।
शृणु राम यथोत्पन्नं सुवर्णमनलप्रभम् ॥ ४४
फलं दास्यति ते यत्तु दाने परमिहोच्यते ।
सुवर्णं यच्च यस्माच्च यथा च गुणवत्तमम् ४५
तन्निबोध महाबाहो सर्वं निगदतो मम ।
अग्नीषोमात्मकमिदं सुवर्णं विद्धि निश्चये ४६
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्योऽश्व इति दर्शनम् ।
कुञ्जराश्च मृगा नागा महिषाश्चासुरा इति ४७
कुक्कुटाश्च वराहाश्च राक्षसा भृगुनन्दन ।
इडा गावः पयः सोमो भूमिरित्येव च स्मृतिः
जगत्सर्वं च निर्मथ्य तेजोराशिः समुत्थितः
सुवर्णमेभ्यो विप्रर्षे रत्नं परममुत्तमम् ॥ ४९
एतस्मात्कारणाद्देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
मनुष्याश्च पिशाचाश्च प्रयता धारयन्ति तत्
मुकुटैरंगदयुतैरलंकारैः पृथग्विधैः ।
सुवर्णविकृतैस्तत्र विराजन्ते भृगूत्तम ॥ ५१
तस्मात्सर्वपवित्रेभ्यः पवित्रं परमं स्मृतम् ।
भूमेर्गोभ्योऽथ रत्नेभ्यस्तद्विद्धि मनुजर्षभ ५२
पृथिवीं गाश्च दत्वेह यच्चान्यदपि किंचन ।
विशिष्यते सुवर्णस्य दानं परमकं विभो ॥५३
अक्षय्यं पावनं चैव सुवर्णममरद्युते ।
प्रयच्छ द्विजमुख्येभ्यः पावनं ह्येतदुत्तमम् ५४
सुवर्णमेव सर्वासु दक्षिणासु विधीयते ।
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति सर्वदास्ते भवन्त्युत ५५
देवतास्ते प्रयच्छन्ति ये सुवर्णं ददत्यथ ।
अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम्
तस्मात्सुवर्णं ददता दत्ताः सर्वाः स्म देवताः
भवन्ति पुरुषव्याघ्र न ह्यतः परमं विदुः ॥ ५७

---

लघुता निष्पापताम् ॥ ३४ ॥ अज इति । अजादीनामग्न्यादिरूपत्वात्तद्दानं तल्लोकप्रदम् । असुरराक्षसपदाभ्यामपि तल्लोक ॥ ४७ ॥ वराहश्च निर्ऋति अस्य दानं अल्पफल इडादयो भूमिरूपा इति तद्दानं महाफलं इडेति इडावान् यज्ञ ॥ ४८ ॥ जगदिति । सुवर्णदानं ब्रह्माण्डदानतुल्यमिति भाव ॥४९॥

भूय एव च माहात्म्यं सुवर्णस्य निबोध मे ।
गदतो मम विप्रर्षे सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ ५८
मया श्रुतमिदं पूर्वं पुराणे भृगुनन्दन ।
प्रजापतेः कथयतो यथान्यायं तु तस्य वै ५९
शूलपाणेर्भगवतो रुद्रस्य च महात्मनः ।
गिरौ हिमवति श्रेष्ठे तदा भृगुकुलोद्वह ॥ ६०
देव्या विवाहे निर्वृत्ते रुद्राण्या भृगुनन्दन ।
समागमे भगवतो देव्या सह महात्मनः ॥ ६१
ततः सर्वे समुद्विग्ना देवा रुद्रमुपागमन् ।
ते महादेवमासीनं देवीं च वरदामुमाम् ६२
प्रसाद्य शिरसा सर्वे रुद्रमूचुर्भृगूद्वह ।
अयं समागमो देवो देव्या सह तवानघ ॥ ६३
तपस्विनस्तपस्विन्या तेजस्विन्याऽतितेजसः ।
अमोघतेजास्त्वं देव देवी चेयमुमा तथा ॥ ६४
अपत्यं युवयोर्देव बलवद्भविता विभो ।
तन्नूनं त्रिषु लोकेषु न किञ्चिच्छेषयिष्यति ॥
तदेभ्यः प्रणतेभ्यस्त्वं देवेभ्यः पृथुलोचन ।
वरं प्रयच्छ लोकेश त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥
अपत्यार्थे निगृह्णीष्व तेजः परमकं विभो ।
त्रैलोक्यसारौ हि युवां लोकं सन्तापयिष्यथः
तदपत्यं हि युवयोर्देवानभिभवेद्ध्रुवम् ।
न हि ते पृथिवी देवी न च द्यौर्न दिवं विभो
नेदं धारयितुं शक्ताः समस्ता इति मे मतिः ।
तेजःप्रभावनिर्दग्धं तस्मात्सर्वमिदं जगत् ६९
तस्मात्प्रसादं भगवन्कर्तुमर्हसि नः प्रभो ।
न देव्यां संभवेत्पुत्रो भवतः सुरसत्तम ।
धैर्यादेव निगृह्णीष्व तेजो ज्वलितमुत्तमम् ७०
इति तेषां कथयतां भगवान्वृषभध्वजः ।
एवमस्त्विति देवांस्तान्विप्रर्षे प्रत्यभाषत ७१
इत्युक्त्वा चोर्ध्वमनयद्रेतो वृषभवाहनः ।
ऊर्ध्वरेताः समभवत्ततः प्रभृति चापि सः ॥
रुद्राणीति ततः क्रुद्धा प्रजोच्छेदे तदा कृते ।
देवानथाब्रवीत्तत्र स्त्रीभावात्परुषं वचः ॥ ७३
यस्मादपत्यकामो वै भर्ता मे विनिवर्तितः ।
तस्मात्सर्वे सुरा यूयमनपत्या भविष्यथ ॥ ७४
प्रजोच्छेदो मम कृतो यस्माद्युष्माभिरद्य वै ।
तस्मात्प्रजा वः खगमाः सर्वेषां न भविष्यति
पावकस्तु न तत्रासीच्छापकाले भृगूद्वह ।
देवा देव्यास्तथा शापादनपत्यास्ततोऽभवन्
रुद्रस्तु तेजोऽप्रतिमं धारयामास वै तदा ।
प्रस्कन्नं तु ततस्तस्मात्किंचित्तत्रापतद्भुवि ७७
उत्पपात तदा वह्नौ ववृधे चाद्भुतोपमम् ।
तेजस्तेजसि संयुक्तमात्मयोनित्वमागतम् ७८
एतस्मिन्नेव काले तु देवाः शक्रपुरोगमाः ।
असुरस्तारको नाम तेन सन्तापिता भृशम्
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोऽथाश्विनावपि ।
साध्याश्च सर्वे संत्रस्ता दैतेयस्य पराक्रमात् ॥
स्थानानि देवतानां हि विमानानि पुराणि च
ऋषीणां चाश्रमाश्चैव बभूवुरसुरैर्हृताः ॥ ८१
ते दीनमनसः सर्वे देवता ऋषयश्च ये ।
प्रजग्मुः शरणं देवं ब्रह्माणमजरं विभुम् ॥ ८२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि सुवर्णोत्पत्तिर्नाम
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

देवा ऊचुः ।
असुरस्तारको नाम त्वया दत्तवरः प्रभो ।
सुरानृषींश्च क्लिश्नाति वधस्तस्य विधीयताम् १
तस्माद्भयं समुत्पन्नमस्माकं वै पितामह ।
परित्रायस्व नो देव न ह्यन्या गतिरस्ति नः २
ब्रह्मोवाच ।
समोऽहं सर्वभूतानामधर्मं नेह रोचये ।
हन्यतां तारकः क्षिप्रं सुरर्षिगणबाधिता ॥ ३

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्याय ॥ ८४ ॥

८५

असुर इति ॥ १ ॥

वेदा धर्मांश्च नोच्छेदं गच्छेयुः सुरसत्तमाः ।
विहितं पूर्वमेवात्र मया वै व्येतु वो ज्वरः ४

देवा ऊचुः ।

वरदानाद्भगवतो दैतेयो बलगर्वितः ।
देवैर्न शक्यते हन्तुं स कथं प्रशमं व्रजेत ॥ ५
स हि नैव स्म देवानां नासुराणां न रक्षसाम्
वध्यः स्यामिति जग्राह वरं त्वत्तः पितामह
देवाश्च शप्ता रुद्राण्या प्रजोच्छेदे पुराकृते ।
न भविष्यति वोऽपत्यमिति सर्वे जगत्पते ७

ब्रह्मोवाच ।

हुताशनो न तत्रासीच्छापकाले सुरोत्तमाः
स उत्पादयिताऽपत्यं वधाय त्रिदशद्विषाम् ८
तद्वै सर्वानतिक्रम्य देवदानवराक्षसान् ।
मानुषानथ गन्धर्वान्नागानथ च पक्षिणः ॥ ९
अस्त्रेणामोघपातेन शक्त्या तं घातयिष्यति ।
यतो वो भयमुत्पन्नं ये चान्ये सुरशत्रवः १०
सनातनो हि सङ्कल्पः काम इत्यभिधीयते ।
रुद्रस्य तेजः प्रस्कन्नमग्नौ निपतितं च यत् ॥
तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिति पावकम् ।
वधार्थं देवशत्रूणां गङ्गायां जनयिष्यति ॥ १२
स तु नावाप तं शापं नष्टः स हुतभुक् तदा ।
तस्माद्वो भयहृद्देवाः समुत्पत्स्यति पावकिः ॥
अन्विष्यतां वै ज्वलनस्तथा चाद्य नियुज्यताम्
तारकस्य वधोपायः कथितो वै मयाऽनघाः
न हि तेजस्विनां शापास्तेजःसु प्रभवन्ति वै ।
बलान्यतिबलं प्राप्य दुर्बलानि भवन्ति वै १५
हन्यादवध्यान्वरदानपि चैव तपस्विनः ।
सङ्कल्पाभिरुचिः कामः सनातनतमोऽभवत् ॥
जगत्पतिरनिर्देश्यः सर्वगः सर्वभावनः ।
हृच्छयः सर्वभूतानां ज्येष्ठो रुद्रादपि प्रभुः १७
अन्विष्यतां स तु क्षिप्रं तेजोराशिर्हुताशनः ।
स वो मनोगतं कामं देवः संपादयिष्यति १८
एतद्वाक्यमुपश्रित्य ततो देवा महात्मनः ।
जग्मुः संसिद्धसङ्कल्पाः पर्येषन्तो विभावसुम्
ततस्त्रैलोक्यमृषयो व्यचिन्वन्त सुरैः सह ।
कांक्षन्तो दर्शनं वह्नेः सर्वे तद्गतमानसाः २०
परेण तपसा युक्ताः श्रीमन्तो लोकविश्रुताः ।
लोकानन्वचरन्सिद्धाः सर्व एव भृगूत्तम २१
नष्टमात्मनि संलीनं नाभिजग्मुर्हुताशनम् ।
ततः सञ्जातसंत्रासानग्निदर्शनलालसान् २२
जलेचरः क्लान्तमनास्तेजसाऽग्नेः प्रदीपितः ।
उवाच देवान्मण्डूको रसातलतलोत्थितः ॥
रसातलतले देवा वसत्यग्निरिति प्रभो ।
संतापादिह संप्राप्तः पावकप्रभवादहम् ॥ २४
स संसुप्तो जले देवा भगवान्हव्यवाहनः ।
अपः संसृज्य तेजोभिस्तेन संतापिता वयम् ॥
तस्य दर्शनमिष्टं वो यदि देवा विभावसोः ।
तत्रैवमधिगच्छध्वं कार्यं वो यदि वह्निना २६
गम्यतां साधयिष्यामो वयं ह्यग्निभयात्सुराः ।
एतावदुक्त्वा मंडूकस्त्वरितो जलमाविशत् ॥
हुताशनस्तु बुबुधे मण्डूकस्य च पैशुनम् ।
शशाप स तमासाद्य न रसान्वेत्स्यसीति वै
तं वै संयुज्य शापेन मण्डूकं त्वरितो ययौ ।
अन्यत्र वासाय विभुर्न चात्मानमदर्शयत् २९
देवास्त्वनुग्रहं चक्रुर्मण्डूकानां भृगूत्तम ।
यत्तच्छृणु महाबाहो गदतो मम सर्वशः ॥ ३०

देवा ऊचुः ।

अग्निशापादजिह्वापि रसज्ञानबहिष्कृताः ।
सरस्वतीं बहुविधां यूयमुच्चारयिष्यथ ॥ ३१
बिलवासं गतांश्चैव निराहारानचेतसः ।
गतासूनपि संशुष्कान् भूमिः संतारयिष्यति ॥
तमोघनायामपि वै निशायां विचरिष्यथ ।
इत्युक्त्वा तांस्ततो देवाः पुनरेव महीमिमाम्
परीयुर्ज्वलनस्यार्थे न चाविन्दन् हुताशनम् ।
अथ तान्द्विरदः कश्चित्सुरेन्द्रद्विरदोपमः ३४
अश्वत्थस्थोऽग्निरित्येवमाह देवान् भृगूद्वह ।
शशाप ज्वलनः सर्वान्द्विरदान्क्रोधमूर्च्छितः
प्रतीपा भवतां जिह्वा भवित्रीति भृगूद्वह ।
इत्युक्त्वा निःसृतोऽश्वत्थादग्निर्वारणसूचितः ।
प्रविवेश शमीगर्भमथ वह्निः सुषुप्सया ॥ ३६

---

नष्ट अदर्शनं गत ॥ १३ ॥ ननु सर्वे सुरा इत्युद्दिश्य देव्याः शापात्कथं वह्नौ न शापः स तत्र नासीदिति चेत्तेन किमित्यत आह—**न हीति** । वह्नेस्तेजस्वित्वान्न शापो दृश्यते इति भाव ॥ १५ ॥ काम काम्यमानो वह्नि संकल्प अपन्यविषयस्तदर्थं अभिरुचि सर्वतो गेच्यमानो भवत् अस्तु ॥ १६ ॥ नष्टं अदर्शनं गत आत्मानि जले जलस्य तेजोजन्यत्वात् ॥ २२ ॥ **न रसानिति** । रसनेन्द्रियहीनो भविष्यसीत्यर्थ ॥ २८ ॥ अजिह्वा अपीति च्छेद ॥ ३१ ॥

अनुग्रहं तु नागानां यं चक्रुः शृणु तं प्रभो ।
देवा भृगुकुलश्रेष्ठ प्रीत्या सत्यपराक्रमाः ३७

देवा ऊचुः ।

प्रतीपया जिह्वयापि सर्वाहार करिष्यथ ।
वाचं चोच्चारयिष्यध्वमुच्चैरव्यञ्जिताक्षराम् ॥
इत्युक्त्वा पुनरेवाग्निमनुसस्रुर्दिवौकसः ।
अश्वत्थाग्निःसृतश्चाग्निः शमीगर्भमुपाविशत्
शुकेन ख्यापितो विप्र तं देवाः समुपाद्रवन् ।
शशाप शुकमग्निस्तु वाग्विहीनो भविष्यसि
जिह्वामावर्तयामास तस्यापि हुतभुक्तथा ।
दृष्ट्वा तु ज्वलनं देवाः शुकमूचुर्दयान्विताः ४१
भविता न त्वमत्यन्तं शुकत्वे नष्टवागिति ।
आवृत्तजिह्वस्य सतो वाक्यं कान्तं भविष्यति
बालस्येव प्रवृद्धस्य कलमव्यक्तमद्भुतम् ।
इत्युक्त्वा तं शमीगर्भे वह्निमालक्ष्य देवताः
तदेवायतनं चक्रुः पुण्यं सर्वक्रियास्वपि ।
ततः प्रभृति चाप्यग्निः शमीगर्भेषु दृश्यते ४४
उत्पादने तथोपायमभिजग्मुश्च मानवाः ।
आपो रसातले यास्तु संस्पृष्टाश्चित्रभानुना ॥
ताः पर्वतप्रस्रवणैरूष्मां मुञ्चति भार्गव ।
पावकेनाधिशयता संतप्तास्तस्य तेजसा ४६
अथाग्निर्देवता दृष्ट्वा बभूव व्यथितस्तदा ।
किमागमनमित्येवं तानपृच्छत पावकः ॥ ४७
तमूचुर्विबुधाः सर्वे ते चैव परमर्षयः ।
त्वां नियोक्ष्यामहे कार्ये तद्भवान्कर्तुमर्हति
कृते च तस्मिन् भविता तवापि सुमहान्गुणः

अग्निरुवाच ।

ब्रूत यद्भवतां कार्यं कर्तास्मि तदहं सुराः ।
भवतां तु नियोज्योस्मि मा वोऽत्रास्तु विचारणा

देवा ऊचुः ।

असुरस्तारको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ।
अस्मान्प्रबाधते वीर्याद्वधस्तस्य विधीयताम्
इमान्देवगणांस्तात प्रजापतिगणांस्तथा ।
ऋषींश्चापि महाभाग परित्रायस्व पावक ५२
अपत्यं तेजसा युक्तं प्रवीरं जनय प्रभो ।
यद्भयं नोऽसुरात्तस्मान्नाशयेद्धव्यवाहन ५३
शप्तानां नो महादेव्या नान्यदस्ति परायणम्
अन्यत्र भवतो वीर्यं तस्मात्त्रायस्व नः प्रभो ॥
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगवान्हव्यवाहनः
जगामाथ दुराधर्षो गङ्गां भागीरथीं प्रति ५५
तया चाप्यभवन्मिश्रो गर्भं चास्यादधे तदा ।
ववृधे स तदा गर्भः कक्षे कृष्णगतिर्यथा ५६
तेजसा तस्य देवस्य गङ्गा विह्वलचेतना ।
सन्तापमगमत्तीव्रं सोढुं सा न शशाक ह ५७
आहिते ज्वलनेनाथ गर्भे तेजःसमन्विते ।
गङ्गायामसुरः कश्चिद्भैरवं नादमानदत् ॥ ५८
अबुद्धिपतितेनाथ नादेन विपुलेन सा ।
वित्रस्तोद्भ्रान्तनयना गङ्गा विप्लुतलोचना ५९
विसंज्ञा नाशकद्गर्भं वोढुमात्मानमेव च ।
सा तु तेजःपरीताङ्गी कम्पयन्तीव जाह्नवी ६०
उवाच ज्वलनं विप्र तदा गर्भबलोद्धुता ।
ते न शक्तास्मि भगवंस्तेजसोऽस्य विधारणे
विमूढाऽस्मि कृतानेन न मे स्वास्थ्यं यथा पुरा
विह्वला चास्मि भगवंश्चेतो नष्टं च मेऽनघ ६२
धारणे नास्य शक्ताऽहं गर्भस्य तपतां वर ।
उत्स्रक्ष्येहमिमं दुःखान्न तु कामात्कथञ्चन ६३
न तेजसोस्ति संस्पर्शो मम देव विभावसो ।
आपदर्थे हि सम्बन्धः सुसूक्ष्मोऽपि महाद्युते
यदत्र गुणसम्पन्नमितरद्वा हुताशन ।
त्वय्येव तदहं मन्ये धर्माधर्मौ च केवलौ ६५
तामुवाच ततो वह्निर्धार्यतां धार्यतामिति ।
गर्भो मत्तेजसा युक्तो महागुणफलोदयः ॥ ६६
शक्ता ह्यसि महीं कृत्स्नां वोढुं धारयितुं तथा
न हि ते किञ्चिदप्राप्यमन्यतो धारणादृते ६७
सा वह्निना वार्यमाणा देवैरपि सरिद्वरा ।
समुत्ससर्ज तं गर्भं मेरौ गिरिवरे तदा ॥ ६८
समर्था धारणे चापि रुद्रतेजःप्रधर्षिता ।
नाशकत्तं तदा गर्भं संधारयितुमोजसा ६९
सा समुत्सृज्य तं दुःखाद्दीप्तवैश्वानरप्रभम् ।
दर्शयामास चाग्निस्तं तदा गङ्गां भृगूद्वह ७०
पप्रच्छ सरितां श्रेष्ठां कच्चिद्गर्भः सुखोदयः ।
कीदृग्वर्णोऽपि वा देवि कीदृग्रूपश्च दृश्यते ।
तेजसा केन वा युक्तः सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ ७१

ऊष्मा ऊष्माणं डाबुभाभ्यामिति मन्नन्तात् डाप् अधिशयता अधिशयानेन ॥४६॥ अबुद्धिपतितेन अकस्माज्जातेन ॥५९॥ रुद्रस्य अग्नेस्तेजस्तेन प्रधर्षिता रुद्रो वा एष यदग्निरिति श्रुते ॥ ६९ ॥

गङ्गोवाच।

जातरूपः स गर्भो वै तेजसा त्वमिवानघ।
सुवर्णो विमलो दीप्तः पर्वतं चावभासयत् ७२
पद्मोत्पलविमिश्राणां ह्रदानामिव शीतलः।
गन्धोऽस्य स कदम्बाना तुल्यो वै तपतां वर
तेजसा तस्य गर्भस्य भास्करस्येव रश्मिभिः
यद्द्रव्यं परिसंसृष्टं पृथिव्यां पर्वतेषु च ७४
तत्सर्वं काञ्चनीभूतं समन्तात्प्रत्यदृश्यत।
पर्यधावत शैलांश्च नदीः प्रस्रवणानि च ७५
व्यादीपयंस्तेजसा च त्रैलोक्यं सचराचरम्
एवंरूपः स भगवान्पुत्रस्ते हव्यवाहन।
सूर्यवैश्वानरसमः कान्त्या सोम इवापरः ७६
एवमुक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत।
पावकश्चापि तेजस्वी कृत्वा कार्यं दिवौकसाम्
जगामेष्टं ततो देशं तदा भार्गवनन्दन।
एतैः कर्मगुणैर्लोके नामाग्नेः परिगीयते ॥ ७८
हिरण्यरेता इति वै ऋषिभिर्विबुधैस्तथा।
पृथिवी च तदा देवी ख्याता वसुमतीति वै ॥
स तु गर्भो महातेजा गाङ्गेयः पावकोद्भवः।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधेऽद्भुतदर्शनः ॥ ८०
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालार्कसदृशद्युतिम्।
पुत्रं वै ताश्च तं बालं पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः ८१
ततः स कार्तिकेयत्वमवाप परमद्युतिः।
स्कन्नत्वात्स्कन्दतां चापि गुहावासाद्गुहोऽभवत्
एवं सुवर्णमुत्पन्नमपत्यं जातवेदसः।
तत्र जाम्बूनदं श्रेष्ठं देवानामपि भूषणम् ॥ ८३
ततः प्रभृति चाप्येतज्जातरूपमुदाहृतम्।
रत्नानामुत्तमं रत्नं भूषणाना तथैव च ॥ ८४
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
यत्सुवर्णं स भगवानग्निरीशः प्रजापतिः ॥ ८५
पवित्राणां पवित्रं हि कनकं द्विजसत्तमाः।
अग्नीषोमात्मकं चैव जातरूपमुदाहृतम् ॥ ८६

वसिष्ठ उवाच।

अपि चेदं पुरा राम श्रुतं मे ब्रह्मदर्शनम्।
पितामहस्य यद्वृत्तं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ८७
देवस्य महतस्तात वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्।
ऐश्वर्ये वारुणे राम रुद्रस्येशस्य वै प्रभो॥ ८८
आजग्मुर्मुनयः सर्वे देवाश्चाग्निपुरोगमाः।
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान्
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः।
ऋग्वेदश्चागमत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥ ९०
लक्षणानि स्वरा स्तोभा निरुक्तं सुरपंक्तयः।
ओङ्कारश्चावसन्नेत्रे निग्रहप्रग्रहौ तथा ॥ ९१
वेदाश्च सोपनिषदो विद्या सावित्र्यथापि च।
भूतं भव्यं भविष्यं च दधार भगवाञ्शिवः९२
संजुहावात्मनाऽऽत्मानं स्वयमेव तदा प्रभो
यज्ञं च शोभयामास बहुरूपं पिनाकधृत् ९३
द्यौर्नभः पृथिवी खं च तथा चैवैष भूपतिः।
सर्वविद्येश्वरः श्रीमानेष चापि विभावसुः९४
एष ब्रह्मा शिवो रुद्रो वरुणोऽग्निः प्रजापतिः।
कीर्त्यते भगवान्देवः सर्वभूतपतिः शिवः ९५
तस्य यज्ञः पशुपतेस्तपः क्रतव एव च।
दीक्षा दीप्तव्रता देवी दिशश्च सदिगीश्वराः९६
देवपत्न्यश्च कन्याश्च देवानां चैव मातरः।
आजग्मुः सहितास्तत्र तदा भृगुकुलोद्वह ॥९७
यज्ञं पशुपतेः प्रीता वरुणस्य महात्मनः।
स्वयंभुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि ॥ ९८
तस्य शुक्रस्य विस्पन्दान्पांसून्संगृह्य भूमितः
प्रास्यत्पूषा कराभ्यां वै तस्मिन्नेव हुताशने
ततस्तस्मिन्संप्रवृत्ते सत्रे ज्वलितपावके
ब्रह्मणो जुह्वतस्तत्र प्रादुर्भावो बभूव ह ॥ १००
स्कन्नमात्रं च तच्छुक्रं स्रुवेण परिगृह्य सः।
आज्यवन्मन्त्रतश्चापि सोऽजुहोद्भृगुनन्दन १
ततः स जनयामास भूतग्रामं च वीर्यवान्।
तस्य तत्तेजसस्तस्माज्जज्ञे लोकेषु तैजसम् ॥ २
तमसस्तामसा भावा व्यापि सत्त्वं तथोभयम्
स गुणस्तेजसो नित्यस्तस्य चाकाशमेव च३

कदंबाना कदंबपुष्पाणाम् ७३ देवस्य महत इति रुद्रस्येत्यर्थ ॥८८॥ विस्पन्दान् कणान् ताभिः पतिताभी रेत कणिकाभि-सह पासून् संगृह्य ॥ ९९ ॥ प्रादुर्भावश्चरमधातु ॥१००॥ भूतग्रामं चतुर्विधं तत्तेजसस्तस्य त्रिगुणमयस्य रेतस संबंधी यस्तेजोंशो रजोंशस्तस्मात्तैजसं प्रवृत्तिप्रधान जंगममभूत् ॥२॥ तमसस्तमोंऽशात्तामस स्थावरं सत्त्वांशात्तूभयत्रानुगत उभयेषु सात्त्विकाना भावाना धर्महेतुत्वादीना दर्शनात्। स इति। स सत्त्वगुणस्तेजसः प्रकाशरूपाया बुद्धे स्वरूपमित्यर्थ। बुद्धेस्ते-जस्त्वं प्रकाशकत्वसाम्यान्मनोज्योतिरितिमन्त्रलिङ्गाच्च तस्य धीसत्त्वस्य च आकाशं आकाशादि कृत्स्न विश्वं स्वरूप तद्धि लब्धसत्त्वात्मक तदात्मना परिणमत इति भाव ॥ ३ ॥

सर्वभूतेषु च तथा सत्त्वं तेजस्तथोत्तमम् ।
शुक्रे हुतेऽग्नौ तस्मिंस्तु प्रादुरासंस्त्रयः प्रभो ४
पुरुषा वपुषा युक्ताः स्वैः स्वैः प्रसवजैर्गुणैः ।
भृगित्येव भृगुः पूर्वमङ्गारेभ्योऽङ्गिराऽभवत् ५
अङ्गारसंश्रयाच्चैव कविरित्यपरोऽभवत् ।
सह ज्वालाभिरुत्पन्नो भृगुस्तस्माद्भृगुः स्मृतः
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु
मारीचः कश्यपो ह्यभूत् ।
अङ्गारेभ्योऽङ्गिरास्तात
वालखिल्याः कुशोच्चयात् ॥ ८
अत्रैवात्रेति च विभो जातमत्रिं वदन्त्यपि ।
तथा भस्मव्यपोहेभ्यो ब्रह्मर्षिगणसंमताः ॥ ८
वैखानसाः समुत्पन्नास्तपःश्रुतगुणेप्सवः ।
अश्रुतोऽस्य समुत्पन्नावश्विनौ रूपसम्मतौ ९
शेषाः प्रजानां पतयः स्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे
ऋषयो रोमकूपेभ्यः स्वेदाच्छंदो बलान्मनः
एतस्मात्कारणादाहुरग्निः सर्वास्तु देवताः ।
ऋषयः श्रुतसम्पन्ना वेदप्रामाण्यदर्शनात् ११
यानि दारूणि निर्यासास्ते मासाः पक्षसंज्ञिताः
अहोरात्रा मुहूर्ताश्च पित्तं ज्योतिश्च दारुणम्
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितात्कनकं स्मृतम् ।
तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमाच्च वसवः स्मृताः ।
अर्चिषो याश्च ते रुद्रास्तथाऽऽदित्या महाप्रभाः
उद्दिष्टास्ते तथाङ्गारा ये धिष्ण्येषु दिवि स्थिताः
आदिकर्ता च लोकस्य तत्परं ब्रह्म तद्ध्रुवम् ।
सर्वकामदमित्याहुस्तद्रहस्यमुवाच ह ॥ १५
ततोऽब्रवीन्महादेवो वरुणः पवनात्मकः ।
मम सत्रमिदं दिव्यमहं गृहपतिस्त्विह ॥ १६
त्रीणि पूर्वाण्यपत्यानि मम तानि न संशयः ।
इति जानीत खगमा मम यज्ञफलं हि तत् १७
अग्निरुवाच ।
मदङ्गेभ्यः प्रसूतानि मदाश्रयकृतानि च ।
ममैव तान्यपत्यानि वरुणो ह्यवशात्मकः १८
अथाब्रवील्लोकगुरुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ममैव तान्यपत्यानि मम शुक्रं हुतं हि तत् १९
अहं कर्ता हि सत्रस्य होता शुक्रस्य चैव ह ।
यस्य बीजं फलं तस्य शुक्रं चेत्कारणं मतम् २०
ततोऽब्रुवन्देवगणाः पितामहमुपेत्य वै ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिरभिवन्द्य च ॥ २१
वयं च भगवन्सर्वे जगच्च सचराचरम् ।
तवैव प्रसवाः सर्वे तस्मादग्निर्विभावसुः ॥ २२
वरुणश्चेश्वरो देवो लभतां काममीप्सितम् ।
निसर्गाद्ब्रह्मणश्चापि वरुणो यादसांपतिः ॥२३
जग्राह वै भृगुं पूर्वमपत्यं सूर्यवर्चसम् ।
ईश्वरोऽङ्गिरसं चाग्नेरपत्यार्थमकल्पयत् ॥ २४
पितामहस्त्वपत्यं वै कविं जग्राह तत्त्ववित् ।
तदा स वारुणः ख्यातो भृगुः प्रसवकर्मकृत्
आग्नेयस्त्वांगिराः श्रीमान्कविर्ब्राह्मो महायशाः
भार्गवाङ्गिरसौ लोके लोकसन्तानलक्षणौ २६
एते हि प्रसवाः सर्वे प्रजानां पतयस्त्रयः ।
सर्वं संतानमेतेषामिदमित्युपधारय ॥ २७
भृगोस्तु पुत्राः सप्तासन्सर्वे तुल्या भृगोर्गुणैः ।
च्यवनो वज्रशीर्षश्च शुचिरौर्वस्तथैव च ॥ २८
शुक्रो वरेण्यश्च विभुः सवनश्चेति सप्त ते ।
भार्गवा वारुणाः सर्वे येषां वंशे भवानपि ॥
अष्टौ चांगिरसः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः ।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च पयस्यः शान्तिरेव च ॥३०
घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः
एतेऽष्टौ वह्निजाः सर्वे ज्ञाननिष्ठा निरामयाः
ब्रह्मणस्तु कवेः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः ।
अष्टौ प्रसवजैर्युक्ता गुणैर्ब्रह्मविदः शुभाः ॥ ३२
कविः काव्यश्च धृष्णुश्च बुद्धिमानुशनास्तथा
भृगुश्च विरजाश्चैव काशी चोग्रश्च धर्मवित् ॥

तस्मात्सर्वेषु भूतेषु तमोमयेषु जडेषु शरीरेषु सत्त्व प्रकाश उत्तमं तेज धर्मप्रवृत्तिश्च तत्सर्वं तस्माद्वह्नौ हुतात्प्रजापति-शुक्राज्जज्ञिरे इत्यर्थ ॥ ४ ॥ प्रसवजै कारणजैर्गुणै' ताने-वाह—**भृगिति**। भृज्जति पावयतीति भृक् ज्वाला साक्षा-ज्ज्वाला इत्येव भृगुरिति नाम ॥ ५ ॥ अगाराश्रिता अल्पज्वाला निर्धूमास्ताभ्य कविरभूदित्यर्थ । भृगिति व्याचष्टे—**सहेति** ॥ ६ ॥ अत्रैव कुशोच्चये अत्र अत्रे-वेति संबन्ध व्यपोहेभ्य समूहेभ्य ॥८॥अश्रुत अश्रुसकाशात् ॥९॥ स्रोतोभ्य श्रोत्रादीन्द्रियेभ्य । बलात् वीर्यात् ॥१०॥ एतस्मादग्निजत्वात् ॥ ११ ॥ निर्यासा दारुगला लाक्षाद्यो वृक्षरसा ॥ १२ ॥ दिविस्थिता' ग्रहतारादय. धिष्ण्येषु स्थानेषु ॥ १४ ॥ त्रीणि भृग्वंगिर कविसंज्ञानि ॥ १७ ॥ अवश. आत्मा चित्तं यस्य सोऽवशात्मक भ्रान्त इत्यर्थ' १८ कवे पुत्रा वारुणा इत्यनेन स्वीयभागोऽपि कविर्ब्रह्मणा वरुणाय समर्पित इत्युन्नेयम् ॥ ३२ ।

अष्टौ कविसुता ह्येते सर्वमेभिर्जगत्ततम् ।
प्रजापतय एते हि प्रजामागैरिह प्रजाः ॥ ३४
एवमंगिरसश्चैव कवेश्च प्रसवान्वयैः ।
भृगोश्च भृगुशार्दूल वंशजैः सततं जगत् ॥३५
वरुणश्चादितो विप्र जग्राह प्रभुरीश्वरः ।
कार्वि तात भृगुं चापि तस्मात्तौ वारुणौ स्मृतौ
जग्राहांगिरसं देवः शिखी तस्माद्धुताशनः ।
तस्मादांगिरसा ज्ञेयाः सर्व एव तदन्वयाः ॥
ब्रह्मा पितामहः पूर्वं देवताभिः प्रसादितः ।
इमे नः सन्तरिष्यन्ति प्रजाभिर्जगतीश्वराः ॥
सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चातितपस्विनः ।
त्वत्प्रसादादिमं लोकं तारयिष्यन्ति सांप्रतम्
तथैव वंशकर्तारस्तव तेजोविवर्धनाः ।
भवेयुर्वेदविदुषः सर्वे च कृतिनस्तथा ॥ ४०
देवपक्षचराः सौम्याः प्राजापत्या महर्षयः ।
आप्नुवन्ति तपश्चैव ब्रह्मचर्यं परं तथा ॥ ४१
सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसवः प्रभो ।
देवानां ब्राह्मणानां च त्वं हि कर्ता पितामह
मारीचमादितः कृत्वा सर्वे चैवाथ भार्गवाः ।
अपत्यानीति संप्रेक्ष्य क्षमयाम पितामह ॥ ४३
ते त्वनेनैव रूपेण प्रजनिष्यन्ति वै प्रजाः ।
स्थापयिष्यन्ति चात्मानं युगादिनिधने तथा
इत्युक्तः स तदा तैस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तथेत्येवाब्रवीत्प्रीतस्तेऽपि जग्मुर्यथागतम् ॥
एवमेतत्पुरा वृत्तं तस्य यज्ञे महात्मनः ।
देवश्रेष्ठस्य लोकादौ वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥
अग्निर्ब्रह्मा पशुपतिः शर्वो रुद्रः प्रजापतिः ।
अग्नेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा ॥ ४७
अग्न्यभावे च कुरुते वह्निस्थानेषु काञ्चनम् ।
जामदग्न्यः प्रमाणज्ञो वेदश्रुतिनिदर्शनात् ४८
कुशस्तम्बे जुहोत्यग्निं सुवर्णे तत्र च स्थिते ।
वल्मीकस्य +वपायां च कर्णे वाऽजस्य दक्षिणे
शकटोर्व्यां परस्याप्सु ब्राह्मणस्य करे तथा ।
हुते प्रीतिकरीमृद्धिं भगवांस्तत्र मन्यते ॥ ५०
तस्मादग्निपराः सर्वे देवता इति शुश्रुम ।
ब्रह्मणो हि प्रभूतोऽग्निरग्नेरपि च काञ्चनम् ॥
तस्माद्ये वै प्रयच्छन्ति सुवर्णं धर्मदर्शिनः ।
देवतास्ते प्रयच्छन्ति समस्ता इति नः श्रुतम् ॥
तस्य चातमसो लोका गच्छतः परमां गतिम्
स्वर्लोके राजराज्येन सोऽभिषिच्येत भार्गव
आदित्योदयसंप्राप्ते विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः
ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विधूयते ।
मध्याह्ने ददतो रुक्मं हन्ति पापमनागतम् ५५
ददाति पश्चिमां सन्ध्यां यः सुवर्णं यतव्रतः ।
ब्रह्मवाय्वग्निसोमानां सालोक्यमुपयाति सः
सेन्द्रेषु चैव लोकेषु प्रतिष्ठां विन्दते शुभाम् ।
इह लोके यशः प्राप्य शान्तपाप्मा च मोदते
ततः संपद्यतेऽन्येषु लोकेष्वप्रतिमः सदा ।
अनावृतगतिश्चैव कामचारो भवत्युत ॥ ५८
न च क्षरति तेभ्यश्च यशश्चैवाप्नुते महत् ।
सुवर्णमक्षयं दत्वा लोकांश्चाप्नोति पुष्कलान् ॥
यस्तु सञ्जनयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति ।
दद्याद्वै व्रतमुद्दिश्य सर्वकामान्समश्नुते ॥ ६०
अग्निमित्येव तत्प्राहुः प्रदानं च सुखावहम् ।
यथेष्टगुणसंवृत्तं प्रवर्तकमिति स्मृतम् ॥ ६१
एषा सुवर्णस्योत्पत्तिः कथिता ते मयाऽनघ
कार्तिकेयस्य च विभो तद्विद्धि भृगुनन्दन ६२

---

नः अस्मान् संतरिष्यन्ति संतारयिष्यन्ति ॥ ३८ ॥ विदुष. विद्वांस· ॥ ४० ॥ क्षमयाम स्वोत्कर्षार्थं अन्योन्याभिभवाय न यतामह इत्यर्थः ॥ ४३ ॥ ते अनेन क्षमावता आदिनिधने उत्पत्तिप्रलययोरन्तराले ॥ ४४ ॥ देवश्रेष्ठस्य रुद्रस्य ॥ ४६ ॥ धारणा निश्चयः ॥ ४७ ॥ **वेदश्रुतिरिति** । अमावनुगतेन्तरा आहुती हिरण्य उत्तरा जुहुयादिति कल्पकारेण दर्शिता ॥ ४८ ॥ वल्मीकवपाया सान्नाय्यमिति दधिपयसो सहहोम उक्त । ब्राह्मणपाण्यजकर्णदर्भस्तंबाप्सु काष्ठेष्वित्येतानि श्रुतौ दृश्यन्ते ॥ ४९ ॥ शकटोर्वी तु श्रुत्यन्तरात् ज्ञेया परस्य तीर्थादेरप्सु ॥ ५० ॥ राजराज्येन कुबेरत्वेन ॥ ५३ ॥ तेभ्यो लोकेभ्यो न च क्षरति ॥ ५९ ॥ अग्निं श्रौतं स्मार्तं वा संजनयित्वा प्रातः प्रादुष्कृत्य उदयकाले दद्यात् ॥६०॥ **अग्निमिति** । अग्न्यादित्ययो· प्रादुर्भूतयोरन्तराले काले सुवर्णदानं, इष्टेन गुणेन भुवि दिवि प्रकाशमानेन रूपेण मया स्थेयमित्येवंरूपेण गुणेन अंतरालकालेन च गुणेन संवृत्तं समान जात, एतच्च गुणज्ञानं प्रवर्तकं अग्निजत्वाद्धिरण्यमग्नि इति शब्दः प्रकारार्थं ।हिरण्यं पुरस्कृत्य सायमुद्धरेदिति सायमुद्धरणकालातिक्रमे सूर्यस्य हिरण्यपुरस्कारवचनाद्धिरण्यमादित्यत्वेनापि जानीयात् अतस्तयोरन्तराले सुवर्णं ददत् तादृशमेव फलं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥ **एषेति** । यथा कार्तिकेय सर्वदेवानामजेयं दैत्यं निहतवान् एवं तत्सोदरं सुवर्णमपि सर्वेषां धर्माणामजय्यं दुरितं नाशयति लोकं च तादृशं जयतीत्यर्थः ॥ ६२ ॥ इति

+ रन्ध्रे रंध्रे श्वभ्रं वपा सुषिरित्यमरः ।

कार्तिकेयस्तु संवृद्धः कालेन महता तदा।
देवैः सेनापतित्वेन वृतः सेन्द्रैर्भृगूद्वह ॥ ६३
जघान तारकं चापि दैत्यमन्यांस्तथासुरान्।
त्रिदशेन्द्राज्ञया ब्रह्मँल्लोकानां हितकाम्यया ॥
सुवर्णदाने च मया कथितास्ते गुणा विभो।
तस्मात्सुवर्णं विप्रेभ्यः प्रयच्छ ददतां वर ६५

भीष्म उवाच।
इत्युक्तः स वसिष्ठेन जामदग्न्यः प्रतापवान्
ददौ सुवर्णं विप्रेभ्यो व्यमुच्यत च किल्बिषात्
एतत्ते सर्वमाख्यातं सुवर्णस्य महीपते।
प्रदानस्य फलं चैव जन्म चास्य युधिष्ठिर ६७
तस्मात्त्वमपि विप्रेभ्यः प्रयच्छ कनकं बहु।
ददत्सुवर्णं नृपते किल्बिषाद्विप्रमोक्ष्यसि ६८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि सुवर्णोत्पत्तिर्नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## ८६

युधिष्ठिर उवाच।
उक्ताः पितामहेनेह सुवर्णस्य विधानतः।
विस्तरेण प्रदानस्य ये गुणाः श्रुतिलक्षणाः १
यत्तु कारणमुत्पत्तेः सुवर्णस्य प्रकीर्तितम्।
स कथं तारकः प्राप्तो निधनं तद्ब्रवीहि मे २
उक्तं स दैवतानां हि अवध्य इति पार्थिव।
कथं तस्याभवन्मृत्युर्विस्तरेण प्रकीर्तय ॥ ३
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तः कुरुकुलोद्वह।
कार्त्स्न्येन तारकवधं परं कौतूहलं हि मे ॥ ४

भीष्म उवाच।
विपन्नकृत्या राजेन्द्र देवता ऋषयस्तथा।
कृत्तिकाश्चोदयामासुरपत्यभरणाय वै ॥ ५
न देवतानां काचिद्धि समर्था जातवेदसः।
एता हि शक्तास्तं गर्भं संधारयितुमोजसा ६
षण्णां तासां ततः प्रीतः पावको गर्भधारणात्
स्वेन तेजोविसर्गेण वीर्येण परमेण च ॥ ७
तास्तु षट्कृत्तिका गर्भं पुपुषुर्जातवेदसः।
षट्सु वर्त्मसु तेजोऽग्नेः सकलं निहितं प्रभो ॥ ८

ततस्ता वर्धमानस्य कुमारस्य महात्मनः।
तेजसाऽभिपरीताङ्ग्यो न क्वचिच्छर्म लेभिरे
ततस्तेजःपरीताङ्ग्यः सर्वाः काल उपस्थिते
समं गर्भं सुषुविरे कृत्तिकास्तं नरर्षभ ॥ १०
ततस्तं षडधिष्ठानं गर्भमेकत्वमागतम्।
पृथिवी प्रतिजग्राह कार्तस्वरसमीपतः ॥ ११
स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान्पावकप्रभः
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः ॥ १२
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाश्च सौहार्दात्पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः ॥
अभवत्कार्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे।
स्कन्नत्वात्स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद्गुहोभवत्
ततो देवास्त्रयस्त्रिंशद्दिशश्च सदिगीश्वराः।
रुद्रो धाता च विष्णुश्च यमः पूषार्यमा भगः
अंशो मित्रश्च साध्याश्च वासवो वसवोऽश्विनौ
आपो वायुर्नभश्चन्द्रो नक्षत्राणि ग्रहा रविः ॥
पृथग्भूतानि चान्यानि यानि देवार्पणानि वै
आजग्मुस्तेऽद्भुतं द्रष्टुं कुमारं ज्वलनात्मजम्

---

श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥ ८५ ॥

८६

**उक्ता इति।** श्रुतिर्वेद. लक्षणं ज्ञापकं येषा ते श्रुतिलक्षणा. श्रुत्युक्ता इत्यर्थः ॥१॥ विपन्नं कृत्यं येषा ते गङ्गया गर्भे त्यक्ते सति नष्टकार्या ॥५॥चोदयामासुरित्यत्र हेतुमाह —**नेति**। गर्भं संधारयितुमित्यपकृष्यते पूर्वार्धेऽपि ॥ ६ ॥ प्रीतस्ताभिर्गर्भधारणेन तत्प्रेतः पीत्वा षोढा गर्भे धृते सतीति शेष. ॥ ७ ॥ वर्त्मसु गर्भागमनमार्गेषु योनिष्वित्यर्थ ॥८॥ देवेभ्योऽर्प्यन्ते यैस्तानि ऋग्यजुःसामानि मूर्तिमन्ति देवार्पणानि ॥ १७ ॥

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव गन्धर्वाश्च जगुस्तथा ।
षडाननं कुमारं तु द्विषडक्षं द्विजप्रियम् ॥ १८
पीनांसं द्वादशभुजं पावकादित्यवर्चसम् ।
शयानं शरगुल्मस्थं दृष्ट्वा देवाः सहर्षिभिः १९
लेभिरे परमं हर्षं मेनिरे चासुरं हतम् ।
ततो देवाः प्रियाण्यस्य सर्व एव समाहरन् २०
क्रीडतः क्रीडनीयानि ददुः पक्षिगणाश्च ह ।
सुपर्णोऽस्य ददौ पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् २१
राक्षसाश्च ददुस्तस्मै वराहमहिषावुभौ ।
कुक्कुटं चाग्निसंकाशं प्रददौ वरुणः स्वयम् ॥ २२
चन्द्रमाः प्रददौ मेषमादित्यो रुचिरां प्रभाम् ।
गवां माता च गा देवी ददौ शतसहस्रशः ॥
छागमग्निर्गुणोपेतमिला पुष्पफलं बहु ।
सुधन्वा शकटं चैव रथं चामितकूबरम् ॥ २४
वरुणो वारुणान्दिव्यान्सगजान्प्रददौ शुभान्
सिंहान्सुरेन्द्रो व्याघ्रांश्च द्विपानन्यांश्च पक्षिणः
श्वापदांश्च बहून् घोरांश्छत्राणि विविधानि च
राक्षसासुरसंघाश्च अनुजग्मुस्तमीश्वरम् २६
वर्धमानं तु तं दृष्ट्वा प्रार्थयामास तारकः ।
उपायैर्बहुभिर्हन्तुं नाशकच्चापि तं विभुम् २७
सैनापत्येन तं देवाः पूजयित्वा गुहालयम् ।
शशंसुर्विप्रकारं तं तस्मै तारककारितम् २८
स विवृद्धो महावीर्यो देवसेनापतिः प्रभुः ।
जघानामोघया शक्त्या दानवं तारकं गुहः ॥
तेन तस्मिन्कुमारेण क्रीडता निहतेऽसुरे ।
सुरेन्द्रः स्थापितो राज्ये देवानां पुनरीश्वरः
स सेनापतिरेवाथ बभौ स्कन्दः प्रतापवान् ।
ईशो गोप्ता च देवानां प्रियकृच्छंकरस्य च ३१
हिरण्यमूर्तिर्भगवानेष एव च पावकिः ।
सदा कुमारो देवानां सैनापत्यमवाप्तवान् ॥
तस्मात्सुवर्णं मङ्गल्यं रत्नमक्षय्यमुत्तमम् ।
सहजं कार्तिकेयस्य वह्नेस्तेजः परं मतम् ३३
एवं रामाय कौरव्य वसिष्ठोऽकथयत्पुरा ।
तस्मात्सुवर्णदानाय प्रयतस्व नराधिप ॥ ३४
रामः सुवर्णं दत्त्वा हि विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः
त्रिविष्टपे महत्स्थानमवापासुलभं नरैः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि तारकवधोपाख्यानं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

युधिष्ठिर उवाच ।
चातुर्वर्ण्यस्य धर्मात्मन्धर्माः प्रोक्ता यथा त्वया
तथैव मे श्राद्धविधिं कृत्स्नं प्रब्रूहि पार्थिव १
वैशम्पायन उवाच ।
युधिष्ठिरेणैवमुक्तो भीष्मः शान्तनवस्तदा
इमं श्राद्धविधिं कृत्स्नं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ २
भीष्म उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजञ्श्राद्धकर्मविधिं शुभम्
धन्यं यशस्यं पुत्रीयं पितृयज्ञं परंतप ॥ ३
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
पिशाचकिंनराणां च पूज्या वै पितरः सदा ४
पितॄन्पूज्यादितः पश्चाद्देवतास्तर्पयन्ति वै ।
तस्मात्तान्सर्वयत्नेन पुरुषः पूजयेत्सदा ॥ ५
अन्वाहार्यं महाराज पितॄणां श्राद्धमुच्यते ।
तस्माद्विशेषविधिना विधिः प्रथमकल्पितः ६
सर्वेष्वहःसु प्रीयन्ते कृते श्राद्धे पितामहाः ।
प्रवक्ष्यामि तु ते सर्वांस्तिथ्यातिथ्यगुणागुणान्

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्याय ॥ ८६ ॥

८७

चातुर्वर्ण्यस्येति ॥ १ ॥ आदित अमावास्याया पश्चात्प्रतिपदि यद्वा खंडदर्शे पूर्वार्धे इष्टिं पश्चात्पितृयज्ञ ॥ ५ ॥ अन्वाहार्यं पश्चात् कतव्यमपि यस्मादेवं तस्मात् प्रथमकल्पित सामान्यविधि' अमावास्याया यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहरपराह्णे पिंडपितृयज्ञं कुरुत इति विशेषविधिना बाध्यत इति अन्वाहार्यत्वमपि पितृयज्ञस्य भवतीत्यर्थ ॥ ६ ॥ तिथीना अतिथीना च गुणानगुणाश्च प्रवक्ष्यामि ॥ ७ ॥

येष्वहःसु कृतैः श्राद्धैर्यत्फलं प्राप्यतेऽनघ।
तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि यथावत्तन्निबोध मे ८
पितॄनर्च्य प्रतिपदि प्राप्नुयात्सुगृहे स्त्रियः।
अभिरूपप्रजायिन्यो दर्शनीया बहुप्रजाः ॥ ९
स्त्रियो द्वितीया जायन्ते तृतीयायां तु वाजिनः
चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवो भवन्ति बहवो गृहे ॥ १०
पञ्चम्यां बहवः पुत्रा जायन्ते कुर्वतां नृप।
कुर्वाणास्तु नराः षष्ठ्यां भवन्ति द्युतिभागिनः
कृषिभागी भवेच्छ्राद्धं कुर्वाणः सप्तमीं नृप।
अष्टम्यां तु प्रकुर्वाणो वाणिज्ये लाभमाप्नुयात्
नवम्यां कुर्वतः श्राद्धं भवत्येकशफं बहु।
विवर्धन्ते तु दशमीं गावः श्राद्धानि कुर्वतः ॥
कुप्यभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वन्नेकादशीं नृप।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते तस्य वेश्मनि १४
द्वादश्यामीहमानस्य नित्यमेव प्रदृश्यते।
रजतं बहुवित्तं च सुवर्णं च मनोरमम् ॥ १५
ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्वञ्छ्राद्धं त्रयोदशीम्
अवश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे १६
युद्धभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वञ्छ्राद्धं चतुर्दशीम्।
अमावास्यां तु निर्वापात्सर्वकामानवाप्नुयात्
कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्।
श्राद्धकर्माणि तिथ्यस्तु प्रशस्ता न तथेतराः ॥
यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

युधिष्ठिर उवाच।
किंस्विद्दत्तं पितृभ्यो वै भवत्यक्षयमीश्वर
किं हविश्चिररात्राय किमानन्त्याय कल्पते १
भीष्म उवाच।
हवींषि श्राद्धकल्पे तु यानि श्राद्धविदो विदुः
तानि मे शृणु काम्यानि फलं चैव युधिष्ठिर
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा।
दत्तेन मासं प्रीयन्ते श्राद्धेन पितरो नृप ॥ ३
वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षयं मनुरब्रवीत्।
सर्वेष्वेव तु भोज्येषु तिलाः प्राधान्यतः स्मृताः
द्वौ मासौ तु भवेत्तृप्तिर्मत्स्यैः पितृगणस्य ह।
त्रीन्मासानाविकेनाहुश्चतुर्मासं शशेन ह ॥ ५
आजेन मासान्प्रीयन्ते पञ्चैव पितरो नृप।
वाराहेण तु षण्मासान् सप्त वै शाकुलेन तु ६
मासानष्टौ पार्षतेन रौरवेण नव प्रभो।
गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दशमासिकी ७
मांसेनैकादश प्रीतिः पितॄणां माहिषेण तु।
गव्येन दत्ते श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते ॥ ८
यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषा सह।
वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ९
आनन्त्याय भवेद्दत्तं खड्गमांसं पितृक्षये।
कालशाकं च लौहं चाप्यानन्त्यं छाग उच्यते
गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति पितृगीता युधिष्ठिर
सनत्कुमारो भगवान्पुरा मय्यभ्यभाषत ॥ ११

सुगृहे स्त्रियो भार्या ॥ ९ ॥ स्त्रिय दुहितर ॥ १० ॥ कुप्यं वस्त्रपात्रादि ॥ १४ ॥ चतुर्दशीश्राद्धं निन्द्यत्ववस्य-मिति ॥ १६ ॥ दशम्यादौ तिथिषट्के ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

किंस्विदिति ॥ १ ॥ पृषतश्चित्रमृगस्तदीयं पार्षतं रुरु कृष्णमृगस्तदीयं रौरवम् ॥ ७ ॥ वाध्रीणस. वध्र्या स्यूतनासिको महोक्षः पक्षिविशेषोऽजाविशेषश्चेत्यन्ये ॥ ९ ॥ पितृक्षये मृततिथौ कालशाकं 'चुका' इति भाषया प्रसिद्धं तत्सदृशमेव तदन्यदित्यन्ये लौहं काञ्चनवृक्षजं पुष्पादिशाकं छागोऽपि आनन्त्यं तत्फलमिति शेषः ॥ १० ॥

अपि नः स्वकुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्
मघासु सर्पिःसंयुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥१२
आजेन वाऽपि लौहेन मघास्वेव यतव्रतः।
हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम्
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्
यत्रासौ प्रथितो लोकेष्वक्षय्यकरणो वटः १४
आपो मूलं फलं मांसमन्नं वापि पितृक्षये।
यत्किंचिन्मधुसंमिश्रं तदानन्त्याय कल्पते ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
श्राद्धकल्पेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## ८९

भीष्म उवाच।
यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शशबिन्दवे
तानि मे शृणु काम्यानि नक्षत्रेषु पृथक् पृथक्
श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे कुर्वीत सततं नरः।
अग्नीनाधाय सापत्यो यजेत विगतज्वरः॥ २
अपत्यकामो रोहिण्यां तेजस्कामो मृगोत्तमे
क्रूरकर्मा ददच्छ्राद्धमार्द्रायां मानवो भवेत् ३
धनकामो भवेन्मर्त्यः कुर्वञ्छ्राद्धं पुनर्वसौ।
पुष्टिकामोऽथ पुष्येण श्राद्धमीहेत मानवः॥ ४
आश्लेषायां ददच्छ्राद्धं वीरान्पुत्रान्प्रजायते।
ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठो मघासु श्राद्धमावपन् ५
फल्गुनीषु ददच्छ्राद्धं सुभगः श्राद्धदो भवेत्।
अपत्यभागुत्तरासु हस्तेन फलभाग्भवेत् ॥ ६
चित्रायां तु ददत् श्राद्धं लभेद्रूपवतः सुतान्।
स्वातियोगे पितॄनर्च्य वाणिज्यमुपजीवति ७
बहुपुत्रो विशाखासु पुत्रमीहन्भवेन्नरः।
अनुराधासु कुर्वाणो राजचक्रं प्रवर्तयेत् ॥ ८
आधिपत्यं व्रजेन्मर्त्यो ज्येष्ठायामपवर्जयन्।
नरः कुरुकुलश्रेष्ठ ऋद्धो दमपुरःसरः॥ ९
मूले त्वारोग्यमृच्छेत यशोऽऽषाढासु चोत्तमं
उत्तरासु त्वषाढासु वीतशोकश्चरेन्महीम् १०
श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन्भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात्
श्रवणेषु ददच्छ्राद्धं प्रेत्य गच्छेत्स तद्गतिम् ११
राज्यभागी धनिष्ठायां भवेत नियतं नरः।
नक्षत्रे वारुणे कुर्वन् भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात्१२
पूर्वप्रोष्ठपदाः कुर्वन् बहून्विन्दत्यजाविकान्।
उत्तरासु प्रकुर्वाणो विन्दते गाः सहस्रशः १३
बहुकुप्यकृतं वित्तं विन्दते रेवतीं श्रितः।
अश्विनीष्वश्वान्विन्देत भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥
इमं श्राद्धविधिं श्रुत्वा शशबिन्दुस्तथाकरोत्।
अक्लेशेनाजयच्चापि महीं सोऽनुशशास ह॥१५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे
एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

---

वीजितं पायसादिकं दद्यादिति पूर्वेणान्वयः ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८॥

८९

**यमस्त्विति** ॥ १ ॥ फलभाक् इष्टार्थभाक् ॥ ६ ॥ वारुणे शतभिषजि ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

# ९०

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशेभ्यः प्रदातव्यं भवेत् श्राद्धं पितामह
द्विजेभ्यः कुरुशार्दूल तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत क्षत्रियो दानधर्मवित् ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये तु न्यायमाहुः परीक्षणम् २
देवताः पूजयन्तीह दैवेनैवेह तेजसा ।
उपेत्य तस्माद्देवेभ्यः सर्वेभ्यो दापयेन्नरः ॥ ३
श्राद्धे त्वथ महाराज परीक्षेद्ब्राह्मणान्बुधः ।
कुलशीलवयोरूपैर्विद्ययाऽभिजनेन च ॥ ४
तेषामन्ये पंक्तिदूषास्तथाऽन्ये पंक्तिपावनाः ।
अपांक्तेयास्तु ये राजन्कीर्तयिष्यामि तान् शृणु
कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः ।
ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायनः सर्वविक्रयी ६
अगारदाही गरदः कुंडाशी सोमविक्रयी ।
सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः ७
पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ।
अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति ८
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ।
अव्रतानामुपाध्यायः कांडपृष्ठस्तथैव च ॥ ९
श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च ।
परिवित्तिश्च यश्च स्याद्दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥१०
कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
ईदृशैर्ब्राह्मणैर्भुक्तमपांक्तेयैर्युधिष्ठिर ॥ ११
रक्षांसि गच्छते हव्यमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ।
श्राद्धं भुक्त्वा त्वधीयीत वृषलीतल्पगश्च यः
पुरीषे तस्य ते मासं पितरस्तस्य शेरते ।
सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् १३
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषे ।
यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् ॥ १४
भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ।
ये तु धर्मव्यपेतेषु चारित्रापगतेषु च ।
हव्यं कव्यं प्रयच्छन्ति तेषां तत्प्रेत्य नश्यति ॥
ज्ञानपूर्वं तु ये तेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्पबुद्धयः ।
पुरीषं भुञ्जते तस्य पितरः प्रेत्य निश्चयः ।
एतानिमान्विजानीयादपांक्तेयान्द्विजाधमान् ।
शूद्राणामुपदेशं च ये कुर्वन्त्यल्पचेतसः ॥ १७
षष्टिं काणः शतं षंढः श्वित्री यावत्प्रपश्यति ।
पङ्क्त्यां समुपविष्टायां तावद्दूषयते नृप ॥ १८
यद्वेष्टितशिरा भुंक्ते यद्भुंक्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद्भुंक्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् १९
असूयता च यद्दत्तं यच्च श्रद्धाविवर्जितम् ।
सर्वं तदसुरेंद्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ २०
श्वानश्च पंक्तिदूषाश्च नावेक्षेरन्कथञ्चन ।
तस्मात्परिस्रुते दद्यात्तिलांश्चान्ववकीरयेत्२१
तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन च ।
यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुंपन्ति तद्धविः
अपांक्तो यावतः पांक्तान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावत्फलाद्भ्रंशयति दातारं तस्य बालिशम्२३
इमे तु भरतश्रेष्ठ विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ।
ये त्वतस्तान्प्रवक्ष्यामि परीक्षस्वेह तान्द्विजान्
विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः सर्व एव हि ।
सदाचारपराश्चैव विज्ञेयाः सर्वपावनाः ॥ २५
पांक्तेयांस्तु प्रवक्ष्यामि ज्ञेयास्ते पंक्तिपावनाः
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडंगवित् २६
ब्रह्मदेयानुसंतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगः ।
मातापित्रोर्यश्च वश्यः श्रोत्रियो दशपूरुषः २७

---

९०

**कीदृशे इति** ॥ १ ॥ **देवता इति** । अभाग्या देवतापूजनेषु श्रद्धा न कुर्वन्तीत्यर्थ । विप्रान् पूजयन्ति उपेत्य उपस्थाय देवेभ्यो देवान् उद्दिश्य सर्वेभ्यो विप्रेभ्य· ॥ ३ ॥ पङ्क्तिदूषा· काणादय अपाङ्क्तेया दुष्कर्माण पंक्त्ययोग्या ॥ ५ ॥ निराकृति अध्ययनादिशून्य· वार्धुषिको वृद्धयर्थं धनप्रयोक्ता ॥ ६ ॥ कुण्डाशी भगभक्ष· तैलिकस्तत्कर्मकृत् ॥ ७ ॥ पर्वकार वेषान्तरधारी । पर्व क्लीब महाग्रन्थप्रस्तावे लक्षणान्तरे इति **मेदिनी** । सूची पिशुन· अव्रताना शूद्राणा काण्डपृष्ठः शस्त्राजीवी ॥ ९ ॥ श्वभि पारक्रामेत् मृगया कुर्वन् ॥ १० ॥ कुशीलव कुशी फाल तेन कर्षण लक्ष्यते कृषीवल । लवच्छेदन तदुपजीवी काष्ठच्छेदनोपजीवी। 'कुशी फाले' इति **मेदिनी** ॥ ११ ॥ तस्यैव पुरीषे तस्य पितरः शेरते न त्वन्यस्य पुरीषे ॥ १३ ॥ षष्टिं शत पुरुषानिति शेष ॥ १८ ॥ असुरेन्द्राय बलये ॥ २० ॥ परिस्रुते आवृतदेशे ॥ २१ ॥ त्रिणाचिकेत त्रिणाचिकेताख्यमन्त्राध्येता । पञ्चगार्हपत्यादय आवसथ्यान्ता अग्नयो यस्य। त्रिसुपर्णं चतुष्कपर्दा युवति सुपेशा इति बह्वृचाना मन्त्रत्रय वा ब्रह्ममेतुमामित्यादि तैत्तिरीयप्रसिद्धं वा षडङ्गानि शिक्षादीनि ॥ २६ ॥ **ब्रह्मदेय इति** । ब्रह्म वेद पर-

ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा ।
वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पंक्तिं पुनात्युत २८
अथर्वशिरसोऽध्येता ब्रह्मचारी यतव्रतः ।
सत्यवादी धर्मशीलः स्वकर्मनिरतश्च सः २९
ये च पुण्येषु तीर्थेषु अभिषेककृतश्रमाः ।
मखेषु च समन्त्रेषु भवन्त्यवभृथप्लुताः ॥ ३०
अक्रोधना ह्यचपलाः क्षांता दांता जितेंद्रियाः
सर्वभूतहिता ये च श्राद्धेष्वेतान्निमन्त्रयेत् ३१
एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पंक्तिपावनाः ।
इमे परे महाभागा विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ३२
यतयो मोक्षधर्मज्ञा योगाः सुचरितव्रताः ।
ये चेतिहासं प्रयताः श्रावयन्ति द्विजोत्तमान्
ये च भाष्यविदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः।
अधीयते पुराणं ये धर्मशास्त्राण्यथापि च ।
अधीत्य च यथान्यायं विधिवत्तस्य कारिणः
उपपन्नो गुरुकुले सत्यवादी सहस्रशः ॥ ३५
अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
यावदेते प्रपश्यन्ति पङ्क्त्यास्तावत्पुनन्त्युत
ततो हि पावनात्पङ्क्त्याः पंक्तिपावन उच्यते
क्रोशादर्धतृतीयाच्च पावयेदेक एव हि ॥ ३७
ब्रह्मदेयानुसन्तान इति ब्रह्मविदो विदुः ।
अनृत्विगनुपाध्यायः स चेदग्रासनं व्रजेत् ३८
ऋत्विग्भिरभ्यनुज्ञातः पङ्क्त्या हरति दुष्कृतं
अथ चेद्वेदवित्सर्वैः पङ्क्तिदोषैर्विवर्जितः ३९
न च स्यात्पतितो राजन्पङ्क्तिपावन एव सः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यामन्त्रयेद्द्विजान् ४०
स्वकर्मनिरतानन्यान्कुले जातान्बहुश्रुतान् ।
यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च
न प्रीणन्ति पितॄन्देवान्स्वर्गं च न स गच्छति
यश्च श्राद्धे कुरुते सङ्गतानि
न देवयानेन पथा स याति ।
स वै मुक्तः पिप्पल बन्धनाद्वा
स्वर्गाल्लोकाच्च्यवते श्राद्धमित्रः ॥ ४२
तस्मान्मित्रं श्राद्धकृन्नाद्रियेत
दद्यान्मित्रेभ्यः संग्रहार्थं धनानि
यन्मन्यते नैव शत्रुं न मित्रं
तं मध्यस्थं भोजयेद्धव्यकव्ये ॥ ४३
यथोषरे बीजमुप्तं न रोहे-
न्न चावप्ता प्राप्नुयाद्बीजभागम् ।
एवं श्राद्धं भुक्तमनर्हमाणै-
र्न चेह नामुत्र फलं ददाति ॥ ४४
ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै श्राद्धं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥
संभोजनी नाम पिशाचदक्षिणा
सा नैव देवान्न पितॄनुपैति ।
इहैव सा भ्राम्यति हीनपुण्या
शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥ ४६
यथाऽग्नौ शान्ते घृतमाजुहोति
तन्नैव देवान्न पितॄनुपैति ।
तथा दत्तं नर्तने गायने च
यां चानृते दक्षिणामावृणोति ॥ ४७
उभौ हिनस्ति न भुनक्ति चैषा
या चानृते दक्षिणा दीयते वै ।
आघातिनी गर्हितैषा पतन्ती
तेषां प्रेतान्पातयेद्देवयानात् ॥ ४८
ऋषीणां समये नित्यं ये चरन्ति युधिष्ठिर ।
निश्चिताः सर्वधर्मज्ञास्तान्देवा ब्राह्मणान्विदुः
स्वाध्यायनिष्ठा ऋषयो ज्ञाननिष्ठास्तथैव च ।
तपोनिष्ठाश्च बोद्धव्याः कर्मनिष्ठाश्च भारत ५०
कव्यानि ज्ञाननिष्ठेभ्यः प्रतिष्ठाप्यानि भारत ।
तत्र ये ब्राह्मणान्केचिन्न निन्दन्ति हि ते नराः

---

विद्या वा तदेव देयं येषा तेषामनुसंतानः परंपरायामुत्पन्न. स्वयं च ब्रह्मविदध्यापको वा ब्रह्मदेयानुसंतान.॥२७॥ अयं ऋत्विक्त्वादिगुणहीनोऽपि पङ्क्तिपावनएवेत्याह-**अनृत्विगिति** ३८ ऋत्विग्भिरभ्यनुज्ञात इति ऋत्विग्भिरभ्यनुज्ञेय एव स न त्वनृत्विक्त्वेनानुपाध्यायत्वेनोपेक्षणीयः।यत. स पङ्क्त्या दुष्कृतं हरति। अननुज्ञात इति पाठेऽभिमानवशादननुज्ञातोऽपीति ज्ञेयम् ॥३९॥ मित्रमेव प्रधानं न योग्यत्वादिकं येषु तानि । मित्रेष्वपि योग्यता चेत्तत्परित्यागे दोष एवेति भाव. ॥४१॥ श्राद्धेन निमित्तेन सङ्गतानि सख्यानि पिप्पल बन्धनाद्वा बन्धनादिव कर्मफलोपनिबंधनभूतात् स्वर्गाच्च्यवते तत्र न गच्छतीत्यर्थ. ४२ संभोजनी अन्योन्यं दीयमाना सा पिशाचदक्षिणा पिशाचदानतुल्या पिशाचा स्वस्य भोजकाय भोजयन्ति तद्वत् ॥ ४६ ॥ या च दक्षिणा अनृते अपात्रे आवृणोति प्रयच्छति आवृ इति सुपठम् ॥ ४७ ॥ न भुनक्ति न पालयति आघातिनी हन्त्री ॥ ४८ ॥

ये तु निन्दन्ति जल्पेषु न ताञ्छ्राद्धेषु भोजयेत्
ब्राह्मणा निन्दिता राजन्हन्युस्त्रीपुरुषं कुलम् ॥
वैखानसानां वचनमृषीणां श्रूयते नृप ।
दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ५३

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यस्तेषां तु श्राद्धमावपेत्
यः सहस्रं सहस्राणां भोजयेदनृतान्नरः ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति भारत ५४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

युधिष्ठिर उवाच ।
केन सङ्कल्पितं श्राद्धं कस्मिन्काले किमात्मकम्
भृग्वङ्गिरसिके काले मुनिना कतरेण वा १
कानि श्राद्धानि वर्ज्यानि कानि मूलफलानि च
धान्यजात्यश्च का वर्ज्यास्तन्मे ब्रूहि पितामह
भीष्म उवाच ।
यथा श्राद्धं संप्रवृत्तं यस्मिन्काले सदात्मकम्
येन सङ्कल्पितं चैव तन्मे शृणु जनाधिप २
स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् ।
तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥ ४
दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमिर्नाम तपोधनः ।
निमेश्चाप्यभवत्पुत्रः श्रीमान्नाम श्रिया वृतः ५
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते स कृत्वा दुष्करं तपः ।
कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥ ६
निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा
संतापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥ ७
अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः ।
तमेव गणयञ्शोकं विरात्रे प्रत्यबुध्यत ॥ ८
तस्यासीत्प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः ।
मनः संवृत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी ॥ ९
ततः सञ्चिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः ।
यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च

उक्तानि यानि चान्नानि यानि चेष्टानि तस्य ह
तानि सर्वाणि मनसा विनिश्चित्य तपोधनः ॥
अमावास्यां महाप्राज्ञो विप्रानानाय्य पूजितान्
दक्षिणावर्तिकाः सर्वा बृसीः स्वयमथाकरोत्
सप्तविप्रास्ततो भोज्ये युगपत्समुपानयत् ।
ऋते च लवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः
दक्षिणाग्रास्ततो दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः ।
पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते ॥ १४
कृत्वा च दक्षिणाग्रान्वै दर्भान्स प्रयतः शुचिः
प्रददौ श्रीमतः पिण्डान्नामगोत्रमुदाहरन् १५
तत्कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसङ्करमात्मनः ।
पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् १६
अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥ १७
ततः सञ्चिन्तयामास वंशकर्तारमात्मनः ।
ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः १८
अथात्रिस्तं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम् ।
भृशमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥
निमे संकल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधन ।
मा ते भूद्भीः पूर्वदृष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम्
सोऽयं स्वयंभुविहितो धर्मः सङ्कल्पितस्त्वया
ऋते स्वयंभुवः कोऽन्यः श्राद्धेयं विधिमाहरेत्

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

**केनेति** । भृग्वङ्गिरसके यदा भृगवोऽङ्गिरसश्च वर्तन्ते नान्ये ॥ १ ॥ श्राद्धानि श्राद्धेषु कानि कर्माणि वर्ज्यानि ॥ २ ॥ कृत्वा उपकल्प्य उपहार्याणि मृष्टान्नकशिपूपबर्हणादीनि विरात्रे प्रभाते ॥ ८ ॥ विषये अत्यन्तबन्धके शोके ऽविषये मनः संहृत्य शोकं त्यक्त्वेत्यर्थः । तस्य बुद्धिर्विस्तारगामिनी आसीत् इति सम्बन्धः ॥ ९ ॥ दक्षिणावर्तिकाः प्रदक्षिणावर्तिताः बृसीः आसनानि ॥ १२ ॥ श्रौते पित्राद्युद्देशेन दृष्टो धर्मो लोके पुत्रोद्देशेनापि स्वेच्छया कल्पित इति सङ्करः ॥ १६ ॥

अथाख्यास्यामि ते पुत्र श्राद्धेयं विधिमुत्तमम्
स्वयंभुविहितं पुत्र तत्कुरुष्व निबोध मे ॥२२
कृत्वाऽग्नौकरणं पूर्वं मन्त्रपूर्वं तपोधन ।
ततोऽग्नयेऽथ सोमाय वरुणाय च नित्यशः ॥
विश्वेदेवाश्च ये नित्यं पितृभिः सह गोचराः
तेभ्यः संकल्पिता भागाः स्वयमेव स्वयंभुवा
स्तोतव्या चेह पृथिवी निवापस्येह धारिणी ।
वैष्णवी काश्यपी चेति तथैवेहाक्षयेति च २५
उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः ।
ततोऽग्निश्चैव सोमश्च आप्याय्याविह तेऽनघ
देवास्तु पितरो नाम निर्मिता ये स्वयंभुवा ।
उष्णपा ये महाभागास्तेषां भागः प्रकल्पितः
ते श्राद्धेनार्च्यमानावै विमुच्यन्ते ह किल्बिषात्
सप्तकः पितृवंशस्तु पूर्वदृष्टः स्वयंभुवा ॥ २८
विश्वे चाग्निमुखा देवाः संख्याताः पूर्वमेव ते
तेषां नामानि वक्ष्यामि भागार्हाणां महात्मनां
बलं धृतिर्विपाप्मा च पुण्यकृत्पावनस्तथा ।
पार्ष्णिक्षेमा समूहश्च दिव्यसानुस्तथैव च ॥
विवस्वान्वीर्यवान् ह्रीमान्कीर्तिमान्कृत एव च
जितात्मा मुनिवीर्यश्च दीप्तरोमा भयङ्करः ३१
अनुकर्मा प्रतीतश्च प्रदाताऽप्यंशुमांस्तथा ।
शैलाभः परमक्रोधी धीरोष्णी भूपतिस्तथा
स्रजो वज्री वरी चैव विश्वेदेवाः सनातनाः
विद्युद्वर्चाः सोमवर्चाः सूर्यश्रीश्चेति नामतः ३३
सोमपः सूर्यसावित्रो दत्तात्मा पुण्डरीयकः ।
उष्णीनाभो नभोदश्च विश्वायुर्दीप्तिरेव च ३४
चमूहरः सुरेशश्च व्योमारिः शङ्करो भवः ।
ईशः कर्ता कृतिर्दक्षो भुवनो दिव्यकर्मकृत् ३५
गणितः पञ्चवीर्यश्च आदित्यो रश्मिवांस्तथा ।
सप्तकृत्सोमवर्चाश्च विश्वकृत्कविरेव च ॥ ३६
अनुगोप्ता सुगोप्ता च नप्ता चेश्वर एव च ।
कीर्तितास्ते महाभागाः कालस्य गतिगोचराः
अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा
हिंगुद्रव्येषु शाकेषु पलाण्डुं लशुनं तथा ॥ ३८
सौभाञ्जनः कोविदारस्तथा गृञ्जनकादयः ।
कूष्माण्डजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च
ग्राम्यवाराहमांसं च यच्चैवाप्रोक्षितं भवेत् ।
कृष्णाजाजी विडश्चैव शीतपाकी तथैव च ।
अङ्कुराद्यास्तथा वर्ज्या इह शृंगाटकानि च
वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बूफलानि च ।
अवक्षुतावरुदितं तथा श्राद्धे च वर्जयेत् ॥ ४१
निवापे हव्यकव्ये वा गर्हितं च सुदर्शनम् ।
पितरश्च हि देवाश्च नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥
चाण्डालश्वपचौ वर्ज्यौ निवापे समुपस्थिते ।
काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महाऽपि वा
संकीर्णयोनिर्विप्रश्च सम्बन्धी पतितश्च यः ।
वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते ॥ ४४
इत्येवमुक्त्वा भगवान्स्ववंश्यं तमृषिं पुरा ।
पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

---

ते श्राद्धा· पित्रादय· विमुच्यन्ते किल्बिषात् नरकादिरूपात् ॥ २८ ॥ पुलकाः असंपूर्णतण्डुलयुक्तधान्यानि हिङ्गुद्रव्येषु शाकादिसंस्कारद्रव्येषु पलाण्डु लशुन च शाकेषु ॥ ३८ ॥ सौभाजनादीन्वर्जयति सौभाजन· शिग्रु· **गृञ्जनं** विषदिग्धशस्त्रहतपशुमासम् ‘ अथ गृंजन विषदिग्धपशोर्मांसे ’ इति **मेदिनी** । कृष्णं लवणं गन्धविडम् ॥ ३९ ॥ **कृष्णाजाजी** कृष्णजीरकं **विड** विड्लवणं **शीतपाकी** शाकविशेष **अङ्कुराद्या** वंशकरीरादयः **शृङ्गाटक शिंघाडा** इति प्रसिद्धम् ॥४० ॥ **सुदर्शनं** शाकविशेष· ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

## ९२

भीष्म उवाच ।

तथा निमौ प्रवृत्ते तु सर्वे एव महर्षयः ।
पितृयज्ञं तु कुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १
ऋषयो धर्मनित्यास्तु कृत्वा निवपनान्युत ।
तर्पणं चाप्यकुर्वन्त तीर्थाम्भोभिर्यतव्रताः ॥ २
निवापैर्दीयमानैश्च चातुर्वर्ण्येन भारत ।
तर्पिताः पितरो देवास्तत्रान्नं जरयन्ति वै ॥३
अजीर्णेनत्वभिहन्यन्ते ते देवाः पितृभिः सह
सोममेवाभ्यपद्यन्त तदा ह्यन्नाभिपीडिताः ४
तेऽब्रुवन्सोममासाद्य पितरोऽजीर्णपीडिताः ।
निवापान्नेन पीड्यामः श्रेयो नोऽत्र विधीयतां
तान्सोमः प्रत्युवाचाथ श्रेयश्चेदीप्सितं सुराः ।
स्वयंभूसदनं यात स वः श्रेयोभिधास्यति ६
ते सोमवचनाद्देवाः पितृभिः सह भारत ।
मेरुशृङ्गे समासीनं पितामहमुपागमन् ॥ ७

पितर ऊचुः ।

निवापान्नेन भगवन्भृशं पीड्यामहे वयम् ।
प्रसादं कुरु नो देव श्रेयो नः संविधीयताम् ८
इति तेषां वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ।
एष मे पार्श्वतो वह्निर्युष्मच्छ्रेयोभिधास्यति

अग्निरुवाच

सहिताःस्तात भोक्ष्यामो निवापे समुपस्थिते
जरयिष्यथ चाप्यन्नं मया सार्धं न संशयः ॥
एतच्छ्रुत्वा तु पितरस्ततस्ते विज्वरा भवन् ।
एतस्मात्कारणाच्चाग्नेः प्राक्तावद्दीयते नृप ११
निवप्ते चाग्निपूर्वं वै निवापे पुरुषर्षभ ।
न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवाप धर्षयन्त्युत १२
रक्षांसि चापवर्तन्ते स्थिते देवे हुताशने ।
पूर्वं पिण्डं पितुर्दद्यात्ततो दद्यात्पितामहे १३
प्रपितामहाय च तत एष श्राद्धविधिः स्मृतः ।
ब्रूयात् श्राद्धे च सावित्रीं पिंडे पिंडे समाहितः
सोमायेति च वक्तव्यं तथा पितृमतेति च ।
रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोश्च या
निवापे नोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजा १५
जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान् ।
नदीमासाद्य कुर्वीत पितृणां पिण्डतर्पणम् १६
पूर्वं स्ववंशजानां तु कृत्वाऽद्भिस्तर्पणं पुनः ।
सुहृत्सम्बन्धिवर्गाणां ततो दद्याज्जलाञ्जलिम्
कल्माषगोयुगेनाथ युक्तेन तरतो जलम् ।
पितरोऽभिलषन्ते वै नावं चाप्यधिरोहिताः॥
सदा नावि जलं तज्ज्ञाःप्रयच्छन्ति समाहिताः
मासार्धे कृष्णपक्षस्य कुर्यान्निर्वपणानि वै १९
पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृभक्तितः ।
पितामहः पुलस्त्यश्च वसिष्ठः पुलहस्तथा २०
अङ्गिराश्च क्रतुश्चैव कश्यपश्च महानृषिः ।
एते कुरुकुलश्रेष्ठ महायोगेश्वराः स्मृताः ॥ २१
एते च पितरो राजन्नेष श्राद्धविधिः परः ।
प्रेतास्तु पिण्डसम्बन्धान्मुच्यन्ते तेन कर्मणा
इत्येषा पुरुषश्रेष्ठ श्राद्धोत्पत्तिर्यथागमम् ।
व्याख्याता पूर्वनिर्दिष्टा दानं वक्ष्याम्यतः परम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

---

९२

एवं श्राद्धोत्पत्तिमुक्त्वा तदङ्गभूतस्याग्नौ करणस्योत्पत्तिमाह—**तथेत्यादिना** ॥ १ ॥ निवप्ते दत्ते सम्प्रसारणाभाव आर्षः। औणादिकस्तन्प्रत्ययो वा ॥ १२ ॥ व्यङ्गिता त्रुटिता नोपतिष्ठेत तया निवापो न द्रष्टव्य इत्यर्थः । तथा अन्यवंशजाऽपि पाकार्थं न संग्राह्या ॥ १५ ॥ **कल्माषेति** चित्रवर्णं बलीवर्दपुच्छमाश्रित्य नदीं तरन् सकाशात् तत्पुच्छेन तर्पणं पितरोऽभिलषन्ते युक्तेन शकटेन ॥ १८ ॥ मासार्धे अमावास्यायां कृष्णपक्षस्येत्युक्तेर्नात्र शुक्लादिमासो विवक्षितः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## ९३

युधिष्ठिर उवाच ।

द्विजातयो व्रतोपेता हविस्ते यदि भुञ्जते ।
अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

अवेदोक्तव्रताश्चैव भुञ्जानाः कामकारणे ।
वेदोक्तेषु तु भुञ्जाना व्रतलुप्ता युधिष्ठिर ॥ २

युधिष्ठिर उवाच ।

यदिदं तप इत्याहुरुपवासं पृथग्जनाः ।
तपः स्यादेतदेवेह तपोऽन्यद्वाऽपि किं भवेत्

भीष्म उवाच ।

मासार्धमासोपवासाद्यत्तपो मन्यते जनः ।
आत्मतन्त्रोपघाती यो न तपस्वी न धर्मवित् ४
त्यागस्य चापि संपत्तिः शिष्यते तप उत्तमम्
सदोपवासी च भवेद्ब्रह्मचारी तथैव च ॥ ५
मुनिश्च स्यात्सदा विप्रो वेदांश्चैव सदा जपेत्
कुटुम्बिको धर्मकामः सदास्वप्नश्च मानवः ॥ ६
अमांसाशी सदा च स्यात्पवित्रं च सदा पठेत्
ऋतवादी सदा च स्यान्नियतश्च सदा भवेत् ॥
विघसाशी कथं च स्यात्सदा चैवातिथिप्रियः
अमृताशी सदा च स्यात्पवित्री च सदा भवेत्

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी च पार्थिव ।
विघसाशी कथं च स्यात्कथं चैवातिथिप्रियः

भीष्म उवाच ।

अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं च यो नरः ।
सदोपवासी भवति यो न भुंक्तेन्तरा पुनः १०
भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति चैव ह
ऋतवादी सदा च स्याद्दानशीलस्तु मानवः
अभक्षयन् वृथा मांसममांसाशी भवत्युत ।
दानं ददत्पवित्री स्यादस्वप्नश्च दिवाऽस्वपन् ॥
भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु नरः सदा
अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्धि युधिष्ठिर १३
अभुक्तवत्सु नाश्नाति ब्राह्मणेषु तु यो नरः ।
अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत १४
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च संश्रितेभ्यस्तथैव च ।
अवशिष्टानि यो भुङ्क्ते तमाहुर्विघसाशिनम् ॥
तेषां लोका ह्यपर्यन्ताः सदने ब्रह्मणः स्मृताः
उपस्थिता ह्यप्सरसो गन्धर्वैश्च जनाधिप ॥ १६
देवतातिथिभिः सार्धं पितृभ्यश्चोपभुञ्जते ।
रमन्ते पुत्रपौत्रेण तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति दानानि विविधानि च
दातृप्रतिग्रहीत्रोर्वै को विशेषः पितामह ॥ १८

भीष्म उवाच ।

साधोर्यः प्रतिगृह्णीयात्तथैवासाधुतो द्विजः ।
गुणवत्यल्पदोषः स्यान्निर्गुणे तु निमज्जति १९
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृषादर्भेश्च संवादं सप्तर्षीणां च भारत ॥ २०
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुन्धती
सर्वेषामथ तेषां तु गण्डाऽभूत्कर्मकारिका ।
शूद्रः पशुसखश्चैव भर्ता चास्या बभूव ह २२
ते च सर्वे तपस्यन्तः पुरा चेरुर्महीमिमाम् ।
समाधिनोपशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥
अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन ।
कृच्छ्रप्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधान्वितः
कस्मिंश्चिच्च पुरा यज्ञे शैब्येन शिबिसूनुना ।
दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विग्भ्यो दत्तः पुत्रः पुरा किल
अस्मिन्कालेऽथ सोऽल्पायुर्दिष्टान्तमगमत्प्रभुः
ते तं क्षुधाभिसन्तप्ताः परिवार्योपतस्थिरे २६

---

९३

**द्विजातय इति**। दशाहादौ व्रतोपेता ब्राह्मणा ब्राह्मणकामाय यजमानस्यार्थे यदि भुञ्जते तत्कथम् स्वस्य व्रतलोपो वा गरीयान् उत ब्राह्मणस्य कामभङ्गो वेति प्रश्नार्थः ॥१॥ वेदोक्तं यागाङ्गभूतं व्रतं तेन रहिता. कामकारणे इच्छया हेतुना भुञ्जाना भोजनं कुर्वन्तु नाम । ये तु व्रतोपेता भुञ्जते ते लुप्तव्रता भवन्ति । तेषां व्रतलोपप्रायश्चित्तं व्रातपतीष्टिरूपं कर्तव्यं भवति । इतरस्यालाभे व्रतवन्तोऽपि भुक्त्वा प्रायश्चित्तं कुर्वीरन्न तु श्राद्धं लुंपेरन्निति भाव. ॥ २ ॥ तपस्विन पात्रत्वमुक्तं तत्र तपसो रूपं पृच्छति—**यदिदमिति** ॥ ३ ॥ आत्मतन्त्रं शरीररूपं कुटुंबरूपं वा तदुपघाती ॥४॥ **त्यागस्येति**। दानं वेदजपश्च परमं तप इति श्लोकद्वयार्थः ॥ ५ ॥ अस्वप्न. स्वधर्मे जागरूकः ॥६॥ यथोक्तभोजनद्वयव्यतिरेकेण मध्ये यो न भुङ्क्ते स सदोपवासीत्याह—**अन्तरेति** ॥ १० ॥ वृथा यज्ञादिनिमित्तं विना ॥ १२ ॥ गुणवति दातरि प्रतिग्रहीतुरल्पो दोष· ॥ १९ ॥ गण्डेति नामत·॥२२॥ उपशिक्षन्तः अर्जयन्तः २३ दिष्टान्तं मरणम् ॥ २६ ॥

याज्यात्मजमथो दृष्ट्वा गतासुमृषिसत्तमाः ।
अपचन्त तदा स्थाल्यां क्षुधार्ताः किल भारत
निरन्ने मर्त्यलोकेऽस्मिन्नात्मानं ते परीप्सवः
कृच्छ्रामापेदिरे वृत्तिमन्नहेतोस्तपस्विनः ॥ २८
अटमानोऽथ तान्मार्गे पचमानान्महीपतिः ।
राजा शैब्यो वृषादर्भिः क्लिश्यमानान्ददर्श ह
वृषादर्भिरुवाच ।
प्रतिग्रहस्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्यताम् ।
मयि यद्विद्यते वित्तं तद्वृणुध्वं तपोधनाः ॥ ३०
प्रियो हि मे ब्राह्मणो याच्यमानो
दद्यामहं वोऽश्वतरीसहस्रम् ।
एकैकशः सवृषाः संप्रसूताः
सर्वेषां वै शीघ्रगाः श्वेतरोमाः ॥ ३१
कुलंभराननडुहः शतं शतान्
धुर्यान् श्वेतान् सर्वशोऽहं ददामि ।
पष्ठौहीनां पीवराणां च ताव-
दग्र्या गृष्टयो धेनवः सुव्रताश्च ॥ ३२
वरान् ग्रामान् व्रीहिरसं यवांश्च
रत्नं चान्यद्दुर्लभं किं ददानि ।
नास्मिन्नभक्ष्ये भावमेवं कुरुध्वं
पुष्ट्यर्थं वः किं प्रयच्छाम्यहं वै ॥ ३३
ऋषय ऊचुः ।
राजन्प्रतिग्रहो राज्ञां मध्वास्वादो विषोपमः
तज्जानमानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम्
क्षेत्रं हि दैवतमिदं ब्राह्मणान् समुपाश्रितम् ।
अमलो ह्येष तपसा प्रीतः प्रीणाति देवताः ३५
अह्नापीह तपो जातु ब्राह्मणस्योपजायते ।
तद्दाव इव निर्दह्यात्प्राप्तो राजप्रतिग्रहः ॥ ३६
कुशलं सह दानेन राजन्नस्तु सदा तव ।
अर्थिभ्यो दीयतां सर्वमित्युक्त्वाऽन्येन ते ययुः
अपक्वमेव तन्मांसमभूत्तेषां महात्मनाम् ।
अथ हित्वा ययुः सर्वे वनमाहारकाङ्क्षिणः ३८
ततः प्रचोदिता राज्ञा वनं गत्वाऽस्य मन्त्रिणः
प्रचीयोदुम्बराणि स्म दातुं तेषां प्रचक्रिरे ३९

उदुम्बराण्यथान्यानि हेमगर्भाण्युपाहरन् ।
भृत्यास्तेषां ततस्तानि प्रग्राहितुमुपाद्रवन् ४०
गुरूणीति विदित्वाथ न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत् ।
न स्महे मन्दविज्ञाना न स्महे मन्दबुद्धयः ४१
हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्म जागृम
इह ह्येतदुपादत्त प्रेत्य स्यात्कटुकोदयम् ।
अप्रतिग्राह्यमेवैतत्प्रेत्येह च सुखेप्सुना ॥ ४२
वसिष्ठ उवाच ।
शतेन निष्कगणितं सहस्रेण च संमितम् ।
तथा बहु प्रतीच्छन्वै पापिष्ठां पतते गतिम् ४३
कश्यप उवाच ।
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
सर्वं तन्नालमेकस्य तस्माद्विद्वाञ्छमं चरेत् ॥
भरद्वाज उवाच ।
उत्पन्नस्य रुरोः शृङ्गं वर्धमानस्य वर्धते ।
प्रार्थना पुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते ४५
गौतम उवाच ।
न तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत् ।
समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते ॥ ४६
विश्वामित्र उवाच ।
कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते
अथैनमपरः कामस्तृष्णा विध्यति बाणवत् ॥
जमदग्निरुवाच ।
प्रतिग्रहे संयमो वै तपो धारयते ध्रुवम् ।
तद्धनं ब्राह्मणस्येह लुभ्यमानस्य विस्रवेत् ४८
अरुन्धत्युवाच ।
धर्मार्थं सञ्चयो यो वै द्रव्याणां पक्षसंमतः ।
तपः सञ्चय एवेह विशिष्टो द्रव्यसञ्चयात् ४९
गण्डोवाच ।
उग्रादितो भयाद्यस्माद्बिभ्यतीमे ममेश्वराः ।
बलीयांसो दुर्बलवद्बिभेम्यहमतः परम् ॥ ५०
पशुसख उवाच ।
यद्वै धर्मे परं नास्ति ब्राह्मणास्तद्धन विदुः ।
विनयार्थं सुविद्वांसमुपासेयं यथातथम् ॥ ५१

---

आत्मानं शरीरं परीप्सव रक्षितुकामा ॥ २८ ॥ पुष्टि पुष्टिहेतु ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणान् क्षेत्रं ब्राह्मणस्वरूपस्थान देवतासमूह । 'यावतीर्वै देवतास्ता सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति' इति श्रुत्यर्थ उक्त ॥ ३५ ॥ अन्येन पथा ॥३७॥ न स्महे न स्म अस्तेरार्षस्तङ् ॥४१॥ प्रतच्छिन् प्रतिगृह्णन् ॥४३॥ तस्य लाभसुखस्य मात्रा इयत्ता ॥४५॥ कामस्तृष्णा-रूप ॥४७॥ तद्धनं तपोधनम् ॥ ४८ ॥ पक्षसंमत पाक्षिकत्वेन मत ॥ ४९ ॥ **यदिति** । यत् यतो हेतो वैधर्मे विधर्म एव वैधर्म तस्मिँल्लोभादिदोषे सति परं उत्कृष्टं पद नास्ति न लभ्यतेऽतस्तदलोभाख्यमेव धनं ब्राह्मणा विदु । विनय' शिक्षा तदर्थं शिक्षितुमिति यावत् ॥५१॥

ऋषय ऊचुः ।
कुशलं सह दानेन तस्मै यस्य प्रजा इमाः ।
फलान्युपधियुक्तानि य एवं नः प्रयच्छति ५२
भीष्म उवाच ।
इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि हित्वा तानि फलानि वै
ऋषयो जग्मुरन्यत्र सर्व एव धृतव्रताः ॥ ५३
मन्त्रिण ऊचुः ।
उपधिं शंकमानास्ते हित्वा तानि फलानि वै
ततोऽन्येनैव गच्छन्ति विदितं तेऽस्तु पार्थिव
इत्युक्तः स तु भृत्यैस्तैर्वृषादर्भिश्चुकोप ह ।
तेषां वै प्रतिकर्तुं च सर्वेषामगमद्गृहम् ॥ ५५
स गत्वा हवनीयेऽग्नौ तीव्रं नियममास्थितः ।
जुहाव संस्कृतैर्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं नृपः ॥ ५६
तस्मादग्नेः समुत्तस्थौ कृत्या लोकभयंकरी ।
तस्या नाम वृषादर्भिर्यातुधानीत्यथाकरोत् ॥
सा कृत्या कालरात्रीव कृताञ्जलिरुपस्थिता ।
वृषादर्भिं नरपतिं किं करोमीति चाब्रवीत् ॥
वृषादर्भिरुवाच ।
ऋषीणां गच्छ सप्तानामरुन्धत्यास्तथैव च
दासीभर्तुश्च दास्याश्च मनसा नाम धारय ॥
ज्ञात्वा नामानि चैवैषां सर्वानेतान्विनाशय
विनष्टेषु तथा स्वैरं गच्छ यत्रेप्सितं तव ॥ ६०
सा तथेति प्रतिश्रुत्य यातुधानी स्वरूपिणी ।
जगाम तद्वनं यत्र विचेरुस्ते महर्षयः ॥ ६१
भीष्म उवाच ।
अथात्रिप्रमुखा राजन् वने तस्मिन्महर्षयः ।
व्यचरन् भक्षयन्तो वै मूलानि च फलानि च
अथापश्यन्सुपीनांसपाणिपादमुखोदरम् ।
परिव्रजन्तं स्थूलाङ्गं परिव्राजं शुना सह ॥६३
अरुन्धती तु तं दृष्ट्वा सर्वाङ्गोपचितं शुभम् ।
भवितारो भवन्तो वै नैवमित्यब्रवीदृषीन् ॥

वसिष्ठ उवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकमग्निहोत्रमनिर्हुतम् ।
सायंप्रातश्च होतव्यं तेन पीवाञ्छुना सह ६५
अत्रिरुवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकं क्षुधा वीर्यं समाहतम्
कृच्छ्राधीतं प्रनष्टं च तेन पीवाञ्छुना सह ६६
विश्वामित्र उवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकं शश्वच्छास्त्रं जरद्गवः
अलसः क्षुत्परो मूर्खस्तेन पीवाञ्छुना सह ॥
जमदग्निरुवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकं भक्तमिन्धनमेव च
सञ्चिन्त्यं वार्षिकं चित्ते तेन पीवाञ्छुना सह
कश्यप उवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकं चत्वारश्च सहोदराः
देहि देहीति भिक्षन्ति तेन पीवाञ्छुना सह ॥
भरद्वाज उवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकं ब्रह्मबन्धोरचेतसः ।
शोको भार्यापवादेन तेन पीवाञ्छुना सह ॥
गौतम उवाच ।
नैतस्येह यथाऽस्माकं त्रिकौशेयं च राङ्कवम्
एकैकं वै त्रिवर्षीयं तेन पीवाञ्छुना सह ७१
भीष्म उवाच ।
अथ दृष्ट्वा परिव्राट् स तान्महर्षीन् शुना सह
अभिगम्य यथान्यायं पाणिस्पर्शमथाचरत् ७२
परिचर्यां वने तां तु क्षुत्प्रतीघातकारिकाम् ।
अन्योन्येन निवेद्याथ प्रातिष्ठन्त सहैव ते ॥७३
एकनिश्चयकार्याश्च व्यचरन्त वनानि ते ।
आददानाः समुद्धृत्य मूलानि च फलानि च
कदाचिद्विचरन्तस्ते वृक्षैरविरलैर्वृताम् ।
शुचिवारिप्रसन्नोदां ददृशुः पद्मिनीं शुभाम् ॥

---

उपधिश्छलम् ॥ ५२ ॥ नामार्थमेव धारय ॥ ५९ ॥ ज्ञात्वा नामानुरूपं तेषा सामर्थ्यं परीक्ष्य तान् विनाशय । अन्यथा त्वामेव ते विनाशयिष्यन्तीति भावः ॥ ६० ॥ कार्श्यस्य कारणं नित्यकर्मलोप इति वसिष्ठस्य भाव. ॥ ६५ ॥ क्षुद् सं अधीतनाशनं चेत्यत्रेः ॥ ६६ ॥ शास्त्रप्रतिपादितो जरन् क्षीयमाणो धर्म इति विश्वामित्रस्य ॥६७॥ अन्नादिचिन्तेति जमदग्ने· ॥ ६८ ॥ बहुकुटुम्बितेति कश्यपस्य ॥ ६९ ॥ भार्यापवादः कृत्तिकास्वभिशापादिति भरद्वाजस्य ॥ ७० ॥ हीनवस्त्रत्वं गौतमस्य च मर्त त्रिकौशेयं कुशा रज्जुः तया निर्वृतं कौशेयं पाटितसंधानं त्रीणि कौशेयानि यस्मिन् "कुशी फाले कुशारज्जु" ( शान्तवर्ग ४ ) इति मेदिनी रांकवं रंकोर्मृगविशेषस्य चर्म तदपि त्रिवर्षीयं अतिजीर्णम् ॥ ७१ ॥ परिचर्यां करिष्यामि कुर्वित्यन्योन्यमुक्त्वेत्यर्थः ॥ ७३ ॥ एकरूप एव निश्चयः कार्यं च येषा ते ॥ ७४ ॥

बालादित्यवपुःप्रख्यैः पुष्करैरुपशोभिताम् ।
वैडूर्यवर्णसदृशैः पद्मपत्रैरथावृताम् ॥ ७६
नानाविधैश्च विहगैर्जलप्रकरसेविभिः ।
एकद्वारामनादेयां सूपतीर्थामकर्दमाम् ॥ ७७
वृषादर्भिप्रयुक्ता तु कृत्या विकृतदर्शना ।
यातुधानीति विख्याता पद्मिनीं तामरक्षत ॥
पशुसखसहायास्तु बिसार्थं ते महर्षयः ।
पद्मिनीमभिजग्मुस्ते सर्वे कृत्याभिरक्षिताम् ॥
ततस्ते यातुधानीं तां दृष्ट्वा विकृतदर्शनाम् ।
स्थितां कमलिनीतीरे कृत्यामूचुर्महर्षयः ॥ ८०
एका तिष्ठसि का च त्वं कस्यार्थे किं प्रयोजनम्
पद्मिनीतीरमाश्रित्य ब्रूहि त्वं किं चिकीर्षसि

यातुधान्युवाच ।

याऽस्मि साऽस्म्यनुयोगो मे न कर्तव्यः कथञ्चन
आरक्षित्रीं मां पद्मिन्या वित्त सर्वे तपोधनाः

ऋषय ऊचुः ।

सर्व एव क्षुधार्ताः स्म न चान्यत्किंचिदस्ति नः
भवत्याः संमते सर्वे गृह्णीयाम बिसान्युत ८३

यातुधान्युवाच ।

समयेन बिसानीतो गृह्णीध्वं कामकारतः ।
एकैको नाम मे प्रोक्त्वा ततो गृह्णीत माचिरम्

भीष्म उवाच ।

विज्ञाय यातुधानीं तां कृत्यामृषिवधैषिणीम्
अत्रिः क्षुधापरीतात्मा ततो वचनमब्रवीत् ८५

अत्रिरुवाच ।

अरात्रिरत्रिः सा रात्रिर्यां नाधीते त्रिरद्य वै
अरात्रिरत्रिरित्येव नाम मे विद्धि शोभने ८६

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते ।
दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ८७

वसिष्ठ उवाच ।

वसिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वसे वासगृहेष्वपि
वसिष्ठत्वाच्च वासाच्च वसिष्ठ इति विद्धि माम्

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ८९

---

उपतीर्थमवतरणमार्गं ॥७७॥ नामार्थद्वारा सामर्थ्यं ज्ञात्वा अस्माकं वधैषिणीयमिति विज्ञायेत्यर्थ ॥ ८५ ॥ **अरात्रिरिति** । यदिदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत तदिदं किंच तत्तस्मादत्रय इति श्रुतौ पाप्मनस्त्राताऽत्रिरित्यात्रिशब्दस्य निर्वचनं तदेव शब्दान्तरेण प्रदर्शयति यातुधानीं विमोहयिष्यन्। अरात्रिः अरय· कामादयः सन्त्यस्मिन्नित्यरं पापं तस्मात्त्रायत इत्यरात्रि । अरशब्दादलुप्तपंचमीकात् परस्य त्रायतेरुपरि क्विप्प्रत्ययः । अरिशब्दान्मत्वर्थीयेऽर्श आद्यचि यस्येतीकारलोपे अरमिति सिध्यति यस्मादरात्रिस्तस्मादत्रि· । अत्तीत्यद् मृत्युस्तस्मात्त्रायत इत्यत्रिरित्यत्रापि अवयवार्थेन पाप्मानं मृत्युमन्ववायानित्यादौ मृत्युशब्दस्य पाप्मनि प्रयोगदर्शनात् । धर्मेण पापमपनुदतीति धर्मोऽप्यात्रि स्यादत आह सा रात्रिर्यां नाधीते त्रिरद्य वा इति वै निश्चतं अद्य वर्तमानकाले यां त्रि त्रिवारं नाधीते नाधिगच्छति । अतीतस्य हि पुत्रादेरनुत्पत्तौ अनागतत्वेन उत्पत्तौ वर्तमानत्वेन नाशे अतीतत्वेन नान्वेति त्रिरधिगमोऽस्ति तद्यत्र नास्ति सर्वं वर्तमानमेव भवति यत्रावस्थाया सा हार्दाकाशाख्यजगत्कारणप्राप्तिः सर्वपाप्मोच्छेदिका साऽरात्रिरुच्यते । अत्र हि अतीतानागतं सर्वमस्तीति श्रूयते यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दत इति अत्र हि सर्वे कामा. समाहिता इति च यस्मादेवमरात्रिरस्मि तस्मादत्रिरेव मम नाम । मन्त्रोऽपि—

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुर. ॥
अत्र यस्तमन्वविंदन्न ह्य १ न्ये अशक्नुवन् ॥

इति । 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति श्रुते. । सूर्यं परं ब्रह्म स्वर्भानु राहुरूपो मृत्यु· अविध्यत् व्याप्तवान् तमसा अनात्मनि आत्मबुद्धिरूपया अविद्ययेति मन्त्रपदानामर्थ. ॥८६॥ तदेतदत्रित्वं मनसाऽपि दुर्धार्यमिति मत्वा यातुधान्याह— **यथेति** । ते त्वया मयि मत्समीपे अतीतानागतयोरपि वर्तमानकाले एव दर्शन कामाद्यनुदयश्चेति द्वयं अत्यन्तं तम.-स्वभावया मया प्राप्तुमशक्यमिति भाव. । त्वामहं धर्षितुमशक्तेति त्वं गच्छ अवतर पद्मिनीं सरसीम् ॥ ८७ ॥ **वसिष्ठोस्मीति** । वसिष्ठः वायुश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं च द्यौश्चादित्यश्चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चेति वसव एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेति हीदं सर्वं वासयन्ते इति श्रुतिप्रसिद्धा वसवस्ते यस्य स्वाधीना भवन्ति स वसुमान्प्राप्ताणिमाद्यैश्वर्यो महायोगी अतिशयेन वसुमानिति वसिष्ठस्तादृशोऽहमस्मि अतिशयेन उरुरस्मि वसुमच्छब्दादिष्ठन्प्रत्यये परे मतुब्लोपे टिलोपे च वासिष्ठ उरुशब्दस्येष्ठानि वरादेशश्च प्रियस्थिरादिसूत्रेण ज्ञेय. । सर्वं मद्वशेऽस्ति अहं तु न कस्यापि वशेऽस्मीति नामद्वयार्थं । वासगृहेषु वासयोग्येषु गृहस्थाश्रमेषु सर्वेषामुपजीव्येषु वसे वसामि अतोऽहं वस्तॄणां मध्ये अतिश्रेष्ठ इति वसिष्ठोऽस्मि । वस्तृशब्दादिष्ठनि तृन्लोपे च वासिष्ठः सर्वेषामाश्रयभूतत्वान्मम मा देवा रक्षन्तीति भाव: ॥८८॥

कश्यप उवाच ।

कुलं कुलं च कुवमः कुवमः कश्यपो द्विजः ।
काश्यः काशनिकाशत्वादेतन्मे नाम धारय

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते
दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ९१

भरद्वाज उवाच ।

भरेऽसुतान्भरेऽशिष्यान्भरे देवान्भरे द्विजान्
भरे भार्यां भरद्वाजं भरद्वाजोऽस्मि शोभने ॥

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ९३

गौतम उवाच

गोदमो दमतोऽधूमोऽदमस्ते समदर्शनात् ।
विद्धि मां गौतमं कृत्ये यातुधानि निबोध माम्

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।
नैतद्धारयितु शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ९५

---

**कुलमिति** । कशाश्वताडनरज्जुस्तामर्हन्ति ते कश्या अश्वा । अत्र च प्रकरणादिन्द्रियाणि हयानाहुरिति श्रुत्युक्तेरिन्द्रियाण्येवाश्वा· कश्यास्तदाश्रयत्वाच्छरीराण्यपि कश्यानि कुलं कुलमिति वीप्साया द्विर्वचनम् । सर्वशरीरेष्वहमेवैक कश्यपो नाम द्विजोऽस्मि कश्यानि शरीराणि पाति रक्षति पिबति भुंक्ते पाययति शोषयति वा कश्यप इति योगात्सर्वाणि शरीराणि प्रविश्यान्तर्यामिरूपेण पालयामि जीवरूपेण तद्द्वारा सुखदु.खादिकं भुंजे ब्रह्मरूपेण तानि सर्वाणि स्वात्मनि प्रविलापयामीत्यर्थ । एवं सर्वमध्यात्मं मत्स्वरूपमित्युक्त्वाऽधिदैवमपि मत्स्वरूपमेवेत्याह— **कुवमः कुवम इति** । कु. पृथिवी तस्या वमति वर्षतीति कुवम आदित्य. । ‘ आदित्याज्जायते वृष्टि ’ इति श्रुते. । पूर्ववाद्विवचनं सर्वोऽप्यादित्योऽहमेव मत्पुत्रत्वात्सर्वेषामादित्यानामित्यर्थः । पाठान्तरे कुपपी कुं पातीति योगात्कुपपी सूर्य एव । यापोः किद्वे चेति सूत्रेण पातेरीप्रत्यये प्रकृतेर्द्वित्वे प्रत्ययस्य कित्वे च पपीरिति रूपम् । कुपपिरिति ह्रस्वपाठे तु आदृगमहनजनेति किप्रत्यये लिड्वावे च कुपपिरिति सूर्य एव । कुपप इत्यकारान्तपाठस्तु प्रामादिक । यद्वा कुं पृथिवीं पातीति कुपं जलं पिबतीति कुपप· सूर्य एवेति समाधेयम् । काश्यो दीप्तिमान् तत्र हेतु. काशनिकाशत्वात् बहुकालीनत्वेन काशपुष्पसदृशः सर्वत. पलितश्चिरन्तनस्तपसा दीप्तोऽस्मीत्यर्थ·॥९०॥प्रजा वै वाजस्ता एष बिभर्ति यद्बिभर्ति तस्माद्भरद्वाज इति श्रुत्यनुसारेण स्वनामाह— **भरे इति**।अशिष्यान् शासितुमयोग्यानपि राक्षसान् शत्रूंश्च वशे कृत्य करुणया पालयामि तथा असुतान् अपुत्रानुदासीनानपि दीनानदीनान्पालयामि । भार्या भार्येति पुत्रभृत्यादेरुपलक्षणम् । ईदृग्विधोऽन्योऽपि वाजं वेगं शत्रूणा साहस अन्नं वा भरेत्स पृथिवीवत्सर्वसहोऽन्नप्रदश्च भवतीति तस्मादहमपि तथास्मीत्यर्थ । द्वाजमिति च्छेदे तु द्वाभ्या जातं संकरजमित्यर्थ । ननु ‘माता भस्त्रा पितु· पुत्रो येन जात स एव स ’ ( म भा आदिप. अ ७४ श्लो.१० ). इति स्मृतेश्चर्मकोशतुल्या मातेत्यत सर्वोऽप्येकज एवेति नास्ति कश्चिद्द्वाज । न हि द्वाभ्या रेत.सेकाभ्यामेको जायत इति सभवति । सत्यम् । आहवनीयादीनामपि संस्कारवता सर्वेषा द्विविधं जन्म योनित संस्कारतश्च। तत्र सङ्करोऽन्यस्माज्जातोऽन्येन स्वपुत्र इति बुद्धया संस्कृत इति स एव द्वाज । द्विर्जायत इति द्विजोऽन्य । द्वाभ्या स्त्रीपुरुषाभ्या जायत इत्यर्थे द्वाजादयो निपात्यन्ते तत एव द्वाजा अपि सन्तीति वशी वशं नयस एकजत्वमिति मन्त्रे मन्यो संकल्पस्य एकजेति विशेषणम् । द्वाजे तु बीजसंस्कारसङ्करादवश्यं संकल्पयोर्वाङ्मनसयोर्वा पौर्वापर्यविरोधो भवतीति विश्वासघातकादयो द्वाजा इति ज्ञेयम् । तदयं संग्रह —

कौशिके क्रौर्यतपसी राधेये शौर्यभीरुते ।
खले वाक्चित्तवैमत्ये बीजसंस्कारसंकरात् ॥ इति ।

भार्यामनव्याज इति पाठे अनव्या अजा माया तयैव जातोऽस्मि लोकहितार्थे नतु कर्मणेत्यर्थ. ॥ ९२ ॥ **गोदम इति** । गोपदार्थे स्वर्गं भूमिं च दमयति वशीकरोतीति गोदम तत्र हेतु· दमत इति दमेन इन्द्रियजयेन दमयतीति जितेन्द्रियत्वात् गा या च दमितुं शक्तोऽस्मीत्यर्थ । अधूम· निर्धूमाग्नितुल्य अत एवादम· अन्येन दमितुमयोग्य तत्र हेतु· ते त्वयि समदर्शनात्समस्य ब्रह्मणो दर्शनात् ‘निर्दोषं हि समं ब्रह्म ’ इति भगवद्वचनात् ‘ तस्य ह देवाश्च नाभूत्या ईशते आत्मा ह्येषा स भवति ’ इति श्रुते । तस्य ब्रह्मविदोऽनैश्वर्याय देवाश्च न देवा अपि न ईशते न समर्था भवन्ति किमुत नि सारा यातुधाना इति श्रुत्यर्थ. । अत्र दकारस्थाने तकारं कृत्वा गौतम इति निपात्यते। गोभिस्तमो मम ध्वस्तं जातमात्रस्य देहत इति पाठे देहतो मातुर्देहाज्जातमात्रस्य अकृततपसोऽपि मम सूर्यतुल्यस्य गोभी रश्मिभिस्तमोन्धकारं ध्वस्तं अतोऽहं गाव· अतमा तमोविरोधिनो यस्य स इति व्युत्पत्या गौतमोऽस्मि।त्वया वन्हिवद् स्पर्शोऽहमित्यर्थ ॥ ९४ ॥

विश्वामित्र उवाच ।
विश्वे देवाश्च मे मित्रं मित्रमस्मि गवां तथा
विश्वामित्रमिति ख्यात यातुधानि निबोध मां

यातुधान्युवाच ।
नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ९७

जमदग्निरुवाच ।
जाजमद्यजजानेऽहं जिजाहीह जिजायिषि
जमदग्निरिति ख्यातस्ततो मां विद्धि शोभने

यातुधान्युवाच ।
यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ९९

अरुन्धत्युवाच ।
धरान् धरित्रीं वसुधां भर्तुस्तिष्ठाम्यनन्तरम् ।
मनोनुरुन्धती भर्तुरिति मां विद्ध्यरुन्धतीम् ॥

यातुधान्युवाच ।
नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥

गण्डोवाच ।
वक्त्रैकदेशे गण्डेति धातुमेतं प्रचक्षते ।
तेनोन्नतेन गण्डेति विद्धि माऽनलसम्भवे २

यातुधान्युवाच ।
नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ३

पशुसख उवाच ।
पशून् रञ्जामि दृष्ट्वाऽहं पशूनां च सदा सखा
गौणं पशुसखेत्येवं विद्धि मामग्निसम्भवे ॥ ४

यातुधान्युवाच ।
नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितु शक्य गच्छावतर पद्मिनीम् ५

शुनःसख उवाच ।
एभिरुक्तं यथा नाम नाहं वक्तुमिहोत्सहे ।
शुनःसखसखायं मां यातुधान्युपधारय ॥ ६

यातुधान्युवाच ।
नामनैरुक्तमेतत्ते वाक्यं सन्दिग्धया गिरा ।
तस्मात्पुनरिदानीं त्वं ब्रूहि यन्नाम ते द्विज ७

शुनःसख उवाच ।
सकृदुक्तं मया नाम न गृहीतं त्वया यदि ।
तस्मात्त्रिदंडाभिहता गच्छ भस्मेति मा चिरम्
सा ब्रह्मदण्डकल्पेन तेन मूर्ध्नि हता तदा ।
कृत्या पपात मेदिन्यां भस्म सा च जगाम ह
शुनःसखा च हत्वा तां यातुधानीं महाबलाम्
भुवि त्रिदण्डं विष्टभ्य शाद्वले समुपाविशत् ॥
ततस्ते मुनयः सर्वे पुष्कराणि बिसानि च ।
यथाकाममुपादाय समुत्तस्थुर्मुदान्विताः ११

---

**विश्वे इति** । विश्वशब्देन आधिदैव ब्रह्माण्डस्था देवा उच्यन्ते । अध्यात्मं च पिण्डस्थानीन्द्रियाणि तान्युभयानि मित्रभूतानि यस्य स विश्वामित्र । 'विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस' इति श्रुते । मित्रे चर्षाविति विश्व-पदान्तस्य दीर्घः । गवा इन्द्रियाणाम् ॥ ९६॥ **जाजमद्य इति** । भूयो भूयोऽतिशयेन जमन्ति युगपदनेकेषु यज्ञादि-ष्वनेकवार पुन पुनर्भक्षयन्ति हवींषि ते जाजमन्तो देवा । जमु भक्षणे यङ्लुकि शत्रन्तस्य रूपम् । इज्यन्ते देवता अस्मिन्निति यजोऽग्नि ।तेषा जान आविर्भावस्तस्मिन् जिजा-यिषि जातोऽस्मि।जनेर्यङन्तात्सनि लुङात्मनेपदे उत्तमपुरुषै-कवचनं आर्षोऽडभावश्च । इहलोके अतो मा जिजाहि जानीहि । अतो योगात् मा जमदग्निरिति नामतो विद्धि । जाजमदित्यत्राद्यपदे प्रथमाक्षरलोपे द्वितीयस्याग्नित्वे जमदग्नि-रिति सिद्धम् । जिजाहीत्यपि ज्ञाधातोर्यङ्लुकि जादेशे मध्य-मैकवचनम् । ततो जाजमन्तोऽग्निश्चास्मिन् सन्तीति जम-दग्निमान् । ततो मतुब्लोपेन जमदग्निरिति पदम् । एते-नापि स्वस्या वर्षणीयत्वमुक्तम् । जाजमद्यजजा नाम मृजा माऽऽह । जिजायिषीति पाठे जाजमद्यजेभ्यो देवाग्निभ्यो जाता संपदो जाजमद्यजजास्ताश्च कृतकत्वात् नाम निश्चितं, मृजा मार्ज्यन्त इति मृजा नश्वरा इति मा मामाह उक्तवान् वेद· अतोऽहं ता जिजायिषि जितवानस्मि । अस्मिन्पक्षे अभ्यासताद्विकाराभावायार्षम् । जितलोकोऽहं त्वया जे-तुमशक्य इति भाव ॥ ९८ ॥ **धरानिति** । धरान् पर्वतान् धरित्रीं भुव वसून्देवान्वत्ते इति व्युत्पत्त्या वसुधा दिवं च तिष्ठामि अधितिष्ठामि तत्र हेतु —भर्तुर्वसिष्ठस्या-नन्तर अव्यवधानेन मनोऽनुरुन्धतीति अरुषो अतिकठि-नान् धरादीन् दधातीत्यरुन्धतीति दकारलोपेन मुमागमेन च सिद्धम् । अनुरुन्धतीत्यत्र नुकारलोपेन वेति ॥ १०० ॥ **वक्त्रेति** । गंडेति नुमा सहितस्यानुकरणम्। मा मा अन-लसम्भवे त्वमस्या वृषादर्भिणा स्ववचनमप्रतिगृह्णताम्रूपीणा वधार्थं स्वजटामग्नौ हुत्वा ततोऽस्या उत्पादितत्वादिति ज्ञेयं ॥ २ ॥ पशून् जीवान् रञ्जामि रञ्जयामि मा मम नामेत्यर्थः ॥ ४ ॥ श्वा धर्म तत्सखायो मुनय तेषा सखा शुन -सखसख. तम् ॥ ६ ॥ भस्म भस्मताम् ॥ ९ ॥

श्रमेण महता कृत्वा ते बिसानि कलापशः ।
तीरे निक्षिप्य पद्मिन्यास्तर्पणं चक्रुरम्भसा ॥
अथोत्थाय जलात्तस्मात्सर्वे ते समुपागमन् ।
नापश्यंश्चापि ते तानि बिसानि पुरुषर्षभाः ॥
ऋषय ऊचुः ।
केन क्षुधा परीतानामस्माकं पापकर्मणाम् ।
नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकांक्षिणाम्
ते शङ्कमानास्त्वन्योन्यं पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।
त ऊचुः समयं सर्वे कुर्म इत्यरिकर्शन ॥ १५
त उक्त्वा बाढमित्येवं सर्व एव तदा समम् ।
क्षुधार्ताः सुपरिश्रान्ताः शपथायोपचक्रमुः १६
अत्रिरुवाच ।
स गां स्पृशतु पादेन सूर्यं च प्रतिमेहतु ।
अनध्यायेष्वधीयीत बिसस्तैन्यं करोति यः ॥
वसिष्ठ उवाच ।
अनध्याये पठेल्लोके शुनः स परिकर्षतु ।
परिव्राट् कामवृत्तस्तु बिसस्तैन्यं करोति यः
शरणागतं हन्तु स वै स्वसुतां चोपजीवतु ।
अर्थान्कांक्षतु कीनाशाद्बिसस्तैन्यं करोति यः
कश्यप उवाच ।
सर्वत्र सर्वं लपतु न्यासलोपं करोतु च ।
कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥
वृथामांसाशनश्चास्तु वृथादानं करोतु च ।
यातु स्त्रियं दिवा चैव बिसस्तैन्यं करोति यः
भरद्वाज उवाच ।
नृशंसस्त्यक्तधर्मास्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
ब्राह्मणं चापि जयतां बिसस्तैन्यं करोति यः
उपाध्यायमधः कृत्वा ऋचोऽध्येतु यजूंषि च
जुहोतु च स कक्षाग्नौ बिसस्तैन्यं करोति यः
जमदग्निरुवाच ।
पुरीषमुत्सृजत्वप्सु हन्तु गां चैव दुह्यतु ।
अनृतौ मैथुनं यातु बिसस्तैन्यं करोति यः २४
द्वेष्यो भार्योपजीवी स्याद्दूरबन्धुश्च वैरवान् ।
अन्योन्यस्यातिथिश्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः

गौतम उवाच ।
अधीत्य वेदांस्त्यजतु त्रीनग्नीनपविध्यतु ।
विक्रीणातु तथा सोमं बिसस्तैन्यं करोति यः
उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः
विश्वामित्र उवाच ।
जीवतो वै गुरून्भृत्यान्भरन्त्वस्य परे जनाः
अगतिर्बहुपुत्रः स्याद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥
अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु ऋद्ध्या चैवाप्यहंकृतः ।
कर्षको मत्सरी चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः
वर्षाचरोऽस्तु भृतको राज्ञश्चास्तु पुरोहितः ।
अयाज्यस्य भवेदृत्विग् बिसस्तैन्य करोति यः
अरुन्धत्युवाच ।
नित्यं परिभवेच्छ्वश्रूं भर्तुर्भवतु दुर्मनाः ।
एका स्वादु समाश्नातु बिसस्तैन्यं करोति या
ज्ञातीनां गृहमध्यस्था सक्तूनत्तु दिनक्षये ।
अभोग्या वीरसूरस्तु बिसस्तैन्यं करोति या ।
गण्डोवाच ।
अनृतं भाषतु सदा बन्धुभिश्च विरुध्यतु ।
ददातु कन्यां शुल्केन बिसस्तैन्यं करोति या
साधयित्वा स्वयं प्राशेद्दास्ये जीर्यतु चैव ह ।
विकर्मणा प्रमीयेत बिसस्तैन्यं करोति या ३४
पशुसख उवाच ।
दास एव प्रजायेतामप्रसूतिरकिञ्चनः ।
दैवतेष्वनमस्कारो बिसस्तैन्यं करोति यः ३५
शुनःसख उवाच ।
अध्वर्यवे दुहितरं वा ददातु
छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।
आथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः
स्नायीत वा यो हरते बिसानि ३६
ऋषय ऊचुः ।
इष्टमेतद्द्विजातीनां योऽयं ते शपथः कृतः ।
त्वया कृतं बिसस्तैन्यं सर्वेषां नः शुनःसख ३७

---

कलापश सघश ॥ १२ ॥ समयं शपथं अत्र शपथव्याजेन निषिद्धान्युच्यन्ते ॥१५॥ शुनः सारमेयान्परिकर्षतु क्रीडार्थं मृगयार्थं वा ॥ १८ ॥ स्वसुता शुल्कग्रहणेन कीनाशात् कर्षकात् ॥ १९ ॥ वृथा यागादिनिमित्तं विना वृथा नटनर्तकादौ ॥ २१ ॥ जयता युद्धे वादे वा ॥२२ ॥ कक्षाग्नौ तत्र हि हुतं भस्मीभावमप्राप्य होतुर्दोषकरमित्याशयः ॥ २३ ॥ उदपानप्लवे एककूपैकजीवने ॥ २७ ॥ ब्रह्मकूटो वेदराशिस्तस्याशुचित्वं दोष ऋद्धिमतो गर्वो भवतु । कर्षकश्च मत्सरी चास्तु । २९ ॥ ज्ञातीना अनादरे षष्ठी ज्ञातीननादृत्येत्यर्थ । अभोग्या योनिदूषिता ॥ ३२ ॥ साधयित्वा अन्नं पक्त्वा विकर्मणा जारजातेन गर्भादिना ॥ ३४ ॥

शुनःसख उवाच ।

न्यस्तमद्यं न पश्यद्भिर्यदुक्तं कृतकर्मभिः ।
सत्यमेतन्न मिथ्यैतद्बिसस्तैन्यं कृतं मया ३८
मया ह्यन्तर्हितानीह बिसानीमानि पश्यत ।
परीक्षार्थं भगवतां कृतमेवं मयाऽनघाः ॥ ३९
रक्षणार्थं च सर्वेषां भवतामहमागतः ।
यातुधानी ह्यतिक्रूरा कृत्यैषा वो वधैषिणी४०
वृषादर्भिप्रयुक्तैषा निहता मे तपोधनाः ।
दुष्टा हिंस्यादियं पापा युष्मान्प्रत्यग्निसंभवा
तस्मादस्म्यागतो विप्रा वासवं मां निबोधत
अलोभादक्षया लोकाः प्राप्ता वै सार्वकामिकाः
उत्तिष्ठध्वमितः क्षिप्रं तानवाप्नुत वै द्विजाः४३

भीष्म उवाच ।

ततो महर्षयः प्रीतास्तथेत्युक्त्वा पुरंदरम् ।
सहैव त्रिदशेन्द्रेण सर्वे जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ४४
एवमेते महात्मानो भोगैर्बहुविधैरपि ।
क्षुधा परमया युक्ताश्छंद्यमाना महात्मभि
नैव लोभं तदा चक्रुस्ततः स्वर्गमवाप्नुवन् ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु नरो लोभं विवर्जयेत्
एष धर्मः परो राजंस्तस्माल्लोभं विवर्जयेत् ४७
इदं नरः सुचरितं समवायेषु कीर्तयन् ।
अर्थभागी च भवति न च दुर्गाण्यवाप्नुते ४८
प्रीयन्ते पितरश्चास्य ऋषयो देवतास्तथा ।
यशोधर्मार्थभागी च भवति प्रेत्य मानवः१४९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि बिसस्तैन्योपाख्याने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

## ९४

भीष्म उवाच ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यद्वृत्तं तीर्थयात्रायां शपथं प्रति तच्छृणु ॥ १
पुष्करार्थं कृतं स्तैन्यं पुरा भरतसत्तम ।
राजर्षिभिर्महाराज तथैव च द्विजर्षिभिः ॥ २
ऋषयः समेताः पश्चिमे वै प्रभासे
समागता मन्त्रममन्त्रयन्त ।
चराम सर्वां पृथिवीं पुण्यतीर्थां
तन्नः कामं हंत गच्छाम सर्वे ॥ ३
शुक्रोऽङ्गिराश्चैव कविश्च विद्वां-
स्तथा ह्यगस्त्यो नारदपर्वतौ च ।
भृगुर्वसिष्ठः कश्यपो गौतमश्च
विश्वामित्रो जमदग्निश्च राजन् ॥ ४
ऋषिस्तथा गालवोऽथाष्टकश्च ।
भरद्वाजोऽरुन्धती वालखिल्याः ।
शिबिर्दिलीपो नहुषोऽम्बरीषो
राजा ययातिर्धुन्धुमारोऽथ पूरुः ॥५
जग्मुः पुरस्कृत्य महानुभावं
शतक्रतुं वृत्रहणं नरेन्द्राः ।
तीर्थानि सर्वाणि परिक्रमन्तो
माघ्यां ययुः कौशिकीं पुण्यतीर्थाम्६
सर्वेषु तीर्थेष्ववधूतपापा
जग्मुस्ततो ब्रह्मसरः सुपुण्यम् ।
देवस्य तीर्थे जलमग्निकल्पा
विगाह्य ते भुक्तबिसप्रसूनाः ॥ ७
केचिद्बिसान्यखनंस्तत्र राज-
न्नन्ये मृणालान्यखनंस्तत्र विप्राः
अथापश्यन्पुष्करं ते ह्रियन्त
ह्रदादगस्त्येन समुद्धृतं तत् ॥ ८

अद्यं भक्ष्यं यदुक्तं तन्न मिथ्येति सम्बन्ध ॥ ३८ ॥ अन्तर्हितानि अन्तर्धानं प्रापितानि ॥ ३९ ॥ स्वधर्मनिष्ठ कुप्रतिग्रहपराङ्मुखा निषिद्धवर्जितो मुख्यं पात्रमित्यध्यायतात्पर्यम् ॥ १४९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिनवतितमोऽध्याय ॥ ९३ ॥

९४

अत्र शपथेनैव निषिद्धार्थप्रकाशने ॥ १ ॥ पुष्करार्थे इन्द्रेण स्तैन्यं कृतं मुनिभि शपथा कृता इत्यर्थ ॥ २ ॥ बिसमृणालयो कमलकुमुदवदवान्तरभेदो ज्ञेय ह्रियन्तं ह्रियमाणम् ॥ ८ ॥

तानाह सर्वानृषिमुख्यानगस्त्यः
केनादत्तं पुष्करं मे सुजातम् ।
युष्मान्शङ्के पुष्करं दीयतां मे
न वै भवन्तो हर्तुमर्हन्ति पद्मम् ॥ ९
शृणोमि कालो हिंसते धर्मवीर्यं
सोऽयं प्राप्तो वर्तते धर्मपीडा ।
पुराऽधर्मो वर्तते नेह याव-
त्तावद्गच्छामः सुरलोकं चिराय॥ १०
पुरा वेदान्ब्राह्मणा ग्राममध्ये
घुष्टस्वरा वृषलाञ्श्रावयन्ति ।
पुरा राजा व्यवहारेण धर्मान्
पश्यत्यहं परलोकं व्रजामि ॥ ११
पुरावरान्प्रत्यवरान् गरीयसो
यावन्नरा नावमंस्यन्ति सर्वे ।
तमोत्तरं यावदिदं न वर्तते
तावद्व्रजामि परलोकं चिराय ॥ १२
पुरा प्रपश्यामि परेण मर्त्यान्
बलीयसा दुर्बलान्भुज्यमानान् ।
तस्माद्यास्यामि परलोकं चिराय
न ह्युत्सहे द्रष्टुमिह जीवलोकम् ॥ १३
तमाहुरार्ता ऋषयो महर्षिं
न ते वयं पुष्करं चोरयामः ।
मिथ्याभिषङ्गो भवता न कार्यः
शपाम तीक्ष्णैः शपथैर्महर्षे ॥ १४
ते निश्चितास्तत्र महर्षयस्तु
संपश्यन्तो धर्ममेतं नरेन्द्राः ।
ततोऽशपन्त शपथान्पर्ययेण
सहैव ते पार्थिव पुत्रपौत्रैः ॥ १५
भृगुरुवाच ।
प्रत्याक्रोशेदिहाक्रुष्टस्ताडितः प्रतिताडयेत् ।
खादेच्च पृष्ठमांसानि यस्ते हरति पुष्करम् १६
वसिष्ठ उवाच ।
अस्वाध्यायपरो लोके श्वानं च परिकर्षतु ।
पुरे च भिक्षुर्भवतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १७
कश्यप उवाच ।
सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासे लोभं करोतु च ।
कूटसाक्षित्वमभ्येतु यस्ते हरति पुष्करम् १८
गौतम उवाच ।
जीवत्वहंकृतो बुद्ध्या विषमेणासमेन सः ।
कर्षको मत्सरी चास्तु यस्ते हरति पुष्करम्१९
अङ्गिरा उवाच ।
अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु श्वानं च परिकर्षतु ।
ब्रह्महाऽनिकृतिश्चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥
धुन्धुमार उवाच ।
अकृतज्ञस्तु मित्राणां शूद्रायां च प्रजायतु ।
एकः सम्पन्नमश्नातु यस्ते हरति पुष्करम् २१
पूरुरुवाच ।
चिकित्सायां प्रचरतु भार्यया चैव पुष्यतु ।
श्वशुरात्तस्य वृत्तिः स्याद्यस्ते हरति पुष्करम्
दिलीप उवाच ।
उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
तस्य लोकान्स व्रजतु यस्ते हरति पुष्करम्२३
शुक्र उवाच ।
वृथामांसं समश्नातु दिवा गच्छतु मैथुनम् ।
प्रेष्यो भवतु राज्ञश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥२४
जमदग्निरुवाच ।
अनध्यायेष्वधीयीत मित्रं श्राद्धे च भोजयेत्
श्राद्धे शूद्रस्य चाश्नीयाद्यस्ते हरति पुष्करम्
शिबिरुवाच ।
अनाहिताग्निर्म्रियतां यज्ञे विघ्नं करोतु च ।
तपस्विभिर्विरुध्येच्च यस्ते हरति पुष्करम् २६
ययातिरुवाच ।
अनृतौ च व्रती चैव भार्यायां स प्रजायतु ।
निराकरोतु वेदांश्च यस्ते हरति पुष्करम् २७
नहुष उवाच ।
अतिथिर्गृहसंस्थोऽस्तु कामवृत्तस्तु दीक्षितः
विद्यां प्रयच्छतु भृतो यस्ते हरति पुष्करम् ॥
अम्बरीष उवाच ।
नृशंसस्त्यक्तधर्मोऽस्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च
निहन्तु ब्राह्मणं चापि यस्ते हरति पुष्करम् २९

---

आदत्तं आत्तम् ॥ ९ ॥ अधर्म इति च्छेदः ॥ १० ॥ प्रत्यवरान्मध्यमान् तम अज्ञानम् ॥ १२ ॥ पृष्ठमांसानि पृष्ठवाहानां हयवृषभोष्ट्रादीनां मांसानि ॥ १६ ॥ भिक्षु सन्यासी ॥ १७ ॥ पणतु क्रयविक्रयं करोतु सर्वं अपण्यमपि ॥ १८ ॥ विगत समभावो यस्मात्तेनासमेन कामक्रोधादिना ॥ १९ ॥ अनिकृतिः अकृतप्रायश्चित्तः ॥ २० ॥ अतिथिर्यति गृहसंस्थो गृहवासी कामवृत्त यथेष्टचेष्टावान् ॥ २८ ॥

नारद उवाच ।

गूढज्ञानी बहिःशास्त्रं पठतां विस्वरं पदम् ।
गरीयसोऽवजानातु यस्ते हरति पुष्करम् ३०

नाभाग उवाच ।

अनृतं भाषतु सदा सद्भिश्चैव विरुध्यतु ।
शुल्केन तु ददत्कन्यां यस्ते हरति पुष्करम् ॥

कविरुवाच ।

पद्भ्यां स गां ताडयतु सूर्यं च प्रतिमेहतु ।
शरणागतं संत्यजतु यस्ते हरति पुष्करम् ३२

विश्वामित्र उवाच ।

करोतु भृतकोऽवर्षां राज्ञश्चास्तु पुरोहितः ।
ऋत्विगस्तु ह्ययाज्यस्य यस्ते हरति पुष्करम्

पर्वत उवाच ।

ग्रामे चाधिकृतः सोऽस्तु खरयानेन गच्छतु
शुनः कर्षतु वृत्त्यर्थे यस्ते हरति पुष्करम् ॥३४

भरद्वाज उवाच ।

सर्वपापसमादानं नृशंसे चानृते च यत् ।
तत्तस्यास्तु सदा पापं यस्ते हरति पुष्करम् ॥

अष्टक उवाच ।

स राजास्त्वकृतप्रज्ञः कामवृत्तश्च पापकृत् ।
अधर्मेणाभिशास्तूर्वीं यस्ते हरति पुष्करम् ॥

गालव उवाच ।

पापिष्ठेभ्यो ह्यनर्घार्हः स नरोऽस्तु स्वपापकृत् ।
दत्त्वा दानं कीर्तयतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥

अरुन्धत्युवाच ।

श्वश्वापवादं वदतु भर्तुर्भवतु दुर्मनाः ।
एका स्वादु समश्नातु या ते हरति पुष्करम् ३८

वालखिल्या ऊचुः ।

एकपादेन वृत्त्यर्थं ग्रामद्वारे स तिष्ठतु ।
धर्मज्ञस्त्यक्तधर्माऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ।

शुनःसख उवाच ।

अग्निहोत्रमनादृत्य स सुखं स्वपतु द्विजः ।
परिव्राट् कामवृत्तोऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम्

सुरभ्युवाच ।

बालजेन निदानेन कांस्यं भवतु दोहनम् ।
दुह्येत परवत्सेन या ते हरति पुष्करम् ॥ ४१

भीष्म उवाच ।

ततस्तु तैः शपथैः शप्यमानै-
र्नानाविधैर्बहुभिः कौरवेन्द्र ।
सहस्राक्षो देवराट् सप्रहृष्टः
समीक्ष्य तं कोपनं विप्रमुख्यम् ॥ ४२

अथाब्रवीन्मघवा प्रत्ययं स्वं
समाभाष्य तमृषिं जातरोषम् ।
ब्रह्मर्षिदेवर्षिनृपर्षिमध्ये
य तं निबोधेह ममाद्य राजन् ॥ ४३

शक्र उवाच ।

अध्वर्यवे दुहितरं ददातु
छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।
अथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः
स्नायीत यः पुष्करमाददाति ॥ ४४

सर्वान्वेदानधीयीत पुण्यशीलोऽस्तु धार्मिकः
ब्रह्मणः सदनं यातु यस्ते हरति पुष्करम् ४५

अगस्त्य उवाच ।

आशीर्वादस्त्वया प्रोक्तः शपथो बलसूदन ।
दीयतां पुष्करं मह्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ४६

इन्द्र उवाच ।

न मया भगवन् लोभाद्धृतं पुष्करमद्य वै ।
धर्मास्तु श्रोतुकामेन हृतं न क्रोद्धुमर्हसि ४७

धर्मश्रुतिसमुत्कर्षो धर्मसेतुरनामयः ।
आर्षो वै शाश्वतो नित्यमव्ययोऽयं मया श्रुतः

तदिदं गृह्यतां विद्वन्पुष्करं द्विजसत्तम ।
अतिक्रमं मे भगवन् क्षन्तुमर्हस्यनिन्दित ४९

इत्युक्तः स महेन्द्रेण तपस्वी कोपनो भृशम् ।
जग्राह पुष्करं धीमान्प्रसन्नश्चाभवन्मुनिः ५०

प्रययुस्ते ततो भूयस्तीर्थानि वनगोचराः ।
पुण्येषु तीर्थेषु तथा गात्राण्याप्लावयन्त ते॥ ५१

आख्यानं य इदं युक्तः पठेत्पर्वणि पर्वणि ।
न मूर्खं जनयेत्पुत्रं न भवेच्च निराकृतिः॥ ५२

---

भृतो वित्तेन क्रीत· भृतको धान्याविक्रीत वैश्यै· क्रीत· सन् अवर्षा वृष्टिनिबन्धम् करोतु ॥ ३३ ॥ पापिष्ठा एव अनर्घार्हा अपूज्याः अयं तु ततोऽप्यपूज्योऽस्तु । यत स्वपापकृत् स्वेषु ज्ञातिषु पापकृत् गराग्निदानादिना वधकृत् ॥ ३७ ॥ श्वश्वा अपवादमिति च्छेद. ॥ ३८ ॥ बालजेन नृकेशजेन बल्वजेनेति पाठे ·बल्वज बगईसंज्ञकस्तृण-विशेषस्तज्जेन निदानं दोहनकाले गवा पादबन्धनी रज्जुः तेन ॥ ४१ ॥ प्रत्ययं आभिप्रायम् ॥ ४३ ॥ धर्मश्रुतीना सम्यगुत्कर्ष· धर्म एव सेतुस्तरणोपाय ॥ ४८ ॥

न तमापत्स्पृशेत्काचिद्विज्वरो न जरावहः ।
विरजाः श्रेयसा युक्तः प्रेत्य स्वर्गमवाप्नुयात् ॥
यश्च शास्त्रमधीयीत ऋषिभिः परिपालितम् ।
स गच्छेद्ब्रह्मणो लोकमव्ययं च नरोत्तम ५४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि शपथविधिर्नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## ९५

युधिष्ठिर उवाच ।
यदिदं श्राद्धकृत्येषु दीयते भरतर्षभ ।
छत्रं चोपानहौ चैव केनैतत्संप्रवर्तितम् ॥ १
कथं चैतत्समुत्पन्नं किमर्थं चैव दीयते ।
न केवलं श्राद्धकृत्ये पुण्यकेष्वपि दीयते ॥ २
बहुष्वपि निमित्तेषु पुण्यमाश्रित्य दीयते ।
एतद्विस्तरतो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ३
भीष्म उवाच ।
शृणु राजन्नवहितश्छत्रोपानहविस्तरम् ।
यथैतत्प्रथितं लोके यथा चैतत्प्रवर्तितम् ॥ ४
यथा चाक्षय्यतां प्राप्तं पुण्यतां च यथा गतम्
सर्वमेतदशेषेण प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥ ५
जमदग्नेश्च संवादं सूर्यस्य च महात्मनः ।
पुरा स भगवान् साक्षाद्धनुषाऽक्रीडयत्प्रभो ६
संधाय संधाय शरांश्चिक्षेप किल भार्गवः ।
तान् क्षिप्तान् रेणुका सर्वांस्तस्येषून्दीप्ततेजसः
आनीय सा तदा तस्मै प्रादादसकृदच्युत ।
अथ तेन स शब्देन ज्यायाश्चैव शरस्य च ८
प्रहृष्टः संप्रचिक्षेप सा च प्रत्याजहार तान् ।
ततो मध्याह्नमारूढे ज्येष्ठामूले दिवाकरे ॥ ९
स सायकान्द्विजो मुक्त्वा रेणुकामिदमब्रवीत्
गच्छानय विशालाक्षि शरानेतान्धनुश्च्युतान्
यावदेतान्पुनः सुभ्रु क्षिपामीति जनाधिप ।
सा गच्छन्त्यन्तरा छायां वृक्षमाश्रित्य भामिनी
तस्थौ तस्या हि सन्तप्तं शिरः पादौ तथैव च
स्थिता सा तु मुहूर्तं वै भर्तुः शापभयाच्छुभा
ययावानयितुं भूयः सायकानसितेक्षणा ।
प्रत्याजगाम च शरांस्तानादाय यशस्विनी ॥१३
सा वै खिन्ना सुचार्वङ्गी पद्भ्यां दुःखं नियच्छती
उपाऽऽजगाम भर्तारं भयाद्भर्तुः प्रवेपती ॥१४
स तामृषिस्तदा क्रुद्धो वाक्यमाह शुभाननाम्
रेणुके किं चिरेण त्वमागतेति पुनः पुनः १५
रेणुकोवाच ।
शिरस्तावत्प्रदीप्तं मे पादौ चैव तपोधन ।
सूर्यतेजोनिरुद्धाऽहं वृक्षच्छायां समाश्रिता ॥
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंश्चिरायैतत्कृतं मया ।
एतच्छ्रुत्वा मम विभो मा क्रुधस्त्वं तपोधन
जमदग्निरुवाच ।
अद्यैनं दीप्तकिरणं रेणुके तव दुःखदम् ।
शरैर्निपातयिष्यामि सूर्यमस्त्राग्नितेजसा १८
भीष्म उवाच ।
स विस्फार्य धनुर्दिव्यं गृहीत्वा च शरान्बहून्
अतिष्ठत्सूर्यमभितो यतो याति ततोमुखः ॥
अथ तं प्रेक्ष्य सन्नद्धं सूर्योऽभ्येत्य तथाऽब्रवीत्
द्विजरूपेण कौन्तेय किं ते सूर्योऽपराध्यते २०
आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो दिवि तिष्ठंस्ततस्ततः
रसं हृतं वै वर्षासु प्रवर्षति दिवाकरः ॥ २१
ततोऽन्नं जायते विप्र मनुष्याणां सुखावहम् ।
अन्नं प्राणा इति यथा वेदेषु परिपठ्यते ॥ २२
अथाभ्रेषु निगूढश्च रश्मिभिः परिवारितः ।
सप्तद्वीपानिमान्ब्रह्मन्वर्षेणाभिप्रवर्षति ॥ २३

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

९५

यदिदमिति ॥ १ ॥ पुण्यकेषु व्रीणा व्रतोत्सवेषु ॥ २ ॥ ज्येष्ठामूले दक्षिणावर्ते भ्रममाणे भचक्रे ज्येष्ठानां ममसूत्रे पतितं रोहिणीनक्षत्रं तदेव ज्येष्ठाना मूलं यथाश्रुतार्थग्रहण तु न ज्येष्ठामूलस्थेऽर्के हेमन्ते शिर पाददाहस्यानवमरात् ॥ ९ ॥

ततस्तदौषधीनां च वीरुधां पुष्पपत्रजम् ।
सर्वं वर्षाभिनिर्वृत्तमन्नं संभवति प्रभो ॥ २४
जातकर्माणि सर्वाणि व्रतोपनयनानि च ।
गोदानानि विवाहाश्च तथा यज्ञसमृद्धयः २५
शास्त्राणि दानानि तथा संयोगा वित्तसंचयाः ।
अन्नतः संप्रवर्तन्ते यथा त्वं वेत्थ भार्गव॥२६
रमणीयानि यावन्ति यावदारंभिकाणि च ।
सर्वमन्नात्प्रभवति विदितं कीर्तयामि ते ॥ २७
सर्वं हि वेत्थ विप्र त्वं यदेतत्कीर्तितं मया ।
प्रसादये त्वां विप्रर्षे किं ते सूर्यं निपात्य वै ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि छत्रोपानहोत्पत्तिर्नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

## ९६

युधिष्ठिर उवाच ।
एवं प्रयाचति तदा भास्करे मुनिसत्तमः ।
जमदग्निर्महातेजाः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ १
भीष्म उवाच ।
स तथा याचमानस्य मुनिरग्निसमप्रभः ।
जमदग्निः शमं नैव जगाम कुरुनन्दन ॥ २
ततः सूर्यो मधुरया वाचा तमिदमब्रवीत् ।
कृताञ्जलिर्विप्ररूपी प्रणम्यैनं विशाम्पते ॥ ३
चलं निमित्तं विप्रर्षे सदा सूर्यस्य गच्छतः ।
कथं चलं भेत्स्यासि त्वं सदा यान्तं दिवाकरम्
जमदग्निरुवाच ।
स्थिरं चापि चलं चापि जाने त्वां ज्ञानचक्षुषा
अवश्यं विनयाधान कार्यमद्य मया तव ॥ ५
मध्याह्ने वै निमेषार्धे तिष्ठसि त्वं दिवाकर ।
तत्र भेत्स्यामि सूर्य त्वां न मेऽत्रास्ति विचारणा
सूर्य उवाच ।
असंशयं मां विप्रर्षे भेत्स्यसे धन्विनां वर ।
अपकारिणं मां विद्धि भगवञ्छरणागतम् ७
भीष्म उवाच ।
ततः प्रहस्य भगवान् जमदग्निरुवाच तम् ।
न भीः सूर्य त्वया कार्या प्रणिपातगतो ह्यसि
ब्राह्मणेष्वार्जवं यच्च स्थैर्यं च धरणीतले ।
सौम्यतां चैव सोमस्य गांभीर्यं वरुणस्य च
दीप्तिमग्नेः प्रभां मेरोः प्रतापं तपनस्य च ।
एतान्यतिक्रमेद्यो वै स हन्याच्छरणागतम् १०
भवेत्स गुरुतल्पी च ब्रह्महा च स वै भवेत्
सुरापानं स कुर्याच्च यो हन्याच्छरणागतम् ॥
१ एतस्य त्वपनीतस्य समाधिं तात चिन्तय
यथा सुखगमः पन्था भवेत्त्वद्रश्मिभावितः ॥
भीष्म उवाच ।
एतावदुक्त्वा स तदा तूष्णीमासीद्भृगूत्तमः
अथ सूर्योऽददत्तस्मै छत्रोपानहमाशु वै ॥ १३
सूर्य उवाच ।
महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम् ।
प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्यां च त्राणार्थं चर्मपादुके १४
अद्यप्रभृति चैवेह लोके संप्रचरिष्यति ।
पुण्यकेषु च सर्वेषु परमक्षय्यमेव च ॥ १५
भीष्म उवाच ।
छत्रोपानहमेतत्तु सूर्येणैतत्प्रवर्तितम् ।
पुण्यमेतदभिख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १६
तस्मात्प्रयच्छ विप्रेषु छत्रोपानहमुत्तमम् ।
धर्मस्तेषु महान्भावी न मेऽत्रास्ति विचारणा
छत्रं हि भरतश्रेष्ठ यः प्रदद्याद्द्विजातये ।
शुभ्रं शतशलाकं वै स प्रेत्य सुखमेधते ॥ १८
स शक्रलोके वसति पूज्यमानो द्विजातिभिः
अप्सरोभिश्च सततं देवैश्च भरतर्षभ ॥ १९
दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।
स्नातकाय महाबाहो संशिताय द्विजातये २०
सोऽपि लोकानवाप्नोति दैवतैरभिपूजितान्
गोलोके स मुदा युक्तो वसति प्रेत्य भारत ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चनवतितमोऽध्याय ॥ ९५ ॥

९६

एवमिति ॥ १ ॥ १ एतस्य शरणागतस्य अपनीतस्यापराधवत समाधिं समाधानम् ।

एतत्ते भरतश्रेष्ठ मया कात्स्र्न्येन कीर्तितम् । छत्रोपानहदानस्य फलं भरतसत्तम ॥ २२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि छत्रोपानहदानप्रशंसा नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

## ९७

युधिष्ठिर उवाच ।
गार्हस्थ्यं धर्ममखिलं प्रब्रूहि भरतर्षभ ।
ऋद्धिमाप्नोति किं कृत्वा मनुष्य इह पार्थिव १
भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तं जनाधिप ।
वासुदेवस्य संवादं पृथिव्याश्चैव भारत ॥ २
संस्तुत्य पृथिवीं देवीं वासुदेवः प्रतापवान् ।
पप्रच्छ भरतश्रेष्ठ मां त्वं यत्पृच्छसेऽद्य वै ॥ ३
वासुदेव उवाच ।
गार्हस्थ्यं धर्ममाश्रित्य मया वा मद्विधेन वा
किमवश्यं धरे कार्यं किं वा कृत्वा कृतं भवेत्
पृथिव्युवाच ।
ऋषयः पितरो देवा मनुष्याश्चैव माधव ।
इज्याश्चैवार्चनीयाश्च यथा चैव निबोध मे ॥५
सदा यज्ञेन देवाश्च सदाऽऽतिथ्येन मानुषाः ।
छंदनश्च यथा नित्यमर्हान् भुञ्जीत नित्यशः ६
तेन ह्यृषिगणाः प्रीता भवन्ति मधुसूदन ।
नित्यमग्निं परिचरेदभुक्त्वा बलिकर्म च ७
कुर्यात्तथैव देवा वै प्रीयन्ते मधुसूदन ।
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥ ८
पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमाहरन् ।
सिद्धान्नाद्वैश्वदेवं वै कुर्यादग्नौ यथाविधि ॥९
अग्नीषोमं वैश्वदेवं धान्वन्तर्यमनन्तरम् ।
प्रजानां पतये चैव पृथग्घोमो विधीयते ॥ १०
तथैव चानुपूर्व्येण बलिकर्म प्रयोजयेत् ।
दक्षिणायां यमायेति प्रतीच्यां वरुणाय च ११
सोमाय चाप्युदीच्यां वै वास्तुमध्ये प्रजापतेः
धन्वन्तरेः प्रागुदीच्यां प्राच्यां शक्राय माधव
मनुष्येभ्य इति प्राहुर्बलिं द्वारि गृहस्य वै ।
मरुद्भ्यो दैवतेभ्यश्च बलिमन्तर्गृहे हरेत् ॥ १३
तथैव विश्वेदेवेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ।
निशाचरेभ्यो भूतेभ्यो बलिं नक्तं तथा हरेत्
एवं कृत्वा बलिं सम्यग्दद्याद्भिक्षां द्विजाय वै
अलाभे ब्राह्मणस्याग्नावग्रमुद्धृत्य निक्षिपेत् १५
यदा श्राद्धं पितृभ्योऽपि दातुमिच्छेत मानवः
तदा पश्चात्प्रकुर्वीत निवृत्ते श्राद्धकर्मणि १६
पितॄन्संतर्पयित्वा तु बलिं कुर्याद्विधानतः ।
वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम् १७
ततोऽन्नेन विशेषेण भोजयेदतिथीनपि ।
अर्चापूर्वं महाराज ततः प्रीणाति मानवान्
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते
आचार्यस्य पितुश्चैव सख्युराप्तस्य चातिथेः१९
इदमस्ति गृहे मह्यमिति नित्यं निवेदयेत् ।
ते यद्वदेयुस्तत्कुर्यादिति धर्मो विधीयते ॥२०
गृहस्थः पुरुषः कृष्ण शिष्टाशी च सदा भवेत् ।
राजर्त्विजं स्नातकं च गुरुं श्वशुरमेव च ॥ २१
अर्चयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरोषितान् ।
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि २२
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातर्विधीयते ।
एतांस्तु धर्मान् गार्हस्थ्यान्यः कुर्यादनसूयकः ।
स इहर्षिवरान्प्राप्य प्रेत्य लोके महीयते २३
भीष्म उवाच ।
इति भूमेर्वचः श्रुत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ।
तथा चकार सततं त्वमप्येवं सदाऽऽचर॥२४

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

९७

गार्हस्थ्यं गृहस्थयोग्यम् ॥ १ ॥ बलिकर्म वैश्वदेव तत्र प्रागन्नमेव प्राह्यम् ॥ ७ ॥

एतद्गृहस्थधर्मं त्वं चेष्टमानो जनाधिप । इहलोके यशः प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ २५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि बलिदानविधिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

## ९८

युधिष्ठिर उवाच ।
आलोकदानं नामैतत्कीदृशं भरतर्षभ ।
कथमेतत्समुत्पन्नं फलं वा तद्ब्रवीहि मे ॥ १
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मनोः प्रजापतेर्वादं सुवर्णस्य च भारत ॥ २
तपस्वी कश्चिदभवत्सुवर्णो नाम भारत ।
वर्णतो हेमवर्णः स सुवर्ण इति पप्रथे ३
कुलशीलगुणोपेतः स्वाध्याये च परंगतः ।
बहून्सुवंशप्रभवान्समतीतः स्वकैर्गुणैः ॥ ४
स कदाचिन्मनुं विप्रो ददर्शोपससर्प च ।
कुशलप्रश्नमन्योन्यं तौ चोभौ तत्र चक्रतुः ॥ ५
ततस्तौ सत्यसङ्कल्पौ मेरौ काञ्चनपर्वते ।
रमणीये शिलापृष्ठे सहितौ संन्यषीदताम् ६
तत्र तौ कथयन्तौ स्तां कथा नानाविधाश्रयाः
ब्रह्मर्षिदेवदैत्यानां पुराणानां महात्मनाम् ॥ ७
सुवर्णस्त्वब्रवीद्वाक्यं मनुं स्वायंभुवं प्रति ।
हितार्थं सर्वभूतानां प्रश्नं मे वक्तुमर्हसि ॥ ८
सुमनोभिर्यदिज्यन्ते दैवतानि प्रजेश्वर ।
किमेतत्कथमुत्पन्नं फलं योगं च शंस मे ॥ ९
मनुरुवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शुक्रस्य च बलेश्चैव संवादं वै महात्मनोः १०
बलेर्वैरोचनस्येह त्रैलोक्यमनुशासतः ।
समीपमाजगामाशु शुक्रो भृगुकुलोद्वहः ॥ ११
तमर्घ्यादिभिरभ्यर्च्य भार्गवं सोऽसुराधिपः।
निषसादासने पश्चाद्विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥१२
कथेयमभवत्तत्र त्वया या परिकीर्तिता ।
सुमनोधूपदीपानां संप्रदाने फलं प्रति ॥ १३
ततः पप्रच्छ दैत्येन्द्रः कवीन्द्रं प्रश्नमुत्तमम्१४
बलिरुवाच ।
सुमनोधूपदीपानां किं फलं ब्रह्मवित्तम ।
प्रदानस्य द्विजश्रेष्ठ तद्भवान्वक्तुमर्हति । १५
शुक्र उवाच ।
तपः पूर्वं समुत्पन्नं धर्मस्तस्मादनन्तरम् ।
एतस्मिन्नन्तरे चैव वीरुदोषध्य एव च ॥ १६
सोमस्यात्मा च बहुधा संभूतः पृथिवीतले ।
अमृतं च विषं चैव ये चान्ये तृणजातयः १७
अमृतं मनसः प्रीतिं सद्यस्तृप्तिं ददाति च ।
मनो ग्लपयते तीव्रं विषं गन्धेन सर्वशः १८
अमृतं मङ्गलं विद्धि महद्विषममङ्गलम् ।
ओषध्यो ह्यमृतं सर्वा विषं तेजोऽग्निसम्भवम्
मनो ह्लादयते यस्माच्छ्रियं चापि दधाति च
तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता नरैः सुकृतकर्मभिः २०
देवताभ्यः सुमनसो यो ददाति नरः शुचिः।
तस्य तुष्यन्ति वै देवास्तुष्टाः पुष्टिं ददत्यपि
यं यमुद्दिश्य दीयेरन्देवं सुमनसः प्रभो ।
मङ्गलार्थं स तेनास्य प्रीतो भवति दैत्यप २२
ज्ञेयास्तूग्राश्च सौम्याश्च
तेजस्विन्यश्च ताः पृथक् ।
ओषध्यो बहुवीर्या हि
बहुरूपास्तथैव च ॥ २३
यज्ञियानां च वृक्षाणामयज्ञीयान्निबोध मे ।
आसुराणि च माल्यानि दैवतेभ्यो हितानि च

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तनवतितमोऽध्याय. ॥ ९७ ॥

९८

**आलोकेति** ॥ १ ॥ स्ता अभवताम् ॥ ७ ॥ **तपः** वर्णाश्रमधर्म. **धर्मो** दयादि **वीरुधो** लता **ओषध्यो** व्रीह्यादयः ॥ १६ ॥

रक्षसासुरनागाणां च यक्षाणां च तथा प्रियाः ।
मनुष्याणां पितॄणां च कान्तायास्त्वनुपूर्वशः
वन्या ग्राम्याश्चेह तथा कृष्टोप्ताः पर्वताश्रयाः ।
अकण्टकाः कण्टकिनो गन्धरूपरसान्विताः
द्विविधो हि स्मृतो गन्ध इष्टोऽनिष्टश्च पुष्पजः
इष्टगन्धानि देवाना पुष्पाणीति विभावय २७
अकण्टकानां वृक्षाणां श्वेतप्रायाश्च वर्णतः ।
तेषां पुष्पाणि देवानामिष्टानि सततं प्रभो २८
जलजानि च माल्यानि पद्मादीनि च यानि वै
गन्धर्वनागयक्षेभ्यस्तानि दद्याद्विचक्षणः २९
ओषध्यो रक्तपुष्पाश्च कटुकाः कण्टकान्विताः
शत्रूणामभिचारार्थमाथर्वेषु निदर्शिताः ॥ ३०
तीक्ष्णवीर्यास्तु भूतानां दुरालम्भाः सकंटकाः
रक्तभूयिष्ठवर्णाश्च कृष्णाश्चैवोपहारयेत् ॥ ३१
मनोहृदयनंदिन्यो विशेषमधुराश्च याः ।
चारुरूपाः सुमनसो मानुषाणां स्मृता विभो
न तु श्मशानसम्भूता देवतायतनोद्भवाः ।
सन्नयेत्पुष्टियुक्तेषु विवाहेषु रहःसु च ॥ ३३
गिरिसानुरुहाः सौम्या
देवानामुपपादयेत् ।
प्रोक्षिताऽभ्युक्षिताः सौम्या
यथायोग्यं यथास्मृति ॥ ३४
गन्धेन देवास्तुष्यन्ति दर्शनाद्यक्षराक्षसाः ।
नागाः समुपभोगेन त्रिभिरेतैस्तु मानुषाः ३५
सद्यः प्रीणाति देवान्वै ते प्रीता भावयन्त्युत
सङ्कल्पसिद्धा मर्त्यानामीप्सितैश्च मनोरमैः ३६
प्रीताः प्रीणन्ति सततं मानिता मानयन्ति च
अवज्ञातावधूताश्च निर्दहन्त्यधमान्नरान् ३७
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूपदानविधेः फलम्
धूपांश्च विविधान्साधूनसाधूंश्च निबोध मे ॥
निर्यासाः सारिणश्चैव कृत्रिमाश्चैव ते त्रयः ।
इष्टोऽनिष्टो भवेद्गन्धस्तन्मे विस्तरशः शृणु ॥
निर्यासाः सल्लकीवर्ज्या देवानां दयिताऽस्तु ते
गुग्गुलुप्रवरस्तेषां सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ४०
अगुरुः सारिणां श्रेष्ठो यक्षराक्षसभोगिनाम् ।
दैत्यानां सल्लकीयश्च कांक्षितो यश्च तद्विधः
अथ सर्जरसादीनां गन्धैः पार्थिवदारवैः
फाणितासवसंयुक्तैर्मनुष्याणां विधीयते ४२
देवदानवभूतानां सद्यस्तुष्टिकरः स्मृतः ।
येऽन्ये वैहारिकास्तत्र मानुषाणामिति स्मृताः
य एवोक्ताः सुमनसां प्रदाने गुणहेतवः ।
धूपेष्वपि परिज्ञेयास्त एव प्रीतिवर्धनाः ॥ ४४
दीपदाने प्रवक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमम् ।
यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते ४५
ज्योतिस्तेजः प्रकाशं वाऽप्यूर्ध्वगं चापि वर्ण्यते
प्रदानं तेजसां तस्मात्तेजो वर्धयते नृणाम् ४६
अन्धन्तमस्तमिस्रं च दक्षिणायनमेव च ।
उत्तरायणमेतस्माज्ज्योतिर्दानं प्रशस्यते ४७
यस्मादूर्ध्वगमेतत्तु तमसश्चैव भेषजम् ।
तस्मादूर्ध्वगतेर्दाता भवेदत्रेति निश्चयः ॥ ४८
देवास्तेजस्विनो ह्यस्मात्प्रभावन्तः प्रकाशकाः
तामसा राक्षसाश्चैव तस्माद्दीपः प्रदीयते ४९
आलोकदानाच्चक्षुष्मान्प्रभायुक्तो भवेन्नरः ।
तान्दत्वा नोपहिंसेत न हरेन्नोपनाशयेत् ५०
दीपहर्ता भवेदन्धस्तमोगतिरसुप्रभः ।
दीपप्रदः स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ॥ ५१
हविषा प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः ।
वसामेदोस्थिनिर्यासैर्न कार्यः पुष्टिमिच्छता ५२
गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे ।
दीपदानं भवेन्नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ५३
कुलोद्योतो विशुद्धात्मा प्रकाशत्वं च गच्छति
ज्योतिषां चैव सालोक्यं दीपदाता नरः सदा
बलिकर्मसु वक्ष्यामि गुणान्कर्मफलोदयान् ।
देवयक्षोरगनृणां भूतानामथ रक्षसाम् ॥ ५५
येषां नाग्रभुजो विप्रा देवतातिथिबालकाः ।
राक्षसानेव तान्विद्धि निर्विशंकानमङ्गलान् ॥
तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ।
शिरसा प्रयतश्चापि हरेद्बलिमतन्द्रितः ॥ ५७

---

**निर्यासा** गुग्गुलुप्रभृतय **सारिणः** काष्ठाग्निसंयोगाग्नि·सरन्त· कृत्रिमा अष्टगन्धादय· ॥ ३९ ॥ फाणिताश्च ते आसवेन तीव्रगंधेन संयुक्ता देवदारुप्रभृतयस्तैः । पाठान्तरे फालिता विकसिता मल्लिकादयस्तासा रसैर्मकरंदै· गंधरससंयुक्तैर्दारवै· ॥ ४२ ॥ सद्यस्तुष्टिकरो गन्ध इति शेष । वैहारिका विहारमात्रोपयुक्ताः ॥ ४३ ॥

**ज्योतिर्दीपादि तेजः** कान्ति **प्रकाशः** कीर्ति ॥४६॥ तमिस्रं अन्धकार· अन्धंतमो नाम नरकरूपं तथा दक्षिणायनमप्यन्धंतम एव । अत उत्तरायणे रात्रौ तमोनाशकं ज्योतिर्देयं नरकनिवृत्त्यर्थम् ॥ ४७ ॥ हविषा घृतेन ओषधीरसै तिलसर्षपादिस्नेहै वसामेदोस्थीनि प्राण्यवयवास्तेषां निर्यासा· स्नेहा वसादय पृथग्वा निर्यासात् ॥ ५२ ॥

गृह्णन्ति देवता नित्यमाशंसन्ति सदा गृहान्
बाह्याश्चागन्तवो येऽन्ये यक्षराक्षसपन्नगाः ५८
इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा ।
ते प्रीताः प्रीणयन्त्येनमायुषा यशसा धनैः ॥
बलयः सह पुष्पैस्तु देवानामुपहारयेत् ।
दधिदुग्धमयाः पुण्याः सुगन्धाः प्रियदर्शनाः
कार्या रुधिरमांसाढ्या बलयो यक्षरक्षसाम् ।
सुरासवपुरस्कारा लाजोल्लापिकभूषिताः ६१
नागानां दयिता नित्यं पद्मोत्पलविमिश्रिताः
तिलान् गुडसुसंपन्नान्भूतानामुपहारयेत् ६२
अग्रदाताग्रभोगी स्याद्बलवीर्यसमन्वितः ।
तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ६३
ज्वलन्त्यहरहो वेश्म याश्चास्य गृहदेवताः ।
ताः पूज्या भूतिकामेन प्रसृताग्रप्रदायिना ॥
इत्येतदसुरेन्द्राय काव्यः प्रोवाच भार्गवः ।
सुवर्णाय मनुः प्राह सुवर्णो नारदाय च ॥ ६५
नारदोऽपि मयि प्राह गुणानेतान्महाद्युते ।
त्वमप्येतद्विदित्वेह सर्वमाचर पुत्रक ॥ ६६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि सुवर्णमनुसंवादो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

## ९९

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुत मे भरतश्रेष्ठ पुष्पधूपप्रदायिनाम् ।
फलं बलिविधाने च तद्भूयो वक्तुमर्हसि ॥ १
धूपप्रदानस्य फलं प्रदीपस्य तथैव च ।
बलयश्च किमर्थं वै क्षिप्यन्ते गृहमेधिभिः ॥ २

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहास पुरातनम् ।
नहुषस्य च संवादमगस्त्यस्य भृगोस्तथा ॥ ३
नहुषो हि महाराज राजर्षिः सुमहातपाः ।
देवराज्यमनुप्राप्तः सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ४
तत्रापि प्रयतो राजन्नहुषस्त्रिदिवे वसन् ।
मानुषीश्चैव दिव्याश्च कुर्वाणो विविधाः क्रियाः
मानुष्यस्तत्र सर्वाः स्म क्रियास्तस्य महात्मनः
प्रवृत्तास्त्रिदिवे राजन्दिव्याश्चैव सनातनाः ६
अग्निकार्याणि समिधः कुशाः सुमनसस्तथा ।
बलयश्चान्नलाजाभिर्धूपनं दीपकर्म च ॥ ७
सर्वं तस्य गृहे राज्ञः प्रावर्तत महात्मनः ।
जपयज्ञान्मनोयज्ञांस्त्रिदिवेऽपि चकार सः ॥८
देवानभ्यर्चयच्चापि विधिवत्स सुरेश्वरः ।
सर्वानेव यथान्याय यथापूर्वमरिन्दम ॥ ९
अथेन्द्रोऽहमिति ज्ञात्वा अहंकारं समाविशत्
सर्वाश्चैव क्रियास्तस्य पर्यहीयन्त भूपतेः ॥१०
स ऋषीन्वाहयामास वरदानमदान्वितः ।
परिहीनक्रियश्चैव दुर्बलत्वमुपेयिवान् ॥ ११
तस्य वाहयतः कालो मुनिमुख्यांस्तपोधनान्
अहंकाराभिभूतस्य सुमहानभ्यवर्तत ॥ १२
अथ पर्यायशः सर्वान्वाहनायोपचक्रमे।
पर्यायश्चाप्यगस्त्यस्य समपद्यत भारत ॥ १३
अथागत्य महातेजा भृगुर्ब्रह्मविदां वरः ।
अगस्त्यमाश्रमस्थं वै समुपेत्येदमब्रवीत् ॥ १४
एवं वयमसत्कारं देवेन्द्रस्यास्य दुर्मतेः ।
नहुषस्य किमर्थं वै मर्षयाम महामुने ॥ १५

अगस्त्य उवाच ।

कथमेष मया शक्यः शप्तु यस्य महामुने ।
वरदेन वरो दत्तो भवतो विदितश्च सः ॥ १६
यो मे दृष्टिपथं गच्छेत्स मे वश्यो भवेदिति ।
इत्यनेन वरं देवो याचितो गच्छता दिवम् ।
एव न दग्धः स मया भवता च न संशयः ।
अन्येनाप्यृषिमुख्येन न दग्धो न च पातितः ॥

---

लाजोल्लापिकभूषिता उल्लापिक उपरिलापनम् ॥ ६१ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टनवतितमोऽध्याय ॥ ९८ ॥

९९

श्रुतमिति ॥ १ ॥ लाजाभि आर्षं स्त्रीत्वम् ॥ ७ ॥

अमृतं चैव पानाय दत्तमस्मै पुरा विभो ।
महात्मना तदर्थं च नास्माभिर्विनिपात्यते ॥
प्रायच्छत वरं देवः प्रजानां दुःखकारणम् ।
द्विजेष्वधर्मयुक्तानि स करोति नराधमः २०
तत्र यत्प्राप्तकालं नस्तद्ब्रूहि वदतां वर ।
भवांश्चापि यथा ब्रूयात्तत्कर्ताऽस्मि न संशयः
भृगुरुवाच ।
पितामहनियोगेन भवन्तं सोऽहमागतः ।
प्रतिकर्तुं बलवति नहुषे दैवमोहिते ॥ २२
अद्य हि त्वां सुदुर्बुद्धी रथे योक्ष्यति देवराट् ।
अद्यैनमहमुद्वृत्तं करिष्येऽनिन्द्रमोजसा ॥ २३
अद्येन्द्रं स्थापयिष्यामि पश्यतस्ते शतक्रतुम् ।
सञ्चाल्य पापकर्माणमैन्द्रात् स्थानात्सुदुर्मतिम्
अद्य चासौ कुदेवेन्द्रस्त्वां पदा धर्षयिष्यति ।
दैवोपहतचित्तत्वादात्मनाशाय मन्दधीः २५
व्युत्क्रान्तधर्मं तमहं धर्षणामर्षितो भृशम् ।
अहिर्भवस्वेति रुषा शप्स्ये पापं द्विजद्रुहम् ॥
तत एनं सुदुर्बुद्धिं धिक्शब्दाभिहतत्विषम् ।
धरण्यां पातयिष्यामि पश्यतस्ते महामुने २७
नहुषं पापकर्माणमैश्वर्यबलमोहितम् ।
यथा च रोचते तुभ्यं तथा कर्तास्म्यहं मुने ॥
एवमुक्तस्तु भृगुणा मैत्रावरुणिरव्ययः ।
अगस्त्यः परमप्रीतो बभूव विगतज्वरः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अगस्त्यभृगुसंवादो नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

## १००

युधिष्ठिर उवाच ।
कथं वै स विपन्नश्च कथं वै पातितो भुवि।
कथ चानिन्द्रतां प्राप्तस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १
भीष्म उवाच ।
एवं तयोः संवदतोः क्रियास्तस्य महात्मनः
सर्वा एव प्रवर्तन्ते या दिव्या याश्च मानुषीः
तथैव दीपदानानि सर्वोपकरणानि वै ।
बलिकर्म च यच्चान्यदुत्सकाश्च पृथग्विधाः ३
सर्वे तस्य समुत्पन्ना देवेन्द्रस्य महात्मनः ।
देवलोके नृलोके च सदाचारा बुधाः स्मृताः
ते चेद्भवन्ति राजेन्द्र ऋद्ध्यन्ते गृहमेधिनः ।
धूपप्रदानैर्दीपैश्च नमस्कारैस्तथैव च ॥ ५
यथा सिद्धस्य चान्नस्य ग्रहायाग्रं प्रदीयते ।
बलयश्च गृहोद्देशे अतः प्रीयन्ति देवताः ॥ ६
यथा च गृहिणस्तोषो भवेद्वै बलिकर्मणि ।
तथा शतगुणा प्रीतिर्देवतानां प्रजायते ॥ ७
एवं धूपप्रदानं च दीपदानं च साधवः ।
प्रयच्छन्ति नमस्कारैर्युक्तमात्मगुणावहम् ॥ ८
स्नानेनाद्भिश्च यत्कर्म क्रियते वै विपश्चिता ।
नमस्कारप्रयुक्तेन तेन प्रीयन्ति देवताः ॥ ९
पितरश्च महाभागा ऋषयश्च तपोधनाः ।
गृह्याश्च देवताः सर्वाः प्रीयन्ते विधिनार्चिताः
इत्येतां बुद्धिमास्थाय नहुषः स नरेश्वरः ।
सुरेन्द्रत्वं महत्प्राप्य कृतवानेतदद्भुतम् ॥ ११
कस्यचित्त्वथ कालस्य भाग्यक्षय उपस्थिते ।
सर्वमेतदवज्ञाय कृतवानिदमीदृशम् ॥ १२
ततः स परिहीणोऽभूत्सुरेन्द्रो बलदर्पतः ।
धूपदीपोदकविधिं न यथावच्चकार ह ॥ १३
ततोऽस्य यज्ञविषयो रक्षोभिः पर्यबध्यत ।
अथागस्त्यमृषिश्रेष्ठं वाहनायाजुहाव ह ॥ १४
द्रुतं सरस्वतीकूलात् स्मयन्निव महाबलः ।
ततो भृगुर्महातेजा मैत्रावरुणिमब्रवीत् ॥ १५

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवनवतितमोऽध्याय ॥ ९९ ॥

१००

**कथमिति** ॥१॥ वत्सका पुत्रादेर्वार्षिकोत्सवा । वत्सः पुत्रादिकोत्सवे इति **मेदिनी** ॥ ३॥ ग्रहाय अतिथये ॥६॥

निमीलय स्वनयने जटां यावद्विशामि ते ।
स्थाणुभूतस्य तस्याथ जटां प्राविशदच्युतः १६
भृगुः स सुमहातेजाः पातनाय नृपस्य च ।
ततः स देवराट् प्राप्तस्तमृषिं वाहनाय वै १७
ततोऽगस्त्यः सुरपतिं वाक्यमाह विशांपते ।
योजयस्वेति मां क्षिप्रं कं च देशं वहामि ते ॥
यत्र वक्ष्यसि तत्र त्वां नयिष्यामि सुराधिप
इत्युक्तो नहुषस्तेन योजयामास तं मुनिम् १९
भृगुस्तस्य जटान्तस्थो बभूव हृषितो भृशम् ।
न चापि दर्शनं तस्य चकार स भृगुस्तदा २०
वरदानप्रभावज्ञो नहुषस्य महात्मनः ।
न चुकोप तदाऽगस्त्यो युक्तोऽपि नहुषेण वै ॥
तं तु राजा प्रतोदेन चोदयामास भारत ।
न चुकोप स धर्मात्मा ततः पादेन देवराट् ॥
अगस्त्यस्य तदा क्रुद्धो वामेनाभ्यहनच्छिरः ।
तस्मिन् शिरस्यभिहते स जटान्तर्गतो भृगुः
शशाप बलवत्क्रुद्धो नहुषं पापचेतसम् ।
यस्मात्पदाऽहतः क्रोधाच्छिरसीमं महामुनिम्
तस्मादाशु महीं गच्छ सर्पो भूत्वा सुदुर्मते ।
इत्युक्तः स तदा तेन सर्पो भूत्वा पपात ह २५
अदृष्टेनाथ भृगुणा भूतले भरतर्षभ ।
भृगुं हि यदि सोऽद्रक्ष्यन्नहुषः पृथिवीपते २६
न च शक्तोऽभविष्यद्वै पातने तस्य तेजसा ।
स तु तैस्तैः प्रदानैश्च तपोभिर्नियमैस्तथा २७
पतितोऽपि महाराज भूतले स्मृतिमानभूत् ।
प्रसादयामास भृगुं शापान्तो मे भवेदिति २८
ततोऽगस्त्यः कृपाविष्टः प्रासादयत तं भृगुम्
शापान्तार्थे महाराज स च प्रादात्कृपान्वितः

भृगुरुवाच ।

राजा युधिष्ठिरो नाम भविष्यति कुलोद्वहः
स त्वां मोक्षयिता शापादित्युक्त्वाऽन्तरधीयत
अगस्त्योऽपि महातेजाः कृत्वा कार्यं शतक्रतोः
स्वमाश्रमपदं प्रायात्पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥
नहुषोपि त्वया राजंस्तस्माच्छापात्समुद्धृतः
जगाम ब्रह्मभवनं पश्यतस्ते जनाधिप ॥ ३२
तदा स पातयित्वा तं नहुषं भूतलं भृगुः ।
जगाम ब्रह्मभवनं ब्रह्मणे च न्यवेदयत् ॥ ३३
ततः शक्रं समानाय्य देवानाह पितामहः ।
वरदानान्मम सुरा नहुषो राज्यमाप्तवान् ३४
स चागस्त्येन क्रुद्धेन भ्रंशितो भूतलं गतः ।
न च शक्यं विना राज्ञा सुरा वर्तयितुं क्वचित्
तस्मादयं पुनः शक्रो देवराज्येऽभिषिच्यताम्
एवं संभाषमाणं तु देवाः पार्थ पितामहम् ३६
एवमस्त्विति संहृष्टाः प्रत्यूचुस्तं नराधिप ।
सोऽभिषिक्तो भगवता देवराज्ये च वासवः
ब्रह्मणा राजशार्दूल यथापूर्वं व्यरोचत ।
एवमेतत्पुरावृत्तं नहुषस्य व्यतिक्रमात् ॥ ३८
स च तैरेव संसिद्धो नहुषः कर्मभिः पुनः ।
तस्माद्दीपाः प्रदातव्याः सायं वै गृहमेधिभिः
दिव्यं चक्षुरवाप्नोति प्रेत्य दीपस्य दायकः ।
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा दीपदाश्च भवन्त्युत ४०
यावदक्षिनिमेषाणि ज्वलन्ते तावतीः समाः
रूपवान्बलवांश्चापि नरो भवति दीपदः ४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अगस्त्यभृगुसंवादो नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## १०१

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मणस्वानि ये मन्दा हरन्ति भरतर्षभ ।
नृशंसकारिणो मूढाः क्व ते गच्छन्ति मानवाः

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
चाण्डालस्य च संवादं क्षत्रबन्धोश्च भारत २

पदा हन पादेन हतवानसि ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

ब्राह्मणस्वानीति ॥ १ ॥

राजन्य उवाच ।

वृद्धरूपोऽसि चाण्डाल बालवच्च विचेष्टसे
श्वखराणां रजःसेवी कस्मादुद्विजसे गवां ३
साधुभिर्गर्हितं कर्म चाण्डालस्य विधीयते ।
कस्माद्गोरजसा ध्वस्तमपां कुण्डे निषिञ्चसि

चाण्डाल उवाच ।

ब्राह्मणस्य गवां राजन् ह्रियतीनां रजः पुरा
सोममुध्वंसयामास तं सोमं येऽपिबन्द्विजाः
दीक्षितश्च स राजाऽपि क्षिप्रं नरकमाविशत्
सह तैर्याजकैः सर्वैर्ब्रह्मस्वमुपजीव्य तत् ॥ ६
येऽपि तत्रापिबन्क्षीरं घृतं दधि च मानवाः
ब्राह्मणाः सहराजन्याः सर्वे नरकमाविशन्
जघ्नुस्ताःपयसा पुत्रांस्तथा पौत्रान्विधुन्वतीः
पशूनवेक्षमाणाश्च साधुवृत्तेन दम्पती ॥ ८
अहं तत्रावसं राजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
तासां मे रजसा ध्वस्तं भैक्षमासीन्नराधिप
चाण्डालोऽहं ततो राजन्भुक्त्वा तदभवं नृप
ब्रह्मस्वहारी च नृपः साऽप्रतिष्ठां गतिं ययौ ॥
तस्माद्धरेन्न विप्रस्वं कदाचिदपि किञ्चन ।
ब्रह्मस्वं रजसा ध्वस्तं भुक्त्वा मां पश्य यादृशम्
तस्मात्सोमोऽप्यविक्रेयः पुरुषेण विपश्चिता
विक्रयं त्विह सोमस्य गर्हयन्ति मनीषिणः ॥
ये चैनं क्रीणते तात ये च विक्रीणते जनाः
ते तु वैवस्वतं प्राप्य रौरवं यान्ति सर्वशः ॥
सोमं तु रजसा ध्वस्तं विक्रीणन्विधिपूर्वकम्
श्रोत्रियो वार्धुषी भूत्वा न चिरं स विनश्यति
नरकं त्रिंशतं प्राप्य स्वविष्ठामुपजीवति ।
श्वचर्यामभिमानं च सखिदारे च विप्लवम् १५
तुलया धारयन्धर्ममभिमान्यतिरिच्यते ।
श्वानं वै पापिनं पश्य विवर्णं हरिणं कृशम्
अभिमानेन भूतानामिमां गतिमुपागतम् ।
अहं वै विपुले तात कुले धनसमन्विते ॥ १७
अन्यस्मिन् जन्मनि विभो ज्ञानविज्ञानपारगः
अभवं तत्र जानानो ह्येतान्दोषान्मदात्सदा ॥
संरब्ध एव भूतानां पृष्ठमांसमभक्षयम् ।
सोऽहं तेन च वृत्तेन भोजनेन च तेन वै १९
इमामवस्थां संप्राप्तः पश्य कालस्य पर्ययम् ।
आदीप्तमिव चैलान्तं भ्रमरैरिव चार्दितम् २०
धावमानं सुसंरब्धं पश्य मां रजसान्वितम्
स्वाध्यायैस्तु महत्पापं हरन्ति गृहमेधिनः २१
दानैः पृथग्विधैश्चापि यथा प्राहुर्मनीषिणः ।
तथा पापकृतं विप्रमाश्रमस्थं महीपते ॥ २२
सर्वसंगविनिर्मुक्तं छन्दांस्युत्तारयन्त्युत ।
अहं हि पापयोन्यां वै प्रसूतः क्षत्रियर्षभ ।
निश्चयं नाधिगच्छामि कथं मुच्येयमित्युत ॥
जातिस्मरत्वं च मम केनचित्पूर्वकर्मणा ।
शुभेन येन मोक्षं वै प्राप्तुमिच्छाम्यहं नृप २४
त्वामिमं संप्रपन्नाय संशयं ब्रूहि पृच्छते ।
चाण्डालत्वात्कथमहं मुच्येयमिति सत्तम ॥

राजन्य उवाच ।

चाण्डाल प्रतिजानीहि येन मोक्षमवाप्स्यसि
ब्राह्मणार्थे त्यजन्प्राणान्गतिमिष्टामवाप्स्यसि
दत्त्वा शरीरं क्रव्याद्भ्यो रणाग्नौ द्विजहेतुकम्
हुत्वा प्राणान्प्रमोक्षस्ते नान्यथा मोक्षमर्हसि

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तदा तेन ब्रह्मस्वार्थे परन्तप ।
हुत्वा रणमुखे प्राणान्गतिमिष्टामवाप ह २८
तस्माद्रक्ष्यं त्वया पुत्र ब्रह्मस्वं भरतर्षभ ।
यदीच्छसि महाबाहो शाश्वतीं गतिमात्मनः

---

रजःसेवी रजोगुण्ठितः ॥ ३ ॥ गोरजसा गोपरागेण यथा पुष्पस्य परागो रजःकणस्तद्वान्दोलने परितः प्रसर्पति । एवं प्रचलन्त्या धेनोरूधसः सकाशात्प्रसरन्त्यः क्षीरविप्रुषोऽत्र परागपर्यायेण रजःपदेनोच्यन्ते। तथा च मेदिनी–रजः क्लीबं गुणान्तरे। आर्तवे च परागे च रेणुमात्रे च दृश्यते इति । ध्वस्तं व्याप्तं शरीरमिति शेषः । विप्रुण्मात्रेणापि ब्रह्मस्वेन देहस्निग्धत्वं माभूदिति भावः ॥ ४ ॥ ह्रियतीनां गोग्रहे केनचिद्राज्ञा ह्रियमाणानां रजः क्षीरं कर्तृ मार्गस्थवल्लीरूपं सोममुध्वंसयामास नाशितवत् ॥ ५ ॥ तत्र गोहर्तृणा पुरे ॥ ७ ॥ ता हृता गावो विधुन्वतीः स्वस्वस्वामिवत्सवियोगार्त्या शरीरं कंपयन्त्यः परैः पीतेन स्वपयसा तेषां पुत्रपौत्रान् दंपती च जघ्नुः सद्योऽल्पायुषश्चक्रुः ॥ ८ ॥ तत्र देशे काले च ॥ ९ ॥ प्रसंगात्सोमविक्रयं निन्दति—**तस्मादिति** ॥ १२ ॥ एनं ब्रह्मस्वसृष्टम् ॥ १३ ॥ चिरं न विनश्यतीति न अपितु चिरं नरकवासान्नश्यत्येव ॥ १४ ॥ श्वचर्यां नीचसेवाम् ॥ १५॥ श्वचर्यादित्रयं तुलया धारयंस्तुल्यं मन्वानोऽभिमानी धर्ममतिक्रम्य रिच्यतेतिरिक्तो भवति अभिमानी इतरद्वयापेक्षया अत्यन्तं पापीत्यर्थः॥ १६ ॥ भूतानामुपरि सदा संरब्ध एव कुपित एवेत्यन्वयः ॥ १९ ॥ भ्रमरैस्तीक्ष्णतुण्डैर्दश्यमानमिव चैलान्तवद्दह्यमानमिव क्लिश्यन्तं मा पश्य ॥ २० ॥ रक्ष्यमेव न तु भक्ष्यम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि राजन्यचाण्डालसंवादो नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## १०२

युधिष्ठिर उवाच ।
एके लोकाः सुकृतिनः सर्वे त्वाहो पितामह
तत्र तत्रापि भिन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह १
भीष्म उवाच ।
कर्मभिः पार्थ नानात्व लोकाना याति मानवाः
पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतो नराः
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहास पुरातनम् ।
गौतमस्य मुनेस्तात संवादं वासवस्य च ३
ब्राह्मणो गौतमः कश्चिन्मृदुर्दान्तो जितेन्द्रियः
महावने हस्तिशिशुं परिद्यूनममातृकम् ॥ ४
तं दृष्ट्वा जीवयामास सानुक्रोशो धृतव्रतः ।
स तु दीर्घेण कालेन बभूवातिबलो महान् ५
तं प्रभिन्नं महानागं प्रस्रुतं पर्वतोपमम् ।
धृतराष्ट्रस्य रूपेण शक्रो जग्राह हस्तिनम् ॥ ६
ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा गौतमः संशितव्रतः ।
अभ्यभाषत राजानं धृतराष्ट्रं महातपाः ॥ ७
मा मेऽहार्षीर्हस्तिनं पुत्रमेन
दुःखात्पुष्टं धृतराष्ट्राकृतज्ञ ।
मैत्रं सतां सप्तपदं वदन्ति
मित्रद्रोहो मैव राजन् स्पृशेत्वाम् ८
इध्मोदकप्रदातारं शून्यपालं ममाश्रमे ।
विनीतमाचार्यकुले सुयुक्तं गुरुकर्मणि ॥ ९
शिष्टं दान्तं कृतज्ञं च प्रियं च सततं मम ।
न मे विक्रोशतो राजन् हर्तुमर्हसि कुञ्जरम् ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
गवां सहस्रं भवते ददानि
दासीशतं निष्कशतानि पञ्च ।
अन्यच्च वित्तं विविधं महर्षे
किं ब्राह्मणस्येह गजेन कृत्यम् ॥ ११
गौतम उवाच ।
तवैव गावो हि भवन्तु राजन्
दास्यः सनिष्का विविध च रत्नम् ।
अन्यच्च वित्तं विविधं नरेन्द्र
किं ब्राह्मणस्येह धनेन कृत्यम् ॥ १२
धृतराष्ट्र उवाच ।
ब्राह्मणानां हस्तिभिर्नास्ति कृत्यं
राजन्यानां नागकुलानि विप्र ।
स्वं वाहनं नयतो नास्त्यधर्मो
नागश्रेष्ठं गौतमास्मान्निवर्त ॥ १३
गौतम उवाच ।
यत्र प्रेतो नन्दति पुण्यकर्मा
यत्र प्रेतः शोचते पापकर्मा ।
वैवस्वतस्य सदने महात्मं-
स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १४
धृतराष्ट्र उवाच ।
ये निष्क्रिया नास्तिकाः श्रद्दधानाः
पापात्मान इन्द्रियार्थे निविष्टाः ।
यमस्य ते यातनां प्राप्नुवन्ति
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १५
गौतम उवाच ।
वैवस्वती संयमनी जनानां
यत्रानृतं नोच्यते यत्र सत्यम् ।
यत्राबला बलिनं यातयन्ति
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १६
धृतराष्ट्र उवाच ।
ज्येष्ठां स्वसारं पितरं मातरं च
यथा शत्रुं मदमत्ताश्चरन्ति ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र १७

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

१०२

**एके इति** । विद्याभ्यासश्रद्धादितारतम्यात्कर्मफलतारतम्यमस्ति उत नेति प्रश्नार्थ ॥ १ ॥ **कर्मभिरिति** । पुण्यपापयोरिव पुण्यानामवान्तरभेदोऽस्तीत्यर्थ ॥ २ ॥ ब्राह्मणस्य ब्राह्मणसम्बन्धिना धनेन॥१२॥ यातयिष्ये हस्तिन स्वीयं फलं त्वत्तो ग्रहीष्ये इत्यर्थ ॥ १४ ॥

गौतम उवाच ।
मन्दाकिनी वैश्रवणस्य राज्ञो
महाभागा भोगिजनप्रवेश्या ।
गन्धर्वयक्षैरप्सरोभिश्च जुष्टा
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १८
धृतराष्ट्र उवाच ।
अतिथिव्रताः सुव्रता ये जना वै
प्रतिश्रयं ददति ब्राह्मणेभ्यः ।
शिष्टाशिनः संविभज्याश्रितांश्च
मन्दाकिनीं तेऽपि विभूषयन्ति १९
गौतम उवाच ।
मेरोरग्रे यद्वनं भाति रम्यं
सुपुष्पितं किंनरीगीतजुष्टम् ।
सुदर्शना यत्र जम्बूर्विशाला
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २०
धृतराष्ट्र उवाच ।
ये ब्राह्मणा मृदवः सत्यशीला
बहुश्रुताः सर्वभूताभिरामाः ।
येऽधीयते सेतिहासं पुराणं
मध्वाहुत्या जुह्वति वै द्विजेभ्यः ॥ २१
तथाविधानामेष लोको महर्षे
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ।
यद्विद्यते विदितं स्थानमस्ति
तद्ब्रूहि त्वं त्वरितो ह्येष यामि ॥ २२
गौतम उवाच ।
सुपुष्पितं किं नरराज जुष्टं
प्रियं वनं नन्दनं नारदस्य ।
गन्धर्वाणामप्सरसां च शश्व-
त्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २३
धृतराष्ट्र उवाच ।
ये नृत्यगीते कुशला जनाः सदा
ह्ययाचमानाः सहिताश्चरन्ति ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २४
गौतम उवाच ।
यत्रोत्तराः कुरवो भान्ति रम्या
देवैः सार्धं मोदमाना नरेन्द्र ।
यत्राग्नियौनाश्च वसन्ति लोका
अब्योनयः पर्वतयोनयश्च ॥ २५
यत्र शक्रो वर्षति सर्वकामा-
न्यत्र स्त्रियः कामचारा भवन्ति ।
यत्र चेर्ष्या नास्ति नारीनराणां
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २६
धृतराष्ट्र उवाच ।
ये सर्वभूतेषु निवृत्तकामा
अमांसादा न्यस्तदण्डाश्चरन्ति ।
न हिंसन्ति स्थावरं जङ्गमं च
भूतानां ये सर्वभूतात्मभूताः ॥ २७
निराशिषो निर्ममा वीतरागा
लाभालाभे तुल्यनिन्दाप्रशंसाः ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २८
गौतम उवाच ।
ततोऽपरे भान्ति लोकाः सनातनाः
सुपुण्यगन्धा विरजा वीतशोकाः ।
सोमस्य राज्ञः सदने महात्मन-
स्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये २९
धृतराष्ट्र उवाच ।
ये दानशीलान् प्रतिगृह्णते सदा
न चाप्यर्थांश्चाददते परेभ्यः ।
येषामदेयमर्हते नास्ति किंचि-
त्सर्वातिथ्याः सुप्रसादा जनाश्च ३०
ये क्षन्तारो नाभिजल्पन्ति चान्यान्
सत्रीभूताः सततं पुण्यशीलाः ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ३१
गौतम उवाच ।
ततोऽपरे भान्ति लोकाः सनातना
विरजसो वितमस्का विशोकाः ।
आदित्यदेवस्य पदं महात्मन-
स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ३२
धृतराष्ट्र उवाच ।
स्वाध्यायशीला गुरुशुश्रूषणे रता-
स्तपस्विनः सुव्रताः सत्यसन्धाः ।
आचार्याणामप्रतिकूलभाषिणो
नित्योत्थिता गुरुकर्मस्वचोद्याः ॥३३

अग्नियौना धृष्टद्युम्नवदग्निरेव यौनं योनिर्येषां ते ॥ २५ ॥ क्षन्तार क्षमिण सत्रीभूता भूतानामाच्छादनवद्रक्षका ॥३१॥

तथाविधानामेष लोको महर्षे
विशुद्धानां भावितो वाग्यतानाम् ।
सत्ये स्थितानां वेदविदां महात्मनां
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३४

गौतम उवाच ।

ततोऽपरे भान्ति लोकाः सनातनाः
सुपुण्यगन्धा विरजा विशोकाः ।
वरुणस्य राज्ञः सदने महात्मन-
स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३५

धृतराष्ट्र उवाच ।

चातुर्मास्यैर्ये यजन्ते जनाः सदा
तथेष्टीनां दशशतं प्राप्नुवन्ति ।
ये चाग्निहोत्रं जुह्वति श्रद्दधाना
यथाम्नायं त्रीणि वर्षाणि विप्राः ३६
सुधारिणां धर्मधुरे महात्मनां
यथोदिते वर्त्मनि सुस्थितानाम् ।
धर्मात्मनामुद्वहतां गतिं तां
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ३७

गौतम उवाच ।

इन्द्रस्य लोका विरजा विशोका
दुरन्वयाः काङ्क्षिता मानवानाम् ।
तस्याहं ते भवने भूरितेजसो
राजन्निमं हस्तिनं यातयिष्ये ३८

धृतराष्ट्र उवाच ।

शतवर्षजीवी यश्च शूरो मनुष्यो
वेदाध्यायी यश्च यज्वाऽप्रमत्तः ।
एते सर्वे शक्रलोकं व्रजन्ति
परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ३९

गौतम उवाच ।

प्राजापत्याः सन्ति लोका महान्तो
नाकस्य पृष्ठे पुष्कला वीतशोकाः ।
मनीषिताः सर्वलोकोद्भवानां
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ४०

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये राजानो राजसूयाभिषिक्ता
धर्मात्मानो रक्षितारः प्रजानाम् ।
ये चाश्वमेधावभृथे प्लुताङ्गा-
स्तेषां लोका धृतराष्ट्रो न तत्र ४१

गौतम उवाच ।

ततः परं भान्ति लोकाः सनातनाः
सुपुण्यगन्धा विरजा वीतशोकाः ।
तस्मिन्नहं दुर्लभे चाप्यधृष्ये
गवां लोके हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४२

धृतराष्ट्र उवाच ।

यो गोसहस्री शतदः समां समां
गवां शती दश दद्याच्च शक्त्या ।
तथा दशभ्यो यश्च दद्यादिहैकां
पञ्चभ्यो वा दानशीलस्तथैकाम् ४३
ये जीर्यन्ते ब्रह्मचर्येण विप्रा
ब्राह्मीं वाचं परिरक्षन्ति चैव ।
मनस्विनस्तीर्थयात्रापरायणा-
स्ते तत्र मोदन्ति गवां निवासे ॥ ४४
प्रभासं मानसं तीर्थं पुष्कराणि महत्सरः ।
पुण्यं च नैमिषं तीर्थं बाहुदां करतोयिनीम्४५
गयां गयशिरश्चैव विपाशां स्थूलवालुकाम्
कृष्णां गङ्गां पञ्चनदं महाह्रदमथापि च ४६
गोमतीं कौशिकीं पंपां महात्मानो धृतव्रताः
सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां ये तु यान्ति च ४७
तत्र ते दिव्यसंस्थाना दिव्यमाल्यधराःशिवाः
प्रयान्ति पुण्यगन्धाढ्या धृतराष्ट्रो न तत्र वै४८

गौतम उवाच ।

यत्र शीतभयं नास्ति न चोष्णभयमण्वपि ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न दुःखं न सुखं तथा
न द्वेष्यो न प्रियः कश्चिन्न बन्धुर्न रिपुस्तथा।
न जरामरणे तत्र न पुण्यं न च पातकम् ५०
तस्मिन्विरजसि स्फीते प्रज्ञासत्त्वव्यवस्थिते।
स्वयंभुभवने पुण्ये हस्तिनं मे प्रदास्यसि ५१

धृतराष्ट्र उवाच ।

निर्मुक्ताः सर्वसङ्गैर्ये कृतात्मानो यतव्रताः ।
अध्यात्मयोगसंस्थानैर्युक्ताः स्वर्गगतिं गताः
ते ब्रह्मभवनं पुण्यं प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः ।
न तत्र धृतराष्ट्रस्ते शक्यो द्रष्टुं महामुने ॥ ५२

गौतम उवाच ।

रथंतरं यत्र बृहच्च गीयते
यत्र वेदी पुण्डरीकैस्तृणोति
यत्रोपयाति हरिभिः सोमपीथी
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ५४

---

धर्म एव धुरः क्षुरस्तत्र सुष्ठु आत्मा संधारयन्ति ते सुधारिणस्तेषां धर्मधुरे इत्यपि पाठ ॥ ३७ ॥

बुध्यामि त्वां वृत्रहणं शतक्रतुं
व्यतिक्रमन्तं भुवनानि विश्वा ।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं कदाचि-
दकार्षं ते मनसोऽभिषंगात् ५५

शतक्रतुरुवाच ।

मघवाऽहं लोकपथं प्रजाना-
मन्वागमं परिवादे गजस्य ।
तस्माद्भवान्प्रणतं माऽनुशास्तु
ब्रवीषि यत्तत्करवाणि सर्वम् ५६

गौतम उवाच ।

श्वेत करेणुं मम पुत्रं हि नागं
यं मेऽहार्षीर्दशवर्षाणि बालम् ।
यो मे वने वसतोऽभूद्द्वितीय-
स्तमेव मे देहि सुरेन्द्र नागम् ॥ ५७

शतक्रतुरुवाच ।

अयं सुतस्ते द्विजमुख्य नाग
आगच्छति त्वामभिवीक्षमाणः ।
पादौ च ते नासिकयोपजिघ्रते
श्रेयो ममाध्याहि नमश्च तेऽस्तु ५८

गौतम उवाच ।

शिवं सदैवेह सुरेन्द्र तुभ्यं
ध्यायामि पूजां च सदा प्रयुञ्जे ।
ममापि त्वं शक्र शिवं ददस्व
त्वया दत्तं प्रतिगृह्णामि नागम् ५९

शतक्रतुरुवाच ।

येषां वेदा निहिता वै गुहायां
मनीषिणां सत्यवतां महात्मनाम् ।
तेषां त्वयैकेन महात्मनाऽस्मि
बुद्धस्तस्मात्प्रीतिमांस्तेऽहमद्य ६०
हन्तैहि ब्राह्मण क्षिप्रं सह पुत्रेण हस्तिना ।
त्वं हि प्राप्तुं शुभाँल्लोकानह्नाय च चिराय च
स गौतमं पुरस्कृत्य सह पुत्रेण हस्तिना ।
दिवमाचक्रमे वज्री सद्भिः सह दुरासदम् ॥
इदं यः शृणुयान्नित्यं यः पठेद्वा जितेन्द्रियः।
स याति ब्रह्मणो लोकं ब्राह्मणो गौतमो यथा

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि हस्तिकूटो नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## १०३

युधिष्ठिर उवाच ।

दानं बहुविधाकारं शान्तिः सत्यमहिंसितम्
स्वदारतुष्टिश्चोक्ता ते फलं दानस्य चैव यत् १
पितामहस्य विदितं किमन्यत्तपसो बलात्
तपसो यत्परं तेऽद्य तन्नो व्याख्यातुमर्हसि २

भीष्म उवाच ।

तपः प्रचक्षते यावत्तावल्लोको युधिष्ठिर ।
मतं ममात्र कौन्तेय तपो नानशनात्परम् ॥ ३
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भगीरथस्य संवादं ब्रह्मणश्च महात्मनः ॥ ४
अतीत्य सुरलोकं च गवां लोकं च भारत ।
ऋषिलोकं च सोऽगच्छत् भगीरथ इति श्रुतम्
तं तु दृष्ट्वा वचः प्राह ब्रह्मा राजन्भगीरथम् ।
कथं भगीरथागास्त्वमिमं लोकं दुरासदम् ७
न हि देवा न गन्धर्वा न मनुष्या भगीरथ ।
आयान्त्यतप्ततपसः कथं वै त्वमिहागतः ७

ब्रह्मत्वं ब्रह्मलोके गतस्यापि न जीर्यत इत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

१०३

दानमिति । अहिंसितं अहिंसा ॥ १ ॥ तपस कृच्छ्र-चान्द्रायणादेर्बलादन्यत्किं बलवत्तरं विदितं न किमपि अपि तु तपसस्तपसा मध्ये यत्परम् ॥२॥ लोको भोग्यप्रदेश ॥३॥

भगीरथ उवाच ।

निष्काणां वै ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः
शतं सहस्राणि सदैव दानम् ।
ब्राह्मं व्रतं नित्यमास्थाय विद्धि
न त्वेवाहं तस्य फलादिहागाम् ॥ ८
दशैकरात्रान्दशपञ्चरात्रा-
नेकादशैकादशकान् क्रतूंश्च ।
ज्योतिष्टोमानां च शतं यदिष्टं
फलेन तेनापि च नागतोऽहम् ॥ ९
यच्चावसं जाह्नवीतीरनित्यः
शतं समास्तप्यमानस्तपोऽहम् ।
अदां च तत्राश्वतरीसहस्रं
नारीपुरं न च तेनाहमागाम् ॥ १०
दशायुतानि चाश्वानां गोयुतानि च विंशतिम्
पुष्करेषु द्विजातिभ्यः प्रादां शतसहस्रशः ११
सुवर्णचन्द्रोत्तमधारिणीनां
कन्योत्तमानामददं सहस्रम् ।
षष्टिं सहस्राणि विभूषितानां
जाम्बूनदैराभरणैर्न तेन ॥ १२
दशार्बुदान्यददं गोसवेज्या-
स्वेकैकशो दश गा लोकनाथ ।
समानवत्साः पयसा समन्विताः
सुवर्णकांस्योपदुहा न तेन ॥ १३
आप्तोर्यामेषु नियतमेकैकस्मिन्दशाददम् ।
गृष्टीनां क्षीरदात्रीणां रोहिणीनां शतानि च
दोग्ध्रीणां वै गवां चापि प्रयुतानि दशैव ह ।
प्रादां दशगुणं ब्रह्मन्न तेनाहमिहागतः ॥ १५
वाजिनां बाह्लिजातानामयुतान्यददं दश ।
कर्काणां हेममालानां न च तेनाहमागतः १६
कोटीश्च काञ्चनस्याष्टौ प्रादां ब्रह्मन्दशान्वहम्
एकैकस्मिन् क्रतौ तेन फलेनाहं न चागतः ॥
वाजिनां श्यामकर्णानां हरितानां पितामह ।
प्रादां हेमस्रजां ब्रह्मन्कोटीर्दश च सप्त च १८
ईषादन्तान्महाकायान्काञ्चनस्रग्विभूषितान्
पद्मिनो वै सहस्राणि प्रादां दश च सप्त च ॥
अलंकृतानां देवेश दिव्यैः कनकभूषणैः ।
रथानां काञ्चनाङ्गानां सहस्राण्यददं दश २०
सप्त चान्यानि युक्तानि वाजिभिः समलंकृतः
दक्षिणावयवाः केचिद्वेदैर्ये सम्प्रकीर्तिताः २१
वाजपेयेषु दशसु प्रादां तेष्वपि चाप्यहम् ।
शक्रतुल्यप्रभावाणामिज्यया विक्रमेण ह २२
सहस्रं निष्ककण्ठानामददं दक्षिणामहम् ।
विजित्य भूपतीन्सर्वानर्थैरिष्ट्वा पितामह २३
अष्टभ्यो राजसूयेभ्यो न च तेनाहमागतः ।
स्रोतश्च यावद्गङ्गायाश्छन्नमासीज्जगत्पते २४
दक्षिणाभिः प्रवृत्ताभिर्मम नागां च तत्कृते ।
वाजिनां च सहस्रे द्वे सुवर्णशतभूषिते ॥ २५
वरं ग्रामशतं चाहमेकैकस्य त्रिधाऽददम् ।
तपस्वी नियताहारः शममास्थाय वाग्यतः २६
दीर्घकालं हिमवति गङ्गायाश्च दुरुत्सहाम् ।
मूर्ध्ना धारां महादेवः शिरसा यामधारयत् ।
न तेनाप्यहमागच्छं फलेनेह पितामह ॥ २७
शम्याक्षेपैरयजं यच्च देवा-
न्साद्यस्कानामयुतैश्चापि यत्तत् ।
त्रयोदशद्वादशाहैश्च देव
सपौण्डरीकान्न च तेषां फलेन २८
अष्टौ सहस्राणि ककुद्मिनामहं
शुक्लर्षभाणामददं द्विजेभ्यः ।
एकैकं वै काञ्चनं शृंगमेभ्यः
पत्नीश्चैषामददं निष्ककण्ठीः ॥ २९
हिरण्यरत्ननिचयानददं रत्नपर्वतान् ।
धनधान्यसमृद्धांश्च ग्रामाञ्शान्ये सहस्रशः ३०
शत शतानां गृष्टीनामददं चाप्यतन्द्रितः ।
इष्ट्वाऽनेकैर्महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो न तेन च ॥ ३१
एकादशाहैरयजं सदक्षिणै-
र्द्विर्द्वादशाहैरश्वमेधैश्च देव ।
आर्कायणैः षोडशभिश्च ब्रह्मं-
स्तेषां फलेनेह न चागतोऽस्मि ॥३२

---

एकरात्रादय क्रतुविशेषा ॥ ९ ॥ नारीपुरं कन्यासमूहमदाम् ॥१०॥ चन्द्रो भूषणविशेष न तेनाहमागामित्यनुवर्तते ॥ १२ ॥ एकैकशो ब्राह्मणाय दश गा ॥ १३ ॥ **आप्तोर्यामः** सोमयाग ॥ १४ ॥ कर्क कर्कोटके वह्नौ शुक्लाश्वे दर्पणे घटे' इति **मेदिनी** । कर्काणा शुक्लाश्वानाम् १६ पद्मिन पद्मचिह्नान् ॥ १९ ॥ दक्षिणाख्या यज्ञाङ्गभूता दक्षिणावयवा ॥ २१ ॥ निष्ककण्ठाना युद्धे जितानां राज्ञां सहस्रं विप्रेभ्यो विप्रवचनाद्दक्षिणा अदद उत्सृष्टवान् ॥ २३ ॥ **शम्या** पृथुबुध्न काष्ठदण्ड स बलेनाक्षिप्तो यावद्दूरं पतति तावद्देशो यस्य वेदिकाया भवति स शम्याक्षेपो याग । तथा साद्यस्कादयो यागविशेषा ॥ २८ ।

निष्कैककण्ठमददं योजनायतं
तद्विस्तीर्णं काञ्चनपादपानाम् ।
वनं वृतानां रत्नविभूषितानां
न चैव तेषामागतोऽहं फलेन ॥ ३३
तुरायणं हि व्रतमप्यधृष्य-
मक्रोधनोऽकरवं त्रिंशतोऽब्दान् ।
शतं गवामष्टशतानि चैव
दिने दिने ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः ॥ ३४
पयस्विनीनामथ रोहिणीनां
तथैवान्याननडुहो लोकनाथ ।
प्रादां नित्यं ब्राह्मणेभ्यः सुरेश
नेहागतस्तेन फलेन चाहम् ॥ ३५
त्रिंशदग्नीनहं ब्रह्मन्नयजं यच्च नित्यदा ।
अष्टाभिः सर्वमेधैश्च नरमेधैश्च सप्तभिः ॥ ३६
दशभिर्विश्वजिद्भिश्च शतैरष्टादशोत्तरैः ।
न चैव तेषां देवेश फलेनाहमिहागमम् ॥ ३७
सरय्वां बाहुदायां च गङ्गायामथ नैमिषे ।
गवां शतानामयुतमददं न च तेन वै ॥ ३८
इन्द्रेण गुह्यं निहितं वै गुहायां
यद्भार्गवस्तपसेहाभ्यविन्दत् ।
जाज्वल्यमानमुशनस्तेजसेह
तत्साधयामासमहं वरेण्य ॥ ३९
ततो मे ब्राह्मणास्तुष्टास्तस्मिन्कर्मणि साधिते
सहस्रमृषयश्चासन्ये वै तत्र समागताः ॥ ४०
उक्तस्तैरस्मि गच्छ त्वं ब्रह्मलोकमिति प्रभो
प्रीतेनोक्तसहस्रेण ब्राह्मणानामहं प्रभो ।
इमं लोकमनुप्राप्तो माभूत्तेऽत्र विचारणा ४१
कामं यथावद्विहितं विधात्रा
पृष्टेन वाच्यं तु मया यथावत् ।
तपो हि नान्यच्चानशनान्मतं मे
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥ ४२
भीष्म उवाच ।
इत्युक्तवन्तं ब्रह्मा तु राजानं स भगीरथम् ।
पूजयामास पूजार्हं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३
तस्मादनशनैर्युक्तो विप्रान्पूजय नित्यदा ।
विप्राणां वचनात्सर्वं परत्रेह च सिध्यति ४४
वासोभिरन्नैर्गोभिश्च शुभैर्नैवेशिकैरपि ।
शुभैः सुरगणैश्चापि तोष्या एव द्विजास्तथा
एतदेव परं गुह्यमलोभेन समाचर ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्रह्मभगीरथसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

## १०४

युधिष्ठिर उवाच ।
शतायुरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च जायते ।
कस्मान्म्रियन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह
आयुष्मान्केन भवति अल्पायुर्वाऽपि मानवः
केन वा लभते कीर्तिं केन वा लभते श्रियम्
तपसा ब्रह्मचर्येण जपहोमैस्तथौषधैः ।
कर्मणा मनसा वाचा तन्मे ब्रूहि पितामह॥२
भीष्म उवाच ।
अत्र तेऽहं प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वमनुपृच्छसि।
अल्पायुर्येन भवति दीर्घायुर्वाऽपि मानवः ४
येन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम्
यथा वर्तयन्पुरुषः श्रेयसा संप्रयुज्यते ॥ ५
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च

---

काञ्चनमयानां वृक्षाणां चूतानां नानावर्णरत्नखचितानां वनमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ अग्नीन् अग्निचयनानि ॥ ३६ ॥ गुहायां निहितं गोपितं गुह्यं यदनशनं तपसा अभ्यविन्दत् आज्ञासीत् उशनस्तेजसा शुक्रस्य बलेन ज्वाज्वल्यमानम् । तच्च वाक्यशेषात्सर्वभोगत्यागात्मकमनशनं सर्वभोगै- र्ब्राह्मणानां संतर्पणं च साधयामासमित्यार्षम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

१०४

शतायुरिति ॥१॥ वर्तयन् अनुतिष्ठन् ॥ ५ ॥

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
त्रसन्ति यस्माद्भूतानि तथा परिभवन्ति च
तस्मात्कुर्यादिहाचारं यदिच्छेद्भूतिमात्मनः।
अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम् ८
आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः।
साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ ९
अप्यदृष्टं श्रवादेव पुरुषं धर्मचारिणम्।
भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम्॥
ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्राभिलंघिनः
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ११
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्णमैथुनाः
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः १२
सर्वलक्षणहीनोपि समुदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयुश्च शतं वर्षाणि जीवति १३
अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः।
अनसूयुरजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४
लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।
नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत्
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः
एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः।
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन॥
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्।
ऋषयो नित्यसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् १८
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः
ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमां

सर्वांस्तान् धार्मिको राजा
शूद्रकर्माणि कारयेत्।
परदारा न गन्तव्या
सर्ववर्णेषु कर्हिचित्॥ २०

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ २१
यावन्तो रोमकूपाः स्युःस्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः
तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ॥ २२
प्रसाधनं च केशानामंजनं दन्तधावनम्।
पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम्॥
पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत्कदाचन।
नातिकल्यं नातिसायं न च मध्यदिने स्थिते
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह।
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च।
प्रदक्षिणं च कुर्वीत परिज्ञातान्वनस्पतीन्॥
चतुष्पथान्प्रकुर्वीत सर्वानेव प्रदक्षिणान्।
मध्यन्दिने निशाकाले अर्धरात्रे च सर्वदा॥
चतुष्पथं न सेवेत उभे संध्ये तथैव च।
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत्।
ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात्पादं पादेन नाक्रमेत्
अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः
अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥
वृथामांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च।
आक्रोशं परिवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत।
ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेद्रुशतीं पापलोक्याम् ३१
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ३२

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्
कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गा-
न्विद्याहीनान्विगर्हितान्।
रूपद्रविणहीनांश्च
सत्यहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ३५

नास्तिक्यं वेदनिंदां च देवतानां च कुत्सनम्
द्वेषस्तम्भोभिमानं च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत्
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत्।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम्
न ब्राह्मणान्परिवदेन्नक्षत्राणि न निर्दिशेत्।
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात्तथास्यायुर्न रिष्यते ३८
कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा

अलक्षणं कुष्ठापस्मारादि विरुद्ध लक्षणम् ॥ ८ ॥ श्रवात् श्रवणात् तं पुरुषम् जनाः साधवः ॥ १० ॥ संकुसुको दुर्जनः अस्थिरश्च सकुसुकोऽस्थिर इत्यमरः ॥ १५ ॥ उपसृष्टं राहुग्रस्तम् ॥ १८ ॥ न रिष्यते न हिंस्यते ॥ ३८ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन्
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ४०
संयावं कृसरं मांसं शष्कुली पायसं तथा ।
आत्मार्थं न प्रकर्तव्यं देवार्थं तु प्रकल्पयेत् ४१
नित्यमग्निं परिचरेद्भिक्षां दद्याच्च नित्यदा ।
वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत् ॥
न चाभ्युदितशायी स्यात्प्रायश्चित्ती तथा भवेत्
मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत ॥ ४३
आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत् ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ४४
भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि विवर्जयेत् ।
उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात्समाहितः ४५
अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद्दन्तधावनम् ।
अकृत्वा देवपूजां च नाभिगच्छेत्कदाचन ।
अन्यत्र तु गुरुं वृद्धं धार्मिकं वा विचक्षणम् ॥
अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ।
न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद्गर्भिणीं वा कदाचन
उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च
प्राक्शिरास्तु स्वपेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिराः
न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत च ।
नान्तर्धाने न संयुक्ते न च तिर्यक्कदाचन ४९
न चापि गच्छेत्कार्येण समयाद्वापि नास्तिकैः
आसनं तु पदाऽऽकृष्य न प्रसज्जेत्तथा नरः ॥
न नग्नः कर्हिचित्स्नायान्न निशायां कदाचन
स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः
न चानुलिंपेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत्
न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः
स्रजश्च नावकृष्येत न बहिर्धारयीत च ।
उदक्यया च सम्भाषां न कुर्वीत कदाचन ॥
नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके ।
उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात्कदाचन ॥ ५४
अन्नं बुभुक्षमाणस्तु त्रिर्मुखेन स्पृशेदपः ।
भुक्त्वा चान्नं तथैव त्रिर्द्विः पुनः परिमार्जयेत्
प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्
प्रस्कन्दयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत्

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः
धन्यं पश्चान्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुंक्ते उदङ्मुखः
अग्निमालभ्य तोयेन सर्वान्प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितले तथा
नाधितिष्ठेत्तुषं जातु केशभस्मकपालिकाः ।
अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्जयेत ५९
शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च धारयेत्
निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन्कदाचन ॥
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ६६
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन
अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन
सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः ।
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।
अभिवादयीत वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वयम्
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वियात्
न चासीतासने भिन्ने भिन्नकांस्यं च वर्जयेत
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति ।
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत्
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः ।
केशग्रहं प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ६८
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते
शिरस्स्नातस्तु तैलैश्च नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत्
तिलसृष्टं न चाश्नीयात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥
नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन ।
वाते च पूतिगन्धे च मनसाऽपि न चिन्तयेत्
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः
आयुरस्य निकृन्तामि प्रजास्तस्याददे तथा ॥

---

त्रीणि भोज्यानि अदृष्टं शूद्रोदक्यादिभिः ॥ ४० ॥ नाभिगच्छेत् राजादीन् प्रति ॥ ४६ ॥ अज्ञातामृतुमतीत्वेन कामुकत्वेन वा ॥ ४७ ॥ अन्तर्धाने अत्यंतमन्धकारे संयुक्ते इतरेण स्त्र्यादिना ॥ ४९ ॥ प्रस्कंदयेदन्नशेषं किंचित्त्यजेत् भुक्त्वा च मनसाऽग्निमुपस्पृशेत् ॥ ५६ ॥ ऋतं निःश्रेयसमिच्छन्निति शेष ॥ ५७ ॥ प्राणान्नासादीन् ऊर्ध्वच्छिद्राणि ॥ ५८ ॥ अवस्नातं स्नानजलम् ॥ ५९ ॥ सावित्राणि मन्त्रविशेषान् ॥ ६० ॥ न रिष्यते हिंस्यते ॥ ६९ ॥ तिलसृष्टं तिलसंयुक्तं सृष्टं भक्ष्यम् ॥ ७० ॥ न चिन्तयेत् वेदम् ॥ ७१ ॥

उच्छिष्टो यः प्राद्रवति
स्वाध्यायं चाधिगच्छति ।
यश्चानध्यायकालेऽपि
मोहादभ्यस्यति द्विजः ॥ ७३
तस्य वेदः प्रणश्येत आयुश्च परिहीयते ।
तस्माद्युक्तो ह्यनध्याये नाधीयीत कदाचन ॥
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रति गां च प्रति द्विजान्
ये मेहन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः ॥
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथा ह्यायुर्न रिष्यते
त्रीन्कृशान्नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः ॥
दहत्याशीविषः क्रुद्धो यावत्पश्यति चक्षुषा ।
क्षत्रियोपि दहेत्क्रुद्धो यावत्स्पृशति तेजसा ॥
ब्राह्मणस्तु कुलं हन्याद्ध्यानेनावेक्षितेन च ।
तस्मादेतत्त्रयं यत्नादुपसेवेत पण्डितः ॥ ७९
गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ८०
सम्यङ्मिथ्या प्रवृत्तेऽपि वर्तितव्यं गुराविह
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ८१
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा ८२
रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पण्डितैः
वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं प्रभो ॥ ८३
रक्तं शिरसि धार्यं तु
तथा वानेयमित्यपि ।
काञ्चनीयाऽपि माला या
न सा दुष्यति कर्हिचित् ॥ ८४
स्नातस्य वर्णकं नित्यमार्द्रं दद्याद्विशांपते।
विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान्नरः ॥ ८५
तथा नान्यधृतं धार्यं न चापदशमेव च ।
अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ॥ ८६
अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि ।
प्रियङ्गुचन्दनाभ्यां च बिल्वेन तगरेण च ॥
पृथगेवानुलिम्पेत केसरेण च बुद्धिमान् ।
उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ८८
पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत् ।
समानमेकपात्रे तु भुञ्जेन्नान्नं जनेश्वर ॥ ८९
नालीढया परिहृतं भक्षयीत कदाचन ।
तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्षते नाप्रदाय च ९०
न संनिकृष्टे मेधावी नाशुचेर्न च सत्सु च ।
प्रतिषिद्धान्न धर्मेषु भक्ष्यान्भुञ्जीत पृष्ठतः ९१
पिप्पलं च वटं चैव शणशाकं तथैव च ।
उदुम्बरं न खादेच्च भवार्थी पुरुषोत्तमः ॥ ९२
आजं गव्यं तथा मांसं मायूरं चैव वर्जयेत् ।
वर्जयेच्छुष्कमांसं च तथा पर्युषितं च यत् ९३
न पाणौ लवणं विद्वान्प्राश्नीयान्न च रात्रिषु ।
दधिसक्तून्न भुञ्जीत वृथामांसं च वर्जयेत् ९४
सायंप्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः ।
वालेन तु न भुञ्जीत परश्राद्धं तथैव च ॥ ९५
वाग्यतो नैकवस्त्रश्च नासंविष्टः कदाचन ।
भूमौ सदैव नाश्नीयान्नानासीनो न शब्दवत्॥
तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशांपते ।
पश्चाद्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः९७
समानमेकपङ्क्त्यां तु भोज्यमन्नं नरेश्वर ।
विषं हालाहलं भुङ्क्ते योऽप्रदाय सुहृज्जने ॥
पानीयं पायसं सक्तून्दधिसर्पिर्मधून्यपि ।
निरस्य शेषमन्येषां न प्रदेयं तु कस्यचित् ९९
भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शङ्कां समाचरेत् ।
दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना ॥

---

मिथ्याप्रवृत्तेऽपि सम्यक्, वर्तितव्यम् ॥८१॥ विपर्यय औत्तरा-धर्यम् ॥८५॥ अपदश दशाहीनम् ॥ ८६॥ प्रियंगु राजि-का 'प्रियंगु स्त्री राजिकाकणयोरपि' इति **मेदिनी** ॥८७॥ तगरस्थगर महाराष्ट्राणा गावबाणइति प्रसिद्धम्। **पृथगिति** । राजिकयानुलेपनं कृत्वा स्नात्वा चन्दनाद्यन्यतमेनानुलेपनं का-र्यमित्यर्थ उपवासं ब्रह्मचर्यम् ॥८८॥ आलीढया रजस्वलया परिकृतं संपादितं नालीढं नापरिहितामिति पाठे आलीट गवाद्याघ्रातं अपरिहितं परिषेचनहीनं, उद्धृतसाराणि क्षीरादीनि प्रेक्षते याचकाय ॥ ९० ॥ मेधावी ना पुरुष अशुचे सन्निकृष्टे न भुंजीत। मेधावी अशुचेरिति गौडा धर्मेषु श्राद्धा-दिषु प्रतिषिद्धान्भक्षान्पृष्टत श्राद्धाद्यभावे न भुञ्जीत ॥९१॥ वालेन केशेन उपलक्षितं परश्राद्ध शत्रुश्राद्धम् ॥९५॥सदैव न सदा नैवेति सम्बन्ध ॥ ९६ ॥ निरस्य पानीयादीन्विहाय अन्येषा भक्षाणा शेषमन्यस्मै न देयं पानीयादेरपि शेषं पुत्रादिभ्य एव देयं पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्य-मिति स्मरणात् । अन्येषा तद्भोजनस्य निषेधात् । गौडास्तु निरस्य शेषमेतेषा न प्रदेयमिति पठन्ति तत्परिसंख्यापत्तेरुपे-क्ष्यते ॥ ९९ ॥ शङ्का जीर्यति नवेति अन्नस्याप्तत्वात् वा अधिकत्वाच्छङ्कया नैव भोक्तव्यमित्यर्थ दधीति तक्रं त्वनु-पानं कर्तव्यमेव यथेष्ट भुक्त्व माभैषीस्तक्रं सलवणं पिबेति तस्य दृष्टार्थत्वोक्ते ॥ १०० ॥

आचम्य चैकहस्तेन परिस्राव्यं तथोदकम् ।
अंगुष्ठं चरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचयेत् ॥ १
पाणिं मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वा चाग्निं समाहितः
ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नोति प्रयोगकुशलो नरः २
अद्भिः प्राणान्समालभ्य नाभिं पाणितले तथा
स्पृशंश्चैव प्रतिष्ठेत न चाप्यार्द्रेण पाणिना ॥ ३
अङ्गुष्ठस्यान्तराले च ब्राह्मं तीर्थमुदाहृतम् ।
कनिष्ठिकायाः पश्चात्तु देवतीर्थमिहोच्यते ४
अङ्गुष्ठस्य च यन्मध्यं प्रदेशिन्याश्च भारत ।
तेन पित्र्याणि कुर्वीत स्पृष्ट्वापो न्यायतः सदा
परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन ।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना ६
पतितैस्तु कथां नेच्छेद्दर्शनं च विवर्जयेत् ।
संसर्गं च न गच्छेत तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ७
न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न च बन्धकीम्
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत्तथाऽऽयुर्विन्दते महत्
स्वे स्वे तीर्थे समाचम्य कार्ये समुपकल्पिते ।
त्रिःपीत्वाऽऽपो द्विः प्रमृज्य कृतशौचो भवेन्नरः
इन्द्रियाणि सकृत्स्पृश्य त्रिरभ्युक्ष्य च मानवः
कुर्वीत पित्र्यं दैवं च वेददृष्टेन कर्मणा ॥ १०
ब्राह्मणार्थे च यच्छौचं तच्च मे शृणु कौरव ।
पवित्रं च हितं चैव भोजनाद्यं तयोस्तथा ११
सर्वशौचेषु ब्राह्मेण तीर्थेन समुपस्पृशेत् ।
निष्ठीव्य तु तथा क्षुत्वा स्पृश्यापो हि शुचिर्भवेत्
वृद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदपि ।
गृहे वासयितव्यास्ते धन्यमायुष्यमेव च १३
गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः
गृहेष्वेते न पापाय तथा वै *तैलपायिकाः ।
उद्दीपकाश्च गृध्राश्च कपोता भ्रमरास्तथा १४
निविशेयुर्यदा तत्र शान्तिमेव तदाऽऽचरेत् ।
अमंगल्यानि चैतानि तथाऽऽक्रोशो महात्मनां
महात्मनोतिगुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित्
अगम्याश्च न गच्छेत राज्ञः पत्नीं सखीस्तथा
वैद्यानां बालवृद्धानां भृत्यानां च युधिष्ठिर ।
बन्धूनां ब्राह्मणाना च तथा शारणिकस्य च
संबन्धिनां च राजेन्द्र तथाऽऽयुर्विंदते महत् ।
ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ॥
तदावसेत्सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर ।
सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन्विद्यां न च समाचरेत्
न भुञ्जीत च मेधावी तथाऽऽयुर्विन्दते महत्
नक्तं न कुर्यात्पित्र्याणि भुक्त्वा चैव प्रसाधनं
पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता
वर्जनीयाश्चैव नित्यं सक्तवो निशि भारत २१
शेषाणि चैव पानानि पानीयं चापि भोजने
सौहित्यं न च कर्तव्यं रात्रौ न च समाचरेत्
द्विजच्छेदं न कुर्वीत भुक्त्वा न च समाचरेत्
महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा २३
वयस्थां च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति ।
अपत्यमुत्पाद्य ततः प्रतिष्ठाप्य कुलं तथा २४
पुत्राः प्रदेया ज्ञानेषु कुलधर्मेषु भारत ।
कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते
पुत्रा निवेश्याश्च कुलाद्भृत्या लभ्याश्च भारत ।
शिरस्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च ॥
नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः ।
न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाऽऽग्नेये च भारत २७
दारुणेषु च सर्वेषु
प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ।
ज्योतिषे यानि चोक्तानि
तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ २८

कुत्र परिस्राव्यं तदाह—अंगुष्ठमिति ॥ १०१ ॥ प्राणान्नासादीन् ॥ ३ ॥ एते तैलपायिकादिवन्न पापाय अभ्युदयायेत्यर्थ । पारावतादयः सर्वे पक्षिविशेषा एव ॥ १४ ॥ शारणिकस्य रक्षणार्थिन ॥ १७ ॥ प्रसाधनं केशाना संस्कारादिकम् ॥ २० ॥ पानीयस्य क्रिया स्नानं 'न नक्तं स्नायात्'इति गृहे रात्रौ शिरःस्नाननिषेध ॥ २१ ॥ पानानि पातुं योग्यानीत्यर्थ । चावदातानि इति गौडपाठ अवदातानि निर्मलान्यपि शेषाणि वर्जनीयानीत्यर्थ । सौहित्यमातृप्तिभोजनं परस्य न कर्तव्यं आत्मनश्च न समाचरेत् ॥ २२ ॥ द्विजच्छेदं पक्षिवधं न कुर्वीत तर्हि पक्षिमांसमेव न भोक्तव्यमिति फलितमित्याशङ्क्याह—भुक्त्वा न समाचरेदिति द्विजान्भुक्त्वाऽपि तच्छेदं न समाचरेत् क्रयक्रीतमेव मांसं भक्ष्यं नतु स्वयं हिंसा कार्येत्यर्थ । भुक्त्वा पानं समाचरेदिति पाठे-भोजनान्ते तक्रं जलं वा पेयमित्यर्थ ॥ २३ ॥ ज्ञानेषु बहुज्ञाननिमित्तं पुत्रा देया विद्वत्सु समर्पणीयाः ॥ २५ ॥ कुलात्सत्कुलसम्बन्धेन निवेश्या विवाह्या लभ्या लम्भनीयाः ॥ २६ ॥ आग्नेये कृत्तिकायाम् ॥ २७ ॥ प्रत्यरिं स्वनक्षत्राद्दिननक्षत्रं यावद्गणयित्वा नवभिर्भागे हृते पञ्चमी तारा प्रत्यरि ॥ २८ ॥

* विष्ठामुखा वडवागुळ इति प्रसिद्धा ।

प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयेत्सुसमाहितः
उदङ्मुखो वा राजेन्द्र तथाऽऽयुर्विन्दते महत्
परिवादं न च ब्रूयात्परेषामात्मनस्तथा ।
परिवादो ह्यधर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ ॥ ३०
वर्जयेद्व्यंगिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तम ।
समार्षां व्यंगितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा
वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम् ।
तथा निकृष्टवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत् ॥
अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षणः
पिंगलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमुद्वोढुमर्हसि ३३
अपस्मारिकुले जातां निहीनां चापि वर्जयेत्।
श्वित्रिणां च कुले जातां क्षयिणा मनुजेश्वर॥
लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता या च लक्षणैः ।
मनोज्ञां दर्शनीयां च तां भवान्वोढुमर्हति ३५
महाकुले निवेष्टव्य सदृशे वा युधिष्ठिर ।
अवरा पतिता चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता
अग्नीनुत्पाद्य यत्नेन क्रियाः सुविहिताश्च याः ।
वेदे च ब्राह्मणैः प्रोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेत्
न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या रक्ष्या दाराश्च सर्वशः
अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादीर्ष्यां विवर्जयेत्
अनायुष्यं दिवा स्वप्नं तथाभ्युदितशायिता ।
प्रगे निशामाशु तथा नैवोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै
पारदार्यमनायुष्यं नापितोच्छिष्टता तथा ।
यत्नतो वै न कर्तव्यमभ्यासश्चैव भारत ॥ ४०
सन्ध्यायां च न भुञ्जीत न स्नायेन्न तथा पठेत्
प्रयतश्च भवेत्तस्यां न च किञ्चित्समाचरेत् ॥
ब्राह्मणान्पूजयेच्चापि तथा स्नात्वा नराधिप ।
देवाश्च प्रणमेत्स्नातो गुरूंश्चाप्यभिवादयेत् ४२
अनिमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः ।
अनर्चिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ॥ ४३
न चैकेन परिव्रज्यं न गन्तव्यं तथा निशि ।
अनागतायां सन्ध्यायां पश्चिमायां गृहे वसेत्
मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् ।
हितं चाप्यहितं चापि न विचार्यं नरर्षभ ४५
धनुर्वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप ।
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव ह ॥ ४६
यत्नवान्भव राजेन्द्र यत्नवान्सुखमेधते ।
अप्रधृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च ॥
प्रजापालनयुक्तश्च न क्षतिं लभते क्वचित् ।
युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत ४८
गान्धर्वशास्त्रं च कलाः परिज्ञेया नराधिप ।
पुराणमितिहासाश्च तथाऽऽख्यानानि यानि च
महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव ते ।
पत्नीं रजस्वलां या च नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत्
स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ।
पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान्भवेत् ५१
एतेन विधिना पत्नीमुपगच्छेत पण्डितः ।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि सर्वशः
यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ॥५३
एष ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः ।
शेषस्त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्याहार्यो युधिष्ठिर॥५४
आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः ।
आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ५६
एतद्यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
अनुकंप्य सर्ववर्णान्ब्रह्मणा समुदाहृतम् १५७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि आयुष्याख्याने
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

---

व्यङ्गिनीं न्यूनाङ्गीं व्यङ्गिता विरुद्धाङ्गेनाधिकेन युक्ता समार्षां समानप्रवराम् ॥ ३१ ॥ अयोनिं अज्ञातकुला वियोनिं हीनकुलाम् ॥ ३३ ॥ प्रगे सन्ध्यायाम् ॥ ३९॥ नापितोच्छिष्टता श्मश्रुकर्मोत्तरमस्नानता अभ्यासोऽध्ययनं च ॥ ४० ॥ दर्शको द्रष्टा ॥४३॥ परिव्रज्यं देशान्तरे गन्तव्यम् ॥ ४४ ॥ आयुष्याणा आयुष्कराणा कर्मणां उद्देश संक्षेप· ॥ ५४ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरधिकशततमोऽध्याय ॥१०४॥

## १०५

युधिष्ठिर उवाच ।
यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तेत भरतर्षभ ।
कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरंस्तद्ब्रवीहि मे ॥ १
भीष्म उवाच ।
ज्येष्ठवत्तात वर्तस्व ज्येष्ठोऽसि सततं भवान् ।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत २
न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम् ।
गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्तच्छिष्यस्य भारत ३
अन्धः स्यादन्धवेलायां जडःस्यादपि वा बुधः
परिहारेण तद्ब्रूयाद्यस्तेषां स्याद्व्यतिक्रमः ॥ ४
प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः ।
श्रियाऽभितप्ताः कौन्तेय भेदकामास्तथारयः
ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते ॥ ६
अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः
अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः
निकृती हि नरो लोकान्पापान्गच्छत्यसंशयम्
विदुलस्येव तत्पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम् ८
सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः ।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च ॥ ९
सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः।
नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम्
अनुपघ्नन्पितुर्दायं जंघाश्रमफलोऽध्वगः ।
स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति ११
भ्रातॄणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत्सह
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कदाचन ॥ १२
न ज्येष्ठो वाऽवमन्येत दुष्कृतः सुकृतोपि वा
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत्तत्तदाचरेत् ॥ १३
धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो जनाः ।
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश
दश चैव पितॄन्माता सर्वां वा पृथिवीमपि ।
गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः १५
माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः ।
ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत१६
स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स चैतान्प्रतिपालयेत्
कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छंदानुवर्तिनः ॥ १७
तमेव चोपजीवेरन् यथैव पितरं तथा ।
शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ॥१८
आचार्यशास्ता या जातिः
सा सत्या साऽजराऽमरा ।
ज्येष्ठा मातृसमा चापि
भगिनी भरतर्षभ ॥ १९
भ्रातुर्भार्या च तद्वत्स्याद्यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

## १०६

युधिष्ठिर उवाच ।
सर्वेषामेव वर्णानां म्लेच्छानां च पितामह
उपवासे मतिरियं कारणं च न विद्महे ॥ १
ब्रह्मक्षत्रेण नियमाश्चर्तव्या इति नः श्रुतम् ।
उपवासे कथं तेषां कृत्यमस्ति पितामह ॥ २

---

१०५

यथेति ॥ १ ॥ या च शिष्यस्य गुरौ वृत्तिस्तां वर्तस्व ॥ २ ॥ तेषां गुरूणाम् ॥ ४ ॥ कृतं मित्रम् अरयः नरा भेदयेयुः ॥ ५ ॥ यवीयसः कनिष्ठान् ॥ ७ ॥ विदुलस्य वेतसस्य । विदुलस्तु पुमानम्लवेतसे वेतसेऽपि चेति मेदिनी जनयितुः पितुः ॥ ८ ॥ जङ्घाश्रम एव फलं धनं यस्य अध्वगः प्रवासी॥११॥उत्थानं भोजनादौ विभागे वा॥१२॥ यदि स्त्री यदि वा कनिष्ठो दुष्कृतस्तथाऽपि तस्य श्रेय आचरेत् ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५

१०६

सर्वेषामिति ॥ १ ॥

नियमांश्चोपवासांश्च सर्वेषां ब्रूहि पार्थिव ।
आप्नोति कां गतिं तात उपवासपरायणः ॥ ३
उपवासः परं पुण्यमुपवासः परायणम् ।
उपोष्येह नरश्रेष्ठ किं फलं प्रतिपद्यते ॥ ४
अधर्मान्मुच्यते केन धर्ममाप्नोति वा कथम् ।
स्वर्गं पुण्यं च लभते कथं भरतसत्तम ॥ ५
उपोष्य चापि किं तेन प्रदेयं स्यान्नराधिप ।
धर्मेण च सुखानर्थांल्लभेद्येन ब्रवीहि तम् ॥ ६
वैशम्पायन उवाच ।
एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं धर्मज्ञं धर्मतत्त्ववित् ।
धर्मपुत्रमिदं वाक्यं भीष्मः शांतनवोऽब्रवीत् ७
भीष्म उवाच ।
इदं खलु मया राजन् श्रुतमासीत्पुरातनम् ।
उपवासविधौ श्रेष्ठा गुणा ये भरतर्षभ ॥ ८
ऋषिमङ्गिरसं पूर्वं पृष्टवानस्मि भारत ।
यथा मां त्व तथैवाहं पृष्टवास्तं तपोधनम् ९
प्रश्नमेतं मया पृष्टो भगवानग्निसंभवः ।
उपवासविधिं पुण्यमाचष्ट भरतर्षभ ॥ १०
अङ्गिरा उवाच ।
ब्रह्मक्षत्रे त्रिरात्रं तु विहितं कुरुनन्दन ।
द्विस्त्रिरात्रमथैकाहं निर्दिष्टं पुरुषर्षभ ॥ ११
वैश्याः शूद्राश्च यन्मोहादुपवासं प्रचक्रिरे ।
त्रिरात्रं वा द्विरात्रं वा तयोर्व्युष्टिर्न विद्यते १२
चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते ।
त्रिरात्रं न तु धर्मज्ञैर्विहितं धर्मदर्शिभिः ॥ १३
पञ्चम्यां वाऽपि षष्ठ्यां च पौर्णमास्यां च भारत
उपोष्य एकभक्तेन नियताऽऽत्मा जितेंद्रियः
क्षमावान् रूपसम्पन्नः श्रुतवांश्चैव जायते ।
नानपत्यो भवेत्प्राज्ञो दरिद्रो वा कदाचन
यजिष्णुः पञ्चमीं षष्ठीं कुले भोजयते द्विजान्
अष्टमीमथ कौरव्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥१६
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते ।
मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत्॥१७
भोजयेच्च द्विजान् शक्त्या
स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ।
सर्वकल्याणसंपूर्णः
सर्वौषधिसमन्वितः ॥ १८
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते ।
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते १९
पौषमासं तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षिपेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते २०
माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते ॥ २१
भगदैवतमासं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
स्त्रीषु वल्लभतां याति वश्याश्चास्य भवन्ति ताः
चैत्रं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते ॥ २३
निस्तरेदेकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः ।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत
ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।
ऐश्वर्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान्स्त्री वा प्रपद्यते ॥ २५
आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः ।
बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते ॥ २६
श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥ २७
प्रौष्ठपदं तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः ।
गवाढ्यं स्फीतमचलमैश्वर्यं प्रतिपद्यते ॥ २८
तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
मृजावान् वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते २९
कार्तिकं तु नरो मासं यः कुर्यादेकभोजनम् ।
शूरश्च बहुभार्यश्च कीर्तिमांश्चैव जायते ॥ ३०
इति मासा नरव्याघ्र क्षिपतां परिकीर्तिताः ।
तिथीनां नियमा ये तु शृणु तानपि पार्थिव ३१
पक्षे पक्षे गते यस्तु भक्तमश्नाति भारत ।
गवाढ्यो बहुपुत्रश्च बहुभार्यः स जायते ॥ ३२
मासि मासि त्रिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश
गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःसपत्नमनाविलम् ॥
एते तु नियमाः सर्वे कर्तव्याः शरदो दश ।
द्वे चान्ये भरतश्रेष्ठ प्रवृत्तिमनुवर्तता ॥ ३४
यस्तु प्रातस्तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥

---

ब्रह्मक्षत्रे त्रिरात्राधिकमुपोषणं नेष्टं द्विस्त्रिरात्र षड्रात्र सर्वथा अथ आश्रमान्तरे क्वचित् निर्दिष्टम् ॥ ११ ॥ व्युष्टि फलम् ॥ १२ ॥ दिनस्य द्वे भक्ते तत्र चतुर्थस्य भक्तस्य क्षपणं द्विरात्रमभोजनमित्यर्थ ननु त्रिरात्रं तेषामस्ति इत्याह— त्रीति ॥ १३ ॥ यजिष्णु देवतापूजनशील· कुले स एव महानन्नदाता भवतीत्यर्थ ॥ १६ ॥ ज्येष्ठामूल ज्येष्ठमासं ॥ २५ ॥ सर्वेषु मासेषु एकैकस्मिन्पक्षे गते द्वितीयपक्षे भक्त एकभक्तं अश्नाति ॥ ३२ ॥

षड्भिः स वर्षैर्नृपते सिध्यते नात्र संशयः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ३६
अधिवासे सोऽप्सरसां नृत्यगीतविनादिते ।
रमते स्त्रीसहस्राढ्ये सुकृती विरजो नरः ३७
तप्तकाञ्चनवर्णाभं विमानमधिरोहति ।
पूर्णं वर्षसहस्रं च ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३८
तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकाहारो भवेन्नरः ॥ ३९
अतिरात्रस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ।
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गे च स महीयते ॥ ४०
तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णं चतुर्थं भक्तमश्नुते ॥ ४१
अहिंसानिरतो नित्यं सत्यवाग्विजितेन्द्रियः
वाजपेयस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ॥ ४२
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
षष्ठे काले तु कौन्तेय नरः संवत्सरं क्षिपन् ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
चक्रवाकप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४४
चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।
अष्टमेन तु भक्तेन जीवन्संवत्सरं नृप ॥ ४५
गवामयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४६
पञ्चाशत सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।
पक्षे पक्षे गते राजन्योऽश्नीयाद्वर्षमेव तु ॥ ४७
षण्मासानशनं तस्य भगवानङ्गिराऽब्रवीत् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि दिवमावसते च सः ॥ ४८
वीणानां वल्लकीनां च वेणूनां च विशांपते ।
सुघोषैर्मधुरैः शब्दैः सुप्तः स प्रतिबोध्यते ४९
संवत्सरमिहैकं तु मासे मासि पिबेदपः ।
फलं विश्वजितस्तात प्राप्नोति स नरो नृप ॥
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।
सप्तति च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ५१
मासादूर्ध्वं नरव्याघ्र नोपवासो विधीयते ।
विधिं त्वनशनस्याहुः पार्थ धर्मविदो जनाः
अनार्तो व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः ।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ५३
दिवं हंसप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।
शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो ॥ ५४
शतं चाप्सरसः कन्या रमयन्त्यपि तं नरम् ।
आर्तो वा व्याधितो वापि गच्छेदनशनं तु यः
शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो ।
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तश्चैव प्रबोध्यते ॥ ५६
सहस्रहंससंयुक्तेन विमानेन तु गच्छति ।
स गत्वा स्त्रीशताकीर्णे रमते भरतर्षभ ॥ ५७
क्षीणस्याप्यायनं दृष्टं क्षतस्य क्षतरोहणम् ।
व्याधितस्यौषधग्रामः क्रुद्धस्य च प्रसादनम् ॥
दुःखितस्यार्थमानाभ्यां दुःखानां प्रतिषेधनम्
न चैते स्वर्गकामस्य रोचन्ते सुखमेधसः ॥ ५९
अतः स कामसंयुक्तं विमाने हेमसंनिभे ।
रमते स्त्रीशताकीर्णे पुरुषोऽलंकृतः शुचिः ६०
स्वस्थः सफलसंकल्पः सुखी विगतकल्मषः ।
अनश्नन्देहमुत्सृज्य फलं प्राप्नोति मानवः ६१
बालसूर्यप्रतीकाशे विमाने हेमवर्चसि ।
वैदूर्यमुक्ताखचिते वीणामुरजनादिते ॥ ६२
पताकादीपिकाकीर्णे दिव्यघण्टानिनादिते ।
स्त्रीसहस्रानुचरिते स नरः सुखमेधते ॥ ६३
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु पाण्डव ।
तावन्त्येव सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः
न धर्मात्परमो लाभस्तपो नानशनात्परम् ६५
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पावनं दिवि चेह च ।
उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म न विद्यते ॥ ६६
उपोष्य विधिवद्देवास्त्रिदिवं प्रतिपेदिरे ।
ऋषयश्च परां सिद्धिमुपवासैरवाप्नुवन् ॥ ६७
दिव्यवर्षसहस्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
क्षान्तमेकेन भक्तेन तेन विप्रत्वमागतः ॥ ६८
च्यवनो जमदग्निश्च वसिष्ठो गौतमो भृगुः ।
सर्व एव दिवं प्राप्ताः क्षमावन्तो महर्षयः ६९
इदमङ्गिरसा पूर्वं महर्षिभ्यः प्रदर्शितम् ।
यः प्रदर्शयते नित्यं न स दुःखमवाप्नुते ॥ ७०

इमं तु कौन्तेय यथाक्रमं विधिं
प्रवर्तितं ह्याङ्गिरसा महर्षिणा ।
पठेच्च यो वै शृणुयाच्च नित्यदा
न विद्यते तस्य नरस्य किल्बिषम् ७१

एकस्मिन्पक्षे गते परस्मिन्पक्षेऽश्नाति वर्षं च तदेव षण्मासाशनं भवति॥४७॥ संवत्सरमिति एकैकस्मिन्संवत्सरे एकमेकं मासं जलमात्राहारो भवेदिति वाक्यार्थः । यथाश्रुतार्थग्रहणे जीवनाशप्रसङ्गात् ॥ ५० ॥ स्वर्गकामस्य क्षीणत्वाद्यवस्थाप्राप्तस्याप्यायनादयो न रोचन्तेऽपि तु तज्जं दुःखं सहमान एव स स्वतपो वर्धयतीत्यर्थः ॥ ५९ ॥

विमुच्यते चापि स सर्वसङ्करै-
र्न चास्य दोषैरभिभूयते मनः।
वियोनिजाना च विजानते रुतं
ध्रुवो च कीर्ति लभते नरोत्तमः॥७२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उपवासविधौ षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

## १०७

युधिष्ठिर उवाच।
पितामहेन विधिवद्यज्ञाः प्रोक्ता महात्मना।
गुणाश्चैषां यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः॥ १
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं पितामह।
बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः॥ २
पार्थिवै राजपुत्रैर्वा शक्याः प्राप्तुं पितामह।
नार्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः॥ ३
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं सदा भवेत्
अर्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः॥ ४
तुल्यो यज्ञफलैरेतैस्तन्मे ब्रूहि पितामह।
भीष्म उवाच।
इदमङ्गिरसा प्रोक्तमुपवासफलात्मकम्॥ ५
विधिं यज्ञफलैस्तुल्यं तन्निबोध युधिष्ठिर।
यस्तु कल्यं तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत्
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम्।
षड्भिरेव स वर्षैस्तु सिध्यते नात्र संशयः ७
तप्तकाञ्चनवर्णं च विमानं लभते नरः।
देवस्त्रीणामधीवासे नृत्यगीतनिनादिते॥ ८
प्राजापत्ये वसेत्पद्मं वर्षाणामग्निसंनिभे।
त्रीणि वर्षाणि यः प्राशेत्सततं त्वेकभोजनम्
धर्मपत्नीरतो नित्यमग्निष्टोमफलं लभेत्।
यज्ञं बहुसुवर्णं वा वासवप्रियमाचरेत्॥ १०
सत्यवान्दानशीलश्च ब्रह्मण्यश्चानसूयकः।
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधः स गच्छति परां गतिं
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे विमाने हंसलक्षणे।
द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह १२
द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम्।
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम्॥
अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्यप्रबोधनः।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः
हंससारसयुक्तं च विमानं लभते नरः।
इन्द्रलोके च वसते वरस्त्रीभिः समावृतः १५
तृतीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम्।
अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्यप्रबोधनः
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् १७
मयूरहंसयुक्तं च विमानं लभते नरः।
सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह॥
निवर्तनं च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विभुः।
दिवसे यश्चतुर्थे तु प्राश्नीयादेकभोजनम्॥ १९
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् २०
इन्द्रकन्याभिरूढं च विमानं लभते नरः।
सागरस्य च पर्यन्ते वासवं लोकमावसेत् २१
देवराजस्य च क्रीडां नित्यकालमवेक्षते।
दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् २२
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम्।
अलुब्धः सत्यवादी च ब्रह्मण्यश्चाविहिंसकः
अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत्।
जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं हंसलक्षणम् २४
सूर्यमालासमाभासमारोहेत्पाण्डुरं गृहम्।
आवर्तनानि चत्वारि तथा पद्मानि द्वादश॥

---

वियोनिजाना पश्वादीना रुतं शब्दं विजानते विजानीते॥ ७२॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

१०७

**पितामहेनेति**॥ १॥ अवगुणैर्निर्गुणै एकात्मभिरे-काकिभि अत एवासंहतैरसहायैः॥ ३॥ कल्यं प्रातः॥ ६॥ समाप्ते सम्पूर्णे द्वे पद्मे वर्षाणीति शेषः। शतकोट्य एक पद्मम्॥ १२॥ निवर्तनं नियमेन वर्तनम्॥ १९॥ आवर्तनानि वर्षाणि चत्वारि द्वादश चेति षोडशपद्मानि॥ २५॥

शराग्निपरिमाणं च तत्रासौ वसते सुखम् ।
दिवसे यस्तु षष्ठे वै मुनिः प्राशेत भोजनम् २६
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
सदा त्रिषवणस्नायी ब्रह्मचार्यनसूयकः ॥ २७
गवा मेधस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
अग्निज्वालासमाभास हंसबर्हिणसेवितम् ॥
शातकुंभसमायुक्तं साधयेद्यानमुत्तमम् ।
तथैवाप्सरसामङ्के प्रतिसुप्तः प्रबोध्यते ॥ २९
नूपुराणां निनादेन मेखलानां च निःस्वनैः ।
कोटीसहस्रं वर्षाणां त्रीणि कोटिशतानि च
पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च ।
अयुतानि च पञ्चाशदृक्षचर्मशतस्य च ॥ ३१
लोम्नां प्रमाणेन सम ब्रह्मलोके महीयते ।
दिवसे सप्तमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्यं समाचरन् ॥ ३३
सुमनोवर्णकं चैव मधुमांसं च वर्जयन् ।
पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकं च गच्छति ॥
तत्र तत्र हि सिद्धार्थो देवकन्याभिरर्च्यते ।
फल बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते नरः ॥ ३५
संख्यामतिगुणां चापि तेषु लोकेषु मोदते ।
यस्तु संवत्सरं क्षान्तो भुङ्क्तेऽहन्यष्टमे नरः ॥
देवकार्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥
पद्मवर्णनिभं चैव विमानमधिरोहति ।
कृष्णाः कनकगौर्यश्च नार्यः श्यामास्तथापराः
वयोरूपविलासिन्यो लभते नात्र संशयः ।
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते नवमे नवमेऽहनि ॥ ३९
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ४०
पुण्डरीकप्रकाशं च विमानं लभते नरः ।
दीप्तसूर्याग्नितेजोभिर्दिव्यमालाभिरेव च ॥४१
नीयते रुद्रकन्याभिः सोऽन्तरिक्षं सनातनम् ।
अष्टादश सहस्राणि वर्षाणां कल्पमेव च ४२
कोटीशतसहस्रं च तेषु लोकेषु मोदते ।
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते दशाहे वै गते गते ४३
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
ब्रह्मकन्यानिवासे च सर्वभूतमनोहरे ॥ ४४
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
रूपवत्यश्च तं कन्या रमयन्ति सनातनम् ।४५
नीलोत्पलनिभैर्वर्णै रक्तोत्पलनिभैस्तथा ।
विमानं मण्डलावर्तमावर्तगहनाकुलम् ॥ ४६
सागरोर्मिप्रतीकाशं स लभेद्यानमनुत्तमम् ।
विचित्रमणिमालाभिर्नादितं शङ्खनिःस्वनैः ४७
स्फाटिकैर्वज्रसारैश्च स्तम्भैः सुकृतवेदिकम् ।
आरोहति महद्यानं हंससारसनादितम् ४८
एकादशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ।
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम्४९
परस्त्रियं नाभिलषेद्वाचाथ मनसापि वा ।
अनृतं च न भाषेत मातापित्रोः कृतेऽपि वा ५०
अभिगच्छेन्महादेवं विमानस्थं महाबलम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ५१
स्वायंभुवं च पश्येत विमानं समुपस्थितम् ।
कुमार्यः काञ्चनाभासा रूपवत्यो नयन्ति तम्
रुद्राणां तमधीवासं दिवि दिव्यं मनोहरम्
वर्षाण्यपरिमेयानि युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५३
कोटीशतसहस्रं च दशकोटिशतानि च ।
रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंमतम् ॥ ५४
स तस्मै दर्शनं प्राप्तो दिवसे दिवसे भवेत् ।
दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्राशते हविः ५५
सदा द्वादशमासान्वै सर्वमेधफलं लभेत् ।
आदित्यं द्वादशे तस्य विमानं संविधीयते५६
मणिमुक्ताप्रवालैश्च महार्हैरुपशोभितम् ।
हंसमालापरिक्षिप्तं नागवीथीसमाकुलम् ५७
मयूरैश्चक्रवाकैश्च कूजद्भिरुपशोभितम् ।
अट्टैर्महद्भिः संयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ५८
नित्यमावसथं राजन्नरनारीसमावृतम् ।
ऋषिरेवं महाभागस्त्वङ्गिरा प्राह धर्मवित्
त्रयोदशे तु दिवसे प्राप्ते यः प्राशते हविः ।
सदा द्वादशमासान्वै देवसत्रफलं लभेत् ६०
रक्तपद्मोदयं नाम विमानं साधयेन्नरः ।
जातरूपप्रयुक्तं च रत्नसञ्चयभूषितम् ॥ ६१
देवकन्याभिराकीर्णं दिव्याभरणभूषितम् ।
पुण्यगंधोदयं दिव्यं वायव्यैरुपशोभितम् ॥६२
तत्र शङ्कुपताके द्वे युगान्तं कल्पमेव च ।
अयुतायुतं तथा पद्मं समुद्रं च तथा वसेत्६३

तथा शराभिरिति पञ्चत्रिंशत् एवमेकपञ्चाशत् पद्मानि ॥ २६ ॥ ऊर्ध्वत्वसामान्यात्पताका महापद्माख्य-संख्याविशेष ॥ ३१ ॥ सुमनोवर्णकं स्रक्चन्दनादि ॥३४॥ संख्याविशेष ।

गीतगंधर्वघोषैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः ।
सदा प्रल्हादितस्ताभिर्देवकन्याभिरिज्यते ६४
चतुर्दशे तु दिवसे यः पूर्णे प्राशते हविः ।
सदा द्वादशमासांस्तु महामेधफलं लभेत् ६५
अनिर्देश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलंकृताः ।
मृष्टतप्ताङ्गदधरा विमानैरुपयान्ति तम् ॥ ६६
कलहंसविनिर्घोषैर्नूपुराणां च निःस्वनैः ।
काञ्चीनां च समुत्कर्षैस्तत्र तत्र निबोध्यते६७
देवकन्यानिवासे च तस्मिन्वसति मानवः ।
जाह्नवीवालुकाकीर्णे पूर्णं संवत्सरं नरः ६८
यस्तु पक्षे गते भुक्ते एकभक्तं जितेन्द्रियः ।
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम्६९
राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
यानमारोहते दिव्यं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ ७०
मणिमण्डलकैश्चित्रं जातरूपसमावृतम् ।
दिव्याभरणशोभाभिर्वरस्त्रीभिरलंकृतम् ७१
एकस्तम्भं चतुर्द्वारं सप्तभौमं सुमङ्गलम् ।
वैजयन्तीसहस्रैश्च शोभितं गीतनिःस्वनैः ७२
दिव्यं दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभम् ॥ ७३
वसेद्युगसहस्रं च खड्गकुञ्जरवाहनः ।
षोडशे दिवसे प्राप्ते यः कुर्यादेकभोजनम् ७४
सदा द्वादशमासान्वै सोमयज्ञफलं लभेत् ।
सोमकन्यानिवासेषु सोऽध्यावसति नित्यशः
सौम्यगंधानुलिप्तश्च कामकारगतिर्भवेत् ।
सुदर्शनाभिर्नारीभिर्मधुराभिस्तथैव च ॥ ७६
अर्च्यते वै विमानस्थः कामभोगैश्च सेव्यते ।
फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकम् ७७
आवर्तनानि चत्वारि साधयेच्चाप्यसौ नरः ।
दिवसे सप्तदशमे यः प्राप्ते प्राशते हविः ७८
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
स्थानं वारुणमैन्द्रं च रौद्रं चाप्यधिगच्छति ७९
मारुतौशनसे चैव ब्रह्मलोकं स गच्छति ।
तत्र दैवतकन्याभिरासनेनोपचर्यते ॥ ८०
भूर्भुवं चापि देवर्षिं विश्वरूपमवेक्षते ।
तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्यो रमयन्ति तम् ८१
द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलंकृताः ।
चंद्रादित्यावुभौ यावद्गगने चरतः प्रभो ॥ ८२
तावच्चरत्यसौ धीरः सुधामृतरसाशनः ।
अष्टादशे यो दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ८३
सदा द्वादशमासान्वै सप्तलोकान्स पश्यति ।
रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ८४
देवकन्याधिरूढैस्तु भ्राजमानैः स्वलंकृतैः ।
व्याघ्रसिंहप्रयुक्तं च मेघस्वननिनादितम् ८५
विमानमुत्तमं दिव्यं सुसुखी ह्यधिरोहति ।
तत्र कल्पसहस्रं स कन्याभिः सह मोदते ८६
सुधारसं च भुञ्जीत अमृतोपममुत्तमम् ।
एकोनविंशतिदिने यो भुङ्क्ते एकभोजनम् ८७
सदा द्वादशमासान्वै सप्तलोकान्स पश्यति ।
उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितम् ॥ ८८
गन्धर्वैरुपगीतं च विमानं सूर्यवर्चसम् ।
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मोदते विगतज्वरः ॥ ८९
दिव्याम्बरधरः श्रीमानयुतानां शतं शतम् ।
पूर्णेऽथ विंशे दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम्
सदा द्वादशमासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः ।
अमांसाशी ब्रह्मचारी सर्वभूतहिते रतः ॥ ९१
स लोकान्विपुलान् रम्यानादित्यानामुपाश्नुते
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ९२
विमानैः काञ्चनैर्हृद्यैः पृष्ठतश्चानुगम्यते ।
एकविंशे तु दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम्९३
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
लोकमौशनसं दिव्यं शक्रलोकं च गच्छति९४
अश्विनोर्मरुतां चैव सुखेष्वभिरतः सदा ।
अनभिज्ञश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः ९५
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडत्यमरवत्प्रभुः ।
द्वाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम्
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
अहिंसानिरतो धीमान् सत्यवागनसूयकः ॥
लोकान्वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः ।
कामचारी सुधाहारो विमानवरमास्थितः ॥
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः ।
त्रयोविंशे तु दिवसे प्राशेद्यस्त्वेकभोजनम् ९९
सदा द्वादशमासांस्तु मिताहारो जितेन्द्रियः ।
वायोरुशनसश्चैव रुद्रलोकं च गच्छति १००
कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।
अनेकगुणपर्यन्तं विमानवरमास्थितः ॥ १
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः ।
चतुर्विंशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः २

सुधा अमृतं अमृत देवभोग्यं तदुपमम् ॥ ८७ ॥

सदा द्वादशमासांश्च जुह्वानो जातवेदसम् ।
आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरम्
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ।
विमाने काञ्चने दिव्ये हंसयुक्ते मनोरमे ॥ ४
रमते देवकन्यानां सहस्रैरयुतैस्तथा ।
पञ्चविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ॥ ५
सदा द्वादशमासांस्तु पुष्कलं यानमारुहेत् ।
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तैस्तु मेघनिःस्वननादितैः ॥ ६
स रथैर्नन्दिघोषैश्च पृष्ठतो ह्यनुगम्यते ।
देवकन्यासमारूढैः काञ्चनैर्विमलैः शुभैः ७
विमानमुत्तमं दिव्यमास्थाय सुमनोहरम् ।
तत्र कल्पसहस्रं वै वसते स्त्रीशतावृते ॥ ८
सुधारसं चोपजीवन्नमृतोपममुत्तमम् ।
षड्विंशे दिवसे यस्तु प्रकुर्यादेकभोजनम् ९
सदा द्वादशमासांस्तु नियतो नियताशनः ।
जितेन्द्रियो वीतरागो जुह्वानो जातवेदसम्
स प्राप्नोति महाभागः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः
सप्तानां मरुतां लोकान्वसूनां चापि सोऽश्नुते ॥
विमानैः स्फाटिकैर्दिव्यैः सर्वरत्नैरलंकृतैः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च पूज्यमानः प्रमोदते ॥ १२
द्वे युगानां सहस्रे तु दिव्ये दिव्येन तेजसा ।
सप्तविंशेऽथ दिवसे यः कुर्यादेकभोजनम् १३
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ।
फलं प्राप्नोति विपुलं देवलोके च पूज्यते १४
अमृताशी वसंस्तत्र स वितृष्णः प्रमोदते ।
देवर्षिचरितं राजन् राजर्षिभिरनुष्ठितम् १५
अध्यावसति दिव्यात्मा विमानवरमास्थितः ।
स्त्रीभिर्मनोभिरामाभी रममाणो मदोत्कटः ॥
युगकल्पसहस्राणि त्रीण्यावसति वै सुखम् ।
योऽष्टाविंशे तु दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥
सदा द्वादशमासांस्तु जितात्मा विजितेन्द्रियः
फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्नुते ॥ १८
भोगवांस्तेजसा भाति सहस्रांशुरिवामलः ।
सुकुमार्यश्च नार्यस्तं रममाणाः सुवर्चसः १९
पीनस्तनोरुजघना दिव्याभरणभूषिताः ।
रमयन्ति मनःकान्ते विमाने सूर्यसन्निभे २०
सर्वकामगमे दिव्ये कल्पायुतशतं समाः ।
एकोनत्रिंशे दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् २१
सदा द्वादशमासान्वै सत्यव्रतपरायणः ।
तस्य लोकाः शुभा दिव्या देवराजर्षिपूजिताः
विमानं सूर्यचन्द्राभं दिव्यं समधिगच्छति ।
जातरूपमयं युक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ २३
अप्सरोगणसंपूर्णं गन्धर्वैरभिनादितम् ।
तत्र चैनं शुभा नार्यो दिव्याभरणभूषिताः २४
मनोभिरामा मधुरा रमयन्ति मदोत्कटाः ।
भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः २५
दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः ।
वसूनां मरुतां चैव साध्यानामश्विनोस्तथा २६
रुद्राणां च तथा लोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
यस्तु मासे गते भुङ्क्ते एकभक्तं शमात्मकः ।
सदा द्वादशमासान्वै ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
सुधारसकृताहारः श्रीमान्सर्वमनोहरः ॥ २८
तेजसा वपुषा लक्ष्म्या भ्राजते रश्मिवानिव ।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः २९
सुखेष्वभिरतो भोगी दुःखानामविजानकः ।
स्वयंप्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो महीयते ॥ ३०
रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततं चाभिपूज्यते ।
नानारमणरूपाभिर्नानारागाभिरेव च ॥ ३१
नानामधुरभाषाभिर्नानारतिभिरेव च ।
विमाने गगनाकारे सूर्यवैदूर्यसन्निभे ॥ ३२
पृष्ठतः सोमसंकाशे उदक्चैवाभ्रसन्निभे ।
दक्षिणायां तु रक्ताभे अधस्तान्नीलमण्डले ३३
ऊर्ध्वं विचित्रसंकाशे नैको वसति पूजितः ।
यावद्वर्षसहस्रं वै जम्बुद्वीपे प्रवर्षति ॥ ३४
तावत्संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकेऽस्य धीमतः
विप्रुषश्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नभस्तलात् ॥
वर्षासु वर्षतस्तावन्निवसत्यमरप्रभः ।
मासोपवासी वर्षैस्तु दशभिः स्वर्गमुत्तमम् ३६
महर्षित्वमथासाद्य स शरीरगतिर्भवेत् ।
मुनिर्दान्तो जितक्रोधो जितशिश्नोदरः सदा
जुह्वन्नग्नींश्च नियतः सन्ध्योपासनसेविता ।
बहुभिर्नियमैरेवं शुचिरश्नाति यो नरः । ३८
अभ्रावकाशशीलश्च तस्य भानोरिव त्विषः ।
दिवं गत्वा शरीरेण स्वेन राजन् यथामरः ॥
स्वर्गं पुण्यं यथाकाममुपभुङ्क्ते तथाविधः ।
एष ते भरतश्रेष्ठ यज्ञानां विधिरुत्तमः ॥ ४०
व्याख्यातो ह्यानुपूर्व्येण उपवासफलात्मकः ।
दरिद्रैर्मनुजैः पार्थ प्राप्तं यज्ञफलं यथा ॥ ४१

अभ्रं मेघस्तस्यावकाश आकाशं तच्छीलस्तद्वन्निर्मल· ॥ ३९ ॥

उपवासानिमान् कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिम्
देवद्विजातिपूजाया रतो भरतसत्तम ॥ ४२
उपवासविधिस्त्वेष विस्तरेण प्रकीर्तितः ।
नियतेष्वप्रमत्तेषु शौचवत्सु महात्मसु ॥ ४३
दंभद्रोहनिवृत्तेषु कृतबुद्धिषु भारत ।
अचलेष्वप्रकंपेषु मा ते भूदत्र संशयः ॥ १४४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उपवासविधिर्नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## १०८

युधिष्ठिर उवाच ।
यद्वरं सर्वतीर्थाना तन्मे ब्रूहि पितामह ।
यत्र चैव परं शौच तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १
भीष्म उवाच ।
सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणः
यत्तु तीर्थं च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः
अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे ।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्वमालंब्य शाश्वतम्
तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम् ।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ४
निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ॥ ५
तत्त्वविस्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते ।
शौचलक्षणमेतत्ते सर्वत्रैवान्ववेक्षतः ॥ ६
रजस्तमः सत्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः ।
शौचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ७
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः ।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये ८
नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः
अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः ।
शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ॥१०
प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः ।
तथा निष्किंचनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ११
वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतःपरम् ।
ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम्
मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च ।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः
समारोपितशौचस्तु नित्य भावसमाहितः ।
केवलं गुणसंपन्नः शुचिरेव नरः सदा ॥ १४
शरीरस्थानि तीर्थानि प्रोक्तान्येतानि भारत
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि शृणु तान्यपि
शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः ।
तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च
कीर्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् ।
धुनन्ति पापं तीर्थेषु ते प्रयान्ति सुखं दिवम्
परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा ।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा ॥
मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे ।
उभयोरेव यः स्नायात्स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात्
यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता ।
नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति २०
एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः ।
शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वाणि दानधर्मपर्वणि शौचानुपृच्छा नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताधिकशततमोऽध्याय ॥ १०७ ॥

१०८

यदिति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः १०८

धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः ।
लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाप्यबहुश्रुतः १७
नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीविते फलम् १८
एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् १९
शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिस्तु मम जायते ।
मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्ममव्यक्ततां गतम् २०
अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति ।

बृहस्पतिरुवाच ।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तगः
बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा
प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता निशानिशम्
एतैश्च सह धर्मोऽपि तं जीवमनुगच्छति ।
त्वगस्थिमांसं शुक्रं च शोणितं च महामते ॥
शरीरं वर्जयन्त्येते जीवितेन विवर्जितम् ।
ततो धर्मसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि २४
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभं
देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते ।
इहलोके परे चैव किं भूयः कथयामि ते ॥ २६

युधिष्ठिर उवाच ।

तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति ।
एतत्तु ज्ञातुमिच्छामि कथं रेतः प्रवर्तते ॥२७

बृहस्पतिरुवाच ।

अन्नमश्नन्ति यद्देवाः शरीरस्था नरेश्वर ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्त
ततस्तृप्तेषु राजेन्द्र तेषु भूतेषु पञ्चसु ।
मनःषष्ठेषु शुद्धात्मन् रेतः संपद्यते महत्
ततो गर्भः सम्भवति श्लेषात्स्त्रीपुंसयोर्नृ
एतत्ते सर्वमाख्यातं भूयः किं श्रोतुमिच्छ

युधिष्ठिर उवाच ।

आख्यातं मे भगवता गर्भः सञ्जायते
यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्यति तदुच्यताम्

बृहस्पतिरुवाच ।

आसन्नमात्रः पुरुषस्तैर्भूतैरभिभूयते ।
विप्रयुक्तश्च तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम्
सर्वभूतसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि ।
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशु
देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छ

युधिष्ठिर उवाच ।

त्वगस्थिमांसमुत्सृज्य तैश्च भूतैर्विवा
जीवः स भगवन्क्वस्थः सुखदुःखे समश्नुते

बृहस्पतिरुवाच ।

जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमा
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भार
यमस्य पुरुषैः क्लिशं यमस्य पुरुषैर्वधम् ।
दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं स विन्द
इह लोके स च प्राणी जन्मप्रभृति पार्
सुकृतं कर्म वै भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रि
यदि धर्मं यथाशक्ति जन्मप्रभृति सेवते
ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुख

---

शरीरस्य निचयं सञ्चयं अवस्थितिमिति यावत् ॥ २० ॥ अन्तगो यमः अन्तार्थं गच्छतीति योगात् ॥ २१ ॥ आत्मा साक्षी निशेति दिवसस्याप्युपलक्षणम् ॥ २२ ॥ एतैः सह धर्मोऽपूर्वरूपो जीवमनुगच्छति ॥ २३ ॥ ननु भूतसूक्ष्मवत्फलसूक्ष्मावस्थारूपमपूर्वं जीवमनुगच्छतु रेतस्तु मूल एव स्थूलतरं कथमेनमावृणोति इत्याशङ्कते-**तदिति** ॥ २७ ॥ स जीवो पूर्वेण भूतैश्च मिश्रितो वायुद्वारा तृप्तिलं प्राप्यान्नरूपेण परिणम्य रेतोरूपी भवतीत्याह—**अन्नमिति** ॥ २८ ॥ कथं सूक्ष्मतमस्य पुरुषस्य स्थूलतरेण रेतसा तादात्म्यं सत्यपि संसर्गे अभ्रवाय्वोरिव भवतीत्याशङ्कते —**आख्यातमिति** ॥ ३१ ॥ भूतावेशन्यायेन पुरुषस्तैस्तैर्भूतै रेतोद्वारा शरीराकारत्वं प्राप्तैः सह सङ्गमात्रेणाभिभूयते तादात्म्येन च वर्धते सङ्गाभावे तु न सुखम दावित्याह—**आसन्नेति** ॥ ३२ ॥ ततस्ता मिमानरूपादभिभवादयं कर्तृत्वादिमान् भवति कर्मादिकं देवा पश्यन्ति ॥ ३३ ॥ स्थूलदेहसङ्गा मस्य कर्तृत्वं तद्दाहे तु कथमस्य सुखादिसङ्ग इत्य **त्वगिति** ३४॥ स्थूलदेहनाशक्षण एव स रेतस्त्वं शु सूक्ष्मशरीरभावमेति ततः स्त्रीणां पुष्पं समासाद्येत्या तद्यथा तृणजलायूका अन्यत्तृणमाक्रम्य पूर्वं जहा मेतदिति ज्ञेयम् ॥३५॥ **यमस्येति** । गर्भत्वमप्राप्त शरीरावच्छिन्नस्तीव्रपापयोगाद्यातना लभत इत्यर्थः ॥

• परं लोकमिति शेष ।

अथान्तरा तु धर्मस्याप्यधर्ममुपसेवते ।
सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति
अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः ।
महद्दुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ४०
कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते ।
जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे निगदतः शृणु ४१
यदेतदुच्यते शास्त्रे सेतिहासे च च्छन्दसि ।
यमस्य विषयं घोरं मर्त्यो लोकः प्रपद्यते ४२
इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भूपते ।
तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः
यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः ।
कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते ४४
येन येन तु भावेन कर्मणा पुरुषो गतिम् ।
प्रयाति परुषां घोरां तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥
अधीत्य चतुरो वेदान् द्विजो मोहसमन्वितः
पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥ ४६
खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥
बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः ।
ब्रह्मरक्षश्च मासांस्त्रीस्ततो जायति ब्राह्मणः ४८
पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते ।
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ४९
कृमिभावाद्विमुक्तस्तु ततो जायति गर्दभः ।
गर्दभः पञ्चवर्षाणि पञ्चवर्षाणि सूकरः ॥ ५०
कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः ।
श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायति मानवः ५१
उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान्
स जीव इह संसारांस्त्रीनाप्नोति न संशयः ५२
प्राक् श्वा भवति राजेन्द्र ततः क्रव्यात्ततः खरः
ततः प्रेतः परिक्लिष्टः पश्चाज्जायति ब्राह्मणः ॥
मनसापि गुरोर्भार्यां यः शिष्यो याति पापकृत्
स उग्रान्प्रैति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥ ५४
श्वयोनौ तु स संभूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति
तत्रापि निधनं प्राप्तः कृमियोनौ प्रजायते ५५
कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति ।
ततस्तु निधनं प्राप्तो ब्रह्मयोनौ प्रजायते ५६
यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणे ।
आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते॥
पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः
गर्दभत्वं तु सम्प्राप्य दशवर्षाणि जीवति ।
संवत्सरं तु कुंभीरस्ततो जायेत मानवः ५९
पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि ।
गुर्वपध्यानतः सोऽपि मृतो जायति गर्दभः ॥
खरो जीवति मासांस्तु दश श्वा च चतुर्दश ।
बिडालः सप्तमासांस्तु ततो जायति मानवः
मातापितरावाक्रुश्य सारिकः सम्प्रजायते ।
ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो नृप ॥
कच्छपो दशवर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः
व्यालो भूत्वा च षण्मासांस्ततो जायति मानुषः
भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यो राजद्विष्टानि सेवते ।
सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायति वानरः
वानरो दशवर्षाणि पञ्चवर्षाणि मूषिकः ।
श्वाऽथ भूत्वा तु षण्मासास्ततो जायति मानुषः
न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः ।
संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ६६
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ।
असूयको नरश्चापि मृतो जायति शार्ङ्गकः ।
विश्वासहर्ता तु नरो मीनो जायति दुर्मतिः
भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृतो जायति भारत ।
मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ६९
छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णे संवत्सरे ततः ।
कीटः संजायते जन्तुस्ततो जायति मानुषः ॥

धान्यान् यवांस्तिलान् माषान्
कुलत्थान् सर्षपांश्चणान् ।
कलायानथ मुद्गांश्च
गोधूमानतसीस्तथा ॥ ७१

सस्यस्यान्यस्य हर्ता च मोहाज्जन्तुरचेतनः ।
स जायते महाराज मूषिको निरपत्रपः ७२
ततः प्रेत्य महाराज मृतो जायति सूकरः ।
सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ॥ ७३
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ।
भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायति मानवः
परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायति वै वृकः ।
श्वा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कंको बकस्तथा
भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः ।
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि संवत्सरं नृप
सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च ।
प्रधर्षयित्वा कामाय मृतो जायति सूकरः ७७
सूकरः पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि श्वाविधः ।
बिडालः पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि कुक्कुटः ७८

* नक्रस्तु कुम्भीर (१।१०।२१) इत्यमर ।

पिपीलिकस्तु मासांस्त्रीन्
कीटः स्यान्मासमेव तु ।
एतानासाद्य संसारान्
कृमियोनौ प्रजायते ॥ ७९
तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश ।
ततोऽधर्मक्षयं कृत्वा पुनर्जायति मानवः ८०
उपस्थिते विवाहे तु यज्ञे दानेऽपि वा विभो ।
मोहात्करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः
कृमिर्जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानवः८२
पूर्वं दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति
सोपि राजन्मृतो जन्तुः कृमियोनौ प्रजायते
तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश युधिष्ठिर ।
अधर्मसंक्षये युक्तस्ततो जायति मानवः ८४
देवकार्यमकृत्वा तु पितृकार्यमथापि वा ।
अनिर्वाप्य समश्नन्वै मृतो जायति वायसः८५
वायसः शतवर्षाणि ततो जायति कुक्कुटः ।
जायते व्यालकश्चापि मासं तस्मात्तु मानुषः
ज्येष्ठं पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते ।
सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥
क्रौञ्चो जीवति वर्षं तु ततो जायति चीरकः
ततो निधनमापन्नो मानुषत्वमुपाश्नुते ॥ ८८
वृषलो ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ।
ततः संप्राप्य निधनं जायते सूकरः पुनः ॥८९
सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ।
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव९०
श्वा भूत्वा कृतकर्माऽसौ जायते मानुषस्ततः
तत्रापत्यं समुत्पाद्य मृतो जायति मूषिकः९१
कृतघ्नस्तु मृतो राजन् यमस्य विषयं गतः ।
यमस्य पुरुषैः क्रुद्धैर्वधं प्राप्नोति दारुणम् ९२
दण्डं समुद्गरं शूलमग्निकुंभं च दारुणम् ।
असिपत्रवनं घोरवालुकं कूटशाल्मलीम् ९३
एताश्चान्याश्च बह्वीश्च यमस्य विषयं गतः ।
यातनाः प्राप्य तत्रोग्रास्ततो वध्यति भारत
ततो हतः कृतघ्नः स तत्रोग्रैर्भरतर्षभ ।
संसारचक्रमासाद्य कृमियोनौ प्रजायते ॥ ९५
कृमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते शिशुः ९६
ततो गर्भशतैर्जन्तुर्बहुभिः संप्रपद्यते ।
संसारांश्च बहून्गत्वा ततस्तिर्यक्षु जायते ९७
ततो दुःखमनुप्राप्य बहु वर्षगणानिह ।
अपुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ९८
दधि हृत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान्
चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुदंशः प्रजायते ॥ ९९
फलं वा मूलकं हृत्वा अपूपं वा पिपीलिकाः
चोरयित्वा च निष्पावं जायते हलगोलकः
पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुते ।
हृत्वा पिष्टमयं पूपं कुंभोलूकः प्रजायते १०१
अयो हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः ।
कांस्यं हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारितो जायते नरः२
राजतं भाजनं हृत्वा कपोतः संप्रजायते ।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ३
पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कृकलत्वं निगच्छति ।
कौशिकं तु ततो हृत्वा नरो जायति वर्तकः४
अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायति मानवः ।
चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ५
क्रौञ्चः कार्पासिकं हृत्वा मृतो जायति मानवः
चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भारत ६
क्षौमं च वस्त्रमादाय शशो जंतुः प्रजायते ।
वर्णान् हृत्वा तु पुरुषो मृतो जायति बर्हिणः
हृत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः
वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः॥८
छुच्छुंदरित्वमाप्नोति राजन् लोभपरायणः ।
तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ९
अधर्मस्य क्षयं गत्वा ततो जायति मानुषः ।
चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते १०
यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते
अशस्त्रं पुरुषं हृत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः ।
अर्थार्थी यदि वा वैरी स मृतो जायते खरः१२
खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते ।
स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते
मृगो वध्यति शस्त्रेण गते संवत्सरे तु सः ।
हतो मृगस्ततो मीनः सोपि जालेन वध्यते ॥

---

निष्पाव राजमाषं हलगोलकः दीर्घपुच्छो गोलरूपी कीटविशेष ॥ १०० ॥ कुभोलूक उलूकजातिभेद ॥ १ ॥ हारित, पक्षिविशेष ॥ २ ॥ पत्रोर्णं धौतकौशेयम् ॥ ४ ॥ वर्णान् हरितालादीन् ॥ ७ ॥

मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते ।
श्वापदो दशवर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च१५
ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः ।
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥
स्त्रियं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्यमस्य विषय गतः।
बहून्क्लेशान्समासाद्य संसारांश्चैव विंशतिम्
ततः पश्चान्महाराज कृमियोनौ प्रजायते।
कृमिर्विंशतिवर्षाणि भूत्वा जायति मानुषः
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः।
मक्षिकासंघवशगो बहून्मासान्भवत्युत॥ १९
ततः पापक्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुते ।
धान्यं हत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते२०
तथा पिण्याकसंमिश्रमशन चोरयेन्नरः ।
स जायते बभ्रुसमो दारुणो मूषिको नरः २१
दशन् वै मानुषान्नित्यं पापात्मा स विशांपते
घृतं हत्वा तु दुर्बुद्धिः काकमद्गुः प्रजायते २२
मत्स्यमांसमथो हत्वा काको जायति दुर्मतिः
लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते ॥
विश्वासेन तु निक्षिप्तं यो विनिह्नोति मानवः
स गतायुर्नरस्तात मत्स्ययोनौ प्रजायते॥ २४
मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायति मानुषः ।
मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुरुपपद्यते ॥ २५
पापानि तु नराः कृत्वा तिर्यग्जायन्ति भारत
न चात्मनः प्रमाणं ते धर्मं जानन्ति किञ्चन
ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतैःसदा
सुखदुःखसमायुक्ता व्यथितास्ते भवन्त्युत ॥
असंवासाः प्रजायन्ते म्लेच्छाश्चापि न संशयः
नराः पापसमाचारा लोभमोहसमन्विताः ॥
वर्जयन्ति च पापानि जन्मप्रभृति ये नराः।
अरोगा रूपवन्तस्ते धनिनश्च भवन्त्युत॥ २९
स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥
परस्वहरणे दोषाः सर्वे एव प्रकीर्तिताः ।
एतद्धि लेशमात्रेण कथितं ते मयाऽनघ ॥ ३१
अपरस्मिन् कथायोगे भूयः श्रोष्यसि भारत ।
एतन्मया महाराज ब्रह्मणो वदतः पुरा ॥ ३२
सुरर्षीणां श्रुत मध्ये पृष्टश्चाऽपि यथातथम् ।
मयापि तच्च कार्त्स्न्येन यथावदनुवर्णितम् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज धर्मे कुरु मनः सदा ।३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ससारचक्र नाम
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## ११२

युधिष्ठिर उवाच ।

अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता मे त्वयाऽनघ ।
धर्मस्य तु गतिं श्रोतुमिच्छामि वदतां वर १
कृत्वा कर्माणि पापानि कथं यांति शुभां गतिम्
कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम् २

बृहस्पतिरुवाच ।

कृत्वा पापानि कर्माणि अधर्मवशमागतः।
मनसा विपरीतेन निरय प्रतिपद्यते ॥ ३
मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते ।
मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ४
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते ।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ५
यदि व्याहरते राजन्विप्राणां धर्मवादिनाम् ।
ततोऽधर्मकृतात् क्षिप्रमपवादात् प्रमुच्यते ६
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते ।
समाहितेन मनसा विमुच्येत तथा तथा ॥ ७
भुजङ्ग इव निर्मोकात्पूर्वभुक्ताज्जरान्वितात् ।
दत्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः

---

काकमद्गुः भगवान् जलपक्षी ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२
अधर्मस्येति ॥ १ ॥

मनःसमाधिसंयुक्तः सुगतिं प्रतिपद्यते ।
प्रदानानि तु वक्ष्यामि यानि दत्वा युधिष्ठिर
नरः कृत्वाप्यकार्याणि ततो धर्मेण युज्यते ।
सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम् ।
पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता ॥ १०
प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते ।
अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्नं प्रशस्यते ११
अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ।
अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः १२
न्यायलब्धं प्रदातव्य द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम्
स्वाध्यायं समुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना १३
यस्य ह्यन्नमुपाश्नन्ति ब्राह्मणानां शतं दश ।
हृष्टेन मनसा दत्तं न स तिर्यग्गतिर्भवेत् १४
ब्राह्मणानां सहस्राणि दश भोज्य नरर्षभ ।
नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत योगेष्वभिरतः सदा १५
भैक्ष्येणान्नं समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृतः ।
स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्वेह सुखमेधते ॥ १६
अहिंसन्ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परिपाल्य च ।
क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्नं यो वै प्रयच्छति १७
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यः प्रयत सुसमाहितः ।
तेनापोहति धर्मात्मन् दुष्कृत कर्म पाण्डव १८
षड्भागपरिशुद्धं च कृषेर्भागमुपार्जितम् ।
वैश्यो ददद्विजातिभ्य· पापेभ्यः परिमुच्यते
अवाप्य प्राणसन्देहं कार्कश्येन समार्जितम् ।
अन्न दत्वा द्विजातिभ्यः शूद्रः पापात्प्रमुच्यते
औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वाऽविहिंसकः ।
यः प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि पश्यति
न्यायेनैवाप्तमन्नं तु नरो हर्षसमन्वितः ।
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥
अन्नमूर्जस्करं लोके दत्वोर्जस्वी भवेन्नरः ।
सतां पन्थानमावृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३
दानवद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः
ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः
सर्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम् ।
कार्यं पात्रागतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः २५
अन्नस्य हि प्रदानेन नरो रौद्रं न सेवते ।
तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् ॥ २६
यतेद्ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्नं गृही सदा ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः ॥ २७
भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप ।
न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा २८
न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते ।
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् २९
एवं खलु समायुक्तो रमते विगतज्वरः ।
रूपवान् कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपपद्यते ॥ ३०
एतत्ते सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ।
मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भारत ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि संसारचक्रे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

---

## ११३

युधिष्ठिर उवाच ।
अहिंसा वैदिकं कर्म ध्यानमिन्द्रियसंयमः ।
तपोऽथ गुरुशुश्रूषा किं श्रेयः पुरुषं प्रति ॥ १
बृहस्पतिरुवाच ।
सर्वाण्येतानि धर्म्याणि पृथग्द्वाराणि सर्वशः
शृणु संकीर्त्यमानानि षडेव भरतर्षभ ॥ २
हन्त निःश्रेयसं जन्तोरहं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।
अहिंसापाश्रयं धर्मं यः साधयति वै नरः ॥ ३
त्रीन् दोषान् सर्वभूतेषु निधाय पुरुषः सदा ।
कामक्रोधौ च संयम्य ततः सिद्धिमवाप्नुते ४

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

अहिंसेति ॥ १ ॥ त्रीन्दोषान् कामक्रोधलोभान् लोकेषु निधाय न तु स्वात्मनि कामक्रोधौ चात्लोभम् ॥४॥

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।
आत्मनः सुखमन्विच्छन् स प्रेत्य न सुखी भवेत्
आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पूरुषः।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते ६
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः।
देवाऽपि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ७
न तत्परस्य सन्दध्यात्प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ८
प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥ ९
यथा परः प्रक्रमते परेषु
तथाऽपरे प्रक्रमन्ते परस्मिन्।
तथैव तेऽस्तूपमा जीवलोके
यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः ॥ १०
वैशम्पायन उवाच।
इत्युक्त्वा त सुरगुरुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
दिवमाचक्रमे धीमान् पश्यतामेव नस्तदा ११

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि संसारचक्रसमाप्तौ
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

## ११४

वैशम्पायन उवाच।
ततो युधिष्ठिरो राजा शरतल्पे पितामहम्
पुनरेव महातेजाः पप्रच्छ वदतां वरः ॥ १
युधिष्ठिर उवाच।
ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ २
कर्मणा मनुजः कुर्वन् हिंसां पार्थिवसत्तम।
वाचा च मनसा चैव कथं दुःखात् प्रमुच्यते
भीष्म उवाच।
चतुर्विधेयं निर्दिष्टा ह्यहिंसा ब्रह्मवादिभिः।
एकैकतोऽपि विभ्रष्टा न भवत्यरिसूदन ॥ ४
यथा सर्वश्चतुष्पाद्वै त्रिभिः पादैर्न तिष्ठति।
तथैवेयं महीपाल कारणैः प्रोच्यते त्रिभिः ५
यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥ ६
एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः पुरा।
कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसापि च ७
पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाऽथ कर्मणा
न भक्षयति यो मांसं त्रिविधं स विमुच्यते ८
त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः।
मनो वाचि तथाऽऽस्वादे दोषा ह्येषु प्रतिष्ठिताः
न भक्षयन्त्यतो मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः।
दोषांस्तु भक्षणे राजन्मांसस्येह निबोध मे ॥
पुत्रमांसोपमं जानन् खादते यो विचक्षणः।
मांसं मोहसमायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः

---

सर्वेषां भूतानामात्मभूतस्य आत्मदुःखेनेव परदुःखेनापि उद्विजतः सर्वभूतानि आत्मत्वेन तत्त्वदृशा पश्यतः मार्गे देवा मुह्यन्ति स व्यापको भूत्वा मुच्यत इत्यर्थः। अपदस्य गत्यागतिहीनत्वान्मार्गसूचकपदरहितस्य पदैषिणः स्थानैषिणः बहिर्मुखा इत्यर्थः ॥ ७॥ यथेति। हिंसितो हिनस्ति पालितः पालयति तस्मात्पालयेदेव नो हिंसयेदित्यर्थः ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

११४

**तत इति** ॥ १ ॥ मनसा वचसा कर्मणा भक्षणेनेति चतुर्विधा हिंसा। तत्र एकेन त्यक्ता सर्वात्मना त्यक्ता न भवति न ह्यभक्षयन् असंकल्पयन् अन्यमांसं भोक्ष्ये इत्यवदन् अकुर्वतो वा हिंसा केनचिदंशेन भवति॥ ४॥तत्र दृष्टान्तमाह— **यथेति**। एकेन पादेन विना त्रिभिः पादैः पशुरिवेयमप्येकेनांशेन हीना अंशत्रयेण न तिष्ठतीत्यर्थः ॥५॥ **यथेति**। नागपदे गजपदे क्षुद्रपदानामिव सर्वेषां धर्माणां समावेशो भवति अहिंसायाम्। कौञ्जरे पदे दत्ते सति सर्वाणि पदानि यथा पिधीयन्ते एवं हिंसायां सर्वे धर्माः पिधीयन्ते ॥ ६ ॥

पितृमातृसमायोगे पुत्रत्वं जायते यथा।
हिंसां कृत्वावशः पापो भूयिष्ठं जायते तथा
रसं च प्रतिजिह्वाया ज्ञानं प्रज्ञायते यथा।
तथा शास्त्रेषु नियतं रागो ह्यास्वादिताद्भवेत्
संस्कृतासंस्कृताः पक्का लवणालवणास्तथा॥
प्रजायन्ते यथा भावास्तथा चित्तं निरुध्यते॥
भेरीमृदङ्गशब्दांश्च तन्त्रीशब्दांश्च पुष्कलान्॥
निषेविष्यन्ति वै मन्दा मांसभक्षाः कथं नराः
अचिन्तितमनिर्दिष्टमसंकल्पितमेव च।
रसगृद्ध्याऽभिभूता ये प्रशंसन्ति फलार्थिनः
प्रशंसा ह्येव मांसस्य दोषकर्मफलान्विता।
जीवितं हि परित्यज्य बहवः साधवो जनाः
स्वमांसैः परमांसानि परिपाल्य दिवं गताः॥
एवमेषा महाराज चतुर्भिः कारणैर्वृता।
अहिंसा तव निर्दिष्टा सर्वधर्मानुसंहिता १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मांसवर्जनकथने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥

## ११५

युधिष्ठिर उवाच।
अहिंसा परमो धर्म इत्युक्तं बहुशस्त्वया।
श्राद्धेषु च भवानाह पितॄनामिषकांक्षिणः॥ १
मांसैर्बहुविधैः प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा
अहत्वा च कुतो मांसमेवमेतद्विरुध्यते॥ २
जातो नः संशयो धर्मे मांसस्य परिवर्जने।
दोषो भक्षयतः कः स्यात्कश्चाभक्षयतो गुणः
हत्वा भक्षयतो वापि परेणोपहृतस्य वा।
हन्याद्वा यः परस्यार्थे क्रीत्वा वा भक्षयेन्नरः
एतदिच्छामि तत्त्वेन कथ्यमानं त्वयाऽनघ।
निश्चयेन चिकीर्षामि धर्ममेतं सनातनम्॥ ५
कथमायुरवाप्नोति कथं भवति सत्त्ववान्।
कथमव्यङ्गतामेति लक्षण्यो जायते कथम्॥६
भीष्म उवाच।
मांसस्याभक्षणाद्राजन्यो धर्मः कुरुनन्दन।
तन्मे श्रृणु यथातत्त्वं यथाऽस्य विधिरुत्तमः
रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम्।
प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः॥ ८
ऋषीणामत्र संवादो बहुशः कुरुनन्दन।
बभूव तेषां तु मतं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर॥ ९
यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः।
वर्जयेन्मधुमांसं च सममेतद्युधिष्ठिर॥ १०
सप्तर्षयो वालखिल्यास्तथैव च मरीचिपाः।
अमांसभक्षणं राजन्प्रशंसन्ति मनीषिणः॥११
न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत्।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्
अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु।
साधूनां संमतो नित्यं भवेन्मांसं विवर्जयन्
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति
ददाति यजते चापि तपस्वी च भवत्यपि।
मधुमांसनिवृत्त्येति प्राह चैवं बृहस्पतिः १५
मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
न खादति च यो मांसं सममेतन्मतं मम १६
सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति।
सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात् १७

---

पितृेति। यथा स्त्रीपुंयोगेनान्तरीयकं पुत्रजन्म एव हिंसकस्य भूयिष्ठं पापयोनौ जन्मेत्यर्थ॥ १२॥ जीवितं हीति। यथा स्वमांसार्पणात् शिबिरूर्ध्वं गत एवं परमांसादनादधो गच्छतीत्यर्थ॥ १७॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्याय॥ ११४॥

११५

अहिंसेति॥ १॥

सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत।
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते ॥
दुष्करं च रसज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् ।
चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥ १९
सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम् ।
दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः
एवं वै परमं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः।
प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः
मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम्
किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम्
अरोगाणामपापानां पापैर्मांसोपजीविभिः २३
तस्माद्विद्धि महाराज मांसस्य परिवर्जनम् ।
धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्य च २४
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ॥ २५
न हि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे॥
स्वाहास्वधामृतभुजो
देवाः सत्यार्जवप्रियाः।
क्रव्यादान् राक्षसान्विद्धि
जिह्मानृतपरायणान् ॥ २७
कान्तारेष्वथ घोरेषु दुर्गेषु गहनेषु च ।
रात्रावहनि सन्ध्यासु चत्वरेषु सभासु च २८
उद्यतेषु च शस्त्रेषु मृगव्यालहतेषु च ।
अमांसभक्षणे राजन्भयमन्यैर्न गच्छति ॥ २९
शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा ॥३०
यदि चेत्खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत्
घातकः खादकार्थाय तद्घातयति वै नरः ३१
अभक्ष्यमेतदिति वै इति हिंसा निवर्तते ।
खादकार्थमतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्तते ॥ ३२
यस्माद्ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते ।
तस्माद्विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ३३
त्रातारं नाधिगच्छन्ति रौद्राः प्राणिविहिंसकाः
उद्वेजनीया भूतानां यथा व्यालमृगास्तथा ३४
लोभाद्वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थमेव च।
संसर्गादथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम् ॥ ३५
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
उद्विग्नवासो वसति यत्र यत्राभिजायते ॥ ३६
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत्
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥ ३७
इदं तु खलु कौन्तेय श्रुतमासीत्पुरा मया।
मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषा मांसभक्षणे ३८
यो हि खादति मांसानि
प्राणिनां जीवितैषिणाम् ।
हतानां वा मृतानां वा
यथा हन्ता तथैव सः ॥ ३९
धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः
अखादन्ननुमोदंश्च भावदोषेण मानवः ।
योऽनुमोदति हन्यन्तं सोऽपि दोषेण लिप्यते
अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान्निरुजः सदा ।
भवत्यभक्षयन् मांसं दयावान् प्राणिनामिह ॥
हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः।
मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः
अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ।
भक्षयन्निरयं याति नरो नास्त्यत्र संशयः ४४
प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मणकाम्यया
अल्पदोषमिह ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ॥ ४५
खादकस्य कृते जन्तून् यो हन्यात् पुरुषाधमः
महादोषतरस्तत्र घातको न तु खादकः ॥ ४६
इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः।
हन्याज्जन्तून् मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ्नरः
भक्षयित्वापि यो मांसं पश्चादपि निवर्तते ।
तस्यापि सुमहान् धर्मो यः पापाद्विनिवर्तते ॥
आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते
इदमन्यत्तु वक्ष्यामि प्रमाणं विधिनिर्मितम् ।
पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठितम् ॥ ५०

---

**सर्वे** इति। न हि कृत्स्नो वेद तथा तद्बोधिता यज्ञाश्च पुरुषं हिंसायां प्रवर्तयन्ति, किंतु परिसंख्याविधया निवृत्तिमेव बोधयन्तीत्यर्थः ॥१८॥ व्यालमृगा मांसादपशवः ॥३४॥ हन्यन्तं हन्यमानम् ॥४१॥ इज्या देवपूजा यज्ञोऽश्वमेधादिस्तदर्थं श्रुतकृतैर्मार्गैरपायैरबुधो यज्ञोपनिषदमजानन्मांसगृध्नुः केवलं यज्ञव्याजेन मांसं भोक्तुकामः ॥ ४७ ॥

प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः।
यथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकांक्षिणाम्
हविर्यत्संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि।
वेदोक्तेन प्रमाणेन पितॄणां प्रक्रियासु च॥ ५२
अतोऽन्यथा वृथामांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत्।
अस्वर्ग्यमयशस्यं च रक्षोवद्भरतर्षभ॥ ५३
विधिहीनं नरः पूर्वं मांसं राजन्न भक्षयेत्।
अप्रोक्षितं वृथा मांसं विधिहीनं न भक्षयेत्॥
य इच्छेत्पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम्।
स वर्जयेत मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ५५
श्रूयते हि पुरा कल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ५६
ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिः पुरा।
अभक्ष्यमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो॥
आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः।
एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ५८
प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना।
आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षितास्तपसा मृगाः
क्रिया ह्येवं न हीयन्ते पितृदैवतसंश्रिताः।
प्रीयन्ते पितरश्चैव न्यायतो मांसतर्पिताः ६०
इदं तु शृणु राजेन्द्र कीर्त्यमानं मयाऽनघ।
अभक्षणे सर्वसुखं मांसस्य मनुजाधिप॥ ६१
यस्तु वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत्सुदारुणम्।
यश्चैव वर्जयेन्मांसं सममेतन्मतं मम॥ ६२
कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप।
वर्जयेन्मधुमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते॥ ६३
चतुरो वार्षिकान्मासान्यो मांसं परिवर्जयेत्
चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्तिमायुर्यशो बलम्
अथवा मासमेकं वै सर्वमांसान्यभक्षयन्।
अतीत्य सर्वदुःखानि सुखं जीवेन्निरामयः६५
वर्जयन्ति हि मांसानि मासशः पक्षशोऽपि वा
तेषां हिंसानिवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते॥
मांसं तु कौमुदं पक्षं वर्जितं पार्थ राजभिः।
सर्वभूतात्मभूतस्थैर्विदितार्थपरावरैः॥ ६७
नाभागेनाम्बरीषेण गयेन च महात्मना।
आयुनाथानरण्येन दिलीपरघुपूरुभिः॥ ६८
कार्तवीर्यानिरुद्धाभ्यां नहुषेण ययातिना।
नृगेण विष्वगश्वेन तथैव शशबिन्दुना॥ ६९
युवनाश्वेन च तथा शिबिनौशीनरेण च।
मुचुकुन्देन मान्धात्रा हरिश्चन्द्रेण वा विभो॥
सत्यं वदत माऽसत्यं सत्यं धर्मः सनातनः।
हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत् ७१
श्येनचित्रेण राजेन्द्र सोमकेन वृकेण च।
रैवते रन्तिदेवेन वसुना सृञ्जयेन च॥ ७२
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृपेण भरतेन च।
दुष्यन्तेन करूषेण रामालर्कनरैस्तथा।
विरूपाश्वेन निमिना जनकेन च धीमता ७३
ऐलेन पृथुना चैव वीरसेनेन चैव ह।
इक्ष्वाकुणा शम्भुना च श्वेतेन सगरेण च ७४
अजेन धुन्धुना चैव तथैव च सुबाहुना।
हर्यश्वेन च राजेन्द्र क्षुपेण भरतेन च॥ ७५
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम्।
शारदं कौमुदं मासं ततस्ते स्वर्गमाप्नुवन्॥ ७६
ब्रह्मलोके च तिष्ठन्ति ज्वलमानाः श्रियान्विताः
उपास्यमाना गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसमन्विताः॥
तदेतदुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मलक्षणम्।
ये चरन्ति महात्मानो नाकपृष्ठे वसन्ति ते ७८
मधुमांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः।
जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ७९
इमं धर्मममांसादं यश्चरेच्छ्रावयीत वा।
अपि चेत्सुदुराचारो न जातु निरयं व्रजेत् ८०
पठेद्वा य इदं राजञ्छृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः।
अमांसभक्षणविधिं पवित्रमृषिपूजितम्॥ ८१
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वकामैर्महीयते।
विशिष्टतां ज्ञातिषु च लभते नात्र संशयः ८२
आपन्नश्चापदो मुच्येद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
मुच्येत्तथाऽऽतुरो रोगाद्दुःखान्मुच्येत दुःखितः
तिर्यग्योनिं न गच्छेत रूपवांश्च भवेन्नरः।
ऋद्धिमान्वै कुरुश्रेष्ठ प्राप्नुयाच्च महद्यशः॥ ८४
एतत्ते कथितं राजन्मांसस्य परिवर्जने।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितम् ८५

व्रीहिमय पशु पुरोडाशादिरूप त एतदुत्क्रान्तमेधा अमेध्या पशव इत्युक्त्वा तस्मादाहु पुरोडाशसत्रं लोक्यमिति ब्राह्मणात्॥ ५६॥ अभक्ष्यमपि मांसं भक्ष्यमित्या स्थान पपातेत्यर्थ॥ ५८॥ आरण्या प्रोक्षिता इति पर्यग्निकृतानारण्यानुत्सृजन्तीति श्रुतेरारण्यैर्यज्ञ कृतोऽपि तेषां वधो न कृत इत्यर्थ॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मांसभक्षणनिषेधे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५

## ११६

युधिष्ठिर उवाच ।

इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांसगृद्धिनः ।
विसृज्य विविधान्भक्ष्यान्महारक्षोगणा इव १
अपूपान्विविधाकारान्शाकानि विविधानि च
खाण्डवान्रसयोगांश्च तथेच्छन्ति यथाऽऽमिषम्
तत्र मे बुद्धिरत्रैव विषये परिमुह्यते ।
न मन्ये रसतः किञ्चिन्मांसतोऽस्तीति किञ्चन
तदिच्छामि गुणान् श्रोतुं मांसस्याभक्षणे प्रभो
भक्षणे चैव ये दोषास्तांश्चैव पुरुषर्षभ ॥ ४
सर्वं तत्त्वेन धर्मज्ञ यथावदिह धर्मतः ।
किं चाभक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ ५
यथैतद्यादृशं चैव गुणा ये चास्य वर्जने ।
दोषा भक्षयतो येऽपि तन्मे ब्रूहि पितामह ६

भीष्म उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
न मांसात्परमं किञ्चिद्रसतो विद्यते भुवि ७
क्षतक्षीणाभितप्तानां ग्राम्यधर्मरतात्मनाम् ।
अध्वना कर्शितानां च न मांसाद्विद्यते परम्
सद्यो वर्धयति प्राणान्पुष्टिमग्र्यां दधाति च ।
न भक्ष्योऽभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परंतप
विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनन्दन ।
ये भवन्ति मनुष्याणां तान्मे निगदतः शृणु
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्स नृशंसतरो नरः ११
न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते ।
तस्माद्दयां नरः कुर्याद्यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥
शुक्राच्च तात संभूतिर्मांसस्येह न संशयः ।
भक्षणे तु महान् दोषो निवृत्त्या पुण्यमुच्यते ॥
विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्त्वेह न दुष्यति ।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ १४
अतोऽन्यथा प्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते ।
क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु
वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा भुञ्जन्न दुष्यति ।
आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः
अगस्त्येन पुरा राजन् मृगया येन पूज्यते ।
नात्मानमपरित्यज्य मृगया नाम विद्यते ॥१७
समतामुपसङ्गम्य भूत हन्यति हन्ति वा ।
अतो राजर्षयः सर्वे मृगया यान्ति भारत ॥१८
न हि लिप्यन्ति पापेन न चैतत्पातकं विदुः॥
न ह्यतः सदृशं किञ्चिदिह लोके परत्र च १९

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६

**इमे इति** ॥ १ ॥ आरण्या इति यजमानेन उत्सृष्टानामप्यारण्यानां राज्ञा मृगयायां वधो न्याय्य एव। उत्सृष्टपशोर्जीवने तत्तद्देवतायास्तृप्त्ययोगात् । अत एव कपिञ्जलानालभेतेत्यत्राधिकानामालम्भे दोषप्रसङ्गात्त्रित्वेनैव शास्त्रार्थस्यानुष्ठितत्वाद्बहुत्वस्य त्रित्वे पर्यवसानमुक्तम्। अन्यथा कपिञ्जलानामारण्यत्वेन पर्यग्निकरणान्ते उत्सृष्टानां वधस्याप्रसक्तेरधिकानामालम्भे दोषो न प्रसज्येत । तथा च यदि त्र्यधिकानुत्सृजेत्तर्हि तद्वधे उत्सृष्टु पापं यदि त्रीनेव तर्ह्यविकवधे हन्तु पापमिति सिद्धे तदिदमुक्तम्—आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः । अगस्त्येन पुरा राजन् मृगया येन पूज्यत इति। सर्वश इति उत्पन्नमात्रस्य ग्रहणम् ॥ १६ ॥ किञ्च हन्यमानात्पशोः स्ववधस्यापि सम्भवात् प्राणपणेनेयं क्रियमाणा मृगया न दोषायेत्याह—**नात्मानमिति** ॥१७॥ हन्यते भूतमनेन भूतं चैनं हन्ति ॥१८॥ एवं प्रवृत्तिमार्गमुक्त्वा वस्तुतत्त्वमाह—**न हीति** । न हि अगस्त्यवद्युगपत्सर्वेषां पशूनामालम्भप्रोक्षणादिकमिदानीन्तनेन कर्तुं शक्यं अतोऽप्रोक्षितानां वधे दोष एव । नापि प्राणपणत्वेन मृगयाया अदोषत्वम्। तस्कराणामपि तथा निर्दोषत्वप्रसङ्गादिति हिशब्देन सूचितम् ॥ १९ ॥

यत्सर्वेष्विह भूतेषु दया कौरवनन्दन
न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ॥ २०
दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम् ।
अहिंसालक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः॥ २१
यदहिंसात्मकं कर्म तत्कुर्यादात्मवान्नरः ।
पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ॥ २२
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥ २३
क्षतं च स्खलितं चैव पतितं क्लिष्टमाहतम् ।
सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विषमेषु च ॥ २४
नैनं व्यालमृगा घ्नन्ति न पिशाचा न राक्षसाः
मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद्यो भये परान् ॥२५
प्राणदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।
न ह्यात्मनः प्रियतरं किञ्चिदस्तीह निश्चितम्
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वेपथुः
जातिजन्मजरादुःखैर्नित्यं संसारसागरे ।
जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्विजन्ति च ॥२८
गर्भवासेषु पच्यन्ते क्षाराम्लकटुकै रसैः ।
मूत्रस्वेदपुरीषाणां परुषैर्भृशदारुणैः ॥ २९
जाताश्चाप्यवशास्तत्र छिद्यमानाः पुनः पुनः
याच्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः
कुंभीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः ।
आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्राम्यन्ते वै पुनः पुनः
नात्मनोऽस्ति प्रियतरः पृथिवीमनुसृत्य ह ।
तस्मात् प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान्भवेत्
सर्वमांसानि यो राजन् यावज्जीवं न भक्षयेत्
स्वर्गे स विपुलं स्थानं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ३३
ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम्
भक्ष्यन्ते तेऽपि भूतैस्तैरिति मे नास्ति संशयः
मांसं भक्षयते यस्माद्भक्षयिष्ये तमप्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्ध्यस्व भारत ॥ ३५
घातको वध्यते नित्यं तथा वध्यति भक्षिता
आक्रोष्टा क्रुध्यते राजंस्तथा द्वेष्यत्वमाप्नुते ३६
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३७
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥ ३८
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम् ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥ ३९
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽऽप्लुतम् ।
सर्वदानफलं वापि नैतत्तुल्यमहिंसया ॥ ४०
अहिंस्रस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्रो यजते सदा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता ॥
एतत् फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुङ्गव ।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ४२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अहिंसाफलकथने
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

## ११७

युधिष्ठिर उवाच ।
अकामाश्च सकामाश्च ये हताः स्म महामृधे
कां गतिं प्रतिपन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह १
दुःखं प्राणपरित्यागः पुरुषाणां महामृधे ।
जानासि त्वं महाप्राज्ञ प्राणत्यागं सुदुष्करम्२
समृद्धौ वाऽसमृद्धौ वा शुभे वा यदि वाऽशुभे
कारणं तत्र मे ब्रूहि सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ३
भीष्म उवाच ।
समृद्धौ वाऽसमृद्धौ वा शुभे वा यदि वाऽशुभे
संसारेऽस्मिन्समायाताः प्राणिनः पृथिवीपते

---

जातिर्गर्भे जन्म ॥ २८ ॥ मां स पूर्वजन्मनि भक्षितवानत एव तस्य मामहं भक्षयिष्यामीति व्यवहारान्मांसपदनिरुक्तिः ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७

अकामा इति ॥ १ ॥

निरता येन भावेन तत्र मे शृणु कारणम्।
सम्यक्कायमनुप्रश्नस्त्वयोक्तस्तु युधिष्ठिर ॥ ५
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तमिदं नृप ।
द्वैपायनस्य संवादं कीटस्य च युधिष्ठिर ॥ ६
ब्रह्मभूतश्चरन्विप्रः कृष्णद्वैपायनः पुरा ।
ददर्श कीटं धावन्तं शीघ्रं शकटवर्त्मनि ॥ ७
गतिज्ञः सर्वभूतानां भाषाज्ञश्च शरीरिणाम् ।
सर्वज्ञः स तदा दृष्ट्वा कीटं वचनमब्रवीत् ॥ ८

व्यास उवाच ।

कीट सन्त्रस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे।
क्व धावसि तदाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम्॥ ९

कीट उवाच ।

शकटस्यास्य महतो घोषं श्रुत्वा भयं मम ।
आगत वै महाबुद्धे स्वन एष हि दारुणः॥ १०
श्रूयते न त्र मां हन्यादिति ह्यस्मादपक्रमे ।
श्वसतां च शृणोम्येनं गोपुत्राणां प्रतोद्यताम्॥
वहतां सुमहाभारं सन्निकर्षे स्वनं प्रभो ।
नृणां च संवाहयतां श्रूयते विविधः स्वनः १२
श्रोतुमस्मद्विधेनैष न शक्यः कीटयोनिना ।
तस्मादतिक्रमाम्येष भयादस्मात्सुदारुणात् ॥
दुःखं हि मृत्युर्भूतानां जीवितं च सुदुर्लभम् ।
अतो भीतः पलायामि गच्छेयं नासुखं सुखात्

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तु तं प्राह कुतः कीट सुखं तव ।
मरणं ते सुखं मन्ये तिर्यग्योनौ तु वर्तसे॥ १५
शब्दं स्पर्शं रसं गन्धं भोगांश्चोच्चावचान्बहून्
नाभिजानासि कीट त्वं श्रेयो मरणमेव ते १६

कीट उवाच ।

सर्वत्र निरतो जीव इतश्चापि सुखं मम ।
चिन्तयामि महाप्राज्ञ तस्मादिच्छामि जीवितुं
इहापि विषयः सर्वो यथादेह प्रवर्तितः ।
मानुषाः स्थैर्यजाश्चैव पृथग्भोगा विशेषतः ॥
अहमासं मनुष्यो वै शूद्रो बहुधनः प्रभो ।
अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो वृद्धिजीवनः॥ १९

वाक्तीक्ष्णो निकृतिप्रज्ञो
द्वेष्टा विश्वस्य सर्वशः ।
मिथ्याकृतोऽपि विधिना
परस्वहरणे रतः ॥ २०

भृत्यातिथिजनश्चापि गृहे पर्यशितो मया।
मात्सर्यात्स्वादुकामेन नृशंसेन बुभुक्षता २१
देवार्थं पितृयज्ञार्थमन्नं श्रद्धाहृतं मया ।
न दत्तमर्थकामेन देयमन्नं पुरा किल ॥ २२
गुप्तं शरणमाश्रित्य भयेषु शरणागताः ।
अकस्मात्ते मया त्यक्ता न त्राता अभयैषिणः॥
धनं धान्यं प्रियान्दारान्यानं वासस्तथाद्भुतम्
श्रियं दृष्ट्वा मनुष्याणामसूयामि निरर्थकम् २४
ईर्ष्युः परसुखं दृष्ट्वा अन्यस्य न बुभूषकः ।
त्रिवर्गहन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्तकः २५
नृशंसगुणभूयिष्ठं पुरा कर्म कृतं मया ।
स्मृत्वा तदनुतप्येऽहं हित्वा प्रियमिवात्मजम्
शुभानां नाभिजानामि कृतानां कर्मणां फलम्
माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया
सकृज्जातिगुणोपेतः सङ्गत्या गृहमागतः ।
अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात्स्मृतिः
कर्मणा पुनरेवाहं सुखमागामि लक्षये ।
तच्छ्रोतुमहमिच्छामि त्वत्तः श्रेयस्तपोधन२९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि कीटोपाख्याने
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

---

इहेति मानुषाणा स्थैर्यजाना स्थावराणा च विशेषतो भोगा सन्ति जङ्गमाना तु साधारण्येनैव सर्वविषयज सुखं दु खं त्राऽस्तीत्यर्थ ॥ १८ ॥ पर्यशितः भृत्यादीन्परित्यज्याशनं कृतवानस्मीत्यर्थं ॥ २१ ॥ न बुभूषक· अनैश्वर्यमिच्छन् ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११७ ॥

## ११८

व्यास उवाच ।

शुभेन कर्मणा यद्वै तिर्यग्योनौ न मुह्यसे ।
ममैव कीट तत्कर्म येन त्वं न प्रमुह्यसि ॥ १
अहं त्वां दर्शनादेव तारयामि तपोबलात् ।
तपोबलाद्धि बलवद्बलमन्यन्न विद्यते ॥ २
जानामि पापैः स्वकृतैर्गतं त्वा कीट कीटताम्
अवाप्स्यसि पुनर्धर्मं धर्मं तु यदि मन्यसे ॥ ३
कर्म भूमिकृत देवा भुञ्जते तिर्यगाश्च ये ।
धर्मोऽपि हि मनुष्येषु कामार्थश्च तथा गुणाः ४
वाग्बुद्धिपाणिपादैश्च व्यपेतस्य विपश्चितः ।
किं हास्यति मनुष्यस्य मंदस्यापि हि जीवतः
जीवन् हि कुरुते पूजा विप्राग्र्यः शशिसूर्ययोः
ब्रुवन्नपि कथा पुण्या तत्र कीट त्वमेष्यसि॥ ६
गुणभूतानि भूतानि तत्र त्वमुपभोक्ष्यसे ।
तत्र तेऽहं विनेष्यामि ब्रह्म त्व यत्र वैष्यसि ७
स तथेति प्रतिश्रुत्य कीटो वर्त्मन्यतिष्ठत ।
शकटो व्रजंश्च सुमहानागतश्च यदृच्छया ॥ ८
चक्राक्रमेण भिन्नश्च कीटः प्राणान्मुमोच ह ।
संभूतः क्षत्रियकुले प्रसादादमितौजसः ॥ ९
तमृषिं द्रष्टुमगमत्सर्वास्वन्यासु योनिषु ।
श्वाविद्गोधावराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ॥
श्वपाकशूद्रवैश्याना क्षत्रियाणा च योनिषु ।
स कीट एवमाभाष्य ऋषिणा सत्यवादिना।
प्रतिस्मृत्याथ जग्राह पादौ मूर्ध्नि कृताञ्जलिः॥

कीट उवाच ।

इदं तदतुलं स्थानमीप्सितं दशभिर्गुणैः ।
यदहं प्राप्य कीटत्वमागतो राजपुत्रताम् १२
वहन्ति माममतिबलाः कुञ्जरा हेममालिनः ।
स्यन्दनेषु च कांबोजा युक्ताः परमवाजिनः ॥
उष्ट्राश्वतरयुक्तानि यानानि च वहन्ति माम् ।
सबान्धवः सहामात्यश्चाश्नामि पिशितौदनम्
गृहेषु स्वनिवासेषु सुखेषु शयनेषु च ।
वरार्हेषु महाभाग स्वपामि च सुपूजितः ॥ १५
सर्वेष्वपररात्रेषु सूतमागधबन्दिनः ।
स्तुवन्ति मा यथा देवा महेन्द्रं प्रियवादिनः ॥
प्रसादात्सत्यसन्धस्य भवतोऽमिततेजसः ।
यदहं कीटता प्राप्य संप्राप्तो राजपुत्रताम् १७
नमस्तेऽस्तु महाप्राज्ञ किं करोमि प्रशाधि माम्
त्वत्तपोबलनिर्दिष्टमिदं ह्यधिगतं मया ॥ १८

व्यास उवाच ।

अर्चितोऽहं त्वया राजन् वाग्भिरद्य यदृच्छया
अद्य ते कीटतां प्राप्य स्मृतिर्जाता जुगुप्सिता
न तु नाशोऽस्ति पापस्य यस्त्वयोपचितः पुरा
शूद्रेणार्थप्रधानेन नृशंसेनाततायिना ॥ २०
मम ते दर्शनं प्राप्तं तच्च वै सुकृतं त्वया ।
तिर्यग्योनौ स्म जातेन मम चाभ्यर्चनात्तथा
इतस्त्वं राजपुत्रत्वाद्ब्राह्मण्यं समवाप्स्यसि ।
गोब्राह्मणकृते प्राणान् हुत्वाऽऽत्मानं रणाजिरे
राजपुत्र सुखं प्राप्य क्रतूंश्चैवाप्तदक्षिणान् ।
अथ मोदिष्यसे स्वर्गे ब्रह्मभूतोऽव्ययः सुखी २३
तिर्यग्योन्याः शूद्रतामभ्युपैति
शूद्रो वैश्यं क्षत्रियत्वं च वैश्यः ।
वृत्तश्लाघी क्षत्रियो ब्राह्मणत्वं
स्वर्गं पुण्यं ब्राह्मणः साधुवृत्तः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि कीटोपाख्याने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

---

११८

शुभेन येन न मुह्यसे तन्ममैव कर्म ॥ १ ॥ तिर्यगा इत्यत्र वर्णलोप आर्षः । सिद्धा इत्यर्थः । धर्मोऽपि मनुष्येषु मूढेषु कामार्थं काम्य एवास्ति न तु निष्काम एवं गुणा अपि कामार्था एव ॥४॥ **वागिति** । कर्मणि षष्ठी वागादिहीन बुधमबुधं वा जीवन्तं नर किं हास्यति किं त्यक्ष्यति न किमपि । सर्वैं पुरुषार्थैरयं त्यक्त इत्यर्थः ॥ ५ ॥ जीवन् हीति। हे कीट यत्र विप्राग्र्यस्तत्र त्वमेष्यसि ॥६॥ **गुणेति** तत्र विप्रत्वे त्वं भूतानि भोक्ष्यसे तत्र योनौ ते तुभ्य अहं ब्रह्म विनेष्यामि ब्रह्मविद्या दास्यामि यत्र वा त्वं एष्यसि वाञ्छसि तत्र त्वा नेष्यामीति योजना ॥ ७ ॥ **स इति** यत्र यत्र गन्तु मनसा इच्छितवान् तत्र तत्र ऋषिमेव ददर्शेत्यर्थः ॥ ११ ॥ गोब्राह्मणकृते प्राणान्हित्वा ब्राह्मण्यमवाप्स्यसीति योजना ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११८ ॥

## ११९

भीष्म उवाच ।
क्षत्रधर्ममनुप्राप्तः स्मरन्नेव च वीर्यवान् ।
त्यक्त्वा स कीटतां राजंश्चचार विपुलं तपः १
तस्य धर्मार्थविदुषो दृष्ट्वा तद्विपुलं तपः ।
आजगाम द्विजश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २
व्यास उवाच ।
क्षात्रं देवव्रत कीट भूतानां परिपालनम् ।
क्षात्रं देवव्रत ध्यायंस्ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥३
पाहि सर्वाः प्रजाः सम्यक् शुभाशुभविदात्मवान् ।
शुभैः संविभजन् कामैरशुभानां च पावनैः ४
आत्मवान् भव सुप्रीतः स्वधर्माचरणे रतः ।
क्षात्रीं तनुं समुत्सृज्य ततो विप्रत्वमेष्यसि
भीष्म उवाच ।
सोऽथारण्यमनुप्राप्य पुनरेव युधिष्ठिर ।
महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रजा धर्मेण पाल्य च ॥ ६
अचिरेणैव कालेन कीटः पार्थिवसत्तम ।
प्रजापालनधर्मेण प्रेत्य विप्रत्वमागतः ॥ ७
ततस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा पुनरेव महायशाः ।
आजगाम महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ ८
व्यास उवाच ।
भोभो ब्रह्मर्षभ श्रीमन् मा व्यथिष्ठाः कथञ्चन
शुभकृच्छुभयोनीषु पापकृत्पापयोनिषु ॥ ९
उपपद्यति धर्मज्ञ यथापापफलोपगम् ।
तस्मान्मृत्युभयात्कीट मा व्यथिष्ठाः कथञ्चन
धर्मलोपभयं ते स्यात्तस्माद्धर्मं चरोत्तमम् ।
कीट उवाच ।
सुखात्सुखतरं प्राप्तो भगवंस्त्वत्कृते ह्यहम्
धर्ममूला श्रियं प्राप्य पाप्मा नष्ट इहाद्य मे ।
भीष्म उवाच ।
भगवद्वचनात्कीटो ब्राह्मण्यं प्राप्य दुर्लभम्
अकरोत्पृथिवीं राजन्यज्ञयूपशताङ्किताम् ।
ततः सालोक्यमगमद्ब्रह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ १३
अवाप च पदं कीटः पार्थ ब्रह्म सनातनम् ।
स्वकर्मफलनिर्वृत्तं व्यासस्य वचनात्तदा ॥१४
तेऽपि यस्मात्प्रभावेण हताः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
संप्राप्तास्ते गतिं पुण्यां तस्मान्मा शोच पुत्रक

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि कीटोपाख्याने
एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## १२०

युधिष्ठिर उवाच ।
विद्यातपोभ्यां दानाच्च किमेतेषां विशिष्यते
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह
भीष्म उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मैत्रेयस्य च संवादं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २
कृष्णद्वैपायनो राजन्नज्ञातचरितं चरन् ।
वाराणस्यामुपातिष्ठन्मैत्रेयं स्वैरिणीकुले ॥ ३
तमुपस्थितमासीनं ज्ञात्वा स मुनिसत्तमम् ।
अर्चित्वा भोजयामास मैत्रेयोऽशनमुत्तमम् ४
तदन्नमुत्तमं भुक्त्वा गुणवत्सार्वकामिकम् ।
प्रतिष्ठमानोऽस्मयत प्रीतः कृष्णो महामनाः ५
तमुत्स्मयन्तं संप्रेक्ष्य मैत्रेयः कृष्णमब्रवीत् ।
कारणं ब्रूहि धर्मात्मन्व्यस्मयिष्ठाः कुतश्च ते ६

---

११९

**क्षत्रेति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

**विद्यातपोभ्यामिति** ॥ १ ॥ मैत्रेयमपि अज्ञातचरितं चरन्नित्यर्थः । स्व ईर्यति धर्माय प्रेरयति स्वैरिणी मुनिश्रेणी तस्याः कुले गृहे ॥ ३ ॥ अस्मयत विस्मयं प्राप्तवान् ॥ ५ ॥ कुतश्च ते प्रमोद इति सम्बन्धः ॥ ६ ॥

तपस्विनो धृतिमतः प्रमोदः समुपागतः ।
एतत्पृच्छामि ते विद्वन्नभिवाद्य प्रणम्य च ।
आत्मनश्च तपोभाग्यं महाभाग्यं तवेह च ॥७
पृथगाचरतस्तात पृथगात्मसुखात्मनोः ।
अल्पान्तरमहं मन्ये विशिष्टमपि चान्वयात् ८
व्यास उवाच ।
अतिच्छेदातिवादाभ्यां स्मयोऽयं समुपागतः
असत्यं वेदवचनं कस्माद्वेदोऽनृतं वदेत् ॥ ९
त्रीण्येव तु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तम व्रतम्
न द्रुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत् ॥ १०
इति वेदोक्तमृषिभिः पुरस्तात्परिकल्पितम् ।
इदानीं चैव नः कृत्यं पुरस्ताच्च परिश्रुतम् ११
अल्पोऽपि तादृशो दायो भवत्युत महाफलः
तृषिताय च ते दत्तं हृदयेनानसूयता ॥ १२
तृषितस्तृषिताय त्वं दत्त्वैतद्दर्शनं मम ।
अजैषीर्महतो लोकान्महायज्ञैरिव प्रभो ॥ १३
ततो दानपवित्रेण प्रीतोऽस्मि तपसैव च ।
पुण्यस्यैव हि ते सत्त्व पुण्यस्यैव च दर्शनम् ॥
पुण्यस्यैवाभिगन्धस्ते मन्ये कर्मविधानजम् ।
अधिकं मार्जनात्तात तथा चैवानुलेपनात् १५
शुभं सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं द्विज ।
नो चेत्सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं भवेत् ॥१६
यानीमान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि ।
तेषां श्रेष्ठतरं दानमिति मे नात्र संशयः ॥ १७
दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः
ते हि प्राणस्य दातारस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥
यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः।
सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम् १९
त्वं हि तात महाबुद्धे सुखमेष्यसि शोभनम् ।
सुखात्सुखतरप्राप्तिमाप्नुते मतिमान्नरः ॥ २०
तन्नः प्रत्यक्षमेवेदमुपलभ्यमसंशयम् ।
श्रीमन्तः प्राप्नुवन्त्यर्थान्दानं यज्ञं तथा सुखम्
सुखादेव परं दुःखं दुःखादप्यपरं सुखम् ।
दृश्यते हि महाप्राज्ञ नियतं वै स्वभावतः २२
त्रिविधानीह वृत्तानि नरस्याहुर्मनीषिणः ।
पुण्यमन्यत्पापमन्यन्न पुण्यं न च पापकम् २३
न वृत्तं मन्यते तस्य मन्यते न च पातकम् ।
तथा स्वकर्मनिर्वृत्तं न पुण्यं न च पापकम् ॥
यज्ञदानतपःशीला नरा वै पुण्यकर्मिणः ।
येऽभिद्रुह्यन्ति भूतानि ते वै पापकृतो जनाः
द्रव्याण्याददते चैव दुःखं यान्ति पतन्ति च।
ततोऽन्यत्कर्म यत्किञ्चिन्न पुण्यं न च पातकम्
रमस्वैधस्व मोदस्व देहि चैव यजस्व च ।
न त्वामभिभविष्यन्ति वैद्या न च तपस्विनः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मैत्रेयभिक्षायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

---

एतत् आत्मनस्तपोभाग्यं तव महाभाग्यं ते त्वा पृच्छामि आश्चर्यदर्शनं विना विस्मयो न भवतीति भाव ७ **पृथगिति** पृथगात्मा उपाधिपरिच्छिन्नो जीव सुखात्मा अनुपाधिकं ब्रह्म पञ्चम्यर्थे षष्ठी। तत. पृथगाचरतस्तव जीवन्मुक्तस्य मुक्तामुक्तोभयात्मन. अपेक्षयाहमात्मानमल्पान्तरं मन्ये। यतस्त्व मद्भाग्यं दृष्ट्वा विस्मितोऽसि अतोऽहं त्वत्तोऽल्पान्तरोऽस्मीत्यात्मानमनुमिनोमीत्यर्थ । अन्वयात् मित्रवंश्यत्वात् विशिष्टमपीतरेभ्य ॥ ८ ॥ अतिच्छेदोऽत्यन्तमन्तरं मशकेन समुद्रशोषणमिव । अतिच्छंद इति पाठेऽपि स एवार्थ । अतिवादस्तस्यैवार्थस्य कथनं लोके ताभ्या विस्मयो मेऽभवत् । इदं स्थानं क्रतुशतं विना न प्राप्यत इति वेदवचनमसत्य जलमात्रदानेन तव तत्प्राप्तिदर्शनात् । देशकालपात्रश्रद्धाविशेषादल्पमपि महत्तमत्वं जलमौक्तिकन्यायेन प्राप्नोतीति दर्शनात् कस्माद्वेदोऽनृतं वदेदिति उक्तम् ॥९॥ पदानि पदनीयानि एतदेव त्रयमुत्तमं व्रतम् ॥१०॥ न अस्माभिरपि कृत्यं अवश्यकर्तव्यम् ॥ ११ ॥ दायो दानम् ॥ १२ ॥ त्वं महतो लोकानजैषीरित्येतन्मम दर्शन प्रत्यक्षं तेनाहं विस्मितोऽस्मीति भावः एतद्दर्शमिति पाठे स्पष्टार्थः ॥ १३ ॥ धर्मतपोदानानि पुण्यत्रये दृष्टान्ता इत्याह—**पुण्यस्यैवेति** ॥ १४ ॥ मार्जनात्तीर्थस्नानात् अनुलेपनात् वेदव्रतसमापनात् ॥ १५ ॥ त्रिविधानीत्यस्यान्त्यं पादं व्याचष्टे न वृत्तमिति तस्य ब्रह्मनिष्ठस्य यज्ञादीनि पुण्यं द्रोहादीनि पापं ततोऽन्यन्न पुण्यं न च पापकमिति स्वकर्मनिर्वृत्तं पुण्यं पापं च न मन्यत इत्यर्थः ॥ २४ ॥ त्वं तु पुण्यस्यैवाधिकारीत्याह—**रमस्वेति** ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२० ॥

# १२१

भीष्म उवाच ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच मैत्रेयः कर्मपूजकः ।
अत्यन्तश्रीमति कुले जातः प्राज्ञो बहुश्रुतः १
मैत्रेय उवाच ।
असंशयं महाप्राज्ञ यथैवात्थ तथैव तत् ।
अनुज्ञातश्च भवता किंचिद्ब्रूयामहं विभो ॥ २
व्यास उवाच ।
यद्यदिच्छसि मैत्रेय यावद्यावद्यथा यथा ।
ब्रूहि तत्त्वं महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ ३
मैत्रेय उवाच ।
निर्दोषं निर्मलं चैवं वचनं दानसंहितम् ।
विद्यातपोभ्यां हि भवान्भावितात्मा न संशयः
भवतो भावितात्मत्वाल्लाभोऽयं सुमहान्मम ।
भूयो बुद्ध्याऽनुपश्यामि सुसमृद्धतपा इव ॥ ५
अपि नो दर्शनादेव भवतोऽभ्युदयो भवेत् ।
मन्ये भवत्प्रसादोऽयं तद्धि कर्म स्वभावतः ६
तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद्ब्राह्मण्यकारणम् ।
त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति वै द्विजः ७
अस्मिंस्तृप्ते च तृप्यन्ते पितरो दैवतानि च ।
न हि श्रुतवतां किंचिदधिकं ब्राह्मणादृते॥१८
अन्धं स्यात्तम एवेदं न प्रज्ञायेत किंचन
चातुर्वर्ण्यं न वर्तेत धर्माधर्मावृतानृते ॥ ९
यथा हि सुलभे क्षेत्रे फलं विन्दति मानवः ।
एवं दत्त्वा श्रुतवति फलं दाता समश्नुते ॥ १०
ब्राह्मणश्चेन्न विन्देत श्रुतवृत्तोपसंहितः ।
प्रतिग्रहीता दानस्य मोघं स्याद्धनिनां धनम्
अदन्ह्यविद्वान्हन्त्यन्नमद्यमानं च हन्ति तम् ।
तं चान्नं पाति यश्चान्नं स हन्ता हन्यतेऽबुधः
प्रभुर्ह्यन्नमदन्विद्वान् पुनर्जनयतीश्वरः ।
स चान्नाज्जायते तस्मात्सूक्ष्म एष व्यतिक्रमः
यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्णतः ।
न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः ॥ १४
यत्र वै ब्राह्मणाः सन्ति श्रुतवृत्तोपसंहिताः ।
तत्र दानफलं पुण्यमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ १५
ये योनिशुद्धाः सततं तपस्यभिरता भृशम् ।
दानाध्ययनसंपन्नास्ते वै पूज्यतमाः सदा १६
तैर्हि सद्भिः कृतः पन्थास्तेन यातो न मुह्यते ।
ते हि स्वर्गस्य नेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मैत्रेयभिक्षायां
एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

---

१२१

**एवमिति** ॥ १ ॥ पात्रगुणाद्दानस्य महाफलत्वं मैत्रेय आह—**निर्दोषमिति** द्वाभ्याम् ॥ ४ ॥ भवतो दर्शनान्नोऽस्माकमभ्युदयो भवेदिति योजना ॥ ६ ॥ श्रुतं शास्त्रज्ञानम् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणादृते इदमन्धं तम एव स्यात्ततो वर्णधर्मादिकं तेन विना न प्रज्ञायेतेति सम्बन्धः ॥ ८ ॥ **अदन्निति** । तमदन्तं स अबुध अदतोऽन्नस्य च तादृशस्य हन्ता स्वयमपि हन्यते दोषेणेत्यर्थः । तच्चान्नं पाति यश्चान्नमिति पाठे तच्चान्नमद्यमानं सत्तमत्तारं हन्तीति पूर्वेणान्वयः । यश्चान्नं स च तस्य हन्ता मूर्खस्ताभ्यां हताभ्याममबुधो दाता हन्यत इत्यर्थः ॥ १२ ॥ **प्रभुरिति** । यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभाविति स्मृतेर्विद्वानन्नमदंस्तस्य प्रभुर्भवति ईश्वरत्वाच्च क्षेत्रभूतः सन् पुनर्जनयति दात्रे अनेकगुणितं प्रयच्छतीत्यर्थः स च दातुरन्नाज्जायते प्रजारूपेण गृहस्थश्चेत्तत्र यस्यान्नं तस्य सन्ततिरिति सूक्ष्मो व्यतिक्रमोऽस्ति तेन गृहस्थः परपाकं नाश्नीयादिति गम्यते ॥ १३ ॥ **यदेवेति** प्रतिग्रहीत्रभावे अन्नस्य वृद्धिर्न स्यात् वृद्ध्यभावे दातुर्दाने प्रवृत्तिर्न स्यादिति दातृप्रतिग्रहीतारौ चक्रवल्लोकतन्त्रं वहत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

---

## १२२

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तः स भगवान् मैत्रेयं प्रत्यभाषत ।
दिष्ट्यैवं त्वं विजानासि दिष्ट्या ते बुद्धिरीदृशी
लोको ह्यार्यगुणानेव भूयिष्ठं तु प्रशंसति ।
रूपमानवयोमानश्रीमानाश्चाप्यसंशयम् ॥ २
दिष्ट्या नाभिभवन्ति त्वां दैवस्तेऽयमनुग्रहः
यत्ते भृशतरं दानाद्वर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ ३
यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित्प्रवृत्तयः ।
तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम् ॥४
अहं दानं प्रशंसामि भवानपि तपःश्रुते ।
तपः पवित्रं वेदस्य तपः स्वर्गस्य साधनम् ५
तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ।
तपसैव चापनुदेद्यच्चान्यदपि दुष्कृतम् ॥ ६
यद्यद्धि किंचित्संधाय पुरुषस्तप्यते तपः ।
सर्वमेतदवाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम्॥ ७
दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरतिक्रमम् ।
सर्वं वै तपसाऽभ्येति तपो हि बलवत्तरम्॥८
सुरापोऽसंमतादायी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
तपसा तरते सर्वमेनसश्च प्रमुच्यते ॥ ९
सर्वविद्यस्तु चक्षुष्मानपि यादृशतादृशम् ।
तपस्विनं तथैवाहुस्ताभ्यां कार्यं सदा नमः१०
सर्वे पूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः ।
दानप्रदाः सुखं प्रेत्य प्राप्नुवन्तीह च श्रियम्११
इमं च ब्रह्मलोकं च लोकं च बलवत्तरम् ।
अन्नदानैः सुकृतिनः प्रतिपद्यन्ति लौकिकाः१२
पूजिताः पूजयन्त्येते मानिता मानयन्ति च ।
स दाता यत्र यत्रैति सर्वतः संप्रणूयते ॥ १३
अकर्ता चैव कर्ता च
लभते यस्य यादृशम् ।
यदि चोर्ध्वं यद्यधो वा
स्वान् लोकानभियास्यति १४
प्राप्स्यसि त्वन्नपानानि
यानि वाञ्छसि कानिचित् ।
मेधाव्यसि कुले जातः
श्रुतवाननृशंसवान् १५
कौमारचारी व्रतवान्मैत्रेय निरतो भव ।
एतद्गृहाण प्रथमं प्रशस्तं गृहमेधिनाम् ॥ १६
यो भर्ता वासिता तुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता
यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते ॥ १७
अद्भिर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा ।
दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति ॥ १८
स्वस्ति प्राप्नुहि मैत्रेय गृहान् साधु व्रजाम्यहम्
एतन्मनसि कर्तव्यं श्रेय एवं भविष्यति ॥ १९
तं प्रणम्याथ मैत्रेयः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
स्वस्ति प्राप्नोतु भगवानित्युवाच कृताञ्जलिः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मैत्रेयभिक्षायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## १२३

युधिष्ठिर उवाच ।

सत्स्त्रीणां समुदाचार सर्वधर्मविदां वर । श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१

---

१२२

**एवमिति** ॥ १ ॥ आर्यगुणान्प्रभुगुणान् ॥ २ ॥ वर्तयिष्यामि कथयिष्यामि ॥ ३॥ असम्मतादायी यथा च परप्रतिग्रहमभिमन्यते स्तेनो भवतीति स्मृते स्तेन ॥९॥ य सर्ववित्स चक्षुष्मान् यादृशतादृशमपि तपस्विनं तथैव चक्षुष्मन्तमेवाहुः ताभ्या सर्ववित्तपस्विभ्याम् ॥१० कौमारचारी प्रथमवया ॥१६॥ वासिता स्त्री ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

१२३

**सत्स्त्रीणामिति** ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।
सर्वज्ञां सर्वतत्त्वज्ञां देवलोके मनस्विनीम्।
कैकेयी सुमना नाम शांडिलीं पर्यपृच्छत ॥२
केन वृत्तेन कल्याणि समाचारेण केन वा।
विधूय सर्वपापानि देवलोकं त्वमागता ३
हुताशनशिखेव त्वं ज्वलमाना स्वतेजसा।
सुता ताराधिपस्येव प्रभया दिवमागता ॥ ४
अरजांसि च वस्त्राणि धारयन्ती गतक्लमा
विमानस्था शुभा भासि सहस्रगुणमोजसा ५
न त्वमल्पेन तपसा दानेन नियमेन वा।
इमं लोकमनुप्राप्ता त्वं हि तत्त्व वदस्व मे ६
इति पृष्टा सुमनया मधुरं चारुहासिनी।
शांडिली निभृतं वाक्यं सुमनामिदमब्रवीत् ७
नाहं काषायवसना नापि वल्कलधारिणी
न च मुंडा च जटिला भूत्वा देवत्वमागता८
अहितानि च वाक्यानि सर्वाणि परुषाणि च
अप्रमत्ता च भर्तारं कदाचिन्नाहमब्रुवम् ॥ ९
देवतानां पितॄणां च ब्राह्मणानां च पूजने।
अप्रमत्ता सदा युक्ता श्वश्रूश्वशुरवर्तिनी ॥ १०
पैशुन्ये न प्रवर्तामि न ममैतन्मनोगतम्।
अद्वारि न च तिष्ठामि चिरं न कथयामि च
असद्वा हसितं किञ्चिदहितं वापि कर्मणा।
रहस्यमरहस्यं वा न प्रवर्तामि सर्वथा ॥ १२
कार्यार्थे निर्गतं चापि भर्तारं गृहमागतम्।
आसनेनोपसंयोज्य पूजयामि समाहिता १३
यदन्नं नाभिजानाति यद्भोज्यं नाभिनन्दति।
भक्ष्यं वा यदि वा लेह्यं तत्सर्वं वर्जयाम्यहम्
कुटुंबार्थे समानीतं यत्किञ्चित्कार्यमेव तु।
प्रातरुत्थाय तत्सर्वं कारयामि करोमि च १५
प्रवासं यदि मे याति भर्ता कार्येण केनचित्
मङ्गलैर्बहुभिर्युक्ता भवामि नियता तदा ॥ १६
अञ्जनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम्।
प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनन्दामि भर्तरि
नोत्थापयामि भर्तारं सुखसुप्तमहं सदा।
आन्तरेष्वपि कार्येषु तेन तुष्यति मे मनः १८
नायासयामि भर्तारं कुटुम्बार्थेऽपि सर्वदा।
गुप्तगुह्या सदा चास्मि सुसंमृष्टनिवेशना १९
इमं धर्मपथं नारी पालयन्ती समाहिता।
अरुन्धतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते २०
भीष्म उवाच।
एतदाख्याय सा देवी सुमनायै तपस्विनी।
पतिधर्मं महाभागा जगामादर्शनं तदा २१
यश्चेदं पांडवाख्यानं पठेत्पर्वणि पर्वणि।
स देवलोकं संप्राप्य नन्दने स सुखी वसेत्२२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि शाण्डिलीसुमनासंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

## १२४

युधिष्ठिर उवाच।
साम्नि चापि प्रदाने च ज्यायः किं भवतो मतम्
प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ यदत्र व्यतिरिच्यते १
भीष्म उवाच।
साम्ना प्रसाद्यते कश्चिद्दानेन च तथा परः।
पुरुषप्रकृतिं ज्ञात्वा तयोरेकतरं भजेत् ॥ २
गुणांस्तु शृणु मे राजन् सान्त्वस्य भरतर्षभ।
दारुणान्यपि भूतानि सान्त्वेनाराधयेद्यथा ३
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
गृहीत्वा रक्षसा मुक्तो द्विजातिः कानने यथा
कश्चिद्वाग्बुद्धिसंपन्नो ब्राह्मणो विजने वने।
गृहीतः कृच्छ्रमापन्नो रक्षसा भक्षयिष्यता ५

मङ्गलैर्नियतेति मङ्गलसूत्रमात्रं धारयामि न तु ताम्बूलादीनित्यर्थः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

१२४

साम्नीति ॥ १ ॥

स बुद्धिश्रुतिसंपन्नस्तं दृष्ट्वाऽतीव भीषणम् ।
सामैवास्मिन्प्रयुयुजे न मुमोह न विव्यथे ६
रक्षस्तु वाचं संपूज्य प्रश्न पप्रच्छ तं द्विजम् ।
मोक्ष्यसे ब्रूहि मे प्रश्नं केनास्मि हरिणः कृशः ७
मुहूर्तमथ सञ्चिन्त्य ब्राह्मणस्तस्य रक्षसः ।
आभिर्गाथाभिरव्यग्रः प्रश्नं प्रतिजगाद ह ॥ ८

ब्राह्मण उवाच ।

विदेशस्थो विलोकस्थो विना नूनं सुहृज्जनैः
विषयानतुलान् भुङ्क्षे तेनासि हरिणः कृशः
नूनं मित्राणि ते रक्षः साधूपचरितान्यपि ।
स्वदोषादपरज्यन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥
धनैश्वर्याधिकाः स्तब्धास्त्वद्गुणैः परमावराः
अवजानन्ति नूनं त्वां तेनासि हरिणः कृशः
गुणवान्विगुणानन्यान्नूनं पश्यसि सत्कृतान् ।
प्राज्ञोऽप्राज्ञान्विनीतात्मा तेनासि हरिणःकृशः
अवृत्त्या क्लिश्यमानोऽपि वृत्त्युपायान्विगर्हयन्
माहात्म्याद्व्यथसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥
संपीड्यात्मानमार्यत्वात्त्वया कश्चिदुपस्कृतः ।
जितं त्वां मन्यते साधो तेनासि हरिणः कृशः
क्लिश्यमानान्विमार्गेषु कामक्रोधावृतात्मनः ।
मन्ये त्वं ध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः
प्रज्ञासम्भावितो नूनमप्रज्ञैरुपसंहितः ।
ह्रीयमानोसि दुर्वृत्तैस्तेनासि हरिणः कृशः ॥
नूनं मित्रमुखः शत्रुः कश्चिदार्यवदाचरन् ।
वञ्चयित्वा गतस्त्वां वै तेनासि हरिणः कृशः
प्रकाशार्थगतिर्नूनं रहस्यकुशलः कृती ।
तज्ज्ञैर्न पूज्यसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः १८
असत्स्वपि निविष्टेषु ब्रुवतो मुक्तसशयम् ।
गुणास्ते न विराजन्ते तेनासि हरिणःकृशः
धनबुद्धिश्रुतैर्हीनः केवलं तेजसान्वितः ।
महत्प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः २०
तपःप्राणिहितात्मानं मन्ये त्वारण्यकांक्षिणम्
बान्धवा नाभिनन्दन्ति तेनासि हरिणः कृशः
इष्टभार्यस्य ते नूनं प्रातिवेश्यो महाधनः ।
युवा सुलालितः कामी तेनासि हरिणः कृशः
नूनमर्थवतां मध्ये तव वाक्यमनुत्तमम् ।
न भाति कालेऽभिहितं तेनासि हरिणः कृशः
दृढपूर्वं श्रुतं मूर्खं कुपितं हृदयप्रियम् ।
अनुनेतुं न शक्नोषि तेनासि हरिणः कृशः २४
नूनमासञ्जयित्वा त्वां कृत्ये कस्मिंश्चिदीप्सिते
कश्चिदर्थयते नित्यं तेनासि हरिणः कृशः २५
नून त्वां सुगुणैर्युक्तं पूजयानं सुहृद्ब्रुवम् ।
ममार्थ इति जानीते तेनासि हरिणः कृशः२६
अन्तर्गतमभिप्रायं नूनं नेच्छसि लज्जया ।
विवेक्तुं प्राप्तिशैथिल्यात्तेनासि हरिणः कृशः२७
नानाबुद्धिरुचो लोके मनुष्यान्नूनमिच्छसि ।
ग्रहीतु स्वगुणैः सर्वांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥
अविद्वान्भीरुरल्पार्थो विद्याविक्रमदानजम् ।
यशः प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः २९
चिराभिलषितं किञ्चित्फलमप्राप्तमेव ते ।
कृतमन्यैरपहृतं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३०
नूनमात्मकृतं दोषमपश्यन्किञ्चिदात्मनः ।
अकारणेऽभिशप्तोसि तेनासि हरिणः कृशः ॥
साधून् गृहस्थान् दृष्ट्वा च तथा साधून्वनेचरान्
मुक्तांश्चावसथे सक्तास्तेनासि हरिणः कृशः ॥
सुहृदां दुःखमार्तानां न प्रमोक्ष्यासि हानिजम्
अलमर्थगुणैर्हीनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३३
धर्म्यमर्थ्यं च काम्यं च काले चाभिहितं वचः
न प्रतीयन्ति ते नूनं तेनासि हरिणः कृशः ३४
दृत्तानकुशलैरर्थान्मनीषी सञ्जिजीविषुः ।
प्राप्य वर्तयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ३५
पापान् प्रवर्धतो दृष्ट्वा कल्याणानावसीदतः ।
ध्रुवं गर्हयसे नित्य तेनासि हरिणः कृशः ३६
परस्परविरुद्धानां प्रियं नूनं चिकीर्षसि ।
सुहृदामुपरोधेन तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३७

श्रोत्रियांश्च विकर्मस्थान्
प्राज्ञांश्चाप्यजितेन्द्रियान् ।
मन्येऽनुध्यायसि जनां-
स्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३८

एव संपूजितं रक्षो विप्रं तं प्रत्यपूजयत् ।
सखायमकरोच्चैन संयोज्यार्थैर्मुमोच ह ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि हरिणकृशकाख्याने
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

---

हरिण पाण्डुरवर्णः ॥ ७ ॥ अनात्मविषयिणी चिन्ता पाण्डुत्वकृशत्वहेतुः दानाभावे सामैव जीवनोपाय इत्यध्यायतात्पर्यम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२४ ॥

# १२५

युधिष्ठिर उवाच ।
जन्म मानुष्यकं प्राप्य कर्मक्षेत्रं सुदुर्लभम् ।
श्रेयोर्थिना दरिद्रेण किं कर्तव्यं पितामह ॥
दानानामुत्तमं यच्च देयं यच्च यथा यथा ।
मान्यान्पूज्यांश्च गाङ्गेय रहस्यं वक्तुमर्हसि २
वैशम्पायन उवाच ।
एवं पृष्टो नरेन्द्रेण पाण्डवेन यशस्विना ।
धर्माणां परमं गुह्यं भीष्मः प्रोवाच पार्थिवम्॥
भीष्म उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजन्धर्मगुह्यानि भारत ।
यथा हि भगवान्व्यासः पुरा कथितवान्मयि४
देवगुह्यमिदं राजन्यमेनाक्लिष्टकर्मणा ।
नियमस्थेन युक्तेन तपसो महतः फलम् ॥ ५
येन यः प्रीयते देवः प्रीयन्ते पितरस्तथा ।
ऋषयः प्रमथाः श्रीश्च चित्रगुप्तो दिशां गजाः
ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः ।
महादानफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥ ७
यश्चैतदेवं जानीयाज्ज्ञात्वा वा कुरुतेऽनघ ।
स दोषो दोषवांश्चेह तैर्गुणैः सह युज्यते ॥ ८
दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ९
अर्धेनैतानि सर्वाणि नृपतिः कथ्यतेऽधिकः ।
त्रिवर्गसहितं शास्त्रं पवित्रं पुण्यलक्षणम् ॥
धर्मव्याकरणं पुण्यं रहस्यश्रवणं महत् ।
श्रोतव्यं धर्मसंयुक्तं विहितं त्रिदशैः स्वयम् ॥
पितॄणां यत्र गुह्यानि प्रोच्यन्ते श्राद्धकर्मणि ।
देवतानां च सर्वेषां रहस्यं कथ्यतेऽखिलम्॥
ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः ।
महायज्ञफलं चैव सर्वदानफलं तथा ॥ १३
ये पठन्ति सदा मर्त्या येषां चैवोपतिष्ठति ।
श्रुत्वा च फलमाचष्टे स्वयं नारायणः प्रभुः ॥
गवां फलं तीर्थफलं यज्ञानां चैव यत्फलम् ।
एतत्फलमवाप्नोति यो नरोऽतिथिपूजकः॥१५
श्रोतारः श्रद्दधानाश्च येषां शुद्धं च मानसम् ।
तेषां व्यक्तं जिता लोकाः श्रद्दधानेन साधुना
मुच्यते किल्बिषाच्चैव न स पापेन लिप्यते ।
धर्मं च लभते नित्यं प्रेत्य लोकगतो नरः १७
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवदूतो यदृच्छया ।
स्थितो ह्यन्तर्हितो भूत्वा पर्यभाषत वासवम्
यौ तौ कामगुणोपेतावश्विनौ भिषजां वरौ ।
आज्ञयाऽहं तयोः प्राप्तः सनरान् पितृदैवतान्
कस्माद्धि मैथुनं श्राद्धे दातुर्भोक्तुश्च वर्जितम्।
किमर्थं च त्रयः पिंडाः प्रविभक्ताः पृथक् पृथक्
प्रथमः कस्य दातव्यो मध्यमः क्व च गच्छति।
उत्तरश्च स्मृतः कस्य एतदिच्छामि वेदितुम्
श्रद्दधानेन दूतेन भाषितं धर्मसहितम् ।
पूर्वस्थास्त्रिदशाः सर्वे पितरः पूज्य खेचरम् २२
पितर ऊचुः ।
स्वागतं तेऽस्तु भद्रं ते श्रूयतां खेचरोत्तम ।
गूढार्थः परमः प्रश्नो भवता समुदीरितः ॥२३
श्राद्धं दत्वा च भुक्त्वा च पुरुषो यः स्त्रियं व्रजेत्
पितरस्तस्य तं मासं तस्मिन् रेतसि शेरते २४
प्रविभागं तु पिंडानां प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
पिंडो ह्यधस्ताद्गच्छंस्तु अप आविश्य भावयेत्
पिण्डं तु मध्यमं तत्र पत्नी त्वेका समश्नुते ।
पिण्डस्तृतीयो यस्तेषां तं दद्याज्जातवेदसि २६
एष श्राद्धविधिः प्रोक्तो यथा धर्मो न लुप्यते।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति प्रहृष्टमनसः सदा ॥ २७
प्रजा विवर्धते चास्य अक्षयं चोपतिष्ठति ।
देवदूत उवाच ।
आनुपूर्व्येण पिंडानां प्रविभागः पृथक् पृथक्

---

१२५

**जन्मेति** ॥ १ ॥ यमेन प्राप्तमिति शेष ॥ ५ ॥ दशाना पशूना सूना वधो यत्र सा पशुप्रजातिर्दशसूना चक्र चक्रवान् तैलिक ध्वज सुरापायी नृप क्षुद्रो राजा ॥ ९ ॥ अधिको नृपतिस्तु एतानि सर्वाणि अर्धेन तुलयन् कथ्यते । एतच्च तारतम्य प्रतिग्रहार्थमुच्यते। एवं दुःप्रतिग्रहपराङ्मुखेन त्रिवर्गशास्त्रे धर्मार्थकामशास्त्राणि ज्ञेयानि ॥ १० ॥तत्राप्यर्थकामयो प्रसिद्धत्वाद्धर्मशास्त्राण्येव श्रोतव्यानीत्याह—**धर्मव्यादिना** ॥ ११ ॥ पठन्ति शास्त्र उपतिष्ठति सम्यक् स्फुरति आचष्टे च य म स्वयं नारायण एवेति ज्ञातव्यः ॥ १४ ॥ एवं स्तुत्वा शास्त्रमारभते गवा फलमिति शास्त्रसङ्क्षेप ॥१५॥ श्रोतार इति द्वाभ्या श्रद्धाप्रशंसा ॥१६॥ सनरान् महर्षीन्प्राप्त प्रष्टुमिति शेष ॥ १९ ॥ पूज्य सम्पूज्य ॥ २२ ॥

पितृणां त्रिषु सर्वेषां निरुक्तं कथितं त्वया ।
एकः समुद्धृतः पिंडो ह्यधस्तात्कस्य गच्छति ॥
कं वा प्रीणयते देवं कथं तारयते पितॄन् ।
मध्यमं तु तदा पत्नी भुंक्तेऽनुज्ञातमेव हि ॥३०
किमर्थं पितरस्तस्य कव्यमेव च भुञ्जते ।
अत्र यस्त्वन्तिमः पिण्डो गच्छते जातवेदसम्
भवते का गतिस्तस्य कं वा समनुगच्छति ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पिण्डेषु त्रिषु या गतिः
फल वृत्ति च मार्गं च यश्चैनं प्रतिपद्यते ।

पितर ऊचुः ।

सुमहानेष प्रश्नो वै यस्त्वया समुदीरितः३३
रहस्यमद्भुतं चापि पृष्टाः स्म गगनेचर ।
एतदेव प्रशंसन्ति देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ३४
नेऽप्येवं नाभिजानन्ति पितृकार्यविनिश्चयम्
वर्जयित्वा महात्मान चिरजीविनमुत्तमम् ३५
पितृभक्तस्तु यो विप्रो वरलब्धो महायशाः ।
त्रयाणामपि पिण्डानां श्रुत्वा भगवतो गतिम्
देवदूतेन यः पृष्टः श्राद्धस्य विधिनिश्चयः ।
गतिं त्रयाणां पिण्डानां शृणुष्वावहितो मम
अपो गच्छति यो ह्यत्र शशिन ह्येष प्रीणयेत् ।
शशी प्रीणयते देवान् पितॄंश्चैव महामते ॥ ३८
भुंक्ते तु पत्नी यं चैषामनुज्ञाता तु मध्यमम् ।
पुत्रकामाय पुत्रं तु प्रयच्छन्ति पितामहाः ३९
हव्यवाहे तु यः पिण्डो दीयते तन्निबोध मे ।
पितरस्तेन तृप्यन्ति प्रीताः कामान् दिशंति च
एतत्ते कथितं सर्वं त्रिषु पिण्डेषु या गतिः ।
ऋत्विग्यो यजमानस्य पितृत्वमनुगच्छति ॥
तस्मिन्नहनि मन्यन्ते परिहार्यं हि मैथुनम् ।
शुचिना तु सदा श्राद्धं भोक्तव्य खेचरोत्तम

ये मया कथिता दोषा-
स्ते तथा स्युर्न चान्यथा ।
तस्मात्स्नातः शुचिः क्षान्तः
श्राद्धं भुञ्जीत वै द्विजः ॥ ४३

प्रजा विवर्धते चास्य यश्चैव संप्रयच्छति ।
ततो विद्युत्प्रभो नाम ऋषिराह महातपाः ४४
आदित्यतेजसा तस्य तुल्य रूप प्रकाशते ।
स च धर्मरहस्यानि श्रुत्वा शक्रमथाब्रवीत् ॥

तिर्यग्योनिगतान् सत्त्वान्
मर्त्या हिंसन्ति मोहिताः ।
कीटान् पिपीलिकान् सर्पान्
मेषान् समृगपक्षिणः ॥ ४६

किल्बिषं सुबहु प्राप्ताः किंस्विदेषां प्रतिक्रिया
ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ४७
पितरश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म तं मुनिम् ।

शक्र उवाच ।

कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं पुष्कराणि च४८
एतानि मनसा ध्यात्वा अवगाहेत्ततो जलम् ।
तथा मुच्यति पापेन राहुणा चन्द्रमा यथा ॥
त्र्यह स्नातः स भवति निराहारश्च वर्तते ।
स्पृशते यो गवा पृष्ठं वालधिं च नमस्यति ॥
ततो विद्युत्प्रभो वाक्यमभ्यभाषत वासवम् ।
अयं सूक्ष्मतरो धर्मस्तं निबोध शतक्रतो ५१
घृष्टो वटकषायेण अनुलिप्तः प्रियंगुणा ।
क्षीरेण षष्टिकान् भुक्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते
श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यमृषिचिन्तितम् ।
श्रुतं मे भाषमाणस्य स्थाणोः स्थाने बृहस्पतेः॥
रुद्रेण सह देवेश तन्निबोध शचीपते ।
पर्वतारोहणं कृत्वा एकपादो विभावसुम् ५४
निरीक्षेत निराहार ऊर्ध्वबाहुः कृताञ्जलिः ।
तपसा महता युक्त उपवासफलं लभेत् ॥ ५५
रश्मिभिस्तापितोऽर्कस्य सर्वपापमपोहति ।
ग्रीष्मकालेऽथ वा शीते एवं पापमपोहति ॥
ततः पापात्प्रमुक्तस्य द्युतिर्भवति शाश्वती ।
तेजसा सूर्यवद्दीप्तो भ्राजते सोमवत्पुनः ॥ ५७
मध्ये त्रिदशवर्गस्य देवराजः शतक्रतुः ।
उवाच मधुरं वाक्यं बृहस्पतिमनुत्तमम् ॥ ५८
धर्मगुह्यं तु भगवन्मानुषाणां सुखावहम् ।
सरहस्याश्च ये दोषास्तान् यथावदुदीरय ५९

---

चिरजीविनं मार्कण्डेयम् ॥ ३५ ॥ यत ऋत्विक् श्राद्धभोक्ता यजमानस्य पितृत्व गच्छति तस्माद- न्यात्मता गतः स्वस्त्रियं न गच्छेत्पारदार्यदोषतुल्यं ह्येतदि- त्यर्थ ॥ ४१ ॥ एतच्च वरणमारभ्य द्रष्टव्यमित्याशयेनाह —शुचिनेति ॥ ४२ ॥ वटकषायेण वटजटाकषायेण प्रियङ्गु राजसर्षप षष्टिकान् षष्टिरात्रेण पक्व धान्यम्॥५२ विभावसु सूर्यम् ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिरुवाच ।
प्रतिमेहन्ति ये सूर्यमनिलं द्विषते च ये ।
हव्यवाहे प्रदीप्ते च समिधं ये न जुह्वति ६०
बालवत्सां च ये धेनुं दुहन्ति क्षीरकारणात्
तेषां दोषान्प्रवक्ष्यामि तान्निबोध शचीपते ६१
भानुमाननिलश्चैव हव्यवाहश्च वासव ।
लोकानां मातरश्चैव गावः सृष्टाः स्वयंभुवा ॥
लोकांस्तारयितुं शक्ता मर्त्येष्वेतेषु देवताः।
सर्वे भवन्तः शृण्वन्तु एकैकं धर्मनिश्चयम् ६३
वर्षाणि षडशीतिं तु दुर्वृत्ताः कुलपांसनाः ।
स्त्रियः सर्वाश्च दुर्वृत्ताः प्रतिमेहन्ति या रविम्
अनिलद्वेषिणः शक्र गर्भस्था च्यवते प्रजा।
हव्यवाहस्य दीप्तस्य समिधं ये न जुह्वति ६५
अग्निकार्येषु वै तेषां हव्यं नाश्नाति पावकः।
क्षीरं तु बालवत्सानां ये पिबन्तीह मानवाः ॥
न तेषां क्षीरपाः केचिज्जायन्ते कुलवर्धनाः।
प्रजाक्षयेण युज्यन्ते कुलवंशक्षयेण च ॥ ६७
एवमेतत्पुरा दृष्टं कुलवृद्धैर्द्विजातिभिः।
तस्माद्वर्ज्यानि वर्ज्यानि कार्यं कार्यं च नित्यशः
भूतिकामेन मर्त्येन सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
ततः सर्वा महाभाग देवताः समरुद्गणाः ६९
ऋषयश्च महाभागाः पृच्छन्ति स्म पितॄंस्ततः
पितरः केन तुष्यन्ति मर्त्यानामल्पचेतसाम् ॥
अक्षयं च कथं दानं भवेच्चैवौर्ध्वदेहिकम्।
आनृण्यं वा कथं मर्त्या गच्छेयुः केन कर्मणा
एतदिच्छामहे श्रोतुं परं कौतूहलं हि नः।
पितर ऊचुः ।
न्यायतो वै महाभागाः संशयः समुदाहृतः
श्रूयतां येन तुष्यामो मर्त्यानां साधुकर्मणाम्।
नीलषण्डप्रमोक्षेण अमावास्यां तिलोदकैः ७३
वर्षासु दीपकैश्चैव पितॄणामनृणो भवेत् ।
अक्षयं निर्व्यलीकं च दानमेतन्महाफलम् ७४
अस्माकं परितोषश्च अक्षयः परिकीर्त्यते ।
श्रद्दधानाश्च ये मर्त्या आहरिष्यन्ति सन्ततिम्
दुर्गात्ते तारयिष्यन्ति नरकात्प्रपितामहान्।
पितॄणां भाषितं श्रुत्वा हृष्टरोमा तपोधनः ॥
वृद्धगार्ग्यो महातेजास्तानेवं वाक्यमब्रवीत् ।
के गुणा नीलषण्डस्य प्रमुक्तस्य तपोधनाः ७७
वर्षासु दीपदानेन तथैव च तिलोदकैः ।
पितर ऊचुः ।
नीलषण्डस्य लाङ्गूलं तोयमभ्युद्धरेद्यदि ७८
षष्टिं वर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ।
यस्तु शृङ्गगतं पङ्कं कूलादुद्धृत्य तिष्ठति ॥ ७९
पितरस्तेन गच्छन्ति सोमलोकमसंशयम् ।
वर्षासु दीपदानेन शशीवच्छोभते नरः ॥ ८०
तमोरूपं न तस्यास्ति दीपकं यः प्रयच्छति ।
अमावास्यां तु ये मर्त्याः प्रयच्छन्ति तिलोदकम्
पात्रमौदुम्बरं गृह्य मधुमिश्रं तपोधन ।
कृतं भवति तैः श्राद्धं सरहस्यं यथार्थवत् ८२
हृष्टपुष्टमनास्तेषां प्रजा भवति नित्यदा ।
कुलवंशस्य वृद्धिस्तु पिण्डदस्य फलं भवेत्
श्रद्दधानस्तु यः कुर्यात्पितॄणामनृणो भवेत् ८३
एवमेष समुद्दिष्टः श्राद्धकालक्रमस्तथा ।
विधिः पात्रं फलं चैव यथावदनुकीर्तितम् ८४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पितृरहस्यं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## १२६

भीष्म उवाच ।
केन ते च भवेत्प्रीतिः कथं तुष्टिं तु गच्छसि । इति पृष्टः सुरेन्द्रेण प्रोवाच हरिरीश्वरः ॥ १

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

१२६

केनेति ॥ १ ॥

विष्णुरुवाच ।

ब्राह्मणानां परावादो मम विद्वेषण महत् ।
ब्राह्मणैः पूजितैर्नित्यं पूजितोऽहं न संशयः २
नित्याभिवाद्या विप्रेन्द्रा भुक्त्वा पादौ तथात्मनः
तेषां तुष्यामि मर्त्यानां यश्चक्रे च बलिं हरेत्
वामनं ब्राह्मणं दृष्ट्वा वराहं च जलोत्थितम् ।
उद्धृतां धरणीं चैव मूर्ध्ना धारयते तु यः ४
न तेषामशुभं किञ्चित्कल्मषं चोपपद्यते ।
अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद्यो नरः सदा ५
पूजितं च जगत्तेन सदेवासुरमानुषम् ।
तेन रूपेण तेषां च पूजां गृह्णामि तत्त्वतः ॥ ६
पूजा ममैषा नास्त्यन्या यावल्लोकाः प्रतिष्ठिताः
अन्यथा हि वृथा मर्त्याः पूजयन्त्यल्पबुद्धयः ।
नाहं तत्प्रतिगृह्णामि न सा तुष्टिकरी मम ८

इन्द्र उवाच ।

चक्रं पादौ वराहं च ब्राह्मणं चापि वामनम्
उद्धृतां धरणीं चैव किमर्थं त्वं प्रशंससि ॥ ९
भवान्सृजति भूतानि भवान्संहरति प्रजाः ।
प्रकृतिः सर्वभूतानां समर्त्यानां सनातनी १०

भीष्म उवाच ।

संप्रहस्य ततो विष्णुरिदं वचनमब्रवीत् ।
चक्रेण निहता दैत्याः पद्भ्यां क्रान्ता वसुंधरा
वाराहं रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः ।
वामनं रूपमास्थाय जितो राजा मया बलिः
परितुष्टो भवाम्येवं मानुषाणां महात्मनाम् ।
तन्मां ये पूजयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः
अपि वा ब्राह्मणं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमागतम् ।
ब्राह्मणाग्र्याहुतिं दत्वा अमृतं तस्य भोजनम्
ऐन्द्रीं सन्ध्यामुपासित्वा
आदित्याभिमुखः स्थितः
सर्वतीर्थेषु स स्नातो
मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १५
एतद्वः कथितं गुह्यमखिलेन तपोधनाः ।
संशयं पृच्छमानानां किं भूयः कथयाम्यहम्

बलदेव उवाच ।

श्रूयतां परमं गुह्यं मानुषाणां सुखावहम् ।
अजानन्तो यदबुधाः क्लिश्यन्ते भूतपीडिताः
कल्य उत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां वै घृतं दधि
सर्षपं च प्रियंगुं च कल्मषात् प्रतिमुच्यते १८
भूतानि चैव सर्वाणि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा ।
उच्छिष्टं वाऽपि च्छिद्रेषु वर्जयन्ति तपोधनाः

देवा ऊचुः ।

प्रगृह्यौदुंबरं पात्रं तोयपूर्णं उदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद्व्रतम् ॥ २०
देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं चापि सिध्यति
अन्यथा हि वृथा मर्त्याः कुर्वते स्वल्पबुद्धयः
उपवासे बलौ चापि ताम्रपात्रं विशिष्यते ।
बलिर्भिक्षा तथाऽर्घ्यं च पितॄणां च तिलोदकम्
ताम्रपात्रेण दातव्यमन्यथाऽल्पफलं भवेत् ।
गुह्यमेतत्समुद्दिष्टं यथा तुष्यन्ति देवताः ॥ २३

धर्म उवाच ।

राजपौरुषिके विप्रे घाण्टिके परिचारिके।
गोरक्षके वाणिजके तथा कारुकुशीलवे २४
मित्रद्रुह्यनधीयाने यश्च स्याद्वृषलीपतिः
एतेषु दैवं पित्र्यं वा न देयं स्यात्कथञ्चन २५
पिण्डदास्तस्य हीयन्ते न च प्रीणाति वै पितॄन्
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते २६
पितरस्तस्य देवाश्च अग्नयश्च तथैव हि ।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति अतिथेरप्रतिग्रहात् ॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः ।
तुल्यदोषो भवत्येभिर्यस्यातिथिरनार्चितः २८

अग्निरुवाच ।

पादमुद्यम्य यो मर्त्यः स्पृशेद्गांश्च सुदुर्मतिः।
ब्राह्मणं वा महाभागं दीप्यमानं तथाऽनलम्
तस्य दोषान्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः
दिवं स्पृशत्यशब्दोऽस्य त्रस्यन्ति पितरश्च वै
वैमनस्यं च देवानां कृतं भवति पुष्कलम् ।
पावकश्च महातेजा हव्यं न प्रतिगृह्णाति ३१
आजन्मनां शतं चैव नरके पच्यते तु सः ।
निष्कृतिं च न तस्यापि अनुमन्यन्ति कर्हिचित्
तस्माद्गावो न पादेन स्प्रष्टव्या वै कदाचन ।
ब्राह्मणश्च महातेजा दीप्यमानस्तथाऽनलः ३३
श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता ।
एते दोषा मया प्रोक्तास्त्रिषु यः पादमुत्सृजेत्॥

विश्वामित्र उवाच ।

श्रूयतां परमं गुह्यं रहस्य धर्मसंहितम् ।
परमान्नेन यो दद्यात्पितॄणामौपहारिकम् ३५

पादौ स्वीयावप्यभिवाद्यौ मन्याया शिष्टाचारात् चक्रे गोमयोपलिप्ते मण्डले सुदर्शनमन्त्रेण पूजिते ॥ ३ ॥

गजच्छायायां पूर्वस्यां कुतपे दक्षिणामुखः ।
यदा भाद्रपदे मासि भवते बहुले मघा ॥ ३६
श्रूयतां तस्य दानस्य यादृशो गुणविस्तरः ।
कृतं तेन महच्छ्राद्धं वर्षाणीह त्रयोदश ३७

गाव ऊचुः ।

बहुले समंगे ह्यकुतोभये च
क्षेमे च सख्येव हि भूयसी च ।
यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा
शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे ३८
भूयश्च या विष्णुपदे स्थिता या
विभावसोश्चापि पथे स्थिता या ।
देवाश्च सर्वे सह नारदेन
प्रकुर्वते सर्वसहेति नाम ॥ ३९
मंत्रेणैतेनाभिवन्देत यो वै
विमुच्यते पापकृतेन कर्मणा ।
लोकानवाप्नोति पुरंदरस्य
गवां फलं चन्द्रमसो द्युतिं च ॥ ४०
एतं हि मन्त्र त्रिदशाभिजुष्टं
पठेत यः पर्वसु गोष्ठमध्ये ।
न तस्य पाप न भयं न शोकः
सहस्रनेत्रस्य च याति लोकम् ४१

भीष्म उवाच ।

अथ सप्त महाभागा ऋषयो लोकविश्रुताः।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ब्रह्माणं पद्मसंभवम् ॥ ४२
प्रदक्षिणमभिक्रम्य सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ।
उवाच वचनं तेषां वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४३
सर्वप्राणिहितं प्रश्नं ब्रह्मक्षत्रे विशेषतः ।
द्रव्यहीनाः कथं मर्त्या दरिद्राः साधुवर्तिनः४४
प्राप्नुवन्तीह यज्ञस्य फलं केन च कर्मणा ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ४५

ब्रह्मोवाच ।

अहो प्रश्नो महाभागा गूढार्थः परमः शुभः
सूक्ष्मः श्रेयांश्च मर्त्यानां भवद्भिः समुदाहृतः४६
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये निखिलेन तपोधनाः ।
यथा यज्ञफलं मर्त्यो लभते नात्र संशयः ४७
पौषमासस्य शुक्ले वै यदा युज्येत रोहिणी ।
तेन नक्षत्रयोगेन आकाशशयनो भवेत् ॥ ४८
एकवस्त्रः शुचिः स्नातः श्रद्दधानः समाहितः
सोमस्य रश्मयः पीत्वा महायज्ञफलं लभेत्
एतद्वः परमं गुह्यं कथितं द्विजसत्तमाः ।
यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शिनः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि देवरहस्ये
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## १२७

विभावसुरुवाच ।

सलिलस्याञ्जलिं पूर्णमक्षतांश्च घृतोत्तराः ।
सोमस्योत्तिष्ठमानस्य तज्जलं चाक्षतांश्च तान्
स्थितो ह्यभिमुखो मर्त्यः पौर्णमास्यां बलिं हरेत्
अग्निकार्यं कृतं तेन हुताश्चास्याग्नयस्त्रयः २
वनस्पतिं च यो हन्यादमावास्यामबुद्धिमान्
अपि ह्येकेन पत्रेण लिप्यते ब्रह्महत्यया ॥ ३
दन्तकाष्ठं तु यः खादेदमावास्यामबुद्धिमान् ।
हिंसितश्चन्द्रमास्तेन पितरश्चोद्विजन्ति च ४
हव्य न तस्य देवाश्च प्रतिगृह्णन्ति पर्वसु ।
कुप्यन्ते पितरश्चास्य कुले वंशोऽस्य हीयते५

श्रीरुवाच ।

प्रकीर्णं भाजनं यत्र भिन्नभाण्डमथासनम् ।
योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे ॥ ६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२६ ॥

१. द्वितीयार्थे प्रथमा।

१२७

सलिलस्येति ॥ १ ॥

देवताः पितरश्चैव उत्सवे पर्वणीषु वा ।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति कश्मलोपहतात्गृहात्
अङ्गिरा उवाच ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णं दद्याद्दीपं करञ्जके ।
सुवर्चलामूलहस्तः प्रजा तस्य विवर्धते ॥ ८
गार्ग्य उवाच ।
आतिथ्यं सतत कुर्याद्दीपं दद्यात्प्रतिश्रये ।
वर्जयानो दिवा स्वाप न च मांसानि भक्षयेत्
गोब्राह्मणं न हिंस्याच्च पुष्कराणि च कीर्तयेत्
एष श्रेष्ठतमो धर्मः सरहस्यो महाफलः ॥ १०
अपि क्रतुशतैरिष्ट्वा क्षय गच्छति तद्धविः ।
न तु क्षीयन्ति ते,धर्माः श्रद्दधानैः प्रयोजिताः
इदं च परमं गुह्यं सरहस्यं निबोधत ।
श्राद्धकल्पे च दैवे च तैर्थिके पर्वणीषु च १२
रजस्वला च या नारी श्वित्रिकाऽपुत्रिका च या
एताभिश्चक्षुषा दृष्टं हविर्नाश्नन्ति देवताः १३
पितरश्च न तुष्यन्ति वर्षाण्यपि त्रयोदश ।
शुक्लवासाः शुचिर्भूत्वा
ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ।
कीर्तयेद्भारतं चैव
तथा स्यादक्षयं हविः॥ १४
धौम्य उवाच ।
भिन्नभाण्ड च खट्वां च कुक्कुटं शुनकं तथा ।
अप्रशस्तानि सर्वाणि यश्च वृक्षो गृहेरुहः ॥
भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वाया तु धनक्षयः ।
कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाश्नन्ति देवताः ।
वृक्षमूले ध्रुवं सत्वं तस्माद्वृक्षं न रोपयेत् ॥
जमदग्निरुवाच ।
यो यजेदश्वमेधेन वाजपेयशतेन ह ।
अवाक्शिरा वा लम्बेत सत्रं वा स्फीतमाहरेत्
न यस्य हृदय शुद्ध नरकं स ध्रुवं व्रजेत् ।
तुल्य यज्ञश्च सत्य च हृदयस्य च शुद्धता १८
शुद्धेन मनसा दत्वा सक्तुप्रस्थं द्विजातये ।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्तः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि देवरहस्ये
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

## १२८

वायुरुवाच ।
किञ्चिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि मानुषाणां सुखावहम्
सरहस्याश्च ये दोषास्तान् शृणुध्वं समाहिताः
अग्निकार्यं च कर्तव्यं परमान्नेन भोजनम् ।
दीपकश्चापि कर्तव्यः पितृणां सतिलोदकः २
एतेन विधिना मर्त्यः
श्रद्दधानः समाहितः ।
चतुरो वार्षिकान् मासान्
यो ददाति तिलोदकम् ॥ ३
भोजनं च यथाशक्त्या ब्राह्मणे वेदपारगे ।
पशुबन्धशतस्येह फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ४
इदं चैवापरं गुह्यमप्रशस्तं निबोधत ।
अग्नेस्तु वृषलो नेता हविर्मूढाश्च योषितः ॥ ५
मन्यते धर्म एवेति स चाधर्मेण लिप्यते ।
अग्नयस्तस्य कुप्यन्ति शूद्रयोनिं स गच्छति ६
पितरश्च न तुष्यन्ति सह देवैर्विशेषतः ।
प्रायश्चित्त तु यत्तत्र ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ७

---

करञ्जसुवर्चले वृक्षवल्लिविशेषौ ॥ ८ ॥ अपुत्रिकेति च्छेद ॥ १३ ॥ सत्त्वं वृश्चिकसर्पादि न रोपयेत् गृहे इति शेष ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२७ ॥

१२८

किञ्चिदिति ॥ १ ॥ अग्नेररणीस्थस्य वा वैदिकस्य नेता देशान्तरप्रापको यदि योषित हविषा सोमाज्यपयःप्रभृतिना यज्ञावशिष्टेन इडादिस्थानीयेन मूढाः स्युस्तर्हि तस्य दोष ॥ ५ ॥ प्रायश्चित्त च वक्ष्यामीति शेष ॥ ७ ॥

यत्कृत्वा तु नरः सम्यक् सुखी भवति विज्वरः
गवां मूत्रपुरीषेण पयसा च घृतेन च ॥ ८
अग्निकार्यं त्र्यहं कुर्यान्निराहारः समाहितः।
ततः संवत्सरे पूर्णे प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ ९
हृष्यन्ति पितरश्चास्य श्राद्धकाल उपस्थिते।
एष ह्यधर्मो धर्मश्च सरहस्यः प्रकीर्तितः ॥ १०
मर्त्यानां स्वर्गकामानां प्रेत्य स्वर्गसुखावहः ११

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि देवरहस्ये अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

## १२९

लोमश उवाच।
परदारेषु ये सक्ता अकृत्वा दारसंग्रहम्।
निराशाः पितरस्तेषां श्राद्धकाले भवन्ति वै
परदाररतिर्यश्च यश्च वन्ध्यामुपासते।
ब्रह्मस्वं हरते यश्च समदोषा भवन्ति ते ॥ २
असंभाष्या भवन्त्येते पितृणा नात्र संशयः।
देवताः पितरश्चैषां नाभिनन्दन्ति तद्धविः ३
तस्मात्परस्य वै दारांस्त्यजेद्वन्ध्यां च योषित
ब्रह्मस्व हि न हर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता ४
श्रूयता चापर गुह्यं रहस्यं धर्मसहितम्।
श्रद्दधानेन कर्तव्यं गुरूणां वचनं सदा ॥ ५
द्वादश्यां पौर्णमास्या च मासि मासि घृताक्षतं
ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छेत तस्य पुण्यं निबोधत ॥ ६
सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च * महोदधिः।
अश्वमेधचतुर्भागं फलं सृजति वासवः ॥ ७
दानेनैतेन तेजस्वी वीर्यवांश्च भवेन्नरः।
प्रीतश्च भगवान् सोम इष्टान् कामान् प्रयच्छति
श्रूयतां चापरो धर्मः सरहस्यो महाफलः।
इद कलियुग प्राप्य मनुष्याणा सुखावहः ॥ ९
कल्यमुत्थाय यो मर्त्यः स्नातः शुक्लेन वाससा
तिलपात्र प्रयच्छेत ब्राह्मणेभ्यः समाहितः १०
तिलोदकं च यो दद्यात्पितॄणा मधुना सह
दीपकं कृसरं चैव श्रूयता तस्य यत्फलम् ११
तिलपात्रे फलं प्राह भगवान् पाकशासनः।
गोप्रदानं च यः कुर्याद्भूमिदानं च शाश्वतम्
अग्निष्टोम च यो यज्ञं यजेत बहुदक्षिणम्।
तिलपात्रं सहैतेन सम मन्यन्ति देवताः ॥१३
तिलोदकं सदा श्राद्धे मन्यन्ते पितरोऽक्षयम्
दीपे च कृसरे चैव तुष्यन्तेऽस्य पितामहाः ॥
स्वर्गे च पितृलोके च पितृदेवाभिपूजितम्।
एवमेतन्मयोद्दिष्टमृषिदृष्टं पुरातनम् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि लोमशरहस्ये ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२८ ॥

१२९

**परदारेष्विति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १२९ ॥

---

महान्त्युदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति। यद्वा महानामुत्सवानामुदधिरिव महोत्साहवांश्च भवति।

## १३०

भीष्म उवाच ।
ततस्त्वृषिगणाः सर्वे पितरश्च सदेवताः ।
अरुन्धतीं तपोवृद्धामपृच्छन्त समाहिताः १
समानशीलां वीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः ।
त्वत्तो धर्मरहस्यानि श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
यत्ते गुह्यतमं भद्रे तत्प्रभाषितुमर्हसि ॥ २
अरुन्धत्युवाच ।
तपोवृद्धिर्मया प्राप्ता भवतां स्मरणेन वै ।
भवतां च प्रसादेन धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान्
सगुह्यान्सरहस्यांश्च तान् शृणुध्वमशेषतः ।
श्रद्दधाने प्रयोक्तव्या यस्य शुद्धं तथा मनः॥४
अश्रद्दधानो मानी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
असंभाष्या हि चत्वारो नैषां धर्मं प्रकाशयेत
अहन्यहनि यो दद्यात्कपिलां द्वादशीः समाः
मासि मासि च सत्रेण यो यजेत सदा नरः६
गवां शतसहस्रं च यो दद्याज्ज्येष्ठपुष्करे ।
न तद्धर्मफलं तुल्यमतिथिर्यस्य तुष्यति ॥ ७
श्रूयतां चापरो धर्मो मनुष्याणां सुखावहः ।
श्रद्दधानेन कर्तव्यः सहरस्यो महाफलः ॥ ८
कल्यमुत्थाय गोमध्ये गृह्य दर्भान्सहोदकान् ।
निषिञ्चेत गवां शृङ्गे मस्तकेन च तज्जलम् ९
प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य धर्मफलं शृणु ।
श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु कानिचित्
सिद्धचारणजुष्टानि सेवितानि महर्षिभिः ।
अभिषेकः समस्तेषां गवां शृङ्गोदकस्य च ॥ ११
साधु साध्विति चोद्दिष्टं दैवतैः पितृभिस्तथा
भूतैश्चैव सुसंहृष्टैः पूजिता साऽप्यरुन्धती १२
पितामह उवाच ।
अहो धर्मो महाभागे सरहस्य उदाहृतः ।
वरं ददामि ते धन्ये तपस्ते वर्धतां सदा ॥१३
यम उवाच ।
रमणीया कथा दिव्या युष्मत्तो या मया श्रुता
श्रूयतां चित्रगुप्तस्य भाषितं मम च प्रियम् १४
रहस्यं धर्मसंयुक्तं शक्यं श्रोतुं महर्षिभिः ।
श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता॥ १५
न हि पुण्यं तथा पापं कृतं किञ्चिद्विनश्यति ।
पर्वकाले च यत्किञ्चिदादित्यं चाधितिष्ठति॥
प्रेतलोकं गते मर्त्ये तत्तत्सर्वं विभावसुः ।
प्रतिजानाति पुण्यात्मा तच्च तत्रोपयुज्यते १७
किञ्चिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि चित्रगुप्तमतं शुभम् ।
पानीयं चैव दीपं च दातव्यं सततं तथा १८
उपानहौ च च्छत्रं च कपिला च यथातथम् ।
पुष्करे कपिला देया ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ १९
अग्निहोत्रं च यत्नेन सर्वशः प्रतिपालयेत् ।
अयं चैवापरो धर्मश्चित्रगुप्तेन भाषितः ॥ २०
फलमस्य पृथक्त्वेन श्रोतुमर्हन्ति सत्तमाः ।
प्रलयं सर्वभूतैस्तु गन्तव्यं कालपर्ययात् ॥ २१
तत्र दुर्गमनुप्राप्ताः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः।
दह्यमाना विपच्यन्ते न तत्रास्ति पलायनम् ॥
अन्धकारं तमो घोरं प्रविशन्त्यल्पबुद्धयः ।
तत्र धर्मं प्रवक्ष्यामि येन दुर्गाणि सन्तरेत्२३
अल्पव्ययं महार्थं च प्रेत्य चैव सुखोदयम् ।
पानीयस्य गुणा दिव्याः प्रेतलोके विशेषतः॥
तत्र पुण्योदका नाम नदी तेषां विधीयते ।
अक्षयं सलिलं तत्र शीतलं ह्यमृतोपमम् ॥ २५
स तत्र तोयं पिबति पानीयं यः प्रयच्छति ।
प्रदीपस्य प्रदानेन श्रूयतां गुणविस्तरः ॥ २६
तमोन्धकारं नियतं दीपदो न प्रपश्यति ।
प्रभां चास्य प्रयच्छन्ति सोमभास्करपावकाः
देवताश्चानुमन्यन्ते विमलाः सर्वतो दिशः ।
द्योतते च यथाऽऽदित्यः प्रेतलोकगतो नरः ।
तस्माद्दीपः प्रदातव्यः पानीयं च विशेषतः ।
कपिलां ये प्रयच्छन्ति ब्राह्मणे वेदपारगे २९
पुष्करे च विशेषेण श्रूयतां तस्य यत्फलम् ।
गोशतं सवृषं तेन दत्तं भवति शाश्वतम् ॥ ३०
पापं कर्म च यत्किञ्चिद्ब्रह्महत्यासमं भवेत् ।
शोधयेत्कपिला ह्येका प्रदत्तं गोशतं यथा ३१
तस्मात्तु कपिला देया कौमुद्यां ज्येष्ठपुष्करे।
न तेषां विषमं किञ्चिन्न दुःखं न च कण्टकाः
उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे ।
छत्रदाने सुखां छायां लभते परलोकगः ॥ ३३

---

१३०

तत इति ॥ १ ॥ प्रयोक्तव्या धर्मा वाच्या ॥ ४ ॥
प्रतिजानाति अर्पयति उपयुज्यते पुण्यपापकर्ता ॥ १७ ॥
प्रकृष्टो ऽस्य अदर्शनं यस्मात्तत्प्रलयं मरणम् ॥ २१ ॥

न हि दत्तस्य दानस्य नाशोऽस्तीह कदाचन।
चित्रगुप्तमतं श्रुत्वा हृष्टरोमा विभावसुः ॥ ३४
उवाच देवताः सर्वाः पितॄंश्चैव महाद्युतिः।
श्रुतं हि चित्रगुप्तस्य धर्मगुह्यं महात्मनः ॥ ३५
श्रद्दधानाश्च ये मर्त्या ब्राह्मणेषु महात्मसु।
दानमेतत्प्रयच्छन्ति न तेषा विद्यते भयम् ३६
धर्मदोषास्त्विमे पञ्च येषां नास्तीह निष्कृतिः
असंभाष्या अनाचारा वर्जनीया नराधमाः ॥
ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च परदाररतश्च यः
अश्रद्दधानश्च नरः स्त्रियं यश्चोपजीवति ॥ ३८
प्रेतलोकगता ह्येते नरके पापकर्मिणः।
पच्यन्ते वै यथा मीनाः पूयशोणितभोजनाः
असंभाष्याः पितॄणां च देवानां चैव पञ्च ते।
स्नातकानां च विप्राणां ये चान्ये च तपोधनाः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अरुन्धतीचित्रगुप्तरहस्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

## १३१

भीष्म उवाच।
ततः सर्वे महाभागा देवाश्च पितरश्च ह।
ऋषयश्च महाभागाः प्रमथान्वाक्यमब्रुवन् ॥ १
भवन्तो वै महाभागा अपरोक्षनिशाचराः।
उच्छिष्टानशुचीन्क्षुद्रान्कथं हिंसथ मानवान्
के च स्मृताः प्रतीघाता येन मर्त्यान्न हिंसथ।
रक्षोघ्नानि च कानि स्युर्यैर्गृहेषु प्रणश्यथ।
श्रोतुमिच्छाम युष्माकं सर्वमेतन्निशाचराः ३
प्रमथा ऊचुः।
मैथुनेन सदोच्छिष्टाः कृते चैवाधरोत्तरे।
मोहान्मांसानि खादेत वृक्षमूले च यः स्वपेत्
आमिषं शीर्षतो यस्य पादतो यश्च संविशेत्।
तत उच्छिष्टकाः सर्वे बहुच्छिद्राश्च मानवाः ५
उदके चाप्यमेध्यानि श्लेष्माणं च प्रमुञ्चति।
एते भक्ष्याश्च वध्याश्च मानुषा नात्र संशयः ६
एवं शीलसमाचारान्धर्षयामो हि मानवान्।
श्रूयतां च प्रतीघातान्यैर्न शक्नुम हिंसितुम् ७
गोरोचनासमालम्भो वचाहस्तश्च यो भवेत्।
घृताघृतं च यो दद्यान्मस्तके तत्परायणः ८
ये च मांसं न खादन्ति तान्न शक्नुम हिंसितुम्
यस्य चाग्निर्गृहे नित्यं दिवारात्रौ च दीप्यते
तरक्षोश्चर्म दंष्ट्राश्च तथैव गिरिकच्छपः।
आज्यधूमो बिडालश्च च्छागः कृष्णोऽथ पिङ्गलः
येषामेतानि तिष्ठन्ति गृहेषु गृहमेधिनाम्।
तान्यधृष्याण्यगाराणि पिशिताशैः सुदारुणैः
लोकानस्मद्विधा ये च विचरन्ति यथासुखम्
तस्मादेतानि गेहेषु रक्षोघ्नानि विशाम्पते।
एतद्वः कथितं सर्वं यत्र वः संशयो महान् १२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि प्रमथरहस्ये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३० ॥

१३१

**ततः सर्वे इति** ॥ १ ॥ अधरोत्तरे वान्ते अधर उत्तर श्रेष्ठो यत्र श्रेष्ठस्यावमाने कृते मति ॥ ५ ॥ आमिषं मांस शिरसि दधान पादत शय्याया पादस्थाने शिर· कृत्वा य संविशेत् ॥ ६ ॥ तरक्षोर्व्याघ्रस्य गिरिकच्छपः पर्वतदरीशाया स्थलकूर्म ॥११॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३१ ॥

## १३२

भीष्म उवाच ।

ततः पद्मप्रतीकाशः पद्मोद्भूतः पितामहः ।
उवाच वचनं देवान्वासवं च शचीपतिम् १
अयं महाबलो नागो रसातलचरो बली ।
तेजस्वी रेणुको नाम महासत्त्वपराक्रमः ॥ २
अतितेजस्विनः सर्वे महावीर्या महागजाः ।
धारयन्ति महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ३
भवद्भिः समनुज्ञातो रेणुकस्तान्महागजान् ।
धर्मगुह्यानि सर्वाणि गत्वा पृच्छतु तत्र वै ४
पितामहवचः श्रुत्वा ते देवा रेणुकं तदा ।
प्रेषयामासुरव्यग्रा यत्र ते धरणीधराः ॥ ५

रेणुक उवाच ।

अनुज्ञातोऽस्मि देवैश्च पितृभिश्च महाबलाः
धर्मगुह्यानि युष्माकं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
कथयध्वं महाभागा यद्वस्तत्त्वं मनीषितम् ६

दिग्गजा ऊचुः ।

कार्तिके मासि चाश्लेषा बहुलस्याष्टमी शिवा
तेन नक्षत्रयोगेन यो ददाति गुडौदनम् ॥ ७
इमं मन्त्रं जपञ्छ्राद्धे यताहारो ह्यकोपनः ।
बलदेवप्रभृतयो ये नागा बलवत्तराः ॥ ८
अनन्ता ह्यक्षया नित्यं भोगिनः सुमहाबलाः
तेषां कुलोद्भवा ये च महाभूता भुजङ्गमाः ९
ते मे बलिं प्रयच्छन्तु बलतेजोभिवृद्धये ।
यदा नारायणः श्रीमानुज्जहार वसुंधराम् १०
तद्बलं तस्य देवस्य धरामुद्धरतस्तथा ।
एवमुक्त्वा बलिं तत्र वल्मीके तु निवेदयेत्
गजेन्द्रकुसुमाकीर्णं नीलवस्त्रानुलेपनम् ।
निर्वपेत्तं तु वल्मीके अस्तं याते दिवाकरे १२
एव तुष्टास्ततः सर्वे अधस्ताद्भारपीडिताः ।
श्रमं त नावबुध्यामो धारयन्तो वसुंधराम् ॥
एवं मन्यामहे सर्वे भारार्ता निरपेक्षिणः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यद्युपोषितः
एवं संवत्सरं कृत्वा दानं बहुफलं लभेत् ।
वल्मीके बलिमादाय तन्नो बहुफलं मतम् १५
ये च नागा महावीर्यास्त्रिषु लोकेषु कृत्स्नशः
कृतातिथ्या भवेयुस्ते शतं वर्षाणि तत्त्वतः १६
दिग्गजानां च तच्छ्रुत्वा देवताः पितरस्तथा
ऋषयश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म रेणुकम् १७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि दिग्गजानां रहस्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

## १३३

महेश्वर उवाच ।

सारमुद्धृत्य युष्माभिः साधुधर्म उदाहृतः ।
धर्मगुह्यमिदं मत्तः शृणुध्वं सर्व एव ह ॥ १
येषां धर्माश्रिता बुद्धिः श्रद्दधानाश्च ये नराः ।
तेषां स्यादुपदेष्टव्यः सरहस्यो महाफलः ॥ २
निरुद्विग्नस्तु यो दद्यान्मासमेकं गवाह्निकम् ।
एकभक्तं तथाऽश्नीयाच्छ्रूयतां तस्य यत्फलम्
इमा गावो महाभागाः पवित्रं परमं स्मृताः ।
त्रींल्लोकान्धारयन्ति स्म सदेवासुरमानुषान्
तासु चैव महापुण्यं शुश्रूषा च महाफलम् ।
अहन्यहनि धर्मेण युज्यते वै गवाह्निकः ॥ ५
मया ह्येता ह्यनुज्ञाताः पूर्वमासन्कृते युगे ।
ततोऽहमनुनीतो वै ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ ६
तस्माद्व्रजस्थानगतस्तिष्ठत्युपरि मे वृषः ।
रमेऽहं सह गोभिश्च तस्मात्पूज्याः सदैव ताः

---

१३२

तत इति ॥ १ ॥ नागो गज ॥ २ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३२ ॥

१३३

सारमिति ॥ १ ॥

महाप्रभावा वरदा वरं दद्युरुपासिताः । ता गावोऽस्यानुमन्यन्ते सर्वकर्मसु यत्फलम् ॥
तस्य तत्र चतुर्भागो यो ददाति गवाह्निकम ॥ ९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि महादेवरहस्ये त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

## १३४

स्कन्द उवाच ।
ममाप्यनुमतो धर्मस्तं शृणुध्वं समाहिताः ।
नीलषण्डस्य शृंगाभ्यां गृहीत्वा मृत्तिकां तु यः
अभिषेकं त्र्यहं कुर्यात्तस्य धर्मं निबोधत ।
शोधयेदशुभं सर्वमाधिपत्यं परत्र च ।
यावच्च जायते मर्त्यस्तावच्छूरो भविष्यति ।
इदं चाप्यपरं गुह्यं सरहस्यं निबोधत ॥ ३
प्रगृह्यौदुम्बरं पात्रं पक्वान्नं मधुना सह ।
सोमस्योत्तिष्ठमानस्य पौर्णमास्यां बलिं हरेत
तस्य धर्मफलं नित्यं
श्रद्दधाना निबोधत ।
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या
विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ॥ ५
मरुतो वसवश्चैव प्रतिगृह्णन्ति तं बलिम् ।
सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः ॥ ६
एष धर्मो मयोद्दिष्टः सरहस्यः सुखावहः ॥ ७
विष्णुरुवाच ।
धर्मगुह्यानि सर्वाणि देवतानां महात्मनाम्
ऋषीणां चैव गुह्यानि यः पठेदाह्निकं सदा ८
शृणुयाद्वाऽनसूयुर्यः श्रद्दधानः समाहितः ।
नास्य विघ्नः प्रभवति भयं चास्य न विद्यते ९
ये च धर्माः शुभाः पुण्याः सरहस्या उदाहृताः
तेषां धर्मफलं तस्य यः पठेत जितेन्द्रियः १०
नास्य पापं प्रभवति न च पापेन लिप्यते ।
पठेद्वा श्रावयेद्वापि श्रुत्वा वा लभते फलम् ॥
भुञ्जते पितरो देवा हव्यं कव्यमथाक्षयम् ।
श्रावयंश्चापि विप्रेन्द्रान् पर्वसु प्रयतो नरः १२
ऋषीणां देवतानां च पितॄणां चैव नित्यदा ।
भवत्यभिमतः श्रीमान् धर्मेषु प्रयतः सदा १३
कृत्वापि पापकं कर्म महापातकवर्जितम् ।
रहस्यधर्मं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४
भीष्म उवाच ।
एतद्धर्मरहस्यं वै देवतानां नराधिप ।
व्यासोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् १५
पृथिवी रत्नसंपूर्णा ज्ञानं चेदमनुत्तमम् ।
इदमेव ततः श्राव्यमिति मन्येत धर्मवित् १६
नाश्रद्दधानाय न नास्तिकाय
न नष्टधर्माय न निर्घृणाय ।
न हेतुदुष्टाय गुरुद्विषे वा
नानात्मभूताय निवेद्यमेतत् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि स्कन्ददेवरहस्ये चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३३ ॥

१३४

**ममापीति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३४ ॥

## १३५

युधिष्ठिर उवाच ।
के भोज्या ब्राह्मणस्येह के भोज्याः क्षत्रियस्य ह
तथा वैश्यस्य के भोज्याः के शूद्रस्य च भारत
भीष्म उवाच ।
ब्राह्मणा ब्राह्मणस्येह भोज्या ये चैव क्षत्रियाः
वैश्याश्चापि तथा भोज्याः शूद्राश्च परिवर्जिताः
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भोज्या वै क्षत्रियस्य ह
वर्जनीयास्तु वै शूद्राः सर्वभक्षा विकर्मिणः ३
वैश्यास्तु भोज्या विप्राणां क्षत्रियाणां तथैव च
नित्याग्नयो विविक्ताश्च चातुर्मास्यरताश्च ये ॥
शूद्राणामथ यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ।
मलं नृणां स पिबति मलं भुंक्ते जनस्य च ॥
शूद्राणां यस्तथा भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ।
पृथिवीमलमश्नन्ति ये द्विजाः शूद्रभोजिनः ॥ ६
शूद्रस्य कर्मनिष्ठायां विकर्मस्थोऽपि पच्यते ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो विकर्मस्थश्च पच्यते ७
स्वाध्यायनिरता विप्रास्तथा स्वस्त्ययने नृणाम्
रक्षणे क्षत्रियं प्राहुर्वैश्यं पुष्ट्यर्थमेव च ॥ ८
करोति कर्म यद्वैश्यस्तद्गत्वा ह्युपजीवति ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमकुत्सा वैश्यकर्मणि ॥९
शूद्रकर्म तु यः कुर्यादवहाय स्वकर्म च ।
स विज्ञेयो यथा शूद्रो न च भोज्यः कदाचन
चिकित्सकः काण्डपृष्ठः पुराध्यक्षः पुरोहितः
सांवत्सरो वृथाध्यायी सर्वे ते शूद्रसंमिताः ॥
शूद्रकर्मस्वथैतेषु यो भुंक्ते निरपत्रपः
अभोज्यभोजनं भुक्त्वा भयं प्राप्नोति दारुणम्
कुलं वीर्यं च तेजश्च तिर्यग्योनित्वमेव च ।
स प्रयाति यथा श्वा वै निष्क्रियो धर्मवर्जितः
भुंक्ते चिकित्सकस्यान्नं तदन्नं च पुरीषवत् ।
पुंश्चल्यन्नं च मूत्रं स्यात्कारुकान्नं च शोणितम्
विद्योपजीविनोऽन्नं च यो भुंक्ते साधुसंमतः ।
तदप्यन्नं यथा शौद्रं तत्साधुः परिवर्जयेत् १५
वचनीयस्य यो भुंक्ते तमाहुः शोणितं ह्रदम् ।
पिशुनं भोजनं भुंक्ते ब्रह्महत्यासमं विदुः ॥ १६
असत्कृतमवज्ञातं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ १७
व्याधिं कुलक्षयं चैव क्षिप्रं प्राप्नोति ब्राह्मणः ।
नगरीरक्षिणो भुंक्ते श्वपचप्रवणो भवेत् ॥ १८
गोघ्ने च ब्राह्मणघ्ने च सुरापे गुरुतल्पगे ।
भुक्त्वान्नं जायते विप्रो रक्षसां कुलवर्धनः ॥
न्यासापहारिणो भुक्त्वा कृतघ्ने क्लीबवर्तिनि
जायते शबरावासे मध्यदेशबहिष्कृते ॥ २०
अभोज्याश्चैव भोज्याश्च मया प्रोक्ता यथाविधि
किमन्यदद्य कौन्तेय मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि भोज्याभोज्यान्नकथनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

## १३६

युधिष्ठिर उवाच ।
उक्तास्तु भवता भोज्यास्तथाभोज्याश्च सर्वशः
अत्र मे प्रश्नसन्देहस्तन्मे वद पितामह ॥ १
ब्राह्मणानां विशेषेण हव्यकव्यप्रतिग्रहे ।
नानाविधेषु भोज्येषु प्रायश्चित्तानि शंस मे २
भीष्म उवाच ।
हन्त वक्ष्यामि ते राजन् ब्राह्मणानां महात्मनां
प्रतिग्रहेषु भोज्ये च मुच्यते येन पाप्मनः ॥ ३
घृतप्रतिग्रहे चैव सावित्री समिदाहुतिः ।
तिलप्रतिग्रहे चैव सममेतद्युधिष्ठिर ॥ ४

---

१३५

के भोज्याः भोज्यान्ना· ॥ १ ॥ वैश्या भोज्या. भोजनीया. ॥ ४ ॥ न केवलं शूद्रान्नमेव वर्ज्यं किन्तु शूद्रस्य कर्मनिष्ठायां सेवायां वर्तमानो विकर्मस्थो विशिष्टकर्मस्थ सन्ध्यावन्दनादियुक्तोऽपि पच्यते नरके इति शेष ॥७॥ काण्डपृष्ठः अधमः ॥ ११ ॥ पिशुनं तत्सम्बन्धि ॥ १६ ॥ नगरीं रक्षति तस्य ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३५ ॥

१३६

उक्ता इति ॥ १ ॥ सावित्री समिदाहुनिरिति सर्वत्र सम्बध्यते ॥ ४ ॥

मांसप्रतिग्रहे चैव मधुनो लवणस्य च ।
आदित्योदयनं स्थित्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ५
काञ्चनं प्रतिगृह्याथ जपमानो गुरुश्रुतिम् ।
कृष्णायसं च विवृतं धारयन् मुच्यते द्विजः
एवं प्रतिगृहीतेऽथ धने वस्त्रे तथा स्त्रियाम् ।
एवमेव नरश्रेष्ठ सुवर्णस्य प्रतिग्रहे ॥ ७
अन्नप्रतिग्रहे चैव पायसेक्षुरसे तथा ।
इक्षुतैलपवित्राणां त्रिसन्ध्येऽप्सु निमज्जनम्
व्रीहौ पुष्पे फले चैव जले पिष्टमये तथा ।
यावके दधिदुग्धे च सावित्रीं शतशोन्विताम्
उपानहौ च च्छत्रं च प्रतिगृह्यौर्ध्वदेहिके ।
जपेच्छतं समायुक्तस्तेन मुच्येत पाप्मना १०
क्षेत्रप्रतिग्रहे चैव ग्रहसूतकयोस्तथा ।
त्रीणि रात्राण्युपोषित्वा तेन पापाद्विमुच्यते
कृष्णपक्षे तु यः श्राद्धं पितृणामश्नुते द्विजः ।
अन्नमेतदहोरात्रात्पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १२
न च सन्ध्यामुपासीत न च जाप्यं प्रवर्तयेत्
न सङ्किरेत्तदन्नं च ततः पूयेत ब्राह्मणः ॥ १३
इत्यर्थमपराह्णे तु पितॄणां श्राद्धमुच्यते ।
यथोक्ताना यदश्नीयुर्ब्राह्मणाः पूर्वकेतिताः १४
मृतकस्य तृतीयाहे ब्राह्मणो योऽन्नमश्नुते ।
स त्रिवेलं समुन्मज्य द्वादशाहेन शुध्यति १५
द्वादशाहे व्यतीते तु कृतशौचो विशेषतः ।
ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्वा मुच्यते तेन पाप्मना १६
मृतस्य दशरात्रेण प्रायश्चित्तानि दापयेत् ।
सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्माण्डमघमर्षणम् १७
मृतकस्य त्रिरात्रे यः समुद्दिष्टे समश्नुते ।
सप्त त्रिषवण स्नात्वा पूतो भवति ब्राह्मणः१८
सिद्धिमाप्नोति विपुलामापदं चैव नाप्नुयात्१९
यस्तु शूद्रैः समश्नीयाद्ब्राह्मणोप्येकभोजने ।
अशौच विधिवत्तस्य शौचमत्र विधीयते २०
यस्तु वैश्यैः सहाश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने ।
स वै त्रिरात्रं दीक्षित्वा मुच्यते तेन कर्मणा॥
क्षत्रियैः सह योऽश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने ।
आप्लुतः सह वासोभिस्तेन मुच्येत पाप्मना॥
शूद्रस्य तु कुलं हन्ति वैश्यस्य पशुबान्धवान्
क्षत्रियस्य श्रियं हन्ति ब्राह्मणस्य सुवर्चसम् ॥
प्रायश्चित्तं च शान्तिं च जुहुयात्तेन मुच्यते ।
सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्माण्डमघमर्षणम्२४
तथोच्छिष्टमथान्योन्यं संप्राशेन्नात्र संशयः ।
रोचना विरजा रात्रिर्मङ्गलालंभनानि च ॥२५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि प्रायश्चित्तविधिर्नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

## १३७

युधिष्ठिर उवाच ।
दानेन वर्ततेत्याह तपसा चैव भारत ।
तदेतन्मे मनोदुःखं व्यपोह त्वं पितामह ।
किंस्वित्पृथिव्यां श्रेतन्मे भवाञ्छंसितुमर्हति

आदित्योदयनं तत्पर्यन्तं स्थित्वा ॥ ५ ॥ विवृतं लोकप्रत्यक्षं धारयन् ॥ ६ ॥ ग्रहसूतकयोः कारागारस्थाशौचवतो ॥ ११ ॥ न च सन्ध्यामुपासीतेत्यत्र अस्नात इति शेषः न सङ्किरेदिति पुनर्भोजनं न कुर्यादित्यर्थः ॥ १३ ॥ अश्नीयुरित्यर्थमिति सम्बन्धे अपराह्णे क्षुद्बोधात्सम्यगन्नमश्नन्त्वित्यर्थः । केतिता निमन्त्रिता ॥ १४ ॥ हविः अन्नम् ॥ १६ ॥ दशरात्रे दशरात्रावधि मृतस्याशौच एवमेव प्रायश्चित्तानीत्यर्थः सावित्रीं । जपन् रैवतीमिति रैवतं साम । इष्टिं पवित्रेष्टिं कूश्माण्डं यद्देवा देवहेडनमित्यनुवाकपञ्चकं अघमर्षणं जले मज्जंश्च दशप्रणवसंयुक्तगायत्र्याः ऋतञ्चेति तृचस्य वा त्रिर्जपः प्रायश्चित्तानीति बहुवचनात्सर्वेषां समुच्चयः ॥ १७ ॥ अशौचं प्रायश्चित्ताभाव एव ॥ २० ॥ विरजा दूर्वा रात्रिर्हरिद्रेति विश्वः ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

१३७

दानतपसोर्मध्ये पृथिव्यां किं श्रेष्ठमिति पृच्छति-दानेनेति सार्धेन वर्तते स्वर्गे इति शेषः सन्धिरार्षः ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

शृणु यैर्धर्मनिरतैस्तपसा भावितात्मभिः ।
लोका ह्यसंशयं प्राप्ता दानपुण्यरतैर्नृपैः ॥ २
सत्कृतश्च तथाऽऽत्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम्
उपदिश्य तदा राजन् गतो लोकाननुत्तमान्
शिबिरौशीनरः प्राणान् प्रियस्य तनयस्य च
ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ४
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय तनयं स्वकम् ।
ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ ५
रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय महात्मने ।
अर्घ्यं प्रदाय विधिवल्लेभे लोकाननुत्तमान् ६
दिव्यं शतशलाकं च यज्ञार्थं काञ्चनं शुभम् ।
छत्रं देवावृधो दत्वा ब्राह्मणायाश्रितो दिवम्
भगवानम्बरीषश्च ब्राह्मणायामितौजसे ।
प्रदाय सकलं राष्ट्रं सुरलोकमवाप्तवान् ॥ ८
सावित्रः कुण्डलं दिव्यं यानं च जनमेजयः ।
ब्राह्मणाय च गा दत्वा गतो लोकाननुत्तमान्
वृषादर्भिश्च राजर्षी रत्नानि विविधानि च ।
रम्यांश्चावसथान्दत्वा द्विजेभ्यो दिवमागतः
निमीराष्ट्रं च वैदर्भिः कन्यां दत्वा महात्मने ।
अगस्त्याय गतः स्वर्गं सपुत्रपशुबान्धवः ॥ ११

जामदग्न्यश्च विप्राय
भूमिं दत्वा महायशाः ।
रामोऽक्षयांस्तथा लोकान्
जगाम मनसोऽधिकान् ॥ १२
अवर्षति च पर्जन्ये
सर्वभूतानि देवराट् ।
वसिष्ठो जीवयामास
येन यातोऽक्षयां गतिम् ॥ १३

रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु ।
स गतो ह्यक्षयान् लोकान्यस्य लोके महद्यशः
कक्षसेनश्च राजर्षिर्वसिष्ठाय महात्मने ।
न्यासं यथावत्संन्यस्य जगाम सुमहायशाः ॥
करंधमस्य पौत्रस्तु मरुत्तोऽविक्षितः सुतः ।
कन्यामाङ्गिरसे दत्वा दिवमाशु जगाम सः ॥
ब्रह्मदत्तश्च पाञ्चाल्यो राजा धर्मभृतां वरः ।
निधिं शङ्खमनुज्ञाप्य जगाम परमां गतिम् १७
राजा मित्रसहश्चैव वसिष्ठाय महात्मने ।
मदयन्तीं प्रियां भार्यां दत्वा च त्रिदिवं गतः
मनोः पुत्रश्च सुद्युम्नो लिखिताय महात्मने ।
दण्डमुद्धृत्य धर्मेण गतो लोकाननुत्तमान् १९
सहस्रचित्यो राजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥
सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्वा वेश्म हिरण्मयम् ।
मौद्गल्याय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महीपतिः २१
भक्ष्यभोज्यस्य च कृतान् +राशयः पर्वतोपमान्
शाण्डिल्याय पुरा दत्वा सुमन्युर्दिवमास्थितः
नाम्ना च द्युतिमान्नाम शाल्वराजो महाद्युतिः
दत्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान्
मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्वा कन्यां सुमध्यमाम्
हिरण्यहस्ताय गतो लोकान्देवैरधिष्ठितान्
लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्वा सुतां प्रभुः
ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वैः कामैरयुज्यत॥ २५

कौत्साय दत्वा कन्यां तु
हंसीं नाम यशस्विनीम् ।
गतोऽक्षयानतो लोकान्
राजर्षिश्च भगीरथः ॥ २६

दत्वा शतसहस्रं तु गवां राजा भगीरथः ।
सवत्सानां कोहलाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥
एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा च ह ।
युधिष्ठिर गताः स्वर्गं निवर्तन्ते पुनः पुनः ॥२८
तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत्स्थास्यति मेदिनी
गृहस्थैर्दानतपसा यैर्लोका वै विनिर्जिताः २९
शिष्टानां चरितं ह्येतत्कीर्तितं मे युधिष्ठिर ।
दानयज्ञप्रजासर्गैरेते हि दिवमास्थिताः ३०
ᐟदत्वा तु सततं तेऽस्तु कौरवाणां धुरन्धर ।
दानयज्ञक्रियायुक्ता बुद्धिर्धर्मोपचायिनी ३१
यत्र ते नृपशार्दूल सन्देहो वै भविष्यति ।
श्वः प्रभाते हि वक्ष्यामि संध्या हि समुपस्थिता

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

---

तयोर्दानमेव प्रशंसति--शृण्वित्यादिना ॥२॥ सावित्र कर्ण ॥९॥मनसो मनःसङ्कल्पादप्यधिकान् ॥१२॥ देवराट् भूदेवराट् वसिष्ठः ॥ १३ ॥ न्यासं दानरूपेण स्थापनम् ॥१५॥ अनुज्ञाप्य दत्वा॥१७॥दण्डं चोरयोर्म्यं हस्तच्छेदरूपम् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३७ ॥

+ राशीनित्यर्थ । ᐟ वर्तत इति शेष ।

## १३८

युधिष्ठिर उवाच।
श्रुतं मे भवतस्तात सत्यव्रतपराक्रम।
दानधर्मेण महता ये प्राप्तास्त्रिदिवं नृपाः ॥ १
इमांस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मान्धर्मभृतां वर।
दानं कतिविधं देयं किं तस्य च फलं लभेत् २
कथं केभ्यश्च धर्म्यं च दानं दातव्यमिष्यते।
कैः कारणैः कतिविधं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
भीष्म उवाच।
शृणु तत्त्वेन कौन्तेय दानं प्रति ममानघ।
यथा दानं प्रदातव्यं सर्ववर्णेषु भारत ॥ ४
धर्मादर्थाद्भयात्कामात्कारुण्यादिति भारत।
दानं पञ्चविधं ज्ञेयं कारणैर्यैर्निबोध तत् ॥ ५
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।
इति दानं प्रदातव्यं ब्राह्मणेभ्योऽनसूयता ॥ ६
ददाति वा दास्यति वा मह्यं दत्तमनेन वा।
इत्यर्थिभ्यो निशम्यैव सर्वं दातव्यमर्थिने ॥ ७
नास्याहं न मदीयोऽयं पापं कुर्याद्विमानितः।
इति दद्याद्भयादेव दृढं मूढाय पण्डितः ॥ ८
प्रियो मेऽयं प्रियोऽस्याहमिति संप्रेक्ष्य बुद्धिमान्
वयस्यायैवमक्लिष्टं दानं दद्यादतन्द्रितः ॥ ९
दीनश्च याचते चायमल्पेनापि हि तुष्यति।
इति दद्याद्दरिद्राय कारुण्यादिति सर्वथा १०
इति पञ्चविधं दानं पुण्यकीर्तिविवर्धनम्।
यथाशक्त्या प्रदातव्यमेवमाह प्रजापतिः ११

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

## १३९

युधिष्ठिर उवाच।
पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
आगमैर्बहुभिः स्फीतो भवान्नः प्रवरे कुले १
त्वत्तो धर्मार्थसंयुक्तमायत्यां च सुखोदयम्।
आश्चर्यभूतं लोकस्य श्रोतुमिच्छाम्यरिंदम २
अयं च कालः संप्राप्तो दुर्लभो ज्ञातिबान्धवैः
शास्ता च न हि नः कश्चित्त्वामृते पुरुषर्षभ ३
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ।
वक्तुमर्हसि नः प्रश्नं यत्त्वां पृच्छामि पार्थिव ४
अयं नारायणः श्रीमान् सर्वपार्थिवसंमतः।
भवन्तं बहुमानेन प्रश्रयेण च सेवते ॥ ५
अस्य चैव समक्षं त्वं पार्थिवानां च सर्वशः।
भ्रातॄणां च प्रियार्थं मे स्नेहाद्भाषितुमर्हसि ॥ ६
वैशम्पायन उवाच।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहादागतसंभ्रमः।
भीष्मो भागीरथीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७
भीष्म उवाच।
अहं ते कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम्।
अस्य विष्णोः पुरा राजन्प्रभावो यो मया श्रुतः
यश्च गोवृषभाङ्कस्य प्रभावस्तं च मे शृणु।
रुद्राण्याः संशयो यश्च दम्पत्योस्तं च मे शृणु
व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम्।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ ॥ १०
कृष्णद्वैपायनश्चैव धौम्यश्च जपतां वरः।
देवलः काश्यपश्चैव हस्तिकाश्यप एव च ११

---

१३८

श्रुतमिति ॥१॥ धर्माद्दानं व्याचष्टे-इहेति ॥ ६ ॥ अर्थादित्यस्य लक्षणमाह—ददातीति ॥७॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

१३९

पितामहेत्यध्यायद्वयं स्पष्टार्थं तस्य तात्पर्यं एक एव प्रभुः पर्वतस्य दाहक उल्लासकश्च स एव वैष्णवैर्विष्णुरित्यभिगतः. पूर्वाध्याये। माहेश्वरैर्महेश्वर इत्युत्तराध्याये अत्रैव नेत्रे मे संवृते देवि त्वया बाल्यादनिन्दिते। नष्टालोकस्तदा लोकः क्षणेन समपद्यतेति महेश्वरवचनेन शिवमूर्तेर्ब्रह्माण्डस्य चाभेदो दर्शितः ॥ १ ॥ दम्पत्योः. रुद्राणीरुद्रयोः तं संवादम् ॥९॥

अपरे चर्षयः सन्तो दीक्षादमसमन्विताः ।
शिष्यैरनुगताः सिद्धैर्देवकल्पैस्तपोधनैः १२
तेषामतिथिसत्कारमर्चनीयं कुलोचितम् ।
देवकीतनयः प्रीतो देवकल्पमकल्पयत् ॥ १३
हरितेषु सुवर्णेषु बर्हिष्केषु नवेषु च ।
उपोपविविशुः प्रीता विष्टरेषु महर्षयः ॥ १४
कथाश्चक्रुस्ततस्ते तु मधुरा धर्मसंहिताः ।
राजर्षीणां सुराणां च ये वसन्ति तपोधनाः
ततो नारायणं तेजो व्रतचर्येन्धनोत्थितम् ।
वक्त्रान्निःसृत्य कृष्णस्य वह्निरद्भुतकर्मणः १६
सोऽग्निर्ददाह तं शैलं सद्रुमं सलताक्षुपम् ।
सपक्षिमृगसंघातं सश्वापदसरीसृपम् ॥ १७
मृगैश्च विविधाकारैर्हाहाभूतमचेतनम् ।
शिखरं तस्य शैलस्य मथितं दीनदर्शनम् १८
स तु वह्निर्महाज्वालो दग्ध्वा सर्वमशेषतः ।
विष्णोः समीप आगम्य पादौ शिष्यवदस्पृशत्
ततो विष्णुर्गिरिं दृष्ट्वा निर्दग्धमरिकर्शनः ।
सौम्यैर्दृष्टिनिपातैस्तं पुनः प्रकृतिमानयत् २०
तथैव स गिरिर्भूयः प्रपुष्पितलताद्रुमः ।
सपक्षिगणसंघुष्टः सश्वापदसरीसृपः ॥ २१
तमद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा मुनिगणस्तदा ।
विस्मितो हृष्टरोमा च बभूवास्राविलेक्षणः ॥
ततो नारायणो दृष्ट्वा तानृषीन्विस्मयान्वितान्
प्रश्रितं मधुरं स्निग्धं पप्रच्छ वदतां वरः २३
किमर्थमृषिपूगस्य त्यक्तसङ्गस्य नित्यशः ।
निर्ममस्यागमवतो विस्मयः समुपागतः ॥ २४
एतन्मे संशयं सर्वं याथातथ्यमनिन्दिताः ।
ऋषयो वक्तुमर्हन्ति निश्चितार्थं तपोधनाः २५

ऋषय ऊचुः ।

भवान्विसृजते लोकान् भवान्संहरते पुनः ।
भवान् शीतं भवानुष्णं भवानेव च वर्षति ॥
पृथिव्यां यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च
तेषां पिता त्वं माता त्वं प्रभुः प्रभव एव च ॥
एवं नो विस्मयकरं संशयं मधुसूदन ।
त्वमेवार्हसि कल्याण वक्तुं वह्नेर्विनिर्गमम् २८
ततो विगतसंत्रासा वयमप्यरिकर्शन ।
यच्छ्रुतं यच्च दृष्टं नस्तत्प्रवक्ष्यामहे हरे ॥ २९

वासुदेव उवाच ।

एतद्वै वैष्णवं तेजो मम वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो येनायं मथितो गिरिः
ऋषयश्चार्तिमापन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
भवन्तो व्यथिताश्चासन् देवकल्पास्तपोधनाः ॥
व्रतचर्यापरीतस्य तपस्विव्रतसेवया ।
मम वह्निः समुद्भूतो न वै व्यथितुमर्हथ ॥ ३२
व्रतं चर्तुमिहायातस्त्वहं गिरिमिमं शुभम् ।
पुत्रं चात्मसमं वीर्ये तपसा लब्धुमागतः ३३
ततो ममात्मा यो देहे सोऽग्निर्भूत्वा विनिःसृतः
गतश्च वरदं द्रष्टुं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४
तेन चात्मानुशिष्टो मे पुत्रत्वे मुनिसत्तमाः ।
तेजसोऽर्धेन पुत्रस्ते भवितेति वृषध्वजः ॥३५
सोऽयं वह्निरुपागम्य पादमूले ममान्तिकम् ।
शिष्यवत्परिचर्यार्थं शान्तः प्रकृतिमागतः ३६
एतदेव रहस्यं वः पद्मनाभस्य धीमतः ।
मया प्रोक्तं समासेन न भीः कार्या तपोधनाः
सर्वत्र गतिरव्यग्रा भवतां दीर्घदर्शनात् ।
तपस्विव्रतसंदीप्ता ज्ञानविज्ञानशोभिताः ३८
यच्छ्रुतं यच्च वो दृष्टं दिवि वा यदि वा भुवि
आश्चर्यं परमं किञ्चित्तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ॥३९
तस्यामृतनिकाशस्य वाङ्मधोरस्ति मे स्पृहा ।
भवद्भिः कथितस्येह तपोवननिवासिभिः ॥
यद्यप्यहमदृष्टं वो दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।
दिवि वा भुवि वा किञ्चित्पश्याम्यमरदर्शनाः
प्रकृतिः सा मम परा न क्वचित्प्रतिहन्यते ।
न चात्मगतमैश्वर्यमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४२
श्रद्धेयः कथितो ह्यर्थः सज्जनश्रवणं गतः ।
चिरं तिष्ठति मेदिन्यां शैले लेख्यामिवार्पितम्॥
तदहं सज्जनमुखान्निःसृतं तत्समागमे ।
कथयिष्याम्यहमहो बुद्धिदीपकरं नृणाम् ॥४४
ततो मुनिगणाः सर्वे विस्मिताः कृष्णसन्निधौ
नेत्रैः पद्मदलप्रख्यैरपश्यंस्तं जनार्दनम् ॥ ४५
वर्धयन्तस्तथैवान्ये पूजयन्तस्तथाऽपरे ।
वाग्भिर्ऋग्भूषितार्थाभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम्
ततो मुनिगणाः सर्वे नारदं देवदर्शनम् ।
तदा नियोजयामासुर्वचने वाक्यकोविदम् ४७

मुनय ऊचुः ।

यदाश्चर्यमचिन्त्यं च गिरौ हिमवति प्रभो ।
अनुभूतं मुनिगणैस्तीर्थयात्रापरैर्मुने ॥ ४८
तद्भवानृषिसंघस्य हितार्थं सर्वमादितः ।
यथा दृष्टं हृषीकेशे सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ४९

एवमुक्तः स मुनिभिर्नारदो भगवान् मुनिः । कथयामास देवर्षिः पूर्ववृत्तामिमां कथाम् ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

## १४०

भीष्म उवाच ।
ततो नारायणसुहृन्नारदो भगवानृषिः
शङ्करस्योमया सार्धं संवादं प्रत्यभाषत ॥ १
नारद उवाच ।
तपश्चचार धर्मात्मा वृषभाङ्कः सुरेश्वरः ।
पुण्ये गिरौ हिमवति सिद्धचारणसेविते ॥ २
नानौषधियुते रम्ये नानापुष्पसमाकुले ।
अप्सरोगणसंकीर्णे भूतसंघनिषेविते ॥ ३
तत्र देवो मुदा युक्तो भूतसंघशतैर्वृतः ।
नानारूपैर्विरूपैश्च दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ ४
सिंहव्याघ्रगजप्रख्यैः सर्वजातिसमन्वितैः ।
क्रोष्टुकद्वीपिवदनैर्ऋक्षर्षभमुखैस्तथा ॥ ५
उलूकवदनैर्भीमैर्वृकश्येनमुखैस्तथा ।
नानावर्णैर्मृगमुखैः सर्वजातिसमन्वितैः ॥ ६
किंनरैर्यक्षगन्धर्वै रक्षोभूतगणैस्तथा ।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णं दिव्यज्वालासमाकुलम् ॥
दिव्यचन्दनसंयुक्तं दिव्यधूपेन धूपितम् ।
तत्सदो वृषभाङ्कस्य दिव्यवादित्रनादितम् ८
मृदंगपणवोद्घुष्टं शङ्खभेरीनिनादितम् ।
नृत्यद्भिर्भूतसंघैश्च बर्हिणैश्च समततः ॥ ९
प्रनृत्ताप्सरसं दिव्यं देवर्षिगणसेवितम् ।
दृष्टिकान्तमनिर्देश्यं दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १०
स गिरिस्तपसा तस्य गिरिशस्य व्यरोचत ।
स्वाध्यायपरमैर्विप्रैर्ब्रह्मघोषो निनादितः ॥ ११
षट्पदैरुपगीतैश्च माधवाप्रतिमो गिरिः ।
तन्महोत्सवसंकाशं भीमरूपधरं ततः ॥ १२
दृष्ट्वा मुनिगणस्यासीत्परा प्रीतिर्जनार्दन ।
मुनयश्च महाभागाः सिद्धाश्चैवोर्ध्वरेतसः १३
मरुतो वसवः साध्या विश्वेदेवाः सवासवाः
यक्षा नागाः पिशाचाश्च लोकपाला हुताशनाः
वाताः सर्वे महाभूतास्तत्रैवासन् समागताः
ऋतवः सर्वपुष्पैश्च व्यकिरन्त महाद्भुतैः ॥१५
ओषध्यो ज्वलमानाश्च द्योतयन्ति स्म तद्वनम्
विहंगाश्च मुदा युक्ताः प्रानृत्यन्व्यनदंश्च ह ॥
गिरिपृष्ठेषु रम्येषु व्याहरन्तो जनप्रियाः ।
तत्र देवो गिरितटे दिव्यधातुविभूषिते ॥ १७
पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो महामनाः ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः सिंहचर्मोत्तरच्छदः ॥१८
व्यालयज्ञोपवीती च लोहिताङ्गदभूषणः ।
हरिश्मश्रुर्जटी भीमो भयकर्ता सुरद्विषाम् १९
अभयः सर्वभूतानां भक्तानां वृषभध्वजः ।
दृष्ट्वा महर्षयः सर्वे शिरोभिरवनिं गताः ॥ २०
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः क्षान्ता विगतकल्मषाः
तस्य भूतपतेः स्थानं भीमरूपधरं बभौ ॥ २१
अप्रधृष्यतरं चैव महोरगसमाकुलम् ।
क्षणेनैवाभवत्सर्वमद्भुतं मधुसूदन ॥ २२
तत्सदो वृषभाङ्कस्य भीमरूपधरं बभौ ।
तमभ्ययाच्छैलसुता भूतस्त्रीगणसंवृता ॥ २३
हरतुल्याम्बरधरा समानव्रतधारिणी ।
बिभ्रती कलशं रौक्मं सर्वतीर्थजलोद्भवम् २४
गिरिस्रवाभिः सर्वाभिः पृष्ठतोऽनुगता शुभा ।
पुष्पवृष्ट्याभिवर्षन्ती गन्धैर्बहुविधैस्तथा ।
सेवन्ती हिमवत्पार्श्वे हरपार्श्वमुपागमत् ॥ २५
ततः स्मयन्ती पाणिभ्यां नर्मार्थं चारुहासिनी
हरनेत्रे शुभे देवी सहसा सा समावृणोत् २६
संवृताभ्यां तु नेत्राभ्यां तमोभूतमचेतनम् ।
निर्होमं निर्वषट्कारं जगद्वै सहसाऽभवत् २७

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

१४०

तत इति ॥ १ ॥

जनश्च विमनाः सर्वोऽभवत्त्राससमन्वितः ।
निमीलिते भूतपतौ नष्टसूर्य इवाभवत् ॥ २८
ततो वितिमिरो लोकः क्षणेन समपद्यत ।
ज्वाला च महती दीप्ता ललाटात्तस्य निःसृता
तृतीयं चास्य संभूतं नेत्रमादित्यसंनिभम् ।
युगान्तसदृशं दीप्तं येनासौ मथितो गिरिः ३०
ततो गिरिसुता दृष्ट्वा दीप्ताग्निसदृशेक्षणम् ।
हरं प्रणम्य शिरसा ददर्शायतलोचना ३१
दह्यमाने वने तस्मिन् ससालसरलद्रुमे ।
सचन्दनवरे रम्ये दिव्यौषधिविदीपिते ॥ ३२
मृगयूथैर्द्रुतैर्भीतैर्हरपार्श्वमुपागतैः ।
शरणं चाप्यविदद्भिस्तत्सदः संकुलं बभौ ३३
ततो नभस्पृशज्वालो विद्युल्लोलाग्निरुल्बणः।
द्वादशादित्यसदृशो युगान्ताग्निरिवापरः ३४
क्षणेन तेन निर्दग्धो हिमवानभवन्नगः ।
स धातुशिखराभोगो दीप्तदग्धलतौषधिः ३५
तं दृष्ट्वा मथितं शैलं शैलराजसुता ततः ।
भगवन्तं प्रपन्ना वै साञ्जलिप्रग्रहा स्थिता ३६
उमां शर्वस्तदा दृष्ट्वा स्त्रीभावगतमार्दवाम् ।
पितुर्दैन्यमनिच्छन्तीं प्रीत्याऽपश्यत्तदा गिरिं
क्षणेन हिमवान्सर्वः प्रकृतिस्थः सुदर्शनः ।
प्रहृष्टविहगश्चैव सुपुष्पितवनद्रुमः ॥ ३८
प्रकृतिस्थं गिरिं दृष्ट्वा प्रीता देवं महेश्वरम् ।
उवाच सर्वलोकानां पतिं शिवमनिन्दिता ३९

उमोवाच ।

भगवन् सर्वभूतेश शूलपाणे महाव्रत ।
संशयो मे महान् जातस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
किमर्थं ते ललाटे वै तृतीयं नेत्रमुत्थितम् ।
किमर्थं च गिरिर्दग्धः सपक्षिगणकाननः ४१
किमर्थं च पुनर्देव प्रकृतिस्थस्त्वया कृतः ।
तथैव द्रुमसंच्छन्नः कृतोऽयं ते पिता मम ४२

महेश्वर उवाच ।

नेत्रे मे संवृते देवि त्वया बाल्यादनिन्दिते ।
नष्टालोकस्तदा लोकः क्षणेन समपद्यत ॥ ४३
नष्टादित्ये तथा लोके तमोभूते नगात्मजे ।
तृतीयं लोचनं दीप्तं सृष्टं मे रक्षता प्रजाः ४४
तस्य चाक्ष्णो महत्तेजो येनायं मथितो गिरिः
त्वत्प्रियार्थं च मे देवि प्रकृतिस्थः पुनः कृतः४५

उमोवाच ।

भगवन्केन ते वक्त्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् ।
पूर्वं तथैव श्रीकान्तमुत्तरं पश्चिमं तथा ॥ ४६
दक्षिणं च मुखं रौद्रं केनोर्ध्वं कपिला जटाः
केन कण्ठश्च ते नीलो बर्हिबर्हनिभः कृतः॥४७
हस्ते देव पिनाकं ते सततं केन तिष्ठति।
जटिलो ब्रह्मचारी च किमर्थमसि नित्यदा ४८
एतन्मे संशयं सर्वं वक्तुमर्हसि वै प्रभो ।
सधर्मचारिणी चाहं भक्ता चेति वृषध्वज ४९

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तः स भगवाञ्शैलपुत्र्या पिनाकधृत्
तस्या धृत्या च बुद्ध्या च प्रीतिमानभवत्प्रभुः
ततस्तामब्रवीद्देवः सुभगे श्रूयतामिति ।
हेतुभिर्यैर्ममैतानि रूपाणि रुचिरानने ५१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उमामहेश्वरसंवादो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

## १४१

श्रीभगवानुवाच ।

तिलोत्तमा नाम पुरा ब्रह्मणा योषिदुत्तमा
तिलं तिलं समुद्धृत्य रत्नानां निर्मिता शुभा
साऽभ्यगच्छत मां देवि रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
प्रदक्षिणं लोभयन्ती मां शुभे रुचिरानना ॥ २

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

१४१

एवं शंभोः कृष्णादनन्यत्वं जगदात्म्यं चोक्त्वा चतुर्मुखादनन्यत्वं चाह—तिलोत्तमेत्यादिना ॥ १ ॥

यता यतः सा सुदती मामुपाधावदन्तिके ।
ततस्ततो मुखं चारु मम देवि विनिर्गतम् ३
तां दिदृक्षुरहं योगाच्चतुर्मूर्तित्वमागतः ।
चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन्योगमुत्तमम् ॥ ४
पूर्वेण वदनेनाहमिन्द्रत्वमनुशास्मि ह ।
उत्तरेण त्वया सार्धं रमाम्यहमनिन्दिते । ५
पश्चिमं मे मुखं सौम्यं सर्वप्राणिसुखावहम् ।
दक्षिणं भीमसंकाशं रौद्रं संहरति प्रजाः ॥ ६
जटिलो ब्रह्मचारी च लोकानां हितकाम्यया
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पिनाकं मे करे स्थितम् ७
इन्द्रेण च पुरा वज्रं क्षिप्तं श्रीकांक्षिणा मम ।
दग्ध्वा कण्ठं तु तद्यातं तेन श्रीकण्ठता मम

उमोवाच ।

वाहनेष्वत्र सर्वेषु श्रीमत्स्वन्येषु सत्तम ।
कथं च वृषभो देव वाहनत्वमुपागतः ॥ ९

महेश्वर उवाच ।

सुरभीमसृजद्ब्रह्मा देवधेनुं पयोमुचम् ।
सा सृष्टा बहुधा जाता क्षरमाणा पयोऽमृतम्
तस्या वत्समुखोत्सृष्टः फेनो मद्गात्रमागतः ।
ततो दग्धा मया गावो नानावर्णत्वमागताः
ततोऽहं लोकगुरुणा शमं नीतोऽर्थवेदिना ।
वृषं चैनं ध्वजार्थं मे ददौ वाहनमेव च ॥ १२

उमोवाच ।

निवासा बहुरूपास्ते दिवि सर्वगुणान्विताः
तांश्च संत्यज्य भगवन् श्मशाने रमसे कथम्
केशास्थिकलिले भीमे कपालघटसंकुले ।
गृध्रगोमायुबहुले चिताग्निशतसंकुले ॥ १५
अशुचौ मांसकलिले वसाशोणितकर्दमे ।
विकीर्णान्त्रास्थिनिचये शिवानादविनादिते।

महेश्वर उवाच ।

मेध्यान्वेषी महीं कृत्स्नां विचराम्यनिशं सदा
न च मेध्यतरं किञ्चित् श्मशानादिह लक्ष्यते
तेन मे सर्ववासानां श्मशाने रमते मनः ।
न्यग्रोधशाखासंछन्ने निर्भुग्नस्रग्विभूषिते १७
तत्र चैव रमन्तीमे भूतसंघाः शुचिस्मिते ।
न च भूतगणैर्देवि विनाऽहं वस्तुमुत्सहे ॥१८
एष वासो हि मे मेध्यः स्वर्गीयश्च मतः शुभे ।
पुण्यः परमकश्चैव मेध्यकामैरुपास्यते ॥ १९

उमोवाच ।

भगवन् सर्वभूतेश सर्वधर्मविदां वर
पिनाकपाणे वरद संशयो मे महानयम् ॥ २०
अयं मुनिगणः सर्वस्तपस्तेप इति प्रभो ।
तपोवेषकरो लोके भ्रमते विविधाकृतिः ॥२१
अस्य चैवर्षिसंघस्य मम च प्रियकाम्यया ।
एतं ममेह सन्देहं वक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ २२
धर्मः किंलक्षणः प्रोक्तः कथं वा चरितुं नरैः ।
शक्यो धर्ममविन्दद्भिर्धर्मज्ञ वद मे प्रभो २३

नारद उवाच ।

ततो मुनिगणः सर्वस्तां देवीं प्रत्यपूजयत् ।
वाग्भिर्ऋग्भूषितार्थाभिः स्तवैश्चार्थविशारदैः

महेश्वर उवाच ।

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः ॥

---

पूर्वेण वदनेनेत्यादिना सकलदिक्पालान्मायहमेवैक ॥ ५ ॥ एवंभूतोऽपि स्वात्मभूतलोकरक्षार्थं तप आयुधं च धारयामीत्याह-**जटिल इति**॥ ७॥ इन्द्रेणेति एवमहं दासानामतिक्रमं सोढ्वा तत्कीर्त्यर्थं नीलं कण्ठमपि धारयामीति स्वस्य परमकारुणिकत्वं च दर्शितम् ॥८॥ सुरभीमिति वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वारः स्तना स्वाहाकार स्वधाकारो हंतकारो वषट्कार इति वाग्धेनोश्चतुर्भिः स्तनैः पुष्टो धर्मो गोवृषस्तस्य फलभूतं परं वैराग्यविवेकादिकं फेनस्थानीयं यदा प्रत्यक्त्वोपगं भवति तदा वाग्धेनोः पारमार्थिकं प्रामाण्यमपह्नूयते । व्यावहारिकमेव तस्याप्यते सोऽयं गवां विवर्णभावः । धर्मश्च एवंभूतस्य जीवन्मुक्तस्वरूपसूचको ध्वज इव तत्त्वविदि दृश्यत इति प्रघट्टकार्थः ॥१०॥**निवासा इति** पूर्वं मैत्रेयभिक्षाया वाराणस्यामज्ञानैर्मुमुक्षुभिर्वस्तव्यमिति व्यासवाक्येन सूचितम् । अग्रे च काश्या शवदर्शनाच्छिवदर्शनं सर्वतैवासिन सूच्यते । पूर्वत्र अल्पया भिक्षया दत्तया मैत्रेयस्यानन्तपुण्योत्पत्तिवचनेन वाराणस्या पुण्यक्षेत्रत्वमुक्तम् । अग्रे च काश्या शवदर्शनाच्छिवदर्शनस्यान्यथासिद्धिसूचनेनात्र मृतानां शरीरं शिवलिंगमयं भवतीति चोक्तम् । संप्रति रूढ्या महाश्मशानत्वेनावगतमत्र पवित्रत्वेन तदेव प्रदश्यते मेध्यान्वेषीत्यादिना मेधाया धीवृत्तौ विदितं मेध्यं ब्रह्म तत्प्राप्तिकामैः इदं श्मशानं उपास्यत इति वचनान्यत् श्मशानं रुद्रवासः इति ज्ञेयम् ॥ १३ ॥ योगजधर्मं श्रुत्वा वाराणसीं श्मशानं च सेवितुमशक्तानां तप आदिकं विधातुं भगवन्नित्यादिर्ग्रन्थः प्रवर्तते ॥ २० ॥ तपोवेष-तपःसूचकं वेषो नखलोमजटाधारित्वादि ॥ २१ ॥

परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम् ।
अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम् ॥ २६
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः ।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसंभवः ॥ २७

उमोवाच ।

भगवन् संशयः पृष्टस्तन्मे शंसितुमर्हसि ।
चातुर्वर्ण्यस्य यो धर्मः स्वे स्वे वर्णे गुणावहः
ब्राह्मणे कीदृशो धर्मः क्षत्रिये कीदृशोऽभवत
वैश्ये किंलक्षणो धर्मः शूद्रे किंलक्षणो भवेत

महेश्वर उवाच ।

न्यायतस्ते महाभागे सर्वशः समुदीरितः ।
भूमिदेवा महाभागाः सदा लोके द्विजातयः॥
उपवासः सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न संशयः ।
स हि धर्मार्थसंपन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३१
तस्य धर्मक्रिया देवि ब्रह्मचर्या च न्यायतः ।
व्रतोपनयनं चैव द्विजो येनोपपद्यते ॥ ३२
गुरुदैवतपूजार्थं स्वाध्यायाभ्यसनात्मकः ।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसंभवः ॥ ३३

उमोवाच ।

भगवन् संशयो मेऽस्ति तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
चातुर्वर्ण्यस्य धर्मं वै नैपुण्येन प्रकीर्तय ॥ ३४

महेश्वर उवाच ।

रहस्यश्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् ।
अग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम् ३५
भैक्षचर्या परो धर्मो नित्ययज्ञोपवीतिता ।
नित्यं स्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याश्रमस्तथा
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः समावर्तेत वै द्विजः ।
विन्देतानन्तरं भार्यामनुरूपां यथाविधि ॥ ३७
शूद्रान्नवर्जनं धर्मस्तथा सत्पथसेवनम् ।
धर्मो नित्योपवासित्वं ब्रह्मचर्यं तथैव च ३८
आहिताग्निरधीयानो जुह्वानः संयतेन्द्रियः ।
विघसाशी यताहारो गृहस्थः सत्यवाक् शुचिः
अतिथिव्रतता धर्मो धर्मस्त्रेताग्निधारणम् ।
इष्टीश्च पशुबन्धांश्च विधिपूर्वं समाचरेत् ॥४०
यज्ञश्च परमो धर्मस्तथाऽहिंसा च देहिषु ।
अपूर्वभोजनं धर्मो विघसाशित्वमेव च ॥४१
भुक्ते परिजने पश्चाद्भोजनं धर्म उच्यते ।
ब्राह्मणस्य गृहस्थस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः ४२
दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्याद्गृहमेधिनः ।
गृह्याणां चैव देवानां नित्यपुष्पबलिक्रिया ४३
नित्योपलेपनं धर्मस्तथा नित्योपवासिता ।
सुसंमृष्टोपलिप्ते च साज्यधूमो भवेद्गृहे ॥ ४४
एष द्विजजने धर्मो गार्हस्थ्यो लोकधारणः ।
द्विजानां च सतां नित्यं सदैवैष प्रवर्तते ४५
यस्तु क्षत्रगतो देवि मया धर्म उदीरितः ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि तन्मे शृणु समाहिता ४६
क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥
प्रजाः पालयते यो हि धर्मेण मनुजाधिपः ।
तस्य धर्मार्जिता लोकाः प्रजापालनसंचिताः
तस्य राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च
अग्निहोत्रपरिस्पंदो दानाध्ययनमेव च ॥ ४९
यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा ।
भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ५०
सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः ।
व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ५१
आर्तहस्तप्रदो राजा प्रेत्य चेह महीयते ।
गोब्राह्मणार्थे विक्रान्तः संग्रामे निधनं गतः ॥
अश्वमेधजिताँल्लोकानाप्नोति त्रिदिवालये ५३
वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ५४
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः ।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः
तिलान् गन्धान् रसांश्चैव विक्रीणीयान्न चैव हि
वणिक्पथमुपासीनो वैश्यः सत्पथमाश्रितः ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति यथार्हतः ।
शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ॥
स शूद्रः संशिततपाः सत्यवादी जितेन्द्रियः
शुश्रूषुरतिथिं प्राप्तं तपः संचिनुते महत् ॥ ५८
नित्यं स हि शुभाचारो देवताद्विजपूजकः ।
शूद्रो धर्मफलैरिष्टैः संप्रयुज्येत बुद्धिमान् ५९
एतत्ते सर्वमाख्यातं चातुर्वर्ण्यस्य शोभने ।
एकैकस्येह सुभगे किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

---

पञ्चविध॰ अहिंसादिविशिष्टो गार्हस्थ्यधर्मादि धर्मस्य पुण्यस्य संभवो योनि ॥ २७ ॥ उपवासः इंद्रियजयः ॥ ३१ ॥ अपूर्वभोजनं पूर्वभोजनं प्राक्भोजनं तदभाव॰ सकृद्भोजनमित्यर्थ॰ ॥४१॥ निर्दिष्ट॰ षड्भाग॰ ॥ ४७ ॥ आर्तहस्तेति आर्तप्रिय इत्यर्थ॰ । आर्द्रेति पाठे सजलेन हस्तेन ददाति॥५२॥ सर्वप्रकारेणातिथ्यं सर्वातिथ्यम्॥५७॥

उमोवाच ।
उक्तस्त्वया पृथग्धर्मश्चातुर्वर्ण्यहितः शुभः ।
सर्वव्यापी तु यो धर्मो भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ६१
महेश्वर उवाच ।
ब्राह्मणा लोकसारेण सृष्टा धात्रा गुणार्थिना
लोकांस्तारयितुं कृत्स्नान्मर्त्येषु क्षितिदेवताः
तेषामपि प्रवक्ष्यामि धर्मकर्मफलोदयम् ।
ब्राह्मणेषु हि यो धर्मः स धर्मः परमो मतः ६३
इमे ते लोकधर्मार्थं त्रयः सृष्टाः स्वयम्भुवा ।
पृथिव्यां सर्जने नित्यं सृष्टास्तानपि मे शृणु ॥
वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः ।
शिष्टाचीर्णो परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः
त्रैविद्यो ब्राह्मणो विद्वान्न चाध्ययनजीवकः ।
त्रिकर्मा त्रिपरिक्रान्तो मैत्र एष स्मृतो द्विजः
षडिमानि तु कर्माणि प्रोवाच भुवनेश्वरः ।
वृत्त्यर्थं ब्राह्मणानां वै शृणु धर्मान्सनातनान्
यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ।
अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥
नित्यः स्वाध्यायिता धर्मो धर्मो यज्ञः सनातनः
दानं प्रशस्यते चास्य यथाशक्ति यथाविधि ॥
शमस्तुपरमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः ।
गृहस्थानां विशुद्धानां धर्मस्य निचयो महान्
पञ्चयज्ञविशुद्धात्मा सत्यवागनसूयकः ।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता सुसंसृष्टनिवेशनः ॥ ७१
अमानी च सदाऽजिह्मः स्निग्धवाणीप्रदस्तथा
आतिथ्यभ्यागतरतिः शेषान्नकृतभोजनः ॥ ७२
पाद्यमर्घ्यं यथान्यायमासनं शयन तथा ।
दीपं प्रतिश्रयं चैव यो ददाति स धार्मिकः ७३
प्रातरुत्थाय चाचम्य भोजनेनोपमन्त्र्य च ।
सत्कृत्यानुव्रजेद्यस्तु तस्य धर्मः सनातनः ७४
सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य यथाशक्ति निशानिशम्
शूद्रधर्मः समाख्यातस्त्रिवर्गपरिचारणम् ॥ ७५
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो गृहस्थेषु विधीयते ।
तमहं वर्तयिष्यामि सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ७६
दातव्यमसकृच्छक्त्या यष्टव्यमसकृत्तथा ।
पुष्टिकर्मविधानं च कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥

धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम् ।
कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः ॥ ७८
एकेनांशेन धर्मार्थौ कर्तव्यौ भूतिमिच्छता ।
एकेनांशेन कामार्थ एकमंशं विवर्धयेत् ॥ ७९
निवृत्तिलक्षणस्त्वन्यो धर्मो मोक्षाय तिष्ठति
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु मे देवि तत्त्वतः ॥
सर्वभूतदया धर्मो न चैकग्रामवासिता ।
आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षकाङ्क्षिणाम्
न कुड्या नोदके सङ्गो न वाससि न चासने
न त्रिदण्डे न शयने नाग्नौ न शरणालये ८२
अध्यात्मगतिचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायणः ।
युक्तो योगं प्रति सदा प्रतिसंख्यानमेव च ॥
वृक्षमूलपरो नित्यं शून्यागारनिवेशनः ।
नदीपुलिनशायी च नदीतीररतिश्च यः ॥ ८४
विमुक्तः सर्वसङ्गेषु स्नेहबन्धेषु च द्विजः ।
आत्मन्येवात्मनो भाव समासज्जेत वै द्विजः
स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा ।
परिव्रजति यो युक्तस्तस्य धर्मः सनातनः ८६
न चैकत्र समासक्तो न चैकग्रामगोचरः ।
मुक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः ८७
एष मोक्षविदा धर्मो वेदोक्तः सत्पथः सताम्
यो मार्गमनुयातीमं पदं तस्य च विद्यते ॥ ८८
चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ८९
अतः परतरं नास्ति नावरं न तिरोग्रतः ।
अदुःखमसुखं सौम्यमजरामरमव्ययम् ॥ ९०
उमोवाच ।
गार्हस्थ्यो मोक्षधर्मश्च सज्जनाचरितस्त्वया
भाषितो जीवलोकस्य मार्गः श्रेयस्करो महान्
ऋषिधर्मं तु धर्मज्ञ श्रोतुमिच्छाम्यतः परम् ।
स्पृहा भवति मे नित्यं तपोवननिवासिषु ९२
आज्यधूमोद्भवो गन्धो रुणद्धीव तपोवनम् ।
तं दृष्ट्वा मे मनः प्रीतं महेश्वर सदा भवेत् ९३
एतन्मे संशयं देव मुनिधर्मकृतं विभो ।
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञ देवदेव वदस्व मे ।
निखिलेन मया पृष्टं महादेव यथातथम् ॥ ९४

त्रयो धर्माः सर्जने सर्जनकाले ॥ ६४ ॥ त्रिकर्मा दानाध्ययनयजनकर्मा त्रीन् कामक्रोधलोभान् परिक्रान्त परित्यज्य गतः ॥ ६६ ॥ अजिह्म इति च्छेदः ॥ ७२ ॥ कुटीचकबहूदकौ त्रिदण्डिनौ एको गृहे वसति अपरस्ती-

र्थान्यटति इतरौ एकदण्डिनौ तयोराद्य आश्रमधर्मनियतः परो निस्त्रैगुण्य इति तेषां भेदः ॥ ८९ ॥ अतः पारमहंस्येनात्माधिगमात्परं श्रेष्ठं नास्ति नापि अवरादि सर्वस्यात्रैवान्तर्भूतत्वात् ॥ ९० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि मुनिधर्ममनुत्तमम् ।
यं कृत्वा मुनयो यान्ति सिद्धिं स्वतपसा शुभे
फेनपानामृषीणां यो धर्मो धर्मविदां सताम् ।
तन्मे शृणु महाभागे धर्मज्ञे धर्ममादितः ॥ ९६
उंच्छन्ति सततं ये ते ब्राह्मयं फेनोत्करं शुभम्
अमृतं ब्रह्मणा पीतमध्वरे प्रसृतं दिवि ॥ ९७
एष तेषां विशुद्धानां फेनपानां तपोधने ।
धर्मचर्याकृतो मार्गो वालखिल्यगणैः शृणु ९८
वालखिल्यास्तपःसिद्धा मुनयः सूर्यमण्डले ।
उच्छे तिष्ठन्ति धर्मज्ञाः शाकुनीं वृत्तिमाश्रिताः
मृगनिर्मोकवसनाश्चीरवल्कलवाससः ।
निर्द्वन्द्वाः सत्पथं प्राप्ता वालखिल्यास्तपोधनाः
अङ्गुष्ठपर्वमात्रा ये भूत्वा स्वे स्वे व्यवस्थिताः
तपश्चरणमीहन्ते तेषां धर्मफलं महत् ॥ १०१
ते सुरैः समतां यान्ति सुरकार्यार्थसिद्धये ।
द्योतयन्ति दिशःसर्वास्तपसा दग्धकिल्बिषाः
ये त्वन्ये शुद्धमनसो दयाधर्मपरायणाः ।
सन्तश्चक्रचराः पुण्याः सोमलोकचराश्च ये ३
पितृलोकसमीपस्थास्त उंच्छन्ति यथाविधि ।
संप्रक्षालाश्मकुट्टाश्च दन्तोलूखलिकाश्च ते ४
सोमपानां च देवानामूष्मपाणां तथैव च ।
उंच्छन्ति ये समीपस्थाः सदारा नियतेन्द्रियाः
तेषामग्निपरिस्पन्दः पितॄणां चार्चनं तथा ।
यज्ञानां चैव पञ्चानां यजनं धर्म उच्यते १०६
एष चक्रचरैर्देवि देवलोकचरैर्द्विजैः ।
ऋषिधर्मः सदा चीर्णो योऽन्यस्तमपि मे शृणु
सर्वेष्वेवर्षिधर्मेषु ज्ञेयोऽऽत्मा संयतेन्द्रियैः ।
कामक्रोधौ ततः पश्चाज्जेतव्याविति मे मतिः
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो धर्मरात्रिसमासनम् ।
सोमयज्ञाभ्यनुज्ञानं पञ्चमी यज्ञदक्षिणा ॥ ९
नित्यं यज्ञक्रिया धर्मः पितृदेवार्चने रतिः ।
सर्वातिथ्यं च कर्तव्यमन्नेनोञ्छार्जितेन वै १०
निवृत्तिरुपभोगेषु गोरसानां शमे रतिः ।
स्थण्डिले शयने योगः शाकपर्णनिषेवणम् १११
फलमूलाशनं वायुरापः शैवलभक्षणम् ।
ऋषीणां नियमा ह्येते यैर्जयन्त्यजितां गतिं१२
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
अतीतपात्रसञ्चारे काले विगतभिक्षुके ॥ १३
अतिथिं काङ्क्षमाणो वै शेषान्नकृतभोजनः ।
सत्यधर्मरतः शान्तो मुनिधर्मेण युज्यते ॥ १४
न स्तम्भी न च मानी स्यान्नाप्रसन्नो न विस्मितः
मित्रामित्रसमो मैत्रो यः स धर्मविदुत्तमः१५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

## १४२

उमोवाच ।

देशेषु रमणीयेषु नदीनां निर्झरेषु च ।
स्रवन्तीनां निकुञ्जेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १
देशेषु च पवित्रेषु फलवत्सु समाहिताः ।
मूलवत्सु च मेध्येषु वसन्ति नियतव्रताः ॥ २
तेषामपि विधिं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ।
वानप्रस्थेषु देवेश स्वशरीरोपजीविषु ॥ ३

मुनय सन्यासिन· ॥९५ ब्राह्मयं ब्राह्मजातीयमबन्धि फेनोत्करं अग्राग्नसमूहं उंच्छन्ति अल्पश आददते तदिदममृतं ब्रह्मणा साधकावस्थायां पीतं अध्वरे वृष्ट्यादिद्वारा यज्ञाङ्गरूपेण दिवि दिव्यभोगात्मना च प्रसृतम् ॥९७॥ मार्ग उक्त इति शेष. ॥९८॥ स्वे स्वे धर्मे इति शेष· ॥१॥ चक्रचरा चक्रवच्चरन्ति वासरहिता इत्यर्थ· ॥ ३ ॥ उंच्छन्ति अर्थात्सोमकिरणान् संप्रक्षाला. सम्यक् पात्रादिकं प्रक्षालयन्ति नतु श्वोऽर्थे किंचित्स्थापयन्ति ॥ ४ ॥ धर्मरात्रिर्धर्मसत्रं तेन सम्यगासनं समासनं धर्मचक्रं सनातनमिति गौडा ॥९॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १४१ ॥

१४२

देशेष्विति ॥ १ ॥ स्वशरीरमेवोपजीवन्ति नतु भृत्यादि स्वयं दामा इत्यर्थ· ॥ ३ ॥

महेश्वर उवाच ।

वानप्रस्थेषु यो धर्मस्तं मे शृणु समाहिता ।
श्रुत्वा चैकमना देवि धर्मबुद्धिपरा भव ॥ ४
संसिद्धैर्नियमैः सद्भिर्वनवासमुपागतैः ।
वानप्रस्थैरिदं कर्म कर्तव्यं शृणु यादृशम् ॥ ५
त्रिकालमभिषेकं च पितृदेवार्चनं तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्द इष्टिहोमविधिस्तथा ॥ ६
नीवारग्रहणं चैव फलमूलनिषेवणम् ।
इंगुदैरण्डतैलानां स्नेहार्थे च निषेवणम् ॥ ७
योगचर्याकृतैः सिद्धैः कामक्रोधविवार्जितैः ।
वीरशय्यामुपासद्भिर्वीरस्थानोपसेविभिः ॥८
युक्तैर्योगवहैः सद्भिर्ग्रीष्मे पञ्चतपैस्तथा ।
मंडूकयोगनियतैर्यथान्याय निषेविभिः ॥ ९
वीरासनरतैर्नित्यं स्थंडिले शयनं तथा ।
शीततोयाग्नियोगश्च चर्तव्यो धर्मबुद्धिभिः १०
अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शैवलोत्तरभोजनैः ।
अश्मकुट्टैस्तथा दातैः संप्रक्षालैस्तथापरैः ॥११
चीरवल्कलसंवीतैर्मृगचर्मनिवासिभिः ।
कार्या यात्रा यथाकालं यथाधर्मं यथाविधि
वननित्यैर्वनचरैर्वनस्थैर्वनगोचरैः ।
वनं गुरुमिवासाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः १३
तेषां होमक्रिया धर्मः पञ्चयज्ञनिषेवणम् ।
भाग च पञ्चयज्ञस्य वेदोक्तस्यानुपालनम् ॥१४
अष्टमी यज्ञपरता चातुर्मास्यनिषेवणम् ।
पौर्णमासादयो यज्ञा नित्ययज्ञस्तथैव च ॥ १५
विमुक्ता दारसंयोगैर्विमुक्ताः सर्वसङ्करैः ।
विमुक्ताः सर्वपापैश्च चरन्ति मुनयो वने १६
स्रुग्भाण्डपरमा नित्यं त्रेताग्निशरणाः सदा ।
सन्तः सत्पथनित्या ये ते यांति परमां गतिं
ब्रह्मलोकं महापुण्यं सोमलोकं च शाश्वतम् ।
गच्छन्ति मुनयः सिद्धाः सत्यधर्मव्यपाश्रयाः
एष धर्मो मया देवि वानप्रस्थाश्रितः शुभः ।
विस्तरेणाथ संपन्नो यथास्थूलमुदाहृतः ॥ १९

उमोवाच ।

भगवन्सर्वभूतेश सर्वभूतनमस्कृत ।
यो धर्मो मुनिसङ्घस्य सिद्धिवादेषु तं वद २०
सिद्धिवादेषु संसिद्धास्तथा वननिवासिनः
स्वैरिणो दारसंयुक्तास्तेषां धर्मः कथं स्मृतः ॥

महेश्वर उवाच ।

स्वैरिणस्तपसा देवि सर्वे दारविहारिणः ।
तेषां मौण्ड्यं कषायश्च वासे रात्रिश्च कारणम्
त्रिकालमभिषेकश्च होत्रं त्वृषिकृत महत् ।
समाधिसत्पथस्थान यथोद्दिष्टनिषेवणम् २३
ये च ते पूर्वकथिता धर्मास्ते वनवासिनाम् ।
यदि सेवन्ति धर्मास्तानाप्नुवन्ति तपःफलम्
ये च दम्पतिधर्माणः स्वदारनियतेन्द्रियाः ।
चरन्ति विधिदृष्ट तदृतुकालाभिगामिनः २५
तेषामृषिकृतो धर्मो धर्मिणामुपपद्यते ।
न कामकारात्कामोन्यः संसेव्यो धर्मदर्शिभिः
सर्वभूतेषु यः सम्यग्ददात्यभयदक्षिणाम् ।
हिंसादोषविमुक्तात्मा स वै धर्मेण युज्यते
सर्वभूतानुकम्पी यः सर्वभूतार्जवव्रतः ।
सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते ॥ २८
सर्ववेदेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
उभे एते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते
आर्जवं धर्ममित्याहुरधर्मो जिह्म उच्यते ।
आर्जवेनेह संयुक्तो नरो धर्मेण युज्यते ३०
आर्जवे तु रतो नित्यं वसत्यमरसन्निधौ ।
तस्मादार्जवयुक्तः स्याद्य इच्छेद्धर्ममात्मनः ।
क्षांतो दांतो जितक्रोधो धर्मभूतो विहिंसकः
धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३२
व्यपेततंद्रिर्धर्मात्मा शक्त्या सत्पथमाश्रितः ।
चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३३

उमोवाच ।

आश्रमाभिरता देव तापसा ये तपोधनाः ।
दीप्तिमन्तः कया चैव चर्ययाऽथ भवन्ति ते३४

---

वीरशय्या वीरासन वीरस्थानं महारण्य भीरुभिरप्रवेश्यम् ॥ ८ ॥ मंडूकयोगो हठशास्त्रप्रसिद्ध ॥ ९ ॥ वीरासनं सदोपवेशनं शीतं वर्षास्वासारशायी तोय हेमंते जलवासी अग्नि ग्रीष्मे पचाग्निमध्यस्थ एवं शीततोयाग्नियोगः ॥ १० ॥ सिद्धिवादेषु ज्ञानगोष्ठीषु ॥ २० ससिद्धाः संपन्ना ते कदाचित् स्वैरिणः कदाचिद्दारसयुक्ताः ॥ २१ ॥ तत्र स्वैरिणां मौण्ड्यं कषायश्च कारण ज्ञापकं दारसयुक्ताना रात्रिर्वासे कारणं न स्वैरिणामिव तेषा यथेष्टविहारोऽस्तीत्यर्थः ॥२२॥ त्रिकालमभिषेक उभयेषां दारवतामृषिकृतं होत्र वन्याम्बुफलादिना होमः एवं यथायोग्यं धर्मसबन्ध कल्प्यः॥२३॥

राजानो राजपुत्राश्च निर्धना ये महाधनाः।
कर्मणा केन भगवन्प्राप्नुवन्ति महाफलम्॥३५
नित्यं स्थानमुपागम्य दिव्यचन्दनभूषिताः।
केन वा कर्मणा देव भवन्ति वनगोचराः ३६
एतन्मे संशयं देव तपश्चर्याऽऽश्रितं शुभम्।
शंस सर्वमशेषेण त्र्यक्ष त्रिपुरनाशन॥ ३७

महेश्वर उवाच।

उपवासव्रतैर्दान्ता ह्यहिंस्राः सत्यवादिनः
संसिद्धाः प्रेत्य गन्धर्वैः सह मोदन्त्यनामयाः
मण्डूकयोगशयनो यथान्याय यथाविधि।
दीक्षां चरति धर्मात्मा स नागैः सह मोदते
शष्पं मृगमुखोच्छिष्टं यो मृगैः सह भक्षति।
दीक्षितो वै मुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीम्
शैवालं शीर्णपर्णं वा तद्व्रती यो निषेवते।
शीतयोगवहो नित्यं स गच्छेत्परमां गतिम्॥
वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा फलमूलाशनोपि वा
यक्षेष्वैश्वर्यमाधाय मोदतेऽप्सरसां गणैः॥४२
अग्नियोगवहो ग्रीष्मे विधिदृष्टेन कर्मणा।
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि राजा भवति पार्थिवः
आहारनियमं कृत्वा मुनिर्द्वादशवार्षिकम्।
मरुं संसाध्य यत्नेन राजा भवति पार्थिवः ४४
स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिगृह्य समन्ततः।
प्रविश्य च मुदा युक्तो दीक्षां द्वादशवार्षिकीं
देहं चानशने त्यक्त्वा स स्वर्गे सुखमेधते।
स्थण्डिलस्य फलान्याहुर्यानानि शयनानि च
गृहाणि च महार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि भामिनि
आत्मानमुपजीवन्यो नियतो नियताशनः ४७
देहं वाऽनशने त्यक्त्वा स स्वर्गे समुपाश्नुते।
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्
त्यक्त्वा महार्णवे देहं वारुणं लोकमश्नुते।
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्
अश्मना चरणौ भित्त्वा
गुह्यकेषु स मोदते।
साधयित्वाऽऽत्मनाऽऽत्मानं
निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥ ५०
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम्।
स्वर्गलोकमवाप्नोति देवैश्च सह मोदते॥ ५१
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्।
हुत्वाऽग्नौ देहमुत्सृज्य वह्निलोके महीयते॥
यस्तु देवि यथान्यायं दीक्षितो नियतो द्विजः
आत्मन्यात्मानमाधाय निर्ममो धर्मलालसः॥
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम्।
अरणीसहितं स्कन्धे बध्वा गच्छत्यनावृतः॥
वीराध्वानगतो नित्यं वीरासनरतस्तथा।
वीरस्थायी च सततं स वीरगतिमाप्नुयात्॥५५
स शक्रलोकगो नित्यं सर्वकामपुरस्कृतः।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णो दिव्यचन्दनभूषितः ५६
सुखं वसति धर्मात्मा दिवि देवगणैः सह।
वीरलोकगतो नित्यं वीरयोगसहः सदा ५७
सत्त्वस्थः सर्वमुत्सृज्य दीक्षितो नियतः शुचिः
वीराध्वानं प्रपद्येद्यस्तस्य लोकाः सनातनाः॥
कामगेन विमानेन स वै चरति च्छन्दतः।
शक्रलोकगतः श्रीमान्मोदते च निरामयः ५९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उमामहेश्वरसंवादे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४२॥

## १४३

उमोवाच।

भगवन् भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तनिपातन। दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम्॥ १

---

मरुर्ना गिरिधन्वनोरिति मेदिनी। मरुसाधनं मेरुसाधनमिति पर्यायः जलाहारमपि त्यक्त्वेत्यर्थः॥ ४४॥ शुद्धमिति। आसनं विनोपविश्येत्यर्थः॥ ४५॥ अरणीसहितं अग्निं स्कंधे तरुप्रकाडे बध्वा विलाप्य तरावग्निं विसृज्येत्यर्थः॥ ५४॥ वीरो देहत्यागोत्सुक॥ ५५॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय॥ १४२॥

१४३

भगवन्निति॥ १॥

चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा ।
केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् २
वैश्यो वा क्षत्रियः केन
द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् ।
प्रतिलोमः कथं देव
शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥ ३
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते ।
क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ४
एतन्मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ ।
त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥ ५
महेश्वर उवाच ।
ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विजः ।
ज्येष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्माद्रक्षेत वै द्विजः ॥७
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति
यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते ।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥ ९
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा १०
स द्विजो वैश्यतामेति
वैश्यो वा शूद्रतामियात् ।
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्र-
स्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ११
तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ।
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रः समुपजायते ॥ १२
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि
स्वानि कर्माण्यपाहाय शूद्रकर्म निषेवते ॥ १३
स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसङ्करतां गतः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः
यस्तु बुद्धः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवान् शुचिः
धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ॥ १५
इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥ १६
उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् ।
दुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव कर्हिचित ॥
शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः ।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥ १८
शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेद्द्विजः ।
आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत्
तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा
यस्यान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेद्द्विजः ।
तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥
ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।
अभोज्यान्नानि चाश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै
सुरापो ब्रह्महा क्षुद्रश्चोरो भग्नव्रतोऽशुचिः ।
स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः
अव्रती वृषलीभर्ता कुंडाशी सोमविक्रयी ।
निहीनसेवी विप्रो हि पतति ब्रह्मयोनितः ॥
गुरुतल्पी गुरुद्रोही गुरुकुत्सारतिश्च यः ।
ब्रह्मविच्चापि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः २५
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्
शूद्रकर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि ।
शुश्रूषां परिचर्यां च ज्येष्ठे वर्णे प्रयत्नतः ॥२७
कुर्यादविमनाः शूद्रः सततं सत्पथे स्थितः ।
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः २८
ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ।
चोक्षश्चोक्षजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः २९
वृथामांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ।
ऋतवागनहंवादी निर्द्वन्द्वः शमकोविदः ॥
यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ।
दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णबुभूषकः ॥३१
गृहस्थव्रतमातिष्ठन् द्विकालकृतभोजनः ।
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः
अग्निहोत्रमुपासश्च जुह्वानश्च यथाविधि ।
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठन् शेषान्नकृतभोजनः ३३
त्रेताग्निमन्त्रविहितो वैश्यो भवति वै द्विजः ।
स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचौ महति जायते ३४
स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सत्कृतः ३५
ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ।
अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा ॥

कुण्डे पाकपात्रे अश्नातीति कुण्डाशी ॥ २४ ॥ चोक्ष शुद्ध ॥ २९ ॥

आर्तहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
सत्यः सत्यानि कुरुते नित्य यः सुखदर्शनः
धर्मदण्डो न निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासकः ।
यन्त्रितः कार्यकरणैः षड्भागकृतलक्षणः ३८
ग्राम्यधर्मं न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविदः ।
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपशयेत्सदा ३९
सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरतः शुचिः
बर्हिष्कान्तरिते नित्यं शयानोऽग्निगृहे सदा
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमनाः सदा ।
शूद्राणां चान्नकामाना नित्यं सिद्धमिति ब्रुवन्
अर्थाद्वा यदि वा कामात्र किंचिदुपलक्षयेत् ।
पितृदेवातिथिकृते साधनं कुरुते च यः ॥ ४२
स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च ।
त्रिकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः ।
त्रेताग्निमन्त्रपूतात्मा समाविश्य द्विजो भवेत्
ज्ञानविज्ञानसंपन्नः संस्कृतो वेदपारगः ।
विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा
एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ।
शूद्रोप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥
ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसङ्करभोजनः ।
ब्राह्मण्य स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥
कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः

शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम्
स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति ।
विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः ४९
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ।
वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति
ब्राह्मः स्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतिः
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ॥५२
एते योनिफला देवि स्थानभागनिदर्शकाः ।
स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ॥
ब्राह्मणोऽपि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत् ।
यत्तत्र बीजं वपति सा कृषिः प्रेत्य भाविनि ॥
विघसाशिना सदा भाव्यं सत्पथालंबिना तथा
ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता ॥५५
संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ।
नित्य स्वाध्यायिना भाव्यं न चाध्ययनजीविना
एवंभूतो हि यो विप्रः सत्पथं सत्पथे स्थितः
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ५७
ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ।
योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते ५८
एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ।
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उमामहेश्वरसंवादे
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

## १४४

उमोवाच ।
भगवन् सर्वभूतेश देवासुरनमस्कृत ।
धर्माधर्मौ नृणां देव ब्रूहि मेऽसंशयं विभो १
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविध हि नरः सदा
बध्यते बन्धनैः पाशैर्मुच्यतेऽप्यथवा पुनः ॥२
केन शीलेन वृत्तेन कर्मणा कीदृशेन वा ।
समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः
महेश्वर उवाच ।
देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्ये दमे रते ।
सर्वप्राणिहितः प्रश्नः श्रूयतां बुद्धिवर्धनः ॥ ४

---

पादवत् गतिमत् ॥ ५४ ॥ **ब्राह्मण्यमिति** कुयोनिसंबंधात् कुप्रतिग्रहात् आदानाच्च ब्राह्मण्यं नश्यतीति भाव ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४३॥

१४४

**भगवन्निति** ॥ १ ॥

सत्यधर्मरताः सन्तः सर्वलिङ्गविवर्जिताः ।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ५
नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसंशयाः ।
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ६
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः ।
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन
ये न सज्जन्ति कस्मिंश्चित्ते न बध्यन्ति कर्मभिः
प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ।
सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ॥ ९
त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
परस्वे निर्ममा नित्य परदारविवर्जकाः ॥ १०
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये ॥ ११
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं सन्तुष्टाः स्वधनेन च ॥
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ।
स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः १३
अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ।
परदारेषु ये नित्यं चरित्रावृतलोचनाः ॥ १४
यतेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः १५
अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ।
दानधर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः १६
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा सेवितव्यः सदा नरैः ।
स्वर्गवासमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः १७

उमोवाच ।

वाचा तु बध्यते येन मुच्यतेऽप्यथवा पुनः।
तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥ १८

महेश्वर उवाच ।

आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात्तथा।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः २०
श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम्
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा ।
अपैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः २२
पिशुनां न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम् ।
ऋतं मैत्रं तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः ।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः २४
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः ।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारणीम् ।
सान्त्वं वदन्ति क्रुद्धाऽपि ते नराः स्वर्गगामिनः
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः
शुभः सत्यगुणो नित्यं वर्जनीयो मृषा बुधैः ॥

उमोवाच ।

मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा ।
तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृत् २८

महेश्वर उवाच ।

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा ।
स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीततराकृतिः ।
मनो बध्यति येनेह शृणु वाक्यं शुभानने ३०
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः
ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम्
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः
तथैव परदारान् ये कामवृत्तान् रहोगतान् ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः
शत्रुं मित्रं च ये नित्य तुल्येन मनसा नराः ।
भजन्ति मैत्राः सङ्गम्य ते नराः स्वर्गगामिनः
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसङ्गराः ।
स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ३५
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रीचित्तरताः सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३६
श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः ।
धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वगगामिनः ॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसञ्चये ।
विपाकज्ञाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा ।
समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ३९

---

सर्वेषामाश्रमाणां लिंगैर्विवर्जिता ॥ ५ ॥ न सज्जन्ति सक्ता न भवन्ति प्राणातिपातात् इन्द्रियाणां विषयाभिमुख्यात् ॥ ८ ॥ अकषायकृत रागद्वेषाद्यभावार्थं निर्मित ॥ १६ ॥

नर्म कौटिल्यं विना स्रगादौ सर्पभ्रमोत्पादनं हास्यं नादृशमेव मात्रादिषु दोषारोपपूर्वकं गालनम् ॥ १९ ॥ न हिंसन्ति आदानेन तत्स्वामिनं न पीडयन्ति ॥ ३१ ॥

शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः ।
स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥
उमोवाच ।
महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर ।
तस्मात्त्वं नैपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ४१
केनायुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो ।
तपसा वापि देवेश केनायुर्लभते महत् ॥ ४२
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः ।
विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित ४३
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथाऽपरे ।
अकुलीनास्तथा चान्ये कुलीनाश्च तथाऽपरे
दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव ।
प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ४५
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभांति केचिदाभांति पंडिताः
महाप्राज्ञास्तथैवान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥
अल्पाबाधास्तथा केचिन्महाबाधास्तथाऽपरे
दृश्यन्ते पुरुषा देव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ४७
महेश्वर उवाच ।
हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् ।
मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वफलमश्नुते ॥ ४८
प्राणातिपाते यो रौद्रो दण्डहस्तोद्यतः सदा
नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥ ४९
निर्दयः सर्वभूतानां नित्यमुद्वेगकारकः ।
अपि कीटपिपीलानामशरण्यः सुनिर्घृणः ५०
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते ।
विपरीतस्तु धर्मात्मा रूपवानभिजायते ५१
पापेन कर्मणा देवि बध्यो हिंसारतिर्नरः ।
अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५२
निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः
यातनां निरये रौद्रां स कृच्छ्रां लभते नरः५३
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् ।
मानुष्यं लभते चापि हीनायुस्तत्र जायते ५४
पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिंसारतिर्नरः ।
अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५५
यस्तु शुक्लाभिजातीयः प्राणिघातविवर्जकः ।
निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन५६
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते ।
सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथाऽपरे ५७
ईदृशः पुरुषोत्कर्षो देवि देवत्वमश्नुते ।
उपपन्नान्सुखान्भोगानुपाश्नाति मुदा युतः ५८
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते ।
तत्र दीर्घायुरुत्पन्नः स नरः सुखमेधते ॥ ५९
एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मिणाम् ।
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ६०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उमामहेश्वरसंवादे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

## १४५

उमोवाच ।
किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः
स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥ १
महेश्वर उवाच ।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानां वाससां च प्रदायकः २
प्रतिश्रयान्सभाः कूपान्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा
नैत्यकानि च सर्वाणि किमिच्छकमतीव च
आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा ।
सस्यजातानि सर्वाणि गाः क्षेत्राण्यथ योषितः
सुप्रतीतमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः ।
एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥ ५
तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।
सहाप्सरोभिर्मुदितो रमते नन्दनादिषु ॥ ६
तस्मात्स्वर्गाच्च्युतो लोकान्मानुषेषु प्रजायते
महाभोगकुले देवि धनधान्यसमन्वितः ॥ ७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

१४५

**किमिति** ॥ १ ॥ नैत्यकानि नित्यदेयानि किमिच्छमीति पृष्ट्वा यदीप्सितं दीयते तत्किमिच्छकम् ॥ ३ ॥

तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदा युतः।
महाभोगो महाकोशो धनी भवति मानवः ८
एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशीलिनः।
ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ९
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजैः।
याचिता न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः॥
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि।
याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः
न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनं
न गावो नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन॥
अप्रवृत्ताश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः
एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः १३
ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात्
धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः॥१४
क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः।
निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकां
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः।
अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः १६
अपरे स्तंभिनो नित्यं मानिनः पापतो रताः।
आसनार्हस्य ये पीठं न प्रयच्छन्त्यचेतसः१७
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः।
पाद्यार्हस्य च ये पाद्यं न ददत्यल्पबुद्धयः॥ १८
अर्घार्हान्न च सत्कारैरर्चयन्ति यथाविधि।
अर्घ्यमाचमनीयं वा न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः १९
गुरुं चाभिगतं प्रेम्णा गुरुवन्न बुभूषते।
अभिमानप्रवृत्तेन लोभेन समवस्थिताः॥ २०
संमान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च।
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः॥ २१
ते वै यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति वै।
वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले॥२२
श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम्।
कुलेषु तेषु जायन्ते गुरुवृद्धापचायिनः॥ २३
न स्तम्भी न च मानी यो देवताद्विजपूजकः।
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रश्रितो मधुरं वचः२४
सर्ववर्णप्रियकरः सर्वभूतहितः सदा।
अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा
स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः।
यथार्हसत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठति॥ २६
मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुं गुरुवदर्चयन्।
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः॥ २७
एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते।
ततो मानुषतां प्राप्य विशिष्टकुलजो भवेत्॥
तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः।
यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत्॥ २९
सम्मतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः।
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा॥ ३०
उदात्तकुलजातीय उदात्ताभिजनः सदा।
एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः॥

यस्तु रौद्रसमाचारः
सर्वसत्त्वभयङ्करः
हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां
रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः॥ ३२

लोष्टैः स्तम्भैरायुधैर्वा जन्तून्बाधति शोभने।
हिंसार्थं निकृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव ह॥ ३३
उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा।
एवंशीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते॥ ३४
स वै मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात्।
बह्वाबाधपरिक्लिष्टे जायते सोऽधमे कुले॥३५
लोकद्वेष्योऽधमः पुंसां स्वयं कर्मफलैः कृतैः।
एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु॥३६
अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति।
मैत्रदृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः॥ ३७
नोद्वेजयति भूतानि न विघातयते तथा।
हस्तपादैः सुनियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ३८
न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नायुधेन च।
उद्वेजयति भूतानि श्लक्ष्णकर्मा दयापरः॥ ३९
एवंशीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते।
तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत्४०
स चेत्कर्मक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते।
अल्पाबाधो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते
सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः।
एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते४२

उमोवाच।

इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः॥

---

अतिथीन् दृष्ट्वा तैर्याच्यमाना सन्तो निवर्तन्ते न प्रयच्छन्ति ॥ ११ ॥ गुरुवृद्धापचायिनः गुरूणां वृद्धानां च हीनत्वसंपादकाः ॥ २३ ॥ गुरुवत् पितृवत् ॥ २७ ॥ उदात्तं प्रशस्तम् ॥ ३१ ॥ ऊहः सिद्धान्तः अपोहः पूर्वपक्षः ॥४३॥

दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः।
केन कर्मविशेषेण प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत्॥ ४४
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानवः।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वधर्मविदां वर॥ ४५
जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा।
नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ४६

महेश्वर उवाच।

ब्राह्मणान् वेदविदुषः सिद्धान् धर्मविदस्तथा
परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाः कुशलं तथा॥ ४७
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा।
लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिहलोके तथा सुखम्॥
स चेन्मानुषतां याति मेधावी तत्र जायते।
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य कल्याणमुपजायते ४९
परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते।
तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति ह५०
मनसा तु प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम्।
रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकर्मिणः५१
ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः।
पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते॥ ५२
पशूंश्च ये घातयन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः।
प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति ते नराः

उमोवाच।

सावद्यं किन्तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च।
श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम॥ ५४

महेश्वर उवाच।

श्रेयांसं मार्गमन्विच्छन्
सदा यः पृच्छति द्विजान्
धर्मान्वेषी गुणाकांक्षी
स स्वर्गं समुपाश्नुते॥ ५५
यदि मानुषतां देवि कदाचित्स निगच्छति।
मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्राभिजायते ५६
एष देवि सतां धर्मो मन्तव्यो भूतिकारकः।
नृणां हितार्थाय मया तव वै समुदाहृतः॥ ५७

उमोवाच।

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः।
ब्राह्मणान् वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम्
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धाधर्मपरायणाः।
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः५९
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथाऽपरे।
केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ६०

महेश्वर उवाच।

आगमा लोकधर्माणां मर्यादाः सर्वनिर्मिताः
प्रामाण्येनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते च दृढव्रताः॥६१
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः।
अव्रता नष्टमर्यादास्ते प्रोक्ता ब्रह्मराक्षसाः ६२
ते चेत्कालकृतोद्योगात्सम्भवन्तीह मानुषाः
निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः
एष देवि मया सर्वः संशयच्छेदनाय ते।
कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उमामहेश्वरसंवादे
पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४५॥

## १४६

नारद उवाच।

एवमुक्त्वा महादेवः श्रोतुकामः स्वयंप्रभुः।
अनुकूलां प्रियां भार्यां पार्श्वस्थां समभाषत १

महेश्वर उवाच।

परावरज्ञे धर्मज्ञे तपोवननिवासिनि।
साध्वि सुभ्रु सुकेशान्ते हिमवत्पर्वतात्मजे॥ २

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४५॥

१४६

एवमिति॥ १॥

दक्षे शमदमोपेते निर्ममे धर्मचारिणि ।
पृच्छामि त्वां वरारोहे पृष्टा वद ममेप्सितम्
सावित्री ब्रह्मणः साध्वी
कौशिकस्य शची सती ।
मार्कण्डेयस्य धूमोर्णा
ऋद्धिर्वैश्रवणस्य च ॥ ४
वरुणस्य तथा गौरी
सूर्यस्य च सुवर्चला ।
रोहिणी शशिनः साध्वी
स्वाहा चैव विभावसोः ॥ ५
अदितिः कश्यपस्याथ सर्वास्ताः पतिदेवताः।
पृष्टाश्चोपासिताश्चैव तास्त्वया देवि नित्यशः
तेन त्वां परिपृच्छामि धर्मज्ञे धर्मवादिनि ।
स्त्रीधर्मं श्रोतुमिच्छामि त्वयोदाहृतमादितः ७
सधर्मचारिणी मे त्वं समशीला समव्रता ।
समानसारवीर्या च तपस्तीव्रं कृतं च ते ॥ ८
त्वया ह्युक्तो विशेषेण गुणवान्स भविष्यति ।
लोके चैव त्वया देवि प्रमाणत्वमुपैष्यति॥९
स्त्रियश्चैव विशेषेण स्त्रीजनस्य गतिः परा ।
गौर्यां गच्छति सुश्रोणि लोकेष्वेषा गतिः सदा
मम चार्धं शरीरस्य तव चार्धेन निर्मितम् ।
सुरकार्यकरी च त्वं लोकसन्तानकारिणी ॥
तव सर्वः सुविदितः स्त्रीधर्मः शाश्वतः शुभे ।
तस्मादशेषतो ब्रूहि स्वधर्मं विस्तरेण मे ॥ १२
उमोवाच ।
भगवन्सर्वभूतेश भूतभव्यभवोत्तम ।
त्वत्प्रभावादियं देव वाक्चैव प्रतिभाति मे १३
इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः ।
उपस्पर्शनहेतोस्त्वामुपयान्ति समीपतः ॥ १४
एताभिः सह संमन्त्र्य प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
प्रभवन्योऽनहंवादी स वै पुरुष उच्यते ॥ १५
स्त्री च भूतेश सततं स्त्रियमेवानुधावति ।
मया संमानिताश्चैव भविष्यन्ति सरिद्वराः ॥
एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी ।
प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी ॥ १७
विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती
शतद्रूर्देविका सिन्धुः कौशिकी गौतमी तथा
तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसंभृता ।
गगनाद्गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा ॥ १९
इत्युक्त्वा देवदेवस्य पत्नी धर्मभृतां वरा ।
स्मितपूर्वमथाभाष्य सर्वास्ताः सरितस्तथा २०
अपृच्छद्देवमहिषी स्त्रीधर्मं धर्मवत्सला ।
स्त्रीधर्मकुशलास्ता वै गङ्गाद्याः सरितां वराः
उमोवाच ।
अयं भगवता प्रोक्तः प्रश्नः स्त्रीधर्मसंश्रितः।
तं तु संमन्त्र्य युष्माभिर्वक्तुमिच्छामि शङ्करम्
न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित्
दिवि वा सागरगमास्तेन वो मानयाम्यहम्
एवं सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः पृष्टाः पुण्यतमाः शिवाः
ततो देवनदी गङ्गा नियुक्ता प्रतिपूज्य च २४
बह्वीभिर्बुद्धिभिः स्फीता
स्त्रीधर्मज्ञा शुचिस्मिता ।
शैलराजसुतां देवीं
पुण्या पापभयापहा ॥ २५
बुद्ध्या विनयसंपन्ना सर्वधर्मविशारदा ।
सस्मितं बहुबुद्ध्याढ्या गङ्गा वचनमब्रवीत् ॥
गङ्गोवाच ।
धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि देवि धर्मपरायणे
या त्वं सर्वजगन्मान्या नदीं मानयसेऽनघे ॥
प्रभवन् पृच्छते यो हि संमानयति वा पुनः ।
नूनं जनमदुष्टात्मा पण्डिताख्यां स गच्छति॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नानूहापोहविशारदान् ।
प्रवक्तॄन् पृच्छते योऽन्यान् स वै नापदमृच्छति
अन्यथा बहुबुद्ध्याढ्यो वाक्यं वदति संसदि।
अन्यथैव ह्यहंवादी दुर्बलं वदते वचः ॥ ३०
दिव्यज्ञाने दिवि श्रेष्ठे दिव्यपुण्यैः सहोत्थिते
त्वमेवार्हसि नो देवि स्त्रीधर्माननुभाषितुम् ॥
ततः साराधिता देवी गङ्गया बहुभिर्गुणैः ।
प्राह सर्वमशेषेण स्त्रीधर्मं सुरसुन्दरी ॥ ३२
उमोवाच ।
स्त्रीधर्मो मां प्रति यथा प्रति भाति यथाविधि
तमहं कीर्तयिष्यामि तथैव प्रश्रिता भव॥३३
स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः ।
सहधर्मचरी भर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः ॥ ३४
सुस्वभावा सुवचना सुवृत्ता सुखदर्शना ।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी॥
सा भवेद्धर्मपरमा सा भवेद्धर्मभागिनी ।
देववत्सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति ३६

गुणवान् स स्त्रीधर्मः ॥ ९ ॥ गौर्यां भूमौ गच्छति अनादिपरंपरया चलति ॥ १० ॥

शुश्रूषां परिचारं च देववद्या करोति च ।
नान्यभावा ह्यविमनाः सुव्रता सुखदर्शना ॥
पुत्रवक्त्रमिवाभीक्ष्णं भर्तुर्वदनमीक्षते ।
या साध्वी नियताहारा सा भवेद्धर्मचारिणी
श्रुत्वा दम्पतिधर्मं वै सहधर्मं कृतं शुभम् ।
या भवेद्धर्मपरमा नारी भर्तृसमव्रता ॥ ३९
देववत्सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति ।
दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः ॥४०
शुश्रूषां परिचारं च देवतुल्यं प्रकुर्वती ।
वश्या भावेन सुमनाः सुव्रता सुखदर्शना ।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी
परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा ।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता ॥४२
न चन्द्रसूर्यौ न तरुं पुंनाम्ना या निरीक्षते ।
भर्तृवर्जं वरारोहा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ४३
दरिद्रं व्याधितं दीनमध्वना परिकर्शितम् ।
पतिं पुत्रमिवोपास्ते सा नारी धर्मभागिनी ॥
या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत्
पतिप्रिया पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी
शुश्रूषां परिचर्यां च करोत्यविमनाः सदा ।
सुप्रतीता विनीता च सा नारी धर्मभागिनी
न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा ।
स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी
कल्योत्थानरतिर्नित्यं गृहशुश्रूषणे रता ।
सुसंमृष्टक्षया चैव गोशकृत्कृतलेपना ॥ ४८
अग्निकार्यपरा नित्यं सदा पुष्पबलिप्रदा ।
देवतातिथिभृत्यानां निर्वाप्य पतिना सह ॥
शेषान्नमुपभुञ्जाना यथान्यायं यथाविधि ।
तुष्टपुष्टजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते ॥ ५०
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ जोषयन्ती गुणान्विता ।
मातापितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना
ब्राह्मणान् दुर्बलानाथान्दीनान्धकृपणांस्तथा ।
बिभर्त्यन्नेन या नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥
व्रतं चरति या नित्यं दुश्चरं लघुसत्त्वया ।
पतिचित्ता पतिहिता सा पतिव्रतभागिनी ॥
पुण्यमेतत्तपश्चैतत्स्वर्गश्चैष सनातनः ।
या नारी भर्तृपरमा भवेद्भर्तृव्रता सती ॥ ५४
पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ।
पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः
पतिप्रसादः स्वर्गो वा तुल्यो नार्या न वा भवेत्
अहं स्वर्गं न हीच्छेयं त्वय्यप्रीते महेश्वरे ५६
यद्यकार्यमधर्मं वा यदि वा प्राणनाशनम् ।
पतिर्ब्रूयाद्दरिद्रो वा व्याधितो वा कथञ्चन ॥
आपन्नो रिपुसंस्थो वा ब्रह्मशापार्दितोपि वा ।
आपद्धर्माननुप्रेक्ष्य तत्कार्यमविशंकया ॥ ५८
एष देव मया प्रोक्तः स्त्रीधर्मो वचनात्तव ।
या त्वेवंभाविनी नारी सा पतिव्रतभागिनी

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तु देवेशः प्रतिपूज्य गिरेः सुताम्
लोकान् विसर्जयामास सर्वैरनुचरैर्वृतान् ६०
ततो ययुर्भूतगणाः सरितश्च यथागतम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव प्रणम्य शिरसा भवम् ६१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि उमामहेश्वरसंवादे स्त्रीधर्मकथने षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

## १४७

ऋषय ऊचुः ।

पिनाकिन् भगनेत्रघ्न सर्वलोकनमस्कृत । माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामि शङ्कर १

वश्याभावेन मन्त्रादिना वशाकरणं विना ॥ ४१ ॥ चन्द्रसूर्यौ तरुमपि या पुरुषनामन्वात्न निरीक्षते किमु नरं पशुं वेति भाव ॥ ४३ ॥ सुसंमृष्टक्षया शोधितगृहा ॥ ४८ ॥ लघुसत्त्वया शीघ्रमर्यादावबोधिन्या बुद्ध्या ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १४६ ॥

१४७

**पिनाकिन्निति** । अस्मिन्नध्याये यो हि मा द्रष्टुमिच्छेतेति श्लोकद्वयेन ब्रह्मविष्णुरुद्राणामैकात्म्य दर्शित यत्प्रागुपदर्शित तदेवात्रोपसंहृतमिति बोध्यम् ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।
पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः २
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः ।
शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुराः॥
ऋषयो देहसम्भूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः
पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च सः ॥ ५
सोऽस्याः पृथिव्याः कृत्स्नायाः
स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः ।
संहर्ता चैव भूतानां
स्थावरस्य चरस्य च ॥ ६
स हि देववरः साक्षाद्देवनाथः परंतपः ।
सर्वज्ञः सर्वसंश्लिष्टः सर्वगः सर्वतोमुखः ॥ ७
परमात्मा हृषीकेशः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
न तस्मात्परमं भूत त्रिषु लोकेषु किञ्चन ॥ ८
सनातनो वै मधुहा गोविन्द इति विश्रुतः ।
स सर्वान्पार्थिवान्संख्ये घातयिष्यति मानदः
सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुषं वपुरास्थितः ।
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः१०
भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जिताः ।
नायकः सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ११
एतस्य देवनाथस्य देवकार्यपरस्य च ।
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च ॥ १२
ब्रह्मा वसति गर्भस्थः शरीरे सुखसंस्थितः ।
शर्वः सुखं संश्रितश्च शरीरे सुखसंस्थितः १३
सर्वाः सुखं संश्रिताश्च शरीरे तस्य देवताः ।
स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः ।
उत्तमेन स शीलेन दमेन च शमेन च ॥ १५
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च ।
आरोहेण प्रमाणेन धैर्येणार्जवसंपदा ॥ १६
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः ।
अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ १७
योगमायः सहस्राक्षो निरपायो महामनाः ।
वीरो मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः १८
क्षमावांश्चानहंवादी ब्रह्मण्यो ब्रह्मनायकः ।
भयहर्ता भयार्तानां मित्राणां नन्दिवर्धनः १९
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः ।
श्रुतवानर्थसंपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ २०
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित् ।
नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः॥
भवार्थमिह देवानां बुद्ध्या परमया युतः ।
प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥ २२
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः ।
अङ्गो नाम मनोः पुत्रो अन्तर्धामा ततः परः
अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः ।
प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो महान्॥
तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशात्मजाः ।
प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः २५
दाक्षायण्यास्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्तथा
मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति ॥ २६
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति ।
नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चात्मजः
यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति
क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति २८
वृजिनीवतश्च भविता उषङ्गुरपराजितः ।
उषङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा २९
तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति ।
तेषां विख्यातवीर्याणां चरित्रगुणशालिनाम्।
यज्वनां सुविशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसंमते ।
स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ।
स्ववंशविस्तरकरं जनयिष्यति मानदः ॥ ३१
वसुदेव इति ख्यात पुत्रमानकदुन्दुभिम् ।
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति ॥ ३२
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ।
राज्ञो मागधसंरुद्धान् मोक्षयिष्यति यादवः॥
जरासन्धं तु राजान निर्जित्य गिरिगह्वरे ।
सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो भविष्यति स वीर्यवान्
पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येण च भविष्यति ।
विक्रमेण च संपन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः ॥ ३५
शूरसेनेषु भूत्वा स द्वारकायां वसन्प्रभुः।
पालयिष्यति गा देवीं विजित्य नयवित्सदा॥
तं भवन्तः समासाद्य वाङ्माल्यैरर्हणैर्वरैः ।
अर्चयन्तु यथान्याय ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ॥
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ।
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान् ३८
दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ।
पितामहो वा देवेश इति वित्त तपोधनाः ३९

स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति ४०
यश्च तं मानवे लोके संश्रयिष्यति केशवम् ।
तस्य कीर्तिर्जयश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति ४१
धर्माणां देशिकः साक्षात्
स भविष्यति धर्मभाक् ।
धर्मवद्भिः स देवेशो
नमस्कार्यः सदोद्यतैः ॥ ४२
धर्म एव परो हि स्यात्तस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ
स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया ॥
धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज ह ।
ताः सृष्टास्तेन विभुना पर्वते गन्धमादने ४४
सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसान्विताः ।
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुङ्गवाः
दिवि श्रेष्ठो हि भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च
अर्हितश्चार्हयेन्नित्यं पूजितः प्रतिपूजयेत् ॥ ४६
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत् ।
अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ४७
एतत्तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं व्रतम् ।
आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥ ४८
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः ।
अभयेनानुरूपेण युज्यन्ते तमनुव्रताः ॥ ४९
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा
यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥ ५०
एष वोऽभिहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः
तं दृष्ट्वा सर्वशो देवं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम् ।
अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ५२
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः ।
समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥५३
तस्य चैवाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः ।
हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ।
त्रिशिरास्तस्य दिव्यश्च शातकुंभमयो द्रुमः ।
ध्वजस्तृणेन्द्रो देवस्य भविष्यति रथाश्रितः
शिरोनागैर्महाभोगैः परिकीर्णो महात्मभिः ।
भविष्यति महाबाहोः सर्वलोकेश्वरस्य च ५६
चिन्तितानि समेष्यन्ति शस्त्राण्यस्त्राणि चैव ह
अनन्तश्च स एवोक्तो भगवान् हरिरव्ययः ॥
समादिष्टश्च विबुधैर्दर्शय त्वामिति प्रभो ।
सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्यात्मजो बली ।
अन्तं नैवाशकद्द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः ॥ ५८
स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः ।
अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसुन्धराम् ॥ ५९
य एव विष्णुः सोऽनन्तो भगवान् वसुधाधरः
यो रामः स हृषीकेशो योऽच्युतः स धराधरः
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ।
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ ॥
एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः ।
यद्भवन्तो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पुरुषमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

## १४८

नारद उवाच ।
अथ व्योम्नि महाञ्छब्दः
सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।
मेघैश्च गगनं नीलं
संरुद्धमभवद्घनैः ॥ १
प्रावृषीव च पर्जन्यो ववृषे निर्मलं पयः ।
तमश्चैवाभवद्घोरं दिशश्च न चकाशिरे ॥ २
ततो देवगिरौ तस्मिन् रम्ये पुण्ये सनातने ।
न शर्वं भूतसंघं वा ददृशुर्मुनयस्तदा ॥ ३

अर्हितः पुष्पधूपादिनार्चितः पूजितः वाचा च महीकृतः ॥४६॥ अर्चितः मनसा ध्यातः ॥४७॥ तृणेन्द्रः तालद्रुमः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७

१४८

अथ व्योम्नीति कथोपसंहारार्थः सटार्थोऽध्यायः ॥ १

व्यभ्रं च गगनं सद्यः क्षणेन समपद्यत ।
तीर्थयात्रां ततो विप्रा जग्मुश्चान्ये यथागतम् ४
तदद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा ते विस्मिताऽभवन् ।
शङ्करस्योमया सार्धं संवादं त्वत्कथाश्रयम्
स भवान् पुरुषव्याघ्र ब्रह्मभूतः सनातनः ।
यदर्थमनुशिष्टाः स्मो गिरिपृष्ठे महात्मना ॥ ६
द्वितीयं त्वद्भुतमिदं त्वत्तेजः कृतमद्य वै ।
दृष्ट्वा च विस्मिताः कृष्ण सा च नः स्मृतिरागता
एतत्ते देवदेवस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो ।
कपर्दिनो गिरीशस्य महाबाहो जनार्दन ॥ ८
इत्युक्तः स तदा कृष्णस्तपोवननिवासिभिः ।
मानयामास तान्सर्वानृषीन् देवकिनन्दनः ९
अथर्षयः संप्रहृष्टाः पुनस्ते कृष्णमब्रुवन् ।
पुनः पुनर्दर्शयास्मान् सदैव मधुसूदन ॥ १०
न हि नः सा रतिः स्वर्गे या च त्वद्दर्शने विभो
तदृतं च महाबाहो यदाह भगवान्भवः ॥ ११
एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यमरिकर्शन ।
त्वमेव ह्यर्थतत्त्वज्ञः पृष्टोऽस्मान् पृच्छसे यदा
तदस्माभिरिदं गुह्यं त्वत्प्रियार्थमुदाहृतम् ।
न च तेऽविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते
जन्म चैव प्रसूतिश्च यच्चान्यत्कारणं विभो ।
वयं तु बहुचापल्यादशक्ता गुह्यधारणे ॥ १४
ततः स्थिते त्वयि विभो लघुत्वात्प्रलपामहे ।
न हि किञ्चित्तदाश्चर्यं यन्न वेत्ति भवानिह १५
दिवि वा भुवि वा देव सर्वं हि विदितं तव ।
साधयाम वयं कृष्ण बुद्धिं पुष्टिमवाप्नुहि ॥१६
पुत्रस्ते सदृशस्तात विशिष्टो वा भविष्यति ।
महाप्रभावसंयुक्तो दीप्तिकीर्तिकरः प्रभुः ॥१७

भीष्म उवाच ।

ततः प्रणम्य देवेशं यादवं पुरुषोत्तमम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य प्रजग्मुस्ते महर्षयः ॥ १८
सोऽयं नारायणः श्रीमान् दीप्त्या परमया युतः
व्रतं यथावत्तच्चीर्त्वा द्वारकां पुनरागमत् ॥ १९
पूर्णे च दशमे मासि पुत्रोऽस्य परमाद्भुतः ।
रुक्मिण्यां संमतो जज्ञे शूरो वंशधरः प्रभो ॥
स कामः सर्वभूतानां सर्वभावगतो नृप ।
असुराणां सुराणां च चरत्यन्तर्गतः सदा २१
सोऽयं पुरुषशार्दूलो मेघवर्णश्चतुर्भुजः ।
संश्रितः पाण्डवान् प्रेम्णा भवन्तश्चैनमाश्रिताः
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिश्चैव स्वर्गमार्गस्तथैव च ।
यत्रैष संस्थितस्तत्र देवो विष्णुस्त्रिविक्रमः २३
सेन्द्रा देवास्त्रयस्त्रिंशदेष नात्र विचारणा ।
आदिदेवो महादेवः सर्वभूतप्रतिश्रयः ॥ २४
अनादिनिधनोऽव्यक्तो महात्मा मधुसूदनः ।
अयं जातो महातेजाः सुराणामर्थसिद्धये २५
सुदुस्तरार्थतत्त्वस्य वक्ता कर्ता च माधवः ।
तव पार्थ जयः कृत्स्नस्तव कीर्तिस्तथाऽतुला
तवेयं पृथिवी देवी कृत्स्ना नारायणाऽऽश्रयात्
अयं नाथस्तवाचिन्त्यो यस्य नारायणो गतिः
स भवांस्त्वमुपाध्वर्यू रणाग्नौ हुतवान्नृपान् ।
कृष्णस्रुवेण महता युगान्ताग्निसमेन वै ॥ २८
दुर्योधनश्च शोच्योऽसौ सपुत्रभ्रातृबान्धवः ।
कृतवान्योऽबुधः क्रोधाद्धरिगाण्डीविविग्रहम्
दैतेया दानवेन्द्राश्च महाकाया महाबलाः ।
चक्राग्नौ क्षयमापन्ना दावाग्नौ शलभा इव ३०
प्रतियोद्धुं न शक्यो हि मानुषैरेष संयुगे ।
विहीनैः पुरुषव्याघ्र सत्त्वशक्तिबलादिभिः ३१
जयो योगी युगान्ताभः सव्यसाची रणाग्रगः
तेजसा हतवान् सर्वं सुयोधनबलं नृप ॥ ३२
यत्तु गोवृषभांकेन मुनिभ्यः समुदाहृतम् ।
पुराणं हिमवत्पृष्ठे तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३३
यावत्तस्य भवेत्पुष्टिस्तेजो दीप्तिः पराक्रमः ।
प्रभावः सन्नतिर्जन्म कृष्णे तत्त्रिगुणं विभो ॥
कः शक्नोत्यन्यथाकर्तुं तद्यदि स्यात्तथा शृणु ।
यत्र कृष्णो हि भगवांस्तत्र पुष्टिरनुत्तमा ॥ ३५
वयं त्विहाल्पमतयः परतन्त्राः सुविक्लवाः ।
ज्ञानपूर्वं प्रपन्नाः स्मो मृत्योः पन्थानमव्ययम्
भवांश्चाप्यार्जवपरः पूर्वं कृत्वा प्रतिश्रयम् ।
राजवृत्तं न लभते प्रतिज्ञापालने रतः ॥ ३७
अप्येवात्मवधं लोके राजंस्त्वं बहु मन्यसे ।
न हि प्रतिज्ञा या दत्ता तां प्रहातुमरिन्दम ३८
कालेनायं जनः सर्वो निहतो रणमूर्धनि ।
वयं च कालेन हताः कालो हि परमेश्वरः ३९
न हि कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हसि ।
कालो लोहितरक्ताक्षः कृष्णो दण्डी सनातनः
तस्मात् कुन्तीसुत ज्ञातीन्नेह शोचितुमर्हसि
व्यपेतमन्युर्नित्यं त्वं भव कौरवनन्दन ॥ ४१
माधवस्यास्य माहात्म्यं श्रुतं यत्कथितं मया
तदेव तावत्पर्याप्तं सज्जनस्य निदर्शनम् ॥ ४२
व्यासस्य वचनं श्रुत्वा नारदस्य च धीमतः ।
स्वयं चैव महाराज कृष्णस्यार्हतमस्य वै ४३

प्रभावश्चर्षिपूगस्य कथितः सुमहान् मया ।
महेश्वरस्य संवादं शैलपुत्र्याश्च भारत ॥ ४४
धारयिष्यति यश्चैनं महापुरुषसंभवम् ।
शृणुयात्कथयेद्वा यः स श्रेयो लभते परम् ४५
भवितारश्च तस्याथ सर्वे कामा यथेप्सिताः ।
प्रेत्य स्वर्गं च लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ॥
न्याय्यं श्रेयोऽभिकामेन प्रतिपत्तुं जनार्दनः ।
एष एवाक्षयो विप्रैः स्तुतो राजन् जनार्दनः
महेश्वरमुखोत्सृष्टा ये च धर्मगुणाः स्मृताः ।
ते त्वया मनसा धार्याः कुरुराज दिवानिशम्
एवं ते वर्तमानस्य सम्यग्दण्डधरस्य च ।
प्रजापालनदक्षस्य स्वर्गलोको भविष्यति ४९
धर्मेणापि सदा राजन् प्रजा रक्षितुमर्हसि ।
यस्तस्य विपुलो दण्डः सम्यग्धर्मः स कीर्त्यते
य एष कथितो राजन् मया सज्जनसंनिधौ ।
शङ्करस्योमया सार्धं संवादो धर्मसंहितः ५१
श्रुत्वा वा श्रोतुकामो वाप्यर्चयेद्वृषभध्वजम् ।
विशुद्धेनेह भावेन य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ५२
एष तस्यानवद्यस्य नारदस्य महात्मनः ।
संदेशो देवपूजार्थं तं तथा कुरु पाण्डव ५३
एतदत्यद्भुतं वृत्तं पुण्ये हि भवति प्रभो ।
वासुदेवस्य कौन्तेय स्थाणोश्चैव स्वभावजम्॥
दशवर्षसहस्राणि बदर्यामेष शाश्वतः ।
तपश्चचार विपुलं सह गाण्डीवधन्वना ५५
त्रियुगौ पुण्डरीकाक्षौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
विदितौ नारदादेतौ मम व्यासाच्च पार्थिव ॥
बाल एव महाबाहुश्चकार कदनं महत् ।
कंसस्य पुण्डरीकाक्षो ज्ञातित्राणार्थकारणात्
कर्मणामस्य कौन्तेय नान्तं संख्यातुमुत्सहे ।
शाश्वतस्य पुराणस्य पुरुषस्य युधिष्ठिर ॥ ५८
ध्रुवं श्रेयः परं तात भविष्यति तवोत्तमम् ।
यस्य ते पुरुषव्याघ्रः सखा चायं जनार्दनः ५९
दुर्योधनं तु शोचामि प्रेत्य लोकेऽपि दुर्मतिम्
यत्कृते पृथिवी सर्वा विनष्टा सहयद्विपा ६०
दुर्योधनापराधेन कर्णस्य शकुनेस्तथा ।
दुःशासनचतुर्थानां कुरवो निधनं गताः ६१

वैशम्पायन उवाच ।

एवं संभाषमाणे तु गाङ्गेये पुरुषर्षभे ।
तूष्णीं बभूव कौरव्यो मध्ये तेषां महात्मनाम्
तच्छ्रुत्वा विस्मयं जग्मुर्धृतराष्ट्रादयो नृपाः ।
संपूज्य मनसा कृष्णं सर्वे प्राञ्जलयोऽभवन् ६३
ऋषयश्चापि ते सर्वे नारदप्रमुखास्तदा ।
प्रतिगृह्याभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं प्रतिपूज्य च ६४
इत्येतदखिलं सर्वैः पाण्डवो भ्रातृभिः सह ।
श्रुतवान्सुमहाश्चर्यं पुण्यं भीष्मानुशासनम् ६५
युधिष्ठिरस्तु गाङ्गेयं विश्रान्तं भूरिदक्षिणम् ।
पुनरेव महाबुद्धिः पर्यपृच्छन्महीपतिः ॥ ६६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि महापुरुषप्रस्तावे
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

## १४९

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

१४९

श्रुत्वेति—विश्वं विष्णुरित्यतः प्राक्तनो ग्रन्थः स्पष्टार्थः । नामपदानामवयवार्थस्तु श्रीशङ्कराचार्यभगवत्पादीयभाष्यादेवावगन्तव्यः शूद्रः सुखमवाप्नुयादित्यनेन शूद्रस्याप्येतज्जपेऽधिकारोस्ति इति दर्शितं शेषं सुगमम् ॥ १ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ३
भीष्म उवाच।
जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥ ४
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च॥ ५
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्
ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम्॥ ७
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ८
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥ ९
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥ ११
तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् १२
यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः १४
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च१५
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः।
नारसिंहवपुः श्रीमान्केशवः पुरुषोत्तमः॥ १६
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः १७
स्वयंभूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः॥
अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम्॥ २०
ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः॥ २१
ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् २२
सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः२३
अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः २४
वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः समः।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः२५
रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः।
अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः२६
सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः २७
लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः॥ २८
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः२९
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः
वेद्यो वैद्यः सदा योगी वीरहा माधवो मधुः
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः
महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृत् ३२
महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदांपतिः
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः३४
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः=
संधाता संधिमान् स्थिरः
अजो दुर्मर्षणः शास्ता
विश्रुतात्मा सुरारिहा ३५
गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः
अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्
आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः।
अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः॥ ३८

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग् विश्वभुग्विभुः
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा
विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः
सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ४०
वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ४१
सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२
ओजस्तेजो द्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः
अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४
भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः
युगादिकृ× द्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित्॥४६
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ४७
अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८
स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरंदरः ॥ ४९
अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५०
पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ५१
अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिंजय ५२
विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ५३
उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ५४
व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः
परर्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५
रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः+
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ५६
वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ५७
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः
विस्तारः स्थावरः स्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम्
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः
अनिर्विण्णः स्थविष्ठो भूर्धर्मयूपो महामखः ।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६०
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥
सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥६२
स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥
धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ६४
गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता= कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥
सोमपोऽमृतपः सोमः
पुरुजित्पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसन्धो
दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥ ६७
जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः
अंभोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः
अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः
महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ।
महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१
वेधाः स्वाङ्गो जितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोच्युतः
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः
भगवान् भगहा नन्दी वनमाली हलायुधः ।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः
सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
दिवस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः

विश्वं बृणातीति विश्वधृगिति भाष्ये । × ३०० । + ४०० । = ५०० ।

त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक्
संन्यासकृच्छमः शांतो निष्ठा शांतिः परायण
शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ७६
अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः
श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः
श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८
स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो
नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ।
विजितात्मा विधेयात्मा
सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ७९
उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥
अर्चिष्मानर्चितः कुंभो विशुद्धात्मा विशोधनः
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ८१
कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः
कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ८३
ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥८४
महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिस्तोता रणप्रियः
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ८६
मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७
सद्गतिः सत्कृतिः×सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८
भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९
विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९०
एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ९१

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ९२
अमानी मानदो मान्यो
लोकस्वामी त्रिलोकधृत् ।
सुमेधा मेधजो धन्य
सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३
तेजो वृषो द्युतिधर सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥९४
चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५
समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ९६
शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७
उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥
सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ९९
कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पवनोऽनिलः ।
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः १००
सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥१
सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ २
अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः
भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ४
धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।
अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ५
सत्ववान् सात्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः ६
विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।
रविर्विरोचन सूर्यः सविता रविलोचनः ७
अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकदोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ८

-६००। ×७००। =८००।

सनात्सनातनतमः
कपिलः कपिरव्ययः. ।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति
स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः ॥ ९
अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ११
उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ॥
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः १२
अनन्तरूपोऽनन्तश्री-
र्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरस्रो गभीरात्मा
विदिशो व्यादिशो दिशः ॥ १३
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १४
आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः ।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः १५
प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥
भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ १७
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ १८
आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥
शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः
सर्वप्रहरणायुध ओं नम †इति ॥ १२०

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम्२१
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः
वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्
क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्या-
च्छूद्रः सुखमवाप्नुयात ॥ २३
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजां
भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ २५
यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥
न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ २७
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येदापन्न आपदः २८
दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः २९
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्१३०
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ३१
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ३३
द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ३४
ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ ३५
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ३६
सर्वागमानामाचारः प्रथमं ×परिकल्प्यते ।
+आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥
ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ ३८
योगो ज्ञानं तथा सांख्यं
विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञान-
मेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥ ३९
एको विष्णुर्महद्भूतं
पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीन् लोकान् व्याप्य भूतात्मा
भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥ १४०

* ९०० । † १००० । × प्रथम. इति पाठ. । +आचारप्रभवो धर्म इति पाठ ।

इमं स्तवं भगवतो
विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः
श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ १४१

विश्वेश्वरमजं देवं
जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं
न ते यान्ति पराभवम् ॥ १४२

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यामनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि विष्णुसहस्रनामकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

## १५०

युधिष्ठिर उवाच ।
पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
किं जप्यं जपतो नित्यं भवेद्धर्मफलं महत् ॥ १
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रवृत्ते वापि कर्मणि ।
दैवे वा श्राद्धकाले वा किं जप्यं कर्मसाधनम्
शान्तिकं पौष्टिकं रक्षा शत्रुघ्नं भयनाशनम् ।
जप्यं यद्ब्रह्म समितं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ३
भीष्म उवाच ।
व्यासप्रोक्तमिमं मन्त्रं शृणुष्वैकमना नृप ।
सावित्र्या विहितं दिव्यं सद्यः पापविमोचनम्
शृणु मन्त्रविधिं कृत्स्नं प्रोच्यमानं मयाऽनघ ।
यं श्रुत्वा पाण्डवश्रेष्ठ सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५
रात्रावहनि धर्मज्ञ जपन् पापैर्न लिप्यते ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥ ६
आयुष्मान् भवते चैव यं श्रुत्वा पार्थिवात्मज
पुरुषस्तु सुसिद्धार्थः प्रेत्य चेह च मोदते ॥ ७
सेवितं सततं राजन् पुरा राजर्षिसत्तमैः ।
क्षत्रधर्मपरैर्नित्यं सत्यव्रतपरायणैः ॥ ८
इदमाह्निकमव्यग्रं कुर्वद्भिर्नियतैः सदा ।
नृपैर्भरतशार्दूल प्राप्यते श्रीरनुत्तमा ॥ ९
नमो वसिष्ठाय महाव्रताय
पराशरं वेदनिधिं नमस्ये ।
नमोऽस्त्वनन्ताय महोरगाय
नमोऽस्तु सिद्धेभ्य इहाक्षयेभ्यः ॥ १०
नमोस्त्वृषिभ्यः परमं परेषां
देवेषु देवं *वरदं वराणाम् ।
सहस्रशीर्षाय नमः शिवाय
सहस्रनामाय जनार्दनाय ॥ ११
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ।
ऋतश्च पितृरूपश्च त्र्यम्बकश्च महेश्वरः ॥ १२
वृषाकपिश्च शम्भुश्च हवनोऽथेश्वरस्तथा ।
एकादशैते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १३
शतमेतत्समाम्नातं शतरुद्रे महात्मनाम् ।
अंशो भगश्च मित्रश्च वरुणश्च जलेश्वरः ॥ १४
तथा धातार्यमा चैव जयन्तो भास्करस्तथा ।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥
इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेया इति श्रुतिः
धरो ध्रुवश्च सोमश्च सावित्रोथानिलोऽनलः
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
नासत्यश्चापि दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ॥
मार्तण्डस्यात्मजावेतौ संज्ञानासाविनिर्गतौ
अतः परं प्रवक्ष्यामि लोकानां कर्मसाक्षिणः
अपि यज्ञस्य वेत्तारो दत्तस्य सुकृतस्य च ।
अदृश्याः सर्वभूतेषु पश्यन्ति त्रिदशेश्वराः १९

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १४९ ॥

१५०

**पितामहेति** ॥१॥ विहितं इष्टसिद्ध्यर्थं जप्तम् ॥८॥ आह्निकं अहरहः कर्तव्यम् ॥ ९ ॥ संज्ञाया अश्वारूपायाः नासात नासिकाया सकाशाद्विनिर्गतौ ॥ १८ ॥

नमस्ये इति शेष

शुभाशुभानि कर्माणि मृत्युः कालश्च सर्वशः
विश्वेदेवाः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तपोधनाः २०
मुनयश्चैव सिद्धाश्च तपोमोक्षपरायणाः।
शुचिस्मिताः कीर्तयता प्रयच्छन्ति शुभं नृणाम्
प्रजापतिकृतानेतान् लोकान् दिव्येन तेजसा
वसन्ति सर्वलोकेषु प्रयताः सर्वकर्मसु ॥ २२
प्राणानामीश्वरानेतान् कीर्तयन्प्रयतो नरः।
धर्मार्थकामैर्विपुलैर्युज्यते सह नित्यशः ॥ २३
लोकांश्च लभते पुण्यान्विश्वेश्वरकृताञ्छुभान्
एते देवास्त्रयस्त्रिंशत्सर्वभूतगणेश्वराः ॥ २४
नन्दीश्वरो महाकायो ग्रामणीर्वृषभध्वजः।
ईश्वराः सर्वलोकानां गणेश्वराविनायकाः ॥
सौम्या रौद्रा गणाश्चैव योगभूतगणास्तथा।
ज्योतींषि सरितो व्योम सुपर्णः पतगेश्वरः॥
पृथिव्या तपसा सिद्धाः स्थावराश्च चराश्च ह
हिमवान् गिरयः सर्वे चत्वारश्च महार्णवाः॥
भवस्यानुचराश्चैव हरतुल्यपराक्रमाः।
विष्णुर्देवोथ जिष्णुश्च स्कन्दश्चाम्बिकया सह
कीर्तयन्प्रयतः सर्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मानवानृषिसत्तमान् ॥
यवक्रीतश्च रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू।
औशिजश्चैव कक्षीवान् बलश्चाङ्गिरसः सुतः
ऋषिर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा।
ब्रह्मतेजोमयाः सर्वे कीर्तिता लोकभावनाः
लभन्ते हि शुभं सर्वे रुद्रानलवसुप्रभाः।
भुवि कृत्वा शुभं कर्म मोदन्ते दिवि दैवतैः ॥
महेन्द्रगुरवः सप्त प्राचीं वै दिशमाश्रिताः।
प्रयतः कीर्तयेदेतान् शक्रलोके महीयते ३३
उन्मुचुः प्रमुचुश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान्।
दृढव्यश्चोर्ध्वबाहुश्च तृणसोमाङ्गिरास्तथा ३४
मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथागस्त्यः प्रतापवान्।
धर्मराजर्त्विजः सप्त दक्षिणां दिशमाश्रिताः
दृढेयुश्च ऋतेयुश्च परिव्याधश्च कीर्तिमान्।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ३६
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा ऋषिः सारस्वतस्तथा।
वरुणस्यर्त्विजः सप्त पश्चिमां दिशमाश्रिताः॥
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः
ऋचीकतनयश्चोग्रो जमदग्निः प्रतापवान्।
धनेश्वरस्य गुरवः सप्तैते उत्तराश्रिताः ॥ ३९
अपरे मुनयः सप्त दिक्षु सर्वास्वधिष्ठिताः।
कीर्तिस्वस्तिकरा नृणां कीर्तिता लोकभावनाः
धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः ॥ ४१
रामो व्यासस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा च लोमशः
इत्येते मुनयो दिव्या एकैकः सप्त सप्तधा ४२
शान्तिस्वस्तिकरा लोके
दिशापालाः प्रकीर्तिताः।
यस्यां यस्यां दिशि ह्येते
तन्मुखः शरणं व्रजेत् ॥ ४३
स्रष्टारः सर्वभूतानां कीर्तिता लोकपावनाः।
संवर्तो मेरुसावर्णो मार्कण्डेयश्च धार्मिकः ४४
सांख्ययोगौ नारदश्च दुर्वासाश्च महानृषिः।
अत्यन्ततपसो दान्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।
अपरे रुद्रसङ्काशाः कीर्तिता ब्रह्मलौकिकाः।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो लभते धनम् ॥ ४६
तथा धर्मार्थकामेषु सिद्धिं च लभते नरः।
पृथुं वैन्यं नृपवरं पृथ्वी यस्याभवत्सुता ४७
प्रजापतिं सार्वभौमं कीर्तयेद्वसुधाधिपम्।
आदित्यवंशप्रभवं महेन्द्रसमविक्रमम् ॥ ४८
पुरूरवसमैलं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
बुधस्य दयितं पुत्रं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् ॥ ४९
त्रिलोकविश्रुतं वीरं भरतं च प्रकीर्तयेत्।
गवामयेन यज्ञेन येनेष्टं वै कृते युगे ॥ ५०
रन्तिदेवं महादेवं कीर्तयेत्परमद्युतिम्।
विश्वजित्तपसोपेतं लक्षण्यं लोकपूजितम् ५१
तथा श्वेतं च राजर्षिं कीर्तयेत्परमद्युतिम्।
सगरस्यात्मजा येन प्लाविता तारितास्तथा
हुताशनसमानेतान् महारूपान् महौजसः।
उग्रकायान्महासत्त्वान्कीर्तयेत्कीर्तिवर्धनान्
देवानृषिगणांश्चैव नृपांश्च जगतीश्वरान्।
सांख्यं योगं च परमं हव्यं कव्यं तथैव च ॥
कीर्तितं परमं ब्रह्म सर्वश्रुतिपरायणम्।
मङ्गल्यं सर्वभूतानां पवित्रं बहुकीर्तितम् ५५
व्याधिप्रशमनं श्रेष्ठं पौष्टिकं सर्वकर्मणाम्।
प्रयतः कीर्तयेच्चैतान् कल्यं सायं च भारत ॥
एते वै यान्ति वर्षन्ति
भान्ति वान्ति सृजन्ति च।
एते विनायकाः श्रेष्ठा
दक्षाः क्षान्ता जितेन्द्रियाः ॥ ५७

नराणामशुभं सर्वे व्यपोहन्ति प्रकीर्तिताः ।
साक्षिभूता महात्मानः पापस्य सुकृतस्य च
एतान्वै कल्यमुत्थाय कीर्तयन् शुभमश्नुते ।
नाग्निचौरभयं तस्य न मार्गप्रतिरोधनम् ५९
एतान् कीर्तयतां नित्यं दुःस्वप्नो नश्यते नृणाम्
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वस्तिमांश्च गृहान्व्रजेत्
दीक्षाकालेषु सर्वेषु यः पठेन्नियतो द्विजः ।
न्यायवानात्मनिरतः क्षान्तो दान्तोऽनसूयकः॥
रोगार्तो व्याधियुक्तो वा पठन् पापात्प्रमुच्यते
वास्तुमध्ये तु पठतः कुले स्वस्त्ययनं भवेत् ॥
क्षेत्रमध्ये तु पठतः सर्वं सस्यं प्ररोहति ।
गच्छतः क्षेममध्वानं ग्रामान्तरगतः पठन् ॥
आत्मनश्च सुतानां च दाराणां च धनस्य च
बीजानामोषधीनां च रक्षामेतां प्रयोजयेत्॥
एतान् सङ्ग्रामकाले तु पठतः क्षत्रियस्य तु ।
व्रजन्ति रिपवो नाशं क्षेमं च परिवर्तते ॥ ६५
एतान्दैवे च पित्र्ये च पठतः पुरुषस्य हि ।
भुञ्जते पितरः कव्यं हव्यं च त्रिदिवौकसः ॥
न व्याधिश्वापदभयं न द्विपान्न हि तस्करात्
कश्मलं लघुतां याति पाप्मना च प्रमुच्यते
यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेश्मनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन्
न च राजभयं तेषां न पिशाचान्न राक्षसात्।
नाग्न्यम्बुपवनव्यालाद्भयं तस्योपजायते ॥६९
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः ।
करोति सततं शान्तिं सावित्रीमुत्तमां पठन्॥
नाग्निर्दहति काष्ठानि सावित्री यत्र पठ्यते ।
न तत्र बालो म्रियते न च तिष्ठन्ति पन्नगाः ॥
न तेषां विद्यते दुःखं गच्छन्ति परमां गतिम्
ये शृण्वन्ति महद्ब्रह्म सावित्रीगुणकीर्तनम् ॥
गवां मध्ये तु पठतो गावोऽस्य बहुवत्सलाः
प्रस्थाने वा प्रवासे वा सर्वावस्थां गतः पठेत्
जपतां जुह्वतां चैव नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।
ऋषीणां परमं जप्यं गुह्यमेतन्नराधिप ॥ ७४
याथातथ्येन सिद्धस्य इतिहासं पुरातनम् ।
पराशरमतं दिव्यं शक्राय कथितं पुरा ॥ ७५
तदेतत्ते समाख्यातं तथ्यं ब्रह्म सनातनम् ।
हृदयं सर्वभूतानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ७६
सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा
पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं प्राणिनां गतिं
अभ्यासे नित्यं देवानां सप्तर्षीणां ध्रुवस्य च
मोक्षणं सर्वकृच्छ्राणां मोचयत्यशुभात्सदा ॥
वृद्धैः काश्यपगौतमप्रभृतिभि-
भृग्वङ्गिरोऽत्र्यादिभिः
शुक्रागस्त्यबृहस्पतिप्रभृतिभि-
र्ब्रह्मर्षिभिः सेवितम् ।
भारद्वाजमतं ऋचीकतनयैः
प्राप्तं वसिष्ठात् पुनः
सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभिः
कृत्स्ना जिता दानवाः ॥ ७९
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
दिव्यां च भारतकथां कथयेच्च नित्यं
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव
धर्मो विवर्धति भृगोः परिकीर्तनेन
वीर्यं विवर्धति वसिष्ठनमोनतेन ।
संग्रामजिद्भवति चैव रघुं नमस्यन्
स्यादश्विनौ च परिकीर्तयतो न रोगः
एषा ते कथिता राजन् सावित्री ब्रह्म शाश्वती
विवक्षुरसि यच्चान्यत्तत्ते वक्ष्यामि भारत ८२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि सावित्रीव्रतोपाख्याने
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

## १५१

युधिष्ठिर उवाच ।

के पूज्याः के नमस्कार्याः कथं वर्तेत केषु च । किमाचारः कीदृशेषु पितामह न रिष्यते ॥ १

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१

के इति ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणानां परिभवः सादयेदपि देवताः ।
ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य युधिष्ठिर न रिष्यते
ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेथास्तेषु पुत्रवत् ।
ते हि लोकानिमान् सर्वान् धारयंति मनीषिणः
ब्राह्मणाः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः ।
धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ॥४
रमणीयाश्च भूतानां निधानं च धृतव्रताः ।
प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः
तपो येषां धनं नित्यं वाक्चैव विपुलं बलम् ।
प्रभवश्चैव धर्माणां धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ६
धर्मकामाः स्थिता धर्मे सुकृतैर्धर्मसेतवः ।
यान्समाश्रित्य जीवंति प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः
पन्थानः सर्वनेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ।
पितृपैतामहीं गुर्वीमुद्वहन्ति धुरं सदा ॥
धुरि ये नावसीदन्ति विषये सद्गवा इव ।
पितृदेवातिथिमुखा हव्यकव्याग्रभोजिनः ॥९
भोजनादेव लोकांस्त्रींस्त्रायन्ते महतो भयात् ।
दीपः सर्वस्य लोकस्य चक्षुश्चक्षुष्मतामपि १०
सर्वशिक्षा श्रुतिधना निपुणा मोक्षदर्शिनः ।
गतिज्ञाः सर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तकाः
आदिमध्यावसानानां ज्ञातारश्छिन्नसंशयाः ।
परावरविशेषज्ञा गन्तारः परमां गतिम् ॥ १२
विमुक्ता धूतपाप्मानो निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः
मानार्हा मानिता नित्यं ज्ञानविद्भिर्महात्मभिः
चन्दने मलपङ्के च भोजनेऽभोजने समाः ।
समं येषां दुकूलं च तथा क्षौमाजिनानि च ॥
तिष्ठेयुरप्यभुञ्जाना बहूनि दिवसान्यपि ।
शोषयेयुश्च गात्राणि स्वाध्यायैः संयतेन्द्रियाः
अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् ।
लोकानन्यान् सृजेयुस्ते लोकपालांश्च कोपिताः
अपेयः सागरो येषामपि शापान्महात्मनाम्
येषां कोपाग्निरद्यापि दण्डकेनोपशाम्यति ॥
देवानामपि ये देवाः कारणं कारणस्य च ।
प्रमाणस्य प्रमाणं च कस्तानभिभवेद्बुधः ॥ १८
येषां वृद्धश्च बालश्च सर्वः संमानमर्हति ।
तपोविद्याविशेषात्तु मानयन्ति परस्परम् १९
अविद्वान् ब्राह्मणो देवः पात्रं वै पावनं महत् ।
विद्वान् भूयस्तरो देवः पूर्णसागरसन्निभः २०
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ २१
श्मशाने ह्यपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हविर्यज्ञे च विधिवद्गृह एवातिशोभते ॥२२
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणो मान्यो दैवतं विद्धि तत्परम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्राह्मणप्रशंसाया-
मेकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

## १५२

युधिष्ठिर उवाच ।

कां तु ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा जनाधिप ।
कं वा कर्मोदयं मत्वा तानर्चसि महामते ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पवनस्य च संवादमर्जुनस्य च भारत ॥ २
सहस्रभुजभृच्छ्रीमान्कार्तवीर्योऽभवत्प्रभुः ।
अस्य लोकस्य सर्वस्य माहिष्मत्यां महाबलः
स तु रत्नाकरवतीं सद्वीपां सागराम्बराम् ।
शशास पृथिवीं सर्वां हैहयः सत्यविक्रमः॥४

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारत-
भावदीपे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

१५२

कां त्विति व्युष्टिं समृद्धिं फलं वा 'व्युष्टि फले समृद्धौ च' ( ३।३।३८ ) इत्यमर ॥ १ ॥

स्वविसं तेन दत्तं तु दत्तात्रेयाय कारणे ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य विनयं श्रुतमेव च ॥ ५
आराधयामास च तं कृतवीर्यात्मजो मुनिम्
न्यमन्त्रयत सन्तुष्टो द्विजश्चैनं वरैस्त्रिभिः ॥ ६
स वरैश्छन्दितस्तेन नृपो वचनमब्रवीत् ।
सहस्रबाहुर्भूयां वै चमूमध्ये गृहेऽन्यथा ॥ ७
मम बाहुसहस्रं तु पश्यतां सैनिका रणे ।
विक्रमेण महीं कृत्स्नां जयेयं संशितव्रत ॥ ८
तां च धर्मेण संप्राप्य पालयेयमतन्द्रितः ।
चतुर्थं तु वरं याचे त्वामहं द्विजसत्तम ॥ ९
तं ममानुग्रहकृते दातुमर्हस्यनिन्दित ।
अनुशासन्तु मां सन्तो मिथ्योद्वृत्तं त्वदाश्रयम्
इत्युक्तः स द्विजः प्राह तथास्त्विति नराधिपम्
एवं समभवंस्तस्य वरास्ते दीप्ततेजसः ॥ ११
ततः स रथमास्थाय ज्वलनार्कसमद्युतिम् ।
अब्रवीद्वीर्यसंमोहात्को वास्ति सदृशो मम ॥
धैर्यैर्वीर्यैर्यशःशौर्यैर्विक्रमेणौजसापि वा ।
तद्वाक्यान्ते चान्तरिक्षे वागुवाचाशरीरिणी॥
न त्वं मूढ विजानीषे ब्राह्मणं क्षत्रियाद्वरम् ।
सहितो ब्राह्मणेनेह क्षत्रियः शास्ति वै प्रजाः

अर्जुन उवाच ।

कुर्यो भूतानि तुष्टोऽहं क्रुद्धो नाशं तथाऽनये
कर्मणा मनसा वाचा न मत्तोस्ति वरो द्विजः
पूर्वो ब्रह्मोत्तरो वादो द्वितीयः क्षत्रियोत्तरः ।
त्वयोक्तौ हेतुयुक्तौ तौ विशेषस्तत्र दृश्यते १६
ब्राह्मणाः संश्रिताः क्षत्रं
न क्षत्रं ब्राह्मणाश्रितम्
श्रिता ब्रह्मोपधा विप्राः
खादन्ति क्षत्रियान् भुवि ॥ १७
क्षत्रियेष्वाश्रितो धर्मः प्रजाना परिपालनम् ।
क्षत्राद्वृत्तिर्ब्राह्मणानां तैः कथं ब्राह्मणो वरः १८
सर्वभूतप्रधानांस्तान्भैक्षवृत्तीनहं सदा ।
आत्मसंभावितान्विप्रान्स्थापयाम्यात्मनो वशे
कथितं त्वनयाऽसत्यं गायत्र्या कन्यया दिवि
विजेष्याम्यवशान्सर्वान्ब्राह्मणांश्चर्मवाससः ॥
न च मां च्यावयेद्राष्ट्रा-
त्त्रिषु लोकेषु कश्चन ।
देवो वा मानुषो वाऽपि
तस्माज्ज्येष्ठो द्विजादहम् ॥ २१
अद्य ब्रह्मोत्तरं लोक करिष्ये क्षत्रियोत्तरम् ।
न हि मे संयुगे कश्चित्सोढुमुत्सहते बलम्२२
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा वित्रस्ताऽभून्निशाचरी
अथैनमन्तरिक्षस्थस्ततो वायुरभाषत ॥ २३
त्यजैनं कलुषं भावं ब्राह्मणेभ्यो नमस्कुरु ।
एतेषां कुर्वतः पापं राष्ट्रक्षोभो भविष्यति २४
अथवा त्वां महीपाल शमयिष्यन्ति वै द्विजाः
निरसिष्यन्ति ते राष्ट्राद्धतोत्साहा महाबलाः
तं राजा कस्त्वमित्याह ततस्तं प्राह मारुतः ।
वायुर्वै देवदूतोस्मि हितं त्वां प्रब्रवीम्यहम्२६

अर्जुन उवाच ।

अहो त्वयाऽद्य विप्रेषु भक्तिरागः प्रदर्शितः
यादृशं पृथिवीभूतं तादृशं ब्रूहि मे द्विजम्॥२७
वायोर्वा सदृशं किंचिद्ब्रूहि त्वं ब्राह्मणोत्तमम्
अपां वै सदृशं वह्नेः सूर्यस्य नभसोपि वा २८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पवनार्जुनसंवादे ब्राह्मणमाहात्म्ये द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

---

पूर्वो वादो ब्रह्मोत्तर ब्राह्मणाधिक्यवचनं पूर्वपक्षः क्षत्रियाधिक्य सिद्धान्त इत्यर्थ । हेतुयुक्तौ प्रजापालनेन हेतुना युक्तौ सहितौ तौ ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥ १६ ॥ ब्रह्म वेदो यज्ञो वा अध्यापनयजनार्थं एव उपधा छलं येषा ते तथा क्षत्रियान् खादन्ति उपजीवन्ति ॥ १७ ॥ गायत्र्या सरस्वत्या असत्यं कथितं चर्मवासस अजिनवस्त्रान् ॥२०॥ ब्रह्मोत्तर सन्तम् ॥२२॥ निशाचरी अन्तर्हिता सरस्वती । यद्वा निशाचरी राक्षस्यपि वित्रस्ताऽभूत् किमुतान्ये आस्तिका इति भाव ॥ २३ ॥ पृथिवीभूतं पृथिव्यात्मक भूतम् ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय. ॥ १५२ ॥

## १५३

वायुरुवाच ।
शृणु मूढ गुणान्कांश्चिद्ब्राह्मणानां महात्मनाम्
ये त्वया कीर्तिता राजस्तेभ्योऽथ ब्राह्मणो वरः
त्यक्त्वा महीत्वं भूमिस्तु स्पर्धयाङ्गनृपस्य ह
नाशं जगाम तां विप्रो व्यस्तम्भयत कश्यपः २
अजेया ब्राह्मणा राजन्दिवि चेह च नित्यदा।
अपिबत्तेजसा ह्यापः स्वयमेवाङ्गिराः पुरा ॥ ३
स ताः पिबन्क्षीरमिव नातृप्यत महामनाः।
अपूरयन्महौघेन महीं सर्वां च पार्थिव ॥ ४
तस्मिन्नहं च क्रुद्धे वै जगत्यक्त्वा ततो गतः
व्यतिष्ठमग्निहोत्रे च चिरमङ्गिरसो भयात् ॥ ५
अथ शप्तश्च भगवान् गौतमेन पुरन्दरः ।
अहल्यां कामयानो वै धर्मार्थं च न हिंसितः
तथा समुद्रो नृपते पूर्णो मृष्टस्य वारिणः ।
ब्राह्मणैरभिशप्तश्च बभूव लवणोदकः ॥ ७
सुवर्णवर्णो निर्धूमः सङ्गतोर्ध्वशिखः कविः ।
क्रुद्धेनाङ्गिरसा शप्तो गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ ८
मरुतश्चूर्णितान्पश्य ये ह्यासन्त महोदधिम् ।
सुवर्णधारिणा नित्यमवशप्ता द्विजातिना ॥९
समो न त्वं द्विजातिभ्यः
श्रेयो विद्धि नराधिप ।
गर्भस्थान् ब्राह्मणान् सम्यङ्
नमस्यति किल प्रभुः ॥ १०
दण्डकानां महद्राज्यं ब्राह्मणेन विनाशितम् ।
तालजंघं महाक्षत्रमौर्वेणैकेन नाशितम् ॥ ११
त्वया च विपुलं राज्यं बलं धर्मं श्रुतं तथा ।
दत्तात्रेयप्रसादेन प्राप्तं परमदुर्लभम् ॥ १२
अग्निं त्वं यजसे नित्यं
कस्माद्ब्राह्मणमर्जुन ।
स हि सर्वस्य लोकस्य
हव्यवाड् किं न वेत्सि तम् ॥ १३
अथवा ब्राह्मणश्रेष्ठमनुभूतानुपालकम् ।
कर्तारं जीवलोकस्य कस्माज्जानन्विमुह्यसे १४
तथा प्रजापतिर्ब्रह्मा अव्यक्तः प्रभुरव्ययः ।
येनेदं निखिलं विश्वं जनितं स्थावरं चरम्१५
अण्डजातं तु ब्रह्माणं केचिदिच्छन्त्यपण्डिताः
अंडाद्भिन्नाद्बभुः शैला दिशोऽम्भः पृथिवी दिवम्
द्रष्टव्यं नैतदेवं हि कथं जायेदजो हि सः ।
स्मृतमाकाशमण्डं तु तस्माज्जातः पितामहः
तिष्ठेत्कथमिति ब्रूहि न किञ्चिद्धि तदा भवेत्
अहङ्कार इति प्रोक्तः सर्वतेजोगतः प्रभुः १८
नास्त्यण्डमस्ति तु ब्रह्मा स राजा लोकभावनः
इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पवनार्जुनसंवादे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

---

१५३

**शृण्विति** ॥ १ ॥ अहं वायु ॥ ५ ॥ कवि अग्नि ॥ ८ ॥ महत सगरपुत्रान् आसन्त उपासन्त सुवर्णधारिणा शोभनो ब्राह्मणवर्णस्तस्य धारिणा वर्त्रा द्विजातिना कपिलेन ॥९॥ अग्निं ब्राह्मणमित्यन्वय' ॥१३॥ अनुभूतं प्रतिभूतं अनुपालकं पोषकम्॥१४॥ ननु ब्रह्माडे जातत्वात्कथमडमजनयदित्यत्राह-**अण्डेति** केचिदिति तच्चेत्यर्थ ॥ १६॥ दूषयति-द्रष्टव्यमिति अजत्वादेव ब्रह्मा न अण्डजात अण्डजत्ववचनं त्वस्य प्रकारान्तरेणेत्याह-**स्मृतमिति** आकाश अव्याकृतम् ॥ १७ ॥ आकाशज पितामह किमाश्रयेण तिष्ठेदिति चेत् कश्चिद्ब्रूयात्त प्रति ब्रूहि तदा न किंचिद्भवेदिति। पितामहस्य निरधिष्ठानत्वे सति तज्जमिदं सर्वं शून्यमेव स्यान्न किंचिद्भूयादित्यर्थ । ननु कोय प्रजापतिपदेनोच्यते अत आह-**अहंकार इति प्रोक्त इति** प्रभुः व्यापकः यत सर्वतेजोगत जलचद्रन्यायेन कृत्स्नं चैतन्यज्योति प्राप्तः द्वितीयाश्रितेति समास । अयं भाव -सुषुप्तिसदृशादव्याकृताकाशादुत्थितोऽहंकाररूप उपाधिस्तेन साक्षी सर्वात्मनाऽवच्छिन्न. सोऽयमहंकारविशिष्टो बाह्यं व्योमादिकं कल्पितवान्। एवं शास्त्रानुभवाभ्यां जानाति स ब्राह्मणो जगत्कर्ता तेन तव साम्यं समुद्रेण तरङ्गस्येव कदाचिदपि न संभवतीति ॥ १८ ॥ अत एव अण्डं नास्ति रज्जुरगवत्कल्पनामात्रत्वात्। कल्पकस्तु स ब्रह्मा ब्राह्मणोऽस्तीत्युक्त स राजाऽर्जुन इति वायुनोक्त- सस्तूष्णीमभूत्ततो वायुरब्रवीद्वक्ष्यमाणमर्थमिति शेष ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १५३ ॥

## १५४

वायुरुवाच ।
इमां भूमिं द्विजातिभ्यो दित्सुर्वै दक्षिणां पुरा
अङ्गो नाम नृपो राजंस्ततश्चिन्तां मही ययौ १
धारिणीं सर्वभूतानामयं प्राप्य वरो नृपः ।
कथमिच्छति मां दातुं द्विजेभ्यो ब्रह्मणः सुताम्
साऽहं त्यक्त्वा गमिष्यामि भूमित्वं ब्रह्मणः पदं
अयं सराष्ट्रो नृपतिर्माभूदिति ततोऽगमत् ३
ततस्तां कश्यपो दृष्ट्वा व्रजन्तीं पृथिवीं तदा ।
प्रविवेश महीं सद्यो मुक्त्वाऽऽत्मानं समाहितः
रुद्धा सा सर्वतो जज्ञे तृणौषधिसमन्विता ।
धर्मोत्तरा नष्टभया भूमिरासीत्ततो नृप ॥ ५
एवं वर्षसहस्राणि दिव्यानि विपुलव्रतः ।
त्रिंशतः कश्यपो राजन् भूमिरासीदतन्द्रितः ६
अथागम्य महाराज नमस्कृत्य च कश्यपम् ।
पृथिवी काश्यपी जज्ञे सुता तस्य महात्मनः ७
एष राजन्नीदृशो वै ब्राह्मणः कश्यपोऽभवत् ।
अन्यं प्रब्रूहि वा त्वं च कश्यपात्क्षत्रियं वरम्
तूष्णीं बभूव नृपतिः पवनस्त्वब्रवीत्पुनः ।
शृणु राजन्नुतथ्यस्य जातस्याङ्गिरसे कुले ॥ ९
भद्रा सोमस्य दुहिता रूपेण परमा मता ।
तस्यास्तुल्यं पतिं सोम उतथ्यं समपश्यत १०
सा च तीव्रं तपस्तेपे महाभागा यशस्विनी ।
उतथ्यार्थं तु चार्वङ्गी परं नियममास्थिता ११
तत आहूय सोतथ्यं ददावत्रिर्यशस्विनीम् ।
भार्यार्थे स च जग्राह विधिवद्भूरिदक्षिणः
तां त्वकामयत श्रीमान्वरुणः पूर्वमेव ह ।
स चागम्य वनप्रस्थं यमुनायां जहार ताम्
जलेश्वरस्तु हृत्वा तामनयत्स्वं पुरं प्रति ।
परमाद्भुतसंकाशं षट्सहस्रशतह्रदम् ॥ १४
न हि रम्यतरं किंचित्तस्मादन्यत्पुरोत्तमम् ।
प्रासादैरप्सरोभिश्च दिव्यैः कामैश्च शोभितम्
तत्र देवस्तया सार्धं रेमे राजन् जलेश्वरः ।
अथाख्यातमुतथ्याय ततः पत्न्यवमर्दनम् १६
तच्छ्रुत्वा नारदात्सर्वमुतथ्यो नारदं तदा ।
प्रोवाच गच्छ ब्रूहि त्वं वरुणं परुषं वचः १७
मद्वाक्यान्मुञ्च मे भार्यां कस्मात्तां हृतवानसि
लोकपालोऽसि लोकानां न लोकस्य विलोपकः
सोमेन दत्ता भार्या मे त्वया चापहृताऽद्य वै।
इत्युक्तो वचनात्तस्य नारदेन जलेश्वरः १९
मुञ्च भार्यामुतथ्यस्य कस्मात्त्वं हृतवानसि ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सोऽथ तं वरुणोऽब्रवीत्
ममैषा सुप्रिया भार्या नैनामुत्स्रष्टुमुत्सहे ।
इत्युक्तो वरुणेनाथ नारदः प्राप्य तं मुनिम् ।
उतथ्यमब्रवीद्वाक्यं नातिहृष्टमना इव ॥ २१
गले गृहीत्वा क्षिप्तोऽस्मि वरुणेन महामुने ।
न प्रयच्छति ते भार्यां यत्ते कार्यं कुरुष्व तत्
नारदस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धः प्राज्वलदङ्गिराः
अपिबत्तेजसा वारि विष्टभ्य सुमहातपाः २३
पीयमाने तु सर्वस्मिंस्तोयेऽपि सलिलेश्वरः ।
सुहृद्भिः क्षिप्यमाणोऽपि नैवामुञ्चत तां तदा २४
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्भूमिमुतथ्यो ब्राह्मणोत्तमः ।
दर्शयस्व स्थलं भद्रे षट्सहस्रशतह्रदम् २५
ततस्तदीरिणं जातं समुद्रस्यावसर्पतः
तस्माद्देशान्नदीं चैव प्रोवाचासौ द्विजोत्तमः
अदृश्या गच्छ भीरु त्वं सरस्वति मरुन्प्रति ।
अपुण्य एष भवतु देशस्त्यक्तस्त्वया शुभे २७
तस्मिन् संशोषिते देशे भद्रामादाय वारिपः
अददाच्छरणं गत्वा भार्यामाङ्गिरसाय वै २८
प्रतिगृह्य तु तां भार्यामुतथ्यः सुमनाऽभवत् ।
मुमोच च जगद्दुःखाद्वरुणं चैव हैहय ॥ २९
ततः स लब्ध्वा तां भार्यां वरुणं प्राह धर्मवित्
उतथ्यः सुमहातेजा यत्तच्छृणु नराधिप ३०
मयैषा तपसा प्राप्ता क्रोशतस्ते जलाधिप ।
इत्युक्त्वा तामुपादाय स्वमेव भवनं ययौ ॥
एष राजन्नीदृशो वै उतथ्यो ब्राह्मणर्षभः ।
प्रब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमुतथ्यात्क्षत्रियं वरम् ३२

---

१५४

**इमामिति** ॥१॥ भूमित्वं त्यक्त्वा ब्रह्मणः पदं गमिष्यामीति सबन्ध ॥३॥ आत्मानं देहं त्यक्त्वा निर्जीवं महादेहं प्रविश्य सजीवं योगबलेन कृतवान् ॥ ४ ॥ भूमिस्तु धर्मोत्तरा स्वधर्मबलेन ब्रह्मलोकं गत्वा नष्टमदाऽऽसीदित्यर्थ ॥ ५ ॥ कश्यपो भूमिभूत्वाऽऽसीदित्यन्वय ॥८॥ सोऽत्रिः सोमपिता उतथ्यमाहूय तां तस्मै ददौ सोतथ्यमिति सन्धिरार्षः ॥ १२ ॥ देवो वरुण तया भद्रया ॥१६॥ जगद्दुःखाद्वरुणं च दुःखान्मुमोच मोचयामास ॥ २९ ॥

ऊषरप्रदेशः ।

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पवनार्जुनसंवादो नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

## १५५

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स नृपस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत्
शृणु राजन्नगस्त्यस्य माहात्म्यं ब्राह्मणस्य ह
असुरैर्निर्जिता देवा निरुत्साहाश्च ते कृताः ।
यज्ञाश्चैषां हृताः सर्वे पितॄणां च स्वधास्तथा
कर्मेज्या मानवानां च दानवैर्हैहयर्षभ ।
भ्रष्टैश्वर्यास्ततो देवाश्चेरुः पृथ्वीमिति श्रुतिः ३
ततः कदाचित्ते राजन्दीप्तमादित्यवर्चसम् ।
ददृशुस्तेजसा युक्तमगस्त्यं विपुलव्रतम् ॥ ४
अभिवाद्य तु तं देवाः पृष्ट्वा कुशलमेव च ।
इदमूचुर्महात्मानं वाक्यं काले जनाधिप ५
दानवैर्युधि भग्नाः स्म तथैश्वर्याच्च भ्रंशिताः ।
तदस्मान्नो भयात्तीव्रात्त्राहि त्वं मुनिपुङ्गव ॥६
इत्युक्तः स तदा देवैरगस्त्यः कुपितोऽभवत् ।
प्रजज्वाल च तेजस्वी कालाग्निरिव संक्षये ॥
तेन दीप्तांशुजालेन निर्दग्धा दानवास्तदा ।
अन्तरिक्षान्महाराज निपेतुस्ते सहस्रशः ८
दह्यमानास्तु ते दैत्यास्तस्यागस्त्यस्य तेजसा
उभौ लोकौ परित्यज्य गताः काष्ठां तु दक्षिणाम्
बलिस्तु यजते यज्ञमश्वमेधं महीं गतः ।
येऽन्येऽधस्था महीस्थाश्च तेन दग्धा महासुराः
ततो लोकाः पुनः प्राप्ताः सुरैः शान्तभयैर्नृप।
अथैनमब्रुवन् देवा भूमिष्ठानसुरान् जहि ११
इत्युक्तः प्राह देवान्स न शक्नोस्मि महीगतान्
दग्धुं तपो हि क्षीयेन्मे न शक्यामीति पार्थिव
एवं दग्धा भगवता दानवाः स्वेन तेजसा ।
अगस्त्येन तदा राजंस्तपसा भावितात्मना
ईदृशश्चाप्यगस्त्यो हि कथितस्ते मयाऽनघ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमगस्त्यात्क्षत्रियं वरम् ॥

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत्
शृणु राजन् वसिष्ठस्य मुख्यं कर्म यशस्विनः
आदित्याः सत्रमासन्त सरो वै मानसं प्रति
वसिष्ठं मनसा गत्वा ज्ञात्वा तत्तस्य गौरवम्
यजमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सर्वान्दीक्षानुकर्शितान्
हन्तुमैच्छन्त शैलाभाः खलिनो नाम दानवाः
अदूरात्तु ततस्तेषां ब्रह्मदत्तवरं सरः ।
हता हता वै तत्रैते जीवन्त्याप्लुत्य दानवाः
ते प्रगृह्य महाघोरान् पर्वतान् परिघान् द्रुमान्
विक्षोभयन्तः सलिलमुत्थितं शतयोजनम् १९
अभ्यद्रवन्त देवांस्ते सहस्राणि दशैव हि ।
ततस्तैरर्दिता देवाः शरणं वासवं ययुः ॥ २०
स च तैर्व्यथितः शक्रो वसिष्ठं शरणं ययौ ।
ततोऽभयं ददौ तेभ्यो वसिष्ठो भगवानृषिः ॥
तदा तान्दुःखितान्ज्ञात्वा आनृशंस्यपरो मुनिः
अयत्नेनादहत्सर्वान्खलिनः स्वेन तेजसा २२
कैलासं प्रस्थितां चैव नदीं गङ्गां महातपाः ।
आनयत्तत्सरो दिव्यं तया भिन्नं च तत्सरः ॥
सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत्
हताश्च खलिनो यत्र स देशः खलिनोऽभवत्
एवं सेन्द्रा वसिष्ठेन रक्षितास्त्रिदिवौकसः ।
ब्रह्मदत्तवराश्चैव हता दैत्या महात्मना ॥ २५
एतत्कर्म वसिष्ठस्य कथितं हि मयाऽनघ ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं वसिष्ठात्क्षत्रियं वरम् २६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पवनार्जुनसंवादे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

१५५

इत्युक्त इति ॥१॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

## १५६

भीष्म उवाच ।
इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्तमब्रवीत् ।
शृणु मे हैहयश्रेष्ठ कर्मात्रेः सुमहात्मनः ॥ १
घोरे तमस्ययुध्यन्त सहिता देवदानवाः ।
अविध्यत शरैस्तत्र स्वर्भानुः सोमभास्करौ ।
अथ ते तमसा ग्रस्ता निहन्यन्ते स्म दानवैः ॥
देवा नृपतिशार्दूल सहैव बलिभिस्तदा ॥ ३
असुरैर्वध्यमानास्ते क्षीणप्राणा दिवौकसः ।
अपश्यन्त तपस्यन्तमात्रिं विप्रं तपोधनम् ४
अथैनमब्रुवन्देवाः शान्तक्रोधं जितेन्द्रियम् ।
असुरैरिषुभिर्विद्धौ चन्द्रादित्याविमावुभौ ५
वयं वध्यामहे चापि शत्रुभिस्तमसावृते ।
नाधिगच्छामि शान्तिं च भया त्रायस्व नः प्रभो
अत्रिरुवाच ।
कथं रक्षामि भवतस्तेऽब्रुवंश्चन्द्रमा भव ।
तिमिरघ्नश्च सविता दस्युहन्ता च नो भव ७
एवमुक्तस्तदाऽत्रिर्वै तमोनुदभवच्छशी ।
अपश्यत्सौम्यभावाच्च सोमवत्प्रियदर्शनः ॥ ८
दृष्ट्वा नातिप्रभं सोमं तथा सूर्यं च पार्थिव ।
प्रकाशमकरोदत्रिस्तपसा स्वेन संयुगे ॥ ९
जगद्वितिमिरं चापि प्रदीप्तमकरोत्तदा ॥ १०
व्यजयच्छत्रुसंघांश्च देवानां स्वेन तेजसा ।
अत्रिणा दह्यमानांस्तान्दृष्ट्वा देवा महासुरान् ॥
पराक्रमैस्तेऽपि तदा व्यघ्नन्नत्रिसुरक्षिताः ।
उद्भासितश्च सविता देवास्त्राता हतासुराः ॥
अत्रिणा त्वथ सामर्थ्यं कृतमुत्तमतेजसा ।
द्विजेनाग्निद्वितीयेन जपता चर्मवाससा ॥ १३
फलभक्षेण राजर्षे पश्य कर्मात्रिणा कृतम् ।
तस्यापि विस्तरेणोक्तं कर्मात्रेः सुमहात्मनः ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमत्रितः क्षत्रियं वरम् ॥
इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन् महत्कर्म च्यवनस्य महात्मनः॥१५
अश्विनोः प्रतिसंश्रुत्य च्यवनः पाकशासनम् ।
प्रोवाच सहितो देवैः सोमपावश्विनौ कुरु ॥
इन्द्र उवाच ।
अस्माभिर्निन्दितावेतौ भवेतां सोमपौ कथम्
देवैर्न संमितावेतौ तस्मान्मैवं वदस्व नः ॥ १७
अश्विभ्यां सह नेच्छामः सोमं पातुं महाव्रत ।
यदन्यद्ब्रूष्यसे विप्र तत्करिष्याम ते वचः १८
च्यवन उवाच ।
पिबेतामश्विनौ सोमं भवद्भिः सहिताविमौ
उभावेतावपि सुरौ सूर्यपुत्रौ सुरेश्वर ॥ १९
क्रियतां मद्वचो देवा यथा वै समुदाहृतम् ।
एतद्वः कुर्वतां श्रेयो भवेन्नैतदकुर्वताम् ॥ २०
इन्द्र उवाच ।
अश्विभ्यां सह सोमं वै
न पास्यामि द्विजोत्तम ।
पिबन्त्वन्ये यथाकामं
नाहं पातुमिहोत्सहे ॥ २१
च्यवन उवाच ।
न चेत्करिष्यसि वचो मयोक्तं बलसूदन ।
मया प्रमथितः सद्यः सोमं पास्यसि वै मखे ॥
वायुरुवाच ।
ततः कर्म समारब्धं हिताय सहसाश्विनोः ।
च्यवनेन ततो मन्त्रैरभिभूताः सुराऽभवन् २३
तत्तु कर्म समारब्धं दृष्ट्वेन्द्रः क्रोधमूर्च्छितः ।
उद्यम्य विपुलं शैलं च्यवनं समुपाद्रवत् ॥ २४
तथा वज्रेण भगवानमर्षाकुललोचनः ।
तमापतन्तं दृष्ट्वैव च्यवनस्तपसान्वितः ॥ २५
अद्भिः सिक्त्वाऽस्तंभयत्तं सवज्रं सहपर्वतं
अथेन्द्रस्य महाघोरं सोऽसृजच्छत्रुमेव हि २६
मदं नामाहुतिमयं व्यादितास्यं महामुनिः ।
तस्य दन्तसहस्रं तु बभूव शतयोजनम् ॥ २७
द्वियोजनशतास्तस्य दंष्ट्राः परमदारुणाः ।
हनुस्तस्याभवद्भूमावास्यं चास्यास्पृशद्दिवम् ॥
जिह्वामूले स्थितास्तस्य सर्वे देवाः सवासवाः
तिमेरास्यमनुप्राप्ता यथा मत्स्या महार्णवे २९
ते संमन्त्र्य ततो देवा मदस्यास्य समीपगाः
अब्रुवन्सहिताः शक्रं प्रणमास्मै द्विजातये ३०
अश्विभ्यां सह सोमं च पिबाम विगतज्वराः
ततः स प्रणतः शक्रश्चकार च्यवनस्य तत् ३१
च्यवनः कृतवानेतावश्विनौ सोमपायिनौ ।
ततः प्रत्याहरत्कर्म मदं च व्यभजन्मुनिः ३२

१५६

इत्युक्त इति ॥ १ ॥

अक्षेषु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान्।
एतैर्दोषैर्नरा राजन् क्षयं यान्ति न संशयः॥
तस्मादेतान्नरो नित्यं दूरतः परिवर्जयेत्॥३४
एतत्ते च्यवनस्यापि कर्म राजन्प्रकीर्तितम्।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं क्षत्रियं ब्राह्मणाद्वरम्॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पवनार्जुनसंवादे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५६॥

## १५७

भीष्म उवाच।
तूष्णीमासीदर्जुनस्तु पवनस्त्वब्रवीत्पुनः।
शृणु मे ब्राह्मणेष्वेव मुख्यं कर्म जनाधिप॥ १
मदस्यास्यमनुप्राप्ता यदा सेन्द्रा दिवौकसः।
तदेव च्यवनेनेह हृता तेषां वसुन्धरा॥ २
उभौ लोकौ हृतौ मत्वा
ते देवा दुःखिताऽभवन्।
शोकार्ताश्च महात्मानं
ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ ३
देवा ऊचुः।
मदास्यव्यतिषिक्तानामस्माकं लोकपूजित।
च्यवनेन हृता भूमिः कपैश्चैव दिवं प्रभो॥ ४
ब्रह्मोवाच।
गच्छध्वं शरणं विप्रानाशु सेन्द्रा दिवौकसः।
प्रसाद्य तानुभौ लोकाववाप्स्यथ यथा पुरा॥५
ते ययुः शरणं विप्रानूचुस्ते कान् जयामहे।
इत्युक्तास्ते द्विजान्प्राहुर्जयतेह कपानिति॥ ६
भूगतान् हि विजेतारो वयमित्यब्रुवन् द्विजाः।
ततः कर्म समारब्धं ब्राह्मणैः कपनाशनम्॥ ७
तच्छ्रुत्वा प्रेषितो दूतो ब्राह्मणेभ्यो धनी कपैः
स च तान् ब्राह्मणानाह धनी कपवचो यथा
भवद्भिः सदृशाः सर्वे कपाः किमिह वर्तते।
सर्वे वेदविदः प्राज्ञाः सर्वे च क्रतुयाजिनः ९
सर्वे सत्यव्रताश्चैव सर्वे तुल्या महर्षिभिः।
श्रीश्चैव रमते तेषु धारयन्ति श्रियं च ते॥१०
वृथादारान्न गच्छन्ति वृथामांसं न भुञ्जते।
दीप्तमग्निं जुह्वते च गुरूणां वचने स्थिताः ११
सर्वे च नियतात्मानो बालानां संविभागिनः
उपेत्य शनकैर्यान्ति न सेवन्ति रजस्वलाम्।
स्वर्गतिं चैव गच्छन्ति तथैव शुभकर्मिणः १२
अभुक्तवत्सु नाश्नन्ति गर्भिणीवृद्धकादिषु।
पूर्वाह्णेषु न दीव्यन्ति दिवा चैव न शेरते १३
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्गुणैर्युक्तान् कथं कपान्।
विजेष्यथ निवर्तध्वं निवृत्तानां सुखं हि वः
ब्राह्मणा ऊचुः।
कपान्वयं विजेष्यामो
ये देवास्ते वयं स्मृताः।
तस्माद्वध्याः कपाऽस्माकं
धनिन् याहि यथाऽऽगतम्॥ १५
धनी गत्वा कपानाह
न वो विप्राः प्रियङ्कराः।
गृहीत्वाऽस्त्राण्यतो विप्रान्
कपाः सर्वे समाद्रवन्॥ १६
समुदग्रध्वजान् दृष्ट्वा
कपान् सर्वे द्विजातयः।
व्यसृजन् ज्वलितानग्नीन्
कपानां प्राणनाशनान्॥ १७
ब्रह्मसृष्टा हव्यभुजः कपान् हत्वा सनातनाः।
नभसीव यथाऽभ्राणि व्यराजन्त नराधिप१८

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५६

१५७

तूष्णीमिति॥ १॥ कपैः असुरविशेषैः दिवं द्यौः॥ ४॥ धनीनामको दूतः॥ ८॥

हत्वा वै दानवान् देवाः सर्वे संभूय संयुगे ।
तेनाभ्यजानन् हि तदा ब्राह्मणैर्निहतान्कपान्
अथागम्य महातेजा नारदोऽकथयद्विभो ।
यथा हता महाभागैस्तेजसा ब्राह्मणैः कपाः॥२०
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रीताः सर्वे दिवौकसः
प्रशशंसुर्द्विजांश्चापि ब्राह्मणांश्च यशस्विनः २१
तेषां तेजस्तथा वीर्यं देवानां ववृधे ततः ।
अवापुर्वंश्चामरत्व त्रिषु लोकेषु पूजितम् ॥२२
इत्युक्तवचनं वायुमर्जुनः प्रत्युवाच ह ।
प्रतिपूज्य महाबाहो यत्तच्छृणु युधिष्ठिर २३

अर्जुन उवाच ।
जीवाम्यहं ब्राह्मणार्थे सर्वथा सततं प्रभो ।
ब्रह्मण्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रणमामि च नित्यशः ॥
दत्तात्रेयप्रसादाच्च मया प्राप्तमिदं बलम् ।
लोके च परमा कीर्तिर्धर्मश्चाचरितो महान् २५
अहो ब्राह्मणकर्माणि मया मारुत तत्त्वतः ।
त्वया प्रोक्तानि कार्त्स्न्येन श्रुतानि प्रयतेन च
वायुरुवाच ।
ब्राह्मणान् क्षात्रधर्मेण पालयस्वेन्द्रियाणि च
भृगुभ्यस्ते भयं घोरं तत्तु कालाद्भविष्यति ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पवनार्जुनसंवादे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

## १५८

युधिष्ठिर उवाच ।
ब्राह्मणानर्चसे राजन् सततं संशितव्रतान् ।
क तु कर्मोदयं दृष्ट्वा तानर्चसि जनाधिप ॥ १
कां वा ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा महाव्रत ।
तानर्चसि महाबाहो सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ २
भीष्म उवाच ।
एष ते केशवः सर्वमाख्यास्यति महामतिः।
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां दृष्टव्युष्टिर्महाव्रतः ॥ ३
बलं श्रोत्रे वाङ्मनश्चक्षुषी च
ज्ञानं तथा सविशुद्धं ममाद्य ।
देहन्यासो नातिचिरान्मतो मे
न चाति तूर्णं सविताद्य याति ॥ ४
उक्ता धर्मा ये पुराणे महान्तो
राजन् विप्राणां क्षत्रियाणां विशां च
तथा शूद्राणां धर्ममुपासते च
शेषं कृष्णादुपशिक्षस्व पार्थ ॥ ५
अहं ह्येनं वेद्मि तत्त्वेन कृष्णं
योऽयं हि यच्चास्य बलं पुराणम् ।
अमेयात्मा केशवः कौरवेन्द्र
सोऽयं धर्मं वक्ष्यति संशयेषु ॥ ६
कृष्णः पृथ्वीमसृजत् खं दिवं च
कृष्णस्य देहान्मेदिनी सम्बभूव ।
वराहोऽयं भीमबलः पुराणः
स पर्वतान्व्यसृजद्वै दिशश्च ॥ ७
अस्य चाधोऽथान्तरिक्षं दिवं च
दिशश्चतस्रो विदिशश्चतस्रः ।
सृष्टिस्तथैवेयमनुप्रसूता
स निर्ममे विश्वमिदं पुराणम् ॥ ८
अस्य नाभ्यां पुष्करं संप्रसूतं
यत्रोत्पन्नः स्वयमेवामितौजाः ।
येनाच्छिन्नं तत्तमः पार्थ घोरं
यत्तत्तिष्ठत्यर्णवं तर्जयानम् ॥ ९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५७॥

१५८

ब्राह्मणानिति। कर्मोदयं फलोदयम्॥१॥ न चेति। दु खितस्य दिनं महद्भवतीत्यर्थ ॥ ४ ॥ अस्य चाध इत्याकाशादेरुपर्युपरि अयमेवास्तीत्युक्तम् ॥ ८ ॥ अर्णवं तर्जयानमित्यगाधत्वमपारत्वं चोक्तम् ॥ ९ ॥

कृते युगे धर्म आसीत्समग्र-
त्रेताकाले ज्ञानमनुप्रपन्नः ।
बलं त्वासीद्द्वापरे पार्थ कृष्णः
कलौ त्वधर्मः क्षितिमेवाजगाम ॥१०
स एव पूर्वं निजघान दैत्यान्
स पूर्वदेवश्च बभूव सम्राट् ।
स भूतानां भावनो भूतभव्यः
स विश्वस्यास्य जगतश्चाभिगोप्ता ११
यदा धर्मो ग्लाति वंशे सुराणां
तदा कृष्णो जायते मानुषेषु ।
धर्मे स्थित्वा स तु वै भावितात्मा
परांश्च लोकानपरांश्च पाति ॥ १२
त्याज्यं त्यक्त्वा चासुराणां वधाय
कार्याकार्ये कारणं चैव पार्थ ।
कृतं करिष्यत् क्रियते च देवो
राहुं सोमं विद्धि च शक्रमेनम् ॥ १३
स विश्वकर्मा स हि विश्वरूपः
स विश्वभुग्विश्वसृग्विश्वजिच्च ।
स शूलभृच्छोणितभृत्कराल-
स्तं कर्मभिर्विदितं वै स्तुवन्ति ॥ १४
तं गन्धर्वाणामप्सरसां च नित्य-
मुपातिष्ठन्ते विबुधानां शतानि ।
तं राक्षसाश्च परि संवदन्ति
रायस्पोषः स विजिगीषुरेकः ॥ १५
तमध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति
रथन्तरे सामगाश्च स्तुवन्ति ।
तं ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैः स्तुवन्ति
तस्मै हविरध्वर्यवः कल्पयन्ति ॥ १६
स पौराणीं ब्रह्मगुहां प्रविष्टो
महीसत्रं भारताग्रे ददर्श ।
स चैव गामुद्धाराग्र्यकर्मा
विक्षोभ्य दैत्यानुरगान्दानवांश्च ॥१७

तं घोषार्थे गीर्भिरिन्द्राः स्तुवन्ति
स चापीशो भारतैकः पशूनाम् ।
तस्य भक्षान्विविधान्वेदयन्ति
तमेवाजौ वाहनं वेदयन्ति ॥ १८
तस्यान्तरिक्षं पृथिवी दिवं च
सर्वं वशे तिष्ठति शाश्वतस्य ।
स कुम्भे रेतः ससृजे सुराणां
यत्रोत्पन्नमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १९
स मातरिश्वा विभुरश्ववाजी
स रश्मिवान् सविता चादिदेवः ।
तेनासुरा विजिताः सर्व एव
तद्विक्रान्तैर्विजितानीह त्रीणि ॥ २०
स देवानां मानुषाणां पितॄणां
तमेवाहुर्यज्ञविदां वितानम् ।
स एव कालं विभजन्नुदेति
तस्योत्तरं दक्षिणं चायने द्वे ॥ २१
तस्यैवोर्ध्वं तिर्यगधश्चरन्ति
गभस्तयो मेदिनीं भासयन्तः ।
तं ब्राह्मणा वेदविदो जुषन्ति
तस्यादित्यो भामुपयुज्य भाति ॥२२
स मासि मास्यध्वरकृद्विधत्ते
तमध्वरे वेदविदः पठन्ति ।
स एवोक्तश्चक्रमिदं त्रिनाभि
सप्ताश्वयुक्तं वहते वै त्रिधाम ॥ २३
महातेजाः सर्वगः सर्वसिंहः
कृष्णो लोकान् धारयते यथैकः ।
हंसं तमोघ्नं च तमेव वीर
कृष्णं सदा पार्थ कर्तारमेहि ॥ २४
स एकदा कक्षगतो महात्मा
तुष्टो विभुः खाण्डवे धूमकेतुः ।
स राक्षसानुरगांश्चावजित्य
सर्वत्रगः सर्वमग्नौ जुहोति ॥ २५

---

**कृत इति** ज्ञानं अकर्तव्यकोटेरपि उपस्थानात्त्रेतायां विवेक आसीत् । द्वापरे तु द्वितीयकोटे. साम्याद्बलं प्रधानमासीत्न धर्म.। कलौ त्वधर्म एव बलवानिति भाव ॥१०॥ स एव पूर्वदेव आदिदेवो दैत्यान्निजघान स एव सम्राट् बलिरूपी पूर्वदेवो दैत्यो बभूव ॥११॥ ग्लाति ग्लायति ॥१२॥ एवमेनं राहुं सोम शक्रं च विद्धि ॥१३॥ शोणितभृच्छरीरी ॥ १४ ॥ राय· धनस्य पोष· पोषकः ॥ १५ ॥ महीसत्रं पृथिव्याश्छादनं मज्जनमिति यावत् । 'सत्रं यज्ञे महादानाच्छादनारण्यकैतवे' इति मेदिनी ॥१७ ॥ घोषार्थे गोवर्द्धनोद्धरणकाले घोषोम्बुनादो वा वृष्ट्यर्थमित्यर्थ । पशूनां गवा जीवाना च वाहनं जयप्रापकम् ॥ १८ ॥ सुराणां मित्रावरुणयो रेत कुंभे ससृजे ॥ १९ ॥ विक्रान्तै· पादविक्षेपै त्रीणि भुवनानि ॥ २० ॥ देवानां आत्मेति शेष. ॥ २१॥ जुषन्ति सेवन्ते ॥ २२ ॥ विधत्तेऽध्वरामित्यर्थात् त्रिनाभि शीतोष्णवृष्टिकालगर्भं चक्रं संवत्सरं त्रिधामेति वर्षवातोष्णप्रकारम् ॥ २३ ॥ हंस सूर्यम् ॥ २४ ॥

स एव पार्थाय श्वेतमश्वं प्रायच्छ-
त्स एवाश्वानथ सर्वांश्चकार ।
स बन्धुरस्तस्य रथस्त्रिचक्र-
स्त्रिवृच्छिराश्चतुरश्वस्त्रिनाभिः ॥ २६

स विहायो व्यदधात्पंचनाभिः
स निर्ममे गां दिवमन्तरिक्षम् ।
सोऽरण्यानि व्यसृजत्पर्वतांश्च
हृषीकेशोऽमितदीप्ताग्नितेजाः ॥ २७

अलंघयद्वै सरितो जिघांसन्
शक्रं वज्रं प्रहरन्तं निरास ।
स महेन्द्रः स्तूयते वै महाध्वरे
विप्रैरेको ऋक्सहस्रैः पुराणैः ॥ २८

दुर्वासा वै तेन नान्येन शक्यो
गृहे राजन् वासयितुं महौजाः ।
तमेवाहुर्ऋषिमेकं पुराणं
स विश्वकृद्विदधात्यात्मभावान् ॥२९

वेदांश्च यो वेदयतेऽधिदेवो
विधींश्च यश्चाश्रयते पुराणान् ।
कामे वेदे लौकिके यत्फलं च
विष्वक्सेनः सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३०

ज्योतींषि शुक्लानि हि सर्वलोके
त्रयो लोका लोकपालास्त्रयश्च ।
त्रयोऽग्नयो व्याहृतयश्च तिस्रः
सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥ ३१

स वत्सरः स ऋतुः सोऽर्धमासः
सोऽहोरात्रः स कला वै स काष्ठाः ।
मात्रा मुहूर्ताश्च लवाः क्षणाश्च
विष्वक्सेनः सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३२

चन्द्रादित्यौ ग्रहनक्षत्रताराः
सर्वाणि दर्शान्यथ पौर्णमासम् ।
नक्षत्रयोगा ऋतवश्च पार्थ
विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रसूतम् ॥ ३३

रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च
साध्याश्च विश्वे मरुतां गणाश्च ।
प्रजापतिर्देवमाता दितिश्च
सर्वे कृष्णादृषयश्चैव सप्त ॥ ३४

वायुर्भूत्वा विक्षिपते च विश्व-
मग्निर्भूत्वा दहते विश्वरूपः ।
आपो भूत्वा मज्जयते च सर्वं
ब्रह्मा भूत्वा सृजते विश्वसंघान् ॥ ३५

वेद्यं च यद्वेदयते च वेद्यं
विधिश्च यश्चाश्रयते विधेयम् ।
धर्मे च वेदे च बले च सर्वं
चराचरं केशव त्वं प्रतीहि ॥ ३६

ज्योतिर्भूतः परमोऽसौ पुरस्तात्
प्रकाशते यत्प्रभया विश्वरूपः ।
अपः सृष्ट्वा सर्वभूतात्मयोनिः
पुराऽकरोत्सर्वमेवाथ विश्वम् ॥ ३७

ऋतूनुत्पातान्विविधान्यद्भुतानि
मेघान्विद्युत्सर्वमैरावतं च ।
सर्वं कृष्णात्स्थावरं जङ्गमं च
विश्वात्मानं विष्णुमेनं प्रतीहि ॥ ३८

विश्वावासं निर्गुणं वासुदेवं
संकर्षणं जीवभूतं वदन्ति ।
ततः प्रद्युम्नमनिरुद्धं चतुर्थ-
माज्ञापयत्यात्मयोनिर्महात्मा ॥ ३९

स पञ्चधा पञ्चजनोपपन्नं
सञ्चोदयन् विश्वमिदं सिसृक्षुः ।
ततश्चकारावनिमारुतौ च
खं ज्योतिरभ्रं च तथैव पार्थ ॥ ४०

स स्थावरं जङ्गमं चैवमेत-
च्चतुर्विधं लोकमिमं च कृत्वा ।
ततो भूमिं व्यदधात्पंचबीजां
द्यौः पृथिव्यां धास्यति भूरि वारि ४१

---

बन्धुरः तस्य संसाररथस्य योक्ता त्रिचक्रः सत्त्वरजस्तमोमयः । त्रिवृच्छिराः ऊर्ध्वमध्याधोगतिफलः चतुरश्वः कालादृष्टेश्वरेच्छात्मसङ्कल्याश्चत्वारोऽश्वा यस्य त्रिनाभिः शुक्लं कृष्णं शुक्लकृष्णं चेति त्रिविधकर्मगर्भः ॥ २६ ॥ पञ्चनाभिः पञ्चभूतानां नाभिराश्रय इत्यर्थः ॥ २७ ॥ निरास पराभूतवान् ॥ २८ ॥ विधीन् अग्निहोत्रादीन् ॥ ३० ॥ वेद्यं वेदप्रतिपाद्यं वेद्यं ज्ञेयम् ॥ ३६ ॥ अनिरुद्धं अहङ्कारम् ॥ ३९ ॥ पञ्चधा पञ्चप्रकारं देवासुरमनुष्यश्वापदतिर्यग्रूपेण पञ्चजनाः पञ्चभूतानि तैरुपपन्नं विश्वं सिसृक्षुराज्ञापयतीति पूर्वेणान्वयः ॥ ४० ॥ चतुर्विधं जरायुजादि पञ्चबीजां चतुर्विधभूतग्रामं कर्म च तेषां बीजभूताम् ॥ ४१ ॥

तेन विश्वं कृतमेतद्धि राजन्
स जीवयत्यात्मनैवात्मयोनिः ।
ततो देवानसुरान् मानवांश्च
लोकानृषींश्चापि पितॄन् प्रजाश्च ।
समासेन विधिवत्प्राणिलोकान्
सर्वान् सदा भूतपतिः सिसृक्षुः ॥४२
शुभाशुभं स्थावरं जंगमं च
विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ।
यद्वर्तते यच्च भविष्यतीह
सर्वं ह्येतत्केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ४३
मृत्युश्चैव प्राणिनामन्तकाले
साक्षात्कृष्णः शाश्वतो धर्मवाहः ।
भूतं च यच्चेह न विद्म किञ्चि-
द्विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ४४
यत्प्रशस्तं च लोकेषु
पुण्यं यच्च शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं केशवोऽचिन्त्यो
विपरीतमतः परम् ॥ ४५
एतादृशः केशवोऽतश्च भूयो
नारायणः परमश्चाव्ययश्च ।
मध्याद्यन्तस्य जगतस्तस्थुषश्च
बुभूषतां प्रभवश्चाव्ययश्च ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि महापुरुषमाहात्म्ये
अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

## १५९

युधिष्ठिर उवाच ।
ब्रूहि ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं त्वं मधुसूदन ।
वेत्ता त्वमस्य चार्थस्य वेद त्वां हि पितामहः
वासुदेव उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजन्द्विजानां भरतर्षभ ।
यथा तत्त्वेन वदतो गुणान्वै कुरुसत्तम ॥ २
द्वारवत्यां समासीनं पुरा मां कुरुनन्दन ।
प्रद्युम्नः परिपप्रच्छ ब्राह्मणैः परिकोपितः ॥ ३
किं फलं ब्राह्मणेष्वस्ति पूजायां मधुसूदन ।
ईश्वरत्वं कुतस्तेषामिहैव च परत्र च ॥ ४
सदा द्विजातीन्संपूज्य किं फलं तत्र मानद ।
एतद्ब्रूहि स्फुटं सर्वं सुमहान्संशयोऽत्र मे ॥ ५
इत्युक्ते वचने तस्मिन्प्रद्युम्नेन तथा त्वहम् ।
प्रत्यब्रुवं महाराज यत्तच्छृणु समाहितः ॥ ६
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां रौक्मिणेय निबोध मे ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ७
अस्मिँल्लोके रौक्मिणेय तथाऽमुष्मिंश्च पुत्रक
ब्राह्मणप्रमुखं सौम्यं न मेऽत्रास्ति विचारणा ८
ब्राह्मणप्रतिपूजायामायुः कीर्तिर्यशो बलम् ।
लोका लोकेश्वराश्चैव सर्वे ब्राह्मणपूजकाः ॥९
त्रिवर्गे चापवर्गे च यशःश्रीरोगशान्तिषु ।
देवतापितृपूजासु सन्तोष्याश्चैव नो द्विजाः॥
तत्कथं वै नाद्रियेयमीश्वरोऽस्मीति पुत्रक ।
मा ते मन्युर्महाबाहो भवत्वत्र द्विजान् प्रति ॥
ब्राह्मणा हि महद्भूतमस्मिन् लोके परत्र च ।
भस्म कुर्युर्जगदिदं क्रुद्धाः प्रत्यक्षदर्शिनः ॥ १२
अन्यानपि सृजेयुश्च लोकाँल्लोकेश्वरांस्तथा ।
कथं तेषु न वर्तेरन् सम्यग्ज्ञानात्सुतेजसः ॥
अवसन्मद्गृहे तात
ब्राह्मणो हरिपिङ्गलः ।
चीरवासा बिल्वदण्डी
दीर्घश्मश्रुः कृशो महान् ॥ १४

---

अतः केशवात् यत्परं कल्प्यते तद्विपरीतं असन्मार्ग इत्यर्थ ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५८॥

१५९
ब्रूहीति ॥१॥ सौम्यं कल्याणम् ॥८॥

दीर्घेभ्यश्च मनुष्येभ्यः
प्रमाणादधिको भुवि।
स स्वैरं चरते लोकान्
ये दिव्या ये च मानुषाः ॥ १५
इमां गाथां गायमानश्चत्वरेषु सभासु च।
दुर्वाससं वासयेत्को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे १६
रोषणः सर्वभूतानां सूक्ष्मेप्यपकृते कृते।
परिभाषा च मे श्रुत्वा को नु दद्यात्प्रतिश्रयम्
यो मां कश्चिद्वासयीत न स मां कोपयेदिति
यस्मान्नाद्रियते कश्चित्ततोऽहं समवासयम् ॥
स संभुङ्क्ते सहस्राणां बहूनामन्नमेकदा।
एकदा सोऽल्पकं भुङ्क्ते न चैवैति पुनर्गृहान्
अकस्माच्च प्रहसति तथाऽकस्मात्प्ररोदिति।
न चास्य वयसा तुल्यः पृथिव्यामभवत्तदा २०
अथ स्वावसथं गत्वा स शय्यास्तरणानि च।
कन्याश्चालंकृता दग्ध्वा ततो व्यपगतः पुनः
अथ मामब्रवीद्भूयः स मुनिः संशितव्रतः।
कृष्ण पायसमिच्छामि भोक्तुमित्येव सत्वरः
तदैव तु मया तस्य
चित्तज्ञेन गृहे जनः।
सर्वाण्यन्नानि पानानि
भक्ष्याश्चोच्चावचास्तथा ॥ २३
भवन्तु सत्कृतानीह
पूर्वमेव प्रचोदितः।
ततोऽहं ज्वलमानं वै
पायसं प्रत्यवेदयम् ॥ ॥ २४
तं भुक्त्वैव स तु क्षिप्रं ततो वचनमब्रवीत्।
क्षिप्रमङ्गानि लिम्पस्व पायसेनेति स स्म ह ॥
अविमृश्यैव च ततः कृतवानस्मि तत्तथा।
तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवाभ्यमृक्षयम् ॥
स ददर्श तदाभ्याशे मातरं ते शुभाननाम्।
तामपि स्मयमानां स पायसेनाभ्यलेपयत् २७
मुनिः पायसदिग्धाङ्गीं रथे तूर्णमयोजयत्।
तमारुह्य रथं चैव निर्ययौ स गृहान्मम ॥ २८
अग्निवर्णो ज्वलन्धीमान्स द्विजो रथधुर्यवत्।
प्रतोदेनातुदद्बालां रुक्मिणीं मम पश्यतः २९
न च मे स्तोकमप्यासीद्दुःखमीर्ष्याकृतं तदा।
तथा स राजमार्गेण महता निर्ययौ बहिः ३०
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं दाशार्हा जातमन्यवः।
तत्राजल्पन्मिथः केचित्समाभाष्य परस्परम्॥
ब्राह्मणा एव जायेरन्नान्यो वर्णः कथञ्चन।
को ह्येनं रथमास्थाय जीवेदन्यः पुमानिह ३२
आशीविषविषं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरो द्विजः
ब्रह्माशीविषदग्धस्य नास्ति कश्चिच्चिकित्सकः
तस्मिन्व्रजति दुर्धर्षे प्रास्खलद्रुक्मिणी पथि।
तन्नामर्षयत श्रीमांस्ततस्तूर्णमचोदयत् ॥ ३४
ततः परमसंक्रुद्धो रथात्प्रस्कन्द्य स द्विजः।
पदातिरुत्पथेनैव प्राद्रवद्दक्षिणामुखः ॥ ३५
तमुत्पथेन धावन्तमन्वधावं द्विजोत्तमम्।
तथैव पायसादिग्धः प्रसीद भगवन्निति ॥३६
ततो विलोक्य तेजस्वी ब्राह्मणो मामुवाच ह।
जितः क्रोधस्त्वया कृष्ण प्रकृत्यैव महाभुज ॥
न तेऽपराधमिह वै
दृष्टवानस्मि सुव्रत।
प्रीतोऽस्मि तव गोविन्द
वृणु कामान् यथेप्सितान् ॥ ३८
प्रसन्नस्य च मे तात पश्य व्युष्टिं यथाविधि।
यावदेव मनुष्याणामन्ने भावो भविष्यति ॥
यथैवान्ने तथा तेषां त्वयि भावो भविष्यति।
यावच्च पुण्या लोकेषु त्वयि कीर्तिर्भविष्यति
त्रिषु लोकेषु तावच्च वैशिष्ट्यं प्रतिपत्स्यसे।
सुप्रियः सर्वलोकस्य भविष्यसि जनार्दन ४१
यत्ते भिन्नं च दग्धं च यच्च किञ्चिद्विनाशितम्
सर्वं तथैव द्रष्टाऽसि विशिष्टं वा जनार्दन ॥
यावदेतत्प्रलिप्तं ते गात्रेषु मधुसूदन।
अतो मृत्युभयं नास्ति यावदिच्छसि चाच्युत।
न तु पादतले लिप्ते कस्मात्ते पुत्रकाद्य वै।
नैतन्मे प्रियमित्येव स मां प्रीतोऽब्रवीत्तदा ४४
इत्युक्तोऽहं शरीरं स्वं ददर्श श्रीसमायुतम्।
रुक्मिणीं चाब्रवीत्प्रीतः सर्वस्त्रीणां वरं यशः
कीर्तिं चानुत्तमां लोके
समवाप्स्यसि शोभने।
न त्वां जरा वा रोगो वा
वैवर्ण्यं चापि भाविनि ॥ ४६
सुरभिगन्धा च लोकेषु कृष्णमाराधयिष्यसि
षोडशानां सहस्राणां वधूनां केशवस्य ह ४७
वरिष्ठा च सलोक्या च केशवस्य भविष्यसि
तव मातरमित्युक्त्वा ततो मां पुनरब्रवीत्४८
प्रस्थितः सुमहातेजा दुर्वासाग्निरिव ज्वलन्।
एषैव ते बुद्धिरस्तु ब्राह्मणान्प्रति केशव ॥ ४९
इत्युक्त्वा स तदा पुत्र तत्रैवान्तरधीयत।
तस्मिन्नन्तर्हिते चाहमुपांशु व्रतमाचरम् ॥ ५०

यत्किञ्चिद्ब्राह्मणो ब्रूयात्सर्वं कुर्यामिति प्रभो।
एतद्व्रतमहं कृत्वा मात्रा ते सह पुत्रक ॥ ५१
ततः परमहृष्टात्मा प्राविशं गृहमेव च।
प्रविष्टमात्रश्च गृहे सर्वं पश्यामि तन्नवम् ॥ ५२
यद्भिन्नं यच्च वै दग्धं तेन विप्रेण पुत्रक।
ततोऽहं विस्मयं प्राप्तः सर्वं दृष्ट्वा नवं दृढम् ५३
अपूजयं च मनसा रौक्मिणेय सदा द्विजान्।
इत्यहं रौक्मिणेयस्य पृच्छतो भरतर्षभ ॥ ५४
माहात्म्यं द्विजमुख्यस्य सर्वमाख्यातवांस्तदा
तथा त्वमपि कौन्तेय ब्राह्मणान्सततं प्रभो ५५
पूजयस्व महाभागान्वाग्भिर्दानैश्च नित्यदा।
एवं व्युष्टिमहं प्राप्तो ब्राह्मणस्य प्रसादजाम्।
यच्च मामाह भीष्मोऽयं तत्सत्यं भरतर्षभ ५६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि दुर्वासोभिक्षा नाम एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

## १६०

युधिष्ठिर उवाच।
दुर्वाससः प्रसादात्ते यत्तदा मधुसूदन।
अवाप्तमिह विज्ञानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १
महाभाग्यं च यत्तस्य नामानि च महात्मनः
तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सर्वं मतिमतां वर २
वासुदेव उवाच।
हन्त ते कीर्तयिष्यामि नमस्कृत्य कपर्दिने।
यदवाप्तं मया राजञ्छ्रेयो यच्चार्जितं यशः ३
प्रयतः प्रातरुत्थाय यदधीये विशां पते।
प्राञ्जलिः शतरुद्रीयं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४
प्रजापतिस्तत्ससृजे तपसोऽन्ते महातपाः।
शङ्करस्त्वसृजत्तात प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥५
नास्ति किञ्चित्परं भूतं महादेवाद्विशां पते।
इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः ६
न चैवोत्सहते स्थातुं कश्चिदग्रे महात्मनः।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ७
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ते च पतन्ति च ॥ ८
घोरं च निनदं तस्य पर्जन्यनिनदोपमम्।
श्रुत्वा विशीर्येद्धृदयं देवानामपि संयुगे ९
यांश्च घोरेण रूपेण पश्येत्क्रुद्धः पिनाकधृत्।
न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न पन्नगाः
कुपिते सुखमेधन्ते तस्मिन्नपि गुहागताः।
प्रजापतेश्च दक्षस्य यजतो विततें क्रतौ ॥ ११
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥१२
ते न शर्म कुतः शांतिं विषादं लेभिरे सुराः।
विद्धे च सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ १३
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः
बभूवुरवशाः पार्थ विषेदुश्च सुरासुराः ॥ १४
आपश्चुक्षुभिरे चैव चकम्पे च वसुन्धरा।
व्यद्रवन् गिरयश्चापि द्यौः पफाल च सर्वशः
अन्धेन तमसा लोकाः प्रावृता न चकाशिरे।
प्रनष्टा ज्योतिषां भाश्च सह सूर्येण भारत १६
भृशं भीतास्ततः शांतिं चक्रुः स्वस्त्ययनानि च
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च हितैषिणः ॥१७
ततः सोऽभ्यद्रवद्देवान्रुद्रो रौद्रपराक्रमः।
भगस्य नयने क्रुद्धः प्रहारेण व्यशातयत् १८
पूषणं चाभिदुद्राव पादेन च रुषान्वितः।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् १९

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १५९ ॥

१६०

दुर्वासस इति। अत्र त्रिपुरदाहः श्रद्धारहितानां निन्दार्थं, उपासकानां स्थूलसूक्ष्मकारणदेहत्रयरूपाणां तिसृणां पुरां दाहेन संसारानर्थनिवृत्तिर्महादेवस्य त्रिपुरहन्तुः प्रसादादेव भवतीति प्रदर्शनार्थंश्च ॥ १ ॥

ततः प्रणेमुर्देवास्ते वेपमानाः स्म शङ्करम् ॥
पुनश्च सन्दधे रुद्रो दीप्तं सुनिशितं शरम् ॥२०
रुद्रस्य विक्रमं दृष्ट्वा भीता देवाः सहर्षिभिः ।
ततः प्रसादयामासुः शर्वं ते विबुधोत्तमाः २१
जेपुश्च शतरुद्रीयं देवाः कृत्वाऽञ्जलिं तदा ।
संस्तूयमानस्त्रिदशैः प्रससाद महेश्वरः ॥ २२
रुद्रस्य भागं यज्ञे च विशिष्टं ते त्वकल्पयन्।
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ २३
तेन चैव हि तुष्टेन स यज्ञः सन्धितोऽभवत् ।
यद्यच्चापहृतं तत्र तत्तथैवान्वजीवयत् ॥ २४
असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णमपि चापरम् २५
नाशकत्तानि मघवा जेतुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥२६
तत ऊचुर्महात्मानो देवाः सर्वे समागताः ।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु २७
जहि दैत्यान्सह पुरैर्लोकांस्त्रायस्व मानद ।
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा कृत्वा विष्णुं शरोत्तमं
शल्यमग्निं तथा कृत्वा
पुङ्खं वैवस्वतं यमम् ।
वेदान् कृत्वा धनुः सर्वान्
ज्यां च सावित्रिमुत्तमाम् ॥ २९
ब्रह्माणं सारथिं कृत्वा विनियुज्य च सर्वशः ।
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तेन तानि बिभेद सः ३०
शरेणादित्यवर्णेन कालाग्निसमतेजसा ।
ते सुराः सपुरास्तत्र दग्धा रुद्रेण भारत ॥ ३१
तं चैवांकगतं दृष्ट्वा बालं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्तदा
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
स वज्रं स्तम्भयामास तं बाहुं परिघोपमम्३३
न संबुबुधिरे चैव देवास्तं भुवनेश्वरम् ।
सप्रजापतयः सर्वे तस्मिन्मुमुहुरीश्वरे ॥ ३४
ततो ध्यात्वा च भगवान्ब्रह्मा तममितौजसम्
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तमुमापतिम् ३५
ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
बभूव स तदा बाहुर्बलहन्तुर्यथा पुरा ॥ ३६
स चापि ब्राह्मणो भूत्वा दुर्वासा नाम वीर्यवान्
द्वारवत्यां मम गृहे चिरं कालमुपावसन् ३७
विप्रकारान् प्रयुंक्ते स्म सुबहून्मम वेश्मनि ।
तानुदारतया चाहं चक्षमे चातिदुःसहान्३८
स वै रुद्रः स च शिवः
सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित् ।
स चैवेन्द्रश्च वायुश्च
सोऽश्विनौ स च विद्युतः ॥ ३९
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः
स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि च
मासार्धमासा ऋतवः सन्ध्ये संवत्सरश्च सः ।
स धाता स विधाता च विश्वकर्मा स सर्ववित्
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव दिशोऽथ प्रदिशस्तथा ।
विश्वमूर्तिरमेयात्मा भगवान्परमद्युतिः ४२
एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव हि ।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ४३
ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानतः ॥
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ४४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ईश्वरप्रशंसा नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

---

तं चैवेति । एवमध्यात्मं त्रिपुरदाहेऽपि ससारात्मकं सूक्ष्मं प्रपञ्चो यावद्देहपातं बाधितानुवृत्त्या वर्तत एव। तं बालं हिरण्यगर्भाख्यं सूक्ष्मसमष्टिरूपं पुरदग्धुरंकगतं जीवन्मुक्तप्रतीतिगोचरं जिज्ञासमाना उमा ब्रह्मविद्यामया कृत्स्नबाधे कृतेऽपि अयं कोऽवशिष्ट इत्यब्रवीत्पृष्टवती । तत्र महादेवस्तस्य प्रत्यगनन्यत्वादनुत्तरमेवोत्तरं ददौ । अत एव तं सूक्ष्मसमष्टिं क इति वेदे वदन्ति। प्रजापतिर्वै क इति। तस्य नामैव क इति प्रतिष्ठितं एवं पर्वत्रास्यानतात्पर्यं ज्ञेयम् । तथा शक्रबाहुस्तंभाख्यायिकया त्रिपुरघ्नं बाहुकृतं कर्म न स्पृशतीति दर्शितम् ।।३२।। एकधा ब्रह्मरूपेण। द्विधा ब्रह्मभेदेन । बहुधेत्यादि प्रपञ्चरूपेण ।।४३।। इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १६० ।।

## १६१

वासुदेव उवाच ।

युधिष्ठिर महाबाहो महाभाग्यं महात्मनः ।
रुद्राय बहुरूपाय बहुनाम्ने निबोध मे ॥ १
वदन्त्यग्निं महादेवं तथा स्थाणुं महेश्वरम् ।
एकाक्षं त्र्यम्बकं चैव विश्वरूपं शिवं तथा ॥ २
द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ।
घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः॥३
उग्रा घोरा तनुर्याऽस्य
सोऽग्निर्विद्युत्स भास्करः ।
शिवा सौम्या च या त्वस्य
धर्मस्त्वापोऽथ चंद्रमाः ॥ ४
आत्मनोऽर्धं तु तस्याग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते
ब्रह्मचर्यं चरत्येका शिवा चास्य तनुस्तथा॥५
याऽस्य घोरतमा मूर्तिर्जगत्संहरते तथा ।
ईश्वरत्वान्महत्त्वाच्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ६
यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ ७
देवानां सुमहान्यच्च यच्चास्य विषयो महान् ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः॥८
धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटीत्यत उच्यते ।
समेधयति यन्नित्यं सर्वान्वै सर्वकर्मभिः ॥ ९
मनुष्यान् शिवमन्विच्छं-
स्तस्मादेष शिवः स्मृतः ।
दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च
प्राणान्नृणां स्थिरश्च यत् ॥ १०
स्थिरलिंगश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः
यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत्तथा ॥ ११
स्थावरं जंगमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ।
विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः
सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा
चक्षुषः प्रभवेत्तेजो नास्त्यंतोऽथास्य चक्षुषाम्
सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते सह ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥१४
नित्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यदा स्थितम् ।
महयत्यस्य लोकश्च प्रियं ह्येतन्महात्मनः ॥१५
विग्रहं पूजयेद्यो वै लिङ्गं वाऽपि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १६
ऋषयश्चापि देवाश्च गंधर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थितम्॥
पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखं ददाति प्रीतात्मा भक्तानां भक्तवत्सलः
एष एव श्मशानेषु देवो वसति निर्दहन् ।
यजन्ते ये जनास्तत्र वीरस्थाननिषेविणः १९
विषयस्थः शरीरेषु स मृत्युः प्राणिनामिह ।
स च वायुः शरीरेषु प्राणापानशरीरिणाम्२०
तस्य घोराणि रूपाणि दीप्तानि च बहूनि च
लोके यान्यस्य पूज्यंते विप्रास्तानि विदुर्बुधाः
नामधेयानि देवेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ।
निरुच्यंते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मभिस्तथा२२
वेदे चास्य विदुर्विप्राः शतरुद्रीयमुत्तमम् ।
व्यासेनोक्तं च यच्चापि उपस्थानं महात्मनः॥
प्रदाता सर्वलोकानां विश्वं चाप्युच्यते महत्।
ज्येष्ठभूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा ऋषयोऽपरे ॥२४
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादग्निमजीजनत् ।
ग्रहैर्बहुविधैः प्राणान्संरुद्धानुत्सृजत्यपि ॥ २५
विमुञ्चति न पुण्यात्मा शरण्यः शरणागतान्
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान्
स ददाति मनुष्येभ्यः स एवाक्षिपते पुनः ।
शक्रादिषु च देवेषु तस्यैश्वर्यमिहोच्यते ॥ २७
स एव व्यापृतो नित्य त्रैलोक्यस्य शुभाशुभे
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ॥ २८
महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः ।
बहुभिर्विविधै रूपैर्विश्वं व्याप्तमिदं जगत्
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम् २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि महेश्वरमाहात्म्यं नाम एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

---

१६१

युधिष्ठिरेति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६१ ॥

# १६२

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तवति वाक्यं तु कृष्णे देवकिनन्दने ।
भीष्मं शान्तनवं भूयः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥१
निर्णये वा महाबुद्धे सर्वधर्मविदां वर ।
प्रत्यक्षमागमो वेति किं तयोः कारणं भवेत्२

भीष्म उवाच ।

नास्त्यत्र संशयः कश्चि-
दिति मे वर्तते मतिः ।
शृणु वक्ष्यामि ते प्राज्ञ
सम्यक् त्वं मेऽनुपृच्छसि ॥ ३
संशयः सुगमस्तत्र दुर्गमस्तस्य निर्णयः ।
दृष्टं श्रुतमनन्तं हि यत्र संशयदर्शनम् ॥ ४
प्रत्यक्ष कारण दृष्ट्वा हैतुकाः प्राज्ञमानिनः ।
नास्तीत्येवं व्यवस्यन्ति सत्यं संशयमेव च ५
तदयुक्तं व्यवस्यन्ति बालाः पण्डितमानिनः ।
अथ चेन्मन्यसे चैकं कारणं किं भवेदिति ॥६
शक्यं दीर्घेण कालेन युक्तेनातन्द्रितेन च ।
प्राणयात्रामनेकां च कल्पमानेन भारत ॥ ७
तत्परेणैव नान्येन शक्यं ह्येतस्य दर्शनम् ।
हेतूनामन्तमासाद्य विपुलं ज्ञानमुत्तमम् ॥ ८
ज्योतिः सर्वस्य लोकस्य विपुलं प्रतिपद्यते ।
न त्वेव गमनं राजन्हेतुतो गमनं तथा ।
अग्राह्यमनिबद्धं च वाचा संपरिवर्जयेत् ॥ ९

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रत्यक्षं लोकतः सिद्धिर्लोकश्चागमपूर्वकः ।
शिष्टाचारो बहुविधस्तन्मे ब्रूहि पितामह ।

भीष्म उवाच ।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः ।
संस्था यत्नैरपि कृता कालेन प्रतिभिद्यते ॥११
अधर्मो धर्मरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ।
ततस्तैर्भिद्यते वृत्तं शृणु चैव युधिष्ठिर ॥ १२
अवृत्ता ये तु भिन्दन्ति श्रुतित्यागपरायणाः ।
धर्मविद्वेषिणो मन्दा इत्युक्तस्तेषु संशयः ॥ १३
अतृप्यन्तस्तु साधूनां य एवागमबुद्धयः ।
परमित्येव सन्तुष्टास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥
कामार्थौ पृष्ठतः कृत्वा लोभमोहानुसारिणौ ।
धर्म इत्येव सम्बुद्धस्तानुपास्व च पृच्छ च १५
न तेषां भिद्यते वृत्तं यज्ञाः स्वाध्यायकर्म च ।
आचारः कारणं चैव धर्मश्चैकस्त्रयं पुनः ॥ १६

युधिष्ठिर उवाच ।

पुनरेव हि मे बुद्धिः संशये परिमुह्यति ।
अपारे मार्गमाणस्य परं तीरमपश्यतः ॥ १७
वेदः प्रत्यक्षमाचारः प्रमाणं तत्त्रयं यदि ।
पृथक्त्वं लभ्यते चैषां धर्मश्चैकस्त्रयं कथम् १८

---

१६२

**इत्युक्तवतीति** ॥ १ ॥ श्रुतिप्रत्यक्षयो किं बलवदिति प्रश्न ॥२॥ **दृष्टमिति** । अनन्तं क्वचित् श्रुत्यपेक्षया प्रत्यक्षं प्रबलं क्वचित्प्रत्यक्षापेक्षया श्रुतिरित्यर्थ. ॥ ४ ॥ केचित्प्रत्यक्षं प्रबलं मत्वा हैतुकास्तार्किका परमाण्वादीन्प्रज्ञया नित्यत्वादिगुणयुक्तान् कल्पयन्त सत्यमबाधितं वाङ्मनसातीतं वस्तु नास्तीत्येव निश्चयं कुर्वन्ति। पैरवैदिकैरुपालब्धा मन्तस्तत्र संशयं कुर्वन्ति ॥ ५ ॥ अथेत्यादिसार्ध । यदि त्वमपि एकमसहृत ब्रह्म कारणं कथं भवेदिति संशयवानसि तर्हि दीर्घकालसेवनादिनाऽयमर्थो युक्तेन योगेन वेदितु शक्य· ॥ ६ ॥ एतस्य सत्यवस्तुन हेतूनामन्तं सर्वसंशयोच्छेदे सति कल्पनासंज्ञा हेतवो निवर्तन्ते॥ ८॥ संशयोच्छेदश्च यदा ज्योति. प्रत्यक्चैतन्यं विपुलमनन्तं प्रतिपद्यते तदैव भवति हेतुतस्तर्काद्वस्त्वाधिगमनं तत् अधिगमनं न भवति। तर्केणापि हि शून्यप्रधानपरमाणव कारणत्वेन प्रतिपाद्यन्ते तच्च अग्राह्यम् । यत यद्वाचा वेदेन अनिबद्ध अप्रतिपादितं तद्वर्जयेदिति न्याय ईक्षतेर्नाशब्दमिति प्रतिपादनात् । एतेन सर्वप्रमाणापेक्षया श्रुतेर्बलीयस्त्वं सिद्धम् ॥ ९ ॥ **प्रत्यक्षमिति** । लोकत सिद्धिरनुमानं आगमपूर्व शिष्टाचारश्चेति प्रमाणानि। एतेषा मध्ये किं प्रबलमिति प्रश्नार्थ ॥१०॥शिष्टाचारस्य दुरात्मभिरुच्छेदितत्वाद्वेद एव मुख्यं प्रमाणं प्रत्यक्षानुमानयोर्व्यभिचारित्वेनाविश्वसनीयत्वादित्याह--**धर्मस्येत्यादिना** ॥ ११ ॥ वृत्तं शिष्टाचार. ॥ १२ ॥ भिन्दन्ति वृत्तं तेषु प्रत्यक्षानुमानाचारेषु ॥ १३ ॥ अतृप्यन्त. नित्यं सोत्कण्ठा· आगमजन्याः बुद्धयो येषा ते एव परं श्रेष्ठं प्रमाणमित्यन्वयं·॥१४॥ **नेति** । वृत्तं प्रत्यक्षदृष्टं शीलम् । आचारः शौचादि· । कारणं वेद· । त्रय मिलित्वा एको धर्म स धर्मः साधनीय इत्यर्थ । स्वाध्यायकर्म वेदरक्षार्थमाचारान्तर्गतमेव ज्ञेयम् ॥ १६ ॥ **वेद इति** । प्रमाणभेदात्प्रमेयैर्धर्मैरपि त्रिभिर्भवितव्यम् ॥ १८ ॥

भीष्म उवाच ।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः ।
यद्येव मन्यसे राजंस्त्रिधा धर्मविचारणा १९
एक एवेति जानीहि त्रिधा धर्मस्य दर्शनम् ।
पृथक्त्वे च न मे बुद्धिस्त्रयाणामपि वै तथा ॥
उक्तो मार्गस्त्रयाणां च तत्तथैव समाचर ।
जिज्ञासा न तु कर्तव्या धर्मस्य परितर्कणात्
सदैव भरतश्रेष्ठ मा तेऽभूदत्र संशयः ।
अन्धो जड इवाशङ्की यद्ब्रवीमि तदाचर २२
अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम् ।
अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः ॥ २३
ब्राह्मणेषु च वृत्तिर्या पितृपैतामहोचिता ।
तामन्वेहि महाबाहो धर्मस्यैते हि देशिकाः॥
प्रमाणमप्रमाणं वै यः कुर्यादबुधो जनः ।
न स प्रमाणतामर्हो विवादजननो हि सः २५
ब्राह्मणानेव सेवस्व
सत्कृत्य बहुमन्य च ।
एतेष्वेव त्विमे लोकाः
कृत्स्ना इति निबोध तान् ॥ २६

युधिष्ठिर उवाच ।

ये च धर्ममसूयन्ते ये चैनं पर्युपासते ।
ब्रवीतु मे भवानेतत् क ते गच्छन्ति तादृशाः

भीष्म उवाच ।

रजसा तमसा चैव समवस्तीर्णचेतसः ।
नरकं प्रतिपद्यन्ते धर्मविद्वेषिणो जनाः ॥ २८
ये तु धर्मं महाराज सततं पर्युपासते ।
सत्यार्जवपराः सन्तस्ते वै स्वर्गभुजो नराः॥
धर्म एव गतिस्तेषामाचार्योपासनाद्भवेत् ।
देवलोकं प्रपद्यन्ते ये धर्मं पर्युपासते ॥ ३०
मनुष्या यदि वा देवाः शरीरमुपताप्य वै ।
धर्मिणः सुखमेधन्ते लोभद्वेषविवर्जिताः ३१
प्रथमं ब्रह्मणः पुत्रं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
धर्मिणः पर्युपासन्ते फलं पक्वमिवाशयः ॥ ३२

युधिष्ठिर उवाच ।

असतां कीदृशं रूपं साधवः किं च कुर्वते ।
ब्रवीतु मे भवानेतत्सन्तोऽसन्तश्च कीदृशाः

भीष्म उवाच ।

दुराचाराश्च दुर्धर्षा दुर्मुखाश्चाप्यसाधवः ।
साधवः शीलसंपन्नाः शिष्टाचारस्य लक्षणम्
राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च धर्मिणः
नोपसेवन्ति राजेन्द्र सर्गं मूत्रपुरीषयोः ॥ ३५
पञ्चानामशनं दत्वा शेषमश्नन्ति साधवः ।
न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रान्त्यार्द्रपाणयः
चित्रभानुमनड्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् ।
ब्राह्मणं धार्मिकं वृद्धं ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥
वृद्धानां भारतप्तानां स्त्रीणां चक्रधरस्य च ।
ब्राह्मणानां गवां राज्ञां पन्थानं ददते च ये ३८
अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च ।
तथा शरणकामानां गोप्ता स्यात्स्वागतप्रदः ॥
सायंप्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः ४०
होमकाले यथा वह्निः कालमेव प्रतीक्षते ।
ऋतुकाले तथा नारी ऋतुमेव प्रतीक्षते ॥ ४१
नान्यदा गच्छते यस्तु ब्रह्मचर्यं च तत्स्मृतम् ।
अमृतं ब्राह्मणा गाव इत्येतत्त्रयमेकतः ॥ ४२
तस्माद्गोब्राह्मणं नित्यमर्चयेत यथाविधि ।
यजुषा संस्कृतं मांसमुपभुञ्जन्न दुष्यति ।
पृष्ठमांसं वृथामांसं पुत्रमांसं च तत्समम् ४३
स्वदेशे परदेशे वाप्यतिथिं नोपवासयेत् ।
कर्म वै सफलं कृत्वा गुरूणां प्रतिपादयेत् ४४
गुरुभ्यस्त्वासनं देयमभिवाद्याभिपूज्य च ।
गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ४५

---

कथमेको धर्मस्त्रितयप्रतिपाद्य इत्याशङ्क्याह–**धर्मस्येति** । हे राजन्यद्येव धर्मत्रय मन्यसे तत्रेति शेष·।किन्तु ह्रियमाणस्यैकस्यैव धर्मस्य त्रिधा त्रिप्रकारा विचारणा एक एव प्रमाणत्रयसंवादेन परीक्षणीय इत्यर्थ· ॥ १९ ॥ त्रिधेत्यस्य व्याख्यानं एक एवेति त्रयाणा प्रमाणाना पृथक्त्वे प्रत्येकं स्वातंत्र्येण धर्मप्रतिपादकत्वे मम बुद्धिर्न च ॥ २० ॥ **उक्त इति** । प्रत्यक्षस्यातीन्द्रिये धर्मे प्रमाणाभावात् आचारस्य च प्रध्वंसितत्वात् त्रयाणा प्रमाणाना मध्ये परिशेषात् य उक्तो वेदे स एव मार्ग न तु परितर्कणाद्धर्मस्य विचार कर्तव्य इत्यर्थः ॥ २१ ॥ अत्र वेदे अशङ्की शङ्काशून्य· ॥ २२ ॥ आशयो भोक्तुर्मन ॥ ३२ ॥ कीदृशा· किंलक्षणा· किंकर्माणश्च ॥ ३३ ॥ सर्गं उत्सर्गम् ॥ ३५ ॥ पञ्चाना देवपितृभूतातिथिकुटुम्बानाम्॥ ३६ चक्रधरस्य भुजङ्गस्य बहुग्रामाधिपतेर्वा । ' भवेच्चक्रधरो विष्णौ भुजङ्गे ग्रामजालिनि इति **विश्वलोचनः** ॥ ३८॥ कर्म अध्ययनं प्रतिपादयेत् दक्षिणामिति शेष· ॥ ४४ ॥

वृद्धान्नाभिभवेज्जातु न चैतान्प्रेषयेदिति ।
नासीनः स्यात्स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते
न नग्नामीक्षते नारीं न नग्नान्पुरुषानपि ।
मैथुनं सततं गुप्तमाहारं च समाचरेत् ॥ ४७
तीर्थानां गुरवस्तीर्थं चोक्षाणां हृदयं शुचि ।
दर्शनानां परं ज्ञानं सन्तोषः परमं सुखम् ४८
सायं प्रातश्च वृद्धानां शृणुयात्पुष्कला गिरः
श्रुतमाप्नोति हि नरः सततं वृद्धसेवया ॥ ४९
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ।
यच्छेद्वाङ्मनसी नित्यमिन्द्रियाणि तथैव च
संस्कृतं पायसं नित्यं यवागूं कृसरं हविः ।
अष्टकाः पितृदैवत्या ग्रहाणामभिपूजनम् ५१
श्मश्रुकर्मणि मङ्गल्यं क्षुतानामभिनन्दनम् ।
व्याधितानां च सर्वेषामायुषामभिनन्दनम्५२
न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोपि महत्तरम् ।
त्वंकारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते
अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत्
पापमाचक्षते नित्यं हृदयं पापकर्मिणः ॥ ५४
ज्ञानपूर्वंकृतं कर्म च्छादयन्ते ह्यसाधवः ।
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने ॥५५
न मां मनुष्याः पश्यन्ति
न मां पश्यन्ति देवताः ।
पापेनाभिहितः पापः
पापमेवाभिजायते ॥ ५६
यथा वार्धुषिको वृद्धिं दिनभेदे प्रतीक्षते ।
धर्मेण पिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत् ॥ ५७
यथा लवणमंभोभिराप्लुतं प्रविलीयते ।
प्रायश्चित्तहतं पापं तथा सद्यः प्रणश्यति ५८
तस्मात्पापं न गूहेत गूहमानं विवर्धयेत् ।
कृत्वा तत्साधुष्वाख्येयं ते तत्प्रशमयन्त्युत ॥
आशया संचितं द्रव्यं कालेनैवोपभुज्यते ।
अन्ये चैतत्प्रपद्यन्ते वियोगे तस्य देहिनः॥६०
मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते॥६१
एक एव चरेद्धर्मं न धर्मध्वजिको भवेत् ।
धर्मवाणिजका ह्येते ये धर्ममुपभुञ्जते ॥ ६२
अर्चेद्देवानदम्भेन सेवेतामायया गुरून् ।
निधिं निदध्यात्पारत्र्यं यात्रार्थं दानशब्दितम्

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि धर्मप्रमाणकथने द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

## १६३

युधिष्ठिर उवाच ।
नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि ।
भागधेयान्वितस्त्वर्थान्कृशो बालश्च विन्दति
नालाभकाले लभते प्रयत्नेऽपि कृते सति ।
लाभकालेऽप्रयत्नेन लभते विपुलं धनम् ॥ २
कृतयत्नाफलाश्चैव दृश्यन्ते शतशो नराः ।
अयत्नेनैधमानाश्च दृश्यन्ते बहवो जनाः ॥ ३
यदि यत्नो भवेन्मर्त्यः स सर्वं फलमाप्नुयात् ।
नालभ्यं चोपलभ्येत नृणां भरतसत्तम ॥ ४
प्रयत्नं कृतवन्तोऽपि दृश्यन्ते ह्यफला नराः ।
मार्गत्यायशतैरर्थानमार्गश्चापरः सुखी ॥ ५

---

दक्षिणं पाणिं उद्धरेत् यज्ञोपवीती भवेत् ॥ ५० ॥ अभिपूजनं पायसादिभिः ॥ ५१ ॥ मङ्गल्यं मङ्गलवचनं अभिनन्दनं शतं जीवेति वचनेन सुखोत्पादनं च कुर्यादिति शेषः ॥ ५२ ॥ समाचरेदभिनन्दनं पापकर्मिणः स्वहृदयं पापिष्ठमित्याचक्षते कर्मणैव तेषां हृदयं ज्ञायत इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ धर्मध्वजिकः तत्प्रकाशकः ॥ ६२ ॥ पारत्र्यं परलोकहितम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

१६३

नाभागधेय इति ॥१॥ कृतो यत्नोऽफलो येषां ते कृतयत्नाफलाः ॥३॥ भवेत्समर्थः स्यात् ॥ ४ ॥ आयशतैः उपायशतैः सुखी धनेन ॥ ५ ॥

अकार्यमसकृत्कृत्वा दृश्यन्ते ह्यधना नराः ।
धनयुक्ताः स्वकर्मस्था दृश्यन्ते चापरेऽधनाः॥
अधीत्य नीतिशास्त्राणि नीतियुक्तो न दृश्यते
अनभिज्ञश्च साचिव्यं गमितः केन हेतुना ॥७
विद्यायुक्तो ह्यविद्यश्च धनवान् दुर्मतिस्तथा ।
यदि विद्यामुपाश्रित्य नरः सुखमवाप्नुयात् ॥८
न विद्वान्विद्यया हीनं वृत्त्यर्थमुपसंश्रयेत् ।
यथा पिपासां जयति पुरुषः प्राप्य वै जलम्९
दृष्टार्थो विद्यया ह्येव न विद्यां प्रजहेन्नरः ।
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।
तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥

भीष्म उवाच ।

ईहमानः समारम्भान् यदि नासादयेद्धनम् ।
उग्रं तपः समारोहेन्न ह्यनुप्तं प्ररोहति ॥ ११
दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया
अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः१२
तस्माद्दद्यान्न याचेत पूजयेद्धार्मिकानपि ।
सुभाषी प्रियकृच्छान्तः सर्वसत्त्वाविहिंसकः॥
यदा प्रमाणं प्रसवः स्वभावश्च सुखासुखे ।
दंशकीटपिपीलानां स्थिरो भव युधिष्ठिर १४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि धर्मप्रशंसायां त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

## १६४

भीष्म उवाच ।

कार्यते यच्च क्रियते सच्चासच्च कृताकृतम् ।
तत्राश्वसीत सत्कृत्वा असत्कृत्वा न विश्वसेत्
काल एव सर्वकाले निग्रहानुग्रहौ ददत् ।
बुद्धिमाविश्य भूतानां धर्माधर्मौ प्रवर्तते ॥ २
यदा त्वस्य भवेद्बुद्धिर्धर्मार्थस्य प्रदर्शनात् ।
तदाश्वसीत धर्मात्मा दृढबुद्धिर्न विश्वसेत्॥३
एतावन्मात्रमेतद्धि भूतानां प्राज्ञलक्षणम् ।
कालयुक्तोऽप्युभयविच्छेषं युक्तं समाचरेत् ॥४
यथा ह्युपस्थितैश्वर्याः प्रजायन्ते न राजसाः ।
एवमेवात्मनात्मानं पूजयन्तीह धार्मिकाः ॥५
न ह्यधर्मतयाऽधर्मं दद्यात्कालः कथंचन ।
तस्माद्विशुद्धमात्मानं जानीयाद्धर्मचारिणम् ६
स्प्रष्टुमप्यसमर्थो हि ज्वलन्तमिव पावकम् ।
अधर्मः संततो धर्मं कालेन परिरक्षितम् ॥ ७
कार्यावेतौ हि धर्मेण धर्मो हि विजयावहः ।
त्रयाणामपि लोकानामालोकः कारणं भवेत् ८
न तु कश्चिन्नयेत्प्राज्ञो गृहीत्वैव करे नरम् ।
उच्यमानस्तु धर्मेण धर्मलोकभयच्छले ॥ ९
शूद्रोऽहं नाधिकारो मे चातुराश्रम्यसेवने ।
इति विज्ञानमपरे नात्मन्युपदधत्युत ॥ १०

---

प्रसव प्रसवकारणं कर्मैव दंशादीनां सुखाद्यासौ प्रमाण नियामकं एवं स्वस्यापि ज्ञात्वा स्थिरोऽचञ्चलो भव ॥१४॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६३ ॥

१६४

**कार्यत इति** ॥ १ ॥ प्रवर्तते प्रवर्तयति ॥ २ ॥ धर्मार्थस्य धर्मफलस्य प्रदर्शनात् यदा धर्म एव श्रेयस्कर इति बुद्धिर्भवेत्तदाऽयं धर्मात्मा धर्मचित्त धर्मे आश्वसीत विश्वासं कुर्वीत अदृढबुद्धिस्तु न विश्वसेत् धर्मफले ॥ ३ ॥ एतावद्धर्मे विश्वासवत्त्वं उभयवित्कर्तव्याकर्तव्यवित् ॥ ४ ॥ राजसा मलिना. ॥ ५ ॥ धर्म. कदाप्यधर्मो न भवेदित्याह—**न हीति** । अधर्मतया दु खहेतुतया ॥ ६ ॥ एतौ विशुद्धताऽधर्मास्पर्शौ ॥ ८ ॥ नयेद्धर्ममिति शेष. । धर्मेण धर्मानुष्ठानार्थं इतरैरुच्यमान प्रेर्यमाण. सन्सर्वलोकभयच्छले तेषा प्रतारणे प्रवर्तते । यद्वा । स्वं निस्तारं स्वयमेवाचरेदित्याह—**न त्विति** नयेत् ऊर्ध्वमिति शेष.। किंतु धर्मभयलोकभययोश्छलेच्छलने निवृत्तिनिमित्तं धर्मेण हेतुना अर्थात्प्राज्ञेन उच्यमान एव नर ऊर्ध्वं गच्छतीति शेषः । शूद्रोऽहमित्यादि वदन्तीति शेषपूरणेन योज्यम् ॥ ९ ॥ अपरे साधव न उपदधति न छलं कुर्वन्ति यथाधिकारं धर्मं कुर्वन्ति न छलमित्यर्थ तस्मात्प्रवर्तना सर्वा व्यर्थैवेति भाव ॥ १० ॥

विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिङ्गतः ।
पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम्॥ ११
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम् ।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः १२
अध्रुवो हि कथं लोकः स्मृतो धर्मः कथं ध्रुवः ।
यत्र कालो ध्रुवस्तात तत्र धर्मः सनातनः १३
सर्वेषां तुल्यदेहानां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ।
कालो धर्मेण संयुक्तः शेष एव स्वयं गुरुः १४
एवं सति न दोषोऽस्ति भूतानां धर्मसेवने ।
तिर्यग्योनावपि सतां लोक एव मतो गुरुः १५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि धर्मप्रशंसायां चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

## १६५

वैशम्पायन उवाच ।
शरतल्पगतं भीष्मं पाण्डवोऽथ कुरूद्वहः ।
युधिष्ठिरो हितं प्रेप्सुरपृच्छत्कल्मषापहम् ॥ १
युधिष्ठिर उवाच ।
किं श्रेयः पुरुषस्येह किं कुर्वन्सुखमेधते ।
विपाप्मा स भवेत्केन किं वा कल्मषनाशनम्
वैशम्पायन उवाच ।
तस्मै शुश्रूषमाणाय भूयः शान्तनवस्तदा ।
दैवं वंशं यथान्यायमाचष्ट पुरुषर्षभ ॥ ३
भीष्म उवाच ।
अयं दैवतवंशो वै ऋषिवंशसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यं पठितः पुत्र कल्मषापहरः परः ॥ ४
यदह्ना कुरुते पापमिन्द्रियैः पुरुषश्चरन् ।
बुद्धिपूर्वमबुद्धिर्वा रात्रौ यच्चापि सन्ध्ययोः ५
मुच्यते सर्वपापेभ्यः कीर्तयन्वै शुचिः सदा ।
नान्धो न बधिरः काले कुरुते स्वस्तिमान्सदा
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च नरकं सङ्कराणि च ।
न च दुःखभयं तस्य मरणे स न मुह्यति ॥ ७
देवासुरगुरुर्देवः
सर्वभूतनमस्कृतः ।
अचिन्त्योऽथाप्यनिर्देश्यः
सर्वप्राणो ह्ययोनिजः ॥ ८
पितामहो जगन्नाथः सावित्री ब्रह्मणः सती ।
वेदभूरथ कर्ता च विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥ ९
उमापतिर्विरूपाक्षः स्कन्दः सेनापतिस्तथा ।
विशाखो हुतभुग्वायुश्चन्द्रसूर्यौ प्रभाकरौ॥१०
शक्रः शचीपतिर्देवो यमो धूमोर्णया सह ।
वरुणः सह गौर्या च सह ऋद्ध्या धनेश्वरः११
सौम्या गौः सुरभिर्देवी विश्रवाश्च महानृषिः
सङ्कल्पः सागरो गङ्गा स्रवन्त्योऽथ मरुद्गणाः॥
वालखिल्यास्तपःसिद्धाः कृष्णद्वैपायनस्तथा
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ १२

---

विशेषेणेति युग्मं सर्वेषां प्राणिनां पुरुषाणां वा पाञ्चभौतिकत्वे प्रत्यक्षेऽपि विशेषकरणं इदं पवित्रमिदमपवित्रमिति व्यवस्थापनं लोकधर्मे शास्त्रीयधर्मे च निमित्ते सति कृतम् । पशुपामरपण्डितानां यथा पुनर्विहितेनैते एकत्वं प्राकृतं गच्छेयुरिति शास्त्रेण धर्मनियम कृत इत्यर्थः ॥११॥ अत्र शङ्कते—**अध्रुव इति** । लोकस्य धर्मस्य च कार्यकारणभावात्कार्यस्याध्रुवत्वं कारणस्य ध्रुवत्वं च न युक्तं तन्तुनाशमन्तरेण पटनाशायोगादित्यर्थः । उत्तरमाह—**कालः** सङ्कल्पः निष्कामधर्म एव ध्रुवस्तत्फलं न तु सकाम इत्यर्थ ॥ १३ ॥ **सर्वेषामिति**। धर्मसंयुक्तः सङ्कल्प एव शेष शिष्यते नान्यः । स च कथमुदेष्यतीत्यत्राह—**स्वयं गुरुरिति**। धर्मबलात्स्वयमेव च स उदेति न शिक्षयेदित्यर्थः ॥ १४ ॥ **एवमिति** । यदा भूतानां प्राक्कर्मैव तत्र तत्र सुखदुःखसाधने प्रवर्तकं अतो धर्मसेवने कर्मफलभोगे असमञ्जसेऽपि भूतानां दोषो नास्ति । यतः तिर्यग्योनावपि सतां विद्यमानानां भूतानां सदसत्प्रवृत्तौ पूर्वकर्मानुसाराल्लोक एव गुरुर्दृष्टः । विधिनियन्त्रितो लोकदृष्टान्तेनैव साधुन्यसाधुनि वा कर्मणि प्रवर्तते इत्यर्थः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

१६५

**शरतल्पगतमि**त्यध्यायद्वयं स्पष्टार्थम् ॥ १ ॥

तुम्बुरुश्चित्रसेनश्च देवदूतश्च विश्रुतः ।
देवकन्या महाभागा दिव्याश्चाप्सरसां गणाः
उर्वशी मेनका रम्भा मिश्रकेशी ह्यलम्बुषा ।
विश्वाची च घृताची च पञ्चचूडा तिलोत्तमा
आदित्या वसवो रुद्राः साश्विनः पितरोऽपि च
धर्मः श्रुतं तपो दीक्षा व्यवसायः पितामहः॥
शर्वर्यो दिवसाश्चैव मारीचः कश्यपस्तथा ।
शुक्रो बृहस्पतिर्भौमो बुधो राहुः शनैश्चरः ॥
नक्षत्राण्यृतवश्चैव मासाः पक्षाः सवत्सराः ।
वैनतेयाः समुद्राश्च कद्रुजाः पन्नगास्तथा १८
शतद्रुश्च विपाशा च चन्द्रभागा सरस्वती ।
सिन्धुश्च देविका चैव प्रभासं पुष्कराणि च ॥
गङ्गा महानदी वेणा कावेरी नर्मदा तथा ।
कुलंपुना विशल्या च करतोयांबुवाहिनी २०
सरयूर्गण्डकी चैव लोहितश्च महानदः ।
ताम्राऽरुणा वेत्रवती पर्णाशा गौतमी तथा॥
गोदावरी च वेण्या च कृष्णवेणा तथाऽद्रिजा
दृषद्वती च कावेरी चक्षुर्मन्दाकिनी तथा २२
प्रयागं च प्रभासं च पुण्यं नैमिषमेव च ।
तच्च विश्वेश्वरस्थानं यत्र तद्विमलं सरः ॥ २३
पुण्यतीर्थं सुसलिलं कुरुक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।
सिन्धूत्तमं तपोदानं जबूमार्गमथापि च ॥ २४
हिरण्वती वितस्ता च तथा प्लक्षवती नदी ।
वेदस्मृतिर्वेदवती मालवाथाश्ववत्यपि ॥ २५
भूमिभागास्तथा पुण्या गङ्गाद्वारमथापि च ।
ऋषिकुल्यास्तथा मेध्या नद्यः सिंधुवहास्तथा
चर्मण्वती नदी पुण्या कौशिकी यमुना तथा।
नदी भीमरथी चैव बाहुदा च महानदी ॥ २७
माहेन्द्रवाणी त्रिदिवा नीलिका च सरस्वती।
नन्दा चापरनन्दा च तथा तीर्थमहाह्रदः २८
गयाऽथ फल्गुतीर्थं च धर्मारण्यं सुरैर्वृतम् ।
तथा देवनदी पुण्या सरश्च ब्रह्मनिर्मितम् २९
पुण्यं त्रिलोकविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् ।
हिमवान्पर्वतश्चैव दिव्यौषधिसमन्वितः॥ ३०
विंध्यो धातुविचित्राङ्गस्तीर्थवानौषधान्वितः
मेरुर्महेन्द्रो मलयः श्वेतश्च रजतावृतः ॥ ३१
शृङ्गवान्मन्दरो नीलो निषधो दर्दुरस्तथा ।
चित्रकूटोऽजनाभश्च पर्वतो गन्धमादनः ३२
पुण्यः सोमगिरिश्चैव तथैवान्ये महीधराः ।
दिशश्च विदिशश्चैव क्षितिः सर्वे महीरुहाः ३३
विश्वेदेवा नभश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।

पांतु नः सतत देवाः कीर्तिताऽकीर्तिता मया
कीर्तयानो नरो ह्येतान्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
स्तुवंश्च प्रतिनन्दंश्च मुच्यते सर्वतो भयात् ३५
सर्वसङ्करपापेभ्यो देवतास्तवनन्दकः ।
देवतानन्तरं विप्रांस्तपःसिद्धांस्तपोधिकान्
कीर्तितान्कीर्तयिष्यामि सर्वपापप्रमोचनान्
यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च कक्षीवानौशिजस्तथा
भृग्वङ्गिरास्तथा कण्वो मेधातिथिरथ प्रभुः ।
बर्हीं च गुणसम्पन्नः प्राची दिशमुपाश्रिताः३८
भद्रां दिश महाभागा उल्मुचुः प्रमुचुस्तथा ।
मुमुचुश्च महाभागः स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान्३९
मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान्
दृढायुश्चोर्ध्वबाहुश्च विश्रुतावृषिसत्तमौ ॥ ४०
पश्चिमां दिशमाश्रित्य य एधंते निबोध तान्
उषंगुः सह सोदर्यैः परिव्याधश्च वीर्यवान् ४१
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव गौतमः काश्यपस्तथा ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महानृषिः ॥ ४२
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा तथा सारस्वतः प्रभुः ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान्॥
अत्रिर्वसिष्ठः शक्तिश्च पाराशर्यश्च वीर्यवान् ।
विश्वामित्रो भरद्वाजो जमदग्निस्तथैव च ४४
ऋचीकपुत्रो रामश्च ऋषिरौद्दालकिस्तथा ।
श्वेतकेतुः कोहलश्च विपुलो देवलस्तथा ४५
देवशर्मा च धौम्यश्च हस्तिकाश्यप एव च ।
लोमशो नाचिकेतश्च लोमहर्षण एव च ४६
ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्च्यवनस्तथा ॥
एष वै समवायश्च ऋषिदेवसमन्वितः ॥ ४७
आद्यः प्रकीर्तितो राजन्सर्वपापप्रमोचनः ।
नृगो ययातिर्नहुषो यदुः पूरुश्च वीर्यवान् ४८
धुंधुमारो दिलीपश्च सगरश्च प्रतापवान् ।
कृशाश्वो यौवनाश्वश्च चित्राश्वः सत्यवांस्तथा
दुष्यन्तो भरतश्चैव चक्रवर्ती महायशाः ।
पवनो जनकश्चैव तथा दृष्टरथो नृपः ५०
रघुर्नरवरश्चैव तथा दशरथो नृपः ।
रामो राक्षसहा वीरः शशबिन्दुर्भगीरथः ५१
हरिश्चन्द्रो मरुत्तश्च तथा दृढरथो नृपः ।
महोदर्यो ह्यलर्कश्च ऐलश्चैव नराधिपः ॥ ५२
करंधमो नरश्रेष्ठः कध्मोरश्च नराधिपः ।
दक्षोऽम्बरीषः कुकुरो रैवतश्च महायशाः ॥ ५३

रुः संवरणश्चैव मांधाता सत्यविक्रमः ।
चुकुन्दश्च राजर्षिर्जह्नुर्जाह्नविसेवितः ॥ ५४
ादिराजः पृथुर्वैन्यो मित्रभानुः प्रियङ्करः ।
सदस्युस्तथा राजा श्वेतो राजर्षिसत्तमः ५५
हाभिषश्च विख्यातो निमिराजा तथाऽष्टकः
ायुः क्षुपश्च राजर्षिः कक्षेयुश्च नराधिपः ५६
तर्दनो दिवोदासः सुदासः कोसलेश्वरः ।
लो नलश्च राजर्षिर्मनुश्चैव प्रजापतिः ॥ ५७
विध्रश्च पृषध्रश्च प्रतीपः शांतनुस्तथा ।
अजः प्राचीनबर्हिश्च तथेक्ष्वाकुर्महायशाः ५८
अनरण्यो नरपतिर्जानुजंघस्तथैव च ।
कक्षसेनश्च राजर्षिर्ये चान्ये चानुकीर्तिताः ५९
कल्यमुत्थाय यो नित्यं संध्ये द्वेऽस्तमयोदये
पठेच्छुचिरनावृत्तः स धर्मफलभाग्भवेत् ६०
देवा देवर्षयश्चैव स्तुता राजर्षयस्तथा ।
पुष्टिमायुर्यशः स्वर्गं विधास्यन्ति ममेश्वराः
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः
ध्रुवो जयो मे नित्यः स्यात्परत्र च शुभा गतिः

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि वंशानुकीर्तनं नाम
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

## १६६

जनमेजय उवाच ।
शरतल्पगते भीष्मे कौरवाणां धुरंधरे ।
शयाने वीरशयने पांडवैः समुपस्थिते ॥ १
युधिष्ठिरो महाप्राज्ञो मम पूर्वपितामहः ।
धर्माणामागमं श्रुत्वा विदित्वा सर्वसंशयान्
दानानां च विधिं श्रुत्वा छिन्नधर्मार्थसंशयः
यदन्यदकरोद्विप्र तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
अभून्मुहूर्तं स्तिमितं सर्वं तद्राजमण्डलम् ।
तूष्णींभूते ततस्तस्मिन्पटे चित्रमिवार्पितम् ४
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यवतीसुतः
नृपं शयानं गाङ्गेयमिदमाह वचस्तदा ॥ ५
राजन्प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः
उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता ।
तमिमं पुरयानाय समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७
एवमुक्तो भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः ।
युधिष्ठिरं सहामात्यमनुजज्ञे नदीसुतः ॥ ८
उवाच चैनं मधुरं नृप शातनवो नृपः ।
प्रविशस्व पुरीं राजन्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥९
यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बह्वन्नैः स्वाप्तदक्षिणैः ।
ययातिरिव राजेन्द्र श्रद्धादमपुरःसरः ॥ १०
क्षत्रधर्मरतः पार्थ पितॄन्देवांश्च तर्पय ।
श्रेयसा योक्ष्यसे चैव व्येतु ते मानसो ज्वरः
रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसांत्वय ॥
सुहृदः फलसत्कारैरर्चयस्व यथार्हतः ॥ १२
अनु त्वां तात जीवंतु मित्राणि सुहृदस्तथा ।
चैत्यस्थाने स्थितं वृक्षं फलवन्तमिव द्विजाः
आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव ।
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे १४
तथेत्युक्त्वा च कौंतेयः सोभिवाद्य पितामहम्
प्रययौ सपरीवारो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १५
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गांधारीं च पतिव्रताम् ।
सह तैर्ऋषिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः केशवेन च १६
पौरजानपदैश्चैव मन्त्रिवृद्धैश्च पार्थिव ।
प्रविवेश कुरुश्रेष्ठः पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि भीष्मानुज्ञायां
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

॥ समाप्तमानुशासनिकं पर्व ॥

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १६५ ॥

१६६

**शरतल्पगत इति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

# भीष्मस्वर्गारोहणपर्व २

## १६७

वैशम्पायन उवाच ।

ततः कुंतीसुतो राजा पौरजानपदं जनम् ।
पूजयित्वा यथान्यायमनुजज्ञे गृहान्प्रति ॥ १
सान्त्वयामास नारीश्च हतवीरा हतेश्वराः ।
विपुलैरर्थदानैः स तदा पाण्डुसुतो नृपः ॥ २
सोभिषिक्तो महाप्राज्ञः प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरः
अवस्थाप्य नरश्रेष्ठः सर्वाः स्वप्रकृतीस्तथा ॥ ३
द्विजेभ्यो गुणमुख्येभ्यो नैगमेभ्यश्च सर्वशः ।
प्रतिगृह्याशिषो मुख्यास्तथा धर्मभृतां वरः॥४
उषित्वा शर्वरीः श्रीमान्पञ्चाशन्नगरोत्तमे ।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ ५
स निर्ययौ गजपुराद्याजकैः परिवारितः ।
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम् ॥ ६
घृतं माल्यं च गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः
चन्दनागुरुमुख्यानि तथा कालीयकान्यपि॥७
प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो भीष्मसंस्करणाय वै
माल्यानि च वरार्हाणि रत्नानि विविधानि च
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम्
मातरं च पृथां धीमान्भ्रातॄंश्च पुरुषर्षभान् ॥ ९
जनार्दनेनानुगतो विदुरेण च धीमता ।
युयुत्सुना च कौरव्यो युयुधानेन वा विभो ॥
महता राजभोगेन पारिबर्हेण संवृतः ।
स्तूयमानो महातेजा भीष्मस्याग्नीननुव्रजन्
निश्चक्राम पुरात्तस्माद्यथा देवपतिस्तथा ॥
आससाद कुरुक्षेत्रे ततः शान्तनवं नृपः ॥ १२
उपास्यमानं व्यासेन पाराशर्येण धीमता ।
नारदेन च राजर्षे देवलेनासितेन च ॥ १३
हतशिष्टैर्नृपैश्चान्यैर्नानादेशसमागतैः ।
रक्षिभिश्च महात्मानं रक्ष्यमाणं समंततः ॥१४
शयानं वीरशयने ददर्श नृपतिस्ततः ।
ततो रथादवातीर्य भ्रातृभिः सह धर्मराट् १५
अभिवाद्याथ कौन्तेयः पितामहमरिन्दमम् ।
द्वैपायनादीन्विप्रांश्च तैश्च प्रत्यभिनन्दितः ॥१६
ऋत्विग्भिर्ब्रह्मकल्पैश्च भ्रातृभिः सह धर्मजः ।
आसाद्य शरतल्पस्थमृषिभिः परिवारितम् ॥
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सह कौरव्यः शयानं निम्नगासुतम्
युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जाह्नवीसुत ।
शृणोषि चेन्महाबाहो ब्रूहि किं करवाणि ते
प्राप्तोऽस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो ।
आचार्यान्ब्राह्मणांश्चैव ऋत्विजो भ्रातरश्च मे
पुत्रश्च ते महातेजा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
उपस्थितः सहामात्यो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥
हतशिष्टाश्च राजानः सर्वे च कुरुजाङ्गलाः ।
तान्पश्य नरशार्दूल समुन्मीलय लोचने ॥२२
यच्चेह किंचित्कर्तव्यं तत्सर्वं प्रापितं मया ।
यथोक्तं भवता काले सर्वमेव च तत्कृतम् २३

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः कुन्तीपुत्रेण धीमता ।
ददर्श भारतान्सर्वान्स्थितान्संपरिवार्य ह २४
ततश्च तं बली भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजम् ।
उद्यन्मेघस्वरो वाग्मी काले वचनमब्रवीत् ॥
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय
सहामात्यो युधिष्ठिर ।
परिवृत्तो हि भगवान्
सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २६
अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः ।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ २७
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति २८
एवमुक्त्वा तु गाङ्गेयो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
धृतराष्ट्रमथामन्त्र्य काले वचनमब्रवीत् ॥ २९

भीष्म उवाच ।

राजन्विदितधर्मोऽसि सुनिर्णीतार्थसंशयः ।
बहुश्रुता हि ते विप्रा बहवः पर्युपासिताः ३०

---

१६७

**तत इति** ॥१॥ भीष्मस्याग्नीनिति तेन तस्यापि पत्नी आसीत् यद्वा संस्कारकानग्नीन् ॥११॥ **माघोऽयमिति** सौम्यश्चान्द्रः मासस्य चतुर्भागकरणे सार्धसप्ततिर्भागत्वात् अष्टम्यर्धस्यानतीतत्वेन प्रथमभागस्य विद्यमानत्वात् त्रिभागशेषो भवितुमर्हतीत्यर्थः । तेनाद्याष्टमीत्यर्थः ॥ २८ ॥

वेदशास्त्राणि सर्वाणि धर्माश्च मनुजेश्वर ।
वेदांश्च चतुरः सर्वान्निखिलेनानुबुद्ध्यसे ॥ ३१
न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हि तत्तथा ।
श्रुतं देवरहस्यं ते कृष्णद्वैपायनादपि ॥ ३२
यथा पाण्डोः सुता राजंस्तथैव तव धर्मतः ।
तान्पालय स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतान् ॥ ३३
धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव ।
आनृशंस्यपरं ह्येनं जानामि गुरुवत्सलम् ३४
तव पुत्रा दुरात्मानः क्रोधलोभपरायणाः ।
ईर्ष्याभिभूता दुर्वृत्तास्तान्न शोचितुमर्हसि ३५

वैशम्पायन उवाच ।

एतावदुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
वासुदेवं महाबाहुमभ्यभाषत कौरवः ॥ ३६

भीष्म उवाच ।

भगवन्देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत ।
त्रिविक्रम नमस्तुभ्यं शङ्खचक्रगदाधर ॥ ३७
वासुदेवो हिरण्यात्मा पुरुषः सविता विराट्
जीवभूतोऽनुरूपस्त्वं परमात्मा सनातनः ३८
त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम नित्यशः ।
अनुजानीहि मा कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ ३९
रक्ष्याश्च ते पाण्डवेया भवान्येषां परायणम् ।
उक्तवानस्मि दुर्बुद्धिं मन्दं दुर्योधनं तदा ४०
'यतः कृष्णस्ततो धर्मो' यतो धर्मस्ततो जयः ।
वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ॥ ४१
सन्धानस्य परः कालस्तवेति च पुनः पुनः ।
न च मे तद्वचो मूढः कृतवान्स सुमन्दधीः ।
घातयित्वेह पृथिवीं ततः स निधनं गतः ४२
त्वां तु जानाम्यहं देवं पुराणमृषिसत्तमम् ।
नरेण सहितं देव बदर्यां सुचिरोषितम् ॥ ४३
तथा मे नारदः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः ।
नरनारायणावेतौ सम्भूतौ मनुजेष्विति ॥ ४४
स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम्
त्वयाऽहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम् ॥

वासुदेव उवाच ।

अनुजानामि भीष्म त्वां वसून्प्राप्नुहि पार्थिव
न तेऽस्ति वृजिनं किञ्चिदिहलोके महाद्युते
पितृभक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः ।
तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भृत्य इवानतः ४७

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः पाण्डवानिदमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रमुखांश्चापि सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ ४८
प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि तत्रानुज्ञातुमर्हथ ।
सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ४९
आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः ।
ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः ॥ ५०
इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान्सम्परिष्वज्य चैव ह ।
पुनरेवाब्रवीद्धीमान्युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ५१
ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः ।
आचार्या ऋत्विजश्चैव पूजनीया जनाधिप ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

## १६८

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान् भीष्मः शांतनवस्तदा
तूष्णीं बभूव कौरव्यः स मुहूर्तमरिंदम ॥ १
धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम् ।
तस्योर्ध्वमगमन्प्राणाः सन्निरुद्धा महात्मनः २

---

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

१६८

**एवमुक्त्वेति** ॥ १ ॥ धारणासु आधारादिषु स्थानेषु यथाक्रमं मूलाधारात् स्वाधिष्ठानं ततो मणिपूरं ततोऽनाहतं ततो विशुद्धिं तत आज्ञामेवं क्रमेण मन मर्दितं वायुं निरुन्धन्नुपर्युपर्यानीतवानित्यर्थः ॥ २ ॥

इदमाश्चर्यमासीच्च मध्ये तेषां महात्मनाम् ।
सहितैर्ऋषिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिः प्रभो
यद्यन्मुंचति गात्रं हि स शान्तनुसुतस्तदा ।
तत्तद्विशल्यं भवति योगयुक्तस्य तस्य वै ॥ ४
क्षणेन प्रेक्षतां तेषां विशल्यः सोऽभवत्तदा ।
तद्दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ५
सह तैर्मुनिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिर्नृप ।
सन्निरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ६
जगाम भित्त्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात ह ।
देवदुन्दुभिनादश्च पुष्पवर्षैः सहाभवत् ॥ ७
सिद्धा ब्रह्मर्षयश्चैव साधु साध्विति हर्षिताः ।
महोल्केव च भीष्मस्य मूर्धदेशाज्जनाधिप ॥८
निःसृत्याकाशमाविश्य क्षणेनान्तरधीयत ।
एवं स राजशार्दूल नृपः शान्तनवस्तदा ॥ ९
समयुज्यत कालेन भरतानां कुलोद्वहः ।
ततस्त्वादाय दारूणि गन्धांश्च विविधान्बहून्
चितां चक्रुर्महात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा।
युयुत्सुश्चापि कौरव्यं प्रेक्षकास्त्वितरेऽभवन्॥
युधिष्ठिरश्च गाङ्गेयं विदुरश्च महामतिः ।
छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवम्॥१२
धारयामास तस्याथ युयुत्सुश्छत्रमुत्तमम् ।
चामरव्यजने शुभ्रे भीमसेनार्जुनावुभौ ॥ १३
उष्णीषे परिगृह्णीतां माद्रीपुत्रावुभौ तथा ।
स्त्रियः कौरवनाथस्य भीष्मं कुरुकुलोद्वहम्१४
तालवृन्तान्युपादाय पर्यवीजन्त सर्वशः ।
ततोऽस्य विधिवच्चक्रुः पितृमेधं महात्मनः१५
यजनं बहुशश्चाग्नौ जगुः सामानि सामगाः ।
ततश्चन्दनकाष्ठैश्च तथा कालीयकैरपि ॥ १६
कालागुरुप्रभृतिभिर्गन्धैश्चोच्चावचैस्तथा ।
समवच्छाद्य गाङ्गेयं संप्रज्वाल्य हुताशनम् ॥
अपसव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्रमुखाश्चिताम् ।
संस्कृत्य च कुरुश्रेष्ठं गाङ्गेयं कुरुसत्तमाः ॥१८
जग्मुर्भागीरथीं पुण्यामृषिजुष्टां कुरूद्वहाः ।
अनुगम्यमाना व्यासेन नारदेनासितेन च १९
कृष्णेन भरतस्त्रीभिर्ये च पौराः समागताः ।
उदकं चक्रिरे चैव गाङ्गेयस्य महात्मनः ॥ २०

विधिवत्क्षत्रियश्रेष्ठाः स च सर्वो जनस्तदा ।
ततो भागीरथी देवी तनयस्योदके कृते ॥ २१
उत्थाय सलिलात्तस्माद्रुदती शोकविह्वला ।
परिदेवयती तत्र कौरवानभ्यभाषत ॥ २२
निबोधत यथावृत्तमुच्यमानं मयाऽनघाः ।
राजवृत्तेन संपन्नः प्रज्ञयाऽभिजनेन च ॥ २३
सत्कर्ता कुरुवृद्धानां पितृभक्तो महाव्रतः ।
जामदग्न्येन रामेण यः पुरा न पराजितः॥२४
दिव्यैरस्त्रैर्महावीर्यः स हतोऽद्य शिखण्डिना
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम पार्थिवाः ॥ २५
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं यन्न दीर्यति मेऽद्य वै ।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां स्वयंवरे ॥ २६
विजित्यैकरथेनैव कन्याश्चायं जहार ह ।
यस्य नास्ति बले तुल्यः पृथिव्यामपि कश्चन
हतं शिखण्डिना श्रुत्वा न विदीर्येत यन्मनः।
जामदग्न्यः कुरुक्षेत्रे युधि येन महात्मना २८
पीडितो नातियत्नेन स हतोऽद्य शिखंडिना ।
एवंविधं बहु तदा विलपन्तीं महानदीम् ॥ २९
आश्वासयामास तदा गङ्गां दामोदरो विभुः।
समाश्वसिहि भद्रे त्वं मा शुचः शुभदर्शने३०
गतः स परमं लोकं तव पुत्रो न संशयः ।
वसुरेष महातेजाः शापदोषेण शोभने ॥ ३१
मानुषत्वमनुप्राप्तो नैनं शोचितुमर्हसि ।
स एष क्षत्रधर्मेण अयुध्यत रणाजिरे ॥ ३२
धनंजयेन निहतो नैष देवि शिखण्डिना ।
भीष्मं हि कुरुशार्दूलमुद्यतेषुं महारणे ॥ ३३
न शक्तः संयुगे हन्तुं साक्षादपि शतक्रतुः ।
स्वच्छंदतस्तव सुतो गतः स्वर्गं शुभानने ॥३४
न शक्ता विनिहन्तुं हि रणे तं सर्वदेवताः ।
तस्मान्मा त्वं सरिच्छ्रेष्ठे शोचस्व कुरुनंदनम्
वसूनेष गतो देवि पुत्रस्ते विज्वरा भव ॥३५

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्ता सा तु कृष्णेन व्यासेन तु सरिद्वरा
त्यक्त्वा शोकं महाराज स्वं वार्यवततार ह॥
सत्कृत्य ते तां सरितं ततः कृष्णमुखा नृप ।
अनुज्ञातास्तया सर्वे न्यवर्तन्त जनाधिपाः३७

---

**यद्यदिति** प्राणेन मुक्तं गात्रं प्रशिथिलावयवसंयोग सत् ममापि शरं धारयितुमक्षममभूत् अतस्तत्तदङ्ग विशल्यमभूदित्यर्थ. ॥ ४ ॥ आत्मा प्राणसंयुक्तं मन· ॥ ६ ॥ उष्णीषे किरीटशिरोवेष्टे । 'उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणान्तरे' इति **मेदिनी** ॥१४॥ मरणज शोकमपनयति-**वसुरेष इति**। देवस्य मानुषत्वं नरकतुल्य अतोऽयं हीनस्थानादुत्तम लोकं गतो न शोच्य इत्यर्थ ॥ ३१ ॥ नीचहस्तेन मरणजातं शोकं दूरीकरोति-**स एष इति** ॥ ३२ ॥ अर्जुनमपि शप्स्यतीति शङ्कया तस्य मृत्युभयमेव नास्तीत्याह-**भीष्मं हीति** ॥ ३३ ॥

**इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे भीष्ममुक्तिर्नाम अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥**

॥ इति अनुशासनपर्व समाप्तम् ॥

---

गोपालं भूम्नि वेदे शिवमुपनिषदि ब्रह्मविल्लक्ष्मणार्यं
तर्के धीरेशमिश्रान् फणिपतिभणितौ पोलगङ्गाधरार्यम् ।
भाट्टे नारायणं यो गुरुमकृत ततं दक्षिणामूर्त्युपास्तौ
श्रौते चिन्तामणिं च व्यभजत स महाभारते दानधर्मान् ॥ १ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे अनुशासनपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

अतः परमाश्वमेधिकं पर्व भविष्यति । तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

वैशम्पायन उवाच ।

कृतोदकं तु राजानं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः ।
पुरस्कृत्य महाबाहुरुत्तताराकुलेन्द्रियः ॥ १

॥ इति श्रीमहाभारते *अनुशासनपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे ' एतत्त्रयोदशं पर्व धर्मनिश्चयकारकम् । अध्यायानां शतं त्वत्र षट्चत्वारिंशदेव तु । श्लोकानां तु सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टौ प्रसंख्यया ' इत्युक्तम् । तथापि संप्रति पर्वण्यस्मिन् अध्यायाः १६८, श्लोकाश्च ७७०१ एतावन्त एव प्रायो दृश्यन्ते । एतत्सुधीभिर्मन्तव्यम् ।

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डित-रामचन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितष्टिप्पण्यादिना परिष्कृतश्च । भारती जयतु ॥ शाकः १८५५ ॥

# The Mahābhāratam

**with the Bharata Bhawadeepa Commentary of Nilkaṇṭha**

*edited by*
Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar

**14. Ashwamedhika Parva**
*Illustrated*



ORIENTAL REPRINT

*Oriental Books Reprint Corporation*
54 Rani Jhansi Road New Delhi-110055

# श्रीः महाभारतम् ।

चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर
इत्येतैः पाठान्तरटिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्

१४. आश्वमेधिकपर्व

ORIENTAL REPRINT

ओरियण्टल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

---

## आश्वमेधिकपर्व ।

### —१४—

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| **(१) अश्वमेधपर्व १–२०** | | | |
| १ | २० | भीष्मायोदकं दत्वोत्तीर्य शोकेन पतितं कृष्णप्रेरितेन भीमेनाश्वासितं युधिष्ठिरं प्रति धृतराष्ट्रस्य विलापवाक्यम् .. ... | २ |
| २ | २० | 'अतीव मनसा शोकः' (२) इत्यादिनाऽऽश्वासयन्तं श्रीकृष्णं प्रति युधिष्ठिरे 'गोविन्द मयि या प्रीतिः' (१०) इत्याद्युक्त्वा 'यदि मामनुजानीयात' (१२)इत्यादिना वनं गन्तुमनुज्ञां प्रार्थयति तं सान्त्वयन्व्यासः 'अकृता ते मतिस्तात' (१५) इत्याद्युवाच .. | ३ |
| ३ | २३ | युधिष्ठिर तव प्रज्ञा' (१) इत्यादिना पुरुषस्येश्वराधीनत्वं प्रतिपाद्य पापनिवृत्त्यर्थमश्वमेधेन यजस्वेति व्यासेनोक्तं श्रुत्वा युधिष्ठिरः कोशाद्यभावमूलकं स्वासामर्थ्यं प्रकटयति स्म। युधिष्ठिरोक्तं श्रुतवता व्यासेन 'मरुत्तयज्ञे ब्राह्मणैरुत्सृष्टं द्रव्यं हिमालये बहु वर्तते तदानय तत्पर्याप्तं भविष्यति' (२१) इति कथितं श्रुत्वा 'कथं यज्ञे मरुत्तस्य' (२२) इति युधिष्ठिरेण पृष्टः स तत्कथयितुं प्रतिजज्ञे ... . . | ४ |
| ४ | २८ | मरुत्तकथां कथयेति युधिष्ठिरेणानुयुक्तो व्यासः मरुत्तोपाख्यानं कथयन् मनुप्रभृतिवंशपरंपरायामुत्पन्नं करंधमपुत्रमविक्षितं सवर्ण्य तत्पुत्रेण मरुत्तेन मेरुशिखरे कृतं यज्ञं स्वर्णमयीं तत्सामग्रीं च कथयति स्म .. ... | ५ |
| ५ | २८ | 'कथंवीर्यः समभवत' (१) इत्यादिना राजवीर्यविषयकं यज्ञविषयकं च प्रश्नं कुर्वति युधिष्ठिरे तदुत्तरं वदन्व्यासः करंधमं तत्पुत्रमविक्षितं च संवर्ण्य तत्पुत्रं मरुत्तं वर्णयन्तत्कर्माण्याचख्यौ। स्पर्धयेन्द्रेण 'मरुत्तं याज्यमपि त्यज' इति प्रेरितो बृहस्पतिस्त्यक्तुं प्रतिजज्ञे। तेनेन्द्रो हृष्टः सन् गुरुं प्रशस्य स्वभवनं ययौ .. | ६ |
| ६ | ३३ | व्यासो बृहस्पतिमरुत्तसंवादरूपमितिहासं व्याजहार। मरुत्तेन यज्ञार्थं याचितो बृहस्पतिर्यदा तं प्रत्याचचक्षे तदा व्रीडितो गच्छन्स मध्येमार्गं संगतेन नारदेन पृष्टो बृहस्पतिवृत्तमुक्त्वा 'गुरुणा प्रत्याख्यातो जीवितुं नोत्सहे' (१६) इत्युवाच। आंगिरसं संवर्तं गच्छ स त्वां याज- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | यिष्यति' (१८-१९) इति नारद उपादिदेश। तच्छ्रुत्वा मरुत्तस्तस्य स्थितिं प्रप्रच्छ। ततो वाराणस्यामुन्मत्तवेषेण शिवदर्शनार्थं चङ्क्रमीति। त्वं वाराणसीद्वारि कुणपं निधेहि तं दृष्ट्वा यो निवर्तेत तं संवर्तं बुध्द्वा शरणं गच्छ, तेन तवाह केनाख्यातः इति पृष्टस्त्वं नारदस्त्वामाख्यायाग्निं प्रविवेशेति ब्रूहीत्याह नारदः। मरुत्तो वाराणसीं गत्वा नारदोपदिष्टेनोपायेन संवर्तं ज्ञात्वा तत्पृष्ठतो गच्छंस्तेन कृतान् पांसुवर्षणादीन् प्रकारान्सहमानो यदा न निववृते तदा संवर्तः परावृत्य वटच्छायायां निविवेश . | ७ |
| ७ | २७ | 'कथमस्मि त्वया ज्ञातः' (१) इत्यादिके संवर्तप्रश्ने नारदोपदिष्टमुत्तरमभ्यधान्मरुत्तः। तच्छ्रुत्वा तेन 'बृहस्पत्यनुज्ञामन्तरा नाहं त्वां याजयिष्यामि तं गत्वाऽनुज्ञां प्रार्थय' (१२) इत्युक्तो मरुत्तः पूर्ववृत्तं निवेद्य नाहं न गच्छामीत्युवाच। 'मया याज्यमानं त्वां बृहस्पतिपुरंदरौ द्विष्यातां कथं मे बुद्धिस्थैर्यं भविष्यति' (२०) इति संवर्तेनाक्षिप्तो मरुत्तो 'यावत्तपेत्सहस्रांशुः' (२२) इत्यादिशपथपूर्वकं सङ्गत्यागाभावं प्रतिजज्ञे तेन सन्तुष्टः संवर्तो 'गमयिष्यामि शक्रेण समताम्' (२७) इत्याद्युवाच .. ... ... | ८ |
| ८ | ३८ | 'गिरेर्हिमवतः पृष्ठे' (१) इत्यादिना तपस्यन्तं महादेवमाख्याय सुवर्णप्राप्तये तमाराधयितुं 'तस्मै भगवते कृत्वा' (१२) इत्यारभ्य 'तत्सुवर्णमवाप्स्यसि' (३३) इत्यन्तं महादेवस्तोत्रमुपदिश्य सुवर्णानयनार्थं ते नरा गच्छन्तु इत्याह संवर्तो मरुत्तम्। मरुत्तसंवर्तोपदिष्टस्तोत्रपाठेनातुलं धनं संपाद्यातिमानुषं यज्ञसविधिं चक्रे। तां समृद्धिं दृष्ट्वा सन्तप्तं बृहस्पतिं प्रतीन्द्र आगत्योवाच | ९ |
| ९ | ३७ | 'इन्द्रबृहस्पत्योः संवदतोर्बृहस्पतिना 'सर्वोपायैर्मघवन्संनियच्छ संवर्तं वा पार्थिवं वा मरुत्तम्' (७) इत्युक्त इन्द्रो मरुत्तं प्रति 'अयं बृहस्पतिस्त्वां याजयिष्यति तथाऽमरं च करिष्यति' (८) इत्यभिधातुमग्निं प्रेषयति स्म। इन्द्राज्ञयागतोऽग्निर्मरुत्तेन प्रत्याख्यात इन्द्रमागत्य मरुत्तकथितं न्यवेदयत्। तच्छ्रुतवतेन्द्रेण पुनर्गच्छ मत्सन्देशं यदि स न करिष्यति तदा तं वज्रेण प्रहरिष्यामि' (२४) इत्युक्तोऽग्निः 'गन्धर्वराजो गच्छत्वहं राज्ञो बिभेमि' (२५) इत्युक्त्वा च्यवननिदर्शनेन ब्राह्मणतेजः प्रशशंस .. | १२ |
| १० | ३७ | 'एवमेतद्ब्रह्मबलं गरीयः' (१) इत्युक्तवेन्द्रेण प्रेषितो गन्धर्वो धृतराष्ट्रो मरुत्तं प्रत्यागत्य 'बृहस्पतिं याजकं त्वं वृणीष्व' (५) इत्यादिकमिन्द्रसन्देशं कथयन्मरुत्तेन प्रत्याख्यातो 'घोरो नादः श्रूयतां वासवस्य' (८) इत्याद्युवाच। नदतो वासवस्य नादं श्रुत्वा मरुत्तेन प्रार्थितः संवर्तो 'भयं शक्राद्व्येतु ते राजसिंह' (१२) इत्यादिनाऽऽश्वास्यान्यं वरं वृणीष्वेत्युवाच। 'साक्षादिन्द्र आगत्य मम यज्ञे हविर्गृह्णातु' (१८) इत्यादिकं वरं प्रार्थयति मरुत्ते संवर्तेनाहूत इन्द्रो मरुत्तेन सत्कृतः। संवर्ताशयेन्द्रेण सभादिनिर्माणे आज्ञप्ता देवाः सर्वं चक्रुः। इन्द्रादयः सर्वे देवाः सोमपानं विधाय राज्ञानुज्ञाताः प्रत्ययुः। | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

युधिष्ठिरः 'ततो राजा जातरूपस्य राशीन्' (३४) इत्यादिकं व्यासवाक्यं श्रुत्वा हृष्टः सस्तेन वित्तेन यष्टुममात्यैर्मन्त्रयामास .. १४

११ २० व्यासेन बोधितमपि हतज्ञातिबांधवत्वान्निर्विण्णं युधिष्ठिरं सान्त्वयन्वासुदेवः 'सर्वं जिह्मं मृत्युपदम्' (४) इत्यादिना शरीरस्थशत्रुजयमुपादिशन्निन्द्रवृत्रयोर्युद्धं वृत्रग्रहणमोहितेन वसिष्ठोपदेशेन निर्मोहणेन्द्रेण कृतमदृश्य वज्रेण वृत्रहननं च कथयाति स्म १५

१२ १६ 'द्विविधो जायते व्याधिः' (१) इत्यादिना शारीरमानसे दुःखे निरूप्यैतद्वाधि यज्जात द्रोणादिभिर्युद्धपर्यन्तं तत्सर्वं विस्मृत्य प्रसक्त मनसा सह युद्ध कुर्वित्युपदिदेश वासुदेवः . १६

१३ २२ 'न बाह्य द्रव्यमुत्सृज्य' (१) इत्यादिना मनोजयोपायं कामत्यागमुपदिशंस्तद्विषये पुराविद्गीताः 'नाहं शक्योऽनुपायेन' (१२) इत्याद्या गाथा अभिधाय निष्कामानश्वमेधादीन्यज्ञान् कुर्वित्यादिदेश ... . १७

१४ १७ वासुदेवोपदेशेनाश्वस्तो युधिष्ठिरः शोक परित्यज्य व्यासादीनात्मकर्तव्यनिवेदनपूर्वकमनुनयति स्म। तं च युधिष्ठिरं कृष्णधनंजयौ चानुज्ञाप्यान्तर्दधिरे। युधिष्ठिरश्च भीष्मादीनामौर्ध्वदेहिकं विधाय धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य हस्तिनापुरं जगाम... ...१९

१५ ३५ 'पाण्डवैर्यैर्जिते राष्ट्रे वासुदेवधनञ्जयौ किं चक्रतुः' (१) इति जनमेजयप्रश्ने वासुदेवार्जुनयोः कार्यमभिदधाति स्म वैशम्पायनः। वासुदेवोऽर्जुनं प्रति विजितेयं धरा कृत्स्ना' (१२) इत्याद्युक्त्वा द्वारकां गन्तुमनुज्ञामयाचत। अर्जुनस्तु दुःखादनुजज्ञे . .२०

---

## (२) अनुगीतापर्व—२०–१३०

१६ ४६ सभायां वसतोः केशवार्जुनयोः का कथाऽवर्तत इति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम्। सभां पश्यन्नर्जुनः कश्चिद्रमणीयं सभोद्देशमागत्य विदितं मे महाबाहो संग्रामे समुपस्थिते। माहात्म्यं देवकीमातस्तच्च ते रूपमैश्वरम् (५) इत्यादिना पूर्वं युद्धारम्भे भवता यदुक्तं तत्सर्वं मे नष्टं कौतूहलं तु तच्छ्रवणेऽस्ति इत्याद्युवाच। श्रीकृष्णस्तु तं प्रति 'न च शक्यं पुनर्वक्तुम्' (११) इत्याद्याख्याय 'कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मलोकादागतोऽस्माभिः सत्कारपूर्वकं पृष्टो यदाह तत्कथयामि' (१५) इत्याद्याह स्म। अस्माभिः पृष्टो ब्राह्मणो 'मोक्षधर्ममाश्रित्य यदपृच्छस्तत्कथयामि' (१७) इति प्रतिज्ञाय काश्यपसिद्धसंवादरूपमितिहासं कथयन्काश्यपं प्रति सिद्धेन कथितं स्वसिद्धिप्राप्तौ साधनादिकमाचष्ट .. २२

१७ ४२ काश्यपः सिद्धस्य पादावुपसगृह्य कथं शरीरं च्यवते इत्यादीन्सप्त प्रश्नांश्चकार। क्रमेणोत्तराणि वदन् सिद्धः 'कथं शरीरं च्यवते' इत्यस्योत्तरम् 'आयुः कीर्तिकराणीह' (६) इत्यादिनाभिधायान्ते 'उपपत्तिं तु वक्ष्यामि गर्भस्याहमतः परम्' (४२) इत्यनेन 'कथं चैवोपपद्यते' इति द्वितीयप्रश्नस्योत्तरमाख्यातुं प्रतिजज्ञे . .. २१

१८ ३५ 'शुभानामशुभानां च' (१) इत्यादिना पूर्वकृतशुभाशुभकर्म

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | परीतस्य गर्भप्रवेशादिकं प्रतिपाद्य 'शरीरग्रहणं चास्य केन पूर्वं प्रकल्पितम्' (२४) इति संशयं 'शरीरमात्मनः कृत्वा' (२५) इत्यादिना निवर्तयामास ब्राह्मणः ... .. ... ... . ... | २६ |
| १९ | ६६ | 'यः स्यादेकायने लीनः' (१) इत्यादिना संसारतरणोपायमुपदिशन् 'अतः परं प्रवक्ष्यामि'(१५) इत्यादिना योगशास्त्रं, योगसाधनानि, चोपदिशति स्म ब्राह्मणः। 'भुक्तं भुक्तमिदं कोष्ठे' (३९) इत्यादिषु शिष्यप्रश्नेषु 'यथा स्वकोष्ठे प्रक्षिप्य' (४५) इत्यादिनोत्तरमभिधाय 'इदं सर्वरहस्यं ते' (५२) इत्यादिनोपसंहृत्य शिष्यं विसृज्य स्वयमप्यगच्छद्ब्राह्मणः। श्रीवासुदेवोऽर्जुनं प्रत्येतदभिधाय 'कच्चिदेतत्त्वया पार्थ श्रुतमेकाग्रचेतसा' (५५) इत्याद्युवाच.. .. . | २९ |
| २० | २८ | 'भुक्तमिदं कोष्ठे' इति प्रश्नोत्तरं विवृण्वन् वासुदेवो दम्पत्योः संवादरूपमितिहासं व्याजहार। 'कं नु लोकं गमिष्यामि' (३) इत्यादिके ब्राह्मणीप्रश्ने 'सुभगे नाभ्यसूयामि' (५) इत्यादिनोत्तरमभ्यधाद्ब्राह्मणः . . . | ३१ |
| २१ | २६ | पूर्वोक्तोत्तरविषये दशहोतृविधानं कथयन् ब्राह्मणो मनसः प्राग्वागुत्पत्तिमभ्यधात्। 'कस्माद्वागभवत्पूर्वं कस्मात्पश्चान्मनोऽभवत्' (१०) इति ब्राह्मणीप्रश्ने ब्राह्मणो वाङ्मनसोर्भूतात्मनश्च संवादं कथयन्नुत्तरमभ्यधात्। 'अनुत्पन्नेषु वाक्येषु' (२४) इत्यादिके ब्राह्मणीप्रश्ने ब्राह्मणस्तदुत्तरं वदन् वाङ्मनसयोरुभयोरपि विशिष्टत्वमविशेषादाह.. ... .. | ३३ |
| २२ | २९ | एतद्विषये 'अत्राप्युदाहरन्तीमम्' (१) इत्यादिना सप्तहोतॄणां विधानकथनपूर्वकं ब्राह्मणो ब्राह्मण्याः 'सूक्ष्मेऽवकाशे सन्तस्ते' (४) इति प्रश्नोत्तरं कथयन् घ्राणादीनां सप्तानामितरेतरकार्यकारित्वाभाव प्रतिपाद्य घ्राणादीनां मनोधीनत्वं मनसोऽप्यर्थप्रकाशकत्वं घ्राणाद्यधीनमितीन्द्रियमनःसंवादेतिहासमुखेनाह स्म. | ३४ |
| २३ | २४ | 'अत्राप्युदाहरन्तीमम्' (१) इत्यादिना पञ्चहोतॄणां विधानं कथयन् 'स्वभावात्सप्त होतारः' (३) इति ब्राह्मण्याक्षिप्तो ब्राह्मणः स्वस्वश्रैष्ठ्यविषये विवदतां प्राणादीनां पञ्चानां ब्रह्मणा सह संवादं कथयन्ब्रह्मोक्तं सर्वेषामन्योन्याश्रयत्वेन समं प्राधान्यमाह स्म | ३६ |
| २४ | १७ | अत्र ब्राह्मणकथितो नारददेवमतसंवादः, तत्र 'सञ्जायमानस्य जन्तोः प्राणादीनां पञ्चानां मध्ये कः पूर्वं प्रवर्तते' (२) इति देवमतप्रश्ने 'येनायं सृज्यते जन्तुस्ततोऽन्यः पूर्वमेति तम्' इत्याद्युत्तरं वदन्नारदः 'केनायं सृज्यते जन्तुः' (४) इति देवमतेन पृष्टः 'सङ्कल्पाज्जायते हर्षः' (५) इत्याद्याह स्म ... ... . ... | ३८ |
| २५ | १७ | पुनः 'अत्राप्युदाहरन्तीमम्' (१) इत्यादिना चातुर्होत्रविधानकथनं प्रतिज्ञाय 'करणं कर्म कर्ता च मोक्ष इत्येव भाविनि' (३) इत्यादिना तत्सर्वं कथयित्वाऽन्ते यज्ञानायेन्द्रियजयो यस्मिञ्ज्ञाते सामानि गायन्ति तं नारायणं विद्धीत्याह ब्राह्मणः ... | ३९ |
| २६ | १८ | 'एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता'(१)इत्यादिना नारायणस्वरूपं तस्यैव गुरुत्वेन शास्तृत्वं चाख्याय गुरुकथितमेकमेवोपदेशमा- | |

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | त्मबुद्ध्या यथायथं गृह्णन्तीत्येतद्विषये पन्नगदेवर्षिप्रभृतीनां ब्रह्मोपदेशाख्यानं कथयति स्म ब्राह्मणः | ४० |
| २७ | २४ | ब्राह्मणोऽसङ्गत्वं प्रतिपादयितुं 'सङ्कल्पदंशमशकम्' (१) इत्यादिविशेषणविशिष्टं वनं प्रविष्टोऽस्मीति वदन् ब्राह्मणः 'क्व तद्वनं महाप्राज्ञ' (३) इत्यादिना ब्राह्मण्या पृष्टो 'नैतदस्ति पृथग्भावः' (४) इत्यादिनोत्तराण्यभिधाय 'एतदेवेदृशं पुण्यम्' (२४) इत्यादिनोपसञ्जहार ... . | ४३ |
| २८ | २८ | 'गन्धान्न जिघ्रामि रसान्न वेद्मि' (१) इत्यादिना विदुषः स्वस्य कर्तृत्वाभावात्कृतेनापि कर्मणा बन्धो नास्तीति प्रतिपाद्य तद्विषयेऽध्वर्युयतिसंवादं व्याजहार ब्राह्मणः . . | ४४ |
| २९ | २२ | इन्द्रियजय एव महच्छौर्यमिति प्रतिपादयितुं कार्तवीर्यसमुद्रसंवादमब्रवीद्ब्राह्मणः। कदाचित्समुद्रतीरे विचरन्कार्तवीर्यः समुद्रं प्रति बाणान्ववर्ष। तदा समुद्रेण 'मा मुञ्च नाराचान्' (४) इति प्रार्थितः संग्रामे मत्सदृशं वीरं कथयेत्युवाच। समुद्रेण कथितं जामदग्न्यं राममागत्य प्रतिकूलान्याचरतस्तस्य बाहुसहस्रच्छेदनपूर्वकं पराभवं चकार रामः। एवं क्षत्रियान्वारंवारं निघ्नन्तं रामं प्रत्येकविंशतितमे युद्धे ऋचीकमुखास्तत्पितर आगत्य निवारयामासुः . . ... | ४५ |
| ३० | ३३ | हिंसाया अकर्तव्यत्वे अलर्कस्येतिहासं कथयामासुर्जामदग्न्यपितरः। अलर्को महीं जित्वा सूक्ष्मं विचारं कुर्वन्निन्द्रियाणि जिगीषुर्मनःप्रभृतिषु बाणान् युञ्जंस्तैः 'नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथञ्चन। तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि' (७) इत्यादिना प्रत्याख्यातस्तपश्चर्यां कृत्वा योगाख्येन बाणेनेन्द्रियाणि जित्वा सिद्धिमवाप। एवं पितृभिर्बोधितो रामस्तपश्चचार . . . ... | ४७ |
| ३१ | १३ | हृदयबन्धहेतुभूतं गुणत्रयं मुमुक्षुणा हेयमिति 'त्रयो वै रिपवः' (१) इत्यादिना प्रतिपाद्य 'अत्र गाथाः कीर्तयन्ति' (४) इत्यादिनाऽम्बरीषकथिता 'भूयिष्ठं विजिता दोषाः' (७) इत्यादिका गाथा अभ्यभाषत ब्राह्मणः ... | ४८ |
| ३२ | २६ | पूर्वोक्ताम्बरीषगीतायां लोभनिकृन्तनमुक्तं तद्विषये ब्राह्मणजनकसंवादरूपमितिहासं कथयति स्म ब्राह्मणो ब्राह्मणीं प्रति। कस्मिंश्चिदपराधे 'विषये मे न वस्तव्यं' (२) इति जनकेनोक्तः कश्चिद्ब्राह्मणस्तं प्रति 'आचक्ष्व विषयं राजन्' (३) इत्युवाच। तच्छ्रुतवतो जनकस्य 'पितृपैतामहे राज्ये वश्ये जनपदे सति। विषयं नाधिगच्छामि विचिन्वन्पृथिवीमहम्' (८) इत्याद्युक्तिं तथा प्रश्नमुखेन 'अन्तवन्त्य इहावस्थाः' (१५) इति वाक्यं च श्रुत्वा सन्तुष्टो ब्राह्मणः 'त्वज्जिज्ञासार्थमद्येह विद्धि मां धर्ममागतम्' (२५) इत्याद्युवाच ... . . ... | ४९ |
| ३३ | ८ | 'नाहं तथा भीरु चरामि लोके' (१) इत्यादिना स्वस्य सर्वात्मकत्वादिकमभिधाय 'तस्मात्ते सुभगे नास्ति' (८) इत्याद्युपदिदेश ... ... . | ५० |
| ३४ | १२ | 'नेदमल्पात्मना शक्यं वेदितुं नाकृतात्मना' (१) इत्यादिनाऽऽक्षेपपूर्वकं येनैषा मतिर्लभ्यते तमुपायं वदेति ब्राह्मणीप्रश्ने 'अरणीं | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ब्राह्मणीं विद्धि' (३) इत्यादिना ज्ञानाग्न्युत्पत्तिसाधनं कथयति स्म ब्राह्मणः। 'यदिदं ब्रह्मणो लिङ्गम्' (४) इत्यादिके पुनर्ब्राह्मणीप्रश्ने 'अलिङ्गो निर्गुणश्चैव' (५) इत्यादिनोत्तरमाह ब्राह्मणः। 'ततस्तु तस्या ब्राह्मण्याः' (१०) इत्यादिकां भगवदुक्तिं श्रुत्वाऽर्जुनः क्व नु सा ब्राह्मणी' (११) इत्याद्यपृच्छत्। भगवांश्च 'मनो मे ब्राह्मणं विद्धि बुद्धिं मे विद्धि ब्राह्मणीम्। क्षेत्रज्ञ इति यश्चोक्तः सोऽहमेव धनञ्जय' (१२) इत्यादिदेश | ५१ |
| ३५ | ५० | 'ब्रह्म यत्परमं ज्ञेयं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि' (१) इत्यर्जुनप्रश्ने श्रीकृष्णो गुरुशिष्यसंवादकथनमुखेनोत्तरमाचचक्षे। 'कुतश्चाहं कुतश्च त्वम्' (७) इत्यादिषु शिष्यप्रश्नेषु गुरुः'ब्रह्मणोक्तमिदं सर्वमृषिप्रवरसेवितम्' इत्यारभ्य 'जहाति मृत्युजन्मनी' (२२) इत्यन्तेनोपदिश्य 'प्रवक्ष्येऽहम्' (२४) इत्यादिना प्रजापतिभरद्वाजाद्यैः 'कथं कर्म क्रियात् साधु' (२९) इत्यादिपृष्टो ब्रह्मा यदुवाच तदभिधास्ये इति प्रतिजज्ञे। प्रजापत्यादिभिः पृष्टो ब्रह्मा 'सत्याद्भूतानि जातानि' (३२) इत्यादिनाऽध्यायशेषेण सर्वप्रश्नानामुत्तराण्यभिधाय पञ्चविंशतितत्त्वान्यभिदधाति स्म . . | ५४ |
| ३६ | ३६ | 'तदव्यक्तमनुद्रिक्तम्' (१) इत्यादि उक्तान्येव तत्त्वानि विवृण्वन्ब्रह्मा 'तमसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रजः' (६) इत्यादिना गुणानां मिथुनान्याख्याय 'संमोहोऽज्ञानमत्यागः' (१२)इत्यादिना तमसो गुणादिकं व्यवृणोत् | ५६ |
| ३७ | १८ | 'रजोऽहं वः प्रवक्ष्यामि' (१) इत्यादिनाऽध्यायेन रजसो विवरणमकरोद्ब्रह्मा .... | ५७ |
| ३८ | १५ | 'अतः परं प्रवक्ष्यामि' (१)इत्यादिनाऽध्यायेन सत्त्वगुण विवृणुते स्म ब्रह्मा . | ५८ |
| ३९ | २५ | 'नैव शक्या गुणा वक्तुम्' (१) इत्याद्यध्यायेन गुणानामन्योन्याश्रयत्वमुद्रेकादितारतम्येन गत्यादिकं 'तमः शूद्रे रजः क्षत्रे ब्राह्मणे सत्त्वमुच्यते' (१२) इत्यादिना शूद्रादिषु तमआदि सत्त्वं स्थावरादिष्वपि तत्सत्त्वं तथा दानादीनामपि गुणभेदेन त्रैविध्यं प्रतिपाद्य 'यत्किञ्चिदिह लोकेऽस्मिन्' (२१) इत्यादिना सर्वस्य गुणत्रयव्याप्तत्व कथयति स्म ब्रह्मा .. ... . . . . | ५९ |
| ४० | १३ | 'अव्यक्तात्पूर्वमुत्पन्नम्' (१) इत्यादिनाऽध्यायेनाव्यक्तान्महत्तत्त्वोत्पत्तिं तत्स्वरूपं चाभ्यधाद्ब्रह्मा | ६० |
| ४१ | ५ | 'य उत्पन्नो महान्पूर्वं' (१) इत्यादिना महतोऽहङ्कारोत्पत्तिं तत्स्वरूपादिकं चाह स्म ब्रह्मा | ६० |
| ४२ | ६७ | 'अहङ्कारात्प्रसूतानि'(१) इत्यादिनाऽध्यायेनाहङ्कारात्पञ्चभूतोत्पत्त्यादिकमेकादशेन्द्रियाणामुत्पत्तिं चाख्याय तेषामध्यात्माधिभूताधिदैवतादीन्यभिधाय तज्जयेन ब्रह्मप्राप्तिं प्राप्तब्रह्मभावस्य सर्वस्तुत्यत्वं चाभ्यधाद्ब्रह्मा | ६४ |
| ४३ | ४२ | प्राप्तब्रह्मभावस्येश्वरत्वं समर्थयितुं 'मनुष्याणां तु राजन्यः' (१) इत्यारभ्य 'ब्राह्मणा धर्मसेतवः' (१७) इत्यन्तेन विभूतीराख्याय 'अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि' (२०) इत्यादिना नियतं धर्मलक्षणमुक्त्वा 'गुणानां ग्रहणम्' (२८) इत्यादिना घ्राणादीन्द्रियैर्गन्धादिगुणग्रहण- | |

| अ॰ | श्लो॰ | विषय. | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | माख्याय 'अलिंगग्रहणः' (३६) इत्यादिनेन्द्रियाग्राह्यो नित्यः क्षेत्रज्ञः इत्याद्यादिदेश ब्रह्मा | ६६ |
| ४४ | २२ | 'यदादिमध्यपर्यन्त' (१) इत्यादिना जन्मादियुक्त ग्राह्यं कर्मसाध्य च निरूप्य 'सर्वे क्षयान्ता निचयाः' (९) इत्यादिना सर्वस्यान्तवत्त्वं ज्ञानस्यानन्तत्वं च प्रतिपाद्य ज्ञानेन सर्वपापमुक्तत्वमभ्यधाद्ब्रह्मा | ६७ |
| ४५ | २५ | 'बुद्धिसारं मनःस्तम्भम्' (१) इत्यादिना कालचक्रं निरूप्य तन्निवृत्त्युपायमाख्यास्यन् गृहस्थादींश्चतुर आश्रमाननुक्रम्य 'सस्कारैः संस्कृतः'(१५) इत्यादिना गृहस्थधर्मानाचष्ट ब्रह्मा | ६८ |
| ४६ | ५८ | 'एवमेतेन मार्गेण' (१) इत्यादिना ब्रह्मचर्यधर्मान् 'एवं युक्तो जयेत्स्वर्गम्' (१७) इत्यादिना वानप्रस्थधर्मान् 'गृहस्थो ब्रह्मचारी च' (१८) इत्यादिना संन्यासिधर्मांश्चादिदेश ब्रह्मा . . . | ७० |
| ४७ | १७ | 'सन्यास तप इत्याहुः' (१) इत्यादिना संन्यासिधर्माननूद्य 'अव्यक्तयोनिप्रभवः' (१२) इत्यादिना रूपकेण ब्रह्मवृक्षं प्रदर्श्य ज्ञानासिना तच्छेदनान्मुच्यते इत्याह ब्रह्मा . ... .. | ७१ |
| ४८ | १३ | 'केचिद्ब्रह्ममयं वृक्षम्' (१)इत्यादिनोक्तमेवोपदेश पुनरनुवदति स्म ब्रह्मा . .. | ७२ |
| ४९ | १७ | संशयमापन्नानामृषीणां 'को वा स्विदिह धर्माणाम्' (१)इत्यादिनाऽध्यायेन प्रश्नः . | ७३ |
| ५० | ५६ | 'हन्त वः संप्रवक्ष्यामि' (१) इत्यादिना ज्ञानमार्गस्यैव श्रैष्ठ्यमभिदधानो हिंसापराणां नरकप्राप्तिं सकामकर्मकारिणा जन्मादिमत्त्वं चाभिधाय 'अतः परं प्रवक्ष्यामि' (७) इत्यादिना सत्वक्षेत्रज्ञयोः सयोगवियोगौ प्रतिपाद्य 'यथाध्वानमपाथेयः' (१९) इत्यादिना कर्मणां फलप्राप्तौ सदेहमुद्भाव्य 'यथार्णवं महाघोरम्' (२६) इत्यादिना संसारसमुद्रतरणसाधनत्वेन गुरुरूपनौकाश्रयणं प्रतिपाद्य 'यन्नैव गन्धि नो रस्यम्' (३२) इत्यादिना ज्ञेयस्वरूपं निरूपयन् महदाद्याकाशान्तानां स्वरूपगुणादिकं संवर्ण्य पुरुषस्य सर्वेभ्यः परत्वादिकमभ्यधाद्ब्रह्मा • . | ७६ |
| ५१ | ५२ | 'भूतानामथ पञ्चानाम्' (१) इत्यादिना क्षेत्रज्ञपर्यंतरूपत्वं मनसोऽभिधाय मनो नियम्येन्द्रियाश्वादियुत ब्रह्मरथं 'अव्यक्तादि विशेषान्तम्' (७) इत्यादिना ब्रह्मवन तत्र क्षेत्रविदः सञ्चारं चाख्याय ब्रह्मज्ञाने सति त्रसादीनां सर्वेषां लयं प्रदर्श्य 'प्रजापतिरिद सर्वम्' (१४) इत्यादिनेन्द्रियमनसामैकाग्र्यरूपेण तपसा देवादीनां प्रजापतिकर्तृक सर्जनम् 'ध्यानयोगेन शुद्धेन' (२२)इत्यादिना प्रसन्नान्तःकरणस्य सुखोपचयप्राप्त्यादिकं च प्रतिपाद्य 'एतद्वः सर्वमाख्यातम्' (४०) इत्यादिनोपसंहृत्य गुरुः 'इत्युक्तास्ते तु मुनयः' (४१) इत्यादिना ब्रह्मणोपदिष्ट कृतवतां मुनीनां लोकप्राप्तिमभिधाय स्वशिष्यमपि 'त्वमप्येतदाचर' (४२) इत्युपादिशाति स्म । एतत्कथयन्तं वासुदेवं प्रति 'को न्वसौ ब्राह्मण.' (४५) इति पप्रच्छार्जुनः। वासुदेवस्तु 'अह गुरुर्महाबाहो !' (४६) इत्याद्युक्त्वा 'यदि तव मयि श्रद्धा तर्हि मदुक्तं सम्यगाचर मोक्षं प्राप्स्यसि' (४७-४८) इत्यभिधायेदमेव गीतारूपेण मया प्रागुपदिष्टमिति प्रतिपाद्य 'द्वारकां गन्तु- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | मिच्छामि' (५०) इत्युक्ते अर्जुनस्तु हस्तिनापुरं गत्वा युधिष्ठिरानुज्ञया गन्तुमर्हसीत्यब्रवीत् . . | ७९ |
| | | ॥ इति अनुगीता समाप्ता ॥ | |
| ५२ | ५८ | स्वाज्ञया दारुकेण योजितं रथमारुह्य कृष्णार्जुनौ हस्तिनापुरमागत्य धृतराष्ट्रादीनभिवाद्यार्जुनगृहे निरुष्य प्रातर्युधिष्ठिरमागत्य प्रीयमाणेन तेनानुज्ञातौ निषेदतुः। ततोऽर्जुनप्रार्थितस्य युधिष्ठिरस्याज्ञया द्वारकां गन्तुं प्रस्थितः श्रीकृष्णोऽनुयातान् विदुरादीन्निवर्त्य सुभद्रासहितो जगाम . . . . . | ८१ |
| ५३ | २६ | पथि गच्छन् श्रीकृष्णो मध्ये मीलितेनोत्तंकेन 'कच्चिच्छौरे त्वया गत्वा कुरुपाण्डवसद्म तत्। कृतं सौभ्रात्रमचलम्' (१०) इत्यादि पृष्टः 'कृतो यत्नो मया पूर्वम्' (१५) इत्याद्युवाच। तच्छ्रुत्वा क्रोधेन शापं दातुं प्रवृत्तमुत्तङ्कं प्रति 'शृणु मे विस्तरेणेदम्' (२३) इत्याद्याह स्म श्रीकृष्णः .. . | ८२ |
| ५४ | २३ | 'ब्रूहि केशव तत्त्वेन' त्वमध्यात्ममनिन्दितम्। श्रुत्वा श्रेयोऽभिधास्यामि शापं वा ते जनार्दन' (२) इत्युत्तङ्केनोक्तः श्रीकृष्णः 'तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि भावान्मदाश्रयान्' (२) इत्यादिनाऽध्यात्मतत्त्वोपदेशमुपदिदेश . | ८३ |
| ५५ | ३७ | 'अभिजानामि जगतः कर्तारं त्वां जनार्दन' (१) इत्याद्युक्तो विश्वरूपदर्शनार्थमुत्तङ्केन प्रार्थितो भगवांस्तद्दर्शयामास। उत्तङ्कस्तु तद्दृष्ट्वा भीतः सन् पूर्वरूपदर्शनं प्रार्थयति स्म। ततः प्रसन्नेन भगवता वरं याचस्वेत्युक्तेनोत्तङ्केन मरुदेशे जले याचिते विश्वरूपमुपसंहृत्य यदा तव जलेच्छा भवेत्तदा मच्चिन्तनं कुर्वित्युक्त्वा द्वारकामगाच्छ्रीकृष्णः। मरुदेशे भ्रमन्नुत्तङ्कस्तृषितः सन्नच्युतं सस्मार, तदा कश्चिन्मातङ्ग आगत्य मत्तो जलं गृहाणेति वदंस्तेन प्रत्याख्यातोऽन्तर्दधे। तत उत्तङ्कः कृष्णेनाह वञ्चित इति यावद्विचारयति तावदाविर्भूतो विष्णुर्मातङ्गहस्तेनोदकं दातुं तव न योग्यमिति तेनोक्तमिन्द्रवृत्तान्तमभिधाय यस्मिन्नहनि तवेच्छा भवेत्तस्मिन्नहनि जलपूर्णाः पयोधरा भविष्यन्ति ते चोत्तङ्कमेघा इति नाम्ना ख्याता भविष्यन्तीत्यभ्यधात्। तच्छ्रुत्वोत्तङ्कस्तुतोष | ८४ |
| ५६ | ३५ | 'उत्तङ्कः केन तपसा'(१) इत्यादिके जनमेजयेन पृष्टे वैशम्पायन उत्तङ्कस्य तप आदि कथयति स्म। गौतमशिष्य उत्तङ्को बहून्यहानि गुरुगृहे वासं कुर्वन्कदाचिद्वनात्काष्ठभारं शिरसा धृत्वा गृहमागत्य यावत्काष्ठभारं त्यजति तावत्काष्ठलग्नां धवलां स्वजटां दृष्ट्वा स्वस्य जरा ज्ञात्वा विलपन्गुरुणा गौतमेन गृहगमनार्थमनुज्ञातो 'गुर्वर्थं कं प्रयच्छामि' (२०) इत्युवाच। तुष्टेन गुरुणा 'दक्षिणा गुरुतोषो वै' (२१) इत्यनेन गुरुसंतोषमेव दक्षिणात्वेनाङ्गीकृत्य 'यदि त्वं युवा भविष्यसि तदा मत्कन्यां पत्नीत्वेन ददामि' (२२-२३) इत्युक्तो युवा भूत्वा तत्कन्यां प्रतिगृह्य गुरुदक्षिणार्थं प्रार्थितया गुरुपत्न्याऽहल्यया 'सौदासपत्न्या विधृते कुण्डले आनय'(२९) इत्युक्तस्ते आनेतुं सौदासं राक्षसभावापन्नं प्रति जगामोत्तङ्कः। अहल्यातस्तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा चिन्तयन्गौतमस्तया प्रार्थितस्तद्रक्षणं प्रतिजज्ञे... . .. . | ८६ |
| ५७ | २८ | सौदासं प्रति गत उत्तङ्कस्तेन | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | सहोक्तिप्रत्युक्त्यनन्तरं तत्पत्नी मदयन्ती प्रत्यागत्य मणिकुण्डले याचितवान्। सा च राज्ञोऽभिज्ञानमानयेत्युवाच | . ८७ |
| ५८ | ६० | मदयन्तीवाक्यादुत्तङ्कः पुनरागत्य सौदासात् 'न चैवैषा गतिः क्षेम्या' (२) इति श्लोकरूपमभिज्ञानमादाय तस्यै निवेदयति स्म। तदभिज्ञानं श्रुत्वा तया दत्ते कुण्डले गृहीत्वा पुनः सौदासमागत्य तेन सहोक्तिप्रत्युक्त्यनन्तर निर्गतो मध्येमार्गं केनचित्पन्नगेन कुण्डलहरणे विहिते नागलोकं गन्तुं दण्डेन वल्मीकविदारणे प्रवृत्ते। ब्राह्मणरूपेणेन्द्रेण बोधितो यदा न निववृते तदा तन्निश्चयं ज्ञात्वेन्द्रेण दण्डे वज्रास्त्रे योजिते झटिति सञ्जातेन मार्गेण नागलोकं गतो यदा कुण्डलप्राप्तौ निराशोऽभवत्तदा कश्चिदश्वस्तत्रागत्य 'धमस्वापानमेतन्मे' (४२) इत्युवाच। अश्ववाक्यात्तदपान धमति तस्मिंस्तद्रोमकूपेभ्यो निर्गतेन धूमेन व्याकुलैर्नागैः सत्कारपूर्वकमर्पिते कुण्डले गृहीत्वा गुरुपत्न्यै निवेदयति स्म। | .. ८९ |
| ५९ | २१ | 'उत्तङ्कस्य वरं दत्वा'(१) इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनः श्रीकृष्णस्य द्वारकागमनादिकमभ्यधात् ... | ९० |
| ६० | ३६ | युद्धवृत्तान्तज्ञानार्थं वसुदेवेन पृष्टः श्रीकृष्णोऽभिमन्युवधवर्जं सर्वं कथयति स्म . | ९१ |
| ६१ | ४२ | अभिमन्युवध कथयेत्युक्त्वा मूर्च्छितायां सुभद्रायां दुःखितेन वसुदेवेन पृष्टः श्रीकृष्णोऽभिमन्युयुद्धकथनपूर्वकं तमभिधाय कुन्तीकृतं सुभद्राऽऽश्वासनमुत्तराऽऽश्वासनादिकं चाकथयत | .. ९३ |
| ६२ | २१ | वैशम्पायनो वसुदेवादिकृतमभिमन्युश्राद्धादिकमभिधाय व्यासेन कृतं कुन्त्या उत्तराया अर्जुनस्य चाश्वासनं धर्मराज प्रत्यश्वमेधकरणाज्ञाकरणादिकं चाचष्ट | ९३ |
| ६३ | २४ | 'श्रुत्वैतद्वचनम्' (१) इत्यादिना व्यासवाक्यश्रवणोत्तर युधिष्ठिरः किमकरोत्, मरुत्तेन मह्यां निक्षिप्तं धनं च कथमवापेति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायन उत्तरमाचख्यौ 'श्रुतं वो वचनं वीराः' (४) इत्यादिना युधिष्ठिरेण व्यासोपदिष्टमरुत्तनिहितधनानयनार्थं कथ कर्तव्यमिति भ्रातृषु पृष्टेषु सत्सु 'रोचते मे महाबाहो' (११) इत्यादिकं सोत्साहं भीमवाक्यं श्रुत्वा हृष्टे युधिष्ठिरेऽर्जुनादिभिरपि तथैवेत्युक्ते सर्वे पाण्डवाः सुमुहूर्ते स्वस्तिवाचनादिपुरःसरं ब्राह्मणादीन् प्रदक्षिणीकृत्य निर्ययुः | ९४ |
| ६४ | १६ | ससैन्येषु पाण्डवेषु निर्गतेषु तन्मध्ये विराजमानो युधिष्ठिरो द्रव्यदेशमागत्य समे शुभे देशे सेनाया निवेशं चकार। ततः सर्वे पाण्डवा ब्राह्मणाज्ञया जलमात्रं पीत्वा तां रात्रिं कुशसंस्तरेषूषुः | ९५ |
| ६५ | २३ | 'क्रियतामुपहारोऽद्य' (१) इत्यादिना ब्राह्मणैरुपदिष्टं रुद्रबलिदानादिविधिं कृत्वा तद्धनं खानयित्वा नानाविधानि पात्रादीनि धनानि च गृहीत्वा हस्तिनापुरमाजगाम युधिष्ठिरः | ९६ |
| ६६ | २९ | 'अश्वमेधदर्शनार्थं श्रीकृष्णादिषु हस्तिनापुरमागतेषु सत्सु प्रसूताया उत्तरायाः सकाशादश्वत्थामशस्त्रपीडितः शवभूतः परीक्षिज्जज्ञे। तत्र जनकोलाहल श्रुत्वाऽन्तःपुरं प्रविष्टं श्रीकृष्णं प्रति कुन्ती 'वासुदेव महाबाहो' (१५) | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | इत्यादिना भवता पूर्वप्रतिज्ञातमश्वत्थामहतस्यैतस्योज्जीवनं कुर्वित्याद्याह स्म। एवमुक्त्वा भूमौ पतितां तां प्रति कृष्ण आश्वासयामास . ... | ९७ |
| ६७ | १९ | श्रीकृष्णं दृष्ट्वा सुभद्रा दुःखार्ता सती 'पुण्डरीकाक्ष पश्य त्वम्' (२) इत्याद्युवाच | ९८ |
| ६८ | २४ | सुभद्रावाक्यमङ्गीकृत्य परिक्षिज्जन्मगृहप्रविष्टं द्रौपद्या प्रदर्शितं श्रीकृष्णं प्रति 'पुण्डरीकाक्ष पश्यावाम्' (१२) इत्याद्युवाचोत्तरा . | ९९ |
| ६९ | २४ | एवं विलप्य भूमौ पतित्वा पुनरुत्थाय स्वाङ्के पुत्रमारोप्य पुनर्विलपन्त्या उत्तराया विलापवाक्यानि श्रुत्वा श्रीकृष्णोऽप उपस्पृश्य ब्रह्मास्त्रं प्रतिसंहृत्य परिक्षिज्जीवनार्थं प्रतिजज्ञे। तत्प्रभावाद्बालकः शनैः शनैः प्रास्पन्दत .. | १०० |
| ७० | २१ | 'ब्रह्मास्त्रं तु यदा राजन्' (१) इत्यादिना परीक्षिज्जन्मवृत्तान्तमाख्याय मासजाते परिक्षिति रत्नान्यादायागतान्पाण्डवान्प्रति यदूनां प्रत्युद्गमनादिकमभ्यधाद्वैशम्पायनः ... | १०१ |
| ७१ | २६ | कृष्णेन प्रत्युद्गताः पाण्डवा हस्तिनापुरं प्रविश्य परिक्षिज्जीवनादिवृत्तान्तं श्रुत्वा श्रीकृष्णं पूजयामासुः। ततः केनचित्कालेनागतो व्यासो युधिष्ठिरेण 'भवत्प्रसादाद्भगवन्' (१३) इत्यादिना प्रार्थितोऽश्वमेधं कर्तुमनुजज्ञे। व्यासवाक्यादश्वमेधकरणे मतिं कृत्वा युधिष्ठिरेण 'देवकी सुप्रजा देवी' (१९) इत्यादिना प्रार्थितः श्रीकृष्णः यजस्व मदनुज्ञातः' (२५) इत्याद्युवाच . | १०२ |
| ७२ | २६ | युधिष्ठिरेण यज्ञदीक्षाग्रहणार्थं प्रार्थितो व्यासः 'चैत्र्यां पौर्णमास्यां तव दीक्षा भविष्यति यज्ञसंभाराः सम्भ्रियन्ताम्' (४) इत्याद्युवाच। ततो युधिष्ठिरो यज्ञसम्भारानाहृत्याश्वरक्षणार्थमर्जुनं पुररक्षार्थं भीम, नकुल सहदेवं च कुटुम्बतन्त्रे न्ययोजयत् | १०३ |
| ७३ | २८ | दीक्षाकाले व्यासादयो युधिष्ठिरं दीक्षयित्वाऽश्वं मुमुचुः। तं रक्षितुमर्जुनः पौरादिभिराशास्यमानो विजयस्तत्पृष्ठतो निर्जगाम। अर्जुनस्य बहुभिर्जातानां युद्धानां मध्ये महान्ति युद्धानि वक्ष्यामीति प्रतिजज्ञे वैशम्पायनः | १०४ |
| ७४ | ३४ | अश्वोद्देशेनार्जुनस्य त्रिगर्तैः सूर्यवर्मणा, धृतवर्मणा च सह जातं युद्धं वर्णयति स्म वैशम्पायनः | १०५ |
| ७५ | २० | प्राग्ज्योतिषपुर गतेऽश्वे तत्र भगदत्तपुत्रेण वज्रदत्तेन सहार्जुनस्य दारुणं युद्धमभूत | १०६ |
| ७६ | २६ | दिनत्रयपर्यन्तं प्रचलिते युद्धे चतुर्थेऽहनि क्रुद्धो वज्रदत्तोऽर्जुनमधिक्षिप्य गजारूढो युयुधे, अर्जुनश्च तदीयं गजं हत्वा तं पराजित्य चैत्र्यामश्वमेधार्थं त्वमागच्छेत्याज्ञापयति स्म | १०७ |
| ७७ | ३२ | सैन्धवैः सह युद्धं कुर्वन्नर्जुनस्तद्बाणवृष्ट्या मोहं प्राप्तो देवर्ष्यादिभिर्वर्द्धिततेजाः पुनर्युयुधे | १०८ |
| ७८ | ४९ | सैन्धवार्जुनयोर्युद्धे प्रवृत्तेऽर्जुनो 'युद्धे राजानो न हन्तव्याः किन्तु केवलं जेतव्याः' (९) इत्यादि युधिष्ठिरवाक्यं स्मृत्वा चिन्तयन्नर्जुनः सैन्धवान्प्रति 'श्रेयो वदामि युष्माकम्' (१०) इत्याद्युवाच। ते च तच्छ्रुत्वा क्रुद्धाः सन्तः पुनर्युयुधिरे। युद्धं निवारयितुं पौत्रं पुरस्कृत्यागताया दुःशलाया उ- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | क्तिप्रत्युक्त्यनन्तरमर्जुनेन विसर्जिता सा योधान्निवर्त्य स्वगृहं जगाम। अर्जुनोऽपि सैन्धवान् जित्वाऽश्वमनुययौ। अश्वश्चार्जुनसहितो मणिपूरपतेर्देशं जगाम .. | ११० |
| ७९ | ३९ | स्वपितरं प्रति विनयेनागतो बभ्रुवाहनः 'प्रक्रियेयं न ते युक्ता' (३) इत्यादिनाऽधिक्षिप्तो यदा चिन्तयति स्म तदा तदसहमानया महीं भित्त्वाऽऽगतया नागकन्ययोलूप्या प्रतिबोधितो युद्धं कुर्वन्नर्जुनबाणपीडितस्तं हृदये भित्त्वा निपात्य स्वयमपि पपात। तदा चित्राङ्गदा रणाजिरमागत्य निहतं पतिं ददर्श . | १११ |
| ८० | ६१ | चित्रांगदा बहु विलप्य मूर्छिता पुनः संज्ञां लब्ध्वा तत्रोलूपीं दृष्ट्वा तां प्रति 'उलूपि पश्य भर्तारम्' (३) इत्याद्यभिधाय भर्तारं प्रति 'उत्तिष्ठ कुरुमुख्यस्य' (९) इत्याद्युक्त्वा पुनरुलूपीं प्रति 'उलूपि साधु पश्येमम्' (१२) इत्याद्युदीर्य पतिचरणसमीपे प्रायोपवेशनमकरोत्। लब्धसंज्ञो बभ्रुवाहनः पतिचरणानुशायिनीं मातरं दृष्ट्वा विलप्योलूपीं प्रति 'पश्य नागोत्तमसुते' (३१) इत्यात्यभिधाय प्रायोपवेशनं चकार। उलूपी स्मरणमात्रेण संनिहितं सञ्जीवनमणिं गृहीत्वा बभ्रुवाहनं प्रति 'उत्तिष्ठ मा शुचः पुत्र' (४४) इत्याद्यभिधाय तस्मै सञ्जीवनं मणिमदात्। बभ्रुवाहननिहितेन मणिना हृदि स्पृष्टोऽर्जुनो लब्धसंज्ञो बभ्रुवाहनमालिङ्ग्य 'किमिदं लक्ष्यते सर्वम्' (५८) इति पप्रच्छ। एवं पृष्टः स उलूपीं पृच्छ्यतामित्यब्रवीत् . . .. | ११३ |
| ८१ | ३२ | 'किमागमनकृत्यं ते' (१) इत्यर्जुनेनानुयुक्तोलूपी 'न मे त्वमपराद्धोऽसि' (५) इत्यादिना युद्धेऽधर्मेण भीष्महननात्क्रुद्धानां वसूनां शापं स्वपितृप्रार्थितेभ्यः स्तेभ्यः शापमोचनप्रकारं चाभिधाय तदनुरूपो मयायं यत्नो विहित इत्याद्याह स्म। एतच्छ्रुत्वाऽर्जुनः प्रीतः सन् 'सर्वं मे सुप्रियं देवि' (२२) इत्युलूपीं प्रत्युक्त्वा 'चैत्र्यां पौर्णमास्यामश्वमेधं द्रष्टुं मातृभ्यां सहागच्छ' (२४) इति बभ्रुवाहनमादिश्य भार्याभ्यामनुज्ञातः प्रययौ . . | ११४ |
| ८२ | ३० | राजगृहपुरमागतेऽश्वे तदाधिपतिना सहदेवपुत्रेण मेघसंधिना सह युद्धं कुर्वन्नर्जुनस्तं पराजित्य यज्ञार्थमागमनमादिशति स्म . .. | ११५ |
| ८३ | २० | मागधेनार्चितोऽर्जुनो दक्षिणां दिशं गत्वा तत्र शिशुपालसुतशरभप्रभृतीञ्जित्वा सौराष्ट्रदेशमागतो द्वारवत्यामुग्रसेनादिभिः सत्कृतो विचरन्गान्धारानगच्छत् | ११६ |
| ८४ | २४ | गान्धारदेशाधिपतिना शकुनिपुत्रेण युद्धं कुर्वन्नर्जुनस्तं पराजित्य यज्ञार्थमागमनमादिशति स्म ... | ११६ |


---


| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ८५ | ४२ | हास्तिनापुरमागन्तुं परावृत्तमश्वं चारमुखाच्छ्रुत्वा युधिष्ठिरेणाज्ञप्तो भीमो ब्राह्मणान् पुरस्कृत्य प्राज्ञैः शिल्पिभिर्यज्ञवाटं ब्राह्मणानां राज्ञां च निवासयोग्यानि गृहाणि च निर्माय राज्ञामाकारणार्थं दूतान् प्रेषयामास। आगतानां राज्ञां सत्कारार्थमन्नपानादिप्रेषणार्थं दूतानादिश्य समागतान्मुनिगणान्सत्कर्तुं युधिष्ठिरः स्वयमेव दम्भं परित्यज्य ययौ। 'तस्मिन्यज्ञे | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | प्रवृत्ते तु' (२७) इत्यादिना प्रवृत्ते यज्ञे सम्भारादिकं वर्णयति स्म वैशम्पायनः ... | ११८ |
| ८६ | २१ | समागतान्राज्ञो दृष्ट्वा युधिष्ठिरेणाज्ञप्तो भीमः सर्वान् पूजयामास। अथ गोविन्दो वृष्णिभिः सह बलदेवं पुरस्कृत्यागतो धर्मेण सत्कारपूर्वकं कृतप्रश्नो दूतद्वारा श्रुतमर्जुनसन्देशं 'यथा चात्ययिकं न स्यात्' (१६)इत्यादिकं कथयति स्म | ११९ |
| ८७ | २८ | श्रीकृष्णवाक्यं श्रुतवता युधिष्ठिरेण 'अयमर्जुनः किंनिमित्तम् सदा सुखवर्जितः' (३) इति पृष्टः श्रीकृष्णोऽर्जुनस्य सदा दुःखभागित्वे सदाप्रवासित्वे च हेतुभूतमनिष्टलक्षणं कथयति स्म। एवं परस्परभाषणादिके प्रचलिते तत्रागताद्दूतादर्जुनागमनं श्रुत्वोपयातैर्युधिष्ठिरादिभिः सह कर्णमुखाः 'दिष्ट्यासि पार्थ कुशली' (१९) इत्यादिका नराणां वाचः शृण्वन्नर्जुनो यज्ञवाटं प्रविवेश। एतस्मिन्नेव काले मातृभ्यां सहितो बभ्रुवाहन आगत्य वृद्धाभिवादनपुरःसरं कुन्त्या गृहे प्रविवेश | १२० |
| ८८ | ४० | द्रौपद्यादिभिः सत्कृते उलूपीचित्राङ्गदे कुन्तीगृह ऊषतुः बभ्रुवाहनश्च धृतराष्ट्रादीन्प्रत्युपतस्थे। ते च तं सम्मानयामासुः। तृतीये दिवसे व्यासेन 'दक्षिणात्रैगुण्यं कुरु, तेनाश्वमेधत्रय भाविष्यति' (१५) इत्युपदिष्टो यज्ञदीक्षां जग्राह युधिष्ठिरः। याजकाश्चोक्तं यज्ञक्रममस्खलितं कुर्वन्तो यूपादिकं कल्पयांचक्रुः। यूपे च त्रिशतीं पशूनां बबन्धुः . | १२१ |
| ८९ | ४४ | अश्वमालभ्य तस्य वपा मन्यान्यङ्गानि चाग्नौ हुत्वा यज्ञं समापयामासुः षोडशर्त्विजः। युधिष्ठिरोऽपि ब्राह्मणेभ्यो निष्काणि कोटिशो दत्वा व्यासादिभ्य ऋत्विग्भ्यो वसुन्धरां दक्षिणात्वेन ददौ। ततो व्यासवाक्याच्छ्रीकृष्णवाक्याच्च वसुन्धरामूल्यं त्रिगुणं हिरण्यं विततार। ब्राह्मणाश्च मुदिताः सन्तः स्वान् स्वानालयान् जग्मुः। राजभ्योऽपि रत्नादीनि दद्युधिष्ठिरो बभ्रुवाहन विपुलेन वित्तेन सत्कृत्य प्रास्थापयत्। दुःशलापौत्रं च स्वराज्येऽभ्यषेचयत्। कृष्णादीन्वृष्णिवीरानपि सत्कारपूर्वकं विसर्जयति स्म। 'एवं बभूव यज्ञः सः' (३९) इत्यादिना यज्ञं प्रशशास वैशम्पायनः ... | १२३ |
| ९० | १२० | 'पितामहस्य यज्ञे यत्किञ्चिदाश्चर्यमभूत्तत्कथय' (१) इति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्तदाख्यातुमुपचक्रमे। अश्वमेधे निवृत्ते तत्र कश्चिन्नकुल आगत्य मनुष्यवाचा 'सक्तुप्रस्थेन वो नायम्' (७) इत्यादिनाऽधिचिक्षेप। तदा ब्राह्मणैः कृतप्रश्नः स सक्तुप्रस्थं विवरीतुमुञ्छवृत्तेराख्यायिकामाचख्यौ। कुरुक्षेत्रे निवसन्नुञ्छवृत्तिर्भार्यापुत्रस्नुषाभिः सहित उञ्छमप्यप्राप्नुवन्क्षुधार्पीडित एकदा यवप्रस्थं सम्पाद्य तस्य सक्तून् विधायाग्नौ हुत्वा यावद्विभजत तावदेकः कश्चिदतिथिराजगाम। तं दृष्ट्वा हृष्टास्ते सत्कारपूर्वकमेकं भाग तस्मै वितेरुः। तेनासन्तुष्ट तमालक्ष्य क्रमशः सर्वे स्वस्वभागान्सन्तुष्टाः सन्तो ददुस्तदा सन्तुष्टेनातिथिरूपेण धर्मेण 'अहो दान घुष्यते ते स्वर्गे स्वर्गनिवासिभिः' (८३) इत्यादि- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ना तत्प्रशंसापूर्वकं दानं प्रशस्य 'आरोहत यथाकामम्' (१०६) इत्याद्युक्तो भार्यया पुत्रेण स्नुषया सह दिवं जगाम। तस्य सक्तुगन्धेनोदकक्लेदेन दिव्यपुष्पविमर्दैन च मम शरीरार्धं सुवर्णमयमभूत्। अपरमपि शरीरार्धं तथाविधं भूयादित्याशास्यात्रागतो नाहं तथाऽभूवमिति सक्तुप्रस्थेन वो नायमित्यब्रुवमित्युक्त्वा नकुलोऽन्तर्दधे | १२७ |
| ९१ | ३७ | 'यज्ञे सक्ता नृपतयः' (१) इत्यादिना यज्ञकरणं फलप्रदर्शनेन स्तुत्वा स नकुलो युधिष्ठिरस्याश्वमेध कस्माद्गर्हयामासेति जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनः 'यज्ञस्य विधिमग्र्यं वै' (७) इत्यादिना तदुत्तरमाचष्ट। पुरा किलेन्द्रे यष्टु प्रवृत्ते तत्रालभ्यमानेषु पशुषु दीनान्पपशून् दृष्ट्वा दयाविष्टा महर्षय इन्द्रमागत्य 'अपरिज्ञानमेतत्ते' (१३) इत्यादिना हिंसामाचिक्षिपुः। तदसहमाने शक्रे विवाद निर्णेतुं तैरापृष्टो वसुः 'यथोपनीतैर्यष्टव्यम्' (२२) इत्यनेन हिंस्राहिंस्रयज्ञयोस्तुल्यत्वापादनरूप वितथमुत्तरं ददद्रसातलं जगाम। इत्याख्याय वैशम्पायनः 'तस्मान्न वाच्यं ह्येकेन' (२४) इत्यादिनाऽहिंसाधर्मं प्रशंसन्दानरूपं धर्ममेव प्रशशंस | १२८ |
| ९२ | ५३ | 'धर्मागतेन त्यागेन' (१) इत्यादिना सर्वयज्ञेषु परमो निश्चयः कथमिति जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनोऽगस्त्येतिहासं कथयन्नुत्तरमाह स्म। द्वादशवार्षिकी सत्रदीक्षा प्रविष्टेऽगस्त्ये महान्तोऽग्निकल्पा ऋषयस्त यज्ञमुपातिष्ठन्त। एवंविधे यज्ञे प्रवृत्ते यदेन्द्रो न ववर्ष तदा कर्मान्तरे 'अगस्त्यो यजमानोऽसौ' (१३) इत्यादिकायां कथायां प्रवृत्तायां 'यदि द्वादशवर्षाणि' (१८) इत्यादिकामगस्त्योक्तिं तदनुरूपां स्थितिं च दृष्ट्वा 'प्रीताः स्म' (३०) इत्याद्युक्तवत्सु ऋषिषु पुरंदरो ववर्षागस्त्यं च प्रसादयामास। 'कोऽसौ नकुलरूपेण' (३९) इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायन उत्तरमाह स्म। पुरा किल जमदग्निः श्राद्धं सङ्कल्प्य समीपागतान् होमधेनुं दुग्ध्वा तद्दुग्धं दृढे भाण्डे स्थापयामास। तदा धर्मः क्रोधरूपेण प्रविश्य दुग्धं पीतवान्। एवमप्यक्रुद्धं मुनिं दृष्ट्वा क्रोधो ब्राह्मणरूपेणागत्य 'जितोऽस्मि' इत्याद्यभिधाय 'तपसो बिभेमि, (४६) इत्युवाच। जमदग्निना तु न त्वया मे किञ्चिदपकृत येषामर्थे पयः सङ्कल्पितं तान् पितॄन्गच्छ' (४८) इत्युक्तः क्रोधः पितृ ग़ामभिषङ्गान्नकुलत्वं प्राप्तः। पितॄन् प्रसाद्य तेभ्यः 'सक्तुप्रस्थनिदर्शनेन धर्मपुत्रमाक्षिपतः तव शापान्तो भविष्यति' (५०) इति शापान्तं लेभे। वैशम्पायन एतदाख्याय 'एवमेतत्तदा वृत्तम्' (५३) इत्यादिनोपसञ्जहार | १३० |


॥ इत्याश्वमेधिकपर्वविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

# अश्वमेधपर्व

१४

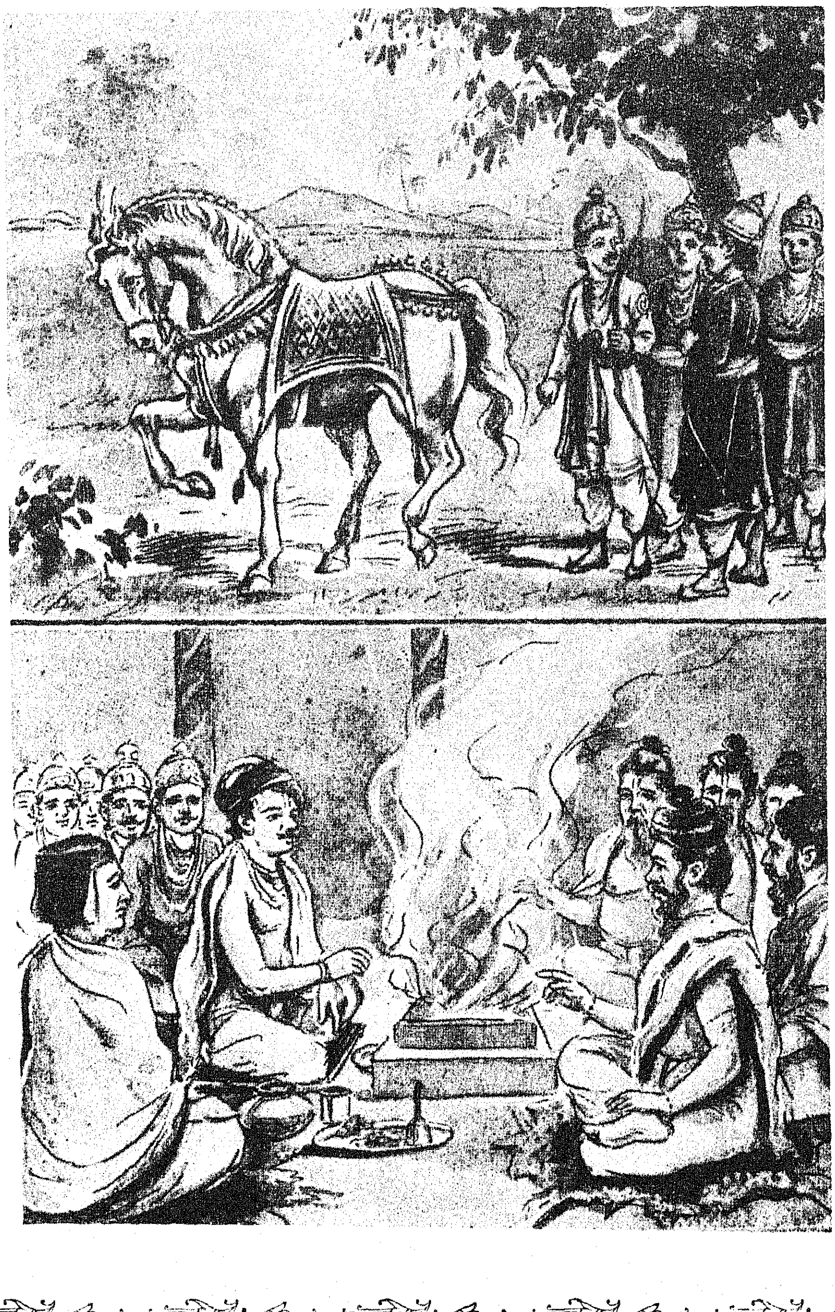

# ॥ महाभारतम् ॥

## आश्वमेधिकपर्व ।

## -१४-

### अश्वमेधपर्व ।

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥**

**वैशम्पायन उवाच ।**

**कृतोदक तु राजानं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः ।**
**पुरस्कृत्य महाबाहुरुत्तताराकुलेन्द्रियः ॥ २**
**उत्तीर्य तु महाबाहुर्बाष्पव्याकुललोचनः ।**
**पपात तीरे गंगाया व्याधविद्ध इव द्विपः ३**
**तं सीदमानं जग्राह भीमः कृष्णेन चोदितः ।**
**मैवमित्यब्रवीच्चैनं कृष्णः परबलार्दनः ॥ ४**
**तमार्तं पतितं भूमौ श्वसन्तं च पुनः पुनः ।**
**ददृशुः पार्थिवा राजन्धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ५**

---

**श्रीगणेशाय नमः ।**

श्रीमद्गोपालमानम्य प्राचीनाचार्यवर्त्मना । आश्वमेधिकभावार्थं श्रीकृष्णेन प्रकाश्यते ॥ १ ॥ अश्विस्तुत्यूर्ध्वयायातात्त्ष्टवर्कायेषु सूत्रित । सनत्सुजाते विवृतं गीताया विपुलीकृत ॥ २ ॥ मोक्षधर्मेषु च पुनर्नानाख्यानोपबृंहणै । अतीव व्याकृत प्रत्यगात्मतत्त्वमनाकुलं ॥ ३ ॥ यज्जिज्ञासोदयायैव जपदानादय स्मृता । आनुशासनिके सम्यक्चित्तदोषविनाशका ॥ ४ ॥ यत्र प्रावण्यलाभाय वैराग्योदयसिद्धये । कुरुक्षयादिको लोकवृत्तात उपवर्णित ॥५॥ तदेव स्पष्टमत्रोपसंहारव्यपदेशत । आत्मतत्त्व विवृणुते मुनिराख्यानकैस्त्रिभि ॥ ६ ॥ आख्यानत्रयं च सवर्त्तमरुत्तीयं कृष्णधर्मसवाद कृष्णार्जुनसंवादश्च। **तत्राद्ये** काश्या मृतस्य मुक्तिं लिंगेनैव सूचयित्वा ईश्वराराधनादिना धर्मेणैव धनं लब्ध्वाऽऽत्मशुद्धये यष्टव्यमित्युक्तं **द्वितीये** शास्त्रार्थसूत्रणम्। तृतीये तद्विवरणं चेति तदूर्ध्वमुत्तङ्कोच्छवृत्त्याद्याख्यानैर्ज्ञानोपयोगि गुरुशुश्रूषामाहात्म्यहिंसात्मकयज्ञनिंदादि च यथायथं तात्पर्यविषयतया ज्ञेयम् । तत्रायमाद्य श्लोक -**नारायणमिति**।'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव । अयनं तस्य ता प्रोक्तं तेन नारायण स्मृत ' इति स्मृतेरपि पुरुषवचम इति श्रुतेश्चापि प्रधान भूतपंचकं नरेणातर्यामिणा सृष्टं नार तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति श्रुते स्रष्टा प्रवेष्टा च नारायण ईश्वर स एव प्रविश्योपाधिधर्मानभिमन्यमानो नरो जीव ताभ्यामुत्तमो नरोत्तम कार्यकारणोपाधिद्वयानिर्मुक्त परमात्मा एतत्त्रयं तत्स्वरूपप्रकाशिका सरस्वतीं देवीं च प्रणम्य जयं महाभारताख्यमितिहासं सर्वश्रुतिस्मृतिसारभूतमुदीरयेदिति तस्यार्थ । एतेन तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थो जीवब्रह्माभेदो ग्रंथप्रतिपाद्यो दर्शित । **कृतोदकं तु राजानमिति** उत्तलार गगा त इति शेष ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा दीनमनसं गतसत्त्वं नरेश्वरम् ।
भूयः शोकसमाविष्टाः पांडवाः समुपाविशन्
राजा तु धृतराष्ट्रश्च पुत्रशोकाभिपीडितः ।
वाक्यमाह महाबुद्धिः प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरम् ॥ ७
उत्तिष्ठ कुरुशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम् ।
क्षत्रधर्मेण कौन्तेय जितेयमवनी त्वया ॥ ८
भुंक्ष्व भोगान्भ्रातृभिश्च सुहृद्भिश्च मनोनुगान्
शोचितव्यं न पश्यामि त्वया धर्मभृतां वर
शोचितव्यं मया चैव गान्धार्या च महीपते ।
ययोः पुत्रशतं नष्टं स्वप्नलब्धं यथा धनम् १०
अश्रुत्वा हितकामस्य विदुरस्य महात्मनः ।
वाक्यानि सुमहार्थानि परितप्यामि दुर्मतिः
उक्तवान्विदुरो यन्मां धर्मात्मा दिव्यदर्शनः
दुर्योधनापराधेन कुलं ते विनशिष्यति ॥ १२
स्वस्ति चेदिच्छसे राजन्कुलस्य कुरु मे वचः
वध्यतामेष दुष्टात्मा मन्दो राजा सुयोधनः ॥
कर्णश्च शकुनिश्चैव नैनं पश्यतु कर्हिचित् ।
द्यूतसंघातमप्येषामप्रमादेन वारय ॥ १४
अभिषेचय राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
स पालयिष्यति वशी धर्मेण पृथिवीमिमाम्
अथ नेच्छसि राजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
मेढीभूतः स्वयं राज्यं प्रतिगृह्णीष्व पार्थिव १६
समं सर्वेषु भूतेषु वर्तमानं नराधिप ।
अनुजीवंतु सर्वे त्वां ज्ञातयो भ्रातृभिः सह
एवं ब्रुवति कौन्तेय विदुरे दीर्घदर्शिनि ।
दुर्योधनमहं पापमन्ववर्तं वृथामतिः ॥ १८
अश्रुत्वा तस्य धीरस्य वाक्यानि मधुराण्यहम्
फलं प्राप्य महद्दुःखं निमग्नः शोकसागरे १९
वृद्धौ हि तेऽद्य पितरौ पश्य नौ दुःखितौ नृप
न शोचितव्यं भवता पश्यामीह जनाधिप२०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु राज्ञा स धृतराष्ट्रेण धीमता ।
तूष्णीं बभूव मेधावी तमुवाचाथ केशवः ॥ १
अतीव मनसा शोकः क्रियमाणो जनाधिप ।
सन्तापयति चैतस्य पूर्वप्रेतान्पितामहान् २
यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः ।
देवांस्तर्पय सोमेन स्वधया च पितॄनपि ॥ ३
अतिथीनन्नपानेन कामैरन्यैरकिञ्चनान् ।
विदितं वेदितव्यं ते कर्तव्यमपि ते कृतम् ४
श्रुताश्च राजधर्मास्ते भीष्माद्भागीरथीसुतात् ।
कृष्णद्वैपायनाच्चैव नारदाद्विदुरात्तथा ॥ ५
नेमामर्हसि मूढानां वृत्तिं त्वमनुवर्तितुम् ।
पितृपैतामहं वृत्तमास्थाय धुरमुद्वह ॥ ६
युक्तं हि यशसा क्षात्रं स्वर्गं प्राप्तुमसंशयम् ।
न हि कश्चिद्धि शूराणां निहतोऽत्र पराङ्मुखः
त्यज शोकं महाराज भवितव्यं हि तत्तथा ।
न शक्यास्ते पुनर्द्रष्टुं त्वया येऽस्मिन् रणे हताः
एतावदुक्त्वा गोविन्दो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
विरराम महातेजास्तमुवाच युधिष्ठिरः ॥ ९
युधिष्ठिर उवाच ।
गोविन्द मयि या प्रीतिस्तव सा विदिता मम
सौहृदेन तथा प्रेम्णा सदा मय्यनुकम्पसे १०
प्रियं तु मे स्यात्सुमहत्कृतं चक्रगदाधर ।
श्रीमन्प्रीतेन मनसा सर्वं यादवनन्दन ॥ ११
यदि मामनुजानीयाद्भवान्गन्तुं तपोवनम् ।
न हि शांतिं प्रपश्यामि पातयित्वा पितामहम्
कर्णं च पुरुषव्याघ्रं संग्रामेष्वपलायिनम् ।
कर्मणा येन मुच्येयमस्मात्क्रूरादरिन्दम १३
कर्मणा तद्विधत्स्वेह येन शुध्यति मे मनः ।
तमेवंवादिनं पार्थं व्यासः प्रोवाच धर्मवित्

---

इत्याश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ 'त्वद्विधस्य महाबुद्धे नैतदद्योपपद्यते' इति पा०

२

एवं शोकाक्रान्तो वैराग्यमिच्छतीति स्पष्टयति-**एवमुक्त-स्त्वित्यध्यायेन** ॥ १ ॥

सांत्वयन्सुमहातेजाः शुभं वचनमर्थवत् ।
अकृता ते मतिस्तात पुनर्बाल्येन मुह्यसे ॥ १५
किमाकारा वयं तात प्रलपामो मुहुर्मुहुः ।
विदिताः क्षत्रधर्मास्ते येषां युद्धेन जीविका
तथा प्रवृत्तो नृपतिर्नाधिबन्धेन युज्यसे ।
मोक्षधर्माश्च निखिला याथातथ्येन ते श्रुताः
असकृच्चापि सन्देहाश्छिन्नास्ते कामजा मया
अश्रद्दधानो दुर्मेधा लुप्तस्मृतिरसि ध्रुवम् १८
मैवं भव न ते युक्तमिदमज्ञानमीदृशम् ।
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि विदितानि च तेऽनघ
राजधर्माश्च ते सर्वे दानधर्माश्च ते श्रुताः ।
स कथं सर्वधर्मज्ञः सर्वागमविशारदः ।
परिमुह्यसि भूयस्त्वमज्ञानादिव भारत ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

व्यास उवाच ।
युधिष्ठिर तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः
नहि कश्चित्स्वयं मर्त्यः स्ववशः कुरुते क्रियाम्
ईश्वरेण च युक्तोऽयं साध्वसाधु च मानवः ।
करोति पुरुषः कर्म तत्र का परिदेवना ॥ २
आत्मानं मन्यसे चाथ पापकर्माणमन्ततः ।
शृणु तत्र यथापापमपकृष्येत भारत ॥ ३
तपोभिः क्रतुभिश्चैव दानेन च युधिष्ठिर ।
तरन्ति नित्यं पुरुषा ये स्म पापानि कुर्वते ।
यज्ञेन तपसा चैव दानेन च नराधिप ।
पूयन्ते नरशार्दूल नरा दुष्कृतकारिणः ॥ ५
असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मखक्रियाम् ।
प्रयतन्ते महात्मानस्तस्माद्यज्ञाः परायणम् ६
यज्ञैरेव महात्मानो बभूवुरधिकाः सुराः ।
ततो देवाः क्रियावन्तो दानवानभ्यधर्षयन् ७
राजसूयाश्वमेधौ च सर्वमेधं च भारत ।
नरमेधं च नृपते त्वमाहर युधिष्ठिर ॥ ८
यजस्व वाजिमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ।
बहुकामान्नवित्तेन रामो दाशरथिर्यथा ॥ ९
यथा च भरतो राजा दौष्यन्तिः पृथिवीपतिः
शाकुन्तलो महावीर्यस्तव पूर्वपितामहः ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।
असंशयं वाजिमेधः पावयेत्पृथिवीमपि ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं त्वं श्रोतुमिहार्हसि ११
इमं ज्ञातिवधं कृत्वा सुमहान्तं द्विजोत्तम ।
दानमल्पं न शक्नोमि दातुं वित्तं च नास्ति मे
न तु बालानिमान्दीनानुत्सहे वसु याचितुम्
तथैवार्द्रव्रणान् कृच्छ्रे वर्तमानान्नृपात्मजान् १३
स्वयं विनाश्य पृथिवीं यज्ञार्थे द्विजसत्तम ।
करमाहारयिष्यामि कथं शोकपरायणः ॥ १४
दुर्योधनापराधेन वसुधा वसुधाधिपाः ।
प्रनष्टा योजयित्वास्मानकीर्त्या मुनिसत्तम १५
दुर्योधनेन पृथिवी क्षयिता वित्तकारणात् ।
कोशश्चापि विशीर्णोऽसौ धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः
पृथिवी दक्षिणा चात्र विधिः प्रथमकल्पितः
विद्वद्भिः परिदृष्टोयं शिष्टो विधिविपर्ययः १७
न च प्रतिनिधिं कर्तुं चिकीर्षामि तपोधन ।
अत्र मे भगवन्सम्यक्साचिव्यं कर्तुमर्हसि १८
एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णद्वैपायनस्तदा ।
मुहूर्तमनुसञ्चिन्त्य धर्मराजानमब्रवीत् ॥ १९
कोशश्चापि विशीर्णोयं परिपूर्णो भविष्यति
विद्यते द्रविणं पार्थ गिरौ हिमवति स्थितम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-
भावदीपे द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

३

मौढ्यप्रयुक्ताद्वैराग्याच्छास्त्रीयकर्माचरणमेव श्रेय इत्युक्तं-
युधिष्ठिर तव प्रज्ञे० ॥१॥ प्रतिनिधिमनुकल्पम् ॥१८॥

उत्सृष्टं ब्राह्मणैर्यज्ञे मरुत्तस्य महात्मनः ।
तदानयस्व कौन्तेय पर्याप्तं तद्भविष्यति २१
युधिष्ठिर उवाच ।
कथं यज्ञे मरुत्तस्य द्रविणं तत्समाचितम् ।
कस्मिंश्च काले स नृपो बभूव वदतां वर २२
व्यास उवाच ।
यदि शुश्रूषसे पार्थ शृणु कारन्धमं नृपम् ।
यस्मिन्काले महावीर्यः स राजासीन्महाधनः

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेध पर्वणि संवर्तमरुत्तीये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

युधिष्ठिर उवाच ।
शुश्रूषे तस्य धर्मज्ञ राजर्षेः परिकीर्तनम् ।
द्वैपायन मरुत्तस्य कथां प्रब्रूहि मेऽनघ ॥ १
व्यास उवाच ।
आसीत्कृतयुगे तात मनुर्दण्डधरः प्रभुः ।
तस्य पुत्रो महाबाहुः प्रसन्धिरिति विश्रुतः २
प्रसन्धेरभवत्पुत्रः क्षुप इत्यभिविश्रुतः ।
क्षुपस्य पुत्र इक्ष्वाकुर्महीपालोऽभवत्प्रभुः ३
तस्य पुत्रशतं राजन्नासीत्परधार्मिकम् ।
तांस्तु सर्वान्महीपालानिक्ष्वाकुरकरोत्प्रभुः ४
तेषां ज्येष्ठस्तु विंशोऽभूत्प्रतिमानं धनुष्मताम्
विंशस्य पुत्रः कल्याणो विविंशो नाम भारत
विविंशस्य सुता राजन्बभूवुर्दश पञ्च च ।
सर्वे धनुषि विक्रान्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः
दानधर्मरताः शान्ताः सततं प्रियवादिनः ।
तेषां ज्येष्ठः खनीनेत्रः स तान्सर्वानपीडयत् ७
खनीनेत्रस्तु विक्रांतो जित्वा राज्यमकण्टकम्
नाशकद्रक्षितुं राज्यं नान्वरज्यन्त तं प्रजाः ८
तमपास्य च तद्राज्ये तस्य पुत्रं सुवर्चसम् ।
अभ्यषिञ्चन्त राजेन्द्र मुदिता ह्यभवंस्तदा ९
स पितुर्विक्रियां दृष्ट्वा राज्यान्निरसनं च तत्
नियतो वर्तयामास प्रजाहितचिकीर्षया ॥ १०
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शुचिः शमदमान्वितः ।
प्रजास्तं चान्वरज्यन्त धर्मनित्यं मनस्विनम्
तस्य धर्मप्रवृत्तस्य व्यशीर्यत्कोशवाहनम् ।
तं क्षीणकोशं सामन्ताः समन्तात्पर्यपीडयन्
स पीड्यमानो बहुभिः क्षीणकोशाश्ववाहनः ।
आर्तिमार्च्छत्परां राजा सह भृत्यैः पुरेण च
न चैनमभिहन्तुं ते शक्नुवन्ति बलक्षये ।
सम्यग्वृत्तो हि राजा स धर्मनित्यो युधिष्ठिर
यदा तु परमामार्तिं गतोऽसौ सपुरो नृपः ।
ततः प्रदध्मौ स करं प्रादुरासीत्ततो बलम् ॥
ततस्तानजयत्सर्वान्प्रातिसीमान्नराधिपान् ।
एतस्मात्कारणाद्राजन्विश्रुतः स करन्धमः
तस्य कारन्धमः पुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ।
इन्द्रादनवरः श्रीमान्देवैरपि सुदुर्जयः ॥ १७
तस्य सर्वे महीपाला वर्तन्ते स्म वशे तदा ।
स हि सम्राडभूत्तेषां वृत्तेन च बलेन च ॥ १८
अविक्षिन्नाम धर्मात्मा शौर्येणेन्द्रसमोऽभवत्
यज्ञशीलो धर्मरतिर्धृतिमान्संयतेन्द्रियः १९
तेजसाऽऽदित्यसदृशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या हिमवानिव सुस्थिरः २०
कर्मणा मनसा वाचा दमेन प्रशमेन च ।
मनांस्याराधयामास प्रजानां स महीपतिः २१
य ईजे हयमेधानां शतेन विधिवत्प्रभुः ।
याजयामास यं विद्वान्स्वयमेवाङ्गिराः प्रभुः॥
तस्य पुत्रोऽतिचक्राम पितरं गुणवत्तया ।
मरुत्तो नाम धर्मज्ञश्चक्रवर्ती महायशाः ॥ २३
नागायुतसमप्राणः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ।
स यक्ष्यमाणो धर्मात्मा शातकुम्भमयान्युत ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

शुश्रूषे इति ॥ १ ॥ मरुत्तयज्ञप्रशंसाप्रसंगात्तद्वंश्यान्स्तौति आसीत्कृतयुग इत्यादिना अध्यायद्वयेन अत्यंतं महान्तोऽपि कर्मैवानुतिष्ठंतीति कर्ममाहात्म्यख्यापनार्थम् ॥

कारयामास शुभ्राणि भाजनानि सहस्रशः।
मेरुं पर्वतमासाद्य हिमवत्पार्श्व उत्तरे ॥ २५
कांचनः सुमहान्पादस्तत्र कर्म चकार सः।
ततः कुण्डानि पात्रीश्च पिठराण्यासनानि च
चक्रुः सुवर्णकर्तारो येषां संख्या न विद्यते।
तस्यैव च समीपे तु यज्ञवाटो बभूव ह २७
ईजे तत्र स धर्मात्मा विधिवत्पृथिवीपतिः।
मरुत्तः सहितैः सर्वैः प्रजापालैर्नराधिपः॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

युधिष्ठिर उवाच।
कथंवीर्यः समभवत्स राजा वदतां वर।
कथं च जातरूपेण समयुज्यत स द्विज ॥ १
क्व च तत्सांप्रतं द्रव्यं भगवन्नवतिष्ठते।
कथं च शक्यमस्माभिस्तदवाप्तुं तपोधन ॥ २
व्यास उवाच।
असुराश्चैव देवाश्च दक्षस्यासन्प्रजापतेः।
अपत्यं बहुलं तात संस्पर्धंत परस्परम् ॥ ३
तथैवांगिरसः पुत्रौ व्रततुल्यौ बभूवतुः।
बृहस्पतिर्बृहत्तेजाः संवर्तश्च तपोधनः ॥ ४
तावतिस्पर्धिनौ राजन्पृथगास्तां परस्परम्।
बृहस्पतिः स संवर्तं बाधते स्म पुनः पुनः ॥ ५
स बाध्यमानः सततं भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत।
अर्थानुत्सृज्य दिग्वासा वनवासमरोचयत् ६
वासवोप्यसुरान्सर्वान्विजित्य च निपात्य च
इंद्रत्वं प्राप्य लोकेषु ततो वव्रे पुरोहितम् ॥ ७
पुत्रमंगिरसो ज्येष्ठं विप्रज्येष्ठं बृहस्पतिम्।
याज्यस्त्वंगिरसः पूर्वमासीद्राजा करंधमः ८
वीर्येणाप्रतिमो लोके वृत्तेन च बलेन च।
शतक्रतुरिवौजस्वी धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ ९
वाहनं यस्य योधाश्च मित्राणि विविधानि च।
शयनानि च मुख्यानि महार्हाणि च सर्वशः॥
ध्यानादेवाभवद्राजन्मुखवातेन सर्वशः।
स गुणैः पार्थिवान्सर्वान्वशे चक्रे नराधिपः ११
संजीव्य कालमिष्टं च सशरीरो दिवं गतः।
बभूव तस्य पुत्रस्तु ययातिरिव धर्मवित् ॥ १२
अविक्षिन्नाम शत्रुजित्स वशे कृतवान्महीम्।
विक्रमेण गुणैश्चैव पितेवासीत्स पार्थिवः॥ १३
तस्य वासवतुल्योऽभून्मरुत्तो नाम वीर्यवान्।
पुत्रस्तमनुरक्ताऽभूत्पृथिवी सागराम्बरा ॥ १४
स्पर्धते स स्म सततं देवराजेन नित्यदा।
वासवोपि मरुत्तेन स्पर्धते पाण्डुनन्दन ॥ १५
शुचिः स गुणवानासीन्मरुत्तः पृथिवीपतिः।
यतमानोऽपि यं शक्रो न विशेषयति स्म ह ॥
सोऽशक्नुवन्विशेषाय समाहूय बृहस्पतिम्।
उवाचेदं वचो देवैः सहितो हरिवाहनः ॥ १७
बृहस्पते मरुत्तस्य मा स्म कार्षीः कथंचन।
दैवं कर्माथ पित्र्यं वा कर्तासि मम चेत्प्रियम्॥
अहं हि त्रिषु लोकेषु सुराणां च बृहस्पते।
इन्द्रत्वं प्राप्तवानेको मरुत्तस्तु महीपतिः ॥ १९
कथं ह्यमर्त्यं ब्रह्मंस्त्वं याजयित्वा सुराधिपम्।
याजयेर्मृत्युसंयुक्तं मरुत्तमविशङ्कया ॥ २०
मां वा वृणीष्व भद्रं ते मरुत्तं वा महीपतिम्।
परित्यज्य मरुत्तं वा यथाजोषं भजस्व माम् ॥
एवमुक्तः स कौरव्य देवराज्ञा बृहस्पतिः।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य देवराजानमब्रवीत् ॥ २२
त्वं भूतानामधिपतिस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः
नमुचेर्विश्वरूपस्य निहन्ता त्वं बलस्य च॥ २३
त्वमाजहर्थ देवानामेको वीरश्रियं पराम्।
त्वं बिभर्षि भुवं द्यां च सदैव बलसूदन ॥ २४
पौरोहित्यं कथं कृत्वा तव देवगणेश्वर।
याजयेयमहं मर्त्यं मरुत्तं पाकशासन ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

कथमिति ॥ १ ॥

समाश्वसिहि देवेन्द्र नाहं मर्त्यस्य कर्हिचित्।
ग्रहीष्यामि स्रुवं यज्ञे शृणु चेद् वचो मम ॥ २६
हिरण्यरेता नोष्णः स्यात्परिवर्तेत मेदिनी।
भासं तु न रविः कुर्यान्न तु सत्यं चलेन्मयि ॥

वैशम्पायन उवाच।

बृहस्पतिवचः श्रुत्वा शक्रो विगतमत्सरः।
प्रशस्यैनं विवेशाथ स्वमेव भवनं तदा ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

व्यास उवाच।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
बृहस्पतेश्च संवादं मरुत्तस्य च धीमतः ॥ १
देवराजस्य समयं कृतमाङ्गिरसेन ह।
श्रुत्वा मरुत्तो नृपतिर्यज्ञमाहारयत्परम् ॥ २
संकल्प्य मनसा यज्ञं करन्धमसुतात्मजः।
बृहस्पतिमुपागम्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ ३
भगवन्यन्मया पूर्वमभिगम्य तपोधन।
कृतोऽभिसन्धिर्यज्ञस्य भवतो वचनाद्गुरो ॥ ४
तमहं यष्टुमिच्छामि सम्भाराः संभृताश्च मे।
याज्योऽस्मि भवतः साधो तत्प्राप्नुहि विधत्स्व च

बृहस्पतिरुवाच।

न कामये याजयितुं त्वामहं पृथिवीपते।
वृतोऽस्मि देवराजेन प्रतिज्ञातं च तस्य मे ॥ ६

मरुत्त उवाच।

पित्र्यमस्मि तव क्षेत्रं बहु मन्ये च ते भृशम्।
तवास्मि याज्यतां प्राप्तो भजमानं भजस्व मां

बृहस्पतिरुवाच।

अमर्त्यं याजयित्वाऽहं
याजयिष्ये कथं नरम्।
मरुत्त गच्छ वा मा वा
निवृत्तोऽस्म्यद्य याजनात् ॥ ८
न त्वां याजयिताऽस्म्यद्य वृणु यं त्वमिहेच्छसि
उपाध्यायं महाबाहो यस्ते यज्ञं करिष्यति ९

व्यास उवाच।

एवमुक्तस्तु नृपतिर्मरुत्तो व्रीडितोऽभवत्।
प्रत्यागच्छन्सुसंविग्नो ददर्श पथि नारदं १०
देवर्षिणा समागम्य नारदेन स पार्थिवः।
विधिवत्प्रांजलिस्तस्थावथैनं नारदोऽब्रवीत् ॥
राजर्षे नातिहृष्टोऽसि कच्चित्क्षेमं तवानघ।
क्व गतोऽसि कुतश्चेदमप्रीतिस्थानमागतम् ॥ १२
श्रोतव्यं चेन्मया राजन्ब्रूहि मे पार्थिवर्षभ।
व्यपनेष्यामि ते मन्युं सर्वयत्नैर्नराधिप ॥ १३
एवमुक्तो मरुत्तः स नारदेन महर्षिणा।
विप्रलम्भमुपाध्यायात्सर्वमेव न्यवेदयत् ॥ १४

मरुत्त उवाच।

गतोऽस्म्यङ्गिरसः पुत्रं देवाचार्यं बृहस्पतिम्
यज्ञार्थमृत्विजं द्रष्टुं स च मां नाभ्यनन्दत १५
प्रत्याख्यातश्च तेनाहं जीवितुं नाद्य कामये।
परित्यक्तश्च गुरुणा दूषितश्चास्मि नारद १६

व्यास उवाच।

एवमुक्तस्तु राज्ञा स नारदः प्रत्युवाच ह।
आविक्षितं महाराज वाचा संजीवयन्निव १७

नारद उवाच।

राजन्नङ्गिरसः पुत्रः संवर्तो नाम धार्मिकः।
चंक्रमीति दिशः सर्वा दिग्वासा मोहयन्प्रजाः
तं गच्छ यदि याज्यं त्वां न वांछति बृहस्पतिः
प्रसन्नस्त्वां महातेजाः संवर्तो याजयिष्यति

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-
भावदीपे पंचमोऽध्याय ॥ ५ ॥

६

संवर्तमरुत्तयो सयोगं कथयन्नारदमुखेन वाराणसी
माहात्म्यं सूचयति-व्यास उवाच अत्राप्युदाहरं-
तीममित्यादिना ॥ १ ॥

मरुत्त उवाच ।

संजीवितोऽह भवता वाक्येनानेन नारद ।
पश्येयं क नु संवर्तं शंस मे वदतां वर ॥ २०
कथं च तस्मै वर्तेय कथं मां न परित्यजेत् ।
प्रत्याख्यातश्च तेनापि नाहं जीवितुमुत्सहे २१

नारद उवाच ।

उन्मत्तवेषं बिभ्रत्स चंक्रमीति यथासुखम् ।
वाराणस्यां महाराज दर्शनेप्सुर्महेश्वरम् ॥ २२
तस्या द्वारं समासाद्य न्यसेथाः कुणपं क्वचित्
तं दृष्ट्वा यो निवर्तेत संवर्तः स महीपते ॥ २३
तं पृष्ठतोऽनुगच्छेथा यत्र गच्छेत्स वीर्यवान् ।
तमेकान्ते समासाद्य प्राञ्जलिः शरणं व्रजेः २४
पृच्छेत्त्वां यदि केनाहं तवाख्यात इति स्म ह
ब्रूयास्त्वं नारदेनेति संवर्त कथितोऽसि मे ॥
स चेत्त्वामनुयुंजीत ममानुगमनेप्सया ।
शंसेथा वह्निमारूढं मामपि त्वमशंकया ॥ २६

व्यास उवाच ।

स तथेति प्रतिश्रुत्य पूजयित्वा च नारदम्
अभ्यनुज्ञाय राजर्षिर्ययौ वाराणसीं पुरीम् ॥
तत्र गत्वा यथोक्तं स पुर्या द्वारे महायशाः
कुणपं स्थापयामास नारदस्य वचः स्मरन् ॥
यौगपद्येन विप्रश्च पुरीद्वारमथाविशत् ।
ततः स कुणपं दृष्ट्वा सहसा संन्यवर्तत ॥ २९
स तं निवृत्तमालक्ष्य प्राञ्जलिः पृष्ठतोन्वगात् ।
आविक्षितो महीपालः संवर्तमुपशिक्षितुम् ॥
स च तं विजने दृष्ट्वा पांसुभिः कर्दमेन च ।
श्लेष्मणा चैव राजानं ष्ठीवनैश्च समाकिरत् ३१
स तथा बाध्यमानो वै संवर्तेन महीपतिः ।
अन्वगादेव तमृषिं प्राञ्जलिः संप्रसादयन् ३२
ततो निवर्त्य संवर्त्तः परिश्रान्त उपाविशत् ।
शीतलच्छायमासाद्य न्यग्रोधं बहुशाखिनम् ३३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

संवर्त उवाच ।

कथमस्मि त्वया ज्ञातः केन वा कथितोऽस्मि ते
एतदाचक्ष्व मे तत्त्वमिच्छसे चेन्मम प्रियम्
सत्यं ते ब्रुवतः सर्वे संपत्स्यन्ते मनोरथाः ।
मिथ्या च ब्रुवतो मूधा शतधा ते स्फुटिष्यति

मरुत्त उवाच ।

नारदेन भवान्मह्यमाख्यातो ह्यटता पथि ।
गुरुपुत्रो ममेति त्वं ततो मे प्रीतिरुत्तमा ॥ ३

संवर्त उवाच ।

सत्यमेतद्भवानाह स मां जानाति सत्रिणम्
कथयस्व तदेतन्मे क नु संप्रति नारदः ॥ ४

मरुत्त उवाच ।

भवन्तं कथयित्वा तु मम देवर्षिसत्तमः ।
ततो मामभ्यनुज्ञाय प्रविष्टो हव्यवाहनम् ॥५

व्यास उवाच ।

श्रुत्वा तु पार्थिवस्यैतत्संवर्तः प्रमुदं गतः ।
एतावदहमप्येवं शक्नुयामिति सोऽब्रवीत् ॥ ६
ततो मरुत्तमुन्मत्तो वाचा निर्भर्त्सयन्निव ।
रूक्षया ब्राह्मणो राजन्पुनः पुनरथाब्रवीत् ॥ ७
वातप्रधानेन मया स्वचित्तवशवर्तिना ।
एवं विकृतरूपेण कथं याजितुमिच्छसि ॥ ८

---

**उन्मत्तवेषमिति** । अत्र कुणपदर्शनेन महेश्वरदर्शनासिद्धिं दर्शयता कुणपस्य महेश्वरप्रतिमात्वं सूचितम् । तथा चाविमुक्तं प्रकृत्य अत्र हि जंतो प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवतीति सिद्ध कुणपाभिमानिनो जीवस्य ब्रह्मभावोऽपूर्वो ज्ञापितः । एवं चोपरिधारणाविधिवाद्विधिरेवायमित्युपपादितमुत्तरयायाते ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्याय. ॥ ६ ॥

७

**कथमस्मीति** ॥ १ ॥ सत्रिण कपटवेषच्छन्नम् ॥४॥

भ्राता मम समर्थश्च वासवेन च संगतः ।
वर्तते याजने चैव तेन कर्माणि कारय ॥ ९
गार्हस्थ्यं चैव याज्याश्च सर्वा गृह्याश्च देवताः
पूर्वजेन ममाक्षिप्तं शरीरं वर्जितं त्विदम् ॥ १०
नाहं तेनाननुज्ञातस्त्वामाविक्षित कर्हिचित् ।
याजयेयं कथंचिद्वै स हि पूज्यतमो मम ॥ ११
स त्वं बृहस्पतिं गच्छ तमनुज्ञाप्य चाव्रज ।
ततोऽहं याजयिष्ये त्वां यदि यष्टुमिहेच्छसि

मरुत्त उवाच ।

बृहस्पतिं गतः पूर्वमहं संवर्त तच्छृणु ।
न मां कामयते याज्यमसौ वासवकाम्यया ॥
अमरं याज्यमासाद्य याजयिष्ये न मानुषम् ।
शक्रेण प्रतिषिद्धोऽहं मरुत्तं मा स्म याजयेः १४
स्पर्धते हि मया विप्र सदा हि स तु पार्थिवः
एवमस्त्विति चाप्युक्तो भ्रात्रा ते बलसूदनः ॥
स मामधिगतं प्रेम्णा याज्यत्वेन बुभूषति ।
देवराजं समाश्रित्य तद्विद्धि मुनिपुंगव ॥ १६
सोऽहमिच्छामि भवता सर्वस्वेनापि याजितुं
कामये समतिक्रान्तुं वासवं त्वत्कृतैर्गुणैः १७
न हि मे वर्तते बुद्धि-
र्गन्तुं ब्रह्मन्बृहस्पतिम् ।
प्रत्याख्यातो हि तेनास्मि
तथाऽनपकृते सति ॥ १८

संवर्त उवाच ।

चिकीर्षसि यथाकामं सर्वमेतत्त्वयि ध्रुवम्,
यदि सर्वानभिप्रायान्कर्ताऽसि मम पार्थिव
याज्यमानं मया हि त्वां बृहस्पतिपुरन्दरौ ।
द्विषेतां समभिक्रुद्धावेतदेकं समर्थये: ॥ २०
स्थैर्यमत्र कथं मे स्या-
त्सत्वं निःसंशयं कुरु ।
कुपितस्त्वां न हीदानीं
भस्म कुर्यां सबान्धवम् ॥ २१

मरुत्त उवाच ।

यावत्तपेत्सहस्रांशुस्तिष्ठेरंश्चापि पर्वताः ।
तावल्लोकान्न लभेयं त्यजेयं सङ्गतं यदि ॥ २२
मा चापि शुभबुद्धित्वं लभेयमिह कर्हिचित् ।
विषयैः सङ्गतं चास्तु त्यजेयं सङ्गतं यदि २३

संवर्त उवाच ।

आविक्षित शुभा बुद्धिर्वर्ततां तव कर्मसु ।
याजनं हि ममाप्येव वर्तते हृदि पार्थिव २४
अभिधास्ये च ते राजन्नक्षयं द्रव्यमुत्तमम् ।
येन देवान्सगन्धर्वान् शक्रं चाभिभविष्यसि
न तु मे वर्तते बुद्धिर्धने याज्येषु वा पुनः ।
विप्रियं तु करिष्यामि भ्रातुश्चेन्द्रस्य चोभयोः
गमयिष्यामि शक्रेण समतामपि ते ध्रुवम् ।
प्रियं च ते करिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते २७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

संवर्त उवाच ।

गिरेर्हिमवतः पृष्ठे मुञ्जवान्नाम पर्वतः ।
तप्यते यत्र भगवांस्तपो नित्यमुमापतिः ॥ १
वनस्पतीनां मूलेषु शृङ्गेषु विषमेषु च ।
गुहासु शैलराजस्य यथाकामं यथासुखम् २
उमासहायो भगवान्यत्र नित्यं महेश्वरः ।
आस्ते शूली महातेजा नानाभूतगणावृतः ॥ ३
तत्र रुद्राश्च साध्याश्च विश्वेऽथ वसवस्तथा ।
यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च सहानुगः ॥ ४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्याय. ॥ ७ ॥

८

**गिरेर्हिमवत इत्यष्टमे** तस्मै भगवते कृत्वा नम इत्यादि तत्सुवर्णमवाप्स्यसीत्यन्तम् । सुवर्णकामस्य जप्यं स्तोत्रम् । तस्य संवर्त ऋषि हिरण्यबाहुरुमो देवता अनुष्टुप्छंद. अत्र शतं नामानि चतुर्थ्यन्तानि ॥ १ ॥

भूतानि च पिशाचाश्च
नासत्यावपि चाश्विनौ ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव
यक्षा देवर्षयस्तथा ॥ ५
आदित्या मरुतश्चैव यातुधानाश्च सर्वशः ।
उपासन्ते महात्मानं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ६
रमते भगवांस्तत्र कुबेरानुचरैः सह ।
विकृतैर्विकृताकारैः क्रीडद्भिः पृथिवीपते ७
श्रिया ज्वलन् दृश्यते वै बालादित्यसमद्युतिः
न रूपं शक्यते तस्य संस्थानं वा कदाचन ८
निर्देष्टुं प्राणिभिः कैश्चित्प्राकृतैर्मांसलोचनैः ।
नोष्णं न शिशिरं तत्र न वायुर्न च भास्करः
न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्न भयं नृप ।
तस्य शैलस्य पार्श्वेषु सर्वेषु जयतां वर १०
धातवो जातरूपस्य रश्मयः सवितुर्यथा ।
रक्ष्यन्ते ते कुबेरस्य सहायैरुद्यतायुधैः ११
चिकीर्षद्भिः प्रियं राजन्कुबेरस्य महात्मनः ।
तस्मै भगवते कृत्वा नमः शर्वाय वेधसे१२
रुद्राय शितिकण्ठाय पुरुषाय सुवर्चसे ।
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च ॥ १३
त्र्यक्ष्णे पूष्णो दन्तभिदे वामनाय शिवाय च
याम्यायाव्यक्तरूपाय सद्वृत्ते शङ्कराय च १४
क्षेम्याय हरिकेशाय स्थाणवे पुरुषाय च ।
हरिनेत्राय मुण्डाय क्रुद्धायोत्तरणाय च ॥ १५
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे १६
गिरिशाय प्रशान्ताय यतये चीरवाससे ।
बिल्वदण्डाय सिद्धाय सर्वदण्डधराय च १७
मृगव्याधाय महते धन्विनेऽथ भवाय च ।
वराय सोमवक्त्राय सिद्धमन्त्राय चक्षुषे ॥१८
हिरण्यबाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ।
लेलिहानाय गोष्ठाय सिद्धमन्त्राय वृष्णये १९
पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः ।
वृषाय मातृभक्ताय सेनान्ये मध्यमाय च २०
स्रुवहस्ताय पतये धन्विने भार्गवाय च ।
अजाय कृष्णनेत्राय विरूपाक्षाय चैव ह ॥ २१
तीक्ष्णदंष्ट्राय तीक्ष्णाय वैश्वानरमुखाय च ।
+महाद्युतयेऽनङ्गाय सर्वाय पतये विशाम् २२
विलोहिताय दीप्ताय दीप्ताक्षाय महौजसे ।
वसुरेतःसुवपुषे पृथवे कृत्तिवाससे ॥ २३
कपालमालिने चैव सुवर्णमुकुटाय च ।
महादेवाय कृष्णाय त्र्यम्बकायानघाय च २४
क्रोधनायानृशंसाय मृदवे बाहुशालिने ।
दण्डिने तप्ततपसे तथैवाक्रूरकर्मणे ॥ २५
सहस्रशिरसे चैव सहस्रचरणाय च ।
नमः स्वधास्वरूपाय बहुरूपाय दंष्ट्रिणे ॥ २६
पिनाकिनं महादेवं महायोगिनमव्ययम् ।
त्रिशूलहस्तं वरदं त्र्यम्बकं भुवनेश्वरम् ॥ २७
त्रिपुरघ्नं त्रिनयनं त्रिलोकेशं महौजसम् ।
प्रभवं सर्वभूतानां धारणं धरणीधरम् ॥ २८
ईशानं शङ्करं सर्वं शिवं विश्वेश्वरं भवम् ।
उमापतिं पशुपतिं विश्वरूपं महेश्वरम् ॥ २९
विरूपाक्षं दशभुजं दिव्यगोवृषभध्वजम् ।
उग्रं स्थाणुं शिवं रौद्रं शर्वं गौरीशमीश्वरम् ३०
शितिकण्ठमजं शुक्रं पृथुं पृथुहरं वरम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ३१
प्रणम्य शिरसा देवमनंगाङ्गहरं हरम् ।
शरण्यं शरणं याहि महादेवं चतुर्मुखम् ३२
एवं कृत्वा नमस्तस्मै महादेवाय रंहसे ।
महात्मने क्षितिपते तत्सुवर्णमवाप्स्यसि ३३
सुवर्णमाहरिष्यन्तस्तत्र गच्छन्तु ते नराः ।
इत्युक्तः स वचस्तेन चक्रे कारन्धमात्मजः*
ततोऽतिमानुषं सर्वं चक्रे यज्ञस्य संविधिम् ।
सौवर्णानि च भाण्डानि सञ्चक्रुस्तत्र शिल्पिनः
बृहस्पतिस्तु तां श्रुत्वा मरुत्तस्य महीपतेः ।
समृद्धिमतिदेवेभ्यः सन्तापमकरोद्भृशम् ३६
स तप्यमानो वैवर्ण्यं कृशत्वं चागमत्परम् ।
भविष्यति हि मे शत्रुः संवर्तो वसुमानिति ॥
तं श्रुत्वा भृशसन्तप्तं देवराजो बृहस्पतिम् ।
अभिगम्यामरवृतः प्रोवाचेदं वचस्तदा ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ + ' महात्मने चानङ्गाय इति पाठः । * गङ्गाधरं नमस्कृत्य लब्धवान्धनमुत्तमम् । कुबेर इव तत्प्राप्य महादेवप्रसादत । इत्यधिक श्लोक ।

९

इन्द्र उवाच ।
कच्चित्सुखं स्वपिषि त्वं बृहस्पते
कच्चिन्मनोज्ञाः परिचारकास्ते ।
कच्चिद्देवानां सुखकामोऽसि विप्र
कच्चिद्देवास्त्वां परिपालयन्ति ॥ १
बृहस्पतिरुवाच ।
सुखं शये शयने देवराज
तथा मनोज्ञाः परिचारका मे ।
तथा देवानां सुखकामोस्मि नित्य
देवाश्च मां सुभृशं पालयन्ति ॥ २
इन्द्र उवाच ।
कुतो दुःखं मानसं देहजं वा
पाण्डुर्विवर्णश्च कुतस्त्वमद्य ।
आचक्ष्व मे ब्राह्मण यावदेता-
न्निहन्मि सर्वांस्तव दुःखकर्तॄन् ॥ ३
बृहस्पतिरुवाच ।
मरुत्तमाहुर्मघवन् यक्ष्यमाणं
महायज्ञेनोत्तमदक्षिणेन ।
संवर्तो याजयतीति मे श्रुतं
तदिच्छामि न स तं याजयेत ॥ ४
इन्द्र उवाच ।
सर्वान्कामाननुयातोसि विप्र
यस्त्वं देवाना मन्त्रवित्सुपुरोधाः ।
उभौ च ते जरामृत्यू व्यतीतौ
किं संवर्तस्तव कर्ताऽद्य विप्र ॥ ५
बृहस्पतिरुवाच ।
देवैः सह त्वमसुरान्प्रणुद्य
जिघांससे चाप्युत सानुबन्धान् ।
यं यं समृद्धं पश्यसि तत्र तत्र
दुःखं सपत्नेषु समृद्धिभावः ॥ ६
अतोऽस्मि देवेन्द्र विवर्णरूपः
सपत्नो मे वर्धते तन्निशम्य ।
सर्वोपायैर्मघवन्संनियच्छ
संवर्तं वा पार्थिवं वा मरुत्तम् ॥ ७
इन्द्र उवाच ।
एहि गच्छ प्रहितो जातवेदो
बृहस्पतिं परिदातुं मरुत्ते ।
अयं वै त्वां याजयिता बृहस्पति-
स्तथाऽमरं चैव करिष्यतीति ॥ ८
अग्निरुवाच ।
अहं गच्छामि मघवन्दूतोद्य+
बृहस्पतिं परिदातुं मरुत्ते ।
वाचं सत्यां पुरुहूतस्य कर्तुं
बृहस्पतेश्चापचितिं चिकीर्षुः ॥ ९
व्यास उवाच ।
ततः प्रायाद्धूमकेतुर्महात्मा
वनानि सर्वाणि× वीरुधश्चाप्यमृद्नन् ।
कामाद्धिमान्ते परिवर्तमानः
काष्ठातिगो मातरिश्वेव नर्दन् ॥ १०
मरुत्त उवाच ।
आश्चर्यमद्य पश्यामि रूपिणं वह्निमागतम् ।
आसनं सलिलं पाद्यं गां चोपानय वै मुने ११
अग्निरुवाच । *
आसनं सलिलं पाद्यं प्रतिनन्दामि तेऽनघ ।
इन्द्रेण तु समादिष्टं विद्धि मां दूतमागतम् १२
मरुत्त उवाच ।
कच्चिच्छ्रीमान्देवराजः सुखी च
कच्चिच्चास्मान्प्रीयते धूमकेतो ।
कच्चिद्देवा अस्य वशे यथाव-
त्प्रब्रूहि त्वं मम कात्स्न्र्येन देव ॥ १३
अग्निरुवाच ।
शक्रो भृशं सुसुखी पार्थिवेन्द्र
प्रीतिं चेच्छत्यजरां वै त्वया सः ।
देवाश्च सर्वे वशगास्तस्य राज-
न्संदेशं त्वं श्रृणु मे देवराज्ञः ॥ १४
यदर्थं मां प्राहिणोत्त्वत्सकाशं
बृहस्पतिं परिदातुं मरुत्ते ।
अयं गुरुर्याजयतां नृप त्वां
मर्त्यं सन्तममरं त्वां करोतु ॥ १५
मरुत्त उवाच ।
संवर्तोऽयं याजयिता द्विजो मां
बृहस्पतेरञ्जलिरेष तस्य ।
न चैवासौ याजयित्वा महेन्द्रं
मर्त्यं सन्तं याजयन्नद्य शोभेत ॥ १६

---

९
कच्चिदिति ॥ १ ॥ ॰ मन्त्रयसे पुरोधा इति पा॰

+ 'अहं गच्छामि तव शक्राद्य दूतो' इति पा॰ × ' वन-स्पतीन् वि॰ ' इति पा॰

अग्निरुवाच ।
ये वै लोका देवलोके महान्त
संप्राप्स्यसे तान्देवराजप्रसादात् ।
त्वां चेदसौ याजयेद्वै बृहस्पति-
र्नूनं स्वर्गं त्वं जयेः कीर्तियुक्तः ॥ १७
तथा लोका मानुषा ये च दिव्याः
प्रजापतेश्चापि ये वै महान्तः ।
ते ते जिता देवराज्यं च कृत्स्नं
बृहस्पतिर्याजयेच्चेन्नरेन्द्र ॥ १८
संवर्त उवाच ।
मा स्मैव त्वं पुनरागाः कथञ्चित्
बृहस्पतिं परिदातुं मरुत्ते ।
मा त्वां धक्ष्ये चक्षुषा दारुणेन
संक्रुद्धोऽहं पावक त्वं निबोध ॥ १९
व्यास उवाच ।
ततो देवानगमद्धूमकेतु-
र्दाहाद्भीतो व्यथितोऽश्वत्थपर्णवत् ।
तं वै दृष्ट्वा प्राह शक्रो महात्मा
बृहस्पतेः संनिधौ हव्यवाहम् ॥ २०
यस्त्वं गतः प्रहितो जातवेदो
बृहस्पतिं परिदातुं मरुत्ते ।
तत्किं प्राह स नृपो यक्ष्यमाणः
कच्चिद्वचः प्रतिगृह्णाति तच्च ॥ २१
अग्निरुवाच ।
न ते वाचं रोचयते मरुत्तो
बृहस्पतेरञ्जलिं प्राहिणोत्सः
संवर्तो मा याजयितेत्युवाच
पुनः पुनः स मया याच्यमानः ॥ २२
उवाचेदं मानुषा ये च दिव्याः
प्रजापतेर्ये च लोका महान्तः ।
तांश्चेल्लभेयं संविदं तेन कृत्वा
तथापि नेच्छेयमिति प्रतीतः ॥ २३
इन्द्र उवाच ।
पुनर्गत्वा पार्थिवं त्वं समेत्य
वाक्यं मदीयं प्रापय स्वार्थयुक्तम् ।
पुनर्यद्युक्तो न करिष्यते वच-
स्त्वत्तो वज्रं संप्रहर्तास्मि तस्मै ॥२४
अग्निरुवाच ।
गन्धर्वराड्यात्वयं तत्र दूतो
बिभेम्यहं वासव तत्र गन्तुम् ।
संरब्धो मामब्रवीत्तीक्ष्णरोषः
संवर्तो वाक्यं चरितब्रह्मचर्यः ॥ २५
यद्यागच्छेः पुनरेवं कथञ्चि-
द्बृहस्पतिं परिदातुं मरुत्ते ।
दहेयं त्वां चक्षुषा दारुणेन
संक्रुद्ध इत्येतदवैहि शक्र ॥ २६
शक्र उवाच ।
त्वमेवान्यान्दहसे जातवेदो
न हि त्वदन्यो विद्यते भस्मकर्ता ।
त्वत्संस्पर्शात्सर्वलोको बिभेति
अश्रद्धेयं वदसे हव्यवाह ॥ २७
अग्निरुवाच ।
दिवं देवेन्द्र पृथिवीं च सर्वां
संवेष्टयेस्त्वं स्वबलेनैव शक्र ।
एवंविधस्येह सतस्तवासौ
कथं वृत्रस्त्रिदिवं प्राग्जहार ॥ २८
इन्द्र उवाच ।
न गण्डिकाकारयोगं करेऽणु
न चारिसोमं प्रपिबामि वह्ने ।
न क्षीणशक्तौ प्रहरामि वज्रं
को मेऽसुखाय प्रहरेत मर्त्यः ॥ २९

---

ब्रह्मविदा माहात्म्य तदनुग्रहेण देवा अपि दासा भवतीनि नवमदशमयोरुक्तम् । तत्र नवमेनाह दौर्बल्याद्वृत्रेण जित इति वक्तु स्वसामर्थ्यमिंद्रो वन्हि प्रति वदति न गडिकाकारयोग करेणु नगं पर्वतं डीयते विहायसा गच्छतीति डः पक्षी अल्पोडीडिंका माक्षिका मशकादिस्तस्या आकारेण योगोस्यास्तीत्येवं रूपम् अणु सूक्ष्मं करे कुर्वे कृच्छादस भौवादिकत्वम् । करेणेति पाठे करोमीत्यध्याहार पाथोधिं करे कर्तुमगस्त्य इवाहं पर्वतमपि मशकीकर्तुं समर्थोऽस्मीत्यर्थ कुतस्तर्हि वृत्रस्त्वा नाराधितवानित्यत आह-**न चारिसोमं प्रपिबामि वह्ने** अरिसोमं शत्रुदत्तम् सोमम् त्वयैव स कुतो न निर्जित इत्यत आह-न क्षीणशक्तौ प्रहरामि वज्रमित्यादिना न शंडिका जगमो नो करेणुरिति पाठे तु करेणुर्हस्ती मम ऐरावत शंडिका युद्ध **द्रविडभाषाप्रसिद्धे** ता प्रति जंगमो गतिशीलो न भवतीति नो अस्ति ऐरावतवाहनस्य मे शत्रुजय ६५ कर इत्यर्थ । गडिकाशब्दस्तालव्यादिरिह ज्ञेय इंद्रो हंति वृषभं शडिकानामिति मंत्रवर्णात् दशमस्तूक्ततात्पर्य । शेषमतिरोहितार्थम् ॥ २९ ॥

प्रव्राजयेयं कालकेयान्पृथिव्या-
मपाकर्षन्दानवानन्तरिक्षात् ।
दिवः प्रह्लादमवसानमानयं
को मेऽसुखाय प्रहरेत मानवः ॥ ३०

अग्निरुवाच ।

यत्र शर्यातिं च्यवनो याजयिष्यन्
सहाश्विभ्यां सोममगृह्णदेकः ।
तं त्वं क्रुद्धः प्रत्यषेधीः पुरस्ता-
च्छर्यातियज्ञं स्मर तं महेन्द्र ॥ ३१
वज्रं गृहीत्वा च पुरन्दर त्वं
संप्राहार्षीश्च्यवनस्यातिघोरम् ।
स ते विप्रः सह वज्रेण बाहु-
मपागृह्णात्तपसा जातमन्युः ॥ ३२
ततो रोषात्सर्वतो घोररूपं
सपत्नं ते जनयामास भूयः ।
मदं नामासुरं विश्वरूपं
यं त्वं दृष्ट्वा चक्षुषी संन्यमीलः ॥ ३३
हनुरेका जगतीस्था तथैका
दिवं गता महतो दानवस्य ।
सहस्रं दन्तानां शतयोजनानां
सुतीक्ष्णानां घोररूपं बभूव ॥ ३४
वृत्ताः स्थूला रजतस्तंभवर्णा
दंष्ट्राश्चतस्रो द्वे शते योजनानाम् ।
स त्वां दन्तान्विदशन्नभ्यधाव-
ज्जिघांसया शूलमुद्यम्य घोरम् ॥ ३५
अपश्यस्त्वं तं तदा घोररूपं
सर्वे वै त्वां ददृशुर्दर्शनीयम् ।
यस्माद्भीतः प्राञ्जलिस्त्वं महर्षि-
मागच्छेथाः शरणं दानवघ्न ॥ ३६
क्षात्राद्बलाद्ब्रह्मबलं गरीयो
न ब्रह्मतः किञ्चिदन्यद्गरीयः ।
सोऽहं जानन् ब्रह्मतेजो यथाव-
न्न संवर्तं जेतुमिच्छामि शक्र ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## १०

इन्द्र उवाच ।

एवमेतद्ब्रह्मबलं गरीयो
न ब्राह्मणात्किंचिदन्यद्गरीयः ।
आविक्षितस्य तु बलं न मृष्ये
वज्रमस्मै प्रहरिष्यामि घोरम् ॥ १
धृतराष्ट्र प्रहितो गच्छ मरुत्तं
संवर्तेन संगतं तं वदस्व ।
बृहस्पतिं त्वमुपशिक्षस्व राजन्
वज्रं वा ते प्रहरिष्यामि घोरम् ॥ २

व्यास उवाच ।

ततो गत्वा धृतराष्ट्रो नरेन्द्रं
प्रोवाचेदं वचनं वासवस्य ॥ ३
गन्धर्वं मां धृतराष्ट्रं निबोध
त्वामागतं वक्तुकामं नरेन्द्र ।
ऐन्द्रं वाक्यं शृणु मे राजसिंह
यत्प्राह लोकाधिपतिर्महात्मा ॥ ४
बृहस्पतिं याजकं त्वं वृणीष्व
वज्रं वा ते प्रहरिष्यामि घोरम् ।
वचश्चेदेतन्न करिष्यसे मे
प्राहैतदेतावदचिन्त्यकर्मा ॥ ५

मरुत्त उवाच ।

त्वं चैवैतद्वेत्थ पुरंदरश्च
विश्वेदेवा वसवश्चाश्विनौ च ।
मित्रद्रोहे निष्कृतिर्नास्ति लोके
महत्पापं ब्रह्महत्यासमं तत् ॥ ६

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-
भावदीपे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

एवमिति ॥ १ ॥

बृहस्पतिर्याजयतां महेन्द्रं
देवश्रेष्ठं वज्रभृतां वरिष्ठम् ।
संवर्तो मां याजयिताऽद्य राज-
न्न ते वाक्यं तस्य वा रोचयामि ॥७
गन्धर्व उवाच ।
घोरो नादः श्रूयतां वासवस्य
नभस्तले गर्जतो राजसिंह ।
व्यक्तं वज्रं मोक्ष्यते ते महेन्द्रः
क्षेमं राजंश्चिन्त्यतामेष कालः ॥ ८
व्यास उवाच ।
इत्येवमुक्तो धृतराष्ट्रेण राजन्
श्रुत्वा नादं नदतो वासवस्य ।
तपोनित्यं धर्मविदां वरिष्ठं
संवर्तं तं ज्ञापयामास कार्यम् ॥ ९
मरुत्त उवाच ।
इममात्मानं प्लवमानमारा-
द्ध्वा दूरं तेन न दृश्यतेऽद्य ।
प्रपद्येऽहं शर्म विप्रेन्द्र त्वत्तः
प्रयच्छ तस्मादभयं विप्रमुख्य ॥ १०
अयमायाति वै वज्री दिशो विद्योतयन्दश ।
अमानुषेण घोरेण सदस्यास्त्रासिता हि नः ॥
संवर्त उवाच ।
भयं शक्राद्व्येतु ते राजसिंह
प्रणोत्स्येऽहं भयमेतत्सुघोरम् ।
संस्तंभिन्या विद्यया क्षिप्रमेव
मा भैस्त्वमस्याभिभवात्प्रतीतः ॥ १२
अहं संस्तंभयिष्यामि
मा भैस्त्वं शक्रतो नृप ।
सर्वेषामेव देवानां
क्षयितान्यायुधानि मे ॥ १३
दिशो वज्रं व्रजतां वायुरेतु
वर्षं भूत्वा वर्षतां काननेषु ।
आपः प्लवन्त्वन्तरिक्षे वृथा च
सौदामनी दृश्यते माऽपि भैस्त्वम्१४
वन्हिर्देवस्त्रातु वा सर्वतस्ते
कामान्सर्वान्वर्षतु वासवो वा ।
वज्रं तथा स्थापयतां वधाय
महाघोरं प्लवमानं जलौघैः ॥ १५
मरुत्त उवाच ।
घोरः शब्दः श्रूयते वै महास्वनो
वज्रस्यैष सहितो मारुतेन ।
आत्मा हि मे प्रव्यथते मुहुर्मुहु-
र्न मे स्वास्थ्यं जायते चाद्य विप्र ॥१६
संवर्त उवाच ।
वज्रादुग्राद्व्येतु भयं तवाद्य
वातो भूत्वा हन्मि नरेंद्र वज्रम् ।
भयं त्यक्त्वा वरमन्यं वृणीष्व
कं ते कामं मनसा साधयामि ॥ १७
मरुत्त उवाच ।
इंद्रः साक्षात्सहसाऽभ्येतु विप्र
हविर्यज्ञे प्रतिगृह्णातु चैव ।
स्वं स्वं धिष्ण्यं चैव जुषन्तु देवा
हुतं सोमं प्रतिगृह्णन्तु चैव ॥ १८
संवर्त उवाच ।
अयमिंद्रो हरिभिरायाति राजन्
देवैः सर्वैस्त्वरितैः स्तूयमानः ।
मन्त्राहूतो यज्ञमिमं मयाऽद्य
पश्यस्वैनं मन्त्रविस्रस्तकायम् ॥ १९
ततो देवैः सहितो देवराजो
रथे युंक्त्वा तान्हरीन्वाजिमुख्यान् ।
आयाद्यज्ञमथ राज्ञः पिपासु-
राविक्षितस्याप्रमेयस्य सोमम् ॥ २०
तमायान्तं सहितं देवसंघैः
प्रत्युद्ययौ स पुरोधा मरुत्तः ।
चक्रे पूजां देवराजाय चाग्र्यां
यथाशास्त्रं विधिवत्प्रीयमाणः ॥ २१
संवर्त उवाच ।
स्वागतं ते पुरुहूतेह विद्वन्
यज्ञोप्ययं सन्निहिते त्वयीन्द्र ।
शोशुभ्यते बलवृत्रघ्न भूयः
पिबस्व सोमं सुतमुद्यतं मया ।
मरुत्त उवाच ।
शिवेन मां पश्य नमश्च तेऽस्तु
प्राप्तो यज्ञः सफलं जीवितं मे ।
अयं यज्ञं कुरुते मे सुरेन्द्र
बृहस्पतेरवरजो विप्रमुख्यः ॥ २३
इन्द्र उवाच ।
जानामि ते गुरुमेनं तपोधनं
बृहस्पतेरनुजं तिग्मतेजसम् ।
यस्याह्वानादागतोऽहं नरेन्द्र
प्रीतिर्मेऽद्य त्वयि मन्युः प्रनष्टः ॥ २४

संवर्त उवाच ।
यदि प्रीतस्त्वमसि वै देवराज
तस्मात्स्वयं शाधि यज्ञे विधानम् ।
स्वयं सर्वान्कुरु भागान्सुरेन्द्र
जानात्वयं सर्वलोकश्च देव ॥ २५
व्यास उवाच ।
एवमुक्तस्त्वांगिरसेन शक्रः
समादिदेश स्वयमेव देवान् ।
सभाः क्रियन्तामावसथाश्च मुख्याः
सहस्रशश्चित्रभृताः समृद्धाः ॥ २६
क्लृप्ताः स्थूणाः कुरुतारोहणानि
गन्धर्वाणामप्सरसां च शीघ्रम् ।
यत्र नृत्येरन्नप्सरसः समस्ताः
स्वर्गोपमः क्रियतां यज्ञवाटः ॥ २७
इत्युक्तास्ते चक्रुराशु प्रतीता
दिवौकसः शक्रवाक्यान्नरेन्द्र ।
ततो वाक्यं प्राह राजानमिन्द्रः
प्रीतो राजन्पूज्यमानो मरुत्तम् ॥ २८
एष त्वयाऽहमिह राजन्समेत्य
ये चाप्यन्ये तव पूर्वे नरेन्द्र ।
सर्वाश्चान्या देवताः प्रीयमाणा
हविस्तुभ्यं प्रतिगृह्णन्तु राजन् ॥ २९
आग्नेयं वै लोहितमालभन्तां
वैश्वदेवं बहुरूप हि राजन् ।
नीलं चोक्षाणं मेध्यमप्यालभन्तां
चलच्छिश्नं संप्रदिष्टं द्विजाग्र्याः ॥ ३०
ततो यज्ञो ववृधे तस्य राजन्
यत्र देवाः स्वयमन्नानि जह्रुः ।
यस्मिञ्शक्रो ब्राह्मणैः पूज्यमानः
सदस्योऽभूद्धरिमान्देवराजः ॥ ३१
ततः संवर्तश्चैत्यगतो महात्मा
यथा वन्हिः प्रज्वलितो द्वितीयः ।
हवींष्युच्चैराह्वयन्देवसंघान्
जुहावाग्नौ मन्त्रवत्सुप्रतीतः ॥ ३२
ततः पीत्वा बलभित्सोममग्र्यं
ये चाप्यन्ये सोमपा देवसंघाः ।
सर्वेऽनुज्ञाताः प्रययुः पार्थिवेन
यथाजोषं तर्पिताः प्रीतिमन्तः ॥ ३३
ततो राजा जातरूपस्य राशीन्
पदे पदे कारयामास हृष्टः ।
द्विजातिभ्यो विसृजन् भूरि वित्तं
रराज वित्तेश इवारिहन्ता ॥ ३४
ततो वित्तं विविधं संनिधाय
यथोत्साहं कारयित्वा च कोषम् ।
अनुज्ञातो गुरुणा संनिवृत्य
शशास गामखिलां सागरान्ताम् ३५
एवंगुणः संबभूवेह राजा
यस्य क्रतौ तत्सुवर्णं प्रभूतम् ।
तत्त्वं समादाय नरेन्द्र वित्तं
यजस्व देवांस्तर्पयानो निवापैः ॥३६
वैशम्पायन उवाच ।
ततो राजा पाण्डवो हृष्टरूपः
श्रुत्वा वाक्यं सत्यवत्याः सुतस्य ।
मनश्चक्रे तेन वित्तेन यष्टुं
ततोऽमात्यैर्मन्त्रयामास भूयः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि संवर्तमरुत्तीये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## ११

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्ते नृपतौ तस्मिन्व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।
वासुदेवो महातेजास्ततो वचनमाददे ॥ १
तं नृपं दीनमनसं निहतज्ञातिबान्धवम् ।
उपप्लुतमिवादित्यं सधूममिव पावकम् ॥ २

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

१ 'यजस्व देवांस्तपनीयैर्विधानैः' इति पाठः ।

११
इत्युक्ते नृपतौ तस्मिन्नित्यध्यायत्रयं कृष्णयुधिष्ठिरसंवादो ब्रह्मविद्यासूत्रम् ॥ १ ॥ उपप्लुतं राहुग्रस्तम् ॥ २ ॥

निर्विण्णमनसं पार्थं ज्ञात्वा वृष्णिकुलोद्वहः।
आश्वासयन्धर्मसुतं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३
वासुदेव उवाच ।
सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम् ।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति
नैव ते निष्ठितं कर्म नैव ते शत्रवो जिताः ।
कथं शत्रुं शरीरस्थमात्मनो नावबुध्यसे ॥ ५
अत्र ते वर्तयिष्यामि यथाधर्मं यथाश्रुतम् ।
इन्द्रस्य सह वृत्रेण यथा युद्धमवर्तत ॥ ६
वृत्रेण पृथिवी व्याप्ता पुरा किल नराधिप ।
दृष्ट्वा स पृथिवीं व्याप्तां गन्धस्य विषये हृते ७
धराहरणदुर्गन्धो विषयः समपद्यत ।
शतक्रतुश्चुकोपाथ गन्धस्य विषये हृते ॥ ८
वृत्रस्य स ततः क्रुद्धो घोरं वज्रमवासृजत ।
स वध्यमानो वज्रेण सुभृशं भूरितेजसा ॥९
विवेश सहसा तोयं जग्राह विषयं ततः ।
अप्सु वृत्रगृहीतासु रसे च विषये हृते ॥ १०
शतक्रतुरतिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ।
स वध्यमानो वज्रेण तस्मिन्नमिततेजसा ११
विवेश सहसा ज्योतिर्जग्राह विषयं ततः ।
व्याप्ते ज्योतिषि वृत्रेण रूपेऽथ विषये हृते १२
शतक्रतुरतिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ।
स वध्यमानो वज्रेण तस्मिन्नमिततेजसा १३
विवेश सहसा वायुं जग्राह विषयं ततः ।
व्याप्ते वायौ तु वृत्रेण स्पर्शोऽथ विषये हृते १४
शतक्रतुरतिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ।
स वध्यमानो वज्रेण तस्मिन्नमिततेजसा १५
आकाशमभिदुद्राव जग्राह विषयं ततः ।
आकाशे वृत्रभूतेऽथ शब्दे च विषये हृते ॥ १६
शतक्रतुरभिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ।
स वध्यमानो वज्रेण तस्मिन्नमिततेजसा ॥ १७
विवेश सहसा शक्रं जग्राह विषयं ततः ।
तस्य वृत्रगृहीतस्य मोहः समभवन्महान् ॥
रथन्तरेण तं तात वसिष्ठः प्रत्यबोधयत् ।
ततो वृत्रं शरीरस्थं जघान भरतर्षभ ।
शतक्रतुरदृश्येन वज्रेणेतीह नः श्रुतम् ॥ १९
इदं धर्म्यं रहस्यं वै शक्रेणोक्तं महर्षिषु ।
ऋषिभिश्च मम प्रोक्तं तन्निबोध जनाधिप २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि कृष्णधर्मसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ब्रह्मज्ञानैकनाश्य शोको वृद्धोक्तिसहस्रेण वा क्रतुसहस्रेण वा न नश्यतीत्यभिसंदधानो भगवान्वासुदेव उवाच–**सर्वं जिह्ममिति** जिह्मं कामादि मृत्युपदं संसारप्रापक आर्जवं शमादि ब्रह्मण पदं मोक्षस्य प्रापकं ज्ञानविषय हेयोपादेयतया ज्ञातव्योऽर्थ ४ शत्रुं नाशयितारमात्माज्ञानरूपम्॥५॥ तदेवाह–**अत्र ते इति** । इन्द्रस्य चिदात्मन वृत्रेण कामादिधर्मिणा चिदचिद्ग्रंथिरूपेणाहंकारेण॥६॥पृथिवी स्थूलं शरीरं'यच्छरीरं सा पृथिवी'इति श्रुते व्याप्तं आत्मत्वेन गृहीत गन्धस्य विषये प्रदेशे पिण्डे हृते मति ॥ ७ ॥ तेन दुर्गन्ध अनात्मभूतं विषयो ब्रह्माण्डं जातं एकदेशस्यात्मत्वेन परिग्रहात् 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इति श्रुतेश्चिन्मात्रं सदप्येतत् एतस्य दृष्ट्याऽनित्यन्वाद्याघ्रातमभूदित्यथ ॥ ८ ॥ वज्रं विवेक वक्ष्यमाणम् ॥ ९ ॥ तोयं कर्मसमवेतै सोमाज्यपय प्रभृतिभिर्बहुलैर्द्रव्यैश्चंद्रलोके भोगायारब्धं शरीरं ' आप पुरुषवचस ' इति श्रुते मानुषाद्देहाद्व्युत्थापितो दिव्यं देहमात्मत्वेन गृहीतवानित्यर्थ । रसे दिव्यलोके हृते ममतया गृहीते ॥ १० ॥ एव स्थूलदेहद्वयाद्व्युत्थापितो ज्योतिस्तैजसप्रपञ्च विवेश ततस्तत्र किञ्चिद्रूपं दृश्यं आत्मत्वेन जग्राह किञ्चिन्ममतयाऽऽहृतवान् ॥१२॥ वायुं समष्टिलिङ्गं 'वायुरेव व्यष्टिर्वायु समष्टि ' इति श्रुते । ततस्तत्र प्रवेशरूपया तदुपास्त्या ब्रह्मलोकेऽपि संकल्पमात्रोत्थितेषु विषयेषु पूर्ववदात्मत्वेनात्मायत्तत्वेन च जग्राहेत्यर्थ· । स्पर्शो मानसविषयसंगे ॥१४॥ द्विविधादपि सूक्ष्माद्व्युत्थापित आकाशं अव्याकृतं सुषुप्त्याख्य जाड्य तेन शब्दे शब्दादौ विषये हृते गिलिते सति ॥ १६ ॥ ततो व्युत्थापित· शक्रं चिदात्मानमेव वृत्रो जग्राह चिदात्मैश्वर्याभिमानवानभूदित्यर्थ ॥ १८ ॥ रथो मायारूपो विग्रह तं तरत्यनेन तद्रथंतरं 'अहं ब्रह्मास्मि'इति वाक्यं तेन वसिष्ठेगुरुस्तं प्रत्यबोधयत्। द्वैतदर्शननिषेधेन 'द्वितीयाद्वै भय भवति'इति श्रुते। अत एवादृश्येन दृश्यशून्येन। एव द्विविधादपि कारणोपाधेर्व्युत्थापित परानंदे प्रतिष्ठा प्रापदित्यर्थ ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्याय ११ - मृत्युपदमाजिह्मम्'इति पा०

## १२

वासुदेव उवाच ।

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वंद्वं नोपपद्यते ॥ १
शरीरे जायते व्याधिः शारीरः स निगद्यते ।
मानसे जायते व्याधिर्मानसस्तु निगद्यते ॥ २
शीतोष्णे चैव वायुश्च गुणा राजन् शरीरजाः
तेषां गुणानां साम्य चेत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ३
उष्णेन बाध्यते शीतं शीतेनोष्ण च बाध्यते
सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रय आत्मगुणाः स्मृताः ४
तेषां गुणानां साम्यं चेत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्
तेषामन्यतमोत्सेके विधानमुपदिश्यते ॥ ५
हर्षेण बाध्यते शोको हर्षः शोकेन बाध्यते ।
कश्चिद्दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छति
कश्चित्सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति ६
स त्वं न दुःखी दुःखस्य न सुखी सुसुखस्य च
स्मर्तुमिच्छसि कौन्तेय किमन्यद्दुःखविभ्रमात्
अथवा ते स्वभावोऽयं येन पार्थावकृष्यसे ।
दृष्ट्वा सभागतां कृष्णामेकवस्त्रां रजस्वलाम् ।
मिषतां पाण्डवेयानां न तस्य स्मर्तुमिच्छसि ८
प्रव्राजनं च नगरादजिनैश्च विवासनम् ।
महारण्यनिवासश्च न तस्य स्मर्तुमिच्छसि ९
जटासुरात्परिक्लेशश्चित्रसेनेन चाहवः ।
सैन्धवाच्च परिक्लेशो न तस्य स्मर्तुमिच्छसि ॥
पुनरज्ञातचर्यायां कीचकेन पदा वधः ।
याज्ञसेन्यास्तथा पार्थ न तस्य स्मर्तुमिच्छसि
यच्च ते द्रोणभीष्माभ्यां युद्धमासीदरिन्दम ।
मनसैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम् ॥ १२
तस्मादभ्युपगन्तव्यं युद्धाय भरतर्षभ ।
परमव्यक्तरूपस्य पारं युक्त्या स्वकर्मभिः १३
यत्र नैव शरैः कार्यं न भृत्यैर्न च बन्धुभिः ।
आत्मनैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम् १४
तस्मिन्ननिर्जिते युद्धे कामवस्थां गमिष्यसि ।
एतज्ज्ञात्वा तु कौन्तेय कृतकृत्यो भविष्यसि
एतां बुद्धिं विनिश्चित्य भूतानामागतिं गतिम्
पितृपैतामहे वृत्ते शाधि राज्यं यथोचितम् १६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि कृष्णधर्मसंवादे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

१२

वक्रगब्दोक्तं विवेकं दर्शयति स्थूलसूक्ष्मदेहयोर्वैधर्म्यप्रदर्शनेन-**द्विविध इत्यादिना**। परस्परमिति सत्त्वादिगुणजं सूक्ष्मं लिङ्गं तद्रहितस्य न स्थूलं शरीरमस्ति न चैतद्विना तेषा उपलम्भस्थानमस्तीत्यर्थ ॥ १॥ शीतोष्णे कफपित्ते वायुर्वात तेषा साम्ये स्वास्थ्यं वैषम्ये व्याधिर्भवतीत्यर्थ ॥३॥ **उष्णेनेति** शीतोष्णयोरन्यतराधिक्यजं दोषमितरवर्धकेनौषधादिनापनयेदित्यर्थः। सत्त्वमिति आत्मगुणा लिङ्गधर्मा ॥ ४ ॥ साम्यं सुप्तिप्रलययोः विधानं उपाय ॥५॥ हर्षशोकयो सत्त्वरज कार्ययो परस्परबाधकत्वमुक्त्वा तमस्तयोर्बाधकं ताभ्या बाध्यते चेत्याह कश्चिदिति। दु.खकालेऽप्यतीतं सुखं स्मृत्वाप्यतीव व्यामुह्यति न तु तदेव विवेकेन तितिक्षते एवं सुखकालेऽप्यतीतं पुत्रमरणादिदु.खं स्मृत्वा सिद्धमपि सुखं नाशयतीति भाव ॥ ६ ॥ स इति त्वं तु उक्तविधद्विविधव्याधिहीन न सुखं दु खं वा स्मर्तुमिच्छसि नेच्छेरित्यर्थः। किन्तु दु खविभ्रमात् यत् अन्यत् अकाममशोकं ब्रह्म तदेव स्मर्तुमनुसधातुमिच्छसि इच्छेरित्यर्थः ॥७॥ **अथवेति**। अयं दुःखित्वादि तत्स्वभावस्यापि तव शोको न युक्तोतीतत्वाद्दु खस्येति भाव ॥ ८ ॥ मनसाहंकारेण ॥ १२ ॥ अभ्युपगन्तव्यं अभिमुखी भवितव्यं अव्यक्तरूपस्य मायामात्रस्य मनस परं पारं ब्रह्म युक्त्या योगेन कर्मभिश्च शोधकै प्राप्नुहीति शेष। मनोनाशेन निःशोको भविष्यसीत्यर्थ ॥ १३ ॥ आत्मना मनसा ॥१४॥ तस्मिन्मनसि का दु खबहुलामवस्था एतन्मनसो मायामात्रत्वम् ॥१५॥ आगतिं उत्पत्तिं गतिं प्रलयं मायामात्रत्वेन ज्ञात्वा सुखं वर्तस्वेत्यर्थः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्याय. ॥ १२ ॥

## १३

वासुदेव उवाच ।

न बाह्यं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति भारत
शारीरं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति वा न वा
बाह्यद्रव्यविमुक्तस्य शारीरेषु च गृह्यतः ।
यो धर्मो यत्सुखं चैव द्विषतामस्तु तत्तथा ॥ २
द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ३
ब्रह्ममृत्यू ततो राजन्नात्मन्येव व्यवस्थितौ ।
अदृश्यमानौ भूतानि योधयेतामसंशयम् ॥ ४
अविनाशोऽस्य सत्त्वस्य नियतो यदि भारत ।
भित्त्वा शरीरं भूतानामहिंसां प्रतिपद्यते ॥ ५
लब्ध्वा हि पृथिवीं कृत्स्नां
सहस्थावरजङ्गमाम् ।
ममत्वं यस्य नैव स्यात्
किं तया स करिष्यति ॥ ६
अथवा वसतः पार्थ वने वन्येन जीवतः ।
ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते ७
बाह्यान्तराणां शत्रूणां स्वभावं पश्य भारत ।
यन्न पश्यति तद्भूतं मुच्यते स महाभयात ८

कामात्मानं न प्रशंसन्ति लोके
नेहाकामा काचिदस्ति प्रवृत्तिः ।
सर्वे कामा मनसोऽङ्गप्रभूता
यान्पण्डितः संहरते विचिन्त्य ॥ ९
भूयो भूयो जन्मनोऽभ्यासयोगा
द्योगी योगं सारमार्गं विचिन्त्य ।
दानं च वेदाध्ययनं तपश्च
काम्यानि कर्माणि च वैदिकानि १०
व्रतं यज्ञान्नियमान् ध्यानयोगान्
कामेन यो नारभते विदित्वा ।
यद्यच्चायं कामयते स धर्मो
न यो धर्मो नियमस्तस्य मूलम् ११
अत्र गाथाः कामगीताः
कीर्तयन्ति पुराविदः ।
शृणु सङ्कीर्त्यमानास्ता
अखिलेन युधिष्ठिर ।
नाहं शक्योऽनुपायेन
हन्तुं भूतेन केनचित् ॥ १२

---

१३

ननु कामत्यागेनैव मनो जेतव्यमतो यत्पूर्वं मया यदि मामनुजानीयाद्भवान्गंतुं तपोवनमिति राज्यत्याग प्रार्थित स एव तर्हि युक्तस्तत्र कथं शाधि राज्यं यथोचितमिति वदसीत्याशंक्याह-**न बाह्यमिति** । न बाह्यस्य राज्यादेरर्थस्य त्यागात्त्यागी भवति किन्तु शारीरं लिङ्गशरीरोत्थं कामादिकं त्यक्त्वैव सिद्धिर्मोक्ष न वेति शुष्कवैराग्यवतो विवेकशून्यस्य सिद्ध्यभावं सूचयति ॥ १ ॥ बाह्येति गृह्यत सक्तस्य यो धर्म स अधर्म एव यत्सुखं तद् खमेव मौढ्यस्यानपायात् अतस्तद्द्विषतामेवास्तु तुच्छमित्यर्थ. ॥ २ ॥ द्व्यक्षर इति। ममत्वं संसारहेतु तदभावो ब्रह्मप्राप्तिहेतुरित्यर्थः ॥३॥ ब्रह्ममृत्यू नि संगत्वससंगत्वे आत्मनि चित्ते एकस्मिन्वस्तुनि बहुना ममत्वं चेत्ते युद्ध्यंत एव॥४॥ एवं निर्ममोऽप्यममासाधिकारश्चित्तस्वाभाव्यादस्मदादिवद्युद्ध्यन्नपि नेतरवल्लिप्यत इत्याह-**अविनाश इति** । अस्य जगत· सत्त्वस्य सत्ताया अविनाशोऽधिष्ठानसत्तानतिरिक्तत्वान्नाशाभाव नियतो निश्चितो यदि जगतो बाध्यत्वं जानन्स्वप्रकृतपापेनेव सर्वभूतशरीरोच्छेदं कुर्वन्नपि अहिंसामहिंसकत्वमेव प्रतिपद्यते हत्वापि स इमान्लोकान्न हंति न निबद्ध्यत इत्यर्थ ॥ ५॥ लब्ध्वा हीति । स्वप्नोपलब्धधनेष्विव बुद्धस्य ममत्वाभाव स्वत· सिद्ध इत्यर्थ ॥६॥ बाह्यान्तराणामिति । स्वभावं आत्ममायामात्रत्वलक्षणं तत्त्वं पश्य ध्यानेन साक्षात्कुरु ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढामिति श्रुतेः एवं दृष्ट्वा च यत् यत· तत्तमपि स्वभावं भूतमनादिं न पश्यति मायामपि बाधित्वा चिन्मात्रेण रूपेण योऽवतिष्ठते स महाभयात्संसारान्मुच्यत इत्यर्थ ॥८॥ नन्वैश्वर्यमेव वरम् किं सुषुप्तिसमेन मोक्षेणेत्यत आह-**कामात्मानमिति** । अथ यत्रान्यत्पश्यति तदल्पमिति श्रुतेरैश्वर्यमपि तुच्छमेवातो न प्रशंसंति संत मनस कामोदयस्तत प्रवृत्तिस्ततो दु·खमतो मन एव निरोद्धव्यमित्यर्थ· ॥ ९ ॥ एतच्चानेकजन्मसाध्यमित्याह-**भूयो भूय इति** । विच्छिद्य विच्छिद्योत्तरोत्तरभूमिलाभरूपं जन्म यस्य स भूयोभूयोजन्मा तस्मादेवाभ्यासयोगात् शुद्धचित्त सन् सारमार्गं मोक्षमार्गं विचिंत्य कामान्संहरत इति पूर्वेणान्वय कोऽसौ इत्याह-**दानं चेति** ॥ १० ॥ यो दानादिध्यानयोगातान् कामन कामपूर्वकं नारभते यद्यच्चायं कामयते स धर्मो नेति विदित्वेति संबन्ध फलितमाह-यो धर्मो नियमस्तस्य मूलमिति तस्य कामस्य यो नियमो निग्रह. स धर्म· स च मूलं मोक्षबीजम् ॥ ११ ॥ कामस्य दुरुच्छेद्यत्वं कामोक्तिभिरेवाह-**अत्र गाथा इत्यादिना** । अनुपायेन निर्ममत्वं योगाभ्यासश्च कामजयोपाय उक्तस्तद्व्यतिरेकेणेत्यर्थ ॥ १२ ॥

यो मां प्रयतते हन्तुं ज्ञात्वा प्रहरणे बलम् ।
तस्य तस्मिन्प्रहरणे पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् १३
यो मां प्रयतते हन्तुं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
जङ्गमेष्विव धर्मात्मा पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥
यो मां प्रयतते नित्यं वेदैर्वेदान्तसाधनैः ।
स्थावरेष्विव भूतात्मा तस्य प्रादुर्भवाम्यहम्
यो मां प्रयतते हन्तुं धृत्या सत्यपराक्रमः ।
भावो भवामि तस्याहं स च मां नावबुध्यते १६
यो मां प्रयतते हन्तुं तपसा संशितव्रतः ।
ततस्तपसि तस्याथ पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् १७
यो मां प्रयतते हन्तुं मोक्षमास्थाय पण्डितः ।
तस्य मोक्षरतिस्थस्य नृत्यामि च हसामि च
अवध्यः सर्वभूतानामहमेकः सनातनः ॥ १८
तस्मात्त्वमपि तं कामं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
धर्मे कुरु महाराज तत्र ते स भविष्यति १९
यजस्व वाजिमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ॥ २०
मा ते व्यथाऽस्तु निहतान्बन्धून्वीक्ष्य पुनः पुनः
न शक्यास्ते पुनर्द्रष्टुं ये हताऽस्मिन् रणाजिरे
स त्वमिष्ट्वा महायज्ञैः
समृद्धैराप्तदक्षिणैः ।
कीर्तिं लोके परां प्राप्य
गतिमग्र्यां गमिष्यसि ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि कृष्णधर्मसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

वैशम्पायन उवाच ।
एवं बहुविधैर्वाक्यैर्मुनिभिस्तैस्तपोधनैः ।
समाश्वस्यत राजर्षिर्हतबन्धुर्युधिष्ठिरः ॥ १
सोऽनुनीतो भगवता विष्टरश्रवसा स्वयम् ।
द्वैपायनेन कृष्णेन देवस्थानेन वा विभुः ॥ २
नारदेनाथ भीमेन नकुलेन च पार्थिव ।
कृष्णया सहदेवेन विजयेन च धीमता ॥ ३
अन्यैश्च पुरुषव्याघ्रैर्ब्राह्मणैः शास्त्रदृष्टिभिः ।
व्यजहाच्छोकजं दुःखं सन्तापं चैव मानसम्
अर्चयामास देवांश्च ब्राह्मणांश्च युधिष्ठिरः ।
कृत्वाऽथ प्रेतकार्याणि बन्धूनां स पुनर्नृपः ।
अन्वशासच्च धर्मात्मा पृथिवीं सागराम्बराम्
प्रशान्तचेताः कौरव्यः स्वराज्यं प्राप्य केवलम्
व्यासं च नारदं चैव तांश्चान्यानब्रवीन्नृपः ॥ ६

---

यो मामिति प्रहरणे वागादींद्रियसाध्ये जपादिशास्त्रे प्रादुर्भवामि अहमेव सर्वोत्कृष्टो जपादिकर्तेत्यभिमानरूपेणाविर्भवामि तेन जपादिकं विफलं करोमीत्यर्थ । द्वितीये यो मामिति श्लोके प्रहरणे मनसि श्मशानवैराग्यन्यायेन जितो मया काम इति निश्चित्य प्रयतते संन्यासादिकं करोति तस्य मनस्येव पुनरहं प्रादुर्भवामि यदाहुरभियुक्ता -प्रमादिनो बहिश्चित्ता पिशुनाः कलहोत्सुका । संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसंदूषिताशया इति ॥ १३ ॥ यो यज्ञैः कामं जिघांसति तस्य चेतसि यथा धर्मात्मा जंगमेषु उत्तमयोनौ उदाररूपेणाविर्भवति तद्वत्तस्य चेतसि अहं दंभादिरूपेणाविर्भवामि ॥१४॥ स्थावरेषु अनभिव्यक्तरूपेण भूतात्मा जीव धर्मात्मेत्यत्रापि पठंति केचित् यायजूकापेक्षया वेदवेदांतसाधनेष्वल्पा कामाभिव्यक्तिरित्यर्थः ॥ १५ ॥ धृत्या संग्रामे विपदि च धैर्येण मावश्चित्तं धैर्यबलेनैव लोकद्वयं जेष्यामीत्यभिमानवन्तं तं करोमीत्यर्थ ।स च इममेवाभिमानं कामत्वेन बंधकत्वेन नावबुध्यते ॥ १६ ॥ तपसा योगबलेन तत्रापि योगोपसर्गरूपेण मधुमत्याद्यैश्वर्यभूमिषु स्पृहारूपेणाविर्भवामि॥१७॥ मोक्षमास्थाय नित्यमुक्तमात्मानमज्ञात्वा मोक्षार्थं यस्तपआदि करोति तमज्ञं प्राप्य नृत्यामि च हसामि चेत्यर्थ ॥१८॥ **तस्मादिति**। यस्मान्निर्ममत्वपूर्वकयोगाभ्यासमंतरेण अन्य कामजयोपायो नास्ति निर्ममत्वं च यज्ञादिजन्या चित्तशुद्धिं विना न संभवति तस्मात् निष्कामान् यज्ञादीननुतिष्ठतस्ते तव श्रेय सिद्धिरिति शेष. ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

**१४**

आख्यायिकामनुसरत्यध्यायद्वयेन-**एवं बहुविधैर्वाक्यैरित्यादिना**॥१ कृत्वाऽथेति पुनरिति मासिकादीनि प्रेतकार्याणि पूर्वकृतानामेवानुवादो वा ॥ ५ ॥

आश्वासितोऽहं प्राग्वृद्धैर्भवद्भिर्मुनिपुङ्गवैः ।
न सूक्ष्ममपि मे किञ्चिद्व्यलीकमिह विद्यते ॥ ७
अर्थश्च सुमहान्प्राप्तो येन यक्ष्यामि देवताः ।
पुरस्कृत्याद्य भवतः समानेष्यामहे मखम् ॥ ८
हिमवन्तं त्वया गुप्ता गमिष्यामः पितामह ।
बह्वाश्चर्यो हि देशः स श्रूयते द्विजसत्तम ॥ ९
तथा भगवता चित्रं कल्याणं बहुभाषितम् ।
देवर्षिणा नारदेन देवस्थानेन चैव ह ॥ १०
नाभागधेयः पुरुषः कश्चिदेवंविधान् गुरून् ।
लभते व्यसनं प्राप्य सुहृदः साधुसंमतान् ॥
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सर्व एव महर्षयः ।
अभ्यनुज्ञाप्य राजानं तथोभौ कृष्णफाल्गुनौ
पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवादर्शनं ययुः ।
ततो धर्मसुतो राजा तत्रैवोपाविशत्प्रभुः १३
एवं नातिमहान्कालः स तेषां संन्यवर्तत ।
कुर्वतां शौचकार्याणि भीष्मस्य निधने तदा
महादानानि विप्रेभ्यो ददतामौर्ध्वदेहिकम् ।
भीष्मकर्णपुरोगाणां कुरूणां कुरुसत्तम ॥ १५
सहितो धृतराष्ट्रेण स ददावौर्ध्वदेहिकम् ।
ततो दत्वा बहुधनं विप्रेभ्यः पाण्डवर्षभः १६
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विवेश गजसाह्वयम् ।
स समाश्वास्य पितरं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
अन्वशाद्वै स धर्मात्मा पृथिवीं भ्रातृभिः सह१७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

जनमेजय उवाच ।
विजिते पाण्डवेयैस्तु प्रशान्ते च द्विजोत्तम ।
राष्ट्रे किं चक्रतुर्वीरौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
विजिते पाण्डवै राजन्प्रशान्ते च विशाम्पते
राष्ट्रे बभूवतुर्हृष्टौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ २
विजह्राते मुदा युक्तौ दिवि देवेश्वराविव ।
तौ वनेषु विचित्रेषु पर्वतेषु ससानुषु ॥ ३
तीर्थेषु चैव पुण्येषु पल्वलेषु नदीषु च ।
चंक्रम्यमाणौ संहृष्टावश्विनाविव नन्दने ॥ ४
इन्द्रप्रस्थे महात्मानौ रेमतुः कृष्णपाण्डवौ ।
प्रविश्य तां सभां रम्यां विजह्राते च भारत
तत्र युद्धकथाश्चित्राः परिक्लेशांश्च पार्थिव ।
कथायोगे कथायोगे कथयामासतुः सदा ॥ ६
ऋषीणां देवतानां च वंशांस्तावाहतुः सदा ।
प्रीयमाणौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ ७
मधुरास्तु कथाश्चित्राश्चित्रार्थपदनिश्चयाः ।
निश्चयज्ञः स पार्थाय कथयामास केशवः ॥ ८
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं ज्ञातीनां च सहस्रशः ।
कथाभिः शमयामास पार्थं शौरिर्जनार्दनः ॥ ९
स तमाश्वास्य विधिवद्विज्ञानज्ञो महातपाः ।
अपहृत्यात्मनो भारं विशश्रामेव सात्वतः ॥
ततः कथान्ते गोविन्दो गुडाकेशमुवाच ह ।
सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हेतुयुक्तमिदं वचः
वासुदेव उवाच ।
विजितेयं धरा कृत्स्ना सव्यसाचिन्परन्तप
त्वद्बाहुबलमाश्रित्य राज्ञा धर्मसुतेन ह ॥ १२
असपत्नां महीं भुंक्ते धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भीमसेनानुभावेन यमयोश्च नरोत्तम ॥ १३
धर्मेण राज्ञा धर्मज्ञ प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।
धर्मेण निहतः संख्ये स च राजा सुयोधनः१५
अधर्मरुचयो लुब्धाः सदा चाप्रियवादिनः ।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानः सानुबन्धा निपातिताः
प्रशान्तामखिलां पार्थ पृथिवीं पृथिवीपतिः ।
भुंक्ते धर्मसुतो राजा त्वया गुप्तः कुरूद्वह ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५
विजिते इति ॥ १ ॥

रमे चाहं त्वया सार्धमरण्येष्वपि पाण्डव ।
किमु यत्र जनोऽयं वै पृथा चामित्रकर्षण ॥ १७
यत्र धर्मसुतो राजा यत्र भीमो महाबलः ।
यत्र माद्रवतीपुत्रौ रतिस्तत्र परा मम ॥ १८
तथैव स्वर्गकल्पेषु सभोद्देशेषु कौरव ।
रमणीयेषु पुण्येषु सहितस्य त्वयाऽनघ ॥ १९
कालो महांस्त्वतीतो मे शूरसूनुमपश्यतः ।
बलदेवं च कौरव्य तथाऽन्यान् वृष्णिपुङ्गवान्
सोऽहं गन्तुमभीप्सामि पुरीं द्वारावतीं प्रति ।
रोचतां गमनं मह्यं तवापि पुरुषर्षभ ॥ २१
उक्तो बहुविधं राजा तत्र तत्र युधिष्ठिरः ।
सह भीष्मेण यद्युक्तमस्माभिः शोककारिते ॥
शिष्टो युधिष्ठिरोऽस्माभिः
शास्ता सन्नपि पाण्डवः ।
तेन तत्तु वचः सम्य-
ग्गृहीतं सुमहात्मना ॥ २३
धर्मपुत्रे हि धर्मज्ञे कृतज्ञे सत्यवादिनि ।
सत्यं धर्मो मतिश्चाऽग्र्या स्थितिश्च सततं स्थिरा
तत्र गत्वा महात्मानं यदि ते रोचतेऽर्जुन ।
अस्मद्गमनसंयुक्तं वचो ब्रूहि जनाधिपम् ॥ २५
न हि तस्याप्रियं कुर्यां प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।
कुतो गन्तुं महाबाहो पुरीं द्वारावतीं प्रति २६
सर्वं त्विदमहं पार्थ त्वत्प्रीतिहितकाम्यया ।
ब्रवीमि सत्यं कौरव्य न मिथ्यैतत्कथञ्चन २७
प्रयोजनं च निर्वृत्तमिह वासे ममार्जुन ।
धार्तराष्ट्रो हतो राजा सबलः सपदानुगः २८
पृथिवी च वशे तात धर्मपुत्रस्य धीमतः ।
स्थिता समुद्रवलया सशैलवनकानना ॥ २९
चिता रत्नैर्बहुविधैः कुरुराजस्य पाण्डव ।
धर्मेण राजा धर्मज्ञः पातु सर्वां वसुन्धराम् ॥
उपास्यमानो बहुभिः सिद्धैश्चापि महात्मभिः ।
स्तूयमानश्च सततं बन्दिभिर्भरतर्षभ ॥ ३१
तं मया सह गत्वाऽद्य राजानं कुरुवर्धनम् ।
आपृच्छ कुरुशार्दूल गमनं द्वारकां प्रति ॥ ३२
इदं शरीरं वसु यच्च मे गृहे
निवेदितं पार्थ सदा युधिष्ठिरे ।
प्रियश्च मान्यश्च हि मे युधिष्ठिरः
सदा कुरूणामधिपो महामतिः ॥ ३३
प्रयोजनं चापि निवासकारणे
न विद्यते मे त्वदृते नृपात्मज ।
स्थिता हि पृथ्वी तव पार्थ शासने
गुरोः सुवृत्तस्य युधिष्ठिरस्य च ३४
इतीदमुक्तः स तदा महात्मना
जनार्दनेनामितविक्रमोऽर्जुनः ।
तथेति दुःखादिव वाक्यमैरय-
ज्जनार्दनं सम्प्रतिपूज्य पार्थिव ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अश्वमेधपर्वणि
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समाप्तं च अश्वमेधपर्व ।

## ॥ अथानुगीतापर्व ॥

### १६

जनमेजय उवाच ।
सभायां वसतोस्तत्र निहत्यारीन्महात्मनोः ।
केशवार्जुनयोः का नु कथा समभवद्द्विज ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
कृष्णेन सहितः पार्थः स्वं राज्यं प्राप्य केवलं
तस्यां सभायां दिव्यायां विजहार मुदा युतः

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६
सभायामिति ॥ १ ॥

तत्र कश्चित्सभोद्देशं स्वर्गोद्देशसमं नृप ।
यदृच्छया तौ मुदितौ जग्मतुः स्वजनावृतौ ३
ततः प्रतीतः कृष्णेन सहितः पाण्डवोऽर्जुनः ।
निरीक्ष्य तां सभां रम्यामिदं वचनमब्रवीत् ४
विदितं मे महाबाहो संग्रामे समुपस्थिते ।
माहात्म्यं देवकीमातस्तच्च ते रूपमैश्वरम् ॥ ५
यत्तद्भगवता प्रोक्तं पुरा केशव सौहृदात् ।
तत्सर्वं पुरुषव्याघ्र नष्टं मे भ्रष्टचेतसः ॥ ६
मम कौतूहलं त्वस्ति तेष्वर्थेषु पुनः पुनः ।
भवांस्तु द्वारकां गन्ता नचिरादिव माधव ७

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु तं कृष्णः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ।
परिष्वज्य महातेजा वचनं वदतां वरः ॥ ८

वासुदेव उवाच ।

श्रावितस्त्वं मया गुह्यं ज्ञापितश्च सनातनम्
धर्मं स्वरूपिणं पार्थ सर्वलोकांश्च शाश्वतान् ९
अबुद्ध्या नाग्रहीर्यस्त्वं तन्मे सुमहदप्रियम् ।
न च साऽद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे संभविष्यति ॥
नूनमश्रद्दधानोऽसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव ।
न च शक्यं पुनर्वक्तुमशेषेण धनञ्जय ॥ ११
स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः पदवेदने ।
न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः १२
परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया ।
इतिहासं तु वक्ष्यामि तस्मिन्नर्थे पुरातनम् ॥
यथा तां बुद्धिमास्थाय गतिमग्र्यां गमिष्यसि
शृणु धर्मभृतां श्रेष्ठ गदितं सर्वमेव मे ॥ १४
आगच्छद्ब्राह्मणः कश्चित्स्वर्गलोकादरिन्दम ।
ब्रह्मलोकाच्च दुर्धर्षः सोऽस्माभिः पूजितोऽभवत्
अस्माभिः परिपृष्टश्च यदाह भरतर्षभ ।
दिव्येन विधिना पार्थ तच्छृणुष्वाविचारयन्

ब्राह्मण उवाच ।

मोक्षधर्मं समाश्रित्य कृष्ण यन्मामपृच्छथाः
भूतानामनुकम्पार्थं यन्मोहच्छेदनं विभो १७
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावन्मधुसूदन ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा गदतो मम माधव १८
कश्चिद्विप्रस्तपोयुक्तः काश्यपो धर्मवित्तमः ।
आससाद द्विजं कश्चिद्धर्माणामागतागमम् ॥
गतागते सुबहुशो ज्ञानविज्ञानपारगम् ।
लोकतत्त्वार्थकुशलं ज्ञातारं सुखदुःखयोः २०
जातीमरणतत्त्वज्ञं कोविदं पापपुण्ययोः ।
द्रष्टारमुच्चनीचानां कर्मभिर्देहिनां गतिम् २१
चरन्तं मुक्तवत्सिद्धं प्रशान्तं संयतेन्द्रियम् ।
दीप्यमानं श्रिया ब्राह्म्या क्रममाणं च सर्वशः
अन्तर्धानगतिज्ञं च श्रुत्वा तत्त्वेन काश्यपः ।
तथैवान्तर्हितैः सिद्धैर्यान्तं चक्रधरैः सह २३
संभाषमाणमेकान्ते समासीनं च तैः सह ।
यदृच्छया च गच्छन्तमसक्तं पवनं यथा २४
तं समासाद्य मेधावी स तदा द्विजसत्तमः ।
चरणौ धर्मकामोऽस्य तपस्वी सुसमाहितः ।
प्रतिपेदे यथान्यायं दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ २५
विस्मितश्चाद्भुतं दृष्ट्वा काश्यपस्तं द्विजोत्तमम्
परिचारेण महता गुरुं तं पर्यतोषयत् ॥ २६
उपपन्नं च तत्सर्वं श्रुतचारित्रसंयुतम् ।
भावेनातोषयच्चैनं गुरुवृत्त्या परंतपः ॥ २७
तस्मै तुष्टः स शिष्याय प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत्
सिद्धिं परामभिप्रेक्ष्य शृणु मत्तो जनार्दन २८

सिद्ध उवाच ।

विविधैः कर्मभिस्तात पुण्ययोगैश्च केवलैः ।
गच्छन्तीह गतिं मर्त्या देवलोके च संस्थितिम्
न क्वचित्सुखमत्यन्तं न क्वचिच्छाश्वती स्थितिः
स्थानाच्च महतो भ्रंशो दुःखलब्धात्पुनः पुनः
अशुभा गतयः प्राप्ताः कष्टा मे पापसेवनात् ।
काममन्युपरीतेन तृष्णया मोहितेन च ३१
पुनः पुनश्च मरणं
जन्म चैव पुनः पुनः ।
आहारा विविधा भुक्ताः
पीता नानाविधाः स्तनाः ॥ ३२
मातरो विविधा दृष्टाः पितरश्च पृथग्विधाः ।
सुखानि च विचित्राणि दुःखानि च मयाऽनघ
प्रियैर्विवासो बहुशः संवासश्चाप्रियैः सह ।
धननाशश्च संप्राप्तो लब्ध्वा दुःखेन तद्धनम् ॥

---

षोडशे सभायामित्यादिना प्रस्तूयानुगीतामारभते—**मोक्षधर्ममित्यादिना** भूतानामेव न स्वस्य विभो परमात्मन् ॥ १७ ॥ आगतागमं प्राप्तशास्त्ररहस्यं ऊहापोहकुशलमित्यर्थ ॥ १९ ॥ गतागते मरणसंसरणे विषये ज्ञानं शास्त्रानुमानजं विज्ञानं योगजप्रत्यक्षं अस्यैव व्याख्यान लोकतत्त्वेति सार्धेन ॥२०॥ जाती जन्म ॥ २१ ॥ मुक्तवत् नित्यमुक्तस्यापि मृषा बधाभिप्रायं वत्करणम्॥२२॥ अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादित्यात्मनो धर्माद्यतीतत्वाद्धर्माधर्मावेव फलतो निन्दति—**वैराग्याय विविधैरित्यादिना** ॥२९॥

अवमानाः सुकष्टाश्च राजतः स्वजनास्तथा ।
शारीरा मानसा वाऽपि वेदना भृशदारुणाः
प्राप्ता विमाननाश्चोग्रा वधबन्धाश्च दारुणाः ।
पतनं निरये चैव यातनाश्च यमक्षये ॥ ३६
जरा रोगाश्च सततं व्यसनानि च भूरिशः ।
लोकेऽस्मिन्ननुभूतानि द्वन्द्वजानि भृश मया ॥
ततः कदाचिन्निर्वेदान्निराकाराश्रितेन च ।
लोकतन्त्र परित्यक्त दुःखार्तेन भृशं मया ३८
लोकेऽस्मिन्ननुभूयाहमिमं मार्गमनुष्ठितः ।
ततः सिद्धिरियं प्राप्ता प्रसादादात्मनो मया ॥
नाहं पुनरिहागन्ता लोकानालोकयाम्यहम् ।
आसिद्धेराप्रजासर्गादात्मनोऽपि गतीः शुभाः
उपलब्धा द्विजश्रेष्ठ तथेयं सिद्धिरुत्तमा ।
इतः परं गमिष्यामि ततः परतर पुनः ॥ ४१
ब्रह्मणः पदमव्यक्त मा तेऽभूदत्र संशयः ।
नाहं पुनरिहागन्ता मर्त्यलोकं परंतप ॥ ४२
प्रीतोऽस्मि ते महाप्राज्ञ ब्रूहि किं करवाणि ते
यदीप्सुरुपपन्नस्त्वं तस्य कालोऽयमागतः ४३
अभिजाने च तदहं यदर्थं मामुपागतः ।
अचिरात्तु गमिष्यामि तेनाहं त्वामचूचुदम्
भृशं प्रीतोऽस्मि भवतश्चारित्रेण विचक्षण ।
परिपृच्छस्व कुशलं भाषेयं यत्तवेप्सितम् ४५
बहुमन्ये च ते बुद्धिं भृशं संपूजयामि च ।
येनाहं भवता बुद्धो मेधावी ह्यसि काश्यप ४६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

वासुदेव उवाच ।
ततस्तस्योपसंगृह्य पादौ प्रश्नान्सुदुर्वचान् ।
पप्रच्छ तांश्च धर्मान्स प्राह धर्मभृतां वरः ॥१
काश्यप उवाच ।
कथं शरीरं च्यवते कथं चैवोपपद्यते ।
कथं कष्टाच्च संसारात्संसरन्परिमुच्यते ॥ २
आत्मा च प्रकृतिं मुक्त्वा तच्छरीरं विमुंचति
शरीरतश्च निर्मुक्तः कथमन्यत्प्रपद्यते ॥ ३
कथं शुभाशुभे चायं कर्मणी स्वकृते नरः ।
उपभुंक्ते क्व वा कर्म विदेहस्यावतिष्ठते ॥ ४
ब्राह्मण उवाच ।
एवं संचोदितः सिद्धः प्रश्नांस्तान्प्रत्यभाषत ।
आनुपूर्व्येण वार्ष्णेय तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५

---

तत कदाचिदिति निर्वेदाख्यवैराग्यदौर्लभ्यमुक्तं निराकाराश्रितेन असंप्रज्ञातसमाधिमधिगम्यब्रह्मभावाश्रितेन लोक्यत इति लोको द्वैतं तत्तन्त्रं तज्ज दुःखम् ॥३८॥ इमं मार्ग योगमार्गं अनुभूय ज्ञात्वा अनुष्ठित अनुष्ठाऽनुष्ठान अभ्यास. सजातोऽस्य सोऽनुष्ठित ततोऽनुष्ठानात् इयं पूर्वोक्ता अन्तर्धानादिशक्तिज्ञानविज्ञानादिरूपा आत्मन मनस मनसो हि प्रमादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम । प्रसन्नात्मानि म स्थित्वा सुखमक्षय्यमश्नुते इति श्रुते ॥ ३९ ॥ विद्याफलं अपुनरावृत्ति सर्वज्ञत्वं चाह-**नाहमित्यादिना**। आसिद्धे आमोक्षात् आप्रजासृष्टे आत्मन अपिशब्दाल्लोकाना च गतीरालोकयामीत्यन्वय ॥ ४० ॥ इत परं सत्यलोकं परतर कैवल्य यदि प्रयास्यत्रूपपारमेष्ठ्यमिति योगिनामिच्छया सद्यो वा कार्मिकं वा कैवल्यमस्तीति स्मरणात ॥ ४१ ॥ बहु मन्ये भृशं पूजये अहमन्तर्धानगतोऽपि यतस्त्वया ज्ञात ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

१७

**तत इति** ॥ १ ॥ एवं नित्यानित्यविवेकवैराग्यादय. शिष्यगुणा ज्ञानविज्ञानादयो गुरुगुणाश्चोक्ता तत पुन पुनश्च मरणं जन्म चैव पुन. पुनरित्युक्तं तयो प्राप्तिप्रकारौ पृच्छति-**कथमिति**। नाहं पुनरिहागन्तेत्युक्तम् । तस्यापि प्रकारं पृच्छति-**कथं कष्टाच्चेति** ॥२॥ इत पर गमिष्यामि तत. परतरम पुनरित्युक्तम् । तत्रापि पृच्छति आत्मा चेति। आत्मा जीव प्रकृति मूलाविद्या तच्छरीरं तज्ज स्थूलपिंडम् मुक्त्वा कथं परं प्राप्नोतीत्यर्थ । शरीरात् परस्मात् कथ अन्यत् परतरं ब्रह्म प्रपद्यत इति **पंचमः** प्रश्न ॥ ३ ॥ **कथं शुभाशुभे इति**। एवभूतस्य जीवत कथं कर्मफलभोग इति षष्ट विदेहस्य संसारबीजभूतं कर्म क्व वा तिष्ठतीति **सप्तमः** ॥ ४ ॥

सिद्ध उवाच ।
आयुःकीर्तिकराणीह यानि कृत्यानि सेवते
शरीरग्रहणे यस्मिंस्तेषु क्षीणेषु सर्वशः ॥ ६
आयुःक्षयपरीतात्मा विपरीतानि सेवते ।
बुद्धिर्व्यावर्तते चास्य विनाशे प्रत्युपस्थिते ७
सत्त्वं बलं च कालं च विदित्वा चात्मनस्तथा
अतिवेलमुपाश्नाति स्वविरुद्धान्यनात्मवान् ८
यदायमतिकष्टानि सर्वाण्युपनिषेवते ।
अत्यर्थमपि वा भुंक्ते न वा भुंक्ते कदाचन ॥ ९
दुष्टान्नामिषपानं च यदन्योन्यविरोधि च ।
गुरु चाप्यमितं भुंक्ते नातिजीर्णेऽपि वा पुनः·
व्यायाममतिमात्रं च व्यवायं चोपसेवते ।
सततं कर्मलोभाद्वा प्राप्तं वेगं विधारयेत् ॥११
रसाभियुक्तमन्नं वा दिवा स्वप्नं च सेवते ।
अपक्वानागते काले स्वयं दोषान्प्रकोपयेत् १२
स्वदोषकोपनाद्रोगं लभते मरणान्तिकम् ।
अपि वोद्बन्धनादीनि परीतानि व्यवस्यति १३
तस्य तैः कारणैर्जन्तोः शरीरं च्यवते तदा ।
जीवितं प्रोच्यमानं तद्यथावदुपधारय ॥ १४
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ।
शरीरमनुपर्येत्य सर्वान्प्राणान् रुणद्धि वै १५
अत्यर्थं बलवानूष्मा शरीरे परिकोपितः ।
भिनत्ति जीवस्थानानि मर्माणि विद्धि तत्त्वतः
ततः सवेदनः सद्यो जीवः प्रच्यवते क्षरात् ।
शरीरं त्यजते जंतुश्छिद्यमानेषु मर्मसु ॥ १७
वेदनाभिः परीतात्मा तद्विद्धि द्विजसत्तम ।
जातीमरणसंविग्नाः सततं सर्वजन्तवः ॥ १८
दृश्यन्ते सन्त्यजन्तश्च शरीराणि द्विजर्षभ ।
गर्भसंक्रमणे चापि मर्मणामतिसर्पणे ॥ १९
तादृशीमेव लभते वेदनां मानवः पुनः ।
भिन्नसंधिरथ क्लेदमद्भिः स लभते नरः ॥२०
यथा पञ्चसु भूतेषु संभूतत्वं नियच्छति ।
शैत्यात्प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः २१
यः स पञ्चसु भूतेषु
प्राणापाने व्यवस्थितः ।
स गच्छत्यूर्ध्वगो वायुः
कृच्छ्रान्मुक्त्वा शरीरिणः ॥ २२
शरीरं च जहात्येवं निरुच्छ्वासश्च दृश्यते ।
स निरूष्मा निरुच्छ्वासो निःश्रीको हतचेतनः
ब्रह्मणा संपरित्यक्तो मृत इत्युच्यते नरः ।
स्रोतोभिर्यैर्विजानाति इंद्रियार्थान् शरीरभृत्
तैरेव न विजानाति प्राणानाहारसंभवान् ।
तत्रैव कुरुते काये यः स जीवः सनातनः २५
तथा यद्यद्भवेद्युक्तं सन्निपाते क्वचित् क्वचित् ।
तत्तन्मर्म विजानीहि शास्त्रदृष्टं हि तत्तथा २६
तेषु मर्मसु भिन्नेषु ततः स समुदीरयन् ।
आविश्य हृदयं जन्तोः सत्त्वं चाशु रुणद्धि वै
ततः सचेतनो जंतुर्नाभिजानाति किञ्चन २७
तमसा संवृतज्ञानः संवृतेष्वेव मर्मसु ।
स जीवो निरधिष्ठानश्चाल्यते मातरिश्वना २८
ततः स तं महोच्छ्वासं भृशमुच्छ्वस्य दारुणम्
निष्क्रामन्कंपयत्याशु तच्छरीरमचेतनम् ॥२९
स जीवः प्रच्युतः कायात्कर्मभिः स्वैः समावृतः
अभितः स्वैः शुभैः पुण्यैः पापैर्वाऽप्युपपद्यते ॥
ब्राह्मणा ज्ञानसंपन्ना यथावच्छ्रुतनिश्चयाः ।
इतरं कृतपुण्यं वा तं विजानन्ति लक्षणैः ॥३१
यथाऽन्धकारे खद्योतं लीयमानं ततस्ततः ।
चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्ति तथा च ज्ञानचक्षुषः ॥
पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा
च्यवन्तं जायमानं च योनिं चानुप्रवेशितम् ॥
तस्य स्थानानि दृष्टानि त्रिविधानीह शास्त्रतः
कर्मभूमिरियं भूमिर्यत्र तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ३४
ततः शुभाशुभं कृत्वा लभन्ते सर्वदेहिनः ।
इहैवोच्चावचान् भोगान् प्राप्नुवन्ति स्वकर्मभिः
इहैवाशुभकर्माणः कर्मभिर्निरयं गताः ।
अवाग्गतिरियं कष्टा यत्र पच्यन्ति मानवाः ।
तस्मात्सुदुर्लभो मोक्ष आत्मा रक्ष्यश्चतो भृशं

तत्र आद्यस्य प्रश्नस्याद्येनाध्यायेनोत्तरम् । ततो द्वितीयस्य द्वितीयेन शेषाणां तृतीयेन सिद्ध उवाच आयुःकीर्तिकराणीहत्यादिना ॥ ६ ॥ वेगं मलमूत्रादीनाम् ॥ ११ ॥ रसाभियुक्तं परिणामे बहुरसकरं रसबाहुल्यस्याजीर्णहेतुत्वात् ॥ १२ ॥ अपि वा अथवा परीतानि विपरीतानि व्यवस्यति करोति तेन नीरुजोऽपि म्रियत इत्यर्थः १३॥
नातिजीर्णे दिवा पुनः इति पाठः ।

क्षरात् जडाच्छरीरात् ॥ १७ ॥ जाती जन्म ॥ १८ ॥ गर्भसंक्रमणे पारलौकिकदेहत्यागेनैहिकगर्भस्थदेहप्रवेशे ॥ १९॥ अद्भिः क्लेदं जलेन वैक्लव्यम् ॥ २० ॥ संभूतत्वं सहतत्वम् नियच्छति नाशयति यथा भूतानि पृथग्भवन्तीत्यर्थः. तीव्रेण वायुनान्येन समीरितः प्राणापानस्थाने व्यवस्थितो यो वायुरित्युत्तरेण संबंध ॥ २१ ॥ स्रोतोभिरिन्द्रियैः ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वं तु जन्तवो गत्वा येषु स्थानेष्ववस्थिताः ।
कीर्त्यमानानि तानीह तत्त्वतः संनिबोध मे ॥
तच्छ्रुत्वा नैष्ठिकीं बुद्धिं बुध्येथाः कर्मनिश्चयम्
तारारूपाणि सर्वाणि यत्रैतच्चन्द्रमण्डलम् ३८
यत्र विभ्राजते लोके स्वभासा सूर्यमण्डलम् ।
स्थानान्येतानि जानीहि जनानां पुण्यकर्मणां
कर्मक्षयाच्च ते सर्वे च्यवन्ते वै पुनः पुनः ।
तत्रापि च विशेषोस्ति दिवि नीचोच्चमध्यमः
न च तत्रापि सन्तोषो दृष्ट्वा दीप्ततरां श्रियम् ।
इत्येता गतयः सर्वाः पृथक्ते समुदीरिताः ४१
उपपत्तिं तु वक्ष्यामि गर्भस्याहमतः परम् ।
तथा तन्मे निगदतः शृणुष्वावहितो द्विज ४२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

ब्राह्मण उवाच ।
शुभानामशुभानां च नेह नाशोस्ति कर्मणाम्
प्राप्य प्राप्यानुपच्यन्ते क्षेत्रं क्षेत्रं तथा तथा १
यथा प्रसूयमानस्तु फली दद्यात्फलं बहु ।
तथा स्याद्विपुलं पुण्यं शुद्धेन मनसा कृतम् २
पापं चापि तथैव स्यात्पापेन मनसा कृतम् ।
पुरोधाय मनो हीदं कर्मण्यात्मा प्रवर्तते ॥ ३
यथा कर्मसमाविष्टः काममन्युसमावृतः ।
नरो गर्भं प्रविशति तच्चापि शृणु चोत्तरम् ४
शुक्रं शोणितसंसृष्टं स्त्रिया गर्भाशयं गतम् ।
क्षेत्रं कर्मजमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम्
सौक्ष्म्यादव्यक्तभावाच्च न च क्वचन सज्जति
संप्राप्य ब्राह्मणः कामं तस्मात्तद्ब्रह्म शाश्वतम्
तद्बीजं सर्वभूतानां तेन जीवन्ति जन्तवः ।
स जीवः सर्वगात्राणि गर्भस्याविश्य भागशः
दधाति चेतसा सद्यः प्राणस्थानेष्ववस्थितः ।
ततः स्पन्दयतेऽङ्गानि स गर्भश्चेतनान्वितः ८
यथा लोहस्य निःस्यन्दो
निषिक्तो बिम्बविग्रहम् ।
उपैति तद्विजानीहि
गर्भे जीवप्रवेशनम् ॥ ९
लोहपिण्डं यथा वह्निः
प्रविश्य ह्यतितापयेत् ।
तथा त्वमपि जानीहि
गर्भे जीवोपपादनम् ॥ १०
यथा च दीपः शरणे दीप्यमानः प्रकाशते ।
एवमेव शरीराणि प्रकाशयति चेतना ॥ ११

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

**शुभानामिति** । क्षेत्रं क्षेत्रं देहं देहं प्राप्य प्राप्यासाद्यासाद्य पच्यन्ते फलं प्रयच्छन्ति ॥ १ ॥ चित्तशुद्ध्यशुद्धितारतम्येनाल्पादपि पुण्यात्पापाद्वा फलं बह्वस्तीत्याह सार्धेन-**यथेति**। फली वृक्षः ॥२॥ **पुरोधायेति** । तस्मान्मन एव प्रधानं न कर्मेति भावः ॥३॥ **यथा कर्मेति** । मन्युरविद्या संकल्पो वा तच्चापि तत्रापि प्रश्ने ॥४॥ तदाह-**शुक्रमिति** ॥ ५ ॥ क्षेत्रं प्राप्तस्य नरस्य तात्त्विकं रूपमाह-**सौक्ष्म्यादिति** । ब्राह्मणो ब्रह्मवित् तस्मात् तत् शाश्वतं ब्रह्म ज्ञात्वा कामम् ईप्सितं प्राप्यासंगो भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ तद्बीजं ब्रह्मैव कारणं **तेनेति** । ' एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः । स ब्रह्मैव सन् जीवः चेतसा उपाधिभूतेन प्राणस्थानेषु इन्द्रियगोलकेषु दधाति धारयते अभिमानमित्यर्थ इत्युत्तरश्लोकार्धेन सहान्वयः ॥ ७ ॥ ततो धारणात् ॥ ८ ॥ ननु कथं सूक्ष्मोपि देहं व्याप्नुयादव्यक्तो वा व्यक्तिं असंगो वा संगमित्याशंक्य त्रिभिः परिहरति-यथा लोहस्येत्यादिभिः यथा स्वर्णद्रवः स्वल्पोऽपि कृत्स्नां ताम्रप्रतिमां स्वर्णमयीमिव करोति एवं गर्भे जीवप्रवेशनं शरीरे सूक्ष्मस्यापि चैतन्यस्य व्याप्तिरित्याद्यस्य परिहारः. यथैव बिंबं मृदयोपलिप्तमित्यादिश्रुत्यनुसारी ॥ ९ ॥ यथा स्वयमव्यक्तोऽपि वह्निः काष्ठलोहाद्युपाधावेवाभिव्यज्यते एवं गर्भे जीवोपपादनं देहे चैतन्यस्याभिव्यक्तिरिति द्वितीयस्य परिहारः अरणीषु त्वाग्निरित्यादिश्रुत्यनुसारी ॥ १० ॥ तृतीयस्य परिहारमाह-**यथा चेति** । शरणे गृहे शरीराणि स्थूलसूक्ष्मकारणानि ॥ ११ ॥

यद्यच्च कुरुते कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
पूर्वदेहकृतं सर्वमवश्यमुपभुज्यते ॥ १२
ततस्तु क्षीयते चैव पुनश्चान्यत्प्रचीयते ।
यावत्तन्मोक्षयोगस्थं धर्मं नैवावबुध्यते ॥ १३
तत्र कर्म प्रवक्ष्यामि सुखी भवति येन वै ।
आवर्तमानो जातीषु यथाऽन्योन्यासु सत्तम ॥
दानं व्रतं ब्रह्मचर्यं यथोक्तं ब्रह्मधारणम् ।
दमः प्रशान्तता चैव भूतानां चानुकम्पनम् ॥
संयमश्चानृशंस्यं च परस्वादानवर्जनम् ।
व्यलीकानामकरणं भूतानां मनसा भुवि १६
मातापित्रोश्च शुश्रूषा देवताऽतिथिपूजनम् ।
गुरुपूजा घृणा शौचं नित्यमिन्द्रियसंयमः १७
प्रवर्तनं शुभानां च तत्सतां वृत्तमुच्यते ।
ततो धर्मः प्रभवति यः प्रजाः पाति शाश्वतीः
एवं सत्सु सदा पश्ये-
त्तत्राप्येषा ध्रुवा स्थितिः ।
आचारो धर्ममाचष्टे
यस्मिन् शान्ता व्यवस्थिताः ॥ १९
तेषु तत्कर्म निक्षिप्तं यः स धर्मः सनातनः ।
यस्तं समभिपद्येत न स दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ २०
अतो नियम्यते लोकः प्रच्यवन्धर्मवर्त्मसु ।
यश्च योगी च मुक्तश्च स एतेभ्यो विशिष्यते ॥
वर्तमानस्य धर्मेण शुभं यत्र यथा तथा ।
संसारतारणं ह्यस्य कालेन महता भवेत् ॥ २२
एवं पूर्वकृतं कर्म नित्यं जन्तुः प्रपद्यते ।
सर्वं तत्कारणं येन विकृतोऽयमिहागतः ॥ २३
शरीरग्रहणं चास्य केन पूर्वं प्रकल्पितम् ।
इत्येवं संशयो लोके तच्च वक्ष्याम्यतः परम् ॥
शरीरमात्मनः कृत्वा सर्वलोकपितामहः ।
त्रैलोक्यमसृजद्ब्रह्मा कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ॥ २५
ततः प्रधानमसृजत्प्रकृतिं स शरीरिणाम् ।
यया सर्वमिदं व्याप्तं या लोके परमा विदुः
इदं तत्क्षरमित्युक्तं परं त्वमृतमक्षरम् ।
त्रयाणां मिथुनं सर्वमेकैकस्य पृथक् पृथक् २७
असृजत्सर्वभूतानि पूर्वदृष्टः प्रजापतिः ।
स्थावराणि च भूतानि इत्येषा पौर्विकी श्रुतिः
तस्य कालपरीमाणमकरोत्स पितामहः ।
भूतेषु परिवृत्तिं च पुनरावृत्तिमेव च ॥ २९
यथाऽत्र कश्चिन्मेधावी दृष्टात्मा पूर्वजन्मनि ।
यत्प्रवक्ष्यामि तत्सर्वं यथावदुपपद्यते ॥ ३०
सुखदुःखे यथा सम्यगनित्ये यः प्रपश्यति ।
कायं चामेध्यसंघातं विनाशं कर्मसंहितम् ॥

---

दीपवदसंगाया अपि चेतनाया दु खादिसंप्रतीतौ हेतु-माह—**यद्यच्चेति** । यथा प्रकाश अतदाकारोपि अगुल्याद्युपाधिना ऋजुवक्राद्याकार इव प्रतीयते एवं कर्मजदु खप्रकाशिकाया चिति दु खाकारतेव भाति वस्तु-तस्तु नास्ति । असंगो ह्ययं पुरुष इति श्रुते अवस्थातरगतस्य दु खस्यावस्थातरेऽनुवृत्त्यदर्शनाच्चेति भाव ॥ १२ ॥ तत उपभोगात् ॥ १३ ॥ कथं कष्टाच्च संसारान्मुच्यत इत्यस्योत्तरमाह—**तत्र कर्मेत्यादिना** । जातीषु योनिषु ॥ १४ ॥ संयमश्चित्तैकाग्र्यम् ॥१६॥ **यश्च योगीति** । सर्पदशो विषविद्याविदामिव कर्मसग प्रतीयमानोऽपि योगि-नं न बाधते योगी इतरेभ्य श्रेष्ठ इत्यर्थ. । यतो योगी अतो मुक्त चस्न्वर्थे परौ च शब्दौ हेत्ववधारणार्थौ । यस्तु योगी स हि योगबलान्मुक्त एवेत्यर्थ ॥ २१ ॥ कर्मिणा विलम्बेन मुक्तिरित्याह-**वर्तमानस्येति** ॥ २२ ॥ **एव-मिति** । अयं आत्मा ब्रह्म सन्विकृत· जीवत्वं प्राप्त ॥२३॥ ननु स्वतंत्रा एव बहवश्चेतना न ब्रह्मविकारा इत्याशंक्य शरीरमात्मन इत्यादिना पौर्विकी श्रुतिरित्यंते श्लोके प्रत्या-चष्टे सर्वलोक कार्यसमष्टि तस्या पिता मायाशबलं ब्रह्म पितामह. शुद्ध तत आत्मन शुद्धस्य शरीरम् । अव्याकृताका-शम् आकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुते माया कृत्वा उत्पाद्य तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुण द्विजसत्तमेति तदुत्पत्तिस्मृते नो व्योमापरो यदिति सृष्टे· प्राक्तदभावश्रुतेश्च कृत्स्नं सूत्रा-त्मकं त्रैलोक्यम् ॥ २५ ॥ तत. प्रधान सर्वेषु कार्येषु प्रधी-यमानं तेजोबन्नात्मकं जीवाना प्रकृति अभिव्यक्तिस्थान देहाद्याकारं यया प्रकृत्या ॥ २६ ॥ क्षरं जड अक्षरं तदव-च्छिन्नं चैतन्यं जीवेशभावाक्रांतं त्रयाणा क्षराक्षरशुद्धान-मध्ये मिथुनं क्षराक्षरं सर्वं प्रतिपूरुषं पृथक् पृथगस्ति तत्त-न्मुक्तौ तत्तत्कल्पित तद्रज्जुसर्पवद्बाध्यत इत्यर्थ ॥ २७ ॥ उक्तोऽर्थे श्रौत एवेत्याह— **असृजदिति** । पूर्वदृष्ट सृष्टे प्राक् सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमिति श्रुतौ दृष्ट सर्वभूतानि वियदादीनि स्थावराणि चाजंगमानि ऐतदात्म्य-मिति श्रुते प्रत्यगात्मैव सर्वदृश्यरूपेण भातीत्यर्थ ॥ २८ ॥ एवं श्रुतिबलेन चेतनभेदं निरस्य ब्रह्मविकारस्य जीवस्य विकारत्वं नित्यं चेत्कृतं साधनैरित्याशंक्य तदनित्यत्वमाह— **तस्य कालेति** । तस्य शरीरग्रहणस्य कालेत्यनेनान्तवत्त्वं परिवृत्तिं सुरनरतिर्यगादिदेहेषु भ्रमणम् ॥ २९ ॥ **यथा-त्रेति** । अत्र संसारस्यान्तवत्त्वे विषये वदेत्तद्वदह जाति-स्मरो यत्प्रवक्ष्यामीत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ३० ॥

यच्च किञ्चित्सुखं तच्च दुःखं सर्वमिति स्मरन्।
संसारसागरं घोरं तरिष्यति सुदुस्तरम् ॥ ३२
जातीमरणरोगैश्च समाविष्टः प्रधानवित्।
चेतनावत्सु चैतन्यं समं भूतेषु पश्यति ॥ ३३
निर्विद्यते ततः कृत्स्नं मार्गमाणः परं पदम्।
तस्योपदेशं वक्ष्यामि याथातथ्येन सत्तम ३४
शाश्वतस्याव्ययस्याथ पदस्य ज्ञानमुत्तमम्।
प्रोच्यमानं मया विप्र निबोधेदमशेषतः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

ब्राह्मण उवाच।
यः स्यादेकायने लीनस्तूष्णीं किञ्चिदचिन्तयन्।
पूर्वं पूर्वं परित्यज्य स तीर्णो बन्धनाद्भवेत् १
सर्वमित्रः सर्वसहः शमे रक्तो जितेन्द्रियः।
व्यपेतभयमन्युश्च आत्मवान्मुच्यते नरः ॥ २
आत्मवत्सर्वभूतेषु यश्चरेन्नियतः शुचिः।
अमानी निरभीमानः सर्वतो मुक्त एव सः ३
जीवितं मरणं चोभे सुखदुःखे तथैव च।
लाभालाभे प्रियद्वेष्ये यः समः स च मुच्यते
न कस्यचित्स्पृहयते नावजानाति किञ्चन।
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा सर्वथा मुक्त एव सः ५
अनमित्रश्च निर्बन्धुरनपत्यश्च यः क्वचित्।
त्यक्तधर्मार्थकामश्च निराकांक्षी च मुच्यते ६
नैव धर्मी न चाधर्मी पूर्वोपचितहायकः।
धातुक्षयप्रशान्तात्मा निर्द्वन्द्वः स विमुच्यते ७
अकर्मवान्विकांक्षश्च पश्यञ्जगदशाश्वतम्।
अश्वत्थसदृशं नित्यं जन्ममृत्युजरायुतम् ॥ ८
वैराग्यबुद्धिः सततमात्मदोषव्यपेक्षकः।
आत्मबन्धविनिर्मोक्षं स करोत्यचिरादिव ९
अगन्धमरसस्पर्शमशब्दमपरिग्रहम्।
अरूपमनभिज्ञेयं दृष्ट्वाऽऽत्मानं विमुच्यते ॥ १०
पञ्चभूतगुणैर्हीनममूर्तिमदहेतुकम्।
अगुणं गुणभोक्तारं यः पश्यति स मुच्यते ११
विहाय सर्वसंकल्पान्
बुद्ध्या शारीरमानसान्।
शनैर्निर्वाणमाप्नोति
निरिन्धन इवानलः ॥ १२
सर्वसंस्कारनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
तपसा इन्द्रियग्रामं यश्चरेन्मुक्त एव सः ॥ १३
विमुक्तः सर्वसंस्कारैस्ततो ब्रह्म सनातनम्।
परमाप्नोति संशान्तमचलं नित्यमक्षरम् १४
अतः परं प्रवक्ष्यामि योगशास्त्रमनुत्तमम्।
युञ्जतः सिद्धमात्मानं यथा पश्यन्ति योगिनः

चेतनावत्सु देहेषु समं एकम् ॥ ३३ ॥ ऐकात्म्यदृष्ट्या निर्विद्यत इत्यर्थः। स्पष्टार्थमन्यत् ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

शरीरस्य नाशोत्पत्तिप्रकारावुक्त्वा पूर्वोपक्रान्तं ततो मुक्तिप्रकारं प्रपञ्चयति—**यः स्यादिति**। तद्यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमित्यादिश्रुत्युक्तप्रकारेण सर्वलयाधिष्ठानं ब्रह्म एकायनं तस्मिन् लीनः स यथा सैंधवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते इति श्रुत्युक्तरीत्या ऐक्यं प्राप्तः तूष्णीं अहमेवेदं सर्वोऽस्मीत्यभिमानमप्यकुर्वन् किञ्चिदचिन्तयन्चित्तेनेनास्मीत्यपि वारयति पूर्वं पूर्वं स्थूलसूक्ष्मकारणेषु परित्यज्य उत्तरस्मिन् उत्तरस्मिन्प्रविलाप्य ॥ १ ॥ सर्वमित्रः अद्रोही सर्वसहः क्षमी शमे चित्तनिग्रहे सयं योगासिद्धौ कर्मसंन्यासिनः कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टताप्रयुक्तं मन्युरियतापि कालेन न योगः सिद्ध इति दैन्यं तत्र द्वेषो वा आत्मवान् जितचित्तः ॥ २ ॥ अनमित्रः शत्रुहीनः ॥ ६ ॥ ज्ञानफलमाह—**नैवेति**। धर्माधर्मशून्यः पूर्वोपचितं प्रारब्धकर्म तस्य हायकः यापकः धातुक्षयेण शरीरारंभकभूतविनाशेनैव प्रशातः अत्यंतसमुच्छिन्नः आत्मा चित्तं यस्य सः अत एव निर्द्वंद्वः अद्वैतः यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदिति श्रुतेः ॥ ७ ॥ अकर्मवान् संन्यासी ॥ ८ ॥ अगंधं गन्धादिहीनं चिन्मात्रम् ॥ १० ॥ पञ्चभूतगुणैर्हीनमिति स्थूलनिरासः अमूर्तिमदिति सूक्ष्मस्य अहेतुकमिति कारणस्य अत एव अगुणं गुणभोक्तृपूर्वैस्त्रिभी रूपैः गुणा विषयादयः ॥ ११ ॥ एवं ध्यानजसंस्कारैर्बाह्यसंस्कारा नश्यंति तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धीति योगसूत्रादित्याह—**सर्वसंस्कारेति** ॥ १३ ॥ अत परं प्रवक्ष्यामीति संक्षेपोक्त्यनंतरं विस्तरेण वक्ष्यामि युञ्जतः ध्यायतः सिद्धं आविद्यकभ्रान्तिनिवृत्तौ स्वतःसिद्धं न तु कोटभ्रमरन्यायेन ध्यानसाध्यम् ॥ १५

तस्योपदेशं वक्ष्यामि यथावत्तन्निबोध मे।
यैर्द्वारैश्चारयन्नित्यं पश्यत्यात्मानमात्मनि १६
इन्द्रियाणि तु संहृत्य मन आत्मनि धारयेत्।
तीव्रं तप्त्वा तपः पूर्वं मोक्षयोगं समाचरेत् ॥
तपस्वी सततं युक्तो योगशास्त्रमथाचरेत् ।
मनीषी मनसा विप्रः पश्यन्नात्मानमात्मनि ॥
स चेच्छक्नोत्ययं साधुर्योक्तुमात्मानमात्मनि ।
तत एकान्तशीलः स पश्यत्यात्मानमात्मनि
संयतः सततं युक्त आत्मवान्विजितेन्द्रियः ।
तथा य आत्मनात्मानं संप्रयुक्तः प्रपश्यति २०
यथा हि पुरुषः स्वप्ने दृष्ट्वा पश्यत्यसाविति ।
तथा रूपमिवात्मानं साधुयुक्तः प्रपश्यति २१
इषीकां च यथा मुञ्जात्कश्चिन्निष्कृष्य दर्शयेत्
योगी निष्कृष्य चात्मानं तथा पश्यति देहतः
मुञ्जं शरीरमित्याहुरिषीकामात्मनि श्रिताम्
एतन्निदर्शनं प्रोक्तं योगविद्भिरनुत्तमम् ॥ २३
यदा हि युक्तमात्मानं
सम्यक् पश्यति देहभृत्
न तस्येहेश्वरः कश्चि-
त्त्रैलोक्यस्यापि यः प्रभुः ॥ २४
अन्यान्याश्चैव तनवो यथेष्टं प्रतिपद्यते ।
विनिवृत्य जरां मृत्युं न शोचति न हृष्यति॥

देवानामपि देवत्वं युक्तः कारयते वशी ।
ब्रह्म चाव्ययमाप्नोति हित्वा देहमशाश्वतम् ॥
विनश्यत्सु च भूतेषु न भयं तस्य जायते ।
क्लिश्यमानेषु भूतेषु न स क्लिश्यति केनचित्
दुःखशोकमयैर्घोरैः सङ्गस्नेहसमुद्भवैः ।
न विचाल्यति युक्तात्मा निस्पृहः शांतमानसः
नैनं शस्त्राणि विध्यन्ते न मृत्युश्चास्य विद्यते
नातः सुखतरं किञ्चिल्लोके क्वचन दृश्यते २९
सम्यग्युक्त्वा स आत्मानमात्मन्येव प्रतिष्ठते।
विनिवृत्तजरादुःखः सुखं स्वपिति चापि सः
देहान्यथेष्टमभ्येति हित्वेमां मानुषीं तनुम् ।
निर्वेदस्तु न कर्तव्यो भुञ्जानेन कथञ्चन ॥ ३१
सम्यग्युक्तो यदात्मानमात्मन्येव प्रपश्यति
तदैव न स्पृहयते साक्षादपि शतक्रतोः ॥ ३२
योगमेकान्तशीलस्तु यथा विन्दति तच्छृणु ।
दृष्टपूर्वां दिशं चिन्त्य यस्मिन्संनिवसेत्पुरे ३३
पुरस्याभ्यन्तरे तस्य मनः स्थाप्यं न बाह्यतः ।
पुरस्याभ्यन्तरे तिष्ठन् यस्मिन्नावसथे वसेत् ।
तस्मिन्नावसथे धार्यं सबाह्याभ्यन्तरं मनः ३४
प्रचिन्त्यावसथे कृत्स्नं यस्मिन्काले स पश्यति
तस्मिन्काले मनश्चास्य न च किञ्चन बाह्यतः

यैर्द्वारैः चित्तनिग्रहोपायैः आत्मानं चित्तं आत्मनि देहे चारयन् अन्तर्मुखं कुर्वन् नित्यं आद्यन्तशून्यं वस्तु पश्यति तानि निबोधेति पूर्वेणान्वयः ॥ १६ ॥ संहृत्य स्वस्वविषयेभ्यः प्रत्यावर्त्य आत्मनि क्षेत्रज्ञे एतच्च तप आख्यस्वधर्मानुष्ठानेन शुद्धे चेतस्येव भवतीत्याह—**तीव्रमिति** ॥ १७ ॥ एतदेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां द्रढयति—**तपस्वीत्यादिना** ॥ १८ ॥ **यथा हीति** । यथा स्वप्ने स्थूलदेहासंगेन स्थितः सन्कश्चिद्दृष्टचरं पुरुषं पश्यति उत्थेव अनिरुद्धं प्रबुद्धश्च पुनस्तं दृष्ट्वा सोयमिति प्रत्यभिजानाति तथात्मानं विश्वरूपं समाधौ दृष्ट्वा व्युत्थानेऽपि विश्वमात्मत्वेनैव पश्यतीत्यर्थः ॥२१॥ तं स्वाच्छारीराद्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीका धैर्येणेति देहासंगे श्रौतं दृष्टान्तमाह-**इषीकामिति** ॥२२॥दृष्टातं दार्ष्टान्तिके योजयति-**मुञ्जमिति** । आत्मनि श्रिता माया जगदाकारेण भासमानामिति शेषः ॥ २३ ॥ यतोऽयं सबाह्याभ्यंतरं प्रत्यगनन्यत्वेन वीक्षतेऽत एव चानन्याधिपतिरयमित्याह—**यदा हीति** ॥ २४ ॥ स एकधा भवति त्रिधा भवतीत्यादि कायव्यूहकरणं । न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः सर्वस्य वशी सर्वस्येशान इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं योगफलमाह—**अन्यान्या इति** । अन्यान्या देवगन्धर्वमनुष्याद्या तनवस्तनूः कामरूपी भवतीत्यर्थः ॥२५॥ विदेहकैवल्यावधिकमेवैश्वर्यमित्याह—**ब्रह्म चेति** ॥२६॥ विनश्यत्स्विति विदेहमुक्तस्य न क्लेशाः संतीत्युक्तं तत्कैमुतिकन्यायेन द्रढयितुं सदेहमुक्तस्यापि ते न सन्तीत्याह दुःखशोकेत्यादिना ॥ २८ ॥ अन्यान्याश्चेति पूर्वोक्तस्य विवरणं —**देहानिति** । भुञ्जानेन योगैश्वर्यमिति शेषः । निर्वेदो योगाद्वैराग्यं न कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ वस्तुतस्तु योगजसंस्कारप्राबल्याद्योगिनो भोगेच्छैव न भवतीत्याह—**सम्यगिति** । अगम्यम्योगिविषयैव भोगेच्छोक्तिरिति भावः ॥३२॥ एकान्तशीलः एकं ब्रह्म अम्यते प्राप्यतेऽनेनेति एकान्तो ध्यानं तच्छीलः । ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमान इति श्रुतेः दृष्टपूर्वां दिशं दृष्टं श्रुतिः प्रामाण्यं प्रत्यक्षापेक्षत्वात् वेदान्तश्रवणपूर्विका दिशं उपदेशं चिन्त्य युक्त्यापि पर्यालोच्य श्रोतव्यो मन्तव्य इति श्रुतेः । यस्मिन्पुरे देहे ॥ ३३ ॥ आवसथे मूलाधाराद्यन्यतमस्मिंश्चक्रे ॥३४॥ तदैव कृत्स्नं सर्वात्मकं यदा पश्यति तदास्य बाह्यतः प्रत्युग्रूपादन्यत् किञ्चन अस्ति यत्रास्य मनः सजेत् अतो निर्वासनत्वान्मुच्यत इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं निर्घोषे निर्जने वने ।
कायमभ्यन्तरं कृत्स्नमेकाग्रः परिचिन्तयेत् ३६
दन्तांस्तालु च जिह्वां च गलं ग्रीवां तथैव च
हृदयं चिन्तयेच्चापि तथा हृदयबन्धनम् ॥ ३७
इत्युक्तः स मया शिष्यो मेधावी मधुसूदन ।
पप्रच्छ पुनरेवेमं मोक्षधर्मं सुदुर्वचम् ॥ ३८
भुक्तं भुक्तमिदं कोष्ठे कथमन्नं विपच्यते ।
कथं रसत्वं व्रजति शोणितत्वं कथं पुनः॥ ३९
तथा मांसं च मेदश्च स्नाय्वस्थीनि च पोषिति।
कथमेतानि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम् ॥
वर्धते वर्धमानस्य वर्धते च कथं बलम् ।
निरोधानां निर्गमनं मलानां च पृथक् पृथक्
कुतो वायं प्रश्वासिति उच्छ्वसित्यपि वा पुनः
कं च देशमधिष्ठाय तिष्ठत्यात्माऽयमात्मनि
जीवः कथं वहति च चेष्टमानः कलेवरम् ।
किंवर्णं कीदृशं चैव निवेशयति वै पुनः॥ ४३
याथातथ्येन भगवन् वक्तुमर्हसि मेऽनघ ।
इति संपरिपृष्टोऽहं तेन विप्रेण माधव ॥ ४४
प्रत्यब्रुवं महाबाहो यथाश्रुतमरिन्दम ।
यथा स्वकोष्ठे प्रक्षिप्य भाण्डं भाण्डमना भवेत्
तथा स्वकाये प्रक्षिप्य मनो द्वारैरनिश्चलैः ।
आत्मानं तत्र मार्गेत प्रमादं परिवर्जयेत् ॥ ४६
एवं सततमुद्युक्तः प्रीतात्मा न चिरादिव ।
आसादयति तद्ब्रह्म यद्दृष्ट्वा स्यात्प्रधानवित् ॥
न त्वसौ चक्षुषा ग्राह्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः।
मनसैव प्रदीपेन महानात्मा प्रदृश्यते ॥ ४८
सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥४९
जीवो निष्क्रान्तमात्मानं शरीरात्संप्रपश्यति
स तमुत्सृज्य देहे स्वं धारयन्ब्रह्म केवलम् ॥
आत्मानमालोकयति मनसा प्रहसन्निव ।
तदेवमाश्रयं कृत्वा मोक्षं याति ततो मयि ॥

उपसंहरति--**सन्नियम्येति** । कायमभि देहस्याभितो बहि॰ अन्तरं मध्ये च कृत्स्नं परिपूर्णं ब्रह्मैव चिन्तयेदित्यर्थ ॥३६॥ अस्य योगस्य साधनान्याह--**दन्तानित्यादि**। दन्तान्दन्तैरवखण्ड्यावखण्ड्य गृह्यमाणानाहारान् चिन्तयेत् । 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति । स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीना विप्रमोक्ष ' इति आहारशुद्धेर्मोक्षहेतुत्वश्रुते । तथा तालु आधार जिह्वा तत्राधेया यथोक्तमीश्वरप्रोक्ते--

लंबिकोर्ध्वे स्थिते गर्ते रसना विपरीतगाम् ।
संयोजयेत्प्रयत्नेन मुद्रा सा खेचरी मता इति ।

**दत्तात्रेयः—**

अन्त कपालविवरे जिह्वा व्यावृत्य चार्पयेत् ।
भ्रूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति खेचरी इति ।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणाविति चैतदेवोक्तं **गलं**-जिह्वामूलादधोभाग । **ग्रीवा**-तदध कण्ठनालं ताभ्या कण्ठकूपस्ततोऽप्यध॰-स्थितो लक्ष्यते तत्र धारणा सद्य फला यत्नादभ्यसनीया योगे विश्वासोत्पत्त्यर्थं तथा च सूत्रम्—

**कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिरिति ।**

भाष्यमपि आसमिकस्या फलं यावन्नानुभवति तावद्योगधर्मे न श्रद्धत्ते इति। हृदयं हृदयायतनं ब्रह्म हृदयबन्धनं शतं चैका च हृदयस्य नाड्य इति श्रूयमाण नाडीमार्ग तत्लोकगत्युपयोगि ॥३७॥ मेधावी दन्तादिशब्दै॰ पारोक्ष्येणोक्तमर्थं ज्ञातवान् ॥ ३८ ॥ पञ्चस्वर्थेषु आद्य विवृत्य पृच्छति त्रिभि भुक्तंभुक्तमिति ॥३९॥ द्वितीयमर्धेन-**कुतो वेति**। तृतीयं योगानुपकारित्वादपृष्ट्वा चतुर्थमेव पृच्छति—**कञ्चेति** ॥ ४२ ॥ पञ्चमं पृच्छति--**जीव इति** । कथं जीवो नाडीमार्गै॰ सूक्ष्मं कलेवरं वहति किंवर्णा वा ते नाडीमार्गा तैश्च कीदृशं पुनर्वपु प्राप्यमिति प्रश्नार्थ॰ । एतेषा मध्ये आद्ययोर्विवरणार्था ब्राह्मणगीता इतरयोर्गुरुशिष्यसंवाद प्राधान्येन । अन्यत्तु तत्र तत्रोपसर्जनत्वेन प्रतिपाद्यत इति विभाग ॥ ४३ ॥ कोष्ठे धान्यगृहे भाण्डं गृहोपस्करं निक्षिप्तं यथा गृहं प्रविष्टो विविच्य जानाति ॥ ४५ ॥ एवं स्वकाये देहान्तर्मन प्रक्षिप्य अनिश्चलै अनिश्चरद्भिर्द्वारैरिन्द्रियै ।सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुद्ध्य चेति स्मृते त्वया यत्पृष्ट तद्वस्तुयोगबलेन ज्ञेयमित्यर्थ ॥ ४६ ॥ एतदेवोपपादयति—**एवमिति** । प्रधानवित् प्रकृतिवित्सर्वविकारविद्भवति विकाराणा प्रकृतेरनन्यत्वादिति ॥ ४७ ॥ चक्षुराद्यग्राह्यस्यामूर्तस्य रूपं सर्वत पाणिपादान्न इत्यादि॰ लक्षणम् ॥ ४९ ॥ तदेव जीवस्य स्वात्मभूतदेहात् निष्क्रान्तं पृथग्भूतं मुञ्जेषीकावत्पश्यति संप्रज्ञाते । तं सर्वत इत्युक्तलक्षणं कारणं उत्सृज्य प्रविलाप्य देहे स्वं स्वरूपं धारयन्मनो निगृह्णन् केवलं निर्गुणं ब्रह्म पश्यति । स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्वमुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवदिति देहाभिमानकृतं भेदं त्यक्त्वा ऊर्ध्वं कारणब्रह्मभाव प्राप्तं तत्रैव सर्वकामभुग्भूत्वाऽमृताख्यं कैवल्यमश्नुत इति श्रवणात् ॥ ५० ॥ प्रहसन्निव अहो वृथैव मरीचिकोदकतुल्येन संसारेणाहं भ्रामित इति विस्मयेनेति भाव ।तदेवं तत् ब्रह्म एवं उक्तरीत्या ॥ ५१ ॥

इदं सर्वरहस्यं ते मया प्रोक्तं द्विजोत्तम।
आपृच्छे साधयिष्यामि गच्छ विप्र यथासुखं
इत्युक्तः स तदा कृष्ण मया शिष्यो महातपाः
अगच्छत यथाकामं ब्राह्मणः संशितव्रतः ५३

वासुदेव उवाच।

इत्युक्त्वा स तदा वाक्यं मां पार्थ द्विजसत्तमः
मोक्षधर्माश्रितः सम्यक् तत्रैवांतरधीयत ५४
कच्चिदेतत्त्वया पार्थ श्रुतमेकाग्रचेतसा।
तदापि हि रथस्थस्त्वं श्रुतवानेतदेव हि ॥ ५५
नैतत्पार्थ सुविज्ञेयं व्यामिश्रेणेति मे मतिः।
नरेणाकृतसंज्ञेन विशुद्धेनांतरात्मना ॥ ५६
सुरहस्यमिदं प्रोक्तं देवानां भरतर्षभ।
कच्चिन्नेदं श्रुतं पार्थ मनुष्येणेह कर्हिचित् ॥५७
न ह्येतच्छ्रोतुमर्होऽन्यो मनुष्यस्त्वामृतेऽनघ।
नैतदद्य सुविज्ञेयं व्यामिश्रेणान्तरात्मना ॥५८
क्रियावद्भिर्हि कौन्तेय देवलोकः समावृतः।
न चैतदिष्टं देवानां मर्त्यैरूपनिवर्तनम् ॥ ५९
परा हि सा गतिः पार्थ यत्तद्ब्रह्म सनातनम्।
यत्रामृतत्वं प्राप्नोति त्यक्त्वा देहं सदा सुखी
इमं धर्मं समास्थाय येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिं
किं पुनर्ब्राह्मणाः पार्थ क्षत्रिया वा बहुश्रुताः।
स्वधर्मरतयो नित्यं ब्रह्मलोकपरायणाः ॥ ६२
हेतुमच्चैतदुद्दिष्टमुपायाश्चास्य साधने।
सिद्धिः फलं च मोक्षश्च दुःखस्य च विनिर्णयः
नातः परं सुखं त्वन्यत् किञ्चित्स्याद्भरतर्षभ।
बुद्धिमान् श्रद्दधानश्च पराक्रान्तश्च पाण्डव ॥
यः परित्यज्यते मर्त्यो लोकसारमसारवत्।
एतैरुपायैः स क्षिप्रं परां गतिमवाप्नुते ॥ ६५
एतावदेव वक्तव्यं नातो भूयोऽस्ति किञ्चन।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य योगः पार्थ प्रवर्तते ६६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि
ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## २०

वासुदेव उवाच।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
दम्पत्योः पार्थ संवादो योऽभवद्भरतर्षभ ॥ १
ब्राह्मणी ब्राह्मणं कञ्चिज्ज्ञानविज्ञानपारगम्।
दृष्ट्वा विविक्त आसीनं भार्या भर्तारमब्रवीत् २
कं नु लोकं गमिष्यामि त्वामहं पतिमाश्रिता
न्यस्तकर्माणमासीनं कीनाशमविचक्षणम् ३
भार्याः पतिकृताँल्लोकानाप्नुवन्तीति नः श्रुतम्
त्वामहं पतिमासाद्य कां गमिष्यामि वै गतिं
एवमुक्तः स शान्तात्मा तामुवाच हसन्निव
सुभगे नाभ्यसूयामि वाक्यस्यास्य तवानघे
ग्राह्यं दृश्यं च सत्यं वा यदिदं कर्म विद्यते।
एतदेव व्यवस्यन्ति कर्म कर्मेति कर्मिणः ॥ ६
मोहमेव नियच्छन्ति कर्मणा ज्ञानवर्जिताः।
नैष्कर्म्यं न च लोकेस्मिन्मुहूर्तमपि लभ्यते॥७

---

व्यामिश्रेण व्यग्रेण अकृतसंज्ञेन अज्ञातविद्यासंप्रदायेन ॥ ५६ ॥ इमं धर्मं आत्मदर्शनाख्यम् ॥ ६१ ॥ लोकसारं धनादि असारवत् तृणादिवत् य परित्यज्यते विवेकादिना परित्यागवान्। क्रियते उपायै शमादिभि ॥ ६५ ॥ **षण्मासानिति।** 'षड्भिर्मासैस्तु युक्तस्य नित्ययुक्तस्य देहिनः। आनन्द परमो गुह्य सम्यग्योग प्रवर्तते'इति मैत्रायणीयश्रुते। सुखसाध्यत्वादादरणीयो योग इत्यर्थ ॥६६॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनविंशोऽध्याय ॥ १९ ॥

२०

भुक्तं भुक्तमिदं कोष्ठे इत्यादिना कृतस्य प्रश्नस्य उत्तरं 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिना देहमाश्रित। प्राणापानसमायुक्त पचाम्यन्नं चतुर्विधम्' इति गीतोक्तमेव विवृणोति— **अत्रापीत्यादिना।** अत्र प्रश्ने विषये ऽतिहासमपीति सम्बन्ध ॥ १ ॥ कर्म अग्निहोत्रादिकं न्यस्तं येन त कीनाश कर्कशं मयि निरनुक्रोशं अविचक्षणं मम अनन्यगतिकत्वमजानन्तम्॥३॥ग्राह्यं दीक्षाव्रतादिकं अत एव दृश्यं लोकै स्थूलत्वाद्द्रष्टुं योग्यम्॥६॥ कर्मणा शरीरायासेन॥७॥

कर्मणा मनसा वाचा शुभं वा यदि वाऽशुभम्
जन्मादिमूर्तिभेदान्तं कर्म भूतेषु वर्तते ॥ ८
रक्षोभिर्वध्यमानेषु दृश्यद्रव्येषु वर्त्मसु ।
आत्मस्थमात्मना तेभ्यो दृष्टमायतनं मया ॥९
यत्र तद्ब्रह्म निर्द्वन्द्वं यत्र सोमः सहाग्निना ।
व्यवायं कुरुते नित्यं धीरो भूतानि धारयन्
यत्र ब्रह्मादयो युक्तास्तदक्षरमुपासते ।
विद्वांसः सुव्रता यत्र शान्तात्मानो जितेंद्रियाः
घ्राणेन न तदाघ्रेयं नास्वाद्यं चैव जिह्वया ।
स्पर्शनेन तदस्पृश्य मनसा त्ववगम्यते ॥ १२
चक्षुषामविषह्यं च यत्किंचिच्छ्रवणात्परम् ।
अगन्धमरसस्पर्शमरूपाशब्दलक्षणम् ॥ १३
यतः प्रवर्तते तन्त्रं यत्र च प्रतितिष्ठति ।
प्राणो पानः समानश्च व्यानश्चोदान एव च
तत एव प्रवर्तन्ते तदेव प्रविशन्ति च ।
समानव्यानयोर्मध्ये प्राणापानौ विचेरतुः १५
तस्मिन्लीने प्रलीयेत समानो व्यान एव च ।
अपानप्राणयोर्मध्ये उदानो व्याप्य तिष्ठति ।
तस्माच्छयानं पुरुषं प्राणापानौ न मुञ्चतः १६
प्राणानामायतत्वेन तमुदानं प्रचक्षते ।
तस्मात्तपो व्यवस्यन्ति मद्गतं ब्रह्मवादिनः १७
तेषामन्योन्यभक्षाणां सर्वेषां देहचारिणाम् ।
अग्निर्वैश्वानरो मध्ये सप्तधा दीप्यतेऽन्तरा ॥
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्च श्रोत्रं च पञ्चमम्
मनो बुद्धिश्च सप्तैता जिह्वा वैश्वानरार्चिषः १९
घ्रेयं दृश्यं च पेयं च स्पृश्यं श्रव्यं तथैव च ।
मन्तव्यमथ बोद्धव्यं ताः सप्त समिधो मम ॥
घ्राता भक्षयिता द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता च पञ्चमः
मन्ता बोद्धा च सप्तैते भवन्ति परमर्त्विजः ॥
घ्रेये पेये च दृश्ये च स्पृश्ये श्रव्ये तथैव च ।
मन्तव्येऽप्यथ बोद्धव्ये सुभगे पश्य सर्वदा ॥
हवींष्यग्निषु होतारः सप्तधा सप्त सप्तसु ।
सम्यक्प्रक्षिप्य विद्वांसो जनयन्ति स्वयोनिषु
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्
मनो बुद्धिश्च सप्तैता योनिरित्येव शब्दिताः ॥
हविर्भूता गुणाः सर्वे प्रविशन्त्यग्निजं गुणम् ।
अन्तर्वासमुषित्वा च जायन्ते स्वासु योनिषु
तत्रैव च निरुध्यन्ते प्रलये भूतभावने ।
ततः सञ्जायते गन्धस्ततः सञ्जायते रसः २६

---

जन्मादि जन्मस्थितिभङ्गम्। मूर्तिभेदो योनिनानात्वम् ॥८॥ दृश्यानि सोमाज्यादीनि द्रव्याणि येषु वर्त्मसु कर्ममार्गेषु रक्षोभिर्दुर्जनैर्वध्यमानेषु नाश्यमानेषु सत्सु तेभ्यो विरक्तेन मयेति शेष । आयतनं भ्रूघ्राणमध्यस्थमविमुक्ताख्यम् ॥९॥ सोम इडा अग्निः पिङ्गला वरणानासीसंज्ञे सोऽविमुक्ते 'प्रतिष्ठित सोऽविमुक्त कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वरणाया च नास्या मध्ये प्रतिष्ठित इत्यादि भ्रुवोर्घ्राणस्य च य. सन्धिरिति जाबालश्रुतिप्रसिद्धे व्यवायं सञ्चारं धीरो बुद्धिप्रेरको भूतानि धारयन्वायु ॥१०॥न तदाघ्रेयं तत् अक्षरम्॥१२॥तंत्रं सृष्ट्यादिव्यापार एतदेवाह-**प्राणोऽपान इत्यादिना** ॥ १४ ॥ प्राणापानयो प्रवृत्तिरेव सृष्टि. प्रवेश एव प्रलयश्चेति भाव । **समानेति**। नाभिमण्डलस्थः समान कृत्स्नदेहव्यापी व्यानः१५ तस्मिन् अपानसहिते प्राणे लीने भ्रूघ्राणमध्ये निरुद्धे सति उदानः सर्वसंधिस्थ इति वचनात् शंकुभिश्चमेव उदानेन प्राणापानावायतौ यस्मात्कृतौ तस्मात् अनुक्राते उदाने शयानं पुरुषं प्राणापानौ न मुञ्चत । विमुंचत इति पाठे शयानमित्यस्य मृतमित्यर्थः ॥ १६ ॥ **प्राणानामिति** । यतः प्राणानामायतत्वम् उदानाधीनं अतस्तं उदानं उत्कर्षेण आनयति चेष्टयते प्राणानिति निर्वचनात्प्रचक्षते यस्मात्प्राणानां जीवोपाधीना एकस्मिन् उदानेऽन्तर्भाव । तस्मात् तप प्राणजयाख्यं भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्येत्येवंरूपं आलोचनं वा आत्मनस्तत्तद्देहादिव्यतिरिक्तत्वस्य ब्रह्मवादिनो मद्गतं मयि मनश्चालके गतं निष्ठा प्राप्तं परात्मप्रापकं व्यवस्यंति निश्चिन्वंतीत्यर्थ ॥ १७ ॥ मद्गतमित्यत्र मच्छब्दार्थं वैश्वानरं दर्शयति-**तेषामिति** । तेषा मध्ये समानस्थाने नाभिमंडले अंतरा तस्यापि मध्ये ॥१८॥ घ्राणघ्रेयघ्रात्रादय सप्त सप्तकरणविषयकर्तृरूपा. ॥ १९ ॥ तेषा मध्ये अग्निषु घ्राणाद्यभिमानिदेवतासु हवींषि घ्रेयादीनि होतारो विषयाणामाव्हातारस्तत्कल्पका इत्यर्थ.। अमुमावहामुमावहेत्यावाहयति तदेव होतुर्होतृत्वमिति श्रौतनिर्वचनात् घ्राताऽहमित्यादयोऽभिमाना तान्सर्वान्प्रक्षिप्य गुणा गुणेषु वर्तत इति मत्वा ये न सज्जंते ते विद्वांसो ब्रह्मीभूता. जनयंति पृथिव्यादीन्वक्ष्यमाणान् स्वयोनिषु स्वं ब्रह्म तदेव योनिर्येषा तेषु अग्निषु ॥ २३ ॥ पृथिव्यादयोपि संघातापन्ना· योनिश्चैतन्याभिव्यक्तिस्थानम्॥२४॥ हविर्भूतगुणा· घ्रेयादयो विषयाः आग्निजं गुणं गंधादिज्ञानरूपा धीवृत्तिं प्रविशति अंतर्वासमिति णमुलंतं सा वृत्तिश्च संस्कारात्मना चेतसि उषित्वा स्वासु योनिषु घ्राणादिषु जायते दृष्टं रूपादिकं सुषुप्त्यादौ वासनारूपेण चित्ते स्थितं पुनर्जागरे उत्पद्यत इत्यर्थः ॥२५॥ एतदेवाह-तत्रैव अंतरेव ततः अंतर एव ॥ २६ ॥

ततः सञ्जायते रूपं ततः स्पर्शोऽभिजायते ।
ततः सञ्जायते शब्दः संशयस्तत्र जायते ।
ततः सञ्जायते निष्ठा जन्मैतत्सप्तधा विदुः २७

अनेनैव प्रकारेण प्रगृहीतं पुरातनैः ।
पूर्णाहुतिभिरापूर्णास्त्रिभिः पूर्यन्ति तेजसा २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्रह्मगीतासु विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## २१

ब्राह्मण उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
निबोध दशहोतॄणां विधानमथ यादृशम् ॥ १
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा
नासिका चरणौ करौ ।
उपस्थं वायुरिति वा
होतॄणि दश भामिनि ॥ २
शब्दस्पर्शौ रूपरसौ
गन्धो वाक्य क्रिया गतिः ।
रेतोमूत्रपुरीषाणां
त्यागो दश हवींषि च ॥
दिशो वायू रविश्चन्द्रः पृथ्व्यग्नी विष्णुरेव
इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रमग्नयो दश भामिनि ॥
दशेन्द्रियाणि होतॄणि हवींषि दश भाविनि
विषया नाम समिधो हूयन्ते तु दशाग्निषु
चित्तं स्रुवश्च वित्तं च पवित्रं ज्ञानमुत्तमम् ।
सुविभक्तमिदं सर्वं जगदासीदिति श्रुतम् ॥
सर्वमेवाथ विज्ञेयं चित्तं ज्ञानमवेक्षते ।
रेतः शरीरभृत्काये विज्ञाता तु शरीरभृत्

---

संशय. संशयात्मक मनः निष्ठा निश्चयात्मिका बुद्धि·॥२७॥ **अनेनेति** । अनेन प्रकारेण रूपादिग्रहतत्संस्कारपरंपरया प्रगृहीत घ्राणादीना रूपं पुरातनैर्ऋषिभि वेदादिति शेष । त्रिभिर्मानमेयमातृभि पूर्णं ब्रह्म तस्य आहुतिराव्हानं,आहुतयो वै नामैता यदाहुतय एताभिर्वै देवान्यजमानोऽऽह्वयतीति श्रुते· तत् यैस्तै उपाधिभूतैर्दर्पणैरिव ब्रह्मप्रज्ञापकैरित्यर्थ आपूर्णा. सर्वे लोका इति शेष । ते च त्रय. तेजसा स्वात्मज्योतिषा पूर्यंति तेनैव सत्तावंतो भवन्तीत्यर्थः। एवं दृष्टिसृष्टिरनेन श्लोकेन सूचिता ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

### २१

पूर्वत्र घ्राणाद्युपाधिर्भूतात्मा घ्राताऽहमित्याद्यभिमानवान् घ्रेयादीन्प्रकल्प्य घ्राणादींस्तर्पयतीत्युक्तम् । इदानीं प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका इति श्रुत्यनुसारादिंद्रियाण्येव स्वकल्पितेषु देवेषु देवद्वारा स्वकल्पितान्लोकांस्तर्पयंतीत्युक्त्या भूतात्मनि कल्पकत्वं नास्ति अपि तु जडस्यैव तादिति विविनक्ति —**अत्रापीति** । अत्र दृष्टिसृष्टिप्रकारे विवेचनीये ॥ १ ॥ **श्रोत्रमिति** । अथातो विभूतयोऽस्य पुरुषस्य तस्य वाचा सृष्टौ पृथिवी चाग्निश्चेत्याद्यैतरेयके श्रोत्रेण सृष्टा दिशश्च चन्द्रमा श्चेति वचनात् श्रोत्रं सर्वै. शब्दै सहाप्येतीति कौषीतकीवचनाच्च दिगाद्यात्मके सूत्रात्मनि सविषयाणि श्रोत्रादीनि प्रविलापयेदित्यर्थ ॥ २ ॥ **चित्तमिति** । एतत्प्रविलापनं स्रुव स्थानीयेन चित्तेनैव कर्तव्यं न वायुनिरोधादिना हठेन । मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्येति गीताषष्ठोक्ते वित्तं संस्कारा पुण्यपापे वा यथा स्रुवेणाज्यमग्नौ हुत्वा स्रुवमग्निदाक्षिणार्थं वित्तं च त्यजति, एव मनसा सविषयाणींद्रियाणि कारणे प्रविलाप्य मन कारणं सुकृतदुष्कृते च त्यजेदिति रूपकद्वारा प्रपंचितं एवं कृते यदवशिष्यते तदाह—**पवित्रं ज्ञानमुत्तममिति** । पवित्रं असंगं उत्तमं चरमं नात. परतरं किंचिदस्ति पुरुषान्नपरं किंचिदिति श्रुते सुविभक्तं ज्ञानात् पृथग्भूतं इदं चित्तादिशब्दाद्यन्तम्॥६॥**सर्वमिति**। अथेति पक्षांतरे । विज्ञेयं सर्वं चित्तमेवेति संबंध । ज्ञानं तु तत्प्रकाशकं अवेक्षत एव केवलं न सज्जत इत्यर्थ· । नन्वेवं कथं सुविभक्तानामपि ज्ञानज्ञेयाना अविभागप्रत्यय इत्याशंक्य तत्राय पिंडवत्साक्षिध्यमात्रादित्याह—**रेत इत्यादिना** । रेतोजन्ये शरीरेऽभिमानवान् तस्य काये षाट्कौशिके विज्ञाता जीवः सूक्ष्मशरीरभृत् लिंगाभिमानी अस्ति ॥ ७ ॥

शरीरभृद्गार्हपत्यस्तस्मादन्यः प्रणीयते ।
मनश्चाहवनीयस्तु तस्मिन्प्रक्षिप्यते हविः ८
ततो वाचस्पतिर्जज्ञे तं मनः पर्यवेक्षते ।
रूपं भवति वैवर्णं समनुद्रवते मनः ॥ ९

ब्राह्मण्युवाच ।

कस्माद्वागभवत्पूर्वं कस्मात्पश्चान्मनोऽभवत्
मनसा चिन्तितं वाक्यं यदा समभिपद्यते ॥
केन विज्ञानयोगेन मतिश्चित्तं समास्थिता ।
समुन्नीता नाध्यगच्छत्को वै तां प्रतिबाधते

ब्राह्मण उवाच ।

तामपानः पतिर्भूत्वा तस्मात्प्रेषत्यपानताम् ।
तां गतिं मनसः प्राहुर्मनस्तस्मादपेक्षते ॥ १२
प्रश्नं तु वाङ्मनसोर्मां यस्मात्त्वमनुपृच्छसि ।
तस्मात्ते वर्तयिष्यामि तयोरेव समाह्वयम् १३
उभे वाङ्मनसी गत्वा भूतात्मानमपृच्छताम् ।
आवयोः श्रेष्ठमाचक्ष्व छिन्धि नौ संशयं विभो

मन इत्येव भगवांस्तदा प्राह सरस्वती ।
अहं वै कामधुक् तुभ्यमिति तं प्राह वागथ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

स्थावरं जंगमं चैव विद्ध्युभे मनसी मम ।
स्थावरं मत्सकाशे वै जंगमं विषये तव ॥ १६
यस्तु ते विषयं गच्छेन्मन्त्रो वर्णः स्वरोऽपि वा
तन्मनो जंगमो नाम तस्मादसि गरीयसी ॥
यस्मादपि समाधिस्ते स्वयमभ्येत्य शोभने ।
तस्मादुच्छ्वासमासाद्य प्रवक्ष्यामि सरस्वति
प्राणापानान्तरे देवी वाग्वै नित्यं स्म तिष्ठति
प्रेर्यमाणा महाभागे विना प्राणमपावती ।
प्रजापतिमुपाधावत्प्रसीद भगवन्निति ॥ १९
ततः प्राणः प्रादुरभू-
द्वाचमाप्याययन्पुनः ।
तस्मादुच्छ्वासमासाद्य
न वाग्वदति कर्हिचित् ॥ २०

---

सोऽपि शरीरभृद्गार्हपत्यः हृदयं हृदयं गार्हपत्य इति गृहपते क्षेत्रज्ञस्यायं देश इति व्युत्पन्नगार्हपत्यशब्देन हृदयशब्दस्य सामानाधिकरण्यश्रुते'। तस्मात् हृदयादन्यो मनआख्य । हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा इति श्रुते । आहवनीयो मन आयतन तच्च मुखमेव । आस्यमाहवनीय इति श्रुते' हवि· तेजोबन्नात्मकमदनीयम् । अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमय' प्राणस्तेजोमयी वागिति श्रुतेर्हविषस्तेजोंशो जाठरं तेज प्राप्य सद्यो वाग्रूपेण परिणमते ॥ ८॥ ततो वाचस्पति वेद प्रथमं जज्ञे मन पार्थिवं तदनंतरं जज्ञे अतो मनोमय· सूत्रात्मा वाचमवेक्षते सिसृक्षु सन् ।

'यो ब्रह्माण विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ' ॥

मनसा वाच मिथुनं समभवदिति श्रुते । तत इत्यनुषज्यते मनोऽनंतरं रूपं भवति । रूप्यते स्पर्शेनैव प्रथतें इति रूपं प्राणवायुद्रव्यं उत्पद्यते। अन्नापेक्षया अपा जाड्यप्राधान्येन चिरपाकित्वात् तच्च रूपं वैवर्णं वर्णौ नीलपीतादिस्तद्रहितं स्वार्थे तद्धित. तद्रूपं कर्तृ मन प्रति समनुद्रवति विपरीतं वा। रुद्धे चित्तेऽनिलो रुद्धो रुद्धं रुद्धेऽनिले मन इत्युक्ते.॥९॥अत्र मन एव पूर्वरूपं वागुत्तररूपं मनसा वा इषिता वाग्वदतीति श्रुतिं लौकिकमनुभवं चानुरुध्य शंकते-**कस्मादिति**॥१०॥ विज्ञानयोगेन प्रमाणेन मति प्राण समुन्नीता सुषुप्तौ उद्रिक्ता सती विषयान्कुतो नाध्यगच्छत् को वै ता प्रतिबाधते सुषुप्तौ को वा प्राणस्य ज्ञानशक्तिमपहरतीत्यर्थ ॥ ११ ॥ स्वल्पत्वात्केनेत्यस्योत्तरमादावाह—**तामपान इति** । अपानवशग प्राणो न सुषुप्तौ मनोलयाल्लीयते अपानं तु स्ववशे कृत्वा समाधौ मनोलये सति लीयत एवेत्यर्थ । तस्मात्पतिभावाद्धेतो· प्रेषति नयति ता गतिमिति ता प्राणाख्या गतिं मनसो गतिं बहिर्गमनसाधनं प्राहु न हि वायुबलेनानुन्मीलिते नयने मनोवृत्तिर्ध्रुवमण्डलपर्यंतं गंतुं समर्था ता मतिमित्यपपाठ ॥१२॥ कस्मादित्यस्योत्तरमाख्यायिकामुखेनाह—**प्रश्नं त्वित्यादिना** । समाह्वयं सम्यक् सुख आह्वयन्ते विजिगीषवोऽस्मिन्निति समाह्वय संवादस्तम्॥ १३ ॥ भूतात्मानं जीवम् ॥१४॥ तन्मते मन श्रैष्ठ्यमनुभवासिद्धं ।वाचो मते दृष्टादृष्टे फलोपायो मयैव बोद्धुं शक्य इति स्वस्यैव श्रैष्ठ्यम् ॥ १५ ॥ द्वयोर्विषयविभागेन साम्यमापादयन्मनआख्यो ब्राह्मण उवाच स्थावरं बाह्येन्द्रियग्राह्य जङ्गमं अतीन्द्रियं स्वर्गादि ॥ १६ ॥ यद्यपि स्वर्गादिकमपि मनसो विषय तथापि वाचमेव द्वारीकृत्य तस्य तथात्वमास्ति अतो वागेव गरीयसीत्याह—**यस्त्विति** । मन्त्रादिप्रकाशितं विषयं गच्छन्मनोऽपि जङ्गमं भवतीत्यर्थ ॥ १७ ॥ समाधिः कामधुगस्मीति स्वपक्षपुष्टि तेनाहं मूर्छित इवास्मि यस्मात्तस्मादुच्छ्वासमासाद्येति योजना ॥ १८ ॥ तथापि मनोवृत्तिविशेषयो' प्राणापानयोरंतरेव वागस्ति । स्वपिति वा प्राणे तदा वाक् भवति प्राणस्तदा वाचं रेल्हीति श्रुतेरित्याह **—प्राणापानेति** । रेल्हि लेढि अपानती प्राणेन अनाप्यायिता सती तारमंद्रत्वादिभावं व्युत्सृज्यात्यंतं नीचैस्तरा भवतीत्यर्थः ॥ १९ ॥ व्यतिरेकमुक्त्वाऽन्वयमाह—**तत इति** । तस्मादप्राणवनपानन्वाचमभिव्याहरतीति श्रुतेः यस्मादेवं तस्मादुच्छ्वास प्राणव्यापारमामाद्य न वाग्वदति२०

घोषिणी जातनिर्घोषा नित्यमेव प्रवर्तते ।
तयोरपि च घोषिण्या निर्घोषैव गरीयसी २१
गौरिव प्रस्रवत्यर्थान् रसमुत्तमशालिनी ।
सततं स्यन्दते ह्येषा शाश्वतं ब्रह्मवादिनी २२
दिव्यादिव्यप्रभावेन भारती गौः शुचिस्मिते
एतयोरन्तरं पश्य सूक्ष्मयोः स्यन्दमानयोः ॥

ब्राह्मण्युवाच ।

अनुत्पन्नेषु वाक्येषु चोद्यमाना विवक्षया ।
किंनु पूर्वं तदा देवी व्याजहार सरस्वती २४

ब्राह्मण उवाच ।

प्राणेन या संभवते शरीरे
प्राणादपानं प्रतिपद्यते च ।
उदानभूता च विसृज्य देहं
व्यानेन सर्वं दिवमावृणोति ॥ २५
ततः समाने प्रतितिष्ठतीह
इत्येव पूर्वं प्रजजल्प वाणी ।
तस्मान्मनः स्थावरत्वाद्विशिष्टं
तथा देवी जंगमत्वाद्विशिष्टा ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । सुभगे सप्तहोतॄणां विधानमिह यादृशम् ॥ १

घोषिणी स्थूलघोषवती जात निर्घोषो घोषाभावो यस्या सा अघोषेति यावत्। तयोर्घोषिणी प्राणाप्यायनमपेक्षते तद्विना विच्छिद्यते निर्घोषा तु हंसमन्त्ररूपा सर्वास्वप्यवस्थासु प्रवर्तत इति गरीयसी ।। २१ ।। घोषिण्यपि गुर्वीत्याह— **गौरिवेति** । वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वार स्तना स्वाहाकार स्वधाकारो हतकारो वषट्कार इति श्रुते । स्तनैस्तत्तत्कर्मफलरूपं रसं अर्थान् रसमिति समानाधिकरणे द्वितीये प्रस्रवति ब्रह्मवादिनी उपनिषद्वाक् तु शाश्वतं मोक्षं स्यंदते प्रस्रवति सततं नित्यमिद्धम् ।।२२।। दिव्यं देवताद्याकर्षणादि अदिव्यं व्यवहारादि सामर्थ्यं तदुभयरूपो यः प्रभावस्तेन । एतयो वाङ्मनसयोः ।। २३ ।। व्याजहार स्वस्य वृत्तिलाभार्थं किं नु तत्त्व विशेषेण आजहार आहृतवती ।।२४।। आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युंक्ते विवक्षया । मन कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतमिति शिक्षोक्तेर्मन - प्रवर्तिता प्राणाद्या एव वाचं निर्वर्तयन्तीत्याह— **प्राणेनेति** । श्रान्तो हि विवक्षुर्बाह्यं वायुमाचामति । स पुनर्नाभिस्थाने प्राणापानग्रन्थ्याधारे अपानेन सहैक्यं प्राप्य मनसा मनोभिहतकायाग्निप्रेरित ऊर्ध्वमुतलुत्य उर कण्ठशिर - स्थानेष्वभिघातं प्राप्य मन्द्रमध्यमतारभेदेन ध्वनिमुत्पाद्याधस्तान्मुखबिलमेत्य ताल्वादिस्थानानुरोधी मन्द्रध्वनिधर्मवतो वर्णानभिव्यज्य वेगवत्त्वस्वाभाव्याद्बहि प्रस्थित श्रोत्रस्थानानि संस्कृत्य वर्णाननुभाव्य वेगक्षये पुन समानस्थान मेव पूर्ववत्प्रतिपद्यते सोयमर्थ श्रीभागवतेप्युक्त -स एष जीवो विवरप्रसूति प्राणेन घोषेण गुहा प्रविष्ट । मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठ इति ।।२५।। इत्येव इत्थमेव पूर्वं वाणी स्वोत्पत्तिप्रकारं प्रजजल्प, वाचः प्राणाधीनत्वमपि वाच प्रभावादेव विदितमित्यर्थः, यत्र सोम सहाग्निनेत्युक्तौ सोमाग्नी इडा पिंगलाधिपती मनोवाक्शब्दाभ्यामुपसंहरति—**तस्मादिति** । किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं यक्ष्यामहे वाचि हि प्राणं जुहुम प्राणे वाचयोर्हैव प्रभव स एवाप्यय इति श्रुते । यथा स्थंडिलस्थो वह्निर्वायुना स्थालीस्थो वायुश्च वह्निना समिध्यते अन्यतरनाशे च द्वयोरपि नाश एवं स्वर्गाद्यर्थवादेमन संधुक्ष्यते ततो वागादीन् व्यापारयति तत्र वाच प्रवर्तकस्य वायोर्निरोधे मनोरोधे वा वाङ्निरुध्यते तावतैव संसारादर्शनरूपेष्टार्थसिद्धौ किं यज्ञादिना । श्रुतौ तु वाक्शब्देन तत्कारणं मनो ज्ञेयम्। एवं च वाङ्मनसयो प्रत्येकं पुरुषार्थहेतुत्वाद्विशिष्टत्वमविशिष्टम् ।। २६ ।। इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशोऽध्याय ।। २१ ।।

२२

इदानीं पूर्वोक्तप्राणादिसप्तकस्य अन्वयव्यतिरेकाभ्यामितरेतरकार्यकारित्वं नास्तीत्युक्त्वा बुद्धिं मनस्यंतर्भाव्य इतरेषा पंचाना मनोधीनत्वं मनसोपि व्यावहारिकार्थप्रकाशकत्वमितराधीनमितींद्रियमन संवादेन तेषामन्योन्याव्यतिरेकमुक्त्वा पूर्वोक्तमेवान्यतरजयेनोभयजयफलं सिध्यतीति प्रतिपादनार्थोऽयं सप्तहोत्राध्याय आरभ्यते—**अत्रापीति** । अत्र वाङ्मनसयो समप्राधान्ये विवेचनीये ।।१।।

घ्राणश्चक्षुश्च जिह्वा च त्वक् श्रोत्रं चैव पञ्चमं
मनो बुद्धिश्च सप्तैते होतारः पृथगाश्रिताः ॥२
सूक्ष्मेऽवकाशे तिष्ठन्तो न पश्यन्तीतरेतरम् ।
एतान्वै सप्तहोतृंस्त्वं स्वभावाद्विद्धि शोभने ॥

ब्राह्मण्युवाच ।

सूक्ष्मेऽवकाशे सन्तस्ते कथं नान्योन्यदर्शिनः
कथंस्वभावा भगवन्नेतदाचक्ष्व मे प्रभो ॥ ४

ब्राह्मण उवाच ।

गुणाज्ञानमविज्ञानं गुणज्ञानमभिज्ञता ।
परस्परं गुणानेते नाभिजानंति कर्हिचित् ५
जिह्वा चक्षुस्तथा श्रोत्रं वाङ्मनो बुद्धिरेव च
न गंधानधिगच्छन्ति घ्राणस्तानधिगच्छति ६
घ्राणं चक्षुस्तथा श्रोत्रं वाङ्मनो बुद्धिरेव च ।
न रसानधिगच्छन्ति जिह्वा तानधिगच्छति
घ्राणं जिह्वा तथा श्रोत्रं वाङ्मनो बुद्धिरेव च
न रूपाण्यधिगच्छन्ति चक्षुस्तान्यधिगच्छति
घ्राणं जिह्वा ततश्चक्षुः श्रोत्रं बुद्धिर्मनस्तथा ।
न स्पर्शानधिगच्छन्ति त्वक्च तानधिगच्छति
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च वाङ्मनो बुद्धिरेव च ।
न शब्दानधिगच्छन्ति श्रोत्र तानधिगच्छति
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् श्रोत्र बुद्धिरेव च
संशयं नाधिगच्छन्ति मनस्तमधिगच्छति ॥
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं मन एव च
न निष्ठामधिगच्छन्ति बुद्धिस्तामधिगच्छति ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
इंद्रियाणां च संवादं मनसश्चैव भामिनि १३

मन उवाच ।

नाघ्राति मामृते घ्राणं रसं जिह्वा न वेत्ति च
रूपं चक्षुर्न गृह्णाति त्वक् स्पर्शं नावबुध्यते ॥
न श्रोत्रं बुध्यते शब्दं मया हीनं कथंचन ।
प्रवरं सर्वभूतानामहमस्मि सनातनम् ॥ १५
अगाराणीव शून्यानि शांतार्चिष इवाग्नयः ।
इंद्रियाणि न भासन्ते मया हीनानि नित्यशः
काष्ठानीवार्द्रशुष्काणि यतमानैरपीन्द्रियैः ।
गुणार्थान्नाधिगच्छन्ति मामृते सर्वजंतवः १७

इन्द्रियाण्यूचुः ।

एवमेतद्भवेत्सत्यं यथैतन्मन्यते भवान् ।
ऋतेऽस्मानस्मदर्थांस्त्वं भोगान् भुंक्ते भवान् यदि
यद्यस्मासु प्रलीनेषु तर्पणं प्राणधारणम् ।
भोगान् भुंक्ते भवान् सत्यं यथैतन्मन्यते तथा
अथवाऽस्मासु लीनेषु तिष्ठत्सु विषयेषु च ।
यदि संकल्पमात्रेण भुंक्ते भोगान् यथार्थवत् ॥
अथ चेन्मन्यसे सिद्धिमस्मदर्थेषु नित्यदा ।
घ्राणेन रूपमादत्स्व रसमादत्स्व चक्षुषा ॥ २१
श्रोत्रेण गन्धानादत्स्व स्पर्शानादत्स्व जिह्वया
त्वचा च शब्दमादत्स्व बुद्ध्या स्पर्शमथापि च
बलवन्तो ह्यनियमा नियमा दुर्बलीयसाम् ।
भोगानपूर्वानादत्स्व नोच्छिष्टं भोक्तुमर्हति ॥
यथा हि शिष्यः शास्तारं श्रुत्यर्थमभिधावति ।
ततः श्रुतमुपादाय श्रुत्यर्थमुपतिष्ठति ॥ २४
विषयानेवमस्माभिर्दर्शितानभिमन्यसे ।
अनागतानतीतांश्च स्वप्ने जागरणे तथा ॥२५
वैमनस्यं गतानां च जन्तूनामल्पचेतसाम् ।
अस्मदर्थे कृते कार्ये दृश्यते प्राणधारणम् ॥ २६
बहूनपि हि संकल्पान् मत्वा स्वप्नानुपास्य च
बुभुक्षया पीड्यमानो विषयानेव धावति २७

अगारमद्वारमिव प्रविश्य
संकल्पभोगान् विषये निबद्धान् ।
प्राणक्षये शान्तिमुपैति नित्यं
दारुक्षयेऽग्निर्ज्वलितो यथैव ॥ २८
कामं तु नः स्वेषु गुणेषु संगः
कामं च नान्योन्यगुणोपलब्धिः
अस्मान्विना नास्ति तवोपलब्धि
स्तावहते त्वां न भजेत्प्रहर्षः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वाणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

दुर्बलीयसामस्माकं नियमा बलवंत. श्रेष्ठा. अनियमा अपराधीना. ॥२३॥ अगारं हार्दाकाशं सुषुप्तौ मोक्षे च प्रविश्य । य एषोंतर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते त्रिपादस्यामृतं दिवीति श्रुतिभ्याम्। अद्वारामिव बाह्येन्द्रियवर्जितामिव स्वप्नसंप्रज्ञातयोरिव व्युत्थानेपि इन्द्रियाणा वासनामात्ररूपत्वेपि भ्रांतिसिद्धं स्थौल्यमपेक्ष्य इवशब्द. संकल्पजान् भोगान् विषये निबद्धान् विषयवासनानुविद्धान् भुक्त्वा प्राणक्षये मन प्रक्षये सुषुप्तवसंप्रज्ञाते वा शांतिमुपैति एवं दन्तानित्यादिश्लोके सूत्रितम् आहारशुद्धे सत्त्वशुद्धिहेतुत्व तत् आदित· एवं स्वस्याकर्तृत्वभावनयाऽन्नमश्नत सिध्यति शुद्धचित्तस्य त्वयमेव बोधप्रकार इत्युक्तम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्याय· ॥ २२ ॥

## २३

ब्राह्मण उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
सुभगे पञ्चहोतॄणां विधानमिह यादृशम् ॥ १
प्राणापानावुदानश्च समानो व्यान एव च ।
पञ्चहोतॄंस्तथैतान्वै परं भावं विदुर्बुधाः ॥ २
ब्राह्मण्युवाच ।
स्वभावात्सप्तहोतार इति मे पूर्विका मतिः ।
यथा वै पञ्चहोतारः परो भावस्तदुच्यताम् ३
ब्राह्मण उवाच ।
प्राणेन सम्भृतो वायुरपानो जायते ततः ।
अपाने सम्भृतो वायुस्ततो व्यानः प्रवर्तते ४
व्यानेन सम्भृतो वायुस्ततोदानः प्रवर्तते ।
उदाने सम्भृतो वायुः समानो नाम जायते ५
तेऽपृच्छन्त पुरा सन्तः पूर्वजातं पितामहम् ।
यो नः श्रेष्ठस्तमाचक्ष्व स नः श्रेष्ठो भविष्यति
ब्रह्मोवाच ।
यस्मिन्प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति
सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।
यस्मिन्प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति
स वै श्रेष्ठो गच्छत यत्र कामः ॥ ७
प्राण उवाच ।
मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति
सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।
मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति
श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ ८
ब्राह्मण उवाच ।
प्राणः प्रालीयत ततः पुनश्च प्रचचार ह ।
समानश्चाप्युदानश्च वचोऽब्रूतां पुनः शुभे ॥ ९
न त्वं सर्वमिदं व्याप्य तिष्ठसीह यथा वयम् ।
न त्वं श्रेष्ठो हि नः प्राण अपानो हि वशे तव
प्रचचार पुनः प्राणस्तमपानोऽभ्यभाषत ॥ १०
अपान उवाच ।
मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति
सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।
मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति
श्रेष्ठो ह्यह पश्यत मां प्रलीनम् ॥ ११
ब्राह्मण उवाच ।
व्यानश्च तमुदानश्च भाषमाणमथोचतुः ।
अपान न त्वं श्रेष्ठोऽसि प्राणो हि वशगस्तव
अपानः प्रचचाराथ व्यानस्तं पुनरब्रवीत् ।
श्रेष्ठोऽहमस्मि सर्वेषां श्रूयतां येन हेतुना १३
मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति
सर्वे प्राणा प्राणभृतां शरीरे ।
मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति
श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ १४

---

२३

ताल्रु जिह्वा चेत्यत्र सूत्रितमर्थं व्याकरोत्यध्यायद्वयेन— **अत्रापीति** । अत्र प्राणक्षये वक्तव्ये तत्र छान्दोग्ये प्राणाग्निहोत्रविद्याया प्राणापानव्यानोदानसमाना क्रमेणाधिलोकं द्युभूमिदिगाकाशविद्युद्रूपा. समाम्नाता तेषा प्राणापानौ अन्योन्याधीनौ। पूरके रेचके वा क्रियमाणे अपानक्रियानिरोधात् अपाने च विरेच्यमाने प्राणगतिनिरोधात् । पार्ष्णिभागेन सपीड्य योनिमाकुंचयेद्दृढमित्यादिप्रकारेण मूलबंधेन तयोरेकीकृतयोरुर्ध्वा गतिर्भवति । तदेतत्प्राणापानयोरुदानाधीनत्वं प्रागेवोक्तं-**अपानप्राणयोर्मध्ये उदानो व्याप्य तिष्ठतीति** । एवं द्युभुवो पर्जन्ययज्ञद्वारा परस्पराश्रितयोरपि आकाशाश्रितत्वं तथा नाभिदेशमात्रवर्ती समान सर्वांगव्यापिनो व्यानस्य वशेऽस्ति व्यानोऽपि सर्वसंधिव्यापिन्युदाने समुच्चत्वादुच्चलति तद्व्याप्यत्वात्समानोऽप्युच्चलति एवं विद्युद्दिगाश्रिता दिक्क आकाशाश्रिता । इदमेव सर्वेषामुदानाधीनत्व श्रुत्या तद्यथा सुहयपड्वीशशंकून्सखीदेदिति दृष्टान्तेनोपपादितम्। उदानोऽपि भ्रूघ्राणसन्धौ निरुध्यते यदा तदा तत्स्थो ब्रह्मणि द्युभूम्यादिसहित आकाशो निरुध्यते एवं च तस्यामवस्थाया सर्वप्रपञ्चप्रविलयाद्योगी कृतकृत्यो भवतीति प्रघट्टकतात्पर्यं, तत्रैवं सति त्रेधा भावना प्रवर्तते प्राणाय स्वाहेत्यादिभिर्मंत्रै प्राणाग्निहोत्रं कुर्वन्ननेनावदानेन सर्वं द्युप्रभृति तृप्यतीति भावनया शुद्धचित्तो भवत्यन्नदोषैश्च न लिप्यते इत्येक प्रकार । चपलं मन पूर्वोक्तखेचरीमुद्रया हठयोगेन निरोद्धव्यमिति द्वितीय । अनुपदोक्त कृत्स्नप्रपञ्चविलयस्तृतीय । एतेषामाधिकारिभेदाद्व्यवस्था। एवं सर्वापि विद्यादेवाधिभूताध्यात्मभेदेन त्रिविधाधिकारभेदात् ज्ञेया ॥ १ ॥ अक्षरार्थ स्पष्ट एव पञ्चानामप्येषामेकस्यापि निरन्वयोच्छेदे सर्वेषामुच्छेदो भवतीति सर्वेषा प्रत्येकं मयि प्रलीने प्रलयं व्रजंतीत्युक्ति. संगच्छते ॥ ८ ॥

ब्राह्मण उवाच ।
प्रालीयत ततो व्यानः पुनश्च प्रचचार ह ।
प्राणापानावुदानश्च समानश्च तमब्रुवन् ॥ १५
न त्वं श्रेष्ठोऽसि नो व्यान समानस्तु वशे तव
प्रचचार पुनर्व्यानः समानः पुनरब्रवीत् ।
श्रेष्ठोऽहमस्मि सर्वेषां श्रूयतां येन हेतुना १६
मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति
सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।
मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति
श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ १७
समानः प्रचचाराथ उदानस्तमुवाच ह ।
श्रेष्ठोऽहमस्मि सर्वेषां श्रूयतां येन हेतुना १८
मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति
सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।
मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति
श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ १९
ततः प्रालीयतोदानः पुनश्च प्रचचार ह ।
प्राणापानौ समानश्च व्यानश्चैव तमब्रुवन् ।
उदान न त्वं श्रेष्ठोऽसि व्यान एव वशे तव ॥
ब्राह्मण उवाच ।
ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा समवेतान्प्रजापतिः ।
सर्वे श्रेष्ठा न वा श्रेष्ठाः सर्वे चान्योन्यधर्मिणः
सर्वे स्वविषये श्रेष्ठाः सर्वे चान्योन्यधर्मिणः ।
इति तानब्रवीत्सर्वान्समवेतान्प्रजापतिः २२
एकः स्थिरश्चास्थिरश्च विशेषात्पञ्च वायवः ।
एक एव ममैवात्मा बहुधाऽप्युपचीयते ॥ २३
परस्परस्य सुहृदो भावयन्तः परस्परम् ।
स्वस्ति व्रजत भद्रं वो धारयध्वं परस्परम् ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

ब्राह्मण उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादमृषेर्देवमतस्य च ॥ १
देवमत उवाच ।
जन्तोः सञ्जायमानस्य किं नु पूर्वं प्रवर्तते ।
प्राणोऽपानः समानो वा व्यानो वोदान एव च
नारद उवाच ।
येनायं सृज्यते जन्तुस्ततोऽन्यः पूर्वमेति तम्
प्राणद्वन्द्वं हि विज्ञेयं तिर्यगूर्ध्वमधश्च यत् ३
देवमत उवाच ।
केनायं सृज्यते जन्तुः कश्चान्यः पूर्वमेति तम्
प्राणद्वन्द्वं च मे ब्रूहि तिर्यगूर्ध्वमधश्च यत् ॥ ४
नारद उवाच ।
सङ्कल्पाज्जायते हर्षः शब्दादपि च जायते ।
रसात्सञ्जायते चापि रूपादपि च जायते ५

---

एवमेषा सत्यपि प्रत्येकं श्रैष्ठ्ये स्वातंत्र्याभावादश्रैष्ठ्यमप्यस्तीत्याशयेनाह-**सर्वे श्रेष्ठा न वा श्रेष्ठा इति** ॥२१॥ वस्तुवृत्तं तु मनोमात्रत्वमेव प्राणानामित्याह—**एक एव ममैवात्मेति** ॥ २३ ॥ आख्यायिकातात्पर्यं तु यथा एक एव प्राणोऽध्यात्ममुपाधिभेदात्पञ्चधाभूतोऽन्योन्यस्माद्व्यावर्तते एव परमात्मापि औपाधिकमनेकत्वाभावं प्राप्य मिथो हर्षविषादभोक्तृभोग्यभाव भजत इति तस्मादैकात्म्यबुद्ध्या सर्वं सर्वत्रानुकंपा कार्येत्युपसंहरति—**धारयध्वं परस्परमिति** ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्याय ॥ २३ ॥

२४

उक्तमैकात्म्यमध्यारोपापवादाभ्यां प्रपञ्चयति—**अत्रेति** ॥ १ ॥ जतो समष्टिव्यष्टिशरीरिणि ॥ २ ॥ येन निमित्तेन कारणेन ततो निमित्तादन्यापि तं। तत्प्रति पूर्वं प्राक् निमित्तत्वेन एति किं तद्वयं प्राणद्वंद्वं च किं तिर्यङ्मनुष्यादि ऊर्ध्वं देवादि, अध पश्वादि एतेषा रूपं च यत्तद्विज्ञेयं, यद्वा तिर्यगित्यादिना विभुत्वमेवोच्यते ॥ ३ ॥ उत्तरं संकल्पाज्जायते हर्ष इति । हर्षः आनंद स एव संकल्पात् जंतुरित्यनुकृष्यते जंतुरूपेणाविर्भवतीत्यर्थ.। ' आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायते' 'सोऽकामयत बहु स्या प्रजायेय ' इति 'सच्च त्यच्चाभवत् ' इत्यादिश्रुतिभ्य आनंदमात्रं ब्रह्मैव मायया ईक्षणपूर्वकं ब्रह्माडपिंडाकारत्वं प्राप्नोति ।

शुक्राच्छोणितसंसृष्टात्पूर्वं प्राणः प्रवर्तते ।
प्राणेन विकृते शुक्रे ततोऽपानः प्रवर्तते ॥ ६
शुक्रात्सञ्जायते चापि रसादपि च जायते ।
एतद्रूपमुदानस्य हर्षो मिथुनमन्तरा ॥ ७
कामात्सञ्जायते शुक्रं शुक्रात्सञ्जायते रजः ।
समानव्यानजनिते सामान्ये शुक्रशोणिते ८
प्राणापानाविदं द्वन्द्वमवाक्चोर्ध्वं च गच्छतः
व्यानः समानश्चैवोभौ तिर्यग्द्वन्द्वत्वमुच्यते ९
अग्निर्वै देवताः सर्वा इति देवस्य शासनम् ।
सञ्जायते ब्राह्मणस्य ज्ञानं बुद्धिसमन्वितम् १०
तस्य धूमस्तमो रूपं रजो भस्मसु तेजसः ।
सर्वं सञ्जायते तस्य यत्र प्रक्षिप्यते हविः ११
सत्त्वात्समानो व्यानश्च इति यज्ञविदो विदुः
प्राणापानावाज्यभागौ तयोर्मध्ये हुताशनः १२
एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ।
निर्द्वन्द्वमिति यस्त्वेतत्तन्मे निगदतः शृणु १३
अहोरात्रमिदं द्वन्द्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।
एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १४
सच्चासच्चैव तद्द्वन्द्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।
एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १५
ऊर्ध्वं समानो व्यानश्च व्यस्यते कर्म तेन तत
तृतीयं तु समानेन पुनरेव व्यवस्यते ॥ १६

रविरिव सूर्यकातद्वारा वह्निप्रदीपाकारत्वमिति भाव । शब्दादपि च जायते वैदिकशब्दपूर्विकापि प्रलयामिदग्ध-भौतिकसृष्टि प्रजापतिद्वारा जायते एत इति वै प्रजापति-र्देवानसृजतेत्यादिश्रुतेस्तक्षकदग्धो वट इव काश्यपमंत्रादि-त्यर्थ.। रसात् रूपात् तत्तद्विषयवासनात· इदं च पर्जन्यवदी-श्वरस्य साधारणेऽपि कारणत्वे बीजवदसाधारणं ज्ञेयम् ॥५॥ शुक्रं अदृष्टं शोणितं रागादि वासनामिश्रमदृष्टमवष्टभ्य प्राणो लिंगात्मा प्रवर्तते स्रष्टुं तेन प्राणेन विकृते जन्माद्यपक्षया-न्तान्विकारान्प्रापिते शुक्रे सवासनकर्मजे देहे अपानो मृत्युश्च-रमभावविकारो नाशाख्य प्रवर्तते ॥ ६ ॥ एवं सति पुन-स्तस्मिन् जन्मन्युपचितात् शुक्रात् रसाच्च यथोक्ताज्जायते एतद्रूपं उदानस्य ब्रह्मणः आरोपितं रूपमित्यर्थ· । किं तदत आह–हर्षो मिथुनमंतरेति। मिथुनं उक्तरूपं कारणं कार्यं च अंतरा तयोर्मध्ये हर्षो व्याप्य तिष्ठतीत्यर्थ.। ते यदंतरा तद्ब्र-ह्मेति श्रुते· । ते नामरूपे ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिमूलात्कामात् शुक्रं अदृष्टं अदृष्टाच्च रज.प्रवृत्तिरिति कामकर्मणी प्रवाहेण वर्तेते इत्यर्थ. । एतयोर्मूलं समानव्यानौ ताभ्या तदात्मके विद्युत् श्रोत्रे लक्ष्यते ततश्च दृष्टानुश्रविकाविषयं विज्ञानं कामप्रवृत्त्यो-र्बीजमित्यर्थ. । तथाचाहुः–जानातीच्छति प्रयतत इति ॥८॥ प्राणापानाविति। इदमेव कामप्रवृत्त्याख्यं द्वंद्वं प्राप्य प्राणापा-नावेव जीवोपाधिभूतौ ऊर्ध्वाधोगतिं गच्छतो न तु जीवः घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपम इति श्रुतेः विभो-श्चिद्रूपस्य जीवस्याकाशवद्गत्ययोगात् समानव्यानौ उक्तरीत्या दृष्टं श्रुतं च। तावुभौ तिर्यक् अनूर्ध्वं अब्रह्म अतत्प्रापकत्वात्। अत एव द्वंद्वत्वं द्वंद्वं द्वैतं तद्भाव इति उच्यते वेदे ॥ ९ ॥ ननु सर्वं दृष्टं श्रुतं च तिर्यग्द्वंद्वं नेत्याह–**अग्निर्वा इति**। अग्निः परमात्मा तस्यैव देवस्य शासनं आज्ञा। निःश्वसितमे-तद्यदृग्वेद इति श्रुतेः । श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे इति स्मृतेश्च तदाज्ञारूपो वेदः । इदं सर्वं यदयमात्मा सर्वं खल्विदं ब्रह्मे-त्यादिरैकात्म्यं प्रतिपादयतीत्यर्थ । तस्य च देवस्य ज्ञानं बुद्धिसमन्वितं च परमधीवृत्तियुक्तं तत एव वेदाज्जायत इत्यर्थ ॥ १० ॥ तदेवाह–**तस्येति** । यथा धूमभस्मनी अग्निरूपवह्निर्भूते एवं तमोरजसी लयविक्षेपहेतुतया चिद्रू-पाद्बहिर्भूते इत्यर्थ । **सर्वमिति** । तस्य तस्मात् यत्र अग्नौ मुख्ये भोक्तरि हविर्भोग्यं तस्मात्सर्वं संजायते इदं सर्वमित्या-द्युदाहृतश्रुतेरित्यर्थ ॥ ११ ॥ **सत्त्वादिति** । यज्ञो जीवब्रह्मणो· संगतिकारणरूपो योग समानव्यानाख्यं सर्वं दृष्टं श्रुतं च बुद्धिसत्त्वादेव भवतीति योगिनामनुभवसिद्ध-मित्यर्थ. । अयं भाव·–वेदे श्येनज्योतिष्टोमदहरोपासनादीनि तमोरज·सत्त्वप्रधानपुरुषयोग्यानि वर्तन्ते तेषु तेषु यज्ञविदा सात्त्विकमेव साधनं बहुमतं नेतरदिति–**प्राणापाना-विति** । यथाऽग्निराज्यभागाभ्यामुद्दीप्यते एवं पूर्वोपाधि-प्रविलापनरूपप्राणापानजयेन उदानाख्यं परं ब्रह्म भ्रूमध्ये दृष्ट्वा प्रकाशत इत्यर्थ.। एवं च केनायं सृज्यत इत्यस्योत्तरं संकल्पादिति कश्चान्य इत्यस्य तन्मूलभूते कामकर्मणी प्राण-द्वंद्वं च राज्विकं तत् द्वयं समान·व्यानाख्यं निर्यगित्यादेरु-त्तरं हर्षो मिथुनमंतरेति च व्यक्तम् ॥१२॥ अहोरात्रं विद्या-विद्ये सुप्तिजागरौ उत्पत्तिप्रलयौ वा ॥ १४ ॥ सत् कार्यं असत्कारणं हुताशन· हुते प्रविलापिते कार्यकारणे अश्नाति निरन्वयं निगिलति न तु राहुवत्पुनरुद्गिरतीति हुताशन. शुद्धं ब्रह्म । उदानस्य उत्कर्षेण आनयति चेष्टयतीत्युदान परम आनंद । को ह्येवान्यात्क. प्राण्यात् यदेष आकाश आनंदो न स्यादिति श्रुते· ॥ १५ ॥ **ऊर्ध्वमिति** । तत ऊर्ध्वं ब्रह्म येन हेतुना संकल्पाख्येन समानो व्यानश्च भवति व्यानेन सर्वां दिवमावृणोति ततः समाने प्रतितिष्ठतीत्युक्ते कारणं कार्यं च भवति तेनैव हेतुना कर्म व्यस्यते विस्तार्यते तस्मात्संकल्पो निरोद्धव्य· नि संकल्पस्तत्स्थस्तिष्ठेदेव तन्मो· क्षलक्षणमिति श्रुतेरिति भाव. । ननु सुषुप्तावपि नि.संकल्प-ताऽस्तीत्यत आह–**तृतीयमिति** । तृतीयं ऊर्ध्वं तुशब्दः

शान्त्यर्थं ध्यानमेकं च शान्तिर्ब्रह्म सनातनम्। एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## २५

**ब्राह्मण उवाच।**

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
चातुर्होत्रविधानस्य विधानमिह यादृशम् १
तस्य सर्वस्य विधिवद्विधानमुपदिश्यते।
शृणु मे गदतो भद्रे रहस्यमिदमद्भुतम् ॥ २
करणं कर्म कर्ता च मोक्ष इत्येव भाविनि।
चत्वार एते होतारो यैरिदं जगदावृतम् ॥ ३
हेतूनां साधनं चैव शृणु सर्वमशेषतः।
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्च श्रोत्रं च पञ्चमम्
मनो बुद्धिश्च सप्तैते विज्ञेया गुणहेतवः ॥ ४
गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शश्च पञ्चमः।
मन्तव्यमथ बोद्धव्यं सप्तैते कर्महेतवः ॥ ५
घ्राता भक्षयिता द्रष्टा वक्ता श्रोता च पञ्चमः
मन्ता बोद्धा च सप्तैते विज्ञेयाः कर्तृहेतवः ६
स्वगुणं भक्षयन्त्येते गुणवन्तः शुभाशुभम्।
अहं च निर्गुणोऽनन्तः सप्तैते मोक्षहेतवः ॥ ७

---

समानवैलक्षण्यार्थं. समानेन उपलक्षणेन व्यवस्यते निश्चीयते शाखयेव चंद्र. सौषुप्तात्कारणभावात्तद्विलक्षणमित्यर्थं. तथा च श्रुति –द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयो. प्राज्ञतुर्ययो बीजनिद्रायुत प्राज्ञ. सा तु तुर्ये न विद्यत इति ॥१६॥ निश्चय-फलमाह–**शान्तीति**। ध्यानं चकारात्समानं सनातनं ब्रह्म च एतत् त्रयं एकं शांतिशब्दार्थ.। कार्यकारणशुद्धाना सैन्धवघनन्यायेनैक्यं मुक्तिर्न त्वाद्ययोर्निरोधमात्रं सांख्याभिमत-मित्यर्थ. ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४ ॥

२५

एवमुपदेशप्राधान्येन ब्रह्माद्वैतमुक्त्वा उपपत्तिप्राधान्येन तत्प्रसाधयितुमध्यायान्तरमारभते—**अत्रापीति**। अत्र उदानस्वरूपे विवेक्तव्ये। **चातुर्होत्रविधानं** इतिहासनाम तस्य विधानं अपूर्वतया ज्ञापनम् ॥ १ ॥ शब्दतो ज्ञातस्य पुनर्विधानं अनुष्ठानप्रकारम्॥२॥ भाविनि विशुद्धभाववति हे बुद्धे ॥३॥ **हेतूनामिति**। घ्राणादयो यद्यपि दशसप्तहोत्रो-रुक्तास्तथाप्येतेषां क· कस्य हेतुरिति तत्र नोक्तं अत्र तु युक्ति-बलेन तत्साधनं अधिकमुच्यत इति विशेष इति भाव। तत्र गन्धाद्यनुभवे प्रीत्यप्रीतिविषादा· सत्त्वरजस्तमोगुणकार्यभूता उत्पद्यन्ते ते यद्यात्मधर्माः स्युर्न तर्हि तत्स्वरूपोच्छेद विना तस्य तद्वियोग आत्यन्तिको युज्यते। घटस्येव रूपसामा-न्येन। यदि प्रकृतेस्तर्हि साऽपि आत्मसमसत्त्वा चेत् विभुनो-र्द्वयोर्वियोगायोगात्पुरुषस्य चाक्षुसदृग्रूपत्वादवश्यं भोगस्य प्राप्तेरनिर्मोक्ष एव। तस्माद्रज्जूरगतुल्या प्रकृतिस्तत्कार्यं च सर्वं तादृशमेव दृष्टिसमसमयोत्पत्तिकमित्याशयेनाह–**घ्राण-मिति**। गुणा अविद्या सैव हेतुर्येषा ते गुणहेतव·। घ्राणादिकं सप्तदशकस्य लिङ्गस्योपलक्षणम् ॥ ४ ॥ गन्धा-दयोऽपि गुणहेतुत्वमत्यजन्त एव कर्महेतव कर्मजा अपि भवन्ति। स्थूलं सर्वकर्मण एव फलमित्यर्थ ॥५॥ कर्मकर्तैव तत्तत्फलभोक्तृरूपेण घ्रात्रादिरूपो भवतीति घ्रात्रादय कर्तृ-हेतव·। एतेनाकर्तुर्भोक्तृत्वं वाञ्छन्साङ्ख्यो निरस्तः। भोक्तृ-त्वस्यापि भोगकर्तृरूपत्वात् ॥ ६॥ एतेषामभेदमाह—**स्व-गुणमिति**। एते घ्रात्रादय गुणा औपाधिकं रूपं घ्राणादि तद्वन्तस्तत्साधना सन्त स्वगुणं गन्धादिकं भक्षयन्ति भुञ्जते। अयं भाव·—यथा आकाश· कर्णशष्कुलीरूपमु-पाधिं प्राप्य श्रोत्रभावं गतस्तेनैव स्वगुणं शब्दं प्रकाशयति एवं घ्रात्रादयोऽपि। अथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमिति श्रुते·। स्वोपादानकघ्राणादिमन्तः स्वो-पादानकमेव शब्दादिकं भुञ्जते। तथा च प्रयोग —मेयमा-तारौ एकोपादानकौ भास्यभासकत्वात् शब्दश्रोत्रवदित्या-त्माद्वैतसाधक. सूचितो भवति। किं तन्मेयमात्रोर्गुणरूप-योरुपादानं तत्राह—**अहं च निर्गुणोऽनन्त इति**। अस्मदर्थ एव घ्राणादिगुणरहितो गन्धघ्रातृत्वादिपरिच्छेद-रहितस्तयोरुपादानमित्यर्थ.। एवं पृथिवी होता, द्यौरध्वर्युः, रुद्रोऽग्नीत् बृहस्पतिरुपवक्तेति च होतृमन्त्रो व्याख्यात·। तथाहि पृथिवीशब्दोक्तं घ्राणादिकं अतीन्द्रियत्वसामान्यात् होतृप्रकाश्यदेवतातुल्यं होतृशब्देनोक्तम्। सुखसाधनतया द्यु-शब्दोक्तं गन्धादिकं दृष्टार्थत्वसामान्यादध्वर्युकर्तृकनिर्वापाद्य-

विदुषां बुध्यमानानां स्वं स्वं स्थानं यथाविधि
गुणास्ते देवताभूताः सततं भुञ्जते हविः ॥ ८
अदन्नन्नान्यथोऽविद्वान्ममत्वेनोपपद्यते ।
आत्मार्थे पाचयन्नन्नं ममत्वेनोपहन्यते ॥ ९
अभक्ष्यभक्षणं चैव मद्यपानं च हन्ति तम् ।
स चान्नं हन्ति तं चान्नं स हत्वा हन्यते पुनः
हन्ता ह्यन्नमिदं विद्वान्पुनर्जनयतीश्वरः ।
न चान्नाज्जायते तस्मिन् सूक्ष्मो नाम व्यतिक्रमः
मनसा गम्यते यच्च यच्च वाचा निगद्यते ।
श्रोत्रेण श्रूयते यच्च चक्षुषा यच्च दृश्यते ॥ १२
स्पर्शेन स्पृश्यते यच्च घ्राणेन घ्रायते च यत् ।
मनःषष्ठानि संयम्य हवींष्येतानि सर्वशः १३
गुणवत्पावको मह्यं दीप्यतेऽन्तःशरीरगः ।
योगयज्ञः प्रवृत्तो मे ज्ञानवह्निप्रदोद्भवः ।
प्राणस्तोत्रोऽपानशस्त्रः सर्वत्यागसुदक्षिणः १४
कर्ताऽनुमन्ता ब्रह्मात्मा होताऽध्वर्युः कृतस्तुतिः
ऋतं प्रशास्ता तच्छस्त्रमपवर्गोऽस्य दक्षिणा ॥
ऋचश्चाप्यत्र शंसन्ति नारायणविदो जनाः ।
नारायणाय देवाय यदविन्दन्पशून्पुरा ॥ १६
तत्र सामानि गायन्ति तत्र चाहुर्निदर्शनम् ।
देवं नारायणं भीरु सर्वात्मानं निबोध तम्१७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वाणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

घातादितुल्यं अध्वर्युशब्देनोक्तम् । लब्धैरलब्धैश्च गन्धादिभी रोध्यमानो रोद्यमानो वा रुद्रशब्दोक्तो घ्रात्रादि कामाग्नीन्धकत्वसामान्यादग्नीच्छब्देनोक्त । कारणब्रह्मणोऽप्याधिष्ठानत्वेन पालकत्वाद्बृहस्पतिशब्दोक्तो निर्गुण. साक्षिमात्ररूपत्वादुपवक्ता न मुख्यो वक्ता एतदुपद्रष्ट्न्वादेरप्युपलक्षणम् । तेन सर्गादौ ईक्षणस्याप्ययं कर्ता न भवति । एवं चित्ति स्रुगित्यादयो दशहोत्रादिमन्त्रा अपि व्याख्येया । विस्तरभयात्तु नेह व्याख्यायन्ते । चित्ति चित्तादि. सर्वोप्यात्मन एव व्यूहो दशहोत्रादिशब्दानामात्ममात्रवाचकत्वस्य आत्मन्नात्मन्नित्यामन्त्रयत । तस्मै दशमऽहूत प्रत्यश्र्णोत् स दशहूतोऽभवत् दशहूतो ह वै नामैष । तं वा एतं दशहूतं सन्तं दशहोतेत्याचक्षते परोक्षेण इति श्रवणात् । आमन्त्रणमनुसन्धानं प्रतिश्रवणमुपवक्तु साक्षात्कार इति दिक् । कथं तर्हि निर्गुणस्यानंतस्य प्रतिपत्तिरिति तत्राह—**सप्तैते मोक्षहेतव इति** । इन्द्रियाणा विषयाणा च ग्रहातिग्रहसंज्ञकबन्धरूपत्वात्तेषा वियोगे शब्दशष्कुल्यभावे नभस स्वतन्मात्रत्ववदात्मनो निरुपाधेर्भेदकाभावाच्चिन्मात्ररूपेणावस्थिता एते अव्यवहिता घ्रात्रादय एव मोक्षहेतव स्यु घ्रातृत्वाद्यभिमानत्यागो मोक्ष इत्यर्थ ॥ ७ ॥ तत्त्वविदा तु न भक्षणमस्तीत्याह—**विदुषामिति** । स्वं स्वं स्थानं घ्राणादीनामधिष्ठानं अविद्यादि । गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जत इत्युक्ते । घ्राणादय एव घ्रेयादिषु वर्तन्ते न त्वात्मेति जानता न घ्रातृत्वाद्यभिमानकृतो बन्धोऽस्तीत्यर्थ ॥ ८ ॥ **अदन्निति** । अविद्वानिति छेद. । अन्नानि घ्रेयादीनि । अदन् भोक्तृत्वाभिमानं कुर्वन् । भोग्ये ममत्वेन ममतयोपपद्यते युज्यते ततश्च नश्यतीन्यर्थ । अत्र केवलाघो भवति केवलादीति श्रौतं दृष्टान्तमाह—**आत्मार्थे इति** । एकाकी मिष्टभुक्केवलपापरूप एव भवति यस्मादत स चान्नं हन्ति नाशयति । तं चान्नं हन्ति मृत्युपरम्परया स हत्वाऽन्नं हन्यतेऽन्नेन ॥ १० ॥ य इदं विद्वान् अन्नं हन्ता अन्नं भोक्ता अन्नोपलक्षितस्य कृत्स्नप्रपञ्चस्यात्मनि प्रविलापयितेत्यर्थ । स ईश्वर एव सन् पुनरन्नादेर्जनको भवति । यस्यानुवित्त प्रतिबुद्ध आत्मा यस्मिन्संदेहे गहने प्रविष्ट । स विश्वकृत्स हि विश्वस्य कर्ता तस्य लोक स उ लोक एवेति श्रुते । **न चेति** । न कर्मणा लिप्यते पापकेनेति श्रुते । सर्वभोगभुजोपि विदुषो न भोगकृतो लेपोऽस्तीत्यर्थ ॥११॥ अन्नशब्दार्थमाह—**मनसेत्यादिना** ॥१२॥ मन्तव्यादीना होमो मनआदिनिग्रहेणैवेत्यर्थ ॥१३॥ होमाधिष्ठानं गुणवत्पावक कारणं ब्रह्म मह्यं मम योगं यज्ञत्वेन स्तौति—**योगेति** । ज्ञानमेव वह्नि सर्वकर्मदाहकत्वात्तत्प्रद उद्भवो यस्य योगयज्ञस्य स तथा प्राण स्तोत्रं अपान. शस्त्रं अपानसत्र इत्यपपाठ । सर्वत्यागसुदक्षिण सर्वत्यागेनैव सुतरा दक्षिण फलजननसमर्थ ॥ १४ ॥ कर्ताऽहङ्कार अनुमन्ता मन आत्मा बुद्धि एतत्त्रयं ब्रह्मैव सत्कर्मेण होत्रध्वर्यूद्गातृरूपयोगिन इत्यर्थ । प्रशास्ता तच्छस्त्रं प्रशास्तु शंसनं ऋतं सत्यवचनमेवेत्यर्थ । अपवर्ग कैवल्यम् ॥ १५ ॥ ऋच तप आसीद् गृहपतिरित्याद्या चकारात्तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमान श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिरित्यादि ब्राह्मणं च । शंसन्ति योगयज्ञे प्रमाणत्वेन कथयन्ति तैत्तिरीयादय । नारायणविद वेदविद आत्मविदो वा । नारायणाय आत्मप्राप्त्यर्थं यत् यदा पशूनिन्द्रियाणि अविन्दन् वश्यत्वेन प्राप्तवन्तः ॥ १६ ॥ तत्र तदा सामानि गायन्ति आत्मलाभेन हृष्टाः सन्त तत्र चाहुर्निदर्शनं तैत्तिरीया । एतत्साम गायन्नास्ते हा ३ वुहा ३ वुहा ३ वु, अहमन्नमहमन्नमहमन्नमित्यादि यज्ज्ञानाय पशुजयो यस्मिन् ज्ञाते सामानि गायन्ति तं नारायणं देवं निबोध जानीहि ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वाणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्याय. ॥ २५ ॥

## २६

ब्राह्मण उवाच ।
एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।
तेनैव युक्तः प्रवणादिवोदकं
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा वहामि ॥ १
एको गुरुर्नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।
तेनानुशिष्टा गुरुणा सदैव
लोके द्विष्टाः पन्नगाः सर्व एव ॥ २
एको बन्धुर्नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।
तेनानुशिष्टा बान्धवा बन्धुमन्तः
सप्तर्षयः पार्थ दिवि प्रभान्ति ॥ ३
एकः श्रोता नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।
तस्मिन्गुरौ गुरुवासं निरुष्य
शक्रो गतः सर्वलोकामरत्वम् ॥ ४
एको द्वेष्टा नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।
तेनानुशिष्टा गुरुणा सदैव
लोके द्विष्टाः पन्नगाः सर्व एव ॥ ५
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रजापतौ पन्नगानां देवर्षीणां च संविदम् ६
देवर्षयश्च नागाश्चाप्यसुराश्च प्रजापतिम् ।
पर्यपृच्छन्नुपासीनाः श्रेयो नः प्रोच्यतामिति
तेषां प्रोवाच भगवान् श्रेयः समनुपृच्छताम् ।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ते श्रुत्वा प्राद्रवन्दिशः ८
तेषां प्रद्रवमाणानामुपदेशार्थमात्मनः ।
सर्पाणां दंशने भावः प्रवृत्तः पूर्वमेव तु ॥ ९
असुराणां प्रवृत्तस्तु दम्भभावः स्वभावजः ।
दानं देवा व्यवसिता दममेव महर्षयः ॥ १०
एकं शास्तारमासाद्य शब्देनैकेन संस्कृताः ।
नाना व्यवसिताः सर्वे सर्पदेवर्षिदानवाः ११
शृणोत्ययं प्रोच्यमानं गृह्णाति च यथातथम् ।
पृच्छतस्तदतो भूयो गुरुरन्यो न विद्यते ॥ १२
तस्य चानुमते कर्म ततः पश्चात्प्रवर्तते ।
गुरुर्बोद्धा च श्रोता च द्वेष्टा च हृदि निःसृतः
पापेन विचरन् लोके पापचारी भवत्ययम् ।
शुभेन विचरँल्लोके शुभचारी भवत्युत १४
कामचारी तु कामेन य इन्द्रियसुखे रतः ।
ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः ॥ १५
अपेतव्रतकर्मा तु केवलं ब्रह्मणि स्थितः ।
ब्रह्मभूतश्चरँल्लोके ब्रह्मचारी भवत्ययम् ॥ १६
ब्रह्मैव समिधस्तस्य ब्रह्माग्निर्ब्रह्मसम्भवः ।
आपो ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म स ब्रह्मणि समाहितः १७
एतदेवेदृशं सूक्ष्मं ब्रह्मचर्यं विदुर्बुधाः ।
विदित्वा चान्वपद्यन्त क्षेत्रज्ञेनानुदर्शिताः १८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

२६

नारायणस्वरूपमेव कथयति—**एक इत्यादिना** । प्रवणादिव नीचादिव । प्रणवादित्यपपाठ ॥१॥ अन्तर्यामिरूपेण तस्य शास्तृत्वमुक्त्वा गुरुबन्धुरूपेणापि तदाह—**एको गुरुरिति द्वाभ्याम्** । द्विष्टा द्वेषवन्त ॥ २ ॥ स एव शास्योऽपीत्याह—**एकः श्रोतेति द्वाभ्याम्** । अत्र एकस्मिन्नपि शास्तरि शास्यता बुद्धिभेदेन ॥४॥ देवाश्च ऋषयश्चेति द्वन्द्व ॥ ७ ॥ प्राद्रवन्प्रतिपेदिरे दिशो बहून्मार्गान् ॥ ८ ॥ आत्मन स्वस्य उपदेश ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति वाक्यं तस्य अर्थम् । प्रद्रवमाणाना तात्पर्येणानुसरतां तेषा मध्ये सर्पाणा प्रणवोच्चारणे मुखस्य उन्मीलननिमीलनयोरेव दृष्टिं कृत्वा स्वीयस्वभावानुकूलं मुखोन्मीलननिमीलनसाध्यं दंशनमेव श्रेय इति मन्वानानाम् ॥ ९ ॥ एवमसुराणामोष्ठचालनमात्रे दत्तदृष्टीनां दम्भे जपाद्यभिनयप्रदर्शनरूपे भावो निश्चय प्रवृत्त । देवास्तु लोके प्रार्थितं ओमित्यनुजानन्तीति बुद्ध्वा दानं श्रेय इति निश्चिता । महर्षयस्तु ओमित्यस्योच्चारणे ओष्ठप्रवृत्त्युपसंहारं दृष्ट्वा सर्वप्रवृत्त्युपसंहाररूपं दमं श्रेयो मेनिरे ॥ १० ॥ तस्मात्स्वयमेव स्वस्य गुरुरित्याह—**शृणोतीति** । पृच्छत शिष्यान्प्रति तत् श्रुत गृहीतं च भूय श्रावयति ग्राहयतीति च विपरिणामेनानुषज्य योज्यं य एवंविधः अतोऽन्यो गुरुर्न विद्यते इति सम्बन्ध ॥ १२ ॥ अयमेव स्वसंस्कारवशात्पापचर्यादिरूपो भवतीत्याह—**गुरुरित्यादिना** ॥ १३ ॥ तत्र मुख्यब्रह्मचारिणि आश्रमधर्मलेपेऽपि न दोष इत्याह—**ब्रह्मैव समिध इति** ॥१७॥ क्षेत्रज्ञेन तत्त्वदर्शिना अनुदर्शिता अनुदर्शनं कारिता. अनुशिष्टा इत्यर्थ ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षड्विंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

## २७

ब्राह्मण उवाच ।
सङ्कल्पदंशमशकं शोकहर्षहिमातपम् ।
मोहान्धकारतिमिरं लोभव्याधिसरीसृपम् ॥ १
विषयैकात्ययाध्वानं कामक्रोधविरोधकम् ।
तदतीत्य महादुर्गं प्रविष्टोऽस्मि महद्वनम् ॥ २
ब्राह्मण्युवाच ।
क्व तद्वनं महाप्राज्ञ के वृक्षाः सरितश्च काः ।
गिरयः पर्वताश्चैव कियत्यध्वनि तद्वनम् ॥ ३
ब्राह्मण उवाच ।
नैतदस्ति पृथग्भावः किंचिदन्यत्ततः सुखम् ।
नैतदस्त्यपृथग्भावः किंचिद्दुःखतरं ततः ॥ ४
तस्माद्ध्रस्वतरं नास्ति
न ततोऽस्ति महत्तरम् ।
नास्ति तस्मात्सूक्ष्मतरं
नास्त्यन्यत्तत्समं सुखम् ॥ ५
न तत्राविश्य शोचन्ति
न प्रहृष्यन्ति च द्विजाः ।
न च बिभ्यति केषांचि-
त्तेभ्यो बिभ्यति केचन ॥ ६
तस्मिन्वने सप्त महाद्रुमाश्च
फलानि सप्तातिथयश्च सप्त ।
सप्ताश्रमाः सप्त समाधयश्च
दीक्षाश्च सप्तैतदरण्यरूपम् ॥ ७
पञ्चवर्णानि दिव्यानि पुष्पाणि च फलानि च ।
सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥
सुवर्णानि द्विवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।
सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥
सुरभीणि द्विवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।
सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥
सुरभीण्येकवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।
सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥
बहून्यव्यक्तवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।
विसृजन्तौ महावृक्षौ तद्वनं व्याप्य तिष्ठतः ॥

---

### २७

ननु परपचर्यादिस्वभाव एवात्मा तर्हि किं ब्रह्मचर्येणेत्याशंक्यात्मनोऽसङ्गत्व प्रतिपादयितुं वनाध्यायमारभते—**संकल्पेति** । अध्वान अतीत्य तन्महादुर्गं वनं प्रविष्टोऽस्मीत्यन्वय ॥ १ ॥ विषयो विशेषेण बन्धक एकेनैवात्येतव्यो न पुत्रधनादिसहायवतेत्येवंरूपोऽध्वा ससारमार्गस्तं विषयैकात्ययाध्वानं वनं ब्रह्म किंस्विद्वन क उ स वृक्ष आसेति श्रुतौ वनवृक्षशब्दयोर्ब्रह्मदेहादिवाचित्वदर्शनात् ॥ २ ॥ वनोक्त्यैवाक्षिप्ता वृक्षादयोऽपि पृच्छ्यन्ते—**के इति** ॥ ३ ॥ षट्सु प्रश्नेषु आद्यस्योत्तरम्—**नैतदिति** । तत पृथक् भावोऽस्तीति यत् एतन्न ततोन्यत्किञ्चित्सुखमस्तीति यत् एतन्नेति योजना सत्ता सुखं च सर्वं ब्राह्ममेव कार्येषु दृश्यते न तत्र तद्द्वयं पृथगस्तीत्यर्थ । ननु ब्रह्मैव कार्याकारमभूत्नेत्याह—**नैतदिति** । तत अपृथक् अभेदेन भाव वियदादिपदार्थोऽस्तीति यत् एतन्न। ब्रह्मजगतोर्न मृद्घटवद्धेतुहेतुमद्भावोऽपि तु शुक्तिरजतवदित्यतस्तयोर्भेद एव निषिध्यते न त्वभेदो विधीयते न हि रजतं शुक्तेरतिरिक्तमस्ति । नापि तया समानसत्ताकं येन तदभिन्न स्यादिति भाव । तथा ततो वनादन्यत्स्वर्गादि दुःखतरं दुःखतारक कर्मास्तीति यत् एतन्न । आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तीप्सुना श्रमेणापि संसारमार्गमतीत्य तद्वनं प्रवेष्टव्यमिति भाव ॥ ४ ॥ केषाञ्चित्पञ्चम्यर्थे षष्ठी ॥ ६ ॥ ब्रह्म वन ब्रह्म स वृक्ष आसीदिति वनवृक्षयोर्मुख्यामुख्यब्रह्मभावदृष्टेस्तयोरधिष्ठानाध्यस्तभावं विवक्षन्नाह—**तस्मिन्वने इति** । **एतदरण्यरूपमिति च** । अत्र महदहङ्कारपञ्चतन्मात्राणि सप्त द्रुमास्तैस्तत्सङ्घातरूपो देहो लक्ष्यते । तस्य कारणं फलशब्दोदितं यागाद्यपूर्वम् । तस्यापि कारणं देवतारूपातिथिप्रीतिसाधनत्वादतिथिशब्दोक्ता यागक्रिया । तस्या कारणमाश्रमशब्दोदित क्रियाश्रय कर्ता । अस्यापि कारणं समाधय सम्यगाधीयन्ते कर्मस्वभिनिवेश्यन्ते जना यैस्ते तथाभूता रागादय । तेषा मूलं धर्मान्तरपरिग्रहलक्षणा दीक्षा देहादिधर्मस्वीकाररूपोऽध्यास । एवं देहपूर्वकोऽध्यासस्तत्पूर्वकाश्च रागादिदेहान्ता एवमिद चक्रमनिशमावर्तमानमात्मसत्तया स्फूर्जदपि नात्मा तद्धर्मैरनुरज्यते इत्यर्थ ॥७॥ पञ्चवर्णानि शब्दादिभेदात्पंचरूपाणि पुष्पाणि शब्दाद्यनुभवा फलानि तज्जा प्रीत्यादय पादपा मनांसि जीवभेदाद्वृत्तिभेदाद्वा बहुवचनम् ॥ ८ ॥ सुवर्णानि श्वेतपीतादि शोभनवर्णवन्ति । द्विवर्णानि सुखदुःखोभयहेतुत्वाद्विरूपाणि पादपाश्चक्षूंषि इन्द्रियान्तरेष्वप्येतत्तुल्यम् ॥ ९ ॥ सुरभीणि स्वर्गादीनि द्विवर्णत्वं तत्राप्यविशिष्टं पादपा यज्ञादय ॥ १० ॥ सुरभीण्येकवर्णानि सुखैकरूपाणि पादपा यानादय ॥ ११ ॥ बहूनि अतीतानागतवर्तमानानि । अव्यक्तवर्णानि वर्ण स्वरूपम् । मूढाना मनोरथमात्राणि योगिना तु संकल्पात्प्रागव्यक्तवर्णानि । महावृक्षौ बुद्धिमनसी ॥ १२ ॥

एको वह्निः सुमना ब्राह्मणोऽत्र
पञ्चेन्द्रियाणि समिधश्चात्र सन्ति ।
तेभ्यो मोक्षाः सप्त फलन्ति दीक्षा
गुणाः फलान्यतिथयः फलाशाः १३
आतिथ्यं प्रतिगृह्णन्ति तत्र तत्र महर्षयः ।
अर्चितेषु प्रलीनेषु तेष्वन्यद्रोचते वनम् ॥ १४
प्रज्ञावृक्षं मोक्षफलं शान्तिच्छायासमन्वितम् ।
ज्ञानाश्रयं तृप्तितोयमन्तःक्षेत्रज्ञभास्करम् १५
येऽधिगच्छन्ति तं सन्त-
स्तेषां नास्ति भयं पुनः ।
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च
तस्य नान्तोऽधिगम्यते ॥ १६
सप्त स्त्रियस्तत्र वसन्ति सद्य-
स्त्ववाङ्मुखा भानुमत्यो जनित्र्यः ।
ऊर्ध्वं रसानाददते प्रजाभ्यः
सर्वान् यथा सत्यमनित्यता च ॥ १७
तत्रैव प्रतितिष्ठन्ति पुनस्तत्रोपयन्ति च ।
सप्त सप्तर्षयः सिद्धा वसिष्ठप्रमुखैः सह ॥ १८
यशो वर्चो भगश्चैव विजयः सिद्धतेजसः ।
एतमेवानुवर्तन्ते सप्त ज्योतींषि भास्करम् १९
गिरयः पर्वताश्चैव सन्ति तत्र समासतः ।
नद्यश्च सरितो वारि वहन्त्यो ब्रह्मसम्भवम् ॥
नदीनां सङ्गमश्चैव
वैताने समुपह्वरे ।
स्वात्मतृप्ता यतो यान्ति
साक्षादेव पितामहम् ॥ २१
कृशाशाः सुव्रताशाश्च तपसा दग्धकिल्बिषाः
आत्मन्यात्मानमाविश्य ब्रह्माणं समुपासते ॥
शममप्यत्र शंसन्ति विद्यारण्यविदो जनाः ।
तदारण्यमभिप्रेत्य यथाधीरमजायत ॥ २३
एतदेवेदृशं पुण्यमरण्यं ब्राह्मणा विदुः ।
विदित्वा चानुतिष्ठन्ति क्षेत्रज्ञेनानुदर्शिना २४

---

बाह्यिरात्मा सुमना इत्यत्र मन शब्देन बुद्धिमनसी स्रुक्स्रुवस्थानीये इन्द्रियाणि समिधश्च होम्यम् ।
'यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहु परमां गतिम्' इति श्रुते । सर्वेषा प्रविलापनं होम. तेभ्यो मनआदिभ्यो हुतेभ्य सप्त मोक्षा. मुक्ति अपादानबहुत्वस्य मोक्षेऽप्युपचारात् मोक्ष इति बहुत्वम । ननु मुक्तस्य दीक्षास्थ्योऽध्यासोऽस्ति न वा । नान्त्य. । ज्ञानसमकालमेव देहपातापत्ते'। आद्ये अध्यासवत उत्क्रमेण देहान्तरोत्पत्तिरनिवार्येत्याशंक्याह-**फलन्ति दीक्षा इति** । मुक्ताना दीक्षा. फलंत्येव न तु देहान्तरमारभन्ते कुत एतत् यतो गुणा फलानि विदुष. सत्यपि देहादिप्रतिभासे कर्तृत्वाभिनिवेशाभावाद्दानादिनोत्पन्नमप्यपूर्वं न देहान्तरारम्भकम् । अत एव गुणभूतान्येवापूर्वाणि क्व तर्हि तेषामुपयोग. अतिथय. फलाशा' अतिथयो देवता एव फलाशाः ईश्वरस्यैव तेषा परार्थैव क्रिया न स्वार्थेत्यर्थ' । तथा च श्रुतिः-तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृद' साधुकृत्या द्विषन्तः पापकृत्यामिति तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूयेत्यादि' ॥१३॥ महर्षय इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा' । अन्यत्तेभ्यो विलक्षणं द्वैतदर्शनाभावात् रोचते दीप्यते ॥ १४ ॥ प्रज्ञा साक्षात्कारः ज्ञानं आगमाचार्योपदेशजम् ॥ १५ ॥ भयाभावे हेतुमाह—**ऊर्ध्वमिति** । तस्य प्रज्ञावृक्षस्य सर्वस्य चिन्मात्रत्वं पश्यन्भेददर्शनाभावान्न बिभेतीत्यर्थः । द्वितीयाद्वै भयं भवतीति श्रुतेः ॥१६॥ जीवन्मुक्तस्यैश्वर्यमाह--**सप्त स्त्रिय इति** । तत्र वृक्षाधिगन्तरि स्त्रियो घ्राणादिवृत्तयः सद्यो जनित्र्य इत्यस्य संकल्पसिद्धा इत्यर्थः । 'संकल्पादेवास्य पितर' समुत्तिष्ठन्ति' इति श्रुते । अवाङ्मुखा पुरुषं वशीकर्तुमशक्तत्वेन लज्जिता. । भानुमत्यश्चिज्ज्योतिर्मया. प्रजाभ्य ऊर्ध्वं उत्कृष्टं यथा स्यात्तथा । सर्वान् रसान् विषयजाल्हादान् आददते भुञ्जते ऊर्ध्वत्वमेवाह दृष्टान्तेन—**यथा सत्यमनित्यता चेति** । नित्यानित्ययोर्यावदन्तरं तावद्बुद्धमूढसुखयोरित्यर्थः ॥ १७ ॥ प्राणा वा ऋषय इति श्रुते. सप्तर्षीणामिन्द्रियाणा लयोदयस्थानं विद्वानेवेत्याह—**तत्रैवेति** । तत्रोपयन्ति तत उद्यन्ति य कश्चिद्भूतो भावी वर्तमानो वा वसिष्ठोऽतिशयेन वसुमान् ॥ १८ ॥ यशो यशस्वी वर्चो दीप्तिस्तद्वानित्यादि ते सर्वे एनं भास्करं क्षेत्रज्ञं भास्करं अनुवर्तन्त इत्यर्थ. ॥ १९ ॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यतीत्यस्या श्रुतेरर्थं संक्षिपति-**गिरय इत्यादिना** ॥२०॥ वितानो योगयज्ञविस्तारस्तत्स्येदं स्थानं वैतानं हार्दाकाश' समुपह्वरे अत्यन्तगूढे ॥ २१ ॥ के यान्तीत्यत आह—**कृशाशा इति** ॥ २२ ॥ अरण्यं प्राप्यमभिप्रेत्य शमं शंसन्तीति योजना शममपि शममेव विद्यारण्यविद. विद्यैकप्राप्यब्रह्मविद' यथा धीरं बुद्धिगतिमनतिक्रम्येत्यर्थ ॥२३॥ विदित्वा शास्त्रतो ज्ञात्वा अनुतिष्ठन्ति शमादिपरा भवन्ति तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । **एवंवित्** शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येदित्यादिश्रुतिभ्यो न शुष्कज्ञानात्कृतकृत्यतेत्यर्थः ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

ब्राह्मण उवाच ।
गन्धान्न जिघ्रामि रसान्न वेद्मि
रूपं न पश्यामि न च स्पृशामि ।
न चापि शब्दान्विविधान् शृणोमि
न चापि संकल्पमुपैमि कञ्चित् ॥ १
अर्थानिष्टान्कामयते स्वभावः
सर्वान्द्वेष्यान्प्रद्विषते स्वभावः ।
कामद्वेषावुद्भवतः स्वभावात्
प्राणापानौ जन्तुदेहान्निवेश्य ॥ २
तेभ्यश्चान्यांस्तेषु नित्यांश्च भावान्
भूतात्मानं लक्षयेरन् शरीरे ।
तस्मिंस्तिष्ठन्नास्मि सक्तः कथञ्चि-
त्कामक्रोधाभ्यां जरया मृत्युना च ३
अकामयानस्य च सर्वकामा-
नविद्विषाणस्य च सर्वदोषान् ।
न मे स्वभावेषु भवन्ति लेपा-
स्तोयस्य बिन्दोरिव पुष्करेषु ॥ ४
नित्यस्य चैतस्य भवन्ति नित्या
निरीक्ष्यमाणस्य बहुस्वभावः ।
न सज्जते कर्मसु भोगजालं
दिवीव सूर्यस्य मयूखजालम् ॥ ५
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अध्वर्युयतिसंवादं तं निबोध यशस्विनि ॥ ६
प्रोक्ष्यमाणं पशुं दृष्ट्वा यज्ञकर्मण्यथाब्रवीत् ।
यतिरध्वर्युमासीनो हिंसेयमिति कुत्सयन् ७
तमध्वर्युः प्रत्युवाच नायं छागो विनश्यति ।
श्रेयसा योक्ष्यते जन्तुर्यदि श्रुतिरियं तथा ॥ ८
यो ह्यस्य पार्थिवो भागः पृथिवीं स गमिष्यति
यदस्य वारिजं किञ्चिदपस्तत्संप्रवेक्ष्यति ॥ ९
सूर्यं चक्षुर्दिशः श्रोत्रं प्राणोऽस्य दिवमेव च ।
आगमे वर्तमानस्य न मे दोषोऽस्ति कश्चन १०

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशतितमोऽध्याय ॥ २७ ॥

२८

एको वह्निरिति श्लोके विदुषा कर्तृत्वाभिमानाभावात्कृतेनापि कर्मणा बन्धो नास्तीत्युक्तं तद्विवृणोति—**गन्धानित्यादिना** । निवृत्तक्षेत्रस्वाम्यस्य क्षेत्रिकस्य क्षेत्रवृद्धिह्रासाभ्यां दृश्यमानाभ्यामपि न हर्षविषादौ भवत एवं विविक्तात्मदर्शिनो गुणकृतै कर्मभिर्न संगोऽस्तीत्यर्थ ॥१॥ **अर्थानिति** । स्वभावो बुद्ध्यादीना तत्र दृष्टान्त — **कामेति** । यथा कामद्वेषयोरुद्भवाभावेऽपि जन्तुना देहान्प्राणापानौ प्रवेश्य प्रवेशयितर्यननुसंदधानेऽपि सुषुप्त्यादौ स्वभावादेव प्राणापानौ स्वकार्यं अन्नपाकादि कुरुत एव बुद्ध्यादिरपि जाग्रत्स्वप्नयो· स्वभावादेव अर्थेषु कामादिमान् भवति न त्वहमित्यर्थ· ॥ २ ॥ **तेभ्यश्चेति** । बाह्यघ्राणघ्रेयादिभ्योन्यान्स्वाप्नान्वासनामयान् घ्राणघ्रेयादीन् स्वरूपसाम्येप्येतेषामन्यत्वमेकत्रानुभूतस्य सुखादेरन्यत्राप्रसंगात् ज्ञेयं तेषु स्वाप्नेषु नित्यानुगतान् अधिष्ठानगतान् भावान् त इमे सत्या· कामा इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धान् तेभ्योऽन्यान् तेभ्योऽप्यन्यं भूतात्मानं शरीरे योगिनो लक्षयेरन् घ्राणादिदेवताभ्योऽप्यान्तरमात्मानं जानन्त कथं बाह्यैर्घ्राणादि· धर्मैर्लिप्येरन्नित्यर्थ । एतदेव स्पष्टयति-तस्मिन् भूतात्मनि तिष्ठन्सक्तो नास्मि । असंगो ह्ययं पुरुष इति श्रुते ॥३॥ एतस्य प्रतीचो ज्ञातस्य सत्याः कामा इति शेष । सत्यकाम सत्यसकल्प इति श्रुते निरीक्ष्यमाणस्य दृश्यरूपस्य भोगजालं बहूनां घ्रात्रादिना स्वभावभूतं सद्विदुषि न सज्जते सक्तं भवति कर्मसु क्रियमाणेष्वपि सत्स्विति शेषः ॥ ५ ॥ अत्रात्मनोऽसंगत्वे ॥ ६ ॥ श्रुतिः पशुर्वै नीयमान· स मृत्युं प्रापश्यत्स देवान्नान्वकामयतैतुं त देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमिष्याम इति स तथेत्यब्रवीदित्यादिः ॥ ८ ॥ **यो हीति** । हिशब्देन सूर्यं ते चक्षु वातं प्राण· द्यां पृष्ठं अन्तरिक्षमात्मा अङ्गैर्यज्ञं पृथिवीं *शरीरैरिति श्रौतीं प्रसिद्धिं द्योतयति ॥ ९ ॥ आगमे अग्नीषोमीयं पशुमालभेतेत्यादौ विधिस्पृष्टे निषेधानवकाशान्न हिंस्यात्सर्वा भूतानीति वाक्यं कामकृतहिंसाविषयमित्यर्थ· ॥१०॥ * 'तथापि' इति पाठ· ।

यतिरुवाच ।

प्राणैर्वियोगे च्छागस्य यदि श्रेयः प्रपश्यसि
छागार्थे वर्तते यज्ञो भवतः किं प्रयोजनम् ११
अत्र त्वां मन्यतां भ्राता पिता माता सखेति च
मन्त्रयस्वैनमुन्नीय परवन्तं विशेषतः ॥ १२
एवमेवानुमन्येरंस्तान् भवान्द्रष्टुमर्हति ।
तेषामनुमतं श्रुत्वा शक्या कर्तुं विचारणा १३
प्राणा अप्यस्य छागस्य प्रापितास्ते स्वयोनिषु
शरीरं केवलं शिष्टं निश्चेष्टमिति मे मतिः १४
इन्धनस्य तु तुल्येन शरीरेण विचेतसा ।
हिंसानिर्वेष्टुकामानामिंधनं पशुसंज्ञितम् १५
अहिंसा सर्वधर्माणामिति वृद्धानुशासनम् ।
यदहिंस्रं भवेत्कर्म तत्कार्यमिति विद्महे ॥ १६
अहिंसेति प्रतिज्ञेयं यदि वक्ष्याम्यतः परम् ।
शक्यं बहुविधं कर्तुं भवता कार्यदूषणम् १७
अहिंसा सर्वभूतानां नित्यमस्मासु रोचते ।
प्रत्यक्षतः साधयामो न परोक्षमुपास्महे १८

अध्वर्युरुवाच ।

भूमेर्गन्धगुणान् भुङ्क्ष पिबस्यापोमयान् रसान्
ज्योतिषां पश्यसे रूपं स्पृशस्यनिलजान्गुणान्
शृणोष्याकाशजान् शब्दान्
मनसा मन्यसे मतिम् ।
सर्वाण्येतानि भूतानि
प्राणा इति च मन्यसे ॥ २०
प्राणादाने निवृत्तोऽसि
हिंसायां वर्तते भवान् ।
नास्ति चेष्टा विना हिंसां
किं वा त्वं मन्यसे द्विज ॥ २१

यतिरुवाच ।

अक्षरं च क्षरं चैव द्वैधीभावोऽयमात्मनः ।
अक्षरं तत्र सद्भावः स्वभावः क्षर उच्यते २२
प्राणो जिह्वा मनः सत्त्वं सद्भावो रजसा सह
भावैरेतैर्विमुक्तस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः २३
समस्य सर्वभूतेषु निर्ममस्य जितात्मनः ।
समन्तात्परिमुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥

अध्वर्युरुवाच ।

सद्भिरेवेह संवासः कार्यो मतिमतां वर ।
भवतो हि मतं श्रुत्वा प्रतिभाति मतिर्मम २५
भगवन् भगवद्बुद्ध्या प्रतिपन्नो ब्रवीम्यहम् ।
व्रतं मन्त्रकृतं कर्तुर्नापराधोऽस्ति मे द्विज ॥२६

ब्राह्मण उवाच ।

उपपत्त्या यतिस्तूष्णीं वर्तमानस्ततः परम् ।
अध्वर्युरपि निर्मोहः प्रचचार महामखे ॥ २७
एवमेतादृशं मोक्षं सुसूक्ष्मं ब्राह्मणा विदुः ।
विदित्वा चानुतिष्ठन्ति क्षेत्रज्ञेनार्थदर्शिना २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

---

अन्वेनं माताऽमन्यतामनुपिताऽनु भ्रातासगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य इति मन्त्रलिंगात्पशोर्मात्राद्यनुमतिरपेक्षिता न च सा संभवति तदभावे च हिंसादोषः स्यादेवेत्यर्थः १३ स्वयोनिषु सूर्यं चक्षुर्गमयताद्वातं प्राणमन्ववसृजतादिति लिङ्गात् ॥१४॥ अहिंसाऽप्यशक्यप्रतिज्ञा सूक्ष्महिंसाया अपरिहार्यत्वात्तथापि दृष्टबीभत्सा हिंसा त्यजेदेवेत्याह द्वाभ्यां—**अहिंसेति** । ॥ १६ ॥ उपपातकमभ्यस्तं महापातकतां व्रजेदिति स्मृतेः सूक्ष्मापि हिंसाऽभ्यासाद्बहुलीभूय बाधेतैवेत्याशयेनाध्वर्युराह—**भूमेरिति** । नानुपहत्य भूतानि भोगः सम्भवतीति न्यायाज्जीवतोऽपरिहार्यैव हिंसेत्यर्थः ॥ १९ ॥ किं कथं त्वं मन्यसेऽहिंसामिति शेषः ॥ २१ ॥ यतिरहिंसाप्रकारमसंगितामाह—सद्भाव. सद्रूपं स्वभाव. सुतरामभाव. कालत्रयेऽप्यसत्त्वम् ॥ २२ ॥ प्राणादिव्यवहारस्तु रजसा मायया सह स्थितः सद्भाव एव । भ्रांतिविशिष्टं सदेव व्यवहाररूपमित्यर्थः । एतैः प्राणादिभिर्मुक्तस्य अत एव निर्द्वन्द्वस्य ज्ञानेन द्वैतकल्पकभ्रांतिबाधात् ॥ २३ ॥ भयं प्रेत्य खादंति ते च तानिति शास्त्रोक्तम् ॥२४॥ त्वदुपदेशादहमपि मन्त्रकृतं कुर्वन्न दुष्ये इत्याह—**सद्भिरित्यादिना**॥२५॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## २९

ब्राह्मण उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कार्तवीर्यस्य संवादं समुद्रस्य च भामिनि १
कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ।
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ॥२
स कदाचित्समुद्रान्ते विचरन्बलदर्पितः ।
अवाकिरत् शरशतैः समुद्रमिति नः श्रुतम् ३
तं समुद्रो नमस्कृत्य कृताञ्जलिरुवाच ह ।
मा मुञ्च वीर नाराचान् ब्रूहि किं करवाणि ते
मदाश्रयाणि भूतानि त्वद्विसृष्टैर्महेषुभिः ।
वध्यन्ते राजशार्दूल तेभ्यो देह्यभयं विभो ५
अर्जुन उवाच ।
मत्समो यदि संग्रामे शरासनधरः क्वचित् ।
विद्यते तं समाचक्ष्व यः समासीत मां मृधे ॥
समुद्र उवाच ।
महर्षिर्जमदग्निस्ते यदि राजन्परिश्रुतः ।
तस्य पुत्रस्तवातिथ्यं यथावत्कर्तुमर्हति ॥ ७
ततः स राजा प्रययौ क्रोधेन महता वृतः ।
स तमाश्रममागम्य राममेवान्वपद्यत ॥ ८
स रामप्रतिकूलानि चकार सह बन्धुभिः ।
आयासं जनयामास रामस्य च महात्मनः ९
ततस्तेजः प्रजज्वाल रामस्यामिततेजसः ।
प्रदहन् रिपुसैन्यानि तदा कमललोचने ॥ १०
ततः परशुमादाय स तं बाहुसहस्रिणम् ।
चिच्छेद सहसा रामो बहुशाखमिव द्रुमम् ॥
तं हतं पतितं दृष्ट्वा समेताः सर्वबान्धवाः ।
असीनादाय शक्तीश्च भार्गवं पर्यधावयन् ॥ १२
रामोऽपि धनुरादाय रथमारुह्य सत्वरः ।
विसृजन् शरवर्षाणि व्यधमत्पार्थिवं बलम् ॥
ततस्तु क्षत्रियाः केचिज्जामदग्न्यभयार्दिताः ।
विविशुर्गिरिदुर्गाणि मृगाः सिंहार्दिता इव
तेषां स्वविहितं कर्म तद्भयान्नानुतिष्ठताम् ।
प्रजा वृषलतां प्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥
एवं ते द्रविडाऽऽभीराः पुंड्राश्च शबरैः सह ।
वृषलत्वं परिगता व्युत्थानात् क्षत्रधर्मिणः१६
ततश्च हतवीरासु क्षत्रियासु पुनः पुनः ।
द्विजैरुत्पादितं क्षत्रं जामदग्न्यो न्यकृन्तत १७
एकविंशतिमेधान्ते रामं वागशरीरिणी ।
दिव्या प्रोवाच मधुरा सर्वलोकपरिश्रुता ॥
राम राम निवर्तस्व कं गुणं तात पश्यसि ।
क्षत्रबन्धूनिमान्प्राणैर्विप्रयोज्य पुनः पुनः ॥१९
तथैव तं महात्मानमृचीकप्रमुखास्तदा ।
पितामहा महाभाग निवर्तस्वेत्यथाब्रुवन्॥२०
पितुर्वधममृष्यंस्तु रामः प्रोवाच तानृषीन् ।
नार्हतीह भवन्तो मां निवारयितुमित्युत ॥२१
पितर ऊचुः
नार्हसे क्षत्रबन्धूंस्त्वं निहन्तुं जयतां वर ।
नेह युक्तं त्वया हन्तुं ब्राह्मणेन सता नृपान् ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

पितर ऊचुः ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
श्रुत्वा च तत्तथा कार्यं भवता द्विजसत्तम १
अलर्को नाम राजर्षिरभवत्सुमहातपाः ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च महात्मा सुदृढव्रतः ॥ २

---

२९

इन्द्रियजय एव महच्छौर्यमित्युपोद्घातयत्यध्यायेन— **अत्रापीति** ॥ १ ॥ एकविंशतिमेधान्ते मेधो युद्धयज्ञः । 'यज्ञो वै मेध' इति श्रुते । यान्येव संग्रामनामानि तानि यज्ञनामानीति नैरुक्तवचनात् युद्धस्यैव नाम मेध इति ॥१८॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्याय ॥ २९ ॥

३०

अत्र हिंसाया अकार्यत्वे ॥ १ ॥

ससागरांतां धनुषा विनिर्जित्य महीमिमाम्
कृत्वा सुदुष्करं कर्म मनः सूक्ष्मे समादधे ॥ ३
स्थितस्य वृक्षमूलेषु तस्य चिन्ता बभूव ह ।
उत्सृज्य सुमहत्कर्म सूक्ष्मं प्रति महामते ॥ ४
अलर्क उवाच ।
मनसो मे बलं जातं मनो जित्वा ध्रुवो जयः
अन्यत्र बाणान्धास्यामि शत्रुभिः परिवारितः
यदिदं चापलात्कर्म सर्वान्मर्त्यांश्चिकीर्षति ।
मनः प्रति सुतीक्ष्णाग्रानहं मोक्ष्यामि सायकान्
मन उवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथञ्चन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥७
अन्यान् बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि
तच्छ्रुत्वाप्यविचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥
अलर्क उवाच ।
आघ्राय सुबहून्गन्धां-
स्तानेव प्रतिगृध्यति ।
तस्मात् घ्राणं प्रति शरान्
प्रति मोक्ष्याम्यहं शितान् ॥ ९
घ्राण उवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यंति मामलर्क कथञ्चन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि१०
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि
तच्छ्रुत्वा स विचिंत्याथ ततो वचनमब्रवीत्११
अलर्क उवाच ।
इयं स्वादून् रसान् भुक्त्वा
तानेव प्रतिगृध्यति ।
तस्माज्जिह्वां प्रति शरान्
प्रतिमोक्ष्याम्यहं शितान् ॥ १२
जिह्वोवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथंचन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि १३
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व
यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ
ततो वचनमब्रवीत् ॥ १४
अलर्क उवाच ।
स्पृष्ट्वा त्वग्विविधान् स्पर्शां-
स्तानेव प्रतिगृध्यति ।
तस्मात्त्वचं पाटयिष्ये
विविधैः कंकपत्रिभिः ॥ १५
त्वगुवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथञ्चन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि १६
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व
यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ
ततो वचनमब्रवीत् ॥ १७
अलर्क उवाच ।
श्रुत्वा तु विविधान् शब्दां-
स्तानेव प्रतिगृध्यति ।
तस्माच्छ्रोत्रं प्रति शरान्
प्रतिमुंचाम्यहं शितान् ॥ १८
श्रोत्रमुवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथञ्चन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति ततो हास्यसि जीवितम्
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत्
अलर्क उवाच ।
दृष्ट्वा रूपाणि बहुशस्तान्येव प्रतिगृध्यति ।
तस्माच्चक्षुर्हनिष्यामि निशितैः सायकैरहम्२१
चक्षुरुवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथञ्चन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥२२
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व
यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ
ततो वचनमब्रवीत् ॥ २३
अलर्क उवाच ।
इयं निष्ठा बहुविधा प्रज्ञया त्वध्यवस्यति ।
तस्माद्बुद्धिं प्रति शरान्प्रतिमोक्ष्याम्यहं शितान्

सूक्ष्मे विचारे ॥ ३ ॥ कर्म शत्रुजयादि उत्सृज्य सूक्ष्मं ब्रह्म प्रतिपत्तुं चिन्ता बभूवेति सम्बन्ध ॥ ४ ॥ अन्यत्र बाह्यशत्रुभ्य इति शेष । शत्रुभिरिन्द्रियवैरिभि' ॥ ५ ॥ चिकीर्षति त्रिक्षेप्तुमिच्छतीत्यर्थः । मन. प्रति हठयोगेन वायुनिरोधादिना जेष्यामीत्यर्थ. ॥ ६ ॥ नेमे इति । हठयोगे मृत्युरवश्यं सम्भवतीति भाव. ॥ ७ ॥

बुद्धिरुवाच ।
नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्क कथञ्चन ।
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ।
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि
ब्राह्मण उवाच ।
ततोऽलर्कस्तपो घोरं तत्रैवास्थाय दुष्करम्
नाध्यगच्छत्परं शक्त्या बाणमेतेषु सप्तसु २६
सुसमाहितचेतास्तु स ततोऽचिन्तयत्प्रभुः ।
स विचिन्त्य चिरं कालमलर्को द्विजसत्तम ॥
नाध्यगच्छत्परं श्रेयो योगान्मतिमतां वरः ।
स एकाग्रं मनः कृत्वा निश्चलो योगमास्थितः
इन्द्रियाणि जघानाशु बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
योगेनात्मानमाविश्य सिद्धिं परमिकां गतः
विस्मितश्चापि राजर्षिरिमां गाथां जगाद ह
अहो कष्टं यदस्माभिः सर्वं बाह्यमनुष्ठितम् ॥
भोगतृष्णासमायुक्तैः पूर्वं राज्यमुपासितम्
इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम्
इति त्वमनुजानीहि राम मा क्षत्रियान् जहि ।
तपो घोरमुपातिष्ठ ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ३२
इत्युक्तः स तपो घोरं जामदग्न्यः पितामहैः ।
आस्थितः सुमहाभागो ययौ सिद्धिं च दुर्गमां

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## ३१

ब्राह्मण उवाच ।
त्रयो वै रिपवो लोके नवधा गुणतः स्मृताः
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दस्त्रयस्ते सात्त्विका गुणाः १
तृष्णा क्रोधोभिसंरंभो
राजसास्ते गुणाः स्मृताः ।
श्रमस्तंद्रा च मोहश्च
त्रयस्ते तामसा गुणाः ॥ २
एतान्निकृत्य धृतिमान् बाणसंघैरतंद्रितः ।
जेतुं परानुत्सहते प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः
अत्र गाथाः कीर्तयन्ति पुराकल्पविदो जनाः
अम्बरीषेण या गीता राज्ञा पूर्वं प्रशाम्यता ४
समुदीर्णेषु दोषेषु बाध्यमानेषु साधुषु ।
जग्राह तरसा राज्यमम्बरीषो महायशाः ॥ ५
स निगृह्यात्मनो दोषान्साधून्समभिपूज्य च
जगाम महतीं सिद्धिं गाथाश्चेमा जगाद ह ६
भूयिष्ठं विजिता दोषा निहताः सर्वशत्रवः ।
एको दोषो वरिष्ठश्च वध्यः स न हतो मया ७
यत्प्रयुक्तो जन्तुरयं वैतृष्ण्यं नाधिगच्छति ।
तृष्णार्त इह निम्नानि धावमानो न बुध्यते ८
अकार्यमपि येनेह प्रयुक्तः सेवते नरः ।
तं लोभमसिभिस्तीक्ष्णैर्निकृतं तं निकृन्तत+९
लोभाद्धि जायते तृष्णा ततश्चिन्ता प्रवर्तते ।
स लिप्समानो लभते भूयिष्ठं राजसान्गुणान्
तदवाप्तौ तु लभते भूयिष्ठं तामसान्गुणान् १०
स तैर्गुणैः संहतदेहबन्धनः
पुनः पुनर्जायति कर्म चेहते ।
जन्मक्षये भिन्नविकीर्णदेहो
मृत्यु पुनर्गच्छति जन्मनैव ॥ ११

---

एवं घ्राणादीना हठेन निग्रहे तत्तदिन्द्रियविकलोऽवसीदत्येव नतु कृतकृत्यो भवतीत्यर्थ ॥२५॥ तप आलोचनम् ॥२६॥ योगात् राजयोगात् चित्तमात्रनिग्रहरूपात् एकाग्रम् द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थं तदभावे स्वरूपमात्रनिष्ठं त्वेकाग्रम् ॥ २८ ॥ आत्मानं परंब्रह्म ॥ २९ ॥ अनुजानीहि अस्मदुपदेशमनु साक्षात्कुरु योगबलेन ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशोऽध्याय. ॥ ३० ॥

३१

दन्तास्तालु चेति श्लोकोक्तं हृदयाख्यं ब्रह्म प्रतिपाद्य हृदयबन्धनाख्यं गुणत्रयं मुमुक्षूणा हेयमाह--**त्रय इत्यादिना** । गुणा इति शेष गुणत वृत्तिभेदात् । इष्टप्राप्तिनिश्चये यत्सुखं तत्प्रहर्ष । इष्टप्राप्तौ यत्तत्प्रीति । इष्टभोगे यत्तत् आनन्द ॥ १ ॥ अभिसंरम्भो द्वेषाभिनिवेश ॥ २ ॥ निकृत्य छित्त्वा बाणसंघै· शमादिभि ॥ ३ ॥ दोषेषु रागादिषु साधुषु शमादिषु ॥५॥ निम्नानि नीचकर्माणि ॥८॥
+ ' निकृत्य सुखमेधते ' इति पाठ· ।

तस्मादेतं सम्यगवेक्ष्य लोभं
निगृह्य धृत्याऽऽत्मनि राज्यमिच्छेत्
एतद्राज्यं नान्यदस्तीह राज्य-
मात्मैव राजा विदितो यथावत् १२

इति राज्ञाऽम्बरीषेण
गाथा गीता यशस्विना ।
अधिराज्यं पुरस्कृत्य
लोभमेकं निकृन्तता ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

ब्राह्मण उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ब्राह्मणस्य च संवादं जनकस्य च भाविनि १
ब्राह्मणं जनको राजा सन्नं कस्मिंश्चिदागसि ।
विषये मे न वस्तव्यमिति शिष्ट्यर्थमब्रवीत् २
इत्युक्तः प्रत्युवाचाथ ब्राह्मणो राजसत्तमम् ।
आचक्ष्व विषयं राजन् यावांस्तव वशे स्थितः
सोऽन्यस्य विषये राज्ञो वस्तुमिच्छाम्यहं विभो
वचस्ते कर्तुमिच्छामि यथाशास्त्रं महीपते ॥ ४
इत्युक्तस्तु तदा राजा ब्राह्मणेन यशस्विना ।
मुहुरुष्णं विनिःश्वस्य न किञ्चित्प्रत्यभाषत ५
तमासीनं ध्यायमानं राजानममितौजसम् ।
कश्मलं सहसाऽगच्छद्भानुमन्तमिव ग्रहः ॥६
समाश्वास्य ततो राजा विगते कश्मले तदा
ततो मुहूर्तादिव तं ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत् ७
जनक उवाच ।
पितृपैतामहे राज्ये वश्ये जनपदे सति ।
विषयं नाधिगच्छामि विचिन्वन् पृथिवीमहं
नाधिगच्छं यदा पृथ्व्यां मिथिला मार्गिता मया
नाध्यगच्छं यदा तस्यां स्वप्रजा मार्गिता मया
नाध्यगच्छं यदा तस्यां तदा मे कश्मलोऽभवत्
ततो मे कश्मलस्यान्ते मतिः पुनरुपस्थिता ॥
तदा न विषयं मन्ये सर्वो वा विषयो मम ।
आत्माऽपि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम
यथा मम तथाऽन्येषामिति मन्ये द्विजोत्तम ।
उष्यतां यावदुत्साहो भुज्यतां यावदुष्यते १२
ब्राह्मण उवाच ।
पितृपैतामहे राज्ये वश्ये जनपदे सति ।
ब्रूहि कां मतिमास्थाय ममत्वं वर्जितं त्वया ॥
कां वै बुद्धिं समाश्रित्य सर्वो वै विषयस्तव ।
नावैषि विषयं येन सर्वो वा विषयस्तव १४
जनक उवाच ।
अन्तवन्त इहावस्था विदिताः सर्वकर्मसु ।
नाध्यगच्छमहं तस्मान्ममेदमिति यद्भवेत् १५

---

राज्यं आप्नोति स्वाराज्यमिति श्रुतं स्वाराज्याख्यं परमानन्दम् ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

३२

ममेति द्व्यक्षरो मृत्युरित्युक्तं तत्र ममताया विषय एव नास्तीति जनकब्राह्मणसंवादेनाह--**अत्रापीत्यादिना**। अत्र लोभे निकृन्तनीये ॥ १ ॥ **पित्रिति**। विषयं विशेषेण सिनोति बध्नाति तं बन्धकं ममतास्पदं नाधिगच्छामि विचिन्वन् अन्वेषमाणोऽपि । अयं भाव । पृथिवी मिथिलाप्रजोपलक्षितं राज्यं शरीरसुखादिकं सर्वं अवस्थान्तरेषु व्यभिचरणात्मसम्बन्धितामश्नुते । यथा नीलपीतलोहितोपाधिषु । सञ्चरन्स्फटिको नीलादिवार्जितस्तद्वत् । तस्माद्विचारतो दृश्यत्वादिना स्वप्नवन्मिथ्यात्वाद्व्यभिचारित्वाच्च नात्मा तै· सम्बध्यत इति ॥ ८ ॥ आत्माऽपि देहोऽपीति प्राञ्च· । वस्तुतस्तु अयमपि मम आत्मा न भवतीति सम्बन्ध· । अयमिति साभासोऽहङ्कार· सर्वेषामात्मत्वेन प्रसिद्धो मम आत्मा स्वरूपं न भवति मुकुरमुखवत् आभासत्वात् । सर्वा वा पृथिवी सर्वं दृश्यं मम आत्मा मदनन्यत्वात् । मुकुरमुखवदेव ॥ ११ ॥ अयमेव न्यायो ब्रह्मादिपुत्तिकान्तेष्वित्याह—**यथेति**। मायामनइन्द्रियवद्दर्पणेषु हि प्रतिबिम्बितो ह्यदृश्य आत्मा ईशसूत्रविराडात्मना दृश्यो नात्मा च भवति न वस्तुत इत्यर्थ· ॥ १२ ॥ आढ्यत्वदरिद्रत्वादयोऽवस्था ॥ १५ ॥

कस्येदमिति कस्य स्वमिति वेदवचस्तथा ।
नाध्यगच्छमहं बुद्ध्या ममेदमिति यद्भवेत् १६
एतां बुद्धिं समाश्रित्य ममत्वं वर्जितं मया ।
शृणु बुद्धिं च यां ज्ञात्वा सर्वत्र विषयो मम ॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि गन्धान् घ्राणगतानपि
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा।
नाहमात्मार्थमिच्छामि रसानास्येऽपि वर्ततः
आपो मे निर्जितास्तस्माद्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा
नाहमात्मार्थमिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषः
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठति नित्यदा
नाहमात्मार्थमिच्छामि स्पर्शांस्त्वचि गताश्च ये
तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि शब्दान् श्रोत्रगतानपि
तस्मान्मे निर्जिताः शब्दा वशे तिष्ठन्ति नित्यदा
नाहमात्मार्थमिच्छामि मनो नित्यं मनोन्तरे
मनो मे निर्जितं तस्माद्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च भूतेभ्योऽतिथिभिः सह ।
इत्यर्थं सर्व एवेति समारम्भा भवन्ति वै २४
ततः प्रहस्य जनकं ब्राह्मणः पुनरब्रवीत् ।
त्वज्जिज्ञासार्थमद्येह विद्धि मा धर्ममागतम् ॥
त्वमस्य ब्रह्मलाभस्य दुर्वारस्यानिवर्तिनः ।
सत्त्वनेमिनिरुद्धस्य चक्रस्यैकः प्रवर्तकः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## ३३

ब्राह्मण उवाच ।
नाहं तथा भीरु चरामि लोके
यथा त्वं मां तर्जयसे स्वबुद्ध्या ।
विप्रोऽस्मि मुक्तोऽस्मि वनेचरोऽस्मि
गृहस्थधर्मा व्रतवांस्तथास्मि ॥ १
नाहमस्मि यथा मां त्वं पश्यसे च शुभाशुभे ।
मया व्याप्तमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् २
ये केचिज्जन्तवो लोके जङ्गमाः स्थावराश्च ह ।
तेषां मामन्तकं विद्धि दारूणामिव पावकम् ६
राज्यं पृथिव्यां सर्वस्यामथवाऽपि त्रिविष्टपे ।
तथा बुद्धिरियं वेत्ति बुद्धिरेव धनं मम ॥ ४
एकः पन्था ब्राह्मणानां येन गच्छन्ति तद्विदः
गृहेषु वनवासेषु गुरुवासेषु भिक्षुषु ॥ ५
लिङ्गैर्बहुभिरव्यग्रैरेका बुद्धिरुपास्यते ।
नानालिङ्गाश्रमस्थानां येषां बुद्धिः शमात्मिका
ते भावमेकमायान्ति सरितः सागरं यथा ।
बुद्ध्यायं गम्यते मार्गः शरीरेण न गम्यते ।
आद्यन्तवन्ति कर्माणि शरीरं कर्मबन्धनम् ७
तस्मात्ते सुभगे नास्ति परलोककृतं भयम् ।
तद्भावभावनिरता ममैवात्मानमेष्यसि ॥ ८

---

**कस्येदमिति** । न कस्यचिदित्यर्थ । अत्र मा गृध कस्य स्विद्धनम्' । ( ईशो० म १ ) इति श्रुतिं प्रमाणयति—**कस्य स्वमिति** ॥ १६ ॥ आद्यन्तवादेरन्तवत्त्वाद्धनादिषु ममता मया त्यक्तेत्याह—**एतामिति** । देवाद्यर्थमेव विघ्नगृहीतस्येत्र मम गन्धादीनामिच्छा नात्मभोगार्थ अता भूम्यादय एव मम वशे तिष्ठन्ति न त्वह तेषामित्याह —**शृणु इत्यादिना** ॥ १७ ॥ **त्वमस्येति** । अस्य चक्रस्य आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी ममेत्येवंरूपस्य धीसाधनकलापस्य ब्रह्मलाभस्य ब्रह्मलाभहेतो । दुर्वारस्य अनैकान्तिकस्य । अनिवर्तिन आन्यन्तिकस्य सत्त्वनेमिना सत्त्वगुणरूपेणावरणेन चक्रधारास्थानीयेन निरुद्धस्य प्रवर्तको मुख्यानुष्ठाता ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्याय ॥ ३२ ॥

३३

समाप्ता ब्रह्मविद्या समाधना । अथ जीवन्मुक्तावस्थामाह—**नाहमित्यादिना** । तथेति यथा देहात्मवादिन' ॥ १ ॥ **पश्यसे** कर्मव्यतिहारे तङ् । त्वद्दृष्टारं **मां त्व** स्वबुत्या यथा साङ्गिन पश्यसि तथा नाहमस्मीत्यर्थ । आत्मन सर्वात्मत्वं सर्वस्य चात्ममात्रत्वं ज्ञानफलं प्रतिपादयति सार्धेन—**मयेति** ॥ २ ॥ ' आप्नोति स्वराज्यम् । ' इत्यादिश्रुत्यर्थं संगृह्णाति-**राज्यमिति** ॥४॥ एक. पन्था ज्ञानरूपो नान्य ब्राह्मणाना ब्रह्मविदाम् ॥५॥ सुभगे ईश्वरि शरीरबन्धनिर्मुक्तत्वात् । परलोक अनात्मलोक तद्भावो मदात्मभाव तस्य भावो भावना ॥ ८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

ब्राह्मण्युवाच ।
नेदमल्पात्मना शक्यं वेदितुं नाकृतात्मना ।
बहु चाल्पं च संक्षिप्तं विप्लुतं च मतं मम ॥ १
उपायं तं मम ब्रूहि येनैषा लभ्यते मतिः ।
तन्मन्ये कारणं त्वत्तो यत एषा प्रवर्तते ॥ २
ब्राह्मण उवाच ।
अरणीं ब्राह्मणीं विद्धि गुरुरस्योत्तरारणिः ।
तपःश्रुतेऽभिमथ्नीतो ज्ञानाग्निर्जायते ततः ॥ ३
ब्राह्मण्युवाच ।
यदिदं ब्राह्मणो लिङ्गं क्षेत्रज्ञ इति संज्ञितम् ।
ग्रहीतुं येन यच्छक्यं लक्षणं तस्य तत्क नु ॥ ४
ब्राह्मण उवाच ।
अलिङ्गो निर्गुणश्चैव कारणं नास्य लक्ष्यते ।
उपायमेव वक्ष्यामि येन गृह्येत वा न वा ॥ ५
सम्यगुपायो दृष्टश्च भ्रमरैरिव लक्ष्यते* ।
कर्मबुद्धिरबुद्धित्वाज्ज्ञानलिङ्गैरिवाश्रितम् ॥ ६
इदं कार्यमिदं नेति न मोक्षेषूपदिश्यते ।
पश्यतः शृण्वतो बुद्धिरात्मनो येषु जायते ॥ ७
यावन्त इह शक्येरंस्तावतोंशान्प्रकल्पयेत् ।
अव्यक्तान् व्यक्तरूपांश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

उक्तमर्थमाक्षिपति—**नेदमिति** ॥ १ ॥ मन्ये जानीयाम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणीं बुद्धिं तपः मनननिदिध्यासनात्मकमालोचनम् । श्रुतं वेदान्तश्रवण 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य' इति आत्मदर्शनानुवादेन श्रवणादिविधानात् ॥ ३ ॥ आक्षेपपूर्वकं ज्ञेयस्वरूपमाह-**यदिदमित्यादिना**। यदिदमपरोक्षं क्षेत्रज्ञ इति संज्ञितं जीवाख्यं ससङ्गं रूपं तत् ब्रह्मणोऽसङ्गस्य लिङ्गं स्वरूपमिति यत्तक नु न कथंचन जीवस्य ब्रह्मभावः सम्भवतीत्यर्थ । अत्रोपपत्तिमाह— **ग्रहीतुमिति**। यत् येन निग्रहीतुं शक्यं तत् निग्राह्यं तस्य निग्रहीतुर्लक्षणं स्वरूपं इति क नु दृष्टं न कापीत्यर्थः।'आत्मानमन्तरो यमयति'( ) इति जीवेशयोर्नियम्य नियामकत्वश्रवणात् भृत्यभर्त्रोरिव न तयोरभेदसम्भावनापीति भाव ॥ ४ ॥ उत्तरमाह—**अलिङ्ग इति**। योऽयं क्षेत्रज्ञ उक्त. स लिङ्गं एवंरूप इति निर्देशयोग्य स्वरूपं तद्रहित । यतो निर्गुण । अस्य सगुणत्वं सलिङ्गत्वं च विनैव कारणं भ्रान्त्यैव भाति न सत्यं विद्यत इत्यर्थ । भ्रान्त्यपगमेन तद्विगमे उपायमेव वक्ष्यामि नवेति चित्तशुद्ध्यभावे॥५॥ सम्यगुपायो दृष्टश्च । पूर्वोक्ता श्रवणादयस्तैर्भ्रमरैरुपरि भ्रमद्भिरथ स्वयमगृहीतमपि सुरभि द्रव्य लक्ष्यते । एवं श्रवणादिभिरात्मा लक्षणाद्वारेण लक्ष्यत त्यर्थ । कोऽसावुपायः। कर्मबुद्धि कर्मशोधिता बुद्धि कर्मबुद्धि । कर्मभिरशोधिताया बुद्धौ श्रवणाद्यभ्याससहस्रेणापि न गम्यत इति भावः। अबुद्धित्वादुक्तविधबुद्धिराहित्यात्। मूढा असङ्गमपि क्षेत्रज्ञं ज्ञानलिङ्गैर्बुद्ध्यादिभिराश्रितं सङ्गिनमिव मन्यन्ते। तद्वस्तु उपायेन श्रवणादिजन्यया बुद्धया लक्ष्यत इति सम्बन्ध ॥ ६ ॥ नेदं ब्रह्मज्ञानं विधिनिषेधप्रधानम्। अहेयानुपादेयप्रत्यगात्मविषयत्वात्। तथात्वे वा स्वरूपनाशानित्यत्वे दुरपन्हवे स्याताम्। अपि तु रज्जुदर्शनदशमत्वश्रवणाभ्यां सर्पादशमत्वयोरिव बुद्धया वाक्येन वाऽविद्याध्यारोपितकार्यकारणप्रपञ्चस्य निराकरणसापेक्षमित्याह-**इदं कार्यमिति**। मोक्षेष्विति बहुवचनं मुक्त्युपादानभूतबुद्ध्यादितत्त्वभेदात् ॥ ७ ॥ ते च यावन्त पञ्च सप्त एकादश त्रयोदश वा तेषां प्रत्येकं वृत्तिभेदात् शतश. सहस्रशो वा कल्पनीया इत्याह— **यावन्त इति**। अव्यक्तान्मायाविद्यादिरूपान् व्यक्तरूपान् शब्दादीन् उपेयप्रतिपत्त्यर्था उपाया अव्यवस्थिता इति न्यायेन शिष्यबोधार्थं मन्दमध्यमोत्तमाधिकारिभेदेन व्यष्टिमात्रकल्पनया वा समष्टिव्यष्टिद्वयकल्पनया वा समष्टिमात्रकल्पनया वा तत्त्वार्थयेरभेदं प्रत्याययन्नात्र वस्तुसन्तोऽनात्मपदार्थाः सन्ति। येन मोक्षापादानानि तार्किकादिवत्संख्यया परिच्छिद्येरन्नित्यर्थः ॥ ८ ॥

* 'सम्यगप्युपदिष्टस्य ह्यमृतस्येव तृप्यते' इति पाठ.।

सर्वोपायानार्थयुक्तांश्च सर्वान्प्रत्यक्षहेतुकान्।
यतः परं न विद्येत ततोऽभ्यासे भविष्यति ९
श्रीभगवानुवाच।
ततस्तु तस्या ब्राह्मण्या मतिः क्षेत्रज्ञसंक्षये×
क्षेत्रज्ञानेन परतः क्षेत्रज्ञेभ्यः प्रवर्तते ॥ १०
अर्जुन उवाच।
क्व नु सा ब्राह्मणी कृष्ण क्व चासौ ब्राह्मणर्षभः
याभ्यां सिद्धिरियं प्राप्ता तावुभौ वद मेऽच्युत
श्रीभगवानुवाच।
मनो मे ब्राह्मणं विद्धि
बुद्धिं मे विद्धि ब्राह्मणीम्।
क्षेत्रज्ञ इति यश्चोक्तः
सोऽहमेव धनञ्जय ॥ १२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि ब्राह्मणगीतासु चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## ३५

अर्जुन उवाच।
ब्रह्म यत्परमं ज्ञेयं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
भवतो हि प्रसादेन सूक्ष्मे मे रमते मतिः ॥ १
वासुदेव उवाच।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
संवादं मोक्षसंयुक्तं शिष्यस्य गुरुणा सह २
कश्चिद्ब्राह्मणमासीनमाचार्यं संशितव्रतम्।
शिष्यः पप्रच्छ मेधावी किंस्विच्छ्रेयः परंतप
भगवन्तं प्रपन्नोऽहं निःश्रेयसपरायणः।
याचे त्वां शिरसा विप्र यद्ब्रूयां ब्रूहि तन्मम ४
तमेवंवादिनं पार्थ शिष्यं गुरुरुवाच ह।
सर्वं तु ते प्रवक्ष्यामि यत्र वै संशयो द्विज॥ ५
इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठ गुरुणा गुरुवत्सलः।
प्राञ्जलिः परिपप्रच्छ यत्तः शृणु महामते ॥ ६
शिष्य उवाच।
कुतश्चाहं कुतश्च त्वं तत्सत्यं ब्रूहि यत्परम्।
कुतो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च
केन जीवन्ति भूतानि तेषामायुश्च किं परम्।
किं सत्यं किं तपो विप्र के गुणाः सद्भिरीरिताः
के पन्थानः शिवाश्च स्युः
किं सुखं किंच दुष्कृतम्।
एतान्मे भगवन्प्रश्नान्
याथातथ्येन सुव्रत ॥ ९

**तत इति।** प्रथमार्थे तसि यत पर अन्यन्नास्ति तद्वस्तु भविष्यत्यधिकारी। अभ्यासे शमाद्यभ्यासे पुष्कले सति। अत्र कण्ठगतविस्मृतचामीकरवद्ब्रह्म प्राप्तिभवनं नोत्पाद्यत्वे-नानित्यत्वापते। 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' 'तत्वमसि' इत्यादिवाक्येभ्यः सिद्धवद्ब्रह्मभावश्रवणादित्यर्थ ॥ ९ ॥ क्षेत्रज्ञसंक्षये जीवस्य परमात्मनि प्रविलापने क्षेत्रज्ञानेनैव क्षेत्रज्ञात्परं ज्ञायत इत्याह—**क्षेत्रेति।** क्षेत्रज्ञ एवोपाधि-विलयाद्ब्रह्मैवास्तीत्यर्थ ॥ १० ॥ मनो मे चित्प्रतिबिंबगर्भं मनो जीव इत्यर्थ.। मनोमुक्त क्षेत्रज्ञोहमेव ब्रह्मैवेत्यर्थ ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्याय ३४ × क्षेत्रज्ञसंक्षये इति पा.

३५

पूर्वाध्यायान्ते—
मनो मे ब्राह्मणं विद्धि बुद्धिं मे विद्धि ब्राह्मणीम्।
क्षेत्रज्ञ इति यश्चोक्तः सोऽहमेव धनंजय ॥
ति मनोबुद्ध्योर्मिथुनत्वेन तदुपलक्षितसकलकरणप्रकारयम-र्यजातं ब्रह्मोन्मुक्तं यश्च तयो साक्षी स चिदात्माहमिति च दार्शितम्। तत्र प्रपञ्च साक्षी चेत्युभयमपि परं ब्रह्म उत तयोरन्यतरद्यत्परं ब्रह्म तन्मे वदेत्यर्जुन उवाच—**ब्रह्म यदिति।** आद्ये पक्षे सप्रपञ्चं ब्रह्म ज्ञेयं द्वितीये निष्प्रपञ्चमिति तत्र सूक्ष्मे निष्प्रपञ्च एव मे मनो रमत इति स्वतुष्टिं कथयति। तेन 'सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त -करणस्य वृत्तय' इति न्यायेन निष्प्रपञ्चमेव शास्त्रार्थ इति ज्ञापयति ॥ १ ॥ मोक्षसंयुक्तं यस्मिन् श्रुते सद्यो मुक्तिरेव लभ्यत इत्यर्थ. ॥ २ ॥ ब्रूया पृच्छामि ॥ ४ ॥ अहं त्वमिति शास्यशासनकर्त्रोर्जीवेश्वरयो प्रश्न। यच्च ताभ्यां परं अन्यत्सत्यमबाधितं वस्तु तदपि ब्रूहि। भूतानि वियदादीनि स्थावरादीनि भौतिकानि ॥ ७ ॥ भूतानि उभयविधानि किं परमवसानं यस्य तत् किं तेषा लयस्थानमित्यर्थ। किं सत्यं अबाधितफलं कर्म तप क्रियारूपं कायिकादिभेदेन त्रिविधं गुणा सत्त्वादय किंस्वरूपा इत्यर्थः ॥ ८ ॥ सुखं सुकरं प्रश्नान् वक्तुमर्हसीति सम्बन्ध ॥ ९ ॥

वक्तुमर्हसि विप्रर्षे यथावदिह तत्त्वतः।
त्वदन्यः कश्चन प्रश्नानेतान्वक्तुमिहार्हति ॥ १०
ब्रूहि धर्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं मम।
मोक्षधर्मार्थकुशलो भवाँल्लोकेषु गीयते ॥ ११
सर्वसंशयसंच्छेत्ता त्वदन्यो न च विद्यते।
संसारभीरवश्चैव मोक्षकामास्तथा वयम् १२

वासुदेव उवाच।

तस्मै संप्रतिपन्नाय यथावत्परिपृच्छते।
शिष्याय गुणयुक्ताय शान्ताय प्रियवर्तिने ॥
छायाभूताय दान्ताय यतते ब्रह्मचारिणे।
तान्प्रश्नानब्रवीत्पार्थ मेधावी स धृतव्रतः।
गुरुः कुरुकुलश्रेष्ठ सम्यक्सर्वानरिन्दम ॥ १४

गुरुरुवाच।

ब्रह्मणोक्तमिदं सर्वमृषिप्रवरसेवितम्।
वेदविद्यां समाश्रित्य तत्त्वभूतार्थभावनम् १५
ज्ञानं त्वेव परं विद्मः संन्यासं तप उत्तमम्।
यस्तु वेद निराबाधं ज्ञानतत्त्वं विनिश्चयात्।
सर्वभूतस्थमात्मानं स सर्वगतिरिष्यते ॥ १६
यो विद्वान्सहसंवासं विवासं चैव पश्यति।
तथैवैकत्वनानात्वे स दुःखात्परिमुच्यते १७
यो न कामयते किंचिन्न किंचिदभिमन्यते।
इहलोकस्थ एवैष ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १८
प्रधानगुणतत्त्वज्ञः सर्वभूतविधानवित्।
निर्ममो निरहङ्कारो मुच्यते नात्र संशयः १९

अव्यक्तबीजप्रभवो बुद्धिस्कन्धमयो महान्।
महाहङ्कारविटप इन्द्रियांकुरकोटरः ॥ २०
महाभूतविशेषश्च विशेषप्रतिशाखवान्।
सदापर्णः सदापुष्पः सदा शुभफलोदयः २१
आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मबीजः सनातनः।
एतज्ज्ञात्वा च तत्त्वानि ज्ञानेन परमासिना।
छित्त्वा चामरतां प्राप्य जहाति मृत्युजन्मनी
भूतभव्यभविष्यादि धर्मकामार्थनिश्चयम्।
सिद्धसंघपरिज्ञातं पुराकल्पं सनातनम् २३
प्रवक्ष्येऽहं महाप्राज्ञ पदमुत्तममद्य ते।
बुद्ध्वा यदिह संसिद्धा भवन्तीह मनीषिणः
उपगम्यर्षयः पूर्वं जिज्ञासन्तः परस्परम्।
प्रजापतिभरद्वाजौ गौतमो भार्गवस्तथा २५
वसिष्ठः कश्यपश्चैव विश्वामित्रोऽत्रिरेव च।
मार्गान्सर्वान्परिक्रम्य परिश्रान्ताः स्वकर्मभिः
ऋषिमाङ्गिरसं वृद्धं पुरस्कृत्य तु ते द्विजाः।
ददृशुर्ब्रह्मभवने ब्रह्माणं वीतकल्मषम् ॥ २७
तं प्रणम्य महात्मानं सुखासीनं महर्षयः।
पप्रच्छुर्विनयोपेता नैःश्रेयसमिदं परम् ॥ २८
कथं कर्म क्रियात्साधु
कथं मुच्येत किल्बिषात्।
के नो मार्गाः शिवाश्च स्युः
किं सत्यं किं च दुष्कृतम् ॥ २९

---

कश्च कोपि ॥ १० ॥ स्ववाक्ये श्रद्धोत्पादनार्थमाख्यायिकामुखेनोत्तरयति—**ब्रह्मणेति** । इदं त्वया पृष्टं वेदविद्यां समाश्रित्य आश्रित्य नतु स्वकल्पना तत्त्वभूतस्य अबाधितस्यार्थस्य भावनं विचारो यस्मिन् तत् ॥ १५ ॥ ज्ञानं परब्रह्मविषयं उत्तमं तथा तपः संन्यासाख्यं उत्तमं ज्ञानतत्त्वं ज्ञानस्य तत्त्वं याथार्थ्यं घटादितत्त्वज्ञानव्यावृत्तये—**निराबाधमिति** । निर्गतः आसमंतात् बाधो यस्मात्। तद्धि ब्रह्मज्ञानबाध्यं न तथैतदित्यर्थः। यश्च 'एतत्सर्वं सर्वभूतस्थं च आत्मानं संप्रज्ञातावस्थायां वेद स सर्वगतिः सर्वकामभाक् भवति तेषां 'सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ' इति श्रुतेः सार्धश्लोको वाक्यम् ॥ १६ ॥ सहसंवासं चिज्जडयोरेकलोलीभावं संप्रज्ञाते। विवासं तयोः पृथक्त्वं शुद्धत्वं पदार्थदर्शने। एकत्वं ईश्वरादभेदं तस्यैव नानात्वं तयोर्भिन्नत्वं व्यवहारे ॥ १७ ॥ **न कामयत** इति ममकाराभाव । **नाभिमन्यत** इत्यभिमानोऽहंकारस्तदभावः तयोः सतोर्जीवन्नेव मुच्यत इत्यर्थः ॥१८॥ प्रधानं माया। गुणाः सत्त्वादयः। तेषां तत्त्वं कल्पितत्वस्वरूपं याथात्म्यम्। सर्वभूतानां विधानं विधीयते उत्पाद्यतेऽनेनेति कारणं तदुभयज्ञो मुच्यते ॥ १९ ॥ अव्यक्तं अज्ञानं तदेव बीजप्रभवो मूलं अंकुरश्च यस्य बुद्धिर्महत्तत्त्वं तदेव स्कन्धो यस्य अहंकारो विटपाः पल्लवा यस्य। इन्द्रियाण्येव अंकुरा अनर्थवल्लीपूर्वरूपभूता कोटरेषु छिद्रेषु यस्य ॥ २० ॥ महाभूतानि वियदादीनि विशेषास्तिलकः पुष्पकोरकस्थानीयो यस्य। विशेषाः स्थूलकार्याणि तान्येव प्रतिशाखा उपशाखास्तद्वान् पर्णं उत्पद्यपतनशीलः संकल्पः पुष्पं कर्मफलं सुखादि ॥ २१ ॥ एतत् बीजभूतं ब्रह्म ज्ञात्वा तत्त्वानि अव्यक्तादीनि ज्ञानेन छित्त्वेति तेषामज्ञानकार्यत्वं रज्जूरगवदुक्तं **जहाति** त्यजति सार्धश्लोकः। एतेन **ऊर्ध्वमूलार्थः** स्मारितः ॥२२॥ **भूतेति**। भूरादय आदिपदार्थः तेषामर्थोताना निश्चयः स्वरूपावधारणं यस्मिन् तं पुराकल्पं बहुकर्तृकमन्वाख्यानम् ॥ २३ ॥ पदं पदनीयं अधिगन्तव्यं संसिद्धाः मुक्ताः ॥ २४ ॥ पुराकल्पमेवाह—**उपगम्येति** ॥२५॥ मार्गान्कर्मगतीः परिक्रम्य पुनः पुनर्गत्वा ॥२६॥ क्रियात्कुर्वीत के नोऽस्माकम् ॥२९॥

कौ चोभौ कर्मणां मार्गौ प्राप्नुयुर्दक्षिणोत्तरौ।
प्रलयं चापवर्गं च भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ ३०
इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठैर्यदाह प्रपितामहः ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु शिष्य यथागमम्॥
ब्रह्मोवाच ।
सत्याद्भूतानि जातानि
स्थावराणि चराणि च ।
तपसा तानि जीवन्ति
इति तद्विद्ध सुव्रताः ।
स्वां योनिं समतिक्रम्य
वर्तन्ते स्वेन कर्मणा ॥ ३२
सत्यं हि गुणसंयुक्तं नियतं पञ्चलक्षणम् ३३
ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः ।
सत्याद्भूतानि जातानि सत्यं भूतमयं जगत्
तस्मात्सत्यमया विप्रा नित्यं योगपरायणाः।
अतीतक्रोधसंतापा नियता धर्मसेविनः ३५
अन्योन्यनियतान्वैद्यान्धर्मसेतुप्रवर्तकान् ।
तानहं संप्रवक्ष्यामि शाश्वताँल्लोकभावनान्
चातुर्विद्यं तथा वर्णांश्चातुराश्रमिकान् पृथक्
धर्ममेकं चतुष्पादं नित्यमाहुर्मनीषिणः ३७
पन्थानं वः प्रवक्ष्यामि शिवं क्षेमकरं द्विजाः।
नियतं ब्रह्मभावाय गतं पूर्वं मनीषिभिः ॥ ३८
गदन्तस्तं मयाद्येह पन्थानं दुर्विदं परम् ।
निबोधत महाभागा निखिलेन परं पदम् ३९
ब्रह्मचारिकमेवाहुराश्रमं प्रथमं पदम् ।
गार्हस्थ्यं तु द्वितीयं स्याद्वानप्रस्थमतः परम् ।
ततः परं तु विज्ञेयमध्यात्मं परमं पदम् ॥ ४०
ज्योतिराकाशमादित्यो वायुरिन्द्रः प्रजापतिः
नोपैति यावदध्यात्मं तावदेतान्न पश्यति ४१
तस्योपायं प्रवक्ष्यामि पुरस्तात्तं निबोधत
फलमूलानिलभुजां मुनीनां वसतां वने ॥ ४२
वानप्रस्थं द्विजातीनां त्रयाणामुपदिश्यते ।
सर्वेषामेव वर्णानां गार्हस्थ्यं तद्विधीयते ४३
श्रद्धालक्षणमित्येवं धर्मं धीराः प्रचक्षते ।
इत्येवं देवयाना वः पन्थानः परिकीर्तिताः
सद्भिरध्यासिता धीरैः कर्मभिर्धर्मसेतवः ४४
एतेषां पृथगध्यास्ते यो धर्मं संशितव्रतः ।
कालात्पश्यति भूतानां सदैव प्रभवाप्ययौ ४५
अतस्तत्त्वानि वक्ष्यामि याथातथ्येन हेतुना ।
विषयस्थानि सर्वाणि वर्तमानानि भागशः॥
महानात्मा तथाऽव्यक्तमहंकारस्तथैव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च महाभूतानि पञ्च च ४७
विशेषाः पञ्चभूतानामिति सर्गः सनातनः ।
चतुर्विंशतिरेका च तत्त्वसंख्या प्रकीर्तिता ४८
तत्त्वानामथ यो वेद सर्वेषां प्रभवाप्ययौ ।
स धीरः सर्वभूतेषु न मोहमधिगच्छति ४९

---

प्रलयो दैनंदिनादिर्भूतलय अपवर्ग आत्यन्तिको भूतोच्छेदो मोक्षाख्य प्रभवाप्ययौ जन्ममृत्यू ॥३०॥ यथागमं वेदानुसारि ॥ ३१ ॥ सत्यात् त्रैकालिकबाधरहितात् ब्रह्मण । भूतानि अव्यक्तादीनि स्थावराणि वियदादीनि चराणि जरायुजादीनि । एतेन कुतश्चाहमिति श्लोकोक्तप्रश्नानामुत्तरमुक्तम् । तपसा कर्मणा जीवन्ति इति हेतोर्द्विजा. स्वा योनिं ब्रह्म समतिक्रम्य ध्यानच्युता विक्षेपावस्था प्राप्य स्वकर्मणा वर्तन्त इति सार्द्धः श्लोक ॥३२॥ किं सत्यमित्यस्योत्तरमाह—**सत्यमिति** । गुणसंयुक्तमित्यनेन निर्गुणं सत्यं एकमेव तत्र भेदहेतोर्गुणस्यैवाभावादिति दर्शितम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्म ईश्वर तपो धर्म प्रजापतिर्जीवः भूतानि खादीनि जगत् जरायुजादि एतत् व्यावहारिकं गुणमयं सत्यपञ्चकम् ॥ ३४ ॥ यस्मात्तस्मात्सत्यमया सत्यप्रधाना. धर्मसेविनो भवन्ति ॥ ३५ ॥ अन्योन्यनियतान्परस्परभयेन धर्मातिक्रमशून्यान् वैद्यान्विद्यावत. तान्विप्रान्प्रतीति शेषः ॥ ३६ ॥ चतस्रो धर्मार्थकाममोक्षप्रदा विद्याश्चतुर्विद्यास्ता एव चातुर्विद्यम् । तच्च प्रतिवर्णं प्रत्याश्रमं च पृथक् प्रवक्ष्यामीत्यनुषज्यते ॥ ३७ ॥ गदन्त. भो प्रवक्तार मया वक्ष्यमाणं पंथान निबोधत तेन च पथा परं पदं निबोधत ॥ ३९ ॥ आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तमाश्रममध्यात्मं संन्यासं परं पदमाहुरिति पूर्वेणान्वयः ॥ ४० ॥ ज्योतिरादिकं विश्वं तावत्पश्यति यावत् अध्यात्मं संन्यासपूर्वकमात्मदर्शनं नोपैति न लभते ॥ ४१ ॥ **श्रद्धा** आस्तिक्यबुद्धिः सैव धर्मस्य मुख्यं लक्षणं ज्ञापकम् । श्रद्धाहीनं सर्वं व्यर्थमित्यर्थ. । देवयानाः देवयानमार्गप्राप्त्युपाया. ॥ ४४ ॥ एतेषामन्यतमं धर्मं यः **पृथक्** भिन्नं एकमेव अध्यास्ते दृढमाश्रयति सः कालात्क्रमेण चित्तशुद्धिपरिपाके सति भूताना प्रभवाप्ययौ स्वनिष्ठाविति सदैव निमेषोन्मेषमात्रे कालेऽनवरतं पश्यति । एतेन दृष्टिरेव सृष्टिरित्युक्तं भवति ॥ ४५ ॥ हेतुना युक्त्या **विषयस्थानि** बुद्धिगोचराणि बुद्धिस्थानि ॥ ४६ ॥ **विशेषा.** शब्दादयो विशेषगुणाः । एका चेति पुरुषग्रहणम् ॥ ४८ ॥

तत्त्वानि यो वेदयते यथातथं
गुणांश्च सर्वानखिलाश्च देवताः ।
विधूतपाप्मा प्रविमुच्य बन्धनं
स सर्वलोकानमलान्समश्नुते ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

ब्रह्मोवाच ।
तदव्यक्तमनुद्रिक्तं सर्वव्यापि ध्रुवं स्थिरम् ।
नवद्वारं पुरं विद्यात्त्रिगुणं पञ्चधातुकम् ॥ १
एकादशपरिक्षेपं मनो व्याकरणात्मकम् ।
बुद्धिस्वामिकमित्येतत्परमेकादशं भवेत् ॥ २
त्रीणि स्रोतांसि यान्यस्मि-
न्नाप्यायन्ते पुनः पुनः ।
प्रनाड्यस्तिस्र एवैताः
प्रवर्तन्ते गुणात्मिकाः ॥ ३
तमो रजस्तथा सत्त्वं गुणानेतान्प्रचक्षते ।
अन्योन्यमिथुनाः सर्वे तथान्योन्यानुजीविनः
अन्योन्यापाश्रयाश्चापि तथान्योन्यानुवर्तिनः
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च त्रिगुणाः पञ्चधातवः ५
तमसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रजः ।
रजसश्चापि सत्त्वं स्यात्सत्त्वस्य मिथुनं तमः
नियम्यते तमो यत्र रजस्तत्र प्रवर्तते ।
नियम्यते रजो यत्र सत्त्वं तत्र प्रवर्तते ॥ ७

सर्वलोकान्समश्नुते सार्वात्म्यं लभते । 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मि' इति 'स इदं सर्वं भवति' इति श्रुते. ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥ ३५ ॥

३६

उक्तान्येव तत्त्वानि विवरीतुमुत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते— **तदिति** । तत् तत्र तेषु तत्त्वेषु व्याख्यातेषु मध्ये अनुद्रिक्तं त्रिगुणमव्यक्तं विद्यात्साम्योपेतं गुणत्रयमव्यक्तपदार्थं । तच्च सर्वकार्यव्यापि ध्रुवं अविनाशि । स्थिरं अचञ्चलं निरारम्भमिति यावत् । तदेवाव्यक्तमुद्रिक्तं सत्पञ्चधातुकं भूतपञ्चकं नवद्वारं पुरं च विद्यात् तेषा तत्कार्यत्वात् । पञ्च खादीनि । नव तु भोक्तारं प्रति विषयप्रवेशद्वाराणि । पञ्च श्रोत्रादीनि मनोबुद्धिप्राणोऽभिमानाख्योऽहंकारश्च । पुरं शरीरम् ॥ १ ॥ परित क्षिप्यते विषयभोगवासनया जीवात्मा यैस्ते परिक्षेपा इन्द्रियाणि । मनसैव व्याकरणं व्यक्तीभावो येषा ते सङ्कल्पयोनयो विषया. तदात्मकं पुरं बुद्धिस्वामिकं च पुरम् । एतदेव पुरं परं ब्रह्म तत्राध्यस्तत्वात् । एकादश इन्द्रियं मनस्तन्मात्रं च । न केवलं भोग्यमेव मनःकल्पितं अपितु भोक्ता भोग्यं भोगोपकरणं च सर्वं मनोमात्रमित्यर्थ । 'तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितं यदिदं किञ्च' इति श्रुते ॥ २ ॥ स्रोतांसि चित्तनद्याः प्रवाहा· त्रीणि । **शुक्लं** हिंसाशून्यधर्मप्रावण्यम् । **कृष्णं** हिंसाप्रावण्यम् । **शुक्लकृष्णं** हिंसायुक्तप्रवृत्तिधर्मप्रावण्यं चेति। एतानि यस्मिन् चित्ते विद्यमानानि तिस्रभि प्रनाडीभि संस्काररूपाभिस्त्रिगुणात्मिकाभिराप्यायन्ते पूर्यन्ते ताश्च तथैव पुन· पुनर्वर्धन्ते ॥ ३ ॥ तत्र त्रीन् गुणान् अव्यक्तावयवभूतान्व्याख्याति— **तम इत्यादि** । अन्योन्यमिथुनत्वं दम्पतीवदेककार्योत्पादनम्। अन्योन्योपजीवित्वं बीजाङ्कुरवत् ॥ ४ ॥ अन्योन्याश्रयत्वं त्रिदण्डविष्टंभवत् । अन्योन्यानुवर्तित्वं प्रधानगुणभावेन राजभृत्यवत् । अन्योन्यव्यतिषक्तत्वं तेजोबन्नवत् । त्रिगुणा· गुणत्रयमया· पञ्चधातव. पञ्चमहाभूतानि भौतिकानि चेत्यर्थ ॥ ५ ॥ मिथुनं मध्नातीति योगादाभिभावकं तमस उद्रेके सत्त्वं नश्यति सत्त्वस्योद्रेके तम· । एवं रजस उद्रेके सत्त्वं निवर्तते सत्त्वस्योद्रेके रज इति ज्ञेयं रजस्तमसोस्तु परस्परोद्दीपकत्वान्नान्योन्यमभिभावकत्वं भवतीति तन्मिथुनद्वयं नोक्तम् ॥६॥ नियम्यते कर्मकर्तरि प्रयोग । तिरोधीयते इत्यर्थ । रजसस्तिरोधाने तु तमो न प्रवर्ततेऽपि तु सत्त्वमेव अप्रवृत्तिर्हि तमस· कार्यं न तु प्रवृत्तिनिरोध इत्यर्थः ॥ ७ ॥

नैशात्मक तमो विद्यात्त्रिगुणं मोहसंज्ञितम्।
अधर्मलक्षणं चैव नियतं पापकर्मसु।।
तामसं रूपमेतत्तु दृश्यते चापि सङ्गतम्॥ ८
प्रकृत्यात्मकमेवाहू रजः पर्यायकारकम्।
प्रवृत्तं सर्वभूतेषु दृश्यमुत्पात्तलक्षणम्॥ ९
प्रकाशं सर्वभूतेषु लाघवं श्रद्दधानता।
सात्त्विकं रूपमेवं तु लाघवं साधुसंमितम् १०
एतेषां गुणतत्त्वानि वक्ष्यन्ते तत्त्वहेतुभिः।
समासव्याससुक्तानि तत्त्वतस्तानि बोधत॥
संमोहो ज्ञानमत्यागः कर्मणामविनिर्णयः।
स्वप्नः स्तम्भो भयं लोभः स्वतः सुकृतदूषणम्
अस्मृतिश्चाविपाकश्च नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता
निर्विशेषत्वमन्धत्वं जघन्यगुणवृत्तिता॥ १३
अकृते कृतमानित्वमज्ञाने ज्ञानमानिता।
अमैत्री विकृताभावो ह्यश्रद्धा मूढभावना १४
अनार्जवमसज्ञत्वं कर्म पापमचेतना।
गुरुत्वं सन्नभावत्वमवशित्वमवाग्गतिः॥ १५
सर्वे एते गुणा वृत्ता-
स्तामसाः संप्रकीर्तिताः।
ये चान्ये विहिता भावा
लोकेऽस्मिन्भावसंज्ञिताः॥ १६
तत्र तत्र नियम्यन्ते सर्वे ते तामसा गुणाः।
परिवादकथा नित्यं देवब्राह्मणवैदिकी॥ १७
अत्यागश्चाभिमानश्च मोहो मन्युस्तथाऽक्षमा।
मत्सरश्चैव भूतेषु तामसं वृत्तमिष्यते॥ १८
वृथारंभा हि ये केचिद्वृथा दानानि यानि च।
वृथा भक्षणमित्येतत्तामसं वृत्तमिष्यते॥ १९
अतिवादोऽतितिक्षा च मात्सर्यमभिमानिता
अश्रद्दधानता चैव तामसं वृत्तमिष्यते॥ २०
एवंविधाश्च ये केचिल्लोकेऽस्मिन्पापकर्मिणः।
मनुष्या भिन्नमर्यादास्ते सर्वे तामसाः स्मृताः
तेषां योनीः प्रवक्ष्यामि नियताः पापकर्मिणां
अवाङ्निरयभावा ये तिर्यङ्निरयगामिनः २२
स्थावराणि च भूतानि पशवो वाहनानि च।
क्रव्यादा दंदशूकाश्च कृमिकीटविहंगमाः॥२३
अण्डजा जन्तवश्चैव सर्वे चापि चतुष्पदाः।
उन्मत्ता बधिरा मूका ये चान्ये पापरोगिणः
मग्नास्तमसि दुर्वृत्ताः स्वकर्म कृतलक्षणाः।
अवाक्स्रोतस इत्येते मग्नास्तमसि तामसाः
तेषामुत्कर्षमुद्रेकं वक्ष्याम्यहमतः परम्।
यथा ते सुकृताँल्लोकाँल्लभन्ते पुण्यकर्मिणः॥२६
अन्यथा प्रतिपन्नास्तु विवृद्धा ये च कर्मणः।
स्वकर्मनिरतानां च ब्राह्मणानां शुभैषिणाम्
संस्कारेणोर्ध्वमायांति यतमानाः सलोकताम्
स्वर्गं गच्छन्ति देवानामित्येषा वैदिकी श्रुतिः
अन्यथा प्रतिपन्नास्ते विबुद्धाः स्वेषु कर्मसु।
पुनरावृत्तिधर्माणस्ते भवन्तीह मानुषाः॥ २९
पापयोनिं समापन्नाश्चंडाला मूकचूचुकाः।
वर्णान्पर्यायशश्चापि प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ३०
शूद्रयोनिमतिक्रम्य ये चान्ये तामसा गुणाः।
स्रोतोमध्ये समागम्य वर्तन्ते तामसे गुणे ३१
अभिष्वङ्गस्तु कामेषु महामोह इति स्मृतः।
ऋषयो मुनयो देवा मुह्यन्त्यत्र सुखेप्सवः॥३२

**नैशेति**। नैशात्मकं अन्धकाररूपम्। **त्रिगुणमिति**। इतरयोरपि विशेषणं त्रयाणामन्योन्यव्यतिषक्तत्वस्योक्तत्वात्॥ ८॥ पर्यायो वैपरीत्यम्॥ ९॥ लाघवं धर्मज्ञानादिरूपं सौष्ठवम्॥ १०॥ गुणतत्त्वानि कार्यस्वरूपाणि॥ ११॥ स्वप्नो निद्रा स्तम्भो गर्वं॥ १२॥ भिन्नवृत्तिता शीलभङ्गः। निर्विशेषत्वं युक्तायुक्तपरीक्षाया अभावः। अन्धत्वं सर्वेषां करणानामयथावत्प्रतिपत्तिः जघन्यगुणश्चाण्डालादिधर्मो हिंस्रत्वाशुचित्वादि। विकृतस्य विविधक्रियारूपस्याभावः अप्रवृत्तिः॥ १३॥ अचेतना अबोधः। गुरुत्वं आलस्यादिना गात्राणां जडत्वम्। सन्नभावत्वं नष्टभक्तित्वं देवादिषु। अवशित्वं अजितेन्द्रियत्वम्। अवाग्गतिर्नीचकर्मानुराग॥ १५॥ नियम्यन्ते नियमेनोपतिष्ठन्ते देवब्राह्मणवैदिकी देवादिविषयिणी। देवब्राह्मणनिन्दिका इति पाठे स्पष्टोऽर्थः॥ १७॥ अक्षमेति छेदः॥ १८॥ अवाक्स्रोतस अधोगमनार्हश्चित्तप्रवाहो येषां ते तथा॥ २५॥ उत्कर्षं आरोहक्रमम्। उद्रेकं पुण्याविर्भावम्॥ २६॥ अन्यथा प्रतिपन्ना. तिर्यक्स्थावरादियोनिं प्राप्ता ब्राह्मणानां ब्राह्मणैः कर्मणः अग्निहोत्राद्यर्थं विवृद्धा हिंसिता सन्तो वैदिकेन संस्कारेण ऊर्ध्वमायान्ति ततश्च्युताश्च ब्राह्मणादिजातिं लब्ध्वा यतमाना इत्यादि द्वयोः सम्बन्धः॥ २७॥ एतदेव स्पष्टयति– **अन्यथेति**॥ २९॥ चूचुकाः स्खलद्गिरः॥ ३०॥ **शूद्रेति**। वैश्यादियोनिप्राप्तौ क्रोधादयस्तामसगुणास्तमोगुणस्रोतसि आयान्ति तेभ्य आत्मानं रक्षेदित्यर्थः॥ ३१॥ कामेषु स्त्र्याद्यर्थेषु अभिष्वङ्ग आसक्तिः॥३२॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रः क्रोधसंज्ञितः ।
मरणं त्वन्धतामिस्रस्तामिस्रः क्रोध उच्यते३३
वर्णतो गुणतश्चैव योनितश्चैव तत्त्वतः ।
सर्वमेतत्तमो विप्राः कीर्तितं वो यथाविधि
को न्वेतद्बुध्यते साधु को न्वेतत्साधु पश्यति
अतत्त्वे तत्त्वदर्शी यस्तमसस्तत्त्वलक्षणम् ॥३५
तमोगुणा बहुविधाः प्रकीर्तिता
यथावदुक्तं च तमः परावरम् ।
नरो हि यो वेद गुणानिमान्सदा
स तामसैः सर्वगुणैः प्रमुच्यते ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## ३७

ब्रह्मोवाच ।
रजोऽहं वः प्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सत्तमाः
निबोधत महाभागा गुणवृत्तं च राजसम् ॥ १
सन्तापो रूपमायासः सुखदुःखे हिमातपौ ।
ऐश्वर्यं विग्रहः सन्धिर्हेतुवादोऽरतिः क्षमा २
बलं शौर्यं मदो रोषो व्यायामकलहावपि ।
ईर्ष्येप्सा पैशुनं युद्धं ममत्वं परिपालनम् ॥३
वधबन्धपरिक्लेशाः क्रयो विक्रय एव च ।
निकृन्त छिन्धि भिन्धीति परवर्मावकर्तनम्॥४
उग्रं दारुणमाक्रोशः परच्छिद्रानुशासनम् ।
लोकचिन्तानुचिन्ता च मत्सरः परिपालनम्५
मृषा वादो मृषा दानं विकल्पः परिभाषणम्
निन्दा स्तुतिः प्रशंसा च प्रतापः परिधर्षणम्
परिचर्यानुशुश्रूषा सेवा तृष्णा व्यपाश्रयः ।
व्यूहो नयः प्रमादश्च परिवादः परिग्रहः ॥ ७
संस्कारा ये च लोकेषु प्रवर्तन्ते पृथक्पृथक्
नृषु नारीषु भूतेषु द्रव्येषु शरणेषु च ॥ ८
सन्तापोऽप्रत्ययश्चैव व्रतानि नियमाश्च ये ।
आशीर्युक्तानि कर्माणि पौर्तानि विविधानि च
स्वाहाकारो नमस्कारः
स्वधाकारो वषट्क्रिया ।
याजनाध्यापने चोभे
यजनाध्ययने अपि ॥ १०
दानं प्रतिग्रहश्चैव प्रायश्चित्तानि मङ्गलम् ।
इदं मे स्यादिदं मे स्यात्स्नेहो गुणसमुद्भवः ॥
अभिद्रोहस्तथा माया निकृतिर्मान एव च ।
स्तैन्यं हिंसा जुगुप्सा च परितापः प्रजागरः॥

---

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा पञ्च क्लेशा अत्र तम आदिशब्दैरभिधीयन्ते। तेषु तामिस्रश्चतुर्थः. क्रोधसंज्ञितो न तु द्वेष इत्यर्थः । एवं अन्धतामिस्रोऽपि नाभिनिवेशः किन्तु मरणमेव । 'तामिस्रः क्रोध उच्यते' इति पुनर्वचनं परपरिभाषितार्थनिराकरणार्थम् । तामिस्रान्धतामिस्रपदाभ्यां क्रोधमरणे एव ग्राह्ये न तु राजसौ द्वेषाभिनिवेशावित्यर्थः ॥ ३३ ॥ तदेवाह—**वर्णत इति** । एतत्तमआदिशब्दितमविद्यादिकं सर्वं तम एव ज्ञेयं न तु तत्र रजोंऽशोऽस्ति । तत्र यथा अविद्या अतस्मिंस्तद्बुद्धिरूपविपर्ययाख्यं तमः । एवं तत्प्रभवा अस्मितादयोऽपि तम एव तत्रापि अनात्मनि महत्तत्त्वेऽस्मीत्यात्मबुद्धेः सत्त्वात् । एवं रागोऽप्यप्रिये प्रियत्वाध्यासः क्रोधः शान्ते प्रतीचि अभिज्वलनाध्यासः । एवं अमृते नित्ये मरिष्यामीति बुद्धिरित्येते वर्णतः स्वरूपतः पाकत इति पाठे फलतः गुणतः विपर्ययत्वतः योनितस्तामसत्वतश्च तम एव ॥ ३४ ॥ एतत् दुर्बोधमित्युक्तिपूर्वकं सामान्यतस्तमसो लक्षणमाह—**क इति** ॥ ३५ ॥ तमोविकारा गुणास्तमोगुणाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

**रजोऽहमिति** ॥ १ ॥ उग्रं निष्ठुरं दारुणं हिंस्रत्वम् ॥ ५ ॥ परिभाषणं धिक्कृत्य भाषणम् ॥६॥ व्यूहः व्यवहाररचनाकौशलम् ॥ ७ ॥ शरणेषु रक्षितृषु ॥ ८ ॥ अप्रत्ययः अविश्वासः ॥ ९ ॥ परितापः स्वजनवैकल्यनिमित्तो दाहः । पाठान्तरे परिवादः सर्वनिन्दा ॥ १२ ॥

दम्भो दर्पोऽथ रागश्च भक्तिः प्रीतिः प्रमोदनम्
द्यूतं च जनवादश्च सम्बन्धाः स्त्रीकृताश्च ये
नृत्यवादित्रगीतानां प्रसंगा ये च केचन ।
सर्वे एते गुणा विप्रा राजसाः संप्रकीर्तिताः
भूतभव्यभविष्याणां
भावानां भुवि भावनाः ।
त्रिवर्गनिरता नित्यं
धर्मोऽर्थः काम इत्यपि ॥ १५
कामवृत्ताः प्रमोदन्ते सर्वकामसमृद्धिभिः ।
अर्वाक्स्रोतस इत्येते मनुष्या रजसा वृताः ॥
अस्मिँल्लोके प्रमोदन्ते जायमानाः पुनः पुनः ।
प्रेत्य भाविकमीहन्ते पेहलौकिकमेव च ।
ददति प्रतिगृह्णन्ति तर्पयन्त्यथ जुह्वति ॥ १७
रजोगुणा वो बहुधानुकीर्तिता
यथावदुक्तं गुणवृत्तमेव च ।
नरोऽपि यो वेद गुणानिमान्सदा
स राजसैः सर्वगुणैर्विमुच्यते ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

ब्रह्मोवाच ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि तृतीयं गुणमुत्तमम् ।
सर्वभूतहितं लोके सतां धर्ममनिन्दितम् ॥ १
आनन्दः प्रीतिरुद्रेकः प्राकाश्यं सुखमेव च ।
अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता ॥ २
क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।
अक्रोधश्चानसूया च शौचं दाक्ष्यं पराक्रमः ३
मुधा ज्ञानं मुधा वृत्तं मुधा सेवा मुधा श्रमः ।
एवं यो युक्तधर्मः स्यात्सोऽमुत्रात्यन्तमश्नुते ४
निर्ममो निरहङ्कारो निराशीः सर्वतः समः ।
अकामभूत इत्येव सतां धर्मः सनातनः ॥ ५
विश्रम्भो ह्रीस्तितिक्षा च
त्यागः शौचमतन्द्रिता ।
आनृशंस्यमसम्मोहो
दया भूतेष्वपैशुनम् ॥ ६
हर्षस्तुष्टिर्विस्मयश्च विनयः साधुवृत्तिता ।
शान्तिकर्मणि शुद्धिश्च शुभा बुद्धिर्विमोचनम्
उपेक्षा ब्रह्मचर्यं च परित्यागश्च सर्वशः ।
निर्ममत्वमनाशीष्ट्वमपरिक्षतधर्मता ॥ ८
मुधा दानं मुधा यज्ञो मुधाऽधीतं मुधा व्रतम्
मुधा प्रतिग्रहश्चैव मुधा धर्मो मुधा तपः ॥ ९
एवंवृत्तास्तु ये केचिल्लोकेऽस्मिन्सत्त्वसंश्रयाः
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्थास्ते धीराः साधुदर्शिनः ॥
हित्वा सर्वाणि पापानि
निःशोका ह्यथ मानवाः ।
दिवं प्राप्य तु ते धीराः
कुर्वते वै ततस्तनूः ॥ ११
ईशित्वं च वशित्वं च लघुत्वं मनसश्च ते ।
विकुर्वते महात्मानो देवास्त्रिदिवगा इव १२

---

अर्वाक् स्वर्गादय भूमेरुपरि स्रोत प्रवाहो येषा ते तथा ॥ १६ ॥ प्रेत्यभाविकं जन्मान्तरीयं कुशलम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥ ३७ ॥

३८

**अत इति** ॥१॥ उद्रेक उन्नति असंरम्भो निर्भयत्वम् ॥ २ ॥ **मुधेति** । शास्त्रीयज्ञानादेर्वैयर्थ्यं ज्ञात्वा युक्तधर्मो योगिधर्मा यो भवति सोऽमुत्रात्मनि अत्यन्तं अविनाशि पदमश्नुते ॥ ४ ॥ हर्ष पुत्रजन्मादिजं सुख, तुष्टिः अलंबुद्धि शान्तिकर्मणि मुक्त्युपाये शुद्धि आर्जवेन प्रवृति ॥ ७ ॥ उपेक्षा औदासिन्यम् ॥ ८ ॥ दानादीना वैयर्थ्यं जानन्तो ये ब्रह्मयोनिस्था वेदकारणे ब्रह्मणि निष्ठावन्तस्त एव साधुदर्शिनो नान्ये ॥१०॥ पापानि कर्माणि राजसतामसानि तनू शरीराणि कुर्वते योगबलेनानेकशरीरव्यग्रारो भवन्ति ॥११॥ ईशित्वादिकं अणिमादीनामप्युपलक्षणम् । मनस मन. विकुर्वते अनेकाकारं कुर्वन्ति न तु निगृह्णन्तीत्यर्थ. ॥१२

ऊर्ध्वस्रोतस इत्येते देवा वैकारिकाः स्मृताः
विकुर्वन्तः प्रकृत्या वै दिवं प्राप्तास्ततस्ततः
यद्यदिच्छन्ति तत्सर्वं भजन्ते विभजन्ति च।
इत्येतत्सात्त्विकं वृत्तं कथितं वो द्विजर्षभाः।
एतद्विज्ञाय लभते विधिवद्यद्यदिच्छति ॥ १४

प्रकीर्तिताः सत्त्वगुणा विशेषतो
यथावदुक्तं गुणवृत्तमेव च।
नरस्तु यो वेद गुणानिमान्सदा
गुणान्स भुंक्ते न गुणैः स युज्यते १५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## ३९

ब्रह्मोवाच।
नैव शक्या गुणा वक्तुं पृथक्त्वेनैव सर्वशः।
अविच्छिन्नानि दृश्यन्ते रजः सत्त्वं तमस्तथा
अन्योन्यमथ रज्यन्ते ह्यन्योन्यं चार्थजीविनः
अन्योन्यमाश्रयाः सर्वे तथान्योन्यानुवर्तिनः॥
यावत्सत्त्वं रजस्तावद्वर्तते नात्र संशयः।
यावत्तमश्च सत्त्वं च रजस्तावदिहोच्यते ॥ ३
संहत्य कुर्वते यात्रां सहिताः संघचारिणः।
संघातवृत्तयो ह्येते वर्तन्ते हेत्वहेतुभिः ॥ ४
उद्रेकव्यतिरिक्तानां तेषामन्योन्यवर्तिनाम्।
वक्ष्यते तद्यथाऽन्यून व्यतिरिक्तं च सर्वशः ५
व्यतिरिक्त तमो यत्र तिर्यग्भावगतं भवेत्।
अल्पं तत्र रजो ज्ञेय सत्त्वमल्पतरं तथा ॥ ६
उद्रिक्त च रजो यत्र मध्यस्रोतोगतं भवेत्।
अल्प तत्र तमो ज्ञेय सत्त्वमल्पतरं तथा ॥ ७
उद्रिक्तं च यदा सत्त्वमूर्ध्वस्रोतोगतं भवेत्।
अल्पं तत्र तमो ज्ञेयं रजश्चाल्पतरं तथा ॥ ८
सत्त्वं वैकारिकी योनिरिन्द्रियाणां प्रकाशिका
न हि सत्त्वात्परो धर्मः कश्चिदन्यो विधीयते
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था
मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणसंयुक्ता
यान्त्यधस्तामसा जनाः ॥ १०
तमः शूद्रे रजः क्षत्रे
ब्राह्मणे सत्त्वमुत्तमम्।
इत्येवं त्रिषु वर्णेषु
विवर्तन्ते गुणास्त्रयः ॥ ११
दूरादपि हि दृश्यन्ते सहिताः सघचारिणः।
तमः सत्त्वं रजश्चैव पृथक्त्वेनानुशुश्रुम ॥ १२
दृष्ट्वा त्वादित्यमुद्यन्तं कुचराणां भय भवेत्।
अध्वगाः परितप्येयुरुष्णतो दुःखभागिनः १३

---

ऊर्ध्वस्रोतस ऊर्ध्वगमनपरा प्रकृत्या भोगजसंस्कारेण पुनर्भोगार्थे चित्तं विकुर्वन्त· नानाकारेण परिणामयन्त· भजन्ते स्वयं प्राप्नुवन्ति विभजन्ति सङ्कल्पितमन्येभ्योऽपि प्रयच्छन्ति सार्ध. ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्याय. ॥ ३८ ॥

३९

**नैवेति**। अविच्छिन्नानि अपृथग्भूतानि इदं सात्त्विकमिदं राजसमिदं तामसं कार्यमिति व्यपदेशस्तु तत्तद्गुणप्राधान्यमात्रादित्यर्थ ॥ १ ॥ **यावदिति**। कियदपि विशुद्धं सत्त्वं तमसैव नियम्यतेऽतो नियम्यनियामकयोस्तयो· साम्यं भवतीत्यर्थ । एवं प्रवर्तनात्मक रजो मोहप्रकाशात्मकाभ्या तमःसत्त्वाभ्यामुद्रिक्तं सत्ते उभे रुणद्धि ॥ ३ ॥ सहत्य मिश्रीभूय यात्रां व्यवहार कुर्वते यतः सङ्घचारिण. सहतस्वभावाश्चरन्ति। एवंविधा अपि हेत्वहेतुभिर्वर्तन्ते वैषम्येणेति शेष. ॥ ४ ॥ एतदेवाह—**उद्रेकेति**। उद्रेक उद्बोधकसामग्रीसत्त्वे यदाधिक्यं तदभावे अन्यूनं व्यतिरिक्तं अनधिकं च सर्वशः सर्वेषा रूपं समानं भवतीत्यर्थ· ॥ ५ ॥ व्यतिरिक्तं अधिकं यत्र श्वशूकरादौ तिर्यग्भाव च आधिक्यं गतं प्राप्तम् ॥ ६ ॥ सत्त्वं इन्द्रियाणा योनि· सा च वैकारिकी वैकारिकाहङ्कारसम्बन्धिनी प्रकाशिका इन्द्रियद्वारा शब्दादीनामिति शेष· । धर्मो धर्महेतु. । विधीयते शास्त्रे प्रकाश्यते ॥९॥ **दूरादिति**। तामसे शूद्रेऽपि रज सत्त्वयोर्दर्शनाद्गुणा सङ्घचारिण एव एवमन्यत्र ॥ १२ ॥ स्वत·प्रकाशकस्याप्यादित्यादेस्तमोरज कार्यभयमन्तापहेतुत्वात्तत्रापि त्रिगुणोद्दीपकत्वं वर्तत इत्यर्थ कुत्सितं कर्म चरन्ति ते कुचराश्चोराः ॥ १३ ॥

आदित्यः सत्त्वमुद्रिक्तं कुचरास्तु तथा तमः।
परितापोऽध्वगानां च रजसो गुण उच्यते ॥
प्राकाश्यं सत्त्वमादित्यः सन्तापो रजसो गुणः
उपप्लवस्तु विज्ञेयस्तामसस्तस्य पर्वसु ॥ १५
एवं ज्योतिष्षु सर्वेषु निवर्तन्ते गुणास्त्रयः।
पर्यायेण च वर्तन्ते तत्र तत्र तथा तथा ॥ १६
स्थावरेषु तु भावेषु तिर्यग्भावगतं तमः।
राजसास्तु विवर्तन्ते स्नेहभावस्तु सात्त्विकः
अहस्त्रिधा तु विज्ञेयं त्रिधा रात्रिर्विधीयते।
मासार्धमासवर्षाणि ऋतवः सन्धयस्तथा १८
त्रिधा दानानि दीयन्ते
त्रिधा यज्ञः प्रवर्तते।
त्रिधा लोकास्त्रिधा देवा-
स्त्रिधा विद्यास्त्रिधा गतिः ॥ १९
भूतं भव्यं भविष्यं च धर्मोऽर्थः काम एव च
प्राणापानावुदानश्चाप्येत एव त्रयो गुणाः २०
पर्यायेण प्रवर्तन्ते तत्र तत्र तथा तथा।
यत्किञ्चिदिह लोकेऽस्मिन्सर्वमेते त्रयो गुणाः
त्रयो गुणाः प्रवर्तन्ते ह्यव्यक्ता नित्यमेव तु।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणसर्गः सनातनः ॥ २२
तमो व्यक्तं शिव धाम रजो योनिः सनातनः
प्रकृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवाप्ययौ २३
अनुद्रिक्तमनूनं वाप्यकम्पमचलं ध्रुवम्।
सदसच्चैव तत्सर्वमव्यक्तं त्रिगुणं स्मृतम्।
ज्ञेयानि नामधेयानि नरैरध्यात्मचिन्तकैः २४
अव्यक्तनामानि गुणांश्च तत्त्वतो
यो वेद सर्वाणि गतीश्च केवलाः।
विमुक्तदेहः प्रविभागतत्त्ववित्
स मुच्यते सर्वगुणैर्निरामयः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे
ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## ४०

ब्रह्मोवाच।
अव्यक्तात्पूर्वमुत्पन्नो महानात्मा महामतिः
आदिर्गुणानां सर्वेषां प्रथमः सर्ग उच्यते ॥ १
महानात्मा मतिर्विष्णु-
र्जिष्णुः शम्भुश्च वीर्यवान्।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च
तथा ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ॥ २
पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते।
तं जानन्ब्राह्मणो विद्वान्प्रमोहं नाधिगच्छति
सर्वतःपाणिपादश्च सर्वतोक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वं व्याप्य स तिष्ठति
महाप्रभावः पुरुषः सर्वस्य हृदि निश्रितः।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः
तत्र बुद्धिविदो लोकाः
सद्भावनिरताश्च ये।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च
सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः ॥ ६

तत्स्वरूपमपि त्रिगुणात्मकमित्याह—**प्राकाश्यमिति** ॥१५॥ 'न तदस्ति पृथिव्यां च' इत्यादिश्लोकस्यायं प्रपञ्चः—**एवमित्यादि** ॥ १६ ॥ स्थावराणामतिमूढत्वात्तत्र तमस्तिर्यग्भावं आधिक्यं गतं दृश्यते। राजसा. रमणीयत्व-कट्वम्लत्वादय विवर्तन्ते कालेन द्रव्यान्तरयोगेन पाकादिना वा। सात्त्विकस्तु स्नेह· वह्न्यादेरुद्दीपकत्वेन प्रकाशकत्वात् ॥ १७ ॥ तमआदीनि द्वाविंशतिरव्यक्तस्य नामधेयानि ॥२४॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ३९ ॥

४०

एवं चतुर्भिरध्यायैर्व्यस्तसमस्तगुणनिरूपणद्वारा तत्साम्यावस्थारूपमव्यक्तं प्रपञ्चितम्। इदानीं महत्तत्त्वं निरूपयति—**अव्यक्तादित्यध्यायेन**। गुणाना गुणकार्याणाम् ॥ १ ॥ **सर्वत इति**। गीतासु यज्ज्ञेयमुक्त तन्महानात्मैवेति व्यनक्ति। मुख्यं तु ज्ञेयमव्यक्तात्परमेवेति ज्ञापयितुम् ॥ ४ ॥ अयमेव दहराद्युपासकानामुपास्य इत्याह—**तत्रेत्यादिना**। तत्र महत्यात्मनि लोका अतीता अनागता वर्तमानाश्च सन्ति 'यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दते' इति श्रुते। सद्भावनिरताश्च ये ते महत्त्वमुपयान्तीति तृतीयेनान्वयः ६

ज्ञानवन्तश्च ये केचिदलुब्धा जितमन्यवः ।
प्रसन्नमनसो धीरा निर्ममा निरहंकृताः ॥ ७
विमुक्ताः सर्व एवैते महत्त्वमुपयान्त्युत ।
आत्मनो महतो वेद यः पुण्यां गतिमुत्तमाम्
अहङ्कारात्प्रसूतानि महाभूतानि पञ्च वै ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ९
तेषु भूतानि युज्यन्ते महाभूतेषु पञ्चसु ।
ते शब्दस्पर्शरूपेषु रसगन्धक्रियासु च १०
महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ।
सर्वप्राणभृतां धीरा महदुत्पद्यते भयम् ॥ ११
स धीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति ।
विष्णुरेवादिसर्गेषु स्वयंभूर्भवति प्रभुः ॥ १२
एवं हि यो वेद गुहाशयं प्रभुं
परं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति १३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## ४१

ब्रह्मोवाच ।
य उत्पन्नो महान्पूर्वमहङ्कारः स उच्यते ।
अहमित्येव सम्भूतो द्वितीयः सर्ग उच्यते १
अहङ्कारश्च भूतादिर्वैकारिक इति स्मृतः ।
तेजसश्चेतना धातुः प्रजासर्गः प्रजापतिः २
देवानां प्रभवो देवो मनसश्च त्रिलोककृत् ।
अहमित्येव तत्सर्वमभिमन्ता स उच्यते ॥ ३
अध्यात्मज्ञानतृप्तानां मुनीनां भावितात्मनाम्
स्वाध्यायक्रतुसिद्धानामेष लोकः सनातनः ४
अहङ्कारेणाहरतो गुणानिमान्
भूतादिरेवं सृजते स भूतकृत् ।
वैकारिकः सर्वमिदं विचेष्टते
स्वतेजसा रञ्जयते जगत्तथा ॥ ५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

**४१**

कार्यस्य कारणादनन्यत्वं वदन्महान्तमेवाहंकारतामापन्नं विवृणोति—**य इति** ॥ १ ॥ भूतादिरिति तस्यैवाहङ्कारस्य तामसस्यान्वर्था संज्ञा । वैकारिक इति विकारान्महतो जात इति व्युत्पत्तेस्तस्यैव नाम । स च तेजसः प्रकृत्यात्मकस्य रजसो विकारः । चेतना धीयतेऽस्मिन्निति चेतनाधातुश्चेतनः पुरुष इत्यर्थः । प्रजानां सर्गो यस्मात् अत. प्रजासर्गत्वात्प्रजापतिरप्ययमेव ॥ २ ॥ देवानां इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां मनसश्च प्रभव उत्पत्तिस्थानं स्वयमपि देवो दीव्यन् क्रीडन् त्रिलोककृत् । अहमिति योऽभिमन्यते सोऽहङ्कार. ॥ ३ ॥ एष. समष्टिरूपोऽनिरुद्धाख्य सर्वेषां सिद्धानां लोकः प्राप्यं स्थानम् ॥ ४ ॥ अहङ्कारेण त्रिगुणमयेन गुणान् शब्दादीन् आहरतो भोक्तुमिच्छतः पुरुषस्य भूतादिस्तामसोऽहङ्कार· सृजते भूतानि व्योमादीनि अत एव स भूतकृत् । वैकारिकः सर्वाणीन्द्रियाणि सृष्ट्वा तैर्दर्शनस्पर्शनादिकां क्रियां करोति । तैजसः कर्मेन्द्रियाणि पञ्चप्राणाश्च सृष्ट्वा तद्द्वारा सर्वं भोक्तृवर्गं रञ्जयतीति ॥ ५ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## ४२

ब्रह्मोवाच ।

अहङ्कारात्प्रसूतानि महाभूतानि पञ्च वै ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्
तेषु भूतानि मुह्यन्ति महाभूतेषु पञ्चसु ।
शब्दस्पर्शनरूपेषु रसगन्धक्रियासु च ॥ २
महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ।
सर्वप्राणभृतां धीरा महदभ्युद्यते भयम् ॥ ३
यद्यस्माज्जायते भूतं तत्र तत्प्रविलीयते ।
लीयन्ते प्रतिलोमानि जायन्ते चोत्तरोत्तरम् ४
ततः प्रलीने सर्वस्मिन् भूते स्थावरजङ्गमे ।
स्मृतिमन्तस्तदा धीरा न लीयन्ते कदाचन ५
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
क्रियाः करणनित्याः स्युरनित्या मोहसंज्ञिताः
लोभप्रजनसम्भूता निर्विशेषा ह्यकिञ्चनाः ।
मांसशोणितसंघाता अन्योन्यस्योपजीविनः
बहिरात्मान इत्येते दीनाः कृपणजीविनः ।
प्राणापानावुदानश्च समानो व्यान एव च ८
अन्तरात्मनि चाप्येते नियताः पञ्च वायवः
वाङ्मनोबुद्धिभिः सार्द्धमिदमष्टात्मकं जगत्
त्वक्घ्राणश्रोत्रचक्षूंषि रसना वाक् संयताः ।
विशुद्धं च मनो यस्य बुद्धिश्चाव्यभिचारिणी
अष्टौ यस्याग्नयो ह्येते न दहन्ते मनः सदा ।
स तद्ब्रह्म शुभं याति तस्माद्भूयो न विद्यते ११
एकादश च यान्याहुरिन्द्रियाणि विशेषतः ।
अहङ्कारात्प्रसूतानि तानि वक्ष्याम्यहं द्विजाः
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा
नासिका चैव पञ्चमी ।
पादौ पायुरुपस्थश्च
हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ॥ १३
इन्द्रियग्राम इत्येष मन एकादशं भवेत् ।
एतं ग्राम जयेत्पूर्वं ततो ब्रह्म प्रकाशते ॥ १४
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चाहुः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ।
श्रोत्रादीन्यपि पञ्चाहुर्बुद्धियुक्तानि तत्त्वतः १५

---

### ४२

**अहंकारात्तामसात्** पृथिव्यादीना पाठक्रमो न विवक्षित ॥ १ ॥ एतेषु ये शब्दादय सन्ति तेषु निमित्तभूतेषु भूतानि मानुषादीनि मुह्यन्ति ते प्रसिद्धा. योगिनोपि मुह्यतीत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ २ ॥ महाभूताना देहाकाराणा विनाशो मरण तदन्ते भय नारकम् । तथा प्रलये च दैनदिनादौ प्रत्युपस्थिते दाहशोषादिज महत् प्राणभृता प्राणिना भयम् ॥ ३ ॥ तत्र मरणस्य सर्वप्रत्यक्षत्वात्तदुपेक्ष्य प्रलयमाह—**यदिति** । उत्तरोत्तर अनुलोमं आकाशवाय्वग्निसलिलपृथिवीक्रमेण ॥ ४ ॥ **तत इति** । द्विविधानि भूतानि स्थूलानि सूक्ष्माणि च तत्र यैर्योगबलेन सूक्ष्मेषु स्थूलाना प्रविलापनं कृतं ते तन्मात्रशरीरा सन्तो न स्थूलेषु भूतेषु नश्यत्सु विनश्यन्तीत्यर्थ ॥ ५ ॥ ननु कोशनाशे कोशकार इव स्थूलनाशे सूक्ष्माणि कथं न नश्यन्तीत्याशंक्याह—**शब्द इति** । शब्दादयो विषया क्रियाश्च तद्ग्रहणरूपा करणनित्याः करणात्मना मनोमात्रेण रूपेण नित्या अविनाशिन्य कारणनित्या इति पाठेऽपि कारण दहराकाशाख्यं सोपाधिब्रह्म तद्रूपेण नित्या मोहसंज्ञिता स्थूला अनित्या अनृतत्वात् । 'त इमे सत्या कामा अनृतापिधाना ' इतिश्रुतिर्हि सूक्ष्माणा सत्यत्वं तत्पिधायकाना स्थूलानामनृतत्व चाह । तस्मायुक्तमुक्तं—**धीरा न लीयन्ते कदाचनेति** ॥ ६ ॥ अनित्याना लक्षणमाह सार्द्धेन—**लोभेति** । लोभो लब्धुमिच्छा तस्य प्रजनं प्रजा फललोभपूर्वकं कर्मेत्यर्थ । तस्मात्संभूता । संयुक्ता इति पाठे कर्मबद्धा निर्विशेषा सर्वेषा पाञ्चभौतिकत्वाविशेषात् । अकिचना नास्ति किञ्चन वस्तु सत् यासु ताः रज्जूरगवत्तुच्छा इत्यर्थ । अन्योन्ये तु 'जीवो जीवस्य जीवनम् ' इत्यर्थान्नश्वरा ॥ ७ ॥ बहिरात्मान. स्थूलशरीराणि दीना क्षुधाद्युपद्रुता कृपणजीविन बाह्यसाधनजीवना । नित्यानि यावन्मोक्षस्थायीनि भूतान्याह सार्धेन—**प्राणेति** ॥८॥ अन्तरात्मा चितिच्छायायुक्तोऽहंकाराख्यो जीव· प्राणादिपञ्चक वाङ्मनोबुद्धित्रयं चेत्यष्टावुपाधित्वेन नियता नियमेन सम्बद्धा एतदष्टकात्मकं जगत् । अयं भाव –' मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति ' इत्यादिश्रुते चक्षुश्रोत्रात्मकं मन एव सर्वकरणरूपं करणाना च प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका इति चक्षुरादिभ्य. सूर्यादीना तेभ्यो रूपादीना चोत्पत्तिश्रवणेन सर्वहेतुतया सर्वात्मकत्वादेतावन्मात्रं जगदिति युक्तमेवोक्तम्—**अष्टात्मकं जगदिति**॥९॥ त्वगादय एते यं न दहन्ति स विद्वान् ब्रह्म याति यस्मादन्यत् भूयोऽधिकतरं नास्ति ॥ ११ ॥ एतदेव विस्तरेण प्रपञ्चयति—**एकादशेत्यादिना** ॥ १२ ॥

आविशेषाणि चान्यानि कर्मयुक्तानि यानि तु
उभयत्र मनो ज्ञेयं बुद्धिस्तु द्वादशी भवेत् १६
इत्युक्तानीन्द्रियाण्येतान्येकादश यथाक्रमम् ।
मन्यन्ते कृतमित्येवं विदित्वा तानि पण्डिताः
अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वं विविधमिन्द्रियम्
आकाशं प्रथमं भूतं श्रोत्रमध्यात्ममुच्यते १८
अधिभूतं तथा शब्दो दिशस्तत्राधिदैवतम् ।
द्वितीयं मारुतो भूतं त्वगध्यात्मं च विश्रुता॥
स्प्रष्टव्यमधिभूतं च विद्युत्तत्राधिदैवतम् ।
तृतीयं ज्योतिरित्याहुश्चक्षुरध्यात्ममुच्यते २०
अधिभूतं ततो रूपं सूर्यस्तत्राधिदैवतम् ।
चतुर्थमापो विज्ञेयं जिह्वा चाध्यात्ममुच्यते २१
अधिभूतं रसश्चात्र सोमस्तत्राधिदैवतम् ।
पृथिवी पञ्चमं भूतं घ्राणश्चाध्यात्ममुच्यते २२
अधिभूतं तथा गन्धो वायुस्तत्राधिदैवतम् ।
एषु पञ्चसु भूतेषु त्रिषु यश्च विधिः स्मृतः २३
अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वं विविधमिन्द्रियम्
पादावध्यात्ममित्याहुर्ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥
अधिभूतं तु गन्तव्यं विष्णुस्तत्राधिदैवतम् ।
अवाग्गतिरपानश्च पायुरध्यात्ममुच्यते ॥ २५
अधिभूतं विसर्गश्च मित्रस्तत्राधिदैवतम् ।
प्रजनः सर्वभूतानामुपस्थोऽध्यात्ममुच्यते ॥२६
अधिभूतं तथा शुक्रं दैवतं च प्रजापतिः ।
हस्तावध्यात्ममित्याहुरध्यात्मविदुषो जनाः
अधिभूतं च कर्माणि शक्रस्तत्राधिदैवतम् ।
वैश्वदेवी ततः पूर्वा वागध्यात्ममिहोच्यते २८
वक्तव्यमधिभूतं च वह्निस्तत्राधिदैवतम् ।
अध्यात्मं मन इत्याहुः पञ्चभूतात्मचारकम् २९
अधिभूतं च सङ्कल्पश्चन्द्रमाश्चाधिदैवतम् ।
अहङ्कारस्तथाऽध्यात्मं सर्वसंसारकारकम् ३०
अभिमानोऽधिभूतं च रुद्रस्तत्राधिदैवतम् ।
अध्यात्मं बुद्धिरित्याहुः षडिन्द्रियविचारिणी

अधिभूतं तु मन्तव्यं ब्रह्मा तत्राधिदैवतम् ।
त्रीणि स्थानानि भूतानां चतुर्थं नोपपद्यते ३२
स्थलमापस्तथाऽऽकाशं जन्म चापि चतुर्विधम्
अण्डजोद्भिज्जसंस्वेदजरायुजमथापि च ॥ ३३
चतुर्धा जन्म इत्येतद्भूतग्रामस्य लक्ष्यते ।
अपराण्यथ भूतानि खेचराणि तथैव च ॥ ३४
अण्डजानि विजानीयात्सर्वांश्चैव सरीसृपान्
स्वेदजाः कृमयः प्रोक्ता जन्तवश्च यथाक्रमम् ॥
जन्म द्वितीयमित्येतज्जघन्यतरमुच्यते ।
भित्त्वा तु पृथिवीं यानि जायन्ते कालपर्ययात्
उद्भिज्जानि च तान्याहुर्भूतानि द्विजसत्तमाः।
द्विपादबहुपादानि तिर्यग्गतिमतीनि च ३७
जरायुजानि भूतानि विकृतान्यपि सत्तमाः ।
द्विविधा खलु विज्ञेया ब्रह्मयोनिः सनातनी॥
तपः कर्म च यत्पुण्यमित्येष विदुषां नयः ।
विविधं कर्म विज्ञेयमिज्या दानं च तन्मखे ॥
जातस्याध्ययनं पुण्यमिति वृद्धानुशासनम्।
एतद्यो वेत्ति विधिवद्युक्तः स स्याद्द्विजर्षभाः॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्य इति चैव निबोधत ।
आकाशं प्रथमं भूतं श्रोत्रमध्यात्ममुच्यते ४१
अधिभूतं तथा शब्दो दिशश्चात्राधिदैवतम् ।
द्वितीयं मारुतं भूतं त्वगध्यात्मं च विश्रुतम्
स्प्रष्टव्यमधिभूतं तु विद्युत्तत्राधिदैवतम् ।
तृतीयं ज्योतिरित्याहुश्चक्षुरध्यात्ममिष्यते ४३
अधिभूतं ततो रूपं सूर्यस्तत्राधिदैवतम् ।
चतुर्थमापो विज्ञेयं जिह्वा चाध्यात्ममिष्यते
चन्द्रोऽधिभूतं विज्ञेयमापस्तत्राधिदैवतम् ।
यथावदध्यात्मविधिरेष वः कीर्तितो मया
ज्ञानमस्य हि धर्मज्ञाः प्राप्तं ज्ञानवतामिह ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।
सर्वाण्येतानि सन्धाय मनसा संप्रधारयेत्॥
क्षीणे मनसि सर्वस्मिन् न जन्मसुखमिष्यते
ज्ञानसम्पन्नसत्त्वानां तत्सुखं विदुषा मतम् ॥

---

उभयत्र उभयेष्वपि इन्द्रियेषु मनोनुगतमिति शेष ॥ १६ ॥ मन्यन्ते कृतकृत्या भवन्तीत्यर्थ ॥ १७ ॥ सर्वं सर्वाणीन्द्रियाणि प्रत्येकं विविधानि भूतं आकाशादि । इन्द्रियमध्यात्मम् । भूतगुण शब्दादिरधिभूतं इद्रियानुग्राहिका देवता दिगादिरधिदैव सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ १८ ॥ त्रिषु अध्यात्माधिभूताधिदैवेषु ॥ २३ ॥ सर्वं कर्मेन्द्रियम् ॥ २४ ॥ अपराणि अनुत्कृष्टानि ॥ ३४ ॥ ब्रह्मयोनि· ब्रह्मोपलब्धिस्थानं ब्राह्मणजन्मेत्यर्थ· ॥ ३८ ॥ तत्र कर्त्तव्यमाह— **तप इति** ॥ ३९ ॥ वेत्ति आपरोक्ष्येण ॥ ४० ॥ **इन्द्रियाणीति** । सन्धाय भूतादीनि इन्द्रियेभ्योतिरिक्तानि न सन्तीत्यनुसन्धाय तानि सर्वाणि मनसा संप्रधारयेन्मनोमात्रेणावतिष्ठेत् ॥ ४६ ॥ **क्षीणे इति** । यद्येतानि मनोमात्रविलसितानि न स्युस्तर्हि स्वप्नसंप्रज्ञातयोर्न प्रतीयेरन्-अत. क्षीणं मन कृतं चेत् निर्विकल्पे सुखमनुभवत· पुंसो

अतः परं प्रवक्ष्यामि सूक्ष्मभावकरीं शिवाम्
निवृत्तिं सर्वभूतेषु मृदुना दारुणेन च ॥ ४८
गुणागुणमनासङ्गमेकचर्यमनन्तरम् ।
एतद्ब्राह्मणं वृत्तमाहुरेकपदं सुखम् ॥ ४९
विद्वान्कूर्म इवाङ्गानि कामान्संहृत्य सर्वशः ।
विरजाः सर्वतो मुक्तो यो नरः स सुखी सदा
कामानात्मनि संयम्य क्षीणतृष्णः समाहितः
सर्वभूतसुहृन्मित्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५१
इन्द्रियाणां निरोधेन सर्वेषां विषयैषिणाम् ।
मुनेर्जनपदत्यागादध्यात्माग्निः समिध्यते ५२
यथाऽग्निरिन्धनैरिद्धो महाज्योतिः प्रकाशते
तथेन्द्रियनिरोधेन महानात्मा प्रकाशते ॥ ५३
यदा पश्यति भूतानि प्रसन्नात्मात्मनो हृदि ।
स्वयंज्योतिस्तदा सूक्ष्मात्सूक्ष्मं प्राप्नोत्यनुत्तमम्
अग्नी रूपं पयः स्रोतो वायुः स्पर्शनमेव च ।
मही पङ्कधरं घोरमाकाशश्रवणं तथा ॥ ५५
रोगशोकसमाविष्टं पञ्चस्रोतः समावृतम् ।
पञ्चभूतसमायुक्तं नवद्वारं द्विदैवतम् ॥ ५६
रजस्वलमथादृश्यं त्रिगुणं च त्रिधातुकम् ।
संसर्गाभिरतं मूढं शरीरमिति धारणा ॥ ५७
दुश्चरं सर्वलोकेऽस्मिन्सत्त्वं प्रति समाश्रितम्
एतदेव हि लोकेऽस्मिन्कालचक्रं प्रवर्तते॥५८
एतन्महार्णवं घोरमगाधं मोहसंज्ञितम् ।
विक्षिपेत्संक्षिपेच्चैव बोधयेत्सामरं जगत् ५९
कामं क्रोधं भयं लोभमभिद्रोहमथानृतम् ।
इन्द्रियाणां निरोधेन सततस्त्यजति दुस्त्यजान्
यस्यैते निर्जिता लोके त्रिगुणाः पञ्चधातवः ।
व्योम्नि तस्य परं स्थानमानन्त्यमथ लभ्यते६१
पञ्चेन्द्रियमहाकूलां मनोवेगमहोदकाम् ।
नदीं मोहह्रदां तीर्त्वा कामक्रोधावुभौ जयेत्
स सर्वदोषनिर्मुक्तस्ततः पश्यति तत्परम् ।
मनो मनसि सन्धाय पश्यन्नात्मानमात्मनि६३
सर्ववित्सर्वभूतेषु विन्दत्यात्मानमात्मनि ।
एकधा बहुधा चैव विकुर्वाणस्ततस्ततः ६४
ध्रुवं पश्यति रूपाणि दीपाद्दीपशतं यथा ।
स वै विष्णुश्च मित्रश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः

---

जन्मसुखं संसारसुखं पुत्रकलत्रपरिष्वङ्गजं न इष्यते न इष्टं भवति । ज्ञानेनात्मानुभवेन सपत्रं सयुक्तं सत्त्वं बुद्धिर्येषां तेषां ज्ञानसंपन्नसत्त्वानाम् ॥ ४७ ॥ **अत इति** । मनस इति शेषः । सूक्ष्मभावकरीं सूक्ष्मत्वकरीं निवृत्तिं वक्ष्यामि । मृदुना छन्दतः दारुणेन हठयोगेन । सर्वभूतेषु ब्राह्मणादिषु कर्तुं योग्यामिति शेषः ॥ ४८ ॥ गुणाः शौर्यौदार्यविद्वत्त्वतपस्वित्वादयो दर्पहेतुत्वादगुणा इव यस्मिन् वृत्ते तद्गुणागुणम् । अत एव अनासङ्गं अहं कर्ता ममेदमर्जितमित्यभिमानशून्यं एकचर्यं एकान्तवासः अनन्तरं निरस्तसमस्तभेदं अविच्छिन्नं वा ब्रह्ममयं ब्राह्मणजातिप्रधानं एकपदं सर्वसुखगर्भम् ॥ ४९ ॥ इन्द्रियनिरोधं कुर्वता कृत्स्नं ब्रह्माण्डं त्यक्तमित्यर्थः । अध्यात्माग्निर्विज्ञानम् ॥५२॥ **यथेति** । अभिसादृश्याद्विज्ञानेऽप्यग्निपदप्रयोगः प्रकाशकत्वसामान्यादिति भावः ॥५३॥ प्रसन्नात्मा निर्मलचित्तः आत्मनः स्वस्य हृदि यदा भूतानि पश्यति संप्रज्ञातावस्थायां नित्यं बहिर्मुखमनसः इयमेवान्तर्मुखत्वावस्थेत्याह—**तदेति** । यदैवं भवति तदायं स्वयंज्योतिर्भवति । अतीतानागतव्यवहितादिदर्शने सूर्यादिज्योतिषामभावात् । तदा सूक्ष्मात् हार्दात् ब्रह्मणोऽपेक्षया सूक्ष्मं परं ज्योतिः प्राप्नोति ॥ ५४ ॥ यन्निग्रहानिग्रहाभ्यां मुक्तिसंसारौ तन्नित्यं शरीरमुक्तम् । अथ तस्यापि नियामकं नित्यं शरीरमाह—**अग्निरिति** । अत्र यत् रूपं कृष्णं गौरं वा तदग्निः स्रोतः प्रवाहः तत्र द्रवं लोहितादिकं प्राह्य तत्पयः जलं स्पर्शनं वातः यत्तु पङ्क—काष्ठादिस्थानीयघनमांसास्थ्यादिधरमिदं तत् मही घोरं बीभत्सं आकाश एव श्रवणरूपेण यत्र तत्तथा ॥ ५५ ॥ पञ्च स्रोतांसि इन्द्रियगोलकानि नवद्वारं द्वे कर्णयोर्द्वे चक्षुषोर्द्वे नासिकयोरेकं मुखमधो द्वे चेति द्वे जीवपरमेश्वरौ दैवते यत्र ॥ ५६ ॥ अदृश्यममलत्वात् । त्रिगुणं परेषां दृष्टमात्रं सत्सुखदुःखमोहोन्मादकम् । त्रिधातुकं वातपित्तकफमयं ससर्गाभिरतं अन्नादिसंसर्गेणैव अभिरमते नान्यथा संशयाभिरतमिति पाठे संशयोद्बोधकं विनाशबीजमित्यर्थः । मूढं अचेतनं एवंविधं शरीरमिति धारणानिश्चयः । अत्र शरीरे शब्दादीनां दर्शनात्तदाश्रयाणामाकाशादीनां सत्त्वमनुमेयमित्यर्थः ॥ ५७ ॥ दुश्चरं दुःसमाधेयं व्याख्याक्रान्तं चेत् । सत्त्वं बुद्धिं एतदेव बाल्याद्यवस्थापन्नं कालः न तु कालो नाम षष्ठः पदार्थः कश्चिदस्ति ॥ ५८ ॥ महार्णवं महार्णवसमं घोरं एतदेव निमित्तभूतं सत्सृष्टिसंहारबोधानां हेतुर्भवति ॥ ५९ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन इदं शरीरं त्यजन् सतः नित्यं विद्यमानानपि कामादींस्त्यजति ॥६०॥ एते स्थूलदेहरूपाः प्रकाशप्रवृत्तिमोहनिमित्तत्वेन त्रिगुणा निर्जिता योगबलेनातिक्रमिता परं ब्राह्मम् ॥ ६१ ॥ मनसि हृदयपुण्डरीके आत्मनि शरीरे ॥ ६३ ॥ **एकधा** त्वंपदार्थसाक्षात्कारेण **बहुधा** वैश्वरूप्येण ॥ ६४ ॥ **रूपाणि** स्वशरीराणि शतशः पश्यति दीपाद्दीपशतं यथा मद्यः प्रवर्तते । एवं योगिसंकल्पमात्रादनेकानि

स हि धाता विधाता च
स प्रभुः सर्वतोमुखः ।
हृदयं सर्वभूतानां
महानात्मा प्रकाशते ॥ ६६

तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च
यक्षाः पिशाचाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे
महर्षयश्चैव सदा स्तुवन्ति ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसवादे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## ४३

ब्रह्मोवाच ।

मनुष्याणां तु राजन्यः क्षत्रियो मध्यमो गुणः
कुञ्जरो वाहनानां च सिंहश्चारण्यवासिनाम्
अविः पशूनां सर्वेषामाहिस्तु बिलवासिनाम् ।
गवां गोवृषभश्चैव स्त्रीणां पुरुष एव च ॥ २
न्यग्रोधो जम्बुवृक्षश्च पिप्पल. शाल्मलिस्तथा
शिंशपा मेषशृङ्गश्च तथा कीचकवेणवः ॥ ३
एते द्रुमाणां राजानो लोकेऽस्मिन्नात्र संशयः
हिमवान्पारियात्रश्च सह्यो विन्ध्यस्त्रिकूटवान्
श्वेतो नीलश्च भासश्च कोष्ठवांश्चैव पर्वतः ।
गुरुस्कन्धो महेन्द्रश्च माल्यवान्पर्वतस्तथा ५
एते पर्वतराजानो गणानां मरुतस्तथा ।
सूर्यो ग्रहाणामधिपो नक्षत्राणां च चन्द्रमाः ६
यमः पितॄणामधिपः सरितामथ सागरः ।
अम्भसां वरुणो राजा मरुतामिन्द्र उच्यते ७
अर्कोऽधिपतिरुष्णानां ज्योतिषामिन्दुरुच्यते
अग्निर्भूतपतिर्नित्यं ब्राह्मणानां बृहस्पतिः ॥ ८
ओषधीनां पतिः सोमो विष्णुर्बलवतां वरः ।
त्वष्टाधिराजो रूपाणां पशूनामीश्वरः शिवः
दीक्षितानां तथा यज्ञो देवानां मघवा तथा ।
दिशामुदीची विप्राणां सोमो राजा प्रतापवान्
कुबेरः सर्वरत्नानां देवतानां पुरन्दरः ।
एष भूताधिपः सर्गः प्रजानां च प्रजापतिः ११
सर्वेषामेव भूतानामहं ब्रह्ममयो महान् ।
भूतं परतरं मत्तो विष्णोर्वाऽपि न विद्यते १२
राजाधिराजः सर्वेषां विष्णुर्ब्रह्ममयो महान् ।
ईश्वरत्वं विजानीध्वं कर्तारमकृतं हरिम् ॥१३
नरकिंनरयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
देवदानवनागानां सर्वेषामीश्वरो हि सः ॥१४
भगदेवानुयातानां सर्वासां वामलोचना ।
माहेश्वरी महादेवी प्रोच्यते पार्वती हि सा
उमां देवीं विजानीध्वं नारीणामुत्तमां शुभाम्
रतीनां वसुमत्यस्तु स्त्रीणामप्सरसस्तथा ॥ १६
धर्मकामाश्च राजानो ब्राह्मणा धर्मसेतवः ।
तस्माद्राजा द्विजातीनां प्रयतेत स्म रक्षणे१७
राज्ञां हि विषये येषामवसीदन्ति साधवः ।
हीनास्ते स्वगुणैः सर्वैः प्रेत्य चोन्मार्गगामिनः
राज्ञां हि विषये येषां साधवः परिरक्षिताः ।
तेऽस्मिँल्लोके प्रमोदन्ते सुखं प्रेत्य च भुञ्जते ॥
प्राप्नुवन्ति महात्मान इति वित्त द्विजर्षभाः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नियतं धर्मलक्षणम् २०
अहिंसा परमो धर्मो हिंसा चाधर्मलक्षणा ।
प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः २१

---

शरीराणि प्रवर्तन्ते । 'स एकधा भवति त्रिधा भवति' इत्यादिश्रुते । 'प्रदीपवदावेश' इति न्यायाच्च ॥६५॥ कथमेवं योगिन सामर्थ्यमुदेतीत्याशंक्य तस्यैवेश्वरत्वान्नैवमित्याह—**स हीति** । अत एव चानन्याधिपतिरिति न्यायश्चात्रानुसन्धेय ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विचत्वारिंशोऽध्याय· ४२

**४३**

अस्यैवानन्याधिपतेर्योगिन ईश्वरत्वसमर्थनार्थं विभूतीराह—**मनुष्याणामित्यादिना ब्राह्मणा धर्मसेतव इत्यन्तेन** । मध्यमो गुण रजोगुणप्रधानः ॥१॥ ईश्वरत्वं ऐश्वर्यं नरादीना हरिरेवेत्यर्थ ॥ १३ ॥ भगदेवा कामुकास्तैरनुयातानामनुसृताना स्त्रीणा सर्वासा मध्ये माहेश्वरी वामलोचनेति सम्बन्ध ॥१५॥ रतीना प्रीतिसुखाना वसुमत्य· धनवत्य धनलाभगर्वितं यत्प्रीतिसुखं तदेव महदित्यर्थ ॥ १६ ॥ एवं विद्वान् विश्वैश्वर्यं प्राप्नोतीत्युक्तम् । इदानीं विद्वत्त्वप्राप्तिसाधनान्याह—**अहिंसेति** ॥ २१ ॥

शब्दलक्षणमाकाशं वायुस्तु स्पर्शलक्षणः ।
ज्योतिषां लक्षणं रूपमापश्च रसलक्षणाः॥ २२
धारिणी सर्वभूतानां पृथिवी गन्धलक्षणा ।
स्वरव्यञ्जनसंस्कारा भारती शब्दलक्षणा २३
मनसो लक्षणं चिन्ता चिन्तोक्ता बुद्धिलक्षणा
मनसा चिन्तितानर्थान् बुद्ध्या चेह व्यवस्यति
बुद्धिर्हि व्यवसायेन लक्ष्यते नात्र संशयः ।
लक्षणं मनसो ध्यानमव्यक्तं साधु लक्षणम् २५
प्रवृत्तिलक्षणो योगो ज्ञानं संन्यासलक्षणम् ।
तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान् ॥
संन्यासी ज्ञानसंयुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्।
अतीतो द्वन्द्वमभ्येति तमोमृत्युजरातिगः २७
धर्मलक्षणसंयुक्तमुक्तं वो विधिवन्मया ।
गुणानां ग्रहणं सम्यग्वक्ष्याम्यहमतः परम् २८
पार्थिवो यस्तु गन्धो वै घ्राणेन हि स गृह्यते ।
घ्राणस्थश्च तथा वायुर्गन्धज्ञाने विधीयते॥२९
अपां धातू रसो नित्यं जिह्वया स तु गृह्यते ।
जिह्वास्थश्च तथा सोमो रसज्ञाने विधीयते३०

ज्योतिषश्च गुणो रूपं चक्षुषा तच्च गृह्यते ।
चक्षुःस्थश्च सदादित्यो रूपज्ञाने विधीयते ३१
वायव्यस्तु सदा स्पर्शस्त्वचा प्रज्ञायते च सः
त्वक्स्थश्चैव सदा वायुः स्पर्शने स विधीयते॥
आकाशस्य गुणो ह्येष श्रोत्रेण च स गृह्यते ।
श्रोत्रस्थाश्च दिशः सर्वाः शब्दज्ञाने प्रकीर्तिताः
मनसश्च गुणश्चिन्ता प्रज्ञया स तु गृह्यते ।
हृदिस्थश्चेतनो धातुर्मनोज्ञाने विधीयते॥ ३४
बुद्धिरध्यवसायेन ज्ञानेन च महांस्तथा ।
निश्चित्य ग्रहणाद्व्यक्तमव्यक्तं नात्र संशयः॥ ३५
अलिङ्गग्रहणो नित्यः क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ।
तस्मादलिङ्गः क्षेत्रज्ञः केवलं ज्ञानलक्षणः ३६
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं गुणानां प्रभवाप्ययम् ।
सदा पश्याम्यहं लीनो विजानामि शृणोमि च
पुरुषस्तद्विजानीते तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
गुणवृत्तं तथा वृत्तं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति ॥ ३८
आदिमध्यावसानान्तं सृज्यमानमचेतनम् ।
न गुणा विदुरात्मानं सृज्यमानाः पुनः पुनः॥

---

शब्दलक्षणमित्यादयो दृष्टान्ता ॥ २२ ॥ भारती परकीया विद्या स्वरव्यञ्जनसंस्कारवती शब्देनैव लक्ष्यते ॥ २३ ॥ विधेयमाह—**मनस इति** । इदं कर्तव्यं नवेत्यादिर्विचारश्चिन्ता तया मनोनामकं तत्त्वं लक्ष्यते । चिन्तापि बुद्ध्या परीक्ष्यते व्यवस्यति निश्चिनोति ॥ २४ ॥ एतदेवाह—**बुद्धिर्हीति** । व्यवसायेन इदमित्थमेवेतिनिश्चयेन मनसश्चित्तस्य ध्यानं लोकतः शास्त्रतो वानुभूतस्य विषयस्य पुनः पुनरुद्बोधके सत्यसति वा यत्स्फुरणं तच्चित्तस्य लक्षणम् । एवं मनोबुद्धिचित्तानां व्यक्तानि लक्षणान्युक्तानि । साध्नोतीति साधुः पुरुषस्तस्य लक्षणमव्यक्तं न केनचिदसौ व्यज्यतेऽपि तु स्वयंप्रकाश इत्यर्थः ॥ २५ ॥ एवं मनआदिभ्यो विवेचितस्य पुरुषस्याविगमोपायमाह कर्मनिन्दापूर्वकं प्रवृत्तीति योगः कर्माणि ॥ २६ ॥ द्वन्द्वं मानापमानादि अतीतोऽतिक्रान्तः ॥२७॥ गुणानां भूतेन्द्रियादीनां धर्मस्वरूपलक्षणानि संयुक्तं संयोगाश्च तेषां समाहारो धर्मलक्षणसंयुक्तम् । धर्मः सुषिरत्वादिकम् । लक्षणं शब्दादिकम् । संयुक्तं अन्योन्यव्यतिषक्तत्वम् । इदानीं तेषां ग्रहणं कया देवतयाऽनुगृहीतेन केन करणेन को वा गुणो गृह्यते इति वक्ष्यते ॥ २८ ॥ **पार्थिव इति** । विधीयते अनुग्रहं कार्यते ॥ २९ ॥ धातुः सारः रसरूपः ॥ ३० ॥ **मनस इति** । यथा तेजोगुणो रूपं स्वाश्रयसहितं सूर्यानुगृहीतेन चक्षुषा गृह्यते एवं मनोगुणाश्चिन्ता स्वाश्रयसहिता चेतना धातुना जीवेनानुगृहीतया प्रज्ञया प्रकृष्टज्ञप्त्या धीवृत्ति-



विशेषेण गृह्यते । मनोज्ञाने इति गुणगुणिनोर्मनश्चित्तयोरभेदाभिप्रायेणोक्तम् ॥ ३४ ॥ एवं बुद्धिरध्यवसायेन स्वरूपेण गृह्यते । एवं महान् ज्ञानेन शुद्धसत्त्वरूपेण स्वरूपेणैव गृह्यते न तु करणान्तरेण इन्द्रियवत्। तत्र हेतुः—**निश्चित्य ग्रहणादिति** । यथा रूपदर्शनेन कार्येण चक्षुरिन्द्रियमस्तीति ज्ञायते न तु गृह्यतेऽतीन्द्रियत्वात् । एवं बुद्धिमहान्तौ इदमित्थमेवेति। अस्मीति चैव रूपेण निश्चयेन लिङ्गेनैव तयोः स्वरूपं व्यक्तं वस्तुतस्त्वव्यक्तमेव इन्द्रियत्ववदतीन्द्रियत्वात्॥३५॥ एवं बुद्धेश्चक्षुर्वदतीन्द्रियत्वं सूर्यवत्स्वप्रकाशत्वं चोक्तं यस्तु। तां गृह्णाति तमाह—**अलिङ्गेति** । लिङ्गद्वारा ग्रहणं बुद्ध्यादेरुक्तं क्षेत्रज्ञस्य तु न तथा स्वयंज्योतिष्ट्वादित्यर्थः । ज्ञानलक्षण उपलब्धिमात्रस्वरूपः नतूपलब्धिलिङ्ग अलिङ्गत्वात् ॥ ३६ ॥ क्षेत्रज्ञपदमपि क्षेत्रोपलब्धिमात्रवाचि नतु तदुपलब्धृवाचीत्याह—**अव्यक्तमिति** । अव्यक्तं उद्दिष्टमुपक्रान्तं क्षेत्रं तथा गुणानां कार्यरूपाणां उत्पत्तिप्रलयं च । प्रभवाप्ययमिति समाहारः अहं साक्षी लीनः स्वाध्यस्तेन कर्त्राच्छादितत्वात् अग्राह्य क्षेत्रालिङ्गस्थमिति पाठे क्षेत्रलिङ्गे स्थूलसूक्ष्मशरीरे स्थितं गुणानां सत्त्वादीनां उत्पत्त्यादिना ज्ञेयं अव्यक्तं लीनमप्यहं पश्यामि ॥ ३७ ॥ गुणवृत्तं प्रकाशप्रवृत्तिमोहादि ॥ ३८ ॥ तदेव आदिमध्यावसानान्तं उत्पत्त्यादिना बद्धं अन्तशब्दो बद्धत्ववाची । अति अदि बन्धने इत्यस्य रूपम् । सृज्यमानं च

न सत्त्वं विन्दते कश्चित्क्षेत्रज्ञस्त्वेव विन्दति।
गुणानां गुणभूतानां यत्परं परमं महत् ॥ ४०
तस्माद्गुणांश्च सत्त्वं च परित्यज्येह धर्मवित्।
क्षीणदोषो गुणातीतः क्षेत्रज्ञं प्रविशत्यथ॥ ४१
निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निःस्वाहाकार एव च
अचलश्चानिकेतश्च क्षेत्रज्ञः स परो विभुः ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## ४४

ब्रह्मोवाच ।
यदादिमध्यपर्यन्तं ग्रहणोपायमेव च ।
नामलक्षणसयुक्त सर्वं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ १
अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासाः शुक्लादयः स्मृताः
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः
भूमिरादिस्तु गन्धानां रसानामाप एव च ।
रूपाणां ज्योतिरादित्यः स्पर्शानां वायुरुच्यते
शब्दस्यादिस्तथाकाशमेष भूतकृतो गुणः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि भूतानामादिमुत्तमम्॥४
आदित्यो ज्योतिषामादिरग्निर्भूतादिरुच्यते
सावित्री सर्वविद्यानां देवतानां प्रजापतिः ५
ओंकारः सर्ववेदानां वचसां प्राण एव च ।
यदस्मिन्नियतं लोके सर्वं सावित्रिरुच्यते ६
गायत्री च्छन्दसामादिः प्रजानां सर्ग उच्यते
गावश्चतुष्पदामादिर्मनुष्याणां द्विजातयः ॥ ७
श्येनः पतत्रिणामादिर्यज्ञानां हुतमुत्तमम् ।
सरीसृपाणां सर्वेषां ज्येष्ठः सर्पो द्विजोत्तमाः
कृतमादिर्युगानां च सर्वेषां नात्र संशयः ।
हिरण्य सर्वरत्नानामोषधीना यवास्तथा ९
सर्वेषां भक्ष्यभोज्यानामन्नं परममुच्यते ।
द्रवाणां चैव सर्वेषां पेयानामाप उत्तमाः १०
स्थावराणां तु भूतानां सर्वेषामविशेषतः ।
ब्रह्मक्षेत्रं सदा पुण्यं प्लक्षः प्रथमतः स्मृतः ॥ ११
अहं प्रजापतीनां च सर्वेषां नात्र संशयः ।
मम विष्णुरचिन्त्यात्मा स्वयंभूरिति स स्मृतः
पर्वतानां महामेरुः सर्वेषामग्रजः स्मृतः ।
दिशां च प्रदिशां चोर्ध्वं दिक्पूर्वा प्रथमा तथा
तथा त्रिपथगा गङ्गा नदीनामग्रजा स्मृता ।
तथा सरोदपानानां सर्वेषां सागरोऽग्रजः १४
देवदानवभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
नरकिन्नरयक्षाणां सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ १५
आदिर्विश्वस्य जगतो विष्णुर्ब्रह्ममयो महान् ।
भूतं परतरं यस्मात्त्रैलोक्ये नेह विद्यते ॥ १६
आश्रमाणां च सर्वेषां गार्हस्थ्यं नात्र संशयः
लोकानामादिरव्यक्तं सर्वस्यान्तस्तदेव च१७
अहान्यस्तमयान्तानि उदयान्ता च शर्वरी ।
सुखस्यान्तं सदा दुःखं दुःखस्यान्तं सदा सुखं
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः
संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवित

---

गुणवृत्तमेव—**सृज्यमाना इति** । परिणामिन कूटस्थ न पश्यन्त्यपि तु कूटस्थ एव तान्प्रकाशयतीत्यर्थ ॥ ३९ ॥ सत्वं आत्मानं गुणभूताना भोग्याना पञ्चम्यर्थे षष्ठी तेभ्यो यत्परं सत्यामिति सम्बन्ध ॥ ४० ॥ गुणान्दृश्यान् सत्त्वं बुद्धिं दर्शने करणभूता परित्यज्य क्षेत्रज्ञं परमात्मानं विशति ॥४१॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४३ ॥

४४

क्षेत्रज्ञप्रवेशलक्षणस्य मोक्षस्य नित्यत्वं स्वरूपमात्रत्व च वक्तु यज्जन्मादिमत्तदनित्य कर्म प्राप्य चेति तत्सर्वमनुक्रामति—**यदादीति** । आदिमध्यपर्यन्तं जन्मादिमत् ग्रहणे उपायोऽस्यस्य तत् ग्रहणोपाय कर्मसाध्य तत्सर्वं वक्ष्यामि ॥ १ ॥ अग्निर्जाठररूपी भूताना जरायुजाण्डजाना ऊष्मरूपी प्रस्वेदवृष्टिहेतुतया स्वेदजोद्भिज्जानाम् ॥ ५ ॥ सिंहावलोकनेन सावित्रीं व्याचष्टे उपासनार्थं नियत जन्य ब्राह्मणक्षत्रियादिम्लेच्छान्ताना तत्सर्वं सावित्रीपदवाच्यम् ॥ ६ ॥ सर्ग सृष्ट्यादिकाल ॥ ७ ॥ हुतं अग्नौ ब्राह्मणे वा देवतोद्देशेन दत्तं सर्पो वासुकि ॥ ८ ॥ सरोदपानाना सरसा कूपादीना च सन्निधरार्थं ॥ १४ ॥ ईश्वरो रुद्र ॥ १५ ॥

सर्वं कृतं विनाशान्तं जातस्य मरणं ध्रुवम् ।
अशाश्वतं हि लोकेऽस्मिन्सदा स्थावरजङ्गमम्
इष्टं दत्तं तपोऽधीतं व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वमेतद्विनाशान्तं ज्ञानस्यान्तो न विद्यते२१
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः
निर्ममो निरहङ्कारो मुच्यते सर्वपाप्मभिः २२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## ४५

ब्रह्मोवाच ।
बुद्धिसारं मनस्तम्भमिन्द्रियग्रामबन्धनम् ।
महाभूतपरिस्कन्धं निवेशपरिवेशनम् ॥ १
जराशोकसमाविष्टं व्याधिव्यसनसम्भवम्
देशकालविचारीदं श्रमव्यायामनिःस्वनम् २
अहोरात्रपरिक्षेपं शीतोष्णपरिमण्डलम् ।
सुखदुःखान्तसंश्लेषं क्षुत्पिपासावकीलकम् ३
छायातपविलेखं च निमेषोन्मेषविह्वलम् ।
घोरमोहजलाकीर्णं वर्तमानमचेतनम् ॥ ४
मासार्धमासगणितं विषमं लोकसञ्चरम् ।
तमोनियमपङ्कं च रजोवेगप्रवर्तकम् ॥ ५
महाहङ्कारदीप्तं च गुणसञ्जातवर्तनम् ।
अरतिग्रहणानीकं शोकसंहारवर्तनम् ॥ ६
क्रियाकारणसंयुक्तं रागविस्तारमायतम् ।
लोभेप्सापरिविक्षोभं विचित्राज्ञानसम्भवम्
भयमोहपरीवारं भूतसम्मोहकारकम् ।
आनन्दप्रीतिचारं च कामक्रोधपरिग्रहम् ॥ ८
महदादिविशेषान्तमसक्तं प्रभवाव्ययम् ।
मनोजवं मनःकान्तं कालचक्रं प्रवर्तते ॥ ९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

अध्यायद्वयेन ज्ञानोपायान् वर्मान्विवक्षुरज्ञाना कालचक्राधीनत्वं दर्शयति—**बुद्धीत्यादिना** । अत्र नूतनत्वपुराणत्वादिवदतीतत्वानागतत्वादिरपि द्रव्यस्यैव धर्म इत्यतीतानागतादिव्यवहारहेतुर्द्रव्यमेव न तु कालो नाम षष्ठ पदार्थस्तदर्थमेष्टव्य इति मन्वानो देहरूपं द्रव्यमेव कालचक्रत्वेन वर्णयति बुद्धिसारमित्यादिविशेषणयुक्तं कालचक्रं प्रवर्तत इति नवमेनान्वय । बुद्धिरेव सार उपादेयांशो यस्मिन् मनस्तम्भं मनसा स्तंभेनेव धृतम् । महाभूतपरिस्कन्धं पञ्चभूतसमूहात्मकम् । स्कन्ध स्याद्भूपतौ वर्गे साम्परायसमूहयो इति **मेदिनी** । निवेशपरिवेशनं स्थेव यत्र नेमिवदावरणभूता ॥ १ ॥ सम्भव उत्पत्तिस्थानं देशकालाभ्या विचरति तथा श्रम खेद व्यायामस्तद्धेतुर्गमनादि ॥ २ ॥ परिक्षेपश्चालक । परिमण्डलं परिवेष । अन्तसंश्लेष सन्धि । अवकीलका अन्त प्रविष्टा शङ्कव ॥ ३ ॥ छायातपौ मेघसन्तापौ विलेखावुत्खातारौ यत्र तत् च्छायातपविलेखं निमेषमात्रेण उन्मेषमात्रेण च विह्वलं व्याकुलं घोरं बीभत्सं मोहजलं अश्रु शोकव्याप्तमित्यर्थः। वर्तमान सदागति अचेतन जडम् ॥४॥ मासादिना कालेन परिमितम् । विषमं कदाचिन्मनुष्याकार कदाचित्पश्वाकार कदाचिदन्याकारमिति । लोकेषु ऊर्ध्वमध्याधोगतेषु सञ्चर सञ्चरणं यस्या तमोनियमपङ्क तमोगुणेन यो नियम कर्मज्ञानयोर्निरोध स एव पङ्कवन्मालिन्याख्यपापहेतुर्यस्मिन्। रजोवेगप्रवर्तक तम सत्त्वसंमिश्रस्य रजसो वेग विहितानिषिद्धकर्मसु प्रवर्तको यत्र ॥५॥ अहङ्कारो दर्प । सन्वाहङ्कारेति पाठे बुद्ध्यहङ्काराभ्या चेति तमित्यर्थ । गुणै सत्त्वादिभि सञ्जातं वर्तनमवस्थानं यस्य । पाठान्तरे मण्डलं सङ्घात अरतय इष्टालाभजा परितापा तान्येव ग्रहणानीकानि बन्धपङ्क्तिका समूहो यत्र । शोक संहारो मृत्युदु खं ताभ्यामेव वर्तनं जीवनं यस्य ॥६॥ लोभ ईप्सा तृष्णा ते एव परिविक्षोभो निम्नोन्नतदेशस्थानीयश्चक्रस्यास्फालनहेतुर्यत्र । विचित्र त्रिगुणात्मकत्वात्तच्च तदज्ञानं माया तत सम्भव उत्पत्तिर्यस्य ॥ ७ ॥ आनन्दप्रीतिचार बाह्यसुखासक्त्या चरतीति तथा ॥ ८ ॥ विशेषा स्थूलपिण्डादय असक्तं क्वचिदपि अप्रमानिरुद्धं प्रभवति संसरत्यनेन तत् प्रभवं तच्च तदव्ययं चेति अव्ययं संसारकारणमित्यर्थ ॥ ९ ॥

एतद्द्वन्द्वसमायुक्तं कालचक्रमचेतनम् ।
विसृजेत्संक्षिपेच्चापि बोधयेत्सामरं जगत् १०
कालचक्रप्रवृत्तिं च निवृत्तिं चैव तत्त्वतः ।
यस्तु वेद नरो नित्य न स भूतेषु मुह्यति ११
विमुक्तः सर्वसंस्कारैः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च
वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः
सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः ॥ १३
यः कश्चिदिह लोकेऽस्मिन्नागमः परिकीर्तितः
तस्यान्तगमनं श्रेयः कीर्तिरेषा सनातनी ॥१४
संस्कारैः संस्कृतः पूर्वं यथावच्चरितव्रतः ।
जातौ गुणविशिष्टायां समावर्तेत तत्त्ववित्
स्वदारनिरतो नित्यं शिष्टाचारो जितेन्द्रियः
पञ्चभिश्च महायज्ञैः श्रद्दधानो यजेदिह ॥ १६
देवतातिथिशिष्टाशी निरतो वेदकर्मसु ।
इज्याप्रदानयुक्तश्च यथाशक्ति यथासुखम् १७
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः ।
न च वागङ्गचपल इति शिष्टस्य गोचरः ॥ १८

नित्यं यज्ञोपवीती स्याच्छुक्लवासाः शुचिव्रतः
नियतो यमदानाभ्यां सदा शिष्टैश्च संविशेत्॥
जितशिश्नोदरो मैत्रः शिष्टाचारसमन्वितः ।
वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् २०
अधीत्याध्यापनं कुर्यात्तथा यजनयाजने ।
दानं प्रतिग्रहं वापि षड्गुणां वृत्तिमाचरेत् ॥
त्रीणि कर्माणि जानीत
ब्राह्मणानां तु जीविका ।
याजनाध्यापने चोभे
शुद्धाच्चापि प्रतिग्रहः ॥ २२
अथ शेषाणि चान्यानि
त्रीणि कर्माणि यानि तु ।
दानमध्ययनं यज्ञो
धर्मयुक्तानि तानि तु ॥ २३
तेष्वप्रमादं कुर्वीत
त्रिषु कर्मसु धर्मवित् ।
दान्तो मैत्रः क्षमायुक्तः
सर्वभूतसमो मुनिः ॥ २४
सर्वमेतद्यथाशक्ति विप्रो निर्वर्तयन् शुचिः ।
एवं युक्तो जयेत्स्वर्गं गृहस्थः संशितव्रतः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## ४६

ब्रह्मोवाच ।
एवमेतेन मार्गेण पूर्वोक्तेन यथाविधि ।
अधीतवान् यथाशक्ति तथैव ब्रह्मचर्यवान् १
स्वधर्मनिरतो विद्वान् सर्वेन्द्रिययतो मुनिः ।
गुरोः प्रियहिते युक्तः सत्यधर्मपरः शुचिः॥ २
गुरुणा समनुज्ञातो
भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ।

हविष्यभैक्ष्यभुक् चापि
स्थानासनविहारवान् ॥ ३
द्विकालमग्निं जुह्वानः शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
धारयीत सदा दण्डं वैल्वं पालाशमेव वा ४
क्षौमं कार्पासिकं चापि मृगाजिनमथापि वा
सर्वं काषायरक्तं वा वासो वापि द्विजस्य ह

---

द्वन्द्वानि मानापमानादीनि तन्मयं देहेन्द्रियादि सङ्घातचक्रं रजस्तम सत्त्वप्रधानं सत्सृष्टिर्महारतत्त्वज्ञानाना हेतुर्भवति ॥ १० ॥ प्रवृत्तिं प्रवृत्तिहेतुं निवृत्तिं निवृत्तिहेतुं वेद विदित्वा हानोपादानकृत्न मुह्यति ॥ ११ ॥ आगम विधिनिषेधशास्त्रं ॥ १४ ॥ गोचर विषयो लक्षणमिति यावत् ॥ १८ ॥ संविशेत् इति पाठे कुर्यादिति शेष ॥ १९ ॥ पाठान्तरे आप्लवनं व्रतसमाप्तिस्नानं समावर्तनाख्यं वृत्ति वर्तनम् ॥ २१॥ इति श्रीमहाभारते नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४५ ॥

— —

४६

एवमेतेन मार्गेणेत्यादिरध्यायो निगदव्याख्यात ॥ १

मेखला च भवेन्मौञ्जी जटी नित्योदकस्तथा।
यज्ञोपवीती स्वाध्यायी अलुब्धो नियतव्रतः
पूताभिश्च तथैवाद्भिः सदा दैवततर्पणम्।
भावेन नियतः कुर्वन्ब्रह्मचारी प्रशस्यते ॥ ७
एवं युक्तो जयेल्लोकान्वानप्रस्थो जितेन्द्रियः।
न संसरति जातीषु परमं स्थानमाश्रितः॥ ८
संस्कृतः सर्वसंस्कारैस्तथैव ब्रह्मचर्यवान्।
ग्रामान्निष्क्रम्य चारण्ये मुनिः प्रव्रजितो वसेत्
चर्मवल्कलसंवासी सायं प्रातरुपस्पृशेत्।
अरण्यगोचरो नित्यं न ग्रामं प्रविशेत्पुनः १०
अर्चयन्नतिथीन्काले दद्याच्चापि प्रतिश्रयम्।
फलपत्रावरैर्मूलैः श्यामाकेन च वर्तयन् ॥ ११
प्रवृत्तमुदकं वायुं सर्वं वानेयमाश्रयेत्।
प्राश्नीयादानुपूर्व्येण यथादीक्षमतन्द्रितः ॥ १२
समूलफलभिक्षाभिरर्चेदतिथिमागतम्।
यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्भिक्षां नित्यमतन्द्रितः
देवतातिथिपूर्वं च सदा प्राश्नीत वाग्यतः।
अस्पर्धितमनाश्चैव लघ्वाशी देवताश्रयः॥ १४
दान्तो मैत्रः क्षमायुक्तः
केशान् श्मश्रु च धारयन्।
जुह्वन्स्वाध्यायशीलश्च
सत्यधर्मपरायणः ॥ १५
शुचिदेहः सदा दक्षो वननित्यः समाहितः।
एवं युक्तो जयेत्स्वर्गं वानप्रस्थो जितेन्द्रियः॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ वा पुनः।
य इच्छेन्मोक्षमास्थातुमुत्तमां वृत्तिमाश्रयेत् ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा नैष्कर्म्यमाचरेत्।
सर्वभूतसुखो मैत्रः सर्वेन्द्रिययतो मुनिः ॥ १८
अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया।
कृत्वा प्राह्णे चरेद्भैक्ष्यं विधूमे भुक्तवज्जने ॥ १९
वृत्ते शरावसम्पाते भैक्ष्यं लिप्सेत मोक्षवित्
लाभेन च न हृष्येत नालाभे विमना भवेत्।
न चातिभिक्षां भिक्षेत केवलं प्राणयात्रिकः
यात्रार्थी कालमाकांक्षंश्चरेद्भैक्ष्यं समाहितः।
लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुञ्जीताभिपूजितः २१
अभिपूजितलाभाद्धि विजुगुप्सेत भिक्षुकः।
भुक्तान्यन्नानि तिक्तानि कषायकटुकानि च
नास्वादयीत भुञ्जानो रसांश्च मधुरांस्तथा।
यात्रामात्रं च भुञ्जीत केवलं प्राणधारणम् २३
असंरोधेन भूतानां वृत्तिं लिप्सेत मोक्षवित्
न चान्यमन्नं लिप्सेत भिक्षमाणः कथञ्चन २४

न सन्निकाशयेद्धर्मं विविक्ते चारजाश्चरेत्।
शून्यागारमरण्यं वा वृक्षमूलं नदीं तथा २५
प्रतिश्रयार्थं सेवेत पार्वतीं वा पुनर्गुहाम्।
ग्रामैकरात्रिको ग्रीष्मे वर्षास्वेकत्र वा वसेत् २६
अध्वा सूर्येण निर्दिष्टः कीटवच्च चरेन्महीम्।
दयार्थं चैव भूतानां समीक्ष्य पृथिवीं चरेत् २७
सञ्चयांश्च न कुर्वीत स्नेहवासं च वर्जयेत्।
पूताभिरद्भिर्नित्यं वै कार्यं कुर्वीत मोक्षवित्॥
उपस्पृशेदुद्धृताभिरद्भिश्च पुरुषः सदा।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमार्जवमेव च ॥ २९
अक्रोधश्चानसूया च दमो नित्यमपैशुनम्।
अष्टस्वेतेषु युक्तः स्याद्व्रतेषु नियतेन्द्रियः ॥ ३०
अपापमशठं वृत्तमजिह्मं नित्यमाचरेत्।
जोषयेत सदा भोज्यं ग्रासमागतमस्पृहः ॥ ३१
यात्रामात्रं च भुञ्जीत केवलं प्राणयात्रिकम्।
धर्मलब्धमथाश्नीयान्न काममनुवर्तयेत् ॥ ३२
ग्रासादाच्छादनादन्यन्न गृह्णीयात्कथञ्चन।
यावदाहारयेत्तावत्प्रतिगृह्णीत नाधिकम् ॥ ३३
परेभ्यो न प्रतिग्राह्यं न च देयं कदाचन।
दैन्यभावाच्च भूतानां संविभज्य सदा बुधः ॥
नाददीत परस्वानि न गृह्णीयादयाचितः।
न किञ्चिद्विषयं भुक्त्वा स्पृहयेत्तस्य वै पुनः॥
मृदमापस्तथान्नानि पत्रपुष्पफलानि च।
असंवृतानि गृह्णीयात्प्रवृत्तानि च कार्यवान् ३६
न शिल्पजीविकां जीवेद्धिरण्यं नोत कामयेत्
न द्वेष्टा नोपदेष्टा च भवेच्च निरुपस्कृतः ॥ ३७
श्रद्धापूतानि भुञ्जीत निमित्तानि च वर्जयेत्।
सुधावृत्तिरसक्तश्च सर्वभूतैरसंविदम् ॥ ३८
आशीर्युक्तानि सर्वाणि हिंसायुक्तानि यानि च
लोकसंग्रहधर्मं च नैव कुर्यान्न कारयेत् ॥ ३९
सर्वभावानतिक्रम्य लघुमात्रः परिव्रजेत्।
समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ४०
परं नोद्वेजयेत्कञ्चिन्न च कस्यचिदुद्विजेत्।
विश्वास्यः सर्वभूतानामग्र्यो मोक्षविदुच्यते॥
अनागतं च न ध्यायेन्नातीतमनुचिन्तयेत्।
वर्तमानमुपेक्षेत कालाकाङ्क्षी समाहितः ॥ ४२
न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेत्क्वचित्।
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा किञ्चिद्दुष्टं समाचरेत् ४३
इन्द्रियाण्युपसंहृत्य कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
क्षीणेन्द्रियमनोबुद्धिर्निरीहः सर्वतत्त्ववित् ४४

निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निःस्वाहाकार एव च
निर्ममो निरहङ्कारो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥४५
निराशीर्निर्गुणः शान्तो निरासक्तो निराश्रयः
आत्मसङ्गी च तत्त्वज्ञो मुच्यते नात्र संशयः
अपादपाणिपृष्ठं तदशिरस्कमनूदरम्।
प्रहीणगुणकर्माणं केवलं विमलं स्थिरम्॥४७
अगन्धमरसस्पर्शमरूपाशब्दमेव च।
अनुगम्यमनासक्तममांसमपि चैव यत्॥ ४८
निश्चिन्तमव्ययं दिव्यं गृहस्थमपि सर्वदा।
सर्वभूतस्थमात्मानं ये पश्यन्ति न ते मृताः॥
न तत्र क्रमते बुद्धिर्नेन्द्रियाणि न देवताः।
वेदा यज्ञाश्च लोकाश्च न तपो न व्रतानि च५०
यत्र ज्ञानवतां प्राप्तिरलिङ्गग्रहणा स्मृता।
तस्मादलिङ्गधर्मज्ञो धर्मतत्त्वमुपाचरेत्॥ ५१
गृहधर्माश्रितो विद्वान्विज्ञानचरितं चरेत्।
अमूढो मूढरूपेण चरेद्धर्ममदूषयन्॥ ५२
यथैनमवमन्येरन्परे सततमेव हि।
तथावृत्तश्चरेच्छान्तः सतां धर्मानकुत्सयन्॥
य एवं वृत्तसम्पन्नः स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च
मनो बुद्धिरहङ्कारमव्यक्तं पुरुषं तथा।
एतत्सर्वं प्रसंख्याय यथावत्तत्त्वनिश्चयात् ५५
ततः स्वर्गमवाप्नोति विमुक्तः सर्वबन्धनैः।
एतावदन्तवेलायां परिसंख्याय तत्त्ववित् ५६
ध्यायेदेकान्तमास्थाय मुच्यतेऽथ निराश्रयः
निर्मुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो वायुराकाशगो यथा ५७
क्षीणकोशो निरातङ्कस्तथेदं प्राप्नुयात्परम् ५८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

## ४७

ब्रह्मोवाच।
संन्यासं तप इत्याहुर्वृद्धा निश्चितवादिनः।
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ज्ञानं ब्रह्म परं विदुः॥१
अविदूरात्मकं ब्रह्म वेदविद्याव्यपाश्रयम्।
निर्द्वन्द्वं निर्गुणं नित्यमचिन्त्यगुणमुत्तमम्॥ २
ज्ञानेन तपसा चैव धीराः पश्यन्ति तत्परम्।
निर्णिक्तमनसः पूता व्युत्क्रान्तरजसोऽमलाः
तपसा क्षेममध्वानं गच्छन्ति परमेश्वरम्।
संन्यासनिरता नित्यं ये च ब्रह्मविदो जनाः
तपः प्रदीप इत्याहुराचारो धर्मसाधकः।
ज्ञानं वै परमं विद्यात्संन्यासं तप उत्तमम्॥५
यस्तु वेद निराधारं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयात्।
सर्वभूतस्थमात्मानं स सर्वगतिरिष्यते॥ ६
यो विद्वान्सहवासं च विवासं चैव पश्यति।
तथैवैकत्वनानात्वे स दुःखात्प्रतिमुच्यते॥ ७
यो न कामयते किञ्चिन्न किञ्चिदवमन्यते।
इहलोकस्थ एवैष ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ८
प्रधानगुणतत्त्वज्ञः सर्वभूतप्रधानवित्।
निर्ममो निरहङ्कारो मुच्यते नात्र संशयः॥ ९
निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च।
निर्गुणं नित्यमद्वन्द्वं प्रशमेनैव गच्छति॥ १०
हित्वा गुणमयं सर्वं कर्म जन्तुः शुभाशुभम्।
उभे सत्यानृते हित्वा मुच्यते नात्र संशयः ११
अव्यक्तयोनिप्रभवो बुद्धिस्कन्धमयो महान्।
महाहङ्कारविटप इन्द्रियाङ्कुरकोटरः॥ १२
महाभूतविशालश्च विशेषप्रतिशाखिनः।
सदापत्रः सदापुष्पः शुभाशुभफलोदयः॥ १३
आजीव्यः सर्वभूतानां
ब्रह्मवृक्षः सनातनः।
एन छित्त्वा च भित्त्वा च
तत्त्वज्ञानासिना बुधः॥ १४

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

४७

संन्यासमित्यध्यायेऽपि मुच्यते नात्र संशय इत्यन्तो ग्रंथः पूर्वमेव गतार्थः॥ १॥

छित्वा सङ्गमयान्पाशान्मृत्युजन्मजरोदयान् ।
निर्ममो निरहङ्कारो मुच्यते नात्र संशयः १५
द्वाविमौ पक्षिणौ नित्यौ संक्षेपौ चाप्यचेतनौ
एताभ्यां तु परो योऽन्यश्चेतनावान्स उच्यते

अचेतनः सत्त्वसंख्याविमुक्तः
सत्त्वात्परं चेतयतेऽन्तरात्मा ।
स क्षेत्रवित्सर्वसंख्यातबुद्धि-
र्गुणातिगो मुच्यते सर्वपापैः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## ४८

ब्रह्मोवाच ।
केचिद्ब्रह्ममयं वृक्षं केचिद्ब्रह्मवनं महत् ।
केचित्तु ब्रह्म चाव्यक्तं केचित्परमनामयम् ।
मन्यन्ते सर्वमप्येतदव्यक्तप्रभवाव्ययम् ॥ १
उच्छ्वासमात्रमपि चेद्योऽन्तकाले समो भवेत् ।
आत्मानमुपसङ्गम्य सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२
निमेषमात्रमपि चेत्संयम्यात्मानमात्मनि ।
गच्छत्यात्मप्रसादेन विदुषां प्राप्तिमव्ययाम्
प्राणायामैरथ प्राणान्संयम्य स पुनः पुनः ।
दशद्वादशभिर्वापि चतुर्विंशात्परं ततः ॥ ४

**द्वाविमाविति** । पक्षिणौ जीवेश्वरौ संक्षिप्येते ययोस्तौ संक्षेपौ तयोरुपाधी बुद्धिमाये तौ अचेतनौ । सखायाविति पाठे तु अचेतनौ प्रतिबिंबत्वेन दृश्यौ यस्तु ताभ्यां प्रतिबिंबरूपाभ्यामन्य बिंबस्थानीय स चेतनामात्रशरीरोपि चेतनावानित्युच्यते साक्ष्यसंसर्गात्साक्षीतिवत् ॥ १६ ॥ **अचेतन इति** । अचेतन इवाहंधीगम्यो दृश्यो जीव इति यावत् । सत्त्वसंख्याविमुक्त सत्त्वानि प्राणिन संख्यायन्ते पृथक्त्वेन गण्यंते यैस्ते देहाद्युपाधयस्तैर्विमुक्त सन्सत्त्वात् बुद्धे परं यद्वस्तु यच्च चेतयते बुद्ध्यादीन् अचेतनानपि चैतन्ययुक्तान्कुरुते । स एव क्षेत्रसंज्ञोऽन्तरात्मा कोऽसौ सर्वसंख्यातबुद्धि सर्वा सङ्ख्याता बुद्धयो येन सर्वासां बुद्धीनां साक्षित्वेन संख्याता परिच्छेदक इत्यर्थः । स एव गुणगुंफितः सन्सर्वैर्दोषैर्युज्यते गुणातिगस्तु तैर्मुच्यत इति ॥१७॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४७ ॥

४८

एवं सप्रपञ्चा ब्रह्मविद्या समाप्य शिष्यबुद्धिपरीक्षार्थं व्यामिश्रैर्वाक्यैस्तामेवानुवदति—**केचिदित्यादिना** । केचित्सप्रपञ्चं ब्रह्मेति वदन्तो वृक्षं संसारं ब्रह्ममयं ब्रह्मणो विकारमाहु 'ब्रह्मैव जगदाकारेण परिणमते' इति 'तदात्मानं स्वयमकुरुत' 'सच्च त्यच्चाभवत्'। 'आत्मकृते परिणामात्' इत्यादिश्रुतय स्मृतयश्च । केचित्परं वस्तु अनामयं निर्विकारं तत्र जगत्स्वप्नवत्कल्पितम् । स यदा स्वपिति तदैनं वाक्सर्वैर्नामभि सहाप्येति चक्षु सर्वै रूपै सहाप्येति स यदा प्रतिबुद्ध्यतेऽथैतस्मादात्मनः सर्वे प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका इति सुप्तिप्रबोधयोर्नामरूपात्मकस्यात्मन्येव लयोदयौ श्रूयेते। मायामात्रं तु कार्त्स्न्येन आत्मनि चैवं विचित्राश्च हीति स्मर्यते च। एवं श्रौतं मतद्वयमुक्त्वा साङ्ख्यमतमाह—**मन्यन्त इति** ॥१॥ तत्र प्रथमपक्षे उपासकानां आप्रायणादितिन्यायेन अन्त्यप्रत्ययस्यावश्यकत्वमाह उच्छ्वासमात्रं तावन्मात्रकाल समो निर्विशेष सर्वो वा समशब्दस्य सर्वपर्यायत्वात् स इदं सर्वं भवतीति श्रुतेश्च आत्मानं हार्दं ब्रह्म संगम्य उपास्य अमृतत्वाय कल्पते ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारेत्यर्थ ॥ २ ॥ द्वितीयपक्षे अन्तकालादन्यत्रापि क्षणिकनिर्विकल्पसाक्षात्कारान्मुच्यत इत्याह—**निमेषेति** । विदुषां प्राप्तिं प्राप्यं कैवल्यम् ॥ ३ ॥ तृतीयपक्षेऽपि मनोनिरोधेन मुच्यत इत्याह—**प्राणायामैरिति द्वाभ्याम्** । प्राणा इन्द्रियाणि बुद्धिमनःसहितानि द्वादश ते आयमन्ते निगृह्यन्ते यैस्तैः प्राणायामैः यमनियमादिभि । ते च यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयस्तर्कवैराग्याभ्यां सह दश वा मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाभि सह द्वादश वा। यमाः पञ्च नियमा पञ्च प्राणायामादय षट् मैत्र्यादयश्चत्वारस्तर्कों वैराग्यं चेति द्वाविंशतिर्वा संयम्य निरोध्य पुनः पुनरिति यावज्जीवमेवं कार्यं न तु सकृत्प्रयत्नेनात्र सिद्धिरस्तीति दर्शितम् । चतुर्विंशात् अव्यक्तात्परं अन्यं पञ्चविंशं पुरुषं लभते ॥४॥

एवं पूर्वं प्रसन्नात्मा लभते यद्यदिच्छति ।
अव्यक्तात्सत्त्वमुद्रिक्तममृतत्वाय कल्पते ॥ ५
सत्त्वात्परतरं नान्यत्प्रशंसन्तीह तद्विदः ।
अनुमानाद्विजानीमः पुरुषं सत्त्वसंश्रयम् ।
न शक्यमन्यथा गन्तुं पुरुषं द्विजसत्तमाः ॥ ६
क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।
ज्ञानं त्यागोऽथ संन्यासः सात्त्विकं वृत्तमिष्यते
एतेनैवानुमानेन मन्यन्ते वै मनीषिणः ।
सत्त्वं च पुरुषश्चैव तत्र नास्ति विचारणा ॥ ८
आहुरेके च विद्वांसो ये ज्ञानपरिनिष्ठिताः ।
क्षेत्रज्ञसत्त्वयोरैक्यमित्येतन्नोपपद्यते ॥ ९
पृथग्भूतं ततः सत्त्वमित्येतदविचारितम् ।
पृथग्भावश्च विज्ञेयः सहजश्चापि तत्त्वतः १०
तथैवैकत्वमानात्वमिष्यते विदुषां नयः ।
मशकोदुम्बरे चैक्यं पृथक्त्वमपि दृश्यते॥ ११
मत्स्यो यथान्यः स्यादप्सु संप्रयोगस्तथा तयोः
सम्बन्धस्तोयबिन्दूनां पर्णे कोकनदस्य च १२

गुरुरुवाच ।

इत्युक्तवन्तस्ते विप्रास्तदा लोकपितामहम् ।
पुनः संशयमापन्नाः पप्रच्छुर्मुनिसत्तमाः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

यद्यदिच्छति तदपि लभते योगसामर्थ्यात् । प्रसन्नात्मा विशुद्धसत्त्व यदा तु अव्यक्तात् अव्यक्तं प्राप्य सत्त्वं सत्त्वगुणः उद्रिक्तं उत्कृष्टतरं भवति पुरुषमात्राकार भवति तदाऽमृतत्वाय कल्पते पूर्णं शतसहस्रं च तिष्ठंत्यव्यक्तचिन्तका इत्यव्यक्तमात्रनिष्ठाना स्वर्गकालावधिस्मरणात् । चतुर्विंशादव्यक्तात्परमिति वा सम्बन्ध ॥ ५ ॥ धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यादीना आत्मप्राप्तिसाधनाना सत्त्वोत्कर्षलभ्यत्वात्सत्त्वमेव स्तौति सार्धेन—**सत्त्वादिति**—सत्त्वसंश्रयं तं पुरुषं अन्यथा सत्त्वासंश्रय इति गन्तुं न शक्यमिति योजना ॥ ६ ॥ वृत्तं परिपाक ॥ ७ ॥ पुरुषवत्स्वच्छत्वात्पुरुषोपकारित्वाच्च सत्त्वं पुरुषादभिन्नमिति मन्यन्ते **तार्किकाः** अत एव ते आत्मनि सत्त्वधर्मान्कर्तृत्वादीन्वास्तवान्मन्यन्ते इत्याह—**एतेनेति द्वाभ्याम्** । तत्रापि मन्यन्ते प्रातीतिकं एकत्वं **सांख्यादयः तार्किकास्तु** तदेव वास्तवमित्याहुरिति विवेक ॥ ८ ॥ एतद्दूषयति—**आहुरिति** ॥ ९ ॥ साख्यं प्रत्याह—**पृथगिति** यदि सत्त्वं तत पुरुषात्पृथक् अन्यत् भूतं नित्यानिर्वृत्तं च स्यात्तर्हि मुक्तमप्यात्मानं न जह्यात् । भूतत्वे तस्य निरन्वयनाशायोगात् । तस्मादनिर्मोक्षप्रसक्तेः इदं मतमविचारितं एकत्वपक्षोऽपि प्रत्युक्त एव । कर्तृत्वादेर्वास्तवत्वे धर्मिनाशमन्तरेणानिवृत्तेर्नैरात्म्यमानिर्मोक्षो वा प्रसज्येत इति भाव । सिद्धान्तमाह—पृथग्भावश्च विज्ञेय सहजश्चापि तत्त्वत । सत्त्वपुरुषयो समुद्रतरङ्गयोरिव शब्दतः प्रतीतितश्च पृथग्भावोऽस्ति। सत्त्वं च समुद्रे तरङ्ग इव पुरुषे सहजं, एवं च विलीनतरङ्गस्येव मुक्तसत्त्वस्य पुनरुत्पत्त्ययोगान्नानिर्मोक्ष इति कल्पितभेदेन संसारयात्रानिर्वाह अकल्पिता भेदेन मोक्षोपपत्तिरित्यर्थ ॥ १० ॥ एवमपि सत्त्वपुरुषयोरेकजात्यापत्तेर्जडाजडविभागो न स्यादित्याशंक्याह- **तथैवेति** नय. युक्ति । तप इति पाठे आलोचनपूर्वको निश्चयः । यथा उदुम्बरफलोदरे बाह्यस्यान्यस्य प्रवेशायोगात्तदवयव एव मशकदेहस्ततो विजातीय. सन्नाविर्भवति । एवं चिद्विलास एव सत्त्वं तत पृथग्भूय जडत्वेनाविर्भवतीत्यर्थ ॥ ११ ॥ सत्त्वपुरुषयो सम्बन्धे दृष्टान्त.—**पर्णे इति** । असङ्गत्वात्पुरुष सत्त्वधर्मैर्न लिप्यते तत्र लेपप्रतीतिस्त्वाध्यासिकीति भाव ॥१२॥ उक्तं विद्यते येषु ते उक्तवन्तः उक्तमर्थं सम्यगवधृतवन्त इत्यर्थ । सहजस्यापि सत्त्वस्य पुरुषासंसर्गित्वं दुर्घटं ब्रह्मणश्च वचनं न मिथ्येति तर्कश्रद्धाभ्यामुभयतो निरुद्धत्वात्संशयमापन्ना ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४८ ॥

## ४९

ऋषय ऊचुः ।
को वा स्विदिह धर्माणामनुष्ठेयतमो मतः ।
व्याहतामिव पश्यामो धर्मस्य विविधां गतिम् ॥ १
ऊर्ध्वं देहाद्वदन्त्येके नैतदस्तीति चापरे ।
केचित्संशयितं सर्वं निःसंशयमथापरे ॥ २
अनित्यं नित्यमित्येके नास्त्यस्तीत्यपि चापरे
एकरूपं द्विधेत्येके व्यामिश्रमिति चापरे ॥ ३
मन्यन्ते ब्राह्मणा एव ब्रह्मज्ञास्तत्त्वदर्शिनः ।
एकमेके पृथक्चान्ये बहुत्वमिति चापरे ॥ ४
देशकालावुभौ केचिन्नैतदस्तीति चापरे ।
जटाजिनधराश्चान्ये मुण्डाः केचिदसंवृताः ५
अस्नानं केचिदिच्छन्ति स्नानमप्यपरे जनाः ।
मन्यन्ते ब्राह्मणा देवा ब्रह्मज्ञास्तत्त्वदर्शिनः ॥६
आहारं केचिदिच्छन्ति केचिच्चानशने रताः ।
कर्म केचित्प्रशंसन्ति प्रशान्तिं चापरे जनाः ७
केचिन्मोक्षं प्रशंसन्ति
केचिद्भोगान्पृथग्विधान् ।
धनानि केचिदिच्छन्ति
निर्धनत्वमथापरे ।
उपास्य साधनं त्वेके
नैतदस्तीति चापरे ॥ ८
अहिंसानिरताश्चान्ये केचिद्धिंसापरायणाः
पुण्येन यशसा चान्ये नैतदस्तीति चापरे ॥ ९
सद्भावनिरताश्चान्ये केचित्संशयिते स्थिताः
दुःखादन्ये सुखादन्ये ध्यानमित्यपरे जनाः ॥
यज्ञमित्यपरे विप्राः प्रदानमिति चापरे ।
तपस्त्वन्ये प्रशंसन्ति स्वाध्यायमपरे जनाः ११
ज्ञानं संन्यासमित्येके स्वभावं भूतचिन्तकाः
सर्वमेके प्रशंसन्ति न सर्वमिति चापरे ॥ १२
एवं व्युत्थापिते धर्मे बहुधा विप्रबोधिते ।
निश्चयं नाधिगच्छामः संमूढाः सुरसत्तम १३
इदं श्रेय इदं श्रेय इत्येवं व्युत्थितो जनः ।
यो हि यस्मिन् रतो धर्मे स तं पूजयते सदा॥
तेन नोऽविहिता प्रज्ञा मनश्च बहुलीकृतम् ।
एतदाख्यातमिच्छामः श्रेयः किमिति सत्तम
अतः परं तु यद्गुह्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोश्चापि सम्बन्धः केन हेतुना १६
एवमुक्तः स तैर्विप्रैर्भगवाँल्लोकभावनः ।
तेभ्यः शशंस धर्मात्मा याथातथ्येन बुद्धिमान्

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

---

### ४९

एव सदिहाना प्रथमं वेदशास्त्रेषु मतभेद दर्शयन्ति— **को वेति** । निवृत्तिधर्मो वा प्रवृत्तिधर्मो वाऽनुष्ठेय — **न कर्मणेति** । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' (ई. वा. म १) इत्युभयविधश्रुतिदर्शनान्मुह्यामहे इति भाव ॥ १ ॥ ऊर्ध्वं देहात् देहनाशादूर्ध्वमपि आत्मास्तीत्येके वदन्तीति सम्बन्ध - **नैतदिति** । लोकायता सर्वं संशयितमिति **स्याद्वादिनः** सप्तभंगीनयज्ञा **नि संशयामिति** । प्रातिस्विक सर्वं तैर्थिका. ॥२॥ अनित्यं सर्वं सृष्टिप्रलययुक्तमिति तार्किकादय नित्यं प्रवाहानित्यमिति **मीमांसकाः** नास्तीति **शून्यवादिनः** आस्ति परंतु क्षणिकमिति **सौगताः** एकरूपं विज्ञानमेव द्विधा इदमर्थाकारमहमर्थाकारमिति **योगाचाराः** व्यामिश्रं भिन्नमाभिन्नं चेत् इति **उडुलोमाः** ॥ ३ ॥ एके ब्रह्मज्ञा शास्त्रज्ञा तत्त्वदर्शिनोऽपरोक्षज्ञानवन्त ब्राह्मणास्तु ब्रह्मैवैकमस्तीति मन्यन्ते सगुणोपासका पृथक् असाधारणानि कर्माण्येव कारणानीत्यन्ये **मीमांसकाः** बहुत्वमपि कारणाना प्राहु परमाणुवादिन ॥ ४ ॥ देशकालाविति **ज्योतिर्विदः** एतत् दृश्य सर्वं कालत्रयेऽपि नास्ति स्वप्रराज्यवच्चिद्विलासमात्रमिति वृद्धा ॥ ५ ॥ अस्नानं नैष्ठिकब्रह्मचर्यं स्नान गार्हस्थ्यम ॥६॥ साधन ध्यानादिकमुपास्य कृत्वाऽपि नैतदस्तीति पश्चात्सर्वमपवदन्ति तथा च श्रुति —

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधक. ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता इति ॥ ८ ॥

पुण्येन पुण्यार्थमेव यतेतेत्यन्ये । एतत्पुण्यं नास्त्येवेत्यन्ये **लोकायताः** ॥ ९ ॥ संशयिते कृतमास्ति न वेति संदिग्धे पथि दु खात् दु खनिवृत्त्यर्थं सुखात्सुखप्राप्त्यर्थं ध्यानं कर्तव्य निष्काममेवेत्यपरे ॥ १० ॥ ज्ञानं संन्यास संन्यासैकप्राप्य भूतचिंतका वस्तुतत्त्वविचारका स्वभावं साधनपौष्कल्य साधनपौष्कल्यस्वाभाव्यादेव ज्ञानमुत्पद्यते आश्रमान्तरेऽपि न संन्यासमात्रेणेत्याहु ॥ १२ ॥ अविहिता अशिक्षिता आख्यातं त्वयेति शेष ॥ १५ ॥ मुख्यं प्रष्टव्यमाह—**अतः-परमिति**॥१६॥इति श्रीम० आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ४९ ॥

## ५०

ब्रह्मोवाच ।

हन्त वः संप्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छथ सत्तमाः
गुरुणा शिष्यमासाद्य यदुक्तं तन्निबोधत ॥ १
समस्तमिह तच्छ्रुत्वा सम्यगेवावधार्यताम्।
अहिंसा सर्वभूतानामेतत्कृत्यतमं मतम् ॥
एतत्पदमनुद्विग्नं वरिष्ठं धर्मलक्षणम् ।
ज्ञानं निःश्रेय इत्याहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः ॥ ३
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
हिंसापराश्च ये केचिद्ये च नास्तिकवृत्तयः ।
लोभमोहसमायुक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ ४
आशीर्युक्तानि कर्माणि कुर्वते ये त्वतन्द्रिताः
तेऽस्मिँल्लोके प्रमोदन्ते जायमानाः पुनः पुनः
कुर्वते ये तु कर्माणि श्रद्दधाना विपश्चितः ।
अनाशीर्योगसंयुक्तास्ते धीराः साधुदर्शिनः
अतः परं प्रवक्ष्यामि सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्यथा ।
संयोगो विप्रयोगश्च तन्निबोधत सत्तमाः ॥ ७
विषयो विषयित्वं च सम्बन्धोऽयमिहोच्यते
विषयी पुरुषो नित्यं सत्त्वं च विषयः स्मृतः
व्याख्यातं पूर्वकल्पेन मशकोदुम्बरं यथा ।
भुज्यमानं न जानीते नित्यं सत्त्वमचेतनम् ।
यस्त्वेवं तं विजानाति यो भुंक्ते यश्च भुज्यते९
नित्यं द्वन्द्वसमायुक्तं
सत्त्वमाहुर्मनीषिणः ।
निर्द्वन्द्वो निष्कलो नित्यः
क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ॥ १०
समं संज्ञानुगश्चैव स सर्वत्र व्यवस्थितः ।
उपभुंक्ते सदा सत्त्वमपः पुष्करपर्णवत् ॥ ११
सर्वैरपि गुणैर्विद्वान् व्यतिषक्तो न लिप्यते ।
जलबिन्दुर्यथा लोलः पद्मिनीपत्रसंस्थितः ॥
एवमेवाप्यसंयुक्तः पुरुषः स्यान्न संशयः ।
द्रव्यमात्रमभूत्सत्त्वं पुरुषस्येति निश्चयः ॥ १३
यथा द्रव्यं च कर्ता च संयोगोऽप्यनयोस्तथा ।
यथा प्रदीपमादाय कश्चित्तमसि गच्छति ।
तथा सत्त्वप्रदीपेन गच्छन्ति परमैषिणः ॥ १४
यावद्द्रव्यं गुणस्तावत्प्रदीपः संप्रकाशते ।
क्षीणे द्रव्ये गुणे ज्योतिरन्तर्धानाय गच्छति

५०

पृष्टेष्वेतेषु पक्षेषु यद्धेयमुपादेयं च तत्संक्षेपेणाह-**हन्त व इति** ॥ १ ॥ विषयविषयिभावो घटचक्षुषोरिव न केवलं प्रकाश्यप्रकाशकभावः अपि तु भोज्यभोक्तृभावोऽप्यस्तीत्याह --**व्याख्यातमिति** सार्धेन । उदुंबरवत्सत्त्वं स्वात्मानं भोक्तारं च न वेत्ति भोक्ता तु मशकवदुभयं वेत्तीत्यर्थः । यो विजानीते स क्षेत्रज्ञ इत्युत्तरेणान्वयः ॥ ९ ॥ सत्त्वपुरुषयोः संबंधस्याध्यासिकत्वमाह--**नित्यमिति** । नित्यं सर्वदा सत्त्वं द्वंद्वैः सुखदुःखादिपरिणामैर्युक्तं गुणात्मकत्वात्सुखदुःखमोहात्मकं महत्तं च तद्विपरीतत्वात निर्द्वंद्वः नित्यः निष्कलो निर्गुणश्च पुरुषः अतस्तयोर्विषमस्वभावत्वान्न जतुकाष्ठादिवत् संबंधो युज्यते । यथोक्तं—

निःसंगस्य ससंगेन कूटस्थस्य विकारिणा ।
आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते ॥

इति ॥ १० ॥ कथं तर्हि तयोर्विषयविषयिभावसंबंध उक्त इत्याह-**सममिति** । यथा सर्वत्र स्वप्नमायेंद्रजालरज्जूरगादौ अध्यस्तं अधिष्ठानेन समं तुल्यं तदाकारकमित्यर्थः अधिष्ठानं चाध्यस्तसंज्ञानुगत तत्र स्वकीयसत्ता स्फूर्तिसमर्पकतया तदीया सत्तामनुसरत् दृश्यते तथा सत्त्वं पुरुषेण समं सत्त्वसंज्ञानुगतः पुरुष उपभुक्ते तत्र दृष्टात -**अप इति** । यथा पुष्करपर्णं अद्भिरसंसक्तमपि अपो भुंक्ते ताभिस्तस्याप्यायनात् । एवं सत्त्वेनावृत पुरुषः सत्त्वसमानत्वं गतः सत्त्वधर्मान् आत्मन्यभिमन्वानः सत्त्वं भुंक्ते तथा चैवं कूटस्थविकारिणोरपि पुंप्रकृत्योराध्यासिकः संबंध उपपादितो भवति ॥ ११ ॥ प्रकारान्तरेण दृष्टान्तं विवृणोति—**सर्वैरिति** ॥ १२ ॥ समत्वमुपपादयति—**एवमिति** । सर्पेण रज्जुरिव सत्त्वेन असंयुक्तोऽपि पुरुषः स इति निश्चितमेव । तथापि सत्त्वं पुरुषश्च उभयं मिलित्वा द्रव्यमात्र सत्त्वमात्रमभूत् । यथा रज्जुभुजंगौ मिलित्वा भुजंगमात्रं भवति तद्वत् इति निश्चयः। इदमेव तत्त्वं कल्पनान्तरं तु भ्रान्तिमात्रमिति भावः ॥१३॥ इदमेव द्वयोः सत्त्वमात्रत्वमनुसृत्य सत्त्वमेवात्मेति मन्यमाना बौद्धाः पुरुषमपलपंति तत्राह—**यथेति** । सत्त्व पुरुषश्चेत्युभय यथा द्रव्यमात्रमभूत्तथा द्रव्यं इदमर्थं कर्ताहमर्थः तयो संयोगो दर्शनं चेति कृत्स्ना त्रिपुट्यपि द्रव्यमभूदित्यर्थः । कुतस्तर्हि द्रव्यात्पुरुषस्य पृथक्त्वमत आह—**प्रदीपेति** । यथा दीपेनैव दीपमन्यं च जानन्ति एव सत्त्वस्य परिणामविशेषेण विद्याख्येन सत्त्व पुरुषं च पृथक् जानीयादित्यर्थ ॥१४॥ द्रव्यं तैलं गुणो वर्तिः १५

व्यक्तः सत्त्वगुणस्त्वेवं पुरुषो व्यक्त इष्यते ।
एतद्विप्रा विजानीत हन्त भूयो ब्रवीमि वः
सहस्रेणापि दुर्मेधा न बुद्धिमधिगच्छति ।
चतुर्थेनाप्यथांशेन बुद्धिमान् सुखमेधते ॥ १७
एवं धर्मस्य विज्ञेयं संसाधनमुपायतः ।
उपायज्ञो हि मेधावी सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ १८
यथाऽध्वानमपाथेयः प्रपन्नो मनुजः क्वचित् ।
क्लेशेन याति महता विनश्येदन्तरापि च १९
तथा कर्मसु विज्ञेयं फलं भवति वा न वा ।
पुरुषस्यात्मनिःश्रेयः शुभाशुभनिदर्शनम् ॥ २०
यथा च दीर्घमध्वानं पद्भ्यामेव प्रपद्यते ।
अदृष्टपूर्वं सहसा तत्त्वदर्शनवर्जितः ॥ २१
तमेव च यथाऽध्वानं रथेनेहाशुगामिना ।
गच्छत्यश्वप्रयुक्तेन तथा बुद्धिमतां गतिः॥ २२
ऊर्ध्वं पर्वतमारुह्य नान्ववेक्षेत भूतलम् ।
रथेन रथिनं पश्य क्लिश्यमानमचेतनम् ॥ २३
यावद्रथपथस्तावद्रथेन स तु गच्छति ।
क्षीणे रथपदे विद्वान् रथमुत्सृज्य गच्छति ॥
एवं गच्छति मेधावी तत्त्वयोगविधानवित् ।
परिज्ञाय गुणज्ञश्च उत्तरादुत्तरोत्तरम् ॥ २५
यथार्णवं महाघोरमप्लवः संप्रगाहते ।
बाहुभ्यामेव संमोहाद्वधं वाञ्छत्यसंशयम् ॥
नावा चापि यथा प्राज्ञो विभागज्ञः स्वरित्रया
अश्रान्तः सलिले गच्छेच्छीघ्रं सन्तरते ह्रदम्
तीर्णो गच्छेत्परं पारं नावमुत्सृज्य निर्ममः ।
व्याख्यातं पूर्वकल्पेन यथा रथपदातिनोः२८
स्नेहात्संमोहमापन्नो नावि दाशो यथा तथा
ममत्वेनाभिभूतः संस्तत्रैव परिवर्तते ॥ २९
नावं न शक्यमारुह्य स्थले विपरिवर्तितुम् ।
तथैव रथमारुह्य नाप्सु चर्या विधीयते ॥ ३०
एवं कर्मकृतं चित्रं विषयस्थं पृथक् पृथक् ।
यथा कर्म कृतं लोके तथैतानुपपद्यते ॥ ३१
यन्नैव गन्धिनो रस्यं न रूपस्पर्शशब्दवत् ।
मन्यन्ते मुनयो बुद्ध्या तत्प्रधानं प्रचक्षते ३२
तत्र प्रधानमव्यक्तमव्यक्तस्य गुणो महान् ।
महत्प्रधानभूतस्य गुणोऽहङ्कार एव च ॥ ३३
अहङ्कारात्तु संभूतो महाभूतकृतो गुणः ।
पृथक्त्वेन हि भूतानां विषया वै गुणाः स्मृताः
बीजधर्मं तथा व्यक्तं प्रसवात्मकमेव च ।
बीजधर्मा महानात्मा प्रसवश्चेति नः श्रुतम् ॥
बीजधर्मस्त्वहङ्कारः प्रसवश्च पुनः पुनः ।
बीजप्रसवधर्माणि महाभूतानि पञ्च वै ॥ ३६

दार्ष्टांतिकमाह—**व्यक्त इति** । यथा तैलवर्तिभ्यामवष्टब्धो दीप आत्मानं भवनाकाशं च व्याप्नोति तदभावे तु स्वयमेवातर्धीयते न तु भवनाकाश एवं कर्मावष्टब्ध सत्त्वगुणश्चरमवृत्तिरूपोऽभिव्यक्त सन् स्वं च पुरुषं च पृथगवभासयति कर्मोपरमे तु स्वयमेवान्तर्धीयते पुरुषस्तु अव्यक्त समाधिसुषुप्तिसुखसाक्षी केवल इष्यते ॥ १६ ॥ कर्मसु ज्ञानसाधनेषु आत्मनि चित्ते श्रेयोविषये शुभाशुभदृष्टान्त पूर्णे पुण्यपापे य. पूर्णं योगमाप्नोति अल्पपुण्यस्त्वंतरा म्रियते इति भाव· ॥ २० ॥ **यथा चेति** । शास्त्ररथेनैव संसाराध्वातिलघनीय इति भाव· ॥२१॥ **ऊर्ध्वमिति** । परं पदमारुह्य शास्त्रमपि त्याज्यमिति भाव. ॥२३॥ **यावदिति** । चित्तशुद्धिपर्यंतं विधिशास्त्रकैकर्यं ततस्तु योगतत्त्वं जानन् उत्तरोत्तरं हंसं परमहंसं वाऽऽश्रमं सम्यगवबुध्य गच्छेदित्यर्थ ॥ २४ ॥ आचार्यरूपा नावं श्रयेदित्याह त्रिभि —**यथेति** ॥ २६ ॥ स्वरित्रया शोभनानि अरित्राणि केनिपातनानि यस्या तया ॥२७॥**तीर्णं इति** । समावृतवत् निदिध्यासनार्थी गुरुमपि त्यजेदिति भाव । तावद्गुरुं सेवेत यावद्योगारूढो न भवति रथमिव पर्वतारूढ इति पूर्वदृष्टान्त स्मारयति—**व्याख्यातमिति** । पदातिदृष्टान्तोऽपि गुर्वभावे मार्गप्राप्तिरेव न भवतीत्यत्र बोध्यः ॥ २८ ॥ **स्नेहादिति** । नात्यन्तं गुरावेव स्थैर्यं सति ध्यानयोग्यत्वे इति भाव· ॥ २९ ॥ **नावमिति** । कर्माधिकारिणा योगो योगाधिकारिणा च कर्म नानुष्ठातुं युक्तं इति भाव ॥ ३० ॥ कर्मकृतं कर्मफलं चित्रं नानाविधं विषयस्थं पृथक् पृथक् एकमेव कर्म गृहस्थस्य श्लाघ्यं परिव्राजकस्य पातित्यहेतु. एवं व्यतिरेकोऽपि ज्ञेय विषय आश्रमस्तत्स्थं एतान्कर्तॄन् ॥ ३१ ॥ एवं ज्ञानसाधनान्युक्त्वा ज्ञेयमाह—**यदिति** । गन्धि गन्धवत् रस्यं रसवत् ॥ ३२ ॥ गुण. कार्यं महद्रूपं यत्प्रधानभूतं प्रधानकार्यं तस्यापि गुणोऽहङ्कार ॥ ३३ ॥ महाभूतकृतः वियदादिरूपत्वेन कल्पित तेषा गुणास्तु विषया. शब्दादय एव ॥ ३४ ॥ बीजधर्मत्वं कारणत्व प्रसवात्मकत्वं कार्यरूपत्वं, जीवेति पाठेपि जीवतो धान्यादेरेव धर्मो बीजत्वं न तु भर्जितधान्यादेरिति स एवार्थ· । यद्यपि तेषा मते अव्यक्तस्य बीजत्वमेवास्ति न तु कार्यत्वं तथापि अद्वैतश्रुतिविरोधात्तदुपेक्ष्यामिति भाव ॥ ३५ ॥ पुन·पुनरिति दाष्टान्तिरुक्ता ॥ ३६ ॥

बीजधर्मिण इत्याहुः प्रसवं च प्रकुर्वते ।
विशेषाः पञ्चभूतानां तेषां चित्तं विशेषणम्
तत्रैकगुणमाकाशं द्विगुणो वायुरुच्यते ।
त्रिगुणं ज्योतिरित्याहुरापश्चापि चतुर्गुणाः ॥
पृथ्वी पञ्च गुणा ज्ञेया चरस्थावरसंकुला ।
सर्वभूतकरी देवी शुभाशुभनिदर्शिनी ॥ ३९
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
एते पञ्च गुणा भूमेर्विज्ञेया द्विजसत्तमाः ॥ ४०
पार्थिवश्च सदा गन्धो गन्धश्च बहुधा स्मृतः ।
तस्य गन्धस्य वक्ष्यामि विस्तरेण बहून्गुणान्
इष्टश्चानिष्टगन्धश्च मधुरोऽम्लः कटुस्तथा ।
निर्हारी संहतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च॥
एवं दशविधो ज्ञेयः पार्थिवो गन्ध इत्युत ।
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं द्रवश्चापां गुणाः स्मृताः
रसज्ञानं तु वक्ष्यामि रसस्तु बहुधा स्मृतः ।
मधुरोऽम्लः कटुस्तिक्तः कषायो लवणस्तथा
एवं षड्विधविस्तारो रसो वारिमयः स्मृतः ।
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते ॥
ज्योतिषश्च गुणो रूप रूपं च बहुधा स्मृतम्
शुक्लं कृष्णं तथा रक्तं नीलं पीतारुणं तथा ४६
ह्रस्वं दीर्घं कृशं स्थूलं चतुरस्रं तु वृत्तवत् ।
एवं द्वादशविस्तारं तेजसो रूपमुच्यते ॥ ४७
विज्ञेयं ब्राह्मणैर्वृद्धैर्धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः ।
शब्दस्पर्शौ च विज्ञेयौ द्विगुणो वायुरुच्यते ४८
वायोश्चापि गुणः स्पर्शः स्पर्शश्च बहुधा स्मृतः
रूक्षः शीतस्तथैवोष्णः स्निग्धो विशद एव च
कठिनश्चिक्कणः श्लक्ष्णः
पिच्छिलो दारुणो मृदुः ।
एवं द्वादशविस्तारो
वायव्यो गुण उच्यते ॥ ५०
विधिवद्ब्राह्मणैः सिद्धैर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ५१
तत्रैकगुणमाकाशं शब्द इत्येव च स्मृतः ।
तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरेण बहून्गुणान्
षड्जर्षभः स गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ।
अतः परं तु विज्ञेयो निषादो धैवतस्तथा ।
इष्टश्चानिष्टशब्दश्च संहतः प्रविभागवान् ५३
एवं दशविधो ज्ञेयः शब्द आकाशसम्भवः ।
आकाशमुत्तमं भूतमहङ्कारस्ततः परः ॥ ५४
अहङ्कारात्परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा ततः परः ।
तस्मात्तु परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ ५५
परापरज्ञो भूतानां विधिज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा गच्छत्यात्मानमव्ययम् ५६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## ५१

ब्रह्मोवाच ।
भूतानामथ पञ्चानां यथैषामीश्वरं मनः ।
नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मन एव च १
अधिष्ठाता मनो नित्यं भूतानां महतां तथा ।
बुद्धिरैश्वर्यमाचष्टे क्षेत्रज्ञश्च स उच्यते ॥ २

---

बीजधर्मिण इति तामेवोपपादयति । विशेषा. शब्दादय प्रसवं प्रकुर्वते भोगकाले कार्यरूपेण उपस्थिता अपि संस्काररूपेण कालान्तरे भोगं दातुं कारणात्मनाऽवतिष्ठन्ते । अत एते कारणरूपाश्च कार्यं सर्वदा कुर्वन्ति पूर्वेषा मृद्घट-न्यायेन कार्यकारणभावः । विशेषाणा तु बीजाङ्कुरन्याये-नेति भेद· । तेषा विशेषाणामपि विशेषणं व्यावर्तकं चित्त-मेव । चित्त एव विशेषाः सर्वे सन्ति न बहिरित्यर्थ ॥३७॥. तत्रैकगुणमित्यादिग्रन्थो व्याख्यातो मोक्षधर्मेषु स्पष्टार्थश्च ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलक-ण्ठीये भारतभावदीपे पंचाशत्तमोऽध्याय· ॥ ५० ॥

५१

विशेषा पञ्चभूतानामित्यत्र सूत्रिता सकलशास्त्ररहस्य-भूता दृष्टिसृष्टिं प्रपंचयति—**भूतानामित्यादिना** । नियमे संहारे विसर्गे उत्पत्तौ च भूताना मन एव ईश्वरं समर्थं यथा तथा वक्ष्यत इति शेष·। भूतात्मा स्थितिकालेऽपि मन एव भूतानामात्मा स्वरूपं कनकमिव कुण्डलादेः ॥१॥ अधिष्ठाता निमित्तकारणमपि कुलालादिस्थानीयं मन एव क्षेत्रज्ञो जीवोऽपि मन एव एवं मनस ऐश्वर्यं बुद्धिर्विवेकजा प्रज्ञैव आचष्टे स्वप्रतीतिग्राह्यं मनस ऐश्वर्यमित्यर्थ ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि मनो युक्ते सदश्वानिव सारथिः ।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः क्षेत्रज्ञे युज्यते सदा ३
महदश्वसमायुक्तं बुद्धिसंयमनं रथम् ।
समारुह्य स भूतात्मा समन्तात्परिधावति ४
इन्द्रियग्रामसंयुक्तो मनःसारथिरेव च ।
बुद्धिसंयमनो नित्यं महान्ब्रह्ममयो रथः ॥ ५
एवं यो वेत्ति विद्वान्वै सदा ब्रह्ममयं रथम् ।
स धीरः सर्वभूतेषु न मोहमधिगच्छति ॥ ६
अव्यक्तादि विशेषान्तं सह स्थावरजङ्गमम् ।
सूर्यचन्द्रप्रभालोकं ग्रहनक्षत्रमण्डितम् ॥ ७
नदीपर्वतजालैश्च सर्वतः परिभूषितम् ।
विविधाभिस्तथा चाद्भिः सततं समलंकृतम्
आजीवं सर्वभूतानां सर्वप्राणभृतां गतिः ।
एतद्ब्रह्मवनं नित्यं तस्मिश्चरति क्षेत्रवित् ॥ ९
लोकेऽस्मिन्यानि सत्त्वानि
त्रसानि स्थावराणि च ।
तान्येवाग्रे प्रलीयन्ते
पश्चाद्भूतकृता गुणाः ।
गुणेभ्यः पञ्चभूतानि
एष भूतसमुच्छ्रयः ॥ १०
देवा मनुष्या गन्धर्वाः
पिशाचासुरराक्षसाः ।
सर्वे स्वभावतः सृष्टा
न क्रियाभ्यो न कारणात् ॥ ११
एते विश्वसृजो विप्रा
जायन्तीह पुनः पुनः ।
तेभ्यः प्रसूतास्तेष्वेव
महाभूतेषु पञ्चसु ।
प्रलीयन्ते यथाकाल-
मूर्मयः सागरे यथा ॥ १२
विश्वसृग्भ्यस्तु भूतेभ्यो
महाभूतास्तु सर्वशः ।
भूतेभ्यश्चापि पञ्चभ्यो
मुक्तो गच्छेत्परां गतिम् ॥ १३
प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव देवानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ १४
तपसश्चानुपूर्व्येण फलमूलाशिनस्तथा ।
त्रैलोक्यं तपसा सिद्धाः पश्यन्तीह समाहिताः
औषधान्यगदादीनि नानाविद्याश्च सर्वशः ।
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपोमूलं हि साधनम्१६
यद्दुरापं दुराम्नायं दुराधर्षं दुरन्वयम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं 'तपो हि दुरतिक्रमम्'॥
सुरापो ब्रह्महा स्तेयी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥ १८

मनस ऐश्वर्यं योगैकगम्यमिति तदधिगमार्थं योगमाह—**इन्द्रियाणीति** । मन कर्तृ युक्ते प्रयुंक्ते । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेति श्रुतिं व्याचष्टे—**इन्द्रियाणीति** । आत्मपदस्य प्रतिपदं बुद्धिपद भोक्तेत्यस्य प्रतिपद क्षेत्रज्ञ इति ॥ ३ ॥ महान्त इन्द्रियाश्वास्तै समायुक्त, बुद्धया सारथिभूतया सयमनं निग्रहो यस्य तं, रथ ब्रह्ममय कारणविकारभूतं शरीररथम् । भूतात्मा देहाभिमानी,सर्वत मुखलिप्सुर्धावति ॥ ४ ॥ अयमेव रथ इन्द्रियग्रामेण वशीकृतेन सयुक्त· सम्यक् समाहित । मनसा च सारथिना संयुक्त बुद्धिसयमन बुद्धिप्रतोदश्चेन्महान् भवति । बहिर्मुखानीन्द्रियबुद्धिमनासि आत्मनो जीवत्वमापादयन्ति अन्तर्मुखानि त्वस्य ब्रह्ममयत्व आविष्कुर्वन्तीत्यर्थ ॥ ५ ॥ एव निग्राह्यत्वेन यो वेत्ति वेद धीरो ध्यानशील ॥ ६ ॥ अव्यक्ताद्यात्मके ब्रह्मवनेऽस्मिन् चेतन संचरतीत्याह—**अव्यक्तेति त्रिभिः** ॥७ ॥ अस्मिँल्लोके आत्मलोके अग्रे निमेषमात्रेण स्थावरादिक बाह्य सर्वं लीयते । नेत्रनिमीलनमात्रेण भूतानि प्रलीयन्ते दृष्टिसृष्टयधिकारादित्यर्थ· । तदनन्तरं भूतकृता गुणा· शब्दादयो लीयन्ते नेत्रवत् श्रोत्रादीनामपि गुरूक्तयुक्त्या निमीलने कृते सतीत्यर्थ । गुणेभ्य लीनेभ्योऽनन्तर पञ्चभूतानि सूक्ष्मदेहारम्भकाणि प्रलीयन्ते स्थूलाना प्रत्याहारेणैव संहृतत्वात । एष देहद्वयरूपो भूतसमुच्छ्रय इति पञ्चभूतानीत्यस्य व्याख्या भूताना लये तु निर्विशेषचिन्मात्रेणैव रूपेणावतिष्ठत इत्यर्थ । सार्धश्लोक ॥ १० ॥ देवादय स्वाप्नदेवादिवत्स्वभावत एव उत्पन्ना· न यज्ञादिना नापि ब्रह्मादिनेत्याह—**देवा इति** ॥ ११ ॥ विश्वसृजो मरीच्यादयोपि भौतिकत्वाद्भूतलये लीयन्त इत्याह—**एत इति सार्धेन** ॥ १२ ॥ विश्वसृग्भ्य स्थूलभूतेभ्य परे महाभूता· सूक्ष्मभूतानि तेभ्योऽपि परा गतिं मुक्तो गच्छेत् । पाठान्तरे भूताना यो विश्वसृक् विराट् स स्वोपादानभूतानि महाभूतानि प्रति गच्छतीति स एवार्थ ॥ १३ ॥

मनसश्चेन्द्रियाणा च ऐकाग्र्यं परमं तप ।

इत्युक्तलक्षणतपोबलेन सर्व मनसैव सृज्यत इत्याह—**प्रजापतिरित्यादिना** ॥ १४ ॥ तपस संकल्पस्य आनुपूर्व्येण क्रमेण समाहिता समाधियुक्ता ॥ १५ ॥ दुराप इन्द्रपदादि दुराम्नायं वेदादि दुराधर्षं वह्न्यादि दुरन्वयं असमाधेयं महाप्रलयादि ॥ १७ ॥

मनुष्याः पितरो देवाः
पशवो मृगपक्षिणः
यानि चान्यानि भूतानि
त्रसानि स्थावराणि च ॥ १९
तपःपरायणा नित्यं सिद्ध्यन्ते तपसा सदा ।
तथैव तपसा देवा महामाया दिवं गताः २०
आशीर्युक्तानि कर्माणि कुर्वते ये त्वतन्द्रिताः।
अहङ्कारसमायुक्तास्ते सकाशे प्रजापतेः॥ २१
ध्यानयोगेन शुद्धेन निर्ममा निरहंकृताः ।
आप्नुवन्ति महात्मानो महान्तं लोकमुत्तमम्
ध्यानयोगमुपागम्य प्रसन्नमतयः सदा ।
सुखोपचयमव्यक्तं प्रविशन्त्यात्मवित्तमाः॥२३
ध्यानयोगादुपागम्य निर्ममा निरहङ्कृताः।
अव्यक्तं प्रविशन्तीह महतां लोकमुत्तमम् २४
अव्यक्तादेव सम्भूतः
समसंज्ञां गतः पुनः ।
तमोरजोभ्यां निर्मुक्तः
सत्त्वमास्थाय केवलम् ॥ २५
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वं सृजति निष्कलम्
क्षेत्रज्ञ इति तं विद्याद्यस्तं वेद स वेदवित् २६
चित्तं चित्तादुपागम्य मुनिरासीत संयतः ।
यच्चित्तं तन्मयो वश्यं गुह्यमेतत्सनातनम्॥२७
अव्यक्तादिविशेषान्तमविद्यालक्षणं स्मृतम् ।
निबोधत तथा हीदं गुणैर्लक्षणमित्युत ॥ २८
द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् २९
कर्म केचित्प्रशंसन्ति मन्दबुद्धिरता नराः ।
ये तु वृद्धा महात्मानो न प्रशंसन्ति कर्म ते ॥
कर्मणा जायते जन्तुर्मूर्तिमान्षोडशात्मकः ।
पुरुषं ग्रसते विद्या तद्ग्राह्यममृताशिनाम् ॥ ३१
तस्मात्कर्मसु निःस्नेहा ये केचित्पारदर्शिनः ।
विद्यामयोऽयं पुरुषो न तु कर्ममयः स्मृतः॥३२
य एवममृतं नित्यमग्राह्यं शश्वदक्षरम्।
वश्यात्मानमसंश्लिष्टं यो वेद न मृतो भवेत् ॥
अपूर्वमकृतं नित्यं य एनमविचारिणम् ।
य एवं विन्देदात्मानमग्राह्यममृताशनम् ।
अग्राह्योऽमृतो भवति स एभिः कारणैर्ध्रुवः॥
आयोज्य सर्वसंस्कारान्संयम्यात्मानमात्मनि
स तद्ब्रह्म शुभं वेत्ति यस्माद्भूयो न विद्यते ३५
प्रसादे चैव सत्त्वस्य प्रसादं समवाप्नुयात् ।
लक्षणं हि प्रसादस्य यथा स्यात्स्वप्नदर्शनम् ॥
गतिरेषा तु मुक्तानां ये ज्ञानपरिनिष्ठिताः ।
प्रवृत्तयश्च याः सर्वाः पश्यन्ति परिणामजाः
एषा गतिर्विरक्तानामेष धर्मः सनातनः ।
एषा ज्ञानवतां प्राप्तिरेतद्वृत्तमनिन्दितम् ॥ ३८

**सुखोपचयं** लौकिकाना सुखाना उपचयो वृद्धिर्यस्मात्तं सुखोपचयं अखण्डमानन्दं एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति श्रुतिप्रसिद्धम् ॥ २३ ॥ उपागम्य परावृत्य पूर्णं ध्यानयोगमप्राप्य ये म्रियन्ते ते प्रकृतिलीना भवन्तीति ॥ २४ ॥ समसंज्ञा गत· स्वयमव्यक्तत्वं प्राप्त इत्यर्थ. ॥ २५ ॥ य· कारणत्वं प्राप्त· सर्वं सृजति तमेव निष्कलं क्षेत्रज्ञं ईश्वरमिति विद्यात् ॥ २६ ॥ चित्तं सम्यग्ज्ञानं चिती संज्ञान इत्यस्माद्भावे निष्ठा । चित्तान्मनसा हेतुना उपागम्य प्राप्य संयत. सततं आसीत ततश्च यच्चित्तस्तन्मयो भवति कीटकभृंगन्यायेन यद्रूपं भावयति तदेवायं भवतीत्यर्थ ( मन इति पाठे यच्चित्त तदेव ईश्वरस्तद्वाच्यं दातुं समर्थ इत्यर्थ ) ॥२७॥ तत्र हानार्थमाह-**अव्यक्तादीति** । यत्किंचिन्मदीयत्वेन कल्पितं तत्सर्वमविद्या अतो निष्कलमात्मानमेव ध्यायेदित्यर्थ· ॥२८॥ षोडशात्मक पञ्चमहाभूतानि एकादशविकाराश्च तदात्मक तमेव षोडशात्मकं पुरुषं विद्या ग्रसते तदेव च ग्राह्यं उपादेयं अमृतं देवतादिशेषं अश्नन्ति तेऽमृताशिनस्तेषा आशिताशितमिति पाठे तृप्तानामपि तृप्तिकरम् ॥ ३१ ॥ शश्वदक्षरं सर्वदा अपचयहीनं वश्यात्मा जितचित्त. असंश्लिष्टं असंगम् ॥३३॥ अपूर्वं मानान्तरानवगत अकृतं अकृत्रिमं अविचारिणं कूटस्थं अपराजितमिति पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थ. । अमृताशनं ईश्वरग्रासस्तुरीय इति श्रुतेः ईश्वरस्यापि संहर्तारं एभिर्वक्ष्यमाणै· । सार्धं ॥ ३४ ॥ चेतस. संस्कारा मैत्र्यादयस्तान् आयोज्य दृढान् कृत्वा आत्मानं चित्तं आत्मनि हृदयपुंडरीके संयम्य निरुध्य ॥ ३५ ॥ प्रसादे नैर्मल्ये प्रसादं शान्तिं चित्तप्रसादस्य लक्षणं तु यथा स्वप्ने देहासंगेनावस्थानमस्ति तथा यदा योगयुक्त्या चित्तं बहिः संज्ञाशून्यमन्त प्रचारि भवति तदेव प्रसादचिह्नम् ॥ ३६ ॥ एषा प्रसादरूपा गतिर्मार्गे प्रवर्तन्ते ता· प्रवृत्तयं त्रैकालिका पदार्थास्तान्परिणामजान् अतीताननागतांश्चात्र पश्यन्ति योगिन. ॥ ३७ ॥

समेन सर्वभूतेषु निःस्पृहेण निराशिषा ।
शक्या गतिरियं गन्तुं सर्वत्र समदर्शिना ३९
एतद्वः सर्वमाख्यातं मया विप्रर्षिसत्तमाः ।
एवमाचरत क्षिप्रं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ४०
गुरुरुवाच ।
इत्युक्तास्ते तु मुनयो गुरुणा ब्रह्मणा तथा ।
कृतवन्तो महात्मानस्ततो लोकमवाप्नुवन् ४१
त्वमप्येतन्महाभाग मयोक्तं ब्रह्मणो वचः ।
सम्यगाचर शुद्धात्मंस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥
वासुदेव उवाच ।
इत्युक्तः स तदा शिष्यो गुरुणा धर्ममुत्तमम्
चकार सर्वं कौन्तेय ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥
कृतकृत्यश्च स तदा शिष्यः कुरुकुलोद्वह।
तत्पदं समनुप्राप्तो यत्र गत्वा न शोचति ॥४४
अर्जुन उवाच ।
को न्वसौ ब्राह्मणः कृष्ण कश्च शिष्यो जनार्दन
श्रोतव्यं चेन्मयैतद्वै तत्त्वमाचक्ष्व मे विभो ४५
वासुदेव उवाच ।
अहं गुरुर्महाबाहो मनः शिष्यं च विद्धि मे।
त्वत्प्रीत्या गुह्यमेतच्च कथितं ते धनञ्जय ॥ ४६
मयि चेदस्ति ते प्रीतिर्नित्यं कुरुकुलोद्वह ।
अध्यात्ममेतच्छ्रुत्वा त्वं सम्यगाचर सुव्रत४७
ततस्त्वं सम्यगाचीर्णे धर्मेऽस्मिन्नरिकर्षण ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो मोक्षं प्राप्स्यसि केवलम्
पूर्वमप्येतदेवोक्तं युद्धकाल उपस्थिते ।
मया तव महाबाहो तस्मादत्र मनः कुरु ॥ ४९
मया तु भरतश्रेष्ठ चिरदृष्टः पिता प्रभुः ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि संमते तव फाल्गुन ॥५०
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तवचनं कृष्णं प्रत्युवाच धनञ्जयः ।
गच्छावो नगरं कृष्ण गजसाह्वयमद्य वै ॥ ५१
समेत्य तत्र राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
समनुज्ञाप्य राजानं स्वां पुरीं यातुमर्हसि ५२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि गुरुशिष्यसंवादे
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

गुरुशिष्यसंवादः समाप्तः ।

## ५२

वैशम्पायन उवाच ।
ततोऽभ्यनोदयत्कृष्णो युज्यतामिति दारुकम्
मुहूर्तादिव चाचष्ट युक्तमित्येव दारुकः॥ १
तथैव चानुयात्रादि चोदयामास पाण्डवः ।
सज्जयध्वं प्रयास्यामो नगरं गजसाह्वयम् २
इत्युक्ताः सैनिकास्ते तु सज्जीभूता विशाम्पते।
आचख्युः सज्जमित्येवं पार्थायामिततेजसे ३
ततस्तौ रथमास्थाय प्रयातौ कृष्णपाण्डवौ ।
विकुर्वाणौ कथाश्चित्राः प्रीयमाणौ विशाम्पते
रथस्थं तु महातेजा वासुदेवं धनञ्जयः ।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यमिदं भरतसत्तम ॥ ५
त्वत्प्रसादाज्जयः प्राप्तो राज्ञा वृष्णिकुलोद्वह ।
निहताः शत्रवश्चापि प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ६
नाथवन्तश्च भवता पाण्डवा मधुसूदन ।
भवन्तं प्लवमासाद्य तीर्णाः स्म कुरुसागरम्
विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन्विश्वसत्तम ।
तथा त्वामभिजानामि यथा चाहं भवान्मतः८

---

अहमिति । अहं क्षेत्रज्ञो गुरुः मनोमदीयं मया बोधनीयं एतेन आत्मनो गुरुरात्मैवेत्युक्तं भवति ॥ ४६ ॥ सम्यगाचर यमनियमादिनिष्ठो भव॥४७॥ केवलमिति क्रममुक्तिव्यावृत्तिः ॥ ४८ ॥ प्रागुक्तं स्मारयति अस्य च तस्य च एकवाक्यता कारयितुम्—**पूर्वमिति** ॥ ४९ ॥ कथामनुसंधत्ते—**मया त्वित्यादिना** ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

**तत इति** । २४ इति रथमिति चार्धद्वयेऽपि शेषः ॥ १ ॥ विश्वकर्मन्नित्यादिना स्वबोधमाविष्करोति ॥ ८ ॥

त्वत्तेजःसम्भवो नित्य भूतात्मा मधुसूदन।
रतिः क्रीडामयी तुभ्यं माया ते रोदसी विभो
त्वयि सर्वमिदं विश्वं यदिदं स्थाणु जङ्गमम्।
त्वं हि सर्वं विकुरुषे भूतग्रामं चतुर्विधम् १०
पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव मधुसूदन।
हसितं तेऽमला ज्योत्स्ना ऋतवश्चेन्द्रियाणि ते
प्राणो वायुः सततगः क्रोधो मृत्युः सनातनः
प्रसादे चापि पद्मा श्रीर्नित्यं त्वयि महामते॥
रतिस्तुष्टिर्धृतिः क्षान्तिर्मतिः कान्तिश्चराचरं
त्वमेवेह युगान्तेषु निधनं प्रोच्यसेऽनघ॥ १३
सुदीर्घेणापि कालेन न ते शक्या गुणा मया।
आत्मा च परमात्मा च नमस्ते नलिनेक्षण॥
विदितो मे सुदुर्धर्ष नारदाद्देवलात्तथा।
कृष्णद्वैपायनाच्चैव तथा कुरुपितामहात्॥ १५
त्वयि सर्वं समासक्तं त्वमेवैको जनेश्वरः।
यच्चानुग्रहसंयुक्तमेतदुक्तं त्वयाऽनघ॥ १६
एतत्सर्वमहं सम्यगाचरिष्ये जनार्दन।
इदं चाद्भुतमत्यन्तं कृतमस्मत्प्रियेप्सया॥ १७
यत्पापो निहतः संख्ये कौरव्यो धृतराष्ट्रजः।
त्वया दग्धं हि तत्सैन्यं मया विजितमाहवे
भवता तत्कृतं कर्म येनावाप्तो जयो मया।
दुर्योधनस्य संग्रामे तव बुद्धिपराक्रमैः॥ १९
कर्णस्य च वधोपायो यथावत्सम्प्रदर्शितः।
सैन्धवस्य च पापस्य भूरिश्रवस एव च २०
अहं च प्रीयमाणेन त्वया देवकिनन्दन।
यदुक्तस्तत्करिष्यामि न हि मेऽत्र विचारणा॥
राजानं च समासाद्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्
चोदयिष्यामि धर्मज्ञ गमनार्थं तवानघ॥ २२
रुचितं हि ममैतत्ते द्वारकागमनं प्रभो।
अचिरादेव द्रष्टा त्वं मातुलं मे जनार्दन॥ २३
बलदेवं च दुर्धर्षं तथाऽन्यान्वृष्णिपुङ्गवान्।
एवं सम्भाषमाणौ तौ प्राप्तौ वारणसाह्वयम्
तथा विविशतुश्चोभौ सम्प्रहृष्टनराकुलम्।
तौ गत्वा धृतराष्ट्रस्य गृहं शक्रगृहोपमम्॥ २५
ददृशाते महाराज धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।
विदुरं च महाबुद्धिं राजानं च युधिष्ठिरम्॥
भीमसेनं च दुर्धर्षं माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
धृतराष्ट्रमुपासीनं युयुत्सुं चापराजितम्॥ २७

गान्धारीं च महाप्राज्ञां पृथां कृष्णां च भामिनीं
सुभद्राद्याश्च ताः सर्वा भरतानां स्त्रियस्तथा॥
ददृशाते स्त्रियः सर्वा गान्धारीपरिचारिकाः
ततः समेत्य राजानं धृतराष्ट्रमरिन्दमौ॥ २९
निवेद्य नामधेये स्वे तस्य पादावगृह्णताम्।
गान्धार्याश्च पृथायाश्च धर्मराजस्य चैव हि॥
भीमस्य च महात्मानौ तथा पादावगृह्णताम्
क्षत्तारं चापि संगृह्य पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ३१
तैः सार्धं नृपतिं वृद्धं ततस्तौ पर्युपासताम्।
ततो निशि महाराजो धृतराष्ट्रः कुरूद्वहान्३२
जनार्दनं च मेधावी व्यसर्जयत वै गृहान्।
तेऽनुज्ञाता नृपतिना ययुः स्वं स्वं निवेशनम्॥
धनञ्जयगृहानेव ययौ कृष्णस्तु वीर्यवान्।
तत्रार्चितो यथान्यायं सर्वकामैरुपस्थितः ३४
कृष्णः सुष्वाप मेधावी धनञ्जयसहायवान्।
प्रभातायां तु शर्वर्यां कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम्
धर्मराजस्य भवनं जग्मतुः परमार्चितौ।
यत्रास्ते स सहामात्यो धर्मराजो महाबलः३६
तौ प्रविश्य महात्मानौ तद्गृहं परमार्चितम्।
धर्मराजं ददृशतुर्देवराजमिवाश्विनौ॥ ३७
समासाद्य तु राजानं वार्ष्णेयकुरुपुङ्गवौ।
निषेदतुरनुज्ञातौ प्रीयमाणेन तेन तौ॥ ३८
ततः स राजा मेधावी विवक्षू प्रेक्ष्य तावुभौ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो वचनं राजसत्तमः॥ ३९

युधिष्ठिर उवाच।

विवक्षू हि युवां मन्ये वीरौ यदुकुरूद्वहौ।
ब्रूत कर्तास्मि सर्वं वां न चिरान्मा विचार्यतां
इत्युक्तः फाल्गुनस्तत्र धर्मराजानमब्रवीत्।
विनीतवदुपागम्य वाक्यं वाक्यविशारदः ४१
अयं चिरोषितो राजन् वासुदेवः प्रतापवान्।
भवन्तं समनुज्ञाप्य पितरं द्रष्टुमिच्छति॥ ४२
स गच्छेदभ्यनुज्ञातो भवता यदि मन्यसे।
आनर्तनगरीं वीरस्तदनुज्ञातुमर्हसि॥ ४३

युधिष्ठिर उवाच।

पुण्डरीकाक्ष भद्रं ते गच्छ त्वं मधुसूदन।
पुरीं द्वारवतीमद्य द्रष्टुं शूरसुतं प्रभो॥ ४४
रोचते मे महाबाहो गमनं तव केशव।
मातुलश्चिरदृष्टो मे त्वया देवी च देवकी ४५

रति रमणं क्रीडामयी मर्गस्थित्यन्तलीलारूपा तुभ्यं तव रोदसी द्यावापृथिवी ते तव माया॥ ९॥ अनुग्रह गत-त्सम्यगाचरेत्याज्ञारूप॥ १६॥ दृष्टोपकारमप्यभिनन्दति इदं चेति॥ १७॥

समेत्य मातुलं गत्वा बलदेवं च मानद ।
पूजयेथा महाप्राज्ञ मद्वाक्येन यथार्हतः ॥ ४६
स्मरेथाश्चापि मां नित्यं भीमं च बलिनां वरम्
फाल्गुनं सहदेवं च नकुलं चैव मानद ॥ ४७
आनर्तानवलोक्य त्वं पितरं च महाभुज ।
वृष्णींश्च पुनरागच्छेर्हयमेधे ममानघ ॥ ४८
स गच्छ रत्नान्यादाय विविधानि वसूनि च ।
यच्चाप्यन्यन्मनोज्ञं ते तदप्यादत्स्व सात्वत ॥
इयं च वसुधा कृत्स्ना प्रसादात्तव केशव ।
अस्मानुपगता वीर निहताश्चापि शत्रवः ॥५०
एवं ब्रुवति कौरव्ये धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५१
तवैव रत्नानि धनं च केवलं
धरा तु कृत्स्ना तु महाभुजाद्य वै ।
यदस्ति चान्यद्द्रविणं गृहे मम
त्वमेव तस्येश्वर नित्यमीश्वरः ॥ ५२
तथेत्यथोक्तः प्रतिपूजितस्तदा
गदाग्रजो धर्मसुतेन वीर्यवान् ।
पितृष्वसारं त्ववदद्यथाविधि
संपूजितश्चाप्यगमत्प्रदक्षिणम् ॥ ५३
तया स सम्यक् प्रतिनन्दितस्तत-
स्तथैव सर्वैर्विदुरादिभिस्तथा ।
विनिर्ययौ नागपुराद्गदाग्रजो
रथेन दिव्येन चतुर्भुजः स्वयम् ॥ ५४
रथे सुभद्रामधिरोप्य भाविनीं
युधिष्ठिरस्यानुमते जनार्दनः ।
पितृष्वसुश्चापि तथा महाभुजो
विनिर्ययौ पौरजनाभिसंवृतः ॥ ५५
तमन्वयाद्वानरवर्यकेतनः
स सात्यकिर्माद्रवतीसुतावपि ।
अगाधबुद्धिर्विदुरश्च माधवं
स्वयं च भीमो गजराजविक्रमः ॥ ५६
निवर्तयित्वा कुरुराष्ट्रवर्धना-
स्ततः स सर्वान्विदुरं च वीर्यवान् ।
जनार्दनो दारुकमाह सत्वरः
प्रचोदयाश्वानिति सात्यकिं तथा ५७
ततो ययौ शत्रुगणप्रमर्दनः
शिनिप्रवीरानुगतो जनार्दनः ।
यथा निहत्यारिगणं शतक्रतु-
र्दिवं तथाऽऽनर्तपुरीं प्रतापवान् ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि कृष्णप्रयाणे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## ५३

वैशम्पायन उवाच ।
तथा प्रयान्तं वार्ष्णेयं द्वारकां भरतर्षभाः ।
परिष्वज्य न्यवर्तन्त सानुयात्राः परंतपाः ॥ १
पुनः पुनश्च वार्ष्णेयं पर्यष्वजत फाल्गुनः ।
आ चक्षुर्विषयाच्चैन स ददर्श पुनः पुनः ॥ २
कृच्छ्रेणेव तु तां पार्थो गोविन्दे विनिवेशिताम्
सञ्जहार ततो दृष्टिं कृष्णश्चाप्यपराजितः ॥ ३
तस्य प्रयाणे यान्यासन्निमित्तानि महात्मनः
बहून्यद्भुतरूपाणि तानि मे गदतः शृणु ॥ ४
वायुर्वेगेन महता रथस्य पुरतो ववौ ।
कुर्वन्निःशर्करं मार्गं विरजस्कमकण्टकम् ॥ ५
ववर्ष वासवश्चैव तोयं शुचि सुगन्धि च ।
दिव्यानि चैव पुष्पाणि पुरतः शार्ङ्गधन्वनः
स प्रयातो महाबाहुः समेषु मरुधन्वसु ।
ददर्शाथ मुनिश्रेष्ठमुत्तङ्कममितौजसम् ॥ ७
स तं सम्पूज्य तेजस्वी मुनिं पृथुललोचनः ।
पूजितस्तेन च तदा पर्यपृच्छदनामयम् ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५२ ॥

५३

तथा प्रयान्तं वार्ष्णेयमित्यादिग्रन्थः पूर्वोक्तासूपनिषत्सु विद्याफलं विश्वरूपदर्शनं विद्यासाधनं गुरोराराधनं चेति द्वयमिहोक्तं विवरीतुं उत्तङ्कोपाख्यानव्याजेन प्रवर्तते तत उपरिष्टादश्वमेधव्याजेन कर्मणामप्यारादुपकारकत्वं विद्यायामुच्यत इति संगतिः ॥ १ ॥

स पृष्टः कुशलं तेन संपूज्य मधुसूदनम् ।
उत्तङ्को ब्राह्मणश्रेष्ठस्ततः पप्रच्छ माधवम् ॥ ९
कच्चिच्छौरे त्वया गत्वा कुरुपाण्डवसद्म तत्
कृतं सौभ्रात्रमचलं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १०
अपि सन्धाय तान्वीरानुपावृत्तोऽसि केशव
सम्बन्धिनः सुदयितान्सततं वृष्णिपुङ्गव ११
कच्चित्पाण्डुसुताः पञ्च धृतराष्ट्रस्य चात्मजाः
लोकेषु विहरिष्यन्ति त्वया सह परंतप १२
स्वराष्ट्रे ते च राजानः
कच्चित्प्राप्स्यन्ति वै सुखम् ।
कौरवेषु प्रशान्तेषु
त्वया नाथेन केशव ॥ १३
या मे सम्भावना तात त्वयि नित्यमवर्तत ।
अपि सा सफला तात कृता ते भरतान्प्रति

श्रीभगवानुवाच ।

कृतो यत्नो मया पूर्वं सौशाम्ये कौरवान्प्रति
नाशक्यन्त यदा साम्ये ते स्थापयितुमञ्जसा ॥
ततस्ते निधनं प्राप्ताः सर्वे ससुतबान्धवाः ।
न दिष्टमप्यतिक्रान्तुं शक्यं बुद्ध्या बलेन वा ॥
महर्षे विदितं भूयः सर्वमेतत्तवानघ ।
तेऽत्यक्रामन्मतिं मह्यं भीष्मस्य विदुरस्य च
ततो यमक्षयं जग्मुः समासाद्येतरेतरम् ।
पञ्चैव पाण्डवाः शिष्टा हतामित्रा हतात्मजाः
धार्तराष्ट्राश्च निहताः सर्वे ससुतबान्धवाः ।
इत्युक्तवचने कृष्णे भृशं क्रोधसमन्वितः ।
उत्तङ्क इत्युवाचैनं रोषादुत्फुल्ललोचनः ॥ १९

उत्तङ्क उवाच ।

यस्माच्छक्तेन ते कृष्ण न त्राताः कुरुपुङ्गवाः
सम्बन्धिनः प्रियास्तस्माच्छप्स्येऽहं त्वामसंशयं
न च ते प्रसभं यस्मात्ते निगृह्य निवारिताः ।
तस्मान्मन्युपरीतस्त्वां शप्स्यामि मधुसूदन ॥
त्वया शक्तेन हि सता मिथ्याचारेण माधव
ते परीताः कुरुश्रेष्ठा नश्यन्तः समुपेक्षिताः॥

वासुदेव उवाच ।

शृणु मे विस्तरेणेदं यद्वक्ष्ये भृगुनन्दन ।
गृहाणानुनयं चापि तपस्वी ह्यसि भार्गव ॥२३
श्रुत्वा च मे तदध्यात्मं मुञ्चेथाः शापमद्य वै ।
न च मां तपसाऽल्पेन शक्तोऽभिभवितुं पुमान्
न च ते तपसो नाशमिच्छामि तपतां वर ।
तपस्ते सुमहद्दीप्तं गुरवश्चापि तोषिताः ॥ २५
कौमारं ब्रह्मचर्यं ते जानामि द्विजसत्तम ।
दुःखार्जितस्य तपसस्तस्मान्नेच्छामि ते व्ययम्

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तङ्कोपाख्याने कृष्णोत्तङ्कसमागमे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## ५४

उत्तङ्क उवाच ।

ब्रूहि केशव तत्त्वेन त्वमध्यात्ममनिन्दितम् ।
श्रुत्वा श्रेयोभिधास्यामि शापं वा ते जनार्दन

वासुदेव उवाच ।

तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि भावान्मदाश्रयान्
तथा रुद्रान्वसूंश्चापि विद्धि मत्प्रभवान् द्विज
मयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चाप्यहम् ।
स्थित इत्यभिजानीहि मा तेऽभूदत्र संशयः॥३
तथा दैत्यगणान्सर्वान्यक्षगन्धर्वराक्षसान् ।
नागानप्सरसश्चैव विद्धि मत्प्रभवान्द्विज ॥ ४
सदसच्चैव यत्प्राहुरव्यक्तं व्यक्तमेव च ।
अक्षरं च क्षरं चैव सर्वमेतन्मदात्मकम् ॥ ५
ये चाश्रमेषु वै धर्माश्चतुर्धा विदिता मुने ।
वैदिकानि च सर्वाणि विद्धि सर्वं मदात्मकम्
असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम् ।
मत्तः परतरं नास्ति देवदेवात्सनातनात् ॥ ७

सौशाम्ये सौरम्ये ॥ १५ ॥ मिथ्याचारेण कपटपूर्वकम्- विरोधच्छलेन विरोधं द्रढयता परीता परित प्राप्ता. ॥ २२ ॥ अनुनयं शिक्षाम् ॥ २३ ॥ मे मत्त- ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

ब्रूहीति ॥१॥ असत् शशशृङ्गादि सदसत् घटादि सदसत्परं अव्यक्तं एतत्त्रयमपि तत्त्वत मत्.परं नास्तीत्यर्थ ॥७

ओङ्कारप्रमुखान्वेदान्विद्धि मां त्वं भृगूद्वह ।
यूपं सोमं चरुं होमं त्रिदशाप्यायनं मखे ॥ ८
होतारमपि हव्यं च विद्धि मां भृगुनन्दन ।
अध्वर्युः कल्पकश्चापि हविः परमसंस्कृतम् ९
उद्गाता चापि मां स्तौति गीतघोषैर्महाध्वरे ।
प्रायश्चित्तेषु मां ब्रह्मन् शान्तिमङ्गलवाचकाः
स्तुवन्ति विश्वकर्माणं सततं द्विजसत्तम
मम विद्धि सुतं धर्ममग्रजं द्विजसत्तम ॥ ११
मानसं दयितं विप्र सर्वभूतदयात्मकम् ।
तत्राहं वर्तमानैश्च निवृत्तैश्चैव मानवैः ॥ १२
बह्वीः संसरमाणो वै योनीर्वर्तामि सत्तम ।
धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ १३
तैस्तैर्वेषैश्च रूपैश्च त्रिषु लोकेषु भार्गव ।
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रोऽथ प्रभवाप्ययः १४
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्रष्टा संहार एव च ।
अधर्मे वर्तमानानां सर्वेषामहमच्युतः ॥ १५
धर्मस्य सेतुं बध्नामि
चलिते चलिते युगे ।
तास्ता योनीः प्रविश्याह
प्रजानां हितकाम्यया ॥ १६
यदा त्वहं देवयोनौ वर्तामि भृगुनन्दन ।
तदाऽहं देववत्सर्वमाचरामि न संशयः ॥ १७
यदा गन्धर्वयोनौ वा वर्तामि भृगुनन्दन ।
तदा गन्धर्ववत्सर्वमाचरामि न संशयः ॥ १८
नागयोनौ यदा चैव तदा वर्तामि नागवत् ।
यक्षराक्षसयोन्योस्तु यथावद्विचराम्यहम् १९
मानुष्ये वर्तमाने तु कृपणं याचिता मया ।
न च ते जातसंमोहा वचोऽगृह्णन्त मोहिताः॥
भयं च महदुद्दिश्य त्रासिताः कुरवो मया ।
क्रुद्धेन भूत्वा तु पुनर्यथावदनुदर्शिताः ॥ २१
तेऽधर्मेणेह संयुक्ताः परीताः कालधर्मणा ।
धर्मेण निहता युद्धे गताः स्वर्गं न संशयः २२
लोकेषु पाण्डवाश्चैव
गताः ख्यातिं द्विजोत्तम ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं
यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तङ्कोपाख्याने कृष्णवाक्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ५५

उत्तङ्क उवाच ।
अभिजानामि जगतः कर्तारं त्वां जनार्दन ।
नूनं भवत्प्रसादोऽयमिति मे नास्ति संशयः१
चित्तं च सुप्रसन्नं मे त्वद्भावगतमच्युत ।
विनिवृत्तं च मे शापादिति विद्धि परंतप ॥ २
यदि त्वनुग्रहं कंचित्त्वत्तोऽर्हामि जनार्दन ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं तन्निदर्शय ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
ततः स तस्मै प्रीतात्मा दर्शयामास तद्वपुः ।
शाश्वतं वैष्णवं धीमान्ददृशे यद्धनञ्जयः ॥ ४
स ददर्श महात्मानं विश्वरूपं महाभुजम् ।
सहस्रसूर्यप्रतिमं दीप्तिमत्पावकोपमम् ॥ ५
सर्वमाकाशमावृत्य तिष्ठन्तं सर्वतोमुखम् ।
तद्दृष्ट्वा परमं रूपं विष्णोर्वैष्णवमद्भुतम् ।
विस्मयं च ययौ विप्रस्तं दृष्ट्वा परमेश्वरम् ॥ ६
उत्तङ्क उवाच ।
विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन् विश्वसम्भव
पद्भ्यां ते पृथिवी व्याप्ता शिरसा चावृतं नभः
द्यावापृथिव्योर्यन्मध्यं जठरेण तवावृतम् ।
भुजाभ्यामावृताश्चाशास्त्वमिदं सर्वमच्युत ८

अधर्मेणेति च्छेदः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

यद्भगवता स्वस्य विश्वरूपत्वमुक्तं तदेव द्रष्टुमिच्छन्नुत्तङ्क उवाच—अभिजानामीत्यादिना ॥ १ ॥

संहरस्व पुनर्देवरूपमक्षय्यमुत्तमम् ।
पुनस्त्वां स्वेन रूपेण द्रष्टुमिच्छामि शाश्वतम्॥

वैशम्पायन उवाच ।

तमुवाच प्रसन्नात्मा गोविन्दो जनमेजय ।
वरं वृणीष्वेति तदा तमुत्तङ्कोऽब्रवीदिदम् १०
पर्याप्त एष एवाद्य परस्त्वत्तो महाद्युते ।
यत्ते रूपमिदं कृष्ण पश्यामि पुरुषोत्तम ॥ ११
तमब्रवीत्पुनः कृष्णो मा त्वमत्र विचारय ।
अवश्यमेतत्कर्तव्यममोघं दर्शनं मम ॥ १२

उत्तङ्क उवाच ।

अवश्यं करणीयं च यद्येतन्मन्यसे विभो ।
तोयमिच्छामि यत्रेष्टं मरुष्वेतद्धि दुर्लभम् १३
ततः संहृत्य तत्तेजः प्रोवाचोत्तङ्कमीश्वरः ।
एष्टव्ये सति चिन्त्योऽहमित्युक्त्वा द्वारकां ययौ
ततः कदाचिद्भगवानुत्तङ्कस्तोयकाङ्क्षया ।
तृषितः परिचक्राम मरौ सस्मार चाच्युतम् ॥
ततो दिग्वाससं धीमान्मातङ्गं मलपङ्किनम् ।
अपश्यत मरौ तस्मिन् श्वयूथपरिवारितम् १६
भीषणं बद्धनिस्त्रिंशं बाणकार्मुकधारिणम् ।
तस्याधः स्रोतसोऽपश्यद्वारि भूरि द्विजोत्तमः
स्मरन्नेव च तं प्राह मातङ्गः प्रहसन्निव ।
एह्युत्तङ्क प्रतीच्छस्व मत्तो वारि भृगूद्वह १८
कृपा हि मे सुमहती त्वां दृष्ट्वा तृट्समाश्रितम्
इत्युक्तस्तेन स मुनिस्तत्तोयं नाभ्यनन्दत १९
चिक्षेप च स तं धीमान्वाग्भिरुग्राभिरच्युतम्।
पुनः पुनश्च मातङ्गः पिबस्वेति तमब्रवीत् २०
न चापिबत्स सक्रोधः क्षुभितेनान्तरात्मना
स तथा निश्चयात्तेन प्रत्याख्यातो महात्मना॥
श्वभिः सह महाराज तत्रैवान्तरधीयत ।
उत्तङ्कस्तं तथा दृष्ट्वा ततो व्रीडितमानसः ॥२२
मेने प्रलब्धमात्मानं कृष्णेनामित्रघातिना ।
अथ तेनैव मार्गेण शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २३
आजगाम महाबुद्धिरुत्तङ्कश्चैनमब्रवीत् ।
न युक्तं तादृशं दातुं त्वया पुरुषसत्तम ॥ २४
सलिलं विप्रमुख्येभ्यो मातङ्गस्रोतसा विभो
इत्युक्तवचनं तं तु महाबुद्धिर्जनार्दनः ॥ २५
उत्तङ्कं श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयन्निदमब्रवीत्
यादृशेनेह रूपेण योग्यं दातुं धृतेन वै ॥ २६
तादृशं खलु ते दत्तं यच्च त्वं नावबुध्यथाः ।
मया त्वदर्थमुक्तो वै वज्रपाणिः पुरन्दरः॥२७
उत्तङ्कायामृतं देहि तोयरूपमिति प्रभुः ।
स मामुवाच देवेन्द्रो न मर्त्योऽमर्त्यतां व्रजेत्
अन्यमस्मै वरं देहीत्यसकृद्भृगुनन्दन ।
अमृतं देयमित्येव मयोक्तः स शचीपतिः २९
स मां प्रसाद्य देवेन्द्रः पुनरेवेदमब्रवीत् ।
यदि देयमवश्यं वै मातङ्गोऽहं महामते ॥ ३०
भूत्वाऽमृतं प्रदास्यामि भार्गवाय महात्मने ।
यद्येवं प्रतिगृह्णाति भार्गवोऽमृतमद्य वै ॥ ३१
प्रदातुमेष गच्छामि भार्गवस्यामृतं विभो ।
प्रत्याख्यातस्त्वहं तेन दास्यामि न कथञ्चन
स तथा समयं कृत्वा
तेन रूपेण वासवः ।
उपस्थितस्त्वया चापि
प्रत्याख्यातोऽमृतं ददत् ॥ ३३
चाण्डालरूपी भगवा-
न्सुमहांस्ते व्यतिक्रमः ।
यत्तु शक्यं मया कर्तुं
भूय एव तवेप्सितम् ॥ ३०
तोयेप्सां तव दुर्धर्षां करिष्ये सफलामहम्।
येष्वहःसु च ते ब्रह्मन्सलिलेप्सा भविष्यति ॥
तदा मरौ भविष्यन्ति जलपूर्णाः पयोधराः
रसवच्च प्रदास्यन्ति तोयं ते भृगुनन्दन ॥ ३६
उत्तङ्कमेघा इत्युक्ताः
ख्यातिं यास्यन्ति चापि ते ।
इत्युक्तः प्रीतिमान्विप्रः
कृष्णेन स बभूव ह ।
अद्याप्युत्तङ्कमेघाश्च
मरौ वर्षन्ति भारत ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तङ्कोपाख्याने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

---

एष्टव्ये जलेऽपेक्षिते सति॥ १४॥ मातंग चाडालविशेषम् १६॥ अध पाददेशे स्रोतसो इतेर्वारीति सम्बन्ध तस्य समीपे अध स्रोतसो भोगवत्या इति वा ॥ १७ ॥ चिक्षेप निन्दितवान् अच्युतं वरप्रद कृष्णम् ॥ २० ॥ प्रलब्धं वञ्चितम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय. ॥ ५५ ॥

## ५६

जनमेजय उवाच ।
उत्तङ्कः केन तपसा संयुक्तो वै महामनाः ।
यः शापं दातुकामोऽभूद्विष्णवे प्रभविष्णवे १
वैशम्पायन उवाच ।
उत्तङ्को महता युक्तस्तपसा जनमेजय ।
गुरुभक्त स तेजस्वी नान्यत्किंचिदपूजयत् २
सर्वेषामृषिपुत्राणामेष आसीन्मनोरथः ।
औत्तङ्कीं गुरुवृत्तिं वै प्राप्नुयामेति भारत ।
गौतमस्य तु शिष्याणां बहूनां जनमेजय ॥ ३
उत्तङ्केऽभ्यधिका प्रीतिः स्नेहश्चैवाभवत्तदा ।
स तस्य दमशौचाभ्यां विक्रान्तेन च कर्मणा
सम्यक्चैवोपचारेण गौतमः प्रीतिमानभूत् ।
अथ शिष्यसहस्राणि समनुज्ञातवानृषिः ॥ ५
उत्तङ्कं परया प्रीत्या नाभ्यनुज्ञातुमैच्छत ।
तं क्रमेण जरा तात प्रतिपेदे महामुनिम् ॥ ६
न चान्वबुध्यत तदा स मुनिर्गुरुवत्सलः ।
ततः कदाचिद्राजेन्द्र काष्ठान्यानयितुं ययौ ७
उत्तङ्कः काष्ठभारं च महान्तं समुपानयत् ।
स तद्भाराभिभूतात्मा काष्ठभारमरिंदम ॥ ८
निचिक्षेप क्षितौ राजन्परिश्रान्तो बुभुक्षितः।
तस्य काष्ठे विलग्नाऽभूज्जटा रूप्यसमप्रभा ॥ ९
ततः काष्ठैः सह तदा पपात धरणीतले ।
ततः स भारनिष्पिष्टः क्षुधाविष्टश्च भारत ॥
दृष्ट्वा तां वयसोवस्थां रुरोदार्तस्वरस्तदा ।
ततो गुरुसुता तस्य पद्मपत्रनिभानना ॥ ११
जग्राहाश्रूणि सुश्रोणी करेण पृथुलोचना ।
पितुर्नियोगाद्धर्मज्ञा शिरसाऽवनता तदा १२
तस्या निपेततुर्दग्धौ करौ तैरश्रुबिन्दुभिः ।
न हि तानश्रुपातांस्तु शक्ता धारयितुं मही १३
गौतमस्त्वब्रवीद्विप्रमुत्तङ्कं प्रीतमानसः ।
कस्मात्तात तवाद्येह शोकोत्तरमिदं मनः ॥ १४
स स्वैरं ब्रूहि विप्रर्षे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
उत्तङ्क उवाच ।
भवद्गतेन मनसा भवत्प्रियचिकीर्षया ।
भवद्भक्तिगतेनेह भवद्भावानुगेन च ॥ १५
जरेयं नावबुद्धा मे नाभिज्ञातं सुखं च मे ।
शतवर्षोषितं मां हि न त्वमभ्यनुजानिथाः १६
भवता त्वभ्यनुज्ञाताः शिष्याः प्रत्यवरा मम ।
उपपन्ना द्विजश्रेष्ठ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७
गौतम उवाच ।
त्वत्प्रीतियुक्तेन मया गुरुशुश्रूषया तव ।
व्यतिक्रामन्महाकालो नावबुद्धो द्विजर्षभ १८
किं त्वद्य यदि ते श्रद्धा गमनं प्रति भार्गव ।
अनुज्ञां प्रतिगृह्य त्वं स्वगृहान्गच्छ मा चिरम्
उत्तङ्क उवाच ।
गुर्वर्थं कं प्रयच्छामि ब्रूहि त्वं द्विजसत्तम ।
तमुपाहृत्य गच्छेयमनुज्ञातस्त्वया विभो ॥ २०
गौतम उवाच ।
दक्षिणा परितोषो वै गुरूणां सद्भिरुच्यते ।
तव ह्याचरतो ब्रह्मंस्तुष्टोऽहं वै न संशयः ॥ २१
इत्थं च परितुष्टं मां विजानीहि भृगूद्वह ।
युवा षोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान् २२
ददानि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज
एतामृतेऽङ्गना नान्या त्वत्तेजोऽर्हति सेवितुम्
ततस्तां प्रतिजग्राह युवा भूत्वा यशस्विनीम्
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातो गुरुपत्नीमथाब्रवीत् ॥ २४
कं भवत्यै प्रयच्छामि गुर्वर्थं विनियुङ्क्ष्व माम् ।
प्रियं हितं च काङ्क्षामि प्राणैरपि धनैरपि २५
यद्दुर्लभं हि लोकेऽस्मिन् रत्नमत्यद्भुतं महत् ।
तदानयेयं तपसा न हि मेऽत्रास्ति संशयः
अहल्योवाच ।
परितुष्टास्मि ते विप्र नित्यं भक्त्या तवानघ
पर्याप्तमेतद्भद्रं ते गच्छ तात यथेप्सितम् ॥ २७
वैशम्पायन उवाच ।
उत्तङ्कस्तु महाराज पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
आज्ञापयस्व मां मातः कर्तव्यं च तव प्रियम्
अहल्योवाच ।
सौदासपत्न्या विधृते दिव्ये ये मणिकुण्डले
ते समानय भद्रं ते गुर्वर्थः सुकृतो भवेत् ॥ २९

---

५६

उत्तङ्क इति ॥ १ ॥ निचिक्षेपेत्यत्र निचिक्षेपेति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ ९ ॥ निष्पिष्ट चूर्णीभूत इव ॥ १० ॥ अभ्यनुजानीथा अभ्यनुजानिथा अभ्यनुज्ञानवानसि अड भावो ह्रस्वत्वं चार्षम् ॥ १६ ॥

स तथेति प्रतिश्रुत्य जगाम जनमेजय ।
गुरुपत्नीप्रियार्थं वै ते समानयितुं तदा ॥ ३०
स जगाम ततः शीघ्रमुत्तङ्को ब्राह्मणर्षभः ।
सौदासं पुरुषादं वै भिक्षितुं मणिकुण्डले ३१
गौतमस्त्वब्रवीत्पत्नीमुत्तङ्को नाद्य दृश्यते ।
इति पृष्टा तमाचष्ट कुण्डलार्थं गतं च सा ॥३२
ततः प्रोवाच पत्नीं स न ते सम्यगिदं कृतम् ।
शप्तः स पार्थिवो नूनं ब्राह्मणं तं वधिष्यति ॥

अहल्योवाच ।

अजानन्त्या नियुक्तः स भगवन्ब्राह्मणो मया
भवत्प्रसादान्न भयं किंचित्तस्य भविष्यति ॥
इत्युक्तः प्राह तां पत्नीमेवमस्त्विति गौतमः ।
उत्तङ्कोऽपि वने शून्ये राजानं तं ददर्श ह ३५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तङ्कोपाख्याने कुण्डलाहरणे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## ५७

वैशम्पायन उवाच ।

स तं दृष्ट्वा तथाभूतं राजानं घोरदर्शनम् ।
दीर्घश्मश्रुधरं नृणां शोणितेन समुक्षितम् १
चकार न व्यथां विप्रो राजा त्वेनमथाब्रवीत् ।
प्रत्युत्थाय महातेजा भयकर्ता यमोपमः ॥ २
दिष्ट्या त्वमसि कल्याण
षष्ठे काले ममान्तिकम् ।
भक्ष्यं मृगयमाणस्य
संप्राप्तो द्विजसत्तम ॥ ३

उत्तङ्क उवाच ।

राजन्गुर्वर्थिनं विद्धि चरन्तं मामिहागतम् ।
न च गुर्वर्थमुद्युक्तं हिंस्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ४

राजोवाच ।

षष्ठे काले ममाहारो विहितो द्विजसत्तम ।
न शक्यस्त्वं समुत्स्रष्टुं क्षुधितेन मयाद्य वै ५

उत्तङ्क उवाच ।

एवमस्तु महाराज समयः क्रियतां तु मे ।
गुर्वर्थमभिनिर्वर्त्य पुनरेष्यामि ते वशम् ॥ ६
संश्रुतश्च मया योऽर्थो गुरवे राजसत्तम ।
त्वदधीनः स राजेन्द्र तं त्वां भिक्षे नरेश्वर७
ददासि विप्रमुख्येभ्यस्त्वं हि रत्नानि नित्यदा
दाता च त्वं नरव्याघ्र पात्रभूतः क्षिताविह ।
पात्रं प्रतिगृहे चापि विद्धि मां नृपसत्तम ॥ ८
उपाहृत्य गुरोरर्थं त्वदायत्तमरिन्दम ।
समयेनेह राजेन्द्र पुनरेष्यामि ते वशम् ॥ ९
सत्यं ते प्रतिजानामि नात्र मिथ्या कथञ्चन ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा॥१०

सौदास उवाच ।

यदि मत्तस्त्वायत्तो गुर्वर्थः कृत एव सः ।
यदि चास्मि प्रतिग्राह्यः सांप्रतं तद्ब्रवस्व मे ११

उत्तङ्क उवाच ।

प्रतिग्राह्यो मतो मे त्वं सदैव पुरुषर्षभ ।
सोऽहं त्वामनुसंप्राप्तो भिक्षितुं मणिकुण्डले१२

सौदास उवाच ।

पत्न्यास्ते मम विप्रर्षे उचिते मणिकुण्डले
वरयार्थं त्वमन्यं वै तं ते दास्यामि सुव्रत ॥१३

उत्तङ्क उवाच ।

अलं ते व्यपदेशेन प्रमाणा यदि ते वयम् ।
प्रयच्छ कुण्डले मह्यं सत्यवाग्भव पार्थिव १४

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तस्त्वब्रवीद्राजा तमुत्तङ्कं पुनर्वचः ।
गच्छ मद्वचनाद्देवीं ब्रूहि देहीति सत्तम ॥ १५
सैवमुक्ता त्वया नूनं मद्वाक्येन शुचिस्मिता ।
प्रदास्यति द्विजश्रेष्ठ कुण्डले ते न संशयः॥१६

उत्तङ्क उवाच ।

क्व पत्नी भवतः शक्या मया द्रष्टुं नरेश्वर ।
स्वयं वाऽपि भवान्पत्नीं किमर्थं नोपसर्पति ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे षटपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

स तमिति ॥ १ ॥

सौदास उवाच ।
तां द्रक्ष्यति भवानद्य कस्मिंश्चिद्वननिर्झरे ।
षष्ठे काले न हि मया सा शक्या द्रष्टुमद्य वै ॥
वैशम्पायन उवाच ।
उत्तङ्कस्तु तथोक्तः स जगाम भरतर्षभ ।
मदयन्तीं च दृष्ट्वा स ज्ञापयत्स्वप्रयोजनम् १९
सौदासवचनं श्रुत्वा ततः सा पृथुलोचना ।
प्रत्युवाच महाबुद्धिमुत्तङ्कं जनमेजय ॥ २०
एवमेतद्द्विज ब्रह्मन्नानृतं वदसेऽनघ ।
अभिज्ञानं तु किंचित्त्वं समानयितुमर्हसि २१
इमे हि दिव्ये मणिकुण्डले मे
देवाश्च यक्षाश्च महर्षयश्च ।
तैस्तैरुपायैरपहर्तुकामा-
श्छिद्रेषु नित्यं परितर्कयन्ति ॥ २२
निक्षिप्तमेतद्भुवि पन्नगास्तु
रत्नं समासाद्य परामृशेयुः ।
यक्षास्तथोच्छिष्टधृतं सुराश्च
निद्रावशाद्वा परिधर्षयेयुः ॥ २३
छिद्रेष्वेतेष्विमे नित्यं ह्रियेते द्विजसत्तम ।
देवराक्षसनागानामप्रमत्तेन धार्यते ॥ २४
स्यन्देते हि दिवा रुक्मं रात्रौ च द्विजसत्तम
नक्तं नक्षत्रताराणां प्रभामाक्षिप्य वर्ततः २५
एते ह्यामुच्य भगवन् क्षुत्पिपासाभयं कुतः ।
विषाग्निश्वापदेभ्यश्च भयं जातु न विद्यते २६
ह्रस्वे न चैते आमुक्ते भवतो ह्रस्वके तदा ।
अनुरूपेण चामुक्ते जायेते तत्प्रमाणके ॥ २७
एवंविधे ममैते वै कुण्डले परमार्चिते ।
त्रिषु लोकेषु विज्ञाते तदभिज्ञानमानय ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तङ्कोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## ५८

वैशम्पायन उवाच ।
स मित्रसहमासाद्य अभिज्ञानमयाचत ।
तस्मै ददावभिज्ञानं स चेक्ष्वाकुवरस्तदा १
सौदास उवाच ।
न चैवैषा गतिः क्षेम्या न चान्या विद्यते गतिः
एतन्मे मतमाज्ञाय प्रयच्छ मणिकुण्डले ॥ २
इत्युक्तस्तामुत्तङ्कस्तु भर्तुर्वाक्यमथाब्रवीत् ।
श्रुत्वा च सा तदा प्रादात्ततस्ते मणिकुण्डले
अवाप्य कुण्डले ते तु राजानं पुनरब्रवीत् ।
किमेतद्गुह्य वचनं श्रोतुमिच्छामि पार्थिव ४
सौदास उवाच ।
प्रजा निसर्गाद्विप्रान्वै क्षत्रियाः पूजयन्ति ह
विप्रेभ्यश्चापि बहवो दोषाः प्रादुर्भवन्ति वै ५
सोऽहं द्विजेभ्यः प्रणतो विप्राद्दोषमवाप्तवान् ।
गतिमन्यां न पश्यामि मदयन्तीसहायवान् ६
न चान्यामपि पश्यामि गतिं गतिमतां वर ।
स्वर्गद्वारस्य गमने स्थाने चेह द्विजोत्तम ॥ ७
न हि राज्ञा विशेषेण विरुद्धेन द्विजातिभिः ।
शक्यं हि लोके स्थातुं वै प्रेत्य वा सुखमेधितुम्
तदिष्टे ते मया दत्ते एते स्वे मणिकुण्डले ।
यः कृतस्तेऽद्य समयः सफलं तं कुरुष्व मे ९
उत्तङ्क उवाच ।
राजंस्तथेह कर्तास्मि पुनरेष्यामि ते वशम् ।
प्रश्नं च कंचित्प्रष्टुं त्वां निवृत्तोऽस्मि परन्तप ॥

---

छिद्रेष्वेतेष्विमे इति पूर्वान्वयि नागाना नागै ह्रियेत इति सम्बन्ध ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

५८

**स मित्रेति** । मित्रसह सौदास अभिज्ञान श्लोकरूपं ज्ञापकम् ॥ १ ॥ तदेवाह—**न चेति** । एषा रक्षोयोनिरूपा अन्या इतो मुक्तिरूपा अतो मम इतोगतेर्मुक्त्यर्थं प्रयच्छ देहि मणिमये कुण्डले ॥ २ ॥

सौदास उवाच ।

ब्रूहि विप्र यथाकामं प्रतिवक्तास्मि त वचः।
छेत्ताऽस्मि संशयं तेऽद्य न मेत्रास्ति विचारणा

उत्तङ्क उवाच ।

प्राहुर्वाक्संयतं विप्रं धर्मनैपुणदर्शिनः।
मित्रेषु यश्च विषमः स्तेन इत्येव तं विदुः १२
स भवान्मित्रतामद्य संप्राप्तो मम पार्थिव ।
स मे बुद्धिं प्रयच्छस्व संमतां पुरुषर्षभ ॥ १३
अवाप्तार्थोऽहमद्येह भवांश्च पुरुषादकः।
भवत्सकाशमागन्तुं क्षमं मम न वेति वै १४

सौदास उवाच ।

क्षमं चेदिह वक्तव्यं तव द्विजवरोत्तम ।
मत्समीपं द्विजश्रेष्ठ नागन्तव्यं कथञ्चन ॥ १५
एवं तव प्रपश्यामि श्रेयो भृगुकुलोद्वह ।
आगच्छतो हि ते विप्र भवेन्मृत्युर्न संशयः१६

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तः स तदा राज्ञा क्षमं बुद्धिमता हितम्
अनुज्ञाप्य स राजानमहल्यां प्रतिजग्मिवान्
गृहीत्वा कुण्डले दिव्ये गुरुपत्न्याः प्रियङ्करः
जवेन महता प्रायाद्गौतमस्याश्रमं प्रति ॥ १८
यथा तयो रक्षणं च मदयन्त्याभिभाषितम् ।
तथा ते कुण्डले बद्ध्वा तदा कृष्णाजिनेऽनयत

स कस्मिंश्चित्क्षुधाविष्टः
फलभारसमन्वितम् ।
बिल्वं ददर्श विप्रर्षि-
रारुरोह च तं ततः ॥ २० ॥

शाखामासज्य तस्यैव कृष्णाजिनमरिन्दम
पातयामास बिल्वानि तदा स द्विजपुङ्गवः २१
अथ पातयमानस्य बिल्वापहृतचक्षुषः ।
न्यपतंस्तानि बिल्वानि तस्मिन्नेवाजिने विभो
यस्मिंस्ते कुण्डले बद्धे तदा द्विजवरेण वै ।
बिल्वप्रहारैस्तस्याथ व्यशीर्यद्बन्धनं ततः २३
सकुण्डलं तदजिनं पपात सहसा तरोः।
विशीर्णबन्धने तस्मिन्गते कृष्णाजिने महीम्
अपश्यद्भुजगः कश्चित्ते तत्र मणिकुण्डले ।
ऐरावतकुलोद्भूतः शीघ्रो भूत्वा तदा हि सः॥
विदश्यास्येन वल्मीकं विवेशाथ स कुण्डले
ह्रियमाणे तु दृष्ट्वा स कुण्डले भुजगेन ह. २६

पपात वृक्षात्सोद्वेगो दुःखात्परमकोपनः ।
स दण्डकाष्ठमादाय वल्मीकमखनत्तदा २७
अहानि त्रिंशदव्यग्रः पञ्च चान्यानि भारत ।
क्रोधामर्षाभिसंतप्तस्तदा ब्राह्मणसत्तमः २८
तस्य वेगमसह्यं तमसहन्ती वसुन्धरा ।
दण्डकाष्ठाभिनुन्नाङ्गी चचाल भृशमाकुला ॥
ततः खनत एवाथ विप्रर्षेर्धरणीतलम् ।
नागलोकस्य पन्थानं कर्तुकामस्य निश्चयात् ॥
रथेन हरियुक्तेन तं देशमुपजग्मिवान् ।
वज्रपाणिर्महातेजास्तं ददर्श द्विजोत्तमम् ३०

वैशम्पायन उवाच ।

स तु तं ब्राह्मणो भूत्वा तस्य दुःखेन दुःखितः
उत्तङ्कमब्रवीद्वाक्यं नैतच्छक्यं त्वयेति वै ३१
इतो हि नागलोको वै योजनानि सहस्रशः ।
न दण्डकाष्ठसाध्यं च मन्ये कार्यमिदं तव ॥

उत्तङ्क उवाच ।

नागलोके यदि ब्रह्मन्न शक्ये कुण्डले मया।
प्राप्तुं प्राणान्विमोक्ष्यामि पश्यतस्ते द्विजोत्तम

वैशम्पायन उवाच ।

यदा स नाशकत्तस्य निश्चयं कर्तुमन्यथा ।
वज्रपाणिस्तदा दण्डं वज्रास्त्रेण युयोज ह ३४
ततो वज्रप्रहारैस्तैर्दार्यमाणा वसुन्धरा ।
नागलोकस्य पन्थानमकरोज्जनमेजय ॥ ३५
स तेन मार्गेण तदा नागलोकं विवेश ह ।
ददर्श नागलोकं च योजनानि सहस्रशः ३६
प्राकारनिचयैर्दिव्यैर्मणिमुक्तास्वलंकृतैः ।
उपपन्नं महाभाग शातकुम्भमयैस्तथा ॥ ३७
वापीः स्फटिकसोपाना नदीश्च विमलोदकाः
ददर्श वृक्षांश्च बहून्नानाद्विजगणायुतान् ॥ ३८
तस्य लोकस्य च द्वारं स ददर्श भृगूद्वहः ।
पञ्चयोजनविस्तारमायतं शतयोजनम् ॥ ३९
नागलोकमुत्तङ्कस्तु प्रेक्ष्य दीनोऽभवत्तदा ।
निराशश्चाभवत्तत्र कुण्डलाहरणे पुनः ॥ ४०
तत्र प्रोवाच तुरगस्तं कृष्णश्वेतवालधिः ।
ताम्रास्यनेत्रः कौरव्यः प्रज्वलन्निव तेजसा ॥
धमस्वापानमेतन्मे ततस्त्वं विप्र लप्स्यसे ।
ऐरावतसुतेनेह तवानीते हि कुण्डले ॥ ४२

---

शाखां शाखायाम् ॥ २१ ॥ आस्येन कुण्डले विदश्य धृत्वा वल्मीकं विवेशेति सम्बन्ध ॥ २६ ॥

मा जुगुप्सां कृथाः पुत्र त्वमत्रार्थे कथञ्चन ।
त्वयतद्धि समाचीर्णं गौतमस्याश्रमे तदा ४३
उत्तङ्क उवाच ।
कथं भवन्तं जानीयामुपाध्यायाश्रमं प्रति ।
यन्मया चीर्णपूर्वं हि श्रोतुमिच्छामि तद्ध्यहम्
अश्व उवाच ।
गुरोर्गुरुं मां जानीहि ज्वलनं जातवेदसम् ।
त्वया ह्यहं सदा विप्र गुरोरर्थेऽभिपूजितः ४५
विधिवत्सततं विप्र शुचिना भृगुनन्दन ।
तस्माच्छ्रेयो विधास्यामि तवैवं कुरु मा चिरम्
इत्युक्तस्तु तथाऽकार्षीदुत्तङ्कश्चित्रभानुना ।
धूमार्चिः प्रीतिमांश्चापि प्रजज्वलि दिधक्षया
ततोऽस्य रोमकूपेभ्यो ध्मायतस्तत्र भारत ।
घनः प्रादुरभूद्धूमो नागलोकभयावहः ॥ ४८
तेन धूमेन महता वर्धमानेन भारत ।
नागलोके महाराज न प्राज्ञायत किञ्चन ४९
हाहाकृतमभूत्सर्वमैरावतनिवेशनम् ।
वासुकिप्रमुखानां च नागानां जनमेजय ५०
न प्राकाशन्त वेश्मानि धूमरुद्धानि भारत ।
नीहारसंवृतानीव वनानि गिरयस्तथा ॥ ५१
ते धूमरक्तनयना वह्नितेजोऽभितापिताः ।
आजग्मुर्निश्चयं ज्ञातुं भार्गवस्य महात्मनः ५२
श्रुत्वा च निश्चयं तस्य महर्षेरमितेजसः ।
सम्भ्रान्तनयनाः सर्वे पूजां चक्रुर्यथाविधि ५३
सर्वे प्राञ्जलयो नागा वृद्धबालपुरोगमाः ।
शिरोभिः प्रणिपत्योचुः प्रसीद भगवन्निति ॥
प्रसाद्य ब्राह्मणं ते तु पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च ।
प्रायच्छन्कुण्डले दिव्ये पन्नगाः परमार्चिते५५
ततः स पूजितो नागैस्तत्रोत्तङ्कः प्रतापवान् ।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा जगाम गुरुसद्म तत् ५६
स गत्वा त्वरितो राजन् गौतमस्य निवेशनम्
प्रायच्छत् कुण्डले दिव्ये गुरुपत्न्यास्तदाऽनघ
वासुकिप्रमुखानां च नागानां जनमेजय ।
सर्वं शशंस गुरवे यथावद्द्विजसत्तमः ॥ ५८
एवं महात्मना तेन त्रींल्लोकान् जनमेजय ।
परिक्रम्याहृते दिव्ये ततस्ते मणिकुण्डले ५९
एवंप्रभावः स मुनिरुत्तङ्को भरतर्षभ ।
परेण तपसा युक्तो यन्मां त्वं परिपृच्छसि६०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तङ्कोपाख्याने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## ५९

जनमेजय उवाच ।
उत्तङ्कस्य वरं दत्त्वा गोविन्दो द्विजसत्तम
अत ऊर्ध्वं महाबाहुः किं चकार महायशाः १
वैशम्पायन उवाच ।
उत्तङ्काय वरं दत्त्वा प्रायात्सात्यकिना सह ।
द्वारकामेव गोविन्दः शीघ्रवेगैर्महाहयैः ॥ २
सरांसि सरितश्चैव वनानि च गिरींस्तथा ।
अतिक्रम्याससादाथ रम्यां द्वारवतीं पुरीम् ३
वर्तमाने महाराज महे रैवतकस्य च ।
उपायात्पुण्डरीकाक्षो युयुधानानुगस्तदा ४
अलङ्कृतस्तु स गिरिर्नानारूपैर्विचित्रितैः ।
बभौ रत्नमयैः कोशैः संवृतः पुरुषर्षभ ॥ ५
काञ्चनस्रग्भिरग्र्याभिः सुमनोभिस्तथैव च ।
वासोभिश्च महाशैलः कल्पवृक्षैस्तथैव च ६
दीपवृक्षैश्च सौवर्णैरभीक्ष्णमुपशोभितः ।
गुहानिर्झरदेशेषु दिवाभूतो बभूव ह ॥ ७

धम्यतो धम्यमानस्य ॥ ४८ ॥ एवमिति गुरुभक्तेषु देवा अप्यनुग्रहं कुर्वन्तीति भावः ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८॥

५९

उत्तङ्कस्येति ॥ १ ॥ महे उत्सवे ॥ ४ ॥ दिवाभूत· दिवसवत्प्रकाशबहुल दिवाकरतुल्य इति यावत् ॥ ७ ॥

पताकाभिर्विचित्राभिः सघण्टाभिः समंततः
पुम्भिः स्त्रीभिश्च संघुष्टः प्रगीत इव चाभवत्
अतीव प्रेक्षणीयोऽभून्मेरुर्मुनिगणैरिव।
मत्तानां हृष्टरूपाणां स्त्रीणां पुंसां च भारत ९
गायतां पर्वतेन्द्रस्य दिवस्पृगिव निःस्वनः।
प्रमत्तमत्तसंमत्तक्ष्वेडितोत्कृष्टसंकुलः॥ १०
तथा किलकिलाशब्दैर्भूधरोऽभून्मनोहरः।
विपणापणवान् रम्यो भक्ष्यभोज्यविहारवान्
वस्त्रमाल्योत्करयुतो वीणावेणुमृदङ्गवान्।
सुरामैरेयमिश्रेण भक्ष्यभोज्येन चैव ह॥ १२
दीनान्धकृपणादिभ्यो दीयमानेन चानिशम्
बभौ परमकल्याणो महस्तस्य महागिरेः १३
पुण्यावसथवान्वीर पुण्यकृद्भिर्निषेवितः।
विहारो वृष्णिवीराणां महे रैवतकस्य ह १४
स नगो वेश्मसंकीर्णो देवलोक इवाबभौ।
तदा च कृष्णसांनिध्यमासाद्य भरतर्षभ १५
शक्रसद्मप्रतीकाशो बभूव स हि शैलराट्।
ततः संपूज्यमानः स विवेश भवनं शुभम्॥
गोविन्दः सात्यकिश्चैव जगाम भवनं स्वकम्
विवेश च प्रहृष्टात्मा चिरकालप्रवासतः १७
कृत्वा नसुकरं कर्म दानवेष्विव वासवः।
उपायान्तं तु वार्ष्णेयं भोजवृष्ण्यन्धकास्तथा
अभ्यगच्छन्महात्मानं देवा इव शतक्रतुम्।
स तानभ्यर्च्य मेधावी पृष्ट्वा च कुशलं तदा।
अभ्यवादयत प्रीतः पितरं मातरं तदा १९
ताभ्यां स संपरिष्वक्तः सांत्वितश्च महाभुजः
उपोपविष्टः सर्वैस्तैर्वृष्णिभिः परिवारितः २०
स विश्रान्तो महातेजाः कृतपादावनेजनः।
कथयामास तत्सर्वं पृष्टः पित्रा महाहवम् २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि कृष्णस्य द्वारकाप्रवेशे ऊनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

## ६०

वसुदेव उवाच।

श्रुतवानस्मि वार्ष्णेय सग्रामं परमाद्भुतम्।
नराणां वदतां तत्र कथं वा तेषु नित्यशः॥ १
त्वं तु प्रत्यक्षदर्शी च रूपज्ञश्च महाभुजः।
तस्मात्प्रब्रूहि संग्रामं याथातथ्येन मेऽनघ॥ २
यथा तदभवद्युद्धं पाण्डवानां महात्मनाम्।
भीष्म-कर्ण-कृप-द्रोण-शल्यादिभिरनुत्तमम्
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणामनेकशः।
नानावेषाकृतिमतां नानादेशनिवासिनाम् ४

वैशम्पायन उवाच।

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षः पित्रा मातुस्तदन्तिके
शशंस कुरुवीराणां संग्रामे निधनं यथा॥ ५

वासुदेव उवाच।

अत्यद्भुतानि कर्माणि क्षत्रियाणां महात्मनाम्
बहुलत्वान्न संख्यातुं शक्यान्यब्दशतैरपि॥ ६
प्राधान्यतस्तु गदतः समासेनैव मे शृणु।
कर्माणि पृथिवीशानां यथावदमरद्युते॥ ७
भीष्मः सेनापतिरभूदेकादशचमूपतिः।
कौरव्यः कौरवेन्द्राणां देवानामिव वासवः ८
शिखण्डी पाण्डुपुत्राणां नेता सप्तचमूपतिः।
बभूव रक्षितो धीमान् श्रीमता सव्यसाचिना
तेषां तदभवद्युद्धं दशाहानि महात्मनाम्।
कुरूणां पाण्डवानां च सुमहल्लोमहर्षणम् १०

---

प्रमत्ता' क्रीडाद्यासक्त्यानवहिता. मत्ता मद्यादिना संमत्ता हृष्टा. क्ष्वेडितं कूर्दनं उत्कृष्टं अन्योन्यमाकर्षणं तै सकुल. तच्छब्दैराकुलो नि स्वन. अभूदिति शेष॥ १०॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनषष्टितमोऽध्याय.॥ ५९॥

६०

श्रुतवानस्मि वार्ष्णेयेति॥ १॥ पित्रा मातुरन्तिके इत्युक्त पुंडरीकाक्ष संग्रामे तत्कुरुवीराणा निधन यथा यथावच्छशंसेत्यन्वय॥ ५॥

ततः शिखण्डी गाङ्गेयं युध्यमानं महाहवे।
जघान बहुभिर्बाणैः सह गाण्डीवधन्वना ११
अकरोत्स ततः कालं शरतल्पगतो मुनिः।
अयनं दक्षिण हित्वा सम्प्राप्ते चोत्तरायणे॥ १२
ततः सेनापतिरभूद्द्रोणोऽस्त्रविदुषां वरः।
प्रवीरः कौरवेन्द्रस्य काव्यो दैत्यपतेरिव १३
अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्नवभिर्द्विजसत्तमः।
संवृतः समरश्लाघी गुप्तः कृपवृषादिभिः १४
धृष्टद्युम्नस्त्वभून्नेता पाण्डवानां महास्त्रवित्।
गुप्तो भीमेन मेधावी मित्रेण वरुणो यथा १५
स च सेनापरिवृतो द्रोणप्रेप्सुर्महामनाः।
पितुर्निकारान्संस्मृत्य रणे कर्माकरोन्महत्॥
तस्मिंस्ते पृथिवीपाला द्रोणपार्षतसङ्गरे।
नानादिगागता वीराः प्रायशो निधनं गताः॥
दिनानि पञ्च तद्युद्धमभूत्परमदारुणम।
ततो द्रोणः परिश्रान्तो धृष्टद्युम्नवशं गतः १८
ततः सेनापतिरभूत्कर्णो दौर्योधने बले।
अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्वृतः पञ्चभिराहवे॥
तिस्रस्तु पाण्डुपुत्राणां चम्वो बीभत्सुपालिताः
हतप्रवीरभूयिष्ठा बभूवुः समवास्थिताः॥ २०
ततः पार्थं समासाद्य पतङ्ग इव पावकम्।
पञ्चत्वमगमत्सौतिर्द्वितीयेऽहनि दारुणः॥२१
हते कर्णे तु कौरव्या निरुत्साहा हतौजसः।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्मद्रेशं पर्यवारयन्॥२२
हतवाहनभूयिष्ठाः पाण्डवापि युधिष्ठिरम्।
अक्षौहिण्या निरुत्साहाः शिष्टया पर्यवारयन्
अवधीन्मद्रराजानं कुरुराजो युधिष्ठिरः।
तस्मिंस्तदार्धदिवसे कृत्वा कर्म सुदुष्करम् २४
हते शल्ये तु शकुनिं सहदेवो महामनाः।
आहर्तारं कलेस्तस्य जघानामितविक्रमः॥२५
निहते शकुनौ राजा धार्तराष्ट्रः सुदुर्मनाः।
अपाक्रामद्गदापाणिर्हतभूयिष्ठसैनिकः॥ २६
तमन्वधावत्संक्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान्।
ह्रदे द्वैपायने चापि सलिलस्थं ददर्श तम् २७
हतशिष्टेन सैन्येन समन्तात्पर्यवार्य तम्।
अथोपविविशुर्हृष्टा ह्रदस्थं पञ्च पाण्डवाः॥२८
विगाह्य सलिलं त्वाशु वाग्बाणैर्भृशविक्षतः।
उत्थाय स गदापाणिर्युद्धाय समुपस्थितः २९
ततः स निहतो राजा धार्तराष्ट्रो महारणे।
भीमसेनेन विक्रम्य पश्यतां पृथिवीक्षिताम्॥
ततस्तत्पाण्डवं सैन्यं प्रसुप्तं शिबिरे निशि
निहतं द्रोणपुत्रेण पितुर्वधममृष्यता॥ ३१
हतपुत्रा हतबला हतमित्रा मया सह।
युयुधानसहायेन पञ्च शिष्टास्तु पाण्डवाः३२
सहैव कृपभोजाभ्यां द्रौणिर्युद्धादमुच्यत।
युयुत्सुश्चापि कौरव्यो मुक्तः पाण्डवसंश्रयात्
निहते कौरवेन्द्रे तु सानुबन्धे सुयोधने।
विदुरः सञ्जयश्चैव धर्मराजमुपस्थितौ॥ ३४
एवं तदभवद्युद्धमहान्यष्टादश प्रभो।
यत्र ते पृथिवीपाला निहताः स्वर्गमावसन्॥
वैशम्पायन उवाच।
शृण्वतां तु महाराज कथां तां लोमहर्षणाम्
दुःखशोकपरिक्लेशा वृष्णीनामभवंस्तदा ३६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि वासुदेववाक्ये
षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

## ६१

वैशम्पायन उवाच।
कथयन्नेव तु तदा वासुदेवः प्रतापवान्।
महाभारतयुद्धं तत्कथान्ते पितुरग्रतः॥ १
अभिमन्योर्वधं वीरः सोऽत्यक्रामन्महामतिः।
अप्रियं वसुदेवस्य माभूदिति महामतिः॥ २
मा दौहित्रवधं श्रुत्वा वसुदेवो महात्ययम्॥३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे षष्टितमोऽध्याय॥ ६०॥

६१
कथयन्नेवेति॥ १॥

दुःखशोकाभिसन्तप्तो भवेदिति महामतिः ।
सुभद्रा तु तमुत्क्रान्तमात्मजस्य वधं रणे ॥ ४
आचक्ष्व कृष्ण सौभद्रवधमित्यपतद्भुवि ।
तामपश्यन्निपतितां वसुदेवः क्षितौ तदा ॥ ५
दृष्ट्वैव च पपातोर्व्यां सोऽपि दुःखेन मूर्च्छितः
ततः स दौहित्रवधदुःखशोकसमाहतः ॥ ६
वसुदेवो महाराज कृष्णं वाक्यमथाब्रवीत् ।
ननु त्वं पुण्डरीकाक्ष सत्यवाग्भुवि विश्रुतः ७
यद्दौहित्रवधं मेऽद्य न ख्यापयसि शत्रुहन् ।
तद्भागिनेयनिधनं तत्त्वेनाचक्ष्व मे प्रभो ॥ ८
सदृशाक्षस्तव कथं शत्रुभिर्निहतो रणे ।
दुर्मरं बत वार्ष्णेय कालेऽप्राप्ते नृभिः सह ९
यत्र मे हृदयं दुःखाच्छतधा न विदीर्यते ।
किमब्रवीत्त्वां संग्रामे सुभद्रां मातरं प्रति १०
मां चापि पुण्डरीकाक्ष चपलाक्षः प्रियो मम
आहवं पृष्ठतः कृत्वा कच्चिन्न निहतः परैः ११
कच्चिन्मुखं न गोविन्द तेनाजौ विकृतं कृतम्
स हि कृष्ण महातेजाः श्लाघन्निव ममाग्रतः
बालभावेन विनयमात्मनोऽकथयत्प्रभुः ।
कच्चिन्न निकृतो बालो द्रोण-कर्ण-कृपादिभिः
धरण्यां निहतः शेते तन्ममाचक्ष्व केशव ।
स हि द्रोणं च भीष्मं च कर्णं च बलिनां वरम्
स्पर्धते स्म रणे नित्यं दुहितुः पुत्रको मम ।
एवंविधं बहु तदा विलपन्तं सुदुःखितम् १५
पितरं दुःखिततरो गोविन्दो वाक्यमब्रवीत्
न तेन विकृतं वक्त्रं कृतं संग्राममूर्धनि॥१६
न पृष्ठतः कृतश्चापि संग्रामस्तेन दुस्तरः ।
निहत्य पृथिवीपालान्सहस्रशतसंघशः ॥ १७
खेदितो द्रोणकर्णाभ्यां दौःशासनिवशं गतः
एको ह्येकेन सततं युध्यमाने यदि प्रभो १८
न स शक्येत संग्रामे निहन्तुमपि वज्रिणा ।
समाहूते च संग्रामात्पार्थे संशप्तकैस्तदा १९
पर्यवार्यत संक्रुद्धैः स द्रोणादिभिराहवे ।
ततः शत्रुवधं कृत्वा सुमहान्तं रणे पितः २०
दौहित्रस्तव वार्ष्णेय दौःशासनिवशं गतः ।
नूनं च स गतः स्वर्गं जहि शोकं महामते २१
न हि व्यसनमासाद्य सीदन्ति कृतबुद्धयः ।
द्रोण-कर्णप्रभृतयो येन प्रतिसमासिताः ॥२२
रणे महेन्द्रप्रतिमाः स कथं नाप्नुयाद्दिवम् ।

स शोकं जहि दुर्धर्ष मा च मन्युवशं गमः२३
शस्त्रपूतां हि स गतिं गतः परपुरंजयः ।
तस्मिंस्तु निहते वीरे सुभद्रेयं स्वसा मम २४
दुःखार्ताऽथो सुतं प्राप्य कुररीव ननाद ह ।
द्रौपदीं च समासाद्य पर्यपृच्छत दुःखिता २५
आर्ये क्व दारकाः सर्वे द्रष्टुमिच्छामि तानहम्
अस्यास्तु वचनं श्रुत्वा सर्वास्ताः कुरुयोषितः
भुजाभ्यां परिगृह्यैनां चुक्रुशुः परमार्तवत् २७
उत्तरां चाब्रवीद्भद्रे भर्ता स क्व नु ते गतः ।
क्षिप्रमागमनं मह्यं तस्य त्वं वेदयस्व ह २८
ननु नामाद्य वैराटि श्रुत्वा मम गिरं सदा ।
भवनान्निष्पतत्याशु कस्मान्नाभ्येति ते पतिः ॥
अभिमन्यो कुशलिनो मातुलास्ते महारथाः ।
कुशलं चाब्रुवन्सर्वे त्वां युयुत्सुमिहागतम् ३०
आचक्ष्व मेऽद्य संग्रामं यथापूर्वमरिन्दम ।
कस्मादेवं विलपतीं नाद्येह प्रतिभाषसे ३१
एवमादि तु वार्ष्णेय्यास्तस्यास्तत्परिदेवितम्
श्रुत्वा पृथा सुदुःखार्ता शनैर्वाक्यमथाब्रवीत्
सुभद्रे वासुदेवेन तथा सात्यकिना रणे ।
पित्रा च लालितो बालः स हतः कालधर्मणा
ईदृशो मर्त्यधर्मोऽयं मा शुचो यदुनन्दिनि ।
पुत्रो हि तव दुर्धर्षः संप्राप्तः परमां गतिम् ॥
कुले महति जातासि क्षत्रियाणां महात्मनाम्
मा शुचश्चपलाक्षं त्वं पद्मपत्रनिभेक्षणे ॥ ३५
उत्तरां त्वमवेक्षस्व गुर्विणीं मा शुचः शुभे ।
पुत्रमेषा हि तस्याशु जनयिष्यति भाविनी३६
एवमाश्वासयित्वैनां कुन्ती यदुकुलोद्वह ।
विहाय शोकं दुर्धर्षं श्राद्धमस्य ह्यकल्पयत्३७
समनुज्ञाप्य धर्मज्ञं राजानं भीममेव च ।
यमौ यमोपमौ चैव ददौ दानान्यनेकशः ३८
ततः प्रदाय बह्वीर्गा ब्राह्मणाय यदूद्वह ।
समाहृष्य तु वार्ष्णेयी वैराटीमब्रवीदिदम् ३९
वैराटि नेह सन्तापस्त्वया कार्यो ह्यनिन्दिते।
भर्तारं प्रति सुश्रोणि गर्भस्थं रक्ष वै शिशुम्४०
एवमुक्त्वा ततः कुन्ती विरराम महाद्युते ।
तामनुज्ञाप्य चैवमां सुभद्रां समुपानयम् ४१
एवं स निधनं प्राप्तो दौहित्रस्तव मानद ।
सन्तापं त्यज दुर्धर्ष मा च शोके मनः कृथाः

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिक पर्वणि अनुगीतापर्वणि वसुदेवसांत्वने एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## ६२

वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु पुत्रस्य वचः शूरात्मजस्तदा ।
विहाय शोकं धर्मात्मा ददौ श्राद्धमनुत्तमम्
तथैव वासुदेवश्च स्वस्रीयस्य महात्मनः ।
दयितस्य पितुर्नित्यमकरोदौर्ध्वदेहिकम् ॥ २
षष्टिं शतसहस्राणि ब्राह्मणानां महौजसाम् ।
विधिवद्भोजयामास भोज्यं सर्वगुणान्वितम्
आच्छाद्य च महाबाहुर्धनतृष्णामपानुदत् ।
ब्राह्मणानां तदा कृष्णस्तदभूल्लोमहर्षणम् ॥ ४
सुवर्णं चैव गाश्चैव शयनाच्छादनानि च ।
दीयमानं तदा विप्रा वर्धतामिति चाब्रुवन् ५
वासुदेवोऽथ दाशार्हो बलदेवः ससात्यकिः ।
अभिमन्योस्तदा श्राद्धमकुर्वन्सत्यकस्तदा ६
अतीव दुःखसंतप्ता न शर्म चोपलेभिरे ।
तथैव पाण्डवा वीरा नगरे नागसाह्वये ॥ ७
नोपागच्छन्त वै शान्तिमभिमन्युविनाकृताः
सुबहूनि च राजेन्द्र दिवसानि विराटजा ८
नाभुङ्क्त पतिदुःखार्ता तदभूत्करुणं महत् ।
कुक्षिस्थ एव तस्याथ गर्भो वै संप्रलीयत ॥ ९
आजगाम ततो व्यासो ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा
समागम्याब्रवीद्धीमान् पृथां पृथुललोचनाम्
उत्तरां च महातेजाः शोकः संत्यज्यतामयम्
भविष्यति महातेजाः पुत्रस्तव यशस्विनि ११
प्रभावाद्वासुदेवस्य मम व्याहरणादपि ।
पाण्डवानामयं चान्ते पालयिष्यति मेदिनीम्
धनञ्जयं च संप्रेक्ष्य धर्मराजस्य शृण्वतः ।
व्यासो वाक्यमुवाचेदं हर्षयन्निव भारत १३
पौत्रस्तव महाभागो जनिष्यति महामनाः ।
पृथ्वीं सागरपर्यन्तां पालयिष्यति धर्मतः १४
तस्माच्छोकं कुरुश्रेष्ठ जहि त्वमरिकर्शन ।
विचार्यमत्र न हि ते सत्यमेतद्भविष्यति १५
यच्चापि वृष्णिवीरेण कृष्णेन कुरुनन्दन ।
पुरोक्तं तत्तथा भावि मा तेऽत्रास्तु विचारणा
विबुधानां गतो लोका-
नक्षयानात्मनिर्जितान् ।
न स शोच्यस्त्वया वीरो
न चान्यैः कुरुभिस्तथा ॥ १७
एवं पितामहेनोक्तो धर्मात्मा स धनञ्जयः ।
त्यक्त्वा शोकं महाराज हृष्टरूपोऽभवत्तदा ॥
पितापि तव धर्मज्ञ गर्भे तस्मिन्महामते ।
अवर्धत यथाकामं शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ १९
ततः सञ्चोदयामास व्यासो धर्मात्मजं नृपम्
अश्वमेधं प्रति तदा ततः सोऽन्तर्हितोऽभवत्
धर्मराजोऽपि मेधावी श्रुत्वा व्यासस्य तद्वचः
वित्तस्यानयने तात चकार गमने मतिम् २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि वासुदेवसान्त्वने द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

**एतच्छ्रुत्वेति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## ६३

जनमेजय उवाच ।
श्रुत्वैतद्वचनं ब्रह्मन् व्यासेनोक्तं महात्मना ।
अश्वमेधं प्रति तदा किं भूयः प्रचकार ह ॥ १
रत्नं च यन्मरुत्तेन निहितं वसुधातले ।
तदवाप कथञ्चेति तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वा द्वैपायनवचो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄन्सर्वान्समानाय्य काले वचनमब्रवीत् ३
अर्जुनं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ यमावपि ।
श्रुतं वो वचनं वीराः सौहृदाद्यन्महात्मना ४
कुरूणां हितकामेन प्रोक्तं कृष्णेन धीमता ।
तपोवृद्धेन महता सुहृदां भूतिमिच्छता ॥ ५
गुरुणा धर्मशीलेन व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।
भीष्मेण च महाप्राज्ञ गोविन्देन च धीमता ६
संस्मृत्य तदहं सम्यक्कर्तुमिच्छामि पाण्डवाः
आयत्यां च तदात्वे च सर्वेषां तद्धि नो हितम्
अनुबन्धे च कल्याणं यद्वचो ब्रह्मवादिनः ।
इयं हि वसुधा सर्वा क्षीणरत्ना कुरूद्वहाः ॥ ८
तच्चाचष्ट तदा व्यासो मरुत्तस्य धनं नृपाः ।
यद्येतद्वो बहुमतं मन्यध्व वा क्षमं यदि ॥ ९
तथा यथाऽऽह धर्मेण कथं वा भीम मन्यसे ।
इत्युक्तवाक्ये नृपतौ तदा कुरुकुलोद्वह ॥ १०
भीमसेनो नृपश्रेष्ठं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
रोचते मे महाबाहो यदिदं भाषितं त्वया ११
व्यासाख्यातस्य वित्तस्य समुपानयनं प्रति
यदि तत्प्राप्नुयामेह धनमाविक्षितं प्रभो ॥ १२
कृतमेव महाराज भवेदिति मतिर्मम ।
ते वयं प्रणिपातेन गिरीशस्य महात्मनः ॥१३
तदानयाम भद्रं ते समभ्यर्च्य कपर्दिनम् ।
तद्वित्तं देवदेवेशं तस्यैवानुचरांश्च तान् ॥ १४
प्रसाद्यार्थमवाप्स्यामो नूनं वाग्बुद्धिकर्मभिः ।
रक्षन्ते ये च तद्द्रव्यं किंनरा रौद्रदर्शनाः ॥ १५
ते च वश्या भविष्यन्ति प्रसन्ने वृषभध्वजे ।
श्रुत्वैवं वदतस्तस्य वाक्यं भीमस्य भारत १६
प्रीतो धर्मात्मजो राजा बभूवातीव भारत ।
अर्जुनप्रमुखाश्चापि तथेत्येवाब्रुवन्वचः ॥ १७
कृत्वा तु पाण्डवाः सर्वे रत्नाहरणनिश्चयम् ।
सेनामाज्ञापयामासुर्नक्षत्रेऽहनि च ध्रुवे ॥ १८
तातो ययुः पाण्डुसुता
ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
अर्चयित्वा सुरश्रेष्ठं
पूर्वमेव महेश्वरम् ॥ १९
मोदकैः पायसेनाथ
मांसापूपैस्तथैव च ।
आशास्य च महात्मानं
प्रययुर्मुदिता भृशम् ॥ २०
तेषां प्रयास्यतां तत्र मङ्गलानि शुभान्यथ ।
प्राहुः प्रहृष्टमनसो द्विजाग्र्या नागराश्च ते॥ २१
ततः प्रदक्षिणीकृत्य शिरोभिः प्रणिपत्य च ।
ब्राह्मणानग्निसहितान्प्रययुः पाण्डुनन्दनाः २२
समनुज्ञाप्य राजानं पुत्रशोकसमाहतम् ।
धृतराष्ट्रं सभार्यं वै पृथां च पृथुलोचनाम् २३
मूले निक्षिप्य कौरव्यं युयुत्सुं धृतराष्ट्रजम् ।
सपूज्यमानाः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च मनीषिभिः२४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि द्रव्यानयनोपक्रमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

---

६३

प्रासंगिकीं कथां समाप्य परमप्रकृतमश्वमेधमनुवर्तयति जनमेजयप्रश्नमुखेन **श्रुत्वैतद्वचनं ब्रह्मन्नित्यादिना** ॥ १ ॥ आविक्षितं अविक्षित पुत्र आविक्षितो मरुत्तस्तस्येदमाविक्षितम् ॥ १२ ॥ ध्रुवे नक्षत्रे रोहिण्यामुत्तरात्रये च अहनि वारे ध्रुवे रविवारे उत्तरार्केऽमृतसिद्धयोगे इत्यर्थः ॥ १८ ॥ मूले वंशस्याद्ये कुंतीधृतराष्ट्रसमीपे इत्यर्थ. ॥२४॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

## ६४

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते प्रययुर्हृष्टाः प्रहृष्टनरवाहनाः
रथघोषेण महता पूरयन्तो वसुन्धराम् ॥ १
संस्तूयमानाः स्तुतिभिः सूतमागधबन्दिभिः ।
स्वेन सैन्येन संवीता यथादित्याः स्वरश्मिभिः
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
बभौ युधिष्ठिरस्तत्र पौर्णमास्यामिवोडुराट् ३
जयाशिषः प्रहृष्टानां नराणां पथि पाण्डवः ।
प्रत्यगृह्णाद्यथान्यायं यथावत्पुरुषर्षभः ॥ ४
तथैव सैनिका राजन् राजानमनुयान्ति ये ।
तेषां हलहलाशब्दो दिवं स्तब्ध्वा व्यतिष्ठत ५
सरांसि सरितश्चैव वनान्युपवनानि च ।
अत्यक्रामन्महाराजो गिरिं चाप्यन्वपद्यत ॥ ६
तस्मिन्देशे च राजेन्द्र यत्र तद्द्रव्यमुत्तमम् ।
चक्रे निवेशनं राजा पाण्डवः सह सैनिकैः ।
शिवे देशे समे चैव तदा भरतसत्तम ॥ ७
अग्रतो ब्राह्मणान्कृत्वा
तपोविद्यादमान्वितान् ।
पुरोहितं च कौरव्य
वेदवेदाङ्गपारगम् ।
आग्निवेश्यं च राजानो
ब्राह्मणाः सपुरोधसः ॥ ८
कृत्वा शान्तिं यथान्यायं सर्वशः पर्यवारयन् ।
कृत्वा तु मध्ये राजानममात्यांश्च यथाविधि ९
षट्पदं नवसंस्थानं निवेशं चक्रिरे द्विजाः ।
मत्तानां वारणेन्द्राणां निवेशं च यथाविधि ॥
कारयित्वा स राजेन्द्रो ब्राह्मणानिदमब्रवीत्
अस्मिन्कार्ये द्विजश्रेष्ठा नक्षत्रे दिवसे शुभे १०
यथा भवन्तो मन्यन्ते कर्तुमर्हन्ति तत्तथा ।
न नः कालात्ययो वै स्यादिहैव परिलम्बताम्
इति निश्चित्य विप्रेन्द्राः क्रियतां यदनन्तरम् ।
श्रुत्वैतद्वचनं राज्ञो ब्राह्मणाः सपुरोधसः ।
इदमूचुर्वचो हृष्टा धर्मराजप्रियेप्सवः ॥ १३
अद्यैव नक्षत्रमहश्च पुण्यं
यतामहे श्रेष्ठतमक्रियासु ।
अम्भोभिरद्येह वसाम राज-
न्नुपोष्यतां चापि भवद्भिरद्य ॥ १४
श्रुत्वा तु तेषां द्विजसत्तमानां
कृतोपवासा रजनीं नरेन्द्राः ।
ऊषुः प्रतीताः कुशसंस्तरेषु
यथाऽध्वरे प्रज्वलिता हुताशाः ॥ १५
ततो निशा सा व्यगमन्महात्मनां
संशृण्वतां विप्रसमीरिता गिरः ।
ततः प्रभाते विमले द्विजर्षभा
वचोऽब्रुवन्धर्मसुतं नराधिपम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि द्रव्यानयनोपक्रमे
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## ६५

ब्राह्मणा ऊचुः

क्रियतामुपहारोऽद्य त्र्यम्बकस्य महात्मनः
दत्त्वोपहारं नृपते ततः स्वार्थं यतामहे ॥ १
श्रुत्वा तु वचनं तेषां ब्राह्मणानां युधिष्ठिरः ।
गिरीशस्य यथान्यायमुपहारमुपाहरत् ॥ २

---

६४

**ततस्ते इति** ॥१॥ आग्निवेश्य धौम्यम् ॥८॥ षट्पदं षट् पदानि पदनीयानि राजमार्गा यत्र एको दक्षिणोत्तरस्तस्योभयतो द्वौ तादृशाविव एवं पूर्वपश्चिमे एकः तस्योभयतोऽपि द्वावेवेति षट् राजमार्गाः । संख्यानानि संस्थानानि नवखण्डानीति यावत् । षट्पथ नवसस्थानमिति प्राचीनपाठ स्पष्टार्थ ॥१०॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

६५

**क्रियतामिति** ॥ १ ॥

आज्येन तर्पयित्वाऽग्निं विधिवत्संस्कृतेन च
मन्त्रसिद्धं चरुं कृत्वा पुरोधाः स ययौ तदा
स गृहीत्वा सुमनसो मन्त्रपूता जनाधिप।
मोदकैः पायसेनाथ मांसैश्चोपाहरद्बलिम् ॥ ४
सुमनोभिश्च चित्राभिर्लाजैरुच्चावचैरपि।
सर्वं स्विष्टतमं कृत्वा विधिवद्वेदपारगः ॥ ५
किंकराणां ततः पश्चाच्चकार बलिमुत्तमम्।
यक्षेन्द्राय कुबेराय मणिभद्राय चैव ह ॥ ६
तथान्येषां च यक्षाणां भूतानां पतयश्च ये।
कृसरेण च मांसेन निवापैस्तिलसंयुतैः ॥ ७
ओदनं कुम्भशः कृत्वा पुरोधाः समुपाहरत्।
ब्राह्मणेभ्यः सहस्राणि गवां दत्त्वा तु भूमिपः
नक्तंचराणां भूतानां व्यादिदेश बलिं तदा।
धूपगन्धनिरुद्धं तत्सुमनोभिश्च संवृतम् ॥ ९
शुशुभे स्थानमत्यर्थं देवदेवस्य पार्थिव।
कृत्वा पूजां तु रुद्रस्य गणानां चैव सर्वशः ॥
ययौ व्यासं पुरस्कृत्य नृपो रत्ननिधिं प्रति।
पूजयित्वा धनाध्यक्षं प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥
सुमनोभिर्विचित्राभिरपूपैः कृसरेण च।
शंखादींश्च निधीन्सर्वान्निधिपालांश्च सर्वशः
अर्चयित्वा द्विजाग्र्यान्स
स्वस्ति वाच्य च वीर्यवान्।
तेषां पुण्याहघोषेण
तेजसा समवस्थितः ॥ १३
प्रीतिमान्स कुरुश्रेष्ठः खानयामास तद्धनम्।
ततः पात्रीः सकरकाः बहुरूपा मनोरमाः १४
भृंगाराणि कटाहानि कलशान्वर्धमानकान्।
बहूनि च विचित्राणि भाजनानि सहस्रशः ॥
उद्धारयामास तदा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
तेषां रक्षणमप्यासीन्महान्करपुटस्तथा ॥ १६
नद्धं च भाजनं राजंस्तुलार्धमभवन्नृप।
वाहनं पाण्डुपुत्रस्य तत्रासीत्तु विशांपते ॥१७
षष्टिरुष्ट्रसहस्राणि शतानि द्विगुणा हयाः।
वारणाश्च महाराज सहस्रशतसंमिताः ॥ १८
शकटानि रथाश्चैव तावदेव करेणवः।
खराणां पुरुषाणां च परिसंख्या न विद्यते १९
एतद्वित्तं तदभवद्यदुद्दध्रे युधिष्ठिरः।
षोडशाष्टौ चतुर्विंशत्सहस्रं भारलक्षणम् ॥ २०
एतेष्वादाय तद्द्रव्यं पुनरभ्यर्च्य पाण्डवः।
महादेवं प्रति ययौ पुरं नागाह्वयं प्रति ॥ २१
द्वैपायनाभ्यनुज्ञातः पुरस्कृत्य पुरोहितम्।
गोयुते गोयुते चैव न्यवसत्पुरुषर्षभः ॥ २२
सा पुराभिमुखा राजन्नुवाह महती चमूः।
कृच्छ्राद्द्रविणभारार्ता हर्षयन्ती कुरूद्वहान् ॥२३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि द्रव्यानयने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## ६६

वैशम्पायन उवाच।
एतस्मिन्नेव काले तु वासुदेवोऽपि वीर्यवान्
उपायाद्वृष्णिभिः सार्धं पुरं वारणसाह्वयम् ॥१
समयं वाजिमेधस्य विदित्वा पुरुषर्षभः।
यथोक्तो धर्मपुत्रेण प्रव्रजन्स्वपुरीं प्रति ॥ २

पात्रीः महान्ति ओदनोद्धरणपात्राणि करका अल्पघटाः ॥ १४ ॥ भृंगाराणि गडुकान् वर्धमानकान् शरावाणि ॥ १५ ॥ करपुट करसपुटाकारं द्विदलभाजनं उष्ट्रादिवाह्यं संदूख इति प्रसिद्धं ॥ १६ ॥ नद्धं उष्ट्रादीनामुपरि बद्धं तुलार्धं यत्र पुरुषस्यार्धं माति उभयतो मिलित्वा तुलामात्रं भारः वाहनं भारस्येति शेषः ॥ १७ ॥ षोडशाष्टाविति यथायोग्य उष्ट्रस्य भारोऽष्टौ सहस्रं सुवर्णाः. शकटस्य षोडश गजस्य चतुर्विंशतिरित्येवं भारलक्षणं एवं हयखरमनुष्याणां यथासंभवं योज्यम् ॥ २० ॥ गोयुते गोयुते भाराक्रातवाहनत्वात् गव्यूतौ गव्यूतौ प्रत्यहं क्रोशद्वयप्रमाणमित्यर्थः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

एतस्मिन्निति ॥ १ ॥

रौक्मिणेयेन सहितो युयुधानेन चैव ह ।
चारुदेष्णेन साम्बेन गदेन कृतवर्मणा ॥ ३
सारणेन च वीरेण निशठेनोल्मुकेन च ।
बलदेवं पुरस्कृत्य सुभद्रासहितस्तदा ॥ ४
द्रौपदीमुत्तरां चैव पृथां चाप्यवलोककः ।
समाश्वासयितुं चापि क्षत्रिया निहतेश्वराः ५
तानागतान्समीक्ष्यैव धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
प्रत्यगृह्णाद्यथान्यायं विदुरश्च महामनाः ॥ ६
तत्रैव न्यवसत्कृष्णः स्वर्चितः पुरुषोत्तमः ।
विदुरेण महातेजास्तथैव च युयुत्सुना ॥ ७
वसत्सु वृष्णिवीरेषु तत्राथ जनमेजय ।
जज्ञे तव पिता राजन्परिक्षित्परवीरहा ॥ ८
स तु राजा महाराज ब्रह्मास्त्रेणावपीडितः ।
शवो बभूव निश्चेष्टो हर्षशोकविवर्धनः ॥ ९
हृष्टानां सिंहनादेन जनानां तत्र निःस्वनः ।
प्रविश्य प्रदिशः सर्वाः पुनरेव व्युपारमत् १०
ततः सोतित्वरः कृष्णो विवेशान्तःपुरं तदा
युयुधानद्वितीयो वै व्यथितेन्द्रियमानसः ११
ततस्त्वरितमायान्तीं ददर्श स्वां पितृष्वसाम्
क्रोशन्तीमभिधावेति वासुदेव पुनः पुनः १२
पृष्ठतो द्रौपदीं चैव सुभद्रां च यशस्विनीम् ।
सविक्रोशं सकरुणं बान्धवानां स्त्रियो नृप ॥
ततः कृष्णं समासाद्य कुन्ती भोजसुता तदा ।
प्रोवाच राजशार्दूल बाष्पगद्गदया गिरा १४
वासुदेव महाबाहो सुप्रजा देवकी त्वया ।
त्वं नो गतिः प्रतिष्ठा च त्वदायत्तमिदं कुलम्
यदुप्रवीर योऽयं ते स्वस्रीयस्यात्मजः प्रभो ।
अश्वत्थाम्ना हतो जातस्तमुज्जीवय केशव १६
त्वया ह्येतत्प्रतिज्ञातमैषीके यदुनन्दन ।
अहं सञ्जीवयिष्यामि मृतं जातमिति प्रभो १७
सोऽयं जातो मृतस्तात पश्यैनं पुरुषर्षभ ।
उत्तरां च सुभद्रां च द्रौपदीं मां च माधव १८
धर्मपुत्रं च भीमं च फाल्गुनं नकुलं तथा ।
सहदेवं च दुर्धर्षं सर्वान्नस्त्रातुमर्हसि ॥ १९
अस्मिन्प्राणाः समायत्ताः पाण्डवानां ममैव च
पांडोश्च पिण्डो दाशार्ह तथैव श्वशुरस्य मे२०
अभिमन्योश्च भद्रं ते प्रियस्य सदृशस्य च ।
प्रियमुत्पादयाद्य त्वं प्रेतस्यापि जनार्दन २१
उत्तरा हि पुरोक्तं वै कथयत्यरिसूदन ।
अभिमन्योर्वचः कृष्ण प्रियत्वात्तन्न संशयः २२
अब्रवीत्किल दाशार्ह वैराटीमार्जुनिस्तदा ।
मातुलस्य कुलं भद्रे तव पुत्रो गमिष्यति २३
गत्वा वृष्ण्यन्धककुलं धनुर्वेदं ग्रहीष्यति ।
अस्त्राणि च विचित्राणि नीतिशास्त्रं च केवलम्
इत्येतत्प्रणयात्तात सौभद्रः परवीरहा ।
कथयामास दुर्धर्षस्तथा चैतन्न संशयः ॥ २५
तास्त्वां वयं प्रणम्येह याचामो मधुसूदन ।
कुलस्यास्य हितार्थं त्वं कुरु कल्याणमुत्तमम्
एवमुक्त्वा तु वार्ष्णेयं पृथा पृथुललोचना ।
उच्छ्रित्य बाहू दुःखार्ता ताश्चान्याः प्रापतन्भुवि
अब्रुवंश्च महाराज सर्वाः सास्राविलेक्षणाः ।
स्वस्रीयो वासुदेवस्य मृतो जात इति प्रभो ॥
एवमुक्ते ततः कुन्तीं पर्यगृह्णाज्जनार्दनः ।
भूमौ निपतितां चैनां सान्त्वयामास भारत२९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि परिक्षिज्जन्मकथने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## ६७

वैशम्पायन उवाच ।
उत्थितायां पृथायां तु सुभद्रा भ्रातरं तदा
दृष्ट्वा चुक्रोश दुःखार्ता वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १
पुण्डरीकाक्ष पश्य त्वं पौत्रं पार्थस्य धीमतः
परिक्षीणेषु कुरुषु परिक्षीण गतायुषम् ॥ २

क्षत्रियाः स्त्रिय ॥ ५ ॥ मातुलस्य अभिमन्युमातुलस्य कृष्णस्य तत्तुल्यपराक्रमस्तदधीनश्चेत्यर्थ ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

उत्थितायामिति ॥ १ ॥

इषीका द्रोणपुत्रेण भीमसेनार्थमुद्यता ।
सोत्तरायां निपतिता विजये मयि चैव ह ३
सेयं विदीर्णे हृदये मयि तिष्ठति केशव ।
यन्न पश्यामि दुर्धर्ष सहपुत्रं तु तं प्रभो ॥ ४
किं नु वक्ष्यति धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः
भीमसेनार्जुनौ चापि माद्रवत्याः सुतौ च तौ ५
श्रुत्वाभिमन्योस्तनयं जातं च मृतमेव च ।
मुषिता इव वार्ष्णेय द्रोणपुत्रेण पाण्डवाः ६
अभिमन्युः प्रियः कृष्ण भ्रातॄणां नात्र संशयः
ते श्रुत्वा किं नु वक्ष्यन्ति द्रोणपुत्रास्त्रनिर्जिताः
भविताऽतः परं दुःखं किं तदन्यज्जनार्दन ।
अभिमन्योः सुतात्कृष्ण मृताज्जातादरिन्दम ८
साहं प्रसादये कृष्ण त्वामद्य शिरसा नता ।
पृथेयं द्रौपदी चैव ताः पश्य पुरुषोत्तम ॥ ९
यदा द्रोणसुतो गर्भान्पाण्डूनां हन्ति माधव
तदा किल त्वया द्रौणिः क्रुद्धेनोक्तोऽरिमर्दन १०
अकामं त्वां करिष्यामि ब्रह्मबन्धो नराधम ।
अहं सञ्जीवयिष्यामि किरीटितनयात्मजम्
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा जानानाऽहं बलं तव ।
प्रसादये त्वां दुर्धर्ष जीवतामभिमन्युजः १२
यद्येतत्त्वं प्रतिश्रुत्य न करोषि वचः शुभम् ।
सकलं वृष्णिशार्दूल मृतां मामवधारय १३
अभिमन्योः सुतो वीर न सञ्जीवति यद्ययम् ।
जीवति त्वयि दुर्धर्ष किं करिष्याम्यहं त्वया
सञ्जीवयैनं दुर्धर्ष मृतं त्वमभिमन्युजम् ।
सदृशाक्षसुतं वीर सस्यं वर्षन्निवांबुदः ॥ १५
त्वं हि केशव धर्मात्मा सत्यवान्सत्यविक्रमः
स तां वाचमृतां कर्तुमर्हसि त्वमरिन्दम ॥ १६
इच्छन्नपि हि लोकांस्त्रीन्
जीवयेथा मृतानिमान् ।
किं पुनर्दयितं जातं
स्वस्त्रीयस्यात्मजं मृतम् ॥ १७
प्रभावज्ञास्मि ते कृष्ण तस्मात्त्वां याचयाम्यहम्
कुरुष्व पाण्डुपुत्राणामिमं परमनुग्रहम् ॥ १८
स्वसेति वा महाबाहो हतपुत्रेति वा पुनः ।
प्रपन्ना मामियं चेति दयां कर्तुमिहार्हसि ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि सुभद्रावाक्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## ६८

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु राजेन्द्र केशिहा दुःखमूर्छितः
तथेति व्याजहारोच्चैर्ह्लादयन्निव तं जनम् ॥ १
वाक्येनैतेन हि तदा तं जनं पुरुषर्षभः ।
ह्लादयामास स विभुर्घर्मार्तं सलिलैरिव ॥ २
ततः स प्राविशत्तूर्णं जन्मवेश्म पितुस्तव ।
अर्चितं पुरुषव्याघ्र सितैर्माल्यैर्यथाविधि ॥ ३
अपां कुम्भैः सुपूर्णैश्च विन्यस्तैः सर्वतोदिशम्
घृतेन तिन्दुकालातैः सर्षपैश्च महाभुज ॥ ४
अस्त्रैश्च विमलैर्न्यस्तैः पावकैश्च समन्ततः ।
वृद्धाभिश्चापि रामाभिः परिचारार्थमावृतम्
दक्षैश्च परितो धीर भिषग्भिः कुशलैस्तथा ।
ददर्श च स तेजस्वी रक्षोघ्नान्यपि सर्वशः ६
द्रव्याणि स्थापितानि स्म विधिवत्कुशलैर्जनैः
तथायुक्तं च तद्दृष्ट्वा जन्मवेश्म पितुस्तव ॥ ७
हृष्टोऽभवद्धृषीकेशः साधु साध्विति चाब्रवीत्
तथा ब्रुवति वार्ष्णेये प्रहृष्टवदने तदा ॥ ८
द्रौपदी त्वरिता गत्वा वैराटीं वाक्यमब्रवीत्
अयमायाति ते भद्रे श्वशुरो मधुसूदनः ॥ ९
पुराणर्षिरचिन्त्यात्मा समीपमपराजितः ।
साऽपि बाष्पकलां वाचं निगृह्याश्रूणि चैव ह

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

एवमुक्त इति ॥ १ ॥ घृतेन सिक्तैरिति शेषः ॥ ४ ॥

सुसंवीताऽभवद्देवी देववत्कृष्णमीयुषी ।
सा तथा दूयमानेन हृदयेन तपस्विनी ॥ ११
दृष्ट्वा गोविन्दमायान्तं कृपणं पर्यदेवयत् ।
पुण्डरीकाक्ष पश्यावां बालेन हि विनाकृतौ
अभिमन्युं च मां चैव हतौ तुल्यं जनार्दन १२
वार्ष्णेय मधुहन्वीर शिरसा त्वां प्रसादये ।
द्रोणपुत्रास्त्रनिर्दग्धं जीवयैनं ममात्मजम्॥ १३
यदि स्म धर्मराज्ञा वा भीमसेनेन वा पुनः ।
त्वया वा पुण्डरीकाक्ष वाक्यमुक्तमिदं भवेत्
अजानतीमिषीकेयं जनित्रीं हन्त्विति प्रभो ।
अहमेव विनष्टा स्यां +नैतदेवंगते भवेत् ॥ १५
गर्भस्थस्यास्य बालस्य ब्रह्मास्त्रेण निपातनम् ।
कृत्वा नृशंसं दुर्बुद्धिर्द्रौणिः किं फलमश्नुते ॥
सा त्वां प्रसाद्य शिरसा याचे शत्रुनिबर्हणम्
प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द नायं सञ्जीवते यदि
अस्मिन्हि बहवः साधो ये ममासन्मनोरथाः
ते द्रोणपुत्रेण हताः किं नु जीवामि केशव ॥
आसीन्मम मतिः कृष्ण पुत्रोत्सङ्गा जनार्दन ।
अभिवादयिष्ये दृष्टेति तादिदं वितथीकृतम् ॥
चपलाक्षस्य दायादे मृतेऽस्मिन्पुरुषर्षभ ।
विफला मे कृताः कृष्ण हृदि सर्वे मनोरथाः
चपलाक्षः किलातीव प्रियस्ते मधुसूदन ।
सुतं पश्य त्वमस्यैनं ब्रह्मास्त्रेण निपातितम् ॥
कृतघ्नोऽयं नृशंसोऽयं यथाऽस्य जनकस्तथा ।
यः पाण्डवीं श्रियं त्यक्त्वा गतोद्य यमसादनं
मया चैतत्प्रतिज्ञातं रणमूर्धनि केशव ।
अभिमन्यौ हते वीर त्वामेष्याम्यचिरादिति
तच्च नाकरवं कृष्ण नृशंसा जीवितप्रिया ।
इदानीं मां गतां तत्र किं नु वक्ष्यति फाल्गुनिः

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि उत्तरावाक्ये
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## ६९

वैशम्पायन उवाच ।
सैवं विलप्य करुणं सोन्मादेव तपस्विनी ।
उत्तरा न्यपतद्भूमौ कृपणा पुत्रगृद्धिनी ॥ १
सा तु दृष्ट्वा निपतितां हतपुत्रपरिच्छदाम् ।
चुक्रोश कुन्ती दुःखार्ता सर्वाश्च भरतस्त्रियः
मुहूर्तमिव राजेन्द्र पाण्डवानां निवेशनम् ।
अप्रेक्षणीयमभवदार्तस्वनविनादितम् ॥ ३
सा मुहूर्तं च राजेन्द्र पुत्रशोकाभिपीडिता ।
कश्मलाभिहता वीर वैराटी त्वभवत्तदा ॥४
प्रतिलभ्य तु सा संज्ञामुत्तरा भरतर्षभ ।
अङ्कमारोप्य तं पुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५
धर्मज्ञस्य सुतः स त्वमधर्मं नावबुध्यसे ।
यस्त्वं वृष्णिप्रवीरस्य कुरुषे नाभिवादनम् ६
पुत्र गत्वा मम वचो ब्रूयास्त्वं पितरं त्विदम्
दुर्मरं प्राणिनां वीर काले प्राप्ते कथञ्चन ॥ ७
याहं त्वया विनाद्येह पत्या पुत्रेण चैव ह ।
मर्तव्ये सति जीवामि हतस्वस्तिरकिञ्चना ८
अथवा धर्मराज्ञाऽहमनुज्ञाता महाभुज ।
भक्षयिष्ये विषं घोरं प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम् ९
अथवा दुर्मरं तात यदिदं मे सहस्रधा ।
पतिपुत्रविहीनाया हृदयं न विदीर्यते ॥ १०
उत्तिष्ठ पुत्र पश्येमां दुःखितां प्रपितामहीम् ।
आर्तामुपप्लुतां दीनां निमग्नां शोकसागरे ११
आर्यां च पश्य पाञ्चालीं
सात्वतीं च तपस्विनीम् ।
मां च पश्य सुदुःखार्तां
व्याधविद्धां मृगीमिव ॥ १२
उत्तिष्ठ पश्य वदनं लोकनाथस्य धीमतः ।
पुण्डरीकपलाशाक्षं पुरेव चपलेक्षणम् ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टषष्टितमोऽध्याय ॥ ६८ ॥

+ नायमेवं गतो भवेत् इति पाठ ।

६९

सैवमिति ॥ १ ॥ पुरा यथा चपलेक्षणमभिमन्युमहं पश्यामि तथा पुंडरीकपलाशाक्षं कृष्ण पश्येति संबंधः १३

एवं विप्रलपन्तीं तु दृष्ट्वा निपतितां पुनः ।
उत्तरां तां स्त्रियः सर्वाः पुनरुत्थापयंस्ततः १४
उत्थाय च पुनर्धैर्यात्तदा मत्स्यपतेः सुता ।
प्राञ्जलिः पुण्डरीकाक्षं भूमावेवाभ्यवादयत् ॥
श्रुत्वा स तस्या विपुलं विलापं पुरुषर्षभः ।
उपस्पृश्य ततः कृष्णो ब्रह्मास्त्रं प्रत्यसंहरत् १६
प्रतिजज्ञे च दाशार्हस्तस्य जीवितमच्युतः ।
अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयन् जगत्
न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद्भविष्यति ।
एष संजीवयाम्येनं पश्यतां सर्वदेहिनाम् १८
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ।
न च युद्धात्परावृत्तस्तथा संजीवतामयम् १९
यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणश्च विशेषतः ।
अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयं तथा
यथाहं नाभिजानामि विजये तु कदाचन ।
विरोधं तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशुः ॥
यथा सत्यं च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।
तथा मृतः शिशुरयं जीवतादभिमन्युजः ॥२२
यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहतौ मया ।
तेन सत्येन बालोऽयं पुनः संजीवतामयम् ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन स बालो भरतर्षभ ।
शनैः शनैर्महाराज प्रास्पन्दत सचेतनः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि परिक्षित्संजीवने ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## ७०

वैशम्पायन उवाच ।
ब्रह्मास्त्रं तु यदा राजन् कृष्णेन प्रतिसंहृतम्
तदा तद्वेश्म त्वत्पित्रा तेजसाऽभिविदीपितम्
ततो रक्षांसि सर्वाणि नेशुस्त्यक्त्वा गृहं तु तत्
अन्तरिक्षे च वागासीत्साधु केशव साध्विति
तदस्त्रं ज्वलितं चापि पितामहमगात्तदा ।
ततः प्राणान्पुनर्लेभे पिता तव नरेश्वर ॥ ३
व्यचेष्टत च बालोऽसौ यथोत्साहं यथाबलम्
बभूवुर्मुदिता राजंस्ततस्ता भरतस्त्रियः ॥ ४
ब्राह्मणा वाचयामासुर्गोविन्दस्यैव शासनात् ।
ततस्ता मुदिताः सर्वाः प्रशशंसुर्जनार्दनम् ५
स्त्रियो भरतसिंहानां नावं लब्ध्वेव पारगाः ।
कुन्ती द्रुपदपुत्री च सुभद्रा चोत्तरा तथा ॥ ६
स्त्रियश्चान्या नृसिंहानां बभूवुर्हृष्टमानसाः ।
तत्र मल्ला नटाश्चैव ग्रन्थिकाः सौख्यशायिकाः
सूतमागधसंघाश्चाप्यस्तुवंस्तं जनार्दनम् ।
कुरुवंशस्तवाख्याभिराशीर्भिर्भरतर्षभ ॥ ८
उत्थाय तु यथाकालमुत्तरा यदुनन्दनम् ।
अभ्यवादयत प्रीता सह पुत्रेण भारत ॥ ९
तस्य कृष्णो ददौ हृष्टो बहुरत्नं विशेषतः ।
तथान्ये वृष्णिशार्दूला नाम चास्याकरोत्प्रभुः
पितुस्तव महाराज सत्यसंधो जनार्दनः ।
परिक्षीणे कुले यस्माज्जातोऽयमभिमन्युजः ११
परिक्षिदिति नामास्य भवत्वित्यब्रवीत्तदा ।
सोऽवर्धत यथाकालं पिता तव जनाधिप १२
मनःप्रह्लादनश्चासीत्सर्वलोकस्य भारत ।
मासजातस्तु ते वीर पिता भवति भारत १३
अथाजग्मुः सुबहुलं रत्नमादाय पाण्डवाः ।
तान्समीपगतान् श्रुत्वा निर्ययुर्वृष्णिपुंगवाः १४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

ब्रह्मास्त्रमिति॥१॥ वाचयामासुः स्वस्तीति शेषः॥५॥ ग्रंथिकाः दैवज्ञाः 'ग्रंथिकस्तु करीरे स्याद्दैवज्ञे गुग्गुलुद्रुमे' इति **विश्वलोचनः** । सुखावहं सौख्यं शयनं इति पृच्छंति ते सौख्यशायनिकाः पृच्छतौ सुस्नातादिभ्य इति ठक् अनुशतिकादिः ॥ ७ ॥ कुरुवंशस्य स्तवं आचक्षते ताभिः कुरुवंशस्तवाख्याभिः ॥ ८ ॥

अलंचक्रुश्च माल्यौघैः पुरुषा नागसाह्वयम् ।
पताकाभिर्विचित्राभिर्ध्वजैश्च विविधैरपि ॥
वेश्मानि समलंचक्रुः पौराश्चापि जनेश्वर ।
देवतायतनानां च पूजाः सुविविधास्तथा १६
सन्दिदेशाथ विदुरः पाण्डुपुत्रप्रियेप्सया ।
राजमार्गाश्च तत्रासन्सुमनोभिरलंकृताः ॥ १७
शुशुभे तत्पुरं चापि समुद्रौघनिभस्वनम् ।
नर्तकैश्चापि नृत्यद्भिर्गायकानां च निःस्वनैः ॥
आसीद्वैश्रवणस्येव निवासस्तत्पुरं तदा ।
बन्दिभिश्च नरै राजन् स्त्रीसहायैश्च सर्वशः १९
तत्र तत्र विविक्तेषु समन्तादुपशोभितम् ।
पताका धूयमानाश्च समन्तान्मातरिश्वना २०
अदर्शयन्निव तदा कुरून्वै दक्षिणोत्तरान् ।
अघोषयंस्तदा चापि पुरुषा राजधूर्गताः ।
सर्वराष्ट्रविहारोऽद्य रत्नाभरणलक्षणः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वाणि पाण्डवागमने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## ७१

वैशम्पायन उवाच ।
तान्समीपगतान् श्रुत्वा पाण्डवान् शत्रुकर्शनः
वासुदेवः सहामात्यः प्रययौ ससुहृद्गणः ॥ १
ते समेत्य यथान्यायं प्रत्युद्याता दिदृक्षया ।
ते समेत्य यथाधर्मं पांडवा वृष्णिभिः सह॥ २
विविशुः सहिता राजन्पुरं वारणसाह्वयम् ।
महतस्तस्य सैन्यस्य खुरनेमिस्वनेन ह ॥ ३
द्यावापृथिव्योः खं चैव सर्वमासीत्समावृतम्।
ते कोशानग्रतः कृत्वा विविशुः स्वपुरं तदा४
पाण्डवाः प्रीतमनसः सामात्याः ससुहृद्गणाः।
ते समेत्य यथान्यायं धृतराष्ट्रं जनाधिपम्॥ ५
कीर्तयन्तः स्वनामानि तस्य पादौ ववंदिरे ।
धृतराष्ट्रादनु च ते गान्धारीं सुबलात्मजाम्६
कुन्तीं च राजशार्दूल तदा भरतसत्तम ।
विदुरं पूजयित्वा च वैश्यापुत्रं समेत्य च ॥७
पूज्यमानाः स्म ते वीरा व्यरोचन्त विशाम्पते
ततस्तत्परमाश्चर्यं विचित्रं महदद्भुतम् ॥ ८
शुश्रुवुस्ते तदा वीराः पितुस्ते जन्म भारत ।
तदुपश्रुत्य तत्कर्म वासुदेवस्य धीमतः ॥ ९
पूजार्हं पूजयामासुः कृष्णं देवकिनन्दनम् ।
ततः कतिपयाहस्य व्यासः सत्यवतीसुतः१०
आजगाम महातेजा नगरं नागसाह्वयम् ।
तस्य सर्वे यथान्यायं पूजाश्चक्रुः कुरूद्वहाः११
सह वृष्ण्यन्धकव्याघ्रैरुपासाञ्चक्रिरे तदा ।
तत्र नानाविधाकाराः कथाः समभिकीर्त्य वै
युधिष्ठिरो धर्मसुतो व्यासं वचनमब्रवीत् ।
भवत्प्रसादाद्भगवन् यदिदं रत्नमाहृतम् ॥ १३
उपयोक्तुं तदिच्छामि वाजिमेधे महाक्रतौ ।
तमनुज्ञातुमिच्छामि भवता मुनिसत्तम ।
त्वदधीना वयं सर्वे कृष्णस्य च महात्मनः१४
व्यास उवाच ।
अनुजानामि राजंस्त्वां क्रियतां यदनन्तरम्
यजस्व वाजिमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥ १५
अश्वमेधो हि राजेन्द्र पावनः सर्वपाप्मनाम्।
तेनेष्ट्वा त्वं विपाप्मा वै भविता नात्र संशयः॥
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तः स तु धर्मात्मा कुरुराजो युधिष्ठिरः
अश्वमेधस्य कौरव्य चकाराहरणे मतिम् ॥१७
समनुज्ञाप्य तत्सर्वं कृष्णद्वैपायनं नृपः ।
वासुदेवमथाभ्येत्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥१८
देवकी सुप्रजा देवी त्वया पुरुषसत्तम ।
यद्ब्रूयां त्वां महाबाहो तत्कृथास्त्वमिहाच्युत
त्वत्प्रभावार्जितान्भोगानश्नीम यदुनन्दन ।
पराक्रमेण बुद्ध्या च त्वयेयं निर्जिता मही २०

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७० ॥

७१
तान्समीपगतानिति ॥ १ ॥ द्यावापृथिव्यो. संबंधि खं आकाशं अवकाशमिति यावत् ॥ ४ ॥ वैश्यापुत्रं युयुत्सुम् ॥ ७ ॥ पावन नाशक' ॥१६॥

दीक्षयस्व त्वमात्मानं त्वं हि नः परमो गुरुः
त्वयीष्टवति दाशार्ह विपाप्मा भविता ह्यहम्
त्वं हि यज्ञोऽक्षरः सर्वस्त्वं धर्मस्त्वं प्रजापतिः
त्वं गतिः सर्वभूतानामिति मे निश्चिता मतिः
वासुदेव उवाच ।
त्वमेवैतन्महाबाहो वक्तुमर्हस्यरिन्दम ।
त्वं गतिः सर्वभूतानामिति मे निश्चिता मतिः
त्वं चाद्य कुरुवीराणां धर्मेण हि विराजसे ।
गुणीभूताः स्म ते राजंस्त्वं नो राजा गुरुर्मतः
यजस्व मदनुज्ञातः प्राप्य एष क्रतुस्त्वया ।
युनक्तु नो भवान्कार्ये यत्र वांछसि भारत २५
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वं कर्तास्मि तेऽनघ ।
भीमसेनार्जुनौ चैव तथा माद्रवतीसुतौ ।
इष्टवन्तो भविष्यन्ति त्वयीष्टवति पार्थिवे २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि कृष्णव्यासानुज्ञायां एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

## ७२

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
व्यासमामन्त्र्य मेधावी ततो वचनमब्रवीत् ॥१
यदा कालं भवान्वेत्ति हयमेधस्य तत्त्वतः ।
दीक्षयस्व तदा मां त्वं त्वय्यायत्तो हि मे क्रतुः
व्यास उवाच ।
अहं पैलोऽथ कौन्तेय याज्ञवल्क्यस्तथैव च
विधानं यद्यथाकालं तत्कर्तारो न संशयः ३
चैत्र्यां हि पौर्णमास्यां तु तव दीक्षा भविष्यति
संभाराः संभ्रियन्तां च यज्ञार्थं पुरुषर्षभ ॥ ४
अश्वविद्याविदश्चैव सूता विप्राश्च तद्विदः ।
मेध्यमश्वं परीक्षन्तां तव यज्ञार्थसिद्धये ॥ ५
तमुत्सृज यथाशास्त्रं पृथिवीं सागराम्बराम् ।
स पर्येतु यशो दीप्तं तव पार्थिव दर्शयन् ॥ ६
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पाण्डवः पृथिवीपतिः
चकार सर्वं राजेन्द्र यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥ ७
संभाराश्चैव राजेन्द्र सर्वे सङ्कल्पिताऽभवन्
स संभारान्समाहृत्य नृपो धर्मसुतस्तदा ॥ ८
न्यवेदयदमेयात्मा कृष्णद्वैपायनाय वै ।
ततोऽब्रवीन्महातेजा व्यासो धर्मात्मजं नृपम्
यथाकालं यथायोगं सज्जाः स्म तव दीक्षणे ।
स्फ्यश्च कूर्चश्च सौवर्णो यच्चान्यदपि कौरव ॥
तत्र योग्यं भवेत्किञ्चित्रौक्मं तत् क्रियतामिति
अश्वश्चोत्सृज्यतामद्य पृथ्व्यामथ यथाक्रमम् ।
सुगुप्तं चरतां चापि यथाशास्त्रं यथाविधि ११
युधिष्ठिर उवाच ।
अयमश्वो यथा ब्रह्मन्नुत्सृष्टः पृथिवीमिमाम् ।
चरिष्यति यथाकामं तत्र वै संविधीयताम्१२
पृथिवीं पर्यटन्तं हि तुरगं कामचारिणम् ।
कः पालयेदिति मुने तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १३
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तः स तु राजेन्द्र कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्
भीमसेनादवरजः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १४
जिष्णुः सहिष्णुर्धृष्णुश्च स एनं पालयिष्यति
शक्तः स हि महीं जेतुं निवातकवचान्तकः ॥
तस्मिन् ह्यस्त्राणि दिव्यानि दिव्यं संहननं तथा
दिव्यं धनुश्चेषुधी च स एनमनुयास्यति १६
स हि धर्मार्थकुशलः सर्वविद्याविशारदः ।
यथाशास्त्रं नृपश्रेष्ठ चारयिष्यति ते हयम् १७
राजपुत्रो महाबाहुः श्यामो राजीवलोचनः ।
अभिमन्योः पिता वीरः स एनं पालयिष्यति

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

७२

एवमुक्त इति ॥ १ ॥ स्फ्यः काष्ठमयः खङ्ग इव । चात्र सौवर्णः कूर्चः आसनार्थं कुशमुष्टिः सोऽप्यत्र सौवर्णः ॥१०॥ सुगुप्तं सुरक्षितं यथा स्यात्तथा ॥ ११ ॥

भीमसेनोऽपि तेजस्वी कौन्तेयोऽमितविक्रमः।
समर्थो रक्षितुं राष्ट्रं नकुलश्च विशाम्पते ॥ १९
सहदेवस्तु कौरव्य समाधास्यति बुद्धिमान्
कुटुम्बतन्त्रं विधिवत्सर्वमेव महायशाः ॥ २०
तत्तु सर्वं यथान्यायमुक्तः कुरुकुलोद्वहः ।
चकार फाल्गुनं चापि सन्दिदेश हयं प्रति ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
एह्यर्जुन त्वया वीर हयोऽयं परिपाल्यताम्।
त्वमर्हो रक्षितुं ह्येनं नान्यः कश्चन मानवः २२
ये चापि त्वां महाबाहो प्रत्युद्यान्ति नराधिपाः
तैर्विग्रहो यथा न स्यात्तथा कार्यं त्वयानघ
आख्यातव्यश्च भवता यज्ञोऽयं मम सर्वशः ।
पार्थिवेभ्यो महाबाहो समये गम्यतामिति२४
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा भ्रातरं सव्यसाचिनं
भीमं च नकुलं चैव पुरगुप्तौ समादधत् ॥ २५
कुटुम्बतन्त्रे च तदा सहदेवं युधां पतिम् ।
अनुमान्य महीपालं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि यज्ञसामग्रीसंपादने द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## ७३

वैशम्पायन उवाच ।
दीक्षाकाले तु सम्प्राप्ते ततस्ते सुमहर्त्विजः।
विधिवद्दीक्षयामासुरश्वमेधाय पार्थिवम् ॥ १
कृत्वा स पशुबन्धांश्च दीक्षितः पाण्डुनन्दनः
धर्मराजो महातेजाः सहर्त्विग्भिर्व्यरोचत २
हयश्च हयमेधार्थं स्वयं स ब्रह्मवादिना ।
उत्सृष्टः शास्त्रविधिना व्यासेनामिततेजसा३
स राजा धर्मराड्राजन्दीक्षितो विबभौ तदा।
हेममाली रुक्मकण्ठः प्रदीप्त इव पावकः ॥ ४
कृष्णाजिनी दण्डपाणिः क्षौमवासाः स धर्मजः
विबभौ द्युतिमान्भूयः प्रजापतिरिवाध्वरे ॥ ५
तथैवास्यर्त्विजः सर्व तुल्यवेषा विशाम्पते ।
बभूवुरर्जुनश्चापि प्रदीप्त इव पावकः ॥ ६
श्वेताश्वः कृष्णसारं तं ससाराश्वं धनञ्जयः ।
विधिवत् पृथिवीपाल धर्मराजस्य शासनात्
विक्षिपन् गाण्डिवं राजन्बद्धगोधांगुलित्रवान्
तमश्वं पृथिवीपाल मुदा युक्तः ससार च ॥ ८
आकुमारं तदा राजन्नागमत्तत्पुरं विभो ।
द्रष्टुकामं कुरुश्रेष्ठं प्रयास्यन्तं धनञ्जयम् ॥ ९
तेषामन्योन्यसंमर्दादूष्मेव समजायत ।
दिदृक्षूणां हयं तं च तं चैव हयसारिणम्॥१०
ततः शब्दो महाराज दिशः खं प्रति पूरयन् ।
बभूव प्रेक्षतां नृणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ११
एष गच्छति कौन्तेय तुरगश्चैव दीप्तिमान् ।
यमन्वेति महाबाहुः संस्पृशन्धनुरुत्तमम् ॥ १२
एवं शुश्राव वदतां गिरो जिष्णुरुदारधीः ।
स्वस्ति तेऽस्तु व्रजारिष्टं पुनश्चैहीति भारत१३
अथापरे मनुष्येन्द्र पुरुषा वाक्यमब्रुवन् ।
नैनं पश्याम संमर्दे धनुरेतत्प्रदृश्यते ॥ १४
एतद्धि भीमनिर्ह्रादं विश्रुतं गाण्डिवं धनुः ।
स्वस्ति गच्छत्वरिष्टो वै पन्थानमकुतोभयम्
निवृत्तमेनं द्रक्ष्यामः पुनरेष्यति च ध्रुवम् ।
एवमाद्या मनुष्याणां स्त्रीणां च भरतर्षभ॥१६
शुश्राव मधुरा वाचः पुनः पुनरुदारधीः ।
याज्ञवल्क्यस्य शिष्यश्च कुशलो यज्ञकर्मणि ।
प्रायात्पार्थेन सहितः शान्त्यर्थं वेदपारगः ॥
ब्राह्मणाश्च महीपाल बहवो वेदपारगाः ॥ १८
अनुजग्मुर्महात्मानं क्षत्रियाश्च विशाम्पते ।
विधिवत्पृथिवीपाल धर्मराजस्य शासनात् ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७२ ॥

७३

दीक्षेति ॥ १ ॥ पशुबधान् अश्वमेधस्यारम्भणीयरूपान् ॥ २ ॥ शिष्यः सोमश्रवा ॥ १७ ॥

पाण्डवैः पृथिवीमश्वो निर्जितामस्त्रतेजसा ।
चचार स महाराज यथादेशं च सत्तम ॥ २०
तत्र युद्धानि वृत्तानि
यान्यासन्पाण्डवस्य ह ।
तानि वक्ष्यामि ते वीर
विचित्राणि महान्ति च ॥ २१
स हयः पृथिवीं राजन्प्रदक्षिणमवर्तत ।
ससारोत्तरतः पूर्वं तन्निबोध महीपते ॥ २२
*अवमृद्नन्स राष्ट्राणि पार्थिवानां हयोत्तमः
शनैस्तदा परिययौ श्वेताश्वश्च महारथः ॥ २३
तत्र संगणना नास्ति राज्ञामयुतशस्तदा ।
येऽयुध्यन्त महाराज क्षत्रिया हतबान्धवाः ॥
किराता यवना राजन्बहवोऽसिधनुर्धराः ।
म्लेच्छाश्चान्ये बहुविधाः पूर्वं ये निकृता रणे ॥
आर्याश्च पृथिवीपालाः प्रहृष्टनरवाहनाः ।
समीयुः पाण्डुपुत्रेण बहवो युद्धदुर्मदाः ॥ २६
एवं वृत्तानि युद्धानि तत्र तत्र महीपते ।
अर्जुनस्य महीपालैर्नानादेशसमागतैः ॥ २७
यानि तूभयतो राजन्प्रतप्तानि महान्ति च ।
तानि युद्धानि वक्ष्यामि कौन्तेयस्य तवाऽनघ

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वानुसरणे
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

## ७४

वैशम्पायन उवाच ।
त्रिगर्तैरभवद्युद्धं कृतवैरैः किरीटिनः ।
महारथसमाज्ञातैर्हतानां पुत्रनप्तृभिः ॥ १
ते समाज्ञाय संप्राप्तं यज्ञियं तुरगोत्तमम् ।
विषयान्तं ततो वीरा दंशिताः पर्यवारयन् २
रथिनो बद्धतूणीराः सदश्वैः समलंकृतैः ।
परिवार्य हयं राजन् ग्रहीतुं संप्रचक्रमुः ॥ ३
ततः किरीटी संचिन्त्य तेषां तत्र चिकीर्षितम्
वारयामास तान्वीरान्सान्त्वपूर्वमरिन्दमः ४
तदनादृत्य ते सर्वे शरैरभ्यहनंस्तदा ।
तमोरजोभ्यां संछन्नांस्तान्किरीटी न्यवारयत्
तानब्रवीत्ततो जिष्णुः प्रहसन्निव भारत ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञाः श्रेयो जीवितमेव च ॥ ६
स हि वीरः प्रयास्यन्वै धर्मराजेन वारितः ।
हतबान्धवा न ते पार्थ हन्तव्याः पार्थिवा इति
स तदा तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
तान्निवर्तध्वमित्याह न न्यवर्तन्त चापि ते ८
ततस्त्रिगर्तराजानं सूर्यवर्माणमाहवे ।
विचित्य शरजालेन प्रजहास धनञ्जयः ॥ ९
ततस्ते रथघोषेण रथनेमिस्वनेन च ।
पूरयन्तो दिशः सर्वा धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १०
सूर्यवर्मा ततः पार्थे शराणां नतपर्वणाम् ।
शतान्यमुञ्चद्राजेन्द्र लघ्वस्त्रमभिदर्शयन् ॥ ११
तथैवान्ये महेष्वासा ये च तस्यानुयायिनः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि धनञ्जयवधैषिणः ॥ १२
स तान् ज्यामुखनिर्मुक्तैर्बहुभिः सुबहून् शरान्
चिच्छेद पाण्डवो राजंस्ते भूमौ न्यपतंस्तदा
केतुवर्मा तु तेजस्वी तस्यैवावरजो युवा ।
युयुधे भ्रातुरर्थाय पाण्डवेन यशस्विना ॥ १४
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य केतुवर्माणमाहवे ।
अभ्यघ्नन्निशितैर्बाणैर्बीभत्सुः परवीरहा ॥ १५
केतुवर्मण्यभिहते धृतवर्मा महारथः ।
रथेनाशु समुत्पत्य शरैर्जिष्णुमवाकिरत् ॥ १६
तस्य तां शीघ्रतामीक्ष्य तुतोषातीव वीर्यवान्
गुडाकेशो महातेजा बालस्य धृतवर्मणः ॥ १७
न संदधानं ददृशे नाददानं च तं तदा ।
किरन्तमेव स शरान्ददृशे पाकशासनिः ॥ १८

यानि तूभयत इति क्षुद्राणि तु उपेक्षितानीत्यर्थः ॥२८॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * अवन् मृद्नन् इति पाठः।

७४

त्रिगर्तैरिति महारथत्वेन सम्यगाज्ञातैः पाण्डवीयैर्हतानां पुत्रनप्तृभिस्त्रिगर्तैः ॥ १ ॥

स तु तं पूजयामास धृतवर्माणमाहवे ।
मनसा तु मुहूर्तं वै रणे समभिहर्षयन् ॥ १९
तं पन्नगमिव क्रुद्धं कुरुवीरः स्मयन्निव ।
प्रीतिपूर्वं महाबाहुः प्राणैर्न व्यपरोपयत् ॥२०
स तथा रक्ष्यमाणो वै पार्थेनामिततेजसा ।
धृतवर्मा शरं दीप्तं मुमोच विजये तदा ॥ २१
स तेन विजयस्तूर्णमासीद्विद्धः करे भृशम् ॥
मुमोच गाण्डिवं मोहात्तत्पपाताथ भूतले २२
धनुषः पततस्तस्य सव्यसाचिकराद्विभो ।
बभूव सदृशं रूपं शक्रचापस्य भारत ॥ २३
तस्मिन्निपतिते दिव्ये महाधनुषि पार्थिवः ।
जहास सस्वनं हासं धृतवर्मा महाहवे ॥ २४
ततो रोषार्दितो जिष्णुः प्रमृज्य रुधिरं करात्
धनुरादत्त तद्दिव्यं शरवर्षैर्ववर्ष च ॥ २५
ततो हलहलाशब्दो दिवस्पृगभवत्तदा ।
नानाविधानां भूतानां तत्कर्माणि प्रशंसताम्
ततः संप्रेक्ष्य संक्रुद्धं कालान्तकयमोपमम् ।
जिष्णुं त्रैगर्तका योधाः परीताः पर्यवारयन् ॥
अभिसृत्य परीप्सार्थं ततस्ते धृतवर्मणः ।
परिवव्रुर्गुडाकेशं तत्राक्रुध्यद्धनञ्जयः ॥ २८
ततो योधान् जघानाशु तेषां स दश चाष्ट च
महेन्द्रवज्रप्रतिमैरायसैर्बहुभिः शरैः ॥ २९
तान्संप्रभग्नान्संप्रेक्ष्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
शरैराशीविषाकारैर्जघान स्वनवद्धसन् ॥ ३०
ते भग्नमनसः सर्वे त्रैगर्तकमहारथाः ।
दिशोऽभिदुद्रुवू राजन् धनञ्जयशरार्दिताः ॥
तमूचुः पुरुषव्याघ्रं संशप्तकनिषूदनम् ।
तवास्म किंकराः सर्वे सर्वे वै वशगास्तव ३२
आज्ञापयस्व नः पार्थ प्रह्वान्प्रेष्यानवस्थितान् ।
करिष्यामः प्रियं सर्वे तव कौरवनन्दन ॥ ३३
एतदाज्ञाय वचनं सर्वांस्तानब्रवीत्तदा ।
जीवितं रक्षत नृपाः शासनं प्रतिगृह्यताम् ३४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि त्रिगर्तपराभवे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४

## ७५

वैशम्पायन उवाच ।
प्राग्ज्योतिषमथाभ्येत्य व्यचरत्स हयोत्तमः
भगदत्तात्मजस्तत्र निर्ययौ रणकर्कशः ॥ १
स हयं पाण्डुपुत्रस्य विषयान्तमुपागतम् ।
युयुधे भरतश्रेष्ठ वज्रदत्तो महीपतिः ॥ २
सोऽभिनिर्याय नगराद्भगदत्तसुतो नृपः ।
अश्वमायान्तमुन्मथ्य नगराभिमुखो ययौ ॥३
तमालक्ष्य महाबाहुः कुरूणामृषभस्तदा ।
गाण्डीवं विक्षिपंस्तूर्णं सहसा समुपाद्रवत् ४
ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैरिषुभिर्मोहितो नृपः ।
हयमुत्सृज्य तं वीरस्ततः पार्थमुपाद्रवत् ॥ ५
पुनः प्रविश्य नगरं दंशितः स नृपोत्तमः ।
आरुह्य नागप्रवरं निर्ययौ रणकर्कशः ॥ ६
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
दोधूयता चामरेण श्वेतेन च महारथः ॥ ७
ततः पार्थं समासाद्य पाण्डवानां महारथम् ।
आह्वयामास बीभत्सुं बाल्यान्मोहाच्च संयुगे
स वारणं नगप्रख्यं प्रभिन्नकरटामुखम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः श्वेताश्वं प्रति पार्थिवः ९
विक्षरन्तं महामेघं परवारणवारणम् ।
शास्त्रवत्कल्पितं संख्ये विवशं युद्धदुर्मदम्१०
प्रचोद्यमानः स गजस्तेन राज्ञा महाबलः ।
तदांकुशेन विबभावुत्पतिष्यन्निवाम्बरम् ११
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य क्रुद्धो राजन्धनञ्जय ।
भूमिष्ठो वारणगतं योधयामास भारत ॥ १२
वज्रदत्तस्ततः क्रुद्धो मुमोचाशु धनञ्जये ।
तोमरानग्निसङ्काशान् शलभानिव वेगितान्

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ।

७५
प्राग्ज्योतिषेतिस्पष्टार्थोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्जुनस्तानसंप्राप्तान् गाण्डीवप्रभवैः शरैः।
द्विधा त्रिधा च चिच्छेद ख एव खगमैस्तदा
स तान् दृष्ट्वा तथा छिन्नांस्तोमरान्भगदत्तजः।
इषूनसक्तांस्त्वरितः प्राहिणोत्पाण्डवं प्रति१५
ततोऽर्जुनस्तूर्णतरं रुक्मपुङ्खानजिह्मगान्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो भगदत्तात्मजं प्रति ॥ १६
स तैर्विद्धो महातेजा वज्रदत्तो महामृधे।
भृशाहतः पपातोर्व्यां न त्वेनमजहात्स्मृतिः
ततः स पुनरुत्सृज्य वारणप्रवरं रणे।
अव्यग्रः प्रेषयामास जयार्थी विजयं प्रति १८
तस्मै बाणांस्ततो जिष्णु-
निर्मुक्ताशीविषोपमान्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो
ज्वलितज्वलनोपमान् ॥ १९
स तैर्विद्धो महानागो विस्रवन् रुधिरं बभौ।
गैरिकाक्तमिवांभोद्रिर्बहुप्रस्रवणं तदा ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि वज्रदत्तयुद्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

## ७६

एवं त्रिरात्रमभवत्तद्युद्धं भरतर्षभ।
अर्जुनस्य नरेन्द्रेण वृत्रेणेव शतक्रतोः ॥ १
ततश्चतुर्थे दिवसे वज्रदत्तो महाबलः।
जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमथाब्रवीत् २
अर्जुनार्जुन तिष्ठस्व न मे जीवन्विमोक्ष्यसे।
त्वां निहत्य करिष्यामि पितुस्तोयं यथाविधि
त्वया वृद्धो मम पिता भगदत्तः पितुः सखा
हतो वृद्धो मम पिता शिशुं मामद्य योधय ४
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धो वज्रदत्तो नराधिपः।
प्रेषयामास कौरव्य वारणं पाण्डवं प्रति ॥ ५
संप्रेष्यमाणो नागेन्द्रो वज्रदत्तेन धीमता।
उत्पतिष्यन्निवाकाशमभिदुद्राव पाण्डवम् ६
अग्रहस्तप्रमुक्तेन सीकरेण स नागराट्।
समौक्षत गुडाकेशं शैलं नीलमिवाम्बुदः ७
स तेन प्रेषितो राज्ञा मेघवन्निनदन्मुहुः।
मुखाडम्बरसह्रादैरभ्यद्रवत फाल्गुनम् ॥ ८
स नृत्यन्निव नागेन्द्रो वज्रदत्तप्रचोदितः।
आससाद द्रुतं राजन्कौरवाणां महारथम् ९
तमायान्तमथालक्ष्य वज्रदत्तस्य वारणम्।
गाण्डीवमाश्रित्य बली न व्यकम्पत शत्रुहा ॥
चुक्रोध बलवच्चापि पाण्डवस्तस्य भूपतेः।
कार्यविघ्नमनुस्मृत्य पूर्ववैरं च भारत ॥ ११
ततस्तं वारणं क्रुद्धः शरजालेन पाण्डवः।
निवारयामास तदा वेलेव मकरालयम् ॥ १२
स नागप्रवरः श्रीमानर्जुनेन निवारितः।
तस्थौ शरैर्वितुन्नाङ्गः श्वाविच्छललितो यथा
निवारितं गजं दृष्ट्वा भगदत्तसुतो नृपः।
उत्ससर्ज शितान्बाणानर्जुनः क्रोधमूर्च्छितः
अर्जुनस्तु महाबाहुः शरैरमित्रघातिभिः।
वारयामास तान्बाणांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥
ततः पुनरभिक्रुद्धो राजा प्राग्ज्योतिषाधिपः।
प्रेषयामास नागेन्द्रं बलवत्पर्वतोपमम् ॥ १६
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य बलवत्पाकशासनिः।
नाराचमग्निसंकाशं प्राहिणोद्वारणं प्रति १७
स तेन वारणो राजन्मर्मस्वभिहतो भृशम्।
पपात सहसा भूमौ वज्ररुग्ण इवाचलः ॥ १८
स पतन् शुशुभे नागो धनञ्जयशराहतः।
विशन्निव महाशैलो महीं वज्रप्रपीडितः १९
तस्मिन्निपतिते नागे वज्रदत्तस्य पाण्डवः।
तं न भेतव्यमित्याह ततो भूमिगतं नृपम् २०
अब्रवीद्धि महातेजाः प्रस्थितं मां युधिष्ठिरः।
राजानस्ते न हन्तव्या धनञ्जय कथञ्चन ॥ २१

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

एवमिति ॥१॥ शललितः शलाकाप्रोत ॥१३॥

सर्वमेतन्नरव्याघ्र भवत्येतावता कृतम् ।
योधाश्चापि न हन्तव्या धनञ्जय रणे त्वया ॥
वक्तव्याश्चापि राजानः सर्वे सहसुहृज्जनैः ।
युधिष्ठिरस्याश्वमेधो भवद्भिरनुभूयताम् २३
इति भ्रातृवचः श्रुत्वा न हन्मि त्वां नराधिप।
उत्तिष्ठ न भयं तेऽस्ति स्वस्तिमान्गच्छ पार्थिव
आगच्छेथा महाराज परां चैत्रीमुपस्थिताम् ।
यदाऽश्वमेधो भविता धर्मराजस्य धीमतः२५
एवमुक्तः स राजा तु भगदत्तात्मजस्तदा ।
तथेत्येवाब्रवीद्वाक्यं पाण्डवेनाभिनिर्जितः२६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि वज्रदत्तपराजये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## ७७

वैशम्पायन उवाच ।
सैन्धवैरभवद्युद्धं ततस्तस्य किरीटिनः ।
हतशेषैर्महाराज हतानां च सुतैरपि ॥ १
तेऽवतीर्णमुपश्रुत्य विषयं श्वेतवाहनम् ।
प्रत्युद्ययुरमृष्यन्तो राजानः पाण्डवर्षभम् २
अश्वं च तं परामृश्य विषयान्ते विषोपमाः ।
न भयं चक्रिरे पार्थाद्भीमसेनादनन्तरात् ॥ ३
तेऽविदूराद्धनुष्पाणिं यज्ञियस्य हयस्य च ।
बीभत्सुं प्रत्यपद्यन्त पदातिनमवस्थितम् ॥ ४
ततस्ते तं महावीर्या राजानः पर्यवारयन् ।
जिगीषन्तो नरव्याघ्रं पूर्वं विनिकृता युधि ५
ते नामान्यपि गोत्राणि
कर्माणि विविधानि च ।
कीर्तयन्तस्तदा पार्थं
शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ६
ते किरन्तः शरव्रातान्वारणप्रतिवारणान् ।
रणे जयमभीप्सन्तः कौन्तेयं पर्यवारयन् ७
ते समीक्ष्य च तं कृष्णमुग्रकर्माणमाहवे ।
सर्वे युयुधिरे वीरा रथस्थास्तं पदातिनम् ॥८
ते तमाजघ्निरे वीरं निवातकवचान्तकम् ।
संशप्तकनिहन्तारं हन्तारं सैन्धवस्य च ॥ ९
ततो रथसहस्रेण हयानामयुतेन च ।
कोष्ठकीकृत्य बीभत्सुं प्रहृष्टमनसोऽभवन् १०
तं स्मरन्तो वधं वीराः सिन्धुराजस्य चाहवे
जयद्रथस्य कौरव्य समरे सव्यसाचिना ११
ततः पर्जन्यवत्सर्वे शरवृष्टीरवासृजन् ।
तैः कीर्णः शुशुभे पार्थो रविर्मेघान्तरे यथा ॥
स शरैः समवच्छन्नश्चकाशे पाण्डवर्षभः ।
पञ्जरान्तरसंचारी शकुन्त इव भारत ॥ १३
ततो हाहाकृतं सर्वं कौन्तेये शरपीडिते ।
त्रैलोक्यमभवद्राजन् रविरासीच्च निष्प्रभः१४
ततो ववौ महाराज मारुतो लोमहर्षणः ।
राहुरग्रसदादित्यं युगपत्सोममेव च ॥ १५
उल्काश्च जघ्निरे सूर्यं विकीर्यन्त्यः समन्ततः ।
वेपथुश्चाभवद्राजन्कैलासस्य महागिरेः ॥ १६
मुमुचुः श्वासमत्युष्णं दुःखशोकसमन्विताः ।
सप्तर्षयो जातभयास्तथा देवर्षयोऽपि च ॥१७
शशं चाशु विनिर्भिद्य मण्डलं शशिनोऽपतत्
विपरीता दिशश्चापि सर्वा धूमाकुलास्तथा ॥
रासभारुणसङ्काशा धनुष्मन्तः सविद्युतः ।
आवृत्य गगनं मेघा मुमुचुर्मांसशोणितम् १९

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

७७

**सैन्धवैरिति** ॥१॥ विकीर्यन्त्य उल्का सूर्यं जघ्निरे ताभिश्च विकीर्यमाणाभि. कैलासादीना वेपथु· सप्तर्ष्यादीना श्वासश्चाभवत् ता एव शशं चंद्रस्थं विनिर्भिद्य शशिनो मंडल प्रति परित अपतन्निति त्रयाणा संबंधः ॥ १६ ॥ ततः स्वाशु इति पाठे चंद्रमंडलादूर्ध्वदेशात्पतिता उल्का तत् भित्वाऽधोपतादित्यर्थ. ॥ १८ ॥ रासभवर्णश्चारुणश्च तयोर्मिश्रीभावो रासभारुणो वर्णविशेष ॥ १९ ॥

एवमासीत्तदा वीरे शरवर्षेण संवृते ।
फाल्गुने भरतश्रेष्ठ तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २०
तस्य तेनावकीर्णस्य शरजालेन सर्वतः ।
मोहात्पपात गाण्डीवमावापश्च करादपि ॥ २१
तस्मिन्मोहमनुप्राप्ते शरजालं महत्तदा ।
सैन्धवा मुमुचुस्तूर्णं गतसत्त्वे महारथे ॥ २२
ततो मोहसमापन्नं ज्ञात्वा पार्थं दिवौकसः ।
सर्वे वित्रस्तमनसस्तस्य शान्तिकृतोऽभवन् ॥
ततो देवर्षयः सर्वे तथा सप्तर्षयोऽपि च ।
ब्रह्मर्षयश्च विजयं जेपुः पार्थस्य धीमतः ॥ २४
ततः प्रदीपिते देवैः पार्थतेजसि पार्थिव ।
तस्थावचलवद्धीमान्संग्रामे परमास्त्रवित् २५
विचकर्ष धनुर्दिव्यं ततः कौरवनन्दनः ।
यन्त्रस्येवेह शब्दोऽभून्महांस्तस्य पुनः पुनः ॥
ततः स शरवर्षाणि प्रत्यमित्रान्प्रति प्रभुः ।
ववर्ष धनुषा पार्थो वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ २७
ततस्ते सैन्धवा योधाः सर्वे एव सराजकाः
नादृश्यन्त शरैः कीर्णाः शलभैरिव पादपाः ॥
तस्य शब्देन वित्रेसुर्भयार्ताश्च विदुद्रुवुः ।
मुमुचुश्चाश्रु शोकार्ताः शुशुचुश्चापि सैन्धवाः
तांस्तु सर्वान्नरव्याघ्रः सैन्धवान् व्यचरद् बली
अलातचक्रवद्राजन् शरजालैः समार्पयत् ॥
तदिन्द्रजालप्रतिमं बाणजालममित्रहा ।
विसृज्य दिक्षु सर्वासु महेन्द्र इव वज्रभृत् ३१
मेघजालनिभं सैन्यं विदार्य शरवृष्टिभिः ।
विबभौ कौरवश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि सैन्धवयुद्धे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## ७८

वैशम्पायन उवाच ।
ततो गाण्डीवभृच्छूरो युद्धाय समुपस्थितः ।
विबभौ युधि दुर्धर्षो हिमवानचलो यथा ॥ १
ततस्ते सैन्धवा योधाः पुनरेव व्यवस्थिताः ।
व्यमुञ्चन्त सुसंरब्धाः शरवर्षाणि भारत ॥ २
तान्प्रहस्य महाबाहुः
पुनरेव व्यवस्थितान् ।
ततः प्रोवाच कौन्तेयो
मुमूर्षून् श्लक्ष्णया गिरा ।
युध्यध्वं परया शक्त्या
यतध्वं विजये मम ॥ ३
कुरुध्वं सर्वकार्याणि
महद्वो भयमागतम् ।
एष योत्स्यामि सर्वांस्तु
निवार्य शरवागुराम् ॥ ४
तिष्ठध्वं युद्धमनसो दर्पं शमयिताऽस्मि वः ।
एतावदुक्त्वा कौरव्यो रोषाद्गाण्डीवभृत्तदा ५
ततोऽथ वचनं स्मृत्वा भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
न हंतव्या रणे तात क्षत्रिया विजिगीषवः ६
जेतव्याश्चेति यत्प्रोक्तं धर्मराज्ञा महात्मना ।
चिन्तयामास स तदा फाल्गुनः पुरुषर्षभः ॥ ७
इत्युक्तोहं नरेन्द्रेण न हन्तव्या नृपा इति ।
कथं तन्न मृषेद् स्याद्धर्मराजवचः शुभम् ॥ ८
न हन्येरंश्च राजानो राज्ञश्चाज्ञा कृता भवेत् ।
इति सञ्चिन्त्य स तदा फाल्गुनः पुरुषर्षभः ९
प्रोवाच वाक्यं धर्मज्ञः सैन्धवान् युद्धदुर्मदान्
श्रेयो वदामि युष्माकं न हिंसेयमवस्थितान् ॥
यश्च वक्ष्यति संग्रामे तवास्मीति पराजितः ।
एतच्छ्रुत्वा वचो मह्यं कुरुध्वं हितमात्मनः ॥

आवापो हस्तावाप ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८
ततो गाण्डीवभृदिति ॥ १ ॥

ततोऽन्यथा कुरुच्छ्रगता भविष्यथ मयार्दिताः।
एवमुक्त्वा तु तान्वीरान् युयुधे कुरुपुङ्गवः ॥
अर्जुनोऽतीव संक्रुद्धः संक्रुद्धैर्विजिगीषुभिः।
शतं शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् १३
मुमुचुः सैन्धवा राजंस्तदा गाण्डीवधन्वनि
शरानापततः क्रूरानाशीविषविषोपमान् १४
चिच्छेद निशितैर्बाणै-
रन्तरा स धनञ्जयः।
छित्त्वा तु तानाशु चैव
कङ्कपत्रान् शिलाशितान् ॥ १५
एकैकमेषां समरे बिभेद निशितैः शरैः।
ततः प्रासांश्च शक्तीश्च पुनरेव धनञ्जयम् ॥ १६
जयद्रथं हतं स्मृत्वा चिक्षिपुः सैन्धवा नृपाः।
तेषां किरीटी संकल्पं मोघं चक्रे महाबलः ॥
सर्वांस्तानन्तरा छित्त्वा
तदा चुक्रोश पाण्डवः।
तथैवापततां तेषां
योधानां जयगृद्धिनाम् ॥ १८
शिरांसि पातयामास भल्लैः सन्नतपर्वभिः।
तेषां प्रद्रवतां चापि पुनरेवाभिधावताम् ॥ १९
निवर्ततां च शब्दोऽभूत्पूर्णस्येव महोदधेः।
ते वध्यमानास्तु तदा पार्थेनामिततेजसा ॥
यथाप्राणं यथोत्साहं योधयामासुरर्जुनम्।
ततस्ते फाल्गुनेनाजौ शरैः सन्नतपर्वभिः २१
कृता विसंज्ञा भूयिष्ठाः क्लान्तवाहनसैनिकाः
तांस्तु सर्वान्परिग्लानान्विदित्वा धृतराष्ट्रजा
दुःशला बालमादाय नप्तारं प्रययौ तदा।
सुरथस्य सुतं वीरं रथेनाथागमत्तदा ॥ २३
शान्त्यर्थं सर्वयोधानामभ्यगच्छत पाण्डवम्।
साधनं जयमासाद्य रुरोदार्तस्वरं तदा ॥ २४
धनञ्जयोऽपि तां दृष्ट्वा धनुर्विससृजे प्रभुः।
समुत्सृज्य धनुः पार्थो विधिवद्भगिनीं तदा
प्राह किं करवाणीति सा च तं प्रत्युवाच ह
एष ते भरतश्रेष्ठ स्वस्रीयस्यात्मजः शिशुः २६
अभिवादयते पार्थ तं पश्य पुरुषर्षभ।
इत्युक्तस्तस्य पितरं स पप्रच्छार्जुनस्तथा २७
क्वासाविति ततो राजन्दुःशला वाक्यमब्रवीत्
पितृशोकाभिसंतप्तो विषादार्तोऽस्य वै पिता
पञ्चत्वमगमद्वीरो यथा तन्मे निशामय।
स पूर्वं पितरं श्रुत्वा हतं युद्धे त्वयाऽनघ २९
त्वामागतं च संश्रुत्य युद्धाय हयसारिणम्।
पितुश्च मृत्युदुःखार्तोऽजहात्प्राणान्धनंजय ॥
प्राप्तो बीभत्सुरित्येव नामश्रुत्वैव तेऽनघ।
विषादार्तः पपातोर्व्यां ममार च ममात्मजः ॥
तं दृष्ट्वा पतितं तत्र ततस्तस्यात्मजं प्रभो।
गृहीत्वा समनुप्राप्ता त्वामद्य शरणैषिणी ॥
इत्युक्त्वाऽऽर्तस्वरं सा तु मुमोच धृतराष्ट्रजा।
दीना दीनं स्थितं पार्थमब्रवीच्चाप्यधोमुखम् ॥
स्वसारं समवेक्षस्व स्वस्रीयात्मजमेव च।
कर्तुमर्हसि धर्मज्ञ दयां कुरुकुलोद्वह ॥ ३४
विस्मृत्य कुरुराजानं तं च मन्दं जयद्रथम्।
अभिमन्योर्यथा जातः परिक्षित्परवीरहा ३५
तथाऽयं सुरथाज्जातो मम पौत्रो महाभुजः।
तमादाय नरव्याघ्र संप्राप्ताऽस्मि तवान्तिकम्
शमार्थं सर्वयोधानां शृणु चेदं वचो मम।
आगतोऽयं महाबाहो तस्य मन्दस्य पुत्रकः ३७
प्रसादमस्य बालस्य तस्मात्त्वं कर्तुमर्हसि।
एष प्रसाद्य शिरसा प्रशमार्थमरिंदम ॥ ३८
याचते त्वां महाबाहो शमं गच्छ धनञ्जय।
बालस्य हतबन्धोश्च पार्थ किंचिदजानतः ३९
प्रसादं कुरु धर्मज्ञ मा मन्युवशमन्वगाः।
तमनार्यं नृशंसं च विस्मृत्यास्य पितामहम् ॥
आगस्कारिणमत्यर्थं प्रसादं कर्तुमर्हसि
एवं ब्रुवत्यां करुणं दुःशलायां धनञ्जयः ॥ ४१
संस्मृत्य देवीं गान्धारीं धृतराष्ट्रं च पार्थिवम्
उवाच दुःखशोकार्तः क्षत्रधर्मं व्यगर्हयत् ४२
यत्कृते बान्धवाः सर्वे मया नीता यमक्षयम्।
इत्युक्त्वा बहु सान्त्वादि प्रसादमकरोज्जयः ॥
परिष्वज्य च तां प्रीतो विससर्ज गृहान्प्रति
दुःशला चापि तान् योधान्
निवार्य महतो रणात्।
संपूज्य पार्थं प्रययौ
गृहानेव शुभानना ॥ ४५
एवं निर्जित्य तान्वीरान्सैन्धवान्स धनञ्जयः।
अन्वधावत धावन्तं हयं कामविचारिणम् ॥
ततो मृगमिवाकाशे यथा देवः पिनाकधृक्।
ससार तं तथा वीरो विधिवद्यज्ञियं हयम् ॥
स च वाजी यथेष्टेन तांस्तान्देशान् यथाक्रम
विचचार यथाकामं कर्म पार्थस्य वर्धयन् ४८
क्रमेण स हयस्त्वेवं विचरन्पुरुषर्षभ।
मणिपूरपतेर्देशमुपायात्सहपाण्डवः ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि सैन्धवपराजये अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## ७९

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वा तु नृपतिः प्राप्तं पितरं बभ्रुवाहनः ।
निर्ययौ विनयेनाथ ब्राह्मणार्घ्यपुरःसरः ॥ १
मणिपूरेश्वरं त्वेवमुपयातं धनञ्जयः ।
नाभ्यनन्दत्स मेधावी क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ २
उवाच च स धर्मात्मा समन्युः फाल्गुनस्तदा ।
प्रक्रियेयं न ते युक्ता बहिस्त्वं क्षत्रधर्मतः ॥ ३
संरक्ष्यमाणं तुरगं यौधिष्ठिरमुपागतम् ।
यज्ञियं विषयान्ते मां नायोत्सीः किं नु पुत्रक ॥
धिक् त्वामस्तु सुदुर्बुद्धिं क्षत्रधर्मबहिष्कृतम् ।
यो मां युद्धाय संप्राप्तं साम्नैव प्रत्यगृह्णथाः ५
न त्वया पुरुषार्थो हि कश्चिदस्तीह जीवता ।
यस्त्वं स्त्रीवद्यथाप्राप्तं मां साम्ना प्रत्यगृह्णथाः ६
यद्यहं न्यस्तशस्त्रस्त्वामागच्छेयं सुदुर्मते ।
प्रक्रियेयं भवेद्युक्ता तावत्तव नराधम ॥ ७
तमेवमुक्तं भर्त्रा तु विदित्वा पन्नगात्मजा ।
अमृष्यमाणा भित्त्वोर्वीमुलूपी समुपागमत् ८
सा ददर्श ततः पुत्रं विमृशन्तमधोमुखम् ।
संतर्ज्यमानमसकृत्पित्रा युद्धार्थिना प्रभो ९
ततः सा चारुसर्वाङ्गी समुपेत्योरगात्मजा ।
उलूपी प्राह वचनं धर्म्यं धर्मविशारदम् ॥ १०
उलूपीं मां निबोध त्वं मातरं पन्नगात्मजाम् ।
कुरुष्व वचनं पुत्र धर्मस्ते भविता परः ॥ ११
युध्यस्वैनं कुरुश्रेष्ठं पितरं युद्धदुर्मदम् ।
एवमेष हि ते प्रीतो भविष्यति न संशयः १२
एवं दुर्मर्षितो राजा स मात्रा बभ्रुवाहनः ।
मनश्चक्रे महातेजा युद्धाय भरतर्षभ ॥ १३
सन्नह्य काञ्चनं वर्म शिरस्त्राणं च भानुमत् ।
तूणीरशतसम्बाधमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १४
सर्वोपकरणोपेतं युक्तमश्वैर्मनोजवैः ।
स चक्रोपस्करं श्रीमान्हेमभाण्डपरिष्कृतम् ॥
परमार्चितमुच्छ्रित्य ध्वजं सिंहं हिरण्मयम् ॥
प्रययौ पार्थमुद्दिश्य स राजा बभ्रुवाहनः ॥१६
ततोऽभ्येत्य हयं वीरो यज्ञियं पार्थरक्षितम् ।
ग्राहयामास पुरुषैर्हयशिक्षाविशारदैः ॥ १७
गृहीतं वाजिनं दृष्ट्वा प्रीतात्मा स धनञ्जयः ।
पुत्रं रथस्थं भूमिष्ठः संन्यवारयदाहवे ॥ १८
स तत्र राजा तं वीरं शरसङ्घैरनेकशः ।
अर्दयामास निशितैराशीविषविषोपमैः ॥ १९
तयोः समभवद्युद्धं पितुः पुत्रस्य चातुलम् ।
देवासुररणप्रख्यमुभयोः प्रीयमाणयोः ॥ २०
किरीटिनं प्रविव्याध शरेणानतपर्वणा ।
जत्रुदेशे नरव्याघ्रं प्रहसन्बभ्रुवाहनः ॥ २१
सोऽभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ।
विनिर्भिद्य च कौन्तेयं प्रविवेश महीतलम् ॥
स गाढवेदनो धीमानालम्ब्य धनुरुत्तमम् ।
दिव्यं तेजः समाविश्य प्रमीत इव साऽभवत्
स संज्ञामुपलभ्याथ प्रशस्य पुरुषर्षभः ।
पुत्रं शक्रात्मजो वाक्यमिदमाह महाद्युतिः २४
साधु साधु महाबाहो वत्स चित्राङ्गदात्मज
सदृशं कर्म ते दृष्ट्वा प्रीतिमानस्मि पुत्रक ॥ २५
विमुञ्चाम्येष ते बाणान्पुत्र युद्धे स्थिरो भव ।
इत्येवमुक्त्वा नाराचैरभ्यवर्षदमित्रहा २६
तान्स गाण्डीवनिर्मुक्तान्वज्राशनिसमप्रभान् ।
नाराचानच्छिनद्राजा भल्लैः सर्वांस्त्रिधा द्विधा
तस्य पार्थः शरैर्दिव्यैर्ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।
सुवर्णतालप्रतिमं क्षुरेणापाहरद्रथात् ॥ २८

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९

श्रुत्वेति ॥ १ ॥ प्रमीत इव मृत इव दिव्यं तेजो द्वादशार्कास्यमीश्वरम् ॥ २३ ॥ पुत्रं प्रशस्येति संबंध ॥२४॥ चित्राङ्गदा चित्रवाहनदुहिताऽर्जुनस्य द्वितीया स्त्री ॥ २५ ॥

हयांश्चास्य महाकायान्महावेगानरिन्दम।
चकार राजन्निर्जीवान्प्रहसन्निव पाण्डवः २९
स रथादवतीर्याथ राजा परमकोपनः।
पदातिः पितरं क्रुद्धो योधयामास पाण्डवम्
संप्रीयमाणः पार्थानामृषभः पुत्रविक्रमात्।
नात्यर्थं पीडयामास पुत्रं वज्रधरात्मजः ३१
स मन्यमानो विमुखं पितरं बभ्रुवाहनः।
शरैराशीविषाकारैः पुनरेवार्दयद्बली ॥ ३२
ततः स बाल्यात्पितरं विव्याध हृदि पत्रिणा
निशितेन सुपुङ्खेन बलवद्बभ्रुवाहन ॥ ३३
विवेश पाण्डवं राजन्मर्म भित्त्वाऽतिदुःखकृत्
स तेनातिभृशं विद्धः पुत्रेण कुरुनन्दनः ३४
महीं जगाम मोहार्तस्ततो राजन् धनञ्जयः।
तस्मिन्निपतिते वीरे कौरवाणां धुरन्धरे ३५
सोऽपि मोहं जगामाथ ततश्चित्राङ्गदासुतः।
व्यायम्य संयुगे राजा दृष्ट्वा च पितरं हतम् ॥
पूर्वमेव स बाणौघैर्गाढविद्धोऽर्जुनेन ह।
पपात सोऽपि धरणीमालिङ्ग्य रणमूर्धनि ३७
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा पुत्रं च पतितं भुवि।
चित्राङ्गदा परित्रस्ता प्रविवेश रणाजिरे ३८
शोकसन्तप्तहृदया रुदती वेपती भृशम्।
मणिपूरपतेर्माता ददर्श निहतं पतिम् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अर्जुनबभ्रुवाहनयुद्धे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## ८०

वैशम्पायन उवाच।
ततो बहुतरं भीरुर्विलप्य कमलेक्षणा।
मुमोह दुःखसंतप्ता पपात च महीतले ॥ १
प्रतिलभ्य च सा संज्ञां देवी दिव्यवपुर्धरा।
उलूपीं पन्नगसुतां दृष्ट्वेदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २
उलूपि पश्य भर्तारं शयानं निहतं रणे।
त्वत्कृते मम पुत्रेण बाणेन समितिञ्जयम् ॥ ३
ननु त्वमार्ये धर्मज्ञा ननु चासि पतिव्रता।
यत्त्वत्कृतेऽयं पतितः पतिस्ते निहतो रणे ४
किन्तु सर्वापराधोऽयं यदि तेऽद्य धनञ्जयः।
क्षमस्व याच्यमाना वै जीवयस्व धनञ्जयम् ॥५
ननु त्वमार्ये धर्मज्ञा त्रैलोक्यविदिता शुभे।
यद्घातयित्वा पुत्रेण भर्तारं नानुशोचसि ॥ ६
नाहं शोचामि तनयं हतं पन्नगनन्दिनि।
पतिमेव तु शोचामि यस्यातिथ्यमिदं कृतम् ७
इत्युक्त्वा सा तदा देवीमुलूपीं पन्नगात्मजाम्
भर्तारमभिगम्येदमित्युवाच यशस्विनी ॥ ८
उत्तिष्ठ कुरुमुख्यस्य प्रियमुख्य मम प्रिय।
अयमश्वो महाबाहो मया ते परिमोक्षितः ९
ननु त्वया नाम विभो धर्मराजस्य यज्ञियः।
अयमश्वोऽनुसर्तव्यः स शेषे किं महीतले १०
त्वयि प्राणा ममायत्ताः कुरूणां कुरुनन्दन।
स कस्मात्प्राणदोऽन्येषां प्राणान्संत्यक्तवानसि
उलूपि साधु पश्येमं पतिं निपतितं भुवि।
पुत्रं चमं समुत्साह्य घातयित्वा न शोचसि ॥
कामं स्वपितु बालोऽयं भूमौ मृत्युवशं गतः।
लोहिताक्षो गुडाकेशो विजयः साधु जीवतु
नापराधोऽस्ति सुभगे नराणां बहुभार्यता।
प्रमदानां भवत्येष मा तेऽभूद्बुद्धिरीदृशी ॥१४
सख्यं चैतत्कृतं धात्रा शश्वदव्ययमेव तु।
सख्यं समभिजानीहि सत्यं सङ्गतमस्तु ते १५
पुत्रेण घातयित्वैनं पतिं यदि न मेऽद्य वै।
जीवन्तं दर्शयस्यद्य परित्यक्ष्यामि जीवितम्
साऽहं दुःखान्विता देवि पतिपुत्रविनाकृता
इहैव प्रायमासिष्ये प्रेक्षन्त्यास्ते न संशयः १७

पतिं अर्जुनम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे ऊनाशीतितमोऽध्याय ७९

८०

तत इति ॥ १ ॥ - ममायत्ता इति पाठः।

इत्युक्त्वा पन्नगसुतां सपत्नी चैत्रवाहनी ।
ततः प्रायमुपासीना तूष्णीमासीज्जनाधिप १८

वैशम्पायन उवाच ।

ततो विलप्य विरता भर्तुः पादौ प्रगृह्य सा
उपविष्टाऽभवद्दीना सोच्छ्वासं पुत्रमीक्षती १९
ततः संज्ञां पुनर्लब्ध्वा स राजा बभ्रुवाहनः ।
मातरं तामथालोक्य रणभूमावथाब्रवीत् २०
इतो दुःखतरं किं नु यन्मे माता सुखैधिता ।
भूमौ निपतितं वीरमनुशेते मृतं पतिम् ॥ २१
निहन्तारं रणेऽरीणां सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
मया विनिहतं संख्ये प्रेक्षते दुर्मरं बत ॥ २२
अहोऽस्या हृदयं देव्या दृढं यन्न विदीर्यते ।
व्यूढोरस्कं महाबाहुं प्रेक्षंत्या निहतं पतिम्
दुर्मरं पुरुषेणेह मन्ये ह्यध्वन्यनागते ।
यत्र नाहं न मे माता विप्रयुज्येत जीवितात्
हाहा धिक्कुरुवीरस्य सन्नाहं काञ्चनं भुवि ।
अपविद्धं हतस्येह मया पुत्रेण पश्यत ॥ २५
भो भो पश्यत मे वीरं पितरं ब्राह्मणा भुवि ।
शयानं वीरशयने मया पुत्रेण पातितम् ॥ २६
ब्राह्मणाः कुरुमुख्यस्य ये मुक्ता हयसारिणः ।
कुर्वन्ति शान्तिकामस्य रणे योऽयं मया हतः
व्यादिशन्तु च किं विप्राः प्रायश्चित्तमिहाद्य मे
अनृशंसस्य पापस्य पितृहन्तू रणाजिरे २८
दुश्चरा द्वादशसमा हत्वा पितरमद्य वै ।
ममेह सुनृशंसस्य संवीतस्यास्य चर्मणा २९
शिरःकपाले चास्यैव युञ्जतः पितुरद्य मे ।
प्रायश्चित्तं हि नास्त्यन्यद्धत्वाऽद्य पितरं मम ॥
पश्य नागोत्तमसुते भर्तारं निहतं मया ।
कृतं प्रियं मया तेऽद्य निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥
सोऽहमद्य गमिष्यामि गतिं पितृनिषेविताम्
न शक्नोम्यात्मनात्मानमहं धारयितुं शुभे ३२
सा त्वं मयि मृते मातस्तथा गाण्डीवधन्वनि
भव प्रीतिमती देवि सत्येनात्मानमालभे ३३
इत्युक्त्वा स ततो राजा दुःखशोकसमाहतः
उपस्पृश्य महाराज दुःखाद्वचनमब्रवीत ॥ ३४
शृण्वन्तु सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।
त्वं च मातर्यथा सत्यं ब्रवीमि भुजगोत्तमे ३५
यदि नोत्तिष्ठति जयः पिता मे नरसत्तमः ।
अस्मिन्नेव रणोद्देशे शोषयिष्ये कलेवरम् ॥३६
न हि मे पितरं हत्वा निष्कृतिर्विद्यते क्वचित् ।
नरकं प्रतिपत्स्यामि ध्रुवं गुरुवधार्दितः ॥३७
वीरं हि क्षत्रियं हत्वा गोशतेन प्रमुच्यते ।
पितरं तु निहत्यैवं दुर्लभा निष्कृतिर्मम ॥ ३८
एष एको महातेजाः पाण्डुपुत्रो धनञ्जयः ।
पिता च मम धर्मात्मा तस्य मे निष्कृतिः कुतः
इत्येवमुक्त्वा नृपते धनञ्जयसुतो नृपः ।
उपस्पृश्याभवत्तूष्णीं प्रायोपेतो महामतिः ४०

वैशम्पायन उवाच ।

प्रायोपविष्टे नृपतौ मणिपूरेश्वरे तदा ।
पितृशोकसमाविष्टे सह मात्रा परंतप ॥ ४१
उलूपी चिन्तयामास तदा सञ्जीवनं मणिम् ।
स चोपातिष्ठत तदा पन्नगानां परायणम् ॥ ४२
तं गृहीत्वा तु कौरव्य नागराजपतेः सुता ।
मनःप्रह्लादनीं वाचं सैनिकानामथाब्रवीत् ४३
उत्तिष्ठ मा शुचः पुत्र नैव जिष्णुस्त्वया जितः
अजेयः पुरुषैरेष तथा देवैः सवासवैः ॥ ४४
मया तु मोहनी नाम मायैषा संप्रदर्शिता ।
प्रियार्थं पुरुषेन्द्रस्य पितुस्तेऽद्य यशस्विनः ४५
जिज्ञासुर्ह्येष पुत्रस्य बलस्य तव कौरव ।
संग्रामे युध्यतो राजन्नागतः परवीरहा ॥ ४६
तस्मादसि मया पुत्र युद्धाय परिचोदितः ।
मा पापमात्मनः पुत्र शङ्केथा ह्यण्वपि प्रभो ४७
ऋषिरेष महानात्मा पुराणः शाश्वतोऽक्षरः ।
नैनं शक्तो हि संग्रामे जेतुं शक्रोऽपि पुत्रक ४८
अयं तु मे मणिर्दिव्यः समानीतो विशांपते ।
मृतान्मृतान्पन्नगेन्द्रान् यो जीवयति नित्यदा
एनमस्योरसि त्वं च स्थापयस्व पितुः प्रभो ।
सञ्जीवितं तदा पार्थं स त्वं द्रष्टाऽसि पाण्डवम्
इत्युक्तः स्थापयामास तस्योरसि मणिं तदा ।
पार्थस्यामिततेजाः स पितुः स्नेहादपापकृत् ॥
तस्मिन्न्यस्ते मणौ वीरो जिष्णुरुज्जीवितः प्रभुः
चिरसुप्त इवोत्तस्थौ मृष्टलोहितलोचनः ॥ ५२
तमुत्थितं महात्मानं लब्धसंज्ञं मनस्विनम् ।
समीक्ष्य पितरं स्वस्थं ववन्दे बभ्रुवाहनः ५३
उत्थिते पुरुषव्याघ्रे पुनर्लक्ष्मीवति प्रभो ।
दिव्याः सुमनसः पुण्या ववृषे पाकशासनः ॥
अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्मेघनिःस्वनाः ।
साधु साध्विति चाकाशे बभूव सुमहान्स्वनः
उत्थाय च महाबाहुः पर्याश्वस्तो धनञ्जयः ।
बभ्रुवाहनमालिङ्ग्य समाजिघ्रत मूर्धनि ॥ ५६
ददर्श चापि दूरेऽस्य मातरं शोककर्शिताम् ।
उलूप्या सह तिष्ठन्तीं ततोऽपृच्छद्धनञ्जय ५७

किमिदं लक्ष्यते सर्वं शोकविस्मयहर्षवत् ।
रणाजिरममित्रघ्न यदि जानासि शंस मे ५८
जननी च किमर्थं ते रणभूमिमुपागता ।
नागेन्द्रदुहिता चेयमुलूपी किमिहागता ५९
जानाम्यहमिदं युद्धं त्वया मद्वचनात्कृतम् ।
स्त्रीणामागमने हेतुमहमिच्छामि वेदितुम् ६०
तमुवाच तथा पृष्टो मणिपूरपतिस्तदा ।
प्रसाद्य शिरसा विद्वानुलूपी पृच्छ्यतामियम्

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वानुसरणे अर्जुनप्रत्युज्जीवने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## ८१

अर्जुन उवाच ।
किमागमनकृत्यं ते कौरव्यकुलनंदिनि ।
मणिपूरपतेर्मातुस्तथैव च रणाजिरे ॥ १
कच्चित्कुशलकामासि राज्ञोऽस्य भुजगात्मजे
मम वा चपलापाङ्गि कच्चित्त्वं शुभमिच्छसि
कच्चित्ते पृथुलश्रोणि नाप्रियं प्रियदर्शने ।
अकार्षमहमज्ञानादयं वा बभ्रुवाहनः ॥ ३
कच्चिन्नु राजपुत्री ते सपत्नी चैत्रवाहनी ।
चित्राङ्गदा वरारोहा नापराध्यति किञ्चन ॥४
तमुवाचोरगपतेर्दुहिता प्रहसन्निव ।
न मे त्वमपराद्धोऽसि न हि मे बभ्रुवाहनः॥५
न जनित्री तथास्येयं मम या प्रेष्यवत् स्थिता।
श्रूयतां यद्यथा चेदं मया सर्वं विचेष्टितम् ॥ ६
न मे कोपस्त्वया कार्यः शिरसा त्वां प्रसादये
त्वत्प्रियार्थं हि कौरव्य कृतमेतन्मया विभो७
यत्तच्छृणु महाबाहो निखिलेन धनञ्जय ।
महाभारतयुद्धे यत्त्वया शान्तनवो नृपः ॥ ८
अधर्मेण हतः पार्थ तस्यैषा निष्कृतिः कृता ।
न हि भीष्मस्त्वया वीर युध्यमानो हि पातितः
शिखण्डिना तु संयुक्तस्तमाश्रित्य हतस्त्वया।
तस्य शान्तिमकृत्वा त्वं त्यजेथा यदि जीवितं
कर्मणा तेन पापेन पतेथा निरये ध्रुवम् ।
एषा तु विहिता शान्तिः पुत्राद्यां प्राप्तवानसि
वसुभिर्वसुधापाल गङ्गया च महामते ॥ ११
पुरा हि श्रुतमेतत्ते वसुभिः कथितं मया ।
गङ्गायास्तीरमाश्रित्य हते शान्तनवे नृप ॥ १२
आप्लुत्य देवा वसवः समेत्य च महानदीम् ।
इदमूचुर्वचो घोरं भागीरथ्या मते तदा ॥ १३
एष शान्तनवो भीष्मो निहतः सव्यसाचिना
अयुध्यमानः संग्रामे संसक्तोऽन्येन भामिनि ।
तदनेनानुषङ्गेण वयमद्य धनञ्जयम् ॥ १४
शापेन योजयामेति
तथाऽस्त्विति च साऽब्रवीत् ।
तदहं पितुरावेद्य
प्रविश्य व्यथितेन्द्रिया ॥ १५
अभवं स च तच्छ्रुत्वा
विषादमगमत्परम् ।
पिता तु मे वसून् गत्वा
त्वदर्थं समयाचत ॥ १६
पुनः पुनः प्रसाद्यैतांस्त एनमिदमब्रुवन् ।
पुत्रस्तस्य महाभाग मणिपूरेश्वरो युवा ॥ १७
स एनं रणमध्यस्थः शरैः पातयिता भुवि ।
एवं कृते स नागेन्द्र मुक्तशापो भविष्यति १८
गच्छेति वसुभिश्चोक्तो
मम चेदं शशंस सः ।
तच्छ्रुत्वा त्वं मया तस्मा-
च्छापादसि विमोक्षितः ॥ १९
न हि त्वां देवराजोऽपि समरेषु पराजयेत् ।
आत्मा पुत्रः स्मृतस्तस्मात्तेनेहास्मि पराजितः
न हि दोषो मम मतः कथं वा मन्यसे विभो
इत्येवमुक्तो विजयः प्रसन्नात्माऽब्रवीदिदम्

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

किमागमनेति स्पष्टार्थः ॥ १ ॥

सर्वं मे सुप्रियं देवि यदेतत्कृतवत्यसि ।
इत्युक्त्वा सोऽब्रवीत्पुत्रं मणिपूरपतिं जयः
चित्रांगदायाः शृण्वत्याः कौरव्यदुहितुस्तदा
युधिष्ठिरस्याश्वमेधः परिचैत्रीं भविष्यति २३
तत्रागच्छेः सहामात्यो मातृभ्यां सहितो नृप
इत्येवमुक्तः पार्थेन स राजा बभ्रुवाहनः ।
उवाच पितरं धीमानिदमस्राविलेक्षणः २५
उपयास्यामि धर्मज्ञ भवतः शासनादहम् ।
अश्वमेधे महायज्ञे द्विजातिपरिवेषकः ॥ २६
मम त्वनुग्रहार्थाय प्रविशस्व पुरं स्वकम् ।
भार्याभ्यां सहधर्मज्ञ मा भूत्तेऽत्र विचारणा॥
उषित्वेह निशामेकां सुखं स्वभवने प्रभो ।
पुनरश्वानुगमनं कर्तासि जयतां वर ॥ २८
इत्युक्तः स तु पुत्रेण तदा वानरकेतनः ।
स्मयन्प्रोवाच कौन्तेयस्तदा चित्रांगदासुतम् ॥
विदितं ते महाबाहो यथा दीक्षां चराम्यहम्
न स तावत्प्रवेक्ष्यामि पुरं ते पृथुलोचन ३०
यथाकामं व्रजत्येष यज्ञियाश्वो नरर्षभ ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि न स्थानं विद्यते मम
स तत्र विधिवत्तेन पूजितः पाकशासनिः ।
भार्याभ्यामभ्यनुज्ञातः प्रायाद्भरतसत्तमः ३२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वानुसरणे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## ८२

वैशम्पायन उवाच ।
स तु वाजी समुद्रान्तां पर्यैत्य वसुधामिमाम्
निवृत्तोभिमुखो राजन् येन वारणसाह्वयम् १
अनुगच्छंश्च तुरगं निवृत्तोऽथ किरीटभृत् ।
यदृच्छया समापेदे पुरं राजगृहं तदा ॥ २
तमभ्याशागतं दृष्ट्वा सहदेवात्मजः प्रभो ।
क्षत्रधर्मे स्थितो वीरः समरायाजुहाव ह ॥ ३
ततः पुरात्स निष्क्रम्य रथी धन्वी शरी तली
मेघसंधिः पदातिस्तं धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ ४
आसाद्य च महातेजा मेघसन्धिर्धनञ्जयम् ।
बालभावान्महाराज प्रोवाचेदं न कौशलात्
किमयं चार्यते वाजी स्त्रीमध्य इव भारत ।
हयमेनं हरिष्यामि प्रयतस्व विमोक्षणे ॥ ६
अदत्तानुनयो युद्धे यदि त्वं पितृभिर्मम ।
करिष्यामि तवातिथ्यं प्रहर प्रहरामि च ७
इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं प्रहसन्निव पाण्डवः ।
विघ्नकर्ता मया वार्य इति मे व्रतमाहितम् ८
भ्रात्रा ज्येष्ठेन नृपते तवापि विदितं ध्रुवम् ।
प्रहरस्व यथाशक्ति न मन्युर्विद्यते मम ॥ ९
इत्युक्तः प्राहरत्पूर्वं पाण्डवं मगधेश्वरः ।
किरन् शरसहस्राणि वर्षाणीव सहस्रदृक् १०
ततो गाण्डीवभृच्छूरो गाण्डीवप्रहितैः शरैः
चकार मोघांस्तान्बाणान्सयत्नान्भरतर्षभ ॥
स मोघं तस्य बाणौघं कृत्वा वानरकेतनः ।
शरान्मुमोच ज्वलितान्दीप्तास्यानिव पन्नगान्
ध्वजे पताकादण्डेषु रथे यंत्रे हयेषु च ।
अन्येषु च रथाङ्गेषु न शरीरे न सारथौ १३
संरक्ष्यमाणः पार्थेन शरीरे सव्यसाचिना ।
मन्यमानः स्ववीर्यं तन्मागधः प्राहिणोच्छरान्
ततो गाण्डीवधन्वा तु मागधेन भृशाहतः ।
बभौ वसन्तसमये पलाशः पुष्पितो यथा १५
अवध्यमानः सोऽभ्यघ्नन्मागधः पाण्डवर्षभम्
तेन तस्थौ स कौरव्य लोकवीरस्य दर्शने १६
सव्यसाची तु संक्रुद्धो विकृष्य बलवद्धनुः ।
हयांश्चकार निर्जीवान्सारथेश्च शिरोऽहरत् ॥
धनुश्चास्य महच्चित्रं क्षुरेण प्रचकर्त ह ।
हस्तावापं पताकां च ध्वजं चास्य न्यपातयत्

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकाशीतितमोऽध्याय ॥ ८१ ॥

८२
स त्विति ॥१॥ अदत्तानुनय आशिक्षित ॥७॥

स राजा व्यथितो व्यश्वो विधनुर्हतसारथिः
गदामादाय कौन्तेयमभिदुद्राव वेगवान् १९
तस्यापतत एवाशु गदां हेमपरिष्कृताम् ।
शरैश्चकर्त बहुधा बहुभिर्गृध्रवाजितैः ॥ २०
सा गदा शकलीभूता विशीर्णमणिबन्धना ।
व्याली विमुच्यमानेव पपात धरणीतले २१
विरथं विधनुष्कं च गदया परिवर्जितम् ।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमब्रवीत्कपिकेतनः २२
पर्याप्तः क्षत्रधर्मोऽयं दर्शितः पुत्र गम्यताम् ।
बह्वेतत्समरे कर्म तव बालस्य पार्थिव ॥ २३
युधिष्ठिरस्य संदेशो न हन्तव्या नृपा इति ।
तेन जीवसि राजंस्त्वमपराद्धोऽपि मे रणे ॥
इति मत्वा तदात्मानं प्रत्यादिष्टं स्म मागधः ।
तथ्यमित्यभिगम्यैनं प्राञ्जलिः प्रत्यपूजयत् २५
पराजितोऽस्मि भद्रं ते नाहं योद्धुमिहोत्सहे॥
यद्यत्कृत्यं मया तेऽद्य तद्ब्रूहि कृतमेव तु ॥ २६
तमर्जुनः समाश्वास्य पुनरेवेदमब्रवीत ।
आगंतव्यं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः २७
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पूजयामास तं हयम्
फाल्गुनं च युधि श्रेष्ठं विधिवत्सहदेवजः २८
ततो यथेष्टमगमत्पुनरेव स केसरी ।
ततः समुद्रतीरेण वङ्गान्पुंड्रान्सकोसलान् ॥
तत्र तत्र च भूरीणि म्लेच्छसैन्यान्यनेकशः ।
विजिग्ये धनुषा राजन्गाण्डीवेन धनञ्जयः३०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वानुसरणे मागधपराजये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

## ८३

वैशम्पायन उवाच ।
मागधेनार्चितो राजन्पाण्डवः श्वेतवाहनः
दक्षिणां दिशमास्थाय चारयामास तं हयम्१
ततः स पुनरावर्त्य हयः कामचरो बली ।
आससाद पुरीं रम्यां चेदीनां शुक्तिसाह्वयाम्
शरभेणार्चितस्तत्र शिशुपालसुतेन सः ।
युद्धपूर्वं तदा तेन पूजया च महाबलः ॥ ३
ततोऽर्चितो ययौ राजंस्तदा स तुरगोत्तमः ।
काशीनंगान्कोसलांश्च किरातानथ तंगणान्
पूजां तत्र यथान्यायं प्रतिगृह्य धनञ्जयः ।
पुनरावृत्य कौन्तेयो दशार्णानगमत्तदा ॥ ५
तत्र चित्रांगदो नाम बलवानरिमर्दनः ।
तेन युद्धमभूत्तस्य विजयस्यातिभैरवम् ॥ ६
तं चापि वशमानीय किरीटी पुरुषर्षभः ।
निषादराज्ञो विषयमेकलव्यस्य जग्मिवान् ७
एकलव्यसुतश्चैनं युद्धेन जगृहे तदा ।
तत्र चक्रे निषादैः स संग्रामं लोमहर्षणम् ॥ ८
ततस्तमपि कौन्तेयः समरेष्वपराजितः ।
जिगाय युधि दुर्धर्षो यज्ञविघ्नार्थमागतम् ॥९
स तं जित्वा महाराज नैषादिं पाकशासनिः
अर्चितः प्रययौ भूयो दक्षिणं सलिलार्णवम्॥
तत्रापि द्रविडैरान्ध्रै रौद्रैर्माहिषकैरपि ।
तथा कोल्लगिरेयैश्च युद्धमासीत्किरीटिनः ११
तांश्चापि विजयो जित्वा नातितीव्रेण कर्मणा
तुरङ्गमवशेनाथ सुराष्ट्रानभितो ययौ ॥ १२
गोकर्णमथ चासाद्य प्रभासमपि जग्मिवान् ।
ततो द्वारवतीं रम्यां वृष्णिवीराभिपालिताम्
आससाद हयः श्रीमान्कुरुराजस्य यज्ञियः ।
तमुन्मथ्य हयश्रेष्ठं यादवानां कुमारकाः ॥ १४
प्रययुस्तांस्तदा राजनुग्रसेनो न्यवारयत् ।
ततः पुराद्विनिष्क्रम्य वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा ॥
सहितो वासुदेवेन मातुलेन किरीटिनः ।
तौ समेत्य कुरुश्रेष्ठं विधिवत्प्रीतिपूर्वकम् १६

---

गृध्रवाजितैः गृध्रपक्षयुतैः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ' स कौरव इति पाठः ।

८३

मागधेनेति ॥ १ ॥

परया भारतश्रेष्ठं पूजया समवस्थितौ ।
ततस्ताभ्यामनुज्ञातो ययौ येन हयो गतः १७
ततः स पश्चिमं देशं समुद्रस्य तदा हयः ।
क्रमेण व्यचरत्स्फीतं ततः पञ्चनदं ययौ ॥ १८
तस्मादपि स कौरव्य गन्धारविषयं हयः ।
विचचार यथाकामं कौन्तेयानुगतस्तदा १९
ततो गान्धारराजेन युद्धमासीत्किरीटिनः ।
घोरं शकुनिपुत्रेण पूर्ववैरानुसारिणा ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वानुसरणे
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## ८४

वैशम्पायन उवाच ।
शकुनेस्तनयो वीरो गान्धाराणां महारथः ।
प्रत्युद्ययौ गुडाकेशं सैन्येन महता वृतः ॥ १
हस्त्यश्वरथयुक्तेन पताकाध्वजमालिना ।
अमृष्यमाणास्ते योधा नृपस्य शकुनेर्वधम् २
अभ्ययुः सहिताः पार्थं प्रगृहीतशरासनाः ।
स तानुवाच धर्मात्मा बीभत्सुरपराजितः ॥३
युधिष्ठिरस्य वचनं न च ते जगृहुर्हितम् ।
वार्यमाणाऽपि पार्थेन सान्त्वपूर्वममर्षिताः॥४
परिवार्य हयं जग्मुस्ततश्चुक्रोध पाण्डवः ।
ततः शिरांसि दीप्ताग्रैस्तेषां चिच्छेद पाण्डवः
क्षुरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैर्नातियत्नादिवार्जुनः ।
ते वध्यमानाः पार्थेन हयमुत्सृज्य संभ्रमात् ६
न्यवर्तन्त महाराज शरवर्षार्दिता भृशम् ।
निरुध्यमानस्तैश्चापि गान्धारैः पाण्डुनन्दनः
आदिश्यादिश्य तेजस्वी शिरांस्येषां न्यपातयत्
वध्यमानेषु तेष्वाजौ गान्धारेषु समंततः ॥ ८
स राजा शकुनेः पुत्रः पाण्डवं प्रत्यवारयत् ।
तं युध्यमानं राजानं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ९
पार्थोऽब्रवीन्न मे वध्या राजानो राजशासनात्
अलं युद्धेन ते वीर न तेऽस्त्वद्य पराजयः १०
इत्युक्तस्तदनादृत्य वाक्यमज्ञानमोहितः ।
स शक्रसमकर्माणं समवाकिरदाशुगैः ॥ ११
तस्य पार्थः शिरस्त्राणमर्धचन्द्रेण पत्रिणा ।
अपाहरदमेयात्मा जयद्रथशिरो यथा ॥ १२
तं दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुर्गान्धाराः सर्व एव ते ।
इच्छता तेन न हतो राजेत्यसि च तं विदुः
गान्धारराजपुत्रस्तु पलायनकृतक्षणः ।
ययौ तैरेव सहितस्त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ॥ १४
तेषां तु तरसा पार्थस्तत्रैव परिधावताम् ।
प्रजहारोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ १५
उच्छ्रितांस्तु भुजान्केचिन्नाबुध्यन्त शरैर्हृतान्
शरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैः पृथुभिः पार्थचोदितैः १६
संभ्रान्तनरनागाश्वमपतद्विद्रुतं बलम् ।
हतविध्वस्तभूयिष्ठमावर्तत मुहुर्मुहुः ॥ १७
नाभ्यदृश्यन्त वीरस्य केचिदग्रेऽग्र्यकर्मणः ।
रिपवः पात्यमाना वै ये सहेयुर्धनंजयम् ॥ १८
ततो गान्धारराजस्य मन्त्रिवृद्धपुरःसरा ।
जननी निर्ययौ भीता पुरस्कृत्यार्घमुत्तमम्१९
सा न्यवारयदव्यग्रं तं पुत्रं युद्धदुर्मदम् ।
प्रसादयामास च तं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ॥
तां पूजयित्वा बीभत्सुः प्रसादमकरोत्प्रभुः
शकुनेश्चापि तनयं सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥२०
न मे प्रियं महाबाहो यत्ते बुद्धिरियं कृता ।
प्रतियोद्धुममित्रघ्न भ्रातैव त्वं ममानघ ॥ २२
गान्धारीं मातरं स्मृत्वा धृतराष्ट्रकृतेन च ।
तेन जीवसि राजंस्त्वं निहतास्त्वनुगास्तव॥
मैवं भूः शाम्यतां वैरं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी ।
गच्छेथास्त्वं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः २४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत
भावदीपे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

८४

शकुनेस्तनय इति स्पष्टार्थः ॥ १ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वानुसरणे शकुनिपुत्रपराजये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## ८५

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वानुययौ पार्थो हयं कामविहारिणम्
न्यवर्तत ततो वाजी येन नागाह्वयं पुरम् ॥ १
तं निवृत्तं तु शुश्राव चारेणैव युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वाऽर्जुनं कुशलिनं स च हृष्टमनाऽभवत् २
विजयस्य च तत्कर्म गान्धारविषये तदा ।
श्रुत्वा चान्येषु देशेषु स सुप्रीतोऽभवत्तदा ३
एतस्मिन्नेव काले तु द्वादशीं माघमासिकीम्
इष्टं गृहीत्वा नक्षत्रं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४
समानीय महातेजाः सर्वान् भ्रातॄन्महीपतिः ।
भीमं च नकुलं चैव सहदेवं च कौरव ॥ ५
प्रोवाचेदं वचः काले तदा धर्मभृतां वरः ।
आमन्त्र्य वदतां श्रेष्ठो भीमं प्रहरतां वरम् ६
आयाति भीमसेनासौ सहाश्वेन तवानुजः ।
यथा मे पुरुषाः प्राहुर्ये धनञ्जयसारिणः ॥ ७
उपस्थितश्च कालोऽयमभितो वर्तते हयः ।
माघी च पौर्णमासीयं मासः शेषो वृकोदर ८
तत्प्रस्थाप्य तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ९
इत्युक्तः स तु तच्चक्रे भीमो नृपतिशासनम् ।
हृष्टः श्रुत्वा गुडाकेशमायान्तं पुरुषर्षभम् १०
ततो ययौ भीमसेनः प्राज्ञैः स्थपतिभिः सह ।
ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान् यज्ञकर्मणि ११
तं स शालचयं श्रीमत्सप्रतोलीसुघट्टितम् ।
मापयामास कौरव्यो यज्ञवाटं यथाविधि १२
प्रासादशतसंबाधं मणिप्रवरकुट्टिमम् ।
कारयामास विधिवद्धेमरत्नविभूषितम् ॥ १३
स्तंभान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च ।
यज्ञायतनदेशेषु दत्वा शुद्धं च काननम् ॥ १४
अन्तःपुराणां राज्ञां च नानादेशसमीयुषाम् ।
कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि १५
ब्राह्मणानां च वेश्मानि नानादेशसमीयुषाम् ।
कारयामास कौन्तेयो विधिवत्तान्यनकशः १६
तथा संप्रेषयामास दूतान्नृपतिशासनात् ।
भीमसेनो महाबाहो राज्ञामक्लिष्टकर्मणाम् १७
ते प्रियार्थं कुरुपतेराययुर्नृपसत्तम ।
रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियोऽश्वानायुधानि च
तेषां निर्विशतां तेषु शिबिरेषु महात्मनाम् ।
नर्दतः सागरस्येव दिवस्पृगभवत्स्वनः ॥ १९
तेषामभ्यागतानां च स राजा कुरुवर्धनः ।
व्यादिदेशान्नपानानि शय्याश्चाप्यतिमानुषाः
वाहनानां च विविधाः
शालाः शालीक्षुगोरसैः ।
उपेता भरतश्रेष्ठो
व्यादिदेश स धर्मराट् ॥ २१
तथा तस्मिन् महायज्ञे धर्मराजस्य धीमतः ।
समाजग्मुर्मुनिगणा बहवो ब्रह्मवादिनः ॥ २२
ये च द्विजातिप्रवरास्तत्रासन्पृथिवीपते ।
समाजग्मुः सशिष्यांस्तान्प्रतिजग्राह कौरवः
सर्वांश्चताननुययौ यावदावसथान्प्रति ।
स्वयमेव महातेजा दंभं त्यक्त्वा युधिष्ठिरः ॥
ततः कृत्वा स्थपतयः शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा
कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञो धर्मज्ञाय न्यवेदयन् ॥
तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु कृतं सर्वमतन्द्रितः ।
हृष्टरूपोऽभवद्राजा सह भ्रातृभिरादृतः॥ २६
वैशम्पायन उवाच ।
तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिनः।
हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीषवः॥ २७
ददृशुस्तं नृपतयो यज्ञस्य विधिमुत्तमम् ।
देवेन्द्रस्येव विहितं भीमसेनेन भारत ॥ २८

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

इत्युक्त्वेति ॥१॥ इष्टं नक्षत्रं पुष्यम् ॥४॥ प्रस्थाप्यन्तु प्रस्थापयन्तु स्वार्थे णिच् प्रतिष्ठन्त्वित्यर्थः ॥ ९ ॥

ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि ते ।
शय्यासनविहाराश्च सुबहून् रत्नसञ्चयान् २९
घटान्पात्रीः कटाहानि कलशान्वर्धमानकान्
न हि किञ्चिदसौवर्णमपश्यन्वसुधाधिपाः३०
यूपांश्च शास्त्रपठितान्दारवान्हेमभूषितान्।
उपक्लृप्तान् यथाकालं विधिवद्भूरिवर्चसः॥ ३१
स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन प्रभो ।
सर्वानेव समानीतानपश्यंस्तत्र ते नृपाः ३२
गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च ।
औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च
जरायुजाण्डजातानि स्वेदजान्युद्भिदानि च
...जातानि भूतानि ददृशुश्च ते ॥ ३४
... सर्वं पशुगोधनधान्यतः ।
...नृपा दृष्ट्वा परं विस्मयमागताः ॥ ३५
ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमृष्टान्नमृद्धिमत्।
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम् ३६
दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषो मुहुर्मुहुरताड्यत ।
विननादासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते ३७
एवं स ववृते यज्ञो धर्मराजस्य धीमतः ।
अन्नस्य सुबहून् राजन्नुत्सर्गान्पर्वतोपमान् ३८
दधिकुल्याश्च ददृशुः सर्पिषश्च ह्रदान् जनाः
जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदायुतः ॥
राजन्नदृश्यतैकस्थो राज्ञस्तस्य महामखे ।
तत्र जातिसहस्राणि पुरुषाणां ततस्ततः ४०
गृहीत्वा भाजनान् जग्मुर्बहूनि भरतर्षभ ।
स्रग्विणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डलाः४१
पर्यवेषन् द्विजातींस्तान् शतशोऽथ सहस्रशः
विविधान्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ।
ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणानां ददुश्च ह ४२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधारम्भे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## ८६

वैशम्पायन उवाच ।
समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान् ।
दृष्ट्वा युधिष्ठिरो राजा भीमसेनमभाषत ॥ १
उपयाता नरव्याघ्रा य एते पृथिवीश्वराः ।
एतेषां क्रियतां पूजा पूजार्हा हि नराधिपाः॥
इत्युक्तः स तथा चक्रे नरेन्द्रेण यशस्विना ।
भीमसेनो महातेजा यमाभ्यां सह पाण्डवः ३
अथाभ्यगच्छद्गोविन्दो वृष्णिभिः सह धर्मजम्
बलदेवं पुरस्कृत्य सर्वप्राणभृतां वरः ॥ ४
युयुधानेन सहितः प्रद्युम्नेन गदेन च ।
निशठेनाथ साम्बेन तथैव कृतवर्मणा ॥ ५
तेषामपि परां पूजां चक्रे भीमो महारथः ।
विविशुस्ते च वेश्मानि रत्नवन्ति च सर्वशः॥६
युधिष्ठिरसमीपे तु कथान्ते मधुसूदनः ।
अर्जुनं कथयामास बहुसंग्रामकर्षितम् ॥ ७
स तं पप्रच्छ कौन्तेयः पुनः पुनररिन्दमम् ।
धर्मजः शक्रजं जिष्णुं समाचष्ट जगत्पतिः ८
आगमद्द्वारकावासी ममाप्तः पुरुषो नृप ।
योऽद्राक्षीत्पाण्डवश्रेष्ठं बहुसंग्रामकर्षितम् ९
समीपे च महाबाहुमाचष्ट च मम प्रभो ।
कुरु कार्याणि कौन्तेय हयमेधार्थसिद्धये॥ १०
इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
दिष्ट्या स कुशली जिष्णुरुपायाति च माधव

यदिदं सन्दिदेशास्मिन
पाण्डवानां बलाग्रणीः ।
तदा ज्ञातुमिहेच्छामि
भवता यदुनन्दन ॥ १२

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

समागतानिति ॥ १ ॥

इत्युक्तो धर्मराजेन
वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा ।
प्रोवाचेदं वचो वाग्मी
धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ १३
इदमाह महाराज पार्थवाक्यं स्मरन्नरः ।
वाच्यो युधिष्ठिरः कृष्ण काले वाक्यमिदं मम
आगमिष्यन्ति राजानः सर्वे वै कौरवर्षभ ।
प्राप्तानां महतां पूजा कार्या ह्येतत्क्षमं हि नः
इत्येतद्वचनाद्राजा विज्ञाप्यो मम मानद ।
यथा चात्ययिकं न स्याद्यदर्घाहरणेऽभवत् १६
कर्तुमर्हति तद्राजा भवांश्चाप्यनुमन्यताम् ।
राजद्वेषान्न नश्येयुरिमा राजन्पुनः प्रजाः १७
इदमन्यच्च कौन्तेय वचः स पुरुषोऽब्रवीत् ।
धनञ्जयस्य नृपते तन्मे निगदतः शृणु ॥ १८
उपायास्यति यज्ञं नो मणिपूरपतिर्नृपः ।
पुत्रो मम महातेजा दयितो बभ्रुवाहनः ॥ १९
त भवान्मदपेक्षार्थं विधिवत्प्रतिपूजयेत् ।
स तु भक्तोऽनुरक्तश्च मम नित्यमिति प्रभो२०
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभिनन्द्यास्य तद्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधारम्भे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## ८७

युधिष्ठिर उवाच ।
श्रुत प्रियमिदं कृष्ण यत्त्वमर्हसि भाषितुम् ।
तन्मेऽमृतरसं पुण्यं मनो ह्लादयति प्रभो ॥ १
बहूनि किल युद्धानि विजयस्य नराधिपैः ।
पुनरासन् हृषीकेश तत्र तत्र च मे श्रुतम् ॥ २
किंनिमित्तं स नित्यं हि पार्थः सुखविवर्जितः
अतीव विजयो धीमन्निति मे दूयते मनः ३
सञ्चिन्तयामि कौन्तेयं रहो जिष्णुं जनार्दन
अतीव दुःखभागी स सततं पाण्डुनन्दनः ४
किं नु तस्य शरीरेऽस्ति सर्वलक्षणपूजिते ।
अनिष्टं लक्षणं कृष्ण येन दुःखान्युपाश्नुते ॥ ५
अतीवासुखभोगी स सततं कुन्तिनन्दनः ।
न हि पश्यामि बीभत्सोर्निन्द्यं गात्रेषु किञ्चन
श्रोतव्यं चेन्मयैतद्वै तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ६
इत्युक्तः स हृषीकेशो ध्यात्वा सुमहदुत्तरम् ।
राजानं भोजराजन्यवर्धनो विष्णुरब्रवीत् ७
न ह्यस्य नृपते किञ्चित्संश्लिष्टमुपलक्षये ।
ऋते पुरुषसिंहस्य पिण्डिकेऽस्याधिके यतः
स ताभ्यां पुरुषव्याघ्रो नित्यमध्वसु वर्तते ।
न चान्यदनुपश्यामि येनासौ दुःखभाजनम् ९
इत्युक्तः पुरुषश्रेष्ठस्तदा कृष्णेन धीमता ।
प्रोवाच वृष्णिशार्दूलमेवमेतदिति प्रभो १०
कृष्णा तु द्रौपदी कृष्णं तिर्यक् सासूयमैक्षत ।
प्रतिजग्राह तस्यास्तं प्रणयं चापि केशिहा ॥
सख्युः सखा हृषीकेशः साक्षादिव धनञ्जयः
तत्र भीमादयस्ते तु कुरवो याजकाश्च ये १२
रेमुः श्रुत्वा विचित्रां तां धनञ्जयकथां शुभाम्
तेषां कथयतामेव पुरुषोऽर्जुनसंकथाः ॥ १३
उपायाद्वचनाद्दूतो विजयस्य महात्मनः ।
सोऽभिगम्य कुरुश्रेष्ठं नमस्कृत्य च बुद्धिमान् ॥
उपायातं नरव्याघ्रं फाल्गुनं प्रत्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तस्य हर्षबाष्पाकुलेक्षणः १५
प्रियाख्यानमिमित्तं वै ददौ बहुधनं तदा ।
ततो द्वितीये दिवसे महान् शब्दो व्यवर्धत
आगच्छति नरव्याघ्रे कौरवाणां धुरन्धरे ।
ततो रेणुः समुद्भूतो विबभौ तस्य वाजिनः ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७

श्रुतामिति ॥ १ ॥ भोजराजन्यानां वर्धनः ॥ ७ ॥ संश्लिष्टं अविविक्तं सदृशमिति पाठेऽपि अतिपुष्टत्वादितरलोपाङ्गविविक्तत्वं भवति तद्रहितं पिण्डिके जानुनोरधस्थ पश्चाद्भागीयौ मांसलप्रदेशौ. पिण्डिके ते उभे अस्याधिके स्वदेशादधोभागपर्यन्तं बहुलं आलम्बमाने पाठान्तरे आयते. शरीरात् अति अतिप्रमाणे ॥ ८ ॥

अभितो वर्तमानस्य यथोच्चैःश्रवसस्तथा ।
तत्र हर्षकरी वाचो नराणां शुश्रुवेऽर्जुनः १८
दिष्ट्यासि पार्थ कुशली
धन्यो राजा युधिष्ठिरः ।
कोऽन्यो हि पृथिवीं कृत्स्नां
जित्वा हि युधि पार्थिवान् ॥ १९
चारयित्वा हयश्रेष्ठमुपागच्छेदतेऽर्जुनात् ।
ये व्यतीता महात्मानो राजानः सगरादयः ॥
तेषामपीदृशं कर्म न कदाचन शुश्रुम ।
नैतदन्ये करिष्यन्ति भविष्या वसुधाधिपाः॥
यत्त्वं कुरुकुलश्रेष्ठ दुष्करं कृतवानसि ।
इत्येवं वदतां तेषां पुंसां कर्णसुखा गिरः ॥२२
शृण्वन्विवेश धर्मात्मा फाल्गुनो यज्ञसंस्तरम्
ततो राजा सहामात्यः कृष्णश्च यदुनन्दनः
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य तं प्रत्युद्ययुस्तदा ।
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ धर्मराजस्य धीमतः
भीमादींश्चापि संपूज्य पर्यष्वजत केशवम् ।
तैः समेत्यार्चितस्तांश्च प्रत्यर्च्याथ यथाविधि
विशश्राम महाबाहुस्तीरं लब्ध्वेव पारगः ।
एतस्मिन्नेव काले तु स राजा बभ्रुवाहनः २६
मातृभ्यां सहितो धीमान्कुरूनेव जगाम ह ।
तत्र वृद्धान्यथा वत्स कुरूनन्यांश्च पार्थिवान्
अभिवाद्य महाबाहुस्तैश्चापि प्रतिनन्दितः ।
प्रविवेश पितामह्याः कुन्त्या भवनमुत्तमम् २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अर्जुनप्रत्यागमने सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## ८८

वैशम्पायन उवाच ।
स प्रविश्य महाबाहुः पाण्डवानां निवेशनम्
पितामहीमभ्यवदत्साम्ना परमवल्गुना ॥ १
ततश्चित्राङ्गदा देवी कौरव्यस्यात्मजापि च ।
पृथां कृष्णां च सहिते विनयेनोपजग्मतुः २
सुभद्रां च यथान्यायं याश्चान्याः कुरुयोषितः
ददौ कुन्तीततस्ताभ्यां रत्नानि विविधानि च
द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चाप्यन्याऽददुः स्त्रियः
ऊषतुस्तत्र ते देव्यौ महार्हशयनासने ॥ ४
सुपूजिते स्वयं कुन्त्या पार्थस्य हितकाम्यया
स च राजा महातेजाः पूजितो बभ्रुवाहनः ५
धृतराष्ट्रं महीपालमुपतस्थे यथाविधि ।
युधिष्ठिरं च राजानं भीमादींश्चापि पाण्डवान्
उपागम्य महातेजा विनयेनाभ्यवादयत् ।
स तैः प्रेम्णा परिष्वक्तः पूजितश्च यथाविधि
धनं चास्मै ददुर्भूरि प्रीयमाणा महारथाः ।
तथैव च महीपालः कृष्णं चक्रगदाधरम् ॥ ८
प्रद्युम्न इव गोविन्दं विनयेनोपतस्थिवान् ।
तस्मै कृष्णो ददौ राज्ञे महार्हमतिपूजितम् ९
रथं हेमपरिष्कारं दिव्याश्वयुजमुत्तमम् ।
धर्मराजश्च भीमश्च फाल्गुनश्च यमौ तथा १०
पृथक् पृथक् च ते चैनं मानार्थाभ्यामयोजयन्
ततस्तृतीये दिवसे सत्यवत्यात्मजो मुनिः ११
युधिष्ठिरं समभ्येत्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ।
अद्यप्रभृति कौन्तेय यजस्व समयो हि ते ।
मुहूर्तो यज्ञियः प्राप्तश्चोदयन्तीह याजकाः १२
अहीनो नाम राजेन्द्र क्रतुस्तेऽयं च कल्पताम्
बहुत्वात्काञ्चनाख्यस्य ख्यातो बहुसुवर्णकः १३
एवमत्र महाराज दक्षिणां त्रिगुणां कुरु ।
त्रित्वं व्रजतु ते राजन्ब्राह्मणा ह्यत्र कारणम् १४
त्रीनश्वमेधानत्र त्वं संप्राप्य बहुदक्षिणान् ।
ज्ञातिवध्याकृतं पापं प्रहास्यसि नराधिप १५
पवित्रं परमं चैतत्पावनं चैतदुत्तमम् ।
यदश्वमेधावभृथं प्राप्स्यसे कुरुनन्दन ॥ १६
इत्युक्तः स तु तेजस्वी व्यासेनामितबुद्धिना ।
दीक्षां विवेश धर्मात्मा वाजिमेधाप्तये ततः १७

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

स प्रविश्येति ॥ १ ॥ अहीनः अह्नां सोमयागानां बहूनां समूहोऽहीनः न हीनः द्रव्यादिना इति वा ॥१३॥

ततो यज्ञं महाबाहुर्वाजिमेधं महाक्रतुम् ।
बह्वन्नदक्षिणं राजा सर्वकामगुणान्वितम् १८
तत्र वेदविदो राजंश्चक्रुः कर्माणि याजकाः ।
परिक्रमन्तः सर्वज्ञा विधिवत्साधुशिक्षितम्
न तेषां स्खलितं किंचिदासीच्चाप्यकृतं तथा ।
क्रममुक्तं च युक्तं च चक्रुस्तत्र द्विजर्षभाः २०
कृत्वा प्रवर्ग्यं धर्माख्यं यथावद्द्विजसत्तमाः ।
चक्रुस्ते विधिवद्राजंस्तथैवाभिषवं द्विजाः २१
अभिषूय ततो राजन्सोमं सोमपसत्तमाः ।
सवनान्यानुपूर्व्येण चक्रुः शास्त्रानुसारिणः ॥
न तत्र कृपणः कश्चिन्न दरिद्रो बभूव ह ।
क्षुधितो दुःखितो वापि प्राकृतो वापि मानवः
भोजनं भोजनार्थिभ्यो दापयामास शत्रुहा ।
भीमसेनो महातेजाः सततं राजशासनात् २४
संस्तरे कुशलाश्चापि सर्वकार्याणि याजकाः
दिवसे दिवसे चक्रुर्यथाशास्त्रानुदर्शनात् २५
नाषडङ्गविदत्रासीत्सदस्यस्तस्य धीमतः ।
नाव्रतो नानुपाध्यायो न च वादाविचक्षणः
ततो यूपोच्छ्रये प्राप्ते षड्बैल्वान्भरतर्षभ ।
खादिरान्बिल्वसमितांस्तावतः सर्ववर्णिनः
देवदारुमयौ द्वौ तु यूपौ कुरुपतेर्मखे ।
श्लेष्मातकमयं चैकं याजकाः समकल्पयन् ॥
शोभार्थं चापरान्यूपान्काञ्चनान्भरतर्षभ ।
स भीमः कारयामास धर्मराजस्य शासनात्
ते व्यराजन्त राजर्षे वासोभिरुपशोभिताः ।
महेन्द्रानुगता देवा यथा सप्तर्षिभिर्दिवि ३०
इष्टकाः काञ्चनीश्चात्र चयनार्थं कृताऽभवन् ।
शुशुभे चयनं तच्च दक्षस्येव प्रजापतेः ॥ ३१
चतुश्चित्यश्च तस्यासीदष्टादशकरात्मकः ।
स रुक्मपक्षो निचितस्त्रिकोणो गरुडाकृतिः
ततो नियुक्ताः पशवो यथाशास्त्रं मनीषिभिः
तं तं देवं समुद्दिश्य पक्षिणः पशवश्च ये ३३
ऋषभाः शास्त्रपठितास्तथा जलचराश्च ये ।
सर्वांस्तानभ्ययुंजस्ते तत्राग्निचयकर्मणि ॥३४
यूपेषु नियता चासीत्पशूनां त्रिशती तथा ।
अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौन्तेयस्य महात्मनः ३५
स यज्ञः शुशुभे तस्य साक्षाद्देवर्षिसंकुलः ।
गन्धर्वगणसंगीतः प्रनृत्तोऽप्सरसां गणैः ३६
स किंपुरुषसंकीर्णः किंनरैश्चोपशोभितः
सिद्धविप्रनिवासैश्च समंतादभिसंवृतः ॥ ३७
तस्मिन्सदसि नित्यास्तु
व्यासशिष्या द्विजर्षभाः।
सर्वशास्त्रप्रणेतारः
कुशला यज्ञसंस्तरे ॥ ३८
नारदश्च बभूवात्र तुम्बुरुश्च महाद्युतिः ।
विश्वावसुश्चित्रसेनस्तथाऽन्ये गीतकोविदाः
गन्धर्वा गीतकुशला नृत्येषु च विशारदाः ।
रमयन्ति स्म तान्विप्रान् यज्ञकर्मान्तरेषु वै४०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधारम्भे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## ८९

वैशम्पायन उवाच ।
श्रपयित्वा पशूनन्यान्विधिवद्द्विजसत्तमाः
तं तुरङ्गं यथाशास्त्रमालभन्त द्विजातयः १
ततः संज्ञप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा ।
उपसंवेशयन् राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम् ॥२

अभिषव सोमवल्ल्या कण्डनम् ॥ २१ ॥ सोमं सोमवल्लीरस सवनानि प्रातःसवनादीनि ॥ २२ ॥ संस्तरे इष्टकाना चयनाख्ये स्थण्डिलरचने ॥ २५ ॥ वर्णिन पलाशकाष्ठमया ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

श्रपयित्वेति ॥ १ ॥ संज्ञप्येति पाठे हिंसित्वा तुरग तस्य समीपे तिसृभिः कलाभिः कलनाभिः मंत्रद्रव्यश्रद्धाख्याभिरुपेता द्रौपदीं उपसंवेशयन् । सार्धः श्लोकः ॥ २ ॥

कलाभिस्तिस्त्रभी राजन्
यथाविधि मनस्विनीम् ।
उद्धृत्य तु वपा तस्य
यथाशास्त्र द्विजातयः ॥ ३
श्रपयामासुरव्यग्रा विधिवद्भरतर्षभ ।
तं वपाधूमगन्ध तु धर्मराजः सहानुजैः ॥ ४
उपाजिघ्रद्यथाशास्त्र सर्वपापापह तदा ।
शिष्टान्यङ्गानि यान्यासंस्तस्याश्वस्य नराधिप
तान्यग्नौ जुहुवुर्धीराः समस्ताः षोडशर्त्विजः
संस्थाप्यैवं तस्य राज्ञस्त यज्ञ शक्रतेजसः ॥६
व्यासः सशिष्यो भगवान्वर्धयामास तं नृपम् ।
ततो युधिष्ठिरः प्रादाद्ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि
कोटीः सहस्रं निष्काणां व्यासाय तु वसुंधराम
प्रतिगृह्य धरां राजन् व्यासः सत्यवतीसुतः
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मराज युधिष्ठिरम् ।
वसुधा भवतस्त्वेषा संन्यस्ता राजसत्तम ९
निष्क्रयो दीयता मह्यं ब्राह्मणा हि धनार्थिनः
युधिष्ठिरस्तु तान्विप्रान्प्रत्युवाच महामनाः १०
भ्रातृभिः सहितो धीमान्
मध्ये राज्ञा महात्मनाम् ।
अश्वमेधे महायज्ञे
पृथिवी दक्षिणा स्मृता ॥ ११
अर्जुनेन जिता चेयमृत्विग्भ्यः प्रापिता मया
वनं प्रवेक्ष्ये विप्राग्र्या विभजध्वं महीमिमाम्
चतुर्धा पृथिवीं कृत्वा चातुर्होत्रप्रमाणतः ।
नाहमादातुमिच्छामि ब्रह्मस्वं द्विजसत्तमाः॥
इद नित्यं मनो विप्रा भ्रातृणा चैव मे सदा ।
इत्युक्तवति तस्मिस्तु भ्रातरो द्रौपदी च सा
एवमेतादिति प्राहुस्तदभूल्लोमहर्षणम् ।
ततोन्तरिक्षे वागासीत्साधु साध्विति भारत
तथैव द्विजसघानां शसता विबभौ स्वनः ।
द्वैपायनस्तथा कृष्णः पुनरेव युधिष्ठिरम् ॥ १६
प्रोवाच मध्ये विप्राणामिदं संपूजयन्मुनिः ।
दत्तैषा भवता मह्यं तां ते प्रतिददाम्यहम १७
हिरण्यं दीयतामेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो धराऽस्तु ते
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धर्मराजं युधिष्ठिरम ॥१८
यथाऽऽह भगवान्व्यासस्तथा त्वं कर्तुमर्हसि
इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठः प्रीतात्मा भ्रातृभिः सह

कोटिकोटिकृतां प्रादाद्दक्षिणां त्रिगुणां क्रतोः
न करिष्यति तल्लोके कश्चिदन्यो नराधिपः ।
यत्कृतं कुरुराजेन मरुत्तस्यानुकुर्वता ।
प्रतिगृह्य तु तद्रत्नं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ २१
ऋत्विग्भ्यः प्रददौ विद्वांश्चतुर्धा व्यभजंश्च ते ।
धरण्या निष्क्रयं दत्वा तद्धिरण्यं युधिष्ठिरः ॥
धूतपापो जितस्वर्गो मुमुदे भ्रातृभिः सह ।
ऋत्विजस्तमपर्यन्तं सुवर्णनिचय तथा ॥ २३
व्यभजन्त द्विजातिभ्यो यथोत्साहं यथासुखम्
यज्ञवाटे च यत्किंचिद्धिरण्यं सविभूषणम् २४
तोरणानि च यूपांश्च घटान्पात्रीस्तथेष्टकाः ।
युधिष्ठिराभ्यनुज्ञाताः सर्वं तद्व्यभजन् द्विजाः
अनतरं द्विजातिभ्यः क्षत्रिया जह्निरे वसु ।
तथा विट्शूद्रसंघाश्च तथान्ये म्लेच्छजातयः
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे मुदिता जग्मुरालयान्
तर्पिता वसुना तेन धर्मराजेन धीमता ॥ २७
स्वमंशं भगवान्व्यासः कुंत्यै साक्षाद्धि मानतः
प्रददौ तस्य महतो हिरण्यस्य महाद्युतिः २८
श्वशुरात्प्रीतिदायं तं प्राप्य सा प्रीतमानसा।
चकार पुण्यकं तेन सुमहत्संघशः पृथा ॥ २९
गत्वा त्ववभृथ राजा विपाप्मा भ्रातृभिः सह
सभाज्यमानः शुशुभे महेन्द्रस्त्रिदशैरिव ३०
पाण्डवाश्च महीपालैः समेतैरभिसंवृताः ।
अशोभन्त महाराज ग्रहास्तारागणैरिव ॥ ३१
राजभ्योऽपि ततः प्रादाद्रत्नानि विविधानि च
गजानश्वानलङ्कारान् स्त्रियो वासांसि काञ्चनं
तद्धनौघमपर्यन्तं पार्थः पार्थिवमण्डले ।
विसृजन् शुशुभे राजन् यथा वैश्रवणस्तथा
आनीय च तथा वीर राजानं बभ्रुवाहनम् ।
प्रदाय विपुल वित्तं गृहान्प्रास्थापयत्तदा ३४
दुःशलायाश्च तं पौत्रं
बालकं भरतर्षभ ।
स्वराज्येऽथ पितुर्धीमान
स्वसुः प्रीत्या न्यवेशयत् ॥ ३५
नृपतींश्चैव तान्सर्वान्सुविभक्तान्सुपूजितान् ।
प्रस्थापयामास वशी कुरुराजो युधिष्ठिरः ३६
गोविन्द च महात्मानं बलदेवं महाबलम् ।
तथान्यान्वृष्णिवीरांश्च प्रद्युम्नाद्यान्सहस्रशः ॥

अङ्गानि हृदयजिह्वावक्षआदीनि ॥५॥ संस्थाप्य समाप्य ॥६॥ तुशब्दश्चार्थो ऋत्विगंतर समुच्चिनोति तेन सर्वेभ्यो वसुंधरां ददावित्यर्थ ॥ ८ ॥ अनंतरं द्विजातिभ्य विप्रेषु गृहीत्वा निवृत्तेषु शिष्टात क्षत्रियादयो गृहीतवंत इत्यर्थः ॥ २६ ॥

पूजयित्वा महाराज यथाविधि महाद्युतिः ।
भ्रातृभिः सहितो राजा प्रास्थापयदरिन्दमः
एवंबभूव यज्ञः स धर्मराजस्य धीमतः ।
बह्वन्नधनरत्नौघः सुरामैरेयसागरः ॥ ३९
सर्पिःपङ्का ह्रदा यत्र बभूवुश्चान्नपर्वताः ।
रसालाकर्दमा नद्यो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४०
भक्ष्यखाण्डवरागाणां क्रियतां भुज्यता तथा
पशूनां वध्यतां चैव नान्तं ददृशिरे जनाः ४१
मत्तप्रमत्तमुदितं सुप्रीतयुवतीजनम् ।
मृदङ्गशङ्खनादैश्च मनोरममभूत्तदा ॥ ४२
दीयतां भुज्यतां चेष्टं दिवारात्रमवारितम् ।
तं महोत्सवसङ्काशं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥ ४३
कथयन्ति स्म पुरुषा नानादेशनिवासिनः ।
वर्षित्वा धनधाराभिः कामै रत्नै रसैस्तथा ।
विपाप्मा भरतश्रेष्ठ. कृतार्थः प्राविशत्पुरम् ४४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधसमाप्तौ ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## ९०

जनमेजय उवाच ।
पितामहस्य मे यज्ञे धर्मराजस्य धीमतः ।
यदाश्चर्यमभूत्किंचित्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
श्रूयतां राजशार्दूल महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
अश्वमेधे महायज्ञे निवृत्ते यदभूत्प्रभो ॥ २
तर्पितेषु द्विजाग्र्येषु ज्ञातिसम्बन्धिबन्धुषु ।
दीनान्धकृपणे वापि तदा भरतसत्तम ॥ ३
घुष्यमाणे महादाने दिक्षु सर्वासु भारत ।
पतत्सु पुष्पवर्षेषु धर्मराजस्य मूर्धनि ॥ ४
नीलाक्षस्तत्र नकुलो रुक्मपार्श्वस्तदाऽनघ ।
वज्राशनिसमं नादममुञ्चद्वसुधाधिप ॥ ५
सकृदुत्सृज्य तन्नादं त्रासयानो मृगद्विजान् ।
मानुषं वचनं प्राह धृष्टो बिलशयो महान् ॥६
सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नकुलस्य विशाम्पते ।
विस्मयं परमं जग्मुः सर्वे ते ब्राह्मणर्षभाः ॥ ८
ततः समेत्य नकुलं पर्यपृच्छन्त ते द्विजाः ।
कुतस्त्वं समनुप्राप्तो यज्ञं साधुसमागमम् ॥ ९
किं बलं परमं तुभ्यं किं श्रुतं किं परायणम् ।
कथं भवन्तं विद्याम यो नो यज्ञं विगर्हसे १०
अविलुप्यागमं कृत्स्नं विविधैर्यज्ञियैः कृतम् ।
यथागमं यथान्यायं कर्तव्यं च तथा कृतम् ११
पूजार्हाः पूजिताश्चात्र विधिवच्छास्त्रदर्शनात्
मन्त्राहुतिहुतश्चाग्निर्दत्तं देयममत्सरम् ॥ १२
तुष्टा द्विजातयश्चात्र दानैर्बहुविधैरपि ।
क्षत्रियाश्च सुयुद्धेन श्राद्धैश्चापि पितामहाः १३
पालनेन विशस्तुष्टाः कामैस्तुष्टा वरस्त्रियः ।
अनुक्रोशैस्तथा शूद्रा दानशेषैः पृथग्जनाः
ज्ञातिसम्बन्धिनस्तुष्टाः शौचेन च नृपस्य नः
देवा हविर्भिः पुण्यैश्च रक्षणैः शरणागताः १५
यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि सत्यं सत्यं द्विजातिषु ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं पृष्टो ब्राह्मणकाम्यया ॥ १६
श्रद्धेयवाक्यः प्राज्ञस्त्वं दिव्यं रूपं बिभर्षि च
समागतश्च विप्रैस्त्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १७
इति पृष्टो द्विजैस्तैः स प्रहसन्नकुलोऽब्रवीत् ।
नैषा मृषा मया वाणी प्रोक्ता दर्पेण वा द्विजाः
यन्मयोक्तमिदं वाक्यं युष्माभिश्चाप्युपश्रुतम् ।
सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो द्विजर्षभाः १९

मैरेय वृक्षजं मद्यम् ॥ ३९ ॥ खाडवराग पिप्पलीशुंठीयुक्तो मुद्गयूष खाडव स एव शर्करायुक्तो राग खाडव ॥४१॥
इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोननवतितमोऽध्याय. ॥ ८९ ॥

९०

• पितामहस्येत्यादिग्रन्थतात्पर्यं क्लेशार्जितं न्यायतः श्रद्धया सत्पात्रेऽर्पितं अश्वमेधाद्यधिकमिति क्रोधजयश्च सर्वथा कर्तव्य इति ॥ १ ॥

इत्यवश्यं मयैतद्वो वक्तव्यं द्विजसत्तमाः ।
शृणुताव्यग्रमनसः शंसतो मे यथातथम् २०
अनुभूतं च दृष्टं च यन्मयाऽद्भुतमुत्तमम् ।
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः २१
स्वर्गं येन द्विजाः प्राप्तः सभार्यः ससुतस्नुषः
यथा चार्धं शरीरस्य ममेदं काञ्चनीकृतम् २२

नकुल उवाच ।

हन्त वो वर्तयिष्यामि दानस्य फलमुत्तमम्
न्यायलब्धस्य सूक्ष्मस्य विप्रदत्तस्य यद्द्विजाः
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे धर्मज्ञैर्बहुभिर्वृते ।
उञ्छवृत्तिर्द्विजः कश्चित्कापोतिरभवत्तदा २४
सभार्यः सह पुत्रेण सस्नुषस्तपसि स्थितः ।
बभूव शुक्लवृत्तः स धर्मात्मा नियतेन्द्रियः २५
षष्ठे काले सदा विप्रो भुंक्ते तैः सह सुव्रतः ।
षष्ठे काले कदाचित्तु तस्याहारो न विद्यते ॥
भुंक्तेन्यस्मिन्कदाचित्स षष्ठे काले द्विजोत्तमः
कदाचिद्धर्मिणस्तस्य दुर्भिक्षे सति दारुणे २७
नाविद्यत तदा विप्राः सञ्चयस्तन्निबोधत ।
क्षीणौषधिसमावेशे द्रव्यहीनोऽभवत्तदा २८
काले कालेऽस्य संप्राप्ते नैव विद्येत भोजनम्
क्षुधापरिगताः सर्वे प्रातिष्ठन्त तदा तु ते २९
उञ्छं तदा शुक्लपक्षे मध्यं तपति भास्करे ।
उष्णार्तश्च क्षुधार्तश्च विप्रस्तपसि संस्थितः ३०
उञ्छमप्राप्तवानेव ब्राह्मणः क्षुच्छ्रमान्वितः ।
स तथैव क्षुधाविष्टः सार्धं परिजनेन ह ३१
क्षपयामास तं कालं कृच्छ्रप्राणो द्विजोत्तमः ।
अथ षष्ठे गते काले यवप्रस्थमुपार्जयन् ॥ ३२
यवप्रस्थं तु तं सक्तूनकुर्वन्त तपस्विनः ।
कृतजप्याह्निकास्ते तु हुत्वा चाग्निं यथाविधि
कुडवं कुडवं सर्वे व्यभजन्त तपस्विनः ।
अथागच्छद्द्विजः कश्चिदतिथिर्भुञ्जतां तदा ३४
ते तं दृष्ट्वाऽतिथिं प्राप्तं प्रहृष्टमनसोऽभवन् ।
तेऽभिवाद्य सुखप्रश्नं पृष्ट्वा तमतिथिं तदा ॥ ३५
विशुद्धमनसो दान्ताः श्रद्धादमसमन्विताः ।
*अनसूयवो विक्रोधाः साधवो वीतमत्सराः
त्यक्तमानमदक्रोधा धर्मज्ञा द्विजसत्तमाः ।
सब्रह्मचर्यं गोत्रं ते तस्य ख्यात्वा परस्परम् ॥
कुटीं प्रवेशयामासुः क्षुधार्तमतिथिं तदा ।
इदमर्घ्यं च पाद्यं च बृसी चेयं तवानघ ॥ ३८
शुचयः सक्तवश्चेमे नियमोपार्जिताः प्रभो ।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते मया दत्ता द्विजर्षभ ३९
इत्युक्तः प्रतिगृह्याथ सक्तूना कुडवं द्विजः ।
भक्षयामास राजेन्द्र न च तुष्टिं जगाम सः ॥
स उञ्छवृत्तिस्तं प्रेक्ष्य क्षुधापरिगतं द्विजम्
आहारं चिन्तयामास कथं तुष्टो भवेदिति ॥
तस्य भार्याऽब्रवीद्वाक्यं मद्भागो दीयतामिति
गच्छत्वेष यथाकामं परितुष्टो द्विजोत्तमः ४२
इति ब्रुवन्तीं तां साध्वीं भार्यां स द्विजसत्तमः
क्षुधापरिगतां ज्ञात्वा तान्सक्तून्नाभ्यनन्दत ॥

आत्मानुमानतो विद्वान्
स तु विप्रर्षभस्तदा ।
जानन् वृद्धां क्षुधार्तां च
श्रान्तां ग्लानां तपस्विनीम् ॥ ४४

त्वगस्थिभूतां वेपन्तीं ततो भार्यामुवाच ह ।
अपि कीटपतङ्गानां मृगाणां चैव शोभने ४५
स्त्रियो रक्ष्याश्च पोष्याश्च न त्वेवं वक्तुमर्हसि
अनुकम्प्यो नरः पत्न्या पुष्टो रक्षित एव च
प्रपतेद्यशसो दीप्तात्स च लोकान्न चाप्नुयात्
धर्मकामार्थकार्याणि शुश्रूषा कुलसन्ततिः ४७
दारेष्वधीनो धर्मश्च पितॄणामात्मनस्तथा ।
न वेत्ति कर्मतो भार्यारक्षणे योऽक्षमः पुमान्
अयशो महदाप्नोति नरकांश्चैव गच्छति ।
इत्युक्ता सा ततः प्राह धर्मार्थौ नौ समौ द्विज
सक्तुप्रस्थचतुर्भागं गृहाणेमं प्रसीद मे ।
सत्यं रतिश्च धर्मश्च स्वर्गश्च गुणनिर्जितः ५०
स्त्रीणां पतिसमाधीनं काङ्क्षितं च द्विजर्षभ ।
ऋतुर्मातुः पितुर्बीजं दैवतं परमं पतिः ॥ ५१
भर्तुः प्रसादान्नारीणां रतिपुत्रफलं तथा ।
पालनाद्धि पतिस्त्वं मे भर्तासि भरणाच्च मे ॥
पुत्रप्रदानाद्वरदस्तस्मात्सक्तून्प्रयच्छ मे ।
जरापरिगतो वृद्धः क्षुधार्तो दुर्बलो भृशम् ॥
उपवासपरिश्रान्तो यदा त्वमपि कर्शितः ।
इत्युक्तः स तया सक्तून्प्रगृह्येदं वचोऽब्रवीत्
द्विज सक्तूनिमान्भूयः प्रतिगृह्णीष्व सत्तम ।
स तान्प्रगृह्य भुक्त्वा च न तुष्टिमगमद्द्विजः ।
तमुञ्छवृत्तिरालक्ष्य ततश्चिन्तापरोऽभवत् ५५

---

ममेदं यत्रेति शेषः ॥ २२ ॥ कापोति कपोतवदेकैकं कणं आदत्ते स कापोतिः ॥२४ ॥ उञ्छं कणश आदानं कर्तुमिति शेषः शुक्लस्य ज्येष्ठस्य पक्षे ॥ ३० ॥ * अनसूया गतक्रोधाः इति पाठ

पुत्र उवाच ।

सक्तूनिमान्प्रगृह्य त्वं देहि विप्राय सत्तम।
इत्येव सुकृतं मन्ये तस्मादेतत्करोम्यहम्॥ ५६
भवान्हि परिपाल्यो मे सर्वदैव प्रयत्नतः।
साधूनां कांक्षितं यस्मात्पितुर्वृद्धस्य पालनम्
पुत्रार्थो विहितो ह्येष वार्धके परिपालनम् ।
श्रुतिरेषा हि विप्रर्षे त्रिषु लोकेषु शाश्वती ५८
प्राणधारणमात्रेण शक्यं कर्तुं तपस्त्वया ।
प्राणो हि परमो धर्मः स्थितो देहेषु देहिनाम्

पितोवाच ।

अपि वर्षसहस्री त्वं बाल एव मतो मम ।
उत्पाद्य पुत्रं हि पिता कृतकृत्यो भवेत्सुतात्
बालानां क्षुद्बलवती जानाम्येतदहं प्रभो ।
वृद्धोऽहं धारयिष्यामि त्वं बली भव पुत्रक ॥
जीर्णेन वयसा पुत्र न मां क्षुद्बाधतेऽपि च ।
दीर्घकालं तपस्तप्तं न मे मरणतो भयम् ॥ ६२

पुत्र उवाच ।

अपत्यमस्मि ते पुंस-
त्राणात्पुत्र इति स्मृतः ।
आत्मा पुत्रः स्मृतस्तस्मा-
त्त्राह्यात्मानमिहात्मना ॥ ६३

पितोवाच ।

रूपेण सदृशस्त्वं मे शीलेन च दमेन च ।
परीक्षितश्च बहुधा सक्तूनादद्मि ते सुत ॥ ६४
इत्युक्त्वाऽऽदाय तान्सक्तून्
प्रीतात्मा द्विजसत्तमः ।
प्रहसन्निव विप्राय
स तस्मै प्रददौ तदा ॥ ६५
भुक्त्वा तानपि सक्तून्स
नैव तुष्टो बभूव ह ।
उञ्छवृत्तिस्तु धर्मात्मा
व्रीडामनुजगाम ह ॥ ६६
तं वै वधूः स्थिता साध्वी
ब्राह्मणप्रियकाम्यया ।
सक्तूनादाय संहृष्टा
श्वशुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६७
सन्तानात्तव सन्तानं मम विप्र भविष्यति ।
सक्तूनिमानतिथये गृहीत्वा सम्प्रयच्छ मे ६८
तव प्रसादान्निर्वृत्ता मम लोकाः किलाक्षयाः
पुत्रेण तानवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ६९
धर्माद्या हि यथा त्रेता वह्नित्रेता तथैव च ।
तथैव पुत्रपौत्राणां स्वर्गस्त्रेता किलाक्षयः ७०
पितॄन् ऋणात्तारयति पुत्र इत्यनुशुश्रुम ।
पुत्रपौत्रैश्च नियतं साधुलोकानुपाश्नुते ॥ ७१

श्वशुर उवाच ।

वातातपविशीर्णाङ्गीं त्वां विवर्णां निरीक्ष्य वै
कर्षितां सुव्रताचारे क्षुधाविह्वलचेतसम् ॥७२
कथं सक्तून् ग्रहीष्यामि भूत्वा धर्मोपघातकः
कल्याणवृत्ते कल्याणि नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ७३
षष्ठे काले व्रतवती शौचशीलतपोन्विताम् ।
कृच्छ्रवृत्तिं निराहारां द्रक्ष्यामि त्वां कथं शुभे
बाला क्षुधार्ता नारी च रक्ष्या त्वं सततं मया
उपवासपरिश्रान्ता त्वं हि बान्धवनन्दिनी ॥

स्नुषोवाच ।

गुरोर्मम गुरुस्त्वं वै यतो दैवतदैवतम् ।
देवातिदेवस्तस्मात्त्वं सक्तूनादत्स्व मे प्रभो ७६
देहः प्राणश्च धर्मश्च शुश्रूषार्थमिदं गुरोः ।
तव विप्र प्रसादेन लोकान्प्राप्स्यामहे शुभान्
अवेक्ष्या इति कृत्वाहं दृढभक्तेति वा द्विज ।
चिन्त्या ममेयमिति वा सक्तूनादातुमर्हसि ७८

श्वशुर उवाच ।

अनेन नित्यं साध्वी त्वं शीलवृत्तेन शोभसे
या त्वं धर्मव्रतोपेता गुरुवृत्तिमवेक्षसे ॥ ७९
तस्मात्सक्तून् ग्रहीष्यामि वधु नार्हसि वञ्चनाम्
गणयित्वा महाभागे त्वां हि धर्मभृतां वरे ॥
इत्युक्त्वा तानुपादाय सक्तून्प्रादाद्द्विजातये।
ततस्तुष्टोऽभवद्विप्रस्तस्य साधोर्महात्मनः ८१
प्रीतात्मा स तु तं वाक्यमिदमाह द्विजर्षभम् ।
वाग्मी तदा द्विजश्रेष्ठो धर्मः पुरुषविग्रहः ८२
शुद्धेन तव दानेन न्यायोपात्तेन धर्मतः ।
यथाशक्ति विसृष्टेन प्रीतोऽस्मि द्विजसत्तम ।
अहो दानं घुष्यते ते स्वर्गे स्वर्गनिवासिभिः
गगनात्पुष्पवर्षं च पश्येदं पतितं भुवि ।
सुरर्षिदेवगन्धर्वा ये च देवपुरःसराः ॥ ८४
स्तुवन्तो देवदूताश्च स्थिता दानेन विस्मिताः
ब्रह्मर्षयो विमानस्था ब्रह्मलोकचराश्च ये ॥ ८५

अवेक्ष्या पालनीया चिन्त्या परीक्षणीया ॥७८॥ हे वरे श्रेष्ठे महाभागे त्वां धर्मभृतां मध्ये गणयित्वा सक्तून् ग्रहीष्यामीत्यन्वयः ॥ ८० ॥

कांक्षन्ते दर्शनं तुभ्यं दिवं व्रज द्विजर्षभ ।
पितृलोकगताः सर्वे तारिताः पितरस्त्वया ॥
अनागताश्च बहवः सुबहूनि युगान्युत ।
ब्रह्मचर्येण दानेन यज्ञेन तपसा तथा ॥ ८७
असङ्करेण धर्मेण तस्माद्गच्छ दिवं द्विज ।
श्रद्धया परया यस्त्वं तपश्चरसि सुव्रत ॥ ८८
तस्माद्देवाश्च दानेन प्रीता ब्राह्मणसत्तम ।
सर्वमेतद्धि यस्मात्ते दत्तं शुद्धेन चेतसा ॥ ८९
कृच्छ्रकाले ततः स्वर्गो विजितः कर्मणा त्वया
क्षुधा निर्णुदति प्रज्ञां धर्मबुद्धिं व्यपोहति ९०
क्षुधापरिगतज्ञानो धृतिं त्यजति चैव ह ।
बुभुक्षां जयते यस्तु स स्वर्गं जयते ध्रुवम् ९१
यदा दानरुचिः स्याद्वै तदा धर्मो न सीदति ।
अनवेक्ष्य सुतस्नेहं कलत्रस्नेहमेव च ॥ ९२
धर्ममेव गुरुं ज्ञात्वा तृष्णा न गणिता त्वया ।
द्रव्यागमो नृणां सूक्ष्मः पात्रे दानं ततः परम् ॥
कालः परतरो दानात् श्रद्धा चैव ततः परा ।
स्वर्गद्वारं सुसूक्ष्मं हि नरैर्मोहान्न दृश्यते ॥ ९४
स्वर्गार्गलं लोभबीजं
रागगुप्तं दुरासदम् ।
तं तु पश्यन्ति पुरुषा
जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥ ९५
ब्राह्मणास्तपसा युक्ता यथाशक्ति प्रदायिनः ।
सहस्रशक्तिश्च शतं शतशक्तिर्दशापि च ॥ ९६
दद्यादपश्च यः शक्त्या सर्वे तुल्यफलाः स्मृताः
रन्तिदेवो हि नृपतिरपः प्रादादकिञ्चनः ९७
शुद्धेन मनसा विप्र नाकपृष्ठं ततो गतः ।
न धर्मः प्रीयते तात दानैर्दत्तैर्महाफलैः ॥ ९८
न्यायलब्धैर्यथा सूक्ष्मैः श्रद्धापूतैः स तुष्यति ।
गोप्रदानसहस्राणि द्विजेभ्योऽदान्नृगो नृपः ९९
एकां दत्वा स पारक्यां नरकं समपद्यत ।
आत्ममांसप्रदानेन शिबिरौशीनरो नृपः १००
प्राप्य पुण्यकृताँल्लोका-
न्मोदते दिवि सुव्रतः ।
विभवो न नृणां पुण्यं
स्वशक्त्या स्वर्जितं सताम् ॥ १०१
नयज्ञैर्विविधैर्विप्र यथान्यायेन सञ्चितैः ।
क्रोधाद्दानफलं हन्ति लोभात्स्वर्गं न गच्छति
न्यायवृत्तिर्हि तपसा दानवित्स्वर्गमश्नुते ।
न राजसूयैर्बहुभिरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ॥ ३

न चाश्वमेधैर्बहुभिः फलं सममिदं तव ।
सक्तुप्रस्थेन विजितो ब्रह्मलोकस्त्वयाऽक्षयः ४
विरजो ब्रह्मसदनं गच्छ विप्र यथासुखम् ।
सर्वेषां वो द्विजश्रेष्ठ दिव्यं यानमुपस्थितम् ५
आरोहत यथाकामं
धर्मोऽस्मि द्विज पश्य माम् ।
नारितो हि त्वया देहो
लोके कीर्तिः स्थिरा च ते ॥ ६
सभार्यः सहपुत्रश्च सस्नुषश्च दिवं व्रज ।
इत्युक्तवाक्ये धर्मे तु यानमारुह्य स द्विजः ७
सदारःससुतश्चैव सस्नुषश्च दिवं गतः ।
तस्मिन्विप्रे गते स्वर्गं ससुते सस्नुषे तदा ॥ ८
भार्याचतुर्थे धर्मज्ञे ततोऽहं निःसृतो बिलात्
ततस्तु सक्तुगन्धेन क्लेदेन सलिलस्य च ॥९
दिव्यपुष्पविमर्दाच्च
साधोर्दानलवैश्च तैः ।
विप्रस्य तपसा तस्य
शिरो मे काञ्चनीकृतम् ॥ ११०
तस्य सत्याभिसन्धस्य सक्तुदानेन चैव ह ।
शरीरार्धं च मे विप्राः शातकुम्भमयं कृतम्११
पश्यतेमं सुविपुलं तपसा तस्य धीमतः ।
कथमेवंविधं स्याद्वै पार्श्वमन्यदिति द्विजाः ॥
तपोवनानि यज्ञांश्च हृष्टोऽभ्येमि पुनः पुनः ।
यज्ञं त्वहमिमं श्रुत्वा कुरुराजस्य धीमतः १३
आशया परया प्राप्तो न चाहं काञ्चनीकृतः ।
ततो मयोक्तं तद्वाक्यं प्रहस्य ब्राह्मणर्षभाः १४
सक्तुप्रस्थेन यज्ञोयं सम्मितो नेति सर्वथा ।
सक्तुप्रस्थलवैस्तैर्हि तदाहं काञ्चनीकृत. ॥ १५
न हि यज्ञो महानेष सदृशस्तैर्मतो मम ।
इत्युक्त्वा नकुलः सर्वान्यज्ञे द्विजवरांस्तदा
जगामादर्शनं तेषां विप्रास्ते च ययुर्गृहान् १७
वैशम्पायन उवाच ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया परपुरञ्जय ।
यदाश्चर्यमभूत्तत्र वाजिमेधे महाक्रतौ ॥ १८
न विस्मयस्ते नृपते यज्ञे कार्यः कथञ्चन ।
ऋषिकोटिसहस्राणि तपोभिर्ये दिवं गताः१९
अद्रोहः सर्वभूतेषु
सन्तोषः शीलमार्जवम् ।
तपो दमश्च सत्यं च
प्रदानं चेति सम्मितम् ॥ १२०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि नकुलाख्याने
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## ९१

जनमेजय उवाच ।

यज्ञे सक्ता नृपतयस्तपःसक्ता महर्षयः ।
शान्तिव्यवस्थिता विप्राः शमे दम इति प्रभो
तस्माद्यज्ञफलैस्तुल्यं न किञ्चिदिह दृश्यते ।
इति मे वर्तते बुद्धिस्तथा चैतदसंशयम् ॥ २
यज्ञैरिष्ट्वा तु बहवो राजानो द्विजसत्तमाः ।
इह कीर्तिं परा प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्नुयुः ॥ ३
देवराजः सहस्राक्षः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
देवराज्यं महातेजाः प्राप्तवानखिलं विभुः ४
यदा युधिष्ठिरो राजा भीमार्जुनपुरःसरः ।
सदृशो देवराजेन समृद्ध्या विक्रमेण च ॥ ५
अथ कस्मात्स नकुलो गर्हयामास तं क्रतुम् ।
अश्वमेधं महायज्ञं राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ६

वैशम्पायन उवाच ।

यज्ञस्य विधिमग्र्यं वै फलं चापि नराधिप
गदतः शृणु मे राजन्यथावदिह भारत ॥ ७
पुरा शक्रस्य यजतः सर्वं ऊचुर्महर्षयः ।
ऋत्विक्षु कर्मव्यग्रेषु वितते यज्ञकर्मणि ॥ ८
हूयमाने तथा वह्नौ होत्रे गुणसमन्विते ।
देवेष्वाहूयमानेषु स्थितेषु परमर्षिषु ॥ ९
सुप्रतीतैस्तथा विप्रैः स्वागमैः सुस्वरैर्नृप ।
अश्रान्तैश्चापि लघुभिरध्वर्युवृषभैस्तथा १०
आलंभसमये तस्मिन् गृहीतेषु पशुष्वथ ।
महर्षयो महाराज बभूवुः कृपयान्विताः ॥ ११
ततो दीनान्पशून्दृष्ट्वा ऋषयस्ते तपोधनाः ।
ऊचुः शक्रं समागम्य नायं यज्ञविधिः शुभः
अपरिज्ञानमेतत्ते महान्तं धर्ममिच्छतः ।
न हि यज्ञे पशुगणा विधिदृष्टाः पुरन्दर १३
धर्मोपघातकस्त्वेष समारंभस्तव प्रभो ।
नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते १४
आगमेनैव ते यज्ञं कुर्वंतु यदि चेच्छसि १५
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्ते सुमहान्भवेत् ।
यज बीजैः सहस्राक्ष त्रिवर्षपरमोषितैः ॥ १६
एष धर्मो महान् शक्र महागुणफलोदयः ।
शतक्रतुस्तु तद्वाक्यमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
उक्तं न प्रतिजग्राह मानान्मोहवशं गतः ।
तेषां विवादः सुमहान् शक्रयज्ञे तपस्विनाम्
जङ्गमैः स्थावरैर्वाऽपि यष्टव्यमिति भारत ।
ते तु खिन्ना विवादेन ऋषयस्तत्त्वदर्शिनः १९
तदा सन्धाय शक्रेण पप्रच्छुर्नृपतिं वसुम् ।
धर्मसंशयमापन्नान्सत्यं ब्रूहि महामते ॥ २०
महाभाग कथं यज्ञेष्वागमो नृपसत्तम ।
यष्टव्यं पशुभिर्मुख्यैरथो बीजै रसैरिति ॥ २१
तच्छ्रुत्वा तु वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति प्रोवाच पार्थिवः ॥ २२
एवमुक्त्वा स नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ।
उक्त्वाऽथ वितथं प्रश्नं चेदीनामीश्वरः प्रभुः ॥
तस्मान्न वाच्यं ह्येकेन बहुज्ञेनापि संशये ।
प्रजापतिमपाहाय स्वयंभुवभृते प्रभुम् ॥ २४
तेन दत्तानि दानानि पापेनाशुद्धबुद्धिना ।
तानि सर्वाण्यनादृत्य नश्यन्ति विपुलान्यपि
तस्याधर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः ।
दानेन कीर्तिर्भवति न प्रेत्येह च दुर्मतेः ॥२६
अन्यायोपगतं द्रव्यमभीक्ष्णं यो ह्यपण्डितः ।
धर्माभिशंकी यजते न स धर्मफलं लभेत् २७
धर्मवैतंसिको यस्तु पापात्मा पुरुषाधमः ।
ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकविश्वासकारणम्

---

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवतितमोऽध्याय ॥९०॥

९१

**यज्ञे सक्ता नृपतय** इत्यध्यायो हिंसामिश्र- स्वधर्मस्य निंदार्थम् ॥१॥ त्रिवर्षपरमोषिते पुराणे ॥१६॥ रसैः पयोघृतादिभिः ॥ २१ ॥ वितथं हिंसाहिंसयोः क्रत्वोस्तुल्यत्वापादनादनृतम् ॥ २३ ॥

पापेन कर्मणा विप्रो धनं प्राप्य निरंकुशः ।
रागमोहान्वितः सोऽन्ते कलुषां गतिमश्नुते ॥
अपि सञ्चयबुद्धिर्हि लोभमोहवशंगतः ।
उद्वेजयति भूतानि पापेनाशुद्धबुद्धिना ॥ ३०
एवं लब्ध्वा धनं मोहाद्यो हि दद्याद्यजेत वा
न तस्य स फलं प्रेत्य भुङ्क्ते पापधनागमात् ॥ ३१
उञ्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ।
दानं विभवतो दत्वा नराः स्वर्यान्ति धार्मिकाः
एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ३३
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम् ।
श्रूयन्ते हि पुरा वृत्ता विश्वामित्रादयो नृपाः ॥
विश्वामित्रोऽसितश्चैव जनकश्च महीपतिः ।
कक्षसेनार्ष्टिसेनौ च सिन्धुद्वीपश्च पार्थिवः ॥
एते चान्ये च बहवः सिद्धिं परमिकां गताः ।
नृपाः सत्यैश्च दानैश्च न्यायलब्धैस्तपोधनाः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये चाश्रितास्तपः
दानधर्माग्निना शुद्धास्ते स्वर्गं यान्ति भारत ३७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि हिंसामिश्रधर्मनिन्दायां एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

## ९२

जनमेजय उवाच ।
धर्मागतेन त्यागेन भगवन्स्वर्गमस्ति चेत् ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि भाषितुम् १
तस्योञ्छवृत्तेर्यद्वृत्तं सक्तुदाने फलं महत् ।
कथितं तु मम ब्रह्मंस्तथ्यमेतदसंशयम् ॥ २
कथं हि सर्वयज्ञेषु निश्चयः परमोऽभवत् ।
एतदर्हसि मे वक्तुं निखिलेन द्विजर्षभ ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अगस्त्यस्य महायज्ञे पुरावृत्तमरिन्दम ॥ ४
पुराऽगस्त्यो महातेजा दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्
प्रविवेश महाराज सर्वभूतहिते रतः ॥ ५
तत्राग्निकल्पा होतार आसन्सत्रे महात्मनः ।
मूलाहाराः फलाहाराः साश्मकुट्टा मरीचिपाः
परिपृष्टिका वैघसिकाः प्रसंख्यानास्तथैव च
यतयो भिक्षवश्चात्र बभूवुः पर्यवस्थिताः ॥ ७
सर्वे प्रत्यक्षधर्माणो जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
दमे स्थिताश्च सर्वे ते हिंसादम्भविवर्जिताः
वृत्ते शुद्धे स्थिता नित्यमिन्द्रियैश्चाप्यबाधिताः
उपातिष्ठन्त तं यज्ञं यजन्तस्ते महर्षयः ॥ ९
यथाशक्त्या भगवता
तदन्नं समुपार्जितम् ।
तस्मिन्सत्रे तु यद्वृत्तं
यद्योग्यं च तदाऽभवत् ॥ ११
तथा ह्यनेकैर्मुनिभिर्महान्तः क्रतवः कृताः ।
एवंविधे त्वगस्त्यस्य वर्तमाने तथाऽध्वरे ।
न ववर्ष सहस्राक्षस्तदा भरतसत्तम ॥ ११
ततः कर्मान्तरे राजन्नगस्त्यस्य महात्मनः ।
कथेयमभिनिर्वृत्ता मुनीनां भावितात्मनाम् १२
अगस्त्यो यजमानोऽसौ ददात्यन्नं विमत्सरः ।
न च वर्षति पर्जन्यः कथमन्नं भविष्यति १३
सत्रं चेदं महद्विप्रा मुनेर्द्वादशवार्षिकम् ।
न वर्षिष्यति देवश्च वर्षाण्येतानि द्वादश ॥ १४
एतद्भवन्तः सञ्चिन्त्य महर्षेरस्य धीमतः ।
अगस्त्यस्यातितपसः कर्तुमर्हन्त्यनुग्रहम् १५
इत्येवमुक्ते वचने ततोऽगस्त्यः प्रतापवान् १६
प्रोवाच वाक्यं स तदा
प्रसाद्य शिरसा मुनीन् ।
यदि द्वादशवर्षाणि
न वर्षिष्यति वासवः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकनवतितमोऽध्याय ॥ ९१ ॥

९२

**धर्मागतेनेत्यध्यायः** सर्वसाधनहीना अपि महान्तो यज्ञं निर्वर्तयन्त्येवेति वक्तुमारभ्यते ॥१॥ मरीचिपाश्चन्द्रमरीचिपानमात्रतृप्ता ॥६॥ परिपृष्टं चेदेव गृह्णन्ति नान्यथा ते परिपृष्टिका पाठान्तरे परिपृच्छिका अपि त एव प्रसंख्यानास्तत्कालमात्रसंग्रहाः । अप्रक्षाला इति पाठे शेषहीना ॥७

चिन्तायज्ञं करिष्यामि विधिरेष सनातनः ।
यदि द्वादशवर्षाणि न वर्षिष्यति वासवः १८
स्पर्शयज्ञं करिष्यामि विधिरेष सनातनः ।
यदि द्वादशवर्षाणि न वर्षिष्यति वासवः १९
ध्येयात्मना हरिष्यामि यज्ञानेतान्यतव्रतः ।
बीजयज्ञो मयाऽयं वै बहुवर्षसमाचितः ॥ २०
बीजैर्हितं करिष्यामि नात्र विघ्नो भविष्यति
नेदं शक्यं वृथा कर्तुं मम सत्रं कथंचन ॥ २१
वर्षिष्यतीह वा देवो न वा वर्षं भविष्यति ।
अथवाभ्यर्थनामिन्द्रो न करिष्यति कामतः ॥
स्वयमिन्द्रो भविष्यामि जीवयिष्यामि च प्रजाः
यो यदाहारजातश्च स तथैव भविष्यति २३
विशेषं चैव कर्तास्मि पुनः पुनरतीव हि ।
अद्येह स्वर्णमभ्येतु यच्चान्यद्वसु किञ्चन ॥२४
त्रिषु लोकेषु यच्चास्ति तदिहागम्यतां स्वयम् ।
दिव्याश्चाप्सरसां संघा गन्धर्वाश्च सकिन्नराः
विश्वावसुश्च ये चान्ये तेऽप्युपासन्तु मे मखम् ।
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च यत्किंचिद्वसु विद्यते २६
सर्वं तदिह यज्ञेषु स्वयमेवोपतिष्ठतु ।
स्वर्गः स्वर्गसदश्चैव धर्मश्च स्वयमेव तु ॥ २७
इत्युक्ते सर्वमेवैतदभवत्तपसा मुनेः ।
तस्य दीप्ताग्निमहसस्त्वगस्त्यस्यातितेजसः ॥
ततस्ते मुनयो दृष्ट्वा ददृशुस्तपसो बलम् ।
विस्मिता वचनं प्राहुरिदं सर्वे महार्थवत् ॥२९

ऋषय ऊचुः ।

प्रीताः स्म तव वाक्येन न त्विच्छामस्तपोऽव्ययं
तैरेव यज्ञैस्तुष्टाः स्म न्यायेनेच्छामहे वयम् ॥
यज्ञ दीक्षां तथा होमान्यच्चान्यन्मृगयामहे ।
न्यायेनोपार्जिताहाराः स्वकर्माभिरता वयम्
वेदांश्च ब्रह्मचर्येण न्यायतः प्रार्थयामहे ।
न्यायेनोत्तरकालं च गृहेभ्यो निःसृता वयम्
धर्मदृष्टैर्विधिद्वारैस्तपस्तप्स्यामहे वयम् ।
भवतः सम्यगिष्टा तु बुद्धिर्हिंसाविवर्जिता ॥
एतामहिंसां यज्ञेषु ब्रूयास्त्वं सततं प्रभो ।
प्रीतास्ततो भविष्यामो वयं तु द्विजसत्तम ॥
विसर्जिताः समाप्तौ च सत्रादस्माद्व्रजामहे ।
तथा कथयतां तेषां देवराजः पुरन्दरः ॥ ३५
ववर्ष सुमहातेजा दृष्ट्वा तस्य तपोबलम् ।
आसमाप्तेश्च यज्ञस्य तस्यामितपराक्रमः ॥ ३६
निकामवर्षी पर्जन्यो बभूव जनमेजय ।
प्रसादयामास च तमगस्त्यं त्रिदशेश्वरः ।
स्वयमभ्येत्य राजर्षे पुरस्कृत्य बृहस्पतिम् ॥३७
ततो यज्ञसमाप्तौ तान्विससर्ज महामुनीन् ।
अगस्त्यः परमप्रीतः पूजयित्वा यथाविधि ॥

जनमेजय उवाच ।

कोऽसौ नकुलरूपेण शिरसा काञ्चनेन वै ।
प्राह मानुषवद्वाचमेतत्पृष्टो वदस्व मे ॥ ३९

वैशम्पायन उवाच ।

एतत्पूर्वं न पृष्टोऽहं न चास्माभिः प्रभाषितम्
श्रूयतां नकुलो योऽसौ यथा वाक् तस्य मानुषी
श्राद्धं संकल्पयामास जमदग्निः पुरा किल ।
होमधेनुस्तमागाच्च स्वयमेव दुदोह ताम् ॥४१
तत्पयः स्थापयामास नवे भाण्डे दृढे शुचौ ।
तच्च क्रोधस्वरूपेण पिठरं धर्म आविशत् ॥ ४२
जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठं किं कुर्याद्विप्रिये कृते ।
इति संचिन्त्य धर्मः स धर्षयामास तत्पयः ॥
तमाज्ञाय मुनिः क्रोधं नैवास्य स चुकोप ह ।
स तु क्रोधस्ततो राजन्ब्राह्मणी मूर्तिमास्थितः
जिते तस्मिन् भृगुश्रेष्ठमभ्यभाषदमर्षणः ॥ ४४
जितोस्मीति भृगुश्रेष्ठ भृगवो ह्यतिरोषणाः ।
लोके मिथ्याप्रवादोऽयं यत्त्वयास्मि विनिर्जितः
वशे स्थितोऽहं त्वय्यद्य क्षमावति महात्मनि ।
बिभेमि तपसः साधो प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥

जमदग्निरुवाच ।

साक्षाद्दृष्टोसि मे क्रोध गच्छ त्वं विगतज्वरः
न त्वयापकृतं मेऽद्य न च मे मन्युरस्ति वै ४७
यान्समुद्दिश्य संकल्पः पयसोऽस्य कृतो मया
पितरस्ते महाभागास्तेभ्यो बुद्ध्यस्व गम्यताम्

---

चिंतायज्ञं मानसं यज्ञं संकल्पमात्रेणैव देवानृषींश्च तर्पयिष्यामीत्यर्थः ॥ १८ ॥ स्पर्शयज्ञं उपाहृतद्रव्यस्य व्ययमकृत्वा तत्स्पर्शेनैव तास्तर्पयिष्यामि एवं दृष्टियज्ञोपि ज्ञेयः ॥ १९ ॥ सिद्धद्रव्याभावे ध्यानमात्रेण द्रव्याण्याहरिष्यामीत्याह-**ध्येयेति** । पाठान्तरे व्यायामेन शरीरक्लेशेन ॥२०॥ ध्येयात्मनेत्यस्य प्रपंचोऽथवेत्यादि ॥२२॥ कोसावित्यादि-शेषकथा क्रोधजस्योत्कर्षवर्णनार्था ॥ ३९ ॥ **पिठरं** पात्रं धर्मं आविशत्तत्पय पीतवानित्यर्थः ॥ ४२ ॥ रोषणत्वमेव मिथ्यारोषस्य जितत्वात्त्वया ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहा-

इत्युक्तो जातसंत्रासस्तत्रैवान्तरधीयत ।
पितृणामभिषंगाच्च नकुलत्वमुपागतः ॥ ४९
स तान्प्रसादयामास शापस्यान्तो भवेदिति
तैश्चाप्युक्तः क्षिपन्धर्मं शापस्यान्तमवाप्स्यसि
तैश्चोक्तो यज्ञियान्देशान्धर्मारण्यं तथैव च ।
जुगुप्समानो धावन्स तं यज्ञं समुपासदत् ५१
धर्मपुत्रमथाक्षिप्य सक्तुप्रस्थेन तेन सः ।
मुक्तः शापात्ततः क्रोधो धर्मो ह्यासीद्युधिष्ठिरः
एवमेतत्तदा वृत्ते यज्ञे तस्य महात्मनः ।
पश्यतां चापि नस्तत्र नकुलोऽन्तर्हितस्तदा ५२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि नकुलोपाख्याने
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

समाप्तमनुगीतापर्वाश्वमेधिकं च ।

---

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य
कृतौ भारतभावदीपे आश्वमेधिके द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

अतः परमाश्रमवासिकं पर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

प्राप्य राज्यं नरव्याघ्राः पाण्डवा मे पितामहाः ।
कथमासन्महाभागा धृतराष्ट्रे महात्मनि ॥ १

## ॥ इति श्रीमहाभारते *आश्वमेधिकपर्व समाप्तम् ॥

---

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे 'इत्याश्वमेधिकं पर्व प्रोक्तमेत-महाद्भुतम् । अध्यायाना शत चैव त्रयोऽध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ त्रीणि श्लोकसहस्राणि तावन्त्यव शतानि च । विंशतिश्च तथा श्लोका सख्यातास्तत्त्वदर्शिना ' इत्याख्यातम् तथापि संप्रत्यस्मिन्पर्वणि प्राय अध्याया ९२ श्लोकाश्च २८४५ एतावन्त एव दृश्यन्ते । एतत्सुधीभिर्मृग्यमित्यलम् ।

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डित-रामचन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितष्टिप्पण्यादिना परिष्कृतश्च । भारती जयतु ॥ शाकः १८५५ ॥

# The Mahābhāratam

with the Bharata Bhawadeepa
Commentary of Nilkaṇṭha

*edited by*
Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar

**15. Ashramvasik Parva**
*Illustrated*



ORIENTAL REPRINT

*Oriental Books Reprint Corporation*
54 Rani Jhansi Road, New Delhi-110055

# श्रीः महाभारतम् ।

## चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलकण्ठविरचित-भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर
इत्येतैः पाठान्तरटिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्

१५. आश्रमवासिकपर्व

ORIENTAL REPRINT

ओरियण्टल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## आश्रमवासिकपर्व ।

### —१५—

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
| --- | --- | --- | --- |
| | | **(१) आश्रमवासपर्व ( १–३२ )** | |
| १ | २७ | "प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा मे पितामहाः । कथमासन्महाराज धृतराष्ट्रे महात्मनि ॥" (१) इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने तदुत्तरं वदन्वैशम्पायनः पाण्डवानां पृथ्वीपालनादिकं धृतराष्ट्राय राजयोग्यद्रव्यदानादिकं कुन्त्यादिकर्तृकं गान्धारीपर्युपासनं च कथयति स्म । ... | २ |
| २ | ३० | 'एवं संपूजितो राजा' (१) इत्यादिना युधिष्ठिरादिकर्तृकं धृतराष्ट्रपर्युपासनं, तेन तत्सन्तोषं, पाण्डवानां तदनुकूलवृत्त्या वर्तनं चाख्यद्वैशम्पायनः ... | ३ |
| ३ | ८७ | सुहृन्मध्ये भीमस्य बाहुशब्दं परुषाणि वचनानि च श्रुत्वा निर्विण्णो धृतराष्ट्रः सुहृदः समानीय तान्प्रति "विदितं भवतामेतत्" (१६) इत्याद्यभिधाय युधिष्ठिरं प्रति "भद्रं ते यादवीमातः" (३०) इत्याद्याख्याय वनगमनमयाचत । "न मां प्रीणयते राजन्" (४१) इत्यादिकं युधिष्ठिरानुनयं श्रुत्वा पुनः "तापस्ये मे मनस्तात" (५६) इति तमुक्त्वा सञ्जयादीन्प्रति च 'ग्लायते मे मनो हीदम्' (६०) इत्यभिधाय मोहं जगाम । तं च युधिष्ठिरः पाणिना पस्पर्श । युधिष्ठिरेण "यस्य नागसहस्रेण" (६३) इत्यादिनाऽनुनयपूर्वकं भोजनार्थं प्रेरितो धृतराष्ट्रो यावदङ्गीकरोति तावद्व्यास आगत्य तमवोचत ... ... ... | ६ |
| ४ | २२ | "युधिष्ठिर महाबाहो" (१) इत्यादिना व्यासकथितं धृतराष्ट्रस्य वनगमनमङ्गीकृत्याहारं कृत्वाऽऽश्रमं गच्छेत्युवाच युधिष्ठिरो धृतराष्ट्रं प्रति ... ... | ७ |
| ५ | ४३ | युधिष्ठिराभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो गृहं गत्वाऽऽहारं कृत्वा विदुरादिषु सर्वेषु शृण्वत्सु युधिष्ठिरं पृष्ठे पाणिना संस्पृश्य "अप्रमादस्त्वया कार्यः" (८) इत्यादिना राजनीतिमुपदिदेश ... | ८ |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| ६ | २० | धृतराष्ट्रेण युधिष्ठिरं प्रति राजनीतिकथनम् | १० |
| ७ | २३ | धृतराष्ट्रेण युधिष्ठिरं प्रति राजनीतिकथनम् .. | ११ |
| ८ | २४ | “ एवमेतत्करिष्यामि ” ( १ ) इत्यादिना युधिष्ठिरेणाङ्गीकृते गान्धार्या गृहं प्रविश्य तया पृष्टो ‘ व्यासाद्यनुज्ञातो गन्तास्मि ’ इत्युक्त्वा सर्वासां प्रकृतीनां सान्निध्यमिच्छामि तथा पुत्राणां प्रेतभावानुगं वसु च दातुमिच्छामीति निश्चित्य युधिष्ठिरमाज्ञापयति स्म । युधिष्ठिरेणानीते सर्वस्मिन्, ब्राह्मणादिषु सर्वेषु सन्निहितेषु प्रार्थनापूर्वकं “ अरण्यगमने बुद्धिर्गान्धारीसहितस्य मे ” (१७) इत्याद्युवाच धृतराष्ट्रः, तच्छ्रुत्वा शोकाक्रान्तेषु सर्वेषु पुनरुवाच सः | १२ |
| ९ | १८ | “ शान्तनुः पालयामास ” ( १ ) इत्यादिना पुनर्याचिताः प्रकृतयो बाष्पव्याकुलाः परस्परं वीक्षां चक्रे . . | १२ |
| १० | ५३ | धृतराष्ट्रवाक्यश्रवणेन मोहितांस्तूष्णींभूतान् सर्वान्प्रति वनगमनार्थमनुज्ञां याचति धृतराष्ट्रे सर्वैरुत्तरं दातुं यो बहृचः साम्बो नाम ब्राह्मणो “ यथा वदसि राजेन्द्र ” ( १४ ) इत्यादिना धर्मराजपर्यन्तानां प्रजापालनशैलीमयिगुणामुपपाद्य युद्धादिना जातस्य क्षयस्य दैवकृतत्वं प्रतिपाद्य तमनुज्ञाप्य पाण्डवान्प्रशस्य ‘ मानसं दुःखमपनीय कार्याणि कुरुष्व ’ इत्याह । तद्वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रोऽभिपूज्य सर्वाः प्रकृतीर्विसर्जयामास ... | १४ |
| ११ | २५ | मृतोद्देशेन श्राद्धादिकं कर्तुं द्रव्ययाचनार्थं धृतराष्ट्रेण प्रेषितस्य विदुरस्य वाक्यमनुमोदमाने युधिष्ठिरे क्रुद्धो भीमो ‘ वयं भीष्मस्य दास्यामः ’ ( १६ ) इत्यादिकं वाक्यमुवाच ... | १५ |
| १२ | १३ | “ भीम ज्येष्ठो गुरुर्मे त्वम् ” ( १ ) इत्यादिकां भीमं प्रत्यर्जुनस्योक्तिं श्रुत्वा युधिष्ठिरो विदुरं प्रति ‘ यावदिच्छसि दातुं तावदहं ददामि मत्कोशादिति बहु परिक्लिष्टो भीमो यस्मात्सर्वं करोति तस्मात्सि नानेयं ममार्जुनस्य च गृहे यद्वित्तं तस्य सर्वस्य किंबहुना मच्छरीरस्य च स्वामी भवानिति च मद्वचनाद्धृतराष्ट्रं ब्रूहि ’ (१३) इत्युवाच . . | १६ |
| १३ | १५ | युधिष्ठिरसंदेशं विदुरेण कथितं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्तमभिनन्द्य कार्तिक्यां दानानि चक्रे . . | १६ |
| १४ | १८ | प्रीतो धृतराष्ट्रो भीष्माद्युद्देशेन दानानि विधाय पुत्रपौत्राणामात्मनो गान्धार्याश्चौर्ध्वदेहिकं दत्त्वा दानानि दददा परिश्रान्तो बभूव तदा युधिष्ठिरो दानयज्ञं निवर्तयति स्म | १७ |
| १५ | १३ | कार्तिक्यामिष्टिं कृत्वाऽग्निहोत्रं पुरस्कृत्य गान्धार्या सहितो वधूजनैः परिवृतो धृतराष्ट्रो वनं गन्तुं भवनान्निर्जगाम, तदा कौरवस्त्रीणामार्तनादो बभूव, युधिष्ठिरादयश्चानुययुः .. .. | १८ |
| १६ | ३२ | नगराद्वर्धमानद्वारेण निर्गतो धृतराष्ट्रो जनौघान्, कृपं, युयुत्सुं च निवर्त्य विदुरेण सञ्जयेन च सह जगाम । धृतराष्ट्राज्ञया निवृत्तो युधिष्ठिरः कुन्तीं प्रति ‘ अहं राजानमन्विष्ये ’ ( ७ ) इत्याद्युवाच । तच्छ्रुत्वा ‘ सहदेवे महाराज ’ ( १० ) इत्याद्युक्तवतीं तां प्रति युधिष्ठिरः ‘ किमिदं ते | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | व्यवसितम्' (१९) इत्यादिना विदुलापुत्रसंवादाख्यायिकाकथनपूर्वकमस्मान्प्रोत्साह्यैतावत्कारयित्वेदानीं कथं गच्छसीत्याहुवाच्च। 'यदा राज्यमिदम्' (२५) इत्याद्युक्तवन्तं भीमं सुभद्रया सहानुगच्छन्तीं द्रौपदीं रुदतः पुत्रांश्च केवलमीक्षमाणा कुन्ती वनवासकृतनिश्चया जगामैव। एवमप्यनुयातान्पुत्रान्प्रत्यब्रवीत् | १९ |
| १७ | २१ | 'एवमेतन्महाबाहो' (१) इत्यादिना विदुलापुत्रसंवादकथनादिना कृतस्य प्रोत्साहनस्य कारणं प्रदर्श्य 'नाहं राज्यफलं पुत्राः' (१९) इत्यादिना स्वस्य वैराग्यं प्रदर्शयति स्म कुन्ती | २० |
| १८ | २५ | कुन्तीवाक्यं श्रुत्वा पाण्डवेषु निवृत्तेषु धृतराष्ट्रानुज्ञातया गान्धार्या बोधितायामप्यनिवृत्तायां कुन्त्यां पाण्डवेषु पुरं प्रविष्टेषु गच्छन्धृतराष्ट्रो भागीरथीतीरे प्रथमं निवासमकरोत् | २१ |
| १९ | १८ | द्वितीयेऽहनि सर्वमाह्निकं निर्वर्त्य भागीरथीतीरान्निर्गत्य कुरुक्षेत्रे व्यासाश्रममागत्य व्यासानुमत्या केकयराजेन शतयूपेनारण्यकं विधिं प्रत्युपदिष्टो गान्धार्या सहितो धृतराष्ट्रस्तपश्चचार | २२ |
| २० | ३८ | धृतराष्ट्रं प्रति नारदपर्वतदेवलादिष्वृषिष्वागतेषु नारदः सहस्रचित्यप्रभृतीनां राज्ञां तपश्चर्यया स्वर्गगमनं तत्प्रसङ्गेन धृतराष्ट्रादीनां सामान्यतो गतिं कथयन् शतयूपप्रश्नानुरोधेन वर्षत्रयावधि कथनपूर्वकं धृतराष्ट्रस्य कुबेरलोकगमरूपां विशेषतो गतिं कथयति स्म .. ... | २३ |
| २१ | १६ | धृतराष्ट्रे वनं गते पाण्डवेषु पौरजनेषु च शोचत्सु ब्राह्मणेषु च 'कथं नु राजा वृद्धः सः' (३) इत्यादि तर्कपूर्वकं शोचत्सु सत्सु हतान् वीरान् संस्मृत्य नातिप्रमनसोऽपि पाण्डवाः परीक्षितं दृष्ट्वा प्राणान् धारयन्ति स्मेत्याह वैशम्पायनः | २४ |
| २२ | २६ | कुन्त्यादिस्मरणपूर्वकं शोचन्युधिष्ठिरः सहदेवेन द्रौपद्या चानुज्ञातो धृतराष्ट्रादिदिदृक्षया वनं गन्तुमुद्यतः सेनापत्यादीनादिश्य नगराद्बहिः पञ्च दिनानि न्यवसत् ... | २५ |
| २३ | १८ | ततो निर्गतो युधिष्ठिरो नगररक्षणार्थं युयुत्सुं धौम्यसहितं नियोज्य यमुनामुत्तीर्य धृतराष्ट्रस्याश्रमं जगाम | २६ |
| २४ | २० | तत्र धृतराष्ट्रादीनपश्यन्तो युधिष्ठिरादयस्तत्रत्यैस्तापसैः कथितेन पथा यमुनां प्रति स्नानाद्यर्थं गतान् द्रष्टुं पादचारिणो गत्वा कुन्त्याद्यभिवादनानन्तरं तैः सह पुनराश्रममाजग्मुः | २७ |
| २५ | १९ | पाण्डवैः सह धृतराष्ट्रे स्थिते पाण्डवान्द्रष्टुमागतैस्तापसैः 'कतमो युधिष्ठिरः कतमौ भीमार्जुनौ' इत्यादि पृष्टः सञ्जयो 'य एष जाम्बूनदशुद्धगौरः' (५) इत्यादिना तत्तत्स्वरूपकथनपूर्वकं सर्वानाचख्यौ। तान्बुद्ध्वा गतेषु तापसेषु धृतराष्ट्रः सर्वान्प्रति कुशलं पप्रच्छ | २८ |
| २६ | ३८ | 'युधिष्ठिर महाबाहो' (१) इत्यादिना धृतराष्ट्रस्य कुशलप्रश्नानन्तरं युधिष्ठिरः 'कच्चित्ते वर्धते राजन्' (११) इत्यादिना कुशलं पृच्छन् 'क्व चासौ विदुरो राजन्नेमं पश्यामहे वयम्' (१५) इति पप्रच्छ। धृतराष्ट्रे विदुरस्य स्थितिं कथयति तत्कथितलक्षणैर्युतं तमालक्ष्य तत्पृष्ठतो गच्छन्यु- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | ष्ठिर एकान्ते वृक्षमूलमाश्रित्य तस्याग्रे 'युधिष्ठिरोऽहमस्मि' (२४) इत्युक्त्वा तस्थौ। ततः सोऽपि स्वाग्रवर्तिनं युधिष्ठिरं दृष्ट्वा योगधारणया तच्छरीरं प्रविश्य स्थूलं शरीरं तत्याज विदुरः। युधिष्ठिरोऽपि तत्प्रवेशेनात्मानं बलवन्तं बुबुध्वा मृतं तच्छरीरं संस्कर्तुमुद्यतोऽशरीरिण्या वाण्या निवारितो धृतराष्ट्रमागत्य तस्मै तद्वृत्तं कथयति स्म। ततस्तेन दत्तं फलमूलादि भुक्त्वा तत्रैव सर्वे पाण्डवा न्यवसन् | ३० |
| २७ | २६ | विचित्रा धर्मार्थलक्षणाः कथाः कथयन्तः पाण्डवाः कुन्तीमभितस्तस्यां रात्र्यां सुषुपुः। उत्थितो युधिष्ठिरः प्रातराह्निकं विधायाश्रमं पश्यन् ब्राह्मणेभ्यो धनं वितीर्य कृताह्निकं धृतराष्ट्रं मात्रादींश्च दृष्ट्वा तदनुज्ञात उपविवेश। एवं भीमादयोऽप्युपविविशुः। एवं सर्वेषूपविष्टेषु शतयूपप्रभृतयो महर्षयः सशिष्यो व्यासश्च समाजग्मुः | ३१ |
| २८ | २५ | व्यासाज्ञया पाण्डवेषु समुपविष्टेषु सत्यवतीपुत्रो व्यासो "धृतराष्ट्र महाबाहो" (२) इत्याद्यभिधाय विदुरस्य युधिष्ठिरशरीरप्रवेशादिकं चाख्याय 'त्वां चापि श्रेयसा योक्ष्ये' (२३) इत्याद्युक्त्वा 'न कृतं यैः पुरा कैश्चित्' (२४) इत्याद्युवाच . | ३२ |
| | | **( २ ) पुत्रदर्शनपर्व ३२–४२** | |
| २९ | ५५ | 'वनवासं गते विप्र' (१) इत्यादिना व्यासेन प्रतिज्ञातमाश्चर्यप्रदर्शनं कथय, तथा युधिष्ठिरस्य कति दिनानि वने निवासः इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनः 'तेऽनुज्ञातास्तदा राजन्' (६) इत्यादिना [illegible] नारदपर्वतप्रभृतिभिः [illegible] पाण्डवसहितो धृतराष्ट्रे स्थिते गान्धारीप्रभृतिषु च स्त्रीषु स्थितासु धार्मिकं विषयं पुरस्कृत्य प्रवृत्तासु कथासु तदन्ते व्यासो 'विदितं मम राजेन्द्र' (१६) इत्याद्यभिधाय संशयच्छेदनार्थमागतोऽस्मि, देवगन्धर्वादयो मत्तपसो वीर्यं पश्यन्तु, कं ते कामं प्रददामि, ब्रूहि इत्युवाच। व्यासवाक्यं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो 'ब्रह्मकल्पैर्भवद्भिर्यत्' (२५) इत्यादिना मम परलोकभयं नास्तीत्युक्त्वा दुर्योधनापनयनेन हतान् सर्वाननुस्मृत्य न शान्तिमधिगच्छामि' (३३) इत्याद्युवाच। [illegible] पि 'षोडशेमानि वर्षाणि' (३८) इत्यादिना धृतराष्ट्रस्थितिं प्रदर्श्य 'तपसा सर्वान् लोकान् स्रष्टुं समर्थस्य तव लोकान्तरगतान् पुत्रादीन् राज्ञो दर्शयितुं किं दुःशकम्?' (४०) इत्याद्युवाच। तच्छ्रुत्वा प्रच्छन्नजातं पुत्रं कर्णं स्मरन्ती कुन्ती व्यासेनानुज्ञाता प्रवक्तुमुपचक्रमे . | ३३ |
| ३० | २४ | 'भगवन्श्वशुरो मेऽसि' (१) इत्यादिना दुर्वासोवरदानप्रभृति कर्णविसर्जनान्तं कन्यावस्थासंबन्धि वृत्तमनूद्य कर्णदर्शनं प्रार्थयति स्म कुन्ती। व्यासः 'साधु सर्वमिदं भाव्यम्' (२०) इत्यादिना तां समाश्वासयति स्म . | ३४ |
| ३१ | २५ | 'भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि! पुत्रान् भ्रातॄन्सखींस्तथा। वधूश्च पतिभिः सार्धं निशि सुप्तोत्थिता इव। कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रं चापि यादवी। द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च (१–२) | |

अ० श्लो० विषय पृष्ठम्

इत्याद्यभिधाय ‘ अवतेरुस्ततः सर्वे ’ ( ५ ) इत्यादिनांशावतरणमभिधाय सर्वे भवन्तो भागीरथीं गच्छन्त्विवति व्यासेनाज्ञप्ताः सर्वे गङ्गातीरं गत्वा सायंकालपर्यन्तं तत्र निवासं चक्रुः . . . . . ३५

३२ २१ ‘ ततो निशायां प्राप्तायां ’ (१) पाण्डवैः सहितो धृतराष्ट्रः सर्वस्त्रीसहिता गान्धारी,इतरे पौरजानपदाश्च व्याससंनिधिमाजग्मुः। व्यासश्च गङ्गाजलमवगाह्य सर्वानाह्वयति स्म। व्यासेनाहूता भीष्मद्रोणपुरोगमा विराटपुत्रादयः कर्णदुर्योधनादयोऽन्ये च राजानो राजपुत्राश्च स्वस्ववेषादिसहिता निर्वैराः सन्तः समुत्तस्थुः। ततो व्यासदत्तदिव्यदृष्टिर्धृतराष्ट्रो गान्धारी चान्ये जनाश्च तान् दृष्ट्वाऽऽश्चर्यवन्तो मुमुदिरे ... ३६

३३ ३१ निर्गतास्ते परस्परं सङ्गम्य मुदिताः सन्तो रात्रौ यथेच्छं विहृत्यान्योन्यमामन्त्र्य व्यासेन विसर्जिताः स्वस्वलोकं जग्मुः। जलस्थितस्य व्यासस्याज्ञया मृतपतिकाः स्त्रियो जान्हवीजलमवगाह्य पतिलोक जग्मुः ३८

३४ १८ एतच्छ्रुत्वा हृष्टेन जनमेजयेन ‘कथं नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूप दर्शनम् ’ ( २ ) इति पृष्टो वैशम्पायनः ‘ अविप्रणाशः सर्वेषाम् ’ ( ४ ) इत्यादिनाऽध्यायशेषेण तदुत्तरं कथयति स्म . ३९

३५ १८ ‘ अदृष्ट्वा तु नृपः पुत्रान् ’ ( १ ) इत्यादिना विदुरस्तपोबलात्सिद्धिं प्राप्तो धृतराष्ट्रश्च व्यासप्रसादादिति वैशम्पायनेनोक्ते जनमेजयो ‘व्यासो यदि मम पितरं दर्शयेत्तर्हि तव वचनं श्रद्धेयं जानीमे’त्युक्ते व्यासेन प्रदर्शितं परिक्षितं दृष्ट्वाऽवभृथस्नानं विधाय ‘ ऋषिर्द्वैपायनो यत्र ’ ( १२ ) इत्यास्तीकवाक्यं श्रुत्वा वैशम्पायनं संपूज्य वनवासकथाशेषं पप्रच्छ . ... . . . ४०

३६ ५३ ‘पुत्रान्पौत्रान्दृष्ट्वा धृतराष्ट्रः किमकरोत् युधिष्ठिरश्च किमकरोत्’ इति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्तदुत्तरमाचख्यौ । आश्रममागतो धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरविसर्जनार्थं व्यासेन प्रेरितो युधिष्ठिरं प्रति ‘अजातशत्रो भद्रं ते ’ (१४) इत्याद्यब्रवीत्। युधिष्ठिरश्च ‘ न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुम् ’ (२३) इत्याद्युवाच। गान्धार्यां च गम्यतामित्युक्तः कुन्तीं प्रति ‘ विसर्जयति मां राजा ’ (२८) इत्याद्यवादीत्। सहदेवेन युधिष्ठिरं प्रति नोत्सहेऽह परित्यक्तुं मातरं भरतर्षभ ’ (३७) इत्याद्युक्ते श्रुतवत्या कुन्त्या ‘गम्यतां पुत्र मैव त्वं’ (४०) इत्यादिना बोधिते तस्मिन्गन्तुमुद्युक्तेन युधिष्ठिरेणाभिवादनपुरःसरमनुज्ञां याचितो धृतराष्ट्रः सर्वालिङ्गनपूर्वकं सान्त्वयन्ननुजज्ञे। तथैव गान्धारीकुन्तीभ्यामनुज्ञातो युधिष्ठिरो भ्रातृभिर्द्रौपदीप्रभृतिभिर्योषिद्भिश्च सह हास्तिनपुरं जगाम . . .. ४२

## (३) नारदागमनपर्व ४२-४६

३७ ४५ निवृत्तेषु पाण्डवेषु वर्षद्वयानन्तरमागतो नारदो युधिष्ठिरेण सत्कारपूर्वकं धृतराष्ट्रवृत्तान्तं पृष्टः ‘स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथम् ’ ( ९ ) इत्यभिधाय तं कथयति स्म। भवत्सु निवृत्तेषु गङ्गाद्वारं गतो धृतराष्ट्रो गान्धा-

| अ० | श्लो० | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | कदाचिद्गङ्गायामाप्लुत्य निवृत्तोऽग्रे दावाग्निना दह्यमाने वने निराहारतया ततो निर्गन्तुमसमर्थः सञ्जयं प्रति 'दावाग्निरहितं प्रदेशं गच्छ' इत्यनुज्ञाप्य सञ्जयोपदेशेनेन्द्रियग्रामं निरुध्य च काष्ठोपमः स्थितो दावाग्निना दग्धोऽभूत्। तमनु गान्धारी कुन्ती च दग्धे बभूवतुः। सञ्जयश्च ततो निर्गतो हिमालयं जगाम। एतद्वृत्तं श्रुत्वा युधिष्ठिरादिष्वाक्रोशपूर्वकं रुदत्सु महान् स्वन आसीत्। तस्मिन्मुहूर्तान्निवृत्ते सति धर्मराजो नारदमब्रवीत् ... | ४४ |
| ३८ | २१ | 'तथा महात्मनस्तस्य' (१) इत्यादिकं युधिष्ठिरस्य विलापवाक्यम् ... ... | ४४ |
| ३९ | २७ | 'नासौ वृथाग्निना दग्धः' (१) इत्यादिना वनं गच्छता धृतराष्ट्रेणोत्सर्गेष्टिं कारयित्वोत्सृष्टा अग्नयो याजकैर्वने परित्यक्तास्त एव दावरूपेण वनं दहन्तस्तं देहुरित्याद्यभिधाय नारदेनोदकदानादि कर्तुं प्रेरितो युधिष्ठिरो गङ्गाद्वारे नरान् संप्रेष्य द्वादशेऽहनि गङ्गातीरे श्राद्धादीनि विधाय नगरं प्रविवेश। नारदश्च युधिष्ठिरमाश्वास्य यथेप्सितं देशं जगाम ... ... ... | ४५ |


॥ इत्याश्रमवासपर्वविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

# आश्रमवासिकपर्व

१५

# ॥ महाभारतम् ॥

## आश्रमवासिकपर्व

## —१५—

### आश्रमवास पर्व १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच ।
प्राप्य राज्यं महात्मानः
पाण्डवा मे पितामहाः ।
कथमासन्महाराज्ञि
धृतराष्ट्रे महात्मनि ॥ १
स हि राजा हतामात्यो हतपुत्रो निराश्रयः ।
कथमासीद्धतैश्वर्यो गान्धारी च यशस्विनी ॥
कियन्तं चैव कालं ते
मम पूर्वपितामहाः ।
स्थिता राज्ये महात्मान-
स्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३

वैशम्पायन उवाच ।
प्राप्य राज्यं महात्मानः
पाण्डवा हतशत्रवः ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य
पृथिवीं पर्यपालयन् ॥ ४
धृतराष्ट्रमुपातिष्ठद्विदुरः सञ्जयस्तथा ।
वैश्यापुत्रश्च मेधावी युयुत्सुः कुरुसत्तम ॥ ५
पाण्डवाः सर्वकार्याणि
संपृच्छन्ति स्म तं नृपम् ।
चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता
वर्षाणि दश पञ्च च ॥ ६

---

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीनारायणलक्ष्मणौ ततपद वीरेशगङ्गावरौ
गोपाल च निधाय चेतसि शिव चिन्तामणिं चाददत् ।
पर्वस्वाश्रमवासिकादिषु चतुर्ष्वारभ्यंत भारते
पूर्वाचार्यमतानुगेन विदुषा भावप्रदीपोऽद्भुत ॥ १ ॥

पूर्वत्र अङ्गोपाङ्गसहिता ब्रह्मविद्या समापिता, तत्र सर्वभोगत्यागपूर्वक शमाद्युपसम्पात्तिर्वनवासिनामेव भवतीति धृतराष्ट्राद्याचारप्रदर्शनेन सूचयंस्ततोऽधिगन्तव्यं जगज्जीवेश्वरतत्त्वं चाश्चर्यप्रदर्शनव्याजेन प्रतिपादयिष्यन्नुत्तरग्रन्थमारभते–**प्राप्य राज्यं महात्मान इति** ॥ १ ॥ उपातिष्ठत् आराधितवान् ॥ ५ ॥

सदा हि गत्वा ते वीराः
पर्युपासन्त तं नृपम्।
पादाभिवादनं कृत्वा
धर्मराजमते स्थिताः ॥ ७
ते मूर्ध्नि समुपाघ्राताः सर्वकार्याणि चक्रिरे ।
कुन्तिभोजसुता चैव गान्धारीमन्ववर्तत ॥ ८
द्रौपदी च सुभद्रा च
याश्चान्याः पाण्डवस्त्रियः ।
समां वृत्तिमवर्तन्त
तयोः श्वश्र्वोर्यथाविधि ॥ ९
शयनानि महार्हाणि वासांस्याभरणानि च ।
राजार्हाणि च सर्वाणि भक्ष्यभोज्यान्यनेकशः
युधिष्ठिरो महाराज धृतराष्ट्रेऽभ्युपाहरत् ।
तथैव कुन्ती गान्धार्यां गुरुवृत्तिमवर्तत ॥ ११
विदुरः सञ्जयश्चैव युयुत्सुश्चैव कौरव ।
उपासते स्म तं वृद्धं हतपुत्रं जनाधिपम् ॥ १२
स्यालो द्रोणस्य यश्चासी-
द्दयितो ब्राह्मणो महान् ।
स च तस्मिन्महेष्वासः
कृपः समभवत्तदा ॥ १३
व्यासश्च भगवान्नित्यमासांचक्रे नृपेण ह ।
कथाः कुर्वन्पुराणर्षिर्देवर्षिपितृरक्षसाम् ॥ १४
धर्मयुक्तानि कार्याणि व्यवहारान्वितानि च
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो विदुरस्तान्यकारयत् १५
सामन्तेभ्यः प्रियाण्यस्य कार्याणि सुबहून्यपि
प्राप्यन्तेऽर्थैः सुलघुभिः सुनयाद्विदुरस्य वै ॥
अकरोद्बन्धमोक्षं च वध्यानां मोक्षणं तथा ।
न च धर्मसुतो राजा कदाचित्किञ्चिदब्रवीत्
विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
सर्वान्कामान्महातेजाः प्रददावम्बिकासुते ॥
आरालिकाः सूपकारा
रागखाण्डविकास्तथा ।
उपातिष्ठन्त राजानं
धृतराष्ट्रं यथा पुरा ॥ १९
वासांसि च महार्हाणि
माल्यानि विविधानि च ।
उपाजह्रुर्यथान्यायं
धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः ॥ २०
मैरेयमत्स्यमांसानि पानकानि मधूनि च ।
चित्रान्भक्ष्यविकारांश्च चक्रुस्तस्य यथा पुरा
ये चापि पृथिवीपालाः समाजग्मुस्ततस्ततः ।
उपातिष्ठन्त ते सर्वे कौरवेन्द्रं यथा पुरा ॥ २२
कुन्ती च द्रौपदी चैव सात्वती च यशस्विनी
उलूपी नागकन्या च देवी चित्राङ्गदा तथा ॥
धृष्टकेतोश्च भगिनी जरासन्धसुता तथा ।
एताश्चान्याश्च बह्व्यो वै योषितः पुरुषर्षभ २४
किंकराः पर्युपातिष्ठन्सर्वाः सुबलजां तथा ।
यथा पुत्रवियुक्तोऽयं न किञ्चिद्दुःखमाप्नुयात्
इति तानन्वशाद्भ्रातॄन्नित्यमेव युधिष्ठिरः ।
एवं ते धर्मराजस्य श्रुत्वा वचनमर्थवत् ॥ २६
सविशेषमवर्तन्त भीममेकं तदा विना ।
न हि तत्तस्य वीरस्य हृदयादपसर्पति ।
धृतराष्ट्रस्य दुर्बुद्ध्या यद्वृत्तं द्यूतकारितम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।
एवं संपूजितो राजा पाण्डवैरम्बिकासुतः । विजहार यथापूर्वमृषिभिः पर्युपासितः ॥ १

---

तस्मिन्धृतराष्ट्रे समभवत्तन्निकटे अभवत् ॥१३॥ **आरालिकाः** अरया शस्त्रविशेषेण लूनं छिन्नं शाकादि आराल्लु तत्तं कुर्वन्ति ते आरालिका शाकनिर्शेषकर्तारः । **रागखाण्डवम्** पिप्पलीशुण्ठीशर्करोपेतो मुद्गयूषस्तत्कर्तारो राग खाण्डविका. ॥१९॥ अन्वशात् अनुशिक्षितवान् ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

**एवमिति** ॥ १ ॥

ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च प्रददौ स कुरूद्वहः ।
तच्च कुन्तीसुतो राजा सर्वमेवान्वपद्यत× ॥२
आनृशंस्यपरो राजा प्रीयमाणो युधिष्ठिरः ।
उवाच स तदा भ्रातॄनमात्यांश्च महीपतिः ३
मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः ।
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत् ॥४
विपरीतश्च मे शत्रुर्नियम्यश्च भवेन्नरः ।
पितृवृत्तेषु चाहःसु पुत्राणां श्राद्धकर्मणि ॥ ५
सुहृदां चैव सर्वेषां यावदस्य चिकीर्षितम् ।
ततः स राजा कौरव्यो धृतराष्ट्रो महामनाः
ब्राह्मणेभ्यो यथार्हेभ्यो ददौ वित्तान्यनेकशः ।
धर्मराजश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि ॥ ७
तत्सर्वमन्ववर्तन्त तस्य प्रियचिकीर्षया ।
कथं नु राजा वृद्धः स पुत्रपौत्रवधार्दितः ॥ ८
शोकमस्मत्कृतं प्राप्य न म्रियेतेति चिन्त्यते
यावद्धि कुरुवीरस्य जीवत्पुत्रस्य वै सुखम् ९
बभूव तदवाप्नोति भोगांश्चेति व्यवस्थिताः ।
ततस्ते सहिताः पञ्च भ्रातरः पाण्डुनन्दनाः॥
तथाशीलाः समातस्थुर्धृतराष्ट्रस्य शासने ।
धृतराष्ट्रश्च तान्सर्वान्विनीतान्नियमे स्थितान्
शिष्यवृत्तिं समापन्नान्गुरुवत्प्रत्यपद्यत ।
गान्धारी चैव पुत्राणां विविधैः श्राद्धकर्मभिः
आनृण्यमगमत्कामान्विप्रेभ्यः प्रतिपाद्य सा
एवं धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १३
भ्रातृभिः सहितो धीमान्पूजयामास तं नृपम्

वैशम्पायन उवाच ।

स राजा सुमहातेजा वृद्धः कुरुकुलोद्वहः
न ददर्श तदा किञ्चिदप्रियं पाण्डुनन्दने ।
वर्तमानेषु सद्वृत्तिं पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १५
प्रीतिमानभवद्राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
सौबलेयी च गान्धारी पुत्रशोकमपास्य तम्
सदैव प्रीतिमत्यासीत्तनयेषु निजेष्विव ।
प्रियाण्येव तु कौरव्यो नाप्रियाणि कुरूद्वहः
वैचित्रवीर्ये नृपतौ समाचरत वीर्यवान् ।
यद्यद्ब्रूते च किञ्चित्स धृतराष्ट्रो जनाधिपः १८
गुरु वा लघु वा कार्यं गान्धारी च तपस्विनी
तं स राजा महाराज पाण्डवानां धुरन्धरः
पूजयित्वा वचस्तत्तदकार्षीत्परवीरहा ।
तेन तस्याभवत्प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः २०
अन्वतप्यत संस्मृत्य पुत्रं तं मन्दचेतसम् ।
सदा च प्रातरुत्थाय कृतजप्यः शुचिर्नृपः २१
आशास्ते पाण्डुपुत्राणां समरेष्वपराजयम् ।
ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्याथ हुत्वा चैव हुताशनम्
आयूंषि पाण्डुपुत्राणामाशंसत नराधिपः ।
न तां प्रीतिं परामाप पुत्रेभ्यः स कुरूद्वहः २३
यां प्रीतिं पाण्डुपुत्रेभ्यः सदाऽवाप नराधिपः
ब्राह्मणानां यथावृत्तः क्षत्रियाणां यथाविधः ॥
तथा विट्शूद्रसंघानामभवत्स प्रियस्तदा ।
यच्च किञ्चित्तदा पापं धृतराष्ट्रसुतैः कृतम् २२
अकृत्वा हृदि तत्पापं तं नृपं सोऽन्ववर्तत ।
यश्च कश्चिन्नरः किञ्चिदप्रियं चाम्बिकासुते ॥
कुरुते द्वेष्यतामेति स कौन्तेयस्य धीमतः ।
न राज्ञो धृतराष्ट्रस्य न च दुर्योधनस्य वै २७
उवाच दुष्कृतं कश्चिद्युधिष्ठिरभयान्नरः ।
धृत्या तुष्टो नरेन्द्रः स गान्धारी विदुरस्तथा
शौचेन चाजातशत्रोर्न तु भीमस्य शत्रुहन् ।
अन्ववर्तत भीमोऽपि निश्चितो धर्मजं नृपम् ॥
धृतराष्ट्रं च संप्रेक्ष्य सदा भवति दुर्मनाः ।
राजानमनुवर्तन्तं धर्मपुत्रममित्रहा ।
अन्ववर्तत कौरव्यो हृदयेन पराङ्मुखः ३०

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकेपर्वणि आश्रमवासपर्वणि
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पितृवृत्तेषु पिता वृत्तः प्रमीतो येषु तेषु क्षयाहेषु ॥ ५ ॥
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

× 'सर्वमेवान्वमोदत' इति पाठः

* सन्क्रुद्धः ' इति पाठः

३

वैशम्पायन उवाच ।
युधिष्ठिरस्य नृपतेर्दुर्योधनपितुस्तदा ।
नान्तरं ददृशू राज्ये पुरुषाः प्रणयं प्रति ॥ १
यदा तु कौरवो राजा पुत्रं सस्मार दुर्मतिम् ।
तदा भीमं हृदा राजन्नपध्याति स पार्थिवः ॥
तथैव भीमसेनोऽपि धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
नामर्षयत राजेन्द्र सदैव दुष्टवद्धृदा ॥ ३
अप्रकाशान्यप्रियाणि चकारास्य वृकोदरः ।
आज्ञां प्रत्यहरच्चापि कृतज्ञैः पुरुषैः सदा ॥ ४
स्मरन्दुर्मन्त्रितं तस्य वृत्तान्यप्यस्य कानिचित्
अथ भीमः सुहृन्मध्ये बाहुशब्दं तथाऽकरोत्
संश्रवे धृतराष्ट्रस्य गान्धार्याश्चाप्यमर्षणः ।
स्मृत्वा दुर्योधनं शत्रुं कर्णदुःशासनावपि ६
प्रोवाचेदं सुसंरब्धो भीमः स परुषं वचः ।
अन्धस्य नृपतेः पुत्रा मया परिघबाहुना ७
नीता लोकममुं सर्वे नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः ।
इमौ तौ परिघप्रख्यौ भुजौ मम दुरासदौ ८
ययोरन्तरमासाद्य धार्तराष्ट्राः क्षयं गताः ।
ताविमौ चन्दनेनाक्तौ चन्दनार्हौ च मे भुजौ
याभ्यां दुर्योधनो नीतः क्षयं ससुतबान्धवः।
एताश्चान्याश्च विविधाः शल्यभूता नराधिपः
वृकोदरस्य ता वाचः श्रुत्वा निर्वेदमागमत् ॥
सा च बुद्धिमती देवी कालपर्यायवेदिनी ११
गान्धारी सर्वधर्मज्ञा तान्यलीकानि शुश्रुवे ।
ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः ॥ १२
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः ।
नान्वबुध्यत तद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
श्वेताश्वो वाऽथ कुन्ती वा
द्रौपदी वा यशस्विनी ।
माद्रीपुत्रौ च धर्मज्ञौ
चित्तं तस्यान्ववर्तताम् ॥ १४
राज्ञस्तु चित्तं रक्षन्तौ नोचतुः किञ्चिदप्रियम्
ततः स मानयामास धृतराष्ट्रः सुहृज्जनम् १५
बाष्पसन्दिग्धमत्यर्थमिदमाह च तान्भृशम् ॥
धृतराष्ट्र उवाच ।
विदितं भवतामेतद्यथा वृत्तः कुरुक्षयः॥१६
ममापराधात्तत्सर्वमनुज्ञातं च कौरवैः ।
योऽहं दुष्टमतिं मन्दो ज्ञातीनां भयवर्धनम् ॥
दुर्योधनं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ।
यच्चाहं वासुदेवस्य नाश्रौषं वाक्यमर्थवत् १८
वध्यतां साध्वयं पापः सामात्य इति दुर्मतिः
पुत्रस्नेहाभिभूतस्तु हितमुक्तो मनीषिभिः १९
विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च ।
पदे पदे भगवता व्यासेन च महात्मना २०
सञ्जयेनाथ गान्धार्या तदिदं तप्यते च माम्।
यच्चाहं पाण्डुपुत्रेषु गुणवत्सु महात्मसु ॥ २१
न दत्तवान् श्रियं दीप्तां पितृपैतामहीमिमाम्
विनाशं पश्यमानो हि सर्वराज्ञां गदाग्रजः ॥
एतच्छ्रेयस्तु परमममन्यत जनार्दनः ।
सोऽहमेतान्यलीकानि निवृत्तान्यात्मनस्तदा
हृदये शल्यभूतानि धारयामि सहस्रशः ।
विशेषतस्तु पश्यामि वर्षे पञ्चदशेऽद्य वै २४
अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं नियतोऽस्मि सुदुर्मतिः
चतुर्थे नियते काले कदाचिदपि चाष्टमे २५
तृष्णाविनयनं भुञ्जे गान्धारी वेद तन्मम ।
करोत्याहारमिति मां सर्वः परिजनः सदा ॥
युधिष्ठिरभयादेति भृशं तप्यति पाण्डवः ।
भूमौ शये जप्यपरो दर्भेष्वजिनसंवृतः ॥ २७
नियमव्यपदेशेन गान्धारी च यशस्विनी ।
हतं शतं तु पुत्राणां ययोर्युद्धेऽपलायिनाम् ॥
नानुतप्यामि तच्चाहं क्षत्रधर्मं हि ते विदुः ।
इत्युक्त्वा धर्मराजानमभ्यभाषत कौरवः २९
भद्रं ते यादवीमातर्वचश्चेदं निबोध मे ।
सुखमस्म्युषितः पुत्र त्वया सुपरिपालितः ३०
महादानानि दत्तानि श्राद्धानि च पुनः पुनः ।
प्रकृष्टं च यया पुत्र पुण्यं चीर्णं यथाबलम् ३१
गान्धारी हतपुत्रेयं धैर्येणोदीक्षते च माम् ।
द्रौपद्या ह्यपकर्तारस्तव चैश्वर्यहारिणः ॥ ३२
समतीता नृशंसास्ते स्वधर्मेण हता युधि ।
न तेषु प्रतिकर्तव्यं पश्यामि कुरुनन्दन ॥ ३३
सर्वे शस्त्रभृतां लोकान् गतास्तेऽभिमुखं हताः
आत्मनस्तु हितं पुण्यं प्रतिकर्तव्यमद्य वै ॥३४

३

युधिष्ठिरस्येति ॥ १ ॥ तृष्णाविनयनं तृषामात्रापहं मण्डादि न तु क्षुधाधिहरम् ॥ २६ ॥

गान्धार्याश्चैव राजेन्द्र तदनुज्ञातुमर्हसि ।
त्वं तु शस्त्रभृतां श्रेष्ठः सततं धर्मवत्सलः ३५
राजा गुरुः प्राणभृतां तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् ।
अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्यहम् ३६
चीरवल्कलभृद्राजन् गान्धार्या सहितोऽनया
वनाशिषः प्रयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः ३७
उचितं नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ ।
पुत्रेष्वैश्वर्यमाधाय वयसोऽन्ते वनं नृप ॥ ३८
तत्राहं वायुभक्षो वा निराहारोऽपि वा वसन्
पत्न्या सहानया वीर चरिष्यामि तपः परम्
त्वं चापि फलभाक्तात तपसः पार्थिवो ह्यसि
फलभाजो हि राजानः कल्याणस्येतरस्य वा

युधिष्ठिर उवाच ।

न मां प्रीणयते राज्यं त्वय्येवं दुःखिते नृप
धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धिं राज्यसक्तं प्रमादिनम्
योऽहं भवन्तं दुःखार्तमुपवासकृशं भृशम् ।
जिताहारं क्षितिशयं न विन्दे भ्रातृभिः सह
अहोऽस्मि वञ्चितो मूढो भवता गूढबुद्धिना
विश्वासयित्वा पूर्वं मां यदिदं दुःखमश्नुथाः ॥
किं मे राज्येन भोगैर्वा किं यज्ञैः किं सुखेन वा
यस्य मे त्वं महीपाल दुःखान्येतान्यवाप्तवान्
पीडितं चापि जानामि राज्यमात्मानमेव च
अनेन वचसा तुभ्यं दुःखितस्य जनेश्वर ४५
भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः
भवता विप्रहीणा वै क्व नु तिष्ठामहे वयम् ४६
औरसो भवतः पुत्रो युयुत्सुर्नृपसत्तम ।
अस्तु राजा महाराज यमन्यं मन्यते भवान्
अहं वनं गमिष्यामि भवान् राज्यं प्रशास्तु
न मामयशसा दग्धं भूयस्त्वं दग्धुमर्हसि ।
नाहं राजा भवान् राजा भवतः परवानहम्
कथं गुरुं त्वां धर्मज्ञमनुज्ञातुमिहोत्सहे ॥ ४९
न मन्युर्हृदि नः कश्चित्सुयोधनकृतेऽनघ ।
भवितव्यं तथा तद्धि वयं चान्ये च मोहिताः
वयं पुत्रा हि भवतो यथा दुर्योधनादयः ।
गान्धारी चैव कुन्ती च निर्विशेषे मते मम ॥
स मां त्वं यदि राजेन्द्र परित्यज्य गमिष्यसि
पृष्ठतस्त्वनुयास्यामि सत्यमात्मानमालभे ५२
इयं हि वसुसंपूर्णा मही सागरमेखला ।
भवता विप्रहीणस्य न मे प्रीतिकरी भवेत् ५३
भवदीयमिदं सर्वं शिरसा त्वां प्रसादये ।
त्वदधीनाः स्म राजेन्द्र व्येतु ते मानसो ज्वरः
भवितव्यमनुप्राप्तो मन्ये त्वं वसुधाधिप ।
दिष्ट्या शुश्रूषमाणस्त्वां मोक्षिष्ये मनसो ज्वरं

धृतराष्ट्र उवाच ।

तापस्ये मे मनस्तात वर्तते कुरुनन्दन ।
उचितं च कुलेऽस्माकमरण्यगमनं प्रभो ॥ ५६
चिरमस्म्युषितः पुत्र चिरं शुश्रूषितस्त्वया ।
वृद्धं मामप्यनुज्ञातुमर्हसि त्वं नराधिप ॥ ५७

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मराजानं वेपमानं कृताञ्जलिम्
उवाच वचनं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥
सञ्जयं च महात्मानं कृपं चापि महारथम् ।
अनुनेतुमिहेच्छामि भवद्भिर्वसुधाधिपम् ५९
ग्लायते मे मनो हीदं मुखं च परिशुष्यति ।
वयसा च प्रकृष्टेन वाग्व्यायामेन चैव ह ६०
इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा वृद्धो राजा कुरूद्वहः
गान्धारीं शिश्रिये धीमान् सहसैव गतासुवत्
तं तु दृष्ट्वा समासीनं विसंज्ञमिव कौरवम् ।
आर्तिं राजाऽगमत्तीव्रां कौन्तेयः परवीरहा ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

यस्य नागसहस्रेण शतसङ्ख्येन वै बलम् ।
सोऽय नारीं व्यपाश्रित्य शेते राजा गतासुवत्
आयसी प्रतिमा येन भीमसेनस्य सा पुरा ।
चूर्णीकृता बलवता सौबलामाश्रितः स्त्रियम्
धिगस्तु मामधर्मज्ञं धिग्बुद्धिं धिक् च मे श्रुतं
यत्कृते पृथिवीपालः शेतेऽयमतथोचितः ६५
अहमप्युपवत्स्यामि यथैवायं गुरुर्मम ।
यदि राजा न भुंक्तेऽयं गान्धारी च यशस्विनी

वैशम्पायन उवाच ।

ततोऽस्य पाणिना राजन् जलशीतेन पाण्डवः
उरो मुखं च शनकैः पर्यमार्जत धर्मवित् ॥६७
तेन रत्नौषधिमता पुण्येन च सुगन्धिना ।
पाणिस्पर्शेन राज्ञः स राजा संज्ञामवाप ह ६८

धृतराष्ट्र उवाच ।

स्पृश मां पाणिना भूयः परिष्वज च पाण्डव
जीवामीवातिसंस्पर्शात्तव राजीवलोचन ६९
मूर्धानं च तवाघ्रातुमिच्छामि मनुजाधिप ।
पाणिभ्यां हि परिस्प्रष्टुं प्रीणनं हि महन्मम ॥
अष्टमो ह्यद्य कालोयमाहारस्य कृतस्य मे ।
येनाहं कुरुशार्दूल शक्नोमि न विचेष्टितुम् ७१
व्यायामश्चायमत्यर्थं कृतस्त्वामभियाचता ।
ततो ग्लानमनास्तात नष्टसंज्ञ इवाभवम् ७२

*तवामृतरसप्रख्यं हस्तस्पर्शमिमं प्रभो ।
लब्ध्वा सञ्जीवितोऽस्मीति मन्ये कुरुकुलोद्वह
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पित्रा ज्येष्ठेन भारत ।
पस्पर्श सर्वगात्रेषु सौहार्दात्तं शनैस्तदा ७४
उपलभ्य ततः प्राणान् धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
बाहुभ्यां सपरिष्वज्य मूर्ध्न्याजिघ्रत पाण्डवं
विदुरादयश्च ते सर्वे रुरुदुर्दुःखिता भृशम् ।
अतिदुःखात्तु राजानं नोचुः किञ्चन पाण्डवं
गान्धारी त्वेव धर्मज्ञा मनसोद्वहती भृशम् ।
दुःखान्यधारयद्राजन्नैवमित्येव चाब्रवीत् ॥
इतरास्तु स्त्रियः सर्वाः कुन्त्या सह सुदुःखिताः
नेत्रैरागतविक्लेदैः परिवार्य स्थिताऽभवन् ७८
अथाब्रवीत्पुनर्वाक्यं धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् ।
अनुजानीहि मां राजंस्तापस्ये भरतर्षभ ७९
ग्लायते मे मनस्तात भूयो भूयः प्रजल्पतः ।
न मामतः परं पुत्र परिक्लेष्टुमिहार्हसि ॥ ८०

तस्मिंस्तु कौरवेन्द्रे तं तथा ब्रुवति पाण्डवम्
सर्वेषामिव योधानामार्तनादो महानभूत् ८१
दृष्ट्वा कृशं विवर्णं च राजानमतथोचितम् ।
उपवासपरिश्रान्तं त्वगस्थिपरिवारणम् ॥ ८२
धर्मपुत्रः स्वपितरं परिष्वज्य महाप्रभुम् ।
शोकजं बाष्पमुत्सृज्य पुनर्वचनमब्रवीत् ८३
न कामये नरश्रेष्ठ जीवितं पृथिवीं तथा ।
यथा तव प्रियं राजंश्चिकीर्षामि परंतप ८४
यदि चाहमनुग्राह्यो भवतो दयितोऽपि वा ।
क्रियतां तावदाहारस्ततो वेत्स्याम्यहं परम् ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् ।
अनुज्ञातस्त्वया पुत्र भुञ्जीयामिति कामये ८६
इति ब्रुवति राजेन्द्रे
धृतराष्ट्रे युधिष्ठिरम् ।
ऋषिः सत्यवतीपुत्रो
व्यासोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्वेदे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

व्यास उवाच ।
युधिष्ठिर महाबाहो यथाह कुरुनन्दनः ।
धृतराष्ट्रो महातेजास्तत्कुरुष्वाविचारयन् १
अयं हि वृद्धो नृपतिर्हतपुत्रो विशेषतः ।
नेदं कृच्छ्रं चिरतरं सहेदिति मतिर्मम ॥ २
गान्धारी च महाभागा प्राज्ञा करुणवेदिनी ।
पुत्रशोकं महाराज धैर्येणोद्वहते भृशम् ॥ ३
अहमप्येतदेव त्वां ब्रवीमि कुरु मे वचः ।
अनुज्ञां लभतां राजा मा वृथेह मरिष्यति ४
राजर्षीणां पुराणानामनुयातु गतिं नृपः ।
राजर्षीणां हि सर्वेषामन्ते वनमुपाश्रयः ॥ ५

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तः स तदा राजा व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रत्युवाच महातेजा धर्मराजो महामुनिम् ६
भगवानेव नो मान्यो भगवानेव नो गुरुः ।
भगवानस्य राज्यस्य कुलस्य च परायणम् ७
अहं तु पुत्रो भगवन् पिता राजा गुरुश्च मे ।
निदेशवर्ती च पितुः पुत्रो भवति धर्मतः ॥ ८
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तः स तु तं प्राह व्यासो वेदविदां वरः
युधिष्ठिरं महातेजाः पुनरेव महाकविः ॥ ९
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
राजाऽयं वृद्धतां प्राप्तः प्रमाणे परमे स्थितः १०

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

* 'अमृतसुखस्पर्शम्' इति पाठः ।

४

युधिष्ठिरेति ॥१॥ अहमिति पौत्रोऽपि । 'आत्मा वै पुत्रनामासि'इति पुत्राभिन्नत्वात्पुत्र एवाह ते तत्र राजा तु मे मम पिता गुरुश्च ॥८॥ परमे प्रमाणे उपनिषन्मते ॥१०॥

सोऽयं मयाऽभ्यनुज्ञात-
स्त्वया च पृथिवीपतिः ।
करोतु स्वमभिप्रायं
माऽस्य विघ्नकरो भव ॥ ११
एष एव परो धर्मो राजर्षीणां युधिष्ठिर ।
समरे वा भवेन्मृत्युर्वने वा विधिपूर्वकम् १२
पित्रा तु तव राजेन्द्र पाण्डुना पृथिवीक्षिता
शिष्यवृत्तेन राजायं गुरुवत्पर्युपासितः ॥ १३
क्रतुभिर्दक्षिणावद्भी रत्नपर्वतशोभितैः ।
अहद्भिरिष्टं गौर्भुक्ता प्रजाश्च परिपालिताः ॥
पुत्रसंस्थं च विपुलं राज्यं विप्रोषिते त्वयि ।
त्रयोदशसमा भुक्तं दत्तं च विविधं वसु १५
त्वया चायं नरव्याघ्र गुरुशुश्रूषयाऽनघ ।
आराधितः सभृत्येन गान्धारी च यशस्विनी
अनुजानीहि पितरं समयोऽस्य तपोविधौ ।
न मन्युर्विद्यते चास्य सुसूक्ष्मोऽपि युधिष्ठिर

वैशम्पायन उवाच ।

एतावदुक्त्वा वचनमनुमान्य च पार्थिवम्।
तथाऽस्त्विति च तेनोक्तः कौन्तेयेन ययौ वनम्
गते भगवति व्यासे राजा पाण्डुसुतस्तदा ।
प्रोवाच पितरं वृद्धं मन्दं मन्दमिवानतः ॥ १९
यदाह भगवान्व्यासो यच्चापि भवतो मतम् ।
यथाऽऽह च महेष्वासः कृपो विदुर एव च
युयुत्सुः सञ्जयश्चैव तत्कर्तास्म्यहमञ्जसा ।
सर्वे एव हि मान्या मे कुलस्य हि हितैषिणः
इदं तु याचे नृपते त्वामहं शिरसा नतः ।
क्रियतां तावदाहारस्ततो गच्छाश्रमं प्रति २२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासानुज्ञायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

वैशम्पायन उवाच ।

ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रः प्रतापवान्।
ययौ स्वभवनं राजा गान्धार्याऽनुगतस्तदा १
मन्दप्राणगतिर्धीमान् कृच्छ्रादिव समुद्वहन् ।
पदातिः स महीपालो जीर्णो गजपतिर्यथा २
तमन्वगच्छद्विदुरो विद्वान् सूतश्च सञ्जयः ।
स चापि परमेष्वासः कृपः शारद्वतस्तथा ३
स प्रविश्य गृहं राजन्कृतपूर्वाह्णिकक्रियः ।
तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठानाहारमकरोत्तदा ॥ ४
गान्धारी चैव धर्मज्ञा कुन्त्या सह मनस्विनी
वधूभिरुपचारेण पूजिताऽभुंक्त भारत ॥ ५
कृताहारं कृताहाराः सर्वे ते विदुरादयः ।
पाण्डवाश्च कुरुश्रेष्ठमुपातिष्ठन्त तं नृपम् ॥ ६
ततोऽब्रवीन्महाराज कुन्तीपुत्रमुपह्वरे ।
निषण्णं पाणिना पृष्ठे संस्पृशन्नम्बिकासुतः ७
अप्रमादस्त्वया कार्यः सर्वथा कुरुनन्दन ।
अष्टाङ्गे राजशार्दूल राज्ये धर्मपुरस्कृते ॥ ८
तत्तु शक्यं महाराज
रक्षितुं पाण्डुनन्दन ।
राज्यं धर्मेण कौन्तेय
विद्वानसि निबोध तत् ॥ ९
विद्यावृद्धान् सदैव त्वमुपासीथा युधिष्ठिर ।
शृणुयास्ते च यद्ब्रूयुः कुर्याश्चैवाविचारयन् १०
प्रातरुत्थाय तान् राजन्
पूजयित्वा यथाविधि ।
कृत्यकाले समुत्पन्ने
पृच्छेथाः कार्यमात्मनः ॥ ११
ते तु संमानिता राजंस्त्वया कार्यहितार्थिना
प्रवक्ष्यन्ति हितं तात सर्वथा तव भारत १२
इन्द्रियाणि च सर्वाणि वाजिवत्परिपालय ।
हितायैव भविष्यन्ति रक्षितं द्रविणं यथा १३

---

तपोविधौ तप करणें ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ४

५

तत इति ॥ १ ॥ अभुंक्त भुक्तवती ॥ ५ ॥ अष्टांगे स्वाम्यमात्यादियुते ॥ ८ ॥

अमात्यानुपधा^८तीतान्
पितृपैतामहान् शुचीन् ।
दान्तान् कर्मसु पुण्यांश्च
पुण्यान् सर्वेषु योजयेः ॥ १४
चारयेथाश्च सततं चारैरविदितः परैः ।
परीक्षितैर्बहुविधैः स्वराष्ट्रप्रतिवासिभिः ॥ १५
पुरं च ते सुगुप्तं स्याद्दृढप्राकारतोरणम् ।
अट्टाट्टालकसम्बाधं षट्पदं सर्वतोदिशम् १६
तस्य द्वाराणि सर्वाणि पर्याप्तानि बृहन्ति च
सर्वतः सुविभक्तानि यन्त्रैरारक्षितानि च ॥
पुरुषैरलमर्थस्ते विदितैः कुलशीलतः ।
आत्मा च रक्ष्यः सततं भोजनादिषु भारत ॥
विहाराहारकालेषु माल्यशय्यासनेषु च ।
स्त्रियश्च ते सुगुप्ताः स्युर्वृद्धैराप्तैरधिष्ठिताः १९
शीलवद्भिः कुलीनैश्च विद्वद्भिश्च युधिष्ठिर ।
मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान्विद्याविशारदान्
विनीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून् ।
तैः सार्धं मन्त्रयेथास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह ॥
समस्तैरपि च व्यस्तैर्व्यपदेशेन केनचित् ।
सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं चारुह्य मन्त्रयेः ॥ २२
अरण्ये निःशलाके वा न च रात्रौ कथञ्चन ।
वानराः पक्षिणश्चैव ये मनुष्यानुसारिणः २३
सर्वे मन्त्रगृहे वर्ज्या ये चापि जडपङ्गवः ।
मन्त्रभेदे हि ये दोषा भवन्ति पृथिवीक्षिताम्
न ते शक्याः समाधातुं कथंचिदिति मे मतिः
दोषांश्च मन्त्रभेदस्य ब्रूयास्त्वं मन्त्रिमण्डले ॥
अभेदे च गुणा राजन् पुनः पुनररिन्दम ।
पौरजानपदानां च शौचाशौचे युधिष्ठिर ॥
यथा स्याद्विदितं राजंस्तथा कार्यं कुरूद्वह ।
व्यवहाराश्च ते राजन्नित्यमाप्तैरधिष्ठिताः ॥२७
योज्यस्तुष्टैर्हितै राजन्नित्यं चारैरनुष्ठिताः ।
परिमाणं विदित्वा च दण्डं दण्ड्येषु भारत ॥
प्रणयेयुर्यथान्यायं पुरुषास्ते युधिष्ठिर ।
आदानरुचयश्चैव परदाराभिमर्शिनः ॥ २९
उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्या व्याहारिणस्तथा ।
आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हर्तारः साहसप्रियाः ॥
सभाविहारभेत्तारो वर्णानां च प्रदूषकाः ।
हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्तव्या देशकालतः
प्रातरेव हि पश्येथा ये कुर्युर्व्ययकर्म ते ।
अलङ्कारमथो भोज्यमत ऊर्ध्वं समाचरेः ॥ ३२
पश्येथाश्च ततो योधान्
सदा त्वं प्रतिहर्षयन् ।
दूतानां च चराणां च
प्रदोषस्ते सदा भवेत् ॥ ३३
सदा चापररात्रान्ते
भवेत्कार्यार्थनिर्णयः ।
मध्यरात्रे विहारस्ते
मध्याह्ने च सदा भवेत् ॥ ३४
सर्वे त्वौपयिकाः कालाः कार्याणां भरतर्षभ
तथैवालंकृतः काले तिष्ठेथा भूरिदक्षिण ॥ ३५
चक्रवत्तात कार्याणां पर्यायो दृश्यते सदा ।
कोशस्य निचये यत्नं कुर्वीथा न्यायतः सदा
विविधस्य महाराज विपरीतं विवर्जयेः ।
चारैर्विदित्वा शत्रूंश्च ये राज्ञामन्तरैषिणः ३७
तानाप्तैः पुरुषैर्दूराद्घातयेथा नराधिप ।
कर्म दृष्ट्वाऽथ भृत्यास्त्वं वरयेथाः कुरूद्वह ३८
कारयेथाश्च कर्माणि युक्तायुक्तैरधिष्ठितैः ।
सेनाप्रणेता च भवेत्तव तात दृढव्रतः ॥ ३९
शूरः क्लेशसहश्चैव हितो भक्तश्च पूरुषः ।
सर्वे जनपदाश्चैव तव कर्माणि पाण्डव ॥ ४०
गोवद्रासभवच्चैव कुर्युर्ये व्यवहारिणः ।
स्वरन्ध्रं पररन्ध्रं च स्वेषु चैव परेषु च ॥ ४१

---

कर्मसु पुण्यान् जन्मना च पुण्यान् अमात्यांश्चारयेथा इत्युत्तरेणान्वयः ॥ १४ ॥ अट्टाः दुर्गोपरिभागे रक्षारस्थानानि, षट्पदं षड्भिः पदैः पदनीयैः स्थानैर्युक्तं तेन सप्तप्राकारमिति गम्यते । तत्र सप्तमस्यान्तःपुरत्वात् षडेवान्येषां पदनीयानि स्थानानि ॥१६॥ निःशलाके अतृणे सतृणे ह्यासन्नः परचारो ज्ञातुमशक्य इति २३ परिमाणं दण्ड्यधनस्यापराधस्य च ॥२८॥ आदानरुचयः उत्कोचोपजीविनश्चौरा वा ॥ २९ ॥ हिरण्यदण्ड्या वध्या पूर्वोक्ताः सर्वे देशकालानुरोधेन दण्ड्या वा वध्या वेति ज्ञेयम् ॥३१॥ प्रदोषो रजनीमुखं, दूतादीनां दर्शनकालः ॥३३॥ तेभ्यः श्रुतानामर्थानां निर्णये अपररात्र ॥ ३४ ॥ गवादिवत् आहारमात्रवेतनाः विष्टिगृहीतानामप्याहारमात्रं देयमित्यर्थः । व्यवहारिणः कारुशिल्पिप्रभृतय ॥ ४१ ॥

---

८ ' भिया धर्मार्थकामैश्च परीक्षा या तु सोपधा ' इत्यभिधानचिन्तामणि ।

उपलक्षयितव्यं ते नित्यमेव युधिष्ठिर ।
देशजाश्चैव पुरुषा विक्रान्ताः स्वेषु कर्मसु ४२
यात्राभिरनुरूपाभिरनुग्राह्या हितास्त्वया ।
गुणार्थिनां गुणः कार्यो विदुषा वै जनाधिप
अविचायाश्च ते ते स्युरचला इव निश्चयः ४३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपदेशे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ।

## ६

धृतराष्ट्र उवाच ।

मण्डलानि च बुध्येथाः परेषामात्मनस्तथा
उदासीनगणानां च मध्यस्थानां च भारत १
चतुर्णां शत्रुजातानां सर्वेषामाततायिनाम् ।
मित्रं चामित्रमित्रं च बोद्धव्यं तेऽरिकर्शन २॥
तथाऽमात्या जनपदा दुर्गाणि विविधानि च
बलानि च कुरुश्रेष्ठ भवत्येषां यथेच्छकम् ३
ते च द्वादश कौन्तेय राज्ञां वै विषयात्मकाः
मन्त्रिप्रधानाश्च गुणाः षष्टिर्द्वादश च प्रभो ४
एतन्मण्डलमित्याहुराचार्या नीतिकोविदाः।
अत्र षाड्गुण्यमायत्तं युधिष्ठिर निबोध तत्
वृद्धिक्षयौ च विज्ञेयौ स्थानं च कुरुसत्तम।
द्विसप्तत्यां महाबाहो ततः षाड्गुण्यजा गुणाः
यदा स्वपक्षो बलवान् परपक्षस्तथाऽबलः।
विगृह्य शत्रून्कौन्तेय जेयः क्षितिपतिस्तदा ७
यदा परे च बलिनः
स्वपक्षश्चैव दुर्बलः ।
सार्धं विद्वांस्तदा क्षीणः
परैः सन्धिं समाश्रयेत् ॥ ८
द्रव्याणां सञ्चयश्चैव कर्तव्यः सुमहांस्तथा ।
यदा समर्थो यानाय न चिरेणैव भारत ॥ ९
तदा सर्वं विधेयं स्यात्स्थानेन स विचारयेत्।
भूमिरल्पफला देया विपरीतस्य भारत ॥ १०
हिरण्यं कुप्यभूयिष्ठं मित्रं क्षीणमथो बलम् ।
विपरीतान्निगृह्णीयात्स्वं हि सन्धिविशारदः
सन्ध्यर्थं राजपुत्रं वा लिप्सेथा भरतर्षभ ।
विपरीतं न तच्छ्रेयः पुत्र कस्यांचिदापदि १२
तस्याः प्रमोक्षे यत्नं च
कुर्याः सोपायमन्त्रवित् ।
प्रकृतीनां च राजेन्द्र
राजा दीनान्विभावयेत् ॥ १३
क्रमेण युगपत्सर्वं व्यवसायं महाबलः ।
पीडनं स्तंभनं चैव कोशभंगस्तथैव च ॥ १४
कार्यं यत्नेन शत्रूणां स्वराज्यं रक्षता स्वयम् ।
न च हिंस्योऽभ्युपगतः सामन्तो वृद्धिमिच्छता
कौन्तेय तं न हिंसेत्स यो महीं विजिगीषते
गणानां भेदने योगमीप्सेथाः सह मन्त्रिभिः
साधुसंग्रहणाच्चैव पापनिग्रहणात्तथा ।
दुर्बलाश्चैव सततं नान्वेष्टव्या बलीयसा १७

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

६

**मण्डलानीति** । अरिमित्रामित्यादीनि। उदासीनादन्यो मध्यमो द्वयोरपि इष्टाकाङ्क्षी ॥१॥ चतुर्णां शत्रुपक्षे जाताना शत्रुः शत्रुमित्र उभयोर्जयार्थी पराजयार्थी चेति॥२॥यथेच्छकं परैर्भेद्यत्वमभेद्यत्वं च भवति तस्मादवहितास्तिष्ठेत् । यथा भेदो न भवेदिति ॥ ३ ॥ द्वादश चत्वार शत्रुजाता षट् आततायिनः, मित्रं आमित्रामित्रं चेति षष्टिर्गुणा । कृष्यादीन्यष्टौ सन्धानकर्माणि बालादयो विंशतिरसन्धेया । नास्तिक्यादयश्चतुर्दश दोषा मन्त्रादीन्यष्टादश तीर्थानीति एतेषु केचित् हानार्थं ज्ञातव्या केचिदुपादानार्थम् ॥ ४ ॥ षाड्गुण्यादय प्रागेव व्याख्याता ॥ ५ ॥ सन्ध्यर्थमिति सार्धं । य सन्धिं करोति तस्य पुत्रं स्वनिकटे स्थापयेदित्यर्थं । तदकरणे महत्यापदायाति कदाचित्तस्यामप्यागतायाममोक्षे तत्परिहारे यत्नोऽपि कर्तव्य ॥ १२ ॥ दीनान् अन्धबधिरादीन् विभावयेत्पूजयेत् ॥ १३ ॥ युगपद्वेति कुर्यादिति च शेष ॥ १४ ॥ तेन हिंसेत्स जिगीषुरिति शेष ॥ १६ ॥ नान्वेष्टव्या नोच्छेदनीया ॥ १७ ॥

तिष्ठेथा राजशार्दूल वैतसीं वृत्तिमास्थितः ।
यद्येनमभियायाच्च बलवान् दुर्बलं नृपः ॥ १८
सामादिभिरुपायैस्तं क्रमेण विनिवर्तयेः ।
अशक्नुवंश्च युद्धाय निष्पतेत्सह मन्त्रिभिः १९
कोशेन पौरैर्दण्डेन ये चास्य प्रियकारिणः ।
असंभवे तु सर्वस्य यथा मुख्येन निष्पतेत् ।
क्रमेणानेन मुक्तिः स्याच्छरीरमिति केवलम्

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवास पर्वणि धृतराष्ट्रोपदेशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ७

धृतराष्ट्र उवाच ।
सन्धिविग्रहमप्यत्र पश्येथा राजसत्तम ।
द्वियोनिं विविधोपायं बहुकल्पं युधिष्ठिर ॥१
कौरव्य पर्युपासीथाः स्थित्वा द्वैविध्यमात्मनः
तुष्टपुष्टबलः शत्रुरात्मवानिति च स्मरेत् ॥ २
पर्युपासनकाले तु विपरीतं विधीयते ।
आमर्दकाले राजेन्द्र व्यपसर्पेत्ततः परम् ॥ ३
व्यसनं भेदनं चैव शत्रूणां कारयेत्ततः ।
कर्षणं भीषणं चैव युद्धे चैव बलक्षयम् ॥ ४
प्रयास्यमानो नृपतिस्त्रिविधां परिचिन्तयेत् ।
आत्मनश्चैव शत्रोश्च शक्तिं शास्त्रविशारदः ५
उत्साहप्रभुशक्तिभ्यां मन्त्रशक्त्या च भारत
उपपन्नो नृपो यायाद्विपरीतं च वर्जयेत् ॥ ६
आददीत बलं राजा मौलं मित्रबलं तथा ।
अटवीबलं भृतं चैव तथा श्रेणीबलं प्रभो ॥ ७
तत्र मित्रबलं राजन्मौलं चैव विशिष्यते ।
श्रेणीबलं भृतं चैव तुल्ये एवेति मे मतिः ॥ ८
तथाऽऽचारबलं चैव परस्परसमं नृप ।
विज्ञेयं बहुकालेषु राज्ञा काल उपस्थिते ॥ ९
आपदश्चापि बोद्धव्या बहुरूपा नराधिप ।
भवन्ति राज्ञा कौरव्य यास्ताः पृथगतः शृणु
विकल्पा बहुधा राजन्नापदां पाण्डुनन्दन
सामादिभिरुपन्यस्य गणयेत्तान्नृपः सदा ॥ ११
यात्रां गच्छेद्बलैर्युक्तो राजा सद्भिः परंतप ।
युक्तश्च देशकालाभ्यां बलैरात्मगुणैस्तथा ॥ १२
हृष्टपुष्टबलो गच्छेद्राजा वृद्ध्युदये रतः ।
अकृशश्चाप्यथो यायादनृतावपि पाण्डव १३
तृणाश्मानं वाजिरथप्रवाहां
ध्वजद्रुमैः संवृतकूलरोधसम् ।
पदातिनागैर्बहुकर्दमां नदीं
सपत्ननाशे नृपतिः प्रयोजयेत् ॥ १४
अथोपपत्त्या शकटं पद्मवज्रं च भारत ।
उशना वेद यच्छास्त्रं तत्रैतद्विहितं विभो १५
चारयित्वा परबलं कृत्वा स्वबलदर्शनम् ।
स्वभूमौ योजयेद्युद्धं परभूमौ तथैव च ॥ १६
बलं प्रसादयेद्राजा निक्षिपेद्बलिनो नरान् ।
ज्ञात्वा स्वविषयं तत्र सामादिभिरुपक्रमेत् १७
सर्वथैव महाराज शरीरं धारयेदिह ।
प्रेत्य चेह च कर्तव्यमात्मनिःश्रेयसं परम् १८

वैतसीं वृत्तिं प्रबलेष्विति शेषः। एनं त्वाम् ॥१८॥ असंभवे उपायान्तरस्य मुख्येन शरीरेणैव युद्धाय निष्पतेत् एवं शरीरमोक्षणे मुक्तिं शूरस्य स्यादित्यर्थः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

संधीति । प्रबलप्रतियोगिकौ दुर्बलप्रतियोगिकौ चेति द्वियोनी सन्धिविग्रहौ ॥ १ ॥ स्थित्वा स्थिरो भूत्वा द्वैविध्यं बलाबलं ज्ञात्वा शत्रुं पर्युपास्वेति भावः । स्मरेज्जयोपायं विचारयेन्न त्वकस्मात्प्रयायात् ॥ २ ॥ विपरीतं अतुष्टपुष्टबलं प्रयायादित्यर्थः ॥ ३ ॥ स्मरेदित्युक्तं विस्पष्टयति—**व्यसनमिति** ॥ ४ ॥ त्रिविधां शक्तिम् ॥ ५ ॥ तामेवाह—**उत्साहेति** ॥ ६ ॥ मौलं धनबलम् ॥ ७ ॥ **विकल्पा** इतिप्रभृतयः तान् उपन्यस्य गणयेत् न तु गोपयित्वाऽवहेलयेत् ॥ ११ ॥ अनृतौ अकालेऽपि शिशिरादौ ॥ १३ ॥ शकटादयो व्यूहविशेषाः ॥ १५ ॥

एवमेतन्महाराज राजा सम्यक् समाचरन्।
प्रेत्य स्वर्गमवाप्नोति प्रजा धर्मेण पालयन् १९
एवं त्वया कुरुश्रेष्ठ वर्तितव्यं प्रजाहितम्।
उभयोर्लोकयोस्तात प्राप्तये नित्यमेव हि २०
भीष्मेण सर्वमुक्तोऽसि कृष्णेन विदुरेण च।
मयाऽप्यवश्यं वक्तव्यं प्रीत्या ते नृपसत्तम २१
एतत्सर्वं यथान्यायं कुर्वीथा भूरिदक्षिण।
प्रियस्तथा प्रजानां त्वं स्वर्गे सुखमवाप्स्यसि॥
अश्वमेधसहस्रेण यो यजेत्पृथिवीपतिः।
पालयेद्वापि धर्मेण प्रजास्तुल्यं फलं लभेत् २२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपसंवादे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

## ८

युधिष्ठिर उवाच।
एवमेतत्करिष्यामि यथाऽऽत्थ पृथिवीपते।
भूयश्चैवानुशास्योऽहं भवता पार्थिवर्षभ॥ १
भीष्मे स्वर्गमनुप्राप्ते गते च मधुसूदने।
विदुरे संजये चैव कोऽन्यो मां वक्तुमर्हति २
यत्तु मामनुशास्तीह भवानद्य हिते स्थितः।
कर्तास्मि तन्महीपाल निर्वृतो भव पार्थिव
वैशम्पायन उवाच।
एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराजेन धीमता।
कौन्तेयं समनुज्ञातुमियेष भरतर्षभ॥ ४
पुत्र संशाम्यतां तावन्ममापि बलवान् श्रमः।
इत्युक्त्वा प्राविशद्राजा गान्धार्या भवनं तदा
तमासनगतं देवी गान्धारी धर्मचारिणी।
उवाच काले कालज्ञा प्रजापतिसमं पतिम् ६
अनुज्ञातः स्वयं तेन व्यासेन त्वं महर्षिणा।
युधिष्ठिरस्यानुमते कदाऽऽरण्यं गमिष्यसि ७
धृतराष्ट्र उवाच।
गान्धार्यहमनुज्ञातः स्वयं पित्रा महात्मना।
युधिष्ठिरस्यानुमते गन्ताऽस्मि न चिराद्वनम्
अहं हि तावत्सर्वेषां तेषां दुर्द्यूतदेविनाम्।
पुत्राणां दातुमिच्छामि प्रेतभावानुगं वसु॥ ९
सर्वप्रकृतिसान्निध्यं कारयित्वा स्ववेश्मनि।
वैशम्पायन उवाच।
इत्युक्त्वा धर्मराजाय प्रेषयामास वै तदा॥
स च तद्वचनात्सर्वं समानिन्ये महीपतिः।
ततः प्रतीतमनसो ब्राह्मणाः कुरुजाङ्गलाः ११
क्षत्रियाश्चैव वैश्याश्च शूद्राश्चैव समाययुः।
ततो निष्क्रम्य नृपतिस्तस्मादन्तःपुरात्तदा १२
ददृशे तं जनं सर्वं सर्वाश्च प्रकृतीस्तथा।
समवेतांश्च तान्सर्वान्पौरान् जानपदांस्तथा॥
तानागतानभिप्रेक्ष्य समस्तं च सुहृज्जनम्।
ब्राह्मणांश्च महीपाल नानादेशसमागतान् १४
उवाच मतिमान् राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
भवन्तः कुरवश्चैव चिरकालं सहोषिताः १५
परस्परस्य सुहृदः परस्परहिते रताः।
यदिदानीमहं ब्रूयामस्मिन्काल उपस्थिते १६
तथा भवद्भिः कर्तव्यमविचार्य वचो मम।
अरण्यगमने बुद्धिर्गान्धारीसहितस्य मे॥ १७
व्यासस्यानुमते राज्ञस्तथा कुन्तीसुतस्य मे।
भवन्तोऽप्यनुजानन्तु मा च वोऽभूद्विचारणा
अस्माकं भवतां चैव येयं प्रीतिर्हि शाश्वती।
न च साऽन्येषु देशेषु राज्ञामिति मतिर्मम १९
शान्तोऽस्मि वयसाऽनेन तथा पुत्रविनाकृतः
उपवासकृशश्चास्मि गान्धारीसहितोऽनघाः
युधिष्ठिरगते राज्ये प्राप्तश्चास्मि सुखं महत्।
मन्ये दुर्योधनैश्वर्याद्विशिष्टमिति सत्तमाः २१
मम चान्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य का गतिः।
ऋते वनं महाभागास्तन्माऽनुज्ञातुमर्हथ॥ २२

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्याय॥ ७॥

८

एवमिति॥ १॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे ते कुरुजाङ्गलाः।
बाष्पसंदिग्धया वाचा रुरुदुर्भरतर्षभ ॥ २३
तानविब्रुवतः किञ्चित्सर्वान् शोकपरायणान्
पुनरेव महातेजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रकृतवनगमनप्रार्थने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

धृतराष्ट्र उवाच ।
शान्तनुः पालयामास यथावद्वसुधामिमाम्।
तथा विचित्रवीर्यश्च भीष्मेण परिपालितः १
पालयामास नस्तातो विदितार्थो न संशयः ।
यथा च पाण्डुर्भ्राता मे दयितो भवतामभूत् २
स चापि पालयामास यथावत्तच्च वेत्थ ह।
मया च भवतां सम्यक् शुश्रूषा या कृताऽनघाः
असम्यग्वा महाभागास्तत्क्षन्तव्यमतन्द्रितैः ।
यदा दुर्योधनेनेदं भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ४
अपि तत्र नवो मन्दो दुर्बुद्धिरपराद्धवान्।
तस्यापराधाद्दुर्बुद्धेरभिमानान्महीक्षिताम् ॥ ५
विमर्दः सुमहानासीदनयात्मत्कृतादथ ।
तन्मया साधु वाऽपीदं यदि वा साधु वै कृतम्
तद्वो हृदि न कर्तव्यं मया बद्धोऽयमञ्जलिः ।
वृद्धोऽयं हतपुत्रोऽयं दुःखितोऽयं नराधिपः ७
पूर्वराज्ञां च पुत्रोऽयमिति कृत्वाऽनुजानथ ।
इयं च कृपणा वृद्धा हतपुत्रा तपस्विनी ॥ ८
गान्धारी पुत्रशोकार्ता युष्मान्याचति वै मया
हतपुत्राविमौ वृद्धौ विदित्वा दुःखितौ तथा
अनुजानीत भद्रं वो व्रजाव शरणं च वः ।
अयं च कौरवो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
सर्वैर्भवद्भिर्द्रष्टव्यः समेषु विषमेषु च ।
न जातु विषमं चैव गमिष्यति कदाचन ११
चत्वारः सचिवा यस्य भ्रातरो विपुलौजसः
लोकपालसमा ह्येते सर्वधर्मार्थदर्शिनः ॥ १२
ब्रह्मेव भगवानेष सर्वभूतजगत्पतिः ।
युधिष्ठिरो महातेजा भवतः पालयिष्यति १३
अवश्यमेव वक्तव्यमिति कृत्वा ब्रवीमि वः ।
एष न्यासो मया दत्तः सर्वेषां वो युधिष्ठिरः
भवन्तोऽस्य च वीरस्य
न्यासभूताः कृता मया ।
यदेव तैः कृतं किञ्चि-
द्व्यलीकं वः सुतैर्मम ॥ १५
यदन्येन मदीयेन तदनुज्ञातुमर्हथ ।
भवद्भिर्न हि मे मन्युः कृतपूर्वः कथञ्चन १६
अत्यन्तगुरुभक्तानामेषोऽञ्जलिरिदं नमः।
तेषामस्थिरबुद्धीनां लुब्धानां कामचारिणाम्
कृते याचेऽद्य वः सर्वान्
गान्धारीसहितोऽनघाः।
इत्युक्तास्तेन ते सर्वे
पौरजानपदा जनाः।
नोचुर्बाष्पकलाः किञ्चि-
द्वीक्षां चक्रुः परस्परम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रप्रार्थने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वाण नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

९

शान्तनुरिति ॥१॥ अन्येन भृत्येन अनुज्ञातुं क्षन्तुम् ॥१६॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे नवमोऽध्याय. ॥ ९ ॥

## १०

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तास्तु ते तेन पौरजानपदा जनाः ।
वृद्धेन राज्ञा कौरव्य नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ १
तूष्णींभूतांस्ततस्तांस्तु बाष्पकण्ठान्महीपतिः
धृतराष्ट्रो महीपालः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ २
वृद्धं च हतपुत्रं च धर्मपत्न्या सहानया ।
विलपन्तं बहुविधं कृपणं चैव सत्तमाः ॥ ३
पित्रा स्वयमनुज्ञातं कृष्णद्वैपायनेन वै ।
वनवासाय धर्मज्ञा धर्मज्ञेन नृपेण ह ॥ ४
सोऽहं पुनः पुनश्चैव शिरसावनतोऽनघाः ।
गान्धार्या सहितं तन्मां समनुज्ञातुमर्हथ ॥ ५
वैशम्पायन उवाच ।
तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य वाक्यानि करुणानि ते
रुरुदुः सर्वशो राजन्समेताः कुरुजाङ्गलाः ६
उत्तरीयैः करैश्चापि संच्छाद्य वदनानि ते ।
रुरुदुः शोकसंतप्ता मुहूर्तं पितृमातृवत् ॥ ७
हृदयैः शून्यभूतैस्ते धृतराष्ट्रप्रवासजम् ।
दुःखं सन्धारयन्तो हि नष्टसंज्ञा इवाभवन् ८
ते विनीय तमायासं धृतराष्ट्रवियोगजम् ।
शनैः शनैस्तदाऽन्योन्यमब्रुवन्संमतान्युत ९
ततः सन्धाय ते सर्वे वाक्यान्यथ समासतः
एकस्मिन्ब्राह्मणे राजन्निवेश्योचुर्नराधिपम् ॥
ततः स्वाचरणो विप्रः संमतोऽर्थविशारदः ।
साम्बाख्यो बह्वृचो राजन्वक्तुं समुपचक्रमे ॥
अनुमान्य महाराजं तत्सदः सम्प्रसाद्य च ।
विप्रः प्रगल्भो मेधावी स राजानमुवाच ह ॥
राजन्वाक्यं जनस्यास्य मयि सर्वं समर्पितम्
वक्ष्यामि तदहं वीर तज्जुषस्व नराधिप १३
यथा वदसि राजेन्द्र सर्वमेतत्तथा विभो ।
नात्र मिथ्या वचः किंचित्सुहृत्त्वं नः परस्परम्
न जात्वस्य च वंशस्य
राज्ञां कश्चित्कदाचन ।
राजाऽऽसीद्यः प्रजापालः
प्रजानामप्रियोऽभवत् ॥ १५
पितृवद्भ्रातृवच्चैव भवन्तः पालयन्ति नः ।
न च दुर्योधनः किंचिदयुक्तं कृतवान्नृपः ॥ १६
यथा ब्रवीति धर्मात्मा मुनिः सत्यवतीसुतः ।
तथा कुरु महाराज स हि नः परमो गुरुः १७
त्यक्ता वयं तु भवता दुःखशोकपरायणाः ।
भविष्यामश्चिरं राजन् भवद्गुणशतैर्युताः ॥ १८
यथा शान्तनुना गुप्ता राज्ञा चित्रांगदेन च ।
भीष्मवीर्योपगूढेन पित्रा तव च पार्थिव १९
भवद्बुद्धीक्षणाच्चैव पाण्डुना पृथिवीक्षिता ।
तथा दुर्योधनेनापि राज्ञा सुपरिपालिताः २०
न स्वल्पमपि पुत्रस्ते व्यलीकं कृतवान्नृप ।
पितरीव सुविश्वस्तास्तस्मिन्नपि नराधिपे ॥
वयमास्म यथा सम्यक् भवतो विदितं तथा
तथा वर्षसहस्राणि कुन्तीपुत्रेण धीमता २२
पाल्यमाना धृतिमता सुखं विन्दामहे नृप ।
राजर्षीणां पुराणानां भवतां पुण्यकर्मणाम् ॥
कुरुसंवरणादीनां भरतस्य च धीमतः ।
वृत्तं समनुयात्येष धर्मात्मा भूरिदक्षिणः ॥ २४
नात्र वाच्यं महाराज सुसूक्ष्ममपि विद्यते ।
उषिताः स्म सुखं नित्यं भवता परिपालिताः
सुसूक्ष्मं च व्यलीकं ते सपुत्रस्य न विद्यते ।
यत्तु ज्ञातिविमर्देऽस्मिन्नात्थ दुर्योधनं प्रति२६
भवन्तमनुनेष्यामि तत्रापि कुरुनंदन ।
ब्राह्मण उवाच ।
न तद्दुर्योधनकृतं न च तद्भवता कृतम् ॥२७
न कर्णसौबलाभ्यां च कुरवो यत् क्षयं गताः
दैवं तत्तु विजानीमो यन्न शक्यं प्रबाधितुम् ॥
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमपि बाधितुम् ।
अक्षौहिण्यो महाराज दशाष्टौ च समागताः
अष्टादशाहेन हताः कुरुभिर्योधपुङ्गवैः ।
भीष्मद्रोणकृपाद्यैश्च कर्णेन च महात्मना ३०
युयुधानेन वीरेण धृष्टद्युम्नेन चैव ह+ ।
चतुर्भिः पाण्डुपुत्रैश्च भीमार्जुनयमैस्तथा ॥ ३१
न च क्षयोऽयं नृपते ऋते दैवबलादभूत् ।
अवश्यमेव संग्रामे क्षत्रियेण विशेषतः ॥ ३२
कर्तव्यं निधनं काले मर्तव्यं क्षत्रबन्धुना ।
तैरियं पुरुषव्याघ्रैर्विद्या बाहुबलान्वितैः ॥ ३३
पृथिवी निहता सर्वा सहया सरथद्विपा ।
न स राज्ञां वधे सूनुः कारणं ते महात्मनाम्

१०
एवमिति ॥ १ ॥ + 'चाहवे' इति पा०

न भवान्न च ते भृत्या न कर्णो न च सौबलः
यद्विनष्टाः कुरुश्रेष्ठ राजानश्च सहस्रशः॥ ३५
सर्वं दैवकृतं विद्धि कोऽत्र किं वक्तुमर्हति।
गुरुर्मतो भवानस्य कृत्स्नस्य जगतः प्रभुः ३६
धर्मात्मानमतस्तुभ्यमनुजानीमहे सुतम्।
लभतां वीरलोकं स ससहायो नराधिपः॥
द्विजाग्र्यैः समनुज्ञातस्त्रिदिवे मोदतां सुखम्।
प्राप्स्यते च भवान्पुण्यं धर्मे च परमां स्थितिं
वेदधर्मं च कृत्स्नेन सम्यक् त्वं भव सुव्रतः।
दृष्टिप्रदानमपि ते पाण्डवान्प्रति नो वृथा ३९
समर्थास्त्रिदिवस्यापि पालने किं पुनः क्षितेः
अनुवर्त्स्यन्ति वा धीमन्समेषु विषमेषु च ४०
प्रजाः कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवान् शीलभूषणान्।
ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पारिबर्हांश्च पार्थिवः॥ ४१
पूर्वराजाभिपन्नांश्च पालयत्येव पाण्डवः।
दीर्घदर्शी मृदुर्दान्तः सदा वैश्रवणो यथा ४२
अक्षुद्रसचिवश्चायं कुन्तीपुत्रो महामनाः।
अथ मित्रे दयावांश्च शुचिश्च भरतर्षभः॥ ४३
ऋजु पश्यति मेधावी पुत्रवत्पालितः सदा।
विप्रियं च जनस्यास्य संसर्गाद्धर्मजस्य वै॥
न करिष्यन्ति राजर्षे तथा भीमार्जुनादयः।
मंदा मृदुषु कौरव्य तीक्ष्णेष्वाशीविषोपमाः॥
वीर्यवन्तो महात्मानः
पौराणां च हिते रताः।
न कुन्ती न च पाञ्चाली
न चोलूपी न सात्वती॥ ४६
अस्मिन् जने करिष्यन्ति
प्रतिकूलानि कर्हिचित्।
भवत्कृतमिमं स्नेहं
युधिष्ठिरविवर्धितम्॥ ४७
न पृष्ठतः करिष्यन्ति पौरा जानपदा जनाः।
अधर्मिष्ठानपि सतः कुन्तीपुत्रा महारथाः॥ ४८
मानवान्पालयिष्यन्ति भूत्वा धर्मपरायणाः।
स राजन्मानसं दुःखमपनीय युधिष्ठिरात् ४९
कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ।

वैशम्पायन उवाच।

तस्य तद्वचनं धर्म्यमनुमान्य गुणोत्तरम्॥
साधु साध्विति सर्वः स जनः प्रतिगृहीतवान्
धृतराष्ट्रश्च तद्वाक्यमभिपूज्य पुनः पुनः॥ ५१
विसर्जयामास तदा प्रकृतीस्तु शनैः शनैः।
स तैः संपूजितो राजा शिवेनावेक्षितस्तथा
प्राञ्जलिः पूजयामास तं जनं भरतर्षभ।
ततो विवेश भवनं गान्धार्या सहितो निजम्
व्युष्टायां चैव शर्वर्यां यच्चकार निबोध तत्५२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि प्रकृतिसान्त्वने दशमोऽध्यायः॥ १०॥

## ११

वैशम्पायन उवाच।

ततो रजन्यां व्युष्टायां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः
विदुरं प्रेषयामास युधिष्ठिरनिवेशनम्॥ १
स गत्वा राजवचनादुवाचाच्युतमीश्वरम्।
युधिष्ठिरं महातेजाः सर्वबुद्धिमतां वरः॥ २
धृतराष्ट्रो महाराजो वनवासाय दीक्षितः।
गमिष्यति वनं राजन्नागतां कार्तिकीमिमाम्
स त्वां कुरुकुलश्रेष्ठ किञ्चिदर्थमभीप्सति।
श्राद्धमिच्छति दातुं स गाङ्गेयस्य महात्मनः४
द्रोणस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः।
पुत्राणां चैव सर्वेषां ये चान्ये सुहृदो हताः ५
यदि चाप्यनुजानीषे सैन्धवापसदस्य च।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य युधिष्ठिरः॥६

---

दृष्टिप्रदानमपि अस्मदवेक्षार्थं पाण्डवेष्वस्माकं समर्पणम्॥ ३९॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे दशमोऽध्यायः॥ १०॥

११

तत इति॥ १॥ किंचिदर्थं किंचित्कार्यं कर्तुं त्वामभीप्सति द्रष्टुमिति शेषः। तदेवाह—श्राद्धमिति॥ ४॥

हृष्टः संपूजयामास गुडाकेशश्च पाण्डवः ।
न च भीमो दृढक्रोधस्तद्वचो जगृहे तदा ॥ ७
विदुरस्य महातेजा दुर्योधनकृतं स्मरन् ।
अभिप्रायं विदित्वा तु भीमसेनस्य फाल्गुनः
किरीटी किञ्चिदानम्य तमुवाच नरर्षभम् ।
भीम राजा पिता वृद्धो वनवासाय दीक्षितः
दातुमिच्छति सर्वेषां सुहृदामौर्ध्वदेहिकम् ।
भवता निर्जितं वित्तं दातुमिच्छति कौरवः
भीष्मादीनां महाबाहो तदनुज्ञातुमर्हसि ।
दिष्टया त्वद्य महाबाहो धृतराष्ट्रः प्रयाचते ॥
याचितो यः पुराऽस्माभिः
पश्य कालस्य पर्ययम् ।
योऽसौ पृथिव्याः कृत्स्नाया
भर्ता भूत्वा नराधिपः ॥ १२
परैर्विनिहतामात्यो वनं गन्तुमभीप्सति ।
मा तेऽन्यत्पुरुषव्याघ्र दानाद्भवतु दर्शनम् १३
अयशस्यमतोऽन्यत्स्यादधर्मश्च महाभुज ।
राजानमुपशिक्षस्व ज्येष्ठं भ्रातरमीश्वरम् १४
अर्हस्त्वमपि दातुं वै नादातुं भरतर्षभ ।
एवं ब्रुवाणं बीभत्सुं धर्मराजोऽभ्यपूजयत् १५
भीमसेनस्तु सक्रोधः प्रोवाचेदं वचस्तदा ।
वयं भीष्मस्य दास्यामः प्रेतकार्ये तु फाल्गुन
सोमदत्तस्य नृपतेर्भूरिश्रवस एव च ।
बाह्लीकस्य च राजर्षेर्द्रोणस्य च महात्मनः ॥
अन्येषां चैव सर्वेषां कुन्ती कर्णाय दास्यति ।
श्राद्धानि पुरुषव्याघ्र मा प्रादात्कौरवो नृपः
इति मे वर्तते बुद्धिर्मा नो निन्दन्तु शत्रवः ।
कष्टात्कष्टतरं यान्तु सर्वे दुर्योधनादयः ॥ १९
यैरियं पृथिवी कृत्स्ना घातिता कुलपांसनैः
कुतस्त्वमसि विस्मृत्य वैरं द्वादशवार्षिकम्
अज्ञातवासं गहनं द्रौपदीशोकवर्धनम् ।
क्व तदा धृतराष्ट्रस्य स्नेहोऽस्मद्गोचरो गतः २१
कृष्णाजिनोपसंवीतो हृताभरणभूषणः ।
सार्धं पाञ्चालपुत्र्या त्वं राजानमुपजग्मिवान्
क्व तदा द्रोणभीष्मौ तौ
सोमदत्तोऽपि वाऽभवत् ।
यत्र त्रयोदशसमा
वने वन्येन जीवथ ॥ २३
न तदा त्वां पिता ज्येष्ठः पितृत्वेनाभिवीक्षते
किं ते तद्विस्मृतं पार्थ यदेष कुलपांसनः ॥२४
दुर्बुद्धिर्विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत ।
तमेवंवादिनं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच वचनं धीमान् जोषमास्वेति भर्त्सयन्

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## १२

अर्जुन उवाच ।
भीम ज्येष्ठो गुरुर्मे त्वं नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे
धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिः सर्वथा मानमर्हति ॥ १
न स्मरन्त्यपराद्धानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि ।
असंभिन्नार्थमर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः ॥२
इति तस्य वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः
विदुरं प्राह धर्मात्मा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
इदं मद्वचनात्क्षत्तः कौरवं ब्रूहि पार्थिवम् ।
यावदिच्छति पुत्राणां श्राद्धं तावद्ददाम्यहम्
भीष्मादीनां च सर्वेषां सुहृदामुपकारिणाम् ।
मम कोशादिति विभो मा भूद्भीमः सुदुर्मनाः
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा धर्मराजस्तमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ।
भीमसेनः कटाक्षेण वीक्षां चक्रे धनञ्जयम् ६
ततः स विदुरं धीमान्वाक्यमाह युधिष्ठिरः
भीमसेने न कोपं स नृपतिः कर्तुमर्हति ॥ ७
परिक्लिष्टो हि भीमोऽपि हिमवृष्ट्यातपादिभिः
दुःखैर्बहुविधैर्धीमानरण्ये विदितं तव ॥ ८

---

कुतो हेतोर्वैरं विस्मृत्य असि जीवसि ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

१२

. भीमेति ॥ १ ॥

किं तु मद्वचनाद्ब्रूहि राजानं भरतर्षभ ।
यद्यदिच्छसि यावच्च गृह्यतां मद्गृहादिति ९
यन्मात्सर्यमयं भीमः करोति भृशदुःखितः ।
न तन्मनसि कर्तव्यमिति वाच्यः स पार्थिवः
यन्ममास्ति धनं किंचिदर्जुनस्य च वेश्मनि ।
तस्य स्वामी महाराज इति वाच्यः स पार्थिवः
ददातु राजा विप्रेभ्यो यथेष्टं क्रियतां व्ययः ।
पुत्राणां सुहृदां चैव गच्छत्वानृण्यमद्य सः १२
इदं चापि शरीरं मे तवायत्तं जनाधिप ।
धनानि चेति विद्धि त्वं न मे तत्रास्ति संशयः

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरानुमोदने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## १३

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तु राज्ञा स विदुरो बुद्धिसत्तमः ।
धृतराष्ट्रमुपेत्यैवं वाक्यमाह महार्थवत् ॥ १
उक्तो युधिष्ठिरो राजा भवद्वचनमादितः ।
स च संश्रुत्य वाक्यं ते प्रशशंस महाद्युतिः २
बीभत्सुश्च महातेजा निवेदयति ते गृहान् ।
वसु तस्य गृहे यच्च प्राणानपि च केवलान् ३
धर्मराजश्च पुत्रस्ते राज्यं प्राणान् धनानि च
अनुजानाति राजर्षे यच्चान्यदपि किंचन ॥ ४
भीमश्च सर्वदुःखानि संस्मृत्य बहुलान्युत ।
कृच्छ्रादिव महाबाहुरनुजज्ञे विनिःश्वसन् ५
स राजन् धर्मशीलेन राज्ञा बीभत्सुना तथा ।
अनुनीतो महाबाहुः सौहृदे स्थापितोऽपि च
न च मन्युस्त्वया कार्य इति त्वां प्राह धर्मराट्
संस्मृत्य भीमस्तद्वैरं यदन्यायवदाचरत् ॥ ७
एवंप्रायो हि धर्मोऽयं क्षत्रियाणां नराधिप ।
युद्धे क्षत्रियधर्मे च निरतोऽयं वृकोदरः ॥ ८
वृकोदरकृते चाहमर्जुनश्च पुनः पुनः ।
प्रसीद याचे नृपते भवान्प्रभुरिहास्ति यत् ९
तद्ददातु भवान्वित्तं यावदिच्छसि पार्थिव ।
त्वमीश्वरोऽस्य राज्यस्य प्राणानामपि भारत
ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पुत्राणामौर्ध्वदेहिकम् ।
इतो रत्नानि गाश्चैव दासीदासमजाविकम्
आनयित्वा कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छतु ।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च तत्र तत्र नृपाज्ञया ॥ १२
बह्वन्नरसपानाढ्याः सभा विदुर कारय ।
गवां निपानान्यन्यच्च विविधं पुण्यकं कुरु ॥
इति मामब्रवीद्राजा पार्थश्चैव धनंजयः ।
यदत्रानन्तरं कार्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १४
इत्युक्ते विदुरेणाथ धृतराष्ट्रोऽभिनन्द्य तान् ।
मनश्चक्रे महादाने कार्तिक्यां जनमेजय ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि विदुरवाक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

एवमिति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## १४

वैशम्पायन उवाच ।
विदुरेणैवमुक्तस्तु धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
प्रीतिमानभवद्राजन् राज्ञो जिष्णोश्च कर्मणि ॥ १
ततोऽभिरूपान् भीष्माय ब्राह्मणानृषिसत्तमान् ।
पुत्रार्थे सुहृदश्चैव स समीक्ष्य सहस्रशः ॥ २
कारयित्वान्नपानानि यानान्याच्छादनानि च ।
सुवर्णमणिरत्नानि दासीदासमजाविकम् ॥ ३
कम्बलानि च रत्नानि
ग्रामान् क्षेत्रं तथा धनम् ।
सालङ्कारान् गजानश्वान्
कन्याश्चैव वरस्त्रियः ॥ ४
उद्दिश्योद्दिश्य सर्वेभ्यो ददौ स नृपसत्तमः ।
द्रोणं संकीर्त्य भीष्मं च सोमदत्तं च बाह्लिकम् ॥ ५
दुर्योधनं च राजानं पुत्रांश्चैव पृथक् पृथक् ।
जयद्रथपुरोगाश्च सुहृदश्चापि सर्वशः ॥ ६
स श्राद्धयज्ञो ववृते बहुशो धनदक्षिणः ।
अनेकधनरत्नौघो युधिष्ठिरमते तदा ॥ ७
अनिशं यत्र पुरुषा गणका लेखकास्तदा ।
युधिष्ठिरस्य वचनादपृच्छन्त स्म तं नृपम् ॥ ८
आज्ञापय किमेतेभ्यः प्रदायं दीयतामिति ।
तदुपस्थितमेवात्र वचनान्ते ददुस्तदा ॥ ९
शतदेये दशशतं सहस्रे चायुतं तथा ।
दीयते वचनाद्राज्ञः कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ॥ १०
एवं स वसुधाराभिर्वर्षमाणो नृपाम्बुदः ।
तर्पयामास विप्रांस्तान्वर्षन् सस्यमिवाम्बुदः ॥ ११
ततोऽनन्तरमेवात्र सर्ववर्णान्महामते ।
अन्नपानरसौघेण प्लावयामास पार्थिवः ॥ १२
स वस्त्रधनरत्नौघो मृदङ्गनिनदो महान् ।
गवाश्वमकरावर्तो नानारत्नमहाकरः ॥ १३
ग्रामाग्रहारद्वीपाढ्यो मणिहेमजलार्णवः ।
जगत्संप्लावयामास धृतराष्ट्रोडुपोद्धतः ॥ १४
एवं स पुत्रपौत्राणां पितॄणामात्मनस्तथा ।
गान्धार्याश्च महाराज प्रददावौर्ध्वदेहिकम् ॥ १५
परिश्रान्तो यदासीत्स ददद्दानान्यनेकशः ।
निवर्तयामास तदा दानयज्ञं नराधिपः ॥ १६
एवं स राजा कौरव्य चक्रे दानमहाक्रतुम् ।
नटनर्तकलास्याढ्यं बह्वन्नरसदक्षिणम् ॥ १७
दशाहमेवं दानानि दत्त्वा राजाम्बिकासुतः ।
बभूव पुत्रपौत्राणामनृणो भरतर्षभ ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि दानयज्ञे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## १५

वैशम्पायन उवाच ।
ततः प्रभाते राजा स धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
आहूय पाण्डवान्वीरान् वनवासे कृतक्षणः ॥ १
गान्धारीसहितो धीमानभ्यनन्दद्यथाविधि ।
कार्तिक्यां कारयित्वेष्टिं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः ।
वधूजनवृतो राजा निर्ययौ भवनात्ततः ॥ ३
ततः स्त्रियः कौरवपाण्डवानां
याश्चापराः कौरवराजवंश्याः ।
तासां नादः प्रादुरासीत्तदानीं
वैचित्रवीर्ये नृपतौ प्रयाते ॥ ४
ततो लाजैः सुमनोभिश्च राजा
विचित्राभिस्तद्गृहं पूजयित्वा ।
संपूज्यार्थैर्भृत्यवर्गं च सर्वं
ततः समुत्सृज्य ययौ नरेन्द्रः ॥ ५

---

१४

**विदुरेणेति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

१५

**तदनेन** प्रबन्धेन प्रव्रजिष्यता कुटुम्बानुमति पितृतर्पणं चावश्यकम्। तदन्यतराकरणे प्रव्रज्याफलानिष्पत्तिरिति न प्रदर्श्य धृतराष्ट्रप्रव्रज्या वर्णयति—**ततः प्रभाते इत्यादिना** ॥१॥ इष्टिं उदवसनीयाख्याम् ॥ २ ॥

ततो राजा प्राञ्जलिर्वेपमानो
युधिष्ठिरः सस्वरं बाष्पकण्ठः।
विमुच्योच्चैर्महानादं हि साधो
क यास्यसीत्यपतत्तात भूमौ ॥ ६
तथाऽर्जुनस्तीव्रदुःखाभितप्तो
मुहुर्मुहुर्निःश्वसन् भारताग्र्यः।
युधिष्ठिरं मैवमित्येवमुक्त्वा
निगृह्याथो दीनवत्सीदमानः ॥ ७
वृकोदरः फाल्गुनश्चैव वीरौ
माद्रीपुत्रौ विदुरः सञ्जयश्च।
वैश्यापुत्रः सहितो गौतमेन
धौम्यो विप्राश्चान्वयुर्बाष्पकण्ठाः ८
कुन्ती गान्धारीं बद्धनेत्रां व्रजन्ती
स्कन्धासक्तं हस्तमथोद्वहन्ती।
राजा गान्धार्याः स्कन्धदेशेऽवसज्य
पाणिं ययौ धृतराष्ट्रः प्रतीतः ॥ ९

तथा कृष्णा द्रौपदी सात्वती च
बालापत्या चोत्तरा कौरवी च।
चित्राङ्गदायाश्च काश्चित्स्त्रियोऽन्याः
सार्धं राज्ञा प्रस्थितास्ता वधूभिः १०
तासां नादो रुदतीनां तदासी-
द्राजन् दुःखात्कुररीणामिवोच्चैः।
ततो निष्पेतुर्ब्राह्मणक्षत्रियाणां
विट्शूद्राणां चैव भार्याः समंतात् ॥
तन्निर्याणे दुःखितः पौरवर्गो
गजाह्वये चैव बभूव राजन्।
यथापूर्वं गच्छतां पाण्डवानां
द्यूते राजन्कौरवाणां सभायाः ॥ १२
या नापश्यंश्चन्द्रमसं न सूर्यं
रामाः कदाचिदपि तस्मिन्नरेन्द्रे।
महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे
शोकेनार्ता राजमार्गं प्रपेदुः ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्याणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## १६

वैशम्पायन उवाच।
ततः प्रासादहर्म्येषु वसुधायां च पार्थिव।
नारीणां च नराणांच निःस्वनः सुमहानभूत् १
स राजा राजमार्गेण नृनारीसंकुलेन च।
कथञ्चिन्निर्ययौ धीमान् वेपमानः कृताञ्जलिः
स वर्द्धमानद्वारेण निर्ययौ गजसाह्वयात्।
विसर्जयामास च तं जनौघं स मुहुर्मुहुः ॥ ३
वनं गन्तुं च विदुरो राज्ञा सह कृतक्षणः।
सञ्जयश्च महामात्रः सूतो गावल्गणिस्तथा ॥ ४
कृपं निवर्तयामास युयुत्सुं च महारथम्।
धृतराष्ट्रो महीपालः परिदाप्य युधिष्ठिरे ॥ ५
निवृत्ते पौरवर्गे च राजा सान्तःपुरस्तदा।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो निवर्तितुमियेष ह ॥ ८
सोऽब्रवीन्मातरं कुन्तीं वनं तमनुजग्मुषीम्।
अहं राजानमन्विष्ये भवती विनिवर्तताम् ७
वधूपरिवृता राज्ञि नगरं गन्तुमर्हसि।
राजा यात्वेष धर्मात्मा तापस्ये कृतनिश्चयः
इत्युक्ता धर्मराजेन बाष्पव्याकुललोचना।
जगामैव तदा कुन्ती गान्धारीं परिगृह्य ह ९
कुन्त्युवाच।
सहदेवे महाराज माऽप्रसादं कृथाः क्वचित्
एष मामनुरक्तो हि राजंस्त्वां चैव सर्वदा १०
कर्णं स्मरेथाः सततं संग्रामेष्वपलायिनम्।
अवकीर्णो हि समरे वीरो दुष्प्रज्ञया तदा ११
आयसं हृदयं नूनं मन्दाया मम पुत्रक।
यत्सूर्यजमपश्यन्त्याः शतधा न विदीर्यते १२

---

कुन्ती गान्धारीं अनयदिति शेष। किंभूता अर्थाद्गान्धार्या हस्तं स्कन्धाय स्कं उद्वहन्ती ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

तत इति ॥ १ ॥ माप्रसादं अप्रसादमिति च्छेदः १०

एवं गते तु किं शक्यं मया कर्तुमरिन्दम ।
मम दोषोऽयमत्यर्थं ख्यापितो यन्न सूर्यजः १३
तन्निमित्तं महाबाहो दानं दद्यास्त्वमुत्तमम् ।
सदैव भ्रातृभिः सार्धं सूर्यजस्यारिमर्दन १४
द्रौपद्याश्च प्रिये नित्यं स्थातव्यमरिकर्शन ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव नकुलश्च कुरूद्वह ॥ १५
समाधेयास्त्वया राजंस्त्वय्यद्य कुलधूर्गता ।
श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने त्वहम्
गान्धारीसहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्किनी

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तः स धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो वशी
विषादमगमत्तीमान्न च किञ्चिदुवाच ह १७
मुहूर्तमिव तु ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
उवाच मातरं दीनश्चिन्ताशोकपरायणः १८
किमिदं ते व्यवसितं नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।
न त्वामभ्यनुजानामि प्रसादं कर्तुमर्हसि १९
पुरोद्यतान्पुरा ह्यस्मानुत्साह्य प्रियदर्शने ।
विदुलाया वचोभिस्त्वं नास्मान्संत्यक्तुमर्हसि
निहत्य पृथिवीपालान् राज्यं प्राप्तमिदं मया
तव प्रज्ञामुपश्रुत्य वासुदेवान्नरर्षभात् ॥ २१
क्व सा बुद्धिरियं चाद्य
भवत्या यच्छ्रुतं मया ।
क्षत्रधर्मे स्थितिं चोक्त्वा
तस्याश्च्यवितुमिच्छसि ॥ २२

अस्मानुत्सृज्य राज्यं च
स्नुषा ह्रीमा यशस्विनि ।
कथं वत्स्यसि दुर्गेषु
वनेष्वद्य प्रसीद मे ॥ २३
इति बाष्पकला वाचः कुन्ती पुत्रस्य शृण्वती
सा जगामाश्रुपूर्णाक्षी भीमस्तामिदमब्रवीत् ॥
यदा राज्यमिदं कुन्ति भोक्तव्यं पुत्रनिर्जितम्
प्राप्तव्या राजधर्माश्च तदेयं.ते कुतो मतिः २५
किं वयं कारिताः पूर्वं भवत्या पृथिवीक्षयम् ।
कस्य हेतोः परित्यज्य वनं गन्तुमभीप्ससि
वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम्
दुःखशोकसमाविष्टौ माद्रीपुत्राविमौ तथा ॥
प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि ।
श्रियं यौधिष्ठिरीं मातर्भुङ्क्ष्व तावद्बलार्जिताम्
इति सा निश्चितैवाशु वनवासाय भाविनी ।
लालप्यतां बहुविधं पुत्राणां नाकरोद्वचः २९
द्रौपदी चान्वयाच्छ्वश्रूं विषण्णवदना तदा ।
वनवासाय गच्छन्तीं रुदती भद्रया सह ३०
सा पुत्रान् रुदतः सर्वान् मुहुर्मुहुरवेक्षती ।
जगामैव महाप्राज्ञा वनाय कृतनिश्चया ॥ ३१
अन्वयुः पाण्डवास्तां तु
सभृत्यान्तःपुरास्तथा ।
ततः प्रमृज्य साऽश्रूणि
पुत्रान्वचनमब्रवीत् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि कुन्तीवनप्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## १७

कुन्त्युवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
कृतमुद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतां नृपाः ॥ १
द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि ।
ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतमुद्धर्षणं मया ॥ २
कथं पाण्डोर्न नश्येत सन्ततिः पुरुषर्षभाः ।
यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम् ३

---

श्वश्रूश्वशुरयो॰ ज्येष्ठत्वात् धृतराष्ट्र पाण्डो॰ पितृसमस्तेन कुन्त्या॰ स श्वशुर इति ॥ १६ ॥ पुरोद्यतान् पुराद्बहिर्गन्तुमुद्यतान् विदुलाया वचोभि उत्साह्य उत्साहयुक्तान् कृत्वा ॥ २० ॥ भद्रया सुभद्रया ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवा॰ नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्याय १६॥

१७

एवमेतदिति, कुन्त्यास्त्विति, ततो भागीरथी तीर इति च त्रय॰ स्पष्टार्था॰अध्यायाः ॥ १ ॥

यूयमिन्द्रसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ।
मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येवं तत्कृतं मया ॥४
कथं धर्मभृतां श्रेष्ठो राजा त्वं वासवोपमः ।
पुनर्वने न दुःखी स्या इति चोद्धर्षणं कृतम् ५
नागायुतसमप्राणः ख्यातविक्रमपौरुषः ।
नायं भीमोऽत्ययं गच्छेदिति चोद्धर्षणं कृतम्
भीमसेनादवरजस्तथाऽयं वासवोपमः ।
विजयो नावसीदेत इति चोद्धर्षणं कृतम् ॥ ७
नकुलः सहदेवश्च तथेमौ गुरुवर्तिनौ ।
क्षुधा कथं न सीदेतामिति चोद्धर्षणं कृतम् ८
इयं च बृहती श्यामा तथाऽत्यायतलोचना ।
वृथा सभातले क्लिष्टा माभूदिति च तत्कृतम्
प्रेक्षतामेव वो भीम वेपन्तीं कदलीमिव ।
स्त्रीधर्मिणीमरिष्टाङ्गीं तथा द्यूतपराजिताम् ॥
दुःशासनो यदा मौर्ख्याद्दासीवत्पर्यकर्षत ।
तदैव विदितं मह्यं पराभूतमिदं कुलम् ॥ ११
निषण्णाः कुरवश्चैव तदा मे श्वशुरादयः ।
सा दैवं नाथमिच्छन्ती व्यलपत्कुररी यथा
केशपक्षे परामृष्टा पापेन हतबुद्धिना ।
यदा दुःशासनेनैषा तदा मुह्याम्यहं नृपाः १३
युष्मत्तेजोविवृद्ध्यर्थं मया ह्युद्धर्षणं कृतम् ।
तदानीं विदुलावाक्यैरिति तद्वित्त पुत्रकाः ॥
कथं न राजवंशोऽयं नश्येत्प्राप्य सुतान्मम ।
पाण्डोरिति मया पुत्रास्तस्मादुद्धर्षणं कृतम् ॥
न तस्य पुत्राः पौत्रा वा क्षतवंशस्य पार्थिव ।
लभन्ते सुकृताँल्लोकान् यस्माद्वंशः प्रणश्यति
भुक्तं राज्यफलं पुत्रा भर्तुर्मे विपुलं पुरा ।
महादानानि दत्तानि पीतः सोमो यथाविधि
नाहमात्मफलार्थं वै वासुदेवमचूचुदम् ।
विदुलायाः प्रलापैस्तैः पालनार्थं च तत्कृतम्
नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्रनिर्जितम् ।
पतिलोकानहं पुण्यान्कामये तपसा विभो १९
श्वश्रूश्वशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः ।
तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेवरम्२०
निवर्तस्व कुरुश्रेष्ठ भीमसेनादिभिः सह ।
धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्तु महदस्तु च ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि कुन्तीवाक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## १८

वैशम्पायन उवाच ।
कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा
पाण्डवा राजसत्तम ।
व्रीडिताः संन्यवर्तन्त
पाञ्चाल्या सहिताऽनघाः ॥ १
ततः शब्दो महानेव सर्वेषामभवत्तदा ।
अन्तःपुराणां रुदतां दृष्ट्वा कुन्तीं तथागताम् २
प्रदक्षिणमथावृत्य राजानं पाण्डवास्तदा ।
अभिवाद्य न्यवर्तन्त पृथां तामनिवर्त्य वै ३
ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
गान्धारीं विदुरं चैव समाभाष्यावगृह्य च ४
युधिष्ठिरस्य जननी देवी साधु निवर्त्यताम् ।
यथा युधिष्ठिरः प्राह तत्सर्वं सत्यमेव हि ॥ ५
पुत्रैश्वर्यं महदिदमपास्य च महाफलम् ।
का नु गच्छेद्वनं दुर्गं पुत्रानुत्सृज्य मूढवत् ६
राज्यस्थया तपस्तप्तं कर्तुं दानव्रतं महत् ।
अनया शक्यमेवाद्य श्रूयतां च वचो मम ७
गान्धारि परितुष्टोऽस्मि वध्वाः शुश्रूषणेन वै
तस्मात्त्वमेनां धर्मज्ञे समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८
इत्युक्ता सौबलेयी तु राज्ञा कुन्तीमुवाच ह ।
तत्सर्वं राजवचनं स्वं च वाक्यं विशेषवत् ९

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

१८

कुन्त्या इति ॥ १ ॥

न च सा वनवासाय देवी कृतमतिं तदा ।
शक्तोत्युपावर्तयितुं कुन्तीं धर्मपरां सतीम् १०
तस्यास्तां तु स्थितिं ज्ञात्वा
व्यवसायं कुरुस्त्रियः ।
निवृत्ताश्च कुरुश्रेष्ठान्
दृष्ट्वा प्ररुरुदुस्तदा ॥ ११
उपावृत्तेषु पार्थेषु सर्वास्वेव वधूषु च ।
ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा १२
पाण्डवाश्चातिदीनास्ते दुःखशोकपरायणाः ।
यानैः स्त्रीसहिताः सर्वे पुरं प्रविविशुस्तदा ॥
तदहृष्टमनानन्दं गतोत्सवमिवाभवत् ।
नगरं हास्तिनपुरं सस्त्रीवृद्धकुमारकम् ॥ १४
सर्वे चासन्निरुत्साहाः
पाण्डवा जातमन्यवः ।
कुन्त्या हीनाः सुदुःखार्ता
वत्सा इव विनाकृताः ॥ १५
धृतराष्ट्रस्तु तेनाह्ना गत्वा सुमहदन्तरम् ।
ततो भागीरथीतीरे निवासमकरोत्प्रभुः १६
प्रादुष्कृता यथान्यायमग्नयो वेदपारगैः ।
व्यराजन्त द्विजश्रेष्ठैस्तत्र तत्र तपोवने ॥ १७
प्रादुष्कृताग्निरभवत्
स च वृद्धो नराधिपः ।
स राजाऽग्नीन् पर्युपास्य
हुत्वा च विधिवत्तदा ॥ १८
सन्ध्यागतं सहस्रांशुमुपातिष्ठत भारत ।
विदुरः सञ्जयश्चैव राज्ञः शय्यां कुशैस्ततः १९
चक्रतुः कुरुवीरस्य गान्धार्याश्चाविदूरतः ।
गान्धार्याः सन्निकर्षे तु निषसाद कुशे सुखम्
युधिष्ठिरस्य जननी कुन्ती साधुव्रते स्थिता ।
तेषां संश्रवणे चापि निषेदुर्विदुरादयः ॥ २१
याजकाश्च यथोद्देशं द्विजा ये चानुयायिनः ।
प्राधीतद्विजमुख्या सा संप्रज्वलितपावका ॥
बभूव तेषां रजनी ब्राह्मीव प्रीतिवर्धिनी ।
ततो रात्र्यां व्यतीतायां कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः
हुत्वाऽग्निं विधिवत्सर्वे
प्रययुस्ते यथाक्रमम् ।
उदङ्मुखा निरीक्षन्त
उपवासपरायणाः ॥ २४
स तेषामतिदुःखोऽभून्निवासः प्रथमेऽहनि ।
शोचतां शोचमानानां +पौरजानपदैर्जनैः २५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## १९

वैशम्पायन उवाच ।
ततो भागीरथीतीरे मेध्ये पुण्यजनोचिते ।
निवासमकरोद्राजा विदुरस्य मते स्थितः १
तत्रैनं पर्युपातिष्ठन् ब्राह्मणा वनवासिनः ।
क्षत्रविट्शूद्रसंघाश्च बहवो भरतर्षभ ॥ २
स तैः परिवृतो राजा
कथाभिः परिनन्द्य तान् ।
अनुजज्ञे सशिष्यान्वै
विधिवत्प्रतिपूज्य च ॥ ३
सायाह्ने स महीपाल-
स्ततो गङ्गामुपेत्य च ।
चकार विधिवच्छौचं
गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५
ते चैवान्ये पृथक् सर्वे
तीर्थेष्वाप्लुत्य भारत ।
चक्रुः सर्वाः क्रियास्तत्र
पुरुषा विदुरादयः ॥ ५

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारत-भावदीपे अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ + 'वदता चापि' इति पा०

१९

तत इति ॥ १ ॥

कृतशौचं ततो वृद्धं
श्वशुरं कुन्तिभोजजा।
गान्धारीं च पृथा राजन्
गङ्गातीरमुपानयत्॥ ६

राज्ञस्तु याजकैस्तत्र कृतो वेदीपरिस्तरः।
जुहाव तत्र वह्निं स नृपतिः सत्यसङ्गरः॥ ७
ततो भागीरथीतीरात्कुरुक्षेत्रं जगाम सः।
सानुगो नृपतिर्वृद्धो नियतः संयतेन्द्रियः॥ ८
तत्राश्रमपदं धीमानाभिगम्य स पार्थिवः।
आससादाथ राजर्षिं शतयूपं मनीषिणम्॥ ९
स हि राजा महानासीत्केकयेषु परंतपः।
स्वपुत्रं मनुजैश्वर्ये निवेश्य वनमाविशत्॥ १०
तेनासौ सहितो राजा ययौ व्यासाश्रमं प्रति।
तत्रैनं विधिवद्राजा प्रत्यगृह्णात्कुरूद्वहः॥ ११
स दीक्षां तत्र संप्राप्य राजा कौरवनन्दनः।
शतयूपाश्रमे तस्मिन्निवासमकरोत्तदा॥ १२
तस्मै सर्वं विधिं राज्ञे
राजाऽऽचख्यौ महामतिः।
आरण्यकं महाराज
व्यासस्यानुमते तदा॥ १३
एवं स तपसा राजन्
धृतराष्ट्रो महामनाः।
योजयामास चात्मानं
तांश्चाप्यनुचरांस्तदा॥ १४
तथैव देवी गान्धारी वल्कलाजिनधारिणी।
कुन्त्या सह महाराज समानव्रतचारिणी॥ १५
कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा चैव ते नृप।
सन्नियम्येन्द्रियग्राममास्थिते परमं तपः॥ १६
त्वगस्थिभूतः परिशुष्कमांसो
जटाजिनी वल्कलसंवृताङ्गः।
स पार्थिवस्तत्र तपश्चचार
महर्षिवत्तीव्रमपेतमोहः॥ १७
क्षत्ता च धर्मार्थविदग्र्यबुद्धिः
ससञ्जयस्तं नृपतिं सदारम्।
उपाचरद् घोरतपो जितात्मा
तदा कृशो वल्कलचीरवासाः॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि शतयूपाश्रमनिवासे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

## २०

वैशम्पायन उवाच
ततस्तत्र मुनिश्रेष्ठा राजानं द्रष्टुमभ्ययुः।
नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः॥ १
द्वैपायनः सशिष्यश्च सिद्धाश्चान्ये मनीषिणः
शतयूपश्च राजर्षिर्वृद्धः परमधार्मिकः॥ २
तेषां कुन्ती महाराज पूजां चक्रे यथाविधि।
ते चापि तुतुषुस्तस्यास्तापसाः परिचर्यया॥ ३
तत्र धर्म्याः कथास्तात चक्रुस्ते परमर्षयः।
रमयन्तो महात्मानं धृतराष्ट्रं जनाधिपम्॥ ४
कथान्तरे तु कस्मिंश्चिद्देवर्षिर्नारदस्ततः।
कथामिमामकथयत्सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान्॥ ५
नारद उवाच।
केकयाधिपतिः श्रीमान्
राजाऽऽसीदकुतोभयः।
सहस्रचित्य इत्युक्तः
शतयूपपितामहः॥ ६
स पुत्रे राज्यमासज्य ज्येष्ठे परमधार्मिके।
सहस्रचित्यो धर्मात्मा प्रविवेश वनं नृपः॥ ७
स गत्वा तपसः पारं दीप्तस्य वसुधाधिपः।
पुरंदरस्य संस्थानं प्रतिपेदे महाद्युतिः॥ ८
दृष्टपूर्वः स बहुशो राजन्संपतता मया।
महेन्द्रसदने राजा तपसा दग्धकिल्बिषः॥ ९
तथा शैलालयो राजा भगदत्तपितामहः।
तपोबलेनैव नृपो महेन्द्रसदनं गतः॥ १०
तथा पृषध्रो राजाऽऽसीद्राजन्वज्रधरोपमः।
स चापि तपसा लेभे नाकपृष्ठमितो गतः॥ ११
अस्मिन्नरण्ये नृपते मान्धातुरपि चात्मजः।
पुरुकुत्सो नृपः सिद्धिं महतीं समवाप्तवान्॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

२०
तत इति॥ १॥

भार्या समभवद्यस्य नर्मदा सरितां वरा ।
सोऽस्मिन्नरण्ये नृपतिस्तपस्तप्त्वा दिवं गतः
शशलोमा च राजाऽऽसी-
द्राजन् परमधार्मिकः
सम्यगस्मिन्वने तप्त्वा
ततो दिवमवाप्तवान् ॥ १५
द्वैपायनप्रसादाच्च त्वमपीदं तपोवनम् ।
राजन्नवाप्य दुष्प्रापां गतिमग्र्यां गमिष्यसि ॥
त्वं चापि राजशार्दूल
तपसोऽन्ते श्रिया वृतः ।
गान्धारीसहितो गन्ता
गतिं तेषां महात्मनाम् ॥ १६
पाण्डुः स्मरति ते नित्यं बलहन्तुः समीपगः ।
त्वां सदैव महाराज श्रेयसा स च योक्ष्यति
तव शुश्रूषया चैव गान्धार्याश्च यशस्विनी ।
भर्तुः सलोकतामेषा गमिष्यति वधूस्तव १८
युधिष्ठिरस्य जननी स हि धर्मः सनातनः ।
वयमेतत्प्रपश्यामो नृपते दिव्यचक्षुषा ॥ १९
प्रवेक्ष्यति महात्मानं विदुरश्च युधिष्ठिरम् ।
सञ्जयस्तदनुध्यानादितः स्वर्गमवाप्स्यति २०

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा कौरवेन्द्रो महात्मा
सार्धं पत्न्या प्रीतिमान् संबभूव ।
विद्वान् वाक्यं नारदस्य प्रशस्य
चक्रे पूजां चातुलां नारदाय ॥ २१
ततः सर्वे नारदं विप्रसंघाः
संपूजयामासुरतीव राजन् ।
राज्ञः प्रीत्या धृतराष्ट्रस्य ते वै
पुनः पुनः संप्रहृष्टास्तदानीम् ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

नारदस्य तु तद्वाक्यं शशंसुर्द्विजसत्तमाः ।
शतयूपस्तु राजर्षिर्नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३
अहो भगवता श्रद्धा कुरुराजस्य वर्धिता ।
सर्वस्य च जनस्यास्य मम चैव महाद्युते २४
अस्ति काचिद्विवक्षा तु तां मे निगदतः शृणु
धृतराष्ट्रं प्रति नृपं देवर्षे लोकपूजित ॥ २५
सर्ववृत्तान्ततत्त्वज्ञो भवान् दिव्येन चक्षुषा ।
युक्तः पश्यसि विप्रर्षे गतिर्या विविधा नृणाम्
उक्तवान्नृपतीनां त्वं महेन्द्रस्य सलोकताम् ।
न त्वस्य नृपतेर्लोकाः कथितास्ते महामुने ॥
स्थानमप्यस्य नृपतेः श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ।
त्वत्तः कीदृक्कदा चेति तन्ममाख्याहि तत्त्वतः
इत्युक्तो नारदस्तेन वाक्यं सर्वमनोनुगम् ।
व्याजहार सभामध्ये दिव्यदर्शी महातपाः ॥

नारद उवाच ।

यदृच्छया शक्रसदो गत्वा शक्रं शचीपतिम्
दृष्टवानस्मि राजर्षे तत्र पाण्डुं नराधिपम् ३०
तत्रेयं धृतराष्ट्रस्य कथा समभवन्नृप ।
तपसो दुष्करस्यास्य यदयं तपते नृपः ॥ ३१
तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम् ।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः
ततः कुबेरभवनं गान्धारीसहितो नृपः ।
प्रयाता धृतराष्ट्रोऽयं राजराजाभिसत्कृतः ३३
कामगेन विमानेन दिव्याभरणभूषितः ।
ऋषिपुत्रो महाभागस्तपसा दग्धकिल्बिषः ३४
संचरिष्यति लोकांश्च देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
स्वच्छन्देनेति धर्मात्मा यन्मां त्वमनुपृच्छसि
देवगुह्यमिदं प्रीत्या मया वः कथितं महत् ।
भवन्तो हि श्रुतधनास्तपसा दग्धकिल्बिषाः

वैशम्पायन उवाच ।

इति ते तस्य तच्छ्रुत्वा देवर्षेर्मधुरं वचः ।
सर्वे सुमनसः प्रीता बभूवुः स च पार्थिवः ३७
एवं कथाभिरन्वास्य धृतराष्ट्रं मनीषिणः ।
विप्रजग्मुर्यथाकामं ते सिद्धगतिमाश्रिताः ३८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि नारदवाक्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

---

ऋषिपुत्रो व्यासपुत्र ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे विंशोऽध्याय ॥२०॥

## २१

वैशम्पायन उवाच ।
वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमन्विताः ।
बभूवुः पाण्डवा राजन्मातृशोकेन चान्विताः
तथा पौरजनः सर्वः शोचन्नास्ते जनाधिपम्
कुर्वाणाश्च कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपतिं प्रति २
कथं नु राजा वृद्धः स
वने वसति निर्जने ।
गान्धारी च महाभागा
सा च कुन्ती पृथा कथम् ॥ ३
सुखार्हः स हि राजर्षिरसुखी तद्वन महत् ।
किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हतात्मजः ॥ ४
सुदुष्कृतं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती ।
राज्यश्रियं परित्यज्य वनं सा समरोचयत् ५
विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान् ।
स च गावल्गणिर्धीमान्भर्तृपिण्डानुपालकः ६
आकुमारं च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः
तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम् ॥ ७
पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः ।
शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे ॥ ८
तथैव वृद्धं पितरं हतपुत्रं जनेश्वरम् ।
गान्धारीं च महाभागां विदुरं च महामतिम्
नैषां बभूव संप्रीतिस्तान्विचिन्तयतां तदा ।
न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययनेषु च १०
परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम् ।
तं च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः ११
अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्धनि ।
कर्णस्य च महाबाहो संग्रामेष्वपलायिनः १२
तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि ।
वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन्
हतप्रवीरां पृथिवीं हतरत्नां च भारत ।
सदैव चिन्तयन्तस्ते न शमं चोपलेभिरे ॥ १४
द्रौपदी हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भाविनी ।
नातिप्रीतियुते देव्यौ तदाऽऽस्तामप्रहृष्टवत्
वैराट्यास्तनयं दृष्ट्वा पितरं ते परिक्षितम् ।
धारयन्ति स्म ते प्राणांस्तव पूर्वपितामहाः १६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि
एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

## २२

वैशम्पायन उवाच ।
एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा मातृनन्दनाः ।
स्मरन्तो मातरं वीरा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ १
ये राजकार्येषु पुरा व्यासक्ता नित्यशोऽभवन्
ते राजकार्याणि तदा नाकार्षुः सर्वतः पुरे २
प्रविष्टा इव शोकेन नाभ्यनन्दन्त किंचन ।
संभाष्यमाणा अपि ते न किंचित्प्रत्यपूजयन्
ते स्म वीरा दुराधर्षा गांभीर्ये सागरोपमाः
शोकोपहतविज्ञाना नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ ४
अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ।
कथं नु वृद्धमिथुनं वहत्यतिकृशा पृथा ॥ ५
कथं च स महीपालो हतपुत्रो निराश्रयः ।
पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापदसेविते ॥ ६
सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा
पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने ॥ ७
एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत्तदा ।
गमने चाभवद्बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ८
सहदेवस्तु राजानं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।
अहो मे भवतो दृष्टं हृदयं गमनं प्रति ॥ ९
न हि त्वां गौरवेणाहमशकं वक्तुमञ्जसा ।
गमनं प्रति राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम् ॥ १०

---

२१

वनमिति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवा० नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकविंशतितमोऽध्याय. ॥२१॥

२२

एवमिति ॥ १ ॥

दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं
वर्तयन्तीं तपस्विनीम् ।
जटिलां तापसीं वृद्धां
कुशकाशपरिक्षताम् ॥ ११
प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्तसुखभागिनीम् ।
कदा तु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुःखिता
अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ ।
कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिता वने १३
सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा ।
उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च ॥
कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा
जीवन्त्या ह्यद्य मे प्रीतिर्भविष्यति जनाधिप
एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं
धर्मे ते रमतां मनः ।
योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र
श्रेयसा योजयिष्यसि ॥ १६
अग्रपादस्थितं चेमं विद्धि राजन्वधूजनम् ।
कांक्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च
इत्युक्तः स नृपो देव्या द्रौपद्या भरतर्षभ ।
सेनाध्यक्षान् समानाय्य सर्वानिदमुवाच ह
निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जराम् ।
द्रक्ष्यामि वनसंस्थं च धृतराष्ट्रं महीपतिम् १९
स्त्र्यध्यक्षांश्चाब्रवीद्राजा यानानि विविधानि मे
सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः
शकटापणवेशाश्च कोशः शिल्पिन एव च ।
निर्यान्तु कोषपालाश्च कुरुक्षेत्राश्रमं प्रति ॥ २१
यश्च पौरजनः कश्चिद्द्रष्टुमिच्छति पार्थिवम् ।
अनावृतः सुविहितः स च यातु सुरक्षितः २२
सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वे चैव महानसम् ।
विविधं भक्ष्यभोज्यं च शकटैरुह्यतां मम २३
प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति माचिरम् ।
क्रियतां पथि चाप्यद्य वेश्मानि विविधानि च
एवमाज्ञाप्य राजा स भ्रातृभिः सहपाण्डवः ।
श्वोभूते निर्ययौ राजन् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥
स बहिर्दिवसानेव जनौघं परिपालयन् ।
न्यवसन्नृपतिः पञ्च ततोऽगच्छद्वनं प्रति ॥२६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरयात्रायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## २३

वैशम्पायन उवाच ।
आज्ञापयामास ततः सेनां भरतसत्तमः ।
अर्जुनप्रमुखैर्गुप्तां लोकपालोपमैर्नरैः ॥ १
योगो योग इति प्रीत्या ततः शब्दो महानभूत
क्रोशतां सादिनां तत्र युज्यतां युज्यतामिति २
केचिद्यानैर्नरा जग्मुः केचिदश्वैर्महाजवैः ।
काञ्चनैश्च रथैः केचिज्ज्वलितज्वलनोपमैः ॥३
गजेन्द्रैश्च तथैवान्ये केचिदुष्ट्रैर्नराधिप ।
पदातिनस्तथैवान्ये नखरप्रासयोधिनः ॥ ४
पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा ।
अन्वयुः कुरुराजानं धृतराष्ट्रं दिदृक्षवः ॥ ५
स चापि राजवचनादाचार्यो गौतमः कृपः ।
सेनामादाय सेनानीः प्रययावाश्रमं प्रति ॥ ६
ततो द्विजैः परिवृतः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
संस्तूयमानो बहुभिः सूतमागधबन्दिभिः ॥७
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
रथानीकेन महता निर्जगाम कुरूद्वहः ॥ ८
गजैश्चाचलसंकाशैर्भीमकर्मा वृकोदरः ।
सज्जयन्त्रायुधोपेतैः प्रययौ पवनात्मजः ॥ ९

---

अग्रपादस्थितं प्रयाणार्थं पुरस्कृतेनैव पादेन स्थितम् । अत्यन्तमुत्सुकामित्यर्थः ॥१७॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

**आज्ञापयामासेति** ॥ १ ॥ यानैर्मनुष्यवाह्यैः॥३॥ नखरप्रासः व्याघ्रनखवत्पराचीनफलकप्रक्षिर्यः ॥४॥

माद्रीपुत्रावपि तथा हयारोहौ सुसंवृतौ ।
जग्मतुः शीघ्रगमनौ सन्नद्धकवचध्वजौ ॥ १०
अर्जुनश्च महातेजा रथेनादित्यवर्चसा ।
वशी श्वेतैर्हयैर्युक्तैर्दिव्येनान्वगमन्नृपम् ॥ ११
द्रौपदीप्रमुखाश्चापि स्त्रीसंघाः शिबिकायुताः ।
स्त्र्यध्यक्षगुप्ताः प्रययुर्विसृजन्तोऽमितं वसु १२
समृद्धरथहस्त्यश्वं वेणुवीणानुनादितम् ।
शुशुभे पाण्डवं सैन्यं तत्तदा भरतर्षभ ॥ १३
नदीतीरेषु रम्येषु सरःसु च विशांपते ।
वासान् कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुङ्गवाः
युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः ।
युधिष्ठिरस्य वचनात्पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः ॥ १५
ततो युधिष्ठिरो राजा कुरुक्षेत्रमवातरत् ।
क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावनीम् ॥१६
स ददर्शाश्रमं दूराद्राजर्षेस्तस्य धीमतः ।
शतयूपस्य कौरव्य धृतराष्ट्रस्य चैव ह ॥ १७
ततः प्रमुदितः सर्वो जनस्तद्वनमञ्जसा ।
विवेश सुमहानादैरापूर्य भरतर्षभ ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्राश्रमगमने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## २४

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः ।
अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः ॥ १
स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः ।
स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा २ ॥
आश्रमं ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः ।
शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम् ॥ ३
ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः ।
पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ४
तानपृच्छत्ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत् ।
पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः
ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम् ।
पुष्पाणामुदकुंभस्य चार्थे गत इति प्रभो ॥ ६
तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा ।
ददृशुश्चाविदूरे तान्सर्वानथ पदातयः ॥ ७
ततस्ते सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकांक्षिणः ।
सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद्यत्र सा पृथा ॥ ८
सुस्वरं रुरुदे धीमान्मातुः पादावुपस्पृशन् ।
सा च बाष्पाकुलमुखी ददर्श दयितं सुतम् ९
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्रकम् ।
गान्धार्याः कथयामास सहदेवमुपस्थितम् १०
अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनम् ।
नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ ११
सा ह्यग्रे गच्छति तयोर्दम्पत्योर्हतपुत्रयोः ।
कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन्भुवि १२
राजा तान्स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः ।
प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः ॥
ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपम् ।
उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि १४
सर्वेषां तोयकलशान्
जगृहुस्ते स्वयं तदा ।
पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते
मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥ १५
तथा नार्यो नृसिंहानां सोऽवरोधजनस्तदा ।
पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं जनाधिपम् ॥ १६
निवेदयामास तदा जनं तन्नामगोत्रतः ।
युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत १७
स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः ।
राजाऽऽत्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

तत इति ॥ १ ॥

आभिवादितो वधूभिश्च
कृष्णाद्याभिः स पार्थिवः ।
गान्धार्या सहितो धीमा-
न्कुन्त्या च प्रत्यनन्दत ॥ १९

ततश्चाश्रममागच्छ-
त्सिद्धचारणसेवितम्
दिदृक्षुभिः समाकीर्णं
नभस्तारागणैरिव ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरादिधृतराष्ट्रसमागमे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## २५

वैशम्पायन उवाच ।
स तैः सह नरव्याघ्रैर्भ्रातृभिर्भरतर्षभ ।
राजा रुचिरपद्माक्षैरासांचक्रे तदाश्रमे ॥ १
तापसैश्च महाभागै-
र्नानादेशसमागतैः ।
द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान्
पाण्डवान्पृथुवक्षसः ॥ २
तेऽब्रुवन् ज्ञातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः
भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी ३
तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वांस्तानभिनामतः
सञ्जयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुस्त्रियः
सञ्जय उवाच ।
य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-
स्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः ।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र-
स्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ ५
अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी
प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः ।
पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहु-
र्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम् ॥ ६
यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान्
श्यामो युवा वारणयूथपाभः ।
सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी
पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ ७
कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु
यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति
ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ ८
इयं पुनः पद्मदलायताक्षी
मध्यं वयः किञ्चिदिव स्पृशन्ती ।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव
कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः ९
अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा
यैषा प्रभा मूर्तिमतीव सौमी ।
मध्ये स्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्या-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य ॥ १०
इयं च जाम्बूनदशुद्धगौरी
पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या ।
चित्राङ्गदा चैव नरेन्द्रकन्या
यैषा सवर्णार्द्रमधूकपुष्पैः ॥ ११
इयं स्वसा राजचमूपतेश्च
प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा ।
पस्पर्ध कृष्णेन सदा नृपो यो
वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः ॥ १२
इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य
सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य ।
यवीयसो माद्रवतीसुतस्य
भार्या मता चम्पकदामगौरी ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४ ॥

२५

स तैरिति ॥ १ ॥ सवर्णा समानजातीया पाण्डय-कन्या आर्द्रमधूकपुष्पैरुपलक्षिता ॥ ११ ॥ यः कृष्णेन पस्पर्ध पस्पर्धे तस्य शल्यस्य परिग्रहो भार्या ॥ १२ ॥

इंदीवरश्यामतनुः स्थिता तु
यैषा परासन्नमहीतले च ।
भार्या मता माद्रवतीसुतस्य
ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी ॥ १४
इयं तु निष्टप्तसुवर्णगौरी
राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा ।
भार्याऽभिमन्योर्निहतो रणे यो
द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः ॥ १५
एतास्तु सीमन्तशिरोरुहायाः
शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः ।
राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शताख्याः
स्नुषा नृवीरा हतपुत्रनाथाः ॥ १६
एता यथामुख्यमुदाहृता वो
ब्राह्मण्यभावादृजुबुद्धिसत्त्वाः ।
सर्वा भवद्भिः परिपृच्छ्यमाना
नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः ॥ १७
वैशम्पायन उवाच ।
एवं स राजा कुरुवृद्धवर्यैः
समागतस्तैर्नरदेवपुत्रैः ।
पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदानीं
गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु ॥ १८
योधेषु वाप्याश्रममण्डलं तं
मुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम् ।
स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे
यथाऽर्हतस्तान्कुशलान्यपृच्छत ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि ऋषीन् प्रति युधिष्ठिरादिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## २६

धृतराष्ट्र उवाच ।
युधिष्ठिर महाबाहो कच्चित्त्वं कुशली ह्यसि ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा ॥ १
ये च त्वामनुजीवन्ति कच्चित्तेऽपि निरामयाः
सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते नृप ॥ २
कच्चित्तेऽपि निरातंका वसन्ति विषये तव ।
कच्चिद्वर्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम् ३
कच्चिन्न्यायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते ।
अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्तसे चानुरूपतः ॥ ४
ब्राह्मणानग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि ।
कच्चित्ते परितुष्यन्ति शीलेन भरतर्षभ ॥ ५
शत्रवोऽपि कुतः पौरा
भृत्या वा स्वजनोऽपि वा ।
कच्चिद्यजसि राजेन्द्र
श्रद्धावान् पितृदेवताः ॥ ६
अतिथीनन्नपानेन कच्चिदर्चसि भारत ।
कच्चिन्नयपथे विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव ॥ ७
क्षत्रिया वैश्यवर्गा वा शूद्रा वाऽपि कुटुम्बिनः
कच्चित्स्त्रीबालवृद्धं ते न शोचति न याचते ८
जामयः पूजिताः कच्चित्तव गेहे नरर्षभ ।
कच्चिद्राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम्

---

आसन्नमहीतले समीपभूमौ ॥ १४ ॥ सीमन्तमात्रेण उपलक्षिता न त्वलंकारादिना तादृशा शिरोरुहा केशा यासां ताः सीमन्तशिरोरुहाः असीमन्तेति पाठो युक्तः ॥ १६ ॥ ब्राह्मण्येत्यादिपादः सम्बोधनम् । परिपृच्छ्यमाना. कथयतो मत्तो वेदितव्या इति शेषः ॥ १७ ॥ पत्रं वाहनम् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

युधिष्ठिरेति ॥ १ ॥ जामयः सौभाग्यवत्यः ॥९॥

यथोचितं महाराज यशसा नावसीदति ।
वैशम्पायन उवाच ।
इत्येवंवादिनं तं स न्यायवित् प्रत्यभाषत१०
कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि ।
युधिष्ठिर उवाच ।
कच्चित्ते वर्धते राजंस्तपो दमशमश्च ते॥११
अपि मे जननी चेयं शुश्रूषुर्विगतक्लमा ।
अथास्याः सफलो राजन्वनवासो भविष्यति
इयं च माता ज्येष्ठा मे शीतवाताध्वकर्शिता ।
घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति १३
हतान्पुत्रान्महावीर्यान् क्षत्रधर्मपरायणान् ।
नापध्यायति वा कच्चिदस्मान्पापकृतः सदा ॥
क्व चासौ विदुरो राजन्नेनं पश्यामहे वयम् ।
सञ्जयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थिरः१५
वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम् ।
कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समाश्रितः १६
वायुभक्षो निराहारः
कृशो धमनिसन्ततः ।
कदाचिद् दृश्यते विप्रैः
शून्येऽस्मिन्कानने क्वचित् ॥ १७
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः ।
दिग्वासा मलदिग्धाङ्गो वनरेणुसमुक्षितः १८
दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः ।
निवर्तमानः सहसा राजन् दृष्ट्वाऽऽश्रमं प्रति ॥
तमन्वधावन्नृपतिरेक एव युधिष्ठिरः ।
प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं क्वचित् क्वचित्
भो भो विदुर राजाऽहं दयितस्ते युधिष्ठिरः
इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत ॥ २१
ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतां वरः ।
विदुरो वृक्षमाश्रित्य कञ्चित्तत्र वनान्तरे ॥ २२
तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम् ।
अभिजज्ञे महाबुद्धिं महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ॥ २३

युधिष्ठिरोऽहमस्मीति
वाक्यमुक्त्वाऽग्रतः स्थितः ।
विदुरस्य श्रवे राजा
त च प्रत्यभ्यपूजयत् ॥ २४
ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं तमुदैक्षत ।
संयोज्य विदुरस्तस्मिन् दृष्टिं दृष्ट्या समाहितः
विवेश विदुरो धीमान् गात्रैर्गात्राणि चैव ह ।
प्राणान्प्राणेषु च दधदिन्द्रियाणीन्द्रियेषु च ॥
स योगबलमास्थाय विवेश नृपतेस्तनुम् ।
विदुरो धर्मराजस्य तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ २७
विदुरस्य शरीरं तु तथैव स्तब्धलोचनम् ।
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम् २८
बलवन्तं तथाऽऽत्मानं मेने बहुगुण तदा ।
धर्मराजो महातेजास्तच्च सस्मार पाण्डवः २९
पौराणमात्मनः सर्वं विद्यावान् स विशांपते ।
योगधर्मं महातेजा व्यासेन कथितं यथा ३०
धर्मराजश्च तत्रैव सञ्चस्कारयिषुस्तदा ।
दग्धुकामोऽभवद्विद्वानथ वागभ्यभाषत ॥ ३१
भो भो राजन्न दग्धव्यमेतद्विदुरसंज्ञकम् ।
कलेवरमिहैवं ते धर्म एष सनातनः ॥ ३२
लोकाः सान्तानिका नाम
भविष्यन्त्यस्य भारत ।
यतिधर्ममवाप्तोऽसौ
नैष शोच्यः परंतप ॥ ३३
इत्युक्तो धर्मराजः स विनिवृत्य ततः पुनः ।
राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ ३४
ततः स राजा द्युतिमान् स च सर्वो जनस्तदा
भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः ॥ ३५
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा
भूत्वा धर्मजमब्रवीत् ।
आपो, मूलं, फलं चैव
ममेदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६

वीटा पाषाणकवल ॥ १८ ॥ विदुरस्य श्रवे विदुरे शृण्वति सति राजा धृतराष्ट्रस्त युधिष्ठिरं प्रत्यभ्यपूजयत् स्तुतवान्२४ **ततः स इति।** दृष्टिं दृष्ट्या पवनं पवनेन च संयोज्य तत्रैव संयमं कृत्वा स्वशरीरात्प्राणेन्द्रियाणि निष्कास्य तदीयप्राणैरिन्द्रियैश्च सह एकत्वं प्राप्य स्वशरीरं त्यक्तवान् । यथा घटान्तरस्थं जलं घटान्तरे सिच्यते तद्वदिदं द्रष्टव्यम्। प्राणसन्धानेनैवेन्द्रियाणां गात्राणां च सन्धानं भवति न तदर्थं पृथग्यत्नोऽपेक्षित ॥ २५ ॥ तच्च स्वस्य विदुरस्य एकस्यैव धर्मस्यांशाज्जातत्वं सस्मार॥२९॥योगधर्मं सस्मारेत्यनुषज्यते ॥३०॥ संचस्कारयिषु संस्कारं लम्भयितुमिच्छु ॥३१॥**लोका इति।** यतिधर्मो दाहाद्ययोग्यत्वम्। एतेन **शूद्रयोनौ जातानामपि यतिधर्मोऽस्तीति दर्शितम्** ३३

यदर्थो हि नरो राजं-
स्तदर्थोऽस्यातिथिः स्मृतः ।
इत्युक्तः स तथेत्येवं
प्राह धर्मात्मजो नृपम् ॥ ३७
फलं, मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः ।
ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः ।
तां रात्रिमवसन्सर्वे फलमूलजलाशनाः ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि विदुरनिर्याणे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## २७

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्तु राजन्नेतेषामाश्रमे पुण्यकर्मणाम् ।
शिवा नक्षत्रसंपन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी १
ततस्तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः ।
विचित्रपदसञ्चारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥ २
पाण्डवास्त्वभितो मातुर्धरण्यां सुषुपुस्तदा ।
उत्सृज्य तु महार्हाणि शयनानि नराधिप ३
यदाहारोऽभवद्राजा धृतराष्ट्रो महामनाः ।
तदाहारा नृवीरास्ते न्यवसंस्तां निशां तदा ४
व्यतीतायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ।
भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलम् ५
सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः ।
यथासुखं यथोद्देशं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ६
ददर्श तत्र वेदीश्च संप्रज्वालितपावकाः ।
कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हुताग्निभिरुपास्थिताः ॥ ७
वानेयपुष्पनिकरैराज्यधूमोद्गमैरपि ।
ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणस्य ताः ८
मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः ।
अशंकितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥९
केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः
कोकिलानां कुहुरवैः सुखैः श्रुतिमनोहरैः १०
प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित्क्वचिदलंकृतम् ।
फलमूलसमाहारैर्महद्भिश्चोपशोभितम् ॥ ११
ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान् ।
कलशान्काञ्चनान् राजंस्तथैवौदुम्बरानपि ॥
अजिनानि प्रवेणीश्च स्रुक्स्रुवं च महीपतिः ।
कमण्डलूंश्च स्थालीश्च पिठराणि च भारत १३
भाजनानि च लौहानि पात्रीश्च विविधा नृप
यद्यदिच्छति यावच्च यच्चान्यदपि भाजनम् ॥
एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम् ।
वसु विश्राण्य तत्सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥१५
कृताह्निकं च राजानं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं गान्धारीसहितं तदा ॥ १६
मातरं चाविदूरस्थां शिष्यवत्प्रणतां स्थिताम् ।
कुन्ती ददर्श धर्मात्मा शिष्टाचारसमन्विताम्
स तमभ्यर्च्य राजानं नाम संश्राव्य चात्मनः
निषीदेत्यभ्यनुज्ञातो बृस्यामुपविवेश ह ॥ १८
भीमसेनादयश्चैव पाण्डवा भरतर्षभ ।
अभिवाद्योपसंगृह्य निषेदुः पार्थिवाज्ञया ॥ १९
स तैः परिवृतो राजा शुशुभेऽतीव कौरवः ।
बिभ्रद्ब्राह्मीं श्रियं दीप्तां देवैरिव बृहस्पतिः २०
तथा तेषूपविष्टेषु समाजग्मुर्महर्षयः ।
शतयूपप्रभृतयः कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१
व्यासश्च भगवान्विप्रो देवर्षिगणसेवितः ।
वृतः शिष्यैर्महातेजा दर्शयामास पार्थिवम् ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षोडशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२७

तत इति ॥ १ ॥ मुनिगणस्य मुनिगणेन ताः वैदिक्यो लौकिक्यश्च ॥ ८ ॥ मृगयूथादिभिरलंकृतमाश्रमम् ॥ ९ ॥ औदुम्बरान् कलशान् ॥१२॥ प्रवेणी कुथाः प्रवेणिः स्त्री कुथावेण्योरिति मेदिनी ॥ १३ ॥

ततः स राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रश्च वीर्यवान्
भीमसेनादयश्चैव प्रत्युत्थायाभ्यवादयन् ॥ २३
समागतस्ततो व्यासः शतयूपादिभिर्वृतः ।
धृतराष्ट्रं महीपालमास्यतामित्यभाषत ॥ २४
वरं तु विष्टरं कौश्यं कृष्णाजिनकुशोत्तरम् ।
प्रतिपेदे तदा व्यासस्तदर्थमुपकल्पितम् ॥ २५
ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठा विष्टरेषु समन्ततः ।
द्वैपायनाभ्यनुज्ञाता निषेदुर्विपुलौजसः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासागमने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## २८

वैशम्पायन उवाच ।
ततः समुपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १
धृतराष्ट्र महाबाहो कच्चित्ते वर्तते तपः ।
कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे नराधिप ॥ २
कच्चिद्धृदि न ते शोको राजन्पुत्रविनाशजः ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि सुप्रसन्नानि तेऽनघ ३
कच्चिद्बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम्
कच्चिद्वधूश्च गान्धारी न शोकेनाभिभूयते ४
महाप्रज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी ।
आगमापायतत्त्वज्ञा कच्चिदेषा न शोचति ५
कच्चित्कुन्ती च राजंस्त्वां शुश्रूषत्यनहंकृता ।
या परित्यज्य स्वं पुत्रं गुरुशुश्रूषणे रता ॥ ६
कच्चिद्धर्मसुतो राजा त्वया प्रत्यभिनन्दितः ।
भीमार्जुनयमाश्चैव कच्चिदेतेऽपि सान्त्विताः
कच्चिन्नन्दसि दृष्ट्वैतान् कच्चित्ते निर्मलं मनः ।
कच्चिच्च शुद्धभावोऽसि जातज्ञानो नराधिप
एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत ।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च ॥ ९
कच्चित्ते न च मोहोऽस्ति वनवासेन भारत ।
स्ववशे वन्यमन्नं वा उपवासोऽपि वा भवेत्
विदितं चापि राजेन्द्र विदुरस्य महात्मनः ।
गमनं विधिनाऽनेन धर्मस्य सुमहात्मनः ॥ ११
माण्डव्यशापाद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः
महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः १२
बृहस्पतिर्वा देवेषु शुक्रो वाप्यसुरेषु च ।
न तथा बुद्धिसंपन्नो यथा स पुरुषर्षभः ॥ १३
तपोबलव्ययं कृत्वा सुचिरात्संभृतं तदा ।
माण्डव्येनर्षिणा धर्मो ह्यभिभूतः सनातनः ॥
नियोगाद्ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च ।
वैचित्रवीर्यके क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः १५
भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः ।
धारणान्मनसा ध्यानाद्यं धर्मं कवयो विदुः ॥
सत्येन संवर्धयति यो दमेन शमेन च ।
अहिंसया च दानेन तप्यमानः सनातनः १७
येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धर्म इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥ १८
यथा वह्निर्यथा वायुर्यथाऽऽपः पृथिवी यथा ।
यथाऽऽकाशं तथा धर्म इह चामुत्र च स्थितः
सर्वगश्चैव राजेन्द्र सर्वं व्याप्य चराचरम् ।
दृश्यते देवदेवैः स सिद्धैर्निर्मुक्तकल्मषैः २०
यो हि धर्मः स विदुरो
विदुरो यः स पाण्डवः ।
स एष राजन् दृश्यस्ते
पाण्डवः प्रेष्यवत्स्थितः ॥ २१
प्रविष्टः स महात्मानं भ्राता ते बुद्धिसत्तमः
दृष्ट्वा महात्मा कौन्तेयं महायोगबलान्वितः ॥
त्वां चापि श्रेयसा योक्ष्ये न चिराद्भरतर्षभ ।
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तं मां विद्धि पुत्रक २३

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

२८

ततः समुपविष्टेष्विति ॥ १ ॥ स्ववशे इति सुलभत्वं स्पष्टम् ॥ १० ॥

न कृतं यैः पुरा कैश्चित्कर्म लोके महर्षिभिः ।
आश्चर्यभूतं तपसः फलं तद्दर्शयामि वः ॥ २४
किमिच्छसि महीपाल मत्तः प्राप्तुमभीप्सितम्
द्रष्टुं स्प्रष्टुमथ श्रोतुं तत्कर्ताऽस्मि तवानघ २५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## समाप्तं चाश्रमवासपर्व

## अथ पुत्रदर्शनपर्व २

### २९

जनमेजय उवाच ।
वनवासं गते विप्र धृतराष्ट्रे महीपतौ ।
सभार्ये नृपशार्दूले वध्वा कुन्त्या समन्विते १
विदुरे चापि संसिद्धे धर्मराजं व्यपाश्रिते ।
वसत्सु पाण्डुपुत्रेषु सर्वेष्वाश्रममण्डले ॥ २
यत्तदाश्चर्यमिति वै करिष्यामीत्युवाच ह ।
व्यासः परमतेजस्वी महर्षिस्तद्वदस्व मे ॥ ३
वनवासे च कौरव्यः कियन्तं कालमच्युतः
युधिष्ठिरो नरपतिर्न्यवसत्सजनस्तदा ॥ ४
किमाहाराश्च ते तत्र ससैन्या न्यवसन्प्रभो ।
सान्तःपुरा महात्मान इति तद्ब्रूहि मेऽनघ ५
वैशम्पायन उवाच ।
तेऽनुज्ञातास्तदा राजन्कुरुराजेन पाण्डवाः ।
विविधान्यन्नपानानि विश्राम्यानुभवन्ति ते
मासमेकं विजह्रुस्ते ससैन्यान्तःपुरा वने ।
अथ तत्रागमद्व्यासो यथोक्तं ते मयाऽनघ ॥ ७
तथा च तेषां सर्वेषां कथाभिर्नृपसन्निधौ ।
व्यासमन्वास्यतां राजन्नाजग्मुर्मुनयो परे ८
नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ।
विश्वावसुस्तुम्बुरुश्च चित्रसेनश्च भारत ॥ ९
तेषामपि यथान्यायं पूजां चक्रे महातपाः ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः कुरुराजो युधिष्ठिरः १०
निषेदुस्ते ततः सर्वे पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात्
आसनेषु च पुण्येषु बर्हिणेषु वरेषु च ॥ ११
तेषु तत्रोपविष्टेषु स तु राजा महामतिः ।
पाण्डुपुत्रैः परिवृतो निषसाद कुरूद्वह ॥ १२
गान्धारी चैव कुन्ती च
द्रौपदी सात्वती तथा ।
स्त्रियश्चान्यास्तथाऽन्याभिः
सहोपविविशुस्ततः ॥ १३
तेषां तत्र कथा दिव्या धर्मिष्ठाश्चाभवन्नृप ।
ऋषीणां च पुराणानां देवासुरविमिश्रिताः ॥
ततः कथान्ते व्यासस्तं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः पुनरेव स तद्वचः ॥ १५
प्रीयमाणो महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
विदितं मम राजेन्द्र यत्ते हृदि विवक्षितम् ॥
दह्यमानस्य शोकेन तव पुत्रकृतेन वै ।
गान्धार्याश्चैव यद्दुःखं हृदि तिष्ठति नित्यदा
कुन्त्याश्च यन्महाराज द्रौपद्याश्च हृदि स्थितम्
यच्च धारयते तीव्रं दुःखं पुत्रविनाशजम् १८
सुभद्रा कृष्णभगिनी तच्चापि विदितं मम ।
श्रुत्वा समागममिमं सर्वेषां वस्ततो नृप १९
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तः कौरवनन्दन
इमे च देवगन्धर्वाः सर्वे चेमे महर्षयः ॥ २०

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टाविंशोऽध्याय ॥ २८ ॥

२९

**वनवासमिति** ॥ १ ॥ विश्राम्य विश्रान्तिं प्राप्य ॥ ६ ॥ बर्हिणेषु पक्षिबर्हजतूलिकामयेषु ॥ ११ ॥ संशयः मृताना सत्त्वमस्ति न वा सत्त्वमपिण्डादेर्घटीभूतस्येव पूर्वरूपमुपमृद्यानुपमृद्य वा उपमर्दे सोऽयं दशरथ स्वर्गस्थो मम पितेति प्रत्यभिज्ञानुपपत्ति अनुपमर्दे भस्मीभावस्य प्रत्यक्षदर्शनं नोपपद्यत इत्यादयस्तेषा छेदनायेत्यर्थ ॥२०॥

पश्यन्तु तपसो वीर्यमद्य मे चिरसंभृतम्।
तदुच्यतां महाप्राज्ञ कं कामं प्रददामि ते २१
प्रवणोऽस्मि वरं दातुं पश्य मे तपसः फलम्।
एवमुक्तः स राजेन्द्रो व्यासेनामितबुद्धिना ॥
मुहूर्तमिव सञ्चिन्त्य वचनायोपचक्रमे।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतश्च सफलं जीवितं च मे
यन्मे समागमोऽद्येह भवद्भिः सह साधुभिः।
अद्य चाप्यवगच्छामि गतिमिष्टामिहात्मनः ॥
ब्रह्मकल्पैर्भवद्भिर्यत्समेतोऽहं तपोधनाः।
दर्शनादेव भवतां पूतोऽहं नात्र संशयः ॥ २५
विद्यते न भयं चापि परलोकान्ममानघाः।
किं तु तस्य सुदुर्बुद्धेर्मन्दस्यापनयैर्भृशम् २६
दूयते मे मनो नित्यं स्मरतः पुत्रगृद्धिनः।
अपापाः पाण्डवा येन निकृताः पापबुद्धिना
घातिता पृथिवी येन सहया सनरद्विपा।
राजानश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः २८
आगम्य मम पुत्रार्थे सर्वे मृत्युवशं गताः।
ये ते पितॄंश्च दारांश्च प्राणांश्च मनसः प्रियान्
परित्यज्य गताः शूराः प्रेतराजनिवेशनम्।
का नु तेषां गतिर्ब्रह्मन् मित्रार्थे ये हता मृधे।
तथैव पुत्रपौत्राणां मम ये निहता युधि।
दूयते मे मनोऽभीक्ष्णं घातयित्वा महाबलम्
भीष्मं शान्तनवं वृद्धं द्रोणं च द्विजसत्तमम्।
मम पुत्रेण मूढेन पापेनाकृतबुद्धिना ॥ ३२
क्षयं नीतं कुलं दीप्तं पृथिवीराज्यमिच्छता।
एतत्सर्वमनुस्मृत्य दह्यमानो दिवानिशम्
न शान्तिमधिगच्छामि दुःखशोकसमाहतः॥
इति मे चिन्तयानस्य पितः शान्तिर्न विद्यते
वैशम्पायन उवाच।
तच्छ्रुत्वा विविधं तस्य राजर्षेः परिदेवितम्
पुनर्नवीकृतः शोको गान्धार्या जनमेजय ३५
कुन्त्या द्रुपदपुत्र्याश्च सुभद्रायास्तथैव च।
तासां च वरनारीणां वधूनां कौरवस्य ह ॥
पुत्रशोकसमाविष्टा गान्धारी त्विदमब्रवीत्।
श्वशुरं बद्धनयना देवी प्राञ्जलिरुत्थिता ३७
षोडशेमानि वर्षाणि गतानि मुनिपुङ्गव।
अस्य राज्ञो हतान्पुत्रान् शोचतो न शमो विभो
पुत्रशोकसमाविष्टो निःश्वसन् ह्येष भूमिपः।
न शेते वसतीः सर्वा धृतराष्ट्रो महामुने ३९
लोकानन्यान्समर्थोऽसि
स्रष्टुं सर्वांस्तपोबलात्।
किमु लोकान्तरगतान्
राज्ञो दर्शयितुं सुतान् ॥ ४०
इयं च द्रौपदी कृष्णा हतज्ञातिसुता भृशम्।
शोचत्यतीव सर्वासां स्नुषाणां दयिता स्नुषा
तथा कृष्णस्य भगिनी सुभद्रा भद्रभाषिणी।
सौभद्रवधसंतप्ता भृशं शोचति भाविनी ४२
इयं च भूरिश्रवसो भार्या परमसंमता।
भर्तृव्यसनशोकार्ता भृशं शोचति भाविनी॥
यस्यास्तु श्वशुरो धीमान् बाह्लिकः स कुरूद्वहः
निहतः सोमदत्तश्च पित्रा सह महारणे ४४
श्रीमतोऽस्य महाबुद्धेः संग्रामेष्वपलायिनः।
पुत्रस्य ते पुत्रशतं निहतं यद्रणाजिरे ॥ ४५
तस्य भार्याशतमिदं दुःखशोकसमाहतम्।
पुनः पुनर्वर्धयानं शोकं राज्ञो ममैव च।
तेनारंभेण महता मामुपास्ते महामुने।
ये च शूरा महात्मानः श्वशुरा मे महारथाः
सोमदत्तप्रभृतयः का नु तेषां गतिः प्रभो।
तव प्रसादाद्भगवन् विशोकोऽयं महीपतिः
यथा स्याद्भविता चाहं कुन्ती चेयं वधूस्तव।
इत्युक्तवत्यां गान्धार्यां कुन्ती व्रतकृशानना॥
प्रच्छन्नजातं पुत्रं तं सस्मारादित्यसन्निभम्।
तामृषिर्वरदो व्यासो दूरश्रवणदर्शनः ॥ ५०
अपश्यद्दुःखितां देवीं मातरं सव्यसाचिनः।
तामुवाच ततो व्यासो यत्ते कार्यं विवक्षितं
तद्ब्रूहि त्वं महाभागे यत्ते मनसि वर्तते।
श्वशुराय ततः कुन्ती प्रणम्य शिरसा तदा।
उवाच वाक्यं सव्रीडा विवृण्वाना पुरातनम्

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि धृतराष्ट्रादिकृतप्रार्थने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आरंभेण शोकोद्यमेन मामुपास्ते भार्याशतं रोदनं कुर्वत् मामेव परिवार्य तिष्ठतीत्यर्थः । **आरंभ** उद्यमे दर्पे त्वरायां च वधेऽपि चेति वध एवात्र ग्राह्य ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ३०

कुन्त्युवाच ।
भगवन् श्वशुरो मेऽसि दैवतस्यापि दैवतम्
स मे देवातिदेवस्त्वं शृणु सत्यां गिरं मम १
तपस्वी कोपनो विप्रो दुर्वासा नाम मे पितुः ।
भिक्षामुपागतो भोक्तुं तमहं पर्यतोषयम् ॥ २
शौचेन त्वागसस्त्यागैः शुद्धेन मनसा तथा
कोपस्थानेष्वपि महत्स्वकुप्यन्न कदाचन ॥ ३
स प्रीतो वरदो मेऽभूत्कृतकृत्यो महामुनिः ।
अवश्यं ते गृहीतव्यमिति मां सोऽब्रवीद्वचः॥
ततः शापभयाद्विप्रमवोचं पुनरेव तम् ।
एवमस्त्विति च प्राह पुनरेव स मे द्विजः ५
धर्मस्य जननी भद्रे
भवित्री त्वं शुभानने ।
वशे स्थास्यन्ति ते देवा
यांस्त्वमावाहयिष्यसि ॥ ६
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो विप्र-
स्ततोऽहं विस्मिताऽभवम् ।
न च सर्वास्ववस्थासु
स्मृतिर्मे विप्रणश्यति ॥ ७
अथ हर्म्यतलस्थाहं रविमुद्यन्तमीक्षती ।
संस्मृत्य तदृषेर्वाक्यं स्पृहयन्ती दिवानिशम्
स्थिताऽहं बालभावेन तत्र दोषमबुद्ध्यती ।
अथ देवः सहस्रांशुर्मत्समीपगतोऽभवत् ॥ ९
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहं भूमौ च गगनेऽपि च
तताप लोकानेकेन द्वितीयेनागमत्स माम्१०
स मामुवाच वेपन्तीं वरं मत्तो वृणीष्व ह ।
गम्यतामिति तं चाहं प्रणम्य शिरसाऽवदम्
स मामुवाच तिग्मांशुर्वृथाऽऽह्वानं न मे क्षमम्
धक्ष्यामि त्वां च विप्रं च येन दत्तो वरस्तव
तमहं रक्षती विप्रं शापादनपकारिणम् ।
पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रुवम्॥
ततो मां तेजसाऽऽविश्य
मोहयित्वा च भानुमान् ।
उवाच भविता पुत्र-
स्तवेत्यभ्यगमद्दिवम् ॥ १४
ततोऽहमन्तर्भवने पितुर्वृत्तान्तरक्षिणी ।
गूढोत्पन्नं सुतं बालं जले कर्णमवासृजम् १५
नूनं तस्यैव देवस्य प्रसादात्पुनरेव तु ।
कन्याऽहमभवं विप्र यथा प्राह स मामृषिः॥
स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः।
तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव॥ १७
यदि पापमपापं वा यदेतद्विवृतं मया ।
तं द्रष्टुमिच्छामि भगवन्व्यपनेतुं त्वमर्हसि ॥
यश्चास्य राज्ञो विदितं हृदिस्थं भवतोऽनघ ।
तं चायं लभतां काममद्यैव मुनिसत्तम ॥ १९
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो वेदविदां वरः ।
साधु सर्वमिदं भाव्यमेवमेतद्यथाऽऽत्थ माम्
अपराधश्च ते नास्ति कन्याभावं गता ह्यसि
देवाश्चैश्वर्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै
सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाज्जनयन्ति ये।
वाचा दृष्ट्या तथा स्पर्शात्संघर्षेणेति पञ्चधा
मनुष्यधर्मो दैवेन धर्मेण हि न दुष्यति।
इति कुन्ति विजानीहि व्येतु ते मानसो ज्वरः
सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम्॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि व्यासकुन्तीसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

३०

**भगवन्निति** ॥ १ ॥ आगसस्त्यागैः अपराधत्यागैः ॥ ३ ॥ संघर्षेण रत्या ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥

## ३१

व्यास उवाच ।
भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि
पुत्रान् भ्रातॄन्सखींस्तथा ।
वधूश्च पतिभिः सार्धं
निशि सुप्तोत्थिता इव ॥ १
कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रं चापि यादवी
द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च पितॄन्भ्रातॄंस्तथैव च ॥ २
पूर्वमेवैष हृदये व्यवसायोऽभवन्मम ।
यदास्मि चोदितो राज्ञा भवत्या पृथयैव च ॥
न ते शोच्या महात्मानः सर्व एव नरर्षभाः
क्षत्रधर्मपराः सन्तस्तथा हि निधनं गताः ४
भवितव्यमवश्यं तत्सुरकार्यमनिन्दिते ।
अवतेरुस्ततः सर्वे देवभागा महीतलम् ॥ ५
गन्धर्वाप्सरसश्चैव पिशाचा गुह्यराक्षसाः ।
तथा पुण्यजनाश्चैव सिद्धा देवर्षयोऽपि च ॥६
देवाश्च दानवाश्चैव तथा देवर्षयोऽमलाः ।
त एते निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्रे रणाजिरे ॥ ७
गन्धर्वराजो यो धीमान् धृतराष्ट्र इति श्रुतः
स एव मानुषे लोके धृतराष्ट्रः पतिस्तव ॥ ८
पाण्डुं मरुद्गणाद्विद्धि विशिष्टतममच्युतम् ।
धर्मस्यांशोऽभवत्क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः
कलिं दुर्योधनं विद्धि
शकुनिं द्वापरं तथा ।
दुःशासनादीन्विद्धि त्वं
राक्षसाञ्शुभदर्शने ॥ १०
मरुद्गणाद्भीमसेनं बलवन्तमरिन्दमम् ।
विद्धि त्वं तु नरऋषिमिमं पार्थं धनञ्जयम् ११
नारायणं हृषीकेशमश्विनौ यमजौ तथा ।
यः स वै पार्थादुद्भूतः सहर्षजननस्तथा ॥ १२
यश्च पाण्डवदायादो हतः षड्भिर्महारथैः ।
स सोम इह सौभद्रो योगादेवाभवद्द्विधा १३
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमादित्यं तपतां वरम्
लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्णं च शोभने
द्रौपद्या सह संभूतं धृष्टद्युम्नं च पावकात् ।
अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसं तु शिखण्डिनम्
द्रोणं बृहस्पतेर्भागं विद्धि द्रौणिं च रुद्रजम् ।
भीष्मं च विद्धि गाङ्गेयं वसुं मानुषतां गतम् ॥
एवमेते महाप्राज्ञे देवा मानुष्यमेत्य हि ।
ततः पुनर्गताः स्वर्गं कृते कर्मणि शोभने ॥ १७
यच्च वै हृदि सर्वेषां दुःखमेतच्चिरं स्थितम् ।
तदद्य व्यपनेष्यामि परलोककृताद्भयात् १८
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति ।
तत्र द्रक्ष्यथ तान्सर्वान् ये हतास्मिन् रणाजिरे

वैशम्पायन उवाच ।
इति व्यासस्य वचनं श्रुत्वा सर्वो जनस्तदा
महता सिंहनादेन गङ्गामभिमुखो ययौ ॥ २०
धृतराष्ट्रश्च सामात्यः प्रययौ सह पाण्डवैः ।
सहितो मुनिशार्दूलैर्गन्धर्वैश्च समागतैः ॥ २१
ततो गङ्गां समासाद्य क्रमेण स जनार्णवः ।
निवासमकरोत्सर्वो यथाप्रीति यथासुखम् ॥
राजा च पाण्डवैः सार्धमिष्टे देशे सहानुगः ।
निवासमकरोद्धीमान् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः २३
जगाम तदहश्चापि तेषां वर्षशतं यथा ।
निशां प्रतीक्षमाणानां दिदृक्षूणां मृतान्नृपान्
अथ पुण्यं गिरिवरमस्तमभ्यगमद्रविः ।
ततः कृताभिषेकास्ते नैशं कर्म समाचरन्२५

इति श्रीमहाभारते आश्रवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि गङ्गातीरगमने
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## ३२

वैशम्पायन उवाच ।
ततो निशायां प्राप्तायां कृतसायाह्निकक्रियाः । व्यासमभ्यगमन्सर्वे ये तत्रासन्समागताः ॥१

---

३१
**भद्रे द्रक्ष्यसीति** ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे एकत्रिंशोऽध्याय. ॥ ३१ ॥

३२
ततो निशायामित्यस्मिन्नध्यायद्वये मृताना पुनर्दर्शनमुक्तम्

धृतराष्ट्रस्तु धर्मात्मा पाण्डवैः सहितस्तदा।
शुचिरेकमना सार्धमृषिभिस्तैरुपाविशत् ॥ २
गान्धार्या सह नार्यस्तु
सहिताः समुपाविशन्।
पौरजानपदश्चापि
जनः सर्वो यथावयः ॥ ३
ततो व्यासो महातेजाः
पुण्यं भागीरथीजलम् ।
अवगाह्याजुहावाथ
सर्वान् लोकान् महामुनिः ॥ ४
पाण्डवानां च ये योधाः कौरवाणां च सर्वशः
राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः॥५
ततः सुतुमुलः शब्दो जलान्ते जनमेजय।
प्रादुरासीद्यथा पूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः।
ससैन्याः सलिलात्तस्मात्समुत्तस्थुः सहस्रशः
विराटद्रुपदौ चैव सहपुत्रौ ससैनिकौ।
द्रौपदेयाश्च सौभद्रो राक्षसश्च घटोत्कचः ८
कर्णदुर्योधनौ चैव शकुनिश्च महारथः।
दुःशासनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ ९
जारासन्धिर्भगदत्तो जलसन्धश्च वीर्यवान्।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनश्च सानुजः॥
लक्ष्मणो राजपुत्रश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः।
शिखण्डिपुत्राः सर्वे च धृष्टकेतुश्च सानुजः॥११
अचलो वृषकश्चैव राक्षसश्चाप्यलायुधः।
बाह्लिकः सोमदत्तश्च चेकितानश्च पार्थिवः॥
एते चान्ये च बहवो बहुत्वाद्ये न कीर्तिताः।
सर्वे भासुरदेहास्ते समुत्तस्थुर्जलात्ततः॥ १३
यस्य वीरस्य यो वेषो यो ध्वजो यच्च वाहनं
तेन तेन व्यदृश्यन्त समुपेता नराधिपाः॥ १४
दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः
निर्वैरा निरहंकारा विगतक्रोधमत्सराः॥१५
गन्धर्वैरुपगीयन्तः स्तूयमानाश्च बन्दिभिः।
दिव्यमाल्याम्बरधरा वृताश्चाप्सरसां गणैः॥
धृतराष्ट्रस्य च तदा दिव्यं चक्षुर्नराधिप।
मुनिः सत्यवतीपुत्रः प्रीतः प्रादात्तपोबलात्॥
दिव्यज्ञानबलोपेता
गान्धारी च यशस्विनी।
ददर्श पुत्रांस्तान् सर्वान्
ये चान्येऽपि मृधे हताः॥ १९
तदद्भुतमचिन्त्यं च सुमहल्लोमहर्षणम्।
विस्मितः स जनः सर्वो ददर्शानिमिषेक्षणः॥
तदुत्सवमहोदग्रं हृष्टनारीनराकुलम्।
आश्चर्यभूतं ददृशे चित्रं पटगतं यथा॥ २०
धृतराष्ट्रस्तु तान् सर्वान् पश्यन्दिव्येन चक्षुषा
मुमुदे भरतश्रेष्ठ प्रसादात्तस्य वै मुनेः॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि भीष्मादिदर्शने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

---

तेन तेषा सत्त्वमस्तीति स्पष्टमुक्तम्। अतो मृताना सत्त्वमस्ति न वेति संशय. परास्त। अथ भस्मीभूताना कथं प्रत्यक्षेण दर्शनं स्वप्नवदिति चेत् व्यासस्यैन्द्रजालिकत्वापत्त्या सशयोच्छेदकत्वानुपपत्ति। अथ देवताभावं गताना तेषा पुनर्भीष्मादिभावेन योगबलादभिव्यक्तिर्भवति। तर्हि भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरुदयायोगात्तत्सदृशैर्देहान्तरैरुपेतानामेव तेषा दर्शनमिति वाच्यम्। तथाऽपि देहान्तरे ममायं भर्तेति बुद्धिमतीना स्त्रीणा भ्रान्तिरेव पूर्वदेहनाशस्य दृढतरस्मरणात् अस्मरणे पुन स्वप्नतुल्यतेति तुल्यम्। अत्र ब्रूम॰। हार्दविद्या प्रकृत्य श्रूयते–त इमे सत्या कामा अनृतापिधाना इति। तस्माद्दहराकाशं प्रकृत्य एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्सर्वे कामा॰ समाहिता इति। तथा यो यो ह्यस्येत प्रैति न तमिह दर्शनायोपलभते इत्युपक्रम्य ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दत इत्यादि। सत्यं ब्रह्मपुर हृदम्बरमित्यर्थ॰। समस्त सदा सन्नेवास्त्यत एव तत्र मुनय॰ पश्यन्त्यतीतादिकं मिथ्याब्रह्मपुर शरीरममुना सत्यपुरं छादितं सर्पेण स्रगिवेत्यमुष्य विलये सत्यं पुरं प्रकाशते तस्मादविद्याप्रत्युपस्थापितमपारमार्थिकं जैवं रूपम्। कर्तृभोक्तृरागद्वेषाद्यनेकानर्थकलुषितं तद्विलयनेन तद्विपरीतमपहतपाप्मत्वादिविशिष्टं पारमेश्वरं रूपं विद्यया प्रतिपद्यते सर्पादिविलयने रज्ज्वादिवदिति भाष्याच्च। ब्राह्मलौकिका एव सत्या भीष्मादयोऽनृतैर्जन्मादिभिर्भावविकारैराविर्भूय तिरोभूता॰ सन्तो महर्षिविद्ययाऽऽविर्भूय स्त्र्यादिभिश्च याथात्म्येन गृहीताः सन्तस्ताभि सह रेमिरे इति युक्तमुत्पश्याम विशेषस्त्वस्मत्कृते वेदान्तकतके दहराधिकरणे द्रष्टव्य। अक्षरार्थस्तु स्पष्ट एव॰॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वात्रिंशोऽध्याय ॥ ३२ ॥

# ३३

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्ते पुरुषश्रेष्ठाः समाजग्मुः परस्परम् ।
विगतक्रोधमात्सर्याः सर्वे विगतकल्मषाः १
विधिं परममास्थाय ब्रह्मर्षिविहितं शुभम् ।
संहृष्टमनसः सर्वे देवलोक इवामराः ॥ २
पुत्रः पित्रा च मात्रा च
भार्याश्च पतिभिः सह ।
भ्रात्रा भ्राता सखा चैव
सख्या राजन्समागताः ॥ ३
पाण्डवास्तु महेष्वासं कर्णं सौभद्रमेव च ।
संप्रहर्षात्समाजग्मुर्द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ४
ततस्ते प्रीयमाणा वै कर्णेन सह पाण्डवाः ।
समेत्य पृथिवीपाल सौहृदे च स्थिताऽभवन्
परस्परं समागम्य योधास्ते भरतर्षभ ।
मुनेः प्रसादात्ते ह्येवं क्षत्रिया नष्टमन्यवः ॥ ६
असौहृदं परित्यज्य सौहृदे पर्यवस्थिताः ।
एवं समागताः सर्वे गुरुभिर्बान्धवैः सह ॥ ७
पुत्रैश्च पुरुषव्याघ्राः कुरवोऽन्ये च पार्थिवाः ।
तां रात्रिमखिलामेवं विहृत्य प्रीतमानसाः ८
मेनिरे परितोषेण
नृपाः स्वर्गसदो यथा ।
नात्र शोको भयं त्रासो
नारतिर्नायशोऽभवत् ॥ ९
परस्परं समागम्य योधाना भरतर्षभ ।
समागतास्ताः पितृभिर्भ्रातृभिः पतिभिः सुतैः
मुदं परमिकां प्राप्य नार्यो दुःखमथात्यजन् ।
एकां रात्रिं विहृत्यैव ते वीरास्ताश्च योषितः
आमन्त्र्यान्योन्यमाश्लिष्य ततो जग्मुर्यथागतं
ततो विसर्जयामास लोकांस्तान्मुनिपुङ्गवः ॥
क्षणेनान्तर्हिताश्चैव प्रेक्षतामेव तेऽभवन् ।
अवगाह्य महात्मानः पुण्यां भागीरथीं नदीम्
सरथाः सध्वजाश्चैव स्वानि वेश्मानि भेजिरे
देवलोकं ययुः केचित्केचिद्ब्रह्मसदस्तथा १४
केचिच्च वारुणं लोकं केचित्कौबेरमाप्नुवन्
ततो वैवस्वतं लोकं केचिच्चैवाप्नुवन्नृपाः ॥ १५
राक्षसानां पिशाचानां
केचिच्चाप्युत्तरान्कुरून् ।
विचित्रगतयः सर्वे
यानवाप्यामरैः सह ॥ १६
आजग्मुस्ते महात्मानः सवाहाः सपदानुगाः
गतेषु तेषु सर्वेषु सलिलस्थो महामुनिः१७
धर्मशीलो महातेजाः कुरूणां हितकृत्तथा ।
ततः प्रोवाच ताः सर्वाः क्षत्रिया निहतेश्वराः
या याः पतिकृतान् लोका-
निच्छन्ति परमस्त्रियः ।
ता जाह्नवीजलं क्षिप्र-
मवगाहन्त्वतन्द्रिताः ॥ १९
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा श्रद्दधाना वराङ्गनाः ।
श्वशुरं समनुज्ञाप्य विविशुर्जाह्नवीजलम् २०
विमुक्ता मानुषैर्देहैस्ततस्ता भर्तृभिः सह ।
समाजग्मुस्तदा साध्व्यः सर्वा एव विशांपते
एवं क्रमेण सर्वास्ताः शीलवत्यः पतिव्रताः ।
प्रविश्य क्षत्रिया मुक्ता जग्मुर्भर्तृसलोकताम्
दिव्यरूपसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा यथाऽऽसां पतयस्तथा
ताः शीलगुणसंपन्ना विमानस्था गतक्लमाः ।
सर्वाः सर्वगुणोपेताः स्वस्थानं प्रतिपेदिरे २४
यस्य यस्य तु यः कामस्तस्मिन्काले बभूव ह ।
तं तं विसृष्टवान्व्यासो वरदो धर्मवत्सलः ॥
तच्छ्रुत्वा नरदेवानां पुनरागमनं नराः ।
जहृषुर्मुदिताश्चासन्नानादेशगता अपि ॥ २६
प्रियैः समागमं तेषां यः सम्यक् शृणुयान्नरः
प्रियाणि लभते नित्यमिह च प्रेत्य चैव सः
इष्टबान्धवसंयोगमनायासमनामयम् ।
यश्चैतच्छ्रावयेद्विद्वान् विदुषो धर्मवित्तमः २८
स यशः प्राप्नुयाल्लोके परत्र च शुभां गतिम् ।
स्वाध्याययुक्ता मनुजास्तपोयुक्ताश्च भारत ॥
साध्वाचारा दमोपेता दाननिर्धूतकल्मषाः ।
ऋजवः शुचयः शान्ता हिंसानृतविवर्जिताः
आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च धृतिमन्तश्च मानवाः
श्रुत्वाऽऽश्चर्यमिदं पर्व ह्यवाप्स्यन्ति परां गतिं

३३ ·
तत इति ॥ १ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि स्त्रीणां स्वस्वपतिलोकगमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## ३४

सौतिरुवाच ।
एतच्छ्रुत्वा नृपो विद्वान् हृष्टोऽभूज्जनमेजयः
पितामहानां सर्वेषां गमनागमनं तदा ॥ १
अब्रवीच्च मुदा युक्तः पुनरागमनं प्रति ।
कथं नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ॥ २
इत्युक्तः स द्विजश्रेष्ठो व्यासशिष्यः प्रतापवान्
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठस्तं नृपं जनमेजयम् ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः।
कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप ॥ ४
महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात् ।
तेषां च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्यतां
अनायासकृतं कर्म सत्यः श्रेष्ठः फलागमः ।
आत्मा चैभिः समायुक्तः सुखदुःखमुपाश्नुते ६
अविनाश्यस्तथायुक्तः क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः ।
भूतानामात्मको भावो यथाऽसौ न वियुज्यते
यावन्न क्षीयते कर्म तावत्तस्य स्वरूपता ।
क्षीणकर्मा नरो लोके रूपान्यत्वं नियच्छति
नानाभावास्तथैकत्वं शरीरं प्राप्य संहृताः ।
भवन्ति ते तथा नित्याः पृथग्भावं विजानतां

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३३ ॥

३४

पूर्वाध्यायद्वयोक्तमेवार्थं प्रश्नोत्तराभ्या निरूपयति— **एतच्छ्रुत्वेन्यादिना** ॥ १॥ कथ नु त्यक्ता भस्मीभूता ये देहास्तेषा तद्रूपेणैव पूर्वरूपेणैव दर्शनं कथामित्यर्थ ॥ २ ॥ अवीति युग्मम् । सर्वेषा देवासुरमनुष्याणा कर्माणि कुर्वता कर्मणा भोगमन्तरेण कदाचिदपि विप्रणाशो नास्ति । यथा स्वप्ने शुभाशुभै कर्माभि शुभमशुभं वा स्वाप्न देहं प्राप्य तद्वारा कर्मफलं सुखदु·खादिक भुक्त्वा कर्मोपरतौ सत्या तं देहं संहराति । जाग्रद्देहस्तु तदानीमविकृत एव तिष्ठति । एवं कर्मजेषु मानुषादिदेहेषु नश्य·त्स्वपि हार्दाकाशस्थाःपित्रादिदेहा अविनष्टा एव सन्ति । अत एवाथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान् कामाꣳस्तेषाꣳसर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितर· समुत्तिष्ठान्ति तेन पितृलोकेन संपन्नो महीयते इति श्रुतिः । सत्याना पित्रादीनामुत्थानं दर्शयाति ॥ ४ ॥ तदेतदाह—**महाभूतानीति** । भूताना प्राणिनामधिपतेरीश्वरस्य संश्रयान्महाभूतान्यस्मदादिशरीरापेक्षया अविनाशित्वादियोगान्महाभूतानि हार्दाकाशस्था पित्रादयस्तस्यैव सम्बधान्नित्यानि । कर्मजानि तु भूतानि कमक्षये विलीयन्त इति भाव· । तेषा च महाभूताना नित्याना शरीराणामनित्यैः शरीरै· सह संवासस्तादात्म्येनावस्थान ससारदशायामस्ति । वियुज्यता अनित्याना नाशे तै सह वियुज्यमानाना तेषा नित्याना विनाशो न। नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्य ब्रह्मपुरमिति श्रुते । तस्मान्कर्मजाना नाशेऽप्यकर्मजाना हार्दाकाशस्थानां पित्रादिदेहानामविनाशात्पुनस्तद्रूपेण तेषा दर्शनं युक्तमेव ॥ ५ ॥ कथमेतदवाप्यते इत्यत आह—**अनायासेति** । प्रवृत्तिरूपं कम आयासकृतं तद्विपरीतं तु निवृत्तिरूपं कर्म अनायासकृतम् । तस्मादयं सत्य· श्रेष्ठश्च उक्तविध· फलागमो भवति । एभिरायासयुक्तै कर्माभि· ॥ ६ ॥ तर्हि कर्मसम्बन्धादात्मा नश्यति नेत्याह—**अविनाश्य इति** । यद्यपि दु·खयोग आत्मनोऽस्ति तथापि क्षेत्रज्ञ आत्मा तैर्दु खैरविनाश्य एव अविकार्य एव असंगत्वात् । वधस्य चाध्यासिकत्वात् । अत्र दृष्टान्तमाह—**भूतानामिति** । यथासौ भूताना अस्मदादिशरीराणाम् । आत्मकः आत्मनः प्रतिकृतिर्दर्पणादौ प्रतिबिम्बो दर्पणधर्मान् मलिनत्वादीननुकुर्वाणोऽपि तन्नाशान्नश्यति । न वियुज्यत इत्यस्य न नश्यतीत्यर्थ· । एवं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगेऽपि द्रष्टव्यम् ॥७॥ यावत्कर्म देहारंभकमस्ति तावत्तस्य देहस्य स्वरूपता तत्रात्मत्वाध्यास इत्यर्थ । कर्मक्षये तु देहान्तरे आत्मत्वाध्यासो भवतीत्याह—**क्षीणेति** ॥८॥ ये नानाभावा भूतेन्द्रियादयो भिन्ना· पदार्था शरीर प्राप्य एकत्वं देवदत्तोऽहं मनुष्यपुत्र इति देहादितादात्म्यं संहता संप्राप्तास्ते एव भावा देहादीनामात्मन पृथक्त्व विजानता योगिना नित्या भवन्ति । अज्ञानिना ये अनित्या भावास्त एव ज्ञानिना नित्यात्मरूपा भवन्तीत्यर्थ ॥ ९ ॥

अश्वमेधे श्रुतिश्चेयमश्वसंज्ञपन प्रति।
लोकान्तरगता नित्यं प्राणा नित्यं शरीरिणां
अहं हितं वदाम्येतत्प्रियं चेत्तव पार्थिव।
देवयाना हि पंथानः श्रुतास्ते यज्ञसंस्तरे ११
आहुतो यत्र यज्ञस्ते तत्र देवा हितास्तव।
यदा समन्विता देवाः पशूनां गमनेश्वराः १२
गतिमन्तश्च तेनेष्ट्वा नान्ये नित्या भवन्त्युत।
नित्येऽस्मिन्पञ्चके वर्गे नित्ये चात्मनि पूरुषः
अस्य नानासमायोगं यः पश्यति वृथामतिः
वियोगे शोचतेऽत्यर्थं स बाल इति मे मतिः
वियोगे दोषदर्शी यः संयोगं स विसर्जयेत्।
असंगे संगमो नास्ति दुःखं भुवि वियोगजम्
परापरज्ञस्त्वपरो नाभिमानादुदीरितः।
अपरज्ञः परां बुद्धिं ज्ञात्वा मोहाद्विमुच्यते॥
अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः।
नाहं तं वेद्मि नासौ मां न च मेऽस्ति विरागता
येन येन शरीरेण करोत्ययमनीश्वरः।
तेन तेन शरीरेण तदवश्यमुपाश्नुते।
मानसं मनसाऽऽप्नोति शारीरं च शरीरवान्१८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयं प्रति वैशम्पायनवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

## ३५

वैशम्पायन उवाच।
अदृष्ट्वा तु नृपः पुत्रान् दर्शनं प्रतिलब्धवान्।
ऋषेः प्रसादात्पुत्राणां स्वरूपाणां कुरूद्वह॥ १
स राजा राजधर्मांश्च ब्रह्मोपनिषदं तथा।
अवाप्तवान्नरश्रेष्ठो बुद्धिनिश्चयमेव च॥ २

संज्ञपनं मारणं तदा हि सूर्यं ते चक्षु वातं प्राण इत्यादयो मन्त्रा पठ्यन्ते ततो लिंगाद्गम्यते यत् शरीरिणा प्राणा इन्द्रियाणि नित्यं निश्चितं नित्यं सर्वदा लोकान्तरे गता इति। तेन सर्वं शरीरी विभुरेवास्ति न तूपाधिपरिच्छिन्न परिच्छिन्नत्वाभिमानस्त्वस्याविवेक इति भाव॥ १०॥ तव तु ज्ञानेऽधिकाराभावात् सोपासनकर्मप्राप्यं देवयानमार्गमेवाश्रयस्वेत्याह—**अहमिति**। ते तव योग्या इति शेष॥ ११॥ यत्र काले ते त्वया यज्ञ आहुत कृतस्तत्र तदैव देवास्तव हिता सखायो जाता यदैव तदैव देवा। पशूना जीवाना गमने तत्तल्लोकप्राप्तौ ईश्वरा निग्रहानुग्रहकराः॥१२॥ यस्मादेवं तस्मान्नित्या जीवा देवानिष्ट्वा गतिमन्तो भवन्ति नान्ये अयजमाना एवं सार्धेन कर्मनिष्ठामुक्त्वा ज्ञाननिष्ठामाह सार्धेन—**नित्ये इति**। पाञ्चभौतिको देववर्गः सर्वोऽपि नित्य पुरुषश्च तद्द्रष्टा नित्य॥ १३॥ उभयोरपि नित्ययो सतोर्योऽस्य नानायोगं अनेकदेहसम्बन्धं पश्यति स वृथामतिर्वियोगे पितृपुत्रादिनाशे शोचति मौढ्यात्। उक्तरीत्या न देहो नश्यति नाप्यात्मेति निर्निमित्तस्तेषां शोक इति भाव॥१४॥ यदि स्त्र्यादिनाशाद्दुःखं पश्यति तर्हि स्त्र्यादीना परिग्रह एव न कर्तव्यः। न हि वन्ध्याया पुत्रशोकार्तिरास्ति वस्तुतस्त्वसंगे आत्मनि वियोगज दुःख वा स्त्र्यादिसंगमो वा नास्तीत्याह—**असंग इति**।१५। **परेति**। अपरस्तु उक्तविद्या ज्ञाननिष्ठामप्राप्तस्तु परापरज्ञो नित्यानित्यविभागमात्रज्ञ अभिमाना देहादितादात्म्यात् उपासनाबलेन उदीरित उत्क्षिप्त अपरज्ञः सगुणब्रह्मवित् भूत्वा पश्चात्परा बुद्धिं निर्विशेषवस्तुज्ञानं प्राप्य मोहान्मूलाज्ञानाद्विमुच्यते॥ १६॥ मुक्तस्य लक्षणमाह—**अदर्शनादिति**। कर्मकर्तुरभावाददर्शनं प्रत्यक्चैतन्यं तस्मादापतितस्तत्रैव च लीनोऽतस्तं मुक्तमहं न वेद्मि। अगोचरत्वात् असौ च मा न वेत्ति करणाभावात् तर्हि त्वमपि तादृकुतो न भवसीत्याह—**न च मेऽस्ति विरागतेति**। परं वैराग्यमेव मुख्यं मोक्षसाधनमित्यर्थ॥१७॥ **येनेति**। मनसा कृतं पापं मानसतापेनैवानुभूयते एवं शरीरेण कृतं शारीरेणोपतापेनेति कायवाङ्मनसा चापलं त्यक्त्वा वायुनिरोधं कुर्यादिति सार्धश्लोकार्थ॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुस्त्रिंशोऽध्याय॥ ३४॥

३५

**अदृष्ट्वेति**॥१॥ स धृतराष्ट्रो राजा विदुरश्च सिद्धिं ययौ इति द्वयो संबंध। तत्रापि विदुरस्तपोबलात् धृतराष्ट्रो व्यासं समासाद्येति सम्बन्ध॥ २॥

विदुरश्च महाप्राज्ञो ययौ सिद्धिं तपोबलात् ।
धृतराष्ट्रः समासाद्य व्यासं चैव तपस्विनम् ३
जनमेजय उवाच ।
ममापि वरदो व्यासो दर्शयेत्पितरं यदि ।
तद्रूपवेषवयसं श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ४
प्रियं मे स्यात्कृतार्थश्च स्यामहं कृतनिश्चयः ।
प्रसादादृषिमुख्यस्य मम कामः समृध्यताम् ५
सौतिरुवाच ।
इत्युक्तवचने तस्मिन्नृपे व्यासः प्रतापवान् ।
प्रसादमकरोद्धीमानानयच्च परिक्षितम् ॥ ६
ततस्तद्रूपवयसमागतं नृपतिं दिवः ।
श्रीमन्तं पितरं राजा ददर्श जनमेजयः ॥ ७
शमीकं च महात्मानं पुत्रं तं चास्य शृंगिणम् ।
अमात्या ये बभूवुश्च राज्ञस्तांश्च ददर्श ह ॥ ८
ततः सोऽवभृथं राजा मुदितो जनमेजयः ।
पितरं ज्ञापयामास स्वयं सस्नौ च पार्थिवः ९
स्नात्वा स नृपतिर्विप्रमास्तीकमिदमब्रवीत् ।
यायावरकुलोत्पन्नं जरत्कारुसुतं तदा ॥ १०
आस्तीक विविधाश्चर्यो यज्ञोऽयमिति मे मतिः
यदद्यायं पिता प्राप्तो मम शोकप्रणाशनः ॥११
आस्तीक उवाच
ऋषिर्द्वैपायनो यत्र पुराणस्तपसो निधिः ।
यज्ञे कुरुकुलश्रेष्ठ तस्य लोकावुभौ जितौ १२
श्रुतं विचित्रमाख्यानं त्वया पाण्डवनन्दन ।
सर्पाश्च भस्मसान्नीता गतश्च पदवीं पितुः १३
कथंचित्तक्षको मुक्तः सत्यत्वात्तव पार्थिव ।
ऋषयः पूजिताः सर्वे गतिर्दृष्टा महात्मनः १४
प्राप्तः सुविपुलो धर्मः श्रुत्वा पापविनाशनम् ।
विमुक्तो हृदयग्रन्थिरुदारजनदर्शनात् ॥ १५
ये च पक्षधरा धर्मे सद्वृत्तरुचयश्च ये ।
यान् दृष्ट्वा हीयते पापं तेभ्यः कार्या नमस्क्रिया
सौतिरुवाच ।
एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात्स राजा जनमेजयः ।
पूजयामास तमृषिमनुमान्य पुनः पुनः ॥ १७
पप्रच्छ तमृषिं चापि वैशम्पायनमच्युतम् ।
कथावशेषं धर्मज्ञो वनवासस्य सत्तम ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयस्य स्वपितृदर्शने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## ३६

जनमेजय उवाच ।
दृष्ट्वा पुत्रांस्तथा पौत्रान् सानुबन्धान् जनाधिपः
धृतराष्ट्रः किमकरोद्राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पुत्राणां दर्शनं नृप ।
वीतशोकः स राजर्षिः पुनराश्रममागमत् ॥२
इतरस्तु जनः सर्वस्ते चैव परमर्षयः ।
प्रतिजग्मुर्यथाकामं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ३
पाण्डवास्तु महात्मानो लघुभूयिष्ठसैनिकाः ।
पुनर्जग्मुर्महात्मानं सदारास्तं महीपतिम् ॥ ४
तमाश्रमपदं धीमान् ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ५
धृतराष्ट्र महाबाहो शृणु कौरवनन्दन ।
श्रुतं ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां पुण्यकर्मणाम् ६
श्रद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदिनाम् ।
धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः
मा स्म शोके मनः कार्षीर्दिष्टेन व्यथते बुधः ।
श्रुतं देवरहस्यं ते नारदाद्देवदर्शनात् ॥ ८
गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूतां गतिं शुभाम् ।
यथा दृष्टास्त्वया पुत्रास्तथा कामविहारिणः ९
युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनुरुध्यते
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः ॥

---

ज्ञापयामास आलोचितवान् स्नापयामासेति पाठः स्पष्टः ॥९॥ पापविनाशनं इतिहासमिति शेषः ॥ १५ ॥ पक्षधरा पक्षस्थापका ॥ १६॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥

३६

दृष्ट्वेति ॥ १ ॥ आश्रमपदं आश्रमं प्राप्तम् ॥ ५ ॥

विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासताम् ।
मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने ११
एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप ।
बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद्राज्यं नाम कुरूद्वह ॥ १२
इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनातुलतेजसा ॥
युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १३
अजातशत्रो भद्रं ते शृणु मे भ्रातृभिः सह ।
त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान्प्रबाधते
रमे चाहं त्वया पुत्र पुरेव गजसाह्वये ।
नाथेनानुगतो विद्वन्प्रियेषु परिवर्तिना ॥ १५
प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि ।
न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥
भवन्तं चेह संप्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते ।
+तपोयुक्तं शरीरं च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः१७
मातरौ ते तथैवेमे शीर्णपर्णकृताशने ।
मम तुल्यव्रते पुत्र न चिरं वर्तयिष्यतः ॥ १८
दुर्योधनप्रभृतयो दृष्टा लोकान्तरं गताः ।
व्यासस्य तपसो वीर्याद्भवतश्च समागमात् ॥
प्रयोजनं च निर्वृत्तं जीवितस्य ममानघ ।
उग्रं तपः समास्थास्ये त्वमनुज्ञातुमर्हसि २०

त्वय्यद्य पिण्डः कीर्तिश्च
कुलं चेदं प्रतिष्ठितम् ।
श्वो वाऽद्य वा महाबाहो
गम्यतां पुत्र माचिरम् ॥ २१

राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ ।
संदेष्टव्यं न पश्यामि कृतं मे भवता विभो

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तवचनं तं तु नृपो राजानमब्रवीत् ।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥ २३
कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा ।
भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रतः ॥ २४
तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व च ।
त्वय्यधीनं कुरुकुलं पिण्डश्च श्वशुरस्य मे २५
गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत्पूजिता वयम् ।
राजा यदाह तत्कार्यं त्वया पुत्र पितुर्वचः ॥

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तः स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमभाषत।
स्नेहबाष्पाकुले नेत्रे ×प्रमृज्य रुदतीं वचः॥२७

विसर्जयति मां राजा
गान्धारी च यशस्विनी ।
भवत्यां बद्धचित्तस्तु
कथं यास्यामि दुःखितः ॥ २८

न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचारिणि ।
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत्
ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा ।
तपस्येवानुरक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा ॥ ३०
शून्येयं च मही कृत्स्ना न मे प्रीतिकरी शुभे ।
बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न यथा पुरा
पञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कथामात्रावशेषिताः
न तेषां कुलकर्तारं कञ्चित्पश्याम्यहं शुभे ३२
सर्वे हि भस्मसान्नीतास्ते द्रोणेन रणाजिरे ।
अवशिष्टाश्च निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि ३३
चेदयश्चैव मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः ।
केवलं वृष्णिचक्रं च वासुदेवपरिग्रहात् ॥ ३४
यद्दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं नार्थहेतुतः ।
शिवेन पश्य नः सर्वान् दुर्लभं तव दर्शनम् ॥
अविषह्यं च राजा हि तीव्रं चारप्स्यते तपः ।
एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं बाष्पव्याकुललोचनः ।
नोत्सहेऽहं परित्यक्तुं मातरं भरतर्षभ ॥ ३७

प्रतियातु भवान् क्षिप्रं
तपस्तप्स्याम्यहं विभो ।
इहैव शोषयिष्यामि
तपसेदं कलेवरम् ॥ ३८

पादशुश्रूषणे रक्तो राज्ञो मात्रोस्तथाऽनयोः ।
तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम्
गम्यतां पुत्र मैवं त्वं वोचः कुरु वचो मम ।
आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः
उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते ।
त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात् ४१
तस्मात्पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पं च नः प्रभो
एवं संस्तंभितं वाक्यैः कुन्त्या बहुविधैर्मनः ॥
सहदेवस्य राजेन्द्र राज्ञश्चैव विशेषतः ।
ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुङ्गवाः ४३

बहवः प्रत्यर्थिनः प्रार्थयाना शत्रवो यत्र तत् ॥ १२ ॥ नाथेन त्वया ॥ १५ ॥ अन्विष्ये सेविष्ये ॥ २४ ॥
शिष्टमायुरिति शेष ॥ ४२ ॥ + ' उपयुक्तं शरीरं च ' इति पा० × ' परिमृज्य विनीतवत् ' इति पा०

अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन् ।
युधिष्ठिर उवाच ।
राज्यं प्रतिगमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः
अनुज्ञातास्त्वया राजन्
गमिष्यामो विकल्मषाः ।
एवमुक्तः स राजर्षि-
र्धर्मराज्ञा महात्मना ॥ ४५
अनुजज्ञे स कौरव्यमभिनन्द्य युधिष्ठिरम् ।
भीमं च बलिनां श्रेष्ठं सान्त्वयामास पार्थिवः
स चास्य सम्यङ्मेधावी प्रत्यपद्यत वीर्यवान् ।
अर्जुनं च समाश्लिष्य यमौ च पुरुषर्षभौ ४७
अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिनन्द्य च ।
गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवादनाः
जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम्
चक्रुः प्रदक्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे ॥४९
पुनः पुनर्निरीक्षन्तः प्रचक्रुस्ते प्रदक्षिणम् ।
द्रौपदीप्रमुखाश्चैव सर्वाः कौरवयोषितः ॥ ५०
न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः ।
श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः
संदिष्टाश्चेति कर्तव्यं प्रययुर्भर्तृभिः सह ।
ततः प्रजज्ञे निनदः सूतानां युज्यतामिति ५२
उष्ट्राणां क्रोशतां चापि हयानां हेषतामपि ।
ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः ।
नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात्सबान्धवः ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि युधिष्ठिरप्रत्यागमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

समाप्तं चेदं पुत्रदर्शनपर्व ॥ २ ॥

## अथ नारदागमनपर्व ।

## ३७

वैशम्पायन उवाच ।
द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया ।
देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरम् ॥ १
तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः ॥२
चिरात्तु नानुपश्यामि भगवन्तमुपस्थितम् ।
कच्चित्ते कुशलं विप्र शुभं वा प्रत्युपस्थितम् ३
के देशाः परिदृष्टास्ते किं च कार्यं करोमि ते ।
तद्ब्रूहि द्विजमुख्यस्त्वं त्वं ह्यस्माकं परा गतिः
नारद उवाच ।
चिरदृष्टोऽसि मेऽत्येवमागतोऽहं तपोवनात्
परिदृष्टानि तीर्थानि गङ्गा चैव मया नृप॥५
युधिष्ठिर उवाच ।
वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः।
धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः ॥ ६
अपि दृष्टस्त्वया तत्र कुशली स कुरूद्वहः ।
गान्धारी च पृथा चैव सूतपुत्रश्च संजयः ॥७
कथं च वर्तते चाद्य पिता मम स पार्थिवः ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्यदि दृष्टस्त्वया नृपः ८
नारद उवाच ।
स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथम् ।
यथा श्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने ॥९
वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन ।
कुरुक्षेत्रात्पिता तुभ्यं गंगाद्वारं ययौ नृप १०

---

नृपं प्रदक्षिणं चक्रु. । निवारणे स्तनपानादिति शेषः ॥४९॥
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

द्विवर्षोपेति ॥ १ ॥ मे मयाऽतिचिरं दृष्टोऽसीत्यर्थः ॥ ५ ॥

गान्धार्या सहितो धीमान्
वध्वा कुन्त्या समन्वितः ।
संजयेन च सूतेन
साग्निहोत्रः सयाजकः ॥ ११
आतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपोधनः ।
वीटां मुखे समाधाय वायुभक्षोऽभवन्मुनिः
वने स मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महातपाः ।
त्वगस्थिमात्रशेषः स षण्मासानभवन्नृपः ॥१३
गान्धारी तु जलाहारी
कुन्ती मासोपवासिनी ।
सञ्जयः षष्ठभुक्तेन
वर्तयामास भारत ॥ १४
अग्नीस्तु याजकास्तत्र जुहुवुर्विधिवत्प्रभो ।
दृश्यतोऽदृश्यतश्चैव वने तस्मिन्नृपस्य वै ॥ १५
अनिकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः ।
ते चापि सहिते देव्यौ सञ्जयश्च तमन्वयुः १६
सञ्जयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च ।
गान्धार्याश्च पृथा चैव चक्षुरासीदनिन्दिता
ततः कदाचिद्गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः ।
गंगायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽभवत्
अथ वायुः समुद्भूतो दावाग्निरभवन्महान् ।
ददाह तद्वनं सर्वं परिवृत्तं समन्ततः ॥ १९
दह्यत्सु मृगयूथेषु द्विजिह्वेषु समंततः ।
वराहाणां च यूथेषु संश्रयत्सु जलाशयान् २०
समाविष्टे वने तस्मिन्प्राप्ते व्यसन उत्तमे ।
निराहारतया राजन्मन्दप्राणविचेष्टितः ॥ २१
असमर्थोऽपसरणे सुकृशे मातरौ च ते ।
ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात् २२
इदमाह ततः सूत सञ्जयं जगतां वरः ।
गच्छ सञ्जय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित्
वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां गतिम्
तमुवाच किलोद्विग्नः सञ्जयो वदतां वरः २४
राजन्मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना ।
न चोपाय प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः २५
यदत्रानन्तरं कार्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः ॥ २६
नैष मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात्स्वयम् ।
जलमग्निस्तथा वायुरथवाऽपि विकर्षणम् २७
तापसाना प्रयास्यन्ते गच्छ सञ्जय माचिरम्
इत्युक्त्वा सञ्जयं राजा समाधाय मनस्तथा
प्राङ्मुखः सह गान्धार्या
कुन्त्या चोपाविशत्तदा ।
सञ्जयस्तं तथा दृष्ट्वा
प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ २९
उवाच चैनं मेधावी युङ्क्ष्वात्मानमिति प्रभो ।
ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद्वचः
संनिरुध्येन्द्रियग्राममासीत्काष्ठोपमस्तदा ।
गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव
दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव ।
सञ्जयस्तु महामात्रस्तस्माद्दावादमुच्यत ॥ ३२
गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः ।
स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः ॥
प्रययौ सञ्जयो धीमान् हिमवन्तं महीधरम् ।
एव स निधनं प्राप्तः कुरुराजो महामनाः ३४
गान्धारी च पृथा चैव जनन्यौ ते विशांपते
यदृच्छयाऽनुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम् ३५
तयोश्च देव्योरुभयोर्मया दृष्टानि भारत ।
ततस्तपोवने तस्मिन् समाजग्मुस्तपोधनाः
श्रुत्वा राज्ञस्तदा निष्ठां न व्यशोचन् गतीश्च ते
तत्राश्रौषमहं सर्वमेतत्पुरुषसत्तम ॥ ३७
यथा च नृपतिर्दग्धो देव्यौ ते चेति पाण्डव ।
न शोचितव्यं राजेन्द्र स्वतः[2] स पृथिवीपतिः
प्राप्तवानग्निसंयोगं गान्धारी जननी च ते ।

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनां
निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान् ।
अन्तःपुराणां च तदा महानार्तस्वरोऽभवत्
पौराणां च महाराज श्रुत्वा राज्ञस्तदा गतिम्
अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः
ऊर्ध्वबाहुः स्मरन्मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः ।
भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ४२
अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः ।
प्रादुरासीन्महाराज पृथां श्रुत्वा तथागताम्
तं च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम् ।
अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं च तपस्विनीं

दृश्यतोऽदृश्यत इति पश्यन्तमपश्यन्तं चानादृत्येत्यर्थः । नियमेन सान्निध्याभावात् ॥ १५ ॥ विकर्षणं अनशनम् ॥ २७ ॥ ऋषिपुत्रो व्यासपुत्र इति योगसामर्थ्यं सूचितम् ॥ ३० ॥ १ 'अग्नि' इति पा० २ 'स्वर्गस्थ' इति पा० ।

तस्मिन्नुपरते शब्दे मुहूर्तादिव भारत । निगृह्य बाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि दावाग्निना धृतराष्ट्रादिदाहे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

युधिष्ठिर उवाच ।
तथा महात्मनस्तस्य तपस्युग्रे च वर्ततः ।
अनाथस्येव वचने तिष्ठत्स्वस्मासु बन्धुषु ॥ १
दुर्विज्ञेया गतिर्ब्रह्मन्पुरुषाणा मतिर्मम ।
यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं वनाग्निना २
यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद्बाहुशालिनः ।
नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना
यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः ।
तं गृध्राः पर्यवीजन्त दावाग्निपरिकालितम् ४
सूतमागधसंघैश्च शयानो यः प्रबोध्यते ।
धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः ५
न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनी
पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम् ॥ ६
पृथामेव च शोचामि या पुत्रैश्वर्यमृद्धिमत् ।
उत्सृज्य सुमहद्दीप्तं वनवासमरोचयत् ॥ ७
धिग्राज्यमिदमस्माकं धिग्बल धिक्पराक्रमम्
क्षत्रधर्मं च धिग्यस्मान्मृता जीवामहे वयम
सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिर्द्विजवरोत्तम ।
यत्समुत्सृज्य राज्यं सा वनवासमरोचयत् ९
युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च ।
अनाथवत्कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन्
वृथा सन्तर्पितो वह्निः खाण्डवे सव्यसाचिना
उपकारमजानन्स कृतघ्न इति मे मतिः ॥ ११
यत्रादहन्स भगवान् मातरं सव्यसाचिनः ।
कृत्वा यो ब्राह्मणच्छद्म भिक्षार्थी समुपागतः
धिगग्निं धिक् च पार्थस्य विश्रुतां सत्यसन्धतां
इदं कष्टतरं चान्यद्भगवन्प्रतिभाति मे ॥ १३
वृथाग्निना समायोगो यदभूत्पृथिवीपतेः ।
तथा तपस्विनस्तस्य राजर्षेः कौरवस्य ह ॥
कथमेवंविधो मृत्युः प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ।
तिष्ठत्सु मन्त्रपूतेषु तस्याग्निषु महावने ॥ १५
वृथाग्निना समायुक्तो निष्ठां प्राप्तः पिता मम
मन्ये पृथा वेपमाना कृशा धमनिसंतता ॥ १६
हा तात ! धर्मराजेति समाक्रन्दन्महाभये ।
भीम ! पर्याप्नुहि भयादिति चैवाभिवाशती १७
समन्ततः परिक्षिप्ता माताऽभून्मे दवाग्निना
सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु ॥
न चैनां मोक्षयामास वीरो माद्रवतीसुतः ।
तच्छ्रुत्वा रुरुदुः सर्वे समालिङ्ग्य परस्परम् ॥
पाण्डवाः पञ्च दुःखार्ता 'भूतानीव युगक्षये'।
तेषां तु पुरुषेन्द्राणां रुदतां रुदितस्वनः ॥ २०
प्रासादाभोगसंरुद्धे अन्वरौत्सीन्स रोदसी २१

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि युधिष्ठिरविलापे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

**तथेति** ॥१॥ इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे अष्टत्रिंशोऽध्याय. ॥ ३८ ॥

## ३९

नारद उवाच ।

नासौ वृथाग्निना दग्धो यथा तत्र श्रुतं मया
वैचित्रवीर्यो नृपतिस्तत्ते वक्ष्यामि सुव्रत ॥ १
वनं प्रविशताऽनेन वायुभक्षेण धीमता ।
अग्नयः कारयित्वेष्टिमुत्सृष्टा इति नः श्रुतम् २
याजकास्तु ततस्तस्य तानग्नीन्निर्जने वने ।
समुत्सृज्य यथाकामं जग्मुर्भरतसत्तम ॥ ३
स विवृद्धस्तदा वह्निर्वने तस्मिन्नभूत्किल ।
तेन तद्वनमादीप्तमिति ते तापसाऽब्रुवन् ॥ ४
स राजा जाह्नवीतीरे यथा ते कथितं मया ।
तेनाग्निना समायुक्तः स्वेनैव भरतर्षभ ॥ ५
एवमावेदयामासुर्मुनयस्ते ममानघ ।
ये ते भागीरथीतीरे मया दृष्टा युधिष्ठिर ॥ ६
एवं स्वेनाग्निना राजा समायुक्तो महीपते ।
मा शोचिथास्त्वं नृपतिं गतः स परमां गतिं
गुरुशुश्रूषया चैव जननी ते जनाधिप ।
प्राप्ता सुमहतीं सिद्धिमिति मे नात्र संशयः ८
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र तेषां त्वमुदकक्रियाम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरेतदत्र विधीयताम् ॥९

वैशम्पायन उवाच ।

ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरंधरः ।
निर्ययौ सहसोदर्यः सदारश्च नरर्षभः ॥ १०
पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः ।
गंगां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः ॥ ११
ततोऽवगाह्य सलिले सर्वे ते नरपुंगवाः ।
युयुत्सुमग्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥१२
गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः ।
शौचं निवर्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद्बहिः ॥ १३
प्रेषयामास स नरान् विधिज्ञानाप्तकारिणः ।
गंगाद्वारं नरश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः ॥ १४
तत्रैव तेषां कुल्यानि गंगाद्वारेऽन्वशात्तदा ।
कर्तव्यानीति पुरुषान् दत्तदेयान्महीपतिः १५
द्वादशेऽहनि तेभ्यः स कृतशौचो नराधिपः ।
ददौ श्राद्धानि विधिवद्दक्षिणावन्ति पाण्डवः
धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः ।
सुवर्णं रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः १७
गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक् पृथक्
संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम् ॥
यो यदिच्छति यावच्च तावत्स लभते नरः ।
शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम् ॥ १९
यानमाच्छादनं भोगान् दासीश्च समलंकृताः
ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः २०
ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः
प्रविवेश पुरं राजा नगरं वारणाह्वयम् ॥ २१
ते चापि राजवचनात्पुरुषा ये गताऽभवन् ।
संकल्प्य तेषां कुल्यानि पुनः प्रत्यागमंस्ततः
माल्यैर्गन्धैश्च विविधैरर्चयित्वा यथाविधि ।
कुल्यानि तेषां संयोज्य तदाचख्युर्महीपतेः ॥
समाश्वास्य तु राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्
नारदोऽप्यगमद्राजन् परमर्षिर्यथेप्सितम् २४
एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।
वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पञ्च च ॥ २५
हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा ।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च
युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा ।
धारयामास तद्राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः२७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि श्राद्धदाने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

समाप्तं नारदागमनपर्व ।

---

३९

**नासाविति** ॥ १ ॥ संकल्प्य एकीकृत्य कुल्यानि अस्थीनि कुल्यं स्यात्कीकसेऽपि चेति मेदिनी प्रत्यागमन् गंगामिति शेषः ॥ २२ ॥ संयोज्य गंगयेति शेषः ॥ २३॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे आश्रमवासिकार्थप्रकाशे ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अस्यानन्तरं मौसलपर्व, तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

वैशम्पायन उवाच ।

षट्त्रिंशे त्वथ संप्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः ।

ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः ॥ १

## ॥ इति श्रीमहाभारते *आश्रमवासिकपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनप्रसंगे ' एतदाश्रमवासाख्यं पर्वोक्तं महदद्भुतम् । द्विचत्वारिंशदध्याया पर्वैतदभिसंख्यया । सहस्रमेकं श्लोकानां पंच श्लोकशतानि च । षडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ' इत्याख्यातम् । तथापि संप्रत्यस्मिन्पर्वणि प्रायः अध्यायाः ३२ श्लोकाश्च १०८० एतावन्त एव दृश्यन्ते । एतत्सुधीभिर्मृग्यमित्यलम् ।

**अयं ग्रन्थः श्रीमद्भारद्वाजकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डित-रामचन्द्रशास्त्रिणा [illegible]त्यादिना परिष्कृतश्च । भारती जयतु ॥ शाकः १८५४ ॥**

# The Mahābhāratam

with the Bharata Bhawadeepa
Commentary of Nilkaṇṭha

*edited by*
Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar

## 16. Mausala Parva
*Illustrated*



ORIENTAL REPRINT

*Oriental Books Reprint Corporation*
54 Rani Jhansi Road, New Delhi-110055

# श्रीः महाभारतम्।

चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्।


पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर

इत्येतैः पाठान्तरटिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्


## १६. मौसलपर्व


ORIENTAL REPRINT

ओरियण्टल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## मौसलपर्व ।

### –१६–

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| १ | ३१ | राज्यप्राप्त्यनन्तरं षट्त्रिंशत्तमे वर्षे सनिर्घातवाय्वादीनि दुर्निमित्तान्यालोच्य चिन्तयन्युधिष्ठिरो मौसले रामकृष्णरहितानां वृष्णीनां कदनं रामकृष्णयोर्निधनं च श्रुत्वा भ्रातॄनानीय 'किं करिष्यामः' (८) इत्यवादीत् । ततः सर्वे दुःखशोकसमन्विताः समुपाविशन् 'कथं विनष्टा भगवन्' (१२) इत्यादिके जनमेजयप्रश्ने 'षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे' (१३) इत्यादिनोत्तरमभिधाय 'केनानुशप्तास्ते वीराः' (१४) इत्यादिके पुनर्जनमेजयप्रश्ने 'विश्वामित्रं च कण्वं च' (१५) इत्यादिना तदुत्तरमभिदधद्वैशम्पायनो यदुकुमारकृतं विश्वामित्राद्युपहासं तद्दत्तं शापं मुसलस्य चूर्णीकरणपूर्वकं समुद्रे प्रक्षेपं सुरापानवर्जनविषये घोषणं च कथयति स्म... | २ |
| २ | २४ | द्वारकायां नानोत्पातप्रादुर्भावः। तद्दर्शनात्कृष्णेन गान्धारीं शापदानानुस्मरणेन तस्य सत्यताचिकीर्षया भटैः सर्ववृष्ण्यादीनां तीर्थयात्रोद्घोषणम्... | . ३ |
| ३ | ४७ | काल्याः स्त्रिया द्वारकाधावनादिषु दुर्निमित्तेषु प्रादुर्भूतेषु कृष्णस्य चक्रादिषु च दिवं गतेषु वृष्ण्यन्धकादयो भक्ष्यभोज्यादिसंग्रहपूर्वकं निर्गत्य प्रभासे न्यवसन् । तत्र कालपरीतास्ते मद्यपानं विधाय मत्ता बभूवुः । तदा प्रथमं सात्यकिकृतवर्मणोः परस्परमर्माण्युद्घाटयतोः सात्यकिना कृतवर्मणि हते क्षुब्धेषु सर्वेषु सात्यकिप्रभृतीनां नाशोऽवशिष्टान् निघ्नन्तं केशवं बभ्रुदारुकौ 'रामस्य पदमान्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः' (४७) | ...५ |
| ४ | २८ | बभ्रुदारुकसहितः कृष्णो राममन्विच्छन्वृक्षमूले स्थितं चिन्तयन्तं तमेकान्ते दृष्ट्वा अर्जुनानयनार्थं दारुकमादिश्य मदागमनं प्रतीक्षस्वेति बलरामं प्रत्युक्त्वा द्वारकामेत्यार्जुनागमनपर्यन्तं स्त्रियो रक्षणीया इति पितरमभिधाय रामसंनिधावागतो नागरूपेण समुद्रं प्रविष्टं तं दृष्ट्वा चिन्तयन्नेकान्ते इन्द्रियादिनिरोधनपूर्वकं शयितो जराख्यव्याधेन मृगबुद्ध्या पादे विद्- | |

| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | स्समाश्वास्य दिवं जगाम श्रीकृष्णः ... | ७ |
| ५ | १५ | दारुकमुखेन वृष्णीनां निधनं श्रुत्वा निर्गतोऽर्जुनोद्वारकामेत्य निरानन्दां तां दृष्ट्वा शोचन्कृष्णस्त्रीभिराक्रोशपूर्वकं परिवारितो मूर्च्छितः सत्यभामादिभिराश्वास्यासने उपवेशितस्ता आश्वास्य मातुलं द्रष्टुमभ्यगात्... | ८ |
| | २८ | अर्जुनः शयानं वसुदेवं दृष्ट्वा तत्पादौ जग्राह । वसुदेवश्च तं मूर्ध्न्युपाघ्राय बहु विलप्य श्रीकृष्णोक्तं कथयित्वा 'यदुक्तं पार्थ कृष्णेन' ( २८ ) इत्याद्युवाच | ९ |
| | ७६ | अर्जुनो दुःखितं वसुदेवं प्रति 'नाहं वृष्णिप्रवीरेण' ( २ ) इत्यादिना वृष्णिदारा बालान्वृद्धांश्चेन्द्रप्रस्थं नेष्यामीत्युक्त्वा दारुकं प्रति 'अमात्यान्-द्रष्टुमिच्छामि' ( ६ ) इत्यभिधाय सुधर्माख्यां यादवीं सभां प्रविष्टस्तत्रागतानमात्यादीन्प्रति यानादिसज्जीकरणमादिश्य 'अयं वो राजा वज्र इन्द्रप्रस्थे भविष्यति, इतः सप्तमे दिवसे समुद्र इमां पुरीं प्लावयिष्यत्यतो बहिर्वत्स्यामः' इत्याज्ञापयामास । अर्जुनादिष्टैस्तैः सर्वस्मिन्सज्जीकृते श्वोभूते वसुदेवेनोत्सृष्टेषु प्राणेषु तस्यानु चतसृषु तत्स्त्रीष्वन्वारूढासु सर्वे तदौर्ध्वदेहिकं विधाय वृष्णीनां कदनस्थानमागत्य केशवरामयोः शरीरे संस्कृत्य सर्वेषामन्येषां दाहादि विधाय वृष्णिवीराणां स्त्रियः षोडश सहस्रं श्रीकृष्णभार्या वज्रपुरःसरा गृहीत्वाऽर्जुनो निर्जगाम । सर्वेष्वेवं निर्गतेषु समुद्रेण प्लावितायां द्वारकायां निर्गतोऽर्जुनः पञ्चनदे निवासमकरोत्, तत्र लुब्धेषु दस्युप्रायेषु गोपेषु वृष्णिस्त्रियो हर्तुं प्रवृत्तेषु तैर्युद्धं कुर्वत्यर्जुने स्वबाणक्षयादिके जातेऽपि धनुष्कोट्या तान् प्रहरत्यपि ते तमनादृत्य वृष्णिस्त्रिय आहृत्य जग्मुः । ततोऽर्जुनो दैवमित्युक्त्वा हृतशेषाः स्त्रिय आदाय कुरुक्षेत्रमवातरत् । ततो मार्तिकावते कृतवर्मतनयं सरस्वत्यां सात्यकितनयं निवेश्येन्द्रप्रस्थे वज्राय राज्यं ददौ । रुक्मिण्यादयोऽग्निं सत्यभामादयश्च वनं प्रविविशुः । ततोऽर्जुनो व्यासाश्रममागत्य तं ददर्श... | ११ |
| ८ | ३८ | आगत्याभिवादनं कुर्वन्निर्विण्णमानसोऽर्जुनो 'नख-केश-दशा-कुम्भवारिणा किं समुक्षितः' ( ५ ) इत्यादिना व्यासेन पृष्टः कृष्णादीनां निधनादिकं गोपकृतं स्वपराभवं बाणक्षयादिकं चाख्याय 'उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम' ( २५ ) इत्युवाच । 'ब्रह्मशापविनिर्दग्धाः' ( २६ ) इत्यादिना व्यासेनोपदिष्टोऽर्जुनो हस्तिनापुरमागत्य युधिष्ठिराय सर्वं वृत्तं शशंस... | १२ |


**मौसलपर्वणो विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।**

॥ शुभं भवतु ॥

# मौसलपर्व

१६

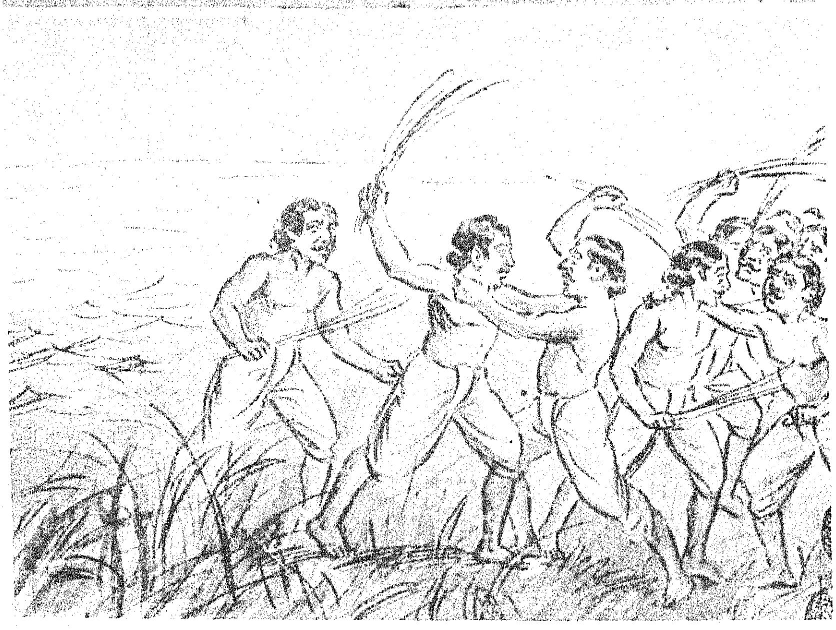

# ॥ महाभारतम् ॥

## मौसलपर्व

### –१६–

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥**

वैशम्पायन उवाच ।
षट्त्रिंशे त्वथ संप्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः ।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः १
ववुर्वाताश्च निर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः ।
अपसव्यानि शकुना मण्डलानि प्रचक्रिरे २
प्रत्यगूहुर्महानद्यो दिशो नीहारसंवृताः ।
उल्काश्चाङ्गारवर्षिण्यः प्रापतन्गगनाद्भुवि ३
आदित्यो रजसा राजन् समवच्छन्नमण्डलः
विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः समदृश्यत ॥ ४
परिवेषाश्च दृश्यन्ते दारुणाश्चन्द्रसूर्ययोः ।
त्रिवर्णाः श्यामरूक्षान्तास्तथा भस्मारुणप्रभाः
एते चान्ये च बहव उत्पाता भयशंसिनः ।
दृश्यन्ते बहवो राजन् हृदयोद्वेगकारकाः ॥ ६
कस्यचित्त्वथ कालस्य कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
शुश्राव वृष्णिचक्रस्य मौसले कदनं कृतम् ७
विमुक्तं वासुदेवं च श्रुत्वा रामं च पाण्डवः ।
समानीयाब्रवीद्भ्रातॄन्किं करिष्याम इत्युत ८
परस्परं समासाद्य
ब्रह्मदण्डबलात्कृतान् ।
वृष्णीन्विनष्टास्ते श्रुत्वा
व्यथिताः पाण्डवाभवन् ॥
निधनं वासुदेवस्य समुद्रस्येव शोषणम् ।
वीरा न श्रद्दधुस्तस्य विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥

---

१

**श्रीगणेशाय नमः ।** एवमादिपर्वाणि मृत्रिताना धर्मार्थकाममोक्षाणा मध्ये सभावनयोर्यज्ञसत्यधृतिगुरुसत्तीर्थसेवनादिना धर्म प्रतिपादित । **विराटाद्यष्टके** सेवानीतिहिंसानृतकुलक्षयादिनाऽर्थ शोकप्रदो निरूपित । द्वादशेऽर्थफलभूत काम मोपसर्गो निरुपप्लवं च मोक्षपदं निरूपितम् । **त्रयोदशादित्रये** मोक्षहेतून् दानविद्यावनवासाश्च निरूप्य **षोडशे** धृतराष्ट्रवद्धनमनाश्रित्य केवलमर्थकामसक्तास्ते मदिरादिकलहेन व्यसनेन विनश्यन्तीति प्रतिपाद्यते । **सप्तदशे** निष्कामधर्मस्य फलं गृहादेस्त्यागोऽष्टादशे तत्पूर्विका स्वर्गप्राप्तिश्च निरूपयिष्यते।तत्र राज्यप्राप्त्यनन्तर **षट्त्रिंशत्तमे** वर्षे सर्वनाशसूचकानुत्पातानाह वैशम्पायन —**षट्त्रिंश** इति ॥ १ ॥ भवन् अभवन् ॥ ९ ॥

मौसलं ते समाश्रित्य
दुःखशोकसमन्विताः ।
विषण्णा हतसंकल्पाः
पाण्डवाः समुपाविशन् ॥ ११
जनमेजय उवाच ।
कथं विनष्टा भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह ।
पश्यतो वासुदेवस्य भोजाश्चैव महारथाः १२
वैशम्पायन उवाच ।
षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे
वृष्णीनामनयो महान् ।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु
निजघ्नुः कालचोदिताः ॥ १३
जनमेजय उवाच ।
केनानुशप्तास्ते वीराः
क्षयं वृष्ण्यन्धका गताः ।
भोजाश्च द्विजवर्य त्वं
विस्तरेण वदस्व मे ॥ १४
वैशम्पायन उवाच ।
विश्वामित्रं च कण्वं च
नारदं च तपोधनम् ।
सारणप्रमुखा वीरा
ददृशुर्द्वारकां गतान् ॥ १५
ते तान्साम्बं पुरस्कृत्य
भूषयित्वा स्त्रियं यथा ।
अब्रुवन्नुपसंगम्य
दैवदण्डनिपीडिताः ॥ १६
इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः ।
ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिष्यति ॥
इत्युक्तास्ते तदा राजन्विप्रलंभप्रधर्षिताः ।
प्रत्यब्रुवंस्तान्मुनयो यत्तच्छृणु नराधिप॥ १८
वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसम् ।
वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽयं जनयिष्यति
येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः ।
उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ॥२०
समुद्रं यास्यति श्रीमांस्त्यक्त्वा देहं हलायुधः
जरा कृष्णं महात्मानं शयानं भुवि भेत्स्यति
इत्यब्रुवन्त ते राजन्प्रलब्धास्तैर्दुरात्मभिः ।
मुनयः क्रोधरक्ताक्षाः समीक्ष्याथ परस्परम्॥
तथोक्त्वा मुनयस्ते तु ततः केशवमभ्ययुः ।
अथाब्रवीत्तदा वृष्णीन् श्रुत्वैवं मधुसूदनः २३
अन्तज्ञो मतिमांस्तस्य भवितव्यं तथेति तान्
एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रविवेश पुरं तदा ॥२४
कृतान्तमन्यथा नैच्छत्कर्तुं स जगतः प्रभुः ।
श्वोभूतेऽथ ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै२५
येन वृष्ण्यन्धककुले पुरुषा भस्मसात्कृताः ।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय किंकरप्रतिमं महत २६
असूत शापजं घोरं तच्च राज्ञे न्यवेदयन् ।
विषण्णरूपस्तद्राजा सूक्ष्मं चूर्णमकारयत् २७
तच्चूर्णं सागरे चापि प्राक्षिपन्पुरुषा नृप ।
अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्य ते ॥ २८
जनार्दनस्य रामस्य बभ्रोश्चैव महात्मनः ।
अद्यप्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह ॥ २९
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः ।
यश्च नो विदितं कुर्यात्पेयं कश्चिन्नरः क्वचित्
जीवन्स शूलमारोहेत्स्वयं कृत्वा सबान्धवः ।
ततो राजभयात्सर्वे नियमं चक्रिरे तदा ।
नराः शासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ३१

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि मुसलोत्पत्तौ
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

मौसलं मुसलकृत कदनं समाश्रित्य मनसि भृत्वा ॥ ११ ॥ मुसलैः एरकाख्यैर्मुसलरूपैः ॥ १३ ॥ जरानामा कश्चित्कैवर्तः ॥ २१ ॥ अभ्ययुर्मनसाऽस्माभिर्दत्तः शापस्त्वया क्षन्तव्य इति ॥ २३ ॥ किंकरो यमदूतस्तत्तुल्यम् ॥२६॥ स्वयंकृत्वा स्वयंकर्ता ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।
एवं प्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैः सह ।
कालो गृहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः
करालो विकटो मुण्डः
पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ।
गृहाण्यावेक्ष्य वृष्णीनां
नादृश्यत क्वचित् क्वचित् ॥ २
तमघ्नन्त महेष्वासाः
शरैः शतसहस्रशः ।
न चाशक्यत वेद्धुं स
सर्वभूतात्ययस्तदा ॥ ३
उत्पेदिरे महावाता दारुणाश्च दिने दिने ।
वृष्ण्यन्धकविनाशाय बहवो लोमहर्षणाः ४
विवृद्धमूषिका रथ्या विभिन्नमणिकास्तथा ।
केशा नखाश्च सुप्तानामद्यन्ते मूषिकैर्निशि॥ ५
चीचीकूचीति वाशन्ति
सारिका वृष्णिवेश्मसु ।
नोपशाम्यति शब्दश्च
स दिवारात्रमेव हि ॥ ६
अन्वकुर्वन्नुलूकानां सारसा विरुतं तथा ।
अजाः शिवानां विरुतमन्वकुर्वत भारत ॥ ७
पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः ।
वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोता व्यचरंस्तदा ८
व्यजायन्त खरा गोषु करभाऽश्वतरीषु च ।
शुनीष्वपि बिडालाश्च मूषिका नकुलीषु च ९
नापत्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्णयस्तदा ।
प्राद्विषन् ब्राह्मणांश्चापि पितॄन्देवांस्तथैव च ॥
गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते न तु रामजनार्दनौ ।
पत्न्यः पतीनुच्चरन्त पत्नीश्च पतयस्तथा ॥ ११
विभावसुः प्रज्वलितो वामं विपरिवर्तते ।
नीललोहितमञ्जिष्ठा विसृजन्नर्चिषः पृथक् १२
उदयास्तमने नित्यं पुर्यां तस्यां दिवाकरः ।
व्यदृश्यतासकृत्पुंभिः कबन्धैः परिवारितः ॥
महानसेषु सिद्धेषु संस्कृतेऽतीव भारत ।
आहार्यमाणे कृमयो व्यदृश्यन्त सहस्रशः १४
पुण्याहे वाच्यमाने तु जपत्सु च महात्मसु ।
अभिधावन्तः श्रूयन्ते न चादृश्यत कश्चन १५
परस्परं च नक्षत्रं हन्यमानं पुनः पुनः ।
ग्रहैरपश्यन्सर्वे ते नात्मनस्तु कथञ्चन ॥ १६
नदन्तं पाञ्चजन्यं च वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
समन्तात्पर्यवाशन्त रासभा दारुणस्वराः १७
एवं पश्यन् हृषीकेशः
संप्राप्तं कालपर्ययम् ।
त्रयोदश्याममावास्यां
तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥ १८
चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः ।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः १९
विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः ।
मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः २०
पुत्रशोकाभिसन्तप्ता गान्धारी हतबान्धवा ।
यदनुव्याजहारार्ता तदिदं समुपागमत् ॥ २१
इदं च तदनुप्राप्तमब्रवीद्युधिष्ठिरः ।
पुरा व्यूढेष्वनीकेषु दृष्ट्वोत्पातान् सुदारुणान्
इत्युक्त्वा वासुदेवस्तु चिकीर्षुः सत्यमेव तत्
आज्ञापयामास तदा तीर्थयात्रामरिन्दमः २३
अघोषयन्त पुरुषास्तत्र केशवशासनात् ।
तीर्थयात्रा समुद्रे वः कार्येति पुरुषर्षभाः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि उत्पातदर्शने
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

२

**एवमिति** । काल कपोतोलूकादिरूपेण ॥ १ ॥ स एव क्वचित्करालादिरूपोऽदृश्यत । क्वचिच्च आवेक्ष्य परिक्रामतीति शेष ॥ २ ॥ सर्वभूताना अत्ययो नाशो यस्मात् ॥ ३ ॥ मणिका मृत्पात्राणि ॥ ५ ॥ उच्चरन्त वञ्चितवत्य ॥ ११ ॥ आहार्यमाणे अन्ने ॥ १४ ॥ **परेति** । स्वनक्षत्रादर्शनमपि स्वमृत्युसूचकमित्यर्थ ॥ १६ ॥ **एवमिति** । त्रयोदशदिवस कृष्णपक्षोऽभूदित्यर्थ ॥ १८ ॥ एव सत्यग्रिमपक्षे वृद्ध्या भाव्यं तत्र जात प्रत्युत एका तिथि क्षीणा तत्र ग्रहणं च जातमित्याह—**चतुर्दशीति** ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

## ३

वैशम्पायन उवाच ।
कालीस्त्री पाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्य हसती निशि
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्ती द्वारकां परिधावति १
अग्निहोत्रनिकेतेषु वास्तुमध्येषु वेश्मसु ।
वृष्ण्यन्धकानखादन्त स्वप्ने गृध्रा भयानकाः
अलङ्काराश्च छत्रं च ध्वजाश्च कवचानि च ।
ह्रियमाणान्यदृश्यन्त रक्षोभिः सुभयानकैः ३
तच्चाग्निदत्तं कृष्णस्य वज्रनाभमयोमयम् ।
दिवमाचक्रमे चक्रं वृष्णीनां पश्यतां तदा ॥ ४
युक्तं रथं दिव्यमादित्यवर्णं
हया हरन्पश्यतो दारुकस्य ।
ते सागरस्योपरिष्टादवर्त-
न्मनोजवाश्चतुरो वाजिमुख्याः ॥ ५
तालः सुपर्णश्च महाध्वजौ तौ
सुपूजितौ रामजनार्दनाभ्याम् ।
उच्चैर्जह्रुरप्सरसो दिवानिशं
वाचश्चोचुर्गम्यतां तीर्थयात्रा ॥ ६
ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन्नरर्षभाः ॥ ७
ततो भोज्यं च भक्ष्यं च पेयं चान्धकवृष्णयः ।
बहु नानाविधं चक्रुर्मद्यं मांसमनेकशः ॥ ८
ततः सैनिकवर्गाश्च निर्ययुर्नगराद्बहिः ।
यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ९
ततः प्रभासे न्यवसन्यथोद्दिष्टं यथागृहम् ।
प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवास्तदा ॥ १०
निविष्टांस्तान्निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित्
जगामामन्त्र्य तान्वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः
तं प्रस्थितं महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिम् ।
जानन्विनाशं वृष्णीनां नैच्छद्वारयितुं हरिः
ततः कालपरीतास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
अपश्यन्नुद्धवं यान्तं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी १३
ब्राह्मणार्थेषु यत्सिद्धमन्नं तेषां महात्मनाम् ।
तद्वानरेभ्यः प्रददुः सुरागन्धसमन्वितम् १४
ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलम् ।
अवर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम् १५

कृष्णस्य संनिधौ रामः सहितः कृतवर्मणा ।
अपिबद्युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥ १६
ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः ।
अब्रवीत्कृतवर्माणमवहास्यावमन्य च ॥ १७
कः क्षत्रियो हन्यमानः सुप्तान्हन्यान्मृतानिव
तन्न मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यत्त्वया कृतम्
इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः ।
प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमन्य च १९
ततः परमसंक्रुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत् ।
निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना ॥
भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धे प्रायगतस्त्वया ।
वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः ॥ २१
इति तस्य वचः श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
तिर्यक्सरोषया दृष्ट्या वीक्षांचक्रे स मन्युमान्
मणिः स्यमन्तकश्चैव
यः स सत्राजितोऽभवत् ।
तां कथां श्रावयामास
सात्यकिर्मधुसूदनम् ॥ २३
तच्छ्रुत्वा केशवस्याङ्कमगमद्रुदती तदा ।
सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दनम् ॥
तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत्
पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः २५
एष गच्छामि पदवीं सत्येन च तथा शपे ।
सौप्तिके ये च निहताः सुप्ता येन दुरात्मना ॥
द्रोणपुत्रसहायेन पापेन कृतवर्मणा ।
समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चैव सुमध्यमे ॥ २७
इत्येवमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः ।
अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः २८
तथाऽन्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः ।
अभ्यधावद्धृषीकेशो विनिवारयितुं तदा २९
एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्यायचोदिताः ।
भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ३०
तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः ।
न चुक्रोध महातेजा जानन्कालस्य पर्ययम् ॥

३

कालीति । मुष्णन्ती स्त्रीणां मङ्गलसूत्रादिकं चोरयन्ती ॥ १ ॥ निशम्य दृष्ट्वा अर्थविशारदः मोक्षपण्डितः ॥ ११ ॥

ब्राह्मणार्थेष्विति । ब्राह्मणार्थद्रव्यस्यान्यत्र विनियोजनमायुःक्षयकरमित्यर्थः ॥ १४ ॥

ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिताः कालधर्मणा।
युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा॥ ३२
हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः।
तदनन्तरमागच्छन्मोक्षयिष्यन् शिनेः सुतम्
स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह
व्यायच्छमानौ तौ वीरौ बाहुद्रविणशालिनौ
बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः।
हतं दृष्ट्वा च शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः॥ ३५
एरकाणां ततो मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः।
तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम्॥ ३६
जघान कृष्णस्तांस्तेन ये ऽग्रे प्रमुखतोऽभवन्।
ततोन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा॥
जघ्नुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः।
यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह कुपितो नृप॥ ३८
वज्रभूतेव सा राजन्नदृश्यत तदा विभो।
तृणं च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत॥ ३९
ब्रह्मदण्डकृतं सर्व-
मिति तद्विद्धि पार्थिव।
अविध्यान् विध्य ते राजन्
प्रक्षिपन्ति स्म यत्तृणम्॥ ४०
तद्वज्रभूतं मुसलं व्यदृश्यत तदा दृढम्।
अवधीत्पितरं पुत्रः पिता पुत्रं च भारत॥ ४१
मत्ताः परिपतन्ति स्म योधयन्तः परस्परम्।
पतङ्गा इव चाग्नौ ते निपेतुः कुकुरान्धकाः ४२
नासीत्पलायने बुद्धिर्वध्यमानस्य कस्यचित्।
तत्रापश्यन्महाबाहुर्जानन्कालस्य पर्ययम्॥४३
मुसलं समवष्टभ्य तस्थौ स मधुसूदनः।
साम्बं च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः ४४
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च ततश्चुक्रोध भारत।
गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः ४५
स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः।
तन्निघ्नन्तं महातेजा बभ्रुः परपुरंजयः॥ ४६
दारुकश्चैव दाशार्हमूचतुर्यन्निबोध तत्।
भगवन्निहताः सर्वे त्वया भूयिष्ठशो नराः।
रामस्य पदमन्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः॥४७

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि कृतवर्मादीनां परस्परहनने तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

## ४

वैशम्पायन उवाच।
ततो ययुर्दारुकः केशवश्च
बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः।
अथापश्यन् राममनन्तवीर्यं
वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्ते॥ १
ततः समासाद्य महानुभावं
कृष्णस्तदा दारुकमन्वशासत्।
गत्वा कुरून्सर्वमिमं महान्तं
पार्थाय शंसस्व वधं यदूनाम्॥ २
ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु
श्रुत्वा मृतान् यादवान्ब्रह्मशापात्।
इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन
कुरूंस्तदा दारुको नष्टचेताः॥ ३
ततो गते दारुके केशवोऽथ
दृष्ट्वाऽन्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम्।
स्त्रियो भवान् रक्षितुं यातु शीघ्रं
नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात्॥ ४
स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो
मदातुरो ज्ञातिवधार्दितश्च।
तं विश्रान्तं सन्निधौ केशवस्य
दुरन्तमेकं सहसैव बभ्रुम्॥ ५

---

विधस्ताडनं तदनर्हान् तौदादिकाद्विधेरिगुपधलक्षण कस्तोऽर्हार्थे यत्। विध्य विध्वा॥ ४०॥ तत्र यन्मुसलमपश्यत्तदेवावष्टभ्य तस्थौ इत्यन्वय॥ ४३॥ इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्याय॥ ३॥

४

तत इति। पतन्त शीघ्रं गच्छन्त.॥ १॥

अश्नानुरासमवधीन्महद्धि
कूटे युक्तं मुसलं लुब्धकस्य ।
ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह
कृष्णोऽग्रजं भ्रातरमुग्रतेजाः ॥ ६
इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम
यावत् स्त्रियो ज्ञातिवशाः करोमि ।
ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य
जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम् ॥ ७
स्त्रियो भवान् रक्षतु नः समग्रा
धनञ्जयस्यागमनं प्रतीक्षन् ।
रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मा-
मास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये ॥ ८
दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां
राज्ञां च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम् ।
नाहं विना यदुभिर्यादवानां
पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य ॥ ९
तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे
रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य ।
इतीदमुक्त्वा शिरसा च पादौ
संस्पृश्य कृष्णस्त्वरितो जगाम ॥ १०
ततो महान्निनदः प्रादुरासी-
त्सस्त्रीकुमारस्य पुरस्य तस्य ।
अथाब्रवीत्केशवः संनिवर्त्य
शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम् ॥
पुरीमिमामेष्यति सव्यसाची
स वो दुःखान्मोचयिता नराग्र्यः ।
ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श
रामं वने स्थितमेकं विविक्ते ॥ १२
अथापश्यद्योगयुक्तस्य तस्य
नागं मुखान्निश्चरन्तं महान्तम् ।
श्वेतं ययौ स ततः प्रेक्ष्यमाणो
महार्णवो येन महानुभावः ॥ १३
सहस्रशीर्षः पर्वताभोगवर्ष्मा
रक्ताननः स्वां तनुं तां विमुच्य ।
सम्यक् च तं सागरः प्रत्यगृह्णा-
न्नागा दिव्याः सरितश्चैव पुण्याः ॥ १४
कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च
पृथुश्रवा अरुणः कुञ्जरश्च ।
मिश्री शङ्खः कुमुदः पुण्डरीक-
स्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा ॥१५
ह्रादः क्राथः शितिकण्ठोऽग्रतेजा-
स्तथा नागौ चक्रमन्दातिषण्डौ ।
नागश्रेष्ठो दुर्मुखश्चाम्बरीषः
स्वयं राजा वरुणश्चापि राजन् ॥ १६
प्रत्युद्गम्य स्वागतेनाभ्यनन्द-
स्तेऽपूजयंश्चार्घ्यपाद्यक्रियाभिः ।
ततो गते भ्रातरि वासुदेवो
जानन् सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिः ॥१७
वने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो
भूमौ चाथ संविवेशाग्र्यतेजाः ।
सर्वं तेन प्राक्तदा वित्तमासी-
द्गान्धार्या यद्वाक्यमुक्तः स पूर्वम् १८
दुर्वाससा पायसोच्छिष्टलिप्ते
यच्चाप्युक्तं तच्च सस्मार वाक्यम् ।
स चिन्तयन्नन्धकवृष्णिनाशं
कुरुक्षयं चैव महानुभावः ॥ १९
मेने ततः संक्रमणस्य कालं
ततश्चकारेन्द्रियसंनिरोधम् ।
तथा च लोकत्रयपालनार्थ-
मात्रेयवाक्यप्रतिपालनाय ॥ २०
देवोऽपि सन् देहविमोक्षहेतो-
र्निर्णीतमैच्छत्सकलार्थतत्त्ववित् ।
स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु
शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ॥ २१
जराऽथ तं देशमुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरुग्रः ।
स केशवं योगयुक्तं शयानं
मृगासक्तो लुब्धकः सायकेन ॥ २२
जराऽविध्यत्पादतले त्वरावा-
स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम ।
अथापश्यत्पुरुषं योगयुक्तं
पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥ २३
मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य
पादौ जरा जगृहे शंकितात्मा ।
आश्वासयंस्तं महात्मा तदानीं
गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या २४

---

कूटे लोहमुद्गरे युक्तं बद्धं मुसलं ब्राह्मणशप्तं बभ्रुं स्वयमेव निपत्यावधीत् स इत्यादि सार्धं श्लोक ॥ ६ ॥

ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श रामं वने स्थितमेकं विविक्ते। अथापश्यद्योग-
युक्तस्य तस्य नागं मुखान्निस्सरन्तं महान्तम्। —मौसलपर्व पृ० ६

अथापश्यत्पुरुषं योगयुक्तं पिताम्बरं लुब्धको – – – मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं स तस्य पादौ जरा जग्रहे शंकितात्मा ।

—मौसलपर्व पृ० ६

दिव प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च
रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे ।
प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा
गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥ २५
ततो राजन्भगवानुग्रतेजा
नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च ।
योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या
स्थानं प्राप स्वं महात्माऽप्रमेयम् २६
ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः
समागतश्चारणैश्चैव राजन् ।
गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः
सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः ॥२७
तं वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राज-
न्मुनिश्रेष्ठा ऋग्भिरानर्चुरीशम् ।
तं गन्धर्वाश्चापि तस्थुः स्तुवन्तः
प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि श्रीकृष्णस्य स्वलोकगमने
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

वैशम्पायन उवाच ।
दारुकोऽपि कुरून्गत्वा दृष्ट्वा पार्थान्महारथान्
आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान् ॥१
श्रुत्वा विनष्टान्वार्ष्णेयान्
सभोजान्धककौकुरान् ।
पाण्डवाः शोकसन्तप्ता
वित्रस्तमनसोऽभवन् ॥ २
ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा
प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ३
स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो ।
ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम् ॥ ४
या स्म ता लोकनाथेन नाथवन्त्यः पुराऽभवन्
तास्त्वनाथास्तदा नाथं पार्थं दृष्ट्वा विचुक्रुशुः ५
षोडश स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः ।
तासामासीन्महानादो दृष्ट्वैवार्जुनमागतम् ॥ ६
तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेणापिहितेक्षणः ।
हीनाः कृष्णेन पुत्रैश्च नाशकत्सोऽभिवीक्षितुम्
स तां वृष्ण्यन्धकजलां हयमीनां रथोडुपाम् ।
वादित्ररथघोषौघां वेश्मतीर्थमहाह्रदाम् ॥ ८
रत्नशैवलसंघातां वज्रप्राकारमालिनीम् ।
रथ्यास्रोतोजलावर्तां चत्वरस्तिमितह्रदाम् ९
रामकृष्णमहाग्राहां द्वारकां सरितं तदा ।
कालपाशग्रहां भीमां नदीं वैतरिणीमिव ॥ १०
ददर्श वासविर्धीमान्विहीनां वृष्णिपुङ्गवैः ।
गतश्रियं निरानन्दां पद्मिनीं शिशिरे यथा ११
तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः
सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीतले ॥ १२
सात्राजिती ततः सत्या रुक्मिणी च विशांपते
अभिपत्य प्ररुरुदुः परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १३
ततस्तं काञ्चने पीठे समुत्थाप्योपवेश्य च ।
अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ १४
ततः संस्तुय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः
आश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात्

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनागमने
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

दारुक इति ॥ १ ॥ इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

वैशम्पायन उवाच

तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम्।
पुत्रशोकेन संतप्तं ददर्श कुरुपुंगवः ॥ १
तस्याश्रुपरिपूर्णाक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः।
आर्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत २
तस्य मूर्धानमाघ्रातुमियेषानकदुन्दुभिः।
स्वस्रीयस्य महाबाहुर्न शशाक च शत्रुहन् ॥ ३
समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः
रुदन्पुत्रान्स्मरन्सर्वान् विललाप सुविह्वलः ४
भ्रातॄन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रान् ससखीनपि।

वसुदेव उवाच।

यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन
तान् दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः।
यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा ६
तयोरपनयात्पार्थ वृष्णयो निधनं गताः।
यौ तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ
प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन्कत्थसे च यौ।
तौ सदा कुरुशार्दूल कृष्णस्य प्रियभाजनौ ८
तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनञ्जय।
न तु गर्हामि शैनेयं हार्दिक्यं चाहमर्जुन ॥ ९
अक्रूरं रौक्मिणेयं च शापो ह्येवात्र कारणम्।
केशिनं यस्तु कंसं च विक्रम्य जगतः प्रभुः॥
विदेहावकरोत्पार्थ चैद्यं च बलगर्वितम्।
नैषादिमेकलव्यं च चक्रे कालिङ्गमागधान् ११
गान्धारान्काशिराजं च
मरुभूमौ च पार्थिवान्।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च
पार्वतीयांस्तथा नृपान् ॥ १२
सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयान्मधुसूदनः।
त्वं हि तं नारदश्चैव मुनयश्च सनातनम् ॥१३
गोविन्दमनघं देवमभिजानीध्वमच्युतम्।
प्रत्यपश्यच्च स विभुर्ज्ञातिक्षयमधोक्षजः ॥१४
समुपेक्षितवानित्थं स्वयं स मम पुत्रकः।
गान्धार्या वचनं यत्तदृषीणां च परंतप ॥ १५
तन्नूनमन्यथा कर्तुं नैच्छत्स जगतः प्रभुः।
प्रत्यक्षं भवतश्चापि तव पौत्रः परंतप ॥ १६
अश्वत्थाम्ना हतश्चापि जीवितस्तस्य तेजसा
इमांस्तु नैच्छत्स्वाञ्ज्ञातीन् रक्षितुं च सखा तव
ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातॄनथ सखींस्तथा।
शयानान्निहतान्दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम् १८
संप्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य भरतर्षभ।
आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम्
आख्येयं तस्य यद्वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत्।
स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनां निधनं प्रभो २०
आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽस्ति विचारणा
योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु
यद्ब्रूयात्तत्तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व भारत।
स स्त्रीषु प्राप्तकालासु पाण्डवो बालकेषु च
प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम्।
इमां च नगरीं सद्यः प्रतियाते धनञ्जये ॥ २३
प्राकाराट्टालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति।
अहं देशे तु कस्मिंश्चित्पुण्ये नियममास्थितः ॥
कालं कर्ता सद्य एव रामेण सह धीमता।
एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ॥
हित्वा मां बालकैः सार्धं
दिशं कामप्यगात्प्रभुः।
सोऽहं तौ च महात्मानौ
चिन्तयन् भ्रातरौ तव ॥ २६
घोरं ज्ञातिवधं चैव
न भुञ्जे शोककर्शितः।
न मोक्ष्ये न च जीविष्ये
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव ॥ २७

---

६

**तं शयानमिति** ॥ १ ॥ शिष्यौ प्रद्युम्नसात्यकी ॥ ६ ॥ ॥ काशिराज पौण्ड्रकम् ॥ १२ ॥ एतं वंशक्षयम् अनयात् बालानामपराधात् सत्यपि सामर्थ्ये ।उपेक्षाकरणं अनयस्तस्माद्वा सामर्थ्यमेवाह—**त्वमिति** ॥ १३ ॥

**योऽहमिति** । नरनारायणयोर्जीवपरमात्मनोर्व्यतिहारेण भगवताऽभेद उक्तस्तं ज्ञात्वाऽनुवदन्नपि वसुदेवो न शोकं मुञ्चतीत्याश्चर्यं भगवन्मायाबलमिति भाव ॥ २१ ॥ कालं मृत्युं आत्मन कर्ता कारिष्यामि मत्य इत्यनेन मद्वाक्ये संशयो न कर्तव्य इत्युक्तम् ॥ २५ ॥

यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत्सर्वमखिलं कुरु ।
एतत्ते पार्थ राज्यं च स्त्रियो रत्नानि चैव हि
इष्टान्प्राणानहं ह्येमांस्त्यक्ष्यामि रिपुसूदन २८

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि अर्जुनवसुदेवसंवादे
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तः स बीभत्सुर्मातुलेन परंतप ।
दुर्मना दीनवदनो वसुदेवमुवाच ह ॥ १
नाहं वृष्णिप्रवीरेण बन्धुभिश्चैव मातुल ।
विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्यामीह कथञ्चन २
राजा च भीमसेनश्च सहदेवश्च पाण्डवः ।
नकुलो याज्ञसेनी च षडेकमनसो वयम् ॥ ३
राज्ञः संक्रमणे चापि कालोऽयं वर्तते ध्रुवम् ।
तमिमं विद्धि संप्राप्तं कालं कालविदां वर ४
सर्वथा वृष्णिदारास्तु बालं वृद्धं तथैव च ।
नयिष्ये परिगृह्याहमिन्द्रप्रस्थमरिन्दम ॥ ५
इत्युक्त्वा दारुकमिदं
वाक्यमाह धनञ्जयः ।
अमात्यान्वृष्णिवीराणां
द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम् ॥ ६
इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मां यादवीं सभाम् ।
प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान् ७
तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा ।
ब्राह्मणा नैगमास्तत्र परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८
तान्दीनमनसः सर्वान्विमूढान्गतचेतसः ।
उवाचेदं वचः काले पार्थो दीनतरस्तथा ॥ ९
शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम् ।
इदं तु नगरं सर्वं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १०
सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च ।
वज्रोऽयं भवतां राजा शक्रप्रस्थे भविष्यति ॥
सप्तमे दिवसे चैव रवौ विमल उद्गते ।
बहिर्वत्स्यामहे सर्वे सज्जीभवत मा चिरम् ॥
इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वासद्धयर्थं समुत्सुकाः ॥
तां रात्रिमवसत्पार्थः केशवस्य निवेशने ।
महता शोकमोहेन सहसाऽभिपरिप्लुतः १४
श्वोभूतेऽथ ततः शौरि-
र्वसुदेवः प्रतापवान् ।
युक्त्वाऽऽत्मानं महातेजा
जगाम गतिमुत्तमाम् ॥ १५
ततः शब्दो महानासी-
द्वसुदेवनिवेशने ।
दारुणः क्रोशतीनां च
रुदतीनां च योषिताम् ॥ १६
प्रकीर्णमूर्धजाः सर्वा विमुक्ताभरणस्रजः ।
उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन् करुणं स्त्रियः
तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा ।
अन्वारोहन्त च तदा भर्तारं योषितां वराः ॥
ततः शौरिं नृयुक्तेन बहुमूल्येन भारत ।
यानेन महता पार्थो बहिर्निष्क्रामयत्तदा १९
तमन्वयुस्तत्र तत्र दुःखशोकसमन्विताः ।
द्वारकावासिनः सर्वे पौरजानपदा हिताः ॥
तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमानाश्च पावकाः ।
पुरस्तात्तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः ॥
अनुजग्मुश्च तं वीरं देव्यस्ता वै स्वलंकृताः ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृता वधूभिश्च सहस्रशः २२
यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः
तत्रैनमुपसङ्कल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे ॥ २३
तं चिताग्निगतं वीरं शूरपुत्रं वराङ्गनाः ।
ततोऽन्वारुरुहुः पत्न्यश्चतस्रः पतिलोकगाः ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

७
एवमिति ॥ १ ॥

तं वै चतसृभिः स्त्रीभिरन्वितं पाण्डुनन्दनः ।
अदाहयच्चन्दनैश्च गन्धैरुच्चावचैरपि ॥　२५
ततः प्रादुरभूच्छब्दः समिद्धस्य विभावसोः ।
सामगानां च निर्घोषो नराणां रुदतामपि २६
ततो वज्रप्रधानास्ते वृष्ण्यन्धककुमारकाः ।
सर्वे चैवोदकं चक्रुः स्त्रियश्चैव महात्मनः　२७
अलुप्तधर्मस्तं धर्मं कारयित्वा स फाल्गुनः ।
जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ ॥　२८
स तान् दृष्ट्वा निपतितान्कदने भृशदुःखितः ।
बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं चकार ह　२९
यथा प्रधानतश्चैव चक्रे सर्वास्तथा क्रियाः ।
ये हता ब्रह्मशापेन मुसलैरेरकोद्भवैः ॥　३०
ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः ।
अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः　३१

स तेषां विधिवत्कृत्वा
प्रेतकार्याणि पाण्डवः ।
सप्तमे दिवसे प्राया-
द्रथमारुह्य सत्वरः ॥　३२
अश्वयुक्तै रथैश्चापि
गो-खरोष्ट्रयुतैरपि ।
स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां
रुदत्यः शोककर्शिताः　३३

अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनंजयम् ।
भृत्याश्चान्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये
वीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा ।
ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ३५
कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा ।
सपादरक्षैः संयुक्ताः सान्तरायुधिका ययुः
पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः
दश षट् च सहस्राणि वासुदेवावरोधनम् ।
पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः ३८
बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां हतनाथानि निर्ययुः
तत्सागरसमप्रख्यं वृष्णिचक्रं महर्धिमत् ।
उवाह रथिनां श्रेष्ठः पार्थः परपुरंजयः ॥　४०
निर्याते तु जने तस्मिन्सागरो मकरालयः ।
द्वारकां रत्नसंपूर्णां जलेनाप्लावयत्तदा ॥　४१
यद्यद्धि पुरुषव्याघ्रो भूमेस्तस्या व्यमुञ्चत ।
तत्तत्संप्लावयामास सलिलेन स सागरः ४२
तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः ।
तूर्णात्तूर्णतरं जग्मुरहो दैवमिमिति ब्रुवन् ४३
काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च ।
निवसन्नानयामास वृष्णिदारान् धनंजयः ४४
स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमत् ।
देशे गोपशुधान्याढ्ये निवासमकरोत्प्रभुः ४५
ततो लोभः समभवद्दस्यूनां निहतेश्वराः ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ४६
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः ।
आभीरा मन्त्रयामासुः समागम्याशुभदर्शनाः
अयमेकोऽर्जुनो धन्वी वृद्धबालं हतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य योधाश्चेमे हतौजसः ४८
ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः ।
अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः
महता सिंहनादेन त्रासयन्तः पृथग्जनम् ।
अभिपेतुर्वधार्थं ते कालपर्यायचोदिताः ॥ ५०
ततो निवृत्तः कौन्तेयः सहसा सपदानुगः ।
उवाच तान्महाबाहुरर्जुनः प्रहसन्निव ॥　५१
निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि जीवितुमिच्छथ ।
इदानीं शरनिर्भिन्नाः शोचध्वं निहता मया ॥
तथोक्तास्तेन वीरेण कदर्थीकृत्य तद्वचः ।
अभिपेतुर्जनं मूढा वार्यमाणाः पुनः पुनः ५३
ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं महत् ।
आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथंचन ॥　५४
चकार सज्जं कृच्छ्रेण संभ्रमे तुमुले सति ।
चिन्तयामास शस्त्राणि न च सस्मार तान्यपि
वैकृत्यं तन्महद्दृष्ट्वा भुजवीर्ये तथा युधि ।
दिव्यानां च महास्त्राणां विनाशाद्व्रीडितोऽभवत्
वृष्णियोधाश्च ते सर्वे गजाश्वरथयोधिनः ।
न शेकुरावर्तयितुं ह्रियमाणं च तं जनम् ॥५७
कलत्रस्य बहुत्वाद्धि संपतत्सु ततस्ततः ।
प्रयत्नमकरोत्पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥ ५८
मिषतां सर्वयोधानां ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
समन्ततोऽवकृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः
ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो धनंजयः ।
जघान दस्यून् सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सहस्रशः
क्षणेन तस्य ते राजन्क्षयं जग्मुरजिह्मगाः ।
अक्षया हि पुरा भूत्वा क्षीणाः क्षतजभोजनाः
स शरक्षयमासाद्य दुःखशोकसमाहतः ।
धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत्पाकशासनिः
प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समंताज्जनमेजय ६३

धनञ्जयस्तु दैवं तन्मनसाऽचिन्तयत्प्रभुः।
दुःखशोकसमाविष्टो निःश्वासपरमोऽभवत् ॥
अस्त्राणां च प्रणाशेन बाहुवीर्यस्य संक्षयात्।
धनुषश्चाविधेयत्वाच्छराणां संक्षयेण च ॥ ६५
बभूव विमनाः पार्थो दैवमित्यनुचिन्तयन्।
न्यवर्तत ततो राजन्नेदमस्तीति चाब्रवीत् ६६
ततः शेषं समादाय कलत्रस्य महामतिः।
हतभूयिष्ठरत्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ ६७
एवं कलत्रमानीय वृष्णीनां हृतशेषितम्।
न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनञ्जयः ॥ ६८
हार्दिक्यतनयं पार्थो नगरं मार्तिकावतम्।
भोजराजकलत्रं च हृतशेषं नरोत्तमः ॥ ६९
ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः
वीरैर्विहीनान् सर्वांस्तान् शक्रप्रस्थे न्यवेशयत
यौयुधानिं सरस्वत्या पुत्रं सात्यकिनः प्रियम्
न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम् ॥७१
इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा।
वज्रेणाक्रूरदारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥७२
रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैब्या हैमवतीत्यपि
देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम् ७३
सत्यभामा तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य संमताः
वनं प्रविविशू राजंस्तापस्ये कृतनिश्चयाः ७४
द्वारकावासिनो ये तु पुरुषाः पार्थमभ्ययुः।
यथार्हं संविभज्यैनान्वज्रे पर्यददज्जयः ॥७५
स तत्कृत्वा प्राप्तकालं बाष्पेणापिहितोऽर्जुनः
कृष्णद्वैपायनं व्यासं ददर्शासीनमाश्रमे ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि वृष्णिकलत्राद्यानयने
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ८

वैशम्पायन उवाच।

प्रविशन्नर्जुनो राजन्नाश्रमं सत्यवादिनः।
ददर्शासीनमेकान्ते मुनिं सत्यवतीसुतम् ॥ १
स तमासाद्य धर्मज्ञमुपतस्थे महाव्रतम्।
अर्जुनोऽस्मीति नामास्मै निवेद्याभ्यवदत्ततः २
स्वागतं तेऽस्त्विति प्राह मुनिः सत्यवतीसुतः
आस्यतामिति होवाच प्रसन्नात्मा महामुनिः
तमप्रतीतमनसं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
निर्विण्णमनसं दृष्ट्वा पार्थं व्यासोऽब्रवीदिदम्।
नखकेशदशाकुम्भवारिणा किं समुक्षितः।
आवीरजानुगमनं ब्राह्मणो वा हतस्त्वया ॥५
युद्धे पराजितो वाऽसि गतश्रीरिव लक्ष्यसे।
न त्वां प्रभिन्नं जानामि किमिदं भरतर्षभ ॥६
श्रोतव्यं चेन्मया पार्थ क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि।

अर्जुन उवाच।

यः स मेघवपुः श्रीमान् बृहत्पंकजलोचनः ७
स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः
मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः
बभूव वीरान्तकरः प्रभासे लोमहर्षणः।
एते शूरा महात्मानः सिंहदर्पा महाबलाः ॥९
भोजवृष्ण्यन्धका ब्रह्मन्नन्योन्यं तैर्हतं युधि।
गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥ १०
त एरकाभिर्निहताः पश्य कालस्य पर्ययम्।
हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ११
निधनं समनुप्राप्तं समासाद्येतरेतरम्।
पुनः पुनर्न मृष्यामि विनाशममितौजसाम् ॥
चिन्तयानो यदूनां च कृष्णस्य च यशस्विनः
शोषणं सागरस्येव पर्वतस्येव चालनम् ॥१२

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

**प्रविशन्निति** ॥१॥ नखोदक, केशोदक, वस्त्रप्रान्तो दशा तदुदकं, कुम्भमुखोदकं च, आवीरजा नारी रजस्वला तस्या रजःप्रस्रवकाले दिनत्रयादर्वाक् अनुगमनं तस्या मैथुनं, ब्राह्मणस्य वधो, युद्धे पराजयश्चेति सप्तभिर्निमित्तैः पुरुषो भ्रष्टश्रीर्भवति ॥ ५ ॥ प्रभिन्नं पराजितं त्वा कदाचिदपि न जानामि ॥ ६ ॥ हतं मृतं गारिनवन्त इत्यर्थः ॥१०॥ पंचशतं सहस्रं सहस्रगुणितं पञ्चलक्षाणीत्यर्थः ॥११॥ न केवलं हतं ताडितं अपि तु निधनं प्राप्तमित्यर्थः ॥१२॥

नभसः पतनं चैव शैत्यमग्नेस्तथैव च ।
अश्रद्धेयमहं मन्ये विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १४
न चेह स्थातुमिच्छामि लोके कृष्णविनाकृतः
इतः कष्टतरं चान्यच्छृणु तद्वै तपोधन ॥ १५
मनो मे दीर्यते येन चिन्तयानस्य वै मुहुः
पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन् सहस्रशः ॥
आभीरैरनुसृत्याजौ हृताः पञ्चनदालयैः ।
धनुरादाय तत्राहं नाशकं तस्य *पूरणे ॥ १७
यथा पुरा च मे वीर्यं भुजयोर्न तथाऽभवत् ।
अस्त्राणि मे प्रनष्टानि विविधानि महामुने ॥
शराश्च क्षयमापन्नाः क्षणेनैव समन्ततः ।
पुरुषश्चाप्रमेयात्मा शंखचक्रगदाधरः ॥ १९
चतुर्भुजः पीतवासाः श्यामः पद्मदलेक्षणः ।
यश्च याति पुरस्तान्मे रथस्य सुमहाद्युतिः २०
प्रदहन् रिपुसैन्यानि न पश्याम्यहमच्युतम् ।
येन पूर्वं प्रदग्धानि शत्रुसैन्यानि तेजसा २१
शरैर्गाण्डीवनिर्मुक्तैरहं पश्चाच्च नाशयम् ।
तमपश्यन्विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम २२
परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च
विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे॥२३
श्रुत्वैव हि गतं विष्णुं ममापि मुमुहुर्दिशः ।
प्रनष्टज्ञातिवीर्यस्य शून्यस्य परिधावतः ॥ २४
उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम ।

व्यास उवाच ।

ब्रह्मशापविनिर्दग्धा वृष्ण्यन्धकमहारथाः२६
विनष्टाः कुरुशार्दूल न तान् शोचितुमर्हसि ।
भवितव्यं तथा तच्च दिष्टमेतन्महात्मनाम् ॥
उपेक्षितं च कृष्णेन शक्तेनापि व्यपोहितुम् ।
त्रैलोक्यमपि गोविन्दः कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम्
प्रसहेदन्यथाकर्तुं कुतः शाप महात्मनाम् ।
रथस्य पुरतो याति यः स चक्रगदाधरः ॥२८
तव स्नेहात्पुराणर्षिर्वासुदेवश्चतुर्भुजः ।
कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः ॥
मोक्षयित्वा तनुं प्राप्तः कृष्णः स्वस्थानमुत्तमम्
त्वयाऽपीह महत्कर्म देवानां पुरुषर्षभ ॥ ३०
कृतं भीमसहायेन यमाभ्यां च महाभुज ।
कृतकृत्यांश्च वो मन्ये संसिद्धान्कुरुपुङ्गव ३१
गमनं प्राप्तकालं व इदं श्रेयस्करं विभो ।
एवं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत ॥ ३२
भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये ।
कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनञ्जय ॥ ३३
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ।
स एव बलवान्भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः ३४
स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः ।
कृतकृत्यानि चास्त्राणि गतान्यद्य यथागतम् ॥
पुनरेष्यन्ति ते हस्ते यदा कालो भविष्यति ।
कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत
एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ ।

वैशम्पायन उवाच ।

एतद्वचनमाज्ञाय व्यासस्यामिततेजसः ॥३७
अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम् ।
प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम्
आचष्ट तद्यथावृत्तं वृष्ण्यन्धककुलं प्रति ॥३८

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि व्यासार्जुनसंवादे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पश्यत अनादरे षष्ठी । मा पश्यन्तमनादृत्येत्यर्थ ॥१६॥ **पुरुषश्चेति** । इदमेव रूपं चतुर्भुजं नित्यमर्जुनदृग्गोचरमस्ति अत एव विश्वरूपदर्शनानन्तरमुक्तं 'तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते' इति । अन्यथा द्विभुजेनेत्यवक्ष्यत् । चतुर्भुजेनेति नावक्ष्यच्च ॥ १९ ॥ **बुद्धिरु**पस्थितकार्यावधारणं, **तेजः** प्रागल्भ्यं, **प्रतिपत्तिर**नागतावेक्षणम् ॥ ३२ ॥ भवन्ति उत्पद्यन्ते भवकालेषु ऐश्वर्यावाप्तिसमयेषु विपर्यये विनाशकाले विपद्यन्ते विनश्यन्ति। काल ईश्वर जगद्बीजं वियदादिपञ्चकम्॥३३॥ समादत्ते संहरति यदा भूतानामपि संहारो भवति क्रियास्तत्र भौतिकाना नाश इति तदर्थं शोकोऽनुचित इति भावः य एव बलवान्स एव दुर्बलो भवत्येवं विपर्ययोऽपि कालमूलो ज्ञेय ॥३४॥ **कृतेति** । भवन्तोऽपि अस्त्रवत्कृतकृत्या इति भाव ॥३५॥ पुनर्युगान्तरे मुख्या गतिं स्वर्गं गन्तुम्॥३६ एतत् प्रस्थान श्रेय ॥३७॥

* आरोपणे इत्यर्थ ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोः
श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे मौसलपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
मौसलं पर्व समाप्तम् ।

अस्यानन्तरं महाप्रस्थानिकं पर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

जनमेजय उवाच ।
एवं वृष्ण्यन्धककुले श्रुत्वा मौसलमाहवम् ।
पाण्डवाः किमकुर्वन्त तथा कृष्णे दिवं गते ॥ १

॥ इति श्रीमहाभारते *मौसलपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे 'इत्येतन्मौसलं पर्व षोडशं परिकीर्तितम् । अध्यायाष्टौ समाख्याता श्लोकानां च शतत्रयम् । श्लोकानां विंशतिश्चैव संख्याता तत्त्वदर्शिना इति प्रोक्तम् । तथापि संप्रति अध्याया ८ श्लोकाः पर २८७ एव दृश्यन्ते ।

अयं ग्रन्थः श्रीकिंजवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितराम चन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितष्टिप्पण्यादिना परिष्कृतश्च ॥ भारती जयतु ॥ शाके १८५४ ॥

# The Mahābhāratam

**with the Bharata Bhawadeepa**
**Commentary of Nilkantha**

*edited by*
Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar

## 17. Mahaprasthanika Parva
*Illustrated*



ORIENTAL REPRINT

*Oriental Books Reprint Corporation*
54 Rani Jhansi Road, New Delhi-110055

# श्रीः महाभारतम् ।

चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

**पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर**

इत्येतैः पाठान्तरटिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्

## १७. महाप्रस्थानिकपर्व

ORIENTAL REPRINT

ओरि ण्टल बुक्स रीप्रिंट का रेशन

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

## महाप्रस्थानिकपर्व ।

### –१७–

### विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लो० | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | **महाप्रस्थानिकपर्व** | १–७ |
| १ | ४६ | पूर्वं मौसले हतेषु वृष्ण्यन्धकेषु दिवं गते च भगवति श्रीकृष्णे पण्डुपुत्राः किमकुर्वतेति जनमेजयप्रश्ने वैशम्पायनस्योत्तरम् । युधिष्ठिरो महाप्रस्थानगमनं निश्चित्य भ्रातृभिर्द्रौपद्या च सह स्वर्गं जगमिषू राज्यभारं युयुत्सौ निक्षिप्यार्जुनानुमत्या परीक्षितं चाभिषिच्य सुभद्रां प्रति 'एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति । यदूनां परिशेषश्च' (८) इत्याद्यादिश्य श्रीकृष्णप्रभृतीनामुदकदानपूर्वकं श्राद्धानि कृत्वा परीक्षितं शिष्यत्वेन कृपाचार्याय ददौ। ततः कृच्छ्रात्पौरानुमतिसंपादनेन वल्कलधारणादि कृत्वोत्सर्गेष्टिपूर्वकमग्नीनुत्सृज्य भ्रातृभिर्द्रौपद्या शुना च सह प्रस्थितो लौहित्यं सलिलार्णवं ययौ । तत्र पुरुषविग्रहमाग्निं दृष्ट्वा तदाज्ञयाऽर्जुनेनाक्षय्येषुभिसहिते गाण्डीवे वरुणोद्देशेनार्णवे त्यक्ते दक्षिणामुखा निर्गताः पृथिवीं प्रदक्षिणीकृत्योत्तरा दिशं पाण्डवा ययुः | ३ |
| २ | २६ | उदीच्यां दिशि हिमालयं प्राप्य तमप्यतिक्रामत्सु तेषु प्रथमं भूमौ पतितां द्रौपदीं दृष्ट्वा भीमेन पतनकारणं पृष्टो युधिष्ठिरोऽर्जुने तस्या विशेषेण पक्षपातं कारणत्वेनोवाच । एवं क्रमेण सहदेवादिषु पतत्सु भीमप्रश्नानुरोधेन तत्तत्पतनकारणान्यभिदधानो युधिष्ठिरो भीमपतनानन्तरमेकेन शुना सहाग्रे जगाम | ४ |
| ३ | ३८ | शुना सह गच्छन्तं युधिष्ठिरं स्वर्गं नेतुं रथेन सहागतं रथमारोहेत्युक्तवन्तं चेन्द्रं प्रति 'न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर' (३) इत्याद्युवाच युधिष्ठिरः। ततः 'मानुषं देहं त्यक्त्वा स्वर्गं गतान्भ्रातॄंस्त्वमनेनैव शरीरेण तत्र गतो द्रक्ष्यसि' इत्याह शक्रः। शुना सह स्वर्गं जिगमिषोर्युधिष्ठिरस्येन्द्रेण सहोक्तिप्रत्युक्तयोः प्रचलितयोः शुना विना रथारोहणमरोचयमानस्य युधिष्ठिरस्य निश्चयं दृष्ट्वा सुप्रसन्नः साक्षाद्धर्मो निजस्वरूपप्रकाशनेन युधिष्ठिरं प्रशस्य 'अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितुर्वृत्तेन मेधया । अनुक्रोशेन चानेन' (१८) इत्याद्युवाच । ततो धर्मादयो युधिष्ठिरं रथमारोप्य स्वैः स्वैर्विमानैर्युधिष्ठिरोऽपि स्वर्गं गतो नारदेन स्तुतो तत्र भीमादिभ्रातॄणामदर्शनाद्देवानामन्त्र्य 'यत्र मे भ्रातरो 'द्रौपदी च गतास्तत्रैव गन्तुमिच्छामि' इत्याद्यब्रवीत् | ७ |


**महाप्रस्थानिकपर्वणो विषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥ शुभं भवतु ॥**

# महाप्रस्थानिकपर्व

## १७

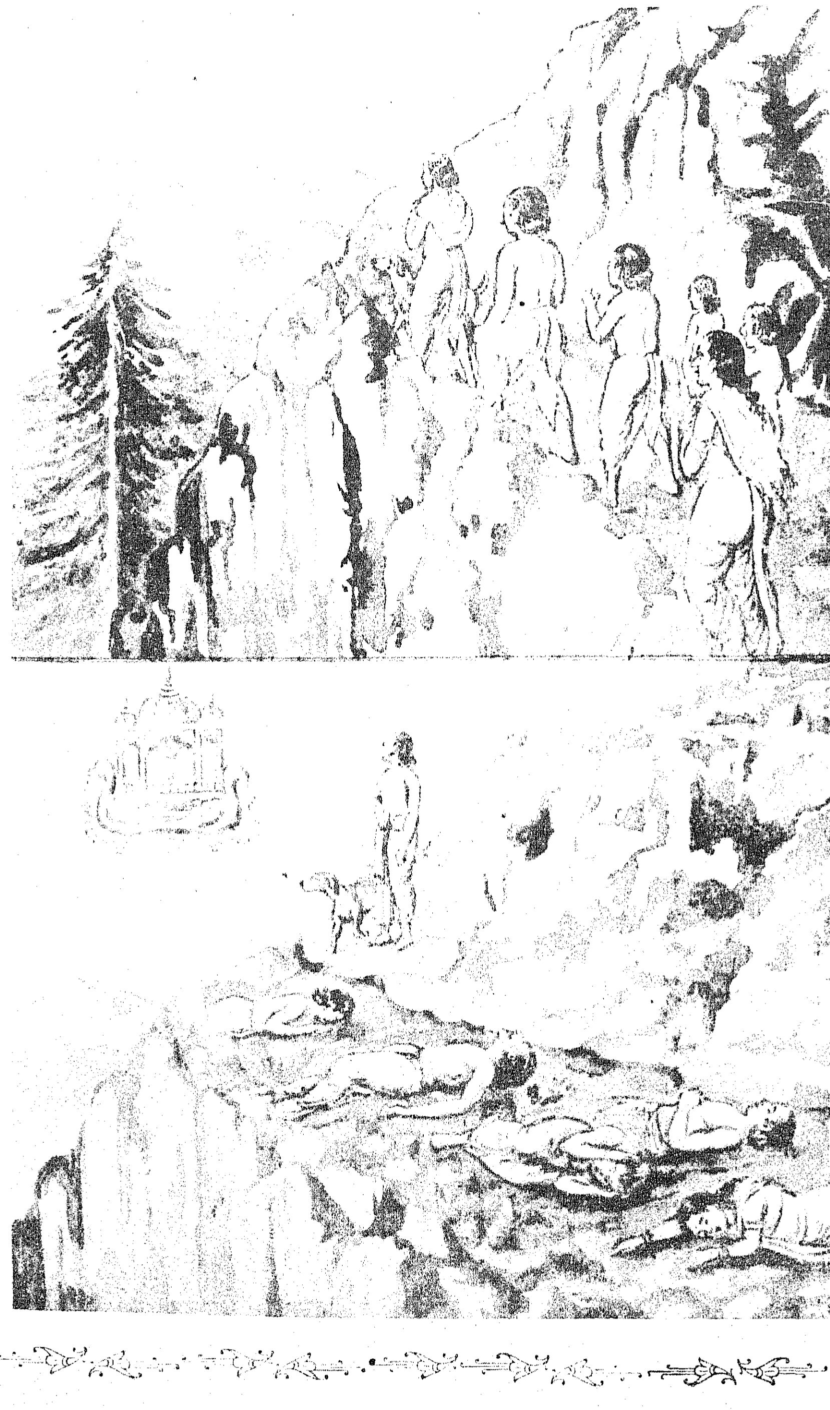

# ॥ महाभारतम् ॥

## महाप्रस्थानिकपर्व ।

## -१७-

श्रीगणेशाय नमः ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच ।
एवं वृष्ण्यन्धककुले श्रुत्वा मौसलमाहवम्।
पाण्डवाः किमकुर्वन्त तथा कृष्णे दिवं गते १
वैशम्पायन उवाच ।
श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत्
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत् ॥ २
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते ।
कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि ॥ ३
इत्युक्तः स तु कौन्तेयः कालः काल इति ब्रुवन्
अन्वपद्यत तद्वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य धीमतः ॥ ४
अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ तथा ।
अन्वपद्यन्त तद्वाक्यं यदुक्तं सव्यसाचिना ॥५
ततो युयुत्सुमानाय्य प्रव्रजन् धर्मकाम्यया ।
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः ॥ ६
अभिषिच्य स्वराज्ये च
राजानं च परिक्षितम् ।
दुःखार्तश्चाब्रवीद्राजा
सुभद्रां पाण्डवाग्रजः ॥ ७
एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति ।
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह ॥ ८
परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः ।
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः
इत्युक्त्वा धर्मराजः स वासुदेवस्य धीमतः ।
मातुलस्य च वृद्धस्य रामादीनां तथैव च १०

---

श्रीगणेशाय नमः ॥ कृतकृत्याना दुःसहदुःखग्रस्ताना महाप्रस्थानादिना उपायेन देहत्यागो युक्त इति पाण्डवाचारेण प्रदर्शयन् महाप्रस्थानिकं पर्वारभते । प्रसंगाच्च स्वर्गतिहेतून् गुणान् स्वर्गतिप्रबन्धकांश्च दोषान् दर्शयति संक्षेपेण—एवं वृष्ण्यन्धककुले इत्यादिना ॥१॥ प्रस्थाने स्वर्गं गन्तुं गृहान्निःसरणे ॥ २ ॥ पाशं तत्कृताकर्षं मरणमिति यावत्। तदहं मन्ये अंगीकरोमि । त्वमप्येतद्द्रष्टुं आलोचितुम् ॥ ३ ॥ काल. काल इति नित्यार्थे द्वित्वम्। अपरिहार्यः कालो मृत्युः सोऽद्यैवास्तु किं चिरेणेत्याशयः ॥४॥धर्मकाम्यया प्रव्रजन्नुद्वेगेन।परिददौ तदधीनं कृतवान् तस्याभिषेकेऽनधिकारात्॥६॥स्वराज्ये हास्तिनपुरे ॥ ७ ॥ अधर्मे परिक्षिद्वज्रयोर्बालयोररक्षणजे महाप्रस्थानमियं मा कुर्यादिति भावः ॥ ९ ॥

भ्रातृभिः सह धर्मात्मा कृत्वोदकमतन्द्रितः ।
श्राद्धान्युद्दिश्य सर्वेषां चकार विधिवत्तदा
द्वैपायनं नारदं च मार्कण्डेयं तपोधनम् ।
भारद्वाज याज्ञवल्क्य हरिमुद्दिश्य यत्नवान्॥
अभोजयत्स्वादु भोज्य
कीर्तयित्वा च शार्ङ्गिणम् ।
ददौ रत्नानि वासांसि
ग्रामानश्वान् रथांस्तथा ॥ १३
स्त्रियश्च द्विजमुख्येभ्यस्तदा शतसहस्रशः ।
कृपमभ्यर्च्य च गुरुमथ पौरपुरस्कृतम् ॥ १४
शिष्य परिक्षितं तस्मै ददौ भरतसत्तमः ।
ततस्तु प्रकृतीः सर्वाः समानाय्य युधिष्ठिरः
सर्वमाचष्ट राजर्षिश्चिकीर्षितमथात्मनः ।
ते श्रुत्वेव वचस्तस्य पौरजानपदा जनाः १६
भृशमुद्विग्नमनसो नाभ्यनन्दन्त तद्वचः ।
नैवं कर्तव्यमिति ते तदोचुस्त जनाधिपम् ॥
न च राजा तथाऽकार्षीत्कालपर्यायधर्मवित्
ततोऽनुमान्य धर्मात्मा पौरजानपद जनम् १८
गमनाय मतिं चक्रे भ्रातरश्चास्य ते तदा ।
ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत ।
भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी २०
तथैव जगृहुः सर्वे वल्कलानि नराधिप ।
विधिवत्कारयित्वेष्टिं नैष्ठिकीं भरतर्षभ २१
समुत्सृज्याप्सु सर्वेऽग्नीन् प्रतस्थुर्नरपुङ्गवाः ।
ततः प्ररुरुदुः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरोत्तमान्
प्रस्थितान् द्रौपदीषष्ठान्
पुरा द्यूताजितान् यथा ।
हर्षोऽभवच्च सर्वेषां
भ्रातॄणां गमनं प्रति ॥ २३
युधिष्ठिरमत ज्ञात्वा वृष्णिक्षयमवेक्ष्य च ।
भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः
आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात्
पौरैरनुगतो दूरं सर्वैरन्तःपुरैस्तथा ॥ २५
न चैनमशकत्कश्चिन्निवर्तस्वेति भाषितुम् ।
न्यवर्तन्त ततः सर्वे नरा नगरवासिनः ॥ २६
कृपप्रभृतयश्चैव युयुत्सुं पर्यवारयन् ।
विवेश गङ्गा कौरव्य उलूपी भुजगात्मजा २७
चित्राङ्गदा ययौ चापि मणिपूरपुरं प्रति ।
शिष्टा परिक्षित त्वन्या मातरः पर्यवारयन् ॥
पाण्डवाश्च महात्मानो
द्रौपदी च यशस्विनी ।
कृतोपवासाः कौरव्य
प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः ॥ २९
योगयुक्ता महात्मानस्त्यागधर्ममुपेयुषः ।
अभिजग्मुर्बहून्देशान्सरितः सागरांस्तथा ३०
युधिष्ठिरो ययावग्रे भीमस्तु तदनन्तरम् ।
अर्जुनस्तस्य चान्वेव ययौ चापि यथाक्रमम् ॥
पृष्ठतस्तु वरारोहा श्यामा पद्मदलेक्षणा ।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा ययौ भरतसत्तम ॥ ३२
श्वा चैवानुययावेकः
प्रस्थितान्पाण्डवान्वनम् ।
क्रमेण ते ययुर्वीरा
लौहित्यं सलिलार्णवम् ॥ ३३
गाण्डीवं तु धनुर्दिव्यं न मुमोच धनञ्जयः ।
रत्नलोभान्महाराज ते चाक्षय्ये महेषुधी ३४
अग्निं ते ददृशुस्तत्र स्थितं शैलमिवाग्रतः ।
मार्गमावृत्य तिष्ठन्त साक्षात्पुरुषविग्रहम् ॥ ३५
ततो देवः सप्तार्चिः पाण्डवानिदमब्रवीत् ।
भो भो पाण्डुसुता वीराः पावकं मां निबोधत
युधिष्ठिर महाबाहो भीमसेन परंतप ।
अर्जुनाश्विसुतौ वीरौ निबोधत वचो मम ३७
अहमग्निः कुरुश्रेष्ठा मया दग्ध च खाण्डवम् ।
अर्जुनस्य प्रभावेण तथा नारायणस्य च ॥ ३८
अयं वः फाल्गुनो भ्राता गाण्डीवं परमायुधम्
परित्यज्य वने यातु नानेनार्थोऽस्ति कश्चन ॥
चक्ररत्नं तु यत्कृष्णे स्थितमासीन्महात्मनि ।
गत तच्च पुनर्हस्ते कालेनैष्यति तस्य ह ॥ ४०
वरुणादाहृतं पूर्वं मयैतत्पार्थकारणात् ।
गाण्डीवं धनुषां श्रेष्ठं वरुणायैव दीयताम् ४१
ततस्ते भ्रातरः सर्वे धनञ्जयमचोदयन् ।
स जले प्राक्षिपच्चैतत्तथाऽक्षय्ये महेषुधी ४२
ततोऽग्निर्भरतश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ।
ययुश्च पाण्डवा वीरास्ततस्तेद क्षिणामुखाः ॥

स्त्रिय दासीः ॥ १४ ॥ अनुमान्य अनुमतिप्रद कृत्वा ॥ १८ ॥ नैष्ठिकीं पार्यंतिकां उत्सर्गेष्टिमित्यर्थ ॥ २१ ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्याप्स्वग्नीनुत्सृज्येति ज्ञेयम् ॥ २२ ॥ अन्या युधिष्ठिरादाना भार्या श्रुतसोमादीना मातरः ॥ २८ ॥ लौहित्यं उदयाचलप्रातस्थं समुद्रम् ॥ ३३ ॥ अनेन गाण्डीवेन अर्थ प्रयोजनम् ॥ ३९ ॥ कालेन अवतारान्तरे ॥ ४० ॥

ततस्ते तूत्तरेणैव तीरेण लवणाम्भसः ।
जग्मुर्भरतशार्दूल दिशं दक्षिणपश्चिमाम् ॥ ४४
ततः पुनः समावृत्ताः पश्चिमां दिशमेव ते ।
ददृशुर्द्वारकां चापि सागरेण परिप्लुताम् ४५
उदीचीं पुनरावृत्य ययुर्भरतसत्तमाः ।
प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।
ततस्ते नियतात्मान उदीचीं दिशमास्थिताः
ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १
तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवम् ।
अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरम् ॥ २
तेषां तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणाम् ।
याज्ञसेनी भ्रष्टयोगा निपपात महीतले ॥ ३
तां तु प्रपतितां दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
उवाच धर्मराजानं याज्ञसेनीमवेक्ष्य ह ॥ ४
नाधर्मश्चरितः कश्चिद्राजपुत्र्या परंतप ।
कारणं किं नु तद्ब्रूहि यत्कृष्णा पतिता भुवि ५
युधिष्ठिर उवाच ।
पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनञ्जये ।
तस्यैतत्फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम ॥ ६
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वाऽनवेक्ष्यैनां ययौ भरतसत्तमः ।
समाधाय मनो धीमान् धर्मात्मा पुरुषर्षभः ७
सहदेवस्ततो विद्वान्निपपात महीतले ।
तं चापि पतितं दृष्ट्वा भीमो राजानमब्रवीत् ८
योऽयमस्मासु सर्वेषु शुश्रूषुरनहंकृतः ।
सोऽयं माद्रवतीपुत्रः कस्मान्निपतितो भुवि ९
युधिष्ठिर उवाच ।
आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कञ्चन ।
तेन दोषेण पतितस्तस्मादेष नृपात्मजः ॥ १०

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा तं समुत्सृज्य सहदेवं ययौ तदा।
भ्रातृभिः सह कौन्तेयः शुना चैव युधिष्ठिरः
कृष्णां निपतितां दृष्ट्वा सहदेवं च पाण्डवम् ।
आर्तो बन्धुप्रियः शूरो नकुलो निपपात ह १२
तस्मिन्निपतिते वीरे नकुले चारुदर्शने ।
पुनरेव तदा भीमो राजानमिदमब्रवीत् ॥ ११
योऽयमक्षतधर्मात्मा भ्राता वचनकारकः ।
रूपेणाप्रतिमो लोके नकुलः पतितो भुवि १४
इत्युक्तो भीमसेनेन प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।
नकुलं प्रति धर्मात्मा सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ १५
रूपेण मत्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनम् ।
अधिकश्चाहमेवैक इत्यस्य मनसि स्थितम् १६
नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर ।
'यस्य यद्विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्नुते' १७
तांस्तु प्रपतितान् दृष्ट्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
पपात शोकसन्तप्तस्ततो नु परवीरहा ॥ १८
तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे पतिते शक्रतेजसि ।
म्रियमाणे दुराधर्षे भीमो राजानमब्रवीत् १९
अनृतं न स्मराम्यस्य स्वैरेष्वपि महात्मनः ।
अथ कस्य विकारोऽयं येनायं पतितो भुवि ।
युधिष्ठिर उवाच ।
एकाह्ना निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत् ।
न च तत्कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत् ॥ २१

---

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

**तत इति** । ततः दिक्त्रयप्रदक्षिणीकरणानन्तरं योगयुक्ताः समाहितमनसः ॥ १ ॥ भ्रष्टयोगा ध्यानात् स्खलितमानसा ॥ ३ ॥ **पक्षेति** । तुल्येषु वैषम्येण पूजा न कार्येति भावः ॥ ६ ॥ अनवेक्ष्य स्वर्गान्तरायरूपः स्नेहो माभूदिति भावः ॥ ७ ॥ **आत्मन इति** । प्राज्ञत्वाभिमानोऽपि पतनहेतुरिति भावः ॥ १० ॥ **रूपेणेति** । रूपगर्वान्नकुलः पपातेत्यर्थः ॥ १६ ॥ **एकाह्नेति** । शौर्यगर्वादर्जुनोऽपि मिथ्याप्रतिज्ञत्वाच्च पपातेत्यर्थः ॥ २१ ॥

अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः ।
तथा चैतन्न तु तथा कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ २२

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रस्थितो राजा
भीमोऽथ निपपात ह ।
पतितश्चाब्रवीद्भीमो
धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ २३

भो भो राजन्नवेक्षस्व पतितोऽहं प्रियस्तव ।
किंनिमित्तं च पतनं ब्रूहि मे यदि वेत्थ ह २४

युधिष्ठिर उवाच ।

अतिभुक्तं च भवता प्राणेन च विकत्थसे ।
अनवेक्ष्य परं पार्थ तेनासि पतितः क्षितौ ॥२५
इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्जगामानवलोकयन् ।
श्वाऽप्येकोऽनुययौ यस्ते बहुशः कीर्तितो मया

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि द्रौपद्यादिपतने
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

वैशम्पायन उवाच ।

ततः संनादयन् शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः ।
रथेनोपययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम् ॥ १
स भ्रातॄन् पतितान् दृष्ट्वा
धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तः
सहस्राक्षमिदं वचः ॥ २
भ्रातरः पतिता मेऽत्र गच्छेयुस्ते मया सह ।
न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर ३
सुकुमारी सुखार्हा च राजपुत्री पुरंदर ।
साऽस्माभिः सह गच्छेत तद्भवाननुमन्यताम्

शक्र उवाच ।

भ्रातॄन् द्रक्ष्यसि स्वर्गे त्वमग्रतस्त्रिदिवं गतान्
कृष्णया सहितान्सर्वान्मा शुचो भरतर्षभ ५
निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ ।
अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः ॥ ६

युधिष्ठिर उवाच ।

अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह ।
स गच्छेत मया सार्धमानृशंस्या हि मे मतिः

शक्र उवाच ।

अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राजन्
श्रियं कृत्स्नां महतीं चैव सिद्धिम् ।
संप्राप्तोऽद्य स्वर्गसुखानि च त्वं
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र
शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य ।
मा मे श्रिया सङ्गमनं तयाऽस्तु
यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम् ॥ ९

इन्द्र उवाच ।

स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्य-
मिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति ।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।

भक्तत्यागं प्राहुरत्यन्तपापं
तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन ।
तस्मान्नाहं जातु कथं च नाद्य
त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥ ११

---

अत्यशनाद्बलगर्वाच्च भीमसेनः पपतेत्याह—**अतिभुक्तमिति** ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्याय. ॥ २ ॥

३

**ततः संनादयन्नित्यस्य** बान्धवभोज्यैव लक्ष्मीः श्रेयसी न स्वमात्रभोज्येति तात्पर्यम् ॥ १ ॥ **अयं श्वेत्या-**देर्नीचतरमपि संनिहितं प्रथमं स्वसुखविभागेन संभावयेत्पश्चात्स्वयं तद्भोक्तव्यमिति तात्पर्यम् ॥७॥ **नात्रेति** । अस्पृश्यस्य संगत्यागे नृशंसं निर्दयत्वं नास्ति ॥ ८ ॥ श्ववतामशुचित्वात् धिष्ण्यं स्थानं स्वर्गे नास्ति क्रोधवशा नाम देवगणा. अशुचेरिष्टापूर्तफलं घ्नन्ति ॥ १० ॥

भीतं भक्तं नान्यदस्तीति चार्तं
प्राप्तं क्षीणं रक्षणे प्राणलिप्सुम् ।
प्राणत्यागादप्यहं नैव मोक्तुं
यतेयं वै नित्यमेतद्व्रतं मे ॥ १२

इन्द्र उवाच ।
शुना दृष्टं क्रोधवशा हरन्ति
यद्दत्तमिष्टं विवृतमथो हुतं च ।
तस्माच्छुनस्त्यागमिमं कुरुष्व
शुनस्त्यागात्प्राप्स्यसे देवलोकम् ॥१३
त्यक्त्वा भ्रातॄन्दयितां चापि कृष्णां
प्राप्तो लोकः कर्मणा स्वेन वीर ।
श्वानं चैनं न त्यजसे कथं नु
त्यागं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य १४

युधिष्ठिर उवाच ।
न विद्यते संधिरथापि विग्रहो
मृतैर्मर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा ।
न ते मया जीवयितुं हि शक्या-
स्ततस्त्यागस्तेषु कृतो न जीवताम् ॥
*भीतिप्रदानं शरणागतस्य
स्त्रिया वधो ब्राह्मणस्वापहारः ।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र
भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।
तद्धर्मराजस्य वचो निशम्य
धर्मस्वरूपी भगवानुवाच ।
युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं
श्लक्ष्णैर्वाक्यैः संस्तवसंप्रयुक्तैः ॥ १७

धर्मराज उवाच ।
अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितुर्वृत्तेन मेधया ।
अनुक्रोशेन चानेन सर्वभूतेषु भारत ॥ १८
पुरा द्वैतवने चासि मया पुत्र परीक्षितः ।
पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः १९
भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातरावुभौ ।
मात्रोः साम्यमभीप्सन्वै नकुलं जीवमिच्छसि
अयं श्वा भक्त इत्येव त्यक्तो देवरथस्त्वया ।
तस्मात्स्वर्गे न ते तुल्यः कश्चिदस्ति नराधिपः
अतस्तवाक्षया लोकाः स्वशरीरेण भारत ।
प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम् २२

वैशम्पायन उवाच ।
ततो धर्मश्च शक्रश्च मरुतश्चाश्विनावपि ।
देवा देवर्षयश्चैव रथमारोप्य पाण्डवम् ॥ २३
प्रययुः स्वैर्विमानैस्ते सिद्धाः कामविहारिणः
सर्वे विरजसः पुण्याः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मिणः
स तं रथं समास्थाय राजा कुरुकुलोद्वहः ।
ऊर्ध्वमाचक्रमे शीघ्रं तेजसाऽऽवृत्य रोदसी २५
ततो देवनिकायस्थो नारदः सर्वलोकवित् ।
उवाचोच्चैस्तदा वाक्यं बृहद्वादी बृहत्तपाः २६
येऽपि राजर्षयः सर्वे ते चापि समुपस्थिताः ।
कीर्तिं प्रच्छाद्य तेषां वै कुरुराजोऽधितिष्ठति
लोकानावृत्य यशसा तेजसा वृत्तसंपदा ।
स्वशरीरेण संप्राप्तं नान्यं शुश्रुम पाण्डवात् ॥
तेजांसि यानि दृष्टानि भूमिष्ठेन त्वया विभो ।
वेश्मानि भुवि देवानां पश्यामूनि सहस्रशः ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ।
देवानामन्त्र्य धर्मात्मा स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान्
शुभं वा यदि वा पापं भ्रातॄणां स्थानमद्य मे ।
तदेव प्राप्तुमिच्छामि लोकानन्यान्न कामये ३१
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवराजः पुरंदरः ।
आनृशंस्यसमायुक्तं प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥३२
स्थानेऽस्मिन्वस राजेन्द्र कर्मभिर्निर्जिते शुभैः
किं त्वं मानुष्यकं स्नेहमद्यापि परिकर्षसि ३३
सिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां
यथा नान्यः पुमान्क्वचित् ।
नैव ते भ्रातरः स्थानं
संप्राप्ताः कुरुनन्दन ॥ ३४
अद्यापि मानुषो भावः
स्पृशते त्वां नराधिप ।
स्वर्गोऽयं पश्य देवर्षीन्
सिद्धांश्च त्रिदिवालयान् ॥ ३५
युधिष्ठिरस्तु देवेन्द्रमेवंवादिनमीश्वरम् ।
पुनरेवाब्रवीद्धीमानिदं वचनमर्थवत् ॥ ३६
तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण
गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र ते भ्रातरो गताः ॥

अभिजातोऽतिकुलीनोऽसि पितु पाठो १८ निकायस्थो निवासस्थ ॥ २६ ॥ वाक्यमेवाह—येऽपीति । समुपस्थिता स्मृतिविषया सन्ति ॥२७॥ यदेव भ्रातॄणा स्थानं तदेव प्राप्तुमिच्छामि ॥ ३० ॥ *'प्रतिप्रदानम्' इति पाठ ।

यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता । द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम ३८

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिके पर्वणि युधिष्ठिरस्वर्गारोहे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोः
श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे महाप्रस्थानिके पर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

**महाप्रस्थानिकं पर्व समाप्तम् ।**

अतः परं स्वर्गारोहणपर्व ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

जनमेजय उवाच—

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे ॥

## ॥ इति श्रीमहाभारते *महाप्रस्थानिकपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यपि आदिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरे 'एतत्सप्तदश पर्व महाप्रस्थानिकं स्मृतम् । यत्राध्यायास्त्रयः प्रोक्ताः श्लोकाना च शतत्रयम् । विंशतिश्च तथा श्लोका' इति कथित तथापि संप्रति अ० ३ श्लोकाः ११० एव दृश्यन्ते ।

**अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितष्टिप्पण्यादिना परिष्कृतश्च ॥ भारती जयतु ॥ शाके १८५४ ॥**

# The Mahābhāratam

with the Bharata Bhawadeepa
Commentary of Nīlkaṇṭha

*edited by*
Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar

## 18. Swargarohana Parva
*Illustrated*



ORIENTAL REPRINT

*Oriental Books Reprint Corporation*
54 Rani Jhansi Road, New Delhi-110055

# श्रीः महाभारतम् ।

चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम् ।

पण्डित रामचंद्रशास्त्री किंजवडेकर
इत्येतैः पाठान्तरटिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्

## १८. स्वर्गारोहणपर्व

ORIENTAL REPRINT

ओरियण्टल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# ॥ महाभारतम् ॥

# स्वर्गारोहणपर्व

—१८—

## विषयानुक्रमणिका ।


| अ० | श्लोकाः | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | २६ | 'स्वर्गं गत्वा पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे' इति जनमेजयेन पृष्टो वैशम्पायनः 'स्वर्गं प्राप्य युधिष्ठिरादयो यद्कुर्वत तच्छृणु' इत्युवाच । स्वर्गं गतो युधिष्ठिरो 'दुर्योधनं श्रिया जुष्टं दृष्ट्वा नाहमनेन सह वस्तुमिच्छामि किंतु यत्र मम भ्रातरस्तिष्ठन्ति तत्र यातुम्' इति वदन्नुपदिशन्तं महामुनिं नारदं प्रति भ्रातॄणां कर्णधृष्टद्युम्नादीनां च के लोका इत्याद्यपृच्छत् । | २ |
| | ५४ | स्वर्गे कर्णादिबन्धुजनानपश्यता युधिष्ठिरेण देवान्प्रति यत्र कुत्रापि बन्धुजनैः सहैव स्वस्य निवासेच्छानिवेदनम् । देवैर्युधिष्ठिराय बन्धुजनप्रदर्शनं चोदितेन देवदूतेन तस्य नरकप्रदेशप्रापणम् । दुर्दर्शनरकदर्शनासहिष्णुतया दूतेन सह प्रतिनिवर्तमानेन युधिष्ठिरेण श्रुतपूर्वकण्ठध्वनिश्रवणम । ततो युधिष्ठिरपृष्टैस्तैस्तं प्रति स्वेषां कर्णभीमादित्वकथनम् । ततस्तेन दूतं प्रति इन्द्रं स्वस्य तत्समीप प्रत्यनागमनचोदना । दूतेनेन्द्रे युधिष्ठिराचिकीर्षितनिवेदनम् । | ..४ |
| ३ | ४४ | दूतवाक्यं श्रुत्वा इन्द्रप्रभृतयो देवाः युधिष्ठिरमाजग्मुः । तत इन्द्रो 'युधिष्ठिर महाबाहो' इत्यादिना त्वया सिद्धिः प्राप्ता तवाक्षया लोकाः, तव व्याजेन नरको दर्शित', एहि भ्रातॄन् स्वपक्ष्यांश्च स्वस्थानस्थान् पश्य, स्वर्गंगामाप्लुतस्य तव मानुषो भावो गमिष्यति इत्याद्यवदत । इन्द्रोक्त्यनन्तरं साक्षाद्धर्मेण 'भो भो राजन् महाप्राज्ञ' इत्यादिना 'द्वैतवने प्रश्नद्वारा प्रथमा परीक्षा तव, द्वितीया च स्वर्गगमनकाले श्वरूपधारिणा कृता, तृतीया चेयम्' इत्युक्त्वा 'न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशांपते' इत्यादिना बोधितो युधिष्ठिरो गंगामवगाह्य दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मेण सहितो महर्षिभिः स्तूयमानो निर्वैरो यत्र दुर्योधनादयः स्वानि स्थानानि भेजिरे तत्र जगाम | ...५ |
| ४ | २३ | सभायां गतो युधिष्ठिरोऽर्जुनेन | |

| अ० | श्लोका | विषय | पृष्ठम् |
|---|---|---|---|
| | | सेव्यमानं गोविन्दं, द्वादशादित्यसहितं कर्णं, मरुद्गणसहितं भीमं, अश्विभ्यां सहितौ नकुलसहदेवौ, द्रौपदीं च कमलमालिनीं स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीं च ददर्श। दृष्ट्वा च तेन पृष्ट इन्द्रः 'श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता। अयोनिजा' इत्यादिना प्रत्येकं सर्वान् व्याजहार। | ६ |
| ५ | ६८ | भीष्मद्रोणौ महात्मानौ इत्यादिना भीष्मादीनामनुक्तानामन्येषां च स्वर्गे कियन्तं कालं स्थितिराहोस्वित्तेषां तत्र शाश्वतं स्थानं कर्मणामन्ते वा कां गतिं प्राप्ता इति जनमेजयप्रश्ने व्यासेनानुज्ञातो वैशम्पायनस्तत्प्रश्नमभिनन्द्य कर्मणामन्ते स्वैः स्वैरंशिभिस्तादात्म्यं प्राप्तुं योग्यान् भीष्मादीन् 'वसूनेव महातेजाः' इत्यादिनाऽऽख्याय 'एतत्ते सर्वमाख्यातं' इत्यादिना कौरवपाण्डवचरितकथनमुपसंजहार। सौतिः शौनकादीन्प्रति 'एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठाः' इत्यादिना वैशम्पायनकथितामेतां कथां श्रुतवतो जनमेजयस्य यज्ञसमाप्तिपूर्वकं तक्षशिलातो हस्तिनापुरगमनमाख्याय 'एतत्ते सर्वमाख्यातम्' इत्यादिनोपसंहृत्य महाभारतश्रवणपठनानां फलानि प्रातःपठनयोग्यं भारतसारसंग्रहं 'मातापितृसहस्राणि' इत्यादि श्लोकचतुष्टयात्मकं भारतसावित्रीरूपमाख्याय तन्माहात्म्यं व्याजहार .. .. | ९ |


## अथ हरिवंशोक्तमहाभारतश्रवणमाहात्म्याध्यायस्य विषयानुक्रमः।

'भगवन् केन विधिना' इत्यादिना केन विधिना श्रोतव्यं, किं फलं, के च देवाः पूज्याः, पर्वणि पर्वणि समाप्ते च किं देयं, वाचकः कीदृशः इति पप्रच्छ जनमेजयः। 'शृणु राजन् विधिमिमम्' इत्यादिना श्रवणविधिं कथयन् वैशम्पायनः 'अत्र रुद्रास्तथा साध्याः' इत्यादिना भारतस्था देवताः, श्रवणानन्तरं देयानि महादानानि, तथा गवादीनां दानानि चाख्याय 'सत्यार्जवरतो दान्तः' इत्यादिना वाचकस्य लक्षणान्यभ्यधात्। 'पारणं प्रथमं प्राप्य' इत्यादिना दशपर्यंतानां पारणानां प्रत्येकं फलानि, प्राप्यांल्लोकांश्चाख्याय वाचकस्य गुरुवत्पूजनं, तस्मै हस्त्यश्वादिदानानि तस्य देववत्पूजनं चाचष्ट। प्रतिपर्वसमाप्तौ भोज्यविशेषेण ब्राह्मणभोजनं वाचकपूजनादिकं सर्वसमाप्तौ क्षौमवस्त्रवेष्टितस्य भारतस्य पूजनं, वाचकपूजनं, ब्राह्मणभोजनादिकं सुवर्णपुस्तकदानादिकं चाकथयद्वैशम्पायनः। 'इत्येष विधिरुद्दिष्टः' इत्यादिना उपसंहृत्य महाभारतप्रशंसापूर्वकं तच्छ्रवणफलादिकं च श्रद्धोत्पादनार्थं पुनर्व्याजहार वैशम्पायन इत्योम्॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥ शुभं भवतु। भारतीजयतु॥

# स्वर्गारोहणपर्व

१८

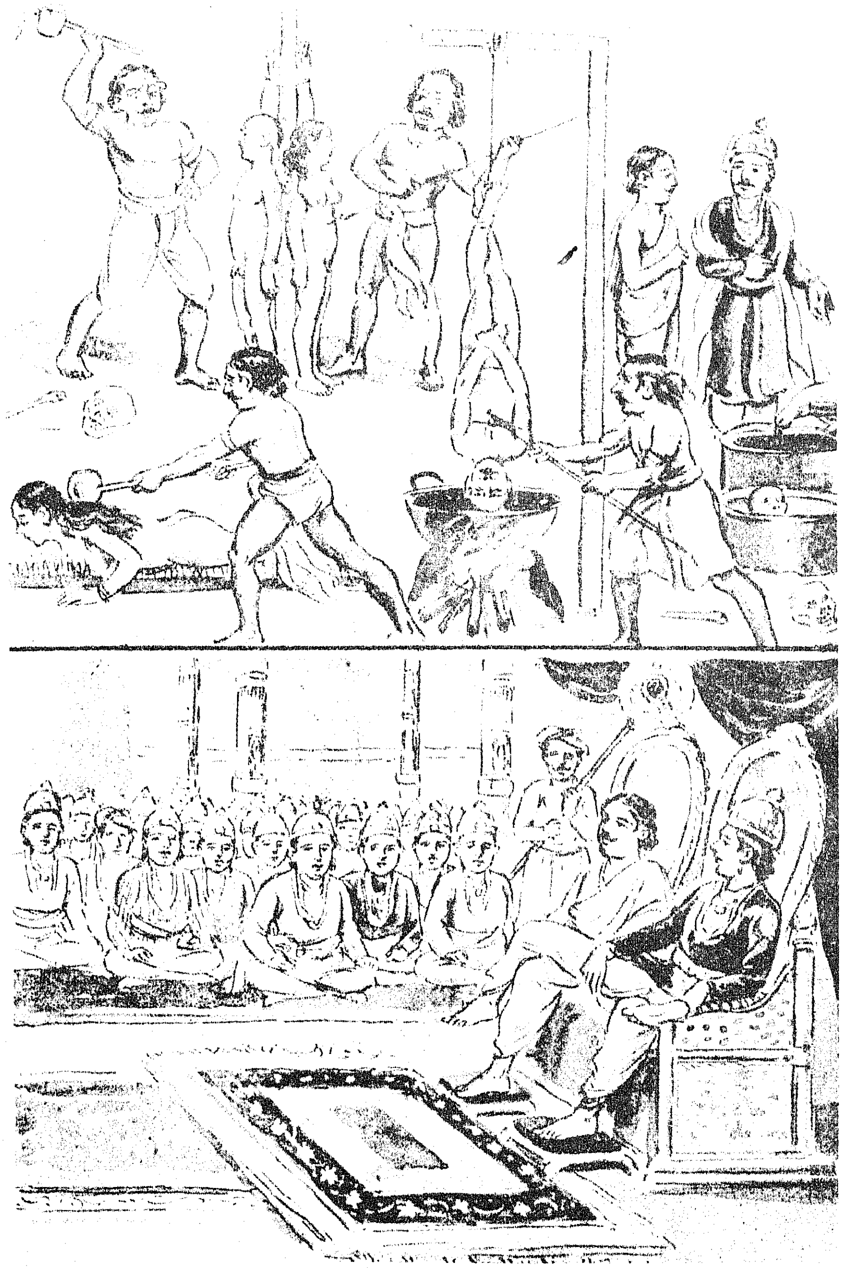

# ॥ महाभारतम् ॥

## स्वर्गारोहणपर्व ।

### –१८–

श्रीगणेशाय नमः ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच ।

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वविच्चासि मे मतः ।
महर्षिणाऽभ्यनुज्ञातो व्यासेनाद्भुतकर्मणा २

वैशम्पायन उवाच ।

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्वपितामहाः ।
युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वत तच्छृणु ॥ ३
स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने ॥ ४
भ्राजमानमिवादित्यं वीरलक्ष्म्याऽभिसंवृतम्
देवैर्भ्राजिष्णुभिः साध्यैः सहितं पुण्यकर्मभिः
ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः ।
सहसा संनिवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधने ६
ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान्वै नाहं दुर्योधनेन वै ।
सहितः कामये लोकाँल्लुब्धेनादीर्घदर्शिना ७
यत्कृते पृथिवी सर्वा सुहृदो बान्धवास्तथा ।
हताऽस्माभिः प्रसह्याजौ क्लिष्टैः पूर्वं महावने
द्रौपदी च सभामध्ये पाञ्चाली धर्मचारिणी
पर्याकृष्टाऽनवद्याङ्गी पत्नी नो गुरुसंनिधौ ॥९
अस्ति देवा न मे कामः सुयोधनमुदीक्षितुम्
तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम १०

---

१

श्रीगणेशाय नम ॥ पूर्वस्मिन् पर्वणि धर्मस्य फलभूतास्त्यागानृशंस्यादयो युधिष्ठिरदृष्टान्तेन दर्शिता.। इदानीं तस्य मुख्यं फलं दर्शयितुं स्वर्गारोहणपर्वारभते–**स्वर्गं त्रिविष्टपमिति**। यथा भूयस्या संख्यायामल्पसंख्यान्तर्भवति एवं त्रीणि विष्टपानि भुवनानि फलोत्कर्षवशाद्यत्रान्तर्भवन्ति तादृशमपि स्वर्गं प्राप्य। 'विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमर ॥ १ ॥ **तत इति**। स्वर्गेऽप्यमर्षो दुस्त्यज इति संस्काराणा प्राबल्यमुक्तम् ॥ ६ ॥ हताः अस्माभिः सन्धिरार्षं ॥ ८ ॥

नैवमित्यब्रवीत्तं तु नारदः प्रहसन्निव ।
स्वर्गे निवासे राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति
युधिष्ठिर महाबाहो मैवं वोचः कथञ्चन ।
दुर्योधनं प्रति नृपं शृणु चेदं वचो मम ॥ १२
एष दुर्योधनो राजा पूज्यते त्रिदशैः सह ।
सद्भिश्च राजप्रवरैर्य इमे स्वर्गवासिनः ॥ १३
वीरलोकगतिं प्राप्तो युद्धे हुत्वाऽऽत्मनस्तनुम्
यूयं सर्वे सुरसमा येन युद्धे समासिताः ॥ १४
स एष क्षत्रधर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान् ।
भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवीपतिः १५
न तन्मनसि कर्तव्यं पुत्र यद्द्यूतकारितम् ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं न चिन्तयितुमर्हसि १६

ये चान्येऽपि परिक्लेशा
युष्माकं ज्ञातिकारिताः ।
संग्रामेष्वथ वाऽन्यत्र
न तान्संस्मर्तुमर्हसि ॥ १७

समागच्छ यथान्यायं राज्ञा दुर्योधनेन वै ।
स्वर्गोऽयं नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥
नारदेनैवमुक्तस्तु कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄन्पप्रच्छ मेधावी वाक्यमेतदुवाच ह १९
यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः ।
अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवी सुहृदद्रुहः ॥ २०
यत्कृते पृथिवी नष्टा सहया सनरद्विपा ।
वयं च मन्युना दग्धा वैरं प्रतिचिकीर्षवः २१
ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः
सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः ॥
तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहं
कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसंगरम् ॥
धृष्टद्युम्नं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्
ये च शस्त्रैर्वधं प्राप्ताः क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः२४
क नु ते पार्थिवान् ब्रह्मन्नैतान्पश्यामि नारद
विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्च तान् ॥ २५
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं द्रौपदेयांश्च सर्वशः
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रष्टुमिच्छामि नारद २६

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि स्वर्गे नारदयुधिष्ठिरसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

युधिष्ठिर उवाच ।
नेह पश्यामि विबुधा राधेयममितौजसम्
भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्यूत्तमौजसौ
जुहुवुर्ये शरीराणि रणवह्नौ महारथाः ।
राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे ॥ २
क ते महारथाः सर्वे शार्दूलसमविक्रमाः ।
तैरप्ययं जितो लोकः कच्चित्पुरुषसत्तमैः ॥ ३
यदि लोकानिमान्प्राप्तास्ते च सर्वे महारथाः
स्थितं वित्त हि मां देवाः सहितं तैर्महात्मभिः
कच्चिन्न तैरवाप्तोऽयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः ।
न तैरहं विना रंस्ये भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ५
मातुर्हि वचनं श्रुत्वा तदा सलिलकर्मणि ।
कर्णस्य क्रियतां तोयमिति तप्यामि तेन वै ६
इदं च परितप्यामि पुनः पुनरहं सुराः ।
यन्मातुः सदृशौ पादौ तस्याहममितात्मनः ७
दृष्ट्वैव तौ नानुगतः कर्णं परबलार्दनम् ।
न ह्यस्मान्कर्णसहितान् जयेच्छक्रोऽपि संयुगे

तमहं यत्रतत्रस्थं
द्रष्टुमिच्छामि सूर्यजम् ।
अविज्ञातो मया योऽसौ
घातितः सव्यसाचिना ॥ ९

भीमं च भीमविक्रान्तं प्राणेभ्योऽपि प्रियं मम
अर्जुनं चेन्द्रसंकाशं यमौ चैव यमोपमौ ॥ १०

---

विरुद्धं वैरादिकं नश्यति अन्तर्धीयते ॥ ११ ॥ अभीत इति च्छेदः ॥ १५ ॥ सुहृद इत्यदन्तः शब्दः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

नेहेति ॥ १ ॥

द्रष्टुमिच्छामि तां चाहं पाञ्चालीं धर्मचारिणीम्
न चेह स्थातुमिच्छामि सत्यमेवं ब्रवीमि वः ॥
किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः ।
यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम १२

देवा ऊचुः ।

यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां पुत्र माचिरम्
प्रिये हि तव वर्तामो देवराजस्य शासनात्

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन्
युधिष्ठिरस्य सुहृदो दर्शयेति परंतप ॥ १४
ततः कुन्तीसुतो राजा देवदूतश्च जग्मतुः ।
सहितौ राजशार्दूल यत्र ते पुरुषर्षभाः ॥ १५
अग्रतो देवदूतश्च ययौ राजा च पृष्ठतः ।
पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्मभिः ॥ १६
तमसा संवृतं घोरं केशशैवलशाद्वलम् ।
युक्तं पापकृतां गन्धैर्मांसशोणितकर्दमम् १७
दंशोत्पातकभल्लूकमक्षिकामशकावृतम् ।
इतश्चेतश्च कुणपैः समन्तात्परिवारितम् ॥ १८
अस्थिकेशसमाकीर्णं कृमिकीटसमाकुलम् ।
ज्वलनेन प्रदीप्तेन समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ १९
अयोमुखैश्च काकाद्यैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम् ।
सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम् ॥ २०
मेदोरुधिरयुक्तैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः ।
निकृत्तोदरपादैश्च तत्र तत्र प्रवेरितैः ॥ २१
स तत्कुणपदुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणम् ।
जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन्
ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमाम् ।
असिपत्रवनं चैव निशितं क्षुरसंवृतम् ॥ २३
करम्भवालुकास्तप्ता आयसीश्च शिलाः पृथक्
लोहकुम्भीश्च तैलस्य क्वाथ्यमानाः समन्ततः
कूटशाल्मलिकं चापि
दुःस्पर्शं तीक्ष्णकण्टकम् ।
ददर्श चापि कौन्तेयो
यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ २५
स त दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह ।
कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिममीदृशम् २६
क्व च ते भ्रातरो मह्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि ।
देशोऽयं कश्च देवानामेतदिच्छामि वेदितुम्

स संनिववृते श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम् ।
देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद्गमनं तव ॥ २८
निवर्तितव्यो हि मया
तथाऽस्म्युक्तो दिवौकसैः ।
यदि श्रान्तोऽसि राजेन्द्र
त्वमथागन्तुमर्हसि । २९
युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्छितः ।
निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत ॥ ३०
स संनिवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः
शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ३१
भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव
अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ ३२
आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः
तव गन्धानुगस्तात येनास्मान् सुखमागमत्॥
ते वयं पार्थ दीर्घस्य कालस्य पुरुषर्षभ ।
सुखमासादयिष्यामस्त्वां दृष्ट्वा राजसत्तम ॥
संतिष्ठस्व महाबाहो मुहूर्तमपि भारत ।
त्वयि तिष्ठति कौरव्य यातनास्मान्न बाधते
एवं बहुविधा वाचः कृपणा वेदनावताम् ।
तस्मिन्देशे स शुश्राव समन्ताद्वदतां नृप ३६
तेषां तु वचनं श्रुत्वा दयावान्दीनभाषिणाम्
अहो कृच्छ्रमिति प्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः
स ता गिरः पुरस्ताद्वै श्रुतपूर्वाः पुनः पुनः ।
ग्लानानां दुःखितानां च नाभ्यजानत पांडवः
अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच के भवन्तो वै किमर्थमिह तिष्ठथ ३९
इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे ।
कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो ॥
नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत ।
द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः ॥ ४१
ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप ।
ततो विममृशे राजा किन्त्विदं दैवकारितम्
किं तु तत्कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः ।
कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया ॥
य इमे पापगन्धेऽस्मिन्देशे सन्ति सुदारुणे ।
नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम्॥
किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः ।
तथा श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः ॥

---

प्रवेरितैरितस्ततः पातितैः ॥ २१ ॥ करंभवालुकाः श्वेतसूक्ष्मवालुका आष्ट्रवालुका इत्यर्थः ॥२४॥

महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः ।
कस्येदानीं विकारोऽयं य इमे नरकं गताः ॥
सर्वधर्मविदः शूराः सत्यागमपरायणाः ।
क्षत्रधर्मरताः सन्तो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥
किं नु सुप्तोऽस्मि जागर्मि चेतयामि न चेतये
अहो चित्तविकारोऽयं स्याद्वा मे चित्तविभ्रमः
एवं बहुविधं राजा विममर्श युधिष्ठिरः ५०
दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥
क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः ।
देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः ॥ ५०
स तीव्रगन्धसन्तप्तो देवदूतमुवाच ह ।
गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम् ॥
न ह्यहं तत्र यास्यामि
स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम् ।
मत्संश्रयादिमे दूताः
सुखिनो भ्रातरो हि मे ॥ ५२
इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता ।
जगाम तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः ॥ ५३
निवेदयामास च तद्धर्मराजचिकीर्षितम् ।
यथोक्तं धर्मपुत्रेण सर्वमेव जनाधिप ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरनरकदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

वैशम्पायन उवाच ।
स्थिते मुहूर्तं पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः १
स च विग्रहवान्धर्मो राजानं प्रसमीक्षितुम् ।
तत्राजगाम यत्रासौ कुरुराजो युधिष्ठिरः २
तेषु भासुरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु ।
समागतेषु देवेषु व्यगमत्तत्तमो नृप ॥ ३
नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाः पापकर्मिणाम्
नदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ४
लोहकुंभ्यः शिलाश्चैव नादृश्यन्त भयानकाः ।
विकृतानि शरीराणि यानि तत्र समन्ततः ५
ददर्श राजा कौरव्यस्तान्यदृश्यानि चाभवन्
ततो वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ६
ववौ देवसमीपस्थः शीतलोऽतीव भारत ।
मरुतः सह शक्रेण वसवश्चाश्विनौ सह ॥ ७
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या
ये चान्येऽपि दिवौकसः ।
सर्वे तत्र समाजग्मुः
सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ८
यत्र राजा महातेजा धर्मपुत्रः स्थितोऽभवत् ।
ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः ॥ ९
युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
युधिष्ठिर महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥
एह्येहि पुरुषव्याघ्र
कृतमेतावता विभो ।
सिद्धिः प्राप्ता महाबाहो
लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ ११
न च मन्युस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम
अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः १२
शुभानामशुभानां च द्वौ राशी पुरुषर्षभ ।
यः पूर्वं सुकृतं भुंक्ते पश्चान्निरयमेव सः ॥ १३
पूर्वं नरकभाग्यस्तु पश्चात्स्वर्गमुपैति सः ।
भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ॥ १४
तेन त्वमेवं गमितो मया श्रेयोर्थिना नृप ।
व्याजेन हि त्वया द्रोण उपचीर्णः सुतं प्रति
व्याजेनैव ततो राजन् दर्शितो नरकस्तव ।
यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा

---

विममर्श विचार कृतवन् ॥ ४९ ॥ दूना· खिन्ना· ॥५२॥
इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

स्थित इति ॥ १ ॥ शत्रूणा स्वर्गो भ्रातृणा नरक इति युधिष्ठिरस्य ईर्ष्याविषादावपनयति—य इति ॥१३॥ हत कुञ्जर इति अश्वत्थामवधे द्रोण उपचीर्णो वञ्चित· गजवाची शब्दो मनुष्यपरत्वेन ज्ञापित इत्युपचारच्छलेनेत्यर्थ· १५

द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः ।
आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात् ॥
स्वपक्ष्याश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे ।
सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान्पश्य भरतर्षभ ॥ १८
कर्णश्चैव महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
स गतः परमां सिद्धिं यदर्थं परितप्यसे १९
तं पश्य पुरुषव्याघ्रमादित्यतनयं विभो ।
स्वस्थानस्थं महाबाहो जहि शोकं नरर्षभ ॥
भ्रातॄंश्चान्यांस्तथा पश्य
स्वपक्ष्यांश्चैव पार्थिवान् ।
स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्तान्
व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २१
कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतःप्रभृति कौरव ।
विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः २२
कर्मणां तात पुण्यानां जितानां तपसा स्वयम्
दानानां च महाबाहो फलं प्राप्नुहि पार्थिव ॥
अद्य त्वां देवगन्धर्वा दिव्याश्चाप्सरसो दिवि
उपसेवन्तु कल्याणं विरजोम्बरभूषणाः ॥ २४
राजसूयजिताँल्लोकान्
स्वयमेवासिऋद्धितान्+ ।
प्राप्नुहि त्वं महाबाहो
तपसश्च महाफलम् ॥ २५
उपर्युपरि राज्ञां हि तव लोका युधिष्ठिर ।
हरिश्चन्द्रसमाः पार्थ येषु त्वं विहरिष्यसि ॥
मांधाता यत्र राजर्षिर्यत्र राजा भगीरथः ।
दौष्यन्तिर्यत्र भरतस्तत्र त्वं विहरिष्यसि २७
एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी ।
आकाशगङ्गा राजेन्द्र तत्राप्लुत्य गमिष्यसि ॥
अत्र स्नातस्य भावस्ते मानुषो विगमिष्यति ।
गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥
एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम् ।
धर्मो विग्रहवान् साक्षादुवाच सुतमात्मनः ॥
भो भो राजन्महाप्राज्ञ प्रीतोऽस्मि तव पुत्रक
मद्भक्त्या सत्यवाक्यैश्च क्षमया च दमेन च
एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन् कृता मया
न शक्यसे चालयितुं स्वभावात्पार्थ हेतुतः ॥
पूर्वं परीक्षितो हि त्वं प्रश्नाद्वैतवने मया ।
अरणीसहितस्यार्थे तच्च निस्तीर्णवानसि ३३
सोदर्येषु विनष्टेषु द्रौपद्या तत्र भारत ।
श्वरूपधारिणा तत्र पुनस्त्वं मे परीक्षितः ३४
इदं तृतीयं भ्रातॄणामर्थे यत्स्थातुमिच्छसि ।
विशुद्धोऽसि महाभाग सुखी विगतकल्मषः
न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशांपते ।
मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता ॥ ३६
अवश्यं नरकास्तात द्रष्टव्याः सर्वराजभिः ।
ततस्त्वया प्राप्तमिदं मुहूर्तं दुःखमुत्तमम् ॥ ३७
न सव्यसाची भीमो वा यमौ वा पुरुषर्षभौ
कर्णो वा सत्यवाक् शूरो नरकार्हाश्चिरं नृप
न कृष्णा राजपुत्री च नरकार्हा कथञ्चन ।
एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य गङ्गां त्रिलोकगाम् ३९
एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः ।
जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदिवालयैः ॥ ४०
गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम् ।
अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥
ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
निर्वैरो गतसंतापो जले तस्मिन्समाप्लुतः ४२
ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धर्मेण सहितो धीमांस्तूयमानो महर्षिभिः ॥
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शूरा विगतमन्यवः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च स्वानि स्थानानि भेजिरे

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरतनुत्यागे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

तुभ्यं तव ॥ १८ ॥ असिऋद्धितान् खड्गबलेन ऋद्धिं प्रापितान् ॥ २५ ॥ जिज्ञासा परीक्षा ॥ ३२ ॥ स्वर्गाधिरोहणे द्रौपद्या सह सोदर्येषु विनष्टेषु सत्सु श्वरूपधारिणा शुनकरूपिणा । द्रौपद्या इति पञ्चमीपाठे तामारभ्येत्यर्थः ॥ ३४ ॥ यत्र ते पाण्डवास्तत्र देवैः सह ययाविति द्वयोः सम्बन्धः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

+ 'अश्वमेधाभिनिर्मितान्' इत्यपि पाठः ।

## ४

वैशम्पायन उवाच।

ततो युधिष्ठिरो राजा देवैः सर्षिमरुद्गणैः।
स्तूयमानो ययौ तत्र यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १
ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मेण वपुषाऽन्वितम्।
तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनैव सूचितम् ॥ २
दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम्।
चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहैः ॥ ३
उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा।
तथास्वरूपं कौन्तेयो ददर्श मधुसूदनम् ॥४
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समुद्वीक्ष्य युधिष्ठिरम्।
यथावत्प्रतिपेदाते पूजया देवपूजितौ ॥ ५
अपरस्मिंस्तथोद्देशे कर्णं शस्त्रभृतां वरम्।
द्वादशादित्यसहितं ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ६
अथापरस्मिन्नुद्देशे मरुद्गणवृतं विभुम्।
भीमसेनमथापश्यत्तेनैव वपुषाऽन्वितम् ॥ ७
वायोर्मूर्तिमतः पार्श्वे दिव्यमूर्तिसमन्वितम्।
श्रिया परमया युक्तं सिद्धिं परमिकां गतम् ८
अश्विनोस्तु तथा स्थाने दीप्यमानौ स्वतेजसा
नकुलं सहदेवं च ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ९
तथा ददर्श पाञ्चालीं कमलोत्पलमालिनीम्।
वपुषा स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीमर्कवर्चसम् १०
अथैनां सहसा राजा प्रष्टुमैच्छद्युधिष्ठिरः।
ततोऽस्य भगवानिन्द्रः कथयामास देवराट्
श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता।
अयोनिजा लोककान्ता पुण्यगन्धा युधिष्ठिर
रत्यर्थं भवतां ह्येषा निर्मिता शूलपाणिना।
द्रुपदस्य कुले जाता भवद्भिश्चोपजीविता १३
एते पञ्च महाभागा गन्धर्वाः पावकप्रभाः।
द्रौपद्यास्तनया राजन् युष्माकममितौजसः ॥
पश्य गन्धर्वराजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम्।
एनं च त्वं विजानीहि भ्रातरं पूर्वजं पितुः ॥
अयं ते पूर्वजो भ्राता कौन्तेयः पावकद्युतिः।
सूतपुत्राग्रजः श्रेष्ठो राधेय इति विश्रुतः ॥ १६
आदित्यसहितो याति पश्यैनं पुरुषर्षभम्।
साध्यानामथ देवानां विश्वेषां मरुतामपि १७
गणेषु पश्य राजेन्द्र वृष्ण्यन्धकमहारथान्।
सात्यकिप्रमुखान्वीरान्भोजांश्चैव महाबलान्
सोमेन सहितं पश्य सौभद्रमपराजितम्।
अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् १९
एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माद्र्या च संगतः
विमानेन सदाऽभ्येति पिता तव ममान्तिकम्
वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शान्तनवं नृपम्।
द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय २१
एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव
गन्धर्वसहिता यान्ति यक्षपुण्यजनैस्तथा २२
गुह्यकानां गतिं चापि
केचित्प्राप्ता नराधिपाः।
त्यक्त्वा देहं जितः स्वर्गः
पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि द्रौपद्यादिस्वस्वस्थानगमने
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

जनमेजय उवाच।

भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः। विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १

---

४

तत इति ॥ १ ॥ ब्राह्मेण ब्रह्मणा आराध्येन ॥ २ ॥ उपस्थितं सेवितं अस्त्रैः ॥ ३ ॥ मानुषं मानुषभावम् ॥१२॥ इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि नैलकण्ठीये भारतभावदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

पूर्वस्मिन्नध्याये यो यो योधो यस्य यस्य देवस्यांशः स स्वर्गं गत्वा स्वस्य स्वस्यांशिनः साम्निध्यं प्रापेत्युक्तम्। तत्र संशयः किमेते अंशा काण्डरुहाणां वृक्षाणामंशा इव पृथक् संसरित्वं प्राप्ता उत तेष्वेवांशिषु लीयन्ते। आद्ये कर्मजदेह

धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित्।
दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः ॥ २
कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः।
घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ३
ये चान्ये कीर्तिता वीरा राजानो दीप्तमूर्तयः
स्वर्गे कालं कियन्तं ते तस्थुस्तदपि शंस मे ४
अहो स्विच्छाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम।
अन्ते वा कर्मणां कां ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं प्रोच्यमानं द्विजोत्तम।
तपसा हि प्रदीप्तेन सर्वं त्वमनुपश्यसि ॥ ६

सौतिरुवाच ।

इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना।
व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ७

वैशम्पायन उवाच।

न शक्यं कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप।
प्रकृतिं किं नु सम्यक्ते पृच्छैषा संप्रयोजिता
शृणु गुह्यमिदं राजन्देवानां भरतर्षभ।
यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रतापवान् ९
मुनिः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः।
अगाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ॥
तेनोक्तं कर्मणामन्ते प्रविशन्ति स्विकां तनुम्
वसूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः ११
अष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ।
बृहस्पतिं विवेशाथ द्रोणो ह्यङ्गिरसां वरम् ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणान्।
सनत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम् ॥ १३
धृतराष्ट्रो धनेशस्य लोकान्प्राप दुरासदान्।
धृतराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी ॥
पत्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ।
विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः १५
निशठाक्रूरसाम्बाश्च भानुः कम्पो विदूरथः।
भूरिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः १६
कंसश्चैवोग्रसेनश्च वसुदेवस्तथैव च।
उत्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुङ्गवः ॥ १७
विश्वेषां देवतानां ते विविशुर्नरसत्तमाः।
वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥
सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य
फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्।
स युध्वा क्षत्रधर्मेण
यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १९
विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः।
आविवेश रविं कर्णो निहतः पुरुषर्षभ ॥ २०
द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम्।
धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः
ऋद्धिमन्तो महात्मानः शस्त्रपूता दिवं गताः
धर्ममेवाविशत्क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः २२
अनन्तो भगवान्देवः प्रविवेश रसातलम्।
पितामहनियोगाद्धि यो योगाद्गामधारयत् २३
यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह।
षोडश स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय २५
तत्र त्यक्त्वा शरीराणि दिवमारुरुहुः पुनः।
ताश्चैवाप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपाविशन् ॥
हतास्तस्मिन्महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः।
घटोत्कचादयश्चैव देवान्यक्षांश्च भेजिरे २७
दुर्योधनसहायाश्च राक्षसाः परिकीर्तिताः।
प्राप्तास्ते क्रमशो राजन् सर्वलोकाननुत्तमान्
भवनं च महेन्द्रस्य कुबेरस्य च धीमतः।
वरुणस्य तथा लोकान्विविशुः पुरुषर्षभाः ॥

---

परंपरायास्तत्त्वज्ञानमन्तरेणोच्छेदायोगात्तेषा नित्यसंसारित्वमस्मदादिवत्स्यात्। द्वितीये मानुष्यभावे तै. कृतानां कर्मणा नाशापत्तिरिति संदिहानो जनमेजय पृच्छति—**भीष्मद्रोणाविति** ॥ १ ॥ ते अन्ते का गतिं पुण्यभोगान्ते अंशिना सह ऐक्यं वा सालोक्य वा शाश्वतं प्राप्नुवन्ति उत भूमाववतरन्तीति प्रश्नः ॥ ५ ॥ अत्रोत्तरमाह—**न शक्यमिति** । कर्मणामन्ते सर्वेण प्रकृतिं प्रति गन्तुं न शक्यमित्यध्याहृत्य योज्यम्। यदि सर्वोऽपि जन्तु· प्रारब्धकर्मान्ते स्वां प्रकृतिं गच्छेत्तर्हि सर्वेऽपि मुक्ता· स्यु· संसारश्चादिमान् भवेत्। ततश्च कृतहानाकृताभ्यागमप्रसंगो विधिप्रतिषेधशास्त्रानर्थक्यं च। तस्मात्केचिदेव कर्मणामन्ते स्वां प्रकृतिं भजन्ते न सर्वे इति किं तर्हि ये प्रकृतिं न प्राप्तास्तानुद्दिश्य ते त्वयैषा पृच्छा सम्यक् प्रयोजिता ॥८॥ तत्र कांश्चिद् स्वर्गप्रापककर्मणामन्ते स्वैस्वैरंशिभिस्तादात्म्यं प्राप्तुं योग्यान् योगजदृष्ट्या पश्यन्परिगणयति—**शृणु इत्यादिना** । अर्थादितरे। स्वर्गं गता अपि पुनश्च्यवन्ते एते तु उत्तरमुत्तरामूर्ध्वोर्ध्वंक्रमेण गतिं प्राप्य अन्ते ब्रह्मणा सह मुच्यन्ते। तेन देवत्वप्राप्तये कर्माणि यज्ञदानतपआदीनि कर्तव्यान्येव न चोक्तदोष इति सर्वमनवद्यम् ॥ ९ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते ।
कुरूणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत
सौतिरुवाच ।
एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठाः स राजा जनमेजयः
विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ ३१
ततः समापयामासुः कर्म तत्तस्य याजकाः ।
आस्तीकश्चाभवत्प्रीतः परिमोक्ष्य भुजंगमान्
ततो द्विजातीन्सर्वांस्तान्
दक्षिणाभिरतोषयत् ।
पूजिताश्चापि ते राज्ञा
ततो जग्मुर्यथागतम् ॥ ३३
विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः
ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद्गजाह्वयम् ३४
एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्तितम् ।
व्यासाज्ञया समाज्ञातं सर्पसत्रे नृपस्य हि ३५
पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम् ।
कृष्णेन मुनिना विप्र निर्मितं सत्यवादिना ॥
सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता ।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा ।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३८
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनां
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम्
यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ४०
कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद्यः समाहितः ।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४२
अह्ना यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसाऽपि वा ।
महाभारतमाख्याय पश्चात्संध्यां प्रमुच्यते ।
यद्रात्रौ कुरुते पापं ब्राह्मणः स्त्रीगणैर्वृतः
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते ४३
महत्त्वाद्भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४५
अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ।
वेदाः सांगास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम्
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः ।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥ ४७
त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः
आकर्ण्य भक्त्या सततं
जयाख्यं भारतं महत् ।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या
भवन्ति सहिताः सदा ॥ ४९
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्
जयो नामेतिहासोऽयं
श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता ।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च
गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ५१
स्वर्गकामो लभेत्स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम् ।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम्
अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान्धर्मकाम्यया ५३
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्
त्रिंशच्छतसहस्राणि देवलोके प्रतिष्ठितम् ५४
पित्र्ये पञ्चदशं ज्ञेयं यक्षलोके चतुर्दश ।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रभाषितम् ॥ ५५

---

एवं पाण्डवाना कथा समाप्य जनमेजयस्य यज्ञे वैशम्पायन एता कथामुक्तवानिति प्रकृतमनुसन्दधान सौतिरुवाच-- **एतच्छ्रुत्वेत्यादि** ॥३१॥ समाज्ञातं मया सूतेन व्यासाज्ञया वैशंपायनेन कीर्तितं च ॥ ३५ ॥ विधिज्ञेन दैवज्ञेन अतीन्द्रियेण इंद्रियाण्यतिक्रान्तेन योगबलादेव सर्वदर्शनसिद्धेरित्याह--**तपसेति** । भावितात्मना शोधितचित्तेन ॥३७॥ सर्वेषा तृतीयान्ताना निर्मितमित्यनेनान्वय । अन्येषामपि कीर्तिं प्रथयतेति सम्बन्धः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मभूयाय मोक्षाय कल्पते तत्रोक्तसाधनानुष्ठानक्रमेण ॥ ४० ॥ अन्ततः निकटे ॥ ४२ ॥ **अह्नेति** । महाभारतस्य अल्पमपि पश्चिमाया सन्ध्याया पठ्यते चेद्दिनकृतं पापं नश्यति । एवं प्रातः संध्याया रात्रिकृतमित्यर्थ ॥ ४३ ॥ निरुक्तं नामनिर्वचनम् ॥ ४५ ॥ **धर्मे चेति** । चकारचतुष्टयादधर्मादिचतुष्टयमप्यत्रोक्तं हानार्थमिति बोध्यम् ॥ ५० ॥ अनागतोऽनागन्तुको नित्यसिद्ध इति यावत् एवंविधो यो मोक्षः कैवल्यं तदेव स्वरूपं यस्य स मोक्ष । यद्वा मोक्तुमिच्छन् मुचोऽकर्मकस्य गुणो वेति सनि गुणोऽभ्यासलोपश्च । मुमुक्षुरित्यर्थः लोकहित इति भाव ॥ ५३ ॥ अन्यां वेदचतुष्टयसंहिताभ्यः पृथग्भूता तदर्थवतीम् ॥ ५४ ॥

नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् ।
रक्षो यक्षान् शुको मर्त्यान्वैशंपायन एव तु
इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसंमितम् ।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ५७
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक
गच्छेत्परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः
भारताध्ययनात्पुण्यादपि पादमधीयतः ।
श्रद्धया परया भक्त्या श्राव्यते चापि येन तु
य इमां संहितां पुण्यां पुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे
हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ६२
न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ६३
इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ६४
यथा समुद्रो भगवान्यथा हि हिमवान् गिरिः
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वाऽर्थमश्नुते
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत्सुसमाहितः ।
स गच्छेत्परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः
द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ६७
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथा सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां स्वर्गारोहणपर्वणि
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समाप्तं स्वर्गारोहणपर्व ।

## ॥ इति महाभारतं समाप्तम् ॥

श्रूयते येन य· शृणोतीत्यर्थ उभयत्र विभक्तिव्यत्यय आर्ष ॥ ५७ ॥ भारताध्ययनादिति सार्धश्लोक । य व्यास. इमा सहितां शुकं पुत्रं अध्यापयत् तस्य अधीयतो भारताख्यमितिहास स्मरत स्मृत्वा च ग्रथरूपेण प्रणयत. भक्त्या परया श्रद्धया च व्यास एव पूज्यस्तस्य वाक्यं प्रमाणमेवेत्यास्तिक्यबुद्ध्या येन पुसा इदं श्राव्यते स पुण्यात् पुण्यकरात् अपि पादं श्लोकपादं ग्रन्थपादं वा भारतस्याध्ययनात्परमिका सिद्धिं गच्छेदिति पूर्वेणान्वय. । व्यासे श्रद्धा बध्वा भारतमध्येतव्यमित्यर्थ. ॥ ५९ ॥ सन्ध्यायां भारतं पठनीयमित्युक्तम् । तत्र पठनयोग्यं भारतसारसंग्रहं चतु श्लोकीरूपमाह—**मातेति** ॥ ६० ॥

**इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे स्वर्गारोहणपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥**

# महाभारतश्रवणमहिमा* ।

जनमेजय उवाच ।
भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः ।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह
देयं समाप्ते भगवन्किं च पर्वणि पर्वणि ।
वाचकः कीदृशश्चात्र एष्टव्यस्तद्ब्रवीहि मे २
वैशम्पायन उवाच ।
शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात्
श्रुताद्भवति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि॥ ३
दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः ।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः॥ ४
हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः ।
ऋषीणां देवतानां च संभवं वसुधातले ॥ ५
अत्र रुद्रास्तथा साध्या
विश्वेदेवाश्च शाश्वताः ।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ
लोकपाला महर्षयः ॥ ६
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा ।
सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः कात्यायनो वरः
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः ।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत्सर्वं सुरासुरम् ।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९
तेषां श्रुत्वा प्रतिष्ठानं नामकर्मानुकीर्तनात् ।
कृत्वाऽपि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः
इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः ।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते
तेषां श्राद्धानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतम्
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च
गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः
सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च ।
भवनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम्
वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः ।
शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः१५
यद्गृहे वरं किंचिद्यद्यदस्ति महद्वसु ।
तत्तद्देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः
श्रद्धया परया युक्तं क्रमशस्तस्य पारगः ।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकल्पकः ॥१७
सत्यार्जवरतो दान्तः शुचिः शौचसमन्वितः
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिध्यति तच्छृणु
शुचिः शीलान्विताचारः
शुक्लवासा जितेन्द्रियः
संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः
श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९
रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः
दानमानगृहीतश्च कार्यो भवति वाचकः ॥२०
अविलम्बमनायस्तमद्रुतं धीरमूर्जितम् ।
असंसक्ताक्षरपदं स्वरभावसमन्वितम् ॥ २१
त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् ।
वाचयेद्वाचकः स्वस्थः स्वासीनः सुसमाहितः
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३
ईदृशाद्वाचकाद्राजन् श्रुत्वा भारत भारतम् ।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन्स फलमश्नुते२४
पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान्कामैश्च तर्पयन् ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५
अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत् ।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः २६
द्वितीयं पारणं प्राप्य सोऽतिरात्रफलं लभेत्
सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति ॥ २७
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।
दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८
तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् ।
वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥२९
चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम्॥३०
विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति ।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥३१
षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२
परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम्३३
सर्वाँल्लोकान्विचरते द्वितीय इव भास्करः ।
अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ३४
चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५

* भगवन्नित्यादि फलाध्यायो व्यासेन हरिवंशान्ते उक्तः । अत्र तु श्रोतृप्ररोचनार्थमुक्त इति ज्ञेयम ॥ १ ॥

सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रात्कान्ततरैर्मुखैः ।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ३६
अंके परमनारीणां सुखसुप्तो विबुध्यते ।
नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७
काञ्चनस्तंभनिर्यूहवैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८
सेवितं चाप्सरःसङ्घैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनरूषितः ।
मोदते दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः ॥४०
दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ।
किंकिणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम्
रत्नवेदिकसम्बाधं वैदूर्यमणितोरणम् ।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२
गंधर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिश्च शोभितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३
मुकुटेनाग्निवर्णेन जाम्बूनदविभूषिणा ।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः
दिव्यान् लोकान् विचरति
दिव्यैर्भोगैः समन्वितः ।
विबुधानां प्रसादेन
श्रिया परमया युतः ॥ ४५
अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते ।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिम् ४६
पुरन्दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते ।
दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ४७
दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा ।
ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥४८
शिवस्य भवने राजन्
विष्णोर्याति सलोकताम् ।
एवमेतन्महाराज
नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम ।
वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद्यदिच्छति ५०
हस्त्यश्वरथयानानि वाहनानि विशेषतः ।
कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथा परम् ॥५१
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः ।
देववत्पूजयेत्तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२
अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते ।
वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि
जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ ।
धर्मं वृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥
स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्ये प्रवर्तिते
समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान्
आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् ।
विधिवद्भोजयेद्राजन् मधु पायसमुत्तमम् ॥५६
ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा ।
आस्तीके भोजयेद्राजन् दद्याच्चैव गुडौदनम्
अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान्
आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ।
अरणीपर्व चासाद्य जलकुंभान्प्रदापयेत् ॥ ५९
तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥ ६०
विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥ ६१
भोजन भोजयेद्विप्रान्गन्धमाल्यैरलंकृतान् ।
भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्वा यानमनुत्तमम् ६२
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ।
द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ६३
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ।
कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ६४
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग्दद्यात्संयतमानसः ।
शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः ॥ ६५
अपूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ।
गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ६६
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ।
घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत्पुनः ॥ ६७
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ।
शान्तिपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान्
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ।
तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ६९
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ।
महाप्रास्थानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम् ७०
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ।
हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद्द्विजान् ७१
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव ॥ ७२
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः ।
सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ ७३
हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ।
पारणे पारणे राजन्यथावद्भरतर्षभ ॥ ७४

समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृताः ७५
शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः।
अर्चयेत यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक्
संहितापुस्तकान् राजन्प्रयतः सुसमाहितः।
भक्ष्यैर्माल्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः॥
हिरण्यं च सुवर्णं च दक्षिणामथ दापयेत्।
सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रयतात्मना॥ ७८
तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम्।
यद्यदेवात्मनोऽभीष्टं तत्तद्देयं द्विजातये॥ ७९
सर्वथा तोषयेद्भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः।
देवताः कीर्तयेत्सर्वा नरनारायणौ तथा॥ ८०
ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान्
तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा॥ ८१
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि॥ ८२
वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः।
भविष्यं श्रावयेद्विद्वान् भारतं भरतर्षभ॥ ८३
भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत्संप्रदापयेत्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ८४
वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः॥ ८५
ततो हि वरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ।
सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च पृथग्विधैः ८६
इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥
भारतश्रवणे राजन्पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ८८
भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः॥ ८९
भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम्॥ ९०
भारत सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि तत् ९१
महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्
ब्राह्मणान् केशव चैव कीर्तयन्नावसीदति॥ ९२
वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते
यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता॥ ९४
एतत्पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम्।
एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ९५
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम्।
तत्सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ९६
अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत्।
तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः
दक्षिणा चात्र देया वै निष्कपञ्चसुवर्णकम्।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता
स्वर्णशृङ्गी च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंवृताम्
वाचकाय च दद्याद्धि आत्मनः श्रेय इच्छता
अलङ्कारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ।
कर्णस्याभरणं दद्याद्धनं चैव विशेषतः॥ १
भूमिदानं समादद्याद्वाचकाय नराधिप।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति २
शृणोति श्रावयेद्वापि सततं चैव यो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात्॥ ३
पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान्।
आत्मानंससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ॥ ४
दशांशश्चैव होमोऽपि कर्तव्योऽत्र नराधिप।
इदं मया तवाग्रे च प्रोक्तं सर्वं नरर्षभ॥ १०५

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां
हरिवंशोक्तभारतश्रवणविधावध्यायः समाप्तः॥

॥ शुभं भवतु ॥

॥ इति स्वर्गारोहणपर्व समाप्तम् ॥

## भारततात्पर्यरूपा भारतसावित्री ।

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ १

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ २

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ३

न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ ४

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

## ॥ इति श्रीमहाभारते *स्वर्गारोहणपर्व समाप्तम् ॥

* यद्यप्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहकथनावसरेऽष्टादशे स्वर्गारोहणपर्वणि अध्याया पञ्च श्लोकाश्च नवोत्तरे द्विशते इत्युक्तम् अत्र अध्यायसंख्याविषये नैव वैषम्यं पर श्लोकसंख्या तु संप्रत्यास्मिन् पर्वणि ३२० एवती दृश्यते । परमयं न्यूनाधिकभावो लेखकादिप्रमादज स्यादिति भाति ।

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितराम-
चन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितः परिष्कृतश्च । भारती जयतु ॥ शाके १८५४ ॥

# Shriman-
# MAHĀBHĀRATAM

## Part VII

## IXX Harivanshaparvan

WITH

**Bhārata Bhāwadeepa by Neelakantha.**

***Edited by***

Pandit Rāmachandrashastri Kinjawadekar.

*PRINTED & PUBLISHED*

BY

**SHANKAR NARHAR JOSHI**

Chitrashala Press, 1026 Sadashiv Peth, Poona City.

*Shake 1857* ] *First Edition* [ *A. D. 1936*

# श्रीमन्महाभारतम्।

## [illegible] भागे—हरिवंशपर्व।

चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचित-
भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्।

पण्डित रामचन्द्रशास्त्री किंजवडेकर इत्येतैः पाठान्तर-
टिप्पण्यादियोजनया समलङ्कृतम्।


तच्च

पुण्याख्यपत्तने

१०२६ सदाशिववीथ्यां चित्रशालाख्ये मुद्रणालये 'शंकर नरहर जोशी'
इत्येतैः संमुद्र्य प्रकाशितम्।

शालिवाहनशकाब्दाः १८५७] प्रथमं संस्करणम्। [ख्रिस्ताब्दाः १९३६

॥ श्रीभारती विजयते ॥

# प्रास्ताविकम् ।

**जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।**
**यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ १ ॥**

इह खलु भगवान्पाराशर्यः परमकारुणिकः सकलसंसारानर्थसंकटाज्जन्तूनुद्दिधीर्षुः सर्वश्रुतिरहस्यप्रकाशकं महाभारताख्यमितिहासं प्रणिनाय । तत्र शतं पर्वाणि, तानि यथा—

## भारतपर्व-गणना ।

( १ ) **आदिपर्वणि**—१ अनुक्रमणिकापर्व, २ पर्वसंग्रहपर्व, ३ पौष्यपर्व, ४ पौलोमपर्व, ५ आस्तीकपर्व, ६ अंशावतरणपर्व, ७ संभवपर्व, ८ जतुगृहपर्व, ९ हिडिंबवधपर्व, १० बकवधपर्व, ११ चैत्ररथपर्व, १२ स्वयंवरपर्व, १३ वैवाहिकपर्व, १४ विदुरागमनराज्यालंभपर्व, १५ अर्जुनवनवासपर्व, १६ सुभद्राहरणपर्व, १७ हरणाहरणपर्व, १८ खांडवदाहपर्व, १९ मयदर्शनपर्व, ( २ ) **सभापर्वणि**—२० सभाक्रियापर्व, २१ जरासंधवधपर्व, २२ दिग्विजयपर्व, २३ राजसूयिकपर्व, २४ अर्घाभिहरणपर्व, २५ शिशुपालवधपर्व, २६ द्यूतपर्व, २७ अनुद्यूतपर्व, ( ३ ) **वनपर्वणि**—२८ किर्मीरवधपर्व, २९ अर्जुनाभिगमनपर्व, ३० कैरातपर्व, ३१ इन्द्रलोकाभिगमनपर्व, ३२ नलोपाख्यानपर्व, ३३ तीर्थयात्रापर्व, ३४ जरासंधवधपर्व, ३५ यक्षयुद्धपर्व, ३६ निवातकवचयुद्धपर्व, ३७ आजगरपर्व, ३८ मार्कण्डेयसमस्यापर्व, ३९ द्रौपदीसत्यभामापर्व, ४० घोषयात्रापर्व, ४१ मृगस्वप्नोद्भवपर्व, ४२ व्रीहिद्रौणिकपर्व, ४३ द्रौपदीहरणपर्व, ४४ जयद्रथविमोक्षणपर्व, ४५ रामोपाख्यानपर्व, ४६ पतिव्रतामाहात्म्यपर्व, ४७ कुण्डलाहरणपर्व, ४८ आरणेयपर्व, ( ४ ) **विराटपर्वणि**—४९ पांडवप्रवेशपर्व, ५० समयपालनपर्व, ५१ कीचकवधपर्व, ५२ गोहरणपर्व, ५३ वैवाहिकपर्व, ( ५ ) **उद्योगपर्वणि**—५४ सेनोद्योगपर्व, ५५ संजययानपर्व, ५६ प्रजागरपर्व, ५७ सनत्सुजातपर्व, ५८ यानसंधिपर्व, ५९ भगवद्यानपर्व, ६० सेनानिर्याणपर्व, ६१ उलूकदूताभिगमनपर्व, ६२ रथातिरथपर्व, ६३ अंबोपाख्यानपर्व, ( ६ ) **भीष्मपर्वणि**—६४ जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व, ६५ भूमिपर्व, ६६ भगवद्गीतापर्व, ६७ भीष्मवधपर्व, ( ७ ) **द्रोणपर्वणि**—६८ द्रोणाभिषेकपर्व, ६९ संशप्तकवधपर्व, ७० अभिमन्युवधपर्व, ७१ प्रतिज्ञापर्व, ७२ जयद्रथवधपर्व, ७३ घटोत्कचवधपर्व, ७४ द्रोणवधपर्व, ७५ नारायणास्त्रमोक्षपर्व, ७६ ( ८ ) **कर्णपर्व**, ( ९ ) **शल्यपर्वणि**—७७ शल्यवधपर्व, ७८ ह्रदप्रवेशपर्व, ७९ गदायुद्धपर्व, ( १० ) **सौप्तिकपर्वणि**—८० सौप्तिकपर्व, ८१ ऐषिकपर्व, ( ११ ) **स्त्रीपर्वणि**—८२ जलप्रदानिकपर्व, ८३ स्त्रीविलापपर्व, ८४ श्राद्धपर्व, ( १२ ) **शान्तिपर्वणि**—८५ राजधर्मपर्व, ८६ आपद्धर्मपर्व, ८७ मोक्षधर्मपर्व, ( १३ ) **अनुशासनपर्वणि**—८८ दान-

धर्मपर्व, ८९ भीष्मस्वर्गारोहणपर्व, ( १४ ) **अश्वमेधपर्वणि**—९० अश्वमेधपर्व, ९१ अनुगीतापर्व, ( १५ ) **आश्रमवासिकपर्वणि**—९२ आश्रमवासपर्व, ९३ पुत्रदर्शनपर्व, ९४ नारदागमनपर्व, ९५ ( १६ ) **मौसलपर्व,** ९६ (१७) **महाप्रस्थानिकपर्व,** ९७ (१८) **स्वर्गारोहणपर्व,** ( १९ ) **खिलहरिवंशपर्वणि**—९८ हरिवंशपर्व, ९९ विष्णुपर्व १०० भविष्यपर्व च । आहत्य पर्वाणि शतम् ।

## महाभारतं हरिवंशश्च ।

एतत्पर्वशतेऽन्तिमं पर्वत्रयं हरिवंशरूपम् । यथोक्तमनुक्रमणिकाध्याये—

**हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम् ।**
**विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा ॥ २ ॥**
**भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् ।**
**एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ ३ ॥**

( आ. प. अ. २ श्लो. ८२, ८३ ) तथा ग्रन्थसंख्याया अपि—'**एकं शतसहस्रं च मानुषेषु प्रतिष्ठितम्**' इत्युक्ताया हरिवंशेनैव पूरणात् । हरिवंशान्ते—'**भविष्योत्तरमेतत्त कथितं भारतं मया**' इत्युपसंहाराच्च भारतान्तर्गतत्वमस्य ।

**अत्र केचन प्रत्यवतिष्ठन्ते**—महाभारताख्यो ग्रन्थः स्वर्गारोहणपर्वान्त एव, न तत्र त्रिपर्वात्मकस्य हरिवंशस्यान्तर्भावः । हरिवंशाख्यो ग्रन्थस्तु श्रीकृष्णचरित्ररूपेण स्वतंत्रतया एव विलिखितो वर्तते, परं यदा खलु महाभारतं शतसहस्रसङ्ख्यात्मकं न बभूव, अतः तत्संख्यापूर्तयेऽयं संपूर्णो ग्रन्थस्तत्परिशिष्टतया कैश्चनाधुनिकैः परिकल्पित इति ।

**अत्र ब्रूमः**—यतो हि सूक्ष्मेक्षिकयाऽष्टादशपर्वसंमितं महाभारतं, त्रिपर्वात्मको हरिवंशश्च, एतद्द्वयं सम्यक् समालोचयतां 'हरिवंशान्तमेव महाभारतम्' एतत्सिद्धान्तसाधकानि परःशतान्यान्तराणि प्रमाणानि दृशोर्गोचराणि भवन्ति । अत्र तन्मध्यात्कानिचन दिगर्थत्वेन प्रदर्शयामः—

( १ ) महाभारतस्यादिपर्वणि पर्वसंग्रहपर्वाध्याये या खलु महाभारतीयशतपर्वगणना दृश्यते तदन्तःपातीन्येव हरिवंशान्तर्गतानि—हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व, भविष्यपर्व चेत्येतानि त्रीणि पर्वाणि ।

( २ ) अस्यैव पर्वसंग्रहाध्यायस्यैकोनाशीतितमे श्लोके 'हरिवंशस्य हरिवंशकथने भविष्यकथने च तात्पर्यम्' इति समुल्लेखः ।

(३) अथास्य हरिवंशस्योपक्रमाध्याये चतुर्थश्लोकान्ते "सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । भारतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ।......अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः । विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ।... तत्र जन्म कुरूणां वै त्वयोक्तं लोमहर्षणे । न तु वृष्ण्यन्धकानां च तद्भवान्वक्तुमर्हति ।... महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् । कथितं भवता पूर्वं विस्तरेण मया श्रुतम् ।.... न च मे तृप्तिरस्तीह कथ्यमाने पुरातने । एकश्चैव मतो राशिर्वृष्णयः पाण्डवास्तथा । भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान् । कथयस्व

कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन" इत्यादिग्रन्थसंदर्भेण हरिवंशाख्यो विभागो महाभारतान्तर्गत एव क्रमप्राप्तश्च स भाग इति सिध्यति। यतः स्वर्गारोहणान्ते भारताख्यानं समाप्तं न तु महाभारताख्यो ग्रन्थः, अतस्तत्समाप्तये शौनकेन जनमेजयेन च पर्यनुयुक्तौ सौतिवैशम्पायनावग्रिमं ग्रन्थं प्राब्रूताम् ।

( ४ ) हरिवंशपर्वाणि त्रिंशाध्याये "यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तम" इति वदता वैशम्पायनेनादिपर्वस्था ययातिकथा जनमेजयं स्मारिता, तेन महाभारतस्था ययातिकथा पूर्वं, हरिवंशश्च पश्चात्, उभयोरप्येककर्तृकत्वमेकग्रन्थान्तर्गतत्वं चेति दृश्यते ।

( ५ ) हरिवंशपर्वाणि द्वात्रिंशेऽध्याये 'त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला' इत्यनेनाशरीरिणी वाक् या किल दुष्यन्तं प्रति प्रोक्तवतीति प्रत्यपादि, तत्खलु शकुन्तलावचनमादिपर्वाणि चतुःसप्ततितमेऽध्यायेऽस्ति । अत एतेनापि पूर्वग्रन्थसंदर्भप्रदर्शनेन द्वयोरेकग्रन्थत्वं सिद्धं भवति ।

( ६ ) हरिवंशपर्वाणि चतुष्पञ्चाशत्तमेऽध्याये देवादीनामंशावतरणकथनसंदर्भे 'मित्रस्य धनदस्य च' इत्यनेन कणिकर्षिर्मित्रांशत्वेन समुल्लिखितः । अयं समुल्लेख आदिपर्वणि जम्बूककथाप्रवक्तारं कणिकर्षिं समुद्दिश्यैव कृत इति निश्चप्रचम् । एतेनाप्यस्मन्मतं दृढं भवति ।

( ७ ) भविष्यपर्वणः समाप्तौ द्वात्रिंशदधिकशततमेऽध्याये पारायणपर्वक्रमेण महाभारतश्रवणफलं वर्णितम् । तेनापि ज्ञायते—यद्यपि भारतं स्वर्गारोहणान्तमवभाति तथापि शतपर्वगणनायां खिलहरिवंशस्यान्तर्भावकथनात्, हरिवंशान्तमेव महाभारतमिति स्पष्टयितुमत्र भारतश्रवणविधिः कीर्तित इति । एतदध्यायान्ते च भारतसमाप्तिसूचिका 'शं नो मित्रः शं वरुणः' इत्यादिवत्पठिता—

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात् ॥ ४ ॥

एषा शान्तिरपि सुधीभिरवश्यमनुसंधेया । भविष्यपर्वणस्त्रयस्त्रिंशदधिकशततमेऽध्याये यः खलु त्रिपुरवधवृत्तान्तः पूर्वकथासंबंधं विरहय्यैव समुदीरितस्तस्य बीजं तु विष्णुकथानां श्रुतीनां च श्रवणात्परमपदप्राप्तिरन्ते भवत्विति । कथासंदर्भोऽयं परमनिपुणेन व्याख्यात्रा नीलकण्ठपण्डितेन समग्रोऽप्यन्यथैव व्याख्यातस्तेनैवैकेन संदर्भेण विष्णुकथाश्रवणं श्रुत्यर्थसमाकलनमप्येकपद उभयमपि भवतीत्यहो व्याख्यानशैली ।

( ८ ) आनुशासनिके पर्वणि 'कृष्णः शंकराराधनार्थं कैलासं गतवान्' इति संक्षेपेणोक्तम् । तद्विस्तरस्तु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिसप्ततितमेऽध्याये—

किमर्थं गतवान् विष्णुर्देवदेवो जनार्दनः ।
गतः कैलासशिखरमालयं शंकरस्य च ॥

इत्यादिना जनमेजयप्रश्नव्याजेन कृतः । एतेनापि महाभारतहरिवंशयोर्द्वयोरेकग्रन्थत्वमविवादं सिध्यतीति दिक् ।

## महाभारतव्याख्याता नीलकण्ठः ।

अथैतस्य सखिलस्य महाभारताख्यग्रन्थस्य व्याख्याता श्रीमन्नीलकण्ठचतुर्धरः कतमज्जन-पदं निजजन्मना, निवासेन वा विभूषयांचकारेत्यादिविषयके प्रश्नसमूहे मनसि प्रादुर्भूते, एतेनैव टीकाकृता भारतभावदीपाख्ये महाभारतव्याख्याने यथाप्रसङ्गं तत्र तत्र यदुदलेखि, तेनैतावान्निश्चेतुं शक्यतेऽस्य पण्डितप्रकाण्डस्योदन्तजातम्—

अस्य चतुर्धरनीलकण्ठस्य पितुर्नाम गोविन्दः, मातुर्नाम अम्बा, भ्रातरश्च शिव-कृष्ण-त्र्यम्बकाख्यास्त्रयः, गोत्रं गौतमम्, निवासस्थानं च परमपावन्या गोदावर्यास्तीरस्थो कूर्परग्रामाख्यो ग्रामः (कोपरगांव), अनेन भारतभावदीपाख्या टीका वाराणसीस्थेन लिखिता । लक्ष्मण-नारायण-धीरेश-गङ्गाधरपोल-पितृव्यशिव-पितृगोविन्द-चिन्तामणि-गोपालदेवेभ्यः सकाशाद् वेदोपनिष-न्मीमांसाभक्तिश्रौतादीन्विषयानधिजगे । एतेनास्य व्याख्यानविरचनेऽसाधारणोऽधिकारो व्यज्यते । एतत्सर्वमस्य महाभागस्य भारतभावदीपस्थाद्ग्रन्थादेवावधारितं भवति ।

## महाभारतपाठसंशोधनम् ।

अयि महाभागाः! श्रीमन्नीलकण्ठचतुर्धरोऽयं हरिवंशसहितं समग्रं महाभारतं व्याख्या-रचनात्प्रागेवानेकैरादर्शैः साकं संशोध्य यः खलु सम्यगादर्श इति मतिः स्वमनन्यभूतस्यैव महाभारतादर्शस्य व्याख्यां प्रणिनाय, इत्यत्र नास्ति संदेहबिन्दुरपि । अतो यस्खलु नीलकण्ठ-कृतभारतभावदीपाख्यटीकोपबृंहितं महाभारतं वर्तते स एवाधुनातन आदर्शभूतो महा-भारतपाठ इति निश्चेतुं नास्ति कापि विप्रतिपत्तिः । विभिन्नदेशीयमहाभारतादर्शस्य पाठान्तरविषयिणीं ग्राह्याग्राह्यचर्चां बहुत्र स्थले समीचीनतयाऽयं कृतवान्व्याख्याकारः। एतादृ-शानि परःशतान्युदाहरणानि प्रदर्शयितुं शक्यानि, तथापि विस्तरभयात्किञ्चिदिव प्रदर्श्यते—

(१) हरिवंशस्य प्रथमे पर्वणि सप्तत्रिंशाध्याये 'नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः । न्यग्रोधश्च सुनामा च कंकुः शंकुः सुभूमिपः' एतच्छ्लोकव्याख्यानावसरे पण्डितो नीलकण्ठ एवमुदलिखत्—'कंसः पूर्वजः प्रथमः न्यग्रोधादयोऽष्टौ, सुभूमिप इति शंकोर्विशेषणम् । गौडपाठे—सुभूषण इति वा तस्यैव विशेषणम् । अन्ये तु सुभूमिप इति कंसस्यैव नामेत्याहु-स्तेषां तस्य पूर्वजोक्तिर्विरुध्यते। परे पुनः कंकुश्चैव सुभूमिप इति शंकुपदस्य लोपमेव कुर्वन्ति। तत्र पाठतत्त्वं व्यास एव वेद' इति । अस्मिन् व्याख्याने सुभूमिपः—सुभूषणः, शंकुः—कंकुः, एतादृशं पाठान्तरं प्रदर्श्य तत्र युक्तायुक्तविचारमपि कृत्वा **सुभूमिपः** अयमेव पाठः साधीया-निति किल टीकाकृता सुनिपुणतया समासाधि । एवमेवेतरत्रापि पाठान्तरविषये टीकाकर्तुरस विवेचनशैली कामं दरीदृश्यते । आस्तां तावदयमानुमानिकः पन्थाः ।

(२) टीकाकारोऽयं व्याख्यारम्भे सुस्पष्टतयैवेदं समुद्घोषयत्, यथा—

**बहून्समाहृत्य विभिन्नदेश्यान्कोशान्विनिश्चित्य च पाठमग्र्यम् ।**
**प्राचां गुरूणामनुसृत्य वाचमारभ्यते भारतभावदीपः ॥ ५ ॥**

(म. भा. आ. पृ. १) अतः 'पण्डितनीलकण्ठेन व्याख्याकरणार्थं स्वीकृतः श्रीमन्महाभारतादर्शोऽसंशोधित एव ' इति किल ये पण्डितंमन्याः संगिरन्ते, संसूचयन्ति च ततो हेतोः श्रीमन्महाभारतस्य नवीनादर्शकरणावश्यकताम्, तत्खल्वविचारितमनोहरमेवेति सिद्धम् । अन्यच्च यस्मिन्खलु काले पर्याप्ता संशोधनसामग्री दुरवगमा, संशोधनकल्पना च विद्वद्भिरनादृता, तस्मिन् काले पण्डितनीलकण्ठमहाभागस्य यत्खलु सम्यक्तया पाठान्तराणि समालोच्याभिनवमेव महाभारतादर्शं कृत्वा तस्योपरि यथार्थतया व्याख्याकरणम्, तत्खल्वतीवाभिमानास्पदं भारतवर्षीयाणाम् ।

## महाभारतार्थविवेकः ।

यथा महाभारतस्याभिनवमादर्शं व्यधान्नीलकण्ठमहाभागस्तथायं महाभारतार्थविषयेऽपि सविशेषं संशोधनमकरोत् । ये च दुरवगाहतया प्राक्तनव्याख्याकृद्भिरव्याख्याताः श्लोकाः श्लोककदम्बा वा, तान्सर्वानप्ययं महाभागः सम्यग्व्याख्यातवान् । स्वकीयटीकास्वरूपं च सुविशदतया वर्णितमेतेन पण्डितप्रकाण्डेन । यथा—

> **उत्तानेष्विह कोशविग्रहबलं पद्येषु नैवाश्रितं**
> **गम्भीरेषु न संतवो न विहिताः कूपा न न स्फोटिताः ।**
> **न च्छिन्ना न तमश्वराननततिर्भक्ता न नाल्हादिता**
> **नो दीनाश्च विभीषणा न विहिताः श्रीलक्ष्मणार्यश्रितैः ॥ ६ ॥**

अस्मिन्पद्ये भारतभावदीपाख्यटीकायाः स्वरूपं परिवर्णितमस्ति । सुलभग्रन्थस्याऽनपेक्षिततया एव व्याख्यानं न कृतम्, दुरवगमानि पद्यानि सम्यक् सविस्तरं व्याख्यातानि, तथा च यानि खलु महाभारते कूटपद्यानीतस्ततो नयनयोर्गोचराणि भवन्ति, यद्विषये ' संजयो वेत्ति वा न वा ' इति भगवतो व्यासस्यापि द्रढीयान्संशयस्तानि परःशतानि कूटपद्यानि महाभागेन नीलकण्ठपण्डितेनामुना सम्यग्, विशकलितानि, अर्थश्च तेषां संदर्भानुकूलः परिलिखितः । एतद्विषये महाभारतार्थपरिचिन्तका एव प्रमाणम्, तथा च ये खलु सुगमतराः संदर्भा इति जनैर्मन्येरंस्तेषां पौर्वापर्यं मनसि निधाय महत्येतैरव्ययावदनासादितया तर्कपद्धत्या ते व्याख्याताः । अत्र निदर्शनानि बहूनि सन्ति, परं विस्तरभयान्नैव तद्विषये लेखनीं व्यापारयितुमिच्छामः, किंत्वेतद्विषये पण्डितनीलकण्ठेन स्वत एव यदुदलेखि तस्योल्लेखं परं कुर्मः । हरिवंशे भविष्यपर्वाणि पौष्कराख्यमेकं पर्व, तस्य व्याख्यानारंभेऽयं टीकाकारः कूटविशसनरूपं स्वकार्यं सम्यक् साभिमानं च विलिख्यानन्तरमुक्तवान्—

> **कस्त्र्यम्बकमृते कालकूटाभं पुष्करोद्भवम् ।**
> **कण्ठे कर्तुं क्षमो लोके कामाजित्पुरुषोत्तमः ॥ ७ ॥**

इदमत्राकूतम्—यथा खलु भगवांस्त्र्यम्बक एव नीलकण्ठाभिधः कालकूटं कण्ठे कर्तुं क्षमस्तथैवाहमेव शिक्षानयप्रणयसंयमैः ख्यातश्चतुर्धरो व्याख्याता महाभारतस्थां कूटपरंपरां

सम्यक् कण्ठे कर्तुं ( व्याख्यातुं ) क्षमः नैवान्यः कोऽपि । अन्यच्चास्यैव हरिवंशस्य भविष्यपर्वणि विंशाध्यायान्ते पण्डितप्रकाण्डोऽयमेवमवादीत्—

**परैरदर्शितः पन्थाः पौर्वापर्यबलान्मया ।**
**यथाकथञ्चिदुन्नीतः पण्डिताः शोधयन्तु तम् ॥ ८ ॥**

एतेनास्य संशोधनविषये प्रागल्भ्यमतिशायितं विनयमाहात्म्यमपि स्फुटं भवति । एतेन संदर्भेण नीलकण्ठविरचितभारतभावदीपाभिधटीकाया अभ्यर्हत्वं सिध्यति ।

## श्रीमन्नीलकण्ठकृतः स्वग्रन्थोल्लेखः ।

अयं नीलकण्ठोऽविमुक्तिनिरुक्तिरित्याख्यमेकं स्वतन्त्रग्रन्थमपि प्राणैषीदित्येतदुल्लेखेनैव ज्ञातुं शक्यते । यथा–हरिवंशपर्वण्यादिमे हरिवंशोपपर्वण्येकोनत्रिंशाध्याये—' एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम् ' एतच्छ्लोकव्याख्यानावसरे–**विस्तरस्त्वस्मत्कृतायामविमुक्तनिरुक्तौ द्रष्टव्यः,** इति ।

हरिवंशे भविष्यपर्वणि सप्तदशाध्याये ' स हि वेदमयो यज्ञः ' इति श्लोकव्याख्याने, "विस्तरस्तु–वेदस्तुतिटीकायां स्पष्टीकृतोऽस्मद्गुरुभिः" इत्युल्लेखो वर्तते, तेन श्रीमद्भागवतव्याख्याता कश्चन पण्डितोऽस्य गुरुरासीदिति ज्ञायते ।

पण्डितनीलकण्ठस्य यथावच्चरितमुपरितनेन तदुल्लेखेनैव स्फुटं भवति । परं तस्य जनिः कस्मिन्काले समभवत् टीका च कदा विलिखिता इत्याद्युदन्तजातं तदुल्लेखाभावान्न स्पष्टतया परिज्ञातुं शक्यते, तथापि तट्टीकासंदर्भगताः, तत्तत्प्रादेशिकभाषाशब्दाः शब्दकोशनिर्देशाः, तत्तद्ग्रन्थकारनिर्देशाः, वेदान्तपरम्परोल्लेखाश्च तद्विषयां दिशं संसूचयेयुरिति बाढं विश्वसिमः ।

समासत एतद्विषयकं यद्वक्तव्यं तदुक्तम् । इतोऽप्यधिकतरो विस्तरोऽस्माभिः प्रणेष्यमाणायां '**महाभारतभूमिकायां**' क्रियेत ।

अयि ! महानुभावाः सकलशास्त्रपुराणेतिहासकोविदा विद्वन्मणयो रसिकोत्तंसाः पाठकमहोदयाः ! श्रीमतः करुणावरुणालयस्य परमेशितुरसाधारणया कृपया भवतां च शुभाशंसया सटीकस्य महाभारतस्य हरिवंशाख्योऽयं सप्तमः खण्डो यथावत्संमुद्रय भवतां करकमलं समाश्रयितुं सन्नद्ध इति किल समवलोक्य प्रमोदभरमावहत्यस्मदीयं नितान्तमन्तरङ्गम् ।

## आदर्शपुस्तकोल्लेखः ।

अयि प्रेष्ठाः ! अस्य हरिवंशाख्यमहाभारतान्तिमभागस्य संशोधनकर्मणि यानि खिलादर्शपुस्तकानि प्रमाणतया पाठनिर्धारणाय स्वीकृतानि तानीमानि—

१ ' क ' इति संज्ञितं लिखितं सटीकं, वेदशास्त्रेतिहासपुराणकोविदानां **भय्याशास्त्री गुर्जर** इत्याख्यानां पुण्यपत्तनवास्तव्यानाम् ।

२ ' ख ' इति संज्ञितं कलिकातानगरे ' बेंगाल एशियाटिक सोसायटीसंस्था '

१८३९ तमे ख्रिस्ताब्दे मुद्रितं मूलमात्रम् । नैकविधप्राच्यपुस्तकसंग्रहव्यसनिनां **डॉ० न. गो. सरदेसाई** महोदयानां ' ओरिएण्टल बुक् एजन्सी पूना ' संस्थाधिपतीनां कृपया लब्धम् ।

३ ' ग ' इति संज्ञितं ' भट्टपल्ली ' निवासिपण्डितप्रवरश्रीयुक्त-**पञ्चाननतर्करत्न-भट्टाचार्यैः** सम्पादितं श्रीमन्नीलकण्ठकृतटीकासहितं १३१२ तमे वङ्गाब्दे मुद्रितं वङ्गाक्षरमयं पुस्तकम् ।

४ ' घ ' इति संज्ञितं मुम्बय्यां **श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजश्रेष्ठिना** स्वकीये श्रीवेङ्कटेश्वर-स्टीममुद्रणालये १८४७ तमे शालिवाहनशके पोथीरूपेण मुद्रितं सटीकम् ।

५ ' ङ ' इति संज्ञितं ' घ ' संज्ञकपुस्तके निर्दिष्टम् ।

एष्वादर्शपुस्तकेषु ' ख ' संज्ञितं पुस्तकमेव विशेषतो भिन्नानुपूर्वीकं वर्तते । अन्यपुस्तकेष्वपि क्वाचित्का: पाठभेदास्तत्र तत्र दरीदृश्यन्ते । अत एतत्पुस्तकसंशोधनेऽत्रवि साहाय्यमेतेषां पुस्तकानां समभवदिति हेतोरेतत्सकलादर्शपुस्तकाधिपतिषु शतशो धन्यवादान् वितरामः ।

## परिशिष्टानि ।

अहो नु खलु भोः पण्डितवरेण्याः प्रियपाठकमहाभागाः ! यथास्य खिलहरिवंशस्य महाभारतान्तिमो भाग इति महीयस्त्वं तथैवायं हरिवंशोऽनपत्यानां पुत्रप्रार्थिनां यथाविधि पारायणेन संतानप्रदत्वेन कल्पतरुरिवेहामुत्र च परमहितकारीत्याकलय्य ग्रन्थान्ते परिशिष्टतया सन्तानगोपालमंत्रविधिः, संतानकरं यन्त्रम्, वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं सन्तानगोपालमंत्रानुष्ठानविधिः, साविधि हरिवंशमाहात्म्यं च संयोजितम् ।

तथा च सकलमहाभारतोपसंहारभूतं सर्वजनप्रातःस्मरणार्हं भारतसावित्रिस्तोत्रमपि विविधादर्शपुस्तकैः संशोध्य परिशिष्टरूपेणात्र निवेशितम् ।

## आशंसनम् ।

एतादृशः साङ्गोपाङ्गोपबृंहितो नीलकण्ठपण्डितकृतभारतभावदीपाख्य-हरिवंशदीपापराभिधव्याख्यासनाथितो महाभारतस्य चरमो भागः श्रीमत्पाठककरकमलयोः समर्पित आचन्द्रतारकं मह्यां पठनपाठनादिरूपेण चिरंतनं क्षेमं विधत्तां सर्वेषामिति जगन्नियन्तारं रमाजानिं संप्रार्थ्य विरतिं समाश्रयते—

मितिः—शिवरात्रिः, शाकः १८५७ }<br>भुवनभारतीग्रन्थशाला, पुण्यपत्तनम् । }

विद्वज्जनविधेयः<br>**किञ्जवडेकरोपाह्वो रामचन्द्रशास्त्री ।**

आदौ पाण्डवधार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं
द्यूतं श्रीहरणं वने विहरणं मत्स्यालये वर्तनम् ।
लीलागोग्रहणं रणे विहरणं संधिक्रियाजृम्भणं
पश्चाद्भीमसुयोधनादिनिधनं ह्येतन्महाभारतम् ॥१॥

॥ श्रीभारती विजयते ॥

# विषयानुक्रमणिका ।

## हरिवंशपर्व ।

१


| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| १ | ४६ | आदिसर्गकथनम् | १ |
| २ | ५७ | दक्षोत्पत्तिकथनम् | ७ |
| ३ | १४० | मरुदुत्पत्तिकथनम् | ११ |
| ४ | ३४ | पृथूपाख्यानारंभः | १७ |
| ५ | ५६ | पृथोश्चरितवर्णनम् | १८ |
| ६ | ५५ | पृथ्वीदोहनम् | २१ |
| ७ | ९० | स्वायंभुवादिमन्वन्तराणि | २३ |
| ८ | ४५ | मन्वन्तरयुगादेर्गणना | २७ |
| ९ | ६६ | वैवस्वतादीनामुत्पत्तिः | ३० |
| १० | ३८ | ऐलोत्पत्तिः | ३३ |
| ११ | ५७ | शर्यातिवंशवर्णनं धुंधुवधश्च | ३४ |
| १२ | २४ | दृढाश्वादिसगरान्तानां वंशः, गालोत्पत्तिश्च | ३७ |
| १३ | ३४ | त्रिशंकुवर्णनमिक्ष्वाकुवंशश्च | ३८ |
| १४ | ३० | सगरचरितम्, समुद्रस्य सागरनाम च | ३९ |
| १५ | ३८ | सगरवंशवर्णनम् | ४१ |
| १६ | ४६ | आदित्यस्य श्राद्धदेवेतिनामोपपत्तिः | ४२ |
| १७ | ४२ | पितृगणोत्पत्तिकथनम् | ४४ |
| १८ | ८२ | पितॄणां नामस्थानयोर्वर्णनम् | ४७ |
| १९ | २२ | दिव्यज्ञानोत्तरं मार्कण्डेयस्य स्वानुभवः | ५१ |
| २० | १४३ | बृहत्क्षत्रोजमीढवंशः, उग्रायुधचरितं चटकोपाख्यानं च | ५२ |
| २१ | ४४ | श्राद्धमाहात्म्यम् | ५८ |
| २२ | ११ | चक्रवाकवर्णनम् | ६० |
| २३ | ३६ | हंसवर्णनम् | ६१ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| २४ | ३८ | ब्रह्मदत्तचरितम् | ६३ |
| २५ | ७१ | सोमचरितम्, देवासुरयुद्धं बुधजन्म च | ६५ |
| २६ | ४९ | उर्वशीपुरूरवसोर्वृत्तम् | ६८ |
| २७ | ५८ | ऐलपुत्रस्यामावसोर्वंशवर्णनम् | ७० |
| २८ | ३७ | आयुवंशः, रजिराजोपाख्यानं च | ७२ |
| २९ | ८३ | अनेनसोर्वंशः, धन्वन्तरिजन्म, दिवोदासचरितं च | ७४ |
| ३० | ४९ | ययातिचरितम्, ययातिवंशश्च | ७८ |
| ३१ | ६१ | पुरुवंशः, रौद्राश्वपुत्रस्य कक्षेयोर्वंशश्च | ८० |
| ३२ | १२९ | ऋचोय्वाजमीढादीनां वंशवर्णनम् | ८३ |
| ३३ | ६२ | यदुकार्तवीर्यवंशकथनम् | ८८ |
| ३४ | ४१ | क्रोष्टुवृष्णिवंशयोर्वर्णनम् | ९१ |
| ३५ | २२ | कृष्णजन्म, कालयवनाद्भयं तद्वधश्च | ९३ |
| ३६ | ३१ | क्रोष्टुवंशः, ज्यामघस्राष्टिश्च | ९४ |
| ३७ | ३३ | सात्वतवंशवर्णनम् | ९६ |
| ३८ | ५८ | भजमानवंशः स्यमन्तकोपाख्यानं च | ९८ |
| ३९ | ४२ | सत्राजिद्वधः स्यमन्तकानयनं च | १०० |
| ४० | ६६ | जनमेजयप्रश्नभारप्रतानम् | १०२ |
| ४१ | १७४ | भगवतो वराहादिरूपेण प्रादुर्भावः | १०७ |
| ४२ | ३९ | संक्षेपेण सृष्टिवर्णनं तारकामयसंग्रामश्च | ११५ |
| ४३ | ३१ | देवासुरयुद्धे दैत्यानां युद्धसज्जा | ११७ |
| ४४ | ५२ | दे[illegible]नावर्णनम् | ११९ |
| ४५ | ७७ | देवासुरसंग्रामः, और्वाग्निजननं च | १२२ |
| ४६ | ६२ | दैत्यमायानाशः, कालनेम्यादिभ्यो देवभयम् | १२६ |
| ४७ | ५९ | कालनेमिपराक्रमः | १२९ |
| ४८ | ८४ | श्रीकृष्णेन कालनेमिवधः, देवानां स्वास्थ्यं च | १३१ |
| ४९ | २९ | ब्रह्मलोकवर्णनम्, तत्रस्थऋषिकृतं विष्णुयजनं च | १३५ |
| ५० | ४८ | विष्णोः स्वापप्रबोधादि | १३७ |
| ५१ | ३३ | भूभारहरणाय विष्णोः प्रार्थना | १४१ |
| ५२ | ६० | देवसभायां विष्णुं प्रति धरणिवाक्यम् | १४२ |
| ५३ | ७९ | पितामहं प्रति देववाक्यमंशावतरणं च | १४५ |
| ५४ | ८६ | अवतारविषये विष्णुं प्रति नारदवाक्यम् | १४८ |
| ५५ | ५१ | नारदसान्त्वनं ब्रह्मकृतं विभोर्जन्मस्थानकीर्तनं च | १५२ |


॥ इति श्रीहरिवंशान्तर्गतहरिवंशपर्वविषया[illegible]मणिका समाप्ता ॥

# विष्णुपर्व

## २


| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| १ | ३२ | कंसं प्रति नारदवाक्यं दूतान्प्रति कंसवाक्यं च | १५१ |
| २ | ५५ | देवकीवसुदेवयोरवरोधः । देवकीगर्भरक्षणार्थं योगमायां प्रति भगवद्वाक्यं च | १५८ |
| ३ | ३५ | स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतिः | १६१ |
| ४ | ६५ | देवक्यां वसुदेवतः संकर्षणकृष्णादीनामुत्पत्तिः | १६३ |
| ५ | ३२ | वसुदेवोपदेशेन नन्दस्य व्रजे गमनम् | १६६ |
| ६ | ३४ | कृष्णेन शकटभञ्जनं, पूतनावधश्च | १६८ |
| ७ | ३७ | कृष्णेन यमलार्जुनभङ्गः | १७० |
| ८ | ३८ | वृन्दावनगमने कृष्णदेहाद्वृकोत्पत्तिश्च | १७२ |
| ९ | ३५ | गोपान्प्रति नन्दवाक्यं वृन्दावनप्रवेशश्च | १७४ |
| १० | ४३ | प्रावृड्वर्णनम् | १७५ |
| ११ | ६० | वनक्रीडा, भांडीरवर्णनम्, यमुनाह्रदः, कालियदमनविचारश्च | १७७ |
| १२ | ४९ | कालियदमनेन यमुनाया विमलता | १८० |
| १३ | २६ | धेनुकवधः, तालवनस्य क्षेमं च | १८२ |
| १४ | ५९ | बलभद्रेण प्रलम्बवधः | १८३ |
| १५ | १९ | इन्द्रमखोत्सुकान्गोपान्प्रति कृष्णवाक्यम् | १८५ |
| १६ | ४५ | उपेन्द्रेण महेन्द्रमखभेदनं शरदो वर्णनं च | १८७ |
| १७ | ३९ | गोवर्धनमहोत्सवः | १८९ |
| १८ | ६६ | आसारात्पीडिते व्रजे, तद्रक्षणार्थं कृष्णेन गोवर्धनधारणम् | १९० |
| १९ | १०२ | इन्द्रागमनम्, गोविन्दाभिषेकश्च | १९३ |
| २० | ३५ | गोपैः कृष्णप्रशंसनं गोपीसंक्रीडनं च | १९८ |
| २१ | २५ | वृषभासुरवधः | २०० |
| २२ | १०३ | वसुदेवाक्षेपपूर्वकं कंसेन व्रजं प्रत्यक्रूरप्रेषणम् | २०६ |
| २३ | ३० | कंसं प्रत्यन्धकहितवाक्यम् | २०५ |
| २४ | ७६ | अक्रूरागमनात्पुरा कृष्णेन हयरूपकेशिवधः | २०७ |
| २५ | ३९ | अक्रूरस्य व्रजप्रवेशः | २११ |
| २६ | ७१ | गोपनिमन्त्रणं, मथुरायात्रा, नागलोकदर्शनं कृष्णाक्रूरभाषणं च | २१३ |
| २७ | ६२ | कृष्णेन रजकवधः, कुब्जानुग्रहः, कंसधनुभङ्गश्च | २१६ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| २८ | ११८ | कंसस्य चाणूरमुष्टिकौ प्रति युद्धादेशः, कंसजन्मवृत्तान्तश्च | २१८ |
| २९ | ४४ | रङ्गवर्णनम्, कुवलयापीडवर्णनं च | २२३ |
| ३० | ९३ | मल्लयुद्धम्, चाणूरमुष्टिकवधः, सानुगकंसवधश्च | २२५ |
| ३१ | ५९ | कंसयोषितां विलापः, कंसमातृ रोदनम्, पतिं प्रति भाषणं च | २२९ |
| ३२ | ६४ | कंसस्यान्त्यसंस्कारः, उग्रसेनाभिषेकश्च | २३१ |
| ३३ | ४५ | रामकृष्णयोः सांदीपनेः सकाशाद्विद्यासंपादनम्, दक्षिणारूपेण स्वगुरुमृतपुत्रप्रत्यर्पणम्, प्रतिनिवर्तनं च | २३४ |
| ३४ | २२ | दुहितृप्रेरितस्य जरासंधस्य यादवनाशे प्रवृत्तिः | २३६ |
| ३५ | १११ | जरासंधेन चतुरङ्गैः सैन्यैर्मथुरोपरोधः, यादवमागधयुद्धं च | २३७ |
| ३६ | ४० | द्वन्द्वयुद्धे बलभद्रेण पराजितस्य जरासन्धस्य पलायनम् | २४१ |
| ३७ | ७३ | पुनर्योद्धुमागतं दृष्ट्वा यदूनां मंत्रणा, श्रीकृष्णं प्रति विकद्रुणा यदुवंशविस्तारवर्णनं च | २४२ |
| ३८ | ६६ | यादवोत्पत्तिः तेषां पराक्रमादि च | २४६ |
| ३९ | ८३ | जरासंधभयाद्रामकृष्णयोर्भ्रमणम्, जामदग्न्येन तयोः संगतिः, मिथः कथाकथनं च | २४८ |
| ४० | ४८ | परशुरामेण साकं रामकृष्णयोर्गोमन्तारोहणम्, कृष्णसंवादानन्तरं परशुरामप्रतिनिवर्तनं च | २५१ |
| ४१ | ६२ | बलरामस्य कादम्बरीपानम्, रामकृष्णजिघृक्षया जरासंधस्य गोमन्तसमीपमागमनम् | २५३ |
| ४२ | ८७ | जरासन्धप्रेरणया गोमन्तपर्वतदाहः | २५६ |
| ४३ | ९८ | जरासन्धसैनिकैः सह रामकृष्णयोर्युद्धं, जरासंधपराजयः, चेदिराजेन सह करवीरपुरं प्रति गमनं च | २५९ |
| ४४ | ६५ | शृगालराजेन सह कृष्णस्य युद्धम्, तद्वधः, शृगालपुत्राभिषेकश्च | २६३ |
| ४५ | १९ | रामकृष्णयोर्मथुरागमनम्, तदा तत्र महोत्सवश्च | २६५ |
| ४६ | ६० | बलरामस्य गोकुलागमनं, गोपीभिः क्रीडनं कालिन्द्याः कर्षणं च | २६६ |
| ४७ | ४६ | चराणां वचनेन रुक्मिणीस्वयंवरार्थं कृष्णस्य कुण्डिननगरे गमनम् | २६८ |
| ४८ | ५१ | विदर्भासभायां जरासंधसुनीथयोर्भाषणे | २७० |
| ४९ | ६७ | दन्तवक्त्रस्य भाषणं, भीष्मकस्य निर्णयश्च | २७२ |
| ५० | ८९ | भीष्मकसंसदि कृष्णेनाश्वासनम् | २७५ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ५१ | ७१ | श्रीकृष्णभीष्मकसंवादः | २७९ |
| ५२ | ५१ | कालयवनं प्रति शाल्वगमनम् | २८२ |
| ५३ | ५७ | कालयवनं प्रति जरासन्धसंदेशः | २८६ |
| ५४ | १० | कालयवनवाक्यम् | २८७ |
| ५५ | १२५ | द्वारावतीप्रयाणसंकेतः | २८७ |
| ५६ | ३५ | कालयवनस्याभियोगो द्वारवतीप्रयाणं च | २९२ |
| ५७ | ७० | कालयवनवधः | २९३ |
| ५८ | ८४ | द्वारावतीनगरनिर्माणम् | २९६ |
| ५९ | ८१ | रुक्मिणीहरणम् | २९९ |
| ६० | ४५ | रुक्मिपराजयः | ३०३ |
| ६१ | ५९ | प्रद्युम्नविवाहो रुक्मिवधश्च | ३०४ |
| ६२ | २० | बलदेवमाहात्म्यम् | ३०६ |
| ६३ | १२६ | नरकवधः | ३०७ |
| ६४ | ७३ | पारिजातहरणम् | ३११ |
| ६५ | ५५ | पारिजातनिबंधनः सत्याकोपः | ३१४ |
| ६६ | ५५ | श्रीकृष्णेन भामाक्रोधकारणप्रश्नः | ३१६ |
| ६७ | १०५ | पारिजातोत्पत्तिकथनम् | ३१९ |
| ६८ | ४० | पारिजातहरणे श्रीकृष्णप्रतिज्ञा | ३२२ |
| ६९ | ७३ | इन्द्रस्य पारिजातदानेऽसंमतिः | ३२३ |
| ७० | ५० | पारिजातं न दास्यामीतीन्द्रभाषणम् | ३२६ |
| ७१ | ५४ | नारदस्य द्वारकां प्रति गमनम् | ३२८ |
| ७२ | ६६ | कश्यपकृतं रुद्रस्तोत्रम् | ३३१ |
| ७३ | १०५ | इन्द्रकृष्णयोर्युद्धं विष्णोरुत्कर्षश्च | ३३६ |
| ७४ | ५४ | श्रीकृष्णकृता शिवस्तुतिः | ३४० |
| ७५ | ६९ | स्वर्गात्पारिजातानयनम् | ३४३ |
| ७६ | ३५ | द्युतरोः पुनः स्वस्थाने नयनम् | ३४६ |
| ७७ | २८ | पुण्यकविधिः | ३४७ |
| ७८ | ३५ | पुण्यकव्रतवर्णनम् | ३४८ |
| ७९ | ७२ | पुण्यकव्रतवर्णनम् | ३५० |
| ८० | ५२ | अङ्गनिर्वेशहेतूनि व्रतानि | ३५३ |
| ८१ | ४४ | उमाव्रतकथनसमाप्तिः | ३५६ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ८२ | ३५ | षट्पुरवधः | ३५९ |
| ८३ | ५६ | यज्ञविस्तरो दुष्टनिग्रहश्च | ३६० |
| ८४ | ६८ | अनिरुद्धविक्रमः राज्ञां बन्धनं च | ३६२ |
| ८५ | ७९ | निकुम्भप्रभृतीनां वधः | ३६५ |
| ८६ | ६३ | अन्धकवधः | ३६७ |
| ८७ | ३९ | महादेवेनान्धकवधः | ३७० |
| ८८ | ८१ | जलक्रीडावर्णनम् | ३७१ |
| ८९ | ८८ | छालिक्यक्रीडा | ३७४ |
| ९० | ७८ | भानुमतीहरणं निकुम्भवधश्च | ३८१ |
| ९१ | ५४ | वज्रनाभवधवृत्तान्तः | ३८४ |
| ९२ | ६३ | वज्रनाभपुरं प्रति प्रद्युम्नादीनां गमनम् | ३८६ |
| ९३ | ६२ | वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नप्रवेशः | ३८८ |
| ९४ | ५१ | प्रभावतीपाणिग्रहणम् | ३९० |
| ९५ | ३९ | प्रद्युम्नभाषणम् | ३९२ |
| ९६ | ७० | प्रद्युम्नदैत्ययुद्धम् | ३९५ |
| ९७ | ४४ | वज्रनाभवधः | ३९८ |
| ९८ | ७६ | पुनर्विशेषतो द्वारवतीनिर्माणम् | ३९९ |
| ९९ | २८ | कृष्णस्य द्वारकाप्रवेशः | ४०२ |
| १०० | १८ | कृष्णस्य सभाप्रवेशः | ४०३ |
| १०१ | ७३ | कृष्णपराक्रमवर्णनम् | ४०४ |
| १०२ | ४४ | नारदवाक्ये कृष्णस्तुतिः | ४०७ |
| १०३ | ३१ | वृष्णिवंशवर्णनम् | ४०८ |
| १०४ | ६४ | प्रद्युम्नाहरणम् | ४०९ |
| १०५ | ८४ | प्रद्युम्नेन शबरसैन्यविद्रावणम् | ४११ |
| १०६ | ५८ | शम्बरप्रद्युम्नयुद्धे नारदभाषितम् | ४१४ |
| १०७ | ३२ | शम्बरवधः | ४१६ |
| १०८ | ३६ | मायावत्या सह प्रद्युम्नस्य द्वारकागमनम् | ४१८ |
| १०९ | १०७ | बलदेवाह्निकम् | ४१९ |
| ११० | ८८ | धन्योपाख्यानम् | ४२३ |
| १११ | १८ | वासुदेवमाहात्म्यम् | ४२६ |
| ११२ | ३० | कृष्णस्योदीचीगमनः | ४२७ |
| ११३ | ३२ | मृतब्राह्मणपुत्रस्य पुनः प्रत्यानयनम् | ४२८ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ११४ | २७ | गूढोद्धाटनम् | ४२९ |
| ११५ | २३ | वासुदेवपराक्रमवर्णनम् | ४३१ |
| ११६ | ८८ | बाणासुराख्यानम् | ४३१ |
| ११७ | ६४ | पार्वत्याः सकाशात् उषाया वरलाभः | ४३५ |
| ११८ | ९८ | उषायाः स्वप्नदर्शनमनिरुद्धानयनार्थं चित्रलेखाया द्वारकागमनं च | ४३७ |
| ११९ | २०३ | अनिरुद्धस्योषया सह गान्धर्वेण विधिना विवाहो बाणतत्सैन्याभ्यां युद्धं च | ४४० |
| १२० | ४८ | अनिरुद्धकृत आर्यास्तवस्तद्वरलाभश्च | ४४७ |
| १२१ | १४५ | श्रुतहृतानिरुद्धपाशबन्धनस्य कृष्णस्य शोणितपुरगमनम् | ४४९ |
| १२२ | ९३ | युद्धेऽग्निगणापयानं, ज्वरोत्पत्तिस्तेन कृष्णस्य युद्धं च | ४५४ |
| १२३ | ३९ | ज्वरस्य पराजयो वरलाभश्च | ४५७ |
| १२४ | ५६ | बाणसैन्यैः सह कृष्णस्य युद्धं बाणसैन्यापयानं, रुद्रेण सह कृष्णयुद्धादिकीर्तनं च | ४५८ |
| १२५ | ६३ | ब्रह्मवाक्यात्कृष्णबाणयोर्युद्धनिवृत्तिः, पितामहजिज्ञासया मार्कण्डेयकर्तृकं हरिहरमाहात्म्यकीर्तनं, स्तवकथनं च | ४६० |
| १२६ | १६४ | कार्तिकेयापयानं, बाणबाहुच्छेदनं, बाणस्य हराद्वलाभादिकीर्तनं च | ४६३ |
| १२७ | १४८ | अनिरुद्धस्य नागपाशमोचनम्, कृष्णस्य वरुणालयगमनम्, वरुणेन सह युद्धं, द्वारकाप्रत्यागमनं च | ४६८ |
| १२८ | ४१ | उषया सहानिरुद्धस्य विवाहः, उषाहरणोपाख्यानसमाप्तिश्च | ४७३ |

॥ इति श्रीहरिवंशान्तर्गतविष्णुपर्वानुक्रमणिका समाप्ता ॥

---

## भविष्यपर्व

३

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| १ | १८ | जनमेजयपुत्रनामकथने पाण्डववंशप्रतिष्ठावर्णनम् | ४७७ |
| २ | ४५ | व्यासं प्रति रहस्यविषये जनमेजयप्रश्नः | ४७८ |
| ३ | ४३ | व्यासोक्तं कलियुगभविष्यम् | ४८० |
| ४ | ५३ | कलियुगवर्णनम् | ४८२ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ५ | ४० | जनमेजयाश्वमेध; इन्द्रस्य कापट्यं च | ४८५ |
| ६ | १३ | एतद्ग्रन्थश्रवणफलम् | ४८६ |
| ७ | २५ | पुष्करप्रादुर्भावः | ४८७ |
| ८ | २६ | कृतयुगादिपरिमाणम् | ४९१ |
| ९ | २३ | एकार्णवविधिः | ४९३ |
| १० | ६९ | एकार्णवे भगवन्मार्कण्डेयसंवादः | ४९६ |
| ११ | १७ | महापद्मोत्पत्तिः | ५०० |
| १२ | १८ | सर्वभूतोत्पत्तिः | ५०२ |
| १३ | २९ | मधुकैटभवरप्रदानम् | ५०४ |
| १४ | १७ | ब्रह्मणो मानसपुत्राणामुत्पत्तिः | ५०५ |
| १५ | १२ | जनमेजयमोक्षः | ५०९ |
| १६ | ४६ | सांख्ययोगविचारः | ५१० |
| १७ | ६९ | कर्मफलपरिच्छेदाय योगवर्णनम् | ५१४ |
| १८ | ३६ | योगोपसर्गकथनम् | ५२१ |
| १९ | ५५ | सगुणब्रह्मविदो युगधर्मकीर्तनम् | ५२४ |
| २० | २३ | मनोधारणाविचारः | ५२७ |
| २१ | २३ | कर्ममार्गकथनम् | ५२९ |
| २२ | २८ | प्रवृत्तिधर्मफलम् | ५३२ |
| २३ | ४९ | प्राणायामवर्णनम् | ५३४ |
| २४ | १५ | वर्णाश्रमधर्मपरिपालनम् | ५३९ |
| २५ | १६ | ईशभक्तिमाहात्म्यम् | ५४१ |
| २६ | ५५ | मोहविवेकयोर्युद्धम् | ५४२ |
| २७ | ४८ | आत्मोपासनादिकथनम् | ५४५ |
| २८ | ९२ | विष्णोस्तपश्चर्या परमैश्वर्यलाभश्च | ५४९ |
| २९ | २१ | देवासुराणां तपःसिद्धिः | ५५६ |
| ३० | ३२ | पृथुराज्याभिषेककथनादि | ५५७ |
| ३१ | १९ | हिरण्यकशिपु राजसूयवर्णनम् | ५६० |
| ३२ | ६३ | दक्षयज्ञविनाशः | ५६१ |
| ३३ | ४७ | वराहप्रादुर्भाववर्णनम् | ५६४ |
| ३४ | ४८ | वराहकृतो धरोद्धारः | ५६६ |
| ३५ | ५० | महीवर्णनम् | ५६८ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
| --- | --- | --- | --- |
| ३६ | ६० | हिरण्यगर्भाद्युत्पत्तिकथनम् | ५७० |
| ३७ | ३३ | लोकानामाधिमत्यव्यवस्थापनम् | ५७२ |
| ३८ | ३५ | देवासुरयुद्धोद्योगः, तद्युद्धवर्णनं च | ५७३ |
| ३९ | २३ | हिरण्याक्षवधः | ५७५ |
| ४० | २८ | इन्द्रादीनां मोचनं तेषामाधिपत्यलाभश्च | ५७६ |
| ४१ | ७६ | नृसिंहावतारः | ५७७ |
| ४२ | २१ | हिरण्यकशिपुसभावर्णनम् | ५७९ |
| ४३ | १७ | नृसिंहं दृष्ट्वा दानवानां विस्मयः, प्रह्लादवाक्यं च | ५८० |
| ४४ | २८ | नृसिंहस्योपरि दैत्यानां शस्त्रास्त्रपातः | ५८१ |
| ४५ | ३२ | नृसिंहकृतो दैत्यमायानिरासः | ५८२ |
| ४६ | ७६ | हिरण्यकशिपोः पराक्रमः | ५८३ |
| ४७ | ३८ | हिरण्यकशिपोर्वधो ब्रह्मकृता नृसिंहस्तुतिश्च | ५८६ |
| ४८ | २९ | वामनप्रादुर्भावे बलेरभिषेकः | ५८८ |
| ४९ | ४८ | त्रैलोक्यविजयार्थं बलेरुद्योगः, मयस्य युद्धाभिगमनं च | ५८९ |
| ५० | २८ | शम्बरादिदैत्यसन्नहनम् | ५९१ |
| ५१ | ९२ | सुरासुरयुद्धे बलेः स्वयमुद्योगवर्णनम् | ५९२ |
| ५२ | ६३ | देवसैन्यानां युद्धोद्योगः | ५९६ |
| ५३ | ४१ | देवासुरयुद्धाद्यारंभे सनकाद्यागमनम् | ५९९ |
| ५४ | ८० | देवासुरयोस्तुमुलयुद्धस्य यज्ञरूपेण वर्णनम् | ६०१ |
| ५५ | १६९ | धरादिदेवैः सह नमुचिप्रभृतीनां घोरतरयुद्धम् | ६०४ |
| ५६ | ६५ | देवासुरयुद्धे कुजम्भोत्कर्षवर्णनम् | ६०८ |
| ५७ | ६९ | देवासुरयुद्धे वृत्रासुरोत्कर्षवर्णनम् | ६१० |
| ५८ | १०१ | देवासुरयुद्धे केशिरुद्रयोस्तुमुलयुद्धम् | ६१३ |
| ५९ | १०२ | देवासुरयुद्धे कालप्रह्लादयोर्युद्धम् | ६१६ |
| ६० | ७४ | देवासुरयुद्धे कुबेरानुह्लादयोर्युद्धम् | ६१९ |
| ६१ | ४४ | देवासुरयुद्धे विप्रचित्तिवरुणयोर्युद्धम् | ६२१ |
| ६२ | ४० | बृहस्पतिकृतोऽग्निस्तवः | ६२३ |
| ६३ | १६ | बलिं प्रति प्रह्लादवाक्यम् | ६२४ |
| ६४ | ३२ | बलिवासवयोर्युद्धम्, वासवस्य पराजयश्च | ६२५ |
| ६५ | १८ | बलेर्विजये श्रियः स्वयमागमनकथनम् | ६२७ |
| ६६ | ४७ | देवगणैः सह कश्यपादित्योर्ब्राह्मसदनगमनकथनम् | ६२७ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ६७ | २६ | कश्यपादीन्प्रति ब्राह्मवाक्यम्, क्षीरोदस्योत्तरेतीरे कश्यपादेर्गमनं, तपश्चर्या च | ६२९ |
| ६८ | ७ | कश्यपकृता परब्रह्मस्तुतिः | ६३० |
| ६९ | २१ | कश्यपादीन्प्रति महाविष्णोर्वरप्रदानकथावतारः | ६३१ |
| ७० | ७३ | वामनप्रादुर्भावः | ६३२ |
| ७१ | ५६ | वामनस्य बलियज्ञे गमनम्, त्रिपादभूमिलाभः, त्रिविक्रममूर्तिधारणं च | ६३४ |
| ७२ | १०७ | विष्णोरादेशात् बलेः पातालप्रवेशः, तत्कृतविष्णुस्तवः, बलिं प्रति गरुडस्य उक्तिप्रयुक्ती, वामनस्तवफलकथनं च | ६३७ |
| ७३ | ४५ | श्रीकृष्णं प्रति रुक्मिण्यः पुत्रप्रार्थनाकथनम् | ६४० |
| ७४ | २७ | श्रीकृष्णस्य कैलासगमनविचारः | ६४२ |
| ७५ | ३० | द्वारवतीरक्षणे यादवान् प्रति श्रीकृष्णस्य वचनम् | ६४३ |
| ७६ | ३६ | श्रीकृष्णस्य बदरिकाश्रमगमनम् | ६४४ |
| ७७ | २० | श्रीकृष्णस्य बदरिकाश्रमे आतिथ्यस्वीकारः | ६४६ |
| ७८ | २६ | श्रीकृष्णस्य समाधिः कोलाहलश्च | ६४६ |
| ७९ | २९ | पिशाचागमनम् | ६४७ |
| ८० | ८९ | घण्टाकर्णकृता विष्णुस्तवप्रार्थना तस्य समाधिलाभश्च | ६४९ |
| ८१ | २१ | घण्टाकर्णस्य विष्णुसाक्षात्कारः | ६५२ |
| ८२ | ४३ | घण्टाकर्णकृतो विष्णुस्तवः | ६५३ |
| ८३ | ३२ | घण्टाकर्णस्य मुक्तिः | ६५५ |
| ८४ | २८ | श्रीकृष्णतपोवर्णनम् | ६५६ |
| ८५ | २२ | श्रीकृष्णसमीपे इन्द्रादीनामागमनम् | ६५७ |
| ८६ | १८ | श्रीकृष्णसमीपे शिवागमनम् | ६५८ |
| ८७ | ३८ | श्रीविष्णुकृता शिवस्तुतिः | ६५९ |
| ८८ | ६७ | श्रीशिवकृता विष्णुस्तुतिः | ६६० |
| ८९ | २० | महादेवेन श्रीकृष्णस्वरूपवर्णनम् | ६६२ |
| ९० | ३८ | पुनरपि शिवकृता विष्णुस्तुतिः | ६६३ |
| ९१ | १८ | पौण्ड्रकवृत्तान्तारम्भः | ६६५ |
| ९२ | २३ | पौण्ड्रकनारदसंवादः | ६६६ |
| ९३ | २५ | पौण्ड्रकस्य द्वारकावरोधः | ६६७ |
| ९४ | ३३ | यादवानां युद्धोद्योगः | ६६८ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
| --- | --- | --- | --- |
| ९५ | ४० | सात्यकिपौण्ड्रकयोः संवादः | ६६९ |
| ९६ | ३८ | सात्यकिपौण्ड्रकयोर्युद्धम् | ६७० |
| ९७ | २६ | सात्यकिपौण्ड्रकयुद्धम् | ६७२ |
| ९८ | २५ | एकलव्यवधः | ६७३ |
| ९९ | १५ | पौण्ड्रकयुद्धम् | ६७४ |
| १०० | ४४ | द्वारकायां प्रत्यागतस्य श्रीकृष्णस्य पौण्ड्रकेण सह युद्धम् | ६७४ |
| १०१ | २५ | पौण्ड्रकवधः | ६७६ |
| १०२ | २४ | एकलव्यकथासमाप्तिः | ६७७ |
| १०३ | १० | वैशम्पायनं प्रति जनमेजयप्रश्नः | ६७८ |
| १०४ | १९ | हंसडिम्भकोत्पत्तिः | ६७९ |
| १०५ | २७ | हंसडिम्भकयोर्वरलाभः | ६७९ |
| १०६ | १७ | हंसडिम्भकयोर्मृगया | ६८१ |
| १०७ | ३० | दुर्वासोदर्शनम् | ६८१ |
| १०८ | १९ | संन्यासधर्मनिन्दा | ६८३ |
| १०९ | २० | दुर्वाससो भाषणम् | ६८३ |
| ११० | १७ | यतीनां द्वारकागमनम् | ६८४ |
| १११ | ७० | श्रीकृष्णं प्रति दुर्वाससो वाक्यम् | ६८५ |
| ११२ | २४ | कृष्णस्य हंसडिम्भकवधप्रतिज्ञा, यतिभोजनं च | ६८८ |
| ११३ | २८ | हंसडिम्भकयोर्दूतप्रेषणम् | ६८९ |
| ११४ | ४२ | जनार्दनाख्यस्य दूतस्य द्वारावतीप्रयाणम् | ६९० |
| ११५ | ३९ | दूतस्य संदेशनिवेदनम् | ६९१ |
| ११६ | ९ | श्रीकृष्णस्य प्रतिसंदेशः | ६९३ |
| ११७ | १४ | हंसवाक्यम् | ६९३ |
| ११८ | ४८ | सात्यकिवाक्यम् | ६९४ |
| ११९ | २१ | सात्यकिप्रतिप्रयाणम् | ६९६ |
| १२० | १९ | श्रीकृष्णस्य पुष्करं प्रति गमनम् | ६९७ |
| १२१ | २७ | उभयसैन्ययोः पुष्करतीर्थप्रवेशः | ६९८ |
| १२२ | २५ | संकुलयुद्धम् | ६९९ |
| १२३ | २२ | विचक्रवधः | ७०० |
| १२४ | २२ | हंसबलभद्रयोर्युद्धम् | ७०१ |
| १२५ | २७ | सात्यकिडिम्भकयोर्युद्धम् | ७०२ |

| अध्यायः | श्लोकाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| १२६ | ४७ | हिडिम्बेन साकं वसुदेवोग्रसेनयोर्युद्धम्, बलभद्रेण हिडिम्ब-पराभवश्च | ७०३ |
| १२७ | ४९ | श्रीकृष्णहंसयोर्युद्धम् | ७०४ |
| १२८ | १३ | हंसवधः | ७०६ |
| १२९ | १५ | डिम्भकस्यात्मत्यागः | ७०७ |
| १३० | २० | नन्दयशोदयोर्गोवर्धने श्रीकृष्णदर्शनम् | ७०७ |
| १३१ | १२ | श्रीकृष्णस्य द्वारावतीगमनम् | ७०८ |
| १३२ | १०१ | पारायणपर्वक्रमेण महाभारतश्रवणफलम् | ७०९ |
| १३३ | ८३ | त्रिपुरवधवृत्तान्तः | ७१३ |
| १३४ | ३१ | हरिवंशवृत्तान्तसंग्रहः | ७०९ |
| १३५ | १७ | हरिवंशश्रवणफलं महाभारतसमाप्तिश्च | ७२० |

॥ भारती विजयते ॥

# हरिवंशमाहात्म्यम्

## विषयानुक्रमणिका।

| | | पृष्ठम्। |
|---|---|---|
| १ | संतानगोपालमंत्रविधिः | १ |
| २ | संतानकरं यन्त्रम् | ३ |
| ३ | वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालमन्त्रविधिः | ५ |
| ४ | हरिवंशमाहात्म्यारंभः प्रथमोऽध्यायः | ७ |
| ५ | हरिवंशश्रवणाविधिः द्वितीऽध्यायः | ८ |
| ६ | हरिवंशश्रवणविधिः तृतीयोऽध्यायः | ९ |
| ७ | श्रोतॄणां नियमाः, विप्रपत्न्याः कथा च। चतुर्थोऽध्यायः | १० |
| ८ | व्रतोद्यापनविधिः पञ्चमोऽध्यायः | १२ |
| ९ | दानं व्यासपूजनं च | १३ |

नरा आपः समाख्यातास्तासामयनमादितः ।
यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायणशब्दितः ॥४४॥

—भविष्यपर्व, अ. ८८ पृ. ६६२

ॐ

# महाभारते-

# हरिवंशः ।

## हरिवंशपर्व ।

### -१-

### आदिसर्गकथनम्

१

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥**

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसरस्वत्यै नमः ।
श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

यं वक्त्रं मुकुरा इवेन्द्रियमनोमायाः पराग्दृश्यताम्
निन्युस्तत्स्थविभादिनापि च विराट्सूत्रेशभावं गतम् ॥
तं प्रत्यग्दृगदृश्यमक्षरमणं त्यक्तोपनेत्रत्रयाः
श्रीगोपालमुपास्महे श्रुतिशिरोवंशीरवैर्दर्शितम् ॥ १ ॥

बाह्यस्तेनाभिभाषी बहिरुदवसितं
याति तर्कोऽप्रतिष्ठो ।
मीमांसा प्रातिहार्यं भजति गुणगणं
यस्य सङ्ख्याति साङ्ख्यः ।
हृत्पीठे योगशुद्धे निहितमुपनिष-
द्वाहवृन्दैः परं मे ।
भाग्यं श्रीलक्ष्मणार्यो जगति विजयते
यस्य लेशाः शिवाद्याः ॥ २ ॥

व्याचक्रे चित्तशुद्ध्यै शतपथहृदयं यः पुराणेतिहासै-
श्चित्तैकाग्र्यैकबीजं फणिपतिविहितं योगशास्त्रं च भाष्यैः ।
मूलध्वान्तापहत्यै श्रुतिशिखरागिरां ब्रह्मसूत्रै रहस्यम् ।
वेदव्यासः स भूयादखिलभवभयध्वस्तयेऽस्मद्विधानाम् ३

हरिविधिवसिष्ठशक्तिपराशरव्यासशुकदेवान् ।
वैशम्पायनमुग्रश्रवसं च नुमः पुराणगुरुमुख्यान् ॥ ४ ॥

कणभक्षमक्षचरणं जैमिनिकपिलौ पतञ्जलिं च नुमः ।
श्रीमद्व्यासवचोऽम्बुधिनयसीकरवर्षिणो मुदिरान् ॥ ५

सर्वविद्येशतामाविश्चिकीर्षू पूर्वपूरुषौ ।
श्रीनारायणवीरेशरूपौ हरिहरौ नुमः ॥ ६ ॥

बहून्समाहृत्य विभिन्नदेश्यान्
कोशान्विनिश्चित्य च पाठमग्र्यम् ।
प्राचां गुरूणामनुसृत्य वाचा-
मारभ्यतेऽयं **हरिवंशदीपः** ॥ ७ ॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥२॥

जयति पराशरसूनुः
सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं
वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ॥ ३ ॥

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे बहुविश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च नित्यं
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव
शताश्वमेधस्य यदत्र पुण्यं
चतुःसहस्रस्य शतक्रतोश्च ।
भवेदनन्तं हरिवंशदानात्
प्रकीर्तितं व्यासमहर्षिणा च ॥५॥

टीकान्तराणीन्दुरविप्रभाणि
बाह्यार्थरत्नानि चकासयन्तु ।
अन्तर्निगूढार्थचयप्रकाशे
दीपः क्षमो भारतमन्दिरेऽस्मिन् ॥८॥

ईशप्रसादादवितुं स्ववंश्यान्
भगीरथेनेव मया प्रणीता ।
वंशे हरेर्याऽजनि तीर्थगङ्गा
लोकत्रयीजाड्यमलं धुनोतु ॥ ९ ॥

उत्तानेष्विह कोशविग्रहबलं पद्येषु नैवाश्रितम् ।
गम्भीरेषु न सेतवो न विहिताः कूटा न न स्फोटिताः ॥
न च्छिन्ना न तमश्चराऽऽननततिर्भक्ता न नाह्लादिता
नो दीनाश्च विभीषणा न विहिताः श्रीलक्ष्मणार्यश्रितैः १०

इह खलु भगवान् पाराशर्यः परमकारुणिकः सकलसंसारानर्थसङ्कटाजडाज्जन्तूनुद्दिधीर्षुः सर्वश्रुतिरहस्यप्रकाशकं महाभारताख्यमितिहासं प्रणिनाय । तत्र शतं पर्वाणि । तेष्वन्तिमं पर्वत्रयं हरिवंशरूपम् । यथोक्तमनुक्रमणिकाध्याये–

"हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम् ।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा ॥
भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् ।
एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना ॥"

(आ.प.अ.२श्लो.८२-८३) इति । तथा ग्रन्थसङ्ख्याया अपि

"एकं शतसहस्रं च मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ।"

इत्युक्तायाः हरिवंशेनैव पूरणात् । हरिवंशान्ते–

"भविष्योत्तरमेतत्ते कथितं भारतं मया ।"

इत्युपसंहाराच्च भारतान्तर्गतत्वमस्य । यच्च शाखान्तरस्थं शाखान्तरे प्रयोजनवशात्पठ्यते । यथा बह्वृचेषु श्रीसूक्तमेधासूक्तादि तत्खिलमित्युच्यते । तथात्राष्टादशपर्वात्मनीतिहासे हरिवंशाख्यं खिलं विष्णुपुराणं भविष्यपुराणरूपं तत्र तत्र सूचितस्य कृष्णमाहात्म्यस्य मोक्षधर्मोक्तयोगिनो वैराग्यस्य चोपबृंहणार्थं पठितं "पुराणं खिलसंज्ञितम्" इति तत्र पुराणशब्दप्रयोगात् । एवं च यथाऽश्वमेधो विहितोऽपि सोमयागो वेदान्तरहिताभ्यां स्तोत्रशस्त्राभ्यां विना न पूर्णः एवं भारतपारायणमपि हरिवंशं विना न पूर्णम् इति ज्ञापनार्थं पूर्वसङ्ख्यायां श्लोकसङ्ख्यया अन्तर्भाव उक्तः । अन्यथा तत्र [illegible] तावत् । टीकान्तरोक्तप्रकारास्त्विह [illegible]मूलत्वाच्च न लिख्यन्ते ।

ग्रन्थादौ विघ्नविघाताय [illegible] मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं पुनः स्मारयति–**नारायणमिति** । [illegible] अनाद्यविद्यावता जीवेन स्वकर्मद्वारा [illegible] तदेव अयनं प्रवेशस्थानं यस्य सः तं **नारायणं** [illegible]तुमन्तःप्रविष्टं शास्तारम् । [illegible] अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम् [illegible] । तथा **नरं** जीवं हिरण्यगर्भं तत उत्तमं [**नरोत्तमम्**] हिरण्यगर्भादुत्कृष्टतरोऽन्तर्यामी तत उत्कृष्टतमम् शुद्धचिदात्मा तमिति । एवशब्दस्तेषामवश्यं नमस्कार्यत्वमाह–**च**शब्दः समुच्चयार्थः । एतेषां नरनारायणनरोत्तमानां [illegible] [**देवीम्**] **सरस्वतीं च** नमस्कृत्यैव **ततो** [illegible]स्तयैव सरस्वत्या लोकानुग्रहार्थमाविष्टो [**जयम्**] जयन्त्यविद्यामनेनेति जयसंज्ञमविद्याध्वान्तनाशकं ग्रन्थम् । **उदीरयेत्** पठेदित्यर्थः ॥ १ ॥ **द्वैपायनोष्ठ** इत्यादयोऽन्यत्रस्थाः षट् श्लोका विभूतिकथनार्थमत्र पठ्यन्ते । **अप्रमेयम्** अद्भुतं **पुण्यं** धर्मवृद्धिकरं **पवित्रं** दुरितनाशकं **पापहरं** दुर्वासनाहरं **शिवं** सुखप्रदं **पुष्करम्** आदितीर्थं ततोऽपि पावनमित्यर्थः ॥२॥ शताश्वमेधसंज्ञस्य चतुःसहस्रस्य चत्वारि सहस्राणि सत्रपरिवेषणानि अक्षय्यान्नप्रदानानि यस्मिन् क्रत्ये तस्य । "सहस्रं सत्रपरिवेषणम्" इति श्रुतिः । शतक्रतोश्च इन्द्रपदप्रापकं यत्कर्म तस्य दानात् अर्थतः पाठतश्च परिशोधनात् । "दैप् शोधने" (१ भ्वा. प. से.) ॥ ५ ॥

**यद्वाजपेयेन तु राजसूयाद्**
**दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यत् ।**
**तल्लभ्यते व्यासवचः प्रमाणं**
**गीतं च वाल्मीकिमहर्षिणा च ॥६॥**
**यो हरिवंशं लेखयति**
**यथाविधिना महातपाः सपदि ।**
**स *जयति हरिपदकमलं**
**मधुपो हि यथा रसेन लुब्धः ॥७॥**

**पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं**
**महर्षिमक्षय्यविभूतियुक्तम् ।**
**नारायणस्यांशजमेकपुत्रं**
**द्वैपायनं वेद महानिधानम् ॥ ८ ॥**

**आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥**
**ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥९**

---

हस्तिरथेन हस्तियुक्तरथदानेन ॥ ६ ॥ स जयति आक्रमते ॥ ७ ॥ आद्यं पुरुषमित्यादि व्यासवाक्यमवतारयिष्यन् सूतः व्यासं नमस्करोति—**पितामहाद्यमिति ।** अहं तं **द्वैपायनं** व्यासं **वेद** उपासे । विदेरुत्तमैकवचनं विदेरुपास्त्यर्थत्वं च सर्ववेदप्रसिद्धम् । तस्य विशेषणं महानिधानमिति । निधीयते स्थाप्यतेऽस्मिन् सर्वमर्थजातमिति निधानं वेद ईश्वरो वा । महत् निधानं यस्मिन्निति वेदस्येश्वरस्याधिष्ठानमित्यर्थः । तं कं यस्मात् **षष्ठं** पितामहस्य ब्रह्मण आद्यं **पितामहाद्यं** नारायणं **प्रवदन्ति ।** एवं हि पितृपितामहादिक्रमेण व्यासपराशरशक्तिवसिष्ठब्रह्मभ्यः पञ्चभ्यः षष्ठो विष्णुरिति भवति । **परे तु**—यं पितामहात्षष्ठं वदन्तीति संयोज्य वसिष्ठब्रह्मणोर्मध्ये मनुं मित्रावरुणौ वा कल्पयित्वा व्यासं ब्रह्मणः षष्ठमाहुः। **परे**—पितामहपदेनैव विष्णुं गृह्णन्ति । **महर्षिम्**-ऋषिर्विप्रः काव्येनेति श्रुतेर्महान्तं काव्यस्य कर्तारं मन्त्रद्रष्टारं वा । **अक्षय्यविभूतियुक्तम्** अनन्तयोगैश्वर्ययुक्तम् । [**नारायणस्यांशजम्**] नारायणस्यांशाज्जातम् अंशजम्। एकः शुकः श्रेष्ठो वा पुत्रो यस्य तम् [**एकपुत्रम्** ] । **यद्वा**-व्यास एव अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति वामदेववत्प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मानुसन्दधानः स्वात्मानमेव नमस्करोति । तथा च दृष्टं मह्यमेव नमो नम इति । अस्मिन् पक्षे **द्वैपायनं** व्यासम् **अहं महानिधानं** ब्रह्म **वेद** जाने इति स्वरूपानुवादेन ब्रह्मभावो विधीयते । **यद्वा**—द्विपो गजस्तस्येदमसाधारणं शुण्डादण्डादिलक्षणं तदेव अयनं ज्ञापकं यस्य तं **द्वैपायनं** गजाननम् । **यद्वा**-द्वीपी व्याघ्रः तस्येदं चर्म द्वैपं तदेवायनं यस्येति । "द्वीपि चर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ।" इति स्मृत्युक्तः शक्तिविग्रहो **द्वैपायनः** तम् । **यद्वा**-द्वीपेषु सप्तसु अयनं चिह्नं प्रकाशकस्वरूपं यस्य न तु पातालादिष्विति **द्वैपायनः** । स्वार्थे तद्धितः । **द्वैपायनः** सूर्यः । **यद्वा**-द्वैपं गजचर्मायनं ज्ञापकं यस्य तत् **द्वैपायनं** गजचर्मधरं महेश्वरम् । **यद्वा**-अभ्यर्हितत्वात् द्वीपं **अयनं** स्थानं यस्य । स्वार्थे तद्धितः। **द्वैपायनः** श्वेतद्वीपपतिर्विष्णुः। तं **वेद** उपासे । अत्र सर्वेषामपीश्वरत्वात् पितामहात्षष्ठत्वं घटते । तथाहि—सदसच्छब्दवाच्यान्मायाशबलात् ब्रह्मणो अव्यक्तम् अव्यक्तान्महत् महतोऽहङ्कारः अहङ्कारात्पञ्च तन्मात्राणि पञ्चतन्मात्राभ्यः पञ्च महाभूतानि तेभ्यश्चतुर्मुखशरीरमिति सृष्टिक्रमस्यागमसिद्धस्यालोचनायामारोहक्रमेण तेषां पितामहात्षष्ठत्वं घटते । **महर्षिमिति** सर्वज्ञत्वमुक्तम् । नारायणः परं ब्रह्म तस्य अंश इवांशो मायायां चित्प्रतिबिम्बः तेन निर्वृत्तत्वादेव मायाशबलं **नारायणस्यांशजम् एको** हिरण्यगर्भाख्यः **पुत्रो** यस्य तम् । "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" (श्वेताश्व० ६।१८) इति श्रुतेः । **महानिधानं** सर्वकारणं महत्परमं लयस्थानम् ॥ ८ ॥

ग्रन्थप्रवृत्तिबीजभूतं शौनकप्रश्नं मङ्गलाचरणपूर्वकमवतारयति—**आद्यं पुरुषमिति** ॥ हरिं नमस्कृत्य शौनकसौतिं पप्रच्छेति तृतीयचतुर्थगतयोर्वाक्ययोरन्वयः । अत्र भूर्बीजांकुरतरुफलोपमाः पञ्च ब्रह्मपुरुषाः क्रमेण (१) शुद्धचैतन्यम्, (२) मायाशबलाः, (३) सूत्रात्मा, (४) विराट्, (५) विष्णुः चेति संज्ञां लभन्ते । तत्र भूस्थानीयं शुद्धचैतन्यमाद्यं **पुरुषम्** इत्यनुसन्धत्ते । **ईशानमिति ।** द्वितीयं मायाशबलं बीजस्थानीयम् । "मायिनं तु महेश्वरम्" (श्वेताश्व० ४।१०) इति श्रुतेः । **पुरुहूतं** पुरुष्टुतमित्यंकुरोपमं तृतीयं सूत्रात्मानम् । स हि पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैर्यज्ञे हूयते स्तूयते च बहुभिरिष्टं चेत्यपि द्रष्टव्यम् । यदाह यास्कः—"यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति" इति । तथा श्रुतावपि सूत्रात्मानं प्रकृत्य—"तद्यदिदमाहुरमुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः" इति तस्यैव सर्वयष्टव्यदेवतात्वमाम्नायते । किमेतत् पुरुषत्रयं पृथक् सिद्धमुत प्रथमेऽस्मिन्नेव जलाशये तरङ्गबुद्बुदाविवेतरौ कल्पितौ इत्याशंक्याह—**ऋतमेका-**

---

* स याति हरेः पदकमलं यथा मधुपो लुब्धः इति पा० पा०—१ मधुपो रसेन संलुब्धः ।

ततः स्वयंभूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥२७
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥
हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयंभूरिति नः श्रुतम्२९
हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च ॥ ३०
तयोः शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत्प्रभुः ।
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे३१
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतीन् ३२
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
नारायणात्मकानां वै सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्॥
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ।
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ ३५
सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्रश्च भारत ।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः॥
तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह ३८
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ।
मुखाद्देवानजनयत्पितॄंश्चैवोऽपि वक्षसः ॥ ३९
प्रजनाच्च मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ।
साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुशुश्रुम ॥ ४०

**तत इति**—सूक्ष्मभूतसृष्टयनन्तरं विविधाः भौतिकीः प्रजाः सिसृक्षुरीश्वरः अपः +अबुपलक्षितं स्थूलभूतपञ्चकं जरायुजाद्युपादानभूतमादौ ससर्ज । तासु चाप्सु वीर्यम् अण्डोत्पादनसमर्थम् अवासृजत् । निहितवान् । स्वयमेव तत्र प्रविष्ट इत्यर्थः ॥ २७ ॥ एतदेव नारायणनामनिर्वचनश्रुत्या द्रढयति—**आपो नारा इति** ॥ नारा इत्यस्य व्याख्यानं **नरसूनव इति**। एतेन "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" (तै० २।६।१) इति श्रुतेरर्थः संगृहीतः । अयनं प्रवेशस्थानम् नयतीति नरः ईश्वरः ॥ २८ ॥ तत् वीर्यम् अण्डम् अभवत् हिरण्यवर्णं चित्प्रकाशरूपम् । अयमर्थः-उक्तक्रमे अव्यक्तात् ब्रह्माख्यो महांस्ततोऽहंकारस्ततः सूक्ष्मभूतानि तेभ्यः पुष्पस्थानीयान्यसंज्ञानि स्थूलभूतानि तेषु रेतःस्थानीयश्चित्प्रतिबिम्बस्तयोः सङ्घातोऽण्डं तच्च उदकेशयं स्त्रीरूपेषु सूक्ष्मभूतेष्वेव स्थितम् । तत्र गर्भे जीववत् ब्रह्मा चतुर्मुखो जज्ञे आविर्भूत इति ॥ २९ ॥ **हिरण्येति** ॥ अण्डे वर्षमात्रं स्थित्वा हिरण्यगर्भः अण्डं द्वैधं द्विधाऽकरोत् । ताभ्यां च शकलाभ्यां दिवं भुवं चाकल्पयदित्यर्थः ॥ ३० ॥ तयोर्द्वयोः शकलयोर्यदन्तरालं स आकाश इत्यर्थः । दिशश्चेति चकाराद्दिगुपाधिं सूर्यं कल्पयित्वा दशधा प्राच्यादिभेदेन दधे धृतवान् । अण्डान्तराले एवेयं दिगादिकल्पना न ततो बहिरस्तीति भावः ॥३१॥ सृष्टेर्हेतूनाह-**तत्रेति** ॥ तत्र अण्डमध्ये रतिविषयेषु प्रीतिं सृष्टिं पिण्डसृष्टिं तद्रूपाम् अण्डसमानरूपाम् । एतेन पिण्डब्रह्माण्डयोरुत्पत्तिप्रकारस्तुल्य इत्युक्तं भवति॥३२॥ अत्र्यङ्गिरसम्-अत्रिसहितमङ्गिरसम् । मानसान् मनसा संकल्पमात्रेण जनितान्॥३३॥ सप्त मरीच्यादयः ब्रह्माणः ब्राह्मणजात्यभिमानिनः गृहाश्रमपरा इत्यर्थः । नारायणात्मकानां नारायणैकमनसां सप्तानां सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार-स्कन्द-नारद-रुद्राणां ब्रह्मणः सकाशाज्जन्म येषां तेषां ब्रह्मजन्मनां ब्रह्मपुत्राणाम् । अनादरे षष्ठी । भ्रातॄननादृत्य पुराणे वेदमार्गे एव निश्चयं गताः । कर्मैव श्रेय इति विनिश्चिताः ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारम् । चात्सनकादीन् पूर्वेषां मरीच्यादीनाम् ॥ ३५ ॥ **सनत्कुमारश्चेति** । चात्सनकसनन्दनसनातननारदाः स्कन्दश्चेति षट् । तेजः सृष्टिसामर्थ्यं संक्षिप्य निगृह्य सृष्टिमकुर्वन्तावेव तिष्ठतः॥३६॥ तेषाम्-अष्टानां मध्ये सप्त यक्षाः पिशाचादिसृष्टः रुद्रादन्ये दिव्या आदित्यादयः महर्षिभिः कश्यपाद्यैः ॥३७॥ क्रियावतामपेक्षितानि हविर्मन्त्रदेवतादीनि । तेषां सृष्टिमाह द्वाभ्याम्-**विद्युत इति** ॥ अत्र "प्रजापते रेतो देवाः देवानां रेतो वर्षं वर्षस्य रेत ओषधयः" इति श्रुतिक्रमेण वयांसीति खेचरत्वसामान्याद्देवता उच्यन्ते । पर्जन्यं चेत्यौषधीनामप्युपलक्षणम् । यज्ञसिद्धये इति अत्राप्यपकृष्यते । अशनिवज्रं रोहितम्, ऋजु अवक्रमिन्द्रधनुः, विद्युदाद्यभिमानिन्यो देवताः एव विद्युदादिशब्दैरुच्यन्ते ॥ ३८ ॥ निर्मितिः सिद्धानामिव ऋगादीनामाविष्करणम् । वेदस्य नित्यत्वात् यष्टव्यसृष्टिमाह-**मुखादिति** ॥३९॥ यष्टृसृष्टिमाह-**प्रजनादिति** ॥ प्रजनात् उपस्थेन्द्रियात् । असुरान् । जघनात् पश्चाद्भागात् । असुरानिति च्छेदः । साध्यान् प्राचीनान् देवान् ॥ ४० ॥

१ ख. बीजं म० २ अयं श्लोकः क्वचिन्नास्ति । ३ ख. साध्यास्तैरयजन्दे० + अबुपलक्षणभूतपञ्चकम् ।

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ४१
सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्धन्ते यदा तदा।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्॥
अर्धेन नारी तस्यां स ससृजे विविधाः प्रजाः
दिवं च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठतः
विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत्पुरुषं विराट्।
पुरुषं तं मनुं विद्धि तद्वै मन्वन्तरं स्मृतम् ४४
द्वितीयमापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते।
स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः।
नारायणविसर्गः स प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः
आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः
प्रजावाञ्छ्रुतवांस्तथा।
आदिसर्गं विदित्वेमं
यथेष्टां गतिमाप्नुयात्॥ ४६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि आदिसर्गकथने
प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

## दक्षोत्पत्तिकथनम्

### २

वैशम्पायन उवाच।
स सृष्टासु प्रजास्वेवमापवो वै प्रजापतिः।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्॥ १
आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः।
धर्मेणैव महाराज शतरूपा व्यजायत॥ २
सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥ ३
स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ ४

---

**उच्चेति**। तस्य आपवस्य वसिष्ठापरनाम्नःप्रजापतेः ॥४१॥ सृज्यमानाः मनसैवेति शेषः। व्याप्य तिष्ठतः आपवस्य यदा प्रजा नैव विवर्द्धन्त इति द्वयोः संबन्धः ॥४२॥ सः आपवस्य देहार्द्धः। नारी यद्यद्रूपं गोवडवादिकं गृहीतवती तत्तज्जातीयं वृषाश्वादिरूपं पुरुषोऽपि गृहीतवान्। तेन मैथुन्यजाः प्रजाः विविधाः ससृजे इत्यर्थः। नारी **शतरूपा** नाम ॥४३॥ विष्णुर्हि हिरण्यगर्भद्वारा विराजम् आपवाख्यम् असृजत् ॥ ४४ ॥ मन्वन्तरपदं व्याचष्टे सार्द्धेन-**द्वितीयमिति**॥ नारायणस्य विसर्गो हिरण्यगर्भद्वारा व्यवहितः सर्गः स आपवः अतोऽस्य विष्णुपौत्रत्वात् अयोनिजाः प्रजाः प्रथमः सर्गः। स एव मनुद्वारा योनिजं प्रजासर्गं द्वितीयं ससर्ज अत एतदापवस्य मनोः स्त्र्याख्यं द्वितीयम् अन्तरं व्यवधानं यस्मात्सर्गोऽभूत्तस्मात्तत्र मन्वन्तरशब्दः प्रयुज्यत इत्यर्थः ॥४५॥ एतद्वंशज्ञानफलमाह-**आयुष्मानिति** ॥ ४६ ॥

**इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे हरिवंशार्थप्रकाशे आदिसर्गकथने प्रथमोऽध्यायः॥ १॥**

---

२

एवमयोनिजां सृष्टिमुक्त्वा योनिजामपि तामाह—**स इति**॥ प्रजासु अयोनिजासु सृष्टासु सतीषु आपव एव "द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्धेन नारी" इति सूचितरीत्या पुरुषो भूत्वा पत्नीं च लेभे ॥ १ ॥ महिम्ना महत्त्वेन धर्मेण योगजपुण्येन सा पत्नी शतरूपा अनन्तरूपा व्यजायत विविधरूपाऽभवत्। यच्छतरूपाया अनेकरूपधारणसामर्थ्यं तदापवस्यैव तदनन्यत्वात्तस्या इति भावः॥२॥ प्रत्यपद्यत सेनानायेति शेषः॥३॥ स्वायंभुवो वैराजः एकसप्ततियुगं किंचिदधिकामेकसप्ततिं चतुर्युगमित्यर्थः ॥ ४ ॥

---

१ ख. ॰यं मानसस्यैवं म॰ २ ख. ॰जावांश्च भवेन्नरः। इति श्रीं॰ ३ क. ॰ष्टामाप्नुयाद्गतिम्।
४ क. इति खिलेषु हरिवंशे प्रथमोऽध्यायः। ५ ख. ॰सृष्टा तु प्र॰ ६ ख. ॰स्त्वेव मा॰

वैराजात्पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात्काम्या व्यजायत ५
काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः
सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः ।
प्रियव्रतं समासाद्य
पतिं सा सुषुवे सुतान् ॥ ६
उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताऽजनयत्सुतान् ॥ ७
धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥ ८
ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम्
उत्तानपादोऽजनयत्सूनृतायां प्रजापतिः ॥ ९
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत ।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन्सुमहद्यशः ॥ १०
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमप्रतिमं भुवि ।
अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ ११
तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च ।
देवासुराणामाचार्यःश्लोकमप्युशना जगौ १२
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम् ।
यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः १३
तस्माच्छ्लिष्टिं च भव्यं च
ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया
पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ १४
रिपुं रिपुञ्जयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥ १५
अजीजनत्पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम्
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥ १६
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ।
कन्यायामभवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः १७
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान्कविः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव १८
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः
ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान् ।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् १९
अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत ।
अपचारात्तु वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् २०
प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिः पृथुः २१
तं दृष्ट्वा ऋषयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत्२२

"वसिष्ठतनयायां तु काम्यायां पुत्रमीप्सितम् ।
वीरो वै जनयामास प्रियव्रतमुदारधीः ॥"
इति **वायुपुराणोक्ता** प्रियव्रतमाता काम्याऽन्येत्यर्थः ॥ ५ ॥ प्रियव्रतस्य भार्या कर्दमपुत्री काम्याऽन्येत्याह—**काम्या नामेति** ॥ सा यान् सुतान् सुषुवे तानेवाह—**काम्यापुत्रा** इति ॥ ६ ॥ चतुरः सुतानाह—**ध्रुवमिति** ॥ शान्तामिति विशेषणम् । **आयुष्मन्तं वसुं तथेति** पाठान्तरम् ॥ ९ ॥ महद्यशः "तस्य नाम महद्यशः" (महाना० १।१०) इति श्रुतेः । परं ब्रह्म विष्ण्वाख्यम् ॥ १० ॥ ब्रह्मापि विष्णुरेव । भुवि प्रीत इति संबन्धः । प्रजापतिः प्रजानां ब्रह्मादीनां पतिः ॥ ११ ॥ अतिमात्राम्–अनन्तां महिमानं माहात्म्यम् । उशना शुक्रः तस्य देवाचार्यत्वं कचद्वारा बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वेन्द्रस्याभयायासुरेभ्यः क्षयायेमाम विद्यामसृजदिति मैत्रायणीये बृहस्पतेरेव शुक्रत्वान्नामा नाद्वा ॥ १२ ॥ आधत्त वंशकृत्त्वेन स्थापितवती ॥ १४ ॥ सर्वतेजसं सर्वदेवतेजोमयम् । यथोक्तम्—"इन्द्रात्प्रभुत्वं ज्वलनात्प्रतापं क्रोधं यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम् । आयुःकृती वायुजनार्दनाभ्यामादाय राज्ञः क्रियते शरीरम् ॥" इति ॥ १५ ॥ वीरण्यां वीरणदुहितरि ॥ १६ ॥ महौजसः महौजःसंज्ञस्य । अस्यैव विशेषणं वैराजस्येति ॥ १७ ॥ सत्यवागित्यपि पठति ॥ १८ ॥ पाठान्तरे—'**महौजसः**' कन्यामिति शेषः । आग्नेयी अग्निकन्या '**अङ्गिरसं शिबिम्**' इत्यपि पठन्ति ॥ १९ ॥ सुनीथा अङ्गभार्या मृत्योः पुत्री अजायत अजनयत् । अपचाराद्देवतादिद्रोहात्प्रकोपः मुनीनामिति शेषः ॥ २० ॥ प्रजार्थं संतानार्थम् । यस्य मुनिप्रकोपहतस्य ॥ २१ ॥ एष पृथुः प्रजाः मुदिताः करिष्यतीत्यन्वयः ॥ २२ ॥

१ ख. °ता सुषुवे सु° २ ख. आयुष्मन्तं वसुं तथा । उ° ३ ख. तस्यामिमां तप° ४ क. धन्यं च. ५ क पुष्पं वृ° ६ ख. या महौजसः । क° ७ ख. अङ्गः सुनीथकन्यायां वे° ८ ख. °कं व्यजा° ९ ख. °चारेण वै° १० ख. °ते संबभूव सहाग्निषिः ॥ २१ क. तं. ११ ख. मुनयः प्रा°

स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव ।
पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥ २३
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ २४
तेनेयं गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत ।
प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह २५
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥ २६
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् २७
पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालितौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत २८
हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ २९
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः ।
हविर्धानान्महाराज येन संवर्द्धिताः प्रजाः ३०
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमेजय ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्पृथिवीतलचारिणः ॥ ३१
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत्प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतिः ॥ ३२
सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ३३
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ ३४
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतस्सु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ ३५
नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥ ३६
तदुपसृत्य तपसा युक्ताः सर्वे प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजञ्जातमन्यवः ३७
उन्मूलानथ तान्कृत्वा वृक्षान्वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥ ३८
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रजापतीन् ॥
कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्यतामग्निमारुतौ
रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ।
भविष्यं जानता तत्त्वं धृता गर्भेण वै मया ४१
मारिषा नाम कन्येयं वृक्षाणामिति निर्मिता ।
भार्या वोऽस्तु महाभागा सोमवंशविवर्द्धिनी
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः

इमां पृथ्वीं क्षत्रपूर्वजः क्षत्रजातौ प्रथममुत्पन्नः ॥ २३ ॥ तस्मात्तं निमित्तीकृत्य पृथोर्यज्ञे हि अग्नितः सूतमागधावुत्पन्नाविति अन्यत्र स्मर्यत इति तस्य तदुत्पत्तिनिमित्तत्वम् । निपुणौ क्रमात् राज्ञः स्तुतौ वंशपाठे च कुशलौ ॥२४॥ गौः गोरूपिणी पृथ्वी । सस्यानीति सर्ववस्तूपलक्षणम् ॥ २५ ॥ पुण्यजनैर्यक्षैः ॥ २६ ॥ तेषु तेषु पुराणान्तरप्रसिद्धेषु तैस्तैर्देवादिभिस्तं तं सजातीयं वत्सं कल्पयित्वा तत्तत् स्वाभीष्टं वस्तु पृथ्वीसकाशात् दुग्ध्वा गृहीतामित्यर्थः ॥ २७ ॥ अन्तर्द्धानादन्तर्द्धिसंज्ञात् ॥ २८ ॥ आग्नेयी अग्निकन्या धिषणानाम्नी । व्रजश्च अजिनश्च व्रजाजिनौ ॥ २९ ॥ हविर्धानात् स्वपितुरपि महान् ॥ ३० ॥ अस्य प्राचीनबर्हिष्ट्वं व्याचष्टे—**प्राचीनाग्रा इति** ॥ यतः पृथिव्यां तस्य प्राचीनाग्राः कुशाः पृथिवीतलचारिणः भुवः स्वरूपे प्रसरन्ति कृत्स्नभूमण्डलव्यापिनः आसन्नतः स प्राचीनबर्हिरित्यर्थः । " तलं स्वरूपाधारयोः " इति **विश्वः** ॥ ३१ ॥ सवर्णायां कृतदारोऽभवदित्यध्याहृत्य योज्यम ॥ ३२ ॥ सर्वे प्रचेतसः प्रचेतःसंज्ञाः सर्वेऽपि एकनामान इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ अपृथग्धर्मचरणाः समानधर्माणः समानशीलाश्च ॥ ३४ ॥ प्रजाक्षये हेतुमाह—**नाशकादिति** ॥ ३६ ॥ तपसा ज्ञानचक्षुषा उपसृत्य ज्ञात्वा युक्ताः सन्नद्धाः ॥ ३७ ॥ उन्मूलान् उद्धृतमूलान् ॥ ३८ ॥ राजा वृक्षाणामिति शेषः । एतान् प्रचेतःसंज्ञान् ॥ ३९ ॥ प्राचीनबर्हिष इति तत्पुत्राः संबोध्यन्ते । तद्राजस्येति बहुत्वे तद्धितस्य लुक् ॥ ४० ॥ **रत्नेति**। वृक्षान् शोषयता वायुना तेषाम् आप्यः सारांशः यथा स्वकारणे सौरतेजसि प्रक्षिप्तः एवं पार्थिवः सारांशः अम्मये सोमे प्रक्षिप्त एवं कन्यारूपं धार्यं तेनः सोमस्य गर्भे धृतमिति युक्तम् । " वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति " इति श्रुतेरपि ओषधिसाररूपेण वृष्टेश्चन्द्रप्रवेशो गम्यते । तस्मादुक्तैवेयं सोमोक्तिः । वृक्षाणामियं कन्या मया गर्भेण धृतेति ॥ ४१ ॥ वृक्षाणां कन्येति वृक्षैरेवोत्पन्नत्वात्तेषां मुख्यत्वम् ॥ ४२ ॥ तेजसः तपसः ॥ ४३ ॥

१ ख. जातः कराज्ज्वलनसंनिभः । पृ २ ख. विपुलौ ३ ख. तु ४ ख, 'पालिनौ ५ ख. शिखण्डिना ह' ६ ख. " प्रत्याहृताः प्रजाः सर्वाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः' इत्यधिकम् । ७ ख." पश्चुत्य त ८ ख. च ससृजुर्जा ९ ख. 'तानथसो'

यं इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्धयिष्यति
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ॥
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ४६
पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्धनान् ।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।
स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत्स्त्रियः ४७
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
शिष्टाः सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राऽऽख्या ददौ प्रभुः ॥ ४८
तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ४९
ततःप्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसम्भवा ।
स ङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ५०

जनमेजय उवाच ।

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ५१
अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जातो दक्षः प्रोक्तस्त्वयाऽनघ ।
वामांगुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥
कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः ।
एतन्मे संशयं विप्र सम्यगाख्यातुमर्हसि ।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ५३

वैशम्पायन उवाच ।

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जनाः ॥
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृप ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ५५
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीज्जनाधिप ।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ५६
इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात्सचराचराम्
प्रजावानापदुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि प्रजासर्गे दक्षोत्पत्तिकथने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

तेजोमयेन तपोजन्येनाग्निना ॥४४॥ धर्मेण विवाहविधिना ॥४५॥ अंशेन तपोऽर्धेन ॥४६॥ अचरादीन् स्रष्टव्यपदार्थान् मनसा दृष्ट्वा आलोच्य तेषां सृष्ट्यर्थं प्रथमतः बीजग्राहिणीः स्त्रियोऽसृजत् ॥ ४७ ॥ अन्याः स्थावराद्याः ॥ ४९ ॥ दशानां कथम् एक औरस इत्येतामाशङ्कां सिंहावलोकनन्यायेन परिहरति-तत इति ॥ संकल्पस्यैकरूपत्वात्सर्वेषामौरस एको भवितुं युक्त इति भावः ॥ ५० ॥ अंगुष्ठादिति । एकस्माज्जातयोः स्त्रीपुंसयोः कथं दाम्पत्यसंबन्ध इत्येका शंका ॥ ५१ ॥ कथमिति ॥ ब्रह्मपुत्रस्य सतः कथं प्राचेतसत्वमित्यपरा सोमदौहित्रस्य दक्षस्य कथं सोमश्वशुरत्वमिति तृतीया शंका ॥ ५३ ॥ एताः क्रमेण निरस्यति श्लोकत्रयेण-उत्पत्तिश्चेति ॥ भूतेषु पश्वादिषु उत्पत्तिर्नित्या स्वाभाविकी सापिण्ड्यनियमं विना प्रजोत्पादनं स्वाभाविकं तथा मनुष्येषु निरोधः नित्यः असपिण्डां समुद्वहेदिति नियमः स्वाभाविकः । यद्यप्येवं तथाऽप्यत्र ऋषयः । "प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यधावत्" इत्यादिश्रुतिदर्शिनः विद्वांसश्च सापिण्ड्यशास्त्रस्यानित्यांगाभिवाचरणार्थत्वं जानाना न मुह्यन्ति । विश्वसृजां कार्यगौरवात्सापिण्ड्यशास्त्रस्याधुनिकस्य उल्लंघने न दोष इत्यर्थः ॥५४॥ कल्पभेदाभिप्रायेण द्वितीयां निरस्यति-युगे युग इति ॥ ब्राह्मो दक्षोऽन्यः प्राचेतसोऽन्य इति भावः ॥ ५५ ॥ तृतीयां निरस्यति-ज्यैष्ठ्यमिति । यथा जातिकनिष्ठो विश्वामित्रस्तपोबलाद्ब्राह्मणोऽभूत् एवं जन्मकनिष्ठोऽपि दक्षोऽत्र्यंगिरःसाम्यं लब्ध्वा तत्संबन्धित्वं गत इति भावः । प्रभाव ऐश्वर्यादिरत्र संबन्धे कारणं हेतुः तेन सोमकश्यपयोः श्वशुरत्वं दक्षस्य युक्तम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

१ ख. स इ० २ ख. भूत्वा प्र० ३ ख. स सृष्ट्वा म० ४ ख. प्रोच्यते प्रजाः । ५ ख. नृपाः ।

## मरुदुत्पत्तिकथनम्।

## ३

जनमेजय उवाच।

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय ॥ १

वैशम्पायन उवाच।

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महीपते ॥ २
मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत्प्रभुः।
ऋषीन्देवान्सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान्।
यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुसरीसृपान् ॥ ३
यदाऽस्य तास्तु मानस्यो
न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः।
अपध्याता भगवता
महादेवेन धीमता ॥ ४
ततः सञ्चिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः।
स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ ५
असिक्नीमावहत्पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः।
सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ६
अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पञ्च वीर्यवान्।
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ७
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविवर्धयिषून्प्रजाः।
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥ ८
यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥ ९
पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिना।
असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः।
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥ १०
तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः।
निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः
तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः।
महर्षीन्पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ॥१२
ततोऽभिसन्धिं चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना।
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति १३
ततो दक्षस्तु तां प्रादात्कन्यां वै परमेष्ठिने।
स तस्यां नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषिः १४

जनमेजय उवाच।

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा।
प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः १५

वैशम्पायन उवाच।

दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः।
समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १६

---

३

**देवानामिति** ॥ १ ॥ व्यादिष्टः आज्ञप्तः। भूतानि जरायुजादीनि ॥ २ ॥ मानसान्येवेति सार्द्धः श्लोकः ॥ ३ ॥ **यदास्येति** ॥ अवृद्धौ हेतुः। **अपध्याता** इति। पूर्वकल्पीयं वैरं स्मरता महादेवेन दक्षस्य मानस्यः प्रजा मा वर्द्धन्तामित्यन्यथा अपध्याताः ॥ ४ ॥ प्रजाहेतोः प्रजावृद्ध्यर्थं सिसृक्षुः सन् असिक्नीमावहदित्युत्तरेण संबन्धः ॥ ५ ॥ **वीरण्यामिति** जन्यजनकभावलक्षणे पुंयोगे ङीष् ॥ ७ ॥ प्रियोऽभीप्सितः संवादः ज्ञानाधिकारिभिः सह संलापो यस्य तथाभूतः। इदं वक्ष्यमाणं वचनं प्राब्रवीदिति सार्धेन संबन्धः ॥ ८ ॥ परमेष्ठी ब्रह्मा यं सुतवरं व्यजीजनत् तं नारदाख्यं कश्यपो मुनिर्दक्षशापभयात् दक्षस्यैव दुहितरि भार्यायाः कनिष्ठस्वसापि "ज्येष्ठभ्राता पितुः समः" इति वदुपचाराद्दुहितरीत्युच्यते। तस्यां व्यजीजनदिति संबन्धः। अन्ये तु दक्षस्यैव कन्या दक्षभार्यानाम्नीति व्याचक्षते। तत्र वीरण्यामिति विशेषणानुपपत्तिः स्पष्टा ॥९॥ एतदेव व्याचष्टे सार्धेन-**पूर्वमिति** ॥ देवर्षिसत्तमः कश्यपः तं नारदं पितेव परमेष्ठीव ॥ १० ॥ विधिना शास्त्रीयमार्गेण निर्मथ्य देहाभिमानतः प्रच्याव्य नाशिता अदर्शनं नीताः ॥ ११ ॥ महर्षीन् मरीच्यादीन् परमेष्ठिना ब्रह्मणा याचितः प्रार्थितः ॥ १२ ॥ अभिसन्धिं मर्यादां ते महर्षयः तव ब्रह्मणः पुत्रो नारदो मह्यं मम कन्यायां भवेत् उत्पद्यतामिति चक्रुः। अत्रापि कन्याशब्दार्थः पूर्ववत् ॥ १३ ॥ त्रयोदशानां दक्षकन्यानां कश्यपाय दत्तानां मध्ये वीरणीं परमेष्ठिने कश्यपार्थमिति शेषः। यं कश्यपः सुतवरमित्युपक्रमात् ॥ १४ ॥

---

१ ख. 'रेणैव वै' २ ख. मनसा चैव भू' ३ ख. सुतं वीरं प' ४ ख. चक्रे वै द' ५ ख. दक्षः सुतां प्रा' ६ ख. °दात्प्रियां वै

बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीथ वै भुवः
प्रमाणं स्रष्टुकामाः स्थ प्रजाः प्राचेतसात्मजाः
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ १७
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गताः प्राचेतसात्मजाः ॥
वायोरनशनं प्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः १९
हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ।
वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ॥ २०
विवर्धयिषवस्ते तु शबलाश्वाः प्रजास्तदा ।
पूर्वोक्तं वचनं तात नारदेनैव नोदिताः ॥ २१
अन्योऽन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः ।
भ्रातॄणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ॥
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः
एकाग्राः स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वशः ॥ २३
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ २४
नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽवदद्वचः ।
नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥ २५
तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणं नृप ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥

तांश्चापि नष्टान्विज्ञाय
पुत्रान्दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं भूयोऽसृजत्कन्या
वीरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ २७
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थं कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः २८
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने २९
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥
अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारत
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ॥
विश्वेदेवाश्च विश्वायाः
साध्यान्साध्या व्यजायत ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो
वसोस्तु वसवस्तथा ॥ ३२
भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥ ३४
संकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे संकल्प एव हि
नागवीथ्याश्च जामिन्या वृषलम्बा व्यजायत ॥

यूयं प्रजाः स्रष्टुकामाः स्थ । अथ च भुवः अन्तरूर्ध्वम् अधश्च प्रमाणं न जानीथातो मूढाः सन्तः कथं प्रजाः स्रक्ष्यथेति संबन्धः । भवतीति भूः प्रपञ्चः तस्य प्रमाणं साधकं यद्बलात्प्रपञ्चस्य सिद्धिस्तं चिदात्मानम् ऊर्ध्वमधोऽन्तश्च सन्तम् अजानतां युष्माकं प्रजासृष्टौ अधिकारो नास्तीत्यर्थः ॥ १७ ॥ सर्वतोदिशं सर्वादिगभिमुखा अन्योऽन्यनिरपेक्षाः सन्त आत्मदर्शनार्थं प्रयाता इत्यर्थः ॥ १८ ॥ वायोरिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । "वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्" ( बृह० ३।७।२ ) इति श्रुतेर्वायुं सूत्रात्मानं समाधिबलेनातीत्य अनशनम् अशनायतीतं शुद्धं ब्रह्म प्राप्य पराभवं परं च तद्भवं च आत्यन्तिकं कैवल्यं गताः सन्तोऽद्यापि न निवर्तन्त इत्यर्थः । दृष्टान्तः स्पष्टार्थः ॥ १९ ॥ वचनम् उक्त्वेति शेषः । नोदिताः गमनार्थं प्रेरिताः ॥ २१ ॥ पदवीं मार्गम् ॥ २२ ॥ नाशं सर्वात्मना देहवियोगं गर्भवासं वा कुरु। परमेष्ठिना प्रार्थितत्वात् अधिकारिकत्वेन नाशानर्हत्वाच ॥ २५ ॥ दक्षोऽनलसः षष्टिं कन्या नारदेन स्त्रीत्वादुपदेशानर्हाः दक्षोऽसृजत् ॥ २७ ॥ कश्यपस्यैव रूपान्तरम् । अरिष्टनेमिः इत्यन्तोऽप्ययं शब्दोऽत्रैव दृश्यते ॥ २९ ॥ मे मम वचनात् शृणु इत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ ३० ॥ अथ क्रमेण धर्मपत्नीनां सन्ततिमाह—**विश्व इत्यादिना** ॥ ३२ ॥ मुहूर्तजाः मुहूर्तायाः पुत्राः क्षणलवादिकालाभिमानिन्यो देवता इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ घोषो मन्त्राभिमानिनी देवता नागवीथी स्वर्गमार्गाभिमानिनी देवता। पृथिवीविषयम् आज्यपश्वौषधादि ॥ ३४ ॥ सङ्कल्पः मानसक्रियाभिमानी देवः । अत्रादितः पञ्चभ्यो यागदेवतानां ततश्चतसृभ्यः क्रमेण कालमन्त्रमार्गहविषां दशम्याः सर्वोपादानभूतस्य देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागरूपस्य सङ्कल्पस्य च सृष्टिरुक्ता । जामिन्या जामिपुत्र्या अजवीथ्याः सकाशात् वृषलम्बा कालान्तरफलवृष्टिकर्तारं धर्मम् ईश्वरं वा आलम्बत इति । अपूर्वसंज्ञा ईश्वरप्रीतिसंज्ञा वा तदभिमानिनी देवता वृषलम्बेत्युच्यते । वृषल इति पाठेऽपि वृषं लाति आदत्त इति व्युत्पत्त्या स एवार्थः ॥ ३५ ॥

१ ख. °शा कैं प्र° २ ख. °तो दिशः । अद्यापि न ३ ख. वैरण्यामे° ४ ख. °देन च चोदिताः । ५ क. °पूर्वजाः । ६ ख. तांश्चैव न° ७ ख. षष्टिं ततोऽसृ° ८ ख. साध्या साध्यान् व्य° ९ ख. मुहूर्तास्तु मु° १० ख. वृषलश्च व्य°

या राजन्सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसो ददौ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिताः
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै
देवा ज्योतिःपुरोगमाः।
वसवोऽष्टौ समाख्याता-
स्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ३७
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः
श्रमः शान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्
कालो लोकप्रकालनः ॥ ३९
सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥
अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥ ४१
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः[1] ४२
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः[2] ४३
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम्।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ ४४
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ४५

प्रभासस्य च सा भार्या वसूनामष्टमस्य च।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां[3] जज्ञे प्रजापतिः ॥
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ४७
यः सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्ममे।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥ ४९
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत।
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान्विश्वरूपो महायशाः
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥ ५१
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशांपते।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ५२
शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम्।
पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ताः सचराचराः ॥ ५३
लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा ॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रुर्मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ५५
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्सुरोत्तमाः।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ५६
उपस्थितेऽतियशसि[4] चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
हितार्थं सर्वसत्त्वानां समागम्य परस्परम् ५७

---

नक्षत्रनाम्न्योऽश्विन्याद्याः क्रतूपयोगिन्य एवैता अपि ॥ ३६ ॥ मनोहरायाः धरस्यापरभार्यायाः ॥ ४० ॥ अनिलस्य शिवा भार्येत्येकं वाक्यम्। द्वौ पुत्रावनलस्येत्यपरम् ॥ ४१ ॥ पृष्ठजाः कुमारानुजाः अनलस्य चत्वारः पुत्रा इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ कुमार एव स्कन्दापरनामा कार्तिकेय इत्याहापत्यमिति। " तं स्कन्द इत्याचक्षते " इति छान्दोग्ये सनत्कुमारस्यैव स्कन्दत्वश्रवणात्। सनत्कुमारश्च स एव। अत एव तेजसः पादेन स्वचतुर्थांशेनाग्निना सृष्टः। एतच्च शाखादि च ॥ ४३ ॥ पुत्रौ दुहिता च पुत्रश्चेति पुत्रौ ॥ ४४ ॥ तावेवाह—**बृहस्पतेरिति** ॥ बृहस्पतिस्तत्स्वसा च ब्रह्मचारिणी नाम योगसिद्धत्वादसक्ताऽपि गुणोत्कर्षात्प्रभासस्याष्टमवसोर्भार्याऽभूत्। तस्यां च विश्वकर्मा जज्ञे इति श्लोकद्वयार्थः ॥ ४५ ॥ वर्धकिः तक्षा ॥ ४७ ॥ कश्यपाय त्रयोदश कन्या दक्षो ददावित्युक्तं तत्र सुरभ्याः सन्ततिमाह—**सुरभीति** ॥ ४९ ॥ अजैकपादित्येकः। अहिर्बुध्न्य इत्येकः ॥ ५० ॥ व्याप्ता इत्येतल्लोका इत्युत्तरस्थेन सम्बध्यते। शतं अनन्तम् " असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् " इति श्रुतेः ॥ ५३ ॥ कश्यपस्य भार्या इति शेषः ॥ ५४ ॥ पूर्वमन्वन्तरे इत्यस्य व्याख्यानं—**चाक्षुषस्यान्तरे मनोरिति** उपस्थिते पूर्वमन्वन्तरस्यावसाने इत्यर्थः ॥ ५७ ॥

---

१ ख. पृष्ठजः। २ ख. तेजसा। ३ ख. 'भागो यस्यां. ४ ख. 'यशसश्चाक्षु'

आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं संप्रविश्य वै।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति॥ ५८
वैशम्पायन उवाच।
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे
चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
मारीचात्कश्यपाज्जाता-
स्तेऽदित्या दक्षकन्यया॥ ५९
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि[1]।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत॥
विवस्वान्सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिताः सुराः।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः॥
सप्तविंशतिर्याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ[2] सुव्रताः
तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसाम्६२
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः॥ ६४
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देव[3]प्रहरणानि च॥ ६५
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव ह।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः॥ ६६
तेषामपि च राजेन्द्र निरोधोत्पत्तिरुच्यते ६७
यथा सूर्यस्य गगने उदयास्त[4]मने इह।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे॥६८
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ६९
सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः
सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः
गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते॥ ७०
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान्॥ ७२
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ध्लादपुत्रो ह्रदस्तथा।
संह्लादपुत्रः सुन्दश्च निसुन्दस्ताँवुभौ[5] स्मृतौ७३
अनुह्लादसुतौ[6] ह्यायुः शिबिकालस्तथैव ह।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ७४
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं नराधिप।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः॥ ७५
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ७६

मन्वन्तरे वैवस्वते इति शेषः॥ ५८॥ जज्ञाते पुनरिति कश्यपादित्योरेव पूर्वं सुतपः पृश्निसंज्ञयोरुदरे जातत्वात्॥ ६०॥ विद्युतः विद्युदादयः। विद्युतोऽशनिर्मेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि चेति पूर्वोक्ताः चतस्रः रोहितेन्द्रधनुषोरभेदात्। बहुपुत्रस्य प्रजापतिविशेषस्य॥ ६४॥ प्रत्यंगिरसजा अङ्गिरसां प्रतीपः तांस्त्यक्त्वाऽन्यत्र गतः सोऽयं प्रत्यङ्गिरसः [शौनकः] य आङ्गिराः शौनको होत्रो भूत्वा "भार्गवः शौनकोऽभवत्" इति स्मृतेः। तस्माज्जातास्तेन दृष्टा ऋचः मन्त्राः प्रत्यङ्गिरसजाः **अथर्ववेदेऽपि शौनकीया शाखा प्रसिद्धा**। तत्र च प्रत्यंगिरसमन्त्राः शान्तिकराः प्रसिद्धाः। प्रहरणानि वज्राद्यभिमानिन्यो देवताः॥ ६५॥ एते प्रजापतेरर्वाचीनाः क्रतुलिंगवत्पुनः पुनर्जायन्त इत्यर्थः। **त्रयस्त्रिंशत्त्विति**-तुशब्दो विशेषार्थः। त्रयस्त्रिंशदष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इन्द्रः प्रजापतिश्च। तत्र पृथिव्यग्नी वाय्वन्तरिक्षे द्युसूर्यौ चन्द्रनक्षत्राणि वसवः। वाक्पाणिपादपायूपस्थानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणा इति पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। सर्वसाधारणं मनश्चेत्येकादश रुद्राः। आदित्या मासाधिष्ठात्र्यो देवताः। अनुपदोक्ता विष्ण्वादयः काला इति यावत्। इन्द्रः पर्जन्यः प्रजापतिर्जीवः एते भोक्तृभोग्यात्मकास्त्रयस्त्रिंशद्देवाः कामजाः। "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय" इति श्रुतेरीश्वरात्कामतो जाताः। एते प्रतिकल्पं सकृदेव जायन्ते इतरे क्रतुलिंगवदेकस्मिन्कल्पेऽप्यसकृज्जायन्त इत्यर्थः॥ ६६॥ कामजानां जन्मादिमत्त्वं द्रढयति-**तेषामित्यर्धेन**। निरोधसहिता उत्पत्तिर्निरोधोत्पत्तिरुच्यते वेद इति शेषः॥ ६७॥ एतदेव दृष्टान्तेन द्रढयति-**यथेति**। देवनिकायाः देवानां शरीराण्येव जायन्ते न तु तदुपहित आत्मा घटाकाशवदित्यर्थः॥६८॥ आदित्यानुक्त्वा दैत्यानाह-**दित्या इत्यादिना**॥६९॥ सैंहिकेयास्त्रयोदश वक्ष्यमाणा व्यंसशल्यादयः॥ ७०॥

१ ख. °व ह. २ °त्न्यो महाव्र° ३ ख. °णाः सुताः। ४ ख. मयाविह। ५ ख. °न्दश्चैव तावुभौ। ६ ख. ... ह्रदस्य पुत्रो ह्यायुर्वै शिबिः कालस्त°

पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः
बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुदपद्यत।
गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्रसंमिताः ७८
हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा॥ ७९
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च।
अभवन्दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः।
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान्
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरा विभुः।
शंकुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ८१
मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शंकुशिरा वृकः।
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ॥ ८२
इन्द्रजित्सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च८३
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ[2]॥ ८४
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः।
सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च[3] ऊर्णनाभो महागिरिः ८५
असिलोमा च केशी च शठश्च बलको मदः।
तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महासुरः॥ ८६
प्रमदो मयश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान्।
वैसृपः सविरूपाक्षः सुपथोऽथ हराहरौ ८७
हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायुश्च शम्बरः।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्८८
एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः८९
एतेषां यदपत्यं तु तन्न शक्यं नराधिप।
प्रसंख्यातुं महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम्॥९०
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम्।
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ९१
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे।
बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहः॥ ९२

तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिं दानवनन्दनान्।
चतुर्दशशतानन्यान्हिरण्यपुरवासिनः॥ ९३
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः
अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः।
कृताः पितामहेनाजौ निहताः सव्यसाचिना
प्रभाया नहुषः पुत्रः सृञ्जयश्च शचीसुतः।
पुरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी॥ ९६
ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः।
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तदा
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः।
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः९८
व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः।
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा॥९९
आञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च।
शुकः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्च वीर्यवान् १००
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै सूर्यचन्द्रविमर्दनः।
मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रादपुत्रौ बभूवतुः॥ १
मारीचः सुन्दपुत्रश्च ताडकायां व्यजायत।
शिबिमाणस्तथा चैव सुरकल्पश्च वीर्यवान् २
एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ३
संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले।
समुत्पन्नाः सुतपसा महान्तो भावितात्मनः[5]४

तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां
मणिमत्यां निवासिनाम्।
तेऽप्यवध्यास्तु देवाना-
मर्जुनेन निपातिताः॥ ५
षट् सुताः सुमहासत्त्वा-
स्ताम्रायाः परिकीर्तिताः।
काकी श्येनी च भासी च
सुग्रीवी शुचि गृध्रिका॥ ६

---

दनोर्वंशमाह-अभवन्नित्यादिना॥ पुत्रा इति पौत्रादीनामप्युपलक्षणम्। शतम् अनन्ताः॥ ८०॥ एतेषु प्रधानान्द्विमूर्द्धादीन् विप्रचित्त्यन्तान् एकपष्टिं गणयति-द्विमूर्द्धा इत्यादिना॥८१॥

---

१ ख. ॰राः प्रभुः। २ ख, ॰महाशिराः ३ ख. ॰श्चैव त्रिचन्द्रश्च. ४ एतदर्द्धं ख. पुस्तके नास्ति. ५ सुमहता तपसा भा.

काकी काकानजनय-
दुलूकी प्रत्युलूककान्।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी
भासान्गृध्रांश्च गृध्यपि ॥ ७
शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु परंतप।
अश्वानुष्ट्रान्गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ८
विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ॥ ९
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम्।
अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम्१०
काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः।
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरेऽनेकमस्तकाः ११
तेषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः।
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ १२
एलापत्रस्तथा शंखः कर्कोटकधनञ्जयौ।
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ॥ १३
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा।
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा १४
नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडेन निपातिताः १५
चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणामुरगाशिनाम्।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः॥
स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च
धरायां प्रसवाः स्मृताः।
गास्तु वै जनयामास
सुरभिर्महिषांस्तथा ॥ १७
इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः।
खशा तु यक्षरक्षांसि मुनीनप्सरसस्तथा १८
अरिष्टा तु महासत्त्वान्गन्धर्वानमितौजसः।
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः॥
वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ।
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥ २१
पूर्वं यत्र तु ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान्सप्त मानसान्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥ २२

ततो विरोधे देवानां दानवानां च भारत।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् २३
तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः २४
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्।
स च तस्य वरं प्रादात्प्रार्थितं सुमहातपाः २५
दत्त्वा च वरमव्यग्रो मारीचस्तामभाषत।
भविष्यति सुतस्तेऽयं यद्येवं धारयिष्यसि २६
इन्द्रं सुतो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम्।
यदि धारयसे शौचं तत्परा व्रतमास्थिता २७
तथेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा वसुधाधिप ॥
ततोऽभ्युपागमादित्यां गर्भमाधाय कश्यपः।
रोचयन्वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम् ॥ २९
तेजः संभृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि।
जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः ॥ १३०
तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत्पाकशासनः।
ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥ ३१
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्
निद्रां च कारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तत।
स पाट्यमानो वज्रेण गर्भस्तु प्ररुरोद ह ॥ ३३
मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत्सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्शनः।
मरुतो नाम देवास्ते बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ३५
यथैवोक्तं मघवता तथैव मरुतोऽभवन्।
देवा एकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ३६
तेषामेवं प्रवृद्धानां भूतानां जनमेजय।
रोचयन्वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम्॥३७
निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात्प्रजापतीन्।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भारत ३८
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः
पर्जन्यस्तपनो व्यक्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ३९
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो भरतर्षभ।
मरुतां च शुभं जन्म शृण्वतः पठतोऽपि वा।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥ १४०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मरुदुत्पत्तिकथने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## पृथूपाख्यानम्

## ४

वैशम्पायन उवाच।

अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १
द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् २
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम्।
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावाङ्गिरसं पतिम् ३
भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम्
प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥ ५
वैवस्वतं च पितॄणां यमं राज्येऽभ्यषेचयत्।
मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम्
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च।
नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम्
विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत्।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ८
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्।
गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम्।
शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम् ९
गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम्।
नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥
वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत्।
उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥ ११
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम्।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवादिशत्प्रभुम् १२
सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च।
आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान् १३
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजानमभ्यषेचयत्।
सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम् ॥
गन्धर्वाप्सरसां चैव कामदेवं तथा प्रभुम्।
ऋतूनामथ मासानां दिवसानां तथैव च ॥ १५
पक्षाणां च क्षपाणां च मुहूर्ततिथिपर्वणाम्।
कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ॥ १६
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम्।
एवं विभज्य राज्यानि क्रमेण स पितामहः ॥

---

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

एवं साधारण्येन सर्वां सृष्टिमुक्त्वा "पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः। राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ॥" इति प्रागुक्तं पृथोराद्यत्वं विवृणोति। सर्वेषां राज्यानां तदानन्तर्यं दर्शयन् अभिषिच्येत्यादिना आधिराज्ये राज्ञामपि राजत्वे वैन्यं वेनस्य पुत्रं राज्यानि सोमादीनां व्यादेष्टुमाज्ञापयितुम् ॥ १ ॥ नक्षत्रग्रहयोः जात्यभिप्रायेण द्विवचनं नक्षत्रजातीयग्रहजातीययोरित्यर्थः। यज्ञानां यज्ञाद्यधिष्ठात्रीणां देवतानाम् ॥ २ ॥ विष्णुशूलपाणिभ्याम् अच्युतावुभौ नारायणवृषभध्वजौ दैवतेष्वपि ईश्वरावताराणामनेकत्वात् ॥ ७ ॥ शूलेन पाणितुं व्यवहर्तुं शीलमस्येति शूलपाणिः तं शूलपाणिनम् ॥ ८ ॥ गन्धानां गन्धाश्रयद्रव्याणां मरुतः पूर्वोक्ता एकोनपञ्चाशत्। अत्र तु प्राणवायवो मरुच्छब्दार्थः। अशरीरिणां स्थूलशरीरहीनानां प्रेतादीनामित्यर्थः। शब्दश्चाकाशश्च तद्वतां भेर्यादीनाम् अस्मदादिशरीराणां च। भुवामिति पाठे तयोः क्षेत्राणामिति स एवार्थः ॥ ९ ॥ पूर्वं द्वादशादित्या उक्ताः इह तु आदित्यपदेन अर्कस्य रश्मयो ग्राह्याः। ये पृथिवीरसं शोषयित्वा सहस्रगुणम् उत्सृजन्ति तेषामधिपतिः पर्जन्यः ॥१३॥ दंष्ट्रिणां नागानां सर्पाणां तद्विशेषाणां सरीसृपाणां डुण्डुभादीनां निर्विषाणाम् ॥१४॥ ऋतूनामित्यादिषष्ठ्यन्तानां देवतानामित्यनेन संबन्धः। ऋत्वाद्यभिमानिनीनां देवतानां संवत्सरं संवत्सराभिमानिनं देवं राजानमभ्यषेचयदित्यर्थः ॥ १५ ॥ गणितस्य गत्यादिपरिमाणस्य। योगस्य उपरागादेः ॥ १७ ॥

---

१ ख. ॱयुं बलवतां वरम्। २ ख. विभुम्। ३ ख. तु ४ ख. ॱषं तु गवामपि। ५ ग. सर्वाप्सरोगणानां च। ६ ख. ॱणानामृतोरॱ

दिशापालानथ ततः स्थापयामास भारत ।
पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः १८
दिशापालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत् ।
दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः १९
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।
पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ॥
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।
तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः २१
उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत्
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ २२
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ।
राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेभिर्नराधिपैः ।
वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप ॥ २३
ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ।
वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत् ।
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥
तवानुकूल्याद्राजेन्द्र यदि शुश्रूषसेऽनघ ।
महद्ध्येतदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम् ॥२५

जनमेजय उवाच ।

विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय ।
यथा महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुन्धरा२६
यथा च पितृभिर्दुग्धा यथा देवैर्यथर्षिभिः ।
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः २७
यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमैः ।
राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा २८
तेषां पात्रविशेषांश्च वैशम्पायन कीर्तय ।
वत्सान्क्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः २९
यस्माच्च कारणात्पाणिर्वैनस्य मथितः पुरा ।
क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥ ३०

वैशम्पायन उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्
एकाग्रः प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय ॥ ३१
नाशुचेः क्षुद्रमनसः कुशिष्यायाव्रताय च ।
कीर्तनीयमिमं राजन्कृतघ्नायाहिताय वा ३२
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन संमितम् ।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन्यथातथम्३३
यश्चैनं कथयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतैः३४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## पृथूपाख्यानम्

### ५

वैशम्पायन उवाच ।

आसीद्धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः प्रभुः ।
अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥ १
तस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः ।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः २
स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ।
स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥ ३

पर्जन्यस्य पुत्रमित्यनुषङ्गः ॥ २१ ॥ अद्यापीत्येतासां देवतानामधिकारित्वेनाकल्पस्थायित्वमुक्तं—राजेति । एभिः सोमादिभिः पृथुः राजराज्ये राजसूयेऽभिषिक्तः पूर्वं तु प्रजापतिनाऽभिषिक्तो राज्याङ्ग उक्तः ॥ २३ ॥ एतत् श्रवणम् अधिष्ठानं प्रतिष्ठाहेतुः ॥ २५ ॥ न स शोचेत्कृताकृतैरिति । मया पापं कृतं धर्मो न कृत इति पश्चात्तापेन न शोचेत् । एतच्छ्रवणं सर्वपापनाशनं सर्वक्रतुफलप्रदं चेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

**आसीदिति** ॥ १ ॥ कालात्मजायाः आत्मजः ॥ ३ ॥

१ °ख. सपत्तना । २ सुराजभिः ३ ख° रि निष्ठितम् । ४ ख. नाशि° । ५ ख. °यवा ।

मर्यादां स्थापयामास धर्मापेतां स पार्थिवः।
वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥ ४
निःस्वाध्यायवषट्कारा-
स्तस्मिन्राजनि शासति।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं
हुतं यज्ञेषु देवताः॥ ५
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः।
आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ६
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि॥
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम्।
ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ ८
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान्बहून्।
अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मः सनातनः ॥ ९
निधनेऽत्र प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्।
प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयः कृतः१०
तांस्तदा ब्रुवतः सर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा।
वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥ ११

वेन उवाच।

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया
श्रुतवीर्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि १२
प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः।
संमूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मामचेतसः ॥ १३
इच्छन्दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं तथा जलैः।
खं भुवं चैव रुन्धेयं नात्र कार्या विचारणा१४
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः।
अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ १५
निगृह्य तं महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम्।
ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः १६
तस्मिंस्तु मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान्
ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुषः कृष्णश्चातिबभूव ह १७

स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवाञ्जनमजय।
तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥ १८
निषादवंशकर्ताऽसौ बभूव वदतां वर।
धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसंभवान् ॥ १९
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुषारास्तुम्बरास्तथा
अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान्वेनसंभवान्२०
ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम्।
अरणीमिव संरब्धा ममन्थुस्ते महर्षयः॥ २१
पृथुस्तस्मात्समुत्तस्थौ कराज्ज्वलनसंनिभः।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥
स धन्वी कवची जातः पृथुरेव महायशाः।
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम्।
शरांश्च दिव्यान्रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् २३
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः।
समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिवं गतः॥ २४
समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेण महात्मना।
त्रातः स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात्तदा ॥ २५
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व एवोपतस्थिरे २६
पितामहश्च भगवान्देवैरांगिरसैः सह।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च २७
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम्।
महता राजराज्येन प्रजापालं महाद्युतिम्॥ २८
सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः।
आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत॥ ३०
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ३१
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यत्यन्नानि चिन्तया
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ३२

---

प्रवृत्तं देवतोद्देशेन त्यक्तं हुतम् अग्नौ प्रक्षिप्तमपि सोमं न पपुः यतो निःस्वाध्यायवषट्काराः ॥ ५॥ तत्र हेतुमाह–नेति॥ धर्मद्वेष्टरि राज्ञि दत्तमपि हविर्देवा न भजन्त इति भावः ॥ ६ ॥ मयि देवतारूपे मन्निमित्तं न त्वन्यदेवतार्थं मयि अग्निरूपे ॥ ७ ॥ निधने वंशे । "निधनं कुलनाशयोः" इति विश्वः ॥ १० ॥ पाठान्तरे अपनेतुम् अधर्मादपकष्टुम् ॥ १५॥ निगृह्य जीवन्तमपि घातयित्वा ॥ १६ ॥ धीवरान् नाविकान् ॥ १९॥

तुषारास्तुम्बराश्च प्रान्तदेशीयाः म्लेच्छविशेषाः। विन्ध्यनिलयाः 'गोण्ड' इति 'कोल' इति च प्रसिद्धाः मध्यदेशीयाः ॥ २० ॥ गृह्य गृहीत्वा रक्षार्थं प्रजानां स्थित इति शेषः ॥२३॥ अपरञ्जिताः पीडिताः। अनुरागादिति। अनुरज्यन्तेऽस्मिन् प्रजा इति राजपदनिर्वचनं दर्शितम्॥३०॥ तस्तम्भिरे स्थलवत्कठिना बभूवुः। अभि उपरि यास्यतो गन्तुमिच्छतः ध्वजभङ्गो वृक्षाणां शाखादिभिर्गोपुरादिभिर्वा ॥ ३१ ॥ पुटके पुटके पत्रे पत्रे ॥ ३२ ॥

---

१ ख. यज्ञा विधातव्या २ ख. अन्वये च प्र° ३ ख. °रौ विजज्ञिवान्। ४ ख. ° नि च सर्वशः।

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।
पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ॥
तावूचुर्ऋषयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ।
कर्मैस्तदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥ ३५
तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ३६
न चास्य विद्वो वै कर्म
न तथा लक्षणं यशः ।
स्तोत्रं येनास्य कुर्याव
राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥ ३७
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च
भविष्यैः स्तूयतामिति ।
यानि कर्माणि कृतवान्
पृथुः पश्चान्महाबलः ॥ ३८
सत्यवाग्दानशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः ।
श्रीमाञ्जैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान्प्रियभाषणः ।
मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः॥
शमः शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृपः ।
ततःप्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय ।
आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधबन्दिभिः ॥
तयोः स्तवैस्तैः सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः ।
अनूपदेशं सूताय मगधान्मागधाय च ॥ ४२
तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्राहुर्महर्षयः ।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वरः ४३
ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः ।
त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ४४
सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।
धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमार्दयद्बली ॥ ४५
ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥ ४६
सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन्गत्वा वैन्यभयात्तदा
प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥ ४७
ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।
महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥ ४८
अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा
उवाच वैन्यं नाधर्म्यं स्त्रीवधं कर्तुमर्हसि ।
कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्विना मया
मयि लोकाः स्थिता राजन्मयेदं धार्यते जगत्
मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिव विद्धि तत्
न त्वमर्हसि मां हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि ।
प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ५२
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा नृप ५३
हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप ।
अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोपं महाद्युते ५४
अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
सत्त्वेषु पृथिवीपाल न धर्मं त्यक्तुमर्हसि ५५
एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः ।
कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ५६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

**सूत्यां** सोमाभिषवकाले अभिषवः सोमवल्ल्याः कण्डनं रसनिष्कासनार्थम् ॥ ३३ ॥ अन्यत्र तु वैन्यस्यैव यज्ञेऽग्निकुण्डात्सूतमागधौ जातावित्युक्तम् । तत्कल्पभेदात्समाधेयम् ॥३४॥ विद्वः जानीव इत्युत्तमस्य द्विवचनम्॥३७॥ पश्चात्पूर्वस्मिन् कल्पे यानि कृतवान् तैरेव अस्मिन् कल्पे भविष्यैः कर्मभिः स्तूयतामिति योजना । प्रतिकल्पं समाननामरूपाया एव सृष्टेः । "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इति श्रवणात् ॥ ३८ ॥ इति हरिवंशे टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

१ ख. °स्य विद्व वै. २ ख. °य मगधं माग° ३ ख. नराधिपः । ४ ख. °यात्रस्ता गौ° ५ ख. °भिस्तदा ।

# पृथूपाख्यानम्

## ६

पृथुरुवाच ।

एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा
बहून्वै प्राणिनो[1] लोके भवेत्तस्येह पातकम् १
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे[2] ।
तस्मिन्नास्ति हते भद्रे पातकं चोपपातकम् २
एकस्मिन्यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः ॥ ३
सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुंधरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ४

त्वां निहत्याद्य बाणेन
मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वाऽहं
प्रजा धारयिता चिरम्[3] ॥ ५

सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे ।
सञ्जीवय प्रजाः सर्वाः समर्था ह्यसि धारणे ६
दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम् ।
नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥ ७

पृथिव्युवाच[4] ।

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः ।
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा इमाः ।
वत्सं तु मम संपश्य क्षरेयं येन वत्सला ॥ ९
समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर ।
यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ॥

वैशम्पायन उवाच ।

तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः ।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः
पृथुर्वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः ।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमाऽऽसीद्वसुन्धरा॥१२
स्वभावेनाभवन्ह्यस्याः समानि विषमाणि च ।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल १३
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाऽभवत्
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः
नैव सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः ॥
वैवस्वतेऽन्तरे चास्मिन्साम्प्रतं समुपस्थिते ।
वैन्यात्प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य संभवः ॥
यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीदिहानघ ।
तत्र तत्र प्रजाः सर्वाः संवासं समरोचयन् ॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥ १८
सङ्कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायंभुवं प्रभुम् ।
स्वपाणौ पुरुष[6]श्रेष्ठ दुदोह पृथिवीं ततः ।
सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्१९
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः[7] ।
ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा ।
वत्सः सोमोऽभवत्तेषां दोग्धा चाङ्गिरसः सुतः
बृहस्पतिर्महातेजाः पात्रं छन्दांसि भारत ।
क्षीरमासीदनुपमं तपो ब्रह्म च शाश्वतम् २१

६

* पृथुना वशतां नीता
पृथ्वी मन्वादिभिः क्रमात्
दुग्धा स्वाभीष्टदुग्धानि
षष्ठेऽध्याय इतीर्यते ॥ १ ॥

अवध्यां स्त्रियमिति यदुक्तं तत्रोत्तरमाह—**एकस्येति** द्वाभ्याम् ॥ १ ॥ निहते अशुभे इति च्छेदः ॥ २ ॥ कथं धारयितेत्यस्योत्तरम्–**त्वां निहत्येति** ॥ आत्मानं देहं धारयिता धारयिष्यामि । प्रथयित्वा विस्तार्य ॥५॥ संपश्य दिव्यदृष्ट्या कल्पय ×वत्सला स्नेहेन क्षरेयं दुग्धं स्रवेयम् ॥ ९ ॥ विस्पन्दमानं क्षरेत् भावयेत् । स्वार्थे णिच् । सर्वत्र भवेत् ॥ १० ॥ तेन शैलोपरि शैलं स्थापयता शैलाः विवृद्धिं प्रापिताः इष्टकाभित्तिवत् ॥ ११ ॥ वणिगेव वणिक्पथः सत्यानृतं वाणिज्यम् ॥ १५ ॥ एतस्य पुरविभागादेः ॥ १६ ॥ समरोचयन् प्रीत्या चक्रुः ॥ १७ ॥ तदा वैन्येन भूमेर्दोहनात् प्राक् ॥ १८ ॥ पृथ्वीं पृथिवीतः २ सस्यजातानि व्रीह्यादीनि दुदोह प्रपूरितवान् ॥ १९ ॥ ≈वर्तन्ते उपजीवन्ति सोमः ब्राह्मणराजत्वात् वत्सः ॥ २० ॥ छन्दांसि वेदाः तत्र हि तदर्थभूतं तपो ब्रह्म च कृच्छ्रचान्द्रायणम् । अग्निहोत्रादिकं च शाश्वतं न त्विदानीं कल्पितम् ॥ २१ ॥

१ ख. ०नोऽथैकं भ० २ ख. ०ते सति । ३ ख. ०ता स्वयम् । ४ ख. वसुंधरोवाच । स० ५ ग. नृपो वैन्यः । ६ ख. ०षव्याघ्र दु० ७ ख. ०पि सर्वशः । * **पृथुने**त्यारभ्य **विस्तार्य** इत्यन्तो ग्रंथः कपुस्तके नास्ति । ×वत्सला इत्यारभ्य सर्वत्र भवेत् १० इत्यन्तो ग्रन्थः कपुस्तके नास्ति । ≈वर्तन्ते उपजीवन्ति इति ग्रन्थः कपुस्तके नास्ति ।

पुनर्देवगणैः सर्वैः पुरन्दरपुरोगमैः ।
काञ्चनं पात्रमादाय दुग्धेयं श्रूयते मही ॥ २२
वत्सस्तु मघवानासीद्दोग्धा च सविता प्रभुः ।
क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः ॥ २३
पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः ॥ २४
यमो वैवस्वतस्तेषामासीद्वत्सः प्रतापवान् ।
अन्तकश्चाभवद्दोग्धा कालो लोकप्रकालनः ॥
नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम् ।
अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम ॥ २६
तेषामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।
नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते ॥ २७
तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विषोल्बणाः ।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः २८
असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हिणीम् ॥
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत्तदा ।
ऋत्विग्द्विमूर्द्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः
तयैते मायया द्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः ।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम् ॥ ३१
यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
आमपात्रे महाराज पुरान्तर्द्धानमक्षयम् ॥ ३२
वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा ।
दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य यः ॥
यक्षानुजो महातेजास्त्रिशीर्षः सुमहातपाः ।
तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ ३४
राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
शावं कपालमादाय प्रजा भोक्तुं नरर्षभ ॥ ३५
दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत्कुरूद्वह ।
वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च३६
तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्चामरोपमाः ।
वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसङ्घास्तथैव च३७
पद्मपात्रं पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन्गन्धान्नरर्षभ ३८
तेषां च सुरुचिस्त्वासीद्दोग्धा भरतसत्तम ।
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः३९
शैलैश्च श्रूयते राजन्पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
औषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च४०
वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महागिरिः
पात्रं तु शैलमेवासीत्तेन शैला विवर्धिताः ४१
वीरुद्भिः श्रूयते राजन्पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
पालाशं पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ४२
दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षोऽभवत्तदा ।
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा
चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वसस्यप्ररोहिणी ४४
आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसाऽभिपरिप्लुता ।
तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ४५
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भारत ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ।
पृ[illegible]ना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा ॥
सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी ।
एवंप्रभावो वैन्यः स राजाऽऽसीद्राजसत्तमः
नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ।
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४८
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ।
पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमभीप्सुभिः४९

ऊर्जस्करम् अमृतं यज्ञीयं हविरिति यावत् ॥ २३ ॥ = स्वधां पित्रन्नम् ॥ २४ ॥ अलाबुं तुम्बीफलम् ॥ २६ ॥ नागानाम् ऐरावतः सर्पाणां धृतराष्ट्रः दोग्धेति शेषः ॥ २७ ॥ द्विमूर्धेति मधोर्विशेषणम् ॥ ३० ॥ तेन अन्तर्धानेन ते यक्षाः वर्तयन्ति परशरीरमाविश्याप्रत्यक्षास्ते जीवन्तीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ प्रजा भोक्तुं स्वसन्तानानि तर्पयितुम् ॥ ३५ ॥ गन्धान् सुरभिद्रव्याणि ॥ ३८ ॥ औषधीः ज्योतिष्मत्यादिकाः ॥ ४० ॥ शैलं शिलामयम् ॥ ४१ ॥ पालाशं पर्णमयम् ॥ ४२ ॥ धात्री पाययित्री मातेव पोषणकरी । वैधात्री तद्विपरीता सर्वमात्मन्युपसंहरतीत्यर्थः ॥ ४३ ॥ प्रतिष्ठा आश्रयः योनिः रत्नादिक्रमेण उत्पत्तिस्थानम् । दोग्ध्री धेनुरूपा चतुर्वर्गस्यापि ॥ ४४ ॥ अभ्युपगमात् पुत्रीत्वेन अंगीकारात् ॥ ४६ ॥ पुरं राजधानी पत्तनं महापणिकनगरम् । +पुराणां पत्तनानां माला समूहोऽस्ति यस्यां सा । वैन्यः पृथुः ॥ ४७ ॥ भूतग्रामैः प्राणिसमूहैः ॥ ४८ ॥ ब्रह्मयोनिः आत्रेयः । सनातनो विष्णुरूपः ॥ ४९ ॥

१ ख. कु नराधिप । = स्वधेत्यारभ्य शेषः इत्यन्तो ग्रन्थः कपुस्तके नास्ति । + पुराणामित्यारभ्य उपजीविभिः इत्यन्तो ग्रन्थः कपुस्तके नास्ति ।

आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।[1]
योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि।
पृथुरेव नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥५०
यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम्
स घोररूपान्संग्रामान्क्षमी तरति कीर्तिमान्
वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैः पण्यवृत्तिमनुष्ठितैः।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ५२
तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः।
आदिराजो नमस्कार्यः श्रेयः परमभीप्सुभिः॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च।
पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि ते
य इदं शृणुयान्नित्यं पृथोश्चरितमादितः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदते सुचिरं भुवि ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## मन्वन्तरवर्णनम्

### ७

जनमेजय उवाच।
मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन।
तेषां सृष्टिं विसृष्टिं च वैशम्पायन कीर्तय॥ १
यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च।
मन्वन्तरं तथा ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः २
वैशम्पायन उवाच।
न शक्यो विस्तरस्तात वक्तुं वर्षशतैरपि।
मन्वन्तराणां कौरव्य संक्षेपं त्वेव मे शृणु ॥ ३
स्वायंभुवो मनुस्तात मनुः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ ४
वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते।
सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ५
तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनवः स्मृताः।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ६
कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम्।
ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणांस्तथा॥७
मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ ८
उत्तरस्यां दिशि तथा राजन्सप्तर्षयोऽपरे।
देवाश्च शान्तरजसस्तथा प्रकृतयः परे।
यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायंभुवेऽन्तरे९
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनः पुत्र एव च॥

---

पण्यवृत्तिमनुष्ठितैर्वाणिज्याद्युपजीविभिः ॥ ५२ ॥
"वेनान्ध्येन निरोध्य सत्त्वरजसी
धीधर्मनाशे कृते
सन्तः सत्त्वपृथुं पृथग्व्यधुरित-
स्तद्वद्रजोधीवरम् ॥
सत्त्वाक्रान्तमनोऽवनिं प्रियपयः
संकल्पवत्सा जना
धीपात्रे दुदुहुर्यथैवमितरैः
प्राज्ञैरनुष्ठीयताम् ॥"
आख्यायिकाया अवान्तरतात्पर्यं तु पुण्यभाजि राज्ञि पृथ्वी बीजानि प्रसूते पापानि ग्रसतीति ॥ ५५ ॥ इति श्रीहरिवंशे टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

+मन्वन्तराणि मनवो देवा ऋष्यादयस्तथा।
सप्तमे चानुवर्ण्यन्ते क्रमशो वै पृथक्पृथक्॥ १

**मन्वन्तराणीति** ॥ १ ॥ मेरुसावर्णाश्चत्वारः ब्रह्मसावर्णिः रुद्रसावर्णिः मेरुसावर्णिः दक्षसावर्णिश्च। एते मेरौ तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्ता इति सर्वेऽपि मेरुसावर्णा इत्युच्यन्ते ॥ ६ ॥ यथाश्रुतं गुरूपदेशमनतिक्रम्येति। तेषां मनूनां पुत्रान् ॥ ७ ॥ प्रथममन्वन्तरगतम् ऋष्यादित्रयमाह— **मरीचिरिति चतुर्भिः** ॥ ८ ॥ अपरे वैवस्वतगतसप्तर्षिभ्यो मरीच्यादिभ्योऽन्ये ॥९॥ पुत्र इति पुत्रनामा ॥१०॥

---

[1] अयं श्लोकः ख पुस्तके नास्ति + अयं श्लोकः क पुस्तके नास्ति।

मनोः स्वायंभुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ।
एतत्ते प्रथमं राजन्मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ११

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च ।
प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तो निश्च्यवनस्तथा ॥

एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रताः ।
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे

हविध्रः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मयः ।
प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ॥ १४

स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः ।
कीर्तिताः पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमाः १५

द्वितीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया ।
इदं तृतीयं वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥ १६

वासिष्ठपुत्राः[2] सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ।
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम सुतेजसः १७

ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ताः कीर्त्यमानान्निबोध मे
औत्तमेयान् महाराज दश पुत्रान्मनोरमान् १८

इष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च ।
शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च १९

भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् ।
मन्वन्तरं चतुर्थं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ २०

काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जन्युर्धाता च भारत ।
कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥ २१

पुराणे कथितास्तात पुत्राः पौत्राश्च भारत ।
सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः २२

पुत्रांश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनोर्नृप ।
द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलस्तपोधनः २३

तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परंतपः ।
तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबलाः ॥ २४

वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चमं तदनन्तरम् ।
वेदबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥ २५

हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः ।
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥ २६

देवाश्च भूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे ।
पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥ २७

अथ पुत्रानिमांस्तस्य निबोध गदतो मम ।
धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः २८

अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवाक्कविः ।
रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम् २९

षष्ठं ते संप्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ।
भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ॥

अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः ।
चाक्षुषस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमाञ्छृणु ३१

आद्याः प्रभूता ऋभवः पृथग्भावा दिवौकसः ।
लेखाश्च नाम राजेन्द्र पञ्च देवगणाः स्मृताः ।
ऋषेरङ्गिरसः पुत्रा महात्मानो महौजसः ॥ ३२

नाड्वलेया महाराज दश पुत्राश्च विश्रुताः ।
ऊरुप्रभृतयो राजन्षष्ठं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥ ३३

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्कश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ३४

---

=स्वारोचिषगतऋष्यादित्रयमाह—**और्वेति** सार्धचतुष्टयेन । द्वितीयमन्वन्तरगता ऋष्यादय उक्ताः । वसिष्ठपुत्र और्वनामा ॥१२॥ **वासिष्ठेति** । सप्त वासिष्ठपुत्रा वासिष्ठा इति विश्रुता ऋषयोऽत्र उत्तमे मया प्रोक्ता इत्यग्रिमेणान्वयः। के ते वासिष्ठा ये पूर्वं हिरण्यगर्भपुत्राः ऊर्जसंज्ञाः सुतेजसः अतिप्रतापा आसन्निति पश्चात् वासिष्ठजाता इत्यन्वयः ॥ १७ ॥ सप्तर्षयो मया प्रोक्ता इति पूर्वान्वयि । कीर्त्यमानान् औत्तमेयान्निबोधेत्युत्तरेणान्वयः ॥ १८ ॥ तनुजः तनूजनामा ॥१९॥ चतुर्थमाह-**मन्वन्तरमिति** ॥२०॥ पञ्चममाह—**वेदबाहुरिति** सार्धैश्चतुर्भिः । मुनिरिति वेदशिरसो विशेषणम् ॥ २५ ॥ सोमजः ऊर्ध्वबाहुः आत्रेयः सत्यनेत्रः ॥ २६ ॥ तथा प्रकृतयः अभूतरजःस्वभावाः पारिप्लवो रैभ्यश्च देवतागणविशेषौ ॥२७॥ **षष्ठं त इति** ॥ ३० ॥ आद्यादयः पञ्च देवगणाः दिवौकस इति सर्वेषां विशेषणम् । आद्या इत्यत्रास्ता आप्या इति वा गौडाः पठन्ति ॥ ३२ ॥ नड्वलायाः पुत्रा नाड्वलेयाः ॥ ३३ ॥ सप्तमं वैवस्वतमन्वन्तरमाह—**अत्रिरित्यादिपञ्चभिः** ३४

---

१ ग. मनस्यश्च न° २ ख. वसिष्ठपु° ३ ख.° स्तपोऽशनः । ४ ख.° वान्कृतीः । ५ ख. पृथकाश्च दि°
= ' स्वारोचिषगतऋष्यादित्रयमाह ' अयं ग्रन्थः कपुस्तके नास्ति ।

तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः ।
सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि ३५
साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसवस्तथा ।
आदित्याश्चाश्विनौ चैव देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ
मनोर्वैवस्वतस्यैते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ।
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः ॥ ३७
एतेषां कीर्तितानां तु महर्षीणां महौजसाम् ।
राजपुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत ३८
मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिशः सप्तसप्तकाः ।
स्थिता[3] लोकव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ३९
मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः
कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥
ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानमापूरयन्त्युत ।
अतीता वर्तमानाश्च क्रमेणैतेन भारत ॥ ४१
एतान्युक्तानि कौरव्य सप्तातीतानि भारत ।
मन्वन्तराणि षट् चापि निबोधानागतानि मे
सावर्णा मनवस्तात पञ्च तांश्च निबोध मे ।
एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु[1] प्रजापतेः ४३
परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः ।
दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप ।
महान्तस्तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥ ४४

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो
रौच्यो नाम मनुः स्मृतः
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां
भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥ ४५

अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः ।
मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्य ह[2] ताञ्छृणु ४६
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान्गौतमः कृपः ।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च ४८
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः ।
ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः संप्तर्षयः स्मृताः[3] ॥
अभिजात्याऽथ तपसा मन्त्रव्याकरणैस्तथा ।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृताः सप्तर्षयोऽमलाः[4] ५०
भूतभव्यभवज्ज्ञानं बुद्ध्वा चैव तु यैः स्वयम् ।
तपसा वै[6] प्रसिद्धा ये संगताः प्रविचिन्तकाः

मंत्रव्याकरणाद्यैश्च[5]
ऐश्वर्यात्सर्वशश्च ये ।
एतान्भार्यान्द्विजो ज्ञात्वा
नैष्ठिकानि च नाम च ॥ ५२

सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ।
दीर्घायुषो मंत्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः[7] ॥ ५३
बुद्ध्या प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्तकास्तथा ।
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः ॥ ५४
प्रावर्तयन्ति ते वर्णानाश्रमांश्चैव सर्वशः ।
सप्तर्षयो महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः[8] ॥ ५५
तेषां चैवान्वयोत्पन्ना जायन्तीह पुनःपुनः ।
मंत्रब्राह्मणकर्तारो धर्मे प्रशिथिले तथा ॥ ५६
यस्माच्च वरदाः सप्त परेभ्यश्चापराः स्मृताः ।
तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने ५७
एष सप्तर्षिकोद्देशो व्याख्यातस्ते मया नृप ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रान्भविष्याञ्छृणु सत्तम ॥
वरीयांश्चावरीयांश्च संमतो धृतिमान्वसुः ।
चरिष्णुरप्यधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत५९

---

प्राग्दिशः पूर्वकल्पप्रकाराः सप्तसप्तकाः एकोनपञ्चाशत् मरुतो देवाः प्रागुक्ता अपि प्रतिमन्वन्तरं भवन्तीति ज्ञेयम् ॥ ३९ ॥ तेषां च मध्ये चत्वारः सप्तका अष्टाविंशतिमरुतः मन्वन्तरसमाप्तौ क्रममुक्तिपदं ब्रह्मणः स्थानं प्राप्नुवन्ति ॥ ४० ॥ ततोऽन्ये जायमानाः तपोबलान्मन्वन्तरान्तरे तत्पदमारुह्य स्थानं पूरयन्ति तेन सप्तसप्तकाः पूर्यन्ते एवं प्रतिमन्वन्तरं ज्ञेयम् । एतेन कर्मिणामपि परम्परया मुक्तिरस्तीति दर्शितम् ॥ ४१ ॥ सप्तातीतानि एकं चानागतमित्यष्टावुक्तानीति द्रष्टव्यम् । अनागतानि षट् मे मत्तः निबोध बुध्यस्व ॥ ४२ ॥ सावर्णाः पञ्च तेषामेको वैवस्वत उक्तः ॥४३॥ **परमेष्ठिसुता** इति ॥ समासैकदेशस्य विशेषणं **प्रजापतेरिति**।लुप्तविभक्तिकं वा परमेष्ठिपदं द्रष्टव्यम्। तेषां चतुर्णामपि मेरुसावर्णित्वे योगमाह–**महान्त इति**। यतो मेरौ तपश्चक्रुरतो मेरुसावर्णास्ते जाता इत्यर्थः ॥४४॥ सप्तैव महर्षयः प्रतिमन्वन्तरमिति शेषः । अष्टममाह— **मनोरिति** ॥ ४६ ॥ दीप्तिमान् तृतीयः । अश्वत्थामा चतुर्थः ॥ ४७ ॥ कृपः पञ्चमः । गालवः षष्ठः । रुरुः सप्तमः । इतराणि पदानि तेषामेव विशेषणानि ॥ ४८ ॥

---

१ क. चत्वारश्च २ ख. सावर्णेरिह ता॰ ३ क स्थिताः ४ ख. ब्रह्मर्षयोऽम॰ ५ ख. च ६ क.ख. तु ।
७ क. ॰र्वचक्षुषः ८ क. ॰त्यव्रतप॰

प्रथमे मेरुसावर्णेः प्रवक्ष्यामि मुनीञ्छृणु ।
मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च
ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानाङ्गिरास्तथा ।
सावनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ६१
पौलहः सप्त इत्येते मुनयो रोहितेऽन्तरे ।
देवतानां गणास्तत्र त्रय एव नराधिप ॥ ६२
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ।
मनोः पुत्रो धृष्टकेतुः पंचहोत्रो निराकृतिः ६३
पृथुःश्रवा भूरिधामा ऋचीकोऽष्टहतो गयः ।
प्रथमस्य तु सावर्णेनव पुत्रा महौजसः ॥ ६४
दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः ।
हविष्मान्पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः ।
आपो मूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः
पौलस्त्यः प्रमितिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः ।
अंगिरा नभसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः ॥ ६६
देवतानां गणौ द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृताः
मनोः सुतोत्तमौजाश्च निकुषंजश्च वीर्यवान् ॥
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दश त्वेते मनोः सुताः ॥
एकादशेऽथ पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनोः ।
तस्य सप्त ऋषींश्चापि कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥
हविष्मान्काश्यपश्चापि हविष्मान्यश्च भार्गवः
तरुणश्च तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा ॥
अंगिराश्चोदधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा
पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः ॥
ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्तेषां त्रयः स्मृताः ।
संवर्तकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः ॥७२
क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदर्शः पण्डको मनुः ।
सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः॥

चतुर्थस्य तु सावर्णेर्ऋषीन्सप्त निबोध मे ।
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा ॥ ७४
अंगिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा ।
तपोशनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपो रविः ॥
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु ततो धृतिः ।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते ॥७६
देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ।
मित्रवान्मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत् ।
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः॥
त्रयोदशेऽथ पर्याये भाव्ये मन्वन्तरे मनोः ।
अंगिराश्चैव धृतिमान्पौलस्त्यो हव्यपस्तु यः
पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः ।
निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा
सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु महर्षयः ।
त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयंभुवा ॥
त्रयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः ।
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृतः ॥
सुनेत्रः क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढः ।
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे ॥८२
चतुर्दशेऽथ पर्याये भौत्यस्यैवान्तरे मनोः ।
भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा ॥८३
युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च ।
अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते ८४
एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात्सुखमेधते ।
यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च भवेन्नरः ॥ ८५
अतीतानागतानां वै महर्षीणां सदा नरः ।
देवतानां गणाः प्रोक्ताः पञ्च वै भरतर्षभ ८६
तरङ्गभीरुर्वप्रश्च तरस्वानुग्र एव च ।
अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥

---

प्रथमे मेरुसावर्णाख्ये नवमे मेधातिथ्यादीनां गोत्राणि पौलस्त्यादीनि ॥ ६० ॥ रोहित इत्यस्यैव मनोर्नामान्तरम् ॥ ६२ ॥ अयं पुत्रिकापुत्रोऽपि दक्षपुत्र इत्युच्यते ॥ ६३ ॥ पृथुरित्येकः ॥ ६४ ॥ द्वितियस्य दक्षसावर्णस्य हविष्मदादीनां गोत्राणि पौलहादीनि वसिष्ठपुत्राणां शक्त्यादीनां मध्ये अष्टमश्च इत्येके । अष्टम इति संज्ञैव वा तस्य ॥६५॥ नभसः नभःसंज्ञस्य आङ्गिराः पुत्रः सत्यो नाम सप्तमः । अङ्गेनोरसा रतियोगादौरसः पुत्रोऽङ्गिरा इत्युच्यते । नभस इति षष्ठे तस्यैव पुत्रे लब्धे सत्य इति आङ्गिरसः स्तुत्यर्थं विशेषणं सत्यवादी ६६ द्वौ गणौ दक्षिणोत्तरमार्गाभिमानिनौ। अग्न्यादिभूमादिऋषिमन्तो मन्त्रप्रतिपाद्या देवाः। मनोः सुत इति छेदः। मनोः तृतीयस्य सुत इत्येव प्रथमस्य यौगिकं नाम वीर्यवान् तृतीयः । अन्यथा दशसंख्याया अपूर्तिर्मनोः सुता इत्यस्य पुनरुक्तिश्च दुःसमाधेया स्यात्॥ ६७॥ तृतीयस्य रुद्रसावर्णाख्यस्य ॥ ६९ ॥ हविष्मन्तौ द्वौ काश्यपो भार्गवश्च ॥ ७० ॥ आङ्गिरःपुलहशब्दयोस्तद्धितलोप आर्षः ॥ ७१ ॥ नवेति पित्रा सह नवत्वं ज्ञेयम् ॥ ७२ ॥

---

१ क. प्रथमं मे॰ २ क. ॰ वर्णे प्र॰ ३ क. ग. भूरिद्युम्नः । ४ क. प्रामे॰ ५ क. कुनिषं॰ ६ ख. संवर्तगः सु॰
७ क. ख. 'आग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो भार्गवस्तथा' इत्यधिकम् ।

तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ।
भौत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णे कल्पस्तु पूर्यते ८८
इत्येते नामतोऽतीता मनवः कीर्तिता मया ।
तैरियं पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना ८९
पूर्णं युगसहस्रं तु परिपाल्या नराधिप ।
प्रजाभिश्चैव तपसा संहारस्तेषु नित्यशः॥९०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## मन्वन्तरगणना

८

जनमेजय उवाच ।
मन्वन्तरस्य संख्यानं युगानां च महामते ।
ब्रह्मणोऽह्नः प्रमाणं च वक्तुमर्हसि मे द्विज ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
अहोरात्रं भजेत्सूर्यो मानवं लौकिकं परम्।
तामुपादाय गणनां शृणु संख्यामरिंदम ॥ २
निमेषैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशता तैर्मनीषिणः॥ ३
अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रसूर्यगतिं नृप ।
विशेषेण तु सर्वेषु अहोरात्रे च नित्यशः ॥ ४
अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः ।
द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते
अब्दं ह्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस्त्रिभिः ।
दक्षिणं चोत्तरं चैव संख्यातत्त्वविशारदैः ॥ ६
मानेनानेन यो मासः पक्षद्वयसमन्वितः ।
पितॄणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः ७
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लपक्षस्तु शर्वरी ।
कृष्णपक्ष त्वहः श्राद्धं पितॄणां वर्तते नृप ॥ ८
मानुषेण तु मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः ।
देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम् ।
दक्षिणायनं स्मृता रात्रिःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः

इति हरिवंशे टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

**मन्वन्तरप्रसङ्ख्यानं युगमानं तथैव च॥**
**ब्रह्मणोऽह्नःप्रसङ्ख्यानमष्टमेऽध्याय ईर्यते॥१॥**

मन्वन्तरस्येति अध्यायः सर्वस्य कालपरिच्छेददर्शनार्थः ॥ १ ॥ देवादीनाम् अहोरात्राणि भजेत् पृथक् कुर्यात् । विभजते इति पाठे सूर्य इति शेषः। लौकिकम् अस्मदीयं मानवं मनोः परं द्विपरार्धरूपं ब्राह्मं तां तत्सम्बन्धिनीं लोकप्रसिद्धां गणनामुपादाय उपजीव्य देवाद्यहोरात्राणां सङ्ख्यां शृणु ॥ २ ॥ अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा इत्यस्य मूलं मृग्यम् । विष्णुपुराणेऽपि "काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव" इत्येतावत्या एव सङ्ख्याया दर्शनात् । तैर्मुहूर्तैस्त्रिंशताऽहोरात्रमिति प्राहुरित्युत्तरेणान्वयः ॥ ३ ॥ अहोरात्रलक्षणमाह–**चन्द्रेति** ॥ विशेषेण परिदृश्यमाना चन्द्रसूर्ययोर्गतिरुदयादुदयान्तरावधिः तां तावन्तं कालं सर्वेषु मेरोः परितो भूप्रदेशेषु अहोरात्र इति प्राहुरित्यनुषज्यते । **नित्यश इति** सार्वदिकत्वमेतयोरुक्तम् ॥४॥ **कृष्णेति**। चन्द्रलोकस्थाः पितरः शुक्लपक्षे चन्द्रान्तर्हितं सूर्यं न पश्यन्ति कृष्णे तु चन्द्रसूर्याभिमुख्यात्तदाश्रितास्तं पश्यन्तीति शुक्लकृष्णपक्षौ तेषां क्रमेण राज्यहनी अत एव कृष्णपक्षः संपूर्णो वा दिनान्तत्वादत्यावश्यकतया अमावास्या श्राद्धकाल इत्यर्थः ॥ ८ ॥ **मानुषेणेति** सार्द्धम् । मकरादामिथुनान्तं रविरथाक्षरश्म्योर्ध्रुवेणाकर्षणेऽनुदिनं क्रियमाणे उत्तराभिमुखः सूर्यो मेरुमूर्द्धस्थानां देवानां दृश्यो भवतीति तेषां तदा दिनम् कर्कोद्यावद्धनुरन्तं तयोरेव रश्म्योर्ध्रुवेण क्रमादुन्मोचने क्रियमाणे दाक्षिणाभिमुखः सूर्यो देवानामदृश्यो भवतीति तदा तेषां रात्रिरिति ॥९॥

१ क. भागशः २ क. संख्यानार्थवि° ३ क. °समाहि° ४ अयं श्लोकः कपुस्तके नास्ति ।

दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृतम् ।
अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते ॥ १०
पक्षो दशगुणो मासो मासैर्द्वादशभिर्गुणः ।
ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ।
ऋतुत्रयेण त्वयनं तद्द्वयेनैव वत्सरः ॥ ११
चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ।
तावच्छती भवेत्सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा नृप
त्रीणि वर्षसहस्राणि
त्रेता स्यात्परिमाणतः ।
तस्याश्च त्रिशती सन्ध्या
सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ १३
तथा वर्षसहस्रे द्वे
द्वापरं परिकीर्तितम् ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या
सन्ध्यांशश्च तथाविधः १४
कलिर्वर्षसहस्रं च
संख्यातोऽत्र मनीषिभिः ।
तस्यापि शतिका सन्ध्या
सन्ध्यांशश्चैव तद्विधः
एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
दिव्येनानेन मानेन युगसंख्यां निबोध मे १६
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगी ।
युगं तदेकसप्तत्या गणितं नृपसत्तम ॥ १७
मन्वन्तरमिति प्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः ।
अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे १८
मनुः प्रलीयते यत्र समाप्ते चायने प्रभोः ।
ततोऽपरो मनुः कालमेतावन्तं भवत्युत ॥ १९
समतीतेषु राजेन्द्र प्रोक्तः संवत्सरः स वै ।
तदेव चायुतं प्रोक्तं मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ २०
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं कल्पश्चेति स कथ्यते ।
सहस्रयुगपर्यन्ता या निशा प्रोच्यते बुधैः २१
निमज्जत्यप्सु यत्रोर्वी सशैलवनकानना ।
तस्मिन्युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम ॥ २२
ब्राह्मे दिवसपर्यन्ते कल्पो निःशेष उच्यते ।
युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि ते
कृतत्रेतानिबद्धानि मनोरन्तरमुच्यते ।
चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनाः २४
वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ।
प्रजानां पतयो राजन्धन्यमेषां प्रकीर्तनम् २५
मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु संभवाः ।
न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ २६

**दिव्यमिति** । देवानां दशभिर्वर्षैर्मनोरहोरात्र एकः दशभिस्तैः पक्षः ॥ १० ॥ दशभिः पक्षैर्मासः तैर्द्वादशभिर्ऋतुः तैस्त्रिभिरयनं तयोः द्वयेन तैः षड्भिः संवत्सरः द्विसप्ततिसहस्राणि दिव्याब्दा एकं मनोर्वर्षमित्यर्थः ॥ ११ ॥ सन्ध्यांशश्च तस्य पूर्वापरौ भागौ ॥ १२ ॥ द्वादशसाहस्री वर्षाणां युगमित्युच्यते ॥ १६ ॥ युगपदार्थमाह—**कृतमिति** । चतुर्युगी युगशब्दार्थः तत् युगम् एकसप्तत्या गणितं किञ्चिदधिकं च मन्वन्तरं प्रोक्तं सहस्रस्य चतुर्दशांशत्वात् ॥१७॥ एतावता कालस्यान्ते मनोर्ब्रह्मलोकं प्रति गमनेनादर्शनं भवतीति तदेव अयनमित्युच्यते । तस्यापि मनोः द्वे अयने भवतः पूर्वरूपमार्षम् । अयं भावः–इतः पूर्वं धूमादिमार्गेण गत्वा देवलोकं प्राप्याधिकारं निर्वर्त्य तदन्ते अधःपतनमन्तरेणैव उत्तरायणमार्गेण ब्रह्मलोकं गच्छतीति । तथा चोक्तं अधिकारिकान् प्रकृत्य–" कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् । " इति ॥ १८ ॥ प्रभोः लीनस्य मनोः अयने गमनकाले समाप्ते सम्यक् प्राप्ते सति ॥ १९ ॥ समतीतेष्विति सार्धः । अनेनैव क्रमेण अनेकेषु मनुषु अतीतेषु स वक्ष्यमाणो ब्रह्मणः संवत्सरः प्रोक्तः । कियद्भिर्मन्वन्तरैः संवत्सरः पूर्यत इत्याह–**तदेवेति** । अयुतं मन्वन्तराणि ब्रह्मणोऽहोरात्रमुक्तं तदनुपातेन अहरपि ब्रह्मणः कल्पश्च कथ्यत इति योजना । अयं भावः—षष्ट्यधिकशतत्रयं संवत्सरस्य अंशाः प्रत्यंशं चतुर्दश मनवः तेन चतुर्दशभिर्गुणितं षष्ट्यधिकशतत्रयं चत्वारिंशदधिकसहस्रपञ्चकं मनूनाम् अह्नि भवति । तावानेव कालो रात्रिरिति अशीत्यधिकमयुतं मनवः ब्रह्मणोऽशरूपे अहोरात्रे भवन्ति । अत्र चांशानां दिनानि किञ्चिदधिकानि पञ्च वर्द्धन्ते तानि विहाय अह्नां षष्ट्यधिकशतत्रयेण यावन्तोऽशा मनूनामयुतेन पूर्यन्ते तावानेव ब्रह्मणोऽहोरात्रस्तदर्द्धं चाहुरिति ॥ २० ॥ युगसहस्रे चतुर्युगसहस्रे ॥ २२ ॥ संहारसंभवधारायां अन्तरं विच्छेदो ब्रह्म तत्तु वक्तुमशक्यं तज्ज्ञानं विना च न धाराविच्छेदोऽस्तीति भावः ॥ २६ ॥

१ क. ०गुणैः । २ख. वत्सरैः । ३ तथापरः । ४ क. ०हं तु ५ ख. चतुर्युगम् । ६ ख. अत्र । ७ ख. ०षां च की०

विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भारत ।
मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २७
सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह ।
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समाहिताः ॥ २८
पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यतेजसा ॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्विभुम् ।
योगं योगीश्वरं देवमजं क्षेत्रज्ञमच्युतम् ।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ ३०
यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥
तत्र संवर्तते रात्रिः सकलैकार्णवे तदा ।
नारायणोदरे निद्रां ब्राह्मं वर्षसहस्रकम् ॥ ३२
तावन्तमिति कालस्य रात्रिरित्यभिशब्दिता
निद्रायोगमनुप्राप्तो यस्यां शेते पितामहः ३३
सा च रात्रिरपक्रान्ता सहस्रयुगपर्यया ।
तदा प्रबुद्धो भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३४
पुनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय विदधे मनः ।
सैव स्मृतिः पुराणेयं तद्वृत्तं तद्विचेष्टितम् ३५
देवस्थानानि तान्येव
केवलं च विपर्ययः ।
ततो दग्धानि भूतानि
सर्वाण्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६
देवर्षियक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
जायन्ते च पुनस्तात युगे भरतसत्तम ॥ ३७
यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मीषु रात्रिषु ॥
निष्क्रमित्वा प्रजाकारः प्रजापतिरसंशयम् ।
ये च वै मानवा देवाः सर्वे चैव महर्षयः ॥ ३९
ते संगताः शुद्धसङ्गाः शश्वद्धर्मविसर्गतः ।
न भवन्ति पुनस्तात युगे भरतसत्तम ॥ ४०
तत्सर्वं क्रमयोगेन कालसंख्याविभागवित् ।
सहस्रयुगसंख्यानं कृत्वा दिवसमीश्वरः ॥ ४१
रात्रिं युगसहस्रान्तां कृत्वा च भगवान्विभुः
संहरत्यथ भूतानि सृजते च पुनःपुनः ॥ ४२
व्यक्ताव्यक्तो महादेवो हरिर्नारायणः प्रभुः ।
तस्य ते कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य हं ॥४३
विसर्गं भरतश्रेष्ठ साम्प्रतस्य महाद्युते ।
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम् ॥ ४४
यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः ।
सर्वासुरविनाशाय सर्वलोकहिताय च ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरगणनायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

प्रजानां जरायुजादीनां सृष्टिसंहारौ मन्वन्तरेषु चतुर्दशस्वपि मध्ये मध्ये उपरतौ भवतः ॥ २७ ॥ शेषाः स्थूलभूतानि तत्सहिता देवास्तिष्ठन्ति तत्र हेतुस्तपसेति ॥ २८ ॥ निःशेषत्वमेवाह-**तत्रेति** ॥ २९ ॥ आदित्या अपि दग्धेन्धनानलवत्स्वात्मानमुपसंहृत्य ब्रह्मणा सह विष्णुं प्रविशन्ति तेन स्थूलानां पृथिव्यप्तेजसां नाशो दर्शितः ॥ ३० ॥ अयं च लयः सुषुप्तिसदृश इत्याह—**तत्रेत्यादिना** ॥ ३२ ॥ देवानां सूर्यादीनां चक्षुरादीनां च ब्रह्माण्डे पिण्डे च तान्येव न किंचिदपूर्वं दृश्यते केवलं विपर्ययः दर्शनानामदर्शनैः सह विपर्ययो मणिप्रवालधारामात्रमित्यर्थः ॥ ३६ ॥ दग्धानि पूर्वम् आसन् तानि देवादयश्च प्राग् विष्णौ लीनाः सन्तः पुनर्जायन्ते ॥ ३७ ॥ ऋतुलिङ्गानि शीतोष्णवृष्ट्यादीनि ॥ ३८ ॥ निष्क्रमित्वा नारायणात् निष्क्रम्य पृथग्भूय प्रजाकारः प्रजाकर्ता पुनःपुनर्भूतानि ससृज इति चतुर्थेन संबन्धः। किं सर्वाणि भूतान्यविशेषेण पुनः सृजति नेत्याह—**ये चेति सार्धेन** ॥ ३९ ॥ ते सङ्गताः शुद्धेन ब्रह्मणा सह सङ्गः एकीभावेन गतिर्येषां ते तत्त्वविदः शुद्धसङ्गाः । शुद्धसत्त्वे हेतुः-**शश्वदिति** । शश्वद्धर्मः स्वाभाविको गुणो देहादिष्वात्मबुद्धिः तस्या विसर्गतस्त्यागात्ते पुनर्न भवन्ति नावर्तन्ते अन्ये तु न। विष्णुं प्राप्ता अपि मोहकंचुकापनयनाभावाज्जायन्त इत्यर्थः ॥४०॥ तत्पूर्वोक्तप्रकारं युगसंख्यानम् ॥४१॥ व्यक्ताव्यक्तः स्थूलसूक्ष्मरूपः तस्य मनोः तदंशस्य मनोः विसर्गं कीर्तयिष्यामीत्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ ४३ ॥ यत्र वृष्णिवंशे ॥४५॥
इति हरिवंशे टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

१क. च. २ ग. ब्रह्मर्षिभिः सह ३ ख. समन्विताः । ४ ख. नारायणो दधे निद्राम् । ५ ख. °न्येवं के° ६ ख. °र्ययम् । ७ ख. वै ।

## वैवस्वतोत्पत्तिः ।

९

वैशम्पायन उवाच ।
विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम ।
तस्य भार्याऽभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः
सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी।
सा वै भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मनः
भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी ।
संज्ञाना म्नी सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता ३
आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा ।
गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ४
न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत ।
अज्ञानात्कश्यपस्तस्मान्मार्तण्ड इति चोच्यते
तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः ।
येनातितापयामास त्रींल्लोकान्कश्यपात्मजः
त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः ।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती
मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।
यमश्च यमुना चैव यमजौ संबभूवतुः ॥ ८
सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ।
असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः ९
मायामयी तु सा संज्ञा
तस्याश्छाया समुत्थिता ।
प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा
छाया संज्ञां नरेश्वर ॥ १०

उवाच किं मया कार्यं
कथयस्व शुचिस्मिते ।
स्थिताऽस्मि तव निर्देशे
शाधि मां वरवर्णिनि ॥ ११
संज्ञोवाच ।
अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ।
त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया ॥ १२
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा ।
संभाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्
छायोवाच ।
आ कचग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखं
वैशम्पायन उवाच ।
समादिश्य सवर्णां तां
तथेत्युक्त्वा च सा तया ।
त्वष्टुः समीपमगमद्-
व्रीडितेव तपस्विनी १५
पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा
भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः १६
अगच्छद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता
कुरूनथोत्तरान्गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥ १७
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा १८

---

९

* **विवेस्वतोऽथ संज्ञायाः श्राद्धदेवमनोर्भवः ।
अश्विनोश्चापि चक्रस्य जनुर्नवम ईर्यते ॥ १ ॥**

वैवस्वतस्य मनोः विसर्गं कीर्तयिष्यामीत्युक्तं तदेवाह—**विवस्वानित्यादिना**। दाक्षायण्यां दक्षकन्यायाम् अदित्याम् त्वाष्ट्री त्वष्टुः पुत्री॥१॥ सुरेणुरिति संज्ञाया एव नामान्तरम् । भामिनी कोपना । भाविनीति पाठे शुद्धचित्तेति ॥ २ ॥ दीप्तेन अत्युष्णेन भर्तृरूपेण ॥ ३ ॥ तद्रूपं तस्याः संज्ञायाः रूपं मण्डलस्थस्य तेजसा गात्रेषु दग्धम् ॥ ४ ॥ दाहे हेतुमाह—**न खल्विति द्वाभ्याम्** । भिक्षार्थम् आगतेन बुधेन गर्भगौरवाच्छीघ्रं भिक्षामप्रयच्छन्ती अदितिः शप्ता तव गर्भोऽयं म्रियतामिति । तच्छ्रुत्वा व्याकुलामदितिं प्रति भार्यास्नेहात् कश्यपः स्वसामर्थ्यात् बुधशापं निवार्य अभाषत । अयं खलु इति निश्चयेन न मृतः अपि तु अण्डस्थ एवास्तीति तस्माददितेरज्ञानात् मम अण्डं मृतमित्येवंरूपात् विपरीतज्ञानात् अयं मार्तण्ड इत्युच्यते । मृतम् अण्डमस्येति मृताण्डं तस्माज्जातो **मार्तण्डः** शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् ॥ ५ ॥ **तेज इति** । स एवं कश्यपमाहात्म्याज्जीवितोऽतितेजस्वी संज्ञाम् अतिसान्निध्यादत्यन्तं तापयामासेति भावः ॥ ६ ॥ प्रजापतीनाह—**मनुरिति ।** मनुः श्राद्धदेवाख्यो यमश्च यमजौ यमलौ ॥ ८ ॥ विवर्णं विषमवर्णं दुःसहकारकं स्वां छायां स्वस्य प्रतिमां सवर्णां समानरूपाम् ॥ ९ ॥ छायासंज्ञामुवाचेति संबन्धः ॥ १० ॥ शाधि आज्ञापय ॥ ११ ॥ मह्यं मम ॥ १२ ॥ ते त्वया इदं मत्कृत्यं भगवते सूर्याय ॥ १३ ॥ तुभ्यं तव ॥ १४ ॥ व्रीडितेव लज्जितेव यतस्तपस्विनी आलोचनवती अनाकारिताया मम इहागमनं भर्तुस्त्यागश्चाकीर्तिकर इत्याशयः॥१५॥ आच्छाद्य गोपायित्वा ॥ १७ ॥

---

१ क. °वती मा० २ ग. संज्ञा नाम सुतपसा. ३ क. ग. भगवते त्वया. ४ ख. तु. * अयं श्लोकः कपुस्तके नास्ति ।

पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः।
सवर्णत्वान्मनोर्भूयः सावर्ण इति चोक्तवान्
मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते।
द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः
संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै २१
मनुस्तस्या क्षमत्तत्तु
यमस्तस्या न चक्षमे।
तां स रोषाच्च बाल्याच्च
भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
यदा संतर्जयामास
संज्ञां वैवस्वतो यमः॥ २२
तं शशाप ततः क्रोधात्सावर्णजननी नृप।
चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता ॥ २३
यमस्तु तत्पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः २४
शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा।
मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै॥ २५
सेयमस्मानपाहाय यवीयांसं बुभूषति।
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः
बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति
यस्मात्ते पूजनीयाऽहं लंघिताऽस्मि त्वया सुत
तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः।
अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत् ॥
शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते॥ २९
विवस्वानुवाच।
असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम्
न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव।
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ३१
तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्वं प्राप्स्यसे सुखम्
कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति॥ ३२
शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि।
आदित्योऽथाब्रवीत्संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै ३३
तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेहः क्रियतेऽति पुनःपुनः।
सा तत्परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते ३४
आत्मानं सुसमाधाय योगात्तथ्यमपश्यत।
तां शप्तुकामो भगवान्नाशाय कुरुनन्दन॥ ३५
मूर्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च।
सा तत्सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते॥ ३६
विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्
त्वष्टा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम्
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा
त्वष्टोवाच।
तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते।
असहन्ती च तत्संज्ञा वने चरति शाड्वले ३८
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्
नित्यं तपस्यभिरतां वडवारूपधारिणीम् ३९
पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम्
हस्तिहस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव।
श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते ४०
अनुकूलं तु देवेश यदि स्यान्मम तन्मतम्।
रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम॥ ४१
रूपं विवस्वतश्चासीत्तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै।
तेनासौ संभृतो देवरूपेण तु विभावसुः॥ ४२

---

पूर्वस्य भ्रातुः समानवर्णत्वादयं सावर्ण इत्युक्तो न तु सवर्णाया अपत्यत्वादित्यर्थः ॥ १९ ॥ पृथिवीति पूर्वोक्ता सुरेणुरेव संज्ञाख्या तस्या इयं प्रकृतिः पार्थिवी द्वितीया संज्ञा। अन्ये तु छायानिपातेन पृथिव्या उत्थितत्वात्पार्थिवीत्याहुः ॥ २१ ॥ तत्तस्याः मनुः क्षमत् क्षान्तवान्। आर्षम् अडभावादि ॥ २२ ॥ प्रतोदितः व्यथितः। विरेजित इति पाठे तापितः ॥ २४ ॥ बुभूषति भूषयितुमिच्छति ॥ २६ ॥ अभ्याधिकः स्नेहः कनीयसि। तत्संज्ञाकृत्यं परिहरन्ती गूहमाना ॥ ३४ ॥ सुसमाधाय सुस्थिरं कृत्वा योगात् ध्यानात् ॥ ३५ ॥ समये आ केशग्रहणात् आ शापाच्च नैनत्प्रकाशयिष्यामीति नियमे अतिगते अतिक्रान्ते सति ॥ ३६ ॥ शाड्वले हरिततृणे ॥ ३८ ॥ भवान् द्रष्टा द्रक्ष्यति ॥ ३९ ॥ हस्तिहस्तेन गजशुण्डादण्डेन परिक्लिष्टां पद्मिनीमिव ॥ ४० ॥ तत् मदन्तःकरणस्थं मतम् अद्य तव रूपं कान्तं मनोहरं निर्वर्तयामि संपादयामीति ॥ ४१ ॥ तेन पूर्वेण रूपेण संभृतः संपन्नः ॥ ४२ ॥

---

१ एतदर्धं खपुस्तके नास्ति। २ क. ख. °स्य गौरवात्। ३ ख. °त स प्राह पि°। ४ क. स्म ५ क. °षु निव°

तस्मात्त्वष्टुः स वै वाक्यं बहु मेने प्रजापतिः ।
समनुज्ञातवांश्चैव त्वष्टारं रूपसिद्धये ॥ ४३
ततोऽभ्युपगमात्त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः ।
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास भारत ४४
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहृतेन वै ।
कान्तात्कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ४५
मुखे निर्वर्तितं रूपं तस्य देवस्य गोपतेः ।
ततः प्रभृति देवस्य मुखमासीत्तु लोहितम् ।
मुखरागं तु यत्पूर्वं मार्तण्डस्य मुखच्युतम् ४६
आदित्या द्वादशैवेह संभूता मुखसंभवाः ।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः४८
हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान्स्वदेहजान्।
गन्धैः पुष्पैरलङ्कारैर्भास्वता मुकुटेन च ॥ ४९
एवं संपूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह ।
गच्छ देव निजां भार्यां कुरूंश्चरति सोत्तरान्
वडवारूपमास्थाय वने चरति शाड्वले ।
स तथा रूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया ५१
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां ततः ।
अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ५२
वडवावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयाम् ।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत्५३
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया ।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकायां विवस्वतः५४

देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति५५
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ।
संज्ञायां जनयामास वडवायां स भारत ।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः५६
सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय ।
यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥५७
धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इव प्रजाः ।
स लेभे कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥ ५८
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णः स तपोधनः
भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेऽन्तरे
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः ॥ ६०
भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान् ।
नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्वर्वैद्यौ तौ बभूवतुः
सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शांतिदोऽभवत्।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत्६२
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्ताचिकीर्षया ।
यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥
अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते६४
द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः ।
ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्वलोकाभिपूजितम् ।
य इदं जन्म देवानां शृणुयाद्वापि धारयेत् ।
आपद्भ्यः स विमुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ६६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे वैवस्वतोत्पत्तौ
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

भ्रमिं भ्रामणयन्त्रम् आरोप्य रूपं शातयामास तनूकृतवान् घृष्टवानित्यर्थः ॥ ४४ ॥ निर्भासितं प्रकटीकृतम् । असंहृतेन पृथक्कृतेन तेजसा हेतुना संहृतेनेति स्पष्टार्थः ॥ ४५ ॥ निर्वर्तितं भ्रामणयोगाग्निकषणेन सम्पादितम् ॥ ४६ ॥ स्वभार्यारूपलीलया भार्यायै अनुरूपा लीला अश्वरूपेण सञ्चरणम् ॥ ५१ ॥ समभावयत् सङ्गमकरोत् ॥ ५३ ॥ विचेष्टन्ती मैथुनप्रतिकूलां चेष्टां कुर्वाणा । परपुंसोपशङ्कया शुक्रं निरवमत् ॥ ५४ ॥ तेन भ्रातुः मातृशापजक्लेशेन ममाप्येवं मा भूदिति धर्ममेवाश्रयदित्यर्थः ॥ ५७ ॥ तयोर्मनुयमयोः ॥ ६३ ॥ देवानां यमादीनामश्विनोश्च ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## ऐलोत्पत्तिवर्णनम्।

## १०

वैशम्पायन उवाच।

मनोर्वैवस्वतस्यासन्पुत्रा वै नव तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च १
नरिष्यंश्च तथा प्रांशुर्नाभागारिष्टसप्तमाः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ॥ २
अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः।
मित्रावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशांपते॥ ३
अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत।
तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ४
मित्रावरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत्।
आहुत्यां हूयमानायां देवगन्धर्वमानुषाः ५
तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम्६
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ७
तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा।
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम्॥ ८

इलोवाच।

मित्रावरुणयोरंशे
जाताऽस्मि वदतां वर।
तयोः सकाशं यास्यामि
न मां धर्मो हतोऽवधीत्॥ ९
सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्
अंशेऽस्मि युवयोर्जाता
देवौ किं करवाणि वाम्।
मनुना चाहमुक्ता वै
अनुगच्छस्व मामिति॥ ११
तां तथावादिनीं साध्वी-
मिलां धर्मपरायणाम्।
मित्रश्च वरुणश्चोभा-
वूचतुर्यन्निबोध तत्॥ १२
अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि॥
आवयोस्त्वं महाभागे
ख्यातिं कन्येति यास्यसि।
मनोर्वंशधरः पुत्र-
स्त्वमेव च भविष्यसि॥ १४
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः १५
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छंती पितुरंतिकम्
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता॥१६
सोमपुत्राद्बुधाद्राजंस्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः।
जनयित्वा सुतं सा तमिला सुद्युम्नतां गता१७
सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत १८
उत्कलस्योत्कला राजन्विनताश्वस्य पश्चिमा
दिक्पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गया पुरी॥ १९
प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिंदम।
दशधा तद्धत्क्षत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम् २०
यूपाङ्किता वसुमती यस्येयं सवनाकरा।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥ १२

---

१०

मनोर्वै श्राद्धदेवस्य सन्ततिर्दशधा तथा।
सौम्यात्तद्दशभेदश्च दशमोऽध्याय इष्यते॥१॥

**मनोरिति**। तत्समाः मनुतुल्याः॥ १॥ नाभागारिष्ट इत्यत्र दिष्ट इत्यपि पठन्ति। "नाभानेदिष्ठं वै मानवम्" इति श्रुतेः। नाभानेदिष्ठ इति पाठः प्रामाणिकः॥ २॥ प्रजापतिर्मनुः॥ ३॥ इला तन्नाम्नी कन्या॥ ७॥ दण्डधरो राजा, भद्रे माम् अनुगच्छस्वेति तामिलामुवाचेति पूर्वेण संबन्धः। तं मनुम् इला प्रत्युवाचेत्युत्तरेण संबध्यते॥८॥ मानवी घृतपदी मैत्रावरुणीति मन्त्रलिङ्गादिलाया उभयसंबन्धो घटते। तत्राद्यमाह-**आवयोरिति**। द्वितीयमाह-**मनोरिति**॥१४॥ तत् मित्रावरुणयोर्वाक्यं श्रुत्वा पितुर्मनोः॥१६॥ **प्रविष्ट इति**। मनौ सूर्यं प्रविष्टे पुत्रान् उत्पाद्य त्यक्ताधिकारे सति इक्ष्वाकुप्रभृतयो दश मनोः पुत्राः पृथिवीं दशधा विभज्य गृहीतवन्तः॥ २०॥

---

१ क. °रस्तथा। २ क. इंद्रो वा°। ३ ख. °शकरः पु.°। ४ क. वीर्यवान्।

कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैनं गुणमवाप्तवान् ।
वसिष्ठवचनाच्चासीत्प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२२
प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरूद्वह ।
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः २३
सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम् ।
*उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।
धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥२४
यश्चकार महात्मा वै दण्डकारण्यमुत्तमम् ।
वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् २५
तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात्प्रमुच्यते ।
सुद्युम्नश्च[2] दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥ २६
मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः ।
धृतवान्य इलेत्येवं[3] सुद्युम्नश्चातिविश्रुतः॥ २७
नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत ।
अम्बरीषोऽभवत्पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥ २८
धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं[4] बभूव ह ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः २९
सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रान्तः सम्बभूव ह ।
नाभागारिष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः३०
प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः शर्यातिरिति विश्रुतः ।
नरिष्यतस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ।×
शर्यातेर्मिथुनं चासीदानर्तो नाम विश्रुतः ३१
पुत्रः कन्याः सुकन्याख्या
या पत्नी च्यवनस्य ह ।
आनर्तस्य तु दायादो
रैवो[5] नाम महाद्युतिः ॥ ३२
आनर्तविषयश्चासीत्पुरी चास्य कुशस्थली ।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ३३
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्
स कन्यासहितः श्रुत्वा गांधर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके
मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो ।
आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ३५
कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ॥ ३६
ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिंदम ।
कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ३७
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिवर्णनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## धुंधुवधवर्णनम् ।

## ११

जनमेजय उवाच ।
कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं[6] च ककुद्मिनम् १
मेरुं गतस्य वा तस्य शार्यातेः संततिः कथम्
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः

सुद्युम्न एनं गुणं मध्यदेशराजत्वं वसिष्ठानुग्रहात्तु सुद्युम्नोऽपि तत्समीपदेशे राज्यं लेभे इत्याह—**वसिष्ठेति** । प्रतिष्ठाने प्रयागैकदेशे ॥ २२ ॥ अवस्थितिः ॥ २३ ॥ नृपक्रियां राज्यं कारयामास पुरूरवसः सुताः॥२४॥ दण्डो यच्छब्दार्थः ॥ २५ ॥ नरिष्यन्नाभागौ मनोः पञ्चमद्वितीयौ पुत्रौ ॥ २८ ॥ धृष्णोः तृतीयस्य ॥ २९ ॥ आनर्तो विषयो द्वारकादेशः कुशस्थली द्वारवती ॥ ३३ ॥ युवैव तत्र जरादिपरिणामाभावात् ॥ ३५ ॥ इति हरिवंशे टीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

**शर्यातेरन्वयाख्यानं पूर्वं धुन्धुकमारणम् ।**
**उक्तमेकादशे विष्णोरुत्तंकस्य प्रसादजम् ॥१॥**

**कथमिति**। जन्मवतः परिणामावश्यंभावात्कथं तयोर्जराया अप्राप्तिरिति प्रश्नः॥१॥ शर्यातिप्रपौत्रस्य रैवतस्य॥२

१ ख. °वा तु सु° २ ख. °म्नस्तु दि° ३ ख °त्येवं सु° ४ ख. ° त्र रणे धृ° ५ घ. देवो ना° ६ क. ख. °तं वा क°
* इदं पद्यार्धं क्वचिन्नास्ति । × करूषस्येत्यारभ्य ' दण्डधरो दमः ' इत्यन्तं सार्धश्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति ।

वैशम्पायन उवाच ।

न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ ।
ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥ ३
ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह ।
हृता पुण्यजनैस्तात राक्षसैः सा कुशस्थली ४
तस्य भ्रातृशतं चासीद्धार्मिकस्य महात्मनः ।
तद्बध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम् ॥ ५
विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै ।
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ६
अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशांपते ।
येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः ॥ ७
क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः ।
सर्वशः पर्वतगणान्प्रविष्टाः कुरुनन्दन ॥ ८
नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।
करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ९
*प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम्
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥ १०
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः ।
वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ ॥ ११
क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत्सुतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ।
प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः १३
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः ।
उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते ॥ १४
चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ।
शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशांपते ॥ १५
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत् ।
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान्हत्वा महाबल १६
श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टे अकृते श्राद्धकर्मणि ।
भक्षयित्वा शशं तात शशादो मृगयां गतः १७
इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात्प्रभुः ।
इक्ष्वाकौ संस्थिते तात शशादः पुरमावसत् १८
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान् १९
पूर्वं देवासुरे युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृतः ।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः ॥ २०
विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ।
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मजः
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः २२
कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः ।
यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः २३

जनमेजय उवाच ।

धुन्धोर्वधमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
यदर्थं कुवलाश्वः सन्धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २४

वैशम्पायन उवाच ।

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः
कुवलाश्वं सुतं राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् २६
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा समाविशत् ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् २७

उत्तङ्क उवाच ।

भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥ २८
त्वया हि पृथिवी राजन्रक्ष्यमाणा महात्मना
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि ।

---

उत्तरमाह—**न जरेति**। जठराग्निप्रभावेण क्षुधादयो भवन्ति। तत्पाचितान्नेन परिणामान्तरं जायते। पूर्वपरिणामश्च नश्यति। ततो जरा प्रवर्तते। अग्नेश्च प्रवर्तकः कालः सूर्यादिनिर्वर्त्यः ब्रह्मलोके तु सूर्याद्यभावान्न तन्मूलकाः कालाग्निक्षुज्जरा इत्यर्थः ॥३॥ वैश्यौ वैश्यायामुत्पन्नत्वात् 'मातृजातयः पुत्राः स्युः' इति वचनात्। ब्राह्मणताम् उपशान्तिं गतौ ॥१९॥ क्षुवतः क्षुतं कुर्वतः ॥१२॥ विकुक्षित्वात् विपुलकुक्षित्वात् अयोधताम् अप्रतियोधनाम् ॥ १३ ॥ **श्राद्धेति**। एतेन यदर्थं यदुद्दिष्टं तस्मै तददत्त्वाऽन्यत्र विनियुज्यते चेद्दोषाय भवतीति दर्शितम्। मृगयां गतः मृगयात आगत एव इक्ष्वाकुणा परित्यक्त इत्युत्तरेणान्वयः॥१७॥वसिष्ठवचनात् हविरिदमुच्छिष्टं न पितृयोग्यमित्येवंरूपात् संस्थिते मृते॥१८॥ ककुत्स्कन्धः तत्र तिष्ठतीति ककुत्स्थः॥१९॥श्रावस्तीं पुरीं ॥२२॥ रक्षणम् अस्माकमिति शेषः ॥२८॥

---

१ क. ख. 'पासा वा' २ ग. खे' ३ भार' ४ ख. विश्रुताः ५ ख. नव ते प' ६ क. ख. क्षुवनन्तु. ७ ख. ॰ नोः पुत्र इ' ८ क. ख. 'वत्ततः। ९ ख. 'तं चासी' १० ख. विशांपते। ११ क. ख. वशातिप्र' १२ ख' मृगं ह' १३ ख. 'दिष्टमकृ' १४ ख' 'शादस्तमथाव' १५ आर्डागके इ० पा० १६ ख. 'श्व पिता रा' *प्रांशोरेक इति पद्यार्थं ख. पुस्तके नास्ति।

पालने हि महान्धर्मः प्रजानामिह दृश्यते ।
न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा तेऽभूद्बुद्धिरीदृशी
ईदृशो न हि राजेंद्र धर्मः क्वचन दृश्यते ।
प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः ।
रक्षितव्याः प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि
×ममाश्रमसमीपे हि[1] समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुतः ।
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ॥ ३२
अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ।
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नामा[2] महासुरः ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ३३
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं प्रमुञ्चति[3] ।
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना ॥ ३४
तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥ ३५
सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम् ।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन्स्थातुं स्वकाश्रमे
तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया ।
लोकाः स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन्विनिहतेऽसुरे[4]
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते ।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ ३८
यस्त्वं[5] महासुरं रौद्रं हनिष्यसि[6] महाबलम् ।
तस्य त्वं वरदानेन तेज आप्याययिष्यसि ३९
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाऽल्पेन शक्यते ।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल स हि वर्षशतैरपि ।
वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ॥ ४०
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे ४१

बृहदश्व उवाच ।

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ४२
स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥ ४३
कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पार्थिवः ।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे ४४
तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः ।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकस्य हितकाम्यया
तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।
एष[10] श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ४६
दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समंतात्समवाकिरन्
देवदुन्दुभयश्चापि[11] प्रणेदुर्भरतर्षभ ॥ ४७
स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान् ।
समुद्रं खानयामास वालुकार्णवमव्ययम्[12] ४८
नारायणेन कौरव्य तेजसाऽऽप्यायितः[13] स वै
बभूव स महातेजा भूयो बलसमन्वितः ॥ ४९
तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु[14] वालुकान्तर्हितस्तदा ।
धुन्धुरासादितो राजन्दिशमावृत्य पश्चिमाम्
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव ।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥ ५१ ॥
सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलं महत् ।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा ॥ ५२
ततः स राजा कौरव्य राक्षसं तं महाबलम् ।
आससाद महातेजा धुंधुं धुंधुनिबर्हणः ॥ ५३ ॥
तस्य वारिमयं वेगमापीय[15] स नराधिपः ।
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ।
निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥ ५५
उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ५६
धर्मे रतिं च सततं स्वर्गवासं तथाऽक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान्स्वर्गे ये रक्षसा हताः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि धुन्धुवधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

समेषु पर्वताद्यभावान्निम्नोन्नतवर्जितेषु मरुषु निर्जलेषु धन्वसु अल्पोदकेषु उज्जानकः जनस्य समूहो जानकं तद्रहित उज्जानकः । उज्जालकेति पाठे जलसमूहवार्जितः ॥ ३२ ॥ निवारणे विनाशे निमित्ते ॥ ४१ ॥ वालुकार्णवं वालुकापूर्णमुदकमयम् । वालुकापूर्णमिति गौडाः ॥ ४८ ॥ मुखजेनाग्निना तस्य पुत्रशतं दग्धमित्युत्तरेण संबन्धः । स च वारि सुस्राव स्वदेहजलेन भुवमाप्लावितवानित्यर्थः ॥ ५१ ॥ इति हरिवंशे टीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

× त्वया हि पृथिवीत्यारभ्य रक्षितुमर्हसीत्यन्तं सार्धं श्लोकत्रयं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति । १ ख. 'पे वै स' २ क. धुन्धुर्नाम्ना सुदारुणः, ख. धुन्धुर्नाम म' ३ ख. 'सं विमु' ४ ख. ° ते त्वया । ५ ख. यस्तं म' ६ क. जयिष्यति म° ख. हनिष्यति म' । ७ क. ख. °ल दिव्यवर्षश' ८ ख. निबर्हणे । ९ ख. °स्य निबर्हणे । १० एष श्रीमान्नृपसुतो धुन्धुमार इ. पा. ११ ख. °य श्चैव प्र. १२ ख. °कापूर्णम' । १३ ख. 'तस्तदा । १४ °द्भिश्च । १५ ख. °गमपिबत्स°

## गालवोत्पत्तिवर्णनम् ।

### १२

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ
धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ २
संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः ।
अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृप ॥ ३
तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित्
लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाऽभवत्
तस्याः पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ६
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत्
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ७
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप ८
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम् ।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसद्दस्युर्महीपतिः ॥ ९
नर्मदायामथोत्पन्नः संभूतस्तस्य चात्मजः ।
संभूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः १०
सुधन्वनः सुतश्चासीत्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः ।
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।
पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः १२
येन भार्याऽऽहृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै ।
बाल्यात्कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च १३
जहार कन्यां कामात्स कस्यचित्पुरवासिनः
अधर्मशंकुना तेन राजा त्रैय्यारुणोऽत्यजत् १४
अपध्वंसेति बहुशो वदन्क्रोधसमन्वितः ।
पितरं सोऽब्रवीत्त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः
पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ॥ १६
इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात्पितुः ।
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः १७
स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके ।
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता तस्य वनं ययौ
ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत्पाकशासनः ।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा १९
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ।
संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥ २०
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ।
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै २१
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः ।
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भारत ॥ २२
सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् ।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥ २३
सोऽभवद्गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः ।
महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः २४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि गालवोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

१२

**सगरान्तो दृढाश्वादिर्वंशो द्वादश ईरितः ।**
**विश्वामित्रकुटुम्बादिभरणं च त्रिशङ्कुतः ॥१**

तस्य धुन्धुमारस्य ॥१॥ तस्य संहताश्वस्य दारा हैमवती हिमवतः कन्या। अस्यां प्रसेनजित् जात इति शेषः ॥४॥ पाणीति। मन्त्राणां नावेहि संवहावहै सह रेतो दधावहै पुंसे पुत्राय वेत्तवै इत्याद्यर्थानां विघ्नं प्रतिबन्धं चक्रे॥१२॥परस्परेण पूर्वं कृतोद्वाहा ऊढा कन्या स्वभार्या कृतेत्यन्वयः। "सखा सप्तपदी भव" इत्यन्तिममन्त्रान्ते भार्यात्वमुत्पद्यते न ततः प्राक् अतस्तां प्रागेव जहार संहर्षादभिनिवशात् ॥ १३ ॥ अधर्मशङ्कुना पापरूपेण कीलेन विद्धत्वात्तम् अत्यजत् ॥ १४ ॥ हे अपध्वंस विलोमजेति वदन् संबोधयन् ॥१५॥ वर्तय वस ॥ १६ ॥ तम् एवं वदन्तं पितरम् ॥ १७ ॥ चाण्डालगृहसमीपे ॥ १८ ॥ पाकशासन इन्द्रः तेनाधर्मेण विप्रविवाहविघ्नजेन पितृक्षोभेण न तु राज्ञः प्रजात्यागेन प्रव्रजतो विरक्तस्य दोषाभावात् तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीदित्यादिशेषग्रन्थाच्च ॥ १९ ॥ तस्य त्रिशंकोर्विषये देशे संन्यस्य न्यासरूपेण स्थापयित्वा ॥ २० ॥ शेषस्य कुटुम्बस्य ॥ २१ ॥ विक्रीयन्तं विक्रीयमाणम् ॥ २२ ॥ यस्माद्गले बद्धः अतो गालव इति ॥ २४ ॥ इति हरिवंशे टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

१ ख. ॰शाश्वकृशाश्वौ तु सं॰ २ क. ख. ॰स्य च दा॰ ३ क. पुत्रस्त्रिधन्विनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः। ४ ख. ॰ज्ञस्त्रिधर्मिणश्चासी॰ ५ क. ख. ॰क्रे स दु॰ ६ ख. ॰ता च तमथो॰ ७ ॰ताप्यस्य व॰ ८ ख. विक्रयार्थे नृ॰

# त्रिशंकुचरितकथनम् ।

## १३

वैशम्पायन उवाच

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया
विश्वामित्रकलत्रं तद्बभार विनये स्थितः ॥ १ ॥
हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् ।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध सः २
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन्वनगते नृपे ॥ ३ ॥
अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः ।
याज्योपाध्यायसंबन्धाद्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४ ॥
सत्यव्रतस्तु बाल्याद्वै
भाविनोऽर्थस्य वा बलात् ।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं
धारयामास वै तदा ॥
पित्रा तुं तं तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं स्वमात्मजम् ।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥ ६
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ७ ॥
जानन्धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत ।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाऽकरोत् ॥ ८
गुणबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ९ ॥
तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः ।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ॥ १०
तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति
न तं वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः ॥ १२ ॥
स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद्बली ।
उपांशुव्रतमास्थाय महत्सत्यव्रतो नृप ॥* १३
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ।
सर्वकामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः १४
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधार्दितः ।
दशधर्मान्गतो राजा जघान जनमेजय ॥× १५
तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे
क्रुद्धस्तु भगवान्वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् १६

वसिष्ठ उवाच ।

पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमसंशयम् ।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वैकृतौ पुनः
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः १८

वैशम्पायन उवाच

एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः
त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशंकुरिति स स्मृतः १९

---

१३

अथ त्रयोदशेऽध्याये त्र्य्यारुणसुतस्य वै । पितुश्चापरितोषाद्वै त्रिशङ्कुत्वमिहोच्यते ॥ १ ॥ **सत्येति** । भक्तिर्विश्वामित्रस्याराध्यत्वात् तत्कुटुम्बस्य अनाथत्वात् प्रतिज्ञा वासिष्ठाशिष्यत्वस्य परिहारेप्सुत्वात् एभिस्त्रिभिः कारणैर्विश्वामित्रकलत्रं बभार पुपोष ॥ १ ॥ उपांशुव्रतं परेषामविदितनियमम् । आस्थाय अङ्गीकृत्य वनगतेऽप्यवसत् ॥ ३ ॥ कारणेन अपराधी अयं कश्चित्कालं प्रायश्चित्तं चरतु इत्याशयेन ॥ ६ ॥ निष्ठा समाप्तिः उपांशुं नायं परदारहरः अपि तु कन्याहरोऽत एनं द्वादशवार्षिक्यां दीक्षायां समाप्तायामभिषेक्ष्यामीति गूढं आशयम् ॥ ७ ॥ वसिष्ठाशयमबुद्ध्वैव तदुपरि रोषमकरोदित्याह—**जानन्निति** ॥ ८ ॥ वसिष्ठाशयं विवृणोति **तेनेति** ॥ ११ ॥ इति न न्यवारयदिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ १२ ॥ **दशेति** । मत्तः प्रमत्तः उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः । त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश । अनुपदोक्ताः क्रोधादयश्चत्वारः अध्यायादौ चोक्ताः । सत्यव्रतत्वादयश्चत्वारः पूर्वाध्यायान्ते । विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव चेति द्वौ इत्येवं दश धर्मास्तद्गतः । तत्क्षुधेति अन्यालाभो दर्शितः । श्रमादित्यन्यान्वेषणाशक्तिरुक्ता अनुकम्पा परदुःखेन दुःखित्वं कृपा परदुःखपरिहारार्थो यत्न इति विशेषः । एतान् दश धर्मान् गतः सन् राजेति भाविसंज्ञां गृहीत्वा ॥ १५ ॥ शंकुं पूर्वोक्तं दोषम् । इमौ वक्ष्यमाणौ ॥ १७ ॥ शंकुत्रयमेव विवृणोति—**पितुरिति** । अप्रोक्षितोपयोगात् असंस्कृतमांसभक्षणात् ॥ १८ ॥

---

१ ग. स्थिता । २ क मांसं स तु बबन्ध तत् । ३ क. °ल्याद्वा, भा° ख. °ल्याद्वै भा° । ४ ख. °त्रा हि । ५ °तस्तस्माद्धृतवान्सप्तमे पदे । ६ क. ख. नन्धर्मान् । ७ क. ख. °स्तदा । × एतदग्रे-**मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः शान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः । त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश** इति श्लोको क. ख. ग. पुस्तकेषु दृश्यते । ८ ख. वै पुनः कृतौ । ९ ख. कुस्तेन स स्मृतः । * इदं श्लोकार्धं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति ।

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते ।
स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे २०
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः २१
अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवार्षिके ।
राज्येऽभिषिच्य पित्र्ये तु याजयामास तं मुनिः
मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ।
सशरीरं तदा तं तु दिवमारोपयत्प्रभुः ॥ २३
तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा ।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ २४
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः ।
आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः २५
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान् ।
येनेदं रोहितपुरं कारितं राज्यसिद्धये ॥ २६
कृत्वा राज्यं स राजर्षिः
पालयित्वा त्वथ प्रजाः ।
संसारासारतां ज्ञात्वा
द्विजेभ्यस्तत्पुरं ददौ ॥ २७
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ।
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः ॥ २८
जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः ।
रुरुकस्तनयस्तस्य राजधर्मार्थकोविदः ॥ २९ ॥
रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् ।
शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैः सह ॥ ३०
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम्
नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ३१
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च ।
और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥ ३२
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान्सहैहयान्
शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः ।
क्षत्रियाणां कुरुश्रेष्ठ पारदानां स धर्मवित ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिशङ्कुचरितकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## सगरोत्पत्तिः ।

## १४

जनमेजय उवाच ।
कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः ।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ।
धर्मं कुलोचितं क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच ।
बाहोर्व्यसनिनस्तात हृतं राज्यमभूत्किल ।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं विशाम्पते ॥ ३
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः खसाः
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥ ४
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी वने प्राणानवासृजत् ५
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वमभूत्किल । ६
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने तामध्यरोहत ।
और्वस्तां भार्गवस्तात कारुण्यात्समवारयत् ७

भये गते विश्वामित्रप्रसादमात्रादिति शेषः ॥ २२ ॥ मिषतामित्यनादरे षष्ठी । पश्यतो देवादीननादृत्येत्यर्थः । कौशिको विश्वामित्रः ॥ २३ ॥ तस्य त्रिशङ्कोः ॥ २४ ॥ शकादयो म्लेच्छभेदाः ॥ ३० ॥ निरस्यन्ति स्म राज्यात् दूरीकुर्वन्ति स्म । तत्र हेतुर्नात्यर्थमिति ॥ ३१ ॥ गरेण विषेण सह जात इति सगरत्वं मातुर्गरसंयोगेऽप्यमरणे हेतुमाह—**और्वस्येति** । भार्गवेण और्वेण ॥ ३२ ॥ निरसत् निरस्तवान् । अच्युतः परिपूर्णशक्तिः ॥ ३४ ॥ इति हरिवंशटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

**उत्पत्तिश्चरितं प्रोक्तं सगरस्य चतुर्दशे ।**
**सागरत्वं समुद्रस्य तत्पुत्रोद्यमसंभवम् १**

कथं गरेण सह सन्कथम् अच्युतो न मृत इत्यर्थः ॥ १ ॥ व्यसनिनः मृगयापरस्त्रीद्यूतपरस्य ॥ ३ ॥ पञ्च शकादयः हैहया इति तालजङ्घा इति चैको राशिः। तदर्थं हैहयार्थम् तद्राज्यसाधनार्थं पराक्रमन् पराक्रमं कृतवन्तः ॥ ४ ॥ राजा सगरपिता ॥ ५ ॥ अन्वगात् वनामिति शेषः ॥ ६ ॥

१ ख. ॰ तो वरः । २ क. ख. ॰म पत्नी कै॰ । ३ क. ख. ॰ तं राष्ट्रसि॰ । ४ क. ख. ॰न स स्मृतः । ५ ख. नृप । ६ ख. सः । ७ ॰त्न्या तु ग॰ ।

तस्याश्रमे च तं गर्भं गरेणैव सहाच्युतम् ।
व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम पार्थिवम् ॥ ८
और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत९
आग्नेयं तु महाघोरममरैरपि दुःसहम् ।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥ १०
हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः११
ततः शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदांस्तदा[2] ।
पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितस्तदा ॥ १२
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥ १३
वसिष्ठस्त्वथ तान्दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।
सगरं वारयामास तेषां दत्वाऽभयं तदा १४
सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह १५
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत्
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः ।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना
शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशांपते ।
कोलिसर्पाः[4] समहिषा दार्वाश्चोलाः सकेरलाः
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः ।
वसिष्ठवचनाद्राजन्सगरेण महात्मना ॥ १९
खसांस्तु पारांश्चोलांश्च
मद्रान्किष्किन्धकांस्तथा ।
कौन्तलांश्च तथा वङ्गान्
साल्वान्कौंकणकांस्तथा ॥ २०
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ।
अश्वं[5] वै प्रेरयामास वाजिमेधाय दीक्षितः २१
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे ॥
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ २२
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।
आसेदुस्ते ततस्तत्र[6] खन्यमाने महार्णवे ॥ २३
तमादिपुरुषं[7] देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषोत्तमम् २४
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः ।
दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः २
बर्हकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः ।
शूरः पञ्चजनश्चैव[8] तस्य वंशकरो नृपः २६
प्रादाच्च तस्मै भगवान्हरिर्नारायणो वरान्[9] ।
अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्तिं चाप्यनिवर्तनीम्
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गवासं तथाऽक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकांस्तस्य ये चक्षुषा हताः
समुद्रश्चार्घमादाय[10] ववन्दे तं महीपतिम् ।
सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै २९
तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहायशाः ।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सगरोत्पत्तिर्नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

अस्त्रम् अस्त्रग्रामं प्रत्यपादयत् ददौ ॥ ९ ॥ पशूनिव प्राणिन इव ॥ ११ ॥ समयेन शरणागतो रक्षणीय इति शिष्टमर्यादया ॥ १४ ॥ धर्मं जघान न क्षत्रधर्मात् च्यावितवान् यतो वेषान्यत्वं वेषान्तरं तेषां चकार ॥ १५ ॥ तदेवाह— **अर्द्धं शकानामिति** ॥ १६ ॥ **खसादीन्** विजित्य इमां वसुन्धरां च विजित्य वाजिमेधाय दीक्षितो भूत्वा अस्यां भुवि अश्वं च प्रेरयामासेति द्वयोः सम्बन्धः ॥ २० ॥ पूर्वदक्षिणं अग्निकोण अपहृत इन्द्रेणेति शेषः ॥ २२ ॥ ते खनन्तः पुत्राः हरिम् आसेदुरिति द्वयोः सम्बन्धः । आसेदुरित्यभिमुखं प्राप्य विषादं प्राप्ता इत्यर्थः ॥ २३ ॥ आदिपुरुषं प्रकृतिप्रवर्तकं हरिम् अविद्याकार्यहरं कृष्णं सदानन्दरूपप्रजायाः पतिं स्वपन्तं समाध्यवस्थितं पुरुषोत्तमम् । अन्तर्यामिणम् ॥ २४ ॥ तस्य प्रतिबुध्यतः योगनिद्रां त्यजतः चक्षुःसमुत्थेन तेजसा अग्निना ॥ २५ ॥ तस्मै सागराय ॥ २७ ॥ सः समुद्रः तस्य सगरस्य ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

१ ख. °प्य वेदानखिलांस्ततो° । २ ख. °दांस्तथा ३ °दाः पह्मपास्तथा । ४ क. कोलस° । ५ ख. °श्वं प्रचारयामास वा° । ६ °स्ते तदा त° ७ ख. °दिदेवं पुरुषं ह° । ८ ख. °श्चजनो नाम तस्य वंशकरो नृप । ९ ख. वरम् । १० ख. °श्चार्घ्यमा° ।

# आदित्यवंशानुकीर्तनम्।

## १५

जनमेजय उवाच।

सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महात्मनः
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज
वैशम्पायन उवाच।
द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ॥२
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ३
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तं निबोध जनाधिप।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ४
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति।
तत्रैका जगृहे पुत्रांल्लुब्धा शूरान्बहूंस्तथा ५
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः।
केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥ ६
राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः।
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ॥७
तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः।
संबभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥ ८
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्गर्भान्निदधे पिता।
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीरेव पोषणे ॥ ९
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम्।
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धनाः १०
षष्टिः (ष्टिं) पुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन्नृप।
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपते ॥ ११
तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम्।
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह १२
सुतः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान्।
दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुतः१३
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्।
त्रयोऽनुसंधिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ
दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः।
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः॥१५
कीर्तिमान्स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत्।
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः१६
भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः१७
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताऽभवत्
अयुताजित्तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्
अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतपर्णो महायशाः।
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली१९
ऋतपर्णसुतस्त्वासीदार्तपर्णिर्महीपतिः।
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत्
सुदासस्य सुतस्त्वासीत्सौदासो नाम पार्थिवः
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा
कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्वकर्मणः ॥ २२
अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः।
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ ॥ २३
अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान्दुलिदुहोऽभवत्।
दिलीपस्तनयस्तस्य रामप्रप्रपितामहः ॥ २४
दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाऽभवत्सुतः।
अयोध्यायां महाराजो रघुश्चासीन्महाबलः२५

---

१५

**अथ पञ्चदशो वंशो ह्यासमञ्जस उच्यते ॥**
**पञ्चजनापराख्यस्य सूर्यवंशसमाश्रितः॥१॥**

**सगरस्येति** ॥ विक्रान्ताः पराक्रमवन्तः ॥ १ ॥ कनीयसी पत्नी ईलिनीसंज्ञा ॥३॥ तुम्बीम् अलाबुम् ॥७॥ अलाबुमध्यादलाबुपूरकाद्वीर्यादलाबुबीजानीव तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भाणाम् ॥११॥ नारायणं नारायणीयं तेजः कापिलक्रोधाग्निम्। असमञ्जस एव पञ्चजनः ॥ १२ ॥ दिलीप एव खट्वाङ्गः ॥१३॥ अनुसन्धिताः ध्यानबलेन तत्त्वतो ज्ञाताः। बुद्धया सूक्ष्मया सत्येन ब्रह्मभावेन मुहूर्तमात्रेण चित्तैकाग्र्यं संपाद्य सर्वं ब्रह्मेति ज्ञातवानित्यर्थः ॥ १४ ॥ अवातारयत स्वर्गात् भूमिमानीतवान् ॥१५॥ भागीरथी भगीरथस्यापत्यमिति ॥ १६ ॥ ऋतानि अक्षहृदयज्ञानविद्यया विभीतकस्य पर्णानि नलाग्रे प्रदर्शितानि येन स ऋतपर्णः। न तु ऋतुपर्ण इति। तन्नामाग्रे तत्पुत्रस्यापि आर्तपर्णिरित्यपत्यप्रत्ययेन प्रदर्शनात् ॥ १९ ॥ हे पार्थिवर्षभ ॥ २३ ॥ **रामस्य प्रप्रपितामहो दिलीपः खट्वाङ्गाख्यो दिलीपादन्यः ॥ २४ ॥** दीर्घबाहू रघुरेव ॥ २५ ॥

---

१ ख. ०ह महामुनिः। २ क. ख. दीली०। ३ क. ख. दीली०। ४ क. "त्वेत्वक", ख. न कल्पयन्। ५ क. ऋतुपर्ण० ६ क. ख. ०होऽभवत्। ७ क. ख. ग. ०मस्य प्रपितामहः। ८ ख. "घुरासी". ।

अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद्दशरथोऽभवत् ।
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः २६
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु ।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः२८
क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकसुतः प्रभुः ॥ २९
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः
सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृपः ॥३०
उक्थो नाम स धर्मात्माऽनलपुत्रो बभूव ह ।
वज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः
शङ्खस्तस्य सुतो विद्वान्ध्युषिताश्व इति श्रुतः।
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः३२
सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः३३
मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थितः ।
तस्यासीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ३४
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ३५
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येनेह कीर्तिताः ।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः
पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ३७
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः।
विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत३८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि आदित्यस्य वंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## श्राद्धकल्पप्रसङ्गः ।

## १६

जनमेजय उवाच ।
कथं वै श्राद्धदेवत्व-
मादित्यस्य विवस्वतः ।
श्रोतुमिच्छामि विप्राग्र्य
श्राद्धस्य च परं विधिम् ।
पितॄणामादिसर्गं च क एते पितरः स्मृताः ।
एवं च श्रुतमस्माभिः कथ्यमानं द्विजातिभिः
स्वर्गस्थाः पितरो ये च देवानामपि देवताः ।
इति वेदविदः प्राहुरेतादिच्छामि वेदितुम् ॥३
ये च तेषां गणाः प्रोक्ता यच्च तेषां बलं परम् ।
यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्
प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि
एवं वेदितुमिच्छामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् ॥५
वैशम्पायन उवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां सर्गमुत्तमम्
यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्
प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि
मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते ।
अपृच्छद्धर्मराजो हि शरतल्पगतं पुरा ।
एवमेव पुरा प्रश्नं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ७

---

निषधात्मजो नलो वीरसेनसुतान्नलादन्यः । नलौ द्वाविति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ २८ ॥ अत एव सुधन्वनः सुत इत्यर्थः । अनल इति च्छेदः । तृतीयस्य नलस्याभावात् ॥ ३० ॥ एति प्राप्नोति । विरजाः निवृत्तरागः ॥ ३८ ॥ इति हरिवंशे टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

**इतोऽग्रेऽपौर्द्रकल्पे वै नवाध्यायाःप्रकीर्तिताः**
**तत्रादौ षोडशेऽध्याये तत्रोपोद्घात उच्यते॥१॥**

एवं वंशानुकीर्तनं श्रुत्वा तत्र प्रागुक्तं यमस्य मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिर्यमश्चेति श्राद्धदेवत्वं वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयदिति पितृराज्यत्वं चोक्तम् । तत्र किंतत् श्राद्धं के च ते पितर इति पृच्छति- **कथमित्यादिना** ॥ विवस्वतः सुतस्येति शेषः । यमस्य कथं श्राद्धदेवत्वमित्यर्थः ॥ १ ॥ पितृविद्यावंशमाह-**हन्तेत्यादिना** ॥ ६ ॥ सनत्कुमारान्मार्कण्डेयो, मार्कण्डेयात् भीष्मो, भीष्माद्धर्मराज इति महद्भिः प्रवर्तितत्वात् श्रेष्ठतरेयं विद्येति भावः ॥ ७ ॥

---

१ क. ख. 'न् व्युषि' । २ क. ख. 'र्णसुतः शीघ्रः शी' । ३ 'नोऽमितते' । ४ 'तोऽन्ये स्म दे' ५ ख. परं बलम् । ६ क. ख. ये च श्रे' ।

तत्तेऽनुपूर्व्या वक्ष्यामि भीष्मेणोदाहृतं यथा।
गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच।

पुष्टिकामेन धर्मज्ञ कथं पुष्टिरवाप्यते।
एतद्वै श्रोतुमिच्छामि किं कुर्वाणो न शोचति

भीष्म उवाच।

श्राद्धैः प्रीणाति हि पितॄन्सर्वकामफलैस्तु यः
तत्परः प्रयतः श्राद्धी प्रेत्य चेह च मोदते॥१०
पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम्
पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर११

युधिष्ठिर उवाच।

वर्तन्ते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः।
प्राणिनां नियतं वापि कर्मजं फलमुच्यते १२
श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामाः सदा नराः
अभिसन्धाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥ १३
पितुः पितामहं चैव
त्रिषु पिण्डेषु नित्यशः।
तानि श्राद्धानि दत्तानि
कथं गच्छन्ति वै पितॄन् ॥ १४
कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः[2] फलं पुनः।
के वा ते पितरोऽन्ये स्म कान्यजामो वयं पुनः
देवा अपि पितॄन्स्वर्गे यजन्तीति च नः श्रुतम्
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ॥१६
स भवान्कथयत्वेतां कथाममितबुद्धिमान्।
यथा दत्तं पितॄणां वै तारणायेह कल्पते ॥१७

भीष्म उवाच।

अत्र ते कीर्तयिष्यामि[3] यथाश्रुतमरिंदम।
ये च ते पितरोऽन्ये स्म यान्यजामो वयं पुनः
पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै ॥१८
श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिण्डः समुद्यतः।
तं पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत १९
हस्ताभरणपूर्णेन केयूराभरणेन[4] च।
रक्ताङ्गुलितलेनाथ यथा दृष्टः पुरा मया ॥२०
नैष कल्पे विधिर्दिष्ट[5] इति संचिन्त्य[6] चाप्यहम्।
कुशेष्वेव ततः पिण्डं दत्तवानविचारयन् २१
ततः पिता मे सुप्रीतो वाचा मधुरया तदा।
उवाच भरतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयाऽनघ ॥ २२
त्वया दायादवानस्मि कृतार्थोऽमुत्र चेह च।
सत्पुत्रेण त्वया पुत्र धर्मज्ञेन विपाश्चिता ॥ २३
मया तु तव जिज्ञासा प्रयुक्तैषा दृढव्रत।
व्यवस्थानं तु धर्मेषु कर्तुं लोकस्य चानघ ॥ २४
यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्।
पापस्य हि तथा मूढः फलं प्राप्नोत्यरक्षिता
प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेषु पार्थिवः।
प्रजास्तदनुवर्तन्ते प्रमाणाचरितं सदा ॥ २६
त्वया च भरतश्रेष्ठ वेदधर्माश्च शाश्वताः।
कृताः प्रमाणं प्रीतिश्च मम निर्वर्तिताऽतुला २७
तस्मात्तवाहं सुप्रीतः प्रीत्या च वरमुत्तमम्।
ददामि तं प्रतीच्छ त्वं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्
न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि।
त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविता तव
किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम्।
तद्ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३०
इत्युक्तवन्तं तमहमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
अब्रुवं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि सत्तम ॥ ३१
यदि त्वनुग्रहं भूयस्त्वत्तोऽर्हामि महाद्युते।
प्रश्नमिच्छामि वै किञ्चिद्व्याहृतं भवता स्वयम्
स मामुवाच धर्मात्मा ब्रूहि भीष्म यदिच्छसि
छेत्तास्मि संशयं सर्वं यन्मां पृच्छसि भारत
अपृच्छं तमहं तातं तत्रान्तर्हितमेव च।
गतं सुकृतिनां लोकं कौतूहलसमन्वितः ॥३४

तत्परः पितृप्रीतिपरः श्राद्धी श्राद्धकर्ता ॥ १० ॥ धर्मकामस्य धर्ममिति शेषः ॥ ११ ॥ श्राद्धैः पितॄन् प्रीणातीत्येतदाक्षिपति—**वर्तन्त इति त्रिभिः** ॥१२॥ पितरो धर्मादीन् प्रयच्छन्तीत्येतदाक्षिपति—**कथं चेति** ॥ अन्ये नरकादिस्थेभ्यः कान् मानुषान् देवताभूतान् वा वयं पितॄन् यजाम इति प्रश्नः ॥१५॥ प्रत्यक्षमतिक्रम्यापि शास्त्रोक्तमेव श्राद्धकर्म कर्तव्यमित्याख्यायिकामुखेन प्रश्नोत्तरमवतारयति—**अत्रेति** ॥१८॥ कल्पे बौधायनादिसूत्रे ॥२१॥ व्यवस्थानं निष्ठाम् ॥२४॥ चतुर्थम् अंशं तथा चतुर्थमेवांशम् ॥२५॥ प्रमाणाचरितं धर्मे प्रमाणभूतस्य राज्ञ आचरितम् ॥२६॥ प्रतीच्छ प्रतिगृहाण ॥ २८ ॥ व्याहृतम् उक्तम् ॥३२॥

१ °तं ह्युक्तं क°. २ क. ख. °तुं निरयस्थाः फ°. । ३ क. ते वर्णयि°, ख. ते वर्तयि° । ४ क. ख. °राभरितेन च । ५ ख. कल्पविधिर्दृ.° । ६ ख.° ति निश्चत्य चा° ।

भीष्म उवाच ।
श्रूयन्ते पितरो देवा देवानामपि देवताः ।
देवाश्च पितरोऽन्ये वा कान्यजामो वयं पुनः
कथं च दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणात्यथो पितॄन्
लोकांतरगतांस्तात किन्नु श्राद्धस्य वा फलम्
कान्यजन्ति स्म लोका[1] वै सदेवनरदानवाः
सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ३७
अत्र मे संशयस्तीव्रः कौतूहलमतीव च ।
तद्ब्रूहि मम धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भीष्मस्योवाच वै पिता
शन्तनुरुवाच ।
संक्षेपेणैव ते वक्ष्ये यन्मां पृच्छसि भारत ।
पितरश्च यथोद्भूताः फलं दत्तस्य चानघ ॥३९
पितॄणां कारणं श्राद्धे शृणु सर्वं समाहितः ।
आदिदेवसुतास्तात पितरो दिवि देवताः ४०
तान्यजन्ति स्म वै लोकाः सदेवासुरमानुषाः
सयक्षो[2]रगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ४१
आप्यायिताश्च ते श्राद्धे पुनराप्याययन्ति च ।
जगत्सदेवगन्धर्वमिति ब्रह्मानुशासनम् । ४२
तान्यजस्व महाभाग श्राद्धैरग्र्यैरतन्द्रितः ।
ते ते श्रेयो विधास्यन्ति सर्वकामफलप्रदाः४३
त्वया[3] चाराध्यमानास्ते नामगोत्रा[4]दिकीर्तनैः
अस्मानाप्याययिष्यन्ति स्वर्गस्थानपि भारत
मार्कण्डेयस्तु ते शेषमेतत्सर्वं प्रवक्ष्यति ।
एष वै पितृभक्तश्च विदितात्मा च भारत४५
उपस्थितश्च श्राद्धेऽद्य ममैवानुग्रहाय वै ।
एनं पृच्छ महाभागमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत४६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्राद्धकल्पप्रसङ्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## पितृकल्पप्रसङ्गः ।

## १७

भीष्म उवाच ।
ततोऽहं तस्य वचनान्मार्कण्डेयं समाहितः
प्रश्नं तमेवान्वपृच्छं यन्म पृष्टः पुरा पिता ॥ १
स मामुवाच धर्मात्मा मार्कण्डेयो महातपाः ।
भीष्म वक्ष्यामि कात्स्न्येन शृणुष्व प्रयतो[5]ऽनघ

**श्रूयन्त इति** ॥"कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः"इति श्रुतेः । ब्रह्मलोकादर्वाचीनाः लोकाः पितृलोका इत्युच्यन्ते। देवलोकपदेन ब्रह्मलोकः । एवं तदुभयप्रापकौ मार्गौ च पितृयानदेवयानौ । तत्र स्वर्लोकस्थानां देवानां तदूर्ध्वलोकत्रयगताः पितरो देवतात्वेन मान्याः इति गम्यते । देवाः पितरः पितरो देवा इति देवानां पितॄणां चाभेदोऽपि श्रूयते । अन्ये जनकादयो मृतास्तेभ्यो निकृष्टाः पितर इत्युच्यन्त इति त्रेधा संशये वयं कान् यजामहे इति प्रश्नः॥३५॥ तत्र पित्रादीनां देवताभावं प्राप्य स्वर्गादूर्ध्वस्थाने स्थितान् दत्तं श्राद्धं प्रीणातु लोकान्तरगतांस्तु तान् कथं प्रीणयेदिति पृच्छति—**कथमिति** ॥ ३६ ॥ **कानिति** ॥ यद्यधःस्थाः पितरः कथं तर्हि तान् देवाद्या यजेरन् । यद्युपरिस्थास्तर्हि कथमस्मदादयोऽल्पपुण्यास्तत्र गच्छेरन् ततः पक्षद्वयेऽपि श्राद्धदानं व्यर्थमित्याक्षेपाभिप्रायः ॥ ३७ ॥ आदिदेवसुताः ब्रह्मणः पुत्राः ॥ ४० ॥ ते देवादिभिस्तर्पिताः सन्तः जगत् भूरादिलोकान् तत्रस्थांश्च देवगन्धर्वमनुष्यादीनाप्याययन्ति योगबलेन तस्माद्यत्र कुत्र स्थितान् पित्रादीन् त एवं श्राद्धीयमन्नादिकं प्रापयन्ति। इष्टं च यजमानाय प्रयच्छन्ति। मुक्तेषु तु पितृषु स्वयं तृप्ताः सन्तो यजमानमेव त्रिवर्गेण तर्पयन्तीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ अग्र्यैः मुख्यकल्पानुष्ठितैः । अतन्द्रितः अनलसः ॥ ४३ ॥ अस्मान् पित्रादीन् ॥ ४४ ॥
इति हरिवंशे टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

**उक्तं सप्तदशेऽध्याये पितृत्वं युक्तिसंभवम् ॥**
**आदिदेवसुतानां च तत्पुत्राणां परस्परम् ॥१॥**
ततोऽहं मे मया ॥ १ ॥

१ ख. लोकान्वै. २ क. ख. सयक्षरक्षोगन्ध॰। ३ क. ख. त्वयैवारा॰. ४ क. ख. ॰त्रानुकी॰. ५ क. ख. ॰तो भव ।

अहं पितृप्रसादाद्वै दीर्घायुष्टमवाप्तवान्।
पितृभक्त्यैव लब्धं च प्राग्लोके परमं यशः ३
सोऽहं युगस्य पर्यन्ते बहुवर्षसहस्रिके।
अधिरुह्य गिरिं मेरुं तपोऽतप्यं सुदुश्चरम्॥ ४
ततः कदाचित्पश्यामि दिवं प्रज्वाल्य तेजसा
विमानं महदायान्तमुत्तरेण गिरेस्तदा॥ ५
तस्मिन्विमाने पर्यङ्के ज्वलितादित्यसन्निभम्
अपश्यं तत्र चैवाहं शयानं दीप्ततेजसम्॥ ६
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम्।
सोऽहं तस्मै नमस्कृत्य प्रणम्य शिरसा विभुम्७
सन्निविष्टं विमानस्थं पाद्यार्घाभ्यामपूजयम्।
अपृच्छं चैव दुर्धर्षं विद्याम त्वां कथं विभो ८
तपोवीर्यात्समुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम्।
दैवतं ह्यसि देवानामिति मे वर्तते मतिः॥ ९
स मामुवाच धर्मात्मा स्मयमान इवानघ।
न ते तपः सुचरितं येन मां नावबुध्यसे १०
क्षणेनैव प्रमाणं स बिभ्रदन्यदनुत्तमम्।
रूपेण न[2] मया कश्चिद्दृष्टपूर्वः पुमान्क्वचित् ११

सनत्कुमार उवाच।

विद्धि मां ब्रह्मणः पुत्रं मानसं पूर्वजं विभोः[3]
तपोवीर्यसमुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम्। १२
सनत्कुमार इति यः श्रुतो देवेषु[4] वै पुरा।
सोऽस्मि भार्गव भद्रं ते कं कामं करवाणि ते
ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्रा यवीयांसस्तु ते मम।
भ्रातरः सप्त दुर्धर्षास्तेषां वंशाः प्रतिष्ठिताः१४
क्रतुर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्योऽत्रिस्तथाङ्गिराः।
मरीचिस्तु[5] तथा धीमान्[6]देवगन्धर्वसेविताः।
त्रींल्लोकान्धारयन्तीमान्[7]देवगन्धर्वपूजिताः॥
वयं तु यतिधर्माणः संयोज्यात्मानमात्मनि।
प्रजा धर्मं च कामं च व्यपहाय[9] महामुने॥ १६
यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्।
तस्मात्सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम्१७
मद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकाङ्क्षया।
एष दृष्टोऽस्मि भवता कं कामं करवाणि ते
इत्युक्तवन्तं तमहं प्रत्यवोचं सनातनम्।
अनुज्ञातो भगवता प्रीयमाणेन भारत॥ १९
ततोऽहमेनमर्थं वै तमपृच्छं सनातनम्।
पृष्टः पितॄणां सर्गं च फलं श्राद्धस्य चानघ॥
चिच्छेद संशयं भीष्म स तु देवेश्वरो मम।
स मामुवाच धर्मात्मा कथान्ते बहुवार्षिके।
रमे त्वयाऽहं विप्रर्षे शृणु सर्वं यथातथम्॥२१
देवानसृजत ब्रह्मा मां यक्ष्यन्तीति भार्गव।
तमुत्सृज्य तथात्मानमयजंस्ते[10] फलार्थिनः २२
ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा दिवौकसः।
न स्म किंचिद्विजानन्ति ततो लोकोऽप्यमुह्यत
ते भूयः प्रणताः शप्ताः प्रायाचन्त पितामहम्।
अनुग्रहाय लोकानां ततस्तानब्रवीदिदम्[11]॥ २४
प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः
पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ २५
प्रायश्चित्तक्रियार्थं ते पुत्रान्पप्रच्छुरार्तवत्।
तेभ्यस्ते प्रयतात्मानः शशंसुस्तनयास्तदा॥ २६
प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्मजानि वै।
शंसन्ति कुशला नित्यं चक्षुर्भ्यामपि नित्यशः

हे नारायण गुणात्मकं मायामयशरीरं तपोवीर्यात् मत्तपः-सामर्थ्यात्समुत्पन्नम् आविर्भूतमपि त्वाम् अहं तत्त्वतः कथं विद्याम् इति अहं तम् अपृच्छमिति योजना। स्वमतमाह—**दैवतं हीति**॥ ९॥ स्मयमानो गर्वित इव। ते त्वया तपः सुचरितं नेति मामाहेति शेषः॥१०॥ **क्षणेनेति**॥ पूर्वम् अङ्गुष्ठमात्रोऽपि क्षणात् महापुरुषलक्षणोऽभूदित्यर्थः॥११॥ नारायणस्य गुणः शुद्धं सत्त्वं तदात्मकम्॥१२॥ हे भार्गव भृगुवंशज॥ १३॥ यवीयांसः कनिष्ठाः॥१४॥ वयं त्विति बहुवचनं सनकादीनन्तर्भाव्य॥ १६॥ सनत् निरन्तरं कुमार इव रागद्वेषादिशून्य इति सनत्कुमारपदस्य निर्वचनमाह—**यथेति**॥ १७॥ बहुवार्षिके कथान्ते चिरागध्यायाः कथाया अन्ते मामुवाच। रमे अहं त्वया तुष्यामि प्रश्नेन संतुष्टोऽस्मि॥२१॥ **देवानिति**॥ ते स्वपितरम् उत्सृज्य फलार्थिन इन्द्रियप्रीणनाख्यदृष्ट-फलार्थिनः॥२२॥ ततो लोकोऽपि तदनुसारी अमुह्यत॥२३॥ व्यभिचारः पूज्यपूजातिक्रमः आत्मपूजा च वः युष्माभिः यथैतैरहमवज्ञात एवम् एतत्पुत्रा अप्येतानशिष्यत्वेनावजानन्त्विल्याशयेनाह—**पुत्रानिति**॥ २५॥ आर्तवत् नीचत्वापादनात् पीडिता इव। प्रयतात्मानः निगृहीतचित्ताः। ध्यानेनालोच्य प्रायश्चित्तानि शशंसुरित्यर्थः॥ २६॥ तानि च वाङ्मनःकर्मजानि स्तोत्रेण भक्तिश्रद्धापुरस्कृतेन ध्यानेन नमस्कारादिक्रियया च जातानीत्यर्थः॥ २७॥

१ ख. °मानमहमा या°। २ ख. °ण च पुमांस्तादृग्दृष्ट°। ३ क. ख. विभो। ४ क. ख. °तो वेदेषु वै। ५ ख. ° विश्वत। ६ क. ख. °था विद्वान्दे°। ७ ख. °न्तीमे दे°। ८ क. ख. °वदानवपू°। ९ ख. व्यवहाय। १० क. ख. °ज्य तदाऽऽत्मा°। ११ ख. °वीद्विभुः।

प्रायश्चित्तार्थतत्त्वज्ञा लब्धसंज्ञा दिवौकसः ।
गम्यन्तां पुत्रकाश्चेति[1] पुत्रैरुक्ताश्च ते तदा ॥२८
अभिशप्तास्तु[2] ते देवाः पुत्रवाक्येन निन्दिताः[3]
पितामहमुपागच्छन्संशयच्छेदनाय वै ॥ २९
ततस्तानब्रवीद्देवो यूयं वै ब्रह्मवादिनः ।
तस्माद्यदुक्तं[4] युष्माकं तत्तथा न तदन्यथा ३०
यूयं शरीरकर्तारस्तेषां देवा भविष्यथ ।
ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः ३१
अन्योन्यं पितरो यूयं ते चैवेति न संशयः ।
देवाश्च पितरश्चैव तद्बुध्यध्वं दिवौकसः ३२
ततस्ते पुनरागम्य पुत्रानूचुर्दिवौकसः ।
ब्रह्मणा च्छिन्नसंदेहाः प्रीतिमन्तः परस्परम् ३३
यूयं वै पितरोऽस्माकं यैर्वयं प्रतिबोधिताः ।
धर्मज्ञाः कश्च वः कामः को वरो वः प्रदीयताम्
यदुक्तं चैव युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा ।
उक्ताश्च[5] यस्माद्युष्माभिः पुत्रका इति वै वयम्
तस्माद्भवन्तः पितरो भविष्यन्ति न संशयः ॥
योऽनिष्ट्वा[6] तु पितॄञ्छ्राद्धैः
क्रियाः काश्चित्करिष्यति ।
राक्षसा दानवा नागाः
फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ॥ ३६
श्राद्धैराप्यायिताश्चैव[7] पितरः सोममव्ययम् ।
आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्द्धयिष्यति नित्यदा
श्राद्धैराप्यायितःसोमो लोकानाप्याययिष्यति
समुद्रपर्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम् ॥ ३८
श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः
तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव[8] दास्यन्ति पितरः सदा
श्राद्धे ये च प्रदास्यन्ति त्रीन्पिण्डान्नामगोत्रतः
सर्वत्र वर्तमानांस्तान्पितरः सपितामहान्[9] ।
भावयिष्यन्ति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः ४०
एवमाज्ञापितं पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
इति तद्वचनं सत्यं भवत्वद्य दिवौकसः ।
पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम् ॥ ४१

सनत्कुमार उवाच ।

त एते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा ।
अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥४२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वाणि पितृकल्पे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

**प्राय इति** । भोः पुत्रकाः यूयं लब्धसंज्ञाः प्राप्तज्ञानाः भवत इति शेषः । कुतः लब्धसंज्ञाः यतः प्रायाश्चित्तस्य अर्थतत्त्वं प्रयोजनयाथात्म्यं तदभिज्ञाः । तच्च येभ्यो जन्म विद्या च लभ्येत ते वाङ्मनःकर्मभिर्यष्टव्या इति ॥ २८ ॥ गम्यतामित्युक्तास्ते पितामहमुपागच्छन्निति सम्बन्धः । अभिशप्ताः पुत्रका इति वदद्भिः पुत्रैः पराभूताः संशयस्तु कथमस्मत्पुत्राः सन्तोऽस्मान् पुत्रा इति संबोधयन्तीति एतद्युक्तमयुक्तं वेत्येवंरूपस्तस्य छेदनाय ॥ २९ ॥ ब्रह्मवादिनः यस्तानि विजानात्स पितुः पिता सादिति मन्त्रार्थज्ञाः भवन्तः अतो यत्तैरुक्तं तत्तथैव न तत्र संशयः कार्यः । यः पुमान् तानि श्रुतिगुह्यानि विजानात् विजानीयात् स पितुः पिता सन् दीप्यत इति मन्त्रपदानामर्थः ॥३०॥ **यूयमिति**। श्लोकत्रयेण देवाः पितरः पितरो देवाः इति मन्त्रपादार्थमुपबृंहयति ॥३१॥ **श्राद्धैरिति**। पितरो लौकिकाः । युष्माभिर्दिव्यैः पितृभिराप्याय्यमानाः स्वयं च आप्यायिताः सन्तः स्वाधिदेवताः सोमं वर्द्धयन्ति तर्पयन्ति । छान्दोग्ये तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयामिति प्राणाग्निहोत्रे आध्यात्मिकदेवतातृप्त्या आधिदैविकदेवतातृप्तेर्दर्शनात् ॥३७॥ भावयिष्यन्ति वर्द्धयिष्यन्ति ॥ ४० ॥ । इति हरिवंशे टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

१ क. ख. °का एवं पु° । २ क. ख. °शस्तास्तु वै । ग. °शस्तास्तु ते दे° ३ क. °न तेन ते । ख. °न. तेन वै । ४ ख. तस्माद्यदुक्ता यूयं तैस्तत्तथा न त° । ५ ख. उक्ता यदत्र युष्माभिः पु° । ६ ग. घ. यानिष्ट्वा दे° ! ७ ख. °ताश्चापि पि° । ८ क. ख. प्रजां चैव । ९ क. ख. °महाः ।

## पितृकल्पवर्णनम् ।

## १८

मार्कण्डेय उवाच ।
इत्युक्तोऽहं भगवता देवदेवेन भास्वता ।
सनत्कुमारेण पुनः पृष्टवान्देवमव्ययम् ॥ १
संदेहममरश्रेष्ठं भगवन्तमरिन्दमम् ।
निबोध तन्मे गाङ्गेय निखिलं सर्वमादितः २
कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिँल्लोके प्रतिष्ठिताः
वर्तन्ते देवप्रवरा देवानां सोमवर्द्धनाः ॥ ३
सनत्कुमार उवाच ।
सप्तैते यजतांश्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः ।
चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥ ४
तेषां लोकं विसर्गं च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ।
प्रभावं च महत्त्वं च विस्तरेण तपोधन ॥ ५
धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयो ये परमा गणाः ।
तेषां नामानि लोकाश्च कथयिष्यामि तच्छृणु
लोकाः सनातना नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः
अमूर्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः ॥ ७
विराजस्य द्विजश्रेष्ठ वैराजा इति विश्रुताः ।
यजन्ति तान्देवगणा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ८
एते वै योगविभ्रष्टा लोकान्प्राप्य सनातनान्
पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ ९
ते तु प्राप्य स्मृतिं भूयः साङ्ख्यं योगमनुत्तमम् ।
यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाम्
एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्द्धनाः ।
आप्याययन्ति ये पूर्वं सोमं योगबलेन च ११
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः
एष वै प्रथमः सर्गः सोमपानां महात्मनाम् १२
एतेषां मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः ।
पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्या मैनाक उच्यते १३
मैनाकस्य सुतः श्रीमान्क्रौञ्चो नाम महागिरिः
पर्वतप्रवरः पुत्रो नानारत्नसमन्वितः ॥ १४
तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट्
अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम् ॥ १५
तपश्चरन्त्यः सुमहद्
दुश्चरं देवदानवैः ।
लोकान्सन्तापयामासु-
स्तास्तिस्रः स्थाणुजङ्गमान् ॥ १६
आहारमेकपर्णेन एकपर्णा समाचरत् ।
पाटलापुष्पमेकं च आदधावेकपाटला ॥ १७
एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यषेधयत् ।
'उ' 'मा' इति निषेधन्ती मातृस्नेहेन दुःखिता
सा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी
उमेत्येवाभवत्ख्याता त्रिषु लोकेषु सुन्दरी १९
तथैव नाम्ना तेनेह विश्रुता योगधर्मिणी ।
एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थास्यति भार्गव २०

---

१८

सप्तानां पितृमुख्यानां नामस्थानविभेदतः ।
वर्णनं क्रियतेऽध्यायेऽष्टादशे संशयापहम् १

एवं पितॄणामुत्पत्तिमुक्त्वा तेषां गणभेदानाह—**इत्युक्त इत्यध्यायेन** । देवं तमेव सनत्कुमारम् ॥१॥ सोमवर्द्धनाः श्राद्धद्वारा ॥३॥ चत्वारो गणाः सुकालाः आङ्गिरसः सुस्वधाः सोमपाश्चेत्येते मूर्तिमन्तः कर्मजदिव्यविग्रहवन्तः । त्रयः वैराजाः अग्निष्वात्ता बर्हिषदश्चेति । एते अमूर्ताः कामरूपा आकाशादपि महान्तः परमाणूदरेऽपि प्रविशन्तीति तादृशसामर्थ्यवन्तः ॥ ४ ॥ अभ्यर्हितत्वात् प्रथमं त्रीन् गणानाह—**धर्मेति** ॥ ६ ॥ यत्र येषु लोकेषु लोकाः विषयाः सनातनाः नित्याविर्भूताः यत्रातीतमनागतं व्यवहितं विप्रकृष्टं च सर्वं वर्तमानं सन्निहितमेवेत्यर्थः । भास्वराश्चिन्मात्रशरीरा अभौतिकाः । विराजस्य प्रजापतेर्मानसाः पुत्राः मनोमात्रशरीराः ॥ ७ ॥ **एत इति** । ये योगभ्रष्टाः निर्गुणं ब्रह्म अप्राप्य सगुणमात्रशरणा अपि परवैराग्याभावात् सनातनान् प्रजापतिलोकान् प्राप्यापि प्रजापतिना सह कल्पान्ते मुक्तिमलब्ध्वा पुनः कल्पान्तरे सनकादिरूपेण ब्रह्मवादिरूपेण ब्रह्मवादिनो भूत्वा प्रजापतिना एवं जायन्ते ॥ ९ ॥ तदनन्तरं मुच्यन्त इत्याह—**ते त्विति** ॥१०॥ सोमपानां सोमं पाययन्ति वर्द्धयन्ति ते सोमपास्तेषां श्राद्धानि ददतस्तत्सालोक्यं प्राप्य तद्वदेव मुक्तिं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१२॥ एवं स्त्रियोऽपि अधिकारे सति श्राद्धं ददत्यः पितृकन्यावदुत्तरोत्तरम् उत्तमं स्थानं प्राप्य क्रमेण मुच्यन्त इत्याशयेन सर्वेषां पितृगणानां प्रत्येकं कन्यासन्ततिमाह—**एतेषामिति** ॥ १३ ॥ पाटलायाः पुष्पम् एकमेवादधौ स्वीकृतवती ॥ १७ ॥ उ इति संबुद्ध्यर्थे ॥ १८ ॥ तिस्रः कुमार्यो यस्मिन् तत्त्रिकुमारिकम् ॥ २० ॥

---

१ ख. 'श्रेष्ठ । २ क. "र्तन्ति दे" । ३ ख. कीर्तयिष्यामि । ४ ख. ते तां प्रा" । ५ क. ख. वै ।

तपःशरीरास्ताः सर्वा-
स्तिस्रो योगबलान्विताः ।
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः
सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः ॥ २१
'उमा' तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी
महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥ २२
असितस्यैकपर्णा तु देवलस्य महात्मनः ।
पत्नी दत्ता महाब्रह्मन्योगाचार्याय धीमते॥२३
जैगीषव्याय तु तथा विद्धि तामेकपाटलाम् ।
एते चापि महाभागे योगाचार्यावुपस्थिते २४
लोकाः सोमपदा नाम मरीचेर्यत्र वै सुताः ।
पितरो यत्र वर्तन्ते देवास्तान्भावयन्त्युत॥२५
अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः
एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा
अच्छोदं नाम विख्यातं
सरो यस्याः समुत्थितम् ।
तया न दृष्टपूर्वास्ते
पितरस्तु कदाचन ॥ २७
अप्यमूर्तानथ पितॄन्सा ददर्श शुचिस्मिता ।
संभूता मनसा तेषां पितॄन्स्वान्नाभिजानती
व्रीडिता तेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी ।
सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसुं नामान्तरिक्षगम् २९
अमावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम् ।
अद्रिकाऽप्सरसायुक्तं विमानेऽधिष्ठितं दिवि
सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामरूपिणी ।
पितरं प्रार्थयित्वाऽन्यं योगभ्रष्टा पपात ह ३१
त्रीण्यपश्यद्विमानानि पतमाना दिवश्च्युता ।
त्रसरेणुप्रमाणानि साऽपश्यत्तेषु तान्पितॄन् ३२
सुसूक्ष्मानपरिव्यक्ता-
नग्नीनग्निष्विवाहितान् ।
त्रायध्वमित्युवाचार्ता
पतन्ती तानवाक्शिराः ॥ ३३
तैरुक्ता सा तु मा भैषी-
रिति व्योम्नि व्यवस्थिता ।
ततः प्रसादयामास
तान्पितॄन्दीनया गिरा ॥ ३५
ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात्।
भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते ॥
यैः क्रियन्ते हि कर्माणि शरीरैर्दिवि दैवतैः ।
तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥ ३६
सद्यः फलन्ति कर्माणि
देवत्वे प्रेत्य मानुषे ।
तस्मात्त्वं तपसः पुत्रि
प्रेत्येदं प्राप्स्यसे फलम् ॥ ३७
इत्युक्ता पितृभिः सा तु
पितॄन्प्रासादयत्स्वकान् ।
ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रु-
स्तस्याः सर्वेऽनुकम्पया ॥ ३८
अवश्यं भाविनं ज्ञात्वा तेऽर्थमूचुस्ततस्तु ताम्
अस्य राज्ञो वसोः कन्या त्वमपत्यं भविष्यसि
उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु
मानुषेषु महात्मनः ।
कन्या च भूत्वा लोकान्स्वा-
न्पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान् ॥ ४०
पाराशरस्य दायादं त्वं पुत्रं जनयिष्यसि ।
स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्धा विभजिष्यति ॥ ४१
महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्तिवर्द्धनौ ।
विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं तथा चित्राङ्गदं शुभम् ४२

---

यथा सनत्कुमाराद्य ऊर्ध्वरेतस एवम् एता अपीत्यर्थः॥२१॥ पुंसामिव स्त्रीणामूर्ध्वरेतसामपि शाश्वतो लोको नास्तीति तासां पतिवरणेन दर्शयति-**उमेत्यादिना** ॥२२॥ द्वितीयमग्निष्वात्ताख्यं गणमाह-**लोका इति** । सोमपदाः सोमयाजिप्राप्याः मरीचेः प्रजापतिपुत्रस्य लोकाः ॥२५॥ अग्निषु अग्निसाध्येषु कर्मसु आत्ताः गृहीताः पित्र्यादिष्विष्टिषु ॥२६॥ अमूर्त्तानपि पितॄन् दिव्यदृष्ट्या ददर्श दृष्ट्वाऽपि एते मम पितर इति न ज्ञातवती ॥ २८ ॥ व्रीडिता तेषां विशेषतः स्वरूपाज्ञानात् ॥ २९ ॥ व्यभिचारेण स्वपित्रतिक्रमेण ३१ सुसूक्ष्मान् त्रसरेणुप्रमाणानामपि विमानानामेकदेशे स्थितत्वात् अत एव अपरिव्यक्तानग्नीन् निर्मथ्यान् । अग्निषु आहवनीयेषु आहितान् चातुर्मास्येषु सोमे आतिथ्येष्टौ च ॥ ३३ ॥ सद्यः संकल्पमात्रात् कर्माणि योगजधर्माः । देवत्वे तैजसदेहप्राप्तौ सत्याम् । मानुषे तु कर्मान्तरं प्रेत्य मृत्वा कर्माणि फलन्ति ॥ ३७ ॥ महाभिषस्य प्राग्जन्मनि तस्य वै शन्तनुरूपेणावतीर्णस्य ॥ ४२ ॥

---

१ क. ॰रः स्युः क॰, ख. ॰ रस्ते क॰ । २ ख. ॰ सुमिति ख्या॰ । ३ क. ख. ॰तश्च ताम् । ४ क. ख. त्वं विप्रं ज॰ । ५ ख. शान्त॰ । ६ ॰ द्वं विभुम् ।

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं
पुनर्लोकानवाप्स्यसि।
व्यतिक्रमात्पितॄणां च
जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम् ॥ ४३
अस्यैव राज्ञः कन्या त्व-
मद्रिकायां भविष्यसि।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं
द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥ ४४
एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तदा।
मत्स्ययोनौ समुत्पन्ना राज्ञस्तस्य वसोः सुता
वैभ्राजा नाम ते लोका दिवि सन्ति सुदर्शनाः
यत्र बर्हिषदो नाम पितरो दिवि विश्रुताः ॥
तान्वै देवगणाः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
नागाः सर्पाः सुपर्णाश्च भावयन्त्यमितौजसः॥
एते पुत्रा महात्मानः पुलस्त्यस्य प्रजापतेः।
महात्मानो महाभागास्तेजोयुक्तास्तपस्विनः॥
एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता।
योगा च योगिपत्नी च योगिमाता तथैव च
भवित्री द्वापरं प्राप्य युगं धर्मभृतां वरा।
पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः ५०
भविष्यति युगे तस्मि-
न्महायोगी द्विजर्षभः।
व्यासादरण्यां संभूतो
विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ५१
स तस्यां पितृकन्यायां
पीवर्यां जनयिष्यति।
कन्यां पुत्रांश्च चतुरो
योगाचार्यान्महाबलान् ॥ ५२
कृष्णं गौरं प्रभुं शम्भुं
कृत्वीं कन्यां तथैव च।
ब्रह्मदत्तस्य जननीं
महिषीं त्वणुहस्य च ॥ ५३
एतानुत्पाद्य धर्मात्मा योगाचार्यान्महाव्रतान्
श्रुत्वा स्वजनकाद्धर्मान्व्यासादमितबुद्धिमान्
महायोगी ततो गन्तापुनरावर्तिनीं गतिम्।
यत्तत्पदमनुद्विग्नमव्ययं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ५५
अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरा मुने।
कथा यत्रेयमुत्पन्ना वृष्ण्यन्धककुलान्वया ॥
सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः।
निरता दिवि लोकेषु ज्योतिर्भासिषु भासुराः
सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान्भावयन्त्युत ॥ ५७
तेषां वै मानसी कन्या
गौर्नाम्ना दिवि विश्रुता।
तत्रैव वंशे या दत्ता
शुकस्य महिषी प्रिया।
एकशृङ्गेति विख्याता
साध्यानां कीर्तिवर्द्धिनी ॥ ५८
मरीचिगर्भास्तांल्लोका-
न्समाश्रित्य व्यवस्थिताः।
ये त्वथाङ्गिरसः पुत्राः
साध्यैः संवर्द्धिताः पुरा ॥ ५९
तान्क्षत्रियगणांस्तात भावयन्ति फलार्थिनः
तेषां तु मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता
पत्नी सा विश्वमहतः स्नुषा वै वृद्धशर्मणः।
राजर्षेर्जननी चापि दिलीपस्य महात्मनः ६१
तस्य यज्ञे पुरा गीता गाथाः प्रीतैर्महर्षिभिः।
तदा देवयुगे तात वाजिमेधे महामखे ॥ ६२
अग्नेर्जन्म तथा श्रुत्वा शांडिल्यस्य महात्मनः
दिलीपं यजमानं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः।
सत्यवन्तं महात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नराः॥

---

इयं कथा **आदिपर्वणि** अनुसन्धेया ॥ ४३ ॥ तृतीयं गणमाह-**वैभ्राजा इति**। विभ्राजः सूर्यस्येमे वैभ्राजाः बर्हिषद इति केवलम् इष्टियायजूकप्राप्याः ॥ ४६ ॥ पीवर्या एव विशेषणानि-**योगा चेत्यादीनि**। योगा स्वयं योगिनी योगिनः पत्नी या नो माता चेति ॥४९॥ अमूर्तिमन्त इत्यादिना ॥ ५६ ॥ देवपूज्यांस्त्रीन् गणान् व्याख्याय मनुष्यपूज्येषु मूर्तेषु चतुर्षु गणेषु प्रथममाह-**सुकाला इति**। द्विजाः ब्राह्मणाः भावयन्ति तर्पयन्ति ॥ ५७ ॥ तत्रैव वंश इति मार्कण्डेयस्य भीष्मं प्रति वचनम्। शुकस्येयम् अपरा भार्या ॥ ५८ ॥ द्वितीयमाह-मरीचिगर्भान् सूर्यरश्मिप्रकाश्यान् ॥ ५९ ॥ शांडिल्यस्य शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नस्य ॥ ६३ ॥

---

१ क. ख. 'वि भान्ति सु' २ क. ख. योगपत्नी च ३ ख. योगमाता त' ४ ख. एतेषां मा' ५ क. या. ६ ख. यस्य ब'

सुस्वधा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः ।
समुत्पन्नास्तु पुलहान्महात्मानो द्विजर्षभाः ॥
लोकेषु दिवि वर्तन्ते कामगेषु विहङ्गमाः ।
तांश्च वैश्यगणांस्तात भावयन्ति फलार्थिनः
तेषां वै मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता
ययातेर्जननी ब्रह्मन्महिषी नहुषस्य च ॥ ६६
त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु निबोध मे ।
उत्पन्ना ये स्वधायां ते सोमपा वै कवेः सुताः
हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान्भावयन्त्युत
मानसा नाम ते लोका यत्र तिष्ठन्ति ते दिवि
तेषां वै मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा६८
या भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी ।
पुरुकुत्सस्य या पत्नी त्रसद्दस्योर्जनन्यपि ६९
तेषामथाभ्युपगमान्मनुस्तात युगे युगे ।
प्रवर्तयाति श्राद्धानि नष्टे धर्मे प्रजापतिः ॥ ७०
पितृणामादिसर्गेण[2] सर्वेषां द्विजसत्तम ।
तस्मादेनं स्वधर्मेण श्राद्धदेवं वदन्ति वै ॥ ७१
सर्वेषां राजतं पात्रमथ वा रजतान्वितम् ।
दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्
सोमस्याप्यायनं कृत्वा अग्नेर्वैवस्वतस्य[3] च ।
उदगायनमप्यग्नावश्यभावेऽप्सु वा पुनः ७३
पितॄन्प्रीणाति यो भक्त्या
पितरः प्रीणयन्ति तम् ।
यच्छन्ति पितरः पुष्टिं
प्रजाश्च विपुलास्तथा ॥ ७४
स्वर्गमारोग्यमेवाथ यदन्यदपि चेप्सितम् ।
देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते ॥ ७५
देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ।
शीघ्रप्रसादा ह्यक्रोधा लोकस्याप्यायनं परम्
स्थिरप्रसादाश्च सदा तान्नमस्यस्व भार्गव ।
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मद्भक्तश्च विशेषतः ७७
श्रेयस्तेऽद्य विधास्यामि प्रत्यक्षं कुरु तत्स्वयम्
दिव्यं[4] चक्षुः सविज्ञानं प्रदिशामि च तेऽनघ७८
गतिमेतामप्रमत्तो मार्कण्डेय निशामय ।
न हि योगगतिर्दिव्या पितॄणां च परा गतिः७९

तृतीयं गणमाह—**सुस्वधा इति** । कर्दमस्य पितरः पुलहात्समुत्पन्नाः ॥६४॥ दिवि आकाशे ॥६५॥ कवेर्दुहितरि स्वधायां हिरण्यगर्भस्याग्नेः सुताः ॥ ६७ ॥ भावयति पुनाति ॥ ६९ ॥ तेषां पितॄणाम् अभ्युपगमात्पूज्यत्वेनाङ्गीकारात् ॥७०॥ अत्रैव हेतुमाह-**पितृणामिति** । सर्वेषां सप्तानामपि गणानाम् । आदिसर्गेण प्रथममुत्पन्नत्वेनेत्यर्थः । तस्मात् एवं यमं ते श्राद्धदेवं वदन्ति । अयं भावः- "यमः पितॄणामधिपतिः" इति श्रुतेः । स्वधर्मेण यमपितृत्वरूपेण हेतुना सर्वश्राद्धदेवताधिपतित्वाद्यमेव **श्राद्धदेव इति** । एनमिति बुद्धौ सन्निहितस्यान्वादेशेन निर्देशः । यतोऽयं पितॄणामादिसर्गस्तस्मादेनं यमं श्राद्धदेवमिति वदन्ति वेदा उदाहृता इति ॥७१॥ स्वधां पुरोधाय स्वधाशब्दं पूर्वं कृत्वा स्वधा पितृभ्य इत्येवं मन्त्रेणेत्यर्थः ॥७२॥ **सोमस्येति** । अग्नौ सोमस्य अग्नेर्वैवस्वतस्य यमस्य आप्यायनं कृत्वा " सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमो यमायाङ्गिरसे स्वधा नमः " इति स्वधां पुरोधाय तिस्र आहुतीर्हुत्वेत्यर्थः । हुत्वा पितॄन् प्रीणातीत्यग्रिमेणान्वयः । वैवस्वतस्य चेति चकारः तृतीयाहुतेर्विकल्पार्थः । अत एवाश्वलायनानां सा नास्त्येव । अपिशब्दो वाऽर्थे । **उदगायनम**प्यत्र कर्तव्यं स्वधामन्त्रेण होमे दक्षिणापवर्गा आहुतीर्दद्यात् । स्वाहामन्त्रेण होमे तु उदगपवर्गे अप्याहुती भवतः । यदाहाश्वलायनः-" सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः " इति स्वाहाकारेणाग्निं पूर्वमिति उदगायनपदादेवात्र स्वाहान्तपक्षोऽपि सूचितः । **दैर्घ्यम् आर्षम्** । अकारप्रश्लेषजं वा । अग्न्यभावेऽप्सु इति च्छेदः । एतच्च तीर्थे एव ज्ञेयम् । वा पुनः पुनरत्र पक्षान्तरमस्तीत्यर्थः " अग्निमुखा वै देवाः पाणिमुखाः पितरः " इति ब्राह्मणात् ब्राह्मणपाणावपि होतव्यमिति ज्ञेयम् ॥ ७३ ॥ देवतानामपेक्षया पितरः पूर्वम् आप्यायनेन प्रीतिकरा इत्यर्थः । **शीघ्रेति** । देवाश्चिरप्रसादा इति दुराराध्या इति भावः ॥ ७६ ॥ भार्गवेति मार्कण्डेयं संबोधयति सनत्कुमारः ॥ ७७ ॥ सविज्ञानम् आनुभविकज्ञानोपेतम् ॥ ७८ ॥ एतां श्राद्धफलरूपां निशामय पश्य । मांसचक्षुषा न हि दृश्यत इति संबन्धः ॥ ७९ ॥

१ क. ख. तु २ ख. 'सर्गे तु स' ३ ख. 'वह्नेर्वै' ४ ख. 'चक्षुर्दिव्यं स'

त्वद्विधेनापि सिद्धेन दृश्यते मांसचक्षुषा।
स एवमुक्त्वा देवेशो मामुपस्थितमग्रतः ८०
चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं देवानामपि दुर्लभम्।
जगाम गतिमिष्टां वै द्वितीयोऽग्निरिव ज्वलन्
तन्निबोध कुरुश्रेष्ठ यन्मयासीन्निशामितम्।
प्रसादात्तस्य देवस्य दुर्ज्ञेयं भुवि मानुषैः ८२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे
अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

## पितृकल्पः

## १९

मार्कण्डेय उवाच।

आसन्पूर्वयुगे तात भरद्वाजात्मजा द्विजाः
योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै॥ १
अपभ्रंशमनुप्राप्ता योगधर्मापचारिणः।
महतः सरसः पारे मानसस्य विसंज्ञिताः २
तमेवार्थमनुध्यातो नष्टमप्स्विव मोहिताः।
अप्राप्य योगं ते सर्वे संयुक्ताः कालधर्मणा ३
ततस्ते योगविभ्रष्टा देवेषु सुचिरोषिताः।
जाताः कौषिकदायादाः कुरुक्षेत्रे नरर्षभाः ४
हिंसया विहरिष्यन्तो
धर्मं पितृकृतेन वै।
ततस्ते पुनराजातिं
भ्रष्टाः प्राप्स्यन्ति कुत्सिताम्॥ ५
तेषां पितृप्रसादेन
पूर्वजातिकृतेन वै[3]।
स्मृतिरुत्पत्स्यते प्राप्य
तां तां जातिं जुगुप्सिताम्॥ ६
ते धर्मचारिणो नित्यं भविष्यन्ति समाहिताः
ब्राह्मण्यं प्रतिलप्स्यन्ति ततो भूयः स्वकर्मणा
ततश्च योगं प्राप्स्यन्ति
पूर्वजातिकृतं पुनः।
भूयः सिद्धिमनुप्राप्ताः
स्थानं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम्॥ ८
एवं धर्मे च ते बुद्धिर्भविष्यति पुनः पुनः।
योगधर्मे च नितरां प्राप्स्यसे बुद्धिमुत्तमाम् ९
योगो हि दुर्लभो नित्यमल्पप्रज्ञैः कदाचन।
लब्ध्वाऽपि नाशयन्त्येनं व्यसनैः कटुतामिताः
अधर्मेष्वेव वर्तन्ते प्रार्दयन्ते गुरूनपि॥ १०
याचन्ते न त्वयाच्यानि रक्षन्ति शरणागतान्
नावजानन्ति कृपणान्माद्यन्ते न धनोष्मणा॥

एवमुक्त्वा चक्षुर्दत्वा जगामेति द्वयोः संबन्धः॥ ८०॥ निशामितं चक्षुर्दानात्प्राक्। तन्मुखेन श्रुतं तत् निबोध बुध्यस्व॥ ८२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे टीकायामष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

१९

**दिव्यं ज्ञानं समासाद्य मार्कण्डेयोऽनुभूतवान्**
**यत्तदेकोनविंशेऽत्र वर्ण्यतेऽन्तर्दशा सता॥१॥**

अत्र इत्युक्त्वा भगवान्देव इत्युपसंहारात्सनत्कुमारवाक्यमेव मार्कण्डेय उवाच-**आसन्नित्यादि**। दुश्चरितेन योगविरोधिना कर्मणा॥ १॥ सरसः पारे अपभ्रंशम् अनुप्राप्ताः पतिताः॥ २॥ अनुध्यातः अनुध्यायन्तः। योगं योगसिद्धिम्। कालधर्मणा मृत्युना॥ ३॥ **तत इति**। योगभ्रष्टाः देवलोकमेव गच्छन्ति न त्वन्यां गतिमिति भावः॥ ४॥ **हिंसयेति**। पितृकृते पित्रर्थं धर्मम् उद्दिश्य हिंसया विहरिष्यन्त इति श्राद्धव्यपदेशेन ब्राह्मणा अपि हिंसावृत्त्या जीवन्त इत्यर्थः। तत एव पापान्ते कुत्सिताम् आजातिं जन्म प्राप्स्यन्ति॥ ५॥ **तेषामिति**। पित्राराधनप्रभावात्ते नीचजातयोऽपि जातिस्मरा अभूवन्नित्यर्थः॥ ६॥ जातिस्मरत्वादेव धर्मपरा अपि जाताः। ब्राह्मण्यं च जन्मान्तरे लब्धवन्त इत्याह--**तत इति**॥ ७॥ ते तव मार्कण्डेयस्य॥ ९॥ योगो योगसिद्धिः। व्यसनैर्मृगयादिभिः। कटुतां क्रूरत्वम् इताः प्राप्ताः। गुरुद्रोहिणश्चैनं योगं प्राप्यापि नाशयन्तीति संबन्धः॥ १०॥ ये अयाच्यानि दारादीनि न याचन्ते ते योगं प्राप्नुवन्तीति पञ्चमस्थेनान्वयः। एवं सर्वत्र योज्यम्॥ ११॥

१ क. ख. °गं सर्वे स्म सं २ क. ख. °रायांति भ्र ३ क. ख. °तेन च। ४ क. ख. स्वकर्मभिः। ५. क. ख. °से सिद्धि ६ ख. °न्ते अर्दय ७ क °गुरुं सदा।

युक्ताहारविहाराश्च युक्तचेष्टाः स्वकर्मसु ।
ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च न नष्टानुगवेषिणः १२
नोपभोगरता नित्यं न मांसमधुभक्षणाः ।
न च कामपरा नित्यं न विप्रासेविनस्तथा
नानार्यसंकथासक्ता नालस्योपहतास्तथा ।
नात्यन्तमानसंसक्ता गोष्ठीष्वनिरतास्तथा ॥
प्राप्नुवन्ति नरा योगं योगो वै दुर्लभो भुवि ।
प्रशान्ताश्च जितक्रोधा मानाहङ्कारवर्जिताः॥
कल्याणभाजनं ये तु ते भवन्ति यतव्रताः ।
एवंविधास्तु ते तात ब्राह्मणा ह्यभवंस्तदा १६
स्मरन्ति ह्यात्मनो दोषं प्रमादकृतमेव तु ।
ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च शान्ते वर्त्मनि संस्थिताः*
योगधर्माद्धि धर्मज्ञ न धर्मोऽस्ति विशेषवान्
वरिष्ठः सर्वधर्माणां तमेवाचर भार्गव ॥ १८
कालस्य परिणामेन लघ्वाहारो जितेन्द्रियः
तत्परः प्रयतः श्राद्धी योगधर्ममवाप्स्यसि १९
इत्युक्त्वा भगवान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ।
अष्टादशैव वर्षाणि त्वेकाहमिव मेऽभवत् २०
उपासतस्तं देवेशं वर्षाण्यष्टादशैव मे ।
प्रसादात्तस्य देवस्य न ग्लानिरभवत्तदा ॥ २१
न क्षुत्पिपासे कालं वा जानामि स्म तदाऽनघ
पश्चाच्छिष्यसकाशात्तु कालः संविदितो मया

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## पूजनीयोपाख्यानम्

### २०

मार्कण्डेय उवाच ।
तस्मिन्नन्तर्हिते देवे वचनात्तस्य वै प्रभोः ।
चक्षुर्दिव्यं सविज्ञानं प्रादुरासीत्तदा मम १ ॥
ततोऽहं तानपश्यं वै
ब्राह्मणान्कौशिकात्मजान् ।
आपगेय कुरुक्षेत्रे
यानुवाच विभुर्मम ॥ २
ब्रह्मदत्तोऽभवद्राजा यस्तेषां सप्तमो द्विजः ।
पितृवर्तीति विख्यातो नाम्ना शीलेन कर्मणा
शुकस्य कन्या कृत्वी तं जनयामास पार्थिवम्
अणुहात्पार्थिवश्रेष्ठात्काम्पिल्ये नगरोत्तमे ४
भीष्म उवाच ।
यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः
तस्य वंशमहं राजन्कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ५

नष्टानुगवेषिणः नष्टद्रव्यादिसाधनार्थंचोरान्वेषणपराः ॥१२॥ अनार्यसंकथा ग्राम्यगोष्ठी ग्राम्यगोष्ठीषु आत्ममीमांसासु ॥१४॥ एवंविधा उक्तप्रकाराः ॥१६॥ कालस्य परिणामेन कालक्रमेण श्राद्धी श्रद्धावान् ॥ १९ ॥ **इत्युक्त्वेति** । मार्कण्डेयवाक्यम् ॥ २० ॥ उपासतस्तं देवेशमिति पादः पूर्वेण संबध्यते । अष्टादश वर्षाणि मे ग्लानिर्नाभवदित्युत्तरेणान्वयः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

विंशेऽत्र वर्ण्यते ब्रह्मदत्त उग्रायुधस्तथा ।
पूजनीयकथा शुकप्रोक्ता नीतिरनुत्तमा १

**तस्मिन्निति** ॥१॥ तान् पूर्वं भरद्वाजदायादान् सतः द्वितीये जन्मनि कुरुक्षेत्रे कौशिकात्मजान् अपश्यम् । आपगेय हे भीष्म विभुः सनत्कुमारः ॥ २ ॥ तेषां कुशिकात्मजानां यः सप्तमो द्विजः पितृवर्ती नाम स एव सप्तमे जन्मनि ब्रह्मदत्तोऽभवत् ॥ ३ ॥

१ क. ख. न कामपरमा नि॰ २ ख. ॰प्रोत्सादिन॰ ३ क. ख. ॰गो हि दु॰ ४ ख. प्रमादं कृ॰ * एतदग्रे–'शांतिं ते परमामाशु लभन्ते नात्र संशयः । तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ योगधर्मपरो भव । योगधर्मे च निरतः प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम्' इति सार्धः श्लोकः क. ख. पुस्तकयोर्वर्तते ५ क. ख. ॰णां तं समाचर भा॰ ६ ख. ॰रिमाणेन. ७ ख. ॰लं वा प्रत्यजानं त॰ । ८ ख. विंशोः

युधिष्ठिर उवाच।
अणुहः कस्य वै पुत्रः कस्मिन्काले बभूव ह
राजा धर्मभृतां श्रेष्ठो यस्य पुत्रो महायशाः ६
ब्रह्मदत्तो नरपतिः किंवीर्यः स बभूव ह।
कथं च सप्तमस्तेषां स बभूव नराधिप॥ ७
न ह्यल्पवीर्याय शुको भगवाँल्लोकपूजितः।
कन्यां प्रादाद्धि योगात्मा कृत्वीं कीर्तिमतीं प्रभुः॥ ८
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते।
ब्रह्मदत्तस्य चरितं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥ ९
यथा च वर्तमानास्ते संसारे च× द्विजातयः।
मार्कण्डेयेन कथितास्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे॥ १०
भीष्म उवाच।
प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिप।
पितामहस्य मे राजन्बभूवेति मया श्रुतम् ११
ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः।
रुतज्ञः सर्वभूतानां सर्वभूतहिते रतः॥ १२
सखाऽऽस गालवो यस्य योगाचार्यो महायशाः।
शिक्षामुत्पाद्य तपसा क्रमो येन प्रवर्तितः।
कण्डरीकश्च योगात्मा तस्यैव सचिवो महान्[२]॥ १३
जात्यन्तरेषु सर्वेषु सखायः[३] सर्व एव ते।
सप्तजातिषु सप्तैव बभूवुरमितौजसः।
यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः॥
तस्य वंशमहं राजन्कीर्तयिष्यामि तच्छृणु।
ब्रह्मदत्तस्य पौराणां पौरवस्य महात्मनः+॥ १५
*बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः
सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह॥
तेनेदं निर्मितं पूर्वं हस्तिनापुरमुत्तमम्।
हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च।
अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहदिषुर्नृप।
बृहद्धनुर्बृहदिषोः पुत्रस्तस्य महायशाः॥ १८
बृहद्धर्मेति विख्यातो राजा परमधार्मिकः।
सत्यजित्तनयस्तस्य विश्वजित्तस्य चात्मजः॥
पुत्रो विश्वजितश्चापि सेनजित्पृथिवीपतिः।
पुत्राः सेनजितश्चासंश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥
रुचिरः श्वेतकेतुश्च महिम्नारस्तथैव च।
वत्सश्चावन्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः
रुचिरस्य तु दायादः पृथुसेनो महायशाः।
पृथुसेनस्य पारस्तु पारान्नीपस्तु जज्ञिवान् २२
नीपस्यैकशतं तात पुत्राणाममितौजसाम्।
महारथानां राजेन्द्र शूराणां बाहुशालिनाम्।
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते॥
तेषां वंशकरो राजा नीपानां कीर्तिवर्द्धनः।
काम्पिल्ये समरो नाम सचेष्टसमरोऽभवत्॥
समरस्य परः पारः सदश्व इति ते त्रयः।
पुत्राः परमधर्मज्ञाः पर[८]पुत्रः पृथुर्बभौ॥ २५
पृथोस्तु सुकृतो नाम सुकृतेनेह कर्मणा।
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः २६
विभ्राजस्य तु पुत्रोऽभूदणुहो नाम पार्थिवः।
बभौ शुकस्य जामाता कृत्वीभर्ता महायशाः
पुत्रोऽणुहस्य राजर्षिर्ब्रह्मदत्तोऽभवत्प्रभुः।
योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेनः परंतपः॥

---

तेषां भारद्वाजानाम्॥ ७॥ प्रतीपस्येति द्वयोः संबन्धः॥ ११॥ सखा आसेति पदच्छेदः। आसीदित्यर्थः। शिक्षां वेदाङ्गं क्रमः संहितायाः पदानां सहपाठः। अन्नाद्यकामो निर्भुजं ब्रूयात्स्वर्गकामः प्रतृणमुभयकाम उभयमन्तरेणेति श्रुतिप्रसिद्ध एव पूर्वैरज्ञानादप्रवर्तितः सन् गालवेन प्रवर्तित इत्यर्थः। तस्य ब्रह्मदत्तस्य॥ १३॥ सप्तजातिषु सप्तसु जन्मसु ते सप्त परस्परं सहाया बभूवुरिति संबन्धः॥ १४॥ आवन्तको अवन्त्यां भवो राजा। सेनजित्। यस्य एते रुचिरादयः परिवत्सकाः पुत्राः॥ २१॥ पुत्र इति। तस्य ब्रह्मदत्तस्य तनयो विष्वक्सेनो नाम स च योगात्मा योगेन धूतशरीरः॥ २८॥

---

१ क.ख.प्रदद्यायो × क. °रेषु द्वि° २ क.ख. °वोऽभवत्। ३क.ख. सहायाः +पुरमित्रस्य दायादो राजा बृहदिषुः स्मृतः इति कपुस्तकेऽधिकं श्लोकार्धम्। *बृहत्क्षत्रस्येत्यारभ्य बृहदिषुर्नृपेत्येतानि षट्श्लोकार्धानि कपुस्तके न सन्ति। ४ ख. °जितस्य तनयो वि° ५ क. °कसत्तमाः।, ख. °कसंमताः। ६ ख. °नीपोऽथ ज° ७ ख. पारपु° ८ क.ख. सुतोऽणु°

विभ्राजः पुनरायातः स्वकृतेनेह कर्मणा ।
ब्रह्मदत्तस्य पुत्रोऽन्यः सर्वसेन इति श्रुतः॥ २९
चक्षुषी तस्य निर्भिन्ने पक्षिण्या पूजनीयया ।
सुचिरोषितया राजन्ब्रह्मदत्तस्य वेश्मनि ३०
अथास्य पुत्रस्त्वपरो ब्रह्मदत्तस्य जज्ञिवान् ।
विष्वक्सेन इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥
विष्वक्सेनस्य पुत्रोऽभूद्दण्डसेनो महीपतिः ।
भल्लाटोऽस्य कुमारोऽभूद्राधेयेन हतः पुरा ॥
दण्डसेनात्मजः शूरो महात्मा कुलवर्द्धनः ।
भल्लाटपुत्रो दुर्बुद्धिरभवच्च युधिष्ठिर ॥ ३३
स तेषामभवद्राजा नीपानामन्तकृन्नृप[1] ।
उग्रायुधेन यस्यार्थे सर्वे नीपा विनाशिताः ॥
उग्रायुधो मदोत्सिक्तो मया विनिहतो युधि ।
दर्पान्वितो दर्परुचिः सततं चानये रतः ॥ ३५

युधिष्ठिर उवाच ।

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन्वंशे[2]ऽथ जज्ञिवान्
किमर्थं चैव भवता निहत[3]स्तद्ब्रवीहि मे ॥ ३६

भीष्म उवाच[4] ।

अजमीढस्य दायादो विद्वान्राजा यवीनरः
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः ॥
जज्ञे सत्यधृतिः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ।
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ॥ ३८
आसीत्सुधर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रजेश्वरः ।
सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड्विभुः ३९
तस्यान्ववाये महति महान्पौरवनन्दन ।
महतश्चापि पुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ४०
पुत्रो रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः ।
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ ४१
सुमतेरपि धर्मात्मा सन्नतिर्नाम वीर्यवान् ।
तस्य वै सन्नतेः पुत्रः कृतो नाम महाबलः ४२
शिष्यो हिरण्यनाभस्य कौशलस्य महात्मनः
चतुर्विंशतिधा तेन सप्राच्याः[4] सामसंहिताः
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्तयो[5]नाम सामगाः
कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः ४४
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः ।
नीपो नाम महातेजाः पञ्चालाधिपतिर्हतः ४५
उग्रायुधस्य दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ।
क्षेम्यात्सुवीरो नृपतिः सुवीरात्तु नृपञ्जयः ४६
नृपञ्जयाद्बहुरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ।
स चाप्युग्रायुधस्तात दुर्बुद्धिरभवत्तदा ॥ ४७

प्रवृद्धचक्रो बलवा-
न्नीपान्तकरणो[6] महान् ।
स दर्पपूर्णो हत्वाऽऽजौ
नीपानन्यांश्च पार्थिवान् ४८

पितर्युपरते मह्यं श्रावयामास किल्बिषम् ।
माममात्यैः परिवृतं शयानं धरणीतले ॥ ४९
उग्रायुधस्य राजेन्द्र दूतोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत्
अद्य त्वं जननीं भीष्म गन्धकालीं यशस्विनीम्
स्त्रीरत्नं मम भार्यार्थे प्रयच्छ कुरुपुङ्गव[7] ॥ ५०
एवं राज्यं च ते स्फीतं धनानि च न संशयः
प्रदास्यामि यथाकाममहं वै रत्नभाग्भुवि ५१
मम प्रज्वलितं चक्रं निशम्येदं सुदुर्जयम् ।
शत्रवो विद्रवन्त्याजौ दर्शनादेव भारत ॥ ५२

राष्ट्रस्येच्छसि चेत्स्वास्ति
प्राणानां वा कुलस्य वा ।
शासने मम तिष्ठस्व
न हि ते शान्तिरन्यथा ॥ ५३

अधः प्रस्तारशयने शयानस्तेन चोदितः ।
दूतान्तर्हितमेतद्वै वाक्यमग्निशिखोपमम् ॥ ५४
ततोऽहं तस्य दुर्बुद्धेर्विज्ञाय मतमच्युत ।
आज्ञापयं वै संग्रामे सेनाध्यक्षांश्च सर्वशः ५५
विचित्रवीर्यं बालं च मदुपाश्रयमेव च ।
दृष्ट्वा क्रोधपरीतात्मा युद्धायैव मनो दधे ॥ ५६
निगृहीतस्तदाहं तैः सचिवैर्मन्त्रकोविदैः ।
ऋत्विग्भिर्वेदकल्पैश्च सुहृद्भिश्चार्थदर्शिभिः ५७

एतदेव व्याचष्टे-**विभ्राज इति** । विभ्राजो ब्रह्मदत्तस्य पितामहः । स्वकृतेन वक्ष्यमाणेन कर्मणा विष्वक्सेनरूपेण पुनरिमं लोकं ब्रह्मदत्तः पुत्रो भूत्वा आयात इत्यर्थः ॥ २९ ॥ पूजनीयया विचित्रचटकया ॥ ३० ॥ महानिति नाम ४० कार्तिः कृतस्य पुत्रः येन पञ्चालाधिपतिर्हत इति संबन्धः ॥ ४४ ॥ प्रस्तारः कुशास्तरणम् ॥ ५४ ॥ बालं दृष्ट्वा बालोऽयं युद्धायोग्य इति ज्ञात्वाऽहमेव युद्धाय मनो दधे धृतवान् ॥ ५६ ॥

१ ख. °मन्तको नृप. २ ख. °शे स ज° ३ क. निहतो ब्रूहि तन्मम ४ क. ङ. °न प्रोक्तास्ताः सा° ५ ख. कर्तयो नाम. ६ क. °णोऽभवत् ७ क. ख. °रुनन्दन । ८ क. °न्तरित° ।

स्निग्धैश्च शास्त्रविद्भिश्च संयुगस्य निवर्तने ।
कारणं श्रावितश्चास्मि युक्तरूपं तदाऽनघ ५८

मन्त्रिण ऊचुः ।

प्रवृत्तचक्रः पापोऽसौ त्वं चाशौचगतः प्रभो
न चैष प्रथमः कल्पो युद्धं नाम कदाचन ५९
ते वयं सामपूर्वं वै दानं भेदं तथैव च ।
प्रयोक्ष्यामस्ततः शुद्धो दैवतान्यभिवाद्य च ६०
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैर्हुत्वाग्नीनर्च्य च द्विजान्
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रयास्यसि जयाय वै ६१
अस्त्राणि न प्रयोज्यानि न प्रवेश्यश्च सङ्गरः ।
आशौचे वर्तमाने तु वृद्धानामिति शासनम् ६२
सामदानादिभिः पूर्णमपि भेदेन वा ततः ।
तां हनिष्यसि विक्रम्य शम्बरं मघवानिव ६३
प्राज्ञानां वचनं काले वृद्धानां च विशेषतः ।
श्रोतव्यमिति तच्छ्रुत्वा निवृत्तोऽस्मि नराधिप
ततस्तैः संक्रमः सर्वैः प्रत्युक्तः शास्त्रकोविदैः
तस्मिन्काले कुरुश्रेष्ठ कर्म चारब्धमुत्तमम् ६५
स सामादिभिरेवादावुपायैः प्राज्ञचिन्तितैः ।
अनुनीयमानो दुर्बुद्धिरनुनेतुं न शक्यते ॥ ६६
प्रवृत्तं तस्य तच्चक्रमधर्मनिरतस्य वै ।
परदाराभिलाषेण सद्यस्तात निवर्तितम् ६७
न त्वहं तस्य जाने तन्निवृत्तं चक्रमुत्तमम् ।
हतं स्वकर्मणा तं तु पूर्वं सद्भिश्च निन्दितम् ६८
कृतशौचः शरी चापी रथी निष्क्रम्य वै पुरात्
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः प्रायोधयमहं रिपुम् ॥ ६९
ततः संसर्गमागम्य बलेनास्त्रबलेन च ।
ऽयहमुन्मत्तवद्युद्धं देवासुरमिवाभवत् ॥ ७०
स मयास्त्रप्रतापेन निर्दग्धो रणमूर्धनि ।
पपाताभिमुखः शूरस्त्यक्त्वा प्राणानरिन्दम ॥
एतस्मिन्नन्तरे तात काम्पिल्ये पृषतोऽभ्ययात्
हते नीपेश्वरे चैव हते चोग्रायुधे नृपे ॥ ७२ ॥
आहिच्छत्रं स्वकं राज्यं पित्र्यं प्राप महाद्युतिः
द्रुपदस्य पिता राजन्ममैवानुमते तदा ॥ ७३
ततोऽर्जुनेन तरसा निर्जित्य द्रुपदं रणे ।
आहिच्छत्रं सकाम्पिल्यं द्रोणायाथापवर्जितम्
प्रतिगृह्य ततो द्रोण उभयं जयतां वरः ।
काम्पिल्यं द्रुपदायैव प्रायच्छद्विदितं तव ७५
एष ते द्रुपदस्यादौ ब्रह्मदत्तस्य चैव ह ।
वंशः कार्त्स्न्येन वै प्रोक्तो नीपस्योग्रायुधस्य च

युधिष्ठिर उवाच ।

किमर्थं ब्रह्मदत्तस्य पूजनीया शकुन्तिका ।
अन्धं चकार गाङ्गेय ज्येष्ठं पुत्रं पुरा विभो ॥ ७७
चिरोषिता गृहे चापि किमर्थं चैव यस्य सा
चकार विप्रियमिदं तस्य राज्ञो महात्मनः ७८
पूजनीया चकारासौ किं सख्यं तेन चैव ह ।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वमुक्त्वा यथातथम् ।

भीष्म उवाच ।

शृणु सर्वं महाराज यथा वृत्तमभूत्पुरा ।
ब्रह्मदत्तस्य भवने तन्निबोध युधिष्ठिर ८०
काचिच्छकुन्तिका राजन्ब्रह्मदत्तस्य वै सखी
शितिपक्षा शोणशिराः शितिपृष्ठा शितोदरी
सखी सा ब्रह्मदत्तस्य सुदृढं बद्धसौहृदा ।
तस्याः कुलायमभवद्गेहे तस्य नरोत्तम ॥ ८२
सा सदाऽहनि निर्गत्य तस्य राज्ञो गृहोत्तमात्
चचाराम्भोधितीरेषु पल्वलेषु सरस्सु च ८३

---

**प्रवृत्तेति** । उच्छृङ्खलप्रवृत्तेः शास्त्रानियन्त्रितस्य च युद्धं प्रथमो मुख्यः कल्पो न भवतीत्यर्थः ॥ ५९ ॥ संक्रमः उपायान्तरेण शमः ॥ ६५ ॥ अनुनीयमानः प्रसाद्यमानः ॥ ६६ ॥ तस्य उग्रायुधस्य ॥ ६७ ॥ अहं तस्य चक्रम् आज्ञानिवृत्तं भग्नमिति जाने । तं स्वकर्मणा हतं जाने ॥ ६८ ॥ काम्पिल्ये दक्षिणपाञ्चाले नीपेश्वरे पृषतस्य पितामहे उग्रायुधेन हते उग्रायुधे च भीष्मेण हते सतीति विवेकः ॥ ७२ ॥ आहिच्छत्रम् आहिच्छत्रानगरींसंबन्धिनमुत्तरपाञ्चालम् ॥ ७३ ॥ अपवर्जितं दत्तम् ॥ ७४ ॥ उभयं दक्षिणोत्तरपाञ्चालद्वयम् ॥ ७५ ॥ सा यस्य राज्ञो गृहे चिरोषिता तस्य विप्रियं किमर्थं चकारेत्यन्वयः ॥ ७८ ॥ असौ पूजनीया किमर्थं तेन सख्यं चकार ॥ ७९ ॥ शितिपक्षा शुक्लपक्षा शोणशिराः लोहितमस्तका शितिपृष्ठा कृष्णोपरिभागा । "शिती धवलमेचके" इति कोशकाराः ॥ ८१ ॥ कुलायं नीडम् ॥ ८२ ॥

---

१ ख. अशौचे व० २ क. पूर्वम्० ३ क. ख. ०भिरप्यादा० ४ क ०माक्रम्य ५ ख. तस्य ६ ख. ०वद्गृहे त०

नदीपर्वतकुञ्जेषु वनेषूपवनेषु च ।
प्रफुल्लेषु तडागेषु कह्लारेषु सुगन्धिषु ८४
कुमुदोत्पलकिञ्जल्कसुरभीकृतवायुषु ।
हंससारसघुष्टेषु कारण्डवरुतेषु च ॥ ८५
चरित्वा तेषु सा राज-
न्निशि काम्पिल्यमागमत् ।
नृपतेर्भवनं प्राप्य
ब्रह्मदत्तस्य धीमतः ॥ ८६
राज्ञा तेन सदा राजन्
कथायोगं चकार सा ।
आश्चर्याणि च दृष्टानि
यानि वृत्तानि कानिचित् ८७
चरित्वा[2] विविधान्देशान्कथयामास सा निशि
कदाचित्तस्य नृपतेर्ब्रह्मदत्तस्य कौरव ॥ ८८
पुत्रोऽभूद्राजशार्दूल सर्वसेनेति विश्रुतः ।
पूजनीया[3]ऽथ सा तस्मिन्प्रासूताण्डमथापि च
तस्मिन्नीडे पुरा ह्येकं तत्किल प्रास्फुटत्तदा ।
स्फुटितो मांसपिण्डस्तु बहुपादास्यसंयुतः
बभ्रुवक्त्रश्चक्षुर्हीनो बभूव पृथिवीपते ।
चक्षुष्मानप्यभूत्पश्चादीषत्पक्षोत्थितश्च ह॥९१
अथ सा पूजनीया वै राजपुत्रस्वपुत्रयोः ।
तुल्यस्नेहात्प्रीतिमती दिवसे दिवसेऽभवत्९२
आजहार सदा सायं चञ्च्वाऽमृतफलद्वयम् ।
अमृतास्वादसदृशं सर्वसेनतनूजयोः ॥९३॥
स बालो ब्रह्मदत्तस्य पूजनीयासुतश्च ह ।
ते फले भक्षयित्वा च पृथुकौ प्रीतमानसौ ॥
अभूतां नित्यमेवेह खादेतां तौ च ते फले ।
तस्यां गतायामथ च पूजन्यां वै सदाऽहनि ॥
शिशुना चटकेनाथ धात्री तं तु शिशुं नृप ।
तेन प्रक्रीडयामास ब्रह्मदत्तात्मजं सदा ॥९६॥
नीडात्तमाकृष्य तदा पूजनीया कृता ततः ।
क्रीडता राजपुत्रेण कदाचिच्चटकः स तु ॥९७
निगृहीतः कन्धरायां शिशुना दृढमुष्टिना ।
दुर्भङ्गमुष्टिना राजन्नसून्सद्यस्त्वजीजहत् ॥९८
तं तु पञ्चत्वमापन्नं व्यात्तास्यं बालघातितम् ।
कथंचिन्मोचितं दृष्ट्वा नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥
धात्रीं तस्य जगर्हे तां तदाऽश्रुपरमो नृपः ।
तस्थौ शोकान्वितो राजञ्छोचंस्तं चटकं तदा
पूजनीयापि तत्काले गृहीत्वा तु फलद्वयम् ।
ब्रह्मदत्तस्य भवनमाजगाम वनेचरी ॥ १ ॥
अथापश्यत्तमागम्य गृहे तस्मिन्नराधिप ।
*पञ्चभूतपरित्यक्तं शोच्यं तं स्वतनूद्भवम् ॥२
मुमोह दृष्ट्वा तं पुत्रं पुनः संज्ञामथालभत् ।
लब्धसंज्ञा च सा राजन्विललाप तपस्विनी ॥

पूजनीयोवाच ।

न तु त्वमागतां पुत्र वाशन्तीं परिसर्पसि ।
कुर्वंश्चाटुसहस्राणि अव्यक्तकलया गिरा ॥४
व्यादितास्यः क्षुधार्तश्च पतिनास्येन पुत्रक ।
शोणेन तालुना पुत्र कथमद्य न सर्पसि ॥५॥
पक्षाभ्यां त्वां परिष्वज्य
ननु वाशामि चाप्यहम् ।
चीचीकूचीति वाशन्तं
त्वामद्य न शृणोमि किम् ॥ ६ ॥
मनोरथो यस्तु मम पश्येयं पुत्रकं कदा ।
व्यात्तास्यं वारि याचन्तं स्फुरत्पक्षं ममाग्रतः
स मे मनोरथो भग्नस्त्वयि पञ्चत्वमागते ।
विलप्यैवं बहुविधं राजानमथ साऽब्रवीत् ८
ननु मूर्धाभिषिक्तस्त्वं धर्मं वेत्सि सनातनम्
अथ कस्मान्मम सुतं धात्र्या घातितवानसि९
तव पुत्रेण चाकृष्य क्षत्रियाधम शंस मे ।
न च नूनं श्रुता तेऽभूदियमाङ्गिरसी श्रुतिः१०
"शरणागतः क्षुधार्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः
चिरोषितश्च स्वगृहे पातव्यः सर्वदा भवेत्११

सर्वसेनः इति च्छेदः । तस्मिन् काले गृहे च ॥ ८९ ॥ तत् अण्डम् । स्फुटितः व्यक्तीभूतः ॥ ९० ॥ तेन शिशुना नीडादाकृष्य धात्री तं प्रक्रीडयामास ॥ ९६ ॥ वाशन्तीं कूजन्तीम् ॥ ४ ॥ पातव्यो रक्षणीयः ॥ ११ ॥

१ क. सर्वाणि २ क. चरन्ती ३ ख. °याऽपि सा ४ ख. °कौ तौ मुदा युतौ । ५ क. ख. °तो राजा शोचं° ६ क. ख. °त्कालं गृ° *पञ्चभूतपरित्यक्तं मृतमित्यर्थः । ७ ख. °क्तं शावं तं ८ ख. °भ्यां च प° ९ ख. स्वपुत्रेण समाकृ° १० ख. °वैतो भ°

अपालयन्नरो याति कुम्भीपाकमसंशयम्।"
कथमस्य हविर्देवा गृह्णन्ति पितरः स्वधाम्॥
एवमुक्त्वा महाराज दशधर्मगता सती।
शोकार्ता तस्य बालस्य चक्षुषी निर्बिभेद सा
कराभ्यां राजपुत्रस्य ततस्तचक्षुरस्फुटत्।
कृत्वा चान्धं नृपसुतमुत्पपात ततोऽम्बरम्॥
अथ राजा सुतं दृष्ट्वा पूजनीयामुवाच ह।
विशोका भव कल्याणि कृतं ते भीरु शोभनम्
गतशोका निवर्तस्व अजर्यं सख्यमस्तु ते।
पुरेव वस भद्रं ते निवर्तस्व रमस्व च॥१६॥
पुत्रपीडोद्भवश्चापि न कोपः परमस्त्वयि।
ममास्ति सखि भद्रं ते कर्तव्यं च कृतं त्वया॥

पूजनीयोवाच।

आत्मौपम्येन जानामि पुत्रस्नेहं तवाप्यहम्।
न चाहं वस्तुमिच्छामि तव पुत्रमचक्षुषम्॥
कृत्वा वै राजशार्दूल त्वद्गृहे कृतकिल्बिषा॥१८
गाथाश्चाप्युशनोगीता इमाः शृणु मयेरिताः।
"कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम्।
कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परिवर्जयेत्॥१९
कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः।
कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि।
कुसौहृदे क विश्वासः कुदेशे न तु जीव्यते।
कुराजनि भयं नित्यं कुपुत्रे सर्वतोऽसुखम्॥२१
अपकारिणि विस्रम्भं यः करोति नराधमः।
अनाथो दुर्बलो यद्वन्न चिरं स तु जीवति २२
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति२३
राजसेविषु विश्वासं गर्भसंकरितेषु च।
यः करोति नरो मूढो न चिरं स तु जीवति२४
अप्युन्नतिं प्राप्य नृपात्प्रावारः कीटको यथा।
स विनश्यत्यसंदेहमाहैवमुशना नृप॥ २५
अपि मार्दवभावेन गात्रं संलीय बुद्धिमान्।
अरिं नाशयते नित्यं यथा वह्निर्महाद्रुमम् २६
मृदुरार्द्रः कृशो भूत्वा शनैः संलीयते रिपुः।
वल्मीक इव वृक्षस्य पश्चान्मूलानि कृन्तति॥
अद्रोहसमयं कृत्वा मुनीनामग्रतो हरिः।
जघान नमुचिं पश्चादपां फेनेन पार्थिव॥२८
सुप्तं मत्तं प्रमत्तं वा घातयन्ति रिपुं नराः।
विषेण वह्निना वाऽपि शस्त्रेणाप्यथ मायया॥
न च शेषं प्रकुर्वन्ति पुनर्वैरभयान्नराः।
घातयन्ति समूलं हि श्रुत्वेमामुपमां नृप॥३०
शत्रुशेषमृणाच्छेषं शेषमग्नेश्च भूमिप।
पुनर्वर्धेत सम्भूय तस्माच्छेषं न शेषयेत्॥३१
हसते जल्पते वैरी एकपात्रे भुनक्ति च।
एकासनं चारोहति स्मरते तच्च किल्बिषम्
कृत्वा सम्बन्धकं चापि विश्वसेच्छत्रुणा न हि
पुलोमानं जघानाजौ जामाता सञ्शतक्रतुः३३
निधाय मनसा वैरं प्रियं वक्तीह यो नरः।
उपसर्पेन्न तं प्राज्ञः कुरङ्ग इव लुब्धकम्॥ ३४
न चासन्ने निवस्तव्यं सवैरे वर्धिते रिपौ।
पातयेत्तं समूलं हि नदीरय इव द्रुमम्॥ ३५
अमित्राद्गुन्नतिं प्राप्य नोन्नतोऽस्मीति विश्वसेत्
तस्मात्प्राप्योन्नतिं नश्येत्प्रावार इव कीटकः"
इत्येता ह्युशनोगीता गाथा धार्या विपश्चिता।
कुर्वता चात्मरक्षां वै नरेण पृथिवीपते॥ ३७
मया सकिल्बिषं तुभ्यं प्रयुक्तमतिदारुणम्।
पुत्रमन्धं प्रकुर्वन्त्या तस्मान्नो विश्वसे त्वयि३८
एवमुक्त्वा प्रदुद्राव तदाऽऽकाशं पतङ्गिनी।
इत्येतत्ते मयाख्यातं पुराभूतमिदं नृप॥ ३९

---

**"मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः त्वरमाणश्च भीतश्च लुब्धः कामी च ते दश॥"** इति एतेषां दशानां धर्मो निर्विवेकित्वं गता प्राप्ता दशधर्मगता॥१३॥ ते त्वया॥१५॥ अजर्यम् अविनाशि॥१६॥ अचक्षुषं कृत्वा वस्तुं न इच्छामि॥१८॥ विस्रम्भं विश्वासम् २२ गर्भसंकरितेषु संकीर्णजातिषु॥२४॥ **अपीति**। प्रावारः पिपीलः **'मुंगळा'** इति महाराष्ट्राः। स हि पूर्वमपक्ष एव पक्षोत्पत्तौ उत्पत्याथः पतन् पक्षिभिर्मार्यत इति प्रसिद्धम्। अन्ये तु प्रावारः पाश्चात्त्येषु **पामर** इति प्रसिद्धः। स किल कुड्यवृक्षादिगह्वरे प्राप्य उत्पद्यते स च पक्षोत्थाने सहसा उच्चैरुत्पत्य भूमौ पतितः पक्षिभिः खाद्यते तद्वदिति व्याचख्युः॥ २५॥ आर्द्रः स्निग्धः॥ २७॥ हरिरिन्द्रः फेनेन वज्रगर्भेण॥ २८॥ मत्तं मद्यादिना; प्रमत्तम् अनवहितम् २९ धार्या हृदीति शेषः॥३७॥

१ क. ख. °व सखि भ° २ ख. °शे नैव जी° ३ ख. °प्य नराः प्रा° ४ ख. °या च कि°

यतश्च पितृवाक्यार्थः कृतः स्वार्थे व्यवस्थितैः।
ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम्+
सुमनाः शुचिवाक्शुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शनः।
सुनेत्रश्च स्वतंत्रश्च शकुना नामतः स्मृताः ३६
पञ्चमः पाञ्चिकस्तत्र सप्तजातिष्वजायत।
षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद्ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः॥ ३७
तेषां तु तपसा तेन
सप्तजातिकृतेन वै।
योगस्य चापि निर्वृत्त्या
प्रतिभानाच्च शोभनात्॥ ३८
पूर्वजातिषु यद्ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै।
तथैवावस्थिता बुद्धिः संसारेष्वपि वर्तताम्॥
ते ब्रह्मचारिणः सर्वे विहङ्गा ब्रह्मवादिनः।
योगधर्ममनुध्यान्तो विहरन्ति स्म तत्र ह ४०
तेषां तत्र विहङ्गानां चरतां सहचारिणाम्।
नीपानामीश्वरो राजा विभ्राजः पौरवान्वयः
विभ्राजमानो वपुषा प्रभावेन समन्वितः।
श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्प्रविवेश ह॥ ४२
स्वतन्त्रश्च विहङ्गोऽसौ स्पृहयामास तं नृपम्।
दृष्ट्वा यान्तं श्रियोपेतं भवेयमहमीदृशः॥ ४३
यद्यस्ति सुकृतं किञ्चित्तपो वा नियमोऽपि वा
खिन्नोऽस्मि ह्युपवासेन तपसा निष्फलेन च

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे
एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

## चक्रवाकवर्णनम्।

## २२

मार्कण्डेय उवाच।
ततस्तं चक्रवाकौ द्वावूचतुः सहचारिणौ।
आवां ते सचिवौ स्यावस्तव प्रियहितैषिणौ।
तथेत्युक्त्वा च तस्यासी-
त्तदा योगात्मिका मतिः।
एवं ते समयं चक्रुः शुचिवाक्तमुवाच ह
यस्मात्कामप्रधानस्त्वं योगधर्ममपास्य वै।
एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद्वाक्यं निबोध मे॥ ३
राजा त्वं भविता तात काम्पिल्ये नात्र संशयः
भविष्यतः सखायौ च द्वाविमौ सचिवौ तव
शप्त्वा चाऽनभिभाष्यांस्तां-
श्चत्वारश्चक्रुरण्डजाः।
तांस्त्रीनभीप्सतो राज्यं
व्यभिचारप्रदर्शितान्॥ ५
शप्ताः खगास्त्रयस्ते तु योगभ्रष्टा विचेतसः।
तानयाचन्त चतुरस्त्रयस्ते सहचारिणः॥ ६

पञ्चम इति चतुर्थस्य नाम॥ ३६॥ पञ्चमो वाग्दुष्टादिषु पञ्चसङ्ख्यापूरणः। कविनामा सप्तमे जन्मनि भाविनि पाञ्चिको नाम राजाऽमात्योऽभूत्। षष्ठः खसृमः सः कण्डरीकनामा भावी। सप्तमः पितृवर्ती स ब्रह्मदत्तो भावी॥ ३७॥ निर्वृत्त्या निष्पत्त्या। प्रतिभानात् पूर्वजन्मकर्मस्फुरणात्॥ ३८॥ ब्रह्म वेदः श्रुतं पाठतोऽर्थतश्चाधिगतम्॥ ३९॥ स्वतन्त्राख्यः सप्तमो हंसः॥ ४३॥ निष्फलेन निःसुखेन॥ ४४॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायामेकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

२२

द्वाविंशे पूर्वजैः शप्ता अण्डजैरण्डजास्त्रयः॥
पुनस्तेषु प्रसादश्च प्रसन्नैः कृत ईर्यते॥ १॥

ततस्तम्॥१॥ शुचिवाक् द्वितीयो हंसः॥ २॥ वाक्यं शापरूपम्॥३॥ शापमेवाह-राजेति॥४॥ ते चत्वारस्तांस्त्रीन् शप्त्वाऽनभिभाष्यान् भाषणानर्हान् चक्रुः। शापे हेतुः, व्यभिचारप्रधर्षितानिति। व्यभिचारो योगधर्मभ्रंशः॥ ५॥ चतुरः चतुःसङ्ख्याकान्॥ ६॥

१ क. ततो जातिं च ज्ञानं च ते २ क. °त्तरम्। +'निःस्पृहो निर्ममः' इत्यारभ्य 'प्रापुर्गुणोत्तराम्' इत्यन्तं श्लोकपञ्चकं खपुस्तके नास्ति। ३ ख. स्वतन्त्रश्चक्रवाकस्तु स्पृहयामास तं नृप। ४क.ख. खिन्नो ह्यस्म्युपवासेन त° ५ ख° क्त्वा तु त° ६ ख. °क्तमभाषत। ७ ख. शप्ता तानभिभाष्याथ चत्वा°

तेषां प्रसादं ते चक्रुरथैतान्सुमनाऽब्रवीत् ।
सर्वेषामेव वचनात्प्रसादानुगतं वचः ॥ ७
अन्तवान्भविता शापो युष्माकं नात्र संशयः
इतश्च्युताश्च मानुष्यं प्राप्य योगमवाप्स्यथ॥८
सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च स्वतन्त्रोऽयं भविष्यति ।
पितृप्रसादो ह्यस्माभिरस्य प्राप्तः कृतेन वै ९
गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्य उपकल्प्यताम्
अस्माकं ज्ञानसंयोगः सर्वेषां योगसाधनः १०
इमं च वाक्यसंदर्भं श्लोकमेकमुदाहृतम् ।
पुरुषान्तरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ ११

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## हंसवर्णनम् ।

## २३

मार्कण्डेय उवाच ।
ते योगधर्मनिरताः सप्त मानसचारिणः ।
पद्मगर्भोऽरविन्दाक्षः क्षीरगर्भः सुलोचनः १
उरुबिन्दुः सुबिन्दुश्च हैमगर्भस्तु सप्तमः । *
वाय्वम्बुभक्षाः सततं शरीराण्युपशोषयन् २
राजा विभ्राजमानस्तु वपुषा तद्वनं तदा ।
चचारान्तःपुरवृतो नन्दनं मघवानिव ॥ ३
स तानपश्यत्खचरान्योगधर्मात्मकान्नृप ।
निर्वेदाच्च तमेवार्थमनुध्यायन्पुरं ययौ ॥ ४
अणुहो नाम तस्याऽऽसीत्पुत्रः परमधार्मिकः ।
अणुर्धर्मरतिर्नित्यमणुं सोऽध्यगमत्पदम् ॥ ५
प्रादात्कन्यां शुकस्तस्मै कृत्वीं पूजितलक्षणां
सत्यशीलगुणोपेतां योगधर्मरतां सदा ॥ ६
सा ह्युद्दिष्टा पुरा भीष्म पितृकन्या मनीषिणी
सनत्कुमारेण तदा सन्निधौ मम शोभना ॥ ७
सत्यधर्मभृतां श्रेष्ठा दुर्विज्ञेया कृतात्मभिः ।
योगा च योगपत्नी च योगमाता तथैव च ८
यथा ते कथितं पूर्वं पितृकल्पेषु वै मया ।
विभ्राजस्त्वणुहं राज्ये स्थापयित्वा नरेश्वरः॥
आमन्त्र्य पौरान्प्रीतात्मा
ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
प्रायात्सरस्तपश्चर्तुं
यत्र ते सहचारिणः ॥ १०
स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः ।
त्यक्त्वा कामांस्तपस्तेपे सरसस्तस्य पार्श्वतः

सर्वेषां वचनात् वचनं प्राप्य वचोऽब्रवीत् । अडभावः सन्धिर्वाऽऽर्षः ॥ ७ ॥ अस्य अनेन कृतेन उपदेशेनेति शेषः ॥ ९ ॥ उपदेशमेवाह-**गामिति** । प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणादिभिः संस्कारैः संस्कृत्य धर्मेण पितृयज्ञविधिना अस्माकम् अस्माभिस्तां पितृभ्य उपकल्प्य ज्ञानयोगः प्राप्तः इति शेषः । तस्य विशेषणं योगसाधन इति ॥१०॥ इमं वक्ष्यमाणं सप्तव्याधा दशार्णेष्वितिश्लोकद्वयरूपम् । पुरुषान्तरितं पुरुषान्तरव्यवधानेन उच्चरितं श्रुत्वा ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायां द्वाविंशोध्यायः ॥२२॥

२३

**त्रयोविंशे चतुर्भिर्यत्प्रोक्तं तच्च तथाऽभवत् । काम्पिल्ये प्रोच्यते जन्म तेषां कुवल्तुग्रये॥१॥**

**ते योगेति** । ते हंसाः उपशोषयन् शोषितवन्त इत्युत्तरेणान्वयः ॥ १ ॥ अडभाव आर्षः ॥ २ ॥ वपुषैव चचार नतु यानेन ॥ ३ ॥ अपश्यत् ऐकाग्र्यादिना बाह्यलक्षणेन योगधर्मात्मकान् ज्ञातवान् । निर्वेदात् पक्षिष्वपि योगोऽस्ति मानुषेऽपि मयि नास्तीति धिङ्मामित्यात्मन्यौदासीन्यात् ॥ ४ ॥ अणून् सूक्ष्मान् अर्थान् हन्ति प्राप्नोतीत्यणुहपदं निर्वक्ति । **अणुधर्मेति** ॥५॥ पितृणां बर्हिषदां कन्या. पीवरीनाम्नी ॥ ७ ॥ योगा स्वयं योगवती ॥ ८ ॥ यत्र ते हंसाः ॥ १० ॥

१ ख. "दं चक्रुस्ते अथैनान् सु", क. "रथैनान्सु" २ ख. "सादादुत्तमात्तथा । ३ क. ख. "कल्पनाम् । ४ घ. वाक्संदर्भं श्लो" *पद्मगर्भेति श्लोकार्धद्वयं कपुस्तके नास्ति, किंतु तत्स्थाने " हंसा जाता महात्मानो मानसेषु सरस्सु च । सुमनाः सुवाक् शुद्धश्च तत्त्वदर्शी च तत्त्ववित् । सुनेत्रश्च सुहोत्रश्च द्विजा नामभिरेव च । ते ब्रह्मचारिणः सर्वे विहगाः कामचारिणः " इति श्लोकार्धचतुष्टयं वर्तते । ५ क. ख. "कान्नृपः । ६ क. ख. सत्त्वशी"

स राजानमथान्विच्छन्सहमन्त्रिणमच्युतम् ।
न ददर्शान्तरं किञ्चिच्छ्लोकं श्रावयितुं तदा ॥
अथ राजा सरःस्नातो[1] लब्ध्वा नरायणाद्वरम्
प्रविवेश पुरीं प्रीतो रथमारुह्य काञ्चनम् ।
तस्य रश्मीन्प्रत्यगृह्णात्कण्डरीको द्विजर्षभः॥
चामरं व्यजनं चापि बाभ्रव्यः समवाक्षिपत् ॥
इदमन्तरमित्येव ततः स ब्राह्मणस्तदा ।
श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ
सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे २०
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं *यूयं किमवसीदथ॥२१
तच्छ्रुत्वा मोहमगमद्ब्रह्मदत्तो नराधिपः ।
सचिवश्चास्य पाञ्चाल्यः कण्डरीकश्च[2] भारत॥
स्रस्तरश्मिप्रतोदौ तौ पतितव्यजनावुभौ ।
दृष्ट्वा बभूवुरस्वस्थाः पौराश्च सुहृदस्तथा॥ २३
मुहूर्तमेव राजा स सह ताभ्यां रथे स्थितः ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां प्रत्यागच्छदरिन्दमः॥२४
ततस्ते तत्सरः स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च ।
ब्राह्मणं विपुलैरर्थैर्भोगैश्च समयोजयन् ॥ २५
अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिन्दमम्
जगाम ब्रह्मदत्तोऽथ सदारो वनमेव ह ॥ २६
अथैनं[3] सन्नतिर्धीरा देवलस्य सुता तदा ।
उवाच परमप्रीता योगाद्वनगतं नृपम् ॥ २७
जानन्त्या ते महाराज पिपीलिकरुतज्ञताम् ।
चोदितः क्रोधमुद्दिश्य सक्तः कामेषु वै मया ॥
इतो वयं गमिष्यामो गतिमिष्टामनुत्तमाम् ।
तव चान्तर्हितो योगस्ततः संस्मारितो मया
स राजा परमप्रीतः पत्न्याः श्रुत्वा वचस्तदा
प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम्३०
कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा साङ्ख्ययोगमनुत्तमं
प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन[4] कर्मणा ॥
क्रमं प्रणीय पाञ्चाल्यः
शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम् ।
योगाचार्यगतिं प्राप
यशश्चाग्र्यं महातपाः ॥ ३२
एवमेतत्पुरावृत्तं मम प्रत्यक्षमच्युत ।
तद्धारयस्व गाङ्गेय श्रेयसा योक्ष्यसे ततः ॥ ३३
ये चान्ये धारयिष्यन्ति तेषां चरितमुत्तमम् ।
तिर्यग्योनिषु ते जातु न गमिष्यन्ति कर्हिचित्
श्रुत्वा चेदमुपाख्यानं महार्थं महतां गतिम् ।
योगधर्मो हृदि सदा परिवर्तति भारत ॥ ३५
स तेनैवानुबन्धेन कदाचिल्लभते शमम् ।
ततो योगगतिं याति शुद्धां तां भुवि दुर्लभां

वैशम्पायन उवाच ।

एवमेतत्पुरा गीतं मार्कण्डेयेन धीमता ।
श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य सोमस्याप्यायनाय वै ॥
सोमो हि भगवान्देवो लोकस्याप्यायनं परम्
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन तस्य वंशं निबोध मे ॥ ३८

---

अन्तरमवसरम् ॥ १६ ॥ सरःस्नातः सरसि स्नातः ॥ १७ ॥ बाभ्रव्यः पाञ्चालः ॥ १८ ॥ इदमन्तरमित्येव अयमवसर इति मत्वा ॥१९॥ **ते इति** । तेषां मध्येऽभिजाताः कुलीनाश्चत्वारो वयमिति शेषः । यूयं त्रय इति शेषः । अवसीदथ योगाद् भ्रष्टतया विशीर्णाः स्थ ॥ २१ ॥ स्रस्तरश्मिप्रतोदौ तावित्यत्र समुदायिधर्मेण समुदायो विशेष्यते । तर्कं पिबन्तावित्यत्र पिबदपिबत्समुदाये पिबन्ताविितिवत् । छत्रिणो गच्छन्तीत्यत्र छत्र्यच्छत्रिसमुदाये वा लिंगसमवायाच्छात्रिण इति विशेषणं तद्वत् । एवं पतितव्यजनावित्यपि ॥ २३ ॥ प्रत्यागच्छत् पुरामिति शेषः ॥२४॥ तं योगं पूर्वजन्मनि अभ्यस्तम् ॥ २५ ॥ **अथैनामिति** । या गुरोर्दोग्ध्री कौशिकदायादैः पित्रर्थं प्रयुक्ता सैव भार्यारूपेण राजानमेत्य योगं स्मारितवती प्रत्युपकारायेति केचित्पौराणिकीं कथामाचक्षते । योगाद्धेतोः ॥ २७ ॥ साङ्ख्यं प्राप्य योगमतिः योगानिष्ठः । पाठान्तरे साङ्ख्यं योगगतिं च प्राप्येत्यन्वयः ॥३१॥ क्रमं बैदिकप्रसिद्धं प्रणीय विरच्य शिक्षां वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नपूर्वकमुच्चारणसंप्रदायम् ॥३२॥ एतत् श्राद्धमाहात्म्यम् ॥३३॥ तेषां वाग्दुष्टादीनाम् ॥३४॥ परिवर्तति सर्वभावेन तिष्ठति ॥ ३५ ॥ तेनैव हृदि योगावस्थानेन ॥ ३६ ॥ **एवमिति** । श्राद्धस्य फलं पितॄणां तृप्तिः सा च सोमाप्यायनद्वारा भवति । " तदेतद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति " इति सोमस्य देवान्नत्वश्रवणात् देवभावं गताः पितरः साक्षादेव सोमं पिबन्तीत्यर्थः ॥३७॥ ये तु भूमौ सन्ति तेऽपि सोमद्वारैव तृप्यन्तीत्याह—**सोमो हीति** । भूमिस्थान् पितॄन् दिव्यौषध्यादिद्वारा सोमस्तर्पयतीत्यर्थः । एतेन " अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुप-

---

१ ख. शिरःस्नातो ल॰ * 'दूरं किमवसीदथ' 'यूयं तेभ्योऽवसीदथ' इति च पाठद्वयं गपुस्तके दर्शितम् । २ क. ख. ॰कस्तथैव च । ३ ख. अथ तं स॰ ४ ख. ॰द्धः स्वेन क॰ ५ क. ख. शिक्षामुत्पाद्य के॰ ६ ख. ॰ति सिद्धानां भु॰

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पसमाप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## सोमोत्पत्तिवर्णनम् ।

## २५

वैशम्पायन उवाच ।

पिता सोमस्य वै राजञ्जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः ।
ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥ १
तत्रात्रिः सर्वभूतानां तस्थौ स्वतनयैर्युतः ।
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव चचार सः
अहिंस्रः सर्वभूतेषु धर्मात्मा संशितव्रतः ।
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥ ३
अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम्
तत्रोर्ध्वरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य ह ।
सोमत्वं तनुरापेदे महासत्त्वस्य भारत ॥ ५
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः ।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद्दिशः ६
तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥
स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः
पपात भासयँल्लोकाञ्छीतांशुः सर्वभावनः ॥ ८
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः
ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुन्धराम् ॥ ९
पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया १०
स हि वेदमयस्तात धर्मात्मा सत्यसंग्रहः ।
युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम् ॥
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि ।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त ये श्रुताः ॥ १२
तथैवाङ्गिरसस्तत्र भृगुरेवात्मजैः सह ।
ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुलैरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥ १३

तिष्ठते" इति स्मृतेः । ब्राह्मणाग्नौ स्मार्ताग्नौ श्रौताग्नौ वा पितॄनुद्दिश्य यद्धुतं तदादित्यं गच्छति । आदित्यस्य सुषुम्नाख्येन रश्मिना सोमस्याप्यायनं भवति । ततः पितॄणां तृप्तिरिति सर्वेषां पूर्वेषां पूर्वत्वादादित्य एव श्राद्धदेवो मुख्य इत्युत्तरं पूर्वकृतस्य कथं वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वत इति प्रश्नस्य निगूढमिति दिक् ॥ ३८ ॥ इति हरिवंशे टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

**पञ्चविंशे तथाऽध्याये सोमस्यात्रेः समुद्भवः ॥**
**तस्यापत्यसमुत्पत्तिस्तस्माद्वंशश्च कीर्त्यते ॥ १**

पिता मानसात् संकल्पात् विधित्सतः विधातुमिच्छतः ॥ १ ॥ तत्र प्रजासर्गे तस्थौ निष्ठावानभूत् । अत एव सोऽत्रिः भूतानां शुभान्येव स्वतनयैः सह कर्मादिना आचचार ॥ २ ॥ काष्ठादिवन्निश्चेष्टः ॥ ३ ॥ अनुत्तरं नाम मौनाख्यं सर्वेन्द्रियनिग्रहरूपम् ॥ ४ ॥ अनिमिषस्य निमेषरहितस्येत्यनेन सूर्यादिबाह्यज्योती रश्मिषु धारणा तस्याः बलसाम्यत्वं सोमवत् शुक्लभास्वररूपत्वं कीटभृङ्गन्यायेन ध्येयसारूप्यं प्राप्त इत्यर्थः । * महासत्त्वस्येत्यनेन तापकस्य रजसोऽभावात् शान्तप्रकाशतेजोरूपत्वं दर्शितं तत्त्वाः ॥ ५ ॥ भावितात्मनः शुद्धशान्तप्रकाशशुक्लभास्वररूपेण तेजसा रञ्जितशरीरस्य नेत्राभ्यां नेत्रतः सोमत्वम् । उक्तरूपं तेजः ऊर्ध्वमाचक्रमे । तत्र प्रकारमाह **वारीति** । वारि जलं भूत्वा सुस्रावेति ॥ ६ ॥ देव्यो दिग्देवताः न च समशक्नुवन् धारयितुम् ॥ ७ ॥ ताभ्यः सकाशात् सर्वभावनः ओषध्यादिद्वारेण सर्वेषामाप्यायनकरः ॥ ८ ॥ ताभिः ताभ्यः सहैव युगपदेव ॥ ९ ॥ पतितं लतारूपेण स्थितम् आलोक्य ॥ १० ॥ रथस्वरूपमाह—**स हीति** । वेदमयः वेदैर्दारुभिरिव निर्मितः । धर्मो वियदादिः तत्स्वरूपो धर्मात्मा सत्यं ब्रह्म संगृह्यते ज्ञानेन आत्मसात्क्रियत इति सत्यसंग्रहः वाजिस्थानीया मन्त्राः ॥ ११ ॥ परमात्मनि विष्णुरूपे अत एव यागे सोमं रथेनानीय तस्य आतिथ्यार्थं वैष्णवीमिष्टिं निर्वपन्ति याज्ञिकाः ॥ १२ ॥ ऋग्भिरित्यनेनैव तदारूढानि सामान्यपि लक्ष्यन्ते बहुलैर्बहुभिः ॥ १३ ॥

* अनिमिषस्येत्यारभ्य प्राप्त इत्यर्थ इत्यन्तष्टीकाग्रन्थः कपुस्तके नास्ति ।

तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः।
आप्यायमानं लोकांस्त्रीन्भासयामास सर्वशः
स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम्।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम्॥
तस्य यच्च्यावितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत।
ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा प्रज्वलन्त्युत॥
ताभिर्धार्यास्त्रयो लोकाः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः
पोष्टा हि भगवान्सोमो जगतो जगतीपते॥
स लब्धतेजा भगवान्संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः।
तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश॥ १८
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत्
निधिस्तासामभूद्देवः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा॥
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च जनमेजय॥२०
सोऽभिषिक्तो महाराज
राजराज्येन राजराट्।
लोकांस्त्रीन्भासयामास
स्वभासा भास्वतां वरः॥
सप्तविंशतिमिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः।
ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः॥
स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां वरः।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम्॥ २३
होताऽस्य भगवानत्रि-
रध्वर्युर्भगवान्भृगुः।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान्॥ २४
सदस्यस्तत्र भगवान्हरिर्नारायणः स्वयम्।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः॥ २५
दक्षिणामददात्सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भारत २६
तं सिनिश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे॥
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन्दिशः॥
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यं मुनिसत्कृतम्।
विबभ्राम मतिस्तात विनयादनयाऽऽहता॥
बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम्
जहार तरसा सर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान्॥ ३०
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिः सह।
नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा।
स संरब्धस्ततस्तस्मिन्देवाचार्यो बृहस्पतिः॥

आप्यायमानम् "अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायताम्" इति मन्त्रेण ऋत्विग्भिः पुष्टीक्रियमाणं तेजो दिवि मण्डलरूपेण स्थित्वा सर्वांल्लोकानवभासयति॥१४॥ सः ब्रह्मा तेन सोमवता रथमुख्येन॥१५॥ तस्य सोमस्य च्यावितं रथवेगेन क्षारितम्॥ १६॥ त्रयो देवपितृभूतलोकाः चत्वारो नरपशुपक्षिसरीसृपाः भूरादयो जरायुजादयश्चेत्यन्ये॥ १७॥ यथा दशवारमावृत्ता नव नवतिरेवं दशगुणिताः दशदशतिः। तेन दशतिशब्दः षष्टिसप्ततिवत् शतवाची। तेन सहस्रं पद्मानां वत्सराणामित्यर्थः॥ १८॥ हिरण्यवर्णाः रजतवत् शुक्लाः। "हिरण्यं स्वर्णरूप्ययोः" इति **विश्वः**। तासामपां निधिराश्रयः अत एव मणिद्वारा चन्द्रो जलं क्षरति सूर्यं इवाग्निम्। तेन यथाऽर्को भासां निधिरेवं चन्द्रोऽपां निधिः॥१९॥ राजराज्येन साम्राज्यविधानेन॥ २१॥ इन्दोः भार्या इति शेषः॥ २२॥ सोमवतां पितॄणां वरः पतिः। "सोमः सुधांशुकर्पूरकुबेरपितृदैवते।" इति **विश्वः**। सहस्रशतं लक्षं गावो दक्षिणा यस्मिन्॥२३॥ हिरण्यगर्भः अङ्गिराः तस्यारण्यके सूत्रावतारत्वावगमात्। हिरण्यगर्भत्वं ब्रह्मा वासिष्ठश्चतुर्मुखो वा॥ २४॥ सदस्यः उपद्रष्टा। "**सप्तदशर्त्विक्सदस्यं सप्तदशं कौषीतकिनः समामनन्ति स कर्मणामुपद्रष्टा भवति**" इति गृह्यात्॥ २५॥ सदस्येभ्यः सभ्येभ्यः॥ २६॥ सिनिः सिनीवाली खण्डपर्वणि या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली या उत्तरा सा कुहूः तत्साहचर्यात् द्युतिपुष्टी अपि पूर्वोत्तरपौर्णमास्यौ सिषेविरे नित्यमिति शेषः। अश्विन्यादयस्तु पर्यायेणैव सेवन्त इति भावः॥ २७॥ प्राप्य ताभिः सहेति शेषः। अन्यथा तत्कीर्तनवैयर्थ्यापत्तिः अत एव स्वमूर्त्या सह दशधा दशभिः प्रकारैर्दिशो दश भासयन्नित्युक्तम्॥ २८॥ विबभ्राम ऐश्वर्यमदेन विनयात् चलिता। अनयेन अनीत्या आहता ताडिता॥ २९॥ अनयमेवाह—**बृहस्पतेरिति**॥३०॥ व्यसर्जयत् दत्तवान्। तस्मिन् सोमे बृहस्पतिः संरब्धो युद्धायोद्युक्तोऽभूत्। सार्द्धश्लोकः॥ ३१॥

१ ख. सर्वतः। २ ख. समुत्पन्नास्ते'. ३ क. °स्तवैः स्वैश्च ४ क. ख. त्रींल्लोकान्भा' ५ ख. °श्वर्यमृषिसंस्तुतम्। ६ क. °सा सोमोऽव°

उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तदा ।
स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वं बृहस्पतेः
तेन स्नेहेन भगवान्रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः ।
पार्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याजगवं धनुः॥ ३३
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।
उद्दिश्य दैत्यानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ३४
तत्र तद्युद्धमभवत्प्रख्यातं तारकामयम् ।
देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् ३५
तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव भारत ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥ ३६
ततो निवार्योशनसं रुद्रं[1] ज्येष्ठं च शङ्करम् ।
ददावङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥ ३७
तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा तारां प्राह बृहस्पतिः ।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥
अयोनावुत्सृजत्तं सा कुमारं दस्युहन्तमम् ।
इषीकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम्॥
जातमात्रः स भगवान्देवानामाक्षिपद्वपुः ।
ततः संशयमापन्ना इमामकथयन्सुराः[2] ॥ ४०
सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ।
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा साध्वसाधु वा

तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ।
तं निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम्
तदत्र[3] तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ।
सा प्राञ्जलिरुवाचेद ब्रह्माणं वरदं प्रभुम्[4] ॥ ४३
सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम् ।
ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ।
प्रतिकूलं च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥ ४५
उत्पादयामास ततः पुत्रं वै राजपुत्रिका ।
तस्यापत्यं महाराजो बभूवैलः पुरूरवाः ॥४६
उर्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः ।
प्रसह्य धर्षितस्तत्र सोमो वै राजयक्ष्मणा ४७
ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः ।
जगाम शरणार्थाय पितरं सोऽत्रिमेव तु ४८
तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महातपाः ।
स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वतः[5]
एवं सोमस्य वै जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्धनम्[6] ।
वंशमस्य महाराज कीर्त्यमानं च मे शृणु॥५०
धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं संकल्पसाधनम् ।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सोमोत्पत्तिकथने
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

**उशनेति** ॥ तस्याकार्यकारित्वादसुरत्वं प्राप्तस्य सोमस्य दैत्यगुरुत्वादुशना शुक्रः ॥ पार्ष्णिं जग्राह । तदाह । तस्मिन्नेव काले आङ्गिरसोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रः बृहस्पतेः पार्ष्णिग्राहोऽभूदिति द्वयोः संबन्धः। तत्र हेतुः-**स हीति**। स रुद्रो बृहस्पतेः पितुः अङ्गिरसः शिष्यः ॥ ३२ ॥ तेन गुरुपुत्रस्नेहेनेति । आजगवम् अजस्य गोश्च शृङ्गाभ्यां निर्मितम् । अजस्य रुद्रस्य गौः वृषभः नन्दी तेन शिवसारूप्यं प्राप्य योगात्कामरूपत्वं च प्राप्य यत्पूर्वं स्वशरीरमुत्सृष्टं तस्य शृङ्गाज्जातम् आजगवमिति वा ॥ ३३ ॥ तेन रुद्रेण एषां दैत्यानाम् ॥ ३४ ॥ तारकामयं तारानिमित्तत्वात्प्रधानम् ॥ ३५ ॥ शिष्टा धर्मपराः देवाः बृहस्पतिपक्षीयाः तुषः दोषकञ्चुकं संजातं येषां ते गुरुदारहर्तुः सोमस्य पक्षपातिनस्तुषिता देवाः ॥ ३६ ॥ ददौ प्रत्यर्पयत् ॥ ३७ ॥ अन्तःप्रसवां गर्भवतीम् ॥ ३८ ॥ अयोनौ अस्थाने । तदेवाह-**इषीकेति** । दस्युहन्तमम् अतिशयेन दस्यूनां हन्तारम् ॥ ३९ ॥ अक्षिपत् स्वतेजसा तिरश्चकार ॥ ४० ॥ पप्रच्छ मातरं विना ब्रह्मापि गर्भस्य धातारं न वेदेति भावः ॥ ४२ ॥ धाता गर्भस्याधायकः तत एव प्रजायाः पतिः रेतःसिक्तः पुत्रो नक्षत्रपतेरिति भावः । तथा च श्रुतिः- "**जनयितुः पुत्रो भवति साम्पराये मोघं वेत्ता कुरुते तन्तुमेतम्**" इति ॥ ४४ ॥ सूर्योदयेऽर्कसांनिध्यात्प्रायेणास्तङ्गत एव भवति यदा तूदेति तदा उत्पातं जनयतीत्याह—**प्रतीति** ॥ ४५ ॥ ततः बुधात् वैराजो मनुस्तस्य पुत्रिका इला ॥ ४६ ॥ यस्य पुरूरवसः तत्र औद्धत्ये निमित्ते सति ॥ ४७॥ प्रक्षीणमण्डलः अल्पपरिधिः ॥ ४८ ॥ इति हरिवंशे टीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

१ ख. तं वै रुद्रं च शंकरम् । २ क. पन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः । ३ क. यद ४ ख. °दं शनैः । ५ ख. सर्वशः । ६ ख. एतत्सोमस्य वै.

## ऐलोत्पत्तिवर्णनम् ।

# २६

वैशम्पायन उवाच ।

बुधस्य तु महाराज विद्वान्पुत्रः पुरूरवाः ।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः॥ १
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः ।
आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः २
सत्यवादी पुण्यमतिः काम्यः संवृतमैथुनः ।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाऽप्रतिमः सदा ॥३
तं ब्रह्मवादिनं क्षान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ।
उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ४
तया सहावसद्राजा वर्षाणि दश पञ्च च ।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भारत
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥ ६
उत्तरान्स कुरून्प्राप्य मनोरथफलद्रुमान् ।
गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे ॥ ७
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।
राज्यं च[2] कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥ ९
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः ।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः ।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ ११

जनमेजय उवाच ।

गान्धर्वी[3] चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम्
देवानुत्सृज्य संप्राप्ता तन्नो[4] ब्रूहि बहुश्रुत ॥ १२

वैशम्पायन उवाच ।

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत ।
ऐलं तु सा वरारोहा समयात्समुपस्थिता १३
आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह ।
अनग्नदर्शनं चैव सकामायां च मैथुनम् ॥ १४
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः
घृतमात्रो तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव॥
यद्येष समयो राजन्यावत्कालं च ते दृढः ।
तावत्कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः
तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत् ।
एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी ॥ १७
वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता ।
उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः

गन्धर्वा ऊचुः ।

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना
समागच्छेत्पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम् ॥ १९
ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः ।
मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा॥
व्युत्क्रान्तसमयं सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा।
तदहं वेद्म्यशेषेण यथा भेत्स्यत्यसौ नृपः२१
ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः॥२२
निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः ।
मातृवद्वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥ २३
गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी ।
राजानमब्रवीत्तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा॥ २४

---

२६

षड्विंशे वर्ण्यते वंशः पुरूरवस एव च ॥
उर्वश्यामथ संप्राप्तिस्त्रेताग्नेर्भुवि दुर्लभा ॥१॥

बुधस्येति ॥ १ ॥ शत्रुभिर्दुर्जय इति संबन्धः ॥२॥ काम्यः कामनीयः ॥ ३ ॥ मानं देवभोग्याऽहं कथं मानुषं गच्छेयमिति गर्वम् ॥ ४ ॥ तयेति । दशादिसंख्याष्टकं क्रमात् उत्तरस्थेन चैत्ररथादिस्थानाष्टकेनान्वेति ॥ ५ ॥ विशालायां बदर्याम् ॥ ६ ॥ दिवि स्वर्गे जाताः ॥ १० ॥ घृतमात्रा घृतस्य लेशः एकं कालं सकृदित्यर्थः । घृतस्य स्तोकं सकृदहमश्नामीति लिङ्गात् ॥ १५ ॥ त्वत्तः त्वयि ॥ १६ ॥ एकोनषष्टिं पूर्वोक्तदशादिसङ्ख्यानां संकलनात् ॥ १८ ॥ भेत्स्यति समयम् ॥२१॥ अह्रियत हृतः एवमुक्त इति संबन्धः ॥ २४ ॥

---

1 ख. °मस्तदा । २ ख. °ज्यं स का° ३ क. ख. गन्धर्वी उर्वशी दे° ४ क. ख. तन्मे ब्रूहि ब° ५ क. °मात्रं त°

एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत ।
नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत् ॥
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः ।
द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम् ॥ २६
पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो ।
एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥
मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्यथ ।
उत्पादिता सुमहती ययौ तद्भवनं महत् ॥ २८
प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत ।
नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साऽप्सरा कामरूपिणी[1]*
उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे[2] ।
अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥ ३०
चचार पृथिवीं सर्वां[3] मार्गमाण इतस्ततः ।
अथापश्यत्स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ ३१
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम्
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम्
तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः
सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमाविदूरतः ॥ ३३
उर्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः[8] ।
यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ३४
समाविग्नास्तु ताः सर्वाः पुनरेव नराधिप ।
जाये[4] ह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ३५
एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत[5] ।
उर्वशी चाब्रवीदैलं सगर्भाऽहं त्वया प्रभो ३६
संवत्सरात्कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः ।
निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह ॥
हृष्टो जगाम राजाऽथ स्वपुरं तु महायशाः ।
गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत् ॥ ३८
उषितश्च तया सार्द्धमेकरात्रं महायशाः ।
उर्वश्यथाब्रवीदैलं गन्धर्वा वरदास्तव ॥ ३९
तान्वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैनांस्त्वमेव हि ।
वृणीष्व समतां राजन्गन्धर्वाणां महात्मनाम्
तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ।
पूरयित्वाऽग्निना स्थालीं गन्धर्वाश्च[6] तमब्रुवन्
अनेनेष्ट्वा च लोकान्नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप
तानादाय कुमारांस्तु नगरायोपचक्रमे ॥ ४२
निक्षिप्याग्निमरण्ये तु सपुत्रस्तु गृहं ययौ ।
स त्रेताऽग्निं[7] तु नापश्यदश्वत्थं तत्र दृष्टवान् ॥
शमीजातं तु तं दृष्ट्वा अश्वत्थं विस्मितस्तदा ।
गन्धर्वेभ्यस्तदाशंसदग्निनाशं ततस्तु सः ॥ ४४
श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणीं तु समादिशत् ।
अश्वत्थादरणीं कृत्वा मथित्वाऽग्निं यथाविधि
मथित्वाऽग्निं त्रिधा कृत्वा अयजत्स नराधिपः
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् ॥ ४६
गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत् ।
एकोऽग्निः पूर्वमेवासीदैलस्त्रेतामकारयत् ॥ ४७
एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तम ।
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ॥ ४८
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ।
उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिर्नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

जायया प्रधावितः ॥ २७ ॥ पदं गतिचिह्नम् ॥ २८ ॥ उरणौ मेषौ गृह्य गृहीत्वा ॥ ३० ॥ हैमवत्यां हैमानि सौवर्णानि पद्मादीनि तद्वत्यां हैमवतीसंज्ञायामिति वा ॥ ३२ ॥ समाविग्नाः पुनरुर्वशीगमनशङ्कया "**हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे**" इति सूक्तादिमर्थतः पठति – **जाये इति** । हये इत्यस्य व्याख्यानं वचसीति हये तिष्ठेति संबन्धात् जाये इत्यस्याः संबुद्धेः पादादिस्थत्वादाद्युदात्तत्वम् ॥ ३५ ॥ सगर्भाऽहमित्युपगमनानर्हत्वमुक्तम् ॥ ३६ ॥ समतां सारूप्यं सालोक्यं वा ॥ ४० ॥ निक्षिप्येत्यनेन पुत्रान् अग्निं च सह पुरं न प्रवेशयेदिति दर्शितम् । सः त्रेताऽग्निं ग्रामाद्बहिः प्राङ् निहितं तत्र गत्वा स्वस्थाने नापश्यत् अपि तु अश्वत्थं दृष्टवान् । तत्राग्निस्थाने अभ्येत्याग्निमित्यपि पठन्ति ॥ ४३ ॥ तम् अश्वत्थं शमीजातं शमीगर्भोत्पन्नं नाशम् अदर्शनं नाशतस्तु सः ॥ ४४ ॥ अरणीमन्थनेनाग्न्युत्पादनार्थं काष्ठद्वयं ततोऽश्वत्थात्तत् ग्राह्यमिति समादिशत् ॥ ४५ ॥ तेषां गन्धर्वाणाम् ॥ ४६ ॥ त्रेता त्रित्ववैशिष्ट्यम् । गुण आर्षः । पृषोदरादित्वाद्वा विकारः । अग्नित्रयम् अकल्पयादित्यर्थः ॥ ४७ ॥ इति हरिवंशे टीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

१ क. कामचारिणी । *' तिरोभूतां तु तां दृष्ट्वा गन्धर्वा ह्यगमन्दिवम्' इति क. ख. पुस्तकयोरधिकः पाठः । २ क. ख. गृहम् । ३ क. ख. °र्वीं चापि मा° ४ क.: जाये हे ति° ख. जाये हो ति° । ५ क. °षताम् । ६ ख. गन्धर्वा हि त° ७ ख. अभ्येत्याग्निं तु ना° । ८ क. °स्तु पुरुषोत्तमः ।

# अमावसुवंशवर्णनम्।

## २७

वैशम्पायन उवाच।

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सर्वे[1] देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः १
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः।
अमावसोश्च[2] दायादो भीमो राजाऽथ नग्नजित्
श्रीमान्भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः३
सौहोत्रिरभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसंभवः।
आजह्ने यो महत्सत्रं सर्वमेधमहामखम् ॥ ४
पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेऽभिससार ह।
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सदः।
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥ ५
सौहित्रिरब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम ॥ ६
एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम्।
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ७
राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः।
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ॥ ८
युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्।
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गाऽर्धेन विनिर्ममे।
कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम्
जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम्।
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत्[3]॥
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्तिमांस्तथा॥
पह्लवैः सह संवृद्धिं[4] राजा वनचरैस्तदा।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमप्रभम्[5]।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्॥
पूर्णे वर्षसहस्रे वै तं तु शक्रो ह्यपश्यत।
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः॥ १४
समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः सुरोत्तमः १५
स गाधिरभवद्राजा मघवान्कौशिकः स्वयम्।
पौरुकुत्स्यभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत १६
गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा
तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः१७
तस्याः प्रीतोऽभवद्भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः।
पुत्रार्थं कारयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ १८
उवाचाहूय तां भर्ता ऋचीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव ॥१९
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः।
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥ २०

---

२७

**उच्यतेऽमावसोर्वंशः सप्तविंशे प्रधानतः।
द्वितीयस्यैलपुत्रस्य सूच्यादिन्यायतः क्रमात् १**

**ऐलेति**॥१॥ अथ नग्नजिदिति द्वितीयः पुत्रः ॥२॥ विदुषः पुत्रः सुहोत्रः ॥३॥ महत्सत्रम् अन्नदानं यत्र तं मखं सर्वमेधसंज्ञम् ॥ ४ ॥ पतिलोभेन पतिगुणलोभेन ॥ ५ ॥ जह्नोर्भार्यात्वमिच्छन्त्या गङ्गायाः दुहितृत्वप्राप्तेर्वन्ध्यसङ्कल्पत्वं जातमित्याशङ्क्याह—**युवनाश्वस्येति**। केनचिन्निमित्तेन युवनाश्वो गङ्गां मानुषी भवेति शशाप। सा च तस्यैव दुहितृत्वं प्राप्यात्मसङ्कल्पमपि सत्यं चकारेति मार्धस्यार्थः। गङ्गा स्वार्धेन कावेरीं निर्ममे। पाठान्तरे गङ्गाया अर्धेन निर्मितां कावेरीं जह्नोर्भार्यां विद्यादिति शेषः ॥ ९ ॥ राजा कुशिकः इन्द्रसमं पुत्रं लभेयमिति तपस्तेपे इत्यन्वयः। शक्रश्च मत्समोऽन्यो भविष्यतीति त्रासादभ्येत्य तस्य पुत्रो जज्ञिवान् जातः ॥१३॥ एतदेव स्पष्टयति—**पूर्णे इति**॥१४॥ स्वम् अंशं तस्य शरीरे रेतोरूपेण अवासयत् स्थापितवान् ततः भार्यायां तस्य पुत्रत्वेन कल्पयामासेत्यर्थः ॥ १५ ॥ पौरुकुत्सी पुरुकुत्सस्य पुत्री भार्या कुशिकस्याभवत् ॥ १६॥ गाधेस्तथैव चेति प्रीतः सन् पुत्रार्थं चरुं कल्पयामासेत्यर्थः ॥ १८ ॥ उपयोज्यः भक्षणीयः अयमयामिति, चरुद्वयस्य पृथक् प्रदर्शनम् ॥ १९ ॥ तस्यां तव मातरि ॥ २० ॥

---

१ क. ख. ग. सप्त दे॰ २ ख. आमाव॰। ३ क. कुशोऽभूत्तस्य चात्मजः। ४ क. संवृद्धो राजा वनचरैः सह ५ क. ख. ॰समं विभुः

तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोनिधिम्।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥ २१
एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥ २२
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकावासमभ्यगात्
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः ॥ २३
चरुद्वयं गृहीत्वा तदृषेः सत्यवती तदा।
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् २४
माता व्यत्यस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ॥ २५
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम् ॥ २६
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च।
तामब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम्॥
मात्राऽसि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्माऽतिदारुणः २८
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः।
विश्वं हि ब्रह्मतपसा मया तस्मिन्समर्पितम्॥
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा।
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्।
ब्राह्मणापसदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ३०
नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति।
उग्रकर्मा भवेत्पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात्।
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम्॥ ३१
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम्
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि॥ ३२
काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो।
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेतद्द्विजोत्तम ३३

ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात्।
भद्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रं भविष्यति ३४
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम्।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥
भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा।
यजनाद्वैष्णवेऽथांशे जमदग्निरजायत ॥ ३६
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका
रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः।
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ३९
सर्वविद्यानुगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥४०
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः।
जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥ ४१
मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः॥
जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम्।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं सप्तर्षितां गतः ४३
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्धनः ॥ ४४
विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु॥
देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान्

व्यत्यस्य विपर्यासं कृत्वा अज्ञानात् ऋषिणा तुल्यः स्वपुत्रो भूयादिति मोहात् आत्मसंस्थं चकार स्वयं भुक्तवती ॥२५॥ योगेन ध्यानेन अभ्यनुसृत्य ज्ञात्वा ॥२७॥ विश्वं ब्रह्म कृत्स्नो वेदः ॥ २९ ॥ मे मम ईदृशस्त्वत्तो ब्राह्मणापसदो ब्राह्मणाधमो मा भवेदिति संबन्धः ॥ ३० ॥ **नैष इति**-पितुर्मातुर्वा दोषात्पुत्र उग्रकर्मा भवेत्। इह तु तवैव प्रमादाच्चरुव्यत्यासो जातः न तु ममायं सङ्कल्पः तथा क्रूरप्रकारः पुत्रो भवेदित्यर्थः ॥ ३१ ॥ शमात्मकं सुतं सृजेथा इति किं पुनरिति संबन्धः ॥ ३२ ॥ **काममिति**-"आत्मा वै पुत्रनामासि" इति श्रुतेः पुत्रस्य भर्त्रभिन्नत्वात्तद्भार्यायाश्च सपत्नीतुल्यत्वेन तस्या एव एवंविधः पुत्रोऽस्तु। यदि एतदन्यथा कर्तुं न शक्यं चेत्तस्यामपि तादृशः पुत्रो मा भूदिति भावः ॥ ३३ ॥ तव मम पौत्रे विशेषो नास्ति। तस्यापि परम्परया ममात्मकत्वादिति भावः ॥ ३४ ॥ भृगोः भार्गवस्य ऋचीकस्य यजनात् देवताराधनात् वैष्णवः पालनकर्माऽप्यंशः शमात्मको जमदग्निरजायत ॥ ३६ ॥ आर्चीको जमदग्निः जामदग्न्यं रामं सुदारुणं रुद्रांशत्वात् ॥ ३९ ॥ भृगोः ऋचीकस्य प्रसादेन ॥ ४४ ॥ देवश्रवाः कतिः हिरण्याक्षश्च शालावत्यां रेणुमत्प्रभृतयो देवलान्ताः रेणुसंज्ञायाम् ॥ ४६॥

१ क. °पोधनम्। २ क. नरेश्वरः, ख. नरेश्वर. ३ क. भविष्य° ४ क. ख. °दस्त्वत्त इ° ५ ख. °विद्यान्तगं श्रे° ६ ख. और्वस्यैवमृ° ७ क. °स्य पुत्रास्तु दे°, ख. ग. °स्य तु सु°

सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः ।
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः ॥ ४७
कच्छपो हारितश्चैव
विश्वामित्रस्य वै[2] सुताः ।
तेषां ख्यातानि गोत्राणि
कौशिकानां महात्मनाम् ॥ ४८
पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ।
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कलाः ॥
लोहिता यामदूताश्च
तथा कारीषवः स्मृताः ।
सौश्रुताः कौशिका राजं-
स्तथान्ये सैन्धवायनाः ॥ ५०
देवला रेणवश्चैव याज्ञवल्कयाघमर्षणाः ।
औदुम्बरा ह्यभिष्णा[3]तास्तारकायनचुञ्चुलाः
शालावत्या हिरण्याक्षाः
सांकृत्या गालवास्तथा ।
बादरायणिनश्चान्ये[4]
विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ५२
ऋष्यंतरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः ।
पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च ।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन्ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत्किल ।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ५५
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः ।
देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥५६
देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः ।
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाऽष्टकः ५७
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥५८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वण्यमावसुवंशकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## आयुर्वंशकथनम् ।

## २८

वैशम्पायन उवाच ।
आयोः पुत्रास्तथा पञ्च सर्वे वीरा महारथाः ।
स्वर्भानुतनयायां[5] च प्रभायां जज्ञिरे नृप ॥ १
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम् ।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ २

अष्टकादयस्त्रयो दृषद्वत्याम् ॥ ४७ ॥ गोत्राणि पौत्रादयः ॥ ४८ ॥ पाणिनादयो द्वादश ॥ ४९ ॥ देवलाः देवलपुत्राः रेणवः रेणोः पौत्रा इत्यर्थः । याज्ञवल्क्यादयः षट् शालावतीपौत्राः हिरण्याक्षपुत्राः ॥ ५१ ॥ साङ्कृत्याः गालवाश्च रेणोः पौत्राः बादरायणिनश्चेत्यत्र बादरायणिर्नरश्चेति पाठान्तरम् ॥ ५२ ॥ एते साङ्कृत्यादयः ऋष्यन्तरे प्रवरभेदे विवाहो येषां ते ऋष्यन्तरविवाह्याः पौरवस्य राज्ञः ब्रह्मर्षेः वसिष्ठादिकस्य ताभ्यां सह कौशिकस्य संबन्धोऽस्तीत्यर्थः ॥५३ ॥ **भार्गव इति** । पूर्वं जमदग्नेः कनिष्ठो भ्राता शुनःशेपः इति उक्तत्वात् । श्रुतौ तु आङ्गिरसो जन्मनाऽस्याजीगर्तिः श्रुतः कविरिति तस्याङ्गिरसत्वं दृष्टं तत्कल्पान्तराभिप्रायेण ज्ञेयम् ॥५४॥ हरिदश्वस्य हरिश्चन्द्रस्य ॥ ५५ ॥ "देवा वा इमं मह्यमरासतेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस" इति श्रुत्यर्थं गृह्णाति-**देवैरिति** ॥५६॥ इति हरिवंशे टीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

— —

२८

अष्टाविंशेऽन्वय अथो उच्यते रजिविक्रमः ।
महेन्द्रस्य च्युतिः स्वर्गात्प्रतिष्ठा बुद्धिजा ततः
आयोः स्वर्भानोः राहोः ॥ १ ॥

१ क. °च्छदादयश्चै° २ ख. °स्य ते सु° ३ क. °ह्यभिग्लानास्ता° ४ ख. ग. नारायणिर्नमस्यश्च वि° ५ क. स्वर्भानोस्तन°

रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम्॥ ३
यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाऽब्रुवन्॥ ४
आवयोर्भगवन्युद्धे को विजेता भविष्यति।
ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छामि ते वचः ५
ब्रह्मोवाच।
येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः।
योत्स्यते ते जयिष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा॥ ७
ते देवदानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजेर्जये।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वाना भरतर्षभम्॥८
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत।
राजा परमतजस्वी सोमवंशप्रवर्धनः॥ ९
ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं देवाश्च दानवाः।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम्॥ १०
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः।
स्वार्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन्
रजिरुवाच।
यदि दैत्यगणान्सर्वाञ्जित्वा शक्रपुरोगमाः।
इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥
देवाः प्रथमतो भूयः प्रत्यूचुर्हृष्टमानसाः।
एवं यथेष्टं नृपते कामः संपद्यतां तव॥ १३
श्रुत्वा सुरगणानां तु वाक्यं राजा रजिस्तदा
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत॥ १४
दानवा दर्पपूर्णास्तु स्वार्थमेवानुगम्य ह।
प्रत्यूचुस्ते नृपवरं साभिमानमिदं वचः॥ १५
अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे।
अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा राजसत्तम १६

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैवं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः।
जघान दानवान्सर्वान्ये वध्या वज्रपाणिनः॥
स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी।
निहत्य दानवान्सर्वानाजहार रजिः प्रभुः १८
ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः।
रजेः पुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः १९
इन्द्रोऽसि तात देवानां
सर्वेषां नात्र संशयः।
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते
ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः॥ २०
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया।
तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्॥ २१
तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ।
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारात्तनया रजेः॥२२
पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः।
समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्॥२३
ततो बहुतिथे काले समतीते महाबलः।
हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम्
इन्द्र उवाच।
बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे।
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितः सदा॥
ब्रह्मन्कृशोऽहं विमना हृतराज्यो हृताशनः।
हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः कृतः प्रभो॥
बृहस्पतिरुवाच।
यद्येवं चोदितः शक्र त्वयाऽस्यां पूर्वमेव हि
नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्तव्यं ममानघ॥ २७
प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वत्प्रियार्थं न संशयः।
यथा भागं च राज्यं च न चिरात्प्रतिलप्स्यसे

यत्र काले समुत्पन्ने उपस्थिते॥४॥ देवेन ब्रह्मणा रजेः रजिं प्राप्य जयमिच्छन्तः सन्तः जये जयनिमित्तं भरतर्षभं रजिम् अभ्ययुः॥ ८॥ भोः शक्रपुरोगमाः भो देवाः। पाठान्तरे सुगमम्॥ १२॥ समये देवराज्यप्राप्तिरूपे तिष्ठेथाः। त्वं देवानामेव इन्द्रो भव न त्वस्माकं त्वदपेक्षास्तीति भावः॥ १६॥ वज्रपाणिनः वज्रपाणेः॥१७॥ दिवं ब्रह्मलोकं प्राप्ते सति आचारात्पितुर्द्रव्यं सर्वभ्रातृभिर्विभज्य प्राह्यमिति व्यवहारात्॥ २२॥ महांश्चासावबलश्चेति अतिदुर्बल इत्यर्थः॥ २४॥ हे शक्र! यदि त्वयाऽहं पूर्वमेव एवं चोदितः स्यां तर्हि त्वत्प्रियार्थे मम अकर्तव्यं कर्तुमयोग्यं कुशास्त्रप्रणयनं कर्तव्यं नाभविष्यत्॥ २७॥

१ क. ख. 'युद्धे समुपोढे सु' २ ख. °ण्वानास्तं नरर्षभम्।' ३ क. ख. 'शाविव' ४ ख. अर्थज्ञः स्वा' ५ क. भूतानां ६ क. ख. शतक्रतुवचः श्रु' ७ ख. °बलम्। ८ क. भगवन्कृशोऽहं विमना'

तथा तात करिष्यामि मा भूत्ते विक्लवं मनः।
ततः कर्म चकारास्य तेजसो वर्धनं तदा २९
तेषां च बुद्धिसंमोहमकरोद्द्विजसत्तमः।
नास्ति वादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषणं परम्३०
परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोऽनुगम्।
न हि धर्मप्रधानानां रोचते तत्कथान्तरे॥३१
ते तद्बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाऽल्पचेतसः।
पूर्वोक्तधर्मशास्त्राणामभवन्द्वेषिणः सदा॥ ३२
प्रवक्तुर्न्यायरहितं तन्मतं बहु मेनिरे।
तेनाधर्मेण ते पापाः सर्वं एव क्षयं गताः॥ ३३
त्रैलोक्यराज्यं शक्रस्तु प्राप्य दुष्प्रापमेव च।
बृहस्पतिप्रसादाद्धि परां निर्वृतिमभ्ययात ३४
ते यदा तु सुसंमूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः।
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः॥ ३५
ततो लेभे सुरैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्।
हत्वा रजिसुतान्सर्वान्कामक्रोधपरायणान्॥
य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठां च शतक्रतोः।
शृणुयाद्धारयेद्वाऽपि न स दौरात्म्यमाप्नुयात्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आयोर्वंशकीर्तनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

## काश्यपवर्णनम्।

## २९

वैशम्पायन उवाच।
रम्भोऽनपत्यस्तत्रासीद्वंशं वक्ष्याम्यनेनसः।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः॥१
प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृञ्जयो नाम विश्रुतः।
सृञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः२
विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वतः सुतः।
हर्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥ ३
सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य संकृतिः ४
संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य मे शृणु ५
क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ ६
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः७
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च
शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तनयस्तस्य काशकः॥ ८
काशस्य काशयो राजन्पुत्रो दीर्घतपास्तथा।
धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान्धन्वन्तरिस्ततः ९
तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्॥१०

जनमेजय उवाच।
कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्
एतद्वेदितुमिच्छामि तन्मे ब्रूहि यथातथम्॥११

---

नास्ति धर्म ईश्वर इति वादो यत्र तन्नास्तिवादम्। तच्च तदर्थशास्त्रं च तत् नास्तिवादार्थशास्त्रम्॥ ३०॥ कथान्तरे वार्ताप्रसङ्गेऽपि॥ ३१॥ प्रवक्तुः उपदेष्टुः॥ ३३॥ निर्वृतिं सुखम्॥३४॥ इति हरिवंशे टीकायामष्टाविंशोऽध्यायः॥२८

२९

विंशे नवाधिकेऽध्याये प्रोक्त आनेनसोऽन्वयः
तद्भ्रातुः क्षत्रवृद्धस्य वृद्धशर्मेति योऽभवत॥१

रम्भ इति॥ १॥ क्षत्रवृद्धस्य वृद्धशर्मापरपर्यायस्य॥५॥ गृत्समदसंततौ शुनकादयो ब्राह्मणा अन्ये क्षत्रियादयश्च शूद्रान्ताः पुत्रा जाताः। शलः मध्यमः सुनहोत्रपुत्रः तस्यात्मजः शलात्मजः॥ ८॥ काशः शुनहोत्रस्य प्रथमः पुत्रः तस्य अपत्यानि काशयः तेषु दीर्घतपाः प्रथम इति शेषः। ततो धन्वाख्यात् धन्वन्तरिर्जातः॥ ९॥ पुनरिति समुद्रात् उत्पत्तिमपेक्ष्य द्वितीयवारं जज्ञिवान् जातः॥ १०॥

---

१ ख. मा तेऽभूद्विक्ल॰ २ ख. एतद्बृह॰ ३ ख. प्रवक्तुर्न्या॰ ४ क. ख. दाद्वै परां निर्वृतिमभ्यगात्। ५. ख. ॰पत्य आसीद्वं॰ ६ क. ॰श्चनः सु॰ ७ क. ॰स्य चात्मजः ८ख. काश्यस्य काश्यपः पुत्रो राजा दी॰ ९ क. बभूव दी॰ १०ख. धन्वाद्धन्वन्तरिः सुतः ११क. ॰रिः सुतः। १२ख. धन्वस्य.

वैशम्पायन उवाच।

धन्वन्तरेः संभवोऽयं श्रूयतां भरतर्षभ।
जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुराऽमृते १२
उत्पन्नः कलशात्पूर्वं
सर्वतश्च श्रिया वृतः।
अभ्यसन्सिद्धिकार्यं हि
विष्णुं दृष्ट्वा हि तस्थिवान्॥ १३
अब्जस्त्वमिति होवाच
तस्मादब्जस्तु स स्मृतः।
अब्जः प्रोवाच विष्णुं वै
तव पुत्रोऽस्मि वै प्रभो॥ १४
विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरेश्वर।
एवमुक्तः स दृष्ट्वा वै तथ्यं प्रोवाच तं प्रभुः १५
कृतो यज्ञविभागो हि यज्ञियैर्हि सुरैः पुरा।
देवेषु विनियुक्तं हि विद्धि होत्रं महर्षिभिः १६
न शक्यमुपहोमा वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन।
अर्वाग्भूतोऽसि देवानां पुत्र त्वं तु नहीश्वरः॥
द्वितीयायां तु संभूत्यां
लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादिश्च ते सिद्धि-
र्गर्भस्थस्य भविष्यति॥ १८
तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो।
चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः १९
अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना
द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः।
इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः॥ २१
द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट्
पुत्रकामस्तपस्तेपे धिन्वन्दीर्घतपास्तदा॥२२
प्रपद्ये देवतां तां तु या मे पुत्रं प्रदास्यति।
अब्जं देवं सुतार्थाय तदाऽऽराधितवान्नृपः॥
ततस्तुष्टः स भगवानब्जः प्रोवाच तं नृपम्।
यदिच्छसि वरं ब्रूहि तत्ते दास्यामि सुव्रत॥

नृप उवाच।

भगवन्यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे ख्यातिमान्भव
तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत॥ २५
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः॥ २६
आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् २७
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः २८
सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत्
एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप।
शून्यां निवासयामास क्षेमको नाम राक्षसः॥

---

कलशात् समुद्रात् अभ्यसन् विष्णुं जपन् ध्यायन् वा॥१३॥ अप्सु जातत्वादब्जस्त्वमिति होवाच। विष्णुरिति शेषः॥ १४॥ होत्रं हौम्यं विनियुक्तं विद्धि जानीहि॥ १६॥ **उपहोमाः** नारिष्ठादयः क्षुद्रास्तुभ्यं महते दातुमयोग्या इति भावः। मुख्यहोममेव मदर्थं कल्पयेत्याशंकायामाह- **अर्वागिति**। हे पुत्र त्वं तु इदानीन्तनोऽसि अतस्त्वदर्थेऽन्यदवैदिकं प्रधानं कल्पयितुमशक्यमित्यर्थः॥ १७॥ संभूत्यां जन्मनि॥ १८॥ तेनैव द्वितीयेनैव॥ अयं भावः—सोपानारोहक्रमेणाधिकारिकेऽग्नौ ऊर्ध्वं पदमारूढे सत्यन्यो भूमौ कृतकर्मा तत्स्थानमारोहति। यथोक्तं मन्वन्तराध्यायेऽत्रैव-

"कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्।
ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानमापूरयन्त्युत॥" इति

॥ १९॥ **अष्टधेति**॥ चिकित्साङ्गानां भेदादायुर्वेदस्याष्टधात्वं च। अङ्गानि वैद्यके उक्तानि-

"कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता॥"

इति कायचिकित्सा बालचिकित्सेत्यादि। ग्रहो भूतप्रेतादिः। ऊर्ध्वाङ्गं शिरोनेत्रादि। शल्यं शस्त्राघातादि। दंष्ट्रा स्थावरजङ्गमात्मकं विषं तेषां चिकित्सा। जरा रसायनादिना जरायाः दूरीकरणम्। वृषः वाजीकरणतन्त्रम्॥ अवश्यंभावित्वं पूर्वकल्पसदृशत्वादुत्तरकल्पस्य। तच्च प्रजापतिरेव वेद॥ २०॥ धिन्वन् प्रीणयन् देवादीनिति शेषः॥ २२ अब्जं धन्वन्तरिं देवम् आराधितवान्॥ २३॥ एतस्मिन् दिवोदासराज्यस्य काले शून्यां सतीं पश्चाद्राक्षसो रुद्रानुचरः निवासयामास॥ ३०॥

---

१ ख. स संभूतः समुद्रात्तु मथ्यमानेऽमृते पुरा। २ °तस्तु ३ ख. तनयोऽसि तव प्रभो। ४ ख. °त्रस्त्वं तु' ५ ख. °तैर्जप्यैर्' ६ घ. अवश्यं भावी ७ ख. धन्वो दीर्घे महत्तदा। ८ ख. °जः सर्व' ९ ख. निवेशया'

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना।
शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशयः ॥३१
तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत्॥
भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसीत्यभूत्।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ३३
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभः।
भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं तेन बलीयसा॥ ३४
जनमेजय उवाच।
वाराणसीं निकुम्भस्तु किमर्थं शप्तवान्प्रभुः
निकुम्भकश्च धर्मात्मा सिद्धिक्षेत्रं शशाप यः
वैशम्पायन उवाच।
दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः
वसति स्म महातेजाः स्फीतायां तु नराधिपः
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः।
देव्याः स प्रियकामस्तु न्यवसच्छ्वशुरान्तिके
देवाज्ञया पार्षदा ये त्वधिरूपास्तपोधनाः।
पूर्वोक्तैरुपदेशैश्च तोषयन्ति स्म पार्वतीम् ३८
हृष्यते वै महादेवी मेना नैव प्रहृष्यति।
जुगुप्सत्यसकृत्तां वै देवीं देवं तथैव सा ॥ ३९
सपार्षदस्त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः।
दरिद्रः सर्वदैवासौ शीलं तस्य न वर्तते ४०
मात्रा तथोक्ता वरदा स्त्रीस्वभावाच्च चुक्रुधे।
स्मितं कृत्वा च वरदा भवपार्श्वमथागमत्४१
विवर्णवदना देवी महादेवमभाषत।
नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निकेतनम्॥
तथा कर्तुं महादेवः सर्वलोकानवैक्षत।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां कुरुनन्दन॥४३
वाराणसीं महातेजाः सिद्धिक्षेत्रं महेश्वरः।
दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः

पार्श्वे तिष्ठन्तमाहूय निकुम्भमिदमब्रवीत्।
गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु ॥
मृदुनैवाभ्युपायेन ह्यतिवीर्यः स पार्थिवः।
ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं तदा
स्वप्ने निदर्शयामास कण्डुकं नाम नापितम्।
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ ॥
मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते तथैव च।
ततः स्वप्ने यथोद्दिष्टं सर्वं कारितवान्नृप ॥ ४८
पुरीद्वारे तु विज्ञाप्य राजानं च यथाविधि।
पूजां तु महतीं तस्य नित्यमेव प्रयोजयत् ४९
गन्धैश्च धूपमाल्यैश्च प्रोक्षणीयैस्तथैव च।
अन्नपानप्रयोगैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ॥ ५०
एवं संपूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः।
ततो वरसहस्रं तु नागराणां प्रयच्छति।
पुत्रान्हिरण्यमायुश्च सर्वान्कामांस्तथैव च५१
राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता।
पुत्रार्थमागता देवी साध्वी राज्ञा प्रचोदिता॥
पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रमयाचत।
पुनः पुनरथागत्य बहुशः पुत्रकारणात् ॥ ५३
न प्रयच्छति पुत्रं हि
निकुम्भः कारणेन हि।
राजा तु यदि नः कुप्ये-
त्कार्यसिद्धिस्ततो भवेत् ॥ ५४
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत्।
भूत एष महान्द्वारि नागराणां प्रयच्छति ५५
प्रीतो वरान्वै शतशो मम किं न प्रयच्छति।
मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मे सदैव हि ५६
विज्ञापितो मयाऽत्यर्थं देव्या मे पुत्रकारणात्
न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नः केन हेतुना ॥ ५७

---

शून्यत्वे हेतुमाह—**शप्ता हीति** ॥ निकुम्भेन रुद्रगणेन ॥३१॥ विषयान्ते गोमत्यां स्वदेशसीम्नि गोमतीतीरे ॥३२॥ भद्रश्रेण्यस्य यदुवंशमहिष्मत्पुत्रस्य ॥३३॥ सिद्धिक्षेत्रं मोक्षक्षेत्रम् ॥३५॥ श्वशुरस्य हिमालयस्यान्तिके यदाऽवसत्तदैव दिवोदासो वाराणसीं प्राप्तवानित्यर्थः ॥३७॥ मेना पार्वत्या जननी । जुगुप्सते निन्दति ॥३९॥ निन्दामेवाह—**सपार्षद इति** ॥४०॥ अवरदा अवरान्नीचान् शिवनिन्दकान् दक्षादीन् द्यति खण्डयति तथा पूर्वं शिवनिन्दकः पिता मे हतः इदानीं तादृशीं मातरं मा हिंसेयमित्यभिप्रायेण शिवपार्श्वमुपागमत् ॥४१॥ वासार्थं वाराणसीमिति संबन्धः ॥४३॥ निदर्शयामास प्रत्ययम् उत्पादितवान् ॥४७॥ राजानं विज्ञाप्य यथोद्दिष्टं प्रतिमादिकं नगर्यन्ते नगराद्बहिर्निकटे कारितवानिति योजना ॥४९॥

---

१ ख. °त्रीति न सं° २ क. °सी भवत्। ख. °सी ह्यभूत्। ३ ख. नराधिपः। ४ ख. तु ५ निवेशनम्। ६ ख. नगर्यां संप्र°

ततो नार्हति सत्कारं मत्सकाशाद्विशेषतः ।
तस्मात्तु नाशयिष्यामि स्थानमस्य दुरात्मनः
एवं स तु विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्बिषी
स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः॥५९
भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत्प्रभुः ।
यस्मादनपराधस्य त्वया स्थानं विनाशितम् ।
पुर्येकस्मादियं शून्या तव नूनं भविष्यति ६०
ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा ।
शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथागमत् ६१
अकस्मात्तु पुरी सा तु विद्रुता सर्वतोदिशम् ।
तस्यां पुर्यां ततो देवो निर्ममे पदमात्मनः ६२
रमते तत्र वै देवो रममाणो गिरेः सुताम् ।
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् ।
वसाम्यत्र न पुर्यां तु देवी देवमथाब्रवीत्॥ ६३

देव उवाच ।
नाहं वेश्मनि वत्स्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम्
नाहं तत्र गमिष्यामि गच्छ देवि ! गृहं प्रति६४
हसंस्तूवाच भगवांस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।
तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ६५
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम्॥
यस्मिन्वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः ।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥ ६७
अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः ।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन्पुरी सा वसते पुनः ।
एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता ॥ ६८
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रो वै दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः६९
हैहयस्य तु दायाद्यं कृतवान्वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ७०

राजा चासौ किल्बिषीति समासः ॥५९॥ प्रभुः निकुम्भः ॥६०॥ शून्याऽभूदिति शेषः । द्वितीयान्तपाठे शप्त्वेत्यस्य शापेन कृत्वेत्यर्थः । दृष्ट्वा स्वर्गं गत इत्यत्रैव धात्वर्थस्य करणत्वेनैवान्वयः ॥ ६१ ॥ पदं स्थानं मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यं प्रासादम् ॥६२॥ देवः स्वरूपानुरूपे तत्र रमते देवी तु मायास्वरूपा स्वोच्छेदहेतौ तत्र क्षेत्रे न रमत इति भावः । गृहविस्मयात् गृहेऽविमुक्ते यो विस्मयः आश्चर्यम् अनधिकारिणामपि मुक्तिप्रदानं तस्मात् हेतोर्न रमते । अत्र पुर्यामिति संबन्धः सार्धः ॥६३॥ अहं नित्यमुक्त ईश्वरो वेश्म गृहं शरीराख्यं न निवत्स्यामि निवासयितुं नेच्छामि । हि यस्मात् मे मम गृहम् अविमुक्तं यत्कालत्रयेऽपि न विमुक्तम् अहेयानुपादेयात्मस्वरूपत्वात् तदेव प्रत्यक् चैतन्यं मम गृहम् । स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितोऽहं देहप्रतिष्ठो न भविष्यामीत्यर्थः । तत्र त्वदिष्टे संसारप्रदेशे गृहं त्वत्पितृगृहमिति कथापक्ष अन्यथा त्वमेव देहं प्राप्नुहि अहं त्वसङ्ग एवास्मीत्यर्थः । एतेन काशीत्याग एव संसारस्वीकारः । तदत्याग एव मोक्षाख्या स्वरूपस्थितिरिति दर्शितम् ॥ ६४ ॥ त्रीणि श्रवणमननध्यानानि अम्बकानि नेत्राणीव ज्ञापकानि यस्य स त्र्यम्बकः । तथा च श्रुतिः—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।" इत्यात्मदर्शनसाधनत्वेन श्रवणादित्रयं विधत्ते अत एव त्रिपुरान्तकः त्रयाणां स्थूलसूक्ष्मकारणानां पुराणां शरीराणाम् अन्तको विनाशकः प्रविलापनकर्ता । अविद्यास्वरूपाप्येषा पुरतत्त्वं न जानातीति हसन् । यास्मान्महादेवेन अविमुक्तं हि मे गृहमित्युक्तं तस्मात्तदविमुक्तसंज्ञं वाराणसीक्षेत्रम् ॥ ६५ ॥ अत्राप्रकृतस्याविमुक्तस्य कीर्तनम् उपरिधारणन्यायेन च वाराणस्या मुख्यमविमुक्तत्वं दर्शयति । तथा हि **जाबालः**— " सोऽविमुक्तः प्रतिष्ठितः " इत्यविमुक्तप्रतिष्ठत्वमात्मन उपक्षिप्य क्व तदविमुक्तमित्याकांक्षायां वरणायां चास्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इत्याधिभौतिकमविमुक्तम् उक्त्वा कतमच्चास्य स्थानं भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिरिति प्रश्नपूर्वकं शरीरे तत् स्थानं भ्रूघ्राणसन्धिरित्यामनन्ति । विस्तरस्त्वस्मत्कृतायामविमुक्तनिरुक्तौ* द्रष्टव्यः ॥ ६६ ॥ अन्तर्द्धानमिति सार्द्धः । पुरमस्यास्तीति पुरी महादेवः अन्तर्हितायामपि पुर्यां स्वमन्तर्हितः सन् वसति । देवताप्रतिमाद्युच्छेदेऽपि देवतासान्निध्यं न निवर्तत इत्यर्थः । पुनः कृतयुगारम्भे पुरीं नगरी वसत इति व्याख्यानेऽपि अन्तर्धानमात्रं पुर्या उक्तं न तूच्छेदः । एवं पुरपतेरपि द्रष्टव्यम् । किं च यावत्कलेः संध्यांशोऽस्ति तावदत्र द्वापरधर्माणां कियतामप्यनुवृत्तः षट्त्रिंशत्सहस्रवत्सरपर्यन्तं कलावपि पुरी नान्तर्हिता भवति तन्निवृत्तौ केवलस्य कलेः प्रवृत्तौ सत्यामेव च भवति । अन्यथा संप्रत्युपलम्भो न युज्यत इति दिक् ॥ ६८ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रशतं हत्वा तेषु चरमो दुर्दमो बालत्वादुपेक्षितः । बालेति सन्धिरार्षः । घृणया दयया ॥ ६९ ॥ दायाद्यं पुत्रत्वं कृतवान् स्वीकृतवान् आजह्रे आहृतं दुर्दमेनेत्युत्तरेणान्वयः ॥७०॥

१ ख. पुरी शून्या तथाऽकस्मात् तव नू' २ ख. प्रहस्योवाच भ' * एतेनैतट्टीकाकर्तुः—' अविमुक्तनिरुक्तिः ' इति ग्रन्थप्रणेतृत्वं ध्वन्यते ।

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता ७१
दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ॥ ७२
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभार्गौ बभूवतुः ।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ७३
अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।
अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ।
युवा रूपेण संपन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ७५
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ।
तस्यासीत्सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ।
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ७६
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ।
सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ७७
सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ।
क्षेम्यस्य केतुमान्पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ।
धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ७९
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ।
आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्तु तत्सुतः ८०
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ।
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ॥ ८१
वेणुहोत्रसुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ।

एते त्वङ्गिरसः पुत्रा
जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या-
स्तयोः पुत्राः सहस्रशः ।
इत्येते काशयः प्रोक्ता
नहुषस्य निबोध मे ॥ ८३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## ययातिचरित्रकथनम् ।

## ३०

वैशम्पायन उवाच ।
उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥ १
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पाञ्चिको भवः ।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत्
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम् ॥ २
काकुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः ।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥ ३
तेषां ययातिः पञ्चानां
विजित्य वसुधामिमाम् ।
देवयानीमुशनसः
सुतां भार्यामवाप सः ।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव
तनयां वृषपर्वणः ॥ ४

तेन बालेनैव प्रहृतम् अपहृतं तस्य दुर्दमस्य राज्यमिति शेषः ॥ ७२ ॥ लोपामुद्रा अगस्त्यभार्या शापस्य निकुम्भदत्तस्य ॥ ७६ ॥ **रम्यामिति** । सहस्रवर्षपर्यन्तं राक्षसाधिष्ठितत्वादरम्यैव पुरा आसीदिति गम्यते । सन्नतेरलर्कपुत्रस्य ॥ ७७ ॥ वत्सस्य अलर्कपितुः पुत्रान्तरमाह- **वत्सभूमिरिति** भार्गवात् वत्सभ्रातुः ॥ ८२ ॥ अङ्गिरसः गालवस्याङ्गिरसत्वात् भार्गवे विश्वामित्रस्य भार्गवत्वात् तयोः वत्सभूमिभृगुभूम्योः काशयः काशवंश्याः ॥ ८३ ॥

इति हरिवंशे टीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

**त्रिंशेऽथ वर्ण्यतेऽध्याये ययातेरन्वयं तथा ॥
चरितं च विरक्तिश्च गाथा वैराग्यगर्भिणी ॥ १**

उत्पन्नाः पितरः सुस्वधासंज्ञाः वैश्यपूज्यास्तेषां कन्यायां विरजाख्यायाम् ॥ १ ॥ मोक्षं मोक्षमार्गम् ॥ ३ ॥ ययातेर्भार्यान्तरमाह—**देवयानीमिति ॥ ४ ॥**

१ ख. सुविस्तृते । २ क. श्लोकैर्गीतः पु ३ ख. सुकेतुतन ४ ख. °तोश्च दा ५ ख. सुविभुस्तु वि ६ क. ख. °रश्च तत्सु° ७ ख. °तोश्च दा ८ ख. °ध च । ९ क. यतिर्यातिरेवं च । १० ख. ककुत्स्थक° ११ °र्भे धर्मसूतां वरः ।

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ५
तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम् ।
असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः६
युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन भार्यामुवाह सः ।
स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेनाजयन्महीम् ।
ययातिर्युधि दुर्धर्षस्तथा देवान्सवासवान् ॥ ७
स रथः पौरवाणां तु सर्वेषामभवत्तदा ।
यावत्तु वसुनाम्नो वै कौरवाज्जनमेजयः ॥ ८
कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्र राज्ञः पारीक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाशं शापाद्गार्ग्यस्य धीमतः९
गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ।
वाक्क्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः १०
स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित्११
ततः स दुःखसंतप्तो नालभत्संविदं क्वचित् ।
इन्द्रोतः शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत १२
याजयामास चेन्द्रोतः शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥ १३
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यो रथो राजन्वसोश्चेदिपतेस्तदा ।
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ॥ १४
बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् ।
ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम् १५
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ।
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्
व्यभजत्पञ्चधा राजन् पुत्राणां नाहुषस्तदा ।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान्नृपः १७
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च नाहुषः ।
दिशि पूर्वोत्तरस्यां वै यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्
मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत नाहुषः ।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥ १९
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ।
प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥ २०
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः ।
जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ।
निःक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं निरीक्ष्य पृथिवीपतिः
प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ।
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ॥ २२
जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै ।
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ।
जरां त्वयि समाधाय; तं यदुः प्रत्युवाच ह
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥
जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ।
तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ २५
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।
प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ २६
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन्सुतम् ॥ २७

क आश्रयस्तवान्योऽस्ति
को वा धर्मो विधीयते ।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे
यदहं तव देशिकः ॥ २८

असङ्गं सर्वत्रास्खलितगतिम् ॥ ६ ॥ शापे कारणमाह—**गार्ग्यस्य हीति** ॥ वाक्क्रूरं निष्ठुरभाषिणमिति हिंसने हेतुरुक्तः ॥ १० ॥ लोहगन्धिः बाह्मसदृशः । "लोहोऽस्त्री शस्त्रके लोहो जोङ्गके" इति **मेदिनी** । जोङ्गकः पतितः ज्ञातिबाह्य इति यावत् । 'जुगि त्यागे' अस्य रूपम् ॥ ११ ॥ संविदं स्वास्थ्यज्ञानोपायम् इन्द्रोतशब्दोऽदन्तः सान्तश्च ॥ १२ ॥ तस्मात् वसोः ॥ १४ ॥ दक्षिणपूर्वस्याम् आग्नेयकोणे॥ १७॥ पूर्वोत्तरस्याम् ऐशान्याम् ॥ १८॥ मध्ये कुरुपाञ्चालेषु ॥१९॥ पञ्चभिः पुत्रैः कृतकृत्यः सन् धनुर्न्यस्तवान् ततश्च जरावान् अभूदित्यर्थः ॥२१॥ अनिर्दिष्टा इदं मे देहीति विशेषतोऽनुक्ता मया च प्रतिश्रुता त्वदिष्टं दास्यामीति ताम् अज्ञाताम् अनपाकृत्य ऋणवत् अपरिहृत्य । ज्ञाता चेत् स्यात्तर्हि तां निधाय तव जरां ग्रहीतुं ममावकाशः स्यादिति भावः ॥ २४ ॥ **क इति** ॥ पितृवचनमुल्लङ्घ्याभिष्यर्थसाधनं न धर्मायेति भावः । देशिकः गुरुः विद्याप्रदः ॥ २८ ॥

१ क. ख. येन कार्यं समुद्वहत् । २ ख. वाक्क्रूरं हिं' ३ क. ख. इन्द्रोतं शौ' ४ ख. 'प्राप्तो बा' ५ ख. °बा राजा पु' ६ क. ख. °स्यां तु य' ७ क. ख. श्रेष्ठं न्य' ८ ख. दैशिकः ।

एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति नराधम ॥
स तुर्वसुं च द्रुह्युं चाप्यनुं च भरतर्षभ।
एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥ ३०
शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः।
यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तम* ३१
एवं शप्त्वा सुतान्सर्वांश्चतुरः पूरुपूर्वजान्।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भारत ॥ ३२
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय त्वं परो यदि मन्यसे ॥
स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान्।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यचरन्महीम् ॥ ३४
स मार्गमाणः कामानामन्तं भरतसत्तम।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ३५
यदाऽवितृष्णः कामानां भोगेषु स नराधिपः।
तदा पूरोः सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ३६
तत्र गाथा महाराज शृणु गीता ययातिना।
याभिः प्रत्याहरेत्कामान्सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत्
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ३८
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥ ३९
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा, मनसा, वाचा, ब्रह्म संपद्यते तदा४०
यदान्येभ्यो न बिभ्येत यदाचास्मान्न बिभ्यति
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा॥ ४१

या दुस्त्यजा दुर्मतिभि-
र्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोग-
स्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ४२
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा
दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीविताशा धनाशा च
जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥ ४३
यच्च कामसुखं लोके
यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते
नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ४४

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्।
कालेन महता वाऽपि चचार विपुलं तपः४५
भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तपसोऽन्ते महातपाः।
अनश्नन्देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ४६
तस्य वंशे महाराज पञ्च राजर्षिसत्तमाः।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः
यदोस्तु शृणु राजर्षेर्वंशं राजर्षिसत्कृतम्।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ४८
धन्यः प्रजावानायुष्मान्कीर्तिमांश्च भवेन्नरः।
ययातेश्चरितं पुण्यं पठञ्छृण्वन्नराधिप ॥४९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## कक्षेयुवंशवर्णनम्।

## ३१

जनमेजय उवाच।
पूरोर्वंशमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक्॥ १

पूर्वम् आदिपर्वणि ॥३१॥ अन्तं तृष्णावसानम्। विश्वाची अप्सराः इन्द्रशापात्ककुत्स्थकन्या गोनाम्नी जाता सा ययातिना ऊढेति ज्ञेयम् ॥ ३५ ॥ अवितृष्ण इति च्छेदः ॥ ३६ ॥ पञ्च यदुप्रभृतयः ॥ ४७ ॥ इति हरिवंशे टीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

एकत्रिंशे पुरोर्वंशे रौद्राश्वस्य समुद्भवः ॥
तत्पुत्रस्याथ कक्षेयोर्वंशस्तावन्निरूप्यते ॥ १ ॥

१ क. ख. 'तस्तु ते.' २ क. ख 'नपि क्रु'. ३ क. 'हं पुत्रः पू ४ ख. 'दा त्वतृप्तः का' ५ क. 'वंशोज्ञा' ६ क. यासौ ७ ख. 'ता चापि. ८ क. ख. 'न्ते महायशाः। ९ क. ख. स्वस्थः प्र १० ख. त्रिंशत्तमोऽध्या'

*एतेन खलु महाभारतं पूर्वं हरिवंशश्च पश्चात्, उभयोरप्येककर्तृकत्वं चेत्यादि ध्वन्यते।

वृष्णिवंशप्रसङ्गेन स्वं वंशं पूर्वमेव तु।
विस्तरेणानुपूर्व्या च तद्भवान्वक्तुमर्हति× ॥ २
वैशम्पायन उवाच।
शृणु पूरोर्महाराज वंशमुत्तमपौरुषम्।
विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव ३
हन्त ते कीर्तयिष्यामि पूरोर्वंशमनुत्तमम्।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च नराधिप ॥ ४
पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजाऽऽसीज्जनमेजयः
प्राचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद्दिशम्
+प्राचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥ ६
तथैवाभयदस्यासीत्सुधन्वा तु महीपतिः।
सुधन्वनो बहुगवः शम्यातिस्तस्य चात्मजः ७
शम्यातेस्तु रहस्याती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः
रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥ ८
ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च।
कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥ ९
दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः।
धनेयुश्च वनयुश्च पुत्रिकाश्च दश स्त्रियः ॥ १०
रुद्रा शूद्रा च भद्रा च मलदा मलहा तथा।
खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च।
तथा गोचपला तु स्त्रीरत्नकूटाश्च ता दश ॥ ११
ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः।
रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम् १२
स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम्।
तमोभिभूते लोके च प्रभा येन प्रकल्पिता ॥
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तो वै
पतमानो दिवाकरः।
वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न
पपात दिवो महीम् ॥ १४
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः।
यज्ञेष्वत्रेर्धनं चैव सुरैर्यस्य प्रवर्तितम् ॥ १५
स तासु जनयामास पुत्रिकासु सनामकान्।
दश पुत्रान्महात्मा स तपस्युग्रे रतान्सदा १६
ते तु गोत्रकरा राजन्नृषयो वेदपारगाः।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याताः किं त्वत्रिं धनवर्जिताः
कक्षेयोस्तनयाश्चासंस्त्रय एव महारथाः।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च ॥ १८
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कालानलो नृपः।
कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः १९
सृञ्जयस्याभवत्पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः।
जनमेजयो महाराज पुरञ्जयसुतोऽभवत् ॥ २०
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत्सुतः।
देवेषु÷ स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि ॥ २१
महामना नाम सुतो महाशालस्य धार्मिकः।
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहायशाः ॥ २२
महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भारत।
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं च महाबलम् ॥ २३
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः।
नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती २४
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः।
तपसा वै सुमहता जाता वृद्धस्य भारत ॥ २५
नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमिरजायत।
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वायाः सुव्रतोऽभवत् ॥
दृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिबिरौशीनरो नृपः।
शिबेस्तु शिबयस्तात यौधेयास्तु नृगस्य ह ॥

उत्तमम् उत्कृष्टं पौरुषं यस्मिन् ॥ ३ ॥ धनेयुश्चेत्यत्र वने नित्यः इत्यपि पाठः ॥ १० ॥ स्त्रीरत्नकूटाः स्त्रीरत्नान्युर्वश्यादीनि कूटानि हीनानि याभ्यस्ताः ॥ ११ ॥ येन अत्रिणा ॥ १३ ॥ **अत्रिश्रेष्ठानीति**। धर्मशास्त्रे आत्रेयीवधे ब्रह्महत्याव्रतस्योक्तत्वात् यज्ञे च आत्रेयाय ब्राह्मणाय स्वातन्त्र्येण दक्षिणाविधानात् अत्रिरेव सर्वेषु गोत्रप्रवर्तकेषु श्रेष्ठः ॥ १५ ॥ पुत्रिकासु—
"तुभ्यं कन्यां प्रदास्यामि देवाग्निगुरुसंनिधौ।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥"
पुत्रिकाकरणविधिना प्राप्तासु ॥ १६ ॥ अत एवाह—**किं त्वत्रिं धनवर्जिता इति** ॥ १७ ॥ कक्षेयोः रौद्राश्वसुतस्य तृतीयस्य ॥ १८ ॥

१ क. ख. °व हि। × एतत्पद्यार्धं कपुस्तके नास्ति + क. पुरोः पुत्रः प्र° २ ख. °न्वा नाम पार्थिवः। ३ ख. °स्य वै सुतः। ४ ख. महाबलाः। ५ ख. °टा च ता द° ६ ख. प्रवर्तिता। ७ ख. देवैर्य° ८ ख. °यास्त्वासं° ÷ घ. वेदेषु स प° ९ क. ख. °हामनाः। १० ख. °सा चैव मह° ११ ख. °स्य चात्मजः। १२ ख. यौधे°

नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ।
सुव्रतस्य तथाऽम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोध मे २८
शिबेश्च पुत्राश्चत्वारो वीरास्त्रैलोक्यविश्रुताः
वृषदर्भः सुवीरश्च मद्रकः कैकयस्तथा ॥ २९
तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा।
वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजाः शृणु३०
तैतिक्षवोऽभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि भारत।
उषद्रथो महाबाहुस्तस्य फेनः सुतोऽभवत् ३१
फेनात्तु सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः ।
जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः॥
महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ।
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान्भुवि ॥ ३३
अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च ।
पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते॥ ३४
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ।
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन भारत ३५
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ।
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानता ॥ ३६
त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥ ३७
चतुरो नियतान्वर्णांस्त्वं च स्थापयिता भुवि
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ
तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिपुङ्गवाः ।
संभूता दीर्घतपसो सुदेष्णायां महौजसः ३९
बलिस्तानभिषिच्येह
पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।
कृतार्थः सोऽपि योगात्मा
योगमाश्रित्य स प्रभुः ॥ ४०
अधृष्यः सर्वभूतानां कालापेक्षी चरन्नपि ।
कालेन महता राजन्स्वं च स्थानमुपागमत्४१

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः ।
कलिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य मे शृणु॥
अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ४३
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः ।
विद्वान्धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ४४
तेन चित्ररथेनाथ तदा विष्णुपदे गिरौ ।
यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना४५
अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत्
तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः ।
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्धनः ४७
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ।
पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत्पुरा
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ४९
ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम् ।
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ५०
हर्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः ।
पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ५१
बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः ।
बृहन्मनास्तु राजेन्द्र जनयामास वै सुतम् ५२
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्दृढरथो नृपः ।
आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजय ५३
दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्धनम् ।
बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः ५४
तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे ।
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते
जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत ।
ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः ॥

---

महामनसो ज्येष्ठपुत्रस्योशीनरस्य संततिमुक्त्वा कनिष्ठपुत्रस्य तितिक्षोर्वंशमाह—**तितिक्षोस्तु प्रजाः शृण्विति** ॥३०॥ यः पूर्वं बलिर्दानवेन्द्र आसीत् स एव सुतपसः पुत्रो बलिनामाऽभूत् ॥३२॥ बालेयं बलेरपत्यम् ॥ ३४ ॥ प्रसवे अभ्यनुज्ञायां वशित्वाख्यां सिद्धिमित्यर्थः ॥३७॥ परां शान्तिं ज्ञानजं मोक्षम् ॥३८॥ क्षेत्रजाः बलेरूर्ध्वरेतस्त्वात् ॥३९॥ स्वं स्थानं सुतलम् ॥४१॥ शक्रेण सहेति शक्रवद्देवत्वं प्राप्त इत्युक्तम् ॥४५॥ लोमपादापरनामा दशरथोऽयमन्यः ॥४६॥ ऋष्यशृङ्गस्य शान्ताभर्तुः प्रसादेन ॥ ४७ ॥ पूर्णभद्रो मुनिः तस्य प्रसादेन ॥ ४९ ॥ वैभाण्डकिर्विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गः । तस्यार्थे इन्द्रवारणम् ऐरावतं वारणं वारि जले रणति चरतीति वारणम् । समुद्रोद्भवमित्यर्थः ॥ ५० ॥ ब्रह्मक्षत्रोत्तरः ब्राह्मणेभ्यः शान्त्यादिना क्षत्रियेभ्यः शौर्यादिना उत्तरः श्रेष्ठः ॥ ५६ ॥

---

१ ख. कैकेया म° २ क. ख. °हाराज फेनस्तस्य सु° ३ क. ख. °ङ्गवात् । ४ ख. °रन्नृषिः । ५ ख. धर्मरथे° ६ ख. °स्य यस्मा° ७ ख. °जेन्द्रो ज° ८ क. °वंशः प्रभिद्यते ख. °स्तु विद्यते ।

विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः।
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः ॥ ५७
सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै।
यः कर्णं प्रति जग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः ५८
एतद्वः कथितं सर्वं कर्णं प्रति महाबलम्।
कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्यात्मजः स्मृतः५९
एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।
सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ६०
ऋचेयोस्तु महाराज रौद्राश्वतनयस्य ह।
शृणु वंशमनुप्रोक्तं यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कुक्षेयुवंशानुकीर्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## पुरुवंशानुकीर्तनम्।

## ३२

वैशम्पायन उवाच।
अनाधृष्यस्तु राजर्षिर्ऋचेयुश्चैकराट् स्मृतः।
ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा॥१
तस्यां स देव्यां राजर्षिर्मतिनारो महीपतिः।
मतिनारसुताश्चासंस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ २
तंसुराद्यः प्रतिरथः
सुबाहुश्चैव धार्मिकः।
गौरी कन्या च विख्याता
मान्धातृजननी शुभा ॥ ३
सर्वे वेदविदस्तत्र ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः।
सर्वे कृतास्त्रा बलिनः सर्वे युद्धविशारदाः॥४
पुत्रः प्रतिरथस्यासी-
त्कण्वः समभवन्नृपः।
मेधातिथिः सुतस्तस्य
यस्मात्काण्वायना द्विजाः ॥ ५
ईलिनी भूप यस्याऽऽसीत्कन्या वै जनमेजय।
ब्रह्मवादिन्यधि स्त्री च तंसुस्तामभ्यगच्छत ६
तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ७
उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान्
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ ८
दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान्।
स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥ ९
चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः
दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम्।
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ १२
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला*
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः १३

सत्यकर्मणः पुत्रः सूतः ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातत्वात्। एतेनैव तस्य ब्राह्मणीपरिग्रहः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि टीकायां कुक्षेयुवंशानुकीर्तनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

३२

**द्वात्रिंशे वर्ण्यते वंश ऋचेयोर्विविधा गतिः**
**त्रयाणां यदुमुख्यानामजमीढस्य च त्रिधा१**

अनाधृष्यः अजय्यः ऋचेयुरेव ॥ १ ॥ स मतिनारो जात इति शेषः ॥ २ ॥ तंसुर्नामतः आद्यो ज्येष्ठः। तंसुरोद्य इत्यपि पाठः ॥ ३ ॥ काण्वायनाः कण्वस्य गोत्रापत्यानि ॥ ५ ॥ हे भूप यस्य कस्य कन्या ईलिनी आसीत् सः ईलिनो नाम राजा ब्रह्मवादिनिःब्राह्मणसमुदाये अधि अधिकः आसीत्। तंसुश्च ताम् ईलिनीं स्त्रीं स्त्रियं भार्याम् अभ्यगच्छत अधिगतवात् तस्मात्कण्वोऽभ्यजायत। इला नाम्नी तु यस्यासीत्कन्येति पाठस्तु प्रामादिकः। तंसुना स्वानुजप्रपौत्रस्य दुहिता परिणीतेत्येवमर्थकत्वादयुक्तश्च ॥६॥ सः धर्मनेत्रः धर्मस्य प्रवर्तकः ॥ ७ ॥ दुष्यन्तं प्रति राजानमिति सार्धश्लोकद्वयं स्पष्टार्थम् ॥ ११ ॥

१ ख. तेन कर्णं २ ख. एतेषां वंशजाः ३ ख. भौद्राश्च' ४ ख. सुतः। ५ क. ख. 'तास्त्वासं' ६ ख. तथा। ७ 'स्मात्कण्वोऽभवद्विजः। ईलिनी नाम य ८ घ. धि स्त्री च * अयं 'माता भस्त्रेत्यादिः शकुन्तला' इत्यन्तो ग्रन्थो महाभारते आदिपर्वणि चतुःसप्ततितमेऽध्यायेऽस्ति। तथाच 'माता भस्त्रा पितुः पुत्रः' इति स्मर्तॄणां दर्शनं जनयितुश्च नानाजातित्वोपपत्तिस्तेन वर्णसंकर इत्यादिना (अ. १ पा. २ सूत्र १३) तन्त्रवार्तिकेऽप्यस्य विवरणं कृतम्।

मातृणां तात कोपेन मया ते कथितं पुरा।
बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन्महामुनिः।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः१४
अत्रैवोदाहरन्तीमं भरद्वाजस्य धीमतः।
धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै १५
अयोजयद्भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हितम्।
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि॥ १६
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत्।
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ॥१७
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ।
स राजा वितथः पुत्राञ्जनयामास पञ्च वै १८
सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च।
कपिलं च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् १९
काशिकश्च महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा।
बभूव दीर्घतपसो विद्वान्धन्वन्तरिः सुतः २१
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथो नृप॥ २२
सुतो भीमरथस्यासीद्दिवोदासः प्रजेश्वरः।
दिवोदास इति ख्यातः सर्वरक्षोविनाशनः २३
एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप।
शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः।
शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना
शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्रीति नराधिप॥
तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां सन्न्यवेशयत्॥
भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी भवत्।
यदुवंशप्रसूतस्य तपस्यभिरतस्य च॥ २६
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्।
हत्वा निवेशयामास दिवोदासः प्रजेश्वरः२७
दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दनः।
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गस्तथैव च २८
अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्नतिमान्भुवि।
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान्वै महीपतिः २९
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात्।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना।
दिवोदासेन बालेति घृणया परिवर्जितः ३०
अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै।
तेन पुत्रेषु बालेषु प्रहृतं तस्य भारत॥ ३१

पुरा आदिपर्वणि अङ्गिरसः आङ्गिरसो वाऽपत्यं भरद्वाजः क्रतुभिः क्रतुदेवताभिर्मरुद्भिः संक्रामितः भरतपुत्रत्वं प्रापितः॥१४॥ धर्मसंक्रमणं व्याचष्टे-**अयोजयदिति**। वितथे मातृभिः पुत्रत्यजनात्॥१६॥ **काशिकश्चेति**। पूर्वौ काशिकगृत्समदौ आयुसंज्ञात् वृद्धशर्मसुहोत्रक्रमेण चतुर्थौ इमौ तु तस्मादेव नहुषययातिपूर्वादिक्रमेण एकविंशस्य सुहोत्रस्य पुत्रौ। अतोऽतिविप्रकर्षात्ततोऽन्यौ अत एव ईषन्नामभेदोऽपि गृत्समदो गृत्समतिरित्यादिर्दृश्यते॥२०॥ दिवोदासपदं व्युत्पादयति-**दिवोदास इतीति**। दिवः सप्त स्वर्गान् दस्यति उपक्षिणोति आत्मैश्वर्यबलेनेति दिवोदासः। कर्मण्यण् विभक्तेरलुक् आर्षः॥ २३॥ समानान्वये यथा समाननामानो भवन्ति एवं समानकर्माणोऽपि भवन्तीति ज्ञापयन् पूर्वदिवोदासवत् अनेनापि वाराणसीराज्यादिकं कृतम्। पूर्वं निकुम्भादिवन्निकुम्भान्तरेण तद्वंश्येन वाराणसी शप्ता तद्वत्पूर्वं क्षेमकवंश्येन क्षेमकान्तरेण निवेशितेत्यादि। एकस्मिन्नपि कल्पेऽसकृत्समाननामकर्मणां पुंसां जन्म न विरुध्यत इत्यभिप्रेत्याह—**एतस्मिन्नित्यादि**॥२४॥ **भद्रश्रेण्यस्येति**—पूर्वो दिवोदास आयोर्वृद्धशर्मादिक्रमेण दशमः। भद्रश्रेण्यश्च नहुषादिक्रमेण यदुवंशज एकादशः। यदोस्त्वष्टमः तयोः समानकालजत्वाद्विरोधो युक्तः। यस्तु आयोः नहुषादिक्रमेण पुरुवंश्योऽष्टाविंशो दिवोदासः। तस्य ततोऽष्टमेन भद्रश्रेण्येन सहायन्तं कालविप्रकर्षाद्विरोधो न संभवतीति अयम् एतत्समानकालीनोऽन्य एव भद्रश्रेण्यो ज्ञेय इति भावः॥२७॥ अष्टारथः प्रतर्दनः। भीमरथस्येति दिवोदासस्य विशेषणम्। तस्य दुर्दमस्य बालेषु असमर्थेषु पुत्रेषु॥ ३१॥

१ ख. °तं यथा। २ ख. ग. अयाज ३ ख. स चापि वि° ४ ख. काशकश्च, क. काशिकं च महासत्त्वं तथा गृत्समतिं नृपः। ५ ख. विद्वान् भीमरथः स्मृतः। ६ एतच्छ्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति। ७ अयं श्लोकः खपुस्तके नास्ति ८ ख. मार्गव एव च। ९ ख. स विसर्जितः।

वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता।
अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः३२
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
तस्यांऽऽसीत्सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः
युवा रूपेण संपन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः।
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः॥ ३४
वयसोऽन्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्।
शून्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृप ३५
अलर्कस्य तु दायादः सुनीथो नाम ×पार्थिवः।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः
क्षेम्यस्य केतुमान्पुत्रो वर्षकेतुस्ततोऽभवत्।
वर्षकेतोस्तु दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥३७
आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत्
पुत्रस्तु सुकुमारस्य सत्यकेतुर्महारथः ३८
ततोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्मिकः
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवात्
एते त्वाङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ॥
सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ४१
अजमीढस्य पत्न्यस्तु
तिस्रो वै यशसाऽन्विताः।
नीलिनी केशिनी चैव
धूमिनी च वराङ्गना॥ ४२
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान्।
आजह्रे यो महासत्रं सर्वमेधं महामखम्॥ ४३
पतिलोभेन यं गङ्गा विनीताऽभिससार ह।
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गाऽथ तत्सदः
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं परंतप।
जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम॥ ४५
एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्यापः पिबाम्यहम्।
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि॥ ४६
ततः पीतां महात्मानो गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः।
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वाय जाह्नवीम्४७

युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्।
गङ्गाशापेन देहार्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम् ४८
जह्नोस्तु दयितः पुत्रस्त्वजको नाम वीर्यवान्।
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः॥
बभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः।
पह्लवैः सह संरुद्धो राजा वनचरैस्तदा॥ ५०
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्
स गाधिरभवद्राजा मघवान्कौशिकः स्वयम्।
विश्वामित्रस्तु गाधेयो राजा विश्वरथस्तदा॥
विश्वकृद्विश्वजिच्चैव तथा सत्यवती नृप।
ऋचीकाज्जमदग्निस्तु सत्यवत्यामजायत॥ ५३
विश्वामित्रस्य तु सुता देवरातादयः स्मृताः।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु॥
देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः
शालावत्या हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान्
साङ्कृत्यो गालवो राज-
न्मौद्गल्यश्चेति विश्रुताः।
तेषां ख्यातानि गोत्राणि
कौशिकानां महात्मनाम्॥ ५६
पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च।
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनसौश्रवाः ५७
लौहित्या यामदूताश्च
तथा कारीषयः स्मृताः।
+विश्रुताः कौशिका राजँ-
स्तथाऽन्ये सैन्धवायनाः॥ ५८
ऋष्यन्तरविवाह्याश्च
कौशिका बहवः स्मृताः।
पौरवस्य महाराज
ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य ह[10]॥ ५९
संबन्धो ह्यस्य वंशेऽस्मिन्ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः।
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः
देवरातादयश्चान्ये विश्वामित्रस्य वै सुताः ६१

अलर्कः प्रतर्दनस्य पौत्रः पुरीं निवेशयामासेति तृतीयेनान्वयः॥ ३२॥ सुहोत्रस्य वितथपुत्रस्य॥ ४१॥ सत्यवती विश्वामित्रादीनां कनीयसी॥ ५३॥

१ क. ख. स्यां नि॰ २ क. ख. नृपः। ३ ख. क्षेमको ना॰ × क. ॰म धार्मिकः ४ ख. आज॰ ५ क. ख. ॰श्चा पतिं त्वभिससार ह। ६ क. ख तत्तया प्ला॰ ७ क. परंतपः। ख. समंततः। ८ क. ख. ॰तृत्वेन जा॰ ९ क. ख. ॰मिन्द्रसमप्रभम्। + क. सौश्रुताः कौ॰ १० क. ख. च। ११ ख. ॰निपुङ्गवः।

दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रादथाष्टकः ।
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया॥
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां पुरुषर्षभ ।
अजमीढस्य नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत॥६३
पुरुजातिः सुशान्तेस्तु वाह्याश्वः पुरुजातितः
वाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः ॥ ६४
मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुः स्मृतः ।
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः॥६५
पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ।
पञ्चानां विद्धि पञ्चालान्स्फीतैर्जनपदैर्वृतान्
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ।
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ॥
सर्वे एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
एते ह्याङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः ॥
मौद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मर्षिः सुमहायशाः।
इन्द्रसेनो यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥ ६९
वध्र्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः ।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी७०
शरद्वतस्य दायादमहल्या समसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः ७१
पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ।
तस्य सत्यधृते रेतो दृष्ट्वाऽप्सरसमग्रतः ॥ ७२
अवस्कन्नं शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ।
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः॥ ७३
कृपः स्मृतः स वै तस्माद्गौतमी च कृपी तथा
एते शारद्वताः प्रोक्ता एते ते गौतमाः स्मृताः
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य संततिम्
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृपः ॥ ७५

मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः।
एते हि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः
आसीत्पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ७७
सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः ।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम पार्थिवः ७८
अजमीढात्पुनर्जातः क्षीणवंशे तु सोमकः।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ७९
तेषां यवीयान्पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः।
धृष्टद्युम्नस्तु द्रुपदाद्धृष्टकेतुश्च तत्सुतः ॥ ८०
अजमीढाः स्मृता ह्येते महात्मानस्तु सोमकाः
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वं महात्मनः॥ ८१
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी ।
तृतीया तव पूर्वेषां जननी पृथिवीपते ॥ ८२
सा तु पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यासमन्विता ।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ ८३
हुत्वाऽग्निं विधिवत्सा तु पवित्रमितभोजना
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप जनमेजय ।
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान्
ऋक्षं संजनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम् ।
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्तथा ।
यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥ ८५
×तद्वै तत्स महाभागो वर्षाणि सुबहून्यथ ।
तप्यमाने तदा शक्रो यत्रास्य वरदो बभौ ८६
पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।
तस्यान्ववायः सुमहांस्तस्य नाम्ना स्थ कौरवाः
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ।
परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥ ८८

---

अजमीढस्य बृहत् पुत्रस्य प्रत्यन्तरे प्रसवान्तरमाह–आजमीढ इति ॥६३॥ तेषां पञ्चानां देशानां रक्षणे अलं समर्था एते इति श्रुतत्वात्पञ्चाला इति नाम ॥६७॥ अयं दिवोदासो ब्राह्मणः॥७०॥ शरद्वतो गौतमस्य ॥७१॥ सत्यधृतेः शरद्वतः पौत्रस्य पूर्वं शरद्वतः सकाशात्कृपस्य जन्म उक्तम्। अतोऽयं सत्यधृतिः पितामहस्य समाननामेति गम्यते । अत्रेयं कथा—शरद्वतः तपोविघ्नार्थम् आगतां जालपदीमप्सरसं दृष्ट्वा शरद्वांश्चकमे। सा च तद्वाग्दन्तरात्प्रद्रुता। ततस्तामनुधावतो महर्षे रेतश्चस्कन्द। ततो मिथुनं जातमिति ॥७२॥ दिवोदासस्य क्षत्रियस्य ॥ ७५ ॥ अजमीढात् सहदेवात् तस्य यज्ञे पशुभूतस्थाने पुत्रशतं बभौ । शतं पुत्रानुद्दिश्य तेनैव पशुना यागस्य कृतत्वात् ॥ ७९ ॥ यवीयान् कनीयान् ॥ ८० ॥ तृतीया अजमीढस्य भार्या ॥ ८२ ॥ प्रयागादतिक्रम्य प्रयागं त्यक्त्वा कुरुक्षेत्रं स्वस्थानं चकार ॥ ८५ ॥ अरिमेजयः शत्रुकम्पनः । एजतेः खश् पूर्वपदस्य मुमागमश्च ॥ ८८ ॥

---

१ घ. अज॰ २ भरतर्षभ। ३ ख. अजमीढात्तु नीलि॰ ४ ख. ॰न्तेश्च वा॰ ५ क. ख. ॰दिषुस्तथा ६ क. ख. ॰पाञ्चा॰ ७ क. ख. ॰ते वै सं॰ ८ ख. ॰द्युम्नः सुतस्तस्य धृष्ट॰ ९ क. ख. आजमी॰ × तद्वै तत्सेत्यादिः श्लोकः कखपुस्तकयोर्नास्ति। १० क. ख. ॰रोस्तु पु॰

सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमांस्ततः ।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः ८९
च्यवनात्कृतयज्ञस्तु इष्ट्वा यज्ञः स धर्मवित् ।
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसमं नृपः ॥ ९०
चैद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम् ।
चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त मानवान् ९१
महारथो मगधराड्विश्रुतो यो बृहद्रथः ।
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम् ॥ ९२
*मारुतश्च यदुश्चैव मत्स्यः काली च सत्तमः ।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः॥९३
कुशाग्रस्यात्मजो विद्वान्वृषभो नाम वीर्यवान्

वृषभस्य तु दायादः
पुष्पवान्नाम धार्मिकः ।
दायादस्तस्य विक्रान्तो
राजा सत्यहितः स्मृतः ॥ ९५
तस्य पुत्रोऽथ धर्मात्मा
नाम्ना ऊर्जस्तु जज्ञिवान् ।
ऊर्जस्य संभवः पुत्रो
यस्य जज्ञे स वीर्यवान् ॥ ९६

शकले द्वे स वै जातो जरया सन्धितः स तु ।
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततः स्मृतः
सर्वक्षत्रस्य जेताऽसौ जरासन्धो महाबलः ।
जरासन्धस्य पुत्रो वै सहदेवः प्रतापवान् ९८
सहदेवात्मजः श्रीमानुदायुः स महायशाः ॥
उदायुर्जनयामास पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ ९९
श्रुतधर्मेति नामानं मगधान्योऽवसद्विभुः ।
परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः१००
जनमेजयस्य दायादास्त्रय एव महारथाः ।
श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥ १
एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ।
जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो मतिमांस्तथा २
सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥ ३
द्वितीयः स बभौ राजा नाम्ना तेनैव संज्ञितः ।
द्वावृक्षौ तव वंशेऽस्मिन्द्वावेव तु परीक्षितौ ४
भीमसेनास्त्रयो राजन्द्वावेव जनमेजयौ ।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः५
प्रतीपो भीमसेनस्य प्रतीपस्य तु शन्तनुः ।
देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥ ६
शन्तनोः प्रसवस्त्वेष यत्र जातोसि पार्थिव ।
बाह्लिकस्य तु राज्यं वै सप्तबाह्यं नरेश्वर ॥ ७
बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ८
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।
च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्टश्चासीन्महात्मनः ॥ ९

कृतयज्ञा चैद्या चेदिजा वसुं जनयामासेति सार्धश्लोको वाक्यम् । चैद्यश्चेदिदेश्यः स चासौ उपरिचरश्चेति समासः । षट् पुत्रान् मानुषीभावे एकां कन्यां मत्सी भूत्वा जनयामासेत्यर्धस्यार्थः ॥ ९० ॥ कुशस्तृतीयः ॥ ९२ ॥ मारुतः चतुर्थः यदुः पञ्चमः मत्स्यः मत्सीसकाशात् काली सत्यवती षष्ठी सत्तमः पुत्रः पाठान्तरं त्वनादरणीयम् ॥ ९३ ॥ यस्य यस्मात् संभवाख्यात् सः जरासन्धः बृहद्रथाजरासन्ध इति प्रागुक्तम् । इदानीं तस्मात् षष्ठोऽयमित्युक्तम् । तत्र द्वितीयो बृहद्रथः संभवाख्यः इति वा कल्पभेदात्क्रमभेद इति वा समाधेयम् ॥ ९६ ॥ परीक्षितः कुरोर्द्वितीयपुत्रस्य ॥ १०० ॥ जनमेजयस्य पुत्रौ मणिमत्यां जातौ पूर्वेभ्योऽन्यौ ॥ १ ॥ द्वितीयः पूर्वोक्तादृक्षात्कुरुपितामहादन्यः ॥ ३ ॥ सप्तबाह्यं सप्तविधप्राप्तिबाह्यम् । सा च–

"ज्ञाने धर्मे बले कामे विज्ञानोपायसंग्रहे ।
मदर्थे भूभुजां नित्यं प्राप्तिः सप्तविधा मता ॥"

इति । **ज्ञाने** शास्त्रीये विज्ञाने युक्तिकौशलादौ । **मदर्थे** शारीरभोगे चन्दनताम्बूलादौ । शेषं स्पष्टम् । अन्ये तु सप्तकगणाभ्यां बाह्यशून्यमित्याहुः । सप्तकगणौ च सप्तरत्नानि सप्त महारत्नानि । तथाहि–

"गजवाजिरथास्त्रेषु निधिमालाम्बरद्रुमाः ।
शक्तिः सासिर्मणिच्छत्रविमानानि चतुर्दश ॥"

इति । अस्त्राणि च इषवश्चेति पृथक् निधिर्निधानं माला स्रक् द्रुमाः दिव्याश्चम्पकादयः सासिः सखड्गः विमानम् अट्टालः ॥ ७ ॥

१ क.ख. 'जन् ध'. *क.शाकल्यश्च य' २ क.ख. श्रुतशर्मेति ना' ३ क.ख. विश्रुतः। ४ क.ख. च ५ क.ख. द्वौ चापि ज'

शन्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः।
शन्तनोः संप्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि पार्थिव
गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः
काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भारत।
शन्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम् ॥१२
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्१३
धृतराष्ट्रश्च गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम्।
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वेषामेव स प्रभुः ॥ १४
पाण्डोर्धनंजयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः।
अभिमन्योः परीक्षित्तु पिता तव जनेश्वर १५
एष ते पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव।
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा१६
सुतस्तु तुर्वसोर्वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैसानुरपराजितः१७
करन्धमस्तु त्रैसानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वावीक्षितो राजा मरुत्तः कथितस्तव
अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः।
दुहिता संमता नाम तस्यासीत्पृथिवीपते ॥
दक्षिणार्थं स्म वै दत्ता संवर्ताय महात्मने।
दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् १२०

एवं ययातेः शापेन जरासंक्रमणे तदा।
पौरवं तुर्वसोर्वंशः प्रविवेश नृपोत्तम ॥ २१
दुष्यन्तस्य तु दायादः करुत्थामः प्रजेश्वरः
करुत्थामात्तथाक्रीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव
कोलश्चोलश्च पार्थिवः।
तेषां जनपदाः स्फीताः
पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ॥ २३
द्रुह्योश्च तनयो राजन्बभ्रुः सेतुश्च पार्थिवः।
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते ॥ २४
यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली।
युद्धं सुमहदस्याऽऽसीन्मासान्परि चतुर्दश२५
अङ्गारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत
ख्यायते तस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान्
गान्धारदेशजाश्चैव
तुरगा वाजिनां वराः।
अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद्
घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २७
घृतात्तु दुदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः।
प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्तितो ह्यानवो मया२८
यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च गदतो मे निशामय ॥१२९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पुरुवंशानुकीर्तने
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## यदुवंशवर्णनं कार्तवीर्योत्पत्तिश्च।

## ३३

वैशम्पायन उवाच।
बभूवुस्तु यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः।
सहस्रदः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा १
सहस्रदस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः।

हैहयश्च हयश्चैव राजन्वेणुहयस्तथा ॥ २
हैहयस्याभवत्पुत्रो धर्मनेत्र इति स्मृतः।
धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः ३

अनपत्यः पुत्रापत्यरहितः ॥ १९ ॥ संवर्ताय ऋत्विजे दत्ता सती संवर्तेन च दुष्यन्तापित्रे सुघोराय दत्ता सती तस्मात् दुष्यन्तं पुत्रं लेभे ॥ १२० ॥ अत एव तुर्वसोर्वंशः पौरवं वंशं प्रविवेश। असंक्रमणेनेति च्छेदः ॥२१॥ दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां भरतः अन्यस्यां भार्यायां करुत्थामश्चासीदित्यर्थः ॥२२॥ इति हरिवंशे टीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२

३३

त्रयस्त्रिंशे यदोर्वंशो वर्ण्यते भगवज्जनिः ॥
प्रभावोऽत्यद्भुतो यत्र कृतवीर्यसुतस्य च ॥ १ ॥
बभूवुरिति ॥ १ ॥

+ क. ख्रान्त° १ क. ख. °श्रस्तु गा° २ ख. °सोश्च प्र ३ क. ख. तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्व° ४ क. ख. °णार्थे ५ क. ख. पार्थिवः। ६ क. ख. ह्यनवो म° ७ क. ख. °र्व्याच्च म° ८ ख. °योदश्चय: प°

साहञ्जनी नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता ।
साहञ्जस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः४
माहिष्मती नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता ।
आसीन्माहिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्
वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्वमेव तु ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ६
दुर्दमस्य सुतो धीमान्कनको नाम वीर्यवान् ।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः७
कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतवर्मा तथैव च ।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तथाऽर्जुनः ८
यस्तु बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥ ९
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसंभवम् १०
तस्मै दत्तो वरान्प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।
पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥ ११
अधर्मे वर्तमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा स्वधर्मेणानुरञ्जनम्॥१२
संग्रामान्सुबहून्कृत्वा हत्वा चारीन्सहस्रशः ।
संग्रामे वर्तमानस्य वधं चाप्यधिकाद्रणे॥१३
तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भारत ।
योगाद्योगेश्वरस्यैव प्रादुर्भवति मायया ॥ १४
तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता १५
तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते जनमेजय १६
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः ।
सर्वे काञ्चनयूपाश्च सर्वे काञ्चनवेदयः ॥ १७
सर्वैर्देवैर्महाराज विमानस्थैरलंकृताः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः १८

यस्य यज्ञे जगौ गाथां
गन्धर्वो नारदस्तथा ।
वरीदासात्मजो विद्वा-
न्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥ १९

नारद उवाच ।

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥ २०
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी ।
रथी द्वीपाननुचरन्योगी संदृश्यते नृभिः २१
अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ।
प्रभावेन महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ २२
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां वै नराधिपः ।
स सर्वरत्नभाक्सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ॥
स एव यज्ञपालोऽभूत्क्षेत्रपालः स एव च ।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ।
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव दिवाकरः॥ २५
स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः
कर्कोटकसुताञ्जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत् ॥
स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः ।
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ॥ २७
लुण्ठिता क्रीडिता तेन फेनस्रग्दाममालिनी ।
चलदूर्मिसहस्रेण शङ्किताऽभ्येति नर्मदा ॥ २८
तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महोदधौ ।
भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः
चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीनमहातिमिम् ।
मारुताविद्धफेनौघमावर्तक्षोभदुःसहम् ॥ ३०
प्रावर्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ।
देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः ॥ ३१

अत्रिसंभवं दत्तं दत्तात्रेयमित्यर्थः ॥ १० ॥ पूर्वमित्यनेन एको वरः ॥ ११ ॥ अधर्मे इति द्वौ वरौ ॥ १२ ॥ संग्रामानिति चतुर्थो वरः ॥ १३ ॥ योगात् योगबलात् मायया संकल्पमात्रेण ॥ १४ ॥ उग्रेण विधिना युद्धेन ॥ १५ ॥ गन्धर्व उपबर्हणाख्यो वरीदासस्य गन्धर्वपतेः पुत्रः ॥१९॥ योगी कायव्यूहेन युगपत् सप्तस्वपि द्वीपेषु दृश्यते ॥२१॥ यज्ञपालो यजमानः एकेन शरीरेण यागं करोति अपरेण पालनमित्यर्थः ॥२४॥ कार्तवीर्यस्य माहात्म्यमाह–**स हीत्यादिना** ॥ २६ ॥ प्रतिस्रोतः विपरीतप्रवाहम् ॥२७॥ शङ्किता परेण भुक्तेति शङ्कावती अभ्येति समुद्रमिति शेषः ॥२८॥ बाहुना बाहुभिः प्रावर्तयत् शरीरभ्रमणेनावर्तितवान् । क्षीरोदं मन्दर इव ॥ ३१ ॥

१ ख. °तो राजा क° २ क. ख. सपर्वता । ३ क. ख. °बाहो सहस्रशतदक्षिणाः । ४ क. ख. सर्वे दे° ५ ख. गाथा ग° ६ ख. वा । ७ क. ख. °व पशुपालोऽभू° ८ ख. °व च भास्करः । ९ ख. °डन्नेव भु°

मन्दरक्षोभचकिता अमृतोद्भवशङ्किताः।
सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥
नता निश्चलमूर्धानो बभूवुस्ते महोरगाः।
सायाह्ने कदलीखण्डैः कम्पितास्तस्य वायुना
स वै बध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्।
निर्जित्यैव समानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन तु।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम्।
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुयाचितः॥
यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः।
युगान्ते त्वम्बुदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव॥ ३६
अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्।
राज्ञो बाहुसहस्रं तु हैमं तालवनं यथा॥ ३७
तृषितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना।
स भिक्षामददाद्वीरः सप्तद्वीपान्विभावसोः ३८
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः।
जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया॥
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेन महात्मनः।
ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चैव वनानि च ४०
स शून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै।
ददाह वनवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः॥ ४१
यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्।
वसिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत॥
यत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुनं विभुः।
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय॥ ४३
तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति।
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्॥
छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां वधिष्यति स भार्गवः॥

वैशम्पायन उवाच।
अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्शन।
प्रभावेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ ४६
रामात्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुनेर्नृप।
वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा॥ ४७
तस्य पुत्रशतस्यासन्पञ्च शेषा महात्मनः।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः
शूरसेनश्च शूरश्च
धृष्टोक्तः कृष्ण एव च।
जयध्वजश्च नाम्नाऽऽसी-
दावन्त्यो नृपतिर्महान्॥ ४९
कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महारथाः।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ५०
तस्य पुत्राः शतं ख्यातास्तालजङ्घा इति श्रुताः
तेषां कुले महाराज हैहयानां महात्मनाम् ५१
वीतिहोत्राः सुजाताश्च
भोजाश्चावन्तयः स्मृताः।
तौण्डिकेरा इति ख्याता-
स्तालजङ्घास्तथैव च॥ ५२
भरताश्च सुता जाता बहुत्वान्नानुकीर्तिताः।
वृषप्रभृतयो राजन्यादवाः पूर्णकर्मिणः॥ ५३
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशभाक् ५४
वृषणाद्वृष्णयः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः
यादवा यदुना चाग्रे निरुच्यन्ते च हैहयाः॥
शूराश्च शूरवीराश्च शूरसेनास्तथाऽनघ।
शूरसेन इति ख्यातस्तस्य देशो महात्मनः*
न तस्य वित्तनाशोऽस्ति नष्टं प्रतिलभेच्च सः
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कीर्तयेदिह नित्यशः॥

पौलस्त्यं पुलस्त्यापत्यं रक्षः राक्षसम्॥३५॥ राज्ञः कार्तवीर्यस्य ॥३७॥ विभावसोर्वह्नेः॥३८॥यत्र निमित्तभूते आपवो वसिष्ठः॥४३॥ ते त्वया दुष्करं कर्म जयादिकं कृतं तत् अन्यो हनिष्यति नाशयिष्यति। तव पराजयो भविष्यतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ अनष्टद्रव्यता प्रजानामिति शेषः ॥ ४६ ॥ स्वयमेव वृतः दत्तात्रेयात्॥ ४७ ॥ धृष्टोक्तः धृष्टनामा अवन्त्य इति जयध्वजस्य विशेषणम् ॥४९॥ यदोः प्रथमपुत्रस्य सहस्रदस्य वंशमुक्त्वा द्वितीयस्य पयोदस्य संततिमाह—**वृषेति**। अत्र पयोद एव वर्षणाद्धेतोर्वृषशब्देनोच्यते। पूर्णकर्मिणः पुण्यकर्मिणः ॥ ५३ ॥ शूरा इति श्लोकः पुस्तकान्तरेषु नास्ति ॥ ५६ ॥

१ क. ख. °तोत्पादशंकिताः। २ क. °लीषण्डैः, ३ ख. °ददद्वी ४ ख. प्रभुः। ५ क. ख. महाबलाः। ६ क. ख. वंशकृत्। * शूराश्चेति श्लोकः खपुस्तके नास्ति ७ ख. कथयेदिह

एते ययातिपुत्राणां
पञ्च वंशा विशांपते।
कीर्तिता लोकवीराणां
ये लोकान्धारयन्ति वै।
भूतानीव महाराज
पञ्च स्थावरजङ्गमान् ॥ ५८
श्रुत्वा पञ्चविसर्गं तु राजा धर्मार्थकोविदः।
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ५९

लभेत्पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्।
आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भारत ॥ ६०
क्रोष्टोस्तु शृणु राजेन्द्र वंशमुत्तमपौरुषम्।
यदोर्वंशधरस्याथ यज्वनः पुण्यकर्मणः ॥ ६१
क्रोष्टोर्हि वंशं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ६२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## वृष्णिवंशवर्णनम्।

## ३४

वैशम्पायन उवाच।
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥ १
माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्।
तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्धनः २
माद्र्याः पुत्रस्य जज्ञाते सुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ३
श्वफल्कस्तु महाराज धर्मात्मा यत्र वर्तते।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षभयमप्युत ॥ ४
कदाचित्काशिराजस्य विभोर्भरतसत्तम।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः ५
स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम्।
श्वफल्कपरिवर्ते च ववर्ष हरिवाहनः ॥ ६
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत
गान्दिनीं नाम सा गां तु ददौ विप्रेषु नित्यशः
सा मातुरुदरस्था तु बहून्वर्षगणान्किल।
निवसन्ती न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताऽब्रवीत्
जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थमिह तिष्ठसि।

प्रोवाच चैनं गर्भस्था कन्या गां च दिने दिने
यदि दद्यां ततोऽद्याहं जाययिष्यामि तां पिता
तथेत्युवाच तं चास्याः पिता काममपूरयत् ॥
दाता यज्वा च धीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वाफल्काद्भूरिदक्षिणः ॥
उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः॥ १२
धर्मधृग्यतिधर्मा च गृध्रमोजान्तकस्तथा।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना॥ १३
अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दन।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ॥ १४
चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ १५
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ १६
अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः।
महिष्यां जज्ञिरे शूराद्भोज्यायां पुरुषा दश १७

---

भूतानि पृथिव्यादीनि यथा लोकानि धारयन्ति तद्वत् ॥ ५८ ॥ पञ्चानां विसर्गं विविधं सर्गम् । वशी नियन्ता आत्मजानां हतानाम् इन्द्रियाणाम् ॥ ५९ ॥ क्रोष्टोः यदोः पुत्रस्य ॥ ६१ ॥ इमं वक्ष्यमाणम् अजो जात इति शेषः ॥६२॥ इति हरिवंशे टीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

३४
चतुस्त्रिंशे यदोः सूनोः क्रोष्टुवंशोऽनुवर्ण्यते ॥
अवतीर्णो हरिर्यत्र कृष्णः कारणमानुषः ॥१॥
गान्धारीति ॥१॥ माद्र्याः पुत्रस्य युधाजितः ॥३॥ विषये देशे ॥ ५ ॥ परिवर्त्ते आगमनमात्रे । हरिवाहनः इन्द्रः ॥ ६ ॥ गान्दिनीनाम निर्वक्ति । गां तु ददाविति । ॥ ७॥ जाययिष्यामि जन्म ग्रहीष्यामि ॥ १० ॥ उपासङ्गादयोऽक्रूरभ्रातरः ॥ १२ ॥ चित्रकस्याक्रूरभ्रातुः ॥ १५ ॥ देवमीढुषः क्रोष्टुस्तृतीयः पुत्रः शूरं दन्त्यादिरयमित्यन्ये । शूरसेनात्कार्तवीर्यपुत्रादृशान्ये ॥ १७ ॥

१ ख. °सर्गांश्च रा° २ क. ख. गास्तु द° ३ ख. °तो जाये पितरं प्रत्युवाच ह । ४ख. उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मुदरश्चा°

वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन्दिवि१८
आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि ।
पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत् ॥ १९
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।
यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः ।
अनाधृष्टिः कनवको वत्सवानथ गृञ्जिमः २१
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः
पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः ॥२२
राजाऽधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।
पृथां दुहितरं वव्रे कुन्तिस्तां कुरुनन्दन ॥ २३

शूरः पूज्याय वृद्धाय
कुन्तिभोजाय तां ददौ ।
तस्मात्कुन्तीति विख्याता
कुन्तिभोजात्मजा पृथा २४

अन्त्यस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषुवे सुतः ।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः २५
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।
पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः ॥ २६
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ।
पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत्२७
यस्यां स धर्मविद्राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः ।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः २८

लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्२९
शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः ।
*असङ्गो युयुधानस्य भूमिस्तस्याभवत्सुतः३०
भूमेर्युगधरः पुत्र इति वंशः समाप्यते ।
उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् ॥
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ॥ ३१
अश्मक्यां प्राप्तवान्पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् ।
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा[1] व्यजायत ॥ ३२
देवश्रवाः प्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः ।
एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्धितः ३३
वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान् ।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्
गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्
चारुदेष्णं सुचारुं च पञ्चालं कृतलक्षणम् ३५
असंग्रामेण यो वीरो नावर्तत कदाचन ।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान्पुरुषर्षभ[2] ३६
वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोन्वयुः ।
चारुमांसानि भोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानि[3] तु३७
तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तु ।
वीरश्चाश्वहनश्चैव वीरौ तावावगृञ्जिमौ[4] ३८
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ।
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ३९
वसुदेवसुतान्वीरान्कीर्तयिष्यामि ताञ्छृणु[5]

---

प्राणदन् स्वयमेव शब्दं चक्रुः । तत्र भगवदवतारस्य भावित्वात् ॥१८॥ आनकानां पटहानाम् ॥१९॥ वसुदेवादयो गण्डूषान्ताः दश शूरस्य पुत्राः पञ्च दुहितरश्चेत्याह—**देवभाग इत्यादिना** ॥२१॥ चैद्यस्य दमघोषस्य ॥२५॥ पृथा कुन्तिः कुन्तीं कुन्तिभोजः ॥२७॥ अनमित्रात् क्रोष्टुः प्रथमपुत्रात् वृष्णिनन्दनात् सर्वयादवाह्लादकात् ॥ २९ ॥ देवभागस्य वसुदेवभ्रातुः देववत् श्रवः कीर्तिर्यस्य तं देवश्रवसम् ॥३१॥ देवश्रवाः वसुदेवतृतीयो भ्राता शत्रुघ्नं पुत्रं व्यजायत ॥३२॥ स एव केनचिन्निमित्तेन बाल एव परित्यक्तो निषादैःसंवर्द्धित इति नैषादिर्जात इत्याह—**देवश्रवा इति** ॥३३॥ वत्सावान् गण्डूषश्च वसुदेवानुजौ ॥ ३४ ॥ विष्वक्सेनः श्रीकृष्णः सुतान् चारुदेष्णादीन् चतुःसङ्ख्यान् ॥ ३५ ॥ चारुदेष्णपदं निर्वक्ति—**असंग्रामेणेति द्वाभ्याम्** ॥ ३६ ॥ चारून् मिष्टान् भक्ष्यान् दिशति अतिसृजतीति चारुदेष्ण इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ कनबकस्य वसुदेवभ्रातुः आवगृञ्जिमौ अवगृञ्जिमस्य वसुदेवभ्रातुः ॥ ३८ ॥ श्यामस्य वसुदेवभ्रातुः पुत्रः इव पुत्रोऽनुज एव पुत्रीभूतः । शमीकोऽभूदिति शेषः । सुमित्र इति पाठे पुत्रस्यैव विशेषणम् । शोभनमित्रत्वं भोजत्वात् एकदेशराजानो भोजाः । तद्भावात् जुगुप्समानः आत्मानं निन्दन् राजसूयं साम्राज्यहेतुम् अवाप । तत्र योग्यतां प्रदर्शयन् तस्य सुमित्रत्वं व्याचष्टे । अजातशत्रुरित्यर्द्धेन । युधिष्ठिरसहायः शमीको राज्ञां राजाऽभवादिति सार्द्धार्थः ॥ ३९ ॥

---

१ क. ख. °श्रवा । * असङ्ग इत्यादि श्लोकार्धद्वयं खपुस्तके नास्ति । २ क. ख. °यान्भरतर्षभ । ३ ख. °योक्ष्यामश्चा । ४ क. ख. तावथ गृ° ५ ख. तं शृणु ।

वृष्णेस्त्रिविधमेनत्तु बहुशाखं महौजसम् । धारयन्विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वृष्णिवंशकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## कृष्णवंशवर्णनम् ।

## ३५

वैशम्पायन उवाच ।

याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ।
पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथा वरा[1] ॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ २
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥ ३
पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाऽभवत
ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः ४
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं[3] शठमेव च ।
दुर्दमं दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥ ५
चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश ।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन ॥ ६
वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः ।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥ ७
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥ ८
वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोध मे ९
भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ १०
*उपासङ्गवरं लेभे तनयं देवरक्षिता ।
अगावहं महात्मानं वृकदेवी ह्यजायत ॥ ११
कन्या त्रिगर्तराजस्य भर्ता वै शैशिरायणः ।
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देऽथ पौरुषम्[4]
कृष्णायससमप्रख्यो[5] वर्षे द्वादशमे तथा ।
मिथ्याऽभिशंप्तो[6] गार्ग्यस्तु मन्युनाऽभिसमीरितः

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि टीकायां वृष्णिवंशकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

**पञ्चत्रिंशे हरेः प्रोक्तः प्रादुर्भावः परात्मनः ॥**
**गार्ग्यशापानुरोधेन यवनाद्भयतद्वधौ ॥ १ ॥**

**या इति** ॥ १ ॥ सुनामान्ताः पञ्च पौरव्यः ॥ २ ॥ देवक्यन्ताः सप्त देवकस्य दुहितरः । परिचारिके भोगपत्न्यौ न तु दास्यौ याः पत्न्य इत्युपक्रमात् ॥ ३ ॥ चित्रान्तानि नवापत्यानि सङ्ख्याय रोहिणीतनया दशेत्युक्तिरयुक्तेत्या शङ्क्याह । चित्रा सुभद्रेति । पुनर्विख्यातेति । चित्रा पुनर्जज्ञे सा च द्वितीये जन्मनि सुभद्रेति विख्यातेत्यर्थः । अत्र पौराणिकी कथा । चित्रा नाम काचिदप्सरा मुनिशापाद्रोहिण्यां गर्भवासं लेभे । सा पुनर्जातमात्रा म्रियमाणा मया यादवेषु जायमानस्य भगवतो लीला न दृष्टा धिङ् मामित्यनुतापं चक्रे । ततश्च तया वासनया पुनस्तत्रैव जन्म धृतवतीति तया सह दशसंख्यापूर्तिर्ज्ञेया ॥ ६ ॥ शौरिः श्रीकृष्णः ॥ ७ ॥ त्रिगर्तराजस्य देवकन्या वृकदेवीति पूर्वेणान्वयः । तस्यैव त्रिगर्तराजस्य भर्ता पुरोहितः शैशिरायणो गार्ग्यः तदीयः शालो यादवपक्षीयः पुरोहितः कश्चित्तस्य पौरुषमस्ति न वेति जिज्ञासां परीक्षां चक्रे हस्तेन लिंगमभिमृष्टवान् । अथ अनन्तरं गार्ग्यस्य पौरुषं रेतो न चस्कन्द दृढव्रतत्वात् तस्यानुत्थानात् । उत्थाने हि किञ्चिदपि रेतः स्कंदेदेव ततो गार्ग्यो नपुंसक इति शालेनोक्त इत्यर्थः । यथोक्तं विष्णुपुराणे—

**" गार्ग्यं गोष्ठ्यां द्विजं शालः**
**षण्ढ इत्युक्तवान्यदा ॥**
**यदूनां सन्निधौ सर्वे**
**जहसुर्यादवास्तदा ।"**

इति ॥ १२ ॥

कृष्णायससमः कोपेनात्यन्तं कृष्णभास्वरवर्णः ।

" कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ।"

इति अन्यत्र दर्शनात् । यतो मिथ्यैव नपुंसकोऽयमित्यभिशापं प्रापितः प्रख्योऽतिविख्यातः । द्वादशमे द्वादशे वर्षे शान्तकोपः स मन्युना दैन्येनाभिशापजेन परिप्लुतः सन्

---

१ ख. °धमेवं तु ब° २ क. परा, ख. धरा । ३ ख. शारणं * अगावहमिति पूर्वार्धं क ख पुस्तकयोर्नोप लभ्यते । ४ ख. पौरुषे । ५ घ. °ससमः प्र° । ६ क. ख. °शस्तो गा° ।

गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ।
गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेषधारिणी ॥
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् ।
मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः
स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः ।
वृषपूर्वार्धकायास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ १६
अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः ।
यवनस्य महाराज स कालयवनोऽभवत् १७
स युद्धकामी नृपतिः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान् ।
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः १८
अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा
दूतं संप्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ १९
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा ॥ २०
कृत्वा च निश्चयं सर्वे पलायनपरायणाः ।
विहाय मथुरां रम्यां मानयंतः पिनाकिनम्२१
कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः ।
इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः ।
पर्वसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥२२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

## क्रोष्टुवंशवर्णनम् ।

## ३६

वैशम्पायन उवाच ।
क्रोष्टोरेवाभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।
वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतं वरः १
स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा रुषद्गुर्वदतां वरः ।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ २
सुतप्रसूतिमन्विच्छन्रुषद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम् ।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ ३

भिशापनिवृत्त्यर्थं परं प्रत्ययमुत्पादयिष्यन् गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे इति सार्धः । काऽसौ गोपकन्या कुतश्चास्य तत्संयोग इत्याह सार्द्धेन—**गोपालीति** । अन्ये तु कृष्णायसमयःप्रख्य इति पठित्वा कृष्णायसं लोहचूर्णम् अभक्षयत् । अयःप्रख्यो लोहवर्ण इति व्याख्या । तत्र वैष्णवीयां संमतिमाहुः—

" सुतामिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ।
आराधयन् महादेवं सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् ॥
ददौ वरं तु संतुष्टो वर्षे तु द्वादशे शिवः ।
संयोजयामास च तं यवनेशो ह्यनात्मजः ॥
तद्योषित्सङ्गमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसप्रभः ।
तं कालयवनं नाम—" इति ।

तच्छब्दार्थो गार्ग्यः संयोजयामास स्वभार्ययेति शेषः । तत्र मातृभेदः कल्पभेदाभिप्रायेण व्याख्येयः । शेषं स्पष्टम् ॥ १३ ॥ वृषस्य× बलीवर्दस्येव पूर्वार्द्धकायो नाभेरुपरिदेशो *येषां ते वृषपूर्वार्द्धकायाः ॥ १६ ॥ राज्ञोऽन्तःपुरे ववृधे इत्यनेन गोपाल्याऽप्सरसा सद्यः शकुन्तलावत्परित्यक्त इति गम्यते ॥ १७ ॥ ईप्सवो ' **जाताः** ' इति शेषः ॥ २२ ॥ इति श्रीहरिवंशे टीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

३६

**षट्त्रिंशे वर्ण्यते वंशः क्रोष्टोर्यदुसुतस्य च ॥
यत्र जाता महालक्ष्मी रुक्मिणी शक्तिरीश्वरी१**

**क्रोष्टोरेवेति** । यथा कृष्णः +क्रोष्टुवंशे जात एवं सत्यभामादयोऽपि तत्रैव जाता इति वक्तुमेवकारः । क्षत्रियाणां समानान्वयेऽपि सापिण्ड्यनिवृत्त्यूर्ध्वं पुरोहितगोत्रेण अन्योऽन्यं गोत्रभेदाद्विवाहा भवन्तीति युज्यत एवेति भावः ॥ १ ॥ सुतप्रसूतिं पुत्रप्रजासमृद्धमात्मजम् इच्छन् अभूत् तस्य इच्छतः कर्मभिः पुत्रेष्ट्यादिभिः ॥ ३ ॥ अनु-

१ ख. °च्युत । २ क. ख. °कामो नृ° । ३ क. समेत्य म° । ४ ख. °नमरोचयन् । ५ क. °द्वान्निर्ऋणः स । ६ ख. सुसुखी । ×वृषभस्येति पाठान्तरं च । * °रुपरि देहः प्रदेशो ये —क । +क्रोष्टुवंशे—क । ७ ख. स्वाहेः पु° । ८ ख. °ज्ञा उष° । ९ क. °वैराप्त द° १० । ख. ततः श्र° । ११ क. ख. °तिमिच्छन्वै । १२ ख. उष° ।

आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।
शशबिन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ ४
पृथुश्रवाः पृथुयशा राजाऽऽसीच्छशबिन्दुजः ।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमुत्तरम् ॥ ५
अनन्तरं सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ।
उशतो यज्ञमखिलं स्वधर्ममुशतां वरः ॥ ६
शिनेयुरभवत्सूनुरुशतः शत्रुतापनः ।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥ ७
मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम् ।
चचार विपुलं धर्ममर्मर्षात्प्रेत्यभागपि ॥ ८
सुतप्रसूतिमिच्छन्वै सुतं कम्बलबर्हिषः ।
बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥ ९
निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे ।
धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् १०
जज्ञेऽथ रुक्मकवचात्पराजित्परवीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः पराजितः ११
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पलितो हरिः ।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥
रुक्मेषुरभवद्राजा
पृथुरुक्मस्य संश्रितः ।
ताभ्यां प्रव्राजितो राज्या-
ज्ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥ १३
प्रशान्तः स वनस्थस्तु ब्राह्मणैश्चावबोधितः ।
जिगाय रथमास्थाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥
नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बलवती सती
अपुत्रोऽपि च राजा स नान्यां भार्यामविन्दत
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।
भार्यामुवाच संत्रस्तः स्नुषेति स नरेश्वरः १७
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद्देवी कस्य चेयं स्नुषेति वै ।
अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥१८
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपदानवी
उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः स व्यजायत
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥१९
राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ ।
पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥ २०
लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् ।
लोमपादात्मजो बभ्रुराहुतिस्तस्य चात्मजः ॥
आहुतेः कौशिकश्चैव
विद्वान्परमधार्मिकः ।
चेदिः पुत्रः कौशिकस्य
तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः * ॥ २२
भीमो विदर्भस्य सुतः
कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे
रणधृष्टः प्रतापवान् ।
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरा-
स्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ २३
आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च यः ।
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते
जीमूतपुत्रो बृहतिस्तस्य भीमरथः सुतः ।
अथ भीमरथस्यासीत्पुत्रो नवरथस्तथा ॥ २५
तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ।
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः ॥

---

अनुष्ठितः आश्रितः ॥४॥ पार्थश्रवसं पृथुश्रवसः पुत्रम् ॥५॥ उशतो नामतः स्वधर्मं यज्ञम् । उशतां कामयमानानां वरः श्रेष्ठः ॥ ६ ॥ मरुत्तः धर्मं चचार । तत्र हेतुः—**प्रेत्यभागिति**। मरणानन्तरं स्वफलप्रदानेन सेवते अप्रेत्यापि तद्भाक् सेवनकृत् यतोऽतश्चचार ततश्च सुतं लेभे इत्यन्वयः ॥ ८ ॥ सुतम् इच्छन् सुतप्रसूतिं नाम सु[तं]लेभ इत्यनुषज्यते ॥ ९ ॥ विदेहेभ्यः विदेहान् त्रातुं तदधिपतये राज्ञे ददावित्यर्थः ॥ १२ ॥ संश्रितः आश्रितः ज्येष्ठानुसारी जातः ॥ १३ ॥ वार्धक्यात् प्रशान्तस्त्यक्तराज्यलिप्सः अवबोधितः तपआदिना उद्दीपितः जिगाय जितवान् ॥ १४ ॥ बलवती प्रगल्भा ॥ १६ ॥ तस्याः उपदानवीसंज्ञायाः उग्रेण तपसा परिणता वृद्धाऽपि शैब्या पुत्रं व्यजायत जनितवती ॥१९॥

---

१ क. 'समन्तरम्। २ क. अन्तरस्य सु'। ३ ख. उशन्यो य'। ४ क. ख. 'वत्पुत्र उश'। ५ क. श्रेष्ठं। ६ क. ख. शतप्र'। ७ ख. 'संश्रयात्। ८ ख. 'न्तश्चाप्रशान्तश्च ब्रा'। ९ ख. जगाम धनुरादाय दे'। १० ख 'की मेकलां मृ'। ११ ग. घ. 'वनीम्। १२ ख. स जनेश्वरः। १३ क. भार्येति जातभीः उ'। १४ क. 'राहति'। * लोमपादमित्यादि श्लोकद्वयं खपुस्तके नास्ति। १५ क. ख. ग. 'तेर्धृष्टः सु'। १६ क. 'थः स्मृतः।

देवक्षत्रोऽभवत्तस्य दैवक्षत्रिर्महायशाः।
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः॥ २७
मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि।
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुत्रो मरुवसास्तथा ॥२८
आसीन्मरुवसः पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः।
मधुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रवत्यां कुरूद्वहः॥ २९
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या सत्त्वांस्तस्यामजायत
सत्त्वान्सर्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्तिवर्धनः॥३०
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।
युज्यते परया कीर्त्या प्रजावांश्च भवेन्नरः॥३१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

## बभ्रुवंशवर्णनम्।

## ३७

वैशम्पायन उवाच।
सत्त्वतात्सत्त्वसंपन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान्।
भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥१
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह ताञ्शृणु॥२
भजमानस्य संजय्यौ बाह्यकाथोपबाह्यका।
आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः
क्रुमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरंजयः।
एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥ ४
अयुताजित्सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दाशकः
उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥ ५
यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः॥६
संयुज्यात्मानमेवं तु पर्णाशाया जलं स्पृशन्
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा॥ ७
चिन्तयाऽभिपरीता सा जगामैकाभिनिश्चयम्
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ८
नाध्यगच्छत तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः।
जायेत्तस्मात्स्वयं हन्त भवाम्यस्य सहव्रता॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः।
वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः॥ १०
तस्यामाधत्त गर्भं च तेजस्विनमुदारधीः।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ११
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात्।
अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् १२
गुणान्देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः।
यथैवाग्रे समं दूरात्पश्याम च तथाऽन्तिके॥
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च॥
एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि।
यज्वा दानपतिर्विद्वान्ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः १५

---

पुरुद्वान्नामतः तस्य वैदर्भी भद्रवती भार्या तस्यां मधुर्जातः ॥ २९ ॥ तस्यैव ऐक्ष्वाकी सती नाम द्वितीया भार्या तस्यां सत्वान् जातः ॥ ३० ॥ इति हरिवंशे टीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

**सप्तत्रिंशेऽन्वयस्योक्ताश्चत्वारः सत्त्वतः सुताः**
**शुचीकरा हरीत्यत्र त्रयाणां वंशवर्णनम्॥१॥**

सत्त्वतात् भजमानदेवावृधौ नामानौ ॥ १ ॥ संजय्यौ संजयपुत्र्यौ ॥३॥ आत्मानं चित्तम्। संयुज्य समाधये जलं स्पृशन् स्नानाचमनादेरुपलक्षणमेतत् ॥ ७ ॥ एका एकाकिन्येव निश्चयम् अभिजगाम चकार। तस्य नद्यायाहितस्य चिन्तया ॥८॥ हन्तेति। सस्नेहमालोचनं सहव्रता धर्मपत्नी ॥९॥इयेष इच्छितवान् ॥१०॥ अन्तिके दूराच्च योगबलेनानेकधाऽऽत्मानं कृत्वा संचरन्तं तुल्यवत्पश्यामः ॥ १३ ॥ षट्षष्ट्यधिकानि सप्त सहस्राणि। पुरुषाः अमृतत्वं युद्धेन मृत्युमासाद्य ब्रह्मलोकं गता इत्यर्थः॥१४॥ यज्वा बभ्रुरेव१५

---

१ क. °ज्ञे तु वै°। २ ख. °र्भ्यां पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः। मधुर्जज्ञेऽथ पौरव्यां भद्र°। ३ ख. °स्या व्यजा°। ४ क. सत्वात् स°। ५ ख. °ते परमश्री°। ६ क. °श्च भवेत्पुनः। ख. °वेत्तथा। ७ क. °काथोपवाह्यका। ८ क. °स्तस्य जज्ञिरे। ९ ख. घृष्णः। १० क. °जिच्छतजिच्चा°। ११ ख. °ताजिदथ दा°। १२ °शत्। १३ ख °यं गत्वाभ्य°। १४ क. सा सुषुवे मासि दशमे स°। १५ क. °धस्यैव की°। १६ क. ख. °ग्रे तथा दूरादपश्याम त थान्तिकात् ॥ १३ ॥ त° १७ क. षष्टिं च ष°

कीर्तिमांश्च महातेजाः
सात्वतानां महावरः*
तस्यान्ववायः सुमहा-
न्भोजा ये मार्तिकावताः॥ १६
अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान्
कुकुरं भजमानं च शमिं कम्बलबर्हिषम् ॥१७
कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ॥
जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित्तु पुनर्वसोः।
तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल॥१९
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ।
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम् ॥
श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान्।
अशीतिचर्मणा युक्तः स नृपः प्रथमं व्रजेत्॥२१
नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुषः।
नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत्
पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्येत्यनुमोदनम्
सोपासङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम्
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु।
रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राणि दशापि च २४
तावन्त्येव सहस्राणि
उत्तरस्यां तथा दिशि।
आभूमिपालान्भोजान्स्वा-
नुत्तिष्ठन्किङ्किणीकिणः २५
आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः २६
देवकश्चोग्रसेनश्च देवपुत्रसमावुभौ।
देवकस्याभवन्पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः २७
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
कुमार्यः सप्त चाप्यासन्वसुदेवाय ता ददौ २८
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता।
वृकदेव्युपदेवी च सुनासी चैव सप्तमी ॥२९॥
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुः सुभूमिपः

तस्य बभ्रोः। अन्धकात् सत्त्वतः पुत्रात् काश्यस्य दृढाश्वस्य दुहिता ॥ १६ ॥ श्वेतेन शुद्धेन किशोरप्रतिमः तरुणाश्ववदुत्साहवान्। "किशोरोऽश्वस्य शावकः" इति मेदिनी। अशीतिचर्मणा युक्तः अशीत्या पुरुषैर्वाह्यं चर्मफलकं दारुमयम् आसनविशेषः। तेन युक्तः तदारूढः। "चर्म कृत्तौ च फलके" इति मेदिनी। अशीतिचर्मणेत्यस्य अभेद्यात्मत्वं चेत्यर्थः इति **प्राञ्चः** प्राहुः। यद्वा नास्ति शीतिः स्वप्नो येषां ते अशीतयो देवाः त एव **चर्म-बाणत्राणं** तेन युक्तः देवरक्षित इत्यर्थः ॥२१॥ अत एव तस्य परिवारः स्तूयते-**नापुत्रवानिति**। भोजमाहुकम्॥२२॥ रूप्यकाञ्चनेत्यर्थः सोपासङ्गेत्यतः प्राग्द्रष्टव्यः। रूप्यमय्यः काञ्चनमय्यश्च कक्षाः वरत्राः बन्धनशृङ्खला वा येषां तादृशानां नागानां दश सहस्राणि पूर्वस्यां दिशि। अनुमोदनम् अभ्यनुज्ञाम् एति याति। तु प्राप्नुवन्ति तथा तस्यामेव दिशि रथानां दश सहस्राणि अनुमोदनं यान्ति। उपासङ्गो युगम्। अनुकर्षणं रथाधःस्थितं काष्ठं वरूथं रथगुप्तिः तद्वतां रथानाम् ॥ २३ ॥ उत्तरस्यामपि तावन्त्येव रथानां नागानां च सहस्राणि तथा दिशि यथा पूर्वोत्तरयोस्तथाऽवशिष्टायामपि दिशि दक्षिणस्यां सपश्चिमायाम् अनुमोदनं तावन्त्येव सहस्राणि प्राप्नुवन्तीत्यर्थः। आभूमिपालान्सर्वान् सामन्तान् अभिव्याप्य वशीकृत्य भोजाः स्वज्ञातयस्तम् आहुकम् उपतिष्ठन् उपातिष्ठन् सेवितवन्तः किङ्किणीकिणः। क्षुद्रघण्टिकावन्तो रथादयः। किङ्किणीशब्दादीकक् तद्धितः। किंकिणीकिण इति दन्त्यस्य मूर्द्धन्यत्वमार्षम्। भोजान् स्वानुत्तप्तकिङ्किणीकिण इति पाठे सर्वान् भूमिपालान् व्याप्य स्वान् उत्तमं सुवर्णं तन्मयकिङ्किणीयुक्ताः रथादय उत्तप्तकिङ्किणीकाः तद्युक्ता उत्तप्तकिङ्किणीकिणः। तादृशानकरोदिति शेषः ॥ २५ ॥ आहुकीम् आहुकसंबन्धिनीं स्वसारम् आहुकीसंज्ञाम् अवन्तिभ्यः राज्ञीत्वेन ददुः ॥ २६ ॥ कुमार्यः पुत्र्यः ॥ २८ ॥ वृकदेवीयुक्ता उपदेवी वृकदेव्युपदेवी ॥ २९ ॥ कंसः पूर्वजः प्रथमः न्यग्रोधादयोऽष्टौ सुभूमिप इति शंकोर्विशेषणम्। **गौडपाठे**-सुभूषण इति वा तस्यैव विशेषणम्। अन्ये तु सुभूमिप इति कंसस्यैव नामेत्याहुस्तेषां तस्य पूर्वजोक्तिर्विरुध्यते। परे पुनः कंकुश्चैव सुभूमिप इति शंकुपदे लोपमेव कुर्वन्ति तत्र **पाठतत्त्वं व्यास एव वेद** ॥ ३० ॥

* कीर्तिमांश्चेति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति। १ क. ख. शमं कम्ब॰। २ ख. ॰जिच्च पु॰। ३ ख. युक्त आहुकः प्र॰। ४ ख. ॰तायुधः। ना॰। ५ ख. ॰जस्य प्रययुः किल॥ सो॰। ६ ख. रौप्यका॰। ७ ख. सहस्राण्येकविंशतिः। ८ क ख. अभू॰। ९ क. ॰नुत्तमं कि॰। ख. ॰स्वानातिष्ठन्कि॰ १० क. ख. ॰वगर्भस॰। ११ ख. संदे॰। १२ क. ख. ॰स चास्यास॰। १३ ख. सुभूषणः।

राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाऽऽसन्कंसा कंसवती तथा
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः॥
कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ३३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## ३८

वैशम्पायन उवाच ।
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः ।
राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः ।
दत्तातिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः २
शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित् ।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ संबभूवतुः ३
शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ।
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदीकः संबभूव ह ४
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः ।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वाऽथ मध्यमः ॥५॥
देवर्षेर्वचनात्तस्य भिषग्वैतरणश्च यः ।
सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका
देववांश्चाभवत्पुत्रो विद्वान्कम्बलबर्हिषः ।
असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ
अजातपुत्राय सुतान्प्रददावसमौजसे ।
सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धकास्त्रयः ॥८
एते चान्ये च बहवो अन्धकाः कथितास्तव।
अन्धकानामिमं वंशं धारयेद्यस्तु नित्यशः ९
आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः× ।
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्ये बभूवतुः
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ।
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ११
अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम् ।
अनमित्रसुतौ निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः १२
प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ।
प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम्
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान् ।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्
स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः ।
अब्धिकूलमुपस्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम् १५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि टीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

३८

**अष्टत्रिंशेऽन्वयः प्रोक्तो भजमानस्य तत्र च ।
स्यमन्तकस्य च मणेः प्रत्यानयनमद्भुतम् ॥१॥**

भजमानस्य रथमुख्यः रथवतां मुख्योऽतिरथ इति यावत् ॥ १ ॥ देवर्षेः च्यवनस्य वचनात्तस्य शतधन्वनः भिषक्प्रभृतयश्चत्वारः पुत्राः । कामदा कामदन्तिका चेति द्वे पुत्र्यौ ॥ ६ ॥ कम्बलबर्हिषः मरुत्तपुत्रस्य देववान् तस्य त्रयः ॥ ७ ॥ अन्धकाः अन्धकस्य पुत्राः तान् अन्धक एव असमौजसे ददाविति गम्यते ॥ ८ ॥ निघ्नतः निघ्नात् ॥ १२ ॥ शत्रुजिच्च सेनाजिच्च शत्रुसेनाजितौ निवसन्त्यां कृतनिवासायाम् ॥ १३ ॥ उपलब्धवान् परम्परया लब्धवान् समुद्रात्समुद्रं प्राप्य तत्तीरे इत्यर्थः । कस्माल्लब्धवानित्याकाङ्क्षायामाह–**तस्येति**। तस्य प्रसेनसंबन्धिनो भ्रातुः सत्राजित्संज्ञस्य ॥ १४ ॥ निशापाये प्रातःकाले उपस्प्रष्टुं स्नानादिकं कर्तुम् ॥ १५ ॥

---

१ क. °थ सुधनु° । २ ख. °ष्टिस्तु पु° ३ क. एषां स्व° । ४ क. °प्रुते नरः । ५ ख. °देयः शू° । ६ ख. °देयस्य सु° । ७ ख. समी च दत्तशर्मा च दत्तशत्रुश्च श° । ८ ख. समीपु° । क. शामिपु° ९ क. ख. °न्वा तु म° । १० ख. सुदतश्चातिदत्तश्च कामदा कामदातिका ॥ ६ ॥ दे° । ११ क. °न्तश्चाधिदा° । १२ ख. देववान्दत्तको नाम पुत्रः कम्ब° । १३ ख. °जाः सुतस्तस्य नास° । १४ क. ख. सुदंष्ट्रं च सुचारुं च कृ° १५ क. °वो ह्यन्ध° × एते चान्ये च बहव इत्यादि श्लोकार्धत्रयं खपुस्तके नास्ति । १६ ख. क्रोष्टोर्भा° । १७ ख. °घ्नो निघ्नस्य द्वौ । १८ ख. °सेनाजि° । १९ क. °सन्गो म° । २० ख. तोयं कू° । २१ ख. °यौ हरिम् ।

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ।
अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान्प्रभुः १६

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ।
यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषांपते
तेजोमंडलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम् ।
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै
एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
स्वकण्ठादवमुच्यैव एकान्ते न्यस्तवान्विभुः
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा ।
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान्कथाम् २०
तमपि प्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्राजित् ।
लोकानुद्भासयस्येतान्येन त्वं सततं प्रभो ।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन्दातुमर्हसि ॥ २१
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः ।
स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥ २२
तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह ।
पुरीं विस्मापयित्वा च राजा त्वन्तःपुरं ययौ*
तत्प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् २४
स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्
लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्ने स्यमन्तके ।
गोविन्दो न च तल्लेभे शक्तोऽपि न जहार सः
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।
स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप वनेचरात् ॥२७
अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।
निहत्य मणिरत्नं तदादाय बिलमाविशत् २८
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्
प्रार्थनां तां मणेर्बुद्ध्वा सर्व एव शशंकिरे २९
स शङ्क्यमानो धर्मात्मा नकारी तस्य कर्मणः
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ३०
यत्र प्रसेनो मृगयामाचरत्तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१
ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम्
अन्वेषयन्परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ३२
साश्वं हतं प्रसेनं वै नाविन्दच्चैच्छितं मणिम्
अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ३३
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैरृक्षश्च सूचितः ।
पादैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य माधवः ३४
महत्यृक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो नृप ।
क्रीडापयन्त्या मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम्

धात्र्युवाच ।

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ३६
सुव्यक्तीकृतशब्दस्तु तूष्णीं बिलमथाविशत् ।
प्रविश्य चापि भगवांस्तमृक्षबिलमञ्जसा ३७
स्थापयित्वा बिलद्वारि यदून्लाङ्गलिना सह ।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श ह३८
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम्
प्रविष्टे तु बिलं कृष्णे बलदेवपुरःसराः ।
पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ४०

यथा दिवि मण्डलिनं त्वां पश्यामि तथैव सन्निहितमपि मण्डलमात्रं पश्यामि न त्वाकृतिविशेषम् । अतस्तव सख्येन उपागतस्य समीपागतस्यापि इतरजनापेक्षया मे मया त्वत्तो विशेषतः कोऽनुग्रहः प्राप्तो न कोऽपि, यतः इतरवदहमपि त्वां मण्डलवन्तमेव पश्यामीत्यर्थः ॥ १८ ॥ विग्रहवन्तं सुस्पष्टावयवं नृपतिः राजा मण्डलाधिपतित्वात् न तु क्षत्रियमात्रः ॥ २० ॥ स्यन्दते प्रस्रवति रुक्मं सुवर्णम् ॥२५॥ सिंहो देवताविष्टः न तु पशुमात्रः तेन तादृङ्मणिधारिणो धर्षणायोगात् ॥ २७ ॥ ऋक्षराजो जाम्बवान् ॥ २८ ॥ शशङ्किरे कृष्णेनैव प्रसेनं हत्वा मणिर्गृहीत इति शङ्कां चक्रुः ॥ २९ ॥ नकारी अकर्ता ॥ ३० ॥ आप्तकारिभिः अन्तरङ्गैः किङ्करैः ॥ ३१ ॥

१ क. तथैव व्यो । २ ख. त्वा च भ । ३ क. च्यैव सेका, ख. च्यैनमेका । ४ क. वान्भुवि । ५ क. समब्रवीत् । लो ६ क. स । * ख. स्वां पुरीं स विसिस्माय राजा त्वन्तः पुरं तथा ॥ २३ ॥ तत्प्र । ७ ख. सत्राजि । ८ क. र ह । ९ क. प्रार्थितं तं मणिं बुद्ध्वा स । १० क. अश्वं ह । ११ क. नं च ना । ख. नं तु ना । १२ क. विंदच्चैव तं म । ख. विंदत च तन्मणिम् । १३ ख. पदैस्तैरन्वियायाथ गु । १४ महाृक्ष । १५ ख. व्यक्तीकृतश्च शब्दः स तूर्णं चापि बिलं ययौ । १६ ख. श्य तत्र भ । १७ क. लमोजसा । १८ क. ख. ष्णे वसुदे । १९ क. पुनर्द्वार ।

वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम्।
भेजे[1] जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य संमताम्।
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ॥४१
अनुनीयर्क्षराजानं[2] निर्ययौ च तदा[3] बिलात्।
द्वारकामगमत्कृष्णः श्रिया परमया युतः ॥४२
एवं स मणिमाहृत्य विशोध्याऽऽत्मानमच्युतः
ददौ सत्राजिते तं वै सर्वसात्वतसंसदि ४३
एवं मिथ्याऽभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना।
आत्मा विशोधितः पापा-
द्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् ॥ ४४
सत्राजितो दश त्वासन्भार्यास्तासां शतं सुताः
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः ४५
वीरो वातपतिश्चैव उपस्वावांश्च[4] ते त्रयः।
कुमार्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता नराधिप
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता।
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्यां कृष्णाय तां ददौ
समाक्षो भंगकारिस्तु[5] नारेयश्च नरोत्तमौ।
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ॥४८
माद्रीपुत्रस्य[6] जज्ञेऽथ पृश्निः पुत्रो युधाजितः।
जज्ञाते तनयौ[7] पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ४९
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत।
गांदिनीं[8] नाम तस्याश्च सदा गाः प्रददौ पिता
तस्यां जज्ञे[9] महाबाहुः श्रुतवानिति[10] विश्रुतः।
अक्रूरोऽथ महाभागो यज्वा विपुलदक्षिणः ५१
उपासङ्गस्तथा[11] मंगुर्मृदुरश्चारिमेजयः[13]।
गिरिक्षिप[12]स्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमर्दनः ॥५२
धर्मभृ[14]द्यतिधर्मा च गृध्रभोजोऽधकस्तथा।
सुबाहुः[15] प्रतिबाहुश्च सुंदरी च वराङ्गना ५३
विश्रुता साम्बमहिषी[16] कन्या चास्य वसुंधरा[17]
रूपयौवनसम्पन्ना सर्वसत्त्वमनोहरा ॥ ५४
अक्रूरेणोग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुरुनन्दन।
सुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ ५५
चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च[18] सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ ५६
अरिष्टनेमे[19]रश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ ५७
इमां मिथ्याभिशस्तिं यः
कृष्णस्य समुदाहृताम्।
वेद मिथ्याभिशापास्तं
न स्पृशन्ति कदाचन ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंश-
पर्वण्यष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## अक्रूरचरितम्।

## ३९

वैशम्पायन उवाच।
यत्तत्सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम्
अदात्तद्धारयामास बभ्रुर्वै शतधन्वना ॥ १
यदा[20] हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्।
अक्रूरोन्तरमन्विच्छन्मणिं चैव स्यमन्तकम् २

वातपतेर्विशेषणं वीर इति ॥ ४६ ॥ भार्याः कृष्णाय ता ददाविति पाठे तिस्रोऽपि दत्ताः अन्यथा ताम् उत्तमत्वेन ख्यातां सत्यभामामेवेति व्याख्येयम् ॥ ४७ ॥ क्रोष्टोः कनिष्ठा स्त्री माद्री तत्पुत्रस्य युधाजितो वंशमाह-**माद्रीति** ॥ ४९ ॥ मिथ्याभिशस्तिं मिथ्याभिशापं वेद जानाति ॥ ५८ ॥ इति हरिवंशे टीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

**त्रिंशे नवाधिकेऽध्याये सत्राजिद्वध उच्यते।**
**यदुवंशोक्तिसंपूर्तिर्मणेरानयनं तथा ॥ १ ॥**

यत्तत् बभ्रुरक्रूरस्तद्रत्नं शतधन्वना हारयामासेत्यन्वयः ॥ १ ॥ अन्तरं तादर्थ्यं यदर्थं स मणिस्तं स्वर्णप्रसवादिरूपमर्थमान्विच्छन्नित्यर्थः। "अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये।" इत्यमरः ॥ २ ॥

१ क. ख. लेभे जा । २ ख. राजं तु । ३ ख. ततो बि । ४ क. विवस्वावांस्तथैव च । ५ क. क्षो भङ्गकारस्य ना । ६ ख. माद्र्याः पु । ७ क. यौ वृष्णेः श्व । ८ क. गांदी तस्याथ गांदीत्वं सदा गाः प्रददौ हि सा ॥५०॥ त । ९ क. ज्ञे तदा वीरः श्रु । १० क. वानतिथिः प्रियः । अ । ११ ख. उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मुदरश्चारिमर्दनः । १२ क. अरिक्षिप । १३ ख. रिमेजयः । १४ ख. धर्मभृच्चापि धर्मो च गृ । १५ ख. आवाहप्रतिवाहौ च सुं १६ क. ताचास्य म । १७ क. स्य वराङ्गना । १८ ख. अश्वसेनोश्व । १९ क. आरिष्टनेमिर । ख. नेमेश्च सुता धर्मोधर्ममृदेव च । २० क. सदा हि प्रा०

सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः।
रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्
अक्रूरस्तु ततो रत्नमादाय भरतर्षभ।
समयं कारयांचक्रे नावेद्योहं त्वयेत्युत ॥४॥
वयमभ्युपयास्यामः कृष्णेन त्वामभि द्रुतम्।
ममाद्य द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ५
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी।
प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥६॥
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः।
भर्तुर्निवेद्य दुःखार्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्तयत् ॥९.

पाण्डवानां तु दग्धानां
हरिः कृत्वोदकक्रियाम्।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां
न्ययोजयत सात्यकिम् ॥८॥

ततस्त्वरितमागत्य द्वारकां मधुसूदनः।
पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९॥
हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना।
स्यमन्तकः स मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो१०
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम्।
स्यमन्तको महाबाहो ह्यस्माकं स भविष्यति
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः।
शतधन्वा ततोऽक्रूरमवैक्षत्सर्वतोदिशम् १२
संरब्धौ तावुभौ दृष्ट्वा तत्र भोजजनार्दनौ।
शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यमक्रूरो नाभ्यपद्यत
अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः।
योजनानां शतं साग्रं हयया प्रत्यपद्यत १४
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी।
भोजस्य वडवा राजन्यया कृष्णमयोधयत्
क्षीणां जवेन च हयामध्वनः शतयोजने।
दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वानमार्दयत १६
ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात्खेदाच्च भारत।
खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत्१७
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा हया मया।
पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम्
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः।
मिथिलामभितो राजञ्जघान परमास्त्रवित् १९
स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्।
निवृत्तं चाब्रवीत्कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली

नास्तीति कृष्णश्चोवाच
ततो रामो रुषान्वितः।
धिक्छब्दमसकृत्कृत्वा
प्रत्युवाच जनार्दनम् २१
भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष
स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।
कृत्यं न मे द्वारकया
न त्वया न च वृष्णिभिः २२

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः।
सर्वकामैरुपचितैर्मैथिलेनाभिपूजितः २३
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः।
नानारूपान्क्रतून्सर्वानाजहार निरर्गलान् २४
दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह।
स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः२५

समयं शपथम् ॥ ४ ॥ कृष्णेन श्वशुरवधक्रुद्धेन अभ्युपयास्यामः अनुयास्यामः प्रबलीकर्तुमिति शेषः। अत्रोपपत्तिमाह-**ममेति** ॥ ५ ॥ वारणावताह्वयं हस्तिनापुरम् ॥ ६ ॥ कुल्यार्थे अस्थां संस्कारोऽथ। "कुल्यं स्यात्कीकसे" (यवर्गे १४) इति मेदिनी ॥ ८ ॥ भोजः शतधन्वा ॥ १२ ॥ शाठ्यात् अशक्तिप्रकाशनात् हार्दिक्यं हृदीकपुत्रं शतधन्वानं नाभ्यपद्यत सहायार्थं न गतवान् ॥१३॥ हयया अश्वया ॥१४॥ दृष्टदोषाः क्षीणगतयो निश्चेष्टा वा। यद्वा शतधन्वनो हया अश्वा दृष्टदोषा मृताः ॥ १८ ॥ दीक्षामयं कवचं दीक्षितस्य युद्धनिषेधादितरैर्वैराप्रसक्तेस्तेनैव स्वशरीररक्षाऽपि कृतेत्यर्थः ॥ २५ ॥

१ क. ख. तदा र°। २ ख. °पगच्छामः कृ°। ३ क. ख. °न त्वां प्रधार्षितम् ॥ ममा°। ४ क. ख. °मा मनस्विनी। ५ क. °णाह्वयम् ॥ ६ ॥ स°। ६ क. °दकं तथा। कु°। ७ ख. °गम्य द्वा°। ८ क. °हं यतः ॥१०॥ त°। ९ ख. °क्रूरं सर्वतोदिशमैक्षत ॥ १२ ॥ सं°। १० क. °र्दिक्यं नाक्रूरोऽभ्युपपद्यत ॥ १३ ॥ अ°। ११ ख. °रो नान्वपद्यत ॥ १३ ॥ अ°। १२ ख. °ग्रं वडवा प्र°। १३ क. विज्ञातहृद°। १४ क. °न हृदयाम°। १५ क. °न्वा समत्यजत् ॥ १६ ॥ त°। १६ ख. तिष्ठेह त्वं म°। १७ घ. °श्यद्धृत्वा भो°। १८ ख. °ष्णः प्रोवा°। १९ ख. °ब्दपूर्वमसकृत्प्र° २० ख. °रुपहृतैर्मै°।

अथ रत्नानि चाग्र्याणि
द्रव्याणि विविधानि च ।
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा
यज्ञेषु विनियोजयत् २६
अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः २७
अथ दुर्योधनो राजा गत्वा तु मिथिलां प्रभुः
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान्
प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना २९
अक्रूरस्त्वन्धकैः सार्धमथायाद्भरतर्षभ ।
हत्वा सत्राजितं युद्धे सहबन्धुं महाबलम् ३०
ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवानथ ।
अपयाते तथाऽक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ३१
अनावृष्ट्या यदा राज्यमभवद्बहुधा कृशम् ।
ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ३२
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन्दानपतौ ततः ।
प्रववर्ष सहस्राक्षः कच्छे जलनिधेस्तदा ३३
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसंमताम् ।
अक्रूरः प्रददौ धीमान्प्रीत्यर्थं कुरुनन्दन ३४
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ।
सभामध्ये गतं प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥ ३५
यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो ।
तत्प्रयच्छस्व मानार्ह मयि माऽनार्यकं कृथाः
षष्टिवर्षे गते काले यद्रोषोऽभून्ममानघ ।
स संरूढोऽसकृत्प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान्
ततः कृष्णस्य वचनात्सर्वसात्वतसंसदि ।
प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ३८
ततस्तमार्जवप्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिंदमः ।
ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ३९
स कृष्णहस्तात्संप्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव
यस्त्वेवं श्रृणुयान्नित्यं शुचिर्भूत्वा समाहितः
सुखानां सकलानां च फलभागीह जायते ४१
आ ब्रह्मभुवनाच्चापि यशःख्यातिर्न संशयः ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥* ४२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वण्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९ ॥

## वराहोत्पत्तिवर्णनम् ।

## ४०

जनमेजय उवाच ।

प्रादुर्भावान्पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतामेव वाराह इति नः श्रुतम् १

कच्छे सजले तीरप्रदेशे ॥ ३३ ॥ योगेन बहुधनदानादिसंबन्धेन लिङ्गेन ॥ ३५ ॥ अनार्यकं शाठ्यम् ॥ ३६ ॥ यत् यतो हेतोः रोषोऽभूत् स च संरूढः ततश्च कालात्ययप्राप्तश्चिरकालीनो रोषः यदर्थं जातः तद्रत्नं प्रयच्छेति पूर्वेणान्वयः ॥ ३७ ॥ यस्त्विति द्वौ श्लोकौ क्वचिन्न पठ्येते ॥ ४१ ॥ इति श्रीहरिवंशे टीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

४०

**चत्वारिंशत्तमेऽध्याये भगवद्विषयो महान् जनमेजयस्य भूपस्य प्रश्नभारः प्रतन्यते॥१॥**

स्यमन्तकाख्यानप्रसङ्गेन समर्थोऽपि भगवान् लोकस्थितिं न बिभेद कारुणिकत्वाच्चाक्रूरादीनामपराधान् क्षान्तवानिति श्रुत्वा भगवन्माहात्म्यश्रवणे जातादरो जनमेजय उवाच **प्रादुर्भावानिति।** प्रादुर्भावान्कथयतां मुखाद्वाराहोऽपि वराहस्यायं वाराहस्तादृशोऽपि प्रादुर्भावोऽस्तीति नोऽस्माभिः श्रुतम्। वरं च तदहश्चेति व्युत्पत्या वराहशब्दः श्रेष्ठयज्ञवाची१

१ ख. °चान्यानि द्र° । २ ख. °ज्ञेष्वेव न्ययो° । ३ ख. °त्वा स मि° । ४ क. ख. °द्धैमपायात्पुरुषर्षभः ॥ ह° । ५ क. °बली । ६ ख. °तावांस्तथा । ७ क. तदाऽक्रू° । ८ ख. तदा राष्ट्रम° । ९ क. °दा राष्ट्रम° । १० क. °रुपुङ्गव ॥ ३४ ॥ अ° । ११ क. °मध्यगतं प्रा° । १२ क. यस्त्वेतच्छृणु° । १३ क. °नां तत्संकल्पानां फलभागी भविष्यति ॥ ४१ ॥ आ° । * 'यस्त्वेवमि'त्यारभ्य 'ब्रवीमि ते ' इत्यन्तं श्लोकद्वयं खपुस्तके नास्ति ।

न जाने तस्य चरितं न विधिं[1] नैव विस्तरम्
न कर्मगुणसंतानं न हेतुं न मनीषितम् ॥ २
किमात्मको वराहः स का मूर्तिः का च देवता
किमाचारः प्रभावो वा किं वा तेन पुरा[2] कृतम्
यज्ञार्थे समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् ।
महावराहचरितं कृष्णद्वैपायनेरितम् ॥ ४
यथा[3] नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः ॥ ५
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः ।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरेः कृष्णस्य धीमतः ६
कर्मणामानुपूर्व्याच्च[4] प्रादुर्भावाश्च ये विभोः
या चास्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तां[5] मे व्याख्यातुमर्हसि
कथं च भगवान्विष्णुः सुरशत्रुनिषूदनः[6] ।
वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः ॥ ८
अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्[7] ।
देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः ॥ ९
देवमानुषयोर्नेता[8] यो भुवः प्रभवो विभुः ।
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये संन्ययोजयत् ॥
यश्चक्रं वर्तयेत्येको मानुषाणामनामयम् ।
मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ११
गोपायनं यः कुरुते जगतः सार्वलौकिकम् ।
स कथं गां गतो देवो विष्णुर्गोपत्वमागतः[9]
महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ।
श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः १३
येन लोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रभवास्त्रयः १४
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः
लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥१५
यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः
विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः ॥ १६
यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययम्[10] ।
ददौ जित्वा[11]ऽसुरगणान्सुराणां सुरसत्तमः १७
येन सैंहं[12] वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः
पूर्वं दैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः १८
यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः
पातालस्थोऽर्णवगतं पपौ तोयमयं हविः १९
सहस्रशिरसं ब्रह्मन्सहस्राक्षं सहस्रदम् ।
सहस्रचरणं देवं यमाहुर्वै युगे युगे ॥ २०

---

तस्य चरितं सर्वकार्यजनकत्वं, विधिम् अपूर्वस्वरूपाविष्करणम् । विस्तरम्, अनुष्ठानेतिकर्तव्यताम् । कर्म, तेन संतर्पणीयं देवतादिकम् । गुणः, द्रव्यदेशकालादिः । संतानः, प्रयोगविधिः । हेतुम्, अधिकारम् । मनीषितं, त्यागात्मकं स्वरूपसम्प्रदानम् । एतत्सर्वम् अहं न जाने तस्माद्वदेत्यर्थः ॥ २ ॥ अधियज्ञमेवं वराहस्वरूपादिकं दृष्ट्वाऽधिदैवं तत्पृच्छति । किमात्मकः आत्मा स्वरूपं मूर्तिर्बाह्यविग्रहः देवता तदधिष्ठाता ईश्वरः आचारस्तस्य कर्तव्योऽर्थः । प्रभावः सामर्थ्यम् ॥ ३ ॥ चरितम् ईरितं श्रुतं च परंतु तत्तत्त्वं न ज्ञातमित्यर्थः ॥ ४ ॥ यथा उज्जहार तथा श्रुतमिति पूर्वेण संबन्धः ॥ ५ ॥ सर्वाणि वराहादीनि नानावतारकृतानि ॥ ६ ॥ अस्य प्रादुर्भावतरङ्गस्य या प्रकृतिः समुद्रस्थानीया ७॥ **कथमिति** ॥ कर्मबन्धहीनोऽपि कथमुत्तमस्थानादवरं स्थानं प्राप्त इत्यर्थः ॥ ८ ॥ लीलार्थम् अवतारो न स्वप्रयोजनार्थमित्यपि न यतो लीलायामपि जन्यतापरिहारादेः कियतोऽपि प्रयोजनस्य सत्त्वात् परमानन्दरूपस्य तु तदभावादित्याक्षिपति-**किमर्थमिति** ॥१०॥ क्रमैः पादविक्षेपैः त्रिदशेप्सया देवानामिष्टसिद्ध्यर्थं त्रयो मार्गाः धर्मेण स्वर्गः अर्थेनायं लोकः कामेनाधोलोकः तेषां मार्गास्त्रिभिः प्राप्यन्ते ॥ १४ ॥ जगत् पञ्चभूतात्मकं सकारणं पीत्वा संहृत्य । तोयमयं निर्विशेषं चिन्मात्ररूपं तत्रैव सलिल एको द्रष्टेति सलिलपदप्रयोगात् तादृशं कृत्वा । लोकम् एकार्णवं चक्रे । सर्वं चिन्मात्रमिति भावनया तन्मात्रम् अवशेषयतीति भावः । तत्र साधनं दृश्यादृश्येन वर्त्मनेति । दृश्यम् अदृश्यं चिदंशेन जडांशेन चिदाचिद्ग्रन्थिरूपेणैव जीवरूपेणैव मार्गेण । **अयं भावः**-योऽहंकारमाश्रित्य सर्वं सृजति तेनैव सम्यगाश्रितेन संहरन् तमपि मार्गाख्यसरणिरूपं संहरतीति ॥ १५ ॥ विषाणाग्रेण दन्ताग्रेण । " विषाणं दन्तशृङ्गयोः " इत्यमरः ॥ १६ ॥ असुरगणानिति छेदः । सुराणां सुरेभ्यः ॥ १७ ॥ द्विधा नरसिंहरूपेण ॥ १८ ॥ सहस्रेत्यनन्तवाचि । यम् अनिरुद्धाख्यं सर्वावतारविप्रुषां मूलभूतं महार्णवस्थानीयम् ॥ २० ॥

---

१ ख. °धिं नच वि° । २ ख °न तदाकृ° । ३ ख. यत्र ना° । ४ क. ख °पूर्व्या च प्रा° । ५ ख °तिर्ब्राह्मी तां च व्या° ६ ख. सुरेशो रिपुसूदनः । व° । क. सुरेशो रिनिषूदनः । ७ ख. °कृद्भिरलंकृतम् । ८ क. ख. °ता भूर्भुवः प्र° ९ ख. °तो विष्णुर्गोपत्वमगमत्प्रभुः। म° । १० ख. °व्ययम् । द° । ११ ख. °त्वा वसुमतीं सुरा° । १२ क. °सार्धं सह° ।

नाभ्यारण्यां समुत्पन्नं यस्य पैतामहं गृहम् ।
एकार्णवजलस्थस्य नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ २१
येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ।
सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः ॥ २२
गरुडस्तेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः ।
निर्जितश्च मयो दैत्यस्तारकश्च महासुरः ॥ २३
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः ।
यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत्
सुरारणिर्गर्भमधत्त दिव्यं
तपःप्रकर्षाददितिः पुराणम् ।
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं
गर्भावसाने निभृतं चकार ॥ २५
पदानि यो लोकमयानि कृत्वा
चकार दैत्यान्सलिलेशयांस्तान् ।
कृत्वा च देवांस्त्रिदिवस्य देवां-
श्चक्रे सुरेशं त्रिदशाधिपत्ये ॥ २६
पात्राणि दक्षिणा दीक्षा चमसोलूखलानि च
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा॥२७
अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव कुशां स्रुवम् ।
प्रोक्षणीयं ध्रुवां चैव आवभृथ्यं तथैव च २८
सुधात्रीणि च यश्चक्रे हव्यकव्यप्रदान्द्विजान्
हव्यादांश्च सुरान्चक्रे क्रव्यादांस्तु पितॄनपि२९
भागार्थं मन्त्रविधिना यश्चक्रे यज्ञकर्मणि ।
यूपान्समित्स्रुचं सोमं पवित्रान्परिधीनपि३०
यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्च सचयानलान्
सदस्यान्यजमानांश्च मेध्यादींश्च क्रतूत्तमान्
विबभाज पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।
यागानुरूपान्यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमत्३२
क्षणा लवाश्च काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च ।
मुहूर्तास्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु ।
आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम् ३४
त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः ।
त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोऽपायास्त्रयो गुणाः
त्रयो लोकाः पुरा सृष्टा येनानन्त्येन कर्मणा
सर्वभूतगणस्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः ॥ ३६
नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः ।
गतागताभ्यां यो नेता सर्वत्र जगदीश्वरः ३७

नाभ्या नाभिदेशेन उपलक्षिता अरणिः मन्थनदण्डतुल्यं नालं तस्यां नाभ्यारण्यां पैतामहं गृहं पद्मम् ॥ २१ ॥ उत्सिक्तः दृप्तः ॥ २३ ॥ तिमिरं योगमायाम् ॥ २४ ॥ सुरारणिः देवमाता अदितिर्नाम । गर्भे वामनरूपं निभृतं पूर्णकामम् ॥ २५ ॥ सलिलेशयान् पातालस्थत्वेन समुद्रजलपिहितत्वात् त्रिदिवस्य देवान् स्वर्गे क्रीडापरान् ॥ २६ ॥ पात्रादीनि यज्ञोपकरणानि ॥ २७ ॥ आवभृथ्यं यज्ञान्तस्नानाय हितं तुषनिष्कासससोमलिप्तादिकम् ॥ २८ ॥ सुधात्रीणि सुधाप्रभृतीनि त्रीणि ऊर्ध्वमध्याधोगतिसंज्ञानि ॥ २९ ॥ सचयानलान् इष्टकाचयनायुक्तानि अग्निस्थापनार्थं स्थानानि ॥ ३१ ॥ पारमेष्ठ्येन प्रवर्तितेन ॥ ३२ ॥ **त्रिविधं** श्रुतिस्मृतिशिष्टाचाररूपेण त्रिप्रकारं प्रमाणम् । त्रिषु नित्यनैमित्तिककाम्येषु कर्मसु प्रमेयेषु क्षेत्राणि स्थावरजङ्गमानि शरीराणि । उपचयो वृद्धिः । लक्षणं द्विपात्त्वचतुष्पात्त्वादि ॥ ३४ ॥ **त्रयो वर्णा इति** । शूद्रस्य यज्ञानर्हत्वान्न विवक्षा । **लोका** भूरादयः । **त्रैविद्यम्** ऋग्यजुःसामात्मकं **पावकाः** गार्हपत्यादयः **त्रैकाल्यं** भूतभविष्यद्वर्तमानाख्यम् । **त्रीणि** सात्त्विकराजसतामसानि **त्रयोऽपायाः** त्रिविधः स्वार्थभ्रंशः अर्थानुष्ठानपाठव्यसनरूपः पुत्रैषणावित्तैषणालोकैषणारूपो वा । **त्रयो गुणाः** सत्त्वादयः त्रयो वर्णा इत्यादीनां स्रष्टा इत्युत्तरस्थेनान्वयः ॥ ३५ ॥ संख्यातास्त्रयोऽपि तु वैपुल्येन प्रत्येकमनन्ताः यतोऽनन्तं कर्म संकल्पाख्यं तेन सृष्टाः । येन सृष्टाः स कीदृश इत्यत आह-**सर्वेति** ॥३६॥ यो नृणां गतागताभ्यां मृत्युजन्मभ्यां सर्वत्र ब्रह्माण्डे नेता यश्च जीवरूपः सन् इन्द्रियपूर्वेण योगेन इन्द्रियजन्येन विषयसम्बन्धेन रमते स ईश्वरः ॥ ३७ ॥

१ क. 'वगते लोके नष्टे स्था' । ख. 'विगते काले तत्पङ्कजमपंकजम् । ये' । २ क. ख. 'डस्थेन चो' । ३ क. ख. 'श्च महादै' । ४ क 'मास्थामति' । ५ ख. 'वधानेन भृशं च' । ६ ख. सलिलाशयस्थान् कृ' । ७ ख. पात्राणि दाक्षिणां दीक्षां चमसोलूखलानि च । गार्हपत्यं च विधिना अन्वाहार्ये च कर्मणाम् । ८ ख. 'यं ध्रुवं चै' । ९ ख. आवांत्रीणि । १० ख. 'दान्मखे । ह' । ११ ख. 'सुरांश्चक्रे कव्या' । १२ 'क. कव्यादांश्च पि' । १३ ख. 'स्रुवं सो' । १४ क. ख 'युगानुरूपं यः कृ' । १५ ख. 'नुपरिक्र' । १६ क. ख सृष्टा लोकास्त्रयोनन्ता' । १७ ख. 'न वर्त्मना । स' । १८ क 'तगुण' । ख. 'तगणाः सृष्टाः स' । १९ ख. 'त्मकाः ॥ ३६ ॥ नृ' । २० ख. गतागतिभ्यां यो' ।

यो गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम्।
चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्होत्रस्य रक्षिता ३८
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः
दिगन्तरो नभोभूतो वायुरापो विभावसुः ३९
चन्द्रसूर्यमयज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः।
यत्परं श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रूयते तपः॥ ४०
यं परं प्राहुरपरं यः परः परमात्मवान्।
नारायणपरा वेदा नारायणपराः क्रियाः ४१
नारायणपरो धर्मो नारायणपरा गतिः।
नारायणपरं सत्यं नारायणपरं तपः॥ ४२
नारायणपरो मोक्षो
नारायणपरायणम्।
आदित्यादिस्तु यो दिव्यो
यश्च दैत्यान्तको विभुः॥ ४३
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः
सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम्॥
वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम्।
सोमभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम्॥
मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम्।
विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि।
सर्गाणां सर्गकारश्च लोकहेतुरनुत्तमः* ॥ ४६
विग्रहो विग्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि+ ।
आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः ४७
देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः।
रसाद्धि शोणितं जातं शोणितान्मांसमुच्यते ४८
मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थीनि चैव हि
अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रमेव च ४९
शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा।
तत्रापां प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते
गर्भोष्मसंभवोऽग्निर्यो द्वितीयो राशिरुच्यते
शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं विद्धि पावकम्
भागौ रसात्मकौ ह्येषां वीर्यं च शशिपावकौ
कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम्।
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्

**चातुर्होत्रस्य** चत्वार ऋत्विजः होतारो यत्र यज्ञे तस्य ३८ आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिति चतसृणां विद्यानां समाहारः **चातुर्विद्यं** तस्य दिशः अन्तरे गर्भे यस्य स दिगन्तरः। **नभोभूतः** आकाशत्वमापन्नः **विभावसुः** अग्निः। यद्वा विशेषेण भातीति विभाः ज्योतिः वसुः वसुमती पृथ्वी ॥ ३९ ॥ चन्द्रसूर्यमयं चन्द्रसूर्यप्रधानम् मनोज्योतिः चक्षुर्ज्योतिश्च योगीशो निर्विकल्पकः मनसोऽन्तकः क्षणदा रात्रिरेव अन्तको नाशको यस्य तत् चक्षुर्ज्योतिः परम् अन्तकशून्यं श्रूयते न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यत इति वेदे दृश्यते। तपः तपसो ध्यानस्य प्राप्यं "मनसैवेदमाप्तव्यम्" इति श्रुतेः ॥ ४० ॥ यं परं सूत्रात्मानम् अपरं विराजं च यं प्राहुः। परः परस्तादपि परं सूत्रादपि परं स च आत्मवान् आत्मैवात्मा मायाख्यं शरीरं तद्वान्। "मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुतेः ॥ ४१ ॥ दिव्यो दिविचरः ॥ ४३ ॥ लोकान्तकान्तकः मृत्योरपि मृत्युः। सेतूनां मर्यादाविधारकाणां मन्वादीनामपि सेतुः नियन्तॄणामपि नियन्तेत्यर्थः। मेध्यकर्मणां पवित्राणामपि मेध्यः पावनानां गङ्गादीनामपि पावनः ॥ ४४ ॥ प्रभवात्मनाम् ऐश्वर्यस्वभावानां मरीच्यादीनां प्रभुरीश्वरः सोमवत्प्रियदर्शनः तद्रूपः सोमभूतः ॥ ४५ ॥ वायुरेव प्राणः स्थितिहेतुर्यस्य स वायुप्राणः ॥ ४७ ॥ अग्नेः प्राणः सन्नग्निद्वारा किं करोति तदाह—**रसादिति**। रसात् अग्निपृथक्कृतादन्नसारात् पाकतारतम्येन शोणितादिक्रमेण रेतोद्वारा गर्भः संभवतीति स च रसमूलेन हेतुभूतेन कर्मणाग्निव्यापारेणेति द्वयोरर्थः ॥ ४८ ॥ तत्र गर्भेऽपां विकारः प्रथमो भागः रेतोरूपः श्वेतत्वात्। सौम्यश्च सः गर्भोष्मसंभवः गर्भस्य जठराग्निजन्मा योऽग्निमत् लोहितः स आग्नेयो द्वितीयो भागः ॥ ५० ॥ एतदेवाह—**शुक्रमिति**। रसात्मकौ उक्तक्रमेण रसस्यैव विकारौ। हि यस्मात् एषां रसादीनां वीर्यं सारः शशिपावकौ शुक्रशोणिते ॥ ५१ ॥ अग्नीषोमात्मकत्वं जगतः साधयति—**कफेति त्रिभिः**। शुक्राश्रयस्य सोमदैवत्यस्य कफस्य स्थानं हृदयं तदेव प्रजा-

१ ख. °भो भूमिरूपो वायुर्विभाव°। २ ख. यश्चन्द्रसूर्ययोर्ज्यो°। ३ ख. तमः ॥ ४० ॥ यः परं। ४ ख. °मात्मनः। ५ ख. °ण परं परम्। आ°। ६ ख. मेध्यं यो मे°। ७ ख. वेत्ता यो वे°। ८ ख. °मिवर्त्मनाम्। ९ क. मानुषाणां म°। १० ख. °वृत्तानां ते°। * सर्गाणामिति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति। +इतोग्रे कपुस्तके 'सर्गकारस्तु सर्गाणां लोकहेतुरनुत्तमः।' इति श्लोकार्धमधिकम्। ११ क. रसाच्छोणितसंभूतिः शो° १२ क. °ज्जा संभवति म°। १३ क. °क्रसंभवः १४ क. °भः संभवति रस°। १५ ख. °त्रापः प्र°। १६ क. ख. °वं पावकात्मकम्। १७ ख. भावा रसात्मकास्तेषां वी°, क. भागो रसात्मको ह्येषां वी°,। १८ क. ख. पित्तं नाभ्यां प्रतिष्ठितम्॥ ५२ ॥ दे°।

देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् ।
नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः ५३
मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते ।
पित्तमग्निः स्मृतं ह्येतदग्नीषोमात्मकं जगत्५४
एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्द्धितेऽम्बुदसन्निभे ।
वायुः प्रवेशं सञ्चक्रे सङ्गतः परमात्मना ५५
ततोऽङ्गानि विसृजति बिभर्ति परिवर्द्धयन् ।
स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्द्धते पुनः ५६
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च।
प्राणः स प्रथमं स्थानं वर्द्धयन्परिवर्तते ५७
अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वं शरीरिणः ।
व्यानो व्यायच्छते येन समानः सन्निवर्तयेत्
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरात्
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
तस्येन्द्रियाणि विष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे
पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ।
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात्स्रावः प्रवर्तते
ज्योतिश्चक्षुश्च तेजात्मा तेषां यन्ता मनः स्मृतः
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः६१
इत्येवं पुरुषः सर्वान्सृजल्लोँकान्सनातनान् ।
कथं लोके नैधनेऽस्मिन्नरत्वं विष्णुरागतः ६२
एष मे संशयो ब्रह्मन्नेवं मे विस्मयो महान् ।
कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम् ६३

श्रुतो मे स्वस्ववंशस्य
पूर्वेषां चैव संभवः ।
श्रोतुमिच्छामि विष्णोस्तु
वृष्णीनां च यथाक्रमम् ६४

आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते ।
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं ममाचक्ष्व महामुने ६५

पतिर्दैवतस्य मनसोऽपि स्थानं शोणिताश्रयस्याग्निदैवतस्य पित्तस्य स्थानं नाभिमण्डलम् । तदेवाग्निदैवत्याया वाचोऽपि स्थानम् । स्थानस्थानिनोः अधिष्ठेयाधिष्ठात्रोर्देहदेहिनोरिव व्यवहारतो भेदाभावात् सर्वं नामरूपात्मकं जगदग्नीषोमात्मकमित्यर्थः ॥ ५२ ॥ दीव्यति व्यवहरतीति देवो वागभिमानी ॥ ५३ ॥ अम्बुदसन्निभे यथा धूमज्योतिः सलिलपवनैर्मेघो वर्द्धते एवं गर्भोऽपि अन्नाभिपानीयप्राणैर्वर्द्धतेऽतोऽचेतन इत्यर्थः । वायुः प्राणवायुसहचरत्वाद्वायुर्जीवः ईश्वरेण सहितः प्रविशति तेनैव सह उत्क्रामति च ॥ ५५ ॥ ततो देहे प्रवेशानन्तरम् अङ्गानि शिरआदीनि विसृजति निर्मोति बिभर्ति पुष्टानि च करोति सः प्राणोपाधिर्जीवः । प्राणस्य पञ्चधाभावात्स्वयमपि पञ्चधा भिद्यते । "स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति" इति श्रुतेः ॥५६॥ प्रथमं स्थानं हृदयं वर्द्धयन् पिण्डमिति शेषः ॥ ५७ ॥ पश्चिमं कायं जंघादिपादान्तम् । ऊर्ध्वम् उरोदेशात् । सन्धिरार्षः । व्यायच्छते व्यायामं बलसाध्यं कर्म करोति येन स व्यानः सर्वदेहसंधिव्यापी । समानस्तु नाभिदेशस्थः सन्निवर्तयेत् अशितपीतादिकं समीकुर्यात् यथास्थानं प्रापयेदित्यर्थः । तत् । एवं प्राणकर्मविभागानन्तरं तस्य जीवस्य भूतावाप्तिः पृथिव्यादिसाक्षात्कारो जायते । सा च इन्द्रियगोचरात् इन्द्रियाणां यो विषयो रूपादिस्तद्द्वारा तदाश्रयो गृह्यत इत्यर्थः ॥ ५८ ॥ अत्र हेतुमाह-**पृथिवीति** । यतः पृथिव्यादीनि इन्द्रियाणि इन्द्रियरूपेण परिणम्य शरीरे स्वे स्वे स्थाने नेत्रगोलकादौ विष्टानि प्रविष्टानि । अतस्तानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे । पार्थिवं घ्राणं पृथिवीमेव गन्धविशिष्टां गृह्णाति । आप्यं रसनम् अपां गुणं रसमेव गृह्णाति । तैजसं चक्षुस्तेजोगुणं रूपं वायव्यं स्पर्शनेन्द्रियं तद्गुणं स्पर्शं नाभसं श्रोत्रं तद्गुणं शब्दं च गृह्णातीत्यर्थः ॥ ५९ ॥ देहम् उपचितं कठिनांशं पार्थिवं पृथ्वीविकारम् । प्राणो वायुविकारः छिद्राण्याकाशस्रावः द्रवभागः सर्वं जलम् ॥ ६० ॥ चक्षुः ज्योतिः रूपप्रकाशकं जाठरादि वा तेषां पृथिव्यादीनां पञ्चानां तेजाऽऽत्मा तेजसोंऽशो मनः सर्वेषामिन्द्रियाणां यन्ता नियामकः । यस्य मनसो वीर्यात् सामर्थ्यात् ग्रामाः रूपाद्याश्रयाः पृथिव्यादयः विषया गन्धादयः। यद्वा ग्रामनगरादयः देशाः पूर्वपश्चिमादयो निर्मिताः । यद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितम् । " यदिदं किञ्च " इति श्रुतेः॥ ६१॥ सनातनान् अनादिसिद्धान् नैधने निधनप्रधाने। नरत्वं मानुषत्वम् ॥ ६२ ॥

१ ख. °ग्निः स्मृतो ह्येवमग्नी° । २ ख. °युः प्रवेशनं च° । ३ ख. °वर्तयन् । स प° ४ ख. °ते वर्धयन्पु° । ५ ख. °वर्धते । ६ ख. °निवर्तते । भू° । ७ ख. °चरा । पृ° । ८ ख. °हुस्तु प्रा° । ९ ख. ° क्षुस्तेज आ° १० ख. यन्तृ मनः स्मृतम् । ग्रा° । ११ ख. नैधनेऽस्मिन्कथं लोके नर° । १२ क. ख. °ह्मन्नेष मे । १३ क. °पन्नौ मा° । १४ ख. °स्य सर्वे° ।

एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व सुखावहम्। प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः॥
कर्म चाश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् ६६

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वराहोत्पत्तिवर्णने
चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

## विष्णवतारवर्णनम्।

## ४१

वैशम्पायन उवाच।

प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तः शार्ङ्गधन्वनि
यथाशक्ति तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः १

विष्णोः प्रभावश्रवणे
दिष्ट्या ते मतिरुत्थिता।
हन्त विष्णोः प्रवृत्तिं च
शृणु दिव्यां मयेरिताम्॥ २

सहस्राक्षं सहस्रास्यं सहस्रभुजमव्ययम्।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम्॥ ३
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम्॥
सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम्॥ ४
सवनं हवनं चैव हव्यं होतारमेव च॥
पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां चरुं स्रुवम्
स्रुक्सोमं शूर्पमुसलं प्रोक्षणं दक्षिणायनम्।
अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः॥ ६
यूपं समित्कुशं दर्वीं चमसोलूखलानि च।
प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत्॥७

ह्रस्वान्यतिप्रमाणानि
चराणि स्थावराणि च।
प्रायश्चित्तानि चार्थं च
स्थण्डिलानि कुशांस्तथा॥ ८

मन्त्रं यज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत्।
अग्रेभुजं सोमभुजं घृतार्चिषमुदायुधम्॥ ९
आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं विभुम्।
तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः
प्रादुर्भावसहस्राणि अतीतानि न संशयः।
भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः॥ ११

यत्पृच्छसि महाराज
पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम्।
यदर्थं भगवान्विष्णुः
सुरेशो रिपुसूदनः।
देवलोकं समुत्सृज्य
वसुदेवकुलेऽभवत् १२

---

इति श्रीहरिवंशे टीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

४१

चत्वारिंशत्तमे सैके
श्रवणात्पातकापहे॥
परात्मनो विचित्रार्थाः
प्रादुर्भावा उदीरिताः॥ १॥

**प्रश्नेति**। भारत्वात् दुर्वोढव्यमपि यथाशक्ति वक्ष्यामि ॥१॥ प्रवृत्तिं लीलाचेष्टितम् ॥२॥ **सहस्राक्षमिति**। यं विप्रा आहुरिति दशमस्थेनान्वयः। सहस्रशब्दोऽनन्तवाची। अव्ययम् अविनाशिनम्॥ ३॥ अव्ययम् अपरिणामिनम्॥ ४॥ एवं द्वाभ्यां सूक्ष्मम् अमूर्तं रूपमुक्त्वा स्थूलं मूर्तं रूपमाह-**सवनमिति**। सवनं कालं। हवनं कर्म हव्यं हूयमानं द्रव्यं होतारं यजमानम्। पात्राणि उक्तेभ्योऽन्यानि कपालादीनि पवित्राणि कुशमयदेशादीनि। दीक्षां संस्कारं चरुं स्थालीम्॥ ५॥ प्रोक्षणं प्रोक्षणीपात्रं दक्षिणा अन्वाहार्यादिः। अयनं हविर्भिः प्रचरणम्। अध्वर्युं प्रसिद्धम्। सामगम् उद्गातारं सदनं पत्नीशालाम्॥६॥ होतारम् ऋत्विजं। चयनम् इष्टकामयं स्थाण्डिलम्॥७॥ ह्रस्वानि एकहायनीशकटादीनि सोमक्रयाद्यर्थानि। अतिप्रमाणानि अनडुत्स्तम्भशालादीनि। अर्थं फलं स्वर्गादि॥ ८॥ भागवहं गायत्र्यादिच्छन्दः। "छन्दांसि वै देवेभ्यो हव्यमूढ्वा श्रान्तानि" इति लिङ्गदर्शनात्। अग्रेभुजं प्रायणीयम् उदायुधम् उदयनीयम्॥ ९॥ यं सर्वयज्ञाङ्गमयं यज्ञे आहुः शाश्वतं नित्यैकरूपम्। वेदाख्यप्रमाणरूपम् विभुं क्रतुफलदातारम् ईश्वरं धीमतः धीप्रवर्तकस्य॥१०॥ प्रजापतिः सर्ववेददर्शी ब्रह्मा॥ ११॥

---

१ क. ख. कर्मणाश्च'। २ क. 'त प्रयुक्तः शार्ङ्गधन्वनः। य'। ३ क. ख. 'हस्तचरणं च यम्। सह' ४ 'हस्तबाहुं भा॰। ५ ख. हवनं सवनं चै'। ६ ख. 'क्षणीं द'। ७ ख. 'नं तथा। यू'। ८ ख. रहस्यानि प्रमा'। ९ क. ख. ॰चार्घं च। १० ख. 'णि समतीतान्यनेकशः। भू॰। ११ ख. 'ष्णुर्वसुदेवकुलेऽभवत्॥ ततेऽहं सं'।

तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्युतेः १३
हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ।
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः १४
प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यगुणैर्युतान्
छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतान्
शुचिः प्रयतवाग्भूत्वा[1] निबोध जनमेजय ।
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ॥ १६
हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्यां कथां शृणु
"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
धर्मसंस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभुः"१७
तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तम ।
नित्यं दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम् ।
द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ ।
प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम्१९
सुप्त्वा युगसहस्रं स[3] प्रादुर्भवति कार्यतः[4] ।
पूर्णे[5] युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥ २०
पितामहो लोकपालाश्चन्द्रादित्यौ हुताशनः ।
ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च ॥ २१
देवाः सप्तर्षयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशाः ।
वायुः समुद्राः शैलाश्च तस्य देहं[6] समाश्रिताः
सनत्कुमारश्च महानुभावो
मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे
प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ २३
येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ २४
योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ दानवौ मधुकैटभौ ।
हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वामितं वरम् ॥ २५
पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।
पुष्करे यत्र[7] सम्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा२६
एष पौष्करको[8] नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
पुराणे[9] कथ्यते यत्र वेदः श्रुतिसमाहितः[10] ॥ २७
वाराहस्तु श्रुतिमुखः[11] प्रादुर्भावो महात्मनः ।
यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ।
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्× २८
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः[12] ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः२९
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।
आज्यनासः स्रुवातुण्डः[13] सामघोषस्वनो महान्
धर्मसत्यमयः श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृतः[14] ॥
प्रायश्चित्तनखो[15] घोरः[16] पशुजानुर्महाभुजः॥ ३१
उद्गात्रन्त्रो होमलिंगः
फलबीजमहौषधिः[17] ।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फि-
ग्विकृतः सोमशोणितः ॥ ३२

हितार्थं श्रेयोर्थं प्रभवाय ऐश्वर्याय ॥ १४ ॥ संभवति शरीरं धत्ते। एतेन प्रवृत्तिप्रधाना रजोमूर्तिरुक्ता॥१७॥सात्त्विकीमाह-तस्य हीति॥१८॥तामसीमाह-द्वितीयेति।निद्रायोगं योगमयीं निद्रां संहारस्य सर्गः संहारक्रिया तदर्थम् । कीदृशं निद्रायोगं किमध्यात्मविचिन्तकं कुत्सिताः अध्यात्मविचिन्तकाः सविकल्पसमाधिमन्तो यस्मात्तम् ॥१९॥ प्रादुर्भावमेवाह-**पूर्णे इति** । तदङ्गे लीलानां देवानामाविर्भाव एव तस्य प्रादुर्भाव इत्यर्थः ।देवदेवः महादेवः जगत्पतिर्विष्णुः ॥२०॥ **सनादिति**।सनत्कुमारादिरूपो नारायणः पुराणि शरीराणि ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानां प्राणिनां चक्रे ॥ २३ ॥ मध्यस्थौ दानवाविति द्वयोः संबन्धः ॥ २४ ॥ अमितं वरं कैवल्यम् ॥ २५ ॥ पुष्करे नाभिकमले यत्र यस्मात् ॥ २६ ॥ यत्र पुराणे वेदः मन्त्रब्राह्मणराशिः श्रुतिसमाहितः प्रत्यक्षेणैव निहितो दृश्यते प्रत्यक्षश्रुतिमूलकोऽयमर्थः इत्यर्थः ॥ २७ ॥ "यस्य रूपं बिभ्रदिमामविन्दद्गुहां प्रविष्टः शरीरस्य मध्ये" इति वाराहप्रादुर्भावस्य तावत्प्रत्यक्षश्रुतिमूलकत्वमाह— **वाराहस्तु श्रुतिमुख इति** ॥ २८ ॥ वेदाः चतुःसंख्यासाम्यात्पादा यस्य आदिवाराहोपासकैर्यज्ञाङ्गानि वाराहाङ्गेषु चिन्तनीयानीत्येवमर्थोऽयं ग्रन्थः ॥ २९ ॥ फलबीजमहौषधिः फले वृषणौ बीजं तदन्तर्गतं रेतः तद्रूपा ओषधयो यस्य। प्रसवहेतुत्वसामान्यात् ओषधय एवास्य रेत इत्यर्थः । विकृतोऽभिषुतः सोमः सोमरस इत्यर्थः । स एव शोणितं यत्र । समासैकदेशस्यापि सोमस्य विशेषणं विकृत इति ॥ ३२ ॥

१ ख. °तवान्भू° । २ ख. °त्तमा । नि° ३ ख. °स्रं यः प्रा° । ४ क. °ति कार्यवान् । पू° । ५ ख. °र्णे वर्षसहस्रे तु देवदेवो जगत्प्रभुः । पि° । ६ ख. °स्य देहे स° । ७ ख. यस्य सं° । ८ ख. स एष पौष्करो ना° । ९ख. पुराणं क° । १० ख. °हितम् । वा° । ११ ख. °तिमुखः प्रा° । × महीं सागरेति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति। १२ ख. क्रतुहस्तश्चिती° । १३ ख. स्रुवतु° । १४ ख. °मान्कर्मविक्रमसंक्रियः ।१५ क. °तमखो° १६ ख. °खो घोरः प° । १७ क. °षधः । वा° ।

वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिराचितः ॥
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥ ३४
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः ३५
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगतां प्रभुः ॥ ३६
दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया
सहस्रशीर्षो देवादिश्चकार पृथिवीं पुनः ३७
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।
उद्धृता पृथिवी सर्वा सागराम्बुधरा पुरा ३८
वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ३९
पुरा कृतयुगे राजन्सुरारिर्बलदर्पितः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम् ॥ ४०
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जलोपवासनिरतः स्थानमौनदृढव्रतः ॥ ४१
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चानघ ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ४२
तं वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य भूपते ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ ४३
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिंनरैः ॥ ४४
दिशाभिर्विदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥ ४५
देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ४६
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ४७
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ४८

हिरण्यकशिपुरुवाच ।

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथञ्चन ॥
ऋषयो वा न मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह
शपेयुस्तपसा युक्ता वरमेतं वृणोम्यहम् ॥ ५०
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः
पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ।
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ५४
एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयंभूर्भगवांस्तदा ।
उवाच दैत्यराजं तं प्रहसन्नृपसत्तम ॥ ५५

ब्रह्मोवाच ।

एते दिव्या वरास्तात
मया दत्तास्तवाद्भुताः
सर्वान्कामानिमांस्तात
प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ ५६
एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाकाशमेव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् * ॥ ५७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा ।
वरप्रदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपस्थिताः ॥ ५८

उपाकर्म स्वाध्यायस्वीकारः स एवौष्ठस्य रुचको भूषणं यस्य । प्रवर्ग्यो धर्मसंतपनार्थो महावीरः तस्यावर्तः आवृत्तिः सैव भूषणं यस्य ॥ ३४ ॥ चकार स्थिरामिति शेषः ॥ ३७ ॥ यज्ञवराहेण यज्ञमयेन वराहेण ॥ ३८ नारसिंहप्रादुर्भावः नृसिंहतापन्यादिप्रत्यक्षश्रुतिमूल एवेत्यभिसन्धायाह-नरसिंहमिति । भूत्वा आविर्भूय ॥ ३९ ॥ दैत्यानाम् आदिपुरुषः हिरण्यकशिपुः ॥ ४० ॥ जलोपवासः जलमात्राहारः स्थानं दृढासनं मौनम् इन्द्रियसंयमः ताभ्यां सह दृढं व्रतं परिग्रहो यस्य स तथाविध उपवासः ॥ ४१ ॥ धनदः धनप्रदः ॥ ५४ ॥ तवाद्भुता इत्यनर्हत्वाच्चतुर्थास्थाने षष्ठी ॥ ५६ ॥

१ क. वेदस्कं २ ख. 'भिरर्चितः । द' । ३ ख. 'वगतः प्र' । ४ ख. 'र्वी लोकादिश्च' । ५ ख. 'पश्चकार त' । ६ क. 'सस्तस्यासीत्स्था', ख. 'सस्तत्रासीत्स्था' । ७ क. तपःशम' । ८ क. ख. प्रीतमनास्तस्य त' । ९ ख. 'वैरप्सरोग' । १० ख. 'ह्मा वेदवि' । ११ क. 'चा वा नि' । १२ ख. 'चा वा हन्युर्मां देवसत्तम । ऋ' । १३ क. 'न च । १४ क. 'श्च वान्ये' । १५ ख. 'त्सुन संशयः । म' । १६ एवमुक्त्वेति श्लोकः खपुस्तके नास्ति । १७ क. 'वांस्तथा उ' १८ क. त्वमसंशयः । ए' । १९ क. 'व च ।, ख. 'व तु । वै' । *एतदग्रे-श्रुत्वा दिव्यं वरं तं च दत्तं सलिलयोनिना । विधिं विज्ञापयामासुर्देवाः शक्रपुरोगमाः । इति श्लोकः कपुस्तकेऽधिको वर्तते । २० ख. 'नं श्रुत्वैव पि' ।

विभुं विज्ञापयामासुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः* ५९

देवा ऊचुः ।

वरेणानेन भगवन्बाधयिष्यति नोऽसुरः[1] ।
ततः[2] प्रसीद भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्
भगवान्सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृद्विभुः ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तः[3] प्रकृतिर्ध्रुवः ६१
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः[4]
प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वान्देवगणांस्तदा[5] ॥
अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति
एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे
वाक्यं पंकजसंभवात्[6] ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि
जग्मुस्ते वै मुदान्विताः[7] ॥ ६४
लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥ ६५
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै शंसितव्रतान् ।
सत्यधर्मरतान्दान्तान्पुरा धर्षितवांस्तु सः ६६
देवांस्त्रिभुवनस्थांस्तु[8] पराजित्य महासुरः[9] ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे[10] वसति दानवः ॥
यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद्दानवो भुवि[11] ।
यज्ञियान्कृतवान्दैत्यान्[12] देवांश्चैवाप्ययज्ञियान्
आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा[13] ।
शरण्यं शरणं विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम्[14] ६९
वेदयज्ञमयं[15] ब्रह्म ब्रह्मदेवं सनातनम् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ।
नारायणं विभुं देवाः शरणं[16] शरणागताः ७०

देवा ऊचुः ।

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात्
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम[17]
त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ।
उत्फुल्लाम्बुजपत्राक्षः[18] शत्रुपक्षभयङ्करः[19] ।
क्षयाय दितिवंशस्य शरण्यस्त्वं[20] भवस्व नः

विष्णुरुवाच ।

भयं त्यजध्वममरा[21] ह्यभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैवं त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ७३
एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणां[22] दानवं तं निहन्म्यहम् ७४

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान्
हिरण्यकशिपो राजन्नाजगाम[23] हरिः सभाम्[24]
नरस्य कृत्वाऽर्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः[25] ।
नारसिंहेण वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ७६
जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः ।
जीमूतघनदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ७७
दैत्यं सोऽतिबलं दृप्तं दृप्तशार्दूलविक्रमम्[26] ।
दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥ ७८
नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः ।
यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत्[27] ७९
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयः शंकुस्तथैव च ।
अयःशिराः शंकुशिरा[28] हयग्रीवश्च वीर्यवान्

---

वाक्यं देवानामिति शेषः ॥ ६२ ॥ ब्रह्मदेवं ब्राह्मणानां दैवतम् ॥ ७० ॥ नोऽस्मान् नोऽस्माकं वा ॥ ७१ ॥
जीमूतघनसंकाशः मेघकदम्बवर्णः ॥ ७७ ॥

---

*विभुं विज्ञापयेति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । १ ख. । °वन्बाधिष्यति स नोऽसुरः । २ क. तत्प्रसदिस्व भ° । ३ क. °नामव्यक्तं प्र° । ४ ख. ततो लो° । ५ क. °णांस्तथा । ६ ख. °जजन्मनः । स्वा° । ७ क. ख. °दायुताः । ल° । ८ क. °स्थांश्च प° । ९ ख. °त्य महासुरः । त्रै° । १० ख. °र्गेऽवसदथासुरः । य° । ११ क. °वो दिवि । य° । १२ क. °त्यान्यज्ञार्हांश्चैव देवताः । आ° । १३ क. ख. च वसवस्त° । १४ °ग्मुमुपतस्थुर्म° १५ क. देवय° । १६ क. ख. °वाः शरण्यं शरणं गताः । दे° । १७ ख. °नां सुरेश्वर । त्वं । १८ क. ख. °त्राक्ष शत्रु° । १९ क. ख. °क्षक्षयावह । क्षया° २० ख. शरणं त्वं भवाद्य नः । विष्णुरु° । २१ ख. °मरा अभ° । २२ ख. °णां दानवेन्द्रं नि° । २३ क. °पो राजंस्तांजगा° । २४ ख. सभां हिरण्यकशिपोर्जगाम हरिरीश्वरः । न° । २५ ख. °नुं तथा । ना° । २६ क. शार्दूलसमविक्रमम् । दृ° । २७ क. ख. °नाशनम् । ब° । २८ क. ख. °शिरा अश्वशि° ।

वेगवान् केतुमानुग्रः सोमव्यग्रो महासुरः ।
पुष्करः पुष्कलश्चैव वेपनश्च महारथः ॥ ८२
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः साश्वोऽश्वपतिरेव च ।
प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहरौ वराहः शङ्करो रुजः ॥८३
शरभः शलभश्चैव कुपनः कोपनः क्रथः ।
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शंकुकर्णो महास्वनः ८४
दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुचापो मृदुप्रियः ।
वायुर्यविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान्
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ।
कालकः कालकेयश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ।
इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ॥ ८७
असिलोमा पुलोमा च वाकलः प्रमदो मदः ।
खसृमः कालवदनः करालः कैशिकः शरः८८
एकाक्षश्चन्द्रहा राहुः संह्लादः सृमरः स्वनः ।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ ८९
महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ।
अश्वयन्त्रायुधोपेता भिण्डिपालायुधास्तथा
शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ।
पाशमुद्गरहस्ता वै तथा मुद्गलपाणयः ॥ ९१
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाजवाः ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ९२
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा॥९३
मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथाऽपरे ।
नक्रमेषानना: शूरा गोजाविमहिषाननाः ९४
गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः
गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ९५
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।
चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससः ।
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः
नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः९७
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा ।
क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥ ९८
प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैः प्रभुः ।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम्९९
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ
परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे स्थिताबुभौ ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥ १
हृत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुङ्गवान्
ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतां वरः २
एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥ ३
भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः ॥ ४
तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च ।
चातुर्वर्ण्ये तु संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ५
अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते ।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ॥ ६

इन्द्रतापनश्च वातापिश्चेति द्वन्द्वः॥८७॥ उपावर्तन्त परिवव्रुः ॥९८॥ स्तननाभिजानुदेशस्थलं चन्द्रादित्ययोर्वृद्धिर्भूयस्त्व-तारतम्येन ॥१००॥ वेदाविद्भिः यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वेत्यादिप्रत्यक्षवेदविद्भिः अभूतात्मकः अद्भुतरूपोऽयमपि प्रत्यक्षश्रुतिमूलः ।
" यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नन्ये अशक्नुवन् " इति ।
सूर्यम् आत्मानं स्वर्भानुर्मायातमसोर्विपर्ययेण आविध्यत् । जीवत्वमनयत् । अत्रयः अत्रेरपत्यानि दत्तात्रेयः बहुत्वं पूजार्थम् । परया क्षमया शान्त्या । तेन ज्ञानमार्ग-प्रवर्तकोऽयमवतार इति ज्ञेयम् ॥ ३ ॥ अन्यच्चावतारकृत्य-माह-तेनेत्यादिना । प्रक्रियासु अनुष्ठानप्रकारेषु शिथिलतां विरलताम् ॥ ५ ॥ आकुलताम् अधर्मेण मिश्रताम् ॥ ६ ॥

१ क. ख. 'ग्रः सोग्रव्य' ; २ क. ख. 'लश्चैव साश्वोश्वप' । ३ ख. 'हः संहरो रु' । ४ ख. 'युर्गवि' ५. ख. 'रो विक्षरो म' । ६ क. चक्र ह' । ७ क. वैसृकः का' । ८ ख. 'हुः संहारो मृदुस्वनः । क. संहाराश्वो महास्वनः । ९ ख. 'स्ताश्च त' । १० ख' काकोलू' । ११ क. 'मीना म' । १२ ख. 'जारशशव' । १३ क. 'क्त्रास्तथापरे । ग' । १४ ख. गरुडास्याः खड्गिमु' । १५ क. ख. 'तगात्राश्च त' । १६ ख. कवाचिनो लं' । १७ ख. 'प्तानीव ते' । १८ 'लैस्ततः । रु' । १९ ख. 'तो भूमेश्चन्द्रा' । २० ख. परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ । वि' । २१ क. ख. 'त्वा स मेदिनीं सर्वां हत्वा चा' । २२ घ. 'तात्मको वि' । २३ ख. 'तः कृपया प' । २४ ख. 'षु देवेषु प्र' । २५ क. °षु वै । चा' । २६ ख. 'र्ण्यें च सं' । २७ घ. °यत् । अत्रेर्ढक् आत्रेयः अत्रे°

सह[1]यज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै ।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥ ७
तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमतः ।
वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥ ८
एतद्बाहुद्वयं यत्ते मृ[2]धे मम कृतेऽनघ ।
शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः ९
पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसु[3]धाधिप
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां [4]धर्मज्ञश्च भविष्यसि
एष ते वैष्णवः श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः
कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिन्दम× ।
भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः
यत्र बाहुसहस्रेण वि[5]स्मितं दुर्जयं रणे ।
रामोऽर्जुनमनीकस्थं जघान नृपतिं प्रभुः ॥ १२
रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वाऽर्जुनं यु[6]धि ।
धर्षयित्वा यथाकामं क्रोशमानं च मेघवत् १३
कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥ १४
कीर्णा क्षत्रियको[7]टीभिर्मेरुमन्दरभूषणा ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता १५
कृत्वा निःक्षत्रियां चैव भार्गवः सुमहात[8]पाः ।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥ १६
तस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः ।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥
वारुणांस्तुरगाञ्छीघ्रान्रथं च रथिनां वरः ।
हिरण्यमक्षयं धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामनाः ।
ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः १८
अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः ।
चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनःपुनः ।
तिष्ठते देव[9]वच्छ्रीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥ १९

एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्व[10]तस्याव्ययस्य च
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः
चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः ।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः प[11]द्मायतेक्षणः ॥ २१
कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः ।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः
प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निधना[12]र्थं च ।
धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं जज्ञे तत्र महायशाः[13] ॥ २३
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतपतेस्तनुम् ।
यस्मै[14] दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता
वधार्थं देवशत्रूणां दु[15]र्धराणि सुरैरपि ।
यज्ञविघ्नकरौ येन मुनीनां भावितात्मनाम् २५
मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ ।
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः ।
भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा+ २७
यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ।
लक्ष्मणानुचरो रा[16]मः सर्वभूतहिते रतः ॥ २८
रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः
पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति २९
चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघवः ।
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार ह ।*
सीतायाः पद[17]मन्विच्छँल्लक्ष्मणानुचरो विभुः
विराधं च कबन्धं च राक्षसौ भीमविक्रमौ ।
जघान पुरुषव्याघ्रौ गंधर्वौ शापवीक्षितौ ३१

हुताशना[18]र्केन्दुतडिद्घनाभैः
प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुंखैः ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारैः
शरैः शरीरेण वियोजितौ बलात्

---

जनस्थाने दण्डकारण्यप्रदेशे ॥ १३० ॥ वियोजितौ विशेषेण योजितौ ॥ ३२ ॥

---

१ ख. सयज्ञाः सक्रिया वे॰। २ ख. ॰ते तत्ते मम कृते नृप। श॰ ३ क. ख. ॰धां वसुधेश्वर। दु॰ । ४ ख. ॰नां युद्धस्थश्च भ॰ । ×कथितो वै महाराजेत्यादि श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति। ५ ख. ॰ण निर्मितं दु॰ । ६ क. ख. ॰नं भुवि। ध॰ । ७ ख. ॰हाबलः। स॰॥ ८ क. ख. ॰नः प्रभुः। ति॰ । ९ क. ख. ॰ववच्छ्रीमा॰ । १० क. ख. ॰स्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः। जा॰ ११ क. ख. ॰त्रः पद्मदलेक्षणः। कृ॰ । १२ क. ख. ॰सां निग्रहाय च। ध॰ । १३ क. ॰त्र महात्मवान्। त॰, ख. ॰त्र प्रतापवान् त॰ । १४ ख तस्मै द॰ । १५ ख. ॰णां दुर्धर्षाणि सु॰ ।+ 'यस्मै दत्तानि चास्त्रे-' त्यारभ्य 'लीलया पुरा' इत्यन्तानि सप्त श्लोकार्धानि कपुस्तके न सन्ति। १६ क. ॰रोयश्च स॰ । * तस्यागस्कारिणं क्रूरं पौलस्त्यकुलपांसनम् इति अधिकं कपुस्तके। १७ क. ॰न्विच्छञ्जघान स महामनाः। देवासुरगणानां हि राक्ष॰ १८ ख. ॰शनार्कांशु त॰ ।

सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः ।
वाली विनिहतो युद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचितः ३३
देवासुरगणानां हि[1] यक्षगंधर्वभोगिनाम्[2] ।
अवध्यं राक्षसेन्द्रं तं रावणं युधि[3] दुर्जयम् ३४
युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम् ।
त्रैलोक्यरावणं[4] घोरं[5] रावणं राक्षसेश्वरम् ३५
दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम् ।
दुर्निरीक्ष्यं सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम् ॥ ३६
जघान सचिवैः सार्द्धं[6] ससैन्यं रावणं युधि*
महाभ्रघनसंकाशं महाकायं महाबलम् ॥ ३७
तमागस्कारिणं घोरं पौलस्त्यं युधि दुर्जयम्
सभ्रातृपुत्रसचिवं ससैन्यं क्रूरनिश्चयम् ॥ ३८
रावणं निजघानाशु[6] रामो भूतपतिः पुरा । +
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः[7] ॥३९
हतो मधुवने[8] वीरो वरदृप्तो महासुरः† ।
समरे युद्धशौण्डेन तथा चान्येऽपि[9] राक्षसाः‡
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ४१
नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाकुलं[10] मारुतो ववौ ।
न वित्तहरणं त्वासीद्रामे राज्यं प्रशासति ४२
पर्यदेवन्न विधवा नानर्थाश्चाभवंस्तदा ।
सर्वमासीज्जगद्दान्तं रामे राज्यं प्रशासति ॥
न प्राणिनां भयं चापि जलानिलनिघातजम्
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ४४
ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः ।
शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीञ्छुश्रूषन्त्यनहंकृताः ।
नार्यो नात्यचरन्भर्तॄन्भार्यां नात्यचरत्पतिः ४५
सर्वमासीज्जगद्दान्तं निर्दस्युरभवन्मही ।
राम एकोऽभवद्भर्त्ता रामः पालयिताऽभवत्
आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
अरोगाः प्राणिनश्चासन्रामे राज्यं प्रशासति
देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ।
पृथिव्यां समवायोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति
गाथा[11] अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः
रामे निबद्ध[12]तत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः

श्यामो युवा लोहिताक्षो
दीप्तास्यो मितभाषिता[13] ।
आजानुबाहुः सुमुखः
सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥ ५०

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत्

---

त्रैलोक्यस्य रावणम् आक्रन्दकरम् ॥ ३५ ॥ सचिवैः सुग्रीवबिभीषणादिभिः ॥ ३७ ॥ लवणः शत्रुघ्नरूपिणा तेनैव हतः ॥ ३९ ॥ जारूथ्यान् त्रिगुणीकृतदक्षिणानित्येके । अन्ये तु जारूथ्यामिति सप्तम्यन्तं पाठं प्रकल्प्य अयोध्यायामिति व्याचक्षते । जरूथं छन्दोगप्रसिद्धः स्तोत्रविशेषस्तदर्हान् । " **जरूथं गरूथम् गणतेः स्तुतिकर्मणः** " इति यास्कः ।इति गणतेरूथन्प्रत्यये आदेश्चुत्वमिति तस्य जत्वम् " जॄवृभ्यामूथन् " इति सूत्रे जरूथं मांसमिति शाब्दिकाः । जारूथ्यान् स्तुत्यान् पुष्टान्वेत्यर्थः ॥ ४१ ॥ सहस्राणि एकादशेति शेषः ॥ ४७ ॥ समवायः समाजः ॥ ४८ ॥

---

१ ख. "नां वै य" । २ क. ख. "क्षराक्षसपक्षिणाम् । यत्रावध्यं रा" । ३ ख. "णं युद्धदुर्मदम् । गुप्तं रा" । ४ ख. त्रैलोक्यद्रावणं क्रूरं दुराचारं महाबलम् । दुर्ज" ५ क. "णं क्रूरं राक्षसं तं महाबलम् । दुर्ज्ञेयं दुर्धरं दृप्तं शा" *जघानेति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । ६ ख. रावणं निजघानाजौ रा" । +एतदग्रे-सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः । वाली विनिहतः संख्ये सुग्रीवश्चाभिषेचितः । इत्येकः श्लोकोऽधिकः कपुस्तके । ७ ख. "म राक्षसः । हतो म" । ८ क. ख. "ने भीमो व" †एतदग्रे-यज्ञविघ्नकरैर्येन मुनीनां भावितात्मनाम् । मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ । निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ।। इति श्लोकार्धत्रयं कपुस्तकेऽधिकं वर्तते। ९क. तथैवान्ये च राक्षसाः। ‡एतदग्रे--विराधश्च कबन्धश्च राक्षसौ भीमविक्रमौ । जघान पुरुषव्याघ्रो गंधर्वौ शापविक्षतौ । हुताशनार्कांशुतडित्प्रकाशैः सतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः । महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारैः शरैः शरीरेषु वियोजितौ बलात् ॥ तस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता । वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धराणि सुरैरपि ।। वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः । भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडया लीलया पुरा ।। इति श्लोकचतुष्टयं कपुस्तकेऽधिकं वर्तते । १० ख "नाकुलो मा" । ११ ख. गाथाश्चाप्यत्र गा" । १२ ख. "बद्धास्तत्वार्था माहा" । १३ ख. "भाषणः । आ ।

ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयतां भुज्यतामिति
सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा।
अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ५३
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः।
हित्वाऽयोध्यां दिवं यातो राघवः स महाबलः
एवमेष महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः।
रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ५५
वैशम्पायन उवाच।
अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै५६
यत्र शाल्वं च मैन्दं च द्विविदं कंसमेव च।
अरिष्टमृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम्॥५७
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा।
दैत्यान्मानुषदेहस्थान्सूदयामास वीर्यवान्
छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः।
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः। ५९
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले१६०
नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराऽभवत्।
वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः ॥ ६१
एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना।
जनितो भारतो वंशः सत्यवत्याः सुतेन च
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः।
अतीताः कथिता राजन्कथ्यन्ते चाप्यनागताः
कल्किर्विष्णुयशा नाम शम्भले ग्रामके द्विजः
सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः॥६४
दशमो भाव्यसम्पन्नो
याज्ञवल्क्यपुरःसरः।
क्षपयित्वा च तान्सर्वा-
न्भाविनाऽर्थेन चोदितान् ॥ ६५
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः
ततः कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके ६६
नृपेष्वथ प्रनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः।
रक्षणे विनिवृत्ते च हत्वा चान्योन्यमाहवे६७
परस्परहृतस्वाश्च निराक्रन्दाः सुदुःखिताः।
एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा।
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन ह
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतयुगं पुनः।
प्रपत्स्यते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा६९
एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुणैर्युताः।
प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः१७०
यत्र देवोऽपि मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने।
पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ॥ ७१
एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम्।
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोः प्रभोः७२
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात्।
विष्णोरतुलवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः

---

समहाबल महता बलेन सैन्योपलक्षितेन कृत्स्नजनेन सहितः समहाबलः ॥ ५४ ॥ नवमेऽवतारे एतच्चात्रानुक्ताभ्यामपि मत्स्यकूर्माभ्यां सह ज्ञेयम्। तथा वेदव्यासोऽपि दशमो जज्ञे इति विशेषणं योज्यम् ॥६१॥ एते दशातीताः ॥ ६३ ॥ उत्पत्स्यते एकादशोऽयं दशमेऽतीते सतीत्यग्रिमेण संबन्धः ॥ ६४ ॥ **भाव्याः** भवं सततोत्पत्तिं प्रशंसन्ति ते भाव्याः क्षणिकवादिनो **बौद्धाः** तैः सह संपन्नो वादे युद्धे च संगतः क्षपयित्वा जित्वा हत्वा च तानेव विशिनष्टि। भाविना भावं पूर्वोक्तं प्रशंसता बुद्धमुनिना विष्णोरेव रूपान्तरेण भगवता केनचिदर्थेन निमित्तेन कलौ दम्भयज्ञप्रवृत्त्या लोकनाशो मा भूदिति यज्ञनिन्दार्थेन निमित्तेन चोदितान् प्रवर्तितान्। एतेन कल्कितः प्राक् बौद्धावतारोऽपि सूचितः। बौद्धपक्षक्षयार्थश्च कल्क्यवतारम् ॥ ६५ ॥ निष्ठां समाप्तिम्। ननु कल्किर्म्लेच्छान्प्रहत्य[illegible] स्मर्यते तत्कथं निष्ठां गमिष्यतीत्युच्यतेऽत आह - **ततः इति**। कुले व्यतीते अन्योन्यदारापहारात्क्षते सति ॥ ६६ ॥ अप्रग्रहाः अनियन्तृकाः ईश्वरयत्नं विनैव कामलोभाक्रान्ताः प्रजाः परस्परं घातयिष्यन्तीत्यर्थः ॥ ६७ ॥ तदेवोपसंहरति- **स्वभावादेव-नान्यथेति** ॥ ६९ ॥ देवापीनि सन्धिरार्षः ॥ ७१ ॥ उद्देशमात्रेण कीर्तनं कृतं ननु सम्यक् व्याख्यातं प्रादुर्भावानामन्येषामप्रभादनिमानन्त्यात् ॥ ७२ ॥

---

१ ख. °वद्राष्ट्रे दी°। २ ख. अतिसूर्यं च चन्द्रं च रा°। ३ ख. °वः सुमहा°। ४ क. ख. °वा येम°। ५ ख. °कर्ण्यं°। ६ क. ख. °म शम्बलग्रामको द्वि°। ७ ख. क्षणेन निर्वृते चैव ह°। ८ ख. प्रवत्स्यते य°। ९ ख. °व्या दिव्यगु°। १० ख. °त्र देवा विमुह्यन्ते प्रा°। ११ ख. °ष्णोरमितवी°।

एतास्तु योगेश्वरयोगमायाः श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति सर्वं भगवत्प्रसादात्१७४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि प्रादुर्भावानुसंग्रहो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## विष्णोरीश्वरत्वकथनम् ।

## ४२

वैशम्पायन उवाच ।

विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ॥ १
ईश्वरत्वं च तस्येदं गहनां कर्मणां गतिम् ।
संप्रत्यतीतां भाव्यां च शृणु राजन्यथातथम्२
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यत्रैव भगवान्प्रभुः ।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्कृते युगे ।
ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः॥४
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रादवरजोऽभवत्५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रजन्म तत्
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ।
सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन् ७

एता योगमाया एव नतु तात्त्विक्यो भगवतो लीला अस्मदादिलीलावद्रागपूर्विका इत्यर्थः । तथा च मन्त्रः—

"यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से" इति ।

अस्यार्थः—हे **इन्द्र** परमेश्वर **यत् तन्वा** मत्स्यकूर्मादिशरीरेण **अचरः** चरणं कृतवानसि **वावृधानः** ववृधे दैत्यादीन् हत्वा महत्त्वं च प्राप्तवानसि लोके **बलानि** भूमेरुद्धरणादीनि **जनेषु प्रब्रुवाणः** ख्यापितवानभूः **सा सर्वा ते** तव **मायेत्** मायैव। सा का यानि **युद्धान्याहुः** देवासुरसंग्रामाः सर्वे मायैव । कुत एतत् यतस्त्वां **ननु** निश्चितम् **अद्य** वर्तमानकाले **पुरा** वा **शत्रुं** नाशनीयं न **विवित्से** लभसे । सर्वस्यान्तरात्मत्वात्कालत्रयेऽपि तव शत्रुर्नास्तीति । तस्मात्स्वात्मार्थानुवादवदेतत्पुराणं भगवल्लीलामनुवदतीति मन्त्रार्थः । ऋद्धिं धर्मफलभूतां सम्पत्तिं समृद्धिं योगैश्वर्यम् ॥ १७४ ॥ इति हरिवंशे टीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

चत्वारिंशे द्विसंयुक्ते सर्वदेवपराजये ।
देवा आप्यायिताः सर्वे प्रत्यक्षीभूय विष्णुना ॥ १॥

पूर्वं यदा धर्मस्य ग्लानिस्तदा भगवानाविर्भवतीत्युक्तं सा चासुराणामुदयाद्भवति अतस्तेषां वधेन विष्णोर्जगद्रक्षकत्वं निरूपयति—**विश्वत्वमित्यादिना** । विशेषेण श्वसित्याश्वसित्यभयं प्राप्य जनो यस्मादिति विश्वः। आश्वासनकर्ता अभयदातेति यावत् । हरति नाशयति दुःखदान् दुरितदैत्यादीनिति हरिः। विगतं कुण्ठनं गतिप्रतिघात आलस्यं वैक्लव्यं वा यस्मात् स विकुण्ठः । स्वार्थेऽण् वैकुण्ठः । देवेषु सात्त्विकेषु पालनीयेषु यस्याशक्यत्वादिकं नास्तीत्यर्थः।। मानुषेषु रजस्तमोग्रस्तेषु उपेक्षणीयेषु कृष्णत्वं "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। " इति स्मृतेः। केवलं सत्तारूपेण सांसारिकानन्दरूपेण चास्तित्वं च शृणु ॥ १ ॥ तथा मध्यमेषु ईश्वरत्वं निग्रहानुग्रहकर्तृत्वमेवंविधां भगवतो नानारूपां कर्मणां लीलानां गतिं भूतां भाविष्यां च वक्ष्यमाणां शृणु ॥ २ ॥ व्यक्तोऽपि व्यक्तं लिङ्गं मूर्तिः तत्स्थः यत्र मत्स्याद्यवतारग्रहणे नारायणो मुनिस्तद्रूपः ॥ ३ ॥ नारायणः जगत्सृष्ट्वा तत्र प्रविश्य जीवभावमनुभूय पुनर्जीवत्वहर्ता जीवन्नेव मुक्तो हरिसंज्ञोऽभूत् । कृतयुगे देहिनः सद्यो मुच्यन्त इति भावः । एतस्यैव रूपं ब्रह्मादय इत्याह—**ब्रह्मेति** ॥ ४ ॥ प्रधानं त्रिगुणात्मिका माया सैव आत्मा शरीरं यस्य स प्रधानात्मा मायावी । "मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुतेरीश्वरः । प्रजापतीन् मरीच्यादीन् ॥७॥

१ ख. °ति दीर्घं भ°। २ ख. °नुषे युगे । ३ ख. °त्वं हि त°। ४ क. °स्थो यत्रैष भ°, ख. °स्थो य एष भ°। ५ ख. °रुषः प्रजा क° ।

ते तन्वानास्तनूस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
तेभ्योऽभवन्महात्म्यभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम्
एतदाश्चर्यभूतस्य[1] विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ।
कीर्तनीयस्य[2] लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे९
वृत्ते वृत्रवधे तात वर्तमाने कृते युगे ।
आसीत्त्रैलोक्यविख्यातःसंग्रामस्तारकामयः
तत्रासन्दानवा[3] घोराः सर्वे संग्रामदर्पिताः ।
घ्नन्ति देवगणान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ११
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
त्रातारं मनसा[4] जग्मुर्देवं नारायणं हरिम्[5]
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्षिणः[6] ।
सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो[7] नभस्तलम् १३
चञ्चद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा निर्ह्रादकारिणः ।
अन्योन्यवेगाभिहताः[8] प्रववुः सप्त मारुताः १४
दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुलैः[9] ।
ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवांबरम् १५
पेतुरुल्कासहस्राणि[10] मुहुराकाशगान्यपि ।
न्युब्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च
चतुर्युगान्तपर्याये लोकानां यद्भयं भवेत् ।
तादृशान्येव[11] रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥१७
तमसा निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश १८
निशेव रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ।
द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा[13] वृता १९
तान्घनौघान्सतिमिरा-
न्दोर्भ्यामुत्क्षिप्य[12] स प्रभुः ।
वपुः संदर्शयामास
दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥ २०
बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् २१
दीप्तपीतांबरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुषं[14][15] युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।
चतुर्द्विगुणपीनांसं[16] बलाकापंक्तिभूषणम् ।
चामीकरकराकारैरायुधैरुपशोभितम्[17] ॥ २३
चन्द्रार्ककिरणोद्द्योतं गिरिकूटं शिलोच्चयम्
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ॥२४

---

तनूस्तन्वानाः कश्यपादिरूपेण स्वरूपाणि विस्तारयन्तः ब्रह्मवंशान् नानागोत्राणि ससृजुः । ब्रह्म यज्ञो बहुधा प्रकृतिविकृत्यादिरूपः वेदो वा शाखाभेदेन बहुधाऽभवत् ॥८॥ एतत्तु वेदजपरूपम् । यदाह शौनकः—

" वेदाक्षराणि यावन्ति
पठितानि द्विजातिभिः ।
तावन्ति हरिनामानि
कीर्तितानि न संशयः ॥ "

इति । इतोऽपि अन्यत् कीर्त्यमानं निबोध बुध्यस्व वेदजपतुल्यम् ॥ ९ ॥ तदेवाह-**वृत्ते इत्यादिना**। तारकामयस्तारकाप्रधानः ॥ १० ॥ तत्र गुरुदारहर्तुः सोमस्य पक्षे तत्तुल्यशीलत्वादसुरा आसन् ॥ ११ ॥ ते देवाः ॥ १२ ॥ निर्वाणा आर्चिषाऽपि रहिताः तप्तायस्तुल्याः ते च तेऽङ्गाराश्च तद्वर्षिणः आसन्निति शेषः ॥ १३ ॥ ते मेघाः अन्योन्यवेगैरभिहताः बभूवुरिति शेषः । यतः सप्त मारुताः प्रवहादयस्तत्क्षोभकर्तारः प्रववुः । तैर्धूलिपटलवद्घनपटलमावर्तितामित्यर्थः ॥१४॥ दीप्तं तप्तं तोयम् अशनी च तयोः पातैः ररास शब्दं चकार ॥ १५ ॥ न्युब्जानि अधोमुखानि ॥ १६ ॥ चतुर्युगानाम् अन्तपर्याये चरमेऽवान्तरप्रलये इत्यर्थः ॥ १७ ॥ काली निशा दर्शरात्रिः ॥ १९ ॥ कृष्णं घननीलं वपुर्यस्य स हरिर्वपुर्दर्शयामास ॥ २० ॥ **बलेति** । मेघवत् कृष्णवर्णं कृष्णकेशं च तेजसा कृष्णवर्णेन ॥ २१ ॥ चतुर्द्विगुणा अष्टौ पीनाः पुष्टाश्च अंसा बाहुमूलानि यस्य तम् । चामीकरं सुवर्णं तन्मयाः कराकाराः मुष्टयो येषु तैः चामीकरकराकारैः ॥ २३ ॥ गिरिकूटं पर्वतवदचञ्चलम् । " कूटोऽस्त्री निश्चले राशौ " इति मेदिनी । शिलोच्चयं मनःशिलावर्णं नीवीबन्धनं यस्य तम् । " शिला तु प्रस्तरे मता । तथा मनःशिलायां च " इति मेदिनी। "उच्चैस्तरेऽप्युच्चयः स्यात्समूहे नीविबन्धने ।" इति चानन्दकः खड्गः तेन आनन्दितः शोभितः करो यस्य तं नन्दकानन्दितकरम् । " नन्दको हरिखड्गे च " इति मेदिनी ॥ २४ ॥

---

१ ख. ॰र्यभूतं तु वि॰ । २ क. कीर्तितं कीर्तनीयस्य कीर्त्य॰ । ३ क. तत्रासन्दानवा घो॰ । ख. तत्र स्म दा॰ । ४ क. ॰रं शरणं ज॰ । ५ क. ॰णं प्रभुम् । ए॰ । ६ ख. ॰रवर्चसः । सा॰ । ७ ख. छादयामासुरम्बरम् । चलद्विद्युद्गणाविद्धा॰ । ८ क. तेऽन्योन्यवेगा॰ । ९ ख. ॰लानलैः । ररा॰ । १० क. ॰णि बहून्याका॰, ख. ॰णि पेतुराका॰ । ११ क. सदृशा॰ । १२ ख. दोर्भ्यां संक्षिप्य स प्र॰ । १३ क. तमसा व॰ । १४ ख. धूम्रान्ध॰ १५ क. ख. ॰कारवपुषं यु॰ । १६ क. ॰सं किरीटछन्नमूर्धजम् । चा॰ १७ ख. ॰पशोभितं । च॰ ।

शक्तिचित्रं हलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम्।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् २५
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजशोभिते ।*
चन्द्रार्कचक्ररुचिरे मन्दराक्षवृतान्तरे॥ २६
अनन्तरश्मिसंयुक्ते ददृशे मेरुकूबरे।
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे॥ २७
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः।
ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमये रथे॥ २८
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः।
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः॥२९
स तेषां ता गिरः श्रुत्वा विष्णुर्दयितदेवतः।
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे॥३०
आकाशे तु स्थितो विष्णुः सोत्तमे पुरुषोत्तमः
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः॥३१
शान्तिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं प्रतिगृह्यताम्
ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः
देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राप्येवामृतमुत्थितम्
ततस्तमः संह्रियते विनेशुश्च बलाहकाः।
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश३४
सुप्रभाणि च ज्योतींषि चन्द्रं चक्रुः प्रदक्षिणम्
दीप्तिमन्ति च तेजांसि चक्रुरर्कं प्रदक्षिणम् ३५
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापि सिन्धवः।
नीरजस्का बभुर्मार्गा नाकमार्गादयस्त्रयः॥३६
यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः।
आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत।
यज्ञेषु च हविः स्वादु शिवमश्नाति पावकः
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः।
प्रीत्या परमया युक्ता देवदेवस्य भूपतेः। *
विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

## दैत्यसेनावर्णनम्।

## ४३

वैशम्पायन उवाच।

ततो भयं विष्णुमयं श्रुत्वा दैतेयदानवाः। उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय युधि दुर्जयाः॥१॥

हर्यश्वाः हरिद्वर्णा अश्वाः तैः संयुक्ते रथे वपुर्दर्शयामासेति पूर्वेण संबन्धः। रथसंयुक्ते इत्यत्र संयुक्तरथे इत्यपेक्षिते रथपदस्य पूर्वनिपात आर्षः-चन्द्रेति॥२६॥ रथे ददृशे दृष्टः देवैः किम् उदासीनैर्ददृशे नेत्याह देवास्तं ददृशुरिति। बुद्धिपूर्वकं दृष्टवन्त इत्यर्थः।यस्य चन्द्रार्कौ चक्रे मन्दराद्रिरक्षः शेषः प्रग्रहः मेरुः कूबरं तारा एव वरूथगताचित्रकुसुमानि ग्रहादीनि बन्धनानि तादृशे विश्वरथे स्थितं देवा ददृशुरित्यर्थः॥२७॥ दयिताः देवताः यस्येति बहुव्रीहिः॥३०॥ सः उत्तमे इति च्छेदः॥ ३१॥ संह्रियते संहृतम्॥ ३४॥ सिन्धवः नद्यः नाकमार्गादयस्त्रयः देवयानः पितृयानः मोक्षमार्गश्चेति त्रयः॥ ३६॥ प्रवृत्तधर्मो यज्ञादिः संवृत्तः सम्यक् प्रवृत्तः विष्णोर्गिरं श्रुत्वा संवृत्तः॥ ३९॥ इति हरिवंशे टीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

४३

चत्वारिंशे त्रियुक्तेऽथ देवासुरसमागमे।
दैत्यसंहननं पूर्वं वर्ण्यते वीरवल्लभम्॥ १॥

ततः विष्णुमयं विष्णुप्रधानं भयं दैत्यानां श्रुत्वा॥ १॥

१ क. शक्तिवज्रहलो॰। * चन्द्रार्ककिरणोद्योतमित्यादीनि पंचश्लोकार्धानि खपुस्तके न सन्ति। २ ख. ॰क्षधृता॰। ३ ख. ॰त्रकुमुदे ग्र॰। ४ क. ॰शुस्तं स्थि॰। ५ क. ख. ॰न्तिं व्रजत भ॰। ६ क. प्राप्यामृतमिवोत्थितम्। ख. प्राप्येवामृतमुत्तमम्। ७ क. ज्योतींषि सप्रभाण्यासंश्चन्द्रं चक्रुः प्र॰; ख. ज्योतींषि च प्रभावन्ति चन्द्रं च॰। ८ ख. प्रदीप्तानि च ते॰ ९ क. ख. ॰क्रुः प्रसेदुश्चापि सि॰। १० क. विरजुर्नभसो मार्गा ना॰। ११ क. ॰तो व्यति चु॰। १२ ख. शुभा भूतेन्द्रियगणा नरा॰। १३ क. प्रवृत्तधर्मः संवृत्तो लोको मुदितमानसः। प्री॰। *प्रीत्येति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति। १४ क. ख. ॰ष्णोर्दत्तप्रति॰। १५ क. ख. ॰गं परमं च॰।

मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वान्तरमव्ययम् ।
चतुश्चक्रं विक्रमन्तं सुकल्पितमहायुधम् ॥ २
किंकिणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ।
खचितं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च भूषितम् ॥ ३
स्वक्षं रथवरोदग्रं सूपस्थानमगोपमम् ।
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिभिश्च विराजितम् ।*
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम् ४×
गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ।
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ॥ ५
सपताकध्वजोदग्रं सादित्यमिव मन्दरम् ।
गजेन्द्राम्भोदसदृशं लम्बकेसरवर्चसम् ॥ ६
युक्तमृक्षसहस्रेण सहस्राम्बुदनादितम् ।
दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥ ७
अध्यतिष्ठद्रणाकांक्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ।
तारस्तु क्रोशविस्तारमायसं वायसध्वजम् ॥८
शैलोत्करसमाकीर्णं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
काललोहाष्टचरणं लोहेषायुगकूबरम् ।
तिमिराङ्गारकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥ ९
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।
आयसैः परिघैः कीर्णं क्षेपणीयैस्तथाऽश्मभिः
प्रासैः पाशैश्च विततैरवसक्तैश्च मुद्गरैः ।
शोभितं त्रासनीयैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥११
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् १२
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥१३
युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥१४
व्यायतं बहुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत् ।
वराहः प्रमुखे तस्थौ सावरोह इवाचलः ॥१५
खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् ।
स्फुरद्दन्तौष्ठवदनः संग्रामं सोऽभ्यकांक्षत १६
त्वष्टा त्वष्टादशहयं यानमास्थाय दानवः ।
व्यूहितो दानवैर्व्यूहैः परिचक्राम वीर्यवान् १७
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः ।
श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखैः स्थितः १८
अरिष्टो बालिपुत्रस्तु वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधैः ।
युद्धायातिष्ठदायस्तो धराधर इवापरः ॥ १९
किशोरस्त्वतिसंहर्षात्किशोर इव चोदितः ।
अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ॥२०
लम्बस्तु लम्बमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः ।
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् २१
स्वर्भानुर्वक्रयोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः ।
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः २२
अन्ये हयगता भान्ति नागस्कन्धगताः परे ।
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षगताः परे २३

---

त्रिनल्वान्तरं द्वादशशतहस्ता विस्तृतम् ''नल्वः किष्कुचतुःशतम् '' इत्युक्तेः । मयः काञ्चनमयं रथम् आरोहदिति सप्तमेनान्वयः । महान्ति आयुधानि यस्मिन् विक्रमन्तं विषमेऽपि जलाग्न्यादिस्थाने गच्छन्तम् ॥ २ ॥ ये रथेषु वरास्तेषु उदग्रं श्रेष्ठं सूपस्थानं शोभननीडम् अगोपमं पर्वततुल्यम् । ईहामृगगणैः कृत्रिमसत्त्वसमूहैराकीर्णं व्याप्तम् ॥ ४ ॥ हेममयाः केयूरवलयसदृशाः सन्धिबन्धपट्टिका यस्य ॥ ५ ॥ लम्बकेसरवर्चसं भल्लूकवर्णं सिंहवत् शीघ्रपातित्वेनातितेजस्विनम् ॥ ६ ॥ शैलोत्करः पर्वतानां राशिः काललोहाष्टचरणं कृष्णायसमया अष्टौ चरणाश्चक्राणि यस्य तम् । तिमिराङ्गाराः कृष्णा इङ्गलाः तद्वत् किरणा यस्य ॥ ९ ॥ दंशितं वेष्टितम् ॥ १० ॥ सावरोहः जटावान् अचलो वृक्षः न्यग्रोध इत्यर्थः ॥ १५ ॥ यानं रथं व्यूहितः व्यूहरचनया स्थापितः ॥ १७ ॥ आयस्तः कृतश्रमः ॥१९॥ किशोर इव अश्वशावक इव ॥ २० ॥ नीहारो राहुः कंकणग्रस्तार्कवदित्यर्थः ॥ २१ ॥

---

१ क. °क्रं सुवपुषं विक्रमन्तं महा° ।, ख. °क्रं सुविपुलं सुक° । *क. ख. **खचितं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च भूषितम् । ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिभिश्च विराजितम् ॥** इति श्लोकः अधिकः । ×**स्वक्षं ध्वजवरं धुर्यं सूपस्थमगमोपमम्** इति श्लोकार्धं खपुस्तकेऽस्ति। २ क. आरोहत्समराकांक्षी मे° । ३ क. वाहयन् रथम् । शै° । ४ क. °माकारं नीला° । ५ क. °पूर्णे क्षे° । ख. °घैः शूलैः क्षे° ६ क. °यैश्च मुद्गरैः, °ख. यैश्च लेष्टुभिः । प्रा° । ७ क. °श्च विततं दारणीयैः समंततः। शो° । ८क. °मरैश्च परश्वधैः। ९ क. °वश्च दा° । १० क. अरिष्टो द्वादशह° ११ क. °नवै व्यूहे प° । १२ क. °मुखे स्थि° । १३ क. °लायुधः । १४ क. किशोरस्तु रणे दर्पात् कि° । १५ क. °व नोदितः । अ° । १६ ख. °स्कन्धेषु चापरे सिं° । १७ ख. °हर्क्षेषु चापरे । के°

केचित्खरोष्ट्रयातारः केचित्तोयदवाहनाः।
नानापक्षिगताश्चान्ये केचित्पवनवाहनाः २४
पत्तयश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः।
एकपादा द्विपादाश्च नर्दन्तो युद्धकाङ्क्षिणः
प्रक्ष्वेडमाना बहवः स्फोटयन्तश्च ते भुजान्।
दृप्तशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः॥ २६
ते गदापरिघैरुग्रैर्धनुर्व्यायामशालिनः।
बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च तोमरांकुशपट्टिशैः।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः २८
गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः।
चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम्॥ २९
एवं तद्दानवं सैन्यं सर्वं युद्धबलोत्कटम्।
देवताऽभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोत्थितम्
तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं
वाय्वग्नितोयाम्बुदशैलकल्पम्।
बलं रणौघाभ्युदयावकीर्णं
युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे॥ ३१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

## देवसेनावर्णनम्।

## ४४

वैशम्पायन उवाच।
श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरस्तात विग्रहे।
सुराणां सर्वसैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु॥ १
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ
सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यन्त यथाबलम्॥२
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक्।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विषम्॥ ३
सव्ये चास्य रथः पार्श्वे पक्षिप्रवरवेगवान्
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः॥ ४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः॥ ५
वज्रविस्फूर्जितोद्धूतैर्विद्युदिन्द्रायुधान्वितैः।
गुप्तो बलाहकगणैः कामगैरिव पर्वतैः॥ ६
समारूढः स भगवान्पर्येति मघवा गजम्।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्राः सोममखे स्थिताः
स्वर्गे शक्रानुयानेषु देवतूर्यनिनादिषु।
इन्द्रं समुपनृत्यन्ति शतशो ह्यप्सरोगणाः ८
केतुना वंशजातेन राजमानो यथा रविः।
युक्तो हरिसहस्रेण मनोमारुतरंहसा॥ ९
स स्यन्दनवरो भाति युक्तो मातलिना तदा।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा १०
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम्।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ११

पवनवाहनाः वायुगतयः॥२४॥ गाढं संकुलम्। रणौघः संग्रामधारा तस्या अभ्युदय उत्कर्षः तस्मै अपकीर्णं प्रसृतम्॥३१॥इति हरिवंशे टीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

४४

विस्तरो देवसैन्यस्य चत्वारिंशे चतुर्युजि।
तेषां संहननं चैव प्रोच्यतेऽतिमनोहरम्॥ १॥

श्रुतस्ते॥ १॥ संनह्यन्त सन्नद्धा बभूवुः। अडभाव आर्षः॥२॥अस्य पार्श्वे रथः पर्य्येतीति तृतीयस्थेनान्वयः। पक्षिप्रवरो गरुडः तद्वद्वेगवान्॥ ४॥ हविर्धानेषु हविःस्थापनमण्डपेषु गायन्ति यमिति शेषः॥७॥ पुनः स्यन्दनं वर्णयति–केतुनेति॥९॥ कालयुक्तं मरणप्रापिकया देवतया युक्तम्॥११॥

१ ख. पत्तिनस्त्वपरे दै। २ क. °श्च ननृतुर्युद्ध°। ३ क. °श्च बाहुभिः। द° ४ क. °शैश्च प्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम्। एवं तद्दा°। ५ ख. एवं दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम्। दे°। ६ क. °मिवोद्धतम्। ७ क. अत्यद्भुतं दै°। ८ ख. °लं रणायाभ्यु°। ९ क. ख. °थाक्रमम्। पु°। १० क. ख. °श्च महर्षि°। ११ क. °धान्वितैः। गु° १२ ख. °घवान् जगत्। ह°। १३ क. °र्धाने स्म गा°। १४ ख. °प्रा मखमुखे स्थि°। १५ क °याते तु देवतूर्याण्यवादयन्। इन्द्राग्रतस्तु नृत्य°। १६ क. ख. °शराजेन भ्राजमा°। १७ क. ख. °क्तो हयसहस्रेण म°। १८ क. °ति गुप्तो मा°।

चतुर्भिः सागरैर्गुप्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥ १२
कालपाशं समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः ।
वाय्वीरितजलोद्गारैः कुर्वँल्लीलाः सहस्रशः॥१३
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराङ्गदः ।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हारभारार्पितोदरः ॥ १४
वरुणः पाशभृन्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान्
युद्धवेलामभिलषन्भिन्नवेल इवार्णवः ॥१५॥
यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ॥
मणिश्यामोत्तमवपुः कुबेरो नरवाहनः ॥१६॥
युक्तश्च शंखपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ॥
राजराजेश्वरः श्रीमान्गदापाणिरदृश्यत ॥१७॥
विमानयोधी धनदो
विमाने पुष्पके स्थितः ॥
स राजराजः शुशुभे
युद्धार्थी नरवाहनः ॥
प्रेक्ष्यमाणः शिवसखः
साक्षादिव शिवः स्वयम् * ॥१८॥
पूर्वं पक्षं सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणम् ।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥१९॥
चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला बलोत्कटाः
स्वासु दिक्ष्वभ्यरक्षन्वै तस्य देवबलस्य ह २०
सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनाम्बरगामिना ॥
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः
उदयास्तमयं चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना ॥
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥ २२
सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानः स्वतेजसा ॥
चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः२३
सोमः श्वेतहयैर्भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान्
हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥ २४
तमृक्षयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् ॥
जगच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् २५
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसनं प्रभुम्
औषधीनां परित्राणं निधानममृतस्य च २६
जगतः प्रथमं भागं सौम्यं शीतमयं रसम् ॥
ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम् ॥२७॥
यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु ॥
सप्तस्कन्धगतो लोकांस्त्रीन्दधार चराचरान्
यमाहुरग्नेर्यन्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ॥
सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीतिरुदीर्यते ॥ २९

---

सागरैर्गुप्तो वरुणः तस्थिवानिति चतुर्थेनान्वयः ॥ १२ ॥ आविध्य भ्रामयित्वा ॥ १३ ॥ पाण्डुरं श्वेतम् उद्धूतम् उच्चतरं सौक्ष्म्यगुणेन वसनं यस्य हाराणां भारः अर्पितः उदरे यस्य सः हारभारार्पितोदरः ॥ १४ ॥ शङ्खपद्मौ मूर्तिमन्तौ निधिविशेषौ ताभ्याम् ॥१७॥ चतुर्षु दिक्प्रदेशेषु ॥२०॥ त्रिदिवद्वारचक्रेण स्वर्गप्रदेशे अलातचक्रवत् भ्रममाणेनेत्यर्थः । तपता दीपयता रथेन चचारेत्यन्वयः ॥२२॥ **सोम इति** । सोमार्थमेवासुरा उद्युक्तास्तेनासुरेष्वेव सोमः पठितुं युक्तस्तथापि देवत्वासमानजातिषु तस्य पाठः कृतः ॥२४॥ अत एवाह-**तमिति** । तं सोमं स्वपक्षीयत्वाद्दानवा ददृशुरिति तृतीयेनान्वयः । ऋक्षं नक्षत्रं द्विजाः ब्राह्मणाः जगच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयमिति अयमर्थः द्वेधाभूते रविरश्मिभिरम्मयं शशिमण्डलं भास्यते तत्र अधोमुखा रश्मयः पृथ्वीं प्राप्य तत्रस्थेन महामण्यादितेजसा प्रतिस्रोतः प्रवर्तिताः चन्द्रमडलमुत्प्लुत्य गच्छन्ति ते पार्थिवेन नीलिम्नाऽनुरञ्जिताः नीलमेव चन्द्रमण्डलमवभासयन्ति ततश्चन्द्रस्य जगच्छायाङ्किततनुत्वं युक्तं ये तु पूर्वं चन्द्रमण्डलं प्राप्यायधः प्रचरन्ति तद्द्वारा चन्द्रस्य भास्वरप्रकाशतया नैशस्य तमसः क्षयमिति विशेषणं युज्यत इति ॥ २५ ॥ रसानां रसनम् आश्रयम् ॥ २६ ॥ जगतोऽग्नीषोमात्मकस्य प्रथमम् अन्नात्मकं भागं सौम्यं सोमरूपम् अत एव रसं रसमयम् ॥ २७ ॥ सप्त स्कन्धाः आवहप्रवहादयोऽशभेदा यत्र आकाशोदरे तिष्ठन्ति तत्र गतं पञ्चधा प्राणापानादिभेदेन नृषु जन्तुषु ॥ २८ ॥ सप्त स्वरा निषादर्षभादयः यस्य वायोर्योनिराकाशः सप्तस्वरेषु गता स्थिता शब्दतन्मात्रा गतेत्यर्थः ॥ २९ ॥

---

१ क. ख. °लिहद्भिश्च प° । २ ख. °शं तु संगृह्य ह° । ३ ख. पाण्डरो° । ४ ख. °राधरः । म° । ५ ख. °पुर्हारोत्तमविभूषितः । ६ ख. देवो वित्तेश्वरः श्री° । * दैत्यस्य संमुखे देवः स्थितवान्समरोत्सुकः । इत्यधिकं श्लोकार्धं क. खपुस्तकयोः । ७ क. ख. °त्तेरे न° । ८ क. °स्य वै । ख. °स्य तु । सू° । ९ ख. °रवित्रेण त° । १० क. ख. °मानेन तेज° । ११ ख. °रराज म° । १२ क. ख. °रणं स्थितम् । यः प्रा° । १३ क. °र चचार च । यमा° । १४ क. ख. °तारं सर्वप्र° । १५ क. °निर्गीभिरु° ।

यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम्।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम् ३०
स वायुः सर्वभूतायुरुद्धूतः स्वेन तेजसा।
ववौ प्रव्यथयन्दैत्यान्प्रतिलोमः सतोयदः ३१
मरुतो देवगन्धर्वा विद्याधरगणैः सह।
चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ३२
सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रं रोषमयं विषम्।
शरभूताः सुरेन्द्राणां चेरुर्व्यात्तमुखा दिवि
पर्वतास्तु शिलाशृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः।
उपतस्थुः सुरगणान्प्रहर्तुं दानवं बलम् ॥३४॥
यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः।
कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो विश्वस्य जगतः प्रभुः
समुद्रयोनिर्मधुहा हव्यभुक्क्रतुसत्कृतः।
भूरापोव्योमभूतात्मा समः शान्तिकरोऽरिहा
जगद्योनिर्जगद्बीजो जगद्गुरुरुदारधीः।
सोऽर्कमग्निमिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसम्॥ ३७
अरिघ्नममरानीके चक्रं चक्रगदाधरः।
सपरीवेषमुद्यन्तं सवितुर्मण्डलं यथा ॥३८॥
सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम्
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्।
शेषैर्भुजैः प्रदीप्तानि भुजगारिध्वजः प्रभुः ३९
दधारायुधजालानि शार्ङ्गादीनि महायशाः।
स कश्यपः स्वात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम्
पवनाधिकसंपातं गगनक्षोभणं खगम्।
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् ४१
अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम्।
देवासुरविमर्देषु शतशो दृष्टविक्रमम् ॥४२॥
महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम्॥
शिखिनं चूडिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम्।
विचित्रपक्षवसनं धातुमन्तमिवाचलम् ॥४३॥
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा।
भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ४४
पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्या-
मावृत्य दिवि लीलया।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां
तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ॥४५॥
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलंकृतम्।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ॥४६॥
अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे हरिः।
स देवः स्वेन वपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ४७
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च तपोधनाः।
गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम् ४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरस्सरम्।
वारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ४९
चन्द्रप्रभाभिर्विमलं युद्धाय समुपस्थितम्।
पवनाविद्धनिर्घोषं संप्रदीप्तहुताशनम् ॥५०॥
विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च
भ्राजिष्णोस्तेजसा वृतम्।
बलं बलवदुद्धूतं
युद्धाय समवर्तत॥ ५१

शब्दयोनिजम् आकाशजम् ॥ ३० ॥ कृष्णवर्त्मा वह्निर्युगान्ते आभाति स युगान्ताभः युगान्ताग्नितुल्य इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ समुद्रयोनिरित्यत्र योनिशब्दः स्थानवाची। "योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि" इति मन्त्रवर्णात् ॥ ३६ ॥ सार्काग्निर्यथा उत्तमतेजा अत्युत्कृष्टतेजाः तत्तुल्यं चक्रं गदाधरो दधारेति तृतीयगतेनान्वयः ॥ ३७ ॥ भ्राम्यमाणायाः गदायाः परिवेषस्योपमा ॥ ३८ ॥ द्विजं गरुडम् आरुह्य युद्धाय समवर्ततेति अष्टमद्वादशस्थाभ्यां संबन्धः ॥ ४० ॥ क्रोडा वक्षः अर्धगिलितस्य सर्पस्य शिरोरत्नेन वक्षःस्थलगतेन भान्तमिति शेषः। भोगः शरीरम् ॥ ४४ ॥ अम्बरम् आवृत्य स्थितमिति शेषः ॥ ४५ ॥ केतुः शत्रुः। "केतुर्ना रुक्पताकारिग्रहोत्पातेषु लक्ष्मणि।" (तान्तवर्गे १३) इति मेदिनी। शत्रुवेषेण प्रकटमित्यर्थः। महान् कायः लक्ष्म ध्वज इति यावत्। तस्य निकेतनम् अवरोपणस्थानम् "कायः के दैवते मूर्तौ सान्धिलक्ष्मस्वभावयोः" (यान्तवर्गे १२) इति मेदिनी ॥ ४६ ॥

१ क. °यस्तीक्ष्णं रो° । २ क. यश्च दे° । ३ क. °भूम्यापो व्यो° । ४ क. सोऽर्के° । ५ क. °विघातिनीम्। क° । ६ क. °लीं बृहतीं श° । ख. °लीं महतीं श° । ७ क. °पस्यात्म° । ८ क. ख. °चूलिनं चै° । ९ क. °रुचित्रा° । ख. °त्राभ्यां छादयन्तं च ली° । १० ख. °मानारुरोह रणे ह° । ११ ख. सुवर्णं स्वे° । १२ क. ख. °श्च समाहिताः। गी° । १३ क. तं वै श्र° । १४ क ख. युद्धमत्सरयोगितम्। पव° । १५ ख. पवनाबद्धनि° १६ क. °जिष्णोः प्रसहिष्णोर्भ्रा° ।

स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति स्तुत्वा तत्राङ्गिराऽब्रवीत् ॥
स्वस्त्यस्तु दैत्येभ्य इति उशना वाक्यमाददे ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

## देवासुरसंग्रामवर्णनम् ।

### ४५

वैशम्पायन उवाच । *
ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा
सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥१॥
दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः ।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वताः पर्वतैरिव ॥ २
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ ।
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥३॥
ततो रथैः प्रजविभिर्वाहनैश्च प्रचोदितैः ।
उत्पतद्भिश्च गगनं सासिहस्तैः समन्ततः ॥४
विक्षिप्यमाणैर्मुशलैः संप्रेष्यद्भिश्च सायकैः ।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥५॥
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम् ।
जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥६॥
स्वहस्तमुक्तैः परिघैः क्षिप्यमाणैश्च पर्वतैः ।
दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ७
ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः ।
विषण्णमनसो देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे ॥८
तेऽस्त्रजालैः प्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्बहु ॥ ९
स्पन्दिताः पाशजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम्
संस्तम्भितमिवाभाति निःप्राणसदृशाकृति ।
बलं सुराणामसुरैर्निःप्रयत्नायुधं कृतम् ॥११॥
मायापाशान्विकर्षंश्च भिन्दन्वज्रेण ताञ्शरान्
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥१२॥
स दैत्यान्प्रमुखे हत्वा तद्दानवबलं महत् ।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३॥
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवान्वा दानवानपि ।
घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४॥
मायापाशैर्विमुक्ताश्च यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
वपूंषि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन् ॥१५॥
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसः ।
पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाचलाः १६
तद्घनीभूतदैत्यानामन्धकारमहार्णवम् ।
प्राविष्टं बलमुत्रस्तं तमोभूतमिवाबभौ ॥१७॥
तदासृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन् ।
युगान्ताग्निमिवात्युग्रां सृष्टामौर्वेण वह्निना
सा ददाह तमः सर्वं मायामयविकल्पिता ।
दैत्याश्च दीप्तवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१९॥

अङ्गिरा बृहस्पतिरब्रवीदित्यडभाव आर्षः ॥ ५२ ॥ इति हरिवंशे टीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

चत्वारिंशे पञ्चयुजि देवसैन्ये पराजिते ।
मयमायाप्रकर्षश्च ऊर्वसम्भव उच्यते ॥१॥

ताभ्यामिति ॥ १ ॥ समीयुः अन्योन्यं मिश्रिताः ॥ २ ॥ स्पन्दिताः रुधिरस्राविणः कृताः पाशजालैर्निर्यत्नाः कृताः सन्तः शरैः स्पन्दिता इति योजना ॥ १० ॥ तामसीम् ऐन्द्रीं तमोऽस्त्रमयीं मायाम् और्वेण अबिन्धनेनाग्निना ॥ १८ ॥

* सर्वदेवमयो यस्तु सर्वधर्ममयस्तु यः । तस्य विष्णोः सुरेशस्य तेजसा विधृताः सुराः ॥ सबलाः सानुगाश्चैव त्रिदशास्तु मदोत्कटाः । प्रहर्तुं दानवं सैन्यं तरसा हि समभ्ययुः ॥ इति श्लोकद्वयं कपुस्तकेऽधिकमास्ति । १ क. ख. °जवितैर्वाह° । २ ख. °मुशलैः प्रेष्यमाणैश्च सा° । ३ क. युगान्तावर्तकोपमम् । स्व° । ४ ख. °क्षिप्रमुक्तैश्च प° । ५ क. °र्तिं परां मृधे । ते° । ६ क. °लैश्च निर्यन्ना°, ख. °लैश्च निष्प्रयत्ना° ७ ख. °न्त देवा वा दानवास्तथा । घोरे° । ८ क. °घानां समो° । ९ ख. दैत्यानां तद्घनीभूतमन्ध° । १० क. दानवेन्द्रस्य सदनं तमो° । ११ ख. अथासृ° । १२ ख. °गान्ते लोकदहनीं सृष्टा° । १३ ख. °त्याश्चादित्यवपु° । १४ क. समुत्तस्थुस्तदाहवे । मा° ।

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः॥
भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिलेशयात् २०
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजसः
शशंसुर्वज्रिणे देवाः संतप्ताः शरणैषिणः २१
संतप्ते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवैः॥
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् २२

वरुण उवाच[2]।

पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपेऽतिदारुणम्॥
ऊर्वो[3] मुनिः स तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः
तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम्॥
उपतस्थुर्मुनिगणा देवा ब्रह्मर्षिभिः सह॥२४॥
हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः॥
ऋषिं विज्ञापयामास पुरा परमतेजसम्॥२५॥
तमूचुर्[4]ब्रह्मऋषयो वचनं ब्रह्मसंमितम्[5]॥
ऋषिवंशेषु भगवञ्छिन्नमूलमिदं कुलम्॥२६॥
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रं यन्नानुवर्तसे॥
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे॥२७॥
बहूनि विप्रगोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्
एकदेहानि तिष्ठन्ति विभक्तानि विना प्रजाः
कुलेषु[6] च्छिन्नमूलेषु तेषु नो नास्ति कारणम्
भवांस्तु[7] तपसा श्रेष्ठः प्रजापतिसमद्युतिः॥२९॥
तत्प्रवर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना॥
त्वमाधत्स्वो[8]र्जितं तेजो द्वितीयां वै तनुं कुरु

स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः॥
जगर्हे तानृषिगणान्वचनं चेदमब्रवीत्॥३१॥
यथाऽयं शाश्वतो धर्मो मुनीनां विहितः पुरा
सदाऽऽर्षं[9] सेवतां कर्म वन्यमूलफलाशिनाम्[10]
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यानुवर्तिनः॥
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥३३॥
द्विजानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः॥
अस्माकं तु वनं वृत्तिर्[11]वनाश्रमनिवासिनाम्
अम्बुभक्षा वायुभक्षा दन्तोलूखलिकास्तथा॥
अश्मकुट्टा दशनपाः पञ्चातपतपाश्च ये॥३५
एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुष्करैः[12]।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ते परां गतिम्॥३६
ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः

नास्ति योगं विना सिद्धि-
र्नास्ति सिद्धिं विना यशः।
नास्ति लोके यशोमूलं
ब्रह्मचर्यात्परं तपः॥ ३९

तन्निगृह्ये[13]न्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चमम्।
ब्रह्मचर्येण[14] वर्तेत किमतः परमं तपः॥ ४०

चन्द्रविषयं सोमसमीपम्। शीतांशुसलिले शिशिरजले शयात् शयनाद्धेतोः॥२०॥ देवराजेन इतराभिर्वदौर्वाग्निरपि शान्तिर्जलेनैव भविष्यतीति मन्वानेन॥२२॥ वरुणस्त्वबिन्धनोऽयं वह्निर्नाम्भोमात्रेण शाम्यतीत्यर्थे आख्यायिकामाह-**पुरेति**। ब्रह्मर्षिर्भृगुस्तज्जः॥२३॥ इदं तावकम्॥२६॥ गोत्रं पुत्रपौत्रादिसंतानं कौमारं व्रतम् ऊर्ध्वरेतस्त्वं क्लेशं तपोजन्यं खेदम्॥२७॥ प्रजाः विना उच्छिन्नमूलेषु इति उत्तरस्थेनान्वयः। तेषु कारणं वृद्धिहेतुर्नास्ति छिन्नमूलत्वात्॥२८॥ त्वयि तु मले विद्यमाने प्रजोच्छेदो मा भूदित्याह-**भवानिति**॥२९॥ द्वितीयां तनुं पुत्रम्॥३०॥ ताडितः क्षोभं नीतः॥३१॥ ॥**द्विजानामिति**॥ तिस्रः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाख्या वृत्तयो जीविका अस्माकं कौमारव्रतानां तु वनमेव वृत्तिः। अनेन समावृत्तानां विनाऽपि विवाहं वानप्रस्थाश्रमोऽस्तीति गम्यते॥३४॥ दशनपाः दन्तोलूखलिका इत्यन्वयः। सदन्ताः सतुषमेव नीवारादिकं भक्षयन्त इत्यर्थः। अदन्तास्त्वश्मकुट्टाः। पञ्चानामपि अग्निचतुष्टयं सूर्यश्च तेषामातपेन ऊष्मणा तपन्ति ते पञ्चातपतपाः॥३५॥ पञ्चमं पञ्च शब्दादयो मीयन्त एतैरिति पञ्चमम् इन्द्रियग्रामं पञ्चभिरिन्द्रियैर्मीयन्त इति पञ्चमो भूतग्रामस्तामिति वा। पञ्चकमिति पाठस्त्वनार्षः॥४०॥

१ ख. ०लिलं ह्रदम्। ते द०। २ वरुण उवाचेति कपुस्तके नास्ति। ३ क. ख. ऊर्वः पूर्वं स ते०। ४ ख. तें तमूचुर्ब्रह्मर्षयो व०। ५ क. ख. ०नं धर्मसंहितम्। ६ क. पूर्वेषूत्सन्नभूतेषु ते० ७ ख. ०वांश्च त०। ८ क. समाधत्स्वोर्जि०। ९ ख. आर्षं हि से०। १० क. फलाशिनीम्। ११ ख. ०क तु वने वृ०। १२ ख. ०दुश्चरैः। ब्र०। १३ ख. सन्निगृ०। १४ क. ख. ब्रह्मचर्यं समाधत्त कि०।

अयोगे केशहरणमसंकल्पे व्रतक्रिया ।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद्दम्भसंज्ञितम् ४१
क दाराः क च संयोगः क च भावविपर्ययः ।
यदेयं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ४२
यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकममितात्मनाम् ॥
सृजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा ४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विना ।
न दारयोगं बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ॥
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतिः ४५
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम् ॥
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ॥
वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः ४७
ऊर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ॥
ममन्थैकेन दर्भेण पुत्रस्य प्रभवारणिम् ॥४८॥
तस्योरुं सहसा भित्त्वा
ज्वालामाली निरिन्धनः ॥
जगतो निर्दहनाकांक्षी
पुत्रोऽग्निः समपद्यत ४९
ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः ॥ ५०

उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं दीनया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्षे त्यजस्व माम्
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश
निर्दहन्निव भूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वलोकपतिः प्रभुः ।
आजगाम मुनिर्यत्र व्यसृजत्पुत्रमुत्तमम् ॥५३॥
स ददर्शोरुपूर्वस्य दीप्यमानं सुताग्निना ॥
और्वकोपाग्निसंतप्तॉंल्लोकांश्च ऋषिभिः सह
तमुवाच ततो ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ॥
धार्यतां पुत्रजं तेजो लोकानां हितकाम्यया
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये स्थानमुत्तमम् ॥
वासं चास्य प्रदास्यामि प्राशनं चामृतोपमम्
तथ्यमेतन्मम वचः शृणु त्वं वदतां वर ॥५७॥

ऊर्व उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि
यन्ममाद्य भवाञ्छिशोः ।
मतिमेतां ददातीह
परमानुग्रहाय वै ॥ ५७
प्रभावकाले संप्राप्ते कांक्षितव्ये समागमे ॥
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥
कुत्र चास्य निवासो वै भोजनं च किमात्मकम्
विधास्यति भवानस्य वीर्यतुल्यं महौजसः ५९

---

अयोगे संन्यासिनां ध्यानभिक्षूणाम् अवश्यकर्तव्यस्य योगस्य ध्यानस्याभावे केशहरणं मुण्डनम् वानप्रस्थानाम् । असंकल्पे परलोककामनाया अभावे केवला लोकरञ्जनार्था कृच्छ्रादिव्रतक्रिया । अब्रह्मचर्ये अध्ययनाद्यभावेऽपि चर्या ब्रह्मचारिधर्माविष्करणम् ॥ ४१ ॥ यदा इयं मानसी सनत्कुमारादिका प्रजा ब्रह्मणा सृष्टा तदा दाराः क तत्संयोगश्च क भावस्य चित्तस्य विपर्ययः कामातुरता च क न किञ्चिदपि तदा आसीदित्यर्थः । यथेति पाठेऽपि यदेत्येवार्थः ॥ ४२ ॥ योनिः पुत्रोत्पत्तिस्थानम् आधातव्या निहितगर्भा कर्तव्या । यतस्तपस्विनां दारयोगं क्लीबत्वमार्षम् । बीजं बीजाधानं च व्रतं न विहितम् ॥ ४४ ॥ एषोऽहं मनोमयं स्वसंकल्पासिद्धं वपुः उप्यते बीजमस्मिन्निति वपुः योनिं कृत्वा उद्भाव्य दारयोगं विनाऽपि दीप्तान्तरात्मानम् आत्मतनूरुहं स्वस्य पुत्रं स्रक्ष्ये ॥ ४६ ॥ द्वितीयम् आत्मानं पुत्रम् आत्मा देहः ॥४७॥ हुताशने ऊरुं निवेश्येति । ऊरौ अग्निं समारोप्य तत एव मथित्वाऽग्निं जनयामासेत्यर्थः । स चाग्निः स्वेन ब्राह्मेण च तेजसा युक्तो दुःसहो दुर्दमश्चाभूदिति वाक्यार्थः ॥४८॥ भक्षे भक्षणे तन्निमित्तं माम् उद्दिश्य जगत् त्यजस्व पुरोडाशवत्कृत्स्नं जगद्भक्षयितुं मामाज्ञापयस्वेत्यर्थः ॥ ५१ ॥ जृम्भमाणः प्रसरन् ॥ ५२ ॥ तेजो वीर्यं पुत्र इति यावत् ॥५५॥ प्रभावकाले यौवनसमये समागमेऽन्नस्येति शेषः ५८

---

१ ख. °शधरणम° । २ ख. यथेयं ब्र° । ३ ख. °योगो बी° । ४ ख. व्रतं युक्तं त° । ५ ख. °भिरपि नि° । ६ क. ख. °व मे मतम् । ७ क. ख. °न दर्भेण पु° । ८ क. ख. °तो दहनाका° । ९ ख. वर्तते ता° । १० क. ख. °हन् सर्वभू° । ११ ख. °कहितः प्र° । १२ क. ऊर्व° । १३ क. ख. पुत्रेदं धार्यतां ते° । १४ क. ख. °नां क्रियतां दया । अ° । १५ क. ख. °स्मि यस्य मे भगवाञ्छिशोः । म° । १६ क °त्र चास्य । १७ ख. निवासः स्याद्भोज° ।

ब्रह्मोवाच।

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रास्ये भविष्यति
मम योनिर्जलं विप्र तच्च तोयमयं वपुः ॥६०॥
तद्धाविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं तु तत्।
तत्रायमास्तां नियतः पिबन्वारिमयं हविः ६१
ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च सुव्रत।
सहितौ विचरिष्यावो लोकानिति पुनः पुनः
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः॥
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥६३॥
एवमस्त्विति सोऽप्यग्निः संवृतज्वालमण्डलः
प्रविवेशार्णवमुखं निक्षिप्य पितरि प्रभाम् ६४
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा
ते च सर्वे महर्षयः॥
और्वस्याग्नेः प्रभावज्ञाः
स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः॥ ६५
हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदद्भुतमपूजयत्।
ऊर्वं प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥६६*
भगवन्नद्भुतमिदं निवृत्तं लोकसाक्षिकम् ॥
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥६७॥
अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत॥
भृत्य इत्यवगन्तव्यः
श्लाघ्योऽस्मि यदि कर्मणा ६८
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाऽऽराधने रतम्॥
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः ६९

ऊर्व उवाच।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुर्मतः
नास्ति ते तपसाऽनेन भयमद्येह सुव्रत॥७०॥
इमां च मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम्॥
निरिन्धनामग्निमयीं दुःस्पर्शां पावकैरपि॥७१
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगाऽरिविनिग्रहे।
रक्षिष्यत्यात्मपक्षं सा परांश्च प्रहरिष्यति ७२
एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ७३

वरुण उवाच

सैषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ७४
तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा
यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान्सुखी।
दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः७६
तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः७७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि और्वाग्निसंभवो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

---

वडवाया अश्वाया मुखसदृशे समुद्रस्य आस्ये मुखे अस्य स्थानम्। अन्नं च तत्र प्रविष्टाः भौमा आपः तासां स्तुत्यर्थं मम योनिरित्याद्युक्तं शेषं स्पष्टम् ॥ ६० ॥ प्रभां यशोमयं तेजः॥६४॥ समापन्नं शरणागतं सीदे दुःखं प्राप्स्ये ॥ ६९ ॥ अनेन मामकेन ॥ ७० ॥ निरिन्धनाम् आराधनादुत्तेजनानपेक्षाम् ॥ ७१ ॥ तस्मिन् हिरण्यकशिपौ व्युत्थिते मृते सति येन और्वेण त्वज्जीवनावधि एषा माया वीर्यवती न तु ततः परमिति शापरूपमुन्नेयम् ॥ ७५ ॥ भगवान् भवानिन्द्रः ॥ ७६ ॥ **सह संगम्येति।** अल्पतोयत्वान्मया एकाकिना हन्तुमशक्योऽपि चन्द्रसंयोगात् बहुलीभावं प्राप्य और्वामिवारयितुं शक्यते इत्यर्थः ॥ ७७ ॥ इति हरिवंशे टीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

१ क °यं मुखम्। त°। २ ख. °लयं च त°। ३ क. तत्राहमासे नि°। ४ ख. °वौ निष्पुराणकरावुभौ। एषो। * अत्र 'हिरण्यकशिपुरुवाच' ॥ इत्यधिकं खपुस्तके। ५ क. °हं च त°। ६ ख. मत्प्रसादेन भ°। ७ क. °क्षं तेपरं च प्र°, ख. °क्षं च परं च प्र°। ८ क. प्रदहिष्यति। ९ वरुण उवाचेति खपुस्तके नास्ति। १० क. ऊर्वेण नि°। ११ ख. °तव्यश्च भवान्सुखी। १२ ख. °हं सहितः संख्ये या°। १३ क. ख. °श्च समाहितः। मा°।

## दैत्यपराजयः ।

## ४६

वैशम्पायन उवाच ।

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्द्धनः ॥
संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् १
शक्र उवाच ।
गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयार्थं च दिवौकसाम्
त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः ॥
त्वन्मयं सर्वलोकानां रसं रसविदो विदुः ३
क्षयवृद्धी तवाऽव्यक्ते सागरस्येव मण्डले
परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ४
लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्के शशसंज्ञितम्
न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोगिनः ५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः
तमश्चोत्सार्य वपुषा भासयस्यखिलं जगत् ६
श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी ॥
अब्दकृत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरसोऽव्ययः
ओषधीशः क्रियायोनिरम्भोयोनिरनुष्णभाक्
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥८॥
त्वं कान्तिः कान्तवपुषां
त्वं सोमः सोमवृत्तिनाम् ।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां
तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट्
तद्गच्छ त्वं सहानेन वरुणेन वरूथिना ।
शमयस्वाऽऽसुरीं मायां यया दह्याम संगरे
सोम उवाच ।
यन्मां वदसि युद्धार्थं देवराज जगत्पते ॥
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ११
एतान्मच्छीतनिर्दग्धान्पश्य त्वं हिमवेष्टितान्
विमायान्विमदांश्चैव दानवांस्त्वं महामृधे
वैशम्पायन उवाच ।
ततो हिमकरोत्सृष्टाः सुबाष्पा हिमवृष्टयः
वेष्टयन्ति स्म तान्घोरान्दैत्यान्मेघगणा इव
तौ पाशशुक्लांशुधरौ वरुणेन्दू महारणे
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशघातैश्च दानवान् ॥१४॥
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ १५

४६

षट्चत्वारिंशकेऽध्याये
दैत्यमायानिबर्हणम् ।
कालनेमिसमुद्योगः
सुरत्रासोऽनुवर्ण्यते ॥ १ ॥

**एवमिति** ॥ अत्र सामेः शक्रेण प्रार्थितः स्वपक्षानप्यसुरानक्षिणोदित्युच्यते । यद्वा **"बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वेन्द्रस्याभयायासुरेभ्यः क्षयाय"** इति मैत्रायणिश्रुतेर्बृहस्पतिवच्चन्द्रोऽपि रूपभेदं कृत्वा असुरनाशायैवासुरं कर्म कृत्वा तत्साहाय्येन महान्तं तारकामयं सङ्ग्राममुपक्रान्तवानिति समाधेयम् । शिशिरायुधं हिमप्रहरणम् ॥ १ ॥ ज्योतिषामीश्वरः सूर्यः तस्यापीश्वरः । **"चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्त"** इति श्रुतेः । अयमर्थः—यथा पार्थिवं दारु अग्नेर्वर्धकम् एवं चान्द्रमम्भः सर्वेषां दिव्यानामबिन्धनानां तेजसां वर्धकम् अतश्चन्द्रोऽपि सूर्यस्येश्वर इति ॥ ३ ॥ परिवर्तसि परिवर्तयसि ॥ ४ ॥ लोकच्छायामयं भूमिप्रतिबिम्बरूपम् अङ्के उत्सङ्गे । अयं भावः—यथा दर्पणं प्राप्य परावृत्ता नयनरश्मयः ग्रीवास्थमेव मुखं दर्पणगतमिव पश्यन्ति एवं चन्द्रमण्डलं प्राप्य परावृत्तास्ते दूरत्वदोषात् पृथिवीम् अव्यक्तरूपामिव चन्द्रमण्डलगतां पश्यन्ति स एव चन्द्रे कलंक इत्युपचर्यते । देवापि देवा अपि ॥ ५ ॥ यज्ञरसः सोमरसाहुतिपूर्वकेण वर्षादिरूपेण ।

**"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः"**

इति स्मृतेः । अव्ययः प्रवाहानित्यः ॥ ७ ॥ अम्भोयोनिरिति यज्ञरसत्वोपादानम् ॥ ८ ॥ सोमवृत्तीनां सोमजीविकानां देवानाम् ॥ ९ ॥ वरूथिना सेनावता ॥ १० ॥

१ शक्र उवाचेति कपुस्तके नास्ति । २ क. °हायं त्वं कु.° । ३ क. ख. °य जयार्थं च । ४ क. °द्धी तवाव्य° । ५ क. संस्थितम् । ६ ख. °मदेवाश्च ये । ७ क. ख. तमः प्रोत्सा° । ८ ख. °र्ये सहसा भा° । ९ क. °षा भाभिर्भासयसे ज° । १० क. अव्यक्तका° । ११ ख. °योनिच्छन्दोयो° । १२ ख. °मः सोमपायिनाम् । सौ° । १३ क. °र्वलोकानां ति° । १४ क. °म संयुगे । १५ ख. °ज वरप्रद । ए° । १६ ख. °श्यस्व हि° । १७ क. °मचेष्टि° । १८ क. °क्लांशध°, ख. °क्लांबुध° । १९ ख. °हाहवे । २० क. °पाशघा°; ख. °पातपातै° ।

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत
जगत्संवर्तकाम्भोदैः प्रवृष्टैरिव संवृतम् ॥१६॥
तावुद्यतांशुपाशौ[1] द्वौ शशांकवरुणौ[2] रणे
शमयामासतुर्मायां[3] देवौ दैतेयनिर्मिताम्[4] १७
शीतांशुजलनिर्दग्धाः[5] पाशैश्च प्रसिता रणे
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ।
शीतांशुनिहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमार्दिताः ।
हिमप्रावृतसर्वाङ्गा[6] निरूष्माण इवाग्नयः ॥१९॥
तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च[7]
विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च
तान्पाशहस्तग्रथिताञ्छादितान्[8]हिमरश्मिना
मयो ददर्श[9] मायावी दानवान्दिवि दानवः २१
स शिलाजालविततां गण्डशैलाट्टहासिनीम्
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् २२
सिंहव्याघ्रगजौ[10]कीर्णां नदन्तीमिव[11] यूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२३॥
निर्मितां स्वेन पुत्रेण क्रौञ्चेन दिवि कामगाम्
प्रसृतां[12] पार्वतीं मायां ससृजे दानवोत्तमः[13] २४
साश्मशब्दैः शिलावर्षैः संपतद्भिश्च[14] पादपैः
निजघ्ने देवसङ्घांस्तान्[15]दानवांश्चाप्यजीवयत्
नैशाकरी वारुणी च मायेन्तर्दधतस्ततः[16]
अश्मभिश्चायसघनैः किरन्देवगणान्रणे[17] ॥२६॥
साश्मसंघातविषमा द्रुमपर्वतसंकटा ।
अभवद्घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव ॥२७॥

नानाहतोऽश्मभिः कश्चि-
च्छिलाभिश्चाथ[18] ताडितः
नानिरुद्धो[19] द्रुमगणै-
र्देवोऽदृश्यत संयुगे ॥२८॥
तदपभ्रष्टधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम्
स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत[20]
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ३०
कालज्ञः कालमेघाभः समैक्षत्[21]कालमाहवे
देवासुरविमर्दं स द्रष्टुकामो जनार्दनः ॥३१॥
ततो भगवताऽऽदिष्टौ रणे पावकमारुतौ
शमनार्थं[22] प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया ३२
ततः प्रवृद्धावन्योन्यं प्रवृद्धौ[23] ज्वालवाहिनौ
चोदितौ विष्णुवाक्येन तां मायां[24] व्यपकर्षताम्
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां[25] प्रवृद्धाभ्यां महाहवे[26]
दग्धा सा पार्वती माया भस्मभूता ननाश ह
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्छितौ ३५
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निश्च[27] मारुतात्
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनलानिलौ ॥३६॥
भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च
दानवेषु विनष्टेषु कृतकर्माणि पावके ॥३७॥
वातस्कन्धापविद्धेषु विमानेषु समन्ततः
मायाबन्धे[28] विनिवृत्ते स्तूयमाने गदाधरे ३८

---

प्रवृष्टैः प्रकृष्टवर्षैः संवृतं व्याप्तम् ॥ १६ ॥ प्रसिताः बद्धाः ॥ १८ ॥ पाशहस्तेन वरुणेन ग्रथितान् बद्धान् स्यूतान् मयो ददर्श । मायां च और्वीं नष्टां ददर्शेत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ २१ ॥ सः मायां ससृजे इति तृतीयेन संबन्धः ॥ २२ ॥ दानवोत्तमः देवगणान् किरन् दानवानजीवयत् इति संबन्धः ॥ २५ ॥ मायेन्तरिति सन्धिरार्षः ॥ २६ ॥ मयसृष्टयेति षष्ठयाः सुपां सुलुगित्ययादेश इति **प्राञ्चः। गौडास्तु**–मायाया मयसृष्टायाः प्रवृद्धायाः शमाय वा इत्येव पदं व्युत्क्रमेण पठन्ति ॥३२॥ व्यपकर्षतां दूरीकृतवन्तौ । अडभाव आर्षः ॥ ३३ ॥ उद्भ्रान्ते पादे घृष्ट्वा रज्जुखण्डवत् शत्रोर्भ्रामणे वेगो ययोस्ताभ्याम् अत एव प्रवृद्धाभ्याम् ॥ ३४ ॥ भस्मावयवभूतेषु भस्मलेशतां प्राप्तेषु ॥ ३७ ॥ अपविद्धेषु पातितेषु ॥३८॥

---

१ ख. °शौ तु श° । २ क. ख. °कवरुणावुभौ° । ३ क. तां मायां शमयामास्तां दे° । ४ ख. °वौ तां दैत्यनि° । ५ ख. °शुजाल° । ६. ख. हिमप्लावितस° । ७ ख. °णि ह । वि° । ८ ख. °दिताञ्शीतर° । ९ क. °र्श मायां वै दानवानां महात्मनाम् । स° । १० ख. °घ्रगणाकी° । ११ ख. °न्ती दैत्ययूथपैः । ई° । १२ ख. प्रथितां पा° । १३ ख. °जे समंततः । सा शब्दैः शि° । १४ क. ख. °र्षैः प्रपत° । १५ क. °घाश्च दान° । १६ क. ख. °धतुस्त° । १७ ख. °नैः कीर्णा देवगणा रणे । सा° । १८ ख. °लावृष्टयाप्यता° । १९ क. नानारुद्धो द्रु° २० क. °कम्पयत् । स° २१ क. °भः समीक्षत्का° । २२ ख. मायाया मयसृष्टायाः प्रवृद्धायाः शमाय वै । त° । २३ क. °न्यं प्रवृद्धज्वाल°, ख. °न्यं प्रवृष्टौ ज्वालवेगिनौ । २४ क. ख. मायामपक° । २५ ख. °न्तमेघाभ्यां प्र° । २६ क. ख. °हामृधे । द° । २७ क. °दग्निः स मारुतः । चे° । २८ क. ख. °यावधे वि° ।

निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने
संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ३९
जये दशशताक्षस्य मयस्य च पराजये
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मसंस्तरे ॥४०॥
अपावृत्ते चन्द्रपथे अयनस्थे दिवाकरे
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु[1] नृषु चारित्रबन्धुषु ॥४१॥
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने
यज्ञभागिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ॥४२॥
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु
भावे तपसि शुद्धानामभावे दुष्टकर्मिणाम्
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे[2] विषीदति ।
त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ॥ ४४
अपावृते[3] महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे ॥
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु लोकेऽस्मिन्नाश्रमेषु च ४५
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ।
गीयमानासु गाथासु देवसंस्तवनादिषु[4] ॥ ४६
प्रशान्तकलुषे[5] लोके शान्ते तपसि दारुणे ।
अग्निमारुतयोस्तस्मिन्वृत्ते संग्रामकर्मणि ।
तन्मया विमला लोकास्ताभ्यां जयकृतप्रियाः[6]
पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत्
कालनेमिरिति ख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ४८
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः[7]
मन्दराचलसंकाशो महारजतसंवृतः ॥४९॥
शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः ।
शतशीर्षो[8] स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः ५०
कक्षे महति संवृद्धो[9] हिमान्त इव पावकः ५१
धूम्रकेशो हरिच्छ्मश्रुर्[10]दंष्ट्रालोष्ठपुटाननः ।
त्रैलोक्यान्तरविस्तारो[11] धारयन्विपुलं वपुः ५२
बाहुभिस्तुलयन्व्योम क्षिपन्पद्भ्यां महीधरान्
ईरयन्मुखनिःश्वासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकाः[12] ॥५३॥
तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम्
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे ५४
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश
संवर्तकाले[13] क्षुधितं दृप्तं[14] मृत्युमिवोत्थितम् ५५
सुतलेनोच्छ्रितवता[15] विपुलाङ्गुलिपर्वणा
माल्याभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा[16] ॥५६॥
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता
दानवान्देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति[17] ब्रुवन् ॥५७॥
तं[18] कालनेमिं समरे द्विषतां कालसन्निभम्[19] ॥
वीक्षन्ति स्म सुराः सर्वे भयविक्लवमानसाः[20] ५८
तं स्म[21] वीक्षन्ति भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम्
त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम् ५९
सोच्छ्रयन्प्रथमं पादं मारुताघूर्णिताम्बरः
प्राक्रामदसुरो युद्धे त्रासयन्सर्वदेवताः ॥६०॥
समयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तः क्रमत्रणे ।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः ।
अथ विव्यथिरे[22] देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
दृष्ट्वा कालमिवायान्तं कालनेमिं भयावहम् ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिप्रक्रमणे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

चारित्रबन्धुषु सदाचारप्रियेषु ॥ ४१ ॥ अभिन्नबन्धने नियतमर्यादे ॥ ४२ ॥ संयानं सम्यगभयेन प्रचरणं तेन वर्तिषु वर्तमानेषु । भावे अभ्युदये ॥ ४३ ॥ तन्मयास्तत्प्रधानाः जयनं कृतं प्रियं येषां ते जयकृतप्रियाः । क्रिया इति पाठे चयकृतपदं कृतजयक्रिया इति व्याख्येयम् ॥ ४७ ॥ पूर्वदेवानां दैत्यानाम् आगतं भयं पूर्वदेवभयम् ॥ ४८ ॥ शिञ्जितानि शब्दवन्ति आभरणानि नूपुरादीनि तत्सहितानि अङ्गदानि यस्य ॥ ४९ ॥ कक्षे वने हिमान्ते ग्रीष्मे निदाघ इवेति पाठः ॥ ५१ ॥ दंष्ट्रालं बहिर्निर्गतदंष्ट्रम् ओष्ठपुटं दंष्ट्रालोष्ठपुटमाननं यस्य स दंष्ट्रालोष्ठपुटाननः ॥ ५२ ॥ वृष्टिमन्तः । नुम् छान्दसः । वृष्टियुक्तानित्यर्थः ॥ ५३ ॥ मन्दरोदग्रवर्चसं स्वर्गश्रेष्ठ इन्द्रः तद्वद्वर्चो दीप्तिर्यस्य इन्द्रतुल्यमित्यर्थः । "मन्दरो मन्थशैले स्यात्स्वर्गमन्दारयोरपि । (रान्तवर्गे १९६)" इति मेदिनी ॥ ५४ ॥ सोच्छ्रयन् सः उच्छ्रयन्निति च्छेदः । पादपूरणार्थः सुलोपः ॥ ६० ॥ मयेन परिष्वक्तः ॥ ६१ ॥ इति हरिवंशे टीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

१ क. °स्थेषु भूतेषु नृ° । २ क. °क्षे च सीदति । त्रिपा° ।, ख. °क्षे पराजिते त्रि° । ३ ख. अपावृतमहा° । ४ क. °स्तववादि° । ५ ख. प्रशान्तकल्मषे लो° । ६ क. °ताक्रियाः । पू° । ७ ख. °ताङ्गदभूषणः । म° । ८ ख. °शीर्षः स्थि° । ९ ख. °द्धो निदाघ इ° । १० क. ग. हरिश्मश्रु° । ११ क. ख. °स्तारि धा° । १२ क. ख. °हकान् । ति° । १३ क. °तकालक्षु° । १४ क. दृप्तमृ° । १५ ख. °नोच्छ्रयव° । १६ क. °लितपर्व° । १७ क. °त्तिष्ठत इति° । १८ ख. समरे कालनेमिं तं द्वि° । १९ ख. °लनेमिनम् । वी° । २० ख. °वलोचनाः । तं स्म वी° । २१ क. तं तु वी° । २२ क. °थ अव्यथिता देवाः स° ।

## कालनेमिपराक्रमः ।

## ४७

वैशम्पायन उवाच ।

दानवांश्चापि[1] पिप्रीषुः कालनेमिर्महासुरः ।
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥ १
त्रैलोक्यान्तर्गतं[2] तं तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः[3] ।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः प्राप्येवामृतमुत्तमम् ॥ २
ते भीता[4] भयसंत्रस्ता मयतारपुरोगमाः ।
तारकामयसंग्रामे सततं जयकाङ्क्षिणः[5] ।
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः[6] ॥ ३
अस्त्रमभ्यस्यतां तेषां[7] व्यूहं च परिधावताम् ।
प्रेक्षतां चाभवत्प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ४
ये तु तत्र मयस्यास-
न्मुख्या युद्धपुरःसराः[8] ।
तेऽपि सर्वे भयं त्यक्त्वा
हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥५॥
मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ॥६
अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्ट्रौ[9] तथैव च ।
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्रयोधी महासुरः ॥ ७
एतेऽस्त्रविदुषः[10] सर्वे सर्वे तपसि सुव्रताः[11] ।
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम् ॥८
ते गदाभिश्च गुर्वीभिश्चक्रैश्च सपरश्वधैः ।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्[12]गण्डशैलैश्च दंशितैः ९
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः[13] ।
घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाग्रताडितैः ॥ ११
दोर्भिश्चायतपीनांसैःपाशैःप्रासैश्च [14]मूर्च्छितैः
सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पद्भिश्च सायकैः ॥
वज्रैः प्रहरणीयैश्च
दीप्यमानैश्च[15] तोमरैः ।
विकोशैश्चासिभिस्तीक्ष्णैः
शूलैश्च[16] शितनिर्मलैः ॥ १३
ते वै संदीप्तमनसः[17] प्रगृहीतोत्तमायुधाः ।
कालनेमिं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥१४
सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां[18] शुशुभे चमूः ।
द्यौर्निमीलितनक्षत्रा[19] सघनेवाम्बुदागमे ॥ १५
देवतानामपि[20] चमू रुरुचे शक्रपालिता ।
दीप्ता शीतोष्णतेजोभ्यां[21] चन्द्रभास्करवर्चसा
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ।
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥ १७
यमेन्द्रधनदैर्[22]गुप्ता वरुणेन[23] च धीमता ।
संप्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा ॥ १८
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ।
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ॥
तयोश्चम्वोस्तदा[24] तत्र बभूव स समागमः ।
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ॥

---

४७

सप्ताधिके तु चत्वारिंशकेऽध्याये निरूप्यते
कालनेमिसमुद्योगस्त्रिलोकीशासनक्षमः॥१

दानवान् पिप्रीषुः आप्यायितुमिच्छुः । प्रीञ् तर्पणेऽस्य रूपम् । तपान्ते ग्रीष्मान्ते ॥ १ ॥ ते पूर्वं भयसंत्रस्ता अपि पश्चादभीताः । वीतभयसंत्रासा इति पाठे भाविनी आत्मोच्छेदशङ्का संभासः सैव तात्कालिकी तारकामयसंग्रामे तारानिमित्तप्रवृत्ते युद्धे ॥ ३ ॥ अभ्यस्यतां पुनः पुनः ॥ ४ ॥ अस्त्रविदुषः अस्त्रविद्वांसः ॥ ८ ॥ गदादिभिरुपलक्षिताः सन्तो योद्धुं जग्मुरित्यनुषञ्जनीयम् ॥ ९ ॥ दीप्तशस्त्राण्येव प्रवराः विद्युतो यस्याम् प्रचरेति युक्तः पाठः। निमीलितान्यस्तंगतानि नक्षत्राणि देवतारूपाणि यस्याम् ॥ १५ ॥

---

१ ख. ०वांस्तांस्तु पि० । २ क. ख. तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृ० । ३ क. दानवोत्तमाः । उ० । ४ख. ते वीतभयसंत्रासा म० । ५ ख. ०तं जितकाशिनः । रेजु० । ६ क. ख. युद्धदुर्मदाः । अस्त्र० । ७ क. ०षां व्यूहे च प० ।, ख. ०षां व्यूहांश्च प० । ८ क. ख. ०द्धविशारदाः । ते० । ९ क. ख. ०त्रश्च कि० । १० ख. ०ते चास्त्रविदः स० । ११ ख. ०सि संस्थिताः । दा० । १२ ख. ०श्चाद्रिसंकाशै० । १३ क. ०मायसैः । घा० । १४ क. ०श्च मुद्गरैः । स० । १५ क. ०प्यद्भिश्चापि तो० । १६ क. ०लैर्निशित० । १७ ख. ०सः संगृ० । १८ क. ख. ०नां रुरुचे च० । १९ क. ०त्रा घननीलाम्बुदागमे । दे० । २०ख. ०मूर्मुमुदे श० । २१ ०तोष्णरूपेण चन्द्र० । २२ क. ख. ०न्द्रवरुणैर्गुप्ता० । २३क. ख. ०प्ता धनदेन च । २४क. ख. ०स्तदानीं तु ब० ।

तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसङ्कुलम् ।
क्षमापराक्रममयं दर्पस्य विनयस्य च ॥२१॥
निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु ताभ्यां भीमाः सुरासुराः ।
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ॥
ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टा-
श्चेरुस्ते देवदानवाः ।
वनाभ्यां[1] पार्वतीयाभ्यां
पुष्पिताभ्यां यथा गजाः ॥२३॥
समाजघ्नुस्[2]ततो भेरीः शङ्खान्दध्मुश्च नैकशः ।
स शब्दो द्यां भुवं चैव[3] दिशश्च समपूरयत् ॥
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुर्षां[4] कूजितानि च ।
दुन्दुभीनां निनदतां[5] दैत्यानां निर्दधुः स्वनान्[6] ॥
तेऽन्योन्यमभिसंपेतुः पातयन्तः परस्परम् ।
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥२६॥
देवतास्त्वशनीर्घोराः परिघांश्चोत्तमायसान्[7] ।
ससर्जुराजौ निस्त्रिंशान्गदा गुर्वीश्च दानवाः ॥
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च[8] शकलीकृताः ।
परिपेतुर्भृशं केचिन्न्युब्जाः केचित्ससर्जिरे ॥
ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ।
समीयुस्ते[9] तु संरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे ॥
संवर्तमानाः समरे विवर्तन्त[10]स्तथाऽपरे ।
रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदाताश्च पदातिभिः ॥३०॥
तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ।
बभूवाथ प्रशक्तानां नभसीव पयोमुचाम् ॥३१॥
बभञ्जिरे रथान्केचित्केचित्संमृदिता रथैः ।
संबाधमेके संप्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः ॥
अन्योन्यस्[11]याभिसमरे
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः ।
संह्रादमानाभरणा
जघ्नुस्[12]तत्रासिचर्मिणः ॥३३॥
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि ।
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे ॥३४॥
तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम्[13] ।
देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ॥३५॥
तद्दानवमहामेघं देवायुधतडित्प्रभम् ।
अन्योन्यबाणवर्षं तद्युद्धं दुर्दिनमाबभौ ॥३६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिर्महासुरः ।
व्यवर्द्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥३७॥
तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ।
गात्रे[14] नगशिरःप्रख्या विनिष्पेषुर्बलाहकाः ॥
क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ।
साग्निनिष्पेषपवना मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ ३९ ॥
तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्[15]तस्य बाहवः ।
पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना[16] इवोरगाः ॥
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ।
दिव्यमाकाशमावव्रे[17] पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥ ४१ ॥
सोऽनिलोद्धूतवसन-
स्तस्थौ संग्राममूर्धनि ।
सन्ध्यातपग्रस्तशिखः[18]
सार्चिर्मेरुरिवापरः ॥ ४२ ॥

दर्पस्य क्षमापराक्रममयं विनयस्य च क्षमापराक्रममयमिति योजना । दृप्तेषु दैत्येषु देवानां क्षमापूर्वकः पराक्रमस्तद्वधान्तः विनीतेषु देवेषु दैत्यानां पराक्रमपूर्विका क्षमा देवेन्द्रैश्वर्यसहनान्ता ॥ २१ भीमाः निर्भयाः ॥२२॥ दैत्यानां स्वनान् निर्दधुः अन्तर्हितांश्चक्रुः दैत्यमन्तर्दधुः स्वनानिति पाठे दैत्यानामिमं दैत्यमित्यर्थः ॥ २५ ॥ ससर्जुः प्रत्युक्तवन्तः ॥ २७ ॥ न्युब्जा उपरिपृष्ठाः । ससर्जिरे सृष्टाः कृता इति यावत् ॥ २८ ॥ संवर्तमानाः संमुखं गच्छन्तः विवर्तमानाः परावर्तन्तः ॥ ३० ॥ अन्योन्यस्य देहं दोर्भ्याम् उत्क्षिप्य निरार्थं जग्मुः ॥ ३३ ॥ कालनेमिः हिरण्यकशिपोः पुत्रः । पितरं मे जघानैक इति वाक्यशेषात् । अम्बुदो वृत्तिरूपत्वात् पूर्यमाणो विवर्धते ॥ ३७ ॥ गात्रे विनिष्पेषुः गात्रपञ्जमात्रात् चूर्णीभूता इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ अस्य मेघेन साम्यमापादयति–क्रोधादिति । निष्पिनष्टीति निष्पेषः पेषणकर्ता आग्निरूपो निष्पेषोऽशनिः तन्मिश्रः पवनो यासु ताः अर्चिषः ॥ ३९ ॥ ग्रस्तशिखः मेरुणा दैत्यस्य उद्धूतवसनेन मेरुस्थरत्नभासां च साम्यम् ॥ ४२ ॥

१ ख. °भ्यां पर्व° । २ क. °जघ्नुस्त° ।, ख. °माहन्युस्तदा भेरीः शं° । ३ क. °व खं च दि° । ४ ख. °नुषामपि निःस्वनः । दु° । ५ क. °नां च निनदा दे° । ६ ख. °त्यानन्नर्दधुः स्वनाः । ते° । ७ ख. °ताश्चासृजन्घोरान्परि° । ८ क. °यैश्च तु° । ९ ख. संपेतुस्ते सुसं° । १० ख. °रे नित्र° । ११ ख. अन्योन्यसमरेऽन्ये तु दो° । १२ क. °गा जग्मुस्त° । १३ क. °वासुरविराजितम् । अ° । १४ ख. गात्रान्नगशिरःप्रख्यान्विनि° । १५ ख. °वनान्मु° । १६ क. ख. लेलिह्यन्त इ° । १७ क. ख. °दिव्यमाका° १८ ख. °शिखः साक्षान्मेरुरिवाचलः । उरु° ।

ऊरुवेगप्रतिक्षिप्तैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः।
अपातयद्देवगणान्वज्रेणेव महागिरीन्॥ ४३
बाहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः।
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ४४
मुष्टिभिर्निहताः केचित्केचिच्च विदलीकृताः।
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ४५
तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि प्रतिकर्तुं विचेतसः॥४६
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितः शरबन्धनैः।
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह॥४७
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः।
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे
रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कालरूपिभिः।
व्यलम्भि लोकपालेशस्त्याजितो धनदक्रियाम्
यमः सर्वहरस्तेन दण्डप्रहरणो रणे।
याम्यामवस्थां समरे नीतः स्वां दिशमाविशत्
स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषां च कर्म तत्
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा ५१

स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शितम्।
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत्
चालयामास शीतांशुं स्वर्गद्वाराच्च भास्करम्
सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ५३
सोऽग्निं देवमुखे दृष्ट्वा
चकारात्ममुखे स्वयम्
वायुं च तरसा जित्वा
चकारात्मवशानुगम्॥ ५४
स समुद्रानुपानीय सर्वाश्च सरितो बलात्।
चकारात्मवशे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः ५५
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः॥ ५६
स स्वयंभूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान्।
सर्वलोकमयो दैत्यैः सर्वलोकभयावहः॥ ५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान्।
पावकानिलसंघातो रराज युधि दानवः ५८
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवाप्यये।
तुष्टुवुस्तं दैत्यगणा देवा इव पितामहम्॥ ५९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

## कालनेमिवधः।

## ४८

वैशम्पायन उवाच।
पञ्च तं नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा।
वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया १

स तेषामनुपस्थानात्सक्रोधो दानवेश्वरः।
वैष्णवं पदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम्

शस्त्राः विशसनकर्तारः। निस्त्रिंशाः खड्गा येषु तैः बाहुभिः। बालिभिः इति वा पाठः॥४४॥ स्तम्भितः बद्धः॥४७॥ क्रियां युद्धादिरूपाम्॥४९॥याम्याम् इतरेषां यमेन सम्पादनीयाम्। अचेतनतामिति यावत्॥ ५०॥ तेषां तत्कर्म दिशां पालनं कृत्वा कुर्वन् चतुर्धा देहं विदधे। "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" इति क्वनः कर्तरि वनिप् तुगागमश्च॥ ५१॥ इति हरिवंशे टीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

४८

कालनेमिवधः प्रोक्तश्चत्वारिंशेऽष्टसंयुते।
इन्द्रादीनां निजस्थानस्थापनं विष्णुना कृतम् १

पञ्चेति। विपरीतेन असाविवेकेन कर्मणा न अभ्यवर्तन्त नोपतस्थुः॥ १॥ तेषां वेदादीनाम्॥ २॥

१ क. °चिद्वि विद°। २ क.ख. पियत्नं कर्तुं वि°। ३ क. °क्षः संदितः श°, ख. °क्षः संदितः श°। ४ क. °कैः कामरू°। ५ ख. विलम्भ्लोक°। ६ ख. °तो धनदः क्रि°। ७ क. ख. °न मृत्युप्र°। ८ ख. °वस्थाममरो नी°। ९ ख. °पालान्विर्जित्य कृ°। १० ख. °स्य यच्चास्य वि°। ११ क. ख. °स दीप्तांशुं स्व°। १२ क. ख. °रात्सभास्क°। १३ ख. °पः स वश°। १४ क. °विजाताश्च भू°। १५ ख. °यो दैत्यैः स°। १६ क. °संकाशो ररा°। १७ क. °वाप्यये। तं तुष्टुवुः°।, ख. °वाप्यये। तं तुष्टुवुः°। १८ ख. वेदा ध°।

तच्च वक्रशतं घोरं साग्निचूर्णाट्टहासिनम् ।
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः ॥४७
स छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः ।
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः
तं[2] वितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम्
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् ॥४९
स तस्य देहो विमुखो विशाखः खात्परिभ्रमन्
निपपात दिवं त्यक्त्वा शोभयन्धरणीतलम्
तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा ।
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्
अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे[3] दुष्टपराक्रमाः ।
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ५२
काँश्चित्केशेषु जग्राह
काँश्चित्कण्ठेऽभ्यपीडयत्[4] ।
पाटयेत्कस्यचिद्वक्त्रं[5]
मध्ये काँश्चिदथाग्रहीत्[6] ॥ ५३
ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः ।
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ॥ ५४
तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः ।
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ५५
तस्मिन्विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये ।
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ५६
सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः[7] सार्धं गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
देवदेवो हरिं देवं पूजयन्वाक्यमब्रवीत् ५७

ब्रह्मोवाच ।

कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ।
वधेनानेन दैत्यानां वयं हि परितोषिताः ५८
योऽयं हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुरः
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते
एष देवान्परिभवँल्लोकांश्च सचराचरान् ।
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ॥ ६०
तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ।
यदयं कालतुल्याभः कालनेमी[11] निपातितः ॥
तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमम्[12] ।
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ॥
अहं महर्षयश्चैव तत्र त्वां वदतां वर ।
विधिवच्चार्चयिष्यामो[13] गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत[14]
किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर ।
सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥
निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् ।
अस्मिन्नेव[15] मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने *
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः[16] ।
देवाञ्छक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥

विष्णुरुवाच ।

श्रूयतां त्रिदशाः सर्वे यावन्तो[17]ऽत्र समागताः
श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरंदरम् ॥ ६७
अस्मिन्नः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ॥
तस्मिन्महति संक्रन्दे द्वावेव तु विनिस्सृतौ ।
वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥६९
तदिष्टां भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ।
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः ॥
ऋक्षैः सह यथायोगं काले चरतु चन्द्रमाः ।
अब्दं चतुर्मुखं सूर्यो भजतामयनैः सह ॥ ७१
आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ।
हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ७२
द .श्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ।
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथा पुरा[18] ॥७३

---

साग्निचूर्णानि आग्नेयौषधबलेन गोलकोत्क्षेपणयन्त्राणि तेषामिव अट्टहासो महाशब्दः तद्युक्तं साग्निचूर्णाट्टहासिनं वक्रशतं पुंस्त्वमार्षम् ॥ ४७ ॥ बाहुभिः दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिरिति प्रागुक्तलक्षणैः हरेरिति शेषः । व्याप्ताः आक्रान्ताः ॥५१॥ विमर्दे दैत्यानां विनाशे निवृत्ते जाते सति ॥ ५६ ॥ निर्यातय प्रयच्छ । मृधे त्वयैव निहतकण्टकम् ॥ ६५ ॥ देहैर्देहेन्द्रियादिभिः श्रवणविहितैर्मद्वाक्यश्रवणे सादरैः करणैरिन्द्रं पुरस्कृत्य मद्वाक्यं श्रूयतामित्यन्वयः ॥६७॥ अस्मिन्नः अस्माभिः ६८ ॥ वैरोचनिर्बलिः स्वर्भानुः राहुः ॥ ६९ ॥

---

१ ख. °हासि वै । त° । २ ख. स वि° । ३ क. °द्धे दृष्ट° । ४ क. °ण्ठेऽस्यपी°, ख. °ण्ठे न्यपी° । ५ क. ख. पाटयन् क° । ६ क. °दवाग्र° ७ ख. सर्वे ब्र° । ८ क °नेमिमहा° । ९ क. °लकल्पश्च काल° । १० क. °नेमिर्निपा° । ११ ख. °मी त्वया हतः । त° । १२ ख. °तमाम् । ब्र.° । १३ ख. अर्चयिष्याम विधिवत् गोर्भिर्दि° । १४ ख. °च्युतः किं° । १५ क. ख. तस्मि° । *एतदग्रे 'वैशम्पायन उवाच' इति अधिकः पाठः कपुस्तके । १६ क. °रीश्वरः । दे° । १७ ख. °न्तो वै स° । १८ ख. °था सुखम् । वा° ।

वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः।
त्रयो वर्णाश्च लोकांस्त्रीन्विवर्द्धयन्त्वात्मजैर्गुणैः
क्रतवः संप्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।
दक्षिणाश्चोपवर्तन्तां यथार्हं सर्वसत्रिणाम् ॥
गाश्च सूर्यो रसान्सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां शिवैः सौम्यैश्च कर्मभिः॥
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवाः।
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः सागरं यान्तु निम्नगाः
दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च
शान्तिं व्रजत देवताः
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि
ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥७८॥
स्वगृहे सर्वलोके वा
संग्रामे वा विशेषतः।
विश्रम्भो वो न मन्तव्यो
नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः॥ ७९
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न चैषां संस्थितिर्ध्रुवा।
सौम्यानामृजुभावानां भवतां चार्जवे मतिः
अहं तु दुष्टभावानां युष्माकं दुरुपात्मनाम्।
असम्यग्वर्तमानानां मोहं दास्यामि देवताः
यदा च दुरुगाधर्षं दानवेभ्यो भयं भवेत्।
तदा समुपगम्याशु विधास्ये वरतोऽभयम्
वैशम्पायन उवाच।*
एवमुक्त्वा सुरगणान्विष्णुः सत्यपराक्रमः
जगाम ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं महायशाः ॥
एतदाश्चर्यमभवत्संग्रामे तारकामये।
दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृच्छसि

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिवधे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## लोकवर्णनम्।

## ४९

जनमेजय उवाच।
ब्रह्मणा देवदेवेन सार्धं सलिलयोनिना।
ब्रह्मलोकगतो ब्रह्मन्वैकुण्ठः किं चकार ह॥ १
किमर्थं चादिदेवेन नीतः कमलयोनिना।
विष्णुर्दैत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रियः॥ २
ब्रह्मलोके च किं स्थानं कं वा योगमुपास्त सः
कं वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः॥ ३
कथं तस्याऽऽसतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत्।
श्रियमाप्नोति विपुलां सुरासुरनरार्चिताम्॥४
कथं स्वपिति घर्मान्ते बुध्यते चाम्बुदप्लवे।
कथं च ब्रह्मलोकस्थो धुरं वहति लौकिकीम्

त्रिधा गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयरूपेण आत्मजैः स्वाभाविकगुणवर्गैः शमो दमस्तपः शौचमित्यादिना गीतासूपदिष्टैः॥ ७४॥ गाः चक्षूंषि॥ ७६॥ विश्रम्भः विश्वासः वः युष्माभिः क्षुद्राः वञ्चकाः॥ ७९॥ संस्थितिः मर्यादा॥ ८०॥ मोहं विषयबुद्धिं यया धर्ममप्यधर्म इति त्यक्ष्यन्ति अधर्ममपि धर्म इति मत्वाऽनुष्ठास्यन्ति॥८१॥ अभयमिति च्छेदः॥ ८२॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे टीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

४९
पञ्चाशेऽध्याय एकोने ब्रह्मलोकस्य वर्णनम्।
तत्रापि यजनं विष्णोर्मुनिभिः कृतमीर्यते १
ब्रह्मणा सलिलं सलिलाश्रयं कमलं योनिः उत्पत्तिस्थानं यस्य तेन॥१॥ नीतो ब्रह्मलोकमित्यनुकृष्यते॥२॥ उपास्त उपास्ते॥ ३॥ आसतः आददानस्य पूजामिति शेषः। "अस(ष) गतिदीप्त्यादानेषु" (१ उ० सेट्) इत्यस्य रूपम् आसत इति॥४॥ घर्मान्ते आषाढ्याम् अम्बुदप्लवे मेघानां नाशे सति कार्तिक्यामित्यर्थः॥ ५॥

१ क. ख. °श्रींस्तर्पयन्त्वात्म°। २ क. °न्तां यथोक्ताः स°. ख. °न्तां यथार्थं सत्रयाजिनाम्। गा°। ३ क. °पूर्वेण म°। ४ क. °लोद्भवाः। त्रै°। ५ ख. °न्तु सिन्धवः। दे°। ६ क. °भ्यस्त्यजतां भी°। ७ ख. °तां भीतिः शा°। ८ क. स्वे गृ°। ९ ख. विस्रंभो हि व म°। १० क. °स्येऽहं त° * वैशम्पायन उवाचेति कपुस्तके नास्ति। ११ क. ब्राह्मणा देवदेवेन सार्धं सलिलयोनिना। वि°। १२ क. °केऽस्य किं स्था°। १३ क. °न के वा यो°।

चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि ।
विस्तरेण यथातत्त्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम् ६

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु नारायणस्यादौ[2] विस्तरेण प्रवृत्तयः ।
ब्रह्मलोके यथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते ॥ ७
कामं तस्य गतिः सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा ।
यत्तु[3] वक्ष्याम्यहं राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ८
एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयाश्रयः ।
एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥ ९
तस्य पारं न पश्यन्ति बहवः पारचिन्तकाः ।
एष पारं परं चैव लोकानां वेद माधवः ॥१०
अस्य देवान्धकारस्य मार्गितव्यस्य दैवतैः ।
शृणु वै यत्तदा वृत्तं ब्रह्मलोके पुरातनम् ११
स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैतामहं पदम् ।
ववन्दे तानृषीन्सर्वान्विष्णुरार्षेण कर्मणा १२
सोऽग्निं प्राक्सवने दृष्ट्वा
हूयमानं महर्षिभिः
अवन्दत महातेजाः
कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥१३॥
स ददर्श मखेष्वाज्यैरिज्यमानं महर्षिभिः ।
भागं यज्ञियमश्नानं स्वदेहमपरं स्थितम् ॥१४॥
अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणां ब्रह्मवर्चसाम् ।
परिचक्राम सोऽचिन्त्यो ब्रह्मलोकं सनातनम्
स ददर्शोच्छ्रितान्यूपांश्चषालाग्रविभूषितान् ।
मखेषु च ब्रह्मर्षिभिः शतशः कृतलक्षणान् ॥१६
आज्यधूमं समाघ्राय शृण्वन्वेदान्द्विजेरितान्
यज्ञैरिज्यं तमात्मानं पश्यंस्तत्र चचार ह ॥१७
ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः
अग्रोद्यतभुजाः सर्वे पवित्रान्तरपाणयः १८॥
देवेषु वर्तते यद्वै तद्धि सर्वं जनार्दनात् ।
यत्प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद्विद्धि मधुसूदनात् १९
अग्नीषोममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः ।
तं सोममग्निं लोकं च वेद विष्णुं सनातनम् २०
क्षीराद्यथा दधि भवेद्दध्नः सर्पिर्भवेद्यथा ।
मथ्यमानेषु भूतेषु तथा लोको जनार्दनात् ॥
यथेन्द्रियैश्च भूतैश्च परमात्माऽभिधीयते ।
तथा देवैश्च वेदैश्च लोकैश्च विहितो हरिः ॥२२
यथा भूतेन्द्रियावाप्तिर्विहिता भुवि देहिनाम्
तथा प्राणेश्वरावाप्तिर्देवानां दिवि वैष्णवी ॥
सत्रिणां सत्रफलदः पवित्रं परमात्मवान् ।
लोकतन्त्रधरो ह्येष मन्त्रैर्मन्त्र इवोच्यते ॥२४॥

ऋषय ऊचुः ।

स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते ।
इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम् ॥२५
त्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावनः ।
अतिथिस्त्वं हि मन्त्रोक्तः संदृष्टः सन्ततं मतः

---

प्रवृत्तयः प्रवृत्तीः कर्माणीति यावत् ॥७॥ ये मत्सकाशात् तत् 'विष्णोश्चरित्रम्' ॥ ८ ॥ **एष इति** । यथा तन्तुभिः पटः कल्पितः एवं लोकैः हरेः शरीरं कल्प्यते । यथा च पटः केवलं पृथ्वीमयः एवं लोकाः विष्णुमयाः एवं देवेष्वपि योज्यम् ॥९॥ **तस्येति** । लोकानां परम् अत एव तेभ्यः परं च आत्मानं वेद ॥ १० ॥ देवानाम् इन्द्रियाणाम् अन्धकार आवरणं यास्मिन् विषये वेदानामिति पाठे वा इन्द्रियाणां गिरां चाविषयस्येत्यर्थः ॥ ११ ॥ आर्षेण मन्त्रप्रतिपाद्येन ॥ १२ ॥ प्राक्सवने प्रातःसवने ॥ १३ ऋषीणाम् ऋषीन् ॥ १५ ॥ इज्यन्तम् इज्यमानम् आत्मानं विग्रहान्तरं दधानम् ॥ १७ ॥ यत् सामर्थ्यादिकं विद्धीति ते प्रत्यक्षमपि परोक्षत्वेन जानन्तः कथयन्ति ॥ १९ ॥ विदुषः सकाशात् वेद भवानिति शेषः ॥ २० ॥ भूतेषु देहेन्द्रियादिषु मथ्यमानेषु ध्यानबलेन प्रविलाप्यमानेषु सत्सु अन्तर्दृष्ट्या जनार्दनादेवायं लोको भवतीति गम्यते । ईक्षामात्रनिर्वृत-त्वाल्लोकस्य अत्र क्रमेण अव्याकृत ईक्षणे जगतां क्रमात् क्षीरदधिसर्पींषि दृष्टान्ताः ॥ २१ ॥ इन्द्रियभूतैः चेतनाव्याप्तैः परमात्मा स्वयमेव गोचरोऽपि विधीयत अज्ञातो ज्ञाप्यते तथा देवादिभिरनुग्रहादिकर्तृभिर्विष्णुरित्यर्थः । चित्तमात्मन इव नियन्तृत्वं विष्णोरेवेति भावः । अभिधीयते विदित इति पाठेऽपि स एवार्थः ॥ २२ ॥ **यथेति** । जीवानां भूतेन्द्रियसंबन्धो भुवि भूतेभ्यो यथा दृष्ट एवं देवानां प्राणो बलम् ईश्वरः ऐश्वर्यं तदुभयेन संबन्धो विष्णुतो भवतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ आत्मवान् स्वतन्त्रः मन्त्रैर्मन्त्र इवोच्यते इति यथा वाचो माधुर्यं वाचैव वर्णनीयम् एवं विष्णोः स्वरूपं विष्णुनैवार्चनीयमित्यर्थः ॥ २४ ॥ मतः ज्ञातः ॥ २६ ॥

---

१ ख °तो विधिम् । २ ख. °दौ प्रवृत्तिं विस्तरेण तु । ब्र° । ३ क. ख. यच्च व° । ४ क. °रकाक्षिणः । ए° । ५ ख. °ष्णुं पितामहः । क्षी° । ६ ख. °श्च विदितो ह° । ७ ख. °न्त्रकरो ह्ये° । ८ ख. °न्त्र इवार्च्यते । ऋष° । ९ ख. °क्तः स्वदृष्टः परमो मतः । त्व° ।

त्वयि योद्धुं गते विष्णौ
न प्रावर्तन्त नः क्रियाः ।
अवैष्णवस्य यज्ञस्य
न हि कर्म विधीयते ॥ २७
सदक्षिणस्य यज्ञस्य
त्वत्प्रसूतिः फलं भवेत् ।
अद्यात्मानमिहास्माभि-
रिज्यमानं निरीक्ष्यसे ॥ २८
एवमस्त्विति तान्सर्वान्भगवान्प्रत्यपूजयत् ।
मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि लोकवर्णनं नाम
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

## नारायणाश्रमवर्णनम् ।

### ५०

वैशम्पायन उवाच ।
ऋषिभिः पूजितस्तैस्तु विवेश हरिरीश्वरः ।
पौराणं ब्रह्मसदनं दिव्यं नारायणाश्रमम् ॥ १
स तद्विवेश हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान् ।
प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये ॥२॥
स्वेन नाम्ना परिज्ञातं स तं नारायणाश्रमम् ।
प्रविशन्नेव भगवानायुधानि व्यसर्जयत् ॥ ३
स तत्राम्बुपतिप्रख्यं ददर्शालयमात्मनः ।
स्वधिष्ठितं देवगणैः शाश्वतैश्च महर्षिभिः ॥ ४
संवर्तकाम्बुनोपेतं नक्षत्रस्थानसंकुलम् ।
तिमिरौघपरिक्षिप्तमप्रधृष्यं सुरासुरैः ॥ ५
न तत्र विषयो वायोर्नेन्दोर्न च विवस्वतः ।
वपुषः पद्मनाभस्य स देशस्तेजसाऽऽवृतः ॥ ६
स तत्र प्रविशन्नेव जटाभारं समुद्वहन् ।
सहस्रशीर्षो भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे ॥ ७

---

त्वयीति अन्तरात्मनि अन्यत्र व्यापृते कृतोऽपि यज्ञो निष्फल इति भावः ॥ २७ ॥ ब्रह्मैव लोकः तत्रस्थः समाधिस्थ इत्यर्थः । समाहित इव पितामहो मुमुद इत्यर्थः । ब्रह्मलोकसहितः पितामहो ब्रह्मलोकपितामहः । ब्रह्मलोकस्था अपि विष्णुं भजन्ति न तु कृतकृत्यत्वाभिमानादुदासत इति अध्यायतात्पर्यम् ॥२९ ॥ इति हरिवंशे टीकायामेकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

अथ पञ्चाशकेऽध्याये विष्णोः स्वापप्रबोधने उपासनाय वर्ण्यन्ते मध्ये च परिवर्तनम् ॥१॥

ऋषिभिः पौराणं पुराणेषु विदितं ब्रह्मलोके एव वैकुण्ठकैलासयोरन्तर्भाव इति भावः ॥ १ ॥ अम्बुपतिप्रख्यं समुद्रतुल्यम् ॥ ४ ॥ संवर्तकाम्बुदाभिमानिभिर्दैवतैरुपेतम् । नक्षत्रस्थानं ज्योतिश्चक्रं तेन संकुलम् । तिमिरौघेन परिक्षिप्तं व्याप्तं सर्वं तत्र सुषुप्ताविव सूक्ष्मरूपेण विद्यमानमपि अविद्यया आवृतम् अत एव सुरासुरैरप्रधृष्यम् अगम्यम् । यथा वटबीजोदरे कृत्स्नो वटोऽस्ति अथ च तत्र न दृश्यते एवं तत्र हरिमन्दिरे कृत्स्नं ब्रह्माण्डं सदपि न दृश्यते ॥ ५ ॥ तर्हि तत्सत्त्वे किं मानमत आह—**न तत्रेति** । अनात्मज्योतिषा तत्र प्रकाशतेऽपि तु आत्मज्योतिषैवेत्यर्थः । यथा हि निद्रावस्थायां सर्वं सूक्ष्मरूपेण सदपि न भाति कदाचित्तु स्वप्ने आत्मज्योतिषा भात्यपि अत एव स्वप्नावस्थामधिकृत्योक्तम् आत्मनैवायं ज्योतिषास्ते प्रलयान्ते विपर्येतीति । एवम् अधिदैवमपि ज्ञेयमिति भावः ॥ ६ ॥ पूर्वं सहस्रशीर्षा भूत्वा तद्विश्वरूपत्वलक्षणं सहस्रशिरस्त्वं त्यक्त्वाऽपि जटाभारस्थानीयं लोककर्मवासनाजालम् उद्वहन् शयनं कृतवान् । अत एतदनुसारिष्वस्वस्मासु सुषुप्तावपि कार्यलिङ्गेन वासनाऽस्तीति गम्यते ॥७॥

---

१ क. °ते विष्णो न प्रा° । २ क. ख. °ति तान्विप्रान्भ° । ३ ख. °न् प्रतिपूजयन् । मुमु° । ४ ख. °स्थो ब्रह्मेव हि पि° । ५ क. ख. °णं गुह्यस° । ६ ख. °णाश्रयम् । स° । ७ क. स च तद्विवेश हृष्टस्ताना° । ८ ख. °न्दोर्नापि वि° । ९ क. °शीर्षा भू° । ३ ख. °त्वा च श° ।

लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी।
उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी ८
स शिश्ये शयने दिव्ये समुद्राम्भोदशीतले।
हरिरेकार्णवोक्तेन व्रतेन व्रतिनां वरः ९
तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम्।
उपासांचक्रिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा १०
तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात्समुत्थितम्
आद्यं तस्यासनं पद्मं ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम्।
सहस्रपत्रं वर्णाढ्यं सुकुमारं विभूषितम् ११
ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः स्वपन्नेव महामुनिः।
आवर्तयति लोकानां सर्वेषां कालपर्ययम् १२
विवृतात्तस्य वदनान्निःश्वासपवनेरिताः।
प्रजानां पंक्तयो ह्युच्चैर्निष्पतन्त्युत्पतन्ति च १३
ते सृष्टाः प्राणिनो मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम्
चतुर्द्धा स्वां गतिं जग्मुः कृतान्तोक्तेन कर्मणा
न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्षयोऽव्ययाः
विष्णोर्निद्रामयं योगं प्रविष्टं तमसावृतम् ॥
ते तु ब्रह्मर्षयः सर्वे पितामहपुरोगमाः।
न विदुस्तं क्वचित्सुप्तं क्वचिदासीनमासने १६
जागर्ति कोऽत्र कः शेते कश्च शक्तश्च नेङ्गते।
को भोगवान्को द्युतिमान्कृष्णात्कृष्णतरश्च कः

काली कृष्णवर्णा सूक्ष्मस्याप्यावरणकर्त्री ॥ ८ ॥ शिश्ये शयनं कृतवान् शयने समाधौ क्षीरसमुद्रो निर्विकल्पः अम्भोदः सविकल्पः तदुभयरूपतया निस्तापे एकार्णवोक्तेन व्रतेन निर्विकल्पसमाध्यर्थमुक्तेन व्रतेन संयमेन ॥ ९ ॥ **जगतो भवायेति**। अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्याग इत्येकैकस्य योगाङ्गस्य निर्वैरत्वादिकं फलं परत्र स्मर्यते। पूर्णस्य तु योगस्य जगतो भवार्थत्वमुपपन्नमिति भावः। देवा ऋषयश्चाध्यात्मम् इन्द्रियाणि प्राणाश्च उपासांचक्रिरे केवलं समीपे स्थिताः न तु स्वकार्यं भोगं निर्वर्तयन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥ मातुर्नाभिदेशादुद्भूतं नालं तत्पुष्पेण संयुज्यते पुष्पं च रेतःसंसर्गाद्गर्भो भवति स च गर्भो मातृभुक्तान्नरसेन नालद्वारा पुष्टो भवति। ततः पक्वफलन्यायेन वृन्ताद्गर्भश्च्युतो भवति एवं विष्णोः सकाशादुद्भूतो ब्रह्मा वैष्णव्या मायया पुष्टः सन् विष्णुतः च्युतो भूत्वाऽऽत्मानं ततोऽन्यं मन्यत इति। तदेतत्कथारूपकेण वर्णयति- **तस्येति**। नाभिमध्यात् समुत्थितनालद्वारेणाविर्भूतम् आद्यन्तस्य आद्यन्तवतः ब्रह्मणो वेधसः आसनम् आश्रयः पद्मं पद्मकोशाकारं ब्रह्माण्डम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणः इदानीन्तनस्य सूत्रं प्राग्भवीयो वासनातन्तुः स एव उद्यतकरस्थानीयो यस्य सः स्वपन्नेव स्वास्थ्यादप्रच्युत एव सन् लोकानां कालकृतं पर्ययम् ऊर्ध्वाधरीभावम् आवर्तयति अयस्कान्तन्यायेन सत्तामात्रादकुर्वत एव सकाशात् लोकस्वाभाव्यादेव सृष्ट्यादयो जायन्त इति भावः ॥ १२ ॥ तस्य ब्रह्मणः एवं यथा नारायणाद्ब्रह्माऽभवदेवं ब्रह्मणः सकाशादन्येऽप्यभूवन्नित्यर्थः ॥ १३ ॥ मेध्याः यज्ञार्हाः ब्राह्मणा अपि कर्मभेदात् ब्रह्मणा चतुर्द्धा ब्रह्मक्षत्रविट्शूद्ररूपेण विभागं प्रापिताः स्वां गतिं परमप्राप्यम् ईश्वरं कृतान्तोक्तेन कृतसिद्धान्तेन वेदेन उक्तं यत्कर्म तेन स सर्वोऽपि वर्णः स्वधर्मनिष्ठो मुच्यत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ **न तमिति**। विष्णोर्निद्रामयम् अविद्याशबलमपि रूपं दुर्ज्ञेयं किमुत शुद्धमिति भावः। योगं प्रविष्टं स्वरूपे एव समाहितम् ॥ १५ ॥ क्वचिद्देशे काले वा सुप्तं त्यक्तव्यवहारम्। आसीनम् उपात्तव्यवहारं वा न विदुः। सृष्टिप्रावीण्यात् योग्यस्य विचारस्य चाभावादिति भावः ॥ १६ ॥ केचिद्विचारयन्तीत्याह-**जागर्तीति** ॥ अत्र देहे को जागर्ति इन्द्रियैर्विषयानुपलभते स भूतयोगाज्जातो मन्दशक्तितुल्यश्चेतनो नान्य इति लोकायतमाशङ्क्याह-**कः शेते इति**। सुप्तावपि भूतयोगस्य सत्त्वाद्विषयोपलब्ध्यापत्तेर्भूतेभ्योऽन्य आत्मेत्यर्थः। सुप्तावनुपात्तकरणत्वेन विषयाननुभवात्। मन एव तर्ह्यात्माऽस्त्वित्याशङ्क्याह-**कश्च शक्तश्च नेङ्गते इति**। विनाऽपि करणानुग्रहं स्वप्ने मनसो विषयावभासकत्वं दृष्टं तच्च बाह्यौष्ण्यवत् दुस्त्यजम् अतस्ततोऽप्यन्य आत्मेत्यर्थः। शक्तः स नेङ्गते स्वशक्यं कार्यं न करोतीत्येतन्न युज्यत इति पदार्थः। मनसः करणान्तरवत् स्वप्रवृत्तिनिवृत्त्योः स्वातन्त्र्याभावात् तन्नियामिका बुद्धिरेव आत्माऽस्त्वित्याशङ्क्याह-**को भोगवानिति**। बुद्धेश्च नित्यपरिणामत्वेन कालान्तरीयायाः कालान्तरेऽभावात् योऽहं बाल्ये इदं फलमश्रौषं स एव यौवनेऽद्राक्षं स एवेदानीं रमयामीति बुद्धिभेदेऽपि आत्मैक्यप्रत्यभिज्ञानात्ततोऽन्यो भोक्तेत्यर्थः। अस्तु तर्ह्यहं सुखीत्यनुभावादहंकार

१ ख. °र्यसन्निभम्। सह°। २ ख. °रं सुपुष्पितम्। ब्र°। ३ क. ख. निश्वरुस्तस्य वद°। ४ क. नांपतयो ह्यु°। ५ क. °यो ह्येवं नि°, ख. °यो ह्योघैर्नि°। ६ ख. °णिनामोघा वि°। ७ क. ख. विष्णुं निद्राम°। ८ ख. °ते कश्च सुप्तश्च ने°।

विमृशन्ति स्म तं देवा दिव्याभिरुपपत्तिभिः
न चैनं शेकुरन्वेष्टुं कर्मतो जन्मतोऽपि वा १८
गाथाभिस्तत्प्रदिष्टाभिर्ये तस्य चरितं विदुः।
पुराणास्तं पुराणेषु ऋषयः संप्रचक्षते ॥१९॥
श्रूयते चास्य चरितं देवेष्वपि पुरातनम्।
महापुराणात्प्रभृति परं तस्य न विद्यते ॥२०
यच्चास्य देवदेवस्य
चरितं स्वप्रभावजम्।
तेनेमाः श्रुतयो व्याप्ता
वैदिक्यो लौकिकाश्च याः ॥२१॥
भवकाले भवत्येष लोकानां लोकभावनः।
दानवानामभावाय जागर्ति मधुसूदनः ॥२२॥
यत्रैनं वीक्षितुं देवा न शेकुः सुप्तमच्युतम्।
ततः स्वपिति घर्मान्ते जागर्ति जलदक्षये २३
स हि वेदाश्च यज्ञाश्च यज्ञाङ्गानि च सर्वशः।
या तु यज्ञगतिः प्रोक्ता स एष पुरुषोत्तमः २४
तस्मिन्सुप्ते न वर्तन्ते मन्त्रपूताः क्रतुक्रियाः।
शरत्प्रवृत्तयज्ञोऽयं जागर्ति मधुसूदनः ॥ २५
तदिदं वार्षिकं चक्रं कारयत्यम्बुदेश्वरः।
वैष्णवं कर्म कुर्वाणः सुप्ते विष्णौ पुरंदरः ॥२६
या ह्येषा गह्वरा माया
निद्रेति जगति स्थिता।
साऽवस्माद्द्वेषिणी घोरा
कालरात्रिर्महीक्षिताम् ॥ २७
तस्यास्तनुस्तमोद्वारा निशा दिवसनाशिनी
जीवितार्धहरा घोरा सर्वप्राणभृतां भुवि ॥
नैनया कश्चिदाविष्टो जृम्भमाणो मुहुर्मुहुः।
शक्तः प्रसहितुं वेगं मज्जन्निव महार्णवे ॥२९॥
अन्नजा भुवि मर्त्यानां
श्रमजा वा कथंचन।
सैषा भवति लोकस्य
निद्रा सर्वस्य लौकिकी ॥ ३०

---

एवाऽऽत्मेति पक्षमहं गौर इत्यनुभावाद्देहस्याप्यात्मतापत्ते रहंकारस्यापि सुषुप्त्यादावदर्शनाच्चाप्रदर्श्य शून्यमेवात्मास्त्वित्याशङ्क्याह-**को द्युतिमानिति**। सुषुप्तावात्माभावे सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषमिति सुषुप्तिकालीनसुखाज्ञानयोरनदनुभूतयोः परामर्शायोगात् तदनुभवश्च न सदात्मप्रकाशास्तित्वमन्तरेण संभवतीति अस्ति शून्यसाक्षी आत्मा सद्रूप इति भावः। अस्तु तर्ह्ययं साक्षी पुरुषान्तरस्य पुरुषान्तरेऽहं सुखीत्यादिव्यवहाराभावात्प्रतिशरीरं भिन्नः क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टात्पुरुषविशेषादीश्वराच्च विलक्षणो बन्धमोक्षादिभागीत्याशङ्क्याह-**कृष्णात्कृष्णतरश्च क इति**। शब्दादिहीनत्वात्परमते प्रधानम् अतिसूक्ष्मं व्यवहारत एव। वस्तुतस्तु त्रिगुणात्मत्वेन संहतात्तस्मादसंहतः पुरुष एव सूक्ष्मः। न हि ततोऽपि सूक्ष्म ईश्वर इति पातञ्जला अप्यभ्युपगच्छन्ति। श्रुतिश्च "**नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा**" इति द्रष्ट्रन्तरं निषेधतीति न साक्षिणोऽन्यः कश्चिदात्माऽस्तीत्यर्थः। बन्धमोक्षादिव्यवस्था तु तर्कमते श्रोत्रैक्येऽपि उपाधिभेदात् शब्दग्रहव्यवस्थावद्भविष्यति। क्लेशादिसंबन्धस्तु वास्तवः कस्यापि नास्तीति नात्मभेदोऽनात्मनोऽनीश्वरत्वं चास्तीति सर्वमनवद्यम्। कृष्णात् कृशादित्यर्थः। कृषेरौणादिकनप्रत्ययान्तस्येदं रूपं कृष्ण इति ॥ १७ ॥ दिव्याभिः श्रौताभिः उपपत्तिभिर्युक्तिभिः॥१८॥ गाथाभिः यदक्षरं पञ्चविधं समेतीत्यादिभिर्मन्त्रैः तत्प्रदिष्टाभिः तेन परमात्मना निश्वसितरूपेण निर्दिष्टाभिः। तथा च श्रुतिः-"अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः" इत्यादि ॥ १९ ॥ भवति आविर्भवति ॥२२॥ आविर्भावकालेऽप्ययम् आषाढीमारभ्य कार्तिकीपर्यन्तं स्वपितीत्याह—**यत्रैनमिति** ॥ २३॥ यज्ञगतिर्यज्ञप्राप्यलोकः ॥ २४ ॥ शरदि प्रवृत्तो यज्ञः "शरदि वाजपेयेन यजेत" इत्यादिश्रुतेर्वाजपेयादिर्यस्येति। यज्ञवृत्तावेवायं प्रतिबुध्यते न त्वयज्ञस्येत्यर्थः ॥ २५ ॥ अत एव वार्षिकं वर्षर्तौ भवम् इदं चक्रं यज्ञवर्जनरूपो जलधरैः भाद्रपदीमारभ्य शरदि पितृयज्ञादीनां प्रवृत्तिदर्शनात् ॥ २६ ॥ विष्णोः प्रबोधे यज्ञो निमित्तमित्युक्तम्। निद्रायां निमित्तमाह—**या हीति** ॥ गह्वरा तमोमयी अकस्मात्। निर्निमित्तम् महीक्षितां राज्ञाम् अन्योन्यं युध्यतां यदा विनाशस्तदा विष्णुः स्वपिति हिंसादिदोषोदयादित्यर्थः ॥ २७ ॥ इयमेव तामसी निशारूपेण च सर्वान्मोहयतीत्याह-**तस्या इत्यादिना** ॥ २८ ॥

---

१ ख. °भिस्तत्प्रतिष्ठाभि°। २ ख°. °तं वेदेष्व°। ३ ख. °तं सुप्रभा°। ४ ख. °प्ता लौकिक्योर्देवजाश्च याः। °भ। ५ ख. °ष भूतानां भूतभा°। ६ ख. यदैनं वी°। ७ ख. या हि य°। ८ क. ख. °ज्ञो हि जा°। ९ ख. °क्रं धारय°। १० ख. °ह्वरी मा°। ११ ख. °हरा सा तु स°। १२ क. नैशा भ°।

स्वप्नान्ते क्षीयते ह्येषा प्रायशो भुवि देहिनाम्
मृत्युकाले च भूतानां प्राणान्नाशयते भृशम्[1] ॥
देवेष्वपि दुधार्रैनां नान्यो नारायणादृते ।
सखी सर्वहरस्यैषा माया विष्णुशरीरजा[2] ३२
सैषा नारायणमुखे दृष्ट्वा[3] कमललोचना ।
लोकानल्पेन कालेन ग्रसते लोकमोहिनी[4] ३३
एवमेषा हितार्थाय लोकानां कृष्णवर्त्मना ।
ध्रियते सेवनीया हि[5] पत्येव[6] च पतिव्रता॥ ३४
स तया निद्रया च्छन्नस्तस्मिन्नारायणाश्रमे ।
स्वपिति स्म तदा विष्णुर्मोहयञ्जगदव्ययम्[7] ॥
तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महात्मनः ।
जग्मुः कृतयुगं चैव त्रेता चैव युगोत्तमम् ॥ ३६
स तु द्वापरपर्यन्ते[8] ज्ञात्वा लोकान्सुदुःखितान्
प्राबुध्यत महातेजाः स्तूयमानो महर्षिभिः ३७

ऋषयः ऊचुः ।

जहीहि निद्रां सहजां भुक्तपूर्वामिव स्रजम्
इमे ते[9] ब्रह्मणा सार्धं देवा दर्शनकांक्षिणः ॥ ३८
इमे त्वां ब्रह्मविद्वांसो[10] ब्रह्मसंस्तववादिनः ।
वर्धयन्ति हृषीकेश ऋषयः संशितव्रताः ॥ ३९
एतेषामात्मभूतानां
भूतानामात्मभावन[11]ः ।
शृणु विष्णो शुभा वाचो
भूव्योमाग्न्यनिलाम्भसाम् ॥ ४०
इमे त्वां सप्त मुनयः सहिता मुनिमण्डलैः ।
स्तुवन्ति देव[12] दिव्याभिर्गेयाभिर्गीर्भिरञ्जसा
उत्तिष्ठ शतपत्राक्ष पद्मनाभ महाद्युते ।
कारणं किंचिदुत्पन्नं देवानां कार्यगौरवात् ॥

वैशम्पायन उवाच ।

स संक्षिप्य जलं सर्वं[13] तिमिरौघं विदारयन्
उदतिष्ठद्धृषीकेशः श्रिया परमया ज्वलन् ॥
स ददर्श सुरान्सर्वान्समेतान्सपितामहान् ।
विवक्षूंस्तः[14] प्रक्षुभिताञ्जगदर्थे समागतान् ॥ ४४
तानुवाच हरिर्देवो[15] निद्राविश्रान्तलोचनः ।
तत्त्वदृष्टार्थया वाचा धर्महेत्वर्थयुक्तया ॥४५

श्रीभगवानुवाच[16] ।

कुतो वो विग्रहो देवाः कुतो वो भयमागतम्
कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि[17] न वर्तते
किं[18] खल्वकुशलं लोके वर्तते दानवोत्थितम्
नृणामायासजननं शीघ्रमिच्छामि वेदितुम् ॥
एष ब्रह्मविदां मध्ये विहाय शयनोत्तमम् ।
शिवाय भवतामर्थे स्थितः किं करवाणि वः[19] ४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि विष्णोर्योगशयनोत्थाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

---

सर्वहरस्य कालस्यैषा सखी ॥ ३२ ॥ **एवमिति** । हितं-भुक्तस्यान्नादेः सम्यक् पाकः श्रमपरिहारश्चेत्यादिः तदर्थाय सेवनीयाय इयं कृष्णवर्त्मना सूक्ष्ममार्गेण परमेश्वरेण ध्रियते । मन्निद्रया मदुदरस्थो लोकः सर्वोऽपि विश्रमयतामित्याशयवर्तेत्यर्थोऽतः पत्या पतिव्रतेव सुखार्थिना सेवनीया ॥ ३४ ॥ एवं महानिद्राप्रसङ्गाद्वार्षिकीं दैनंदिनीं च ईशस्य जीवस्य निद्रां प्रपञ्च्य तामेव महानिद्रामनुमन्धत्ते-**स तयेत्यादिना** ॥३५॥ **भूव्योमेति** । भूम्याद्यधिष्ठात्रीणां देवतानाम् ॥ ४० ॥ जलम् अखण्डानन्दं संक्षिप्य उपाध्यावेशेन अल्पीकृत्य तिमिरौघं शरीरभासा विदारयन् ॥ ४३ ॥ कस्य देवस्य केन अर्थेन कार्यं प्रयोजनं किं वा सामर्थ्यम् ॥ ४६ ॥ इति हरिवंशे टीकायां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

---

१ ख. ०णान्क्षययते भृ० । २ क. ख. ०या विष्णोः शरीरजा । ३ ख. ०खे दृष्ट्वा क० । ४ क. ख. ०ते भूतमो० । ५ क. ०या च प० । ६ ख. ०व हि प० । ७ ख. शेते स्म भगवान् विष्णुर्मोहयञ्जगदव्ययः । तस्य व० । ८ क. ख. ०न्ते दृष्ट्वा लो । ९ ख. ०मे ते ब्र० । १० क. ०ह्मविदुषो ब्र० । ११ क. ख. ०वन शृ० । १२ क. ख. ०न्ति देव दि० । १३ ख. ०प्य जगत्सर्वं ति० । १४ ख. विवक्षून्क्षुभितांश्चैव जगत्यर्थे स० । १५ ख. ० रिर्देवाश्रि० । १६ क. ख. ॥विष्णुरुवाच ॥ कु० । १७ क. ०यि निव० । १८ क. ख. न खल्वकु० । १९ क. ०णि च ।

## विष्णुदेवसंवादः ।

## ५१

वैशम्पायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा विष्णुगदितं ब्रह्मा लोकपितामहः
उवाच परमं वाक्यं हितं सर्वदिवौकसाम् १
नास्ति किंचिद्भयं विष्णो सुराणामसुरान्तक
येषां भवानभयदः कर्णधारो रणे रणे २
शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदने[1] ।
धर्मे प्रयतमानानां मानवानां[2] कुतो भयम् ॥ ३
सत्ये धर्मे च निरतान्मानवान्विगतज्वरान्[3] ।
नाकाले धर्मिणो[4] मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम्
मानवानां च पतयः पार्थिवाश्च[5] परस्परम् ।
षड्भागमुपभुञ्जाना न भयं[6] कुर्वते मिथः ॥ ५
ते प्रजानां शुभकराः करदैरवगर्हिताः ।
सुकरैर्विप्रयुक्तार्थाः कोशमापूरयन्त्युत ॥ ६
स्फीताञ्जनपदान्सर्वान्[7]पालयन्तः क्षमापराः ।
अतीक्ष्णदण्डांश्चतुरो वर्णाञ्जुगुपुरञ्जसा ॥ ७
नोद्वेजनीया भूतानां सचिवैः साधुपूजिताः ।
चतुरङ्गबलैर्गुप्ताः षड्गुणानुपभुञ्जते ॥ ८
धनुर्वेदपराः सर्वे सर्वे वेदेषु निष्ठिताः ।
यजन्ते[8] च यथाकालं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ ९
वेदानधीत्य दीक्षाभिर्महर्षीन्ब्रह्मचर्यया ।
श्राद्धैश्च मेध्यैः शतशस्तर्पयन्ति पितामहान्
नैषामविदितं किञ्चिच्चिविधं[9] भुवि दृश्यते[10] ।
वैदिकं लौकिकं चैव धर्मशास्त्रोक्तमेव च ११
ते परावरदिष्टार्था[11] महर्षिसमतेजसः ।
भूयः कृतयुगं कर्तुमुत्सहन्ते नराधिपाः ॥ १२
तेषामेव प्रभावेण शिवं वर्षति वासवः ।
यथार्थं च ववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ॥
निरुत्पाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे[12] ग्रहाः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रः सौम्यं चरति योगतः २३
अनुलोमकरः सूर्य[13]स्त्वयने द्वे चचार ह ।
हव्यैश्च विविधैस्तृप्तः शुभगन्धो हुताशनः ॥
एवं सम्यक्प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु[14] मखादिषु ।
तर्पयत्सु महीं कृत्स्नां नृणां कालभयं कुतः
तेषां ज्वलितकीर्तिनामन्योन्य[15]वशवर्तिनाम् ।
राज्ञां बलैर्बलवतां पीड्यते वसुधातलम् ॥ १७
सेयं भारपरिश्रान्ता पीड्यमाना नराधिपैः ।
पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्नविप्लवा[16] ॥ १८
युगान्त[17]सदृशै रूपैः शैलोच्चलितबन्धना ।
जलोत्पीडाकुला स्वेदं धारयन्ती मुहुर्मुहुः ॥

---

५१

एकाधिकेऽथ पञ्चाशेऽ-
ध्याये विष्णोर्निरूप्यते ।
भूभारहरणार्थाय
ब्रह्मप्रार्थनमद्भुतम् ॥ १ ॥

**तच्छ्रुत्वेति** ॥१॥ कर्णो नौकापरिवर्तकरो महान् दण्डः तस्य धारः कर्णधारस्तद्वदिति लुप्तोपमा ॥ २ ॥ षष्ठं भागं षड्भागम् ॥ ५ ॥ सुकरैर्यथोचितैः करग्रहैः विशेषेण प्रयुक्तार्थाः बहुकरग्रहो हि राजा प्रजा उद्वासयन्न कोशवृद्धिकरो भवति एते तु न तथासन्निस्यर्थः ॥ ६ ॥ अञ्जसा साकल्येन ॥ ७ ॥ नोद्वेजनीयाः अनुद्वेजकाः सन्तः षड्गुणान् नीतिशास्त्रोक्तान् सन्धिविग्रहयनामनद्वैधीभावससमाश्रयाख्यान् उपभुञ्जते सेवन्ते ॥ ८ ॥ वेदानधीत्य महर्षीन्दीक्षाभिर्नियमग्रहणैः चर्यया यज्ञक्रियया च ब्रह्म हिरण्यगर्भाख्यं सर्वदेवतामयं तर्पयन्ति ॥ १० ॥ एषां नृपाणाम् ॥ ११ ॥ परे अवरे च ब्रह्मणि दृष्टार्था जातप्रत्ययाः कृतयुगं पापलेशेनाप्यननुविद्धं कृत्स्नधर्मम् ॥ १२ ॥ यथार्थं यावत्प्रयोजनम् ॥१३॥ तर्पयत्सु वृष्ट्यादिनेति शेषः॥१६॥ नराधिपैः रूपैः स्वशरीरैः युगान्तो वह्निस्तत्सदृशैः पीड्यमानेत्यन्वयः। आसन्नविप्लवा उपस्थितविनाशा ॥ १८ ॥ शैलोच्चलितबन्धना यथा समुद्रे लोहमयैर्लाङ्गलैर्निरुद्धा सती महताऽपि वायुना न चाल्यते तद्वत्पृथिवी पर्वतैर्जलमध्ये धृताऽस्ति इदानीं शैलरूपाणि उच्चलितानि बन्धनानि यस्यास्तथाविधाऽभूत् । अत एव जलस्य उत्पीडा उपर्यागमनेन या पीडा तया आकुला । स्वेदम् आर्द्रताम् ॥ १९ ॥

---

१क. ॰यि वासुरसूदने । ध॰ । ख. ॰यि चारिनिषूदने । ध॰ । २ख. ॰नां दानवा॰ । ३ क. ॰रता मानवा विगतज्वराः । नाका॰ । ४ ख. ॰ले धर्मणा मृ॰ । ५ ख. ॰वा वै प॰ । ६ ख. न भेदं कु॰ । ७ क. ख. ॰दान्स्वान्स्वान् पा॰ । ८ क. त्यजन्ति च य॰ । ९ ख. ॰चित्रिषु लोकेषु विद्यते । वै॰ । १० क. ॰वि विद्यते । वै॰ । ११ क. परावरदृष्टार्था म॰, ख. परापरदृष्टा॰ । १२ ख. ॰श्च वै ग्रहाः । च॰ । १३ क. ख. सूर्यो अय॰ । १४ ख. ॰षु निमित्तेषु म॰ । १५ क. ख. ॰न्यमनुव॰ । १६ ख. ॰विक्लवा । १७ ख. युगान्तसदृशं रूपं शैलोच्चलितबन्धनम् । जलोत्पीडाकुलं वेदं दर्शय॰ ।

क्षत्रियाणां वपुर्भिश्च तेजसा च बलेन च ।
नृणां च राष्ट्रैर्विस्तीर्णैः श्राम्यतीव वसुन्धरा ॥
पुरे पुरे नरपतिः कोटिसंख्यैर्बलैर्वृतः ।
राष्ट्रे राष्ट्रे च बहवो ग्रामाः शतसहस्रशः ॥ २१
भूमिपानां सहस्रैश्च तेषां च बलिनां बलैः ।
ग्रामायुतौघैः राष्ट्रैश्च भूमिर्निर्विवरा कृता ॥ २२
सेयं निरामयं कृत्वा निश्चेष्टा कालमग्रतः ।
प्राप्ता ममालयं विष्णो भवांश्चास्याः परा गतिः
कर्मभूमिर्मनुष्याणां भूमिरेषा व्यथां गता ।
यथा न सीदेत्तत्कार्यं जगत्येषा हि शाश्वती
अस्यां हि पीडने दोषो महान्स्यान्मधुसूदन ।
क्रियालोपश्च लोकानां पीडितं च जगद्भवेत् ॥
श्राम्यते व्यक्तमेवेयं पार्थिवौघप्रपीडिता ।
सहजां या क्षमां त्यक्त्वा चलत्वमचला गता
तदस्याः श्रुतवन्तः स्म तच्चापि भवता श्रुतम्
भारावतरणार्थं हि मन्त्रयाम सह त्वया ॥ २७
सत्पथे हि स्थिताः सर्वे राजानो राष्ट्रवर्द्धना
नराणां च त्रयो वर्णा ब्राह्मणाननुयायिनः ॥
सर्वे सत्यपरं वाक्यं वर्णा धर्मपरास्तथा ।
सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः ॥ २९
एवं जगति वर्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात् ।
यथा धर्मवधो न स्यात्तथा मन्त्रैः प्रवर्त्यताम्
सतां गतिरियं नान्या धर्मश्चास्याः सुसाधनम्
राज्ञां चैव वधः कार्यो धरण्या भारनिर्णये ॥
तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात् ।
व्रजामो मेरुशिखरं पुरस्कृत्य वसुंधराम् ॥ ३२
एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोकपितामहः ।
पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्युतिः*

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि भारावतरणे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## विष्णुं प्रति पृथिव्या वाक्यम् ।

## ५२

वैशम्पायन उवाच ।
बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनाम्भोदनिःस्वनः ।
प्रतस्थे दुर्दिनाकारः सदुर्दिन इवाचलः ॥ १
समुत्क्रामाणविद्योतं सचन्द्राम्भोदवर्चसम् ।
सजटामण्डलं कृत्स्नं स बिभ्रच्छ्रीधरो हरिः
स चास्योरसि विस्तीर्णे
रोमाञ्चोद्गतराजिमान् ।
श्रीवत्सो राजते श्रीमां-
स्तनद्वयमुखाश्रितः ॥ ३

निर्विवरा निरुच्छ्वासा ॥ २२ ॥ सेयं भूमिर्निरामयं कालम् अग्रतः कृत्वा निश्चेष्टा सती ममालयं प्राप्तेत्यन्वयः । यत्र आमयोऽपि प्रजानां नास्ति कुतो मृत्युस्तं कालं निमित्तीकृत्य तत्कृतं बहुभारत्वं प्राप्य वहनासमर्था श्रान्तवाहसदृशी सतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ न सीदेत् लोकवद्बहुभारेण न विशीर्येत । जगती जगदाधारभूता ॥ २४ ॥ भारनिर्णये भारस्य परिहरणे निमित्ते ॥ ३१ ॥ इति हरिवंशे टीकायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

वर्ण्यतेऽथ हरिश्चाशे समाजे सुरसंसदि ।
धरण्या भारखिन्नाया विज्ञप्तिः करुणोदया ॥
बाढं दुर्दिनहेतुत्वाद्दुर्दिनो मेघस्तदाकारस्तद्वर्णः सदुर्दिनः गर्जन्मेघसहितः । कृत्स्नम् उदरम् । "कृत्स्नं सर्वाम्बुकुक्षिषु" (नवर्गे २) इति मेदिनी । जटामण्डलसहितं बिभ्रत् पाठान्तरे स्पष्टोऽर्थः ॥ १ ॥ रोमाञ्चाः रोम्णामुच्छ्रायाः तैः कृत्वा उद्गता राजयो रेखा इव तद्वान् स्तनद्वयमुखपर्यन्तम् अश्रितं रविनद्वारा स्वतो वाऽप्रसर्पणं यस्य सः स्तनद्वयमुखाश्रितः ॥ ३ ॥

१ घ. °ताद्यै रा° । २ ख. °मिर्निर्वेदमागता । से° । ३ ख. °प्ता तवाल° । ४ ख. °भूमिरिहस्यानां भू° । ५ ख. एस्या हि पी° । ६ ख. °श्च भूतानां पी° । ७ क. श्राम्याति व्य° । ८ ख. °नेवैषा पा° । ९ क. ख. °यामस्त्वया सह । स । १० क. °ता ह्येते रा° । ११ ख. °नो राज्यव° । १२ क. ख. °त्यमयं वा° । १३ क. ख. °था नीतिः प्र° । १४ क. °जाति श्री° ।
* एतावदुक्त्वेति श्लोकः कखपुस्तकयोर्नास्ति ।

पीते वसानो वसने लोकानां गुरुरव्ययः ।
हरिः सोऽभवदालक्ष्यः स संध्याभ्र इवाचलः
तं व्रजन्तं सुपर्णेन पद्मयोनिगतानुगम् ।
अनुजग्मुः[1] सुराः सर्वे तद्गतासक्तचक्षुषः ॥ ५
नातिदीर्घेण कालेन[2] संप्राप्ता रत्नपर्वतम् ।
ददृशुर्देवतास्तत्र[3] तां सभां कामरूपिणीम् ॥ ६
मेरोः शिखरविन्यस्तां[4] संयुक्तां सूर्यवर्चसा ।
काञ्चनस्तम्भरचितां वज्रसंधानतोरणाम्॥ ७
मनोनिर्माणचित्राढ्यां विमानशतमालिनीम् ।
रत्नजालान्तरवतीं कामगां रत्नभूषिताम् ८
[5]कुप्यरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुकुसुमोत्कटाम् ।
देवमायाधरां दिव्यां विहितां[6] विश्वकर्मणा
तां हृष्टमनसः सर्वे यथास्थानं यथाविधि ।
यथानिर्देशं[7] त्रिदशा विविशुस्ते[8] सभां शुभाम्
ते निषेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वासनेषु च ।
भद्रासनेषु पीठेषु कुथास्वास्तरणेषु च ॥११॥
ततः प्रभञ्जनो वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः।
मा शब्दमिति सर्वत्र प्रचक्रामाथ तां सभाम्
निःशब्दस्तिमिते तस्मि-
न्समाजे त्रिदिवौकसाम् ।
बभाषे धरणी वाक्यं
खेदात्करुणभाषिणी ॥१३॥

धरण्युवाच ।

त्वया धार्या त्वहं[9] देव
त्वया वै धार्यते जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि[10]
भुवनानि बिभर्षि च ॥ १४
यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च ।
ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च[11] धार्यते ॥१५॥
त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् ।
न हि तद्विद्यते भूतं यत्त्वया नानुधार्यते[12] ॥ १६
त्वमेव कुरुषे देव[13] नारायण युगे युगे ।
[14]मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥ १७
तवैव तेजसा क्रान्तां रसातलतलं गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव[15] शरणं गताम् ॥
दानवैः पीड्यमानाऽहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयास्ये सनातनम्॥१९
तावन्मेऽस्ति भयं भूयो
यावन्न त्वां ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा
शतशो ह्युपलक्षये[16] ॥ २०
अहमादौ पुराणस्य संक्षिप्ता पद्मयोनिना ।
[17]मात्ररुन्धां कृतौ पूर्वं मृन्मयौ द्वौ महासुरौ ॥
कर्णस्रोतोद्भवौ तौ[18] हि विष्णोरस्य महात्मनः
महार्णवे प्रस्वपतः काष्ठकुड्यसमौ स्थितौ २२
तौ विवेश स्वयं वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः ।
दिवं[19] प्रच्छादयन्तौ[20] तु ववृधाते महासुरौ
वायुप्राणौ तु तौ गृह्य ब्रह्मा पर्यमृशच्छनैः[21] ।
एकं मृदुतरं मेने कठिनं वेद चापरम् २४
नामनी तु तयोश्चक्रे स विभुः सलिलोद्भवः ।
मृदुस्त्वयं मधुर्नाम कठिनः कैटभोऽभवत् २५

---

पद्मयोनिर्गतानुगोऽनुगामी यस्य तम् ॥ ५ ॥ रत्नपर्वतं मेरुम् । कामरूपिणीं यथा संकल्पितं तथा रूपधारिणीम् ॥ ६ ॥ वज्रसन्धानतोरणां रत्नखचितबहिर्द्वाराम् ॥ ७ ॥ मनोनिर्माणचित्राढ्यां स्वमंकल्पोत्थविचित्ररचनावतीम् ॥ ८ ॥ कुथासु । "कुथः स्त्रीपुंसयोर्वर्णकम्बले पुंसि बर्हिषि" इति विश्वः ॥ ११ ॥ मा शब्दं कुरुतेति वदन्निति शेषः ॥ १२ ॥ तेजसा दुष्टराजादिरूपेण ॥१८॥ उपयास्ये उपयामि ॥ १९ ॥ ककुद्मिनं धुरन्धरम् उपलक्षये जानामि ॥२०॥ पुराणस्य पणस्य कार्षापणादिव्यवहारप्रवृत्तेः प्रागित्यर्थः । संक्षिप्ता सम्यक् दृष्टा । अमुौ मधुकैटभौ कृताविति पाठेऽपि हताविस्येवार्थः ॥२१॥ तयोरुत्पातिमाह—**कर्णेति** । स्रोतोद्भवौ स्रवतीति स्रोतः मलं तदुद्भवौ सन्धिरार्षः । "विष्णुकर्णमलोद्भूतौ" इत्यन्यत्र दृष्टम् । काष्ठकुड्यसमौ अचेतनौ ॥ २२ ॥ वायुः प्राणरूपी पर्यमृशत् पस्पर्श ॥२४

---

१ क. ॰ग्मुः सुरगणास्तद्गता॰ । २ क॰न गत्वा ते र॰ । ३ क. ख. ॰त्र स्वां स॰ । ४ क. ख. ॰स्तां संसक्तां सू॰ । ५ ख. कुप्यर॰ । ६ ख. ॰व्यां निर्मितां वि । ७ क. ख. ॰निवेशं त्रि । ८ ख. शुस्तां स । ९ ख. र्या ह्यहं दे । १० क. ख. नि भुवनं त्वं बि । ११ क. ख. या पश्चात्तु धा । १२ क. या नात्र धा॰ । १३ ख. ॰षे वीर ना॰ । १४ख. महाभा॰ १५ ख. ॰ष्ठ तवैव श॰ । १६ ख. ॰शोऽथ सहस्रशः । अ॰ । १७ ख. मां च कृत्वा कृ॰ । १८ख. ॰वौ द्वौ हि वि॰ । १९ क. ततो दिवं छाद॰ । ख. न तौ दिवं छाद॰ । २० क. ॰न्तो व॰ । २१ क. ॰मृषच्छ॰ ।

तौ दैत्यौ कृतनामानौ चेरतुर्बलदर्पितौ ।
सर्वमेकार्णवं लोकं योद्धुकामौ सुदुर्जयौ २६
तावागतौ समालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
एकार्णवाम्बुनिचये तत्रैवान्तरधीयत २७
स पद्मे पद्मनाभस्य नाभिमध्यात्समुत्थिते ।
रोचयामास वसतिं गुह्यां ब्रह्मा चतुर्मुखः २८
तावुभौ जलगर्भस्थौ नारायणपितामहौ ।
बहून्वर्षगणानप्सु शयानौ न चकम्पतुः २९
अथ दीर्घस्य कालस्य तावुभौ मधुकैटभौ ।
आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ३०
दृष्ट्वा तावसुरौ घोरौ महाकायौ दुरासदौ ।
ब्रह्मणा ताडितो विष्णुः पद्मनालेन वै तदा ।
उत्पपाताथ शयनात्पद्मनाभो महाद्युतिः ॥ ३१
तद्युद्धमभवद्घोरं तयोस्तस्य च वै तदा ।
एकार्णवे तदा लोके त्रैलोक्ये जलतां गते ३२
तदाऽभूत्तुमुलं युद्धं वर्षसंख्यासहस्रशः ।
न च तावसुरौ युद्धे तदा श्रममवापतुः ॥ ३३
अथातो दीर्घकालस्य तौ दैत्यौ युद्धदुर्मदौ ।
ऊचतुः प्रीतमनसौ देवं नारायणं हरिम् ॥३४
प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ३५
हतौ च तव पुत्रत्वं प्राप्नुयावः सुरोत्तम ।
यो ह्यावां युधि निर्जेता तस्यावां विहितौ सुतौ
स तु गृह्य मृधे दोर्भ्यां दैत्यौ तावभ्यपीडयत
जग्मतुर्निधनं चापि तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ३७
तौ हतौ चाप्लुतौ तोये वपुर्भ्यामेकतां गतौ ।
मेदो मुमुचतुर्दैत्यौ मथ्यमानौ जलोर्मिभिः ३८
मेदसा तज्जलं व्याप्तं ताभ्यामन्तर्दधेऽनघः ।
नारायणश्च भगवानसृजत्स पुनः प्रजाः ॥३९

दैत्ययोर्मेदसा छन्ना मेदिनीति ततः स्मृता ।
प्रभावात्पद्मनाभस्य शाश्वती जगती कृता४०
वाराहेण पुरा भूत्वा मार्कण्डेयस्य पश्यतः ।
विषाणेनाहमेकेन तोयमध्यात्समुद्धृता ॥ ४१
हृताऽहं क्रमतो भूयस्तदा युष्माकमग्रतः ॥
बलेः सकाशाद्दैत्यस्य विष्णुना प्रभविष्णुना
साम्प्रतं खिद्यमानाऽहमेनमेव गदाधरम् ।
अनाथा जगतो नाथं शरण्यं शरणं गता ४३
अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यो गुरुः स्मृतः
नक्षत्राणां गुरुः सोमो मम नारायणो गुरुः ४४
यदहं धारयाम्येका जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
मया धृतं धारयते सर्वमेतद्गदाधरः ॥४५॥
जामदग्न्येन रामेण भारावतरणेप्सया ।
रोषात्त्रिःसप्तकृत्वोऽहं क्षत्रियैर्विप्रयोजिता॥४६
साऽस्मि वेद्यां समारोप्य तर्पिता नृपशोणितैः
भार्गवेण पितुः श्राद्धे कश्यपाय निवेदिता४७
मांसमेदोस्थिदुर्गन्धा दिग्धा क्षत्रियशोणितैः
रजस्वलेव युवतिः कश्यपं समुपस्थिता ४८
स मां ब्रह्मर्षिरप्याह किमुर्वि त्वमवाङ्मुखी ।
वीरपत्नीव्रतमिदं धारयन्ती विषीदसि ४९
साऽहं विज्ञापितवती कश्यपं लोकभावनम्
पतयो मे हता ब्रह्मन्भार्गवेण महात्मना ५०
साऽहं विहीना विक्रान्तैः क्षत्रियैः शस्त्रवृत्तिभिः
विधवा शून्यनगरा न धारयितुमुत्सहे ॥५१॥
तन्मह्यं दीयतां भर्ता भगवंस्त्वत्समो नृपः ।
रक्षेत्सग्रामनगरां यो मां सागरमालिनीम्
स श्रुत्वा भगवान्वाक्यं बाढमित्यब्रवीत्प्रभुः
ततो मां मानवेन्द्राय मनवे स प्रदत्तवान् ५३

---

नारायणः पितामहो ययोस्तौ ॥ २९ ॥ वर्षाणां सङ्ख्या यस्मिन् युद्धे सहस्रैः सङ्ख्या इति तत् वर्षसङ्ख्यासहस्रशः ॥ ३३ ॥ अथ अनन्तरम् अतः युद्धयतोस्तयोर्नारायणस्य च श्रमाभावात् युद्धाय निर्विण्णाविति भावः ॥ ३४ ॥ विहितौ सुतौ ब्रह्मणेति शेषः ॥ ३६ ॥ स तु गृह्येति ॥ ३७ ॥ कुत्र प्रजा असृजदित्यपेक्षायामाह–दैत्ययोरिति ॥ ४० ॥ विषाणेन दंष्ट्राग्रेण ॥ ४१ ॥ गुरुः कारणं गवां रश्मीनाम् ॥ ४४ ॥ एतत्सर्वं मया सहितम् ॥ ४५ ॥ समारोप्य रणस्तम्भमिति शेषः ॥ ४७ ॥ वीरस्य रणे हतस्य पत्नी तस्याः व्रतं सद्यो हतभर्तृकाया रूपम् इति यावत् ॥ ४९ ॥ धारयितुं लोकम् आत्मानं वेति शेषः ॥ ५१ ॥ मनवे श्राद्धदेवाय ॥ ५३ ॥

---

१ क. ख. °बलगर्वितौ । स° । २ °मौ सुनिर्भयौ । ता° । ३ ख. °तिं गुह्यं ब्र° । ४ ख. °न वै पुरा । उ° । ५ क. ख. °तासु श° । ६ क. ख. अथ दी° । ७ क. °णं प्रभुम् । प्री° । ८ ख. °त्यौ समभिपीडयत् । जग्म° । ९ ख. °धे ततः । ना° । १० क. °ति परिश्रुता । प्र° । ११ ख. वरा° । १२ ख. °णेच्छया । रो° ।

सा मनुप्रभवं दिव्यं प्राप्येक्ष्वाकुकुलं नृपम्[1]।
विपुलेनास्मि कालेन पार्थिवात्पार्थिवं गता॥
एवं दत्ताऽस्मि मनवे मानवेन्द्राय धीमते।
भुक्ता राजसहस्रैश्च महर्षिकुलसंमितैः॥ ५५
बहवः क्षत्रिया शूरा मां जित्वा दिवमाश्रिताः।
ते च कालवशं प्राप्य मय्येव प्रलयं गताः॥
मत्कृते विग्रहा लोके वृत्ता वर्तन्त एव च।
क्षत्रियाणां बलवतां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ५७
एतद्युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते।
जगद्धितार्थं कुरुत राज्ञां हेतुं रणक्षये॥ ५८
यद्यस्ति मयि कारुण्यं भारशैथिल्यकारणात
एकश्चक्रधरः श्रीमानभयं मे प्रयच्छतु॥ ५९
यमहं भारसंतप्ता संप्राप्ता शरणार्थिनी।
भारो यथावरोप्तव्यो विष्णुरेष ब्रवीतु माम्६०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि धरणीवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

## अंशावतरणम्

## ५३

वैशम्पायन उवाच।
ते श्रुत्वा पृथिवीवाक्यं सर्व एव दिवौकसः
तदर्थकृत्यं संचिन्त्य पितामहमथाब्रुवन्॥ १
भगवन्क्रियतामस्या धरण्या भारसंततिः।
शरीरकर्ता लोकानां त्वं हि लोकस्य चेश्वरः
यत्कर्तव्यं महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च।
यद्वा कार्यं धनेशेन स्वयं नारायणेन वा॥ ३
यद्वा चन्द्रमसा कार्यं भास्करेणानिलेन वा।
आदित्यैर्वसुभिर्वाऽपि रुद्रैर्वा लोकभावनैः ४
अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां साध्यैर्वा त्रिदशालयैः
बृहस्पत्युशनोभ्यां वा कालेन कलिनापि वा
महेश्वरेण वा ब्रह्मन्विशाखेन गुहेन वा।
यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारणैर्वा महोरगैः॥ ६
पतंगैः पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महोर्मिभिः।
गङ्गामुखीभिर्दिव्याभिः सरिद्भिर्वा सुरेश्वर॥
क्षिप्रमाज्ञापय विभो कथमंशः प्रयुज्यताम्।
यदि ते पार्थिवं कार्यं कार्यं पार्थिवविग्रहे ८
कथमंशावतरणं कुर्मः सर्वे पितामह।
अन्तरिक्षगता ये च पृथिव्यां पार्थिवाश्च ये ९
सदस्यानां च विप्राणां पार्थिवानां कुलेषु च।
अयोनिजाश्चैव तनूः सृजामो जगतीतले १०
सुराणामेककार्याणां श्रुत्वैतन्निश्चितं मतम्।
देवैः परिवृतैः प्राह वाक्यं लोकपितामहः॥
रोचते मे सुरश्रेष्ठा युष्माकमपि निश्चयः।
सृजध्वं स्वशरीरांशांस्तेजसाऽऽत्मसमान्भुवि
सर्व एव सुरश्रेष्ठास्तेजोभिरवरोहत।
भावयन्तो भुवं देवीं लब्ध्वा त्रिभुवनश्रियम्
पार्थिवे भारते वंशे पूर्वमेव विजानता।
पृथिव्यां संभ्रममिमं श्रूयतां यन्मया कृतम् १४

क्षये हेतुमिति संबन्धः॥५८॥अवरोप्तव्यः उत्तारणीयः॥६०॥
इति हरिवंशे टीकायां द्विपञ्चाशतमोऽध्यायः॥ ५२॥

---

५३
त्रिपञ्चाशत्तमेऽध्याये कृतमंशावतारणम्।
देवोक्तैर्विष्णुनाऽऽदिष्टैर्यथायोग्यत उच्यते१
ते श्रुत्वा तदर्थकृत्यं पृथिव्याः प्रयोजनस्य साधकं कार्यम्॥ १॥ पार्थिवं पृथिवीहितं कार्यं प्रयोजनं कार्यम् अवश्यकर्तव्यम्॥ ८॥ अवरोहत अवतारं कुरुत। भावयन्तः पालयन्तः॥ १३॥ पार्थिवे पृथिवीस्थे वंशे पृथिव्यां यत् मया कृतं तच्छ्रूयतां कीदृशेन इमं संभ्रमं भूमेर्भयं विजानतेति संबन्धः॥ १४॥

---

१ ख. °वं पुण्यं प्रा°। २ ख. °लं महत्। वि°। ३ क. °लसंमतैः। ब°, ख. °लसंभवैः। ब°। ४ क. ख. ते स्म का°। ५ क. °न परिणाम्यते, ख. °न परिणाम्यता। ज°। ६ ख. तच्छ्रुत्वा पृ°। ७ ख. °वन्क्रियताम°। ८ ख. °न वा। य°। ९ ख. पर्वतैः शैलमुख्यैर्वा सा°। १० क. ख. °गामुखीभि°। ११ क. ख. °तं महत्। दे°। २१ क. ख. °थिव्यां सं°। १३ ख. °व्यां संभवमिदं श्रू°।

समुद्रेऽहं पुरा पूर्वं वेलामासाद्य पश्चिमाम् ।
आसे सार्धं तनूजेन कश्यपेन महात्मना ॥ १५
कथाभिः पूर्ववृत्ताभिर्लोकवेदानुगामिभिः ।
इतिवृत्तैश्च बहुभिः पुराणप्रभवैर्गुणैः ॥ १६
कुर्वतस्तु कथास्तास्ताः समुद्रः सह गङ्गया ।
समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतैः ॥ १७
स वीचिविषमां कुर्वन्गतिं वेगतरङ्गिणीम् ।
यादोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा १८
शंखमुक्तामलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः ।
युक्तश्चन्द्रमसा पूर्णः साभ्रगम्भीरनिःस्वनः॥१९
स मां परिभवन्नेव स्वां वेलां समतिक्रमन् ।
क्लेदयामास चपलैर्लावणैरम्बुविस्रवैः ॥ २०
तं च देशं व्यवसितः समुद्रोऽद्रिर्विमार्दितुम् ।
उक्तः संरब्धया वाचा
शान्तोऽसीति मया तदा ॥ २१
शान्तोऽसीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः
संहतोर्मितरङ्गौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन्
भूयश्चैव मया शप्तः समुद्रः सह गङ्गया ।
सकारणां मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया ॥
यस्मात्त्वं राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः ।
गच्छार्णव महीपालो राजैव त्वं भविष्यसि२४
तत्रापि सहजां लीलां धारयन्स्वेन तेजसा ।
भविष्यसि नृणां भर्ता भारतानां कुलोद्वहः २५
शान्तोऽसीति मयोक्तस्त्वं यच्चासि तनुतां गतः
सुतनुर्यशसा लोके शन्तनुस्त्वं भविष्यसि२६
इयमप्यायतापाङ्गी गंगा सर्वाङ्गशोभना ।
रूपिणी च सरिच्छ्रेष्ठा तत्र त्वामुपयास्यति

एवमुक्तस्तु मां क्षुब्धः
सोऽभिवीक्ष्यार्णवोऽब्रवीत् ।
मां प्रभो देवदेवानां
किमर्थं शप्तवानसि ॥ २८
अहं तव विधेयात्मा त्वत्कृतस्त्वत्परायणः ।
अशपोऽसदृशैर्वाक्यैरात्मजं मां किमात्मना
भगवंस्त्वत्प्रसादेन वेगात्पर्वणि वर्धितः ।
यद्यहं चालितो ब्रह्मन्कोऽत्र दोषो ममात्मनः ३०
क्षिप्ताभिः पवनैरद्भिः स्पृष्टो यद्यसि पर्वणि ।
अत्र मे किं नु भगवन्विद्यते शापकारणम् ३१
उद्धतैश्च महावातैः प्रवृद्धैश्च बलाहकैः ।
पर्वणा चेन्दुयुक्तेन त्रिभिः क्षुब्धोऽस्मि कारणैः
एवं यद्यपराद्धोऽहं कारणैस्त्वत्प्रकल्पितैः ।
क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्छापोऽयं विनिवर्त्यताम्
एवं मयि निरालम्बे शापाच्छिथिलतां गते
कारुण्यं कुरु देवेश प्रमाणं यद्यवेक्षसे ॥ ३४
अस्यास्तु देवगङ्गाया गां गतायास्त्वदाज्ञया ।
मम दोषात्सदोषायाः प्रसादं कर्तुमर्हसि ३५
तमहं श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमथाब्रवम् ।
अकारणज्ञं देवानां त्रस्तं शापानलेन तम् ॥३६
शान्तिं व्रज न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि महोदधे ।
शापेऽस्मिन्सरितां नाथ भविष्यं शृणु कारणम्
त्वं गच्छ भारते वंशे स्वं देहं स्वेन तेजसा ।
आधत्स्व सरितां नाथ
त्यक्त्वेमां सागरीं तनुम् ॥ ३८
महोदधे महीपालस्तत्र राजश्रिया वृतः ।
पालयंश्चतुरो वर्णांस्त्रस्यसे सलिलेश्वर ॥ ३९

तनूजेन पुत्रेण सह कथाभिः हेतुभूताभिः कथाप्रसङ्गनिमित्तम् आसे उपविष्टोऽभूवमिति द्वयोरन्वयः ॥१५॥ इतिवृत्तैरिति-हासैः गुणैर्गुणवाद्भिः ॥१६॥ समुद्रः मूर्तिमान् ॥१७॥ स्थावर-रूपेण विषमां गतिं कुर्वन् तोयवाससा तोयवत् श्वेतेन वाससा यादोगणाकारं विशिष्टं चित्रं यस्मिन् तेन ॥१८॥ चन्द्रमसा स्थावरस्वरूपस्य विषमगतिनिमित्तेन ॥ १९॥ शान्तोऽसीत्य-

शान्तेऽपि विरुद्धलक्षणया उपहासः ॥ २१ ॥ सकारणां भारावतारणनिमित्तवतीम् ॥ २३ ॥ देवदेवानां रुद्रादीनाम् ॥ २८ ॥ विधेयात्मा आज्ञाकारी अशपः शापं दत्तवानसि ॥ २९ ॥ प्रमाणं शरणागतोपेक्षायां दोषप्रतिपादकं वेदम् ॥ ३४ ॥ तेजसा त्यक्त्वेति संबन्धः । योगबलेन विभज्ये-त्यर्थः । आधत्स्व गर्भे इति शेषः ॥३८॥ तत्र वंशे ॥३९॥

१ क. °से सह त° । २ ख. °कवृत्तानुगा° । ३ ख. स वीचिं वि° । ४ क. ख. °लमणिभू° । ५ ख. °स्वां वेलामत्यतिक्रमत् । क्ले° । ६ ख. °द्रो हि प्रमार्दितुम् । उ° । ७ क. °लो राजा च त्वं भ° । ८ ख. °तां भरता° । ९ क. °लोद्भवः । १० ख. °के शान्त° । ११ क. °णी तु, ख. °णी वै स° । १२ ख. °भिगम्यार्ण° । १३ क. °न वेलाप° । १४ क. °र्धिता । तयाहं च° । १५ क. °मानघ । क्षि° । १६ क. ख. °वनेनाद्भिः स्पृ° । १७ क. तत्र मे । १८ ख. उद्धूतै° । १९ क. °वृतैश्च ब° । २० क, ख. °स्त्वत्प्रवर्तितैः । क्ष° । २१ ख. °वर्तताम् । ए° । २२ क, ख. अस्याश्च दे° । २३ क. ख. °यास्तवाज्ञ° । २४ ख. मद्दोषसमदोषायाः प्र° । २५ क. °स्मि महामते । शा° । २६ क. °च्छ भारतं वंशं स्वदे° ।

इयं च ते[1] सरिच्छ्रेष्ठा बिभ्रती रूप[2]मुत्तमम् ।
तत्का[3]लं रमणीयांगी गङ्गा परिचरिष्यति ४०
अनया सह जाह्नव्या मोदमानो ममाऽऽज्ञया
इमं सलिलसंक्लेदं विस्मरिष्यसि सागर ॥ ४१
त्वरतां[4] चैव कर्तव्यं त्वयेदं मम शासनम् ।
प्राजापत्येन विधिना गङ्गया सह सागर ४२
वसवः प्रच्युताः स्वर्गात्प्रविष्टाश्च रसातलम्
तेषामुत्पादनार्थाय त्वं मया विनियोजितः
अष्टौ तांजाह्नवी गर्भानपत्यार्थं दधात्वियम् ।
विभावसोस्तुल्यगुणान्सुराणां प्रीतिवर्धनान्
उत्पाद्य त्वं वसूञ्छीघ्रं कृत्वा कुरुकुलं महत् ।
प्रवेष्टा[5]ऽसि तनुं त्यक्त्वा पुनः सागर सागरीम्
एवमेतन्मया पूर्वं हितार्थं वः सुरोत्तमाः ।
भविष्यं पश्यतां भारं पृथिव्याः पार्थिवात्मकम्
तदे[6]ष शन्तनोर्वंशः पृथिव्यां रोपितो मया ।
वसवो ये[7] च गङ्गायामुत्पन्नास्त्रिदिवौकसः
अद्यापि भुवि गाङ्गेयस्तत्रैव वसुरष्टमः ।
सप्तेमे वसवः प्राप्ताः स एकः परिलम्बते ४८
द्वितीयायां स सृष्टायां द्वितीया शन्तनोस्तनुः
विचित्रवीर्यो द्युतिमानासीद्राजा प्रतापवान्
वैचित्र्यवीर्यौ द्वावे[8]व पार्थिवौ भुवि सांप्रतम्[9]
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विख्यातौ पुरुषर्षभौ ५०
तत्र पाण्डोः प्रिया धृष्टे[10] द्वे भार्ये संबभूवतुः[11] ।
शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोषोपमे तु[12] ते ५१
धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यैका तुल्यचा[13]रिणी ।
गान्धारी भुवि विख्याता भर्तुर्नित्यं व्रते स्थिता
तत्र वंशा विभज्यन्तां विपक्षाः पक्ष एव च ।
पुत्राणां हि तयो राज्ञोर्भविता विग्रहो महान्
तेषां विमर्दे दायाद्ये नृपाणां भविता क्षयः ।
युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद्भयम् ॥ ५४
सबलेषु नरेन्द्रेषु शान्तयस्त्वितरेतरम् ।
विविक्त[14]पुरराष्ट्रौघा क्षितिः शैथिल्यमेष्यति ५५
द्वापरस्य युगस्यान्ते मया दृष्टं पुरातनम् ।
क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण[15] मानवैः सह पार्थिवाः
तत्रावशिष्टान्मनुजान्सुप्तान्निशि विचेतसः ।
धक्ष्यते शङ्करस्यांशः पावकेनास्त्रतेजसा ॥ ५७
अन्तकप्रतिमे तस्मिन्निवृत्ते क्रूरकर्मणि ।
समाप्तमिदमा[16]ख्यास्ये तृतीयं द्वापरं युगम् ५८
महेश्वरांशेऽपसृते ततो माहेश्वरं युगम् ।
शिष्यं[17] प्रवर्तते पश्चाद्युगं दारुणदर्शनम् ॥ ५९ ॥
अधर्मप्रायपुरुषं स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम् ।
उत्सन्नसत्यसंयोगं वर्धितानृतसंचयम् ॥ ६०
महेश्वरं कुमारं च द्वौ च[18] देवौ समाश्रिताः ।
भविष्यन्ति नराः सर्वे लोके न स्थविरायुषः
तदेष निर्णयः श्रेष्ठः[19] पृथिव्यां पार्थिवान्तकः ।
अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत मा चिरम् ६२

धर्मस्यांश[20]स्तु कुन्त्यां वै
माद्र्यां च विनियुज्यताम् ।
विग्रहस्य कलिर्मूलं
गान्धार्यां विनियुज्यताम् ॥ ६३
एतौ पक्षौ भविष्यन्ति
राजानः कालचोदिताः ।
जातरागाः पृथिव्यर्थे
सर्वे संग्रामलालसाः

---

संक्लेदं संक्लेदनापराधप्राप्तं मानुषयोनिजं दुःखं विस्मरिष्यसि तत्रत्यसुखास्वादनेन ॥ ४१ ॥ प्राजापत्येन वैवाहिकेन ॥ ४२ ॥ विभावसोरग्नेः तुल्यगुणान् तद्वल्लोकप्रीतिकरान् ॥ ४४ ॥ तनुं मनुष्यशरीरम् ॥ ४५ ॥ परिलम्बते भुवं श्रयते ॥ ४८ ॥ सृष्टायां सञ्जातायां भार्यायां सत्यवतीसंज्ञायां द्वितीया भीष्मापेक्षया तनुः पुत्रः चित्राङ्गदस्य पूर्वमेव मृतत्वादगणना ॥ ४९ ॥ विविक्तानि विजनानि पुरादीनि तेषामोघो यस्यां सा विविक्तपुरराष्ट्रौघा शैथिल्यं निर्बलत्वम् ॥ ५५ ॥ शंकरस्यांशः अश्वत्थामा ॥ ५७ ॥ अन्तकप्रतिमे कल्पान्ततुल्ये ॥ ५८ ॥ महेश्वरांशे विष्ण्वंशे श्रीकृष्णेऽपसृते वैकुण्ठं गते सति माहेश्वरं रौद्रं युगं शिष्यं कलिः ॥५९॥ महेश्वरं रुद्रं कुमारं स्कन्दम् ॥६१॥ **धर्मस्येति** । धर्मपक्षीयाणां ग्रहणम् । कलिरिति तत्पराणां रक्षसाम् ॥६३॥

---

१ क. ख. ॰यं च त्वां स॰ । २ क. ख. ॰ती मानुषीं तनुम् । त॰ । ३ क. ख. तत्कालरम॰ । ४ ख. ॰रया चै॰ ५ ख. ॰प्रवेक्ष्यासि त॰ । ६ ख. तदैव शान्त॰ । ७ क. ख. ॰वो यत्र ग॰ । ८ ख. ॰वेतौ पा॰ । ९ क. ॰वि विश्रुतौ । धृ॰ । १० क. ॰या जुष्टे द्वे भा॰ । ११ क. ख. ॰र्ये यौवनस्थिते । शु॰ । १२ क. ॰मे भुवि । धृ॰ । १३ क. ख. ॰ल्यरूपिणी । गा॰ । १४ ख. विभक्तपु॰ । १५ क. ॰ण पार्थिवाः सह वाहनैः । यत्रा॰ । १६ क. ख. ॰ख्यानं तृ॰ । १७ क. ख. तिष्यं प्रवर्त्स्यते प॰ । १८ क. तु । १९ ख. प्रोक्तः । २० क. ख. ॰स्यांशोऽथ कु॰ ।

गच्छत्वियं वसुमती
स्वां योनिं लोकधारिणी।
सृष्टोऽयं नैष्ठिको राज्ञा-
मुपायो लोकविश्रुतः ॥६५॥
श्रुत्वा पितामहवचः सा जगाम यथागतम्।
पृथिवी सह कालेन वधाय पृथिवीक्षिताम् ६६
देवानचोदयद्ब्रह्मा निग्रहार्थं सुरद्विषाम्।
नरं चैव पुराणर्षिं शेषं च धरणीधरम् ॥६६॥
सनत्कुमारं साध्यांश्च सुरांश्चाग्निपुरोगमान्।
वरुणं च यमं चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा ॥६८॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ।
ततोऽशानवानि देवाः सर्व एवावतारयन् ६९
यथा ते कथितं पूर्वमंशावतरणं मया।
अयोनिजा योनिजाश्च ते देवाः पृथिवीतले॥
दैत्यदानवहन्तारः संभूताः पुरुषेश्वराः।
क्षीरिकावृक्षसंकाशा वज्रसंहननास्तथा ७१
नागायुतबलाः केचित्केचिदोघबलान्विताः।
गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः॥७२॥
गिरिशृङ्गप्रहर्तारः सर्वे परिघयोधिनः।
वृष्णिवंशसमुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ७३
कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः।
याज्ञिकानां समृद्धानां ब्राह्मणानां च योनिषु
सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रतपरायणाः।
सर्वर्धिगुणसंपन्ना यज्वानः पुण्यकर्मिणः ७५
आचालयेयुर्ये शैलान्क्रुद्धा भिन्द्युर्महीतलम्।
उत्पतेयुरथाकाशं क्षोभयेयुर्महोदधिम् ॥७६॥
एवमादिश्य तान्ब्रह्मा भूतभव्यभवत्प्रभुः।
नारायणे समावेश्य लोकाञ्शान्तिमुपागमत्
भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले।
प्रजानां वै हितार्थाय प्रभुः प्राणहितेश्वरः ७८
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः।
कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः ७९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि देवानामंशावतरणे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

## विष्णुं प्रति देवर्षेर्वाक्यम्।

## ५४

वैशम्पायन उवाच।
कृतकार्ये गते काले जगत्यां च यथानयम्।
अंशावतरणे वृत्ते सुराणां भारते कुले ॥१॥
भागेऽवतीर्णे धर्मस्य शक्रस्य पवनस्य च।
अश्विनोर्देवभिषजोर्भागे वै भास्करस्य च॥२॥
पूर्वमेवावनिगते भागे देवपुरोधसः।
वसूनामष्टमे भागे प्रागेव धरणीं गते ॥३॥

---

योनिः स्थानं निष्ठा मरणं तदर्थः नैष्ठिकः ॥ ६५ ॥ पूर्वम् आदिपर्वणि ॥ ७० ॥ क्षीरिकावृक्षः राजवृक्षः तद्वत्पुष्टाः वज्रसंहननाः दृढाङ्गाः ॥७१॥ ओघबलाः महाप्रवाहबलाः ॥ ७२ ॥ **नारायणे इति।** भगवन् लोकान् पाहीत्युक्त्वेत्यर्थः ॥ ७७ ॥ हितेश्वरः हिते समर्थः ॥ ७८ ॥ इति हरिवंशे टीकायां त्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

**चतुःपञ्चाशकेऽध्यायेऽवतारायास्य भूतले श्रीविष्णुं प्रति देवर्षेर्वाक्यमद्भुतमुच्यते १**

यथानयं यथान्यायम् अंशावतरणे वृत्ते सति नारदः प्रत्यदृश्यतेति षष्ठस्थेनान्वयः ॥ १ ॥ धर्मस्य भागे युधिष्ठिरे शक्रस्यार्जुने पवनस्य भीमसेने अश्विनोर्नकुलसहदेवरूपे भागे भास्करस्य कर्णे ॥ २ ॥ देवपुरोधसो बृहस्पतेर्द्रोणे वसूनामष्टमे भीष्मे ॥ ३ ॥

---

१ क. °कभावनः। श्रु°। २ क. ख. °हार्थे सु°। ३ ख. °श्च देवानाग्नि°। ४ क. °णं धनदं चै°। ख. °णं च वसूंश्चैव सू°। ५ ख. °न्द्रान् विश्वांस्त°। ६ क. °वाः सर्वा नेवावतारयन्। य°। ७ ख. °रणे मया। अयो°। ८ ख. °शे च ये दे°। ९ ख. याजकानां स°। १० क. ख. °येयुः शैलास्ते कु°। ११ ख. °हीतलम्। प्र°। १२ ख. °णध-नेश्व°।

मृत्योर्भागे क्षितिगते कलेर्भागे तथैव च ।
भागे शुक्रस्य सोमस्य वरुणस्य च गां गते ४
शंकरस्य गते भागे मित्रस्य धनदस्य च ।
गन्धर्वोरगयक्षाणां भागांशेषु गतेषु च ॥ ५
भागेष्वेतेषु गगनादवतीर्णेषु मेदिनीम् ।
तिष्ठन्नारायणस्यांशो नारदः समदृश्यत ॥ ६
ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः ।
सव्यापवृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् ॥७॥
चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषितः ।
वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ।
दण्डी कमण्डलुधरः साक्षाच्छक्र इवापरः ९
भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां ग्रहोपमः ।
गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता प्रथमर्त्विजाम् ।
महर्षिर्विग्रहरुचिर्विद्वान्गान्धर्वकोविदः ॥ १०
वैरिकेलिकिलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः ।
देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता महामुनिः ११
स नारदोऽथ ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ।
स्थितो देवसभामध्ये संरब्धो विष्णुमब्रवीत्
अंशावतरणं विष्णोर्यदिदं त्रिदशैः कृतम् ।
क्षयार्थं पृथिवीन्द्राणां सर्वमेतदकारणम् १३
यदेतत्पार्थिवं क्षत्रं स्थितं त्वयि यदीश्वर ।
नृनारायणयुक्तोऽयं कार्यार्थः प्रतिभाति मे १४
न युक्तं जानता देव त्वया तत्त्वार्थदर्शिना ।
देवदेव पृथिव्यर्थे प्रयोक्तुं कार्यमीदृशम् ॥ १५
त्वं हि चक्षुष्मतां चक्षुः श्लाघ्यः प्रभवतां प्रभुः
श्रेष्ठो योगवतां योगी गतिर्गतिमतामपि॥ १६
देवभागाग्गतान्दृष्ट्वा किं त्वं सर्वाश्रयो विभुः
वसुंधरायाः साह्यार्थमंशं स्वं नानुयुञ्जसे १७
त्वया सनाथा देवांशा-
स्त्वन्मयास्त्वत्परायणाः ।
जगत्यां संचरिष्यन्ति
कार्यात्कार्यान्तरं गताः ॥ १८
तदहं त्वरया विष्णो प्राप्तः सुरसभामिमाम् ।
तव संचोदनार्थं वै शृणु चाप्यत्र कारणम् १९
ये त्वया निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ।
तेषां शृणु गतिं विष्णो ये गताः पृथिवीतलम्
पुरी पृथिव्यां मुदिता मथुरा नामतः श्रुता ।
निविष्टा यमुनातीरे स्फीता जनपदायुता ॥
मधुर्नाम महानासीद्दानवो युधि दुर्जयः ।
त्रासनः सर्वभूतानां बलेन महताऽन्वितः २२
तस्य तत्र महच्चासीन्महापादपसंकुलम् ।
घोरं मधुवनं नाम यत्रासौ न्यवसत्पुरा ॥२३
तस्य पुत्रो महानासील्लवणो नाम दानवः ।
त्रासनः सर्वभूतानां महाबलपराक्रमः ॥ २४
स तत्र दानवः क्रीडन्वर्षपूगाननेकशः ।
स दैवतगणाल्लोँकानुद्रासयति दर्पितः ॥ २५
अयोध्यायामयोध्यायां रामे दाशरथौ स्थिते
राज्यं शासति धर्मज्ञे राक्षसानां भयावहे २६

मृत्योर्यमस्य विदुरे कलेर्दुर्योधने सोमस्याभिमन्यौ शुक्रस्य भूरिश्रवसि वरुणस्य श्रुतायुधे पर्णाशातनये ॥ ४ ॥ शङ्करस्याश्वत्थाम्नि **मित्रस्य कणिके*** धनदस्य धृतराष्ट्रे गन्धर्वादीनां देवकोग्रसेनदुःशासनादिषु ॥ ५ ॥ अंशे देवतापक्षे इत्यर्थः । तिष्ठन् स्थितिमान् ॥ ६ ॥ सव्यापवृत्तम् अप्रदक्षिणवेष्टितम् ॥ ७ ॥ ग्रहोपमः सूर्यादिसमः । धूमकेत्वादिसम उत्पातहेतुत्वादिति वा ॥ १० ॥ वैरिणां केल्या संग्रामेण किलः क्रीडा यस्य स वैरिकेलिकिलः "किल शौक्ल्ये क्रीडायां च" इति धातुरिति प्राञ्चः । "लीलाकेलिकिला" इति तु विश्वः ॥ ११ ॥ अकारणं कारणेन त्वया हीनत्वान्निष्फलम् ॥ १३ ॥ यत् यतः यत् क्षत्रं युद्धं तत् त्वयि स्थितं त्वदधीनम् । अतः कार्यार्थः प्रयोजनसिद्धिः नृनारायणाभ्यां युक्त एव मे प्रतिभाति ताभ्यां विना नेत्यर्थः ॥ १४ ॥ ईदृशं नृनारायणहीनम् ॥ १५ ॥ अत्र हेतुमाह-**त्वं हीति** । त्वाम् अन्तर्यामिणं विना सर्वेऽप्येते निरर्थका इत्यर्थः ॥ १६ ॥ अनुयुञ्जसे न नियोजयसि ॥ १७ ॥ अयोध्यायां योद्धुमयोग्यायाम् ॥ २६ ॥

१ ख. °गे सोमस्य च तथा वरु° । २ क. °तेष्वथ । भा° । , ख. °तेष्वपि । भा° । ३ क. °नाद्गतेषु धरणीतलम् । ति° । ४ क. ख. °क्मभूषणः । वी° । ५ ख. °णां गुह्यो प° । ६ क. ख. °गान्धर्ववेदवित् । ७ ख. वैरकेलि° । ८ ख. °क्ता मुनिः परः । स° । ९ क. ख. °याय पृथिवीशानां स° । १० ख. °त्रं कृतं त्वं° । ११ ख. °यि दिवीश्व° । १२ क. ख. °स्त्वत्प्रचोदिताः । ज° । १३ क. °त्यां संभविष्य°, ख. °त्यां संतरिष्य° । १४ क. ख. °नार्थाय श्रु° । १५ क. °मनामतः । नि° । १६ क. ख. °हद्धर्यासी° । १७ ख. °नां बले महति तस्थिवान् । स त° । , क. °नां बलेन महता विभुः । स त° । * कणिकस्यायं समुल्लेखः पूर्ववर्तिनीमादिपर्वस्थां जम्बूककथामनुस्मारयति ।

स दानवो बलश्लाघी घोरं वनमुपाश्रितः ।
प्रेषयामास रामाय दूतं परुषवादिनम् ॥ २७
विषयासन्नभूतोऽस्मि तव राम रिपुश्च ह ।
न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम् ॥
राज्ञा राज्यव्रतस्थेन प्रजानां हितकाम्यया ।
जेतव्या रिपवः सर्वे स्फीतं विषयमिच्छता ॥
अभिषेकार्द्रकेशेन राज्ञा रञ्जनकाम्यया ।
जेतव्यानीन्द्रियाण्यादौ तज्जये हि ध्रुवो जयः ॥
सम्यग्वर्तितुकामस्य विशेषेण महीपतेः ।
नयानामुपदेशेन नास्ति लोकसमो गुरुः ३१
व्यसनेषु जघन्यस्य धर्ममध्यस्य धीमतः ।
फलज्येष्ठस्य नृपतेर्नास्ति सामन्तजं भयम् ॥
सहजैर्बाध्यते सर्वः प्रवृद्धैरिन्द्रियारिभिः ।
अमित्राणां प्रियकरैर्मोहैरधृतिरीश्वरः ॥ ३३
यत्त्वया स्त्रीकृते मोहात्सगणो रावणो हतः ।
नैतदौपयिकं मन्ये महद्वै कर्म कुत्सितम् ॥३४
वनवासप्रवृत्तेन यत्त्वया व्रतशालिना ।
प्रहृतं राक्षसानीके नैव दृष्टः सतां विधिः ३५
सतामक्रोधजो धर्मः शुभां नयति सद्गतिम् ।
यत्त्वया निहता मोहाद्दूषिताश्चाश्रमौकसः ॥
स एष रावणो धन्यो यस्त्वया व्रतचारिणा
स्त्रीनिमित्ते हतो युद्धे ग्राम्यान्धर्मानवेक्षता
यदि ते निहतः संख्ये दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ।
युध्यस्वाद्य मया सार्धं मृधे यद्यसि वीर्यवान्
तस्य दूतस्य तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्त्वेववादिनः
धैर्यादसंभ्रान्तवपुः सस्मितं राघवोऽब्रवीत ॥

असदेतत्त्वया दूत
भाषितं तस्य गौरवात् ।
यन्मां क्षिपसि दोषेण
वेदाऽऽत्मानं च सुस्थिरम् ॥ ४०
यद्यहं तत्पथे मूढो यदि वा रावणो हतः ।
यदि वा मे हृता भार्या का तत्र परिदेवना ॥
न वाङ्मात्रेण दुष्यन्ति
साधवः सत्पथे स्थिताः ।
जागर्ति च यथा देवः
सदा सत्स्वितरेषु च ॥ ४२
कृतं दूतेन यत्कार्यं गच्छ त्वं दूत मा चिरम् ।
नात्मश्लाघिषु नीचेषु प्रहरन्तीह मद्विधाः॥४३
अयं ममानुजो भ्राता शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ।
तस्य दैत्यस्य दुर्बुद्धेर्मृधे प्रतिकरिष्यति ॥ ४४
एवमुक्तः स दूतस्तु ययौ सौमित्रिणा सह ।
अनुज्ञातो नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ॥ ४५
स शीघ्रयानः संप्राप्तस्तद्दानवपुरं महत् ।
चक्रे निवेशं सौमित्रिर्वनान्ते युद्धलालसः ४६
ततो दूतस्य वचनात्स दैत्यः क्रोधमूर्च्छितः ।
पृष्ठतस्तद्वनं कृत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ४७
तद्युद्धमभवद्घोरं सौमित्रेर्दानवस्य च ।
उभयोरेव बलिनोः शूरयो रणमूर्धनि ॥ ४८
तौ शरैः साधु निशितैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाऽप्युपजग्मतुः ४९
अथ सौमित्रिणा बाणैः पीडितो दानवो युधि
ततः स शूलरहितः पर्यहीयत दानवः ॥ ५०

---

विषयस्य त्वद्देशस्य आसन्नभूतः सन्निहितोऽस्मि रिपुश्च ह प्रसिद्धं तवास्मि । सामन्तं समीपदेशे स्थितं रिपुं सामन्तम् ॥ २८ ॥ **सम्यगिति** । लोकत एव लौकिकं हिताहितं ज्ञातुं शक्यते न तत्र शास्त्रापेक्षास्तीति भावः ॥३१॥ जघन्यस्य अवरस्य दूतमृगयादौ आदरहीनस्येत्यर्थः ॥३२॥ मोहैर्मोहहेतुभिः अधृतिरधीर ईश्वरो वा ॥ ३३ ॥ औपयिकं युक्तिमत् महदपि निन्द्यमेवेत्यर्थः ॥३४॥ निन्द्यत्वमेवाह— **वनेति** ॥ ३५ ॥ त्वया व्रतवतापि यत् मोहात् निहताः रावणादयः तेन आश्रमौकसो व्रतिनो दूषिताः त्वदीयं व्रतोल्लंघनं दृष्ट्वाऽन्येऽपि व्रतिनो व्रतं लंघयिष्यन्ति अतो दुराचारप्रवर्तकोऽसीति भावः ॥ ३६ ॥ तदेवाह— **स इति** ॥ ३७ ॥ परिदेवना आक्रन्दनम् ॥ ४१ ॥ इतरेषु असत्सु ॥ ४२ ॥ सौमित्रिणा शत्रुघ्नेन सह ॥ ४५ ॥ निवेशं वसतिस्थानम् ॥ ४६ ॥

---

१ ख. °भूतो हि त° । २ क. ख. °नां शुभमिच्छता । जे° । ३ क. ख. बलज्ये° । ४ ख. प्रवृद्धैर्हन्यते सर्वं सहजैरिन्द्रि° । ५ ख. °या श्रीकृते मो° । ६ ख. °हतो मो° । ७ क. ख, स एव रा° । ८ क. ख. °न्यो यत्त्वया व्र° । ९क. °या व्रतशालिना। स्त्री° १० क. ख. ते स हतः सं° । ११ ख. °तं रूक्षवा° । १२ख. °स्थितम् । य° । १३ क. °थादेवं स° । १४ ख. तदा मधुवनं महत् । च° । १५ जघन्ये तद्व° ।

स गृहीत्वाऽङ्कुशं चैव देवैर्दत्तवरं रणे ।
कर्षणं सर्वभूतानां लवणो विररास ह ॥ ५१
शिरोधरायां जग्राह सोऽङ्कुशेन चकर्ष ह ।
प्रवेशयितुमारब्धो लवणो राघवानुजम् ॥५२॥
स रुक्मत्सरुमुद्यम्य शत्रुघ्नः खड्गमुत्तमम् ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन लवणस्य महामृधे ॥५३॥
स हत्वा दानवं संख्ये सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
तद्वनं तस्य दैत्यस्य चिच्छेदास्त्रेण बुद्धिमान्
छित्त्वा वनं तत्सौमित्रि-
र्निवेशं सोऽभ्यरोचयत् ।
भवाय तस्य देशस्य
पुर्याः परमधर्मवित् ॥ ५५
तस्मिन्मधुवनस्थाने मथुरा नाम सा पुरी ।
शत्रुघ्नेन पुरा सृष्टा हत्वा तं दानवं रणे ५६
सा पुरी परमोदारा साट्टप्राकारतोरणा ।
स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना ५७
उद्यानवनसम्पन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता ।
प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला ५८
चयाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला ।
सुसंवृतद्वारवती चत्वरोद्गारहासिनी ॥ ५९
अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला ।
अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ६०
पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता ।
क्षेत्राणि सस्यवन्त्यस्याः काले देवश्च वर्षति
नरनारीप्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते ।
निविष्टविषयश्चैव शूरसेनस्ततोऽभवत् ॥ ६२
तस्यां पुर्यां महावीर्यो राजा भोजकुलोद्वहः ।
उग्रसेन इति ख्यातो महासेनपराक्रमः ॥ ६३
तस्य पुत्रत्वमापन्नो योऽसौ विष्णो त्वया हतः
कालनेमिर्महादैत्यः संग्रामे तारकामये ॥ ६४
कंसो नाम विशालाक्षो भोजवंशविवर्धनः ।
राजा पृथिव्यां विख्यातः सिंहविस्पष्टविक्रमः
राज्ञां भयङ्करो घोरः शङ्कनीयो महीक्षिताम् ।
भयदः सर्वभूतानां सत्पथाद्बाह्यतां गतः ॥६६
दारुणाभिनिवेशेन दारुणेनान्तरात्मना ।
युक्तस्तेनैव दर्पेण प्रजानां रोमहर्षणः ॥ ६७
न राजधर्माभिरतो नात्मपक्षसुखावहः ।
नात्मराज्ये प्रियकरश्चण्डः कररुचिः सदा ६८
स कंसस्तत्र संभूतस्त्वया युद्धे पराजितः ।
क्रव्यादो बाधते लोकानासुरेणान्तरात्मना ॥
योऽप्यसौ हयविक्रान्तो हयग्रीव इति स्मृतः
केशी नाम हयो जातः स तस्यैव जघन्यजः
स दुष्टो हेषितपटुः केसरी निरवग्रहः ।
वृन्दावने वसत्येको नृणां मांसानि भक्षयन्
अरिष्टो बलिपुत्रश्च ककुद्मी वृषरूपधृक् ।
गवामरित्वमापन्नः कामरूपी महासुरः ॥ ७२
रिष्टो नाम दितेः पुत्रो वरिष्ठो दानवेषु यः ।
स कुञ्जरत्वमापन्नो दैत्यः कंसस्य वाहनः ७३
लम्बो नामेति विख्यातो योऽसौ दैत्येषु दर्पितः
प्रलम्बो नाम दैत्योऽसौ वटं भाण्डीरमाश्रितः
खर इत्युच्यते दैत्यो धेनुकः सोऽसुरोत्तमः ।
घोरं तालवनं दैत्यश्चरत्युद्वासयन्प्रजाः ॥ ७५
वाराहश्च किशोरश्च दानवौ यौ महाबलौ ।
मल्लौ रङ्गगतौ तौ तु जातौ चाणूरमुष्टिकौ ७६

---

विररास विशिष्टं शब्दं चकार ॥ ५१ ॥ स शत्रुघ्नः रुक्मत्सरुं स्वर्णमुष्टिम् ॥ ५३ ॥ निवेशं निवासस्थानं नगरमिति यावत् । भवाय वृद्धये पुर्या नगरस्य निर्माणे यः परमो धर्मस्तद्वित् ॥ ५५ ॥ अट्टाः चतुष्काः ॥५७॥ निविष्टविषयोऽध्यासितमथुराप्रदेशः ॥ ६२ ॥ महासेनपराक्रमः कार्तिकेयतुल्यः ॥ ६३ ॥ अभिनिवेशेन प्रकृत्या ॥६७॥ क्रव्यादः मांसादो राक्षस इव ॥ ६९ ॥ जघन्य इव अनुज इव जातः ॥ ७० ॥ निरवग्रहो निरर्गलः ॥ ७१ ॥

---

१ ख. °णो विननाद ह । शि° । २ ख. °र्ष च । प्र° । ३ ख. अंकुशं चैव विच्छेद दैत्यस्य च शिरो महत् । स ह° । ४ क. ख. °र्मित्रनंदनः । त° । ५ क. वनं छित्वा तु सौमि° । ६ ख. °रा सुवप्रद्वारतो° । ७ ख. °द्धभवनाकुला । उद्या° । ८ क. ख. °नसंच्छन्ना सु° । ९ क. ख. °रसंपन्ना परिखार्गलमे° । १० क. ख. °रमुखी च° । ११ क. °णि रसवन्त्यस्यां का° । १२ ख. °नवनारीसमु° । १३ ख. °शालांसो भो° । १४ क. ख. °राज्यप्रिय° । १५ क °ण्डः कालरु° । १६ ख. °भूतो यस्ते यु° । १७ क. ख. °तः कंसस्यैव ज° । १८ क. स दृप्तो हे° । १९ ख. °पवान् । ग° । २० क. ख. कुंजरत्वमगाद्दैत्यः कंसस्यैव स वा° । २१ क. °सौ दैत्यः प्रद° ।, ख. °षु दारुणः । प्र° । २२ ख. °म भूत्वाऽसौ व° । २३ ख. घोरस्ता° । २४ °श्चरत्युत्सादयन् प्र° । २५ ख. °श्च यौ तौ दानवसत्तमौ । म° । २६ ख. °गतौ तत्र जा° ।

यौ तौ मयश्च तारश्च दानवौ दानवान्तक ।
प्राग्ज्योतिषे तौ भौमस्य नरकस्य पुरे रतौ[1] ७७
एते दैत्या विनिहतास्त्वया विष्णो निराकृताः
मानुषं[2] वपुरास्थाय बाधन्ते भुवि मानुषान्[3] ७८
त्वत्कथाद्वेषिणः सर्वे त्वद्भक्तान्[4]घ्नन्ति मानुषान्[5]
तव प्रसादात्तेषां वै दानवानां क्षयो भवेत् ७९
त्वत्तस्ते[6] बिभ्यति दिवि त्वत्तो बिभ्यति[7] सागरे
पृथिव्यां तव[8] बिभ्यन्ति नान्यतस्तु कदाचन
दुर्वृत्तस्य हतस्यापि त्वया नान्येन श्रीधर ।
दिवश्च्युतस्य दैत्यस्य गतिर्भवति मेदिनी ८१
व्युत्थितस्य च मेदिन्यां हतस्य नृशरीरिणः
दुर्लभं स्वर्गगमनं त्वयि जाग्रति केशव[9] ८२
तदागच्छ स्वयं विष्णो गच्छामः पृथिवीतलम्
दानवानां विनाशाय विसृजात्मानमात्मना
मूर्तयो हि तवाव्यक्ता दृश्यादृश्याः सुरोत्तमैः
तासु सृष्टास्त्वया देवाः संभविष्यन्ति भूतले
तवावतरणे विष्णो कंसः स[11] विनशिष्यति ।
सेत्स्यते च स कार्यार्थो यस्यार्थे भूमिरागता
त्वं भारते कार्यगुरुस्त्वं चक्षुस्त्वं परायणम्[12] ।
तदागच्छ हृषीकेश क्षितौ ताञ्जहि दानवान्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि नारदवाक्ये
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## ब्रह्मवाक्यम् ।

## ५५

वैशम्पायन उवाच ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मितं मधुसूदनः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं वरेण्यः[13] प्रभुरीश्वरः १
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद ।
तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य श्रूयतामुत्तरं वचः ॥ २ ॥
विदिता देहिनो जाता मयैते भुवि दानवाः
यां च यस्तनुमादाय[14] दैत्यः पुष्यति विग्रहम् ३
जानामि कंसं[15] संभूतमुग्रसेनसुतं भुवि ।
केशिनं चापि[16] जानामि दैत्यं तुरंगविग्रहम्[17] ४

---

तव त्वत्तः बिभ्यन्तीति झस्यान्तादेशः छान्दसः ८० नान्येन अनन्येन सर्वेषामन्तरात्मनेत्यर्थः । त्वया हतस्य दुर्वृत्तस्यापि त्वमेव गतिरिति भावः । इतरस्य तु दिवश्च्युतस्य मेदिनी गतिस्तत्राप्यन्येन हतस्य व्युत्थितस्य दुर्वृत्तस्य स्वर्गतिरेव सर्ववीरसाधारणापि दुर्लभा किमुत त्वत्प्राप्तिः यतस्त्वयि जाग्रति यमरूपेण पातयितुं सावधाने सतीति श्लोकद्वयार्थः । तस्मान्महाकारुणिकस्त्वं तादृशान् कंसादीन् हन्तुं भूमावतारं कुरुष्वेति भावः ॥ ८१ ॥ एतदेवाह—**तदित्यादिना** ॥ ८३ ॥ अव्यक्ताः नृणां द्रष्टुम् अस्पष्टाः सुरोत्तमैरपि विष्णुत्वेन दृश्या अपि परब्रह्मभावेनादृश्यास्ते मूर्तयः शरीराणि । देवास्तु तासु दृश्यास्वेव मूर्तिषु संभविष्यन्ति ॥ ८४ ॥ भारते भारतवर्षे कार्यगुरुः गुरु महत्कार्यमस्यास्तीति कार्यगुरुः । आहिताग्न्यादित्वात्पूर्वनिपातः । चक्षुरिव सत्पथप्रकाशकः ॥ ८६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे टीकायां चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

**पञ्चपञ्चाशकेऽध्याये**
**नारदस्य च सान्त्वनम् ।**
**ब्रह्मणोक्तं विभोर्जन्म**
**स्थानं चापि निरूप्यते ॥ १ ॥**

नारदस्य वरेण्यः भोगमोक्षकामैर्वरणीयः ॥ १ ॥ पुष्यति पुष्णाति विग्रहं वैरम् ॥ ३ ॥

---

१ ख. °रे गतौ । ए° । २ क. ख. °नुषीं तनुमास्था° । ३ ख. °वि मानवान्° । ४ क. °वैं त्वन्मयान्घ्न° । ५ °न्ति मानवान् । त° । ६ क. °स्ते दिवि बिभ्यन्ति त्व° । ७ क. °भ्यन्ति सा° । ८ ख. °व्यां बिभ्यति त्वत्तो ना° । ९ ख. °ति माधव । त° । १० क. तास्त्वादिष्टास्त्व° । ११ ख. °सः स न भविष्य° । १२ क. ख. °यणः । त° । १३ ख. °क्यं देवानां प्र° । १४ ख. °नुमास्था° । १५ क. °मि कंससं° । १६ ख. °नं चैव जा° । १७ क. ख. °गरूपिणम् । ना° ।

नागं कुवलयापीडं मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ।
अरिष्टं[1] चापि जानामि दैत्यं वृषभरूपिणम् ५
विदितो मे खरश्चैव प्रलम्बश्च महासुरः।
सा च मे विदिता विप्र पूतना दुहिता बलेः
कालियं[2] चापि जानामि यमुनाह्रदगोचरम्।
वैनतेयभयाद्यस्तु यमुनाह्रदमाविशत् ॥७॥
विदितो मे जरासन्धः
स्थितो मूर्ध्नि महीक्षिताम्।
प्राग्ज्योतिषपुरे[3] वापि
नरकं साधु तर्कये ॥८॥
मानुषे पार्थिवे लोके मानुषत्वमुपागतम्। *
बाणं च शोणितपुरे गुहप्रतिमतेजसम् ॥९॥
दृप्तं बाहुसहस्रेण देवैरपि सुदुर्जयम्।
मय्यासक्तां च जानामि भारतीं महतीं धुरम्
सर्वं तच्च विजानामि यथा या[4]स्यन्ति ते नृपाः
क्षयो भुवि मया दृष्टः शक्रलोके च सत्क्रिया
ए[5]षां पुरुषदेहानामपरावृत्त[6]देहिनाम् ॥११॥
संप्रवेक्ष्याम्यहं योगमात्मनश्च[7] परस्य च।
संप्राप्य पार्थिवं लोकं मानुषत्वमुपागतः १२
कंसादींश्चापि तान्सर्वा-
न्वधिष्यामि महासुरान्।
तेन तेन विधानेन
येन यः शान्तिमेष्यति ॥१३॥
अनुप्रविश्य योगेन तास्ता हि गतयो मया।
अमीषां हि सुरेन्द्राणां हन्तव्या रिपवो युधि
जगत्यर्थे कृतो योऽयमंशोत्सर्गो दिवौकसैः।
सुरदेवर्षिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम ॥१५॥

विनिश्चयो हि प्रागेव नारदार्थं कृतो मया।
निवासं नतु[10] मे ब्रह्मन्विदधातु पितामहः॥१६॥
यत्र देशे यथा जातो येन वेषेण वा वसन्।
तानहं समरे हन्यां तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१७॥
ब्रह्मोवाच।
नारायणेमं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो।
भुवि यस्ते जनयिता जननी च भविष्यति
यत्र त्वं च महाबाहो जातः कुलकरो भुवि।
यादवानां[11] महद्वंशमखिलं धारयिष्यसि ॥१९॥
तांश्चासुरान्समु[12]त्पाट्य
वंशं कृत्वाऽऽत्मनो महत्
स्थापयिष्यसि मर्यादां
नृणां[13] तन्मे निशामय ॥२०॥
पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः।
जहार यज्ञिया गा वै पयोदा[14]स्तु महामखे २१
अदितिः सु[15]रभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु।
प्रदीयमाना गास्तास्तु नैच्छ[16]तां वरुणस्य वै[17]
ततो मां वरुणोऽभ्येत्य
प्रणम्य शिरसा ततः।
उवाच भगवन्गावो
गुरुणा मे हृता इति ॥२३॥
कृतकार्यो[18] हि गा[19]स्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः
अन्ववर्तत भार्ये द्वे अदि[20]तिं सुरभिं तथा ॥२४॥
मम ता[21] ह्यक्षया गावो दिव्याः कामदु[22]हः प्रभो
चरन्ति सागरान्सर्वान्रक्षिताः स्वेन तेजसा
कस्ता धर्षयितुं शक्तो मम गाः कश्यपादृते
अक्षयं या क्षरन्त्यग्र्यं पयो देवामृतोपमम्२६

---

**क्षय इति**। एषां कंसादीनां भुवि क्षयः शक्रलोकसत्क्रिया च मया कारुणिकेन दृष्टा आलोचितास्त्येव। अपरावृत्तः पुनर्भुवमप्रविष्टो देही प्राणो येषां तेषाम् ॥११॥ योगम् उद्यमं प्रवेक्ष्यामि अन्तर्यामितया बहिर्यामितया च उत्तम्भयामि। पार्थिवं पृथिवीविकारं लोकं देहम् ॥१२॥ गतयोऽन्तर्द्धानादयः हन्तव्याः रिपवश्च हन्तव्याः॥१४॥ अंशोत्सर्गः अंशेनावतरणम्। दिवौकसैरिति टच् आर्षः ॥ १५ ॥ समुत्पाट्य उन्मूल्य महत् माहात्म्यं यश इति यावत् ॥ २० ॥ मखे मखार्थम् ॥ २१ ॥ प्रदीयमानाः मह्यं कश्यपेन प्रत्यर्प्यमाणाः ॥ २२ ॥ गुरुणा पित्रा कश्यपेन ॥ २३ ॥ नानुजानाति न प्रत्यर्पयति ॥ २४ ॥

---

१ क. ख. °ष्टं चैव जा° । २ क. °यं चैव जा° । ३ ख. °रे चापि न° । *एतत् श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । ४ क. °था योत्स्यन्ति ते नृ° । ५ ख. तेषां पु° । ६ ख. °रावृत्तिवर्तिना° । ७ ख. °नश्चाप° । ८ ख. °प्य मानुषं लो° । ९ ख. °र्गो महात्मभिः। सु° । १० ख. °सं तत्र मे ब्रह्मा वि° । ११ क. °नां महावं° । १२ ख. °मुत्साद्य वं° । १३ ख. °दां यथा त° । १४ ख. °दाश्च म° । १५ क. °रभिश्चोभे द्वे भा° । १६ क. °स्तु नेच्छेतां व° । १७ ख. °स्य तु। त° । १८ क. °र्योऽपि गास्ताश्च ना° । १९ ख. °स्तात ना° । २० ख. °तिं सुरभी ततः। म° २१ क. ता अक्ष° । २२ क. ख. °मदुघाः प्र।

प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन्गुरुर्वा यदि वेतरः ।
त्वया नियम्याः सर्वे वै त्वं हि नः परमा गतिः
यदि प्रभवतां दण्डो लोके कार्यमजानताम्
न विद्यते लोकगुरोर्न स्युर्वै लोकसेतवः २८
यथा वास्तु तथा वास्तु कर्तव्ये भगवान्प्रभुः।
मम गावः प्रदीयन्तां ततो गन्तास्मि सागरम्
या आत्मदेवता गावो या गावः सत्त्वमव्ययम्
लोकानां त्वत्प्रवृत्तानामेकं गोब्राह्मणं स्मृतम्
त्रातव्याः प्रथमं गाव-
स्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् ।
गोब्राह्मणपरित्राणे
परित्रातं जगद्भवेत् ३१॥
इत्यम्बुपतिना प्रोक्तो वरुणेनाहमच्युत ।
गवां कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजम् ३२
येनांशेन हृता गावः कश्यपेन महर्षिणा ।
स तेनांशेन जगति गत्वा गोपत्वमेष्यति ॥
या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च सुरारणिः ।
तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह यास्यतः ॥
ताभ्यां च सह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते
स तस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपमः ॥
वसुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले ।
गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ॥३६॥
तत्रासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः ।
तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते ३७
देवकी रोहिणी चेमे वसुदेवस्य धीमतः ।
सुरभी रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत्*
तत्र त्वं शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षणः ।
वर्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा ॥ ३९
छादयित्वात्मनात्मानं मायया योगरूपया
तत्रावतर लोकानां भवाय मधुसूदन ॥४०॥
जयाशीर्वचनैस्त्वैते वर्धयन्ति दिवौकसः॥४१
आत्मानमात्मना हि त्वमवतार्य महीतले ।
देवकीं रोहिणीं चैव गर्भाभ्यां परितोषय ।
गोपकन्यासहस्राणि रमयंश्चर मेदिनीम् ॥४२
गाश्च ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावतः ।
वनमालापरिक्षिप्तं धन्या द्रक्ष्यन्ति ते वपुः
विष्णौ पद्मपलाशाक्षे गोपालवसतिं गते ।
बाले त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेष्यति
त्वद्भक्ताः पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगाः ।
गोषु गोपा भविष्यन्ति सहायाः सततं तव ।
वने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावतः ४५
मज्जतो यमुनायां च रतिं प्राप्स्यन्ति ते त्वयि
जीवितं वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम् ४६
यस्त्वया तात इत्युक्तः स पुत्र इति वक्ष्यति।
अथवा कस्य पुत्रत्वं गच्छेथाः कश्यपादृते४७
का च धारयितुं शक्ता
त्वां विष्णो अदितिं विना ।
योगेनात्मसमुत्थेन
गच्छ त्वं विजयाय वै ।
वयमप्यालयान्स्वान्स्वा-
न्गच्छामो मधुसूदन ॥४८॥

व्युत्थितस्त्यक्तमर्यादः ॥ २७ ॥ सेतवो मर्यादाः ॥ २८ ॥ कर्तव्ये सर्वस्मिन् कार्ये प्रदीयन्तां दापनीयास्त्वयेत्यर्थः ॥ २९ ॥ आत्मा ब्रह्मैव देवता यासाम् ॥ ३० ॥ उत्सृजम् उदसृजम् ॥ ३२ ॥ कश्यपस्य एकोंऽशो नन्दोऽपरो वसुदेव इत्याशयेनाह—**येनांशेनेति** । गोपत्वं नन्दत्वम् ॥ ३३ ॥ तेऽपीति सन्धिरार्षः ॥ ३४ ॥ स प्रसिद्धोऽन्यो यस्तस्य कश्यपस्यांशः स वसुदेवः गोषु गोपालेषु अधिपतित्वेन तिष्ठति ॥३५॥ **तस्येति** । अदितेरपि यशोदादेवकीभेदेन द्वे रूपे द्रष्टव्ये कश्यपवत् गोष्वित्यनुषङ्गात् ॥ ३७ ॥ वर्धयस्व वर्धय । स्वार्थे णिच् ॥ ३९ ॥ त्वैते त्वा त्वाम् ॥ ४१ ॥ आत्मानमिति सार्धः ॥ ४२ ॥ बालत्वं त्वन्माहात्म्यानभिज्ञत्वम् ॥ ४४ ॥ धारयितुं गर्भे इति शेषः ॥ ४८ ॥

१ ख. °र्वा व्यथितो ब्र° । २ क. °र्वै ते त्वं° । ३ क. °गुरो नष्टालोकस्य से°, ख. °गुरो नासते लो° । ४ क. आत्मनो देवता गावो या°, ख. आत्मा मम हिता गा° । ५ क. °त्राणात्प° । ६ क. ख. °वां कार° । ७ क. ख. °न महात्मना । स ते° । ८ क. °न तु महीं ग° । ९ क. °मदितिश्चैव सु° । १० ख. उभे ते त° । ११ ख. तदस्य क° । १२ क. ख. °सौ गोष्वभिर° । १३ क. °यं चैव अदि° । १४ क. ख. °भिस्तथा । दे° । १५ ख. °णी चैव व° । * सुरभी रोहिणीतिश्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति ।१६ ख. °या गोपरू° । १७ ख. °तो गास्तु गो° । १८ ख. तु ।१९ ख. भृशम् । जी° । २० ख. वा ।

वैशम्पायन उवाच।

स देवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये।
जगाम विष्णुः स्वं देशं क्षीरोदस्योत्तरां दिशम्
तत्र वै पार्वती नाम गुहा मेरोः सुदुर्गमा।
त्रिभिस्तस्यैव विक्रान्तैर्नित्यं पर्वसु पूजिता।
पुराणं तत्र विन्यस्य देहं हरिरुदारधीः।
आत्मानं योजयामास वसुदेवगृहे प्रभुः॥५१॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितामहवाक्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

---

विक्रान्तैः पादप्रतिमाभिरुपलक्षिता अत एव पूजिता॥ ५०॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविन्दसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे हरिवंशार्थप्रकाशे हरिवंशपर्वणि टीकायां पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

---

१ ख. स तु देवानु॰। २ ख. तत्रैव पा॰।

अतःपरं विष्णुपर्व भविष्यति
तस्यायमाद्यः श्लोकः

वैशम्पायन उवाच—

ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ।
विनाशशंसी कंसस्य नारदो मथुरां ययौ ॥

॥ इति श्रीहरिवंशे हरिवंशपर्व समाप्तम् ॥

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितराम-चन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितः परिष्कृतश्च । भारती जयतु ॥ शाके १८५६ ॥

महाभारते

# हरिवंशः ।

## विष्णुपर्व ।

## —२—

### नारदागमनम् १

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् १**

वैशम्पायन उवाच ।

ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं
भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ।
विनाशशंसी कंसस्य
नारदो मथुरां ययौ ॥१॥

त्रिविष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः ।
प्रेषयामास कंसस्य उग्रसेनसुतस्य वै ॥२॥
स दूतः कथयामास मुनेरागमनं वने ।
स नारदस्यागमनं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ॥३
निर्जगामासुरः कंसः स्वपुर्याः पद्मलोचनः ।
स ददर्शातिथिं श्लाघ्यं देवर्षिं वीतकल्मषम् ४
तेजसा ज्वलनाकारं वपुषा सूर्यवर्चसम् ।
सोऽभिवाद्यर्षये तस्मै पूजां चक्रे यथाविधि
आसनं चाग्निवर्णाभं विसृज्योपजहार सः ।
निषसादासने तस्मिन्स वै शक्रसखो मुनिः
उवाच चोग्रसेनस्य सुतं परमकोपनम् ।
पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा ७
गते त्वेवं मम वचः श्रूयतां गृह्यतां त्वया ।
अनुसृत्य दिवोलोकानहं ब्रह्मपुरोगमान् ॥८॥
गतः सूर्यसखं तात विपुलं मेरुपर्वतम् ।
स नन्दनवनं चैव दृष्ट्वा चैत्ररथं वनम् ॥९॥
आप्लुतं सर्वतीर्थेषु सरित्सु सह दैवतैः ।
दिव्या त्रिधारा दृष्टा ये पुण्या त्रिपथगा नदी
स्मरणादेव सर्वेषामंहसां या विभेदिनी ।
उपस्पृष्टं च तीर्थेषु दिव्येषु च यथाक्रमम् ॥
दृष्टं मे ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।
देवगन्धर्वनिर्घोषैरप्सरोभिश्च नादितम् ॥१२
सोऽहं कदाचिद्देवानां समाजे मेरुमूर्धनि ।
संगृह्य वीणां संसक्तामगच्छं ब्रह्मणः सभाम्
सोऽहं तत्र सितोष्णीषान्नानारत्नविभूषितान्
दिव्यासनगतान्देवानपश्यं सपितामहान् ॥
तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः ।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः १५

---

१

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्व प्रारभ्यते—
अमुष्मिन्प्रथमेऽध्याये स्वर्गादभ्येत्य नारदः ॥
कंसायाकथयत्तस्य कृष्णान्मृत्युरितीर्यते ॥ १ ॥

ज्ञात्वेति । प्रेषयामास दूतमिति शेषः ॥२॥ विसृज्य प्रकल्प्य ॥ ६ ॥

---

१ ख. °स्य दूतं स मुनिपुङ्गवः । स° । २ ख. °नं नृपे । स । ३ ख. °र वै । नि° । ४ क. °तां च वै° ख. °तां च तत् । अ° । ५ ख. तं मे सुतीर्थासु स° । ६ क. ख. °ष्टा मे । ७ ख. मे गङ्गा त्रिपथगामिनी । स्म° । ८ क. °नं महर्षि° । ९ ख. °वं दैव° । १० क. °या श्रुतम् । भ° । ११ क. ख. °गस्येह व° ।

तत्रैषा देवकी या ते
मथुरायां लघुस्वसा ।
योऽस्यां गर्भोऽष्टमः कंस
स ते मृत्युर्भविष्यति ॥१६॥
देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः ।
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥
पर[3]श्चैवापरस्तेषां स्वयंभूश्च दिवौकसाम् ।
ततस्ते तन्महद्भूतं दिव्यं च कथयाम्यहम् ॥१८
श्लाघ्यश्च स हि ते मृत्युर्भूतपूर्वश्च तं स्मर ।
यत्नश्च क्रियतां कंस देवक्या गर्भकृन्तने ॥१९
एषा मे त्वद्गता प्रीति-
र्येदर्थं चाहमागतः ।
भु[6]ज्यन्तां सर्वकामार्थाः
स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥२०*
इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्यं विचिन्तयन्
जहासोच्चैस्ततः कंसः प्रकाशदशनश्चिरम् ॥
प्रोवाच सस्मितं चैव भृत्यानामग्रतः स्थितः ।
हास्यः खलु स सर्वेषु नारदो न विशारदः ॥
नाहं भीषयितुं शक्यो देवैरपि सवासवैः ।
आसनस्थः शयानो वा प्रमत्तो मत्त एव च२३
योऽहं दोर्भ्यामुदाराभ्यां
क्षोभयेयं धरामिमाम् ।
कोऽस्ति मां मानुषे लोके
यः क्षोभयितुमुत्सहेत् ॥२४
अद्यप्रभृति देवा[10]नामेष देवानुवर्तिनाम् ।
नृपक्षिपशुसंघानां करोमि कदनं महत् ॥ २५
आज्ञाप्यतां हयः केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा ।
अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा ॥ २६
अटध्वं पृथिवीं कृत्स्नां यथेष्टं कामरूपिणः ।
प्रहरध्वं च सर्वेषु येऽस्माकं पक्षदूषकाः॥ २७
गर्भस्थानामपि गतिर्विज्ञेया[11] चैव देहिनाम् ।
नारदेन हि गर्भेभ्यो भयं नः समुदाहृतम् ॥
भवन्[12]तो हि यथाकामं मोदन्तां विगतज्वराः
मां च वो नाथमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम्
स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः
सुश्लि[13]ष्टानपि लोकेस्मिन्भेदयँल्लभते रतिम् ॥
कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः ।
घट[14]मानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि[15] ३१
एवं स विलपन्नेव वाङ्मात्रेणै[16]व केवलम् ।
विवेश कं[17]सो भवनं दह्यमानेन चेतसा ॥३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदागमने कंसवाक्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## कंससंकेतः आर्यानुशासनं च ।

## २

वैशम्पायन उवाच ।

सोऽज्ञापयत संरब्धः सचिवानात्मनो हितान् । यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने ॥१॥

लघुस्वसा कनिष्ठभगिनी तवैवेति शेषः । अन्ये तु पितृस्वसेति पाठं प्रकल्प्य पितृसंबन्धिनी स्वसा व्यवहितभगिनीति व्याचख्युः ॥ १६ ॥ परो मोक्षः अपरः स्वर्गः तत्प्रद इत्यर्थः ॥१८॥ स्वस्ति शोभनम् ॥२०॥ कदनं पीडनम्॥ २५ ॥ केलिकिलः युद्धोत्सुकः सुश्लिष्टान् स्निग्धान् ॥३०॥ कण्डूयमानः संघर्षणं जनयन् तन्त्रैः उपायैः ॥ ३१ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

अस्मिन्द्वितीये ह्यध्याये
कंसस्याकुलतोच्यते ।
विष्णुना योगमायायै
देवकार्यानुशासनम् ॥ १ ॥

आज्ञापयत आज्ञापितवान् । संरब्धः क्रुद्धः ॥ १ ॥

१ ख. हि । २ क. °स्यं वेदानां स । ३ ख. परतोऽपि परस्ते° । ४ क. °स गर्भेषु यदि शक्यते । ए° । ५ क. ख. °तिरित्यर्थं चा° । ७ क. भुज्यतां स° । *'वैशम्पायन उवाच' इति खपुस्तकेऽधिकः पाठः । ७ ख. °व स भृत्यानग्रतः स्थितान् । हा° । ८ ख. आहवस्थः श° । ९ क. ख. °व वा । यो° । १० ख. °ति भूतानामहं दे° । ११ क. ख. °या भुवि दे° । १२ ख. °न्तोऽपि य° । १३ ख. °श्लिष्टमपि लोकेषु मे° । १४ ख. घट्या° । १५ क. ख. °व ह । १६ क. ख. °त्रेण तु के° । १७ ख. °श भवने कंसो द° ।

प्रथमादेव हन्तव्या गर्भास्ते[1] सप्त एव हि[2] ।
मूलादेव तु[3] हन्तव्यः सोऽनर्थो यत्र संशयः ॥
देवकी च गृहे गुप्ता प्रच्छन्नै[4]रभिरक्षिता ।
स्वैरं चरतु विश्रब्धा[5] गर्भकाले तु[6] रक्ष्यताम् ॥
मासान्वै पुष्पमासादीन्गणयन्तु मम स्त्रियः ।
परिणामे[7] तु गर्भस्य शेषं ज्ञास्यामहे वयम् ॥ ४
वसुदेवस्तु[8] संरक्ष्यः स्त्रीसनाथासु भूमिषु ।
अप्रमत्तैर्मम हितै रात्रावहनि चैव हि[9] ।
स्त्रीभिर्वर्षवरैश्चैव वक्तव्यं न तु[10] कारणम् ॥ ५
एष मानुष्यको यत्नो मानुषैरेव साध्यते ।
श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रतिहन्यते ॥ ६
मन्त्रग्रामैः सुविहितैरौषधैश्च सुयोजितैः ।
यत्नेन चानुकूलेन[11] दैवमप्यनुलोम्यते ॥ ७

वैशम्पायन उवाच । *

एवं स यत्नवान्कंसो देवकी[12]गर्भकृन्तने ।
भयेन मन्त्रयामास श्रुतार्थो नारदात्स वै ॥ ८
एवं श्रुत्वा प्रयत्नं वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम् ।
अन्तर्धानं गतो[13] विष्णुश्चिन्तयामास वीर्यवान्
सप्तेमान्देवकीगर्भान्भोजपुत्रो वधिष्यति ।
अष्टमे च मया गर्भे कार्यमाधान[14]मात्मनः १०
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं पातालमगमन्मनः ।
यत्र ते गर्भशयनाः षड्गर्भा नाम दानवाः ॥ ११
विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृतप्राशनोपमाः ।
अमरप्रतिमा युद्धे[15] पुत्रा वै कालनेमिनः ॥ १२
ते तात[16]ततं संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा ।
उपासांचक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम् ॥
तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः ।
तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरं ददौ १४

ब्रह्मोवाच ।

भो भो दानवशार्दूलास्तपसाहं सुतोषितः
ब्रूत वो यस्य यः कामस्तस्य तं[17] तं करोम्य[18]हम्
ते तु सर्वे समानार्था दैत्या ब्रह्माणमब्रुवन् ।
यदि नो भगवान्प्रीतो दीयतां नो वरो वरः
अवध्याः स्याम भगवन्दैवतैः समहोरगैः ।
शापप्रहरणैश्चैव[19] स्वस्ति नोऽस्तु महर्षिभिः
यक्षगन्धर्वपतिभिस्सिद्धचारणमानवैः ।
मा भूद्वधो नो भगवन्ददासि यदि नो वरम्
तानुवाच ततो ब्रह्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
भवद्भिर्यदिदं प्रोक्तं सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १९
षड्गर्भाणां वरं दत्त्वा स्वयंभूस्त्रिदिवं गतः ।
ततो हिरण्यकशिपुः सरोषो वाक्यमब्रवीत्
मामुत्सृज्य वरो यस्माद्वृतो वः पद्मसंभवात् ।
तस्माद्वस्त्याजितः स्नेहः शत्रुभूतांस्त्यजाम्यहम्
षड्गर्भा इति योऽयं वः शब्दः पित्राऽभिवर्धितः
स एव वो गर्भगतान्पिता सर्वान्वधिष्यति
षडेव देवकीगर्भाः[20] षड्गर्भा वै महासुराः ।
भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्थान्वो वधिष्यति

वैशम्पायन उवाच ।

जगामाथ ततो विष्णुः पातालं यत्र तेऽसुराः
षड्गर्भाः संयताः[21] सन्ति जले गर्भगृहेशयाः २४
संददर्श[22] जले सुप्तान्षड्गर्भान्गर्भसंस्थितान् ।
निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तर्हितान्सं[23] वै

---

प्रथमात् प्रथमं जन्मादिनं प्राप्येत्यर्थः । सोऽष्टमो मूलाद्गर्भधारणादेवौषधाद्यैरुपायैर्हन्तव्य इत्यर्थः ॥ २ ॥ प्रच्छन्नैरन्तःपुररक्षकैः ॥ ३ ॥ परिणामे दशममासादौ ॥ ४ ॥ स्त्रीसनाथासु अन्तःपुरभूमिषु **वर्षवरैः** नपुंसकैः वसुदेवसन्निधौ प्रसवे सति स गर्भमन्यत्र मा नयात्वित्येतदर्थं सोऽपि रक्ष्य इत्यर्थः ॥ ५ ॥ अनुलोम्यते अनुकूलं क्रियते ॥ ७ ॥ श्रुतार्थः ज्ञातप्रयोजनः ॥ ८ ॥ अरिष्टम् अक्षेममिति संज्ञितम् उत्पातरूपमित्यर्थः ॥ ९ ॥ आधानं स्थापनम् ॥१०॥ गर्भशयनाः जलगर्भशायिनः षड्गर्भा नामतः नाम्ना ।

" **हंसः सुविक्रमः क्राथो दमनो रिपुमर्दनः ।**
**क्रोधहन्तेति विख्याताः षड्गर्भा नाम दानवाः** "

इति पुराणप्रसिद्धाः ॥ ११ ॥ अमृतप्राशनोपमाः देवतुल्या अमरकल्पा इत्यर्थः ॥१२॥ तातततं स्वपितामहम् । लोकपितामहं ब्रह्माणम् ॥ १३ ॥ वरः श्रेष्ठः वरः प्रार्थितोऽर्थः ॥ १६ ॥ वो युष्माभिः ॥२१॥ संयताः हिरण्यकशिपुशापेन निरुद्धाः ॥२४॥ संददर्श सः विष्णुः २५

---

१ ख. °स्ते सर्व ए° । २ ख. तु । ३ ख. हि ह° । ४ ख. °च्छन्नमभि° । ५ क. °श्रम्भात् ग° । ६ क. ख. चर° । ७ ख. °मे हि ग° । ८ क. ख. °वश्च सं° । ९ ख. ह । स्त्री° । १० ख.° च । ११ ख. °कूल्येन । *वैशम्पायन उवाचेति कपुस्तके नास्ति । १२ ख. °वक्या ग° । १३ क. ख. °र्धानग° । १४ ख. °र्यसाधन° । १५ ख. °माः सर्वे पु° । १६ ख. तेऽर्यकं वै परित्य° । १७ क. तं वै° । १८ ख. °तं ददाम्य° । १९ ख. °णैश्चापि नियतैः परमर्षि° । २० ख. °कीगर्भे ष° । २१ ख संयुताः । २२ क. ख. स ददर्श ज° । २३ ख. °तानि व । स्व° ।

स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानथाविशत् ।
प्राणेश्वरांश्च निष्क्रष्य निद्रायै प्रददौ तदा २६
तां चोवाच ततो निद्रां विष्णुः सत्यपराक्रमः
गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनान्तिकम्
इमान्प्राणेश्वरान्गृह्य षड्गर्भान्दानवोत्तमान् ।
सर्वप्राणेश्वरांश्चैव षड्गर्भान्नाम देहिनः । *
षड्गर्भान्देवकीगर्भे[1] योजयस्व यथाक्रमम् २८
जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम् ।
कंसस्य विफले यत्ने देवक्याः सफले श्रमे २९
प्रसादं ते करिष्यामि मत्प्रभावसमं भुवि ।
येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी[2] भविष्यसि
सप्तमो देवकीगर्भो योऽशः सौम्यो ममाग्रजः
स संक्रामयितव्यस्ते सप्तमे मासि रोहिणीम्
संकर्षणात्तु गर्भस्य स तु संकर्षणो युवा ।
भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम शीतांशुदर्शनः ३२
पतितो देवकीगर्भः सप्तमोऽयं भयादिति ।
अष्टमे मयि गर्भस्थे कंसो यत्नं करिष्यति ३३
या तु सा नन्दगोपस्य दयिता[3] भुवि विश्रुता
यशोदा नाम भद्रं ते भार्या[4] गोपकुलोद्वहा ३४

तस्यास्त्वं नवमो गर्भः
कुलेऽस्माकं भविष्यसि ।
नवम्यामेव संजाता
कृष्णपक्षस्य वै तिथौ ॥३५॥

अहं त्वभिजितो[5] योगे निशायां[6] यौवने स्थिते
अर्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथासुखम् ३६
अष्टमस्य तु मासस्य जातावावां ततः समम् ।
प्राप्स्यावो गर्भव्यत्यासं प्राप्ते कंसस्य नाशने[7]

अहं यशोदां यास्यामि
त्वं देवि भज[8] देवकीम् ।
आवयोर्गर्भसंयोगे[9]
कंसो गच्छतु मूढताम् ॥ ३८

ततस्त्वां गृह्य चरणे शिलायां पातयिष्यति[10] ।
निरस्यमाना गगने
स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥३९॥

मच्छवीसदृशी कृष्णा संकर्षणसमानना ।
बिभ्रती विपुलौ बाहू मम बाहूपमौ दिवि ४०
त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम् ।
पात्रीं च पूर्णां मधुना पङ्कजं च सुनिर्मलम् ४१
नीलकौशेयसंवीता पीतेनोत्तरवाससा ।
शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजता ४२
दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता
चन्द्रसापत्न्यभूतेन[11] मुखेन त्वं विराजिता ॥४३
मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ।
भुजङ्गाभैर्भुजैर्भीमैर्भूषयन्ती[12] दिशो दश ॥ ४४
ध्वजेन शिखिबर्हेण उच्छ्रितेन विराजिता[13] ।
अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता ॥ ४५
कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी ।
कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि
तत्र त्वां शतदृक्छक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा ।
अभिषेकेण दिव्येन दैवतैः सह योक्ष्यसे ॥४७

---

**स्वप्नेति** । ब्रह्मवरदानादविनष्टस्थूलदेहानामेव तेषां विष्णुमायाबलेन स्वप्नवज्जन्मान्तरप्रतिभासो हिरण्यकशिपुशापनिमित्तो लवणस्येव जात इत्यर्थः । प्राणेश्वरान् जीवान् । नन्वेवं स्वदेहाद्बहिर्गतैः पुरुषैर्देशान्तरे स्वप्नप्रपञ्चो जाग्रद्वत्सत्यत एव प्रतीयत इति दर्शितम् । तेन अस्मद्दृष्ट्या षड्गर्भाणां जन्म योगमायाकृतत्वादिन्द्रजालपुरवत् व्यावहारिकम् । षड्गर्भदृष्ट्या तु स्वप्नवत्प्रातिभासिकमिति सिद्धेर्न कश्चिद्दोषः ॥ २६ ॥ उत्सृष्टा आज्ञप्ता ॥ २७ ॥ देवी पूज्या ॥३०॥ **सप्तम इति** । सप्तमस्य गर्भस्य यद्यपि प्रसवे जीवनमविरुद्धं तथापि रोहिण्युदरे प्रवेशस्तस्यां गर्भसंक्रमश्च मायाबलादेवेति ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥ नवमत्वं कृष्णमनु तस्या अपि देवक्युदरे स्वल्पकालं प्रवेशोऽस्तीति सिद्ध्यति । **नवम्यामिति** त्वष्टम्यां कृष्णजन्म तदनन्तरं देव्या इति युक्तम् । एकस्यामपि रात्रौ तात्कालिकतिथिभेदसंभवात् ॥ ३५ ॥ अभिजितो निशाया अष्टममुहूर्तस्य गर्भमोक्षम् उदरान्निर्गमम् ॥ ३६ ॥ व्यत्यासमेवाह— **अहमिति** । गर्भसंयोगे अन्योन्यव्यत्यासे ॥ ३८ ॥ निरस्यमाना आस्फाल्यमाना ॥ ३९ ॥ कनकत्सरुं सुवर्णमुष्टिम् ॥ ४१ ॥ अङ्गजेन पिच्छेन ॥४५॥ कीर्णा परिवृता कौमारं कुमारीयोग्यम् ॥ ४६ ॥ शतदृक् सहस्राक्षः ॥४७॥

---

१ ख. °र्भान्नामदेहिनः । षट्सु गर्भेषु देवक्या योज° । * सर्वेति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति । २ ख. °वि देवो भविष्यति । स° । ३ ख. °स्य वसुदेवानुगस्य वै । य° । ४ क. °ता कंसगोपतेः । य° । ५ ख °जिते यो° । ६ क. °शाया यौवने गते । अ° । ७ क, ख. °स्य शासने । ८ क. °वि व्रज दे° । ९ ख. °योर्गर्भव्यत्यासार्के° । १० ख. °यां निरसिष्य° । ११ ख. इन्दोः सपत्नभू° । १२ ख. °मैर्भीष° । १३ क. °न समीपतः । अङ्ग° ।

तत्रैव त्वां भगिन्यर्थे ग्रहीष्यति स वासवः।
कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्वं भविष्यसि
स ते विन्ध्ये नगश्रेष्ठे स्थानं दास्यति शाश्वतम्
ततः स्थानसहस्रैस्त्वं पृथिवीं शोभयिष्यसि
त्रैलोक्यचारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना
चरिष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ५०
तत्र शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ।
तौ च कृत्वा मनसि मां सानुगौ नाशयिष्यसि

कृत्वाऽनुयात्रां भूतस्त्व सुरामांसबलिप्रिया।
तिथौ नवम्यां पूजां त्वं प्राप्स्यसे सपशुक्रियाम्
ये च त्वां मत्प्रभावज्ञाः प्रणमिष्यन्ति मानवाः
तेषां न दुर्लभं किञ्चित्पुत्रतो धनतोऽपि वा
कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानां च महार्णवे।
दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम्
त्वां तु स्तोष्यन्ति ये भक्त्या स्तवेनानेन वै शुभे
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भारावतरणे निद्रासंविज्ञाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## आर्यास्तवः।

### ३

वैशम्पायन उवाच।
आर्यास्तवं प्रवक्ष्यामि यथोक्तमृषिभिः पुरा
नारायणीं नमस्यामि देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् १
त्वं हि सिद्धिर्धृतिः कीर्तिः
श्रीर्विद्या सन्नतिर्मतिः।
संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा
कालरात्रिस्तथैव च ॥ २ ॥
आर्या कात्यायनी देवी कौशिकी ब्रह्मचारिणी
जननी सिद्धसेनस्य उग्रचारी महाबला ॥ ३
जया च विजया चैव पुष्टिस्तुष्टिः क्षमा दया

ज्येष्ठा यमस्य भगिनी नीलकौशेयवासिनी ४
बहुरूपा विरूपा च अनेकविधिचारिणी।
विरूपाक्षी विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी
पर्वताग्रेषु घोरेषु नदीषु च गुहासु च।
वासस्ते च महादेवि वनेषूपवनेषु च ॥६॥
शबरैर्बर्बरैश्चैव पुलिन्दैश्च सुपूजिता।
मयूरपिच्छध्वजिनी लोकान्क्रमासि सर्वशः ७
कुक्कुटैश्छागलैर्मेषैस्सिंहैर्व्याघ्रैस्समाकुला।
घण्टानिनादबहुला विन्ध्यवासिन्यभिश्रुता ८

सत्या अवश्यफला उपयाचना ममेदम् ईप्सितं कुरु अहं त्वां पूजयिष्यामीत्येवंरूपा प्रार्थना सत्या उपयाचना यस्यां सा तथा ॥ ५० ॥ पुत्रतः पुत्रप्रभृतीत्यर्थः ॥ ५३ ॥ गतिः आपन्निवारयित्री ॥ ५४ ॥ अनेन वक्ष्यमाणेन तस्य स्तोतुरहं न प्रणश्यामि अदृश्यो न भवामि। स नित्यं मद्भक्तिं लभतेऽहं च तं न त्यजामीत्यर्थः ॥ ५५ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

अस्मिंस्तृतीये त्वध्याये
विष्णुना प्रभविष्णुना।
आर्यास्तव उपन्यस्तो
जगद्धित इतीर्यते ॥ १ ॥

आर्यास्तवम् अनेनेति प्राक्कृतम् ॥ १ ॥ सिद्धिर्मुक्तिर्धृतिर्जीवनम् ॥ २ ॥ सिद्धसेनस्य स्कन्दस्य। उग्रचारी उग्रेण कर्मणा चरतीत्युग्रचारिणी पुंस्त्वमार्षम् ॥ ३ ॥ यमस्य भगिनी मृत्युः ॥ ४ ॥ छागलैर्मेषविशेषैः ॥ ८ ॥

१ क. ख. कृतानु॰। २ क. ख. ॰स्त्वं नित्यं मां॰। ३ ख. ॰त्रिस्त्वमेव च। आ॰। ४ क. ख. ॰हातपाः। ज॰। ५ क. ॰ष्टिश्च त्वं क्ष॰। ६ क. ॰विधचा॰, ख. ॰विधरूपिणी। ७ क. ख. ॰रिरक्षणी। ८ ख. वससि त्वं म॰। ९ क. ख. ॰रपक्षध्व॰। १० क. ॰कान्क्रम॰। ११ क. ॰ला विश्रुता विन्ध्यवासिनी, ख. ॰ला विन्ध्ये वससि सर्वदा। त्रि॰

त्रिशूली[1] पट्टिशधरा सूर्यचन्द्रपताकिनी ।
नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लस्यैकादशी तथा ॥ ९
भगिनी बलदेवस्य रजनी कलहप्रिया ।
आवासः सर्वभूतानां निष्ठा च परमा गतिः
नन्दगोपसुता चैव[2] देवानां विजयावहा ।
चीरवासाः सुवासाश्च[3] रौद्री संध्याचरी[4] निशा
प्रकीर्णकेशी मृत्युश्च सुरामांसबलिप्रिया[5] ।
लक्ष्मीरलक्ष्मीरूपेण दानवानां वधाय च १२
सावित्री चापि देवानां[6] माता मन्त्रगणस्य[7] च
कन्यानां ब्रह्मचर्यत्वं सौभाग्यं प्रमदासु च १३
अन्तर्वेदी[8] च यज्ञानामृत्विजां चैव दक्षिणा ।
कर्षुकाणां[9] च सीतेति भूतानां धरणीति च
सिद्धिः[10] सांयात्रिकाणां तु
वेला त्वं सागरस्य च ।
यक्षाणां प्रथमा यक्षी
नागानां सुरसेति च ॥ १५
ब्रह्मवादिन्यथो दीक्षा शोभा च परमा तथा ।
ज्योतिषां त्वं प्रभा देवि नक्षत्राणां च रोहिणी
राजद्वारेषु[11] तीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च ।
पूर्णा च पूर्णिमा चन्द्रे कृत्तिवासा इति स्मृता
सरस्वती च वाल्मीके स्मृतिर्द्वैपायने तथा ।
ऋषीणां धर्मबुद्धिस्तु[12] देवानां मानसी तथा ।
सुरा देवी तु भूतेषु स्तूयसे त्वं स्वकर्मभिः १८
इन्द्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनेति च ।
तापसानां च देवी त्वमरणी चाग्निहोत्रिणाम्
क्षुधा च सर्वभूतानां तृप्तिस्त्वं[13] दैवतेषु च ।
स्वाहा[14] तृप्तिर्धृतिर्मेधा वसूनां त्वं वसूमती २०
आशा[15] त्वं मानुषाणां च पुष्टिश्च कृतकर्मणाम्
दिशश्च विदिशश्चैव तथा ह्यग्निशिखा प्रभा ॥
शकुनी पूतना त्वं च रेवती च सुदारुणा ।
निद्रा[16]ऽपि सर्वभूतानां मोहिनी[17] क्षत्रिया तथा
विद्यानां ब्रह्मविद्या त्वमोङ्कारोऽथ वषट् तथा
नारीणां पार्वती[18] च त्वां पौराणीमृषयो विदुः
अरुन्धती[19] च साध्वीनां प्रजापतिवचो यथा ।
यथार्थनामभिर्दिव्यैरिन्द्राणी[20] चेति विश्रुता ॥
त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
संग्रामेषु च सर्वेषु[21] अग्निप्रज्वलितेषु च ।
नदीतीरेषु चौरेषु[22] कान्तारेषु भयेषु च ॥ २५
प्रवासे राजबन्धे च शत्रूणां च प्रमर्दने ।
प्राणात्ययेषु सर्वेषु त्वं हि रक्षा न संशयः २६
त्वयि मे हृदयं देवि त्वयि चित्तं[23] मनस्त्वयि ।
रक्ष मां सर्वपापेभ्यः प्रसादं कर्तुमर्हसि[24] ॥ २७
इमं[25] यः सुस्तवं दिव्यमिति व्यासप्रकल्पितम् ।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ २८
त्रिभिर्मासैः काङ्क्षितं च
फलं वै संप्रयच्छसि[26] ।
षड्भिर्मासैर्वरिष्ठं[27] तु
वरमेकं प्रयच्छसि ॥ २९
अर्चिता[28] तु त्रिभिर्मासैर्दिव्यं चक्षुः प्रयच्छसि[29]
संवत्सरेण सिद्धिं तु यथाकामं प्रयच्छसि[30] ३०
सत्यं ब्रह्म च दिव्यं च द्वैपायनवचो यथा* ।
नृणां बन्धं वधं घोरं पुत्रनाशं धनक्षयम् ३१
व्याधिमृत्युभयं चैव पूजिता शमयिष्यसि ।
भविष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी =

त्रिशूलीत्यादिषु पुंस्त्वमार्षम् ॥ ९ ॥ निष्ठा मरणम् । परमा गतिर्मुक्तिः ॥ १० ॥ सीता लाङ्गलपद्धतिः धरणी धरित्री ॥ १४ ॥ प्रथमा यक्षी कुबेरमाता सांयात्रिकाणां पोतवणिजाम् ॥ १५ ॥ राजद्वारादिषु पूर्णा लक्ष्मीरिति शेषः ॥ १७ ॥ मानसी सत्यसंकल्पात्मिका चेतोवृत्तिः ॥ १८ ॥ वसूमतीति दैर्घ्यं वृत्तानुरोधतः ॥ २० ॥ व्यासप्रकल्पितं विष्णुना कृतमपि व्यासेन पद्यरूपेण रचितम् ॥ २८ ॥

१ क. त्रिशूला पट्टिशी चैव सू°, ख. त्रिशूलपट्टि° । २ ख. °व देवी त्वमपराजिता । ची° । ३ क. °श्च रात्रिः सं° । ४ ख. °द्री संध्या त्वमेव च । प्र° । ५ क. °श्च तथा मांसौदनप्रिया । ल° । ६ क. °त्री चैव वेदानां, ख. °त्री चासि वेदानां । ७ ख. °ता भूतग° । ८ ख. °दीषु य° । ९ ख. कर्षका° । १० ख. °द्धिश्च देवि यात्राणां वे° । ११ ख. °षु दुर्गेषु न° । १२ ख. द्धिस्त्वं दे° । १३ ख. °प्तिस्त्वं च दिवौकसाम् । स्वा° । १४ ख. °हा तुष्टिर्धृतिश्चैव वसू° । १५ ख. आशा चासि मनुष्याणां तुष्टिश्च कृ° । १६ क. ख. °द्रा च स° । १७ क. ख. मोहनी क्ष° । १८ ख. °तीं तु त्वां । १९ क. ख. अरुन्धत्येकभर्तॄणां प्र° । २० क. पर्यायनामभिर्दिव्यै°, ख. भेदो विवादशीलानां त्वमिन्द्राणीति वि° । २१ ख. °षु वन्हिप्रज्वलिते तथा । न° । २२ ख. °षु वनेषु च गुहासु च । प्र° । २३ ख. °यि बुद्धिर्मे° २४ क. °दं च करिष्यसि । इ° । २५ ख. इमं देव्याः स्तवं पुण्यमितिहाससमान्वितम् । यः प° । २६ क. ख. °च्छति । ष° । २७ ख. षण्मासान्पठते यस्तु कांक्षितं च लभेत सः । अ° । २८ क. ख. °ता नवभिर्मासैर्दि° । २९ क. ख. °च्छति । सं° । ३० क. ख. °च्छति । *सत्येति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति । =भविष्यसीति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति ।

मोहयित्वा च तं कंसमेका त्वं भोक्ष्यसे जगत्
अहमप्यात्मनो वृत्तिं विधास्ये गोषु गोपवत्
स्ववृद्ध्यर्थमहं चैव करिष्ये कंसगोपताम् ३३
एवं तां स समादिश्य गतोऽन्तर्धानमीश्वरः
सा चापि तं नमस्कृत्य
तथास्त्विति च निश्चिता ॥ ३४
यश्चैतत्पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ।
सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः +

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## विष्णववतारवर्णनम् ।

## ४

वैशम्पायन उवाच ।

कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा ।
जग्राह सप्त तान्गर्भान्यथावत्समुदाहृतान् १
षड्गर्भान्निस्सृतान्कंसस्ताञ्जघान शिलातले ।
आपन्नं सप्तमं गर्भं सा निनायाथ रोहिणीम्
अर्धरात्रे स्थितं गर्भं पातयन्ती रजस्वला ।
निद्रया सहसाऽऽविष्टा पपात धरणीतले ॥३
सा स्वप्नमिव तं दृष्ट्वा स्वं गर्भं गर्भमादधत् ।
अपश्यन्ती च तं गर्भं मुहूर्तं व्यथिताऽभवत्
तामाह निद्रा संविग्नां नैशे तमसि रोहिणीम्
रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमतः ॥५
कर्षणेनास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै ।
संकर्षणो नाम सुतः शुभे तव भविष्यति ॥ ६
सा तं पुत्रमवाप्यैवं हृष्टा किञ्चिदवाङ्मुखा ।
विवेश रोहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा
तस्य गर्भस्य मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी ।
यदर्थं सप्त ते गर्भाः कंसेन विनिपातिताः ॥८
तं तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्तस्य मन्त्रिणः ।
सोऽप्यत्र गर्भवसतौ वसत्यात्मेच्छया हरिः
यशोदाऽपि समाधत्त
गर्भं तदहरेव तु ।
विष्णोः शरीरजां निद्रां
विष्णुनिर्देशकारिणीम् ॥ १०

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

४

अस्मिंश्चतुर्थे त्वध्याये
देवक्यां वसुदेवतः ।
श्रीकृष्णस्योच्यते तावत्
जन्म लोकविडम्बनम् ॥ १ ॥

कृते गर्भविधाने गर्भाधाने । समुदाहृतान् योगमायायै विष्णुना प्रोक्तान् ॥ १ ॥ आपन्नं देवक्यां प्राप्तं सा योगमाया रोहिणीं प्रति नीतवती अथ देवक्याः सप्तमो गर्भो गलित इति लोकप्रवादानन्तरम् ॥ २ ॥ रजस्वला रोहिणी स्वोदरे स्थितं गर्भं पातयन्ती पपात ॥३॥ पतितमपि गर्भम् अपश्यन्ती योगमायया तस्यान्तर्धानं नीतत्वात् ॥४॥ अथैतां योगनिद्रा समाश्वासयदित्याह-**तामिति** । रोहिणीं वंशवृद्धिकरीम् ॥५॥ **कर्षणेनेति** । पूर्वं देवक्या स्वे गर्भे आहितस्य गर्भस्य संप्रति त्वदुदरं प्रापितस्य गर्भस्य कर्षणेन आकर्षणाद्धेतोस्तव संकर्षणो नाम पुत्रो भविष्यति ॥ ६ ॥ रोहिणी सोमपत्नी यथा बुधक्रोडा तद्वत् ॥ ७ ॥ मार्गेण मार्गणेन सप्तमो गर्भो देवक्याः क्व गतः कदा पतित इति मार्गमाणेष्वेव कंसो येषु अष्टमं नूतनं गर्भं देवकी आधत ॥ ८॥ अत्र काले ॥ ९ ॥

---

१ ख. °द्ध्यर्थं तथा चै° । २ ख. °तु स° । ३ ख. °थास्त्विति विनिश्चिता । + यश्चैतत्पठते स्तोत्रमित्ययं श्लोकः क. ख. पुस्तकयोर्न विद्यते । ४ ख. °प्र इव । ५ क. °ष्ट्वा गर्भं निःसृतमात्मनः । अ° । ६ क. °स्य रोहिणी । क्र° । ७ ख. स्वगर्भाच्चयावित° । ८ क. °श्म सपुत्रा रो° । ९ ख. °स्य रक्षिणः । १० क. ख. स तत्र गर्भे° ।

गर्भकाले त्वसंपूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ ।
देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा ॥ ११
यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलोद्वहः[1] ।
तामेव रजनीं कन्यां[2] यशोदाऽपि व्यजायत
नन्दगोपस्य भार्यैका वसुदेवस्य चापरा ।
तुल्यकालं च गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा
देवक्यजनयद्विष्णुं यशोदा तां तु दारिकाम्
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्ते सार्धरात्रे विभूषिते ॥
सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्रजः ।
ज्योतींष्यतिव्यकाशन्त जायमाने जनार्दने ॥
अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी ।
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः ।
अव्यक्तः शाश्वतः सूक्ष्मो हरिर्नारायणः प्रभुः
जायमानो[3] हि भगवान्नयनैर्मोहयन्प्रभुः ।
अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन्दिवि[4] १८
आकाशात्पुष्पवृष्टिं[5] च ववर्ष त्रिदशेश्वरः ।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् १९
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहाप्सराः ।
जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत ॥२०॥
इन्द्रश्च त्रिदशैः सार्धं तुष्टाव मधुसूदनम् ।
वसुदेवश्च[6] तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम् ॥ २१
श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा युतं दिव्यैश्च लक्षणैः ।
उवाच वसुदेवस्तु[7] रूपं संहर वै प्रभो ॥२२॥
भीतोऽहं देव कंसस्य तस्मादेवं[8] ब्रवीम्यहम्
मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाम्बुजेक्षण ॥२३

वैशम्पायन उवाच *

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं चाहरदच्युतः ।
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्द गोपगृहं नय ॥ २४
वसुदेवस्तु संगृह्य दारकं क्षिप्रमेव च[9] ।
यशोदाया गृहं[10] रात्रौ विवेश सुतवत्सलः २५
यशोदायास्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम्
प्रगृह्य[11] दारिकां चैव देवकीशयनेऽन्यसत् ॥२६
परिवर्ते कृते ताभ्यां गर्भाभ्यां भयविक्लवः ।
वसुदेवः कृतार्थो वै निर्जगाम निवेशनात् ॥२७
उग्रसेनसुतायाथ[12] कंसायानकदुन्दुभिः ।
निवेदयामास तदा तां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥
तच्छ्रुत्वा त्वरितः कंसो रक्षिभिः सह वेगिभिः[13] ।
आजगाम गृहद्वारं वसुदेवस्य वीर्यवान्[14] ॥२९॥
स तत्र त्वरितं द्वारि किं जातमिति चाब्रवीत्
दीयतां शीघ्रमित्येवं वाग्भिः समभितर्जयत्[15] ॥
ततो हाहाकृताः सर्वा देवकीभवने स्त्रियः ।
उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया[16] गिरा ॥३१
दारिका तु[17] प्रजातेति कंसं समभियाचती ।
श्रीमन्तो मे हताः सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो ॥
दारिकेयं हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे ।
दृष्ट्वा कंसस्तु तां कन्यामाकृष्यत[18] मुदा युतः ॥
हतैवैषा[19] यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथामतिः
सा गर्भशयने[20] क्लिष्टा गर्भाम्बुक्लिन्नमूर्धजा ॥
कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्यां पृथिवीसमा ।
स[21] चैनां गृह्य पुरुषः[22] समाविध्यावधूय च ३५

देवकी विष्णुम् अभिजिति मुहूर्तेऽजनयत् । विभूषिते विभोः विष्णोः उषिते प्रोषिते व्रजं प्रति प्रवासे जाते सति सार्धरात्रे चतुर्भागायाः रात्रेः सार्धभागेऽवशिष्टे सति यशोदा तां कन्यकामजनयदित्यर्थः । अर्धरात्रे जातस्य विष्णोर्यशोदां प्रति आनयने अर्धयाममात्रं जातं तदानयनसमकालमेव यशोदा दारिकामसूत अत एव तस्याः जन्म नवम्यामिति प्रागुक्तं संगच्छते ॥ १४ ॥ समकम्पन्त उद्रिक्तजला बभूवुस्तत्र हेतुश्चेलुरिति । धरणीधराः शेषादयश्चेलुः भगवतो भारेणेति भावः ॥ १५ ॥ अप्सरा इत्यदन्तत्वमार्षम् । सुराङ्गना इति पाठः ॥ २० ॥ वसुदेवश्च तुष्टावेत्यनुषङ्गः ॥ २१ ॥ तव ज्येष्ठाः । सन्धिरार्षः ॥ २३ ॥ रूपं चतुर्भुजम् अहरत् तिरोहितं कृतवान् ॥ २४ ॥ ताभ्यां तयोरित्यर्थः । निवेशनात्सूतिकागृहात् ॥ २७ ॥ तु प्रजातेत्यत्र पुत्रजातेति पाठे पुत्रवज्जाता परिवर्तितेति गूढोऽभिसन्धिः, पुत्रेति संबोधनं वा ॥ ३२ ॥ गृह्य गृहीत्वा आविध्य भ्रामयित्वा अवधूय तुच्छीकृत्य ॥ ३५ ॥

१ ख. °र्नीं विष्णुर्जज्ञे वृष्णिकुले प्रभुः । ता । २ क. ख. कन्यकाम् । मु । ३ क. जातमात्रस्तु भगवान्नन्दयन्मोहयञ्जगत् । ४ ख. °नां प्राणदंस्तदा । आ° । ५ ख. °ष्पवर्षं च° व° । ६ ख. °वस्तु तं । ७ क. ख. °वस्तं रू° । ८ क. °देतद्ब्रवीम्य°, ख. °वं वदाम्य° । *वैशम्पायन उवाचेति कपुस्तके नास्ति । ९ क. °व तु । १० क. गृहे रा° । ११ ख. गृहीत्वा दारिकां तां च दे° । १२ क. °सुतस्याथ कं° । १३ ख. °गितः । आ° । १४ क. °स्य धीमतः । १५ क. ख. °यत् । त° । १६ क. ख. °ष्पाविक्लवया गिरा । १७ क. ख. °का पुत्र जाते° । १८ क. कन्यां प्राहृष्यत समूढधीः । हतै° । १९ क. °षा तदा क° । २० क. ख. °यनक्लि° । २१ ख. पादे तां गृ° । २२ क. °ह्य पद° ।

उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत् ।
सावधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत्
हित्वा गर्भतनुं सा तु सहसा मुक्तमूर्धजा ।
जगा[1]म कंसमादिश्य दिव्यस्रगनुलेपना ॥ ३७
हारशोभितसर्वाङ्गी मुकु[2]टोज्ज्वलभूषिता ।
कन्यैव सा[3]ऽभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता ॥
नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तनी ।
रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा ॥३९
विद्युद्विस्पष्टवर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा ।
पयोधरस्त[4]नवती संध्येव सपयोधरा ॥४०॥
सा वै निशि तमोग्रस्ते ब[5]भौ भूतगणाकुले ।
नृत्य[6]ती हसती चैव विपरीतेन भास्वती ॥४१
विहायसि गता रौ[7]द्रा पपौ पानमनुत्तमम् ।
जहास च महाहासं कंसं च रुषिताऽब्रवीत् ॥
कंस कंसात्मनाशाय यदहं घातिता त्वया ।
सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिपोथिता
तस्मात्तवान्तकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा ।
पाटयित्वा करै[8]र्देहमुष्णं पास्यामि शोणितम्
एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना ।
खं सा देवालयं देवी सगणा विचचार ह ४५
सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसं[9]घसुपूजिता ।
पुत्रवत्पाल्यमाना सा[10] वसुदेवाज्ञया तदा ॥
विद्धि चैनामथोत्पन्नामंशाद्देवीं प्रजापतेः ।
एकानंशां योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु[11] ॥
तां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः ।
देवव[12]द्दिव्यवपुषा कृष्णः संरक्षितो यया ॥४८

तस्यां गतायां कंसस्तु तां मेने मृत्युमात्मनः
विविक्ते देवकीं चैव व्रीडितः स[13]मभाषत ॥४९

कंस उवाच ।

मृत्योः स्वसुः कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हताः
अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्यु[14]रुपास्थितः ॥५०
नैराश्येन कृतो यत्नः स्वजने प्रहृतं मया ।
दैवं पुरुषकारेण न चातिक्रान्तवानहम् ॥५१
त्यज गर्भ[15]कृतां चिन्तां संतापं पुत्रजं त्यज ।
हेतुभूतस्त्वहं तेषां सति कालविपर्यये ॥ ५२
काल एव नृणां शत्रुः कालश्च परिणामकः ।
कालो नयति सर्वं वै हेतुभूत[16]स्तु मद्विधः ॥ ५३
आगमिष्यन्ति वै देवि यथाभागमुपद्रवाः ।
इदं तु कष्टं य[17]ज्जन्तुः कर्ताऽहमिति मन्यते ५४

मा कार्षीः पुत्रजां चिन्तां
विलापं शोकजं त्यज ।
एवंप्रा[18]यो नृणां योनि-
र्नास्ति कालस्य संस्थितिः ॥५५॥

[19]एष ते पादयोर्मूर्ध्ना पुत्रवत्तव देवकि ।
मद्गतस्त्यज्यतां रोषो जानाम्यपकृतं त्वयि ॥
इत्युक्तवन्तं कंसं सा देवकी वाक्यमब्रवीत् *
साश्रुपूर्णमुखा दीना भर्ता[20]रमुपवीक्षती ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्सेति कंसं मातेव जल्पती

देवक्युवाच ।

ममाग्रतो हता गर्भा ये त्वया कामरूपिणा
कारणं त्वं न वै पुत्र कृतान्तोऽप्यत्र कारणम्
गर्भ[21]कर्तनमेतन्मे सहनीयं त्वया कृतम् ।
[22]पादयोः पतता मूर्ध्ना स्वं च कर्म जुगुप्सता

उत्पतत् उदपतत् अनिष्पिष्टेति च्छेदः॥३६॥आदिश्य तिरस्कृत्य जगाम खमिति शेषः ॥३७॥ निशि काले इति शेषः। विपरीतेन विशेषेण परितः प्रसर्पणेन ॥ ४१॥ एका चासावनंशेति एकानंशा भगवता एका सती अविभक्ता अज्ञस्तु तेनैकः सन्नपि स्वाविद्यया ततो विभक्तो भवति इयं तु न तथा यतः योगकन्या योगेन कन्याभूता चित्कलैवेयमित्यर्थः । इति तां विद्धि ॥४७॥ सुमनसः सुराः यादवाः यदुषु जाताः ॥ ४८ ॥ मृत्योः परिहारार्थमिति शेषः ॥ ५० ॥ नैराश्येन कार्कश्येन ॥ ५१ ॥ हेतुभूतः शस्त्रवत्कालाख्यस्य ईश्वरस्य प्रयोज्यः ॥ ५२ ॥ यथाभागं यथाकर्मेत्यर्थः । तेन ईश्वरेऽपि न दोषः । यथोक्तम्—

**"स्वकर्मैव नरं हन्ति न शस्त्ररिपुमृत्यव-**
**न भेतव्यं न वा सभ्यं चोरहत्यावलम्बते"**

इति । एवं सति मयि दोषो नासञ्जनीय इति भावः ॥ ५४ ॥ संस्थितिः खण्डनम् ॥ ५५ ॥ **वत्सेति संबोधनात् कंसादियं ज्येष्ठेति गम्यते** ॥५७॥ सहनीयं सोढव्यं क्षन्तव्यमित्यर्थः ॥ ५९ ॥

१ ख. °गामाकाशमाविश्य दि° । २ क. °ज्ञी मुकुटाटोपभू° । ३ ख. °व चाभवत्सा तु दि° । ४ ख. °रस्तनव° । ५ क. ख. °स्ते सर्वभू° । ६ क. °नृत्यन्ती ह° । ७ क. ख. रौद्री प° । ८ क. खस्था दे° । ९ ख. °ष्णिसद्मानि पू° । १० क. °ना तु देवी देवा°, ख. सा देवदेवाज्ञया त° । ११ ख. °स्य च । तां । १२ ख. देवीं च दि° । १३ क. °तः प्रत्यभा° । १४ क. °त्युः समुत्थितः । नै° । १५ क. ख. °भंगतां चि° । १६ ख. °भूतास्तु मद्विधाः । आ° । १७ °क. ख. °ष्टं यच्छत्रुः क° । १८ क. ख. °वंप्राया नृ° । १९ क. ख. पतामि पा° । *इत्युक्तेति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । २० क. ख. °रमभिप्रे° । २१ क. ख. °र्भकन्तन° । २२ क. मूर्ध्ना पदभ्यां नियतजा स्वं च कर्म जगुप्सता ।

गर्भे तु नियतो मृत्युर्बाल्येऽपि न निवर्तते ।
युवापि मृत्योर्वशगः स्थविरो मृत एव तु[2] ६०
कालभूतमिदं[3] सर्वं हेतुभूतस्तु[4] त्वद्विधः* ।
अजाते दर्शनं नास्ति यथा वायुस्तथैव च ६१
जातोऽप्यजाततां याति विधात्रा यत्र नीयते
तद्गच्छ पुत्र मा ते भून्मद्गतं मृत्युकारणम्[6] ६२
मृत्युनाऽपहृते पूर्वं शेषो हेतुः प्रवर्तते ।
विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वतः ॥ ६३
मातापित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते ।
वैशम्पायन उवाच ।×
निशम्य देवकीवाक्यं स कंसः स्वं निवेशनम्
प्रविवेश स संरब्धो दह्यमानेन चेतसा ।
कृत्ये प्रतिहते दीनो जगाम विमना भृशम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णजन्मनि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## नन्दव्रजगमनम् ।

## ५

वैशम्पायन उवाच ।

प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम् ।
प्रजातां पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥ १
स नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया गिरा ।
गच्छानया सहैव त्वं व्रजमेव यशोदया ॥ २
तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः ।
योजयित्वा व्रजे तात संवर्धय यथासुखम् ॥३
रौहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं व्रजे ।
अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम्
योऽहमेकस्य पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुखम्[8]
ह्रियते हि बलात्प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतो मम५
अस्माद्धि मे भयं कंसान्निर्घृणाद्वै शिशोर्वधे ।
तद्यथा[9] रौहिणेयं त्वं नन्दगोपं ममात्मजम् ६
गोपायसि यथा[10][11] तात तत्त्वान्वेषी तथा कुरु
विघ्ना हि बहवो लोके बालानुत्रासयन्ति हि[12]

---

मृत्योर्दैन्यस्य कारणं मद्गतं ते तव हृदि मा भूदित्यर्थः॥ ६२॥ विधिना गर्भाधानादिसंस्कारेण पूर्वदृष्टेन जन्मान्तरीयेण कर्मणा। प्रजाः सृजतीति प्रजासर्गः कालस्तेन तत्त्वतः लोकदृष्टनिमित्तेन स्त्र्यादिना॥ ६३॥ कार्येण दुरन्नादिसेवनेन जन्मतः जातिगुणेन च उपपद्यते परद्रोहादिकम् एतैः कारणैस्तेऽपि मृताः एतैरेव कारणैस्त्वं च कारित इति नात्र तव दोष इति भावः ॥ ६४ ॥ इति हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

अथास्मिन्पञ्चमेऽध्याये वसुदेवोपदेशतः ।
सकुटुम्बस्य नन्दस्य व्रजे गमनमीर्यते ॥ १ ॥

प्रागेव प्रसवात्पूर्वमेव व्रजे प्रेषितामिति शेषः ॥ १ ॥ नन्दगोपं सपुत्रश्रीकं मथुरां प्रति करं प्रदातुमागतामित्यर्थात् भागवताच्च गम्यते ॥२॥ गुणैर्जातकर्मादिसंस्कारैर्लिप्याद्यभ्यासैश्च ॥ ३ ॥ प्रज्ञा दैवाधीनामिदमिति धीः ह्रियते भयादिनेति शेषः ॥ ५ ॥ तत्त्वान्वेषी यथावदालोचयन् । बालद्रोहिणां स्वरूपमिति शेषः ॥ ७ ॥

---

१ ख. °र्भे च नि° । २ ख. °व च । ३ ख. °लपक्वमि° । ४ ख. °तस्त्वमेव तु । अ° । *कालभूतेति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । ५ क. ख. °व सः । जा° । ६ क. ख. °तं मन्युका° । ७ क. °ना प्रहृ° । × वैशम्पायनेति ख. ग. घ. पुस्तकेषु नास्ति । ८ क. ख. °शु सुखं° । ९ क. तत्रैतौ दा°, ख. तत्रेमौ दा° । १० ख. यथा चरौ° । ११ ख. °सि शिशुं ता° । १२ ख. °न्ति ह ।

स च पुत्रो मम ज्यायान्कनीयांश्च तवाप्ययम्
उभावपि समं नाम्ना निरीक्षस्व यथासुखम् ८
वर्धमानावुभावेतौ समानवयसौ यथा।
शोभेतां गोव्रजे तस्मिन्नन्दगोप तथा कुरु॥ ९
बाल्ये केलिकिलः सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः
बाल्ये चण्डतमः सर्वस्तत्र यत्नपरो भव ॥ १०
न च वृन्दावने कार्यो गवां घोषः कथंचन।
भेतव्यं तत्र वसतः केशिनः पापदर्शिनः ११
सरीसृपेभ्यः कीटेभ्यः
शकुनिभ्यस्तथैव च।
गोष्ठेषु गोभ्यो वत्सेभ्यो
रक्ष्यौ ते द्वाविमौ शिशू ॥ १२
नन्दगोप गता रात्रिः शीघ्रयानो व्रजाशुगः।
इमे त्वां व्याहरन्तीव पक्षिणः सव्यदक्षिणम्
रहस्यं वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना।
यानं यशोदया सार्धमारुरोह मुदान्वितः १४
कुमारस्कन्धवाह्यायां शिबिकायां समाहितः
संवेशयामास शिशुं शयनीयं महामतिः १५
जगाम च विविक्तेन शीतलानिलसर्पिणा।
बहूदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना ॥ १६
स ददर्श शुभे देशे गोवर्धनसमीपगे।
यमुनातीरसंबद्धं शीतमारुतसेवितम् ॥ १७
विरुतश्वापदं रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम्।
गोभिस्तृणविलग्नाभिः स्यन्दन्तीभिरलंकृतम्
समप्रचारं च गवां समतीर्थजलाशयम्।
वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम्
भासामिषादानुसृतैः श्येनैश्चामिषगृध्नुभिः।
सृगालमृगसिंहैश्च वसामेदाशिभिर्वृतम् ॥ २०
शार्दूलशब्दाभिरुतं नानापक्षिसमाकुलम्।
स्वादुवृक्षफलं रम्यं पर्याप्ततृणवीरुधम् ॥ २१
गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभिरावृतम् ॥
हम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिःस्वनम् २२
शकटावर्तविपुलं कण्टकीवाटसंकुलम्।
पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्बृहद्भिः पतितैर्द्रुमैः ॥ २३
वत्सानां रोपितैः कीलैर्दामभिश्च विभूषितम्
करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम् ॥ २४
क्षेम्यप्रचारबहुलं हृष्टपुष्टजनावृतम्।
दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गारनिःस्वनम् ॥२५॥
तक्रनिःस्रावमलिनं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम्।
मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम् २६

---

नाम्ना नामार्थेन निरीक्षस्व यथा कृष्णस्तव चित्तं कर्षति स्नेहातिशयाद्वशीकरोति तथा संकर्षणोऽपि त्वां रमयत्वित्यर्थः ॥ ८ ॥ केलिकलः स्वेच्छाविहारी ॥१०॥ घोषो गोपग्रामः ॥११॥शिबिकायाम् आन्दोलिकायां शिबिकायां सुखरूपायामिति प्राञ्चः। मृदुतूलिकायामिति तस्यार्थः कशिपुशब्दसाहस्यात् ॥१५॥ बहूदकत्वात् शीतलोऽनिलः सर्पत्यस्मिन् तेन शीतलानिलसर्पिणा ॥ १६ ॥ स ददर्श गोव्रजमिति पञ्चदशगतेनान्वयः ॥ १७ ॥ विशिष्टं रुतं येषां तैः श्वापदैर्विरुतश्वापदैः लता भुवि प्रसर्पन्त्यः कूष्माण्ड्यादयो वल्ल्यः आरोहणसापेक्षा द्राक्षादयः तत्सहिता महान्तो द्रुमा यस्मिन्। स्यन्दन्तीभिः प्रस्रवंतीभिः ॥ १८ ॥ समानि तीर्थानि जलावतरणमार्गा येषु तादृशा जलाशया यत्र॥१९॥ भासाः गृध्राः तदनुसृतैः श्येनैः। आमिषादा वनबिडालादयस्तदनुसृतैस्ततोऽधिकबलैः सृगालादिभिश्च । वृतम् । मृगश्चित्रव्याघ्रः ॥२०॥ हम्भारवैर्गोशब्दैः ॥ २२ ॥ वाटो वृत्तिस्थानं कण्टकपरिधिः। "वाटो मार्गवृत्तिस्थाने" इति मेदिनी ॥ २३ ॥ करीषं शुष्कगोमयचूर्णम् ॥ २४ ॥ क्षेम्या लब्धलक्षणार्हाः भटास्तत्प्रचारेण बहुलं समृद्धिमत्। दामिनी स्थूणद्वयाक्रान्तप्रान्ता स्थूलरज्जुः यस्यां दामान्यासज्यन्ते। गर्गरो मन्थनकुम्भः। "गर्गरो मीनभेदे स्यान्मन्थन्यामपि गर्गरी।" इति विश्वः ॥२५॥ तक्रेत्यन्तं गोरसाधिक्यमुक्तम्। निःस्रावो रेचनप्रणालिका तद्देशे शैवालेन मलिनं मण्डम् उपर्यागतः सारः ॥ २६ ॥

---

१ क. °श्च तवात्मजः। उ°। २ क. °थातथम्। वर्ध°। ३ ख. °ति मानुषः। बा°। ४ ख. °षः कदाचन। तत्र वासे तु भेतव्यं केशि°। ५ ख. °जान्वितः। इ°। ६ ख. °मे त्वां त्वरयन्तीव प°। ७ क. ख. °क्षिणाः। रं°। ८ क. ख. °दा युतः। ९ क. °मारं स्क°। १० ख. शिबिकायां म°। ११ क. °हामनाः। ज°। १२ ख. °नवनोप°। १३ क. ख. °बद्धं शी°। १४ ख. विगतश्वा°। १५ ख. °नुसृतं श्ये°। १६ क. °गृद्धिभिः। सृ°। १७ ख. वशामे°। १८ क. °मेदोशि°। १९ क. ख. °र्णसंस्तरम्। गोव्र°। २० क. ख. °रुताशिवं गोप°। २१ क. °श्च निषेवितम्। क°। २२ क. °कविस्रा°। २३ ख. °वबहुलं द°।

काकपक्षधरैर्बालैर्गोपालक्रीडनाकुलम् ।
सार्गलद्वारगोवाटं मध्ये गोस्थानसंकुलम्॥२७
सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम् ।
नीलपीताम्बराभिश्च तरुणीभिरलंकृतम्॥२८
वन्यपुष्पावतंसाभिर्गोपकन्याभिरावृतम् ।
शिरोभिर्धृतकुम्भाभिर्बद्धैरग्रस्तनाम्बरैः ॥ २९
यमुनातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम् ।
स तत्र प्रविशन्हृष्टो गोव्रजं गोपनादितम् ॥
प्रत्युद्गतो गोपवृद्धैः स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव च ।
निवेशं रोचयामास परिवर्ते सुखाश्रये ॥ ३१
सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवसुखावहा ।
तत्र तं बालसूर्याभं कृष्णं गूढं न्यवेशयत् ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोव्रजगमनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः॥ ५ ॥

## शकटभङ्गपूतनावधौ

### ६

वैशम्पायन उवाच ।
तत्र तस्यासतः कालः सुमहानत्यवर्तत ।
गोव्रजे नन्दगोपस्य बल्लवत्वं प्रकुर्वतः ॥ १
दारकौ कृतनामानौ ववृधाते सुखं च तौ ।
ज्येष्ठः संकर्षणो नाम कनीयान्कृष्ण एव तु २
मेघकृष्णस्तु कृष्णोऽभूद्देहान्तरगतो हरिः ।
व्यवर्धत गवां मध्ये सागरस्य इवांबुदः ॥ ३
शकटस्य त्वधः सुप्तं कदाचित्पुत्रगृद्धिनी ।
यशोदा तं समुत्सृज्य जगाम यमुनां नदीम्
शिशुलीलां ततः कुर्वन्स हस्तचरणौ क्षिपन् ।
रुरोद मधुरं कृष्णः पादावूर्ध्वं प्रसारयन् ॥ ५
स तत्रैकेन पादेन शकटं पर्यवर्तयत् ।
न्युब्जं पयोधराकांक्षी चकार च रुरोद च ॥६
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा भयविक्लवा ।
स्नाता प्रस्रवदिग्धाङ्गी बद्धवत्सेव सौरभी ७
सा ददर्श विपर्यस्तं शकटं वायुना विना ।
हाहेति कृत्वा त्वरिता दारकं जगृहे तदा ८
न सा बुबोध तत्त्वेन शकटं परिवर्तितम् ।
स्वस्ति मे दारकायेति
प्रीता भीता च साऽभवत् ॥ ९

---

गोपाः क्रीडन्त्यस्मिन्निति क्रीडास्थानम् **अखाडा** इति भाषाप्रसिद्धम्॥२७॥ अग्रस्तनाम्बरैः **काञ्चोली** इति भाषाप्रसिद्धैः कञ्चुकैरुपलक्षिताः ॥ २९ ॥ परिवर्ते शकटादिप्रकारे सुखकरे आश्रयस्थाने ॥ ३१ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

**षष्ठे त्वथैतदध्याये**
**कृष्णेनाधःस्थितानसः ।**
**भञ्जनं पूतनायाश्च**
**शोषणं समुदीर्यते ॥ १ ॥**

तत्र असतः अप्रकाशमानस्य । बल्लवत्वं गोपत्वम्॥१॥ **"पृथुरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः । कृष्णादुदस्थादर्या ३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयायैतेन"** इति मन्त्रोक्तमर्थमुपबृंहयति-**शकटस्येति** । मन्त्रार्थस्तु- पृथुर्महान् रथः शकटं दक्षिणायाः दिशः संबन्धी मृत्युकरमित्यर्थः । अयोजि योजितः शत्रुभिरित्यर्थाल्लभ्यते तमेनं रथं देवासो देवाः अमृतासो अमृता आसमन्तात् अस्थुः परिवार्य स्थितवन्तः। एतस्मिन्नन्तरे सः रथः कृष्णात् कृष्णं प्राप्य तत्प्रेरणेन उदस्थात् उत्थितः विहायाः आकाशाश्रितः विशेषेण हयते गच्छतीति वा यन्त्रोत्क्षिप्तगोलकवदाकाशमार्गेणोत्थाय पतितः सन्नष्ट इत्यर्थः । ततश्च अर्या ईश्वरी स्वामिनी माता तत्रत्यप्रजा वा । चिकित्सन्ती संशयवन्ती मानुषाय मानुषस्य क्षयाय नाशाय एतेन पतता रथेनायं बालकः कथं न नाशित इत्यत्र कारणविशेषमपश्यन्ती संदिहानैवातिछन्न त्वीश्वरकृत्यमेतादित्यवेदीदिति भावः । एवमेव सर्वेषामर्थानां प्रत्यक्षश्रुतिमूलकत्वमुन्नेयं वेदोपबृंहणत्वादस्य शास्त्रस्य । पुत्रेत्यत्र कर्मेति पाठे कर्मगृद्धिनी स्नानैकचित्ता ॥४॥ विपर्यस्तं विपरीतस्थितम् ॥ ८ ॥

---

१ क. ॰भिः समंततः । व॰ । २ ख. ॰व च । ३ ख. ॰चित्कर्मगृ॰ । ४ ख. ॰दा शीघ्रविक्रमा । स्ना॰ । ५ ख. ॰त्वा त्वरितं दा॰ । ६ ख. ॰ध तत्केन श॰ ।

किं तु वक्ष्यति ते पुत्र पिता परमकोपनः ।
त्वय्यधः शकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते[1] १०
किं मे स्नानेन दुःस्नानं किं च मे गमने नदीम्[2]
पर्यस्ते शकटे पुत्र या त्वां पश्याम्यपावृतम्[3]
एतस्मिन्नन्तरे गोभिराजगाम वनेचरः । ·
काषायवाससी बिभ्रन्नन्दगोपो व्रजान्तिकम्
स ददर्श विपर्यस्तं भिन्नभाण्डघटीघटम् ।
अपास्तधूर्विभिन्नाक्षं[4] शकटं चक्रमौलिनम् १३
भीतस्त्वरितमागत्य[5] सहसा साश्रुलोचनः ।
अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद्वचनं वदन् ॥ १४
पिबन्तं स्तनमालक्ष्य[6] पुत्रं स्वस्थोऽब्रवीत्पुनः ।
वृषयुद्धं विना केन पर्यस्तं शकटं मम ॥ १५
प्रत्युवाच यशोदा तं भीता गद्गदभाषिणी ।
न[7] विजानाम्यहं केन शकटं[8] परिवर्तितम् १६
अहं[9] नदीं गता सौम्य चैलप्रक्षालनार्थिनी ।
आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि ॥१७
तयोः कथयतोरेवमब्रुवंस्तत्र दारकाः[10] ।
अनेन शिशुना यानमेतत्पादेन[11] लोडितम् १८
अस्माभिः संपतद्भिश्च दृष्टमेतद्यदृच्छया ।
नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ १९
प्रहृष्टश्चैव भीतश्च किमेतदिति चिन्तयन् ।
न च ते श्रद्दधुर्गोपाः सर्वे मानुषबुद्धयः ॥२०×
आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ।
स्वे स्थाने शकटं स्थाप्य चक्रबन्धमकारयन्* ॥

वैशम्पायन उवाच ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनी वेषधारिणी
धात्री कंसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता २२
पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणभयङ्करी ।
आजगामार्द्धरात्रे वै[12] पक्षौ क्रोधाद्विधुन्वती ॥
ततोऽर्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत ।
व्याघ्रगम्भीरनिर्घोषं[13] व्याहरन्ती पुनः पुनः ॥२४
निलिल्ये शकटस्याक्षे[14] प्रस्नवोत्पीडवर्षिणी ।
ददौ स्तनं च[15] कृष्णाय तस्मिन्सुप्ते[16] जने निशि
तस्याः स्तनं पपौ कृष्णः प्राणैः सह विनद्य[17] च
छिन्नस्तनी तु[18] सहसा पपात शकुनी भुवि २६
तेन शब्देन वित्रस्तास्ततो बुबुधिरे भयात्[19] ।
स नन्दगोपो गोपा वै[20] यशोदा च सुविक्लवा
ते तामपश्यन्पतितां विसंज्ञां विपयोधराम् ।
पूतनां पतितां भूमौ वज्रेणेव विदारिताम् २८
इदं किं त्विति संत्रस्ताः कस्येदं कर्म चेत्यपि
नन्दगोपं पुरस्कृत्य गोपास्ते पर्यवारयन् ॥ २९
नाध्यगच्छन्त च तदा हेतुं तत्र कदाचन ।
आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोऽनुययुर्गृहान् ॥३०
गतेषु तेषु गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम् ।
यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छ गतसंभ्रमः ॥ ३१

---

गमने प्रयोजनमिति शेषः ११ भिन्नानि भाण्डादीनि येन तम् भाण्डं चक्रोपरितनो व्यूहः पात्राख्यः घटी धुरोऽग्रभागकलशः घटा घटना च भिन्नानि तानि यस्येति। चक्रमौलिनं चक्रं मौलाविवोपरि यस्य तम्। व्रीह्यादित्वादिनिः ।। १३ ।। लोडितम् उन्मथितम्।।१८।। सर्वे सर्वात्मनीश्वरे। "सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः" इति निर्वचनात्संज्ञाशब्दोऽयमतो नात्र सर्वनामसंज्ञा ।।२०।। शकुनी पाक्षिणी बकानुजात्वात् वेषधारिणी मनुष्यवेषधारिणीति कंसस्य धात्रीति व्रजस्थैः श्रुता ।।२२।। प्रस्नवोत्पीडवर्षिणी प्रस्नवेण क्षीराधिक्येन यः स्तनयोरुत्पीडः पीडा तेन वर्षिणी ।।२५।। तत्र पूतनावधे हेतुं कारणं नाध्यगच्छन्त नाधिगतवन्तः नन्दादयः गोपा बालरूपा देवास्तु जानन्त्येवेत्याह मन्त्रः-"हेतिः पक्षिणी न दभ्नात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने। शन्नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः" इति। हेतिरायुधवद्वधकारिणी पाक्षिणी पूतनारूपा अस्मान् व्रजस्थान् न दभ्नाति नाभिभवति प्रत्युत अग्निधाने जाठराग्निधाने निमित्ते शिशोर्जाठरमग्निं स्तनदानेन तर्पयितुम् आष्ट्र्याम् "आष गतिदीप्त्यादानेषु" आषयति परलोकं गमयति मृत्युना ग्राहयति वा देहं दीपयति वा आष्ट्री कृष्णतनुस्तस्यां पदं स्थानं कृणुते कृष्णं पाययितुं स्वमृत्युरूपां तां तनुं स्पृशति स्मेत्यर्थः ॥ ३० ॥

---

१ ख. °स्मात्तु वि° । २ ख °नं नद्याश्च गमनेन किम् । प° । ३ ख. °टे तात यत्त्वां प° । ४ क. ख. °विभग्नाक्षं श° । ५ ख. °गम्य स° । ६ ख. °मालोक्य पु° । ७ ख. न हि जा° । ८ क. ख. शकटं भुवि पातित° । ९ ख. °हं गता नदीमार्य चै° । १० क. °त्र बालकाः । अ° । ११ ख. °न पातितम् । अ° । × नन्दगोपस्त्विति श्लोकार्धत्रयं खपुस्तके नास्ति । *अत्र खपुस्तकेऽध्यायसमाप्तिः ।१२ क. °त्रे तु प° । १३ ख. °घोषा व्या° १४ ख. °कटाक्षे सा प्र° । १५ ख. °नं सा कृ° । १६ ख. °सुप्तजने नि° । १७ ख. °ह ननाद च । १८ ख. °नी सा प्र° । १९ ख. °रे जनाः । स नं° । २० ख. °चाश्च य° ।

कोऽयं विधिर्न जानामि विस्मयो मे महानयम्
पुत्रस्य मे भयं तीव्रं भीरुत्वं समुपागतम् ३२
यशोदा त्वब्रवीद्भीता
नार्य जानामि किं त्विदम् ।
दारकेण सहानेन
सुप्ता शब्देन बोधिता ॥ ३३
यशोदायामजानन्त्यां नन्दगोपः सबान्धवः ।
कंसाद्भयं चकारोग्रं विस्मयं च जगाम ह ३४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां शकटभङ्गपूतनावधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## यमलार्जुनभङ्गः

## ७

वैशम्पायन उवाच ।
काले गच्छति तौ सौम्यौ दारकौ कृतनामकौ
कृष्णसंकर्षणौ चोभौ रिङ्गिणौ समपद्यताम् १
तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकतां गतौ
एकमूर्तिधरौ कान्तौ बालचन्द्रार्कवर्चसौ २
एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ ।
एकवेषधरावेकं पुष्यमाणौ शिशुव्रतम् ॥ ३
एककार्यान्तरगतावेकदेहौ द्विधाकृतौ ।
एकचर्यौ महावीर्यावेकस्य शिशुतां गतौ ॥४॥
एकप्रमाणौ लोकानां देववृत्तान्तमानुषौ ।
कृत्स्नस्य जगतो गोपा संवृत्तौ गोपदारकौ ५
अन्योन्यव्यतिषक्ताभिः क्रीडाभिरभिशोभितौ
अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ६
विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ ।
रेजतुः पांसुदिग्धाङ्गौ दृप्तौ कलभकाविव ॥७
क्वचिद्भस्मप्रदिग्धाङ्गौ करीषप्रोक्षितौ क्वचित् ।
तौ तत्र पर्यधावेतां कुमाराविव पावकी ॥८॥
क्वचिज्जानुभिरुद्घृष्टैः सर्पमाणौ विरेजतुः ।
क्रीडन्तौ वत्सशालासु शकृद्दिग्धाङ्गमूर्धजौ ॥९
शुशुभाते श्रिया जुष्टावानन्दजननौ पितुः ।
जनं च विप्रकुर्वाणौ विहसन्तौ क्वचित्क्वचित्
तौ तत्र कौतूहलिनौ मूर्धजव्याकुलेक्षणौ ।
रेजतुश्चन्द्रवदनौ दारकौ सुकुमारकौ ॥११॥
अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वव्रजविचारिणौ ।
नाशकत्तौ वारयितुं नन्दगोपः सुदुर्मदौ ॥१२
ततो यशोदा संक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम् ।
आनाय्य शकटीमूले भर्त्सयन्ती पुनः पुनः १३
दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा
प्रत्यबन्धदुलूखले ।
यदि शक्तोऽसि गच्छेति
तमुक्त्वा कर्म साऽकरोत् ॥ १४
व्यग्रायां तु यशोदायां निर्जगाम ततोऽङ्गणात्
शिशुलीलां ततः कुर्वन्कृष्णो विस्मापयन्व्रजम्
सोऽङ्गणान्निःसृतः कृष्णः कर्षमाण उलूखलम्
यमलाभ्यां प्रवृद्धाभ्यामर्जुनाभ्यां चरन्वने
मध्यान्निश्चक्राम तयोः कर्षमाण उलूखलम् १६

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

**अथास्मिन्सप्तमेऽध्याये यमलार्जुनयोर्भिदा मध्यंगतेन कृष्णेन ध्वस्तावेवेति वर्ण्यते॥**

काले रिङ्गिणौ जानुभ्यां रङ्गणशीलौ ॥१॥ अन्योन्यगतौ परस्परस्मिन्नन्तर्भूतौ एकमूर्तिधरौ एकशरीराविव ॥ २ ॥ एकरूपौ अभिन्नौ सन्तौ निर्माणनिर्मुक्तौ जन्महीनौ ॥ ३ ॥ एकस्य कार्यस्य अन्तरं रहस्यं गतौ प्राप्तौ एककार्यनिष्ठावित्यर्थः ॥ ४ ॥ देवानां वृत्तान्तः सिद्धान्तः पापिष्ठा हन्तव्या यज्ञदानादिकं च प्रवर्तनीयमित्येवंरूपस्तदर्थं मानुष्यभूतौ देववृत्तान्तमानुषौ ॥ ५ ॥ व्यतिषक्ताभिर्मिश्राभिः । ग्रस्तौ पूर्णमास्यां चन्द्रोदये सूर्यस्यास्तमयः तदुदये इन्दोरिति तयोरन्योन्यकिरणग्रस्तत्वम् ॥ ६ ॥ सर्पभोगभुजौ सर्पदेहतुल्यबाहू । कलभसदृशौ कलभकाविव स्वार्थे वा कः ॥७॥ पावकी अग्निपुत्रौ द्वौ कार्तिकेयाविवेत्यभूतोपमा ॥ ८ ॥ विप्रकुर्वाणौ नवनीतचौर्यादिना उपकारं कुर्वाणौ ॥ १० ॥

१ क. ख. °यं भीरु भी° । २ ख. °ककार्यौ म° । ३ क. °क्षकौ । रे° । ४ क. ख. सुदुर्दमौ । त° । ५ ख. °न्सर्वं वि° । ६ ख. °वृत्ताभ्या° । ७ ख. °भ्यां निवारितः । म° । ८ क. मध्ये निष्कामति शिशुः क° ।

तत्तस्य कर्षतो बद्धं तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
लग्नं ताभ्यां समूलाभ्यामर्जुनाभ्यां चकर्ष च ॥
तावर्जुनौ कृष्यमाणौ तेन बालेन रंहसा ।
समूलविटपौ भग्नौ स तु मध्ये जहास वै १८
निदर्शनार्थं गोपानां दिव्यं स्वबलमास्थितः
तद्दाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद्दृढम् १९
यमुनातीरमार्गस्था गोप्यस्तं ददृशुः शिशुम् ।
क्रन्दन्त्यो विस्मयन्त्यश्च यशोदां ययुरङ्गनाः
तास्तु संभ्रान्तवदना यशोदामूचुरङ्गनाः ।
पश्चागच्छ यशोदे त्वं संभ्रमात्किं विलम्बसे
यौ तावर्जुनवृक्षौ तु व्रजे सत्योपयाचनौ ।
पुत्रस्योपरि तावेतौ पतितौ ते महीरुहौ २२
दृढेन दाम्ना तत्रैव बद्धो वत्स इवोदरे ।
जहास वृक्षयोर्मध्ये तव पुत्रः स बालकः ॥२३
उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मेधे मूढे पण्डितमानिनि ।
पुत्रमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव ॥२४॥
सा भीता सहसोत्थाय हाहाकारं प्रकुर्वती ।
तं देशमगमद्यत्र पातितौ तावुभौ द्रुमौ ॥२५॥
सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम् ।
दाम्ना निबद्धमुदरे कर्षमाणमुलूखलम् ॥२७॥
सा गोपी गोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा ।
पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम् ॥२७॥
जजल्पुस्ते यथाकामं गोपा वनविचारिणः ।
केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोषस्यायतनोपमौ ॥
विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना ।
विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पातितौ द्रुमौ ×
अहो बत न शोभेतौ विमूलावर्जुनाविभौ ।
भूमौ निपतितौ वृक्षौ वितोयौ जलदाविव ।
यर्दीमौ घोषरचितौ घोषकल्याणकारिणौ †
नन्दगोप प्रसन्नौ ते द्रुमावेवं गतावपि ।
यच्च ते दारको मुक्तो विपुलाभ्यामपि क्षितौ
औत्पातिकमिदं घोषे तृतीयं वर्तते त्विह ।
पूतनाया विनाशश्च द्रुमयोः शकटस्य च ३२
अस्मिन्स्थाने च वासोऽयं
घोषस्यास्य न युज्यते ।
उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते
कथयन्तो न शोभनम् ३३
नन्दगोपस्तु सहसा मुक्त्वा कृष्णमुलूखलात्
निवेश्य चाङ्के सुचिरं मृतं पुनरिवागतम् ॥
नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै कृष्णं कमललोचनम् ।
ततो यशोदां गर्हन्वै नन्दगोपो विवेश ह ।
स च गोपजनः सर्वो व्रजमेव जगाम ह ॥३५

---

**तत्तस्येति** । अर्जुनाभ्याम् अर्जुनौ उद्धर्तुमित्यर्थः । अत्रेदमाम्नायते—" यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः । ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत्सुतम् " इति । यत्र उलूखले मन्थां मन्थानमिव मन्थानं लोकक्लेशकरं मां विबध्नते विशेषेण बध्नन्ति मातरः रश्मीनादाय रश्मिभिरित्यर्थः । यमितवा इव विनिग्रहीतुमिव न तु वस्तुतो निग्रहीतुं मातृत्वेन मयि स्निग्धत्वात् तेन उलूखलेन सुतानां पीडितानां कर्मणि षष्ठी उलूखलपीडितान् अस्मान् हे इन्द्र मोचनसमर्थ अव रक्ष । पादादित्वादाद्युदात्तमाख्यातम् । इन्दु एवमेव त्वं जल्गुलोऽसि एनं मुञ्चामीति जल्पितुं मां च गोपितुं त्रातुं लातुम् आदातुं स्वाधीनं कर्तुं च समर्थोऽसि यतः अतोऽव मामित्यर्थः । एवं यदा सर्वान् प्रार्थयन्नपि न मोचनं लभते तदा वनस्पत्योरन्तरा गत्वा बन्धनदाम त्रोटितुं यावद्बलं करोति तावद्वनस्पती एव उन्मूलितौ दृष्ट्वा वदति । ता नो इति । त्रातौ नोऽस्माकं व्रजवासिनां वनस्पतिभूतौ अतिप्रसिद्धौ यमलौ अर्जुनजातीयौ भो वनस्पती अद्य इन्द्राय इन्द्रं प्रति गन्तुं सुतं तदुन्मूलनेन आत्मानं पीडयन्तं तदेव मधुमत् अमृतयुक्तम् अतिसम्यगित्यर्थः । यतः ऋष्वो गतिमन्तौ युवां स्थावरत्वान्मुक्तौ स्थ इत्यर्थः । ऋष्वेभिर्गतिमद्भिर्जङ्गमैः जनैः सोतृभिरस्मद्बन्धनकैरुपलक्षितौ ॥ १७ ॥ **सत्योपयाचनौ** प्रार्थितप्रदत्वेन देवताभूतौ ॥ २२ ॥ विपुलाभ्यामर्जुनाभ्याम् ॥ ३१ ॥

---

१ ख. °र्ष सः । २ ख. °स च म° । ३ क. °स च । ४ क. °नार्थे गो° । ५ ख. °दार्निकटं ययुः। ता° । ६ क. °तौ तौ म° । ७ क. °स मध्ये वृक्षाणां त° ८ क. °च्छततो द्र° । ९ क. ख. °पुत्र्य य° × **विना वर्षमिति पद्यं धर्मकीर्तिविरचिते रूपावतारे कारकप्रकरण उद्धृतं वर्तते** । १० ख. °भेते वि° । † यर्दीमाविति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । ११ क. यदाभ्यां दा° । १२ ख. °भ्यामविक्षतः । औ° । १३ क. ख. °ने निवा° ।

स च तेनैव नाम्ना तु
कृष्णो वै दामबन्धनात् ।
गोष्ठे दामोदर इति
गोपीभिः परिगीयते ॥ ३६
एतदाश्चर्यभूतं हि बालस्यासीद्विचेष्टितम् ।
कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां यमलार्जुनभङ्गे नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

## वृकदर्शनम्

८

वैशम्पायन उवाच ।
एवं तौ बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतुः ॥ १
नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।
बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ ॥ २
पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयन्तौ वराननौ ।
शुशुभाते वनगतौ त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥ ३
मयूराङ्गदकर्णौ तु पल्लवापीडधारिणौ ।
वनमालाकुलोरस्कौ द्रुमपोताविवोद्गतौ ॥ ४
अरविन्दकृतापीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ ।
सशिक्यतुम्बकरकौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥ ५
क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ क्वचित्क्वचित्
पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरेक्षणौ ॥ ६
एवं वत्सान्पालयन्तौ शोभयन्तौ महावनम्
चञ्चूर्यन्तौ रमन्तौ स्म किशोराविव चञ्चलौ ॥ ७
अथ दामोदरः श्रीमान्संकर्षणमुवाच ह । *
आर्य नास्मिन्वने शक्यं गोपालैः सह क्रीडितुम्
अवगीतमिदं सर्वमावाभ्यां भुक्तकाननम् ।
प्रक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम् ॥ ९

एतदिति । एवमादीत्यर्थः । अत्र तृणावर्तवधोऽपि पुराणान्तरादुपसंहर्तव्यः । तदुपबृंहिका श्रुतिस्तु-"साकं यक्ष्म प्रयत चाषेण किकिदीविना । साकं वा तस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया" इति । खेचरत्वेन यक्षं पूज्यमिवात्मानं मनुते मिमीते तोलयति वा यक्ष्मः हे यक्ष्म राक्षस तद्वत्पीडकेति वा चाषेण तद्वर्णेन हरिणा तव हन्त्रा साकं प्रयत भूमाविति शेषः । किकिदीविना ज्ञः सन् दीव्यतीति किकिदीविः । किधातोर्बाहुलकात् किप्रत्यये लिड्भावे च किकिर्विद्वान् तेन वा तस्य वायोर्ध्राज्या गत्या यया धूलिवात्यारूपया एनम् उपरि नीतवानसि तया साकं नश्य नाशं प्राप्नुहि । निहाकया गत्या च साकं वा साहित्यं पतन एव न तु नाशे अतस्तेन सह पतितः सन् स्वयमेक एव नाशं प्राप्नुहीत्यर्थः । एवं देवैरुक्ते तृणावर्तः पपात ममारेत्यर्थः ॥ ३७ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

**अस्मिन्नथाष्टमेऽध्याये वनान्तरमियासतः ।
तनूरुहसमुत्पन्ना वृकाः कृष्णस्य वर्ण्यते १**

एवं तावित्यध्यायः "सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ । अधाशयीत निर्ऋतेरुपस्थे धैनं वृका रभसासो अद्युः" इत्यस्य मन्त्रस्योपबृंहणार्थः । मन्त्रार्थः— पुरूरवसं प्रत्युर्वशी वदति । सुदेवः शोभनस्वामिको व्रजः आद्यक्षरलोपेन वासुदेवो वा अद्य प्रपतेत् अद्यैव उपद्रवसमकालं गच्छेत् अनावृत् नास्ति आवृत् निरोधको यस्य तादृशोऽपि परावतं परमात् दूराद् दूरतरं गन्तवै गन्तुम् उ निश्चितं प्रपतेदित्यन्वयः । अथ पक्षान्तरे यदि सुदेवो न प्रपतेत्तर्हि निर्ऋतेरुपस्थे शयीत अध अथवा एनं व्रजं वासुदेवपरिजनं रभसासो रभसाः वेगवन्तः वृकाः अद्युः भक्षयेयुः तस्माद्वासुदेवो वा तत्परिगृहीतो व्रजो वा वृकेभ्यो बिभेति अतस्त्वादृशेनापि इन्द्रियवृकेभ्यः सुतरां भेतव्यमिति भावः । इतः स्पष्टार्थं मूलम् ॥ १ ॥ पणवो हि तुम्बीफलोपेतो वाद्यविशेषः । आद्यपदात्तादृशं रुद्रवीणादिकं पणवाद्यमत एव त्रिशीर्षाविवेति दृष्टान्तः संगच्छते । पर्णवाद्यमित्यपि पाठः ॥ ३ ॥ चंचूर्यन्तौ अत्यन्तं संचरन्तौ किशोराविव अश्वपोताविव ॥ ७ ॥ अवगीतं नाशितं भुक्तभोगं काननम् ॥ ९ ॥

१ क. °दकण्ठौ तौ प°, ख. °ङ्गदकर्णौ तौ प° । २ क. ख. °न्तरेक्षिणौ । ए° । ३ ख. °णमभाषत । आ° । * अत्र कपुस्तके-भगवानुवाच इत्यधिकः पाठः । ४ ख. °भ्यां भक्त° ।

घनीभूतानि यान्यास-
न्काननानि वनानि च।
तान्याकाशनिकाशानि
दृश्यन्तेऽद्य यथासुखम् ॥ १०
गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः परिवृत्तार्गलेषु च।
सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चसः ॥ ११
संनिकृष्टानि यान्यासन्काष्ठानि च तृणानि च
तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु १२
अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्षं निराश्रयम्।
अन्वेषितव्यविश्रामं दारुणं विरलद्रुमम् १३
अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रं स्थितद्विजम्।
संवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम्
निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजनमारुतम्।
निर्विहङ्गमिदं शून्यं निर्व्यञ्जनमिवाशनम् १५
विक्रीयमाणैः काष्ठैश्च शाकैश्च वनसंभवैः।
उच्छिन्नसंचयतृणैर्घोषोऽयं नगरायते ॥ १६
शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम्।
वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परा गतिः
तस्मादन्यद्वनं यामः प्रत्यग्रयवसेन्धनम्।
इच्छन्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च
तस्माद्वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिनो व्रजाः।
न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा।
प्रशस्ता वै व्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः
शकृन्मूत्रेषु तेष्वेव जातक्षाररसायनम्।
न तृणं भुञ्जते गावो नापि तत्पयसे हितम्
स्थलीप्रायासु रथ्यासु नवासु वनराजिषु।
चरावः सहिता गोभिः क्षिप्रं संवाह्यतां व्रजः
श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्तं तृणसंस्तरम्।
नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् २२
अझिल्लिकण्टकवनं सर्वैर्वनगुणैर्युतम्।
कदम्बपादपप्रायं यमुनातीरसंश्रितम् ॥ २३
स्निग्धशीतानिलवनं सर्वर्तुनिलयं शुभम्।
गोपीनां सुखसंचारं चारुचित्रवनान्तरम् २४
तत्र गोवर्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान्।
भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः २५
मध्ये चास्य महाशाखो
न्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः।
भाण्डीरो नाम शुशुभे
नीलमेघ इवाम्बरे ॥ २६
मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव कुर्वती
प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरितां वरा २७
तत्र गोवर्धनं चैव
भाण्डीरं च वनस्पतिम्।
कालिन्दीं च नदीं रम्यां
द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम् ॥ २८
तत्रायं कल्प्यतां घोषस्त्यज्यतां निर्गुणं वनम्
संत्रासयावो भद्रं ते किंचिदुत्पाद्य कारणम्
एवं कथयतस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः।
प्रादुर्बभूवुः शतशो रक्तमांसवसाशनाः ॥ ३०
घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तदा।
विनिष्पेतुर्भयकराः सर्वशः शतशो वृकाः ३१
निष्पतन्ति स्म बहवो व्रजस्योत्सादनाय वै*
वृकान्निष्पतितान्दृष्ट्वा गोषु वत्सेष्वथो नृषु ३२
गोपीषु च यथाकामं व्रजे त्रासोऽभवन्महान्
ते वृकाः पञ्चबद्धाश्च दशबद्धास्तथा परे ॥ ३३
त्रिंशद्विंशतिबद्धाश्च शतबद्धास्तथा परे।
निश्चेरुस्तस्य गात्रेभ्यः श्रीवत्सकृतलक्षणाः ॥

काननानि उद्यानानि वनानि अरण्यानि आकाशनिकाशानि पत्रादिना शून्यानि ॥ १० ॥ परितो वृत्तचक्राकारः परिधिः अर्गलाश्च येषु तेषु परिवृत्तार्गलेषु ॥११॥ निर्व्यञ्जनं शाकसूपादिहीनम् ॥ १५ ॥ कर्तव्यमाह—**तस्मादिति** ॥ १८ ॥ ननु पितृपर्यागता भूमिर्निर्धनाऽपि सुखावहेत्युक्तेः कथं पूर्वस्थानं त्याज्यमित्याह—न द्वारेति। चक्रेण समुदायेन चरन्ति ते चक्रचारिणो हंससारसादयः अनिकेता इत्यर्थः ॥ १९ ॥ शकृन्मूत्रेषु तेष्वेषु तृणेषु पतितेषु सत्सु ॥ २० ॥ स्थलीप्रायासु समभूमितुल्यासु निस्तृणास्वित्यर्थः ॥ २१ ॥ स्निग्धवनं शीतानिलं चेति संबन्धः ॥ २४ ॥ चरतो मृगादीनिति शेषः॥२८॥**पञ्चबद्धाः** पञ्चादिसंख्यया संहताः ॥ ३३ ॥

१ ख. °न्ते स य°। २ ख. °टेषु च ये°। ३ क. °ष्ठानि मा°। ४ क. उत्सन्न°। ५ ख. यावः प्र°। ६ ख. °नि वै। ७ क. ख. °सु रम्यासु। ८ ख. °ता गो°। ९ क. °र्याप्तं°। १० ख. °र्याप्ततृणसंचयम्।-ना°। ११ ख. भण्डी°। १२ ख. °व भण्डी°। १३ ख. °यं वसतां घो°। * निष्पतन्ति स्मेति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति।

कृष्णस्य कृष्णवदना गोपानां भयवर्धनाः ।
भक्षयद्भिश्च तैर्वत्सांस्त्रासयद्भिश्च गोव्रजान् ॥
निशि बालान्हरद्भिश्च वृकैरुत्साद्यते व्रजः ।
न वने शक्यते गन्तुं न गाश्च परिरक्षितुम् ॥
न वनात्किंचिदाहर्तुं न च वा तरितुं नदीम् ।
त्रस्ता ह्युद्विग्नमनसोऽगतास्तस्मिन्वनेऽवसन् ।
एवं वृकैरुदीर्णैस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमैः ।
व्रजो निष्पन्दचेष्टस्य एकस्थानचरः कृतः ३८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां वृकदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

## वृन्दावनप्रवेशः

### ९

वैशम्पायन उवाच ।
एवं वृकांश्च तान्दृष्ट्वा वर्धमानान्दुरासदान् ।
सस्त्रीपुमान्स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत्तदा
स्थाने नेह न नः कार्यं व्रजामोऽन्यन्महद्वनम्
यच्छिवं च सुखोष्यं च गवां चैव सुखावहम्
अद्यैव किं चिरेण स्म व्रजामः सह गोधनैः ।
यावद्वृकैर्वधं घोरं न नः सर्वो व्रजो व्रजेत्
एषां धूम्रारुणाङ्गानां दंष्ट्रिणां नखकर्षिणाम् ।
वृकाणां कृष्णवक्त्राणां बिभीमो निशि गर्जताम्
मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम ।
वृकैर्व्यापादिता[2] ह्येवं क्रन्दन्ति स्म गृहे गृहे ॥
तासां रुदितशब्देन गवां हंभारवेण च ।
व्रजस्योत्थापनं चक्रुर्घोषवृद्धाः समागताः ॥६
तेषां मतमथाज्ञाय गन्तुं वृन्दावनं[3] प्रति ।
व्रजस्य[4] विनिवेशाय गवां चैव हिताय च ॥७
वृन्दावननिवासाय ताञ्ज्ञात्वा कृतनिश्चयान्
नन्दगोपो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥८॥
अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्तव्यमेव नः ।
शीघ्रमाज्ञाप्यतां घोषः सज्जीभवत मा चिरम्
ततोऽवघुष्यत तदा
घोषे तत्प्राकृतैर्जनैः ।
शीघ्रं गावः प्रकल्प्यन्तां
भाण्डं समभिरोप्यताम् ॥१०॥
वत्सयूथानि काल्यन्तां
युज्यन्तां शकटानि च ।
वृन्दावनमितः स्थाना-
न्निवेशाय च गम्यताम् ॥११॥
तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचनं साधु भाषितम्
उदतिष्ठद्व्रजः सर्वः शीघ्रं गमनलालसः ॥१२॥
प्रयाह्युत्तिष्ठ गच्छामः किं शेषे साधु योजय ।
उत्तिष्ठति व्रजे तस्मिन्गोपकोलाहलो ह्यभूत्
उत्तिष्ठमानः शुशुभे शकटीशकटस्तु सः ।
व्याघ्रघोषमहाघोषो घोषः सागरघोषवान् ॥
गोपीनां गर्गरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्तम्भितैर्घटैः ।
निष्पपात व्रजात्पंक्तिस्तारापङ्क्तिरिवाम्बरात्
नीलपीतारुणैस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः ।
शक्रचापायते पङ्क्तिर्गोपीनां मार्गगामिनी ॥
दामनी दामभारैश्च कैश्चित्[9]कायावलम्बिभिः
गोपा मार्गगता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः
स व्रजो व्रजना भाति शकटौघेन भास्वता ।
पोतैः पवनविक्षिप्तैर्निष्पतद्भिरिवार्णवः ॥१८

---

अगताः असंचाराः ॥ ३७ ॥ तदेवाह-एवमिति॥३८॥
इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

एतस्मिन्नवमेऽध्याये रामकृष्णेच्छया पुनः।
वृन्दावनप्रवेशश्च व्रजस्याद्भुत ईर्यते ॥ १ ॥
एवं वृकान् ॥ १ ॥ सुखोष्यं सुखावासम् ॥ २ ॥
एषाम् एभ्यः सकाशात् ॥ ४ ॥ अवघुष्यत घोषो जातः।
भाण्डं शकटेष्विति शेषः ॥ १० ॥ पोतैः नौकाभिः ॥१८॥

---

१ ख. °व्रजम् । २ क. ख. °दितेत्येवं क्र° । ३ ख. °नं वनम् । व्र° । ४ क. °स्य च निवे° । ५ ख. °स्य च निवासाय ग° । ६ ख. °वनिवेशाय ता° । ७ ख. °षे याहि यो° । ८क. अग्रगोपी सगोपालो घो° । ९ क. ख. °श्च कैश्चित्का° ।

क्षणेन तद्व्रजस्थानमीरिणं समपद्यत।
द्रव्यावयवनिर्धूतं कीर्णं वायसमण्डलैः ॥१९
ततः क्रमेण घोषः स प्राप्तो वृन्दावनं वनम्।
निवेशं विपुलं चक्रे गवां चैव हिताय च २०
शकटावर्तपर्यन्तं चन्द्रार्धाकारसंस्थितम्।
मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद्विगुणमायतम् २१
कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकितद्रुमैः।
निखातोच्छ्रितशाखाग्रैरभिगुप्तं समन्ततः २२
मन्थैरारोप्यमाणैश्च मन्थबन्धानुकर्षणैः।
अद्भिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गर्गरीभिरितस्ततः२३
कीलैरारोप्यमाणैश्च दामनीपाशपाशितैः।
स्तम्भनीभिर्धृताभिश्च शकटैः परिवर्तितैः ॥
नियोगपाशैरासक्तैर्गर्गरीस्तम्भमूर्धसु।
छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कटकैस्तृणसंकटैः ॥२५॥
शाखाविटङ्कैर्वृक्षाणां क्रियमाणैरितस्ततः।
शोध्यमानैर्गवां स्थानैः स्थाप्यमानैरुलूखलैः
प्राङ्मुखैः सिच्यमानैश्च संदीप्यद्भिश्च पावकैः
सवत्सचर्मास्तरणैः पर्यङ्कैश्चावरोपितैः ॥२७॥
तोयमुत्तारयन्तीभिः प्रेक्षन्तीभिश्च तद्वनम्।
शाखाश्चाकर्षमाणाभिर्गोपीभिश्च समन्ततः ॥
युवभिः स्थविरैश्चैव गोपैर्व्यग्रकरैर्भृशम्।
विशसद्भिः कुठारैश्च काष्ठान्यपि तरूनपि ॥
तद्व्रजस्थानमधिकं शुशुभे काननावृतम्।
रम्यं वननिवेशं वै स्वादुमूलफलोदकम् ३०
तास्तु कामदुघा गावः सर्वपक्षिरुतं वनम्।
वृन्दावनमनुप्राप्ता नन्दनोपमकाननम् ॥३१॥
पूर्वमेव तु कृष्णेन गवां वै हितकारिणा।
शिवेन मनसा दृष्टं तद्वनं वनचारिणा ॥३२॥
पश्चिमे तु ततो रूक्षे घर्मे मासे निरामये।
वर्षतीवामृतं देवे तृणं तत्र व्यवर्धत ॥३३॥
न तत्र वत्साः सीदन्ति न गावो नेतरे जनाः
यत्र तिष्ठति लोकानां भवाय मधुसूदनः ॥३४
ताश्च गावः स घोषस्तु स च संकर्षणो युवा
कृष्णेन विहितं वासं तमध्यासत निर्वृताः ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृन्दावनप्रवेशे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## प्रावृड्वर्णनम्

## १०

वैशम्पायन उवाच।
तौ तु वृन्दावनं प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ।
चेरतुर्वत्सयूथानि चारयन्तौ सुरूपिणौ ॥१॥
पूर्णस्तु घर्मसमयस्तयोस्तत्र वने सुखम्।
क्रीडतोः सह गोपालैर्यमुनां चावगाहतोः ॥२
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मनसः कामदीपिनी।
प्रववर्षुर्महामेघाः शक्रचापांकितोदराः ॥३॥
बभूवादर्शनः सूर्यो भूमिश्चादर्शना तृणैः।
पतता मेघवातेन नवतोयानुकर्षिणा ॥४॥
संमार्जिततला भूमिर्यौवनस्थेव लक्ष्यते।
न ववर्षावसिक्तानि शक्रगोपकुलानि च।
नष्टदावाग्निधूमानि वनानि प्रचकाशिरे ॥६॥
नृत्यव्यापारकालश्च मयूराणां कलापिनाम्।
मदरक्ताः प्रवृत्ताश्च केकाः पटुरवास्तथा ॥ ७

ईरणम् ऊषरं शून्यमित्यर्थः ॥ १९ ॥ नियोगपाशैः मन्थनभाण्डस्थूणाया मन्थदण्डेन संयोजनार्थैः पाशैः मांजेरीति महाराष्ट्रप्रसिद्धैः शिक्यैर्वा कटकैर्घटाधारकतृणैः सहिताभिः तृणसंकटैः तृणमयीभिराच्छादनीभिः ॥ २५ ॥ शाखासु विटंकाः पक्ष्युपवेशनस्थानानि तैः क्रियमाणैः ॥ २६ ॥ घर्मे ग्रीष्मे तत्रापि पश्चिमे आषाढे ॥ ३३ ॥ अध्यासत अध्यासितवन्तः ॥ ३५ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

एतस्मिन्दशमेऽध्याये प्रावृड्वर्णनमुच्यते। श्रीनिवासनिवासेन घोषोत्कर्षस्तथा दिवः ताविति ॥ १ ॥

१ घ. मीरणं स॰। २ ख. ॰नं महत्। नि॰। ३ क. विस्तारं ता॰। ४ क. ॰रधिगु॰। ५ ख. ॰श्च कटैश्च तृ॰। ६ ख. ॰घर्ममा॰। ७ ख. ॰नां हिताय म॰। ८ क. ख. तास्तु गा॰। ९ ख. ॰षश्च स। १० ख. ॰णैश्च घ॰। ११ ख. ॰श्चादर्शयत्तृणम्। महता मे॰। १२ क. ख. ॰ग्निमार्गाणि व॰।

नवप्रावृषि कान्तानां षट्पदाहारदायिनाम् ।
यौवनस्थकदम्बानां नवाभ्रैर्भ्राजते वपुः ॥ ८
हासितं कुटजैर्वृक्षैः कदम्बैर्वासितं वनम् ।
नाशितं जलदैरुष्णं तोषिता वसुधा जलैः ।
संतप्ता भास्करकरैरभितप्ता दवाग्निभिः ९
जलैर्बलाहकोत्सृष्टैरुच्छ्वसन्तीव पर्वताः ।
महावातसमुद्धूतं महामेघगणार्पितम् ।
मही महाराज पुरैस्तुल्यमापद्यते नभः ॥ १०
क्वचित्कदम्बहासाढ्यं शिलीन्ध्राभरणं क्वचित्
संप्रदीप्तमिवाभाति फुल्लनीपद्रुमं वनम् ॥ ११
ऐन्द्रेण पयसा सिक्तं मारुतेन च विस्तृतम् ।
पार्थिवं गन्धमाघ्राय लोकः क्षुभितमानसः १२
दृप्तसारङ्गनादेन दर्दुरव्याहतेन च ।
नवैश्च शिखिविक्रुष्टैरवकीर्णा वसुन्धरा ॥ १३
भ्रमत्तूर्णमहावर्ता वर्षप्राप्तमहारयाः ।
हरन्त्यस्तीरजान्वृक्षान्विस्तारं यांति निम्नगाः
सन्ततासारनिर्यत्नाः क्लिन्नयत्नोत्तरच्छदाः ।
न त्यजन्ति नगाग्राणि श्रान्ता इव पतत्त्रिणः
तोयगम्भीरलम्बेषु स्रवत्सु च नदत्सु च ।
उदरेषु नवाभ्राणां मज्जतीव दिवाकरः ॥ १६
महीरुहैरुत्पतितैः सलिलोत्पीडसंकुला ।
अन्विष्यमार्गा वसुधा भाति शाद्वलमालिनी
वज्रेणेवावरुग्णानां नगानां नगशालिनाम् ।
स्रोतोभिःपरिकृत्तानि पतन्ति शिखराण्यधः
पतता मेघवर्षेण यथा निम्नानुसारिणा ।
पल्वलोत्कीर्णमुक्तेन पूर्यन्ते वनराजयः ॥ १९
हस्तोच्छ्रितमुखा वन्या मेघनादानुसारिणः ।
भ्रान्तातिवृष्ट्या मातङ्गा गां गता इव तोयदाः
प्रावृट्प्रवृत्तिं संदृश्य दृष्ट्वा चाम्बुधरान्घनान् ।
रौहिणेयो मिथः काले कृष्णं वचनमब्रवीत् २१
पश्य कृष्ण घनान्कृष्णान्बलाकोज्ज्वलभूषणान्
गगने तव गात्रस्य वर्णचोरान्समुच्छ्रितान् २२
तव निद्राकरः कालस्तव गात्रोपमं नभः ।
त्वमिवाज्ञातवसतिं चन्द्रो वसति वार्षिकीम्
एतन्नीलाम्बुदश्यामं नीलोत्पलदलप्रभम् ।
संप्राप्ते दुर्दिने काले दुर्दिनं भाति वै नभः २४
पश्य कृष्ण जलोदग्रैः कृष्णैरुद्ग्रथितैर्घनैः ।
गोवर्धनो यथा रम्यो भाति गोवर्धनो गिरिः
पतितेनाम्भसा ह्येते समन्तान्मददर्पिताः ।
भ्राजन्ते कृष्णसारङ्गाः काननेषु मुदान्विताः
एतान्यम्बुप्रहृष्टानि हरितानि मृदूनि च ।
तृणानि शतपत्राक्ष पत्रैर्गूहन्ति मेदिनीम् ॥ २७
क्षरज्जलानां शैलानां वनानां जलदागमे ।
ससस्यानां च सीमानां न लक्ष्मीर्व्यतिरिच्यते
शीघ्रवातसमुद्धूताः प्रोषितौत्सुक्यकारिणः ।
दामोदरोद्दामरवाः प्रागल्भ्यं यान्ति तोयदाः
हरे हर्यश्वचापेन त्रिवर्णेन त्रिविक्रम ।
विबाणज्येन रचितं तवेदं मध्यमं पदम् ॥ ३०

---

कान्तानां कदम्बानामिति सामानाधिकरण्यम् ॥ ८ ॥ हासितं विकाशितम् ॥ ९ ॥ उच्छ्वसन्तीव बाष्पमुद्गिरन्तीत्यर्थः । मही पुरैस्तुल्यं वपुरापद्यते तत्र दृष्टान्तो महावाताः पताकाः महामेघा महाप्रासादाः ॥ १० ॥ शिलीन्ध्राः छत्राकाः ॥११॥ क्षुभितमानसः कामातुरोऽभूत् ॥१२॥ दृप्तसारङ्गनादेन मत्तभ्रमरध्वनिना दर्दुरा भेकाः अवकीर्णा व्याप्ता ॥१३॥ संततो य आसारो धारासम्पातस्तेन निर्यत्नाः जडीकृताः । नगाग्राणि वृक्षशाखाग्राणि ॥१५॥ तोयेन गम्भीराणि निबिडानि लम्बानि विस्तृतानि च तेषूदरेषु ॥ १६ ॥ महीरुहैर्मार्गचिह्नभूतैरन्वेष्यो जलच्छन्नो मार्गो यस्याः सा ॥ १७ ॥ पल्वलेभ्य उत्कीर्णम् उत्सिक्तं यत्तोयं तेन वर्षेण ॥ १९ ॥ हस्तः शुण्डा तया सह उच्छ्रितं मुखं येषां ते हस्तोच्छ्रितमुखाः ॥ २० ॥ चन्द्रो नभोवसतिं वसति आस्ते वार्षिकीं वर्षाभवाम् ॥ २३ ॥ दुर्दिने मेघच्छन्नेऽह्नि काले प्रावृट्काले दुर्दिनं मेघैराच्छन्नम् ॥ २४ ॥ गोवर्धनो नामतः गोवर्धनो गवां वर्धयिता ॥ २५ ॥ कृष्णसारङ्गा भ्रमराः ॥ २६ ॥ गूहन्त्याच्छादयन्ति ॥ २७ ॥ सीमानां कृष्टभूमीनां त्रयाणामपि लक्ष्मीर्न व्यतिरिच्यते नाधिका भवत्यपि तु समानैवेत्यर्थः ॥२८॥ प्रोषितानां प्रवासिनाम् औत्सुक्यं गृहगमने तत्कारिणः ॥ २९ ॥ हर्यश्वचापेन इन्द्रधनुषा रचितं मिश्रितं मध्यमं पदमन्तरिक्षम् ॥ ३० ॥

---

१ क. ख. °नस्थं क° । २ क. णार्थितम् । म° । ३ क. °ते वपुः । क । ४ क. ख. °षु प्रस्रवत्सु न° । ५ ख. °लाकाङ्कदभू° । ६ ख. व गात्राणां व । ७ क. ख. °र्ण चौरा° । ८ ख. रानिवोत्थितान् । ९ क. °तन्नीलोत्पलश्या° । १० ख °षु मदा° । ११ ख. °नां च घनागमे । स° । १२ ख. °न विव° ।

नभस्येष[1] नभश्चक्षुर्न भात्येव[2] चरन्नभः ।
[3]मेघैः शीतातपकरो विरश्मिरिव रश्मिवान् ॥
द्यावापृथिव्योः संसर्गः सततं विततैः कृतः ।
अव्यवच्छिन्नधारौघैः समुद्रौघसमैर्घनैः ॥ ३२
नीपार्जुनकदम्बानां पृथिव्यां चातिवृष्टिभिः[4] ।
गन्धैः कोलाहला वान्ति वाता मदनदीपनाः ॥
संप्रवृत्तमहावर्षं लम्बमानमहांबुदम्[5] ।
भात्यगाधमपर्यन्तं ससागरमिवाम्बरम् ॥ ३४
धारानिर्मलनाराचं विद्युत्कवचवर्मिणम् ।
शक्रचापायुधधरं[6] युद्धसज्ञमिवांबरम् ॥ ३५
शैलानां च वनानां च द्रुमाणां च वरानन[7]म्
प्रतिच्छन्नानि भासन्ते शिखराणि घनैर्घनैः ॥
गजानीकैरिवाकीर्णं सलिलोद्गारिभिर्घनैः ।
वर्णसारूप्यतां याति गगनं सागरस्य[8] च ३७
समुद्रोद्धूतजनि[9]ता लोलशाड्वलकम्पिनः ।
शीताः सपृषतो[10]द्दामाः कर्कशा वान्ति मारुताः ॥
निशासु सुप्तचन्द्रासु मुक्ततोयासु तोयदैः ।
मग्नसूर्यस्य नभसो न विभान्ति दिशो दश ॥
चेतनं पुष्करं कोशैः क्षुत्राध्मातैः समन्ततः ।
न घूर्णीनां न रम्याणां विवेकं यांति कृष्टयः ॥
घर्मदोषपरित्यक्तं मेघतोयविभूषितम् ।
पश्य वृन्दावनं कृष्ण वनं चैत्ररथं यथा ॥ ४१
एवं प्रावृड्गुणान्सर्वाञ्छ्रीमान्कृष्णस्य पूर्वजः ।
कथयन्नेव बलवान्व्रजमेव जगाम ह ॥ ४२
अ[11]न्योन्यं रममाणौ तु कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
तत्कालज्ञातिभिः सार्द्धं चेरतुस्त[12]द्वनं महत् ४३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रावृड्वर्णने
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## यमुनावर्णनम् ।

## ११

वैशम्पायन उवाच ।

कदाचित्तु तदा कृष्णो विना संकर्षणेन वै ।
चचार तद्वनं रम्यं कामरूपी वराननः ॥ १
काकपक्षधरः श्रीमाञ्छ्यामः पद्मदलेक्षणः ।
श्रीवत्सेनोरसा युक्तः शशाङ्क इव लक्ष्मणा[13] २
साङ्गदेनाग्रहस्तेन[14] पङ्कजोद्भिन्नवर्चसा ।
सुकुमाराभिताम्रेण क्रान्तविक्रान्तगामिना ३

---

नभसि श्रावणे नभश्चक्षुः सूर्यः ३१ संसर्गः संबन्धः समुद्रौघनिभैः क्षुब्धैरित्यर्थः ३२ नीपाः कदम्बानामवान्तरजातयः पृथिव्यां सृष्टैरिति शेषः । कोलाहलाः कलकलाः ॥ ३३ ॥ यैर्विद्युत्कवचैर्मेघैर्वर्मिणं वर्मवत्पुंस्त्वमार्षम् ॥ ३५ ॥ घनैर्निबिडैर्मेघैः ॥ ३६ ॥ गजा जलगजास्तेषामनीकैः ॥ ३७ ॥ उद्धूतम् उद्धूननम् । कम्पिनः कम्पहेतवः सपृषतः सबिन्दवः उद्दामाः महान्तः । सपृषतोद्दामा इति सन्धिरार्षः ॥ ३८ ॥ सुप्तो अदृश्यः चन्द्रो यासु ॥ ३९ ॥ चेतनमिति । क्षुधाध्मातैर्वायुना पूरितैः कोशैश्चर्मकोशसदृशैर्मेघैरुपलक्षितं पुष्करमम्बरं चेतनमिव भातीति लुप्तोपमा । सर्वतश्चलद्भिर्मेघैर्नभोऽपि चलतीवेत्यर्थः । एवमपि कृष्टयः प्रजाः रम्याणां रात्रीणां घूर्णीनां दिवसानां च विवेकम् अन्योन्यतः पृथक्त्वं न यान्तीति न अपि तु यान्त्येवेति योजना । मेघोत्थान्धकारात्रनानि दिनानि रात्रिकल्पान्यभूवन्नित्यर्थः ॥४०॥ तत्कालज्ञातिभिः न तु यादवत्रजन्मज्ञातिभिः ॥ ४३ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

११

अस्मिन्नेकादशेऽध्याये वनक्रीडा निरूप्यते
कालियक्ष्वेडदग्धीययमुनादर्शनं हरेः ॥१॥

कदाचिदिति ॥१॥ श्रीवत्सेन उरसा धृतेनेति शेषः। तृतीयान्तानां पञ्चमस्थेन रराजेत्यनेनान्वयः ॥२॥ हस्तेन पंकजोद्भिन्नं विकसत्कमलं तत्तुल्यतेजसा क्रान्तं विक्रान्तं गमनं यस्य तादृशेन गामिना गमनस्वभावेन पादेन ॥३॥

---

१ क. °स्येव न°, ख. °स्ये च न° । २ क. °त्येष च° । ३ क. ख. मेघैः शी° । ४ क. °व्यां चाभिवृष्टया । ग°, ख. °व्यां वातवृष्टया । ५ ख. ग°, °नमिवांबु° । ६ ख. °धवरं यु° । ७ क. ख. °नन । प्र° । ८ क. ख. °स्य वै । स° । ९ क. ख. °तजनना लो° । १० ख. °षदुद्दामाः क° । ११ ख. तौ रामयन्तावन्योन्यं कृष्ण° । १२ ख. °तुस्तन्महावनम् । १३ ख. °व लक्ष्यते । १४ ख. °ग्रपादेन प° ।

पीते प्रीतिकरे नृणां पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ।
सूक्ष्मे वसानो वसने ससंध्य इव तोयदः ॥ ४
वत्सव्यापारयुक्ताभ्यां
व्यग्राभ्यां गण्डरज्जुभिः
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां
पूजिताभ्यां दिवौकसैः ॥ ५
सदृशं पुण्डरीकस्य गन्धेन कमलस्य च ।
रराज चास्य तद्बाल्ये रुचिरौष्ठपुटं मुखम् ॥६
शिखाभिस्तस्य मुक्ताभी रराज मुखपङ्कजम् ।
वृतं षट्पदपंक्तीभिर्यथा स्यात्पद्ममण्डलम् ७
तस्यार्जुनकदम्बाढ्या नीपकन्दलमालिनी ।
रराज माला शिरसि नक्षत्राणां यथा दिवि८
स तया मालया वीरः शुशुभे कण्ठसक्तया ।
मेघमालाम्बुदश्यामो नभस्य इव मूर्तिमान् ९
एकेनामलपत्रेण कण्ठसूत्रावलम्बिना ।
रराज बर्हिपत्रेण मन्दमारुतकम्पिना ॥ १०
क्वचिद्गायन्क्वचित्क्रीडंश्च ञ्चूर्यंश्च क्वचित्क्वचित् ।
पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयंश्च क्वचिद्वने ॥ ११
गोपवेणुं सुमधुरं कामात्तमपि वादयन् ।
प्रह्लादनार्थं च गवां क्वचिद्वनगतो युवा ॥ १२
गोकुलेऽम्बुधरश्यामश्चचार द्युतिमान्प्रभुः ।
रेमे च तत्र रम्यासु चित्रासु वनराजिषु ॥ १३
मयूररवघुष्टासु मदनोद्दीपनीषु च ।
मेघनादप्रतिव्यूहैर्नादितासु समन्ततः ॥ १४
शाड्वलच्छन्नमार्गासु शिलीन्ध्राभरणासु च
कन्दलामलपत्रासु स्रवन्तीषु नवं जलम् ॥ १५
केसराणां नवैर्गन्धैर्मदनिःश्वसितोपमैः ।
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तीषु कामिनीष्विव नित्यशः
सेव्यमानो नवैर्वातैर्द्रुमसंघातनिःसृतैः ।
तासु कृष्णो मुदं लेभे सौम्यासु वनराजिषु१७
स कदाचिद्वने तस्मिन्गोभिः सह परिभ्रमन्
ददर्श विपुलोदग्रं शाखिनं शाखिनां वरम्१८
स्थितं धरण्यां मेघाभं निबिडं दलसंचयैः ।
गगनार्धोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम्१९
नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगैः ।
फलैः प्रवालैश्च घनैः सेन्द्रचापघनोपमम् २०
भवनाकारविटपं लतापुष्पसुमण्डितम् ।
विशालमूलावनतं पवनाम्भोदधारिणम् २१
आधिपत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम्
कुर्वाणं शुभकर्माणं निरावर्षमनातपम् ॥ २२
न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम नामतः ।
दृष्ट्वा तत्र मतिं चक्रे निवासाय ततः प्रभुः २३
स तत्र वयसा तुल्यैर्वत्सपालैः सहानघ ।
रेमे वै वासरं कृष्णः पुरा स्वर्गगतो यथा २४
तं क्रीडमानं गोपालाः कृष्णं भाण्डीरवासिनम्
रमयन्ति स्म बहवो वन्यैः क्रीडनकैस्तदा २५
अन्ये स्म परिगायन्ति गोपा मुदितमानसाः
गोपालाः कृष्णमेवान्ये गायन्ति स्म रतिप्रियाः
तेषां स गायतामेव वादयामास वीर्यवान् ।
पर्णवाद्यान्तरे वेणुं तुम्बवीणां च तत्र ह २७
कदाचिच्चारयन्नेव गाः स गोवृषभेक्षणः ।
जगाम यमुनातीरं लतालंकृतपादपम् ॥ २८
तरङ्गापाङ्गकुटिलां वारिस्पर्शसुखानिलाम् ।
तां च पद्मोत्पलवतीं ददर्श यमुनां नदीम् २९
सुतीर्थां स्वादुसलिलां ह्रदिनीं वेगगामिनीम्
तोयवातोद्धतैर्वेगैरवनामितपादपाम् ॥ ३०
हंसकारण्डवोद्घुष्टां सारसैश्च निनादिताम्
अनर्घमिथुनैश्चैव सेवितां मिथुनेचरैः ३१

दिवौकसैः देवैः ॥५॥ बाल्ये "पौगण्डं दशमावधि" इत्युक्तेः पौगण्डे ॥६॥ नीपाः कदम्बपुष्पाणि कन्दला नवांकुराः तैः शोभमाना नीपकन्दलमालिनी ॥८॥ नभस्यो भाद्रपदः ॥९॥ अमलं दिव्यं पत्रं दलं यस्य तेन बर्हिपत्रेण मयूरपिच्छेन शुशुभे इत्यनुषङ्गः ॥१०॥ प्रतिव्यूहैः प्रतिध्वनिभिः ॥१४॥ कन्दलानि नवाङ्कुरितानि अमलानि च पत्राणि यासु । "कन्दलं तु कपोले स्यादुपरागे नवाङ्कुरे।" इति विश्वः ॥१५॥ कामिनीष्विवेति स्रवन्तीनामुपमा ॥१६॥ शाखिनं वटम् ॥१८॥ चित्राङ्गवर्णैर्मयूरैः ॥२०॥ निरावर्षं वर्षवारणम् । अनातपम् आतपनिवारणम् ॥२२॥ क्रीडनकैः क्रीडासाधनैः ॥२५॥ तरङ्गा एवापाङ्गाः कटाक्षास्तैः कुटिलं तीरम् ॥२९॥ मिथुनेचरैश्चक्रवाकादिभिः ३१

१ ख. °ल्कसन्निभे । सू° । २ ख. °भ्यां सदाऽमरैः । स° । ३ क. °खमण्डलम् । वृ° । ४ ख. °त्राणि य° । ५ ख. °भे सर्वपुष्पया । मेघकालाम्बु° । ६ ख. °लदन्तीषु स्र° ७ ख °षु योषित्स्विव समन्ततः । से° । ८ क. °दग्रे श° । ९ ख. °डं पत्रसंचयैः । ग° । १० ख. °य तदा प्र° । ११ ख. दिवसं कृ° । १२ क. °कैस्तथा । अ° । १३ क. °श्च विना° । १४ क. ख. घ. अन्योन्यमिथुनै° ।

जलजैः प्राणिभिः कीर्णां जलजैर्भूषितां गुणैः
जलजैः कुसुमैश्चित्रां जलजैर्हरितोदकाम् *३२
प्रस्रुतस्रोतचरणां पुलिनश्रोणिमण्डलाम्।
आवर्तनाभिगम्भीरां पद्मरोमानुरञ्जिताम् ३३
तटच्छेदोदरां कान्तां त्रितरङ्गवलीधराम्।
फेनप्रहृष्टवदनां प्रसन्नां हंसहासिनीम् ॥ ३४
रुचिरोत्पलरक्तोष्ठीं नतभ्रूं जलजेक्षणाम्।
ह्रददीर्घललाटान्तां कान्तां शैवलमूर्द्धजाम्३५
चक्रवाकस्तनतटीं तीरपार्श्वायताननाम्।
दीर्घस्रोतायतभुजामाभोगश्रवणायताम् ३६
कारण्डवाकुण्डलिनीं श्रीमत्पङ्कजलोचनाम्।
तटजाभरणोपेतां मीननिर्मलमेखलाम् ॥ ३७
वारिप्लवप्लवक्षौमां सारसारावनूपुराम्।
काशचामीकरं वासो वसानां हंसलक्षणाम्
भीमनक्रानुलिप्ताङ्गीं कूर्मलक्षणभूषिताम्।
निपानश्वापदापीडां नृभिः पीनपयोधराम्३९
श्वापदोच्छिष्टसलिलामाश्रमस्थानसंकुलाम्
तां समुद्रस्य महिषीमीक्षमाणः समन्ततः ४०
चचार रुचिरं कृष्णो यमुनामुपशोभयन्।
तां चरन्स नदीं श्रेष्ठां ददर्श ह्रदमुत्तमम् ४१
दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि।
गम्भीरमक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम्४२
तोयजैः श्वापदैस्त्यक्तं शून्यं तोयचरैः खगैः।
अगाधेनाम्भसा पूर्णं मेघपूर्णमिवाम्बरम् ४३
दुःखोपसर्प्यं तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः।
विषारणिभवस्याग्नेर्धूमेन परिवेष्टितम् ॥ ४४
अभोग्यं तत्पशूनां हि अपेयं च जलार्थिनाम्।
उपभोगैः परित्यक्तं सुरैस्त्रिषवणार्थिभिः ४५
आकाशादप्यसंचार्यं खगैराकाशगोचरैः।
तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा४६
समन्ताद्योजनं साग्रं देवैरपि दुरासदम्।
विषानलेन घोरेण ज्वालाप्रज्वलितद्रुमम् ४७
व्रजस्योत्तरतस्तस्य क्रोशमात्रे निरामये।
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास कृष्णो वै विपुलं ह्रदम्
अगाधं द्योतमानं च कस्यायं महतो ह्रदः।
अस्मिन्स कालियो नाम कालाञ्जनचयोपमः
उरगाधिपतिः साक्षाद्ध्रदे वसति दारुणः।
उत्सृज्य सागरावासं यो मया विदितः पुरा
भयात्पतगराजस्य सुपर्णस्योरगाशिनः।
तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा ५१
भयात्तस्योरगपतेर्नायं देशो निषेव्यते।
तदिदं दारुणाकारमरण्यं रूढशाड्वलम् ॥ ५२
सावरोहद्रुमं घोरं कीर्णं नानालताद्रुमैः।
रक्षितं सर्पराजस्य सचिवैराप्तकारिभिः ५३
वनं निर्विषयाकारं विषान्नमिव दुःस्पृशम्।
तैराप्तकारिभिर्नित्यं सर्वतः परिरक्षितम् ५४
शैवालनलिनैश्चापि वृक्षैः क्षुद्रैर्लताकुलैः।
कर्तव्यमार्गौ भ्राजेते ह्रदस्यास्य तटावुभौ ५५
तदस्य सर्पराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया।
यथेयं सरिदम्भोदा भवेच्छिवजलाशया॥५६
व्रजोपभोग्या च यथा नागे च दमिते मया।
सर्वत्र सुखसञ्चारा सर्वतीर्थसुखाश्रया ॥ ५७
एतदर्थं च वासोऽयं व्रजेऽस्मिन्गोपजन्म च।
अमीषामुत्पथस्थानां निग्रहार्थं दुरात्मनाम्५८
एनं कदम्बमारुह्य तदेव शिशुलीलया।
विनिपत्य ह्रदे घोरे दमयिष्यामि कालियम्

---

जलजैर्मीनाद्यैः जलजैर्गुणैः शीतलत्वनिर्मलत्वाद्यैः जलजैः पद्मैः जलजैः शैवालैः ॥ ३२ ॥ स्त्रीरूपेण वर्णयति-**प्रस्रुतेति**। स्रोतःशब्दे सकारलोप आर्षः ॥३३॥ तटच्छेदः प्रवाहस्य मध्ये कार्श्यम्। तिस्रः तरङ्गा एव वलयः तासां धरां तरङ्गत्रिवलीधराम् ॥३४॥ आभोगश्रवणायताम् आभोगस्तटस्योभयतः पूर्णता सैव श्रवणे आयते यस्यास्ताम् ॥३६॥ वारिणि प्लवन्ते विस्तारं यान्ति शैवालाः कमलिनीदलानि वा तेषां यः प्लवः विपुलता सैव क्षौमम् अतसीसूत्रमयं वासो यस्यास्ताम्॥३८॥ निपानं पशूनां पानस्थलं तत्र ये श्वापदास्त एवापीडो भूषा यस्यास्ताम् ॥३९॥ विषारणयः सर्पाः ॥४४॥ आकाशादपि आकाशमार्गेऽपि ४६ निर्विषयाकारम् आकाशवन्निरालम्बनम् ॥५४॥ कर्तव्यौ न तु स्वतःसिद्धौ मार्गौ ययोस्तौ ॥ ५५ ॥

---

* जलजैरिति श्लोकः खपुस्तके नास्ति। १ ख. प्रास्थित॰। २ ख. पङ्करो॰। ३ क. ख. रुधिरोत्प॰। ४ ख. पारि। ५ क. ख. मत्स्यन॰। ६ ख. ॰पीतां नृ॰। ७ ख. अभोज्यं त॰। ८ क. ख. घ. ॰क्तं षड्भिस्त्रि॰। ९ ख. ॰ग्रं तीरेष्वपि। १० ख. ॰लितोदकम्। व्र॰। ११ ख. कस्येदं सुमहद्ध्रदम्। अ॰। १२ ख. ॰यादस्यो॰। १३ ख. ॰क्षैः क्षुपल॰। १४ क. ॰र्वर्तुसु। १५ ख. ॰सो मे व्र॰। १६ ख. एतं क॰।

* एवं कृते बाहुवीर्यं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥६०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बालचरिते यमुनावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## कालियदमनम् ।

## १२

वैशम्पायन उवाच ।
सोपसृत्य नदीतीरं बद्ध्वा परिकरं दृढम् ।
आरोहच्चपलः कृष्णः कदम्बशिखरं मुदा ॥ १
कृष्णः कदम्बशिखराल्लम्बमानो घनाकृतिः ।
ह्रदमध्येऽकरोच्छब्दं निपतन्नम्बुजेक्षणः २
कृष्णेन तत्र पतता क्षुभितो यमुनाह्रदः ।
संप्रासिच्यत वेगेन भिद्यमान इवांबुदः ॥ ३
तेन शब्देन संक्षुब्धं सर्पस्य भवनं महत् ।
उदतिष्ठज्जलात्सर्पो रोषपर्याकुलेक्षणः ॥ ४
स चोरगपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः ।
ततो रक्तान्तनयनः कालियः समदृश्यत ॥ ५
पञ्चास्यः पावकोच्छ्वासश्चलज्जिह्वोऽनलाननः
पृथुभिः पञ्चभिर्घोरैः शिरोभिः परिवारितः
पूरयित्वा ह्रदं सर्वं भोगेनानलवर्चसा ।
स्फुरन्निव च रोषेण ज्वलन्निव च तेजसा ७
क्रोधेन ज्वलतस्तस्य जलं शृतमिवाभवत् ।
प्रतिस्रोताश्च भीतेव जगाम यमुना नदी ॥ ८
तस्य क्रोधाग्निपूर्णेभ्यो वक्त्रेभ्योऽभूच्च मारुतः
दृष्ट्वा कृष्णं ह्रदगतं क्रीडन्तं शिशुलीलया ९
सधूमाः पन्नगेन्द्रस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ।
सृजता तेन रोषाग्निं समीपे तीरजा द्रुमाः १०
क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्तप्रतिमेन वै ।
तस्य पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगाः
वमन्तः पावकं घोरं वक्त्रेभ्यो विषसम्भवम्
सधूमं पन्नगेन्द्रास्ते निपेतुरमितौजसः ॥ १२
प्रवेशितश्च तैः सर्पैः स कृष्णो भोगबन्धनम् ।
निर्यत्नचरणाकारस्तस्थौ गिरिरिवाचलः १३
अदशन्दशनैस्तीक्ष्णैर्विषोत्पीडजलाविलैः ।
ते कृष्णं सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान् ॥१४
एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपालाः सर्व एव ते ।
क्रन्दमाना व्रजं जग्मुर्बाष्पगद्गदया गिरा १५
गोपा ऊचुः×
एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालिये ह्रदे
भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् १६
नन्दगोपाय वै क्षिप्रं सबलाय निवेद्यताम् ।
एष ते कृष्यते कृष्णः सर्पेणेति महाह्रदे १७
नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वचः ।
आर्तः स्खलितविक्रान्तस्तं जगाम ह्रदोत्तमम्
सबालयुवतीवृद्धः स च संकर्षणो युवा ।
आक्रीडं पन्नगेन्द्रस्य जलस्थं समुपागमत् १९
नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचनाः ।
हाहाकारं प्रकुर्वतस्तस्थुस्तीरे ह्रदस्य वै २०

---

इति श्रीमत्पदं० नीलकण्ठकृतौ भारतभावप्रदीपे हरिवंशार्थप्रकाशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

१२

**अमुष्मिन्द्वादशेऽध्याये कालियस्य फणोपरि। नृत्यं चक्रे हरिश्चेति यमुना निर्विषोच्यते ॥ १**

सोपसृत्येत्यध्याहृत्य "योऽहन्नहिर्मन्वपस्ततर्देयपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रम्" इति चोपदिष्टं कालियदमनम् उपबृंहयति। तत्र मन्त्रावयवयोरर्थस्तु-योऽहिः सर्पो मन्वपः यमुनाजलानि ततर्द विषसंपर्केण नाशितवान् तमिन्द्रो अहन् हिंसितवान्। पीडनमात्रमत्र हन्त्यर्थः। स च अहिः अपाद् पादहीनः अहस्तः श्वसन् इन्द्रम् अपृतन्यत् अयोधयदिति एतेनास्य सर्वरूपत्वमुक्तमतोऽहिर्वृत्राख्यो यत्राप्संबन्धस्तत्रायमेव बोद्धव्यः ॥१॥ लम्बमानः अधः पतन् ॥२॥ पञ्चास्यः पञ्चवदनः ॥६॥ भोगेन देहेन ॥७॥ शृतं क्थितं प्रतिस्रोताः विपरीतप्रवाहाः ॥८॥ तेऽदशन्निति पूर्वेण संबन्धः ॥१४॥

---

* एवमिति श्लोकार्धं कपुस्ते नास्ति। १ क. °नोऽम्बुदाकृ°। २ क. ख. स कृष्णेनाभिपतता क्षोभि°। ३ क. उत्तस्थावुदकात्स°। ४ क. °व स रो°। × गोपा ऊचुरिति कपुस्तके नास्ति। ५ ख. °ते पुत्राः स°। ६ क. घ. °स्त्वरित°।

व्रीडिता विस्मिताश्चैव शोकार्ताश्च पुनःपुनः
केचित्तु पुत्र हा हेति हा धिगित्यपरे पुनः २१
अपरे हा हताः स्मेति रुरुदुर्भृशदुःखिताः।
स्त्रियश्चैव यशोदां तां हा हताऽसीति चुक्रुशुः
या पश्यसि प्रियं पुत्रं सर्पराजवशं गतम्।
स्पन्दितं सर्पभोगेन कृष्यमाणं यथा मृतम् २३
अश्मसारमयं नूनं हृदयं ते विलक्ष्यते।
पुत्रं कथमिमं दृष्ट्वा यशोदे नावदीर्यसे॥ २४
दुःखितं बत पश्यामो नन्दगोपं ह्रदान्तिके।
न्यस्य पुत्रमुखे दृष्टिं निश्चेतनमवस्थितम्॥ २५
यशोदामनुगच्छन्त्यः सर्पावासमिमं ह्रदम्
प्रविशामो न यास्यामो विना दामोदरं व्रजम्
दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः
विना कृष्णं न यास्यामो विवत्सा इव धेनवः
तासां विलपितं श्रुत्वा तेषां च व्रजवासिनाम्
विलापं नन्दगोपस्य यशोदारुदितं तथा* २८
एकभावशरीरज्ञ एकदेहो द्विधा कृतः।
संकर्षणस्तु संक्रुद्धो बभाषे कृष्णमव्ययम्॥२९
कृष्ण कृष्ण महाबाहो गोपानां नन्दवर्द्धन।
गम्यतामेष वै क्षिप्रं सर्पराजो विषायुधः ३०
इमे नो बान्धवास्तात त्वां मत्वा मानुषं विभो
परिदेवन्ति करुणं सर्वे मानुषबुद्धयः॥ ३१
तच्छ्रुत्वा रौहिणेयस्य वाक्यं संज्ञासमीरितम्
विक्रीड्यास्फोटयद्बाहू भित्त्वा तन्नागबन्धनम्
तस्य पद्मामथाक्रम्य भोगराशिं जलोत्थितम्
शिरस्तु कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनाम्य च
तस्यारुरोह सहसा मध्यमं तन्महच्छिरः
सोऽस्य मूर्ध्नि स्थितः कृष्णो ननर्त रुचिरांगदः
मृद्यमानः स कृष्णेन शान्तमूर्धा भुजंगमः।
आस्यैः सरुधिरोद्गारैः कातरो वाक्यमब्रवीत्
अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽयं संप्रदर्शितः।
दमितोऽहं हतविषो वशगस्ते वरानन॥ ३६
तदाज्ञापय किं कुर्यां सदा सापत्यबान्धवः।
कस्य वा वशतां यामि जीवितं मे प्रदीयताम्
पञ्चमूर्द्धानतं दृष्ट्वा सर्पं सर्पारिकेतनः।
अक्रुद्ध एव भगवान्प्रत्युवाचोरगेश्वरम्॥ ३८
तवास्मिन्यमुनातोये नैव स्थानं ददाम्यहम्।
गच्छार्णवजलं सर्प सभार्यः सहबान्धवः ३९
यश्चेह भूयो दृश्येत स्थाने वा यदि वा जले।
तव भृत्यस्तनूजो वा क्षिप्रं वध्यः स मे भवेत्
शिवं चास्य जलस्यास्तु त्वं च गच्छ महार्णवम्
स्थाने त्विह भवेद्दोषस्तवान्तकरणो महान्
मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धसु सागरे।
गरुडः पन्नगारिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति॥ ४२
गृह्य मूर्ध्ना तु चरणौ कृष्णस्योरगपुङ्गवः।
पश्यतामेव गोपानां जगामादर्शनं ह्रदात् ४३
निर्जिते तु गते सर्पे कृष्णमुत्तीर्य धिष्ठितम्।
विस्मितास्तुष्टुवुर्गोपाश्चक्रुश्चैव प्रदक्षिणम् ४४
ऊचुः सर्वे च संप्रीता नन्दगोपं वनेचराः।
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः
अद्यप्रभृति गोपानां गवां गोष्ठस्य चानघ।
आपत्सु शरणं कृष्णः प्रभुश्चायतलोचनः॥४६
जाता शिवजला सर्वा यमुना मुनिसेविता।
तीरे चास्याः सुखं गावो विचरिष्यन्ति नः सदा
व्यक्तमेव वयं गोपा वने यत्कृष्णमीदृशम्।
महद्भूतं न जानीमश्छन्नमग्निमिव व्रजे॥ ४८
एवं ते विस्मिताः सर्वे स्तुवन्तः कृष्णमव्ययम्
जग्मुर्गोपगणा घोषं देवाश्चैत्ररथं यथा॥ ४९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां कालियदमने
द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

सर्पभोगेन सर्पभोगबन्धेन स्पन्दितं किञ्चिच्चालितं धैर्यादिति शेषः॥२३॥ परिदेवन्ति शोचन्ति॥३१॥ स्थाने अवस्थितौ॥४१॥ नन्वन्यत्र गरुडो मां हनिष्यति अत्र तु मुनिशापाज्ञायातीति चेत्तत्राह–**मत्पदानीति**॥ ४२॥ धिष्ठितं तीरेऽवस्थितम्॥४४॥ इति श्रीमत्पद० नीलकण्ठकृतौ भारतभा० हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

१ ख. संदि०। २ ख ०था मृगम्। अ०। ३ क. ख. ०तेऽभिल०। ४ ख. ०नमिव स्थि०। ५ ख. ०स्यामः सर्वा दा०। ६ ख. ०रं विना। दि०। * विलापमिति पद्यार्धं कपुस्तके नास्ति। ७ क. नन्दिव०। ८ क. ख. विक्रीड्यास्फो०। ९ ख. ०त्वा तं भोगब०। १० क. ख. तं दृष्ट्वा पञ्चमूर्धानं सर्वं सर्पारि०। ११ ख. ०त स्थलेवा य०। १२ ख. ०र्ध्ना वचस्तस्य कृ०। १३ क. सर्वैस्तांर्थैः सु०। १४ ख. ०व वने जाता वयं यत्कृ०।

## धेनुकवधः ।

## १३

वैशम्पायन उवाच ।
दमिते सर्पराजे तु कृष्णेन यमुनाह्रदे ।
तमेव चेरतुर्देशं सहितौ रामकेशवौ ॥ १ ॥
आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनैः सह गोमिनौ ।
गिरिं गोवर्द्धनं रम्यं वसुदेवसुतावुभौ ॥ २
गोवर्द्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम् ।
ददृशाते च[2] तौ वीरौ रम्यं तालवनं महत् ॥३
तौ तालपर्णप्रत[3]ते रम्ये तालवने रतौ ।
चेरतुः परमप्रीतौ वृषपोताविवोद्धतौ ॥ ४
स तु देशः सदा स्निग्धो लोष्टपाषाणवर्जितः ।
दर्भप्रायस्थलीभूतः सुमहान्कृष्णमृत्तिकः ॥ ५
तालैस्तैर्विपुलस्कन्धैरुच्छ्रितैः श्यामपर्वभिः ।
फलाग्रशाखिभिर्भाति नागहस्तैरिवोच्छ्रितैः
तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदतां वरः ।
अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेयं वनस्थली ॥ ७
स्वादून्यार्य सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च
पक्वतालानि सहितौ पातयामो लघुक्रमौ ॥ ८
यद्येषामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतर्पणः ।
रसेनामृतकल्पेन भवितव्यं च मे मतिः ॥ ९
दामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव ।
पातयन्पक्वतालानि चालयामास तांस्तरून् १०
तत्तु तालवनं नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम् ।
निर्माणभूतमिरिणं पुरुषादालयोपमम् ॥ ११
दारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपधृक् ।
खरयूथेन महता वृतः समनुसेवते ॥ १२
स तु तालवनं घोरं गर्दभः परिरक्षति ।
नृपक्षिश्वापदगणांस्त्रासयानः सुदुर्मतिः १३
तालशब्दं स तं श्रुत्वा संघुष्टं फलपातनात् ।
नामर्षयत्स[10] संक्रुद्धस्तालस्वनमिव द्विपः ॥ १४
शब्दानु[11]कारी संक्रुद्धो दर्पाविद्धसटाननः ।
स्तब्धाक्षो हेषितपटुः खुरैर्निर्दारयन्महीम् १५
आविद्धपुच्छो हृषितो व्यात्तानन इवान्तकः
आपतन्नेव ददृशे रौहिणेयमुपस्थितम् ॥ १६
तालानां तमधो दृष्ट्वा स ध्वजाकारमव्ययम् ।
रौहिणेयं खरो दुष्टः सोऽदशद्दशनायुधः ॥१७
पद्भ्यामुभाभ्यां च पुनः पश्चिमाभ्यां पराङ्मुखः
जघानोरसि दै[12]त्येन्द्रो रौहिणेयं निरायुधम् ।
ताभ्यामेव स जग्राह पद्भ्यां तं दैत्यगर्दभम् ।
आवर्जितमुखस्कन्धं प्रेरयंस्तालमूर्धनि १९
सं[13]भग्नोरुकटिग्रीवो भग्नपृष्ठो दुराकृतिः ।
खरस्तालफलैः सार्धं पपात धरणीतले ॥ २०
तं गतासुं गतश्रीकं पतितं वीक्ष्य गर्दभम् ।
ज्ञातींस्तथापरांस्तस्य तृणराजनि सोऽक्षिपत्
सा भूर्गर्दभदेहैश्च तालैः पक्वैश्च पातितैः ।
बभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी २२
तस्मिन्गर्दभदैत्ये तु सानुगे विनिपातिते ।
रम्यं तालवनं तद्धि भूयो रम्यतरं बभौ ॥२३
विप्रमुक्तभयं शुभ्रं विविक्ताकारदर्शनम् ।
चरन्ति स्म सुखं गावस्तत्तालवनमुत्तमम् २४
ततः प्रविष्टास्ते सर्वे गोपा वनविचारिणः ।
वीतशो[14]कभयायासाश्चञ्चूर्यन्ते समन्ततः २५

१३

**अथ त्रयोदशेऽध्याये धेनुकस्योच्यते वधः ।
बलदेवेन तच्चक्रे क्षेमं तालवनं यथा ॥१॥**
**दमिते** इत्यध्याये " **समिन्द्रगर्दभः** समृण " इत्यमुं मन्त्रमुपबृंहयति–हे इन्द्र गर्दभं समृण मारयेति मन्त्रपादार्थः ॥१॥ स देशो भातीत्युत्तरस्थेनान्वयः ॥५॥ लघुक्रमौ शीघ्रक्रियौ ॥८॥ निर्माणभूतं सारभूतम् । "निर्माणं निर्मितौ सारे" इति मेदिनी । अथापि "इरिणं तूषरे शून्ये" इति मेदिनी ॥११॥ तालस्वनम् आस्फोटनध्वनिम् ॥१४॥ दर्पाविद्धसटाननः मदेनाविद्धा भ्रामिताः सटाः केसरा यस्मिन् तथाभूतम् आननं यस्य ॥१५॥ आविद्धम् ऊर्ध्वीकृतं पुच्छं येन ॥१६॥ ताभ्यां तयोरेव पदयोर्जग्राह आवर्जितं भ्रामितं मुखस्कन्धं यस्य ॥ १९ ॥

१ क. घ. ०हगामि० । २ ख. 'ते ततो वी० । ३ क. ०र्णप्रकरे र० । ४ क. ख. 'शः समः स्निग्धः सुमहान्कृष्णमृत्तिकः। दर्भ०। ५ क. ख. ०भूतो लोष्टपाषाणवर्जितः । ता० । ६ ख. ०पवान् । ख० । ७ ख. ०ता वृतो बलवतां वरः । ८ क. सतताल० । ९ ख. ०सयश्चातिदर्पितः । १० क. ०यत सं०। ११ क. ख. ०ब्दानुसारी सं०। १२ ख. दैत्योऽसौ रौ० । १३ ख. स भ० । १४ क. ०शोका वनं सर्वे चञ्चूर्यन्तः स० ।

ततः सुखं प्रकीर्णासु गोषु नागेन्द्रविक्रमौ । द्रुमपर्णासनं कृत्वा तौ यथार्हं निषीदतुः २६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां धेनुकवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

## प्रलम्बवधः ।

## १४

वैशम्पायन उवाच ।

अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।
तत्तालवनमुत्सृज्य भूयो भाण्डीरमागतौ १
चारयन्तौ विवृद्धानि गोधनानि शुभानि च
स्फीतसस्यप्ररूढानि वीक्षमाणौ वनानि च २
क्ष्वेडयन्तौ प्रगायन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपान्
नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परंतपौ ३
नियोगपाशैरासक्तैः स्कन्धाभ्यां शुभलक्षणौ ।
वनमालाकुलोरस्कौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ४
सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरौ ।
महेन्द्रायुधसंसक्तौ शुक्लकृष्णाविवाम्बुदौ ॥ ५
कुशाग्रकुसुमानां च कर्णपूरौ मनोरमौ ।
वनमार्गेषु कुर्वाणौ वन्यवेषधरावुभौ ॥ ६
गोवर्धनस्यानुचरौ वने सानुचरौ तु तौ ।
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ ॥७
तावेवं मानुषीं दीक्षां वहन्तौ सुरपूजितौ ।
तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥ ८
तौ तु भाण्डीरमाश्रित्य बालक्रीडानुवर्तिनौ
प्राप्तौ परमशाखाढ्यं न्यग्रोधं शाखिनां वरम्
तत्र स्पन्दोलिकाभिश्च युद्धमार्गविशारदौ ।
अश्मभिः क्षेपणीयैश्च तौ व्यायाममकुर्वताम्
युद्धमार्गैश्च विविधैर्गोपालैः सहितावुभौ ।
मुदितौ सिंहविक्रान्तौ यथाकामं विचेरतुः ११
तयो रमयतोरेवं तल्लिप्सुरसुरोत्तमः ।
प्रलम्बोऽभ्यागमत्तत्र छिद्रान्वेषी तयोस्तदा
गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषितः ।
लोभयानः स तौ वीरौ हास्यैः क्रीडनकैस्तथा

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः॥१३

१४

**अस्मिंश्चतुर्दशेऽध्याये प्रलम्बवध ईर्यते ।**
**तेनैव बलभद्रेण कृष्णादेशेन तिष्ठता ॥१॥**

क्ष्वेडयन्तौ बाहू आस्फोटयन्तौ व्याहरन्तौ आकारयन्तौ ॥ ३ ॥ **नियोगपाशैः** अग्रशिक्यैः ॥४॥ अन्योन्यसदृशाम्बरौ अन्योन्यदीप्तिसंवलनेन सदृशाम्बराविव ॥५॥ कुसुमानां कुसुमैः कर्णपूरौ कुर्वाणौ ॥ ६ ॥ दीक्षां रीतिम् ॥ ८ ॥ स्पन्दोलिकाभिर्दोलावलम्बैः क्षेपणीयैर्वीटिकाद्यैः ॥ १० ॥ "विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य, असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय" इत्येतं मन्त्रमुपबृंहयति—**तयो रमयतोरेवमित्यादिना ।** मन्त्रार्थस्तु हे सोम ते तव मध्वो ब्रह्मस्वरूपिणः अंशुरिवांशुः अंशः पृथिव्या धरुणः भूमेर्धर्ता रामरूपधारी शेषः ते त्वया असत् अन्तर्यामिणा प्रबोधितः सन्दीप्यमानः अत एव उत्सः त्वदाज्ञाकरणे उत्कण्ठितः नियुत्वान् जगतः प्राणवायुरूपी सूत्रात्मा सन् गृणते आत्मनः स्वरूपं त्वद्वाक्यादवगतं भावयति अहं परमेश्वरादनन्योऽस्मि देवकार्यार्थमवतीर्णोऽस्मीत्यालोचयतीत्यर्थः। ततो हेतोः दिवः द्युलोकमण्डपस्य विष्टम्भः स्तम्भा इव भवन्ति ते विष्टम्भः क्विबन्तस्येदं द्वितीयाबहुवचनम्। अत्युच्छ्रितान् प्रलंबादीन् । बहुत्वं विभूत्यर्थे । इन्द्रियाय तद्वधेन स्ववीर्यं प्रदर्शयितुं पवते गच्छन्ति । किमस्यायुधं तदाह—**विश्वा इति**। सर्वाः क्षितयः नाशसाधनान्यायुधानि अस्य हस्त एव सन्ति अतो मुष्टिमात्रेण तं जघानेत्यर्थः । विष्णोः सर्वदेवतामयत्वादत्र सोमरूपेणैवास्य स्तुतिर्बोद्धव्या। एवमन्यत्रापि । श्लोकार्थः स्पष्टः ॥ १२ ॥

---

१ क. ख. °नि शुभाननौ । स्फी° । २ क. ख. स्फीतशष्पप्र° । ३ क. नियोग° । ४ ख. °र्णाभ्याव° । ५ ख. °पूरस° । ६ क. ख. °रौ च तौ । ७ क. ख. °रसुचिते काले क्री° । ८ ख. °त्र स्यन्दो° । ९ क. °द्धमार्गैश्च दर्शितौ । अ° । १० क. ख. °यानः स तौ। ११ ख. °कैस्तदा । सो° ।

सोऽवगाहत निश्शङ्कस्तेषां मध्यममानुषः ।
मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ १५
प्रक्रीडितांश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा ।
गोपालवपुषं गोपा मन्यमानाः स्वबान्धवम्
स तु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः
दृष्टिं प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये च दारुणाम् १६
अविषह्यं ततो मत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम् ।
रौहिणेयवधे यत्नमकरोद्दानवोत्तमः ॥ १७
हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः ।
प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् १८
कृष्णः श्रीदामसहितः पुप्लुवे गोपसूनुना ।
संकर्षणस्तु प्लुतवान्प्रलम्बेन सहानघ ॥ १९
गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैरपरैः सह ।
प्रद्रुता लङ्घयन्तो वै तेऽन्योन्यं लघुविक्रमाः
श्रीदाममजयत्कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः ।
गोपालैः कृष्णपक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः
ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं संहर्षात्सहसा द्रुताः
भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन् २२
संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः ।
द्रुतं जगाम विमुखः सचन्द्र इव तोयदः ॥ २३
स भारमसहंस्तस्य रौहिणेयस्य धीमतः ।
ववृधे सुमहाकायः शक्राक्रान्त इवाम्बुदः २४
स भाण्डीरवटप्रख्यं दग्धाञ्जनगिरिप्रभम् ।
स्वं वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥२५
पञ्चस्तबकलम्बेन मुकुटेनार्कवर्चसा ।
दीप्यमानाननो दैत्यः सूर्याक्रान्त इवाम्बुदः२६
महाननो महाग्रीवः सुमहानन्तकोपमः ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो नमयंश्चरणैर्महीम् ॥ २७
स्रग्दामलम्बाभरणः प्रलम्बाम्बरभूषणः ।
वीरः प्रलम्बः प्रययौ लम्बतोय इवाम्बुदः २८
स जहाराशु वेगेन रौहिणेयं महासुरः ।
सागरोपप्लवगतं कृत्स्नं लोकमिवान्तकः २९

ह्रियमाणः प्रलम्बेन स तु संकर्षणो बभौ ।
उह्यमान इवाकाशे कालमेघेन चन्द्रमाः ॥ ३०
स संदिग्धमिवात्मानं मेने संकर्षणस्तदा ।
दैत्यस्कन्धगतः श्रीमान्कृष्णं चेदमुवाच ह३१
ह्रियेऽहं कृष्ण दैत्येन पर्वतोदग्रवर्ष्मणा ।
प्रदर्शयित्वा महतीं मायां मानुषरूपिणीम् ३२
कथमस्य मया कार्यं शासनं दुष्टचेतसः ।
प्रलम्बस्य प्रवृद्धस्य दर्पाद्द्विगुणवर्चसः ॥ ३३
तमाह सस्मितं कृष्णः साम्ना हर्षाकुलेन वै ।
अभिज्ञो रौहिणेयस्य वृत्तस्य च बलस्य च३४
अहोऽयं मानुषो भावो व्यक्तमेवानुपाल्यते ।
यस्त्वं जगन्मयं देवं गुह्याद्गुह्यतरं गतः ॥ ३५
स्मर नारायणात्मानं लोकानां त्वं विपर्यये ।
अवगच्छात्मनात्मानं समुद्राणां समागमे ३६
पुरातनानां देवानां ब्रह्मणः सलिलस्य च ।
आत्मवृत्तप्रभावाणां संस्मराद्यं च वै वपुः ३७
शिरः खं ते जलं मूर्तिः क्षमा भूर्दहनो मुखम्
वायुर्लोकायुरुच्छ्वासो मनस्स्रष्टा ह्यभूत्तव ॥३८
सहस्रास्यः सहस्राङ्गः सहस्रचरणेक्षणः ।
सहस्रपद्मनाभस्त्वं सहस्रांशुधरोऽरिहा ॥ ३९
यत्त्वया दर्शितं लोके तत्पश्यन्ति दिवौकसः
यत्त्वया नोक्तपूर्वं हि कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥ ४०
यद्वेदितव्यं लोकेऽस्मिंस्तत्त्वया समुदाहृतम् ।
विदितं यत्तवैकस्य देवा अपि न तद्विदुः॥४१
आत्मजं ते वपुर्योम्नि न पश्यन्त्यात्मसंभवम्
यत्तु ते कृत्रिमं रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥४२
देवैर्न दृष्टश्चान्तस्ते तेनानन्त इति स्मृतः ।
त्वं हि सूक्ष्मो महानेकः सूक्ष्मैरपि दुरासदः॥

त्वय्येव जगतः स्तम्भे
शाश्वती जगती स्थिता ।
अचला प्राणिनां योनि-
र्धारयत्यखिलं जगत् ॥ ४४

देहावेशात् प्रमाद्यतीति न्यायेन सूत्रांशोऽपि रामो मुमोहेत्याह **स संदिग्धमिति**॥३१॥ श्रीकृष्णस्त्वेनं पूर्वरूपस्मरणेन प्रबोधयतीत्याह-**तमाहेत्यादिना** ॥३४॥ अस्यैव सूत्रात्मत्वं विवृणोति—**शिरः खम् इत्यादिना** ॥ ३८ ॥ “ **प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः** ” इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं शुद्धं ब्रह्मापि त्वमेवासीत्याह—**यत्त्वयेति** । यत्त्वया नोक्तेत्यादिनाऽस्य वेदकर्तृत्वमुक्तम् ॥ ४० ॥ शेषरूपेण वर्णयति—**त्वय्येवेति** ॥ ४४ ॥

१ ख. ०तास्तु ते । २ ख. ०क्रीडितं ना० । ३ ख. ०यन्तौ वै । ४ ख. ०ख्यं स्निग्धा० । ५ ख. घ. ०कयुक्तेन मु० । ६ ख. धीरः प्र० । ७ ख. ०हारैव वे० । ८ ख. दर्शयित्वा सुम । ९ ख. ०त्तप्रवृत्तं च सं० । १० क. ते जगन्मू० ।

चतुःसागरभोगस्त्वं चातुर्वर्ण्यविभागवित्।
चतुर्युगेषु लोकानां चातुर्होत्रफलाशनः ॥ ४५
यथाऽहमपि लोकानां तथा त्वं तच्च मे मतम्
उभावेकशरीरौ स्वो जगदर्थे द्विधाकृतौ ४६
अहं वा शाश्वतः कृष्ण-
स्त्वं वा शेषः पुरातनः*।
लोकानां शाश्वतो देव-
स्त्वं हि शेषः सनातनः×।
आवयोर्देहमात्रेण
द्विधेदं धार्यते जगत् ॥ ४७
अहं यः स भवानेव यस्त्वं सोऽहं सनातनः।
द्वावेव विहितौ ह्यावामेकदेहौ महाबलौ ॥ ४८
तदास्से मूढवत्त्वं किं प्राणेन जहि दानवम्।
मूर्ध्नि देवरिपुं देव वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ४९
वैशम्पायन उवाच+।
संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेयः पुरातनम्।
बलेनापूर्यत तदा त्रैलोक्यान्तरचारिणा ॥ ५०
ततः प्रलम्बं दुर्वृत्तं स बलेन महाभुजः।
मुष्टिना वज्रकल्पेन मूर्ध्नि चैनं समाहनत् ॥
तस्योत्तमाङ्गं स्वे काये विकपालं विवेश ह।
जानुभ्यां चाहतः शेते गतासुर्दानवोत्तमः ५२
जगत्यां विप्रकीर्णस्य तस्य रूपमभूत्तदा।
प्रलम्बस्याम्बरस्थस्य मेघस्येव विदीर्यतः ५३
तस्य भग्नोत्तमाङ्गस्य देहात्सुस्राव शोणितम्।
बहुगैरिकसंयुक्तं शैलशृङ्गादिवोदकम् ॥ ५४
तं निहत्य प्रलम्बं तु संहृत्य बलमात्मनः।
पर्यष्वजत वै कृष्णं रौहिणेयः प्रतापवान् ५५
तं तु कृष्णश्च गोपाश्च दिविस्थाश्च दिवौकसः
तुष्टुवुर्निहते दैत्ये जयाशीर्भिर्महाबलम् ॥ ५६
बलेनायं हतो दैत्यो बालेनाक्लिष्टकर्मणा।
विवदन्त्यशरीरिण्यो वाचः सुरसमीरिताः*
बलदेवेति नामास्य देवैरुक्तं दिवि स्थितैः।
बलन्तु बलदेवस्य तदा भुवि जना विदुः ५८
कर्मजं निहते दैत्ये देवैरपि दुरासदे ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां प्रलम्बवधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## कृष्णं प्रति गोपवाक्यम्।

## १५

वैशम्पायन उवाच।
तयोः प्रवृत्तयोरेवं कृष्णस्य च बलस्य च। वने विचरतोर्मासौ व्यतियातौ स्म वार्षिकौ

यथेति-अहम् अन्तर्यामी त्वं सूत्रात्मा सर्वज्ञत्वादिकं द्वयोः सममेवेत्यर्थः ॥ ४६ ॥ अत्यन्तं साम्यलक्षणमभेदमाह—अहमिति ॥ ४८ ॥ संस्मारित इति। उक्तिमात्रेण बलदेववत् विशुद्धान्तःकरण आत्मनो ब्रह्मभावमवगच्छतीत्यर्थः ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

अथ पञ्चदशोऽध्याये
गोपानिन्द्रमखोत्सुकान्।
कृष्णः पप्रच्छ तद्धेतुं
शुश्रावाथ तदुत्तरम् ॥ १ ॥
तयोः प्रवृत्तयोरित्यध्यायद्वयम्—
"आग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं
वज्रमाजिघर्ति मायिनि।
शतं वा यस्य प्रचरन् स्वेदमे
संवर्तयन्तो विवर्तयन्नहः" ॥
इति मन्त्रस्योपबृंहणार्थं मन्त्रार्थमाह—यस्य वज्रिणः स्वेदमे स्वगृहे वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थान इत्युक्तेरन्तरिक्षे शतं वा

१ घ. °गरयोनिस्त्वं। २ क. ख. °गेशो लो°। * एतदग्रे-स्वबलेन भवान्पूर्णस्त्रैलोक्यान्तरदर्शनः। इत्यधिकं खपुस्तके। × लोकानामिति पद्यार्धं कपुस्तके नास्ति। ३ ख. बलेन ज°। + अयं पाठः कपुस्तके नास्ति। ४ ख. °रितः स कृ°। ५ ख. स बलेन तदा पूर्णस्त्रैलो°। ६ ख. °चैनमताडयत्। ७ ख. °भ्या च ह°। ८ ख. °स्य देह°। घ. तस्य देहो बभौ त°। ९ क. संनि°। १० ख. °विष्ठाश्च दि°। * एतत्पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति। ११ घ. प्रलम्बे नि°।

व्रजमाजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रुवतुस्तदा ।
प्राप्तं शक्रमहं वीरौ गोपांश्चोत्सवलालसान् २
कौतूहलादिदं वाक्यं कृष्णः प्रोवाच तत्र तान्[1]
कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः ३
तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह ।
श्रूयतां तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते ॥४
देवानामीश्वरः शक्रो मेघानां चारिसूदन ।
तस्य चायं महः[2] कृष्ण लोकनाथस्य शाश्वतः
तेन संचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिताः ।
तस्यैवाज्ञाकराः सस्यं जनयन्ति नवाम्बुभिः ६
मेघस्य पयसो दाता पुरुहूतः पुरन्दरः ।
संप्रहृष्टस्य भगवान्प्रीणयत्याखिलं जगत् ॥ ७
तेन संपादितं सस्यं वयमन्ये च[3] मानवाः ।
वर्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥ ८
देवे वर्षति लोकेऽस्मिंस्ततः सस्यं प्रवर्धते[4] ।
पृथिव्यां तर्पितायां तु सामृतं लक्ष्यते जगत् ९
क्षीरवत्यस्त्विमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः
तेन संवर्धितास्तात तृणैः पुष्टाः सपुङ्गवाः १०
नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः ।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ११
दुदोह सवितुर्गा वै शक्रो दिव्याः पयस्विनीः ।
ताः क्षरन्ति नवं क्षीरं मेध्यं मेघौघधारितम् ॥
वाय्वीरितं तु मेघेषु करोति निर्नदं[6] महत् ।
जवेनावर्तितं चैव गर्जतीति जना विदुः १३
तस्य चैवोह्यमानस्य वायुयुक्तैर्बलाहकैः ।
वज्राशनिसमाः शब्दाः श्रूयन्ते नगभेदिनः १४
तज्जलं वज्रनिष्पेषैर्विमुञ्चति नभोगतैः ।
बहुभिः कामगैर्मेघैः शक्रो भृत्यैरिवेश्वरः ॥ १५
क्वचिद्दुर्दिनसंकाशैः क्वचिच्छिन्नाभ्रसंनिभैः ।
क्वचि[7]द्भिन्नाञ्जनाकारैः क्वचिच्छीकरवार्षिभिः ॥
मण्डयतीव देवेन्द्रो विश्वमेवं नभो घनैः ।
क्वचिच्छीकरमुक्ताभ कुरुते गगनं घनः १७
एवमेतत्पयो दुग्धं गोभिः सूर्यस्य वारिदः ।
पर्जन्यः सर्वभूतानां भवाय भुवि वर्षति ॥ १८
यस्मात्प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य भुवि भाविनी
तस्मात्प्रावृषि राजानः सर्वे शक्रं मुदा युताः
महैः सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां गोपवाक्ये
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ततोऽधिकं वा संवर्तयन्तः संवर्तं प्रलयं कुर्वन्तः सांवर्तका नाम मेघाः प्रचरन् प्राचरन् संचारं कृतवन्तः सः मायिनि मायामनुष्ये श्रीकृष्णे वरिष्ठं श्रेष्ठतमं वज्रम् अशनिं तद्वतीं महावृष्टिम् आजिघर्ति क्षरति । अक्तभी रात्रिभिः सप्तभिरिति पुराणतः सप्तरात्रं वज्रधारेण पर्जन्येन ववर्षेत्यर्थः। तत्र हेतुमाह—आग्रावभिरहन्येभिरिति। ग्रावभिरिति। समुदायिभिः ग्रावसमुदायः शिलोच्चयो लक्ष्यते यैः अहन्येभिः अहः क्रतुमर्हन्ति तेऽहन्यास्तैः पर्वते क्रतुभाजि सतीत्यर्थः। मायी पुनः किं चकारेत्यत आह—विवर्त्तयन्नह इति च अनन्तरं मायी अहःक्रतून् विवर्तयन् विपरीतं वर्तयन्नास्ते इति शेषः। इन्द्रयागार्थमाहृतैः संभारैर्गिरियागं प्रवर्तयति मायिनि इन्द्रो महतीं वृष्टिं चकारेत्यर्थः। तयोः प्रवृत्तयोः तयोः प्रवर्तमानयोः व्यतियातौ व्यतिक्रान्तौ १ व्रजं गोपसमाजं शक्रमहम् इन्द्रोत्सवम् २ शाश्वतः कुलपरम्परागतः ॥ ५ ॥ मेघस्य मेघसंबन्धिनः ॥ ७ ॥ सस्यं धान्यं वर्तयामो जीवामः उपयुञ्जानाः भक्षयन्तः । सन्धिरार्षः ॥ ८ ॥ सामृतं सजलम् ॥ ९ ॥ सपुङ्गवाः वावृषाः ॥ १० ॥ **दुदोहेति**—गाः सूर्यरश्मीन् । पयस्विनीरिति स्त्रीत्वं लोकात् । अयमर्थः—यथाऽस्माकं जठराग्निः प्राणसहायो जलं शोषयति तच्चास्माभिर्बलसाध्ये कर्माणि क्रियमाणे रोमकूपद्वारा प्रस्वेदरूपेण वमति । एवं वायुसहायः सूर्यः भूम्यादिगतं जलं शोषयति तच्चेन्द्रेण बलसाध्ये निरन्तरभ्रमिरूपकर्मणि प्रयुक्तः सन् किरणद्वारा चर्मकोशरूपेषु मेघेषु वमति ततस्तान् मेघानिन्द्रो भिन्दन् वृष्टिं प्रवर्तयतीति ॥ १२ ॥ पयो जलं गोभिः रश्मिभिः पर्जन्य इन्द्रः ॥ १८ ॥ शक्रस्य विभाविनी पूजयित्री पूजाकाल इत्यर्थः । महैः उत्सवैः ॥ १९ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१ क. °त्र वै । २ घ. म. ख: कृ° । ३ ख. °न्ये च दोहिनः । ४ क. °वर्तते । पृ° । ५ ख. °यस्वलाः । ६ ख °ति कदनं म° । ७ क. क्वचिच्छीकरवर्णाभं कुर्वाद्भिर्गगनं तथा । एव° ८ ख. °स्य शाश्वतम् । प°।

## शरद्वर्णनम् ।

## १६

वैशम्पायन उवाच ।

गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे ।
प्रभावज्ञोऽपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत् ॥ १

वयं वनचरा गोपाः सदा गोधनजीविनः ।
गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च २

कर्षुकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत्त्रैविद्यमुच्यते ॥ ३

विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम् ।
सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिणी ।
योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम् ॥ ४

द्वावनर्थौ स लभते प्रेत्य चेह च मानवः ।
कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं श्रूयते वनम्
वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं गतिर्ध्रुवा
श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन्कामरूपिणः ।
प्रविश्य तास्तास्तनवो रमन्ते स्वेषु सानुषु ६

भूत्वा केसरिणः सिंहा व्याघ्राश्च नखिनां वराः
वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिदः
यदा चैषां विकुर्वन्ति ते वनालयजीविनः ।
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तान्पौरुषादेन कर्मणा ॥ ८

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः ।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने ॥ ९

तन्मह्यं रोचते गोपा गिरियज्ञः प्रवर्तताम् ।
कर्म कृत्वा सुखस्थाने पादपेष्वथवा गिरौ १०

तत्र हत्वा पशून्मेध्यान्वितत्यायतने शुभे ।
सर्वघोषस्य संदोहः क्रियतां किं विचार्यते ११

तं शरत्कुसुमापीडाः परिवार्य प्रदक्षिणम् ।
गावो गिरिवरं सर्वास्ततो यान्तु पुनर्व्रजम् १२

प्राप्ता किलेयं हि गवां स्वादुतोयतृणा गुणैः ।
शरत्प्रमुदिता रम्या गतमेघजलाशया ॥ १३

प्रियकैः पुष्पितैर्गौरं श्यामं बाणासनैः क्वचित्
कठोरतृणमाभाति निर्मयूररुतं वनम् ॥ १४

विजला विमला व्योम्नि विबलाका विविद्युतः
विवर्धन्ते जलधरा विदन्ता इव कुञ्जराः १५

पटुना मेघनादेन नवतोयानुकर्षिणा ।
पर्णोत्करघनाः सर्वे प्रसादं यान्ति पादपाः॥

सितवर्णाम्बुदोष्णीषं हंसचामरवीजितम् ।
पूर्णचन्द्रामलच्छत्रं साभिषेकमिवाम्बरम् १७

हंसैः प्रहसितानीव समुत्क्रुष्टानि सारसैः ।
सर्वाणि तनुतां यान्ति जलानि जलदक्षये १८

चक्रवाकस्तनतटाः पुलिनश्रोणिमण्डलाः ।
हंसलक्षणहासिन्यः पतिं यान्ति समुद्रगाः १९

कुमुदोत्फुल्लमुदकं ताराभिश्चित्रमम्बरम् ।
सममभ्युत्स्मयन्तीव शर्वरीष्वितरेतरम् ॥ २०

---

१६

एतस्मिन्षोडशेऽध्याये युक्तिभिर्मखभेदनम्
उपेन्द्रेण महेन्द्रस्य शरदो वर्णनं तथा ॥१॥

गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे इन्द्रमहोत्सवस्वीकारे ॥ १ ॥ पण्यं विक्रेयं द्रव्यं विपणिजीविनां वणिजां त्रैविद्यं वार्तारूपायाः विद्यायाः भेदत्रयम् ॥ ३ ॥ विद्यया वार्तया ॥ ४ ॥ तनवस्तनूः ॥ ६ ॥ एषां वनानां विकुर्वन्ति विकारं जनयन्ति । वनालया भिल्लाद्याः वनजीविनो गोपतक्षाद्याः ॥ ८ ॥ कर्म स्वस्तिवाचनादिकं सुखस्थाने पादपादिसन्निधौ समे देशे ॥ १० ॥ वितत्य कुण्डमण्डपादिकं विस्तार्य क्रियताम् । एकत्रेति शेषः ॥ ११ ॥ प्रमुदिता प्रमुदितजनत्वात् ॥ १३ ॥ प्रियकैः कदम्बभेदैः बाणासनैः झिण्टीपुच्छैः निर्मयूररुतं वर्षापगमात् ॥ १४ ॥ बलाकेव बलाका आकस्मिकपाताऽशनिः तद्रहिताः विबलाकाः॥१५॥ साभिषेकमिव पट्टाभिषिक्तनृपातितुल्यम् ॥ १७ ॥ अभ्युत्स्मयन्ति गर्वमाविष्कुर्वन्ति । बहुत्वमार्षम् ॥ २० ॥

---

१ क. ख. कर्षका° । २ क. °रिका । यो° । ३ क. ख. कर्षकाः । ४ ख. °ज्ञा वयं गो° । ५ क. ख. °वर्त्यताम् । ६ ख. °नर्वनम् । ७ क. ख. विवर्तन्ते ज° । ८ ख. °घवातेन ।

मत्तक्रौञ्चावघुष्टेषु कलमापक्वपाण्डुषु ।
निर्विष्टरमणीयेषु वनेषु रमते मनः ॥ २१
पुष्करिण्यस्तडागानि
वाप्यश्च विकचोत्पलाः ।
केदाराः सरितश्चैव
सरांसि च श्रियाऽज्वलन् ॥ २२
पङ्कजानि च ताम्राणि
तथाऽन्यानि सितान्यपि ।
उत्पलानि च नीलानि
भेजिरे वारिजां श्रियम् ॥ २३
मदं जहुः सितापाङ्गा मन्दं ववृधिरेऽनिलाः
अभवद्व्यभ्रमाकाशमभूच्च निभृतोऽर्णवः २४
ऋतुपर्यायशिथिलैर्वृत्तनृत्यसमुज्झितैः ।
मयूराङ्गरुहैर्भूमिर्बहुनेत्रेव लक्ष्यते ॥ २५
स्वपङ्कमलिनैस्तीरैः काशपुष्पलताकुलैः ।
हंससारसविन्यासैर्यमुना भाति शोभना २६
कलमापाकरम्येषु केदारेषु जनेषु च ।
सस्यादा जलजादाश्च मत्ता विरुरुवुः खगाः
सिषिचुर्यानि जलदा जलेन जलदागमे ।
तानि सस्यानि बालानि कठिनत्वं गतानि वै
त्यक्त्वा मेघमयं वासः शरद्गुणविदीपितः ।
एष वै विमले व्योम्नि हृष्टो वसति चन्द्रमाः
क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः ।
वनानां द्विगुणा लक्ष्मीः सस्यैर्गुणवती मही३०
ज्योतींषि घनमुक्तानि पद्मवन्ति जलानि च ।
मनांसि च मनुष्याणां प्रसादमुपयान्ति वै ३१
असृजत्सविता व्योम्नि निर्मुक्तो जलदैर्भृशम् ।
शरत्प्रज्वलितं तेजस्तीक्ष्णरश्मिर्विशोषयन् ॥
नीराजयित्वा सैन्यानि
प्रयान्ति विजिगीषवः
अन्योन्यराष्ट्राभिमुखाः
पार्थिवाः पृथिवीक्षितः
बन्धुजीवाभिताम्रासु बद्धपङ्कवतीषु च ।
मनस्तिष्ठति कान्तासु चित्रासु वनराजिषु ३४
वनेषु च विराजन्ते पादपा वनशोभिनः ।
असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥
इषुसाह्वा निकुम्भाश्च प्रियकाः स्वर्णकास्तथा ।
सृमराः पेचुकाश्चैव केतक्यश्च समन्ततः ३६
व्रजेषु च विशेषेण गर्गरोद्गारहासिषु ।
शरत्प्रकाशयोषेव गोष्ठेष्वटति रूपिणी ॥ ३७
नूनं त्रिदशभूयिष्ठं मेघकालसुखोषितम् ।
पतत्त्रिकेतनं देवं बोधयन्ति दिवौकसः ॥ ३८
शरद्येवं सुसस्यायां प्राप्तायां प्रावृषः क्षये ।
नीलचन्द्रार्कवर्णैश्च रचितं बहुभिर्द्विजैः ॥ ३९
फलैः प्रवालैश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम् ।
भवनाकारविटपं लतापरममण्डितम् ॥ ४०
विशालमूलावनतं पवनाभोगमण्डितम् ।
अर्चयामो गिरिं देवं गाश्चैव च विशेषतः ४१
सावतंसैर्विषाणैश्च बर्हापीडैश्च दंशितैः ।
घण्टाभिश्च प्रलम्बाभिः पुष्पैः शारदिकैस्तथा
शिवाय गावः पूज्यन्तां
गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ।
पूज्यतां त्रिदशैः शक्रो
गिरिरस्माभिरिज्यताम् ॥ ४३
कारयिष्यामि गोयज्ञं बलादपि न संशयः ।
यद्यस्ति मयि वः प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम्
गावो हि पूज्याः सततं सर्वेषां नात्र संशयः ।
यदि साम्ना भवेत्प्रीतिर्भवतां वैभवाय च ।
एतन्मम वचस्तथ्यं क्रियतामविचारितम् ४५

---

कलमापक्वपाण्डुषु धान्यमञ्जरीपाकपिङ्गेषु निर्विष्टाः कृतविवाहास्तद्वद्रमणीयेषु क्रौञ्चपुरुषयोः धान्यवराङ्गनयोश्च साम्यम् ॥ २१ ॥ सितापाङ्गाः मयूराः । निभृतः पूर्णः ॥ २४ ॥ ऋतुपर्यायो वर्षापगमस्तेन शिथिलैः वृत्तं समाप्तं यन्नृत्यं तदा समुज्झितैः ॥ २५ ॥ विन्यासैः उपवेशनस्थलैः ॥२६॥ जलजादाः मत्स्याशिनः॥२७॥विशोषयन् रसानिति शेषः॥३२॥ बन्धुजीवैः रक्तपुष्पैः अभितः ताम्रासु लोहितासु ॥ ३४ ॥ इषुसाह्वाः बाणासनाः निकुम्भाः दन्तिविटपाः स्वर्णकाः स्वर्णपर्णाः पुष्पिता इति पूर्वेणान्वयः । सृमरा मृगविशेषाः तेषां शरदि दर्शनात् । पेचुकाः घूका इति केचित् ॥ ३६ ॥ सावतंसैः समुकुटैः बर्हापीडैः मयूरपत्रभूषाभिस्तत्रैव शृङ्गेषु दंशितैर्बद्धैः ॥ ४२ ॥

---

१ ख °षु वप्रेषु र° । २ ख. सुप° । ३ क. °ना तीरशो , ख. °ना सातिशो° । ४ ख. कालपक्वेषु र° । ५ क. सस्यान्यबा° । ६ क. ख. अशनाः स° । ७ ख. पेचिका° । ८ ख. कुन्दियश्च स° । ९ ख. °गधारिणम् । अ° । १० ख. लादेव न ।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शरद्वर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## गोवर्धनमहोत्सवः

## १७

वैशम्पायन उवाच ।

दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोषु जीविनः
तद्वागमृतमासाद्य प्रत्यूचुरविशङ्कया ॥ १
तवैषा बाल महती गोपानां हितवर्द्धिनी ।
प्रीणयत्येव नः सर्वान्बुद्धिर्वृद्धिकरी गवाम् २
त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम्
भयेष्वभयदस्त्वं नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत् ॥ ३
त्वत्कृते कृष्ण घोषोऽयं क्षेमी मुदितगोकुलः ।
कृत्स्नो वसति शान्तारिर्यथा स्वर्गं गतस्तथा॥
जन्मप्रभृति कर्मैत-
द्दैवैरसुकरं भुवि ।
बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च
विस्मितानि मनांसि नः ॥ ५
बलेन च परार्ध्येन यशसा विक्रमेण च ।
उत्तमस्त्वं मनुष्येषु देवेष्विव पुरन्दरः ॥ ६
प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयाऽपि च ।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकरः ॥ ७
कान्त्या लक्ष्म्या प्रसादेन वदनेन स्मितेन च।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव निशाकरः ॥ ८
बलेन वपुषा चैव बाल्येन चरितेन च ।
स्यात्ते शक्तिधरस्तुल्यो न तु कश्चन मानुषः॥९
यत्त्वयाऽभिहितं वाक्यं गिरियज्ञं प्रति प्रभो।
कस्तल्लङ्घयितुं शक्तो वेलामिव महोदधिः१०
स्थितः शक्रमहस्तात श्रीमान्गिरिमहस्त्वयम्।
त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतोः प्रवर्त्यताम्
भोजनान्युपकल्प्यन्तां पयसः पेशलानि च ।
कुम्भाश्च विनिवेश्यन्तामुदपानेषु शोभनाः ॥
पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोण्यश्च विपुलायताः
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च तत्सर्वमुपनीयताम् ॥
भाजनानि च मांसस्य न्यस्यन्तामोदनस्य च
त्रिरात्रं चैव संदोहः सर्वघोषस्य गृह्यताम् १४
विशस्यन्तां च पशवो भोज्या ये महिषादयः
प्रवर्त्यतां च यज्ञोऽयं सर्वगोपसुसंकुलः १५
आनन्दजननो घोषो महान्मुदितगोकुलः ।
तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितैः ॥ १६
हम्भारवैश्च वत्सानां गोपानां हर्षवर्धनः ।
दध्नो ह्रदो घृतावर्तः पयःकुल्यासमाकुलः ॥
मांसराशिः प्रभूताढ्यः प्रकाशौदनपर्वतः ।
संप्रावर्तत यज्ञोऽस्य गिरेर्गोभिः समाकुलः१८
तुष्टगोपजनाकीर्णो गोपनारीमनोहरः ।
*भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्चोपकल्पिताः ।
गन्धमाल्यैश्च विविधैर्धूपैरुच्चावचैस्तथा ॥ १९
अथाधिश्रृतपर्यन्ते संप्राप्ते यज्ञसंविधौ ।
यज्ञं गिरेस्तिथौ सौम्ये चक्रुर्गोपा द्विजैः सह॥

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६

१७

**अथ सप्तदशोऽध्याये गोवर्धनमहोत्सवः ।**
**वर्ण्यते हरिणा शैलस्योदर्शनं तस्य चाद्भुतम्१**

अविशङ्कया इन्द्रात् भयम् अशङ्कमाना इत्यर्थः ॥ १ ॥ अशङ्कायां बीजमाहुस्त्वमिति-परायणम् आश्रयः ॥ ३ ॥ यथा स्वर्गं गतः स्वर्गस्थ इव ॥ ४ ॥ एतच्छकटभङ्गादि कर्म दृष्ट्वेति शेषः । बोद्धव्यात् द्रष्टुं योग्यात्त्वभिमानादहं-कारादहं कारयिष्यामि गोयज्ञं बलादेतन्न संशय इत्येवंरूपात्। एकश्चकारः पादपूरणार्थः॥ ५ ॥ ते त्वया तुल्यः शक्तिधरः कार्तिकेयः॥ ९ ॥ त्वत्प्रणीतस्त्वया प्रवर्तितः ॥११॥ नद्यः सुधामय्यो दीर्घकुल्याः द्रोण्यस्तादृशानि कुण्डानि ॥ १३ ॥ संदोहः पयआदिः गृह्यतां न तु विक्रेयः ॥ १४ ॥ दध्नो ह्रदः घृतावर्तः साररूपेण घृतं यत्रोपर्यावर्तते स तथा ॥१७॥ प्रभूतश्चासौ आढ्यश्च भूयान्संस्कारकद्रव्यसंयुक्तश्च यस्मिन्नि-त्यर्थः ॥ १८ ॥ अधिशृतानि वह्निस्थानि चरुस्थाल्यादीनि पर्यन्तानि समीपे आसादितानि यस्मिन् ॥२०॥

---

१ ख. 'तमश्नानाः प्र' । २ ख. 'हृष्टो व' । ३ ख. भाज' । ४ क. 'वर्ततां । ५ ख. यज्ञः स गि' ।
* भक्ष्याणामित्यादि पद्यं खपुस्तके नास्ति।

यजनान्ते तदन्नं तु तत्पयो दधि चोत्तमम् ।
मांसं च मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते॥
तर्पिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टाः संपूर्णमानसाः।
उत्तस्थुः प्रीतमनसः स्वस्ति वाच्यं यथासुखम्
भुक्त्वा चावभृथे कृष्णः
पयः पीत्वा च कामतः ।
संतृप्तोऽस्मीति दिव्येन
रूपेण प्रजहास वै ॥ २३
तं गोपाः पर्वताकारं दिव्यस्रगनुलेपनम् ।
गिरिमूर्ध्नि स्थितं दृष्ट्वा कृष्णं जग्मुः प्रधानतः
भगवानपि तेनैव रूपेणाच्छादितः प्रभुः ।
सहितैः प्रणतो गोपैर्ववन्दात्मानमात्मना २५
तमूचुर्विस्मिता गोपा देवं गिरिवरे स्थितम् ।
भगवंस्त्वद्वशे युक्ता दासाः किं कुर्म किङ्कराः
स उवाच ततो गोपान्गिरिप्रभवया गिरा ।
अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोषु यद्यस्तु वो दया ॥
अहं वः प्रथमो देवः सर्वकामकरः शुभः ।
मम प्रभावाच्च गवामयुतान्येव भोक्ष्यथ ॥ २८
शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्तानां वने वने।
रंस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिविगतस्तथा २९
ये चेमे प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमाः ।
एषां प्रीतः प्रयच्छामि गोपानां विपुलं धनम्
पर्याप्नुवन्तु क्षिप्रं मां गावो वत्ससमाकुलाः।
एवं मम परा प्रीतिर्भविष्यति न संशयः॥ ३१
ततो नीराजनार्थं हि वृन्दशो गोकुलानि तम्
परिवव्रुर्गिरिवरं सवृषाणि समन्ततः ॥ ३२
ता गावः प्रद्रुता हृष्टाः सापीडस्तबकाङ्गदाः
स्रग्जापीडशृङ्गाग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ३३
अनुजग्मुश्च गोपालाः कालयन्तो धनानि च ।
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बराः ॥
मयूरचित्राङ्गदिनो भुजैः प्रहरणावृतैः ।
मयूरपत्रवृन्तानां केशबन्धैः सुयोजितैः ॥ ३५
बभ्राजुरधिकं गोपाः समवाये तदाद्भुते ।
अन्ये वृषानारुरुहुर्नृत्यन्ति स्म परे मुदा ॥ ३६
गोपालास्त्वपरे गाश्च जगृहुर्वेगगामिनः ।
तस्मिन्पर्यायनिर्वृत्ते गवां नीराजनोत्सवे ३७
अन्तर्धानं जगामाशु तेन देहेन सोऽचलः ।
कृष्णोऽपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह ॥
गिरियज्ञप्रवृत्तेन तेनाश्चर्येण विस्मिताः ।
गोपाः सबालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गिरियज्ञप्रवर्तने
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## गोवर्धनधारणम् ।

### १८

वैशम्पायन उवाच ।

महे प्रतिहते शक्रः सक्रोधस्त्रिदशेश्वरः। संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत्॥ १

प्रधानतः मुख्यास्तत्त्वज्ञाः जग्मुः शरणमिति शेषः ॥२४॥ तं गिरिशिखरस्थम् ॥ २६ ॥ पर्याप्नुवन्तु प्रदक्षिणं कुर्वन्तु ॥ ३१ ॥ सापीडाः सशिरोभूषणाः ताश्च ताः स्तबकाङ्गदाः पुष्पगुच्छाकाराणि बाहुभूषणानि यासां ताः । स्रजश्च आपीडाः शृङ्गारभूषणानि तैश्च सहितानि स्रग्जापीडानि शृङ्गाग्राणि यासां ताः ॥ ३३ ॥ कालयन्तो नियमयन्तः धनानि गोधनानि भक्तिच्छेदैर्विभागभेदैः अनुलिप्ताङ्गाः नानावर्णैरनुलेपितानि पृथक् पृथगङ्गानि यैस्तादृशा इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ प्रहरणावृतैः सायुधैः मयूरपत्राणां वृन्तानि मध्यशङ्कवः तेषाम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

**अस्मिन्नष्टादशोऽध्याये आसारात्पीडिते व्रजे दध्रे कृष्णो गिरिं प्रौढ्या सप्ताहमिति वर्ण्यते१**

१ ख. °र्णभोजनाः । उत्त° । २ ख. °तान्युपभो° । ३ ख. °स्येऽहं स° । ४ क. ख. थैं वै वृ° । ५ ख. °नि च । ६ ख. मयूरचित्रपत्रैस्तु केश° । ७ ख. स्माप° । ८ ख. गा वै ज° । ९ ख. अस्मि° । १० क. ख. संव° ।

भो बलाहकमातङ्गाः श्रूयतां मम भाषितम्।
यदि वो मतिप्रियं कार्यं राजभक्तिपुरस्कृतम्॥
एते वृन्दावनगता दामोदरपरायणाः।
नन्दगोपादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम्॥
आजीवो यः परस्तेषां गोपत्वं च यतः स्मृतम्
ता गावः सप्तरात्रेण पीड्यन्तां वर्षमारुतैः॥ ४
ऐरावतगतश्चाहं स्वयमेवाम्बुदारुणम्।
स्रक्ष्यामि वृष्टिं वातं च वज्राशनिसमप्रभम् ५
भवद्भिश्चण्डवर्षेण
चरता मारुतेन च।
हतास्ताः सव्रजा गाव-
स्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम्॥ ६
एवमाज्ञापयामास सर्वाञ्जलधरान्प्रभुः।
प्रत्याहते वै कृष्णेन शासने पाकशासनः॥७
ततस्ते जलदाः कृष्णा घोरनादा भयावहाः
आकाशं छादयामासुः सर्वतः पर्वतोपमाः॥
विद्युत्संपातजननाः शक्रचापविभूषिताः।
तिमिरावृतमाकाशं चक्रुस्ते जलदास्तदा॥९
गजा इवान्यसंयुक्ताः केचिन्मकरवर्चसः।
नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवाः॥१०॥
तेऽन्योन्यं वपुषा बद्धा नागयूथायुतोपमाः।
दुर्दिनं विपुलं चक्रुश्छादयन्तो नभस्तलम् ११
नृहस्तनागहस्ताभ्यां वेणूनां चैव सर्वतः।
धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्ववृषुस्ते बलाहकाः॥
समुद्रं मेनिरे तं हि खमारूढं नृचक्षुषः।
दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत्॥१३॥
नैवापतन्वै खगमा दुद्रुवुर्मृगजातयः।
पर्वताभेषु मेघेषु खे नदत्सु समन्ततः॥१४॥
नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मेघैर्नभसि दारुणैः।
अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपमभवद्वपुः॥१५॥
मेघौघैर्निष्प्रभाकारमदृश्यग्रहतारकम्।
चन्द्रसूर्यांशुरहितं खं बभूवातिनिष्प्रभम् १६
वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासकृत्।
आबभौ सर्वतस्तत्र भूमिस्तोयमयी यथा॥
विनेदुर्बर्हिणस्तत्र तोककल्परुताः खगाः।
विवृद्धिं निम्नगा याताः प्लवगाः संप्लवं गताः
गर्जितेन च मेघानां पर्जन्यनिनदेन च।
तर्जितानीव कम्पन्ते तृणानि तरुभिः सह॥
प्राप्तोऽन्तकालो लोकानां
व्यक्तमेकार्णवा मही।
इति गोपगणा वाक्यं
व्याहरन्ति भयार्दिताः॥२०॥
तेनोत्पाताम्बुवर्षेण गावो विप्रहता भृशम्।
हम्भारवैः क्रन्दमाना न चेलुः स्तम्भितोपमाः
निष्कम्पसक्थिचरणा निष्प्रयत्नखुराननाः।
हृष्टरोमार्द्रतनवः क्षामकुक्षिपयोधराः॥२२॥
काश्चित्प्राणाञ्जहुः श्रान्ता
निपेतुः काश्चिदातुराः।
काश्चित्सवत्साः पतिता
गावः शीकरवेजिताः॥२३॥
काश्चिदाक्रम्य क्रोडेन वत्सांस्तिष्ठन्ति मातरः
विमुखाः श्रान्तसक्थ्यश्च
निराहाराः कृशोदराः

---

महे प्रतिहते शक्र इत्यध्याये—
"तमस्य राजा वरुणस्तमश्विनौ
क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं
व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते"
इत्येतं मन्त्रमुपबृंहयति। मन्त्रार्थस्तु—अस्य विष्णोस्तं पर्वतार्थं कृतं स्वं स्वेन संपादितं क्रतुं यज्ञं वरुणोऽश्विनौ च सचन्त अन्वमोदन्त मारुतस्य वायोरपि वेधसः स्रष्टुः ततश्च स्वमखभङ्गे कृते इन्द्रे कुपिते सति विष्णुः उत्तमं श्रेष्ठं दक्षं वृष्टिनिवारणक्षमम् अहर्विदं क्रतोर्लब्धारं पर्वतं दाधार दधार भृतवान् यतः सखिवान् महान् व्रजाख्यसाखिसमुदायवान् व्रजम् अपोर्णुते तेनाहर्विदा शैलेन आच्छादयतीति॥ १॥ दुर्दिनं दुःस्थं दिनम्॥ ११॥ नृहस्तनागहस्ताभ्यां तुल्यरूपाभिर्धाराभिरिति संबन्धः॥ १२॥ दुर्दिनं मेघच्छन्नमहः॥ १३॥ नष्टसूर्येन्दुः कल्पान्तः तत्कालसदृशैः॥ १५॥ खं कृष्णरात्रौ इति शेषः॥ १६॥ तोयमयी सरसी॥१७॥ तोककल्परुताः अत्यल्पशब्दाः खगाः प्रवाहेण गच्छन्ति ते तीररुहादयः। संप्लवं प्रवाहम्॥ १८॥ विशेषेण प्रहता विप्रहताः॥२१॥ हृष्टरोमाश्च ता आर्द्रतनवश्च ताः॥२२॥ शीकरवेजिताः अम्बुकणैश्चलितास्तेभ्यो भीता वा॥ २३॥

---

१ क. स्कृतैः। २ ख. °दास्ततः। ग°। ३ ख. °स्तानां वे°। ४ ख. °वंशः। ५ ख. °रे तद्धि ख°। ६ ख. °न्दुनक्षत्रैर्मे°। ७ ख. °न्ता निषेदुः का°।

पेतुरार्ता वेपमाना गावो वर्षपराजिताः ।
वत्साश्चोन्मुखका बाला दामोदरमुखाः स्थिताः ।
त्राहीति वदनैर्दीनैः कृष्णमूचुरिवार्दिताः ॥ २५
गवां तत्क्रदनं दृष्ट्वा दुर्दिनागमजं महत् ।
गोपांश्चासन्ननिधनान्कृष्णः कोपं समादधे ॥
स चिन्तयित्वा संरब्धो दृष्टो योगो मयेति च ।
आत्मानमात्मना वाक्यमिदमूचे प्रियंवदः ॥२७॥
अद्याहमिममुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम् ।
कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षत्राणाय दुर्धरम् २८
अयं धृतो मया शैलः पृथ्वीगृहनिभोपमः ।
त्रास्यते सव्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति ॥
एवं स चिन्तयित्वा तु कृष्णः सत्यपराक्रमः।
बाह्वोर्बलं दर्शयिष्यन्समीपं तं महीधरम् ॥३०
दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिमिवाचलः
स धृतः सङ्गतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना ।
गृहभावं गतस्तत्र गृहाकारेण वर्चसा ॥३१॥
भूमेरुत्पाट्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु ।
शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुर्विनिष्पेतुश्च पादपाः ॥
शिखरैर्घूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः ।
विधूतैश्चोच्छ्रितः शृङ्गैरगमः खगमोऽभवत् ॥
चलत्प्रस्रवणैः पार्श्वैर्मेघौघैरेकतां गतैः ।
भिद्यमानाश्मनिचयश्चचाल धरणीधरः ॥३४
न मेघानां प्रवृष्टानां न शैलस्याश्मवर्षिणः ।
विविदुस्ते जना रूपं वायोस्तस्य च गर्जतः ॥
मेघैः सशैलसंस्थानैर्नीलैः प्रस्रवणार्पितैः ।
मिश्रीकृत इवाभाति गिरिरुद्दामबर्हवान्॥ ३६
आप्लुतोऽयं गिरिः पक्षैरिति विद्याधरोरगाः
गन्धर्वाप्सरसश्चैव वाचो मुञ्चन्ति सर्वशः३७
सहस्ततलविन्यस्तो मुक्तमूलः क्षितेस्तलात् ।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥३८
कानिचिच्छिथिलानीव संच्छिन्नार्द्राणि कानिचित् ।
गिरेर्मेघप्रवृष्टानि तस्य शृङ्गाणि चाभवन् ॥ ३९
गिरिणा कम्पमानेन कम्पितानां तु शाखिनाम् ।
पुष्पमुच्चावचं भूमौ व्यशीर्यत समन्ततः ॥ ४०
निःसृताः पृथुमूर्धानः स्वस्तिकार्धविभूषिताः
द्विजिह्वपतयः क्रुद्धाः खेचराः खे समन्ततः४१
आर्तिं जग्मुः खगगणा वर्षेण च भयेन च ।
उत्पत्योत्पत्य गगनात्पुनः पेतुरवाङ्मुखाः ४२
रेसुरारोषिताः सिंहाः सजला इव तोयदाः ।
गर्गरा इव मथ्यन्तो नेदुः शार्दूलपुङ्गवाः ४३
विषमैश्च समीभूतैः समैश्चात्यन्तदुर्गमैः ।
व्यावृत्तदेहः स गिरिरन्य एवोपलक्ष्यते ॥ ४४
अतिवृष्टस्य तैर्मेघैस्तस्य रूपं बभूव ह ।
स्तम्भितस्येव रुद्रेण त्रिपुरस्य विहायसि ४५
बाहुदण्डेन कृष्णस्य विधृतं सुमहत्तदा ।
नीलाभ्रपटलच्छन्नं तद्गिरिच्छत्रमाबभौ॥ ४६
स्वप्नायमानो जलदैर्निमीलितगुहामुखः ।
बाहूपधाने कृष्णस्य प्रसुप्त इव खे गिरिः ४७
निर्विहङ्गरुतैर्वृक्षैर्निर्मयूररुतैर्वनैः ।
निरालम्ब इवाभाति गिरिः स्वैः शिखरैर्वृतः
पर्यस्तैर्घूर्णमानैश्च प्रचलद्भिश्च सानुभिः ।
सज्वराणीव शैलस्य वनानि शिखराणि च

---

इमं गोवर्धनसंज्ञम् ॥ २८ ॥ अगमः पर्वतो अचलोऽपि खगमः खग इवाभूदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ स शैलो मेघैर्मिश्रीकृतः बर्हवान् मयूरः स इव भातीति योजना ॥ ३६ ॥ आप्लुतः ख उत्पतितः पक्षैर्मेघरूपैरित्यर्थः ॥ ३७ ॥ रीतीः गैरिकादिधातून् निर्वर्तयामास प्रावर्तयत् ॥ ३८ ॥ पुष्पं पुष्पजातिः ॥ ४० ॥ रेसुः शब्दं चक्रुः । गर्गराः मन्थनस्थाल्यः ॥ ४३ ॥ वृष्टस्य वर्षणक्लिन्नस्य ॥ ४५ ॥ जलदैः प्रावरणभूतैः पक्षे ताम्यप्रदैः श्रमैः गुहामुखानि कन्दराद्वाराणि पक्षे हृदयगुहाया मुखानि इन्द्रियाणि ॥ ४७ ॥ वनैः वृतः शिखरैरिति संबन्धः ॥ ४८ ॥

---

१ क. °वां तु क° । २ ख. घ. °रिरिवापरः । स° । ३ क. प्रवृद्धानां न शै° । ४ क. ख. न विदुस्ते ज° । ५ क. ख. मेघैश्च शै° । ६ क. गिरिमध्ये प्रविष्टा° । ७ क. चेलुश्च रो° । ८ क. अभिन्न° । ९ क. °रुतैर्घनैः । नि° । १० ख. °ति स गिरिः शिख° ।

उत्तमाङ्गगतास्तस्य मेघाः पवनवाहनाः।
वर्षमाणा महेन्द्रेण तोयं मुमुचुरक्षयम् ॥ ५०
स लम्बमानः कृष्णस्य भुजाग्रे सघनो गिरिः
चक्रारूढ इवाभाति देशो नृपतिपीडितः ५१
स मेघनिचयस्तस्थौ गिरिं तं परिवार्य ह।
पुरं पुरस्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान् ॥
निवेश्य तं करे शैलं तोलयित्वा च सस्मितम्
प्रोवाच गोप्ता गोपानां प्रजापतिरिव स्थितः॥
एतद्देवैरसंभाव्यं दिव्येन विधिना मया।
कृतं गिरिगृहं गोपा निर्वातं शरणं गवाम्५४
क्षिप्रं विशन्तु यूथानि गवामिह हि शान्तये।
निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम्
यथाश्रेष्ठं यथायूथं यथासारं यथासुखम् ॥ ५५
विभज्यतामयं देशः कृतं वर्षनिवारणम्।
शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया॥५६
पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकविस्तरो महान्*।
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ५७
ततः किलकिलाशब्दो गवां हम्भारवैः सह
गोपानां तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च वाह्यतः ॥५८

प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्यूथप्रकल्पिताः।
तस्य शैलस्य विपुलं प्रदरं गह्वरोदरम् ॥५९॥
कृष्णोऽपि मूले शैलस्य शैलस्तम्भ इवोच्छ्रितः
दधारैकेन हस्तेन शैलं प्रियमिवातिथिम्॥६०
ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च
विविशुर्वर्षभीतानि तद्गृहं गिरिनिर्मितम्॥६१
आतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत्कर्म वज्रभृत्।
मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान्वारयामास वै विभुः
सप्तरात्रे तु निर्वृत्ते धरण्यां विगतोत्सवैः।
जगाम संवृतो मेघैर्वृत्रहा स्वर्गमुत्तमम् ॥६३॥
निवृत्ते सप्तरात्रे तु निष्प्रयत्ने शतक्रतौ।
गताभ्रे विमले व्योम्नि दिवसे दीप्तभास्करे॥
गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्यथागतम्।
स्वं च स्थानं ततो घोषः प्रत्ययात्पुनरेव सः
कृष्णोऽपि तं गिरिश्रेष्ठं
स्वस्थाने स्थावरात्मवान्।
प्रीतो निवेशयामास
शिवाय वरदो विभुः ॥६६॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोवर्धनोद्धरणे
अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

## गोविन्दाभिषेकः।

## १९

वैशम्पायन उवाच।
धृतं गोवर्द्धनं दृष्ट्वा परित्रातं च गोकुलम्।
कृष्णस्य दर्शनं शक्रो रोचयामास विस्मितः
स निर्जलाम्बुदाकारं मत्तं मदजलोक्षितम्।
आरुह्यैरावतं नागमाजगाम महीतलम् ॥२॥
स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्द्धनशिलातले।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं पुरुहूतः पुरंदरः ॥३॥

तं वीक्ष्य बालं महता तेजसा दीप्तमव्ययम्।
गोपवेषधरं विष्णुं प्रीतिं लेभे पुरन्दरः ॥४॥
तं सोऽम्बुजदलश्यामं कृष्णं श्रीवत्सलक्षणम्
पर्याप्तनयनः शक्रः सर्वैर्नेत्रैरुदैक्षत ॥५॥
दृष्ट्वा चैनं श्रिया जुष्टं मर्त्यलोकेऽमरोपमम्।
सूपविष्टं शिलापृष्ठे शक्रः स व्रीडितोऽभवत्॥

चक्रारूढः परचक्रवशात् रथशकटाद्यारुह्य पलायमानो यथाऽऽलम्बते तद्वदित्यर्थः ॥ ५१ ॥ दिव्येन विधिना अलौकिकेन प्रभावेण ॥५४॥ महती पर्वतबुध्नादपि पुष्कलकुक्षिः ॥५६॥ प्रदरं गर्तमुखं गह्वरोदरं विशालगर्भम् ॥ ५९ ॥ स्थावरात्मवान् अकम्प इत्यर्थः ॥ ६६ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

एकोनविंशेऽथाध्याये सुरभिर्ब्रह्मचोदितः
इन्द्रोऽभिषिक्तवान्कृष्णं गवामैन्द्रे निरूप्यते१
धृतमिति ॥१॥ पर्याप्तनयनः संप्राप्तनेत्रफलः ॥५॥

१ घ. करैः शै । २ क. ख. °लं तुलयित्वा च संमितम्। प्रो°। * पञ्चक्रोशेति पद्यार्धं कखपुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ख. प्रविशन्ति त°। ४ क. °लं विवरं ग°, ख. °लं विमलं ग°। ५ ख. °ते भर°। ६ क. ख. °त्सवे। ज°। ७ ख. °र्गमेव च। नि°। ८ ख. °स्मुर्गतश्रमाः। स्वं°। ९ ख. °स ध्रुवाय व°। १० क. ख. °र्धनधारणे। ११ क. ख. °तं साम्बुदजलश्या°।

तस्योपविष्टस्य सुखं पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवः ।
अन्तर्द्धानं गतश्छायां चकारोरगभोजनः ॥७
तं विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्ततत्परम् ।
उपतस्थे गजं हित्वा कृष्णं बलनिषूदनः ॥८॥
स समीपगतस्तस्य दिव्यस्रगनुलेपनः ।
रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः ॥९॥
किरीटेनार्कतुल्येन विद्युदुद्द्योतकारिणा ।
कुण्डलाभ्यां स दिव्याभ्यां
सततं शोभिताननः ॥ १०
पञ्चस्तबकलम्बेन हारेणोरसि भूषितः ।
सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा ।
ईक्षमाणः सहस्रेण नेत्राणां कामरूपिणाम् ११
त्रिदशाज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा ।
अथ दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम् ॥१२
इन्द्र उवाच ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन
अतिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम्
मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु ।
यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः
स्वायंभुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः ।
धृतो वेश्मवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत्
प्रतिषिद्धे मम महे मयेयं रुषितेन वै ।
अतिवृष्टिः कृता कृष्ण गवां वै सप्तरात्रिकी
सा त्वया प्रतिषिद्धेयं मेघवृष्टिर्दुरासदा ।
देवैः सदानवगणैर्दुर्निवार्या मयि स्थिते॥१७
अहो मे सुप्रियं कृष्ण यत्त्वं मानुषदेहवान् ।
समग्रं वैष्णवं तेजो विनिगूहसि रोषितः १८
साधितं देवतानां हि मन्येऽहं कार्यमव्ययम्॥
त्वयि मानुष्यमापन्ने युक्ते चैवं स्वतेजसा १९
सेत्स्यते सर्वकार्यार्थो न किंचित्परिहास्यते
देवानां यज्ञवाऽनेता सर्वकार्यपुरोगमः ॥ २०
एकस्त्वमसि देवानां लोकानां च सनातनः ।
द्वितीयं नात्र पश्यामि यस्तेषां च धुरं वहेत्॥
यथा हि पुङ्गवः श्रेष्ठो ह्यग्रे धुरि नियोज्यते ।
एवं त्वमसि देवानां मग्नानां द्विजवाहनः २२
त्वच्छरीरगतं कृष्ण जगत्प्रकरणं त्विदम् ।
ब्रह्मणा साधु निर्दिष्टं धातुभ्य इव काञ्चनम् ॥
स्वयं स्वयंभूर्भगवान्बुद्ध्याऽथ वयसापि वा
न त्वानुगन्तुं शक्नोति पङ्गुर्द्रुतगतिं यथा२४
स्थाणुभ्यो हिमवाञ्छ्रेष्ठो ह्रदानां वरुणालयः ।
गरुत्मान्पक्षिणां श्रेष्ठो देवानां च भवान्वरः
अपामधस्ताल्लोको वै तस्योपरि महीधराः ।
नागानामुपरिष्टाद्भूः पृथिव्युपरि मानुषाः २६
मनुष्यलोकादूर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते ।
आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान्
देवलोकः परस्तस्माद्विमानगमनो महान् ।
यत्राहं कृष्ण देवानामैन्द्रे विनिहितः पदे २८
स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः ।
तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम्॥
तस्योपरि गवां लोकः
साध्यास्तं पालयन्ति हि[७] ।
स हि सर्वगतः कृष्ण
महाकाशगतो महान् ॥ ३०

---

लोकवृत्तान्ततत्परं लोकव्यवहारतत्परम् ॥ ८॥ पञ्चभिः स्तबकैर्महागुच्छैर्लम्बते इति तेन पञ्चस्तबकलम्बेन ॥११॥ स्वायंभुवेन योगेन हैरण्यगर्भ्या धारणया तस्यां हि क्रियमाणायां गुरुतरोऽपि लघुर्भवति कृष्णधृतगोवर्धनवत् विपुलतरोऽप्यल्पो भवत्यगस्त्यपीतसमुद्रवत् ॥ १५ ॥ गवां कोपेनेति शेषः ॥१६॥ रोषितः व्रजपक्षपातेन मयि क्रुद्धः सन् पूर्णत्वं स्वस्याच्छादयसीत्यर्थः ॥ १८ ॥ पुङ्गवः महोक्षः ॥ २२ ॥ प्रकरणं प्रकर्षेण रचनम् । पाठान्तरे प्रवहणं सृष्टिप्रवाहः ॥ २३ ॥ स्थाणुभ्यः पर्वतेभ्यः ॥ २५ ॥ गोलोकस्य श्रेष्ठत्वं वक्तुं पीठिकामाह-**अपामिति** । अपां लोकोऽधस्तात् तस्योपर्यप्सु प्लवन्तो महीधराः पर्वताः समुद्रे मग्नान्युपरिदण्डानि लोहलाङ्गलानि नावमिव महीं धारयन्तः अत एव नागानामुपरिष्टाद्भूः स्मृता भुवश्चोपरि नगा दृश्यन्ते ॥ २६ ॥ सोमगतिस्तावतीत्यर्थः । कर्मफलं तावदेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥ गोलोकस्तु गोपालोपासनागम्यस्ततोऽप्युपरीत्याह-**तस्येति** ॥ ३० ॥

---

१ क. ख. अतिदैवं कृ॰ । २ ख. नैवं स्व॰ । ३ क. ख. ॰तं वीर का॰ । ४ ख. ॰यं नानुप॰ । ५ क. ख. ॰मि धुरं यस्तु समुद्वहेत् । य॰ । ६ ख. ॰णपूजितः । त॰ । ७ ख. ॰न्ति ह ।

उ पर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी ।
यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम्
लोकस्त्वधो दुष्कृतिनां नागलोकस्तु दारुणः
पृथिवी कर्मशीलानां क्षेत्रं सर्वस्य कर्मणः ३२
खमस्थिराणां विषयो वायुना तुल्यवृत्तिनाम्
गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृतकर्मणाम् ३३
ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः ।
गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः
स तु लोकस्त्वया कृष्ण
सीदमानः कृतात्मना ।
धृतो धृतिमता वीर
निघ्नतोपद्रवान्गवाम् ॥ ३५
तदहं समनुप्राप्तो गवां वाक्येन चोदितः ।
ब्रह्मणश्च महाभाग गौरवात्तव चागतः ॥ ३६
अहं भूतपतिः कृष्ण देवराजः पुरंदरः ।
अदितेर्गर्भपर्याये पूर्वजस्ते पुराकृतः ॥ ३७
स्वतेजस्तेजसा चैव यत्ते दर्शितवानहम् ।
दैवरूपेण तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि मे विभो ॥ ३८
एवं क्षान्तमनाः कृष्णः स्वेन सौम्येन तेजसा
ब्रह्मणः शृणु मे वाक्यं गवां च गजविक्रम ३९
आह त्वां भगवान्ब्रह्मा गावश्चाकाशगा दिवि
कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव संरक्षणादिभिः ४०
भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम् ।
यद्वयं पुङ्गवैः सार्द्धं वर्द्धामः प्रसवैस्तथा ॥ ४१
कर्षुकान्पुङ्गवैर्बाह्यैर्मेध्येन हविषा सुरान् ।
श्रियं शकृत्प्रवृत्तेन तर्पयिष्याम कामगाः ४२
तदस्माकं गुरुस्त्वं हि प्राणदश्च महाबलः ।
अद्यप्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो
तस्मात्त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः ।
एभिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ४४
अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः
गोविन्द इति लोकास्त्वां
स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ४५
ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः ।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः
ये चेमे वार्षिका मासाश्चत्वारो विहिता मम
एषामर्द्धं प्रयच्छामि शरत्कालं तु पश्चिमम् ४७
अद्यप्रभृति मासौ द्वौ ज्ञास्यन्ति मम मानवाः ।
वर्षार्द्धे च ध्वजो मह्यं ततः पूजामवाप्स्यसि
ममाम्बुप्रभवं दर्पं तदा त्यक्ष्यन्ति बर्हिणः ४८
अल्पवाचो गतमदा ये चान्ये मेघनादिनः ।
शान्तिं सर्वे गमिष्यन्ति मम कालविचारिणः
त्रिशङ्कगस्त्यचरितामाशां च प्रचरिष्यति ।
सहस्ररश्मिरादित्यस्तापयन्स्वेन तेजसा ॥५०
ततः शरदि युक्तायां मौनकामेषु बर्हिषु ।
याचमाने खगे तोयं विप्लुतेषु प्लवेषु च ॥ ५१

तत्रापि गोलोकेऽपि न विद्मः कुतो लभेमेत्यर्थः ॥ ३१ ॥ गवामेवेत्यन्येषां तपआदिनाऽपि दुष्प्राप इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ स एव गोलोकस्त्वया सह भूमावागतः सन् सीदमानावस्थायां त्वयैव त्रातः । तथा च मन्त्रवर्णः—

" ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमवभाति भूरि " इति ।

ता तानि वां युवयोः रामकृष्णयोर्वास्तूनि रम्यस्थानानि गमध्यै गन्तुम् उश्मसि उश्मः कामयामहे न तु तत्र गन्तुं प्रभवामः यत्र येषु वास्तुषु भूरिशृङ्गाः महाशृङ्गवत्यो गावः अयासः संचरन्ति । अत्र भूलोके अह निश्चितं तत् गोलोकाख्यं परमं पदं भूरि अत्यन्तं मुख्यादपि विशिष्टम् अवभाति अत्यन्तं शोभते । वृष्णः आनन्दवर्षुकस्य उरुगायस्य महाकीर्तेरित्यर्थः ॥ ३५ ॥ मे मुखादिति शेषः ॥ ३९ ॥ अभिषिञ्चस्व आत्मानमिति शेषः । अभिषेकादिकं भगवानङ्गीचकारेत्याह मन्त्रः—

" ऋषभं मा समानानां
सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि
विराजं गोपतिं गवाम् " इति

विषासहिं सहनसमर्थम् ॥ ४४ ॥ ममेति इन्द्रादुपरीति विग्रहे रिलोपेन उपेन्द्रेति नाम निष्पन्नमित्यर्थः ॥ ४६ ॥ वर्षार्द्धे आश्विनशुक्लप्रतिपदि । ध्वजः व्रतसमाप्तिचिह्नम् ॥ ४८ ॥ आशां दक्षिणां दिशम् ॥ ५० ॥ खगे चातके प्लवेषु नदीतरणसाधनेषु विगतपूरासु नदीष्वित्यर्थः ॥ ५१

१ क. °तोपद्रवान् बहून् । त°, ख. °तोपद्रवं गवाम् । २ ख. °व चानघ । ३ क. ख. °रातनः । ४ क. ख. मेघरू° । ५ क. ख. °ता लोका गो° । ६ क. ख. कर्षका° । ७ ख. °ष्यामि का° । ८ ख. °मदाः । ९ क. तेषा° । ख. १० क. ख. °शङ्कुचरितामाशामगस्त्यो विच° ।

हंससारसपूर्णेषु नदीनां पुलिनेषु च ।
मत्तक्रौञ्चप्रणादेषु प्रमत्तवृषभेषु च ॥ ५२
गोषु चैव प्रहृष्टासु क्षरन्तीषु पयो बहु ।
निवृत्तेषु च मेघेषु निर्यात्य जगतो जलम् ५३
आकाशे शस्त्रसंकाशे हंसेषु च चरत्सु च ।
जातपद्मेषु तोयेषु वापीषु च सरस्सु च ॥५४
तडागेषु च कान्तेषु तोयेषु विमलेषु च ।
कलमावनताग्रासु[2] कृष्णकेदारपङ्क्तिषु ॥५५॥
मध्यस्थं सलिलारम्भं कुर्वन्तीषु[3] नदीषु च
सुसस्यायां च सीमायां मनोहर्यां मुनेरपि ॥
पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां रम्यायां वर्षसंक्षये ।
श्रीमत्सु पङ्क्तिमार्गेषु फलवत्सु तृणेषु च ।
इक्षुमत्सु च देशेषु प्रवृत्तेषु मखेषु च ॥ ५७
ततः प्रवर्त्स्यते पुण्या शरत्सुप्तोत्थिते त्वयि ।
लोकेऽस्मिन्कृष्ण निखिले यथैव त्रिदिवे तथा
नरास्त्वां चैव मां चैव
ध्वजाकारासु यष्टिषु ।
महेन्द्रं चाप्युपेन्द्रं च
महयन्ति[4] महीतले ॥ ५९
ये चावयोः स्थिरे वृत्ते महेन्द्रोपेन्द्रसंज्ञिते ।
मानवाःप्रणमिष्यन्ति तेषां नास्त्यनयागमः
ततः शक्रस्तु तान्गृह्य घटान्दिव्यपयोधरान्
अभिषेकेण गोविन्दं योजयामास योगवित् ॥
दृष्ट्वा[5] तमभिषिक्तं तु गावस्ताः सह यूथपैः ।
स्तनैः प्रस्रवयुक्तैश्च[6] सिषिचुः कृष्णमव्ययम् ॥
मेघाश्च दिवि युक्ताभिः सामृताभिः समन्ततः
सिषिचुस्तोयधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम् ॥
वनस्पतीनां सर्वेषां सुस्रावेन्दुनिभं पयः ।
ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूर्याणि चाम्बरे ॥६४
अस्तुवन्मुनयः[7] सर्वे वाग्भिर्मन्त्रपरायणाः ।
एकार्णवे विविक्तं च दधार वसुधा वपुः ॥
प्रसादं सागरा जग्मुर्ववुर्वाता जगद्धिताः ।
भार्गस्थोऽपि[8] बभौ भानुश्चन्द्रो नक्षत्रसंयुतः ॥
ईतयः प्रशमं जग्मुर्निर्वैररचना[9] नृपाः ।
प्रवालपत्रशबलाः पुष्पवन्तश्च पादपाः ॥ ६७
मदं प्रसुस्रुवुर्नागा यातास्तोषं वने मृगाः ।
अलंकृता गात्ररुहैर्धातुभिर्भान्ति पर्वताः ॥६८
देवलोकोपमो लोकस्तृप्तोऽमृतरसैरिव ।
आसीत्कृष्णाभिषेको हि दिव्यस्वर्गरसोक्षितः
अभिषिक्तं तु तं गोभिःशक्रो गोविन्दमव्ययम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥
एष ते प्रथमः कृष्ण नियोगो गोषु यः कृतः ।
श्रूयतामपरं कृष्ण[10] ममागमनकारणम् ॥७१
क्षिप्रं प्रसाध्यतां[11] कंसः केशी च तुरगाधमः ।
अरिष्टश्च मदाविष्टो[12] राजराज्यं ततः कुरु
पितृष्वसरि जातस्ते ममांशोऽहमिव स्थितः ।
स ते रक्ष्यश्च मान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम्
त्वया ह्यनुगृहीतस्य[13] तव वृत्तानुवर्तकः ।
त्वद्वशे वर्तमानश्च प्राप्स्यते विपुलं यशः ॥
भारतस्य च वंशस्य स वरिष्ठो धनुर्धरः ।
भविष्यत्यनुरूपश्च त्वदृते न च रंस्यते ॥७५
भारतं त्वयि चायत्तं तस्मिंश्च पुरुषोत्तमे ।
उभाभ्यामपि संयोगे यास्यन्ति निधनं नृपाः
प्रतिज्ञातं मया कृष्ण ऋषिमध्ये सुरेषु च ।
मया पुत्रोऽर्जुनो[15] नाम[16] सृष्टः कुन्त्यां कुलोद्वहः

निर्यात्य विरेच्य ॥ ५३ ॥ शस्त्रसंकाशे कृष्णभास्वरे वा निर्मले ॥ ५४ ॥ कलमानां शालिकणिशानाम् अवनतानि अग्राणि यासु तासु ॥ ५५ ॥ मखेषु आग्रयण-वाजपेयादिषु ॥ ५७ ॥ महयन्ति पूजयन्ति ॥ ५९ ॥ स्थिरे शाश्वते वृत्ते महाख्ये आचारे ॥ ६० ॥ दिव्यं पयो मन्दाकिनीजलं तस्य धरान् ॥ ६१ ॥ ताः गावः स्वर्गस्थाः ॥ ६२ ॥ ववर्षुः देवाः । नेदुः स्वयमेव ॥ ६४ ॥ एकार्णवाद्विविक्तं पृथग्भूतं क्षीरोदमध्यं क्षीरोदतुल्या पृथिव्यभवदित्यर्थः ॥ ६५ ॥ ईतयोऽतिवृष्ट्याद्याः ॥ ६७ ॥ गात्ररुहैर्वृक्षादिभिः ॥ ६८ ॥ नियोगः कृत्योपदेशः ॥ ७१ ॥ प्रसाध्यतां वध्यताम् ॥ ७२ ॥ ममांशोऽर्जुनः ॥ ७३ ॥ भारतं भरतानां युद्धम् ॥ ७६ ॥

१ क, ख. °षु विच°। २ ख. °सु पक्के°। ३ क. °र्वंतीषु। ४ ख. च पूजयन्तु म° । ५ ख. °ष्ट्वाभिषिच्यमानं तं गा° । ६ क. ख. °वसंयुक्तैः सि° । ७ क. ख. स्तुवन्ति मु° । ८ क. ख. °स्थो विबभौ भा° । ९ क. ख. °नुः सोमो न° । १० ख. °रं चापि म° । ११ ख. °प्रं संसा° । १२ क. ख. °श्च सदारिष्टो रा° । १३ क. ख. °गृहीतः स त° । १४ ख. °तं च मे कृ° । १५ क. ख. मम पुत्रो°। १६ क. °म जातः कु° ।

सोऽस्त्राणां पारतत्त्वज्ञः श्रेष्ठश्चापविकर्षणे।
तं प्रवेक्ष्यन्ति वै सर्वे राजानः शस्त्रयोधिनः
अक्षौहिणीस्तु शूराणां राज्ञां संग्रामशालिनाम्
स एकः क्षत्रधर्मेण योजयिष्यति मृत्युना॥
तस्यास्त्रचरितं मार्गं
धनुषो लाघवेन च।
नानुयास्यन्ति राजानो
देवा वा त्वां विना प्रभो ॥८०
स ते बन्धुः सहायश्च संग्रामेषु भविष्यति।
तस्य योगो विधातव्यस्त्वया गोविन्द मत्कृते
द्रष्टव्यश्च यथाऽहं वै त्वया मान्यश्च नित्यशः।
ज्ञाता त्वमेव लोकानामर्जुनस्य च नित्यशः
त्वया च नित्यं संरक्ष्य आहवेषु महत्सु सः
रक्षितस्य त्वया तस्य न मृत्युः प्रभविष्यति
अर्जुनं विद्धि मां कृष्ण
मां चैवात्मानमात्मना।
आत्मा तेऽहं यथा शश्व-
त्तथैव तव सोऽर्जुनः ॥ ८४
त्वया लोकानिमाञ्जित्वा
बलेर्हस्तात्त्रिभिः क्रमैः।
देवतानां कृतो राजा
पुरा ज्येष्ठक्रमादहम् ॥८५
त्वां च सत्यमयं ज्ञात्वा सत्येष्टं सत्यविक्रमम्।
सत्येनोपेत्य देवा वै योजयन्ति रिपुक्षये॥८६
सोऽर्जुनो नाम मे पुत्रः पितुस्ते भगिनीसुतः।
इह सौहार्दमायातु भूत्वा सहचरः पुरा ॥८७
तस्य ते युध्यतः कृष्ण स्वस्थानेऽपि गृहेऽपि वा
वोढव्या पुङ्गवेनेव धूः सदा रणमूर्धनि॥ ८८
कंसे विनिहते कृष्ण त्वया भाव्यर्थदर्शिना।
अभितस्तन्महद्युद्धं भविष्यति महीक्षिताम्॥
तत्र तेषां नृवीराणामतिमानुषकर्मणाम्।
विजयस्यार्जुनो भोक्ता यशसा त्वं च योक्ष्यसे
एतन्मे कृष्ण कार्त्स्न्येन कर्तुमर्हसि भाषितम्
यद्यहं ते सुराश्चैव सत्यं च प्रियमच्युत ॥९१॥
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दतां गतः।
प्रीतेन मनसा युक्तः प्रतिवाक्यं जगाद ह ॥
प्रीतोऽस्मि दर्शनाद्देव तव शक्र शचीपते ।
यत्त्वयाऽभिहितं चेदं न किंचित्परिहास्यते॥
जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसंभवम्।
जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दत्तां महात्मनः॥
युधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिर्मितम्।
भीमसेनं च जानामि वायोः संतानजं सुतम्॥
अश्विभ्यां साधु जानामि सृष्टं पुत्रद्वयं शुभम्
नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ॥९६॥
कानीनं चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम्
पितृष्वसरि कर्णं वै प्रसूतं सूततां गतम् ॥ ९७
धार्तराष्ट्राश्च मे सर्वे विदिता युद्धकाङ्क्षिणः
पाण्डोरुपरमं चैव शापाशनिनिपातजम् ९८
तद्गच्छ त्रिदिवं शक्र सुखाय त्रिदिवौकसाम्
नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥
अर्जुनार्थे च तान्सर्वान्पाण्डवानक्षतान्युधि।
कुन्त्या निर्यातयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे
यच्च वक्ष्यति मां शक्र तनूजस्तव सोऽर्जुनः।
भृत्यवत्तत्करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः॥१०१
सत्यसन्धस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम्
कृष्णस्य साक्षात्त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः॥२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोविन्दाभिषेके
एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

योगोऽध्यात्मविद्या विधातव्यः अज्ञातो ज्ञापनीयः॥ ८१॥ कानीनं कन्यायां भवम्॥ ९७॥ निर्यातयिष्यामि प्रत्यर्पयिष्यामि॥ १००॥ यन्त्रितः बद्धः॥ १०१॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

१ ख. °मयोधिनाम्। २ क. सैकः क्ष°। ३ ख. °घवस्य च। ४ क. ख. 'व्यः स य'। ५ क. ज्ञास्ये स°। ६ ख. °चरस्तव। ७ ख. स्वे स्थानेऽथ गृ°। ८ ख. 'तस्त्वां म'। ९ क. ख. °नादेव त'। १० ख. °भ्यां चैव जा°

## हल्लीसकक्रीडनम् ।

### २०

वैशम्पायन उवाच ।

गते शक्रे ततः कृष्णः पूज्यमानो व्रजालयैः।
गोवर्धनधरः श्रीमान्विवेश व्रजमेव ह ॥ १
तस्य वृद्धाभिनन्दन्ति ज्ञातयश्च सहोषिताः।
धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मस्त्वद्वृत्तेन नयेन च
गावो वर्षभयात्तीर्णा वयं तीर्णा महाभयात्।
तव प्रसादाद्गोविन्द देवतुल्यपराक्रम ॥ ३
अमानुषाणि कर्माणि तव पश्याम गोपते ।
धारणेनास्य शैलस्य विद्मस्त्वां कृष्ण दैवतम्
कस्त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां च महाबलः ।
वसूनां वा किमर्थं च वसुदेवः पिता तव ॥ ५
बलं च बाल्ये क्रीडा च
जन्म चास्मासु गर्हितम् ।
कृष्ण दिव्या च ते चेष्टा
शङ्कितानि मनांसि नः ॥ ६
किमर्थं गोपवेषेण रमसेऽस्मासु गर्हितम् ।
लोकपालोपमश्चैव गास्त्वं किं परिरक्षसि॥७
देवो वा दानवो वा त्वं
यक्षो गन्धर्व एव वा ।
अस्माकं बान्धवो जातो
योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥ ८
केनचिद्यदि कार्येण वससीह यदृच्छया ।
वयं तवानुगाः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ ९
वैशम्पायन उवाच* ।
गोपानां वचनं श्रुत्वा
कृष्णः पद्मदलेक्षणः ।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा
ज्ञातीन्सर्वान्समागतान् ॥ १०
मन्यन्ते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम्
तथाहं नावमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः
यदि त्ववश्यं श्रोतव्यं कालः संप्रतिपाल्यताम्
ततो भवन्तः श्रोष्यन्ति मां च द्रक्ष्यन्ति तत्त्वतः
यद्ययं भवतां श्लाघ्यो बान्धवो देवसप्रभः ।
परिज्ञानेन किं कार्यं यद्येषोऽनुग्रहो मम ॥१३
एवमुक्तास्तु ते गोपा वसुदेवसुतेन वै ।
बद्धमौना दिशः सर्वे भेजिरे पिहिताननाः
कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम्
शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति
स करीषाङ्गरागासु व्रजरथ्यासु वीर्यवान् ।
वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत् १६
गोपालांश्च बलोद्ग्रान्योधयामास वीर्यवान्
वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद्विभुः १७
युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित्
कैशोरकं मानयन्वै सह ताभिर्मुमोद ह ॥ १८
तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि
पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गां गतं शशिनं यथा ॥१९
हरितालार्द्रपीतेन सकौशेयेन वाससा ।
वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत्२०
स बद्धाङ्गदनिर्व्यूहश्चित्रया वनमालया ।
शोभमानो हि गोविन्दः शोभयामास तद्व्रजम्
नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवन् ।
विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत्तस्य भास्वतः२२

---

२०

अस्मिन्विंशे त्वथाध्याये
गोपैः कृष्णप्रशंसनम् ।
गोपीसंक्रीडनं वाऽथ
कृतं रात्रावुदीर्यते ॥ १ ॥

गते व्रजालयैर्गोपैः सह ॥ १ ॥ वृद्धा अभीति च्छेदः । सन्धिरार्षः ॥ २ ॥ यौवनं कान्तिमत्त्वम् ॥ १५ ॥ संकाल्य स्ववशे कृत्वा कैशोरं वयो दशवर्षावधि तस्य कम् उपरिभागम् एकादशमारभ्येत्यर्थः । प्रागुपनयनात् काम. चाराद्यनुज्ञाऽस्तीति वाक्यं मानयन् ॥ १८ ॥ हरितालस्य आर्द्रं पङ्कः ॥ २० ॥ तद्व्रजं तासां कदम्बम् ॥ २१ ॥

---

१ ख. °माजगाम व्र° । २ क. तं स वृद्धा°, ख. तं तु वृ° । ३ ख. °तां वा म°। *वैशम्पायन उवाचेति कपुस्तके नास्ति । ४ क. ख. °विक्रमाः । त° । ५ क. °नावगन्त° । ६ ख. °क्तास्ततो गो° । ७ ख. °शः सर्वा भे° । ८ क. ख. °सो वनम् ९ ख. माप्रतः ।

तास्तं पयोधरोत्तुङ्गैरुरोभिः समपीडयन् ।
भ्रामिताक्षैश्च वदनैर्निरीक्षन्ते वराङ्गनाः ॥२३
ता वार्यमाणाः पतिभिर्मातृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः ॥
तास्तु पङ्क्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः ॥
कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः
कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वराङ्गनाः
वनेषु तालहस्ताग्रैः कूजयन्त्यस्तथाऽपराः ।
चेरुर्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रजयोषितः २७
तास्तस्य नृत्यं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम्
मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः
भावनिस्पन्दमधुरं गायन्त्यस्ता वराङ्गनाः ।
व्रजं गताः सुखं चेरुर्दामोदरपरायणाः ॥ २९
करीषपांसुदिग्धाङ्ग्यस्ताः कृष्णमनुवव्रिरे ।
रमयन्त्यो यथा नागं संप्रमत्तं करेणवः ॥ ३०
तमन्या भावविकचैर्नेत्रैः प्रहसिताननाः ।
पिबन्त्यतृप्तवनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः ३१
मुखमस्याब्जसंकाशं तृषिता गोपकन्यकाः ।
रत्यन्तरगता रात्रौ पिबन्ति रसलालसाः
हा हेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता वराङ्गनाः ।
जगृहुर्निस्सृतां वाणीं नाम्ना दामोदरेरिताम्
तासां ग्रथितसीमंता रतिं नीत्वाऽऽकुलीकृताः
चारु विस्रंसिरे केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम्
एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः ।
शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हल्लीसकक्रीडने
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

पङ्क्तीकृताः मण्डलाकारं पङ्क्तिरूपेण स्थिताः । द्वन्द्वशो द्वाभ्यां प्रदेशाभ्यां वर्तते गोपः कृष्णो यासां ताः द्वन्द्वशो गोपास्ताश्च ताः कन्यकाश्चेत्यर्थः । मनोरमं मण्डलमध्यस्थं च रमयन्तीत्यर्थः । यथोक्तम् "अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरे चाङ्गनाः । इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः ॥" इति । श्रुतिश्च–

" पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा
तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म विचरामि
विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम्" इति।

पद्या पत्तुम् अभिसारिणीभिर्गोपीभिरभिसर्तुं योग्या कृष्णमूर्तिः पुरुरूपा बहुरूपा वपूंषि बहूनि वस्ते परिधत्ते बहुधात्वं गतेत्यर्थः । तथाऽप्यन्या ऊर्ध्वा गोपीसंपर्कं विना तस्थौ स्थिता मध्ये इति शेषः । कीदृशी त्र्यविं त्रीन् देशान् पार्श्वद्वयं पुरस्ताच्च अवति प्रकाशत इति त्र्यविः त्रेधाभूतां दृष्टिं रेरिहाणा गिलन्ती । उक्तरूपे रासमण्डले हि एकैकस्या गोप्या उभयतः कृष्णद्वयं पुरस्तादेकः सर्वसाधारणां त्रिधाभूतामपि दृष्टिं प्रदेशत्रयस्थः कार्त्स्न्येन गिलति ततोऽन्यत्र नापैतीत्यर्थः । सा मूर्तिर्ऋतस्य धर्मस्य सद्मभूता तामनुचिन्त्य विचरामि त्वद्वियुक्ता सती विद्वीति कृष्णलीलानुकारात्पुंस्त्वम् आरोपयन्ती काऽप्यवदत् । देवानां कृष्णादीनामन्येषां वा कृष्णेन वियोजयताम् । असुरत्वं निर्दयत्वं महत् एकं मुख्यं कस्याश्चिद्रासक्रीडायां तिरोहिते कृष्णे इदं वाक्यम् ॥ २५ ॥ भावः कृष्णे प्रेमातिशयः तस्य निस्पन्देन बहिराविष्करणेन मधुरं व्रजमण्डलं गताः प्राप्ताः ॥ २९ ॥ अनुवव्रिरे परितः वृतवत्यः ॥३०॥ हा हेति । हा राधे हा चन्द्रमुखि इत्यादिशब्दैः स्वस्य विरहातुरत्वं कुर्वतः आविष्कुर्वतः ॥ ३३ ॥ चक्रवालैः मण्डलैः हल्लीसकक्रीडनम् एकस्य पुंसो बहुभिः स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रासक्रीडा । "गोपीनां मण्डलीनृत्यबन्धने हल्लीसकं विदुः" । इति कोशात् तल्लक्षणं तु–

"पृथुं सुवृत्तं मसृणं वितस्ति-
मात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शङ्कुम् ।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरं तु
हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी" ॥ ३५ ॥

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

१ क. 'धरोत्तानैः पीनैः सम॰ । २ क. पितृभिर्भ्रातृभिर्मातृभि' । ३ क. ख. कुट्य॰ । ४ क. ख. ॰तृप्ता क॰ ख. ५ क. ख. रतिला॰ । ६ क. ख. रतिश्रान्त्याकु॰ ।

## वृषभासुरवधः ।

## २१

वैशम्पायन उवाच ॥
प्रदोषार्द्धे कदाचित्तु कृष्णे रतिपरायणे ।
त्रासयन्त्समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत ॥१
निर्वाणांगारमेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः ।
क्षुरतीक्ष्णाग्रचरणः कालः काल इवापरः ॥२
लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः ।
गर्विताविद्धलांगूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३
ककुदोदग्रनिर्माणः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः ।
शकृन्मूत्रोपलिप्तांगो गवामुद्वेजनो भृशम् ॥४
महाकटिः स्थूलमुखो दृढजानुर्महोदरः ।
विषाणावलिगतगतिर्लम्बता कण्ठचर्मणा ॥५
गवारोहेषु चपलस्तरुघाताङ्कितााननः ।
युद्धसज्जविषाणाग्रो द्विषद्वृषभसूदनः ॥ ६
अरिष्टो नाम हि गवामरिष्टो दारुणाकृतिः ।
दैत्यो वृषभरूपेण गोष्ठान्विपरिधावति ॥७
पातयानो गवां गर्भान्दृप्तो गच्छत्यनार्तवम् ।
जृम्भमाणश्च चपलो गृष्टीः संप्रचचार ह ॥ ८
शृंगप्रहरणो रौद्रः प्रहरन्गोषु दुर्मदः ।
गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना युद्धेन गोवृषः ॥९
कस्यचित्त्वथ कालस्य स वृषः केशवाग्रतः ।
आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः× ॥
स तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः ।
चकार निर्वृषं गोष्ठं निर्वत्सशिशुपुंगवम् ॥११
एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णसमीपगाः ।
त्रासयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः ।
सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः *
तालशब्देन तं कृष्णः सिंहनादैश्च मोहयन् ॥
अभ्यधावत गोविन्दो दैत्यं वृषभरूपिणम् ।
स कृष्णं गोवृषो दृष्ट्वा हृष्टलांगूललोचनः॥ १४
रोषितस्तालशब्देन युद्धाकांक्षी ननर्द ह ।
तमापतन्तं दुर्वृत्तं दृष्ट्वा वृषभरूपिणम् ।
तस्मात्स्थानान्न व्यचल-
त्कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ १५
स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृताननः ।
कृष्णस्य निधनाकांक्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥
तमापतन्तं प्रमुखे प्रतिजग्राह दुर्द्धरम् ।
कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृषं प्रतिवृषोपमः ॥१७
स संसक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः ।
मुमोच वक्त्रजं फेनं नस्तश्चाथ सशब्दवत् ॥
तावन्योन्यावरुद्धाङ्गौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ ।
रेजतुर्मेघसमये संसक्ताविव तोयदौ ॥१९
तस्य दर्पबलं हत्वा कृत्वा शृङ्गान्तरे पदम् ।
आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवांबरम् ॥

---

२१

अथैकविंशे ह्यध्याये अरिष्टं वृषरूपिणम् ।
देवशत्रुं दुराधर्षं कृष्णोऽहनदितीर्यते॥१॥

**प्रदोषार्द्धे इति** ॥१॥ निर्वाणाङ्गारः **इङ्गालः** मेघश्च तदुभयाभः कालः कृष्णवर्णः कालयिता संहर्ता वेत्यर्थः॥२॥ गर्वितं दर्पः तेन आविद्धं भ्रामितं लाङ्गूलं येन सः कठिनं स्कन्धबन्धनं ककुद्यस्य ॥३॥ **ककुदेति** । ककुदाघातेन उदग्रम् अग्रनिहितं कृतं निर्माणं महाप्रासादादिरचनं येन स तथा । ककुदाघातेन ताडिते वृक्षप्रासादमूले सर्वमपि तद्भज्यत इत्यर्थः ॥ ४ ॥ गृष्टीः सद्यः प्रसूताः गाः संप्रचचार जगाम । रेतःसेकायेत्यर्थः ॥ ८ ॥ गावः गाः । वैवस्वतवशे स्थितः आसन्नमृत्युः ॥ १२ ॥ हृष्टम् उत्फलितं लाङ्गूलं लोचने च येन सः ॥ १४ ॥ संप्रहर्तुकाम इति शेषः ॥ १६ ॥ प्रमुखे मुखाग्रे ओष्ठयोरित्यर्थः । वेगेन इति वा पाठः ॥ १७ ॥ नस्तः नासिकातः ॥ १८ ॥

---

१ ख. °र्माणं प्र° । २ ख. °वारूढेषु च° । ३ ख. पातयन् स गवां ग° । ४ क. ख. भजमानश्च । ५ क. °वृषैः । × कस्यचित्त्वथेति पद्यं कखपुस्तकयोर्नास्ति । ६ ख. °स्तु सततं बा° । ७ ख. गा वै कृ° । ८ ख. °तपथे स्थि° । ९ ख. °हावृषः । * एतदग्रे—'तमायान्तं महाकायं नर्दमानं महावृषम्'इति श्लोकार्धं खपुस्तकेऽधिकं वर्तते । १० क. तल° । ११ क. °नादेन मो° । १२ ख. °न्तं वेगेन प्र° । १३ क. ख. °निभं वृ° । १४ क. अपी°, ख. सो पीड° ।

शृङ्गं चास्य पुनः सव्यमुत्पाट्य यमदण्डवत्।
तेनैव प्राहरद्वक्रे स ममार भृशं हतः ॥२१
स भिन्नशृङ्गो भग्नास्यो भग्नस्कन्धश्च दानवः।
पपात रुधिरोद्गारी साम्बुधार इवाम्बुदः॥२२
गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृप्तं वृषभदानवम्।
साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मास्याभितुष्टुवुः
स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे
अरविन्दाभनयनः पुनरेव ररास ह ॥ २४
तेऽपि गोवृत्तयः सर्वे कृष्णं कमललोचनम्।
उपासांचक्रिरे हृष्टाः सर्वे शक्रमिवामराः ॥२५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृषभासुरवधे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

## अक्रूरप्रस्थानम्।

### २२

वैशम्पायन उवाच ॥
कृष्णं व्रजगतं श्रुत्वा वर्धमानमिवानलम्।
उद्वेगमगमत्कंसः शङ्कमानस्ततो भयम् ॥ १
पूतनायां हतायां च कालिये च पराजिते।
धेनुके प्रलयं नीते प्रलम्बे च निपातिते ॥ २
धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने।
गोषु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा ॥३
ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे गोपेषु मुदितेषु च।
दृश्यमाने विनाशे च संनिकृष्टे महाभये॥ ४
कर्षणे वृक्षयोश्चैव शकटस्य तथैव च।
अचिन्त्यं कर्म तच्छ्रुत्वा वर्धमानेषु शत्रुषु ॥ ५
प्राप्तारिष्टमिवात्मानं मेने स मथुरेश्वरः।
विसंज्ञेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रतिमो बभौ ॥६
ततो ज्ञातीन्समानाय्य पितरं चोग्रशासनः।
निशि स्तिमितमूकायां मथुरायां जनाधिपः
वसुदेवं च देवाभं कङ्कं चाहूय यादवम्।
सत्यकं दारुकं चैव कङ्कावरजमेव च ॥ ८
भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम्।
भयशङ्कं च धर्मज्ञं विपृथुं च पृथुश्रियम् ॥ ९
बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च।
भूरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च ॥ १०
एतान्स यादवान्सर्वानाभाष्य शृणुतेति च।
उग्रसेनसुतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वरः॥ ११
भवन्तः सर्वकार्यज्ञा वेदेषु परिनिष्ठिताः।
न्यायवृत्तान्तकुशलास्त्रिवर्गस्य प्रवर्तकाः ॥
कर्तव्यानां च कर्तारो लोकस्य विबुधोपमाः
तस्थिवांसो महावृत्ते निष्कम्पा इव पर्वताः॥

---

गोवृत्तयो गोपाः। अयं चार्थो दाशतय्याम्—
"प्रनेमस्मिन् ददृशे सोमो अन्त-
गोपानेममाविरस्था कृणोति।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्स-
न्द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः"॥
इति मन्त्रेणोपबृंहितः। मन्त्रार्थस्तु—अन्तर्गोपाः अन्तः स्थित्वा गोपायन्नन्तर्यामी नेमस्मिन्नर्धप्रपञ्चे स्थावरे सोमः सोमादिरूपः प्रददृशे प्रकर्षेण दृष्टः नेममर्द्धं प्रपञ्चम् अस्था अस्थिरं जङ्गमम् आविः कृणोति प्रकटीकरोति। स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् योद्धुमिच्छन् दृङ्मात्रेण भस्मीकर्तुं शक्तोऽपि लीलया तेन सह युयुत्सन् द्रुहः द्रोहं कृतवान् तं हतवानित्यर्थः। ततश्च बहुले व्रजे अन्तः रासमण्डलमध्ये बद्धः भक्तजनेन प्रेमपाशेन बद्धः सन् तस्थौ क्रीडितुमिति शेषः॥ २५॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

२२

द्वाविंशतितमेऽध्याये कंसेनाहूय यादवान् वसुदेवमधिक्षिप्य अक्रूरः प्रेषितो व्रजम् ॥१॥
कृष्णमिति॥ १॥ प्राप्तारिष्टं प्राप्तमृत्युम् अत एव विसंज्ञानि इन्द्रियाणि भूतात्मा जीवश्च यस्य ॥ ६॥ स्तिमितं निद्रया मूकायामिव रात्रौ निःशब्दे काले इत्यर्थः ॥ ७॥ बभ्रुरेव दानपतिस्तमक्रूरम् ॥ १०॥ आभाष्य प्रत्येकं संबोध्य ॥ ११॥ महावृत्ते महत्याचारे ॥ १३॥

---

१ क. °र वृषो वरः, ख. °र वृषो हतः। २ क. ख. रराम ह। ३ ख. ते तु गो°। ४ क. ख. °ष्टाः स्वर्गे श°। ५ ख. वृक्षयोः कर्षणेनापि श°। ६ क. °श्चैव बालेनाबालकर्मणा। अ°। ७ क. ख. भयेसखं च राजानं वि°। ८ ख. पर्वता इव निष्कम्पा वृत्ते महति तस्थुषः। अ°।

अदम्भवृत्तयः सर्वे सर्वे गुरुकुलोषिताः ।
राजमन्त्रधराः सर्वे सर्वे धनुषि पारगाः ॥१४
यशःप्रदीपा लोकानां वेदार्थानां विवक्षवः ।
आश्रमाणां निसर्गज्ञा वर्णानां क्रमपारगाः ॥
प्रवक्तारः सुनियतां नेतारो नयदर्शिनाम् ।
भेत्तारः परराष्ट्राणां त्रातारः शरणार्थिनाम् ॥
एवमक्षतचारित्रैः श्रीमद्भिरुदितोदितैः ।
द्यौरप्यनुगृहीता स्याद्भवद्भिः किं पुनर्मही ॥
ऋषीणामिव वो वृत्तं प्रभावो मरुतामिव ।
रुद्राणामिव वः क्रोधो दीप्तिराङ्गिरसामिव ॥
व्यावर्तमानं सुमहद्भवद्भिः ख्यातकीर्तिभिः ।
धृतं यदुकुलं वीरैर्भूतलं पर्वतैरिव ॥ १९
एवं भवत्सु युक्तेषु मम चित्तानुवर्तिषु ।
वर्धमानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः ॥
एष कृष्ण इति ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे ।
वर्धमान इवाम्भोधिर्मूलं नः परिकृन्तति ॥२१
अनमात्यस्य शून्यस्य चारान्धस्य ममैव तु ।
कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे ॥
उपेक्षित इव व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।
नदन्मेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्धते ॥
तस्य नाहं गतिं जाने न योगं न पराक्रमम् ।
नन्दगोपस्य भवने जातस्याद्भुतकर्मणः ॥२४
किं तद्भूतं समुद्भूतं देवापत्यं न विद्महे ।
अतिदैवैरमानुष्यैः कर्मभिः सोऽनुमीयते ॥२५
पूतना शकुनी बाल्ये शिशुनोत्तानशायिना ।
स्तनपानेप्सुना पीता प्राणैः सह दुरासदा ॥
यमुनाया ह्रदे नागः कालियो दमितस्तथा ।
रसातलचरो नीतः क्षणेनादर्शनं ह्रदात् ॥२७
नन्दगोपसुतो योगं कृत्वा स पुनरुत्थितः ।
धेनुकस्तालशिखरात्पातितो जीवितं विना
प्रलम्बं यं मृधे देवा न शेकुरतिवर्तितुम् ।
बालेन मुष्टिनैकेन स हतः प्राकृतो यथा ॥ २९
वासवस्योत्सवं भङ्क्त्वा वर्षं वासवरोषजम्
निर्जित्य गोगृहार्थाय धृतो गोवर्धनो गिरिः
हतस्त्वरिष्टो बलवांस्त्रिशृङ्गश्च कृतो व्रजे ।
अबालो बाल्यमास्थाय रमते शिशुलीलया ॥
प्रबन्धः कर्मणामेवं तस्य गोव्रजवासिनः ।
सन्निकृष्टं भयं चैव केशिनो मम च ध्रुवम् ॥
भूतपूर्वश्च मे मृत्युः सततं पूर्वदैहिकः ।
युद्धाकांक्षी च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः
क्व च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्बलम् ।
क्व च देवप्रभावेण क्रीडितव्यं व्रजे मया ॥ ३४
अहो नीचेन वपुषाच्छादयित्वाऽऽत्मनो वपुः
कोऽप्येष रमते देवः श्मशानस्थ इवानलः ३५
श्रूयते हि पुरा विष्णुः सुराणां कारणान्तरे
वामनेन तु रूपेण जहार पृथिवीमिमाम् ॥ ३६
कृत्वा केसरिणो रूपं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
हतो हिरण्यकशिपुर्दानवानां पितामहः ॥ ३७
अचिन्त्यरूपमास्थाय श्वेतशैलस्य मूर्धनि ।
भवेन च्याविता दैत्याः पुरा तत्त्रिपुरं घ्नता
चालितो गुरुपुत्रेण भार्गवोऽङ्गिरसेन वै ।
प्रविश्य दार्दुरीं मायामनावृष्टिं चकार ह ॥३९

---

निसर्गज्ञाः स्वाभाविककर्मज्ञाः ॥१५॥ सुनियतां शोभनानां विधोनाम् ॥१६॥ उदितोदितैः कथाप्रसङ्गेन उद्भटैः ॥१७॥ अङ्गिरसाम् अग्नीनाम् ॥ १८ ॥ व्यावर्तमानं भ्रश्यत् ॥ १९ ॥ शून्यस्य हृदयशून्यस्य चारान्धस्य चारचक्षुर्वर्जितस्य । "**राजानश्चारचक्षुषः**" इत्युक्तेः । मम कारणात् मदीयात्प्रभावात् नन्दगोपस्य गृहे वसुदेवस्य सुतो गोपितः॥२२॥ पूर्यमाणः पर्वणि अम्बुदः समुद्रः॥२३॥ गतिं सत्त्वं योगं वशीकरणोपायम्॥२४॥**दैवरपीति**। देवेभ्योऽप्याधिक इति सोऽनुमीयते ॥ २५ ॥ योगं नागपाशबन्धं कृत्वा छित्वा ॥ २८ ॥ प्रबन्धः घटनाप्रकारः ॥ ३२ ॥ मृत्युदुर्बलं मृत्युयोगेन दुर्बलम् ॥ ३४ ॥ भवेन रुद्ररूपिणा विष्णुना तत्प्रसिद्धं ब्रह्मणो वरदानादभेद्यमासीत्तादित्यर्थः ॥ ३८ ॥ **चालित इति**। गुरुपुत्रेण कचेन भार्गवः शुक्रः चालितः मृतसंजीविनीं विद्यां कस्मैचिदपि न दास्यामीत्येतस्मान्नियमात् भ्रंशितः । कथमित्यत आह—**दार्दुरीं मायां प्रविश्येति**। यथा दर्दुरो मृत्वा पुनः पुनरुत्तिष्ठति एवं कचोऽपि दानवेभ्योऽसकृन्मृत्युमासाद्य गुरूदरं प्रवेशितस्ततो गुरोः सकाशात् विद्यां प्राप्य तदुदरं भित्त्वा पुनरुत्थितः मृतं च गुरुं पुनर्जीवितवान्। ततस्तामेव दानवैः कृतां कचहत्यां निमित्तीकृत्य दानवेषु देवो न ववर्षेत्यर्थः। एवं दानवानां विनाशः रुद्रद्वारा त्रिपुरस्यैव कचद्वाराऽप्यनेनैव कृत इति भावः ॥ ३९ ॥

---

१ ख. दार्थांश्च वि° । २ ख. °नियमा ने । ३ ख. पुण्यकी° । ४ क. समचि° । ५ ख. °रभिवर्ति° । ६ क. ख. °त्युः स नूनं पूर्वदेहि° । ७ ख. °त्युदुर्लभम् । ८ क. ख. °जे मम । ९ ख. प्रविष्टो दा° ।

अनन्तः शाश्वतो देवः सहस्रशिरसोऽव्ययः ।
वाराहं रूपमास्थाय प्रोज्जहारार्णवान्महीम् ४०
अमृते निर्मिते पूर्वं विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः
सुराणामसुराणां च युद्धं चक्रे सुदारुणम् ४१
अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्यसमागमे ।
दधार मंदरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः ४२
वेपुर्वामनमास्थाय नन्दनीयं पुरा बलेः ।
त्रिभिः क्रमैस्तु त्रींल्लोकाञ्जहार त्रिदिवालयम्
चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दाशरथे गृहे ।
स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत्तदा ४४
एवमेष निकृत्या वै तत्तद्रूपमुपागतः ।
साधयित्वाऽऽत्मनः कार्यं सुराणामर्थसिद्धये
तदेष नूनं विष्णुर्वा शक्रो वा मरुतां पतिः ।
मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मां प्रयुक्तवान्
अत्र मे शङ्कते बुद्धिर्वसुदेवं प्रति ध्रुवा ।
अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरतां गताः ॥ ४७
अहं हि खट्वाङ्गवने नारदेन समागतः ।
द्वितीयं स हि मां विप्रः पुनरेवाब्रवीद्वचः ४८
यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंस गर्भकृते महान्
वसुदेवेन ते रात्रौ तत्कर्म विफलीकृतम् ॥४९
दारिका या त्वया रात्रौ शिलायां कंस पातिता
तां यशोदासुतां विद्धि कृष्णं च वसुदेवजम् ।
रात्रौ व्यावर्तितावेतौ गर्भौ तव वधाय वै ।
वसुदेवेन संधाय मित्ररूपेण शत्रुणा ॥ ५१
सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे
हत्वा शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ
कृताभिषेका वरदा भूतसंघनिषेविता ।
अर्च्यते दस्युभिर्घोरैर्महाबलिपशुप्रिया ॥ ५३
सुरापिशितपूर्णाभ्यां कुम्भाभ्यामुपशोभिता
मयूराङ्गदचित्रैश्च बर्हभारैर्विभूषिता ॥ ५४

हृष्टकुक्कुटसंनादं वनं वायसनादितम् ।
मृगसंघैश्च संपूर्णमविरुद्धैश्च पक्षिभिः ॥ ५५
सिंहव्याघ्रवराहाणां नादेन प्रतिनादितम् ।
वृक्षगम्भीरनिबिडं कान्तारैः सर्वतो वृतम् ५६
दिव्यभृङ्गारचमरैरादर्शैरुपशोभितम् ।
देवतूर्यनिनादैश्च शतशः प्रतिनादितम् ॥ ५७
स्थानं तस्या नगे विन्ध्ये निर्मितं स्वेन तेजसा
रिपूणां त्रासजननी नित्यं तत्र मनोरमे ५८
वसते परमप्रीता दैवतैरपि पूजिता ।
यस्त्वयं नन्दगोपस्य कृष्ण इत्युच्यते सुतः॥
अत्र मे नारदः प्राह सुमहत्कर्मकारणम् ।
द्वितीयो वसुदेवाद्वै वासुदेवो भविष्यति ६०
स हि ते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति ।
स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो बली ।
बान्धवो धर्मतो मह्यं हृदयेनान्तको रिपुः ६१
यथा हि वायसो मूर्ध्नि पद्भ्यां यस्यावतिष्ठति
नेत्रे तुदति तस्यैव वक्रेणामिषगृद्धिना ॥ ६२
वसुदेवस्तथैवायं सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।
छिनत्ति मम मूलानि भुङ्क्ते च मम पार्श्वतः

भ्रूणहत्याऽपि संतार्या
गोवधः स्त्रीवधोऽपि वा ।
न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति
बान्धवस्य विशेषतः ॥ ६४

पतितानुगतं मार्गं निषेवत्यचिरेण सः ।
यः कृतघ्नोऽनुबन्धेन प्रीतिं वहति दारुणाम् ॥
नरकाध्युषितः पन्था गन्तव्यस्तेन दारुणः ।
अपापे पापहृदयो यः पापमनुतिष्ठति ॥ ६६
अहं वा स्वजनः श्लाघ्यः स वा श्लाघ्यतरः सुतः
नियमैर्गुणवृत्तेन त्वया बान्धवकाम्यया ॥ ६७

---

सहस्रशिरस इत्यदन्तत्वमार्षम् ॥ ४० ॥ चक्रे कारितवान् ॥ ४१ अकूपारे समुद्रे कच्छपो भूत्वेति शेषः ॥ ४२ ॥ लोकान् आक्रममाणस्त्रिदिवालयं स्वर्गं जहार ॥ ४३ ॥ व्यनशत् विनाशितवान् ॥ ४४ ॥ निकृत्या छलेन ॥ ४५ ॥ मत्साधनेच्छया मद्वधेच्छया ॥ ४६ ॥ द्वितीयं द्वितीयवारम् ॥ ४८ ॥

भृङ्गारः कनकपात्रं गडुकम् ॥ ५७ ॥ महतां कर्मणां पूतनावधादीनां कारणं हेतुम् । द्वितीय इति रामापेक्षया सोऽपि वसुदेवाज्जात इति वासुदेवो भवत्येव ॥ ६० ॥ अनुबन्धेन कार्यानुरोधेन । दारुणां दारुणोदर्काम् ॥ ६५ ॥ बान्धवकाम्यया मित्रेच्छया मित्रकामेनेत्यर्थः ॥ ६७ ॥

---

१ ख. सैव वा° । २ क. ख. साधयत्यात्म° । ३ क. ख. मां यदुक्त° । ४ ख. °ति ध्रुवम् । अ° । ५ क. ख. °हापशुबलिप्रिया । ६ ख. कुण्डाभ्यामु° । ७ क. ख. दृप्तकु° । ८ ख. °शैश्च विभूषितम् । ९ घ. °रमा । १० ख. °वतिष्ठते । ११ क °पि न ।

हस्तिनां कलहे घोरे वधमृच्छन्ति वीरुधः ।
युद्धव्युपरमे ते तु सहाश्नन्ति महावने ॥ ६८
बान्धवानामपि तथा भेदकाले समुत्थिते ।
बध्यते योऽन्तरप्रेप्सुः स्वजनो यदि वेतरः ६९
कालस्त्वं हि विनाशाय मया पुष्टो विजानता
वसुदेवकुलस्यास्य यद्विरोधयसे भृशम् ॥ ७०
अमर्षी वैरशीलश्च सदा पापमतिः शठः ।
स्थाने यदुकुलं मूढ शोचनीयं त्वया कृतम् ॥
वसुदेव वृथा वृद्ध यन्मया त्वं पुरस्कृतः ।
श्वेतेन शिरसा वृद्धो नैव वर्षशतैर्[2]भवेत् ॥ ७२
यस्य बुद्धिः परिणता स वै वृद्धतरो नृणाम् ।
(न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः×)
त्वं च[3] कर्कशशीलश्च[1] बुद्ध्या च न बहुश्रुतः ।
केवलं वयसा वृद्धो यथा शरदि तोयदः॥ ७४
किं च त्वं साधु जानीषे वसुदेव वृथामते ।
मृते[4] कंसे मम सुतो मथुरां पालयिष्यति ॥ ७५

छिन्नाशस्त्वं वृथावृद्धो
मिथ्या त्वेवं[5] विचारितम् ।
जिजीविषुर्न सोऽप्यस्ति[6]
योऽवतिष्ठेन्ममाग्रतः ॥ ७६

प्रहर्तुकामो विश्वस्ते यस्त्वं दुष्टेन चेतसा ।
तत्ते प्रतिकरिष्येऽहं पुत्रयोस्तव पश्यतः ॥ ७७
न मे वृद्धवधः कश्चिद्द्विजस्त्रीवध एव च ।
कृतपूर्वः करिष्ये वा विशेषेण तु बान्धवे ७८
इह त्वं जातसंवृद्धो मम पित्रा विवर्धितः ।
पितृष्वसुश्च मे भर्ता यदूनां प्रथमो गुरुः ॥ ७९
कुले महति विख्यातः प्रथिते चक्रवर्तिनाम् ।
गुर्वर्थं पूजितः सद्भिर्महद्भिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ८०
किं करिष्यामहे सर्वे सत्सु वक्तव्यतां गताः ।
यदूनां यूथमुख्यस्य यस्य ते वृत्तमीदृशम् ॥ ८१
मद्वधो वा जयो वाऽथ वसुदेवस्य दुर्नयैः ।
सत्सु यास्यन्ति पुरुषा यदूनामवगुण्ठिताः ८२

त्वया हि मद्वधोपायं
तर्कमाणेन वै मृधे ।
अविश्वास्यं कृतं कर्म
वाच्याश्च यदवः कृताः ॥ ८३

अशाम्यं वैरमुत्पन्नं मम कृष्णस्य चोभयोः ।
शान्तिमेकतरे शान्तिं गते यास्यन्ति यादवाः
गच्छ[7] दानपते क्षिप्रं ताविहानयितुं व्रजात् ।
नन्दगोपं च गोपांश्च करदान्मम शासनात्८५
वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम् ।
शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैः[8] सह समन्वितः ८६
कृष्णसङ्कर्षणौ चैव वसुदेवसुतावुभौ ।
द्रष्टुमिच्छति वै कंसः सभृत्यः सपुरोहितः८७
एतौ युद्धाविदौ रङ्गे कालनिर्माणयोधिनौ ।
दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ
अस्माकमपि मल्लौ द्वौ सज्जौ युद्धकृतोत्सवौ[9]
ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ
द्रष्टव्यौ च मयाऽवश्यं बालौ तावमरोपमौ ।
पितृष्वसुः सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ९०

**हस्तिनामिति** । यथा हस्तिनां कलहे वीरुधो नश्यन्ति । न तु हस्तिनः एवं मम च कृष्णस्य च कलहे वसुदेवादय एव नङ्क्ष्यन्ति न त्वावामिति श्लोकद्वयस्यार्थः ॥ ६८ ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च । "शठो गूढापराधकृत्" इति कोशात् । त्वया कुलं यत् शोचनीयं तत्स्थाने युक्तमित्यर्थः ॥ ७१ ॥ हे ! वृद्ध यत् यतो मया त्वं पुरस्कृतोऽतोऽहं वृथा व्यर्थजन्मास्मीत्यर्थः ॥ ७२ ॥ मे मया ॥ ७८ ॥ जातश्चासौ संवृद्धश्च जातसंवृद्धः । पितृष्वसुरिति पितृव्यसंबन्धिन्याः स्वसुरिति ॥ ७९ ॥ चक्रवर्तिनां—

"यस्य मूर्धनि दृश्येत विना छत्रेण भूपतेः ।
पद्मानुकारिणी छाया तमाहुश्चक्रवर्तिनम्" ॥

इत्युक्तलक्षणानाम् ॥ ८० ॥ जयो वाऽस्त्विति शेषः । उभयथा विलज्जया अवगुण्ठिता आच्छादितमुखाः यदूनां पुरुषा यास्यन्ति । एकेन कपटिना सर्वेषु कपटित्वापवादप्रसङ्गादिति भावः ॥ ८२ ॥ तदेवाह—**त्वयेति** । वाच्या निन्द्याः ॥ ८३ ॥ दानपते हे अक्रूर ॥ ८५ ॥ वाच्यस्त्वया वक्तव्यः ॥ ८६ ॥ कालनिर्माणयोधिनौ समयानुसारियुद्धकुशलौ व्यायतोद्यमौ दीर्घयत्नौ ॥ ८८ ॥ मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ नियोत्स्येते युद्धं करिष्यतः ॥ ८९ ॥ पितृष्वसुरिति पितृव्यसंबन्धिन्याः स्वसुरिति ज्ञेयम् । कालभेदेन यथाश्रुतमेवास्तु ॥ ९० ॥

१ घ. ॰शीलस्य स॰ । २ घ. ॰शती भ॰ । × न तेनेति श्लोकार्धं केवलं घपुस्तके एव वर्तते प्रक्षिप्तं च बाभाति । ३ क. त्वं तु क॰ । ४ ख. हते कं॰ । ५ क. ॰थ्या ह्येवं विचारितम्, ख. ॰थ्या ह्येतद्विचारितम् । ६ क. ॰सो ह्यस्ति । ७ ख. ॰च्छत्वयं दानपतिः क्षि॰ । ८ ख. ॰पैः सर्वैः स॰ । ९ ख. ॰द्धकृतोद्यमौ । ता॰ ।

वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन्समीपे व्रजवासिनाम्।
राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी९१
सन्निकृष्टं वने ते तु निवसन्तु यथासुखम्।
जनस्यामन्त्रितस्यार्थे यथा स्यात्सर्वमव्ययम्
पयसः सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च।
यथाकामप्रदानाय भोज्याधिश्रयणाय च ९३
अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्वं तावानय ममाज्ञया
संकर्षणं च कृष्णं च द्रष्टुं कौतूहलं हि मे॥९४
तयोरागमने प्रीतिः परमा मत्कृता भवेत्।
दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद्विधास्यामि यद्धितम्
शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम्
नागच्छेतां यथाकालं निग्राह्यावपि तौ मम॥
सान्त्वमेव तु बालेषु प्रधानं प्रथमो नयः।
मधुरेणैव तौ मन्दौ स्वयमेवानयाशु वै ९७
अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेतां परमदुर्लभाम्।
यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत॥ ९८
तथा कर्तव्यमेतद्धि यथा तावागमिष्यतः।
एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः।
सागराकारमात्मानं निष्प्रकम्पमधारयत्९९
वाक्छलैस्ताड्यमानस्तु कंसेनादीर्घदर्शिना
क्षमां मनसि संधाय नोत्तरं प्रत्यभाषत १००
ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा।
धिग्धिगित्यसकृत्ते वै शनैरूचुरवाङ्मुखाः॥१
अक्रूरस्तु महातेजा जानन्दिव्येन चक्षुषा।
जलं दृष्ट्वेव तृषितः प्रेषितः प्रीतिमानभूत्॥ २
तस्मिन्नेव मुहूर्ते तु मथुरायाः स निर्ययौ।
प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षं द्रष्टुं दानपतिः स्वयम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरप्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

---

## अन्धकवाक्यम्।

## २३

वैशम्पायन उवाच।
क्षिप्रं यदुवृषं दृष्ट्वा सर्वे ते यदुपुङ्गवाः।
निपीड्य श्रवणान्हस्तैर्मेनिरे तं गतायुषम्॥
अन्धकोऽनुद्विग्नमना धैर्यादविकृतं वचः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः समाजे कंसमोजसा॥२
अश्लाघ्यो मे मतः पुत्र तवायं वाक्परिश्रमः।
अयुक्तो गर्हितःसद्भिर्बान्धवेषु विशेषतः॥ ३
अयादवो यदि भवाञ्छृणु तावद्यदुच्यते।
न हि त्वां यादवं वीर बलात्कुर्वन्ति यादवाः
अश्लाघ्या वृष्णयः पुत्र येषां त्वमनुशासिता
इक्ष्वाकुवंशजो राजा विनिवृत्तः स्वयं सकृत

---

दध्युत्तरस्य दधिमण्डस्य तक्रस्य वा भोज्याधिश्रयणाय च भोज्यं पायसवदन्नं कर्तुं यत् अधिश्रयणं क्षीरस्य तस्मै॥९३॥ उपजप्तो भेदितः॥ ९८॥ सागराकारम् अतिगम्भीरम्। आत्मानं मनः॥ ९९॥ तस्मिन्नेव मुहूर्ते मध्यरात्रे॥१०३॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

२३
त्रयोविंशेऽस्मिन्नध्याये उग्रसेनपितामहः कङ्कः कंसं विनिर्भर्त्स्य हितमाहेति वर्ण्यते१
क्षिप्रमिति॥१॥ अन्धकः कङ्कापरनामा उग्रसेनस्य पितामह इति प्राञ्चः॥ २॥ इक्ष्वाकुवंशजो असमञ्जाः यथा प्रजापीडकः सकृद्विनिवृत्तो जातः स एव त्वं पुनर्जात इत्यर्थः॥ ५॥

---

१ क. ख. °न्निकृष्टे व्रजास्तत्र निवसन्तु य°। २ क. ख. परा मम कृता भवेत्। दृ°। ३ ख. सान्नाम तौ श्रुत्वैव मम तौ परि°। ४ क. ख. °माणस्तु वसु°। ५ ख. °रं प्रत्यपद्यत। ये°। ६ क. °न्धकस्तूद्विग्नमना धै°, ख. °न्धस्त्वनाविग्नम°। ७ घ. °घ्यो महता पुत्र°। ८ क. ख. °च्यसे। न°। ९ ख. °दवम्।

भोजो वा यादवो वाऽसि
कंसो वाऽसि यथा तथा
सहजं ते शिरस्तात
जटी मुण्डोऽपि वा भव
उग्रसेनस्त्वयं शोच्यो योऽस्माकं कुलपांसनः
दुर्जातीयेन येन त्वमीदृशो जनितः सुतः ॥ ७
न चात्मनो गुणांस्तात प्रवदन्ति मनीषिणः
परेणोक्ता गुणा गौण्यं यान्ति वेदार्थसंमिताः
पृथिव्यां यदुवंशोऽयं निन्दनीयो महीक्षिताम्
बालः कुलान्तकृन्मूढो येषां त्वमनुशासिता
असाधुमद्भिर्वाक्यैश्च त्वया साध्विति भाषितैः
न चाप्यासादितं कार्यमात्मा च विवृतः कृतः
गुरोरनवलिप्तस्य मान्यस्य महतामपि ।
क्षेपणं कः शुभं मन्ये द्विजस्येव वधे कृते ॥११
मान्याश्चैवाभिगम्याश्च वृद्धास्तात यथाग्नयः ।
क्रोधो हि तेषां प्रदहेल्लोकानन्तर्गतानपि॥ १२
बुधेन तात दान्तेन नित्यमभ्युच्छ्रितात्मना ।
धर्मस्य गतिरन्वेष्या मत्स्यस्य गतिरप्स्विव ॥
केवलं त्वं तु दर्पेण वृद्धानग्निसमानिह ।
वाचा तुदसि मर्मघ्न्या अमन्त्रोक्ता यथाऽऽहुतिः
वसुदेवं च पुत्रार्थे यदिमं परिगर्हसि ।
तत्र मिथ्या प्रलापन्ते निन्दामि कृपणं वचः
दारुणे च पिता पुत्रे नैव दारुणतां व्रजेत् ।
पुत्रार्थे ह्यापदः कष्टाः पितरः प्राप्नुवन्ति हि
छादितो वसुदेवेन यदि पुत्रः शिशुस्तदा ।
मन्यसे यद्यकर्तव्यं तत्पृच्छ पितरं स्वकम् १७
गर्हता वसुदेवं च यदुवंशं च निन्दता ।
त्वया यादवपुत्राणां वैरजं विषमर्जितम् ॥ १८
अकर्तव्यं यदि कृतं वसुदेवेन पुत्रजम् ।
किमर्थमुग्रसेनेन शिशुस्त्वं न विनाशितः १९
पुन्नाम्नो नरकात्पुत्रो यस्मात्त्राता पितॄंस्तदा ।
तस्माद्ब्रुवन्ति पुत्रेति पुत्रं धर्मविदो जनाः॥
जात्यां हि यादवः कृष्णः स च सङ्कर्षणो युवा
त्वं चापि विधृतस्ताभ्यां जातवैरेण चेतसा २१
उद्धूतानीह सर्वेषां यदूनां हृदयानि वै ।
वसुदेवे त्वयाऽऽक्षिप्ते वासुदेवे च कोपिते २२
कृष्णे च भवतो द्वेष्ये वसुदेवविगर्हणात् ।
शंसन्ति चेमानि भयं निमित्तान्यशुभानि ते॥
सर्पाणां दर्शनं तीव्रं दुःस्वप्नानां निशाक्षये ।
पुर्या वैधव्यशंसीनि कारणैरनुमीमहे ॥ २४
एष घोरो ग्रहः स्वातीमुल्लिखन्खे गभस्तिभिः
चक्रमङ्गारकश्चक्रे चित्रायां घोरदर्शनः २५
बुधेन पश्चिमा सन्ध्या व्याप्ता घोरेण तेजसा
वैश्वानरपथे शुक्रो ह्यतिचारं चचार ह ॥ २६
केतुना धूमकेतोस्तु नक्षत्राणि त्रयोदश ।
भरण्यादीनि भिन्नानि नानुयान्ति निशाकरम्
प्राक्संध्या परिघग्रस्ता
भाभिर्बाधति भास्करम् ।
प्रतिलोमं च यान्त्येव
व्याहरन्तो मृगद्विजाः ॥ २८

सहजम् अविकृतं ते तव शिरः उत्तमाङ्गं बद्धकुण्डलं जटी मुण्ड इति लक्षणया मूर्द्धन्यान् बद्धोपच्छिन्धि वेत्यर्थः ॥ ६ ॥ गौण्यं साफल्यम् ॥ ८ ॥ असाधुमद्भिः निन्दादियुक्तैः विवृतः स्पष्टीकृतः ॥ १० ॥ अन्तर्गतान् योगबलार्जितानपि ॥ १२ ॥ जात्यां हि उत्पत्तावेव त्वया जातवैरेण चेतसा कृष्णः संकर्षणश्च धृतः ताभ्यां च त्वमपि तथैव जातवैरेण चेतसा धृत इति त्वमेव बालघ्नः प्रथमोऽपराधी इत्यर्थः ॥ २१ ॥ उद्धूतानि अतिकम्पितानि ॥२२॥ **एष इति** । सर्वतोभद्रचक्रे कंसस्य जन्मनक्षत्रं मृगशिरः । ततो दशमं चित्रा तस्यैव नक्षत्रम् । तत्र घोरो ग्रहः राहुः क्रूरोऽस्ति । कुजश्च वक्रीभूय तत्रैवागतोऽस्ति । ताभ्यां कर्मभं व्याप्य जन्मभं विद्धमिति तव जीवनार्थो यत्नः सर्वो निष्फलो भविष्यति देहश्च नङ्क्ष्यतीति भावः ॥२५॥ एवं पश्चिमायामुदितो बुधोऽपि राज्यभङ्गकृदित्याह-**बुधेनेति** । अतिचारं सूर्यमुल्लङ्घ्य गमनं यथा च बुधसूर्यशुक्राणाम् अत्यन्तं पृथग्दर्शनं महते नाशाय भवतीति भावः ॥ २६ ॥ केतुना पुच्छेन धूमकेतोरुत्पातविशेषस्य भरण्यादीनि कंसस्य जन्मकर्मभे धूमकेतुना तृतीयेन उपग्रहेणापि विद्धे इत्यर्थः । नानुयान्ति निशाकरमित्यनेन चित्रास्ते राहौ चित्रातः उत्तराणि त्रयोदश नक्षत्राणि जीवपक्षे सति पूर्वाणि त्रयोदशनक्षत्राणि मृत्युपक्षे पातितानि । अतस्तत्रत्यः चन्द्रोऽपि न तैर्नक्षत्रैरुत्तमफलकरत्वेनानुगम्यत इत्यर्थः ॥ २७ ॥ परिघो रविमण्डले तिर्यग्व्यस्तिर्दण्डः बाधति बाधते ॥ २८ ॥

१ ख. °न्ति सर्वार्थसं° । २ ख. °चाप्यवासितं का° । ३ क. ख. °भ्युत्थिता° । ४ क. °रुणोऽपि पि°, ख. °रुणेऽपि पि° । ५ ख. °शिशुः पुरा । म° । ६ क. ख. वक्रम° ।

शिवा श्मशानान्निष्क्रम्य
निःश्वासाङ्गारवर्षिणी।
उभे सन्ध्ये पुरीं घोरा
पर्येति बहु वाशती ॥ २९
उल्का निर्घातनादेन पपात धरणीतले।
चलत्यपर्वाणि मही गिरीणां शिखराणि च ॥
ग्रस्तः स्वर्भानुना सूर्यो दिवा नक्तमजायत।
धूमोत्पातैर्दिशो व्याप्ताः शुष्काशनिसमाहताः
प्रस्रवन्ति घना रक्तं साशनिस्तनयित्नवः।
चालिता देवताः स्थानात्त्यजन्ति विहगा नगान्
यानि राजविनाशाय दैवज्ञाः कथयन्ति ह।
तानि सर्वाणि पश्यामो निमित्तान्यशुभानि वै
त्वं चापि स्वजनद्वेषी राजधर्मपराङ्मुखः।
अनिमित्तागतक्रोधः सन्निकृष्टभयो ह्यसि ३४
यस्त्वं देवोपमं वृद्धं वसुदेवं वसूपमम्।
मोहात्क्षिपसि दुर्बुद्धे कुतस्ते शान्तिरात्मनः॥
त्वद्गतो यो हि नः स्नेह-
स्तं त्यजामोऽद्य वै वयम्।
अहितं स्वस्य वंशस्य
न त्वां क्षणमुपास्महे ॥ ३६
स हि दानपतिर्धन्यो यो द्रक्ष्यति वने गतम्।
पुण्डरीकविशालाक्षं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥
छिन्नमूलो ह्ययं वंशो
यदूनां त्वत्कृते कृतः।
कृष्णो ज्ञातीन्समानाय्य
स सन्धानं करिष्यति ॥ ३८
क्षान्तमेव तवानेन वसुदेवेन धीमता।
कालेसम्यक्परिज्ञानो[1] ब्रूहि त्वं यद्यदिच्छसि
मह्यं तु रोचते कंस वसुदेवसहायवान्।
गच्छ कृष्णस्य निलयं[2] सन्धिस्तेन च रोचताम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवचने
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## केशिवधः।

## २४

वैशम्पायन उवाच।
अन्धकस्य वचः श्रुत्वा कंसः संरक्तलोचनः
न किंचिदब्रवीत्क्रोधाद्विवेश स्वं निकेतनम् १
ते च सर्वे यथावेश्म यादवाः श्रुतविस्तराः।
जग्मुर्विगतसङ्कल्पाः कंसवैकृतशंसिनः॥ २
अक्रूरोऽपि यथाऽऽज्ञप्तः कृष्णदर्शनलालसः।
जगाम रथमुख्येन मनसा[3] तुल्यगामिना ॥ ३
कृष्णस्यापि निमित्तानि शुभान्यङ्गगतानि वै
पितृतुल्येन शंसन्ति बान्धवेन समागमम् ॥ ४
प्रागेव च[4] नरेन्द्रेण माथुरेणोग्रसेनिना।
केशिनः प्रेषितो दूतो वधायोपेन्द्रकारणात् ५
स च[5] दूतवचः श्रुत्वा केशी केशकरो नृणाम्।
वृन्दावनगतो गोपान्बाधते स्म दुरासदः ॥ ६
मानुषं मांसमश्नानः क्रुद्धो दुष्टपराक्रमः।
दुर्दान्तो वाजिदैत्योऽसावकरोत्कदनं महत् ७

---

पर्येति परिक्रामति। वाशती शब्दं कुर्वाणा ॥ २९ ॥ अपर्वणि अकाण्डे अकस्मादिति यावत् ॥ ३० ॥ देवताः देवताप्रतिमाः ॥ ३२ ॥ त्वत्कृते त्वदर्थं त्वयैवेत्यर्थः संधानम् इतस्ततो विप्रकीर्णानां यादवानामानयनेन एकीकरणम् ३८ कालेन सम्यक् परिगतं नष्टं ज्ञानं यस्य सः। कालः सम्यक् परिज्ञातः इति पाठान्तरम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

चतुर्विंशे त्वथाध्याये अक्रूरागमनात्पुरा
केशिनो हयरूपस्य कृष्णाच्च वध उच्यते ॥१॥
अन्धकस्येति ॥ १ ॥ प्रागेव अक्रूरप्रेषणात् केशिनः निकटे इति शेषः ॥ ५ ॥ वाजिरूपो दैत्यः ॥७॥

---

१ ख. °लसंपक्वविज्ञा°। २ क. ख. घ. °यं प्रीतिस्ते तेन रोच°। ३ क. ख. °नसस्तुल्य°। ४ क. ख. °न त न°। ५ क. °शेगोप्स°। ६ क. ख. म न त°।

निघ्नन्गा वै सगोपालान् गवां पिशितभोजनः
दुर्मदः कामचारी च स केशी निरवग्रहः ॥ ८
तदरण्यं श्मशानाभं नृणां मांसास्थिभिर्वृतम्[2]।
यत्रास्ते स हि दुष्टात्मा केशी तुरगदानवः॥ ९
खुरैर्दारयते भूमिं वेगेनारुजते द्रुमान्।
हेषितैः स्पर्द्धते वायुं प्लुतैर्लंघयते नभः॥ १०
अतिप्रवृद्धो मत्तश्च दुष्टोऽश्वो वनगोचरः।
आकम्पितसटो रौद्रः कंसस्य चरितानुगः ११
ईरिणं तद्वनं सर्वं तेनासीत्पाप[3]कर्मणा।
कृतं तुरगदैत्येन सर्वान्गोपाञ्जिघांसता ॥ १२
तेन दुष्टप्रचारेण दूषितं तद्वनं महत्।
न नृभिर्गोधनैर्[4]वापि सेव्यते वनवृत्तिभिः १३
निःसम्पातः कृतः पन्थास्तेन तद्विषया[5]श्रयः।
मदाच्चलितवृत्तेन नृमांसान्यश्नता भृशम्॥ १४
नृशब्दानुसरः क्रुद्धः स कदाचिद्वनागमे।
जगाम घोषसंवासं चोदितः कालधर्मणा १५
तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपाः स्त्रियश्च शिशुभिः सह।
क्रन्दमाना जगन्नाथं कृष्णं नाथमुपाश्रिताः १६
तासां रुदितशब्देन गोपानां क्रन्दितेन च।
दत्त्वाऽभयं तु कृष्णो वै केशिनं सोऽभिदुद्रुवे
केशी चाप्युन्नतग्रीवः प्रकाशदशनेक्षणः।
हेषमाणो जवोदग्रो गोविन्दाभिमुखो ययौ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य केशिनं हयदानवम्।
प्रत्युज्जगाम गोविन्दस्तोयदः शशिनं यथा १९
केशिनस्तु तमभ्याशे दृष्ट्वा कृष्णमवस्थितम्।
मनुष्यबुद्धयो गोपाः कृष्णमूचुर्हितैषिणः २०
कृष्ण तात न खल्वेष सहसा ते हयाधमः।
उपसर्प्यो भवान्बालः पापश्चैष दुरासदः ॥२१
एष कंसस्य सहजः प्राणस्तात बाहेश्चरः।
उत्तमश्च[6] हयेन्द्राणां दानवोऽप्रतिमो युधि २२
त्रासनः[7] सर्वभूतानां तुरगाणां महाबलः।
अवध्यः सर्वभूतानां प्रथमः पापकर्मणाम्॥ २३
गोपानां तद्वचः श्रुत्वा वदतां मधुसूदनः।
केशिना सह युद्धाय मतिं चक्रेऽरिसूदनः २४
ततः सव्यं दक्षिणं च मण्डलं स परिभ्रमन्।
पद्भ्यामुभाभ्यां स हयः क्रोधेनारुजते द्रुमान्
मुखे लम्बसटे चास्य स्कन्धे केशघनावृते।
वलयोऽभ्रतरङ्गाभाः सुस्रुवुः क्रोधजं जलम्२६
स फेनं वक्त्रजं चैव ववर्ष रजसावृतम्।
हिमकाले यथा व्योम्नि नीहारमिव चन्द्रमाः
गोविन्दमरविन्दाक्षं हेषितोद्गारशीकरैः।
स फेनैर्वक्त्रनिर्गीर्णैः प्रोक्षयामास भारत॥ २८
खुरोद्धूतावसिक्तेन मधुकक्षोदपाण्डुना।
रजसा स हयः कृष्णं चकारारुणमूर्धजम् २९
प्लुतवल्गितपादस्तु तक्षमाणो धरां खुरैः।
दन्तान्निर्दशमानस्तु केशी कृष्णमुपाद्रवत्॥३०
स संसक्तस्तु कृष्णेन केशी तुरगसत्तमः।
पूर्वाभ्यां चरणाभ्यां वै कृष्णं वक्षस्यताडयत्
पुनःपुनः स च बली प्राहिणोत्पार्श्वतः खुरान्
कृष्णस्य दानवो घोरं प्रहारममितौजसः ३२
वक्त्रेण चास्य घोरेण तीक्ष्णदंष्ट्रायुधेन वै।
अदशद्बाहुशिखरं कृष्णस्य रुषितो हयः॥ ३३

निरवग्रहः उच्छृङ्खलः८ ईरिणं शून्यम् ॥१२॥ निःसम्पातः अगम्यः ॥१४॥ नृशब्दानुसरः मनुष्यशब्दानुसारी । कालधर्मणा मृत्युना ॥ १५ ॥ जवोदग्र उग्रः ॥ १८ ॥ वलयो ललाटस्थाः क्रोधजं क्रोधात् प्रस्विन्नम् ॥ २६ ॥ रजसा खुरोद्धूतेन वृत्तं मिश्रं फेनम् । अयथेति व्योम्नो विशेषणम् । असुषिरे गाढेन रजसा व्याप्ते इत्यर्थः । नीहारम् अवश्यायम् । एतेनायं मन्त्र उपबृंहितः—

"न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते
नं संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु
गावो मर्तस्य विचरन्ति यज्वनः" इति ।

ताः गा अर्वा अश्वरूपी असुरः रेणुककाटिति अतिशयेन वर्षति तेन वा आवृणोति विश्वमिति रेणुककाटः । "कटे वर्षावरणयोः" इत्यस्मात् यङ्लुकि घञ्। न श्नुते न व्याप्नोति संस्कृतः संस्कारो दाहच्छेदौषधपानादिस्तेन त्रायत इति संस्कृतत्रो वैद्यस्तं प्रत्यपि ता गावः न अभ्युपयन्ति निर्बाधत्वात् यतस्ताः गावः मर्तस्य यज्वनः नन्दादेः संबन्धिन्यः अभयम् उरुगायं महाकीर्तिम् अनुलक्षीकृत्य चरन्तीति मन्त्रार्थः ॥ २७ ॥ खुरोद्धूतं च तदवसिक्तं व्याप्तं तेन मधुकक्षोदो मधुयष्टिचूर्णं यद्वत्पाण्डुना रजसा ॥ २९ ॥

१ख. उद्दामः का० । २ क. ख. नृणामस्थिभिरावृतम्। ३ ख. ०पकारिणा । ४ ख. ०घनैश्चापि। ५ ख. ०याश्रितः। म०, क. ०याश्रयात्। म०। ६ क. ख.उत्कटश्च ह०। ७ क. ०नः सर्वसैन्यानां तु०, ख. ०नः परसैन्यानां तु० । ८ ख. ०ण्डलानि प०।

स लम्बकेसरसटः कृष्णेन सह सङ्गतः ।
रराज केशी मेघेन संसक्तः[1] ख इवांशुमान् ३४
उरस्[2]तस्योरसा हन्तुमियेष बलवान्हयः ।
वेगेन वासुदेवस्य क्रोधाद्विगुणविक्रमः ॥ ३५
तस्योत्सिक्तस्य बलवान्
कृष्णोऽप्यमितविक्रमः ।
बाहुमाभोगिनं कृत्वा
मुखे क्रुद्धः समादधत् ॥ ३६
स तं बाहुमशक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव[3] च ।
दशनैर्मूलनिर्मुक्तैः सफेनं रुधिरं वमन् ॥ ३७
विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदलीकृतः
अक्षिणी विकृते चक्रे विसृते[4] मुक्तबन्धने ॥ ३८
निरस्तहनुराविष्टः शोणिताक्तविलोचनः ।
उत्कर्णो नष्टचेतास्तु स केशी बह्वचेष्टत ॥ ३९
उत्पतन्नसकृत्पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् ।
खिन्नाङ्गरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ४०
केशिवक्त्रविलग्नस्तु कृष्णबाहुरशोभत ।
व्याभुग्न इव घर्मान्ते चन्द्रार्धकिरणैर्घनः ॥ ४१
केशी च कृष्णसंसक्तः शान्तगात्रो व्यरोचत ।
प्रभातावनतश्चन्द्रः श्रान्तो मेरुमिवाश्रितः ४२
तस्य कृष्णभुजोद्धूताः केशिनो दशना मुखात्
पेतुः शरदि निस्तोयाः सिताभ्रावयवा इव ४३
स तु केशी भृशं शान्तः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा
स्वंभुजं[5] स्वायतं कृत्वा पाटितो बलवत्तदा ४४
स पाटितो भुजेनाजौ कृष्णेन विकृताननः ।
केशी नदन्महानादं दानवो व्यथितस्तदा ४५
विघूर्णमानस्त्रस्ताङ्गो मुखाद्रुधिरमुद्वमन् ।
भृशं व्यङ्गीकृतवपुर्निकृत्तार्द्ध इवाचलः ॥ ४६
व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना
निपपात यथा कृत्तो नागो हि[6] द्विदलीकृतः ॥
बाहुना कृत्तदेहस्य केशिनो रूपमाबभौ ।
पशोरिव महाघोरं निहतस्य पिनाकिना ॥ ४८
द्विपादपृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके ।
केशिनस्तद्द्विधाभूते द्वे चार्धे[7] रेजतुः क्षितौ ४९
केशिदन्तक्षतस्यापि[8] कृष्णस्य शुशुभे भुजः ।
वृद्धः साल[9] इवारण्ये गजेन्द्रदशनाङ्कितः ॥ ५०
तं हत्वा केशिनं युद्धे कल्पयित्वा च भागशः
कृष्णः पद्मपलाशाक्षो हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥
तं हतं केशिनं दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे हतविघ्ना गतक्लमाः ॥ ५२
दामोदरं तु श्रीमन्तं यथास्थानं यथावयः ।
अभ्यनन्दन्प्रियैर्वाक्यैः पूजयन्तः पुनः पुनः ५३

गोपा ऊचुः । ×

अहो तात कृतं कर्म हतोऽयं लोककण्टकः ।
दैत्यः क्षितिचरः कृष्ण हयरूपं समास्थितः ५४
कृतं वृन्दावनं क्षेमं सेव्यं नृमृगपक्षिणाम् ।
घ्नता पापमिमं तात केशिनं हयदानवम् ॥ ५५
हता नो बहवो गोपा गावो वत्सेषु वत्सलाः
नैके चान्ये जनपदा हताऽनेन दुरात्मना ॥ ५६
एष संवर्तकं कर्तुमुद्यतः खलु पापकृत् ।
[10]नृलोकं निर्नरं कृत्वा चर्तुकामो यथासुखम् ५७
नैतस्य प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः ।
अपि देवसमूहेषु किं पुनः पृथिवीतले ॥ ५८

वैशम्पायन उवाच । *

अथाहान्तर्हितो विप्रो
नारदः खगमो मुनिः ।
प्रीतोऽस्मि विष्णो देवेश
कृष्ण कृष्णेति चाब्रवीत् ॥ ५९

नारद उवाच । §

यदिदं दुष्करं कर्म कृतं केशिजिघांसया ।
त्वय्येव केवलं युक्तं त्रिदिवे त्र्यम्बकस्य वा ॥

---

आभोगिनम् अतिवृद्धम् ॥ ३६ ॥ कटाभ्यां गण्डाभ्याम् ॥३८॥ उत्कर्णः ऊर्ध्वकर्णः उत्क्षिप्त इति वा॥३९॥ व्याभुग्न इव वक्रेण मण्डलेन वेष्टितार्द्ध इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ अवनतो मन्दतेजाः ॥ ४२ ॥ स्वायतम् अतिपुष्टम् ॥ ४४ ॥ पशोर्महिषरूपस्य ॥ ४८ ॥ हता अनेनेति च्छेदः । सन्धिरार्षः ॥ ५६ ॥ संवर्तकं प्रलयम्॥ ५७ ॥

---

१ ख. संयुक्तः ख इ° । २ क. ख. उरश्चास्यो° । ३ ख. °व वा । ४ क. निःसृते मु° । ५ क. तं भु° । ६ घ. हि कदली° । ७ ख. द्वे त्वर्धे रे° । ८ क. ख. °तश्चापि कृ° । ९ क. ख. °द्धस्ताल इ° । × गोपा ऊचुरिति कपुस्तके नास्ति । १० क. त्रिलो° । * वैशम्पायन उवाच इति क. ग. घ. पुस्तकेषु नास्ति । § नारद उवाचेति क. ख. पुस्तकयोर्न ।

अहं युद्धोत्सुकस्तात त्वद्गतेनान्तरात्मना[1]
इदं नरहयं युद्धं द्रष्टुं स्वर्गादिहागतः ॥ ६१
पूतनानिधनादीनि कर्माणि तव दृष्टवान् ।
अहं त्वनेन गोविन्द कर्मणा परितोषितः ६२
हयादस्मान्महेन्द्रोऽपि बिभेति बलसूदन ।
कुर्वाणाच्च वपुर्घोरं केशिनो दुष्टचेतसः ॥ ६३
यत्त्वया पाटितो देहो
भुजेनायतपर्वणा ।
एषोऽस्य मृत्युरन्ताय
विहितो विश्वयोनिना ॥ ६४
यस्मात्त्वया हतः केशी
तस्मान्मच्छासनं शृणु ।
केशवो नाम नाम्ना त्वं[2]
ख्यातो लोके भविष्यसि ॥ ६५
स्वस्त्यस्तु भवतो लोके
साधु याम्यहमाशुगः ।
कृत्यशेषं च ते कार्यं
शक्तस्त्वमसि मा चिरम् ॥ ६६
त्वयि कार्यान्तरगते नरा इव दिवौकसः ।
विडंबयन्तः क्रीडन्ति[3] लीलां त्वद्बलमाश्रिताः
अभ्याशो वर्तते कालो भारतस्याहवोदधेः ।
हस्तप्राप्तानि युद्धानि राज्ञां त्रिदिवगामिनाम् ॥
पन्थानः शोधिता व्योम्नि
विमानारोहणोर्ध्वगाः[4] ।
अवकाशा विभज्यन्ते
शक्रलोके महीक्षिताम् ॥ ६९
उग्रसेनसुते शान्ते पदस्थे त्वयि केशव ।
अभितस्तन्महद्युद्धं भविष्यति महीक्षिताम् ॥
त्वां चाप्रतिमकर्माणं संश्रयिष्यन्ति पांडवाः
भेदकाले नरेन्द्राणां पक्षग्राहो भविष्यसि ॥
त्वयि राजासनस्थे हि
राजश्रियमनुत्तमाम् ।
शुभां त्यक्ष्यन्ति राजान-
स्त्वत्प्रभावान्न संशयः ॥ ७२
एष मे कृष्ण सन्देशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति
देवतानां दिविस्थानां जगतश्च जगत्पते ॥ ७३
दृष्टं मे भवतः कर्म दृष्टश्चासि मया प्रभो ।
कंसे भूयः समेष्यामि साधिते साधु याम्यहम्
एवमुक्त्वा तु स तदा नारदः खं जगाम ह ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा देवसंगीतयोनिनः ॥ ७५
तथेति स समाभाष्य पुनर्गोपान्समासदत् ।+
गोपाः कृष्णं समासाद्य विविशुर्व्रजमेव ह ७६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि केशिवधे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

केशिनं वाति हिनस्तीति केशवः मत्वर्थीयलोप आर्षः ॥६५॥ कृत्यशेषं कंसवधादि ॥६६॥ अभ्याशे समीपे ॥६८॥ अभितः सर्वतः ॥७०॥ **एष मे इति**। संदेशज्ञापकं वाक्यं श्रुतिभिः वेदैरुक्तमपि इतः प्रभृति ख्यातिमेष्यति। श्रुतयश्च । "अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजा वातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि" इत्याद्याः । अहः युद्धयज्ञः कृष्णम् अनु एकः विवर्तते विशेषेण जायते। तथा अर्जुनम् अनु अहर्विवर्तते एकश्चकारोऽन्वाचये अपरः समुच्चये । तेन कृष्णार्जुनाभ्यां विभज्य समुच्चित्य वा क्रियमाणौ द्वौ युद्धयज्ञौ विवर्तेते इत्यर्थः। उभे अप्यहनी रजसी रजोगुणकार्ये वेद्याभिः लब्धुं योग्याभिः श्रीभिर्हेतुभूताभिः लक्ष्म्यर्थे युद्धानि जायन्त इत्यर्थः । ताभ्यां च सहायाभ्यां वैश्वानरो विश्वेषां नृणाम् इष्टफलप्रापको धर्मः स्वयमदृष्टरूपोऽपि जायमान आविर्भवन् । वाशब्द इवार्थे । राजा जायमानः संस्तमांसि अधर्मरूपाणि असुरान्धकाराणि अवातिरत् तिरस्कृतवान् । केन अग्निज्ज्योतिषे अग्निना ज्योतिषेत्यर्थः । खाण्डवदाहे अग्निना दत्ते चक्रगाण्डीवे तद्रूपेण ज्योतिषेति भावः ॥ ७३ ॥ साधिते हते ॥७४॥ सङ्गीतस्य योनिर्गान्धर्वशास्त्रं तद्वतः देवसङ्गीतयोनिनः ॥७५॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

१ घ. त्वद्भक्तेना° । २ क. °म्ना वै ख्या° । ३ घ. क्रीणन्ति । ४ क. ख. °रोहिणोऽध्वगाः । + तथेति पद्यार्धं कपुस्तके नास्ति ।

# अक्रूरागमनम् ।

## २५

वैशम्पायन उवाच ।

अथास्तं गच्छति तदा मन्दरश्मौ दिवाकरे ।
सन्ध्यारक्ततले व्योम्नि शशाङ्के पाण्डुमण्डले ॥
नीडस्थेषु विहङ्गेषु सत्सु प्रादुष्कृताग्निषु ।
ईषत्तमःसंवृतासु दिक्षु सर्वासु सर्वशः ॥ २
घोषवासिषु सुप्तेषु वाशन्तीषु शिवासु च ।
नक्तंचरेषु हृष्टेषु पिशिताशनकाङ्क्षिषु ॥ ३
शक्रगोपाह्वयामोदे प्रदोषेऽभ्यासतस्करे ।
सन्ध्यामयीमिव गुहां संप्रतिष्ठे दिवाकरे*॥४
अधिश्रयणवेलायां प्राप्तायां गृहमेधिनाम् ।
वन्यैर्वैखानसैर्मन्त्रैर्हूयमाने हुताशने ॥ ५
उपावृत्तासु वै गोषु दुह्यमानासु च व्रजे ।
असकृद्व्याहरन्तीषु बद्धवत्सासु धेनुषु ॥ ६
प्रकीर्णदामनीकेषु गास्तथैवाह्वयत्सु च ।
सनिनादेषु गोपेषु काल्यमाने च गोधने ॥ ७
करीषेषु प्रक्लृप्तेषु दीप्यमानेषु सर्वशः ।
काष्ठभारानतस्कन्धैर्गोपैरभ्यागतैस्तथा ॥ ८
किञ्चिदभ्युद्यते सोमे मन्दरश्मौ विराजति ।
ईषद्विगाहमानायां रजन्यां दिवसे गते ॥ ९
प्राप्ते दिनव्युपरमे प्रवृत्ते क्षणदामुखे ।
भास्करे तेजसि गते सौम्ये तेजस्युपस्थिते ॥
अग्निहोत्राकुले काले सौम्येन्दौ समुपस्थिते ।
अग्नीषोमात्मके संधौ वर्तमाने जगन्मये ॥ ११
पश्चिमेनाग्निदीप्तेन पूर्वेणोत्पलवर्चसा ।
दग्धाद्रिसदृशे व्योम्नि किञ्चित्तारागणाकुले ॥
वयोभिर्वासमुशतां बन्धुभिश्च समागमम् ।
शंसद्भिः स्यन्दनेनाशु प्राप्तो दानपतिर्व्रजम् १३

---

२५

पञ्चविंशे त्वथाध्याये कृष्णस्मरणविक्लवः ।
नानाभिलाष आयातः सायं व्रजमितीर्यते ॥ १

**अथास्तमिति** ॥ १ ॥ सत्सु याज्ञिकेषु प्रादुष्कृताग्निषु सायमग्निहोमार्थं प्रकटीकृताग्निषु ॥ २ ॥ घोषवासिषु घोषगतेषु सुप्तेषु अव्यक्तशब्देषु शुकबालकादिषु इति शेषः ॥ ३ ॥ शक्रगोपाह्वयामोदे इन्द्रगोपानामातपतप्तानामत्यन्तं सुखकरे अभ्यासतस्करे स्वाध्यायनिवर्तके आसन्नान्धकारे वा ॥ ४ ॥ अधिश्रयणम् अग्निहोत्रार्थस्य पयसोऽग्नौ स्थापनं, वन्यैः नीवाराद्यैः वैखानसैर्वानप्रस्थैः ॥ ५ ॥ प्रकीर्णा विस्तृताः दामन्यो दीर्घगोबन्धनरज्जवो यैस्तेषु। काल्यमाने बन्धनार्थं नियम्यमाने ॥ ७ ॥ करीषेषु शुष्कगोमयचूर्णेषु ॥ ८ ॥ सौम्येन्दौ श्वोभूते मृगशिरसि चन्द्रे उपस्थिते सति ताद्धि कंसस्य जन्मनक्षत्रं राहुकुजधूमकेतुभिश्चित्रास्थैः प्रागुक्तरीत्या सर्वतोभद्रचक्रे विद्धं सत् चन्द्रयोगे मृत्युकरं तेन उदिते मृत्युयोगे सद्यः परेद्युः कालान्तरे वा मृत्युर्भवतीति अभिप्रेत्य पुराणान्तरे उक्तम्–"**रौद्रे तद्व्रजकं हत्वादित्ये कंसो निपातितः**" इति । सन्धिरत्रार्षः । अग्नीषोमात्मके रात्रौ तयोरेव प्रकाशमानत्वात् सन्धौ संबन्धे जगन्मय इति तयोरेव भोक्तृभोग्यात्मकत्वं दर्शितम् ॥ ११ ॥ पश्चिमेन पश्चिमतः अग्निवद्दीप्तेन पूर्वेण पूर्वतः उत्पलवद्रक्तेन भागेन दग्धाद्रिसदृशे उभयतो दह्यमानाद्रितुल्ये सूर्यास्तस्य चन्द्रोदयस्य चासन्नसमयत्वात् ॥ १२ ॥ वासं गृहम् उशतां कामयमानानां पान्थानां बन्धुभिः सह समागमं शंसद्भिर्वयोभिः पक्षिभिः सह दानपतिरक्रूरो व्रजं प्राप्तः । वेदे तु–"**देवानां दूतः पुरुधः प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता**" इत्यादिः । "**सदा सुगः पितुमानस्तु पन्थाः**" इति "**उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः**" इत्यक्रूरस्य मनोरथो वर्णितः। देवानां कंसं हन्तुकामानां कंसवागाद्यभिमानिनामग्न्यादीनामहं दूतोऽस्मि कृष्णं प्रति गन्तुं प्रस्थितोऽस्मि पुरुधः बहुप्रकारैः प्रसूतो निसृष्टः कंसेन नोऽस्मान्प्रति अनागान् निष्पापान् सर्वताता सर्वस्य विस्तारकर्ता हरिः वोचतु वदतु अस्माभिः सह संभाषणं करोतु । तथा पन्थाः अपि सदासुगः सुगम्यः पितुमान् अन्नवान् अस्तु मार्गेऽप्यन्तरायो मा भूदित्यर्थः । पुरुक्षोः बहूनां क्षयं कर्तुः सदनं गृहम् अश्यां व्याप्नुयाम् उद्राय उत्कटसम्पदः इति मन्त्रपदानामर्थः ॥ १३ ॥

---

१ क. ख. °तामिषका° । २ क. संप्रविष्टे दि° । * संध्येति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति । ३ क. ख. °दभ्युत्थिते सो° । ४ ख. दग्धार्धस° ।

प्रविशन्नेव पप्रच्छ सान्निध्यं केशवस्य सः ।
रौहिणेयस्य चाक्रूरो नन्दगोपस्य चासकृत् १४
स नन्दगोपस्य गृहं वासाय विबुधोपमः ।
अवतीर्य ततो यानात्प्रविवेश महाबलः १५
हर्षपूर्णेन वक्त्रेण साश्रुनेत्रेण चैव हि ।
प्रविशन्नेव च द्वारि ददर्शादोहने गवाम् ।१६
वत्समध्ये स्थितं कृष्णं सवत्समिव गोवृषम् ।
स तं हर्षपरीतेन वचसा गद्गदेन वै[2] ॥ १७
एहि केशव तातेति प्रत्याहरत धर्मवित् ।
उत्तानशायिनं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा श्रिया[3] वृतम् ॥ १८
अव्यक्तयौवनं कृष्णमक्रूरः प्रशशंस ह ।
अयं स पुण्डरीकाक्षः सिंहशार्दूलविक्रमः १९
संपूर्णजलमेघाभः पर्वतप्रवराकृतिः ।
मृधेष्वधर्षणीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा ।
द्विषन्निधनदक्षाभ्यां भुजाभ्यां साधु भूषितः॥
मूर्तिमान्स रहस्यात्मा
जगतोऽग्र्यस्य भाजनम् ।
गोपवेषधरो विष्णु-
रुदग्राग्र्यतनूरुहः ॥ २१
किरीटलाञ्छनेनापि शिरसा छत्रवर्चसा ।
कुण्डलोत्तमयोग्याभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषितः
हारार्हेण च पीनेन
सुविस्तीर्णेन वक्षसा ।
द्वाभ्यां भुजाभ्यां वृत्ताभ्यां
दीर्घाभ्यामुपशोभितः ॥ २३
स्त्रीसहस्रोपचर्येण वपुषा मन्मथाधिना ।
पीते वसानो वसने सोऽयं विष्णुः सनातनः
धरण्याश्रयभूताभ्यां
चरणाभ्यामरिन्दमः ।
त्रैलोक्याक्रान्तिभूताभ्यां
भुवि पद्भ्यां व्यवस्थितः ॥ २५
रुचिराग्रकरश्चास्य चक्राङ्कित इवेक्षते ।
द्वितीय उद्यतश्चापि गदासंयोगमिच्छति २६
अवतीर्णो भवायेह प्रथमं पदमात्मनः ।
शोभतेऽद्य भुवि श्रेष्ठस्त्रिदशानां धुरन्धरः २७
अयं भविष्ये कथितो भविष्यकुशलैर्नरैः[5] ।
गोपालो यादवं वंशं क्षीणं विस्तारयिष्यति
तेजसा यादवाश्चास्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
वंशमापूरयिष्यन्ति ह्योघा इव महार्णवम् २९
अ[6]स्येदं शासने सर्वं जगत्स्थास्यति शाश्वतम्
निहतामित्रसामन्तं स्फीतं कृतयुगे तथा ॥ ३०
अयमास्थाय वसुधां स्थापयित्वा जगद्वशे ।
राज्ञां भविष्यत्युपरि न च राजा भविष्यति ॥
नूनं त्रिभिः क्रमैर्जित्वा यथाऽनेन प्रभुः कृतः ।
पुरा पुरन्दरो राजा देवतानां त्रिविष्टपे ॥ ३२
तथैव वसुधां जित्वा जितपूर्वां त्रिभिः क्रमैः ।
स्थापयिष्यति राजानमुग्रसेनं न संशयः ३३
प्रसृष्टवैरगाधोऽयं प्रश्नैश्च बहुभिः श्रुतः ।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादैश्च पुराणोऽयं हि गीयते ॥ ३४
स्पृहणीयो हि लोकस्य भविष्यति च केशवः
तथा ह्यस्योत्थिता बुद्धिर्मानुष्यमुपजीवितुम्
अहं त्वस्याद्य वसतिं पूजयिष्ये यथाविधि ।
विष्णुत्वं मनसा चैव पूजयिष्यामि मन्त्रवत्

सान्निध्यं स्थानम् ॥ १४ ॥ प्रत्याहरत उक्तवान् । उत्तानशायिनं कल्पान्ते बालं वटपत्रशायिनं श्रिया त्रैलोक्याक्रमणलक्ष्म्या वामनं वटुम् ॥१८॥ अव्यक्तयौवनं वयःसन्धिगतम् ॥१९॥ रहस्यात्मा औपनिषदः पुरुषः अग्र्यस्य प्रथमपूजादेः भाजनं पात्रम् । उदग्राग्र्यतनूरुह ऊर्ध्वाग्राः श्रेष्ठाश्च केशा यस्य । भक्तदर्शनमात्रेण रोमाञ्चितगात्र इत्यर्थः ॥ २१ ॥ मन्मथाधिना मन्मथः आधीयतेऽस्मिन्निति तथाभूतेन यौवनपौगण्डसन्धिगतेनेत्यर्थः॥२४॥ धरणीति । येन प्रागुक्तेन एकार्णवेः उत्तानशायिना पादाग्रेणैव पृथ्वी धृता तथा बटुना पादाभ्यां क्रमणाभ्यां लोकान्तरसहिता आक्रान्ता सा इदानीं तेन वयःसन्धिगतेन अस्मदादिनेव श्रीयत इत्यत्यन्तमाश्चर्यमित्यर्थः ॥ २५ ॥ अग्रकरो दक्षिणहस्तः द्वितीयो वामः ॥ २६ ॥ आत्मनो विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयाख्यपादचतुष्टयवत् उत्पत्तिक्रमापेक्षया प्रथमं पदं निर्गुणं ब्रह्मेत्यर्थः ॥ २७ ॥ जित्वा त्रैलोक्यमिति शेषः ॥३३॥ प्रसृष्टस्य वैरस्य गाधः पारोऽयं शमकामादीनामन्योन्यविरोधोऽस्मिन् प्राप्ते नश्यतीत्यर्थः । अत एवायं प्रश्नोपनिषदि षड्भिः प्रश्नैः श्रुतः तत्पूर्वकं प्रतिपादितः॥३४॥

१ क. ख. °य वसुदेव° । २ ख. °न च । ३ ख. °यान्वितम् । अ° । ४ ख. °भ्यां विशेषतः । ५ क. °लैर्द्विजैः । ६ ख. अस्यैव शा° ।

यच्च ज्ञातिपरिज्ञानं प्रादुर्भावश्च वै नृषु।
अमानुषं वेद्मि चैनं ये चान्ये दिव्यचक्षुषः ३७
सोऽहं कृष्णेन वै रात्रौ
संमन्त्र्य विदितात्मना।
सहानेन गमिष्यामि
सव्रजो यदि मंस्यते॥ ३८
एवं बहुविधं कृष्णं दृष्ट्वा हेत्वर्थकारणैः।
विवेश नन्दगोपस्य कृष्णेन सह संसदम्॥३९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरागमने
पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

## अक्रूरदर्शनम्।

## २६

वैशम्पायन उवाच।
स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टः सहकेशवः।
गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाचामितदक्षिणः॥१
कृष्णं चैवाब्रवीत्प्रीत्या रौहिणेयेन सङ्गतम्।
श्वः पुरीं मथुरां तात गमिष्यामः सुखाय वै २
यास्यन्ति च व्रजाः सर्वे
गोपालाः सपरिग्रहाः।
कंसाज्ञया समुचितं
करमादाय वार्षिकम् *॥ ३
समृद्धस्तत्र कंसस्य
भविष्यति धनुर्महः।
तं द्रक्ष्यथ समृद्धं च
स्वजनैश्च समेष्यथ॥
पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम्।
दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथः॥ ५
सततं पीड्यमानं च कंसेनाशुभबुद्धिना।
दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखैः शिथिलतां गतम्
कंसस्य भयसंत्रस्तं भवद्भ्यां च विना कृतम्
दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना
तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुत्रैरमृदितस्तनीम्।
देवकीं देवसङ्काशां सीदन्तीं विहतप्रभाम् ८
पुत्रशोकेन शुष्यन्तीं त्वद्दर्शनपरायणाम्।
वियोगशोकसंतप्तां विवत्सामिव सौरभीम्९
उपप्लुतेक्षणां दीनां नित्यं मलिनवाससम्।
स्वर्भानुवदनग्रस्तां शशाङ्कस्य प्रभामिव॥ १०
त्वद्दर्शनपरां नित्यं तवागमनकाङ्क्षिणीम्
त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्तीं वै तपस्विनीम्॥
त्वत्प्रलापेष्वकुशलां
त्वया बाल्ये वियोजिताम्।
अरूपज्ञां तव विभो
वक्त्रस्यास्येन्दुवर्चसः॥ १२
यदि त्वां जनयित्वा सा देवकी तात तप्यते
अपत्यार्थो नु कस्तस्या वरं ह्येवानपत्यता१३
अपुत्राणां हि नारीणामेकः शोको विधीयते
सपुत्रा त्वफले पुत्रे धिक्प्रजातेन तप्यते॥ १४
त्वं तु शक्रसमः पुत्रो यस्यास्त्वत्सदृशो गुणैः
परेषामप्यभयदो न सा शोचितुमर्हति॥ १५
वृद्धौ तवाम्बापितरौ परभृत्यत्वमागतौ।
भर्त्सितौ त्वत्कृते नित्यं कंसेनाशुभबुद्धिना॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

२६

षड्विंशतितमेऽध्याये सर्वगोपनिमन्त्रणम्।
दर्शनं वैष्णवं चाम्भस्यक्रूरस्येति वर्ण्यते॥१॥

**स नन्दगोपस्य**। अमितदक्षिणो दानपतिः॥ १॥ दशान्ते वार्द्धक्ये शोषितं क्षीणरक्तमांसं यतो वृद्धं जराग्रस्तम्॥ ६॥ पुत्रैरमृदितस्तनीमिति कंसापराधं सद्योजातशिशुवधरूपं सूचयति क्रोधोद्दीपनाय॥ ८॥

---

१ ख. 'प्रीतो रौ'। * एतदग्रे खपुस्तके-वयं चैव प्रगन्तारो रथमारुह्य संगताः। इति पद्यार्धमाधिकम्। २ क. 'चामपि स', ख. 'वामथ स'। ३ ख. 'त्यार्थोऽत्र क'। ४ क. 'ते तेन कं'।

यदि ते देवकी मान्या
पृथिवी वाऽऽत्मधारिणी ।
तां शोकसलिले मग्ना-
मुत्तारयितुमर्हसि ॥ १७
तं च वृद्धं प्रियसुतं वसुदेवं सुखोचितम् ।
पुत्रयोगेन संयोज्य कृष्ण धर्ममवाप्स्यसि॥१८
यथा नागः सुदुर्वृत्तो दमितो यमुनाह्रदे ।
विमूलः स कृतः शैलो यथा वै भूधरस्त्वया॥
दर्पोत्सिक्तश्च बलवानारिष्टो विनिपातितः ।
परप्राणहरः केशी दुष्टात्मा च हयो हतः॥
एतेनैव प्रयत्नेन वृद्धावुद्धृत्य दुःखितौ ।
यथा धर्ममवाप्नोषि तत्कृष्ण परिचिन्त्यताम्
निर्भर्त्स्यमानो यैर्दृष्टः पिता ते कंससंसदि ।
ते सर्वे चक्रुरश्रूणि नेत्रैर्दुःखान्विता भृशम् २२
गर्भावकर्तनादीनि दुःखानि सुबहून्यपि ।
माता ते देवकी कृष्ण कंसस्य सहतेऽवशा ॥
मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै ।
ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथायोगमुदाहृतम् ॥ २४
एवं ते कुर्वतः कृष्ण मातापित्रोरनुग्रहम् ।
परित्यजेतां तौ शोकं स्याच्च धर्मस्तवानघ॥
वैशम्पायन उवाच ।
कृष्णः सुविदितार्थो वै तमाहामितविक्रमम्
बाढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवशं गतः २६
ते च गोपाः समागम्य नन्दगोपपुरःसराः ।
अक्रूरवचनं श्रुत्वा चेलुः कंसस्य शासनात् ॥
गमनाय च ते सज्जा बभूवुर्व्रजवासिनः ।
सज्जं चोपायनं कृत्वा गोपवृद्धाः प्रतस्थिरे २८
करं चानडुहःसर्पिर्माहिषांश्चौपनायिकान् ।
यथासारं यथायूथमुपानीय पयो दधि ॥ २९
तं सज्जयित्वा कंसस्य करं चोपायनानि च ।
ते सर्वे गोपपतयो गमनायोपतस्थिरे ॥ ३०

अक्रूरस्य कथाभिश्च सह कृष्णेन जाग्रतः ।
रौहिणेयतृतीयस्य सा निशा व्यत्यवर्तत॥३१
ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसंकुले ।
नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसंहृते ॥ ३२
नभस्यरुणसंस्तीर्णे पर्यस्ते ज्योतिषां गणे ।
प्रत्यूषपवनासारैः क्लेदिते धरणीतले ॥ ३३
क्षीणाकारासु तारासु सुप्तनिष्प्रतिभासु च
नैशमन्तर्दधे रूपमुद्गच्छति दिवाकरे ॥ ३४
शीतांशुः शान्तकिरणो निष्प्रभः समपद्यत ।
एको नाशयते रूपमेको वर्धयते वपुः ॥ ३५
गोभिश्च समकीर्णासु व्रजनिर्याणभूमिषु ।
मन्थनावर्तपूर्णेषु गर्गरेषु नदत्सु च ॥ ३६
दामभिर्दम्यमानेषु वत्सेषु तरुणेषु च ।
गोपैरापूर्यमाणासु घोषरथ्यासु सर्वशः ॥ ३७
तत्रैव गुरुकं भाण्डं शकटारोपितं बहु ।
त्वरिताः पृष्ठतः कृत्वा जग्मुः स्यन्दनवाहनाः
कृष्णोऽथ रौहिणेयश्च स चैवामितदक्षिणः ।
त्रयो रथगता जग्मुस्त्रिलोकपतयो यथा ३९
अथाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीरमाश्रितः ।
स्यन्दनं चात्र रक्षस्व यत्नं च कुरु वाजिषु ४०
हयेभ्यो यवसं दत्त्वा हयभाण्डे रथे तथा ।
प्रगाढं यत्नमास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम्॥
यमुनाया ह्रदे ह्यस्मिन्स्तोष्यामि भुजगेश्वरम्।
दिव्यैर्भागवतैर्मन्त्रैः सर्वलोकप्रभुं यतः ॥ ४२
गुह्यं भागवतं देवं सर्वलोकस्य भावनम् ।
श्रीमत्स्वस्तिकमूर्द्धानं प्रणमिष्यामि भोगिनम्
सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥ ४३
धर्मदेवस्य तस्याथ यद्विषं प्रभविष्यति ।
सर्वं तदमृतप्रख्यमशिष्याम्यमरो यथा ॥ ४४
स्वस्तिकायतनं दृष्ट्वा द्विजिह्वं श्रीविभूषितम् ।
समाजस्तत्र सर्पाणां शान्त्यर्थं वै भविष्यति

जीवतो वाक्यकरणादृणं प्रतिकर्तव्यमित्यर्थः ॥ २४ ॥ चेलुः प्रस्थानं चक्रुः॥२७॥ औपनायिकान् उपहारार्थान् ॥२९॥ नाशयते अदर्शनं नयति । वपुस्तेजः ॥३५॥ गुरुकं भारयुक्तं भाण्डम् उपकरणसामग्री ३८ हयभाण्डे अश्वभूषणादौ॥४१॥

भुजगेश्वरं शेषमनन्ताख्यम् ॥४२॥ धर्मदेवस्य धर्माधिष्ठातुः अनुग्रहवशात् विषस्याप्यमृतम् ॥४४॥ स्वस्तिकस्यायतनभूतं स्वस्तिकायतनं शेषं तत्र शेषसमीपे ॥ ४५ ॥

१ ख. °लश्च कृ° । २ ख. °वातुलः । ३ क. ख. °तदक्षिणम् । ४ क. ख. चुक्रोध केशवः । ५ ख. °यो हृतम् । ६ क. ख. °थाभिस्तु स° । ७ क. ख. °पमुदागच्छद्दिवाकरः । शी° । ८ ख. °मादाय क्ष° । ९ क. ख. °त प्रतीक्ष माम् ।

आस्तां मां समुदीक्षन्तौ भवन्तौ सङ्गतावुभौ।
निवृत्तो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि ह्रदोत्तमात्॥
तमाह कृष्णः संहृष्टो
गच्छ धर्मिष्ठ मा चिरम्।
आवां खलु न शक्तौ स्व-
स्त्वया हीनावुपासितुम्॥ ४७
स ह्रदे यमुनायास्तु ममज्जामितदक्षिणः।
रसातले स ददृशे नागलोकमिमं यथा॥ ४८
तस्य मध्ये सहस्रास्यं हेमतालोच्छ्रितध्वजम्।
लाङ्गलासक्तहस्ताग्रं मुसलोपाश्रितोदरम्॥ ४९
असिताम्बरसंवीतं पाण्डुरं पाण्डुरासनम्।
कुण्डलैकधरं मत्तं सुप्तमम्बुरुहेक्षणम्॥ ५०
भोगोत्करासने शुभ्रे
स्वेन देहेन कल्पिते।
स्वासीनं स्वस्तिकाभ्यां च
वराहाभ्यां महीधरम्॥ ५१
किञ्चित्सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमचूलिना।
जातरूपमयैः पद्मैर्मालयाच्छन्नवक्षसम्॥ ५२
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं दीर्घबाहुमरिन्दमम्।
पद्मनाभसिताभ्राभं भाभिर्ज्वलिततेजसम्॥ ५३
ददर्श भोगिनां नाथं स्थितमेकार्णवेश्वरम्।
पूज्यमानं द्विजिह्वेन्द्रैर्वासुकिप्रमुखैः प्रभुम्॥ ५४
कम्बलाश्वतरौ नागौ तौ चामरकरावुभौ।
[1]अवीजयेतां तं देवं धर्मासनगतं प्रभुम्॥ ५५
तस्याभ्याशगतो भाति वासुकिः पन्नगेश्वरः।
वृतोऽन्यैः सचिवैः सर्पैः कर्कोटकपुरःसरैः॥ ५६
तं घटैः काञ्चनैर्दिव्यैः पङ्कजच्छन्नमस्तकैः।
राजानं स्नापयामासुः स्नातमेकार्णवाम्बुभिः॥

तस्योत्सङ्गं घनश्यामं
श्रीवत्साच्छादितोरसम्।
पीताम्बरधरं विष्णुं
सूपविष्टं ददर्श ह॥
अपरं चैव सोमेन तुल्यसंहननं प्रभुम्।
सङ्कर्षणमिवासीनं तं दिव्यं विष्टरं विना
स कृष्णं तत्र सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे।
तस्य संस्तम्भयामास वाक्यं कृष्णः स्वतेजसा
सोऽनुभूय भुजङ्गानां तं भागवतमव्ययम्।
उदतिष्ठत्पुनस्तोयाद्विस्मितोऽमितदक्षिणः॥ ६१
स तौ रथस्थावासीनौ तत्रैव बलकेशवौ।
निरीक्ष्यमाणावन्योन्यं ददर्शाद्भुतरूपिणौ॥ ६२
अथामज्जत्पुनस्तत्र तदाक्रूरः कुतूहलात्।
इज्यते यत्र [2]देवोऽसौ नीलवासाः सितानन॥
तथैवासीनमुत्सङ्गे सहस्रास्यधरस्य वै।
ददर्श कृष्णमक्रूरः पूज्यमानं तदा प्रभुम्॥ ६४
भूयश्च सहसोत्थाय तं मन्त्रं मनसा जपन्।
[3]रथं तेनैव मार्गेण जगामामितदक्षिणः॥ ६५
तमाह केशवो हृष्टः स्थितमक्रूरमागमत्।
कीदृशं नागलोकस्य वृत्तं [4]भागवते ह्रदे॥ ६६
चिरं च भवता [5]कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः
मन्ये दृष्टं त्वयाश्चर्यं हृदयं ते यथाऽचलम्॥ ६७
प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं भवता विना।
किं भविष्यति लोकेषु स्थावरेषु चरेषु च॥ ६८
तत्राश्चर्यं मया दृष्टं कृष्ण यद्भुवि दुर्लभम्
तदिहापि यथा तत्र पश्यामि च रमामि च
संगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणेह रूपिणा।
अतः परतरं कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे॥ ७०

तस्योत्सङ्ग इत्यादिग्रन्थः—

"सप्त ते सप्त शाकिन एकमेकाशता ददुः।
यमुनायामधिश्रुतमुद्राधो गव्यं
मृजे निराधो अश्व्यं मृजे"

इत्येतं मन्त्रमुपबृंहयति। मन्त्रार्थस्तु मारुतं सूक्तम् अघमर्षणकाले भगवन्तं दृष्ट्वा तद्देवतां मरुतम् एवं स्तौति। सप्तसप्तएकोनपञ्चाशात् शाकिनः शक्नुवन्ति ते इति वा शक्नुवन्त्यैतैरिति वा शाकिनः शक्तिमन्तः शक्तिप्रदा वा मरुतः एकमेका प्रत्येकं शता शतमैश्वर्यं भवतीति यास्कः। ऐश्वर्याणि ददुः यतोऽहं श्रुतम् एवास्य परमा सम्पदिति वेदशिरोभ्य आकर्णितं राधो धनं सूत्रान्तर्यामिरूपं यमुनायाम् अधि मध्ये मृजे मृगयामि पश्यामीत्यर्थः। तदेव राधः उत् ऊर्ध्वे गव्यं गोषु सूर्यरश्मिषु स्थितं गव्यं मृजे तथा अश्व्यम् अश्ववति रथे स्थितं च देवराजनि मृजे अधोऽपि भूलोके पश्यामीत्यर्थः॥५८॥ विष्टरम् आसनं विना भूमावेव॥५९॥ व्याक्षेपेण व्यासङ्गेन॥ ६७॥ रूपिणा मूर्तिमता॥ ७०॥

१ क. अवाजयेतां, ख. आवाजयेतां। २ क. °त्र देवेशो नी°। ३ ख. °त्रं सहसा वहन्। ४ ख. तु। ५ ख. कालं व्या°।

तदागच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरीं प्रभो। यावन्नास्तं व्रजत्येष दिवसान्ते दिवाकरः॥ ७१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरकृतनागलोककथने षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

## कंसधनुर्भङ्गः।

## २७

वैशम्पायन उवाच।

ते तु युक्त्वा रथवरं सर्व एवामितौजसः
कृष्णेन सहिताः प्रायंस्तथा संकर्षणेन च॥
आसेदुस्ते पुरीं रम्यां मथुरां कंसपालिताम् *
विविशुस्ते पुरीं रम्यां काले रक्तदिवाकरे २
तौ तु स्वभवनं वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ।
प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यक्रूरेणार्कवर्चसौ॥ ३
तावाह वरवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा।
त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा ४
युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते।
भर्त्स्यते च दिवा रात्रौ नेह स्थातव्यमित्यपि
तद्युवाभ्यां हि कर्तव्यं पित्रर्थं सुखमुत्तमम्।
यथा सुखमवाप्नोति तद्वै कार्यं हितान्वितम् ६
तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावामतर्कितौ।
प्रेक्षन्तौ मथुरां वीर राजमार्गं च धार्मिक।
तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे७

वैशम्पायन उवाच।

अक्रूरोऽपि नमस्कृत्य मनसा कृष्णमव्ययम्।
जगाम कंसपार्श्वं तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥× ८
अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्थितौ प्रेक्षकावुभौ
आलानाभ्यामिवोन्मुक्तौ कुञ्जरौ युद्धकांक्षिणौ
तौ तु मार्गगतं दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्।
अयाचेतां ततस्तौ तु वासांसि रुचिराणि वै
रजकः स तु तौ प्राह युवां कस्य वनेचरौ।
राजवासांसि यौ मौढ्याद्याचेथां निर्भयावुभौ
अहं कंसस्य वासांसि नानादेशोद्भवानि वै
कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः १२
युवां कस्य वने जातौ मृगैः सह विवर्द्धितौ।
जातरागाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादनं बहु १३
अहो वां जीवितं त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ
मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वासो याचितुमिच्छतः
तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायाल्पमेधसे।
प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय सृजते वाङ्मयं विषम्
तलेनाशनिकल्पेन स तं मूर्द्धन्यताडयत्।
स गतासुः पपातोर्व्यां रजको व्यस्तमस्तकः
तं हतं परिदेवन्त्यो भार्यास्तस्य विचुक्रुशुः।
त्वरितं मुक्तकेश्यश्च जग्मुः कंसनिवेशनम् १७
तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात्
वीथीमाल्यापणानां वै गन्धाघ्रातौ द्विपाविव
गुणको नाम तत्रासीन्माल्यवृत्तिः प्रियंवदः।
प्रभूतमाल्यापणवाँल्लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः॥१९
तं कृष्णः श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया
देहीत्युवाच तत्काले मालाकारमकातरम् २०

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

·२७

सप्तविंशेऽस्मिन्नीशेन रजको निहतः पुरा
कुब्जास्वानुग्रहो भङ्गो धनुषश्चात्र वर्ण्यते १

ते तु इति। प्रायन्मथुरां प्राप्ताः॥ १॥ यास्यावेति लोडुत्तमद्विवचनम्। आवामिति च्छेदः। यास्यावो वामिति पाठं प्रकल्प्य आकारलोप आर्ष इति प्राञ्चो व्याचख्युः तस्यैव कंसस्यैव ॥ ७॥ अनुशिष्टौ आज्ञप्तौ आलानाभ्यां गजबन्धानाभ्याम् ॥९॥ वां युवयोः त्यक्तं नष्टम्॥ १४॥ व्यस्तः पृथग्भूतः मस्तको यस्य॥ १६॥ परिदेवन्त्यः शोचन्त्यः॥१७॥गुणको ग्रथको नामतस्तु श्रीदामाख्यः१९॥

---

१ ख. स तु यु॰। २ ख. ॰न सार्धं संप्रायात्तथा। ३ ख. आससाद पु॰। * आसेदुरिति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति। ४ क. ख. ॰र्कतेजसा। ता॰। × अक्रूरोपीति पद्यं खपुस्तके नास्ति। ५ ख. ॰तस्तानि वासां॰। ६ क. ॰चेथे नि॰। ७ क. ॰च्छथः। ८ क. चुक्रोध वै।

ताभ्यां प्रीतो ददौ माल्यं प्रभूतं माल्यजीवनः
भवतोः स्वमिदं चेति प्रोवाच प्रियदर्शनौ २१
प्रीतः सुमनसा कृष्णो गुणकाय वरं ददौ।
श्रीस्त्वां मत्संभवा सौम्य धनौघैरभिपत्स्यते
स लब्ध्वा वरमव्यग्रो माल्यवृत्तिरधोमुखः।
कृष्णस्य पतितो मूर्ध्ना प्रतिजग्राह तं वरम्
यक्षाविमाविति तदा स मेने माल्यजीवकः।
स भृशं भयसंविग्नो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ २४
वसुदेवसुतौ तौ च राजमार्गगतावुभौ।
कुब्जां ददृशतुर्भूयः सानुलेपनभाजनाम् २५
तामाह कृष्णः कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम्।
नयस्यम्बुजपत्राक्षि क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि २६
सस्मिता संमुखी भूत्वा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम्
कृष्णं जलदगम्भीरं विद्युत्कुटिलगामिनी २७
राज्ञः स्नानगृहं यामि तद्गृहाणानुलेपनम्।
दृष्ट्वैव त्वाऽरविन्दाक्ष विस्मिताऽस्मि वरानन
यत्त्वमिच्छसि मे वीर त्वं गृहाणानुलेपनम्।
स्थिताऽस्म्यागच्छ भद्रं ते हृदयस्यासि मे प्रियः
कुतश्चागम्यते सौम्य यन्मां त्वं नावबुध्यसे।
महाराजस्य दयितां नियुक्तामनुलेपने ॥ ३०

तामुवाच हसन्तीं तु
कृष्णः कुब्जामवास्थिताम्।
आवयोर्गात्रसदृशं
दीयतामनुलेपनम् ॥ ३१

वयं हि देशातिथयो मल्लाः प्राप्ता वरानने।
द्रष्टुं धनुर्महद्दिव्यं राष्ट्रं चैव महर्धिमत् ३२
प्रत्युवाचाथ सा कृष्णं प्रियोऽसि मम दर्शने
राजार्हमिदमव्यग्रं तद्गृहाणानुलेपनम् ३३
तावुभावनुलिप्ताङ्गौ चारुगात्रौ विरेजतुः।
तीर्थगौ पङ्कदिग्धाङ्गौ यमुनायां यथा वृषौ।
तां च[2] कुब्जां स्थगो[3]र्मध्ये द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना
शनैः संपीडयामास कृष्णो लीलाविधानवित्
सा च[4] मग्नं स्थगुं मत्वा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता
जहासोच्चैः स्तनतटी ऋजुयष्टिर्लता यथा ३६
प्रणयाच्चापि कृष्णं सा बभाषे मत्तकाशिनी।

क्व यास्यसि मया रुद्धः
कान्त तिष्ठ गृहाण माम् ॥ ३७

तौ जातहासावन्योन्यं सतलाक्षेपमव्ययौ।
वीक्षमाणौ प्रहसितौ कुब्जायाः श्रुति[6]विस्तरौ
कृष्णस्तु कुब्जां कामार्तां सस्मितं विससर्ज ह
ततस्तौ कुब्जया मुक्तौ प्रविष्टौ राजसंसदम्
तावुभौ व्रजसंवृद्धौ गोपवेषविभूषितौ।
गूढचेष्टाननौ भूत्वा प्रविष्टौ नृपवेश्म तत् ४०
धनुःशालां गतौ तत्र बालावपरितर्कितौ।
हिमवद्वनसंभूतौ सिंहाविव मदोत्कटौ[7] ४१
दिदृक्षन्तौ महत्तत्र धनुरायोगभूषितम्।
पप्रच्छतुश्च तौ वीरावायुधागारिकं तदा ४२
भोः कंसधनुषां पाल श्रूयतामावयोर्वचः।
कतरत्तद्धनुः सौम्य महोऽर्थं यस्य वर्तते ४३
आयोगभूतं कंसस्य दर्शयस्व यदीच्छसि।
स तयोर्दर्शयामास तद्धनुः स्तम्भसन्निभम् ४४
अनारोप्यमसंभेद्यं दैवैरपि सवासवैः।
तद्गृहीत्वा तदा[8] कृष्णस्तोलयामास वीर्यवान्
दोर्भ्यां कमलपत्राक्षः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
तोलयित्वा यथाकामं तद्धनुर्दैत्यपूजितम् ४६
आरोपयामास बली नामयामास चासकृत्।
आनाम्यमानं कृष्णेन प्रकर्षादुरगोपमम् ४७

---

भवतोः। स्वं भवदीयमेतद्धनम् ॥ २१ ॥ मत्संभवा मत्प्रीणनप्रभवा ॥ २२ ॥ उत्तरं कर्तव्यं कंसभयान्न ज्ञातवान् मौढ्यादित्यर्थः ॥ २४ ॥ तीर्थगौ जलान्तर्गतौ अत एव तत्पङ्केन दिग्धाङ्गौ ॥ ३४ ॥ स्थगयति नाभिमाच्छादयतीति स्थगुः भुग्नं पृष्ठं स्थड्डु इति टवर्गीयोपधपाठे तु मूलं मृग्यम्। तस्य मध्ये उन्नते देशे शनैः संपीडयामास संताडयामासेति पाठेऽपि स एवार्थः। "तुड भेदने" इति धातुः। संतोलयामासेति पाठेऽपि विषमं पृष्ठं समतया मितवान् ॥ ३५ ॥ अत एव मग्नमन्तर्हितम् ॥ ३६ ॥ सतलाक्षेपम् अन्योन्यं दत्ततालं यथा स्यात्तथा श्रुतौ श्रोत्रगतो विस्तरो गुणकलापो ययोस्तौ ॥ ३८ ॥ राजसंसदम् उपग्रहम् ॥ ३९ ॥ गूढचेष्टाननौ गुप्तचेष्टाप्रारम्भौ ॥ ४० ॥ आ समन्तात् युज्यन्ते योधा अस्मात् इत्यायोगो विख्यातिः तया भूषितम् ॥ ४२ ॥ आयोगभूतं प्रख्यातं धनुर्महानिमित्तमित्यर्थः ॥ ४४ ॥

---

१ क. 'वनः। स भू'। २ क. तु। ३ क. ख. स्थडोर्म'। ४ क. ख. तु। ५ क. ख. °डुं म°। ६ क. श्रुतवि'। ७ क. ख. 'व बलोत्क'। ८ क. ख. 'त्वा ततः कृ'।

द्विधाभूतमभून्मध्ये धनुरायोगभूषितम् ४७ ॥
भङ्क्त्वा तु तद्धनुः श्रेष्ठं कृष्णस्त्वरितविक्रमः
निश्चक्राम महावेगः स च संकर्षणो युवा ४८
धनुषो भङ्गनादेन वायुनिर्घोषकारिणा ।
चचालान्तःपुरं सर्वं दिशश्चैव पुपूरिरे ॥ ४९
निर्गम्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसन्निधौ ।
वेगेनायुधपालस्तु गच्छन्संभ्रान्तमानसः ५०*
समीपं नृपतेर्गत्वा काकोच्छ्वासोऽभ्यभाषत ।
श्रूयतां मम विज्ञाप्यमाश्चर्यं धनुषो गृहे ॥५१
निर्वृत्तमस्मिन्काले यज्जगतः संभ्रमोपमम् ।
नरौ कस्याप्यसदृशौ शिखावितमूर्द्धजौ५२
नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।
तावन्तःपुरमज्ञातौ प्रविष्टौ कामवेषिणौ ।
देवपुत्रोपमौ वीरौ बालाविव हुताशनौ ५३
स्थितौ धनुर्गृहे सौम्यौ सहसा खादिवागतौ
मया दृष्टौ परिव्यक्तं रुचिराच्छादनस्रजौ ५४
तयोरेकस्तु पद्माक्षः श्यामः पीताम्बरस्रजः ।
जग्राह तद्धनूरत्नं दुर्ग्राह्यं दैवतैरपि ॥ ५५
तस्य बालो महच्चापं बलाद्यन्त्रमिवायसम् ।
आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया५६
आकृष्यमाणं तत्तेन विबाणं बाहुशालिना ।
मुष्टिदेशे विकूजित्वा द्विधाभूतमभज्यत ५७
ततः प्रचलिता भूमिर्नैव भाति च भास्करः ।
धनुषो भङ्गनादेन भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ ५८
तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ।
भयाद्भयदशत्रुभ्यस्तदिहाख्यातुमागतः ।
न जानामि महाराज कौ तावमितविक्रमौ
एकः कैलाससंकाश एकोऽञ्जनगिरिप्रभः ।
स तु तच्चापरत्नं वै भङ्क्त्वा स्तम्भमिव द्विपः
निष्पपातानिलगतिः सानुगोऽमितविक्रमः ।
अगमत्तं द्विधा कृत्वा न जाने कोऽप्यसौ नृप
श्रुत्वैव धनुषो भङ्गं कंसो विदितविस्तरः ।
विसृज्यायुधपालं वै प्रविवेश गृहोत्तमम् ६२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसधनुर्भङ्गे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

## कंसस्य जन्मादि वृत्तम् ।

## २८

वैशम्पायन उवाच ।

स चिन्तयित्वा धनुषो भङ्गं भोजविवर्धनः । बभूव विमना राजा चिन्तयन्भृशदुःखितः १

काक एव काकः भयचकितत्वेन चञ्चलदृष्टिः उच्छ्वसितीत्युच्छ्वासश्चेति समासः । कातरश्च सोच्छ्वासश्चेत्यर्थः ॥ ५१ ॥ संभ्रमोपमम् प्रलयतुल्यम् ॥ ५२ ॥ आयसमिव अनाम्यम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

२८

अष्टाविंशे त्वथाध्याये
मल्लानां रचनोच्यते
महामात्राय कंसस्य
स्वजन्माथ चिकीर्षितम् ॥१॥

पूर्वेणाध्यायेन,
"युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे
युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः"
इत्यर्धर्चार्थ उपबृंहितः । यस्यार्थस्तु युवं युवां पीवसा बलेन रजकं हत्वेत्यर्थः । वस्त्राणि वसाथे युवोः युवयोः मन्तवो मानयितारः मालाकारकुब्जाप्रभृतयः सर्गाः सृजन्ति माल्यानुलेपनादिकं ते सर्गाः अच्छिद्राः नीचत्वकुब्जत्वादिदोषहीना भवन्तीति ।
"अवातिरतमनृतानि विश्वा
ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे"
इत्यस्योपबृंहणार्थं उत्तरो ग्रन्थः। तत्र अयादवोऽपि कंसो

* निर्गम्येति पद्यं कखपुस्तकयोर्नास्ति, किंतु 'स त्वायुधागारनरो भीतस्त्वरितविक्रमः' इत्यर्धपद्यं कख पुस्तकयोर्वर्तते । १ क. ख. 'स्यापि सहितौ शि०। २ ख. तत् स बालो मह०। ३ ख. स धनुस्ताद्विधाकृ०। ४ ख. न जाने क्वापि निर्गतः । श्रु०।

कथं बालो विगतभीरवमत्य महाबलम्।
प्रेक्षमाणस्तु पुरुषैर्धनुर्भङ्क्त्वा विनिर्गतः॥२
यस्यार्थे दारुणं कर्म कृतं लोकविगर्हितम्।
पितृस्वस्रात्मजान्वीरान्षडेवाहं न्यपोथयम्३
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम्।
नारदोक्तं च वचनं नूनं मह्यमुपस्थितम्॥ ४

एवं राजा विचिन्त्याथ
निष्क्रम्य स्वगृहोत्तमात्।
प्रेक्षागारं जगामाशु
मञ्चानामवलोककः॥ ५

स दृष्ट्वा सर्वनिर्मुक्तं प्रेक्षागारं नृपोत्तमः।
श्रेणीनां दृढनिर्युक्तैर्मञ्चवाटैर्निरन्तरम्॥ ६
सोत्तमागारयुक्ताभिर्वलभीभिर्विभूषितम्।
छदींभिः संप्रवृद्धाभिरेकस्तम्भैर्विभूषितम् ७
सर्वतः सारनिर्व्यूहं स्वायतं सुप्रतिष्ठितम्।
उदग्राक्लिष्टसुश्लिष्टं मञ्चारोहणमुत्तमम्॥ ८
नृपासनपरिक्षिप्तं संचारपथसंकुलम्।
छन्नं तद्वेदिकाभिश्च मार्तुषौघभरक्षमम्॥ ९
स दृष्ट्वा भूषितं रङ्गमाज्ञापयत बुद्धिमान्।
श्वः सचित्राः समाल्याश्च सपताकास्तथैव च
सुवासिता वपुष्मन्त उपनीतोत्तरच्छदाः।
क्रियन्तां मञ्चवाटाश्च वलभ्यो वीथयस्तथा११
रङ्गवाटे करीषस्य कल्प्यन्तां राशयोऽव्ययाः
पटास्तरणशोभाश्च वलयश्चानुरूपतः १२
स्थाप्यन्तां सुनिखाताश्च पानकुम्भा यथाक्रमम्
उदभारसहाः सर्वे सकाञ्चनघटोत्तमाः १३
बलयश्चोपकल्प्यन्तां कषायाश्चैव कुम्भशः।
प्राश्निकाश्च निमन्त्र्यन्तां श्रेण्यश्च सपुरोगमाः
आज्ञा च देया मल्लानां प्रेक्षकाणां तथैव च।
समाजे मञ्चवाटाश्च कल्प्यन्तां सूपकल्पिताः
एवमाज्ञाप्य राजा स समाजविधिमुत्तमम्।
समाजवाटान्निष्क्रम्य विवेश स्वं निवेशनम्
आह्वानं तत्र संचक्रे तस्य मल्लद्वयस्य वै।
चाणूरस्याप्रमेयस्य मुष्टिकस्य तथैव च॥ १७
तौ तु मल्लौ महावीर्यौ बलिनौ बाहुशालिनौ
कंसस्याज्ञां पुरस्कृत्य हृष्टौ विविशतुस्तदा१८
तौ समीपगतौ दृष्ट्वा मल्लौ जगति विश्रुतौ।
उवाच कंसो नृपतिः सोपन्यासमिदं वचः१९
भवन्तौ मम विख्यातौ मल्लौ वीरध्वजोच्छ्रितौ
पूजितौ च यथान्यायं सत्कारार्हौ विशेषतः
तन्मत्तो यदि सत्कारः स्मर्यते सुकृतानि च।
कर्तव्यं मे महत्कर्म भवद्भ्यां स्वेन तेजसा २१

---

यदूनामाधिपत्यमिच्छन्ननृतः तेन प्रयुक्तानि मल्लादीन अनृतानि विश्वा सर्वाणि तानि अत्रातिरतं तिरस्कृतवन्तौ, ऋतेन सत्येनैव यादवत्वेन गोपत्वाच्छादिततया प्रागप्रसिद्धेन मित्रावरुणौ सूत्रान्तर्यामिणौ रामकृष्णौ सचेथे संगच्छेथे युवाम्। तत्र कंसस्यानृतत्वमत्र महामात्रकथया उपबृंह्यते—स चिन्तयित्वेति। भोजविवर्धनो भोजच्छेदी॥ १॥ यस्यार्थे यन्निमित्तम्॥ ३॥ वचनं न वसुदेवयत्नो रात्रावेव विफलीकृत इत्येवंरूपम्॥ ४॥ प्रेक्षागारं धनुर्महप्रेक्षार्थं कृतं स्थानम्॥ ५॥ निर्युक्तं निष्पन्नं,श्रेणीनाम् एकशिल्पोपजीविनां, दृढं नियुक्तैर्दृढसंयुक्तैः दृढबद्धैः॥ ६॥ स एको मञ्चारोहणं दृष्ट्वा रङ्गमाज्ञापयतेति व्यवहितेन संबन्धः। वलभीभिः उभयतो नमत्पक्षद्वयाभिः। छदींभिः षट्स्तम्भाभिः। कुटीभिरिति पाठे कोष्ठकोष्ठकैः सतच्छदिकैः चतुःस्तम्भैः॥ ७॥ सारनिर्व्यूहं दृढं नागदन्ता गृहान्निर्गतदारुरूपाणि यत्र। उदग्रम् उच्चम् अक्लिष्टम् असंकुचितं सुश्लिष्टं च मञ्चारोहणं सोपानपङ्क्तिर्यत्र॥ ८॥ परिक्षिप्तम् व्याप्तम्॥ ९॥ रङ्गंधनुर्महम् आज्ञापयत् आज्ञापितवान्। सचित्रा इत्यादि मञ्चवाटानां विशेषणम्॥ १०॥ वपुष्मन्तश्चित्रपुरुषादियुक्ताः उत्तरच्छदा महास्तरणानि॥ ११॥ करीषस्य शुष्कगोमयचूर्णस्य राशयः मल्लानां स्वेदापमार्जनार्थं मङ्गलार्थं वा॥ १२॥ पानकुम्भा घटोच्छ्रायिकाः॥१३॥ कषायाः रसाः, प्राश्निकाः युद्धधर्मविदः॥ १४॥ प्रेक्षकाणां युद्धसाक्षिणाम्॥ १५॥ सोपन्यासं सोपपत्तिकम्॥ १९॥ वीरध्वजः स्वोत्कर्षसूचकं तोडरादि, तेन उच्छ्रितौ॥२०॥

---

१ ख. °र्भं कृत्वा लो° । २ क. ख. °जान्भीमः ष° । ३ क. ख. तु । ४ क. ख. °ढसंयुक्तैर्म° । ५ क. ख. कुटीभिश्च प्र° । ६ क. ख. °स्तम्भैश्च भू° । ७ ख. °निर्युक्तं । ८ क. ख. मानवौघ° । ९ क. घंटास्तरणशो°, ख. घंटातोरणशो° । १० क. ख. °टोत्तराः। ब° । ११ ख. °श्चशोभाश्च क° । १२ ख. तौ मल्लौ सुमहा° । १३ क. वै, ख. वा । १४ क. °व्यं च म° ।

यावेतौ मम संवृद्धौ व्रजे गोपालकावुभौ।
संकर्षणश्च कृष्णश्च बालावपि जितश्रमौ २२
एतौ रङ्गगतौ युद्धे युद्ध्यमानौ वनेचरौ।
निपातानन्तरं शीघ्रं हन्तव्यौ नात्र संशयः२३
बालौविमौ सुचपलावक्रियाविति सर्वथा।
नावज्ञा तत्र कर्तव्या कर्तव्यो यत्न एव हि २४
ताभ्यां युधि निरस्ताभ्यां
गोपाभ्यां रङ्गसन्निधौ।
आयत्यां च तदात्वे च
श्रेयो मम भविष्यति ॥ २५
नृपतेः स्नेहसंयुक्तैर्वचोभिर्हृष्टमानसौ।
ऊचतुर्युद्धसंमत्तौ मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ २६
यद्यावयोस्तौ प्रमुखे स्थास्येते गोपकिल्बिषौ
हतावित्येव मन्तव्यौ प्रेतरूपौ तपस्विनौ २७
यद्यावां प्रतियोत्स्येते तावरिष्टपरिप्लुतौ।
आवाभ्यां रोषयुक्ताभ्यां प्रमुखे तौ वनेचरौ
एवं वाग्विषमुत्सृज्य तावुभौ मल्लपुङ्गवौ।
अनुज्ञातौ नरेन्द्रेण स्वे गृहे तौ प्रजग्मतुः २९
महामात्रं ततः कंसो बभाषे हस्तिजीविनम्।
हस्ती कुवलयापीडः समाजद्वारि तिष्ठतु॥ ३०
बलवान्मदलोलाक्षश्चपलः क्रोधनो नृषु।
दानोत्कटकटश्चण्डः प्रतिवारणरोषणः ॥ ३१
स संनोदयितव्यस्ते तावुद्दिश्य वनौकसौ।
वसुदेवसुतौ वीरौ यथा स्यातां गतायुषौ ३२
त्वया चैव गजेन्द्रेण यदि तौ गोष्ठजीविनौ।
भवेतां पतितौ रङ्गे पश्येयमहमुत्कटौ ॥ ३३
ततस्तौ पतितौ दृष्ट्वा वसुदेवः सबान्धवः।
छिन्नमूलो निरालम्बः सभार्यो विनशिष्यति
ये चेमे यादवा मूर्खाः सर्वे कृष्णपरायणाः।
विनशिष्यन्ति छिन्नाशा
दृष्ट्वा कृष्णं निपातितम् ॥ ३५

एतौ हत्वा गजेन्द्रेण मल्लैर्वा स्वयमेव वा।
पुरीं निर्यादवीं कृत्वा विचरिष्याम्यहं सुखी
पिता हि मे परित्यक्तो यादवानां कुलोद्वहः।
शेषाश्च मे परित्यक्ता यादवाः कृष्णपक्षिणः३७
न चाहमुग्रसेनेन जातः किल सुतार्थिना।
मानुषेणाल्पवीर्येण यथा मामाह नारदः ३८
महामात्र उवाच।
कथमुक्तं नारदेन राजन्देवर्षिणा पुरा।
आश्चर्यमेतत्कथितं त्वत्तः श्रुतमरिंदम ॥ ३९
कथमन्येन जातस्त्वमुग्रसेनात्पितुर्विना।
तव मात्रा कथं राजन्कृतं कर्मेदमीदृशम् ४०
अन्यापि प्राकृता नारी
न कुर्याच्च जुगुप्सितम्।
विस्तरं श्रोतुमिच्छामि
ह्येतत्कौतूहलं हि मे ॥ ४१
कंस उवाच।
यथा कथितवान्विप्रो महर्षिर्नारदः प्रभुः।
तथाऽहं संप्रवक्ष्यामि यदि ते श्रवणे मतिः४२
आगतः शक्रसदनात्स वै शक्रसखो मुनिः।
चन्द्रांशुशुक्लवसनो जटामण्डलमुद्वहन् ॥ ४३
कृष्णाजिनोत्तरीयेण रुक्मयज्ञोपवीतवान्।
दण्डी कमण्डलुधरः प्रजापतिरिवापरः ॥ ४४
गाता चतुर्णां वेदानां विद्वान्गान्धर्ववेदवित्
स नारदोऽथ देवर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ४५
तमागतमृषिं दृष्ट्वा पूजयित्वा यथाविधि।
पाद्यार्घमासनं दत्त्वा संप्रवेश्योपविश्य हि ४६
सुखोपविष्टोऽथ मुनिः पृष्ट्वा च कुशलं मम।
उवाच च प्रीतमना देवर्षिर्भावितात्मवान् ॥
नारद उवाच।*
पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा।
इदमेकं मम वचः श्रूयतां प्रतिगृह्यताम् ॥ ४८

जितश्रमौ कदाचिदपि न श्रमवन्तौ ॥ २२ ॥ निपातानन्तरं संबन्धमात्रेणेत्यर्थः ॥ २३ ॥ अक्रियौ अशिक्षितौ ॥२४॥ आयत्याम् उत्तरकाले तदात्वे वर्तमानकाले ॥ २५ ॥ प्रमुखे तौ निहन्तव्याविति शेषः ॥ २८ ॥ दानोत्कटकटः मदोत्कटगण्डः ॥ ३१ ॥ संमुखं गत्वा संप्रवेश्य गृहं ततः पाद्यसहितम् अर्घं दत्त्वा आचमनं च दत्त्वा तत्सन्निधौ स्वयमुपविश्य ॥ ४६ ॥ भावितात्मवान् पूतचित्तः ॥४७॥

१ ख °विमौ चपलकाव°। २ क. ख. °तावित्यवगन्तव्यौ प्रे°। ३ क. ख. वनौकसौ। ए°। ४ क. ख. °ण स्वगृहं प्रतिजग्मतुः। ५ ख. °णवारणः। स सं°। ६ क. ख. °तौ नीचौ य°। ७ ख. ते न शिष्यन्ति छि°। ८ ख. °ताऽपि मे। ९ क. ज्ञातः कि°। १० ख. च। * नारद उवाचेति कखपुस्तकयोर्नास्ति।

गतोऽहं देवसदनं सौवर्णं मेरुपर्वतम् ।
सोऽहं कदाचिद्देवानां समाजे मेरुमूर्धनि ४९
तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः ।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः ५०
तत्र यो देवकीगर्भो विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
योऽस्या गर्भोऽष्टमः कंस
स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ ५१
देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः ।
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति ५२
यत्नश्च क्रियतां कंस गर्भाणां पातनं प्रति ।
नावज्ञा रिपवे कार्या दुर्बले स्वजनेऽपि वा ५३
न चायमुग्रसेनः स पिता तव महाबलः ।
द्रुमिलो नाम तेजस्वी सौभस्य पतिरूर्जितः
श्रुत्वाहं तद्वचस्तस्य किंचिद्रोषसमन्वितः ।
भूयोऽपृच्छं कथं ब्रह्मन्द्रुमिलो नाम दानवः
मम मात्रा कथं तस्य ब्रूहि विप्र समागमः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ५६

नारद उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु राजन्यथार्थतः ।
द्रुमिलस्य च मात्रा ते संवादं च समागमम्
सुयामुनं नाम नगं तव माता रजस्वला ।
प्रेक्षितुं सहिता स्त्रीभिर्गता वै सा कुतूहलात्
सा तत्र रमणीयेषु रुचिरद्रुमसानुषु ।
चचार नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ॥ ५९
किन्नरोद्गीतमधुराः प्रतिश्रुत्यभिनादिताः ।
शृण्वन्ती कामजननीर्वाचः श्रोत्रसुखावहाः
बर्हिणां चैव विरुतं खगानां च विकूजितम् ।
अभीक्ष्णमभिशृण्वन्ती स्त्रीधर्ममभिरोचयत्
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्वनराजिविनिःसृतः ।
हृद्यः कुसुमगन्धाढ्यो ववौ मन्मथबोधनः ६२
द्विरेफाभरणाश्चैव कदम्बा वायुघट्टिताः ।
मुमुचुर्गन्धमधिकं संततासारमूर्छिताः ॥ ६३
केसराः पुष्पवर्षैश्च ववृषुर्मदबोधनाः ।
नीपा दीपा इवाभान्ति पुष्पकण्टकधारिणः
मही नवतृणच्छन्ना शक्रगोपविभूषिता ।
यौवनस्थेव वनिता स्वं दधारार्तवं वपुः ६५
अथ सौभपतिः श्रीमान्द्रुमिलो नाम दानवः ।
भविष्यद्दैवयोगेन विधात्रा तत्र नीयते ॥ ६६
कामगेन रथेनाशु तरुणादित्यवर्चसा ।
यदृच्छया गतस्तत्र सुयामुनदिदृक्षया ॥ ६७
विहायसा कामगमो मनसोऽप्याशुगामिना ।
स तं प्राप्य पर्वतेन्द्रमवतीर्य रथोत्तमात् ॥ ६८
पर्वतोपवने न्यस्य रथं पररथारुजम् ।
अथाऽसौ सूतसहितश्चचार नगमूर्धनि ॥ ६९
ततो बहून्यपश्येतां काननानि वनानि च ।
सर्वर्तुगुणसंपन्नं नन्दनस्येव काननम् ॥ ७०
चेरतुर्नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ।
नानाधातुपिनद्धैश्च शृङ्गैर्बहुभिरुच्छ्रितैः ॥ ७१
नानारत्नविचित्रेषु काञ्चनाञ्जनराजतान् ।
नानाकुसुमगन्धाढ्यान्नानासत्त्वगणैर्युतान् ७२
नानाद्विजगणैस्तुष्टान्नानापुष्पफलद्रुमान् ।
नानौषधिसमायुक्तानृषिसिद्धानुसेवितान् ७३
विद्याधरान्किंपुरुषानृक्षवानरराक्षसान् ।
सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च
महिषाञ्छरभाञ्छशान् ॥ ७४
सृमरांश्चमरान्न्यङ्कून्मातङ्गान्यक्षराक्षसान्
एवं बहुविधान्पश्यंश्चरमाणो नगोत्तमम् ७५
दूराद्ददर्श नृपतिर्देवीं देवसुतोपमाम् ।
क्रीडमानां सखीभिश्च पुष्पं चैव विचिन्वतीम्
ततश्चरन्तीं सुश्रोणीं सखीभिः सह संवृताम्
दृष्ट्वा सौभपतिर्दूराद्विस्मयन्सूतमब्रवीत् ॥ ७७
कस्येयं मृगशावाक्षी वनान्तरविचारिणी ।
रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथस्य रतिर्यथा ॥ ७८
शचीव पुरुहूतस्य उताहो वा तिलोत्तमा ।
नारायणोरुं निर्भिद्य संभूता वरवर्णिनी ।
ऐलस्य दयिता देवी योषिद्रत्नं किमुर्वशी ७९

अस्याः देवक्याः ॥ ५१ ॥ रिपवे रिपौ ॥ ५३ ॥ कथं कीदृशो द्रुमिलः ॥ ५५ ॥ स्त्रीधर्मम् अष्टगुणकामवत्त्वम् ॥ ६१ ॥ नीयते अनीयत, नीत इत्यर्थः ॥ ६६ ॥ विहायसा आकाशमार्गेण कामगमः इच्छया गन्तुं शीलः ॥६८॥ काननानि अरोपितवृक्षाणि । वनानि रोपितवृक्षाणि ॥७०॥ नारायणोरुं निर्भिद्य जाता उर्वशी ॥ ७९ ॥

१ क. ख. °गस्येह व° । २ क. ख. °तत्रैष दे° । ३ क. वेदानां । ४ क. ख. °नस्तु पि° । ५ ख. वर्तयिष्यामि । श्टं० । ६ ख. °ता संदधा° । ७ क. ख. °नने । ८ क. °चित्रैश्च, ख. नानावर्णविचित्रैश्च । ९ क. ख. °व प्रचिन्वतीम् ।

क्षीरार्णवे मथ्यमाने सुरासुरगणैः सह ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वाऽमृतार्थमिति नः श्रुतम्
ततोऽमृतात्समुत्तस्थौ देवी श्रीलोकभाविनी
नारायणाङ्कलुलिता किं श्रीरेषा वराङ्गना ८१
नीलमेघान्तरगता द्योतयन्त्यचिरप्रभा ।
तथा योषिद्गणान्मध्ये रूपं प्रद्योतयद्वनम् ८२
अतीव सुकुमाराङ्गी
सुप्रभेन्दुनिभानना ।
दृष्ट्वा रूपमनिन्द्याङ्ग्या
विभ्रान्तो व्याकुलेन्द्रियः ॥ ८३
कामस्य वशमापन्नो मनो विह्वलतीव मे ।
भृशं कृन्तति मेऽङ्गानि सायकैः कुसुमायुधः
भित्वा हृदि शरान्पञ्च निर्दयं हन्ति मे मनः
हृदयाग्निर्वर्धयति आज्यसिक्त इवानलः ।
कथमद्य भवेत्कार्यं शमार्थं मन्मथाग्निना ८५
केनोपायेन किं कुर्मो भजेन्मां मत्तगामिनी ।
एवं बहु चिन्तयानो नोपलभ्य च दानवः ८६
सूतमाह मुहूर्तं तु तिष्ठस्व त्वमिहानघ ।
अहं यास्यामि तां द्रष्टुं कस्येयमिति योषितम्
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठस्व
यावदागमनं मम ।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य
तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ ८८
एवमुक्त्वा दानवेन्द्रो गमनाय मनो दधे* ।
वार्युपस्पृश्य बलवान्ध्यानमेवान्वचिन्तयत
मुहूर्तं ध्यानमात्रेण दृष्टं ज्ञानबलात्ततः ।
उग्रसेनस्य पत्नीति ज्ञात्वा हर्षमुपागतः ९०
उग्रसेनस्य रूपं वै कृत्वा स्वं परिवर्त्य सः ।
उपासर्पन्महाबाहुः प्रहसन्दानवेश्वरः ९१
स्मयमानश्च शनकैर्जग्राहामितवीर्यवान् ।
उग्रसेनस्य रूपेण मातरं ते व्यधर्षयत् ॥ ९२
सा पतिस्निग्धहृदया तं भावेनोपसर्पती ।
शङ्किता चाभवत्पश्चात्तस्य गौरवदर्शनात्९३
सा तमाहोत्थिता भीता न त्वं मम पतिर्ध्रुवम्
कस्य त्वं विकृताचारो येनास्मि मलिनीकृता
एकभर्तृव्रतमिदं मम संदूषितं त्वया ।
पत्युर्मे रूपमास्थाय नीच नीचेन कर्मणा ९५
किं मां वक्ष्यन्ति रुषिता
बान्धवाः कुलपांसनीम् ।
जुगुप्सिता च वत्स्यामि पतिपक्षैर्निराकृता
धिक्त्वामीदृशमक्षान्तं
दुष्कुलं व्युत्थितेन्द्रियम् ।
अविश्वास्यमनार्यैर्यं
परदाराभिमर्शनम् ॥ ९७
स तामाह प्रसज्जन्तीं क्षिप्तः क्रोधेन दानवः
अहं वै द्रुमिलो नाम सौभस्य पतिरूर्जितः९८
किं मां क्षिपसि रोषेण मूढे पण्डितमानिनि
मानुषं पतिमाश्रित्य नीचं मृत्युवशे स्थितम्
व्यभिचारान्न दुष्यन्ति स्त्रियः स्त्रीमानगर्विते ।
न ह्यासां नियता बुद्धिर्मानुषीणां विशेषतः
श्रूयन्ते हि स्त्रियो बह्व्यो व्यभिचारव्यतिक्रमैः
प्रसूता देवसंकाशान्पुत्रान्निश्चलविक्रमान् १
अतीव हि त्वं स्त्रीलोके पतिधर्मवती सती ।
शुद्धकेशान्विधुन्वन्ती भाषसे यद्यदिच्छसि२
कस्य त्वमिति यच्चाहं त्वयोक्तो मत्तकाशिनि
कंसस्तस्माद्रिपुध्वंसी तव पुत्रो भविष्यति ॥३

---

अचिरप्रभा विद्युदिव योषिद्गणान्योषिद्गणानाम् । यद्वा गणान्वनं च प्रद्योतयत् रूपं दधानेति शेषः ॥८२॥ निर्दयं यथा स्यात्तथा मे मां हृदयाग्निः कामाग्निः वर्धयति छिनत्ति दहतीत्यर्थः । मन्मथाग्निना षष्ठ्यर्थे तृतीया ॥ ८५ ॥ नोपलभ्य अनुपलभ्य धैर्यमिति शेषः ॥ ८६ ॥ गौरवदर्शनात् रतेः स्पर्शगौरवानुभवात् ॥ ९३ ॥ अक्षान्तम् अक्षाणाम् इन्द्रियाणाम् अन्तो नाशो यस्य तम् ॥ ९७ ॥ प्रसज्जन्तीं कलहायमानां क्षिप्तः धिक्कृतः ॥ ९८ ॥ व्यभिचारादमानुषसंबन्धजात् चित्तस्य चञ्चलत्वात्स्वप्राभिचारवदयममानुषजो व्यभिचारस्तव न दोषायेत्यर्थः ॥ १०० ॥ स्त्रियः कुन्ती-मदयन्तीप्रभृतयः ॥ १ ॥ शुद्धकेशान् ''यानि कानि च पापानि केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति'' इति वचनात् निष्पापान् अस्मानपि विधुन्वन्ती भर्त्सयन्ती यदिच्छसि तद्भाषसे यथेष्टं प्रलपसि मौढ्यादित्यर्थः ॥ २ ॥

---

१ ख. °तन्तीवाचिर° । २ ख. शराः पञ्च निर्दयं हन्ति मे तनुम् । हृच्छयाग्नि° । ३ ख. °मस्य । ४ ख. त्वं । ५ ख. °छ स्वैरामि° । ६ ख. °तिसुंदरी । * एतदग्रे-हृच्छयाविष्टहृदयो दृष्ट्वा तामसितेक्षणाम् । इत्यधिकं खपुस्तके । ७ ख. °र्षमवाप सः । उ° । ८ ख. °र्त्ये च । ९घ. कश्च त्वं । १० ख. °नार्यै च प° । ११ ख. शुद्धा के° ।

सा सरोषा पुनर्भूत्वा निन्दन्ती तस्य तं वरम्
उवाच व्यथिता देवी दानवं धृष्टवादिनम् ४
धिक्ते वृत्तं सुदुर्वृत्त यः सर्वा निन्दसि स्त्रियः
सन्ति स्त्रियो नीचवृत्ताः सन्ति चैव पतिव्रताः
यास्त्वेकपत्न्यः श्रूयन्तेऽरुन्धतीप्रमुखाः स्त्रियः
धृता याभिः प्रजाः सर्वा लोकाश्चैव कुलाधम
यस्त्वया मम पुत्रो वै दत्तो वृत्तविनाशनः।
न मे बहुमतस्त्वेष शृणु चापि यदुच्यते ॥ ७
उत्पत्स्यति पुमान्नीचः पतिवंशे ममाद्य यः।
भविष्यति स ते मृत्युर्यश्च दत्तस्त्वया सुतः ८
द्रुमिलस्त्वेवमुक्तस्तु जगामाकाशमेव तु।
तेनैव रथमुख्येन दिव्येनाप्रतिगामिना ॥ ९
जगाम च पुरीं दीना माता तदहरेव ते।
मामेवमुक्त्वा भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ११०
दीप्यमानस्तपोवीर्यात्साक्षादग्निरिव ज्वलन्
वल्लकीं वाद्यमानो हि सप्तस्वरविमूर्च्छिताम्
गायनो लक्ष्यवीथीं स जगाम ब्रह्मणोन्तिकम्
शृणुष्वेदं महामात्र निबोध वचनं मम ॥१२
तथ्यं चोक्तं नारदेन त्रैलोक्यज्ञेन धीमता।
अलं बलेन वीर्येणानयेन विनयेन च ॥ १३
प्रमाणैर्वाऽपि वीर्येण तेजसा विक्रमेण च।
सत्येन चैव दानेन नान्योऽस्ति सदृशः पुमान्
विदित्वा सर्वमात्मानं वचनं श्रद्दधाम्यहम्।
क्षेत्रजोऽहं सुतस्तस्य उग्रसेनस्य हस्तिप १५
मातापितृभ्यां संत्यक्तः स्थापितः स्वेन तेजसा
उभाभ्यामपि विद्विष्टो बान्धवैश्च विशेषतः।
एतानपि हनिष्यामि यादवान्कृष्णपक्षिणः।
तदिमौ घातयित्वा तु हस्तिना गोपकिल्बिषौ
तद्गच्छ गजमारुह्य सांकुशप्रासतोमरः।
स्थिरो भव महामात्र समाजद्वारि मा चिरम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि
कंसवाक्येऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## कुवलयापीडमारणम्।

## २९

वैशम्पायन उवाच।
तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते द्वितीये समुपस्थिते।
आपूर्यत महारङ्गः पौरैर्युद्धदिदृक्षुभिः ॥ १
सचित्राष्टाश्रिचरणाः सार्गलद्वारवेदिकाः।
सगवाक्षार्धचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिताः ॥ २
प्राङ्मुखैश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदामावतंसितैः
अलंकृतैर्विराजद्भिः शारदैरिव तोयदैः ॥ ३
मञ्चागारैः सुनिर्युक्तैर्युद्धाय सुविभूषितैः।
समाजवाटः शुशुभे समेघौघ इवार्णवः ॥ ४

---

**धिगिति**। कुन्त्यादीनामप्यापद्धर्मापेक्षया पुरुषान्तरसंबन्धो न कामविकारेणेत्यर्थः। स त्वं तु सर्वासां निन्दां कुर्वन् पापतमोऽसीत्यर्थः ॥ ५ ॥ पुमान् ईश्वरः ते तव त्वत्पुत्रस्य च मयि जातस्य ॥ ८ ॥ वाद्यमानः वादयन् ॥ ११ ॥ लक्ष्यवीथीं ब्रह्मलोकमार्गं देवयानम् ॥ १२ ॥ सदृशो मयेति शेषः ॥ १४ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—

२९

**एकोनत्रिंशे कंसेभप्रमुखस्याथ मारणम्।**

**श्रीकृष्णेन कुवलयापीडनाम्नो निरूप्यते १**

**तस्मिन् इति** ॥१॥ यत्र मञ्चाः भान्ति स समाजवाटः, प्राङ्मुखैर्मञ्चागारैः शुशुभे इति पञ्चमचतुर्थतृतीयस्थानां पादानां संबन्धः। तत्र मञ्चाः कीदृशा इत्यत आह–द्वितीयेन श्लोकेन–**सचित्रेति**। चित्रसहिताः सचित्राः अष्टास्रयो अष्टकोणाश्चरणा येषां ते सचित्राष्टाश्रिचरणाः ॥ २ ॥ निर्मुक्तैः विरलतन्तुभिरन्तःपटैर्युक्तानि मञ्चागाराणि येषु स्थिताः राजदाराः सर्वं बहिःस्थं पश्यन्ति बाह्याश्च तान्न पश्यन्ति तादृशैश्चारुनिर्मुक्तैः ॥ ३ ॥ सुनिर्युक्तैः शोभना निर्युक्ताः मल्लादयो येषु तैः ॥ ४ ॥

---

१ ख. °च्यसे। २ ख. °नाकाशगामिना। ३ ख. °द्यमातन्वन्सप्तस्वरविमूर्च्छनात्। गा°। ४ ख. °तस्त्वेव उ°। ५ क. °मि हत्वा गोपकुलावुभौ।, ख. °मि हत्वा वनचरावुभौ। तद्गच्छ।

स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः पताकाभिर्निरन्तरम् ।
श्रेणीनां च गणानां च मञ्चा भान्त्यचलोपमाः
अन्तःपुरचराणां च प्रेक्षागाराण्यनेकशः ।
रेजुः काञ्चनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च
तानि रत्नौघकॢप्तानि ससानुप्रग्रहाणि च ।
रेजुर्जवनिकाक्षेपैः सपक्षा इव खे नगाः ॥ ७
तत्र चामरहारैश्च भूषणानां च सिञ्जितैः ।
वाणीनां च विचित्राणां विचित्राश्चेरुरार्चिषः ८
गणिकानां पृथङ्मञ्चाः शुभैरास्तरणाम्बरैः ।
शोभिता वारमुख्याभिर्विमानप्रतिमौजसः ९
तत्रासनानि ख्यातानि पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः
प्रकीर्णाश्च कुथाश्चित्राः सपुष्पस्तबकैर्वृताः १०
सौवर्णाः पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिताः
फलावदंशपूर्णाश्च चाङ्गेर्यः पानयोजिताः ११
अन्ये च मञ्चा बहवः काष्ठसञ्चयबन्धनाः ।
रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः १२
उत्तमागारिकाश्चैव सूक्ष्मजालावलोकिनः ।
स्त्रीणां प्रेक्षागृहा भान्ति राजहंसा इवांबरे
प्राङ्मुखश्चारुनिर्युक्तो मेरुशृङ्गसमप्रभः ।
रुक्मपत्रनिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभितः १४
प्रेक्षागारः स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया
शोभितो माल्यदामैश्च निवासकृतलक्षणः १५
तस्मिन्नानाजनाकीर्णे जनौघप्रतिनादिते ।
समाजवाटे संस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे १६
राजा कुवलयापीडः समाजद्वारि कुञ्जरः ।
तिष्ठत्विति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपाययौ १७
स शुक्ले वाससी बिभ्रच्छ्वेतव्यजनचामरः ।
शुशुभे श्वेतमुकुटः श्वेताभ्र इव चन्द्रमाः १८
तस्य सिंहासनस्थस्य सुखासीनस्य धीमतः ।
रूपमप्रतिमं दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिषः ॥ १९
ततः प्रविविशुर्मल्ला रङ्गमावलिताम्बराः ।
तिस्रश्च भागशः कक्षाः प्राविशन्बलशालिनः
ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च ।
वसुदेवसुतौ हृष्टौ रङ्गद्वारमुपस्थितौ ॥ २१
बल्गवौ वस्त्रसंवीतौ सुरचन्दनभूषितौ ।
ऊर्ध्वपीडौ स्रगापीडौ बाहुशस्त्रकृतौ यमौ
आस्फोटयंतावन्योन्यं बाहू चैवार्गलोपमौ*
तावापतन्तौ त्वरितौ प्रतिषिद्धौ वराननौ ।
तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम् ॥ २३

स मत्तहस्ती दुष्टात्मा
कृत्वा कुण्डलिनं करम् ।
चकार चोदितो यत्नं
निहन्तुं बलकेशवौ ॥ २४

ततः प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै ।
कंसस्य तन्मतं चैव जगर्हे स दुरात्मनः ॥२५
त्वरते खलु कंसोऽयं गन्तुं वैवस्वतक्षयम् ।
यो मामनेन नागेन प्रधर्षयितुमिच्छति ॥ २६
सन्निकृष्टे ततो नागे गर्जमाने तथा घने ।
सहसोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः २७
क्ष्वेडितास्फोटितरवं कृत्वा नागस्य चाग्रतः
करं ससीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा २८
विषाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः ।
बबाधे तं गजं कृष्णः पवनस्तोयदं यथा ॥ २९

स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः यस्य शिल्पवतो यदुपकरणद्रव्यं तेन चिह्निताभिः, श्रेणीनाम् अनेकजातीनामप्येकशिल्पोपजीविनां गणानाम् एकजातीनाम्॥५॥ तानीति। जवनिकाक्षेपैराक्षेपैरन्तर्द्धिकरैस्तिरोहिताधोभागानि रत्नौघैः क्लृप्तानि कृतानि प्रेक्षागाराणि ससानुप्रग्रहाणि उपरिदेशे सपताकानि खे सपक्षपर्वतवद्भान्तीत्यर्थः ॥७॥ तत्र प्रेक्षागारेषु ॥८॥ कुथाः आस्तरणविशेषाः ॥१०॥ फलावदंशाः जम्बीराद्युपदंशास्तैः पूर्णाः चाङ्गेर्यः चुक्रिकादिपानरसाः पानयोजिताः पानार्थं स्थापिताः ॥ ११ ॥ प्रस्तरणाः प्रकृष्टास्तरणाः ॥१२॥ उत्तमागारिकाः गृहोपरि गृहं यत्तदुत्तमागारं तत्र भवाः । सूक्ष्मजालद्वारावलोको यस्तद्वन्तः । प्रेक्षागृहाः प्रेक्षार्था गृहाः ॥ १३ ॥ प्राङ्मुखः प्रेक्षागारः कंसस्य चकाशे इति द्वयोः संबन्धः ॥ १४ ॥ राजा कंसः ॥१७॥ आवलितानि प्रस्फुरितानि अम्बराणि येषाम् ॥ २० ॥ क्ष्वेडितं तत्सहितेन आस्फोटितेन आस्फालनेन उपलक्षितौ ॥ २१ ॥ करं शुण्डादण्डम् ॥ २४ ॥ तालस्वनं गजं कोपायितुं करतालिकाध्वनिम् ॥२७॥ बबाधे व्याकुलं चकार ॥२९॥

१ ख. °रगतानां च । २ क. °ण्यदूरतः । रे° । ३ ख. °हासैश्च भू° । ४ क. ख. °नि मुख्यानि प° । ५ ख. °तत्रागा° । ६ ख. °ल्यदामौघैर्निवा° । ७ क. ख. °ताद्राविव चन्द्र° । * बल्गवावित्यारभ्य चैवार्गलोपमौ इत्यन्तः सार्धः श्लोकः कखपुस्तकयोर्न विद्यते । ८ ख. °स्य सोग्रतः । क° ९ क. बबाध तं ।

स हस्ताग्राद्विनिष्क्रान्तो
विषाणाग्राच्च दन्तिनः ।
विमुक्तः पदमध्याच्च
कृष्णो द्विपमपोथयत् ॥ ३०
सोऽतिकायस्तु संमूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन् ।
गजः स्वेष्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह ३१
पपात भूमौ जानुभ्यां दशनाभ्यां तुतोद च ।
मदं सुस्राव रोषाच्च घर्मापाये यथा घनः ३२
कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया
निधनाय मतिं चक्रे कंसद्विष्टेन चेतसा ॥ ३३
स तस्य प्रमुखे पादं कृत्वा कुम्भादनन्तरम् ।
दोर्भ्यां विषाणमुत्पाट्य तेनैव प्राहरत्तदा ३४
स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः ।
हन्यमानः शकृन्मूत्रं मुमोचार्तो ररास ह
कृष्णजर्जरिताङ्गस्य कुञ्जरस्यार्तचेतसः ।
कटाभ्यामति सुस्राव वेगवद्भूरि शोणितम्
लाङ्गूलं चास्य वेगेन निश्चकर्ष हलायुधः ।
शैलपृष्ठार्धसंलीनं वैनतेय इवोरगम् ॥ ३७
तेनैव गजदन्तेन कृष्णो हत्वा तु दन्तिनम् ।
जघानैकप्रहारेण गजारोहणमुल्बणम् ॥ ३८
सोर्तनादं महत्कृत्वा विदन्तो दन्तिनां वरः ।
पपात स महामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः ॥ ३९
ततस्तौ तोरणाङ्गानि प्रगृह्य रणकर्कशौ ।
गजस्य पादरक्षांश्च जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ ४०
तांश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं रङ्गस्य तावुभौ ।
नासत्यावश्विनौ स्वर्गादवतीर्णाविवेच्छया
वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनौ ।
क्ष्वेडितोत्कृष्टनादेन बाह्वोरास्फोटितेन च ।
सिंहनादैश्च तालैश्च हर्षयामासतुर्जनम् ॥ ४२
तौ दृष्ट्वा भोजराजस्तु विषसाद वृथामतिः ।
पौराणामनुरागं च हर्षं चालक्ष्य भारत ४३
तं हत्वा पुण्डरीकाक्षौ नदन्तं दन्तिनां वरम्
अवतीर्णोऽर्णवाकारं समाजं सहपूर्वजः ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कुवलयापीडवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## कंसवधः ।

## ३०

वैशम्पायन उवाच ।
प्रविशन्तं तु वेगेन मारुतावल्गिताम्बरम् ।
पूर्वजं पुरतः कृत्वा कृष्णं कमललोचनम् ॥ १
गजदन्तकृतोल्लेखं सुभुजं देवकीसुतम् ।
लीलाकृताङ्गदं वीरं मदेन रुधिरेण च ॥ २

---

अपोथयत् उच्चाकर्षणेन भूमौ घर्षितवान् ॥ ३० ॥ संमूढः व्याकुलः ररास शब्दं कृतवान् ॥ ३१ ॥ दशनाभ्यां मूलतो भग्नाभ्यां तुतोद व्यथां प्राप ॥ ३२ ॥ प्रमुखे भ्रूमध्यदेशे विषाणं दन्तम् ॥ ३४ ॥ सार्तेति सन्धिरार्षः । 'सोऽर्चीति' वा सोलोपः । महन्महान्तम् ॥ ३९ ॥ तोरणस्य बहिर्द्वारस्य अङ्गानि स्तम्भादीनि तोरणं वाहनं गजस्तस्याङ्गानीति दन्तद्वये द्वाभ्यां गृहीतमित्यन्ये ॥ ४० ॥ भोजराजः कंसः विषसाद विषादं प्राप । तत्र हेत्वन्तरं पौराणामनुरागं च कृष्णे आलक्ष्य ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

**त्रिंशेऽमुष्मिन्नथाध्याये मल्लयुद्धं परस्परम् ।**
**मल्लानां हननं प्रोक्तं कंसस्य सानुगस्य च ॥ १**

प्रविशन्तं पूर्वजं पुरतः कृत्वा प्रविशन्तमित्यन्वयः ॥ १ ॥ मदेन हस्तिसंबन्धिना लिप्तबाहुदेशमित्यर्थः ॥ २ ॥

---

१ क. एतेन व° । २ क. ख. तु कुञ्जरम् । ३ ख. °स्तौ तु गजाङ्गानि प्र° । ४ क. °डितो कृष्ट° । ५ क. °काक्षौ । ६ घ. युद्धसंमर्दयोगेन म° ।

वल्गमानं यथा सिंहं व्यूहमानं यथा घनम्।
बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्तं वसुंधराम्॥ ३
औग्रसेनिः समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम्
कृष्णं भृशायस्तमुखः सरोषं समुदैक्षत॥ ४
भुजासक्तेन शुशुभे गजदन्तेन केशवः।
चन्द्रार्धबिम्बसंसक्तो यथैकशिखरो गिरिः ५
वल्गमाने तु गोविन्दे स कृत्स्नोरगसागरः।
जनौघप्रतिनादेन पूर्यमाण इवाबभौ॥ ६
ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कंसः परमकोपनः।
चाणूरमादिशद्युद्धे कृष्णस्य सुमहाबलम्॥७
अन्ध्रं मल्लं च निकृतिं मुष्टिकं च महाबलम्।
बलदेवाय सक्रोधो दिदेशाद्रिचयोपमम्॥ ८
कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु।
योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै ९
स रोषेण तु चाणूरः कषायीकृतलोचनः।
अभ्यावर्तत युद्धार्थमपां पूर्णो यथा घनः १०
अवघुष्टे समाजे तु निःशब्दस्तिमिते जने।
यादवाः सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन्॥ ११
बाहुयुद्धमिदं रंगे सप्राश्निकमकातरम्।
क्रियाबलसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा १२
अग्निश्चातिश्रमो नित्यं विनेयः कालदर्शिभिः
करीषेण च मल्लस्य सततं सत्क्रिया स्मृता
स्थितो भूमिगतेनैव यो यथा मार्गतः स्थितः
संयुज्यतश्च पर्यायः प्राश्निकैः समुदाहृतः १४
बालो वा यदि वा वृद्धो
मध्यो वाऽपि कृशोऽपि वा।
बलस्थो वा स्थितो रंगे
ज्ञेयः कक्षान्तरेण वै॥ १५
बलतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविशारदैः।
निपातानन्तरं किंचिन्न कर्तव्यं विजानता १६
तदिदं प्रस्तुतं रंगे युद्धं कृष्णान्ध्रमल्लयोः।
बालः कृष्णो महानन्ध्रः कथं न स्याद्विचारणा
ततः किलकिलाशब्दः समाजे समवर्तत।
प्रावल्गत च गोविन्दो वाक्यं चेदमुवाच ह
अहं बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपमः।
युद्धं ममानेन सह रोचते बाहुशालिना॥१९
युद्धव्यतिक्रमः कश्चिन्न भविष्यति मत्कृतः।
न ह्यहं बाहुयोधानां दूषयिष्यामि यन्मतम्२०
योऽयं करीषधर्मश्च तोयधर्मश्च रंगजः।
कषायस्य च संसर्गः समयो ह्येष कल्पितः२१
संयमः, स्थिरता, शौर्यं,
व्यायामः, सत्क्रिया, बलम्।
रंगे च नियता सिद्धि-
रेतद्युद्धविदां मतम्॥ २२
अवैरमेवं यदयं सवैरं कर्तुमुद्यतः।
अत्र वै निग्रहः कार्यस्तोषयिष्याम्यहं जगत्
करूषेषु प्रसूतोऽयं चाणूरो नाम नामतः।
बाहुयोधी शरीरेण कर्मभिश्चारु चिन्त्यताम्
एतेन बहवो मल्ला निपातानन्तरं हताः।
रङ्गप्रतापकामेन मल्लमार्गश्च दूषितः॥ २५

---

व्यूहमानं कंसं हन्तुं विशेषतः तर्कयन्तं तं घनमिव संचरन्तम्। वा पक्षे॥ ३॥ आयस्तमुखः म्लानमुखः॥ ४॥ अन्ध्रम् अन्धयितारं चाणूरापरनामानं कृष्णाय दिदेशेति संबन्धः। बलदेवाय मुष्टिकमिति च निकृतिं कपटवन्तमित्युभयत्र संबन्धनीयम्॥ ८॥ अवघुष्टे राजाज्ञया निःशब्दा भवतेति श्राविते॥ ११॥ सप्राश्निकं सपरीक्षकम् अकातरं भीरुरहितं निर्मितं विधिना॥ १२॥ विनेयः परिहर्तव्यः॥ १३॥ स्थितः स्थितेन संयुज्यतो नियुद्ध्यतः॥ १४॥ एवं बालो बालेनेत्यादिकक्षान्तरेण स्वस्वकक्षामध्यत एवेत्यर्थः॥ १५॥ प्रकृते विशेषमाह-**तदिदमिति**॥१७॥ एवं संदिहानं जनं भगवानाश्वासयति-**अहमिति**॥१९॥ **य इति**। करीषेणोद्वर्तनं जलेन क्षालनं कषायेण गैरिकेणानुलेपनं चेति मल्लानां संप्रदाय इत्यर्थः॥ २१॥ संयमः अन्योन्यम् अपसारणम्। स्थिरता अनपसारणं व्यायामः स्थिरयोरपि हस्तपादादिचालनं सत्क्रिया चालनेऽपि मर्मास्पर्शित्वं सत्क्रियायामपि बलाधिक्येन रङ्गे नियता सिद्धिर्जयाख्या षड्भिः साधनैर्भवतीत्यर्थः॥ २२॥ यद्यपि रङ्गयुद्धमवैरं तथाप्ययम् अन्ध्रः। कंसो वा सवैरं कर्तुमुद्यतोऽतोऽस्य वधेनैव जगत्तोषयामि मा विषादं कुरुतेति भावः२३ निपातानन्तरं न हन्तव्यमिति नियममतिक्रम्य हताः॥२५॥

---

१ क. चलमा। २ क. ख. °श्चापि श्र°। ३ क. ख. °गतश्चैव यो य°। ४ क. ख. नियुद्ध्यत। ५ ख. °द्धविधिर्युधि। निपा°। ६ ख. °व्यं कदाचन। त°। ७ क. घ. °न्ध्रस्तत्र न स्या°। ८ क. करीषे°। ९ क. ख. °श्चात्र चि°।

शास्त्रसिद्धिस्तु योधानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम्
रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा ॥२६
रणे विजयमानस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती ।
हतस्यापि रणे शस्त्रैर्नाकपृष्ठं विधीयते ॥ २७
रणे ह्युभयतः सिद्धि-
र्हतस्येह घ्नतोऽपि वा ।
सा हि प्राणान्तिकी यात्रा
महद्भिः साधुपूजिता ॥ २८
अयं तु मार्गो बलतः क्रियातश्च विनिःसृतः।
मृतस्य रङ्गे कः स्वर्गो जयतो वा कुतो रतिः२९
ये तु केचित्स्वदोषेण राज्ञः पण्डितमानिनः।
प्रतापार्थे हता मल्ला मल्लहन्तुर्वधो हि सः ३०
एवं सञ्जल्पतामेव ताभ्यां युद्धं सुदारुणम् ।
उभाभ्यामभवद्घोरं वारणाभ्यां यथा वने ३१
कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सकण्टकैः ।
सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा ॥ ३२
तावुभावपि संश्लिष्टौ यथा शैलमयौ तथा ।
क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिःस्वनैः ॥ ३३
कीलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ।
शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥ ३४
जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिराभ्यां चावघट्टितैः
तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ॥ ३५
बाहुप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ।
अरज्यत जनः सर्वः सोत्कृष्टनिनदोत्थितः ३६
साधुवादांश्च मञ्चेषु घोषयन्त्यपरे जनाः ।
ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णप्रणिहितेक्षणः ।
न्यवारयत तूर्याणि कंसः सव्येन पाणिना ३७

प्रतिषिद्धेषु तूर्येषु मृदङ्गादिषु तेषु वै ।
खे सङ्गतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः ॥ ३८
युद्धयमाने हृषीकेशे पुण्डरीकनिभेक्षणे ।
स्वयमेव प्रवाद्यन्त तूर्यघोषास्तु सर्वशः ॥३९
अन्तर्धानगता देवा विमानैः कामरूपिभिः
चेरुर्विद्याधरैः सार्द्धं कृष्णस्य जयकांक्षिणः
जयस्व कृष्ण चाणूरं दानवं मल्लरूपिणम् ।
इति सप्तर्षयः सर्वे ऊचुश्चैव नभोगताः ॥ ४१
चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा देवकीसुतः।
बलमाहारयामास कंसस्याभावदर्शिवान् ४२
ततश्चचाल वसुधा मञ्चाश्चैव जुघूर्णिरे ।
मुकुटाच्चापि कंसस्य पपात मणिरुत्तमः ॥ ४३
दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूरं शीर्णजीवितम्
प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना४४
निस्सृते साश्रुरुधिरे तस्य नेत्रे सबन्धने ।
तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलम्बिते ४५
पपात स तु रङ्गस्य मध्ये निःसृतलोचनः ।
चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले ४६
देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुषः ।
सन्निरुद्धो महारङ्गः स शैलेनेव लक्ष्यते ॥ ४७
रौहिणेयो हते तस्मिंश्चाणूरे बलदर्पिते ।
जग्राह मुष्टिकं रंगे कृष्णस्तोशलकं पुनः ॥ ४८
सन्निपाते तु तौ मल्लौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ ।
समेयातां रामकृष्णौ कालस्य वशवर्तिनौ४९
निर्घातावनतौ भूत्वा रङ्गमध्ये ववल्गतुः ।
कृष्णस्तोशलमुद्यम्य गिरिशृङ्गोपमं बली ।
भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष महीतले ॥ ५०

---

तदेवाह—**शस्त्रेति** । शस्त्रं शत्रोर्विदारणं तदेव सिद्धिः । मल्लानां तु पातनमात्रं सिद्धिर्न वध इत्यर्थः ॥ २६ ॥ हन्तुः प्रयोज्यस्य प्रयोजकस्य वधो वधजं पापम् ॥ ३० ॥ ताभ्यां तयोः ॥ ३१ ॥ कङ्कटः आलिङ्गनेनावरोधसंनिपातः उभाभ्यां वक्षःसंश्लेषणावरोधः अवधूतं तयोर्बलवता अन्यस्य दूरीकरणं प्रमाथो भूमौ पातनम् उन्माथ उद्धृत्य निपातनम् ॥ ३२ ॥ शैलमयौ पाण्डशैलोपमौ कठिनौ । क्षेपणैरास्फालनैः मुष्टिभिः मुद्रिकाङ्गुलिभिर्हस्ताग्रैः वराहोद्धूतं पादयोर्मध्ये प्रविश्यापक्षेपणम् । निःस्वनः विहीनस्वनो वाचा न्यक्करणं तैः ॥३३॥ कीलवज्रनिपातः कूर्परजानुभ्यामाघातः । प्रसृष्टः अन्योन्यमङ्गुलिप्रदाः शलाका नखपाताः जत्रुदेशे अङ्गुष्ठेन कुक्षिदशे इतराङ्गुलिभिश्च सहाक्रमणं पादोद्धूतैः तिर्यक्पादप्रक्षेपेण शत्रोश्चालनं स्थानात् ॥ ३४ ॥ अवघट्टितैः तिर्यगास्फालितैः ॥ ३५ ॥ तापनीये सौवर्णमये नेत्रे नेत्रपिण्डौ ॥ ४५ ॥

---

१ क. ख. °द्धिश्च यो° । २ ख. °गे कः स्व° । ३ क. तु कश्चित्स्व° । ४ ख. °ल्पतस्तस्य ता° । ५ क. ख. °हुप्राणे° । ६ क. ख. रूपिणः । चे° । ७ क. ख. °ण्णश्च चा° । ८ क. ख. °रं पूर्णजी° । ९ ख. °रिकटोप° ।

तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य बलीयसः[1]।
मुखाद्रुधिरमत्यर्थमुज्जगाम मुमूर्षतः ॥ ५१
संकर्षणस्तु सुचिरं योधयित्वा महाबलः।
अन्ध्रमल्लं[2] महामल्लो मण्डलानि व्यदर्शयत्[3]
मुष्टिनैकेन तेजस्वी साशनिस्तनयित्नुना।
शिरस्यभ्यहनद्वीरो वज्रेणेव महागिरिम् ॥५३
स निष्पतितमस्तिष्को विस्रस्तनयनो[4] भुवि
पपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत् ॥५४
अन्ध्रतोशलकौ हत्वा कृष्णसंकर्षणावुभौ।
क्रोधसंरक्तनयनौ रंगमध्ये ववल्गतुः ॥ ५५
समाजवाटो निर्मल्लः सोऽभवद्भीमदर्शनः।
अन्ध्रे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते ५६
ये च संप्रेक्षका गोपा नन्दगोपपुरोगमाः।
भयक्षोभितसर्वाङ्गाः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥५७
हर्षजं वारि नेत्राभ्यां वर्षमाणा प्रवेपती।
प्रस्नवोत्पीडिता कृष्णं देवकी समुदैक्षत ॥५८
कृष्णदर्शनजातेन बाष्पेणाकुलितेक्षणा[6]।
वसुदेवो जरां त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते ५९
वारमुख्याश्च ताः सर्वाः कृष्णस्य मुखपङ्कजम्
पपुर्हि नेत्रभ्रमरैर्निमेषान्तरगामिभिः ॥ ६०
कंसस्याथ मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचरः।
अभवद्रोषनिर्यासः कृष्णसंदर्शनेरितः ॥ ६१
केशवायसधूमेन रोषनिश्वासवायुना।
दीप्तमन्तर्गतं तस्य हृदयं मानसाग्निना ॥ ६२
तस्य प्रस्फुरितौष्ठस्य स्विन्नालिकतलस्य वै।
कंसवक्त्रस्य[7] रोषेण रक्तसूर्यायते वपुः ॥ ६३
क्रोधरक्तान्मुखात्तस्य निःसृताः स्वेदबिन्दवः
यथा रविकरस्पृष्टा वृक्षावश्यायबिन्दवः ६४

सोऽज्ञापयत संक्रुद्धः पुरुषान्व्यायतान्बहून्
गोपावेतौ समाजौघान्निष्काम्येतां वनेचरौ
न[8] चैतौ द्रष्टुमिच्छामि विकृतौ पापदर्शनौ।
गोपानामपि मे राज्ये न कश्चित्स्थातुमर्हति।
नन्दगोपश्च दुर्मेधाः पापेष्वभिरतो मम।
आयसैर्निगडाकारैर्लोहपाशैर्निगृह्यताम् ६७
वसुदेवश्च दुर्वृत्तो नित्यं द्वेषकरो मम।
अवृद्धार्हेण दण्डेन क्षिप्रमद्यैव शास्यताम् ६८
ये चेमे प्राकृता गोपा दामोदरपरायणाः।
ह्रियन्तां गाव एतेषां यच्चास्ति वसु किञ्चन६९
एवमाज्ञापयानं तं कंसं परुषभाषिणम्।
ददर्शायस्तनयनः कृष्णः सत्यपराक्रमः ॥ ७०
क्षिप्ते पितरि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः।
ज्ञातीनां च व्यथां दृष्ट्वा विसंज्ञां चैव देवकीम्
स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः ॥
आरुरुक्षुर्महाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः ॥ ७२
रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कंसासनान्तिकम्[10]।
असज्जद्वायुनाक्षिप्तो यथा खस्थो घनाघनः
ददृशुर्न हि तं सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम्।
केवलं कंसपार्श्वस्थं ददृशुः पुरवासिनः ॥७४
सोऽपि कंसस्तथायस्तः परीतः कालधर्मणा
आकाशादिव गोविन्दं मेने तत्रागतं प्रभुम्[11]७५
स कृष्णेनायतं कृत्वा बाहुं परिघसन्निभम्।
मूर्धजेषु परामृष्टः कंसो वै रङ्गसंसदि ॥ ७६
मुकुटश्चापतत्तस्य काञ्चनो वज्रभूषितः।
शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना ७७
[12]स ग्रहग्रस्तकेशश्च कंसो निर्यत्नतां गतः।
तथैव च विसंमूढो वैकल्यं समपद्यत ॥ ७८

मस्तिष्कौ गण्डप्रदेशस्थौ मांसपिण्डौ ॥ ५४ ॥ भ्रूभेदो भ्रूद्वयान्तरं मध्यं तद्गोचरस्तत्रोद्भूतः रोषाग्नेर्निर्यासो ज्वालाकलाप इवेत्यर्थः ॥ ६१ ॥ मानसाग्निना क्रोधाग्निना केशवायसधूमेन केशवे यत् आयसं काठिन्यप्रकटीकरणं तदेव धूमवत् गमकं यस्य तेन केशवायसधूमेन रोषः द्विषोऽपकारक्षमत्वेन यस्तापः स एव निश्वासवायुर्यस्य ॥ ६२ ॥ स्विन्नालिकतलस्य प्रस्विन्नललाटस्य ॥ ६३ ॥ यथा वृक्षपत्रगताः अवश्यायबिन्दवो बालसूर्यकरस्पृष्टा भान्ति तद्वदित्यर्थः ॥ ६४ ॥ आज्ञापयत आज्ञापितवान्सान्धिरार्षः ॥ व्यायतान् अतिघोरान् ॥६५॥ पापेषु कपटेषु निगडाकारैः ॥ ६७ ॥ आयस्तनयनः क्रोधप्रसारितनेत्रः ॥ ७० ॥ घनाघनः महामेघः ॥७३॥ आयस्तः व्याकुलीकृतः ॥७५॥

१ क. °लीयसा । मु° । २ क. आन्ध्र° । ३ क. °यन् । मु° । ४ ख. °यनाननः । प° । ५ क. ख. °नमुकेन बा° । ६ क. ख. °क्षणः । व° । ७ क. ख. °स्य प्रस्° । ८ ख. नैवैतौ । ९ क. ख. नित्यमङ्गचरौ म° । १० ख. °न्तिके । अ° । ११ क. ख. °तं विभुम् । १२ क. ख. स हस्तग्रस्तके° ।

निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निःश्वसन्।
न शशाक मुखं द्रष्टुं कंसः कृष्णस्य वै तदा॥७९
विकुण्डलाभ्यां कर्णाभ्यां छिन्नहारेण वक्षसा
प्रलम्बाभ्यां च बाहुभ्यां गात्रैर्विस्रृतभूषणैः।
भ्रंशितेनोत्तरीयेण सहसावेलिताननः।
चेष्टमानः समाक्षिप्तः कंसः कार्ष्णेन तेजसा
चकर्ष च महारङ्गे मञ्चान्निष्क्रम्य केशवः।
केशेषु तं बलाद् गृह्य कंसं क्लेशार्हतां गतम्॥८२
कृष्यमाणः स कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः
समाजवाटे परिखां देहकृष्टां चकार ह॥८३
समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम्।
कृष्णो विसर्जयामास कंसदेहमदूरतः॥८४
धरण्यां मृदितः शिश्ये तस्य देहः सुखोचितः
क्रमेण विपरीतेन पांसुभिः परुषीकृतः॥८५
तस्य तद्वदनं श्यामं सुप्ताक्षं मुकुटं विना।
न विभाति विपर्यस्तं विपलाशं यथाऽम्बुजम्
असंग्रामहतः कंसः स बाणैरपरिक्षतः।
केशग्राहान्निरस्तासुर्वीरमार्गान्निराकृतः ८७
तस्य देहे प्रकाशन्ते सहसा केशवार्पिताः।
मांसच्छेदघनाः सर्वे नखाग्रा जीवितच्छिदः॥
तं हत्वा पुण्डरीकाक्षः प्रहर्षाद्द्विगुणप्रभः।
ववन्दे वसुदेवस्य पादौ निहतकण्टकः॥८९
मातुश्च शिरसा पादौ निपीड्य यदुनन्दनः।
साऽसिञ्चत्प्रस्रवोत्पीडैः कृष्णमानन्दनिःसृतैः
यादवांश्चैव तान्सर्वान्यथास्थानं यथावयः।
पप्रच्छ कुशलं कृष्णो दीप्यमानः स्वतेजसा
बलदेवोऽपि धर्मात्मा कंसभ्रातरमूर्जितम्।
बाहुभ्यामेव तरसा सुनामानमपोथयत्॥९२
तौ जितारी जितक्रोधौ चिरविप्रोषितौ व्रजे
स्वपितुर्भवनं वीरौ जग्मतुर्हृष्टमानसौ॥९३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवधे त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

## कंसयोषितां विलापः।

## ३१

वैशम्पायन उवाच
भर्तारं पतितं दृष्ट्वा क्षीणपुण्यमिव ग्रहम्।
कंसपत्न्यो हतं कंसं समन्तात्पर्यवारयन्॥१
तं महीशयने सुप्तं क्षितिनाथं गतायुषम्।
भार्याः स्म दृष्ट्वा शोचन्ति मृग्यो मृगपतिं यथा
हा हताः स्म महाबाहो हताशा हतबांधवाः
वीरपत्न्यो हते वीरे त्वयि वीर व्रतप्रिये॥३
इमामवस्थां पश्यन्त्यः पश्चिमां तव नैष्ठिकीम्
कृपणं राजशार्दूल विलपामः सबान्धवाः॥४

---

विस्रृतभूषणैः भ्रष्टाभरणैः॥८०॥ उत्तरीयेण वलितं वेष्टितम् आननं कण्ठो यस्य॥८१॥ मञ्चान्निष्क्रम्य अधस्तान्निपात्य तदुपरि स्वयं च निपत्य केशेषु तं गृह्य चकर्ष८२ देहकृष्टां देहेन लाङ्गलेनेव कर्षिताम्॥८३॥ **गतायुषमिति**। गतासोरपि कर्षणं मित्राणां सन्तोषार्थमित्यर्थः॥८४॥ विपरीतेन शूरानर्हेण क्रमेण प्रकारेण॥८५॥ विपर्यस्तं कन्धरायास्त्रुटितत्वेनान्यथाभूतम्॥८६॥ **असंग्रामेति**। स्वर्गः कीर्तिश्च वीरमार्गः तदुभयभ्रष्ट इत्यर्थः॥८७॥ अथाप्यस्य सद्गतिरस्तीत्याह—**तस्येति**॥८८॥ प्रस्रवोत्पीडैः प्रस्रवस्यातिभरैः॥९०॥ कंसभ्रातरं द्रुमिलोत्पन्नमेव कंसमित्रीभूतं न त्वौग्रसेनिम्॥९२॥ **ताविति**। बाह्याभ्यन्तरशत्रुजयिनाविति विशेषणद्वयार्थः॥९३॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

३१

**अथैकत्रिंशे त्वध्याये विलापः कंसयोषिताम्।**
**मातुश्च मन्त्रणं पत्युर्विज्ञप्तिः कंसघातिनः॥**
भर्तारं पतितं दृष्ट्वेत्यादि। स्पष्टार्थः॥१॥

---

१ ख. °सा चालि°। २ ख. °त्वा विक्रीड्य च। ३ क. घ. संख्ये त°। ४ ख. कंठग्र°। ५ घ. °न्ति हतं मृगपतीन्य°।

छिन्नमूलाः स्म संवृत्ताः
परित्यक्तास्त्वया विभो।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने
नाथेऽस्माकं महाबले ॥ ५
को नः कोपपरीताङ्गी रतिसंसर्गलालसाः।
लता इव विचेष्टन्तीः शयनीयानि नेष्यति[1] ६
इदं तेऽसदृशं सौम्य हृद्यनिश्वासमारुतम्।
दहत्यर्को मुखं कान्तं निस्तोयमिव पङ्कजम्
इमे ते श्रवणे शून्ये न शोभेते विकुण्डले।
शिरोधरायां संलीने सततं कुण्डलप्रिये ॥ ८
क्व ते स मुकुटो वीर सर्वरत्नविभूषितः।
अत्यर्थं शिरसो लक्ष्मीं यो दधारार्कसप्रभाम्[2]
अनेन[3] हि कलत्रेण तवान्तःपुरशोभिना।
कथं दीनेन कर्तव्यं त्वयि लोकान्तरं गते १०
ननु नाम स्त्रियः साध्व्यः प्रियभोगेष्ववञ्चिताः
पतीनामपरित्याज्याः स त्वं नस्त्यज्य गच्छसि
अहो कालो महावीर्यो येन पर्यायकर्मणा।
कालतुल्यः सपत्नानां त्वं क्षिप्रमपनीयसे॥१२
वयं दुःखेष्वनुचिताः सुखेष्वेव त्वयैधिताः।
कथं वत्स्याम विधवा नाथ कार्पण्यमाश्रिताः
स्त्रीणां चारित्रलुब्धानां पतिरेकः परा गतिः
त्वं हि नः सा गतिश्छिन्ना
कृतान्तेन बलीयसा॥
वैधव्येनाभिभूताः स्मः शोकसंतप्तमानसाः।
रोदितव्ये[4]ऽह्रदे मग्नाः क्व गच्छामस्त्वया विना
सह त्वया गतः कालस्त्वदङ्के क्रीडितं कृतम्[5]
क्षणेन[6] तद्विहीनाः स्म अनित्या हि नृणां गतिः
अहो[7] बलविहीनाः स्म विपन्ने त्वयि मानद।
एकदुष्कृतकारिण्यः सर्वा वैधव्यलक्षणाः१७
त्वया स्वर्गप्रतिच्छन्दैर्लालिताः स्म रतिप्रियाः
त्वयि कामवशाः सर्वाः
स नस्त्यज्य क्व गच्छसि १८
अस्माकं त्वमनाथानां नाथो ह्यसि सुरोपम।
आसां विलपमानानां कुररीणामिव प्रभो।
प्रतिवाक्यं जगन्नाथ दातुमर्हसि मानद[8] ॥ १९
एवमार्तकलत्रस्य शाम्यमानेषु बन्धुषु[9]।
गमनं ते महाभाग दारुणे प्रतिभाति नः २०
नूनं कान्ततराः कान्त परलोके वरस्त्रियः।
यतस्त्वं प्रस्थितो वीर विहायेमं गृहे जनम्२१
किं नु ते कारणं वीर भार्यास्वेतासु भूरिद[10]।
आर्तनादं रुदन्तीषु यन्मोहान्नावबुध्यसे ॥ २२
अहो निष्करुणा यात्रा नराणामौर्ध्वदेहिकी।
यत्परित्यज्य दारान्स्वान्निरपेक्षा व्रजन्ति हि[11]
अपतित्वं स्त्रियाः श्रेयो न तु शूरः[12] पतिः स्त्रियाः
स्वर्गस्त्रीणां प्रियाः शूरास्तेषामपि च ताःप्रियाः
अहो क्षिप्रमदृश्येन नयतां त्वां रणप्रियम्[13]।
प्रहृतं नः कृतान्तेन सर्वासामन्तरात्मसु ॥ २५
हत्वा जरासन्धबलं जित्वा यक्षांश्च संयुगे।
कथं मानुषमात्रेण हतस्त्वं जगतीतले[14] ॥ २६
इन्द्रेण सह[15] संग्रामं कृत्वा सायकविग्रहम्।
अमर्त्यैरजितो युद्धे मर्त्येनासि कथं हतः ॥२७
त्वया सागरमक्षोभ्यं विक्षोभ्य शरवृष्टिभिः।
रत्नसर्वस्वहरणं जित्वा पाशधरं कृतम् २८
त्वया पौरजनस्यार्थे मन्दं वर्षति वासवे ॥
सायकैर्जलदाञ्जित्वा बलाद्वर्षं प्रवर्तितम् २९
प्रतापावनताः सर्वे तव तिष्ठन्ति पार्थिवाः।
प्रेषयन्तो वरार्हाणि रत्नान्याच्छादनानि च
तवैवं देवकल्पस्य दृष्टवीर्यस्य शत्रुभिः।
कथं प्राणान्तकं घोरमीदृशं भयमागतम् ॥३१
प्राप्ताः स्मो विधवाशब्दं त्वयि नाथे निपातिते
अप्रमत्ताः प्रमत्तेन कृतान्तेन निराकृताः ॥३२
यद्येवं नाथ गन्तव्यं यदि वा विस्मृता वयम्
वाङ्मात्रेणापि यामीति वक्तव्ये कः परिश्रमः
प्रसीद नाथ भीताः स्म पादौ ते याम मूर्द्धभिः
अलं दूरप्रवासेन निवर्तस्व[16] नराधिप ॥ ३४
अहो वीर कथं शेषे निषण्णस्तृणपांसुषु।
शयानस्य हि ते भूमौ कस्मान्नोद्विजते वपुः

१ घ. °नि चेष्यते। इ°। २ क. ख. °प्रभः। अ°। ३ क. °न स्त्रीसहस्रेण त°। ४ क. ख. °दितव्ये ध्रुवे म°। ५ क. ख. गतम्। ६ क. ख. °णेनाद्य विहीनाः स्म। ७ क. ख. °हो बत वि°। ८ क. °सि सुहृत्तम। आ°। ९ क. ख. °हाराज दा°। १० क. ख. °रिषु। आ°। ११ ख. °न्ति ह। अ°। १२ क. °रः प्रियः पतिः। १३ क. °प्रिय। प्र°। १४ क. ख. °तीपते। इ°। १५ ख. °ह गङ्गायां कृ°। १६ क. ख. र्तं मधुराधि°।

केन सुप्तप्रहारोऽयं दत्तोऽस्माकमतर्कितः ।
प्रदत्तं केन सर्वासु नारीष्वेवं सुदारुणम् ॥३६
रुदितानुशयो नार्या जीवन्त्याः परिदेवनम्
किं वयं सति गन्तव्ये सह भर्त्रा रुदामहे ३७
एतस्मिन्नन्तरे दीना कंसमाता प्रवेपती ।
क्व मे वत्सः क्व मे पुत्र इति रोरूयती भृशम्
साऽपश्यन्निहतं पुत्रं निष्प्रभं शशिनं यथा ।
हृदयेन विदीर्णेन भ्राम्यमाणा पुनः पुनः ॥३९
पुत्रं समभिवीक्षन्ती हा हताऽस्मीति वाशती
स्नुषाणामार्तनादेन विललाप रुरोद च ॥४०
सा तस्य वदनं दीनमुत्संगे पुत्रगृद्धिनी ।
कृत्वा पुत्रेति कारुण्यं विललापार्तया गिरा
पुत्र शूरव्रते युक्त ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन ।
किमिदं त्वरितं वत्स प्रस्थानं कृतवानसि४२
प्रसुप्तश्चातिविवृते किं पुत्र नियमं विना ।
वत्स नैवंविधा भूमौ शेरते कृतलक्षणाः ४३
रावणेन पुरा गीतः श्लोकोऽयं साधुसंमतः ।
बलज्येष्ठेन लोकेषु राक्षसानां समागमे ॥ ४४
"एवमूर्जितवीर्यस्य मम देवनिघातिनः ।
बान्धवेभ्यो भयं घोरं दुर्निवार्यं भविष्यति"
तथैव ज्ञातिलुब्धस्य मम पुत्रस्य धीमतः ।
ज्ञातिभ्यो भयमुत्पन्नं शरीरान्तकरं महत् ४६
सा पतिं भूपतिं वृद्धमुग्रसेनं विचेतसम् ।
उवाच रुदती वाक्यं विवत्सा हरिणी यथा
एह्येहि राजन्क्षुद्रात्मन्पश्य पुत्रं जनेश्वरम् ।
शयानं वीरशयने वज्राहतमिवाचलम् ॥ ४८
अस्य कुर्मो महाराज निर्याणसदृशीं क्रियाम्
प्रेतत्वमुपपन्नस्य गतस्य यमसादनम् ॥४९॥
वीरभोग्यानि राज्यानि वयं चापि पराजिताः
गच्छ विज्ञाप्यतां कृष्णः कंससत्कारकारणात्
मरणान्तानि वैराणि शान्ते शांतिर्भविष्यति
प्रेतकार्याणि कार्याणि मृतः किमपराध्यते ॥
एवमुक्त्वा पतिं भोजं केशानारुज्य दुःखिता
पुत्रस्य मुखमीक्षन्ती विललापैव सा भृशम् ॥
इमास्ते किं करिष्यन्ति
भार्या राजन् सुखोषिताः ।
त्वां पतिं सुपतिं प्राप्य
या विपन्नमनोरथाः ॥ ५३
इमं ते पितरं वृद्धं कृष्णस्य वशवर्तिनम् ।
कथं द्रक्ष्यामि शुष्यन्तं कासारसलिलं यथा ॥
अहं ते जननी पुत्र किमर्थं नाभिभाषसे ।
प्रस्थितो दीर्घमध्वानं परित्यज्य प्रियं जनम् ॥
अहो वीराल्पभाग्यायाः कृतान्तेनाभिवर्तिना
आच्छिद्य मम संदायो नीयसे नयकोविदैः
दानमानगृहीतानि तृप्तान्येतानि तैर्गुणैः ।
रुदन्ति तव भृत्यानां कुलानि कुलयूथपं ॥
उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो महाबल ।
त्राहि दीनं जनं सर्वं पुरमन्तःपुरं यथा ॥ ५८
रुदतीनां भृशार्तानां कंसस्त्रीणां सुविस्तरम् ।
जगामास्तं दिनकरः संध्यारागेण रञ्जितः ॥५९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसस्त्रीविलापे
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

## उग्रसेनाभिषेकः ।

## ३२

वैशम्पायन उवाच ।

उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ । पुत्रशोकाभिसंतप्तो विषपीत इव श्वसन् ॥ १

रुदिते अनुशयः आशयोऽन्तःकरणं रुदितानुशयः ॥ ३७ ॥
इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः॥३१

—

३२

द्वात्रिंशेऽस्मिंस्तथाध्याये राज्ञो विज्ञप्तिरुच्यते।
उग्रसेनाभिषेकश्च कंससंस्कारपूर्वकः ॥१॥

उग्रसेनः विषपीतः पीतविषः ॥ १ ॥

१ क. ख. प्रहृतं के° । २ क. ख. °ज्या° । ३ क. °विद । ४ क. °नि हृष्टान्येता° । ५ क. ख. °नि ते गु° । ६ क. °थपः । उ° । ७ ख. एवं विलपतीनां तु कंस° ।

स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम् ।
पश्चानुतापाद्ध्यायन्तं कंसस्य निधनाविलम्
कंसनारीविलापांश्च श्रुत्वा स करुणान्बहून्
गर्हमाणस्तथात्मानं तस्मिन्यादवसंसदि ॥ ३
अहो मयातिबाल्येन[1] रोषाद्दोषानुवर्तिना ।
वैधव्यं स्त्रीसहस्राणां कंसस्यास्य वधे कृतम्
कारुण्यं खलु नारीषु प्राकृतस्यापि जायते ।
एवमार्तं रुदन्तीषु मया भर्तरि पातिते ॥५॥
परिदेवितमात्रेण शोकः खलु विधीयते ।
कृतान्तस्यानभिज्ञानां स्त्रीणां कारुण्यसंभवः
कंसस्य[2] हि वधः श्रेयान्प्रागेवाभिमतो मम ।
सतामुद्वेजनीयस्य पापेष्वभिरतस्य च ॥ ७
लोके पतितवृत्तस्य परुषस्याल्पमेधसः ।
आक्लिष्टं मरणं श्रेयो न विद्विष्टस्य जीवितम्
कंसः पापपर[3]श्चैव साधूनाम[4]प्यसंमतः ।
धिक्छन्दपतितश्चैव जीविते चास्य का दया
स्वर्गे तपोभृतां वासः फलं पुण्यस्य कर्मणः ।
इहापि यशसा युक्तः स्वर्गस्थै[5]रवधार्यते ॥१०॥
यदि स्युर्निर्वृता लोकाः स्युश्च[6] धर्मपराः प्रजाः
नरा धर्मप्रवृत्ताश्च न राज्ञामनयः स्पृशेत् ॥ ११
निग्रहे दुष्टवृत्तीनां कृतान्तः कुरुते[7] फलम् ।
इष्टधर्मेषु लोकेषु कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥१२
अतीव देवा रक्षन्ति नरं धर्मपरायणम् ।
कर्तारः सुलभा लोके दुष्कृतस्य हि कर्मणः ॥
हतः सोऽयं मया कंसः साध्वेतदवगम्यताम्।
मूलच्छेदः कृतस्तस्य विपरीतस्य कर्मणः १४
तदेष सान्त्व्यतां सर्वः शोकार्तः प्रमदाजनः ।
पौरांश्च पुर्यां श्रेण्यश्च सान्त्वयन्तां सर्व एव हि
एवं ब्रुवति गोविन्दे विवेशावनताननः ।
उग्रसेनो यदून्गृह्य पुत्रकिल्बिषशङ्कितः ॥१६॥
स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुसंसदि ।
बाष्पसांदिग्धया वाचा दीनया सज्जमानया ॥
पुत्रो निर्यापितः[8] क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः
स्वधर्माधिगता कीर्तिर्नाम विश्रावितं भुवि ॥
स्थापितं सत्सु माहात्म्यं शङ्किता रिपवः कृताः
स्थापितो यादवो वंशो गर्विताः सुहृदः कृताः

सामन्तेषु नरेन्द्रेषु
प्रतापस्ते प्रकाशितः ।
मित्राणि त्वां भजिष्यन्ति
संश्रयिष्यन्ति पार्थिवाः ॥२०॥
प्रकृतयोऽनुयास्यन्ति
स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः ।
संधिविग्रहमुख्यास्त्वां
प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः ॥२१॥

हस्त्यश्वरथसंपूर्णं पदातिगणसंकुलम् ।
प्रतिगृहाण कृष्णेदं कंसस्य बलमव्ययम् २२
धनं धान्यं च यत्किञ्चिद्रत्नान्याच्छादनानि च
प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पूरुषाः
स्त्रियो हिरण्यं यानानि यदन्यद्[9]वसु किंचन ।
एवं हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे ॥
प्रतिष्ठितायां मेदिन्यां यदूनां शत्रुसूदन ।
त्वं गतिश्चागतिश्चैव यदूनां यदुनन्दन ॥२५॥
कृणुष्व वदतां वीर कृपणानामिदं वचः ।
अस्य त्वत्कोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः ॥
तव प्रसादाद्गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह ।
तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य विपन्नस्यौर्ध्वदेहिकम्
सस्नुषोऽहं सभार्यश्च चरिष्यामि मृगैः सह ।
प्रेतसत्कारमात्रेण कृते बान्धवकर्मणि ॥२८॥
आनृण्यं लौकिकं कृष्ण गताः किल भवन्ति हि
तस्याग्निं पश्चिमं कृत्वा चितिस्थाने विधानतः
तोयप्रदानमात्रेण कंसस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥
एतत्ते[10] कृष्ण विज्ञाप्यं स्नेहोऽत्र मयि युज्यताम्
प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमां क्रियाम्
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः
प्रत्युवाचोग्रसेनं वै सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥३१

पश्चानुतापात्पश्चात्तापाच्छान्दसस्तकारलोपः ॥ २ ॥ तस्मिन् तस्याम् ॥ ३ ॥ स्त्रीणां परिदेवितमात्रेण कृतान्तस्यापि शोको विधीयत इति योजना ॥ ६ ॥ स्वर्गस्थैस्तुल्य इति शेषः ॥१०॥ राज्ञां नृपान् ॥ ११ ॥ कुरुते ददाति ॥१२॥ विपरीतस्य पापस्य ॥१४॥ प्रतीच्छन्तु अङ्गीकुर्वन्तु ॥२३॥

१ ख. °न नवरोषानुवर्तिना । २ ख. °स्य निधनः श्रे° । ३ क. ख. °परश्चिश्चै° । ४ क. °धूनां चाप्य° ५ घ. °र्गस्थैरुपयुज्यते । ६ ख. स्युः स्वकर्मपरायणाः । न° । ७ ख. °ते वधम् । ८ क. ख. °र्यातितः क्रोधो नीतो या° । ९ क. ख. यच्चान्यद्व° । १० क. ख. °तन्मे कृ° ।

कालयुक्तमिदं तात तवैतद्यत्प्रभाषितम् ।
सदृशं राजशार्दूल वृत्तस्य च कुलस्य च ॥३२
यत्त्वमेवंविधो ब्रूषे गतेऽर्थे दुरतिक्रमे ।
प्राप्स्यते नृपसत्कारं कंसः प्रेतगतोऽपि सन् ।
कुले महति ते जन्म वेदान्विदितवानसि ।
कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा ॥३४॥
स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव
पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते ॥ ३५॥
श्रुतवन्तोऽर्थवन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः ।
ब्रह्मण्या नयसंपन्ना दीनानुग्रहकारिणः ॥३६
लोकपालसमास्तात महेन्द्रसमविक्रमाः ।
क्षितिपालाः कृतान्तेन नीयन्ते नृपसत्तम ॥
धार्मिकाः सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः ।
क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निधनं गताः ॥
स्वयमात्मकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥
एषा ह्यन्तर्हिता माया दुर्विज्ञेया सुरैरपि ।
यथाऽयं मुह्यते लोको ह्यत्र कर्मैव कारणम् ॥
कालेनाभिहतः कंसः पूर्वकर्मप्रचोदितः ।
न ह्यहं कारणं तत्र कालः कर्म च कारणम् ॥
सूर्यसोममयं तात कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ।
कालेन निधनं गत्वा कालेनैव च जायते ॥
स कालः सर्वभूतानां निग्रहानुग्रहे रतः ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि कालस्य वशगानि वै
स्वदोषेणैव दग्धस्य सूनोस्तव नराधिप ।
नाहं वै कारणं तत्र कालस्तत्र च कारणम् ॥
अथवाऽहं भविष्यामि कारणं नात्र संशयः
परायणपरः कालः किं करिष्यत्यकारणः ॥

कालस्तु बलवान्राजन्दुर्विज्ञेया हि सा गतिः
परावरविशेषज्ञा यां यान्ति समदर्शिनः ॥
गतिः कालस्य सा येन सर्वं कालस्य गोचरम्
ब्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयतां वचः ॥४७॥
न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः
न चापि राज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः
किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव ॥
व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ।
अहं स एव गोमध्ये गोपैः सह वनेचरः ॥
प्रीतिमान्विचरिष्यामि कामचारी यथा गजः
एतावच्छतशोऽप्येवं सत्येनैतद्ब्रवीमि ते ।
न मे कार्यं नृपत्वेन विज्ञाप्यं क्रियतामिदम् ॥
भवान्राजाऽस्तु मान्यो मे यदूनामग्रणीः प्रभुः
विजयायाभिषिच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम ॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा
मया निसृष्टं राज्यं स्वं चिराय प्रतिगृह्यताम्

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नोत्तरं प्रत्यभाषत ।
व्रीडिताधोमुखं तं तु राजानं यदुसंसदि ॥ ५४
अभिषेकेन गोविन्दो योजयामास धर्मवित् ।
स बद्धमुकुटः श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः ।
चकार सह कृष्णेन कंसस्य निधनक्रियाम् ॥
तं सर्वे यादवा मुख्या राजानं कृष्णशासनात्
अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम् ॥५६
रजन्यां तु निवृत्तायां ततः सूर्ये विराजिते ।
पश्चिमं कंससंस्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः ॥५७
शिबिकायामथारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम् ।
नैष्ठिकेन विधानेन चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम् ॥

दृश्यते भोगेनानुभूयते ॥ ३९ ॥ परायणपरः परस्य कर्मणोऽयनं गमनं तत्परस्तदधीनः कालोऽपि कर्माधीनः तेन स्वकर्मणैवायं मृत इत्यर्थः । अहं तु निमित्तमात्रं शस्त्रवदिति भावः । यथोक्तम्—

"स्वकर्मैव नरं हन्ति न शस्त्ररिपुमृत्यवः ।
न भेतव्यं न वा लभ्यं चोरहत्यावलम्बते"

इति ॥ ४५ ॥ सा गतिः या कालात्परा मोक्षरूपा ॥ ४६ ॥ येन कर्मणा तत् वचः वचनप्रतिपाद्यं कर्मानुष्ठीयताम् ॥ ४७ ॥ काङ्क्षितः काङ्क्षा सञ्जाता यस्य तादृशः ॥ ४८ ॥ व्रीडितश्चासौ अधोमुखश्च तम् ॥ ५४ ॥ पुरीमार्गे पुरप्रवेशमार्गे ॥ ५६ ॥

१ ख. °तत्प्रतिभा° । १ क. ख. °विधं ब्रू° । ३ क. ख. °न्म वेद्यं विदित° । ४ ख. स्वयमेव कृ° । ५ ख. प्राप्तकालस्य तत्कर्म दृश्यते खलु देहिनः । ए° । ६ क. ख. कालस्तु सर्वभू° । ७ क. ख. तु । ८ ख. °स्य ये सिद्धा मोक्षतत्त्वस्य पारगाः । ब्र° । ९ ख. °नुगो वि° । १० क. घ. °था खगः । ११ क. ख. °ज्ये राजस° । १२ ख. °नो महीपतिः । च° ।

स नीतो यमुनातीरमुत्तमं नृपतेः सुतः।
सत्कृतश्च यथान्यायं नैधनेन चिताग्निना ॥
तथैव भ्रातरं चास्य सुनामानं महाभुजम्।
संस्कारं लम्भयामासुः सह कृष्णेन यादवाः॥
ताभ्यां ते सलिलं चक्रुर्वृष्ण्यन्धकपुरोगमाः।
अक्षय्यं चास्तु प्रेतेभ्यो भाषमाणाः पुनःपुनः ॥
हिरण्यस्य सुवर्णस्य दश कोटीस्तथा हरिः।
गावो रत्नानि वासांसि ग्रामान्नगरसंमतान्
ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः।
अक्षय्यं चापि विप्रेभ्यो भाषमाणाः पुनःपुनः *
तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः
पुरस्कृत्योग्रसेनं वै विविशुर्मथुरां पुरीम् ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उग्रसेनाभिषेककंससंस्कारकथने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## रामकृष्णयोर्विद्यासंपादनम्।

## ३३

वैशम्पायन उवाच।
स कृष्णस्तत्र बलवान्रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् १
प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया ज्वलन्।
चचार मथुरां वीरः स रत्नाकरभूषणाम् ॥२
कस्यचित्त्वथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ ।
गुरुं सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ॥३
धनुर्वेदचिकीर्षार्थमुभौ तावभिजग्मतुः।
निवेद्य गोत्रं स्वाध्यायमाचारेणाभ्यलंकृतौ ॥
शुश्रूषू निरहंकारावुभौ रामजनार्दनौ।
प्रतिजग्राह तौ काश्यो विद्याः प्रादाच्च केवलाः
तौ च श्रुतिधरौ वीरौ यथावत्प्रतिपद्यताम्।
अहोरात्रैश्चतुष्षष्ट्या साङ्गवेदमधीयताम् ॥६॥
चतुष्पादं धनुर्वेदं शस्त्रग्रामं ससंग्रहम्।
अचिरेणैव कालेन गुरुस्तावभ्यशिक्षयत् ॥ ७
अतीवामानुषीं मेधां चिन्तयित्वा तयोर्गुरुः।
मेने तावागतौ वीरौ देवौ चन्द्रदिवाकरौ ॥
ददर्श च महात्मानावुभौ तावपि पर्वसु।
पूजयन्तौ महादेवं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम्
गुरुं सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्योऽभ्यभाषत
गुर्वर्थं किं ददानीति रामेण सह भारत ॥१०
तयोः प्रभावं स ज्ञात्वा गुरुः प्रोवाच हृष्टवान्[३]
पुत्रमिच्छाम्यहं दत्तं यो मृतो लवणाम्भसि ॥
पुत्र एकोऽपि[४] मे जातः स चापि तिमिना हतः
प्रभासे तीर्थयात्रायां तं मे त्वं पुनरानय ॥१२
तथेत्येवाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमते स्थितः।
गत्वा समुद्रं तेजस्वी विवेशान्तर्जलं हरिः ॥
समुद्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा दर्शयामास स्वं[५] तदा।
तमाह कृष्णः क्वासौ भोः पुत्रः सांदीपनेरिति॥
समुद्रः प्रत्युवाचेदं दैत्यः पञ्चजनो महान्।
तिमिरूपेण तं बालं ग्रस्तवानिति माधव[६] ॥१५

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२

३३

त्रयस्त्रिंशे त्वथाध्याये
विद्यां पुत्रं गुरोर्मुखात्।
लब्ध्वा तस्मै वरं दत्त्वा
प्रत्यायाताविर्तीर्यते ॥ १ ॥

स कृष्ण इति ॥ १ ॥ काश्यं काशिदेशजम् ॥३॥ श्रुतिधरौ श्रवणमात्रग्राहिणौ ॥ ६ ॥ चतुष्पादं दीक्षासंग्रहसिद्धिप्रयोगाख्यैश्चतुर्भिः पादैरुपेतम्। ससंग्रहं सरहस्यम्॥७॥ तयोश्चन्द्रसूर्यत्वमनुमाय तदाराध्यत्वेन कृष्णं प्रत्यक्षेणैव ददर्शेत्याह-ददर्श चेति॥ ९ ॥ तं मृतं मे॥ १२ ॥

१ क. ख. सत्कारं। * हिरण्यस्येति श्लोकद्वयं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ख. °सः। ३ क. ख. °ष्टवत्। ४ क. ख. °को हि मे। ५ क. ख. °स तं त°। ६ ख. भारत।

उन्मथ्य सलिलादस्मादग्रस्तवानिति भारत‡।
स पञ्चजनमासाद्य जघान पुरुषोत्तमः।
न चाससाद तं बालं गुरुपुत्रं तदाऽच्युतः ॥१६
स तु पञ्चजनं हत्वा शंखं लेभे जनार्दनः।
यस्तु देवमनुष्येषु पाञ्चजन्य इति श्रुतः ॥१७॥
ततो[२] वैवस्वतपुरं जगाम पुरुषोत्तमः।
ततो यमोऽभ्युपागम्य ववन्दे तं गदाधरम् *
तमुवाचाथ[३] वै कृष्णो गुरुपुत्रः प्रदीयताम्।
तयो[४]स्तत्र तदा युद्धमासीद्घोरतरं महत् ॥
ततो वैवस्वतं[५] घोरं निर्जित्य पुरुषोत्तमः।
आससाद च तं बालं गुरुपुत्रं तदाऽच्युतः *॥
आनिनाय गुरोः पुत्रं चिरं नष्टं यमक्षयात्।
ततः सान्दीपनेः पुत्रः प्र[६]भावादमितौजसः ॥
दीर्घकालगतः प्रेतः पुनरासीच्छरीरवान्।
तदशक्यमचिन्त्यं च दृष्ट्वा सुमहदद्भुतम् ॥२२
सर्वेषामेव भूतानां विस्मयः समजायत।
स गुरोः पुत्रमादाय पाञ्चजन्यं च माधवः।
रत्नानि च महार्हाणि पुनरायाज्जगत्प्रभुः ॥
राक्षसैस्तस्य[७] रत्नानि महार्हाणि बहूनि च।
आनाय्यावेदयामास गुरवे वासवानुजः ॥२४
गदापरिघयुद्धेषु सर्वास्त्रेषु च तावुभौ।
अचिरान्मुख्यतां प्राप्तौ सर्वलोके धनुर्भृताम्
ततः सान्दीपनेः पुत्रं तद्रूपवयसं तदा।
प्रादात्कृष्णः प्रतीतात्मा सह रत्नैरुदारधीः ॥
चिरनष्टेन पुत्रेण काश्यः सान्दीपनिस्तदा।
समेत्य मुमुदे राजन्पूजयन्रामकेशवौ ॥२७॥
कृतास्त्रौ तावुभौ वीरौ गुरुमामन्त्र्य सुव्रतौ।
आयातौ मथुरां भूयो वसुदेवसुतावुभौ ॥२८
ततः प्रत्युद्ययुः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ।
सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ॥२९॥
श्रेण्यः प्रकृतयश्चै[८]व मान्त्रिणः सपुरोहिताः।
सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत ॥३०॥
नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त
तुष्टुवुश्च जनार्दनम्।
रथ्याः पताकामालिन्यो
भ्राजन्ते स्म समन्ततः
प्रहृष्टमुदितं सर्वमन्तःपुरमशोभत।
गोविन्दागमनेऽत्यर्थं यथैवेन्द्रमहे तथा ॥३२॥
मुदिताश्चा[१०]थ गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः[११]।
तत्रासीत्प्रथिता गाथा यादवानां प्रियङ्कराः
"गोविन्दरामौ संप्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ
स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं सह बान्धवैः"
न तत्र कश्चिद्दीनो वा मलिनो वा विचेतनः।
मथुरायामभूद्राजन्गोविन्दे समुपस्थिते ॥३५॥
वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः
नरनारीगणाः सर्वे भेजिरे मनसः सुखम् ॥
शिवाश्च वाताः प्रववुर्विरजस्का दिशो दश।
दैवतानि च हृष्टानि सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ३७
यानि लिङ्गानि लोकस्य चासन्कृतयुगे पुरा
तानि सर्वाण्यदृश्यन्त पुरीं प्राप्ते जनार्दने ॥
ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनः।
हरियुक्तेन गोविन्दो विवेश मथुरां पुरीम् ॥
विशन्तं मथुरां रम्यां तमुपेन्द्रमरिन्दमम्।
अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव ॥४०॥
वसुदेवस्य भवनं ततस्तौ यदुनन्दनौ।
प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥
परेण तेजसोपेतौ सुरे[१२]न्द्राविव रूपिणौ।
तावायुधानि विन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ
मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ।
उद्यानेषु विचित्रेषु फलपुष्पावनामिषु ॥ ४३ ॥

---

रत्नानि च वैवस्वतेन दत्तानि ॥ २३ ॥ तस्य वैवस्वतस्य दासैरिति शेषः ॥ २४ ॥ यदुनन्दनौ यदूनामानन्दयितारौ प्रत्युद्ययुः संमुखमागमन् ॥ २९ ॥

---

‡ उन्मथ्येतिश्लोकार्धं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति। १ क. ख. यः स देव॰। २ क. ततो जगाम भगवान् वैवस्वतपुरं महत्। शंखमापूर्य गोविंदस्त्रासयामास वै जनम्। ततो वै॰। * एतदग्रे–किमागमनकृत्यं ते किं करोमीति चाब्रवीत् इत्यधिकं खपुस्तके। ३ ख. ॰थ गोविन्दो गु॰। ४ ख. श्रुत्वा न तद्वचो युद्धमकरोत्सुमहत्तदा। ततो वै॰। ५ ख. ॰तं देवं नि॰। * आससादेति पद्यार्धं कपुस्तके नास्ति। ६ ख. प्रसादा॰। ७ क. ख. ॰सैस्तत्र र॰। ८ क. ख. ॰स्तथा। ९ क. ॰श्चैवं म॰। १० क. ख. ॰श्चाप्यगायन्त रा॰। ११ क. ख. ॰यनाः। स्तवाशीः प्र॰। १२ क. ख. ॰तौ रवींद्राविव रू॰।

चेरतुः सुमहात्मानौ यादवैः परिवारितौ।
रैवतस्य समीपेषु सरित्सु विमलासु च ॥४४
पद्मपत्रविवृद्धासु कारण्डवयुतासु च।
एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ।
उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित्कालं मुमोदतुः ४५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णप्रत्यागमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## जरासंधेन मथुरोपरोधः।

## ३४

वैशम्पायन उवाच।

स कृष्णस्तत्र सहितो रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥
आप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः।
चचार मथुरां प्रीतः स वनाकरभूषणाम् ॥२
कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः।
शुश्राव निहतं कंसं दुहितृभ्यां महीपतिः ॥३
ततो नातिचिरात्कालाज्जरासंधः प्रतापवान्
आजगाम षडङ्गेन बलेन महता वृतः ॥ ४ ॥
जिघांसुर्हि यदून्क्रुद्धः कंसस्यापचितिं स्मरन्
अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्नौ ते मागधस्य सुते नृप ॥
जरासन्धस्य कल्याण्यौ पीनश्रोणिपयोधरे।
उभे कंसस्य ते भार्ये प्रादाद्बार्हद्रथो नृपः ॥६
स ताभ्यां सुमुदे राजा बद्ध्वा पितरमाहुकम्।
समाश्रित्य जरासन्धमनादृत्य च यादवान्।
शूरसेनेश्वरो राजा यथा ते बहुशः श्रुतः ॥७॥
ज्ञातिकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुग्रसेनाहिते रतः।
वसुदेवोऽभवन्नित्यं कंसो न ममृषे च तम् ॥८
रामकृष्णौ समाश्रित्य हते कंसे दुरात्मनि।
उग्रसेनोऽभवद्राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृतः ॥
दुहितृभ्यां जरासन्धः प्रियाभ्यां बलवान्नृपः
नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरां ततः ॥
कृत्वा सर्वं समुद्योगं क्रोधादग्निसमो ज्वलन्
प्रतापावनता ये च जरासन्धस्य पार्थिवाः ॥११
मित्राणि ज्ञातयश्चैव संयुक्ताः सुहृदस्तथा।
तमेवानुययुः सर्वे सैन्यैः समुदितैर्वृताः ॥१२॥
महेष्वासा महावीर्या जरासन्धप्रियैषिणः।
कारूषो दन्तवक्त्रश्च चेदिराजश्च वीर्यवान् ॥
कालिङ्गाधिपतिश्चैव पौण्ड्रश्च बलिनां वरः।
सांकृतिः कैशिकश्चैव भीष्मकश्च नराधिपः
पुत्रश्च भीमकस्यापि रुक्मी मुख्यो धनुर्भृताम्
वासुदेवार्जुनाभ्यां यः स्पर्धते स महाहवे ॥
वेणुदारिः श्रुतर्वा च क्रथश्चैवांशुमानपि।
अङ्गराजश्च बलवान्वङ्गानामाधिपस्तथा ॥ १६
कौशल्यः काशिराजश्च दशार्णाधिपतिस्तथा
सुह्मेश्वरश्च विक्रान्तो विदेहाधिपतिस्तथा ॥
मद्रराजश्च बलवांस्त्रिगर्तानामथेश्वरः।
शाल्वराजश्च विक्रान्तो दरदश्च महाबलः ॥
यवनाधिपतिश्चैव भगदत्तश्च वीर्यवान्।
सौवीरराजः शैब्यश्च पाण्ड्यश्च बलिनां वरः॥
गान्धारराजः सुबलो नग्नजिच्च महाबलः।
काश्मीरराजो गोनर्दो दरदाधिपतिर्नृपः।
दुर्योधनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥२०॥

रैवतस्य पर्वतविशेषस्य ॥ ४४ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

अथाध्याये चतुस्त्रिंशे दुहितृभ्यां प्रचोदितः
जरासन्धो यदून्हन्तुं प्रवृत्त इति वर्ण्यते ॥१॥

स कृष्णः ॥ १ ॥ राजगृहेश्वरो जरासन्धः दुहितृभ्याम् अस्तिप्राप्तिसंज्ञाभ्याम् कंसभार्याभ्यां निवेदिते सति ॥ ३ ॥ षडङ्गेन रथगजतुरगपदातिपण्यधान्यापणिकाख्यैः षड्भिरङ्गैरुपेतेन ॥ ४ ॥ अपचितिमानृण्यम् ॥ ५ ॥ बार्हद्रथो जरासन्धः ॥ ६ ॥ सः कंसः विक्रान्तः आहुकपुत्रमुग्रसेनम् ७

१ क. °त्रप्रवृ°, ख. °त्र समृद्ध°। २ ख. °त्कालमथोषतुः। ३ ख. वीरः स°। ४ क. ख. °प्ताऽऽस्तौ मा°। ५ क. ख. °ष्णौ व्यपाश्रित्य। ६ क. ख. चोदि°। ७ क. ख. कालि°। ८ क. ख. आकृ°।

एते चान्ये च राजानो बलवन्तो महारथाः
तमन्वयुर्जरासन्धं विद्विषन्तो जनार्दनम् ॥
ते शूरसेनानाविश्य प्रभूतयवसेन्धनान्।
ऊषुः संरुध्य मथुरां पुरस्कृत्य बलं तदा॥ २९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

## यादवमागधयुद्धम्।

## ३५

वैशम्पायन उवाच।

मथुरोपवने गत्वा निविष्टांस्तान्नराधिपान्
अपश्यन्वृष्णयः सर्वे पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥१
ततो हृष्टमनाः कृष्णो रामं वचनमब्रवीत्।
त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः॥२
यथाऽयं संनिकृष्टो हि जरासन्धो नराधिपः
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम्
एतानि शशिकल्पानि
नृपाणां विजिगीषताम्
छत्राण्यार्य विराजन्ते
प्रोच्छ्रितानि सितानि च
अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः।
अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः॥५॥
काले खलु नृपः प्राप्तो जरासन्धो महीपतिः।
आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः ॥६॥
आर्य तिष्ठाव सहितावनुप्राप्ते महीपतौ।
युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम्
एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्रामलालसः
जरासन्धबलं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥८॥
वीक्षमाणश्च तान्सर्वान्नृपान्यदुवरोऽव्ययः।
आत्मनैवात्मनो वाक्यमुवाच हृदि मन्त्रवित्
इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः
ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥
प्रोक्षितान्खल्विमान्मन्ये मृत्युना नृपपुङ्गवान्
स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे॥
स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता।
एषां नृपाणां मुख्यानां बलौघैरभिपीडिता॥
मही निरन्तरा चेयं बलराष्ट्राभिसंवृता ।
स्वल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम्॥
भविष्यति नरेन्द्रौघैः शतशो विनिपातितैः।

वैशम्पायन उवाच।

जरासन्धस्ततः क्रुद्धः प्रभुः सर्वमहीक्षिताम्
नराधिपसहस्रौघैरनुयातो महाद्युतिः।
व्यायतोदग्रतुरगैः सुयानैः सुसमाहितैः॥१५॥
रथैः सांग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित्।
हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः॥ १६॥
महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणकोविदैः
स्वारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः
वाजिभिर्मेघसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्तिभिः।
खड्गचर्मधरोदग्रैः पत्तिभिर्बलिनां वरैः ॥१८॥
सहस्रसंख्यासंयुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः।
एवं चतुर्विधैः सैन्यैः कम्पमानैरिवाम्बुदैः॥१९

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

३५

पञ्चत्रिंशे त्वथाध्याये मथुरामेत्य मागधः।
रुरोध नगरं सैन्यैश्चतुरङ्गैरितीर्यते॥ १॥

मथुरेत्यादि। निकषः स्वर्णनिकषवद्बलाबलनिर्णयहेतुः ॥६॥ बलं परेषां सैन्यं गतायुः चिरायुर्वेति विमृश्यतां विचारणीयमित्यर्थः॥७॥ पार्थिवे पृथ्वीस्थजनयोग्ये मृत्युमार्गे इत्यर्थः॥ १०॥ प्रोक्षितान्यज्ञपशुवदासन्नमृत्यून्॥ ११॥ स्थाने युक्तम्, अस्याः भारावतरणमित्यर्थः। यतः इयं दिवं गता दिविस्थं ब्रह्माणं प्रति शरणं गता॥ १२॥ विविक्तं निर्जनम्॥ १३॥ हेमकक्षैः सुवर्णशृङ्खलैः॥ १६॥ प्रेङ्खमाणैः कूर्दमानैः॥ १८॥

---

१ क. ख. नृपतिमुख्यानां ब°।

नृपः प्रयातो बलवाञ्जरासन्धो धृतव्रतः।
स रथैर्मेघनिर्घोषैर्गजैश्च मदसंयुतैः ॥२०॥
हेषमाणैश्च तुरगैः क्ष्वेडमानैश्च पत्तिभिः।
नादयानो दिशः सर्वास्तस्याः पुर्या वनानि च
स राजा सागराकारःससैन्यः प्रत्यदृश्यत।
तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् ॥ २२
क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ।
रथैः पवनसंपातैर्गजैश्च जलदोपमैः।
तुरगैश्च जवोपेतैः पत्तिभिः खगमोपमैः ।२३
विमिश्रं सर्वतो भाति मत्तद्विपसमाकुलम्।
घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा ॥२४॥
सबलास्ते महीपाला जरासन्धपुरोगमाः।
परिवार्य पुरीं सर्वे निवेशायोपचक्रिरे॥ २५॥
बभौ तस्य निविष्टस्य फलश्रीः शिबिरस्य वै।
शुक्लपर्यन्तपूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥२६॥
वीतरात्रे ततः काले समुत्तस्थुर्महीक्षितः।
आरोहणार्थं पुर्यास्ते समीयुर्युद्धलालसाः ॥
समवायीकृताः सर्वे यमुनामनु ते नृपाः।
निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः॥२८
तेषां सुतुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम्।
युगान्ते भिद्यमानानां सागराणामिव स्वनः
तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः।
चेरुर्मा शब्द इत्येवं वदन्तो राजशासनात् ॥
तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्दस्तिमितस्य वै।
लीनमीनग्रहस्येव निःशब्दस्य यथोदधेः॥३१
निःशब्दास्तिमिते तस्मिन्योगादिव महार्णवे॥
जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे॥३२
शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानि पृथिवीक्षिताम्
सर्वतो नगरी चेयं जनौघैः परिवार्यताम् ३३
अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः
कार्या भूमिः समा सर्वा जलौघैश्च परिप्लुता*
ऊर्ध्वं चापा निवाह्यन्तां प्रासा वै तोमरास्तथा
दार्यतां चैव टङ्काद्यैः खनित्रैश्च पुरी द्रुतम्।
नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः ३५
अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे पुरीरोधः प्रवर्त्यताम्।
यावदेतौ रणे गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ३६ ॥
संकर्षणं च कृष्णं च घातयामि शितैः शरैः।
आकाशमपि बाणौघैर्निःसंपातं यथा भवेत्॥
मयाऽनुशिष्टास्तिष्ठन्तु पुरीभूमिषु भूमिपाः।
तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां पुरी ॥ ३८ ॥
मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानः सबाह्लिकः।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा॥
द्रुमः किंपुरुषश्चैव पार्वतीयो ह्यनामयः।
नगर्याः पश्चिमं द्वारं शीघ्रमारोधयन्त्विति ४०
पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा।
रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्च समालवः
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान्
छागलिः पुरमित्रश्च विराटश्च महीपतिः॥४२॥
कौरव्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः।
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा ॥४३॥
उत्तरं नगरद्वारमेते दुर्गसहा नृपाः
आरुह्य चाभिमर्दन्तां वज्रप्रतिमगौरवाः ॥४४
उलूकः कैतवश्चैव वीरश्चांशुमतः सुतः।
एकलव्यो बृहत्क्षत्रः क्षत्रधर्मा जयद्रथः॥ ४५
उत्तमौजाश्च शल्यश्च कौरवाः कैकयास्तथा।
वैदिशो वामदेवश्च सांकृतिश्च सिनीपतिः ४६
पूर्वं नगरनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः।
दारयन्तो विधावन्तु वाता इव बलाहकान्
अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान्।
दक्षिणं नगरद्वारं पालयामः सुदंशिताः ४८

वनानि च नादयानः॥ २१ ॥ विमिश्रं सैन्यमिति शेषः॥ २४॥ निवेशाय स्थानपरिग्रहाय ॥ २५॥ शिबिरस्य सेनागृहस्य पटमयस्य जात्यभिप्रायमेकवचनम् ॥ २६ ॥ सकञ्चुकोष्णीषाः प्रतीहाराः ॥ ३० ॥ योगात् वृत्तिनिरोधात्॥ ३२ ॥ प्रासाः हस्तक्षेप्यभल्लाः। ऊर्ध्वं दुर्गे प्राकारोपरि निवाह्यन्तां प्रापयन्तु ॥ ३४ ॥ निःसंपातं कीलितमिव ॥ ३७॥ दुर्गसहा दुर्गयुद्धं कर्तुं क्षमाः॥ ४४ ॥

१ क. ख. °दसिञ्जितैः। हे°। २ क. नादयन्तो दि°। ३ क. ख. °परथाकुलम्। घ°। ४ ख. °हलात्। ते°। ५ क. ख. °षां स तु°। ६ ख. °वं ब्रुवन्तो रा°। * कार्या भूमिरिति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति। ७ क. ख. °ध्वं चापि नि°। ८ ख. टङ्कौघैः ख°। ९ ख. °पि टङ्कौघैर्नि°। १० क. °क्षश्चैव मा°। ११ क. ख. कौशाम्ब्यो मा°। १२ क. ख. °दूरथः। भू°। १३ क. ख. °कः कैतवेयश्च वी°। १४ ख. °श्च साकेतश्च सि°। १५ क. °राजेन संगताः। द°।

एवमेषा पुरी क्षिप्रं समन्ताद्वेष्टिता बलैः।
वज्रावपातविषमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥४९॥
गदिनो ये गदाभिस्ते परिघैः परिघायुधाः।
अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु पुरीमिमाम् ५०
अद्यैव नगरी ह्येषा विषमोच्चयसंकटा।
कार्या भूमिसमा सर्वा भवद्भिर्वसुधाधिपैः॥
चतुरङ्गबलैर्व्यूह्य जरासन्धो व्यवस्थितः।
अथाभ्ययायद्दुर्नुद्धैः सह सर्वैर्नराधिपैः॥ ५२
प्रतिजग्मुर्दशार्हास्तं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
तद्युद्धमभवद्धोरं तेषां देवासुरोपमम्।
अल्पानां बहुभिः सार्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ५३
नगरान्निस्सृतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ।
क्षुभितं नृवरानीकं त्रस्तसंमूढवाहनम् ॥५४॥
रथस्थौ दंशितौ चैव चेरतुस्तत्र यादवौ।
मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥५५
तयोः प्रयुध्यतोः संख्ये मतिरासीन्महात्मनोः
आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥५६
ततः खान्निपतन्ति स्म दिव्यान्याहवसंप्लवे
लेलिहानानि दीप्तानि महान्ति सुदृढानि च
क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च।
तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि वै भृशम्५८
दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान्
प्रभया भासमानानि पतमानानि चाम्बरात्
हलं संवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा।
धनुषां प्रवरं शार्ङ्गं गदा कौमोदकी तथा ६०
चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि च।
ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे॥
जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं हलम्।
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं मृधे ६२
सौनन्दं च ततः श्रीमान्निरानन्दकरं द्विषाम्।
सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम्
दर्शनीयं च लोकेषु
धनुर्जलदनिःस्वनम्॥
नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं
कृष्णो जग्राह वीर्यवान् ॥ ६४॥
देवैर्निगदितार्थस्य
गदा तस्यापरे करे।
निक्षिप्ता कुमुदाक्षस्य
नाम्ना कौमोदकीति सा ॥६५॥
तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ।
समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान्प्रत्ययुद्ध्यताम्
सायुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्याश्रयावुभौ।
पूर्वजानुजसंज्ञौ तौ रामगोविन्दलक्षणौ ६७
द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ।
विचेरतुर्यथा देवौ वसुदेवसुतावुभौ ॥६८॥
हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपितः।
चचार समरे वीरो विद्विषामन्तको यथा ६९
विकर्षन्रथवृंदानि क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥७०॥
कुञ्जरांल्लांगलक्षिप्तान्मुसलाक्षेपताडितान्।
रामो विराजन्समरे निर्ममन्थ यथाऽचलान्
ते वध्यमाना रामेण रणे क्षत्रियपुंगवाः।
जरासन्धान्तिकं भीताः समरात्प्रतिजग्मिरे॥
तानुवाच जरासन्धः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः।
धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम्॥
परावृत्तस्य समरे विरथस्य पलायतः।
भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ७४
भीताः कस्मान्निवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम्
क्षिप्रं सर्वे निवर्तध्वं मम वाक्येन चोदिताः॥
*'अथवा तिष्ठत रथैः प्रेक्षकाः समवस्थिताः'
यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम् ॥७६
ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे जरासन्धेन नोदिताः।
सृजन्तः शरजालानि हृष्टा योद्धुं व्यवस्थिताः
ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चाम्बुदनादिभिः।
नागैश्चाम्बुदसंकाशैर्महामात्रप्रचोदितैः ॥७८॥
सतनुत्राः सनिस्त्रिंशाः सपताकायुधध्वजाः।
स्वारोपितधनुष्मन्तः सतूणीराः सतोमराः॥
सच्छत्राः सादिनश्चैव चारुचामरवीजिताः।
रणे तेऽधिगता रेजुः स्यन्दनस्था महीक्षितः

---

ताभ्यां तयोरर्थे ॥ ६१ ॥ ललामप्रतिमं ध्वजवदुच्छ्रितम् "ललामं लाञ्छने ध्वजे" इति मेदिनी ॥ ६२ ॥

---

१ क. ख. °क्रुद्धः सह'। २ क. ख. °व्यस्रग्गंधधा°। ३ क. 'न्योन्याशया', ख. 'न्योन्यमया'। ४ क. °र युद्धकातराः। ५°। * एतदर्धं क्वचित्पुस्तके न दृश्यते। ५ क. ख. °न चोदि'। ६ क. नागैश्चा'। ७ ख. °छत्रोत्सादिनः सर्वे चारु', क. °च्छत्रोत्सेधिनः सर्वे चा'।

ते युद्धरागा रथिनो व्यगाहन्त युधां वराः
गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥८१
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां नन्दिवर्धनः ।
सुपर्णध्वजमास्थाय कृष्णस्तु रथमुत्तमम् ॥८२
समभ्ययाज्जरासन्धं शरैर्विव्याध चाष्टभिः ।
सारथिं चास्य विव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः
जघान तुरगांश्चाजौ यतमानस्य वीर्यवान् ।
तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय चित्रसेनो महारथः ॥८४॥
सेनानीः कैशिकश्चैव कृष्णं विविधतुः शरैः ।
त्रिभिर्विव्याध संसक्तं बलदेवं च कैशिकः ८५
बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाऽकरोत् ।
जवेनाभ्यर्दयच्चापि तानरीञ्छरवृष्टिभिः ॥८६॥
बहुभिर्बहुधा वीरान्समन्तात्स्वर्णभूषणैः ।
तं चित्रसेनः संरब्धो विव्याध नवभिः शरैः ॥
कैशिकः पञ्चभिश्चापि जरासन्धश्च सप्तभिः
त्रिभिस्त्रिभिश्च नाराचैस्तान्बिभेद जनार्दनः
पञ्चभिः पञ्चभिश्चैव बलदेवः शितैः शरैः ।
रथं चैवास्य चिच्छेद चित्रसेनस्य वीर्यवान् ।
बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाऽकरोत्
स चिछन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान्
अभ्यधावत्सुसंरब्धो जिघांसुर्मुसलायुधम् ।
सिसृक्षतस्तु नाराचांश्चित्रसेनवधैषिणः ।
धनुश्चिच्छेद रामस्य जरासन्धो महाबलः९१
गदया च जघानाश्वान्क्रोधात्स मगधेश्वरः ।
रामं चाभ्यद्रवद्वीरो जरासन्धो महाबलः ॥
आदाय मुसलं रामो जरासन्धमुपाद्रवत् ।
तयोस्तद्युद्धमभवत्परस्परवधैषिणोः ॥९३॥
चित्रसेनस्तु संसक्तं दृष्ट्वा रामेण मागधम् ।
रथमन्यं समारुह्य जरासन्धमवारयत् ॥९४॥
ततो बलेन महता गजानीकेन चाप्यथ ।
उभयोरन्तरे ताभ्यां संकुलं समपद्यत ॥९५॥
ततः सैन्येन महता जरासन्धोऽभिसंवृतः ।
रामकृष्णाग्रगान्भोजानाससाद महाबलः ॥
तत्र प्रक्षुभितस्येव सागरस्य महास्वनः ।
प्रादुर्बभूव तुमुलः सेनयोरुभयोरपि ॥९७॥
वेणुभेरीमृदङ्गानां शङ्खानां च सहस्रशः ।
उभयोः सेनयो राजन्प्रादुरासीन्महास्वनः ॥
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत्
उत्पपात रजश्चापि खुरनेमिसमुद्धतम् ॥९९॥
समुद्यतमहाशस्त्राः प्रगृहीतशरासनाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शूरास्तत्रावतस्थिरे १००
रथिनः सादिनश्चैव पत्तयश्च सहस्रशः ।
गजाश्चातिबलास्तत्र समुत्पेतुः समन्ततः ॥१॥
स संनिपातस्तुमुलस्त्यक्त्वा प्राणानवर्तत ।
वृष्णिभिः सह योधानां जरासन्धस्य दारुणः
ततः शिनिरनाधृष्टिर्बभ्रुर्विपृथुराहुकः ।
बलदेवं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः ॥३॥
दक्षिणं पक्षमासेदुः शत्रुसैन्यस्य भारत ।
पालितं चेदिराजेन जरासन्धेन वा विभो ॥
उदीच्यैश्च महावीर्यैः शल्यशाल्वादिभिर्नृपैः ।
मृजन्तः शरवर्षाणि समभित्यक्तजीविताः॥५
अवगाहः पृथुः कङ्कः शतद्युम्नो विदूरथः ।
हृषीकेशं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः ॥६
भीष्मकेणाभिगुप्तश्च रुक्मिणा च महात्मना ।
देवकेनापि राजेन्द्र तथा मद्रेश्वरेण च ॥७॥
प्राच्यैश्च दाक्षिणात्यैश्च गुप्तवीर्यबलान्वितैः
तेषां च युद्धमभवत्समभित्यक्तजीवितम् ।
शक्त्यृष्टिप्रासबाणौघान्सृजतामशनिस्वनान्
सात्यकिश्चित्रकः श्यामो युयुधानश्च वीर्यवान्
राजाधिदेवो मृदुरः श्वफल्कश्च महारथः ॥९
सत्राजिच्च प्रसेनश्च बलेन महता वृताः ।
व्यूहस्य पक्षं ते सर्वे प्रतीयुर्द्विषतां मृधे ॥ ११०
व्यूहस्यार्द्धं समासेदुर्मृदुरेणाभिरक्षितम् ।
राजभिश्चापि बहुभिर्वेणुदारिमुखैः सह ॥ १११

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे युद्धवर्णने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इति श्रीहरिवंशे टीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

१ क. ख. 'गोद्रथि° । २ ख. तदाभ्य' । ३ क. कृष्ण ग' । ४ क. रथेषां चैव चि' । ५ क. ख. 'न्धमवास्रवत् । त° । ६ क. ख. ततः प्रक्षु° । ७ क. °त्र संनिपेतुरभीतवत् । ८ क. ख. स संप्रहारस्तुमुलस्त्य' । ९ ख. °न च प्रभो । उ' । १० क. °गुप्तं तत् स' । ११ क. घ. सृजतां तुमुलं महत् । १२ क. ख. °स्यार्धे स°

## जरासन्धापयानम् ।

## ३६

वैशम्पायन उवाच ॥
ततो युद्धानि वृष्णीनां बभूवुः सुमहान्त्यथ।
मागधस्य महामात्रैर्नृपैश्चैवानुयायिभिः ॥१॥
रुक्मिणा वासुदेवस्य भीष्मकेणाहुकस्य च ।
क्रथस्य[1] वसुदेवेन कैशिकस्य तु बभ्रुणा ॥ २
गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्रस्य शम्भुना ।
तथान्यैर्वृष्णिवीराणां नृपाणां च महात्मनाम्
युद्धमासीद्धि सैन्यानां सैनिकैर्भरतर्षभ ।
अहानि पञ्च चैकं च षट् सप्ताष्टौ च दारुणम्
गजैर्गजा हयैरश्वाः पदाताश्च पदातिभिः ।
रथै रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप ॥५
जरासन्धस्य नृपते रामेणासीत्समागमः ।
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षणः ॥ ६
अवेक्ष्य रुक्मिणीं कृष्णो
रुक्मिणं न व्यपोथयत् ।
ज्वलनार्कांशुसंकाशा-
नाशीविषविषोपमान् ॥७॥
वारयामास कृष्णो वै शरांस्तस्य तु शिक्षया
इत्येषां[3] सुमहानासीद्बलौघानां परिक्षयः ॥८॥
उभयोः सेनयो राजन्मांसशोणितकर्दमः ।
कबन्धानि समुत्तस्थुः सुबहूनि समन्ततः ॥९॥
तस्मिन्विमर्दे योधानां संख्यावृत्तिकराणि च
रथी रामो जरासन्धं शरैराशीविषोपमैः ॥१०
आवृण्वन्नभ्ययाद्वीरस्तं च राजा स मागधः
अभ्यवर्तत वेगेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥११॥
अन्योन्यं विविधैरस्त्रैर्विद्ध्वा विद्ध्वा विनेदतुः
तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथी ॥
गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावताम्[4]
कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतगदावुभौ ॥ १३
ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव ।
व्युपारमन्त युद्धानि पश्यतां[5] तौ महाभुजौ ।
संरब्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥१४
उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ
मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्योन्यमयुध्यताम्॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च समहर्षयः[6] ।
समन्ततश्चाप्सरसः समाजग्मुः सहस्रशः ॥१६
तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम् ।
शुशुभेऽभ्यधिकं राजन्दिवं[7] ज्योतिर्गणैरिव
अभिदुद्राव रामं तु जरासन्धो महाबलः ।
सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् १८
प्रहरन्तौ[8] ततोऽन्योन्यं गदायुद्धविशारदौ ।
दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश
गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिःस्वनः ।
जरासन्धस्य चरणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥२०॥
न स्म कम्पयते रामं जरासन्धकरच्युता ।
गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः
रामस्य तु गदावेगं वीर्यात्स मगधेश्वरः ।
सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत् ॥२२
एवं तौ तत्र संग्रामे विचरन्तौ महाबलौ ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिन्दमौ २३
व्यायच्छन्तौ चिरं कालं परिश्रान्तौ च तस्थतुः
समाश्वास्य मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहताम् ॥
एवं तौ योधमुख्यौ तु समं युयुधतुश्चिरम् ।
न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः ॥२५॥

---

३६
षट्त्रिंशेऽथ जरासन्धो द्वन्द्वयुद्धे पराजितः
बलभद्रेण तं हित्वा पलायित इतीर्यते ॥ १
ततो युद्धानीति ॥ १ ॥ अहानि पञ्चेत्यादिसर्वसंख्यासंकलने सप्तविंशतिदिनानि युद्धमासीदित्यर्थः ॥ ४ ॥ अवेक्ष्य रुक्मिणीमित्यतो ज्ञायते इतः पूर्वं रुक्मिणीहरणमिति । अनागतावेक्षणपरं वा इदम् ॥ ७ ॥ लक्षस्य वधे एकैकबन्धसमुत्थानम् । अत्र तु संख्याया आवृत्तिः। कबन्धसंख्यैव कर्तुं न शक्या इत्यर्थः ॥ ९ ॥ दिवं स्थानम् ॥ १७ ॥ आहताम् आजघ्नतुः ॥ २४ ॥

---

१ ख. क्राथेन वसुदेवस्य कौशि° । २ ख. घ. °रे ततः । ३ क. ख. अन्येषां सु° । ४ क. ख. °ताम् । क° । ५ क. °नि प्रेक्षतां तौ । ६ क. ख. °श्च परमर्षयः । ७ क. °जन्दिव्यं ज्यो° । ८ ख. प्राद्रवेतां त° ।

अथापश्यद्गदायुद्धे विशेषं तस्य वीर्यवान्।
रामः क्रुद्धो गदां त्यक्त्वा जग्राह मुसलोत्तमम्
तमु द्यन्तं तदा दृष्ट्वा मुसलं घोरदर्शनम्।
अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे ॥२७॥
ततोऽन्तरिक्षे वागासी-
त्सुस्वरा लोकसाक्षिणी।
उवाच बलदेवं तं
समुद्यतहलायुधम् ॥२८॥
न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मागधे।
विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात्साधु व्युपारम
अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः ॥
जरासन्धस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत।
न प्रजह्रे ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ॥३०॥
तौ व्युपारमतां युद्धं वृष्णयस्ते च पार्थिवाः।
असक्तमभवद्युद्धं तेषामेव सुदारुणम् ॥३१॥
दीर्घकालं महाराज निघ्नतामितरेतरम्।
पराजिते त्वपक्रान्ते जरासन्धे महीपतौ ॥३२
अस्तं याते दिनकरे नानुसस्रुस्तदा निशि।
समानीय स्वकं सैन्यं लब्धलक्ष्या महाबलाः
पुरीं प्रविविशुर्हृष्टाः केशवेनाभिपालिताः।
खाच्च्युतान्यायुधान्येवं तान्येवान्तर्दधुस्तदा
जरासन्धोऽपि नृपतिर्विमनाः स्वपुरीं ययौ।
राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययुः
जरासन्धं तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम्
वृष्णयः कुरुशार्दूल राजा ह्यतिबलः स वै ॥
दश चाष्टौ च संग्रामाञ्जरासन्धस्य यादवाः।
ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महाबलाः ॥३७॥
अक्षौहिण्यश्च तस्याऽऽसन्विंशतिश्च महामते
जरासन्धस्य नृपतेस्तदर्थं याः समागताः॥३८
अल्पत्वादभिभूतास्तु वृष्णयो भरतर्षभ।
बार्हद्रथेन राजेन्द्र राजभिः सहितेन वै ॥३९
भूयः कृत्वोद्यमं प्रायाद्यादवान्कृष्णपालितान्*
जित्वा तु मागधं संख्ये जरासंधं महीपतिम्
विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिसिंहा महारथाः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासन्धापयानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## हर्यश्वराजकथा यदोरुत्पत्तिश्च।

## ३७

वैशम्पायन उवाच।
स कृष्णस्तत्र बलवान्रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥
प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः।
चचार मथुरां प्रीतः सवनाकरभूषणाम् ॥२॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः।
सस्मार निहतं कंसं जरासंधः प्रतापवान्×
युद्धाय योजितो भूयो दुहितृभ्यां महीपतिः।
दश सप्त च संग्रामाञ्जरासन्धस्य यादवाः।
ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महारथाः ॥ ४

असक्तं निरनुक्रोशं प्रशान्तमिति प्राञ्चः॥३१॥ **अक्षौहिण्य इति**। "सा सेनाऽक्षौहिणी नाम खाङ्काष्टैकद्विकैर्गजैः २१८९०। रथैरेतै २१८९० र्हयैस्त्रिघ्नैः ६५६७० पञ्चघ्नैश्च १०९४५० पदातिभिः॥" इति ॥३८॥ अभिभूताः पुनः पुनरावेष्टिताः॥ ३९॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

**सप्तत्रिंशे त्वथाध्याये संबन्धाय विकद्रुणा सूर्यवंशाद्यदोर्वंशप्रसङ्गोऽथावतारितः १**

स कृष्णः संगतः सखीभूत इतरेषामित्यर्थात् ॥ १ ॥

१ क. °न मानद। वि°। २ क. ख. विहितोऽस्य। ३ क. ख. °तां युद्धे वृ°। ४ क. ख. °हारथाः। अ°। ५ क. ख. °शतिर्भरतर्षभ। ज°। * भूयः कृत्वोद्यममिति पद्यार्धं क. ख. पुस्तकयोर्न विद्यते। × सस्मारेति पद्यार्धं कपुस्तके नास्ति।

ततो मागधराट् श्रीमांश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
भूयोऽप्यष्टादशं कर्तुं संग्रामं स समारभत् ॥५
वैलक्ष्यात्पुनरेवासौ राजा राजगृहेश्वरः ।
जरासन्धो बली श्रीमान्पाकशासनविक्रमः ॥६
स साधनेन महता बृहद्रथसुतो बली ।
कृष्णस्य वधमन्विच्छन्भूयो वै संन्यवर्तत ॥७
तं श्रुत्वा सहिताः सर्वे निवृत्तं मगधेश्वरम्
यादवा मन्त्रयामासुर्जरासन्धभयार्दिताः ॥८॥
ततः प्राह महातेजा विकद्रुर्नयकोविदः ।
कृष्णं कमलपत्राक्षमुग्रसेनस्य शृण्वतः ॥९॥
श्रूयतां तात गोविन्द कुलस्यास्य समुद्भवः ।
श्रूयतामभिधास्यामि प्राप्तकालमहं ततः ।
युक्तं चेन्मन्यसे साधो करिष्यसि वचो मम
यादवस्यास्य वंशस्य समुद्भवमशेषतः ।
यथा मे कथितः पूर्वं व्यासेन विदितात्मना
आसीद्राजा मनोर्वंशे श्रीमानिक्ष्वाकुसंभवः
हर्यश्व इति विख्यातो महेन्द्रसमविक्रमः ॥१२
तस्यासीद्दयिता भार्या मधोर्दैत्यस्य वै सुता ।
देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शची तथा १३
सा यौवनगुणोपेता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
मनोरथकरी राज्ञः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी १४
दानवेन्द्रकुले जाता सुश्रोणी कामरूपिणी ।
एकपत्नीव्रतधरा खेचरा रोहिणी यथा ॥१५
सा तमिक्ष्वाकुशार्दूलं कामयामास कामिनी
स कदाचिन्नरश्रेष्ठो भ्रात्रा ज्येष्ठेन माधव १६
राज्यान्निरस्तो विश्वस्तः
सोऽयोध्यां संपरित्यजत् ।
स तदाल्पपरीवारः
प्रियया सहितो वने ॥ १७ ॥
रेमे समेत्य कालज्ञः प्रोवाच कमलेक्षणः ।
भ्रात्रा विनिष्कृतं राज्यात्प्रोवाच कमलेक्षणा
एह्यागच्छ नरश्रेष्ठ त्यज राज्यकृतां स्पृहाम्
गच्छावः सहितौ वीर मधोर्मम पितुर्गृहम् ॥
रम्यं मधुवनं नाम कामपुष्पफलद्रुमम् ।
सहितौ तत्र रंस्यावो यथा दिवि गतौ तथा
पितुर्मे दयितस्त्वं हि मातुर्मम च पार्थिव ।
मत्प्रियार्थं प्रियतरो भ्रातुश्च लवणस्य वै ॥२१
रंस्यावस्तत्र सहितौ राज्यस्थाविव कामगौ
तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ ह्यमराविव नन्दने ।
भद्रं ते विहरिष्यावो यथा देवपुरे तथा ॥२२
तं त्यजाव महाराज भ्रातरं तेऽभिमानिनम् ।
आवयोर्द्वेषिणं नित्यं मत्तं राज्यमदेन वै ॥२३
धिगिमं गर्हितं वासं भृत्यवच्च पराश्रयम् ।
गच्छावः सहितौ वीर पितुर्मे भवनान्तिकम्
तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य पूर्वजं भ्रातरं प्रति ।
कामार्तस्य नरेन्द्रस्य पत्न्यास्तद्रुरुचे वचः ॥
ततो मधुपुरं राजा हर्यश्वः स जगाम च ।
भार्यया सह कामिन्या कामी पुरुषपुङ्गवः ॥
मधुना दानवेन्द्रेण स साम्ना समुदाहृतः ।
स्वागतं वत्स हर्यश्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात्
यदेतन्मम राज्यं वै सर्वं मधुवनं विना ।
ददामि तव राजेन्द्र वासश्च प्रतिगृह्यताम् ॥
वनेऽस्मिँल्लवणश्चायं सहायस्ते भविष्यति ।
अमित्रनिग्रहे चैव कर्णधारत्वमेष्यति ॥२९॥
पालयैनं शुभं राष्ट्रं समुद्रानूपभूषितम् ।
गोसमृद्धं श्रिया जुष्टमाभीरप्रायमानुषम् ॥३०
अत्र ते वसतस्तात दुर्गं गिरिपुरं महत् ।
भविता पार्थिवावासः सुराष्ट्रविषयो महान्
अनूपविषयश्चैव समुद्रान्ते निरामयः ।
आनर्तं नाम ते राष्ट्रं भविष्यत्यायतं महत् ॥
तद्भविष्यमहं मन्ये कालयोगेन पार्थिव ।
अध्यास्यतां यथाकालं पार्थिवं वृत्तमुत्तमम् ॥
यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम् ।
अनु वंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल ॥

पाठान्तरे अष्टादशमम् अष्टादशम् ॥५॥ वैलक्ष्यात् लज्जातः ॥ ६ ॥ संन्यवर्तत परावृत्तः ॥ ७ ॥ श्रूयतां शृण्वतां पुरः प्राप्तकालोचितम् ॥१०॥ मे ममाग्रे ॥११॥ विश्वस्तो ज्येष्ठे भ्रातरि लुब्धोऽपि श्रद्धावान् संपरित्यजत् संपर्यत्यजत् ॥१७॥ सम्यक्प्रवृत्तस्येत्यस्य श्वशुरपक्षबलेन भ्रातुर्वधमनिच्छत इत्यर्थः ॥ २५ ॥ **यायातमपीति** ॥ **यादवं** ययातिपुत्रस्य यदोः संबन्धिनं वंशं **ते** तव **वंशः समेष्यति** प्रवेक्ष्यति । अत एव **सोमस्य वंशम् अनु ते** तव **वंशो**

१ क. °ता प्रतापामितविक्रमः । कृ°, ख. °ता पाकशासनविक्रमः । कृ° । २ क. ख. °ह नृप । यु° । ३ क. घ. °थितः पू° । ४ ख. वनजाक्षी रतिप्रख्या सु° । ५ क. ख. °ज्ञः प्रियया कम° । ६ क. ख. °निकृतं रा° । ७ क ख. °म ह । ८ क. °द्रान्तो नि° ।

एष मे विभवस्तात तवेमं विषयोत्तमम्।
दत्त्वा यास्यामि तपसे सागरं लवणालयम् ॥
लवणेन समायुक्तस्त्वमिमं विषयोत्तमम्।
पालयस्वाखिलं तात स्वस्य वंशस्य वृद्धये ॥
बाढमित्येव हर्यश्वः प्रतिजग्राह तत्पुरम्।
स च दैत्यस्तपोवासं जगाम वरुणालयम् ३७
हर्यश्वश्च महातेजा दिव्ये गिरिवरोत्तमे।
निवेशयामास पुरं वासार्थममरोपमः ॥३८॥
आनर्तं नाम तद्राष्ट्रं सुराष्ट्रं गोधनायुतम्।
अचिरेणैव कालेन समृद्धं प्रत्यपद्यत ॥ ३९ ॥
अनूपविषये[1] चैव वेलावनविभूषितम्।
विचित्रं[2] क्षेत्रसस्याढ्यं प्राकारग्रामसंकुलम् ॥
शशास[3] नृपतिः स्फीतं तद्राष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनः।
राजधर्मेण यशसा प्रजानां नन्दिवर्द्धनः ४१
तस्य सम्यक्प्रचारेण हर्यश्वस्य महात्मनः।
व्यवर्धत तदक्षोभ्यं राष्ट्रं राष्ट्रगुणैर्युतम् ॥४२॥
स हि राजा स्थितो राज्ये राजवृत्तेन शोभितः
प्राप्तः कुलोचितां लक्ष्मीं वृत्तेन च नयेन च॥
तस्यैवं[4] च सुवृत्तस्य पुत्रकामस्य धीमतः।
मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः॥४४
सोऽवर्धत महातेजा यदुर्दुन्दुभिनिःस्वनः।
राजलक्षणसंपन्नः सपत्नैर्दुरतिक्रमः ॥४५॥
यदुर्नामाभवत्पुत्रो राजलक्षणपूजितः *
यथाऽस्य पूर्वजो राजा पूरुः स सुमहायशाः×
स एक एव तस्यासीत्पुत्रः परमशोभनः।
ऊर्जितः पृथिवीभर्ता हर्यश्वस्य महात्मनः ४७
दश वर्षसहस्राणि स कृत्वा राज्यमव्ययम्
जगाम त्रिदिवं राजा धर्मेणाप्रतिमो[5] भुवि ॥
ततो यदुरदीनात्मा प्रजाभिस्त्वभ्यषिच्यत।
पितर्युपरते श्रीमान्क्रमेणार्क इवोदितः॥ ४९

---

भविष्यति सूर्यवंशात् च्युतो भविष्यतीत्यर्थः। ननु इहैव ययातितो यदुः, यदोः क्रोष्टा, क्रोष्टुः देवमीढः, देवमीढात् शूरः, शूराद्वसुदेवो, वसुदेवात्कृष्णः इति वंशः प्रागुक्तः। पुनः सूर्यवंशीयात् हर्यश्वात् यदुर्य, दोर्माधवो, माधवात्सत्वान्, सत्वतो भीमः, भीमात् अन्धकः, अन्धकाद्रैवतो, रैवताद्दक्ष, ऋक्षाद्विश्वगर्भः स्तस्मात् वसुः वसोः वसुदेवो, वसुदेवात्कृष्णः इति तत्कथं यदोः षष्ठस्यैवैकादशत्वं न च कल्पभेदाभिप्रायमिदम्। एकग्रन्थपठितत्वादिति दुःसमाधेयोऽयं विरोधः। सत्यम्। तथाऽप्ययमत्र समाधिः—यायातमपि वंशस्ते इत्येतस्मादेव वचनात् एक एव यदुः गृहात् गृहान्तरप्रवेशवत् योगबलेन सूर्यवंशेऽपि आविर्भूय सूर्यवंशं स्वपक्षे आनीतवान्। यथा ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वसिष्ठः केनचिन्निमित्तेन पुनर्मित्रावरुणाभ्यामपि जन्म लेभे वसिष्ठत्वं च न जहौ। एवं यदुरेक एव लीलावशात् क्रमेण देहद्वयं वृतवान् तावता द्वौ यदू जातौ। ततश्च एक एव यदुर्द्वयोर्वंशयोः कर्ता। एवं वसुदेवोऽपि शूराच्च वसोश्चाविर्भवन्नेक एव। क्वचिद्यदोः पञ्चमः क्वचिद्दशम इति यथायोगं ज्ञेयम्। कृष्णस्तु वंशद्वयानुगताद्वसुदेवाज्जात एक एव सन् वसोरपि पौत्रः शूरस्य च पौत्रः। वसुशूरयोरपि पितृभेदान्नामभेदेऽपि स्कन्दसनत्कुमारवद्द्वयक्त्यैक्यं ज्ञेयम्। तेन पृथायाः पाण्डवमातुः शूरोत्पन्नत्वं वसूत्पन्नत्वं च संगच्छते। एवमन्यत्रापि वंशविरोधेऽप्यूह्यम्। यादवानां देवतात्वेन एकस्याप्युभयसंबन्धस्य युगपत्संभवाच्चेति दिक्। अयमत्र संग्रहः—

"नामरूपे असंत्यज्य यदुर्हर्यश्वतोऽभवत्।
स्वरूपेण वसुर्नाम शूरोऽभूद्विश्वगर्भतः ॥
यदुद्युनद्या द्वौ जातौ वंशौ वै बहुधा ततौ।
द्विनाम्नि वसुदेवाय पितृतीर्थे च संगतौ"

इति। अत एव वैकुण्ठस्येन्द्रस्य सप्तंगुना स्तूयमानस्य संबोधनं "वसूयवो वसुपते वसूनाम्" इति। "विद्मा हि त्वा गोपतिं शूरगोनाम्" इति। "वसूनां वसुवंश्यानां वसुगोत्रे भवानां वसुपते मुख्यस्वामिन्" इति। शूरेति शूरगोत्रत्वेन च पृथक्संबोधनद्वयं मन्त्रवर्णः सूचयति। तथा इन्द्रवाक्यमपि "अहं भुवं वसुनः पूर्वस्पतिः।" इति, "प्राश्रावयं शवसातुर्वशं यदुम्" इति च। स्वस्य हर्यश्वसन्तानजवसुसंबन्धित्वं तु वसुसहचरिततया तस्य यदुसंबंधित्वं च दर्शयति। एते च मन्त्रा नाग्नजित्याः सत्यायाः पाणिग्रहणप्रसङ्गे व्याख्यास्यन्ते। वसुनः वसोः भुवम् अभूवम् ॥ ३४ ॥ विभवो मनोरथ। तमेवाह—**तवेममिति** ॥ ३५ ॥ यायातं वंशमित्यत्र सूचितमर्थं विवृणोति—**तस्यैवमिति**। तस्य पुत्रकामतामालक्ष्य यायातोऽयं यदुः स्वयमेव हर्यश्वस्य पुत्रो जज्ञे जातो योगबलात्परचित्ताविज्ञत्वाच्च ॥ ४४ ॥

---

१ क. ख. °षयं चै° । २ क. ख. निविष्टं क्षे° । ३ क. ख. °स स नृपः स्फी° । ४ क. ख. °स्यैवं सुप्रवृ° । * यदुर्नामेति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति। × यदुर्नामेति श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति। ५ क. ख. °र्मेणास्तमितो भु° ।

शशास चेमां वसुधां प्रशान्तभयतस्कराम्।
यदुरिन्द्रप्रतीकाशो नृपो [1]येनास्म [2]यादवाः ॥
स कदाचिन्नृपश्चक्रे जलक्रीडां [3]महोदधौ।
दारैः सह गुणोदारैः सतार इव चन्द्रमाः ॥५१
स तत्र सहसा क्षिप्तस्तितीर्षुः सागराम्भसि।
[4]धूम्रवर्णेन नृपतिः सर्पराजेन वीर्यवान् ॥५२॥
सोऽपाकृष्यत वेगेन जले सर्पपुरं महत्।
मणिस्तम्भगृहद्वारं मुक्तादामविभूषितम् ॥५३
कीर्णं शङ्खकुलैः शुभ्रै रत्नराशिविभूषितम्।
प्रवालाङ्कुरपत्राढ्यैः पादपैरुपशोभितम् ५४
कीर्णं [5]पन्नगवर्यौघैः समुद्रोदर[6]वासिभिः।
[7]स्वर्णवर्णेन भास्वन्तं स्वस्तिकेनेन्दुवर्चसा ५५
स तं ददर्श राजेन्द्रो विमले सागराम्भसि।
पन्नगेन्द्रपुरं तोये जगत्यामिव निर्मितम् ॥५६॥
[8]स्वच्छश्चैव पुरे तत्र प्रविवेश नृपो यदुः।
[9]अगाधं तोयदाकारं पूर्णं सर्पवधूगणैः ॥ ५७
तस्य दत्तं मणिमयं जलजं परमासनम्।
स्वास्तीर्णं पद्मपत्रैश्च पद्मसूत्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८
तमासीनं नृपं तत्र परमे पन्नगासने।
द्विजिह्वपतिरव्यग्रो [10]धूम्रवर्णोऽभ्यभाषत
पिता ते स्वर्गतिं प्राप्तः कृत्वा वंशमिमं महत्
भवन्तं तेजसा युक्तमुत्पाद्य वसुधाधिपम् ६०
[11]यादवो नामयं वंशस्त्वन्नाम्ना यदुपुङ्गव।
पित्रा ते मङ्गलार्थाय स्थापितः पार्थिवाकरः ६१
वंशे चास्मिंस्तव विभो देवानां तनयाव्ययाः
ऋषीणामुरगाणां च उत्पत्स्यन्ते नृयोनिजाः
[12]तन्ममेमाः सुताः पञ्च कुमार्यो वृत्तसंमताः।
उत्पन्ना यौवनाश्वस्य भगिन्यां नृपसत्तम ॥
प्रतीच्छेमाः स्वधर्मेण प्राजापत्येन कर्मणा।
[13]वरं च ते प्रदास्यामि वरार्हस्त्वमतो मम ६४
[14]भौमाश्च कुकुराश्चैव भोजाश्चान्धकयादवाः
दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्यातिं यास्यन्ति सप्त ते,
स तस्मै [15]धूम्रवर्णो वै कन्याः कन्याव्रते स्थिताः
जलपूर्णेन योगेन ददाविन्द्रसमाय वै ॥६६॥
वरं चास्मै ददौ प्रीतः स वै पन्नगपुङ्गवः।
श्रावयन्कन्यकाः सर्वा यथाक्रममदीनवत्॥६७
एतासु ते सुताः पञ्च सुतासु मम मानद।
उत्पत्स्यन्ते पितुस्तेजो मातुश्चैव समाश्रिताः॥
अस्मत्समयबद्धाश्च सलिलाभ्यन्तरेचराः।
तव वंशे भविष्यन्ति पार्थिवाः कामरूपिणः।
स वरं कन्यकाश्चैव लब्ध्वा यदुवरस्तदा।
उदतिष्ठत वेगेन सलिलाच्चन्द्रमा इव ॥ ७०
स पञ्चकन्यामध्यस्थो ददृशे तत्र पार्थिवः।
पञ्चतारेण संयुक्तो नक्षत्रेणेव चन्द्रमाः ॥७१
स तदन्तःपुरं सर्वं ददर्श नृपसत्तमः।
वैवाहिकेन वेषेण दिव्यस्रगनुलेपनः ॥७२॥
समाश्वास्य च ताः सर्वाः सपत्नीः पावकोपमाः
जगाम स्वपुरं राजा प्रीत्या परमया युतः+७३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

तनयाव्यया इति संधिरार्षः॥६२॥**तन्ममेति**। यौवनाश्वस्य या भगिनी सा तत्कनिष्ठस्य हर्यश्वस्यापि भगिनीति यदोः सा पितृस्वसा तदीयां कुमारीं यदुः कथं परिणेतुं क्षमेत सापिण्डय-स्यानिवृत्तेरिति। तथापि मातुलदुहितृपरिणयनसमत्वेन विगीत-मपि वरलोभात्सर्पराजेन एतत्कारितं यदुना चात्यन्तदोषा-भावादभ्युपगतमिति मन्तव्यम्। यद्वान्य एव स यौवनाश्व इति कल्प्यम् ॥ ६३ ॥ स्पष्टार्थोऽध्यायशेषः। प्राजापत्येन विधिना विवाहविधिना ॥ ६४ ॥ जलपूर्णेन योगेन संकल्पेन ॥ ६६ ॥ एतासु मम सुतासु ते तव पञ्च सुताः उत्पत्स्यन्त इत्यन्वयः ॥ ६८ ॥ अस्मत्समयबद्धा अस्मद्वर-दानानुगृहीताः ॥ ६९ ॥ स यदुः ताः पत्नीः समाश्वास्य पितृगृहवियोगदुःखमपनीय॥७३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

——

१ ख. येन स्म या॰। २ क. ॰दवः। स क॰। ३ क. ॰ह महोदा॰। ४ क. ख. धूमव॰। ५ ख. ॰गनार्योघैः स॰। ६ ख. ॰रचारिभिः। स्व॰। ७ क. ध्वजेन मध्येभा॰, ख. स्वर्णेन मध्ये भा॰। ८ क. ख. स्वस्थश्चैव पु॰, घ. स्वच्छं चैव पुरं त॰। ९ ख. अगारं तोय॰। १० क. ख. धूमव॰। ११ क. यादवो नाम वंशोऽयं त्वन्नाम्ना यदुपुंगव, ख. यादवो नाम वंशोऽयं त्वन्नाम्ना वसुधाधिप पि॰। १२ ख. एता मम सुताः प॰। १३ क. वसुं च। १४ क. भौमाश्च सात्वताश्चैव भोजाश्चान्धकया॰, ख. भोजाश्च कौक्कुराश्चैव भो॰। १५ क. ख. धूमव॰। + एतदग्रे–'स्वपरं तु ततो राजा गत्वा वै रमते भृशम्' इति क. ख. पुस्तकयोराधिकम्।

## यादवोत्पत्तिः तेषां पराक्रमादि च ।

### ३८

वैशम्पायन उवाच ।
स तासु नागकन्यासु कालेन महता नृपः ।
जनयामास विक्रान्तान्पञ्च पुत्रान्कुलोद्वहान् ॥१॥
मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च ।
माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम् ॥२॥
एतान्पञ्च सुतान्राजा पञ्चभूतोपमान्भुवि ।
ईक्षमाणो नृपः प्रीतिं जगामातुलविक्रमः ॥३॥
ते प्राप्तवयसः सर्वे स्थिताः पञ्च यथाऽद्रयः ।
तेजिता बलदर्पाभ्यामूचुः पितरमग्रतः ॥ ४ ॥
तात युक्ताः स्म वयसा बले महति संस्थिताः
क्षिप्रमाज्ञप्तुमिच्छामः किं कुर्मस्तव शासनात्
स तान्नृपतिशार्दूलः शार्दूलानिव वेगिताम् ।
प्रीत्या परमया प्राह सुतान्वीर्यकुतूहलात् ॥६॥
विन्ध्यर्क्षवन्तावभितो द्वे पुर्यौ पर्वताश्रये ।
निवेशयतु यत्नेन मुचुकुन्दः सुतो मम ॥७॥
सह्यस्य चोपरिष्टात्तु दक्षिणां दिशमाश्रितः ।
पद्मवर्णोऽपि मे पुत्रो निवेशयतु मा चिरम् ॥
तत्रैव परतः कान्ते देशे चम्पकभूषिते ।
सारसो मे पुरं रम्यं निवेशयतु पुत्रकः ॥९॥
हरितोऽयं महाबाहुः सागरे हरितोदके ।
द्वीपं पन्नगराजस्य सुतो मे पालयिष्यति ॥१०
माधवो मे महाबाहुर्ज्येष्ठपुत्रश्च धर्मवित् ।
यौवराज्येन संयुक्तः स्वपुरं पालयिष्यति ॥११
सर्वे नृपश्रियं प्राप्ता अभिषिक्ताः सचामराः ।
पित्राऽनुशिष्टाश्चत्वारो लोकपालोपमा नृपाः
स्वं स्वं निवेशनं सर्वे भेजिरे नृपसत्तमाः ।
पुरस्थानानि रम्याणि मृगयन्तो यथाक्रमम् ॥१३
मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्विन्ध्यमध्यमरोचयत् ।
स्वस्थानं नर्मदातीरे दारुणोपलसंकटे ॥ १४
स चैव तं शोधयामास विविक्तं च चकार ह ।
सेतुं चैव समं चक्रे परिखाश्चामितोदकाः ॥१५
स्थापयामास भागेषु देवतायतनान्यपि ।
रथ्या वीथीर्नृणां मार्गांश्चत्वराणि वनानि च
स तां पुरीं धनवतीं पुरुहूतपुरीप्रभाम् ।
नातिदीर्घेण कालेन चकार नृपसत्तमः† ॥१७
नाम चास्याः शुभं चक्रे निर्मितं स्वेन तेजसा ।
तस्याः पुर्या नृपश्रेष्ठो देवश्रेष्ठपराक्रमः ॥ १८
महाश्मसंघातवती ऋक्षवन्तमुपाश्रिता ।
माहिष्मती नाम पुरी प्रकाशमुपयास्यति १९
उभयोर्विन्ध्ययोः पादे नगयोस्तां महापुरीम्
मध्ये निवेशयामास श्रिया परमया वृताम् २०
पुरिकां नाम धर्मात्मा पुरीं देवपुरीप्रभाम् ।
उद्यानशतसंबाधां समृद्धापणचत्वराम् ॥ २१
ऋक्षवन्तं समभितस्तीरे तत्र निरामये ।
निर्मिता सा पुरी राज्ञा पुरिका नाम नामतः ॥
स ते द्वे विपुले पुर्यौ देवभोग्योपमे शुभे ।
पालयामास धर्मात्मा राजा धर्मे व्यवस्थितः
पद्मवर्णोऽपि राजर्षिः सह्यपृष्ठे पुरोत्तमम् ।
चकार नद्या वेणायास्तीरे तरुलताकुले ॥२४
विषयस्याल्पतां ज्ञात्वा संपूर्णं राष्ट्रमेव च ।
निवेशयामास नृपः स वप्रप्रायमुत्तमम् ॥ २५

---

३८

अष्टात्रिंशे त्वथाध्याये नागकन्यासु पञ्चसु
यदोः पञ्चाभवन्पुत्रा माधवप्रमुखा नृपाः १

**स तासु इति** ॥१॥ तेजिताः प्रोत्साहिताः ॥४॥ **विन्ध्येति** । विन्ध्यस्योत्तरतः ऋक्षवतो दक्षिणत इत्यर्थः ॥ ७ ॥ तत्रैव सह्यस्योपरिष्टादेव परतः पश्चिमायां दिशि ॥ ९ ॥ पन्नगराजस्य धूम्रवर्णाख्यस्य ॥ १० ॥ स्वपुरं रैवताचलसमीपस्थम् ॥ ११ ॥ मृगयन्तो जिज्ञासमानाः ॥ १३ ॥ दारुणोपलसंकटे विषमाश्मदुर्गमे ॥ १४ ॥ महाश्मसंघातवतीति माहिष्मतीपदस्यावयवार्थो दर्शितः ॥ १९॥ राजा मुचुकुन्दः ॥२३॥ **विषयस्येति** । भूभागस्याल्पत्वेऽपि अतिनिबिडतया तत्रैव कृत्स्नस्य राष्ट्रस्य समावेशं कृत्वा तस्यैव महान्तं वप्रं महाप्राकारोपमं चकारेत्यर्थः ॥ २५ ॥

---

१ ख. विकद्रुरुवाच । स ता° । २ ख. °रि पुरीं द° । ३ ख. °रे सलिलोदरे । ४ ख. स तु तं शो° । † एतदग्रे—'गोभिर्धनेन धान्येन संपूर्णां ध्वजमालिनीम्' इति क. ख. पुस्तकयोरधिकः पाठः । ५ ख. यथेयं विन्ध्यसानुगा मा° । ६ ख. °या युताम् । ७ ख. °त्मा राजधर्मेण वीर्यवान् । पद्म° ।

पद्मावतं जनपदं करवीरं च तत्पुरम्।
निर्मितं पद्मवर्णेन प्राजापत्येन कर्मणा ॥२६॥
सारसेनापि विहितं रम्यं क्रौञ्चपुरं महत्।
चम्पकाशोकबहुलं विपुलं ताम्रमृत्तिकम् ॥२७
वनवासीति विख्यातः स्फीतो जनपदो महान्
पुरस्य तस्य तु श्रीमान्द्रुमैः सार्वर्तुकैर्वृतः ॥२८
हरितोऽपि समुद्रस्य द्वीपं समभिपालयत्।
रत्नसंचयसंपूर्णं नारीजनमनोहरम् ॥ २९
तस्य दाशा जले मग्ना मद्गुरा नाम विश्रुताः
ये हरन्ति सदा शङ्खान्समुद्रोदरचारिणः ३०
तस्यापरे दाशजनाः प्रवालाञ्जनसंभवान्।
संचिन्वन्ति सदा युक्ता जातरूपं च मौक्तिकम्
जलजानि च रत्नानि निषादास्तस्य मानवाः
प्रचिन्वन्तोऽर्णवे युक्ता नौभिः संयानगामिनः
मत्स्यमांसेन ते सर्वे वर्तन्ते स्म सदा नराः।
गृह्णन्तः सर्वरत्नानि रत्नद्वीपनिवासिनः ॥३३॥
तैः संयानगतैर्द्रव्यैर्वणिजो दूरगामिनः।
हरितं तर्पयन्त्येकं यथैव धनदं तथा ॥३४॥
एवमिक्ष्वाकुवंशात्तु यदुवंशो विनिःसृतः।
चतुर्धा यदुपुत्रैस्तु चतुर्भिर्भिद्यते पुनः ॥३५॥
स यदुर्माधवे राज्यं विसृज्य यदुपुङ्गवे।
त्रिविष्टपं गतो राजा देहं त्यक्त्वा महीतले॥
बभूव माधवसुतः सत्त्वतो नाम वीर्यवान्।
सत्त्ववृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणे स्थितः ॥
सत्त्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत्
येन भैमाः सुसंवृत्ताः सत्त्वतात्सात्त्वताः स्मृताः
राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन्रामे राज्यं प्रशासति
शत्रुघ्नो लवणं हत्वा चिच्छेद स मधोर्वनम्
तस्मिन्मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम्।
निवेशयामास विभुः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥४०
पर्यये[1] चैव रामस्य भरतस्य तथैव च।
सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम् ॥
भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसंबन्धकारणात्।
स्ववशे स्थापिता पूर्वं स्वयमध्यासिता तथा ॥
ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि।
अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत्
अन्धकस्य सुतो जज्ञे रैवतो नाम पार्थिवः।
ऋक्षोऽपि[3] रैवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्धनि ॥४४
ततो रैवत उत्पन्नः पर्वतः सागरान्तिके।
नाम्ना रैवतको नाम भूमौ भूमिधरः स्मृतः॥
रैवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भो महायशाः
बभूव पृथिवीपालः पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः ॥
तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु केशव।
चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाः शुभाः
वसुर्बभ्रुः सुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान्।
यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे ॥४८
तैरयं यादवो वंशः
पार्थिवैर्बहुलीकृतः।
यैः साकं कृष्ण लोकेऽस्मि-
न्प्रजावन्तः प्रजेश्वराः*
वसोस्तु कुन्तिविषये वसुदेवः सुतो विभुः।
ततः स जनयामास सुप्रभे द्वे च दारिके ॥५०
कुन्तीं च पाण्डोर्महिषीं देवतामिव भूचरीम्[6]
भार्यां च दमघोषस्य चेदिराजस्य सुप्रभाम्

प्राजापत्येन त्वष्ट्रसंबन्धिना कर्मणा शिल्पेन ॥ २६ ॥ क्रौञ्चपुरं वेणायाः दक्षिणे भागे ॥ २७ ॥ दाशाः धीवराः ॥ ३० ॥ संचिन्वन्ति राशीन् कुर्वन्ति युक्ताः सावधानाः जातरूपं दीप्तिमत् ॥ ३१ ॥ प्रचिन्वन्तोऽन्वेषयन्तः नौभिः महानौकाभिः संयानगामिनः क्षुद्रनौकागामिनः क्षुद्रनौकाबलेनालोड्य एकत्र महानौकायां प्रक्षिपन्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ यदुवंशस्य द्विशाखत्वमुपसंहरति–**एवमिति**। चतुर्धेति माधवस्य मुख्यस्तम्भरूपत्वात्। शाखारूपेणैव चतुर्धात्वं वंशस्येत्यर्थः ॥ ३५ ॥ तस्मिन् भीमे ॥ ३९ ॥ पर्यये अवतारोपरमे सति भीमेन वैष्णवं स्थानं मथुराख्यं प्राप्तमित्युत्तरसहितस्यान्वयः ॥ ४१ ॥ राज्यसंबन्धकारणात् मधोः पुत्रे लवणे नष्टे मधुदौहित्रा राज्यप्रार्थिनो भवन्तीति शास्त्रीयसंबन्धात्तद्दौहित्रजत्वाच्च भीमस्येत्यर्थः ॥ ४२ ॥ राज्ये अयोध्यायामिति शेषः ॥ ४३ ॥ रैवताद्रैवतो रैवताद्विश्वगर्भ इत्यर्थः ॥४४॥ **वसोरिति**। वसोः शूरापरनाम्नः सुतो वसुदेवोऽभवत्। ततो वसुदेवादनन्तरं स वसुर्द्वे दारिके जनयामास। ते च पृथाश्रुतश्रवाख्ये कुन्तिविषये कुन्तिभोजस्य राज्ञो विषये गोचरे दुहितृत्वेन दत्तत्वात्तदधीने इति यावत् ॥ ५० ॥

१ क. ख. °शगणाः। २ क. ख. पर्याये चै°। ३ क. ख. °ज्ञे रैव°। ४ ख. °पि रैव°। * 'यस्मिंस्ते कृष्ण लोकेशाः सुप्रजाताः प्रजेश्वराः।' इति ख-पाठः। ५ ख. °तः संजन°। ६ ख. °चराम्।

एष ते स्वस्य वंशस्य प्रभवः संप्रकीर्तितः।
श्रुतो मया पुरा कृष्ण कृष्णद्वैपायनान्तिकात्
त्वं त्विदानीं प्रनष्टेऽस्मिन्वंशे वंशभृतां वर।
स्वयंभूरिव संप्राप्तो भवायास्मज्जयाय च ॥५३
न तु त्वां पौरमात्रेण शक्ता गूहयितुं वयम्।
देवगुह्येष्वपि भवान्सर्वज्ञः सर्वभावनः ॥५४॥
शक्तश्चापि जरासन्धं नृपं योधयितुं विभो।
त्वद्बुद्धिवशगाः सर्वे वयं योधव्रते स्थिताः
जरासन्धस्तु बलवान्नृपाणां मूर्ध्नि तिष्ठति।
अप्रमेयबलश्चैव वयं च कृशसाधनाः ॥५६॥
न चेयमेकाहमपि पुरी रोधं सहिष्यति।
कृशभक्तेन्धनक्षामा दुर्गैरपरिवेष्टिता ॥५७॥
असंस्कृताम्बुपरिखा द्वारयन्त्रविवर्जिता।
वप्रप्राकारनिचया कर्तव्या बहुविस्तरा ॥५८॥
संस्कर्तव्यायुधागारा योक्तव्या चेष्टिकाचयैः
कंसस्य बलभोग्यत्वान्नातिगुप्ता पुरा जनैः
सद्यो निपतिते कंसे राज्येऽस्माकं नवोदये।
पुरी प्रत्यग्ररोधेन न रोधं विसहिष्यति ॥६०
बलं संमर्दभग्नं च कृष्यमाणं परेण ह।
असंशयमिदं राष्ट्रं जनैः सह विनङ्क्ष्यति॥६१
यादवानां विरोधेन ये जिता राज्यकामुकैः।
ते सर्वे द्वैधमिच्छन्ति यत्क्षमं तद्विधीयताम्
वञ्चनीया भविष्यामो नृपाणां नृपकारणात्।
जरासन्धभयार्तानां द्रवतां राज्यसंभ्रमे ॥६३
आर्ता वक्ष्यन्ति नः सर्वे रुध्यमानाः पुरे जनाः
यादवानां विरोधेन विनष्टाः स्मेति केशव ॥
एतन्मम मतं कृष्ण विस्रंभात्समुदाहृतम्।
त्वं तु विज्ञापितः पूर्वं न पुनः संप्रबोधितः ६५
यदत्र वः क्षमं कृष्ण तच्च वै संविधीयताम्।
त्वमस्य नेता सैन्यस्य वयं त्वच्छासने स्थिताः
त्वन्मूलश्च विरोधोऽयं रक्षास्मानात्मना सह

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## जामदग्न्येन रामकृष्णयोः संगतिः।

## ३९

वैशम्पायन उवाच।
विकद्रोस्तु वचः श्रुत्वा वसुदेवो महायशाः
परितुष्टेन मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १
राजा षाड्गुण्यवक्ता वै
राजा मन्त्रार्थतत्त्ववित्।
सतत्त्वं च हितं चैव
कृष्णोक्तं किल धीमता ॥२॥
भाषिता राजधर्माश्च सत्याश्च जगतो हिताः
विकद्रुणा यदुश्रेष्ठ यद्धितं तद्विधीयताम् ॥+
एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं विकद्रोश्च महात्मनः।
विकद्रोस्तद्वचस्तथ्यं निशम्य यदुपुङ्गवः। *
वाक्यमुत्तममेकाग्रो बभाषे पुरुषोत्तमः ॥४॥
ब्रुवतां वः श्रुतं वाक्यं हेतुतः क्रमतस्तथा।
न्यायतः शास्त्रतश्चैव दैवं चैवानुपश्यताम् ॥

प्रनष्टे अभिभूते ॥ ५३ ॥ पौरमात्रेण पुरवासिलोकसाम्येन त्वां जरासन्धाद्गूहयितुं वयं क्षमा न। एतच्च सर्वज्ञत्वाद्भवानेव वेदेत्याह-देवेति। भावयतीति भावनः ज्ञाता ॥ ५४ ॥ अग्रं प्रतीति प्रत्यग्रं राजभागार्थं रोधो यस्याः सेव। यथाहि कर्षकग्रामं करार्थे राजभटा अवरुन्धन्ति तद्वत् ॥ ६० ॥ कामुकैरस्माभिः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

एकोनचत्वारिंशेऽथ जरासंधभयाद्द्रुतिः
उच्यते जामदग्न्येन संगती रामकृष्णयोः१

विकद्रोरिति ॥ १ ॥ हेतुतः मन्निमित्तं वैरमिति हेतुतः। क्रमतः शत्रोः पराक्रमतः। न्यायतः यन्निमित्तं वैरं तस्यैव परिहारेणारिष्टशान्तिः कर्तव्येति युक्तेः। शास्त्रतः अशक्तस्यापसरणानुज्ञावशात् दैवं भाविकार्यमनुपश्यताम्॥५

१ क. वरः। २ ख. ॰तुं वनम्। ३ क. ख. ॰श्चासि ज॰। ४ क. ख. ॰रिनिष्ठिता। ५ ख. ॰ज्ञाभिगु॰। ६ क. ख. ॰त्र नः क्ष॰। ७ ख. ॰द्रोस्तद्वचः। ८ क. ॰ण्यसीमा वै। + विकद्रुणेति पद्यार्धं क. ख. पुस्तकयोर्न * विकद्रोस्तद्वचः इति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति।

श्रूयतामुत्तरं वाक्यं श्रुत्वा च परिगृह्यताम्।
नयेन व्यवहर्तव्यं पार्थिवेन यथाक्रमम् ॥६॥
सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षाड्गुण्यं चिन्तयेत्सदा॥
बलिनः सन्निकृष्टे तु न स्थेयं पण्डितेन वै।
अपक्रमेद्धि कालज्ञः समर्थो युद्धमुद्वहेत् ॥८॥
अहं तावत्सहायेन मुहूर्तेऽस्मिन्प्रकाशिते।
जीवितार्थं गमिष्यामि शक्तिमानप्यशक्तवत्
ततः सह्याचलयुतं सहायेनाहमक्षयम्।
आत्मद्वितीयः श्रीमन्तं प्रवेक्ष्ये दक्षिणापथम्
करवीरपुरं चैव रम्यं क्रौञ्चपुरं तथा।
द्रक्ष्यावस्तत्र सहितौ गोमन्तं च नगोत्तमम्॥
आवयोर्गमनं श्रुत्वा जितकाशी स पार्थिवः।
अप्रविश्य पुरीं दर्पादनुसारं करिष्यति ॥ १२
ततः सह्यवनेष्वेवं राजा याति स सानुगः।
आवयोर्ग्रहणे चैव नृपतिः प्रयतिष्यति ॥ १३
एषा नः श्रेयसी यात्रा भविष्यति कुलस्य वै
पौराणामथ पुर्याश्च देशस्य च सुखावहा ॥१४
न च शत्रोः परिभ्रष्टा राजानो विजिगीषवः।
परराष्ट्रेषु मृष्यन्ति मृधे शत्रोः क्षयं विना १५
एवमुक्त्वा तु तौ वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ।
प्रपेदतुरसंभ्रान्तौ दक्षिणौ दक्षिणापथम् ॥ १६
तौ तु राष्ट्राणि शतशश्चरन्तौ कामरूपिणौ।
दक्षिणां दिशमास्थाय चेरतुर्मार्गगौ सुखम्१७
सह्यपृष्ठेषु रम्येषु मोदमानावुभौ तथा।
दक्षिणापथगौ वीरावध्वानं सम्प्रपेदतुः ॥ १८
तौ च स्वल्पेन कालेन सह्याचलविभूषितम्।
करवीरपुरं प्राप्तौ स्ववंशेन विभूषितम् ॥ १९
तौ तत्र गत्वा वेणाया नद्यास्तीरान्तमाश्रितम्

आसेदतुः प्ररोहाढ्यं न्यग्रोधं तरुपुङ्गवम् ॥२०
अधस्तात्तस्य वृक्षस्य मुनिं दीप्ततपोधनम्
अंसावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम् ॥ २१
गौरमग्निशिखाकारं तेजसा भास्करोपमम्।
क्षत्रान्तकरमक्षोभ्यं वपुष्मन्तमिवार्णवम् २२
न्यस्तसंकुचिताधानं काले हुतहुताशनम्।
क्लिन्नं त्रिषवणाम्भोभिराद्यं देवगुरुं यथा ॥ २३
सवत्सां धेनुकां श्वेतां होमधुक्कामदोहनाम्।
क्षीरारणिं कर्षमाणं महेन्द्रगिरिगोचरम् २४
ददृशतुस्तौ सहितावपरिश्रान्तमव्ययम्।
भार्गवं राममासीनं मन्दरस्थं यथा रविम् २५
न्यायतस्तौ तु तं दृष्ट्वा पादमूले कृतासनौ।
वसुदेवसुतौ वीरौ सधिष्ण्याविव पावकौ२६
कृष्णस्तमृषिशार्दूलमुवाच वदतां वरः।
श्लक्ष्णं मधुरया वाचा लोकवृत्तान्तकोविदः
भगवन्नामदग्न्यं त्वामवगच्छामि भार्गवम्।
रामं मुनीनामृषभं क्षत्रियाणां कुलान्तकम्२८
त्वया सायकवेगेन क्षिप्तो भार्गव सागरः।
इषुपातेन नगरं कृतं शूर्पारकं त्वया ॥ २९
धनुःपञ्चशतायामिषुपञ्चशतोच्छ्रयम्।
सह्यस्य च निकुञ्जेषु स्फीतो जनपदो महान्
अतिक्रम्योदधेर्वेलामपरान्ते निवेशितः।
त्वया तत्कार्तवीर्यस्य सहस्रभुजकाननम् ३१
छिन्नं परशुनैकेन स्मरता निधनं पितुः।
इयमद्यापि रुधिरैः क्षत्रियाणां हतद्विषाम् ३२
स्निग्धैस्त्वत्परशूत्सृष्टैः रक्तपङ्का वसुंधरा।
रैणुकेयं विजाने त्वां क्षितौ क्षितिपरोषणम्
परशुप्रग्रहे युक्तं यथैवेह रणे तथा।
तदिच्छावस्त्वया विप्र कंचिदर्थमुपश्रुतम् ३४

तत्र क्रमतः शास्त्रत इत्येतौ हेतू व्याचष्टे—**बलिन इति**। सन्निकृष्टे निकटे ॥ ८ ॥ इतरयोर्हेत्वोरुत्तरमाह—**अहमित्यादिना** ॥ ९ ॥ अनुसारं पृष्ठतो धावनम्॥१२॥ राजा जरासन्धः प्रयतिष्यति वेगेनागमिष्यति ॥१३॥ शत्रोः शत्रुं प्राप्य परिभ्रष्टाः स्वराष्ट्रे स्थित्वा पृष्ठतः शत्रोर्वधमेव कामयन्ते न तु स्वराष्ट्ररक्षां तत्र मुख्यार्थिनः परस्याभिनिवेशाभावादित्यर्थः ॥ १५ ॥ दक्षिणौ समर्थौ ॥ १६ ॥ न्यस्तं समारोपितम् अत एव संकुचितम् आधानं त्रेताग्निविस्तारो यस्य तम्। अथापि काले प्रादुष्कृतेष्वग्निषु हुतहुताशनम् ॥ २३ ॥ होमार्थं दुह्यते सा होमधुक् सा चासौ कामदोहना चेति समासः ॥ २४ ॥ सधिष्ण्यौ सस्थानौ ॥ २६ ॥ समुद्रात् भूमिषु पातमात्रं प्राप्य तत्र शूर्पारकं नाम नगरं कृतं कृत्स्नायाः क्षितेः काश्यपाय दानत्वात् ॥ २९ ॥ धनुश्चतुर्हस्तं इषुर्द्विहस्तः ॥३०॥ अपरान्ते पश्चिमसमुद्रतीरे ॥३१॥

१ ख. °व जरासंधोऽनुयास्यति। २. घ. सह्यपृ°। ३ क. °पेततुः। ४ ख. तौ तु। ५ क. ख. स्ववंशजविभू°। ६ क. ख. ददर्शतु°। ७ ख. °ताञ्जली। व°। ८ ख. °कदृष्टान्तको°। ९ ख. °तोद्यतम्। स°। १० क. ख. °तौ क्षत्रियरोषणम्। ११ क. परशुप्र°।

उत्तरं च श्रुतार्थेन प्रत्युक्तमविशङ्कया।
आवयोर्मथुरा राम यमुनातीरशोभिनी ॥ ३५
यादवौ स्वो मुनिश्रेष्ठ यदि ते श्रुतिमागतौ।
वसुदेवो यदुश्रेष्ठः पिता नौ हि धृतव्रतः॥ ३६
जन्मप्रभृति चैवावां व्रजेष्वेव नियोजितौ।
तौ स्वः कंसभयात्तत्र शङ्कितौ परिवर्द्धितौ ॥
वयश्च प्रथमं प्राप्तौ मथुरायां प्रवेशितौ।
तावावां ह्युत्थितं हत्वा समाजे कंसमोजसा
पितरं तस्य तत्रैव स्थापयित्वा जनेश्वरम्।
स्वमेव कर्म चारब्धौ गवां व्यापारकारकौ ३९
अथावयोः पुरं रोद्धुं जरासन्धो व्यवस्थितः।
संग्रामान्सुबहून्कृत्वा लब्धलक्षावपि स्वयम्
ततः स्वपुररक्षार्थं प्रजानां च धृतव्रत।
अकृतार्थावनुद्योगौ कर्तव्यबलसाधनौ ॥ ४१
अरथौ पत्तिनौ युद्धे निस्तनुत्रौ निरायुधौ।
जरासन्धोद्यमभयात्पुराद्द्वावेव निःसृतौ ॥ ४२
एवमावामनुप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठ तवान्तिकम्।
आवयोर्मन्त्रमात्रेण कर्तुमर्हसि सत्क्रियाम् ४३
श्रुत्वैतद्भार्गवो रामस्तयोर्वाक्यमनिन्दितम्।
रैणुकेयः प्रतिवचो धर्मसंहितमब्रवीत् ॥ ४४
अपरान्तादहं कृष्ण संप्रतीहागतः प्रभो।
एक एव विना शिष्यैर्युवयोर्मत्रकारणात् ४५
विदितो मे व्रजे वासस्तव पद्मनिभेक्षण।
दानवानां वधश्चापि कंसस्यापि दुरात्मनः ४६
विग्रहं च जरासन्धे विदित्वा पुरुषोत्तम।
तव सभ्रातृकस्येह संप्राप्तोऽस्मि वरानन ४७
जाने त्वां कृष्ण गोप्तारं जगतः प्रभुमव्ययम्।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमबालं बालतां गतम् ४८
न त्वयाऽविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
तथापि भक्तिमात्रेण शृणु वक्ष्यामि ते वचः ४९
पूर्वजैस्तव गोविन्द पूर्वं पुरमिदं कृतम्।
करवीरपुरं नाम राष्ट्रं चैव निवेशितम् ॥ ५०
पुरेऽस्मिन्नृपतिः कृष्ण वासुदेवो महायशाः।
शृगाल इति विख्यातो नित्यं परमकोपनः ५१
नृपेण तेन गोविन्द तव वंशभवा नृपाः।
दायादा निहताः सर्वे वीरद्वेषानुशायिना ५२
अहंकारपरो नित्यमजितात्माऽतिमत्सरी।
राज्यैश्वर्यमदाविष्टः पुत्रेष्वपि च दारुणः ५३
तन्नेह भवतः स्थानं रोचते मे नरोत्तम।
करवीरपुरे घोरे नित्यं पार्थिवदूषिते ॥ ५४
श्रूयतां कथयिष्यामि यत्रोभौ शत्रुबाधनौ।
जरासन्धं बलोदग्रं भवन्तौ योधयिष्यतः ५५
तीर्त्वा वेणामिमां पुण्यां नदीमद्यैव बाहुभिः
विषयान्ते निवासाय गिरिं गच्छाम दुर्गमम्
रम्यं यज्ञगिरिं नाम सह्यस्य प्ररुहं गिरिम्।
निवासं मांसभक्षाणां चौराणां घोरकर्मणाम्
नानाद्रुमलतायुक्तं चित्रं पुष्पितपादपम्।
प्रोष्ये तत्र निशामेकां खट्वाङ्गां नाम निम्नगाम्
भद्रं ते संतरिष्यामो निकषोपलभूषणाम्।
गङ्गाप्रपातप्रतिमां भ्रष्टां च महतो गिरेः ॥५९

तस्याः प्रपातं द्रक्ष्याम-
स्तापसारण्यभूषणम्।
उपभुज्य त्विमान्कामा-
न्गत्वा तान्धरणीधरान् ॥ ६०
द्रक्ष्यामस्तत्र तान्विप्रा-
ञ्छाम्यतो वै तपोधनान्*
रम्यं क्रौञ्चपुरं नाम
गमिष्यामः पुरोत्तमम् ॥ ६१

वंशजस्तत्र ते राजा कृष्ण धर्मरतः सदा।
महाकपिरिति ख्यातो वनवास्यजनाधिपः ॥
तमदृष्ट्वैव राजानं निवासाय गतेऽहनि।
तीर्थमानडुहं नाम तत्रस्थाः स्याम संगताः ६३
ततश्च्युता गमिष्यामः सह्यस्य विवरे गिरिम्
गोमन्तमिति विख्यातं नैकशृङ्गविभूषितम् ॥
खगतैकमहाशृङ्गं दुरारोहं खगैरपि।
विश्राममभूतं देवानां ज्योतिर्भिरभिसंवृतम् ६५

कर्तव्यं संपादनीयं बलं सैन्यं साधनं धनादिकं ययोस्तौ ॥४१॥ द्वेषानुशायिना द्वेषमेवानुशेतेऽनुरुध्यते न तु धर्मं तेन ॥५२॥ विषयान्ते देशसीम्नि निवासाय रात्रिवासाय ॥५६॥ प्ररुहम् उपगिरिम् ॥ ५७ ॥ श्राम्यतः श्रममाणान् वानप्रस्थानिति यावत् ॥ ६१ ॥ वनमेव वास्यं वासार्हं यस्य स वनवास्यः स चासौ जनश्च तस्याधिपतिः ॥ ६२ ॥

१ क. ख. रं तत्र तस्यैव स्था°। २ ख. उभावावाम्। ३ क. ख. कंसस्य च दु°। ४ क. ख. श्रमानकामान्मानार्हान् ग°। *तां तीर्त्वा निम्नगां तत्र तांश्च दृष्ट्वा तपोधनान् इत्यधिकं खपुस्तके। ५ ख. °नस्यास्म°। ६ ख. °म गमिष्यामः सनातनम्। तत°।

सोपानभूतं स्वर्गस्य गगनाद्रिमिवोच्छ्रितम्।
तं विमानावतरणं गिरिं मेरुमिवापरम्॥ ६६
तस्योत्तमे महाशृङ्गे भास्वन्तौ दैवरूपिणौ।
उदयास्तमये सूर्यं सोमं च ज्योतिषां पतिम्॥
ऊर्मिमन्तं समुद्रं च अपारद्वीपभूषणम्।
प्रेक्षमाणौ सुखं तत्र नगाग्रे विचरिष्यथः॥ ६८
शृङ्गस्थौ तस्य शैलस्य गोमन्तस्य वनेचरौ।
दुर्गयुद्धेन धावन्तौ जरासन्धं विजेष्यथः ६९
तत्र शैलगतौ दृष्ट्वा भवन्तौ युद्धदुर्मदौ।
आसक्तः शैलयुद्धे वै जरासन्धो भविष्यति॥
भवतोरपि युद्धे तु प्रवृत्ते तत्र दारुणे।
आयुधैः सह संयोगं पश्यामि न चिरादिव॥
संग्रामश्च महान्कृष्ण निर्दिष्टस्तत्र दैवतैः।
यदूनां पार्थिवानां च मांसशोणितकर्दमः ७२
तत्र चक्रं हलं चैव गदां कौमोदकीं तथा।
सौनन्दं मुसलं चैव वैष्णवान्यायुधानि च॥
दर्शयिष्यन्ति संग्रामे पास्यन्ति च महीक्षिताम्
रुधिरं कालयुक्तानां वपुर्भिः कालसंनिभैः ७४
स चक्रमुसलो नाम संग्रामः कृष्ण विश्रुतः।
दैवतैरिह निर्दिष्टः कालस्यादेशसंज्ञितः॥७५
तत्र ते कृष्ण संग्रामे सुव्यक्तं वैष्णवं वपुः।
द्रक्ष्यन्ति रिपवः सर्वे सुराश्च सुरभावन ७६
तां भजस्व गदां कृष्ण चक्रं च चिरविस्मृतम्
भजस्व स्वेन रूपेण सुराणां विजयाय वै ७७
बलश्चायं हतं घोरं मुसलं चारिभेदनम्।
वधाय सुरशत्रूणां भजतां[3] लोकभावनः॥ ७८
एष ते प्रथमः कृष्ण संग्रामो भुवि पार्थिवैः।
पृथिव्यर्थे समाख्यातो भारावतरणे सुरैः॥७९
आयुधावाप्तिरत्रैव वपुषो वैष्णवस्य च।
लक्ष्म्याश्च तेजसश्चैव व्यूहानां च विदारणम्
[4]अतःप्रभृति संग्रामो धरण्यां शस्त्रमूर्च्छितः।
भविष्यति महान्कृष्ण भारतं नाम वैशसम्
तद्गच्छ कृष्ण शैलेन्द्रं गोमन्तं च नगोत्तमम्
जरासंधमृधे चापि विजयस्त्वामुपस्थितः *
इदं चैवामृतप्रख्यं होमधेनोः पयोऽमृतम्।
पीत्वा गच्छत भद्रं वो मयाऽऽदिष्टेन वर्त्मना

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

## गोमन्तारोहणम्।

## ४०

वैशम्पायन उवाच।
तत्तु धेन्वाः पयः पीत्वा बलदर्पसमन्वितौ।
ततस्तौ रामसहितौ प्रस्थितौ यदुपुङ्गवौ॥ १
गोमन्तं पर्वतं द्रष्टुं मत्तनागेन्द्रगामिनौ।
जामदग्न्यप्रदिष्टेन मार्गेण वदतां वरौ॥ २
जामदग्न्यतृतीयास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः।
शोभयन्ति स्म पन्थानं त्रिदिवं त्रिदशा इव
ते चाध्वविधिना सर्वे ततो वै दिवसक्रमात्
गोमन्तमचलं प्राप्ता मन्दरं त्रिदशा इव॥ ४
लताचारुविचित्रं च नानाद्रुमविभूषितम्।
[6]नानागुरुपिनद्धाङ्गं चित्रं चित्रमनोहरैः॥ ५
द्विरेफगणसंकीर्णं शिलासंकटपादपम्।
मत्तबर्हिणनिर्घोषैर्नादितं मेघनादिभिः॥ ६

दर्शयिष्यन्ति प्रकटीभविष्यन्ति॥ ७४॥ भजस्व लभस्व॥ ७७॥ व्यूहानां शत्रुसैन्यानाम्॥ ८०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

४०

चत्वारिंशत्तमेऽध्याये वर्ण्यते रामकृष्णयोः।
गोमन्तारोहणं तस्मात्प्रत्यावृत्तिर्द्विजन्मनः १
अध्वविधिना मानुषगत्या॥ ४॥ चित्रैः मयूरैः॥ ५॥

१ क. °नि वै। २ क. ख. चारिमर्दनम्। ३ क. ख. 'जतां लो'। ४ ख. ततः प्र°। * जरासन्धं निमित्तानि शंसन्ति समुपस्थितम् इत्यधिकं मद्यार्थे खपुस्तके। ५ घ. 'न कर्मणा। ६ क. ख. गन्धागुरु°। ७ क. ख. °नोरमैः। द्वि°

गगनालग्नशिखरं जलदासक्तपादपम् ।
मत्तद्विपविषाणाग्रैः परिघृष्टोपलाङ्कितम् ॥ ७
कूजद्भिश्चाण्डजगणैः समन्तात्प्रतिनादितम् ।
दरीप्रपाताम्बुरवैश्छन्नं शार्दूलपल्लवैः ॥ ८
नीलाश्मचयसंघातैर्बहुवर्णं यथा घनम् ।
धातुविस्रावदिग्धाङ्गं सानुप्रस्रवभूषितम् ॥ ९
कीर्णं सुरगणैः कान्तैर्मैनाकमिव कामगम् ।
उच्छ्रितं सुविशालाग्रं समूलाम्बुपरिस्रवम् १०
सकाननदरीप्रस्थं श्वेताभ्रगणभूषितम् ।
पनसाम्रातकाम्रैश्च वेत्रस्यन्दनचन्दनैः ॥ ११
तमालैलावनयुतं मरीचक्षुपसंकुलम् ।
पिप्पलीवाल्लिकालिलं चित्रमिङ्गुदिपादपैः १२
द्रुमैः सर्जरसानां च सर्वतः परिशोभितम् ।
प्रांशुशालवनैर्युक्तं बहुचित्रवनैर्युतम् ॥ १३
सर्जनिम्बार्जुनवनं पाटलीकुलसंकुलम् ।
हिन्तालैश्च तमालैश्च पुन्नागैश्चोपशोभितम् ॥
जलेषु जलजैश्छन्नं स्थलेषु स्थलजैरपि ।
पङ्कजैर्द्रुमखण्डैश्च सर्वतः प्रतिभूषितम् ॥ १५
जम्बूजम्बूलवृक्षाढ्यं कद्रुकन्दलभूषितम् ।
चम्पकाशोकबकुलं बिल्वतिन्दुकशोभितम् ॥
कुंजैश्च नागपुष्पैश्च समन्तादुपशोभितम् ।
नागयूथसमाकीर्णं मृगसंघातशोभितम् ॥ १७
सिद्धचारणरक्षोभिः सेवितप्रस्तरान्तरम् ।
गन्धर्वैश्च समायुक्तं गुह्यकैः पक्षिभिस्तथा×१८
विद्याधरगणैर्नित्यमनुकीर्णशिलातलम् ।
सिंहशार्दूलसन्नादैः सततं प्रतिनादितम् ।
सेवितं वारिधाराभिश्चन्द्रपादैश्च शोभितम् ।
स्तुतं त्रिदशगन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतम् ।
वनस्पतीनां दिव्यानां पुष्पैरुच्चावचैः श्रितम्
शक्रवज्रप्रहाराणामनभिज्ञं कदाचन ।
दावाग्निभयनिर्मुक्तं महावातभयोज्झितम् ॥
प्रपातप्रभवाभिश्च सरिद्भिरुपशोभितम् ।
काननैराननाकारैर्विशेषाद्भिरिव श्रियम् ॥२२
जलशैवलशृङ्गाग्रैरुन्मिषन्तमिव श्रिया ।
स्थलीभिर्भृगजुष्टाभिः कान्ताभिरुपशोभितम्
पार्श्वैरुपलकल्माषैर्मेघैरिव विभूषितम् ।
पादप्रच्छन्नभूमीभिः सपुष्पाभिः समन्ततः ॥
मण्डितं वनराजीभिः प्रमदाभिः पतिर्यथा ।
सुन्दरीभिर्दरीभिश्च कन्दराभिस्तथैव च ॥२५
तेषु तेष्ववकाशेषु सदारमिव शोभितम् ।
औषधीदीप्तशिखरं वानप्रस्थनिषेवितम् ।
जातरूपैर्वनोद्देशैः कृत्रिमैरिव भूषितम् ॥ २६
मूलेन सुविशालेन शिरसाऽप्युच्छ्रितेन च ।
पृथिवीमन्तरिक्षं च गाहयन्तमिव स्थितम् ॥
ते समासाद्य गोमन्तं रम्यं भूमिधरोत्तमम्
रुचिरं रुरुचुः सर्वे वासायामरसन्निभाः ॥२८
रुरुहुस्ते गिरिवरं खमूर्ध्वमिव पक्षिणः ।
असज्जमाना वेगेन वैनतेयपराक्रमाः ॥ २९
ते तु तस्योत्तरं शृङ्गमारूढास्त्रिदशा इव ।
अगारं सहसा चक्रुर्मनसा निर्मितोपमम् ॥३०
निविष्टौ यादवौ दृष्ट्वा जामदग्न्यो महामतिः ।
रामोऽभिमतमक्लिष्टमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ३१
कृष्ण यास्याम्यहं तात पुरं शूर्पारकं विभो
युवयोर्नास्ति वैमुख्यं संग्रामे दैवतैरपि ॥ ३२
प्राप्तवानस्मि यां प्रीतिं मार्गानुगमनादपि ।
सा मे कृष्णानुगृह्णाति शरीरमिदमव्ययम् ३३
इदं यत्स्थानमुद्दिष्टं यत्रायुधसमागमः ।
युवयोर्विहितो देवैः समयः साम्परायिकः ॥
देवानां मुख्य वैकुण्ठ विष्णो देवैरभिष्टुत ।
कृष्ण सर्वस्य लोकस्य शृणु मे नैष्ठिकं वचः ॥
यदिदं प्रस्तुतं कर्म त्वया गोविन्द लौकिकम्
मानुषाणां हितार्थाय लोके मानुषदेहिना ॥
तस्यायं प्रथमः कल्पः कालेन तु वियोजितः
जरासन्धेन वै सार्धं संग्रामे समुपस्थिते ३७
तत्रायुधबलं चैव रूपं च रणकर्कशम् ।
स्वयमेवात्मना कृष्ण त्वयात्मानं विधत्स्व ह ॥

प्रस्थानि सानूनि ॥ ११ ॥ दरीकन्दरयोः कृत्रिमाकृत्रिमत्वेन व्यवस्था॥२५॥ गाहयन्तं गाहमानम् ॥२७॥ साम्परायिकः परलोकहितः ॥ ३४ ॥ नैष्ठिकं तात्त्विकम् ॥ ३५ ॥ इदं भूभारहरणरूपं प्रस्तुतम् आरब्धम् ॥ ३६ ॥ प्रथमो मुख्यः कल्पः प्रयोगः ॥ ३७ ॥ तत्रेति । त्वमेव तवायुधादिकं भाव्यमलौकिकेन सामर्थ्येन । यदाह यास्कः—
"आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्वा आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य" इति॥३८॥

१ क. ख. °षाणाग्रपरि° । २ क. धन्वानाशोक° । ३ क कुटजैर्नाग° । * एतत्पद्यार्धं क. ख. पुस्तकयोर्न विद्यते । ४ ख. °क्तं देवतासुखसंश्रयम् । ५ घ. प्रतापप्र° । ६ क. ख. पादपच्छन्नभूमीभिः सपु° । ७ घ. पतिं य° । ८ क. ख. °दं तत् स्था° । ९ क. ख. नियो° ।

चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा त्वां गदापाणिमाहवे ।
चतुर्द्विगुणपीनांसं बिभ्येदपि शतक्रतुः ॥ ३९
अद्यप्रभृति ते यात्रा[1] स्वर्गौका समुपस्थिता ।
पृथिव्यां पार्थिवेन्द्राणां[2] कृतास्त्रे त्वयि मानद
वैनतेयस्य चाह्वानं वाहनं ध्वजकर्मणः[3] ।
कुरु शीघ्रं महाबाहो गोविन्द वदतां वर ॥ ४१
युद्धकामा नृपतयस्त्रिदिवाभिमुखोद्यताः ।
धार्तराष्ट्रस्य वशगास्तिष्ठन्ति रणवृत्तयः ॥ ४२
राज्ञां निधनदृष्टार्था वैधव्येनाधिवासिता ।
एकवेणीधरा चेयं वसुधा त्वां प्रतीक्षते ॥ ४३
सग्रहं कृष्ण नक्षत्रं संक्षिप्यारिविमर्दन ।
त्वयि मानुष्यमापन्ने युद्धे च समुपस्थिते ४४
त्वरस्व कृष्ण युद्धाय दानवानां वधाय च ।
स्वर्गाय च नरेन्द्राणां देवतानां सुखाय च ॥
सत्कृतोऽहं त्वया कृष्ण लोकैश्च[4] सचराचरैः
त्वया सत्कृतरूपेण[5] येन सत्कृतवानहम् ॥ ४६
साधयामि महाबाहो भवतः कार्यसिद्धये ।
स्मर्तव्यश्चा[6]स्मि युद्धेषु कान्तारेषु महीक्षिताम्
इत्युक्त्वा जामदग्न्यस्तु
कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
जयाशिषा वर्द्धयित्वा
जगामाभीप्सितां दिशम् ॥ ४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तारोहणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## जरासन्धाभिगमनम् ।

## ४१

वैशम्पायन उवाच ।

जामदग्न्ये गते रामे तौ यादवकुलोद्वहौ ।
गोमन्तशिखरे रम्ये चेरतुः कामरूपिणौ ॥ १
वनमालाकुलोरस्कौ नीलपीताम्बरावुभौ ।
नीलश्वेतवपुष्मन्तौ गगनस्थाविवाम्बुदौ ॥ २
तौ शैलधातुदिग्धाङ्गौ युवानौ शिखरे स्थितौ
चेरतुस्तत्र कान्तेषु वनेषु रतिलालसौ ॥ ३
उदयन्तं निरीक्षन्तौ शशिनं ज्योतिषां वरम्
उदयास्तमने चैव ग्रहाणां[7] धरणीधरे ॥ ४
अथ संकर्षणः श्रीमान्विना कृष्णेन वीर्यवान्
चचार तस्य शिखरे नगस्य नगसन्निभः ॥ ५
प्रफुल्लस्य कदम्बस्य सुच्छाये निषसाद ह ।
वायुना मन्दगन्धेन वीज्यमानः सुखेन वै ॥ ६

---

चतुर्द्विगुणपीनांसम् अष्टबाहुमित्यर्थः । एतेन कृष्णस्य साक्षाद्विष्णुत्वमुक्तं न तु तदंशत्वं विद्वद्दृश्यं कृष्णस्येदमेव रूपं द्विभुजं त्वविद्वद्दृश्यमिति ज्ञेयम् ॥ ३९ ॥ वैधव्येन आगामिना अधिवासिता परिगृहीता अत एव एकवेणीधरा असंस्कृतकेशबन्धा ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण, क्षत्रं संक्षिप्य न प्रतीक्षते इति पूर्वेण संबन्धः । क्षत्रियाः मरणभयात्संकोचं प्राप्य कालावधिं न प्रतीक्षन्ते अपि तु उत्फुल्ला भूत्वा शीघ्रमेव मरणं कामयन्ते । यतः सग्रहं क्रूरैः ग्रहैराक्रान्तं नक्षत्रमस्ति इत्यर्थः ॥ ४४ ॥ सत्कृतं सत्कारस्तद्वानहं त्वया विश्वात्मना यतोऽस्मि अतः सर्वत्र सत्कृतोऽस्मीत्यर्थः ॥ ४६ ॥ **साधयामीति** । एतेन युद्धे जयार्थिभिः शूरैः परशुरामः स्मर्तव्य इति विधीयत इति ज्ञेयम् ॥४७॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

---

**४१**

**अथैकचत्वारिंशोऽस्मिन्नामकृष्णजिघृक्षया ।**
**जरासन्धस्य नृपतेरन्वागमनमुच्यते ॥ १ ॥**

**जामदग्न्ये इति** ॥१॥ उदयन्तम् उद्गच्छन्तम् ॥४॥ सुच्छाये शोभनायां छायायाम् ॥ ६ ॥

---

१ क. ॰ति ते युद्धे स्वर्गद्वारमुपस्थितम् । पृथि॰ । २ ख. ॰व्याममरार्थे च कीर्त्यर्थे च सतां वर । वैन॰ । ३ क. ख. ॰जकर्माणि । कु॰ । ४ ख. ॰कैश्चैव सहामरैः । त्व॰ । ५ ख. ॰ण येनाहं सत्कृतः स्वयम् । साध॰ । ६ ख. स्मर्तव्यस्तत्र तत्राहं यत्र युद्धं भवेत्सदा । इत्यु॰ । ७ ख. ॰णां भास्वताम्बरम् । अ॰ ।

तस्य तेनानिलौघेन सेव्यमानस्य तत्र वै ।
मद्यसंस्पर्शजो गन्धः संस्पृशन्घ्राणमागतः ॥
तृष्णा चैनं[1] विवेशाशु वारुणीप्रभवा तदा ।
शुशोष च मुखं तस्य मत्तस्येवापरेऽहनि ॥ ८
स्मारितः स पुरावृत्तममृतप्राशनं विभुः ।
तृषितो मदिरान्वेषी ततस्तं तरुमैक्षत ॥ ९
तस्य प्रावृषि फुल्लस्य यदम्भो जलजोज्झितम्[2]
तत्कोटरस्थं मदिरा[3] संजायत मनोहरा ॥ १०
तां तु तृष्णाऽभिभूतात्मा पिबन्नार्त इवासकृत्
मोहाच्च[4] चलिताकारः समजायत स प्रभुः ११
तस्य मत्तस्य वदनं किंचिच्चलितलोचनम् ।
घूर्णिताकारमभवच्छरत्कालेन्दुसप्रभम् ॥ १२
कदम्बकोटरे जाता नाम्ना कादम्बरीति सा
रूपिणी वारुणी तत्र देवानाममृतारणी[5] ॥१३
कादम्बरीमदकलं विदित्वा कृष्णपूर्वजम् ।
तिस्रस्त्रिदशनार्यस्तमुपतस्थुः प्रियंवदाः ॥ १४
मदिरा रूपिणी भूत्वा कान्तिश्च शशिनः प्रिया
श्रीश्च देवी वरिष्ठा स्त्री स्वयमेवाम्बुजध्वजा
साञ्जलिप्रग्रहा देवी रौहिणेयमुपस्थिता ।
वारुण्या[6] सहितं वाक्यमुवाच मदविक्लवम् ॥
बलं जयस्व दैत्यानां बलदेव दिवीश्वर ।
अहं ते दयिता कान्ता वारुणी समुपस्थिता ॥
त्वामेवान्तर्हितं श्रुत्वा शाश्वतं वडवामुखे ।
क्षीणपुण्येव वसुधां पर्येमि विमलानन ॥ १८
पुष्पचक्रानुलिप्तेषु केसरेषूषितं मया ।
अतिमुक्तेषु चाक्षोभ्य पुष्पस्तवकवत्सु च ॥१९

[7]अहं कदम्बमालीना मेघकाले सुखप्रिया ।
तृषितं मार्गमाणा त्वां स्वेन रूपेण छादिता ॥
साऽस्मि पूर्णेन योगेन यैथवामृतमन्थने ।
समीपं प्रेषिता पित्रा वरुणेन तवानघ ॥ २१
सा यथैवार्णवगता तथैव वडवामुखे ।
त्वयोपभोक्तुमिच्छामि संमतस्त्वं हि मे गुरुः
न त्वाऽनन्तं परित्यक्ष्ये
भर्त्सिताऽपि त्वयाऽनघ ।
नाहं त्वया विना लोका-
नुत्सहे देव सेवितुम् ॥ २३
आदिपद्मं च पद्माङ्कं दिव्यं श्रवणभूषणम् ।
कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि बिभ्रती*
मदिरानन्तरं कान्तिः संकर्षणमुपस्थिता ।
मदेनागलितश्रोणी किंचिदाघूर्णितेक्षणा २५
प्रोवाच[8] प्रणयात्कान्तिर्बद्धाञ्जलिपुटा सती ।
जयपूर्वेण योगेन सस्मितं वाक्यमर्थवत् ॥ २६
अहं चन्द्रादपि पुरुं[10] सहस्रशिरसं प्रभुम् ।
स्वैर्गुणैरनुरक्ता त्वां यथैव[11] मदिरा तथा ॥ २७
श्रीश्च पद्मालया देवी विधेया[12] वैष्णवोरसि ।
रौहिणेयोरसि शुभा मालेवामलतां गता २८
सा मालाममलां गृह्य बलस्योरसि दंशिता ।
पद्मास्या[13] पद्महस्ता वै संकर्षणमथाब्रवीत् २९
राम रामाभिरामस्त्वं वारुण्या समलंकृतः ।
कान्त्या मया च देवेश सङ्गतश्चन्द्रमा यथा ॥
इयं च सा मया मौलिः प्रोद्धृता वरुणालया[14]
मूर्ध्नि शीर्षसहस्रस्य या ते भानुरिवाबभौ ३१

---

रूपिणी मूर्तिमती अमृतारणी अमृतप्रसूः । यया वाजपेयसौत्रामण्यादिषु सुराग्रहवत्सु क्रतुषु आस्वादितया पुरुषा अमृतपानमपि प्राप्नुवन्ति तादृशी मेध्येत्यर्थः ॥१३॥ कादम्बरीमदकलं सुरामदनाव्यक्तवाचम् ॥ १४॥ वडवामुखे वडवाग्निसन्निधौ पाताले शेषरूपेण नित्यं स्थितं त्वाम् इदानीमन्तर्हितम् । एतेन रामोऽपि पूर्ण एव शेषावतारो न तु शेषांश इति दर्शितम् । पर्येमि परिभ्रमामि त्वामन्वेषयन्तीति शेषः ॥१८॥ पुष्पचक्रं विकसितसमुदायः केसराणामेव तेनानुलिप्तेषु केसरवत्सु कुसुमादिषु अतिमुक्तेषु वासन्तीलतासु ॥ १९ ॥ पूर्णेन योगेन सर्वाङ्गसंपत्त्या युक्ता सती ॥ २१ ॥ त्वया कर्त्रा उपभोक्तुमात्मानं भोक्तुं गुरुः स्वामी । पाठान्तरे गुरोः पितुः संमतः ॥ २२ ॥ कान्तिर्मूर्तिमती जयपूर्वेण योगेन रामसंबोधनसंबन्धेन जय रामेति शब्देन अभिमुखीकृत्येत्यर्थः ॥ २६ ॥ श्रीश्च वैष्णव्यपि राममेवानुगतेत्याह-श्रीश्चेति ॥ २८ ॥ दंशिता वस्त्रभूषणादिभिः संपन्ना ॥ २९ ॥ मौलिर्मुकुटः ॥ ३१ ॥

---

१ क. ॰ष्णा वैनं वि॰ । २ क. ख. ॰लदोज्झितम् । त॰ । ३ क. ॰रा व्यजा॰ । ४ क. ख. मदाच्च चलि॰ । ५ क. ॰तारणिः । ६ क. ख. ॰रुण्यात्महितं वा॰ । ७ क. ख. सोऽहं कदम्ब आली॰ । * ' आदिपद्मं च- ' इत्यादिकः श्लोकः क. ख. पुस्तकयोर्न वर्तते । ८ ख. प्रोवाच प्रणता साथ बद्धा॰ । ९ क. ॰कान्तिः संकर्षणमवस्थितम् । जय॰ । १० क. ख. ॰पि गुरुं सं॰ । ११ ख. यथा च मदिरा तथा । श्री॰ । १२ क ख. ॰वो निधेया वै॰ । १३ क. ख. पद्मास्यं प॰ । १४ क. ख. ॰लयात् । १५ ख. मध्ये शी॰ ।

जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषितम् ।
आदिपद्मं च पद्माक्षं दिव्यश्रवणभूषणम् ॥३२
कौशेयानि च नीलानि समुद्राहार्णि भावतः
हारं च पीनतरलं समुद्राभ्यन्तरोषितम् ॥३३
देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणीं भूषणक्रियाम् ।
समयस्ते महाबाहो भूषणानामलंक्रिया ॥ ३४
संगृह्य तमलंकारं ताश्च तिस्रः सुरस्त्रियः ।
शुशुभे बलदेवो हि शारदेन्दुसमप्रभः ॥ ३५
स समागम्य कृष्णेन जलजाम्भोदवर्चसा
मुदं परमिकां लेभे ग्रहयुक्तः शशी यथा ॥३६
ताभ्यामुभाभ्यां संलापे वर्तमाने गृहे यथा ।
वैनतेयस्ततोऽध्वानमतिचक्राम वेगतः ॥ ३७
संग्रामयुक्तस्तेजस्वी दैत्यप्रहरणाङ्कितः ।
देवतानां जलश्लाघी दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ३८
सुप्तस्य शयने दिव्ये क्षीरोदे वरुणालये ।
विष्णोः किरीटं दैत्येन हृतं वैरोचनेन वै ३९
तदर्थस्तेन संग्रामः कृतो गुर्वर्थमोजसा ।
किरीटार्थे समुद्रस्य मध्ये दैत्यगणैः सह ॥४०
मोक्षयित्वा किरीटं तु वैष्णवं पततां वरः ।
व्यत्यक्रमत वेगेन गगनं देवतालयम् ॥ ४१
स ददर्श गुरुं शैले विष्णुं कार्यान्तरागतम् ।
तेन क्रीडावलम्बेन किरीटेन विराजता ॥४२
स दृष्ट्वा मानुषं विष्णुं शैलराजशिरोगतम् ।
प्रकाशचेष्टानिर्मुक्तं विमौलिमिव मानुषम् ॥
अभिज्ञस्तस्य भावानां गरुत्मान्पततां वरः ।
चिक्षेप खं गतो मौलिं विष्णोः शिरसि हृष्टवत्
उपेन्द्रमूर्ध्नि सा मौलिरपिनद्धा इवापतत् ।
शिरसः स्थाननिर्मुक्ता कृष्णं चैवान्वशोभयत्
यथैव मेरुशिखरे भानुर्मध्यंदिने यथा ॥ ४५
वैनतेयप्रयोगेण विदित्वा मौलिमागताम् ।
कृष्णः प्रहृष्टवदनो रामं वचनमब्रवीत् ॥ ४६
त्वरते खलु कार्यार्थी देवतानां न संशयः ।
यथेयमावयोः शैले संग्रामरचना कृता ॥ ४७
वैरोचनेन सुप्तस्य मम मौलिर्महोदधौ ।
शक्रस्य सदृशं रूपं दिव्यमास्थाय सागरात्
ग्राहरूपेण यो नीत आनीतोऽसौ गरुत्मता ।
ममाहिशयनान्मौलिर्हृत्वा क्षिप्तो गरुत्मता *
सुव्यक्तं संनिकृष्टः स जरासन्धो नराधिपः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम्
एतानि विजिगीषूणां शशिकल्पानि भूभृताम्
छत्राण्यार्य विराजन्ते दंशितानि मितानि च
अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः ।
अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः॥५२
अहो द्यौर्विमलाभानां शस्त्राणां विमलानना
प्रभा भास्करभामिश्रा चरन्तीव दिशो दश ॥
एतानि नूनं समरे पार्थिवैरायुधानि च ।
क्षिप्तानि विनशिष्यन्ति मयि सर्वाणि संयुगे
काले खलु नृपः प्राप्तो जरासन्धो महीपतिः
आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः ५५
आर्य तिष्ठाव सहितौ न खल्वानागते नृपे ।
युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम्
एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्रामलालसः
जरासन्धवधं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥ ५७
वीक्षमाणश्च तान् सर्वान्नृपान्यदुवरोऽव्ययः ।
आत्मानमात्मनोवाच यत्पूर्वं दिवि मन्त्रितम्

---

समुद्राहार्णि समुद्रः कामः । 'कामं समुद्रमाविवेश' इति मन्त्रवर्णात् । मनोरथानुरूपाणीत्यर्थः । भावतः आदरेण प्रतिगृह्णीष्वेत्युत्तरेणान्वयः ॥ ३३ ॥ भूषणमेव त्वयाऽलंक्रियाऽलंकरणं भवति न तु तैस्तव तथापि ते तव समयोऽयमलंकारप्रतिग्रहस्येत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ताभ्यां तयोः संलापेऽन्योन्यभाषणे अध्वानमतिचक्राम तत्राजगामेत्यर्थः ॥ ३७ ॥ किरीटं मोक्षयित्वा क्षीरोदे विष्णुमदृष्ट्वा गमनं व्यत्यक्रमतेत्यर्थः ॥४१॥ ततो गगनादेव शैले विष्णुं ददर्श न तु वैकुण्ठे। क्रीडावलम्बेन स्कन्धावसक्तेन ॥४२॥ विमौलिं विकिरीटम् । एतावता ग्रन्थेन कृष्णस्तु भगवान् स्वयमित्येतद्दर्शितं वैकुण्ठक्षीरोदयोस्तदभावात् । तत्रापि मूर्तेः सत्त्वे तु अंशावतारत्वमेव स्यादिति ॥ ४३ ॥ स्थाने निर्युक्ता निश्चयेन योजिता ॥ ४५ ॥ अहिशयनात् गते इति शेषः ॥ ४९ ॥

---

१ क. ख. पद्माक्ष दि° । २ ख. भावन । ३ ख. हारश्च पी° । ४ क. ख. वेगितः । ५ क. ख. °समुक्त° । ६ घ. °ग्रामे रचना कृ° । *'महाहिशयन–' इत्यादि पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । ७ ख. अभ्यवर्तन्त नः । ८ क. अहोऽद्य विम° । ९ क. °तौ तस्मिन्खल्वागते नृ° । १० क. वीक्ष्यमा° ।

इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः
ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ५९
प्रोक्षितान्खल्विमान्मन्ये मृत्युना नृपसत्तमान्
स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥
स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता।
एषां नृपतिसिंहानां बलौघैरभिपीडिता + ॥
अल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम्।
भविष्यति नरेन्द्रौघैराकीर्णं च नभस्तलम् ६२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासन्धाभिगमनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## गोमन्तदाहः।

## ४२

वैशम्पायन उवाच।

जरासन्धस्ततः प्राप्तो नृपः सर्वमहीक्षिताम्
नराधिपैर्बलयुतैरनुयातो महाद्युतिः ॥ १
व्यायतोदग्रतुरगैर्विस्पष्टार्थसमाहितैः।
रथैः साङ्ग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित् २
हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः।
महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणवल्गितैः ॥३
सारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः
वाजिभिर्वायुसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्रिभिः ४
खड्गचर्मबलोदग्रैः पत्तिभिर्वल्गिताम्बरैः।
सहस्रसंख्यैर्निर्मुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः॥ ५
एवं चतुर्विधैः सैन्यैः प्रचलद्भिरिवांबुदैः।
नृपोऽभियातो बलवाञ्जरासन्धो धृतव्रतः ॥६
स रथैर्नेमिघोषैश्च गजैश्च मदसिञ्जितैः।
हेषद्भिश्चापि तुरगैः क्ष्वेडितोग्रैश्च पत्तिभिः ७
सन्नादयन्दिशः सर्वाः सर्वाश्चापि गुहाशयान्
स राजा सागराकारः ससैन्यः प्रत्यदृश्यत
तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम्।
क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ॥ ९
रथैः पवनसंपातैर्गजैश्च जलदोपमैः।
तुरगैश्च सिताभ्राभैः पत्तिभिश्चापि दंशितैः॥
श्यामिश्रं तद्बलं भाति पत्तिद्विपरथाकुलम्।
घर्मान्ते सागरगतं यथाऽभ्रपटलं तथा॥ ११
सबलास्ते महीपाला जरासन्धपुरोगमाः।
परिवार्य गिरिं सर्वे निवेशायोपचक्रमुः ॥ १२
बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीः शिबिरस्य वै
शुक्ले पर्वणि पूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥ १३
वीतरात्रे ततः काले नृपास्ते कृतकौतुकाः।
आरोहणार्थं शैलस्य समेता युद्धलालसाः ॥
समवायीकृताः सर्वे गिरिप्रस्थेषु ते नृपाः।
निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः ॥१५
एषां तु तुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम्।
युगान्ते भिद्यमानानां सागराणां यथा स्वनः
तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः
चेरुर्मा शब्द इत्येवं ब्रुवन्तो राजशासनात् ॥
तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्दस्तिमितस्य वै
लीनमीनभुजङ्गस्य निःशब्दस्य पयोदधेः १८
तस्मिंस्तिमितनिश्शब्दे योगादिव महार्णवे
जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥१९
शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानीह महीक्षिताम्
सर्वतः पर्वतश्चायं बलौघैः परिवार्यताम् ॥२०

एषां स्थाने सति ॥ ६१ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

अथ द्विचत्वारिंशेऽस्मिञ्जरासन्धप्रचोदितैः।
राजभिर्विहितो दाहो गोमन्तस्येति वर्ण्यते १

जरासन्ध इति ॥ १ ॥ विस्पष्टार्था अस्त्रशास्त्रविदस्तैः समाहिताः सुशिक्षितास्तैः ॥ २ ॥ आरूढं सर्वत्र प्रसिद्धिस्तद्युक्तैः सारूढैः प्रख्यातैः सादिभिः युक्ताः नियुक्ता वाजिनस्तैः ॥ ४ ॥ धृतव्रत इत्यलौकिकमपि सामर्थ्यं सूचितम् ॥ ६ ॥ कृतकौतुकाः कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ १४ ॥

+ 'मही निरन्तरा चेयं वनराष्ट्रामिसंतता' इति क. ख. पुस्तकयोरधिकः पाठः। १ क. स्वल्पे°। २ क. °मर्पितैः। ३ क. ख. पत्तिभिर्व°। ४ क. बहिस्त°।

अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः
ऊर्ध्वं चापि प्रवाह्यन्तां प्रासा वै तोमराणि च
ऊर्ध्वं प्रक्षेपणार्थाय दृढानि च लघूनि च।
शस्त्रपातविघातानि क्रियन्तामाशु शिल्पिभिः
शूराणां युद्ध्यमानानां प्रमत्तानां परस्परम्।
यथा नरपतिः प्राह तथा शीघ्रं विधीयताम्॥२३
दार्यतामेष टङ्कौघैः खनित्रैश्च नगोत्तमः।
नृपाश्च युद्धदुर्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः॥ २४
अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे गिरिरोधः प्रवर्त्यताम्।
यावदेतौ पातयामो वसुदेवसुतावुभौ॥ २५
अचलोऽयं शिलायोनिः क्रियतां निश्चलांडजः
आकाशमपि बाणौघैर्निःसम्पातं विधीयताम्
मयाऽनुसृष्टास्तिष्ठन्तु गिरिभूमिषु भूमिपाः।
तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां गिरिः॥२७
मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानश्च बाह्लिकः।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा
द्रुमः किंपुरुषश्चैव पार्वतीयाश्च मालवाः।
पर्वतस्यापरं पार्श्वं क्षिप्रमारोहयन्त्वमी॥२९
पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा।
रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्चैव मालवः
पाञ्चालाधिपतिश्चैव द्रुपदश्च नराधिपः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान्
छागलिः पुरमित्रश्च दरदश्च महीपतिः।
कौशाम्ब्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः॥
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा।
उत्तरं पर्वतोद्देशमेते दुर्गसहा नृपाः।
आरोहन्तु विमर्दन्तो वज्रप्रतिमगौरवाः॥३३
उलूकः कैतवेयश्च वीरश्चांशुमतः सुतः।
एकलव्यो दृढाश्वश्च क्षत्रधर्मा जयद्रथः॥ ३४
उत्तमौजास्तथा शाल्वः कैरलेयश्च कैशिकः
वैदिशो वामदेवश्च सुकेतुश्चापि वीर्यवान् ३५
पूर्वपर्वतनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः।
विदारयन्तो धावन्तो वाता इव बलाहकान्
अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान्।
दक्षिणं शैलनिचयं दारयिष्याम दंशिताः३७
एवमेष गिरिः क्षिप्रं समन्ताद्वेष्टितो बलैः।
वज्रप्रपातप्रतिमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम्॥ ३८
गदिनो वै गदाभिश्च परिघैः परिघायुधाः।
अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु नगोत्तमम् ३९
एष भूमिधरोऽद्यैव विषमोच्चशिलान्वितः।
कार्यो भूमिसमः सर्वो भवद्भिर्वसुधाधिपाः४०
जरासन्धवचः श्रुत्वा पार्थिवा राजशासनात्
गोमन्तं वेष्टयामासुः सागराः पृथिवीमिव॥४१
उवाच राजा चेदीनां देवानां मघवानिव।
[13]किं ते युद्धेन दुर्गेऽस्मिन्गोमन्ते च नगोत्तमे४२
दुरारोहश्च शिखरे प्रांशुपादपकण्टके[14]।
काष्ठैस्तृणैश्च बहुभिः परिवार्य समन्ततः ४३
अद्यैव दीप्यतां क्षिप्रमलमन्येन कर्मणा।
क्षत्रियाः सुकुमारा हि रणे सायकयोधिनः४४
नियुक्ताः पर्वते दुर्गे नियोक्तुं पादयोधिनः।
ननाम प्रतिबन्धेन न चावस्कन्दकर्मणा॥ ४५
शक्य एष गिरिस्तात दैवैरप्यवमर्दितुम्।
दुर्गयुद्धे क्रमः श्रेयान्रोधयुद्धे न पार्थिवाः ४६
भक्तोदकेन्धनैः क्षीणाः पात्यन्ते गिरिसंश्रिताः
वयं बहव इत्येवं [16]नाप्येष निपुणो नयः॥ ४७

---

**नरपतिः** शिशुपालो युद्धाभिज्ञत्वादिति प्राञ्चः। नरपतिर्ग्रन्थविशेषो यत्र वाहनध्वजादीनां संस्कार उच्यते, रुद्रयामलादिषु दृश्यमानः। तत्र चतुरशीतिभूबलानि चतुरशीतिचक्राणि च। तत्र यस्य यस्य या भूर्बलकरी शत्रोश्चापकर्षकरी स तामाश्रयत्वित्यर्थः। 'यथा पतन्ति नो वाहाः' इति पाठे तु तथा गिरिप्रान्तो विषमः समकर्तव्यः। यथाऽस्माकं च हयास्तत्र गच्छन्तीत्यर्थः॥२३॥ युद्धदुर्गज्ञाः युद्धरहस्यज्ञाः॥२४ निःसंपातं निरवकाशम्। अत एव संचारस्थानाभावान्निश्चलाण्डजत्वं युज्यते गिरेः॥२६॥ विमर्दन्तो विमर्दयन्तः॥३३॥ प्रतिबन्धेन रोधमात्रेण अवस्कन्देन कर्मणा उपर्युत्प्लवनेन॥४५॥ भक्तादिभिः रहिता एव पात्यन्ते न त्वन्यथा॥४७॥

---

१ ख. यथा न पतते बाहस्तथा। २ ख. °द्धमार्गज्ञा वि°। ३ क. °तं यथा भवेत्। म°। ४ क. ख. °नुशिष्टा°। ५ क. मानवाः। प°। ६ क. ख. °श्च विराटश्च म°। ७ क. ख. °ष्वायत्तम°। ८ क. ख. दारयन्तोऽभिधावन्तु वा°। ९ क. °श्च संगतः। दाक्षि°। १० क. ख. गादिनो ये गदाभिस्ते प°। ११ क. ख. पार्थिवेषु च शासनम्। १२ क. गौम°। १३ क. ख. किं नो यु°। १४ ख. °पसङ्कटः। का°। १५ ख. °र्वतारोहे दु°। १६ घ. नाथेषु नि°।

यादवौ नावमन्तव्यौ द्वावप्येतौ रणे स्थितौ।
अविज्ञातबलावेतौ श्रूयेते देवसंमितौ ॥ ४८
कर्मभिस्त्वमरौ विद्मो बालावतिबलान्वितौ।
दुष्कराणीह कर्माणि कृतवन्तौ यदूत्तमौ ४९
शुष्ककाष्ठैस्तृणैर्वेष्ट्य सर्वतः पर्वतोत्तमम्।
अग्निना दीपयिष्यामो दह्येतां गतचेतनौ ५०
यदि चेन्निष्क्रमिष्येते दह्यमानावितोऽन्तिके
समेत्य पातयिष्यामस्त्यक्ष्यतो जीवितं ततः
वाक्यमेतत्तु रुरुचे सबलानां महीक्षिताम्
यदुक्तं चेदिराजेन नृपाणां हितशंसिना ॥५२
ततः काष्ठैस्तृणैर्वंशैः शुष्कशाखैश्च पादपैः।
उपादीप्सत शैलेन्द्रः सूर्यपादैरिवाम्बुदः ५३
ददुस्ते सर्वतस्तूर्णं पावकं तत्र पार्थिवाः।
यथोद्देशं यथावातं शैलस्य लघुविक्रमाः ॥५४
स वायुदीपितो वह्निरुत्पपात समन्ततः।
सधूमज्वालमालाभिर्भाभिः खमिव शोभयन्
सोऽनलः पवनायस्तः काष्ठसञ्चयमूलवान्।
ददाह शैलं श्रीमन्तं गोमन्तं कान्तपादपम्५६
स दह्यमानः शैलेन्द्रो मुमोच विपुलाः शिलाः
शतशः शतधा भूत्वा महोल्काकारदर्शनाः
सचित्रभानुः शैलेन्द्रो भाभिर्भानुरिवाम्बुदम्
आलिम्पतीव विधिवत्समन्तादर्चिरुद्धतः ५८
धातुभिः पच्यमानैश्च ज्वलद्भिश्चैव पादपैः।
उद्भ्रान्तश्वापदो रौति तुद्यमान इवाद्रिराट्५९
प्रतप्तो दह्यमानस्तु स शैलः कृष्णवर्त्मना।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः॥६०
वह्निना चापि दीप्ताङ्गो गिरिर्नातिविराजते।
धूमान्धकारोर्ध्वतनुर्मज्जमान इवाम्बुदः ॥ ६१
श्लिष्टोपलसंघातः कर्कशाङ्गारवर्षणः।
गिरिर्भात्यनलोद्गारैरुल्कावृष्टिरिवाम्बुदः ६२
प्रपातप्रस्रवोत्क्षिप्तो धूमसंवर्द्धितोदरः।
स गिरिर्भस्मतां यातो युगान्ताग्निहतोपमः ॥
विह्वलास्तस्य पार्श्वेभ्यः सर्पा दग्धार्धदेहिनः
श्वसन्तः पृथुमूर्धानो निश्चेरुराशिवेक्षणाः ६४
उत्पत्योत्पत्य गगनात्पुनः पुनरवाङ्मुखाः।
रेसुश्चोद्वेजिताः सिंहाः शार्दूलाश्चानलाविलाः
मुमुचुः पादपाश्चैव दाहनिर्यासजं जलम् ६६
वहत्यूर्ध्वगतिर्वातो भस्माङ्गाराभिपिङ्गलः।
धूमच्छाया च गगने दर्पिताम्भोददर्शना ६७
त्यज्यमानो महासानुर्विहगैः श्वापदैरपि।
गिरिर्वैकल्यमायाति प्रागल्भ्यात्कृष्णवर्त्मनः
स मुमोच शिलाः शैलश्चलोदग्रशिलोच्चयः।
वज्रेण पुरुहूतस्य यथा स्याद्दारितस्तथा ॥ ६९
आदीप्य तं तु शैलेन्द्रं क्षत्रिया व्यूहदंशिताः
अर्धक्रोशमपक्रान्ताः पावकेनाभितापिताः
दह्यमाने नगश्रेष्ठे सीदमानैर्महाद्रुमैः।
धूमभारैरनालक्ष्ये मूले शिथिलतां गते ७१
सरोषं हि तदा रामो वचनं केशिसूदनम्।
बभाषे पद्मपत्राक्षं स साक्षान्मधुसूदनम् ॥ ७२
दह्यतेऽयं गिरिस्तात ससानुशिखरद्रुमः।
आवयोः कृष्ण वैरेण बलिभिर्वसुधाधिपैः ७३
पश्य कृष्णानलोष्णानां सधूमानां समन्ततः।
वनानां विरसन्तीव नगाभ्याशे द्विपोत्तमाः ॥
अयं ह्यावयोरर्थे गोमन्तस्तात दह्यते।
अयशस्यमिदं लोके कौलीनं च भविष्यति
तदस्यानृण्यहेतोर्हि नगस्य नगसन्निभ।
क्षत्रियान्निहनिष्यामो दोर्भ्यामेव युधां वर७६
एते ते क्षत्रियाः सर्वे गिरिमादीप्य दंशिताः।
रथिनस्तात दृश्यन्ते यथादेशं युयुत्सवः ७७
एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गान्मेरुशृङ्गादिवोडुराट्
निपपात बलः श्रीमान्वनमालाधरो युवा ७८
कादम्बरीमदक्षीबो नीलवासाः सितान्ननः।
स शारदेन्दुसंकाशो वनमालाञ्चितोदरः॥७९
कान्तैककुण्डलधरश्चारुमौलिरवाङ्मुखः।
निपपात नरेन्द्राणां मध्ये केशवपूर्वजः॥ ८०

पवनायस्तः वायुना उद्धूतः॥५६॥ रीतीः धातुरसानां धाराः निर्वर्तयामास प्रवर्तितवान् ॥६०॥ प्रपातानां प्रस्रवैरुत्क्षिप्त उज्झितः शुष्कतां गत इत्यर्थः॥६३॥रेसुः आर्तनादं चक्रुः६५ विरसन्तीव क्रन्दन्तीव ॥७४॥कौलीनं लोकापवादः ॥७५॥

१ क. ख. ॰वसप्रभौ। कर्म॰। २ ख. ॰भिः खं दीपयन्निव। सो॰। ३ क. ख. ॰लेन्द्रं भा॰। ४ क. ॰मानैस्तु ज्व॰। ५ क. ख. ॰नः पेतुर॰। ६ ख. रेसुरुद्वेजिताः सिंहाः शा॰। ७ ख. वत्राबूर्ध्व॰। ८ क. ॰रातिपि॰। ९ ख. ण वैरिभिर्व॰। १० क. भ्यासे द्वि॰। ख. ॰भ्याशे खगोत्त॰। ११ ख. ॰व नृणां व॰। १२ क॰ साः स्मिता॰ ख. ॰साः सितप्रभः। स॰

अवप्लुते ततो रामे कृष्णः कृष्णाम्बुदोपमः
गोमन्तशिखराच्छ्रीमानाप्लुतोऽमितविक्रमः
ततस्तं पीडयामास पद्भ्यां गिरिवरं हरिः ।
स पीडितो गिरिस्तेन निर्ममज्ज समन्ततः ८२
जलाकुलोपलस्तत्र प्रस्रुतो द्विरदो यथा ।
स तेन वारिणा वह्निस्तत्क्षणात्प्रशमं ययौ
कल्पान्ते वारिधाराभिर्मेघजालैरिवांशुमान्
सिंहारसितनिर्घोषः पीतवासा घनाकृतिः ८४
किरीटमूर्द्धा सौम्यास्यः पुण्डरीकनिभेक्षणः
श्रीवत्सवक्षाः सुमुखः सहस्राक्षसमद्युतिः ८५
रामादनन्तरं कृष्णः प्लुतो वै वीर्यवांस्ततः ।
ताभ्यामेव प्लुताभ्यां च चरणैः पीडितो गिरिः
मुमोच सलिलोत्पीडांस्तीव्रपावकशान्तये ।
सलिलोत्पीडनं दृष्ट्वा पार्थिवा भयमाविशन् ८७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तदाहे
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

## जरासन्धपराभवः ।

## ४३

वैशम्पायन उवाच ।
तौ नगादाप्लुतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ ।
क्षुब्धं नरवरानीकं सर्वं[2] संमूढवाहनम् ॥ १
बाहुप्रहरणौ तौ तु चेरतुस्तत्र यादवौ ।
मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥ २
ताभ्यां मृधे[3] प्रविष्टाभ्यां
यादवाभ्यां मतिस्त्वभूत् ।
आयुधानां पुराणाना-
मादानकृतलक्षणा ॥ ३
ततोऽम्बरतलाद्भूयः पतन्ति स्म महात्मनोः ।
मध्ये राजसहस्रस्य समरं प्रतिकांक्षिणोः ॥४
यानि वै माथुरे युद्धे प्राप्तान्याहवशोभिनोः
तान्यम्बरात्पतन्ति स्म दिव्यान्याहवसंप्लवे ५
लेलिहानानि दिव्यानि[4] दीप्ताग्निसदृशानि वै
निक्षिप्य यानि तत्रैव तानि प्राप्तौ[5] स्म यादवौ
क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च ।
तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि सर्वशः ७
दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान्
प्रभया भासमानानि दर्शितानि दिशो दश ८
हलं सांवर्तकं[6] नाम सौनन्दं[7] मुसलं तथा ।
चक्रं सुदर्शनं नाम गदां कौमोदकीं तथा ९
चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि वै ।
ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे
जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं रणे ।
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं हलम्
सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम् ।
सौनन्दं नाम बलवान्निरानन्दकरं द्विषाम् १२

---

प्रस्रुतः प्रस्विन्नः ॥ ८३ ॥ सिंहस्य आरसितं महाध्वानिस्तद्वन्निर्घोषो यस्य सः ॥ ८४ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

अथ त्रिचत्वारिंशेऽस्मिन्मागधस्य पराजयः ।
करवीरपुरे प्रोक्तः शृगालस्य वधोऽद्भुतः ॥१॥
तौ नगात् इति ॥१॥ पतन्ति स्म आयुधानीति शेषः ॥४॥ यानि तत्रैव मथुरायां निक्षिप्य यातौ तानि प्राप्तौ लब्धवन्तौ ॥६॥ स्रग्दाम मालारूपाणि दामानि रज्जुविशेषाः ॥८॥ ताभ्यां तयोरर्थे ॥१०॥ ललामप्रतिमं ध्वजतुल्यम् । " ललामं लाञ्छने ध्वजे " इति मेदिनी ॥११॥

---

१ ख. °शमं गतः । क° । २ क. ख. ° कं त्रस्तं संमू° । ३ क. °भ्यां मध्ये प्र° । ४ ख. °नि दीप्तानि दी° । ५ क. ख. °प्तौ तु या° । ६ क. ख. °लं संव° । ७ ङ. सौभद्रं ना° ।

जरासन्धस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत
न प्राहरत्ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ।
तौ व्युपारमतां युद्धात्कृष्णयस्ते च पार्थिवाः*
दीर्घकाले महाराज निजघ्नुरितरेतरम् ।
पराजिते त्वपक्रान्ते जरासन्धे महीपतौ ।
विविक्तमभवत्सैन्यं परावृत्तमहारथम् ॥ ७५
ते नृपाश्चोदितैर्नागैः स्यन्दनैस्तुरगैस्तथा ।
दुद्रुवुर्भीतमनसो व्याघ्राघ्राता मृगा इव ॥ ७६
तन्नरेन्द्रैः परित्यक्तं भग्नदर्पैर्महारथैः ।
घोरं क्रव्यादबहुलं रौद्रमायोधनं बभौ ॥ ७७
द्रवत्सु रथमुख्येषु चेदिराजो महाद्युतिः ।
स्मृत्वा यादवसंबन्धं कृष्णमेवान्ववर्तत ॥
वृतः कारूषसैन्येन चेदिसैन्येन चानघ ।
संबन्धकामो गोविन्दमिदमाह स चेदिराट् ॥
अहं पितृष्वसुर्भर्ता तव यादवनन्दन ।
सबलस्त्वामुपावृत्तस्त्वं हि मे दयितः प्रभो
उक्तश्चैष मया राजा जरासन्धोऽल्पचेतनः ।
कृष्णाद्विरम दुर्बुद्धे विग्रहाद्रणकर्मणि ॥ ८१
तदेषोऽद्य मया त्यक्तो मम वाक्यस्य दूषकः ।
भग्नो युद्धे जरासन्धस्त्वया द्रवति सानुगः ॥
निर्वैरो नैष संयाति स्वपुरं पृथिवीपतिः ।
त्वय्येव भूयोऽप्यपरं दर्शयिष्यति किल्बिषम्
तदिमां संत्यजाशु त्वं महीं हतनराकुलाम् ।
क्रव्यादगणसङ्कीर्णां सेवितव्याममानुषैः ॥८४
करवीरपुरं कृष्ण गच्छामः सबलानुगाः ।
शृगालं वासुदेवं वै द्रक्ष्यामस्तत्र पार्थिवम् ॥
इमौ रथवरोदग्रौ युवयोः कारितौ मया ।
योजितौ शीघ्रतुरगैः स्वङ्गचक्राक्षकूबरौ ॥८६
शीघ्रमारुह भद्रं ते बलदेवसहायवान् ।
त्वरामः करवीरस्थं द्रष्टुं तं वसुधाधिपम् ॥८७

वैशम्पायन उवाच ।

पितृष्वसृपतेर्वाक्यं श्रुत्वा चेदिपतेस्तदा
वाक्यं हृष्टमनाः कृष्णो जगाद जगतो गुरुः ॥
अहो युद्धाभिसंतप्तौ देशकालोचितौ त्वया ।
बान्धवप्रतिरूपेण संसिक्तौ वचनाम्बुना ॥ ८९
देशकालविशिष्टस्य हितस्य मधुरस्य च ।
वाक्यस्य दुर्लभा लोके वक्तारश्चेदिसत्तम ॥
चेदिनाथ सनाथौ स्वः संवृत्तौ तव दर्शनात् ।
नावयोः किंचिदप्राप्यं ययोस्त्वं बन्धुरीदृशः
जरासन्धस्य निधनं ये चान्ये तत्समा नृपाः
पर्याप्तौ त्वत्सनाथौ स्वः कर्तुं चेदिकुलोद्वह
यदूनां प्रथमो बन्धुस्त्वं हि सर्वमहीक्षिताम् ।
अतःप्रभृति संग्रामान्द्रक्ष्यसे चेदिसत्तम ॥९३

चाक्रं मौसलमित्येवं
संग्रामं रणवृत्तयः ।
कथयिष्यन्ति लोकेऽस्मि-
न्ये धरिष्यन्ति पार्थिवाः ॥ ९४

राज्ञां पराजयं युद्धे गोमन्तेऽचलसत्तमे ।
श्रवणाद्धारणाद्वाऽपि स्वर्गलोकं व्रजन्ति हि
तद्गच्छाम महाराज करवीरं पुरोत्तमम् ।
त्वयोद्दिष्टेन मार्गेण चेदिराज शिवाय वै ९६
ते स्यन्दनगताः सर्वे पवनोत्पातिभिर्हयैः ।
भेजिरे दीर्घमध्वानं मूर्तिमन्त इवाग्नयः ॥९७
ते त्रिरात्रोषिताः प्राप्ताः करवीरं पुरोत्तमम् ।
शिवाय च शिवे देशे निविष्टास्त्रिदशोपमाः ९८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि करवीरपुराभिगमने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

---

विविक्तं शून्यम् ॥ ७५ ॥ चेदिराजो दमघोषः ॥ ७८ ॥ किल्बिषमपकारम् ॥ ८३ ॥ रथवरेष्वपि उदग्रौ श्रेष्ठतमौ ॥ ८६ ॥ धरिष्यन्ति जीविष्यन्ति ॥ ९४ ॥ इति श्रीहरिवंशे टीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

---

* तौ व्युपारमतामिति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । १ ख. °र्घकालं म° । २ ख. °रं वीर ग° । ३ ख. °गैः खञ्च° । ४ क. ख. °णाद्धारणाच्चास्य स्व° । ५ ख. °न्ति ते । त°

# शृगालाख्यराजवधः।

## ४४

वैशम्पायन उवाच।

तानागतान्विदित्वाऽथ शृगालो युद्धदुर्मदः
पुरस्य धर्षणं मत्वा निर्जगामेन्द्रविक्रमः॥ १
रथेनादित्यवर्णेन भास्वता रणगामिना।
आयुधप्रतिपूर्णेन नेमिनिर्घोषहासिना॥ २
मन्दराचलकल्पेन चित्राभरणभूषिणा।
अक्षय्यसायकैस्तूणैः पूर्णेनार्णवघोषिणा॥३
हर्यश्वेनाशुगतिना सक्तेन शिखरेष्वपि।
हेमकूबरगर्भेण दृढाक्षेणातिशोभिना॥ ४
सुबन्धुरेण दीप्तेन पतत्रिवरगामिना।
खगतेनेव शक्रस्य हर्यश्वेन रथाद्रिणा॥ ५
सावित्रे नियमे पूर्णे यं ददौ सविता स्वयम्।
आदित्यरश्मिभिरिव रश्मिभिर्यो निगृह्यते॥
तेन स्यन्दनमुख्येन द्विषत्स्यन्दनघातिना।
स शृगालोऽभ्ययात्कृष्णं शलभः पावकं यथा
चापपाणिः सुतीक्ष्णेषुः कवची हेममालिकः।
सितप्रावरणोष्णीषः पावकाकारलोचनः॥८
मुहुर्मुहुर्ज्याचपलं विक्षिपन्दुःसहं धनुः।
निर्वमन्रोषजं वायुं सानलज्वालमण्डलम्॥९
भाभिर्भूषणपंक्तीनां दीप्तो मेरुरिवाचलः।
रथस्थ इव शैलेन्द्रः शृगालः प्रत्यदृश्यत। १०
तस्यारसितशब्देन रथनेमिस्वनेन च।
गुरुत्वेन च नाम्यन्ती चचालोर्वी भयातुरा।
तमापतन्तं श्रीमन्तं मूर्तिमन्तमिवाचलम्।
शृगालं लोकपालाभं दृष्ट्वा कृष्णो न विव्यथे।
शृगालश्चापि संरब्धः स्यन्दनेनाशुगामिना।
समीपे वासुदेवस्य युयुत्सुः प्रत्यदृश्यत॥ १३
वासुदेवं स्थितं दृष्ट्वा शृगालो युद्धलालसः।
अभिदुद्राव वेगेन मेघराशिरिवाचलम्॥ १४
वासुदेवः स्मितं कृत्वा प्रतियुद्धाय तस्थिवान्।
तद्युद्धमभवत्ताभ्यां समरे घोरदर्शनम्।
उभाभ्यामिव मत्ताभ्यां कुञ्जराभ्यां यथा वने
शृगालस्त्वब्रवीत्कृष्णं समरे समुपस्थितम्।
युद्धरागेण तेजस्वी मोहाच्चलितगौरवः॥ १६
गोमन्ते युद्धमार्गेण यत्त्वया कृष्ण चेष्टितम्।
अनायकानां मूर्खाणां नृपाणां दुर्बले बले॥
स मे सुविदितः कृष्ण क्षत्रियाणां पराजयः
कृपणानामसत्त्वानामयुद्धानां रणोत्सवे॥१८
तिष्ठेदानीं यथाकामं स्थितोऽहं पार्थिवे पदे
क्व यास्यसि मया रुद्धो रणेष्वपरिनिष्ठितः १९
न चाहमेकं सबलो युक्तस्त्वां योद्धुमाहवे।
अहमेकस्त्वमप्येको द्वौ युध्याव रणे स्थितौः
किं जनेन निरस्तेन त्वं वाऽहं च रणे स्थित।
धर्मयुद्धेन निधनं व्रजत्वेकतरो रणे॥ २०
लोकेऽस्मिन्वासुदेवोऽहं भविष्यामि हते त्वयि
हते मयि त्वमप्येको वासुदेवो भविष्यसि॥२२
शृगालस्य वचः श्रुत्वा वासुदेवः क्षमापरः।
ईर्ष्यन्तं प्रहरस्वेति तमुक्त्वा चक्रमाददे॥२३
ततः सायकजालानि शृगालः क्रोधमूर्छितः।
चिक्षेप कृष्णे घोराणि युद्धाय लघुविक्रमः॥
शस्त्राणि यानि चान्यानि मुसलाद्यानि संयुगे
पातयामास गोविन्दे स शृगालः प्रतापवान्
शृगालप्रहितैरस्त्रैः पावकज्वालमालिभिः।
निर्दयाभिहतः कृष्णः स्थितो गिरिरिवाचलः
सोऽस्त्रप्रहाराभिहतः किंचिद्रोषसमन्वितः।
चक्रमुद्यम्य गोविन्दः शृगालस्य परिक्षिपत्॥
तं रथस्थं प्रमाणस्थं शृगालं युद्धदुर्मदम्।
जघान समरे चक्रं जातदर्पं महाबलम्॥ २८

४४

चतुश्चत्वारिंशकेऽथ शृगालवध ईर्यते।
तन्नारीणां विलापश्च तत्पुत्रस्याभिषेचनम् १

तानागतानिति॥ १॥ शक्रस्य रथाद्रिणा समान इति शेषः॥ ५॥ आरसितशब्देन गर्जितध्वनिना॥ ११॥ परिक्षिपत् पर्यक्षिपत्॥ २७॥ प्रमाणस्थं चक्रभयादपलायितमित्यर्थः॥ २८॥

१ क. °वानलम्। शृ°। २ ख. °मार्गे वै य°। ३ ख. इष्टतः प्र°। ४ क. शृगालस्योरसि क्षिपत्। तं।, ख. शृगालोरसि चाक्षिपत्। तं। ५ ख. निहत्य समरे शूरं शृगालं युद्धकामुकम्। ततः।

ततः सुदर्शनं चक्रं पुनरायाद्गुरोः करे।
चक्रेणोरसि निर्भिन्नः स गतासुर्गतोत्सवः।
पपात क्षतजस्रावी शृगालोऽद्रिरिवाहतः ॥
निशम्य तं निपतितं वज्रपातादिवाचलम्।
तस्य सैन्यान्यपययुर्विमनांसि हते नृपे ॥ ३०
केचित्प्रविश्य नगरं कश्मलाभिहता भृशम्।
रुरुदुर्दुःखसंतप्ता भर्तृशोकाभिपीडिताः ३१
केचित्तत्रैव शोचन्तः स्मरन्तः सुकृतानि च।
पतितं भूपतिं भूमौ न त्यजन्ति स्म दुःखिताः
ततो मेघनिनादेन स्वरेणारिविमर्दनः।
कृष्णः कमलपत्राक्षो जनानामभयं ददौ ॥३३
चक्रोचितेन हस्तेन राजताङ्गुलिपर्वणा।
न भेतव्यं न भेतव्यमिति तानभ्यभाषत ॥३४
नास्य पापस्य दोषेण निराबाधकरं जनम्।
घातयिष्यामि समरे नेदं शूरव्रतं मतम् ॥ ३५
अश्रुपूर्णमुखा दीनाः क्रन्दमाना भृशं तदा।
पतितो वै शृगालाख्यो भ्रष्टः सन्दीनमानसः*
ते स्म पश्यन्ति पतितं धरण्यां धरणीपतिम्
चक्रनिर्दारितोरस्कं भिन्नशृङ्गमिवाचलम् ॥३७
विलपन्ति स्म ते सर्वे सचिवाः सप्रजा भृशम्
साश्रुपातेक्षणा दीनाः शोकस्य वशमागताः
तेषां रुदितशब्देन पौराणां विस्वरैः स्वरैः।
महिष्यस्तस्य निष्पेतुः सपुत्रा रुदिताननाः ३९
तास्तं निपतितं दृष्ट्वा श्लाघ्यं भूमिपतिं पतिम्
स्तनानारुज्य करजैर्भृशार्ताः पर्यदेवयन् ४०
उरांस्युरसिजांश्चैव शिरोजान्याकुलान्यपि।
निर्दयं ताडयन्त्यस्ता विस्वरं रुरुदुः स्त्रियः
तस्योरसि सुदुःखार्ता मृदिताः क्लिन्नलोचनाः
पेतुरूर्ध्वभुजाः सर्वाश्छिन्नमूला लता इव ४२
तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नेत्राणि नृपयोषिताम्
वारिविप्रहतानीव पङ्कजानि चकाशिरे ॥४३
ताः पतिं पतितं भूमौ रुदन्त्यो हृदि ताडिताः
लालप्यमानाः करुणं योषितः पर्यदेवयन् ४४
पुत्रं चास्य पुरस्कृत्य बालं प्लुतलोचनम्।
शक्रदेवं पितुः पार्श्वे द्विगुणं रुरुदुः स्त्रियः ४५
अयं ते वीर विक्रान्तो बालः पुत्रो न पण्डितः
त्वद्विहीनः कथमयं पदे स्थास्यति पैतृके ॥४६
कथमेकपदे त्यक्त्वा गतोऽस्यन्तःपुरं परम्।
अतृप्तास्तव सौख्यानां किं कुर्मो विधवा वयम्
तस्य पद्मावती नाम महिषी प्रमदोत्तमा।
रुदती पुत्रमादाय वासुदेवमुपस्थिता ॥ ४८
यस्त्वया पातितो वीर रणप्रोक्तेन कर्मणा।
तस्य प्रेतगतस्यायं पुत्रस्त्वां शरणं गतः ॥४९
यदि त्वां प्रणमेतासौ कुर्याद्वा शासनं तव।
नायमेकप्रहारेण जनस्त्यज्येत दारुणम् ॥ ५०
यदि कुर्यादयं मूढस्त्वयि बान्धवकं विधिम्।
नैवं परीतः कृष्णः सेवेत धरणीतलम् ॥ ५१
अयमस्य विपन्नस्य बान्धवस्य तवानघ।
सन्ततौ रक्ष्यतां वीर पुत्रः पुत्र इवात्मजः ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा माहिष्या यदुनन्दनः।
मृदुपूर्वमिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ ५३
राजपत्नि गतो रोषः सहानेन दुरात्मना।
प्रकृतिस्था वयं जाता देवि सैषोऽस्मि बान्धवः
रोषो मे विगतः साध्वि तव वाक्यैरकल्मषैः
योऽयं पुत्रः शृगालस्य ममाप्येष न संशयः ५५
अभयं चाभिषेकं च ददाम्यस्मै सुखाय वै।
आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ५६
पितृपैतामहे राज्ये तव पुत्रोऽभिषिच्यताम्।
ततः प्रकृतयः सर्वाः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा
अभिषेकार्थमाजग्मुर्यतो वै रामकेशवौ।
ततः सिंहासनस्थं तु राजपुत्रं जनार्दनः ॥ ५८
अभिषेकेण दिव्येन योजयामास वीर्यवान्।
अभिषिच्य शृगालस्य करवीरपुरे सुतम्।
कृष्णस्तदहरेवाशु प्रस्थानमभ्यरोचयत् ॥ ५९
रथेन हरियुक्तेन तेन युद्धार्जितेन वै।
केशवः प्रस्थितोऽध्वानं वृत्रहा त्रिदिवं यथा
शक्रदेवोऽपि धर्मात्मा सह मात्रा परंतपः।
सबालवृद्धयुवतीमुख्याः प्रकृतयस्तथा ॥ ६१

---

आरुज्य विदार्य ॥ ४० ॥ अस्य शृगालस्य ॥ ४५ ॥ महिषी पट्टराज्ञी ॥ ४८ ॥ परीतः क्रव्यादैरिति शेषः ॥ ५१ ॥ तेन रथेन शृगालाय सवितृदत्तेन ॥ ६० ॥

---

१ क. ख. °रोः करम्। च°। २ ख. °तं भृशम्। अ°। ३ ख. पतितोऽयं सृगालश्च भ्र°। * नास्य पापस्ये-त्यारभ्य पद्यद्वयं क. पुस्तके नास्ति। ४ ख. पुत्रमाता सुतं गृह्य वा°। ५ ख. °ग्मुर्यत्र तौ राम°, क. °ग्मुर्यत्रेमौ रा° ६ क. °स्थानं समरो°।

शिबिकायामथारोप्य शृगालं युद्धदुर्मदम् ।
संहता दूरमार्गेण पश्चिमाभिमुखा ययुः ॥६२
नैधनस्य विधानेन चक्रुस्ते तस्य सत्क्रियाम्
सत्कारं कारयामासुः पितॄणां पारलौकिकम्
उद्दिश्योद्दिश्य राजानं श्राद्धं कृत्वा सहस्रशः
ततस्ते सलिलं दत्त्वा नामगोत्रादिकीर्तनैः ६४
पितर्युपरते घोरे शोकसंविग्नमानसः ।
कृत्वोदकं तदा राजा प्रविवेश पुरोत्तमम् ६५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शृगालवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## रामकृष्णयोर्मथुरागमनम् ।

## ४५

वैशम्पायन उवाच ।
तौ तु स्वल्पेन कालेन दमघोषेण संगतौ ।
अथाध्वविधिना तौ तु पञ्चरात्रोषितौ पथि १
दमघोषेण संगम्य एकरात्रोषिताविव ।
जग्मतुः सहितौ वीरौ मुदा परमया युतौ ।
नगरीं मथुरां प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ २
ततः प्रत्युद्गताः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ ।
सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ।
श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणश्च यथोचिताः ।
सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत ॥ ४
नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त स्तूयेतां पुरुषर्षभौ ।
रथ्यापताकामालिन्यो भासन्ति स्म समन्ततः
हृष्टा प्रमुदिता सर्वा पुरी परमशोभिता ।
भ्रात्रोस्तयोरागमने यथेन्द्रमहे तथा ॥ ६
मुदितास्तत्र गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः ।
स्तवाशीर्बहुला गाथा यादवानां प्रियंकराः ७
गोविन्दरामौ संप्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ
स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं यादवाः सुखम्
न तत्र कश्चिद्दीनो वा मलिनो वा विचेतनः ।
मथुरायामभूत्कश्चिद्रामकृष्णसमागमे ॥ ९
वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः
नरनारीगणाश्चैव भेजिरे मानसं सुखम् ॥ १०
शिवाश्च प्रववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ।
दैवतान्यपि सर्वाणि हृष्यन्त्यायतनेष्वथ ॥ ११
यानि लिङ्गानि लोकस्य वृत्तानीह कृते युगे ।
तानि सर्वाण्यदृश्यन्त तयोरागमने तदा ॥ १२
ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनौ ।
हरियुक्तेन तौ वीरौ प्रविष्टौ मथुरां पुरीम् १३
प्रविशन्तं पुरीं रम्यां गोविन्दं राममेव च ।
अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव ॥ १४
वसुदेवस्य भवनं पितुस्तौ यदुनन्दनौ ।
प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥
तत्रायुधानि संन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ ।
मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ १६
ततस्तु वसुदेवस्य पादौ समभिपीड्य च ।
तत्रोग्रसेनं राजानमन्यांश्च यदुपुङ्गवान् ॥ १७
यथान्यायं पूजयित्वा तौ सर्वैश्चाभिनन्दितौ ।
जग्मतुर्हृष्टमनसौ मातुरेव निवेशनम् ॥ १८

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

**पञ्चचत्वारिंशकेऽस्मिन्प्रोच्यते रामकृष्णयोः**
**मथुरागमनं चाथ प्रवेशनमहोत्सवः ॥ १ ॥**
**तौ त्विति** ॥ १ ॥ श्रेण्यः नानाजातीया अनेकशिल्पोपजीविनः ॥ ४ ॥ दैवतानि प्रतिमाः ॥ ११ ॥ लिङ्गानि लक्षणानि ॥ १२ ॥

१ ख. °लेन पञ्चरात्रोषितौ प° । २ ख. °म्य त्वेकरात्रोषितौ ततः । ज° । ३ क. ख. °हृषोत्तमौ । रथ्या° । ४ क. ख. °यनाः । स्त° । ५ क. ख. °हृष्टान्यायतनेष्व°, ख. °नेष्वपि । या° । ६ ख. °नि वि° । ७ ख. उग्रसेनं तु रा° ।

एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ। उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित्कालं मुमोदतुः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णयोर्मथुरायां प्रत्यागमने पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५ ॥

## रामस्य गोकुलगमनं यमुनाकर्षणं च।

## ४६

वैशम्पायन उवाच।

कस्यचित्त्वथ कालस्य स्मृत्वा गोपेषु सौहृदम्
जगामैको व्रजं रामः कृष्णस्यानुमते स्थितः १
स गतस्तत्र रम्याणि ददर्श विपुलानि वै।
भुक्तपूर्वाण्यरण्यानि सरांसि सुरभीणि च २
स प्रविष्टस्तु वेगेन तं व्रजं कृष्णपूर्वजः।
वन्येन रमणीयेन वेषेणालंकृतः प्रभुः ॥ ३
स तानभाषत प्रीत्या यथापूर्वमरिंदमः।
गोपांस्तेनैव विधिना यथान्यायं यथावयः ४
तथैव प्राह तान्सर्वांस्तथैव परिहर्षयन्।
तथैव सह गोपीभिर्योजयन्मधुराः कथाः ॥ ५
तमूचुः स्थविरा गोपाः प्रियं मधुरभाषिणः।
रामं रमयतां श्रेष्ठं प्रवासात्पुनरागतम् ॥ ६
स्वागतं ते महाबाहो यदूनां कुलनन्दन।
अद्य स्म निर्वृतास्तात यत्त्वां पश्यामहे वयम्
प्रीताश्चैव वयं वीर यत्त्वं पुनरिहागतः।
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु रामः शत्रुभयंकरः ॥ ८
वर्धनीया वयं वीर त्वया यादवनन्दन।
अथवा प्राणिनस्तात रमन्ते जन्मभूमिषु ॥ ९
त्रिदशानां वयं मान्या
ध्रुवमद्यामलानन।
ये स्म दृष्टास्त्वया तात
काङ्क्षमाणास्तवागमम् ॥ १०

दिष्ट्या ते निहता मल्लाः[१] कंसश्च विनिपातितः
उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च माहात्म्येन जनेन वै ११
समुद्रे च श्रुतोऽस्माभिस्तिमिना सह विग्रहः
वधः पञ्चजनस्यैव जरासन्धेन विग्रहः।
गोमन्ते च श्रुतोऽस्माभिः क्षत्रियैः सह विग्रहः
दरदस्य वधश्चैव[४] जरासन्धपराजयः।
तत्रायुधावतरणं श्रुतं नः परमाहवे ॥ १३
वधश्चैव शृगालस्य करवीरपुरोत्तमे।
तत्सुतस्याभिषेकश्च नागराणां च सान्त्वनम्×
मथुरायां प्रवेशश्च कीर्तनीयः सुरोत्तमैः।
प्रतिष्ठिता च वसुधा पार्थिवाश्च वशीकृताः॥
तव चागमनं दृष्ट्वा सभाग्याः स्म यथा पुरा।
तेन स्म परितुष्टा वै हर्षिताश्च सबान्धवाः
प्रत्युवाच ततो रामः सर्वांस्तानभितः स्थितान्
यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम बान्धवाः १७
इहावयोर्गतं बाल्यमिह चैवावयो रतम्।
भवद्भिर्वर्धिताश्चैव यास्यामो विक्रियां कथम्
गृहेषु भवतां भुक्तं गावश्च परिरक्षिताः।
अस्माकं बान्धवाः सर्वे भवन्तो बद्धसौहृदाः
ब्रुवत्येवं यथातत्त्वं गोपमध्ये हलायुधे।
संहृष्टवदना भूयो बभूवुर्व्रजयोषितः ॥ २०
ततो वनान्तरगतो रेमे रामो महाबलः।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते रामाय विदितात्मने २१

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

षट्चत्वारिंशकेऽध्याये रामस्य गोकुलागमः। क्रीडनं गोपनारीभिः कालिन्द्याः कर्षणं तथा१

कस्येति ॥ १ ॥ निर्वृताः स्म सुखिनः स्म ॥ ७ ॥ तिमिना तिमितुल्येन पञ्चजनेन ॥ १२ ॥ रतं क्रीडनम् ॥ १८ ॥

---

१ ख. °लं विचेरतुः । इ° । २ ख. °स्तथा च प° । ३ ख. °ता मन्दाः कं° । ४ क. °व जरासंधे च या मतिः। त° । × तत्सुतेत्यादि श्लोकार्धं कपुस्तके नास्ति । ५ क. °यः सुरैरपि । प्र° ।

गोपालैर्देशकालज्ञैरुपानीयत वारुणी ।
सोऽपिबत्पाण्डुराभ्राभस्तत्कालं ज्ञातिभिर्वृतः
वनान्तरगतो रामः पानं मदसमीरणम् ।
उपनिन्युस्ततस्तस्मै वन्यानि विविधानि च
प्रत्यग्ररमणीयानि पुष्पाणि च फलानि च ।
मेध्यांश्च विविधान्गन्धान्भक्ष्यांश्च हृदयंगमान्
सद्यो हृतानि पद्मानि विकचान्युत्पलानि च
शिरसा चारुकेशेन किंचिदावृतमौलिना ।
श्रवणैकावलम्बेन कुण्डलेन विराजता ॥ २५
चन्दनार्द्रेण पीतेन वनमालावलम्बिना ।
विबभावुरसा रामः कैलासेनेव मन्दरः ॥ २६
नीले वसानो वसने प्रत्यग्रजलदप्रभे ।
रराज वपुषा शुभ्रस्तिमिरौघे यथा शशी । २७
लाङ्गलेनावसिक्तेन भुजगाभोगवर्तिना ।
तथा भुजाग्रश्लिष्टेन मुसलेन च भास्वता २८
स मत्तो बलिनां श्रेष्ठो रराजाघूर्णिताननः ।
शैशिरीषु त्रियामासु यथा स्वेदालसः शशी ॥
रामस्तु यमुनामाह स्नातुमिच्छे महानदि ।
एहि मामभिगच्छ त्वं रूपिणी सागरंगमे ३०
संकर्षणस्य मत्तोक्तां भारतीं परिभूय सा ।
नाभ्यवर्तत तं देशं स्त्रीस्वभावेन मोहिता ३१
ततश्चुक्रोध बलवान्रामो मदसमीरितः ।
चकार स हलं हस्ते कर्षणाधोमुखं बली ॥ ३२
तस्यामुपरि मेदिन्यां पेतुस्तामरसस्रजः ।
मुमुचुः पुष्पकोशैश्च वासरेण्वरुणं जलम् ॥ ३३
स हलेनानताग्रेण कूले गृह्य महानदीम् ।
चकर्ष यमुनां रामो व्युत्थितां वनितामिव ॥
सा विह्वलजलस्रोता ह्रदप्रस्थितसंचया ।
व्यावर्तत नदी भीता हलमार्गानुसारिणी ॥ ३५
लाङ्गलादिष्टवर्त्मा सा वेगगा वक्रगामिनी[1] ।
संकर्षणभयत्रस्ता योषेवाकुलतां गता ॥ ३६
पुलिनश्रोणिबिम्बौष्ठी[2] मृदितैस्तोयताडितैः ।
फेनमेखलसूत्रैश्च छिन्नैरम्बुदगामिनी ॥ ३७
तरङ्गविषमापीडा चक्रवाकोन्मुखस्तनी ।
वेगगम्भीरवक्राङ्गी त्रस्तमीनविभूषणा ॥ ३८
सितहंसेक्षणापाङ्गी काशक्षौमोच्छ्रिताम्बरा ।
तीरजोद्भूतकेशान्ता जलस्खलितगामिनी ॥
लाङ्गलोल्लिखितापाङ्गी क्षुभिता सागरंगमा
मत्तेव कुटिला नारी राजमार्गेण गच्छती ॥
कृष्यते साऽतिवेगेन स्रोतःस्खलितगामिनी ।
उन्मार्गा नीतमार्गा सा येन वृन्दावनं वनम्
वृन्दावनस्य मध्येन सा नीता यमुना नदी ।
रोरूयमाणेव खगैरन्विता तोयवासिभिः ४२
सा यदा समतिक्रान्ता नदी वृन्दावनं वनम्
तदा स्त्रीरूपिणी भूत्वा यमुना राममब्रवीत् ॥
प्रसीद नाथ भीताऽस्मि प्रतिलोमेन कर्मणा ।
विपरीतमिदं रूपं तोयं च मम जायते ॥ ४४
असत्यहं नदीमध्ये रौहिणेय त्वया कृता ।
कर्षणेन महाबाहो स्वमार्गव्यभिचारिणी ४५
प्राप्तां मां सागरे पूर्वं सपत्न्यो वेगगर्विताः ।
फेनहासैर्हसिष्यन्ति तोयव्यावृत्तगामिनीम् ॥
प्रसादं कुरु मे वीर याचे त्वां कृष्णपूर्वज ।
सुप्रसन्नमना नित्यं भव त्वं सुरसत्तम ॥ ४७
कर्षणायुधकृष्टाऽस्मि रोषोऽयं विनिवर्त्यताम्
मूर्ध्ना गच्छामि चरणौ तवैषा लाङ्गलायुध
मार्गमादिष्टमिच्छामि क्व गच्छामि महाभुज

वैशम्पायन उवाच * ।

प्रणयावनतां दृष्ट्वा यमुनां लाङ्गलायुधः ।
प्रत्युवाचार्णववधूं मदक्लान्त इदं वचः ॥ ४९
लाङ्गलादिष्टमार्गा त्वमिमं मे प्रियदर्शने ।
देशमम्बुप्रदानेन प्लावयस्वाखिलं शुभे ॥ ५०
एष ते सुभ्रु संदेशः कथितः सागरंगमे ।
शान्तिं व्रज महाभागे गम्यतां च यथासुखम्

---

आवृतमौलिना वक्रीभूतकिरीटेन ॥ २५ ॥ स्नातुं स्नानपूर्वकं त्वां परिणेतुम् इच्छे इच्छामि रूपिणी मूर्तिमती भूत्वेति शेषः ॥ ३० ॥ मत्तोक्तां मत्तेनोक्तामिति हेतुना तां भारतीं परिभूय नाभ्यवर्तत ॥ ३१ ॥ कर्षणाय अधोमुखं कर्षणाधोमुखम् ॥ ३२ ॥ तस्यां हलाकृष्टायां याः स्रजः पेतुः ताः पुष्पकोशैः करणैः वासरेण्वरुणं सुगन्धिपरागारुणं मदिरारूपं जलं मुमुचुः उद्वेमुरित्यर्थः ॥ ३३ ॥ ह्रदप्रस्थितसंचया ह्रदात् प्रस्थिताः प्रचलिताः संचया मत्स्यादयो यस्याः सा ॥ ३५ ॥ पुलिनं श्रोणिरिव यस्याः बिम्बं रक्तपद्ममण्डलमेव ओष्ठो यस्याः । अम्बुदगामिनी सागरगामिनी ॥ ३७ ॥ संदेश आज्ञा ॥ ५१ ॥

---

१ घ. °गा चक्रगा° । २ क. पुलिनैः श्रोणिबिम्बौष्ठी मृ° । ३ क. °मा पीता च° । * वैशम्पायन उवाचेति कं ख. पुस्तकयोर्न विद्यते ।

यावत्स्थास्यति लोकोऽयं तावत्तिष्ठतु मे यशः
यमुनाकर्षणं दृष्ट्वा सर्वे ते व्रजवासिनः ॥ ५२
साधु साध्विति रामाय प्रणामं चक्रिरे तदा।
तां विसृज्य महाभागां तांश्च सर्वान्व्रजौकसः
ततः सञ्चिन्त्य मनसा रामः प्रहरतां वरः।
पुनः प्रतिजगामाशु मथुरां रोहिणीसुतः ५४
स गत्वा मथुरां रामो भवने मधुसूदनम्।
परिवर्तमानं ददृशे पृथिव्यां सारमव्ययम् ५५
तथैवाध्वन्यवेषेण सोपश्लिष्य जनार्दनम्।
प्रत्यग्रवनमालेन वक्षसाऽभिविराजता ॥ ५६
स दृष्ट्वा तूर्णमायान्तं रामं लाङ्गलधारिणम्।
सहसोत्थाय गोविन्दो ददावासनमात्मनः५७
उपविष्टं तदा रामं पप्रच्छ कुशलं व्रजे।
बान्धवेषु च सर्वेषु गोषु चैव जनार्दनः ॥ ५८
प्रत्युवाच ततो रामो भ्रातरं साधुभाषिणम्
सर्वत्र कुशलं कृष्ण येषां कुशलमिच्छसि ५९
ततस्तयोर्विचित्रार्थाः पौराण्यश्चाभवन्कथाः
वसुदेवाग्रतः पुण्या रामकेशवयोस्तदा ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि यमुनाकर्षणे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## रुक्मिणीस्वयंवरार्थं कृष्णस्य कुण्डिनपुरंप्रति गमनम्।

## ४७

वैशम्पायन उवाच।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता लोकप्रावृत्तिका नराः
चक्रायुधगृहं सर्वे लोकपालगृहोपमम् ॥ १
तेष्वात्ययिकशंसीषु लोकप्रावृत्तिकेष्विह।
कृतसंज्ञा यदुश्रेष्ठाः समेताः कृष्णसंसदि ॥ २
समागतेषु सर्वेषु यदुमुख्येषु संसदि।
प्रावृत्तिका नराः प्राहुः पार्थिवात्ययिकं वचः
जनार्दन नरेन्द्राणां पार्थिवानां समागमः।
भविष्यति क्षितीशानां समूढानामनेकशः ४
त्वरितास्तत्र गच्छन्ति नानाजनपदेश्वराः।
कुण्डिने पुण्डरीकाक्ष भोजपुत्रस्य शासनात्
प्रकाशं स्म कथास्तत्र श्रूयन्ते मनुजेरिताः।
रुक्मिणी किल नामास्ति
रुक्मिणः प्रथमा स्वसा ॥ ६
भावी स्वयंवरस्तत्र तस्याः किल जनार्दन।
इत्यर्थमेते सबला गच्छन्ति मनुजाधिपाः॥ ७
तस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्यास्तृतीयेऽहनि यादव॥
रुक्मभूषणभूषिण्या भविष्यति स्वयंवरः ॥ ८
राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम्।
द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र शिबिराणि महात्मनाम्
सिंहशार्दूलदर्पानां मत्तद्विरदगामिनाम्।
सदा युद्धप्रियाणां हि परस्परमर्मर्षिणाम् १०
जयाय शीघ्रं सहितौ बलौघेन समन्विताः।
निरुद्धाः पृथिवीपालाः किमेकान्तचरा वयम्
निरुत्साहा भविष्यामो गच्छामो यदुनन्दन

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७
सप्तचत्वारिंशकेऽस्मिन्-
श्चराणां वचनादथ।
कृष्णस्येच्छा हि रुक्मिण्यां
कुण्डिने गमनं तथा ॥ १ ॥

**एतस्मिन्निति।** प्रावृत्तिकाः प्रवृत्तिसूचकाः ॥१॥ आत्ययिकशंसीषु विरोधशंसिषु। दैर्घ्यं छन्दोऽनुरोधात्॥२॥ पार्थिवात्ययिकं राज्ञां विनाशकारणम् ॥ ३ ॥ भोजपुत्रस्य रुक्मिणः शासनात् निमन्त्रणात् ॥५॥ प्रथमा मुख्या ॥६॥ निरुद्धा रुक्मिणीलिप्सयेति शेषः। तत्र वयं किं भिल्लवदेकान्तचराः येन निरुत्साहा भविष्यामः। अपि तु अतिप्रसिद्धास्तेन सोत्साहा एव तत्र गच्छाम इति सार्द्धश्लोकवाक्यम् ॥११॥

१ख. सा बुद्ध्या निश्चित्य चैत्र ह। पुनः प्र। २क. थिव्याः सा। ३क. पश्लिष्टो ज०, ख. ०पसृष्टो ज०। ४ ख. ०विन्दः प्रददावासनोत्तमम्। उप०। ५ क. अद्राक्ष्य दाक्षिणात्यानां समूहानित्यनेकशः। त्व, ख. शशंसुर्दाक्षिणात्यानां सुमहानित्यनेकशः। त्व। ६ क. ख. ०ल नाम्नास्ति। ७ क. ख. ०ते नृवरा ग। ८ क. ख. ०न्ति सबलानुगाः। त। ९ ख. ०त्र वृन्दानि च म। १० ख. ०घ्रं त्वरिता ब। ११ ख. ०दुसत्तम। श्रु०।

श्रुत्वैतत्केशवो वाक्यं हृदि शल्यमिवार्पितम्
निर्जगाम यदुश्रेष्ठो यदूनां सहितो बलैः १२
यादवास्ते बलोदग्राः सर्वे संग्रामलालसाः ।
निर्ययुः स्यन्दनवरैर्गर्विताञ्जिदशा इव ॥ १३
बलाग्रेण नियुक्तेन हरिरीशानसंमतः ।
चक्रोद्यतकरः कृष्णो गदापाणिर्व्यरोचत ॥ १४
यादवाश्चापरे तत्र वासुदेवानुयायिनः ।
रथैरादित्यसंकाशैः किङ्किणीप्रतिनादितैः १५
उग्रसेनं तु गोविन्दः प्राह निश्चितदर्शनः ।
तिष्ठ त्वं नृपशार्दूल भ्रात्रा मे सहितोऽनघ१६
क्षत्रिया विकृतिप्रज्ञाः शास्त्रनिश्चितदर्शनाः
पुरीं शून्यामिमां वीर जघन्येऽभिपतन्ति ह
अस्माकं शङ्किताः सर्वे जरासन्धवशानुगाः
मोदन्ते सुखिनस्तत्र देवलोके यथामराः ॥१८

वैशम्पायन उवाच* ।

+तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः
कृष्णस्नेहेन विकृतं बभाषे वचनामृतम् ॥ १९
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन ।
श्रूयतां यदहं त्वद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २०
त्वया विहीनाः सर्वे स्म
न शक्ताः सुखमासितुम् ।
पुरेऽस्मिन्विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः
त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः ।
बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद
विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि ।
तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ२३
तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः
यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् २४×

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु वै कृष्णो जगामाशु रथेन वै
भीष्मकस्य गृहं प्राप्तो लोहितायति भास्करे
प्राप्ते राजसमाजे तु शिबिराकीर्णभूतले ।
रङ्गं सुविपुलं दृष्ट्वा राजसीं तनुमाविशत् ॥२६
वित्रासनार्थं भूपानां प्रकाशार्थं पुरातनम् ।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयं महाबलम् २७
ततश्चिन्तितमात्रस्तु विदित्वा विनतात्मजः ।
सुखलक्ष्यं वपुः कृत्वा निलिल्ये केशवान्तिके
तस्य पक्षनिपातेन पवनोत्क्रान्तकारिणा ।
कम्पिता मनुजाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि
गरुडाभिहताः सर्वे प्रचेष्टन्तो यथोरगाः ॥
तान्संनिपतितान्दृष्ट्वा कृष्णो गिरिरिवाचलः
स राज्ञः पक्षपातेन मेने पतगसत्तमम् ।
ददर्श गरुडं प्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ ३१
पक्षवातेन पृथिवीं चालयन्तं मुहुर्मुहुः ।
पृष्ठासक्तैः प्रहरणैर्लेलिह्यन्तमिवोरगैः ॥ ३२
वैष्णवं हस्तसंश्लेषं मन्यमानैरवाङ्मुखैः ।
चरणाभ्यां प्रकर्षन्तं पाण्डुरं भोगिनां वरम्३३
हेमपत्रैरुपचितं धातुमन्तमिवाचलम् ।
अमृतारम्भहर्तारं द्विजिह्वेन्द्रविनाशनम् ॥ ३४
त्रासनं दैत्यसंघानां वाहनं ध्वजलक्षणम् ।
तं दृष्ट्वा स ध्वजं प्राप्तं सचिवं सांपरायिकम्३५
धृतिमन्तं गरुत्मन्तं जगाद मधुसूदनः ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टः स्थितं देवमिवापरम् ॥ ३६
तुल्यसामर्थ्यया वाचा गरुत्मन्तमवस्थितम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन ।
विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय ॥ ३७

---

विकृतिप्रज्ञाः कपटबुद्धयः शास्त्रनिश्चितदर्शनाः राजनीतिविदः जघन्ये मम पृष्ठतः शून्ये इत्यर्थः ॥ १७ ॥ अस्माकम् अस्मत्तः ॥ १८ ॥ राजसीं तनुं कामक्रोधप्रधानां प्रकृतिम् ॥ २६ ॥ पुरातनं प्राक्सिद्धम् ॥ २७ ॥ सुखलक्ष्यं सौम्यम् ॥ २८ ॥ सौम्येन लीनेनापि यत्कृतं तदाह-तस्येति । न्युब्जाः अधोमुखास्तथाऽचेष्टन्त यथोरगा नोत्थातुं शक्नुवन्तीत्यर्थः ॥ २९ ॥ तान् राज्ञ इति संबन्धः । मेने मनसा पूजितवान् ॥ ३१ ॥ सचिवं बुद्धिसहायं साम्परायिकम् आपदि हितम् ॥ ३५ ॥

---

१ ख. °न्दनैर्दिव्यैर्ग° । २ ख. शास्त्रशश्छिद्रदर्शनाः । पु° । ३ ख. °रं जघन्यैः पीडयन्ति नः । अ° । * वैशम्पायन उवाच इति कखपुस्तकयोर्नास्ति । + एवमुक्त्वा तु वै कृष्णो जगामाशु रथेन वै। इति पद्यार्धमधिकं कपुस्तके । ४ क. °भिर्गच्छ यादवनन्दन । तस्य रा° । × खपुस्तकेऽध्यायसमाप्तिरत्रास्ति । ५ क. तथाभिपतिताः सर्वे प्र°, ख. शिरोभिः पातिताः सर्वे प्रावेपन्त यथो° । ६ ख. स तदा पक्षवातेन मे° । ७ ख. °षं नाम्यमानमवाङ्मुखम् । चर° । ८ ख. °न्तमुपस्थितम् । श्री° ।

व्रज पत्ररथश्रेष्ठ कैशिकस्य निवेशनम् ।
वयं तत्रैव गत्वाद्य प्रतीक्षाम स्वयंवरम् ॥ ३८
राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम् ।
द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र समेतानां महात्मनाम् ३९
एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैनतेयं महाबलम् ।
जगामाथ पुरीं कृष्णः कैशिकस्य महात्मनः ४०
वैनतेयसखः श्रीमान्यादवैश्च महारथैः ।
विदर्भनगरीं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ॥ ४१
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे निवासायोपचक्रमुः ।
सर्वे शस्त्रायुधधरा राजानो बलशालिनः ४२

वैशम्पायन उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु राजा नयविशारदः ।
कैशिकस्तत उत्थाय प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४३
अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा स राजा कैशिकः स्वयम्
सत्कृत्य विधिवत्कृष्णं स्वपुरं संप्रवेशयन् ४४
पूर्वमेव तु कृष्णाय कारितं दिव्यमन्दिरम् ।
विवेश सबलः श्रीमान्कैलासं शंकरो यथा ।
खाद्यपानादिरत्नौघैरार्चितो वासवानुजः ॥४५
सुखेन उषितः कृष्णस्तस्य राज्ञो निवेशने ।
पूजितो बहुमानेन स्नेहपूर्णेन चेतसा ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## विदर्भसभायां जरासन्धसुनीथयोर्भाषणे ।

## ४८

वैशम्पायन उवाच ।

ते कृष्णमागतं दृष्ट्वा वैनतेय सहाच्युतम् ।
बभूवुश्चिन्तयाविष्टाः सर्वे नृपतिसत्तमाः ॥ १
ते समेत्य सभां राजन्राजानो भीमविक्रमाः ।
मन्त्राय मन्त्रकुशला नीतिशास्त्रार्थवित्तमाः ॥२
भीष्मकस्य सभां गत्वा रम्यां हेमपरिष्कृताम्
सिंहासनेषु चित्रेषु विचित्रास्तरणेषु च ।
निषेदुस्ते नृपवरा देवा देवसभामिव ॥ ३
तेषां मध्ये महाबाहुर्जरासन्धो महाबलः ।
बभाषे स महातेजा देवान्देवेश्वरो यथा ॥ ४

जरासन्ध उवाच ।

श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा भीष्मकश्च महामतिः ।
कथ्यमानं मया बुद्ध्या वचनं वदतां वराः ॥५
योऽसौ कृष्ण इति ख्यातो वसुदेवसुतो बली
वैनतेयसहायेन संप्राप्तः कुण्डिनं त्विह ॥ ६
कन्याहेतोर्महातेजा यादवैरभिसंवृतः ।
अवश्यं कुरुते यत्नं कन्यावाप्तिर्यथा भवेत् ७
यदत्र कारणं कार्यं सुनयोपेतमृद्धितम् ।
कुरुध्वं नृपशार्दूला विनिश्चित्य बलाबलम् ८
पदातिनौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ ।
वैनतेयं विना तस्मिन्गोमन्ते पर्वतोत्तमे ।
कृतवन्तौ महाघोरं भवद्भिर्विदितं हि तत्९
वृष्णिभिर्यादवैश्चैव भोजान्धकमहारथैः ।
समेत्य युद्ध्यमानस्य कीदृशो विग्रहो भवेत् ॥
कन्यार्थं यतताऽनेन गरुडस्थेन विष्णुना ।
कः स्थास्यति रणे तस्मिन्नपि शक्रः सुरैः सह
यदा चास्मै नापि सुता कदाचित्संप्रदीयते ।
ततो ह्ययं बलादेनां नेतुं शक्तः सुरैः सह *१२

---

कैशिकस्य भीष्मकपितुः ॥ ४० ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७

४८

अष्टचत्वारिंशकेऽथ जरासन्धसुनीथयोः । विदर्भस्य सभायां तु वचनं राजसूच्यते १

ते कृष्णमिति ॥ वैनतेयेत्यत्र तृतीयालोप आर्षः ॥ १ ॥ ऋद्धितम् ऋद्धिः संजायते येन तत् ॥८॥ यदेत्यारभ्य सुरैः सहेत्यन्तोऽयं श्लोकः सर्वपुस्तकेषु न दृश्यते

---

१ क. अर्घमा° । २ ख. °मनीं द° । ३ क. ख. °रं संन्यवेशय° । ४ ख. सुखेनैवोषि° । ५ ख. मन्त्रयुर्मन्त्रकु° । ६ क. ख. °वे सुम° । ७ क. ख. °नं यथाबुद्धया न° । ८ ख. °तत्रद्धितम् । कु° । ९ ख. गत्कृतं सुमहद्धोरं भ° । १० ख. °दितं महत् । कृष्णस्य यादवैश्चैव भो° । * यदेति पद्यं क. ख. पुस्तकयोर्न ।

पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी त्वियम्
पातालतलसंमग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१३
वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना।
हिरण्याक्षश्च दैत्येन्द्रो वराहेण निपातितः ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपराक्रमः।
अवध्योऽमरदैत्यानामृषिगन्धर्वकिंनरैः ॥१५
यक्षराक्षसनागानां नाकाशे नावनिस्थले।
न चाभ्यन्तरराज्यह्नोर्न शुष्केणार्द्रकेण च १६
अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रस्त्वपराजितः।
नारसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा ॥ १७
वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली।
अदित्या गर्भसंभूतो बलिर्बद्धोऽसुरोत्तमः॥१८
सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतः पातालसंश्रयः।
कार्तवीर्यो महावीर्यः सहस्रभुजविग्रहः ॥१९
दत्तात्रेयप्रसादेन मत्तो राज्यमदेन च।
जामदग्न्यो महातेजा रेणुकागर्भसंभवः ॥२०
त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
पर्शुना वज्रकल्पेन सप्तद्वीपेश्वरो नृपः।
विष्णुना निहतो भूयः छद्मरूपेण हैहयः ॥२१
इक्ष्वाकुकुलसंभूतो रामो दाशरथिः पुरा।
त्रिलोकविजयं वीरं रावणं संन्यपातयत् २२
पुरा कृतयुगे विष्णुः संग्रामे तारकामये।
षोडशार्द्धभुजो भूत्वा गरुडस्थो हि वीर्यवान्
निजघानासुरान्युद्धे वरदानेन गर्वितान्।
कालनेमिश्च दैत्येयो देवानां च भयप्रदः ॥ २४
सहस्रकिरणाभेन चक्रेण निहतो युधि।
महायोगबलेनाजौ विश्वरूपेण विष्णुना ॥२५
अनेन प्राप्तकालास्ते निहता बहवोऽसुराः।
वने वनचरा दैत्या महाबलपराक्रमाः॥ २६
निहता बालभावेन प्रलम्बारिष्टधेनुकाः।
शकुनीं केशिनं चैव यमलार्जुनकावपि ॥ २७
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा।
कंसं च बलिनां श्रेष्ठं सगणं देवकीसुतः ॥२८
न्यहनद्गोपवेषेण क्रीडमानो हि केशवः।
एवमादीनि दिव्यानि छद्मरूपाणि चक्रिणा ॥
कृतानि दिव्यरूपाणि विष्णुना प्रभविष्णुना
तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि भवतां हितकाम्यया ३०
तं मन्ये केशवं विष्णुं सुराद्यमसुरान्तकम्।
नारायणं जगद्योनिं पुराणं पुरुषं ध्रुवम् ॥ ३१
स्रष्टारं सर्वभूतानां व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥
अदृश्यं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥३२
अनादिमध्यनिधनं क्षरमक्षरशाश्वतम्।
स्वयंभुवमजं स्थाणुमजेयं सचराचरैः ॥ ३३
त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं त्रिदशेन्द्रारिनाशनम्।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्जातोऽयं मथुरामधि ॥
कुले महति वै राज्ञां विपुले चक्रवर्तिनाम्।
कथमन्यस्य मर्त्यस्य गरुडो वाहनं भवेत् ॥३५
विशेषेण तु कन्यार्थे विक्रमस्थे जनार्दने।
कः स्थास्यति पुमानद्य गरुडस्याग्रतो बली ३६
स्वयंवरकृतेनासौ विष्णुः स्वयमिहागतः।
विष्णोरागमने चैव महान्घोषः प्रकीर्तितः ॥
भवद्भिरनुचिन्त्येदं क्रियतां यदनन्तरम्।

वैशम्पायन उवाच।

एवं विब्रुवमाणे तु मगधानां जनेश्वरे ॥ ३८
सुनीथोऽथ महाप्राज्ञो वचनं चेदमब्रवीत्।

सुनीथ उवाच।

सम्यगाह महाबाहुर्मगधाधिपतिर्नृपः॥३९
समक्षं नरदेवानां यथा वृत्तं महाहवे।
गोमन्ते रामकृष्णाभ्यां कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥
गजाश्वरथसंबाधा पत्तिध्वजसमाकुला।
निर्दग्धा महती सेना चक्रलाङ्गलवह्निना ॥४१
तेनायं मागधः श्रीमाननागतमचिन्तयत्।
ब्रुवते राजसेनायामनुस्मृत्य सुदारुणम् ॥४२

योऽदित्या गर्भसंभूतो तेनैव विष्णुना बलिर्बद्धः पातालसंश्रयः कृत इति पूर्वेण संबन्धः ॥ १८ ॥ पर्शुना परशुना ॥ २१ ॥ शकुनीं पूतनाम् ॥ २५ ॥ दिव्यानि कर्माणीति शेषः ॥ २९ ॥ क्षरं दृश्यरूपम् अक्षरं कूटस्थम् ॥ ३३ ॥

१ ख. °त्येन्द्रो ह्यपरा°। २ ख. °तो वरम°। ३ ख. °कजयिनं वी°। ४ क. °णं विनिपा°, ख. °णं वै न्यपा°। ५ ख. °न दर्पितान्। का°। ६ ख. °श्च दैत्येन्द्रं देवतानां भयप्रदम्। स°। ७ ख. °ण न्यहनद्युधि। म°। ८ ख. अनेन प्राप्त°। ९ ख. निहत्य गो°। १० क. क्रीडयामास के°। ११ क. ख. अधृष्यं सर्वभूतानां स°। १२ क. ख. °रमव्ययम्। स्वयं°। १३ ख. निश्चला बु°। १४ ख. °स्य पुंसस्तु गरुत्मान्वाहनं भ°।

पदात्योर्युध्यतोस्तत्र बलकेशवयोर्युधि ।
दुर्निवार्यतरो घोरो ह्यभवद्वाहिनीक्षयः ॥४३
विदितं वः सुपर्णस्य स्वागतस्य नृपोत्तमाः ।
पक्षवेगानिलोद्भूता बभ्रमुर्गगनेचराः ॥ ४४
समुद्राः क्षुभिताः सर्वे चचालाद्रिर्मही मुहुः ।
वयं सर्वे सुसंत्रस्ताः किमुत्पातेति विक्लवाः
यदा संनह्य युध्येत आरूढः केशवः खगम् ।
कथमस्मद्विधः शक्तः प्रतिस्थातुं रणाजिरे ॥
राज्ञां स्वयंवरो नाम सुमहान्हर्षवर्धनः ।
कृतो नरवरैराद्यैर्यशो धर्मस्य वै विधिः ॥४७
इदं तु कुण्डिनगरमासाद्य मनुजेश्वराः ।
पुनरवैष्यते क्षिप्रं महापुरुषविग्रहम् ॥ ४८
यदि सा वरयेदन्यं राज्ञां मध्ये नृपात्मजा ।
कृष्णस्य भुजयोर्वीर्यं कः पुमान्प्रसहिष्यति ॥
विज्ञापितमिदं दोषं स्वयंवरमहोत्सवम् ।
तदर्थमागतः कृष्णो वयं चैव नराधिपाः ॥५०
कृष्णस्यागमनं चैव नृपाणामतिगर्हितम् ।
कन्याहेतोर्नरेन्द्राणां यथा वदति मागधः ॥५१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सुनीथवाक्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

## दन्तवक्त्रस्य भाषणं भीष्मकस्य निर्णयश्च ।

## ४९

वैशम्पायन उवाच ।
इत्येवमुक्ते वचने सुनीथेन महात्मना ।
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रोऽभ्यभाषत ॥ १
दन्तवक्र उवाच ।
यदुक्तं मागधेनात्र सुनीथेन नराधिपाः ।
युक्तपूर्वमहं मन्ये यदस्माकं वचो हितम् ॥२
न च विद्वेषणेनाहं न चाहंकारवादिना ।
न चात्मविजिगीषुत्वाद्दूषयामि वचोऽमृतम्
वाक्यार्णवं महागाधं नीतिशास्त्रार्थबृंहितम्
क एष निखिलं वक्तुं शक्तो वै राजसंसदि ॥४
किं त्वनुस्मरणार्थेऽहं यद्ब्रवीमि शृणुष्व मे ।
आगतो वासुदेवेति किमाश्चर्यं नराधिपाः ॥५
यथाऽऽगता वयं सर्वे
कृष्णोऽपीह तथाऽऽगतः ।
किमत्र दोषो गौण्यो वा
कन्याहेतोः समागताः ॥ ६
यदस्माभिः समेत्यैक्यात्कृतं गोमन्तरोधनम् ।
तत्र युद्धकृतं दोषं कथं वै वक्तुमर्हथ ॥ ७
वनवासे स्थितौ वीरौ कंसव्यामोहहेतुना ।
देवर्षिवचनाद्राजन्वृन्दावनतटे स्थितौ ॥ ८
तावाहूय वधार्थेन उभौ रामजनार्दनौ ।
नागेनोद्दीपितौ वीरौ हत्वा नागं विवेशतुः
ततः स्ववीर्यमाश्रित्य निहतो रङ्गसागरे ।
गतासुरिव चासीनो मथुरेशः सहानुगः ॥१०
किमत्र विहितो दोषो येनास्माभिर्वयोधिकैः ।
उपरोधपरा राजन्वयं सर्वे सामागताः ॥११
सेनातिबलमालोक्य वित्रस्तौ रामकेशवौ ।
पुरं बलं समुत्सृज्य गोमन्ते च गतावुभौ १२

---

एष्यते काम्यते । महापुरुषविग्रहं युद्धम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीहरिवंशे टीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

४९

ऊनपञ्चाशत्तमेऽथाध्याये मागधभाषितात् ।
दन्तवक्रस्य शाल्वस्य वचनं सम्यगुच्यते १

इत्येवमिति ॥ १ ॥ वासुदेवेति सन्धिरार्षः ॥ ५ ॥ गौण्यः गुणः ॥ ६ ॥ नागेन कुवलयापीडेन उद्दीपितौ कोपितौ विवेशतुः । रङ्गमिति शेषः ॥ ९ ॥ गतासुरिवेत्यसावधानत्वमस्योक्तम् ॥ १० ॥ येन कंसं निघ्नता वयोधिकैरस्माभिः सह वैरं कृतं तस्य उपरोधपरा यदि वयं तदा किमत्र दोषो विहितः नकोऽपीत्यर्थः ॥ ११ ॥

---

१ ख. °यंतरैर्घातैरभव° । २ क. °त्पातेन वि° । ३ क. °वः खगे । क° । ४ क. ख. °जेश्वरैः । पु° । ५ ख. °विग्रहः । य° । ६ क. यद्येषा व° । ७ क. ख. विख्यापितस्तु दोषोऽयं स्व° । ८ क. ख. °होत्सवे । त° । ९ ख. °केन्द्रेण सु° । १० क. ख. °षं कथं वः कर्तुम° । ११ क. ख. वधार्थाय उ° । १२ क. ख. गजेनो° । १३ ख. °राजो व° ।

तत्रापि गतमस्माभिर्हन्तुं समरयोधिभिः ।
अप्राप्तयौवनाभ्यां च पदातिभ्यां रणाजिरे ॥
रथाश्वनरनागेन नास्माभिर्विग्रहः कृतः ।
कृत्वोपरोधं शैलस्य क्षत्रधर्मेण दीपितः ॥१४
दावाग्निमुखमाविश्य दुर्विनीततपस्विनौ ।
विनीत इति मन्यामः सर्वे क्षत्रियपुङ्गवाः ॥
प्रतियुद्धे कृते त्वेवं दूषयाम जनार्दनम् ॥ १५
यत्र यत्र प्रयास्यामो वयं तत्र भवेत्कलिः ।
प्रीत्यर्थं प्रयतिष्यामः कृष्णेन सह भूमिपाः१६
इदं कुण्डिपुरं कृष्णो नागतः कलिहेतुना ।
कन्यानिमित्तागमने कस्य युद्धं प्रयच्छति १७
मर्त्येऽस्मिन्पुरुषेन्द्रोऽसौ न कश्चित्प्राकृतो नरः
देवलोकेषु देवेषु प्रवरः पुरुषोत्तमः ॥ १८
देवानामपि कर्ताऽसौ लोकानां च विशेषतः
न चैव बालिशा बुद्धिर्न चेर्ष्या नापि मत्सरः
न स्तब्धो न कृशो नार्तः प्रणतार्तिहरः सदा
एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम् २०
आगतो गरुडेनेह च्छद्मप्राकाश्यहेतुना ।
नानास्त्रसहितो याति कृष्णः शत्रुविनाशने ॥
इमां यात्रां विजानध्वं प्रीत्यर्थं ह्यागतो हरिः
सहितो यादवेन्द्रैश्च भोजवृष्ण्यन्धकैरिह ॥
अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा आतिथ्यं च नराधिपाः
करिष्यामो वयं सर्वे केशवाय महात्मने ॥२३
एवं संधानतः कृत्वा कृष्णेन सहिता वयम् ।
वसामो विगतोद्वेगा निर्भया विगतज्वराः ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दन्तवक्रस्य धीमतः ।
शाल्वः प्रवदतां श्रेष्ठस्तानुवाच नराधिपान्

शाल्व उवाच ।

किं भयेनास्य नः सर्वे न्यस्तशस्त्रा भवामहे
संधानकरणाद्धेतोः कृष्णस्य भयकम्पिताः ॥
परस्तवेन किं कार्यं विनिन्द्य बलमात्मनः ।
नैष धर्मो नरेन्द्राणां क्षात्रे धर्मे च तिष्ठताम्
महत्सु राजवंशेषु संभूताः कुलवर्द्धनाः ।
तेषां कापुरुषा बुद्धिः कथं भावितुमर्हति ॥२८
अहं जानामि वै कृष्णमादिदेवं सनातनम् ।
प्रभुं सर्वामरेन्द्राणां नारायणपरायणम् ॥२९
वैकुण्ठमजयं लोके चराचरगुरुं हरिम् ।
संभूतं देवकीगर्भे विष्णुं लोकनमस्कृतम् ३०
कंसराजवधार्थाय भारावतरणाय च ।
अस्माकं च विनाशाय लोकसंरक्षणाय च ॥
अंशावतरणे कृत्स्नं जाने विष्णोर्विचेष्टितम्
संग्राममतुलं कृत्वा विष्णुना सह भूमिपाः ॥
चक्रानलविनिर्दग्धा यास्यामो यमसादनम् ।
तत्त्वं जानामि राजेन्द्राः कालेनायुःक्षयो भवेत्
नाकाले म्रियते कश्चित्प्राप्ते काले न जीवति
एवं विनिश्चयं कृत्वा न कुर्यात्कस्यचिद्भयम्
स एव भगवान्विष्णुरालोक्य तपसः क्षयम्
निहन्ता दितिजेन्द्राणां यथाकालेन योगवित्
बलिं वैरोचनिं चैवं बद्ध्वाऽवध्यं महाबलम् ।
कृतवान्देवदेवेशः पातालतलवासिनम् ॥३६

---

रथादिबलेन उपेतैरस्माभिः सह तेन विग्रहो युद्धं न कृतम् । अथोपरोधश्च कृतस्तत्र दण्डो दहनमेव युक्तमित्याशयः ॥ १४ ॥ न चाप्ययमधर्म इत्याह-**दावाग्नीति** । तपस्विनो दावाग्निमरणं श्रेय इति एतौ च दुर्विनीततपस्विनौ । अत एतयोर्मुख्यो दुर्विनीततरः सन् एतेन मरणेन विनीतः सुशिक्षितः स्यादिति मन्याम इति योजना । अथ युद्धकरणं श्रेयोविमुखस्य दूषणमिति तृतीयार्द्धार्थः । सार्द्धश्लोकवाक्यम् ॥ १५ ॥ एवं स्वस्यानपराधित्वमुक्त्वा संप्रति विरोधे हेत्वन्तरमाह-**यत्र यत्रेत्यादिना** ॥ १६ ॥ पूर्ववैरं स्मृत्वा युद्धं दास्यतीत्यपि नेत्याशयेनाह-**मर्त्य इति** ॥ मर्त्ये मनुष्यलोके ॥१८॥ ईर्ष्या अक्षमा मत्सरः परोत्कर्षासहनम् ॥ १९ ॥ छद्मप्राकाश्यहेतुना स्वयंवरागमनव्याजेन स्वरूपं प्रकाशनीयमिति हेतोः ॥ २१ ॥ यादवेन्द्राणां मुख्यैर्भोजादिभिः ॥ २२ ॥ संधानतः साम्ना विगत उद्वेगो येषां ते विगतोद्वेगाः ॥ २४ ॥ **किमिति** । अस्य अस्मात् नोऽस्माकं भये सति किं न्यस्तशस्त्राः न भवामहे अपि तु भवामहे एव । भीतेन शस्त्रत्यागपूर्वकं संधानमवश्यं कर्तव्यं न तु वयं भीताः स्म इत्यर्थः ॥ २६ ॥ यमसादनं मृत्योर्मृत्युम् । विष्णुमित्यर्थः ॥ ३३ ॥

---

१ क. ⁰योधिनः । अ⁰ । २ ख. ⁰भ्यां तु प⁰ । ३ क. ख. ⁰लः स क्ष⁰ । ४ क. ख. ⁰श्य मृतौ यदि त⁰ । ५ क. ख. ⁰के च देवे⁰, ख. ⁰वेशः प्र⁰ । ६ क. ख. न देवे बा⁰ । ७ क. ख. न सेनासहितो याति कृ⁰ । ८ क. इदं चात्र विजा⁰ । ९ क. ⁰दवेन्द्राणां भो⁰ । १० क. ख. ⁰रणे हेतोः कृ⁰ । ११ क. ⁰णां क्षत्रधर्मेऽवष्ठिताम् । म⁰ । ख. ⁰णां क्षत्रधर्मे च तिष्ठ⁰ । १२ क. ख. तच्च जा⁰ । १३ क. ख. ⁰यं बुद्ध्वा न कु⁰ । १४ ख. ⁰वदेवो वै पा⁰ ।

एवमादीनि वै विष्णोश्चेष्टानि च नराधिपाः
तस्मादयुक्तं भवतां विग्रहार्थं विचारणम् ३७
न च संग्रामहेतोर्हि कृष्णस्यागमनं त्विह ।
यस्य वा कस्य वा कन्या वरयिष्यति तस्य सा
किमत्र विग्रहो राज्ञां प्रीतिर्भवतु वै ध्रुवम् ३८
वैशम्पायन उवाच ।
एवं कथयमानानां नृपाणां बुद्धिशालिनाम्
न किंचिदब्रवीद्राजा भीष्मकः पुत्रकारणात्
महावीर्यमदोत्सिक्तं भार्गवास्त्राभिरक्षितम् ।
रणप्रचण्डातिरथं विचिन्त्य मनसा सुतम् ॥
भीष्मक उवाच ×।
कृष्णं न सहते नित्यं पुत्रो मे बलदर्पितः ।
नित्याभिमानी च रणे न बिभेति च कस्यचित्
कृष्णस्य भुजवीर्येण ह्रियते नात्र संशयः ।
भविष्यति ततो युद्धं महापुरुषविग्रहम् ॥४२
द्वेषी चैवाभिमानी च कुतो जीवति मे सुतः ।
जीवितं नात्र पश्यामि मम पुत्रस्य केशवात्
कन्याहेतोः सुतं ज्येष्ठं पितॄणां नन्दिवर्द्धनम्
कारयिष्ये कथं युद्धं पुत्रेण सह केशवम् ॥ ४४
न च नारायणं देवं वरमिच्छति रुक्मवान् ।
मूढभावो मदोन्मत्तः संग्रामेष्वनिवर्तकः ।
नियतं भस्मसाद्याति तूलराशिर्यथाऽनलात् ॥
करवीरेश्वरः शूरः शृगालाश्चित्रयोधिना ।
क्षणेन भस्मसान्नीतः केशवेन बलीयसा ॥४६
वृन्दावनेऽवसच्छ्रीमान्केशवो बलिनां वरः ।
उद्धृत्यैकेन हस्तेन सप्ताहं धृतवान्गिरिम् ४७
दुष्करं कर्म संस्मृत्य मनः सीदति मे भृशम् ॥
नगेन्द्रे सहसाऽऽगम्य दैवतैः सह वृत्रहा ।
अभिषिच्याब्रवीत्कृष्णमुपेन्द्रेति शचीपतिः
यथा वै दमितो नागः कालियो यमुनाह्रदे ।
विषाग्निज्वालितो घोरः कालान्तकसमप्रभः
केशी चापि महावीर्यो दानवो हयविग्रहः ।
निहतो वासुदेवेन देवैरपि दुरासदः ॥ ५१
सन्दीपनिसुतश्चैव चिरनष्टो हि सागरे ।
दैत्यं पञ्चजनं हत्वा आनीतो यममन्दिरात् ॥
गोमन्ते सुमहद्युद्धं बहुभिर्वेष्टितावुभौ ।
कृत्वा वित्रासजननं नागाश्वरथसंक्षयम् ५३
गजेन गजवृन्दानि रथेन रथयोधिनः ।
सादिनश्चाश्वयोधेन नरेण च पदातिनः ।
जघ्नतुस्तौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ५४
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न नागा न च दैत्येन्द्रा न पिशाचा न गुह्यकाः
कृतवन्तस्तथा घोरं गजाश्वरथसंक्षयम् ।
तमनुस्मृत्य संग्रामं भृशं सीदति मे मनः ५६
न मया श्रुतपूर्वो वा दृष्टपूर्वः कुतोऽपि वा ।
तादृशो भुवि मर्त्योऽन्यो वासुदेवात्सुरोत्तमात्
सम्यगाह महाबाहु-
र्दन्तवक्त्रो महीपतिः ।
सान्त्वयित्वा महावीर्यं
संविधास्याम यत्क्षमम् ॥ ५८
वैशम्पायन उवाच ।
इति संचिन्त्य मनसा बलाबलविनिश्चयम्
गमनाय मतिं चक्रे प्रसादयितुमच्युतम् ॥ ५९
चिन्तयानो नरेन्द्रस्तु बहुभिर्नयशालिभिः ।
सूतमागधबन्दिभ्यो बोधितः स्तुतिमङ्गलैः ६०
प्रभातायां रजन्यां तु कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
उपविष्टा नृपाः सर्वे स्वेषु विश्रामवेश्मसु ६१
ये विसृष्टास्तु राजानो विदर्भायां नराधिपैः
तैरागम्य स्वभूपेषु रहो गत्वा निवेदितम् ॥
श्रुत्वा कृष्णाभिषेकं तु केचिद्धृष्टा नराधिपाः
केचिद्दीनतरा भीता उदासीनास्तथा परे ॥
त्रिधा प्रभिन्ना सा सेना नरनागाश्वमालिनी
महार्णव इव क्षुब्धा अभिषेकेण चालिता ६४

---

चेष्टानि कर्माणि ॥ ३७ ॥ यस्य यं तस्य तम् ॥ ३८ ॥ कस्यचित् कस्माचित् ॥ ४१ ॥ ह्रियते कन्येति शेषः । यद्वाऽयमेव ह्रियते कालेनेति शेषः ॥ ४२ ॥ ज्येष्ठं सुतं केशवेन सह केशवं च पुत्रेण सह कथं युद्धं कारयिष्ये इति योज्यम् ॥४४॥ रुक्मवान् रुक्मी॥४५ ॥ महावीर्यं श्रीकृष्णम् ॥५८॥ नरेन्द्रो भीष्मकः ॥६०॥ सेना नृपमण्डली ॥ ६४ ॥

---

१ क. ख. ⁰मादीनि चान्यानि विष्णोश्चेष्टानि वै नृपाः । त⁰। × भीष्मक उवाचेति क.ख.पुस्तकयोर्न विद्यते । २ ख. ⁰त्रो वै ब⁰ । ३ ख. ⁰थाऽनले । क⁰ । ४ख. ⁰थसंकुलम् । ग⁰ । ५ क. ख. ⁰न चरणेन पदातिनः । ज⁰ । ६ ख. ⁰न्द्रैश्च ब⁰ । ७ क. ख. ये विसृष्टाश्च वै राजन् वि⁰ । ८ ⁰म्य स्वराजेषु र⁰ । ९ क. ⁰श्ववाहिनी, ख. ⁰श्वशालिनी । म⁰ ।

नृपाणां भेदमालोक्य भीष्मको राजसत्तमः
व्यतिक्रममचिन्त्यं च कृतं नृपतिना स्वयम् ॥
विचिन्त्य मनसा राजा दह्यमानेन चेतसा ।
जगाम नरदेवानां समाजे प्रतिबोधितुम् ६६
एतस्मिन्नन्तरे दूताः संप्राप्ताः क्रथकैशिकौ ।
लेखमुद्धृत्य शिरसा विविशुस्ते नृपार्णवम् ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## भीष्मकसंसदि कृष्णेनाश्वासनम् ।

## ५०

जनमेजय उवाच ।
हत्वा कंसं महावीर्यं देवैरपि दुरासदम् ।
नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये नोपविष्टो नृपासने॥
कन्यार्थे चागतः कृष्ण-
स्तत्रापि न कृतोऽतिथिः ।
अमानमतुलं प्राप्य
क्षान्तवान्केन हेतुना ॥ २
विनतायाः सुतश्चैव महाबलपराक्रमः ।
स चापि क्षमया युक्तः कारणं किमपेक्षितः ।
एतदाख्याहि भगवन्परं कौतूहलं हि मे ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
विदर्भनगरीं प्राप्ते वैनतेये सहाच्युते ।
मनसा चिन्तयामास वासुदेवाय कैशिकः ४
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं हि नः सर्वान्
[ राजन्यान्प्रवदाम्यहम् ।
वसुदेवसुते दृष्टे ]
ध्रुवं पापक्षयो भवेत् ॥ ५
विशुद्धभावः कृष्णस्य आवयोर्दृष्टतत्त्वतः ।
अतः पात्रतरः कोऽन्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ६
कृष्णात्कमलपत्राक्षाद्देवदेवाज्जनार्दनात् ।
तस्यावां किं प्रदास्याव आतिथ्यकरणे नृप
पात्रमासाद्य वै राजन्यथा धर्मो न लुप्यते ।
एवमन्योन्यं संचिन्त्य भ्रातरौ क्रथकैशिकौ ॥
स्वं राज्यं दातुकामौ तु जग्मतुः केशवान्तिकम्
देवमासाद्य तौ वीरौ विदर्भनगराधिपौ ॥ ९
ऊचतुस्तौ महाभागौ प्रणम्य शिरसा हरिम्
अद्यावां सफलं जन्म अद्यावां सफलं यशः ।
अद्यावां पितरस्तृप्ता देवे चावां गृहागते॥ १०
चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं सिंहासनं बलम् ।
स्फीतकोशा पुरी चेयमावाभ्यां सुहिता तव
उपेन्द्रस्त्वं महाबाहो देवेन्द्रेणाभिषिक्तवान् ।
आवामिह हि राज्ये त्वामभिषिक्तं ददामि ते

व्यतिक्रमं राज्ञोऽनादृत्य संक्रमम् ॥ ६५ ॥ दूताः इन्द्रस्येति शेषः । लेखं राजेन्द्रत्वे सर्वैः कृष्णोऽभिषिच्यतामित्येवंरूपम् उद्धृत्य क्रथकैशिकौ समर्पितवन्त इति शेषः ॥ ६७ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

——

५०

अथ पञ्चाशत्तमे तु कृष्णेनाश्वासनं कृतम् ।
नृपाणां समवेतानां कुण्डिने भीष्मसंसदि १

**हत्वेति** ॥ १ ॥ अतिथिर्न कृतः आतिथ्येन नार्चितः अमानम् अपमानम् ॥ २ ॥ कारणं निमित्तम् अपेक्षितः आश्रितः ॥ ३ ॥ क्षमामूलं क्रथकैशिकयोः कृपेत्याह— **विदर्भेति**॥ ४॥ **दृष्ट्वेति**। आश्चर्यं कृष्णाभिषेकं नोऽस्माकं पापक्षय इति ॥ ५ ॥ सर्वान् विशुद्धभाव आविशेदिति चाध्याहृत्य योज्यम् । क्रथकैशिकयोः दृष्टतत्त्वतः दृष्टतत्त्वात् । कृष्णस्य तत्त्वमावाभ्यां दृष्टमस्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥ आवाम् आवयोः ॥१०॥ सुहिता सुपुष्टा तव त्वदीयैवेत्यर्थः ॥११॥ अभिषिक्तम् अभिषेकस्तद्वान् ददामि दद्मः ॥ १२ ॥

१ क. ख. ⁰कैशिकात् । ले⁰ । [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः क.ख.पुस्तकयोर्न विद्यते । २ क. ख. ⁰स्तौ महात्मानौ प्र⁰ । ३ क. ⁰भ्यां सहितां त⁰, ख. ⁰भ्यां सहितं त⁰ । ४ क. आवयोरिह रा⁰ ।

आवयोर्यत्कृतं कार्यं बहुभिः पार्थिवैरपि ।
न शक्यतेऽन्यथा कर्तुं जरासन्धेन वा स्वयम्
शत्रुस्ते मागधो राजा जरासन्धो महाद्युतिः
कथां ते ब्रुवते नित्यं नृपाणामभयप्रदः ॥ १४
सिंहासनमनध्यास्यं पुरं चास्य न विद्यते ।
कथं राजसमाजेऽस्मिन्नास्यते देवकीसुतः १५
कृष्णोऽपि सुमहावीर्यो ह्यभिमानी महाद्युतिः
न चागमिष्यते वाऽस्मिन्कन्यार्थे च स्वयंवरे
पार्थिवेषूपविष्टेषु स्वेषु सिंहासनेषु वै ।
कथमास्यति नीचेषु आसनेषु महाद्युतिः ॥१७
इति संचिन्त्यमानस्तु श्रुत्वाऽसौ भीष्मको नृपः
आवयोः सह संमन्त्र्य विग्रहोपशमार्थिना १८
तव विश्रामहेतोर्हि कारितेदं गृहोत्तमम् ।
देवानामादिदेवोऽसि सर्वलोकनमस्कृतः १९
मानुष्ये मर्त्यलोकेऽस्मिन्राजेन्द्रत्वं समाचर ।
समाजे मनुजेन्द्राणां मा भूदासनसङ्कटम् २०
विदर्भनगरे चैषां राजेन्द्रत्वं विचेष्टय ।
आस्यतामासने शुभ्रे श्वः प्रभाते महाद्युते २१
अधिवास्यात्मा चात्मानं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
यथा गमिष्यन्ति नृपाः करिष्ये देवशासनात्
एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठं प्रणिपत्य कृताञ्जली ।
प्रेषयामासतुर्वीरौ रङ्गमध्ये नृपैर्वृते ॥ २३
एवं दूतस्य वचनं यथोक्तं वज्रपाणिना ।
लिखित्वा सुमहातेजाः कैशिकः प्राह शासनम्

कैशिक उवाच ।

विदितं वो नृपाः सर्वे वैनतेयसहाच्युतः ।
आगतोऽतिथिरूपेण विदर्भनगरीं हरिः ॥ २५
प्राप्तमालोक्य पात्रोऽयमिति सञ्चिन्त्य भूपतिः
प्रददौ वासुदेवाय स्वं राज्यं धर्महेतुना ॥ २६
इदमासनमास्वेति भ्रात्रा मे चोदिते ततः ।
वागुक्ता चाशरीरेण केनापि व्योमचारिणा

देवदूत उवाच ।

न युक्तमासनं दातुं त्वयाऽऽसीनं नराधिप
इदमस्यासनं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ २८
जाम्बूनदमयं शुभ्रं रचितं विश्वकर्मणा ।
प्रेषितं देवराजेन सिंहलक्षणलक्षितम् ॥ २९
अत्रोपविष्टं देवेशं चराचरनमस्कृतम् ।
अभिषिञ्चन्तु राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवैः सह ३०
आगताः कुण्डिनगरे
कन्याहेतोर्नराधिपाः ।
नागमिष्यति यः कश्चित्
सोऽस्य वध्यो भविष्यति ॥ ३१
इमे चैवाष्टकलशा निधीनामंशसंभवाः ।
अक्षया राजराजस्य धनेशस्य महात्मनः ३२
दिव्याः काञ्चनरत्नाढ्या दिव्याभरणयोनयः ।
राजेन्द्रस्याभिषेकार्थमागच्छन्ति नृपैर्वृताः ३३
एष शक्रस्य संदेशः कथितो वो नराधिपाः ।
लेखेनाहूय तान्सर्वानभिषिञ्चन्तु केशवम् ३४

कैशिक उवाच ।

इति संचोद्य खस्थोसौ देवदूतो गतो दिवम्
दत्त्वाऽऽसनं च कृष्णाय बालार्कसदृशप्रभम् ॥
तेनाहं नोदयिष्यामि भवद्भिर्यैः समागताः ।
दुर्निवार्यतरं घोरं शक्रस्य स्वयमीरितम् ॥ ३६

---

आवयोः आवाभ्यां जरासन्धोऽपि नान्यथा कर्तुं शक्नोतीति विपरिणामेन योज्यम् ॥ १३ ॥ अनध्यास्यम् अध्यासितुं योग्यं नास्ति ॥ १५ ॥ आस्यति आसिष्यति उपवेक्ष्यतीति यावत् ॥ १७ ॥ कारितं विभक्तिलोप आर्षः ॥ १९ ॥ न केवलं राजत्वमपि किं तु राजेंद्रत्वम् । आसनसंकटम् उपवेशने संशयः अराजा कथमुच्चतममासनमारोक्ष्यतीत्येवंरूपः ॥ २० ॥ एषां जरासंधादीनां विचेष्टय विचालय ॥ २१ ॥ अधिवास्य पूर्वाङ्गेन संस्कारेण संयोज्य देवशासनात् पूर्वाध्यायान्ते उक्तात् इन्द्राज्ञापनात् आगमिष्यन्ति अभिषेकार्थमिति शेषः ॥ २२ ॥ प्रेषयामासतुः देवशासनमिति विपरिणामेणानुषङ्गः ॥ २३ ॥ देवदूतस्य वचनं स्वयं पत्रे लिखित्वा लेखद्वारैव आह तथा शासनमपि देवेन्द्राज्ञापत्रमपि प्राह ॥ २४ ॥ तदनुसारी स्वकृतं तावदाह— **विदितमिति** ॥२५॥ भूपतिः क्रथः ॥२६॥ देवदूतस्य वाक्यमाह—**देवदूत उवाचेत्यादिना** ॥२८॥ अभिषिञ्चन्तु पट्टाभिषेकेण योजयन्तु ॥३०॥ अस्य इन्द्रस्य॥३१॥ दिव्याभरणा दिव्ययोनयो दिव्यासनाः ॥ ३३ ॥ ये समागतास्तैर्भवद्भिः शक्रस्य दूतेरितं दुर्निवार्यतरमित्यन्वयः ३६

---

१ क. °रासन्धोऽपि वा स्वयम् । २ ख. °ते राजनृपा । ३ ख. °वरम् । पा । ४ क. °ति संचोद्यमा । ५ क. °माय च । त° । ६ ख. °माजे मानुषेन्द्रा । ७ ख. °रे तेषां रा । ८ क. °वास्यात्मनाऽऽत्मानं वि । ९ ख. देवदू° । १० क. °त्रा मेऽभिहिते तदा । वागु वाँ । ११ क. ख. वागुवाचाश । १२ क. ख. °षिञ्चाथ रा° । १३ ख. °तो मे न° । १४ क. °षिञ्चस्व के° । १५ क. ख. °हं चोद° ।

युष्माभिर्दर्शने युक्तमद्भुतं भुवि दुर्लभम्।
कलशैरभिषिञ्चन्तं स्वयमेव नभस्तलात् ॥३७
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं हि नः सर्वो ध्रुवं पापक्षयो भवेत्
स्नापनार्थं च कृष्णाय देवदेवाय विष्णवे ३८
आगच्छध्वं नृपश्रेष्ठा न भयं कर्तुमर्हथ।
आवयोः कृतसन्धानो युष्मदर्थे जनार्दनः ३९
सर्वेषां मनुजेन्द्राणामभयं कुरुते हरिः।
विशुद्धभावः कृष्णस्तु आवयोर्दृष्टतत्त्वतः ४०
मागधस्य विशेषेण न वैरं हृदि दृश्यते।
यदत्र कारणं कार्यं तद्भवद्भिर्विचिन्त्यताम्४१

वैशम्पायन उवाच।

एवं सञ्चिन्तयामासुर्नृपाः शापभयार्दिताः
भूयः शुश्रुवु राजेन्द्राः केशवाय महात्मने ४२
मेघगम्भीरनादेन स्वरेणापूरयन्नभः।
वागुवाचाशरीरेण देवराजस्य शासनात् ४३

चित्राङ्गद उवाच।

त्रैलोक्याधिपतिः शक्रः प्रजापालनहेतुना।
आज्ञापयति युष्माकं नृपाणां हितकाम्यया४४
न युक्तं वसताऽन्योन्यं कृष्णेन सह वैरिणा।
वसध्वं प्रीतिमुत्पाद्य स्वराष्ट्रेषु नृपोत्तमाः ४५
प्रणतार्तिहरः कृष्णः प्रतिसेनान्तकोऽतलः।
अनेन सह संप्रीत्या मोदध्वं विगतज्वराः ४६
मानुषाणां नृपा देवा नृपाणां देवताः सुराः।
सुराणां देवता शक्रः शक्रस्यापि जनार्दनः४७
एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम्।
जातोऽयं मानुषे लोके नररूपेण केशवः॥ ४८
अजेयः सर्वलोकेषु देवदानवमानवैः।
कार्तिकेयसहायस्य अपि शूलभृतः स्वयम्४९
तस्मै देवाधिदेवाय केशवाय महात्मने।
अभिषेक्तुं सुरैः सार्द्धं किमिच्छेयमतः परम्
न चाधिकारो देवानां राजेन्द्रस्याभिषेचने।
तेनाहं नाभिषिञ्चामि सर्वलोकनमस्कृतम्।
नृपाणामधिकारोऽयं राजेन्द्रस्यै निवेशने॥५१
गत्वा यूयं विदर्भायां क्रथकैशिकयोः सह।
संचिन्त्य विधिदृष्टेन कुरुध्वं नृपसत्तमाः ५२

प्रीतिसन्धानकालोऽय-
मिति संचिन्त्य वासवः
बोधनार्थं विसृष्टोऽहं
युष्माकं मनुजेश्वराः ॥ ५३

विदर्भनगरे कृष्णः श्रावितोऽस्याधिवासनम्।
राजेन्द्रत्वाभिषेकार्थं राजानौ क्रथकैशिकौ।
ताभ्यां सह नृपश्रेष्ठाः कृत्वा सुमहदुत्सवम् ॥
अभिषेकेण सत्कृत्य प्रतिगृह्यास्य दक्षिणाम्।
आगमिष्यथ संहृष्टाः पुनरेव स्वयंवरम् ॥५५
जरासन्धः सुनीथश्च रुक्मी चैव महारथः।
शाल्वः सौभपतिश्चैव चत्वारो राजसत्तमाः
रङ्गस्याशून्यहेतोर्हि तिष्ठन्तु इह पार्थिवाः ५६

वैशम्पायन उवाच।

एवमाज्ञां सुरेशस्य श्रुत्वा चित्राङ्गदेरिताम्
गमनाय मतिं चक्रुः सर्व एव नृपोत्तमाः॥ ५७
अनुज्ञाता नरेन्द्रेण जरासन्धेन धीमता।
भीष्मकं पुरतः कृत्वा प्रयाताः स्वबलैर्वृताः ॥
भीष्मकश्च महाबाहुः स्वबलेन समन्वितः।
जगाम पार्थिवैः सार्द्धं दह्यमानेन चेतसा ५९
यत्र कृष्णो महाबाहुः कैशिकस्य निवेशने।
दूरादेव प्रकाशन्ती पताकाध्वजमालिनी ६०

---

अभिषिञ्चन्तम् अभिषिच्यमानं कृष्णं युष्माभिर्दर्शने युष्मत्कर्तृके दर्शने युक्तं प्रेक्ष्यतमं मन्यामहे इति शेषः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वेति प्राग्व्याख्यातम् ॥ ३८ ॥ शुश्रुवुः अत्र दीर्घाभाव आर्षः ॥ ४२ ॥ अशरीरेण अदृश्येन प्रयुक्ता ॥ ४३ ॥ वैरिणा कृष्णेन सह यत् वसत तत् वोऽन्योन्यं न युक्तमिति योजना ॥ ४५ ॥ कार्तिकेयेत्यत्र तृतीयालोप आर्षः। स्वयं जेतुं न शक्त इति शेषः ॥ ४९ ॥ अभिषेक्तुम् इच्छेयमित्यपकृष्य योज्यम् ॥ ५० ॥ वसूनामयं वासवो देवानां दूतोऽस्मीत्यर्थः ॥ ५३ ॥ तिष्ठन्तु चत्वारः कृष्णद्वेषिणः इत्याशयः॥५६॥ दह्यमानेन पुत्रदोषादित्याशयः॥५९

---

१ क. °षिच्यं तं, ख. 'षिञ्चन्तं स्व' । २ क. स्नपनेन च कृ° । ३ क. ख °णां न वैरं कुरु' । ४ क. ख. 'न्त्यमानांस्तु नृ' । ५ क. ख. 'वु राजेन्द्र राजानः सर्व एव ते । मे° । ६ क. ख. 'षु नराधिपाः । प्र° । ७ क. °हागम्य अपि शूलधरः स्व' । ८ ख. 'लधरस्य च । त' । ९ ख. 'मिच्छिच्च सु' । १० क. ख. °न्द्रस्याभिषेचने । ज' । ११ क. °तोऽस्याधि° । १२ ख. तयोः सार्धं नृ° । १३ क. °श्च रुक्मिवांश्च म', ख. °श्च रुक्मवांश्च म° । १४ ख. 'ष्ठन्त्विह च पा° ।

शुभा देवसभा रम्या स्नानहेतोरिहागता।
दिव्यरत्नप्रभाकीर्णा दिव्यध्वजसमाकुला ॥
दिव्याम्बरपताकाढ्या दिव्याभरणभूषिता।
दिव्यस्रग्दामकलिला दिव्यगन्धाधिवासिता
विमानयानैः श्रीमद्भिः समन्तात्परिवारिता
दिव्याप्सरोगणैश्चैव विद्याधरगणास्तथा ६३
गन्धर्वा मुनयश्चैव किन्नराश्च समन्ततः।
उपगायन्ति देवेशमम्बरान्तरमाश्रिताः ॥ ६४
स्तुवन्ति मुनयश्चैव सिद्धाश्च परमर्षयः।
देवदुन्दुभयश्चैव स्वयमेवानदन्दिवि ॥ ६५
पञ्चयोनिसमुत्थानि गन्धचूर्णान्यनेकशः।
समन्तात्पात्यमानानि चाकाशस्थैर्दिवौकसैः
स्वयमागत्य देवेन्द्रो देवैः सह शचीपतिः
विमानवरमारुह्य सप्रकाशः स्थितोऽम्बरे ॥
अष्टौ ये लोकपालास्ते
स्वासु दिक्षु समास्थिताः।
उपगायन्ति नृत्यन्ति
स्तुवन्ति च समन्ततः ॥ ६८
श्रुत्वा सुतुमुलं नादं सर्व एव नराधिपाः।
विस्मयोत्फुल्लनयना विविशुस्ते सभां शुभाम्
कैशिकश्च महाबाहुरुपगम्य नराधिपान्।
प्रवेशयामास बली प्रतिपूज्य यथाविधि ॥७०
निवेदिते सुरश्रेष्ठे पार्थिवानां समागमे।
निर्जगाम हरिः श्रीमान्सर्वमङ्गलपूजितः ॥७१
ततोऽम्बरस्थास्ते दिव्याः कलशाश्चैलकण्ठिनः
सहकारसमायुक्ता ववर्षुर्जलदा इव ॥ ७२
दिव्यकाञ्चनरत्नौघैर्दिव्यपुष्पसमन्वितैः।
गन्धचूर्णविमिश्रैश्च राजेन्द्रस्याभिषेचने ॥७३
यथोक्तविधिपूर्वेण अभिषिच्य जनार्दनम्।
दर्शयित्वा नरेन्द्राणां दिव्यैरावरणैःशुभैः ७४
दिव्याम्बरविचित्रैश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः।
सत्कृत्य विधिवद्राज्ञ उपविष्टो जनार्दनः॥ ७५
शुभे देवसभे रम्ये स्नानहेतोरिहागते।
उपास्यमानो यदुभिर्विदर्भैश्च नराधिपैः॥७६
वैनतेयश्च बलवान्कामरूपी नराकृतिः।
दक्षिणं पार्श्वमाश्रित्य आसनस्थो महाबलः॥
क्रथश्च कैशिको वीरो वामपार्श्वे तथासने।
उपविष्टौ महात्मानौ देवस्यानुमते नृपौ ॥७८
तथैव वामपार्श्वे तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः।
सात्यकिप्रमुखा वीरा उपविष्टा महाबलाः॥
भास्करप्रतिमे दिव्ये दिव्यास्तरणविस्तृते।
सुखोपविष्टं श्रीमन्तं देवैरिव शचीपतिम् ८०
सचिवैः आवितौः सर्वे प्रविष्टास्ते नराधिपाः
यथार्हेण च संपूज्य राजानः सर्व एव ते॥ ८१
सुखोपविष्टास्ते स्वेषु आसनेषु नराधिपाः।
कैशिकस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थवित्तमः८२
पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः।

कैशिक उवाच।

अविज्ञाता नृपाः सर्वे मानुषोऽयमिति प्रभा
भवन्तमुपरुद्धानां देव त्वं क्षन्तुमर्हसि।

श्रीकृष्ण उवाच।

न मे वैरं प्रवसति एकाहमपि कैशिक ॥
विशेषेण नरेन्द्राणां क्षत्रधर्मेऽवतिष्ठताम्।
योद्धव्यमिति धर्मेण अधर्मे तु पराङ्मुखे ८५
तेषां किंहेतुना कोपः कर्तव्यस्त्ववनीश्वराः।
यद्गतं तदतिक्रान्तं ये मृतास्ते दिवं गताः ८६
एष धर्मो नृलोकेऽस्मिञ्जायन्ते च म्रियन्ति च
तस्मादशोच्यं भवतां मृतार्थे च नराधिपाः।
क्षन्तव्यं रोचते ऽस्माकं वीतवैरा भवन्तु ते॥

वैशम्पायन उवाच।

एवमुक्त्वा नरेन्द्रांस्तानाश्वास्य मधुसूदनः
कैशिकस्य मुखं वीक्ष्य विरराम महाद्युतिः॥

स्नानहेतोः पट्टाभिषेकार्थम् ॥६१॥ पञ्चयोनिसमुत्थानि मूलत्वक्पत्रपुष्पफलानि योनयः कारणानि तेभ्यः समुत्थानि पञ्च मन्दारपारिजातकसन्तानकल्पवृक्षहरिचन्दनाख्या देवतरव एव योनयस्तेभ्यः समुत्थानि ॥६६॥ सुरश्रेष्ठे कृष्णे ॥ ७१ ॥ दर्शयित्वा दर्शनीयं कृत्वाऽलंकृत्येत्यर्थः॥७४॥राज्ञ आगतान् सत्कृत्य मानयित्वा तेषामाज्ञां गृहीत्वेत्यर्थः ॥७५॥ देवसभे सिंहासने उपविष्टः ॥७६॥ अविज्ञाताः ज्ञानहीनाः ॥८३॥ उपरुद्धानाम् अपराधवतां भवन्तमुद्दिश्य ॥ ८९ ॥

१ ख. ⁰णास्तत्र ननृतुश्च समन्ततः। २ क. ख. यः सर्वे सि⁰। ३ ख. ⁰मागम्य राजेन्द्र दे⁰। ४ क. ख. ⁰हातेजा उप⁰। ५ ख. ⁰ण सोऽभि⁰। ६ ख. दीक्षयित्वा न⁰। ७ ख. ⁰मे देवसभोद्देशे र⁰। ८ क. ख. उपास्यमानौ यदुभिर्विदर्भैश्च नराधिपौ। वै⁰। ९ ख. क्षिणं पश्चमा⁰। १० क. ⁰न्तं देवा इव श⁰। ११ क. ख. ⁰त्रिताः पूर्वे प्र⁰। १२ ख. ⁰वान् क्ष⁰। १३ क. ख. न मे वैरो निवसते। १४ ख. ⁰तानां वै नराधिपाः। क्ष⁰। १५ ख. ⁰न्तव्यं भवताऽस्मा⁰।

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मको नयकोविदः। पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः॥ ८९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

## कृष्णभीष्मकसंवादः।

### ५१

भीष्मक उवाच।

पुत्रो मे बालभावेन भगिनीं दातुमिच्छति। स्वयंवरे नरेन्द्राणां न चाहं दातुमुत्सहे ॥१
अतीव बालभावत्वाद्दातुमिच्छेन्मतिर्मम। एका ह्येकं समालोक्य वरयिष्यति मे मतिः
अतः[1] प्रसादयिष्ये त्वां पुत्रदुर्नयहेतुना। प्रसादं कुरु देवेश क्षन्तुमर्हसि मे प्रभो॥

श्रीकृष्ण उवाच।

बालभावेन पुत्रेण[2] चालितं नृपमण्डलम्। यदा भवति वै प्रौढः कीदृशोऽविनयो भवेत्
सूर्येन्दुसदृशांल्लोकांस्तपसोपार्जितश्रियः। लोकेऽस्मिन्नरदेवानां महाकुलसमुद्भवान्॥५
एकस्यापि नृपस्याग्रे मोहाद्यो वितथं वदेत्। न स तिष्ठति लोकेऽस्मिन्निर्दहेद्दण्डवह्निना ६
एष धर्मो नरेद्राणामिति[3] ते विदितं प्रभो। लोक[4]धर्मं पुरस्कृत्य पुरा गीतं स्वयंभुवा॥ ७
कथं तव सुतस्तेषामग्रतो मनुजेश्वरः। वक्तुमर्हति राजेन्द्र वितथं राजसंसदि॥ ८
तादृशं रङ्गमतुलं कारयंस्तनयस्तव। कथं त्वया ह्यविज्ञात इति मे संशयो महान् ९
आगतानां नरेन्द्राणामनलार्केन्दुवर्चसाम्। यथार्हेण तु संपूज्य आतिथ्यं कृतवानसि १०
रथाश्वनरनागानां विमर्दमतुलं[6] तथा। कथं न ज्ञातवान्राजंस्तव पुत्रस्य चेष्टितम्॥११
विषादो न भवेदत्र चतुरङ्गबलागमे। कथं न ज्ञायते राजन्निति मे बुद्धिसंशयः॥ १२
ममागमनमेवेह प्रायेण न हितं तव। अतो न कृतमातिथ्यमपात्राय नरेश्वर॥ १३
पात्रेभ्यो दीयतां कन्या मामपास्य[7] नरेश्वर। ममागमनदोषेण कथं कन्यां न दास्यसे॥ १४
कन्याविघ्नं[8] च कुर्वाणो नरके परिपच्यते। इति[9] धर्मविदैर्गीतं मन्वादिभिर्नरोत्तमैः॥१५
अतोऽर्थं न प्रविष्टोऽहं रङ्गमध्ये विशांपते। विदित्वा न कृतातिथ्यं नरदेव तवालयम् १६
ह्रियाऽभिभूतो राजेन्द्र पार्थिवोऽहं नराधिप विदर्भनगरे राजन्बलविश्रामहेतुना॥ १७

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

५१

**एकपञ्चाशत्तमेऽथ कृष्णभीष्मकयोरिह।**
**उक्तिप्रत्युक्तितः प्रोक्ता क्रथकैशिकसत्क्रिया**

**पुत्रो मे इति** ॥ १ ॥ मम मतिस्तु स्वयंवरे दानमतीव बाल्यम् एका एकं वृणीतेति युक्तमित्यर्थः ॥ २ ॥ अथापि मम मतं न प्रसिद्ध्यतीत्याशयेनाह—**अत इति** ॥ ३ ॥ चालितम् चालितवान्। कर्तरि क्तः। अविनय इति च्छेदः ॥ ४ ॥ यो वितथं वदेत् स स्वान् लोकान् दण्डवह्निना यमयातनाग्निना निर्दहेदिति द्वयोः संबन्धः। कीदृशान् लोकान् सूर्येन्दुवत्प्रकाशमानान् महाकुलोत्पन्नत्वेन विश्वजिदादिक्रतुभवान् यतो दहेदतस्तेषां लोकानां मध्येऽस्मिन्नेकस्मिन्नेकस्मिन्नपि लोके न तिष्ठति सर्वेषां दग्धत्वादित्यर्थः ॥ ५ ॥ आस्तां तावत् पुत्रवार्ता त्वमपि मिथ्यैव ब्रवीषीत्याह—**तादृशमिति** ॥ ९ ॥ नकृतातिथ्यमिति समस्तं पदम्। आतिथ्यहीनं तवालयं विदित्वेत्यर्थः ॥१६॥ हे नराधिप राजेन्द्राणां पार्थिवोऽप्यहं न्हियाभिभूतोऽस्मि। तत्र हेतुर्विदर्भेति। यद्यत्र विश्रामो न कृतः स्यात्तदानर्चानिमित्तो ममाभिभवो न जातः स्यादिति भावः ॥ १७ ॥

---

१ क. ख. 'तस्त्वाहं प्रसादिष्ये पुत्र'। २ क. ख. 'न पुत्रस्ते चा०। ३ ख. ०ति मे वि'। ४ क. ख. लोके धर्मं पुर०। ५ क. ख. ०श्वर। व०। ६ क. 'लं त्विह। क०। ७ क. 'स्य महाभुज। ममा०। ८ क. ख. 'घ्नं प्रकुर्वाणो न०। ९ क. ख. 'ति मन्वादिभिर्गीतं धर्मविद्भिर्नरो०।

आवाभ्यां कृतमातिथ्यं कैशिकस्तु प्रियातिथिः
उषितौ च यथा स्वर्गे पुरा गरुडकेशवौ ॥ १८

वैशम्पायन उवाच ।

एवमेव ब्रुवाणं तु
कृष्णं वाग्वज्रचोदितम् ।
श्लक्ष्णवाचाम्बुनाऽऽसिच्य
शमितोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १९

भीष्मक उवाच ।

प्रसीद देवलोकेश पाहि मां लोकशासन ।
अज्ञानतमसाविष्टं ज्ञानचक्षुःप्रदो भव ॥ २०
मानुष्ये मां सचक्षुष्ट्वादसम्यग्विदिता वयम् ।
न प्रसिद्ध्यन्ति कर्माणि क्रियतामविचारणात
भवन्तं शरणं प्राप्य देवानामपि दैवतम् ।
सम्यग्भवतु मे दृष्टिः संपश्यन्तु च मे क्रियाः
अनिष्पन्नामपि क्रियां नयोपेतां विचक्षणाः ।
फलदां हि प्रकुर्वन्ति महासेनापतिर्यथा ॥ २३
भवन्तं शरणं प्राप्य नाति बाधति मे भयम् ।
यन्मया चिन्तितं कार्यं तद्भवाञ्छ्रोतुमर्हति २४
न दातुमिच्छे कन्यां वै पार्थिवेभ्यः स्वयंवरे ।
प्रसादं कुरु देवेश न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ २५

श्रीकृष्ण उवाच ।

वचनेन किमुक्तेन त्वया राजन्महामते ।
स्वकन्यां दास्यसे नेति कोऽत्र नेता तवानघ
मा देहीति न चाख्येयं ददस्वेति न मे वचः ।
रुक्मिण्या दिव्यमूर्तित्वं संबन्धे कारणं मम
मेरुकूटे पुरा देवैः कृतमंशावतारणम् ।
तदा निसृष्टा सा पूर्वं गच्छ त्वं पतिना सह
मानुष्ये कुण्डिनगरे भीष्मकस्याङ्गनोदरे ।
जायस्व विपुलश्रोणि प्रत्यवेक्ष्य च वासवम्
तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि राजन्नकृतकं वचः ।
श्रुत्वा स्वयं विनिश्चित्य यद्युक्तं तत्करिष्यति
रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृतमानुषी ।
श्रीरेषा ब्रह्मवाक्येन जाता केनापि हेतुना ३१
न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयंवरविधिक्षमा ।
एका त्वेकाय दातव्या इति धर्मो व्यवस्थितः
न च तां शक्यसे राजँल्लक्ष्मीं दातुं स्वयंवरे ।
सदृशं वरमालोक्य दातुमर्हसि धर्मतः ॥ ३३
अतोऽर्थं वैनतेयोऽयं विघ्नकारणहेतुना ।
आगतः कुण्डिनगरे देवराजेन चोदितः ३४
अहं चैवागतो राज्ञां द्रष्टुकामो महोत्सवम् ।
तां च कन्यां वरारोहां पद्मेन रहितां श्रियम् ३५
क्षन्तव्यमिति यत्प्रोक्तं त्वया राजन्ममाग्रतः
युक्तिपूर्वमहं मन्ये कलुषाय न पार्थिव ॥ ३६
पूर्वमेव मयाऽऽख्यातं येनास्मि विषये तव ।
आगतः सौम्यरूपेण तेनैव क्षान्तवान् विभो
क्षान्तेषु गुणबाहुल्यं दोषापहरणं क्षमा ।
कथमस्मद्विधे राजन्कलुषो वसते हृदि ॥ ३८
कुलजे सत्त्वसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
भवादृशे कथं राजन्कलुषो भुवि वर्तते ॥ ३९

---

एवमप्यावाभ्यां कृष्णगरुडाभ्यां कृतं पूर्णम् आतिथ्यं लब्धमेवेति शेषः । तत्र हेतुमाह—**कैशिकस्त्विति** ॥१८॥ वाग्वज्रं चोदितं येन तं कृष्णम् आसिच्य स एव शमितः शान्तिं नीतः ॥१९॥ असम्यग्विदिताः विपरीतज्ञानाः क्रियतां कुर्वताम् ॥ २१ ॥ संपश्यन्तु संपन्नाः सन्तु ॥ २२ ॥ बाधति बाधते । मे माम् ॥ २४ ॥ स्वयंवरं यत्र क्रियायां तथा स्वयंवरं मे कन्यां दातुं न इच्छेत्पुत्र इति शेषः । स्वयंवरे हि सति त्वामेव सा वृणुयादित्यभिप्रेत्य त्वय्यागते पुत्रो मे स्वयंवरं न इच्छेदित्यर्थः ॥ २५ ॥ नेता नियन्ता ॥ २६ ॥ मे मया मा देहि अन्यस्मै ददस्व मह्यम् इत्युभयमपि नाख्येयम् । संबन्धे स्वयंभाविनि क्षमैवास्माकं करणं प्रधानमित्यर्थः ॥२७॥ एतदेवाह-**मेरुकूट इत्यादिना** । कृतं स्वीकृतं निसृष्टा आज्ञप्ता श्रीपतिना विष्णुना ॥ २८ ॥ प्रत्यवेक्ष्य अनुकम्प्य वासवम् इन्द्रम् ॥ २९ ॥ एकाय एकस्मै ॥ ३२ ॥ अस्मद्विधे अस्मद्विधस्य हृदि ॥ ३८ ॥

---

१क. स्वर्गे पु॰ । २ ख. एवमब्रुवमाणं तं कृ॰ । ३ क. ख. ॰श ।मर्त्यलोकेश पाहि माम्॰ । ४ ख. मनुष्ये मां स च॰ । ५ क. ख. ॰न्ति कार्याणि क्रि॰ । ६ क. ख. संपत्स्यन्तु च॰ । ७ क. ॰मिच्छे क॰ । ८ ख. ॰मिच्छे कन्याया पा॰ । ९ क. ॰ण्या दिव्यमूर्तित्वात् सम्ब॰ । १० ख. ॰वैः कृत्वा स्वांशावता॰ । ११ ख ॰र्वं गच्छेति प॰ । १२ क. जायेथा वि॰, ख. जायेस्त्वं वि॰ । १३ ख. ॰क्ष्यस्व केशवम् । ते॰ । १४ क. ख. सा प्रकृतिमा॰ । १५ ख. ॰क्यते रा॰ । १६ क. ॰जन्ममिप्सया । यु॰, ख. ॰जन्ममेष्टतः । युक्तपू॰ । १७ क. ख. ॰न्तवान्प्रभो । क्षा॰ ।

क्षान्तोऽयमिति मन्तव्यं मम सेनासहागतम्
न चाहं सेनया सार्द्धं यास्यामि रिपुवाहिनीम्
अक्षान्तश्चारिसेनायां यास्यामि द्विजवाहने।
स्थितः सोमार्कसंकाशान्यायुधानि करैर्वृतः
मान्योऽस्माकं त्वया राजन्
वयसा च पिता समः।
पालयस्व पुरीं सम्य-
क्क्षत्रेषु पितृवद्वस ॥ ४२
कलुषो नाम राजेन्द्र वसेत्कापुरुषेषु वै।
शूरेषु शुद्धभावेषु कलुषो वसते कथम् ॥ ४३
जानीध्वमेषा मे वृत्तिः पुत्रेषु पितृवद्वयम्।
इमावपि च राजानौ विदर्भनगराधिपौ ४४
आतिथ्यकरणेऽस्माकं स्वराज्यं ददतावुभौ
तेन दानफलेनास्य दशपूर्वा दिवं गताः॥ ४५
भविष्याश्चैव राजानः पुत्रपौत्रा दशावराः।
तेऽपि तत्रैव यास्यन्ति देवलोकं नराधिपाः
अनयोः सुचिरं कालं भुक्त्वा राज्यमकण्टकम्
यदाभिलाषो मोक्षस्य यास्येते निर्वृतिं सुखम्
नरेन्द्राश्च महाभागा येऽभिषेचितुमागताः।
कालेन तेऽपि यास्यन्ति देवलोकं त्रिविष्टपम्
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि वैनतेयसहायवान्
नगरीं मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम् ४९

वैशम्पायन उवाच।

एवमुक्त्वा तु राजानं भीष्मकं यदुनन्दनः।
राज्ञश्चैवमुपामन्त्र्य वैदर्भाभ्यां विशेषतः।
सभान्निष्क्रम्य देवेशो जगाम रथमन्तिकम् ५०
ततः प्रहृष्टो राजर्षिर्भीष्मकः किल केशवम्।
ते सर्वे च महीपाला विषण्णवदनाऽभवन् ५१
आद्यं स्वायंभुवं रूपं सुरासुरनमस्कृतम्।
सहस्रपात्सहस्राक्षं सहस्रभुजविग्रहम् ॥ ५२
सहस्रशिरसं देवं सहस्रमुकुटोज्ज्वलम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ५३
दिव्याभरणसंयुक्तं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।
कृष्णं रक्तारविंदाक्षं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम् ५४
दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।
वाङ्मनःकायसंयुक्तं स्तोतुमारब्धवांस्तदा ५५

भीष्मक उवाच।

देवदेव नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय वै।
शाश्वतायादिदेवाय नारायण परायण ॥ ५६
स्वयंभुवे च विश्वाय स्थाणवे वेधसाय च।
पद्मनाभाय जटिने दण्डिने पिङ्गलाय च ॥५७
हंसप्रभाय हंसाय चक्ररूपाय वै नमः।
वैकुण्ठाय नमस्तस्मै अजाय परमात्मने ॥५८
सदसद्भावयुक्ताय पुराणपुरुषाय च।
पुरुषोत्तमाय युक्ताय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते
वरदो भव मे नित्यं त्वद्भक्ताय सुरोत्तम।
लोकनाथोऽसि नाथ त्वं
विष्णुस्त्वं विदितात्मनाम् ॥ ६०

वैशम्पायन उवाच।

एवं स्तुत्वा महादेवं नृपाणामग्रतो नृपः।
महार्हमणिमुक्ताभिर्वज्रवैदूर्यहासिनम् ॥ ६१
शातकुम्भस्य निचयं कृष्णाय प्रददौ नृपः।
पुनश्चक्रे नमस्कारं वैनतेये महाबले ॥ ६२

भीष्मक उवाच।

नमस्तस्मै खगेन्द्राय नमो मारुतरंहसे।
कामरूपाय दिव्याय काश्यपाय च वै नमः६३

वैशम्पायन उवाच।

इति संक्षेपतः स्तुत्वा सत्कृत्य वरभूषणैः।
ततो विसर्जयामास कृष्णं कमललोचनम् ६४
अनुजग्मुर्नृपाश्चैव प्रस्थितं वासवानुजम्।
प्रतिगृह्य च सत्कारं नृपानामन्त्र्य वीर्यवान्
जगाम मथुरां कृष्णो द्योतयानो दिशो दश।
वैनतेयं पुरस्कृत्य सौम्यरूपं खगोत्तमम् ॥ ६६

---

अस्माकं पिता मान्यः वयसा च त्वया समः ॥ ४२ ॥ एषा निष्कलुषा मे वृत्तिरिति जानीध्वम् ॥ ४४ ॥ वैदर्भाभ्यां क्रथकैशिकाभ्यां सह सभात् सभास्थानात् ॥ ५० ॥

---

१ क. ख. °हागतः। न। २ क. °नि करैर्वहन्। मा°, ख. °नि करैर्वृतः। मा°। ३ ख. °म्यक्पुत्रेषु पि°। ४ ख. जानीध्वं मां सतां वृत्तं पुत्रेषु पितृवद्वशम्। आवयोरपि राजा°। ५ क. °कं स्वं राज्यं ददतुः शुभौ। ते°। ६. क °श पूर्वं दि°। ७ क. ख. °व राजेन्द्र पु°। ८ क. ख. °कं यदुपुङ्गवः। रा°। ९ क. ते तु सर्वे म°। १० ख. °य मुक्ता°। ११ क. नाथस्त्वं, ख. लोकनाथ सदानाथ विष्णुस्त्वं वि°। १२ क. ख. °य मनोमारुत°।

महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः ।
भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ६७
बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च ।
सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ॥ ६८
तुमुलः सुमहानासीन्महामेघरवोपमः ।
गते कृष्णे महावीर्ये आदाय वरमासनम् ॥ ६९
सभामादाय देवाश्च प्रययुस्त्रिदशालयम् ।
महता चतुरङ्गेण बलेन परिवारिताः ॥ ७०
कोशमात्रमुपव्रज्य अनुज्ञाते जनार्दने ।
प्रययुस्ते नृपाः सर्वे पुनरेव स्वयंवरम् ॥ ७१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णाभिषेको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## कालयवनं प्रति शाल्वगमनम् ।

## ५२

वैशम्पायन उवाच ।
ततः प्रयाते वसुदेवपुत्रे
नराधिपा भूषणभूषिताङ्गाः ।
सभां समाजग्मु सुरेन्द्रकल्पाः
प्रबोधनार्थं गमनोत्सवास्ते ॥ १ ॥
सभागतान्सोमरविप्रकाशान्
सुखोपविष्टान्रुचिरासनेषु ।
समीक्ष्य राजा सुनयार्थवादी
जगाद वाक्यं नरराजसिंहः ॥ २
स्वयंवरकृतं दोषं विदित्वा वो नराधिपाः
क्षन्तव्यो मम वृद्धस्य दुर्दग्धस्य फलोदयम् ३
वैशम्पायन उवाच ।
एवमाभाष्य तान्सर्वान्सत्कृत्य च यथाविधि
ततो विसर्जयामास नृपांस्तान्मध्यदेशजान् ॥
पूर्वपश्चिमजांश्चैव उत्तरापथिकानपि ।
तेऽपि सर्वे महेष्वासाः प्रहृष्टमनसो नराः ॥ ५
यथार्हेण च संपूज्य जग्मुस्ते नरपुङ्गवाः ।
जरासन्धः सुनीथश्च दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान् ६
शाल्वः सौभपतिश्चैव महाकूर्मश्च पार्थिवः ।
क्रथकैशिकमुख्याश्च नृपाः प्रवरवंशजाः ॥ ७
वैणुदारिश्च राजर्षिः काश्मीराधिपतिस्तथा ।
एते चान्ये च बहवो दक्षिणापथिका नृपाः ८
श्रोतुकामा रहो वाक्यं स्थिता वै भीष्मकान्तिके
तान्वै समीक्ष्य राजेन्द्रः स राजा भीष्मको बली
स्नेहपूर्णेन मनसा स्थितांस्तानवनीश्वरान् ।
त्रिवर्गसहितं श्लक्ष्णं षड्गुणालंकृतं शुभम् १०
उवाच नयसंपन्नं स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
भीष्मक उवाच ।
भवतामवनीशानां समालोक्य नयान्वितम्
वचनं व्याहृतं श्रुत्वा कृतवान्कार्यमीदृशम् ।
क्षन्तव्यं भवतां सद्भिर्वयं नित्यापराधिनः १२
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा तु राजा स भीष्मको नयकोविदः
उवाच सुतमुद्दिश्य वचनं राजसंसदि ॥ १३
भीष्मक उवाच ॥
पुत्रस्य चेष्टामालोक्य त्रासाकुलितलोचनः
मन्ये बालानिमाँल्लोकान्स एष पुरुषः परः १४

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

द्विपञ्चाशत्तमेऽध्याये मागधादिप्रचोदितः ॥
शाल्वोऽगाद्यवनेन्द्रं तं कृष्णमानापनुत्तये ॥ १ ॥

ततः सभां भीष्मकस्य समाजग्मुर्विसर्गलोप आर्षः ॥ १ ॥ राजा भीष्मकः ॥ २ ॥ स्वयंवरे कृष्णविरोधाख्यो दोषो विश्वक्षयकरो भविष्यतीति मत्वा स्वयंवरार्थमाहूतान् नृपान् सान्त्वयति । स्वयमिति शेषः ॥ ३ ॥ व्याहृतं कृष्णस्तुतिरूपं कृतः कारितः कृतवान्वा ॥ १२ ॥ इमानिति पुत्रं प्रदर्श्याह । एषः कृष्णः ॥ १४ ॥

---

१ ख. °न शङ्खशब्दवरेण च । बृं° । २ ख. °युस्त्रिदिवाल° । ३ क. °न्तव्यं म° । ४ ख. °थकौशि° । ५ क. ख. °त्वा कृतोऽहं कार्यं मी° । ६ क. ख. सद्भिर्भवाद्भिः क्षन्तव्यं वयं नि° । ७ ख. °लितचेतनः । म° । ८ ख. °कान्स एष पुरुषः प्रभुः । ९ क. °षः प्रभुः । कीं° ।

कीर्तिः कीर्तिमतां श्रेष्ठो यशश्चं यशभाग्बली।
स्थापिता भुवि मर्त्येऽस्मिन्स्वबाहुबलमूर्जितम्
धन्या खलु महाभागा देवकी योषितां वरा।
पुत्रं त्रिभुवनश्रेष्ठं कृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ १६
कृष्णं कमलपत्राक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम्।
नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम्

वैशम्पायन उवाच।

एवं लालप्यमानं तु राजानं राजसंसदि।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा शाल्वराजो महाद्युतिः

शाल्व उवाच।

अलं खेदेन राजेन्द्र सुतार्थं रिपुमर्दिने।
क्षत्रियस्य रणे राजन्ध्रुवं जयपराजयौ ॥ १९
नियता गतिर्मर्त्यानामेष धर्मः सनातनः।
बलकेशवयोरन्यस्तृतीयः कः पुमानिह ॥ २०
रणे योधयितुं शक्तस्तव पुत्रं महाबलम्।
रथातिरथवृन्दानामेक एव रणाजिरे ॥ २१
रिपून्बाधयितुं शक्तो धनुर्गृह्य महाभुजः।
भार्गवास्त्रं महारौद्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ २२
सृजतो बाहुवीर्येण कः पुमान्प्रसहिष्यति।
अयं तु पुरुषः कृष्णो ह्यनादिनिधनोऽव्ययः२३
तं विजेता नृलोकेऽस्मिन्नापि शूलधरः स्वयम्
तव पुत्रो महाराज सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् २४
विदित्वा देवमीशानं न योधयति केशवम्।
अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृप ॥ २५
स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह।
तप्त्वा सुदारुणं घोरं तपः परमदुश्चरम् २६
रुद्रमाराधयामास द्वादशाब्दानयोशनः।
पुत्रकामेन मुनिना तोष्य रुद्रात्सुतो वृतः २७
माथुराणामवध्योऽयं भवेदिति च शङ्करात्।
एवमस्त्विति रुद्रोपि प्रददौ मुनये सुतम् २८
एवं गार्ग्यस्य तनयः श्रीमान्रुद्रवरोद्भवः।
माथुराणामवध्योऽयं मथुरायां विशेषतः २९
कृष्णोऽपि बलवानेष माथुरे जातवानयम्।
स जेष्यति रणे कृष्ण मथुरायां समागतः ३०
मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा वाचं मयेरिताम्
तत्र दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति ॥ ३१

वैशम्पायन उवाच।

श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः।
कुर्म इत्यब्रुवन्हृष्टा जरासन्धं महाबलम् ३२
स तेषां वचनं श्रुत्वा जरासन्धो महीपतिः।
बभूव विमना राजन्ब्रह्मणो वचनं स्मरन् ३३

जरासन्ध उवाच।

मां समाश्रित्य पूर्वस्मिन्नृपा नृपभयार्दिताः
प्राप्नुवन्तु हृतं राज्यं सभृत्यबलवाहनम् ३४
ईहाहं चोद्यते भूपैः परसंश्रयहेतुना।
कन्येव स्वपतिद्वेषादन्यं रतिपरायणा ॥ ३५
अहो सुबलवद्दैवमशक्यं विनिवर्तितुम्।
यदहं कृष्णभीतोऽन्यं संश्रयामि बलाधिकम्
नूनं योगविहीनोऽहं कारयिष्ये पराश्रयम्।
श्रेयो हि मरणं मह्यं न चान्यं संश्रये नृपाः ३७
कृष्णो वा बलदेवो वा
यो वाऽसौ वा नराधिपः।
हन्ताऽरं प्रतियोत्स्यामि
यथा ब्राह्मप्रचोदितः ॥ ३८
एषा मे निश्चिता बुद्धिरेतत्सत्पुरुषव्रतम्।
अतोऽन्यथा न शक्तोऽहं कर्तुं परसमाश्रयम्
भवतां साधुवृत्तानामाबाधं न करोति सः।
तेन दूतं प्रदास्यामि नृपाणां रक्षणाय वै ॥४०
व्योममार्गेण यातव्यं यथा कृष्णो न बाधते।
गच्छन्तमनुचिन्त्यैवं प्रेषयध्वं नृपोत्तमाः ४१

---

यशभाग्यशोभोगी स्थापिता स्थापयिष्यति ॥ १५ ॥ गतिः विभक्तिलोप आर्षः ॥ २० ॥ अयोशनः लोहचूर्णाहारः मुनिना गार्ग्येण ॥ २७ ॥ ब्रह्मणो वचनम् अन्योऽस्य मृत्युरस्तीति बलदेवं प्रत्यशरीरवाक्यम् ॥ ३३ ॥ पूर्वस्मिन् काले ॥ ३४ ॥ यथा कन्या स्वपतिमपहाय जारमाश्रयते एवमहं स्वबलमनाश्रित्य परमाश्रयामीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ योगविहीनः उपायहीनः ॥ ३७ ॥ हन्ता अरमिति च्छेदः ॥ ब्राह्मेण अशरीरेण वचनेन ॥ ३८ ॥

---

१ ख. °श्च विपुलं तथा। स्था°। २ क. °पितं भु°। ३ क. ख. °ष्ठं धृत्वा ग°। ४ क. ख. °तार्थमरिमर्दनम्। क्ष°। ५ ख. °हाप्रज्ञः स°। ६ क. ख. °वम्। अस्ति तस्य र°। ७ क. ख. °थुरो जा°। ८ क. ख. °ष्टा शाल्वराजं म°। ९ क. ख. °त्य पूर्वेऽस्मिन्नृ°। १० क. ख. °वन्ति ह°। ११ क. इह संचो°। १२ ख. °वाऽन्यो वा नरोऽपरः। ह°। १३ क. नरोऽमरः। ह°। १४ ख. एष मे निश्चयो बुद्धेरेष मे पुरुषव्रतः। अतो°। १५ क. °ति च। ते°।

अयं सौभपतिः श्रीमाननलार्केन्दुविक्रमः ।
रथेनादित्यवर्णेन प्रयाति स्वपुरं बली ॥ ४२
यवनेन्द्रो यथाभ्येति नरेन्द्राणां समागमम् ।
वचनं च तथास्माभिर्दूत्ये नः कृष्णविग्रहे ४३
वैशम्पायन उवाच ।
पुनरेवाब्रवीद्राजा सौभस्य पतिमूर्जितम् ।
गच्छ सर्वनरेन्द्राणां साहाय्यं कुरु मानद ४४
यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजेष्यति ।
यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम्
एवं संदिश्य सर्वांस्तान्भीष्मकं पूज्य धर्मतः
प्रययौ स्वपुरं राजा स्वेन सैन्येन संवृतः ४६
शाल्वोऽपि नृपतिश्रेष्ठस्ताभ्यां संपूज्य धर्मतः
जगामाकाशमार्गेण रथेनानिलरंहसा ॥ ४७
तेऽपि सर्वे महीपाला दक्षिणापथवासिनः ।
अनुव्रज्य जरासन्धं गताः स्वनगरं प्रति ४८
भीष्मकः सह पुत्रेण तावुभौ चिन्त्य दुर्नयम् ।
स्वे गृहे न्यवसद्दीनः कृष्णमेवानुचिन्तयन्
विदिता रुक्मिणी साध्वी स्वयंवरनिवर्तनम्
कृष्णस्यागमनाद्धेतोर्नृपाणां दोषदर्शनम् ५०
गत्वा तु सा सखीमध्ये उवाच व्रीडिताननाः ।
न चान्येषां नरेन्द्राणां पत्नी भवितुमुत्सहे ।
कृष्णात्कमलपत्राक्षात्सत्यमेतद्वचो मम ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## कालयवनं प्रति जरासन्धसन्देशः ।

## ५३

वैशम्पायन उवाच ।
यवनानां बलोदग्रः स कालयवनो नृपः ।
बभूव राजा धर्मेण रक्षिता पुरवासिनाम् १
त्रिवर्गविदितः प्राज्ञः षड्गुणानुपजीवकः ।
सप्तव्यसनसंमूढो गुणेष्वभिरतः सदा ॥ २
श्रुतिमान्धर्मशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
सांग्रामिकविधिज्ञश्च दुर्गलाभानुसारिणः ॥ ३
शूरोऽप्रतिबलश्चैव मन्त्रिप्रवरसेवकः ।
सुखासीनःसभां रम्यां सचिवैः परिवारितः
उपास्यमानो यवनैरात्मविद्भिर्विपश्चितैः ।
विविधाश्च कथा दिव्याः कथ्यमानाः परस्परम्
एतस्मिन्नेव काले तु दिव्यगन्धवहोऽनिलः ।
प्रववौ मदनाबोधं चकार सुखशीतलः ॥ ६
किंस्विदित्येकमनसः सभायां ये समागताः
उत्फुल्लनयनाः सर्वे राजा चैवावलोक्य सः ७
अपश्यन्त रथं दिव्यमायान्तं भास्करोपमम् ।
शातकुम्भमयैः शुभ्रै रथाङ्गैरुपशोभितम् ॥ ८

---

दूत्ये दूतकर्मणि यथाऽस्माभिर्वचनं वक्तव्यं तथाऽयं वदत्वित्यर्थः । नः अस्माकं कृष्णविग्रहे उपस्थिते सति ॥४३॥ राजा जरासंधः ॥.४४ ॥ तावुभौ क्रथकैशिकौ दुर्नयं च पुत्रस्यानुचिन्तयन् ॥ ४९ ॥ विदिता ज्ञातवती ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्विपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३

त्रिपञ्चाशत्तमेऽध्याये शाल्व आकाशवर्त्मना । अभ्ययाद्यवनाधीशपुरीं विज्ञप्तिकारणात् ॥१॥ "पदः स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गो नीतिवेदिनाम् ।" इत्युक्तत्रिवर्गवेत्ता । षड्गुणान्सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावाश्रयान् । सप्त व्यसनानि, "द्यूतं मांसं सुरा वेश्या त्रिवर्गेष्वनभिज्ञता" । इत्युक्तानि तेषु संमूढोऽनभिज्ञः ॥ २ ॥

---

१ ख, °न्दुसप्रभः । २ क. °गमे। व° । ३ क. °भिर्दौत्यतः कृ° । ४ क. ख. स्तांश्च संपूज्य वीर्यवान् । ज° । ५ क. ख. °लगामिना । ते° । ६ क. ख. °थगामिनः । अ° ७ क. तास्ते नगराणि वै । भी°, ख. °तास्ते नगरेषु वै । भी° । ८ क. ख. गृहे विविशतुर्दीनौ कृ° । ९ ख. गमने हेतोर्नृ° । १० ख. त्यक्तव्य° । ११ ख. °सारिणः । स° । १२ क. ख. °मानैः प° । १३ ख. °नाबोधस्तस्य वै सु° । १४ क. कस्मादित्ये° । १५ क. ख. इयत र° । १६ ख. °मयैर्दिव्यै र° ।

दिव्यरत्नप्रभाकीर्णं दिव्यध्वजपताकिनम्।
वाहितं दिव्यतुरगैर्मनोमारुतरंहसैः ॥ ९
चन्द्रभास्करबिम्बानि कृत्वा जाम्बुनदेन तम्
रचितं वै विश्वकृता वैयाघ्रवरभूषितम् ॥ १०
रिपूणां त्रासजननं मित्राणां हर्षवर्द्धनम्।
दक्षिणादिगुपायान्तं रथं पररथारुजम् ॥ ११
तत्रोपविष्टं श्रीमन्तं सौभस्य पतिमूर्जितम्।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टश्चार्घ्यं पाद्येति चासकृत् ॥ १२
उवाच यवनेन्द्रस्य मन्त्री मन्त्रविदां वरः।
तत्रोत्थाय महाबाहुः स्वयमेव नृपासनात् १३
प्रत्युद्गम्यार्घ्यमादाय रथावतरणे स्थितः।
शाल्वोऽपि च महातेजा दृष्ट्वा राजानमागतम्
मुदा परमया युक्तं शक्रप्रतिमतेजसम्।
अवतीर्य सुविश्रब्ध एक एव रथोत्तमात् ॥१५
विवेश परमं प्रीतो मित्रदर्शनलालसः।
दृष्ट्वाऽर्घमुद्यतं राजा शाल्वो राजर्षिसत्तमः
उवाच श्लक्ष्णया वाचा नार्घार्होऽस्मि महाद्युते
दूतोऽहं मनुजेन्द्राणां सकाशाद्भवतोऽन्तिकम्
प्रेषितो बहुभिः सार्द्धं जरासन्धेन धीमता।
तेन मन्ये महाराज नार्घार्होऽस्मीति राजसु

कालयवन उवाच।

जानाम्यहं महाबाहो दौत्येन त्वामिहागतम्
साहित्ये नरदेवानां प्रेषितो मागधेन वै ॥१९
तेन त्वामर्चये राजन्विशेषेण महामते।
अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैरासनेन यथाविधि ॥२०
भवत्यभ्यर्चिते राज्ञां सर्वेषामर्चितं भवेत्*।
आस्यतामासने शुभ्रे मया सार्द्धं जनेश्वर २१

वैशम्पायन उवाच।

स हस्तालिङ्गनं कृत्वा दृष्ट्वा च कुशलामयम्
सुखोपविष्टौ सहितौ शुभे सिंहासने स्थितौ

कालयवन उवाच।

यद्बाहुबलमाश्रित्य वयं सर्वे नराधिपाः।
वसामो विगतोद्विग्ना देवा इव शचीपतिम्
किमसाध्यं भवेदस्य येनासि प्रेषितो मयि।
वद सत्यं वचस्तस्य किमाज्ञापयति प्रभुः।
करिष्ये वचनं तस्य अपि कर्म सुदुष्करम् २४

शाल्व उवाच।

यथा वदति राजेन्द्र मगधाधिपतिस्तव।
तथाऽहं संप्रवक्ष्यामि श्रूयतां यवनाधिप २५

जरासन्ध उवाच।

जातोऽयं जगतां बाधी कृष्णः परमदुर्जयः
विदित्वा तस्य दुर्वृत्तमहं हन्तुं समुद्यतः ॥ २६
पार्थिवैर्बहुभिः सार्द्धं समग्रबलवाहनैः।
उपरुध्य महासैन्यैर्गोमन्तमचलोत्तमम् ॥ २७
चेदिराजस्य वचनं महार्थं श्रुतवानहम्।
यदा तयोर्विनाशाय हुताशनमयोजयम् ॥ २८
ज्वालाशतसहस्राढ्यं युगान्ताग्निसमप्रभम्
दृष्ट्वा रामो गिरेः कूटादाप्लुतो हेमतालधृक्
विनिष्पत्य महासेनां मध्ये सागरसन्निभाम्
आजघान दुराधर्षो नराश्वरथदन्तिनाम् ३०
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं विकृष्याकृष्य लाङ्गलम्।
नरनागाश्ववृन्दानि मुसलेन व्यपोथयत् ३१
गजेन गजमास्फाल्य रथेन रथयोधिनम्।
हयेन च हयारोहं पदातेन पदातिनम् ॥ ३२
समरे स महातेजा नृपार्कशतसंकुले।
विचरन्विविधान्मार्गान्निदाघे भास्करो यथा
रामादनन्तरं कृष्णः प्रगृह्यार्कसमप्रभम्।
चक्रं चक्रभृतां श्रेष्ठः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा× ३४

---

रंहसैर्वेगिभिः ॥ ९ ॥ वैय्याघ्रवरं व्याघ्रचर्मवरं तेन भूषितं परिवृतम् ॥ १० ॥ दक्षिणा दक्षिणतः दिशः सकाशात् उपायान्तम् ॥ ११ ॥ अर्घ्यं पाद्यं चासकृत् उवाच। विभक्तिलोप आर्षः ॥१२॥ अर्चितम् अर्चनम् ॥२१॥ यत् यस्य जरासन्धस्य ॥२३॥ जगतां बाधी बाधकः ॥ २६ ॥

---

१ क. ख. ऊह्यन्तं दि॰। २ ख. ॰नि हृत्वा जाम्बूनदं शुभम्। राचि॰। ३ ख. ॰चितं विश्वकर्मेण वै॰। ४ ख. दाक्षिणादि॰। ५ क. ॰रथ्यं प॰। ६ क. ॰नेन्द्रो वै मित्रं प्रवदतां वरः। त॰, ख. ॰स्य मन्त्री प्रवदतां वरः। त॰। ७ ख. ॰पि सुम॰। ८ क, ख. ॰जा स शाल्वो राजसत्तमः। उवा॰। ९ख. सुहितं न॰। १० ख. ॰हाद्युते। अ॰। * 'मानिते तव राजेन्द्र सर्वेषां मानितं भवेत्' इत्यधिकं खपुस्तके। ११ ख. ॰सने दिव्ये म॰। १२ क. ख. ॰र्धं नरेश्वर। वै॰। १३ क. ख. हस्तालिङ्गनकं कृ॰। १४ क. ॰शलोत्तमम्। सु॰। १५ क. ख. ॰सने नृपौ। का॰। १६ ख. ॰तिर्नृपः। त॰। १७ क. ख. ॰गदाबाधी कृ॰। १८ क. ख. तदा त॰। × रामादनन्तरं कृष्णः प्रगृह्यार्कसमप्रभम्। चक्रं चक्रभृतां श्रेष्ठः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा। इति क. ख. पुस्तकयोरधिकः पाठः। तत्रापि चक्रेति पद्यार्धस्थाने चक्रं स च महातेजाः कालीं चैवायसीं गदाम्। इति पाठान्तरम्।

प्रविचाल्य महावीर्यः पादवेगेन तं गिरिम् ।
शत्रुसैन्ये पपातोच्चैर्यदुवीरः प्रतापवान् ॥ ३५
प्रनृत्यन्निव शैलेन्द्रस्तोयधाराभिषेचितः ।
घूर्णमानो विवेशोर्वीं विनिर्वाप्य हुताशनम्
आदीप्यमानशिखरादवप्लुत्य जनार्दनः ।
जघान वाहिनीं राजंश्चक्रव्यग्रेण पाणिना ३७
विक्षिप्य विपुलं चक्रं गदापातादनन्तरम् ।
नरनागाश्ववृन्दानि मुसलेन व्यचूर्णयत् ॥ ३८
क्रोधानिलसमुद्भूतचक्रलाङ्गलवह्निना ।
निर्दग्धा महती सेना नरेन्द्रार्काभिपालिता ॥
नरनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
रथानीकं पदाताभ्यां क्षणेन विदलीकृतम् ४०
सेनां प्रभग्नामालोक्य चक्रानलभयार्दिताम् ।
महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः ॥ ४१
तत्राहं युद्ध्यमानस्तु भ्राताऽस्य बलवान्बली ।
स्थितो ममाग्रतः शूरो गदापाणिर्हलायुधः ४२
द्वादशाक्षौहिणीर्हत्वा प्रभिन्न इव केसरी ।
हलं सौनन्दमुत्सृज्य गदया मामताडयत् ४३
वज्रपातनिभं वेगं पातयित्वा ममोपरि ।
भूयः प्रहर्तुकामो मां वैशाखेनास्थितो महीम्
वैशाखं स्थानमास्थाय गुहः क्रौञ्चं यथा पुरा ।
तथा मां दीर्घनेत्राभ्यामीक्षते निर्दहन्निव ४५
तादृग्रूपं समालोक्य बलदेवं रणाजिरे ।
जीवितार्थी नृलोकेऽस्मिन्कः पुमान्स्थातुमर्हति
गृहीत्वा स गदां भीमां कालदण्डमिवोद्यताम्
कुलाकुशेन निर्धूतां स्थित एवाग्रतो मम ४७
ततो जलदगम्भीरस्वरेणापूरयन्नभः ।
वागुवाचाशरीरेण स्वयं लोकपितामहः ॥४८
प्रहर्तव्यो न राजाऽयमवध्योऽयं तवानघ ।
कल्पितोऽस्य वधोन्यस्माद्विरमस्व हलायुध
श्रुत्वाहं तेन वाक्येन चिन्ताविष्टो निवर्तितः
सर्वप्राणहरं घोरं ब्रह्मणा स्वयमीरितम् ॥ ५०
तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया ।
श्रुत्वा त्वमेव राजेन्द्र कर्तुमर्हसि तद्वचः ॥ ५१
तपसोग्रेण महता पुत्रार्थी तोष्य शङ्करम् ।
प्राप्तवान्नरदेवं त्वामवध्यं माथुरैर्जनैः ॥ ५२
महामुनिश्चायसचूर्णमश्न-
न्नुपस्थितो द्वादशवार्षिकं व्रतम् ।
सुरासुरैः संस्तुतपादपङ्कजः
स लब्धवानीप्सितकामसम्पदम् ५३
तपोबलाद्गार्ग्यमुनेर्महात्मनो
वरप्रभावाच्छशकलेन्दुमौलिनः ।
भवन्तमासाद्य जनार्दनो हिमं
विलीयते भास्कररश्मिना यथा ॥५४
यतस्व राज्ञां वचनप्रचोदितो
व्रजस्व यात्रां विजयाय केशवम् ।
प्रविश्य राष्ट्रं मथुरां च सेनया
निहत्य कृष्णं प्रथयन्स्वकं यशः ॥५५
माथुरो वासुदेवोऽयं
बलदेवः सबान्धवः ।
तौ विजेष्यसि संग्रामे
गत्वा तां मथुरां पुरीम् ॥ ५६

शाल्व उवाच ।

इत्येवं नरपतिभास्करप्रगीतं
वाक्यं ते कथितमिदं हितं नृपाणाम् ।
तत्सर्वं सह सचिवैर्विमृश्य बुद्ध्या
यद्युक्तं कुरु मनुजेन्द्र चात्मनिष्ठम् ५७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शाल्ववाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

---

हलं सौनन्दं मुसलं च उत्सृज्य त्यक्त्वा गदयैव मामताडयत् अयोधयत् ॥ ४३ ॥ वैशाखेन विशाखः कार्तिकेयः तस्येदं वैशाखं शक्तिप्रहरणं तेन ॥ ४४ ॥ स्थानं मर्मस्थानमास्थाय अभिलक्ष्य वैशाखं मोक्तुम् इच्छन्वीक्षते स्मेत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥४५॥ कुलाङ्कुशेन कौ पृथिव्यां लीयते इति कुलं हलं तदेवाङ्कुशः तेन निर्धूतां कम्पितां भ्रामितां वा कृत्वेति शेषः ॥ ४७ ॥ वाक् वाचम् ॥४८॥ देवदेवं देवराजानं प्राप्तवान्महामुनिरित्यग्रिमेण सम्बन्धः ॥५३॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

---

१ ख. शैलोऽसौ तोय॰ । २ ख. ॰शोर्वीं निर्वाप्य च हु॰ । ३ ख. ॰मासाद्य गु॰ । ४ ख. कालाङ्कुशेन नि॰ । ५ ख. [illegible] राम न वध्योऽयं त॰ । ६ ख. वधश्चान्याद्वि॰ । ७ ख. ॰वान्देवदेवात्त्वामव॰ । ८ ख. ॰दमर्चयन्स ल॰ । ९ ख. [illegible] प्रमथ्य रा॰ ।

## कालयवनवाक्यम्।

### ५४

वैशम्पायन उवाच।
एवं कथयमानं तं शाल्वराजं नृपाज्ञया।
उवाच परमप्रीतो यवनाधिपतिर्नृपः॥ १
कालयवन उवाच।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम
कृष्णनिग्रहहेतोर्यन्नियुक्तो बहुभिर्नृपैः॥ २
दुर्जयस्त्रिषु लोकेषु सुरासुरगणैरपि।
तस्य निग्रहहेतोर्मामवधार्य जयाशिषम्॥ ३
प्रहृष्टे राजसिंहैस्तैरवधार्यो जयो मम।
तेषां वाचाम्बुवर्षेण विजयो मे भविष्यति॥४
करिष्ये वचनं तेषां नृपसत्तमचोदितम्।
पराजयोऽपि राजेन्द्र जयेन सदृशो मम॥ ५
अद्यैव तिथिनक्षत्रं मुहूर्तं करणं शुभम्।
यास्यामि मथुरां राजन्विजेतुं केशवं रणे॥६
वैशम्पायन उवाच।
एवमाभाष्य राजानं सौभस्य पतिमूर्जितम्
सत्कृत्य च यथान्यायं महार्हमणिभूषणैः॥ ७
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं सिद्धादेशाय वै नृपः।
पुरोहिताय राजेन्द्र प्रददौ बहुशो धनम्॥ ८
हुत्वाग्निं विधिवद्राजा कृतकौतुकमङ्गलः।
प्रस्थानं कृतवान्सम्यग्जेतुकामो जनार्दनम्॥ ९
शाल्वोऽपि भरतश्रेष्ठ कृतार्थो हृष्टमानसः।
यवनेन्द्रं परिष्वज्य जगाम स्वपुरं नृपः॥ १०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवाक्ये
चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

## द्वारवतीप्रयाणसंकेतः।

### ५५

जनमेजय उवाच।
विदर्भनगराद्याते शक्रतुल्यपराक्रमे।
किमर्थं गरुडो नीतः किं च कर्म चकार सः॥१
न चारुरोह भगवान्वैनतेयं महाबलम्।
एतन्मे संशयं ब्रह्मन्ब्रूहि तत्त्वं महामुने॥ २
वैशम्पायन उवाच।
शृणु राजन्सुपर्णेन कृतं कर्मातिमानुषम्।
विदर्भनगरीं गत्वा वैनतेयो महाद्युतिः॥ ३
असम्प्राप्ते च नगरीं मथुरां मधुसूदने।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयो महाद्युतिः॥ ४
यदुक्तं देवदेवेन नृपाणामग्रतः प्रभो।
यास्यामि मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम्
इति तद्वचनस्यान्ते गमिष्येति विचिन्तयन्
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान्प्रणिपत्याब्रवीदिदम्॥ ६

---

५४

चतुष्पञ्चाशत्तमेऽथ शाल्ववाक्येन तेजितः।
अभ्ययाद्यवनाधीशः कृष्णं जेतुमितीर्यते॥ १
सिद्धादेशाय अवितथाशिषे॥ ८॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

५५

पञ्चपञ्चाशत्तमेऽथ गरुडप्रेषणान्तरम्।
राजेन्द्रस्याभिषेकश्च वर्ण्यतेऽतिमहोत्सवः॥ १
विदर्भनगराद्याते मथुरां प्रति॥ १॥ गमिष्येति सन्धिरार्षः॥ ६॥

---

१ ख. °वितं च मे। कृष्णविग्र°। २ ख. °षां वागम्बुव°। ३ ख. नृपाणां मम चो°। ४ ख. °द्युतौ। अ°। ५ ख. °ते तु न°। ६ ख. महामतिः।

गरुड उवाच।

देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम्
रैवतं च गिरिं रम्यं नन्दनप्रतिमं वनम् ॥ ७
रुक्मिणोद्भासितां रम्यां शैलोदधितटाश्रयाम्
वृक्षगुल्मलताकीर्णां पुष्परेणुविभूषिताम् ॥ ८
गजेन्द्रभुजगाकीर्णामृक्षवानरसेविताम्।
वराहमहिषाक्रान्तां मृगयूथैरनेकशः ॥ ९
तां समन्तात्समालोक्य वासार्थं तें क्षमां क्षमा
यदि स्याद्रैवतो रम्या प्रशस्ता नगरीति च
कण्टकोद्धरणं कृत्वा आगमिष्ये तवान्तिकम्

वैशम्पायन उवाच।

एवं विज्ञाप्य देवेशं प्रणिपत्य जनार्दनम्।
जगाम पतगेन्द्रोऽपि पश्चिमाभिमुखो बली
कृष्णोऽपि यदुभिः सार्द्धं विवेश मथुरां पुरीम्
स्वैरिण्य उग्रसेनश्च नागराश्चैव सर्वशः।
प्रत्युद्गम्यार्चयन्कृष्णं प्रहृष्टजनसंकुलम् ॥ १२

जनमेजय उवाच।

श्रुत्वाऽभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिर्वसुधाधिपैः
किं चकार महाबाहुरुग्रसेनो महीपतिः ॥ १३

वैशम्पायन उवाच।

श्रुत्वाऽभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवोत्तमैः
इन्द्रेण कृतसंधानं दूतं चित्राङ्गदं कृतम् ॥ १४
एकैकं नृपतेर्भागं शतसाहस्रसंमितम्।
राजेन्द्रे त्वर्बुदं दत्तं मानवेषु च वै दश ॥ १५
ये तत्र समनुप्राप्ता न रिक्तास्ते गृहं गताः।
शङ्खो यादवरूपेण प्रददौ हरिचिन्तितम् ॥ १६
एवं निधिपतिः श्रीमान्दैवतैरनुमोदितः।
इति श्रुत्वात्मिकजनाल्लोकप्रवृत्तिकान्नरात् ॥
चकार महतीं पूजां देवतायतनेष्वपि।
वसुदेवस्य भवने तोरणोभयपार्श्वतः ॥ १८
नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः।
पताकध्वजमालाढ्यां कारयामास वै नृपः
कंसराजस्य च सभां विचित्राम्बरसुप्रभाम्।
पताका विविधाकारा दापयामास भोजराट्
तोरणं गोपुरं चैव सुधापङ्कानुलेपनम्।
कारयामास राजेन्द्रो राजेन्द्रस्यासनालयम्
नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः*
पताका वनमालाढ्याः पूर्णकुम्भाः समंततः २२
राजमार्गेषु राजेन्द्र चन्दनोदकसेचितम्।
वस्त्राभरणकं राजा दापयामास भूतले ॥ २३
धूपं पार्श्वोभये चैव चन्दनागुरुगुग्गुलैः।
गुडं सर्जरसं चैव दह्यमानं ततस्ततः ॥ २४
वृद्धस्त्रीजनसंघैश्च गायद्भिः स्तुतिमङ्गलम्।
अर्घं कृत्वा प्रतीक्षन्ते स्वेषु स्थानेषु योषितः
एवं कृत्वा पुरानन्दमुग्रसेनो नराधिपः।
वसुदेवगृहं गत्वा प्रियाख्यानं निवेद्य च २६
रामेण सह संमन्त्र्य निर्गतो रथमन्तिकम्।
तस्मिन्नेवान्तरे राजञ्छङ्खध्वनिरभून्महान् २७
पाञ्चजन्यस्य निनदं श्रुत्वा मधुरवासिनः।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च सूता मागधबन्दिनः
विनिर्ययुर्महासेना रामं कृत्वाऽग्रतो नृप।
अर्घ्यं पाद्यं पुरस्कृत्य उग्रसेनेन धीमता ॥ २९
दृष्टिपन्थानमासाद्य उग्रसेनो महीपतिः।
अवतीर्य रथाच्छुभ्रात्पादमार्गेण चाग्रतः ३०
दृष्ट्वाऽऽसीनं रथे रम्ये दिव्यरत्नविभूषितम्।
अङ्गेष्वाभरणं चैव दिव्यरत्नप्रभायुतम् ॥ ३१
वनमालोरसं दिव्यं तपन्तमिव भास्करम्।
चामरं व्यजनं छत्रं खगेन्द्रध्वजमुच्छ्रितम् ३२
राजलक्षणसंपूर्णमासन्नार्कमिवोज्ज्वलम्।
श्रियाऽभिभूतं देवेशं दुर्निरीक्ष्यतरं हरिम् ३३

स्वैरिण्यो नर्तक्यः ॥ १२ ॥ कृतसंधानं कृताभिसन्धिं दूतं च चित्राङ्गदं कृत्वेति सम्बन्धः ॥ १४ ॥ नृपतेः माण्डलिकस्य शतसहस्रं लक्षं दत्तं माण्डलिकेशाय अर्बुदं मनुष्यमात्रे दशसहस्रम् ॥ १५ ॥ न रिक्ताः न अपूर्णाः शङ्खो निधिः यादवरूपेण धनं ददौ ॥ १६ ॥ चकार नृप इत्युत्तरेणान्वयः। तोरणवन्तौ उभयपार्श्वौ यस्य तत् तोरणोभयपार्श्वं पार्श्वत इति प्रथमार्थे तसिः ॥ १८ ॥ सभां सभायाम् ॥ २० ॥ चन्दनोदकस्य सेचितं सेकं कारयामासेति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ २३ ॥ पुरानन्दं पुरस्यानन्दकरं विधिमित्यर्थः ॥ २६ ॥ मधुरं मधुपुरं तद्वासिनः ॥ २८ ॥ उग्रसेनेन सह इति शेषः ॥२९॥ अभिभूतं व्याप्तम् ॥३३॥

१ ख. °मं महत्। रक्षसोद्वा°। २ ख. °टाश्रिताम्। वृ.। ३ ख. ते क्षमाक्षमम्। यदि। ४ ख. °वते र°। ५ ख. °न्द्रो वै प°। ६ ख. °रां शुभाम्। स्वै°। ७ ख. °हुभिर्वसुधाधिपैः। इ°। ८ ख. °तनेषु वै। व°। ९ ख. राजेन्द्र रा°। * नटानामिति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति। १० ख. °चिताः। व°। ११ ख. वस्त्रास्तरण°। १२ ख. °नसंघाश्च गायन्ति स्तु°। १३ख. °मुग्रसेनस्तु बुद्धिमान्। व°। १४ख. °श्च सूतमागधब°। १५ख. °सेनोऽथ धी°। १६ख. °ण चाव्रजत्। द°। १७ ख. °षिते। अ°। १८ ख. °र्णसंपन्नमास°।

दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्र हर्षगद्गदया गिरा ।
बभाषे पुण्डरीकाक्षं रामं बलनिषूदनम् ॥ ३४
रथेन न मया गन्तुं युक्तपूर्वेति चिन्त्य वै ।
अवतीर्णो महाभाग गच्छ त्वं स्यन्दनेन च
विष्णुना छद्मरूपेण गत्वेमां मथुरां पुरीम् ।
अनुप्रकाशितात्मानं देवेन्द्र त्वं नृपार्णवे ॥ ३६
तमहं स्तोतुमिच्छामि सर्वभावेन केशवम् ।
प्रत्युवाच महातेजा राजानं कृष्णपूर्वजः ३७
न युक्तं नृपते स्तोतुं व्रजन्तं देवसत्तमम् ।
विना स्तोत्रेण संतुष्टस्तव राजञ्जनार्दनः ॥३८
तुष्टस्य स्तुतिना किं ते दर्शनेन तव स्तुतिः ।
राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य आगतस्तव वेश्मनि ३९
न त्वया स्तुतवान्राजन्दिव्यैः स्तोत्रैरमानुषैः
एवमाब्रुवमाणौ तौ संप्राप्तौ केशवान्तिकम्
अर्घोद्यतभुजं दृष्ट्वा स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठ उग्रसेनं नराधिपम् ।
यन्मया चाभिषिक्तस्त्वं मथुरेशो भवत्विति ।
न युक्तमन्यथा कर्तुं मथुराधिपते स्वयम् ४२
अर्घ्यमाचमनीयं च पाद्यं चास्मै निवेदितम् ।
न दातुमर्हसे राजन्नेष मे मनसः प्रियः ॥ ४३
तवाभिप्रायं विज्ञाय ब्रवीमि नृपते वचः ।
त्वमेव माथुरो राजा नान्यथा कर्तुमर्हसि ४४
स्थानभागं च नृपते दास्यामि तव दक्षिणम्
यथा नृपाणां सर्वेषां तथा ते स्थापितोऽग्रतः
शतसाहस्रिको भागो वस्त्राभरणवर्जितः ।
आरुहस्व रथं शुभ्रं चामीकरविभूषितम् ॥४६
चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं च मनुजेश्वर ।

दिव्याभरणसंयुक्तं मुकुटं भास्करप्रभम् ॥ ४७
धारयस्व महाभाग पालयस्व पुरीमिमाम् ।
पुत्रपौत्रैः प्रमुदितो मथुरां परिपालय ॥ ४८
जित्वाऽरिगणसंघांश्च भोजवंशं विवर्द्धय ।
देवदेवाद्यनन्ताय शौरिणे वज्रपाणिना ॥ ४९
प्रेषितं देवराजेन दिव्याभरणमम्बरम् ।
माथुराणां च सर्वेषां भागा दीनारिका दश ॥
सूतमागधबन्दीनामेकैकस्य सहस्रकम् ।
वृद्धस्त्रीजनसंघानां गणिकानां शतं शतम् ५१
नृपेण सह तिष्ठन्ति विकद्रुप्रमुखाश्च ये ।
दशसाहस्रिको भागस्तेषां धात्रा प्रकल्पितः॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवं सम्पूज्य राजानं माथुराणां चमूमुखे ।
कृत्वा सुमहदानन्दं मथुरां मधुसूदनः ॥ ५३
दिव्याभरणमाल्यैश्च दिव्याम्बरविलेपनैः ।
दीप्यमानः समन्ताच्च देवो इव त्रिविष्टपे ५४
भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ।
बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च ॥ ५५
सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ।
तुमुलः सुमहानासीन्मेघनाद इवाम्बरे ॥ ५६
बन्दिभिः स्तूयमानं च नमश्चक्रुरपि प्रजाः ।
दत्वा दानमनन्तं च न ययौ विस्मयं हरिः ॥
स्वभावोन्नतभावत्वाद्दृष्टपूर्वाच्चतोऽधिकम् ।
अनहङ्कारभावाच्च विस्मयं न जगाम ह ॥ ५८
दीप्यमानं स्ववपुषा आयान्तं भास्करप्रभम् ।
दृष्ट्वा मथुरवासिन्यो नमश्चक्रुः पदे पदे ॥ ५९

बलनिषूदनं शत्रुसैन्यहन्तारम् ॥ ३४ ॥ त्वं स्यन्दनेन गच्छेत्युक्त्वाऽवतीर्णोऽभवत् इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ गत्वा प्राप्य ॥ ३६ ॥ नृपार्णवे देवेन्द्रत्वं दर्शितामिति शेषः । तम् अनुप्रकाशितात्मानं पश्चात्प्रदर्शितस्वरूपमहं स्तोतुमिच्छामीत्यन्वयः ॥ ३७ ॥ हे नृपते त्वया न युक्तं न युज्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ स्तुतिना स्तुत्या दर्शनमात्रेण स्तुतिर्जातैवेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ वदतां श्रेष्ठः कृष्णः ॥ ४१ ॥ स्थानभागं क्षुद्रराजप्रदेयं राज्यधनांशम् ॥ ४५ ॥ तथा शतसाहस्रिकः लक्षसंमितः वस्त्रादिवर्जितः केवलकाञ्चनमयः त्वदर्थे स्थापितोऽस्तीति सम्बन्धः ॥ ४६ ॥ देवाय कान्ताय अनन्ताय शेषाय शौरिणे शूरपुत्राय । सीरिणे इति पाठे हलिने वज्रपाणिना ॥ ४९ ॥ दिव्याभरणमित्येकत्वं जात्यभिप्रायेण । दीनारः स्वर्णसहस्रमित्यभिधानोक्तेः ॥ ५० ॥ धात्रा इन्द्रेण ॥ ५२ ॥ मथुरां प्रविवेश इति शेषः ॥ ५३ ॥ देवा इवासन्निति शेषः ॥ ५४ ॥ पूर्वात् पूर्वत्वात् ॥ ५८ ॥ मथुरवासिन्यः मथुरावासिन्यः ॥ ५९ ॥

१ ख. °ण गतेयं मथुरा पुरी । अत्र प्रकां । २ ख. °नं देवेशं वै नृपा । ३ ख. क्षरा° । ४ ख. मथुरेश्वर । दि° । ५ ख. °त्रैः परिवृतो मथुरां प्रतिपा । ६ ख. °संघांस्त्वं भो । ७ ख. °नारिका द° । ८ ख. राजेन्द्रं । ९ ख. वसूत्तमैः । कृत्वा सु° । १० ख. °दानन्दं म° । ११ ख. देवैरिव त्रि° । १२ ख. °नासीन्नादो मेघरवोपमः । ब° । १३ ख. °पूर्वस्ततोऽधि° ।

एष नारायणः श्रीमान्क्षीरार्णवनिकेतनः ।
नागपर्यङ्कमुत्सृज्य[1] प्राप्तोऽयं मथुरां पुरीम् ॥
बद्ध्वा बलिं महावीर्यं दुर्जयं त्रिदशैरपि ।
शक्राय प्रददौ राज्यं त्रैलोक्यं वज्रपाणये ६१
हत्वा दैत्यगणान्सर्वान्कंसं च बलिनां वरम् ।
भोजराजाय मथुरां दत्त्वा केशिनिषूदनः ६२
नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये न[2] चासीनो नृपासने
राजेन्द्रत्वं च संप्राप्य मथुरामाविशत्ततः ६३
एवमन्योन्यसञ्जल्पं श्रुत्वा पुरनिवासिनाम् ।
बन्दिमागधसूतानामिदमूचुर्गणाधिपाः[3] ॥ ६४
किं वा शक्यामहे वक्तुं गुणानां ते गुणोदधे ।
मानुषेणैकजिह्वेन प्रभावोत्साहसम्भवान् ६५
स[4] तत्र भोगी नागेन्द्रः कदाचिद्देव बुद्धिमान् ।
द्विसाहस्रेण जिह्वेन वासुकिः[5] कथयिष्यति ६६
किं त्वद्भुतमिदं लोके मानवेन्द्रेषु भूतले ।
न भूतं न भविष्यं च शक्रादासनमागतम् ६७
सभावतरणं चैव कलशैरागतं स्वयम् ।
न श्रुतं न च दृष्टं वा तेन मन्यामहेऽद्भुतम् ६८
धन्या देवी महाभागा देवकी योषितां वरा ।
भवन्तं त्रिदशश्रेष्ठं धृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ ६९
कृष्णं पद्मपलाशाक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् ।
नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम्* ॥
इति सञ्जल्पमानानां शृण्वन्तौ पृथगीरितम् ।
उग्रसेनं पुरस्कृत्य भ्रातरौ रामकेशवौ ॥ ७१
प्राकारद्वारि संप्राप्तावर्चयामास वै तदा ।
अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पाद्यं पाद्येति चाब्रवीत् ॥
उग्रसेनस्ततो धीमान्केशवस्य रथाग्रतः ।
प्रणम्य शिरसा कृष्णं[6] गजमारुह्य वीर्यवान् ।
घनवत्तोयधारेण ववर्ष कनकाम्बुभिः ॥ ७३
घनौघैर्वर्षमाणस्तु संप्राप्तः पितृवेश्मनि ।
मथुराधिपतिः श्रीमानुवाच मधुसूदनम्[7] ॥ ७४

राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य युक्तं मे[8] नृपवेश्मनि ।
स्थापितुं देवराजेन दत्तं सिंहासनं प्रभो ॥ ७५
नेष्यामि मथुरेशस्य सभां भुजबलार्जिताम् ।
प्रसादयिष्ये भगवन्न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ ७६
देवकी वसुदेवश्च रोहिणी च विशांपते ।
न किञ्चित्करणे शक्ता हर्षक्लमविमोहिता ७७
कंसमाता ततो राजन्नर्चयामास[9] केशवम् ।
नानादिग्देशजानीतं कंसेनोपार्जितं धनम् ॥
देशकालं समालोक्य पादयुग्मे न्यवेदयत् ।
उग्रसेनं समाहूय उवाच श्लक्ष्णया गिरा ॥ ७९

श्रीकृष्ण उवाच ।

न चाहं मथुराकाङ्क्षी न मया वित्त[10]काङ्क्षया
घातितस्तव पुत्रोऽयं कालेन निधनं गतः ८०
यजस्व विविधान्यज्ञान्ददस्व विपुलं धनम् ।
जयस्व रिपुसैन्यानि मम बाहुबलाश्रयात् ८१
त्यजस्व मनसस्तापं कंसनाशोद्भवं भयम् ।
नयस्व वित्तनिचयं मया दत्तं पुनस्तव ॥ ८२
इति प्राश्वास्य[11] राजानं कृष्णस्तु[12] हलिना सह
प्रविवेश ततः श्रीमान्मातापित्रोरथान्तिकम् ॥
आनन्दपरिपूर्णाभ्यां हृदयाभ्यां महाबलौ ।
पितृमात्रोस्तु[13] पादान्वै नमश्चक्रतुरानतौ ॥ ८४
तस्मिन्मुहूर्ते नगरी मथुरा तु बभूव सा ।
स्वर्गलोकं परित्यज्यावतीर्णेवामरावती ॥ ८५
वसुदेवस्य भवनं समीक्ष्य पुरवासिनः ।
मनसा चिन्तयामासुर्देवलोकं न भूतलम् ८६
विसृज्य मथुरेशं तु महिषीसहितं[14] तदा ।
भवनं वसुदेवस्य प्रविश्य बलकेशवौ ॥ ८७
न्यस्तशस्त्रावुभौ वीरौ स्वगृहे स्वैरचारिणौ ।
ततः कृताह्निकौ भूत्वा सुखासीनौ कथान्तरे ॥
एतस्मिन्नेव काले तु महोत्पातो बभूव ह ।
बभ्रमुश्च घनाकाशे चेलुश्च भुवि पर्वताः ॥ ८९

---

भोजराजाय उग्रसेनाय ॥ ६२ ॥ गुणानां प्रभावः उत्साहः सम्भवश्च तान् ॥६५॥ जिह्वास्थेन वागिन्द्रियेण द्विसाहस्रस्थानेष्वभिव्यक्तेनेत्यर्थः । वासुकिरत्र शेष एव ॥६६॥ कलशैः कर्तृभिः॥६८॥ धन्याऽभूदिति शेषः ॥६९॥ मथुराधिपतिः उग्रसेनः ॥ ७४ ॥ मथुरेशस्य तव ॥ ७६ ॥ उवाच कृष्णः ॥ ७९ ॥ घना आकाशे इत्यत्र सन्धिरार्षः ॥ ८९ ॥

---

१ ख. ⁰ज्य जगाम म⁰ । २ ख. ⁰ज्ये नोपविष्टे नृ⁰ । ३ ख. ⁰णा गिरः । किं⁰ । ४ ख. सहस्रभो⁰ । ५ ख. ⁰सुकिः प्रथयिष्यति । किं । * कृष्णमित्यादि पद्यं खपुस्तके नास्ति । ६ ख. ⁰ष्णं रथमा⁰ । ७ ख. ⁰दनः । रा⁰ । ८ ख. ⁰क्तं मे पितृ⁰ । ९ ङ. ⁰जन्नर्थमादाय के⁰ । १० ख. ⁰त्तकाम्यया । घा⁰ । ११ ख. ⁰ति प्रश्वा⁰ । १२ ख. कृष्णोऽथ ह⁰ । १३ ख. ⁰तृमात्रोर्हि पा⁰ । १४ ख. ⁰तं नृपम् । भ⁰ ।

समुद्राः क्षुभिताः सर्वे विभ्रान्तो भोगिनां वरः
कम्पिता यादवाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि
तौ तान्निपतितान्दृष्ट्वा रामकृष्णौ तु निश्चलौ
महता पक्षवातेन विज्ञातौ पतगोत्तमम् ॥९१
ददर्श समनुप्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम्।
प्रणम्य शिरसा ताभ्यां सौम्यरूपी कृतासनः
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं सचिवं साम्परायिकम्।
धृतिमन्तं गरुत्मन्तमुवाच वलिसूदनः॥ ९३
स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन।
विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय॥ ९४
तमुवाच ततः कृष्णः स्थितं देवमिवापरम्।
तुल्यसामर्थ्यया वाचा आसीनं विनतात्मजम्

श्रीकृष्ण उवाच।

यास्यामः पतगश्रेष्ठ भोजस्यान्तःपुरं महत्।
तत्र गत्वा सुखासीना मन्त्रयामो मनोऽनुगम्

वैशम्पायन उवाच।

प्रविष्टौ तौ महावीर्यौ बलदेवजनार्दनौ।
वैनतेयतृतीयौ च गुह्यं मन्त्रमथाब्रुवन्॥ ९७
अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम्
वृतः सैन्येन महता महद्भिश्च नराधिपैः ॥९८
बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि।
न शक्ष्यामः क्षयं कर्तुं जरासन्धस्य वाहिनीम्
अतोऽर्थं वैनतेय त्वां ब्रवीमि मथुरां पुरीम्।
वसतोरावयोः श्रेयो न भवेदिति मे मतिः॥

गरुड उवाच।

देवदेवं नमस्कृत्य गतोऽहं भवतोऽन्तिकात्
वासार्थमीक्षितुं भूमिं तव देव कुशस्थलीम् १
गत्वाऽहं खे समास्थाय
समन्तादवलोक्य ताम्।
दृष्ट्वाऽहं विबुधश्रेष्ठ
पुरीं लक्षणपूजिताम्॥ २
सागरानूपविपुलां प्रागुदक्प्लवशीतलाम्।
सर्वतोदधिमध्यस्थामभेद्यां त्रिदशैरपि॥ ३
सर्वरत्नाकरवतीं सर्वकामफलद्रुमाम्।
सर्वर्तुकुसुमाकीर्णां सर्वतः सुमनोहराम्॥ ४
सर्वाश्रमाधिवासां च सर्वकामगुणैर्युताम्।
नरनारीसमाकीर्णां नित्यामोदविवर्द्धिनीम् ५
प्राकारपरिखोपेतां गोपुराट्टालमालिनीम्।
विचित्रचत्वरपथां विपुलद्वारतोरणाम्॥ ६
यन्त्रार्गलविचित्राढ्यां हेमप्राकारशोभिताम्।
नरनागाश्वकलिलां रथसैन्यसमाकुलाम्॥ ७
नानादिग्देशजाकीर्णां दिव्यपुष्पफलद्रुमाम्।
पताकाध्वजमालाढ्यां महाभवनशालिनीम् ८
भीषणीं रिपुसङ्घानां मित्राणां हर्षवर्द्धनीम्।
मनुजेन्द्राधिवासेभ्यो विशिष्टां नगरोत्तमाम्
रैवतं च गिरिश्रेष्ठं कुरु देव सुरालयम्।
नन्दनप्रतिमं दिव्यं पुरद्वारस्य भूषणम्॥ १०
कारयस्वाधिवासं च तत्र गत्वा सुरोत्तम।
कुमारीणां प्रचारश्च सुरमण्यो भविष्यति *
नाम्ना द्वारवती ज्ञेया त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती १२
यदि स्यात्संवृतां भूमिं प्रदास्यति महोदधिः
यथेष्टं विविधं कर्म विश्वकर्मा करिष्यति १३
मणिमुक्ताप्रवालाभिर्वज्रवैदूर्यसप्रभैः।
दिव्यैरभिप्राययुतैर्दिव्यरत्नैस्त्रिलोकजैः॥१४
दिव्यस्तम्भशताकीर्णान्स्वर्गे देवसभोपमान्
जाम्बूनदमयाञ्शुभ्रान्सर्वरत्नविभूषितान् १५
दिव्यध्वजपताकाढ्यान्देवगन्धर्वपालितान्
चन्द्रसूर्यप्रतीकाशान्प्रासादान्कारय प्रभो॥१६

वैशम्पायन उवाच।

एवं कृत्वा तु संकल्पं वैनतेयोऽथ केशवम्
प्रणम्य शिरसा ताभ्यां निषसाद कृतासनः
कृष्णोऽपि रामसहितो विचिन्त्य हितमीरितम्
प्रकाशकर्तुकामौ तौ विसृज्य विनतात्मजम्
सत्कृत्य विधिवद्राजन्महार्हवरभूषणैः।
मोदेते सुखिनौ तत्र सुरलोके यथाऽमरौ १९

---

विज्ञातौ ज्ञातवन्तौ ॥९१॥ असौ जरासन्धः कालयवनो वा ॥ ९८ ॥ सुरमण्यः सुतरां रमणीयः ॥ ११ ॥ यदि महोदधिर्भूमिं दास्यति तर्हि उक्तगुणा पुरी स्यादिति योजना ॥ १३ ॥

---

१ ख. तान्संनिपतितान्दृ°। २ ख. °त्मन्तं जगाद मधुसू°। ३ ख. °तं देहमि°। ४ ख. °मी मनोगतम्। वै°। ५ ख. °न्त्रममन्त्रयन्। अ°। ६ ख. °ष्ट्वा वै॰वि°। ७ ख. °वासं ते त°। * अत्र 'कुमाराणां प्रचारश्च' इत्यपि पाठान्तरम्। ८ ख. °वती नाम त्रि°। ९ ख. °वालैश्च व°। १० ख. द्रव्यै र°। ११ ख. °म्भसमाकी°। १२ ख. तु संजल्पं वै°। १३ ख. °कामश्च वि°।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः ।
कृष्णं स्नेहेन विस्रब्धं बभाषे वचनामृतम् २०

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन ।
श्रूयतां वचनं त्वाऽद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन २१

त्वया विहीनाः सर्वे स्म
न शक्ताः सुखमासितुम् ।
पुरेऽस्मिन्विषयान्ते वा
पतिहीना इव स्त्रियः ॥ २२

त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः ।
बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद
विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि ।
तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ
तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः
यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् २५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मन्त्रोदाहरणे राजेन्द्राभिषेचनसमाप्तौ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## कालयवनस्याभियोगो द्वारवतीप्रयाणं च ।

## ५६

वैशम्पायन उवाच ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य सभ्यांस्तान्यदुसंसदि ।
बभाषे पुण्डरीकाक्षो हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १
यादवानामियं भूमिर्मथुरा राष्ट्रमालिनी ।
वयं चैवेह संभूता व्रजे च परिवर्द्धिताः ॥ २
तदिदानीं गतं दुःखं शत्रवश्च पराजिताः ।
नृपेषु जनितं वैरं जरासन्धेन विग्रहः ॥ ३
वाहनानि च नः सन्ति पादातं चाप्यनन्तकम्
रत्नानि च विचित्राणि मित्राणि च बहूनि च
इयं च माथुरी भूमिरल्पा गम्या परस्य तु ।
वृद्धिश्चैव पराऽस्माकं बलतो मित्रतस्तथा ५
कुमारकोट्यो याश्चेमाः पदातीनां गणाश्च ये ।
एषामपीह वसतां संमर्दमुपलक्षये ॥ ६
अत्र नो रोचते मह्यं निवासो यदुपुङ्गवाः ।
पुरीं निवेशयिष्यामि मम तत्क्षन्तुमर्हथ ॥ ७
एतद्यदनुरूपं वो ममाभिप्रायजं वचः ।
भवाय भवतां काले यदुक्तं यदुसंसदि ॥ ८
तमूचुर्यादवाः सर्वे हृष्टेन मनसा तदा ।
साध्यतां यदभिप्रेतं जनस्यास्य भवाय वै ९
ततः संमन्त्रयामासुर्वृष्णयो मन्त्रमुत्तमम् ।
अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम्
कृतः सैन्यक्षयश्चापि महानिह नराधिपैः ।
बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि ।
न शक्ष्यामो ह्यतस्तेषामपयानेऽभवन्मतिः ११
तस्मिंश्चैवान्तरे राजा स कालयवनस्तदा ।
सैन्येन तद्विधेनैव मथुरामभ्युपागमत् ॥ १२
ततो जरासन्धबलं दुर्निवार्यमभूत्तदा ।
ते कालयवनं चैव श्रुत्वेदं प्रतिपेदिरे ॥ १३
केशवः पुनरेवाह यादवान्सत्यसङ्गरः ।
अद्यैव दिवसः पुण्यो निर्यामः स्वबलानुगाः १४
ततो निश्चक्रमुः सर्वे यादवाः कृष्णशासनात् ।
ओघा इव समुद्रस्य बलौघप्रतिनादिताः १५
सङ्गृह्य ते कलत्राणि वसुदेवपुरोगमाः ।
सुसन्नद्धैर्गजैर्मत्तै रथैरश्वैश्च दंशितैः ॥ १६

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

षट्पञ्चाशत्तमेऽध्याये द्वारावतीविवक्षया । हेतुमद्वच आभाष्य मथुराचलनं हरेः ॥ १ ॥

**कस्यचिदिति** ॥१॥ राजा जरासन्धः सकालयवनः कालयवनेन सहितः ॥ १२ ॥ इदम् अवध्योऽसावित्यादि-पूर्वोक्तम् अपयानं प्रतिपेदिरे शरणीचक्रुः ॥ १३ ॥

---

१ ख. °यतां यदहं त्वा° । २ ख. °श्चूवार्धिनी । व° ३ ख. तन्मह्यं रोचतेऽन्यत्र नि° । ४ ख. एतद्यद्यनुकूलं वो म° । ५ ख. °वो समा° । ६ ख. °य च । त° । ७ ख. ततः सै° । ८ ख. °वार्यं महत्त° । ९ ख. °गरान् । अ° । १० ख. निर्यात स्वब° । ११ ख. °श्च दंशिताः । आ°

आहत्य दुन्दुभीन्सर्वे स्वजनज्ञातिबान्धवाः ।
निर्ययुर्यादवाः सर्वे मथुरामपहाय वै ॥ १७
स्यन्दनैः काञ्चनापीडैर्मत्तैश्च वरवारणैः ।
सूतैः प्लुतैश्च तुरगैः कशापार्ष्णिप्रणोदितैः १८
स्वानि स्वानि बलाग्राणि शोभयन्तः प्रकर्षिणः
प्रत्यङ्मुखा ययुर्हृष्टा वृष्णयो भरतर्षभ ॥ १९
ततो मुख्यतमाः सर्वे यादवा रणकोविदाः ।
अनीकाग्राणि कर्षन्तो वासुदेवपुरोगमाः २०
ते स्म नानालताचित्रं नालिकेरवनायुतम् ।
कीर्णं नागबलैः कान्तं केतकीखण्डमण्डितम्
तालपुन्नागबकुलद्राक्षावनघनं क्वचित् ।
अनूपं सिन्धुराजस्य प्रपेतुर्यदुपुङ्गवाः ॥ २२
ते तत्र रमणीयेषु विषयेषु सुखप्रियाः ।
मुमुदुर्यादवाः सर्वे देवाः स्वर्गगता इव ॥ २३
पुरवास्तु विचिन्वन्स कृष्णस्तु परवीरहा ।
ददर्श विपुलं देशं सागरेणोपशोभितम् ॥ २४
वाहनानां हितं चैव सिकताताम्रमृत्तिकम् ।
पुरलक्षणसम्पन्नं कृतास्पदमिव श्रिया ॥ २५
सागरानिलसंवीतं सागराम्बुनिषेवितम् ।
विषयं सिन्धुराजस्य शोभितं पुरलक्षणैः २६
तत्र रैवतको नाम पर्वतो नातिदूरतः ।
मन्दरोदारशिखरः सर्वतोऽभिविराजते २७
तत्रैकलव्यसंवासो द्रोणेनाध्युषितश्चिरम् ।
प्रभूतपुरुषोपेतः सर्वरत्नसमाकुलः ॥ २८
विहारभूमिस्तत्रैव तस्य राज्ञः सुनिर्मिता ।
नाम्ना द्वारवती नाम स्वायताष्टापदोपमा २९
केशवेन मतिस्तत्र पुर्यर्थे विनिवेशिता ।
निवेशं तत्र सैन्यानां रोचयन्ति स्म यादवा
ते रक्तसूर्यदिवसे तत्र यादवपुङ्गवाः ।
सेनापालांश्च संचक्रुः स्कन्धावारनिवेशनम् ॥
ध्रुवाय तत्र न्यवसत्केशवः सह यादवैः ।
देशे पुरनिवेशाय स यदुप्रवरो विभुः ॥ ३२
तस्यास्तु विधिवन्नाम वास्तूनि च गदाग्रजः
निर्ममे पुरुषश्रेष्ठो मनसा यादवोत्तमः ॥ ३३
एवं द्वारवतीं चैव पुरीं प्राप्य सबान्धवाः ।
सुखिनो न्यवसन्राजन्स्वर्गे देवगणा इव ३४
कृष्णोऽपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनिषूदनः
जरासन्धभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारावतीप्रयाणे
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## कालयवनवधः ।

## ५७

जनमेजय उवाच ।
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महात्मनः
चरितं वासुदेवस्य यदुश्रेष्ठस्य धीमतः ॥ १
किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदनः ।
मध्यदेशस्य ककुदं धाम लक्ष्म्याश्च केवलम् २
शृङ्गं पृथिव्याः स्वालक्ष्यं प्रभूतधनधान्यवत् ।
आर्याढ्यजलभूयिष्ठमधिष्ठानवरोत्तमम् ॥ ३
अयुद्धेनैव दाशार्हस्त्यक्तवान्द्विजसत्तम ।
स कालयवनश्चापि कृष्णे किं प्रत्यपद्यत ॥ ४
द्वारकां च समासाद्य वारिदुर्गां जनार्दनः ।
किं चकार महाबाहुर्महायोगी महातपाः ॥ ५
किंवीर्यः कालयवनः केन जातश्च वीर्यवान्
यमसह्यं समालक्ष्य ह्यपयातो जनार्दनः ॥ ६

सूतैः प्लुतैः आज्ञामात्रादुत्पताद्भिः ॥ १८ ॥ वास्तु स्थानम् ॥२४॥ सिकतायुक्ता ताम्रमृत्तिका यस्मिन् ॥२५॥ अष्टापदोपमा शारिकाफलतुल्या दीर्घचतुरस्रद्वयसम्बन्धवतीत्यर्थः ॥२९॥ मतिः इच्छा ॥ ३० ॥ वास्तूनि गृहाणि निर्ममे विभक्तवान् मनसा सङ्कल्पमात्रेण ॥ ३३ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

सप्तपञ्चाशत्तमेऽस्मिन्मुचुकुन्ददृशा हरिः ।
यवनं घातयामास मानयञ्छाङ्करं वरम् ॥ १ ॥

भगवन्निति ॥१॥ परित्यज्य गत इत्यर्थः ॥ २ ॥

१ ख. °ख्यतराः स° । २ ख. °ता यथा । पु° । ३ ख. °सूर्ये दि° । ४ ङ. तस्मिंस्तु वि° । ५ ख. °ण तपोधन । च° ।

वैशम्पायन उवाच ।

वृष्णीनामन्धकानां च गुरुर्गार्ग्यो महामनाः
ब्रह्मचारी पुरा भूत्वा न स्म दारान्स विन्दति
तथा हि वर्तमानं तमूर्ध्वरेतसमव्ययम् ।
श्यालोऽभिशस्तवान्गार्ग्यमपुमानिति राजनि
सोऽभिशस्तस्तदा राजन्नगरे स्वजितं जये ।
अलिप्संस्तु श्रियं चैव तपस्तेपे सुदारुणम् ९
ततो द्वादशवर्षाणि सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् ।
आराधयन्महादेवमचिन्त्यं शूलपाणिनम् १०
रुद्रस्तस्मै वरं प्रादात्समर्थं युधि निग्रहे ।
वृष्णीनामन्धकानां च सर्वतेजोमयं सुतम् ११
ततः शुश्राव तं राजा यवनाधिपतिर्वरम् ।
पुत्रप्रसवजं दैवादपुत्रः पुत्रकामिता ॥ १२
स नृपस्तमुपानाय्य सान्त्वयित्वा द्विजोत्तमम्
तं घोषमध्ये यवनो गोपस्त्रीषु समासृजत् १३
गोपाली त्वप्सरास्तत्र गोपस्त्रीवेषधारिणी ।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् १४
मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः
स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः १५
अपुत्रस्याथ राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः ।
तस्मिन्नुपरते राजन्स कालयवनो नृपः ॥१६
युद्धाभिकामो नृपतिः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान् ।
वृष्णयन्धककुलं तस्य नारदेन निवेदितम् १७
ज्ञात्वा तु वरदानं तन्नारदान्मधुसूदनः ।
उपप्रैक्षत तेजस्वी वर्द्धन्तं यवनेषु तम् ॥ १८
संवृद्धो हि यदा राजा यवनानां महाबलः ।
तत एवं नृपा म्लेच्छाः संश्रित्यानुययुस्तदा
शकास्तुषारा दरदाः पारदाः श्रृङ्गलाः खसाः
पह्लवाः शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा
स तैः परिवृतो राजा दस्युभिः शलभैरिव ।
नानावेषायुधैर्भीमैर्मथुरामभ्यवर्तत ॥ २१
गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैरर्बुदैरपि ।
पृथिवीं कम्पयामास सैन्येन महता वृतः २२
रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः ।
मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन संसृजे नदीम् २३
अश्वोष्ट्रशकृतां राशेर्निस्सृतेति जनाधिप ।
ततोऽश्वशकृदित्येवं नाम नद्या बभूव ह २४
तत्सैन्यं महदायाद्वै श्रुत्वा वृष्ण्यन्धकाग्रणीः
वसुदेवः समानाय्य ज्ञातीनिदमुवाच ह ॥२५
इदं समुत्थितं घोरं वृष्ण्यन्धकभयं महत् ।
अवध्यश्चापि नः शत्रुर्वरदानात्पिनाकिनः २६
सामादयोऽभ्युपायाश्च विहितास्तस्य सर्वशः
मत्तो मद्बलाभ्यां तु युद्धमेव चिकीर्षति २७
एतावानिह वासश्च कथितो नारदेन मे ।
एतावति च वक्तव्यं सामैव परमं मतम् ॥२८
जरासन्धश्च नो राजा नित्यमेव न मृष्यते ।
तथाऽन्ये पृथिवीपाला वृष्णिचक्रप्रतापिताः
केचित्कंसवधाच्चापि विरक्तास्तद्गता नृपाः ।
समाश्रित्य जरासन्धमस्मानिच्छन्ति बाधितुं
बहवो ज्ञातयश्चैव यदूनां निहता नृपैः ।
वर्द्धितुं नैव शक्ष्याम पुरेऽस्मिन्निति केशवः
अपयाने मतिं कृत्वा दूतं तस्मै ससर्ज ह ।
ततः कुम्भे महासर्पं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥३२
घोरमाशीविषं कृष्णं कृष्णः प्राक्षेपयत्तदा ।
ततस्तं मुद्रयित्वा तु स्वेन दूतेन हारयत् ॥३३
निदर्शनार्थं गोविन्दो भीषयामास तं नृपम् ।
स दूतः कालयवने दर्शयामास तं घटम् ॥ ३४
कालसर्पोपमः कृष्ण इत्युक्त्वा भरतर्षभ ।
तत्कालयवनो बुद्ध्वा त्रासनं यादवैः कृतम्
पिपीलिकानां चण्डानां पूरयामास तं घटम् ।
स सर्पो बहुभिस्तीक्ष्णैः सर्वतस्तैः पिपीलिकैः
भक्ष्यमाणः किलाङ्गेषु भस्मीभूतोऽभवत्तदा ।
तं मुद्रयित्वा तु घटं तथैव यवनाधिपः ।
प्रेषयामास कृष्णाय बाहुल्यमुपवर्णयन् ॥ ३७
वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा योगं विहतमात्मनः ।
उत्सृज्य मथुरामाशु द्वारकामभिजग्मिवान्

---

दारान्वियमानानपि न विन्दति नाभ्यगच्छत् ॥ ७ ॥ राजनि राजसभायाम् ॥ ८ ॥ अलिप्सन् अनिच्छन् कोपेन ॥ ९ ॥ पुत्रस्य कामिता कामयिता ॥ १२ ॥ तं गार्ग्यम् उपानाय्य स्वगृहमानाय्य ॥ १३ ॥ मानुष्यां मानुषीरूपायामप्सरसि भार्यायां भार्यावद्वर्तमानायाम् ॥ १५ ॥ शलभैरिवेति बहुत्वे दृष्टान्तः ॥ २१ ॥ राजानोऽस्मान् ॥२९॥

---

१ ख. °गार्ग्यो महातपाः । ब्र° । २ ख. °वजं देवा° । ३ ख. स तमानाय्य नृपतिः सान्त्वयित्वा द्विजर्षभम् । घोषमध्ये स्त्रियं राजा गोप° । ४ ख. स विवृद्धो य° ५ ख. °शेर्निःसृता वै जना° । ६ ख. °म तस्या ब° ७ ख. ° ष्ट्वा निहतं योगमा° ।

वैरस्यान्तं विधित्संस्तु वासुदेवो महायशाः।
निवेश्य द्वारकां राजन्वृष्णीनाश्वास्य चैव ह
पदातिः पुरुषव्याघ्रो बाहुप्रहरणस्तदा।
आजगाम महावीर्यो मथुरां मधुसूदनः॥ ४०
तं दृष्ट्वा निर्ययौ हृष्टः स कालयवनो रुषा।
प्रेक्षापूर्वं च कृष्णोऽपि निश्चकर्ष महाबलः ४१
अथान्वगच्छद्गोविन्दं जिघृक्षुर्यवनेश्वरः।
न चैनमशकद्राजा ग्रहीतुं योगधर्मिणम् ॥४२
मान्धातुस्तु सुतो राजा मुचुकुन्दो महायशाः
पुरा देवासुरे युद्धे कृतकर्मा महाबलः॥ ४३
वरेण चछन्दितो देवैर्निद्रामेव गृहीतवान्।
श्रान्तस्य तस्य वागेवं तदा प्रादुरभूत्किल॥
प्रसुप्तं बोधयेद्यो मां तं दहेयमहं सुराः।
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः॥ ४५
एवमस्त्विति तं शक्र उवाच त्रिदशैः सह।
स सुरैरभ्यनुज्ञातो ह्यद्रिराजमुपागमत्॥ ४६
स पर्वतगुहां कांचित्प्रविश्य श्रमकर्शितः।
सुष्वाप कालमेतं वै यावत्कृष्णस्य दर्शनम्
तत्सर्वं वासुदेवाय नारदेन निवेदितम्।
वरदानं च देवेभ्यस्तेजस्तस्य च भूपतेः ४८
कृष्णोऽनुगम्यमानश्च तेन म्लेच्छेन शत्रुणा।
तां गुहां मुचुकुन्दस्य प्रविवेश विनीतवत् ४९
शिरःस्थाने तु राजर्षेर्मुचुकुन्दस्य केशवः।
संदर्शनपथं त्यक्त्वा तस्थौ बुद्धिमतां वरः ५०
अनुप्रविश्य यवनो ददर्श पृथिवीपतिम्।
स तं सुप्तं कृतान्ताभमाससाद सुदुर्मतिः ॥५१
वासुदेवं तु तं मत्वा घट्टयामास पार्थिवम्।
पादेनात्मविनाशाय शलभः पावकं यथा ५२
मुचुकुन्दस्तु राजर्षिः पादस्पर्शप्रबोधितः।
निद्राच्छेदेन चुक्रोध पादस्पर्शेन तेन च ॥५३
संस्मृत्य स वरं शक्रादवैक्षत तमग्रतः।
स दृष्टमात्रः क्रोधेन संप्रजज्वाल सर्वशः ५४
ददाह पावकस्तं तु शुष्कं वृक्षमिवाशनिः।
क्षणेन कालयवनं नेत्रतेजोविनिर्गतः॥ ५५
तं वासुदेवः श्रीमन्तं चिरगुप्तं नराधिपम्।
कृतकार्योऽब्रवीद्धीमानिदं वचनमुत्तमम् ५६
राजर्षिरप्रसुप्तोऽसि कथितो नारदेन मे।
कृतं मे सुमहत्कार्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्
वासुदेवमुपालक्ष्य राजा ह्रस्वं प्रमाणतः।
परिष्कृतं युगं मेने कालेन महता तदा॥ ५८
उवाच राजा गोविन्दं को भवान्किमिहागतः
कश्च कालः प्रसुप्तस्य यदि जानासि कथ्यताम्

श्रीकृष्ण उवाच।

सोमवंशोद्भवो राजा ययातिर्नाम नाहुषः
तस्य पुत्रो यदुर्ज्येष्ठश्चत्वारोऽन्ये यवीयसः ६०
यदुवंशात्समुत्पन्नं वसुदेवात्मजं विभो।
वासुदेवं विजानीहि नृपते त्वामिहागतम् ६१
त्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितो मेऽसि नारदात्
इदं कलियुगं विद्धि किमन्यत्करवाणि ते ६२
मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवदत्तवरो नृप।
अवध्यो यो मया संख्ये भवेद्वर्षशतैरपि ६३

वैशम्पायन उवाच।

इत्युक्तः स तु कृष्णेन निर्जगाम गुहामुखात्
अन्वीयमानः कृष्णेन कृतकार्येण धीमता ६४
ततो ददर्श पृथिवीमावृतां ह्रस्वकैर्नरैः।
स्वल्पोत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमैः।
परेणाधिष्ठितं चैव राज्यं केवलमात्मनः ६५
प्रीत्या विसृज्य गोविन्दं प्रविवेश महद्वनम्।
हिमवन्तमगाद्राजा तपसे धृतमानसः॥ ६६
ततः स तप आस्थाय विनिर्मुच्य कलेवरम्।
आरुरोह दिवं राजा कर्मभिः स्वैर्जिताशुभैः
वासुदेवोऽपि धर्मात्मा उपायेन महामनाः।
घातयित्वाऽऽत्मनः शत्रुं तत्सैन्यं प्रत्यपद्यत॥
प्रभूतरथहस्त्यश्ववर्मशस्त्रायुधध्वजम्।
आदायोपययौ धीमान्स सैन्यं निहतेश्वरम्॥

---

चत्वारः तुर्वसुर्द्रुह्युरनुः पूरुरिति। यवीयसो यवीयांसः॥ ६०॥

---

१ ख. °ह्ययोगी म°। २ ख. °श्चक्राम म°। ३ ख. धदीप्तेनेत्येवमा°। ४ ख. सुदेवस्य ना°। ५ ख. °त्र कुन्देन संप्र°। ६ ख. °रसुप्तं न°। ७ ख. °वमथाल°। ८ ख. सुप्तोऽसि य°। ९ ख. वासुदेव उ°। १० ख. यदुवंशे समु°। ११ ख. °ते मामिहा°। १२ ख. अल्पोत्सा°। १३ ख. °श महावन°। १४ ख. °स्वैर्जितां शुभैः।

निवेदयामास ततो नराधिपे
तदुग्रसेने प्रतिपूर्णमानसः ।
जनार्दनो द्वारवतीं च तां पुरी-
मशोभयत्तेन धनेन भूरिणा ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवधे
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

## द्वारावतीनगरनिर्माणम् ।

## ५८

वैशम्पायन उवाच ।
ततः प्रभाते विमले भास्करे उदिते तदा ।
कृतजाप्यो हृषीकेशो वनान्ते निषसाद ह ॥ १
परिचक्राम तं देशं दुर्गस्थानदिदृक्षया ।
उपतस्थुः कुलप्राग्र्या यादवा यदुनन्दनम् ॥ २
रोहिण्यामहनि श्रेष्ठे स्वस्ति वाच्य द्विजोत्तमान् ।
पुण्याहघोषैर्विपुलैर्दुर्गस्यारब्धवान्क्रियाम् ॥ ३
ततः पङ्कजपत्राक्षो यादवान्केशिसूदनः ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो देवान्वृत्ररिपुर्यथा ॥ ४
कल्पितेयं मया भूमिः पश्यध्वं देवसद्मवत् ।
नाम चास्याः कृतं पुर्याः ख्यातिं यदुपयास्यति
इयं द्वारवती नाम पृथिव्यां निर्मिता मया ।
भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती ॥ ६
तान्येवास्याः कारयिष्ये चिह्नान्यायतनानि च
चत्वरान्राजमार्गांश्च सम्यगन्तःपुराणि च
देवा इवात्र मोदन्तु भवन्तो विगतज्वराः ।
बाधमाना रिपूनुग्रानुग्रसेनपुरोगमाः ॥ ८
गृह्यन्तां वेश्मवास्तूनि कल्प्यन्तां त्रिकचत्वराः
मीयन्तां राजमार्गाश्च प्रासादस्य च या गतिः
प्रेष्यन्तां शिल्पिमुख्यानां युक्तानां वेश्मकर्मसु
नियुज्यन्तां च देशेषु प्रेष्यकर्मकरा जनाः ॥ १०
एवमुक्ते तु यदवो गृहसङ्ग्रहतत्पराः ।
यथानिवेशं संहृष्टाश्चक्रुर्वास्तुपरिग्रहम् ॥ ११
सूत्रहस्तास्ततो मानं चक्रुर्यादवसत्तमाः ।
पुण्येऽहनि महाराज द्विजातीनभिपूज्य च ॥ १२
वास्तुदैवतकर्माणि विधिना कारयन्ति च ।
स्थपतीनथ गोविन्दस्तत्रोवाच महामतिः ॥ १३
अस्मदर्थं सुविहितं क्रियतामत्र मन्दिरम् ।
विविक्तचत्वरपथं सुनिविष्टेष्टदैवतम् ॥ १४
ते तथेति महाबाहुमुक्त्वा स्थपतयस्तदा ।
दुर्गकर्माणि संस्कारानुपकल्प्य यथाविधि ॥ १५
यथान्यायं निर्मिमिरे दुर्गाण्यायतनानि च ।
स्थानानि निदधुश्चात्र ब्रह्मादीनां यथाक्रमम् ॥ १६
अपामग्नेः सुरेशस्य वृषदोलूखलस्य च ।
चातुर्दैवानि चत्वारि द्वाराणि निदधुश्च ते ॥ १७
शुद्धाक्षमैन्द्रं भल्लाटं पुष्पदन्तं तथैव च ।
तेषु वेश्मसु युक्तेषु यादवेषु महात्मसु ॥ १८

---

इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

५८

**अष्टपञ्चाशत्तमेऽथाध्याये त्वष्टारमाह्वयत् ।**
**द्वारकातिविशेषान्यो हरिस्तेन विनिर्ममे ॥१॥**

**तत इति** ॥ १ ॥ रोहिण्यां रोहिणीनक्षत्रे श्रेष्ठे अहनि मन्दवासरे "शनौ हि सुसमारम्भं कृतवानीश्वरः स्वयम्"। इति वचनात् ॥ ३ ॥ त्रिकं तिसृभिः अग्रपङ्क्तिभिः कल्पितं त्रिकोणं त्रिकं चत्वरं चतसृभिश्चतुरस्रं तदेवं राजमार्गः द्वाभ्यां पण्यपङ्क्तिभ्यां कल्पितदीर्घरथ्यारूपः ॥ ९ ॥ शिल्पिमुख्यानाम् आह्वायका इति शेषः ॥ १० ॥ स्थपतीन् वास्तुकर्मज्ञान् सूत्रधारान् ॥१३॥ संस्कारान् कंटकाद्युद्रासनवटारोधादीन् ॥१५॥ ब्रह्मादीनां, "द्वारे पितामहं विद्यात्" इत्यादिशास्त्रोक्तानां, गृहबलिदेवतानाम् ॥ १६ ॥ चतुर्दैवानीति पाठे देवाः शुद्धाक्षादयस्तद्वन्ति तांश्च तत्तत्स्थानपूर्वकं पूजयेदित्यर्थः ॥ १७ ॥

---

१ ख. °स नराधिपे तदा तदु° । २ ख. °श्च समानन्तः° । ३ ख. °न्तो गृहवा° । ४ ख. °श्च प्राकारस्य च या ग° । ५ ख. °ल्पिमुख्यां वै नियुक्ता वेश्मक° । ६ ख. °वपुङ्गवाः । पु° । ७ ख. °जातीन् प्रतिपू° । ८ ख. °ना कारयंस्ततः । स्थ° । ९ ख. विभक्तच° । १० ख. °नुपलभ्य य° । ११ ख. °रे द्वाराण्या° । १२ ख. °णि विद° ।

पुर्याः क्षिप्रं निवेशार्थं चिन्तयामास माधवः।
तस्य दैवोत्थिता बुद्धिर्विमला क्षिप्रकारिणी॥
पुर्याः प्रियकरी सा वै यदूनामभिवर्द्धिनी।
शिल्पिमुख्यस्तु देवानां प्रजापतिसुतः प्रभुः॥
विश्वकर्मा स्वमत्या वै पुरीं संस्थापयिष्यति।
मनसा समनुध्याय तस्यागमनकारणात्।
त्रिदशाभिमुखः कृष्णो विविक्ते समपद्यत २१
तस्मिन्नेव ततः काले शिल्पाचार्यो महामतिः
विश्वकर्मा सुरश्रेष्ठः कृष्णस्य प्रमुखे स्थितः२२

विश्वकर्मोवाच।

शक्रेण प्रेषितः क्षिप्रं तव विष्णो धृतव्रत।
किङ्करः समनुप्राप्तः शाधि मां किं करोमि ते
यथाऽसौ देवदेवो मे शङ्करश्च यथाऽव्ययः।
तथा त्वं देव मान्यो मे विशेषो नास्ति वः प्रभो
त्रैलोक्यज्ञापिकां वाचमुत्सृजस्व महाभुज।
एषोऽस्मि परिदिष्टार्थः किं करोमि प्रशाधि माम्
श्रुत्वा विनीतं वचनं केशवो विश्वकर्मणः।
प्रत्युवाच यदुश्रेष्ठः कंसारिरतुलं वचः॥ २६
श्रुतार्थो देवगुह्यस्य भवानत्र वयं स्थिताः।
अवश्यं त्विह कर्तव्यं सदनं मे सुरोत्तम॥२७
तदियं पूः प्रकाशार्थं निवेश्या मयि सुव्रत।
मत्प्रभावानुरूपैश्च गृहैश्चेयं समन्ततः॥ २८
उत्तमा च पृथिव्यां वै यथा स्वर्गेऽमरावती।
तथेयं हि त्वया कार्या शक्तो ह्यसि महामते॥
मम स्थानमिदं कार्यं यथा वै त्रिदिवे तथा।
मर्त्याः पश्यन्तु मे लक्ष्मीं पुर्यां यदुकुलस्य च
एवमुक्तस्ततः प्राह विश्वकर्मा मतीश्वरः।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं देवामित्रविनाशनम् ३१
सर्वमेतत्करिष्यामि यत्त्वयाऽभिहितं प्रभो।
पुरी त्वियं जनस्यास्य न पर्याप्ता भविष्यति
भविष्यति च विस्तीर्णा वृद्धिरस्यास्तु शोभना
चत्वारः सागरा ह्यस्यां विचरिष्यन्ति रूपिणः
यदीच्छेत्सागरः किंचिदुत्स्रष्टुमपि तोयराट्।
ततः स्वायतलक्षण्या पुरी स्यात्पुरुषोत्तम॥३४
एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रागेव कृतनिश्चयः।
सागरं सरितां नाथमुवाच वदतां वरः॥ ३५
समुद्र दश च द्वे च योजनानि जलाशये।
प्रतिसंह्रियतामात्मा यद्यस्ति मयि मान्यता ३६
अवकाशे त्वया दत्ते पुरीयं मामकं बलम्।
पर्याप्तविषया रम्या समग्रं विसहिष्यति॥ ३७
ततः कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा नदनदीपतिः।
स मारुतेन योगेन उत्ससर्ज जलाशयम्॥ ३८

विश्वकर्मा ततः प्रीतः
पुर्याः संलक्ष्यं वास्तु तत्।
गोविन्दे चैव सन्मानं
कृतवान्सागरस्तदा॥ ३९

विश्वकर्मा ततः कृष्णमुवाच यदुनन्दनम्।
अद्यप्रभृति गोविन्द सर्वे समधिरोहत॥ ४०
मनसा निर्मिता चेयं मया पूः प्रवरा विभो।
अचिरेणैव कालेन गृहसंबाधमालिनी॥ ४१
भविष्यति पुरी रम्या सुद्वारा प्राग्र्यतोरणा।
चयाट्टालककेयूरा पृथिव्यां ककुदोपमा॥ ४२
अन्तःपुरं च कृष्णस्य परिचर्याक्षयं महत्।
चकार तस्यां पुर्यां वै देशे त्रिदशपूजिते॥४३
ततः सा निर्मिता कान्ता पुरी द्वारावती तदा
मानसेन प्रयत्नेन वैष्णवी विश्वकर्मणा॥ ४४
विधानविहितद्वारा प्राकारवरशोभिता।
परिखाचयसंगुप्ता साट्टप्राकारतोरणा॥ ४५
कान्तनारीनरगणा वणिग्भिरुपशोभिता।
नानापण्यगणाकीर्णा खेचरीव च गां गता
प्रपावापीप्रसन्नोदा उद्यानैरुपशोभिता।
समन्ततः संवृताङ्गी वनितेवायतेक्षणा॥ ४७
समृद्धचत्वरवती वेश्मोत्तमघनाचिता।
रथ्याकोटिसहस्राढ्या शुभ्रराजपथोत्तरा ४८

यथा मे ब्रह्मादयो मान्यास्तथा त्वं देवमान्यो ब्रह्मादीनां मान्योऽसि। वः युष्मत्तः पूजायां बहुत्वं विशेषो विशिष्टत्वं नास्ति॥ २४॥ प्रकाशार्थं स्वकौशलस्य मयि मन्निमित्तम्॥ २८॥ मम स्थानं वैकुण्ठमिदं रहस्यं कार्यम्॥३०॥ मतीश्वरः मतिमतां प्रभुः॥ ३१॥ पुरी पुर्यर्था भूमिः॥ ३२॥ मारुतेन योगेन वायुसंकोचनप्रधानेन॥ ३८॥ प्राग्र्यतोरणा श्रेष्ठवन्दनमालिका॥ ४२॥ परिचर्याक्षयं स्नानादिगृहम्॥ ४३॥ गां पृथिवीम्॥ ४६॥ वेश्मोत्तमेषु उच्चवेश्मसु घनाचिता मेघव्याप्ता अत्युच्चेत्यर्थः॥ ४८॥

१ ख. °तं तद्वाक्यं केश°। २ ख. समं स्था°॥ ३ ख. यथैव त्रि°। ४ ख, °र्याः संदृश्य वा°। ५ ख. °ण्यसमाकीर्णा गगनादिव गां गता। प्र°।

भूषयन्ती समुद्रं सा स्वर्गमिन्द्रपुरी यथा ।
पृथिव्यां सर्वरत्नानामेका निचयशालिनी ४९
सुराणामपि सुक्षेत्रा सामन्तक्षोभकारिणी ।
अप्रकाशं तदाकाशं प्रासादैरुपकुर्वती ॥ ५०
पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां जनौघप्रतिनादिता ।
ओघैश्च वारिराजस्य शिशिरीकृतमारुता ५१
अनूपोपवनैः कान्तैः कान्त्या जनमनोहरा ।
सतारका द्यौरिव सा द्वारका प्रत्यराजत ॥
प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन संवृता ।
हिरण्यप्रतिवर्णैश्च गृहैर्गम्भीरनिःस्वनैः ॥ ५३
शुभ्रमेघप्रतीकाशैर्द्वारैः सौधैश्च शोभिता ।
क्वचित्क्वचिदुदग्राग्रैरुपावृतमहापथा ॥ ५४
तामावसत्पुरीं कृष्णः सर्वैः यादवनन्दनाः ।
अभिप्रेतजनाकीर्णां सोमः खमिव भासयन् *
विश्वकर्मा च तां कृत्वा पुरीं शक्रपुरीमिव ।
जगाम त्रिदिवं देवो गोविन्देनाभिपूजितः
भूयश्च बुद्धिरभवत्कृष्णस्य विदितात्मनः ।
जनानिमान्धनौघैश्च तर्पयेयमहं यदि ॥ ५७
स वैश्रवणसंस्पृष्टं निधीनामुत्तमं निधिम् ।
शङ्खमाह्वयतोपेन्द्रो निशि स्वे भवने प्रभुः ५८

स ह्वशः केशवाह्वानं
ज्ञात्वा हि निधिराट् स्वयम् ।
आजगाम समीपं वै
तस्य द्वारवतीपतेः ॥ ५९

स शङ्खः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयाद्वर्ग्मि गतः
कृष्णं विज्ञापयामास यथा वैश्रवणं तथा ६०
भगवन्किं मया कार्यं सुराणां वित्तरक्षिणा
वियोजय महाबाहो यत्कार्यं यदुनन्दन ॥६१
तमुवाच हृषीकेशः शङ्खं गुह्यकमुत्तमम् ।
जनाः कृशधना येऽस्मिंस्तान्धनेनाभिपूरय
नेच्छाम्यनशितं द्रष्टुं कृशं मलिनमेव च ।
देहीति चैव याचन्तं नगर्यां निर्धनं नरम्

वैशम्पायन उवाच ।

गृहीत्वा शासनं मूर्ध्ना निधिराट् केशवस्य ह
निधीनाज्ञापयामास द्वारवत्यां गृहे गृहे ॥६४
धनौघैरभिवर्षध्वं चक्रुः सर्वे तथा च ते ।
नाधनो विद्यते तत्र क्षीणभाग्योऽपि वा नरः
कृशो वा मलिनो वाऽपि द्वारवत्यां कथञ्चन×
द्वारवत्यां पुरि पुरा केशवस्य महात्मनः ६६
चकार वायोराह्वानं भूयश्च पुरुषोत्तमः ।
तत्रस्थ एव भगवान्यादवानां प्रियङ्करः ॥६७
प्राणयोनिस्तु भूतानामुपतस्थे गदाधरम् ।
एकमासीनमेकान्ते देवगुह्यधरं प्रभुम् ॥ ६८
किं मया देव कर्तव्यं सर्वगेनाशुगामिना ।
यथैव दूतो देवानां तथैवास्मि तवानघ ॥६९
तमुवाच ततः कृष्णो रहस्यं पुरुषो हरिः ।
मारुतं जगतः प्राणं रूपिणं समुपस्थितम् ७०
गच्छ मारुत देवेशमनुमान्य सहामरैः ।
सभां सुधर्मामादाय देवेभ्यस्त्वमिहानय ७१
यादवा धार्मिका ह्येते विक्रान्ताश्च सहस्रशः ।
तस्यां विशेयुरेते वै न तु या कृत्रिमा भवेत्
या ह्यक्षया सभा रम्या कामगा कामरूपिणी
सा यदून्धारयेत्सर्वान्यथैव त्रिदशांस्तथा ७३
संगृह्य वचनं तस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वायुरात्मोपमगतिर्जगाम त्रिदिवालयम् ॥७४
सोऽनुमान्य सुरान्सर्वान्कृष्णवाक्यं निवेद्य च
सभां सुधर्मामादाय पुनरायान्महीतलम् ॥ ७५
सुधर्माय सुधर्मां तां कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
देवो देवसभां दत्वा वायुरन्तरधीयत ॥ ७६
द्वारवत्यास्तु सा मध्ये केशवेन निवेशिता ।
सुधर्मा यदुमुख्यानां देवानां त्रिदिवे यथा ७७
एवं दिव्यैश्च भोगैश्च जलजैश्चाव्ययो हरिः ।
द्रव्यैरलङ्करोति स्म पुरीं स्वां प्रमदामिव ७८
मर्यादाश्चैव सञ्चक्रे श्रेणीश्च प्रकृतीस्तथा ।
बलाध्यक्षांश्च युक्तांश्च प्रकृतीशांस्तथैव च ७९
उग्रसेनं नरपतिं काश्यं चापि पुरोहितम् ।
सेनापतिमनाधृष्टिं विकद्रुं मन्त्रिपुङ्गवम् ॥ ८०

---

निचयशालिनी समृद्धिमती ॥ ४९ ॥ सुक्षेत्रा पुण्याधिवसतिः ॥ ५० ॥ उदग्राग्रैरत्युच्चसौधैः उपावृतः छायया पिहितः महापथो यस्यां सा ॥ ५४ ॥ अनशितं निरन्नम् ॥ ६३ ॥ काश्यं सान्दीपनिम् ॥ ८० ॥

---

१ ख. सर्वयादवनन्दनः । अ⁰ । * ' विश्वकर्मकृतां दिव्यां रत्नजालसमाकुलाम् ' इत्यधिकं खपुस्तके । २ ख. घैस्तु त⁰ । ३ ख. यन्मया कार्यमच्युत । तमु⁰ । ४ ख. ⁰व वा । दे⁰ । ५ ख. शिरसा शासनं गृह्य नि⁰ । ६ ख. ⁰स्य सः । नि⁰ । × एतत्पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । ७ ख. सुधर्मणे सु⁰ ।

यादवानां कुलकरान्स्थविरान्दश तत्र वै ।
मतिमान्स्थापयामास सर्वकार्येष्वनन्तरान् ॥
रथेष्वतिरथो यन्ता दारुकः केशवस्य वै ।
योधमुख्यश्च योधानां प्रवरः सात्यकिः कृतः
विधानमेवं कृत्वाऽथ कृष्णः पुर्यामनिन्दितः
मुमुदे यदुभिः सार्द्धं लोकस्रष्टा महीतले ॥ ८३
रैवतस्याथ कन्यां च रेवतीं शीलसम्मताम् ।
प्राप्तवान्बलदेवस्तु कृष्णस्यानुमते तदा ॥ ८४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारावतीनिर्माणे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

## रुक्मिणीहरणम् ।

## ५९

जनमेजय उवाच ।

कस्मिन्देशे नृपो जज्ञे रुक्मी वेदविदां वरः
कस्यान्ववाये द्युतिमान्संभूतो द्विजसत्तम ९

वैशम्पायन उवाच ।

राजर्षेर्यादवस्यासीद्विदर्भो नाम वै सुतः ।
विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे विदर्भायां न्यवेशयत्
क्रथकैशिकमुख्यास्तु पुत्रास्तस्य महाबलाः ।
बभूवुर्वीर्यसंपन्नाः पृथग्वंशकरा नृपाः ॥ ११
तस्यान्ववाये भीमस्य जज्ञिरे वृष्णयो नृपाः ।
क्रथस्य त्वंशुमान्वंशे भीष्मकः कैशिकस्य तु ॥
हिरण्यरोमेत्याहुर्यं दाक्षिणात्येश्वरं नृपाः ।
आगस्त्यगुप्तामाशां यः कुंडिनस्थोऽन्वशान्नृपः
रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च विशांपते
रुक्मी चास्त्राणि दिव्यानि द्रुमात्प्राप महाबलः
जामदग्न्यात्तथा रामाद्ब्राह्ममस्त्रमवाप्तवान् ।
प्रास्पर्द्धत स कृष्णेन नित्यमद्भुतकर्मणा १५
रुक्मिणी त्वभवद्राजन्रूपेणासदृशी भुवि ।
चकमे वासुदेवस्तां श्रवादेव महाद्युतिः ॥ १६

वैशम्पायन उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले तु जरासन्धः प्रतापवान्
नृपानुद्योजयामास चेदिराजप्रियेप्सया ॥ १
सुताया भीष्मकस्याथ रुक्मिण्या रुक्मभूषणः
शिशुपालस्य नृपतेर्विवाहो भविता किल २
दन्तवक्रस्य तनयं सुवक्रममितौजसम् ।
सहस्राक्षसमं युद्धे मायाशतविशारदम् ॥ ३
पौण्ड्रस्य वासुदेवस्य तथा पुत्रं महाबलम् ।
सुदेवं वीर्यसंपन्नं पृथगक्षौहिणीपतिम् ॥ ४
एकलव्यस्य पुत्रं च वीर्यवन्तं महाबलम् ।
पुत्रं च पाण्ड्यराजस्य कलिङ्गाधिपतिं तथा५
कृताप्रियं च कृष्णेन वेणुदारिं नराधिपम् ।
अंशुमन्तं तथा क्राथं श्रुतधर्माणमेव च ॥ ६
निर्वृत्तशत्रुं कालिङ्गं गान्धाराधिपतिं तथा ।
प्रसह्य च महावीर्यं कौशाम्ब्यधिपमेव च ॥ ७
भगदत्तो महासेनः शलः शाल्वो महाबलः ॥
भूरिश्रवा महासेनः कुन्तिवीर्यश्च वीर्यवान् ।
स्वयंवरार्थं संप्राप्ता भोजराजनिवेशने ॥ ८

---

स्थविरान्दशेति वक्ष्यमाणान् ।
" उद्धवो वासुदेवश्च कङ्को विपृथुरेव च ।
श्वफल्कश्चित्रकश्चैव गदः सत्यक एव च ॥
बलभद्रः पृथुश्चैव मन्त्रेष्वभ्यन्तरा दश " इति ॥ ८१ ॥
इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

५९

अथैकोनषष्टितमे गत्वा कुण्डिनमोजसा ।
रामोऽपरान्समासज्य रुक्मिणीमहरद्धरिः १

**एतस्मिन्निति** । चेदिराजो दमघोषः तस्य प्रियं शिशुपालाख्यपुत्रस्य विवाहस्तदीप्सया ॥ १ ॥ तदेवाह **सुताया**–इति ॥ २ ॥ निवृत्ताः निष्प्रचाराः शत्रवो यस्य निवृत्तशत्रुं कीलितशत्रुमित्यर्थः ॥७॥ श्रवादाकर्णनात् ॥१६॥

---

१ ख. कृतवैरं च कृ° । २ ख. पटसश्च महा° । * भगदत्तेत्यादिः सार्धः श्लोकः खपुस्तके नास्ति । ३ ख. °हात्मनः । बभू° । ४ ख. °यो नृप । क्र° । ५ ख. °रं जनाः । आ° । ६ ख. अग° । ७ ख. °कर्मा त्वस्त्रा° । ८ ख. °पेणाप्रतिमा भु° । ९ ख. °हामतिः । स त° ।

स तया चाभिलषितः श्रवादेव जनार्दनः ।
तेजोवीर्यबलोपेतः स मे भर्ता भवेदिति ॥ १७
तां ददौ न च कृष्णाय द्वेषाद्रुक्मी महाबलः ।
कंसस्य वधसन्तापात्कृष्णायामिततेजसे × ।
याचमानाय कंसस्य द्वेष्योऽयमिति चिन्तयन्
चैद्यस्यार्थे सुनीथस्य जरासन्धस्तु भूमिपः ।
वरयामास तां राजा भीष्मकं भीमविक्रमम् ॥
चेदिराजस्य तु वसोरासीत्पुत्रो बृहद्रथः ।
मगधेषु पुरा येन निर्मितोऽसौ गिरिव्रजः २०
तस्यान्ववाये जज्ञेऽसौ जरासन्धो महाबलः
वसोरेव तदा वंशे दमघोषोऽपि चेदिराट् ॥
दमघोषस्य पुत्रास्तु पञ्च भीमपराक्रमाः ।
भगिन्यां वसुदेवस्य श्रुतश्रवसि जज्ञिरे ॥ २२
शिशुपालो दशग्रीवो रैभ्योऽथोपदिशो बली
सर्वास्त्रकुशला वीरा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥
ज्ञातेः समानवंशस्य सुनीथः प्रददौ सुतम् ।
जरासन्धस्तु सुतवद्ददर्शैनं जुगोप च ॥ २४
जरासन्धं पुरस्कृत्य वृष्णिशत्रुं महाबलम् ।
कृतान्यागांसि चैद्येन वृष्णीनां चाप्रियैषिणा
जामाता त्वभवत्तस्य कंसस्तस्मिन्हते युधि ।
कृष्णार्थं वैरमभवज्जरासन्धस्य वृष्णिभिः २६
भीष्मकं वरयामास सुनीथार्थे च रुक्मिणीम्
तां ददौ भीष्मकश्चापि शिशुपालाय वीर्यवान्
ततश्चैद्यमुपादाय जरासन्धो नराधिपः ।
ययौ विदर्भान्सहितो दन्तवक्रेण यायिना २८
अनुज्ञातश्च पौण्ड्रेण वासुदेवेन धीमता ।
अङ्गवङ्गकलिङ्गानामीश्वरः स महाबलः ॥ २९
मानयिष्यंश्च तान्रुक्मी प्रत्युद्गम्य नराधिपान्
वरया पूजयोपेतांस्तान्निनाय पुरीं प्रति ॥ ३०
पितृष्वसुः प्रियार्थं च रामकृष्णावुभावपि ।
प्रययुर्वृष्णयश्चान्ये रथैस्तत्र बलान्विताः ॥ ३१
क्रथकैशिकभर्ता तान्प्रतिगृह्य यथाविधि ।
पूजयामास पूजार्हान्बहिश्चैव न्यवेशयत् ३२
श्वो भाविनि विवाहे च रुक्मिणी निर्ययौ बहिः
चतुर्युजा रथेनैन्द्रे देवतायतने शुभे ॥ ३३
इन्द्राणीमर्चयिष्यन्ती कृतकौतुकमङ्गला ।
दीप्यमानेन वपुषा बलेन महता वृता ॥ ३४
तां ददर्श तदा कृष्णो लक्ष्मीं साक्षादिव स्थिताम्
रूपेणाग्र्येण सम्पन्नां देवतायतनान्तिके ३५
वह्नेरिव शिखां दीप्तां मायां भूमिगतामिव ।
पृथिवीमिव गम्भीरामुत्थितां पृथिवीतलात् ।
मरीचिमिव सोमस्य
सौम्यां स्त्रीविग्रहां भुवि ।
श्रीमिवाग्र्यां विना पद्मं
भविष्यां श्रीसहायिनीम् ।
कृष्णेन मनसा दृष्टां
दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि ॥ ३७
श्यामावदाता सा ह्यासीत्पृथुचार्वायतेक्षणा ।
ताम्रौष्ठनयनापाङ्गी पीनोरुजघनस्तनी ॥ ३८
बृहती चारुसर्वाङ्गी तन्वी शशिसितानना ।
ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूर्नीलकुञ्चितमूर्धजा ॥ ३९
अत्यर्थं रूपतः कान्ता पीनश्रोणिपयोधरा ।
तीक्ष्णशुक्लैः समैर्दन्तैः प्रभासद्भिरलङ्कृता ॥
अनन्या प्रमदा लोके रूपेण यशसा श्रिया ।
रुक्मिणी रूपिणी देवी पाण्डुरक्षौमवासिनी
तां दृष्ट्वा ववृधे कामः कृष्णस्य प्रियदर्शनाम् ।
हविषेवानलस्यार्चिर्मनस्तस्यां समादधत् ४२
रामेण सह निश्चित्य केशवस्तु महाबलः ।
तत्प्रमाथेऽकरोद्बुद्धिं वृष्णिभिः प्रणिधाय च
कृते तु देवताकार्ये निष्क्रामन्तीं सुरालयात् ।
उन्मथ्य सहसा कृष्णः स्वं निनाय रथोत्तमम्
वृक्षमुत्पाट्य रामोऽपि जघानापततः परान् ।
समनह्यन्त दाशार्हास्तदाज्ञप्ताश्च सर्वशः ४५
ते रथैर्विविधाकारैः समुच्छ्रितमहाध्वजैः ।
वाजिभिर्वारणैश्चैव परिववुर्हलायुधम् ॥ ४६
आदाय रुक्मिणीं कृष्णो जगामाशु पुरीं प्रति
रामे भारं तमासज्य युयुधाने च वीर्यवान् ॥

---

सुनीथस्य सुनीथपुत्रस्य शिशुपालस्य ॥ १९ ॥ सुनीथः सुतं शिशुपालं ददौ तवायं सहकारी भूयादिति ॥ २४ ॥ वृष्णीनां दुःखदानिति शेषः ॥२५॥ तत्र निमित्तमाह-**जामातेति** ॥ २६ ॥ वरयामास जरासन्धः सुनीथार्थे शिशुपालार्थं ॥ २७ ॥ यायिना गच्छता सह सहायेन वा ॥ २८ ॥ क्रथकैशिकानां देशानां भर्ता ज्येष्ठो दमघोषः ॥ ३२ ॥ चतुर्युजा चतुरश्ववता ऐन्द्रे ज्येष्ठानक्षत्रे ॥ ३३ ॥ प्रभासद्भिः प्रकर्षेण भासमानैः ॥ ४० ॥ प्रमाथे हरणे प्रणिधाय निवेद्य ॥ ४३ ॥ युयुधाने सात्यकौ ॥४७॥

---

× कंसस्य वधेति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति । १ ख. °ष्णीनां तत्प्रियै° । २ ख. पर° । ३ खपुस्तक इत आरभ्य सर्वाणि द्वितीयान्तानि विशेषणानि । ४ ख. °तां ह्यासीनां पृ° । ५ ख. °रं समा° ।

अक्रूरे विपृथौ चैव गदे च कृतवर्मणि ।
चक्रदेवे सुदेवे च सारणे च महाबले ॥ ४८
निवृत्तशत्रौ विक्रान्ते भङ्गाकारे विदूरथे ।
उग्रसेनात्मजे कङ्के शतद्युम्ने च केशवः ॥ ४९
राजाधिदेवे मृदुरे प्रसेने चित्रके तथा ।
अतिदान्ते बृहद्दुर्गे श्वफल्के सत्यके पृथौ ॥
वृष्ण्यन्धकेषु चान्येषु मुख्येषु मधुसूदनः ।
गुरुमासज्य तं भारं ययौ द्वारवतीं प्रति ५१
दन्तवक्रो जरासन्धः शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
सन्नद्धा निर्ययुः क्रुद्धा जिघांसन्तो जनार्दनम्
अङ्गवङ्गकलिङ्गैश्च सार्द्धं पौण्ड्रैश्च वीर्यवान् ।
निर्ययौ चेदिराजस्तु भ्रातृभिः स महारथैः ॥
तान्प्रत्यगृह्णन्संरब्धा वृष्णिवीरा महारथाः ।
सङ्कर्षणं पुरस्कृत्य वासवं मारुतो यथा ॥ ५४
आपतन्तं हि वेगेन जरासन्धं महाबलम् ।
षड्भिर्विव्याध नाराचैर्युयुधानो महामृधे ॥
अक्रूरो दन्तवक्रं तु विव्याध नवभिः शरैः ।
तं प्रत्यविद्ध्यत्कारूषो बाणैर्दशभिराशुगैः ५६
विपृथुः शिशुपालं तु शरैर्विव्याध सप्तभिः ।
अष्टभिः प्रत्यविद्ध्यत्तं शिशुपालः प्रतापवान्
गवेषणस्तु चैद्यं तु षड्भिर्विव्याध मार्गणैः ।
अतिदान्तस्तथाऽष्टाभिर्बृहद्दुर्गश्च पञ्चभिः ॥
प्रतिविव्याध तांश्चैद्यः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
जघानाश्वांश्च चतुरश्चतुर्भिर्विपृथोः शरैः ॥ ५९
बृहद्दुर्गस्य भल्लेन शिरश्चिच्छेद चारिहा ।
गवेषणस्य सूतं तु प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ६०
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा विपृथुस्तु महाबलः ।
आरुरोह रथं शीघ्रं बृहद्दुर्गस्य वीर्यवान् ६१
विपृथोः सारथिश्चापि गवेषणरथं द्रुतम् ।
आरुह्य जवनानश्वान्नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६२
ते क्रुद्धाः शरवर्षेण सुनीथं समवाकिरन् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु चापहस्ताः कलापिनः ॥ ६३
चक्रदेवो दन्तवक्रं बिभेदोरसि पत्रिणा ।
षड्रथं पञ्चभिश्चैव विव्याध युधि मार्गणैः ॥
ताभ्यां स विद्धो दशभिर्बाणैर्मर्मातिगैः शितैः

ततो बली चक्रदेवं बिभेद दशभिः शरैः ६५
पञ्चभिश्चापि विव्याध सोऽपि दूराद्विदूरथम्
विदूरथोऽपि तं षड्भिर्विव्याधाजौ शितैः शरैः
त्रिंशता प्रत्यविध्यत्तं बली बाणैर्महाबलम् ।
कृतवर्मा बिभेदाजौ राजपुत्रं त्रिभिः शरैः ६७
न्यहनत्सारथिं चास्य
ध्वजं चिच्छेद सोच्छ्रितम् ।
प्रतिविव्याध तं क्रुद्धः
पौण्ड्रः षड्भिः शिलीमुखैः ॥ ६८
धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य भल्लेन कृतवर्मणः ।
निवृत्तशत्रुः कालिङ्गं बिभेद निशितैः शरैः ।
तोमरेणांसदेशे तं निर्बिभेद कलिङ्गराट् ॥ ६९
गजेनासाद्य कङ्कस्तु गजमङ्गस्य वीर्यवान् ।
तोमरेण बिभेदाङ्गं बिभेदाङ्गश्च तं शरैः ॥ ७०
चित्रकश्च श्वफल्कश्च सत्यकश्च महारथः ।
कलिङ्गस्य तथानीकं नाराचैर्बिभिदुः शतैः ॥
तं निसृष्टद्रुमेणाजौ वङ्गराजस्य कुञ्जरम् ।
जघान रामः सङ्क्रुद्धो वङ्गराजं च संयुगे ॥
तं हत्वा रथमारुह्य धनुरादाय वीर्यवान् ।
सङ्कर्षणो जघानोग्रैर्नाराचैः कैशिकान्बहून् ॥
षड्भिर्निहत्य कारूषान्महेष्वासान्स वीर्यवान्
शतं जघान संक्रुद्धो मागधानां महाबले ॥ ७४
निहत्य तान्महाबाहुर्जरासन्धं ततोऽभ्ययात्
तमापतन्तं विव्याध नाराचैर्मागधस्त्रिभिः ॥
तं बिभेदाष्टभिः क्रुद्धो नाराचैर्मुसलायुधः ।
चिच्छेद चास्य भल्लेन ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं तेषां देवासुरोपमम् ।
सृजतां शरवर्षाणि निघ्नतामितरेतरम् ॥ ७७
गजैर्गजा हि संक्रुद्धाः संनिपेतुः सहस्रशः ।
रथै रथाश्च संरब्धाः सादिनश्चापि सादिभिः
पदातयः पदातींश्च शक्तिचर्मासिपाणयः ।
छिन्दन्तश्चोत्तमाङ्गानि विचेरुर्युधि ते पृथक्
असीनां पात्यमानानां कवचेषु महास्वनः ।
शराणां पततां शब्दः पक्षिणामिव शुश्रुवे ८०

---

कारूषो दन्तवक्रः ॥५६॥ कलापिनः बाणहस्ताः ॥६३॥ बली शिशुपालभ्राता ॥ ६५ ॥ राजपुत्रं पौण्ड्रकवासुदेव-सुतम् ॥ ६७ ॥ निसृष्टेन प्रक्षिप्तेन द्रुमेण निष्पन्नवृक्षेण ॥ ७२ ॥

---

१ ख. °न्ते भङ्गका° । २ ख. पटुसं प° । ३ ख. °ङ्गजः । गजे° । ४ ख. °हाबलः । क° ।

भेरीशङ्खमृदङ्गानां वेणूनां च मृधे ध्वनिम् । जुगूह घोषः शस्त्राणां ज्याघोषश्च महात्मनाम् ८१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

## रुक्मिपराजयः ।

### ६०

वैशम्पायन उवाच ।
कृष्णेन ह्रियमाणां तां
रुक्मी श्रुत्वा तु रुक्मिणीम् ।
प्रतिज्ञामकरोत्क्रुद्धः
समक्षं भीष्मकस्य ह ॥ १
[ रुक्म्युवाच । ][2]
' अहत्वा युधि गोविन्द-
मनानीय च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि
सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ' ॥ २
आस्थाय स रथं वीरः समुद्यग्रायुधध्वजम् ।
जवेन प्रययौ क्रुद्धो बलेन महता वृतः ॥ ३
तमन्वयुर्नृपाश्चैव दक्षिणापथवर्तिनः[3] ।
क्राथोऽंशुमाञ्छ्रुतर्वा च वैणुदारिश्च वीर्यवान्
भीष्मकस्य सुताश्चान्ये रथेन रथिनां वराः ।
क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥ ५
ते गत्वा दूरमध्वानं सरितं नर्मदामनु ।
गोविन्दं ददृशुः क्रुद्धाः सहैव प्रियया स्थितम्
अवस्थाप्य च तत्सैन्यं रुक्मी मदबलान्वितः
चिकीर्षुर्द्वैरथं युद्धमभ्ययान्मधुसूदनम् ॥ ७
स विव्याध चतुःषष्ट्या
गोविन्दं निशितैः शरैः ।
तं प्रत्यविध्यत्सप्तत्या
बाणैर्युधि जनार्दनः ॥ ८
पतमानस्य[4] चिच्छेद ध्वजं चास्य महाबलः ।
जहार च शिरः कायात्सारथेस्तस्य वीर्यवान्
तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय परिवव्रुर्जनार्दनम् ।
दाक्षिणात्या जिघांसन्तो राजानः सर्व एव हि
तमंशुमान्महाबाहुर्विव्याध दशभिः शरैः ।
श्रुतर्वा पञ्चभिः क्रुद्धो वैणुदारिश्च सप्तभिः ११
ततोऽंशुमन्तं गोविन्दो बिभेदोरसि वीर्यवान्
निषसाद रथोपस्थे व्यथितः स नराधिपः १२
श्रुतर्वणो जघानाश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः ।
वैणुदारेर्ध्वजं छित्त्वा भुजं विव्याध दक्षिणम्
तथैव च श्रुतर्वाणं
शरैर्विव्याध पञ्चभिः ।
शिश्रिये स ध्वजं श्रान्तो
न्यषीदच्च व्यथान्वितः ॥ १४
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि वासुदेवं ततोऽभ्ययुः ।
क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥ १५
बाणैर्बाणांश्च चिच्छेद तेषां युधि जनार्दनः ।
जघान चैषां संरब्धः पतमानश्च ताञ्छरान्
पुनरन्यांश्चतुःषष्ट्या जघान निशितैः शरैः ।
क्रुद्धानापततो वीरानद्रिवत्स महाबलः ॥१७
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा रुक्मी क्रोधवशंगतः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैर्विव्याधोरसि केशवम् १८
सारथिं चास्य विव्याध सायकैर्निशितैस्त्रिभिः
आजघान शरेणास्य ध्वजं च नतपर्वणा १९
केशवस्त्वरितं दृष्ट्वा क्रुद्धो विव्याध मार्गणैः ।
धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य पतमानस्य रुक्मिणः ॥

---

जुगूह समावृणोत् ॥ ८१ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

अथ षष्टितमेऽध्याये रुक्मिणे श्रीहरिः स्वयम् जित्वा मुक्त्वाऽथ वैदर्भीमुपयेम इतीर्यते १

कृष्णेनेति ॥ १ ॥ तं रुक्मिणम् । जनार्दनं जिघांसन्तः ॥ १० ॥

---

१ ख. °णां वै रु° । २ ख. रुक्म्युवाचेति खपुस्तके नास्ति । ३ ख. °थवासिनः । क्रा° । ४ ख. यत° ।

अथान्यद्धनुरादाय
रुक्मी कृष्णजिघांसया ।
प्रादुश्चकार चान्यानि
दिव्यान्यस्त्राणि वीर्यवान् ॥ २१
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तस्य कृष्णो महाबलः ।
पुनश्चिच्छेद तच्चापं रथिनां च त्रिभिः शरैः
स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च
उत्पपात रथाद्वीरो गरुत्मानिव वीर्यवान्
तस्याभिपततः खड्गं चिच्छेद युधि केशवः
नाराचैश्च त्रिभिः क्रुद्धो बिभेदैनमथोरसि २४
स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ।
विसंज्ञो मूर्च्छितो राजा वज्रेणेव महासुरः
तांश्च राज्ञः शरैः सर्वान्पुनर्विव्याध माधवः
रुक्मिणं पतितं दृष्ट्वा व्यद्रवन्त नराधिपाः २६
विचेष्टमानं तं भूमौ भ्रातरं वीक्ष्य रुक्मिणी
पादयोर्न्यपतद्विष्णोर्भ्रातुर्जीवितकाङ्क्षिणी ॥
तामुत्थाप्य परिष्वज्य सान्त्वयामास केशवः
अभयं रुक्मिणे दत्त्वा प्रययौ स्वपुरीं ततः २८
वृष्णयोऽपि जरासन्धं
भङ्क्त्वा तांश्चैव पार्थिवान् ।
प्रययुर्द्वारकां हृष्टाः
पुरस्कृत्य हलायुधम् ॥ २९
प्रयाते पुण्डरीकाक्षे श्रुतर्वाऽभ्येत्य सङ्गरे ।
रुक्मिणं रथमारोप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति
अनानीय स्वसारं तु रुक्मी मानमदान्वितः
हीनप्रतिज्ञो नैच्छत्स प्रवेष्टुं कुण्डिनं पुरम् ३१
विदर्भेषु निवासार्थं निर्ममेऽन्यत्पुरं महत् ।
तद्भोजकटमित्येव बभूव भुवि विश्रुतम् ३२
तत्रौजसा महातेजा दक्षिणां दिशमन्वगात् ।
भीष्मकः कुण्डिने चैव राजोवास महाभुजः

द्वारकां चापि संप्राप्ते रामे वृष्णिबलान्विते ।
रुक्मिण्याः केशवः पाणिं जग्राह विधिवत्प्रभुः
ततः सह तया रेमे प्रियया प्रीयमाणया ।
सीतयेव पुरा रामः पौलोम्येव पुरन्दरः ॥ ३५
सा हि तस्याभवज्ज्येष्ठा
पत्नी कृष्णस्य भामिनी ।
पतिव्रता गुणोपेता
रूपशीलगुणान्विता ॥ ३६
तस्यामुत्पादयामास पुत्रान्दश महारथान् ।
चारुदेष्णं सुदेष्णं च प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥
सुषेणं चारुगुप्तं च चारुबाहुं च वीर्यवान् ।
चारुविन्दं सुचारुं च भद्रचारुं तथैव च ॥ ३८
चारुं च बलिनां श्रेष्ठं सुतां चारुमतीं तथा ।
धर्मार्थकुशलास्ते तु कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ३९
महिषीः सप्त कल्याणीस्ततोऽन्या मधुसूदनः
उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेताः कुलोद्भवाः ॥ ४०
कालिन्दीं मित्रविन्दां च
सत्यां नाग्नजितीमपि ।
सुतां जाम्बवतश्चापि
रोहिणीं कामरूपिणीम् ॥ ४१
मद्रराजसुतां चापि
सुशीलां शुभलोचनाम् ।
सात्राजितीं सत्यभामां
लक्ष्मणां चारुहासिनीम् ॥ ४२
शैब्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप्सरसोपमाम् ।
स्त्रीसहस्राणि चान्यानि षोडशातुलविक्रमः
उपयेमे हृषीकेशः सर्वा भेजे स ताः समम् ।
परार्ध्यवस्त्राभरणाः कामैः सर्वैः सुखोचिताः ।
जज्ञिरे तासु पुत्राश्च तस्य वीराः सहस्रशः ४४
शास्त्रार्थकुशलाः सर्वे बलवन्तो महारथाः ।
यज्वानः पुण्यकर्माणो महाभागा महाबलाः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणं नाम
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

कालिन्दीं सूर्यस्य पुत्रीं यमुनां प्रथमां, मित्रविन्दां राजाधिदेव्यां पितृष्वसरि आवन्त्याजातां द्वितीयां, सत्याम् अयोध्यापतेर्नग्नजितेः पुत्रीं नाग्नजितीं तृतीयां, जाम्बवतः सुतां जाम्बवतीं चतुर्थीं, रोहिणीं श्रुतकीर्तौ पितृष्वसरि कैकेयाजातां भद्रापरनाम्नीं पञ्चमीम् ॥ ४१ ॥ मद्रराजसुतां लक्ष्मणामिति व्यवहितेनान्वयस्तां षष्ठीं, सात्राजितीं सत्यभामां सप्तमीम् ॥ ४२ ॥ शैब्यस्य सुतां तन्वीं नामतः गान्धार्यभिधामष्टमाम्, एताः पट्टनायिका रुक्मिणी तु साक्षात् श्रीरेवेत्यासु न गणिता । समम् एकसमयावच्छेदेन न तु पर्यायेण भेजे उपयेमे च मूर्तिभेदेन योगेश्वरत्वात् ॥४३॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

१ ख. °द चापं च र° । २ ख. °व हतो गिरिः । तांश्च । ३ ख. °यौ स्वां पु° । ४ ख. °ताः कुलोद्भवाः । का° ।

## प्रद्युम्नविवाहो रुक्मिवधश्च।

## ६१

वैशम्पायन उवाच।
ततः काले व्यतीते तु रुक्मी महति वीर्यवान्
दुहितुः कारयामास स्वयंवरमरिन्दमः ॥ १
तत्राहूता हि राजानो
राजपुत्राश्च रुक्मिणा।
समाजग्मुर्महावीर्या
नानादिग्भ्यः श्रियाऽन्विताः ॥ २
तत्राजगाम प्रद्युम्नः कुमारैरपरैर्वृतः।
सा हि तं चकमे कन्या स च तां शुभलोचनाम्
शुभाङ्गी नाम वैदर्भी कान्तिद्युतिसमन्विता
पृथिव्यामभवत्ख्याता रुक्मिणस्तनया तदा
उपविष्टेषु सर्वेषु पार्थिवेषु महात्मसु।
वैदर्भी वरयामास प्रद्युम्नमरिसूदनम् ॥ ५
स हि सर्वास्त्रकुशलः सिंहसंहननो युवा।
रूपेणाप्रतिमो लोके केशवस्यात्मजोऽभवत्
वयोरूपगुणोपेता राजपुत्री च साऽभवत्।
नारायणी चन्द्रसेना जातकामा च तं प्रति ७
वृत्ते स्वयंवरे जग्मू राजानः स्वपुराणि ते।
उपादाय च वैदर्भी प्रद्युम्नो द्वारकां ययौ ॥८
रेमे सह तया वीरो दमयन्त्या नलो यथा*।
स तस्यां जनयामास देवगर्भोपमं सुतम् ॥ ९
अनिरुद्धमिति ख्यातं कर्मणाऽप्रतिमं भुवि।
धनुर्वेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे च पारगम् १०
अभवत्स यदा राजन्ननिरुद्धो वयोऽन्वितः।
तदाऽस्य रुक्मिणः पौत्रीं
श्रीमतीं रुक्मसन्निभाम्।
पत्न्यर्थं वरयामास
नाम्ना रुक्मवतीति सा ॥ ११
अनिरुद्धं गुणैर्दातुं
कृतबुद्धिर्नृपस्ततः।
प्रीत्या हि रौक्मिणेयस्य
रुक्मिण्याश्चाप्युपग्रहात् ॥ १२
विस्पर्द्धन्नपि कृष्णेन वैरं त्यज्य महायशाः।
ददामीत्यब्रवीद्राजा प्रीतिमाञ्जनमेजय ॥ १३
केशवः सह रुक्मिण्या पुत्रैः संकर्षणेन च।
अन्यैश्च वृष्णिभिः सार्द्धं विदर्भान्सबलो ययौ
संयुक्ता ज्ञातयश्चैव रुक्मिणः सुहृदश्च ये।
आहूता रुक्मिणा तेऽपि तत्राजग्मुर्नराधिपाः
शुभे तिथौ महाराज नक्षत्रे चाभिपूजिते।
विवाहः सोऽनिरुद्धस्य बभूव परमोत्सवः १६
पाणौ गृहीते वैदर्भ्यास्त्वनिरुद्धेन तत्र वै।
वैदर्भयादवानां च बभूव परमोत्सवः ॥ १७
रेमिरे वृष्णयस्तत्र पूज्यमाना यथामराः।
अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः
अक्षः श्रुतर्वा चाणूरः क्राथश्चैवांशुमानपि।
जयत्सेनः कलिङ्गानामधिपश्च महाबलः १९
पाण्ड्यश्च नृपतिः श्रीमानृषीकाधिपतिस्तथा।
एते संमन्त्र्य राजानो दाक्षिणात्या महर्द्धयः
अभिगम्याब्रुवन्सर्वे रुक्मिणं रहसि प्रभुम्।
भवानक्षेषु कुशलो वयं चापि रिरंसवः।
प्रियद्यूतश्च रामोऽसावक्षेष्वनिपुणोऽपि च
ते भवन्तं पुरस्कृत्य जेतुमिच्छाम तं वयम्।
इत्युक्तो रोचयामास रुक्मी द्यूतं महारथः २२
ते शुभां काञ्चनस्तम्भां कुसुमैर्भूषिताजिराम्
सभामाविविशुर्हृष्टाः सिक्तां चन्दनवारिणा
तां प्रविश्य ततः सर्वे शुभ्रस्रगनुलेपनाः।
सौवर्णेष्वासनेष्वासांचक्रिरे विजिगीषवः ॥
आहूतो बलदेवस्तु कितवैरक्षकोविदैः।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टः सह दीव्याम पण्यताम्
निकृत्या विजिगीषन्तो दाक्षिणात्या नराधिपाः
मणिमुक्ताः सुवर्णं च तत्रानिन्युः सहस्रशः २६

६१

एकषष्टितमेऽध्याये प्रद्युम्नतत्तनूजयोः।
विवाहः कथ्यते तत्र रुक्मिकणश्च तथा वधः १

तत इति। काले महति ॥ १ ॥ सा कन्या चकमे कामितवती ॥ ३ ॥ सिंहसंहननः सिंहवदतिदृढाङ्गः। "वराङ्गरूपोपेतो यः सिंहसंहननो हि सः" इत्युक्तां वा ॥६॥ कितवैर्द्यूतवेदिभिः ॥ २५ ॥ निकृत्या कपटेन ॥ २६ ॥

१ ख. °णीवेन्द्र°। * रेमे सहेत्यादि श्लोकार्धं ख. पुस्तके नास्ति। २ ख. °त्रीं रुक्मिणीं रु°। ३ ख. °न भारत। वै°।

ततः प्रावर्तत द्यूतं तेषां$ रतिविनाशनम्।
कलहस्यास्पदं घोरं दुर्मतीनां क्षयावहम् २७
निष्काणां च सहस्राणि सुवर्णस्य दशादितः
रुक्मिणा सह संपाते बलदेवो ग्लहं ददौ २८
तं जिगाय ततो रुक्मी यतमानं महाबलम्।
तावदेवापरं भूयो बलदेवं जिगाय सः॥ २९
असकृज्जीयमानस्तु रुक्मिणा केशवाग्रजः।
सुवर्णकोटीर्जग्राह ग्लहं तस्य महात्मनः ३०
जितमित्येव हृष्टोऽथ तमाह्वृतिरभाषत।
श्लाघ्यमानश्च चिक्षेप प्रहसन्मुसलायुधम् ३१
अविद्यो दुर्बलः श्रीमान्हिरण्यममितं मया।
अजेयो बलदेवोऽयमक्षद्यूते पराजितः॥ ३२
कलिङ्गराजस्तच्छ्रुत्वा प्रजहास भृशं तदा।
दन्तान्[1]सन्दर्शयन्हृष्टस्तत्राक्रुध्यद्धलायुधः॥ ३३
रुक्मिणस्तद्वचः श्रुत्वा पराजयनिमित्तजम्।
निगृह्यमाणस्तीक्ष्णाभिर्वाग्भिर्भीष्मकसूनुना॥
रोषमाहारयामास जितरोषोऽपि धर्मवित्।
संक्रुद्धो धर्षणां प्राप्य रौहिणेयो महाबलः ३५
धैर्यान्मनः सन्निधाय ततो वचनमब्रवीत्।
दशकोटिसहस्राणि ग्लह एको ममापरः ३६
[2]एनं सम्परिगृह्णीष्व पातयाक्षान्नराधिप।
कृष्णाक्षाँल्लोहिताक्षांश्च देशेऽस्मिंस्त्वधिपांसुले
इत्येवमाह्वयामास रुक्मिणं रोहिणीसुतः।
अनुक्त्वा वचनं किञ्चिद्बाढमित्यब्रवीत्पुनः॥
अक्षान्रुक्मी ततो[3] हृष्टः पातयामास पार्थिवः
चातुरक्षे तु निर्वृत्ते निर्जितस्य नराधिपः ३९
बलदेवेन धर्मेण नेत्युवाच ततो बलम्।
धैर्यान्मनः समाधाय स न किञ्चिदुवाच ह॥
बलदेवं ततो रुक्मी मया जितमिति स्मयन्।
बलदेवस्तु तच्छ्रुत्वा जिह्मं वाक्यं नराधिपः४१
भूयः क्रोधसमाविष्टो नोत्तरं व्याजहार ह।
ततो गम्भीरनिर्घोषा वागुवाचाशरीरिणी॥
बलदेवस्य तं क्रोधं वर्धयन्ती महात्मनः।
सत्यमाह बलः श्रीमान्धर्मेणैष पराजितः ४३
अनुक्त्वा[4] वचनं किञ्चित्प्राप्तो भवति कर्मणा
मनसा समनुज्ञातं तत्स्यादित्यवगम्यताम्॥
इति श्रुत्वा वचस्तथ्यमन्तरिक्षात्सुभाषितम्
सङ्कर्षणस्तथोत्थाय सौवर्णेनोरुणा बली ४५
रुक्मिण्या भ्रातरं ज्येष्ठं निर्जघान महीतले।
विवादे कुपितो रामः क्षेप्तारं किल रुक्मिणम्।
जघानाष्टापदेनैव प्रमथ्य[6] यदुनन्दनः॥ ४६
[7]ततोऽपसृत्य संक्रुद्धः कलिङ्गाधिपतेरपि।
दन्तान्बभञ्ज संरम्भादुन्ननाद च सिंहवत् ४७
खड्गमुद्यम्य तान्सर्वांस्त्रासयामास पार्थिवान्
स्तम्भं सभायाः सौवर्णमुत्पाट्य बलिनां वरः
गजेन्द्र इव तं स्तम्भं कर्षन्सङ्कर्षणस्ततः।
निर्जगाम सभाद्वारात्त्रासयामास कैशिकान्
रुक्मिणं निकृतिप्रज्ञं स हत्वा यादवर्षभः।
वित्रास्य विद्विषः सर्वान्सिंहः क्षुद्रमृगानिव॥
जगाम शिबिरं रामः स्वयमेव जनावृतः।
न्यवेदयत्स कृष्णाय तत्र सर्वं यथाऽभवत्॥
नोवाच स तदा कृष्णः किञ्चिद्रामं महाद्युतिः*
निगृह्य च तदाऽऽत्मानं‡ कृच्छ्रादश्रूण्यवर्तयत्
न हतो वासुदेवेन
यः पूर्वं परवीरहा।
ज्येष्ठो भ्राताऽथ रुक्मिण्या
रुक्मिणीस्नेहकारणात्×॥ ५३
स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले।
अष्टापदेन बलवान्राजा वज्रधरोपमः॥ ५४

आह्वृतिः अत्यन्तकुटिलः "ह्वृ कौटिल्ये" इत्यस्य रूपम्। चिक्षेप निनिन्द ॥ ३१ ॥ अधिपांसुले अधिकरजस्के क्रोधकाले द्यूतदेशे चेत्यर्थः ॥ ३७ ॥ चातुरक्षे चतुरङ्काङ्कितेऽक्षे निर्वृत्ते निपातिते सति उभयोर्धने प्रत्येकं दशधा कृते यदि वादी एकाङ्कं पातयेत्तदा एकमंशं धनाद्धरेत् द्व्यङ्कपाते पूर्वेण सह त्रीनंशान् त्र्यङ्कपाते पूर्वैस्त्रिभिः सह षडंशान् चतुरङ्कपाते पूर्वैः षड्भिः सह दशाप्यंशान् हरेदिति द्यूतविदां मर्यादया सर्वं धनं जितमित्यर्थः ॥ ३९ ॥ अनुक्त्वाऽपि जयं प्राप्तो भवति राम इत्यध्याहृत्य योज्यं मनसा प्रतिवादिनामिति शेषः। मनसाऽनुज्ञातमपि वाचा नाभ्यनुज्ञायत इति दौरात्म्यं तेषामिति भावः ॥ ४४ ॥ उरुणा महता अष्टापदेनेति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ४५ ॥ कालिङ्गाधिपतेर्जयत्सेनस्य ॥ ४७ ॥

$ °षां तद्राति ना°। १ ख. °न्तान्प्रद°। २ ख. एतं सं°। ३ ख. तदा हृ°। ४ ख. °नुक्त्वाऽपि ततः किञ्चित् प्रा°। ५ ख. °ष्ठं निष्पिपेष म°। ६ ख. °थ्य यदुपुङ्गवः। ७ ख. °तोऽपहृत्य सं°। ८ °म्य तांश्चापि त्रास° * इत उत्तरं 'रुक्मिणी च ततः श्रुत्वा निहतं भ्रातरं प्रियम्' इत्यधिकं खपुस्तके। ‡ °नं क्रोधाद°। × ज्येष्ठो भ्राता इत्यादि पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति।

तस्मिन्हते महावीर्ये नृपतौ भीष्मकात्मजे ।
द्रुमभार्गवतुल्ये वै द्रुमभार्गवशिक्षिते ॥ ५५
कृतौ च युद्धकुशले नित्ययाजिनि पातिते ।
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव सर्वे विमनसोऽभवन् ॥
वैशम्पायन उवाच ।
रुक्मिणी च महाभागा विलपन्त्यार्तया गिरा
विलपन्तीं तथा दृष्ट्वा सान्त्वयामास केशवः
एतत्ते सर्वमाख्यातं रुक्मिणो निधनं यथा ।
वैरस्य च समुत्थानं वृष्णिभिर्भरतर्षभ ॥ ५८
वृष्णयोऽपि महाराज धनान्यादाय सर्वशः ।
रामकृष्णौ समाश्रित्य ययुर्द्वारवतीं प्रति ५९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## बलदेवमाहात्म्यम् ।

## ६२

राजोवाच ।
भूय एव तु विप्रर्षे बलदेवस्य धीमतः ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शेषस्य धरणीभृतः
अतीव बलदेवं तं तेजोराशिमनिर्जितम् ।
कथयन्ति महात्मानं ये पुराणविदो जनाः २
तस्य कर्माण्यहं विप्र श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
अनन्तं यं विदुर्नागमादिदेवं नगेश्वरम् ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
पुराणे नागराजोऽसौ पठ्यते धरणीधरः ॥
शेषस्तेजोनिधिः श्रीमानकल्प्यः पुरुषोत्तमः ४
योगाचार्यो महावीर्यो देवमन्त्रमुखो बली ।
जरासन्धं गदायुद्धे जितवान्यो न चावधीत
बहवश्चैव राजानः प्रथिताः पृथिवीतले ।
अन्वयुर्मागधं सर्वे ते चापि विजिता रणे ६
नागायुतबलप्राणो भीमो भीमपराक्रमः ।
असकृद्बलदेवेन बाहुयुद्धे पराजितः ॥ ७
दुर्योधनस्य कन्यां तु हरमाणो न्यगृह्यत ।
साम्बो जाम्बवतीपुत्रो नगरे नागसाह्वये ॥ ८
राजभिः सर्वतो रुद्धे हरमाणो बलात्किल ।
तदुपश्रुत्य संरुद्धमाजगाम महाबलः ॥ ९
रामस्तस्य तु मोक्षार्थमागतो नालभच्च तम् ।
ततश्चुक्रोध बलवानद्भुतं चाकरोन्महम् १०
अनिवार्यमभेद्यं च दिव्यमप्रतिमं बले ।
लाङ्गलास्त्रं समुद्यम्य ब्रह्ममंत्राभिमन्त्रितम् ११
प्राकारवप्रे विन्यस्य पुरस्य च महाद्युतिः ।
प्रक्षेप्तुमैच्छद्गंगायां नगरं कौरवस्य तत् १२
तद्विघूर्णितमालक्ष्य पुरं दुर्योधनो नृपः ।
साम्बं निर्यातयामास सभार्यं तस्य धीमतः
ददौ शिष्यं तदात्मानं रामस्य सुमहात्मनः
गदायुद्धे कुरुपतिं शिष्यं जग्राह तं च सः १४
ततः प्रभृति राजेन्द्र पुरमेतद्विघूर्णितम् ।
आवर्जितमिवाभाति गङ्गामभिमुखं नृप ॥१५
इदमत्यद्भुतं कर्म रामस्य कथितं भुवि ।
भाण्डीरे कथितं राजन्यत्कृतं शौरिणा पुरा
प्रलम्बं मुष्टिनैकेन यज्ञघान हलायुधः ।
धेनुकं तु महावीर्यं चिक्षेप नगमूर्द्धनि ।
स गतायुः पपातोर्व्यां दैत्यो गर्दभरूपधृक् १७
लवणजलगमा महानदी
द्रुतजलवेगतरङ्गमालिनी ।
नगरमभिमुखं यदा हृता
हलविधृता यमुना यमस्वसा ॥ १८
बलदेवस्य माहात्म्यमेतत्ते कथितं मया ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शेषस्य धरणीभृतः ॥ १९

कृतौ सत्क्रियायां कुशले इत्येकदेशेन सम्बन्धः । नित्ययाजिनि नित्यकर्मपरे ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

६२
अथाध्याये षष्टितमे द्व्यधिकेऽस्मिन्निरूप्यते ।
बलदेवस्य माहात्म्यं भूरि भाग्यवतां प्रियम् १
भूय इति ॥ १ ॥ भीमो भीमसेनः ॥ ७ ॥ न्यगृह्यत गृहीतः कौरवैरिति शेषः ८ ॥

१ ख. वैशम्पायन उवाचेति ख. पुस्तके नास्ति । २. ख. °वं महौजसम् । वै° । ३ ख. °ज कथ्यते ध° । ४ ख. °म हलायुधः । राम° । ५ ख. ब्राह्मदंडाभिम° । ६ ° स्य प्रथि° ७ ख. °ङ्गगामिनी । न° । ८ ख. °मुखी यदा कृता ह° । ९ ख. °स्य सुमहात्मनः । इति ।

इति पुरुषवरस्य लाङ्गले-
र्बहुविधमुत्तममन्यदेव च।
यदकथितमिहाद्य कर्म ते
तदुपलभस्व पुराणविस्तरात् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवमहात्म्ये
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## नरकवधः ।

### ६३

जनमेजय उवाच।
प्रत्येत्य द्वारकां विष्णुर्हते रुक्मिणि वीर्यवान्
अकरोद्यन्महाबाहुस्तन्मे वद महामुने ॥ १
वैशम्पायन उवाच।
स तैः परिवृतः श्रीमान्पुरीं यादवनन्दनः।
द्वारकां भगवान्विष्णुः प्रत्यवैक्षत वीर्यवान् २
प्रत्यपद्यत रत्नानि विविधानि वसूनि च।
यथार्हं पुण्डरीकाक्षो नैर्ऋतान्प्रत्यवारयत् ३
तत्र विघ्नं चरन्ति स्म दैतेयाः सह दानवैः।
तांजघान महाबाहुर्वरदत्तान्महासुरान् ॥ ४
विघ्नं चास्याकरोत्तत्र नरको नाम दानवः।
त्रासनः सर्वदेवानां देवराजरिपुर्महान् ॥ ५
स बभौ मूर्तिलिङ्गस्थः सर्वदेवाधिबाधिता।
देवतानामृषीणां च प्रतीपमकरोत्तदा ॥ ६
त्वष्टुर्दुहितरं भौमः कशेरुमगमत्तदा।
गजरूपेण जग्राह रुचिराङ्गीं चतुर्दशीम् ॥ ७
प्रमथ्य तां वरारोहां नरको वाक्यमब्रवीत्।
नष्टशोकभयो मोहात्प्राग्ज्योतिषपतिस्तदा ८
यानि देवमनुष्येषु रत्नानि विविधानि च।
बिभर्ति च मही कृत्स्ना सागरेषु च यद्वसु ९
अद्यप्रभृति तानीह सहिताः सर्वनैर्ऋताः।
ममैवोपाहरिष्यन्ति दैत्याश्च सह दानवैः १०
एवमुत्तमरत्नानि वस्त्राणि विविधानि च।
स जहार तदा भौमस्तच्च नाधिचकार सः
गन्धर्वाणां च याः कन्या जहार नरको बली
याश्च देवमनुष्याणां सप्त चाप्सरसां गणाः
चतुर्दश सहस्राणि एकविंशच्छतानि च।
एकवेणीधराः सर्वाः सतीमार्गमनुव्रताः ॥ १३
वैशम्पायन उवाच।
तासां पुरवरं भौमोऽकारयन्मणिपर्वतम्।
अलकायामदीनात्मा मुरोः स्वविषयं प्रति १४
ताश्च प्राग्ज्योतिषपतिं मुरोश्चैव दशात्मजाः
नैर्ऋताश्च यथा मुख्याः पालयन्त उपासते।
स एष तमसः पारे वरदत्तो महासुरः ॥ १५
न चासुरगणैः सर्वैः सहितैः कर्म तत्पुरा।
कृतपूर्वं तदा घोरं यदकार्षीन्महासुरः ॥ १६
अदितिं धर्षयामास कुण्डलार्थे महासुरः।
यं मही सुषुवे देवी यस्य प्राग्ज्योतिषं पुरम्

इति हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२

६३

अथात्र त्रिषष्टितमे सुरेन्द्रः कृष्णमब्रवीत्।
कुण्डलान्यदितेर्मातुर्हर्तुश्चाथ निबर्हणम् १

प्रत्येत्येति ॥१॥ तैः यदुभिः ॥२॥ यानि रत्नानि प्रत्यपद्यत तानि नैर्ऋतान् प्रत्यवारयत् राक्षसैः स्वगृहे आनाय्य स्थापितवानित्यर्थः ॥ ३ ॥ मूर्तिलिङ्गस्थः दृश्यज्ञापकं सत्त्वं मूर्तीलिङ्गं तत्स्थः प्राग्ज्योतिषपुरस्थो वा बाधिता बाधकः ॥ ६ ॥ कशेरुं स्थानविशेषम् अगमत्। चतुर्दशीं सर्वदा चतुर्थ्या दशया युक्तां सा च गर्भकौमारपौगण्डसन्धि-यौवनमिति दशभ्य ऊर्ध्वं पञ्चदशभ्योऽर्वाक् चतुर्दशवार्षिकीमित्यर्थः ॥ ७ ॥ तच्च रत्नजातमाहृतमपि नाधिचकार न बुभुजे ॥ ११ ॥ एकविंशच्छतानि शताधिके द्वे चतुर्दश चेति षोडश सहस्राणि शतं च एकवेणीधराः कुमारिकाः ॥ १३ ॥ मुरोर्दैत्यस्य ॥ १४ ॥ ताः प्राग्ज्योतिषपतिं चेत्यन्वयः। स एष नरकः तमसः नीलवर्णस्य समुद्रस्य पारे तीरे ॥१५॥

१ °स्य सीरिणेर्ब° २ ख. स तैर्वृतः पुरीं गत्वा सर्वैर्याद° । ३ °नः सुरसंघानां दे° । ४ ख. °ता। मानुषणामृ° । ५ ख. एवमुक्त्वा तु वस्त्राणि रत्नानि वि°। ६ ख. सर्वाः सतां मा°।

द्वारपालाश्च चत्वारस्तस्यासन्युद्धदुर्मदाः ।
हयग्रीवो निसुन्दश्च वीरः पञ्चनदस्तथा ॥ १८
मुरुः पुत्रसहस्रैश्च वरदत्तोऽसुरो महान् ।
आदेवयानमावृत्य पन्थानं समुपस्थितः ।
वित्रासनः सुकृतिनां विरूपै राक्षसैः सह
तद्वधार्थं महाबाहुः शङ्खचक्रगदासिभृत् ।
जातो वृष्णिषु देवक्यां वसुदेवाज्जनार्दनः २०
तस्याथ पुरुषेन्द्रस्य लोकप्रथिततेजसः ।
निवासो द्वारका देवैरुपायादुपपादिता २१
अतीव हि पुरी रम्या द्वारका वासवक्षयात्
महार्णवपरिक्षिप्ता पञ्चपर्वतशोभिता ॥ २२
तस्यां देवपुराभायां
सभा काञ्चनतोरणा ।
सा दाशार्हीति विख्याता
योजनायामविस्तृता ॥ २३
तत्र वृष्ण्यन्धकाः सर्वे रामकृष्णपुरोगमाः ।
लोकयात्रामिमां कृत्स्नां परिरक्षन्त आसते
तत्रासीनेषु सर्वेषु कदाचिद्भरतर्षभ ।
दिव्यगन्धो ववौ वायुः पुष्पवर्षं पपात ह २५
ततः किलकिलाशब्दः प्रभाजालाभिसंवृतः ।
मुहूर्तमन्तरिक्षेऽभूत्ततो भूमौ प्रतिष्ठितः ॥ २६
मध्ये तु तेजसस्तस्य पाण्डुरं गजमास्थितः ।
वृतो देवगणैः सर्वैर्वासवः समदृश्यत ॥ २७
रामकृष्णौ च राजा स वृष्ण्यन्धकगणैः सह
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं पूजयन्तः सुरेश्वरम् ॥ २८
सोऽवतीर्य गजात्तूर्णं परिष्वज्य जनार्दनम् ।
सस्वजे बलदेवं च तं च राजानमाहुकम् २९
वृष्णीनन्यान्सस्वजे च यथाकालं यथावयः ।
पूजितो रामकृष्णाभ्यामाविवेश स तां सभाम्
तत्रासीनोऽभ्यलंकृत्वा सभांताममरेश्वरः ।
अर्घादिसमुदाचारं प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि* ३१

वैशम्पायन उवाच ।

अथोवाच महातेजा वासवो वासवानुजम्
सान्त्वपूर्वं करेणास्य संस्पृश्य वदनं शुभम् ॥
देवकीनन्दन वचः शृणु मे मधुसूदन ।
येन त्वाभिगतोऽस्म्यद्य कार्येणामित्रकर्शन ॥
नैर्ऋतो नरको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ।
अदित्याः कुण्डले मोहाज्जहार दितिनन्दनः ॥
देवानां विप्रिये नित्यमृषीणां च स वर्तते ।
तं च देवान्तरं प्रेक्ष्य जहि त्वं पापपूरुषम् ३५
अयं त्वां गरुडस्तत्र प्रापयिष्यति कामगः ।
कामवीर्योऽतितेजस्वी वैनतेयोऽन्तरिक्षगः ॥
अवध्यः सर्वभूतानां भौमः स नरकोऽसुरः ।
निषूदयित्वा तं पापं क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ ३७
इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो देवराजेन केशवः ।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्नरकस्य निबर्हणे ॥ ३८
ततः सहैव शक्रेण शङ्खचक्रगदासिभृत् ।
प्रतस्थे गरुडेनाथ सत्यभामासहायवान् ॥ ३९
क्रमेण सप्तस्कन्धान्स मरुतां सहवासवः ।
पश्यतां यदुसिंहानामूर्ध्वमाचक्रमे बली ४०
वारणेन्द्रगतः शक्रो गरुडस्थो जनार्दनः ।
विदूरत्वात्प्रकाशेते सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ४१
अन्तरिक्षे च गन्धर्वैरप्सरोभिश्च केशवः ।
स्तूयमानोऽथ शक्रश्च क्रमेणान्तरधीयत ४२
समाधायेतिकर्तव्यं वासवो विबुधाधिपः ।
स्वमेव भवनं प्रायात्कृष्णः प्राग्ज्योतिषं प्रति
पक्षानिलहतो वायुः प्रतिलोमं ववौ तदा ।
ततो भीमरवा मेघा बभ्रमुर्गगनेचराः ॥ ४४
क्षणेन समनुप्राप्तौ द्विजेनाकाशगेन वै ।
दूरादेव च तान्दृष्ट्वा प्रययौ यत्र ते स्थिताः ४५
अपश्यद्द्वारि तत्रस्थां हस्त्यश्वरथवाहिनीम् ।
क्षुरान्तान्मौरवान्पाशान्षट्सहस्रान्ददर्श ह

वासवक्षयात् इन्द्रालयात् ॥२२॥ सत्यभामासहायवान् इति अस्याः सत्यभामायाः पृथिव्यंशत्वात् पृथिव्याज्ञयैव तस्य मृत्युर्विहितोऽस्तीति सत्यभामाज्ञयैव तं हनिष्यामीत्याशयः ॥ ३९ ॥ सप्त स्कन्धान् आवहप्रवहादीन् वायुमार्गान् ॥ ४० मौरवान्मुरुविहितान् क्षुरान्तवदतिसूक्ष्मान्दृढतरावयवसंयोगं पाषाणादिकमपि प्रविश्य छेत्तुमर्हानित्यर्थः ॥ ४६ ॥

१ ख. ॰ पस्थिताः । वि॰ । २ ख. ॰स्य लोके प्र॰ । ३ ख. ॰त च । त॰ । ४ ख. पाण्डरं ग॰ । ५ ॰वः प्रत्यद॰ ६ ख. ॰श सभां शुभाम् । त॰ । * अत्र खपुस्तकेऽध्यायसमाप्तिः । ७ ख. तव चैवान्तरप्रेक्षी जहि तं पा॰ । ८ ख. ॰बर्हणम् । त॰ । ९ ख. स मारुतानां संवा॰ । १० ख. अथान्तरिक्षे गन्ध॰ । ११ ख. ॰मरवैर्मेघैर्बभ्र॰ । १२ ख. ॰पश्यत्पर्वतद्वारि हस्त्य॰ । १३ ख. ॰वाहनम् । क्षु॰ । १४ ख. ॰दर्श सः । वै॰ ।

वैशम्पायन उवाच।
गरुडस्योपरि श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः।
बिभ्रन्नीलाम्बुदाकारं पीतवासाश्चतुर्भुजः ४७
वनमालाकुलोरस्कः श्रीवत्साङ्कितभूषणः।
किरीटमूर्द्धा सूर्याभः सविद्युदिव चन्द्रमाः॥
ज्यां विकूजन्महाशब्दः श्रूयतेऽशनिनिःस्वनः
ज्ञात्वा च दानवः सर्वं स्वयं विष्णुरिहागतः
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो मुरुः कालान्तकोपमः
अभ्यधावत वेगेन शक्तिं गृह्य महासुरः॥ ५०
चिक्षेप सुमहाशक्तिं वज्रकाञ्चनभूषिताम्।
तामापतन्तीं शक्तिं तु महोल्कां ज्वलितामिव
समाधत्त शरं चैकं रुक्मपुङ्खं जनार्दनः।
द्विधाऽच्छिनत्क्षुरप्रेण वासुदेवः स वीर्यवान्
शक्तिं चिच्छेद तत्रासौ विद्युत्पुञ्ज इव ज्वलन्
पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो मुरुर्गृह्य महागदाम्॥ ५३
इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण विकृष्ट इव निःस्वनः।
आकर्णमुक्तं चिक्षेप अर्धचन्द्रं सुरोत्तमः॥ ५४
मध्यदेशे तु चिच्छेद गदां तां रुक्मभूषिताम्।
पुनश्चिच्छेद भल्लेन दानवस्य शिरो रणे॥ ५५
संछिद्य पाशान्सर्वास्तान्मुरुं हत्वा सबान्धवम्
सोऽश्मान्राक्षोगणान्हत्वा नरकस्य महाबलान्
शिलासंघानतिक्रम्य भगवान्देवकीसुतः।
अपश्यद्दानवं सैन्यं निसुन्दं च महाबलम् ५७
हयग्रीवं च दितिजं तथाऽन्यांश्चित्रयोधिनः।
रोधयामास तन्मार्गं स्वसैन्येन महाबलः ५८
निसुन्दो बलिनां श्रेष्ठो रथमारुह्य सत्वरम्।
जग्राह कार्मुकं दिव्यं हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ ५९
विव्याध दशभिर्बाणैर्निसुन्दो मधुसूदनम्।
केशवश्चापि सप्तत्या विव्याध निशितैः शरैः
अप्राप्तांश्चान्तरिक्षे ताञ्छरांश्चिच्छेद माधवः।
ते सर्वे सैनिकाः कृष्णं समन्तात्पर्यवारयन्॥
शरजालेन महता छाद्यमानः सुरोत्तमः।
दृष्ट्वा तान्दानवान्सर्वान्सक्रोधो मधुसूदनः ६२
ततो दिव्येन चास्त्रेण पार्जन्येन जनार्दनः।
महता शरवर्षेण वारयामास तद्बलम्॥ ६३
पञ्चपञ्चशरैस्तेषु एकैकेन च तान्बहून्।
पार्जन्यस्य प्रभावेण सर्वान्मर्मस्वताडयत ६४
दुद्रुवुर्भयसंत्रस्ता भग्नास्ते दानवा रणे।
स्वसैन्यं विद्रुतं दृष्ट्वा निश्चक्राम पुनर्मृधे॥ ६५
विसृजञ्छरवर्षाणि छादयामास केशवम्।
न विभाति रणे सूर्यो नापि व्योम दिशो दश
शरैः संछादयामास निसुन्दो गरुडध्वजम्।
सावित्रं नाम दिव्यास्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः६७
तेन बाणेन तान्बाणांश्चिच्छेद समरे हरिः।
बाणैर्बाणांश्च संछिद्य तस्य कृष्णो महाबलः
छत्रमेकेन बाणेन रथेषां च त्रिभिः शरैः।
पुनश्चिच्छेद तानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः॥ ६९
सारथिं पञ्चभिर्बाणैर्ध्वजमेकेन चिच्छिदे।
शरैकेन वपुः कृष्णः सुतीक्ष्णेन शितेन वै ७०
शिरश्चिच्छेद भल्लेन निसुन्दस्य सुरोत्तमः।
यः सहस्रसमास्त्वेकः सर्वान्देवानयोधयत्+
निसुन्दं पतितं दृष्ट्वा हयग्रीवः प्रतापवान्।
शिलां प्रगृह्य महतीं तोलयामास दानवः ७२
आविध्य सहसोऽमुञ्चच्छिलां शैलसमां प्रभुः
गृहीत्वा दिव्यपार्जन्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ७३
दिव्यास्त्रेण शिलां विष्णुः सप्तधाऽकृत तेजसा
तद्विदार्य महच्चाश्म पातयामास भूतले॥७४
ततस्तैः शार्ङ्गनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः।
यथा देवासुरं युद्धमभवद्भरतर्षभ।
नानाप्रहरणाकीर्णं तथा घोरमवर्तत॥ ७
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः। †
गरुडस्थो महाबाहुर्निजघान महासुरान् ७६
महालाङ्गलनिर्भिन्नाः शङ्खशक्तिनिपातिताः
विनेशुर्दानवाः सर्वे समासाद्य जनार्दनम् ७७
केचिच्चक्राग्निनिर्दग्धा दानवाः पेतुरम्बरात्।
संनिकर्षगताः केचिद्गतासुविकृताननाः॥७८

महालाङ्गलनिर्भिन्नाः लाङ्गलेन भूरिविदारितदेहाः शङ्खशक्तिमहानादस्तेनैव पातिताः॥ ७७॥

१ ख. °दासिभृत्। २ख. °वत्सेन्दुनिभोरसः। कि°। ३ख. °धाद्रुधिरर°। ४ख. °न्तकप्रभः। अ°। ५ख. °र्क्तिं सम°। ६ ख. पुनस्तु क्रो°। ७ ख. °ण विसृष्ट इ°। ८ ख. °र्णपूर्णं चि° ९। ख. °त्वरः। ज°। १० ख. °केषु च ता°। ११ ख. °द मधुसूदनः। बाणैर्बाणांस्तु सं°। १२ ख. °द्य तत्र क्ष°। १३ ख. °न पुनः कृ°। + यः सहस्रेति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति। १४ ख. °सा मुक्तः शिलां शैलसमप्रभः। १५ ख. °धा कृतवांस्तदा। त°। † ततः शार्ङ्गेति श्लोकार्धं खपुस्तके नास्ति। १६ ख. °क्राग्निना दग्धा दा°।

असृजञ्छरवर्षाणि वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ।
विकृताङ्गाः सुराः सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः
शोणितोक्ताः स्म दृश्यन्ते पुष्पिता इव किंशुकाः
व्यद्रवन्त सुवित्रस्ता भग्नास्त्राश्चित्रयोधिनः
पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो वायुवेगेन दानवः ।
दशव्यामोच्छ्रितं वृक्षं समारुह्य वनस्पतिम्
वृक्षमुत्पाट्य वेगेन प्रतिगृह्याभ्यधावत ।
चिक्षेप स महावृक्षं शिक्षया सुघनाकृतिः ॥८२
वृक्षवेगानिलोद्भूतः शुश्रुवे सुमहास्वनः ।
ततः शरसहस्रेण यतमानो जनार्दनः ॥ ८३
नैकधा तं प्रचिच्छेद चित्रभक्तिनिभाकृतिम् ।
पुनश्चैकेन बाणेन हयग्रीवस्य चोरसि ॥ ८४
विव्याध स्तनयोर्मध्ये सायको ज्वलनप्रभः ।
विवेश सोऽपि वेगेन हृदं भित्त्वा विनिर्गतः
तं जघान महाघोरं हयग्रीवं महाबलम् ।
अपारतेजा दुर्धर्षः स वै यादवनन्दनः ॥ ८६
मध्ये लोहितगङ्गस्य भगवान्देवकीसुतः ।
औदकायां विरूपाक्षं पाप्मानं पुरुषोत्तमः ८७
अष्टौ शतसहस्राणि दानवानां परंतपः ।
निहत्य पुरुषव्याघ्रः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ८८
हत्वा पञ्चनदं नाम नरकस्य महासुरम् ।
ततः प्राग्ज्योतिषं नाम दीप्यमानमिव श्रिया
पुरमासादयामास युद्धं तत्राभवन्महत् ।
ततः प्राध्मापयच्छङ्खं पाञ्चजन्यं महाबलः
शुश्रुवे सुमहाशब्दः संवर्तनिनदो यथा ।
श्रूयते त्रिषु लोकेषु भीमगम्भीरनिःस्वनः ।
तं श्रुत्वा नरकश्चासीत्क्रोधसंरक्तलोचनः ९१
लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वप्रतिमं रथम् ।
रत्नकाञ्चनचित्राढ्यं वेदिकाभोगविस्तरम् ९२
वज्रध्वजेन महता काञ्चनेन विराजितम् ।
हेमदण्डपताकाढ्यं वैदूर्यमणिकूबरम् ॥ ९३
युक्तमश्वसहस्रेण रथं पररथारुजम् ।
लोहजालैश्च संछन्नं चित्रभक्तिविराजितम् ॥
रथमध्यगतो वीरः ससन्ध्य इव भास्करः ।
नानाप्रहरणाकीर्णं रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ९५

वज्रं रथोरच्छदमिन्दुवर्णं
व्यानद्धमुक्तानलतुल्यतेजाः ।
किरीटमूर्द्धार्कहुताशनाभः
कर्णौ तथा कुण्डलयोज्ज्वलन्तौ ॥ ९६
धूम्रवर्णा महाकाया रक्ताक्षा विकृताननाः ।
नानाकवचिनः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ९७
खड्गचर्मधराः केचित्केचित्तूणधनुर्भृतः ।
शक्तिहस्तास्तथा केचिच्छूलहस्तास्तथाऽपरे
गजवाजिरथौघैश्च कालयन्तश्च मेदिनीम् ।
निर्ययुर्नगरात्सर्वे सुसन्नद्धाः प्रहारिणः ॥ ९९
वृतो दैत्यगणैः सार्द्धं नरकः कालसंनिभः ।
भेरीशङ्खमृदङ्गानां पणवानां सहस्रशः १००
वाद्यमानानि शुश्राव जीमूतनिनदोपमः ।
यतः कृष्णस्ततो गत्वा सर्वे ते विकृताननाः १
परिवार्य गरुत्मन्तं सर्वेऽयुध्यन्त संगताः ।
महता छादयामासुः शरवर्षेण सैनिकाः ॥ २
शक्तिशूलगदाप्रासांस्तोमरान्सायकान्बहून् ।
आकाशं छादयामासुर्विमुञ्चन्तः सहस्रशः ३
कृष्णः कृष्णाम्बुदाकारः शार्ङ्गं गृह्य धनुस्ततः
विस्फार्य सुमहच्चापं धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४
व्यसृजच्छरवर्षाणि दानवानां जनार्दनः ।
शरवर्षेण तत्सैन्यं व्यद्रवत्तु महाहवात् ॥ ५
तद्युद्धमभवद्घोरं घोररूपेण रक्षसा ।
भग्नव्यूहाश्च ते सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः ॥६
केचिच्छिन्नभुजाश्चैव छिन्नग्रीवाशिराननाः
केचिच्चक्रद्विधाछिन्नाः केचिद्बाणार्दितोरसः
केचिद्द्विधाकृताः शक्त्या
गजाश्वरथवाहनाः ।
केचित्कौमोदकीभिन्नाः
केचिच्चक्रविदारिताः ॥ ८
एवं विमथिता सर्वा नराश्वरथवाहिनी ।
तत्रासीन्नरकेणास्य युद्धं परमदारुणम् ॥ ९
यत्समासेन वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।
आसनः सुरसङ्घानां नरकः पुरुषोत्तमम् १०

लोहितगङ्गस्य सिन्धोः प्रदेशविशेषस्य मध्ये । औदकायाम् उदकपरिखायां पुर्याम् ॥ ८७ ॥ रथम् आरुरोहेति शेषः॥९५॥

१ ख. °ताक्ताश्च दृ° । २ ख. °नस्तु क्रो° । ३ ख. °न प्रगृह्य तमधावत । चि° । ४ ख. °प सुम° । ५ °यां तु घना° ६ ख. °न हृदि भि° ७ ख. °र्षः सर्वया° । ८ ख. °कश्चापि क्रो° । ९ ख. °ज्रं तथोर° । १० ख. °नुर्धराः । श° । ११ ख. °मानं स शु° १२ ङ. शार्ङ्गधन्वा इतस्ततः । वि° । १३ ख. °न्नाः शङ्खशक्तिवि° ।

योधयामास तेजस्वी मधुवन्मधुसूदनम्।
क्रोधरक्तान्तनयनो नरको घनसंनिभः॥ ११
जग्राह कार्मुकं वीरः शक्रचापमिवोच्छ्रितम्।
तथाऽर्ककिरणप्रख्यं बाणं जग्राह केशवः १२
दिव्येनास्त्रेण समरे पूरयामास तं रथम्।
उत्तमास्त्रं महापातं मुमोच नरको बली॥ १३
वज्रविस्फूर्जिताकारमायान्तं वीक्ष्य केशवः
चिच्छेदास्त्रं महाभागश्चक्रेण मधुसूदनः॥ १४
व्यहनत्स रथं चास्य शरैकेण जनार्दनः।
सरथं सध्वजं साश्वं जघान दशभिः शरैः॥
तनुत्रं चैव चिच्छेद शरेण मधुसूदनः।
ततो विमुक्तकवचः सर्पस्येव तनुर्यथा॥ १६
हताश्वोऽपि रणे वीरो वितनुत्रश्च दानवः।
जग्राह विमलज्वालं लोहभारार्पितं दृढम् १७
आविध्य सहसा मुक्तं शूलमिन्द्राशनिप्रभम्।
तदापतत्स संप्रेक्ष्य शूलं हेमपरिष्कृतम् १८
द्विधा छिन्नं क्षुरप्रेण कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
तद्युद्धमभवद्घोरं घोररूपेण रक्षसा॥ १९
शस्त्रपातमहाघातं नरकेण महात्मना।
मुहूर्तं योधयामास नरकं मधुसूदनः॥ १२०
अथोग्रचक्रश्चक्रेण प्रदीप्तेनाकरोद्द्विधा।
चक्रद्विधाकृतं तस्य शरीरमपतद्भुवि॥ २१
विभक्तं कुलिशेनैव गिरेः शृङ्गं द्विधाकृतम्।
कृष्णमासाद्य देवशं जगामास्तमिवांशुमान्॥
चक्रोत्कृन्तितगात्रोऽसौ दानवः पतितो रणे।
वज्रप्रहारनिर्भिन्नं यथा गैरिकपर्वतम्॥ २३
भूमिस्तु पतितं पुत्रं निरीक्ष्यादाय कुण्डले।
उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत्॥ २४
दत्तस्त्वयैव गोविन्द त्वयैव विनिपातितः।
यथेच्छसि तथा क्रीड बालः क्रीडनकैरिव॥
इमे ते कुण्डले देव प्रजास्तस्यानुपालय १२६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नरकवधे
त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

## पारिजातहरणम्।

## ६४

वैशम्पायन उवाच।
निहत्य नरकं भौमं वासवोपमविक्रमम्।
वासवावरजो विष्णुर्ददर्श नरकालयम्॥ १
अथार्थगृहमासाद्य नरकस्य जनार्दनः।
ददर्श धनमक्षय्यं रत्नानि विविधानि च॥
मणिमुक्ताप्रवालानि वैदूर्यस्य च सञ्चयान्।
मासारगल्वकूटानि तथा वज्रस्य सञ्चयान् ३
जाम्बूनदमयान्यस्य शातकुम्भमयानि च।
प्रदीप्तज्वलनाभानि शीतरश्मिनिभानि च ४
शयनानि महार्हाणि तथा सिंहासनानि च।
हिरण्यदण्डरुचिरं शीतरश्मिसमप्रभम्॥ ५
ददर्श तन्महच्छत्रं वर्षमाणमिवाम्बुदम्।
जातरूपस्य शुभ्रस्य धाराः शतसहस्रशः॥ ६

मधुः कैटभभ्राता तद्वत्॥ ११॥ भूमिः रूपिणी भूत्वा॥ २४॥ हे देव तस्य नरकस्य ते प्रसिद्धे॥ १२६॥ इति हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

६४
चतुःषष्टितमेऽध्याये ह्यमुष्मिन्नन्दनस्थितम्
पारिजातं समुद्धृत्य द्वारकामनयद्धरिः॥१॥
निहत्येति॥ १॥ मासारं मरकतं गल्वश्चन्द्रकान्तः वज्रं हीरः॥ ३॥

१ ख. °नो नरकः कालसं°। २ ख. ततोऽर्क°। ३ ख. °ण पुरुषोत्तमः। व्य°। ४ ख. °नत्सारार्थं चा°। ५ ख. °ताश्वो विरथो वा°। ६ ख. °पतत्तु सं°। ७ ख. उत्तमास्त्रमहापातं न°। ८ ख. चक्रोत्क्षितनिकृताङ्गमुत्तमं पतितं रणे। वज्रेणैव त्रिनिर्भिन्नं य°। ९ ख. °क्रमः। वा°। १० ख. °चयम्। मासारगलत्रार्ककुट्टांस्त था व°। ११ ख. °दण्ड रु°।

वरुणादाहृतं पूर्वं नरकेणेति नः श्रुतम् ।
यावद्रत्नं गृहे दृष्टं नरकस्य धनं बहु ॥ ७
नैव राज्ञः कुबेरस्य न शक्रस्य यमस्य च ।
रत्नसंनिचयस्तादृग्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ॥ ८
हते भौमे निसुन्दे च हयग्रीवे च दानवे ।
उपानिन्युस्ततस्तानि रत्नान्यन्तःपुराणि च ॥
दानवा हतशिष्टा ये कोशसञ्चयरक्षिणः ।
केशवाय महार्हाणि यान्यर्हति जनार्दनः १०

दैत्या ऊचुः ।

इमानि मणिरत्नानि विविधानि वहूनि च
भीमरूपाश्च मातङ्गाः प्रवालविकृतांकुशाः ११
हेमसूत्रा महाकक्षाश्चापतोमरशालिनः ।
रुचिराभिः पताकाभिः शबला रुचिरांकुशाः
ते च विंशतिसाहस्रा द्विस्तावत्यः करेणवः ।
अष्टादश सहस्राणि देशजाश्चोत्तमा हयाः १३
गोषु चापि भवेत्कामो यावत्तव जनार्दन ।
तावतीः प्रापयिष्यामो वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्
आविकानि च सूक्ष्माणि शयनान्यासनानि च
कामव्याहारिणश्चैव पक्षिणः प्रियदर्शनाः १५
चन्दनागरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्यपि ।
वसु यत्त्रिषु लोकेषु धर्मेणाधिगतं तव ॥ १६
प्रापयिष्याम तत्सर्वं वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।
देवगन्धर्वरत्नानि पन्नगानां च यद्वसु ।
तानि सर्वाणि सन्तीह नरकस्य निवेशने १७

वैशम्पायन उवाच ।

तच्च सर्वं हृषीकेशः परिगृह्य परीक्ष्य च ।
सर्वमाहारयामास दानवैर्द्वारकां पुरीम् ॥ १८
ततस्तद्वारुणं छत्रं स्वयमुत्क्षिप्य माधवः ।
हिरण्यवर्षं वर्षन्तमारुरोह विहङ्गमम् ॥ १९
गरुडं पतगश्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवाम्बुदम् ।
ततोऽभ्ययाद्गिरिश्रेष्ठमभितो मणिपर्वतम् २०
तत्र पुण्या ववुर्वाता ह्यभवंश्चामलाः प्रभाः ।
मणीनां हेमवर्णानामभिभूय दिवाकरम् ॥ २१
तत्र वैदूर्यरत्नानि ददर्श मधुसूदनः ।
सतोरणपताकानि द्वाराणि शिखराणि च ॥
विद्युद्ग्रथितमेघाभः प्रबभौ मणिपर्वतः ।
हेमचित्रवितानैश्च प्रासादैरुपशोभितः ॥ २३
तत्र ता वरहेमाभा ददर्श मधुसूदनः ।
गन्धर्वसुरमुख्यानां प्रिया दुहितरस्तथा २४
ददर्श पृथुलश्रोणीः संरुद्धा गिरिकन्दरे ।
नरकेण समानीता रक्ष्यमाणाः समन्ततः २५
त्रिविष्टपसमे देशे तिष्ठन्तीरपराजिताः ।
निर्विशन्त्यो यथा देव्यः सुखिन्यः कामवर्जिताः
परिवव्रुर्महाबाहुमेकवेणीधराः स्त्रियः ।
सर्वाः काषायवासिन्यः सर्वाश्च नियतेन्द्रियाः
व्रतोपवासतन्वङ्ग्यः काङ्क्षंत्यः कृष्णदर्शनम्
समेत्य यदुसिंहस्य सर्वाश्चक्रुः स्त्रियोऽञ्जलीन्
नरकं निहतं ज्ञात्वा मुरं चैव महासुरम् ।
हयग्रीवं निसुन्दं च ताः कृष्णं पर्यवारयन् २९
ये चासां रक्षिणो वृद्धा दानवा यदुनन्दनम् ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणिपेतुर्वयोधिकाः ३०
तासां परमनारीणामृषभाक्षं निरीक्ष्य तम् ।
सर्वासामेव सङ्कल्पः पतित्वेनाभवत्ततः ३१
तस्य चन्द्रोपमं वक्त्रं निरीक्ष्य मुदितेन्द्रियाः ।
संप्रहृष्टा महाबाहुमिदं वचनमब्रुवन् ॥ ३२
सत्यं च यत्पुरा वायुरिहास्मान्वाक्यमब्रवीत्
सर्वभूतमतिज्ञश्च देवर्षिरपि नारदः ॥ ३३
विष्णुर्नारायणो देवः शङ्खचक्रगदासिभृत् ।
स भौमं नरकं हत्वा भर्ता च भविता स वः
सुप्रियं बत पश्यामश्चिरश्रुतमरिन्दमम् ।
दर्शनेन कृतार्था हि वयमद्य महात्मनः ॥ ३५
ततस्ताः सान्त्वयामास प्रमदा वासवानुजः
सर्वाः कमलपत्राक्षीर्दृष्ट्वा चोवाच माधवः ३६
यथार्हतः पूजयित्वा समाभाष्य च केशवः ।
यानैः किङ्करसंयुक्तैरुवाह मधुसूदनः ॥ ३७

अन्तः पुराणि कन्यारत्नानि ॥ ९ ॥ शबला नानावर्णाः ॥ १२ ॥ कालीयकानि कालागरुकाष्ठानि ॥ १६ ॥ मणिपर्वतं कन्यावरोधपुरम् ॥ २० ॥ महाबाहुं कृष्णम् ॥ २७ ॥ उवाह द्वारकां प्रापयामास ॥ ३७ ॥

१ ख. न वै राज्ञा कुबेरेण न शक्रेण यमेन वा । र० । २ ख. ०नि वसूनि च । भी० । ३ ख. ०भिर्वसाना विविधाः कुशाः । ते च विं० । ४ ख. अष्टौ शतसहस्रा० । ५ ख. ०पि कृतो यावान् कामस्तव ज० । ६ ख. शीघ्रमारोहयामास द्वा० । ७ ख. ०र्यवर्णानि द० । ८ ख. ०दर्श विपुल० । ९ ख. निवसन्त्यो य० । १० ख. ०तं मत्वा मु० । ११ ख. ०त्तदा । त० । १२ ख. ०ताऽऽशु वः । सु० । १३ ख ०तः सान्त्वयित्वा यथार्हेण स० ।

किङ्कराणां सहस्राणि रक्षसां वातरंहसाम्।
शिबिकां वहतां तत्र निर्घोषः सुमहानभूत् ३८
तस्य पर्वतराजस्य शृङ्गं यत्परमार्चितम्।
विमलार्केन्दुसंकाशं मणिकाञ्चनतोरणम् ३९
सपक्षिगणमातङ्गं समृगव्यालपादपम्।
शाखामृगगणाकीर्णं सुप्रस्तरशिलातलम् ४०
न्यंकुभिश्च वराहैश्च रुरुभिश्च निषेवितम्।
सप्रपातं महासानुं विचित्रशिखरद्रुमम् ॥ ४१
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च मृगवृन्दविलोडितम्।
जीवञ्जीवकसंघैश्च बर्हिभिश्च निनादितम् ४२
तदप्यतिबलो विष्णुर्दोर्भ्यामुत्पाट्य भासुरम्।
आरोपयामास बली गरुडे पक्षिणां वरे ॥ ४३
मणिपर्वतशृङ्गं च सभार्यं च जनार्दनम्।
उवाह लीलया पक्षी गरुडः पततां वरः ॥ ४४
स पक्षबलविक्षेपैर्हिमाद्रिशिखरोपमम्।
दिक्षु सर्वासु संह्लादं जनयामास पक्षिराट् ॥
आरुजन्पर्वताग्राणि पादपांश्च समुत्क्षिपन्।
सञ्जहार महाभ्राणि विजहार च कानिचित्
विषयं समतिक्रम्य देवयोश्चन्द्रसूर्ययोः।
ययौ वातजवः पक्षी जनार्दनवशे स्थितः ४७
स मेरुगिरिमासाद्य देवगन्धर्वसेवितम्।
देवसद्मानि सर्वाणि ददर्श मधुसूदनः ॥ ४८
विश्वेषां मरुतां चैव साध्यानां च नराधिप।
भ्राजमानान्यतिक्रामदश्विनोश्च परंतप ॥ ४९
प्राप्य पुण्यतमांल्लोकान्देवलोकमरिन्दमः।
शक्रसद्म समासाद्य प्रविवेश जनार्दनः ॥ ५०
अवतीर्य स तार्क्ष्यात्तु ददर्श विबुधाधिपम्।
प्रीतश्चैवाभ्यनन्दत्तं देवराजः शतक्रतुः ॥ ५१
प्रादाय कुण्डले दिव्ये ववन्दे तं तदाऽच्युतः
सभार्यो विबुधश्रेष्ठं नरश्रेष्ठो जनार्दनः ॥ ५२
अर्चितो देवराजेन रत्नैश्च प्रतिपूजितः।
सत्यभामा च पौलोम्या यथावदभिनन्दिता ॥
वासवो वासुदेवश्च जग्मतुः सहितौ तदा।
अदित्या भवनं दिव्यं देवमातुर्महर्द्धिमत् ॥ ५४
तत्रादितिमुपास्यन्तीमप्सरोभिः समन्ततः।
ददृशाते महात्मानौ महाभागां तपोन्विताम्
ततस्ते कुण्डले दिव्ये प्रादाददितिनन्दनः।
ववन्दे तां शचीभर्ता मातरं स्वां पुरंदरः ५६
जनार्दनं पुरस्कृत्य कर्म चैव शशंस तत्।
अदितिस्तौ सुतौ प्रीत्या परिष्वज्याभिनन्द्य च
आशीर्भिरनुकूलाभिरभावप्यवदत्तदा।
पौलोमी सत्यभामा च प्रीत्या परमया युते
अगृह्णीतां वरारोहा देव्यास्ते चरणौ शुभौ।
ते चाप्यभ्यवदत्प्रेम्णा देवमाता यशस्विनी ॥
यथावदब्रवीच्चैव जनार्दनमिदं वचः।
अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्च भविष्यसि ६०
यथैव देवराजोऽयमजितो लोकपूजितः।
भवत्वियं वरारोहा नित्यं च प्रियदर्शना ६१
सर्वलोकेषु विख्याता दिव्यगन्धा मनोरमा।
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सुभगा स्थिरयौवना
जरां न यास्यति वधूर्यावत्त्वं कृष्ण मानुषः ॥
एवमभ्यर्चितः कृष्णो देवमात्रा महाबलः
देवराजाऽभ्यनुज्ञातो रत्नैश्च प्रतिपूजितः।
वैनतेयं समारुह्य सहितः सत्यभामया ॥ ६४
देवाक्रीडं परिक्रामन्पूज्यमानं सुरर्षिभिः।
स ददर्श महाबाहुराक्रीडे वासवस्य ह ॥ ६५
दिव्यमभ्यर्चितं देवैः पारिजातं महाद्रुमम्।
नित्यपुष्पधरं दिव्यं पुण्यगन्धमनुत्तमम् ॥ ६६
यमासाद्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम्
संरक्ष्यमाणं देवैस्तं प्रसह्यामितविक्रमः ॥ ६७
उत्पाट्यारोपयामास विष्णुस्तं गरुडोपरि।
सोऽपश्यत्सत्यभामा च दिव्यमप्सरसां गणम्
पृष्ठतः सत्यभामा च
दिव्या योषा च वीक्षिताम्।
प्रायात्ततो द्वारवतीं
वायुजुष्टेन वै पथा ॥ ६९
श्रुत्वा तं देवराजस्तु कर्म कृष्णस्य तत्तदा।
अनुमेने महाबाहुः कृतकर्मेति चाब्रवीत् ॥ ७०
सं पूज्यमानस्त्रिदशैः सप्तर्षिगणसंस्तुतः।
प्रतस्थे द्वारकां कृष्णो देवलोकादरिन्दमः ७१
सोऽभिपत्य महाबाहुर्दीर्घमध्वानमल्पवत्।
पूजितो देवराजेन ददृशे यादवीं पुरीम् ७२

जीवञ्जीवकश्चकोरः ॥ ४२ ॥ भ्राजमानानि समानि ॥४९॥ सः कृष्णः सत्यभामा चापश्यत् ॥ ६८ ॥

१ ख. सुप्र°। २ °न्दमः श° ३ ख. °दर्श त्रिदशाधि°। ४ ख. प्रदा°। ५ ख. °वन्दे तमथाच्युतः। स°। ६ ख. देव्यास्तु च°। ७ ख. °तः। तव चेयं व°। ८ ख. °स्य च। दि°। ९ ख. °स गरुडे तं महाद्रुमम्। सोऽ°। १० ख. संपूज्यमानस्त्रि°।

तथा कर्म महत्कृत्वा भगवान्वासवानुजः । उपायाद्द्वारकां कृष्णः श्रीमान्गरुडवाहनः ७३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे
द्वारकाप्रवेशे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## पारिजातनिबंधनः सत्याकोपः ।

## ६५

जनमेजय उवाच ।

प्रादुर्भावे मुनिश्रेष्ठ माथुरे चरितं शुभम् ।
शृण्वन्नैवाधिगच्छामि तृप्तिं कृष्णस्य धीमतः
द्वारकायां निवसतः कृतदारस्य षड्गुणम् ।
चरितं ब्रूहि कृष्णस्य सर्वं हि विदितं तव २

वैशम्पायन उवाच ।

जनमेजय कृष्णस्य कृतदारस्य भारत ।
निबोध चरितं चित्रं तस्यैव सदृशं प्रभो ॥ ३
प्राप्तदारो महातेजा वासुदेवः प्रतापवान् ।
रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप ४
उपवासावसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन् ।
तर्पयिष्यन्स्वयं विप्राञ्जगाम मधुसूदनः ॥ ५
कुमाराः प्रययुस्तत्र पुत्रभ्रातर एव च ।
प्रेषिता वासुदेवेन नारदस्याभ्यनुज्ञया ॥ ६
षोडश स्त्रीसहस्राणि जग्मुरेव च धीमतः ।
ऋद्ध्या परमया राजन्विष्णोरेवानुरूपया ॥७
ततस्तत्र द्विजातीनां कामान्प्रादादधोक्षजः ।
अर्थिनां धर्मनित्यानां बन्दिनामिष्टवादिनाम्
कल्याणनामगोत्राणां महतां पुण्यकर्मणाम् ।
यौनैः श्रौतैश्च मार्खैश्च शुद्धानां कुरुनन्दनः ९
तर्पयित्वा द्विजान्कामैरिष्टैरिष्टः सतां गतिः
ज्ञातीन्संतर्पयामास यथार्हं भक्तवत्सलः १०
उपवासावसानेऽथ भगवान्स विशेषतः ।
बहु मेने प्रियां भार्यां रुक्मिणीं भीष्मकात्मजाम्

वसतस्तस्य कृष्णस्य
सदारस्यामितौजसः ।
सहासनिस्य रुक्मिण्या
नारदोऽभ्याययौ मुनिः ॥ १२

आगतं चाप्रमेयात्मा मुनिमिन्द्रानुजस्तदा ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना अर्चयामास केशवः १३
सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यं तमः सताम्
पारिजाततरोः पुष्पं ददौ कृष्णाय भारत १४

तद्वृक्षराजकुसुमं
रुक्मिण्याः प्रददौ हरिः ।
पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य
भोज्या नरवराऽभवत् ॥ १५

प्रतिगृह्य तु तत्पुष्पं कामारणिरनिन्दिता ।
शिरस्यमलपत्राक्षी ददौ कृष्णेङ्गितानुगा ॥१६
त्रैलोक्यरूपसर्वस्वं नारायणमनोहरा ।
शुशुभे देवपुष्पेण द्विगुणं भैष्मकी तदा ॥ १७

---

इति हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५

पञ्चषष्टितमेऽध्याये द्युतरोः पुष्पमर्थिनी ।
रुक्मिणी हरिणा श्रुत्वा रुष्टा सत्येति वर्ण्यते॥
प्रादुर्भाव इति ॥ १ ॥
षड्गुणम्—

" ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीरणा ॥ "
इति षड्विधैश्वर्यमुक्तम् । यद्वा षडङ्गानि च ।
"सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विभुज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥"
इति वायुपुराणोक्तानि ॥ २ ॥ अवसानं व्रतपारणाम् ॥ ५ यौनैः योनिसंबन्धैः श्रौतैः अध्ययनसंबन्धैः मार्खैः आर्त्विज्यसंबन्धैः ॥ ९ ॥ हे नरवर ॥१५॥

---

१ ख. °तां हरिः । ज्ञा° । २ ख. सुखासी° । ३ ख. °भ्यागमत्ततः । आ° । ४ ख. °ह्य ततः पु° ।

तां नारदस्तथोवाच मुनिर्ब्रह्मसुतस्तदा।
तवैवौपयिकं पुष्पमेकं देवि पतिव्रते ॥ १८
अलंकृतं पुष्पमेतत्संसर्गात्तव सर्वथा।
अत्यर्हा च मता मे त्वमेतत्पुष्पाद्धतव्रते ॥ १९
कल्याणगुणसंपन्ने सततं भर्तृवत्सले।
अम्लानमेतत्सततं पुष्पं भवति कामिनि ॥२०
संवत्सरपरं कालं कालज्ञे गुणसंमते।
ईप्सितानपि गन्धांश्च ददाति वदतां वरे २१
शीतोष्णे चेच्छिते देवि
पुष्पमेतत्प्रयच्छति।
स्रवत्यपि रसान्देवि
मनसा काङ्क्षितान्वरान् ॥ २२
सेव्यमानं च सौभाग्यं ददाति वरवर्णिनि।
स्रवत्यपि तथा गन्धानीप्सितान्प्रीतिवर्द्धनान्
यानि यानि च पुष्पाणि त्वं देव्यभिलषिष्यसि
कुसुमं वृक्षराजस्य तानि तानि प्रदास्यति २४
एतदेव भगाधानं धर्मिष्ठे पुत्रदं तथा।
मार्ति च नाशुचे धत्ते धार्यमाणं सदा शुभे २५
यद्यदिच्छसि वर्णं च तत्सर्वं धारयिष्यति।
स्वल्पं वा यदि वा स्थूलं छन्दतस्ते भविष्यति
अनिष्टगन्धहरणं तत्समं गन्धवर्द्धनम्।
प्रदीपकर्म रात्रौ च करोति कमलेक्षणे ॥ २७
संतानकस्रजो मालां पुष्पवस्त्रादि वाऽच्युतम्
पुष्पमण्डपमुख्यानि चिन्तितेन प्रदास्यति २८
बुभुक्षा वा पिपासा वा ग्लानिर्वाऽप्यथवा जरा
देववद्धारयन्त्यास्ते स्वच्छन्देन भविष्यति
अनुगीतानि गीतानि दास्यत्यपि च चिन्तिते
सुवादित्रान्सुमधुरांस्तथैव तव संमतान् ॥ ३०
पूर्णे संवत्सरे देवि पुष्पमेतत्तवान्तिकात्।
निर्वत्स्यते तरुवरं समये न प्रयास्यति ॥ ३१
कृतिरेषा हि भद्रं ते पारिजातस्य सुप्रभे।
निसर्गतः सर्गकृता सत्कारार्थेऽसुरद्विषाम् ३२
उमा देववरस्येष्टा हिमालयसुता सती।
धारयन्तीश्वरी नित्यं पुष्पाण्येतानि सुप्रभे
अदितिश्च सपौलोमी महेन्द्रसुरतारणी।
सावित्री देवमाता च श्रीश्च सर्वगुणोचिता ३४
देवपत्न्यस्तथैवान्या देवाश्च वसुदेवताः।
संवत्सरपरः कालः सर्वेषां न तु संशयः ॥३५
षोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये त्वं खलु वर्तसे।
ज्येष्ठां वासुदेवस्य वेद्मि त्वां भोजनन्दिनि
सपत्न्यस्ते गुणोपेते सर्वाः सर्वेश्वरप्रिये।
अवमानावलेकेन त्वया सिक्ताद्य भामिनि ३७
प्रकाशमद्य सौभाग्यमनिवार्यं यशश्च ते।
मन्दारकुसुमं दत्तं यत्ते मधुनिघातिना ॥ ३८
अद्य सात्राजिती देवी ज्ञास्यते वरवर्णिनी।
सौभाग्याद्यं सदा वेत्ति याऽऽत्मानं सुभगं सती
साम्बमाता च गान्धारी
भार्याश्चान्या महात्मनः।
सौभाग्यार्थोद्यताकाङ्क्षा-
मद्यभोक्ष्यन्ति निःस्पृहाः ॥ ४०
सौभाग्यैकरथो जैत्रस्तव देव्यद्य निःसृतः।
मनोरथरथानां यः सहस्रैरपि दुर्जयः ॥ ४१
अद्याहमवगच्छामि
सर्वथा सर्वशोभने।
आत्मा द्वितीयः कृष्णस्य
भोजे त्वमिति भामिनि ॥ ४२
त्रैलोक्यरत्नसर्वस्वमददाद्यत्तवाच्युतः।
जीवितातिशयस्तेन त्वया प्राप्तो हरिप्रिये ४३
नारदेनैवमुक्तं तु तथ्यं वाक्यं नराधिप।
तत्रस्थाः शुश्रुवुः प्रेष्याः प्रेषिताः सत्यभामया
देवीनां च तथाऽन्यासां पत्नीनां च विशांपते
दृष्ट्वा ताः सविशेषं च नारदेनाभ्युदाहृतम् ४५

---

आपयिकं योग्यम् ॥ १८ ॥ भगाधानम् ऐश्वर्याधायकम् ॥ २५ ॥ सुवादित्रानिति पुंस्त्वमार्षम् ॥ ३० ॥ कृतिः स्वभावः सामर्थ्यमित्यर्थः। सर्गकृता ब्रह्मणा कृतेति शेषः ॥ ३२ ॥ महेन्द्रस्य सुरता च अरणिश्चेति सुरतारणी स्त्री च माता चेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ वसुदेवताः वसुमुख्याः तेषां कालो ब्राह्ममानेन संवत्सरः पर उत्कृष्टो न ततोऽधिकोऽप्यस्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ भोजनन्दिनि हे रुक्मिणि ॥ ३६ ॥ अद्येति च्छेदः। सन्धिरार्षः ॥ ३७ ॥ साम्बमाता जाम्बवती ॥ ४० ॥ निःसृतः प्रसृतः ॥ ४१ ॥ हे भोजे भोजकन्ये ॥ ४२ ॥

---

१ ख. °माणं तदा शु° । २ ख. °रणमेतत्सद्गन्ध° । ३ ख. °दि चाच्यु° । ४ ख °स्य सुव्रते । नि° । ५ ख. °माचलसु° । ६ ख. °रयेदीश्व° । ७ ख. °गुणोदिते । दे° । ८ ख. °सां सप° ।

तच्च श्रुत्वा मुनिखिलं प्रेष्याभिः स्त्रीस्वभावतः
प्रकाशीकृतमेवासीद्विष्णोरन्तःपुरे तदा ॥ ४६

कर्णाकर्णि ततो देव्यः कौलीनमिव संघशः।
मन्त्रयाञ्चक्रिरे दृष्टा रुक्मिण्यतिगुणोदयम् ४७

अर्हेति पुत्रमातेति ज्येष्ठेति च समागताः।
प्रायेण प्रवदन्ति स्म दृष्टा दामोदरस्त्रियः ४८

ममृषे न सपत्न्यास्तु तत्सौभाग्यगुणोदयम्।
सत्यभामा प्रिया नित्यं विष्णोरतुलतेजसः॥

रूपयौवनसम्पन्ना[१] स्वसौभाग्येन गर्विता।
अभिमानवती देवी श्रुत्वैवेर्ष्यावशं गता ॥ ५०

समुत्सृजन्ती वसनं सकुंकुमं
शुचिस्मिता शुक्लतमैकमंशुकम्।
जग्राह रोषाकुलितेन चेतसा
वह्नेस्तदा श्रीरिव वर्द्धितेन्धना[२] ॥ ५१

दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्द्धता
ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव।
क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्तं
विवेश तारेव घनं सतोयम् ॥ ५२

बद्ध्वा ललाटे हिमचन्द्रशुक्लं[५]
दुकूलपट्टं प्रियरोषचिह्नम्।
पर्यन्तदेशं सरसेन देवी
विलिप्य सा लोहितचन्दनेन ॥ ५३

संस्मृत्य संस्मृत्य शिरः सरोषं
प्रकम्पमाना समुपोपविष्टा।
दीर्घोपधाने शयनेऽपनीय
विभूषणान्येव निबद्धवेणी ॥ ५४

अकारणार्थेन विकृष्यमाणा
प्रेष्या जनस्याभिजनान्विताऽपि।
विचूर्णयामास कुशेशयं सा
निःश्वस्य निःश्वस्य नखैर्नतभ्रूः ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## श्रीकृष्णेन भामाक्रोधकारणप्रश्नः।

## ६६

वैशम्पायन उवाच।
उपविष्टं मुनिं ज्ञात्वा रुक्मिण्या सह केशवः
निश्चक्रामाप्रमेयात्मा व्यपदेशेन सर्ववित् ॥ १

जगाम त्वरितश्चैव सत्यभामागृहं महत्।
रम्ये रैवतकोद्देशे निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २

अभिमानवतीमिष्टां[६] प्राणैरपि गरीयसीम्।
जानन्सात्राजितीं विष्णुर्विवेश शनकैरिव ३

रुषितामिव तां देवीं स्नेहात्सङ्कल्पयन्निव।
भीतभीतः स शनकैर्विवेश[७] मधुसूदनः ॥ ४

सेवकं द्वारदेशे तु तिष्ठेत्युक्त्वा विवेश ह।
नारदस्योपचारार्थं प्रद्युम्नं विनियुज्य सः ॥ ५

स ददर्श प्रियां दूरात्क्रोधागारगतां तदा।
प्रेक्ष्यामिव स्थितां[८] कोपान्निःश्वसन्तीं मुहुर्मुहुः

---

कौलीनं कुलगुह्यं देव्यः कृष्णपत्न्यः ॥ ४७ ॥ सकुङ्कुमं कुङ्कुमाक्तं शुक्लतमं च तदेकं च शुक्लतमैकम् अंशुकं वस्त्रम् इदं रोषचिह्नम् ॥ ५१ ॥ क्रोधगृहम् असंस्कृतं शून्यगृहम् ॥ ५२ ॥ पर्यन्तदेशं ललाटप्रान्तदेशम् ॥ ५३ ॥ कुशेशयं मुखकमलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

एतस्मिन्षट्षष्टितमे गत्वा भामागृहे हरिः
तस्यै ह्यपृच्छद्रोषस्य कारणं चेति वर्ण्यते१

उपविष्टमिति ॥ व्यपदेशेन व्याजान्तरेण सर्ववित् सत्यभामाभाववित् ॥ १ ॥ विवेश आससाद ॥ ३ ॥

---

१ ख. °ना सौभाग्येन च ग°। २ ख. °व वर्धितानना। द°। ३ ख. °वशमागता। स°। ४ ख. °ता सेर्ष्या°। ५ ख. °न्द्रशुभ्रं दु°। ६ ख. °वतीं देवीं प्राणेभ्योऽपि गरी°। ७ ख. °श यदुनन्दनः। द्वारकं द्वा°। ८ ख. °तां क्रोधाग्नि°।

करजाग्रावलीढं तु पङ्कजं मुखपङ्कजे ।
संश्लेषयित्वा निःश्वस्य[1] विहसन्तीं पुनः पुनः ७
किंचिदाकुलिताग्रेण चरणेन वसुन्धराम् ।
कृत्वा पृष्ठेऽथ वदनं[2] विहरन्तीं पुनः पुनः ॥ ८
करपद्मे पुनः सव्ये मुखपद्मं निवेश्य च ।
वनितां[3] चारुसर्वाङ्गीं ध्यायन्तीं कमलेक्षणाम्
सरसं चन्दनं गृह्य प्रेष्याहस्तादनिन्दिताम् ।
प्रह्लादयित्वा हृदयं क्षिपन्तीं निर्दयं पुनः १०
पुनरुत्थाय शयनात्पतन्तीं च पुनः पुनः ।
तांस्ताश्चेष्टाः[4] प्रियायाश्च तथाऽन्या ददृशे हरिः
अवगुण्ठ्य यदा वक्त्रमुपधाने न्यवेशयत् ।
इदमन्तरमित्येवं तदा[5] गत्वा जनार्दनः ॥ १२
प्रेष्यार्जनं[6] स संज्ञाय अनाख्येयोऽस्मि संज्ञया
स शङ्कितप्रचारश्च[7] वारितोऽन्वगमत्स ताम् ॥
ग्रहाय व्यजनं चैव स्थित्वा स परिपार्श्वतः ।
शनैरिवासृजद्वातं जहास शनकैरिव ॥ १४
स पारिजातपुष्पस्य संसर्गाद[8]नुवासितः ।
बभार भगवान्गन्धं दिव्यं मानुषदुर्लभम् १५
अत्यद्भुतं[9] सुगन्धं च जिघ्रित्वा विस्मयान्विता
अपावृणोन्मुखं सत्या किमेतदिति चाब्रवीत
सोत्थिता पृष्ठतो देवमपश्यन्ती शुचिस्मिता ।
पर्यपृच्छदथो प्रेष्या गन्धस्य[10] प्रभवं तदा ॥ १७
ताः पृष्टास्त्वप्रभाषन्त्यो जानुभ्यां धरणीं गताः
अधोमुख्यस्ततस्तस्थुः कृताञ्जलिपुटास्तदा १८
तदपूर्वमदृष्ट्वैव गन्धं मुञ्चति मेदिनी ।
कथमेकतरस्तस्या गन्धोऽयमिति तत्खलु १९
किं त्विदं स्यादिति च सा
विवेक्षन्ती समन्ततः ।
ददर्श केशवं देवी
सहसा लोकभावनम् ॥ २०
युज्यतीति ततोवाच सहसा[11]ऽस्राविलेक्षणा ।
अवतिक्तेव[12] रोषेण बभूव प्रणयान्विता ॥ २१
सा प्रस्फुरितचार्वोष्ठी निःश्वस्याधोमुखी तदा
मुहूर्तमसितापाङ्गी तस्थावन्यमुखी शुभा २२
निबध्य भ्रुकुटिं वामां सम्यग्विक्षिप्य लोचने
निवेश्य वदनं हस्ते शोभसीत्यब्रवीद्धरिम् २३
तस्याः सुस्राव नेत्राभ्यां वारि प्रणयकोपजम् ।
कुशेशयपलाशाभ्यामवश्यायजलं यथा ॥ २४
समुत्पत्य जलं तत्र पतितं वदनाम्बुजात् ।
प्रतिजग्राह पद्माक्षः कराभ्यामतिसत्वरः २५
अथोरसि पतत्तोयं श्रीवत्साङ्कोऽम्बुजेक्षणः ।
प्रियानयनजं देवः परिमृज्ये[13]दमब्रवीत् ॥ २६
स्रवत्यसितपत्राक्षि किमर्थं तव भामिनि ।
तोयं सुन्दरि नेत्राभ्यां पुष्कराभ्यामिवोदकम्
प्रभाते पूर्णचन्द्रस्य मध्याह्ने पङ्कजस्य च ।
बिभर्ति तव किं वक्त्रं वपुस्तव मनोहरे ॥ २८
किमर्थं कौङ्कुमं वासो महाराजतमेव च ।
नानुगृह्णासि सुश्रोणि शुक्लं वासोऽनुगृह्यते २९
वासस्येते तवाभीष्टे महारजतकौङ्कुमे ।
देवाभिगमनादूर्ध्वं शुक्लं नेष्टं हि[13] तत्क्रियाः

पङ्कजं क्रीडाकमलं विहसन्तीं सपत्नी मत्तोऽपि सौभाग्याधिक्यं प्राप्तवतीत्याश्चर्येणेति भावः ॥ ७ ॥ वसुंधरां लिखन्तीमिति शेषः । पृष्ठे इति तिर्यक्त्वस्योपलक्षणम् ॥ ८ ॥ प्रह्लादयित्वा चन्दनस्तुत्या प्रेष्यां स्तुत्वाऽपि विक्षिपन्तीं निंदन्तीं तेन भ्रान्तत्वमस्याः व्यक्तम् ॥ १० ॥ अवगुण्ठ्य वस्त्रेणावृत्य उपधाने उच्छीर्षके अन्तरमवकाशम् ॥ १२ ॥ संज्ञाय संकेत्य तां सोऽन्वगमत् ॥ १३ ॥ ग्रहाय गृहीत्वा ॥ १४ ॥ गन्धाश्रयमदृष्ट्वा मेदिन्येव गन्धं मुञ्चतीति तर्कयति कथमिति । एकतरोऽतिशयिततरः ॥ १९ ॥ विवेक्षन्ती व्यवेक्षमाणा । भागुरिमतेनाकारलोपः अनुदात्तेत्त्वलक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वात्परस्मैपदम् ॥२०॥ युज्यतीति उवाच सद्योऽस्राविलेक्षणाभूत् न तु अन्यत् वक्तुमशकत् ॥ २१ ॥ अन्यमुखी कृष्णमनवेक्षमाणा ॥२२॥ शोभसीत्युपलम्भार्थे न तु रञ्जनार्थम् ॥ २३ ॥ उरसि परिमृज्येति स्नेहातिशयसूचनम् ॥ २६ ॥ वपुः स्वरूपम् ॥ २८ ॥ कुङ्कुमेन रक्तं कौङ्कुमं पीतारुणमित्यर्थः । महारजतेन रक्तद्रव्यविशेषेण रक्तं महाराजतं रक्तकौसुम्भमित्यर्थः ॥२९॥ देवेति । देवपूजायामेव शुक्लमिष्टं नान्यदित्यर्थः ॥ ३० ॥

१ ख. °स्य विहरन्तीं पु° । २ ख. °नं विहसन्ती पु° । ३ ख. विविक्ते चा° । ४ ख. तास्ता ज्येष्ठास्तथान्याश्च प्रियाया दद° । ५ ख. °वं ततो मत्वा ज° । ६ ख.° जनं संज्ञयाथ नाख्येयोऽस्मी ति संज्ञपन् । स° । ७ ख. °श्च त्वरितोऽन्तिकमभ्ययात् । ग्र° । ८ ख. °स्य संस्पर्शेनानुवा° । ९ ख. °त्यद्भुततमं गन्धं जि° । १० ख. °स्य प्रभवं त° । ११ ख. °च मुक्त्वा स्रा° । १२ ख. °वसिक्ते° । १३ ख. परिगृह्येदम° । १४ ख. हि ते प्रिये ।

किञ्चानाभरणं गात्रं सुगात्रि तव कथ्यताम् ।
चित्रकस्थानमाक्रान्तं कस्मा[1]दवरवर्णिनि ॥३१
श्वेतेन तव[2] पादेन वाससा प्रियदर्शने ।
ललाटं सेव्यते कस्माच्चन्दनेन सुगन्धिना ३२
सरसेनायतापाङ्गि कान्तेन हृदयप्रिये ।
प्रभोपमर्दं केना[3]पि कारणेनाननस्य च ।
करोषि मम[4] वाऽत्यर्थं मनो ग्लापयसि प्रिये
प्रसृतश्चन्दनरसः कपोलप्रणयी तव ॥
पत्रलेखासपत्नत्वं प्राप्तो नातिविराजते ॥ ३४
रत्नैश्चाभरणैर्मुक्ता[5] तव ग्रीवा न शोभते ।
ग्रहनक्षत्ररहिता द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥ ३५
पूर्णचन्द्रसपत्नेन स्मेरेणाबहुभाषिणा ।
किमु नो भाषसे माऽद्य मुखेनोत्पलगन्धिना
अर्द्धाक्षणाऽपि हि तावन्मां किमर्थं न निरीक्षसे
मुञ्चस्येव सनिश्वासं तोयमञ्जनदुर्दिनम् ॥ ३७
अलमिन्दीवरश्यामे रुदितेन मनस्विनि ।
जलमञ्जनकल्माषं मा मोक्षीराननाद्विषम् ॥३८
त्वदीयोऽहं यदा[6] देवि ख्यातो जगति किङ्करः
न ज्ञापयसि किं मां त्वं पुरेव वरवर्णिनि ३९
किमकार्षमहं देवि विप्रियं तव भामिनि ।
येनातिमात्रमात्मानमायासयसि सुंदरि ॥ ४०
मनसा कर्मणा वाचा न त्वामतिचराम्यहम् ।
सर्वथा सर्वचार्वङ्गि सत्यमेतद्[7]ब्रवीम्यहम् ॥ ४१
बहुमानोपमान्यासु स्त्रीषु[8] सर्वासु शोभने ।
स्नेहश्च बहुमानश्च त्वा.ृतेऽन्यासु नास्ति मे ४२
नैव त्वां मदनो जह्यान्मृतेऽपि मयि मामकः ।
इति मे निश्चितं विद्धि चेतः सुरसुतोपमे ४३
क्षमादयश्च मेदिन्यां शब्दाद्याश्चाम्बरे गुणाः
ध्रुवं पङ्कजगर्भाभे त्वयि स्नेहस्तथा मम ॥ ४४
रुचिरग्नौ यथा दिव्या प्रभा चैव दिवाकरे ।
कान्तिश्च शाश्वती चन्द्रे स्नेहस्त्वयि तथा मम
एवंवादिनमात्मेष्टं सत्यभामा जनार्दनम् ।
शनैरुवाच नेत्राभ्यां प्रमृज्य सुभगा जलम्
मदीयस्त्वमिति ह्यासीन्मम नित्यं मनः प्रभो
अद्य साधारणं स्नेहं त्वयि ताव[9]द्गताऽस्म्यहम्
नाज्ञासिषमहं पूर्वमनित्यं कालपर्ययम् ।
अद्य लोकगतिं कृत्स्नामवगच्छामि न ध्रुवम्[10]
अमृताया द्वितीयोऽपि जन्मौ[11]हि मम सर्वथा ।
किमत्र बहुनोक्तेन हृदयं वेद्मि तेऽच्युत ॥ ४९
वाङ्मात्रमेव पश्यामि माधुर्यं संप्रयुज्यसे[12] ।
मयि स्नेहश्च कृतकस्तवान्यत्र न कृत्रिमः ॥ ५०
ऋजुस्वभावां भक्तां च सर्वथा पुरुषोत्तम ।
अवजानासि जानन्[13]मां कैतवीं वृत्तिमास्थितः
एतावत्खलु पर्याप्तं दृष्टं द्रष्टव्यमव्ययम् ।
श्रुतं चाप्यथ यच्छ्राव्यं दृष्टः स्नेहफलोदयः ५२
यदि त्वहमनुग्राह्या मामनुज्ञातुमर्हसि ।
तपस्येऽहं परं कृत्वा निश्चयं पुरुषोत्तम ॥ ५३
भर्तुश्छन्देन नारीणां तपो वा व्रतकानि वा ।
निष्फलं खलु यद्भर्तुरच्छन्देन क्रियेते[14] हि ५४
इतीदमुक्त्वा पुनरेव शोभना
मुमोच तोयं नयनोद्भवं सती ।
ग्रहाय पीतं हरिवाससः शुभा
पटान्तमाधाय मुखे शुचिस्मिता ५५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

चित्रकस्थानं पत्रलेखास्थानम् आक्रान्तमश्रुलिप्तमित्यर्थः । अवरो धूसरो वर्णः देहकान्तिस्तद्वति हे अवरवर्णिनि ॥३१॥ रत्नैश्च रत्नजातसम्बन्धिभिः ॥ ३५ ॥ स्मेरेण उत्फुल्लेन । माद्य मामद्य ॥ ३६ ॥ तोयमश्रु अञ्जनेन दुर्दिनं मलिनम् ॥ ३७ ॥ द्विषमित्यदन्तत्वं कप्रत्ययान्तत्वात् ॥ ३८ ॥ मदनो नैव जह्यादित्यरतियौवनं वा तव मास्त्वित्यर्थः ॥ ४३ ॥ अमृतायाः जीवन्त्याः मम द्वितीयस्त्वमिति । अपिशब्दात्तवाप्यहमेव द्वितीयेति मया स्वजन्म औहि अतर्कि । यथाऽहं त्वदन्यं न जाने एवं त्वमपि मदन्यां न जानासीत्येवमहं नित्यं तर्कितवतीत्यर्थः । जन्मौहि पुंस्त्वमार्षमिति प्राञ्चः ॥ ४९ ॥ ग्रहाय आदाय हरिवाससः पटान्तम् अञ्चलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीनीलकण्ठीये भारतभावदीपे खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

१ ख. °स्माच्च वर° । २ ख. °व पट्टेन वा° । ३ ख. °नाथ का° । ४ ख. °म चात्य° । ५ ख. °क्ता श्रोणिस्ते नातिशोभिता । ग्र° । ६ ख. °हं यथा दे° । ७ ख. °द्ब्रवीमि ते । ब° । ८ ख. °षु सर्वाङ्गशोभने । स्ने° । ९ ख. °ताऽहम् । ना° । १० ख. ध्रुवाम् । अ° । ११ ख. °पि जन्युर्हि म° । १२ ख. °ज्यते । म १३ ख. °नन्मे कै° । १४ ख. °त इ । इ° ।

## पारिजातोत्पत्तिकथनम्।

### ६७

वैशम्पायन उवाच।
नारायणः सत्यभामां पुनरेवैष भारत।
प्रोवाच प्रणयात्क्रुद्धामभिमानवतीं सतीम् ॥१
श्रीभगवानुवाच।
दहन्तीव ममाङ्गानि शोकः कमललोचने।
किमु तत्कारणं येन त्वमेवमतिविक्लवा ॥ २
शापितासि मम प्राणैराचक्ष्वानत्ययो यदि
श्रोतव्यं यदि भक्तेन भर्त्रा सर्वाङ्गशोभने ॥ ३
ततः प्रोवाच भर्तारं सत्या सत्यव्रते स्थितम्।
बाष्पगद्गदया वाचा तथैवाधोमुखी स्थिता ४
त्वयैव स्थापितं पूर्वं सौभाग्यं मम मानद।
जगत्यमलपत्राक्ष यत्ख्यातं केशिनाशन ॥ ५
शिरो वहामि चेष्टत्वात्तवाहं देव गर्विता।
सर्वसीमन्तिनीमध्ये स्पृहणीयाऽस्मि सर्वथा ६
साऽहमद्यावहास्यामि सपत्नीनां जनस्य च।
इति प्रेष्याभिराख्यातं श्रुत्वा तथ्यं ततस्ततः
यत्पारिजातकुसुमं दत्तवान्नारदस्तव।
तत्किलेष्टजने दत्तं त्वयाऽहं परिवर्जिता ॥८
रत्नातिशयदानेन तस्यामभ्यधिकः किल।
स्नेहश्च बहुमानश्च प्रकाशं गमितस्त्वया ॥ ९
तामस्तौषीत्समक्षं ते प्रियां स किल नारदः।
तमश्रौषीश्च हृष्टस्त्वं प्रियायाः संस्तवं किल
स्तोतव्यो यदि तावत्स नारदेन तवाग्रतः।
दुर्भगोऽयं जनस्तत्र किमर्थमनुशब्दितः ॥ ११
प्रणयस्य रसं दत्त्वा पश्चात्तापः प्रभो यदि।
अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व तपः कर्तुं प्रसीद मे १२
स्वप्नेनापि न दृष्टाऽहं श्रद्दध्यां पुष्करेक्षण।
यदन्यदेव निर्वृत्तमश्रौषं पश्यतस्तव ॥ १३
कामं कामोऽस्तु तस्यैव मुनेरतुलतेजसः।
अत्र मन्युस्तु मे देव सांनिध्यं तव तत्र यत् ॥१४
मानार्थं जीव्यते लोके सद्भिरित्युक्तवानसि।
तदेवं सति नेच्छामि जीवितुं मानवर्जिता १५
ममाभवद्यतो रक्षा भयमद्य ततो मम।
सर्वतो रक्षते यो मां स मां नाद्याभिरक्षति ॥१६
हा गतिं कां गमिष्यामि
त्यक्ता देव त्वया विभो।
कुमुद्वतीगतां नूनं
गतिं यास्याम्यसंगता ॥ १७
किमकार्षमहं मोहादीश्वराणां प्रियाप्रियम्।
प्रिया भूत्वाऽप्रिया भूता यद्यहं तव मानद ॥१८
वसन्तकुसुमैश्चित्रं तदा रैवतकं गिरिम्।
प्रिया भूत्वाऽप्रिया भूता कथं द्रक्ष्याम्यहं पुनः
परपुष्टस्वनोन्मिश्रं पुष्पगन्धवहं शुचिम्।
कथं नामानिलं द्वेष्या सेवेयं दुर्भगा सती २०
जलक्रीडां तवाङ्कस्था देव कृत्वा महोदधौ।
कथं दौर्भाग्यमापन्ना पश्येयमपि सागरम् २१
सात्राजिति प्रिया नान्या
त्वत्तो मेऽस्तीति[6] विद्धि माम्।
यद्वोचः क्व तद्यात-
मथ वा कः स्मरिष्यति ॥ २२
यदद्राक्षीद्धि मां श्वश्रूर्बहुमानेन नन्दिनी।
अवज्ञातां त्वया राज्ञी नूनं दौर्भाग्यकर्शिताम्
किं न गूढेन मे प्रेम्णा ह्यस्निग्धेनापि मानद।
यत्समानां जनैर्देवो मां न पश्यति नित्यदा ॥

---

६७
सप्तषष्टितमेऽध्याये पारिजातद्रुणा ततः।
हरिणा सान्त्विता सत्या सुरेन्द्रमदभित्तये १

शापितासि शपथेनाभियुक्तासि। अनत्ययः अविनाशः ॥ ३ ॥ शिरः प्रौढिम् ॥ ६ ॥ इष्टजनेति शेषात् रुक्मिण्या अभिधानम् ॥ ८ ॥ यदहं स्वप्नेन योगमयेन दृष्ट्वापि न श्रद्दध्यां तव अन्यत्र प्रेमास्तीति तदेव निर्वृत्तमश्रौषमिति योज्यम् ॥ १३ ॥ मुनेः कामो रुक्मिणीस्तुतावस्तु परंतु तव तत्स्तोत्रश्रवणमयुक्तमिति भावः ॥ १४ ॥ कुमुद्वतीगतां चन्द्रकरस्पर्शादुल्लसनाम् अस्पर्शे मुकुलीभावरूपां गतिं कुमुद्वत्या अजभार्यया गतिर्भर्तुरग्रे मरण तां वा ॥ १७ ॥ परपुष्टस्वनोन्मिश्रं कोकिलध्वनिनादितम्। द्वेष्या तवेति शेषः ॥ २० ॥ कः स्मरिष्यति मयि मृतायामिति भावः ॥ २२ ॥

---

१ ख. 'नरेवाथ भा'। २ ख. वासुदेव उ°। ३ ख. °न्तिनीनां च स्पृ°। ४ ख. तदश्रौ'। ५ ख. तपश्चर्तुं प्र°। ६ ख. °ति यद्धि मा°।

नाहं त्वां कितवं धूर्तमज्ञासिषमरिन्दम ।
अद्य ज्ञातोऽसि तत्पक्षचञ्चलो जनवञ्चकः २५
स्वरवर्णेङ्गिताकारैर्निगूढो देव यत्नतः ।
चौर ज्ञातोऽसि तत्पक्षवाङ्मात्रमधुरः शठः ॥
एवमीर्ष्यावशं प्राप्तां देवीं सात्राजितीं हरिः ।
अभिमानवतीं देवः सान्त्वपूर्वमथाब्रवीत् २७
मैवं पद्मपलाशाक्षि प्राणेश्वरि वद प्रिये ।
किमत्र बहुनोक्तेन त्वदीयमवगच्छ माम् २८
तत्पारिजातकुसुमं तस्या देवि ममाग्रतः ।
नारदो मत्प्रियं कुर्वन्मुनिरक्लिष्टकर्मकृत् ॥ २९
दाक्षिण्यादानुरोधाच्च दत्तवान्नात्र संशयः ।
प्रसीदैकापराधं मे मर्षयस्व शुचिस्मिते ॥ ३०
पारिजातकपुष्पाणि यदीच्छस्यतिकोपने ।
तदा दातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि[2] तम्
स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम् ।
गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि
एवमुक्ता तु हरिणा प्रोवाच हरिवल्लभा ।
यद्येवं स द्रुमः शक्यस्त्विहानयितुमच्युत ३३
मन्युरेष प्रमृष्टो हि भवेद्बहुगुणं मम ।
सीमन्तिनीनां सर्वासामधिका स्यामधोक्षज
तथास्तु प्रथमः कल्प इति तां मधुसूदनः ।
प्रोवाचाप्रतिमो देवो जगतः प्रभवाप्ययः ३५
तथेत्युक्तेति कृष्णेन तुतोष समितिञ्जय ।
सत्यभामा सतामिष्टा कंसनाशनवल्लभा ३६
ततः स्नातो जगन्नाथः सर्वेशः सर्वभावनः ।
चकारावश्यकं सर्वं सर्वकामप्रदः सताम् ३७
दध्यौ च नारदं देवः स्नातो देवमुनिर्नृप ।
अभ्याजगाम स्नानान्ते मुनिश्रेष्ठो महोदधौ ॥
तमागतं नरपते सतां गतिरधोक्षजः ।
सत्यया सह धर्मात्मा यथाविधि अपूजयत् ॥
पादौ प्रक्षालयाञ्चक्रे मुनेः सात्राजिती स्वयम्
जलं देवः स्वयं कृष्णो भृङ्गारेण ददौ तदा ॥
अथोपकल्पयामास सुखासीनाय केशवः ।
परमान्नं स मुनये प्रयतात्मा जगद्गुरुः ॥ ४१
तल्लोककर्त्रा सत्कृत्य दत्तं मुनिरुदारधीः ।
बुभुजे वदतां श्रेष्ठः श्रद्धया परया युतः ॥ ४२
उपस्पृश्य ततस्तृप्तः प्रददौ चाशिषः प्रभो ।
ताश्च प्रीतेन मनसा प्रतिजग्राह केशवः ॥ ४३
ततः सात्राजितीं देवीं प्रणतां नारदोऽब्रवीत्
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं सजलं जलजेक्षणाम् ॥
यथेदानीं तथैव त्वं भव देवि पतिव्रता ।
सविशेषं च सुभगा भव मत्तपसो बलात् ४५
इत्युक्ता मुनिमुख्येन सत्यभामा हरिप्रिया ।
उत्तस्थौ महता युक्ता हर्षेण तु नराधिप ॥ ४७
स कृष्णोऽप्यभ्यनुज्ञां तु लब्ध्वा मुनिवरात्तदा ।
बुभुजे विघसं धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ ४७

**नाहमिति** । हे तत्पक्ष मत्सपत्नीपक्षपातिन् पक्षे हे अरिन्दम संसारशत्रुनाशन इतः पूर्वं त्वां कितवं धूर्तमित्यादिरूपं तव सार्वात्म्यं, "ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मेमे किं तवा उत ।" इत्याद्यागमादपि नाज्ञासिषम् । अद्य तु हे अजन जन्मादिहीन त्वं तत्पक्षचञ्चल इति ज्ञातोऽसि तस्याः मत्सपत्न्याः मायायाः पक्षे एवं चञ्चलो मायाविशिष्टचिद्रूपस्य तव मायांशेनैव चाञ्चल्यं वञ्चकत्वं च न तु चिदंशेनेत्यथैवमित्यर्थः । तत्पक्षेऽपि समासैकदेशोऽपि वञ्चकशब्देन संबद्धुमावर्तते ॥ २५ ॥ वाङ्मनसोरगोचरोऽहं कथं त्वया ज्ञात इत्यत आह—**स्वरेति** । हे देव त्वं स्वरश्च वर्णश्च इङ्गितं च आकारश्च तैः लिङ्गैः कृत्वा त्वम् अतिगूढो निष्प्रकटोऽपि यत्नतः शठो मध्यस्थ उदासीन इति ज्ञातोऽसि । अयं भावः—वागाद्युद्बोधकतया संघातविशिष्टरूपेण प्रत्यगात्मत्वात् । नित्यं ज्ञातोऽपि साक्षिवदसज्ञत्वेन इदानीमेव ज्ञात इत्यर्थः । अत एव चौरवत्प्रच्छन्नत्वाच्चौरेति सम्बोधयति—**तत्पक्षेति** । मायापक्षे ब्राह्मलौकिकान्तैश्वर्यविषये रम्या रामाः जरामरणवर्जितः कायः सङ्कल्पमात्रोपनता भोगा इत्यादिवाङ्मात्रेण मधुरः मधुरभाषी वेदकर्तृत्वात् असि । न त्वर्थतस्तत्र माधुर्यमस्तीति भावः । यतः शठ उदासीन अभोक्तृत्वात् "शठो मध्यस्थपुरुषे धूर्तधत्तूरयोरपि ।" इति विश्वः । कथापक्षे तु द्वयोरपि श्लोकयोः स्पष्ट एवार्थः ॥ २६ ॥ त्वदीयमात्मानमिति शेषः । पक्षे स्पष्टम् ॥ २८ ॥ तस्याः दत्तवानित्यग्रिमस्थेन सम्बन्धः ॥ २९ ॥ स्वर्गास्पदात्स्वर्गस्थानात् ॥ ३२ ॥ अमृष्टस्त्यक्तः बहुगुणं सुखमिति शेषः ॥ ३४ ॥ प्रथमो मुख्यः कल्पः सान्त्वनोपायः ॥३५॥ भृङ्गारेण कनकपात्रेण । "भृङ्गारी झिल्लिकायां च कनकालौ पुनः पुमान्" इति मेदिनी ॥ ४० ॥ परमान्नं पायसम् ॥ ४१ ॥ विघसं देवब्राह्मणशेषम् ॥ ४७ ॥

१ ख. °क्षि ममेश्व° । २ ख. °मि ते । स्वर्गादिहान° । ३ ख. °क्य इहा° । ४ ख. °वाव्ययः । त° । ५ ख. °युक्त तु कृ° । ६ ख. °थः सर्वात्मा सर्व° । ७ ख. देवो ध्यातो दे° । ८ ख. कृष्णोऽभ्यनुज्ञां कौरव्य ल° ।

ततस्त्वावश्यकं कृत्वा सत्यभामाऽपि भारत
अनुज्ञया तदा भर्तुर्विवेशान्तर्गृहं मुदा ॥ ४८
ततो विनिर्गता देवी कृष्णस्यैवाभ्यनुज्ञया ।
स्थिता पार्श्वे च कृष्णस्य नमस्कृत्वा महात्मने
ततो मुहूर्तमासित्वा नारदः कृष्णमब्रवीत् ।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शक्रलोकमधोक्षज
तत्राद्यं देवमीशानं नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
गास्यन्ति देवगन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः
मासि मास्युचितं ह्येतन्महेन्द्रसदने प्रभो ।
पूजार्थं देवदेवस्य गान्धर्वं नृत्यमेव च ॥ ५२
अन्तर्हितो देवदेवः सोमः सप्रवरो विभुः ।
पश्यत्यमरमुख्येन कृतं भक्त्याऽद्रिघातिना
निमन्त्रितोऽहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्तं महाद्युते ।
पारिजातस्य भद्रं ते तरुराज्ञो महात्मनः ५४
यदेतदाहृतं स्वर्गात्त्वदर्थं तु मया विभो ।
देवोपभोग्यमेतद्धि तरुराजसमुद्भवम् ॥ ५५
इष्टः स वृक्षः सततं शच्याः पुष्करलोचन ।
सौभाग्यमावहत्येव पूज्यमानोऽपि नित्यशः ५६
पुण्यं कर्तुं तदा सृष्टः पारिजातो महाद्रुमः ।
अदित्या धर्मनित्येन कश्यपेन महात्मना ॥ ५७
पुराऽदित्या महातेजास्तोषितः किल कश्यपः
वरेण च्छन्दयामास मारीचस्तपसो निधिः
सोवाच सुभगा येन भवेयं मुनिसत्तम ।
स्वलंकृता कामतश्च सर्वैरेव विभूषणैः ॥ ५९
ईप्सितं गीतनृत्यं च भवेन्मम तपोधन ।
कुमारी नित्यदा चैव भवेयं तपसो निधे ६०
विरजा शोकरहिता भवेयमिति नित्यदा ।
पतिभक्तिमती चैव धर्मशीला तथैव च ॥ ६१
पारिजातं ततोऽस्राक्षीददित्याः प्रियकाम्यया
सर्वकामप्रदैः पुष्पैरावृतं नित्यगन्धदैः ॥ ६२
त्रिशाखं सर्वदा दृश्यं सर्वभूतमनोहरम् ।
सर्वपुष्पाणि दृश्यन्ते तस्मिन्नेव महाद्रुमे ॥ ६३
ईदृशान्यपि पुष्पाणि बिभर्त्येकापि रूपिणी[3] ।
बहुरूपाणि चाप्यन्या पद्मानि च ततोऽपरा
मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः ।
तस्मादेष तरुश्रेष्ठः सर्वेषां श्रेष्ठतां[4] गतः ॥ ६५
ततस्तत्र निबध्याथ कश्यपं प्रददौ शुभे[5] ।
अदितिर्मम पुण्यार्थं सौभाग्यार्थं तथैव च ६६
अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च तथा मम ।
पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान्*
निष्क्रयेण मया मुक्तः कश्यपस्तु तपोधनः ।
इन्द्रो दत्तस्तथेन्द्राण्या सौभाग्यार्थं ततो मम
सोमश्चाप्यथ रोहिण्या ऋद्ध्या च धनदस्तथा
एवं सौभाग्यदो वृक्षः पारिजातो न संशयः
परि[6] जातो विष्णुपद्याः पारिजातेतिशब्दितः ।
मन्दारपुष्पैर्युक्तो मन्दारस्तेन कथ्यते ॥ ७०
कोऽप्ययं दारुरित्याहुरजानन्तो यतो जनाः
कोविदार इति ख्यातस्ततः स सुमहातरुः ७१
मन्दारः कोविदारश्च पारिजातश्च नामभिः ।
स वृक्षो ज्ञायते दिव्यो यस्यैतत्कुसुमोत्तमम् ७२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

---

सोमः उमया सह वर्तमानः सप्रवरः प्रमथगणयुतः ॥ ५३ ॥ पुण्यं पुण्यकाख्यं व्रतावशेषम् ॥ ५७ ॥ पुष्पाणीति तज्जातीयसुगन्धद्रव्यमात्रस्योपलक्षणम् । बहूनि च तानि रूपाणि चेति विग्रहः । रूपाणि इति शब्दात् गान्धर्वमित्यर्थः । "रूपं स्वभावे सौन्दर्ये नालोके पशुशब्दयोः ।" इति मेदिनी । पद्मानीति विधिमात्रस्योपलक्षणम् ॥ ६४ ॥ अत एव मन्दरात् कल्पवृक्षाच्चायं सारभूत इत्यर्थः ॥ ६५ ॥ ततस्तत्र निबध्येत्यादिना परकृतिसरूपाथवादेन सौभाग्यकामनया भर्तृसहितस्य पारिजातस्य दानं कर्तव्यम् । निष्क्रयेण पुनर्भर्ता च मोक्तव्य इति विधिरुन्नेयः ॥ ६६ विष्णुपद्याः गङ्गायाः परि उपरि जात इति पारिजातः स्वार्थेऽण् । संयोगे मन्तुं मानयितुं वियोगे दारयितुं योग्यानि मन्दाराणि च तानि पुष्पाणि च तैः ॥ ७० ॥ कोविदार इत्यविकारात् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

---

१ ख. °हं मुदा । त° । २ ख. स्वर्गात्तवार्थे भो म° । ३ ख. °कातिरू° । ४ ख. °षां ज्येष्ठ° । ५ ख. °दौ शुभा । अ° । * अदित्या कश्यप इत्यादि पद्यं खपुस्तके नास्ति । ६ ख. पारे जा° ।

# पारिजातहरणे कृष्णप्रतिज्ञा ।

## ६८

वैशम्पायन उवाच ।
ततो जिगमिषुं तत्र नारदं मुनिसत्तमम् ।
प्रोवाच भगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥ १
महर्षे धर्मतत्त्वज्ञ स्वर्गं गत्वा त्वयाऽनघ ।
दृष्ट्वा सदस्यान्देवस्य त्रिपुरघ्नस्य धीमतः ॥ २
अनाज्ञया मद्वचनाद्विज्ञाप्यः पाकशासनः ।
संभावयित्वा भ्रातृत्वं पौराणं वेत्सि यन्मुने
यमस्ताक्षीन्मुनिश्रेष्ठो भगवान्कश्यपस्तरुम् ।
पारिजातं पुराऽदित्याः सुखार्थं धर्मसत्तमः ४
स पुण्यमतिसौभाग्यं ददाति तरुसत्तमः ।
तव दत्तं पुरा दानं अनेन तरुमुत्तमम ॥ ५
देवीभिर्धर्मनित्याभिर्धर्मार्थममरोत्तम ।
दत्तं श्रुत्वाऽभिकांक्षन्ति दातुं पत्न्यो मम प्रभो
पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च ।
आनाययद्द्वारवतीं पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ७
दत्ते दाने पुनः स्वर्गं तरुं त्वं नेतुमर्हसि ।
स वाच्य एवं भगवान्बलभिद्भगवंस्त्वया ॥ ८
तथा तथा प्रयत्नश्च कार्योऽस्मिन्मुनिसत्तम ।
यथा तरुवरं दद्यात्पारिजातं सुरेश्वरः ॥ ९
तत्र दूतगुणं तावत्पश्यामस्ते तपोधन ।
संभाव्या सर्वकृत्यानां संपद्धि त्वयि मे मता
एवं नारायणेनोक्तो नारदो भगवानृषिः ।
प्रहस्योवाच केशिघ्नमिदं वाक्यं तपोधनः ११
बाढमेवं प्रवक्ष्यामि यदुमुख्य सुरेश्वरं ।
न तु दास्यति देवेन्द्रः पारिजातं कथञ्चन १२
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं दानवैस्त्रिदशैस्तथा ।
निक्षिप्य तोयधौ पूर्वं पारिजातः समाहृतः
मन्दरात्पर्वतश्रेष्ठान्नयितुं प्रेषितः पुरा ।
पारिजातं हरेणापि लोककर्त्रा जनार्दन ॥ १४
स्वयं विज्ञापितो गत्वा ततः शक्रेण शङ्करः ।
आक्रीडद्रुम उद्याने शच्याः स्यादिति याचितः
तथाऽस्त्विति वरो दत्तो महादेवेन चानघ ।
न च नीतः पारिजातो मन्दरं चित्रकन्दरम्
क्रीडावृक्षः स शच्येति व्यपदेशेन मोक्षितः ।
महेन्द्रेण महाबाहो पारिजातस्ततः पुरा १७
प्रियार्थमुमया साक्षात्पारिजातवनं हरः ।
गव्यूतिशतविस्तीर्णं मन्दरस्यैव कन्दरम् १८
न तत्र सूर्यभाः कृष्ण प्रविशन्ति नगोत्तमे ।
न च चन्द्रप्रभा शीता नैव कृष्ण सदागतिः
शीतोष्णे छन्दतस्तत्र शैलपुत्र्या भवन्ति हि
स्वयंप्रभं वनं तद्धि महादेवस्य तेजसा ॥ २०
वर्जयित्वा महादेवौ सगणौ यदुनन्दन ।
मां चान्यस्तद्वनं दिव्यं न प्रयाति कथञ्चन २१
स्रवन्ति तत्र वार्ष्णेय पारिजाताः समन्ततः
सर्वरत्नानि मुख्यानि मनसा काङ्क्षितानि वै
गणास्तान्युपभुञ्जन्ति प्रवराणां महात्मनाम् ।
आज्ञया देवदेवस्य लोकनाथस्य केशव ॥ २३

६८

अष्टषष्टितमेऽध्यायेऽस्मिन्नारदसन्निधौ।
पारिजातसमाहृत्यै प्रतिज्ञा हरिणा कृता ॥ १

एवं तावत्पूर्वाध्याये "निमन्त्रितोऽहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्वा महामते" इति नारदवचः श्रुत्वा तस्य च स्वकार्योपयोगित्वान्नारदम् उवाचेत्याह—**ततो जिगमिषुमिति** ॥ १ ॥ एवम् अत्र नारदेन पूर्वं स्वप्रयोजनमुक्तम् । "निमन्त्रितोऽहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्वा महामते ।" इति तत्कुर्वन्नेव ममापि कार्यं कुर्वीति भगवान्नारदमाह—**महर्षे इति** ॥ २ ॥ अनाज्ञया श्रेष्ठस्य भृत्यं प्रति यत्प्रेरणरूपं वचनं तदाज्ञा तया विनेत्यर्थः । विज्ञापना उत्तमस्य निकृष्टेन प्रार्थनेति भेदः । पौराणं वामनावतारीयम् ॥ ३ ॥ स दत्तः सन्निति शेषः । तव इन्द्रस्य सम्बन्धिनं तरुं देवीभिः पूर्वोक्ताभिरदित्यादिभिर्नारदाय दत्तम् । नारदेन च पुनस्तुभ्यं दत्तमिति श्लोकद्वयस्य सम्बन्धः ॥ ५ ॥ आनाययद्भृत्यैः ॥ ७ ॥ पूर्वोक्तमर्थं स्पष्टीकरोति—**दत्ते दान इति** । अस्माकं दानफलं भविष्यति तव तु काऽपि हानिर्नास्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥ शच्याः क्रीडावृक्ष इति मिषेण मोक्षितः मोचितः । शच्या इति छेदः संधिरार्षः । ततो रुद्रात् ॥ १७ ॥ उमया उमायाः ॥ १८ ॥ देवौ देवी देवश्चेति द्वन्द्वैकशेषः । तौ मां च वर्जयित्वेति सम्बन्धः ॥ २१ ॥

१ ख. °नः । संवर्णयि° । २ ख. °रुसत्तमे । दे° । ३ ख. स्वर्गं तत्र तं नाययिष्यसि । प्रवा° । ४ ख. कार्या मुनिना त्वया । य° । ५ ख. °श्वरम् । न । ६ ख. °ततरुः पु° । ७ ख. °न्दरे । न । ८ ख. °दुर्वर्षन । मां° ।

पारिजाताद्बहुगुणं फलं तेषां तथा वनम् ।
अभिमानं प्रभाश्चैव गुणा भूरिगुणास्तथा २४
मूर्तिमन्तश्च ते वृक्षाः सोमं देवं वृषध्वजम् ।
उपतिष्ठन्ति सततं प्रवरैः सह केशव ॥ २५
रौद्रेण तेजसा जुष्टा दुःखैर्हीनाः सुखान्विताः
तरवो मन्दरे ते हि दयिताः शैलकन्यया २६
प्रविवेशान्धको नाम घोरस्तत्र महाबलः ।
दैतेयो वरदानेन दर्पितः पापनिश्चयः ॥ २७
स हतो देवदेवेन हरेणामित्रघातिना ।
अवध्यः सर्वभूतानां वृत्राद्दशगुणं बली ॥ २८
एवं दुःखं न ते देव पारिजातं प्रदास्यति ।
पुष्कराक्ष सहस्राक्षः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते २९
सततं सहितो देव्या शच्या स हि वरद्रुमः ।
सर्वकामप्रदः कृष्ण तथेन्द्राय महौजसे ॥ ३०

श्रीभगवानुवाच ।

मुने तद्युज्यते साधु महादेवेन धीमता ।
यच्छर्चीकारणं कृत्वा न नीतः स तरुः पुरा
स ज्येष्ठः सर्वभूतानां लोककृत्प्रभवोऽव्ययः ।
पारावर्यस्य सदृशं कृतवानिति मे मतिः ॥३२
अहं यवीयान्देवस्य सर्वथा बलघातिनः ।
लालनीयश्च भगवञ्जयन्त इव सत्तम ॥ ३३
सर्वथा भगवांस्तावदुपायैर्बहुविस्तरैः ।
करोतु यत्नं प्रीत्यर्थं शक्तो ह्यसि तपोधन ॥
मया मुने प्रतिज्ञातं पुण्यार्थं सत्यभामया ।
स्वर्गादिहानयिष्यामि पारिजातमिति प्रभो
मया तदनृतं कर्तुं कथं शक्यं तपोधन ।
नानृतं हि वचो विप्र प्रोक्तं पूर्वं मयाऽनघ ३६
मयि भग्नप्रतिज्ञे वै लोकानां विप्लवो भवेत् ।
यन्मया हि मुनिश्रेष्ठ लोकधर्मा गुणान्विताः ।
परिवार्याः स्थिता सर्वे स कथं ह्यनृतं वदेत्
न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा
न चासुरा नैव च यक्षपन्नगाः ।
मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता
मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते ॥ ३८
स पारिजातं यदि न प्रदास्यति
प्रयाच्यमानो भवताऽमरेश्वरः ।
ततः शचीव्यामृदितानुलेपने
गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरोरसि ॥ ३९
इति प्रवाच्यो यदि सामपूर्वकं
प्रयाच्यमानो न तरुं प्रयच्छति ।
सुनिश्चयं मद्गमनाय सर्वथा
त्वयाऽपि कार्यः खलु तत्र निश्चयः ४०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदकृष्णभाषणे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## इन्द्रस्य पारिजातदानेऽसंमतिः ।

## ६९

वैशम्पायन उवाच ।

नारदोऽथ मुनिर्गत्वा महेन्द्रसदनं प्रति ।
तां रात्रिमवसत्तत्र ददर्श च महोत्सवम् ॥ १
तत्रादित्या महात्मानो वसवश्च सुरोत्तमाः ।
राजर्षयश्च विद्वांसः स्वर्गताः कर्मभिः शुभैः २

गणाः सङ्घाः प्रवराणां प्रमथानाम् ॥ २३ ॥ सोमम् उमासहितम् ॥ २५ ॥ कन्यया कन्यायाः ॥ २६ ॥ वरदानेन सर्वत्र तव गतिरकुण्ठिताऽस्त्वित्येवंरूपेण ॥ २७ ॥ दुःखं दुःखलभ्यम् ॥ २९ ॥ सहितो हितेनेष्टसुखदानेन युक्तः सहितः ॥ ३० ॥ पारावर्यस्य लोकमर्यादायाः ॥ ३२ ॥ विप्लवो भवेत्सर्वेऽप्यनृतवादिनो भविष्यन्तीत्यर्थः । कारणानुसारित्वात्कार्यस्य ॥ ३७ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ छ ॥

६९

एकोनसप्ततितमेऽध्यायेऽस्मिन्कृष्णवाक्छ्रवात् पारिजातं न दास्यामीत्याह शक्र इतीर्यते १
नारदोऽथेति ॥ १ ॥

१ ख. एवं दुःखे न ते दे° । २ ख. तथेन्द्रस्यामितौजसः । श्रीवासुदेव उ° । ३ ख. °श्रेष्ठ लोका धर्मगु° । ४ ख. परिधार्याः स्थि° । ५ ख. °नं नृप । तां ।

नागा यक्षाश्च सिद्धाश्च चारणाश्च तपोधनाः
ब्रह्मर्षयश्च शतशो देवर्षिगणवस्तथा ॥ ३
सुपर्णाश्च महात्मानो मरुतश्च महाबलाः ।
दिवौकसां निकायाश्च शतशोऽन्ये समागताः
उपर्युपरि सर्वेषां सोमदेवो महेश्वरः ।
तथावमितविक्रान्तः स्वैर्गणैः परिवारितः ५
देवर्षिभिर्मुनिश्रेष्ठैः संवृतः सर्वभावनः ।
कल्पान्तरसहस्रेषु क्षयो येषां न विद्यते ॥ ६
यानर्चयन्ति सततं देवा देवेश्वरोपमाः ।
आत्मज्ञा नावलेपान्धा ये च धर्मपथि स्थिताः
रुद्राश्च काश्यपा देवमभ्युपासन्त भारत ।
स्कन्दश्च भगवानग्निर्गङ्गा च सरितां वरा ॥८
अर्चिष्मांस्तुम्बुरुश्चैव भारिश्च वदतां वरः ।
नेतारो देवदेवानामेते हि तपसाऽन्विताः ॥९
एताननुविधीयन्ते सर्वदेवगणा नृप ।
धर्मनित्यास्तपोनित्याः सतां मार्गमुपाश्रिताः
ये त्विमे मानुषा देवानर्चयन्ति शुभार्थिनः ।
तानर्चयन्ति ह्यमरास्तथा राजञ्शुभार्थिनः ११
पितृकृत्येषु देवानां संन्यासं ये त्वनुष्ठिताः ।
स्वाध्यायवन्तः कौरव्य सदा नियमचारिणः
गन्धर्वाधिपतिः श्रीमांस्तत्र चित्ररथो नृप ।
सपुत्रो वादयामास देववाद्यानि हृष्टवत् ॥ १३
ऊर्णायुश्चित्रसेनश्च हाहा हूहूस्तथैव च ।
तुम्बरुस्तुम्बरुश्चैव जगुरन्ये च षड्गुणान् ॥१४
उर्वशी विप्रचित्तिश्च हेमा रम्भा च भारत ।
हेमदन्ता घृताची च सहजन्या तथैव च १५
जुजोष भगवान्देवस्तदुपस्थानमात्मवान् ।
वृत्तेन तुष्टः शक्रस्य जगाम जगतो गतिः १६
गते भूतपतौ सर्वे नृपा जग्मुर्यथागतम् ।
महेन्द्रेणार्चिता देवाः स्वानेव निलयान्गताः

ततः सर्वेषु यातेषु सुखासीनं पुरंदरम् ।
सदस्यैः स्वैः सहासीनं नारदोऽभिययौ मुनिः
तमिन्द्रः पूजयामास समुत्थाय तपोधनम् ।
दिदेश कुशगर्भं च पीठमात्मासनोपमम् ॥ १९
नारदोऽथ महातेजा महेन्द्रमिदमब्रवीत् ।
दूतोऽहममरश्रेष्ठ विष्णोरतुलतेजसः ॥ २०
किञ्चित्कार्यं पुरस्कृत्य प्रेषितोऽस्मि महात्मना
आनर्तादार्तिहरणं तस्यैवानघतेजसः ॥ २१
प्रीतिवाक्यानि हृद्यानि प्रयुज्य मुनये तदा ।
ततः प्रहृष्टो भगवानब्रवीत्पाकशासनः ॥ २२
किमाह पुरुषश्रेष्ठः शीघ्रमाचक्ष्व मे मुने ।
चिरस्य खलु कृष्णेन संस्मृतोऽस्मि महात्मना*

नारद उवाच ।

महेन्द्रेन्द्रानुजं द्रष्टुं गतोऽहं भ्रातरं तव ।
कथञ्चिद्द्वारकां तत्र काश्यपानां यशस्करम्
तं तु रैवतकेऽद्राक्षं तदासीनमरिंदमम् ।
रुक्मिण्या सहितं वीरं स्तुवन्तं वृषभध्वजम्
पारिजाततरोः पुष्पं तस्य दत्तं मयाऽनघ ।
विस्मापनार्थं देवेश पत्नीनामुरुतेजसः ॥ २६
तद्दृष्ट्वा तस्य पत्न्यस्तु विस्मयं परमं ययुः ।
बहुकामप्रदं पुष्पं वृक्षराजसमुद्भवम् ॥ २७
गुणास्तासां मया ख्यातास्तस्य पुष्पस्य मानद
सृष्टिश्च पारिजातस्य कश्यपेन महात्मना २८
अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च यथा मम
पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान्
त्वं च दत्तो यथा शच्या देवाश्चान्ये सुरेश्वर
निष्क्रयश्च यथा दत्तः कश्यपाद्यैर्महर्षिभिः ३०
तच्छ्रुत्वा तस्य पत्न्येका सत्यभामेति विश्रुता
पुण्यकार्ये मनश्चक्रे दयिता ते यवीयसः ॥३१

नावलेपान्धाः गर्वहीनाः ॥ ७ ॥ भारिर्गन्धर्वविशेषः ॥९॥ अनुविधीयन्ते अनुसरन्ति ॥ १० ॥ तान् मानुषान् अर्चयन्ति दृष्टफलप्रदानेन पूजयन्ति ॥ ११ ॥ देवानां कृत्येषु ये वर्तन्ते ते इति च ज्ञेयम् । अनुष्ठिताः अनुष्ठितवन्तः ॥ १२ ॥ षड्गुणान् वक्रिमस्निग्धमधुरलास्यविभक्तावबद्धाख्यान् ॥ १४ ॥ जुजोष प्रीत्या जग्राह । उपस्थानं नृत्यादिरूपां परिचर्याम् ॥ १६ ॥ तस्यैवार्तिहरणं कार्यम् ॥२१॥ चिरस्य चिरेण ॥ २३ ॥ तासां कृष्णपत्नीनां पुरः ॥२८॥

१ ख. सोमो दे° । २ ख. °शाः सत्यसन्धाश्च ये च । ३ ख. °यन्ते देवान्देवग° । ४ ख. °थ्य सततं धर्मचा° । ५ ख. °हूश्च भारत । तुम्बर° । ६ ख. °द्गणा° । * इत उत्तरं ·प्रियवाक्यानि हृद्यानि ब्रूहि धर्मभृतां वर । इति पद्यार्धमाधिकम् । ७ ख. तव । द्वारकां पुरुषश्रेष्ठं काश्य° । ८ ख. °तं वीरमुमयेव वृषध्वजम् । पारि° । ९ ख. °पेनातितेजसा । अ° ।

तया चाभ्यर्थितो भर्ता देव देव्या गणेश्वरः ।
प्रतिजज्ञे स धर्मार्थं यवीयांस्तव मानद ॥ ३२
ततो मामुक्तवान्वीरो विष्णुर्बलवतां वरः ।
यथावत्सुरमुख्येश ब्रुवतः शृणु भावतः ॥ ३३
लालनीयो यवीयांस्तु प्रणिपत्याच्युतोऽब्रवीत्
आनयेयं सुरश्रेष्ठ पारिजातं वरद्रुमम् ॥ ३४
मनोरथोऽस्तु सफलो वध्वास्तेऽसुरसूदन ।
धर्मकृत्ये विशेषेण वध्वास्ते सुरसत्तम ॥ ३५
अयं दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर ।
पश्यन्त्वमरकल्याणं मत्प्रभावाच्च मानवाः ३६

वैशम्पायन उवाच ।

वासुदेववचः श्रुत्वा महेन्द्रः कुलनन्दन ।
नारदं वदतां श्रेष्ठमिदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३७
भजासनं द्विजश्रेष्ठ युक्तमुक्तं त्वया द्विज ।
सन्देशं प्रतिदास्यामि विष्णोरतुलतेजसः ३८
आसीने नारदे शक्रो लब्धानुज्ञोऽथ नारदात्
स्वमासनं ततो भेजे तस्यैव सदृशं प्रभो ॥ ३९
उपविष्टः सुरपतिरथोवाच तपोधनम् ।
निरीक्ष्य स्वबलं वीर्यं हर्षदं वृत्रनाशनः ॥ ४०

शक्र उवाच ।

महर्षे कुशलं पृष्ट्वा वक्तव्यस्ते जनार्दनः ।
वचनान्मम धर्मज्ञ सर्वभूतसुखावहः ॥ ४१
मदनन्तरमीशस्त्वं जगतो नात्र संशयः ।
त्वदीयः पारिजातश्च रत्नान्यन्यानि चाच्युत
त्वं तु भारावतरणं कर्तुं देव महीं गतः ।
मानुष्यं सर्ववृत्तानां स्थितः कार्यस्य सिद्धये
त्वयि तीर्णप्रतिज्ञे हि पुनः प्राप्ते त्रिविष्टपम् ।
पूरयिष्यामि वध्वास्ते इष्टान्कामानधोक्षज
स्वर्गीयाणि च रत्नानि न नेतव्यानि केशव ।
स्वल्पार्थे मानुषं लोकमिति पूर्वकृता स्थितिः
उत्क्रम्य हि स्थितिं दैवीं प्रवर्तामि महाबल ।
यद्यहं किं प्रवक्ष्यन्ति प्रजापतिगणाः प्रभो ४६
ब्रह्मणा सह पुत्रेण सपौत्रेण महात्मना ।
नियमाः सर्वकृत्यानां स्थापिता जगतो ध्रुवाः
प्रजापतिकृतं मार्गमपास्य व्रजतो मम ।
श्रुत्वा प्रजापतिर्धीमाञ्छापमप्युत्सृजेत्प्रभुः
अस्माभिर्भिद्यमानं हि मर्यादासेतुबन्धनम् ।
भेत्स्यन्त्यशंकिता दैत्या दैत्यपक्षास्तथाऽपरे
स्त्रीनिमित्तमितो नीते पारिजाते द्रुमेश्वरे ।
स्वर्गौकसो भविष्यन्ति विमनस्काश्च मानद
उपभोगा मनुष्याणां विहिता ये स्वयंभुवा ।
तैस्तु तुष्यतु मे भ्राता संपश्यन्कालपर्ययम्
इहापि तात त्रिदिवे मम यः स्यात्परिग्रहः ।
त्रिदिवस्थोऽपि तं कृष्णः सर्वं भोक्तुमिहार्हति
हृष्टो ह्यामिषभोज्यानामभिमानाज्जनार्दनः ।
ततो धर्मं समुत्सृज्य पापमेवानुवर्तते ॥ ५३
स्त्रीवश्यता ख्याप्यमाना कृष्णस्य हि महात्मनः
जगत्ययशसा योगं जनयेदिति मे मतिः ५४
मानुष्यं मानुषे प्राप्तो यदेतन्मधुसूदनः ।
कुर्यान्निर्बन्धनीयं यद्भ्रात्रा ज्येष्ठेन नारद ॥५५
स्वर्ग्यरत्नविलोपेन धर्षणा स्यान्ममानघ ।
ज्ञातितो धर्षणा चैव विशेषेणैव गर्हिता ५६
धर्ममर्थं च कामं च क्रमेण मधुसूदनः ।
सेवत्वेष सतां धर्मान्स्थापितान्पद्मयोनिना
महीतलं पारिजातमर्पयिष्याम्यहं यदि ।
पौलोमीमादितः कृत्वा को नु मां बहु मंस्यते
पारिजातं महीपृष्ठे दृष्ट्वा पृष्ट्वा च मानुषाः ।
स्वर्गार्थं नोद्यमिष्यन्ति दृष्ट्वा स्वर्गफलं क्षितौ
पारिजातगुणान्मर्त्या जुषन्ति यदि नारद ।
देवतानां मनुष्याणां न विशेषो भविष्यति ६०
तत्र यत्क्रियते कर्म इह तद्भुज्यते नरैः ।
स्वर्गार्थं न यतिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः
सर्वरत्नवरः स्वर्गे पारिजातस्तपोधन ।
तुल्यं देवसमैर्मर्त्यैः सर्वदैव जगद्भवेत् ॥ ६२

---

भजासनमित्यनेन दूतत्वात्तिष्ठन्नेवैतावद्वचनं नारद उक्तवानिति गम्यते ॥ ३८ ॥ प्रवर्तामि प्रवर्ते ॥ ४६ ॥ त्रिदिवस्थः सन् त्वमपीति सम्बन्धः न त्ववनिस्थ इत्यर्थः ॥ ५२ ॥ आमिषभोज्यानां मांसभक्षैः हृष्टः पुष्टः अत एव दृप्तत्वाद्धर्ममतिक्रामति । यदाहापस्तम्बः— " हृष्टो दृप्यति, दृप्तो धर्ममतिक्रामति " इति ॥ ५३ ॥ मानुषे लोके ॥ ५५ ॥

---

१ ख. °वन । ला° । २ ख. आनायय सु° । ३ ख. कुरुन° । ४ ख. °ष्ठ श्रुतमु° । ५ ख. °शं विभो । उ° । ६ ख. वीर्यं पार्षदं वृ° । ७ ख. इन्द्र उ° । ८ ख. °मानं तु मया° । ९ ख. तैस्तुष्यतु मम भ्रा° । १० ख. कृष्णो भोषभोक्तु° । ११ ख. स्यात्परा मम । ज्ञा° । १२ ख. °जात नाययि° । १३ ख. देवानां मानुषाणां च न वि° ।

यश्चैर्मर्त्या न यक्ष्यन्ति लब्धस्वर्गफला भुवि
न पूर्तानि प्रदास्यन्ति तुल्यत्वममरैर्गताः ६३
यश्चैर्जप्याह्निकैश्चैव नित्यमाप्याययन्ति नः।
मानुषाः स्वर्गमिच्छन्तः श्रद्दधानास्तपोधन ६४
तत्सर्वं न करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः।
निस्तेजसो भविष्याम ते गतास्तद्विहीनताम्
इतः सुवृष्ट्या सस्यैस्ते जीवन्ति पुरुषा भुवि
आप्याययन्तस्तेऽप्यस्मान्दानैर्यज्ञैस्तथैव च ६६
न बुभुक्षा पिपासा वा बाधते यदि मानुषान्
रोगो जरा वा मृत्युर्वा धर्मज्ञ रतिरेव च ६७
दौर्गन्ध्यं वा सुघोरा वा ईतयः कर्मसम्भवाः।
किमुद्योगं करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः
सर्वथा नयनं तत्र पारिजातस्य न क्षमम्।
इति वाच्यस्त्वया विप्र विष्णुरक्लिष्टकर्मकृत्
यथा यथा च मे भ्राता तुष्यत्येतद्विचारयन्।
तथा तथा त्वया कार्यं कार्यं मत्प्रीतिमिच्छता
हाराश्च मणयश्चैव चन्दनान्यगुरूणि च।
वस्त्राणि च विचित्राणि[3] वध्वास्त्वं द्वारकां नय
योग्यानि यानि मर्त्यानां यावदिच्छति केशवः
न स्वर्गपरिमोषं तु कर्तुमर्हति[4] साम्प्रतम् ॥७२
ददामि रत्नानि यथेप्सितान्यहं
बहूनि चित्राणि विभूषणानि च।
न पारिजातं च कथञ्चन द्रुमं
मुने प्रदास्यामि दिवौकसां प्रियम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## पारिजातं न दास्यामीतीन्द्रभाषणम्।

## ७०

वैशम्पायन उवाच।
देवराजवचः श्रुत्वा नारदः कुरुनन्दन।
प्रोवाच वाक्यं वाक्यज्ञो धर्मात्मा धर्मवित्तमः
अवश्यमेव वक्तव्यं हितं बलनिषूदन।
मया तव महाबाहो बहुमानोऽस्ति मे त्वयि २
उक्तो मया वासुदेवो जानता भवतो मतम्।
न दत्तः पारिजातोऽयं[5] हरस्यापि त्वया पुरा
हेतवश्च मया तस्य दर्शितास्ते समासतः।
न चावगतवान्देवः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४
उपेन्द्रोऽहं महेन्द्रेण लालनीयः सदेति माम्।
उवाच पुण्डरीकाक्षो दत्तमुत्तरमेव च ॥ ५
पुनः पुनर्मया वास्य हेतवो देव दर्शिताः।
ततो न बुद्धिर्व्यावृत्ता वृत्रनाशाय तस्य वै ६
अपि चाप्युक्तवान्देवो वाक्यान्ते मधुसूदनः[10]।
प्रत्याह पुरुषश्रेष्ठः सरोषमिव वासव ॥ ७
न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा
न चासुरा नैव च पन्नगोत्तमाः।
मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता
मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते ॥ ८
स पारिजातं यदि न प्रदास्यति
प्रयाच्यमानो भवता[11] पुरंदरः।
ततः शचीव्यामृदितानुलेपने
गदां विमोक्ष्यामि पुरंदरोरसि ॥ ९

ईतयः अतिवृष्ट्यादयः ॥ ६८ ॥ न क्षमं न योग्यम् ॥ ६९ ॥ कार्यं कर्म कार्यं कर्तव्यम् ॥ ७० ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०
अथास्मिन्सप्ततितमे प्रतिज्ञां नारदेरिताम्।
कृष्णस्य बलमिच्छुत्वा न दास्यामीत्यवावदीत्
देवराजेति ॥ १ ॥ हेतवः महीतलं पारिजातमित्यादिना पूर्वोक्ताः। न चावगतवान् नाङ्गीकृतवान् ॥ ४ ॥

१ ख. °व वा। दौ°। २ ख. हारांश्च मणिरत्नानि च°। ३ ख. °णि वधूनां द्वार°। ४ ख. °ति केशवम्। द°। ५ ख. °णि च भू°। ६ ख. °महात्मा ध°। ७ ख. °जातो हि ह°। ८ ख. र्शिता भोः समा°। ९ ख. °या चास्य हे°। १० ख. °दनः। प्रहस्य पु°। ११ ख. °ताऽमरेश्वरः। त°।

उपेन्द्रस्य महेन्द्रार्थं भ्रातुस्ते निश्चयः परः ।
यदत्र मन्यसे न्याय्यं संप्रधार्य कुरुष्व तत् १०
तत्त्वं हितं च देवेश श्रूयतां वदतो मम ।
नयनं पारिजातस्य द्वारकां मम रोचते ॥११
नारदेनैवमुक्तस्तु सुव्यक्तं बलदेहभित् ।
रोषाविष्टः सहस्राक्षोऽब्रवीदितन्नराधिप १२
अनागसि मयि ज्येष्ठे सोदरं यदि केशवः ।
एवं प्रवृत्तः किं शक्यं कर्तुमद्य तपोधन ॥ १३
बहूनि प्रतिलोमानि पुरा स कृतवान्मयि ।
कृष्णो नारद सोढानि भ्रातेति स्म मयां[2]सदा
खाण्डवे चार्जुनरथं पुरा वाहयता सता ।
मदीया वारिता मेघाः शमयन्तोऽग्निमुद्धतम्
गोवर्धनं धारयता विप्रियं च कृतं मम ।
तथा वृत्रवधे प्राप्ते साहाय्यार्थं वृतो मया १६
समोऽहमिति सर्वेषां भूतानामिति चोक्तवान्
स्वबाहुबलमाश्रित्य वृत्रश्च निहतो मया ॥ १७
देवासुरेषु प्राप्तेषु संग्रामेषु च नारद ।
युध्यत्यात्मेच्छया कृष्णो मुने सुविदितं तव
बहुनात्र किमुक्तेन तस्माद्दिष्ट्या प्रवर्तताम् ।
ज्ञातिभेदो न नः कार्यः साक्षी त्वं मम नारद
ममोरसि गदां मोक्तुमुद्यतो यदि केशवः ।
अनुशब्द्याथ पौलोमीं गुणः क इह दृश्यते २०
उदवासगतो धीमान्पिता नः कश्यपः प्रभुः ।
अदित्या सह मे मात्रा तयोर्वाक्यमिदं भवेत्
अजितात्मा मम भ्राता रजसा तमसा वृतः ।
कामेन च स्त्रियो वाक्यादेव मामुक्तवान्गुरुम्
धिक्स्त्रियः सर्वथा विप्र[3] धिग्राजसमितिं तथा
यत्राधिक्षिप्तवान्विष्णुरेवं मां स्त्रीजितो द्विज
न दृष्टं कश्यपकुले व्यपदेश्यं महामुने ।
नैव दक्षकुलं दृष्टं मातुर्मे यत्र सम्भवः ॥ २४
न ज्येष्ठता न राजत्वं देवानां प्रतिमानितम्
कामरागाभिभूतेन कृष्णेन खलु नारद ॥ २५
पुत्रदारसहस्रैर्हि भ्राताऽनघ विशिष्यते ।
सद्वृत्तो ज्ञानसंपन्न इति ब्रह्मा पुराऽब्रवीत्
नास्ति भ्रातृसमो बन्धुराहार्य इतरो जनः ।[5]
इति मामब्रवीन्माता पिता चैव प्रजापतिः
सोदरे तु विशेषं तु पिता मे कश्यपोऽब्रवीत् ।
हता मया विरुध्यन्ते दानवाः पापनिश्चयाः
काममेतन्न वक्तव्यं स्वयमात्मस्तवान्वितम् ।
प्राप्तस्त्ववसरो विप्र यदिहाद्योच्यते मया २९
धनुर्ज्यायां मुनिश्रेष्ठ छिन्नायां हि पुराऽनघ ।
धन्वीभिरमराणां च वरदानान्[4]महामुने ॥३०
उत्कृत्तशिरसो विष्णोः पुरा देहो धृतो मया
सन्धिते च शिरो यत्नाच्छिन्नं रौद्रेण तेजसा
अहं विशिष्टो देवानामित्युक्त्वा पुनरच्युतः
धनुरारोप्य दर्पेण स्थितो नारद केशवः ॥ ३२
किं मां पिता वा माता वा वक्ष्यतीति मया मुने
स्नेहेन च स्थितं विष्णोः शरीरं मुनिसत्तम
ऐन्द्रं वैष्णवमस्यैव मुने भागमहं ददौ ।
यवीयांसमहं प्रेम्णा कृष्णं पश्यामि नारद ३४
संग्रामेषु प्रहर्तव्यं तेन पूर्वं तपोधन ।
राजा किलाहं समरे प्रहराम्यग्रतो ध्रुवम् ३५
प्रादुर्भावेषु सर्वेषु स्वशरीरमिवानघ ।
यतो[6] रक्षामि धर्मज्ञ केशवं भक्तिमाश्रितम् ३६
इदं भङ्क्त्वा मदीयं च भवनं विष्णुना कृतम्
उपर्युपरि लोकानामधिकं भुवनं मुने ॥ ३७
अवमानः स च मया पृष्ठतः क्रियते मुने ।
लालनीयो मया बाल इत्येवं भ्रातृगौरवात्
बालोऽयं मम पुत्रेति यवीयानिति नारद ।
पित्रा मात्रा च गोविन्दो[7] मानी च परिभाषितः
इष्टस्तत्र जनानां च केशवः सुविशेषतः ।
वयं द्वेष्या न सन्देहस्तत्र स्नेहोऽतिरिच्यते
सर्वज्ञो बलवाञ्शूरः पात्रं मानयिता तथा ।
केशवेत्येव च ध्यानं यत्तद्वितथतां गतम् ॥ ४१
गच्छ नारद वक्तव्यः केशवो वचनान्मम ।
आहूतो न निवर्तेयं समरं प्रति शत्रुभिः ॥ ४२

---

ज्ञातिभेदः भ्रातृकलहः नोऽस्माभिः ॥ १९ ॥ व्यपदेश्यं वाच्यम् ॥ २४ ॥ आहार्यः संभोज्यः संपाद्यो वा ॥२७॥ धनुर्ज्यायामिति शतपथोक्त इतिहासोऽवगमितः ॥ ३० ॥ ऐन्द्रमेवाधिपत्यं श्रावणभाद्रपदपूज्यत्वं वैष्णवं कृत्वाऽहं ददौ दत्तवान्वैचित्त्येनात्र परोक्षता ॥३४॥ अन्यत्र समरेऽहमग्रतः प्रहरामि यतो राजा प्रभुः ॥ ३५ ॥ परिभाषितः आक्रुष्टः ॥ ३९ ॥ केशवेत्येवेति सन्धिरार्षः ॥ ४१ ॥

---

१ ख. °हभृत् । २ रो° । ख. °याऽनघ । खा° । ३ ख. °प्र धिग्रजो धिक्तमस्त° । ४ ख. °हामते । उ° । ५ ख. °धितं च शि° । ६ ख. यत्नाद्रक्षा° । ७ ख. °न्दो नातीव परि° ।

यदीच्छसि तदागच्छ सह्यं ते यत्त्वमिच्छसि
प्रहरस्व च पूर्वं त्वं भार्याजित यथेच्छसि ४३
रथाङ्गनाथ शार्ङ्गेण गदया नन्दकेन च।
प्रहरारुह्य गरुडं दृढो भूत्वा जनार्दन ॥ ४४
प्रहृते प्रहरिष्यामि यथाशक्त्या च केशव।
अहो धिग्यदि मां स्नेहो विक्लवं न करिष्यति
यावन्न संग्रामगतो जितोऽहं चक्रपाणिना।
पारिजातं न दास्यामि तावद्धो मुनिसत्तम
मां समाह्वयते ज्येष्ठं यवीयान्स तपोधन।
अहो तं मर्षयिष्यामि किमर्थं स्त्रीजितं हरिम्
अद्यैव गच्छ भगवन्
द्वारकां कृष्णपालिताम्।
विवादे संस्थितः सोऽद्य
इति वाच्यस्त्वयाऽच्युतः ॥ ४८
पलाशपत्रार्द्धमपि त्वयाऽजितो
न पारिजातस्य तव प्रदास्यति।
इति प्रवाच्यो मधुसूदनस्त्वया
वचो मदीयं स्मरता तपोधन ॥ ४९
पुनः प्रवाच्यो भगवंस्त्वयाऽच्युतो
मम प्रियार्थं खलु निर्विशङ्कितम्।
न मायया हर्तुमिहार्हसि द्रुमं
सुयुद्धमेवास्तु धिगस्तु जिह्मताम् ५०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## शक्रनिश्चयकथनार्थं नारदस्य द्वारकां प्रति गमनम्।

### ७१

वैशम्पायन उवाच।
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा नारदो वदतां वरः।
विविक्ते देवराजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १
कामं प्रियाणि राजानो वक्तव्या नात्र संशयः
प्राप्तकालं तु वक्तव्यं हितमप्रियमप्युत ॥ २
अनियुक्तपुरोभागो न स्यादिति वदन्ति हि।
सुलोकगाततत्त्वज्ञो नयविज्ञानकोविदः ॥ ३
कार्याकार्ये समुत्पन्ने परिपृच्छति मां भवान्
यतस्ततः प्रवक्ष्यामि गृह्यतां यदि रोचते ॥ ४
अनुक्तेनापि सुहृदा वक्तव्यं जानता हितम्।
न्याय्यं च प्राप्तकालं च पराभवमनिच्छता ५
वक्तव्यं सर्वथा सद्भिरप्रियं चापि यद्धितम्।
आनृण्यमेतत्स्नेहस्य सद्भिरेवाहृतं पुरा ॥ ६
अनृते धर्मभङ्गे च न शुश्रूषति चाप्रिये।
न प्रियं न हितं वाच्यं सद्भिरेवेति निन्दिताः
सर्वथा देव वक्तव्यं श्रूयतां शृण्वतां वर।
श्रुत्वा च कुरु सर्वज्ञ मम श्रेयस्करं वचः ॥ ८
अन्योन्यभेदो भ्रातॄणां सुहृदां वा बलान्तक।
भवत्यानन्दकृद्देव द्विषतां नात्र संशयः ॥ ९
हितानुबन्धसहितं कार्यं ज्ञेयं सुरेश्वर।
विपरीतं च तद्बुद्ध्वा नित्यं बुद्धिमतां वर
यत्स्यात्तापकरं पश्चादारब्धं कार्यमीदृशम्।
आरम्भेऽैव तद्विद्वानेष बुद्धिमतां नयः ॥ ११
विपाकमस्य कार्यस्य नानुपश्यामि शोभनम्
यदत्र कारणं देव निबोध विबुधाधिप ॥ १२

---

सह्यं सोढव्यम् ॥४३॥ रथाङ्गेन चक्रेण। नन्दकेन खड्गेन ॥ ४४ ॥ **पलाशपत्रार्धमिति।** त्वया अजितः पारिजातस्य पलाशं पत्रमात्रं पत्रार्द्धं वा न प्रदास्यति वृक्षस्य का वार्तेत्यर्थः ॥ ४९ ॥ जिह्मतां कुटिलताम् ॥ ५० ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

७१

**अथैकसप्ततितमेऽध्याये शक्रविनिश्चयम्।**
**सनिर्बन्धं हरेर्वक्तुं नारदो द्वारकां गतः ॥ १**
**महेन्द्रेति** ॥ १ ॥ अनियुक्तपुरोभागः अनाज्ञप्तः सन् पुरोवर्ती न भवेत् तन्निश्चितम् ॥ ३ ॥ तथापि यतः भवानपि कार्याकार्ये मां पृच्छति ततोऽहम् अननुपृष्टोऽपि तुभ्यं हितं वदामीत्यर्थः ॥ ४ ॥ अप्रियम् अतिकटुकमपि हितं परिणामसुखम् ॥ ६ ॥ अनृत इति। त्वय्यनृतत्वाद्यभावात्त्वां प्रति वदामीत्यर्थः ॥७॥ विपाकं फलम् ॥१२॥

१ ख. स ह्ये॰। २ ख. ॰वापि य॰। ३ ख. सद्भिश्च विदितं पु॰।

य एको विश्वमध्यास्ते प्रधानं जगतो हरिः।
प्रकृत्या यं परं सर्वे क्षेत्रज्ञं वै विदुर्बुधाः ॥१३

तस्याव्यक्तस्य यो व्यक्तो
भागः सर्वभवोद्भवः।
तस्यात्मा परमो देवो
विष्णुः सर्वस्य धीमतः ॥ १४

प्रकृत्याः प्रथमो[1] भाग उमा देवी यशस्विनी।
व्यक्तः सर्वमयो[2] विश्वः स्त्रीसंज्ञो लोकभावनः
रुक्मिण्याद्याः स्त्रियस्तस्या व्यक्तत्वं प्रथमो गुणः
अव्यया प्रकृतिर्देवी गुणी देवो महेश्वरः ॥ १६
न विशेषोऽस्य रुद्रस्य विष्णोश्चामरसत्तम।
गुणिनश्चाव्ययः शास्ता सदा च प्रथमो गुणः
नारायणो महातेजाः सर्वकृल्लोकभावनः।
भोक्ता महेश्वरो देवः कर्ता विष्णुरधोक्षजः
ब्रह्मा देवगणाश्चान्ये पश्चात्सृष्टा महात्मना।
महादेवेन देवेश प्रजापतिगणास्तथा ॥ १९
एवं पुराणपुरुषो विष्णुर्देवेषु पठ्यते।
अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च गुणेभ्यश्च परस्तथा ॥२०

अदित्या तपसा विष्णु-
र्महात्माऽऽराधितः पुरा।
वरेण च्छन्दिता तेन
परितुष्टेन चादितिः ॥ २१

तयोक्तस्त्वत्समं पुत्रमिच्छामीति सुरोत्तम।
प्रणिपत्य च विज्ञाय नारायणमधोक्षजम् २२
तेनोक्तं भुवने नास्ति मत्समः पुरुषोऽपरः।
अंशेन तु भविष्यामि पुत्रः खल्वहमेव ते २३
स जातः सर्वकृद्देवो भ्राता तव सुरेश्वरः।
नारायणो महातेजा यमुपेन्द्रं प्रचक्षते ॥ २४
इच्छन्नेव हरिर्देव काश्यपत्वमुपागतः।
तैस्तैर्भावैर्विकुरुते भूतभव्यभवाप्ययः ॥ २५
प्रादुर्भावं गतो देवो जगतो हितकाम्यया।
माथुरं जगतो नाथः कर्ता हर्ता च केशवः २६
यथा पललपिण्डः स्याद्व्याप्तः स्नेहेन मानद।
तथा जगदिदं व्याप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना
ब्रह्मण्यदेवः सर्वात्मा तैस्तैर्भावैर्विकुर्वति।
जगत्यतिगुणो देवो वैकुण्ठः सर्वभावनः २८
अतः समस्तदेवानां पूज्य एव च केशवः।
पद्मनाभश्च भगवान्प्रजासर्गकरो विभुः ॥ २९
अनन्तो धारणार्थं च बिभर्ति च महद्यशः।
यज्ञ इत्यपि सद्भिश्च कथ्यते वेदवादिभिः ३०
श्वेतः कृतयुगे देवो रक्तस्त्रेतायुगे तथा।
द्वापरे च तथा पीतः कृष्णः कलियुगे विभुः

---

विश्वं कार्यं प्रधानं कारणं च अध्यास्ते आधितिष्ठति रथमिव यन्ता। प्रकृत्या मायया तत्क्षेत्रं कारणसूक्ष्मस्थूलदेहाख्यं प्रकाशयतीति क्षेत्रज्ञत्वम् ॥ १३ ॥ अव्यक्तस्य अव्याकृतस्य व्यक्तो भागः कार्यं हिरण्यगर्भादिः यः सर्वभवोद्भवः सर्वसंसारबीजं तस्यात्मा अन्तर्यामी चेतयिता। न केवलं तस्यैव अपि सर्वस्य धीमतः चेतनावतः जन्तुमात्रस्येत्यर्थः॥१४॥ रुद्रादप्ययमनन्य इत्याह--**प्रकृत्या इति**। प्रकृत्याः चिच्छक्तेः प्रथमो मुख्योंऽशः व्यक्तः दृश्यमात्राकारः विश्वस्त्रीसंज्ञः कृत्स्नभोग्यवस्तुसंज्ञ इत्यर्थः। अत एव लोकश्चेतनस्तस्य भावनः संतर्पयिता ॥ १५ ॥ तस्याः प्रकृतेः प्रथमो गुण उमावत् गुणी उमया रुक्मिण्या वा उपहितो गुणी महेश्वरः रुद्रो विष्णुर्वा ॥ १६ ॥ तदेवाह—**नेति** अर्द्धेन। गुणिनो मायाविनो रुद्रस्य विष्णोर्वा विशेषो भेदको गुणो नास्ति। अतो विष्णुना द्रावितं त्वां रुद्रोऽपि न रक्षिष्यतीति भावः। गुणिना इति सार्द्धश्लोकद्वयं वाक्यम्। किं च तस्य गुणिनोऽपि यः शास्ता अव्ययोऽपरिणामी प्रथमोऽध्यस्तात्पूर्वत्वादाधिष्ठानस्य यतः अगुणो यः स एव नारायणः। एतेन तुर्यमूर्तिर्नारायण इति दर्शितम्। सा च ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्य एकैकगुणोपाधिभ्योऽन्या सर्वगणोपाधिमयी तेनैव यो भोक्ता रुद्रः कर्ता विष्णुः ब्रह्मा च बुद्ध्याभिमानी देवाश्च इन्द्रियाभिमानिनस्ते सर्वे सृष्टा इति योजना ॥१७॥ छन्दिता अनुगृहीता ॥ २१ ॥ तयेति पञ्चानां तात्पर्यम्। त्वद्भ्रातृत्वान्न तवायं साधारणोऽपि तु अकर्मजनितो देवभावोऽस्यास्ति। त्वं तु कर्मदेवत्वात्ततो निकृष्टोऽसीत्यर्थः ॥ २२ ॥ भूतस्य भव्यस्य च भवाप्यय उत्पत्तिप्रलयस्थानं सर्वजगदुपादानभूत इत्यर्थः ॥ २५ ॥ य एवंभूतः स एव साक्षात्कृष्ण इत्याह—**प्रादुर्भावमिति** ॥ २६ ॥ पललपिण्डः मांसपिण्डः ॥ २७ ॥ सर्वात्मा व्यष्टिसमष्टिदेहेन्द्रियाद्याकारस्तैस्तैर्भावैस्तत्तद्धर्मैर्विकुर्वति: विकारं प्राप्नोति। सर्वज्ञोऽहं दुःख्यहमित्याद्यभिमानवान् भवतीत्यर्थः। वस्तुतस्त्वतिगुणो गुणातीतः ॥ २८ ॥ अनन्तः शेषः धारणार्थं भुव इति शेषः ॥ ३० ॥ श्वेत इति। अत्र—
"कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्"

---

१ ख. °त्मा प्रथमो दे°। २ ख. °यो विष्णुः स्त्री°।

अवधीत्स हिरण्याक्षं दिव्यरूपधरो हरिः।
रुधाराप्सु निमज्जन्तीमेष देवो वसुन्धराम्
वाराहं वपुराश्रित्य जगतो हितकाम्यया।
जघ्ने हिरण्यकशिपुं नारसिंहवपुर्हरिः॥ ३३
जिगाय जगतीं चैव विष्णुर्वामनरूपधृक्।
बबन्ध च बलिं देवः श्रीमान्पन्नगबन्धनैः ३४
देवदानवसंभूतानाक्रामयदपि श्रियम्।
स्वय्यनन्तः पुरा विष्णुरुदारोऽमितविक्रमः ३५
सावशेषं तपो यस्य तन्निहन्ति जनार्दनः।
अलीकेष्वपि वर्तन्तं व्रतमेतन्महात्मनः॥ ३७
जघ्ने च दानवान्मुख्यान्देवानां ये च शत्रवः।
तव प्रियार्थं गोविन्दो धर्मनित्यः सतां गतिः
रामत्वमपि चावाप्य जघ्ने रावणमात्मवान्।
भूत्वा कामगुणांश्चैव जघान द्विरदं हरिः ३८
हिताय जगतोऽद्यापि लोके वसति मानुषे।
उपेन्द्रो जगतां नाथः सर्वभूतोत्तमोत्तमः ३९
जटी कृष्णाजिनी दण्डी दृष्टपूर्वो मया हरिः
दैतेयेषु चरन्देवस्तृणेष्वग्निरिवोद्धतः॥ ४०
अद्राक्षमपि गोविन्दं दानवैकार्णवं जगत्।
कुर्वाणं दानवैर्हीनं जगतो हितकाम्यया॥४१
अवश्यं पारिजातं ते नयिष्यति जनार्दनः।
द्वारकाममरश्रेष्ठ नानृतं च ब्रवीम्यहम्॥ ४२
भ्रातृस्नेहाभिभूतस्त्वं न कृष्णे प्रहरिष्यसि।
नापि कृष्णस्त्वयि ज्येष्ठो प्रहरिष्यति वासव
नैव चेत्क्षोभ्यति प्रोक्तं मया देव कथञ्चन।
पृच्छ त्वं नयधर्मज्ञान्ये हितास्तव मन्त्रिणः

वैशम्पायन उवाच।

नारदेनैवमुक्तस्तु महेन्द्रो जनमेजय।
इदमुत्तरमीशोऽथ प्रत्युवाच जगद्गुरुम्॥ ४५
एवंविधप्रभावं त्वं कृष्णं वदसि यद्द्विज।
एवमेतत्सुबहुशः श्रुतं खलु मया मुने॥ ४६
यतश्चैवंविधः कृष्णस्ततोऽहं तस्य वै तरुम्।
न प्रदास्यामि दातव्यं सतां धर्ममनुस्मरन्
महाप्रभावो नाल्पार्थे रुष्येदिति विचिन्तयन्।
व्यवस्थितोऽहं भद्रं ते मुने सर्वगुणादिति ४८
महाप्रभावाः सततं भवन्ति हि सहिष्णवः।
श्रोतारश्चैव सततं वृद्धानां ज्ञानचक्षुषाम् ४९
महात्मा कारणे नाल्पे कृष्णो धर्मभृतां वरः।
भ्रात्रा ज्येष्ठेन सर्वज्ञो विरोधं गन्तुमर्हति ५०
यथैवं मम मातुः स वरं प्रादादधोक्षजः।
तथैव तस्याः पुत्राणां ज्येष्ठानां सोढुमर्हति
यथैवोपेन्द्रतां यातः स्वयमिच्छञ्जनार्दनः।
तथैव भ्रातुरिन्द्रस्य सन्मानं कर्तुमर्हति॥ ५२
ज्यैष्ठ्यमेतेन देवेन नारब्धं किं पुरातने।
अथेदानीमपीच्छेत्स ज्येष्ठोऽस्तु मधुसूदनः ५३
सुनिश्चितं बलरिपुमीक्ष्य नारदो
विसर्जितस्त्रिदशवरेण धर्मभृत्।
ययौ पुरीं यदुवृषभाभिरक्षितां
कुशस्थलीं धृतिमतिमांस्तपोधनः ५४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदस्य स्वर्गात्पुनरागमने एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

---

इति श्रुतेः योऽविद्यानिद्रायां शेतेऽतिमूढः स पुमान्कलिः। तदनुग्रहार्थे अस्मिन् ईश्वरः कृष्णः कृष्णावताररूपी भवति। यः किञ्चित् श्रेयोदर्शी अर्द्धप्रबुद्धः स द्वापरः। तं प्रति पीतवर्णः हिरण्यवन्मनोहरो भवति। स किञ्चिद्भक्त्युन्मुखो भवतीत्यर्थः। यस्तु श्रेयार्थे यतते स त्रेता। तदनुग्रहार्थे रक्तोऽनुरक्तो मातृवद्भवति। यस्तु युधिष्ठिरादिवदत्यन्तं भक्तः स कृतं तं प्रति शुक्लः। स्वयं शुद्धमेव रूपं प्रकाशयतीति। यथाश्रुतव्याख्यानं तु सर्वेषु युगेषु सर्वेषां रूपाणां सत्त्वान्न युज्यत इति दिक्॥ ३१॥ देवानां दानवानां च यत्नसम्भूतां साधारणीमपि श्रियं त्वयि त्वन्निमित्तम् आक्रामयत् आक्रान्तवान्॥ ३५॥ अलीकेषु मायासु वर्तमानमपि हन्त्येवेत्यर्थः॥ ३६॥ भूत्वा आविर्भूय तेष्ववतारेषु कामगुणान्यथेष्टं शौर्यादिगुणयुक्तानसुरान्हरिर्द्विरदं सिंहो गजानिव जघान। द्विरदमित्येकत्वमार्षं लुप्तोपमा च॥ ३८॥ वृद्धानां वृद्धवाक्यानाम्॥ ४९॥ पुरातने वामनावतारे किं नारब्धं नाङ्गीकृतमपि त्वारब्धमेव॥ ५३॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

---

१ ख 'तामकामयदपि श्रियम्। त्व'। २ ख. 'गतो ना'। ३ ख. ते। ४ ख. एतत्खखपुस्तके नास्ति। ५ ख. 'न धर्मज्ञो वि'। ६ ख. ज्यैष्ठ्यमेव तु दे'।

# कश्यपकृतं रुद्रस्तोत्रम्।

## ७२

वैशम्पायन उवाच।
अथैत्य द्वारकां रम्यां नारदो मुनिसत्तमः।
ददर्श पुरुषश्रेष्ठं नारायणमरिन्दमम् ॥ १
स्ववेश्मनि सुखासीनं सहितं सत्यभामया।
विराजमानं वपुषा सर्वतेजोऽतिगामिना ॥ २
तमेवार्थं महात्मानं चिन्तयन्तं दृढव्रतम्।
केवलं योजयन्तं च वाक्यमात्रेण भाविनीम् ३
दृष्ट्वैव नारदं देवः प्रत्युत्थाय अधोक्षजः।
पूजयामास च तथा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४
सुखोपविष्टं विश्रान्तं प्रहस्य मधुसूदनः।
वृत्तान्तं परिपप्रच्छ पारिजाततरुं प्रति ॥ ५
अथाचष्ट मुनिः सर्वं विस्तरेण तपोधनः।
इन्द्रानुजायेन्द्रवाक्यं निखिलं जनमेजय ॥ ६
श्रुत्वा कृष्णस्तु तत्सर्वं नारदं वाक्यमब्रवीत्।
अमरावतीं पुरीं यास्ये श्वोऽहं धर्मभृतां वर
इत्युक्त्वा नारदेनैव सहितः सागरं ययौ।
सन्दिदेश ततस्तत्र विविक्तो नारदं हरिः ॥८
महेन्द्रभवनं गत्वा अद्य ब्रूहि तपोधन।
अभिवाद्य महात्मानं मद्वाक्यममरोत्तमम् ॥ ९
न युद्धे प्रमुखे शक्र स्थातुमर्हसि मे प्रभो।
पारिजातस्य नयने निश्चितं त्वमवेहि माम्
एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदस्त्रिदिवं गतः।
आचचक्षेऽथ कृष्णोक्तं देवेन्द्रस्यामितौजसः
ततो बृहस्पतेः शक्रः शशंस बलनाशनः।
श्रुत्वा बृहस्पतिर्देवमुवाच कुरुनन्दन ॥ १२
अहो धिग्ब्रह्मसदनं मयि याते शतक्रतो।
दुर्नीतमिदमारब्धमत्र भेदो हि दारुणः ॥ १३
अनाख्यात्वा कथं नाम भवता भुवनेश्वर।
ममैतत्कृत्यमारब्धं देव केनापि हेतुना ॥ १४
अथवा भवितव्येन कर्मजेन प्रयुज्यते।
जगद्भ्रम्यं विविधं न शक्यमनिवर्तितुम् ॥१५
सहसैव तु कार्याणामारम्भो न प्रशस्यते।
तदेतत्सहसारब्धं कार्यं दास्यति लाघवम्
बृहस्पतिं महात्मानं महेन्द्रस्त्वब्रवीद्वचः।
एवं गतेऽद्य यत्कार्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १७
तमुवाचाथ धर्मात्मा गतानागततत्त्ववित्।
अधोमुखश्चिन्तयित्वा बृहस्पतिरुदारधीः १८
यतस्व सह पुत्रेण योधयस्व जनार्दनम्।
तथा शक्र करिष्यामि यथा न्याय्यं भविष्यति
बृहस्पतिस्त्वेवमुक्त्वा क्षीरोदं सागरं गतः।
आचष्ट मुनये सर्वं कश्यपाय महात्मने ॥ २०
तच्छ्रुत्वा कश्यपः क्रुद्धो बृहस्पतिमभाषत।
अवश्यं भाव्यमेतद्धि सर्वथा नात्र संशयः २१
इच्छतः सदृशीं भार्यां महर्षेर्देवशर्मणः।
अपध्यानकृतो दोषः पतत्येष शतक्रतोः ॥ २२
तस्य दोषस्य शान्त्यर्थमारब्धश्च मुने मया।
उदवासः स दोषश्च प्राप्त एव सुदारुणः ॥२३
तद्गमिष्यामि मध्येऽस्य सहादित्या तपोधन
उभौ तौ वारयिष्यामि दैवं संवदते यदि २४
बृहस्पतिस्तु धर्मात्मा मारीचमिदमब्रवीत्।
प्राप्तकालं त्वया तत्र भवितव्यं तपोधन ॥२५

---

७२

द्विसप्ततितमेऽध्याये शास्त्वेन्द्रस्य विचेष्टितम्
कश्यपो रुद्रमस्तौषीत्सोम इत्यभिधीयते ॥ १

अथैत्येति ॥ १ ॥ योजयन्तं भाविनीं सत्यभामाम् ॥ ३ ॥ अहो एतदारब्धं कृत्यं धिगिति कृत्यनिन्दया कृत्यवन्तमेव धिक्करोतीति द्वयोः सम्बन्धः ॥१३॥ अनाख्यात्वा अपृष्ट्वा आर्षो ल्यबभावः। मम मां प्रति ॥ १४ ॥ लाघवं पराजयम् ॥ १६ ॥ सदृशीम् आत्मवच्छुद्धां देवशर्मणो गौतमगोत्रस्य भार्याम् अहल्याम् इच्छतः अन्यायेन कामयानस्य शतक्रतोरुपरि एव दोषः पराभवरूपः मुनेः अपध्यानजः मानुषं भावमगणयतस्तव मानुषाद्भयं महद्भविष्यतीति मुनेरपध्यानं तज्जः ॥ २२ ॥ यद्यप्यारब्धः तथापि प्राप्त एवेत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥ २३ ॥ अस्य विरोधस्य मध्ये गमिष्यामि मध्यस्थो भूत्वा वारयिष्यामीत्यर्थः ॥२४॥

---

१ ख. अथोवाच मु०। २ ख. ०विक्ते ना०। ३ ख. ०तिश्चेदमुवा०। ४ ख. ०न्न न विधिः शक्यः समतिव०। ५ ख. अस्य दो०। ६ ख. ०मि मात्राऽस्य स०।

तथेति कश्यपश्चोक्त्वा संप्रस्थाप्य बृहस्पतिम्
जगामार्चयितुं देवं रुद्रं भूतगणेश्वरम् ॥ २६
तत्र सौम्यं महात्मानमानर्च वृषभध्वजम् ।
वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहितः प्रभुः
तुष्टाव च तमीशानं मारीचः कश्यपस्तदा ।
वेदोक्तैः स्वकृतैश्चैव स्तवैः स्तुत्यं जगद्गुरुम्

कश्यप उवाच ।

उरुक्रमं विश्वकर्माणमीशं
जगत्स्रष्टारं धर्मदृश्यं वरेशम् ।
सं सर्वं त्वां धृतिमद्धाम दिव्यं
विश्वेश्वरं भगवन्तं नमस्ये ॥ २९
यो देवानामधिपः पापहर्ता
ततं विश्वं येन जगन्मयत्वात् ।
आपो गर्भे यस्य शुभां धारिऽयो
विश्वेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ३०
शालावृकान्यो यतिरूपो निजघ्ने
दत्तानिन्द्रेण प्रणुदो हितानाम् ।
विरूपाक्षं सुदर्शनं पुण्ययोनिं
विश्वेश्वरं शरणं यामि मूर्ध्ना ॥ ३१
भुङ्क्ते य एको विभुर्जगतो विश्वमग्र्यं
धाम्नां धाम सुकृतित्वान्न धृष्यः ।
पुष्यात्स मां महसा शाश्वतेन
सोमपानां मरीचिपानां वरिष्ठः ३२
अथर्वाणं सुशिरसं भूतयोनिं
कृतिनं वीरं दानवानां च बाधम् ।
यज्ञे हुतिं यज्ञियं संस्कृतं वै
विश्वेश्वरं शरणं यामि देवम् ॥ ३३
जगज्जालं विततं यत्र विश्वं
विश्वात्मानं प्रीतिदेवं गतानाम् ।
य ऊर्ध्वगं रथमास्थाय याति
विश्वेश्वरः स सुमना मेऽस्तु नित्यम्
अन्तश्चरं रोचनं चारुशाखं
महाबलं धर्मनेनारमीड्यम् ।
सहस्रनेत्रं शतवर्त्मानमुग्रं
महादेवं विश्वसृजं नमस्ये ॥ ३५

---

वेदोक्तैः स्वकृतैः स्वकृतिमिश्रैः ॥ २८ ॥ तानेवाह— **उरुक्रममित्यादिना** द्वात्रिंशाद्भिः श्लोकैः । उरुक्रममिति विष्णोर्विशेषणम् उरुर्महान् । त्रैलोक्याक्रमणसमर्थः क्रमः पादविक्षेपो यस्य स इति योगात् । न चैतद्वामनस्येव रुद्रे विष्णावभेदमन्तरेण संगच्छते । अभेदश्च तयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावेन वा शास्त्रदृष्ट्या चेत्यन्यदेतत् । एकस्यैव विश्वेश्वरस्य सर्वाणि नामानीत्येव तत्त्वम् । विश्वं कर्म कृतिसाध्यं यस्येति कुलालवन्निमित्तत्वमुक्तम् । जगत्स्रष्टारमिति कालादिसाधारणकारणरूपत्वम् । धर्मदृश्यं पुण्यप्राप्यं वरेशमनुग्राहक कर्मकर्तॄणाम् । समित्युपसर्गस्य नमस्ये इत्यनेन सम्बन्धः । संनमस्ये इत्यर्थः । वेदे व्यवहिताश्चेति धातूपसर्गयोर्व्यवहितत्वस्मरणात् । सर्वं सर्वात्मकम् । धृतिमद्धाम धृतिः सात्त्विकी ।

" धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी "

इत्येवंलक्षणा । तद्वतां धाम स्वप्रकाशचैतन्यरूपमधिष्ठानं योगिनां निलयमित्यर्थः ॥ २९ ॥ " **आपः पुरुषवचसो भवन्ति** " इति श्रुतेरपां कार्ये शरीरमापः उपाधिः स सर्वो यस्य गर्भे प्रतिबिम्बचैतन्यरूपं धारयिन्त्र्यः दधति आपो गर्भे इति पाठेऽपि धारयिन्त्र्यः । आपोऽपि यस्य गर्भः सङ्कल्पोत्थस्तरङ्ग इत्यर्थः ॥ ३० ॥ **शालेति** । " **अरुन्मुखान्यतीन् शालावृकेभ्यः प्रयच्छम्** " इति श्रुतेः । वेदान्तविचारहीनमजितेन्द्रियं यतिमिन्द्रः शालावृकैर्भक्षयति तानिन्द्रियशालावृकान्यः यतिरूपो जितेन्द्रियः सन्निजघ्ने हतवान् । हितानां शमदमादिरूपाण मित्राणां प्रणुदः प्रणोदनपरान् अभिभावकान् । यामि शरणं मूर्ध्ना च प्रपद्य नमस्करोमि ॥ ३१ ॥ य एको जगतो विभुः स्वामी अग्र्यं ज्येष्ठं विश्वं शुद्धान् जनान् भुङ्क्ते भुनक्ति पालयति । अग्र्यं सूक्ष्ममति विश्वं भुङ्क्ते संहराति वा । धाम्नां चक्षुःसूर्यादीनां धाम प्रकाशं सुकृतित्वात् । " **तस्मात्तत्सुकृतमुच्यते** " इति श्रुतेः । सुकृतशब्दितब्रह्मरूपत्वात् न धृष्यः अभयरूप इत्यर्थः । पुष्यात् पोषयेत् । सोमपानां कर्मठानां मरीचिपानां चन्द्ररश्मिपानमात्रेण वर्तयतां महामुनीनां वरिष्ठः स्वर्गब्रह्मलोकादिस्थानप्रद इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ अथर्वाणमथर्ववेदप्रतिपाद्यं सुशिरसं शिरः पञ्चकोशेति । भूतयोनिं जगत्कारणं बाधं बाधकम् ॥ ३३ ॥ यत्राधिष्ठाने जगज्जालं जगदिन्द्रजालं विततं विश्वं कृत्स्नं गतानां शरणं प्राप्तानां प्रीतिदेवं सुखप्रकाशकं यत् यः ऊर्ध्वगमन्तरिक्षचरं रथं वाहनमास्थाय याति सञ्चरति । सुमनाः सुखकरः ॥ ३४ ॥ रोचनं चिन्मयं चारुशाखं रमणीयाः शाखा वेदमया यस्मात् जातास्तम् । शतवर्त्मानं शतपथविहितकर्मफलप्रदम् ॥३५॥

---

१ ख. °श्वरं यामि मूर्ध्ना प्रपद्ये । भु° । २ ख. °नं वीरं दा° ।

शुचिं योगं शंसनं शान्तपापं
सर्वं शम्भुं शंकरं भूतनाथम्।
धुरंधरं गोपतिं चन्द्रचिह्नं
हृषीकाणामयनं यामि मूर्ध्ना ॥ ३६

आशुं शिशानं वृषभं रोरुवाणं
कृतं धर्मं वितथं चाशुशेषम्।
वसुंधरं समृजीकं समं त्वां
धृतव्रतं शूलधरं प्रपद्ये ॥ ३७

अनन्तवीर्यं धृतकर्माणमाद्यं
यज्ञाशेषं जयतां चाभियोज्यम्।
हविर्भुजं भुवनानां सदैव
ज्येष्ठं द्विजं धर्मभृतां प्रपद्ये ॥ ३८

परं गुणेभ्यः पृश्निगर्भस्वरूपं
यशःशृङ्गं व्यूहनं कान्तरूपम्।
शुद्धात्मानं पुरुषं सत्यधामं
संमोहनं दुष्कृतिनां नमस्ये ॥ ३९

युक्तोङ्कारं स्वशिरसं चारुकर्म
दृढव्रतं दृढधन्वानमाजम्।
शूरं वेत्तारं धनुषोऽस्त्रातिरेकं
पातिं पशूनां शमनं नमस्ये ॥ ४०

एको रातिश्चैव भूतं भविष्यं
सर्वातिथिर्यो हि जुषत्यरिघ्नः
अरिंतुदोऽनुत्तमः संविभागी
विभाजको मां भगवान्पातु देवः ४१

य एको याति जगतां विश्वमीशो
य एकोऽदान्मरुतां प्राणमग्र्यम्।
येनानृशंस्याच्छाश्वतं साम जुष्टं
स मां जुष्यात्सुकृतिश्रेयसेऽद्य ॥ ४२

ब्रह्मासृजद्यो भुवनोत्तमोत्तमं
तृप्तो विद्वान्ब्राह्मणः षड्गुणस्य।
सृष्ट्वा रसं व्याहृतिस्थं समग्रं
स मां पायादिह बहुरूपोऽरिहाङ्गैः ४३

शुचिमसङ्गम्। योगं योगप्राप्यं शंसनं वेदप्रशस्यम् शर्वं शृणोति हिनस्तीति संहर्तारं शंभुं सुखहेतुं शङ्करं सुखकरं धुरन्धरं जगतामिति शेषः। चन्द्रचिह्नं चन्द्रमौलिं हृषीकाणां हिंस्राणां कालादीनाम् अयनम् आश्रयम् ॥ ३६ ॥ आशुः शीघ्रफलप्रदम्। शिशानं रागादिदोषाणां तनूकरणं वृषभं शमादिगुणानां वर्षकं रोरुवाणम्। प्रातःसवनादिक्रमेण गर्जन्तं कृतम् अनुष्ठितं धर्मं यज्ञादिरूपम् शिष्यत इति शेषः पूर्वधर्मजं पुण्यम् आशुफलभोगेन शीघ्रनाशशीलः शेषो यस्य तम्। अत एव चाल्पफलत्वाद्वितथं निष्फलप्रायम् एवं सति नानुष्ठेयो धर्म इत्यत आह। वसुंधरं समृजीकं मृजीका सत्त्वशुद्धिस्तदुद्देशेन तया सह क्रियमाणं समृजीकम्। अत एव वसुन्धरं कर्मजं पुण्यं वसु तस्य धारकम् अफलोदयं शुद्ध्यर्थं कृतो धर्मो न नश्यतीत्यर्थः समं बुद्ध्यवाधिभूतं सर्वस्वरूपमित्यर्थः ॥ ३७ ॥ धृतकर्मफलप्रतिभुवं यज्ञाशेषं देवतान्तरवत् यज्ञाङ्गभावहीनं ज्ञातं सन्तं स्वतः पुरुषार्थभूतमित्यर्थः। एवं सत्यपि यजताम् अभियाज्यम् इज्यारम्भविषयं यतो हविर्भुजं भुवनानां जगती स्थानं जगतां वा ज्येष्ठं द्विजं ब्राह्मणरूपं धर्मभृतां मध्ये ॥ ३८ ॥ गुणेभ्य इन्द्रियादिभ्यः परं तुरीयं पृश्निगर्भः विष्णुस्तत्स्वरूपम्। यशः अश्नुते इति व्यापकम्। शृङ्गं प्रपञ्चं व्याप्यापि शृङ्गवत्ततो रिक्तम्। व्यूहनं रमणीयतया जगत्क्षोभकम्। सत्यधामम् अबाधितचैतन्यस्वरूपम्। संमोहनं मायाविनम् ॥ ३९ ॥ युक्तानां योगिनाम् ओङ्कारं सर्वप्रपञ्चरूपम्। स्वशिरसम्। ओङ्कारस्यापि शिरोऽर्द्धमात्रा तद्रूपम्। चारुकर्म हिंसाशून्यधर्मस्वरूपम्। आजं क्षेपणक्रियारूपम् शूरं धनुषो वेत्तारम्। अस्त्रातिरेकं सर्वास्त्रेभ्योऽधिकम्। पशूनां जीवानां शमनं संहर्तारम् ॥ ४० ॥ एकोऽद्वितीयः रातिर्मित्रम्। सर्वातिथिरग्निः जुषति हविर्भुङ्क्ते। अरिघ्नः कामादिदोषघ्नः। अरिंतुदः रक्षोघ्नः। संविभागी विभागभाग्विभाजकश्च ॥ ४१ ॥ जगताम् ईशः एकोऽपि विश्वं जलचन्द्रवत् याति प्रविशति। मरुतां प्राणमदात्प्राणस्य प्राणमित्यर्थः। आनृशंस्यात् दयालुत्वात् साम मैत्री जुष्टं सेवितं जुष्यान्नयतु ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा चतुर्मुखः भुवनोत्तमोत्तमं सत्यलोकम् असृजत्। यतः ब्राह्मणः ब्रह्मवित् अत एव षड्गुणस्य षड्भिर्गुणैः ऐश्वर्यज्ञानयशःश्रीवैराग्यधर्मैस्तृप्तः पूर्णः। पूर्णत्वादेव व्याहृतिस्थं रसं प्रणवं तदर्थभूतं कृत्स्नं प्रपञ्चं सृष्ट्वा इह प्रपञ्चे आयात्प्रविष्टः। अरिहा कामादिदोषघ्नः अङ्गैः—

"सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विभुज्ञाः
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥"

इति पुराणोक्तैर्बहुरूपः ॥ ४३ ॥

१ ख. °भं वोरुवा°। २ ख. स्रष्टारं सव्या°।

व्यञ्जनोऽजनोऽथ विद्वान्समग्रः
स्पृशिः शम्भुः प्राणदः कृत्तिवासाः ।
रेसा ध्रुवः पवमानस्य भर्ता
सपत्नीशः शङ्करः सारधाता ४४

त्र्यम्बकं पुष्टिदं वो ब्रुवाणं
धर्मं विप्राणां वरदं यज्वनां च ।
वराह्वरं रणजेतारमीशं
देवं देवानां शरणं यामि रुद्रम् ४५

आस्यं देवानामन्तकं दुष्कृतीनां
त्रिवृत्स्तोमं वृक्षहं कर्मसाक्ष्यम् ।
भूतायनं भूतपतिं गुणज्ञं
गुणाकारं शरणं यामि रुद्रम् ॥ ४६

अनुद्भूतं यज्ञकर्तारमन्तं
मध्यं चाद्यं यज्ञकृतां साम्यरूपम् ॥
वेदव्रतेषु बहुधा गीतमीश-
मभित्रिविष्टपं शरणं यामि रुद्रम् ४७

महाजिनं व्रतिनं मेखलालं
सुतोषणं क्रोधघ्नं विपापम् ।
भूतं क्षेत्रज्ञं गुणिनं वा कपर्दिनं
नतोऽस्मीशं वन्दनं वन्दनानाम् ४८

देवं देवानां पावनं पावनानां
क्रतिं क्रतीनां महतो महान्तम् ।
शतात्मानं संस्तुतं गोपतीनां
पतिं देवं शरणं यामि रुद्रम् ॥ ४९

अन्तश्चरं पुरुषं गुह्यसंज्ञं
प्रभास्वन्तं प्रणवं विप्रदीपम् ।
हेतुं परं परमस्याक्षरस्य
शुभं देवं गुणिनं सन्नतोऽस्मि ॥ ५०

प्रसूतिरुभयोर्न प्रसूतश्च[2] सूक्ष्मः
पृथग्भूतेभ्यो न पृथक्चैकभूतः ।
स्वयं भूतः पातु मां सर्वसादः
प्रदः स्वादः संमदः पातु रत्नम् ॥ ५१

आसन्नः सन्नतरः साधनानां
श्रद्धावतां श्राद्धवृत्तिप्रणेता ।
पतिर्गणानां महतां सत्कृतीनां
पायान्मेषः पूरणः षड्गुणानाम् ॥ ५२

अन्तर्बहिर्वृजिनानां निहन्ता
स्वयं कर्ता भूतभावी विकुर्वन् ।
धृतायुधः सुकृतिनामुत्तमौजाः
प्रणुद्यान्मे वृजिनं देवदेवः ॥ ५३

---

व्यञ्जनः अतीन्द्रियाणामपीन्द्रियादीनामर्थानां ज्ञापकः । अजनो अजन्मा । समग्रः दृग्दृश्यात्मा। स्पृशिः विषयस्पृक्। शंभुः तत्स्पर्शजसुखभोक्ता। प्राणदः जीवनकृत्। ध्रुवो रसः परमानन्दः। पवमानस्य वायोर्भर्ता प्राणपतिः सपत्नीशः पत्नीशाभ्यां सहितः यज्ञादिकृत् । शङ्करस्तत्फलकरः। सारस्य बोधस्य च धाता जनयिता॥४४॥ त्र्यम्बकं त्रिनेत्रं वो युष्माकं विप्राणां ज्ञानिनाम् ॥ ४५ ॥ आस्यम् जाग्निरूपेण । त्रिवृत्स्तोमं त्रिवृदादयः स्तोमाः स्तोत्राणि यस्मिंस्तं सोमयागम् । वृक्षहं संसारवृक्षघ्नम् । कर्मसाक्ष्यं कर्मसाक्षिणम् भूतायनं भूतानां लयस्थानम् ॥ ४६ ॥ साम्यं प्रकृत्यवस्था वेदव्रतेषु वेदोक्तयज्ञेषु बहुधा नानादैवतरूपेण । गीतम् आभित्रिविष्टपं स्वर्गं व्याप्य ईशं नियन्तारम् ॥ ४७ ॥ महाजिनं गजाजिनवन्तम् । मेखलालं मेखलया अलंकृतम् । सुतोषणम् अल्पायासप्रसन्नम् । भूतं नित्यसिद्धम् अत एव क्षेत्रज्ञं देहेन्द्रियाहङ्कारादिप्रकाशकम् । वन्दनं वन्दनीयं वन्दनानां वन्दनीयानाम् ॥४८॥ क्रतिं क्रतीनां यज्ञानां यज्ञं यज्ञियानामपि यष्टव्यमित्यर्थः । शतात्मानम् अनन्तमूर्तिम् । गोपतीनाम् इन्द्रियाधिष्ठातृदेवतानां संस्तुतम् आधिष्ठातृत्वेन । " चक्षुषश्चक्षुः " इत्यादिश्रुतेः ॥४९॥ प्रभास्वन्तं स्वप्रकाशम् । विप्रदीपं ज्योतिरपि सूर्यादिकं ज्योतिरन्तरेण चक्षुरादिना भास्यं भवति इदं तु न तथा विगतप्रदीपत्वात् । अक्षरस्य जीवाख्यप्रतिबिम्बस्य हेतुं बिम्बभूतम् ॥ ५० ॥ उभयोः जगज्जीवयोः प्रसूतिर्योनिः न प्रसूतश्च योनिरपि न कारणातीतत्वात् । अत एव सूक्ष्मो दुर्ग्राह्यः । भूतेभ्यः पृथक् न पृथक् एकभूतश्च पृथागिति तदधिष्ठानत्वात् एकभूत इति तदभेदाग्रहात् स्वयंभूतः सर्वजगदाकारेण निष्पन्नः । सर्वं सीदति लीयतेऽस्मिन्निति सर्वसादः । प्रदः प्रकृष्टो दाता । स्वादः रुचिः आम्रादिषु माधुर्यरूपेणायमेवास्तीत्यर्थः । संमदो हर्षः रत्नं रमणीयम् ॥ ५१ ॥ आसन्नः अन्तर्यामित्वेन निकटगः । साधनानां तद्वतां तु सन्नतरः अनावृतः श्राद्धवृत्तिः श्रद्धागृहीतमहावाक्यजा वृत्तिरहं ब्रह्मास्मीति ज्ञानं तस्य प्रदाता । मा माम् ईषः इष्यमाणस्यार्थस्य पूरणः षड्गुणानां च सर्वज्ञत्वादीनां पूरणः॥५२॥अन्तर्बहिर्वृजिनानाम् आधिव्याध्यादीनां कामक्लेशादीनां वा । स्वयं कर्तेति निमित्तकारणत्वम् । भूताकारेण भवितुं शीलमस्येति भूतभावी उपादानं विकुर्वन् विकारं प्राप्नुवन् क्रोधादीन् आविष्कुर्वन् । सुकृतिनां साधूनां मे मम च वृजिनं प्रणुद्यात् ५३

---

१ ख. प्रसृताक्षम° । २ ख. °सूतिश्च सू° ।

येनोद्धृताश्चैः पुरा मायिनो वै
दग्धा घोरेण वितथान्ताः शरेण ।
महत्कुर्वन्तो वृजिनं देवतानां
ज्यायानीशः पातु विश्वो दधाता ५४
भागीयसां भागमतोऽन्तमिच्छ-
न्मखो दाक्षो येन कृत्तोऽन्वधावत् ।
विद्वान्यज्ञस्यादिरथान्तः स देवः
पायादीशो मां दक्षयज्ञान्तहेतुः ॥ ५५
अन्यो धन्यः संस्कृतश्चोत्तमश्च
जगत्स्रष्टा योऽस्ति सर्वातिगुह्यः ।
स मां मुखप्रमुखे पातु नित्यं
विचिन्वानः प्रथमः षड्गुणानाम् ५६
गुणत्रैकाल्यं यस्य देवस्य नित्यं
सत्त्वोद्रेको यस्य भावात्प्रसूतः ।
गोप्ता गोप्तॄणां सन्नदो दुष्कृतीना-
माद्यो विश्वस्य बाधमानस्य क्रुद्धः ५७

धाम्नो यस्य हरिरग्र्योऽथ विश्वो
ब्रह्मा पुत्रैः सहितश्च द्विजाश्च ।
पराभूता भवने यस्य सोमो
जुषत्वेष श्रेयसे साधुगोप्ता ॥ ५८
यस्माद्भूतानां भूतिरन्तोऽथ मध्यं
धृतिर्भूतिर्यश्च गुहाश्रुतिश्च ।
गृहाभिभूनस्य पुरुषेश्वरस्य
महात्मनः संमृडवेद्यस्य तस्य ॥ ५९
यल्लिङ्गाङ्कं त्र्यम्बकः सर्वमीशो
भगलिङ्गाङ्कं यच्चयुमा सर्वधात्री ।
नान्यत्तनीयं जगतीहास्ति किञ्चि-
न्महादेवात्सर्वसर्वेश्वरोऽसौ ॥ ६०
इति संस्तूयमानस्तु भगवान्वृषभध्वजः ।
दर्शयामास धर्मात्मा कश्यपं धर्मधृग्वरम् ६१

---

उद्धृताः कण्टकवत् नाशिताः । शरेण यतो दग्धा अतो वितथान्ता विफलमरणाः अशस्त्रपूतत्वात् पुरदाहेन दग्धत्वादित्यर्थः । शापादीश इति पाठे इन्द्रस्य गौतमशापात् । विश्वस्य सर्वस्य उदस्य उदकस्य सर्वकारणस्य प्रधानस्येत्यर्थः । धाता धारकः सर्वाश्रयत्वात् ॥५४॥ भागीयसाम् अतिशयेन भागभाजां देवानां भागम् अन्तम् अपमानेन वधं च इच्छन् । दाक्षो यज्ञकृद्दक्ष इति वक्तव्ये उपचारादुक्तम् । येन कृत्तोऽवच्छिन्नः सन्नन्वधावत् यज्ञेशं शरणम् आजगामेत्यर्थः । तत्र यज्ञवाक्यमुदाहरति । विद्वानिति ॥ ५५ ॥ यो जगत् सृष्ट्वाऽस्ति अतिगुह्यो गोप्यो ब्रह्मरूपी ईश्वरस्ततोऽन्यो विष्णुः पालनकर्ता स च धन्यः महाभागः यतः संस्कृतः शमादिसंस्कारयुक्तोऽत एव उत्तमो यः समौदार्यः स मां मुखप्रभवत्वात् "**मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च**" इति श्रुतौ इन्द्राग्नी तौ प्रमुखे आदौ यस्य तस्मिन् यज्ञे नित्यं चिन्वान ईश्वरं स्वाभेदेन सर्वत्र पश्यन् नारायणः स मां पातु मत्सन्ततिमिन्द्रं रक्षतु । यतः षड्गुणानामैश्वर्यादीनां प्रथमो मुख्य आश्रय इत्यर्थः । मखप्रमुखे इति पाठेऽग्निविष्णू ॥ ५६ ॥ गुणत्रैकाल्यं कार्योत्पत्तिस्थितिसंहारसमयवत्त्वं यस्य नित्यम् । प्रवाहानित्यतया उत्पत्त्यादयो यतो भवन्तीत्यर्थः । एतेन ब्रह्मकर्म उक्तम् । सत्त्वोद्रेकः सत्त्वाधिक्यं च यस्य विष्णुरूपस्य नित्यं यस्य च विष्णोर्भावात् स्वरूपात् प्रसूतः आविर्भूतः । कृष्णो गोप्तॄणामिन्द्रादीनां गोप्ता सत्त्वमयत्वात् । यश्च सन्नदः

सन्नमवसानो नाशस्तत्प्रदः कालरुद्ररूपेणेत्यर्थः । विश्वस्याद्यो मातृपितृवत्पालकोऽपि बाधमानस्य जगत्पीडकस्य क्रुद्धः सन् सन्नद इत्यनुवर्तते ॥ ५७ ॥ यस्य धाम्नः तेजोजालस्य हरिर्विष्णुरग्र्यः अग्रमिवाग्रः सूक्ष्मोंऽशोऽथ विश्वो विराट् ब्रह्मा हिरण्यगर्भः पुत्रैः सनकाद्यैः सहितोऽन्ये च द्विजाः मरीचादयः संभूता इति शेषः । ते च यस्य सोमस्य उमासहितस्य भवने द्वारप्रवेशे पराभूताः सन्तः प्रवेशं न लभन्त इत्यर्थः । एष देवः सोमः जुषतु अस्मासु प्रीयताम् ॥५८॥ यस्माद्भूतानां वियदादीनां भूतिः संभवः अन्तो नाशः मध्यं स्थितिश्च भवति । अतो यस्य कस्यापि पराभूतस्य नरस्य मृडवेद्यस्य मृड एव वेद्योऽन्वेष्यो यस्य शिवैकशरणस्य तत एव भृत्यादिरूपोऽनुग्रहो गुहाश्रुतिर्गुह्यवस्तुश्रवणं च भवति अत एव तस्य पुरुषेश्वरस्येति महात्मन इति च विशेषणं युज्यते । व्यसनागमे शरणीकृतो विश्वकर्ता व्यसनभङ्गं करिष्यत्येवेति भावः ॥ ५९ ॥ **यदिति** । यथा कार्यं सर्वं स्त्रीपुंसरूपं भगलिङ्गाङ्कम् । एवं कारणमपि तस्य तदनुरूपं भगालिङ्गाङ्कं भगलिङ्गसंयोगरूपप्रतिमात्मकम् अवगन्तव्यम् । तेन यदिदं दृश्यते लोके शिवं लिङ्गं तदभिमानि चेतनोद्भवमिदं ब्रह्माण्डमित्यर्थः । अत एवासौ सर्वसर्वेश्वरः । सर्वम् अविशेषात्कृत्स्नः प्रपञ्चः "**सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः**" इति निर्वचनात्तदुपादानभूतो विष्णुरपि सर्वशब्दार्थः तयोरीश्वरस्तुरीयब्रह्मरूप इत्यर्थः ॥ ६० ॥ धर्मधृग्वरं धर्मभृतां श्रेष्ठम् ॥ ६१ ॥

उवाच चैनं देवेशः प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
येन संस्तौषि कार्येण त्वं तज्जाने प्रजापते ६२
इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ देवौ प्रकृतिमेष्यतः ।
पारिजातं तु धर्मात्मा नयिष्यति जनार्दनः
अपध्यातो महेन्द्रो हि मुनिना देवशर्मणः ।
अस्याकाङ्क्षत्पुरा भार्यां तपोदीप्तस्य कश्यप
गम्यतां तत्र धर्मज्ञ दाक्षायण्या सह त्वया ।
अदित्या शक्रसदनं श्रेयस्ते पुत्रयोर्ध्रुवम् ॥ ६५
इति हरिवचनं निशम्य विद्वान्
कमलभवात्मजसूनुरप्रमेयः ।
त्रिदशगणगुरुं प्रणम्य रुद्रं
मुदितमनाः सुमनौकसं जगाम ॥ ६६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कश्यपकृतरुद्रस्तोत्रे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## इन्द्रकृष्णयोर्युद्धं विष्णोरुत्कर्षश्च ।

## ७३

वैशम्पायन उवाच ।
अथ विष्णुर्महातेजा मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ।
मृगयाव्यपदेशेन ययौ रैवतकं गिरिम् ॥ १
आरोप्यैकरथे देवः सात्यकिं नरपुङ्गवम् ।
प्रद्युम्नमनुगच्छेति प्रोक्त्वा कुरुकुलोद्वह ॥ २
रैवतं च गिरिं देवो गत्वा दारुकमब्रवीत् ।
मदीयं रथमेनं त्वं ग्राहयेहैव दारुक ॥ ३
प्रतिपालय मां सौम्य दिनार्द्धं वारयन्हरीन्
रथेनैव प्रवेष्टाहं द्वारकां सूतसत्तम ॥ ४
इति सन्दिश्य भगवानारुरोह जयोद्यतः ।
तार्क्ष्यं ससात्यको धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ ५
पृथग्रथेन कौरव्य प्रद्युम्नः शत्रुसूदनः ।
आकाशगामिना राजन्पृष्ठतः कृष्णमन्वयात् ६
निमेषान्तरमात्रेण नन्दनं काननं हरिः ।
देवोद्यानं ययौ धीमान्पारिजातजिहीर्षया ७
ददर्श तत्र भगवान्देवयोधान्दुरासदान् ।
नानायुधधरान्वीरान्नन्दनस्थानधोक्षजः ॥ ८
तेषां संपश्यतामेव पारिजातं महाबलः ।
उत्पाट्यारोपयामास पारिजातं सतां गतिः
गरुडं पक्षिराजानमयत्नेनैव भारत ।
उपस्थितो विग्रहवान्पारिजातः स केशवम्
सान्त्वितो वासुदेवेन पारिजातश्च भारत ।
उक्तश्च वृक्ष मा भैस्त्वं केशवेन महात्मना ११
तं प्रस्थितं तरुं दृष्ट्वा पारिजातमधोक्षजः ।
अमरावतीं पुरीं श्रेष्ठां ततश्चक्रे प्रदक्षिणाम्
ते तु नन्दनगोप्तारः पारिजातो द्रुमोत्तमः ।
ह्रियतीति महेन्द्राय गत्वा नृप शशंसिरे १३
अथैरावतमारुह्य निर्ययौ पाकशासनः ।
जयन्तेन रथस्थेन पृष्ठतोऽनुगतः प्रभुः ॥ १४

येन कार्येण यदर्थं संस्तौषि तज्जाने। प्रजापते हे कश्यप॥६२॥ प्रकृतिं स्वास्थ्यं तत्रापि धर्मात्मा हरिर्नेष्यतीत्याह—**पारिजातं त्विति**॥६३॥इन्द्रस्तु अधर्मदोषादभिभवं प्राप्स्यतीत्याशयेनाह—**अपध्यात इति** ॥ ६४ ॥ कमलभवात्मजस्य मरीचेः सूनुः सुमनौकसं सुमनसां देवानाम् ओकांसि यत्र तं देवलोकम् । सन्धिरार्षः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

७३

**अथ त्रिसप्ततितमेऽध्यायेऽस्मिन्निन्द्रकृष्णयोः युद्धं तु वर्ण्यते तत्र विष्णोरुत्कर्ष उच्यते ॥ १**

अथ विष्णुः मृगयाव्यपदेशेन मृगयाच्छलेन ॥ १ ॥ ग्राहय गृहीत्वा ॥ ३ ॥ प्रतिपालय प्रतीक्षस्व । हरीन् अश्वान् प्रवेक्ष्यामि ॥ ४ ॥ पारिजातं संपश्यतां पश्यतस्ताननादृत्येत्यर्थः । पारिजातम् आरोपयामासेति पृथगन्वयान्न पौनरुक्त्यम् ॥ ९ ॥ ह्रियति ह्रियते ॥ १३ ॥

१ ख. जाने सं० । २ ०ख. ण येन मां त्वं. प्र० । ३ ख. ण्या ०सहानया । अ० । ४ ख. ०णे महादेवस्तवने द्वि० । ५ ख. ०किं शिनिपुङ्ग० ।

पूर्वमभ्यागतं द्वारं केशवं शत्रुनाशनम्।
दृष्ट्वोवाच प्रवृत्तं भोः किमिदं मधुसूदन ॥ १५
प्रणम्य गरुडस्थोऽथ केशवः शक्रमब्रवीत्।
वध्वास्ते पुण्यकार्याय नीयतेऽयं वरद्रुमः १६
तमुवाच ततः शक्रो* मा मैवं पुष्करेक्षण।
अयोधयित्वा न तरुर्नयितव्यस्त्वयाच्युत १७
प्रहरस्व महाबाहो प्रथमं मयि केशव।
प्रतिज्ञा सफला तेऽस्तु मुक्त्वा कौमोदकीं मयि
ततः कृष्णः शरैस्तीक्ष्णैर्देवराजगजोत्तमम्।
बिभेदाशनिसंकाशैः प्रहसन्निव भारत ॥ १९
विव्याध गरुडं वज्री दिव्यैः शरवरैस्तथा×।
बाणांश्चिच्छेद सहसा केशवस्य तरस्विनः २०
यान्यान्मुमोच देवेन्द्रस्तांस्तांश्चिच्छेद माधवः
माधवेन प्रयुक्तांश्च चिच्छेद बलवृत्रहा ॥ २१
महेन्द्रस्य च शब्देन धनुषः कुरुनन्दन।
शार्ङ्गस्य च निनादेन मुमुहुः स्वर्गवासिनः २२
तयोर्वर्तति संग्रामे गरुडस्थो महाबलः।
पारिजातं जयन्तोऽथ हर्तुमभ्युद्यतो बली २३
प्रद्युम्नमथ कंसघ्नो वारयेति तदाब्रवीत्।
ततस्तं वारयामास रौक्मिणेयः प्रतापवान्
जयन्तो जयतां श्रेष्ठो रौक्मिणेयमथेषुभिः।
सर्वगात्रेषु विहसन्नाजघान रथे स्थितः ॥ २५
रथस्थ एव रथिनं कामस्तु कमलेक्षणः।
ऐन्द्रिमभ्यर्दयामास बाणैराशीविषोपमैः २६
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव कुरुनन्दन।
जयन्तस्य च वीरस्य रौक्मिणेयस्य चोभयोः
कृतप्रतिकृतं युद्धे चक्रतुस्तौ महाबलौ।
महेन्द्रोपेन्द्रतनयौ जगत्यस्त्रभृतां वरौ ॥ २८
देवाश्च मुनयश्चैव ददृशुर्विस्मयान्विताः।
तं संग्रामं महाघोरं सिद्धाश्चैव सचारणाः २९
ततस्तु प्रवरो नाम देवदूतो महाबलः।
पारिजातं पुनर्हर्तुमियेष कुरुनन्दन ॥ ३०
सखा स देवराजस्य महास्त्रविदरिन्दमः।
अवध्यो वरदानेन ब्रह्मणः कुरुनन्दन ॥ ३१
ब्राह्मणस्तपसा सिद्धो जम्बुद्वीपाद्दिवं गतः।
स्वशक्त्या नृप संयातः सखित्वं बलघातिना
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कृष्णः सात्यकिमब्रवीत्।
अत्रस्थ एव प्रवरं शरैर्वारय सात्यके ॥ ३३
न त्वत्र निर्दयं बाणा मोक्तव्याः सात्यके त्वया
अस्य ब्राह्मणचापल्यं सोढव्यं खलु सर्वथा ३४
ततः षष्ट्या रथेषूणां गरुडस्थं द्विजस्तदा।
आजघान महाबाहो सात्यकिं प्रवरो भृशम्
शिनेर्नप्ता धनुस्तस्य क्षिपतः सायकान्नृप।
चिच्छेद पुरुषव्याघ्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३६
ब्राह्मणो नाभिहन्तव्यस्तिष्ठ तिष्ठ स्ववर्त्मनि।
अवध्या यादवानां हि स्वापराधेऽपि हि द्विजाः
प्रवरस्तु प्रहस्यैनमुवाच कुरुनन्दन।
अलं क्षान्त्या नृणां शूर युद्ध्य सर्वात्मना रणे
जामदग्न्यस्य रामस्य शिष्योऽहमपि यादव।
नामतः प्रवरो नाम सखा शक्रस्य धीमतः ३९
न देवा योद्धुमिच्छन्ति मन्यन्तो मधुसूदनम्
आनृण्यं सौहृदस्याहमधिगन्तास्मि माधव
ततस्तयोस्तदा रौद्रः संग्रामो ववृधे नृप।
अस्त्रैर्दिव्यैर्नरव्याघ्र शैनेयद्विजमुख्ययोः ॥ ४१
द्यौश्चचाल तदा राजन्ग्रह[3]चलाश्च सहस्रशः।
तस्मिन्वर्तति संग्रामे तेषामतिमहात्मनाम् ४२
नातिशिष्ये रणे कार्ष्णिरैन्द्रिमस्त्रभृतां वरम्,
ऐन्द्रिः कार्ष्णिं महात्मानं मायिनं शूरसत्तमम्
हन्त गृह्ण प्रतीच्छेति तावुभौ योधसत्तमौ।
युयुधाते नरश्रेष्ठ परस्परजयैषिणौ ॥ ४४
अथ शार्ङ्गायुधसुतं शचीपुत्रः प्रतापवान्।
विभाष्याभ्यहनद्राजन्दिव्येनास्त्रेण सत्वरः॥
सोऽस्त्रं तदभिदीप्यन्तमापतन्तं शितैः शरैः।
तस्तम्भे बाणजालेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४६
ततस्तद्दीप्यमानं तु पपात रणमूर्द्धनि।
रौक्मिणेयस्य कौरव्य घोरं दानवमर्दनम् ४७

इन्द्रपुर्या एव ॥ १५ ॥ वर्तति वर्तमाने ॥ २३ ॥ कृतप्रतिकृतम् अन्योन्यं शस्त्रास्त्रपरिहारम् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणचापल्यं ब्राह्मणत्वाच्चापल्यमित्यर्थः ॥ ३४ ॥ शिनेर्नप्ता सात्यकिः ॥ ३६ ॥ मन्यन्तो मानयन्त ॥ ४० ॥ कार्ष्णिर्नातिशिष्ये इत्यनुकृष्यते ॥ ४३ ॥ हन्तेति संबोधनम्। गृह्ण गृहाण। प्रतीच्छ देहि। प्रहारमिति शेषः ॥४४॥ दीप्यन्तं दीप्यमानं पुंस्त्वम् आर्षम्। शरैरुपेतं बाणजालम् ॥४६॥ रौक्मिणेयस्यापि घोरं दुःसहं किमुतान्यस्य ॥ ४७ ॥

* ख. °क्रो मैवं पुष्करलोचन। अ° ×ख. °रैस्तदा। बा° १ घ. महेन्द्रोपेन्द्र°। २ ख. °हमभ्यग°। ३ ख. °जन्ग्रुचराश्च स°।

तेनास्त्रेण रथो दग्धः प्रद्युम्नस्य महात्मनः ।
नादहत्तत्सुघोरं तं रौक्मिणेयं नराधिप ॥४८
दहत्यग्निं न खल्वग्निरुद्धतोऽपि विशांपते ।
दग्धाद्रथान्महाबाहू रौक्मिणेयः प्रचक्रमे ४९
अथ नारायणसुतो विरथो रथिनां वरः ।
स्थितो धनुष्मानाकाशे जयन्तमिदमब्रवीत् ५०
महेन्द्रपुत्र दिव्यं त्वं यदस्त्रं मुक्तवानसि ।
नाहमीदृशरूपाणां शक्यो हन्तुं शतैरपि ५१
प्रयत्नं कुरु शिक्षाणां यत्नं मेऽद्य प्रदर्शय ।
नास्ति मेऽतिशयं कर्ता संग्रामेऽमरनन्दन ५२
आसीन्मे साध्वसं दृष्ट्वा रथस्थं त्वां धृतायुधम्
बिभेमि तव नेदानीं युद्धे दृष्टबलोऽबलम् ५३
मनसा स्मर्यतां मैष
पारिजातस्त्वया तरुः ।
शक्यं न खलु हस्ताभ्यां
स्प्रष्टव्यो यस्त्वया ह्यमौ ॥ ५४
रथो मायामयो दग्धस्त्वया यो ह्यस्त्रतेजसा।
ईदृशानां सहस्राणि स्रष्टुं शक्तोऽस्मि मायया
एवमुक्तो जयन्तश्च मुमोचास्त्रं महाबलः ।
तपसोपचितं तेन स्वयमेवातितेजसा ॥ ५६
तत्प्रद्युम्नो महादिव्यं शरजालैरवारयत् ।
चत्वार्यस्त्राणि दिव्यानि मुमुचे चापराणि सः
दिक्षु सर्वासु रुरुधुस्तान्यस्त्राण्यथ भारत ।
रौक्मिणेयं महात्मानमन्तरिक्षे च पञ्चमम्
महोल्कासदृशान्बाणानस्त्राण्यमरसत्तमः ।
मुमोच यानि घोराणि प्रद्युम्नं प्रति सर्वतः५९
तानि सर्वाणि बाणौघैः कार्ष्णिरस्त्राण्यवारयत्
जयन्तं चापरैर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा ६०
ततो नादः समुत्सृष्टो ह्यमरैः पुण्यकर्मभिः ।
दृष्ट्वा स्थैर्यं च शैघ्र्यं च प्रद्युम्नस्य महात्मनः६१
प्रवरस्यापि बाणेन शितेन शिनिपुङ्गवः ।
चिच्छेदेष्वासनं वीरो हस्तावापं च भारत

ततोऽन्यत्स तु जग्राह महत्तद्धनुरुत्तमम् ।
महेन्द्रदत्तं प्रवरो महाशनिसमस्वनम् ॥ ६३
स तेन वीरो महता धनुषा विप्रसत्तमः ।
शरान्मुमोच विविधानर्करश्मिनिभांस्तदा ६४
चकर्त च धनुश्छित्रं शैनेयस्यामितौजसः ।
विव्याध सर्वगात्रेषु बाणैरपि च सात्यकिम्
धनुरादाय शैनेयस्ततोऽन्यत्कुरुनन्दन ।
दृढं भारसहं धीमान्विव्याध प्रवरं रणे ॥ ६६
उच्चकर्ततुरन्योन्यवर्मणी तौ शितैः शरैः ।
गात्रेभ्यश्चैव मांसानि मर्मभिद्भिः शरोत्तमैः ६७
अथाष्टधारबाणेन पुनरिष्वासनं द्विधा ।
चिच्छेद प्रवरो वीरस्त्रिभिश्चैनमताडयत् ६८
अन्यदिष्वासनं तं तु ग्रहीतुमनसं द्विजः ।
गदया ताडयामास क्षेप्यया लघुहस्तवान् ६९
सोऽसिं चर्म च जग्राह सात्यकिः प्रहसन्निव
न जग्राह धनुर्धीमान्गदयाभिहतो भृशम् ।
ततः शरशतान्येव मुमोच प्रवरस्तदा ॥ ७०
विहस्तमिव विज्ञाय सात्यकिं यदुनन्दनम् ।
प्रद्युम्नोऽस्य ददौ खड्गं निर्मलाकाशसन्निभम्
तस्य चिच्छेद भल्लेन निस्त्रिंशं प्रवरस्तदा ।
त्सरुदेशेऽपातयच्च प्रवरः प्रहसन्निव ॥ ७२
त्वचमच्च तथा चर्म शितैर्बाणैरजिह्मगैः ।
आजघान च शक्त्यैनं हृदि विप्रो ननाद च
तं विक्लवमिव ज्ञात्वा पारिजातजिहीर्षया ।
तार्क्ष्याभ्याशे रथेनैव स तस्थौ प्रवरस्तदा ७४
तं पक्षपुटवेगेन चिक्षेप गरुडस्तथा ।
गव्यूतिमेकां सरथः स पपात मुमोह च ७५
तं जयन्तो निपत्याथ पतितं ब्राह्मणं नृप ।
समाश्वास्य रथं शीघ्रं समारोपितवांस्तदा ७६
शैनेयमपि मुह्यन्तं पतन्तं च मुहुर्मुहुः ।
आश्वासयानः प्रद्युम्नः पितृव्यं परिषस्वजे ७७
तं हि पस्पर्श हस्तेन सव्येन मधुसूदनः ।
विरुजः स्पर्शमात्रेण सात्यकिः समपद्यत ७८

---

तेन पतितेनापि॥४८॥तव त्वत्तः युद्धे दृष्टं रिपोर्बलं येन सः । अबलम् अल्पबलम् ॥ ५३ ॥ खलु यस्मात् ॥ ५४ ॥ स जयन्तः । अपराणि ततोऽप्यधिकानि ॥५७॥ पञ्चमं पश्चात्प्रयुक्तम् ॥ ५८ ॥ हस्तावापं हस्तत्राणं च ॥ ६२ ॥ मांसान्युच्चकर्ततुः ॥६७॥ अथाष्टधारेत्यत्राष्टवरबाणेनेति पाठेऽष्टादपि वरो यो बाणस्तेन ॥ ६८ ॥ तं सात्यकिम् ॥ ६९ ॥ विहस्तमिवेति विकलहस्तमिव ॥ ७१ ॥ त्सरुदेशे मुष्टिदेशे शरशते नाशिते खड्गे रिक्तहस्तमित्यर्थः ॥ ७२ ॥ विरुजः पीडाहीनः ॥ ७८ ॥

---

१ ख. °तत्तु घो° । २ ख. °यं जनाधिवर° । ३ ख. °स्तवत् । सो° । ४ ख. °य सत्यकं य° । ५ ख. °था वर्मे° । ६ ख. °स्तदा । ग° । ७ ख. °नः नीरु° ।

प्रद्युम्नो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु शिनिपुङ्गवः।
तस्थतुः पारिजातस्य युद्धशौण्डतरावुभौ ॥७९
जयन्तः प्रवरश्चैव रथेनैकेन भारत।
सम्पतन्तौ महेन्द्रेण प्रहस्योक्तौ महात्मना ८०
नासन्नमभिगन्तव्यं गरुडस्य कथञ्चन।
बलवानेष पततां राजा च विनतासुतः ॥ ८१
दक्षिणे चैव सव्ये च पार्श्वे मम धृतायुधौ।
उभौ स्थितौ युद्ध्यमानं मामेव हि प्रपश्यतम्
एवमुक्तौ स्थितौ वीरौ ततः शक्रस्य पार्श्वयोः
ददृशाते युद्ध्यमानौ देवराजजनार्दनौ ॥ ८३
अथेन्द्रो गरुडं बाणैर्महाशनिसमस्वनैः।
विव्याध सर्वगात्रेषु महास्त्रप्रवरैस्तथा ॥ ८४
स तान्बाणानगणयन्वैनतेयः प्रतापवान्।
ससाराभिमुखो वीरः शक्रनागमरिन्दमः ८५
उभौ तौ सहसा राजन्बलिनौ गजपक्षिणौ।
प्रयुद्धौ वीर्यसंपन्नौ महाप्राणौ दुरासदौ ॥ ८६
रदनैः पन्नगरिपुं करेण शिरसा तदा।
ऐरावतो गजपतिराजघान नदंस्तथा ॥ ८७
तथा नखांकुशैस्तीक्ष्णैर्वैनतेयो बलोत्कटः।
तथा पक्षनिपातैश्च शक्रनागं जघान ह ॥ ८८
मुहूर्तं सुमहानासीत्संपातो गजपक्षिणोः।
विस्मापनीयो जगतः प्रेक्षितॄणां भयावहः ८९
मूर्ध्न्यथैरावतं तार्क्ष्यस्ताडयामास भारत।
नखांकुशकरालेन चरणेन महाबलः ॥ ९०
संप्रहाराभिसंतप्तो निपपात त्रिविष्टपात्।
पारियात्रे गिरिश्रेष्ठे द्वीपेऽस्मिञ्जनमेजय ॥ ९१
पतन्तमपि तं शक्रो न मुमोच महाबलः।
कारुण्यादथ सौहार्दात्पूर्वाभ्युपगमादपि ९२
कृष्णोऽप्यन्वगमच्चैनं पृष्ठतः प्रभवाव्ययः।
पारिजातवतां धीमान्गरुडेन महाबलः ॥ ९३
स तस्थौ पर्वतश्रेष्ठे पारियात्रे तु वृत्रहा।
ऐरावते समाश्वस्ते संग्रामो ववृधे पुनः ॥ ९४
शरैराशीविषप्रख्यै रत्नयुक्तैः सुतेजितैः।
अन्योन्यं कुरुशार्दूल शक्रकेशवयोर्महान् ॥९५
ततो वज्रायुधो वज्रमशनिं च पुनः पुनः।
मुमोच गरुडे राजन्नैरावतरिपौ नृप ॥ ९६
वज्राशनिनिपातांस्तान्सेहे शक्रस्य पक्षिराट्
अवध्यो बलिनां श्रेष्ठो निसर्गेण ततो बलात्
मुमोच पक्षमेकैकं मानयन्नशनिं सदा।
वज्रं च देवराज्ञोऽथ भ्रातुः कश्यपसंभवः ९८
आक्रम्यमाणस्तार्क्ष्येण न्यमज्जन्नृपते गिरिः।
विवेश धरणीं राजञ्छीर्यमाणः समन्ततः
चुकूज बहुमानेन कृष्णस्य स तु पर्वतः।
तं चाद्राक्षीत्ततः कृष्णः किञ्चिच्छेषमधोक्षजः
तं मुक्त्वा गरुडेनाथ तस्थौ देवो विहायसि।
प्रद्युम्नं च तदोवाच सर्वकृल्लोकभावनः ॥ १
इतो द्वारवतीं गत्वा रथमानय मा चिरम्।
सदारुकं महाबाहो मत्तेजोबलमाश्रितः ॥ २
वक्तव्यो बलभद्रश्च राजा च कुकुराधिपः।
श्वो जित्वेन्द्रं त्वागमिष्ये द्वारकामिति मानद
तथेत्युक्त्वा तु धर्मात्मा प्रद्युम्नः पितरं विभुः
गत्वा यथोक्तमुक्त्वा च यादवेन्द्रबलावुभौ
नाडिकान्तरमात्रेण पुनस्तं देशमाययौ।
दारुकेण समायुक्ते रथमास्थाय भारत ॥ १०५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णेन्द्रयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

---

शक्रनागम् ऐरावतं प्रति ॥८५॥ प्रयुद्धौ प्रकर्षेण युद्धमानौ ॥८६॥रदनैः दन्तैः करेण शुण्डादण्डेन॥८७॥अस्मिन् जम्बुप्रहिते द्वीपे ॥ ९१ ॥ पूर्वाभ्युपगमात् ॥ ९२ ॥ निसर्गेण स्वभावेन तपोबलाच्च ॥ ९७ ॥ नाडिका घटिका ॥१०५॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

---

१ ख. °मामेवेह प्रपश्यताम् । ए° । २ ख. °रैस्तदा । स. ता° । ३ ख. °रावणो ग° । ४ ख. ततो न° । ५ ख. °ता वीरो न° । ६ ख. °मबुदपर्वते तस्थौ पारि° । ७ ख. °स्य नागहा । अ° ।

## कृष्णकृता शिवस्तुतिः ।

## ७४

वैशम्पायन उवाच ।

तमारुह्य रथं कृष्णः पारियात्रं गिरिं ययौ ।
*यत्रैरावतमास्थाय स्थितः सुरपतिः प्रभुः ॥ १
पारियात्रो गिरिश्रेष्ठो दृष्ट्वा यान्तं जनार्दनम् ।
शाणपादसमो भूत्वा प्रविवेश वसुन्धराम् २
प्रियार्थं वासुदेवस्य प्रभावज्ञो महात्मनः ।
तस्य प्रीतो हृषीकेशः पर्वतस्य जनाधिप ॥ ३
ततः प्रयातं युद्धार्थमच्युतं कुरुनन्दन ।
सपारिजातो गरुडः पृष्ठतोऽनुययौ तदा ॥ ४
प्रद्युम्नः सात्यकिश्चापि गरुडस्थौ महाबलौ ।
गतावुभौ रक्षणार्थं पारिजातमरिंदमौ ॥ ५
ततस्त्वस्तं गतः सूर्यः प्रवृत्ता रजनी नृप ।
उपस्थितं पुनर्युद्धं शक्रकेशवयोरिह ॥ ६
सुप्रहाराहतं दृष्ट्वा विष्णुरैरावतं गजम् ।
नातिकल्पं महातेजा देवराजानमब्रवीत् ॥ ७
गरुडाभिहतः पूर्वं नातिकल्पो गजोत्तमः ।
ऐरावतो महाबाहो रात्रिश्च समुपोह्यते ॥ ८
श्वः प्रभाते यथाकामं प्रवर्तस्व यथेच्छसि ।
एवमस्त्विति कृष्णं तु देवराजोऽब्रवीत्प्रभुः ९
उवास पुष्कराभ्याशे देवराजः पुरन्दरः ।
व्रजं गिरिमयं कृत्वा धर्मात्मा नृपसत्तम ॥ १०
ब्रह्मा ततो जगामाथ कश्यपश्च महानृषिः ।
अदितिश्चैव सर्वे च देवा मुनय एव च ॥ ११
साध्या विश्वे च कौरव्य नासत्यावश्विनौ तथा
आदित्याश्चैव रुद्राश्च वसवश्च जनेश्वर ॥ १२
नारायणश्च पुत्रेण सत्यकेन च भारत ।
सहोवास गिरौ रम्ये पारियात्रे प्रहृष्टवत् १३
यत्तस्य शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समभवन्नृप ।
वरं प्रादात्ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः ॥ १४
शाणपाद इति ख्यातो भविष्यसि महागिरे ।
पुण्येनार्द्धेन तुल्यो हि पुण्यो हिमवतः शुभः
एवमेव च भूयिष्ठो भव पर्वतसत्तम ।
मेरुणा स्पर्धमानो हि बहुचित्रमृगैर्युतः ।
रमे त्वां पश्यमानोऽहं बहुचित्रनगायुतम्* १६
तथा दत्त्वा वरं तस्य पर्वतस्य तु केशवः ।
दध्यौ गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठां नमस्कृत्वा वृषध्वजम्
अथाययौ विष्णुपदी स्मृता कृष्णेन भारत ।
संपूज्य तां ततः कृष्णः कृत्वा स्नानमधोक्षजः
उदकं च गृहायाथ बिल्वं च हरिरव्ययः ।
देवमावाहयामास रुद्रं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ १९
ततः प्राप्तो महादेवः सोमः सप्रवरो विभुः ।
तस्यावुपरि बिल्वस्य तथा गङ्गोदकस्य च २०
तं पारिजातकुसुमैरर्चयामास केशवः ।
तुष्टाव वाग्भिरीशेशं सर्वकर्तारमीश्वरम् ॥२१

श्रीकृष्ण उवाच ।

रुद्रो देवस्त्वं रुदनाद्द्रावणाच्च
रोरूयमाणो द्रावणाच्चातिदेवः ।
भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां
कीर्त्या युङ्क्ष्वेशाद्य प्रभवाम्यन्तरेण

---

७४

चतुर्भिरधिके सप्ततितमे हरिणा शिवः ।
प्रसादितो वरान्प्रादादभीष्टानिति वर्ण्यते १

तमारुह्येति ॥ १ ॥ शाणपादाः माषाः माषराशिवत्प्राशिथिलोऽभवदित्यर्थः । शाणः चन्दनघर्षणपाषाणो महाराष्ट्रेषु 'सहाण' इति प्रसिद्धः । तस्य पाद इव क्षुद्रो वाऽधोग्रावा । "शाणो माषचतुष्टये, लोहादीनां च निकर्षः" इति मेदिनी ॥२॥ प्रियार्थं रथगतेरप्रतिबन्धार्थं प्रीतोऽभूदिति शेषः ॥३॥ नातिकल्पम् ईषदसमर्थम् ॥७॥ समुपोह्यते समानीयते कालेनेति शेषः ॥ ८ ॥ व्रजं गिरिमयं पर्वतवृन्दमयम् आवरणं कृत्वेत्यर्थः । "व्रजो गोष्ठेऽध्व वृन्देषु" इति मेदिनी ॥ १० ॥ नारायणः कृष्णः ॥१३॥ शाणप्रमाणः शणबीजप्रमाण इति वा ॥ १४ ॥ शाणपादः "शणु दाने" शणंति ददत्यस्यामिति शाणा भारतभूमिः सा पादमात्रं यस्य स शाणपाद इत्यर्थः । एतदेवाह । पुण्येनेति । अर्द्धेन उपरिभागेन ॥१५॥ ईशेशम् ईशानां ब्रह्मादीनामपि ईश्वरं व्यापकम् । "अशूङ् व्याप्तौ" इत्यस्य रूपम् ॥ २१॥ हे देव क्रीडापर हे द्योतमान त्वं त्वमेव रुद्रोऽसि । "सोरोदीद्यदरोदीत्तद्रुद्रस्य

---

* ख. यत्रैरावणमा°। १ ख. °यौ बली । प्र° । २ ख. ततोऽस्तमगमत्सूर्यः प्र° । ३ ख. °वयोः प्रभो । सुप्रहारहतं ह° । ४ ख. °रावणं ग° । ५ ख. °वणो महा° । ६ ख. °स्य सतां गतिः । शा° । ७ ख. °न तुल्यश्च पु° । * रमे त्वामिति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । ८ ख. °ष्णः स्नातस्तस्याम° । ९ ख. च गृहायेषो बि° ।

ग्राम्यारण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशूनां
ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्मा ।
नान्यस्त्वत्तः परमो देवदेव
जगत्पतिः सुरवीरारिहन्ता ॥ २३
यस्मादीशो महतामीश्वराणां
भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं
सन्तो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः
भूतं यस्माज्जगदत्यन्तधीर
त्वत्तोऽव्यक्तादक्षरादक्षरेश ।
तस्मात्त्वामाहुर्भव इत्येव भूतं
सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम् ॥ २५
यस्माज्जितैरभिषिक्तोऽसि सर्वै-
र्देवासुरैः सर्वभूतैश्च देव ।
महेश्वरं विश्वकर्माणमाहु-
स्त्वां वै सर्वे तेन देवातिदेव ॥ २६
पूज्यो देवैः पूज्यसे नित्यदा वै
शश्वच्छ्रेयः कांक्षिभिर्वरदामेयवीर्य ।
तस्माद्विख्यातो भगवान्देवदेवः
सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥ २७
भूमित्रयाणां देव यस्मात्प्रतिष्ठा
पुनर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः ।
त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम
तवाप्रमेय त्रिदिशेशनाथ ॥ २८
शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेय-
स्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण ।
सर्वव्यापित्वाच्छङ्करत्वाच्च लिङ्गैः
शब्दस्येशानः श्रीकरार्काग्र्यतेजाः२९

---

रुद्रत्वम्" इति श्रुतेः । शोकास्पदभूतो जीवः "**एते हीदं सर्वं रोदयन्ति तस्माद्रुद्राः**" इति श्रुतेश्च । प्रकारान्तरेणावयवार्थावगमाद्रोदनादेः कारयिता भयङ्करः । "**भीषास्माद्वातः पवते**" इत्यादिशास्त्रप्रसिद्धो महेश्वरश्च त्वमेवासि । "**नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा**" इत्यादिश्रुतेस्त्वदन्यश्चेतनो नास्तीत्यर्थः । एवं रुद्रपदस्य समुदायार्थमुक्त्वाऽवयवार्थमाह—**रुदनाद्रावणाच्चेति**। रुदनात् मायापञ्जरेण जीवपक्षिणो निरोधनात् "इमे त्विन्द्रिन्द्ररोदसी मायया एहि काये" इति धकारस्थाने दकारनिपातनस्य दर्शितत्वात् "**तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः**" इति श्रुतेश्च । रुणद्धीति रुद्रः रावणान्मायया हिंसनाच्च । "तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावात् भूयश्चान्तो विश्वमायानिवृत्तिः" इति ध्यातृमायाविनिवर्तकश्रुतेः । त्वमेव संसारदो मोक्षप्रदश्चातो रुद्र इत्युच्यते । प्रकारान्तरेण निर्वक्ति । रोरूयमाणो द्रावणाच्चेति । रोरूयते भृशं शब्दयते वा उच्यते वागालम्बनीभूतः प्रपञ्चो रुः तस्य द्रावणात् लवणोदकन्यायेन प्रविलापनाद्वा रुद्रः । यद्वा रोरूयमाणः शब्देन प्रतिपाद्यमान एव ज्ञातमात्रः सन् संसारस्य द्रावणात् रुद्र इत्युच्यते । जीव ईशश्च जीवानां रोधको रोधनाशकः वाच्यमात्रलयस्थानं रुद्रो वागेकगोचर इति अतिदेवः देवं प्रकाशकमतिक्रान्तः स्वप्रकाशक इत्यर्थः । युद्धस्व मामिति शेषः ॥ २२ ॥ ग्राम्यारण्यानां भोगसक्ताविरक्तानां पशूनां जीवानाम् ॥२३॥ ईशं वरम् इतीश्वरपदं निर्वक्ति—**यस्मादिति**। शास्त्रार्थभूतश्चासौ सर्वशास्त्रार्थस्तत् जानन्तीति शास्त्रार्थतज्ज्ञाः ॥ २४ ॥ शास्त्रार्थमेवाह—**भूतमिति** । अव्यक्तात् जीववदप्रसिद्धात् अक्षरात् त्वत्त एव जगद्भूतं हि अत्यन्त अन्तमतिक्रान्त एतेन "अतोऽन्यदार्तम्" इति श्रुतेरितरस्यान्तत्वमुक्तम् । धीर धीप्रवर्तक अक्षराणां जीवानाम् ईश नियन्तः अक्षरेश । भवत्यस्मादिति भवः ईश्वराणां कारणं स्वतस्तु भूतं नित्यसिद्धम् अत्युदारम् अक्लेशेऽपि महावरप्रदम् ॥ २५ ॥ योऽहं विदर्भनगरे सर्वैः राजभिश्च निर्जितैरभिषिक्तोऽस्मि सोऽपि त्वमेवेति प्रत्यगभेदेन स्तौति—**यस्माज्जितैरिति** । असि अस्मि त्वां मदभिन्नम् ॥ २६ ॥ पूज्य इत्यस्याद्यः पाद एकादशाक्षरो द्वितीयश्चतुर्दशाक्षरः । सर्वभूतात्मभावी सर्वाणि भूतानि आत्मनि भावयितुं शीलमस्य स तथा ॥२७॥ भूमित्रयाणां भूमिप्रभृतीनि त्रयाणि त्रिकाणि भूमिरन्तरिक्षं द्यौरिति प्राणोपानो व्यान इति अग्निर्वायुः सूर्य इति भूतं भविष्यद्वर्तमानमित्येवमादि तेषां प्रतिष्ठा लयस्थानम् । भावन हे उत्पत्तिकारण ! पुनरित्यनेन लयोदयधारया अनादित्वं दर्शितम् । तेन त्रिकाणां लयोदयकरत्वेन हेतुना त्र्यम्बकेति त्रीणि सर्गस्थित्यन्तादीनि अम्बयति गमयति प्रकाशयतीति योगात् त्र्यम्बक इति तव नाम प्रथमं मुख्यम् । हे अप्रमेय हे त्रिदशेशानां ब्रह्मादीनां नाथ ॥ २८ ॥ शर्वपदयोगमाह—**शर्व इति** । शृणाति हिनस्तीति शर्वः । अप्रमेयः

---

१ ख. संसक्तानां नि° । २ ख. °था विध्ये° ।

× संसक्तानां नित्यदा यत्करोषि *
शमं भ्रातृव्यान्व्यनैषीः समस्तान् ।
तस्माद्देवः शङ्करोऽस्यप्रमेयः
सद्भिर्द्धर्मज्ञैः कथ्यसे सर्वनाथः ॥ ३०
दत्तः प्रहारः कुलिशेन पूर्वं
तवेशान सुरराज्ञाऽतिवीर्य ।
कण्ठे नैल्यं तेन ते यत्प्रवृत्तं
तस्मात्ख्यातस्त्वं नीलकण्ठेति कल्पः
यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं
सर्वं सोम त्वं स्थावरं जङ्गमं च ।
प्रादुर्विप्रास्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञा-
स्तथा ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम्३२
वेदैर्गीता सा हि तत्त्वं प्रसूता
यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चातिरूपः ।
नात्यद्भुतं त्वत्समं देव भूतं
भूतं भव्यं भवद्वेवाथ नास्ति ॥ ३३
अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः
पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता
एवं सर्वेशः कारणात्मा त्वमीड्यः३४
इति संस्तूयमानस्तु भगवान्गोवृषध्वजः ।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं नारायणमथाब्रवीत् ॥ ३५
मनीषितानामर्थानां प्राप्तिस्ते सुरसत्तम ।
पारिजातं च हर्ताऽसि मा भूत्ते मनसो व्यथा
यथा मैनाकमाश्रित्य तपस्त्वमकरोः प्रभो ।
तथा[३] मम वरं कृष्ण संस्मृत्य स्थैर्यमाप्नुहि३७
अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा ।
भवितासीत्यवोचं यत्तत्तथा न तदन्यथा ३८
यश्च[४] स्तवेन मां भक्त्या स्तोष्यतेऽमरसत्तम ।
त्वया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभाक्संभविष्यति ।
समरे च जयं विष्णो प्राप्य पूजां तथोत्तमाम्
बिल्वोदकेश्वरो नाम भविताहमिहानघ ।
देवेश्वरं त्वयाऽस्थापि देवसिद्धोपयाचनः ॥४०
इहस्थोपोषितो विद्वान्भक्तिमान्मम केशव ।
त्रिरात्रमीप्सिताँल्लोकान्गमिष्यति जनार्दन४१
अविन्ध्या नाम देशोऽस्मिन्गङ्गा चैव भविष्यति
गङ्गास्नानसमं स्नानं मन्त्रतो भविता तथा ४२

---

शत्रुभिरक्षेप्यः अप्रमेयः भूय इत्यन्तर्यामित्वेन शासतोऽपि पुनरीश्वरेण राजादिभावेन । इत्थंभावे तृतीया । तेनापि रूपेण शासनात् सर्वव्यापित्वात् अन्तर्बहिश्च व्यापकत्वात् शंकरः सुखकरः सद्भिः सतां हेतोरित्यर्थः । न तु दुष्टानां शंकरः । शब्दस्येशानः सर्वशब्दप्रमेयत्वेनावच्छेदकः हे श्रीकर । "**ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम्**" इति, "**एषाऽस्य परमा सम्पद्**" इति श्रुतिभ्यां श्रीशब्दोदिताऽपराविद्या च तयोः कर्ता । अर्कादप्यग्र्यम् अधिकं तस्यापि प्रकाशकं तेजो यस्य सोऽर्काग्र्यतेजास्त्वमसीति शेषः ॥ २९ ॥ संसक्तानां भक्तानां शमं सुखं भ्रातृव्यान् असुरान् व्यनैषीः शिक्षितवानसि तेषां हितायैवेति अतः सर्वेषां कल्याणकारित्वात् शङ्करोऽसि ॥ ३० ॥ कल्पः समर्थोऽसि वात्सल्यात् कृतापकारमपि न बाधसे इत्याह-**दत्त इति** । सुरराज्ञा इन्द्रेण विष्णुना वा प्रहारो दत्तः तेन वज्रचक्रयोरपमानो मा भूदिति हेतुना कण्ठे नैल्यं धत्से प्रत्युत प्रहर्तुर्यश एव तनोषि न तु शासनमिति महाकारुणिकत्वान्मां पाहीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ गुणिनं गुणवन्तम् अम्बिकां च गुणत्रयरूपामिति शेषः ॥ ३२ ॥ वेदैः '**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्**' इत्यादिना गीता सा हि माया तत्त्वं महान्तं प्रसूता जनितवती स च महान् क्रियाशक्तिमान् ज्ञानशक्तिमान् । तत्राद्येन रूपेण यज्ञोऽसि लोकप्रसिद्धः दीक्षाणां दीक्षावतां द्वितीयेन योगिना यज्ञो जीवेशयोः परमात्माग्नौ प्रक्षेपरूपोऽसि । हे देव त्वत्समम् अत्यद्भुतं भूतं नास्ति । अथ यतः भूतं वा भव्यं वा भवद्वर्तमानं वा नास्ति यत् दृश्यं तत्सर्वं कालत्रयेऽपि नास्ति । अतस्तदन्तर्गतम् अद्भुतं यत्किञ्चित्तत्त्वं त्वत्साम्यं कथं लभेतेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ अतिवीराः आभ्यन्तरशत्रुजयिनः सनकाद्याः इन्द्राद्या वा सर्वशत्रुजयिनः त्वत्तस्त्वदंशात् कारणस्यापि आत्मा अधिष्ठानं यत्र ईश्वरोऽपि कल्पित इत्यर्थः । अत एव ईड्यः स्तुत्यः ॥ ३४ ॥ गोवृषः महोक्षः ध्वजे यस्य स गोवृषध्वजः ॥ ३५ ॥ मत्तः शूरतर इत्यस्याभिव्यक्तिर्बाणयुद्धे व्यक्तीभविष्यति ॥ ३८ ॥ पूजां प्राप्य धर्मभाक् भविष्यतीति सम्बन्धः ॥ ३९ ॥ अस्थापि स्थापितः । हे देव सिद्धम् उपयानं प्रार्थना यस्मादित्यर्थः ॥ ४० ॥ मन्त्रतः गङ्गास्मारकमन्त्रपाठात् ॥ ४२ ॥

---

× ख. °संभक्तांना नि° * ख. °षिषं भ्रा° १ ख. °स्तं गोविन्दमिदमब्र° । २ ख. यदा मै° । ३ ख. तदा दत्तं वरं कृ° । ४ ख. यः संस्तवेन मां कश्चित् स्तो° । ५ ख. देशे त्वया स्थापितो वै दे° ।

षट्पुरं नाम नगरं दानवानां जनार्दन।
अत्रान्तर्द्धरणीदेशे पराक्रम्य महाबलाः॥ ४३
एते दैत्या दुरात्मानो जगतो देवकण्टकाः।
छन्ना वसन्ति गोविन्द सानावस्य महागिरेः
अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणोऽनघ।
मानुषान्तरितस्तस्मात्त्वमेताञ्जहि केशव॥ ४५
एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत।
परिष्वज्य महात्मानं वासुदेवं जनाधिप ४६
ततो याते महादेवे प्रभातायां नराधिपः।
तस्यां निशायां गोविन्दः स्तूय पर्वतमब्रवीत्
तवाधः पर्वतश्रेष्ठ निवसन्ति महासुराः।
अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणः पुरा॥ ४८
निर्गमिष्यन्ति ते नैव मया रुद्धा महाबलाः।
द्वारे निरुद्धे तत्रैव विनङ्क्ष्यन्ति ममाज्ञया ४९
त्वयि सन्निहितश्चाहं भविष्यामि महागिरे।
अधिष्ठाय महाघोरान्निवत्स्यामि च पर्वत ५०
*आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूपं दृष्ट्वा पर्वतसत्तम।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्स्यति शाश्वतम्
त्वत्तोऽश्मभिश्च प्रतिमां
कारयित्वा हि भक्तितः
शुश्रूषयन्ति ये नित्यं
मम यास्यन्ति ते गतिम्॥ ५२
इति तं पर्वतं कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान्।
तदाप्रभृति देवेशस्तत्र सन्निहितोऽच्युतः ५३
पाषाणैः प्रतिमां तात कारयित्वा च कौरव
शुश्रूषंति कृतात्मानो विष्णुलोकाभिकांक्षिणः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णकृतशिवस्तुतिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

## स्वर्गात्पारिजातानयनम्।

## ७५

वैशम्पायन उवाच।
ततो रथवरं कृष्णः समारुह्य महामनाः।
बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य ययौ नृपः॥ १
महेन्द्रमाह्वयामास रथस्थो मधुसूदनः।
सत्कृतं पुष्कराभ्याशे सर्वैर्देवगणैः सह॥ २
ततः शक्रो जयन्तोऽथ हरिभिर्युक्तमुत्तमम्।
आरुरोह रथं देवः सर्वकामप्रदः सताम्॥ ३
ततो रथस्थयोर्युद्धमभवत्कुरुनन्दन।
देवयोर्दैवयोगेन पारिजातकृते तदा॥ ४
ततोऽहनद्रणे विष्णुर्बाणैः शत्रुबलार्दनः।
सैन्यानि देवराजस्य बाणजालैरजिह्मगैः॥५
उपेन्द्रं न महेन्द्रोऽथ नैव विष्णुः सुरेश्वरम्।
ताडयामासतुर्वीरौ शस्त्रैः शक्तावपि प्रभो॥६
एकैकमश्वं दशभिर्महेन्द्रस्य जनार्दनः।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैरस्त्रयुक्तैर्जनेश्वर॥७
शैब्याद्यानपि देवेन्द्रः शरैरमरसत्तमः।
छादयामास राजेन्द्र घोरैरस्त्राभिमन्त्रितैः॥ ८

अन्तर्द्धरणीदेशे भूविवरप्रदेशे गुप्तं पराक्रम्य पराक्रमेण वसन्तीत्युत्तरेण सम्बन्धः॥४३॥ सानौ अवच्छन्ना वसन्ति अपाये बिलं च विशन्तीत्यर्थः॥ ४४॥ मानुषभावेन अन्तरितः प्रच्छन्नः॥ ४५॥ स्तूय स्तुत्वा॥४७॥ अधिष्ठाय नियम्य घोरान् असुरान्॥ ५०॥ मूर्ध्नि तव॥ ५१॥ त्वत्तः त्वत्सम्बन्धिभिः॥ ५२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुःसप्ततिमोऽध्यायः॥७४॥

७५

पञ्चसप्ततितमेऽध्याये युद्धेनाराध्य वासवम्
द्वारकामनयत्कृष्णः पारिजातमितीर्यते॥ १

ततो रथेति॥ १॥ शैब्याद्यान् शैब्यसुग्रीवबलाहकमेघपुष्पाख्यान् कृष्णाश्वान्। सैन्याद्यानिति पाठे सेनायां शूरभूतानश्वादीन्॥ ८॥

१ ख. °शे तत्राक्र° । २ ख. °विन्दो भूयः प° । ३ ख. ते निरुद्धा मया चात्र जगतो हितकाम्यया। निर्ग० *ख. आरोक्ष्यत्यूर्ध्वबाहुश्च यस्त्वां प° । ४ ख. °रयित्वेह भ° । ५ ख. ततदं तरसा विष्णु° । ६ ख. सैन्यान्यपि च दे° ।

*स च बाणसहस्रैश्च कृष्णो गजमवाकिरत् ।
गरुडं च महातेजा बलभिद्वारिवाहनम् ॥ ९
भूयिष्ठाभ्यां लताभ्यां तौ तदहः शत्रुदारणौ ।
युयुधाते महात्मानौ नारायणसुराधिपौ ॥ १०
चकम्पे वसुधा कृत्स्ना नौर्जलस्थेव भारत ।
दिशां दाहेन दिग्देशाः संवृताश्च समन्ततः ११
चेलुर्गिरिवराश्चैव पेतुश्च शतशो द्रुमाः ।
पेतुश्च धरणीपृष्ठे मर्त्या धर्मगुणान्विताः ॥ १२
निर्घाताः शतशश्चान्ये पेतुस्तत्र नराधिप ।
ऊहुश्च सरितः सर्वाः प्रतिस्रोतो विशांपते १३
विष्वग्वाता ववुश्चैव पेतुरुल्काश्च निष्प्रभाः ।
मुहुर्मुहुर्भूतसङ्घा रथनादेन मोहिताः ॥ १४
प्रजज्वाल जले चैव वह्निर्जनपदेश्वर ।
युयुधुश्च ग्रहैः सार्द्धं ग्रहा नभसि सर्वतः १५
ज्योतींषि शतशः पेतुः स्वर्गाच्च धरणीतलम् ।
दिशां गजाः प्रकुपिता नागाश्च धरणीतले १६
गर्दभारुणसंस्थानैश्छिन्नाभ्रैश्चावृतं नभः ।
विनदद्भिर्महारावैरुल्काशोणितवर्षिभिः *१७
न भूर्न द्यौर्न गमनं नरेन्द्रवृषभा भवन् ।
स्वस्थानि सुरवीरौ तु दृष्ट्वा युद्धगतौ तदा १८
जेपुर्मुनिगणा मन्त्राञ्जगतो हितकाम्यया ।
ब्राह्मणाश्च महात्मानो ह्यतिष्ठंस्तेषु सत्वराः ॥
ततो ब्रह्मा महातेजाः कश्यपं वाक्यमब्रवीत् ।
गच्छ वध्वा सहादित्या पुत्रौ वारय सुव्रत ॥
स तथेति तदा देवमुक्त्वा पद्मभवं मुनिः ।
जगाम रथमास्थाय तस्थौ नरवरान्तिके २१
स्थितं तु कश्यपं दृष्ट्वा सहादित्या तदन्तरा ।
उभौ रथाभ्यां धरणीमवतीर्णौ महाबलौ २२
न्यस्तशस्त्रौ च तौ वीरौ ववन्दतुररिन्दमौ ।
पितरौ धर्मतत्त्वज्ञौ सर्वभूतहिते रतौ ॥ २३
उभौ गृहीत्वा हस्ताभ्यामदितिस्त्वब्रवीद्वचः
असोदराविवैवं किमन्योन्यं हन्तुमिच्छतः ।
स्वल्पमर्थं पुरस्कृत्य प्रवृत्तमतिदारुणम् ।
सदृशं नेति पश्यामि सर्वथा मम पुत्रयोः २५

श्रोतव्यं यदि मातुश्च पितुश्चैव प्रजापतेः ।
न्यस्तशस्त्रौ स्थितौ भूत्वा कुरुतं वचनं मम ॥
तथेत्युक्त्वा च तौ देवौ स्नातुकामौ महाबलौ
गङ्गां जग्मतुरेवाथ प्रजल्पन्तौ परस्परम् २७

शक्र उवाच ।

त्वं प्रभुर्लोककृत्कृत्स्नराज्येऽहं स्थापितस्त्वया
स्थापयित्वा कथं नाम पुनर्मामवमन्यसे २८
भ्रातृत्वमुपगम्यैव ज्येष्ठत्वं चाप्यपोह्य च ।
कथं कमलपत्राक्ष निर्वाणं कर्तुमिच्छसि २९
स्नातौ तु जाह्नवीतोये पुनरभ्यागतौ नृप ।
यत्रादितिः कश्यपश्च महात्मानौ दृढव्रतौ ३०
प्रियसंगमनं नाम तं देशं मुनयोऽवदन् ।
यत्र तौ सङ्गतौ चोभौ पितृभ्यां कमलेक्षणौ ॥
ततः शक्रस्य कौरव्य दत्त्वा वाचाभयं तदा ।
यत्र देवगणाः सर्वे समेता धर्मचारिणः ॥ ३२
ततो ययुर्विमानैस्तु देवाः सर्वे त्रिविष्टपम् ।
ऋद्ध्या परमया युक्तास्तेषामेवानुरूपया ३३
कश्यपश्चादितिश्चैव तथा शक्रजनार्दनौ ।
विमानमेकमारुह्य गता राजंस्त्रिविष्टपम् ॥ ३४
ते शक्रसदनं प्राप्ता रम्यं सर्वगुणान्वितम् ।
ऊषुरेकत्र कौरव्य मुदिता धर्मचारिणः ॥ ३५
शची तु कश्यपं पत्न्या सहितं धर्मवत्सला ।
उपाचरन्महात्मानं सर्वभूतहिते रतम् ॥ ३६
ततस्तस्यां प्रभातायां रजन्यामब्रवीद्धरिम् ।
आदातधर्मतत्त्वज्ञा सर्वभूतहितं वचः ॥ ३७
उपेन्द्र द्वारकां गच्छ पारिजातं नयस्व च ।
वध्वा संप्रापयस्वेश पुण्यकं हृदये स्थितम् ३८
पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरुः ।
नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्यः स्थाने यथोचिते ३९
एवमस्त्विति कृष्णेन देवमाता यशस्विनी ।
उक्ता धर्मगुणैर्युक्ता नारदेन महात्मना ॥ ४०
ततोऽभिवाद्य पितरं मातरं च जनार्दनः ।
महेन्द्रं सह शच्याथ प्रतस्थे द्वारकां प्रति ४१

ज्योतींषि ताराः ॥१६॥ गर्दभवत् धूसराणि अरुणानि च संस्थानानि येषां तैः छिन्नाभ्रैः॥१७॥ अभयं दत्वा दत्तवान् कृष्ण इति शेषः। ददातेः "आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च" इति क्वनिप् ॥ ३२ ॥ पुण्यकं व्रतोत्सवम् ॥ ३८ ॥

*ख. वशी बा° । १ ख. °तशश्चैव पे° । २ ख. °तगणा रथ° । ३ ख. °णीतले । दि° । ४ ख. °न्नाभ्रैराव्° । +घ. रावान् रक्तशोणितवर्षिभिः न । ५ ख. स्वस्थाने सुर° । ६ ख. थमारुह्य त° । ७ ख. °भौ प्रहाय ह° । ८ ख. °वत्त्वा तु तौ दे° ९ ख. त्वं प्रभुः कृत्स्नलोकस्य राज्ये° ।

ददौ कृष्णाय पौलोमी नियोगान्कुरुनन्दन।
सर्वासामेव कृष्णस्य भार्याणां धर्मचारिणी
दिव्यानां सर्वरत्नानां वाससां च मनस्विनी।
नानारागाविरक्तानां सदेवारजसामपि ॥ ४३
भार्याणां च सहस्राणि यानि षोडश माधवे।
प्रतिगृह्य महातेजाः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥४४
संपूज्यमानो द्युतिमान्खचरैः पुण्यकर्मभिः।
ससात्यकिः सपुत्रश्च प्राप्तो रैवतकं गिरिम् ४५
स तत्र स्थापयित्वा च पारिजातं वरद्रुमम्।
सत्यकं प्रेषयामास द्वारकां द्वारशालिनीम् ४६

श्रीकृष्ण उवाच।

पारिजातमिहानीतं महेन्द्रसदनान्मया।
निवेदय महाबाहो भैमानां भैमवर्द्धन ॥ ४७
अद्य द्वारवतीं चैव पारिजातमहं द्रुमम्।
प्रवेशयिष्ये नगरे शोभा प्रक्रियतां शुभा ॥ ४८
इत्युक्तः सत्यको गत्वा तथोक्त्वा पुनरागतः
कुमारैर्नागरैः सार्द्धं साम्बप्रभृतिभिः प्रभो ॥
ततोऽग्रतः पारिजातमारोप्य गरुडे तदा।
प्रद्युम्नो द्वारकां रम्यां विवेश रथिनां वरः ५०
शैब्यादिहययुक्तेन रथेनानुययौ हरिः।
तस्याथ रथमुख्येन सत्यकः साम्ब एव च ५१
ये त्वन्ये नृप वार्ष्णेया यानैर्बहुविधैस्तथा।
ययुः प्रहृष्टास्तत्कर्म पूजयन्तो महात्मनः ॥५२
सत्यकाद्विस्तरं श्रुत्वा यादवा नागरास्तथा।
विस्मयं परमं जग्मुरप्रमेयस्य कर्मणा ॥ ५३
तं दिव्यकुसुमं वृक्षं दृष्ट्वाऽऽनर्तनिवासिनः।
राजन्न तत्पुर्हृष्टाः पश्यमाना महोदयम् ॥ ५४
तमद्भुतमचिन्त्यं च मदकेलिकलाण्डजम्।
वृक्षोत्तमं पश्यतां वै वृद्धानामगमज्जरा ॥ ५५
ये त्वन्धचक्षुषः सर्वे तेऽभवन्दिव्यचक्षुषः।
विरोगा रोगिणश्चासन्घ्रात्वा गन्धं वनस्पतेः

लपन्तः कोकिलाश्छेता-
श्छुत्वाऽऽनर्तनिवासिनः।
बभूवुर्हृष्टमनसो
ववन्दुश्च जनार्दनम् ॥ ५७
नानाविधानि तूर्याणि गेयानि मधुराणि च
शुश्रुवुस्तस्य वृक्षस्य नातिदूरं गता नराः ५८
योऽयं संकल्पयामास गन्धं हृद्यं नरस्तथा।
स तदैव तमाजघ्रे पारिजातसमुद्भवम् ॥ ५९
ततः प्रविश्य रम्यां तु द्वारकां यदुनन्दनः।
वसुदेवं महात्मानं ददर्श देवकीं तथा ॥ ६०
कुकुराधिपतिं चैव बलं भ्रातरमेव च।
वृद्धाश्च यादवानां ये मानार्हानमरोपमान् ६१
विसृज्य तान्वै भगवाननादिनिधनोऽच्युतः।
संपूज्य च यथान्यायं स्वमेव भवनं गतः ॥६२
स सत्यभामया वासं विवेश मधुसूदनः।
पारिजातं तरुश्रेष्ठं ग्रहाय गदपूर्वजः ॥ ६३
सा देवी पूजयामास प्रहृष्टा वासवानुजम्।
प्रतिजग्राह तं चापि पारिजातं महाद्रुमम् ॥६४
मनीषितेन स तरुरल्पो भवति भारत।
महांश्च वासुदेवस्य तदद्भुतमभून्महत् ॥ ६५
कदाचिद्द्वारकां सर्वां प्रच्छादयति भारत।
कदाचिद्धस्तधार्यस्तु भवत्यङ्गुष्ठसंनिभः ६६
ननन्द सत्या कौरव्य देवी प्राप्य मनोरथम्।
पुण्यकार्थं तु संभारान्संभर्तुमुपचक्रमे ॥ ६७
यानि द्रव्याणि कौरव्य जम्बूद्वीपे तु कानिचित्
योग्यानि तानि कृष्णेन सभृतानि महात्मना।
मुनिं तदा संस्मृतवान्स नारदं
जनार्दनः सर्वगुणोचितं वशी।
प्रतिग्रहार्थं व्रतकस्य सत्यया
यथोपदिष्टस्य पुरन्दरानुजः ॥ ६९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातानयने पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

---

नियोगान् प्रीतिदेयान् आभरणादीन् ॥ ४२ ॥ भैमानां भीमवंशोद्भवानां यादवानाम् ॥ ४७ ॥ पश्यमानाः पश्यन्तः ॥ ५४ ॥ मदेन केलिकलाः क्रीडापरा अण्डजा यत्र तम् ॥ ५५ ॥ सत्यभामया सत्यभामायाः ग्रहाय गृहीत्वा विवेश ॥ ६३ ॥ व्रतकस्य व्रते प्रदेयस्य दानस्य ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

---

१ ख. °न्द्रभवना° । २ ख. °स्यानु र° । ३ ख. सर्वे संबभूवुः क्षणादिव । विरोगा रो° । ४ ख. °त्वा मर्त्यनि° । ५ख. °कि- शाद्यानि ते° । ६ ख. स तमेव त° । ७ ख. °रत । महत्वाद्वासु° । ८ ख. प्राप्तमनोरथा। पु° । ९ ख. °गुणोदितं व° ।

## द्युतरोः पुनः स्वस्थाने नयनम् ।

## ७६

वैशम्पायन उवाच ।
अथ कृष्णस्य कौरव्य ध्यातमात्रस्तपोधनः
आजगाम मुनिश्रेष्ठो नारदो वदतां वरः ॥ १
संपूजयित्वा विधिवद्वासुदेवो विशांपते ।
प्रतिग्रहार्थं विधिवच्छ्रीमान्भक्त्या न्यमन्त्रयत्
ततः काले च संप्राप्ते स्नातं देवो महामुनिम् ।
संपूज्य माल्यैर्गन्धैश्च भोजयामास भारत ॥ ३
सार्वकामिकमन्नाद्यं सर्वभूतकृदव्ययः ।
सत्यया प्रियया सार्द्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४
पुष्पदामावसज्याथ कण्ठे कृष्णस्य भाविनी ।
बबन्ध कृष्णं सुभगा पारिजाते वनस्पतौ ॥५
अद्भिर्ददौ नारदाय ततोऽनुज्ञाप्य केशवम् ।
देवी धेनुसहस्रं च काञ्चनस्य च पर्वतम् ॥ ६
हिरण्यरूप्यमिश्रं च मणिरत्नप्रभस्य च ।
तिलमिश्रस्य च तथा धान्यैरन्यैर्युतस्य च ॥७
प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं नारदो मुनिसत्तमः ।
स संप्रहृष्टो भुक्त्वाऽथ भूयः केशवमब्रवीत् ८
भोः केशव मदीयस्त्वमद्भिर्दत्तोऽसि सत्यया
स त्वं मामनुगच्छस्व कुरु यद्यद्ब्रवीम्यहम् ९
प्रथमः पक्ष इत्येवमब्रवीन्मधुसूदनः ।
व्रजन्तमनुवव्राज नारदं च जनार्दनः ॥ १०
परिहासं बहुविधं कृत्वा मुनिवरस्तदा ।
तिष्ठस्व गच्छामीत्युक्त्वा परिहासविचक्षणः
अपनीय ततः कण्ठात्पुष्पदामैनमब्रवीत् ।
कपिलां गां सवत्सां भो निष्क्रयार्थं प्रयच्छ मे
कृष्णाजिनं तिलैः पूर्णं प्रयच्छ च सकाञ्चनम्
एषोऽत्र निष्क्रयः कृष्ण विहितो वृषकेतुना ॥
तथेत्युक्त्वा हृषीकेशस्तथा चक्रे जनाधिप ।
स उवाच मुनिश्रेष्ठं हसित्वा मधुसूदनः ॥ १४
वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते नारद काङ्क्षितः ।
तत्ते दातास्मि धर्मज्ञ परा प्रीतिर्हि मे त्वयि॥
नारद उवाच ।
नित्यमेवास्तु मे प्रीतो भवान्विष्णो सनातन
त्वत्प्रसादात्तु सालोक्यं व्रजेयं ते महामते १६
अयोनिजो भवेयं ते नारायण सतां गते ।
भवेयं ब्राह्मणश्चैव पुनर्जात्यन्तरेष्वपि ॥ १७
एवमस्त्विति तं देवो विष्णुः प्रोवाच भारत ।
तुतोष च ततो धीमान्नारदो मुनिसत्तमः १८
षोडशस्त्रीसहस्राणि विष्णोरतुलतेजसः ।
निमन्त्रितानि कौरव्य सत्यया हरिकान्तया
तासां ददौ सन्नियोगमेकैकं हरिवल्लभा ।
शच्या यो वासुदेवस्य पुरा दत्तो नराधिप ॥
पारिजातो वसंस्तत्र ततः प्रववृते तदा ।
आज्ञया वासुदेवस्य नारदेन महात्मना ॥ २१
निमन्त्रिता गणाः सर्वे केशवेन महात्मना ।
विभूतिं पारिजातस्य ददृशुः कुरुनन्दन ॥ २२
पाण्डवांश्चानयामास सहैव पृथया हरिः ।
द्रौपद्या च महातेजास्तथैव च सुभद्रया २३
श्रुतश्रवां च ससुतां भीष्मकं ससुतं तदा ।
अन्यानपि च कौरव्य मित्रसम्बन्धिबान्धवान्

७६

षट्सप्ततितमेऽध्यायेऽमुष्मिन्पुण्यकसिद्धये ।
नारदाय प्रदायाथ द्युतरुं चानयद्दिवम् ॥ १

**अथेति** ॥ १ ॥ काले दानोचिते ॥ ३ ॥ भाविनी सद्भाववती ॥ ५ ॥ देवी केशवमनुज्ञाप्य अद्भिर्नारदाय ददावित्यन्वयः ॥ ६ ॥ काञ्चनस्येति विशेष्यं षष्ठ्यन्तानां मणीनां रत्नानां च प्रभा यस्मिंस्तस्य ॥ ७ ॥ प्रथमो मुख्यः पक्षो यद्दासेन स्वामिकार्यं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ परिहासं पादुकानयनाद्याज्ञापनैः ॥ ११ ॥ वृषकेतुना रुद्रेण ॥ १३ ॥ सन्नियोगं दिव्यवस्त्राभरणादिकम् इन्द्राणीप्रेषितं विभज्य ददौ ॥ २० ॥ प्रववृते स गुणान्ख्यापयामास ॥ २१ ॥ गणाः सुहृत्संबन्धिसमूहाः ॥२२॥ तानेवाह-- **पाण्डवानिति** ॥ २३ ॥ श्रुतश्रवा पितृष्वसा शिशुपालमाता ॥ २४ ॥

१ ख. °त्नयुतस्य च । ति°। २ ख. प्रहृष्टो वदतां श्रेष्ठो भुक्त्वा केश°। ३ ख. °रुष्व यद्ब्र°। ४ ख. °मः कल्प [illegible]। ५ ख. तिलकृष्णाजिनं शूर्पं प्रयच्छ त्वं च काञ्चनम् । एषो°। ६ ख. तव दा°। ७ ख. °त्वत्प्रसादात्तु सा°। ८ ख. °च देव जात्यन्तरेष्वहम् । ए°। ९ ख. °वां च सुसु° [illegible]

रेमे च सह पार्थेन फाल्गुनेन जनार्दनः ।
सान्तःपुरो महातेजाः परमर्द्ध्याऽवसन्नृप २५
संवत्सरे ततो याते केशिहाऽमरसत्तमः ।
पारिजातं पुनः स्वर्गमानयत्सर्वभावनः ॥ २६
तत्रादितिं कश्यपं च दृष्ट्वा[2] स्वजननीं प्रभुः ।
शक्रेण सहितो धीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ २७
तमुवाचादितिर्माता प्रणतं मधुसूदनम् ।
सौ[3]भ्रात्रमस्तु वामेवं नित्यं चामरसत्तम २८
मनो[4]रथं मम त्वं च पूरयस्व जनार्दन ।
त[5]थेत्येवाब्रवीत्कृष्णस्ततो मातरमात्मवान् ॥
आमन्त्रयित्वा पितरौ देवराजानमब्रवीत् ।
वासुदेवो महातेजाः कालप्राप्तमिदं वचः ३०
महादेवेन देवेश सन्दिष्टोऽस्मि महात्मना ।
अन्तर्भूमितले वध्यानसुरान्प्रति मानद ॥ ३१
तदितो दशरात्रेण हन्ताऽहमसुरोत्तमान् ।
तत्रोपविष्टान्स्थातव्यं प्रवरेण महात्मना ३२
जयन्तेन च वीरेण दानवानां जिघांसया ।
एकोऽत्र मानुषो देवो देवपुत्रस्तथा परः ॥ ३३
अवध्याः किल ते देवैर्ब्रह्मणो वरदर्पिताः ।
अस्माभिः किल हन्तव्या मानुषत्वमुपा[6]गते*
तथेति कृष्णं स हरिः प्रीतरूपस्तथाऽब्रवीत् ।
सस्वजा[7]ते ततो देवावन्योन्यं जनमेजय ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे स्वर्गे पारिजातस्थापने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

## पुण्यकविधिः ।

## ७७

जनमेजय उवाच ।

पुण्यकानां ममोत्पत्तिं कथयस्व द्विजोत्तम[8] ।
द्वैपायनप्रसादेन सर्वं हि विदितं तव ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

उमया पुण्यकविधिर्नरेन्द्रोत्पादितः पुरा ।
शृणु येन विधानेन लोके धर्मभृतां वर ॥ २
स्वर्गान्नीते पारिजाते कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
ययौ द्वारवतीं धीमान्नारदो मुनिसत्तमः ३
देवासुरे नृपश्रेष्ठ संग्रामे समुपस्थिते ।
षट्पुरस्य वधे घोरे महादेवाज्ञयाऽनघ ॥ ४
कृष्णेन सहितं विप्रं नारदं धर्मवित्तमम् ।
आसीनं परिपप्रच्छ रुक्मिणी भैष्मिकी नृप ५
तत्र[9] जाम्बवती देवी सत्यभामा च भामिनी ।
गान्धारराजपुत्री च योगयुक्ता नराधिप ॥ ६
देव्यश्च नृप कृष्णस्य बह्व्योऽन्या वै समागताः
कुलशीलगुणोपेता धर्मशीलाः पतिव्रताः ॥ ७

रुक्मिण्युवाच ।

मुने [10]धर्मभृतां श्रेष्ठ धर्मज्ञानभृतां वर ।
उत्पत्तिं पुण्यकानां त्वं वक्तुमर्हस्यशेषतः ८

---

मानुषो मानुषरूपी देवः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

सप्ताधिके सप्ततिके पुण्यकानां निरूप्यते ।
पार्वत्या तपसा युक्तं स्वरूपं तद्विधिस्तथा १

पुण्यकानामिति ॥ १ ॥ वधे कृते सति ॥ ४ ॥
तत्र जाम्बवत्यादयोऽपि समागताः ॥ ६ ॥

---

१ ख. रसन्निभः॰ पा॰ । २ ख. ॰ष्ट्वा स्वपितरौ प्र॰ । ३ ख. ॰त्रमेव वां नित्यं भवत्वमरसत्तम । म॰ । ४ ख. ॰थं ममैव त्वं पू॰ । ५ ख. तथास्त्वित्यब्रवी॰ । ६ ख. पागतैः । त॰ । ७ ख. ॰तेऽथ तौ देवा व॰ । ८ ख. ॰स्व तपोधन । द्वैपा॰ । ९ ख. ततो जा॰ । १० ख. ॰ष्ठ सर्वज्ञ वदतां व॰ । *इत उत्तरं खपुस्तके-ददौ किरीटं कृष्णाय शक्रोऽमृतसमुद्भवम् । प्रीतात्मा कुरुशार्दूल कुण्डलद्वयमेव च । इत्यधिकम् ।

विधिं च फलयोगं च दानकालं तथैव च ।
कौतूहलं नस्तत्सिद्धिं वदस्व वदतां वर ॥ ९

नारद उवाच ।

शृणु वैदर्भि धर्मज्ञे सपत्नीभिः सहानघे ।
पुण्यकानां विधिः प्रोक्तो यथा देवि पुरा मया
चचारोमा व्रतं देवी पुण्यकानां शुचिव्रता
व्रतावसानेऽथ तया सख्यो देवि निमन्त्रिताः
अदित्याद्याः सुताः सर्वा दक्षस्याक्लिष्टकर्मणः
पौलोमी च शची देवी ख्याता लोके पतिव्रता
रोहिणी च महाभागा सोमस्य दयिता सती
फाल्गुनी च तथा पूर्वा रेवती च विशांपते ॥
तथा शतभिषा चैव मघा च कुरुनन्दन ।
एताभिर्हि महादेवी पूर्वमाराधिता सती १४
गङ्गा सरस्वती चैव वेणी गोदा च निम्नगा ।
तथा वैतरणी चैव गण्डकी या च भारत १५
अन्याश्च सरितो रम्या लोपामुद्रा च भारत
सत्यश्चान्या जगद्देव्यो धारयति हि ताः शुभाः
शुभाश्च गिरिनन्दिन्यो वह्निकन्याश्च सुव्रताः
स्वाहा वह्निप्रिया देवी सावित्री च यशस्विनी
ऋद्धिः कुबेरकान्ता च जलेशमहिषी तथा ।
भार्या पितृपतेश्चैव वसुपत्न्यस्तथा च याः १८
ह्रीः श्रीर्धृतिस्तथा कीर्तिराशा मेधा च सुव्रताः
प्रीतिर्मतिश्च ख्यातिश्च सन्नीतिश्च तपोधनाः
देव्यः सत्यस्तथैवान्याः सर्वभूतहिते रताः ।
तासां व्रतावसाने च पूजां चक्रेऽम्बिका तदा
तिलरत्नमयं दत्वा पर्वतं सर्वधान्यवत् ।
वासोभिर्भूषणैर्मुख्यैर्नानारागैः सुमध्यमे ॥ २१
प्रतिगृह्य तु तां पूजां दत्तां देव्या तपोधनाः ।
उपविष्टाः कथाश्चित्राः कुर्वन्त्यो भर्तृदेवताः
पुण्यकार्थं कथास्तासामासन्देवी शशंस याः
विधिं च पुण्यकस्याथ सतीनां भर्तृदेवते २३
तासां मतेन साध्वीनां सर्वासां सोमनन्दिनी
पर्यपृच्छदुमां देवीं पुण्यकानां विधिं वरा २४
उमा तासां प्रियार्थं तु पुण्यकान्यब्रवीत्तदा ।
समक्षं मम वैदर्भि सर्वभूतहिते रता ॥ २५
ममैव चोमया दत्तः स तदा रत्नपर्वतः ।
प्रतिगृह्य मया चैव कृतो ब्राह्मणसाच्छुभे ॥ २६
उमा त्वरुधन्तीं साध्वीमामन्त्र्य यदभाषत ।
शृणु कल्याणि वक्ष्यामि सर्वाभिः सहिता शुभे
पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं यथावदनुपूर्वशः ।
यथा चैव मया दृष्टस्तत एष विधिः शुभे २८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पुण्यकविधिकथने
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

## पुण्यकव्रतवर्णनम् ।

### ७८

उमोवाच ।

सर्वज्ञाऽहं यदा भर्तुः प्रसादेन शुचिस्मिते ।
तदा पुरा ममादिष्टो दृष्टः पुण्यविधिः शुभः १
सनातनः पुण्यविधिरिति बुद्ध्याऽवगम्यताम्
महादेवप्रसादेन मया दृष्टस्त्वरुन्धति ॥ २

गङ्गाद्या नद्यभिमानिन्यो देवताः ॥ १५ ॥ भर्तृदेवते पतिव्रतासमुदाये ॥ २३ ॥ सोमनन्दिनी अरुन्धती ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८

अथाष्टसप्ततितमेऽध्यायेऽस्मिन्प्राह पार्वती ।
अरुन्धत्यै स्वव्रतेन प्रागुक्तमपि विस्तरात् ॥ १

सर्वज्ञेति । आदिष्टो उपदिष्टो भर्त्रेत्यर्थात् दृष्टो ज्ञातश्च ॥ १ ॥

१ ख, °ती चैव गङ्गा गो° । २ ख, °न्त्यस्तथैव च । श्रीर्ह्री° । ३ ख. °का तथा । ति° । ४ ख. भर्तृदैवते । पु° । ५ ख. °र्धिं वरम् । उ° । ६ ख. °मन्त्र्येदमभा° । ७ ख. °था देवि मया दृष्टः पुरा ह्येष वि° । ८ ख. °रा [illegible] पुण्यकानां वि° ।

पुण्यकानि च सर्वाणि चीर्णवत्यस्यनिन्दिते
अनुज्ञया भगवतो भर्तुः शर्वस्य धीमतः॥ ३
सतीत्वं धर्मचरणं यस्या नित्यमखण्डितम्।
पुण्यकानां विधिस्तस्याः पुराणैः परिकीर्तितः
दानोपवासपुण्यानि सुकृतान्यप्यरुन्धति।
निष्फलान्यसतीनां हि पुण्यकानि तथा शुभे
या वञ्चयन्ति भर्तारं योनिदुष्टाश्च याः स्त्रियः
योनिदोषात्पुण्यफलं नाश्नन्ति निरयङ्गमाः
साध्व्यो जगद्धारयन्ति सुशीलाः पतिदेवताः
अनन्या धर्मनित्याश्च सतीपन्थानमाश्रिताः ७
अवाग्दुष्टाः शौचयुक्ता धृतिमत्यः शुभव्रताः।
सततं साधुवादिन्यो धारयन्ति जगत्खलु ८
व्याधितः पतितो वापि दीनो वापि कथञ्चन
न त्यक्तव्यः स्त्रिया भर्ता धर्म एष सनातनः९
अकार्यकारिणं वापि पतितं वापि निर्गुणम्
स्त्री पतिं तारयत्येव तथाऽऽत्मानं शुभानने
योनिदुष्टस्त्रियो नास्ति प्रायश्चित्तं हतैव सा।
वाग्दुष्टे विहितं सद्भिः प्रायश्चित्तं पुरातने ११

भर्तुश्छन्देन कर्तव्यं
व्रतकं सर्वदा स्त्रिया।
उपवासोऽपि वा सत्ये
कांक्षन्त्या सुकृतां गतिम्॥ १२

कल्पान्तरसहस्रेषु न स्त्री सा लभते गतिम्।
तिर्यग्योनिसहस्रेषु पच्यत योनिविप्लवात् १३
यदि सा नाम मानुष्यं स्त्री लभेदसती सती
चण्डालयोनौ दुर्मेधा जायते कुक्कुराशना१४
भर्ता देवः सदा स्त्रीणां सद्भिर्दृष्टस्तपोधने।
यस्या हि तुष्यते भर्ता सा सती धर्मचारिणी
कौतूहलहतानां तु स्त्रीणां लोको न शोभनः
भर्तर्येव मनो यासां सद्भावेन व्यवस्थितम्१६
कर्मणा मनसा वाचा पतिं नातिचरन्ति याः
तासां पुण्यफलं सौम्ये पुण्यकैः समुदाहृतम्
पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं स्वर्लोकप्रतिशोभने।
निबोध सह सर्वाभिर्दृष्टो यस्तपसा मया १८
स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती
उपवासार्थमथ वा व्रतकार्थं धृतव्रते॥ १९
श्वशुराभ्यां च चरणौ सततं सत्तमस्य च।
ग्रहायौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा॥ २०
गोशृङ्गं दक्षिणं सिच्य प्रतिगृह्णीत तज्जलम्।
ततो भर्तुः सती दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च२१
आत्मनोऽपि निषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम्
त्रैलोक्यसर्वतीर्थेषु स्नानमेतदुदाहृतम्॥ २२
उपवासेषु कर्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च।
स्नानमेतद्धि सामान्यं स्त्रीणां पुंसां च भामिनि
अरुन्धति मया दृष्टं तपसा हरतेजसा।
अशल्यविद्धं शयनमासनं च तथाविधम् २४
स्वयं प्रक्षालनं चापि पादयोरनुशब्दितम्।
अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहश्च कृतः सति।
उपवासाद्व्रताद्वाऽपि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियः
शुक्लमेव सदा वासः प्रशस्तं चन्द्रसम्भवे।
अन्तर्वासोऽपरं चैव उपवासे व्रते तथा॥ २६
पादुकार्थं तृणैः कार्यं सर्वदा व्रतके सति।
उपवासेऽपि च विधिरेष एव प्रवर्तितः॥ २७
अञ्जनं रोचनं चापि गन्धान्सुमनसस्तथा।
व्रतके चोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत्॥ २८
दन्तकाष्ठं शिरःस्नानमुद्वर्तनमथापि वा।
विवर्जितं मृदा सर्वं शौचार्थं तु विधीयते२९
बिल्वामृतफलैर्नित्यं श्रीफलैश्च समाचरेत्।
प्रक्षालनं वै शिरसः सदा मृण्मिश्रितैर्जलैः ३०

अखण्डितम् ईप्सितं भवेत् ॥ ४ ॥ पुरातने वेदे ॥ ११ ॥ हे सत्ये अरुन्धति ॥ १२ ॥ असती भूत्वा सती विद्यमाना ॥ १४ ॥ कौतूहलम् आश्चर्यं प्रोक्तम् ॥ १६ ॥ औदुम्बरं ताम्रमयम् ॥ २० ॥ सिच्य सिक्त्व ॥२१॥ व्रताङ्गनियमानाह—**अशल्येत्यादिना** ॥२४॥ पादुकार्थं तृणैर्वेत्रादिभिः पादत्राणं कर्तव्यं न तु चर्ममयमित्यर्थः ॥ २७ ॥ अमृता हरीतकी आमलकी वा। श्रीफलैः पक्वबिल्वफलैः अमृन्मिश्रितैरिति च्छेदः ॥ ३० ॥

१ ख. °नां तु पु°। २ ख. °दुष्टा ह्यसत्स्त्रियः। न तु तासां पुण्यफलमस्ति ता नि°। ३ ख. वा धन्ये का°। ४ ख. प्रसीदनञ्जनं च ग°। ५ ख. °पि च। वि°। ६ ख. °लैः शुद्धैः स्नानं चैव समा°।

शिरसोऽभ्यञ्जनं सौम्ये नैव तावत्प्रशस्यते।
न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता
गोयानमुष्ट्रयानं च खरयानं च वर्जितम्।
नग्नस्नानं च सततं व्रते चाप्युपवासके॥ ३२
नदीजलं प्रस्रवजं प्रशस्तं सोमनन्दिनि।
शुभे तडागे वाप्यादौ विस्तीर्णे जलजायुते
गत्वा स्नानं प्रशस्तं तु सदैव खलु सर्वथा।
अलाभे त्ववरुद्धा स्त्री घटस्नानं समाचरेत् ३४
नवैश्च कुम्भैः स्नातव्यं विधिरेष पुरातनः।
स्नानं च कार्यं शिरसा तपः फलमवाप्नुयात् ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे-
ऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

## पुण्यकव्रतवर्णनम्।

## ७९

उमोवाच।

विधिनैतेन कृत्स्नेन स्त्री सदा भर्तृदेवता।
चरेत्संवत्सरं दान्ता षण्मासान्मासमेव च १
स्त्रियो ह्यावाहयेत्साध्वीरेकादश समाधिना
स्वयं चैव विधिर्दृष्टो व्रतकानां मया शुभः २
अद्भिर्दद्यात्सतीः सर्वा या मूलव्रतिनी भवेत्।
तासां तु निष्क्रयो देयः कालदेशानुरूपतः ३
ततो मासान्तशुक्लस्य तिथौ च नवमी तथा।
आराधयित्वा कर्तव्यं व्रतकस्यापवर्जनम् ॥ ४
उपवासमहोरात्रं व्रतकं चापि निश्चितम्।
आदौ चान्ते च कुर्वीत व्रतकस्यापि सिद्धये
क्षुरकर्म ततो भर्तुरात्मनश्चैव कारयेत्।
उत्सादनं च स्नानं च तस्मिन्नहनि संस्मृतम्
ततो विवाहवत्स्नानं विहितं पुण्यके शुभे।
मण्डनं चैव विहितं माल्यधारणमेव च॥ ७
कुम्भैस्तु स्नाप्यमानेमं साध्वी मन्त्रमुदीरयेत्।
भर्तुः पादौ नमस्कृत्य मनसा वाऽथ वा गिरा

आपो देव्य ऋषीणां हि विश्वधात्र्यो
दिव्या मदन्त्यो याः शङ्करा धर्मधात्र्यः
हिरण्यवर्णाः पावकाः शिवतमेन
रसेन श्रेयसो मां जुषन्तु॥ ९

अपामेष स्मृतो मन्त्रः सर्वत्रान्यत्र मे शृणु।
मन्त्राः पुराणविहिताः स्त्रीणां सर्वाङ्गशोभने

अभ्यञ्जनं कल्कस्नानम् ॥ ३१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

७९

अथैकोनाशीतितमे ह्यध्यायेऽत्र निरूप्यते।
नित्यशेषे विधिर्यश्च काम्यानां परमो विधिः १

विधिनेति। चरेद्व्रतमिति शेषः॥ १॥ या निमन्त्रिता एकादश स्त्रियः ताः सर्वा अद्भिः साकम् आचार्याय दद्यात् सन्निहितत्वात्। निष्क्रयो देयः पूर्वं भर्तृभ्यः क्रीत्वा आचार्याय देयस्ततः आचार्यान्निष्क्रयेण गृहीतास्तद्भर्तृभ्यः प्रदद्यादित्यर्थः॥ ३॥ अपवर्जनं समापनम् ॥ ४॥ व्रतकम् उद्दिश्येति शेषः। आत्मनश्च केशवर्जं नखमात्रनिकृन्तनम्।

"सर्वान् केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम्
एवमेव हि नारीणां वपनं सर्वदा स्मृतम्"

इति स्मृत्युक्तप्रकारेण वा क्षुरकर्म॥ ६॥ इमं वक्ष्यमाणम् ॥ ८॥ ऋषीणां देव्यः जनयित्र्यः यासु जातः कश्यप इति लिङ्गात्। दिवि भवाः आदित्यलोकावस्थानात् मदन्त्यो यज्ञे मदन्तीसंज्ञाः शङ्कराः सुखकरा यतो धर्मस्य धात्र्यः पोषका हिरण्यवर्णाः निर्मलाः पावकाः शोधकाः रसेन निजगुणेन जुषन्तु प्रीणयन्तु॥९॥

१ ख. °तं न व्रते ह्युपवा°। २ ख. °लजैर्युते। ग° । ३ ख. व वा। स्त्रि°। ४ ख. °श्रिता। आ°। ५ ख. °नं न वपनं त°। ६ ख. °मैश्च स्ना°।

शुभाव्यया गुणिनी युक्तधर्मा
भर्त्रा साकं मम दास्या वरेण ।
मा कर्मणा मनसा वापि वाचा
भर्तुर्भवेयं रुषती स्यां वशङ्गा ॥ ११
सपत्नीनामधि नित्यं भवेयं
सपुत्रा स्यां सुभगा चारुरूपा ।
संपन्नहस्ता गुणवादिनी च
सर्वात्मना स्यां मा दरिद्रा भवेयम् ॥
पतिश्च मे स्यात्सुमुखो मत्प्रतीक्षो
नित्यं मद्भक्तः स्यान्मन्मतिर्मद्गतिश्च ।
प्रीतिश्च नौ स्याच्चक्रवाकानुरूपा
मनोविरागो न भवेत्साधुवत्स्यात् १३
लोकान्साध्वीनामुत्तमानां व्रजेयं
याभिः सर्वं धार्यते विश्वरूपम् ।
उभे कुले याः शुभाः पावयन्ति
पितुर्भर्तुश्च पतिभक्त्योर्जिताश्च ॥ १४
भूमिर्वायुर्जलमाकाशमग्नि-
रन्तः क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्यो महांश्च ।
अहङ्कारश्च मम साक्ष्ये नियुक्ताः
स्मरेयुर्मे निश्चयं च व्रतं च ॥ १५
यैरारब्धो देहिनां भौतिकोऽयं
विधिः सत्त्वाद्यैर्भूतयुक्तैः सबीजैः ।
सन्त्वेते मे साक्षिणः सर्वसंस्था
व्रते चास्मिन्निश्चये चापि नित्यम् १६
चन्द्रादित्यौ पुण्यसाक्षी यमश्च
दिशः सर्वा दश चात्मा च मेयम् ।
सन्त्वेते वै साक्षिणः सर्वसंस्था
व्रते चास्मिन्निश्चये चापि नित्ये ॥ १७
मन्त्रैरेतैः पुराणोक्तैः सर्वद्रव्याभिमन्त्रणम् ।
व्रतचर्याप्रभृति वै पुराणे समुदाहृतम् ॥ १८
स्नात्वाऽथ वाससी दद्याद्भर्तुः कर्त्यं स्वयं शुभे
अथात्मकर्तितं न स्याच्छुभे विघ्नेन केनचित् ॥
वासोऽन्यदेव दद्याच्च श्वेतं मुख्यं नवं शुचि ।
स्वकर्तितं च सूत्रं तु वाससा तेन मिश्रयेत् २०
ततो द्विजं शुचिं दान्तं ज्ञानविज्ञानकोविदम्
भोजयेच्च यथाशक्त्या सह भर्त्रा सुमध्यमे २१
ब्राह्मणस्यापि दातव्यं वासोयुग्मं महातपे ।
शय्यासनं गृहं धान्यं दासं दासीं तथैव च २२
अलंकाराः शक्तितश्च रत्नपर्वत एव च ।
सर्वधान्यसमुन्मिश्रस्तिलैश्च सविशेषतः ॥ २३
वासोभिश्च प्रतिच्छन्नो नानावर्णैररुन्धति ।
हस्त्यश्वावचयश्चैव देया गौरेव च ध्रुवम् २४
लवणप्रतिमां दद्यान्नवनीतस्य चापराम् ।
गुडस्य मधुनश्चैव सुवर्णस्य च शोभनाम् २५
तथैव सर्वगन्धानां रसानां पृथगेव च ।
तथा सुमनसां दद्याद्रौप्यस्यौदुम्बरस्य च २६
फलानां चैव सर्वेषां वाससामपि नन्दिनि ।
चित्रप्रतिकृतिं चैव काष्ठस्य प्रतिमां तथा २७
शिलां प्रतिकृतिं चैव दध्नोऽथ पयसस्तथा ।
सर्पिषा दूर्वया चैव या चान्यामप्यभीप्सति ॥
कालदेशानुरूपं च देयं विभवतः सति ।
अल्पं वा बहुलं वापि भर्तुश्छन्देन सर्वदा २९

पौराणान्मन्त्रानाह—**शुभेति**। शुभा कल्याणकरी भर्तुर्भवेयमिति सर्वत्र सम्बन्धनीयम् । अव्यया अक्षीणा धनादिभिः। यदाह याज्ञवल्क्यः— " संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी । " इति वरेण वरहेतोर्दास्या तुल्येति नीचकर्मापि कर्तुं योग्या भवेयम् । यथोक्तम् । " कार्येषु दासी शयनेषु रम्भा " इत्यादि । अन्यत्र रुषती क्रुद्धाऽपि भर्तुर्वशंगा स्याम् ॥ ११ ॥ अधि उपरि सम्पन्नहस्ता अन्नदानादौ मुक्तहस्ता १२॥ मनोविरागः अन्योन्यमनुरक्तता ॥१३॥ विश्वस्य रूपं स्वरूपं विश्वमित्यर्थः ॥ १४ ॥ **भूमिरिति**। भूम्याद्यभिमानिन्यो देवताः व्रतं च निश्चयं भक्तिं च स्मरेयुः ॥ १५ ॥ विधिर्विध्यर्हो देहः यैरारब्धो भूतयुक्तैः जरायुजादिसबन्धैः सत्त्वाद्यभिमानिदैवतैः सबीजैस्तत्प्राणिकर्मप्रयोजितैः ॥ १६ ॥ आत्मा मनः ॥ १७ ॥ व्रतचर्यात् व्रतारम्भात् प्रभृति प्रत्यहमेव कार्यमित्यर्थः ॥ १८ ॥ कर्त्यं कर्तनादिना सम्पाद्य । शुभे हे अरुन्धति ॥ १९ ॥ महातपे तपस्विनि ॥ २२ ॥ सति सम्भवे हस्त्यश्वादीनाम् अवचयः समूहो दातव्यः । अन्यथा गौरेव देया देयैवेत्यन्वयः॥२४॥ प्रतिमाम् उमामहेश्वरयोः ॥ २५ ॥ शिलां शिलामयीं प्रतिमां दध्यादिभिः पञ्चामृतस्नानादिना पूजयेदित्यर्थः॥२८॥

१ ख. °ताः स । भू° । २ ख. °स्था व्रते चा° । ३ घ. °र्तुः कर्ता स्व° । ४ ख. शय्या यानं गृ° ।

तिलपात्रं प्रदातव्यं न देय ननु शोभने।
गौस्त्ववश्यं प्रदातव्या कपिला कांस्यमेव च
कृष्णाजिनं च सुभगे सतिलं वाससाऽन्वितम्
आदर्शश्चैव कूर्चश्च तथाऽजिनमनिन्दिते ३१
एतद्दत्वा सर्वकामानाप्नोति वरवर्णिनि।
पुरोऽधिका पुत्रवती सुभगा रूपभागिनी ३२
मृष्टहस्ता धनाढ्या च स्त्री भवत्यमलेक्षणा।
इच्छया लभते चैव कन्या रूपगुणान्विताः॥
भवन्ति सुभगाश्चर्यास्तथैव च पुरोऽधिकाः।
पुत्रवत्यो धनाढ्याश्च शीलवत्यश्च नित्यदा ३४
अरुन्धति[1] कृतं ह्येतन्मयैव प्रथमं यतः।
उमाव्रतकमित्येव ख्यातमत्र महीतले॥ ३५
एतदेवोत्तमं स्त्रीणां व्रतं तस्मात्समाचरेत्।
सर्वकामानवाप्नोति[2] दत्वैवैतदनिन्दिते॥ ३६
एतद्व्रतकरो ह्येव देवदेवो वृषध्वजः।
पुराऽभिषिक्तवान्सौम्ये प्रियार्थं मम सर्वकृत्॥
व्रतकस्यावसानेऽथ देयं भोज्यं च नित्यदा।
स्त्रीणां कामाः प्रदेयाश्च सदृशाः कालदेशयोः
एकैकस्य प्रदातव्यं व्रतकं वरवर्णिनि।
छन्दतो ब्राह्मणानां तु देयमन्नं सदक्षिणम् ३९
पायसं तत्र दातव्यं व्रतके नान्यदिष्यते।
नात्र प्राणिवधः कार्यः पुराणे नियता श्रुतिः
अथ द्वितीयं वक्ष्यामि व्रतं सोमसमुद्भवे।
महादेवप्रसादेन दृष्टवत्यास्मि यच्छुभे॥ ४१

सर्वाः पुत्रफला नार्यः सद्भिरेतदुदाहृतम्।
तस्मादन्विष्यतीं दद्यात्सपुत्रकरकाञ्छुभे ४२
ज्येष्ठाषाढौ शुभौ मासौ पुरोक्तं विधिमाचरेत्
अथवा ज्येष्ठमेवैकमाषाढं वा समाचरेत् ४३
ततो मासद्वये पूर्णे मासे वा वरवर्णिनि।
सपुत्रकरकान्दद्यात्फाणितप्रतिपूरितान्॥ ४४
सर्पिषः पयसश्चैव दध्नोऽथ मधुनोऽनघे।
जलस्य च तथा दद्यात्पूरयित्वा शशिप्रभे ४५
एतस्मै ज्ञानवृद्धाय सुव्रताय जितात्मने।
सपुत्रकरकान्दद्याद्यावन्तो मनसः प्रियाः ४६
इच्छेत स्त्री दुहितरं स्त्रीणां कामकरं ततः।
किञ्चिद्द्रव्यं सुताकामात्सुतां प्राप्नोत्यसंशयः
गौर्वाऽथ काञ्चनं वाऽपि दक्षिणा[4] चैव शस्यते
विप्रस्याच्छादनं देयमवश्यं तु शुचिस्मिते४८
यज्ञोपवीतं व्रतके दद्यान्नारी शुचिव्रता।
सपुत्रकरकाणां तु विधिरुक्तो[5] विपश्चिता ४९
अपत्याख्यानयोगेन ब्राह्मणेभ्यः शुचिव्रता।
संवत्सरं सुसंपूर्णं व्रतधर्मानुपालिनी॥ ५०
करकानपि दद्याच्च पूर्णे संवत्सरे शुभ।
अनुज्ञया सदा भर्तुः सत्यवादिन्यरुन्धति॥ ५१
सुवर्णसूत्रं विप्राय कौमुद्यां दातुमर्हति।
यज्ञोपवीतं विप्रस्य[6] व्रतं संस्थाप्य कामिकम्॥
यज्ञोपवीतं[7] करकं दक्षिणां च स्वशक्तितः।
प्रयच्छती सती स्त्रीभ्यः सर्वान्कामान्समश्नुते

न देयं भर्तुश्छन्देन विना॥ ३०॥ कूर्चः मयूरपुच्छमुष्टिः कुशमुष्टिरित्यासनमित्यर्थः। अजिनम् आसनार्थं कूर्चसाहचर्यात्। कृष्णाजिनं तु प्रावरणार्थम्॥ ३१॥ पुरोऽधिका अग्रगण्याः॥ ३२॥ एतद्व्रतकरः व्रतेन क्रियत इति व्रतप्रसाद्यः। प्रियार्थं पट्टमहिषीत्वार्थम्॥ ३७॥ व्रतकं व्रतोपकरणं द्रव्यं विभज्य देयमित्यर्थः॥ ३९॥ अन्विष्यतीं पुत्रकामनां करकान् नासिकान्वितान् अल्पघटान् सपुत्रेति विशेषणं तदर्थिनीभिर्देयान्॥ ४२॥ दानकालमाह— ज्येष्ठेति। पुरोक्तं गोशृङ्गसेवनादि॥ ४३॥ फाणितं शर्करोदकं पानकाख्यम्॥ ४४॥ सर्पिष इत्यादीनां पृथग्ग्रहणात्॥ ४५॥ व्रतान्तरमाह—यज्ञोपवीतमिति। ॥ ४९॥ अपत्याख्यानयोगेन यत्पूर्वं दानमुक्तं तत्पुत्रापत्यकामा पुंनक्षत्रस्य पुष्यादेर्योगेन दद्यात् एवं कन्याकामा स्त्रीनक्षत्रे रोहिण्यादेर्योगे करकादि दद्यात्॥५०॥ कौमुद्यां कार्तिक्यां पौर्णमास्यां संस्थाप्य समाप्य॥ ५२॥

१ ख. °ति कृतं दान्ते मयैतप्र°। २ ख. °ति स्त्री दत्त्वैतद°। ३ ख. इच्छेद्दुहितरं चेद्धि स्त्री°। ४ ख. °णार्थं प्रशस्यते। वि°। ५ ख. °धिनैवं वि°। ६ ख. °स्य व्रतकं सार्वकामि°। ७ ख. °तं कनकं द°।

नवं न भक्षयेत्किञ्चिन्नारी धान्यमथो फलम्
पुष्पाणि नोपयुञ्जीत यावदेवं समाचरेत् ५४
एकभक्तेन धर्मज्ञे पुण्यकं कर्तुमर्हति ।
ब्राह्मणाय[1] तथा देयं भर्तुश्च तदनन्तरम् ॥ ५५
एवं संवत्सरं कृत्वा सुभगा रूपशालिनी ।
भवत्यविधवा चैव स्त्री[2] धनस्य तथेश्वरी ५६
वार्ताकानि न खादेद्या स्त्री पूर्णे परिवत्सरम्
न सा पुत्रविनाशं हि पश्यतीत्यवगम्यताम् ॥
शशकं[3] मृगमांसं वा नित्यमेव विवर्जयेत् ।
नाप्नोति मरणं नारी प्राप्नोति पतिदेवताम् ॥
अलाबुं वर्जयेन्नारी तथैवोत्पादिकामपि ।
कलम्बीं[6] काञ्चनं नाद्याद्या भर्तुः सुखमिच्छति
पूर्णे संवत्सरे दद्यादेकैकं शाकमादृता ।
सदक्षिणं पुत्रवती भवत्येका पुरोऽधिका ६०
स्वयं प्रक्षालयाना स्त्री स्वपादावेवमादितः
प्रतिष्ठां लभते नित्यमुद्वेगं नाधिगच्छति ६१
दिवा या सूर्यपूतेन वर्तयेत्स्त्री पतिव्रता ।
एकं संवत्सरं पूर्णं रात्रावन्नं विवर्जयेत् ॥ ६२
सा जीवपुत्रा सुभगा भवत्यमरवर्णिनि ।
अधितिष्ठति सर्वाश्च सपत्न्यो नात्र संशयः ॥
पूर्णे संवत्सरे दद्यात्सौवर्णं सूर्यमुत्तमम् ।
ब्राह्मणायाभिरूपाय दरिद्राय यशस्विने ॥ ६४
फलानि[10] वाथ पुष्पाणि भक्ष्याण्यपि च सुव्रता
दद्यादनस्तमितके चरितव्रतका तथा[11] ॥ ६५
या तथाऽस्तमिते सूर्ये भुङ्क्ते स्त्री नियता सती
चन्द्रनक्षत्रपूतानि भोज्यानि वरवर्णिनि ॥ ६६
सा दद्यात्काञ्चनं चन्द्रं नक्षत्राणि ग्रहानपि ।
अभिरूपाय विप्राय वासश्च लवणान्वितम् ६७
चन्द्रशीतलगात्री सा भवत्यमरवर्णिनी ।
सुभगा दर्शनीया च पुत्रवत्यपि भाविनी ॥ ६८
पौर्णमास्यां तु सततं प्राप्ते सोमोदयेऽङ्गना ।
अर्घं दद्यात्सुमनसां साक्षतं सकुशं तथा ॥ ६९
यावकं च बलिं[12] दद्याद्दध्ना च सह संयुतम् ।
एवं या कुरुते नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
अदृष्ट्वा या तु नाश्नाति सूर्यं नारी पतिव्रता ।
दुर्दिने वाऽथवा ह्यभ्रे सेष्टान्कामानवाप्नुयात्[13]
काञ्चनं शक्तितो दद्यात्सा विप्राय मनस्विनी
सुभगा दर्शनीया च भवत्यमरवर्णिनी ॥ ७२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकथने एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## अङ्गनिर्वेशहेतूनि व्रतानि ।

### ८०

भगवत्युवाच ।

निर्वेष्टव्यं शरीरं[1] यैर्व्रतकैः पुण्यकैरपि । अरुन्धति प्रवक्ष्यामि सहैताभिर्वरेर्णे[14] तु ॥ १

नारी धान्यं द्विदलं तथा फलं च द्विदलमेवेत्यर्थः ॥ ५४ ॥ वार्ताकानि वृंताकानि ॥ ५७ ॥ मरणमल्पायुष्यम् । पतिदेवतां पातिव्रत्यम् ॥ ५८ ॥ अलाबुं तुम्बीफलम् । उत्पादिकाम् उपोदकीं "पोई" इति प्रसिद्धाम् ॥ ५९ ॥ प्रक्षालयाना प्रक्षालयन्ती ॥ ६१ ॥ व्रतान्तरमाह—**दिवेति** । दिनैकभोजिनी ॥ ६२ ॥ सपत्न्यः सपत्नीः । अधितिष्ठति आक्रम्य तिष्ठति ॥ ६३ ॥ व्रतान्तरमाह—**या तथेति** । ॥ ६६ ॥ यावकं सगुडघृतं गोधूमान्नम् ॥ ७० ॥ व्रतान्तरमाह **अदृष्ट्वेति** ॥ ७१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८१

**अथाशीतितमेऽध्यायेऽस्मिन्प्रोक्तानि कामतः**
**अङ्गनिर्वेशहेतूनि व्रतकानि शुभान्यलम् ॥ १**

**निर्वेष्टव्यमिति** । परसुखप्राप्तियोग्यं कर्तव्यम् ॥ १ ॥

१ ख. °य ततो दे° । २ ख. स्त्री धनाढ्या तथे° । ३ ख. शश° । ४ ख. °मांसं च नि° । ५ ख. नारी चाप्नो° । ६ ख. अलाबुं काञ्चनीं दद्याद्या° । ७ ख. °मादितः । सुदक्षिणां पुत्र° । ८ ख. °मुद्वेगरहिता सती । दिवा सूर्यस्य मार्गेण व° । ९ ख. °पत्नीर्नात्र सं° । १० ख. °नि चाथ पु° । ११ ख. °था । अथवाऽस्तङ्गते सू° । १२ ख. °लिं कुर्याद्दधिना सह सं° । १३ ख. °वाप्नुते । का° । १४ ख. °भिर्वरे शृणु । कृष्णा°

कृष्णाष्टमीं या क्षिपति स्याद्वा मूलफलाशिनी
ब्राह्मणायैकमशनं स्वं दत्त्वा भर्तृदेवता ॥ २
शुक्लवस्त्रा शुभाचारा गुरुदैवतपूजका ।
एवं संवत्सरं कृत्वा ततो दद्याद्द्विजातये ॥ ३
गोवालरज्जुसुकृतं चामरं च ध्वजं तथा ।
दक्षिणापूर्णमिष्टान्नं शक्त्या वापि शुचिव्रते ४
ऊर्मिमन्तः स्वरालाग्राः श्रोणिदेशावलम्बिनः
तस्या भवन्ति केशास्तु भक्तिमत्या हि भर्तरि
शिरो निर्वेष्टुकामा तु गोमयेन शिरः सती ।
प्रक्षालयेन्मलं[2] धात्र्या बिल्वेन श्रीफलेन च६
गोमूत्रं च सदा प्राश्येच्छिरःस्नानं च मिश्रयेत्
कृष्णां चतुर्दशीं[3] त्वेतत्कर्तव्यं वरवर्णिनि ॥ ७
भवत्यविधवा चैव सुभगा विज्वरा तथा ।
शिरोरोगैर्नैव चास्याः शरीरमभितप्यते ॥ ८
दर्शनीयं ललाटं या कांक्षति स्त्री शुचिस्मिते
तिथिं प्रतिपदं नित्यं सा क्षिपेदेकभोजना ॥९
पयसा च तथाऽश्नीयाद्यावत्संवत्सरो गतः ।
ब्राह्मणाय[4] ततो दद्यात्पटं रूप्यमयं शुभम् १०
ललाटं रूपसम्पन्नमाप्नोति स्त्री सुमध्यमा ।
सततं स्त्री द्वितीयायां भ्रुवोरिच्छेत्सुरूपताम्
अनन्तरोपवासेन शाकभक्ताशना सती ।
ततः संवत्सरे पूर्णे ब्राह्मणं स्वस्ति वाचयेत्१२
फलैः परिणतैः सौम्यैर्माषाणां दक्षिणान्वितैः
लवणेन च भद्रं ते घृतपात्रेण चानघे* ॥१३
आत्मनः[7] शोभनौ कर्णाविच्छती स्त्री सुमध्यमा
नक्षत्रे श्रवणे प्राप्ते भुञ्जीत यावकम् ॥ १४
ततः संवत्सरे पूर्णे कर्णौ दद्याद्धिरण्मयौ ।
घृते प्रक्षिप्य विप्राय पयसा सहिते शुभे ॥ १५
नासामिच्छेल्ललाटान्ता-[8]
मव्यङ्गां व्याधिवर्जिताम् ।
तिलगुल्मं सदा सिञ्चे-
द्यावत्पुष्पोद्धि रक्षितः ॥ १६
अनन्तरोपवासेन सेक्तव्यः सलिलैः सदा ।
तस्मादवाप्य[9] पुष्पाणि घृते प्रक्षिप्य दापयेत्
स्वक्षीभवेयमिति या स्त्री कांक्षत्यमृतोद्भवे ।
अनन्तरं वै भुञ्जाना पयसाऽथ घृतेन वा १८
ततः संवत्सरे पूर्णे पद्मपत्राणि[10] मण्डिता ।
तथैवोत्पलपत्राणि न्यसेत्क्षीरे शुचिस्मिते १९
प्लवमानानि विप्राय ततो दद्यात्सती सति ।
कृष्णसारसमानाक्षी[11] तद्दत्त्वा भवति स्म वै
इच्छेदोष्ठौ चारुरूपौ या स्त्री धर्मगुणान्विता
सा मृन्मयेन तु पिबेदुदकं वत्सरं सती ॥ २१
अयाचितेन भुञ्जीत नवम्यां धर्मभागिनी ।
ततः संवत्सरे पूर्णे विद्रुमं दातुमर्हति ॥ २२
तेन बिम्बफलाभौष्ठी स्त्री भवत्येव शोभने ।
सुभगाऽथ वपुःपुत्रधनाढ्या गोमती तथा २३
या चारुरूपानिच्छेत दन्तानमरवर्णिनि ।
शुक्लाष्टमीं न साऽश्नीयाद्भक्तद्वयमनिन्दिता २४
ततः संवत्सरे पूर्णे दद्याद्रौप्यमयान्[12] सती ।
दन्तान्प्रक्षिप्य धर्मज्ञे पयस्यतिगुणोदिते ॥ २५
तेन सा[13] जातिपुष्पाभान्दन्तान्प्राप्नोति सा सती
सौभाग्यमपि चाप्नोति सुपुत्रत्वं तथानघे ॥२६
सर्वमेव मुखं कान्तमिच्छेद्या रुचिरानने ।
सा पूर्णमास्यां स्नात्वा तु प्राप्य चन्द्रोदये शुभे
यावकं पयसा सिद्धं दत्त्वा विप्राय भामिनी
ततः संवत्सरे पूर्णे चन्द्रं रूप्यमयं शुभम् २८
पद्मे फुल्ले तु विन्यस्य ब्राह्मणान्स्वस्ति वाचयेत्
पूर्णचन्द्रमुखी तेन दानेन स्त्री[14] शुभा भवेत् ॥

क्षिपति उपोषणेन नयति ॥ २ ॥ ऊर्मिमन्तः सर्पसर्पण-तुल्याः । स्वरालाग्राः सुतरां कुटिलाग्राः ॥ ५ ॥ धात्र्या आमलक्या बिल्वेन श्रीफलेन समं कृत्वा तेन शिरः प्रक्षालयेत् ॥ ६ ॥ पयसा सहाश्नीयादोदनं पटं स्त्रीभिः शिरोदेशे बन्धनीयं रूप्यमयं स्वर्णमयम् ॥ ११ ॥ माषाणां सुवर्णमाषाणाम् ॥ १३ ॥ तिलगुल्मं तिलस्तोमम् । अनन्तरेऽत्यव्यवहितपूर्वदिने उपोष्येत्यर्थः । एवं यावद्धान्योत्पत्ति कर्तव्यम् ॥१६॥ भक्तद्वयमपि नाश्नीयादुपवसेदित्यर्थः २४

१ ख. °लाशना । ब्रा° । २ ख. °मलं कुर्यात्पयसा श्री° । ३ ख. °दशीमेतत्क° । ४ ख. °ह्मणस्य त° । ५ ख. °म्पन्नं तेनाप्नोत्यङ्गना सती । द्वितीयां स्त्री सदासौम्ये भ्रुवो° । ६ ख. °तमात्रे° । * भ्रुवौ विधाय सा दद्यात् मृगनाभिमये शुभे । इत्यधिकं खपुस्तके । ७ ख. श्रवणौ रूपसम्पन्नाविच्छन्ती स्त्री सुमध्यमे । नक्ष° । ८ ख. °टान्तां मध्यमावर्धित° । ९ ख. °स्मादादाय पु° । १० ख. °णि पाण्डि° । ११ ख. °क्षी स्त्री दत्त्वा भ° । १२ ख. °यान् शुभान् दन्ता° । १३ ख. सा तिलपु° । १४ ख. स्त्री शुभे भ° ।

स्तनाविच्छति या नारी तृणराजफलोपमौ ।
अयाचितं दशम्यां सा नित्यमश्नीत वाग्यता
संवत्सरे ततः पूर्णे द्वे बिल्वे काञ्चने शुभे ।
सदक्षिणे ब्राह्मणाय प्रयच्छति धृतात्मने ॥ ३१
सौभाग्यं परमाप्नोति बहुपुत्रांस्तथैव च ।
सदोन्नतौ स्तनौ सा स्त्री बिभर्त्यमरवर्णिनि ॥
शातोदरत्वमिच्छन्ती क्षिपेदेकान्तभोजिनी ।
पञ्चम्यां तत्र भोक्तव्यमन्नं तोयेन नित्यदा ३३
ततः संवत्सरे पूर्णे दद्याज्जातिलतां शुभे ।
फुल्लां सदक्षिणां धन्ये ब्राह्मणाय धृतात्मने३४
हस्ताविच्छति या नारी रूपयुक्तौ सुमध्यमे ।
द्वादशीं सा क्षिपत्वेवं शाकैः सर्वैरनिन्दितैः
संवत्सरे ततः प्राप्ते रौक्मे पद्मे ददातु सा ।
ब्राह्मणायाभिरूपाय तथा पद्मद्वयं शुभम् ३६
श्रोणीं विशालामन्विच्छेत्स्त्री क्षिपत्वेव सुव्रते
त्रयोदशीमेकभक्तमश्नात्वेवमयाचितम् ॥ ३७
ततः संवत्सरे पूर्णे लवणं संप्रयच्छतु ।
प्रजापतिमुखाकारं कृत्वा तत्र वरानने ॥ ३८
काञ्चनं चैव दातव्यं तदाकारस्य सर्वदा ।
अञ्जनेन च धर्मज्ञा शनकैरवचूर्णयेत् ॥ ३९
रत्नानि चैव पूर्णानि वासो रक्तं च दापयेत् ।
तेन श्रोणीमभिमतां स्त्री सौम्ये प्रतिपद्यते ४०
मधुरां वाचमिच्छन्ती वर्जयेल्लवणं सती ।
संवत्सरं वा मासं वा प्रयच्छेल्लवणं ततः ४१
सदक्षिणं ब्राह्मणाय परं माधुर्यमिच्छती ।
शुकवाक्याच्छतगुणं भवत्यमरवर्णिनि ४२
गूढगुल्फशिरौ पादाविच्छन्त्या सोमनन्दिनि
षष्ठ्यां षष्ठ्यां वरारोहे भोक्तव्यं सलिलौदनम्
अग्निर्वा ब्राह्मणो वाऽपि न स्प्रष्टव्यः पदा सदा
यदा पदा स्पृशेत्तं च वन्देत तपसाऽन्विते ॥
पादेन न च वै पादं प्रक्षालयितुमर्हति ।
पतैर्नित्यव्रतैर्युक्ता धर्मज्ञा पतिदेवता ॥ ४५
कूर्मौ रूप्यमयौ दद्याद्ब्राह्मणाय पतिव्रते ।
तौ वराय ब्राह्मणाय स्थापयित्वा घृतेऽनघ ॥
पद्मे चाधोमुखे कृत्वा दद्याद्विप्राय नन्दिनी ।
रक्तैर्द्रव्यैर्मिश्रयित्वा काञ्चनेनाभ्यलंकृतौ ४७
सर्वमेव तु या गात्रमिच्छत्यतिमनोहरम् ।
त्रिरात्रं पुष्पकाले सा करोतु पतिदेवता ४८
कौमुद्यामथवा षष्ठ्यां माघ्यां चाश्वयुजे तथा ।
मातरं पितरं चैव मन्यते तिथिदैवतम् ॥ ४९
घृतं च नित्यं विप्रेभ्यो ददातु लवणं तथा ।
संमार्जनं गृहे चैव करोतु पतिदेवता ॥ ५०
उपलेपनं च धर्मज्ञे बलिकर्म च मानिनि ।
वाग्दुष्टा चैव मा शुभ्रे भवत्वात्मार्थपण्डिता
पर्यश्नातु च सा कञ्चिदपि दासं यशस्विनि ।
बलिं सृजत्वतथ्यं च परित्यजतु भामिनि ५२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे
व्रतकविधानेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

न... ...राजस्ताल: ॥ ३० ॥ शातोदरत्वं कृशोदरत्वम् ॥ ३३ ॥ प्रजापतेश्चतुर्वक्त्रस्य मुखाकारं राशेश्चतुर्दिक्षु मुखाकारं कृत्वेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ तदाकारस्य प्रजापतिमुखाकारस्य सदृशाकारम् ॥ ३९ ॥ मा भवत्वित्यन्वयः ॥५१॥ पर्यश्नातु उपवसतु अतथ्यमनृतम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

---

१ ख. सदोन्नतस्तनी चैव भवत्यमरव° । २ ख. °त्वमान्विच्छेत्क्षपेदेकान्नभोजनात् । प° । ३ ख. °म्यां तु न भो° । ४ ख. सा क्षप° । ५ ख °तः पूर्णे पद्मे रौक्मे द° । ६ ख. स्त्री क्षप° । ७ ख. °न्नं तत्र दा° । ८ घ. °देन चैव पादौ तु प्र° । ९ ख. °तिव्रता । तौ व° । १० ख. °वाऽऽषाढ्यां माघ्यामाश्व° ।

## उमाव्रतकथनसमाप्तिः ।

## ८१

उमोवाच ।

बान्धवान्स्वगुणानिच्छेदेकभक्तेन नित्यदा ।
सप्तमीं सप्तमीं नित्यं क्षपेत्स्त्री पतिदेवता ॥ १
ततः संवत्सरे पूर्णे वृक्षं दद्याद्धिरण्मयम् ।
सदक्षिणं ब्राह्मणाय शुभबन्धुमती भवेत् ॥ २
करञ्जे दीपकं दद्यात्सदा या प्रमदा वरे ।
पूर्णे संवत्सरे दद्यात्सौवर्णं दीपकं ततः ॥ ३
रुच्या सा स्त्री भवेद्भर्तुरिष्टा पुत्रवती तथा ।
सपत्नीनामधि तथा दीपवज्ज्वलते शुभे ॥ ४
या शेषभोजिनी नित्यं नैव च स्यादरुन्तुदा ।
न च स्याद्व्यशना सौम्ये नित्यं च पतिदेवता ॥
शौचान्विता च सततं न च रूक्षाभिभाषिणी
श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्यं शुश्रूषाभिरता सती ॥ ६
किं तस्या व्रतकैः कार्यं किं वा स्यादुपवासकैः
या भर्तृदेवता नित्यं सत्यधर्मगुणान्विता ७
विधवा स्त्री तु या हि स्याद्दैवयोगात्सती सति
तस्या वक्ष्यामि यो धर्मः पुराणोक्तः सुमध्यमे
पतिं सङ्कल्पयित्वा सा चित्रस्थं वाऽथ मृन्मयम्
तस्य पूजां सदा कुर्यात्सतां धर्ममनुस्मरेत् ९
तत एवाभ्यनुज्ञां सा नित्यं याचेत सुव्रता ।
व्रतके चोपवासे च भोजने च विशेषतः ॥ १०
भर्तृलोकान्व्रजत्येव न चेद्व्युच्चरते पतिम् ।
शाण्डिली सूर्यवद्भाति सततं पतिदेवता ११
अद्यप्रभृति सर्वेषां देवानां चैव योषितः ।
द्रक्ष्यन्ति पुण्यकविधिं पौराणो यः सनातनः
मुनिश्च नारदः कृत्स्नं पौराणं शास्यते विधिम्
उपवासस्य धर्मात्मा व्रतकानां तथैव च १३
अदितिस्तपसेन्द्राणी त्वं च सोमसुते वरे ।
प्रवर्तने पुण्यकानां व्रतकानां च सर्वदा ॥ १४
कीर्तनीयाः सतीनां हि भविष्यथ गुणान्विताः
उपवासव्रतविधिं यथावदिह कृत्स्नशः ॥ १५
प्रादुर्भावेषु सर्वेषु भार्या विष्णोर्महात्मनः ।
शास्यन्ति पुण्यकविधिं नित्यमेव सनातनम् ॥
सविशेषं च धर्माणां स्त्रीधर्मेषु प्रशस्यते ।
पतिभक्तिरदुष्टत्वमवाग्दुष्टत्वमेव च ॥ १७

नारद उवाच ।

एवमुक्तास्तु ताः साध्व्यो महादेव्या तपोधनाः
जग्मुर्हृष्टा महादेवीं प्रणिपत्य हरप्रियाम् १८
अदितिर्व्रतकं चक्रे शृणुयाद्धर्मचारिणी ।
उमाव्रतविधिः सर्वः पूर्वोद्दिष्टस्तया कृतः १९
पारिजाते निबध्याथ मम दत्तस्तु कश्यपः ।
अदितिव्रतकं नाम तद्दत्तं सत्यभामया ॥ २०
तदेव व्रतकं दत्तं सावित्र्या धर्मनित्यया ।
तैरेव युक्तैः संयुक्तमिदं त्वभ्यधिकं कृतम् २१
संध्याकाले तु संप्राप्ते स्थाने स्थाने तथैव च ।
पूजनं वा नमस्कारो जपश्च द्विगुणः स्मृतः २२
सावित्रीव्रतकं कृत्वा तथाऽदित्या व्रतं सती
भर्तुः कुलं पितृकुलमात्मानं चैव तारयेत् २३
इन्द्राणी व्रतकं चक्रे तदेवैमं यथाविधि ।
रक्तमभ्यधिकं वासो भोजनं चैव सामिषम् ॥
चतुर्थे दिवसे वाऽपि पुण्यकार्थे विधिः पुनः ।
अहोरात्रोपवासश्च देयं कुम्भशतं तथा ॥ २५
गङ्गया व्रतकं दत्तं तदेवैमं यशस्करि ।
स्नानमभ्यधिकं त्वत्र प्रत्यूषस्यात्मनो जले ॥
अन्यस्मिन्वा जले माघशुक्लपक्षे हरिप्रिये ।
एतद्गङ्गाव्रतं नाम सर्वकामप्रदं स्मृतम् ॥ २७
सप्त सप्त च सप्ताथ कुलानि हरिवल्लभे ।
स्त्री तारयति धर्मज्ञा गङ्गाव्रतकचारिणी ॥ २८

---

८१

एकाशीतितमेऽध्याये सौष्ठवं स्वजनस्य च ।
भवेद्यैर्व्रतैर्यद्यत्तत्तत्स्पष्टं निरूप्यते ॥ १ ॥

बान्धवानिति ॥ १ ॥ व्यशना अन्नवर्जिता सौम्ये हे अरुन्धति ॥ ५ ॥ युक्तैः उचितसाधनैः ॥ २१ ॥ आत्मनो गङ्गायाः जले स्वयमाहृते स्वयमुपगते वा ॥ २६ ॥

---

१ ०त्यं क्षपयेत् स्त्री प० । २ ख. ०कैः कृत्यं किंवा स्या० । ३ ख. ०तिश्चापि सेन्द्रा० । ४ ख. ०स्तु ता दिव्यो म० । ५ ख. ०थादितिव्र० । ६ ख. ०से चापि पु० । ७ ख. ०धिः स्मृतः । अ० । ८ ख. ०कं कार्यं प्र० ।

देयं कुम्भसहस्रं तु गङ्गाया व्रतके शुभे ।
तारणं पारणं चैव तद्व्रतं सार्वकामिकम् २९
यमभार्या चकाराथ व्रतं यामरथं शुभम् ।
हेमन्ते तत्तु कर्तव्यमाकाशे हरिवल्लभे ॥ ३०
इमानि चैव वाक्यानि ब्रूयादाकाशमाश्रिता
स्नात्वा शुचिसमाचारा नमस्कृत्य पार्ति शुभे
चराम्यहं यामरथं हिमं पृष्ठेन धारये ।
पतिव्रता जीवपुत्रा भवेयं च पुरोऽधिका ३२
सपत्नीरधितिष्ठेयं पश्येयं चैव मा यमम् ।
सभर्तृपुत्रा जीवेयं चिरं[1] च सुखमेव च ॥ ३३
पतिलोकं च गच्छेयं भवेयं नन्दिनी तथा ।
सुचैला मृष्टहस्ता च स्वजनेष्टा गुणान्विता
एवं कृत्वा ततो विप्रं मधुना स्वस्ति वाचयेत्
तिलैरपि तथा कृष्णैः पायसेन तु भोजयेत् ३५
एवं व्रतानि देवीभिः कृतान्यमरवर्णिनि ।
महादेव्या पुरोक्तानि रुद्रपत्न्या हरिप्रिये ३६
अहं ब्रवीमि तपसा मदीयेन समन्विता ।
सर्वा द्रक्ष्यथ[2] पुण्यानि व्रतकानि तथैव च ३८
पौराणान्युमया देव्या यानि दृष्टानि वै पुरा ।
कल्याणगुणयुक्तानि पावनानि शुभानि च ॥

वैशम्पायन उवाच ।

रुक्मिणी व्रतकं चक्रे दृष्ट्वा व्रतकविस्तरम् ।
उमाया वरदानेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३९
उमाव्रतेषु[3] सर्वेषु वृषदानं तथाधिकम् ।
रत्नमालाप्रदानं च यथाऽन्नं सार्वकामिकम् ॥
तथा जाम्बवती चक्रे पुरोमाव्रतकं यथा ।
ददावभ्यधिकं सा तु रत्नवृक्षं मनोहरम् ॥ ४१
सत्या ददौ तथैवाथ पुरोमाव्रतकं तथा ।
पीतमभ्यधिकं वासस्तया दत्तमुमाव्रते ॥ ४२
रोहिण्याऽथ च फाल्गुन्या मघया च पुरातने
व्रतानि खलु दत्तानि बहूनि कुलवर्धने ॥ ४३
ददौ शतभिषा चैव व्रतकं पुण्यलक्षणम् ।
येन नक्षत्रमुख्यत्वं जगाम कुरुनन्दन ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे उमाव्रतकथनसमाप्तौ पारिजातहरणकथनसमाप्तौ चैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

समाप्तं चेदं हरिवंशस्य पूर्वार्धम् ॥

---

तारणं दुःखानां पारणं मनोरथानाम् ॥ २९ ॥ यामरथं नामतः आकाशे अनाच्छादिते देशे ॥ ३० ॥ धारये धारयन्ती ॥ ३२ ॥ मृष्टहस्ता विशुद्धकरा ॥ ३४ ॥ मधुना मधुरसेन ॥ ३५ ॥ तपसा मत्तपोबलेनातीन्द्रियमपि पुण्यफलं द्रक्ष्यथ ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पारिजातहरणे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

---

[1] ख. °रं सुसुख° । [2] ख. °थ पुण्या° । [3] ख. °माव्रतकव्रतसर्वे वृष° ।

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसोमयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-
पण्डितरामचंद्रशास्त्रिणा परिशोधितः परिष्कृतश्च ।

महाभारते

# हरिवंशः ।

## उत्तरार्धम् ।

### षट्पुरवधः ।

### ८२

जनमेजय उवाच ।

वैशम्पायन धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन ।
पारिजातस्य हरणे षट्पुरं परिकीर्तितम् ॥ १
निवासोऽसुरमुख्यानां दारुणानां तपोधन ।
तेषां वधं मुनिश्रेष्ठ कीर्तयस्वान्धकस्य च ॥ २

वैशम्पायन उवाच ।

त्रिपुरे निहते वीरे रुद्रेणाक्लिष्टकर्मणा ।
तत्र प्रधाना बहवो बभूवुरसुरोत्तमाः ॥ ३
शराग्निना न दग्धास्ते रुद्रेण त्रिपुरालयाः ।
षष्टिः शतसहस्राणि न न्यूनान्यधिकानि च
ते ज्ञातिवधसंतप्ताश्चक्रुर्वीराः पुरा तपः ।
जम्बूमार्गे सतामिष्टे महर्षिगणसेविते ॥ ५
आदित्याभिमुखा वीराः
सहस्राणां शतं समाः ।
वायुभक्षा नृपश्रेष्ठ
स्तुवन्तः पद्मसम्भवम् ॥ ६
तेषामुदुम्बरं राजन्गण एकः समाश्रितः ।
वृक्षं तत्रावसन्वीरास्ते कुर्वन्तो महत्तपः ॥ ७
कपित्थवृक्षमाश्रित्य केचित्तत्रोषिताः पुरा ।
सृगालवाटीस्त्वपरे चेरुरुग्रं तथा तपः ॥ ८
वटमूले तथा चेरुस्तपः कौरवनन्दन ।
अधीयन्तो परं ब्रह्म वटं गत्वाऽसुरात्मजाः ९
तेषां तुष्टः प्रजाकर्ता नरदेवपितामहः ।
वरं दातुं सुरश्रेष्ठः प्राप्तो धर्मभृतां वरः ॥ १०
वरं वरयतेत्युक्तास्ते राजन्पद्मयोनिना ।
नेषुस्तद्वरदानं तु द्विषन्तस्त्र्यम्बकं विभुम् ॥ ११
इच्छन्तोऽपचितिं गन्तुं[2] ज्ञानिनां कुरुनन्दन ।
तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वज्ञः कुरुनन्दन ॥ १२
विश्वस्य जगतः कर्तुः संहर्तुश्च महात्मनः ।
कः शक्तोऽपचितिं गन्तुं मास्तु वोऽत्र वृथा श्रमः
अनादिमध्यनिधनः सोमो देवो महेश्वरः ।
तमासूय[3] सुखं स्वर्गे वस्तुमिच्छन्ति येऽसुराः
ते नेषुस्तत्र केचित्तु दुरात्मानो महासुराः ।
अथेषुरपरे राजन्नसुरा भव्यभावनाः ॥ १५
नेषुर्ये सुदुरात्मानस्तानुवाच पितामहः ।
वरयध्वं वरं वीरा रुद्रक्रोधमृतेऽसुराः ॥ १६
ते ऊचुः सर्वदेवानामवध्याः स्याम हे विभो ।
पुराणि षट् च नो देव भवन्त्वन्तर्महीतले १७
सर्वकामसमृद्धार्थं षट्पुरं चास्तु नः प्रभो ।
वयं च षट्पुरं गत्वा वसेम च सुखं विभो १८

---

८२

द्व्यधिकेऽत्राशीतितमे ह्यध्याये वर्ण्यते ततः ।
षट्पुरस्थनिकुम्भस्य वधोपक्रमविस्तरः ॥ १ ॥
अथ उत्तरार्धकथा निरूप्यते–वैशम्पायनेति ॥ १ ॥
सृगालोऽपि वृक्षविशेषः साहचर्यात् ॥ ८ ॥ तेन असुराः तेषु नाङ्गीकृतवन्तः ॥ ११ ॥ अपचितिं रुद्रद्रोहेण आनृण्यम् ॥ १३ ॥ आसूय प्रतिगर्जित्वा ॥ १४ ॥ नेषुः ब्रह्मोक्तं भव्यभावनाः दीर्घदर्शनाः भवमाहिमाभिज्ञा वा ॥ १५ ॥ रुद्रक्रोधं रुद्रक्रोधनम् ऋते विना ॥ १६ ॥

---

१ ख. ॰ना ।॰ते नेषुर्वरदानं तद्द्विष॰ । २ ख. ॰न्तुं ज्ञातीनां कु॰ । ३ ख. ॰मास्तूय सु॰ ।

रुद्रादुग्रं भयं न स्याद्येन नो ज्ञातयो हताः ।
निहतं त्रिपुरं दृष्ट्वा भीताः स्म तपसां निधे १९
पितामह उवाच ।
असुरा भवताऽवध्या देवानां शङ्करस्य च ।
न बाधिष्यथ चेद्विप्रान्सत्पथस्थान्सतां प्रियान्
विप्रोपघातं मोहाच्चेत्करिष्यथः कथञ्चन ।
नाशं यास्यथ विप्रा हि जगतः परमा गतिः
नारायणाद्विभेतव्यं कुर्वद्भिर्ब्राह्मणाहितम् ।
सर्वभूतेषु भगवान्हितं धत्ते जनार्दनः ॥ २२
ते गता असुरा राजन्ब्रह्मणा ये विसर्जिताः ।
येऽपि भक्ता महादेवमसुरा धर्मचारिणः २३
स्वयं हि दर्शनं तेषां ददौ त्रिपुरनाशनः ।
श्वेतं वृषभमारुह्य सोमः सप्रवरः प्रभुः ।
उवाचेदं च भगवानसुरान्स सतां गतिः ॥ २४
वैरमुत्सृज्य दम्भं च हिंसां चासुरसत्तमाः ।
मामेव चाश्रितास्तस्माद्वरं साधु ददामि वः ॥
यैर्दीक्षिताः स्थ मुनिभिः सत्क्रियापरमैर्द्विजैः
सह तैर्गम्यतां स्वर्गः प्रीतोऽहं वः सुकर्मणा ॥
इह ये चैव वत्स्यन्ति तापसा ब्रह्मवादिनः ।
अपि कापित्थिका वृक्षे तेषां लोको यथा मम
इह मासान्तपक्षान्तौ यः करिष्यति मानवः ।
वानप्रस्थेन विधिना पूजयन्मां तपोधन ॥ २८
वर्षाणां स सहस्रं तु तपसां प्राप्स्यते फलम् ।
कृत्वा विरात्रं विधिवल्लप्स्यते चेप्सितां गतिम्
अर्कद्वीपे निवसतो द्विगुणं तद्भविष्यति ।
न विदेशे च भद्रं वो वरमेतद्ददाम्यहम् ॥ ३०
श्वेतवाहननामानं यश्च मां पूजयिष्यति ।
सर्वतो भयचित्तोऽपि गतिं स मम यास्यति ॥
औदुम्बरान्वाटमूलान्द्विजान्कापित्थिकानपि
तथा सृगालवाटीयान्धर्मात्मानो दृढव्रतान् ॥
मुनींश्च ब्रह्मवादीयान्सविशेषेण ये नराः ।
पूजयिष्यन्ति सततं ते यास्यन्तीप्सितां गतिम्
इत्युक्त्वाऽथ महादेवो भगवाञ्छ्वेतवाहनः
तैरेव सहितः सर्वै रुद्रलोकं जगाम वै ॥ ३४
जम्बूमार्गे गमिष्यामि जम्बूमार्गे वसाम्यहम् ।
एवं सङ्कल्पमानोऽपि रुद्रलोके महीयते ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

## यज्ञविस्तरो दुष्टनिग्रहश्च ।

## ८३

वैशम्पायन उवाच ।
एतस्मिन्नेव काले तु चतुर्वेदषडङ्गवित् ।
ब्राह्मणो याज्ञवल्क्यस्य शिष्यो धर्मगुणान्वितः
ब्रह्मदत्तेति विख्यातो विप्रो वाजसनेयिवान् ।
अश्वमेधः कृतस्तेन वसुदेवस्य धीमतः ॥ २
स संवत्सरदीक्षायां दीक्षितः षट्पुरालयः ।
आवर्तायाः शुभे तीरे सुनद्या मुनिजुष्टया ३
सखा च वसुदेवस्य सहाध्यायी द्विजोत्तमः ।
उपाध्यायश्च कौरव्य क्षीरहोता महात्मनः ४
वसुदेवस्तत्र यातो देवक्या सहितः प्रभो ।
याजमान्ये षट्पुरस्थं यथा शक्रो बृहस्पतिम् ५

---

भव्यभावना इति यदुक्तं तदेव स्पष्टयति—**येऽपि भक्ता इति**। अपिशब्दस्तुशब्दार्थे॥२३॥कापित्थिका कपित्थं तस्य वृक्षे।।२७।।मासान्तपक्षान्तौ अमापूर्णिमे।।२८॥न च विदेशे विदूरे देशे वा निवसतः॥ ३० ॥ औदुम्बरानित्यादि तत्तस्थाननिवासिसंज्ञाः धर्मात्मानः ॥ ३२ ॥ तैरसुरैः ॥३४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

८३

**त्र्यधिकेऽथाशीतितमेऽत्राध्याये यज्ञविस्तरः वर्ण्यते ब्रह्मदत्तस्य तत्र दुष्टविनिग्रहः ॥ १ ॥**
**एतस्मिन्निति** ॥१॥ ब्रह्मदत्तेत्यत्र सन्धिरार्षः । कारितः संपादित इत्यर्थः ॥ २ ॥ क्षीरहोताऽध्वर्युः॥ ४ ॥

---

१ ख. ॰णाथ वि॰ ।

तत्सत्रं ब्रह्मदत्तस्य बह्वन्नं बहुदक्षिणम्।
उपासन्ति मुनिश्रेष्ठा महात्मानो दृढव्रताः ६
व्यासोऽहं याज्ञवल्क्यश्च सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा
धृतिमाञ्जाबलिश्चैव देवलाद्याश्च भारत ॥ ७
ऋद्ध्यानुरूपया युक्तं वसुदेवस्य धीमतः।
यत्रेप्सितान्ददौ कामान्देवकी धर्मचारिणी ८
वासुदेवप्रभावेण जगत्स्रष्टुर्महीतले।
तस्मिन्सत्रे वर्तमाने दैत्याः षट्पुरवासिनः ९
निकुम्भाद्याः समागम्य तमूचुर्वरदर्पिताः।
कार्यतां यज्ञभागो नः सोमं पास्यामहे वयम्
कन्याश्च ब्रह्मदत्तो नो यजमानः प्रयच्छतु १०
बह्व्यः सन्त्यस्य कन्याश्च रूपवत्यो महात्मनः
आहूय ताः प्रदातव्याः सर्वथैव हि नः श्रुतम्
रत्नानि च ब्रह्मदत्तो विशिष्टानि ददातु नः।
अन्यथा तु न यष्टव्यं वयमाज्ञापयामहे ॥ १२
एतच्छ्रुत्वा ब्रह्मदत्तस्तानुवाच महासुरान्।
यज्ञभागो न विहितः पुराणेऽसुरसत्तमाः १३
कथं सत्रे सोमपानं शक्यं दातुं मया हि वः।
पृच्छतेह मुनिश्रेष्ठान्वेदभाष्यार्थकोविदान् १४
कन्या हि मम या देयास्ताश्च सङ्कल्पिता मया
अन्तर्वेद्यां प्रदातव्याः सदृशानामसंशयम् १५

रत्नानि तु प्रयच्छामि
सान्त्वेनाहं विचिन्त्यताम्।
बलान्नैव प्रदास्यामि
देवकीपुत्रमाश्रितः ॥ १६

निकुम्भाद्यास्तु रुषिताः पापाः षट्पुरवासिनः
यज्ञवाटं विलुलुदुर्जह्रुः कन्याश्च तास्तथा १७
तद्दृष्ट्वा संप्रवृत्तं तु दध्यावानकदुन्दुभिः।
वासुदेवं महात्मानं बलभद्रं गदं तथा ॥ १८
विदितार्थस्ततः कृष्णः प्रद्युम्नमिदमब्रवीत्।
गच्छ कन्यापरित्राणं कुरु पुत्राशु मायया १९
यावद्यादवसैन्येन षट्पुरं याम्यहं प्रभो।
स ययौ षट्पुरं वीरः पितुराज्ञाकरस्तदा २०
निमेषान्तरमात्रेण गत्वा कामो महाबलः।
कन्यास्ता मायया धीमानुपजह्रे महाबलः २१

मायामयीश्च कृत्वाऽन्या
न्यस्तवान्रुक्मिणीसुतः।
मा भैरिति च धर्मात्मा
देवकं मुक्तवांस्तदा ॥ २२

मायामयीस्ततो हृत्वा सुता ह्यस्य दुरासदाः
षट्पुरं विविशुर्दैत्याः परितुष्टा नराधिप २३
कर्म चासार्यते तत्र विधिदृष्टेन कर्मणा।
यद्विशिष्टं बहुगुणं तदभूच्च नराधिप ॥ २४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राजानस्तत्र भारत।
सत्रे निमन्त्रिताः पूर्वं ब्रह्मदत्तेन धीमता ॥ २६
जरासन्धो दन्तवक्त्रः शिशुपालस्तथैव च।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च मालवाः सगणास्तथा
रुक्मी चैवाहृतिश्चैव नीलो[१]वा धर्म एव च।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यः शकुनिरेव च
राजानश्चापरे वीरा महात्मानो दृढायुधाः।
आवासिता नातिदूरे षट्पुरस्य च भारत २८
तान्दृष्ट्वा नारदः श्रीमानचिन्तयदनिन्दितः।
क्षत्रस्य यादवानां च भविष्यति समागमः
अत्र हेतुरहं युद्धे तस्मात्तत्प्रयताम्यहम्।
एवं संचिन्तयित्वा[२]ऽथ निकुम्भभवनं गतः ३०
पूजितः स निकुम्भेन दानवैश्च तथाऽपरैः।
उपविष्टः स धर्मात्मा निकुम्भमिदमब्रवीत् ३१
कथं विरोधं यदुभिः कृत्वा स्वस्थैरिहास्यते
यो ब्रह्मदत्तः स हरिः स हि तस्य विभुः सखा
शतानि पञ्च भार्याणां ब्रह्मदत्तस्य धीमतः।
आनीता वसुदेवस्य सुतस्य प्रियकाम्यया ३३
शतद्वयं ब्राह्मणीनां राजन्यानां शतं तथा।
वैश्यानां शतमेकं च शूद्राणां शतमेव च ३४
ताभिः शुश्रूषितो धीमान्दुर्वासा धर्मवित्तमः
तेन तासां वरो दत्तो मुनिना पुण्यकर्मणा ३५

उपासन्ति सेवन्ते ॥६॥ ददौ समागतेभ्यः ॥ ८ ॥ पुराणशब्देनात्र वेदोऽभिधीयते तस्मिन् ॥ १३ ॥ तत् यज्ञवाटलुण्ठनम् ॥ १८ ॥ प्रभो इति संबोधनम्। कन्यागोप्तृत्वं संभावयति ॥ २० ॥ सुता ब्रह्मदत्तस्य पारम्पर्यतो दुरासदाः ॥२३॥ कर्म सत्राख्यम् आसार्यते प्रसार्यते विधीयत इत्यर्थः ॥ २४ ॥ विभुः स्वामी सखा मित्रं च। पितुः सखा इति पाठान्तरम् ॥ ३२ ॥ आनीतेति डाजन्तम्। आनीता इत्यर्थः। प्रियकाम्यया तदाराधनेन निमित्तभूतेन॥ ३३ ॥

१ ख. ०पास्तसु० २ ख. ०त्वा तु नि०।

एकैकस्तनयो राजन्नेकैका दुहिता तथा ।
रूपेणानुपमाः सर्वा वरदानेन धीमतः ॥ ३६
कन्या भवन्ति तनयास्तस्यासुर पुनः पुनः ।
सङ्गमे सङ्गमे वीर भर्तृभिः शयने सह ॥ ३७
सर्वपुष्पमयं गन्धं प्रस्रवन्ति वराङ्गनाः ।
सर्वदा यौवने न्यस्ताः सर्वाश्चैव पतिव्रताः ॥
सर्वा गुणैरप्सरसां गीतनृत्यगुणोदयम् ।
जानन्ति सर्वा दैतेय वरदानेन धीमतः ॥ ३९
पुत्राश्च रूपसंपन्नाः शास्त्रार्थकुशलास्तथा ।
स्वे स्वे स्थिता वर्णधर्मे यथावदनुपूर्वशः ॥४०
ताः कन्या भैममुख्यानां दत्ताः प्राणेन धीमता
अवशेषं शतं त्वेकं यदानीतं किल त्वया ४१
तदर्थं यादवान्वीर योधयिष्यसि सर्वथा ।
सहायार्थं तु राजानो भ्रियन्तां हेतुपूर्वकम्४२
ब्रह्मदत्तसुतार्थं च रत्नानि विविधानि च ।
दीयन्तां भूमिपालानां सहायार्थं महात्मनाम्
आतिथ्यं क्रियतां चैव ये समेष्यन्ति वै नृपाः।
एवमुक्ते तथा चक्रुरसुरास्तेऽतिहृष्टवत् ॥ ४४
लब्ध्वा पञ्चशतं कन्या रत्नानि विविधानि च
यथार्हेण नरेन्द्रैस्ता विभक्ता भक्तवत्सलाः४५
ऋते पाण्डुसुतान्वीरान्वारिता नारदेन ते ।
निमेषान्तरमात्रेण तत्र गत्वा महात्मना ॥ ४६
तुष्टैस्तैरसुरा ह्युक्ता राजन्भूमिपसत्तमैः ।
सर्वकामसमृद्धार्थैर्भवद्भिः खगमैः स्वयम् ४७
अर्चिताः स्म यथान्यायं क्षत्रं किं वः प्रयच्छतु
क्षत्रं चार्चितपूर्वं हि दिव्यैर्वीरैर्भवद्विधैः ॥४८
निकुम्भोऽथाब्रवीद्धृष्टः क्षत्रं सुररिपुस्तदा[२] ।
अनुवर्णयित्वा क्षत्रस्य माहात्म्यं सत्यमेव च
युद्धं नो रिपुभिः सार्द्धं भविष्यति नृपोत्तमाः।
साहाय्यं दातुमिच्छामो भवद्भिस्तत्र सर्वथा
एवमस्त्विति तानूचुः
क्षत्रियाः क्षीणकिल्बिषाः ।
पाण्डवेयानृते वीरा-
ञ्छ्रुतार्थान्नारदाद्विभो ॥ ५१
क्षत्रियाः संनिविष्टास्ते युद्धार्थं कुरुनन्दन ।
पत्न्यस्तु ब्रह्मदत्तस्य यज्ञवाटं गता अपि ॥ ५२
कृष्णोऽपि सेनया सार्द्धं प्रययौ षट्पुरं विभुः
महादेवस्य वचनमुद्वहन्मनसा नृप ॥ ५३
स्थापयित्वा द्वारवत्यामाहुकं पार्थिवं तदा ।
स[३] तया सेनया सार्द्धं पौराणां हितकाम्यया
यज्ञवाटस्याविदूरे देवो निविविशे विभुः ।
देशे प्रवरकल्याणे वसुदेवप्रचोदितः ॥ ५५
दत्तगुल्मप्रतिसरं कृत्वा तं विधिवत्प्रभुः ।
प्रद्युम्नमटने श्रीमान्रक्षार्थे विनियुज्य च ॥ ५६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे कृष्णस्य षट्पुरगमने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## अनिरुद्धविक्रमः राज्ञां बन्धनं च ।

## ८४

वैशम्पायन उवाच ।
मुहूर्ताभ्युदिते सूर्ये जनचक्षुषि निर्मले ।
बलः कृष्णः सात्यकिश्च तार्क्ष्यमारुरुहुस्तदा १
बद्धगोधाङ्गुलित्राणा दंशिता युद्धकाङ्क्षिणः
बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ॥ २
आवर्तया जले स्नात्वा रुद्रेण वरदत्तया ।
गङ्गायाः कुरुशार्दूल रुद्रवाक्येन पुण्यया ॥ ३

कन्याः कमनीयाः कुमार्यः। सङ्गमे सङ्गमे प्रतिसङ्गमम्॥३७॥ सर्वा अप्सरसां गुणैर्युक्ता अत एव सर्वा गीतादि जानन्तीति वाक्यभेदः ॥ ३९ ॥ तं स्कन्धावारं दत्तगुल्मप्रतिसरं दत्तैर्वृत्त्यर्थं स्थापितैर्गुल्मैर्न प्रतिसरः अनिष्टमार्गो यस्मिंस्तम् । अटने रक्षार्थं परिभ्रमणे ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

८४

चतुर्भिरधिकेऽशीतितमे कामस्य विक्रमः ।
राजा बद्धा रिपूञ्जित्वा कन्यास्त्वानीय आगतः

मुहूर्तेति ॥ १ ॥ तृतीया षष्ठ्यर्थे ॥ ३ ॥

१ ख. °ताः प्रायेण धी° । २ ख. °दा । संवर्तयित्वा क्षत्र° । ३ ख. सार्धमाययौ प्र° ४ ख. तथा । स त° ।

प्रद्युम्नमग्रे सैन्यस्य वियति स्थाप्य मानदः।
रक्षार्थं यज्ञवाटस्य पाण्डवान्विनियुज्य च ४
शेषां सेनां गुहाद्वारि भगवान्विनियुज्य च।
जयन्तमथ सस्मार प्रवरं च सतां गतिः ॥ ५
तावापेततुरेवाथ स्वयं चापश्यतां तथा।
वियत्येव नियुक्तौ तौ प्रद्युम्न इव भारत ॥ ६
ततः कृष्णस्य वचनादाहतो रणदुन्दुभिः।
जलजा मुरजाश्चैव वाद्यान्येवापराणि च। ७
मकरो रचितो व्यूहः साम्बेन च गदेन च।
सारणश्चोद्धवश्चैव भोजो वैतरणस्तथा ॥ ८
अनाधृष्टिश्च धर्मात्मा पृथुर्विपृथुरेव च।
कृतवर्मा च दंष्ट्रश्च निचक्षुररिमर्दनः ॥ ९
सनत्कुमारो धर्मात्मा चारुदेष्णश्च भारत।
अनिरुद्धसहायौ तौ पृष्ठानीकं ररक्षतुः ॥ १०
शेषा यादवसेना तु व्यूहमध्ये व्यवस्थिता।
रथैरश्वैर्नरैर्नागैराकुला कुलवर्धन ॥ ११
षट्पुरादपि निष्क्रान्ता दानवा युद्धदुर्मदाः।
आरुह्य मेघनादांश्च गर्दभानपि हस्तिनः ॥ १२
मकराञ्छिशुमारांश्च द्रुतानपि च भारत।
महिषानपि खड्गांश्च उष्ट्रानपि च कच्छपान्
एतैरेव रथैर्युक्ता विविधायुधपाणयः।
किरीटापीडमुकुटैरङ्गदैरपि मण्डिताः ॥ १४
नानर्दमानैर्विविधैस्तूर्यैर्नेमिस्वनाकुलैः।
प्रध्मायमानैः शङ्खैश्च महाम्बुदसमस्वनैः ॥ १५
तासामसुरसेनानामुद्यतानां जनेश्वर।
निकुम्भो निर्ययावग्रे देवानामिव वासवः १६
भूमिं द्यां च ववृधिरे दानवास्ते बलोत्कटाः।
नदन्तो विविधान्नादान्क्ष्वेडन्तश्च पुनःपुनः १७
राजसेनाऽपि संयत्ता चेदिराजपुरोगमा।
असुराणां सहायार्थं निश्चिता जनमेजय १८
दुर्योधनं भ्रातृशतं चेदिराजानुजाग्रगम्।
स्थितं रथैर्नरव्याघ्र गन्धर्वनगरोपमैः ॥ १९
कठिना नादिनो वीरा द्रुपदस्यन्दनास्तथा।
रुक्मी चैवाहृतिश्चैव तस्थतुर्निश्चितौ रणे।
तालवृक्षप्रतीकाशे धुन्वानौ धनुषी शुभे ॥ २०
शल्यश्च शकुनिश्चोभौ भगदत्तश्च पार्थिवः।
जरासन्धस्त्रिगर्तश्च विराटश्च सहोत्तरः ॥ २१
युद्धार्थमुद्यता वीरा निकुम्भाद्या जयैषिणः।
युयुत्समाना यदुभिर्देवैरिव महासुराः॥ २२
ततो निकुम्भः समरे शरैराशीविषोपमैः।
ममर्द समरे सेनां भैमानां भीमदर्शनाम् ॥ २३
सेनापतिरनाधृष्टिर्ममृधे तत्र यादवः ॥
ममर्द घोरैर्बाणौघैश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः २४
न रथोऽसुरमुख्यस्य ददृशे न च वाजिनः।
न ध्वजो न निकुम्भस्तु सर्वे बाणाभिसंवृताः
स परीत्य ततो वीरो निकुम्भो मायिनां वरः
अस्तम्भयदनाधृष्टिं मायया भैमसत्तमम् ॥ २६
स्तम्भयित्वाऽनयद्वीरं गुहां षट्पुरसंज्ञिताम्
रुद्ध्वा चाभ्यगमद्वीरो मायाबलमुपाश्रितः २७
पुनरेव निकुम्भस्तु कृतवर्माणमाहवे।
अनयच्चारुदेष्णं च भोजं वैतरणं तथा ॥ २८
सनत्कुमारमृक्षं च तथैव निशठोल्मुकौ।
बहूंश्चैवापरान्भोजान्मायाबलसमाश्रितः ॥२९
न तस्य ददृशे देहो मायाच्छन्नो जनेश्वर।
नयतो यादवान्घोरान्गुहां षट्पुरसंज्ञिताम्३०
तद्दृष्ट्वा कदनं घोरं भैमानां भयवर्धनः।
चुकोप भगवान्कृष्णो बलः सत्यक एव च ३१
सविशेषं तथा कामः साम्बश्च परवीरहा।
अनिरुद्धश्च दुर्धर्षो भैमाश्च बहवोऽपरे ॥ ३२
ततः शार्ङ्गायुधः शार्ङ्गं कृत्वा सज्यं नरेश्वर।
दानवेषु प्रवृत्तेषु तृणेष्विव हुताशनः ॥ ३३
तं दृष्ट्वा दानवा देवमभिदुद्रुवुरीश्वरम्।
शलभाः कालपाशार्ताः प्रदीप्तमिव पावकम्॥
समुत्सृज्य शतघ्नीश्च परिघांश्च सहस्रशः।
शूलानि चाग्नितुल्यानि प्रदीप्तांश्च परश्वधान्

वियति उपरिभागे॥४॥ निचक्षुर्यादवः॥९॥सनत्कुमारोऽपि यादवः ॥ १० ॥ मेघानामिव नादो येषां तान् ॥ १२ ॥ द्रुतान् जविनः ॥१३॥ भूमिं द्यां च पूरयित्वेति शेषः॥१७॥ चेदिराजः शिशुपालस्तदनुजेभ्योऽग्रगम् ॥ १९ ॥ निकुम्भ आद्यः प्रधानः येषां ते ॥ २२ ॥ भैमानां यदूनाम् ॥२३॥ सनत्कुमारं यादवविशेषम्। ऋक्षं जाम्बवतीपुत्रम्। निशठोल्मुकौ बलभद्रपुत्रौ ॥ २९ ॥ प्रवृत्ताः प्रक्षिप्ताः इषवो येन सः ॥ ३३ ॥

१ ख. °ग्रजम्। २ ख. °भैः। ततर्द स°।

पर्वताग्राणि वृक्षांश्च घोराश्च विपुलाः शिलाः
उत्क्षिप्य च गजान्मत्तान्रथानपि हयानपि ३६
नारायणाग्निस्तान्सर्वान्ददाह प्रहसन्निव।
बाणार्चिषा महातेजा जगद्धितकरो हरिः ३७
शारदं वर्षणं यद्वत्सेहे धीरो गवां पतिः।
तद्वद्यदुवृषः सेहे बाणवर्षमरिन्दमः॥ ३८
न सेहिरेऽसुरान्बाणान्नारायणधनुश्च्युतान्।
वर्षं पर्जन्यविहितं वालुकासेतवो यथा॥ ३९
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं कृष्णस्यासुरसत्तमाः।
व्यादितास्यस्य सिंहस्य वृषभा इव भारत ४०
ते वध्यमानाः कृष्णेन दिवमाचक्रमुस्तदा।
जीविताशां वहन्तस्तु नारायणभयार्दिताः ४१
तानाकाशगतानैन्द्रिर्जयन्तः प्रवरस्तथा।
निजघ्नतुः शरैर्घोरैर्ज्वलितार्चिसमैः प्रभो॥४२
निपेतुरसुराणां तु शिरांसि धरणीतले।
तृणराजफलानीव मुक्तानि शिखरात्तरोः ४३
निपेतुर्बाहवश्छिन्ना दैत्यानां वसुधातले।
कालेनोपहता वीराः पञ्चवक्त्रा इवोरगाः४४
रौक्मिणेयस्ततः सृष्ट्वा घोरां मायामयीं गुहाम्
अदृश्यनिष्क्रमं वीरः क्षत्रं प्रक्षेप्तुमुद्यतः॥ ४५
गदेन सह धर्मात्मा सारणेन सुतेन च।
साम्बेन चापरैश्चापि पूर्वं येन प्रवेशिताः ४६
प्रमथ्य तरसा कर्णं यतन्तं रणमूर्धनि।
जग्राह बलवान्कार्ष्णिः प्रस्फुरन्तं ततस्ततः४७
विनद्य च गुहां वीरो घोरां मायामयीं नृप
दुर्योधनं च राजानं विराटद्रुपदावपि॥ ४८
शकुनिं चैव शल्यं च नीलं चापि नदीसुतम्
विन्दानुविन्दौ राजानौ जरासन्धं च भारत
त्रिगर्तान्मालवांश्चैव वासन्त्यांश्च महाबलान्।
धृष्टद्युम्नादिकांश्चैव पञ्चालानस्त्रकोविदान्॥५०
तथाऽऽभूतिमुवाचेदं मातुलं रुक्मिममेव च।
शिशुपालं च राजानं भगदत्तं च भारत॥५१
संबन्धं च गुरुत्वं च मानयामि नराधिपाः।
गुहामिमां घोररूपां यत्र प्रक्षेपयामि वः॥ ५२
बिल्वोदकेश्वरेणाहमाज्ञप्तः शूलपाणिना।
प्रक्षेप्तव्या नरेन्द्रास्ते गुहायामिति धीमता५३
आश्रित्य शाम्बरीं मायां निकुम्भेन महात्मना
प्रक्षिप्तान्यादवांश्चैव मोक्षयिष्यामि सर्वथा५४
इत्युक्तो शिशुपालस्तु राजा सेनापतिस्तथा।
शरैस्ततर्द तान्भैमान्प्रद्युम्नं च विशेषतः॥ ५५
बिल्वोदकेश्वरं देवं रौक्मिणेयो नमस्य च।
आरभद्भूपतिं बद्धुं शिशुपालं महाबलम्॥ ५६
ततः पाशसहस्राणि गृहाय प्रवरोत्तमः।
शैलादिरब्रवीद्वीरं रौक्मिणेयं महाबलम्॥५७
बिल्वोदकेश्वरो देवः प्राह त्वां यदुनन्दन।
सर्वं कुरु तथा राज्यां चोक्तस्त्वं भो यथा मया
कन्यार्थं रत्नलुब्धांस्तु बद्ध्वा चेमान्नराधिपान्
पाशैस्त्वमेव मोक्तुं च प्रमाणं यदुनन्दन॥ ५९
असुरांस्तु महाबाहो निःशेषान्कर्तुमर्हसि।
एवमेव च वक्तव्यस्त्वया वीर जनार्दनः॥६०
ततः स भगदत्तं च शिशुपालं च भूमिप।
आभूतिं चैव रुक्मिं च शेषांश्चान्यान्नराधिपान्
बबन्ध हरदत्तैस्तैः पाशैरुत्तमवीर्यधृक्।
मायामयीं गुहां चैवमानयत्कुरुनन्दन॥ ६२
बद्ध्वा च रौक्मिणेयोऽथ निःश्वसन्त इवोरगान्
अनिरुद्धं चकाराथ रक्षितारं स्वमात्मजम्६३
तेषां निरवशेषेण बबन्ध यदुनन्दनः।
सेनापतीन्क्षत्रियांश्च कोशाध्यक्षांश्च भारत६४
हस्त्यश्वरथवृन्दांश्च चकार च तथाऽऽत्मसात्
अव्यग्रस्तु ततो हन्तुमसुरानुद्यतः प्रभो॥ ६५
सन्नद्ध एव चोवाच ब्रह्मदत्तं द्विजोत्तमम्।
विस्रब्धं वर्ततां कर्म मा भैः पश्य धनञ्जयम्
न देवेभ्यो नासुरेभ्यो नागेभ्यो द्विजसत्तम।
भयं हि विद्यते तस्य गोप्तारो यस्य पाण्डवाः
न चासुरैस्तव सुताः स्पृष्टाः खल्वपि चेतसा
यज्ञवाटे निरीक्ष्यन्तां मायया निहिता मया॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे
चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

शिखरादग्रात् तरोस्तृणराजस्य॥ ४३॥ नदीसुतं भीष्मम्॥ ४९॥ वसन्तिः सुराष्ट्रावन्त्योरन्तरं तत्र भवाः वासन्त्याः॥ ५०॥ गृहाय गृहीत्वा। प्रवराणां रुद्रपार्षदानां मध्ये उत्तमः शैलादिर्नन्दी॥ ५७॥ निःश्वसन्तः कर्माणि प्रथमा छान्दसी॥ ६३॥ निहिता निधानवद्रक्षिता॥ ६८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

१ ख. °थाहूतिं°। २ ख. °यीं गुहां चैनामान°। ३ ख. °व्यग्रः स तदा ह°।

## निकुम्भप्रभृतीनां वधः।

### ८५

वैशम्पायन उवाच।
रुद्धेषु भूमिपालेषु सानुगेषु विशाम्पते।
आविवेशासुरांश्चाथ कश्मलं जनमेजय॥ १
दिशः प्रतस्थुस्ते वीरा वध्यमानाः समन्ततः
कृष्णानन्तप्रभृतिभिर्यदुभिर्युद्धदुर्मदैः॥ २
निकुम्भस्तानथोवाच रुषितो दानवोत्तमः।
भित्त्वा प्रतिज्ञां किं मोहाद्भयार्ता यात विह्वलाः
हीनप्रतिज्ञाः काँल्लोकान्प्रयास्यथ पलायिताः
अगत्वाऽपचितिं युद्धे ज्ञातीनां कृतनिश्चयाः४
फलं जित्वेह भोक्तव्यं रिपून्समरकर्कशान्।
हतेन चापि शूरेण वस्तव्यं त्रिदिवे सुखम् ५
पलायित्वा गृहं गत्वा कस्य द्रक्ष्यथ हे मुखम्
दारान्वक्ष्यथ किं चापि धिग्धिक्किं किं न लज्जथ
एवमुक्ता निवृत्तास्ते लज्जमाना नृपासुराः।
द्विगुणेन च वेगेन युयुधुर्यदुभिः सह॥ ७
उत्सवे युद्धशौण्डानां नानाप्रहरणैर्नृप।
ये यान्ति यज्ञवाटं तं तान्निहन्ति धनञ्जयः॥८
यमौ भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
द्यां प्रयातास्त्रघानैन्द्रिः प्रवरश्च द्विजोत्तमः॥९
अथासुरासृक्तोयाढ्या केशशैवलशाड्वला।
चक्रकूर्मरथावर्ता गजशैलानुशोभिनी॥ १०
ध्वजकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्क्रुष्टनादिनी।
गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी॥ ११
असृग्बुद्बुदफेनाढ्या असिमत्स्यतरङ्गिणी।
सुस्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे॥ १२
तान्दृष्ट्वैव निकुम्भस्तु वर्द्धमानांश्च शात्रवान्।
हतान्सर्वान्सहायांश्च वियद्देवोत्पपात ह १३
स वारितो जयन्तेन प्रवरेण च भारत।
शरैः कुलिशसंकाशैर्निकुम्भो रणकर्कशः १४
सन्निवृत्याथ दष्टोष्ठः परिघेण दुरासदः।
प्रवरं ताडयामास स पपात महीतले॥ १५
ऐन्द्रिस्तं पतितं भूमौ बाहुभ्यां परिषस्वजे।
विदित्वा चैव सप्राणं हित्वाऽसुरमभिद्रुतः॥
अभिद्रुत्य निकुम्भं च निस्त्रिंशेन जघान ह।
परिघेणापि दैतेयो जयन्तं समताडयत्॥ १७
ततश्च बहुलं गात्रं निकुम्भस्यैन्द्रिराहवे।
स चिन्तयामास तदा वध्यमानो महासुरः॥
कृष्णेन सह योद्धव्यं वैरिणा ज्ञातिघातिना।
श्रावयामि किमात्मानमाहवे शक्रसूनुना १९
एवं स निश्चयं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत।
जगाम चैव युद्धार्थं यत्र कृष्णो महाबलः २०
तं दृष्ट्वैरावतस्कन्धमास्थितो बलनाशनः।
द्रष्टुमभ्यागतो युद्धं जहृषे सह दैवतैः॥ २१
साधु साध्विति पुत्रं च परितुष्टः स सस्वजे
प्रवरं चापि धर्मात्मा सस्वजे मोहवर्जितम्
देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्वासवाज्ञया।
जयमानं रणे दृष्ट्वा जयन्तं रणदुर्जयम्॥ २३
ददर्शाथ निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम्।
अर्जुनेन स्थितं सार्धं यज्ञवाटाविदूरतः॥ २४
स नादं सुमहान्कृत्वा पक्षिराजमताडयत्।
परिघेण सुघोरेण बलं सत्यकमेव च॥ २५
नारायणं चार्जुनं च भीमं चाथ युधिष्ठिरम्।
यमौ च वासुदेवं च साम्बं कामं च वीर्यवान्
युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत।
न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशस्त्रविशारदाः॥ २७
यदा तु नैवापश्यंस्तं तदा बिल्वोदकेश्वरम्।
दध्यौ देवं हृषीकेशः प्रमथानां गणेश्वरम् २८
ततस्ते ददृशुः सर्वे प्रभावादतितेजसः।
बिल्वोदकेश्वरस्याशु निकुम्भं मायिनां वरम्
कैलासशिखराकारं ग्रसन्तमिव धिष्ठितम्।
आह्वयन्तं रणे कृष्णं वैरिणं ज्ञातिनाशनम् ३०

---

८५
पञ्चाधिकेऽशीतितमेऽध्यायेऽस्मिन्नथ स्फुटः
निकुम्भप्रमुखानां च यदुभिर्वध उच्यते॥ १
रुद्धेष्विति॥ १॥ सुमहान् सुमहान्तम्॥ २५॥

---

१ ख. °रांश्चैव क° । २ ख. °च रुष्टो दानव सत्त° । ३ ख. °टं तु ता° । ४ ख. तत्क्षतं चाचलद्गात्रं नि° । ५ ख. °रावणस्क° । ६ ख. च वसु° ।

परितुष्टः कश्यपस्तु तामुवाच तपोधनः ।
परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे वरं वरय सुव्रते ॥ ५

दितिरुवाच ।

हतपुत्राऽस्मि भगवन्देवैर्धर्मभृतां वर ।
अवध्यं पुत्रमिच्छामि देवैरमितविक्रमम् ॥ ६

कश्यप उवाच ।

अवध्यस्ते सुतो देवि दाक्षायणि भवेदिति।
देवानां संशयो नात्र कश्चित्कमललोचने ॥ ७
देवदेवमृते रुद्रं तस्य न प्रभवाम्यहम् ।
आत्मा ततस्ते पुत्रेण रक्षितव्यो हि सर्वथा ८
अन्वालभत तां देवीं कश्यपः सत्यवागथ ।
अङ्गुल्योदरदेशे तु सा पुत्रं सुषुवे ततः ॥ ९
सहस्रबाहुं कौरव्य सहस्रशिरसं तथा ।
द्विसहस्रेक्षणं चैव तावच्चरणमेव च ॥ १०
स व्रजत्यन्धवद्यस्मादनन्धोऽपि हि भारत।
तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिनः
अवध्योऽस्मीति लोकान्स सर्वान्बाधति भारत
हरत्यपि च रत्नानि सर्वाण्यात्मबलाश्रयात्
वासयत्यात्मवीर्येण निगृह्याप्सरसां गणान् ।
स वेश्मन्यूर्जितोऽत्यर्थं सर्वलोकभयंकरः १३
परदारापहरणं पररत्नविलोपनम् ।
चकार सततं मोहादन्धकः पापनिश्चयः ॥ १४
त्रैलोक्यविजयं कर्तुमुद्यतः स तु भारत ।
सहायैरसुरैः सार्धं बहुभिः सर्वधर्षिभिः ॥ १५
तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः कश्यपं पितरं ब्रवीत् ।
अन्धकेनेदमारब्धमीदृशं मुनिसत्तम ॥ १६
आज्ञापय विभो कार्यमस्माकं समनन्तरम् ।
यवीयसः कथं नाम सोढव्यं स्यान्मुने मया ॥
इष्टपुत्रे प्रहर्तव्यं कथं नाम मया विभो ।
इहात्रभवती कुर्यान्मन्युं मयि हते सुते ॥ १८
देवेन्द्रवचनं श्रुत्वा कश्यपोऽथाब्रवीन्मुनिः ।
वारयिष्यामि देवेन्द्र सर्वथा भद्रमस्तु ते १९
अन्धकं वारयामास दित्या सह तु कश्यपः ।
त्रैलोक्यविजयाद्वीरं कृच्छ्रकृच्छ्रेण भारत २०
वारितोऽपि स दुष्टात्मा बाधत्येव दिवौकसः
तैस्तैरुपायैर्दुष्टात्मा प्रमथ्य च तथाऽमरान् ॥
बभञ्ज काननं वृक्षानुद्यानानि च दुर्मतिः ।
उच्चैःश्रवःसुतानश्वान्बलादप्यानयद्दिवः॥ २२
नागान्दिग्गजसुतान्दिव्यानपि च भारत ।
बलाद्धरति देवानां पश्यतां वरदर्पितः ॥ २३
देवानाप्याययन्ते तु ये यज्ञैस्तपसा तथा ।
तेषां चकार विघ्नं स दुष्टात्मा देवकण्टकः२४
नेजुर्यज्ञैस्त्रयो वर्णास्तेपुश्च न तपांस्यपि ।
अन्धकस्य भयाद्राजन्यज्ञविघ्नानि कुर्वतः २५
तस्येच्छया वाति वायुरादित्यश्च तपत्युत ।
चन्द्रमा वा सनक्षत्रो दृश्यते नैव वा पुनः २६
न व्रजन्ति विमानानि विहायसि भयात्प्रभो
अन्धकस्यातिघोरस्य बलदृप्तस्य दुर्मतेः ॥२७
निरोङ्कारवषट्कारं जगद्वीर तथाऽभवत् ।
अन्धकस्यातिघोरस्य भयात्कुरुकुलोद्वह २८
कुरूंस्तथोत्तरान्पापो द्रावयामास भारत ।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च जम्बूद्वीपांस्तथैव च
मानयन्ति च तं देवा दानवाश्च दुरासदाः ।
भूतानि च तथान्यानि समर्थान्यपि सर्वथा
ऋषयो वध्यमानास्तु समेता ब्रह्मवादिनः ।
अचिन्तयन्नन्धकस्य वधं धर्मभृतां वर ॥ ३१
तेषां बृहस्पतिर्मध्ये धीमानिदमथाब्रवीत् ।
नास्य रुद्रादृते मृत्युर्विद्यते च कथञ्चन ॥ ३२
तथा वरे दीयमाने कश्यपेनापि शब्दितः ।
नाहं रुद्रात्परित्रातुं शक्त इत्येव धीमतः ॥ ३३
तमुपायं चिन्तयामः शर्वो येन सनातनः ।
जानीयात्सर्वभूतानि पीड्यमानानि शङ्करः
विदितार्थो हि भगवानवश्यं जगतः प्रभुः ।
अश्रुप्रमार्जनं देवः करिष्यति सतां गतिः ३५
व्रतं हि देवदेवस्य भवस्य जगतो गुरोः ।
सन्तोऽसङ्गो रक्षितव्या ब्राह्मणास्तु विशेषतः

ब्रवीत् अब्रवीत् ॥ १६ ॥ सोढव्यं दुर्वृत्तत्वमिति शेषः ॥ १७ ॥ अत्रभवती पूज्या दितिः तस्याः इष्टपुत्रे मया हते सति सा मयि मन्युं कुर्यात् ॥१८॥ कृच्छ्रकृच्छ्रेण अतिकृच्छ्रेण ॥ २० ॥ नेजुः यज्ञं न चक्रुः ॥ २५ ॥ अन्धकस्य भयादिति शेषः ॥ २७ ॥ अश्रुप्रमार्जनं शोकापनयनम् ॥ ३५ ॥

१ ख. °न्नू । स्ववेश्म° । २ ख °थाऽपरा° । ३ ख. °ययन्त्येव ये य° । ४ ख. °र विध्वंसं दु° । ५ ख. °स्तेपुनैव त° ।

ते वयं नारदं सर्वे प्रयाम शरणं द्विजम् ।
उपायं वेत्स्यते तत्र वयस्यो हि भवस्य सः ॥
बृहस्पतिवचः श्रुत्वा सर्वेऽप्यथ तपोधनाः ।
तावद्ददृशुराकाशे प्राप्तं देवर्षिसत्तमम् ॥ ३८
पूजयित्वा यथान्यायं सत्कृत्य विधिवन्मुनिम्

देवा ऊचुः ।

देवर्षे भगवन्साधो कैलासं व्रज सत्वरम्
विज्ञप्तुमर्हसे देवमन्धकस्य वधे हरम्* ।
आर्णार्थे नारदं प्रोचुस्तांस्तथेति स चोक्तवान्
ऋषिष्वथ प्रयातेषु तत्कार्यं नारदो मुनिः ।
विचार्य मनसा विद्वानिति कार्यं स दृष्टवान्
स देवदेवं भगवान्द्रष्टुं मुनिरथाययौ ।
मन्दारवनमध्यस्थो यत्र नित्यो वृषध्वजः ४२
स तत्र रजनीमेकामुषित्वा मुनिसत्तमः ।
मन्दाराणां वने रम्ये दयितः शूलपाणिनः४३
आजगाम पुनः स्वर्गं लब्ध्वाऽनुज्ञां वृषध्वजात्
मन्दारपुष्पैः सुकृतां मालामाबध्य भारत ४४
ग्रथितां सविशेषां तां सर्वगन्धोत्तमोत्तमाम् ।
सन्तानमाल्यदामं च तैरेव कुसुमैः कृतम् ॥४५
तच्च कण्ठे समासज्य महागन्धं नराधिप ।
आययावन्धको यत्र दुरात्मा बलदर्पितः ॥४६
अन्धकस्त्वथ तं दृष्ट्वा गन्धमाघ्राय चोत्तमम् ।
सन्तानकानां स्रङ्मालां महागन्धां महामुने
कुत्रायं पुष्पजातिर्वा कमनीया तपोधन ।

गन्धान्वर्णाञ्शुभांस्तान्हि
भोः पुष्यति मुहुर्मुहुः ।
स्वर्गे सन्तानकुसुमा-
न्यतिवर्तति सर्वथा ॥ ४८

कः प्रभुस्तस्य वृक्षस्य शक्यं वाऽऽनयितुं मुने
आचक्ष्व यद्यनुग्राह्या वयं ते देवतातिथे ॥ ४९
तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रहसन्निव भारतं ।
आदाय दक्षिणे हस्ते महतस्तपसो निधिः ५०
मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे वीर कामगमं वनम् ।
तत्र चैवंविधं पुष्पं भोः सृष्टिः शूलपाणिनः
न तु तत्र वनं कश्चिदच्छन्देन महात्मनः ।
प्रवेष्टुं लभते तद्धि रक्षन्ति प्रवरोत्तमाः ॥ ५२
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा दुरासदाः ॥
अवध्याः सर्वभूतानां महादेवाभिरक्षिताः ५३
नित्यं प्रक्रीडते तत्र सोमः सप्रवरो हरः ।
मन्दारद्रुमखण्डेषु सर्वात्मा सर्वभावनः ॥५४
तपोविशेषैराराध्य हरं त्रिभुवनेश्वरम् ।
शक्यं मन्दारपुष्पाणि प्राप्तुं कश्यपवंशज५५
स्त्रीरत्नमणिरत्नानि यानि चान्यानि चाप्यथ
काङ्क्षितानि फलन्ति स्म ते द्रुमा हरवल्लभाः
न तत्र सूर्यः सोमोऽथ तपत्यतुलविक्रमः ।
स्वयंप्रभं तरुवनं तद्धो दुःखविवर्जितम् ॥ ५७
तत्र गन्धान्स्रवन्त्यन्ये नीराण्यन्ये महाद्रुमाः
वासांसि विविधान्यन्ये सुगन्धीनि महाबल
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यं तथैव च ।
तरुभ्यः स्रवते तेभ्यो विविधं मनसेप्सितम् ५९

पिपासा वा बुभुक्षा वा
ग्लानिश्चिन्ताऽपि वाऽनघ ।
न मन्दारवने वीर
भवतीत्युपधार्यताम् ॥ ६०

न ते वर्णयितुं शक्या गुणा वर्षशतैरपि ।
गुणा ये तत्र वर्द्धन्ते स्वर्गाद्बहुगुणोत्तराः ॥ ६१
अतीव हि जयेल्लोकान्समहेन्द्रान्न संशयः ।
एकाहमपि यस्तत्र वसेच्च दितिजोत्तम ॥ ६२

स्वर्गस्यापि हि तत्स्वर्गं
सुखानामपि तत्सुखम् ।
बभूव जगतः सर्व-
मिति मे धीयते मनः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे
षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

---

तपोधनाः हे शौनकादयः ॥ ३८ ॥ इति वक्ष्यमाणं कार्यं कर्तव्यम् ॥ ४१ ॥ मन्दारः सुरतरुस्तत्पुष्पैः ॥ ४४ ॥ सन्तानोऽपि देवद्रुम एव ॥ ४५ ॥ स्रङ्माला पुष्पदाम ॥ ४७ ॥ इयमिति वक्तव्येऽयमिति उक्तिमत्त्वात् । सन्तानकुसुमानि अतिवर्तति अभिभवति ॥ ४८ ॥ महात्मनो महादेवस्य प्रवरोत्तमाः गणोत्तमाः ॥५२॥ नीराणि रसान् ॥५८॥ वर्धन्ते प्रसरन्ति ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे टीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

---

१ ख. सर्वे तेऽथ त° । * तावद् ददृशुरित्यादिकं श्लोकार्धचतुष्टयं खपुस्तके नास्ति । २ ख. °णार्थे नार° । ३ ख. °म् । सान्ता° । ४ ख. कुत्रेयं पु° । ५ ख. °त । ग्रहाय द° । ६ ख. °त्र वने क° । ७ ख. वसेद्वै दि° ।

## महादेवेनान्धकवधः ।

### ८७

वैशम्पायन उवाच ।
अन्धको नारदवचः श्रुत्वा तत्त्वेन भारत ।
मन्दरं पर्वतं गन्तुं मनो दध्रे महासुरः ॥ १
सोऽसुरान्सुमहातेजाः समानीय महाबलः ।
जगाम मन्दरं क्रुद्धो महादेवालयं तदा ॥ २
तं महाभ्रप्रतिच्छन्नं महौषधिसमाकुलम् ।
नानासिद्धसमाकीर्णं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३
चन्दनागरुवृक्षाढ्यं सरलद्रुमसंकुलम् ।
किन्नरोद्गीतरम्यं च बहुनागकुलाकुलम् ॥ ४
वातोद्धूतैर्वनैः फुल्लैर्नृत्यन्तमिव च क्वचित् ।
प्रस्रुतैर्धातुभिश्चित्रैर्विलिप्तमिव च क्वचित् ॥ ५
पक्षिस्वनैः सुमधुरैर्नदन्तमिव च क्वचित् ।
हंसैः शुचिपदैः कीर्णं संपतद्भिरितस्ततः ॥ ६
महाबलैश्च महिषैश्चरद्भिर्दैत्यनाशनैः ।
चन्द्रांशुविमलैः सिंहैर्भूषितं हेमसंचयम् ॥ ७
मृगराजसमाकीर्णं मृगवृन्दनिषेवितम् ।
स मन्दरं गिरिं प्राह रूपिणं बलदर्पितः ॥ ८
वेत्सि त्वं हि यथाऽवध्यो वरदानादहं पितुः
मम चैव वशे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ९
प्रतियोद्धुं न मां कश्चिदिच्छत्यपि गिरे भयात्
पारिजातवनं चास्ति तव सानौ महागिरे ।
सर्वकामप्रदैः पुष्पैर्भूषितं रत्नमुत्तमम् ॥ १०
तदाचक्ष्वोपभोक्ष्यामि तद्वनं तव सानुजम् ।
किं करिष्यसि क्रुद्धस्त्वं मनो हि त्वरते मम
त्रातारं नानुपश्यामि मया खलर्दितस्य ते ।
इत्युक्तो मन्दरस्तेन तत्रैवान्तरधीयत ॥ १२
ततोऽन्धकोऽतिरुषितो वरदानेन दर्पितः ।
मुमोच नादं सुमहदिदं वचनमब्रवीत् ॥ १३
मया वै त्वं याच्यमानो यस्मान्न बहु मन्यसे ।
अहं चूर्णीकरोमि त्वां बलं पर्वत पश्य मे ॥ १४
एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गमुत्पाट्य बहुयोजनम् ।
निष्पिपेष गिरेस्तस्य शृङ्गेष्वन्यत्र वीर्यवान् १५
स हतैरसुरैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितः ।
तं प्रच्छन्ननदीजालं मन्यमानं महागिरिम् १६
विदित्वा भगवान्रुद्रश्चकारानुग्रहं गिरेः ।
सविशेषतरं वीरं मत्तद्विपमृगायुतम् ॥ १७
नदीजालैर्बहुतरैराचितं चित्रकाननम् ।
नभश्च्युतैः पुरा यद्वत्तद्वदेव विराजते ॥ १८
अथ देवप्रभावेण शृङ्गाण्युत्पाटितानि तु ।
क्षिप्तानि चासुरानेव घ्नन्ति वीराणि भारत॥
क्षिप्त्वा ये प्रपलायन्ते शृङ्गाणि तु महासुराः।
शृङ्गैस्तैस्तैः स्म वध्यन्ति पर्वतस्य जनाधिप
ये स्वस्थास्त्वसुरास्तत्र तिष्ठन्ति गिरिसानुषु।
शृङ्गैस्तेन स्म वध्यन्ते मन्दरस्य महागिरेः २१
ततोऽन्धकस्तदा दृष्ट्वा
सेनां तां मर्दितां तथा ।
रुषितः सुमहानादं
नर्दित्वैवं तदाऽब्रवीत् ॥ २२
आह्वये तं वनं यस्य युद्धार्थमुपतिष्ठतु ।
किं त्वयाऽचल युद्धेन हताः स्म छद्मना रणे
एवमुक्ते त्वन्धकेन वृषभेण महेश्वरः ।
संप्राप्तः शूलमुद्यम्य देवोऽन्धकजिघांसया २४
प्रमथानां गणैर्धीमान्वृतो वै बहुलोचनः ।
तथा भूतगणैश्चैव धीमान्भूतगणेश्वरः ॥ २५
प्रचकम्पे ततः कृत्स्नं त्रैलोक्यं रुषिते हरे ।
सिन्धवश्च प्रतिस्रोतमूहुः प्रज्वलितोदकाः २६
जग्मुर्दिशोऽग्निदाहाश्च सर्वे ते हरतेजसा ।
युयुधुश्च ग्रहाः सर्वे विपरीता जनाधिप २७

---

८७

सप्ताशीतितमेऽध्यायेऽमुष्मिन्नन्धकवैरिणा ॥ अन्धकस्य युधि प्राणो हतो रुद्रेण चोच्यते॥

अन्धक इति ॥ १ ॥ शुचिषदैः सदः सभा शुचिस्थाने सीदन्ति तिष्ठन्तीति शुचिषदास्तैः शुद्धसदोभिः । शुचिपदैरित्यपि पाठः ॥ ६ ॥ रत्नमुत्तमं दिव्यं श्रेष्ठम् ॥ १० ॥ प्रच्छन्नानि नदीनां जालानि समूहा यत्र तम् ॥ १६ ॥ सविशेषतरं विशेषतरैः पारिजातादिभिः सहितम् ॥ १७ ॥ नभश्च्युतैः स्वर्गादागतैर्नदीजालैः पुरा अन्धकक्षोभात्पूर्वम् ॥ १८ ॥ वध्यन्ति वध्यन्ते ॥ २० ॥ बहुलोचनः त्रिनेत्रः ॥ २५ ॥ सिन्धवो नद्यः ॥ २६ ॥ सर्वे ते सर्वास्ताः विपरीता वक्रीभूताः ॥ २७ ॥

---

१ ख. °षितं हिमसं° । २ ख. °र्दित्वेदं त° ।

चेलुश्च गिरयस्तत्र काले कुरुकुलोद्वह।
प्रववर्षाथ पर्जन्यः सधूमाङ्गारवृष्टयः॥ २८
उष्णभाश्चन्द्रमाश्चासीत्सूर्यः शीतप्रभस्तथा।
न ब्रह्म विविदुस्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः॥ २९
वडवाः सुषुवुर्गाश्च गावोऽश्वानपि चानघ।
पेतुर्वृक्षाश्च मेदिन्यामच्छिन्ना भस्मसात्कृताः
बाधन्ते वृषभा गाश्च गावश्चारुरुहुर्वृषान्।
राक्षसा यातुधानाश्च पिशाचाश्चापि सर्वशः
विपरीतं जगद्दृष्ट्वा महादेवस्तथागतम्।
मुमोच भगवाञ्छूलं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम्॥ ३२
तत्पपात रहोत्सृष्टमन्धकोरसि दुर्द्धरम्।
भस्मसाच्चाकरोद्रौद्रमन्धकं साशुकण्टकम्३३
ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः।
शंकरं तुष्टुवुश्चैव जगच्छत्रौ निबर्हिते॥ ३४
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह।
त्रैलोक्यं निर्वृतं चासीन्नरेन्द्र विगतज्वरम्३५
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
जेपुश्च ब्राह्मणा वेदानीजुश्च क्रतुभिस्तदा ३६
ग्रहाः प्रकृतिमापेदुरूहुर्नद्यो यथा पुरा।
न जज्वाल जले वह्निराशाः सर्वाः प्रसेदिरे॥
मन्दरः पर्वतश्रेष्ठः पुनरेव रराज ह।
श्रिया परमया जुष्टः सर्वतेजःसमुच्छ्रयात् ३८
रेमे सोमश्च भगवान्पारिजातवने हरः।
सुप्रचारान्सुरान्कृत्वा शक्रादीन्धर्मतः प्रभुः॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे
सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

## जलक्रीडावर्णनम्।

## ८८

जनमेजय उवाच।
मुनेऽन्धकवधः श्राव्यः श्रुतोऽयं खलु भो मया
शान्तिस्त्रयाणां लोकानां कृता देवेन धीमता
निकुम्भस्य हतं देहं द्वितीयं चक्रपाणिना।
यदर्थं च यथा चैव तद्भवान्वक्तुमर्हति॥ २
वैशम्पायन उवाच।
श्रद्दधानस्य राजेन्द्र वक्तव्यं भवतोऽनघ।
चरितं लोकनाथस्य हरेरमिततेजसः॥ ३
द्वारवत्यां निवसतो विष्णोरतुलतेजसः।
समुद्रयात्रा संप्राप्ता तीर्थे पिण्डारके नृप॥ ४
उग्रसेनो नरपतिर्वसुदेवश्च भारत।
निक्षिप्तौ नगराध्यक्षौ शेषाः सर्वे विनिर्गताः
पृथग्बलः पृथग्धीमाँल्लोकनाथो जनार्दनः।
गोष्ठ्याः पृथक्कुमाराणां नृदेवामिततेजसाम्
गणिकानां सहस्राणि निःसृतानि नराधिप।
कुमारैः सह वार्ष्णेयै रूपवद्भिः स्वलंकृतैः॥ ७
दैत्याधिवासं निर्जित्य यदुभिर्दृढविक्रमैः।
वेश्या निवेशिता वीर द्वारवत्यां सहस्रशः ८
सामान्यास्ताः कुमाराणां
क्रीडानार्यो महात्मनाम्।
इच्छाभोग्या गुणैरेव
राजन्या वेषयोषितः॥ ९
स्थितिरेषा हि भैमानां कृता कृष्णेन धीमता।
स्त्रीनिमित्तं भवेद्वैरं मा यदूनामिति प्रभो १०

सधूमाङ्गाराः वृष्टयो येषु ते गिरयः॥ २८॥ न जज्वाल जले वह्निः और्वाग्निना समुद्रे सत्त्वानां पाक औत्पातिको नाभूदित्यर्थः॥ ३७॥ सोमः उमासहितः॥ ३९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

८८

अष्टाशीतितमेऽस्मिन्नध्याये बलकृष्णयोः। वर्ण्यते च जलक्रीडा विशिष्टा पिण्डतारके
मुनेऽन्धकेति। श्राव्यः अवश्यं श्रोतव्यः॥ १॥ निकुम्भस्य त्रिदेहस्य॥ २॥ बलो बलरामः॥ ६॥ दैत्याधिवासं समुद्रं निर्जित्य स्वस्थानादवसाय्य तत्र निवेशिताः॥ ८॥ वेषयोषितः वाराङ्गनाः॥ ९॥

१ ख. 'स्तथा। प्र'। २ ख. पुरेव विरा॰। ३ ख. ॰स्य राजर्षे व॰।

रेवत्या चैकया सार्धं बलो रेमेऽनुकूलया।
चक्रवाकानुरागेण यदुश्रेष्ठः प्रतापवान् ॥ ११
कादम्बरीपानकलो भूषितो वनमालया।
चिक्रीड सागरजले रेवत्या सहितो बलः १२
षोडश स्त्रीसहस्राणि जले जलजलोचनः।
रमयामास गोविन्दो विश्वरूपेण सर्वदृक् १३
अहमिष्टा मया सार्द्धं जले वसति केशवः।
इति ता मेनिरे सर्वा रात्रौ नारायणस्त्रियः ॥
सर्वाः सुरतचिह्नाङ्ग्यः सर्वाः सुरततर्पिताः।
मानमूहुश्च ताः सर्वा गोविन्दे बहुमानजम् १५
अहमिष्टाऽहमिष्टेति स्निग्धे परिजने तदा।
नारायणस्त्रियः सर्वा मुदा शश्लाघिरे शुभाः
करजद्विजचिह्नानि कुचाधरगतानि ताः।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा जहृषिरे दर्पणे कमलेक्षणाः ॥ १७
गोत्रमुद्दिश्य कृष्णस्य जगिरे कृष्णयोषितः।
पिबन्त्य इव कृष्णस्य नयनैर्वदनाम्बुजम् ॥ १८
कृष्णार्पितमनोदृष्ट्यः कान्ता नारायणस्त्रियः
मनोहरतरा राजन्नभवन्नेकनिश्चयाः ॥ १९
एकार्पितमनोदृष्ट्यो नेर्ष्यां ताश्चक्रिरेऽङ्गनाः।
नारायणेन देवेन तर्प्यमाणमनोरथाः ॥ २०
शिरांसि गर्वितान्यूहुः सर्वा निरवशेषतः।
वाल्लभ्यं केशवमयं वहन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥ २१
ताभिस्तु सह चिक्रीड सर्वाभिर्हरिरात्मवान्।
विश्वरूपेण विधिना समुद्रे विमले जले ॥ २२
उवाह सर्वगन्धाढ्यं स्वच्छं वारि महोदधिः।
तोयं विलवणं मृष्टं वासुदेवस्य शासनात् २३
गुल्फदघ्नं जानुदघ्नमूरुदघ्नमथापि वा।
नार्यस्ताः स्तनदघ्नं वा जलं समभिकाङ्क्षितं
सिषिचुः केशवं पत्न्यो धारा इव महोदधिम्
सिषेच ताश्च गोविन्दो मेघः फुल्ललता इव ॥
अवलम्ब्य पराः कण्ठे हरिं हरिणलोचनाः।
उपगूहस्व मां वीर पतामीत्यब्रुवन्स्त्रियः ॥ २६
काश्चित्काष्ठमयैस्तेरुः प्लवैः सर्वाङ्गशोभनाः।
क्रौञ्चबर्हिणनागानामाकारसदृशैः स्त्रियः ॥ २७
मकराकृतिभिश्चान्या मीनाभैरपि चापराः।
बहुरूपाकृतिधरैः पुप्लुवुश्चापराः स्त्रियः ॥ २८
स्तनकुम्भैस्तथा तेरुः कुम्भैरिव तथापराः।
समुद्रसलिले रम्ये हर्षयन्त्यो जनार्दनम् २९
रराम सह रुक्मिण्या जले तस्मिन्मुदा युतः
येनैव कार्ययोगेन रमतेऽमरसत्तमः ॥ ३०
तत्तदेव हि ताश्चक्रुर्मुदा नारायणस्त्रियः।
तनुवस्त्रावृतास्तन्व्यो लीलयन्त्यस्तथापराः।
चिक्रीडुर्वासुदेवस्य जले जलजलोचनाः ३१
यस्या यस्यास्तु यो भावस्तां तां तेनैव केशवः
अनुप्रविश्य भावज्ञो निनायात्मवशं वशी ३२
हृषीकेशोऽपि भगवान्हृषीकेशः सनातनः।
बभूव देशकालेन कान्तावशगतः प्रभुः ॥ ३३
कुलशीलसमोऽस्माकं योग्योऽयमिति मेनिरे
वंशरूपेण वर्तन्तमङ्गनास्ता जनार्दनम् ॥ ३४
तदा दाक्षिण्ययुक्तं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम्।
कृष्णं भार्याश्चकमिरे भक्त्या च बहु मेनिरे
पृथग्गोष्ठ्यः कुमाराणां प्रकाशं स्त्रीगणैः सह
अलंचक्रुर्जलं वीराः सागरस्य गुणाकराः ३६
गीतनृत्यविधिज्ञानां तासां स्त्रीणां जनेश्वर।
तेजसाऽप्याहृतानां ते दाक्षिण्यात्तस्थिरे वशे
शृण्वन्तश्चारुगीतानि तथा स्वभिनयान्यपि।
तूर्याण्युत्तमनारीणां मुमुहुर्यदुपुङ्गवाः ॥ ३८
पञ्चचूडां ततः कृष्णः कौबेर्यश्च वराप्सराः।
माहेन्द्रीश्चानयामास विश्वरूपेण हेतुना ॥ ३९

चक्रवाकयोरिव ययोः अन्योन्यम् अनुरागस्तेन ॥ ११ ॥ कादम्बरी सुरा तस्याः पानेन कलः विकलः॥१२॥ विश्वरूपेण सर्वरूपात्मना यावन्त्यः स्त्रियस्तावद्भी रूपैरित्यर्थः ॥ १३ ॥ चिह्नानि नखक्षतानि ॥ १५ ॥ तदेवाह-**अहमिति**। शश्लाघिरे आत्मानं प्रशशंसिरे॥१६॥करजाः नखाः द्विजाः दन्ताः तज्जानि चिह्नानि ॥ १७ ॥ गोत्रं नाम जगिरे गीतं कृतवत्यः ॥ १८ ॥ हृषीकेशः इन्द्रियाणामीश्वरोऽपि कान्तावशगतोऽभवदित्यन्वयः ॥ ३३ ॥ वंशरूपेण कुलानुरूपेण । "वंशो वेणौ कुले वर्गे" इति विश्वः ॥ ३४ ॥ ते कुमाराः ॥ ३७ ॥ स्वभिनयानि शोभन अभिनयः पदार्थस्य वाक्यार्थस्य च प्रदर्शनं यत्र तानि ॥ ३८ ॥ पञ्चचूडाम् अप्सरसं। कौबेर्यः कौबेरीः वराप्सराः श्रेष्ठा अप्सरसः। विश्वरूपेण जीवनियन्तृत्वेन हेतुना निमित्तेन ॥ ३९ ॥

१ ख. °ष्णः कौबेरीश्च बरा°।

ताः प्रोवाचाप्रमेयात्मा
सान्त्वयित्वा जगत्प्रभुः।
उत्थापयित्वा प्रणताः
कृताञ्जलिपुटास्तथा ॥ ४०
क्रीडायुवत्यो भैमानां प्रविशध्वमशङ्किताः।
मत्प्रियार्थं वरारोहा रमयध्वं च यादवान् ॥
दर्शयध्वं गुणान्सर्वान्नृत्यगीतै रहःसु च।
तथाभिनययोगेषु वाद्येषु विविधेषु च ॥ ४२
एवं कृते विधास्यामि श्रेयो वो मनसेप्सितम्
मच्छरीरसमा ह्येते सर्वे निरवशेषतः ॥ ४३
शिरसाज्ञां तु ताः सर्वाः प्रतिगृह्य हरेस्तदा
क्रीडायुवत्यो विविशुर्भैमानामप्सरोवराः ४४
ताभिः प्रविष्टमात्राभिर्द्योतितः स महार्णवः
सौदामिनीभिर्नभसि घनवृन्दमिवानघ ॥ ४५
ता जले स्थलवत्स्थित्वा जगुश्चाप्यथ वादयन्
चक्रुश्चाभिनयं सम्यक्स्वर्गावास इवाङ्गनाः ॥
गन्धैर्माल्यैश्च ता दिव्यैर्वस्त्रैश्चायतलोचनाः।
हेलाभिर्हास्यभावैश्च जह्रुर्भैममनांसि ताः ४७
कटाक्षैरिङ्गितैर्हास्यैः केलिरोषैः प्रसादितैः।
मनोऽनुकूलैर्भैमानां समाजह्रुर्मनांसि ताः ४८
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य चाकाशं
वातस्कन्धान्बहूंश्च तान्।
मदिरावशगा भैमा
मानयन्ति वराप्सराः ॥ ४९
कृष्णोऽपि तेषां प्रीत्यर्थं विजह्रे वियति प्रभुः
सर्वैः षोडशभिः सार्द्धं स्त्रीसहस्रैर्मुदान्वितः ॥
प्रभावज्ञास्तु ते वीराः कृष्णस्यामिततेजसः।

न जग्मुर्विस्मयं भैमा गाम्भीर्यं परमास्थिताः
केचिद्रैवतकं गत्वा पुनरायान्ति भारत।
गृहान्यन्ये वनान्यन्ये काङ्क्षितान्यरिमर्दन ॥
अपेयः पेयसलिलः सागरश्चाभवत्तदा।
आज्ञया लोकनाथस्य विष्णोरतुलतेजसः ५३
अधावन्स्थलवच्चापि जले जलजलोचनाः।
गृह्य हस्ते तथा नार्यो युक्ता मज्जंस्तथापि च
भक्ष्यभोज्यानि पेयानि चोष्यं लेह्यं तथैव च
बहुप्रकारं मनसा ध्याते तेषां भवत्युत ॥ ५५
अम्लानमाल्यधारिण्य-
स्ताः स्त्रियस्ताननिन्दितान्।
रहःसु रमयांचक्रुः
स्वर्गे देवरतानुगाः ॥ ५६
नौभिर्गृहप्रकाराभिश्चिक्रीडुरपराजिताः।
स्नातानुलिप्तमुदिताः सायाह्नेऽन्धकवृष्णयः ॥
आयताश्चतुरस्राश्च वृत्ताश्च स्वस्तिकास्तथा।
प्रासादा नौषु कौरव्य विहिता विश्वकर्मणा
कैलासमन्दरच्छन्दा मेरुच्छन्दास्तथैव च।
तथा नानावयश्छन्दास्तथेहामृगरूपिणः ॥५९
वैडूर्यतोरणैश्चित्राश्चित्राभिर्मणिभक्तिभिः।
मसारगल्वर्कमयैश्चित्रभक्तिशतैरपि ॥ ६०
आक्रीडगरुडच्छन्दा-
श्चित्राः कनकरीतिभिः।
क्रौञ्चच्छन्दाः शुकच्छन्दा
गजच्छन्दास्तथापरे ॥ ६१
कर्णधारैर्गृहीतास्ता नावः कार्तस्वरोज्ज्वलाः
सलिलं शोभयामासुः सागरस्य महोर्मिमत् ॥

---

प्रविशध्वं मनोहारिण्यो भवन्त्यः ॥ ४१ ॥ भैमानां भीमजानां यादवानां समीपमिति शेषः। अप्सरोवराः वराप्सरसः ॥ ४४ ॥ जलवाद्यान्यवादयन्नित्यपि पाठः ॥४६॥तान्भैमान्बहून्वातस्कंधान् बहुषु वातस्कन्धेषु आवह-प्रवहादिषु ऊर्ध्वोर्ध्वेषु वातमार्गेषु उत्तरोत्तररमणीयेषु उत्क्षिप्य नीत्वा तत्र विजह्रुरिति पूर्वेणान्वयः। ततश्च ते भैमास्ताः नारीर्मानयन्ति ॥ ४९ ॥ एतां वियति क्रीडां कृष्णोऽपि चकारेत्याह-कृष्णोऽपीति। सर्वैरिति अष्टोत्तरशता-धिकं ग्राह्यम् ॥ ५० ॥ विस्मयं दिवि क्रीडाकृतम् ॥५१॥ इच्छया स्थलवज्जलेऽप्यधावन् इच्छया मज्जन् अमज्जंश्चेत्यर्थः ॥ ५४ ॥ स्वस्तिकाः शारिफलकाकाराः ॥५८॥ कैलासादिवच्छन्दो यथेष्टरूपित्वं यथेष्टकारित्वं च येषां ते ॥ ५९ ॥ मसारो मरकतः गलुश्चन्द्रकान्तः अर्कः सूर्यकान्तस्तैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा चित्ररागै रञ्जितैरित्यर्थः। चित्रभक्तिशतैः नानारूपास्तरणशतैः ॥ ६० ॥ आक्रीडगरुडः लीलागरुडसदृशः कनकरीतिभिः कनकधाराभिः ॥ ६१ ॥

---

१. ख. °वत्यो भैमानां ताः प्रविष्टाऽप्सरोवराः। ता°। २ ख. °त्वा जलवाद्यान्यवा°। ३ ख. °ममनांस्यथ। कटा°। ४ ख. °राङ्गनाः। कृ°। ५ ख. °थापि ते। भ°। ६ घ. °तास्तानु°। ७ ख. °लिप्ता। मु°। ८ ख. °यैश्चित्राभ। ९ ख. °पि। प्रक्रीडग°।

समुच्छ्रितः सितैः पोतैर्यानपात्रैस्तथैव च ।
नौभिश्च झिल्लिकाभिश्च शुशुभे वरुणालयः ॥
पुराण्याकाशगानीव गन्धर्वाणामितस्ततः ।
बभ्रमुः सागरजले भैमयानानि[2] सर्वतः ॥६४
नन्दनच्छन्दयुक्तेषु यानपात्रेषु भारत ।
नन्दनप्रतिमं सर्वं विहितं विश्वकर्मणा ॥ ६५
उद्यानानि सभावृक्षा दीर्घिकाः स्यन्दनानि च
निवेशितानि शिल्पानि तादृशान्येव सर्वथा
स्वर्गच्छन्देषु चान्येषु समासात्स्वर्गसंनिभाः ।
नारायणाज्ञया वीर विहिता विश्वकर्मणा ६७
वनेषु रुरुवुर्हृद्यं मधुरं चैव पक्षिणः ।
मनोहरतरं चैव भैमानामतितेजसाम् ॥ ६८
देवलोकोद्भवाः श्वेता विलेपुः कोकिलास्तदा[3]
मधुराणि विचित्राणि यदूनां काङ्क्षितानि च
चन्द्रांशुसमरूपेषु हर्म्यपृष्ठेषु बर्हिणः ।
ननृतुर्मधुरारावाः शिखण्डिगणसंवृताः ॥ ७०
पताका यानपात्राणां सर्वाः पक्षिगणायुताः ।
भ्रमरैरुपगीताश्च स्रग्दामासक्तवासिभिः ७१
नारायणाज्ञया वृक्षा पुष्पाणि मुमुचुर्भृशम् ।
ऋतवश्चारुरूपाणि विहायसि गतास्तथा ७२
ववौ मनोहरो वातो रतिखेदहरः सुखः ।
रजोभिः सर्वपुष्पाणां पृक्तश्चन्दनशैत्यभृत् ७३
शीतोष्णमिच्छतां तत्र बभूव वसुधापते ।
वासुदेवप्रसादेन भैमानां क्रीडतां तदा ॥ ७४
न क्षुत्पिपासा न ग्लानिर्न चिन्ता शोक एव च
आविवेश तदा भैमान्प्रभावाच्चक्रपाणिनः ७५
अप्रशान्तमहातूर्या गीतनृत्योपशोभिताः ।
बभूवुः सागरक्रीडा भैमानामतितेजसाम् ७६
बहुयोजनविस्तीर्णं समुद्रं सलिलाशयम् ।
रुद्ध्वा चिक्रीडुरिंद्राभा भैमाः कृष्णाभिरक्षिताः
परिच्छदस्यानुरूपं यानपात्रं महात्मनः ।
नारायणस्य देवस्य विहितं विश्वकर्मणा ७८
रत्नानि यानि त्रैलोक्ये विशिष्टानि विशांपते
कृष्णस्य तानि सर्वाणि यानपात्रेऽतितेजसः
पृथक्पृथङ्निवासाश्च स्त्रीणां कृष्णस्य भारत
मणिवैडूर्यचित्रास्ताः कार्तस्वरविभूषिताः ८०
सर्वर्तुकुसुमाकीर्णाः सर्वगन्धाधिवासिताः ।
यदुसिंहैः शुभैर्जुष्टाः शकुनैः स्वर्गवासिभिः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## छालिक्यक्रीडा ।

## ८९

वैशम्पायन उवाच
रेमे बलश्चन्दनपङ्कदिग्धः
कादम्बरीपानकलः पृथुश्रीः ।
रक्तेक्षणो रेवतिमाश्रयित्वा
प्रलम्बबाहुः स्खलितैः प्रपातः[5] ॥ १

पोतैर्जलाखेटयोग्यैः क्षुद्रनौकारूपैः यानपात्रैः सर्वसंभारसंभृताभिः सामग्रीनौकाभिः नौभिः अतिवेगवतीभिर्दीर्घनौकाभिः । झिल्लिकाभिः प्रासादाद्यङ्किताभिर्नृत्यगीतादिलीलायोग्याभिरायताभिर्नौभिरिति भेदः । तत्र **पोताः** विमानवत्संचरन्ति **यानपात्राणि** नन्दनसमृद्धिमन्ति । **नावो** रथदीर्घिकादियुक्ताः । **झिल्लिकाः** सर्वस्वर्ग्यपदार्थवत्यः ॥६३॥इति क्रमात् श्लोकचतुष्टयेनाह-**पुराणीत्यादिना** ॥ ६४ ॥ वनेषु नौस्थेष्वेव ॥ ६८ ॥ इच्छताम् इच्छया बभूव ॥ ७४ ॥ परिच्छदस्य षोडशस्त्रीसहस्रपरिवारस्यानुरूपम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

८९

**नवाधिकेऽशीतितमेऽध्यायेऽस्मिन्निरूप्यते ।**
**छालिक्याद्यागमः क्रीडा गानं भोज्यं महाद्भुतम्**
अथ जलक्रीडावर्णनम्-**रेमे बलं इति** ॥ कादम्बरीपानकलः कादम्बप्रसूतमदिरापानेन मनोहरः । रेवतिमिति ह्रस्वत्वमार्षं छन्दोनुरोधात् ॥ १ ॥

१ ख. °गार्मानि ग° । २ ख. °नि भारत । न° । ३ ख. °स्तथा । म° । ४ ख. °तास्तदा । व° । ५ ख. त° प्रयातः । नी° ।

नीलाम्बुदाभे वसने वसान-
श्चन्द्रांशुगौरो मदिराविलाक्षः।
रराज रामोऽम्बुदमध्यमेत्य
संपूर्णबिम्बो भगवानिवेन्दुः॥ २
वामैककर्णामलकुण्डलश्रीः
स्मेरन्मनोज्ञाब्जकृतावतंसः।
तिर्यक्कटाक्षं प्रियया मुमोद
रामो मुखं चार्वभिवीक्ष्यमाणः॥ ३

अथाज्ञया कंसनिकुम्भशत्रो-
रुदाररूपोऽप्सरसां गणः सः।
द्रष्टुं मुदा रेवतिमाजगाम
वेलालयं स्वर्गसमानमृद्ध्या॥ ४
तां रेवतीं चाप्यथ वाऽपि रामं
सर्वा नमस्कृत्य वराङ्गयष्ट्यः।
वाद्यानुरूपं ननृतुः सुगात्र्यः
समन्ततोऽन्या जगिरे च सम्यक्॥ ५
चक्रुस्तथैवाभिनयेन लब्धं
यथावदेषां प्रियमर्थयुक्तम्।
हृद्यानुकूलं च बलस्य तस्य
तथाज्ञया रैवतराजपुत्र्याः॥ ६
चक्रुर्हसन्त्यश्च तथैव रासं
तद्देशभाषाकृतिवेषयुक्ताः।
सहस्ततालं ललितं सलीलं
वराङ्गना मङ्गलसंभृताङ्ग्यः॥ ७
संकर्षणाधोक्षजनन्दनानि
संकीर्तयन्त्योऽथ च मङ्गलानि।
कंसप्रलम्बादिवधं च रम्यं
चाणूरघातं च तथैव रङ्गे॥ ८
यशोदया च प्रथितं यशोऽथ
दामोदरत्वं च जनार्दनस्य।
वधं तथारिष्टकधेनुकाभ्यां
व्रजे च वासं शकुनीवधं च॥ ९
तथा च भग्नौ यमलार्जुनौ तौ
सृष्टिं वृकाणामपि वत्सयुक्ताम्।

स कालियो नागपतिर्ह्रदे च
कृष्णेन दान्तश्च यथा दुरात्मा॥ १०
शङ्खह्रदादुद्धरणं च वीर
पद्मोत्पलानां मधुसूदनेन।
गोवर्द्धनोऽर्थे च गवां धृतोऽभू-
द्यथा च कृष्णेन जनार्दनेन॥ ११
कुब्जां यथा गन्धकपीषिकां च
कुब्जत्वहीनां कृतवांश्च कृष्णः।
अवामनं वामनकं च चक्रे
कृष्णो यथात्मानमजोऽप्यनिन्द्यः॥ १२
सौभप्रमाथं च हलायुधत्वं
वधं मुरस्याप्यथ देवशत्रोः।
गन्धारकन्यावहने नृपाणां
रथे तथा योजनमूर्जितानाम्॥ १३
ततः सुभद्राहरणे जयं च
युद्धे च बालाहकजम्बुमाले।
रत्नप्रवेकं च युधाजितैर्य-
त्समाहृतं शक्रसमक्षमासीत्॥ १४
एतानि चान्यानि च चारुरूपा
जगुः स्त्रियः प्रीतिकराणि राजन्।
सङ्कर्षणाधोक्षजहर्षणानि
चित्राणि चानेककथाश्रयाणि॥ १५

कादम्बरीपानमदोत्कटस्तु
बलः पृथुश्रीः स चुकूर्द रामः।
सहस्ततालं मधुरं समं च
स भार्यया रैवतराजपुत्र्या॥ १६
तं कूर्दमानं मधुसूदनश्च
दृष्ट्वा महात्मा च मुदान्वितोऽभूत्।
चुकूर्द सत्यासहितो महात्मा
हर्षागमार्थं च बलस्य धीमान्॥ १७
समुद्रयात्रार्थमथागतश्च
चुकूर्द पार्थो नरलोकवीरः।
कृष्णेन सार्द्धं मुदितश्चुकूर्द
सुभद्रया चैव वराङ्गयष्ट्या॥ १८

वेलालयं सागरम्॥ ४॥ ता अप्सरसः तासु च काश्चन वाद्यानुरूपं ननृतुः अन्याः सम्यक् सर्वभावेन जगुः॥ ५॥ अभिनयेन हस्तादिचालनेन लब्धं शिक्षितं यत् हावादि एषां यदूनाम् अर्थयुक्तप्रयोजनवत् हृद्यं च तदनुकूलं च॥ ६॥ रासं गानम्॥ ७॥ कंसप्रलम्बादिवधं तदनुकारि नृत्यं चक्रुरित्यर्थः॥ ८॥ अरिष्टधेनुकाभ्याम् अरिष्टधेनुकयोः॥ ९॥ शङ्खह्रदात् शङ्खादिनिधियुक्तात्तस्मादेव ह्रदात्॥ ११॥ बालाहकजम्बुमालिभ्यां सह वृत्ते युद्धे तच्च पाद्मे प्रसिद्धम्॥ १४॥ कुर्दधातुरत्र गानार्थः; चुकूर्द जगौ॥ १६॥

१ ख. °व तासां तद्दे°। २ ख. मथा च भ°। ३ ख. °र्जुनौ च सृ°। ४ ख. °पि काल्यु°। ५ ख. °कपेषि°। ६ ख. °धं पर°। ७ ख. गान्धा°। ८ ख. तथा सु°। ९ ख. °नः स ह°। ख. १० ख. °त्मा हर्षान्वितास्ताः चु।

गदश्च धीमानथ सारणश्च
प्रद्युम्नसाम्बौ नृप सात्यकिश्च ।
सात्राजितीसूनुरुदारवीर्यः
सुचारुदेष्णश्च सुचारुरूपः ॥ १९
वीरौ कुमारौ निशठोल्मुकौ च
रामात्मजौ वीरतमौ चुकूर्दतुः ।
अक्रूरसेनापतिशंकरश्च
तथापरे भैमकुलप्रधानाः ॥ २०
तद्यानपात्रं ववृधे तदानीं
कृष्णप्रभावेण जनेन्द्रपुत्र ।
आपूर्णमापूर्णमुदारकीर्ते
चुकूर्दयद्भिर्नृप भैममुख्यैः ॥ २१
ते रासलक्ष्यैरतिकूर्दमानै-
र्यदुप्रवीरैरमरप्रकाशैः ।
हर्षान्वितं वीर जगत्तथाभू-
च्छेमुश्च पापानि जनेन्द्रसूनो ॥ २२

देवोऽतिथिस्तत्र च नारदोऽथ
विप्रप्रियार्थं मुरकेशिशत्रोः ।
चुकूर्द मध्ये यदुसत्तमानां
जटाकलापागलितैकदेशः ॥ २३
रासप्रणेता मुनि राजपुत्र
स एव तत्राभवदप्रमेयः ।
मध्ये च गत्वा च चुकूर्द भूयो
हेलाविकारैः सविडम्बिताङ्गैः ॥ २४
स सत्यभामामथ केशवं च
पार्थं सुभद्रां च बलं च देवम् ।
देवीं तथा रैवतराजपुत्रीं
संदृश्य संदृश्य जहास धीमान् ॥२५
ता हासयामास सुधैर्ययुक्ता-
स्तैस्तैरुपायैः परिहासशीलः ।
चेष्टानुकारैर्हसितानुकारै-
र्लीलानुकारैरपरैश्च धीमान् ॥ २६

आभाषितां किञ्चिदिवोपलक्ष्य
नादातिनादान्भगवान्मुमोच ।
हसन्विहासांश्च जहास हर्षा-
द्धास्यागमे कृष्ण विनोदनार्थम् ॥ २७
कृष्णाज्ञया सातिशयानि तत्र
यथानुरूपाणि ददुर्युवत्यः ।
रत्नानि वस्त्राणि च रूपवन्ति
जगत्प्रधानानि नृदेवसूनोः ॥ २८
माल्यानि च स्वर्गसमुद्भवानि
सन्तानदामान्यतिमुक्तकानि ।
सर्वर्तुकान्यप्यनयंस्तदानीं
ददुर्हरेरिङ्गितकालतज्ज्ञाः ॥ २९

रासावसाने त्वथ गृह्य हस्ते
महामुनिं नारदमप्रमेयः ।
पपात कृष्णो भगवान्समुद्रे
सात्राजितीं चार्जुनमेव चाथ ॥ ३०
उवाच चामेयपराक्रमोऽथ
शैनेयमीषत्प्रहसन्पृथुश्रीः ।
द्विधा कृतास्मिन्पतताशु भूत्वा
क्रीडाजले नौस्तु सहाङ्गनाभिः ॥ ३१
सरेवतीकोऽस्तु बलोऽर्द्धनेता
पुत्रा मदीयाश्च सहार्द्धभैमाः ।
भैमार्द्धमेवाथ बलात्मजाश्च
सत्पक्षिणः सन्तु समुद्रतोये ॥ ३२
आज्ञापयामास ततः समुद्रं
कृष्णः स्मितं प्राञ्जलिनं प्रतीतः ।
"सुगन्धतोयो भव मृष्टतोय-
स्तथा भव ग्राहविवर्जितश्च ॥ ३३
दृश्या च ते रत्नविभूषिता तु
सा वेलिका भूरथ पत्सुखा च ।
मनोनुकूलं च जनस्य तत्तत्
प्रयच्छ विज्ञास्यसि मत्प्रभावात् ३४

यानपात्रं नौः ॥ २१ ॥ हे राजपुत्र मुनिरत्र दीर्घाभावश्छान्दसः । हेलाविकारैः लीलानुकारैः । रासप्रणेता मुनिराजपुत्रेत्यपि पाठः ॥ २४ ॥ सहार्द्धभैमाः अर्धभैमैः सह वर्तमानाः । पुत्रयोर्व्यत्यासः समत्वद्योतनार्थः ॥३२॥ वेलिका तीरसंबन्धिनी पत्सुखा पादयोः सुखस्पर्शा यद्वत्स्वन्तरमितीति ॥ ३४ ॥

१ ख. °त्यकश्च । सा° । २ ख. जनेशपु° । ३ ख. तैरास्त° । ४ ख. °नि नरेन्द्रसू° । ५ ख. °यार्थं मधुके° । ६ ख. °ता धुरि रा° । ७ ख. मध्यं ग° । ८ ख. °श्च चकार ह° । ९ ख. °मप्रमेयम् । पपा° । १० ख. °श्च मत्प° । ११ ख. °ता च सा वे° । १२ ख. °स्य यत्तत्र° ।

भवस्यपेयोऽप्यथ चेष्टपेयो
जनस्य सर्वस्य मनोनुकूलः।
वैडूर्यमुक्तामणिहेमचित्रा
भवन्तु मत्स्यास्त्वयि सौम्यरूपाः ३५
बिभृस्व च त्वं कमलोत्पलानि
सुगन्धसुस्पर्शरसक्षमाणि।
षट्पादजुष्टानि मनोहराणि
कीलालवर्णैश्च समन्वितानि॥ ३६
मैरेयमाध्वीकसुरासवानां
कुम्भांश्च पूर्णान्स्वपयस्व तोये।
जाम्बूनदं पाननिमित्तमेषां
पात्रं पपुर्येषु ददस्व भैमाः॥ ३७
पुष्पोच्चयैर्वासितशीततोयो
भवाप्रमत्तः खलु तोयराशे।
यथा व्यलीकं न भवेद्यदूनां
सस्त्रीजनानां कुरु तत्प्रयत्नम्॥" ३८
इतीदमुक्त्वा भगवान्समुद्रं
ततः प्रचिक्रीड सहार्जुनेन।
सिषेच पूर्वं नृप नारदं तु
सात्राजिती कृष्णमुखेङ्गितज्ञा॥ ३९
ततो मदावर्जितचारुदेहः
पपात रामः सलिले सलीलम्।
साकारमालम्ब्य करं करेण
मनोहरां रैवतराजपुत्रीम्॥ ४०
कृष्णात्मजा ये त्वथ भैममुख्या
रामस्य पश्चात्पतिताः समुद्रे।
विरागवस्त्राभरणाः प्रहृष्टाः
क्रीडाभिरामा मदिराविलाक्षाः॥ ४१
शेषास्तु भैमा हरिमभ्युपेताः
क्रीडाभिरामा निशठोल्मुकाद्याः।
विचित्रवस्त्राभरणाश्च मत्ताः
सन्तानमाल्यावृतकण्ठदेशाः॥ ४२
वीर्योपपन्नाः कृतचारुचिह्ना
विलिप्तगात्रा जलपात्रहस्ताः।
गीतानि तद्वेषमनोहराणि
स्वरोपपन्नान्यथ गायमानाः॥ ४३
ततः प्रचक्रुर्जलवादितानि
नानास्वराणि प्रियवाद्यघोषाः।
सहाप्सरोभिस्त्रिदिवालयाभिः
कृष्णाज्ञया वेशवधूशतानि॥ ४४
आकाशगङ्गाजलवादनज्ञाः
सदा युवत्यो मदनैकचित्ताः।
अवादयंस्ता जलदर्दुरांश्च
वाद्यानुरूपं जगिरे च हृष्टाः॥ ४५
कुशेशयाकोशविशालनेत्राः
कुशेशयापीडविभूषिताश्च।
कुशेशयानां रविबोधितानां
जह्रुः श्रियं ताः सुरवारमुख्याः ४६
स्त्रीवक्त्रचन्द्रैः सकलेन्दुकल्पै
रराज राजञ्छतशः समुद्रः।
यदृच्छया देवविधानतो वा
नभो यथा चन्द्रसहस्रकीर्णम्॥ ४७
समुद्रमेघः स रराज राज-
ञ्छतह्रदास्त्रीप्रभयाऽभिरामः।
सौदामिनीभिन्न इवाम्बुनाथो
देदीप्यमानो नभसीव मेघः॥ ४८
नारायणश्चैव सनारदश्च
सिषेच पक्षे कृतचारुचिह्नः।
बलं सपक्षं कृतचारुचिह्नं
स चैव पक्षं मधुसूदनस्य॥ ४९
हस्तप्रमुक्तैर्जलयन्त्रकैश्च
प्रहृष्टरूपाः सिषिचुस्तदानीम्।
रागाद्धृता वारुणिपानमत्ताः
संकर्षणाधोक्षजदेवपत्न्यः॥ ५०

बिभृस्व बिभृहि धारयेत्यर्थः। कीलालमत्र रक्तम् ॥ ३६॥ मैरेयादयो मद्यभेदाः मैरेयमत्र गौडी सुरा पैष्ट्या निषेधात् माध्वीकसुरा मधुपुष्पसंभवा आसवस्तालादिसम्भवः। स्वतोये स्वजलोपरि स्थापयेत्यत्र ह्रस्वत्वमार्षम्। पपुः पिबेयुः॥ ३७॥ व्यलीकमन्याय्यम् ॥ ३८॥ साकारम् आकारः कामगीतं तेन सह यथा स्यात्तथा॥ ४०॥ जलदर्दुरान् जलवाद्यविशेषान्॥ ४५॥ कुशेशयाकोशः कमलकलिका आपीडो मुकुटं सुराणामिव चारूणि दौर्गन्ध्यादिरहितानि मुखानि यासां ताः॥ ४६॥ पक्षे एकत्र स्थितो बलं सिषेचेत्यन्वयः। स च बलः॥४९॥

१ ख. °राणि चारूणि कीलालसम°। २ ख. पुष्पोडुपैर्वा°। ३ ख. ततस्तु चि°। ४ ख. आवा°।

आरक्तनेत्रा जलमुक्तिसक्ताः
स्त्रीणां समक्षं पुरुषायमाणाः ।
ते नोपरेमुः सुचिरं च भैमा
मानं वहन्तो मदनं मदं च ॥ ५१

---

अतिप्रसङ्गं तु विचिन्त्य कृष्ण-
स्तान्वारयामास रथाङ्गपाणिः ।
स्वयं निवृत्तो जलवाद्यशब्दैः
सनारदः पार्थसहायवांश्च ॥ ५२
कृष्णेङ्गितज्ञा जलयुद्धसङ्गा-
द्भैमा निवृत्ता दृढमानिनोऽपि ।
नित्यं तथानन्दकराः प्रियाणां
क्रियाश्च तेषां ननृतुः प्रतीताः ॥ ५३
नृत्यावसाने भगवानुपेन्द्र-
स्तत्याज धीमानथ तोयसङ्गान् ।
उत्तीर्य तोयादनुकूललेपं
जग्राह दत्त्वा मुनिसत्तमाय ॥ ५४
उपेन्द्रमुत्तीर्णमथाशु दृष्ट्वा
भैमा हि ते तत्यजुरेव तोयम् ।
विविक्तगात्रास्त्वथ पानभूमिं
कृष्णाज्ञया ते ययुरप्रमेयाः ॥ ५५
यथानुपूर्व्या च यथावयश्च
यत्सन्नियोगाश्च तदोपविष्टाः ।

---

अन्नानि वीरा बुभुजुः प्रतीताः
पपुश्च पेयानि यथानुकूलम् ॥ ५६
मांसानि पक्वानि फलाम्लकानि
चुक्रोत्तरेणाथ च दाडिमेन ।
निष्टप्तशूलाञ्छकलान्पशूंश्च
तत्रोपजह्रुः शुचयोऽथ सूदाः ॥ ५७
सुस्विन्नशूल्यान्महिषांश्च बाला-
ञ्छूल्यान्सुनिष्टप्तघृतावसिक्तान् ।
वृक्षाम्लसौवर्चलचुक्रपूर्णा-
न्पौरोगवोक्त्या उपजह्रुरेषाम् ॥ ५८
पौरोगवोक्त्या विधिना मृगाणां
मांसानि सिद्धानि च पीवराणि ।
नानाप्रकाराण्युपजह्रुरेषां
मृष्टानि पक्वानि च चुक्रचूतैः ॥ ५९
पार्श्वानि चान्ये शकलानि तत्र
ददुः पशूनां घृतमृक्षितानि ।
सामुद्रचूर्णैरवचूर्णितानि
चूर्णेन मृष्टेन समारिचेन ॥ ६०
समूलकैर्दाडिममातुलिङ्गैः
पर्णासहिङ्ग्वार्द्रकभूस्तृणैश्च ।
तदोपदंशैः सुमुखोत्तरैस्ते
पानानि हृष्टाः पपुरप्रमेयाः ॥ ६१
कट्वाङ्कशूलैरपि पक्षिभिश्च
घृताम्लसौवर्चलतैलसिक्तैः ।
मैरेयमाध्वीकसुरासवांस्ते
पपुः प्रियाभिः परिवार्यमाणाः ॥ ६२
श्वेतेन युक्ता नृप शोणितेन
भक्ष्यान्सुगन्धांल्लवणान्वितांश्च ।
आर्द्रान्किलादान्घृतपूर्णकांश्च
नानाप्रकारानपि खण्डखाद्यान् ॥ ६३
अपानपाश्चोद्धवभोजमिश्राः
शाकैश्च सूपैश्च बहुप्रकारैः ।
पेयैश्च दध्ना पयसा च वीराः
स्वन्नानि राजन्बुभुजुः प्रहृष्टाः ॥ ६४

---

ते भैमा नोपरेमुः क्रीडां न तत्यजुः ॥ ५१ ॥ विविक्तगात्राः शुद्धवपुषः, विभक्तगात्रा इति पाठे चन्दनाद्यनुलिप्तावयवाः ॥ ५५ ॥ यत्संनियोगाः यदनुशिष्टाः प्रतीताः प्रख्याताः यथानुकूलं यथाहितम् ५६॥ फलप्रभावा अम्लिका अम्लता येषु तानि । चुक्रोत्तरेण चुक्रताधिकेन, सूदाः सूपकाराः, सूपा इति वा पाठः । निष्टप्तशूलान् शूलं समारोप्य निष्टप्तानित्यर्थः । निष्टप्तशूल्यानिति वा निष्टप्तशूल्यान् अतितप्तपक्वान् शकलान् खण्डितान् पशून् हारिणशूकरादीन् ॥५७॥ सुस्विन्नशूल्यान् शूलमारोप्य स्विन्नानित्यर्थः । वृक्षाम्लं अम्लवेतसादि पौरोगवोक्त्या सूदोक्तक्रमेण उपजह्रुः परिवेषणं चक्रुः॥ ५८ ॥ पीवराणि पुष्टानि ॥ ५९ ॥ मातुलिङ्गानि रुद्रकानि, पर्णासः कुठेरकं, भूस्तृणं शाकभेदः, उपदंशैः पानपात्रैः ॥ ६१ ॥ कट्वाङ्कः कटुरसः तद्युक्तकाष्ठशूलानि येषु तैः ॥ ६२ ॥ आर्द्रादीन् खाद्यविशेषान्, किलादान् माहिषीदुग्धसिक्तान् ॥ ६३ ॥ अपानपाः त्यक्तमद्यादिपानाः पानमित्युपलक्षणं मांसादेः ॥ ६४ ॥

तथारनालांश्च बहुप्रकारा-
न्पपुः सुगन्धानपि पालवीषु ।
शृतं पयः शर्करया च युक्तं
फलप्रकारांश्च बहूंश्च खादन् ॥ ६५

---

तृप्ताः प्रवृत्ताः पुनरेव वीरा-
स्ते भैमसुख्या वनितासहायाः ।
गीतानि रम्याणि जगुः प्रहृष्टाः
कान्ताभिनीतानि मनोहराणि ॥ ६६
आज्ञापयामास ततः स तस्यां
निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः ।
छालिक्यगेयं बहुसन्निधानं
यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति ॥ ६७
जग्राह वीणामथ नारदस्तु
षड्ग्रामरागादिसमाधियुक्ताम् ।
हल्लीसकं तु स्वयमेव कृष्णः
सवंशघोषं नरदेव पार्थः ॥ ६८
मृदङ्गवाद्यानपरांश्च वाद्या-
न्वराप्सरस्ता जगृहुः प्रतीताः ।
आसारितान्ते च ततः प्रतीता
रम्भोत्थिता साभिनयार्थतज्ज्ञा ॥ ६९
तयाऽभिनीते वरगात्रयष्ट्या
तुतोष रामश्च जनार्दनश्च ।
अथोर्वशी चारुविशालनेत्रा
हेमा च राजन्नथ मिश्रकेशी ॥ ७०

तिलोत्तमा चाप्यथ मेनका च
एतास्तथाऽन्याश्च हरिप्रियार्थम् ।
जगुस्तथैवाभिनयं च चक्रु-
रिष्टैश्च कामैर्मनसोऽनुकूलैः ॥ ७१
ता वासुदेवेऽप्यनुरक्तचित्ताः
स्वगीतनृत्याभिनयैरुदारैः ।
नरेन्द्रसूनो परितोषितेन
ताम्बूलयोगाश्च वराप्सरोभिः ॥ ७२
तदागताभिर्नृवराहृतास्तु
कृष्णेप्सया मानमयास्तथैव ।
फलानि गन्धोत्तमवन्ति वीरा-
श्छालिक्यगान्धर्वमथाहृतं च ॥ ७३
कृष्णेच्छया च त्रिदिवान्नृदेव
अनुग्रहार्थं भुवि मानुषाणाम् ।
स्थितं च रम्यं हरितेजसेव
प्रयोजयामास स रौक्मिणेयः ॥ ७४
छालिक्यगान्धर्वमुदारबुद्धि-
स्तेनैव ताम्बूलमथ प्रयुक्तम् ।
प्रयोजितं पञ्चभिरिन्द्रतुल्यै-
श्छालिक्यमिष्टं सततं नराणाम् ७५
शुभावहं वृद्धिकरं प्रशस्तं
मङ्गल्यमेवाथ तथा यशस्यम् ।
पुण्यं च पुष्ट्यभ्युदयावहं च
नारायणस्येष्टमुदारकीर्तेः ॥ ७६

---

आरनालान् काञ्जिकानि रसालानिति पाठे तु रसालान् अपरिमितघृतशर्करादिसंस्कृतान् । पालवीषु कपर्दनिर्मितपात्रेषु वा बृहच्छरावेषु । खादन् अखादन् ॥ ६५॥ षट्ग्रामाः स्थानानि येषां रागाणाम् तैर्यः समाधिः चित्तैकाग्र्यं तद् यस्यां तां ते च मध्यशुद्धाभिन्नगौडमिश्रगीतरूपाः । हल्लीसकं बहुभिः स्त्रीभिः सह नृत्यम्। झल्लीसकमिति पाठे तदाख्यवाद्यविशेषम् । बल्लीसकमिति पाठे निषादर्षभादिसप्तस्वरयुतं झल्लीसकं वाद्यविशेषम् । जग्राहेति विपरिणामेन क्रियासंबंधः । वंशघोषेण सह यथा स्यात्तथा ॥ ६८ ॥ पार्थस्तु मृदङ्गवाद्यान् जग्राहेत्यनुषङ्गः । अपरांश्च वाद्यान् वराप्सरसो जगृहुरिति संबन्धः । **आसारितान्त इति**—भरतो मुनिश्चतुर्विधमासारितं नृत्यविधावुपदिदेशेति । प्रथमं नर्तकीप्रवेशः, ततश्चासारितार्थाभिनयं नाट्यं, ततस्तालानुगत्यङ्गाहरणं, ततो देवताचिह्नरूपेण नृत्यं, एवं चतुर्ष्वप्यभिसारेष्वूक्तम् । एवमेष नर्तकीप्रवेशो भरतस्यानुमतः । तदन्ते रम्भा नर्तकी उत्थिता प्रविष्टा यतः सा अभिनयचतुरा ॥ ६९ ॥ अभिनीते अभिनये कृते द्वितीयासारे उर्वशी उत्थिता इत्यनुषङ्गः ॥ ७० ॥ ताः रम्भाद्याः परितोषितेन परितोषणेन तोषयामासुरिति शेषः। ताम्बूलयोगाश्चेति पदत्रयं वाक्यम् ॥७२॥ तदा जलक्रीडायामागताभिः पञ्चचूडाकौबेरीमाहेन्द्रीभिश्च ताम्बूलयोगाः गर्वाङ्कुराः आहृताः वयमेताभ्योऽधिका इति स्वगुणा आविष्कृता इत्यर्थः । तदेवाह—फलानीत्येकश्लोको वाक्यम् ॥ ७३ ॥ कृष्णेच्छया मानुषाणामनुग्रहाय त्रिदिवात्तानभिच्छालिक्यं भुवि आहृतं फलानि च देवयोग्यानि आहृतानि । ततः किमत आह । **स्थितमिति** प्रद्युम्नादौ ॥७४॥ पञ्चभिः कृष्णरामप्रद्युम्नानिरुद्धसाम्बैः७५

भरापहं धर्मभरावहं च
दुःस्वप्ननाशं परिकीर्त्यमानम् ।
करोति पापं च तथा विहन्ति
शृण्वन्सुरावासगतो नरेन्द्रः ॥ ७७
छालिक्यगान्धर्वमुदारकीर्ति-
र्मेने किलैकं दिवसं सहस्रम् ।
चतुर्युगानां नृप रेवतोऽथ
ततः प्रवृत्ता च कुमारजातिः ॥ ७८
गान्धर्वजातिश्च तथापराऽपि
दीपाद्यथा दीपशतानि राजन् ।
विवेद कृष्णश्च स नारदश्च
प्रद्युम्नमुख्यैर्नृप भैममुख्यैः ॥ ७९
विज्ञानमेतद्धि परे यथाव-
दुद्देशमात्राच्च जनास्तु लोके ।
जानन्ति छालिक्यगुणोदयानां
तोयं नदीनामथवा समुद्रे ॥ ८०
ज्ञातुं समर्थो हिमवान्गिरिर्वा
फलाग्रतो वा गुणतोऽथ वापि ।
शक्यं न छालिक्यमृते तपोभिः
स्थाने विधानान्यथ मूर्च्छनासु ॥ ८१
षड्ग्रामरागेषु च तत्र कार्यं
तस्यैकदेशावयवेन राजन् ।
लेशाभिधानां सुकुमारजातिं
निष्ठां सुदुःखेन नराः प्रयान्ति ॥ ८२
छालिक्यगान्धर्वगुणोदयेषु
ये देवगन्धर्वमहर्षिसंघाः ।
निष्ठां प्रयान्तीत्यवगच्छ बुद्ध्या
छालिक्यमेवं मधुसूदनेन ॥ ८३
भैमोत्तमानां नरदेव दत्तं
लोकस्य चानुग्रहकाम्ययैव ।
गतं प्रतिष्ठाममरोपगेयं
बाला युवानश्च तथैव वृद्धाः ॥ ८४
क्रीडन्ति भैमाः प्रसवोत्सवेषु
पूर्वं तु बालाः समुदावहन्ति ।
वृद्धाश्च पश्चात्प्रतिमानयन्ति
स्थानेषु नित्यं प्रतिमानयन्ति ॥ ८५
मर्त्येषु मर्त्यान्यदवोऽतिवीराः
स्ववंशधर्मं समनुस्मरन्तः ।
पुरातनं धर्मविधानतज्ज्ञाः
प्रीतिः प्रमाणं न वयः प्रमाणम् ॥ ८६
प्रीतिप्रमाणानि हि सौहृदानि
प्रीतिं पुरस्कृत्य हि ते दशार्हाः ।
वृष्ण्यन्धकाः पुत्रसुखा बभूवु-
र्विसर्जिताः केशिविनाशनेन ॥ ८७
स्वर्गं गताश्चाप्सरसां समूहाः
कृत्वा प्रणामं मधुकंसशत्रोः ।
प्रहृष्टरूपस्य सुहृष्टरूपा
बभूव हृष्टः सुरलोकसङ्घः ॥ ८८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे छालिक्यक्रीडावर्णने एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

---

दुःस्वप्ननाशं करोति तथा पापं च विहन्तीत्यन्वयः ॥ ७७ ॥ यच्छालिक्यगान्धर्वं सुरावासगतो रेवतः शृण्वन् चतुर्युगानां सहस्रम् एकं दिवसं मेने तत एव कुमारजातिप्रमुखा गन्धर्वभेदाः प्रवृत्ता इति वाक्यार्थः ॥ ७८ ॥ स्थाने तदुक्तम् । नालम् इति पाठः सुगमः ॥ ८१ ॥ लेशाभिधानां सुकुमारजातिं गायन्तो निष्ठां समाप्तिं नरा दुःखेन गच्छन्ति छालिक्यस्य का वार्तेत्यर्थः ॥ ८२ ॥ प्रहृष्टरूपस्य सुहृष्टरूपा विनोदिताः केशिनिषूदनेनेत्यपि पाठः ॥ ८८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

---

१ ख. जयावहं ध । २ ख. °मधुरा° । ३ ख. °ता सुकु° । ४ ख. °पराणि दी । ५ ख. 'ज्ञातमे' ।

# भानुमतीहरणं निकुम्भवधश्च ।

## ९०

वैशम्पायन उवाच ।

तेषां क्रीडावसक्तानां यदूनां पुण्यकर्मणाम् ।
छिद्रमासाद्य दुर्बुद्धिर्देवशत्रुर्दुरासदः ॥ १
कन्यां भानुमतीं नाम भानोर्दुहितरं नृप ।
जहारात्मवधाकाङ्क्षी निकुम्भो नामदानवः
अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूनां प्रमदाजनम् ।
मायावी मायया राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३
भ्रातुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती ।
प्रद्युम्नेन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हतः ॥ ४
भानोरेव तथाऽरण्ये वसत्यवसरेण हि ।
अस्वाधीने दुराधर्षे छिद्रज्ञो दानवाधमः ॥ ५
कन्यापुरे महानादः
सहसा समुपस्थितः ।
तस्यां ह्रियन्त्यां कन्यायां
रुदन्त्यां समितिंजयः ॥ ६
वसुदेवाहुकौ वीरौ दंशितौ निर्गतावुभौ ।
आर्तनादमुपश्रुत्य भानोः कन्यापुरे तदा ॥ ७
न दृष्टिगोचरौ तौ तु ददृशातेऽपकारिणम् ।
तथैव दंशितौ यातौ यत्र कृष्णो महाबलः ८
श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः ।
पार्थेन सहितस्तार्क्ष्यं नागशत्रुमरिन्दमः ॥ ९
रथी त्वमनुगच्छेति सन्दिश्य मकरध्वजम् ।
त्वरेति गरुडं वीरः सन्दिदेश च काश्यपम्
वज्रं नगरमायान्तं निकुम्भं रणदुर्जयम् ।
पार्थकृष्णौ महात्मानावासेदतुररिंदमौ ११
प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिनां प्रवरो नृप ।
निकुम्भश्चाथ तान्दृष्ट्वा त्रिधाऽऽत्मानमथाकरोत्
तान्सर्वान्योधयामास निकुम्भः प्रहसन्निव ।
बहुकण्टकगुर्वीभिर्गदाभिरमरोपमः ॥ १३
सव्येनालम्ब्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृपः
दक्षिणेनाथ हस्तेन गदयाँ प्राहरत्पुनः ॥ १४
कन्यार्थे न च कृष्णो वा कामो वा नृपसत्तम।
निर्दयं प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे ॥१५
समर्थास्ते महात्मानः शत्रुं हन्तुं दुरासदाः ।
निशश्वसुर्नरपते दयाभारावपीडिताः ॥ १६
श्रेष्ठो धनुष्मतां पार्थः सर्वथा कुशलो युधि ।
नागोष्ट्रविधिना दैत्यं शरपङ्क्त्या जघान ह
ते तु वैतस्तिकैर्बाणैर्विविधान्दानवान्युधि ।
न कन्यां कलया युक्त्या शिक्षया च महीपते
ततः स कन्यया सार्द्धं तत्रैवान्तरधीयत ।
आसुरीमाश्रितो मायां न च तां वेत्ति कश्चन
तं कृष्णो रौक्मिणेयश्च पृष्ठतोऽनुययुस्तदा ।
हारितः शकुनो भूत्वा तस्थावथ महासुरः २०
तं बाणैः पुनरेवाथ वीरो भूयो धनञ्जयः ।
वैतस्तिकैर्मर्मभिद्भिः कन्यां रक्षन्नताडयत् २१

## ९०

अथास्मिन्नवतितमे ह्यध्याये सन्निरूप्यते
भानुमत्यापहरणं निकुम्भस्य तथा वधः ॥१॥

**तेषां क्रीडेति** ॥१॥ भानोर्यादवविशेषस्य॥२॥ पूर्ववैरं प्रपञ्चयति-**भ्रातुर्हीति**॥४॥ प्रस्तुतमाह-**भानोरेवेति** ॥ भानोरेव कन्यापुरे महानाद आर्तरावः । सहसा आकस्मिकः । समुपस्थितः अभ्युत्थितः । कथंभूते कन्यापुरे दुराधर्षेऽप्यस्वाधीने निरीश्वरे रक्षकाभावात् यदूनां न तु क्रीडासक्तत्वात् । तत्तु नातिचित्रमित्याह-**छिद्रज्ञ इति** । अवसरेणेत्येनप्रत्ययान्तम् । अवसरे दानवाधमो निकुम्भः छिद्रान्वेषी मायया वञ्चनरतो वसति तिष्ठत्येव । क्व अरण्ये द्वारकोपवने इति सार्द्धश्लोको वाक्यम् । ह्रियन्त्यां ह्रियमाणायाम् ॥ ५ ॥ विमानं वाहनं तर्हि किं सामान्यं न तार्क्ष्यमित्यादि ॥ ९ ॥ तान् दानवान् ॥ १२ ॥ तान् कृष्णादीन् ॥ १३ ॥ भानुमतीं चर्मस्थानीयाम् ॥ १४ ॥ निशश्वसुः निश्वासं मुमुचुः ॥१६॥ **नागोष्ट्रविधिनेति** । यथा कश्चिद्धनुर्द्धरोऽस्त्रलाघवं दर्शयन् अजगरवेष्टितमुष्ट्रं दृष्ट्वा अस्त्रप्रयोगविशेषादजगरमेव हन्ति न तु क्रमेलकं तद्वत् ॥ १७ ॥ ते कृष्णप्रमुखा जघ्नुरिति क्रियाविपरिणामेनानुषङ्गः ॥ १८ ॥ पृष्ठतोऽव्यवहितावेवानुययतुरित्यर्थः ॥२०॥

१ ख. रथे त्व° । २ ख. प्रद्युम्नस्त्वथ तं द्र° । ३ ख. °या प्रहरत्युत । क° । ४ ख. °सदम् । नि° । ५ ख. °नवं यु° । ६ ख. न तां वेत्ति हि क° ।

स इमां पृथिवीं कृत्स्नां सप्तद्वीपां महासुरः ।
बभ्रामानुगतश्चैव तैर्वीरैररिमर्दनः ॥ २२
गोकर्णस्योपरिष्टात्तु पर्वतस्य महासुरः ।
पपात वेलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया २३
न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः ।
गोकर्णं तेजसा गुप्तं महादेवस्य भारत ॥ २४
एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः ।
कन्यां भानुमतीं भैमो जग्राह रणदुर्जयः २५
असुरः सोऽर्दितो राज-
न्कृष्णाभ्यां निशितैः शरैः ।
त्यक्त्वाऽथोत्तरगोकर्णं
निकुम्भो दक्षिणां दिशम् ।
जगाम पृष्ठतो यातौ
कृष्णौ तार्क्ष्यगतौ तदा ॥ २६
विवेश षट्पुरं चैव ज्ञातीनामालयं तदा ।
तत्र वीरौ गुहाद्वारि कृष्णौ रात्रौ तदोषतुः ॥
रौक्मिणेयोऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकां पुरीम्
अनयद्भानुतनयां प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २८
नयित्वा चाययौ वीरः षट्पुरं दानवाकुलम् ।
ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णौ भीमपराक्रमौ २९
ऊषतुर्द्वारमाक्रम्य षट्पुरस्य महाबलौ ।
कृष्णौ प्रद्युम्नसहितौ निकुम्भवधकाङ्क्षिणौ
ततोऽनन्तरमेतस्माद्बिलादतिबलस्तदा ।
निर्जगाम बली योद्धुं निकुम्भो भीमविक्रमः॥
तस्य निर्गच्छतस्तस्माद्बिलात्पार्थो विशांपते
रुरोध सर्वतो मार्गं शरैर्गाण्डीवनिःसृतैः ३२
सोऽभिसृत्य गदां घोरामुद्यम्य बहुकण्टकाम्
शिरस्यताडयत्पार्थं निकुम्भो बलिनां वरः ॥
अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ।
गदयाऽभिहते पार्थे रक्तं वमति मुह्यति ।
हसित्वा सोऽसुरो दृप्तो रौक्मिणेयमताडयत
तं प्राङ्मुखमुखं वीरं मायावी मायिनां वरम्
अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ३५
तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ ।
अभिदुद्राव गोविन्दो निकुम्भं क्रोधमूर्छितः

कौमोदकीं समुद्यम्य गदपूर्वोद्भवो गदाम् ।
तावन्योन्यं दुराधर्षौ गर्जन्तावभिपेततुः ३७
ऐरावतगतः शक्रः सर्वैर्देवगणैः सह ।
ददर्श तन्महायुद्धं घोरं देवासुरं तदा ॥ ३८
दृष्ट्वा देवान्हृषीकेशश्चित्रैर्युद्धैररिंदमः ।
इयेष दानवं हन्तुं देवानां हितकाम्यया ॥ ३९
स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामास केशवः ।
कौमोदकीं महाबाहुर्लीलयन्युद्धकोविदः॥ ४०
तथैवासुरमुख्योऽपि गदां तां बहुकण्टकाम् ।
शिक्षया भ्रामयाणोऽथ मण्डलानि चचार ह
वृषभाविव गर्जन्तौ बृहन्ताविव कुञ्जरौ ।
इषितान्तरमासाद्य क्रुद्धौ शालावृकाविव ४२
आजघान निकुम्भस्तु गदया गदपूर्वजम् ।
स्पष्टाष्टघंटया वीर नादं मुक्त्वाऽतिदारुणम्
तत्कालमेव कृष्णोऽपि
भ्रामयित्वा महागदाम् ।
निकुम्भमूर्द्धनि तदा
पातयामास भारत ॥ ४४
अवष्टभ्य मुहूर्तं तु
हरिः कौमदकीं गदाम् ।
तस्थौ जगद्गुरुर्धीमा-
न्मुमोह पतितः क्षितौ ॥ ४५
हाहाभूतं जगत्सर्वं तत्कालमभवत्तदा ।
तथागते वासुदेवे नरदेव महात्मनि ॥ ४६
आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना ।
सिषेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम् ४७
नूनमात्मेच्छया कृष्णस्तथा चक्रे सुरोत्तमः ।
को हि शक्तो महात्मानं युद्धे मोहयितुं हरिम्
कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत ।
प्रतीच्छेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः ४९
निकुम्भोऽप्यतिमायावी उत्पपात दुरासदः ।
शरीरं तत्परित्यज्य न तु तं वेत्ति केशवः५०
मुमूर्षति[6] मृतो वायमिति मत्वा जनार्दनः ।
ररक्ष स्मरमाणोऽथ वीरो वीरव्रतं विभो ५१

अरिमर्दनोऽपि ॥ २२ ॥ भैमः प्रद्युम्नः ॥ २५ ॥ अभिसृत्य अभिमुखम् आगत्य ॥ ३३ ॥ इयेष इच्छां चकार ॥३९॥ इषिता वासिता पुष्पवतीति यावत् ॥ ४२ ॥ अवष्टभ्येति । रिपूत्कर्षं ख्यापयितुम् आत्मेच्छयेति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ४५ ॥ तं शरीरं परित्यज्य गतम् ॥ ५० ॥ वीरव्रतं ररक्ष पतितं न हतवान् ॥ ५१ ॥

१ ख. ०त्तु भ्रंशितः स म० । २ ख. ०त चेलगङ्ग० । ३ ख. ०स्माद्बला० । ४ ख. ०वणग० । ५ ख. ०कीं तदा । त० ।
६ ख. ०ति ततो वा० ।

अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ।
स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिश्चितौ
प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदितः कृष्णमब्रवीत्
निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गतः क्वापि सुदुर्मतिः
प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु ननाश कलेवरम्।
प्रजहासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभुः॥ ५४
तदायुतसहस्राणि निकुम्भानां जनाधिप।
ददृशुस्ते ततो वीराः क्षितौ दिवि च सर्वतः
सहस्राण्येव कृष्णं तु तथा पार्थमरिंदम।
रौक्मिणेयं तथा वीरं तदद्भुतमिवाभवत्॥ ५६
पाण्डवस्य धनुः केचित्केचिदस्य महाशरान्
अन्येऽस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुराः॥
एवं ग्रहाय तं वीरमगमंस्ते विहायसि।
पार्थानामपि कोट्यस्तु गृहीतानां तदाऽभवन्
नान्तं ददर्श कृष्णश्च कार्ष्णिश्च रिपुनाशनौ।
विच्छिद्य तौ शरैर्वीरौ निकुम्भं पार्थवर्जितौ
एकैकस्तु द्विधा च्छिन्नो द्वेधा भवति भारत
दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान्॥
निकुम्भं तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदनः।
स्रष्टारं सर्वमायानां हर्तारं फाल्गुनस्य च ६१
स चक्रेण शिरस्तस्य चकर्तासुरसूदनः।
पश्यतां सर्वभूतानां भूतभव्यभवो हरिः॥६२
स मुक्त्वा फाल्गुनं राजञ्छिन्ने शिरसि भारत
पपातासुरमुख्योऽथ च्छिन्नमूल इव द्रुमः ६३
अथाकाशगतं पार्थं पतमानं विहायसः।
कृष्णवाक्येन जग्राह कार्ष्णिर्वियति मानद६४
निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनञ्जयम्।
जगाम द्वारकां देवः पार्थकामसमन्वितः॥६५

समियाय दशार्होऽथ द्वारकां मुदितो विभुः।
नारदं च महात्मानं ववन्दे यदुनन्दनः॥ ६६
नारदोऽथ महातेजा भानुं यादवमब्रवीत्।
भानो मा कार्षीर्मन्युं त्वं श्रूयतां भैमनन्दन॥
क्रीडन्त्या रैवतोद्याने दुर्वासाः कोपितोऽनया
स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितरं तव॥६८
अतिदुर्ललितैः कन्या शत्रुहस्तं गमिष्यति।
सुतार्थे ते मया सार्द्धं मुनिभिः स प्रसादितः
बालां व्रतवतीं कन्यामनागसमिमां मुने।
शप्तवानसि धर्मज्ञ कथं धर्मभृतां वर।
अनुग्रहं विधत्स्वात्र वयं विज्ञापयामहे॥ ७०
अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन।
उवाचाधोमुखो भूत्वा मुहूर्तं कृपयाऽन्वितः
यद्वोचमहं वाक्यं तत्तथा न तदन्यथा।
रिपुहस्तमवश्यं हि गमिष्यति न संशयः॥७२
अदूषितानुधर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति।
बहुपुत्रा बहुधना सुभगा च भविष्यति॥ ७३
सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुनः पुनः।
न च शोकमिमं घोरं तन्वङ्गी धारयिष्यति॥
एवं भानुमती वीर सहदेवाय दीयताम्।
श्रद्धधानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डवः ७५
ततो भानुमतीं भानुर्ददौ माद्रीसुताय वै।
सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वचः स्मरन्७६
आनीतः सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना।
विवाहे च तदा वृत्ते सभार्यः स पुरीं गतः ७७
इमं कृष्णस्य विजयं यः पठेच्छृणुयादथ।
विजयं सर्वकृत्येषु श्रद्दधानो लभेन्नरः॥ ७८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे निकुम्भवधो नाम नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

---

विदितः। कर्तरि क्तः। वेतीत्यर्थः॥ ५३॥ ननाश अदृश्यमभूत्॥ ५४॥ मन्युं कन्यापहारजं दैन्यम्॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

---

१ ख. °स्ते तदा वीर क्षि°। २ ख. °वानत्र द°। ३ ख. °नदः। ४ ख. °लां द्रुतव°। ५ ख. °प्स्यते। ब°। ६ ख. °र्यः स्वपुरं ग°।

# वज्रनाभवधवृत्तान्तः ।

## ९१

जनमेजय उवाच ।

भानुमत्यापहरणं विजयं केशवस्य च+ ॥ १
क्रीडां च सागरे दिव्यां वृष्णीनामतितेजसाम् ।
अश्रौषं परमाश्चर्यं मुने धर्मभृतां वर ॥ २
वज्रनाभवधं युक्तं निकुम्भवधकीर्तने ।
तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद्भवतो मुने ॥ ३

वैशम्पायन उवाच ।

हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप ।
विजयं चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत ॥ ४
मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः ।
वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चितः समितिंजयः ।
तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः ॥ ६
अवध्यत्वं[1] स देवेभ्यो वव्रे दानवसत्तमः ।
पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ७
स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत ।
अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥ ८
शाखानगरमुख्यानां संवाहानां शतानि च ।
नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥ ९
तथा तदभवत्तस्य वरदानेन भारत ।
उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः ॥ १०
कोटिशो वरलब्धं तमसुराः परिवार्य ते ।
ऊषुर्वज्रपुरे राजन्संवाहेषु तथैव च ॥ ११
शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप ।
हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रवः ॥ १२
वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पितः ।
पुरेऽस्य[2] चात्मनश्चैव जगद्बाधितुमुद्यतः ॥ १३
महेन्द्रमब्रवीद्गत्वा देवलोकं विशाम्पते ।
अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्यं पाकशासन ॥
अथवा मे प्रयच्छस्व
युद्धं देवगणेश्वर ।
सामान्यं हि जगत्कृत्स्नं
काश्यपानां महात्मनाम् ॥ १५
स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वरः ।
वज्रनाभं सुरश्रेष्ठः प्रोवाच कुरुवंशज ॥ १६
सत्रेषु[3] दीक्षितः सौम्य कश्यपो नः पिता मुनिः
तस्मिन्वृत्ते यथा न्याय्यं तथा स हि करिष्यति
ततः स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत्
यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यपः ॥ १८
सत्रे वृत्ते करिष्यामि यथान्याय्यं भविष्यति ।
त्वं तु वज्रपुरे पुत्र वस गच्छ समाश्रितः[4] १९
एवमुक्ते वज्रनाभः स्वमेव नगरं गतः ।
महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारशालिनीम्
गत्वा चान्तर्हितो देवो वासुदेवमथाब्रवीत् ।
वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दनः ॥ २१
शौरेरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतुः ।
तस्मिन्वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वासव ॥
तत्रोपायं प्रवेशे तु चिन्तयावः सतां गतेः ।
नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो
ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृतः ।
वाजिमेधे च संप्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥ २४
तस्मिन्यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ ।
चिन्तयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ २५
तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा ।
महर्षींस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥ २६
तं वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवत् ।
स वव्रे तु नटो भद्रो वरं देवेश्वरोपमः ॥ २७

९१

भानुमत्यापहरणमिति ॥ १ ॥ शाखानगरं चतुर्दिक्षु संवाहानां सप्राकाराणामुद्यानानाम् ॥ ९ ॥ वरलब्धं लब्धवरम् ॥ ११ ॥ ईशितुं पालितुं त्वं त्वधुना स्वर्गराज्यं त्यजेति भावः ॥ १४ ॥ काश्यपानां देवानाम् अदेवानां च १५ न्याय्यं न्यायादनपेतम् ॥ १७ ॥ शौरेः वसुदेवस्य ॥ २२ ॥ सतां गतेः ब्रह्मकृतमर्यादाया असङ्गः सतां मार्गः । अतोऽसुरेच्छयैव तत्र प्रवेशो लभ्यते न बलादित्यर्थः ॥ २३ ॥ तत्र वसुदेवयज्ञे नाट्येन नृत्येन ॥ २६ ॥

+ इत उत्तरं कालिक्यानयनं चैव देवलोकान्महामुने इत्याधिकं पद्यार्धं खपुस्तके । १ ख. 'वध्यतां स दे' । २ ख. पुरस्य चा० । ३ ख. सत्रे स दी० । ४ ख. ०माहितः । ए० ।

देवेन्द्रकृष्णच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदितः ।
प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान् ॥ २८
नट उवाच ।
भोज्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिसत्तमाः
सप्तद्वीपां च पृथिवीं विचरेयमिमामहम् ॥ २९
प्रसिद्धाकाशगमनः शक्नुवंश्च विशेषतः ।
अवध्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जङ्गमाः
यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमहं खलु ।
मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा
स, तूर्यस्तादृशः स्यां वै जरारोगविवर्जितः ।
तुष्येयुर्मुनयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥ ३२
एवमस्त्विति संप्रोक्तो ब्राह्मणैर्नृपते नटः ।
सप्तद्वीपां वसुमतीं पर्यटत्यमरोपमः ॥ ३३
पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तरांश्च कुरूंस्तथा ।
भद्राश्वान्केतुमालांश्च कालाम्रद्वीपमेव च ३४
पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारकां यदुमण्डिताम् ।
आयाति वरदत्तः स लोकवीरो महानटः ३५
ततो हंसान्धार्तराष्ट्रान्देवलोकनिवासिनः
उवाच भगवाञ्शक्रः सान्त्वयित्वा सुरेश्वरः
भवन्तो भ्रातरोऽस्माकं काश्यपा देवपक्षिणः
विमानवाहा देवानां सुकृतीनां तथैव च ३७
देवानामस्ति कर्तव्यं कार्यं शत्रुवधान्वितम् ।
तत्कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेत्तव्यो वः कथञ्चन ॥
न कुर्वतां देवताज्ञामुग्रो दण्डः पतेदपि ।
सर्वत्राप्रतिषिद्धं वो गमनं हंससत्तमाः ॥ ३९
गत्वाऽप्रवेश्यमन्येषां वज्रनाभपुरोत्तमम् ।
इतोऽन्तःपुरवापीषु चरध्वमुचितं हि वः ॥ ४०
तस्यास्ति कन्यारत्नं हि
त्रैलोक्यातिशयं शुभम् ।
नाम्ना प्रभावती नाम
चन्द्राभेव प्रभावती ॥ ४१
वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरानना ।
हैमवत्या महादेव्याः सकाशादिति नः श्रुतम्
स्वयंवरा च सा कन्या बन्धुभिः स्थापिता सती
आत्मेच्छया पतिं हंसा वरयिष्यति शोभना
तद्भवद्भिर्गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः ।
सद्भूताः कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा
यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती ।
तस्याः सकाशात्संदेशो नयितव्यः समाधिना
प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्वं तथैव च ।
स्वबुद्ध्या प्राप्तकालं च संविधेयं हितं मम ४६
नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा ॥ ४७
तथा तथा गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः
यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत्स्थिरम्
वृत्तान्तश्चानुदिवसं प्रदेयो मम सर्वथा ।
द्वारवत्यां च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयसः ४९
तावद्यत्नश्च कर्तव्यः प्रद्युम्नो यावदात्मवित् ।
पर्यावर्तेद्वरारोहां वज्रनाभसुतां विभुः ॥ ५०
अवध्यास्ते तु देवानां ब्रह्मणो वरदर्पिताः ।
देवपुत्रैर्हि हन्तव्याः प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि ॥ ५१
नटो दत्तवरस्तस्य वेषमास्थाय यादवाः ।
प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशनाः ५२
एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च सर्वमेव हि ।
प्राप्तकालं विधातव्यमस्माकं प्रियकाम्यया ॥
प्रवेशस्तत्र देवानां नास्ति हंसाः कथञ्चन ।
वज्रनाभेप्सिते तत्र प्रवेशः खलु सर्वथा ॥ ५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधे
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

देवेन्द्रादिभिरन्तःस्थैः प्रेरित इत्यर्थः ॥ २८ ॥ प्रकर्षेण सिद्धम् आकाशे गमनं यस्य सः तादृशः भवेयमिति शेषः । शक्नुवन् शक्तिमान् ॥ ३० ॥ भाव्येन भविष्येण रूपेण मया तु सद्य एवोत्पादितस्य वेषेण प्रवेष्टुं शक्नुयामित्यर्थः ॥३१॥ अप्रवेश्यमिति च्छेदः ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

१ ख. °कवीरम° । २ ख. °वा तु व° । ३ ख. °त्स्थिरम् । त्र° । ४ ख. °त्यां तु कृ° । १ ख. दैव° ।

## वज्रनाभपुरं प्रति प्रद्युम्नादीनां गमनम् ।

### ९२

वैशम्पायन उवाच ।

ते वासववचः श्रुत्वा हंसा वज्रपुरं ययुः ।
पूर्वोचितं हि गमनं तेषां तत्र जनाधिप ॥ १
ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिणः ·
पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनैः स्पर्शनक्षमैः ॥ २
ते वै नदन्तो मधुरं संस्कृतापूर्वभाषिणः ।
पूर्वमभ्यागतास्ते तु विस्मयं जनयन्ति हि ॥ ३
अन्तःपुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीषु ते नृप ।
दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिनः ॥ ४
आलपन्तः सुमधुरं धार्तराष्ट्रा जनेश्वर ।
स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिदं वचः ॥ ५
त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषिणः ।
यदैवेहोत्सवोऽस्माकं भवद्भिरवगम्यते ॥ ६
आगन्तव्यं जालपादाः स्वमिदं भवतां गृहम्
विस्रब्धं च प्रवेष्टव्यं त्रिविष्टपनिवासिभिः ७
ते तथोक्ताः शकुनयो वज्रनाभेन भारत ।
तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम् ८
चक्रुः परिचयं ते च देवकार्यव्यपेक्षया ।
मानुषालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः ९
वंशबद्धाः काश्यपानां सर्वकल्याणभागिनाम्
स्त्रियो रेमुर्विशेषेण शृण्वन्त्यः सङ्गताः कथाः
विचरन्तस्ततो हंसा ददृशुश्चारुहासिनीम् ।
प्रभावतीं वरारोहां वज्रनाभसुतां तदा ॥ ११
हंसाः परिचितां चक्रुस्तां ततश्चारुहासिनीम्
सखीं शुचिमुखीं चक्रे हंसीं राजसुता तदा
सा तां कदाचित्पप्रच्छ वज्रनाभसुतां सखीम्
विश्रम्भितां पृथक्सूक्तैराख्यानकशतैर्वराम् ॥
त्रैलोक्यसुन्दरीं वेद्मि त्वामहं हि प्रभावति
रूपशीलगुणैर्देवि किञ्चित्त्वां वक्तुमुत्सहे ॥ १४
व्यतिक्रामति ते भीरु यौवनं चारुहासिनि ।
यदतीतं पुनर्नैति गतं स्रोत इवाम्भसः ॥ १५
कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते ।
स्त्रीणां जगति कल्याणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥
स्वयंवरे च न्यस्ता त्वं पित्रा सर्वाङ्गशोभने ।
न च काञ्चिद्वरयसे देवासुरकुलोद्भवान् ॥ १७

व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि
प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे ।
रूपशौर्यगुणैर्युक्तान्
सदृशांस्त्वं कुलस्य हि ॥ १८

आगतान्नेच्छसे देवि सदृशान्कुलरूपयोः ।
इहैष्यति किमर्थं त्वां प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः १९
त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा ।
गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यति वा शुभे
देवेषु देवः सुश्रोणि दानवेषु च दानवः ।
मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्यः स महाबलः
यं सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि
आपीनानीव धेनूनां स्रोतांसि सरितामिव
न पूर्णचन्द्रेण मुखं नयने वा कुशेशयैः ।
उत्सहे नोपमातुं हि मृगेन्द्रेणाथ वा गतिम्
जगतः सारमुद्धृत्य पुत्रः स विहितः शुभे ।
कृत्वाऽनङ्गं वरे साङ्गं विष्णुना प्रभविष्णुना
हतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निबर्हितः ।
मायाश्च सर्वाः संप्राप्ता न च शीलं विनाशितम्
यान्यान्गुणान्पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यासि
प्रद्युम्ने त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥ २६
रुच्या वह्निप्रतीकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपमः ।
प्रभावती शुचिमुखीं त्वितीहोवाच भामिनी

---

९२

ते वासवेति ॥ १ ॥ संस्कृतापूर्वभाषिणः संस्कृतम् अपूर्वं भाषन्ते तथा ॥ ३ ॥ जालपादाः भो हंसाः ॥ ७ ॥ काश्यपानां दानवानाम् ॥ १० ॥ रतिः सुखम् ॥ १६ ॥ " रूपं स्वभावे सौन्दर्ये " इति मेदिनी " कुलं जनपदे गृहे " इति विश्वः ॥ १८ ॥ किमर्थमेष्यति तस्यात्रागमनं प्रसक्तमेव नास्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ अनङ्गं कामदेवं साङ्गं कृत्वा पुत्रो विहित इत्यन्वयः । निबर्हितः हतः ॥ २४ ॥ तेजसा प्रभावेण ॥ २७ ॥

---

१ ख. °पानां सुकृतीनां सुभा° । २ ख. °दृशोऽथ कु° । ३ ख. °मुखीमिति हो° ।

प्रभावत्युवाच ।

विष्णुर्मानुषलोकस्थः श्रुतः सुबहुशो मया।
पितुः कथयतः सौम्ये नारदस्य च धीमतः२८
शत्रुः किल स दैत्यानां वर्जनीयः सदाऽनघे
कुलानि किल दैत्यानां तेन दग्धानि मानिनि
प्रदीप्तेन रथांगेन शार्ङ्गेण गदया तथा ।
शाखानगरदेशेषु वसन्ति किल येऽसुराः॥३०
इत्येते दानवेन्द्रेण संदिश्यन्ते हि तं प्रति ।
मनोरथो हि सर्वासां स्त्रीणामेव शुचिस्मिते
भवेद्धि मे पतिकुलं श्रेष्ठं पितृकुलादिति ।
यदि नामाभ्युपायः स्यात्तस्येहागमनं प्रति ३२
महाननुग्रहो मे स्यात्कुलं स्यात्पावितं च मे ।
समर्थनां मे पृष्टा त्वं प्रयच्छ शुचिलापिनि ३३
प्रद्युम्नः स्याद्यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलोद्भवः
अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरिः॥ ३४
असुराणां स्त्रियो वृद्धाः कथयन्त्यो मया श्रुताः
प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ३५
यथा च तेन निहतो बलवान्कालशम्बरः ।
हृदि मे वर्तते नित्यं प्रद्युम्नः खलु सत्तमे ॥ ३६
हेतुः स नास्ति स्यात्तेन यथा मम समागमः ।
दासी तवाहं सख्यार्हे दूत्ये त्वां च विसर्जये
पण्डिताऽसि वदोपायं मम तस्य च सङ्गमे ।
ततस्तां सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत्

शुचिमुख्युवाच ।

तत्र दूती गमिष्यामि तवाहं चारुहासिनि।
इमां भक्तिं तवोदारां प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते
तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम्।
साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी
इति मे भाषितं नित्यं स्मरेथाः शुचिलोचने
कथाकुशलतां पित्रे कथयस्वायतेक्षणे॥ ४१
ममत्वं तत्र मे देवि हितं सम्यक्प्रपत्स्यसे ।
इत्युक्ता सा तथा चक्रे यत्तत्सा तामथाब्रवीत्
दानवेन्द्रश्च तां हंसीं पप्रच्छान्तःपुरे तदा।
प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव४३
तत्त्वं शुचिमुखि ब्रूहि कथां योग्यतया वरे ।
किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमपक्षिणि ॥ ४४
अदृष्टपूर्वमन्यैर्वा योग्यायोग्यमनिन्दिते ।
सोवाच वज्रनाभं तु हंसी वरनरोत्तम॥४५
श्रूयतामित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्रं महाद्युतिम् ।
दृष्टा मे शाण्डिली नाम साध्वी दानवसत्तम
आश्चर्यं कर्म कुर्वन्ती मेरुपार्श्वे मनस्विनी ४६
सुमनाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता ।
कथंचिद्दूरशाण्डिल्याः शैलपुत्र्याः शुभा सखी
नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरः शुभः ।
कामरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्यसंमतः
कुरूंश्चाप्युत्तरान्वीर कालाम्रद्वीपमेव च ।
भद्राश्वान्केतुमालांश्च द्वीपानन्यांस्तथानघ ४९
देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विविधानि च ।
स वेत्ति देवान्नृत्येन विस्मापयति सर्वथा ५०

वज्रनाभ उवाच ।

श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम्
चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम्
कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पक्षिनन्दिनि ।
नटे दत्तवरे तस्मिन्संस्तवस्तु न विद्यते॥५२

हंस्युवाच ।

सप्तद्वीपान्विचरति नटः स दितिजोत्तम।
गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा॥५३
तव चेच्छृणुयाद्वीर सद्भूतं गुणविस्तरम् ।
नटं तदागतं विद्धि पुरं तव महासुर॥ ५४

वज्रनाभ उवाच ।

उपायः सृजतां हंसि येनेह स नटः शुभे।
आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पक्षिनन्दिनि ५५
ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिताः।
देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशंसुः सर्वमेव तत् ५६
अधोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र कर्मणि ।
प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥ ५७
दैवीं मायां समाश्रित्य संविधाय हरिर्नटम्।
नटवेषेण भैमानां प्रेषयामास भारत॥ ५८

---

यमुद्दिश्य दानवेन्द्रेण असुराः संदिश्यन्ते तं बलवन्तं प्रति स्त्रीणां मनोरथः भवत्येव। काममूढत्वात् वैरिकुलेऽप्यनुरागो भवतीति भावः ॥३१॥ समर्थनां कार्यघटनोपायम् ॥३३॥ संस्तवः मदीया स्तुतिर्न विद्यते नटनिकटे येन श्रुतगुणो मामसौ उपेयादित्यर्थः। संस्तवः परिचयो वा ॥ ५२ ॥ नटं भद्राख्यस्य नटस्य वेषं भैमानां यादवानाम् ॥ ५८ ॥

---

१ ख. °यः किलान° । २ घ. समर्थानां वरिष्ठा त्वं प्र° । ३ ख. °तं सत्यं स° ।

प्रद्युम्नं नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम्
पारिपार्श्वे गदं वीरमन्यान्भैमांस्तथैव च ५९
वारमुख्या नटीः कृत्वा तत्तूर्यसदृशास्तदा ।
तथैव भद्रं भद्रस्य सहायांश्च तथाविधान् ६०
प्रद्युम्नविहितं रम्यं विमानं ते महारथाः ।
जग्मुरारुह्य कार्यार्थं देवानाममितौजसाम् ॥
एकैकस्य समा रूपे पुरुषाः पुरुषस्य ते ।
स्त्रीणां च सदृशाः सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिपाः
ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम् ।
जग्मुर्दानवसंकीर्णं सुपुरं नाम नामतः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभप्रद्युम्नोत्तरे प्रद्युम्नादिगमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

## वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नप्रवेशः ।

### ९३

वैशम्पायन उवाच ।
ततः स्वपुरवासीनामसुराणां नराधिप ।
ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् ॥ १
आतिथ्यं क्रियतामेषां बहुरत्नमुपायनम् ।
वासांसि सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम् २
भर्तुराज्ञां समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः ।
पूर्वाश्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत् ॥ ३
नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा ।
पर्यायार्थे ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ ॥ ४
ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा ।
स्वपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत् ॥ ५
रामायणं महाकाव्यमुद्देश्यं नाटकीकृतम् ।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥ ६
लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्गं महामुनिम् ।
शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ७
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत ।
ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथारूपैर्नटैः कृताः ८
तत्कालजीविनो वृद्धा दानवा विस्मयं गताः
आचचक्षुश्च तेषां वै रूपतुल्यत्वमच्युतम् ॥ ९
संस्काराभिनयौ तेषां प्रस्तावानां च धारणम्
दृष्ट्वा सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः १०
ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुराः परया मुदा ।
उत्थायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुनःपुनः ११
ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च ।
हारान्मनोहरांश्चैव हेमवैडूर्यभूषितान् ॥ १२
पृथगर्थेषु दत्तेषु लोकैस्ते तुष्टुवुर्नटाः ।
असुरांश्च मुनींश्चैव गोत्रैरभिजनैरपि ॥ १३
प्रेषितं वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभिः ।
नटस्य दिव्यरूपस्य नरेन्द्रागमनं तदा ॥ १४
पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्रः प्रेषयामास भारत ।
आनीयतां वज्रपुरं नटोऽसाविति हर्षितः१५
दानवेन्द्रवचः श्रुत्वा शाखानगरवासिभिः ।
नीता वज्रपुरं रम्यं नटवेषेण यादवाः ॥ १६
आवासश्च ततो दत्तः सुकृतो विश्वकर्मणा ।
पष्टव्यं यच्च तत्सर्वं दत्तं शतगुणोत्तरम् ॥ १७
अथ कालोत्सवं चक्रे वज्रनाभो महासुरः ।
कारयामास रम्यं च चमूवाटं प्रहृष्टवान्॥ १८

---

विदूषकम् उपहासकम् । पारिपार्श्वे इत्यनेन श्रुतिधरत्वं लक्ष्यं गदं श्रुतिधरं कृत्वेत्यर्थः ॥ ५९ ॥ वारमुख्या वेश्याः तत्तूर्यसदृशाः तदीयनृत्यगीतवादित्रसादृश्याः ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३

ततः पूर्वश्रुतो भद्रनामा नट एवात्र प्राप्त इति तेषां बुद्धिरभूदित्यर्थः ॥ ३ ॥ पर्यायार्थे वेषधारणार्थम् ॥ ४ ॥ वासीनां दैर्घ्यमार्षम् ॥ ५ ॥ अच्युत हे राजन् ॥ ९ ॥ संस्कारः वेषधारणम् अभिनयः क्रियादर्शनं प्रस्तावः क्रियाणां प्रसंजनं प्रवेशं पात्राणां प्रथमदर्शनम् ॥ १० ॥ विस्मयं सविस्मयं साश्चर्यम् ॥ ११ ॥ कालोत्सवं महाकालरुद्रस्योत्सवं चक्रे नटद्वारा चमूवाटं सैनिकाह्वानं प्रेक्षणार्थम् ॥ १८ ॥

---

१ ख. °शाः सर्वे सर्वरूपैर्नराधिप । ते व° । २ ख. °तः सुपु° । ३ ख. पूर्वश्रु° । ४ ख. °दा । सपर्यार्थे द° । ५ ख. °न्तामानययामा° । ६ ख. °टैः कृतैः । त° । ७ ख. °त्येशः प्रे° । ८ ख. °ष्टवत् ।

ततस्तान्परिविश्रान्तान्प्रेक्षार्थाय प्रचोदयत्।
दत्त्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबलः॥
उपविष्टश्च तान्द्रष्टुं सह ज्ञातिभिरात्मवान्।
छन्ने चान्तःपुरं स्थाप्य चक्षुर्दृश्ये नराधिपः२०
भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा।
कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः॥ २१
ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम्।
तन्त्रीस्वरगणैर्विद्धानातोद्यानन्ववादयन्॥ २२
ततस्तु देवगान्धारं छालिक्यं श्रवणामृतम्।
भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनःश्रोत्रसुखावहम्॥ २३
आगान्धारग्रामरागं गङ्गावतरणं तथा।
विद्धमासारितं रम्यं जगिरे स्वरसम्पदा २४
लयतालसमं श्रुत्वा गङ्गावतरणं शुभम्।
असुरांस्तोषयामास उत्थायोत्थाय भारत २५
नान्दिं च वादयामास प्रद्युम्नो गद एव च।
साम्बश्च वीर्यसम्पन्नः कार्यार्थे नटतां गतः॥
नान्द्यन्ते च तदा श्लोकं
गङ्गावतरणाश्रितम्।
रौक्मिणेयस्तदोवाच
सम्यक्स्वभिनयान्वितम्॥ २७
रम्भाभिसारं कौबेरं नाटकं ननृतुस्ततः।
शूरो रावणरूपेण रम्भावेषं मनोवती॥ २८
नलकूबरस्तु प्रद्युम्नः साम्बस्तस्य विदूषकः।
कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः २९
शापश्च दत्तः क्रुद्धेन
रावणस्य दुरात्मनः।
नलकूबरेण च यथा
रम्भा चाप्यथ सान्त्विता॥ ३०
एतत्प्रकरणं वीरा ननृतुर्यदुनन्दनाः।
नारदस्य मुनेः कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः ३१
पादोद्धारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च।
तुष्टुवुर्दानवा वीरा भैमानाममितौजसाम् ३२
ते ददुर्वस्त्रमुख्यानि रत्नान्याभरणानि च।
हारांस्तरलविद्धांश्च वैडूर्यमणिभूषितान् ३३
विमानानि विचित्राणि रथांश्चाकाशगामिनः
गजानाकाशगांश्चैव दिव्यनागकुलोद्भवान्॥
चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च
गुरूण्यगुरुमुख्यानि गन्धाढ्यानि च भारत ३५
चिन्तामणीनुदारांश्च चिन्तिते सर्वकामदान्
प्रेक्षासु तासु बह्वीषु ददन्तो दानवास्तथा॥३६
धनरत्नैर्विरहिताः कृताः पुरुषसत्तम।
स्त्रियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेश्वर॥३७
ततो हंसी प्रभावत्याः सखी प्राह प्रभावतीम्
गताऽस्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिन्दिते
प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने।
भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते
तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने।
अद्य प्रदोषसमये त्वया सह समागमे॥ ४०

छन्ने जालजवनिकापिहितस्थाने अत एव चक्षुर्दृश्ये चक्षुःसंनिहितं दृश्यं नाट्यं यत्र तत्तथाभूते॥ २०॥ भैमा अपीति सन्धिरार्षः॥ २१॥ घनं कांस्यतालादिकं ससुषिरं सच्छिद्रं वेणुप्रभृतिकं मुरजा मर्दलाः आनकः पटहः तन्त्रीति रुद्रवीणादिकानामुपलक्षणम् एवमादीनातोद्यान् वाद्यविशेषान्॥ २२॥ भैमस्त्रियः भैमैरानीता वारनार्यः॥ २३॥ आगान्धारामिति। निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताख्यान् सप्त स्वरान् व्याप्य ग्रामः कतिपयस्वरसंघः। ते च त्रयः। रागो वसन्तादिः। साकल्येन गान्धारादयो यत्र तत् गङ्गावतरणं नाम गीतविशेषविद्धं रागान्तरमिश्रम् आसारितं मूर्च्छितं जगिरे गीतं कृतवत्या॥ २४॥ नान्दिं नन्दिकेश्वरमुखं चर्मकोशमयं वाद्यविशेषम्। द्वादशपटहशब्दो नान्दिरित्यन्ये नान्दीमिति पाठे नान्दीं देवद्विजादीनां शुभशंसिनीम् अष्टभिर्दशभिर्वा अवान्तरवाक्ययुक्तां पूर्वरङ्गप्रधानां वाक्यावलिं वादयामास पपाठेति केचित्॥ २६॥ नान्द्यन्ते मङ्गलपद्यपाठान्ते २७ कूबरो नलकूबरः तत्संबन्धिनं कौबेरं मनोवती नाम काचिद्वाराङ्गना॥ २८॥ रूपितः कल्पितः॥ २९॥ नृत्येन रावणशापजाह्लादप्रवृत्तेन॥ ३२॥ तरलो वर्तुलो मणिः॥ ३३॥ समागमे कालः कृत इति सबन्धः॥ ४०॥

१ ख. °हासुरः उ°। २ ख. °रं स्वाप्य च°। ३ ख. °श्ये जनाधिप। भै°। ४ ख. °त्रीं स्वरगुणैर्विद्धामातो°। ५ ख. °न्धारे ग्रामरागे ग°। ६ ख. °णं तदा। बि°। ७ ख. °सुरान्रामया°। ८ ख. °मासुरुत्था°। ९ ख. °रो वारणरूपे°। १० ख. °न वारण°। ११ ख. °बरेणाथ यथा रम्भा वाप्य°। १२ ख. °चनः। भ°। १३ ख. °मागमः। तद°।

तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः ।
न ह्यात्मवार्ता भाषन्ति मिथ्या भैमकुलोद्भवाः
ततः प्रभावती दृष्ट्वा हंसीं तामिदमब्रवीत् ।
उषिताऽसि ममाऽऽवासे स्वप्तुमर्हसि सुन्दरि
त्वयाऽहं सहितावासे द्रष्टुमिच्छामि केशविम्
निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे
हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम् ।
आरुरोह च तद्धर्म्यं प्रभावत्या विहङ्गमा ४४
विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभावती ।
संविधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम् ॥ ४५
तस्मिन्कृते संविधाने काममानयितुं ययौ ।
प्रभावतीमनुज्ञाप्य हंसी वायुसमा गतौ ॥४६
नटवेषधरं कामं गत्वोवाच शुचिस्मिता ।
अद्य भूतः स भगवन्समयो वर्तते निशि ॥
तथेति प्राह तां कामः सा निवृत्ताऽथ पक्षिणी*
[1]अभ्यागता च सा हंसी प्रभावतिमथाब्रवीत्
अभ्येति रौक्मिणेयोऽसावाश्वसा[2]यतलोचने
प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददृशे माल्यमात्मवान् ।
भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः ॥ ४९
निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा ।
प्रभावत्या नीयमाने विदितार्थः प्रतापवान् ५०
प्रवेशितं च तन्माल्यं स्त्रीभिर्मधुकरायुतम् ।
उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद्भ्रमरावृतम् ५१

अविदूरे च विन्यस्तं प्रभावत्या जनाधिप ।
भ्रमरास्ते ययुः सौम्य सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते
स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैर्विहीनतः ।
कर्णोत्पले प्रभावत्या निलिल्ये शनकैरिव ५३
ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदतां वरा ।
उद्यन्तं[3] पूर्णचन्द्रं सा समीक्ष्यातिमनोहरम् ॥५४
सखि दह्यन्ति[4] मेऽङ्गानि मुखं च परिशुष्यति ।
औत्सुक्यं हृदि चातीव कोऽयं व्याधिरनौषधः
दधद्द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णनिशाकरः ।
नवोदितः शीतरश्मिः[5] सख्यं हरति च प्रियः
न दृष्टपूर्वो हि मया श्रुतमात्रेण काङ्क्षितः ।
अहो भ्रमयतेऽङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक्खलु
कल्पयामि यथा बुद्ध्या यदि नाभ्येति मे प्रियः
कुमुद्वतीगतं मार्गं हा गमिष्याम्यकिंचना ।
मदनाशीविषेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी
शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो[6] ह्लादनाः शुभाः ।
दहन्ति मम गात्राणि किं नु चन्द्रगभस्तयः ५९
प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुष्परजोवहः ।
दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम्
ततः[7] संकल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवात्मनः ।
नावतिष्ठति निर्वीर्यं मनः संकल्पधर्षितम् ६१
विमनस्काऽस्मि मुह्यामि वेपथुर्मे महान्हृदि ।
बभ्रमीति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुवं क्षयम् ६२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नगमने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

## प्रभावतीपाणिग्रहणम् ।

## ९४

वैशम्पायन उवाच ।
आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु । कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह

आत्मवति आत्मभक्ते ॥ ४१ ॥ संविधानं सङ्केतम् ॥४५॥ कामं प्रद्युम्नं गतौ गत्याम् ॥ ४६ ॥ आश्वसेति च्छेदः ॥४८॥ प्रभावत्या प्रभावत्यर्थे नीयमाने माल्ये ॥ ५० ॥ प्रियोऽपि सख्यं हरति अप्रियवद्भवतीत्यर्थः ॥ ५६ ॥ कुमुद्वतीगतं मार्गं जीवत्येव भर्तरि यौवने मरणम् ॥ ५८ ॥ कल्पये एव कल्पयाम्येव आत्मनो मनसः स्थैर्थं कार्यमित्येतमर्थं कल्पये न तु सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४

आविष्टेयमिति ॥ १ ॥

* नटवेषधरामित्यादि पक्षिणीत्यन्तं श्लोकार्धत्रयं खपुस्तके नास्ति । १ ख. सा गत्वाभ्यागता हंसी प्र० । २ घ. ०वाश्वायतविलोचने । प्र० आश्विति छेदः । ३ ख. उद्यच्छन्तं पू० । ४ ख. ०ह्यन्ति मेऽङ्गा० । ५ ख. ०श्मिः संविहारो ह्यतिप्रि० । ६ ख. ०गतो ह्ला० । ७ ख. तद्वत्संकल्पयत्येतत् स्थै० ।

दैत्येन्द्रतनयां प्राप्तमवगच्छस्व मामिह ।
षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि
विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्टं मयि वर्तताम्
इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः ३
तद्धर्म्यपृष्ठं प्रभया द्योतितं तस्य धीमतः ।
अभिभूता प्रभा चैव राजंश्चन्द्रोद्भवा शुभा ४
प्रभावत्यास्तु तं दृष्ट्वा ववृधे कामसागरः ।
चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्यां सरितां पतिः ॥५
सलज्जाधोमुखी किञ्चित्किञ्चित्तिर्यगवेक्षिणी
प्रभावती तदा तस्थौ निश्चलं कमलेक्षणा ॥६
करेणाधःप्रदेशे तां चारुभूषणभूषिताम् ।
स्पृष्ट्वोवाच वरारोहां रोमाञ्चिततनुंस्ततः ॥ ७
मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् ।
अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां किञ्चित्प्रभाषसे
प्रभोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने ।
साध्वसं त्यज्यतां भीरु दासः साध्वनुगृह्यतां
न कालमित्र पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज ।
याचाम्येषोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकालं निबोध मे
गान्धर्वेण विवाहेन कुरुष्वानुग्रहं मम ।
देशकालानुरूपेण रूपेणाप्रतिमा सती ॥ ११
उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्थं जातवेदसम्
जुहाव समये वीरः पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन् ॥ १२
जग्राहाथ करं तस्या वराभरणभूषितम् ।
चक्रे प्रदक्षिणं चैव तं मणिस्थं हुताशनम् ॥१३
प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम् ।
भगवाञ्जगतः साक्षी शुभस्याथाशुभस्य च१४
उद्दिश्य दक्षिणां वीरो विप्राणां यदुनन्दनः ।
उवाच हंसीं द्वारस्थां तिष्ठावां रक्ष पक्षिणि ॥
तस्यां प्रणम्य यातायां
कामस्तां चारुलोचनाम् ।
ग्रहाय दक्षिणे हस्ते
निनाय शयनोत्तमम् ॥ १६
ऊरावेवोपवेश्यानां सान्त्वयित्वा पुनःपुनः
चुचुम्ब शनकैर्गण्डं वासयन्मुखमारुतैः ॥ १७
ततोऽस्याश्च पपौ वक्त्रपद्मं मधुकरो यथा ।
आलिलिङ्गे च सुश्रोणीं क्रमेण रतिकोविदः ॥
अरामयद्रहस्येनां न चोद्विजितवांस्तदा ।
अपकृष्टं चरत्यर्थं रतिकार्यविशारदः ।
उवास स तया सार्द्धं रमन्कृष्णसुतः प्रभुः १९
अरुणोदयकाले च ययौ यत्र नटालयम् ।
अकामया प्रभावत्या कथञ्चित्स विसर्जितः ॥
तामेव मनसा कान्तां कान्तरूपां समुद्वहन् ।
त ऊषुर्नटवेषेण कार्यार्थं भैमवंशजाः ॥ २१
प्रतीक्षन्तस्तदा वाक्यमिन्द्रकेशवयोस्तदा ।
उद्योगं वज्रनाभस्य त्रैलोक्यविजयं प्रति २२
प्रतीक्षन्तो महात्मानो गुह्यसंरक्षणे रताः ।
कश्यपस्य मुनेः सत्रं यावत्तावन्नराधिप ॥२३
देवासुराणां सर्वेषामविरोधो महात्मनाम् ।
त्रैलोक्यविजयार्थाय यततां धर्मचारिणाम् २४
एवं कालं प्रतीक्षाणां वसतां तत्र धीमताम् ।
संप्राप्तः प्रावृषो रम्यः सर्वभूतमनोहरः ॥ २५
अहर्निशं च वृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनोजवाः ।
शक्रकेशवयोर्हंसाः कुमाराणां महात्मनाम् ॥
रेमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया ।
रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः ॥
तैर्हि वज्रपुरं हंसैर्वसद्भिर्वासवाज्ञया ।
ख्यातं नृप नटांस्तांस्तु न विदुः कालमोहिताः
दिवाऽपि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये ।
तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हंससङ्घाभिरक्षितः
माययाऽस्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये
देहार्धेन तु कौरव्य सिषेवेऽसौ प्रभावतीम् ॥
सन्नतिं विनयं शीलं लीलां दाक्ष्यमथार्जवम् ।
स्पृहयन्त्यसुरा दृष्ट्वा विवृत्तां च महात्मनाम्
रूपं विलासं गन्धं च मञ्जुभाषामथार्यताम् ।
तासां यादवनारीणां स्पृहयन्त्यसुरस्त्रियः ३२
वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुतः ।
दुहितृद्वयं च नृपतेस्तस्य रूपगुणान्वितम् ३३

---

अवगच्छस्व ज्ञापय । माल्ये । निलीय प्राप्तं माम् ॥ २ ॥ आवां दम्पती ॥ १५ ॥ अपकृष्टम् अर्थे चरति नवोढत्वादिति भावः ॥ १९ ॥ महात्मनां नटानाम् ॥ ३१ ॥

---

१ ख. °य तु । वि° । २ ख. °षिते । स्पृ° । ३ ख. °नुस्ततनुम् । म° । ४ ख. °णानुत्तमा स° । ५ ख. आप कृत्स्नं च रत्यर्थं र° । ६ ख. °य जपतां ध° । ७ ख. नटांस्तांश्च न वि° । ८ ख. मृजां भा° । ९ ख. °पते तस्य रू° ।

एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा।
प्रभावत्यालयं ते तु व्रजतः खलु नित्यदा ३४
ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्तां प्रभावतीम्।
परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगतां सतीम् ॥३५
सोवाच मम विद्याऽस्ति
याऽधीता काङ्क्षितं पतिम्।
रत्यर्थं सानयत्याशु
सौभाग्यं च प्रयच्छति ॥ ३६
देवं वा दानवं वापि विवशं सद्य एव हि।
साऽहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ३७
दृश्यतां मत्प्रभावेण प्रद्युम्नः सुप्रियो मम।
ते दृष्ट्वा विस्मयं याते रूपयौवनसम्पदम् ॥ ३८
पुनरेवाब्रवीत्ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी।
प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वचः ॥३९
देवा धर्मरता नित्यं दम्भशीला महासुराः।
देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुराः ॥
देवाः सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुराः।
धर्मस्तपश्च सत्यं च यत्र तत्र जयो ध्रुवम् ४१
देवपुत्रो वरयतां पतिर्विद्यां ददाम्यहम्।
उचितौ मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथः ४२
तां तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यौ चारुलोचनाम्।
परिपप्रच्छ भैमं च कार्यं तत्पतिमानिनी ४३
स पितृव्यं गदं वीरं साम्बं चाथाब्रवीत्तदा।
रूपान्वितौ सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि ॥

प्रभावत्युवाच।

परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा।
परितुष्टेन सौभाग्यं सदा कन्यात्वमेव च ॥४५
देवदानवयक्षाणां यं ध्यास्यसि स ते पतिः।
भवितेति मया चैव वीरोऽयमभिकाङ्क्षितः
गृह्णीतं तदिमां विद्यां सद्यो वां प्रियसङ्गमः।
ततो जगृहतुर्हृष्टे तां विद्यां भगिनीमुखात् ४७
दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्यामभ्यस्य ते शुभे।
तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ॥४८
प्रच्छन्नौ मायया वीरौ
कार्ष्णिना मायिना नृप।
गान्धर्वेण विवाहेन
तावप्यरिबलार्दनौ ॥ ४९
पाणिं जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ।
चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च केशविः
रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः।
मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा ५१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रभावतीपाणिग्रहणे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## प्रद्युम्नभाषणम्।

## ९५

वैशम्पायन उवाच।

नभो नभस्येऽथ निरीक्ष्य मासि
कामस्तदा तोयदवृन्दकीर्णम्।
प्रभावतीं चारुविशालनेत्रा-
मुवाच पूर्णेन्दुनिकाशवक्त्रः ॥ १
तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो
न दृश्यते सुन्दरि चारुबिम्बः।
त्वत्केशपाशप्रतिमैर्निरुद्धो
बलाहकैश्चारुनिरन्तरोरु ॥ २
संदृश्यते सुभ्रु तडिद्घनस्था
त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव।
मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्त-
स्त्वद्धारयष्टेः सदृशा वराङ्गि ॥ ३

---

भैमं प्रद्युम्नं कार्यं कर्तव्यं तस्यानयनं कर्तव्यमित्येवं रूपम्। तत्पतिमानिनी तं पतिं मन्यते तथा ॥ ४३ ॥ दध्यतुः ध्यातवत्यौ ॥ ४८ ॥ कार्ष्णिना प्रद्युम्नोक्तया मायया प्रच्छन्नं यथा स्यात्तथा प्रविष्टौ ॥ ४९ ॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

९५

नभो नभस्य इति ॥ १ ॥ सदृशाः धाराः ॥ ३ ॥

---

१ ख. °त्या तु कै°।

घनप्रदेशेषु बलाकपङ्क्तय-
स्त्वद्दन्तपङ्क्तिप्रतिमा विभान्ति।
निमग्नपद्मानि[1] सरित्सु सुभ्रु
न भान्ति तोयानि रयाकुलानि ॥ ४
अमी घना वायुवशोपयाता
बलाकमालामलचारुदन्ताः।
अन्योन्यमभ्याहनितुं प्रवृत्ता
वनेषु नागा इव शुक्लदन्ताः ॥ ५
धनुस्त्रिवर्णं वरगात्रि पश्य
कृतं तवापाङ्गमिवाननस्थम्।
विभूषयन्तं गगनं घनाश्च
प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते ॥ ६
घनात्तदन्तः प्रतिनर्दमाना-
न्निरीक्ष्य सुश्रोणि शिखीन्प्रहृष्टान्।
समादृतानुद्धतपिच्छभारा-
न्प्रियाभिरामानुपनृत्यमानान् ॥ ७
हर्म्येषु चान्ये शशिपाण्डुरेषु
राजन्ति सुश्रोणि मयूरसङ्घाः।
मुहूर्तशोभामतिचारुरूपां
दत्त्वा पतन्तो वलभीपुटेषु ॥ ८
प्रक्लिन्नपक्षास्तरुमस्तकेषु
मुहूर्तचूडामणितां विधाय।
प्रयान्ति भूमिं नवशाद्वलाना-
माशङ्कमाना धृतचारुदेहाः ॥ ९
प्रवाति धारान्तरनिःसृतश्च
सुखोऽनिलश्चन्दनपङ्कशीतः।
कदम्बसर्जार्जुनपुष्पभूतं
समावहन्गन्धमनङ्गबन्धुम् ॥ १०
रतिश्रमस्वेदविनाशहेतु-
र्नवोदभारानयने च हेतुः।
न मारुतः स्याद्यदि चारुगात्रि
न मेघकालो मम वल्लभः स्यात् ॥ ११
एवंविधेषु प्रियसङ्गमेषु
रतावसाने यदुपैति वायुः।
रतिश्रमस्वेदहरः सुगन्धी
ततः परं किं सुखमस्ति लोके ॥ १२
जलाप्लुतानीक्ष्य महानदीनां
सुगात्रि हंसाः पुलिनानि हृष्टाः।
गताः श्रमं मानसवासलुब्धाः
ससारसाः क्रौञ्चगुणानुविद्धाः ॥ १३
न भान्ति नद्यो न सरांसि चैव
हतत्विषीवायतचारुनेत्रे।
गतेषु हंसेष्वथ सारसेषु
रथाङ्गतुल्याह्वयनेषु चैव ॥ १४
भोगैकदेशेन शुभं शयानं
ध्रुवं जगन्नाथमुपेन्द्रमीशम्।
निद्राभ्युपेता वरकालतज्ज्ञा
श्रियं प्रणम्योत्तरचारुरूपाम् ॥ १५
निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे
मेघाम्बराक्रान्तनिशाकरोऽद्य।
पद्मामलाभः कमलायताक्षि
कृष्णस्य वक्त्रानुकृतिं करोति ॥ १६
कदम्बनीपार्जुनकेतकानां
स्रजो ध्रुवं कृष्णमुपानयन्ति।
पुष्पाणि चान्यान्यृतवः समस्ताः
कृष्णात्प्रसादानभिकाङ्क्षमाणाः ॥ १७
नागाश्चरन्तो विषदिग्धवक्त्राः
स्पृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपान्यान्।
पेपीयमानान्भ्रमरैर्जनानां
कौतूहलं ते जनयन्त्यतीव ॥ १८

शिखीन् शिखिनः मयूरान्। समादृतान्नृत्ये एवादरयुक्तान् ॥ ७ ॥ आशङ्कमानाः शाद्वलभूमौ सारूप्यादनातिसादृश्यत्वात् सन्ति न सन्तीति शङ्कमाना इत्यर्थः ॥ ९ ॥ पङ्क इव शीतः पुष्पेभ्यो भूतम् ॥ १० ॥ गताः श्रमं मानसे वासार्थं श्राम्यन्तो हंसा यत्र हृष्टाः तेन मानसादप्यस्य स्थानस्याधिक्यमुक्तम्। ईक्ष्य वीक्ष्य ॥ १३ ॥ हतत्विषीव हतशोभे इव उपलक्षणमेतत्। नद्यादीनां नद्योऽपि हतत्विष इत्यर्थः। अथ प्रावृषि इतोऽन्यत्रेति शेषः ॥ १४ ॥ भोगैकदेशेन सर्पैकपार्श्वेन उपलक्षितं सप्तम्यथवा तृतीया। निद्रा श्रियं प्रणम्य ईशम् उपेता। भगवति निद्राति श्रीर्जागर्तीत्यर्थः। वरकालतज्ज्ञा प्रावृषं हरिं च जानाना ॥ १५ ॥ ध्रुवं सर्वदा स्रवन्ति ऋतवः सर्वे इति शेषः ॥ १७ ॥ **नागा इति**। भ्रमरैः पेपीयमानान् वृक्षादीन् सुकुमारतरान् विषवक्त्राः स्पृशन्तोऽपि ग्लानिं नयन्तीत्याश्चर्यमितिभावः ॥ १८ ॥

[1] ख. °नि सरःसु सु° ।

तोयातिभाराम्बुदवृन्दनद्धं
नभः पतिष्यन्तमिवाभिवीक्ष्य ।
निपानगम्भीरमभिन्नवृष्टं
मनोहरं चारुमुखस्तनोरु ॥ १९

बलाकमालाकुलमाल्यदाम्ना
निरीक्ष्य रम्यं घनवृन्दमेतत् ।
सस्यानि भूमावभिवर्षमाणं
जगद्धितार्थं विमलाङ्गयष्टे ॥ २०

जलावलम्बाम्बुदवृन्दकर्षी
घनैर्घनान्योधयतीव वायुः ।
प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्था-
न्गजान्गजैः स्वैरिव वीर्यदृप्तान् ॥२१

अभौममम्भो विसृजन्ति मेघाः
पूतं पवित्रं पवनैः सुगन्धि ।
हर्षावहं चातकबर्हिणानां
वराण्डजानां जलदप्रियाणाम् ॥ २२

प्लवङ्गमः षोडशपक्षशायी
विरौति गोष्ठः सह कामिनीभिः ।
ऋचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा
यथा सुशिष्यैः परिवार्यमाणः ॥ २३

गुणो महांस्तोयदकालजोऽय-
मबुद्धमेघस्वनभीषितानाम्[1] ।
परिष्वजन्तः परिवर्द्धयन्ति
विनाऽपि शय्यासमयं प्रियाणाम् २४

दोषोऽयमेकः सलिलागमस्य
मां प्रत्युदारान्वयवर्णशीले ।
न दृश्यते यत्तव वक्त्रतुल्यो
घनग्रहग्रस्ततनुः शशाङ्कः ॥ २५

प्रदृश्यते भीरु यदा शशाङ्को
घनान्तरस्थो जगतः प्रदीपः ।
तदाऽनुपश्यन्ति जनाः प्रहृष्टा
बन्धुं प्रवासादिव सन्निवृत्तम् ॥ २६

विलापसाक्षी प्रियहीनितानां
संदृश्यते भीरु यदा शशाङ्कः ।
नेत्रोत्सवः प्रोषितकामुकानां
दृष्ट्वैव कान्तं भवतीत्यवैमि ॥ २७

नेत्रोत्सवः कान्तसमागतानां
दावाग्नितुल्यः प्रियहीनितानाम् ।
तेनैव देहेन वराङ्गनानां
चन्द्रोऽपि तावत्प्रियविप्रियश्च ॥ २८

विनाऽपि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते
यतः प्रभा चन्द्रगभस्तिगौरी[2] ।
गुणागुणांश्चन्द्रमसो[3] न वेद्मि
यतस्ततोऽहं प्रशशंसयिष्ये ॥ २९

अवाप यो ब्राह्मणराज्यमीड्यो
दुरापमन्यैः सुकृतैस्तपोभिः ।
गायन्ति विप्राः पवमानसंज्ञं
समागताः पर्वाणि चाप्युदारम् ॥ ३०

पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मा
पुरूरवा यस्य सुतो नृदेवः ।
प्राणाग्निरीड्योऽग्निमजीजनद्यो
नष्टं शमीगर्भभवं भवात्मा ॥ ३१

---

तव चारुमुखस्तनोरु कर्तृ नभः वीक्ष्य अभिन्नवृष्टं कामोद्रेकात् स्विन्नमभूदिति शेषः । पतिष्यन्तमिति पुंस्त्वमार्षम् ॥ १९ ॥ बलाकानां मालेव आकुलं निबिडं माल्यदामेव तेन ॥ २० ॥ प्रवृत्तचक्रः चक्रम् आज्ञा ॥ २१ ॥ पूतं निर्मलम् अत एव प्रावित्रं शोधकम् ॥ २२ ॥ प्लवङ्गमो भेकः गृहारम्भासमर्थः । वार्षिकेषु अष्टसु पक्षेषु गोष्ठो गोव्रजस्तद्वत् वृष्ट्यार्तः सन् विरौति । रावे दृष्टान्तः—**ऋचो द्विजातिरिति** ॥२३॥ प्रियाणां काममिति शेषः ॥२४॥ मां प्रति भातीति शेषः ॥२५॥ इतरेषां नेत्रोत्सवोऽपि प्रोषितकामुकानां दृष्ट्वैव । कान्तं कस्य मुखस्य अन्तम् अवसानं भवतीति । यद्वा प्रोषितकामुकानां कान्तं दृष्ट्वैव नेत्रोत्सवो भवतीत्यवैमि नान्यथा ॥ २७ ॥ प्रियश्चासौ विप्रियश्चेति समासः ॥ २८ ॥ विनापीत्यनेन वज्रपुरे गृहान्तः चन्द्रदर्शनं नासीदिति गम्यते । प्रशशंसयिष्ये अतिशयेन कथयिष्ये । स्वार्थे णिच् ॥ २९ ॥ पर्वणि यज्ञे ॥ ३० ॥ यस्य बुधस्य पुरूरवाः सुतस्तस्य पितार्यश्च ईड्यः स्तुत्यः । प्राणाग्निः “ ब्रह्मणे प्राणाय जुष्टं निर्वपामि ” इति मन्त्रलिङ्गात् । ब्रह्मौदनिकोऽग्निः गन्धर्वलोकात् पुरूरवसा आनीयमानो मध्येमार्गे निहितः सन् नष्टः । तमेव नष्टमग्निमन्विष्यन् तत्स्थाने शमीगर्भमश्वत्थमपश्यत् । ततोऽश्वत्थादरणीम् आहृत्याग्नित्रयसाध्यं त्रेताकर्म प्रावर्तयत् पुरूरवा इति तत्रौषधिवनस्पतीनामीशश्चन्द्रोऽश्वत्थोत्पादनद्वारा नष्टमग्निमजीजनदित्युच्यते । भवात्मा रुद्रेण शिरसा धृतत्वात्तस्यात्मेवात्मा भवात्मा ॥ ३१ ॥

---

1 ख. °लजोऽयं प्रवृद्धमेघस्वनभीषिता यत् । प° । 2 ° गौरि इति क्वचिद्ध्रस्वान्तः पाठः । 3 ख. °गुणं च° ।

तथैव पश्चाच्चकमे महात्मा
पुरोर्वशीमप्सरसां वरिष्ठाम्।
पीतः पुरा योऽमृतसर्वदेहो
मुनिप्रवीरैर्वरगात्रि घोरैः ॥ ३२ ॥
नृपः कुशाग्रैः पुनरेव यश्च
धीमानतोऽग्निर्दिवि पूज्यते च।
आयुश्च वंशो नहुषश्च यस्य
यो देवराजत्वमवाप वीरः ॥३३॥
देवातिदेवो भगवान्प्रसूतो
वंशे हरिर्यत्र जगत्प्रणेता।
भैमः प्रवीरः सुरकार्यहेतो-
र्यः सुभ्रु दक्षस्य वृतः सुताभिः ॥३४॥
बभूव राजाऽथ वसुश्च यस्य
वंशे महात्मा शशिवंशदीपः।
यश्चक्रवर्तित्वमवाप वीरः
स्वैः कर्मभिः शक्रसमप्रभावः॥ ३५ ॥
यदुश्च राजा शशिवंशमुख्यो
योऽवाप मह्यामधिराजभावम्।
भोजाः कुले यस्य नराधिपस्य
वीराः प्रसूताः सुरराजतुल्याः॥ ३६ ॥
न कूटकृद्यस्य नृपोऽस्ति वंशे
न नास्तिको नैष्कृतिकोऽपि वाथ।
अश्रद्दधानोऽप्यथवा कदर्यः
शौर्येण वा वारिरुहाक्षि हीनः ॥ ३७
वंशे वधूस्त्वं कमलायताक्षि
श्लाघ्या गुणानामतिपात्रभूता।
कुरु प्रणामं शिखराग्रदन्ति
तस्य त्वमीशस्य सतां प्रियस्य ॥३८
नारायणायात्मभवायनाय
लोकायनाय त्रिदशायनाय।
खगेन्द्रकेतोः पुरुषोत्तमाय
कुरु प्रणामं श्वशुराय देवि ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नभाषणे
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

## प्रद्युम्नदैत्ययुद्धम्।

## ९६

वैशम्पायन उवाच।
सत्रावसाने च मुनेः कश्यपस्यातितेजसः।
जग्मुर्देवासुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमाः
वज्रनाभोऽपि निर्वृत्ते सत्रे कश्यपमभ्यगात्।
त्रैलोक्यविजयाकांक्षी तमुवाचाथ कश्यपः ॥
वज्रनाभ निबोध त्वं श्रोतव्यं यदि चेन्मम।
वस वज्रपुरे पुत्र स्वजनेन समावृतः ॥ ३ ॥
तपसाऽभ्यधिकः शक्रः शक्तश्चैव स्वभावतः।
ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ठः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥४॥
राजा कृत्स्नस्य जगतः पात्रभूतः सतां गतिः।
संप्राप्तो लोकराज्यं स सर्वभूतहिते रतः ॥५
नैव शक्यस्त्वया जेतुं वज्रनाभ विहन्यसे।
अहिं पदा व्युत्क्रमन्वै न चिराद्विनशिष्यसि
वज्रनाभश्च तद्वाक्यं नाभिनन्दति भारत।
कालपाशपरीताङ्गो मर्तुकाम इवौषधम् ॥७॥
अभिवाद्य स दुर्बुद्धिः कश्यपं लोकभावनम्।
त्रैलोक्यविजयारम्भे मतिं चक्रे दुरासदः ॥८

---

यश्चन्द्रः उर्वशीं पौत्रात्मना स्वयं वा चकमे कामितवान्। अमृतेति पीतस्याप्यापूर्णं सूचितम्। घोरैरिति देहस्यैव पानं न तु चकोरवदित्युक्तम् ॥ ३२ ॥ यस्य वंशे आयुर्नृपः कुशाग्रैरेव कुशाग्रोपलक्षितक्रतुपरम्परया दिवि गतोऽग्निः अग्निसायुज्यं प्राप्तः। पूज्यते चेति पूर्वार्द्धार्थः। यस्य वंशे नहुषश्च दिवि गतः यो देवराजत्वमवापेत्यन्वयः ॥ ३३ ॥ यश्चन्द्रः ॥ ३४ ॥ शिखराग्रदन्ति शिखरं लोहितमणिविशेषः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

---

९६

सत्रावसान इति ॥ १ ॥ विहन्यसे म्रियसे ॥ ६ ॥

---

१ ख. °मान्कृतोऽग्नि°। २ ख. जा च वसु°। ३ ख. तु। ४ ख. °जा कृष्णस्य ज°।

ज्ञातियोधान्समानीय मित्राणि सुबहूनि च
प्रतस्थे स्वर्गमेवाग्रे विजिगीषन्विशांपते ॥९॥
एतस्मिन्नन्तरे देवौ कृष्णेन्द्रौ च महाबलौ
प्रेषयामासतुर्हंसान्वज्रनाभवधं प्रति ॥ १० ॥
समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुमुख्या महाबलाः।
मन्त्रयित्वा महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तथा ॥
वज्रनाभोऽद्य हन्तव्यः प्रद्युम्नेनेत्यसंशयम्
तयोर्दुहितरो भार्या भक्त्या ताः सर्वभावनाः
सर्वाः सगर्भास्ताश्चैव किं तु कार्यमनन्तरम् ।
प्राप्तः प्रसवकालश्च तासां नातिचिरादिव ॥१३
संमन्त्रयित्वैतदर्थं हंसानूचुर्महाबलाः ।
आख्येयमर्थवत्कृत्स्नं शक्रकेशवयोस्तदा ॥१४
हंसैर्गत्वा तदाख्यातं देवयोस्तद्यथातथम् ।
ताभ्यां हंसास्तु संदिष्टा न भेतव्यमिति प्रभो
उत्पत्स्यन्ति गुणैः श्लाघ्याः
पुत्रा वः कामरूपिणः ।
गर्भस्थाः सर्ववेदांश्च
सांगान्वेत्स्यन्त्यनिन्दिताः
तथा चानागतं सर्वमस्त्राणि विविधानि च ।
सद्य एव युवानश्च भविष्यन्ति सुपण्डिताः १७
एवमुक्त्वा गता हंसाः पुनर्वज्रपुरं विभो ।
शशंसुश्चैव भैमानां शक्रकेशवभाषितम् ॥१८
प्रभावती तदा पुत्रं सुषुवे सदृशं पितुः ॥
सद्यो यौवनसंप्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत ॥
मासमात्रेण सुषुवे देवी चन्द्रवती नृप ।
चन्द्रप्रभमिति ख्यातं तनयं सदृशं पितुः ॥२०
सद्यश्च यौवनं प्राप्तं सर्वज्ञत्वं च भारत ।
गुणवत्यपि पुत्रं च गुणवन्तमनिन्दिता ॥ २१ ॥
युवानावथ सद्यस्तौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ ।
इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन संवृत्तौ युद्धवर्द्धनौ ॥२२ ॥
हर्म्यपृष्ठे वर्द्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दनाः ।
इन्द्रोपेन्द्रेच्छया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम् ॥
निवेदिताश्च संभ्रान्तैर्दैत्यैराकाशरक्षिभिः ।
वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टपजयैषिणे ॥ २४॥
वधाय सर्वे गृह्यन्तां ममैते गृहधर्षकाः ।
इत्युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुरः ॥ २५॥

ततः सैन्यं समाज्ञप्तमसुरेन्द्रेण धीमता ।
आवारयामास दिशः सर्वाः कुरुकुलोद्वह ॥
गृह्यन्तामाशु वध्यन्तामिति वाचस्ततस्ततः।
उच्चेरुरसुरेन्द्रस्य शासनादरिशासिनः ॥
तच्छ्रुत्वा व्यथितास्तेषां मातरः पुत्रवत्सलाः
रुरुदुस्ता रुदन्तीश्च प्रद्युम्नः प्रहसन्नब्रवीत्॥२८
मा भैष्ट जीवमानेषु
स्थितेष्वस्मासु सर्वथा ।
किं नो दैत्याः करिष्यन्ति
सर्वथा भद्रमस्तु वः ॥ २९ ॥
प्रभावतीमथोवाच प्रद्युम्नो विप्लवां स्थिताम्
पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तव
भ्रातरश्चैव ते देवि ज्ञातयश्च तथापरे ।
एते पूज्याश्च मान्याश्च तवार्थे खलु सर्वथा
भगिन्यौ पृच्छ भद्रं ते कालोऽयं खलु दारुणः
मरणं सहमानानां युद्ध्यतां विजयो ध्रुवम् ॥
दानवेन्द्रादयो ह्येते योत्स्यन्तेऽस्मद्वधैषिणः।
किमत्र कार्यमस्माभिः सर्वैश्चक्रान्तरस्थितैः
प्रभावती रुदन्ती तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय जानुभ्यां पतिता क्षितौ
गृहाण शस्त्रमात्मानं रक्ष शत्रुनिबर्हण ।
जीवन्पुत्रांश्च दारांश्च द्रष्टाऽसि यदुनन्दन ३५
आर्या नृवर वैदर्भीमनिरुद्धं च मानद ।
स्मृत्वैतन्मोक्षयात्मानं व्यसनादरिमर्दन ३६
दुर्वाससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता ।
वैधव्यरहिता हृष्टा जीवपुत्रा भविष्यसि ॥
एष मे हृदयाश्वासो भविता न तदन्यथा ।
सूर्याग्नितेजसो वाक्यं मुनेरिन्द्रानुजात्मज ॥
इत्युक्त्वाथासिमादाय सूपस्पृष्टा मनस्विनी ।
प्रददौ रौक्मिणेयाय जयस्वेति वरं वरा ॥३९
स तं जग्राह धर्मात्मा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
प्रणम्य शिरसा दत्तं प्रियया भक्तियुक्तया ४०
चन्द्रवत्यपि निस्त्रिंशं गदाय प्रददौ मुदा ।
तदा गुणवती चैव साम्बायासिं महात्मने४१
हंसकेतुमथोवाच प्रद्युम्नः प्रणतं प्रभुः ।
इहैव साम्बसहितो युध्यस्व सह यादवैः॥४२

चक्रान्तरस्थितैः त्वदाज्ञावर्तिभिः ॥ ३३ ॥ एतत् एतस्मात् ॥ ३६ ॥ सूपस्पृष्टा सम्यक् संमार्ज्य ॥ ३९ ॥

१ ख. °रे तदा । व° । २ घ. °दथ हं° । ३ ख. विधार्य स° । ४ ख. °यापि म° । ५ ख. °हं दानवैः आ° ।

आकाशे दिक्षु सर्वासु योत्स्याम्यहमरिंदम ।
इत्युक्त्वाऽथ रथं चक्रे मायया मायिनां वरः
सहस्रशिरसं नागं कृत्वा सारथिमात्मवान् ।
अनन्तभोगं कौरव्य सर्वनागोत्तमोत्तमम् ४४
स तेन रथमुख्येन हर्षयन्वै प्रभावतीम् ।
चचारासुरसैन्येषु तृणेष्विव हुताशनः ॥ ४५
शरैराशीविषप्रख्यैरर्द्धचन्द्रानुकान्तिभिः ।
भेदनैर्गाधनैश्चैव ततर्द दितिसंभवान् ॥ ४६ ॥
असुराश्च रणे मत्ताः कार्ष्णिं शस्त्रैरितस्ततः ।
जघ्नुः कमलपत्राक्षं परं निश्चयमास्थिताः ॥४७
चिच्छेद बाहून्केषांचित्केयूरवलयोज्ज्वलान्
सकुण्डलानि केषांचिच्छिरांस्यपि च चिच्छिदे
क्षुरच्छिन्नैः शिरोभिश्च कायैश्च शकलैरपि ।
असुराणां मही कीर्णा प्रद्युम्नेनातितेजसा ॥
देवेश्वरो देवगणैः सहितः समितिंजयः ।
ददर्श मुदितो युद्धं भैमानां दितिजैः सह ५०
ये गदं चैव साम्बं च दैत्याः समभिदुद्रुवुः
ते ययुर्निधनं सर्वे यादांसीव महोदधौ ॥५१
विषमं तु तदा युद्धं दृष्ट्वा देवपतिर्हरिः ।
गदाय प्रेषयामास स्वं रथं हरिवाहनः ॥५२॥
दिदेश मातलिसुतं यन्तारं च सुवर्चसम् ।
साम्बायैरावणं नागं प्रेषयामास चेश्वरः ॥५३
जयन्तं रौक्मिणेयस्य सहायमददाद्विभुः ।
ऐरावणमाधिष्ठातुं प्रवरं स नियुक्तवान् ॥५४॥
देवपुत्रद्विजौ वीरावप्रमेयपराक्रमौ ।
अनुज्ञाप्य सुराध्यक्षं ब्रह्माणं लोकभावनम् ५५
तं मातलिसुतं चैव गजमैरावणं तदा ।
देवः प्रेषितवाञ्छक्रो विधिज्ञो वरकर्मसु ॥ ५६
क्षीणमस्य तपो वध्यो यदूनामेष दुर्मतिः ।
प्रविशन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु यथेप्सितम् ॥
प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्राप्तौ हर्म्यं महाबलौ ।
असुराञ्छरजालौघैर्विक्राम्यन्तौ प्रणश्यतुः
गदं कार्ष्णिस्तदोवाच दुर्वार्यरणदुर्जयः ।
उपेन्द्रानुज शक्रेण रथोऽयं प्रेषितस्तव ॥५९॥
हरियुङ्मातलिसुतो यन्ता चायं महाबलः ।
प्रवराधिष्ठितश्चायं साम्बस्यैरावणो गजः ६०
अद्योपहारो रुद्रस्य द्वारकायां महाबलः ।
श्व एष्यति हृषीकेशस्तस्मिन्वृत्तेऽच्युतानुज
तस्याज्ञया वधिष्यामो वज्रनाभं सबान्धवम्
अभ्युत्थानकृतं पापं त्रिविष्टपजयं प्रति ॥ ६२
करिष्यामि विधानं च नैष चक्रं सुतान्वितम्
विजेष्यत्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मतिः ६३
कलत्ररक्षणं कार्यं सर्वोपायैर्नरैर्बुधैः ।
कलत्रधर्षणं लोके मरणादतिरिच्यते ॥ ६४
एवं संदिश्य भैमः स गदसाम्बौ महाबलः ।
प्रद्युम्नकोट्यः ससृजे मायया दिव्यरूपया ६५
तमश्च नाशयामास दैत्यसृष्टं दुरासदम् ।
जहर्षे देवराजश्च तं दृष्ट्वा रिपुमर्दनम् ॥ ६६
ददृशुः सर्वभूतानि कार्ष्णिं सर्वेषु शत्रुषु ।
अन्तरात्मनि वर्तन्तं क्षेत्रज्ञमिव तं विदुः ६७
एवं व्यतीता रजनी रौक्मिणेयस्य युध्यतः ।
असुराणां त्रिभागश्च निहतश्चातितेजसा ६८
यावद्विरोधयामास कार्ष्णिर्दैत्यान्रणाजिरे ।
सन्ध्योपास्ता जयन्तेन तावद्विष्णुपदीजले
अयोधयज्जयन्तश्च यावद्दैत्यान्महाबलः ।
तावदाकाशगङ्गायां भैमः सन्ध्यामुपास्तवान्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नदैत्ययुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

चक्रे निर्ममे ॥ ४३ ॥ भेदनैः सूक्ष्माग्रैः शरैः शरीरप्रवेशेन विदारणैः गाधनैः स्थूलाग्रैः अनुकान्तिभिर्बाणैर्दृढप्रहारमात्रैः ततर्द पीडयामास ॥४६॥ हरिवाहन इन्द्रः ॥५२॥ प्रवरम् इन्द्रस्य सखायं ब्राह्मणम् ॥५४॥ उपहारो महापूजा ॥६१॥ अभ्युत्थानकृतम् उपक्रमकर्तारम् ॥ ६२ ॥ कोटयः कोटीः ॥६५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

१ ख. नं तु नै० । २ ख. °हतौ नाति० ।

## वज्रनाभवधः ।

### ९७

वैशम्पायन उवाच ।

जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ।
प्रादुरासीद्धरिर्देवस्तार्क्ष्येणोरगशत्रुणा ॥ १
हंसवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरगः खगः ।
तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन २
समेत्य च यथान्यायं कृष्णो वासवसन्निधौ ।
पाञ्चजन्यं हरिर्दध्मौ दैत्यानां भयवर्द्धनम् ॥३
तं श्रुत्वाऽभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो वरवीरहा ।
वज्रनाभं जहीत्युक्तः केशवेन त्वरेति च ॥ ४
तार्क्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदितः ।
चकार स तथा वीरः प्रणिपत्य सुरोत्तमौ ५
स मनोरंहसा वीर तार्क्ष्येणाशु ययौ नृप ।
अभ्यासं वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत ॥६
ततस्तार्क्ष्यगतो वीरस्ततर्द रणमूर्द्धनि ।
वज्रनाभं स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दितः
तेन तार्क्ष्यगतेनैव गदया कृष्णसूनुना ।
उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना८
स तेनाभिहतो वीरो दैत्यो मोहवशं गतः ।
चक्षार च भृशं रक्तं बभ्रामैव गतासुवत् ॥ ९
आश्वसेत्यथ तं कार्ष्णिरुवाच रणदुर्जयः ।
लब्धसंज्ञः स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् १०
साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् ।
प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबल॥११
एवमुक्त्वा महानादं मुक्त्वा मेघशतोपमम्
गदां मुमोच वेगेन सघण्टां बहुकण्टकाम् १२
तया ललाटेऽभिहतः प्रद्युम्नो गदया नृप ।
उद्वमन्रुधिरं भूरि मुमोह यदुनन्दनः ॥ १३
तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः पाञ्चजन्यं जलोद्भवम् ।
दध्मावाश्वासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशनः ॥ १४
तं पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्तं महाबलम् ।
दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ ॥१५
तस्य चक्रं करे यातं कृष्णच्छन्देन भारत ।
क्षुरनेमिसहस्रारं दैत्यसंघकुलान्तकम् ॥ १६
तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत ।
नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने ॥
वज्रनाभस्य तत्कायादुच्चकर्त शिरस्तदा ।
नारायणसुतोन्मुक्तं दैत्यानामनुपश्यताम् ॥
गदः सुनाभमवधीद्यतमानं रणाजिरे ।
हर्म्यपृष्ठे जिघांसन्तं रणदृप्तं भयानकम् ॥ १९
साम्बः समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दनः ।
निनाय निशितैर्बाणैः प्रेताधिपपरिग्रहम् ॥२०
निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे ।
जगाम षट्पुरं वीरो नारायणभयार्दितः॥ २१
निवर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे ।
अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा ॥२२
लब्धप्रशमनं चैव चक्रतुः सुरसत्तमौ ।
सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्धं भयार्दितम् ॥
इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ
आयत्यां च तदात्वे च बृहस्पतिमतानुगौ ॥
वज्रनाभस्य तद्राज्यं चतुर्द्धा चक्रतुर्नृप ।
विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै ॥ २५॥
प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च ।
चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर ॥ २६ ॥
कोट्यश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशांपते
शाखापुरसहस्रं च स्फीतं वज्रपुरोपमम् ।
चतुर्द्धा चक्रतुस्तत्र संहृष्टौ शक्रकेशवौ ॥२७
कम्बलाजिनवासांसि रत्नानि विविधानि च
चतुर्द्धा चक्रतुर्वीरौ वीरवासवकेशवौ ॥२८
ततोऽभिषिक्तास्ते वीरा राजानो वासवाज्ञया
देवदुन्दुभिवाद्येन नृप विष्णुपदीजलैः ॥२९
स्वयं शक्रेण देवेन केशवेन च धीमता ।
ऋषिवंशे महात्मानः शक्रमाधवनन्दनाः ॥३०

---

९७

**जगत इति** ॥ १ ॥ महाद्वन्द्वस्य महाव्युत्क्रमणस्य दुरन्तस्येत्यर्थः ॥ ६ ॥ चक्षार मुखेन उद्गीर्णवान् ॥ ९ ॥ तस्य प्रद्युम्नस्य॥१६॥लब्धस्य शत्रुपराजयस्य प्रशमनं दुःखापनोदनम् ॥ २३ ॥ विजयस्य इन्द्रपौत्रस्य ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नस्य प्रद्युम्नपुत्रस्य रौक्मिणेयोऽत्र साम्बस्तत्सुतस्य परिशेषः चन्द्रप्रभस्य गदपुत्रस्य ॥ २६ ॥ ऋषिवंशे ऋषिसंघसमीपे अभिषिक्ता इति पूर्वस्थेनान्वयः ॥ ३० ॥ गतिः विभज्य

---

१ ख. °न्यं विमुर्द° । २ ख. प्रचोदि° । ३ ख. °म विमुर्म° । ४ ख. °द्रुपुङ्गवः । तं । ५ ख. °नुगा । व° ।

विजयस्य प्रसिद्धैव गतिर्वियाति धीमतः।
मातृजेन गुणेनापि माधवानां महात्मनाम् ॥
अभिषिच्य जयन्तं तु वासवो भगवानब्रवीत्।
त्वयैते वीर संरक्ष्या राजानः समितिंजयाः
मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ।
अवध्याः सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाज्ञया॥
गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति।
त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमाभिरक्षिताम्॥
दिशागजसुतान्नागान्हयांश्चोच्चैःश्रवोऽन्वयान्
इच्छथैषां प्रयच्छस्व रथांस्त्वष्टृकृतानपि ॥ ३५
गजावैरावणसुतौ शत्रुञ्जयरिपुञ्जयौ।
प्रयच्छाकाशगौ वीरौ साम्बस्य च गदस्य च
आकाशेन पुरीं यातुं द्वारकां भैमरक्षिताम्।
आयातौ च सुतौ द्रष्टुं यथेष्टं भैमनन्दनौ ॥ ३७
इति संदिश्य भगवान्देवराजः पुरंदरः।
जगाम भगवान्स्वर्गं द्वारकामपि केशवः ॥ ३८
षण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च।
साम्बश्च द्वारकां याता रूढे राज्ये महाबलाः
अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे
तिष्ठन्ति च जगद्यावत्स्थास्यन्त्यमरसंनिभ ॥
निवृत्ते मौसले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु।
गदप्रद्युम्नसाम्बास्ते गता वज्रपुरं विभो ॥ ४१
ततः प्रोष्य पुनर्यान्ति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः
प्रसादेन च कृष्णस्य लोककर्तुर्जनेश्वर ॥ ४२
प्रद्युम्नोत्तरमेतत्ते नृदेव कथितं मया।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुनाशनमेव च ॥ ४३
पुत्रपौत्रा विवर्द्धन्ते आरोग्यधनसम्पदः।
यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

## पुनर्विशेषतो द्वारवतीनिर्माणम्।

## ९८

वैशम्पायन उवाच।
ददर्शाथ पुरीं कृष्णो द्वारकां गरुडे स्थितः।
देवसद्मप्रतीकाशां समन्तात्प्रतिनादिताम् ॥१
मणिपर्वतयन्त्राणि तथा क्रीडागृहाणि च।
उद्यानवनमुख्यानि वलभीचत्वराणि च ॥२॥
संप्राप्ते तु तदा कृष्णे पुरीं देवकिनन्दने।
विश्वकर्माणमाहूय देवराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ३
प्रियमिच्छसि चेत्कर्तुं मह्यं शिल्पवतां वर
कृष्णप्रियार्थं भूयस्त्वं प्रकुरुष्व मनोहराम् ॥४
उद्यानशतसंबाधां द्वारकां स्वर्गसंमिताम्।
कुरुष्व विबुधश्रेष्ठ यथा मम पुरी तथा ॥ ५
यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु रत्नभूतं प्रपश्यसि।
तेन संयुज्यतां क्षिप्रं पुरी द्वारवती त्वया ॥६
कृष्णो हि सुरकार्येषु सर्वेषु सततोत्थितः।
सङ्ग्रामान्घोररूपांश्च विगाहति महाबलः।
तामिन्द्रवचनाद्गत्वा विश्वकर्मा पुरीं ततः ॥७
अलंचक्रे समन्ताद्वै यथेन्द्रस्यामरावती।
तां ददर्श दशार्हाणामीश्वरः पक्षिवाहनः।
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरभिप्रायैरलंकृताम् ॥ ८
तां तदा द्वारकां दृष्ट्वा प्रभुर्नारायणो विभुः।
हृष्टः सर्वार्थसम्पन्नः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ९

राज्यं ग्राह्यमित्यर्थः। मातृजेन गुणेन असुरदौहित्रत्वेन माधवानां पुत्रत्रयं मम च पुत्र इत्येवं चतुर्धा विभागः ॥ ३१ ॥ ब्रवीत् अब्रवीत् ॥ ३२ ॥ प्रयच्छस्वेति जयन्तं प्रति उक्तिः ॥ ३५ ॥ प्रद्युम्नोत्तरं प्रद्युम्नस्य उत्कर्षः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

९८

ददर्शेति ॥ १ ॥

१ ख. °जय। म°। २ ख. °तै च त°। ३ ख. °ष्टा। ४ ख. °यणो हरिःहृ°।

सोऽपश्यद्वृक्षखण्डांश्च रम्यान्दृष्टिमनोहरान् ।
द्वारकां प्रति दाशार्हश्चित्रितां विश्वकर्मणा १०
पद्मखण्डाकुलाभिश्च हंससेवितवारिभिः ।
गङ्गासिन्धुप्रकाशाभिः परिखाभिर्वृतां पुरीम्
प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन राजता ।
चयमूर्ध्नि निविष्टेन द्यां यथैवाभ्रमालया ॥१२
काननैर्नन्दनप्रख्यैस्तथा चैत्ररथोपमैः ।
बभौ चारुपरिक्षिप्ता द्वारका द्यौरिवाम्बुदैः १३
बभौ रैवतकः शैलो रम्यसानुगुहाजिरः ।
पूर्वस्यां दिशि लक्ष्मीवान्मणिकाञ्चनतोरणः
दक्षिणस्यां लताविष्टः पञ्चवर्णो विराजते ।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशः पश्चिमायां तथा क्षयः १५
उत्तरां दिशमत्यर्थं विभूषयति वेणुमान् ।
मन्दराद्रिप्रतीकाशः पाण्डुरः पार्थिवर्षभः ॥
चित्रकं पञ्चवर्णं च पाञ्चजन्यं वनं महत् ।
सर्वर्तुकवनं चैव भाति रैवतकं प्रति ॥ १७
लतावेष्टितपर्यन्तं मेरुप्रभवनं महत् ।
भाति[2] भानुवनं चैव पुष्पकं च महद्वनम्॥ १८
अक्षकैर्बीजकैश्चैव मन्दारैश्चोपशोभितम् ।
शतावर्तवनं चैव करवीराकरं तथा ॥ १९
भाति चैत्ररथं चैव नन्दनं च वनं महत् ।
रमणं भावनं चैवं वेणुमद्वै समन्ततः ॥२०
वैडूर्यपत्रैर्जलजैस्तदा मन्दाकिनी नदी ।
भाति पुष्करिणी रम्या पूर्वस्यां दिशि भारत
सानवो भूषितास्तत्र केशवस्य प्रियैषिभिः ।
बहुभिर्देवगन्धर्वैश्चोदितैर्विश्वकर्मणा ॥ २२
महानदी द्वारवतीं पञ्चाशद्भिर्महामुखैः ।
प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्ततः ॥
अप्रमेयां महोत्सेधामगाधपरिखायुताम् ।
प्राकारवरसम्पन्नां सुधापाण्डुरलेपनाम् ॥२४
तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्हेमजालैश्च भूषिताम्[3] ।
आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥२५
अष्टौ रथसहस्राणि नगरे किङ्किणीकिनाम् ।
समुच्छ्रितपताकानि यथा देवपुरे तथा ॥ २६
अष्टयोजनविस्तीर्णामचलां द्वादशायताम् ।
द्विगुणोपनिवेशां च ददर्श द्वारकां पुरीम् २७
अष्टमार्गमहारथ्यां महाषोडशचत्वराम् ।
एकमार्गपरिक्षिप्तां साक्षादुशनसा कृताम् ॥
स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येरन्किमु वृष्णिमहारथाः
व्यूहानामुत्तमा मार्गाः सप्त चैव महापथाः ॥
तत्र वै विहिताः साक्षाद्विविधा विश्वकर्मणा
तस्मिन्पुरवरश्रेष्ठे दाशार्हाणां यशस्विनाम् ॥
वेश्मानि जहृषे दृष्ट्वा ततो देवकिनन्दनः ।
काञ्चनैर्मणिसोपानैरुपेतानि नृहर्षणैः ॥ ३१
भीमघोषमहाघोषैः प्रासादवरचत्वरैः ।
समुच्छ्रितपताकानि पारिप्लववनानि च ॥३२
काञ्चनाग्राणि भास्वन्ति
प्रासादशिखराणि च ।
गृहाणि रमणीयानि
मेरुकूटनिभानि च ॥ ३३
पाण्डुपाण्डुरश्रृङ्गैश्च शातकुम्भपरिष्कृतैः ।
रम्यसानुगृहैः श्रृङ्गैर्विचित्रैरिव पर्वतैः ॥ ३४
पञ्चवर्णैः सुवर्णैश्च पुष्पवृष्टिसमप्रभैः ।
पर्जन्यतुल्यनिर्घोषैर्नानारूपैरिवाद्रिभिः ॥ ३५
दावाग्निज्वलितप्रख्यैर्निर्मितैर्विश्वकर्मणा ।
आश्लिषद्भिरिवाकाशमतिचन्द्रार्कभास्वरैः[4] ॥

खण्डान् समूहान् ॥ १० ॥ चयमूर्ध्नि अट्टालोपरि ॥ १२ ॥ मणिकाञ्चनमयानि तोरणानि बहिर्द्वाराणि यस्य ॥ १४ ॥ चित्रकादीनि चतुर्दश वनानि ॥ १७ ॥ महानदी मन्दाकिनी पञ्चाशद्भिर्विश्वजां सहस्रसंवत्सरे सत्रे पञ्चपञ्चाशतान्निवृतः संवत्सराः पञ्चपञ्चाशतः पञ्चदशाः पञ्चपञ्चाशतः सप्तदशाः पञ्चपञ्चाशत एकविंशतिसंख्याकाभिः पञ्चाशद्भिः सहस्रैः संपत्तिभिरुक्ता तावत्संख्यैः तत्फलभूतैस्थानादिभिरिति यावत् । भावयन्ती हर्षयन्ती जनानिति शेषः ॥ २३ ॥ किङ्किणीकिनां क्षुद्रघंटिकावृतां नर्तकानाम् ॥ २६ ॥ द्वादशायतां द्वादशयोजनदीर्घाम् उपनिवेशाः शाखानगराणि तेषां द्विराजिभिर्द्विगुणायतां द्विगुणदीर्घां च ॥२७॥ **अष्टेति।** पञ्चगृहपंक्तिभिश्चतस्रो रथ्या भवन्ति ताश्चतस्र ऊर्ध्वाश्चतस्रः तिरश्च तासां सन्धयः षोडश तेषां मध्ये षोडश चत्वराणि । एकेनैव मार्गेण युक्तां यतः परिक्षिप्तां परिवृतां सागरेणेत्यर्थात् एकमार्गा चासौ परिक्षिप्ता चेति समासः । उशनसा पुरनिर्माणविदा शुक्रेण ॥ २८ ॥ व्यूहानां सेनानिवेशेषाणां चक्रक्रौञ्चाकाराणाम् ॥२९॥ पाण्डुपाण्डुराणि श्वेतादपि श्वेतानि अतिश्वेतैरुपेतानि गृहाणीत्यर्थः । शातकुम्भपरिष्कृतैः सुवर्णधाराविचित्रितैः ॥ ३४ ॥

१ ख. पद्मषण्डा° २ ख. °ति भार्गवनं चै° । ३ ख. °षिता । आ° ।
४ ख. °णा । आलिखद्भिरि° ।

तैर्दाशार्हैर्महाभागैर्बभासे तद्वनद्रुमैः।
वासुदेवेन्द्रपर्जन्यैर्गृहमेघैरलंकृता ॥ ३७
ददृशे द्वारका चारुमेघैर्द्यौरिव संवृता।
साक्षाद्भगवतो वेश्म विहितं विश्वकर्मणा
ददृशे वासुदेवस्य चतुर्योजनमायतम्।
तावदेव च विस्तीर्णमप्रमेयं महाधनम्॥ ३९
प्रासादवरसंपन्नैर्युक्तं जगति पर्वतैः।
यच्चकार महाभागस्त्वष्टा वासवनोदितः॥४४
प्रासादं चैव हेमाभं सर्वभूतमनोहरम् ॥ ४१
मेरोरिव गिरेः शृङ्गमुच्छ्रितं काञ्चनं महत्।
रुक्मिण्याः प्रवरं वासं विहितं विश्वकर्मणा
सत्यभामा पुनर्वेश्म यदावसत पाण्डुरम्।
विचित्रमणिसोपानं तद्विदुर्भोगवानिति ४३
विमलादित्यवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम्।
व्यक्तसञ्जवनोद्देशो यश्चतुर्दिङ्महाध्वजः ४४
स च प्रासादमुख्योऽथ जाम्बवत्या विभूषितः
प्रभयाऽभ्यभवत्सर्वास्तानन्या भास्करो यथा
उद्यद्भास्करवर्णाभस्तयोरन्तरमाश्रितः।
विश्वकर्मकृतो दिव्यः कैलासशिखरोपमः॥
जाम्बूनद इवादीप्तः प्रदीप्तज्वलनो यथा।
सागरप्रतिमोत्तिष्ठन्मेरुरित्यभिविश्रुतः ॥ ४७
तस्मिन्गान्धारराजस्य दुहिता कुलशालिनी
गान्धारी भरतश्रेष्ठ केशवेन निवेशिता ॥ ४८
पद्मकूल इति ख्यातं पद्मवर्णं महाप्रभम्।
सुभीमाया महाकूटं वासं सुरुचिरप्रभम् ॥४९
सूर्यप्रभस्तु प्रासादः सर्वकामगुणैर्युतः।
लक्ष्मणाया नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टः शार्ङ्गधन्वना ५०
वैडूर्यमणिवर्णाभः प्रासादो हरितप्रभः।
यं विदुः सर्वभूतानि परमित्येव भारत ॥५१
वासं तं मित्रविन्दाया देवर्षिगणपूजितम्।
महिष्या वासुदेवस्य भूषणं तेषु वेश्मसु ॥ ५२
यस्तु प्रासादमुख्योऽत्र विहितो विश्वकर्मणा।
अतीव रम्यरम्योऽसौ धिष्ठितः पर्वतो यथा
सुवार्ताया निवासं तं प्रशस्तं सर्वदैवतैः।
महिष्या वासुदेवस्य केतुमानिति विश्रुतः ५४
यत्र प्रासादमुख्यो वै यं त्वष्टा विदधे स्वयम्
योजनायतविष्कम्भः सर्वरत्नमयः शुभः ॥५५
स श्रीमान्विरजा नाम व्यराजत्तत्र सुप्रभः।
उपस्थानगृहं यत्र केशवस्य महात्मनः॥ ५६
तस्मिन्सुविहिताः सर्वे रुक्मदण्डाः पताकिनः
सदने वासुदेवस्य मार्गसञ्जवनध्वजाः॥ ५७
रत्नजालानि दिव्यानि तत्रैव च निवेशिताः
आहृत्य यदुसिंहेन वैजयन्तोऽचलो महान्।
हंसकूटस्य यच्छृङ्गमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति।
षष्टितालसमुत्सेधमर्धयोजनमायतम् ॥ ५९
सकिन्नरमहानागं तदप्यमिततेजसा।
पश्यतां सर्वभूतानामानीतं लोकविश्रुतम्॥६०
आदित्यपथगं यत्तु मेरोः शिखरमुत्तमम्।
पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः॥ ६१
जाम्बूनदमयं दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तदप्युत्पाट्य कृष्णार्थमानीतं विश्वकर्मणा ६२
भ्राजमानमतीवाग्र्यं सर्वौषधिसमन्वितम्।
तदिन्द्रवचनात्त्वष्टा कार्यहेतोः समानयत्॥६३
पारिजातश्च तत्रैव केशवेनाहृतः स्वयम् ॥ ६४
नीयमाने तु तत्रासीद्युद्धमद्भुतकर्मणः।
कृष्णस्य येऽभ्यरक्षंस्तु देवाः पादपमुत्तमम् ६५

तैरिति सार्धश्लोकः। तद्वनद्रुमैः तानि चित्रकादीनि च तानि वनानि तद्वनानि तत्संबन्धिभिर्द्रुमैः बभासे पुरीति शेषः। अत्र सहस्राक्षत्वपुष्पितत्वयोर्वृष्टिकर्तृत्वपुष्पवर्षत्वयोश्च साम्यादिन्द्रवृक्षाणामिन्द्रपर्जन्यसमत्वं दाशार्हाणां कृष्णादीनां वासुदेवस्य विष्णोः सगणस्य च समत्वमिति योग्यतया ज्ञेयम्॥ ३७॥ जगति पर्वतैः कृत्रिमैः क्रीडापर्वतैः ॥ ४०॥ काञ्चनं नाम प्रासादं रुक्मिण्याः॥ ४१॥ भोगवन्नाम पाण्डुरं सत्यभामायाः ॥ ४३ ॥ व्यक्तसंजवनः व्यक्तं स्पष्टं संजवनं प्रतिक्षणमभिनवरूपत्वं यस्य स तथाविधः॥ ४४॥ मेरुर्नाम प्रासादो नाग्नजित्याः सत्यायाः ॥ ४७॥ पद्मकूलाख्यो भीमायाः ॥ ४९॥ सूर्यप्रभो नाम लक्ष्मणायाः॥ ५०॥ परमित्येव तन्नामकं गृहं मित्रविन्दायाः॥ ५१॥ सुवार्तायाः प्रासादः केतुमान्नामा ॥ ५४॥ यत्र भगवान् देवान् द्विजांश्चोपतिष्ठते स विरजा नाम प्रासादः। विजयो नाम इति पाठः॥ ५६॥ मार्गसञ्जवनध्वजाः सञ्जमका ध्वजाः यैर्ध्वजैश्चिह्नभूतैर्भगवद्गृहमार्गोऽवगम्यत इत्यर्थः॥५७॥वैजयन्त इन्द्रध्वजः इन्द्रप्रासादो वा॥ ५८॥ हंसकूटस्य पर्वतविशेषस्य॥ ५९॥ आनीतं विश्वकर्मणेत्युत्तरात्॥ ६०॥ येऽभ्यरक्षंस्तैः सहेति शेषः जुष्टं पादपमिति पूर्वान्वयि॥ ६५॥

१ ख. °गवानिति। २ ख. °ज्वलनोपमः। सा°। ३ ख. °कूटं वेश्मातिरु° ४ ख. वासः स मि°। ५ ख. °जितः। म°। ६ ख. सनन्दाया नि°।

पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः।
विहिता वासुदेवार्थे रत्नपुष्पफलद्रुमाः ॥ ६६
पद्मखण्डजलोपेता रक्तसौगन्धिकोत्पलाः।
मणिहेमप्लवाकीर्णाः पुष्करिण्यः सरांसि च
तासां परमकूलानि
शोभयन्ति महाद्रुमाः।
शालास्तालाः कदम्बाश्च
शतशाखाश्च रौहिणाः ॥ ६८
ये च हैमवतो वृक्षा ये च मेरुरुहास्तथा।
आहृत्य यदुसिंहार्थे विहिता विश्वकर्मणा ६९
रक्तपीतारुणश्यामाः श्वेतपुष्पाश्च पादपाः।
सर्वर्तुफलसंपन्नास्तेषु काननसन्धिषु ॥ ७०
समकूलजलोपेताः शान्तशर्करवालुकाः।
तस्मिन्पुरवरे नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदाः ॥७१
पुष्पाकुलजलोपेता नानाद्रुमलताकुलाः।
अपराश्चाभवन्नद्यो हेमशर्करवालुकाः ॥ ७२
मत्तबर्हिणसङ्घैश्च कोकिलैश्च सदामदैः।
बभूवुः परमोपेतास्तस्यां पुर्यां च पादपाः ७३
तत्रैव गजयूथानि पुरे गोमहिषास्तथा।
निवासश्च कृतस्तत्र वराहमृगपक्षिभिः ७४
पुर्यां तस्यां तु रम्यायां प्राकारो वै हिरण्मयः
व्यक्तः किष्कुशतोत्सेधो विहितो विश्वकर्मणा
अतीव रम्यः सोऽथासीद्वेष्टितः पर्वतो यथा।
ते च ते च महाशैलाः सरितश्च सरांसि च
परिक्षिप्तानि भौमेन वनान्युपवनानि च ॥७६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाविशेषनिर्माणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

## कृष्णस्य द्वारकाप्रवेशः।

## ९९

वैशम्पायन उवाच।
एवमालोकयानः स द्वारकां वृषभेक्षणः।
अपश्यत्स्वगृहं कृष्णः प्रासादशतशोभितम् ॥
मणिस्तम्भसहस्राणामयुतैर्विवृतं शतैः।
तोरणैर्ज्वलनप्रख्यैर्मणिविद्रुमराजतैः ॥ २
तत्र तत्र प्रभासद्भिश्चित्रकाञ्चनवेदिकैः।
प्रासादस्तत्र सुमहान्कृष्णोपस्थानिकोऽभवत्
स्फाटिकस्तम्भाविवृतो विस्तीर्णः सर्वकाञ्चनः
पद्माकुलजलोपेता रक्तसौगन्धिकोत्पलाः ४
मणिहेमनिभाश्चित्रा रत्नसोपानभूषिताः।
मत्तबर्हिणजुष्टाश्च कोकिलैश्च सदामदैः ॥ ५
बभूवुः परमोपेता वाप्यश्च विकचोत्पलाः।
विश्वकर्मकृतः शैलः प्राकारस्तस्य वेश्मनः ६
व्यक्तकिष्कुशतोत्सेधः परिखापरिवेष्टितः।
तद्गृहं वृष्णिसिंहस्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
महेन्द्रसदृशं वेश्म समंतादर्धयोजनम्।
तत्रस्थं पाण्डुरं शौरिर्मूर्ध्नि तिष्ठन्गरुत्मतः ८
प्रीतः शङ्खमुपाध्मासीद्द्विषतां रोमहर्षणम्।
तस्य शङ्खस्य शब्देन सागरश्चुक्षुभे भृशम्।
ररास च नभः कृत्स्नं तच्चित्रमभवत्तदा ॥ ९
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं संश्रुत्य कुकुरान्धकाः।
विशोकाः समपद्यन्त गरुडस्य च दर्शनात् ॥

विहिता आज्ञाकारिण कृताः ॥ ६९ ॥ किष्कुशतं हस्तशतम् ॥ ७५ ॥ भौमेन विश्वकर्मणा ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

९९

एवमिति ॥ १ ॥ विवृतं स्पष्टीकृतं स्तम्भप्रभयैव प्रस्तान्धकारमित्यर्थः ॥ २ ॥ काञ्चनवेदिकैस्तोरणैः ॥ ३ ॥ परमोपेता अनुज्ञया युक्ताः संकल्पितरूपधारिण्य इत्यर्थः "परमं स्यादनुज्ञायाम्" इति मेदिनी। शैलः शिलामयः ॥ ६ ॥ ररास प्रतिशब्दं चकार ॥ ९ ॥

१ ख. °हितं विश्व° । २ ख. तु पा° । ३ ख. °तं सितैः । तो° । ४ ख. °न्द्रवेश्मप्रतिमं समं° ।

शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्योपरि स्थितम् ।
दृष्ट्वा जहृषिरे पौरा भास्करोपमतेजसम् ॥ ११
ततस्तूर्यप्रणादश्च भेरीणां च महास्वनाः ।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥
ततस्ते सर्वदाशार्हाः सर्वे च कुकुरान्धकाः ।
प्रीयमाणाः समाजग्मुरालोक्य मधुसूदनम् ॥
वासुदेवं पुरस्कृत्य शङ्खतूर्यरवैः सह ।
उग्रसेनो ययौ राजा वसुदेवनिवेशनम् ॥ १४
आनन्दिनी पर्यचरत्स्वेषु वेश्मसु देवकी ।
रोहिणी च यशोदा च आहुकस्य च याः स्त्रियः
ततः कृष्णः सुपर्णेन स्वं निवेशनमभ्यगात् ।
चचार च यथोद्देशमीश्वरानुचरो हरिः ॥ १६
अवतीर्य गृहद्वारि कृष्णस्तु यदुनन्दनः ।
यथार्हं पूजयामास यादवान्यादवर्षभः ॥ १७
रामाहुकगदाक्रूरप्रद्युम्नादिभिरर्चितः ।
प्रविवेश गृहं शौरिरादाय मणिपर्वतम् ॥ १८
तं च शक्रस्य दयितं पारिजातं महाद्रुमम् ।
प्रवेशयामास गृहं प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥१९
तेऽन्योन्यं ददृशुर्वीरा देहबन्धानमानुषान् ।
पारिजातप्रभावेण ततो मुमुदिरे जनाः ॥२०
तैः स्तूयमानो गोविन्दः प्रहृष्टैर्यादवर्षभैः ।
प्रविवेश गृहं श्रीमान्विहितं विश्वकर्मणा ॥२१
ततोऽन्तःपुरमध्ये तं सशृङ्गमणिपर्वतम् ।
न्यवेशयदमेयात्मा वृष्णिभिः सहितोऽच्युतः
तं च दिव्यं द्रुमश्रेष्ठं पारिजातममित्रजित् ।
अर्च्यमर्चितमव्यग्रमिष्टे देशे न्यवेशयत् ॥ २३
अनुज्ञाप्य ततो ज्ञातीन्केशवः परवीरहा ।
ताः स्त्रियः पूजयामास संहृता नरकेण याः
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्दासीभिर्धनसञ्चयैः ।
हारैश्चन्द्रांशुसंकाशैर्मणिभिश्च महाप्रभैः ॥२५
पूर्वमभ्यर्चिताश्चैव वसुदेवेन ताः स्त्रियः ।
देवक्या सह रोहिण्या रेवत्या चाहुकेन च ॥
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां
सौभाग्येनाभवत्तदा ।
कुटुम्बस्येश्वरी त्वासी-
द्रुक्मिणी भीष्मकात्मजा ॥ २७
तासां यथार्हहर्म्याणि प्रासादशिखराणि च
आदिदेश गृहान्कृष्णः पारिबर्हांश्च पुष्कलान्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रवेशनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

## कृष्णस्य सभाप्रवेशः ।

## १००

वैशम्पायन उवाच ।
ततः संपूज्य गरुडं वासुदेवोऽनुमान्य च ।
सखिवच्चोपगृह्यैनमनुजज्ञे गृहं प्रति ॥ १
सोऽनुज्ञातो हि सत्कृत्य प्रणम्य च जनार्दनम्
ऊर्ध्वमाचक्रमे पक्षी यथेष्टं गगनेचरः ॥ २
स पक्षवातसंक्षुब्धं समुद्रं मकरालयम् ।
कृत्वा वेगेन महता ययौ पूर्वमहोदधिम् ॥३
कृत्यकाले उपस्थास्य इत्युक्त्वा गरुडे गते ।
कृष्णो ददर्श पितरं वृद्धमानकदुन्दुभिम् ॥ ४
उग्रसेनं च राजानं बलदेवं च सात्यकिम् ।
काश्यं सान्दीपनिं चैव ब्रह्मगार्ग्यं तथैव च ॥
अन्यांश्च वृद्धान्वृष्णीनां
तांश्च भोजान्धकांस्तथा ।
रत्नप्रवेकैर्दाशार्हा-
न्वीर्यलब्धैस्तथाऽर्चयत् ॥ १
हता ब्रह्मद्विषः सर्वे जयन्त्यन्धकवृष्णयः ।
रणात्प्रतिनिवृत्तोऽयमक्षतो मधुसूदनः ॥ ७

ईश्वराः इन्द्रादयः अनुचराः यस्य ईश्वरानुचरः ॥ १६ ॥ संहृताः दूषणं विना आनीताः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

१००

इति चत्वररथ्यासु द्वारवत्यां सुपूजितः ।
चाक्रिको घोषयामास पुरुषो मृष्टकुण्डलः ८
ततः सान्दीपनिं पूर्वमभिगम्य जनार्दनः ।
ववन्दे वृष्णिनृपतिमाहुकं विनयान्वितः ॥ ९
तथा हि परिपूर्णाक्षमानन्दागतचेतसम् ।
ववन्दे सह रामेण पितरं वासवानुजः ॥ १०
उपगम्य तथा शेषान्सत्कृत्य च यथार्हतः ।
सर्वेषां नाम जग्राह दाशार्हाणामधोक्षजः ॥
ततः सर्वाणि दिव्यानि सर्वरत्नमयानि च ।
आसनाग्र्याणि विविशुरुपेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥
ततस्तद्धनमक्षय्यं किङ्करैर्यत्समाहृतम् ।
तत्सभामानयामासुः पुरुषाः कृष्णशासनात् ॥
ततः संमानयामास दाशार्हांश्च यदूत्तमः ।
सर्वान्दुन्दुभिशब्देन पूजयिष्यञ्जनार्दनः ॥१५
तामासनवतीं रम्यां मणिविद्रुमतोरणाम् ।
सभां सर्वदशार्हास्ते विविशुः कृष्णशासनात्
ततः पुरुषसिंहैर्या यदुभिः सर्वतो वृता ।
सर्वार्थगुणसंपन्ना सा सभा भरतर्षभ * ।
शुशुभेऽभ्यधिकं शुभ्रा सिंहैर्गिरिगुहा यथा१६
रामेण सह गोविन्दः काञ्चनं महदासनम् ।
उग्रसेनं पुरस्कृत्य भोजवृष्णिपुरस्कृतः ॥ १७
तत्रोपविष्टांस्तान्वीरान्यथाप्रीतिर्यथावयः ।
समाभाष्य यदुश्रेष्ठानुवाच पुरुषोत्तमः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि सभाप्रवेशनं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## कृष्णपराक्रमवर्णनम् ।

## १०१

श्रीकृष्ण उवाच ।
भवतां पुण्यकीर्तीनां तपोबलसमाधिभिः ।
अपध्यानाच्च पापात्मा भौमः स नरको हतः
मोक्षितं बन्धनाद्रुद्धं कन्यान्तःपुरमुत्तमम् ।
मणिपर्वतमुत्पाट्य शिखरं चैतदाहृतम् ॥ २
अयं धनौघः सुमहान्किङ्करैराहृतो मम ।
ईशा भवन्तो द्रव्यस्य तानुक्त्वा विरराम ह
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भोजवृष्ण्यन्धका वचः
जहृषुर्हृष्टरोमाणः पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ४
ऊचुश्चैनं नृवीरास्ते कृताञ्जलिपुटास्ततः ।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने ॥ ५
यत्कृत्वा दुष्करं कर्म देवैरपि दुरासदम् ।
लालयेः स्वजनान्भोगै रत्नैश्च स्वयमर्जितैः ६
ततः सर्वदशार्हाणामाहुकस्य च याः स्त्रियः
प्रीयमाणाः समाजग्मुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७
देवकीसप्तमा देव्यो रोहिणी च शुभानना ।
ददृशुः कृष्णमासीनं रामं चैव महाभुजम् ॥८
तौ तु पूर्वमतिक्रम्य रोहिणीमभिवाद्य च ।
अभिवादयतां देवीं देवकीं रामकेशवौ ॥ ९
सा ताभ्यामृषभाक्षाभ्यां
पुत्राभ्यां शुशुभेऽम्बिका ।
अदितिर्देवमातेव
मित्रेण वरुणेन च ॥ १०
ततः प्राप्ता नराढ्यौ तु
तस्याः सा दुहिता तदा ।
एकानंशेति यामाहु-
र्नरा वै कामरूपिणीम् ॥ ११
तथा क्षणमुहूर्ताभ्यां यथा जज्ञे सुरेश्वरः ।
यत्कृते सगणं कंसं जघान पुरुषोत्तमः ॥ १२

चाक्रिको राजाज्ञाघोषकः ॥ ८ ॥ विविशुः अभिनिविविशुः आसनेषु उपविष्टाः ॥ १२ ॥ संमानयामास धनानि विभज्य ददावित्यर्थः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

भवतामिति ॥ १ ॥ नराढ्यौ प्रति एकानंशा सा योगमाया दुहिता तस्या यशोदायाः ॥ ११ ॥ क्षणः उक्तविधः संकेतः मुहूर्तः उक्तः कालश्च ताभ्यां जज्ञे आविर्बभूव ॥ १२ ॥

* एतत्पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । १ ख. °खरं वै तदा' । २ ख °भ्यां यथा

सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता ।
पुत्रवत्पाल्यमाना वै वासुदेवाज्ञया तदा ॥ १३
एकानंशेति यामाहुरुत्पन्नां मानवा भुवि ।
योगकन्यां दुराधर्षां रक्षार्थं केशवस्य ह ॥ १४
यां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः ।
देववद्दिव्यपुरुषः कृष्णः संरक्षितो यया ॥ १५
तां च तत्रोपसंगम्य प्रियामिव सखीं स्वसाम्
दक्षिणेन कराग्रेण परिजग्राह माधवः ॥ १६
तथैव रामोऽतिबलः संपरिष्वज्य भाविनीम्
मूर्ध्न्युपाघ्राय सव्येन प्रतिजग्राह पाणिना १७
ददृशुस्ताः स्त्रियो मध्ये भगिनीं रामकृष्णयोः
रुक्मपद्मव्यग्रकरां श्रियं पद्मालयामिव ॥ १८
तथाक्षतमहावृष्ट्या पुष्पैश्च विविधैः शुभैः ।
अवकीर्य च लाजैस्ताः स्त्रियो जग्मुर्यथालयम्
ततस्ते यादवाः सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ।
उपोपविविशुः प्रीताः प्रशंसन्तोऽद्भुतं कृतम्
पूज्यमानो महाबाहुः पौराणं रतिवर्धनः ।
विरराज महाकीर्तिर्देवैरिव स तैः सह ॥ २१
समासीनेषु सर्वेषु यादवेषु जनार्दनम् ।
नियोगात्त्रिदशेन्द्रस्य नारदोऽभ्यागमत्सभाम्
सोऽथ संपूजितः पूज्यः शूरैस्तैर्यदुपुङ्गवैः ।
करं संस्पृश्य स हरेर्विवेश परमासने ॥ २३
सुखोपविष्टस्तान्वृष्णीनुपविष्टानुवाच ह ।
संप्राप्तं शक्रवचनाज्जानीध्वं मां नरर्षभाः २४
शृणुध्वं राजशार्दूलाः कृष्णस्यास्य पराक्रमम्
यानि कर्माणि कृतवान्बाल्यात्प्रभृति केशवः
उग्रसेनसुतः कंसः सर्वान्निर्मथ्य यादवान् ।
राज्यं जग्राह दुर्बुद्धिर्बद्ध्वा पितरमाहुकम् २६
समाश्रित्य जरासन्धं श्वशुरं कुलपांसनः ।
भोजवृष्ण्यन्धकान्सर्वानवमन्यत दुर्मतिः २७
ज्ञातिकार्यं चिकीर्षुस्तु वसुदेवः प्रतापवान् ।
उग्रसेनस्य रक्षार्थं स्वपुत्रं पर्यरक्षत ॥ २८
स गोपैः सह धर्मात्मा मथुरोपवने स्थितः ।
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतवान्मधुसूदनः ॥ २९
प्रत्यक्षं शूरसेनानां श्रूयते महदद्भुतम् ।
उत्तानेन शयानेन शकटान्तरचारिणा ॥ ३०
राक्षसी निहता रौद्री शकुनीवेषधारिणी ।
पूतना नाम घोरा सा महाकाया महाबला ॥
विषदिग्धं स्तनं रौद्रं प्रयच्छन्ती जनार्दने ।
ददृशुर्निहतां तां ते राक्षसीं वनगोचराः ॥ ३२
पुनर्जातोयमित्याहुरुक्तस्तस्मादधोक्षजः ।
अत्यद्भुतमिदं चासीद्यच्छिशुः पुरुषोत्तमः ३३
पादाङ्गुष्ठेन शकटं क्रीडमानो व्यलोडयत् ।
दाम्ना चोलूखले बद्धो विप्रकुर्वन्कुमारकम् ३४
बभञ्जार्जुनवृक्षौ द्वौ ख्यातो दामोदरस्तदा ।
कालियश्च महानागो दुराधर्षो महाबलः ३५
क्रीडता वासुदेवेन निर्जितो यमुनाह्रदे ।
अक्रूरस्य समक्षं च यन्नागभवने विभुः ॥ ३६
पूज्यमानं तदा नागैर्दिव्यं वपुरधारयत् ।
शीतवातार्दिता गाश्च दृष्ट्वा कृष्णेन धीमता ॥
धृतो गोवर्धनः शैलः सप्तरात्रं महात्मना ।
शिशुना वासुदेवेन गवां त्राणार्थमिच्छताम् ॥
तथोक्षदुष्टोऽतिबलो महाकायो नरान्तकृत् ।
गोपतिर्वासुदेवेन हतोऽरिष्टो महासुरः ॥ ३९
धेनुकः स महाकायो दानवः सुमहाबलः ।
निहतो वासुदेवेन गवां त्राणाय दुर्मतिः ॥ ४०
सुनामानममित्रघ्नः सर्वसैन्यपुरस्कृतम् ।
वृकैर्विद्रावयामास गृहीतं समुपस्थितम् ॥ ४१
रौहिणेयेन संगम्य वने विचरता पुनः ।
गोपवेषधरेणैव कंसस्य भयमाहितम् ॥ ४२
तथा व्रजगतः शौरिर्दृष्ट्वा युद्धबलं हयम् ।
प्रग्रहं भोजराजस्य जघान पुरुषोत्तमः ॥ ४३
प्रलम्बश्च महाबाहो रौहिणेयेन धीमता ।
दानवो मुष्टिनैकेन कंसामात्यो निपातितः ४४
एतौ हि वसुदेवस्य पुत्रौ सुरसुतोपमौ ।
ववृधाते महावीर्यौ ब्रह्मगार्ग्येण संस्कृतौ ४५
जन्मप्रभृति चाप्येतौ गार्ग्येण परमर्षिणा ।
याथातथ्येन विज्ञाप्य संस्कारं प्रतिपादितौ ॥
यदा त्विमौ नरश्रेष्ठौ स्थितौ यौवनसंमुखे ।
सिंहशावाविवोदीर्णौ मत्तौ हैमवतौ यथा ॥
ततो मनांसि गोपीनां हरमाणौ महाबलौ ।
आस्तां गोष्ठवरौ वीरौ देवपुत्रोपमद्युती ॥ ४८

अवमन्यत तेषाम् अवमानमकरोत् ॥ २७ ॥ शकटान्तरचारिणा शकटनाशार्थं चेष्टमानेन ॥ ३० ॥ सुनामानमित्यनेन कथान्तरं सूच्यते ॥ ४१ ॥ भयं दैत्यान्तरवधश्रवणजम् ॥ ४२ ॥ प्रग्रहं सहायम् ॥ ४३ ॥

१ घ. °तो यया । तां । २ ख. °खीं सखा द° । ३ ख. करें सं° । ४ ख. °पवने वसन् । अत्य° । ५ ख. °ता रौद्री श° । ६ °श्च महाकायो रौ° ।

एतौ जये वा युद्धे वा क्रीडासु विविधासु च
नन्दगोपस्य गोपाला न शेकुः प्रसमीक्षितुम् ॥
व्यूढोरस्कौ महाबाहू
शालस्कन्धाविवोद्गतौ ।
श्रुत्वाऽसौ व्यथितः कंसो
मन्त्रिभिः सहितोऽभवत् ॥ ५०
नाशकच्च यदा कंसो ग्रहीतुं बलकेशवौ ।
निजग्राह ततः क्रोधाद्वसुदेवं सबान्धवम् ५१
सहोग्रसेनेन तदा चोरवद्गाढबन्धनम् ।
कालं महान्तमसुवत्कृच्छ्रमानकदुन्दुभिः ५२
कंसस्तु पितरं बद्ध्वा शूरसेनाञ्शशास ह ।
जरासन्धं समाश्रित्य तथैवाह्वृतिभीष्मकौ ५३
कस्यचित्त्वथ कालस्य मथुरायां महोत्सवम् ।
पिनाकिनं समुद्दिश्य चक्रे कंसो नराधिपः ॥
तत्र मल्लाः समाजग्मुर्नानादेश्या विशांपते ।
नर्तना गायनाश्चैव कुशला नृत्यकर्मसु ॥ ५५
ततः कंसो महातेजा रङ्गवाटं महाधनम् ।
कुशलैः कारयामास शिल्पिभिः साधुनिष्ठितैः
तत्र मञ्चसहस्राणि पौरजानपदैर्जनैः ।
समाकीर्णानि दृश्यन्ते ज्योतींषि गगने यथा
भोजराजः श्रिया जुष्टं रङ्गवाटं महर्द्धिमत् ।
आरुरोह ततः कंसो विमानं सुकृती यथा ५८
रङ्गवाटे गजं मत्तं प्रभूतायुधकल्पितम् ।
शूरैरधिष्ठितः कंसः स्थापयामास वीर्यवान् ॥
यदा हि स महातेजा रामकृष्णौ समागतौ ।
शुश्राव पुरुषव्याघ्रौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ६०
तदाप्रभृति यत्नोऽभू-
द्रक्षां प्रति नराधिप ।
न च शिश्ये सुखं रात्रौ
रामकृष्णौ विचिन्तयन् ॥ ६१
श्रुत्वा तु रामः कृष्णश्च तं समाजमनुत्तमम् ।
उभौ विविशतुर्वीरौ शार्दूलौ गोव्रजं यथा ॥
ततः प्रवेशे संरुद्धौ रक्षिभिः पुरुषर्षभौ ।
हत्वा कुवलयापीडं ससादिनमरिन्दमौ ।
अवमृद्य दुराधर्षौ रङ्गं विविशतुस्तदा ॥ ६३
चाणूरान्ध्रौ विनिष्पिष्य केशवेन बलेन च ।
औग्रसेनिः सुदुष्टात्मा सानुजो विनिपातितः
यत्कृतं यदुसिंहेन देवैरपि सुदुष्करम् ।
कर्म तत्केशवादन्यः कर्तुमर्हति कः पुमान् ६५
यदि नाधिगतं पूर्वैः प्रह्लाद-बलि-शम्बरैः ।
तदिदं प्रापितं वित्तं शौरिणा भवतां कृते ६६
एतेन मुरुमाक्रम्य दैत्यं पञ्चजनं तथा ।
निष्क्रम्य शैलसङ्घातान्निसुन्दः सगणो हतः
नरकश्च हतो भौमः कुण्डले चाहृते शुभे ।
प्राप्तं च दिवि देवेषु केशवेन महद्यशः ॥ ६८
वीतशोकभयाबाधाः कृष्णबाहुबलाश्रयाः ।
यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्यादवा वीतमत्सराः ६९
देवानां सुमहत्कार्यं कृतं कृष्णेन धीमता ।
प्रियमावेदयाम्येष भवतां भद्रमस्तु वः ॥ ७०
यदिष्टं वो यदुश्रेष्ठाः कर्तास्मि तदतन्द्रितः ।
भवतामस्मि यूयं च मम युष्मास्वहं स्थितः ७१
इति संबोधयन्कृष्णमब्रवीत्पाकशासनः ।
स मां प्रैक्षीत्सुरश्रेष्ठः प्रीतस्तुष्टास्तथा वयम् ॥
यत्र धीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र सन्नतिः
सन्नतिर्धीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

नन्दगोपस्य सुताविति शेषः ॥ ४९ ॥ शिश्ये शयनं कृतवान् ॥ ६१ ॥ कुण्डले अदिति संबन्धिनी ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१ ख. ततः कोपाद्व° । २ ङ. °वाम्रातिभी° । ३ ख. °त्यसामसु । त° । ४ ख. °स्तुष्टा यथा व° ।

## नारदवाक्ये कृष्णस्तुतिः।

### १०२

नारद उवाच।

सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ
कृतः क्षेम्यः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति
शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिताः स्पर्द्धिनो रणे
धनुषश्च निनादेन पाञ्चजन्यस्वनेन च॥ २
मेघप्रख्यै रथानीकैर्दाक्षिणात्यैः सुरक्षितम्।
रुक्मिणं युधि निर्जित्य महाबलपराक्रमम्।
रुक्मिणीमाजहाराशु केशवो वृष्णिपुङ्गवः॥ ३
ततः पर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा।
अवाप्य महिषीं भोज्यां शङ्खचक्रगदासिभृत्४
जारूथ्यामाहुतिः क्राथः शिशुपालश्च निर्जितः
वक्रश्च सह सैन्येन शतधन्वाऽथ निर्जितः॥५
इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद्यवनश्च कशेरुमान्।
हतः सौभपतिः श्रीमाञ्छाल्वश्च दृढधन्वना॥
पर्वतानां सहस्रं च चक्रेण पुरुषोत्तमः।
विकीर्य पुण्डरीकाक्षो द्युमत्सेनं व्यपोथयत् ७
महेन्द्रशिखरे चैव निमेषान्तरचारिणौ।
जघान पुरुषव्याघ्रो रावणस्याभितश्चरौ॥ ८
इरावत्यां महाभोजावग्निसूर्यसमौ युधि।
गोपतिस्तालकेतुश्च निहतौ शार्ङ्गधन्वना॥९
अक्षप्रपातने चैव डिम्भो हंसश्च दानवौ।
उभौ तावपि कृष्णेन सानुगौ विनिपातितौ॥
दग्धा वाराणसी चैव केशवेन महात्मना।
सराष्ट्रः सानुबन्धश्च काशीनामाधिपो हतः॥
विजित्य च यमं सङ्ख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः।
अथैन्द्रसेनिरानीतः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा॥ १२
सहितः सर्वयादोभिः समरेषु महाबलः।
प्राप्य लोहितकूटं च कृष्णेन वरुणो जितः॥
महेन्द्रभवने यातो देवैर्गुप्तो महात्मभिः।
अचिन्तयित्वा देवेन्द्रं पारिजातद्रुमो हतः१४
पाण्ड्यं पौण्ड्रं कलिङ्गं च
मात्स्यं चैव जनार्दनः।
जघान सहितान्सर्वा-
न्वङ्गराजं तथैव च॥ १५
एष चैकशतं हत्वा रणे राज्ञां महात्मनाम्।
गान्धारीमावहद्वीरो महिषीं प्रियदर्शनाम्१६
तथा गाण्डीवधन्वानं क्रीडन्तं मधुसूदनः।
जिगाय भरतश्रेष्ठं कुन्त्याः प्रमुखतो विभुः१७
द्रोणं द्रौणिं कृपं कर्णं भीष्मं चैव सुयोधनम्
चक्रानुयानैः प्रद्रवणे जिगाय पुरुषोत्तमः १८
बभ्रोश्च प्रियमन्विच्छञ्छङ्खचक्रगदासिभृत्।
सौवीरराजस्य सुतां प्रसह्य हृतवान्प्रभुः॥ १९
पर्यस्तां पृथिवीं कृत्स्नां साश्वां सरथकुञ्जराम्
वेणुदारिकृते यत्नाज्जिगाय पुरुषोत्तमः॥ २०
अवाप्य तपसो वीर्यं बलमोजश्च माधवः।
पूर्वदेहे जहारायं बलेस्त्रिभुवनं हरिः॥ २१
वज्राशनिगदाखड्गैस्त्रासयद्भिश्च दानवैः।
यस्य नाधिगतो मृत्युः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति
अभिभूतश्च कृष्णेन सगणः सुमहाबलः।
बलेः पुत्रो महावीर्यो बाणो द्रविणवत्तरः २३
पीठं तथा महाबाहुः कंसामात्यं जनार्दनः।
पैठिकं चासिलोमानं निजघान महाबलः २४
जृम्भमैरावणं चापि विरूपं च महायशाः।
जघान पुरुषव्याघ्रो दैत्यं मानुषरूपिणम् ॥२५
तथा नागपतिं तोये कालीयं च महौजसम्।
निर्जित्य पुण्डरीकाक्षः प्रेषयामास सागरम्
सञ्जीवयामास मृतं पुत्रं सान्दीपनेस्तथा।
निर्जित्य पुरुषव्याघ्रो यमं वैवस्वतं हरिः॥२७
एवमेष महाबाहुः शास्ता तेषां दुरात्मनाम्।
देवांश्च ब्राह्मणांश्चैव ये द्विषन्ति सदा नृप २८
निहत्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले।
देवमातुर्ददौ चैव प्रीत्यर्थं वज्रपाणिनः॥ २९
एवं च देवदैत्यानां सुराणां च महायशाः।
भयाभयकरः कृष्णः सर्वलोककरो विभुः ३०

१०२

सादिता इति मौरवाः मुरकृताः ॥१॥ महेन्द्रस्य पर्वतस्य शिखरे इरावत्यां नगर्यामिति द्वयोः संबन्धः ॥८॥ अक्षप्रपातने चक्षुर्विक्षेपमात्रे निमित्ते सति स्थानविशेषे वा जिगाय जयवन्तमकरोत्। अन्तर्भावितण्यन्तोऽयं शब्दः ॥१७॥ चक्रानुयानैः रथैः प्रद्रवणे संग्रामे इत्यर्थः। अक्षराधिक्यमर्षम्। जिगाय जितवान् अर्जुनद्वारेति भावः॥१८॥

१ ख. तु च°। २ ख. °भिः सागरेषु म°। ३ ख. °याने सहिताञ्जिगा°। ४ ख. °वं सदैव दे°।

संस्थाप्य धर्मान्मर्त्येषु यज्ञैरिष्ट्वाऽऽप्तदक्षिणैः।
कृत्वा देवार्थममितं स्वस्थानं प्रतिपत्स्यते ३१
कृष्णो भोगवतीं रम्यामृषिकान्तां महायशाः
द्वारकामात्मसात्कृत्वा समुद्रं गमयिष्यति ३२
बहुरत्नसमाकीर्णां चैत्ययूपशताङ्किताम्।
द्वारकां वरुणावासं प्रवेक्ष्यति सकाननाम् ३३
तां सूर्यसदनप्रख्यां मतज्ञः शार्ङ्गधन्वनः।
विसृष्टां वासुदेवेन सागरः प्लावयिष्यति ३४
सुरासुरमनुष्येषु नासीन्न भविता क्वचित्।
य इमामावसेत्कश्चिदन्यो वै मधुसूदनात् ॥ ३५
एवमेष दशार्हाणां विधाय विधिमुत्तमम्।
विष्णुर्नारायणः सोमः सूर्यश्च भविता स्वयम्
अप्रमेयस्त्वचिन्त्यश्च यथा कामचरो वशी।
मोदत्येष सदा भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ ३७
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽयं मधुसूदनः।
परं ह्यपरमेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥ ३८
श्रुतोऽयमेव शतशस्तथा शतसहस्रशः।
अन्तो हि कर्मणामस्य दृष्टपूर्वो न केनचित्
एवमेतानि कर्माणि शिशुमध्यगतस्तदा।
कृतवान्पुण्डरीकाक्षः सङ्कर्षणसहायवान् ४०
इत्युवाच पुराव्यासस्तपोवीर्येण चक्षुषा।
महायोगी महाबुद्धिः सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ४१

वैशम्पायन उवाच।

इति संस्तूय गोविन्दं महेन्द्रवचनान्मुनिः।
यदुभिः पूजितः सर्वैर्नारदस्त्रिदिवं ययौ ॥ ४२
ततस्तद्ब्रह्म गोविन्दो दिदेशान्धकवृष्णिषु।
यथार्हं पुण्डरीकाक्षो विधिवन्मधुसूदनः ॥ ४३
यादवश्च धनं प्राप्य विधिवद्भूरिदक्षिणैः।
यज्ञैरिष्ट्वा महात्मानो द्वारकामावसत्पुरीम् ४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## वृष्णिवंशवर्णनम्।

## १०३

जनमेजय उवाच।

बहूनां स्त्रीसहस्राणामष्टौ भार्याः प्रकीर्तिताः
तासामपत्यान्यष्टानां भगवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १

वैशम्पायन उवाच।

अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्राधान्यतः स्मृताः
सर्वा वीरप्रजाश्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ २
रुक्मिणी सत्यभामा च देवी नाग्नजिती तथा
सुदत्ता च तथा शैब्या लक्ष्मणा चारुहासिनी
मित्रविन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी
सुभीमा च तथा माद्री रुक्मिणीतनयाञ्छृणु
प्रद्युम्नः प्रथमं जज्ञे शम्बरान्तकरः शुभः।
द्वितीयश्चारुदेष्णश्च वृष्णिसिंहो महारथः ५
चारुभद्रश्चारुगर्भः सुदेष्णो द्रुम एव च।
सुषेणश्चारुदेष्णश्च चारुविन्दश्च वीर्यवान् ॥ ६
चारुबाहुः कनीयांश्च कन्या चारुमती तथा।
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भौमरथस्तथा ॥ ७
रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रजाक्षो जलान्तकः।
भानुर्भौमलिका चैव ताम्रपर्णी जलन्धमा ८
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात्।
जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः
मित्रवान्मित्रविन्दश्च मित्रवत्यपि चाङ्गना।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजाः शृणु ॥
भद्रकारो भद्रविन्दः कन्या भद्रवती तथा।
सुदत्तायां तु शैब्यायां संग्रामजिदजायत ११
सत्यजित्सेनजिच्चैव तथा शूरः सपत्नजित्।
सुभीमायाः सुतो माद्र्या वृकाश्वो वृकनिर्वृतिः
कुमारो वृकदीप्तिश्च लक्ष्मणायाः प्रजाः शृणु
गात्रवान्गात्रगुप्तश्च गात्रविन्दश्च वीर्यवान् १३

देवार्थं देवानां प्रयोजनम्। स्वस्थानं वैकुण्ठम् ॥ ३१ ॥ न विद्यते पृथगिति शेषः ॥ ३८ ॥ पुराव्यासः पूर्वकल्पीयो व्यासः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

१०३

बहूनामिति ॥ १ ॥

१ ख. °श्च सवि° । २ ख. °पो दिव्येन च° । ३ ख. °नादृषिः । य° । ४ ख. °वी नम° । ५ ख. °रः सुतः । द्वि° । ६ ख. °र्भः सुदंष्ट्रो द्रु° । ७ ख. °मरथः क्षुपः । रो° । ८ ख. °प्रपक्षा ज° ।

जज्ञिरे गात्रवत्यां च भगिन्याऽनुजया सह ।
अश्रुतश्च सुतो जज्ञे कालिन्द्याः श्रुतसंमितः
अश्रुतं श्रुतसेनायै प्रददौ मधुसूदनः ।
तं प्रदाय हृषीकेशस्तां भार्यां मुदितोऽब्रवीत्
एष वामुभयोरस्तु दायादः शाश्वतीः समाः ।
बृहत्यां तु गदस्याहुः शैब्यायामङ्गदं सुतम् १६
उत्पन्नं कुमुदं चैव श्वेतं श्वेता तथांगना ।
अगावहः सुमित्रश्च शुचिश्चित्ररथस्तथा ॥ १७
चित्रसेनः सुदेवायाश्चित्रा चित्रवती तथा ।
वनस्तम्बश्च जज्ञाते सुतः स्तम्बवनश्च ह ॥१८
निवासना वनस्तम्बः कन्या स्तम्बवती तथा
उपसन्नश्च शंकुश्च वज्रांशुः क्षिप्र एव च ॥ १९
कौशिक्यां श्रुतसोमायां यौधिष्ठिर्यां युधिष्ठिरः
कापाली गरुडश्चैव जज्ञाते चित्रयोधिनौ २०
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोध मे ।
दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः २१
अयुतानि तथा चाष्टौ शूरा रणविशारदाः ।
जनार्दनस्य प्रसवः कीर्तितोऽयं तथा मया२२

प्रद्युम्नस्य सुतो जज्ञे वैदर्भ्यां राजसत्तम ।
अनिरुद्धो रणे रुद्धो जज्ञे स मृगकेतनः ॥ २३
रेवत्यां बलदेवस्य जज्ञाते निशठोल्मुकौ ।
भ्रातरौ देवसंकाशावुभौ पुरुषसत्तमौ ॥ २४
सुतनुश्च सुतारा च शौरेरास्तां परिग्रहः ।
पौण्ड्रकः कपिलश्चैव वसुदेवस्य तौ सुतौ २५
तारायां कपिलो जज्ञे पौण्ड्रश्च सुतनोः सुतः।
तयोर्नृपोऽभवत्पौण्ड्रः कपिलश्च वनं ययौ २६
तुर्यां समभवद्वीरो वसुदेवान्महाबलः ।
जरा नाम निषादानां प्रभुः सर्वधनुष्मताम्२७
काश्यां सुपार्श्वं तनयं लेभे साम्बात्तरस्विनम्
सानुर्जज्ञेऽनिरुद्धस्य वज्रः सानोरजायत २८
वज्राज्जज्ञे प्रतिरथः सुचारुस्तस्य चात्मजः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्
शिनेस्तु सत्यवाग्जज्ञे सत्यकश्च महारथः ।
सत्यकस्यात्मजः शूरो युयुधानस्त्वजायत
असंगो युयुधानस्य मणिस्तस्याभवत्सुतः ।
मणेर्युगन्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृष्णिवंशानुकीर्तने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

## प्रद्युम्नहरणम् ।

## १०४

जनमेजय उवाच ।
य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृतः ।
प्रद्युम्नः स कथं जघ्ने शम्बरं तद्ब्रवीहि मे ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
रुक्मिण्यां वासुदेवस्य लक्ष्म्यां कामो धृतव्रतः
शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्नः कामदर्शनः ।
सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते * ॥ २
तं सप्तरात्रे संपूर्णे निशीथे सूतिकागृहात् ।

जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं वै कालशम्बरः ३
विदितं तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिनः ।
ततो न निगृहीतः स दानवो युद्धदुर्मदः ॥ ४
स मृत्युना परीतायुर्मायया संजहार तम् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगरं स्वं निनाय महासुरः५
अनपत्या तु तस्यासीद्भार्या रूपगुणान्विता ।
नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना ॥ ६

---

वाम् आवयोः कृष्णश्रुतसेनयोः ॥ १६ ॥ दशायुतं लक्षम् ॥२१॥ अष्टौ अयुतानीत्यशीतिसहस्रं च पुत्राः ॥ २२ ॥ अरुद्ध इति च्छेदः ॥२३॥ तुर्यां चतुर्थ्यां शूद्रायामित्यर्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

१०४

**य एष इति** ॥ १ ॥ रतिप्रतिच्छाया मायावती नाम भार्यात्वमापन्ना नतु रतिरित्यग्रे व्यक्तीकरिष्यति॥६॥

---

१ ख. °त्याथ भ° । २ ख. °तसंमतः अ° । ३ ख. °त्रा । अमा° । ४ ख. °था । उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रासुः क्षिप्र एव° । ५ ख. °यं यथा तथा । प्र° । ६ ख. °द्धो रणे योद्धा ज° । ७ ख. °श्च नराची च शौ° । ८ ख. °ण्ड्रश्चक° । ९ ख. नराच्यां क° । १० ख. °भे स हि तरस्वि° । ११ ख. °नुवज्रोऽनि° । १२ ख. °ज्रस्त्वादात्मजा° । १३ ख. °स्य सूणिस्त° । १४ ख °तः । तूणेर्यु° । *सनत्कुमारेति पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । १५ ख. °या प्रज° ।

ददौ तं वासुदेवस्य पुत्रं पुत्रमिवात्मजम् ।
तस्या महिष्या मायिन्या दानवः कालचोदितः
मायावती तु तं दृष्ट्वा संप्रहृष्टतनूरुहा ।
हर्षेण महता युक्ता पुनः पुनरुदैक्षत ॥ ८
अथ तस्य निरीक्षन्त्याः स्मृतिः प्रादुर्बभूव ह
अयं स मम कान्तोऽभूत्स्मृत्वैवं चान्वचिन्तयत्
अयं स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेऽहं दिवानिशम्
चिंताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित्
अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना ।
खेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्टो जात्यन्तरे मया ११
कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती ।
भर्तुर्भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत १२
एवं संचिन्त्य मनसा धात्र्यास्तं सा समर्पयत्
रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत् ॥ १३

धात्र्याः सकाशात्स च तां
शृण्वन्रुक्मिणिनन्दनः ।
मायावतीमविज्ञाना-
न्मेने स्वामेव मातरम् ॥ १४

सा च तं वर्द्धयामास कार्ष्णिं कमललोचनम्
मायाश्चास्मै ददौ सर्वा दानवीः काममोहिता
स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः ।
चिकीर्षितज्ञो नारीणां सर्वास्त्रविधिपारगः१६

तं सा मायावती कान्तं
कामयामास कामिनी ।
इङ्गितैश्चापि वीक्षन्ती
प्रालोभयत सस्मिता ।
प्रसजन्तीं तु तां देवीं
बभाषे चारुहासिनीम् ॥ १७

प्रद्युम्न उवाच ।

मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा
अहो दुष्टस्वभावाऽसि स्त्रीत्वे चपलमानसा॥
या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात्प्रवर्तसे ।
न तु तेऽहं सुतः सौम्ये कोऽयं शीलविपर्ययः
तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथितं को न्वयं विधिः
विद्युत्संपातचपलः स्वभावः खलु योषिताम्
या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव ।
यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः शुभे
कथितं तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते चिकीर्षितम्
एवमुक्ता तु सा भीरुः कामेन व्यथितेन्द्रिया
प्रियं प्रोवाच वचनं विविक्ते केशवात्मजम्
न त्वं मम सुतः कान्त नापि ते शम्बरः पिता
रूपवानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या वृष्णिनन्दन
पुत्रस्त्वं वासुदेवस्य रुक्मिण्यानन्दवर्धनः २४
दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोपवाहितः ।
सूतिकागारमध्यात्त्वं शिशुरुत्तानशायितः २५
मम भर्त्रा हृतोऽसि त्वं बलवीर्यप्रवर्तिना ।
पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत् ॥२६
पाकशासनकल्पस्य हृतस्त्वं शम्बरेण ह ।
सा च ते करुणं माता त्वां बालमनुशोचती
अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभी यथा[3] ।
सोऽपि शक्रादपि महान्पिता ते गरुडध्वजः
इह त्वां नाभिजानाति बालमेवोपवाहितम् ।
कान्त वृष्णिकुमारस्त्वं न हि त्वं शम्बरात्मजः
वीर नैवंविधान्पुत्रान्दानवा जनयन्ति हि ।
अतोऽहं कामयामि त्वां न हि त्वं जनितो मया
रूपं ते सौम्य पश्यन्ती सीदामि हृदि दुर्बला
यन्मे व्यवसितं कान्तं यत्तु मे हृदि वर्तते ३१
तन्मे मनसि वार्ष्णेय प्रतिसन्धातुमर्हसि ।
एष ते कथितः सर्वः सद्भावस्त्वयि यो मम ३२
यथा न मम पुत्रस्त्वं न पुत्रः शम्बरस्य च ।
श्रुत्वैवमखिलं सर्वं मायावत्या प्रभाषितम्
चक्रायुधात्मजः क्रुद्धः शम्बरं स समाह्वयत् ।
सर्वमायास्वभिज्ञोऽसौ नाम विश्राव्य चात्मनः
अहो दानवदुष्टात्मा केशवस्यात्मजं शिशुम्
हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम् ॥ ३५
कथं वै क्रोधमागच्छेद्बुध्यते वा कथं मया ।
प्रथमं किं करिष्यामि येन कुप्यति मन्दधीः
अस्ति चास्य ध्वजं चित्रं सिंहकेतुविभूषितम्
तोरणं गृहमासाद्य उच्छ्रितं मेरुशृङ्गवत् ॥ ३७
एतद्रुमध्य पातिष्ये भल्लेन निशितेन वै ।
ध्वजच्छेदं विदित्वाऽथ शम्बरो निष्क्रमिष्यति

---

१ ख. °ध्या नाथिन्या दा° । २ ख. °शोकहृदे म° । ३ ख. °था । स हि श° । ४ ख. °न्त यच्च मे हृ° । ५ ख. °च्छेद्बुध्यते च क° । ६ ख. °न च । ध्व° ।

ततो युद्धेन हत्वाऽऽजौ
गन्तास्मि द्वारकां प्रति ।
इत्युक्त्वा सज्यमाचक्रे
सशरं चापमोजसा ॥ ३९
चिच्छेद ध्वजरत्नं तु शम्बरस्य महाभुजः
तच्छ्रुत्वा तु ध्वजच्छेदं प्रद्युम्नेन महात्मना ४०
क्रुद्धस्त्वाज्ञापयामास पुत्रान्वै कालशम्बरः ।
जिघांसध्वं महावीरा रौक्मिणेयं त्वरान्विताः
नैवं वै द्रष्टुमिच्छामि मम विप्रियकारकम् ।
श्रुत्वा तु शम्बराद्वाक्यं सुतास्ते शम्बरस्य ह
संनद्धा निर्ययुर्हृष्टाः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ।
चित्रसेनोऽतिसेनश्च विष्वसेनो गदस्तथा ४३
श्रुतसेनः सुषेणस्तु सोमसेनो मनस्तथा ।
सेनानी सैन्यहन्ता च सेनाहा सैनिकस्तथा
सेनस्कन्धोऽतिसेनश्च सेनको जनकः सुतः ।
सकालो विकलः शांतः स शातान्तकरो विभुः
कुम्भकेतुः सुदंष्ट्रश्च केशिरित्येवमादयः ।
चक्रतोमरशूलानि पट्टिशानि परश्वधान् ॥४६
गृहीत्वा निर्ययुर्हृष्टा मन्युना परमाप्लुताः ।
आह्वयन्तममित्रं वै तस्थुः सङ्ग्राममूर्धनि ४७
प्रद्युम्नस्तु महाबाहू रथमारुह्य सत्वरम् ।
निर्ययौ चापमादाय सङ्ग्रामाभिमुखस्तदा
ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् ।
शम्बरस्य तु पुत्राणां केशवस्य च सूनुना ४९
ततो देवाः सगन्धर्वाः समहोरगचारणाः ।
देवराजं पुरस्कृत्य विमानाग्रेषु धिष्ठिताः ॥५०
नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहाहूहूश्च गायनाः ।
अप्सरोभिः परिवृताः सर्वे तत्रावतस्थिरे ५१
देवराजप्रतीहारो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम् ।
शशंस देवराजाय वज्रिणे तद्विचेष्टितम् ॥५२
शम्बरस्य शतं पुत्रा एकः कृष्णस्य चात्मजः
बहूनां युध्यतामेष कथं विजयमाप्नुयात् ॥ ५३
तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य प्रहस्य बलसूदनः ।
उवाच वचनं चेदं शृणु योऽस्य पराक्रमः ५४
कामोऽयं पूर्वदेहे तु हरक्रोधाग्निना हतः ।
रत्या प्रसादितो देवः कामपत्न्या त्रिलोचनः ।
परितुष्टेन देवेन वरमस्याः प्रदीयते ॥ ५५
विष्णुर्मानुषदेहस्तु द्वारकायां भविष्यति ।
तस्य पुत्रत्वमस्यैव भविष्यति न संशयः ॥५६
अनङ्ग इति विख्यातस्त्रैलोक्ये तु महायशाः ।
तत्रोत्पन्नो महातेजाः शम्बरं घातयिष्यति ५७
सप्ताहे जातमात्रे तु रुक्मिण्याः क्रोडसंस्थितम्
आस्थाय शम्बरो मायां प्रद्युम्नमपनेष्यति ॥ ५८
तद्गच्छ शम्बरगृहं भार्या मायावती भव ।
मायारूपप्रतिच्छन्ना शम्बरं मोहयिष्यसि ५९
तत्र त्वमात्मनः कान्तं बालरूपं विवर्धय ।
प्राप्तयौवनदेहस्तु शम्बरं निहनिष्यति ॥ ६०
ततस्त्वया सहानङ्गो द्वारकां वै गमिष्यति ।
रमिष्यति त्वया सार्द्धं शैलपुत्र्यां यथा ह्यहम्
एवमादिश्य देवेशो जगाम पुरुषोत्तमः ।
कैलासं मेरुसंकाशं सिद्धचारणसेवितम् ६२
कामपत्नी प्रणम्याथ देवदेवमुमापतिम् ।
जगाम शम्बरगृहं कालस्यान्तं प्रतीक्षती ॥ ६३
एवमेष महाबाहुः शम्बरं निहनिष्यति ।
सह पुत्रेण प्रद्युम्नो हन्ता तस्य दुरात्मनः ६४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

## प्रद्युम्नेन शम्बरसैन्यविद्रावणम् ।

## १०५

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रवृद्धं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् । शम्बरस्य तु पुत्राणां रुक्मिण्या नन्दनस्य च ।

---

प्रतीहारो द्वारपालः । चित्रं यथा स्यात्तथा चित्रम् आश्चर्यं शशंसाद्भुतं नामानुभूतपूर्वम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

१०५

तत इति ॥१॥

---

१ ख. °स तु सू° । २ ख. °भिनिर्जितः । र° । ३ ख. °त्रस्तु ते भर्ता भवि° । ४ ख. °त्रैलोक्येषु म° । ५ ख. °मात्रे तु रु° । ६ ख. °त्या त्वहं यथा । ए° । ७ ख. °ति । सुपत्रस्य च प्र° । ८ ख. °तः प्रवृत्तं युद्धं ततु° ।

ततः क्रुद्धा महादैत्याः शरशक्तिपरश्वधान् ॥
चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीर्मुसलानि च ॥ २
युगपत्पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिताः।
कार्ष्णायनिस्तु संक्रुद्धः सर्वास्त्रधनुषश्च्युतैः
एकैकं पञ्चभिः क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्धनि[1]।
पुनरेवासुराः क्रुद्धाः सर्वे ते कृतनिश्चयाः॥ ४
ववृषुः शरजालानि प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया।
ततः प्रकुपितोऽनङ्गो धनुरादाय सत्वरः ॥ ५
शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान्महौजसः।
ततोऽपरेण भल्लेन कुपितः केशवात्मजः॥ ६
चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्रसेनस्य वीर्यमान्
ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुध्यत ॥ ७
शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावञ्जिघांसितुम्।
ततः सन्धाय बाणांस्ते विमुञ्चन्तो रणोत्सुकाः
क्रीडन्निव महातेजाः शिरांस्येषामपातयत्।
निहत्य समरे सर्वाञ्छतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ९
प्रद्युम्नः समराकाङ्क्षी तस्थौ सङ्ग्राममूर्धनि
हतं पुत्रशतं श्रुत्वा शम्बरः क्रोधमादधे१०
सूतं संचोदयामास रथं मे संप्रयोजय।
राज्ञो वाक्यं निशम्याथ प्रणम्य शिरसा भुवि
ससैन्यं नोदयामास रथं स सुसमाहितम्।
युक्तमृष्यसहस्रेण सर्पराजसकेतनम् ॥ १२
शार्दूलचर्मसंविष्टं किङ्किणीजलपालिनम्।
ईहामृगगणाकीर्णं पङ्क्तिभक्तिविराजितम् ॥
ताराचित्रपिनद्धाङ्गं स्वर्णकूबरभूषितम् ॥ १३
सुपताकमहोच्छ्रायं मृगराजोग्रकेतनम् ॥ १४
सुविभक्तवरूथं च लोहेषावग्रकूबरम्।
मन्दरोदग्रशिखरं चारुचामरभूषितम् ॥ १५
नक्षत्रमालापिहितं हेमदण्डसमाहितम्।
विराजमानं श्रीमंतमारोहच्छम्बरो रथम् १६
काञ्चनं चित्रसन्नाहं धनुर्गृह्य शरांस्तथा।
प्रस्थितः समराकाङ्क्षी मृत्युना परिचोदितः
चतुर्भिः सचिवैः सार्द्धं सैन्येन महता वृतः।
दुर्धरः केतुमाली च शत्रुहन्ता प्रमर्दनः॥ १८
एतैः परिवृतोऽमात्यैर्युयुत्सुः प्रस्थितो रणे।
दशनागसहस्राणि रथानां द्वे शते तथा ॥ १९
हयानां चाष्टसाहस्रैः प्रयुतैश्च पदातिनाम्।
एतैः परिवृतो योधैः शम्बरः प्रययौ तदा २०
प्रयातस्य तु सङ्ग्रामे उत्पाता बहवोऽभवन्[3]
गृध्रचक्राकुले व्योम्नि संध्याकाराभ्रनादितम्[4]
गर्जन्ति परुषं मेघा निर्घातश्चाम्बरात्पतत्।
शिवा विनेदुरशिवं सैन्यं संकालयन्महत् २२
ध्वजशीर्षेऽपतद्गृध्रः काङ्क्षन्वै दानवासृजम्
रथाग्रे पतितश्चास्य कबन्धो भुवि दृश्यते २३
चीचीकूचीति वाशन्ति शम्बरस्य रथोपरि।
स्वर्भानुग्रस्त आदित्यः परिघैः परिवेष्टितः
स्फुरते नयनं चास्य सव्यं भयनिवेदनम्।
बाहुः प्रकम्पते सव्यः प्रास्खलन्रथवाजिनः२५
ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि निपतितः शम्बरस्य सुरारिणः
ववर्ष रुधिरं देवः शर्कराङ्गारमिश्रितम् ॥ २६
उल्कापातसहस्राणि निपेतू रणमूर्धनि।
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात्सारथेर्हययायिनः॥ २७
एतानचिन्तयित्वा तु उत्पातान्समुपस्थितान्
प्रययौ शम्बरः क्रुद्धः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया २८
भेरीमृदङ्गशङ्खानां पणवानकदुन्दुभेः।
युगपन्नाद्यमानानां पृथिवी समकम्पत ॥ २९
तेन शब्देन महता संत्रस्ता मृगपक्षिणः।
समन्तादुद्रुवुस्तस्माद्भयविक्लवचेतसः॥ ३०
रणमध्ये स्थितः कार्ष्णिश्चिन्तयन्निधनं रिपोः।
सैन्यैः परिवृतोऽसङ्ख्यैर्युद्धाय कृतनिश्चयः ३१
क्रुद्धः शरसहस्रेण प्रद्युम्नं समताडयत्।
संप्राप्तांश्चैव तान्बाणांश्चिच्छेद कृतहस्तवत्

सर्वमस्यते क्षिप्यतेऽनेनेति सर्वास्त्रं तच्च तद्धनुश्च तस्मात् ॥३॥ अनङ्गः प्रद्युम्नः ॥ ५ ॥ समयुध्यत एकत्वमार्षं युद्धं कृतवन्तः ॥७॥ ऋष्याः मृगविशेषा स्तेषां सहस्रेण ॥१२॥ पङ्क्तिभक्तिभिः दशभिश्चित्रभागैः उपर्युपरि कोष्ठकैर्विराजितं शोभमानम् ॥ १३ ॥ निर्घातः अशनिः पतत् अपतत्। संकालयन् क्षपयन् ॥ २२ ॥ गृध्रः दानवासृजं दानवरक्तम् ॥ २३ ॥ वाशन्ति पक्षिण इति शेषः ॥२४॥ सुरारिणः देवशत्रोः ॥ २६॥ असङ्ख्यैः संख्यातुमयोग्यैः। अतिप्रसिद्धनामभिरित्यर्थः ॥ ३१ ॥

[1] ख. °नि। ततो सुराः क्रुद्धतराः स°। [2] ख. सर्पयोक्रेण योजितम्। शा°। [3] ख. °मे उत्पातान्युत्थितानि वै। ग्र°। [4] ख. °नादिताः। ग°। [5] ख. °पत्ताद्यमा°।

प्रद्युम्नो धनुरादाय शरवर्षं मुमोच ह।
तस्मिन्सैन्ये न कोऽप्यस्ति
यो न विद्धः शरेण वै ॥ ३
प्रद्युम्नशरपातेन तत्सैन्यं विमुखीकृतम् ।
शम्बरस्य तथाऽभ्याशे स्थितं संहृत्य भीतवत्
स्वबलं विद्रुतं दृष्ट्वा शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः।
आज्ञापयामास तदा सचिवान्दानवेश्वरः ३५
गच्छध्वं मन्नियोगेन प्रहरध्वं रिपोः सुतम् ।
नोपेक्षणीयः शत्रुर्वै वध्यतां क्षिप्रमेष वै ॥ ३६
उपेक्षित इव व्याधिः शरीरं नाशयेद्ध्रुवम्
तद्वेव दुर्मतिः पापो वध्यतां मत्प्रियेप्सया ३७
ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः शिरसा गृह्य शासनम्
शरवर्षं विमुञ्चन्तस्त्वरिता नोदयन्रथान् ३८
तान्दृष्ट्वा धावतः संख्ये क्रुद्धो मकरकेतनः ।
चापमुद्यम्य संभ्रान्तस्तस्थौ प्रमुखतो बली
दुर्धरं पञ्चविंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।
बिभेद सुमहातेजाः केतुमालिं त्रिषष्टिभिः ४०
सप्तत्या शत्रुहन्तारं द्व्यशीत्या तु प्रमर्दनम् ।
बिभेद परमामर्षी रुक्मिण्या नन्दिवर्धनः ॥४१
ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः प्रद्युम्नं शरवृष्टिभिः ।
एकैकशो बिभेदाजौ षष्टिभिः षष्टिभिः शरैः
तानप्राप्ताञ्छरान्बाणैश्चिच्छेद मकरध्वजः ।
ततोऽर्द्धचन्द्रमादाय दुर्द्धरस्य स सारथिम्४३
जघान पश्यतां राज्ञां सर्वेषां सैनिकस्य वै ।
चतुर्भिरथ नाराचैः सुपर्वैः कङ्कतेजितैः ॥ ४४
जघान चतुरः सोऽश्वान्दुर्धरस्य रथं प्रति।
एकेन योक्त्रं छत्रं च ध्वजमेकेन बन्धुरम् ॥ ४५
षष्ठ्या च युगचक्राक्षं चिच्छेद मकरध्वजः ।
अथापरं शरं गृह्य कङ्कपत्रं सुतेजितम् ॥ ४६
मुमोच हृदये तस्य दुर्द्धरस्यान्यजीविनः ।
स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतप्रभः ॥ ४७
निपपात रथोपस्थात्क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।
दुर्धरे निहते शूरे दानवे दानवेश्वरः ॥ ४८
केतुमाली शरव्रातैरभिदुद्राव कृष्णजम् ।
प्रद्युम्नमथ संक्रुद्धो भ्रुकुटीभीषणाननः ॥ ४९
कृत्वाभ्यधावत्सहसा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्
संक्रुद्धः कृष्णसूनुस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५०
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव यथा घनः ।
स विद्धो दानवामात्यः प्रद्युम्नेन धनुष्मता ५१
चक्रमादाय चिक्षेप प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ।
तं तु प्राप्तं सहस्रारं कृष्णचक्रसमद्युतिम् ॥ ५२
निपत्योत्पत्य सहसा सर्वेषामेव पश्यताम् । १
तेनैव तस्य चिच्छेद केतुमालेः शिरस्तदा ५३
तद्दृष्ट्वा कर्म विपुलं रौक्मिणेयस्य देवराट् ।
विस्मयं परमं प्राप्तः सर्वैर्देवगणैः सह ॥ ५४
गन्धर्वाप्सरसश्चैव पुष्पवर्षैरवाकिरन् ।
केतुमालिं हतं दृष्ट्वा शत्रुहन्ता प्रमर्दनः ।
महाबलसमूहेन प्रद्युम्नमथ दुद्रुवे ॥ ५५
ते गदां मुसलं चक्रं प्रासतोमरसायकान् ।
भिन्दिपालान्कुठारांश्च भास्वरान्कूटमुद्गरान्
युगपत्संक्षिपन्ति स्म वधार्थं कृष्णनन्दने ।
सोऽपि तान्यस्त्रजालानि शस्त्रजालैरनेकधा॥
चिच्छेद बहुधा वीरो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
गजान्सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो गजारोहान्सहस्रशः
रथान्सारथिभिः सार्धं हयांश्चैव ममर्द ह ।
पातयंस्ताञ्छरव्रातैर्नाविद्धः कश्चिदीक्ष्यते५९
एवं सर्वाणि सैन्यानि ममन्थ मकरध्वजः ।
नदीं प्रावर्तयद्घोरां शोणिताम्बुतरङ्गिणीम्६०
मुक्ताहारोर्मिबहुलां वसामेदोस्थिपङ्किनीम् ।
छत्रद्वीपशरावर्तां रथैः पुलिनमण्डिताम् ॥ ६१
केयूरकुण्डलाकूर्मां ध्वजमत्स्यविभूषिताम् ।
नागग्राहवतीं रौद्रीं मत्स्यकूर्मविभूषिताम् ॥
केशशैवलसंछन्नां श्रोणिसूत्रमृणालिकाम् ।
नराननसुपद्मां च हंसचामरवीजिताम् ॥ ६३
शिरःसितमिसमाकीर्णां शोणितौघप्रवर्तिनीम्॥
नदीं दुस्तरणीं भीमामनङ्गेन प्रवर्तिताम् ॥६४
दुष्प्रेक्षां दुर्गमां रौद्रां हीनतेजःसुदुस्तराम् ।
शस्त्रग्राहवतीं घोरां यमराष्ट्रविवर्द्धनीम् ॥ ६५
तत्र रुक्मिसुतः श्रीमान्विलोडयति धन्विनः
शत्रुहन्तारमाश्रित्य शरानभ्यकिरन्बहून् ६६
शत्रुहन्ता पुनः क्रुद्धो मुमोच शरमुत्तमम् ।
प्रद्युम्नस्य समासाद्य हृदये निपपात ह ॥ ६७

बिभेद बिभिदुः ॥४०॥ पर्वैरित्यदन्तत्वमार्षम् ॥४४॥ तत्र धन्विनः धनुर्धरान् विलोडयति मथ्नाति ॥ ६६ ॥

१ ख. °ह । तत्र सै° । २ ङ. °तं संत्यज्य भी° । ३ ख. °तयंस्तु शरव्रा° । ४ ख. °लां मांसमेदोस्थिप° । ५ ख. °न्नद्वीपां । ६ ख. रौद्रामसिनक्रि° । ७ ख. नराननसप° ।

संदधे चापमादाय शरं कनकभूषितम्।
तेनाहनत्सुसंक्रुद्धः कोपयञ्शंबरं रणे॥ ४
हृदये ताडितस्तेन देवशत्रुः सुविक्लवः।
रथशक्तिं समाश्रित्य तस्थौ सोऽथ विचेतनः ५
स चेतनां पुनः प्राप्य धनुरादाय शम्बरः।
विव्याध कार्ष्णिं कुपितः सप्तभिर्निशितैः शरैः
तानप्राप्ताञ्शरान्सोऽथ
सप्तभिः सप्तधाऽच्छिनत्।
शम्बरं च जघानाथ
सप्तत्या निशितैः शरैः॥ ७
पुनः शरसहस्रेण कङ्कबर्हिणवाससा।
अहनच्छंम्बरं क्रोधाद्धाराभिरिव पर्वतम्॥८
प्रदिशो विदिशश्चैव शरधारासमावृता।
[स दिशो विदिशश्चैव शरधारा समावृणोत्]
अन्धकारीकृतं व्योम दिनकर्ता न दृश्यते।
ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शम्बरः १०
प्रद्युम्नस्य रथोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह।
तदस्त्रजालं प्रद्युम्नः शरेणानतपर्वणा॥ ११
चिच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम्।
हते तस्मिन्महावर्षे शराणां कार्ष्णिना तदा
द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशम्बरः।
द्रुमवर्षोच्छ्रितं दृष्ट्वा प्रद्युम्नः क्रोधमूर्च्छितः १३
आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ तेन वृक्षाननाशयत्।
भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिलासंघातमुत्सृजत् १४
प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे।
ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान्१५
सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च तरक्षूनृक्षवानरान्।
वारणान्वारिदप्रख्यान्हयानुष्ट्रान्विशांपते १६
मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि।
गान्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वांस्तान्खण्डशस्तदा
प्रद्युम्नेन तु सा माया हता तां वीक्ष्य शंबरः।
अन्यां मायां मुमोचाथ शंबरः क्रोधमूर्च्छितः
गजेन्द्रान्भिन्नवदनान्षष्टिहायनयौवनान्।
महामात्रोत्तमारूढान्कल्पितान्रणकोविदान्
तामापतन्तीं मायां तु कार्ष्णिः कमललोचनः
सैंहीं मायां समुत्स्रष्टुं चक्रे बुद्धिं महामनाः२०
सा सृष्टा सिंहमाया तु रौक्मिणेयेन धीमता।
माया नागवती नष्टा आदित्येनेव शर्वरी २१
निहितां हस्तिमायां तु तां समीक्ष्य महासुरः
अन्यां संमोहिनीं मायां सोऽसृजद्दानवोत्तमः
तां दृष्ट्वा मोहिनीं नाम मायां मयविनिर्मिताम्
संज्ञास्त्रेण तु प्रद्युम्नो नाशयामास वीर्यवान्२३
शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा।
सैंहीं मायां महातेजाः सोऽसृजद्दानवेश्वरः
सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः प्रतापवान्।
अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत्तदा।
तेऽष्टापदा बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे ॥ २५
सिंहान्विद्रावयामासुर्वायुर्जलधरानिव।
सिंहान्विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टापदेन वै॥ २६
शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै।
अहो मूर्खस्वभावोऽहं यन्मया न हतः शिशुः
प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रश्चापि दुर्मतिः।
तत्कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम्
माया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा।
दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना॥ २९
तां सृजामि महामायामाशीविषसमाकुलाम्
तया दह्येत दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली॥३०
सा सृष्टा पन्नगी माया विषज्वालासमाकुला
तया पन्नगमय्या तु सरथं सहवाजिनम्॥ ३१
ससूतं स हि प्रद्युम्नं बबन्ध शरबन्धनैः।
बध्यमानं तदा दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवंशजः
मायां संचिन्तयामास सौपर्णीं सर्पनाशिनीम्
सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना
सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविषाः।
भग्नायां सर्पमायायां प्रशंसन्ति सुरासुराः ३४

रथशक्तिं रथस्योत्साहहेतुं ध्वजं "शक्तिरस्त्रान्तरे सौर्यामुत्सहादौ बले स्त्रियाम्।" इति मेदिनी॥ ५॥ वारिदप्रख्यान्मेघवत् मृज्यमानान्, "प्रख्या वृहत्प्रेक्षणे बुद्धौ" इति विश्वः॥ १६॥

१ ख. °कभूषणम्। ते°। [ ] एतच्चिन्हमध्यस्थं पद्यार्धं ख पुस्तके नास्ति। २ ख. शरेण का°। ३ ख. °न तु तां मायां पतितां वी°। ४ ख. तु दृष्ट्वाऽसौ दानवेश्वरः। मायां सं°। ५ ख. °नीं नाम सो°। ६ ख. °द्धो मायया नष्टया तया। सै°। ७ ख. माया मे ति°। ८ ख. °हवाजिभिः। स°।

साधु वीर महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धन ।
यत्त्वया धर्षिता माया तेन स्म परितोषिताः
हतायां सर्पमायायां शम्बरश्चिन्तयत्पुनः ।
अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषितः ३६
तमप्रतिहतं युद्धे देवदानवमानवैः ।
पुरा यो मम पार्वत्या दत्तः परमतुष्टया ॥ ३७
गृहाण शम्बरेमं त्वं मुद्गरं हेमभूषितम् ।
मया सृष्टं स्वदेहे वै तपः परमदुश्चरम् ॥ ३८
मायान्तकरणं नाम सर्वासुरविनाशनम् ।
अनेन दानवौ रौद्रौ बलिनौ कामरूपिणौ ३९
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणौ सूदितौ मया ।
प्राणसंशयमापन्ने त्वया मोक्ष्यः स शत्रवे ४०
इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत ।
तदहं मुद्गरं श्रेष्ठं मोचयिष्यामि शत्रवे ॥ ४१
तस्य विज्ञाय चित्तं तु देवराजोऽभ्यभाषत ।
गच्छ नारद शीघ्रं त्वं प्रद्युम्नस्य रथं प्रति ४२
संबोधय महाबाहुं पूर्वजातिं च मोक्षय ।
वैष्णवास्त्रं प्रयच्छास्मै वधार्थं शम्बरस्य च
अभेद्यं कवचं चास्य प्रयच्छासुरसूदन ।
एवमुक्तो मघवता नारदः प्रययौ त्वरम् ॥४४
आकाशेऽधिष्ठितोऽवोचन्मकरध्वजकेतनम् ।
कुमारं पश्य मां प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम् ।
प्रेषितं देवराजेन तव संबोधनाय वै ॥ ४५
स्मर त्वं पूर्वकं भावं कामदेवोऽसि मानद ।
हरकोपानलादग्धस्तेनानङ्ग इहोच्यते ॥ ४६
त्वं वृष्णिवंशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसंभवः
जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यसे
आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद ।
सप्तरात्रे त्वसंपूर्णे सूतिकागारमध्यतः ॥ ४८
वधार्थं शम्बरस्य त्वं ह्रियमाणो ह्युपेक्षितः ।
केशवेन महाबाहो देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४९
यैषा मायावती नाम भार्या वै शम्बरस्य तु ।
रतिं तां विद्धि कल्याणीं तव भार्यां पुरातनीम्
तव संरक्षणार्थाय शम्बरस्य गृहेऽवसत ।
मायां शरीरजां तस्य मोहनार्थं दुरात्मनः ५१
रतेः संपादनार्थाय प्रेषयत्यनिशं तदा ।
एवं प्रद्युम्नं बुद्ध्वा वै तत्र भार्या प्रतिष्ठिता ५२
हत्वा तं शम्बरं वीर वैष्णवास्त्रेण संयुगे ।
गृह्य मायावतीं भार्यां द्वारकां गन्तुमर्हसि ५३
गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवचं च महाप्रभम् ।
शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन ॥ ५४
शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशङ्कया ।
अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः ५५
पार्वत्यां परितुष्टायां दत्तः शत्रुनिबर्हणः ।
अमोघश्चैव संग्रामे देवदानवमानवैः ॥ ५६
तदस्त्रप्रविघातार्थं देवीं त्वं स्मर्तुमर्हसि ।
स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः
तत्र वै क्रियतां यत्नः संग्रामे रिपुणा सह ।
इत्युक्त्वा नारदो वाक्यं प्रययौ यत्र वासवः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे नारदवाक्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## शम्बरवधः ।

### १०७

वैशम्पायन उवाच ।

शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं तं समाददे । मुद्गरे गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिताः ॥ १

देवगन्धर्वप्रियो नारदो देवगन्धर्वनारदस्तम् ॥ ४५ ॥ तवेति ॥ रतिरेव मायमायं शरीरान्तरं स्वसदृशं कृत्वा मायावतीसंज्ञं कृत्वा दैत्यं रमयतीत्यर्थः ॥५१॥ रतेः प्रीतेः एतेन रतेः पातिव्रत्यभङ्गो नास्तीति दर्शितम् ॥५२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

शम्बरस्त्विति ॥ १ ॥

१ ख. °नौ नगचारिणौ । शु° । २ ख. °दने । ए° । ३ ख. च्यसे । त्वं वृ° । ४ ख. रतेरुत्पाद° । ५ ख. °र्वत्या तुष्टया दत्तः सर्वश° । ६ ख. °स्त्रप्रतिघा° ।

पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम्।
उन्मार्गाः सागरा यातास्संक्षुब्धाश्चापि देवताः
गृध्रचक्राकुलं व्योम उल्कापातो बभूव ह।
ववर्ष रुधिरं देवः परुषं पवनो ववौ॥ ३
एवं दृष्ट्वा महोत्पातान्प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः।
अवतीर्य रथाद्वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥ ४
देवीं सस्मार मनसा पार्वतीं शङ्करप्रियाम्।
प्रणम्य शिरसा देवीं स्तोतुं समुपचक्रमे॥ ५

प्रद्युम्न उवाच।

ॐ नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः॥६
नमः शत्रुविनाशिन्यै नमो गौर्यै शिवप्रिये।
नमस्ये शुम्भमथनीं निशुम्भमथनीमपि॥ ७
कालरात्रि[3] नमस्तुभ्यं कौमार्यै च नमो नमः।
कान्तारवासिनीं देवीं नमस्यामि कृताञ्जलिः
विन्ध्यवासिनीं दुर्गघ्नां रणदुर्गां रणप्रियाम्
नमस्यामि महादेवीं जयां च विजयां तथा९
अपराजितां नमस्येऽहमजितां शत्रुनाशिनीम्
घण्टाहस्तां नमस्यामि घण्टामालाकुलां तथा
त्रिशूलिनीं नमस्यामि महिषासुरघातिनीम्।
सिंहाननां नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम् ११
एकानंशां नमस्यामि गायत्रीं यज्ञसत्कृताम्।
सावित्रीं चापि विप्राणां नमस्येऽहं कृताञ्जलिः
रक्ष मां देवि सततं संग्रामे विजयं कुरु।
इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा संप्रीतमानसा १३
उवाच वचनं देवी सुप्रीतेनान्तरात्मना।
पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्द्धन
वरं वरय वत्स त्वममोघं दर्शनं मम।
देव्यास्तु वचनं श्रुत्वा रोमाञ्चोद्गतमानसः॥
प्रणम्य शिरसा देवीं
विज्ञप्तुमुपचक्रमे।
यदि त्वं देवि तुष्टाऽसि
दीयतां मे यदीप्सितम्॥ १६
वरं च वरदे याचे
सर्वामित्रेषु मे जयः।
यस्त्वया मुद्गरो दत्तः
शाम्बरस्यात्मसंभवः॥ १७
एष मे गात्रमासाद्य
माला पद्मवती भवेत्।
तथास्त्विति च साऽप्युक्त्वा
तत्रैवान्तरधीयत॥ १८
प्रद्युम्नस्तु महातेजास्तुष्टो रथमथारुहत्।
मुद्गरं तं गृहीत्वा च शम्बरः क्रोधमूर्छितः॥
भ्रामयित्वा स चिक्षेप
प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान्।
स गत्वा मदनाभ्याशं
माला भूत्वा तु पौष्करी॥ २०
प्रद्युम्नस्य च कण्ठे तु समासक्ता व्यराजत।
नक्षत्राणां तु मालायां यथा परिवृतो विधुः
ततो देवाः सगन्धर्वाः
सिद्धाश्च परमर्षयः।
साधु साध्विति वाचोचुः
पूजयन्केशवात्मजम्॥ २२
मुद्गरं पुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसंनिधौ।
वैष्णवं परमास्त्रं तु नारदेन यथाहृतम्॥ २३
संदधे चापमानम्य इदं वचनमब्रवीत्।
यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम्॥
तेन सत्येन बाणेन जहि त्वं शम्बरं रणे।
इत्युक्त्वा चापमाकृष्य सन्धाय च महामनाः
चिक्षेप शम्बरस्याथ दहँल्लोकत्रयं यथा।
स क्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः कव्यादमोहनः॥
हृदयं शम्बरस्याथ
भित्वा धरणिमागतः।
न चास्य मांसं न स्नायु-
र्नास्थि न त्वङ् न शोणितम्॥ २७
सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं वैष्णवास्त्रस्य तेजसा।
हते दैत्ये महाकाये दानवे शम्बरेऽधमे २८
जहृषुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
उर्वशी मेनका रम्भा विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा

गिरीशायै गिरिशायै। दैर्घ्यमार्षम्॥ ६॥ वाचोचुः पूजयन् सन्धिरार्षः॥२२॥

१ ख. °रा जाताः सं°। २ ख. °म्भहननीं निशुम्भहृदि दारणीम्। का°। ३ ख. °त्रि नमस्येऽहं कुमारीं चापि नित्यशः। का°। ४ ख. महातेजाः प्रहृष्टोर°। ५ ख. सदाहृ°। ६ ख. °न बाणः क°। ७ ख. ° तः। नैवास्य मां°। ८ ख. °बराध°।

न नूनं हृष्टमनसो जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
देवराजस्तु सुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह ।
प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण तमभ्यर्च्य प्रहृष्टवत् ॥ ३०

अथ समरहते तु दैत्यराजे
मधुमथनस्य सुतेन वैष्णवास्त्रैः ।
विगतरिपुभयाः सुराश्च जग्मु-
र्मकरविभूषणकेतनं स्तुवन्तः ॥ ३१
स च समरपरिश्रमं वहन्वै
नगरमुखं प्रविवेश रौक्मिणेयः ।
प्रियतम इव कान्तया प्रहृष्ट-
स्त्वरितपदं रतिदर्शनं चकार ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधे
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## मायावत्या सह प्रद्युम्नस्य द्वारकागमनम् ।

### १०८

वैशम्पायन उवाच ।
समाप्तमायो मायाज्ञो विक्रान्तः समरेऽव्ययः
अष्टम्यां निहतो युद्धे मायावी कालशम्बरः १
तमृक्षवन्ते नगरे निहत्यासुरसत्तमम् ।
गृह्य मायावतीं देवीमागच्छन्नगरं पितुः ॥ २
सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शीघ्रविक्रमः
आजगाम पुरीं रम्यां रक्षितां तेजसा पितुः३
सोऽन्तरिक्षान्निपतितः केशवान्तःपुरे शिशुः।
मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथः॥ ४
तस्मिंस्तत्रावपतिते महिष्यः केशवस्य याः।
विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवंस्ततः ५
ततस्तं कामसङ्काशं कान्तया सह सङ्गतम्।
प्रेक्षन्त्यो हृष्टवदनाः पिबन्त्यो नयनोत्सवम् ६
तं[1] विनीतमुखं दृष्ट्वा[2] सज्जमानं पदे पदे ।
अभवन्स्निग्धसङ्कल्पाःसर्वास्ताः कृष्णयोषितः
रुक्मिणी चैव तं दृष्ट्वा शोकार्ता पुत्रगर्द्धिनी[3] ।
सपत्नीशतसङ्कीर्णा सबाष्पा वाक्यमब्रवीत्८
यादृक्स्वप्नो मया दृष्टो निशायां यौवने गते
कंसारिणा ममानीय दत्तं साहारपल्लवम् ॥ ९
शशिरश्मिप्रतीकाशं मुक्तादामविभूषितम्[4] ।
केशवेनाङ्कमारोप्य मम कण्ठे न्यबध्यत १०
श्यामा सुचारुकेशा स्त्री शुक्लाम्बरविभूषिता
पद्महस्ता निरीक्षन्ती प्रविष्टा मम वेश्मनि ॥
तया पुनरहं गृह्य स्नापिता रुचिराम्बुना ।
कुशेशयमयीं मालां स्त्री संगृह्याथ पाणिना ॥
मम मूर्धन्युपाघ्राय दत्त्वा स्वच्छा तया मम ।
एवं स्वप्नान्कीर्तयन्ती रुक्मिणी हृष्टमानसा॥
सखीजनवृता देवी कुमारं वीक्ष्य तं मुहुः ।
धन्यायाः खल्वयं पुत्रो दीर्घायुः प्रियदर्शनः
ईदृशः कामसङ्काशो यौवने प्रथमे स्थितः ।
जीवपुत्रा त्वया पुत्र काऽसौ भाग्यसमन्विता
किमर्थं चाम्बुदश्यामः सभार्यस्त्वमिहागतः ।
अस्मिन्वयसि सुव्यक्तं प्रद्युम्नो मम पुत्रकः १६
भवेद्यदि न नीतः स्यात्कृतान्तेन बलीयसा
व्यक्तं कृष्णकुमारस्त्वं न मिथ्या मम तर्कितम्
विज्ञातोऽसि मया चिह्नैर्विना चक्रं जनार्दनः
मुखं नारायणस्येव केशाः केशान्त एव च ॥
ऊरू वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिनः श्वशुरस्य मे।
कस्त्वं वृष्णिकुलं सर्वं द्योतयन्वपुषा स्थितः॥
अहो नारायणस्येव दिव्या ते परमा तनुः।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः सहसा प्रविवेश ह ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा शम्बरस्य वधं प्रति २०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

१०८

समाप्तेति ॥ १ ॥

१ घ. तं व्रीडितमु° । २ घ. °ष्ट्वा लज्ज° । ३ ख. °त्रगृद्धिनी । °स° । ४ ख. °दाम च शोभनम् । के° । ५ ख. °ता स्रक् स्रा त° । ६ ख. °णस्यासि दि° ।

सोऽपश्यत्तं सुतं ज्येष्ठं सिद्धं मन्मथलक्षणैः।
स्नुषां मायावतीं चैव हृष्टचेता जनार्दनः।
सोऽब्रवीत्सहसा देवीं रुक्मिणीं देवतामिव॥

कृष्ण उवाच।

अयं स देवि संप्राप्तः सुतश्चापधरस्तव २२
अनेन शम्बरं हत्वा मायायुद्धविशारदम्।
हता मायासुताः सर्वा याभिर्देवानबाधयत्॥
सती चैव शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते।
मायावतीति विख्याता शम्बरस्य गृहोषिता
मा च ते शम्बरस्येयं पत्नीति भवतु व्यथा।
मन्मथे तु गते नाशं गते चानङ्गतां पुरा ॥२५
कामपत्नी न कान्तैषा शम्बरस्य रतिप्रिया
मायारूपेण तं दैत्यं मोहयत्यसकृच्छुभा॥ २६
न चैषा तस्य कौमारे वशे तिष्ठति शोभना।
आत्ममायामयं कृत्वा रूपं शम्बरमाविशत्॥
पत्न्येषा मम पुत्रस्य स्नुषा तव वराङ्गना
लोककान्तस्य साहाय्यं करिष्यति मनोमयम्
प्रवेशयैनां भवनं पूज्यां ज्येष्ठां स्नुषां मम।
चिरं प्रनष्टं च सुतं भजस्व पुनरागतम्॥ २९

वैशम्पायन उवाच।

श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत्॥
अहो धन्यतराऽस्मीति वीरपुत्रसमागमात्।
अद्य मे सफलः कामः पूर्णो मेऽद्य मनोरथः॥
चिरप्रनष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह।
आगच्छ पुत्र भवनं सभार्यः प्रविशेह च ॥३२
ततोऽभिवाद्य चरणौ गोविन्दं मातरं च ताम्
प्रद्युम्नः पूजयामास हलिनं च महाबलम्॥३३
उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वीर्यवान्
प्रद्युम्नं बलिनां श्रेष्ठं केशवः परवीरहा ॥ ३४
स्नुषां चोत्थाप्य तां देवीं
रुक्मिणी रुक्मभूषणा।
परिष्वज्योपसंगृह्य
स्नेहाद्गद्गदभाषिणी॥ ३५
समेत्य भुवनं पत्न्या शचीन्द्रमादितिर्यथा।
प्रवेशयामास तदा रुक्मिणी सुतमागतम्॥३६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्नागमने
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०८॥

## बलदेवाह्निकम्।

## १०९

वैशम्पायन उवाच।

अत्राश्चर्यात्मकं स्तोत्रमाह्निकं जयतां वर।
प्रद्युम्ने द्वारकां प्राप्ते हत्वा तं कालशम्बरम्×१
बलदेवेन रक्षार्थं प्रोक्तमाह्निकमुच्यते।
यज्जप्त्वा तु नृपश्रेष्ठ सायं पूतात्मतां भजेत्॥२
कीर्तितं बलदेवेन विष्णुना चैव कीर्तितम्।
धर्मकामैश्च मुनिभिर्ऋषिभिश्चापि कीर्तितम्॥
*कर्हिचिद्रुक्मिणीपुत्रो हलिना संयुतो गृहे।
उपविष्टः प्रणम्याथ तमुवाच कृताञ्जलिः॥ ४

प्रद्युम्न उवाच।

कृष्णानुज महाभाग
रोहिणीतनय प्रभो।
किंचित्स्तोत्रं मम ब्रूहि
यज्जप्त्वा निर्भयोऽभवम्॥ ५

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकाया-
मष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥

१०९
अत्राश्चर्येति॥ १॥

---

१ख. °तं श्रेष्ठं सि°। २ कृष्ण उवाचेति खपुस्तके नास्ति। ३ ख. °वनं प्रविशे प्रियया सह। ततो°। ४ ख. च सः। प्र°। ५ ख. °श्चर्याद्भुतं मन्त्रमा°। ६ घ. °कं यजतां व°। × प्रद्युम्ने द्वारकामित्यादि पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति। ७ ख. यं जप्त्वा°। * कर्हिचिदित्यारभ्य 'निर्भयोऽभवम्' इत्यन्तो ग्रन्थः खपुस्तके नास्ति।

श्रीबलदेव उवाच ।
सुरासुरगुरुर्ब्रह्मा पातु मां जगतः पतिः
अथोङ्कारवषट्कारौ सावित्री विधयस्त्रयः॥ ६
ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च ।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः
पुराणमितिहासश्चा-
खिलान्युपाखिलानि च ।
अङ्गान्युपाङ्गानि तथा
व्याख्यातानि च पान्तु माम् ॥ ८ ॥
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
इन्द्रियाणि मनो बुध्दिस्तथा सत्त्वं रजस्तमः॥
व्यानोदानौ समानश्च प्राणोऽपानश्च पञ्चमः।
वायवः सप्त चैवान्ये येष्वायत्तमिदं जगत् १०
मरीचिरङ्गिरात्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो भगवान्पान्तु ते मां महर्षयः॥ ११
कश्यपाद्याश्च मुनयश्चतुर्दश दिशो दश ।
नरनारायणौ देवौ सगणौ पान्तु मां सदा १२
रुद्राश्चैकादश प्रोक्ता आदित्या द्वादशैव तु ।
अष्टौ च वसवो देवा अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ
ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीः स्वधा पुष्टि-
र्मेधा तुष्टिः स्मृतिर्धृतिः।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सिंहिका दैत्यमातरः॥१४
हिमवान्हेमकूटश्च निषधः श्वेतपर्वतः ।
ऋषभः पारियात्रश्च विन्ध्यो वैडूर्यपर्वतः ॥१५
सह्योदयश्च मलयो मेरुमन्दरदर्दुराः
क्रौञ्चकैलासमैनाकाः पान्तु मां धरणीधराः॥
शेषश्च वासुकिश्चैव विशालाक्षश्च तक्षकः ।
एलापत्रः शुक्लवर्णः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ १७
हस्तिभद्रः पिटरकः कर्कोटकधनञ्जयौ ।
तथा पूरणकश्चैव नागश्च करवीरकः ॥ १८
सुमनास्यो दधिमुखस्तथा शृङ्गारपिण्डकः ।
मणिनागश्च भगवांस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः १९
नागराडधिकर्णश्च तथा हारिद्रकोऽपरः ।
एते चान्ये च बहवो ये चान्ये नानुकीर्तिताः
भूधराः सत्यधर्माणः पान्तु मां भुजगेश्वराः॥
समुद्राः पान्तु चत्वारो गङ्गा च सरितां वरा
सरस्वती चन्द्रभागा शतद्रुर्देविका शिवा ।
द्वारावती विपाशा च शरयूर्यमुना तथा ॥२२
कल्माषी च रथोष्मा च बाहुदा च हिरण्यदा॥
प्लक्षा चेक्षुमती चैव स्रवन्ती च बृहद्रथा ॥२३
ख्याता चर्मण्वती चैव
पुण्या चैव वधूसरा ।
एताश्चान्याश्च सरितो
याश्चान्या नानुकीर्तिताः ॥ २४
उत्तरापथगामिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम् ।
वेणी गोदावरी सीता कावेरी कौङ्कणावती॥
कृष्णा वेणा सुक्तिमती तमसा पुष्पवाहिनी ।
ताम्रपर्णी ज्योतिरथा उत्फलोदुम्बरावती॥२६
नदी वैतरणी पुण्या विदर्भा नर्मदा शुभा ।
वितस्ता भीमरथ्या च ऐला चैव महानदी ॥
कालिन्दी गोमती पुण्या
नदः शोणश्च विश्रुतः ।
एताश्चान्याश्च वै नद्यो
याश्चान्या न तु कीर्तिताः ॥२८
दक्षिणापथवाहिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम्।
क्षिप्रा चर्मण्वती पुण्या मही शुभ्रवती तथा *
सिन्धुर्वेत्रवती चैव भोजान्ता वनमालिका।
पूर्वभद्रा पराभद्रा ऊर्मिला च परद्रुमा ॥ ३०
ख्याता वेत्रवती चैव चापदासीति विश्रुता ।
प्रस्थावती कुण्डनदी नदी पुण्या सरस्वती ॥
चित्रघ्नी चेन्दुमाला च तथा मधुमती नदी ।
उमा गुरुनदी चैव तापी च विमलोदका ३२
विमला विमलोदा च
मत्तगङ्गा पयस्विनी ।
एताश्चान्याश्च वै नद्यो
याश्चान्या नानुकीर्तिताः ॥ ३३

विधयस्त्रयः अपूर्वविधिर्नियमविधिः परिसंख्याविधिश्चेति मीमांसकप्रसिद्धाः ॥६॥ ऋच इत्युगाद्यभिमानिनी देवता लक्ष्यते ॥ ७ ॥ सप्त वायवः "आवहः प्रवहश्चैव उद्वहः संवहस्तथा विवहः प्रवहश्चैव तथा परिवहोऽनिलः ॥" इत्यन्यत्र प्रोक्ताः ॥ १० ॥

१ ख. °गतीप° । २ ख. °नोदानः स° । ३ ख. °स्ता वै भीमरथी ऐ° । *क्षिप्रेत्यादि पद्यार्धं खपुस्तके नास्ति । ४ ख. °द्रा निर्मला च प° । ५ ख. °ती इण्ठन° । ६ ख. मित्रघ्नी च° । ७ ख. °व वापी च वि° ।

ता मां समभिषिञ्चन्तु
पश्चिमामाश्रिता दिशम् ।
भागीरथी पुण्यजला
प्राच्यां दिशि समाश्रिता ॥ ३४
सा तु दहतु मे पापं कीर्तिता शंभुना धृता ।
प्रभासं च प्रयागं च नैमिषं पुष्कराणि च ३५
गङ्गातीर्थं कुरुक्षेत्रं श्रीकण्ठं गौतमाश्रमम् ।
रामह्रदं विनशनं रामतीर्थं तथैव च ॥ ३६
गङ्गाद्वारं कनखलं सोमो वै यत्र चोत्थितः ।
कपालमोचनं तीर्थं जम्बूमार्गं च विश्रुतम् ३७
सुवर्णबिन्दु विख्यातं तथा कनकपिङ्गलम् ।
दशाश्वमेधिकं चैव पुण्याश्रमविभूषितम् ३८
बदरी चैव विख्याता नरनारायणाश्रमः ।
विख्यातं फल्गुतीर्थं च तीर्थं चन्द्रवटं तथा ॥
कोकामुखं पुण्यतमं गङ्गासागरमेव च ।
मगधेषु तपोदश्च गङ्गोद्भेदश्च विश्रुतः ॥ ४०
तीर्थान्येतानि पुण्यानि सेवितानि महर्षिभिः ।
[ सूकरं योगमार्गं च श्वेतद्वीपं तथैव च ॥४१
ब्रह्मतीर्थं रामतीर्थं वाजिमेधशतोपमम् ।
धारासंपातसंयुक्ता गङ्गा किल्बिषनाशिनी ॥
गङ्गा वैकुण्ठकेदारं सूकरोद्भेदनं परम् ।
तं शापमोचनं तीर्थं पुनन्त्वेतानि किल्बिषात्]
* मां प्लावयन्तु सलिलैः कीर्तिताकीर्तितानि वै
धर्मार्थकामविषयो यशःप्राप्तिः शमो दमः ।
वरुणेशोऽथ धनदो यमो नियम एव च ॥ ४४
कालो नयः संनतिश्च
क्रोधो मोहः क्षमा धृतिः ।
विद्युतोऽभ्राण्यथौषध्यः
प्रमादोन्मादविग्रहाः ॥ ४५
यक्षाः पिशाचा गन्धर्वाः
किन्नराः सिद्धचारणाः ।
नक्तंचराः खेचरिणो
दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ॥ ४६
लम्बोदराश्च बलिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः ।
मरुतः सहपर्जन्याः[1] कलात्रुटिलवाः क्षणाः ॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव ऋतवः शिशिरादयः ।
मासाहोरात्रयश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ ४८
आमोदश्च प्रमोदश्च प्रहर्षः शोक एव च ।
[2]रजस्तमस्तपः सत्यं[3] शुद्धिर्बुद्धिर्धृतिः श्रुतिः ॥
रुद्राणी भद्रकाली च
भद्रा[4] ज्येष्ठा तु वारुणी ।
भासी च कालिका चैव
शाण्डिली चेति विश्रुताः ॥ ५०
आर्या कुहूः सिनीवाली
भीमा[5] चित्ररथी रतिः ।
एकानंशा च कूष्माण्डी
देवी कात्यायनी[6] च या ॥ ५१
लोहित्या जनमाता च
देवकन्यास्तु याः स्मृताः ।
गोनन्दा देवपत्नी च
मां रक्षन्तु सबान्धवम् ॥ ५२
नानाभरणवेशाश्च[7] नानारूपाङ्कितान्नाः ।
नानादेशविचारिण्यो नानाशस्त्रोपशोभिताः
मेदोमज्जाप्रियाश्चैव मद्यमांसवसाप्रियाः ।
मार्जारद्वीपिवक्राश्च गजसिंहनिभाननाः ॥ ५४
कङ्कवायसगृध्राणां क्रौंचतुल्याननास्तथा ।
व्यालयज्ञोपवीताश्च[8] चर्मप्रावरणास्तथा ॥ ५५
क्षतजोक्षितवक्राश्च खरभेरीसमस्वनाः ।
मत्सराः क्रोधनाश्चैव प्रासादा रुचिरालयाः
मत्तोन्मत्तप्रमत्ताश्च प्रहरन्त्यश्च धिष्ठिताः ।
पिङ्गाक्षाः पिङ्गकेशाश्च ततोऽन्या लूनमूर्धजाः ॥
ऊर्ध्वकेश्यः कृष्णकेश्यः श्वेतकेश्यस्तथा[9] वराः
नागायुतबलाश्चैव वायुवेगास्तथापराः[10] ॥ ५८
एकहस्ता एकपादा एकाक्षाः पिङ्गला मताः ।
बहुपुत्रालपपुत्राश्च द्विपुत्राः पुत्रमण्डिकाः ॥ ५९
मुखमण्डी विडाली च पूतना गन्धपूतना ।
शीतवातोष्णवेताली रेवती ग्रहसंज्ञिताः ॥ ६०
प्रियहास्याः प्रियक्रोधाः प्रियवासाः प्रियंवदाः
सुखप्रदाश्चासुखदाः सदा द्विजजनप्रियाः ॥ ६१
नक्तंचराः सुखोदर्काः सदा पर्वाणि दारुणाः ।
मातरो मातृवत्पुत्रं रक्षन्तु मम नित्यशः ॥ ६२
पितामहमुखोद्भूता रौद्रा रुद्राङ्गसंभवाः ।
कुमारस्वेदजाश्चैव ज्वरा वै वैष्णवादयः ६३
महाभीमा महावीर्या दर्पोद्भूता महाबलाः ।
क्रोधनाक्रोधनाः[11] क्रूराः सुरविग्रहकारिणः ॥ ६४

[] एतश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः खपुस्तके नास्ति ।*एतत्पद्यार्धं घ पुस्तके नास्ति। १ख. ०थ पर्जन्यो य०। २ख. मन्युस्तत्र तपः स०। ३ ख. ०त्यं श्रुतिः सिद्धिः स्मृतिस्तथा। रु०। ४ ख. भद्रषष्ठी च वा०। ५ ख. ०मा वेत्रवती र०।६ ख. ०यनी तथा क्रो० ७ ख. ०णचेष्टाश्च नाना०। ८ ख. ०श्च तथा व्यालूनमू०। ९ ख. ०श्यस्तथैव च। नागा०। १० ख. वेगबलास्तथा ए० ।११ ख. क्रोधजाः क्रोध० ।

नक्तंचराः केसरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ।
लम्बोदरा जघनिनः पिङ्गाक्षा विश्वरूपिणः ६५
शक्त्यृष्टिशूलपरिघप्रासचर्मासिपाणयः ।
पिनाकवज्रमुसलब्रह्मदण्डायुधप्रियाः ॥ ६६
दण्डिनः कुण्डिनः शूरा जटामुकुटधारिणः ।
वेदवेदाङ्गकुशला नित्ययज्ञोपवीतिनः । ६७
व्यालापीडाः कुण्डलिनो वीराः केयूरधारिणः
नानावसनसंवीताश्चित्रमाल्यानुलेपनाः ॥ ६८
गजाश्वोष्ट्रर्क्षमार्जारसिंहव्याघ्रनिभाननाः ।
वराहोलूकगोमायुमृगाखुमहिषाननाः ॥ ६९
वामना विकटाः कुब्जाः कराला लूनमूर्धजाः।
सहस्रशतशश्चान्ये सहस्रजटधारिणः ॥ ७०
श्वेताः कैलाससंकाशाः केचिद्दिनकरप्रभाः ।
केचिज्जलदवर्णाभा नीलाञ्जनचयोपमाः ॥ ७१
एकपादा द्विपादाश्च तथा द्विशिरसोऽपरे ।
निर्मांसाः स्थूलजंघाश्च व्यादितास्या भयङ्कराः
वापीतडागकूपेषु समुद्रेषु सरित्सु च ।
श्मशानशैलवृक्षेषु शून्यागारनिवासिनः ॥ ७३
एते ग्रहाश्च सततं रक्षन्तु मम सर्वतः ।
महागणपतिर्नन्दी महाकालो महाबलः ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च ज्वरौ लोकभयावहौ ७४
ग्रामणीश्चैव गोपालो भृङ्गरीटिर्गणेश्वरः ।
देवश्च वामदेवश्च घण्टाकर्णः करंधमः ॥ ७५
श्वेतमोदः कपाली च जम्भकः शत्रुतापनः ।
मज्जनोन्मज्जनौ चोभौ संतापनविलापनौ ७६
निजघासो घसश्चैव स्थूणाकर्णः प्रशोषणः ।
उल्कामाली धमधमो ज्वालामाली प्रदर्शनः
संघट्टनः संकुटनः[1] काष्ठभूतः शिवंकरः ।
कूष्माण्डः कुम्भमूर्धा च रोचनो वैकृतो ग्रहः
अनिकेतः सुरारिघ्नः शिवश्चाशिव एव च ।
क्षेमकः पिशिताशी च सुरारिर्हरिलोचनः ७९
भीमको ग्राहकश्चैव तथैवाग्रमयो[3] ग्रहः ।
उपग्रहोऽर्यकश्चैव तथा स्कन्दग्रहोऽपरः ॥८०
चपलोऽसमवेतालस्तासमः सुमहाकपिः ।
हृदयोद्वर्तनश्चैडः कुण्डाशी कङ्कणप्रियः ॥ ८१
हरिश्मश्रुर्गरुत्मन्तो मनोमारुतरंहसः ।
पार्वत्या रोषसंभूताः सहस्राणि शतानि च

शक्तिमन्तो धृतिमन्तो ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गराः ।
सर्वकामापहन्तारो[5] द्विषतां च मृधेमृधे॥ ८३
रात्रावहनि दुर्गेषु कीर्तिताः सकलैर्गुणैः ।
तेषां गणानां पतयः सगणाः पान्तु मां सदा
नारदः पर्वतश्चैव गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
पितरः कारणं कार्यमाधयो व्याधयस्तथा ८५
अगस्त्यो गालवो गार्ग्यः शक्तिर्धौम्यः पराशरः
कृष्णात्रेयश्च भगवानासितो देवलो[6] बलः ८६
बृहस्पतिरुतथ्यश्च मार्कण्डेयः श्रुतश्रवाः ।
द्वैपायनो विदर्भश्च जैमिनिर्माठरः कठः ॥ ८७
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च लोमशश्च महामुनिः ।
उत्तङ्कश्चैव रैभ्यश्च पौलोमश्च द्वितस्त्रितः ॥ ८८
ऋषिर्वै कालवृक्षीयो मुनिर्मेधातिथिस्तथा ।
सारस्वतो यवक्रीतिः कुशिको गौतमस्तथा
संवर्त ऋष्यशृङ्गश्च स्वस्त्यात्रेयो विभाण्डकः।
ऋचीको जमदग्निश्च तथोर्वस्तपसां निधिः
भरद्वाजः स्थूलशिराः कश्यपः पुलहः क्रतुः
बृहदग्निर्हरिश्मश्रुर्विजयः कण्व एव च ॥ ९१
वैतण्डी दीर्घतापश्च वेदगाथोऽशुमाञ्छिवः[7]*
अष्टावक्रो दधीचिश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ९२
उद्दालकः क्षीरपाणिः शृङ्गी गौरमुखस्तथा ।
अग्निवेश्यः शमीकश्च प्रमुचुर्मुमुचुस्तथा ॥ ९३
एते चान्ये च ऋषयो बहवः शंसितव्रताः ।
मुनयः शंसितात्मानो ये चान्ये नानुकीर्तिताः

ऋतवः श्लाघिनः शान्ताः
शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ।
त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदा-
स्त्रैविद्याः कौस्तुभो मणिः ॥ ९५

उच्चैःश्रवा हयः श्रीमान्वैद्यो धन्वन्तरिर्हरिः ।
अमृतं गौः सुपर्णश्च दधिगौराश्च सर्षपाः ९६
शुक्लाः सुमनसः कन्याः श्वेतच्छत्रं यवाक्षताः
दूर्वा हिरण्यं गन्धाश्च वालव्यजनमेव च ९७
तथाऽप्रतिहतं चक्रं महोक्षश्चन्दनं विषम् ।
श्वेतो वृषः करी मत्तः सिंहो व्याघ्रो हयो गिरिः
पृथिवी चोद्धृता लाजा ब्राह्मणा मधु पायसम्
स्वस्तिको वर्द्धमानश्च नन्द्यावर्तः प्रियङ्गवः ।
श्रीफलं गोमयं मत्स्यौ[8] दुन्दुभिः पटहस्वनः

---

१ ख. °लाजिह्वः प्रमर्दनः । सं° । २ ख. °कुचनः का° । ३ ख. ° थैवोग्रम° । ४ ख. °पलो लोम° । ५ ख. °रो हन्तारो द्विषतां मृधे । रा° । ६ ख. °लो नलः । बृ° । ७ ख. वैतण्डी च दीर्घतपा वेदश्चार्थोऽशु° । * एतदग्रे— 'शुनः शेपः शुनः पुच्छः शुनो लाङ्गूल एव च ' इत्याधिकः पाठः । ८ ख. °यं मत्स्या दु° ।

ऋषिपत्न्यश्च कन्याश्च श्रीमद्भद्रासनं धनुः ।
रोचना रुचकश्चैव नदीनां सङ्गमोदकम् १००
सुपर्णाः शतपत्राश्च चकोरा जीवजीवकाः ।
नन्दीमुखो मयूरश्च बद्धमुक्तामणिध्वजाः ॥ १
आयुधानि प्रशस्तानि कार्यसिद्धिकराणि च ।
पुण्यं वै विगतक्लेशं श्रीमद्वै मङ्गलान्वितम् ॥ २
रामेणोदाहृतं पूर्वमायुः श्रीजयकाङ्क्षिणा ।
यं इदं श्रावयेद्विद्वांस्तथैव शृणुयान्नरः ॥ ३
मङ्गलाष्टशतं स्नातो जपन्पर्वणि पर्वणि ।
वधबन्धपरिक्लेशं व्याधिशोकपराभवम् ॥ ४
न च प्राप्नोति वैकल्यं परत्रेह च शर्मदम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पवित्रं वेदसंमितम् ॥ ५
श्रीमत्स्वर्ग्यं सदा पुण्यमपत्यजननं शिवम् ।
शुभं क्षेमकरं नृणां मेधाजननमुत्तमम् ॥ ६
सर्वरोगप्रशमनं स्वकीर्तिकुलवर्धनम् ।
श्रद्दधानो दयोपेतो यः पठेदात्मवान्नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा लभते च शुभां गतिम् ॥ ७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवाह्निकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## धन्योपाख्यानम् ।

## ११०

वैशम्पायन उवाच ।
हतो यदैव प्रद्युम्नः शम्बरेणात्मघातिना ।
मासेऽस्मिन्नेव साम्बस्तु जाम्बवत्यामजायत १
बाल्यात्प्रभृति रामेण शस्त्रेषु विनियोजितः ।
रामादनन्तरश्चैव मानितः सर्ववृष्णिभिः ॥ २
जातमात्रे ततः कृष्णः शुभां तामवसत्पुरीम् ।
निहतामित्रसामन्तः शक्रोद्यानं यथामरः ॥ ३
यादवीं च श्रियं दृष्ट्वा स्वां श्रियं द्वेष्टि वासवः
जनार्दनभयाच्चैव न शान्तिं लेभिरे नृपाः ॥ ४
कस्यचित्त्वथ कालस्य पुरे वारणसाह्वये ।
दुर्योधनस्य यज्ञे वै समीयुः सर्वपार्थिवाः ५
तां श्रुत्वा माधवीं लक्ष्मीं सपुत्रं च जनार्दनम्
पुरीं द्वारावतीं चैव निविष्टां सागरान्तरे ॥ ६
दूतैस्तैः सकृतन्धानाः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
श्रियं द्रष्टुं हृषीकेशमाजग्मुः कृष्णमन्दिरम् ॥ ७
दुर्योधनमुखाः सर्वे धृतराष्ट्रवशानुगाः ।
पाण्डवप्रमुखाश्चैव धृष्टद्युम्नादयो नृपाः ॥ ८
पाण्ड्याश्चोलकालिङ्गेशा
बाह्लीका द्राविडाः खशाः ।
अक्षौहिणीः प्रकर्षन्तो
दश चाष्टौ च भूमिपाः ॥ ९
आजग्मुर्यादवपुरीं गोविन्दभुजपालिताम् ।
ते पर्वतं रैवतकं परिवार्यावनीश्वराः ॥ १०
विविशुर्योजनाख्यासु स्वासु स्वासु च भूमिषु
ततः श्रीमान् हृषीकेशः सह यादवपुङ्गवैः ११
समीपं मानवेन्द्राणां निर्ययौ कमलेक्षणः ।
स तेषां नरदेवानां मध्यस्थो मधुसूदनः ॥१२
व्यराजत यदुश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः ।
स तत्र समुदाचारं यथास्थानं यथावयः ॥ १३
कृत्वा सिंहासने कृष्णः काञ्चने निषसाद ह ।
राजानोऽपि यथास्थानं निषेदुर्विविधेष्वथ ॥
सिंहासनेषु चित्रेषु पीठेषु च नराधिपाः ।
स यादवनरेन्द्राणां समाजः शुशुभे तदा ॥१५

---

मङ्गलाष्टशतम् अष्टौ शतानि मङ्गलवस्तुनामधेयानि॥४॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

११०

हत इति ॥ १॥ अनन्तरः अनूनः ॥ २ ॥ योजनाख्यासु बहूनां सैनिकानां प्रधानराज्ञैकदेशेनामुकदेशीयेन स्थातव्यमित्येवंरूपा सुव्यवस्था योजनास्तदाख्यासु ॥११॥ समुदाचारं वन्दनादिरूपं शिष्टाचारम् ॥१३॥

---

१ ख. यश्चेदं श्रा० । २ ख. °ण सोऽज्ञे° । ३ ख. प्रियं द्र° ।

सुराणामसुराणां च सदसि ब्रह्मणो यथा
तेषां चित्राः कथास्तत्र प्रवृत्तास्तत्समागमे ॥
यदूनां पार्थिवानां च केशवस्योपशृण्वतः॥ १६
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्ववौ मेघरवोपमः ।
तुमुलं दुर्दिनं चासीत्सविद्युत्स्तनयित्नुमत्॥१७
तद्दुर्दिनतलं भित्त्वा नारदः प्रत्यदृश्यत ॥
संवेष्टितजटाभारो वीणासक्तेन बाहुना ॥ १८
स पपात नरेंद्राणां मध्ये सागरसंनिभः ।
नारदोऽग्निशिखाकारः श्रीमाञ्छक्रसखो मुनिः
तस्मिन्निपतिते भूमौ नारदे मुनिपुंगवे ।
तदद्भुतं महामेघं व्यपाकृष्यत दुर्दिनम्
सोऽवगाह्य नरेंद्राणां मध्ये सागरसंनिभः ।
आसनस्थं यदुश्रेष्ठमुवाच मुनिरव्ययम् ॥ २१
आश्चर्यं खलु देवानामेकस्त्वं पुरुषोत्तमः ।
धन्यश्चासि महाबाहो लोके नान्योऽस्ति कश्चन
एवमुक्तः स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच मुनिं प्रभुः ।
आश्चर्यश्चैव धन्यश्च दक्षिणाभिः सहेत्यहम् २३
एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठः प्राह मध्ये महीभृताम् ॥
कृष्ण पर्याप्तवाक्योऽस्मि गमिष्यामि यथागतम्
तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य पार्थिवाः प्राहुरीश्वरम् ।
गुह्यं मन्त्रमजानन्तो वचनं नारदेरितम् ॥ २५
आश्चर्यमित्यभिहितं धन्योऽसीति च माधव ।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रत्युक्तेऽपि च नारदे॥ २६
किमेतन्नाभिजानीमो दिव्यं मन्त्रपदं महत् ।
यदि श्राव्यमिदं कृष्ण श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥
तानुवाच ततः कृष्णः सर्वान्पार्थिवपुंगवान् ।
श्रोतव्यं नारदस्त्वेष द्विजो वः कथयिष्यति
ब्रूहि नारद तत्त्वार्थं श्रोतुकामा महीभुजः ।
यस्त्वयाऽभिहितं वाक्यं मया नु प्रतिभाषितम्
स पीठे काञ्चने शुभ्रे सूपविष्टः स्वलङ्कृतः ।
प्रभावं तस्य वन्द्यस्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६०

नारद उवाच ।

श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा यावन्तः स्थ समागताः
अस्य कृष्णस्य महतो यथा पारमहं गतः ॥ ३१
अहं कदाचिद्गङ्गायास्तीरे त्रिषवणातिथिः ।
चराम्येकः क्षपापाये दृश्यमाने दिवाकरे ॥ ३२
अपश्यं गिरिकूटाभं कपालद्वयदेहिनम् ।
क्रोशमण्डलविस्तारं तावद्द्विगुणमायतम् ३३
चतुश्चरणसुश्लिष्टं क्लिन्नं चैव सपाङ्किलम् ।
मम वीणाकृतिं कूर्मं गजचर्मचयोपमम् ॥ ३४
सोऽहं तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रोक्तवाञ्जलचारिणम्।
त्वमाश्चर्यशरीरोऽसि कूर्म धन्योऽसि मे मतः
यस्त्वमेवमभेद्याभ्यां कपालाभ्यां समावृतः ।
तोये चरसि निःशङ्कः किंचिदन्यमचिन्तयन्
स मामुवाचाम्बुचरः कूर्मो मानुषवत्स्वयम् ।
किमाश्चर्यं मयि मुने धन्यश्चाहं कथं विभो
गंगेयं निम्नगा धन्या किमाश्चर्यमतः परम् ।
यत्राहमिव सत्त्वानि चरन्त्ययुतशो द्विज ॥ ३८
सोऽहं कुतूहलाविष्टो नदीं गंगामुपस्थितः ।
धन्याऽसि त्वं सरिच्छ्रेष्ठे नित्यमाश्चर्यभूषिता।
या त्वमेव महादेहैः श्वापदैरुपशोभिता ।
ह्लादिनी सागरं यासि रक्षन्ती तापसालयान्
एवमुक्ता ततो गंगा रूपिणी प्रत्यभाषत।
नारद देवगन्धर्व शक्रस्य दयितं द्विजम् ॥ ४१
मा मैवं देवगन्धर्व सङ्ग्रामकलहप्रिय ।
नाहं धन्या द्विजश्रेष्ठ नैवाश्चर्योपशोभिता ॥ ४२
तव सत्ये निविष्टस्य वाक्यं मां प्रतिबाधते ।
सर्वाश्चर्यकरो लोके धन्यश्चैवार्णवो द्विजः ॥ ४३
यत्राहमिव विस्तीर्णाः शतशो यान्ति निम्नगाः
सोऽहं त्रिपथगावाक्यं श्रुत्वाऽर्णवमुपस्थितः
आश्चर्यं खलु लोकानां धन्यश्चासि महार्णव ।
येन खल्वसि योनिस्त्वमम्भसां सलिलेश्वरः
स्थाने त्वां वारिवाहिन्यः सरितो लोकपावनाः
इमाः समभिगच्छन्ति पत्न्यो लोकनमस्कृताः
समुद्रस्त्वेवमुक्तस्तु ततो मामवदद्वचः ।
स्वं जलौघतलं भित्त्वा व्युत्थितः पवनेरितः
मा मैवं देवगन्धर्व नास्म्याश्चर्यो द्विजर्षभ ।
वसुधेयं मुने धन्या यत्राहमुपरि स्थितः ॥ ४८

अत्र कूर्मादिक्रमेण आश्चर्यत्वधन्यत्वयोः परा काष्ठा कृष्ण इति नारदमुखात्तस्य ज्ञानं दाक्षिणाभिः सहेति वासुदेवस्य प्रत्युत्तरं ये विपुलदक्षिणैर्यज्ञैरीश्वरं मां यजन्ते त एव मय्याश्चर्यत्वधन्यत्वयोः विश्रान्तिं जानन्तीति ॥२६॥

१ ख. °ध्ये पावकसं° । २ ख. मध्यं सा° । ३ ख. °हीक्षिताम् । कृ° । ४ ख. °स्य प्रश्नस्य म° । ५ ख. °यि, विभो ध° । ६ ख. °थं मुने । गं° । ७ ख. °ष्ठ नाप्याश्च° । ८ ख. °न्ति नद्यो लो° । ९ ख. °मामब्रवीद्° ।

ऋते तु पृथिवीं लोके किमाश्चर्यमतः परम्।
सोऽहं सागरवाक्येन क्षितिं क्षितितले स्थितः
कौतूहलसमाविष्टो ह्यब्रुवं जगतो गतिम्।
धरित्रि देहिनां योने धन्या खल्वसि शोभने
आश्चर्यं चापि भूतेषु महत्या क्षमया युते।
तेन खल्वसि भूतानां धरणी मनुजारणिः॥५१
क्षमा त्वत्तः प्रभूता च कर्म चाम्बरगामिनाम्
ततो भूः स्तुतिवाक्येन सा मयोक्तेन तेजिता
विहाय सहजं धैर्यं प्रत्यक्षा मामभाषत।
देवगन्धर्व मा मैव सङ्ग्रामकलहप्रिय॥ ५२
नास्मि धन्या न चाश्चर्यं पारक्येयं धृतिर्मम।
एते धन्या द्विजश्रेष्ठ पर्वता धारयन्ति माम्॥
आश्चर्याणि च दृश्यन्ते एते लोकस्य हेतवः।
सोऽहं धरणिवाक्येन पर्वतान्समुपस्थितः ५५
धन्या भवन्तो दृश्यन्ते ब्रह्माश्चर्याश्च भूधराः।
काञ्चनस्याग्ररत्नस्य धातूनां च विशेषतः॥५६
तेन खल्वाकराः सर्वे भवन्तो भुवि शाश्वताः
ते ममैतद्वचः श्रुत्वा पर्वतास्तस्थुषां वराः॥५७
ऊचुर्मां सान्त्वयुक्तानि वचांसि वनशोभिताः
ब्रह्मर्षे न वयं धन्या नाप्याश्चर्याणि सन्ति नः।
ब्रह्मा प्रजापतिर्धन्यः सर्वाश्चर्यः सुरेष्वपि॥ ५८
सोऽहं प्रजापतिं गत्वा सर्वप्रभवमव्ययम्।
तस्य वाक्यस्य पर्यायपर्याप्तमिव लक्षये॥ ५९
सोऽहं पितामहं देवं लोकयोनिं चतुर्मुखम्।
स्तोतुं पश्चादुपगतः प्रणतोऽवनताननः॥६०
सोऽहं वाक्यसमाप्त्यर्थं श्रावये पद्मयोनिजम्।
आश्चर्य भगवानेको धन्योऽसि जगतो गुरुः६१
न किंचिदन्यत्पश्यामि भूतं यद्भवता समम्।
त्वत्तः सर्वमिदं जातं जगत्स्थावरजङ्गमम् ६२
सदेवदानवा मर्त्या लोकभूतेन्द्रियात्मकाः।
भवन्ति सर्वदेवेश दृष्टा सर्वमिदं जगत्॥ ६३
तेन खल्वसि देवानां देवदेवः सनातनः।
तेषामेवासि यत्स्रष्टा लोकानामादिसंभवः॥
ततो मां प्राह भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
धन्याश्चर्याश्रितैर्वाक्यैः किं मां नारद भाषसे॥
आश्चर्यं परमं वेदा धन्या वेदाश्च नारद।
ये लोकान्धारयन्ति स्म वेदास्तत्त्वार्थदर्शिनः
ऋक्सामयजुषां सत्यमथर्वणि च यन्मतम्।
तन्मयं विद्धि मां विप्र धृतोऽहं तैर्मया च ते॥
पारमेष्ठ्येन वाक्येन नोदितोऽहं स्वयंभुवा।
वेदोपस्थानिकां चक्रे मतिसंस्थानविस्तरात्६८
सोऽहं स्वयंभुवचनाद्वेदान्वै समुपस्थितः।
अवोचं तांश्च चतुरो मन्त्रप्रवचनान्वितान्॥६९
धन्या भवन्तः पुण्याश्च नित्यमाश्चर्यभूषिताः।
आधाराश्चैव विप्राणामेवमाह प्रजापतिः॥७०
स्वयंभुवोऽपीह परं भवत्सु प्रश्नमागतम्।
युष्मत्परतरं नास्ति श्रुत्या वा तपसाऽपि वा
प्रत्यूचुस्ते ततो वाक्यं वेदा मामभितः स्थिताः
आश्चर्याश्चैव धन्याश्च यज्ञाश्चात्मपरायणाः॥७२
यज्ञार्थे च वयं सृष्टा धात्रा येन स्म नारद।
तदस्माकं परो यज्ञो न वयं स्ववशे स्थिताः७३
स्वयंभुवः परा वेदा वेदानां क्रतवः पराः।
ततोऽहमब्रुवं यज्ञान्बृहद्वाग्भिः पुरस्कृतान् ७४
भो यज्ञाः परमं तेजो युष्मासु खलु लक्ष्यते।
ब्रह्मणाऽभिहितं वाक्यं यच्च वेदैरुदीरितम्॥
आश्चर्यमन्यल्लोकेऽस्मिन्भवद्भ्यो नाभिगम्यते
धन्याः खलु भवन्तो ये द्विजातीनां स्ववंशजाः
तेऽपि खल्वग्नयस्तृप्तिं युष्माभिर्यान्ति तर्पिताः
भागैश्च त्रिदशाः सर्वे मन्त्रैश्चैव महर्षयः॥ ७७
अग्निष्टोमादयो यज्ञा मम वाक्यादनन्तरम्।
प्रत्यूचुर्मां ततो वाक्यं सर्वे यूपध्वजाः स्थिताः
आश्चर्यशब्दो नास्मासु धन्यशब्दोऽपि वा मुने।
आश्चर्यं परमं विष्णुः स ह्यस्माकं परा गतिः
यदाज्यं वयमश्नीमो हुतमग्निषु पावनम्।
तत्सर्वं पुण्डरीकाक्षो लोकमूर्तिः प्रयच्छति८०
सोऽहं विष्णोर्गतिं प्रेप्सुरिह संपतितो भुवि।
दृष्टश्चायं मया कृष्णो भवद्भिरिह संवृतः॥८१
यन्मयाऽभिहितो ह्येष त्वमाश्चर्यं जनार्दन।
धन्यश्चासीति भवतां मध्यस्थो ह्यत्र पार्थिवाः॥

---

तेजिता क्षोभिता ॥५२॥ पारक्या परकीया ॥५४॥

---

१ ख. °त्तः प्रसूता च क° । २ ख. °धैर्यमथमामभ्यभा° । ३ ख. एष्वाश्च° । ४ ख. °णि हृ° । ५ ख. °स्य सेतवः । सो° । ६ ख. ° हं पर्यायवाक्ये° । ७ ख. °भिनः । ब्र° । ८ ख. °न्यः स चाश्च° । ९ ख लोके भू° । १० ख. °स्तराम् । सो° । ११ ख. उवाच वेदांश्चतु° । १२ ख. दानां च परं क्र° । १३ ख. °वंशिनः । ते । १४ ख. °वन । त°।

प्रत्युक्तोऽहमनेनाद्य वाक्यस्यास्य यदुत्तरम्।
दक्षिणाभिः सहेत्येवं पर्याप्तं वचनं मम ॥ ८३
यज्ञानां हि गतिर्विष्णुः सर्वेषां सहदक्षिणः।
दाक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रश्नो मम समाप्तवान्८४
कूर्मेणाभिहितं पूर्वं पारंपर्यादिहागतम् ।
सदाक्षिणेऽस्मिन्पुरुषे तद्वाक्यं प्रतिपादितम्८५

यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति
वाक्यस्यास्य विनिर्णयम् ।
तदेतत्सर्वमाख्यातं
साधयामि यथागतम् ॥८६॥
नारदे तु गते स्वर्गं सर्वे ते पृथिवीभुजः।
विस्मिताःस्वानि राष्ट्राणि जग्मुः सबलवाहनाः
जनार्दनोऽपि सहितो यदुभिः पावकोपमैः।
स्वमेव भवनं वीरो विवेश यदुनन्दनः॥ ८८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि धन्योपाख्यानं नाम
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## वासुदेवमाहात्म्यम् ।

### १११

जनमेजय उवाच ।
भूय एव महाबाहो कृष्णस्य जगतां पतेः।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि परमं द्विजसत्तम ॥१
न हि मे तृप्तिरस्तीह श्रृण्वतस्तस्य धीमतः।
कर्मणामनुसन्धानं पुराणस्य महात्मनः॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
नान्तः शक्यः प्रभावस्य वक्तुं वर्षशतैरपि
गोविन्दस्य महाराज श्रूयतामिदमद्भुतम् ॥ ३
शरतल्पे शयानेन भीष्मेण परिचोदितः।
गांडीवधन्वा बीभत्सुर्माहात्म्यं केशवस्य यत्
राज्ञां मध्ये महाराज ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत्।
युधिष्ठिरं जितामित्रामिति तच्छृणु कौरव ५
अर्जुन उवाच ।
पुराऽहं द्वारकां यातः संबन्धीनवलोककः
न्यवसं पूजितस्तत्र भोजवृष्ण्यन्धकोत्तमैः॥६
ततः कदाचिद्धर्मात्मा दीक्षितो मधुसूदनः।
एकाहेन महाबाहुः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ७

ततो दीक्षितमासीनमभिगम्य द्विजोत्तमः।
कृष्णं विज्ञापयामास त्राहि त्राहीति चाब्रवीत्
ब्राह्मण उवाच ।
रक्षाधिकारो भवतःपरित्रायस्व मां विभो
चतुर्थांशं हि धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्॥९
वासुदेव उवाच ।
न भेतव्यं द्विजश्रेष्ठ रक्षामि त्वां कुतो भयम्
ब्रूहि तत्त्वेन भद्रं ते यद्यपि स्यात्सुदुष्करम्१०
ब्राह्मण उवाच ।
जातो जातो महाबाहो पुत्रो मे ह्रियतेऽनघ
त्रयो हृताश्चतुर्थं त्वं कृष्ण रक्षितुमर्हसि ॥ ११
ब्राह्मण्याः सूतिकालोऽद्य
तत्र रक्षा विधीयताम् ।
यथा भ्रियेदपत्यं मे तथा कुरु जनार्दन ॥ १२
अर्जुन उवाच ।
ततोमामाह गोविन्दो दीक्षितोऽहं क्रतावितिं
रक्षा च ब्राह्मणे कार्या सर्वावस्थागतैरपि १३

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

१११

**भूय एवेति**। पूर्वं धन्योपाख्याने यज्ञानामाश्चर्यभूतः कृष्ण इत्युक्तम्। इदानीं यज्ञभोक्तुः श्वेतद्वीपपतेरपि कृष्ण आश्चर्यभूत इत्युच्यत आख्यायिकामुखेन। तेन 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इत्येतदुपपादितं भवति।१॥अनुसन्धानम् अनुक्रमम् ॥२॥ सम्बन्धीन् सम्बान्धिनः अवलोककः अवलोकयितुम् ॥ ६ ॥ एकाहेन एकसुत्यावता सोमयागेन ॥७॥ भ्रियेत् जीवेत् ॥ १२ ॥

---

१ ख. °तं साधु या°। २ ख. °थिवीक्षितः। वि°। ३ ख. °गतीपतेः। मा°। ४ ख. °नुसन्तानं पु°। ५ ख. °परिज्ञाही°। ६ तामिह। रु°।

श्रुत्वाऽहमेवं कृष्णस्य वचोऽवोचं नराधिप ।
मां नियोजय गोविन्द रक्षिष्येऽहं द्विजं भयात्
इत्युक्तः स स्मितं कृत्वा मामुवाच जनार्दनः
रक्षसीत्येवमुक्तस्तु व्रीडितोऽस्मि नराधिप ॥
ततो मां व्रीडितं मत्वा पुनराह जनार्दनः ।
गम्यतां कौरवश्रेष्ठ शक्यते यदि रक्षितुम् ॥१६
त्वत्पुरोगाश्च रक्षन्तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
ऋते रामं महाबाहुं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥१७
ततोऽहं वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः ।
तमग्रतो द्विजं कृत्वा प्रयातः सह सेनया ॥१८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## कृष्णस्योदीच्यगमनम् ।

## ११२

अर्जुन उवाच ।
मुहूर्तेन वयं ग्रामं तं प्राप्य भरतर्षभ ।
विश्रान्तवाहनाः सर्वे निवासायोपसंस्थिताः
ततो ग्रामस्य मध्येऽहं निविष्टः कुरुनन्दन ।
समन्ताद्वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः ॥२
ततः शकुनयो दीप्ता मृगाश्च क्रूरभाषिणः ।
दीप्तायां दिशि वाशन्तो भयमावेदयन्ति मे ॥३
सन्ध्यारागो जपावर्णो भानुमांश्चैव निष्प्रभः
पपात महती चोल्का पृथिवी चाप्यकम्पत ॥४
तान्समीक्ष्य महोत्पातान्दारुणाँल्लोमहर्षणान्
योगमाज्ञापयंस्तत्र जनस्योत्सुकचेतसः ॥५
युयुधानपुरोगाश्च वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।
सर्वे युक्तरथाः सज्जाः स्वयं चाहं तथाऽभवम् ॥६
गतेऽर्धरात्रसमये ब्राह्मणो भयविक्लवः ।
उपागम्य भयादस्मानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७
कालोऽयं समनुप्राप्तो ब्राह्मण्याः प्रसवस्य मे ।
तथा भवन्तस्तिष्ठन्तु न भवेद्वञ्चनं यथा ॥ ८
मुहूर्तादेव चाश्रौषं कृपणं रुदितस्वनम् ।
तस्य विप्रस्य भवने ह्रियतेऽह्रियतेति च ॥ ९
अथाकाशे पुनर्वाचमश्रौषं बालकस्य वै ।
ऊँहेति ह्रियमाणस्य न च पश्यामि राक्षसम् १०
ततोऽस्माभिस्तदा तात शरवर्षैः समंततः ।
विष्टम्भिता दिशः सर्वा हृत एव स बालकः
ब्राह्मणोऽऽर्तस्वरं कृत्वा हृते तस्मिन्कुमारके ।
वाचः स परुषास्तीव्राः श्रावयामास मां तदा
वृष्णयो हतसंकल्पास्तथाहं नष्टचेतनः ।
मामेवं हि विशेषेण ब्राह्मणः प्रत्यभाषत ॥ १३
रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च रक्षितवानसि ।
शृणु वाक्यमिदं शेषं यत्त्वमर्हसि दुर्मते ॥ १४
वृथा त्वं स्पर्धसे नित्यं कृष्णेनामितबुद्धिना ।
यदि स्यादिह गोविन्दो नैतदत्याहितं भवेत् १५
यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् ।
पापस्यापि तथा मूढ भागं प्राप्नोत्यरक्षिता ॥
रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च शक्तोऽसि रक्षितुम्
मोघं गाण्डीवमेतत्ते मोघं वीर्यं यशश्च ते ॥१७
अकिञ्चिदुक्त्वा तं विप्रं ततोऽहं प्रस्थितस्तथा
सह वृष्ण्यन्धकसुतैर्यत्र कृष्णो महाद्युतिः १८

---

रक्षसीति । काकूक्त्या न रक्षसीत्यभिप्राय उन्नेयः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वाणि टीकायामेकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

मुहूर्तेनेति ॥ १ ॥ जपावर्णः । "पौण्ड्रपुष्पे जपा मता" इति विश्वः । धूसराङ्कुरकुसुमवत् पीतवर्ण इत्यर्थः ॥४॥ यागसेनायाः सन्नाहम् ॥ ५ ॥ ह्रियते शिशुः अह्रियत हृत इति ॥९॥ आर्तेति छेदः । सन्धिरार्षः ॥१२॥

---

१ °स्य ततो वचनमब्रुवम् । मा नि° । २ ख. ग. °नः । शक्ष्यसी° ३ ख. °तं ज्ञात्वा पु° । ४ ख. °क्यसे य° । ५ ख. °श्च गच्छन्तु वृ° । ६ ख. °ह सैनिकैः । इ° ७ ख. उपग° । इ० । ८ ख. ग. °दत्याहि° । ९ ख. न कि° । १० ख. °स्तदा । स° । ११ ख. °न्धकैः सर्वैर्य°।

ततो द्वारवतीं गत्वा दृष्ट्वा मधुनिघातिनम् ।
व्रीडितः शोकसंतप्तो गोविन्देनोपलक्षितः १९
स तु मां व्रीडितं दृष्ट्वा ×विनिन्दन्कृष्णसंनिधौ
मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम्॥
न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ।
यत्र शक्ताः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवनेश्वरः २१॥
धिगर्जुनं वृथानादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ।
दैवोपसृष्टो यो मौर्ख्यादागच्छति च दुर्मतिः॥
एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय वैष्णवीम् ।
ययौ संयमिनीं वीरो यत्रास्ते भगवान्यमः २३
विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात्पुरीम् ।
आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यामुदीचीं वारुणीं तथा
रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः
ततोऽलब्ध्वा द्विजसुतमनिस्तीर्णप्रतिश्रवः २५
अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रद्युम्नेन निषेधितः ।
दर्शये द्विजसूनुं ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥२६
कीर्तिं त एते विपुलां स्थापयिष्यन्ति मानवाः
इति संभाष्य मां स्नेहात्समाश्वास्य च माधवः
सान्त्वयित्वा तु तं विप्रमिदं वचनमब्रवीत् ।
सुग्रीवं चैव शैब्यं च मेघपुष्पबलाहकौ ॥ २८
योजयाश्वानिति तदा दारुकं प्रत्यभाषत ।
आरोप्य ब्राह्मणं कृष्णो ह्यवरोप्य च दारुकम्॥
मामुवाच ततः शौरिः सारथ्यं क्रियतामिति।
ततः समास्थाय रथं कृष्णोऽहं ब्राह्मणः स च
प्रयाताः स्म दिशं सौम्यामुदीचीं कौरवर्षभ।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णस्य उदीचीगमने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## मृतब्राह्मणपुत्रस्य पुनः प्रत्यानयनम् ।

## ११३

अर्जुन उवाच ।
ततः पर्वतजालानि सरितश्च वनानि च ।
अपश्यं समतिक्रम्य सागरं वरुणालयम् ॥ १
ततोऽर्घमुदधिः साक्षादुपनीय जनार्दनम् ।
स प्राञ्जलिः समुत्थाय किं करोमीति चाब्रवीत्
प्रतिगृह्य स तां पूजां तमुवाच जनार्दनः ।
रथपन्थानमिच्छामि त्वया दत्तं नदीपते ॥ ३
अथाब्रवीत्समुद्रस्तु प्राञ्जलिर्गरुडध्वजम् ।
प्रसीद भगवन्नैवमन्योऽप्येवं गमिष्यति ॥ ४
त्वयैव स्थापितः पूर्वमगाधोऽस्मि जनार्दन ।
त्वया प्रवर्तिते मार्गे यास्यामि गमनायताम्
अन्येऽप्येवं गमिष्यन्ति राजानो दर्पमोहिताः
एवं संचिन्त्य गोविन्द यत्क्षमं तत्समाचर
वासुदेव उवाच ।
ब्राह्मणार्थे मदर्थं च कुरु सागर मद्वचः ।
मदृते न पुमान्कश्चिदन्यस्त्वां धर्षयिष्यति ॥ ७
अथाब्रवीत्समुद्रस्तु पुनरेव जनार्दनम् ।
अभिशापभयाद्भीतो बाढमेवं भविष्यति ॥ ८
शोषयाम्येष मार्गं ते येन त्वं कृष्ण यास्यसि
रथेन सह सूतेन सध्वजेन तु केशव ॥ ९
वासुदेव उवाच ।
मया दत्तो वरः पूर्वं न शोषं यास्यसीति ह
मानुषास्ते न जानीयुर्विविधान्रत्नसञ्चयान् ॥
जलं स्तम्भय साधो त्वं ततो यास्याम्यहं रथी
न च कश्चित्प्रमाणं ते रत्नानां वेत्स्यते नरः॥
सागरेण तथेत्युक्ते प्रस्थिताः स्मो जलेन वै ।
स्तम्भितेन पथा भूमौ मणिवर्णेन भास्वता ॥
ततोऽर्णवं समुत्तीर्य कुरूनप्युत्तरान्वयम् ।
क्षणेन समतिक्रान्ता गन्धमादनमेव च ॥ १३
ततस्तु पर्वताः सप्त केशवं समुपस्थिताः ।
जयन्तो वैजयन्तश्च नीलो रजतपर्वतः ॥ १४
महामेरुः सकैलास इन्द्रकूटश्च नामतः ।
बिभ्राणा वर्णरूपाणि विविधान्यद्भुतानि च ॥

आरोप्य रथ इति शेषः ॥२९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

तत इति ॥१॥ वर्णरूपाणि वर्षवन्ति रूपाणि ॥१५॥

× विनिन्दन्नित्यारभ्य स्नेहात् इत्यन्तो ग्रन्थः खपुस्तके नास्ति । १. घ. दुर्गतिः । ए। २ ॰गरं मकराल॰ । ३ ख. ॰वन्नैव॰ ।
४ ख. ॰णार्थेऽस्मदर्थेच कु॰ । ५ख. भवात्विति । शो॰ ।

उपस्थाय च गोविन्दं किं कुर्मेत्यब्रुवंस्तदा ।
तांश्चैव प्रतिजग्राह विधिवन्मधुसूदनः ॥ १६
तानुवाच हृषीकेशः प्रणामावनतान्स्थितान् ।
विवरं गच्छतो मेऽद्य रथमार्गः प्रदीयताम् १७
ते कृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रतिगृह्य च पर्वताः ।
प्रददुः कामतो मार्गं गच्छतो भरतर्षभ १८
तत्रैवान्तर्हिताः सर्वे तदाश्चर्यतरं मम ।
असक्तं च रथो याति मेघजालेष्विवांशुमान्
सप्त द्वीपान्ससिन्धूंश्च सप्त सप्त गिरीनथ ।
लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ×
ततः कदाचिद्दुःखेन रथमूहुस्तुरङ्गमाः ।
पङ्कभूतं हि तिमिरं स्पर्शाद्विज्ञायते नृप ॥ २१
अथ पर्वतभूतं तत्तिमिरं समपद्यत ।
तदासाद्य महाराज निष्प्रयत्ना हयाः स्थिताः
ततश्चक्रेण गोविन्दः पाटयित्वा तमस्तदा ।
आकाशं दर्शयामास रथपन्थानमुत्तमम् ॥ २३
निष्क्रम्य तमसस्तस्मादाकाशे दर्शिते तदा ।
भविष्यामीति संज्ञा मे भयं च विगतं मम ॥
ततस्तेजः प्रज्वलितमपश्यं तत्तदाऽम्बरे ।
सर्वलोकं समाविश्य स्थितं पुरुषविग्रहम् ॥२५
तं प्रविष्टो हृषीकेशो दीप्तं तेजोनिधिं तदा ।
रथ एव स्थितश्चाहं स च ब्राह्मणसत्तमः ॥ २६
स मुहूर्तात्ततः कृष्णो निश्चक्राम तदा प्रभुः ।
चतुरो बालकान्गृह्य ब्राह्मणस्यात्मजांस्तदा ॥
प्रददौ ब्राह्मणायाथ पुत्रान्सर्वाञ्जनार्दनः ।
त्रयः पूर्वं हृता ये च सद्यो जातश्च बालकः
प्रहृष्टो ब्राह्मणस्तत्र पुत्रान्दृष्ट्वा पुनः प्रभो ।
अहं च परमप्रीतो विस्मितश्चाभवं तदा ॥ २९
ततो वयं पुनः सर्वे ब्राह्मणस्य च ते सुताः ।
यथागता निवृत्ताः स्म तथैव भरतर्षभ ॥ ३०
ततः स्म द्वारकां प्राप्ताः क्षणेन नृपसत्तम ।
असंप्राप्तेऽर्धदिवसे विस्मितोऽहं पुनः पुनः ॥३१
सपुत्रं भोजयित्वा तु द्विजं कृष्णो महायशाः
धनेन वर्षयित्वा च गृहं प्रास्थापयत्तदा ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये ब्राह्मणपुत्रानयने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

## गूढोद्घाटनम् ।

## ११४

अर्जुन उवाच ।
ततः कृष्णो भोजयित्वा शतानि सुबहूनि च
विप्राणामृषिकल्पानां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१
ततः सह मया भुक्त्वा वृष्णिभोजैश्च सर्वशः ।
विचित्राश्च कथा दिव्याः कथयामास भारत
ततः कथान्ते तत्राहमभिगम्य जनार्दनम् ।
अपृच्छं तद्यथावृत्तं कृष्णं यद्दृष्टवानहम् ॥ ३
कथं समुद्रः स्तब्धोदः कृतस्तु कमलेक्षण ।
पर्वतानां च विवरं कृतं तत्कथमच्युत ॥ ४
तमस्तच्च कथं घोरं घनं चक्रेण पाटितम् ।
तच्च यत्परमं तेजः प्रविष्टोऽसि कथं च तत् ॥
किमर्थं तेन ते बालास्तदा चापहृताः प्रभो ।
यच्च ते दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तत्कथं पुनः ॥ ६
कथं चाल्पेन कालेन कृतं तत्तद्गतागतम् ।
एतत्सर्वं यथावृत्तमाचक्ष्व मम केशव ॥ ७

---

प्रतिजग्राह कुशलप्रश्नादिना मानयामास ॥१६॥ विवरं गूढस्थानम् ॥१७॥ भविष्यामि जीविष्यामीति संज्ञा ज्ञानमभूत् ततः प्राङ्मृतोऽहमित्येव बुद्धिरासीदिति भावः ॥२४॥ तं प्रसिद्धम् ईश्वरम् ॥२६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३॥

११४

ततः कृष्ण इति ॥१॥ तच्चेति । तत् प्रसिद्धं तत् जगत्कर्तृ तेजः तदिति वा "**एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति**" इति श्रुतेस्तदित्येवाभिधम् ॥५॥ आगमनकाले ॥६॥

---

* एतत्पद्यं खपुस्तके नास्ति । १ ख. °तेऽनघ अ° । २ ख. नृप । त° । ३ ख. °हं ततः पु° । ४ ख. °न तर्पयित्वा च । ५ ध. °र्वेदा । ६ ख. °तं कृत्स्नं य° । ७ ख. °तं नस्तद्ग° ।

वासुदेव उवाच ।

यद्दर्शनार्थं ते बाला हृतास्तेन महात्मना ।
विप्रार्थमेष्यते कृष्णो नागच्छेदन्यथेति ह ॥ ८
ब्रह्मतेजोमयं दिव्यं महद्यद्दृष्टवानसि ।
अहं स भरतश्रेष्ठ मत्तेजस्तत्सनातनम् ॥ ९
प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी ।
यां[1] प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः ॥
सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम् ।
तत्पदं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत् ॥ ११
मामेव तद्घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत ।
समुद्रः स्तब्धतोयोऽहमहं स्तम्भयिता जलम् ।
अहं ते पर्वताः सप्त ये दृष्टा विविधास्त्वया ।
पङ्कभूतं हि तिमिरं दृष्टवानसि यद्धि तत् ।
अहं तमो घनीभूतमहमेव च पातकः ।
अहं च कालो भूतानां धर्मश्चाहं[2] सनातनः ॥
चन्द्रादित्यौ महाशैलाः सरितश्च सरांसि च
चतस्रश्च दिशः सर्वा ममैवात्मा चतुर्विधः ॥
चातुर्वर्ण्यं मत्प्रसूतं चातुराश्रम्यमेव च ।
चातुर्विध्यस्य कर्ताऽहमिति बुध्यस्व भारत ॥

अर्जुन उवाच ।

भगवन्सर्वभूतेश वेत्तुमिच्छामि ते प्रभो ।
पृच्छामि त्वां प्रपन्नोऽहं नमस्ते पुरुषोत्तम ॥

वासुदेव उवाच ।

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव तपः सत्यं च भारत ।
उग्रं बृहत्तमं चैव मत्तस्तद्विद्धि पाण्डव ।
प्रियस्तेऽहं महाबाहो प्रियो मेऽसि धनञ्जय ॥
तेन ते कथयिष्यामि नान्यथा वक्तुमुत्सहे ।
अहं यजूंषि सामानि ऋचश्चाथर्वणानि च ॥
ऋषयो देवता यज्ञा मत्तेजो भरतर्षभ ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥
चन्द्रादित्यावहोरात्रं पक्षा मासास्तथार्तवः ।
मुहूर्ताश्च कलाश्चैव क्षणाः संवत्सरास्तथा ॥
मन्त्राश्च विविधाः पार्थ यानि शास्त्राणि कानिचित् ।
विद्याश्च वेदितव्यं च मत्तः प्रादुर्भवन्ति हि ॥
मन्मयं विद्धि कौन्तेय क्षयं सृष्टिं च भारत ।
सच्चासच्च ममैवात्मा सदसच्चैव यत्[3]परम् ॥ २३

अर्जुन उवाच ।

एवमुक्तोऽस्मि कृष्णेन[4] प्रीयमाणेन वै तदा
तथैव च मनो नित्यमभवन्मे जनार्दन ॥ २४
एतच्छ्रुतं च दृष्टं च माहात्म्यं केशवस्य मे ।
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र भूयांश्चातो जनार्दनः

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा कुरुश्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
पूजयामास धर्मात्मा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ॥
विस्मितश्चाभवद्राजा सह सर्वैः सहोदरैः ।
राजभिश्च समासीनैर्ये तत्रासन्समागताः ॥२७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णार्जुनभाषणे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

---

महत् जगद्वृक्षाङ्कुरभूतं तेजः तदभिमानिचेतनेन मम फलोपमस्य दर्शनार्थं ते बाला हृताः ॥ ८ ॥ स महानहमेव यच्च महत्तेजस्तन्ममैव तेजः । एतेन महतोऽङ्कुरस्य कारणबीजोपमः ईश्वरः तादृशानामनेकेषामीश्वराणामाश्रयोऽहं फलमिवानेकेषां बीजानामित्यर्थः ॥९॥ सा महत्तत्त्वाख्या प्रकृतिः परा । अहंकारादिभ्यः श्रेष्ठा ज्येष्ठत्वात् । सा च व्यक्ता दृश्यांशेन व्यक्ता अव्यक्ता दृगंशेन तां प्रविश्येति तत्रैव गत्वा । चिज्जडयोर्विवेकः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिर्नाम भवति अतस्तत्साक्षात्करणमेव मुक्तिसाधनम् । विभजते जगत् चिदंशाज्जडांशं पृथक्करोतीत्यर्थः ॥१०॥ यथा तन्मम रूपं तथाऽन्यदपि दृश्यमित्याह—**मामेवेत्यादिना** ॥१२॥ **चन्द्रेति** । तेजःपृथिवीजलाकाशात्मना चतुर्विधः । एतच्च वायोरप्युपलक्षणम् । पञ्चापि भूतानि अहमेवेत्यर्थ ॥१५॥ ते त्वाम् ॥१७॥ उग्रं संसरणं नानाक्लेशकरत्वात् । बृहत्तमं वैकल्यम् । अखण्डानन्दरूपत्वात् मत्त उद्भूतं ब्रह्मादि मत्तः प्राप्यं रुद्रादि ॥१८॥ सत् कार्यम् असत्कारणं सदसच्चेत्युभयाविशेषणं कार्यं कारणगं सत् चिदंशेन असत् दृश्यांशेन ताभ्यां परं तु सदेव तत्परं शुद्धं ब्रह्माहमेव ॥२३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥

---

१ ख. तां प्र° । २ ख. °हं प्रकीर्तितः । च° । ३ ख. °व तत्प° । ४ ख. °न प्रीयता भरतर्षभ । तथै° ।५ ख. °स मनसा गो° ।

## वासुदेवपराक्रमवर्णनम् ।

### ११५

जनमेजय उवाच ।
भूय एवं द्विजश्रेष्ठ यदुसिंहस्य धीमतः ।
कर्माण्यपरिमेयाणि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥
श्रूयन्ते विविधानि स्म अद्भुतानि महाद्युतेः ।
असंख्येयानि दिव्यानि प्रकृतान्यपि सर्वशः ॥
यान्यहं विविधान्यस्य श्रुत्वा प्रीये महामुने ।
प्रब्रूयाः सर्वशस्तात तानि मे शृण्वतोऽनघ ॥
वैशम्पायन उवाच ।
बहून्याश्चर्यभूतानि केशवस्य महात्मनः ।
कथितानि महाबाहो नान्तं शक्यं हि कर्मणाम्
गन्तुं हि भरतश्रेष्ठ विस्तरेण समंततः ।
आवश्यं हि मया वाच्यं लेशमात्रेण भारत ॥५
विष्णोरमितवीर्यस्य प्रथितोदारकर्मणः ।
आनुपूर्व्या प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥ ६
द्वारवत्यां निवसता यदुसिंहेन धीमता ।
राष्ट्राणि नृपमुख्यानां क्षोभितानि महात्मनाम्
यदूनामन्तरप्रेप्सुर्विचक्रो दानवो हतः ।
पुरं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनस्तेन महात्मना ॥
समुद्रमध्ये दुष्टात्मा नरको दानवो हतः ।
वासवं च रणे जित्वा पारिजातो हृतो बलात्
वरुणश्चैव भगवान्निर्जितो लोहिते ह्रदे ।
दन्तवक्त्रश्च कारूषो निहतो दक्षिणापथे ॥१०
शिशुपालश्च संपूर्णे किल्बिषैकशते हतः ।
गत्वा च शोणितपुरं शंकरेणाभिरक्षितः ॥
बलेः सुतो महावीर्यो बाणो बाहुसहस्रभृत् ।
महामृधे महाराज जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥
निर्जितः पावकश्चैव
गिरिमध्ये महात्मना ।
शाल्वश्च विजितः सङ्ख्ये
सौभश्च विनिपातितः ॥ १३
विक्षोभ्य सागरं चैव पाञ्चजन्यो वशीकृतः ।
हयग्रीवश्च निहतो नृपाश्चान्ये महाबलाः॥ १४
जरासन्धस्य निधने मोक्षिताः सर्वपार्थिवाः
रथेन जित्वा नृपतीन्गान्धारतनया हृता॥१५
भ्रष्टराज्याश्च शोकार्ताः पाण्डवाः परिरक्षिताः
दाहितं च वनं घोरं पुरुहूतस्य खाण्डवम् ॥
गाण्डीवं चाग्निना दत्तमर्जुनायोपपादितम् ।
दौत्यं च तत्कृतं घोरे विग्रहे जनमेजय॥ १७
अनेन यदुमुख्येन यदुवंशो विवर्धितः
कुन्त्याश्च प्रमुखे प्रोक्ता प्रतिज्ञा पाण्डवान्प्रति
निवृत्ते भारते युद्धे प्रतिदास्यामि तत्सुतान् ।
मोक्षितश्च महातेजा नृगः शापात्सुदारुणात्॥
यवनश्च हतः संख्ये काल इत्यभिविश्रुतः ।
वानरौ च महावीर्यौ मैन्दो द्विविद एव च २०
विजितौ युधि दुर्धर्षौ जाम्बवांश्च पराजितः ।
सान्दीपनेस्तथा पुत्रस्तव चैव पिता तथा॥२१
गतौ वैवस्वतवशं जीवितौ तस्य तेजसा ।
सङ्ग्रामा बहवः प्राप्ता घोरा नरवरक्षयाः॥
निहताश्च नृपाः सर्वे कृत्वा तज्जयमद्भुतम् ।
जनमेजयास्य युद्धेषु यथा ते वर्णिता मया२३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## बाणासुराख्यानम् ।

### ११६

जनमेजय उवाच ।
भूय एव महाबाहोर्यदुसिंहस्य धीमतः। कर्माण्यपरिमेयाणि श्रुतानि द्विजसत्तम ॥ १

---

११५

**भूय एवेति** ॥ १ ॥ तातेति वात्सल्योत्पादनाय संबोधयति ॥ ३ ॥ गिरिमध्ये मेरुमध्ये ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६

**भूय इति** ॥ १ ॥

त्वत्तः श्रुतवतां श्रेष्ठ वासुदेवस्य धीमतः ।
यत्त्वया कथितं पूर्वं बाणं प्रति महासुरम् ॥ २
तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ।
कथं च देवदेवस्य पुत्रत्वमसुरो गतः ॥ ३
योऽभिगुप्तः स्वयं ब्रह्मञ्छङ्करेण महात्मना ।
सहवासं गतेनैव सगणेन गुहेन तु ॥ ४
बलेर्बलवतः पुत्रो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य यः ।
वृतो बाहुसहस्रेण दिव्यास्त्रशतधारिणा ॥ ५
असङ्ख्यैश्च महकायैर्महाबलशतैर्वृतः ।
वासुदेवेन स कथं बाणः सङ्ख्ये पराजितः ॥ ६
संरब्धश्चैव युद्धार्थी जीवन्मुक्तः कथं च सः ।

वैशम्पायन उवाच ।

शृणुष्वावहितो राजन्कृष्णस्यामिततेजसः
मनुष्यलोके बाणेन यथाऽभूद्विग्रहो महान् ।
वासुदेवेन यत्रासौ रुद्रस्कन्दसहायवान् ॥ ८
बलिपुत्रो रणश्लाघी जित्वा जीवन्विसर्जितः
तथा चास्य वरो दत्तः शंकरेण महात्मना ॥ ९
नित्यं सांनिध्यतां चैव गाणपत्यं तथाऽक्षयम्
यथा बाणस्य तद्युद्धं जीवन्मुक्तो यथा च सः
यथा च देवदेवस्य पुत्रत्वं सोऽसुरो गतः ।
यदर्थं च महद्युद्धं तत्सर्वमखिलं शृणु ॥ ११
दृष्ट्वा[1] ततः कुमारस्य क्रीडतश्च महात्मनः ।
बलिपुत्रो महावीर्यो विस्मयं परमं गतः ॥ १२
तस्या बुद्धिः समुत्पन्ना तपश्चर्तुं सुदुष्करम् ।
रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य स्यां यथा सुतः ॥
ततोऽग्लपयदात्मानं तपसा[2] श्लाघते च सः ।
देवश्च परमं तोषं जगाम च सहोमया ॥ १४
नीलकण्ठः परां प्रीतिं गत्वा चासुरमब्रवीत् ।
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ १५
अथ बाणोऽब्रवीद्वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् ।
देव्याः पुत्रत्वमिच्छामि त्वया दत्तं त्रिलोचन
शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।
कनीयान्कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
यत्रोत्थितो महासेनः सोऽग्निजो रुधिरे पुरे ।
तत्रोद्देशे पुरं चास्य भविष्यति न संशयः १८
नाम्ना तच्छोणितपुरं भविष्यति पुरोत्तमम् ।
मयाऽभिगुप्तं श्रीमन्तं न कश्चित्प्रसहिष्यति १९
ततः स निवसन्बाणः पुरे शोणितसाह्वये ।
राज्यं प्रशासते नित्यं क्षोभयन्सर्वदेवताः ॥ २०
अवतीर्य[3] मदोत्सिक्तो बाणो बाहुसहस्रवान् ।
अचिन्तयन्देवगणान्युद्धमाकाङ्क्षते सदा ॥ २१
ध्वजं चास्य ददौ प्रीतः कुमारो ह्यग्नितेजसम् ।
वाहनं चैव बाणस्य मयूरं दीप्ततेजसम् ॥ २२
न देवा न च गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगाः
तस्य युद्धे व्यतिष्ठन्त देवदेवस्य तेजसा ॥ २३
त्र्यम्बकेणाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्तो महासुरः ।
भूयो मृगयते युद्धं शूलिनं सोऽभ्यगच्छत २४
स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
बलिसूनुरिदं वाक्यं पप्रच्छ वृषभध्वजम् ॥ २५
असकृन्निर्जिता देवाः ससाध्याः समरुद्गणाः ।
मया मद्बलोत्सेकात्ससैन्येन तवाश्रयात् ॥ २६
इमं देशं समागम्य वसन्ति स्म पुरे सुखम् ।
ते पराजयसंत्रस्ता निराशा मत्पराजये ॥ २७
नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति यथासुखम् ।
सोऽहं निराशो युद्धस्य जीवितं नाद्य कामये ॥
अयुध्यतो वृथा ह्येषां बाहूनां धारणं मम ।
तद्ब्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमनं भवेत् ॥ २९
न मे युद्धं विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे ।
ततः प्रहस्य भगवानब्रवीद्वृषभध्वजः ॥ ३०
भविता बाण युद्धं वै तथा तच्छृणु दानव ।
ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात भविष्यति ।
स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्धं भविष्यति ३१
इत्येवमुक्तः प्रहसन्बाणस्तु बहुशो मुदा ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयोः पतितोऽब्रवीत् ।
दिष्ट्या बाहुसहस्रस्य न वृथा धारणं मम ३२
दिष्ट्या सहस्राक्षमहं विजेता पुनराहवे ।
आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्यां[4] नेत्राभ्यामरिमर्दनः ।
पञ्चाञ्जलिशतैर्देवं पूजयन्पतितो भुवि ॥ ३३

---

देवदेवस्य रुद्रस्य पुत्रत्वं गणमुख्यत्वम् ॥ ११ ॥ कुमारस्य कार्तिकेयस्य क्रीडतः रुद्राराधनात्मिकां क्रीडां दृष्ट्वेति योज्यम् ॥ १२ ॥ श्लाघते अहमेव महान् तपस्वीति मन्यते ॥ १४ ॥ महासेनः कार्तिकेयः ॥ १८ ॥ श्रीमन्तं बाणम् ॥ १९ ॥ प्रशासते प्रशास्ति ॥ २० ॥

---

१ ख. °ष्ट्वा वपुः कु° । २ ख. °सा सोऽसुरोत्तमः । देवस्तस्य परं तो° । ३ ख. अथ वीर्यम° । ४ ख. °नन्दजाश्रु° ।

ईश्वर उवाच।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बाहूनामात्मनः स्वकुलस्य तु
सदृशं प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिमं महत्॥ ३४

वैशम्पायन उवाच।

एवमुक्तस्ततो बाणस्त्र्यम्बकेण महात्मना
हर्षेणात्युच्छ्रितं शीघ्रं नत्वा स वृषभध्वजम्३५
शितिकण्ठविसृष्टस्तु बाणः परपुरंजयः
ययौ स्वभवनं तत्र यत्र ध्वजगृहं महत्॥ ३६
तत्रोपविष्टः प्रहसन्कुम्भाण्डमिदमब्रवीत्।
प्रियमावेदयिष्यामि भवतो यन्मनोगतम्॥३७
इत्येवमुक्तः प्रहसन्बाणमप्रातिमं रणे।
प्रोवाच राजन्किं वेतद्वक्तुकामोऽसि मत्प्रियम्
विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रहर्षादिव भाषसे।
त्वत्तः श्रोतुमिहेच्छामि वरं किं लब्धवानसि
शितिकण्ठप्रसादेन स्कन्दगोपायनेन च।
कच्चित्त्रैलोक्यराज्यं ते व्यादिष्टं शूलपाणिना॥
अस्य चक्रभयत्रस्ता निवसन्ति जलाशये।
कच्चिच्छार्ङ्गगदापाणेः स्थितस्य परमाहवे॥४१
कच्चिदिन्द्रस्तवभयात्पातालमुपयास्यति।
कच्चिद्विष्णुपरित्रासं विमोक्ष्यन्ति दितेः सुताः
पातालवासमुत्सृज्य कच्चित्तव बलाश्रयात्।
विबुधावासनिरता भविष्यन्ति महासुराः ४३
बलिर्विष्णुपराक्रान्तो बद्धस्तव पिता नृप।
सलिलौघाद्विनिष्क्रम्य कच्चिद्राज्यमवाप्स्यति
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धलेपनम्।
कच्चिद्वैरोचनिं तात द्रक्ष्यामः पितरं तव॥४५
कच्चित्त्रिभिः क्रमैः पूर्वं हृताँल्लोकानिमान्प्रभो
पुनः प्रत्यानयिष्यामो जित्वा सर्वान्दिवौकसः
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं शङ्खस्वनपुरोजवम्।
कच्चिन्नारायणं देवं जेष्यामः समितिंजयम्॥४७
कच्चिद्वृषध्वजस्तात प्रसादसुमुखस्तव।
यथा ते हृदयोत्कम्पः साश्रुबिन्दुः प्रवर्तते॥४८

कच्चिदीश्वरतोषेण कार्तिकेयमतेन च।
प्राप्तवानसि सर्वेषामस्माकं राज्यसम्पदम्॥
इति कुंभाण्डवचनैश्चोदितः सोऽसुरोत्तमः।
बाणो वाणीमसंसक्तां प्रोवाच वदतां वरः॥

बाण उवाच।

चिरात्प्रभृति कुंभाण्ड न युद्धं प्राप्यते मया।
ततो मया मुदा पृष्टः शितिकण्ठः प्रतापवान्॥
युद्धाभिलाषः सुमहान्देव संजायते मम।
अभिप्राप्स्याम्यहं युद्धं मनसस्तुष्टिवर्धनम् ५२
ततोऽहं देवदेवेन हरेणामित्रघातिना।
प्रहस्य सुचिरं कालमुक्तोऽस्मि वचनं प्रियम्।
प्राप्स्यसे सुमहद्युद्धं त्वं बाणाप्रतिमं महत्॥५३
मयूरध्वजभङ्गस्ते भविष्यति यदाऽसुर।
तदा त्वं प्राप्स्यसे युद्धं सुमहद्दितिनन्दन॥५४
ततोऽहं परमप्रीतो भगवन्तं वृषध्वजम्।
प्रणम्य शिरसा देवं तवान्तिकमुपागतः॥ ५५
इत्येवमुक्तः कुम्भाण्डः प्रोवाच नृपतिं तदा।
अहो न शोभनं राजन्यद्देवं भाषसे वचः॥५६
एवं कथयतोस्तत्र तयोरन्योन्यमुच्छ्रितः।
ध्वजः पपात वेगेन शक्राशनिसमाहतः॥ ५७
तं तथा पतितं दृष्ट्वा सोऽसुरो ध्वजमुत्तमम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे मेने चाहवमागतम्॥ ५८
ततश्चकम्पे वसुधा शक्राशनिसमाहता।
ननादान्तर्हितो भूमौ वृषदंशो जगर्ज च॥५९
देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत वासवः।
शोणितं शोणितपुरे सर्वतः परमं ततः॥ ६०
सूर्यं भित्त्वा महोल्का च पपात धरणीतले।
स्वपक्षे चोदितः सूर्यो भरणीं समपीडयत्॥
चैत्यवृक्षेषु सहसा धाराः शतसहस्रशः।
शोणितस्य स्रवन्घोरा निपेतुस्तारका भृशम्
राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते।
लोकक्षयकरे काले निर्घातश्चापतन्महान्॥६३

कुम्भाण्डं स्वस्यामात्यम्॥३७॥ स्कन्दगोपायनेन स्कन्दकृतेन त्राणेन॥ ४०॥ असंसक्ताम् अस्खलिताम्॥ ५०॥ वृषदंशो बिडालः। जगर्जेत्यमङ्गलशब्दकरणं लक्ष्यते॥ ५९॥ **स्वपक्षे चेति**। देवनक्षत्रेषु उदितः कृत्तिकां प्रविष्ट इत्यर्थः। तेन रोहिणी बाणस्य जन्मनक्षत्रं षड्विंशं भरणी च तस्याभिषेचनिकं नक्षत्रं विद्धं तेन देहस्य पीडा पदात् च्युतिश्चेति दर्शितम्। चोदितः सूर्यो भरणीं समपीडयत्॥ ६१॥ **राहुरिति**। तदैव नित्यं समगतिरपि राहुर्विषमगत्या सूर्यनक्षत्रमाक्रान्तवानित्यर्थः। आदित्यमग्रसदिति तत्रैव चन्द्रयोगोऽपि गम्यते। ततश्च जन्मतः सप्तविंशे नक्षत्रे सूर्यग्रहणं चेद्बाणवत् फलं द्रष्टव्यम्॥६३॥

१ ख. यस्य च° २ ख. °ष्णुबलाक्रा°। ३ ख. °कं पार्थिवं पद°। ४ ख. °ते यदा। त°। ५ ख. °द्धं बाण त्वं नाचिरादिव। म°। ६ ख. °रमन्तिकात्। सू°।

दाक्षिणां दिशमास्थाय धूमकेतुः स्थितोऽभवत्
अनिशं चाप्यविच्छिन्ना ववुर्वाताः सुदारुणाः
श्वेतलोहितपर्यन्तः कृष्णग्रीवस्तडिद्द्युतिः ।
त्रिवर्णपरिघो भानुः सन्ध्यारागमथावृणोत् ॥
वक्रमङ्गारकश्चक्रे कृत्तिकासु भयंकरः ।
बाणस्य जन्मनक्षत्रं भर्त्सयन्निव सर्वशः ॥६६
अनेकशाखश्चैत्यश्च निपपात महीतले ।
अर्चितः सर्वकन्याभिर्दानवानां महात्मनाम् ॥
एवं विविधरूपाणि निमित्तानि निशामयन् ।
बाणो बलमदोन्मत्तो निश्चयं नाधिगच्छति ॥
विचेतास्त्वभवत्प्राज्ञः कुंभाण्डस्तत्त्वदर्शिवान् ।
बाणस्य सचिवस्तत्र कीर्तयन्बहु किल्बिषम्
उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम्
तव राज्यविनाशाय भविष्यन्ति न संशयः ॥
वयं चान्ये च सचिवा भृत्या ते च तवानुगाः
क्षयं यास्यन्ति न चिरात्सर्वे पार्थिवदुर्नयात्
यथा शक्रध्वजतरोः स्वदर्पात्पतनं भवेत् ।
बलमाकाङ्क्षतो मोहात्तथा बाणस्य नर्दतः ॥७२
देवदेवप्रसादात्तु त्रैलोक्यविजयं गतः ।
उत्सेकाद्दृश्यते नाशो युद्धाकाङ्क्षी ननर्द ह ॥
बाणः प्रीतमनास्त्वेवं पपौ पानमनुत्तमम् ।
दैत्यदानवनारीभिः सार्धमुत्तमविक्रमः ॥ ७४
कुम्भाण्डश्चिन्तयाविष्टो राजवेश्माभ्ययात्तदा
अचिन्तयच्च तत्त्वार्थं तैस्तैरुत्पातदर्शनैः ॥ ७५
राजा प्रमादी दुर्बुद्धिर्जितकाशी महासुरः
युद्धमेवाभिलषते न दोषान्मन्यते मदात् ॥७६
महोत्पातभयं चैव न तन्मिथ्या भविष्यति ।
अपीदानीं भवेन्मिथ्या सर्वमुत्पातदर्शनम् ॥
इह त्वास्ते त्रिनयनः कार्तिकेयश्च वीर्यवान् ।
तेनोत्पन्नोऽपि दोषो नः कच्चिद्गच्छेत्पराभवम्
उत्पन्नदोषप्रभवः क्षयोऽयं भविता महान् ।
दोषाणां न भवेन्नाश इति मे धीयते मतिः ॥
नियतो दोष एवायं भविष्यति न संशयः ।
दौरात्म्यान्नृपतेरस्य दोषभूता हि दानवाः ॥
देवदानवसङ्घानां यः कर्ता भुवनप्रभुः ।
भगवान्कार्तिकेयश्च कृतवाँल्लोहिते पुरे ॥ ८१
प्राणैः प्रियतरो नित्यं भविष्यति गुहः सदा ।
तद्विशिष्टश्च बाणोऽपि शिवस्य सततं प्रियः
दर्पोत्सेकात्तु नाशाय वरं याचितवान्भवम्
युद्धहेतोः स लुब्धस्तु सर्वथा न भविष्यति८३
यदि विष्णुपुरोगानामिन्द्रादीनां दिवौकसाम्
भवित्री ह्यभवत्प्राप्तिर्भवहस्तात्कृतं भवेत्॥ ८४
एतयोश्च हि को युद्धं कुमारभवयोरिह ।
शक्तो दातुं समागम्य बाणसाहाय्यकाङ्क्षिणोः॥
न च देववचो मिथ्या भविष्यति कदाचन ॥
भविष्यति महद्युद्धं सर्वदैत्यविनाशनम् ॥ ८६
स एवं चिन्तयाविष्टः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान्
स्वस्तिप्रणिहितां बुद्धिं चकार स महासुरः ॥
ये हि देवैर्विरुध्यन्ते पुण्यकर्मभिराहवे ।
यथा बलिर्नियमितस्तथा ते यान्ति संक्षयम् ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

परिघः परिवेषः॥ ६५॥ **वक्रमिति** तत्रैव दुर्योगान्तरमाह। जन्मनक्षत्रं रोहिणी ६६ चैत्यश्चत्वरवान् नगरसूचको वृक्षः ॥६७॥निश्चयं मम पराभवो भविष्यतीत्येवंरूपम्॥६८॥न शोभनम् अशोभनम् ॥ ७० ॥ शक्रध्वजतरोः यत्र शक्रध्वज आसज्ज्यते स तरुः पूर्वोक्तः चैत्यवृक्षः तस्य यथा पतनं जातं तथा तव पतनं भविष्यतीत्यर्थः ॥ ७२ ॥ **देवेति** ॥ ईश्वरानुगृहीतोऽपि दर्पान्नश्यतीति भावः ॥ ७३ ॥ उत्पन्नो दोषो दर्शाख्यस्ततः प्रभवो यस्य स तथा ॥ ७९ ॥ स्वस्तिप्रणिहितां कल्याणाभिनिवेशिनीम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

१ ख. रणमा॰ । २ ख. ॰शी मदोत्कटः । ३ ख. सभवः का॰ ।

## पार्वत्याः सकाशात् उषाया वरलाभः ।

## ११७

वैशम्पायन उवाच ।
क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्भवः ।
देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः ॥ १
शतानि तत्राप्सरसां चिक्रीडुश्च समंततः ।
सर्वर्तुकवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा ॥ २
कुसुमैः पारिजातस्य पुष्पैः सन्तानकस्य च ।
गन्धोद्दाममिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ॥ ३
वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः ।
वाद्यमानैः स शुश्राव गीतमप्सरसां तदा ॥४
सूतमागधकल्पैश्चास्तुवन्नप्सरसां गणाः ।
देवदेवं सुवपुषं स्रग्विणं रक्तवाससम् ॥ ५
श्रीमहेशं देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम् ।
ततस्तु देव्या रूपेण चित्रलेखा वराप्सराः ॥६
भवं प्रसादयामास देवी च प्राहसत्तदा ।
प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः ॥ ७
भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महौजसः ।
देव्या ह्यनुज्ञया सर्वे क्रीडन्ते तत्र तत्र ह ॥ ८
अथ ते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चितः ।
महादेवस्य रूपेण तच्चिह्नं रूपमास्थिताः ॥ ९
ततो देव्याः सुरूपेण लीलया वदनेन च ।
देवी प्रहासं मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा ।
ततः किलकिलाशब्दः प्रादुर्भूतः समंततः ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे भवः प्रीतमनास्तदा ।
बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भामिनी
देवं संक्रीडितं दृष्ट्वा देव्या सह नदीगतम् ।
दीप्यमानं महादेवं द्वादशादित्यतेजसम् ॥ १२
नानारूपं वपुः कृत्वा देव्याः प्रियचिकीर्षया ।
उषा मनोरथं चक्रे पार्वत्याः संनिधौ तथा ॥
धन्या हि भर्तृसहिता रमत्येवं समागता ।
मनसा त्वथ संकल्पमुषया भाषितं तथा ॥१४
विज्ञाय तमभिप्रायमुषायाः पर्वतात्मजा ।
प्राह देवी ततो वाक्यमुषां हर्षयती शनैः ॥
उषे त्वं शीघ्रमप्येवं भर्त्रा सह रमिष्यसि ।
यथा देवो मया सार्धं शङ्करः शत्रुनाशनः ॥
एवमुक्ते तदा देव्या वाक्ये चिन्ताविलक्षणा
उषा भावं तदा चक्रे भर्त्रा रंस्ये कदा सह ॥
तदा हैमवती वाक्यं संप्रहस्येदमब्रवीत् ।
उषे शृणुष्व वाक्यं मे यदा संयोगमेष्यसि ॥
वैशाखे मासि हर्म्यस्थां द्वादश्यां त्वां दिनक्षये
रमयिष्यति यः स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति
एवमुक्ता दैत्यसुता कन्यागणसमावृता ।
अपाक्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम् ॥ २०
ततः सखीभिर्हास्यन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना ।
तालिकासंनिपातैश्च ह्यन्योन्यमभ्यवर्तत ॥
किंनर्यो यक्षकन्याश्च नानादैतेयकन्यकाः ।
अप्सरोगणकन्याश्च उषायाः सखितां गताः॥
उक्ता च तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने ।
भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचनकल्पितः ॥
न हि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदाचन
रूपाभिजनसंपन्नः पतिस्ते कल्पितस्तया ॥

---

११७

**क्रीडेति** ॥ १ ॥ सन्तानकस्य कल्पतरुविशेषस्य॥३॥ प्रसादयामासेत्युक्तेरिदं सूच्यते–मद्भार्यारूपग्रहणेन मामपि सर्वान्तर्यामिणमियं मोहयितुं प्रवृत्तेति महादेवस्य तस्या उपरि कियानपि कोपो जात आसीदिति तत एवापराधात् चित्रलेखा स्वांशेन कुम्भाण्डस्य बाणामात्यस्य कन्या जातेति आग्रिमग्रन्थाद्गम्यते । प्रसादयन्तीं ताम् अप्सरोगणाः प्रहसन्ति ईशेऽपि कापट्यमियं करोतीत्याशयेन॥७॥ क्रीडन्ते महादेवस्य रूपेणेति द्वयोः संबन्धः ॥ ८ ॥ तच्चिह्नं वृषभध्वजादिचिह्नरूपं देव्या रूपेण युक्ताः अप्सरसोऽपि क्रीडन्त इत्यनुषज्यते ॥ ९ ॥ ततश्च देवी प्रहासं मुमुचे । तत्र हेतुः । चित्रलेखाया मानभङ्गार्थं सर्वा अप्सरसो देवीरूपं जगृहुस्तस्याश्च भ्रान्तिमुत्पादयितुं सर्वे पार्षदा महादेवरूपं जगृहुरिति प्रघट्टकार्थः ॥ १० ॥ संक्रीडितं क्रीडितम्॥१२॥ नानारूपं वपुः कृत्वा संक्रीडितमिति पूर्वेण संबन्धः ॥ १३ ॥ भाषितं सखीजने इति शेषः ॥ १४ ॥ हास्यन्ती परिहास्यमाना ॥ २१ ॥ यत्तव

---

१ ख. °स्तदा । कु° । २ ख. म् । हरं सहोमं वरदं रमयन्ति मनोरमाः । त° । ३ ख. ° म भाविनी । दे° । ख. °हात्मानं द्वा° । ४ ख. °न्योन्यं जघ्नुरूर्जिताः । कि° ।

उषा सखीनां तद्वाक्यं प्रतिपूज्य यथाविधि
यत्तन्मनोरथं देव्या भावयन्ती ह्यवस्थिता ॥
ततः क्रीडाविहारं तमनुभूय सहोमया ॥
गतेऽहनि ततः सर्वा नार्यस्ताः परमाद्भुताः॥
ययुः स्वानालयान्सर्वा देवी चादर्शनं गता।
काश्चिदश्वैस्तथा यानैर्गजैरन्यास्तथा रथैः २७
पुरं प्रविविशुर्हृष्टाः काश्चिदाकाशमास्थिताः।
[ततःप्रभृति सा देवी काममोहं गता विभो॥
देव्यास्तु वचनं स्मृत्वा संस्मरन्ती पतिं तदा
निद्रां न भजते रात्रौ न दिवा भोजनं तथा॥
स्मरन्ती पतिभावं सा विललाप नृपात्मजा ।
निन्दन्ती शशिनं नार्के सेवती न च चन्दनम्
सा बाला मोहिता राजन्कामेन परिपीडिता
उपचर्यन्ति तां सख्यो विज्वरामपि सज्वराम्
तप्यते हृदयं तस्या लेपितं चन्दनेन च ।
कपोले पाण्डिमा चिह्नं नेत्रे जलसमन्विते॥३२
जृम्भणं च तथा स्वापो देहे तस्या व्यवर्धत।
पद्मिनीकन्दचूर्णानि शीतलानि मुहुर्मुहुः ॥३३
क्षिपन्ति सख्यो हृदये पीडिते मन्मथाग्निना
व्यजनानि प्रकुर्वन्ति पृच्छन्ति च पुनःपुनः
का व्यथा किं शरीरं ते किमिदं तव भामिनि
किं तुभ्यं रोचते देवि तदाख्याहि वरानने ॥
कस्मादिदं समुत्पन्नं दुःखसाध्यं मनोरमे ।
त्वन्मनोनुगतं वाक्यं वदन्त्येतास्तु सारिकाः
शुका नीलतमाः सुभ्रु पठन्ति हि पुमानिव।
प्रह्लादजननं वाक्यं किमर्थं नाद्य भाषसे ॥
तव तातो महावीरो देवानामपि दुर्जयः।
तस्याग्रे तिष्ठते कोऽपि न भूमौ वरवर्णिनि
बलेः पुत्रो महावीरो बाणो हि दुरतिक्रमः
जित्वाऽमरावतीकं च नगरं शोणिताह्वयम्।
यत्र संतिष्ठते देवः शूलहस्तो महेश्वरः॥ ३९
पुत्रोऽयमिति जानीहि गिरिजां योऽब्रवीद्धरः
बाणं प्रति महादेवस्तव तातमुषे शृणु ॥ ४०
का व्यथेति मुखे चेदं नासाग्रं च विराजते ।
नीहारबिन्दवः पद्मे राजन्ते शरदागमे ॥ ४१
संपूर्णचन्द्रप्रतिमं मुखं चन्द्रो यथा घने ।
न शोभते तु विच्छायं किमर्थं कारणं वद ॥
श्वासान्मुञ्चसि बाले त्वं न रतिं यासि भावतः
गृहाण भोजनं दिव्यं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४३
ताम्बूलं रोचते पूर्वं तत्किमर्थं न गृह्यते ।
मिष्टानि यानि वस्तूनि दुर्लभानीतरैर्जनैः ॥
गृहाण देवि उत्तिष्ठ वद पीडां शरीरजाम्।
इति कोलाहलं श्रुत्वा उषा वेश्मसमुद्भवम्
दासीभिः कीर्तितं तत्र मातुरग्रे पृथक्पृथक्।
राजपुत्री यदा देवी समायाता गृहे सती ॥
जलक्रीडाविहाराच्च मूकेव परिलक्ष्यते ।
अतो दासीजना देवि वदामस्त्वां वयं जनाः
को मोहः किमिदं मौनं
कः स्वापो म्लानता कथम्
विचार्य भिषजो देवि
दिश्यन्तां कष्टशान्तये ॥ ४८
शिरीषपुष्पसदृशं यच्छरीरं सुकोमलम् ।
तत्कथं सहते देवि व्याधिभारं वरानने ॥ ४९
इति श्रुत्वा तदा देवी सत्वरा हंसगामिनी
प्राप्य देशमुषा यत्र किमिदं कष्टलक्षणम् ॥ ५०
पल्लवाकृतिहस्तेन कोमलं तत्करं तदा ।
स्पृष्ट्वाङ्गुलीरनायासं स्फोटयामास भाविनी ॥
किमस्ति तव कल्याणि का व्यथा तव वर्तते
एते वैद्याः समागत्य पृच्छन्ति भवतीं हि तत्
वैद्या ऊचुः ।
जलक्रीडां गता तत्र राजपुत्री सखीगणैः ।
पार्वत्याः क्रीडितं तत्र जानीमः श्रमसंभवम् ॥
श्रमाद्ग्लानिः समुत्पन्ना जृम्भणे च पुनःपुनः
स्वापश्च जायते तेन मा भयं कर्तुमर्हसि ॥ ५४
देव्युवाच ।
हृदये निहितं वैद्याश्चन्दनं हिमसंयुतम् ।
अमात्याः किमिदं शीघ्रं किमिदं बुद्बुदायते ॥
अतिदाहो महान्स्वेदः पिपासा न बुभुक्षते ।
प्रलाप एव किं तस्यां शास्त्रतो ब्रूत निश्चितम्
वैद्या ऊचुः ।
क्रीडाविहारे मिलिताः स्त्रीजना देवसंनिधौ
रूपेणाप्रतिमा देवी राजपुत्री च भाविनी ॥

मनोरथं मनोरथगोचरं प्रार्थितं वस्तु तत् देव्या तव दत्तमिति सखीनां वाक्यं प्रतिपूज्य उषा प्रतीक्षते इति शेषः॥ २५॥

१ ख. दत्तं म० । २ ख. व्यतिष्ठत । त० । । [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः खपुस्तके नास्ति। ३ तत्र इति—पाठा०

दृष्टिपातः कृतस्ताभिस्तेन पुत्र्यां व्यथाऽभवत्
रक्षामन्त्रैस्तथा पीतैः सर्षपैस्तां कुमारिकाम्॥
पानीयैरभिषेकेण परा शान्तिर्भविष्यति ।
इत्युक्त्वा भिषजः सर्वे निवृत्ता नृपवेश्मतः
सूचयन्तः पुनः सर्वे कामाभिप्रायजां व्यथाम्
मातृपृष्टा वरारोहा चिरकालमुवाच सा ॥६०
लज्जावती महाभागा मातरं रुदती भृशम् ।
मातर्न रोचते नित्यं भाषणं न च भोजनम् ॥
न चाप्युत्सवकं मातः सदाहं हृदयं शृणु ।
इत्युक्त्वा विरराामाथ स्नुषा नारी वरानना ॥
सर्वाभिः स्त्रीभिरारब्धमन्योन्यं मुखवीक्षणम्
लज्जानुकारि नारीणां यौवने हि भवेदिति ॥
इयं च राजकन्या हि भर्तृयोग्या किमुच्यते
पितुः प्रसादान्मातुश्च प्राप्नुयात्सदृशं वरम् ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे उषाविरहो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

## उषायाः स्वप्नदर्शनमनिरुद्धानयनार्थं चित्रलेखाया द्वारकागमनं च ।

## ११८

वैशम्पायन उवाच ।

तत्रस्थाः परमा नार्यश्चित्रेण परमाद्भुताः ]
ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भामिनीम्
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा ।
यथोक्तः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम्
विचेष्टमाना रुदती देव्या वचनचोदिता ॥
सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्भिता
शोणिताक्ता प्ररुदती सहसैवोत्थिता निशि
तां तथा रुदतीं दृष्ट्वा सखी भयसमन्विता ।
चित्रलेखा वचः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम् ॥ ४
उषे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे ॥
बलेः सुतसुता च त्वं प्रख्याता किं भयान्विता
न भयं विद्यते लोके तव सुभ्रु विशेषतः ।
अभयं तव वामोरु पिता देवान्तको रणे ॥ ६
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विषादं मा कृथाः शुभे ।
नैवंविधेषु वासेषु भयमस्ति वरानने ॥ ७
असकृद्देवसहितः शचीभर्ता सुरेश्वरः ।
अप्राप्त एव नगरं पित्रा ते मृदितो रणे ॥ ८
अयं देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव ।
महासुरवरः श्रीमान्बलेः पुत्रो महाबलः ॥ ९
एवं साऽभिहिता सख्या बाणपुत्री यशस्विनी
स्वप्ने रूपं यथा दृष्टं न्यवेदयदनिन्दिता ॥ १०

उषोवाच ।

एवं सन्धर्षिता साध्वी कथं जीवितुमुत्सहे
पितरं किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिंदमम् ।
एवं संदूषणकरी वंशस्यास्य महौजसः ॥ १२
श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम् ।
ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषोऽधिगतो हि मे
जाग्रतीव यथा चाहमवस्थैवं कृता मम ।
निशायां जाग्रतीवाहं नीता केन दशामिमाम्
कथमेवं कृता नाम कन्या जीवितुमुत्सहे ॥
कुलोपक्रोशनकरी कुलाङ्गारी निराश्रया ।
जीवितुं न स्पृहेन्नारी साध्वीनामग्रतः स्थिता
इत्येवं बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा ।
विललाप चिरं कालमुषा कमललोचना ॥ १६
अनाथवत्तां रुदतीं सख्यः सर्वा विचेतसः ।
ऊचुरश्रुपरीताक्षीमुषां सर्वाः समागताः १७
दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाऽशुभम्
क्रियते न च ते सुभ्रु किंचिद्दुष्टं मनः शुभे ॥
प्रसभं दैवसंयोगाद्यदि भुक्ताऽसि भामिनि ।
स्वप्नप्रयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते ॥
व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद्व्यतिक्रमः
न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

११८

तत्रेति । मह्यं मम १३ दुष्टेन कामवता मनसा यत् विक्रियते तदेव अशुभं वा पापं पुण्यं वा न त्वनिच्छाप्राप्तमित्यर्थः १८

---

१ ख. तां तदा । वि० । २ ख. °प्ने धर्षिता ते° । ३ घ °षो विगतो हि ।

एवं विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञाः कथयन्ति वै ।
मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः ।
दुष्टा या त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते बुधैः
न च ते दृश्यते भीरु मनः प्रचलितं सदा ।
कथं त्वं दोषसंदुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी ॥
यदि सुप्ता सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी
इमामवस्थां प्राप्ता त्वं नैव धर्मो विलुप्यते ॥
यस्या दुष्टं मनः पूर्वं कर्मणा चोपपादितम् ।
तामाहुरसतीं नाम सती त्वमसि भामिनि ॥
कुलजा रूपसंपन्ना नियता ब्रह्मचारिणी ।
इमामवस्थां नीताऽसि 'कालो हि दुरतिक्रमः'
इत्येवमुक्तां रुदतीं बाष्पेणावृतलोचनाम् ।
कुम्भाण्डदुहिता वाक्यं परमं त्विदमब्रवीत् ॥
त्यज शोकं विशालाक्षि अपापा त्वं वरानने ।
श्रुतं मे यदिदं वाक्यं याथातथ्येन तच्छृणु ॥
उषे यदुक्ता देव्याऽसि भर्तारं ध्यायती तदा
समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद्वचः ॥ २८
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि
हर्म्ये शयानां रुदतीं स्त्रीत्वं समुपनेष्यति ॥२९
भविता स हि ते भर्ता शूरः शत्रुनिबर्हणः ।
इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम् ॥
न हि तद्वचनं मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम्
सा त्वं किमिदमत्यर्थं रोदिषीन्दुनिभानने ॥
एवमुक्ता तया बाला स्मृत्वा देवीवचस्ततः
अभवन्नष्टशोका सा बाणपुत्री शुभेक्षणा ॥ ३२

उषोवाच ।

स्मरामि भामिनि वचो देव्याः क्रीडागते भवे
यथोक्तं सर्वमखिलं प्राप्तं हर्म्यतले मया ॥ ३३
भर्ता तु मम यद्येष लोकनाथस्य भार्यया ।
व्यादिष्टः स कथं ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधीयताम्॥
इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डदुहिता पुनः ।
व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा ॥ ३५
न हि तस्य कुलं देवि न कीर्तिर्नापि पौरुषम्
कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्वं विमुह्यसे ॥
अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्टः स्वप्ने च यः शुभे ।
कथं ज्ञेयो भवेद्भीरु सोऽस्माभी रतितस्करः
येन त्वमसितापाङ्गि मत्तकाशिनि विक्रमात्॥
रुदती प्रसभं भुक्ता प्रविश्यान्तःपुरं सखि ॥
न ह्यसौ प्राकृतः कश्चिद्यः प्रविष्टः प्रसह्यते ।
नगरं लोकविख्यातमेकः शत्रुनिबर्हणः ॥ ३९
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महौजसौ
न शक्ताः शोणितपुरं प्रवेष्टुं भीमविक्रमाः ॥४०
सोऽयमेतैः शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदनः ।
प्रविष्टः शोणितपुरं बाणमाक्रम्य मूर्धनि ॥ ४१
यस्या नैवंविधो भर्ता भवेद्युद्धविशारदः ।
कस्तस्या जीवितेनार्थो भोगैर्वास्त्यम्बुजेक्षणे
धन्यास्यनुगृहीताऽसि यस्यास्ते पतिरीदृशः
प्राप्तो देव्याः प्रसादेन कन्दर्पसमविक्रमः ॥ ४३
इदं तु यत्कार्यतमं शृणु त्वं तन्मयेरितम् ।
विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च सः॥
इत्येवमुक्ते वचने तत्रोषा काममोहिता ।
उवाच कुम्भाण्डसुतां कथं ज्ञास्याम्यहं सखि
त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तरं प्रतिभाति मे ।
स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जीवं लभाम्यहम्
उषाया वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः ।
उवाच रुदतीं चोषां कुम्भाण्डदुहिता सखी ।
कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा सन्धिविग्रहे
अप्सरा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यतां सखि॥
अस्याः सर्वमशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा ।
एवमुक्ता तदैवोषा हर्षेणागतविस्मया ॥ ४९
तामप्सरसमानाय्य चित्रलेखां सखीं प्रियाम्
कृताञ्जलिपुटा दीना उषा वचनमब्रवीत् ॥५०
[सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुषायाः परिकीर्तितम्
आश्वासयामास सखी बाणपुत्रीं यशस्विनीम्
ततः सा विस्मयाविष्टा वचनं प्राह दुर्वचम् ।]
चित्रलेखामप्सरसं प्रणयार्त्ता सखीमिदम् ५२
परमं शृणु मे वाक्यं यत्त्वां वक्ष्यामि भामिनि
भर्तारं यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम्
कान्तं पद्मपलाशाक्षं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
त्यक्ष्याम्यहं ततः प्राणानचिरात्तनुमध्यमे ॥५४

---

प्रचलितं कामवेगवशीकृतं कथं त्वं दोषसंदुष्टा न कथमपीत्यर्थः ॥२२॥ रामा इति कुम्भाण्डदुहितुर्नाम । रामा चित्रलेखांशत्वात् चित्रलेखायाः सामर्थ्यं स्वयं जानन्ती उषाया अपि निवेदयति ॥४७॥ कुशलेति ॥४८॥ चित्रं लिखति योगादित्यन्वर्थसंज्ञाम् अप्सरसम् ॥५२॥ पादस्थं

---

२ ख. °ना सर्वैः समुदिता गुणैः । इ° । २ ख. °ह्य नः । न । ३ ख °माविग्रहः । इ° । [ ] एतच्चिन्हान्तर्गतो ग्रन्थः खपुस्तके नास्ति । ४ ख °गविक्रमम् । त्य° । ५ ख °हं प्रियान्प्रा° ।

चित्रलेखाऽब्रवीद्वाक्यमुषां हर्षयती शनैः।
नैषोऽर्थः शक्यतेऽस्माभिर्वेत्तुं भामिनि सुव्रते
न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपतः।
न देशतश्च विज्ञातः स हि चोरो मया सखि
किं तु कर्तुं यथा शक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि।
प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथा काममवाप्स्यसि
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च ५८
यथाप्रभावं तान्सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि।
मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकविश्रुताः॥
सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्यामि तानहम्।
ततो विज्ञाय पादस्थं भर्तारं प्रतिपत्स्यसे ६०
सा चित्रलेखया प्रोक्ता उषा हिताचिकीर्षया।
क्रियतामेवमित्याह चित्रलेखां सखीं प्रियाम्
ततः कुशलहस्तत्वाद्यथालेख्यं समंततः।
इत्युक्त्वा सप्तरात्रेण कृत्वा लेख्यगतांस्तु तान्
चित्रपट्टगतान्मुख्यानानयामास शोभना।
ततः प्रास्तीर्य पट्टं सा चित्रलेखा स्वयं कृतम्
उषायै दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः।
एते देवेषु ये मुख्यास्तथा दानववंशजाः॥
किंनरोरगयक्षाणां राक्षसानां समंततः।
गन्धर्वासुरदैत्यानां ये चान्ये भोगिनः स्मृताः
मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टतमा नराः।
तानेतान्पश्य सर्वांस्त्वं यथैव लिखितान्मया॥
यस्ते भर्ता यथारूपः स मया लिखितः सखि
तं त्वं प्रत्यभिजानीहि स्वप्ने यं दृष्टवत्यसि॥
ततः क्रमेण सर्वांस्तान्दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी
देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ।
अतीत्य च यदून्सर्वान् ददर्श यदुनन्दनम् ६८
तत्रानिरुद्धं दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना।
उवाच चित्रलेखां तामयं चौरः स वै सखि॥
येनाहं दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती।
सोऽयं विज्ञातरूपो मे कुतोऽयं रतितस्करः॥
चित्रलेखे वदस्वैनं तत्त्वतो मम शोभने।
कुलशीलाभिजनतो नाम किं चास्य भामिनि
ततः पश्चाद्विधास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम्
चित्रलेखोवाच।
अयं त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कृष्णस्य धीमतः
भर्ता तव विशालाक्षि प्राद्युम्निर्भीमविक्रमः॥
न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे।
उत्पाट्य पर्वतानेव पर्वतैरेव शातयेत्॥ ७३
धन्याऽस्यनुगृहीताऽसि यस्यास्ते यदुपुङ्गवः
त्र्यक्षपत्न्या समादिष्टः सदृशः सज्जनः पतिः
उषोवाच।
त्वमेवात्र विशालाक्षि योग्या भव वरानने
न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव
अन्तरिक्षचरा च त्वं योगिनी कामरूपिणी।
उपायस्यास्य कुशला क्षिप्रमानय मे प्रियम्॥
उपायश्चिन्त्यतां भीरु संप्रतर्क्य प्रिये सुखम्
सिद्धार्था संनिवर्तस्व येनोपायेन सुन्दरि॥
'भवेदापत्सु यन्मित्रं तन्मित्रं शस्यते बुधैः'।
कामार्ता चास्मि सुश्रोणि भव मे प्राणधारिणी
यद्येनं मे विशालाक्षि भर्तारममरोपमम्।
अद्य नानयसि क्षिप्रं प्राणांस्त्यक्ष्याम्यहं शुभे
उषाया वचनं श्रुत्वा चित्रलेखाऽब्रवीद्वचः
श्रोतुमर्हसि कल्याणि वचनं मे शुचिस्मिते॥
यथा बाणस्य नगरी रक्ष्यते देवि सर्वशः।
द्वारकाऽपि तथा भीरु दुराधर्षा सुरैरपि ८१
अयस्मयप्रतिच्छन्ना गुप्तद्वारा च सा पुरी।
गुप्ता वृष्णिकुमारैश्च तथा द्वारकवासिभिः ८२
प्रान्ते सलिलसंयुक्ता विहिता विश्वकर्मणा।
रक्ष्यते पुरुषैर्घोरैः पद्मनाभस्य शासनात्॥८३
शैलप्राकारपरिखादुर्गमार्गप्रवेशिनी।
सप्तप्राकाररचिता पर्वतैर्धातुमण्डितैः॥ ८४
न च शक्यमविज्ञातैः प्रवेष्टुं द्वारकां पुरीम्।
आत्मानं मां च रक्षस्व पितरं च विशेषतः ८५
उषोवाच।
तव योगप्रभावेण शक्यं तत्र प्रवेशनम्।
किं मे बहुविलापेन श्रूयतां सखि कारणम् ८५

चित्रफलकस्थं पट्टस्थमित्यपि पाठः ॥ ६० ॥ सज्जनः उत्तमाभिजनः ॥७४॥ योगिनी दम्पत्योः संबन्धं कर्तुमर्हा योग्या ॥७६॥ **अयस्मयैः**—कपाटैः प्रतिच्छन्ना ॥८२॥ प्रान्ते सलिलसंयुक्ता। समुद्रपरिखावती ॥८३॥ निर्बन्धाकरणेन अन्यथा त्रयाणामपि क्लेशः प्रसज्जेत इत्यर्थः ॥८५॥

१ ख. तदेतान्प॰। २ ख. स ते स॰। ३ ख. गुणशी॰। ४ ख. बहुना किं प्रलापेन प्रतिज्ञां श्रूयतां मम। अनि॰।

अनिरुद्धस्य वदनं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
यद्यहं तन्न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥
दूतमासाद्य कार्याणां सिद्धिर्भवति भामिनि ।
तस्माद्दौत्येन मे गच्छ जीवन्तीं मां यदीच्छसि
यदि त्वं मे विजानासि
सख्यं प्रेम्णा च भाषितम् ।
क्षिप्रमानय मे कान्तं
तवास्मि शरणं गता ॥ ८९
जीवितस्य हि संदेहः क्षयं चैव कुलस्य च ।
कामार्ता हि न पश्यन्ति कामिन्यो मदविक्लवाः
प्रयत्नो युज्यते कार्येष्विति शास्त्रनिदर्शनम् ॥
त्वं च शक्ता विशालाक्षि द्वारकायाः प्रवेशने
संस्तुताऽसि मया भीरु कुरु मे प्रियदर्शनम् ॥
चित्रलेखा उवाच ।
सर्वथा संस्तुता तेऽहं वाक्यैरमृतसोदरैः ।
कारिता च समुद्योगं प्रियैः कान्तैश्च भाषितैः
एषा गच्छाम्यहं भीरु क्षिप्रं वै द्वारकां पुरीम्
भर्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम् ।
अनिरुद्धं महाबाहुं प्रविश्य द्वारकां पुरीम् ९४
सा वचस्तथ्यमशिवं दानवानां भयावहम् ।
उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्रं चित्रलेखा मनोजवा
सखीभिः सहिता ह्यूषा
चिन्तयन्ती तु सा स्थिता ।
तृतीये तु मुहूर्ते सा
नष्टा बाणपुरात्तदा ॥ ९६
सखी प्रियं चिकीर्षन्ती पूजयन्ती तपोधनान् ।
क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥
कैलासशिखराकारैः प्रासादैरुपशोभिताम् ।
ददर्श द्वारकां रम्यां दिवि तारामिव स्थिताम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे चित्रलेखाया द्वारकागमने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## अनिरुद्धस्योषया सह गान्धर्वेण विवाहो बाणतत्सैन्याभ्यां युद्धं च ।

## ११९

वैशम्पायन उवाच ।
अथ द्वारवतीं प्राप्य स्थिता सा भवनान्तिके
प्रवृत्तिहरणार्थाय चित्रलेखा व्यचिन्तयत् १
अथ चिन्तयती सा तु बुद्धिबुद्ध्यर्थनिश्चयम् ।
अपश्यन्नारदं तत्र ध्यायन्तमुदके मुनिम् ॥ २
तं दृष्ट्वा चित्रलेखा तु हर्षेणोत्फुल्ललोचना ।
उपसृत्याभिवाद्याथ तत्रैवाधोमुखी स्थिता ३
नारदस्त्वाशिषं दत्त्वा चित्रलेखामथाब्रवीत् ।
किमर्थमिह संप्राप्ता श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ४
देवर्षिमथ तं दिव्यं नारदं लोकपूजितम् ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा चित्रलेखा त्वथाब्रवीत् ५
भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं दौत्येनाहमिहागता ।
अनिरुद्धं मुने नेतुं यदर्थं च शृणुष्व मे ॥ ६
नगरे शोणितपुरे बाणो नाम महासुरः ।
तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोषेति च विश्रुता
भगवन्सानुरक्ता च प्राद्युम्निं पुरुषोत्तमम् ।
देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः ८
तं च नेतुं समायाता तत्र सिद्धिं विधत्स्व मे
मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगरं शोणिताह्वयम् ॥९
प्रवृत्तिः पुण्डरीकाक्षे त्वयाख्येया महामुने ।
अवश्यं भविता चैव कृष्णेन सह विग्रहः ।
बाणस्य सुमहान्संख्ये दिव्यो हि स महासुरः
न च शक्तोऽनिरुद्धस्तं युद्धे जेतुं महासुरम् ।
सहस्रबाहुमायान्तं जयेत्कृष्णो महाभुजः ११
भगवन्सन्निकर्षे ते यदर्थमहमागता ।
कथं हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्तदिदं भवेत्

तारामिवेति कृत्स्ननगरप्रभाया एकीभाव उक्तः ॥ ९८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

११९.

अथेति । प्रवृत्तिः बाणपुरेऽनिरुद्धो नीत इति वार्ता तस्याः हरणं कृष्णे प्रापणं तदर्थं चिन्तयन्ती बाणगर्वशमनार्थिनी चित्रलेखा व्यचिन्तयत् ॥१॥ बुद्धिबुद्ध्यर्थनिश्चयं बुद्ध्या यः बुद्ध्यर्थनिश्चयस्तम् ॥२॥ ज्ञापितः कथं भवेत् इदं च कृष्णबाणयोर्युद्धं च कथं भवेदिति योजना ॥१२॥

१ ख °तकल्पितैः । का° । २ ख ° निश्चिताम् । अ° । ३ ख °वाचैनं त° ।

त्वत्प्रसादाच्च भगवन्न मे कृष्णाद्भयं भवेत्।
स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्धः कथं ह्रियेत् ॥
क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रैलोक्यमपि निर्दहेत्।
पौत्रशोकाभिसंतप्तः शापेन स दहेत माम् ॥
तत्रोपायं च भगवंश्चिन्तितुं वै त्वमर्हसि।
यथा स्नुषा लभेत्कान्तं मम चैवाभयं भवेत् ॥
इत्येवमुक्तो भगवांश्चित्रलेखां स नारदः।
उवाच स शुभं वाक्यं मा भैस्त्वमभयं शृणु ॥
त्वया नीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्मप्रवेशिते।
यदि युद्धं भवेत्तत्र स्मर्तव्योऽहं शुचिस्मिते ॥
ममैष परमः कामो युद्धं द्रष्टुं मनोरमे।
तद्दृष्ट्वा च महाप्रीतिः प्रवृत्तिश्च दृढा भवेत् ॥
गृह्यतां तामसी विद्या सर्वलोकप्रमोहिनी।
कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्यां ददाम्यहम् ॥
एवमुक्ते तु वचने नारदेन महर्षिणा।
तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनोजवा ॥ २०
अभिवाद्य महात्मानमृषीणां नारदं वरम्[३]।
सा जगामानिरुद्धस्य गृहं चैवान्तरिक्षगा २१
ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भुवनं शुभम्।
तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह ॥
सौवर्णवेदिकास्तम्भं रुक्मवैडूर्यतोरणम्।
माल्यदामावसक्तं च पूर्णकुम्भोपशोभितम्
बर्हिकण्ठनिभग्रीवं प्रासादैरेकसंचयैः।
मणिप्रवालविस्तीर्णं देवगन्धर्वनादितम् ॥२४
×ददर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत्सुखम्।
ततः प्रविश्य सहसा भवनं तस्य तन्महत् २५
तत्रानिरुद्धं सापश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः।
मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम् ॥२६
क्रीडाविहारे नारीभिः सेव्यमानमितस्ततः।
पिबन्तं मधु माध्वीकं श्रिया परमया युतम् ॥
वरासनगतं तत्र यथा चैडाविलं तथा।
वाद्यते समतालं च गीयते मधुरं तथा ॥ २८
न च तस्य मनस्तत्र तमेवार्थमचिन्तयत्।
स्त्रियः सर्वगुणोपेता नृत्यन्ते तत्र तत्र वै॥ २९
न चास्य मनसस्तुष्टिं चित्रलेखा प्रपश्यति।
न चाभिरमते भोगैर्न चापि मधु सेवते ॥ ३०
व्यक्तमस्य हि तत्स्वप्नो हृदये परिवर्तते।
इति तत्रैव बुद्ध्या च निश्चिता गतसाध्वसा॥
सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम्।
चिन्तयाविष्टहृदया चित्रलेखा मनस्विनी ३२
कथं कार्यमिदं कार्यं
कथं स्वस्ति भवेदिति।
साऽन्तर्हिता चिन्तयित्वा
चित्रलेखा यशस्विनी ॥ ३३
तामस्या च्छादयामास विद्यया शुभलोचना
*ततोऽन्तरिक्षादेवाशु प्रासादोपर्यधिष्ठिता॥
प्राद्युम्निं वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
चक्षुर्दत्त्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मनि दर्शनम्
विविक्ते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत्
अपि ते कुशलं वीर सर्वत्र यदुनन्दन ॥ ३६
अहस्तावत्प्रदोषो वा कच्चिद्गच्छति ते सुखम्।
शृणुष्व त्वं महाबाहो विज्ञप्तिं मे रतीसुत ॥

स कृष्णस्तत्त्वार्थदृष्टिरिति मम भयं नास्ति परंतु अनिरुद्धः कथं ह्रियेत् कथं हरणं प्राप्नुयात्तद्वदेति भावः ॥१३॥ अभयं भयनिवर्तक-वचनम् ॥१५॥ प्रवृत्तिः युद्धं कारयितुमिति शेषः ॥१८॥ कृतकृत्यः विद्याविषये यत्कृत्यं पुरश्चरणादि तत्सर्वं मया कृतमस्ति तेन प्राप्तमात्रैव सिद्धिकरीयं विद्येत्यर्थः ॥१९॥ बर्हिकण्ठनिभग्रीवमित्युपरिप्रदेशस्थः कण्ठभागो जह्व इति प्रसिद्धो यस्य तं प्रासादैरेकसंचयैः एक एव संचयो दीर्घकाष्ठं पाषाणो वा येषु मध्ये स्तम्भरहितैरित्यर्थः। मणिभिः प्रवालैश्च विस्तीर्णं विशेषेणास्तरणरूपेण रचितम् ॥२४॥ ऐडाविलं कुबेरम् ॥ २८ ॥ न मनस्तत्र रेमे इति शेषः। यतोऽसौ तमेव उषासंभोगमेवाचिन्तयत्। एतेन यथा उषा स्वप्नेऽनिरुद्धमपश्यदेवमितरोऽपि तामपश्यदिति ज्ञेयम् ॥ ९ ॥ निश्चिता निश्चयवती। गतसाध्वसा निर्भया ॥३१॥ छादयामास अनिरुद्धव्यतिरिक्तान् ॥ ३४ ॥

१ ख °हं तदा त्वया। एष मे प°। २ख. द्रष्टुमिहानघे। यद्दृ°। ३ ख. °म्। निरैक्षतानिरुद्धं। ४ख. सा स्म पश्यति। सौ°। ५ ख °कालुम्भं रु°। × ततो द्वारवतीमध्ये प्रासादैरुपशोभितम्। इति खपुस्तकेऽधिकः पाठः। ६ ख. ०था चैलाविलं त°। * हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं दृष्ट्वा चान्तर्हिता तदा इति खपुस्तकेऽधिकः पाठः। ७ ख. तासां चैवाश्चैव देशे सा वा०। ८ ख. विज्ञाप्यं मे।

उषाया मम सख्यास्तु
वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः ।
स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा
स्त्रीभावं चापि भाविता ॥ ३८
बिभर्ति हृदये या त्वामुषया प्रेषिता त्वहम् ।
रुदन्ती जृम्भती चैव निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः ॥
त्वद्दर्शनपरा सौम्य कामिनी परितप्यते ।
यदि त्वं यास्यसे वीर धारयिष्यति जीवितम्
अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः ।
यदि नारीसहस्रं ते हृदिस्थं यदुनन्दन ॥ ४१
स्त्रियाः कामयमानायाः कर्तव्या हस्तधारणा
त्वं च तस्या वरोत्सर्गे दत्तो देव्या मनोरथः
चित्रपट्टं मया दत्तं त्वच्चिह्नं दृश्य जीवति ।
सानुक्रोशो यदुश्रेष्ठ भव तस्या मनोरथे ॥ ४३
उषा ते पतते मूर्ध्ना वयं च यदुनन्दन ।
श्रूयतां चोद्धवस्तस्याः कुलशीलं च यादृशम्
संस्थानं प्रकृतिं चास्याः पितरं च ब्रवीमि ते
वैरोचनिसुतो वीरो बाणो नाम महासुरः ॥
स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता
त्वद्भावगतचित्ता सा त्वन्मयं चापि जीवितम्
मनोरथकृतो भर्ता देव्या दत्तो न संशयः ।
त्वत्संगमात्सा सुश्रोणी प्राणान्धारयते शुभा
चित्रलेखावचः श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम्
दृष्टा स्वप्ने मया सा हि तन्मत्तः शृणु शोभने
रूपं कान्तिं मार्तिं चैव संयोगं रुदितं तथा ।
एवं सर्वमहोरात्रं मुह्यामि परिचिन्तयन् ॥
यद्यहं समनुग्राह्यो यदि सख्यं त्वमिच्छसि ।
नयस्व चित्रलेखे मां द्रष्टुमिच्छाम्यहं प्रियाम्
[कामसंतापसंतप्तः प्रियासङ्गमकामतः ।
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः सत्यं स्वप्नं कुरुष्व मे
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रलेखा वराप्सराः
सफलोऽद्य मम क्लेशः सख्या मे यत्प्रयाचितम्
वैशम्पायन उवाच ।]
ईप्सितं तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी

चित्रलेखा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत् ॥
हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं कृत्वा चान्तर्हितं तदा ।
उत्पपात गृहीत्वा सा प्राद्युम्निं युद्धदुर्मदम् ॥
सा तमध्वानमागम्य सिद्धचारणसेवितम् ।
सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा ।
अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी ।
अनिरुद्धं महाभागा यत्रोषा तत्र गच्छति ॥
उषाया दर्शयच्चैनं चित्राभरणभूषितम् ।
चित्राम्बरधरं वीरं रहस्यमररूपिणम् ॥ ५७
तत्रोषां विस्मितां दृष्ट्वा हर्म्यस्थां सखिसंनिधौ
प्रवेशयामास च तं तदा सा स्वगृहं ततः ॥
प्रहर्षोत्फुल्लनयना प्रियं दृष्ट्वाऽर्थकोविदा ।
सा हर्म्यस्था तमर्घेण यादवं समपूजयत् ॥
चित्रलेखां परिष्वज्य प्रियाख्यानैरतोषयत् ।
त्वरिता कामिनी प्राह चित्रलेखां भयातुरा
सखीदं वै कथं कार्यं गुह्ये कार्यविशारदे ।
गुह्ये कृते भवेत्स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षयः ॥
[इत्युक्त्वा त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता
कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत्]
चित्रलेखाऽब्रवीद्वाक्यं शृणु त्वं निश्चयं सखि
कृतं पुरुषकारेण दैवं नाशयते सखि ॥ ६३
यदि देव्याः प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति ।
अद्य मायाकृतं गुह्यं न कश्चिज्ज्ञास्यते नरः ॥
सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना ।
एवमेतदिति प्राह साऽनिरुद्धमिदं वचः ॥ ६५
दिष्ट्या स्वप्नगतश्चौरो दृश्यते सुभगः पतिः ।
यत्कृते तु वयं खिन्ना दुर्लभप्रियकाङ्क्षया ॥
कच्चित्तव महाबाहो कुशलं सर्वतोगतम् ।
हृदयं हि मृदु स्त्रीणां तेन पृच्छाम्यहं तव ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा उषायाः श्लक्ष्णमर्थवत् ।
सोऽप्याह यदुशार्दूलः शुभाक्षरतरं वचः ॥
हर्षविप्लुतनेत्रायाः पाणिनाऽश्रु प्रमृज्य च
प्रहस्य सस्मितं प्राह हृदयग्राहकं वचः ॥ ६९

---

बिभर्ति या इत्यनुषज्यते३९ वरोत्सर्गे वरप्रदानकाले दत्तो वरत्वेनेति शेषः॥४२॥ त्वच्चिह्नं त्वत्प्रतिमाङ्कितम् ॥४३॥

अदर्शनम् अन्यैरदर्शनम् ॥५६॥ दर्शयत् अदर्शयत् ॥५७॥ कथं केनोपायेन गुह्यं गोपनीयं तद्वदेति भावः।गुह्ये गुप्ते॥६१॥

---

१ ख ॰पि लंभिता । २ ख. ॰त्तोऽस्य संशयम् । [ ] एतच्चिह्नमध्यस्थो ग्रंथः खपुस्तके नास्ति । ३ ख ॰रुद्धसमेता सा य॰ । ४ ख. ॰त्रायुधध॰ ५ ख. ॰रं कन्दर्पसमरू॰ । ६ ख. ॰ख्यानैर्नियुज्य च । ७ ख ॰कारं हि । ८ ख. ॰ते क्षणात् । य॰ । ९ ख. अप्रमादात्कृ॰ । १० ख. ॰भगो जनः । य॰ । ११ ख. ॰काम्यया । कृ॰ ।

कुशलं मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि ।
त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेदयामि ते ॥ ७०
अदृष्टपूर्वश्च मया देशोऽयं शुभदर्शने ।
निशि स्वप्ने यथा दृष्टः सकृत्कन्यापुरे तथा ॥
एवमेवमहं भीरु त्वत्प्रसादादिहागतः ।
न च तद्रुद्रपत्न्या वै मिथ्या वाक्यं भविष्यति
देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि
अनुप्राप्तोऽस्मि चाद्यैव प्रसीद शरणं गतः ॥
इत्युक्ता त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता ।
कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता वै भीतभीतवत्
ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः ।
अन्योन्यं रमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा
[ पतिना साऽनिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना ]
कान्तेन सह संयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना ॥७६
रममाणाऽनिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा ।
तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृषभो हि सः॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
उषया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः ॥
ततस्तैश्चारपुरुषैर्बाणस्यावेदितं द्रुतम् ।
यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम् ॥ ७९
ततः किङ्करसैन्यं तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा ।
बलेः पुत्रेण वीरेण बाणेनामित्रघातिना ॥ ८०
गच्छध्वं सहिताः सर्वे हन्यतामेव दुर्मतिः
येन नः कुलचारित्रं दूषितं दूषितात्मना ॥
उषायां धर्षितायां हि कुलं नो धर्षितं महत्
असंप्रदत्तां योऽस्माभिः स्वयंग्राहमधर्षयत् ॥
अहो वीर्यमहो धैर्यमहो धाष्टर्यं च दुर्मतेः ।
यः पुरं भवनं चेदं प्रविष्टो नः स बालिशः ॥
एवमुक्त्वा पुनस्तां तु किङ्करांश्चोदयन्भृशम् ।
ते तस्याज्ञामथो गृह्य सुसंनद्धा विनिर्ययुः ।
यत्रानिरुद्धो ह्यभवत्तत्रागच्छन्महाबलाः ॥ ८४
नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयङ्कराः ।
दानवाः समभिक्रुद्धाः प्राद्युम्निवधकाङ्क्षिणः ॥
रुरोद तद्बलं दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना ।
प्राद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी ॥
ततस्तु रुदतीं दृष्ट्वा तां सुतां मृगलोचनाम् ।
हा हा कान्तेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत ॥
अभयं तेऽस्तु सुश्रोणि मा भैस्त्वं हि मयि स्थिते
संप्राप्तो हर्षकालस्ते नेहास्ति भयकारणम् ॥
कृत्स्नोऽयं यदि बाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि
आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम्
तस्य सैन्यस्य निनदं श्रुत्वाऽभ्यागच्छतस्ततः
सहसैवोत्थितः श्रीमान्प्राद्युम्निः किमिति ब्रुवन्
अथ सोऽपश्यत बलं नानाप्रहरणोद्यतम् ।
स्थितं समंततस्तत्र परिवार्य गृहं महत् ।
ततोऽभ्यगच्छत्त्वरितो यत्र तद्वेष्टितं बलम् ।
क्रुद्धः स्वबलमास्थाय अदशद्दशनच्छदम् ॥
ततो योद्धुमपोढानां बाणेयानां निशम्य तु ।
सा चित्रलेखाऽस्मरत नारदं देवदर्शनम् ॥
ततो निमेषमात्रेण संप्राप्तो मुनिपुङ्गवः ।
स्मृतोऽथ चित्रलेखायाः पुरं शोणितसाह्वयम्॥
अन्तरिक्षे स्थितस्तत्र सोऽनिरुद्धमथाब्रवीत् ।
मा भयं स्वस्ति ते वीर प्राप्तोऽस्म्यद्य पुरं तव ॥
ततश्च नारदं दृष्ट्वा सोऽभिवाद्य महाबलः ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा युद्धार्थमभिवर्तत ॥ ९६
ततस्तेषां स्वनं श्रुत्वा सर्वेषामेव गर्जताम् ।
सहसैवोत्थितः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संदष्टौष्ठं महाभुजम् ।
प्रासादाच्चावरोहन्तं भयार्ता विप्रदुद्रुवुः ॥९८
अन्तःपुरद्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम् ।
वधाय तेषां चिक्षेप नानायुद्धविशारदः ॥
ते सर्वे बाणवर्षैश्च गदाभिर्मुशलैस्तथा ।
असिभिः शक्तिभिः शूलैर्निजघ्नू रणगोचरे ॥
स हन्यमानो नाराचैः परिघैश्च समंततः ।
दानवैः समभिक्रुद्धैः प्राद्युम्निः शस्त्रकोविदैः
नाक्षुभ्यत्सर्वभूतात्मा नदन्मेघ इवोष्णगे ।
आविध्य परिघं घोरं तेषां मध्ये व्यतिष्ठत ॥
सूर्यो दिवि चरन्मध्ये मेघानामिव सर्वशः ॥२

योद्धुमपोढानां युद्धं कर्तुं बहिर्निर्गतानाम् । बाणेयानां बाणभटानाम् । षष्ठी द्वितीयार्थे । तान् निशम्य दृष्ट्वा अस्मरत स्मृतवती ॥९३॥ सर्वभूतात्मा अनिरुद्धाख्यः समष्टयहङ्काररूपत्वेनेत्यर्थः ॥ १०२ ॥

१ ख. °था दृष्टः सकृत् कन्यापुरं महत् । ए° । २ ख. भाविनि । अ° [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः ख पुस्तके नास्ति । ३ ख. °ता तु सा त° । ४ ख. °तः शूरः प्रा° । ५ ख. °तो युद्धं बलौघानां बा° । ६ ख. °भिः पट्टिशैः शू° । ७ ख. °चरः । सह° ।

दण्डकृष्णाजिनधरो नारदो हृष्टमानसः ।
साधु साध्विति वै तत्र सोऽनिरुद्धमभाषत ॥
ते हन्यमाना रौद्रेण परिघेणामितौजसा ।
प्राद्रवन्त भयात्सर्वे मेघा वातेरिता यथा ॥४
विद्राव्य दानवान्वीरः परिघेण सुविक्रमः ।
अनिरुद्धो रणे हृष्टः सिंहनादं ननाद च ॥ ५
घर्मान्ते तोयदो व्योम्नि नदन्निव महास्वनः।
तिष्ठध्वमिति चुक्रोश दानवान्युद्धदुर्मदान् ॥६
प्राद्युम्निर्व्यहनच्चापि सर्वाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
तेन ते समरे सर्वे हन्यमाना महात्मना ॥
यतो बाणस्ततो भीता ययुर्युद्धपराङ्मुखाः ।
ततो बाणसमीपस्थाः श्वसन्तो रुधिरोक्षिताः
न शर्म लेभिरे दैत्या भयविक्लवचेतसः ।
मा भैष्ट मा भैष्ट इति राज्ञा ते तेन चोदिताः
त्रासमुत्सृज्य चैकस्था युध्यध्वं दानवर्षभाः
तानुवाच पुनर्बाणो भयविस्रस्तलोचनान् ॥
किमिदं लोकविख्यातं यश उत्सृज्य दूरतः।
भवन्तो यान्ति वैक्लव्यं क्लीबा इव विचेतसः
कोऽयं यस्य भयत्रस्ता भवन्तो यान्त्यनेकशः
कुलापदेशिनः सर्वे नानायुद्धविशारदाः ॥ १२
भवद्भिर्न हि मे कार्यं युद्धसाहाय्यमद्य वै।
अब्रवीद्ध्वंसतेत्येवं मत्समीपाच्च नश्यत ॥ १३
अथ तान्वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयन्बहुधा बली
व्यादिदेश रणे शूरानन्यानयुतशः पुनः ॥ १४
प्रमाथगणभूयिष्ठं व्यादिष्टं तस्य निग्रहे ।
अनीकं सुमहारौद्रं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ १५
अथान्तरिक्षे बहुधा विद्युद्भिरिवाम्बुदैः
बाणानीकैः समभवद्व्याप्तं संदीप्तलोचनैः॥१६
केचित्क्षितिस्थाः प्राक्रोशन्गजा इव समंततः
अन्तरिक्षे व्यराजन्त घर्मान्त इव तोयदाः ॥
ततस्तत्सुमहत्सैन्यं समेतमभवत्पुनः ।
तिष्ठ तिष्ठेति च तदा वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥
अनिरुद्धो रणे वीरः स च तानभ्यवर्तत ।
तदाश्चर्यं समभवद्यदेकस्तु समागतः ॥ १९
अयुध्यत महावीर्यैर्दानवैः सह संयुगे ।
तेषामेव च जग्राह परिघांस्तोमरानपि ॥१२०॥
तैरेव च तदा युद्धे ताञ्जघान महाबलः ।
पुनः परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्धनि ॥ २१
× स तेन विचरन्मार्गानेकः शत्रुनिबर्हणः ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम्
इति प्रकारान्द्वात्रिंशद्विचरन्नाभ्यदृश्यत ।
एकं सहस्रशश्चात्र ददृशू रणमूर्धनि ॥ २३
क्रीडन्तं बहुधा युद्धे व्यादितास्यमिवान्तकम्
ततस्तेनाभिसंतप्ता रुधिरौघपरिप्लुताः ॥ २४
पुनर्भग्नाः प्राद्रवन्त यत्र बाणो व्यवस्थितः ।
गजवाजिरथौघैस्ते चोह्यमानाः समंततः २५
कृत्वा चार्तस्वरं घोरं दिशो जग्मुर्हतौजसः ।
* एकैकस्योपरि तदा तेऽन्योन्यं भयपीडिताः
वमन्तः शोणितं जग्मुर्विषादाद्विमुखा रणे ।
न बभूव पुरा देवैर्युध्यतां तादृशं भयम् ॥ २७
यादृशं युध्यमानानामनिरुद्धेन संयुगे ।
केचिद्वमन्तो रुधिरं ह्यपतन्वसुधातले ॥ २८
दानवा गिरिशृङ्गाभा गदाशूलासिपाणयः ।
ते बाणमुत्सृज्य रणे जग्मुर्भयसमाकुलाः २९
विशालमाकाशतलं दानवा निर्जितास्तदा ।
निःशेषभग्नां महतीं दृष्ट्वा तां वाहिनीं तदा ॥
बाणः क्रोधात्प्रजज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे
अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समंततः ॥
नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य संयुगे ।
एतस्मिन्नन्तरे चैव बाणः परमकोपनः ॥३२
कुम्भाण्डसंगृहीतं तु रथमास्थाय वीर्यवान्।
ययौ यत्रानिरुद्धो वै उद्यतासी रथे स्थितः ३३
पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान्।
बभौ बाहुसहस्रेण शक्रो ध्वजशतैरिव ॥ ३४
बद्धगोधाङ्गुलित्रैश्च बाहुभिः स महाभुजः ।
नानाप्रहरणोपेतः शुशुभे दानवोत्तमः ॥ ३५
सिंहनादं नदन्क्रुद्धो विस्फारितमहाधनुः ॥
अब्रवीत्तिष्ठ तिष्ठेति क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३६

---

कुलापदेशिनः प्रख्यातकुलाः ॥ १२ ॥ भवद्भिर्मे साहाय्यं न कार्यम् इति ध्वंसतेति चाब्रवीदिति संबन्धः ॥ ११३ ॥ प्रमाथगणाः प्रमथगणः ॥ १५ ॥

---

१ ख. °ण्डकाष्ठाजि° । २ ख. °कस्तैः स° । × स दैत्यसंघान् समरे निजघान महाबलान् । निस्त्रिंशं चर्म चोत्सृष्टं प्रगृह्य रणमूर्धनि । इति खेऽधिकः पाठः । * एवं भयमभूत्तेषां दानवानां महारणे । इत्यधिकं खपुस्तके । ३ ख. °शूला-बद्यम्य समरश्वधान् । ब्र° ।

वचनं तस्य संश्रुत्य प्राद्युम्निरपराजितः ।
बाणस्य वदनं संख्ये समुद्वीक्ष्य ततोऽहसत् ॥
किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ।
ऋष्यचर्मावनद्धाङ्गं दशनल्वं महारथम् ॥३८
तस्य वाजिसहस्रं तु रथे युक्तं महात्मनः ।
पुरा देवासुरे युद्धे हिरण्यकशिपोरिव ॥० ३९
तमापतन्तं ददृशे दानवं यदुपुङ्गवः ।
संप्रहृष्टस्ततो युद्धे तेजसा चाप्यपूर्यत १४०
असिचर्मधरो वीरः स्वस्थः सङ्ग्रामलालसः
नरसिंहो यथा पूर्वमादिदैत्यवधोद्यतः ॥ ४१
आपतन्तं ददर्शाथ खड्गचर्मधरं तदा ।
खड्गचर्मधरं तं तु दृष्ट्वा बाणः पदातिनम् ॥ ४२
प्रहर्षमतुलं लेभे प्राद्युम्निवधकाङ्क्षया ।
तनुत्रेण विहीनश्च खड्गपाणिश्च यादवः ॥ ४३
अजेय इति तं मत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ।
अनिरुद्धं रणे बाणो जितकाशी महाबलः ॥
वाचं चोवाच संक्रुद्धो गृह्यतां हन्यतामिति ।
वाचं च ब्रुवतस्तस्य श्रुत्वा प्राद्युम्निराहवे ॥
बाणस्य ब्रुवतः क्रोधाद्दसमानोऽभ्युदैक्षत ।
उषां भयपरित्रस्तां रुदतीं तत्र भामिनीम् ४६
अनिरुद्धः प्रहस्याथ समाश्वास्य च तां स्थितः
अथ बाणः शरौघाणां क्षुद्रकाणां समन्ततः ॥
चिक्षेप समरे क्रुद्धो ह्यनिरुद्धवधेप्सया ।
अनिरुद्धस्तु चिच्छेद काङ्क्षंस्तस्य पराजयम्
ववर्ष शरजालानि क्षुद्रकाणां समन्ततः ।
बाणोऽनिरुद्धशिरसि काङ्क्षंस्तस्य रणे वधम्
ततो बाणसहस्राणि चर्मणा व्यवधूय सः ।
बभौ प्रमुखतस्तस्य स्थितः सूर्य इवोदये १५०
सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दनः ।
सिंहप्रमुखतो दृष्ट्वा गजमेकं यथा वने ॥ ५१
ततो बाणः स बाणौघैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ।
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः प्राद्युम्निमपराजितम्
समाहतस्ततो बाणैः खड्गचर्मधरोऽपतत् ।
तमापतन्तं निशितैरभ्यघ्नन्सायकैस्तथा ॥ ५३
सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणैः सन्नतपर्वभिः ।
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल चिकीर्षुः कर्म दुष्करम्
रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैर्बाणवर्षैः समाहितः ।
अभिभूतः सुसंक्रुद्धो ययौ बाणरथं प्रति ॥ ५५
असिभिर्मुशलैः शूलैः पट्टिशैस्तोमरैस्तथा ।
सोऽतिविद्धः शरौघैश्च प्राद्युम्निर्नं व्यकम्पत

आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो
रथेषां तस्य सोऽच्छिनत् ।
जघान चाश्वान्खड्गेन
बाणस्य रणमूर्धनि ॥ ५७

तं पुनः शरवर्षेण पट्टिशैस्तोमरैरपि ।
चकारान्तर्हितं बाणो युद्धमार्गविशारदः ५८
हतोऽयमिति विज्ञाय प्राणदन्नैर्ऋता गणाः ।
ततोऽवप्लुत्य सहसा रथपार्श्वे व्यवस्थितः ॥
शक्तिं बाणस्ततः क्रुद्धो घोररूपां भयानकाम्
जग्राह ज्वलितां घोरां घण्टामालाकुलां रणे
ज्वलनादित्यसंकाशां यमदण्डोग्रदर्शनाम् ॥
प्राहिणोत्तामसङ्गेन महोल्कां ज्वलितामिव ॥
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य जीवितान्तकरीं तदा ।
सोऽभिप्लुत्य तदा शक्तिं जग्राह पुरुषोत्तमः
निर्बिभेद ततो बाणं तया शक्त्या महाबलः ॥
सा भित्त्वा तस्य देहं वै प्राविशद्धरणीतलम् ॥
स गाढविद्धो व्यथितो ध्वजयष्टिं समाश्रितः
ततो मूर्च्छाभिभूतं तं कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत्
उपेक्षसे दानवेन्द्र किमेवं शत्रुमुद्यतम् ।
लब्धलक्षो ह्ययं वीरो निर्विकारोऽद्य दृश्यते

मायामाश्रित्य युध्यस्व
नायं वध्योऽन्यथा भवेत् ॥
आत्मानं मां च रक्षस्व
प्रमादात्किमुपेक्षसे ॥ ६६

वध्यतामयमद्यैव न नः सर्वान्विनाशयेत्
[अन्यांश्च शतशो हत्वा उषां नीत्वा व्रजिष्यति]
कुम्भाण्डवचनैरेवं दानवेन्द्रः प्रणोदितः ।
वाचं रूक्षामभिक्रुद्धः प्रोवाच वदतां वरः ६८
एषोऽहमस्य विदधे मृत्युं प्राणहरं रणे ।
आदास्याम्यहमेतं वै गरुत्मानिव पन्नगम् ॥

ऋष्यो मृगविशेषः । नल्वो हस्तचतुःशतम् ॥ ३८ ॥ क्षुद्रकाणां बाणविशेषाणाम् । षष्ठी तृतीयार्थे ॥४९॥ असङ्गेन उषासंबन्धस्यापि वधेन एतस्मिन्मृते मम दुहिता विधवा भविष्यतीत्यपि अविगणय्येत्यर्थः ॥ ६१ ॥

१ ख. °श्च मानुषः । अ° । २ ख. °तो बाणसहस्रौघै° । [ ] खपुस्तके नास्ति ।

इत्येवमुक्त्वा सरथः सध्वजः साश्वसारथिः
गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७०
[मुमोच निशितान्बाणांश्छन्नो मायाधरो बली]
विज्ञायान्तर्हितं बाणं प्राद्युम्निरपराजितः॥ ७१
पौरुषेण समायुक्तः संप्रैक्षत दिशो दश।
आस्थाय तामसीं विद्यां तदा क्रुद्धो महाबलः
मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णां-
श्छन्नो मायाधरो बली।
प्राद्युम्निर्विशिखैर्बद्धः
सर्पभूतैः समंततः॥ ७३
वेष्टितो बहुधा तस्य देहः पन्नगराशिभिः।
स तु वेष्टितसर्वाङ्गो बद्धः प्राद्युम्निराहवे ॥ ७४
निष्प्रयत्नः कृतस्तस्थौ मैनाक इव पर्वतः।
ज्वालावलीढवदनैः सर्पभोगैर्विचेष्टितः ॥ ७५
अभितः पर्वताकारः प्राद्युम्निरभवद्रणे।
निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्पवक्त्रमयैः शरैः ॥७६
न विव्यथे स भूतात्मा सर्वतः परिवेष्टितः।
ततस्तं वाग्भिरुग्राभिः संरब्धः समतर्जयत् ७७
बाणो ध्वजं समाश्रित्य प्रोवाचामर्षितो वचः
कुम्भाण्ड वध्यतां शीघ्रमयं वै कुलपांसनः
चारित्रं येन मे लोके दूषितं दूषितात्मना।
इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥
राजन्वक्ष्याम्यहं किंचित्तन्मे शृणु यदिच्छसि
अयं विज्ञायतां कस्य कुतो वाऽयमिहागतः॥
केन वाऽयमिहानीतः शक्रतुल्यपराक्रमः।
मयायं बहुशो राजन्दृष्टो युध्यन्महारणे॥ ८१
क्रीडन्निव च युद्धेषु दृश्यते देवसूनुवत्।
बलवान्सत्त्वसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः॥ ८२
नायं वधकृतं दोषमर्हते दैत्यसत्तम।
गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता ८३
अदेया ह्यप्रतिग्राह्या
अतश्चिन्त्यं वधं कुरु।
विज्ञाय च वधं वाऽस्य
पूजां वाऽस्य करिष्यसि ॥ ८४
वधे ह्यस्य महान्दोषो रक्षणे सुमहान्गुणः।
अयं हि पुरुषोत्कृष्टः सर्वथा मानमर्हति ॥ ८५
सर्वतो वेष्टिततनुर्न व्यथत्येष भोगिभिः।
कुलशौण्डीर्यवीर्यैश्च सत्त्वेन च समन्वितः॥
पश्य राजन्महावीर्यैरन्वितः पुरुषोत्तमः।
न नो गणयते सर्वान्वधं प्राप्तोऽप्ययं बली ८७
यदि मायाप्रभावेण नात्र बद्धो भवेदयम्।
सर्वान्सुरगणान्संख्ये योधयेन्नात्र संशयः ॥८८
सर्वसङ्ग्राममार्गज्ञो भवेद्वीर्याधिकस्तव।
शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नागभोगैश्च वेष्टितः॥ ८९
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा
न चिन्तयति नः स्थितान्।
इमामवस्थां नीतोऽपि
स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १९०
न चिन्तयति राजंस्त्वां
वीर्यवान्कोऽप्यसौ युवा।
सहस्रबाहोः समरे
द्विबाहुः समवस्थितः।
न चिन्तयति ते वीर्य-
मयं वीर्यमदान्वितः॥ ९१
उचितं यदि ते राजञ्श्रेयो वीर्यबलान्वितः।
कन्या चेयं न चान्यस्य निर्यात्येतेन संगता
यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्मनाम्।
ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तम ९३
रक्ष्यतामिति चोक्त्वैव
तथास्त्विति च तस्थिवान्।
एवमुक्ते तु वचने
कुम्भाण्डेन महात्मना ॥ ९४
तथेत्याह च कुम्भाण्डं बाणः शत्रुनिषूदनः।
संरक्षिणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमतः ९५
ययौ स्वमेव भवनं बलेः पुत्रो महायशाः
संयतं मायया दृष्ट्वा अनिरुद्धं महाबलम् ॥
ऋषीणां नारदः श्रेष्ठोऽव्रजद्द्वारवतीं प्रति।
ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिर्द्वारवतीं गतः× ९७
गते ऋषीणां प्रवरे सोऽनिरुद्धो व्यचिन्तयत्।
नष्टोऽयं दानवः क्रूरो युद्धमेष्यत्यसंशयः ९८
स गत्वा नारदस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरम्।
ज्ञापयिष्यति तत्त्वेन इममर्थं न संशयः ॥ ९९
नागैर्विचेष्टितं दृष्ट्वा उषा प्राद्युम्निमातुरा।
रुरोद बाष्परुद्धाक्षी तामाह रुदतीं पुनः॥२००

[ ] खपुस्तके नास्ति। १ ख. बलेः सुतः। मु०। २ ख. ०शौण्टीर्य०। ३ ख. रुचि०। ४ ख. ०र्यं त्वत्तः प्रा०। ५ ख. ०णः शक्रनिबर्हणः। सं०। × बद्धं निवेदयामीति प्राद्युम्निं गरुडध्वजे। इति खपुस्तकेऽधिकः पाठः।

किमिदं रुद्यते भीरु मा भैस्त्वं मृगलोचने
पश्य सुश्रोणि संप्राप्तं मत्कृते मधुसूदनम् ॥ १
यस्य शङ्खध्वनिं श्रुत्वा बाहुशब्दं बलस्य च।
दानवा नाशमेष्यन्ति गर्भाश्चासुरयोषिताम्।२

वैशम्पायन उवाच।
एवमुक्ताऽनिरुद्धेन उषा विश्रम्भमागता।
नृशंसं पितरं चैव शोचते सा सुमध्यमा २०३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणानिरुद्धयुद्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९

## अनिरुद्धकृत आर्यास्तवो तद्वरलाभश्च।

## १२०

वैशम्पायन उवाच।
यदा बाणपुरे वीरः सोऽनिरुद्धः सहोषया
संनिरुद्धो नरेन्द्रेण बाणेन बलिसूनुना ॥ १
तदा देवीं कोटवतीं रक्षार्थं शरणं गतः।
यद्गीतमनिरुद्धेन देव्याः स्तोत्रमिदं शृणु ॥ २
अनन्तमक्षयं दिव्यमादिदेवं सनातनम्।
नारायणं नमस्कृत्य प्रवरं जगतां प्रभुम् ॥ ३
चंडीं कात्यायनीं देवीमार्यां लोकनमस्कृताम्
वरदां कीर्तयिष्यामि नामभिर्हरिसंस्तुतैः ॥ ४
ऋषिभिर्दैवतैश्चैव वाक्पुष्पैरर्चितां शुभाम्।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ ५

अनिरुद्ध उवाच।
महेन्द्राविष्णुभगिनीं नमस्यामि हिताय वै।
मनसा भावशुद्धेन शुचिः स्तोष्ये कृताञ्जलिः
गौतमीं कंसभयदां यशोदानन्दवर्द्धिनीम्।
मेध्यां गोकुलसंभूतां नन्दगोपस्य नन्दिनीम्॥
प्राज्ञां दक्षां शिवां सौम्यां दनुपुत्रविमर्दिनीम्।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वभूतनमस्कृताम् ॥ ८
दर्शनीं पूरणीं मायां वह्निसूर्यशशिप्रभाम्।
शान्तिं ध्रुवां च जननीं मोहिनीं शोषणीं तथा९
सेव्यां देवैः सर्षिगणैः सर्वदेवनमस्कृताम्।
कालीं कात्यायनीं देवीं भयदां भयनाशिनीम्
कालरात्रिं कामगमां त्रिनेत्रां ब्रह्मचारिणीम्।
सौदामिनीं मेघरवां वेतालीं विपुलाननाम्११
यूथस्याद्यां महभागां शकुनीं रेवतीं तथा।
तिथीनां पञ्चमीं षष्ठीं पूर्णमासीं चतुर्दशीम्॥१२
सप्तविंशतिऋक्षाणि नद्यः सर्वा दिशो दश।
नगरोपवनोद्यानद्वाराट्टालकवासिनीम् ॥ १३
ह्रीं श्रीं गंगां च गन्धर्वां योगिनीं योगदां सताम्
कीर्तिमाशां दिशं स्पर्शां
नमस्यामि सरस्वतीम् ॥ १४
वेदानां मातरं चैव
सावित्रीं भक्तवत्सलाम्।
तपस्विनीं शान्तिकरी-
मेकानंशां सनातनाम् ॥ १५
कौटीर्यां मदिरां चण्डामिलां मलयवासिनीम्
भूतधात्रीं भयकरीं कूष्माण्डीं कुसुमप्रियाम्॥
दारुणीं मदिरावासां
विन्ध्यकैलासवासिनीम्।
वराङ्गनां सिंहरथीं
बहुरूपां वृषध्वजाम् ॥ १७
दुर्लभां दुर्जयां दुर्गां निशुम्भभयदर्शिनीम्।
सुरप्रियां सुरां देवीं वज्रपाण्यनुजां शिवाम्
किरातीं चीरवसनां चौरसेनानमस्कृताम्।
आज्यपां सोमपां सौम्यां सर्वपर्वतवासिनीम्
निशुम्भशुम्भमथनीं गजकुम्भोपमस्तनीम्।
जननीं सिद्धसेनस्य सिद्धचारणसेविताम्॥
चैरां कुमारप्रभवां पार्वतीं पर्वतात्मजाम्।
पञ्चाशद्देवकन्यानां पत्न्यो देवगणस्य च २१

---

इति श्रीमहाभारते खिलषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां प्राद्युम्निशरबन्धो नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

१२०

यदेति। सिद्धसेनस्य कार्तिकेयस्य २०देवकन्यानामिति तत्प्रभृतिनारीषु असितांनिध्यं कुरुषे इत्यर्थश्चतुर्थेनान्वयः॥२१॥

१ राक्षसैः इति पाठः। २शशीवक्त्राश० इति पाठः। ३गान्धारीम् इति पाठः। ४ख. दारुणीं म०। ५ ख. वरां कु०।

क्रतुपुत्रसहस्रस्य पुत्रपौत्रवरस्त्रियः ।
माता पिता जगन्मान्या दिवि देवाप्सरोगणैः
ऋषिपत्नीगणानां च यक्षगन्धर्वयोषिताम् ।
विद्याधराणां नारीषु साध्वीषु मनुजासु च
एवमेतासु नारीषु सर्वभूताश्रया ह्यसि ।
नमस्कृताऽसि त्रैलोक्ये किन्नरोद्गीतसेविते
अचिन्त्या ह्यप्रमेयाऽसि
याऽसि साऽसि नमोऽस्तु ते ।
एभिर्नामभिरन्यैश्च
कीर्तिता ह्यसि गौतमि ॥ २५
त्वत्प्रसादादविघ्नेन क्षिप्रं मुच्येय बन्धनात् ।
अवेक्षस्व विशालाक्षि पादौ ते शरणं व्रजे ॥
सर्वेषामेव बन्धानां मोक्षणं कर्तुमर्हसि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्याग्निमारुताः २७
अश्विनौ वसवश्चैव धाता भूमिर्दिशो दश ।
मरुता सह पर्जन्यो धाता भूमिर्दिशो दश २८
गावो नक्षत्रवंशाश्च ग्रहा नद्यो ह्रदास्तथा ।
सरितः सागराश्चैव नानाविद्याधरोरगाः २९
तथा नागाः सुपर्णाणो गन्धर्वाप्सरसां गणाः
कृत्स्नं जगदिदं प्रोक्तं देव्या नामानुकीर्तनात्
देव्याः स्तवमिमं पुण्यं यः पठेत्सुसमाहितः ।
सा तस्मै सप्तमे मासि वरमग्र्यं प्रयच्छति ३१
अष्टादशभुजा देवी दिव्याभरणभूषिता ।
हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषणा ॥३२
कात्यायनी स्तूयसे त्वं वरमग्र्यं प्रयच्छसि ।
अतः स्तवीमि तां देवीं वरदे वामलोचने ३३
नमोऽस्तु ते महादेवि सुप्रीता मे सदा भव ।
प्रयच्छ त्वं वरं ह्यायुः पुष्टिं चैव क्षमां धृतिम्
बन्धनस्थो विमुच्येयं सत्यमेतद्भवेदिति ।
वैशम्पायन उवाच ।
एवं स्तुता महादेवी दुर्गा दुर्गपराक्रमा ३५
सांनिध्यं कल्पयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ।
अनिरुद्धहितार्थाय देवी शरणवत्सला ॥ ३६
बद्धं बाणपुरे वीरमनिरुद्धं व्यमोक्षयत् ।
सान्त्वयामास तं वीरमनिरुद्धममर्षणम् ॥ ३७

पूजयामास तां वीरः सोऽनिरुद्धः प्रतापवान्
प्रसादं दर्शयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ॥ ३८
नागपाशेन बद्धस्य तस्योषाहृतचेतसः ।
स्फोटयित्वा कराग्रेण पञ्जरं वज्रसन्निभम् ३९
रुद्धं बाणपुरे वीरं साऽनिरुद्धमभाषत ।
सान्त्वयन्ती वचो देवी प्रसादाभिमुखी तदा
श्रीदेव्युवाच ॥
चक्रायुधो मोक्षयितानिरुद्ध
त्वां बन्धनादाशु सहस्व कालम् ।
छित्त्वा स बाणस्य सहस्रबाहुं
पुरीं निजां नेष्यति दैत्यसूदनः ४१
[ वैशम्पायन उवाच ।
यदाऽनिरुद्धं सह बाणपुत्र्या
नेतुं खगेन्द्रेण हरिः प्रवृत्तः ॥
महासुरे बाण उदीर्णचक्रे
न्यक्कारमासन्नतरं निशम्य ॥ ]
ततोऽनिरुद्धः पुनरेव देवीं
तुष्टाव हृष्टः शशिकान्तवक्त्रः ।
अनिरुद्ध उवाच ॥
नमोऽस्तु ते देवि वरप्रदे शिवे
नमोऽस्तु ते देवि सुरारिनाशिनि
नमोऽस्तु ते कामचरे सदाशिवे
नमोऽस्तु ते सर्वहितैषिणि प्रिये ।
नमोऽस्तु ते भीतिकरि द्विषां सदा
नमोऽस्तु ते बन्धनमोक्षकारिणि
ब्रह्माणीन्द्राणि रुद्राणि भूतभव्यभवे शिवे ।
त्राहि मां सर्वभीतिभ्यो
नारायणि नमोऽस्तु ते ४४
नमोऽस्तु ते जगन्नाथे प्रिये दान्ते महाव्रते ।
भक्तिप्रिये जगन्मातः शैलपुत्रि वसुन्धरे ॥ ४५
त्राहि मां त्वं विशालाक्षि
नारायणि नमोऽस्तु ते ।
त्रायस्व सर्वदुःखेभ्यो
दानवानां भयंकरि ॥ ४६

देव्या नामानुकीर्तनात् ब्रह्मादिकं सर्वं जगत्कीर्तितमिति वदता देव्या एव सर्वोपादानत्वरूपजगत्कारणत्वमुक्तं भवति ॥ ३० ॥ चक्रायुध एव मोचको न त्वस्मदादय इत्याशयेनाह–**चक्रेति** ॥ ४१ ॥

१ ख. °व विश्वे साध्यास्तथैव च । म° ।२ ख. °ता वै भजस्व माम् । प्र° ।३ ख. °स्य स बाहुचक्रं पु° । ४ ख. °भव्ये यशस्विनि । त्रा° ।

रुद्रप्रिये महाभागे भक्तानामार्तिनाशिनि ।
नमामि शिरसा देवीं बन्धनस्थो विमोक्षितः
वैशम्पायन उवाच ।
आर्यास्तवमिदं पुण्यं यः पठेत्सुसमाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।
बन्धनस्थो विमुच्येत सत्यं व्यासवचो यथा ४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अनिरुद्धकृत आर्यास्तवो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

## श्रुतहृतानिरुद्धपाशबन्धनस्य कृष्णस्य शोणितपुरगमनम् ।

## १२१

वैशम्पायन उवाच ।
ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदुः सर्वयोषितः ।
प्रियं नाथमपश्यन्त्यः कुरर्य इव सङ्घशः ॥ १
अहो धिक्किमिदं नाथ नाथे कृष्णे व्यवस्थिते ।
अनाथा इव संत्रस्ता रुदिमो भयपीडिताः ॥ २
यस्येन्द्रप्रमुखा देवाः सादित्याः समरुद्गणाः
बाहुच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि देवताः
तस्योत्पन्नमिदं लोके भयदस्य महाभयम् ।
तस्यानिरुद्धः पौत्रस्तु वीरः केनापि नो हृतः
अहो नास्ति भयं नूनं तस्य लोके सुदुर्मतेः ।
वासुदेवस्य यः क्रोधमुत्पादयति दुःसहम् ५
व्यादितास्यस्य यो मृत्योर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते ।
स वासुदेवं समरे मोहादभ्युदियाद्रिपुः ॥ ६
इदमेवंविधं कृत्वा विप्रियं यदुपुंगवे ।
कथं जीवन्विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः ॥
हृतनाथाःस्म शोच्याःस्म वयं नाथं विना कृताः
विप्रयोगेण नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः ॥ ८
इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुनः पुनः ।
नेत्रजं वारि मुमुचुरशिवं परमाङ्गनाः ॥ ९
तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नयनानि चकाशिरे
सलिलेनाप्लुतानीव पङ्कजानि जलागमे ॥१०
तासां मरालपक्ष्माणि राजयन्ति शुभानि च
रुधिरेणाप्लुतानीव नयनानि चकाशिरे ॥ ११
तासां हर्म्यतलस्थानां पूर्ण आसीन्महास्वनः
कुररीणामिवाकाशे रुदतीनां सहस्रशः ॥ १२
ते श्रुत्वा निनदं घोरमपूर्वं भयमागतम् ।
उत्पेतुः सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुषर्षभाः ॥
कस्मादेषोऽनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वनः
गृहे कृष्णाभिगुप्तानां कुतो नो भयमागतम् ॥
इत्येवमूचुस्तेऽन्योन्यं स्नेहविक्लवगद्गदाः ।
अधर्षिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव निःसृताः ॥
सन्नाहभेरी कृष्णस्य आहता महती तदा
यस्याः शब्देन ते सर्वे समागम्य च धिष्ठिताः
किमेतदिति तेऽन्योन्यं समपृच्छन्त यादवाः ।
अन्योन्यस्य हि ते सर्वे यथावृत्तमवेदयन् ॥
ततस्ते बाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसंरक्तलोचनाः
निःश्वसन्तो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मदाः ॥
तूष्णींभूतेषु सर्वेषु विपृथुर्वाक्यमब्रवीत् ।
कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः
किमिदं चिन्तयाविष्टः पुरुषेन्द्र भवानिह ।
तव बाहुबलप्राणाः स्वास्थिताः सर्वयादवाः ॥
भवन्तमाश्रिताः कृष्ण संविभक्ताश्च सर्वशः ।
तथैवं बलवाञ्शक्रस्त्वय्यावेश्य जयाजयौ ॥
सुखं स्वपिति निःशङ्कः कथं त्वं चिन्तयान्वितः
शोकसागरमक्षोभ्यं सर्वे ते ज्ञातयो गताः ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

१२१

तत इति ॥१॥ मरालाः हंसाः तेषां रुधिरेणार्द्राणीव पक्ष्माणि रक्तानि नयनानि चकाशिरे ॥ ११ ॥

---

१ ख. °वि निर्वृताः । त° । २ ख. वयश्च वि° । ३ ख. °नां तूर्ण आ° । ४ ख. °स्य सभायामाहता त° । ५ ख. तस्याः श° । ६ ख. °व भगवाञ्श° ।

तान्मज्जमानानेकस्त्वं समुद्धर महाभुज
किमेवं चिन्तयाविष्टो न किंचिदपि भाषसे ॥
चिन्तां कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव ।
इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु निःश्वस्य सुचिरं बहु ॥
प्राह वाक्यं स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

विपृथो चिन्तयाविष्टो ह्येतत्कार्यमचिन्तयम्
विचिन्तयंस्त्वहं चास्य कार्यस्य न लभे गतिम्
तथाऽहं भवताप्युक्तो नोत्तरं विदधे क्वचित्
दाशार्हगणमध्येऽहं वदाम्यर्थवतीं गिरम् ।
शृणुध्वं यादवाः सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम्
अनिरुद्धे हृते वीरे
पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
अशक्ता इति मंस्यन्ते
सर्वानस्मान्सबान्धवान् ॥ २८
आहुकश्चैव नो राजा हृतः शाल्वेन वै पुरा ।
प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम्
प्रद्युम्नश्चापि नो बालः शम्बरेण हृतो ह्यभूत् ।
स तं निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः ॥
इदं तु सुमहत्कष्टं प्राद्युम्निः क्व प्रवासितः
नैवंविधमहं दोषं न स्मरे मनुजर्षभाः ॥ ३१
भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्ध्नि पातितः
तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवितं रणे ॥
इत्येवमुक्ते कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ।
चाराः कृष्ण प्रणीयन्तामनिरुद्धस्य मार्गणे ।
सपर्वतवनोद्देशां मार्गन्तु वसुधामिमाम् ॥ ३३
आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा
आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च व्यादिश्यन्तां चरा नृप

वैशम्पायन उवाच ।

केशवस्य वचः श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽब्रवीत्[1]
अन्वेषणेऽनिरुद्धस्य स चारान्दिष्टवांस्तदा ॥
ततश्चारास्तु व्यादिष्टाः पार्थिवेन यशस्विना
हया रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महात्मना
अभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समंततः ॥ ३६
वेणुमन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम् ।
ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः ॥
एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च ।
यातव्यं चापि निःशङ्कमुद्यानानि समंततः
हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः
आरुह्य त्वरिताः सर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम् ॥
सेनापतिरनाधृष्टिरिदं वचनमब्रवीत् ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत् ॥ ४०
शृणु कृष्ण वचो मह्यं रोचते यदि ते प्रभो ।
चिरात्प्रभृति मे वक्तुं भवन्तं जायते मतिः
असिलोमा पुलोमा च निसुन्दनरकौ हतौ ।
सौभः शाल्वश्च निहतौ मैन्दो द्विविद एव च
हयग्रीवश्च सुमहान्सानुबन्धस्त्वया हतः ।
तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतोः सुदारुणे ॥ ४३
सर्वाण्येतानि कर्माणि
निःशेषाणि रणे रणे ।
कृतवानसि गोविन्द
पार्ष्णिग्राहश्च नास्ति ते ॥ ४४
इदं कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्धं महत्कृतम्
पारिजातस्य हरणे यत्कृतं कर्म दुष्करम् ४५
तत्र शक्रस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगतः
निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारदः ॥
तेन वैरं त्वया सार्धं कर्तव्यं नात्र संशयः
वैरानुबन्धश्च महांस्तेन कार्यस्त्वया सह ४७
तत्रानिरुद्धहरणं कृतं मघवता स्वयम् ।
न ह्यन्यस्य भवेच्छक्तिर्वैरनिर्यातनं प्रति ॥ ४८
इत्येवमुक्ते वचने कृष्णो नाग इव श्वसन् ।
उवाच वचनं धीमाननाधृष्टिं महाबलम् ॥४९
सेनानीस्तात मा मैवं न देवाः क्षुद्रकर्मिणः ।
नाकृतज्ञा न च क्लीबा नावलिप्ता न बालिशाः
देवतार्थे च मे यत्नो महान्दानवसंक्षये ।
तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान्महाबलान्[2] ॥
तत्परस्तन्मनाश्चास्मि तद्भक्तस्तत्प्रिये[3] रतः
कथं पापं करिष्यन्ति विज्ञायैवंविधं हि माम्
अक्षुद्राः सत्यवन्तश्च नित्यं भक्तानुकम्पिनः ॥
तेभ्यो न विद्यते पापं बालिशत्वात्प्रभाषसे ॥
कदाचिदिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत् ।
देवेषु समहेन्द्रेषु नैतत्कर्म विधीयते ॥५४

वैशम्पायन उवाच ।

एवं चिन्तयमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रूरोऽब्रवीद्वचः ॥
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा[4] अर्थवाक्यविशारदः ।
यच्छक्रस्य प्रभो कार्यं तदस्माकं विनिश्चितम्

---

१ ख. °तोऽभवत् । अ° । २ ख. °हासुरान् । त° । ३ ख. °स्तत्परायणः । क° । ४ ख. °चा सोऽर्थत्रा° ।

अस्माकं चापि यत्कार्यं तद्धि कार्यं शचीपतेः
संरक्ष्याश्च वयं देवैरस्माभिश्चापि देवताः।
देवतार्थं वयं चापि मानुषत्वमुपागताः ॥ ५७
एवमक्रूरवचनैश्चोदितो मधुसूदनः।
स्निग्धगम्भीरया वाचा पुनः कृष्णोऽभ्यभाषत
नायं देवैर्न गन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः।
प्रद्युम्नपुत्रोऽपहृतः पुंश्चल्यां[1] तु महायशाः ५९
मायाविदग्धाः पुंश्चल्यो दैत्यदानवयोषितः।
ताभिर्हृतो न संदेहो नान्यतो विद्यते भयम्॥
वैशम्पायन उवाच।
इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना।
अथावगम्य तत्त्वेन यद्वृत्तं यदुमण्डले ॥ ६१
[उदातिष्ठन्महानादस्तदा कृष्णं प्रशंसयन्।]
हर्षयन्[2]स तु सर्वेषां सूतमागधबन्दिनाम्।
मधुरः श्रूयते घोषो यादवस्य निवेशने ॥ ६२
ते चाराः सर्वतः सर्वे सभाद्वारमुपागताः।
शनैर्गद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ६३
उद्यानानि गुहाः शैलाः सभा नद्यः सरांसि च
एकैकं शतशो राजन्मार्गितं न च दृश्यते ६४
अन्ये कृष्णं चरा राजन्नुपागम्य तदाऽब्रुवन्।
सर्वे नो विदिता देशाः प्राद्युम्निर्न च दृश्यते
यदन्यत्संविधातव्यं विधानं यदुनन्दन।
तदाज्ञापय नः क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे ॥ ६६
ततस्ते दीनमनसः सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः।
अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमतः कार्यमुत्तमम् ६७
संदष्टौष्ठपुटाः केचित्केचिद्बाष्पाकुलेक्षणाः।
केचिद्भ्रुकुटिमास्थाय चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये ॥
एवं चिन्तयतां तेषां बह्वर्थमभिभाषितम्।
अनिरुद्धः कुतश्चेति संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ ६९
अन्योन्यमभिवीक्षन्ते यादवा जातमन्यवः।
तां निशां विमनस्कास्ते गमयेयुः कथंचन।
अनिरुद्धो हृतश्चेति पुनः पुनररिंदम ॥ ७०
एवं च ब्रुवतां तेषां प्रभाता रजनी तदा।
ततस्तूर्यनिनादैश्च शङ्खानां च महास्वनैः।
प्रबोधनं महाबाहोः कृष्णस्याक्रियतालये ॥
ततः प्रभाते विमले प्रादुर्भूते दिवाकरे।
प्रविवेश सभामेको नारदः प्रहसन्निव ॥ ७२
दृष्ट्वा तु यादवान्सर्वान्कृष्णेन सह संगतान्।
ततः स जयशब्देन माधवं प्रत्यपूजयत् ॥ ७३
[उग्रसेनादयस्ते च तमृषिं प्रत्यपूजयन्]
अथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समितिदुर्जयः
मधुपर्कं च गां चैव नारदाय ददौ प्रभुः ॥ ७४
सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसंवृते।
सुखासीनो यथान्यायमुवाचेदं वचोऽर्थवत् ॥
नारद उवाच।
किमेवं चिन्तयाविष्टा निःसञ्ज्ञा गतमानसाः
उत्साहहीनाः सर्वे वै क्लीबा इव समासते ७६
इत्येवमुक्ते वचने नारदेन महात्मना।
वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं श्रूयतां भगवन्निदम् ७७
अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन्केनापि निशि सुव्रत।
यस्यार्थे सर्व एवास्म चिन्तयाविष्टचेतसः ॥
एष ते यदि वृत्तान्तः श्रुतो दृष्टोऽपि वा मुने।
भगवन्कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ ॥ ७९
इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना।
प्रहस्यैतद्वचः प्राह श्रूयतां मधुसूदन ॥ ८०
निवृत्तं सुमहद्युद्धं देवासुरसमं महत्।
अनिरुद्धस्य चैकस्य बाणस्यापि महामृधे ८१
उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः।
तस्यार्थे[4] चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सराः ८२
उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम्।
प्राद्युम्निबाणयोः संख्ये वालिवासवयोरिव॥
अस्माभिश्चापि तद्युद्धं दृष्टं सुमहदद्भुतम्।
अनिरुद्धो मयास्तेन संयुगेष्वनिवर्तिना ॥ ८४
बाणेन मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः।
व्यादिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज ८५
तं निवारितवान्मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तस्य ह
कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन संयुगे ॥ ८६
बाणेन मायामास्थाय सर्पैर्नियमनं कृतम्।
उत्तिष्ठतु भवाञ्छीघ्रं यशसे विजयाय च ८७
नायं संरक्षितुं कालः प्राणांस्तात जयैषिणाम्
प्राणैः किंचिद्गतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति ॥
वैशम्पायन उवाच।
इत्येवमुक्ते वचने वासुदेवः प्रतापवान्।
प्रायात्रिकान्वै संभारानाज्ञापयत वीर्यवान् ॥
ततश्चन्दनपूर्णैश्च लाजैश्चैव समंततः।
निर्ययौ स महाबाहुः कीर्यमाणो जनार्दनः ९०

१ ख. °ल्या तु हृतः स्त्रिया। मा° । २ ख. चिन्तयन् स। ३ ख. अथ कृ°। ४ ख. तदर्थं चि°।

नारद उवाच ।

स्मरणं वैनतेयस्य कर्तुमर्हसि माधव ।
न ह्यन्येन तदध्वानं शक्यं गन्तुं महाभुज ९१
आकर्णय तमध्वानं गन्तव्यमतिदुर्जयम् ।
एकादश सहस्राणि योजनानां जनार्दन ९२
तादितः शोणितपुरं प्राद्युम्निर्यत्र साम्प्रतम् ।
मनोजवो महावीर्यो वैनतेयः प्रतापवान् ९३
समाह्वयस्व गोविन्द स हि त्वां तत्र नेष्यति
एकेन सुमुहूर्तेन बाणं संदर्शयिष्यति ॥ ९४

वैशम्पायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार गरुडं तदा ।
स कृष्णपार्श्वमागम्य प्राञ्जलिर्गरुडः स्थितः ९५
प्रणम्याथ वचः प्राह वैनतेयो महाबलः ।
वासुदेवं महात्मानं श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥९६

गरुड उवाच ।

पद्मनाभ महाबाहो किमर्थं संस्मृतो ह्यहम् ।
कृत्यं ते यदिहात्रास्ति श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
कस्य पक्षपरिक्षेपैर्नाशयामि पुरीं प्रभो ।
प्रभावात्तव गोविन्द को न विद्याद्बलं मम ॥
गदावेगं च ते वीर चक्राग्निं च महाभुज ।
नावबुध्यति मूढात्मा को दर्पान्नाशमेष्यति ॥
हलं सिंहमुखं कस्य वनमाली नियोक्ष्यति ।
कस्य देहस्तु निर्भिन्नो मेदिनीं यास्यति प्रभो
कस्य शार्ङ्गरवैः प्राणान्मोहयिष्यसि माधव ।
कोऽयं सपरिवारोऽद्य यास्यते यमसादनम् १
एवमुक्ते तु वचने वैनतेयेन धीमता ।
वासुदेवो वचः प्राह शृणु त्वं वदतां वर ॥ २
बलेः पुत्रेण बाणेन प्राद्युम्निरपराजितः ।
उषायाः कारणे बद्धो नगरे शोणिताह्वये ।
अनिरुद्धस्तु कामार्तो बद्धो नागैर्विषोल्बणैः॥३
तस्य मोक्षार्थमाहूतो मया त्वं पतगेश्वर ।
तव वेगसमो नास्ति पक्षिणां प्रवरो भवान् ।
अशक्यं च तदध्वानं गन्तुमन्येन काश्यप ॥४
तत्र प्रापय मां शीघ्रं यत्र प्राद्युम्निरावसत् ।
वैदर्भी ते स्नुषा वीर रुदती पुत्रगृद्धिनी ॥ ५
त्वत्प्रसादाद्भवत्येषा पुत्रेण सह भामिनी ।
अमृतं तु हृतं पूर्वं त्वया पन्नगनाशन ॥ ६
मया सह समागम्य तस्मिन्काले महाभुज ।
अभवन्मे ध्वजश्चैव त्वद्भक्ताः सर्ववृष्णयः ।
सखित्वं मानयस्वाद्य भक्तिं च पतगेश्वर ॥ ७
तव वेगसमो नास्ति पक्षिणो न च ते समाः ।
सुपर्ण सुकृतेन त्वां शपे पन्नगनाशन ॥ ८
दासीभावं गता माता मोक्षितैकाकिना पुरा
पक्षविक्षेपमाश्रित्य हता योधास्त्वया पुरा ९
भवान्सुरगणान्सर्वान्पृष्ठमारोप्य विक्रमात् ।
गच्छ मे ह्यगमान्देशान्विजयश्च तवाश्रयात् ॥
गुरुत्वान्मेरुतुल्यस्त्वं लघुत्वात्पवनोपमः
भूते भव्ये भविष्ये च न ते तुल्योऽस्ति विक्रमे
सत्यसन्ध महाभाग वैनतेय महाद्युते ।
अनिरुद्धे क्षणेनाद्य साहाय्यमुपकल्प्यताम् १२

गरुड उवाच ।

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव कृष्ण महाभुज ।
त्वत्प्रसादाच्च विजयः सर्वत्रैव महाभुज ॥१३
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि
संस्तवान्मधुसूदन ।
स्तोतव्यस्त्वं मया कृष्ण
स्तौषि मां त्वं महाभुज ॥ १४
वेदाध्यक्षः सुराध्यक्षः सर्वकामप्रदो भवान् ।
अमोघदर्शनस्त्वं हि वरार्थीनां वरप्रदः ॥ १५
चतुर्भुजश्चतुर्मूर्तिश्चातुर्होत्रप्रवर्तकः ।
चातुराश्रम्यहोता च चतुर्नेता महाकविः॥१६
धनुर्धरश्चक्रधरो भवाञ्छंखधरो महान् ।
भवान्पूर्वेषु देहेषु ख्यातो भूमिधरः प्रभो ॥१७
लाङ्गली मुसली चक्री देवकीतनयो भवान् ।
चाणूरमथनश्चैव गोप्रियः कंसहा भवान् ॥१८
गोवर्धनधरश्चैव मल्लारिर्मल्लभावनः ।
मल्लप्रियो महामल्लो महापुरुष इत्यपि ॥ १९

वैदर्भी रुक्मिणो दुहिता ते तव मदीयभ्रातुः स्नुषा प्रद्युम्नभार्यात्वात् ॥ ५ ॥ चतुर्मूर्तिः वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाख्याश्चतस्रो मूर्तयो यस्य स तथा । चातुर्होत्रं यज्ञियं कर्म चातुराश्रम्यो होमकर्ता त्रयाणामग्नौ होमः स्पष्टः । सन्यासिनोऽपि परमात्मनि जीवस्य होमोऽस्तीति सोऽपि होतेत्यर्थः। चतुर्णां पुरुषार्थानां नेता प्रापकः ॥१६॥

१ ख. पततां व० । २ ख. ०मात्रेण ह० । ३ ख क्षणमद्यानिरुद्धार्थं सा० । ४ ख. ०दात्तु विजयः सर्वत्र मम केशव । ध० । ५ ख. श्रोत० । ६ ख. ०रार्थिषु वर० ।

विप्रप्रियो विप्रहितो विप्रज्ञो विप्रभावनः।
ब्रह्मण्यश्च वरेण्यश्च भवान्दामोदरः स्मृतः।
प्रलम्बमथनश्चैव केशिहा दानवान्तकः १२०
असिलोम्नश्च हन्ता च तथा रावणनाशनः।
विभीषणस्य भगवान्राज्यदो वालिनाशनः२१
सुग्रीवराज्यदाता त्वं बलिराज्यापहारकः।
रत्नहर्ता महारत्नं समुद्रोदरसंभवः॥ २२
वरुणश्च भवान्ख्यातो भवांश्च सरिदुद्भवः।
भवान्खड्गधरो धन्वी धनुर्धरवरो महान् २३
दाशार्ह इति विख्यातो महाधन्वा धनुःप्रियः
गोविन्द इति विख्यात उदधिस्त्वं च सुव्रत
आकाशश्च तपश्चैव समुद्रमथनो भवान्।
भवान्स्वर्गो बहुफलो भवान्स्वर्गचरो महान्
त्वमेव च महामेघो बीजनिष्पत्तिरेव च।
त्रैलोक्यमथनस्त्वं च क्रोधलोभमनोरथः॥ २६
भवान्कामप्रदश्चैव कामः सर्वधनुर्धरः।
संवर्तो वर्तनश्चैव प्रलयो निलयो महान्॥२७
हिरण्यगर्भो रूपज्ञो रूपवान्मधुसूदनः।
ईशस्त्वं च महादेव असंख्येयगुणान्वितः २८
स्तोतुमिच्छसि मां देव
स्तोतव्यस्त्वं यदूत्तम।
चक्षुषा ये त्वया घोराः
प्राणिनो हि निरीक्षिताः॥ २९
हतास्ते यमदण्डेन तिर्यङ्निरयगामिनः।
ये त्वया परमप्रीत्या प्राणिनो वै निरीक्षिताः
इह च प्रेत्य ते सर्वे सर्वथा स्वर्गगामिनः।
एष तेऽहं महाबाहो वशगः शासने स्थितः॥
जयस्थानं ततः कृत्वा गरुडः प्राह केशवम्।
अयमस्मि स्थितो वीर आरुहस्व महाबल॥
ततः कण्ठे परिष्वज्य माधवो गरुडं ततः।
सखे शत्रुविनाशाय अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्३३
दत्त्वाऽर्घं परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदासिभृत्
आरुरोह महाबाहुः सुपर्णं पुरुषोत्तमः॥ ३४
कृष्णस्य पार्श्वमागम्य हर्षादेवास्थितोऽभवत्
कृष्णकेशः प्रबलयो विष्णुः कृष्णश्च वर्णतः॥[1]
चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्बाहुश्चतुर्वेदषडङ्गवित्।
श्रीवत्साङ्कोऽरविन्दाक्ष ऊर्ध्वरोमा मृदुत्वचः
समाङ्गुलिः समनखो रक्ताङ्गुलिनखान्तरः
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषो वृत्तबाहुर्महाभुजः॥[2]३७
आजानुबाहुस्ताम्रास्यः सिंहविस्पष्टविक्रमः।
सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानः प्रकाशते॥ ३८
यः प्रभुर्भाति विश्वात्मा भूतानां भावनो विभुः
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं ददौ प्रीतः प्रजापतिः।
प्रजापतीनां साध्यानां त्रिदशानां च शाश्वतः
स्तूयमानः स्तवैर्दिव्यैः सूतमागधबन्दिभिः।
ऋषिभिश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ १४०
संविधानमथाज्ञाप्य द्वारकायां महाबलः॥
गमनाय मतिं चक्रे वासुदेवः प्रतापवान् ४१
आस्थितो गरुडं देवस्तस्य चानु हलायुधः।
पृष्ठतोऽनु बलस्यापि प्रद्युम्नः शत्रुकर्षणः ४२
जय बाणं महाबाहो ये चास्यानुगता रणे।
न हि ते प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो महामृधे
प्रसादे[3] ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे।
विजेष्यसि रणे शत्रुं दैत्येन्द्रं सहसैनिकम् ४४
सिद्धचारणसंघानां महर्षीणां च सर्वशः।
शृण्वन्वाचोऽन्तरिक्षे[4] वै प्रययौ केशवो रणे

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णप्रयाणे
एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥

समुद्रोदरसम्भवः धन्वन्तरिः॥ २२॥ सरिदुद्भवो मेरुः॥ २३॥ क्रोधादिरूपेण त्रैलोक्यं मथ्नाति इति त्रैलोक्यमथनः॥ २६॥ संवर्तः संवृण्वानप्रलयः। वर्तनः आविष्कुर्वाणो निलयः स्थितिकालश्च त्वमेव॥ २७॥ उभावपि लोकौ प्राप्यते सर्वथा स्वर्गगामिनः सुखभाजः॥ ३१॥ जयस्थानं प्रस्थानमुद्राम्॥ ३२॥ कृष्णकेशो बलरामः प्रबलय इत्यादिस्तुतिः कृष्णस्यैव॥ ३५॥ प्रजापतिः कश्यपः यस्य वामनरूपेणैतत्पुत्रस्य॥ ३९॥ संविधानं पुररक्षणम्॥ ४१॥ जय बाणमित्याद्या वाचः शृण्वन् प्रययौ इति तृतीयेनान्वयः॥ ४३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायामेकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥

१ ख. °केशश्च बलवान् जिष्णुः कृष्णश्च वल्लभः। च°। २ ख. °हाभुजः। ग° ३ ख. °सादात्ते ध्रु°। ४ ख. °न्तरिक्षस्थाः प्र°।

## युद्धेऽग्निगणापयानं, ज्वरोत्पत्तिस्तेन कृष्णस्य युद्धं च ।

## १२२

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तूर्यनिनादैश्च शंखानां च महास्वनैः ।
बन्दिमागधसूतानां स्तवैश्चापि सहस्रशः ॥ १
स तून्मुखैर्जयाशीर्भिः स्तूयमानो हि मानवैः
बभार रूपं सोमार्कशुक्राणां प्रतिमं तदा ॥ २
अतीव शुशुभे रूपं व्योम्नि तस्योत्पतिष्यतः
वैनतेयस्य भद्रं ते बृंहितं हरितेजसा ॥ ३
अथाष्टबाहुः कृष्णस्तु पर्वताकारसंनिभः ।
विबभौ पुण्डरीकाक्षो विकाङ्क्षन्बाणसंक्षयम्
असिचक्रगदाबाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।
चर्म शार्ङ्गं तथा चापं शंखं चैवास्य वामतः ५
शीर्षाणां वै सहस्रं तु विहितं शार्ङ्गधन्वना ।
सहस्रं चैव कायानां वहन्संकर्षणस्तदा ॥ ६
श्वेतप्रहरणोऽधृष्यः कैलास इव शृङ्गवान् ।
प्रस्थितो गरुडेनाथ उद्यन्निव दिवाकरः ॥७
सनत्कुमारस्य वपुः प्रादुरासीन्महात्मनः ।
प्रद्युम्नस्य महाबाहोः संग्रामे विक्रमिष्यतः ॥८
स पक्षबलविक्षेपैर्विधुन्वन्पर्वतान्बहून् ।
जगाम मार्गं बलवान्वातस्य प्रतिषेधयन् ॥ ९
अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुडस्तदा ।
सिद्धचारणसङ्घानां शुभं मार्गमवातरत् १०
अथ रामोऽब्रवीद्वाक्यं
कृष्णमप्रतिमं रणे ।
स्वाभिः प्रभाभिर्हीनाः स्म
कृष्ण कस्मादपूर्ववत् ॥ ११
सर्वे कनकवर्णाभाः संवृत्ताः स्म न संशयः ।
किमिदं ब्रूहि नस्त्वं किं मेरोः पार्श्वगा वयम्

श्रीभगवानुवाच ।

मन्ये बाणस्य नगरमभ्यासस्थमरिंदम ।
रक्षार्थं तस्य निर्यातो वह्निरेष स्थितो ज्वलन्
अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहताः ।
तेन नो वर्णवैरूप्यमिदं जातं हलायुध १४

श्रीराम उवाच ।

यदि स्म सन्निकर्षस्था यदि निष्प्रभतां गताः
तद्विधत्स्व स्वयं बुद्ध्या यदत्रानन्तरं हितम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कुरुष्व वैनतेय त्वं यच्च कार्यमनन्तरम् ।
त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम्

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषितम्
चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबलः ॥ १७
गङ्गामुपागमत्तूर्णं वैनतेयो महाबलः ।
आप्लुत्याकाशगङ्गायामापीय सलिलं बहु ॥
प्रववर्षोपरि गतो वैनतेयः प्रतापवान् ।
तेनाग्निं शमयामास बुद्धिमान्विनतात्मजः
अग्निराहवनीयस्तु ततः शान्तिमुपागमत् ।
तं दृष्ट्वाऽऽहवनीयं तु शान्तमाकाशगङ्गया ।
परमं विस्मयं गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥
अहो वीर्यमथाग्नेस्तु यो दहेद्युगसंक्षये ।
यदेव वर्णवैरूप्यं चक्रे कृष्णस्य धीमतः ॥ २१
त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः
कृष्णः संकर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥ २२
ततः प्रशान्ते दहने संप्रतस्थे स पक्षिराट् ।
स्वपक्षबलविक्षेपं कुर्वन्घोरं महास्वनम् ॥ २३
तं दृष्ट्वा विस्मयं तत्र रुद्रस्यानुचरास्त्रयः ।
आस्थिता गरुडं ह्येते नानारूपा भयावहाः २४
किमर्थमिह संप्राप्ताः के वापीमे जनास्त्रयः ।
निश्चयं नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवह्नयः २५
प्रावर्तयंश्च संग्रामं तैस्त्रिभिः सह यादवैः ।
तेषां युद्धप्रसक्तानां संनादः सुमहानभूत् ॥२६
तं च श्रुत्वा महानादं सिंहानामिव गर्जताम्
अथाङ्गिराः स्वपुरुषं प्रेषयामास बुद्धिमान् २७
यत्र तद्वर्तते युद्धं तत्र गच्छस्व मा चिरम् ।
दृष्ट्वा तत्सर्वमागच्छ इत्युक्तः प्राहितस्त्वरन् ॥

---

१२२

तत इति ॥ १ ॥ स रथस्थः अत एव उन्मुखैरूर्ध्वमुखैः ॥ २ ॥ अष्टसु बाहुषु अष्टान्यायुधान्याह–असीति ॥ ५ ॥ सहस्रम् अनन्तं शीर्षाणि ॥ ६ ॥ पक्षयोर्बलेन ये विक्षेपास्तैः ॥ ९ ॥ विस्मयं प्रापुरिति शेषः ॥ २४ ॥

१ ख. सदृशं त० । २ ख. ०था वज्रं शं ३ ख. ०व निशाक० । ४ घ. सिद्धिचा० । ५ ख. ०तरम् । वै० ।

तथेत्युक्त्वा स तद्युद्धं वर्तमानमवैक्षत।
अग्नीनां वासुदेवेन संसक्तानां महामृधे ॥२९
ते जातवेदसः सर्वे कल्माषः कुसुमस्तथा।
दहनः शोषणश्चैव तपनश्च महाबलः ॥ ३०
स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्च वह्नयः।
अथापरे महाभागाः स्वैरनीकैर्व्यवस्थिताः ३१
पिठरः पतगःस्वर्णः श्वा गाधो भ्राज एव च
स्वधाकाराश्रयाः पञ्च अयुध्यंस्तेऽपि चाग्नयः
ज्योतिष्टोमविभागौ च वषट्काराश्रयौ पुनः
द्वावग्नी संप्रयुध्येते महात्मानौ महाद्युती ३३
आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम्।
तयोर्मध्येऽगिराश्चैव महर्षिर्विबभौ रणे ॥ ३४
स्थितमङ्गिरसं दृष्ट्वा विमुञ्चन्तं शिताञ्छरान्।
कृष्णः प्रोवाच संक्रुद्धः स्मयन्निव पुनः पुनः३५
तिष्ठध्वमग्नयः सर्वे एष वो विदधे भयम्।
ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ विद्रुताः
अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समधावत ॥ ३६
आददान इव क्रोधात्कृष्णप्राणान्महामृधे।
त्रिशूलं तस्य दीप्तं तु चिच्छेद परमेषुभिः।
अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमान्तकनिभोपमैः ३७
स्थूणाकर्णेन बाणेन दीप्तेन स महामनाः[1]।
विद्याधान्तकतुल्येन वक्षस्याङ्गिरसं ततः ३८
रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैरङ्गिरा विह्वलन्निव।
विष्टब्धगात्रः सहसा पपात धरणीतले ॥ ३९
शेषास्ततोऽग्नयः सर्वे चत्वारो ब्रह्मणः सुताः
आधावन्तस्तदा[3] शीघ्रं बाणस्य पुरमन्तिकात्
अथागमत्ततः कृष्णो यत्र बाणपुरं ततः
अथ बाणपुरं दृष्ट्वा दूरात्प्रोवाच नारदः ॥
एतत्तच्छोणितपुरं कृष्ण पश्य महाभुज
अत्र रुद्रो महातेजा रुद्राण्या सहितोऽवसत्
गुहश्च बाणगुप्त्यर्थं सततं क्षेमकारणात्।
नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णः[4] संप्रहसन्ब्रवीत्
क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयतां च महामुने।
यदि वाऽवतरेद्रुद्रो बाणसंरक्षणं प्रति ॥ ४४
शक्तितो वयमप्यत्र सह योत्स्याम तेन वै
एवं विवदतोस्तत्र कृष्णनारदयोस्तदा ॥ ४५

प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते
ततः शंखं समाधाय वदने पुष्करेक्षणः ॥ ४६
वायुवेगसमुद्भूतो मेघश्चन्द्रमिवोद्गिरन्
ततः प्रध्माप्य तं शंखं भयमुत्पाद्य वीर्यवान्
प्रविवेश पुरं कृष्णो बाणस्याद्भुतकर्मणः
ततः शंखप्रणादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥ ४८
बाणानीकानि सहसा संनह्यन्त समंततः
ततः किंकरसैन्यं तु ह्यादिष्टं समरे भयात्
कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा
तदसंख्येयमेकस्थं महाभ्रवनसंनिभम् ॥ ५०
नीलाञ्जनचयप्रख्यमप्रमेयमथाक्षयम्
दीप्तप्रहरणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ५१
प्रमाथगणमुख्याश्च अयुध्यन्कृष्णमव्ययम्
सर्वतस्तैः प्रदीप्तास्यैः सार्चिष्मद्भिरिवाग्निभिः
अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यक्षराक्षसकिंनरैः[5]
पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥ ५३
तद्बलं तु समासाद्य बलभद्रो महाबलः
प्रोवाच वचनं तत्र परस्य बलनाशनः ॥ ५४
कृष्ण कृष्ण महाबाहो विधत्स्वैषां महद्भयम्
इति संचोदितः कृष्णो बलभद्रेण धीमता ॥
तेषां वधार्थमाग्नेयं जग्राह पुरुषोत्तमः
अस्त्रमस्त्रविदां श्रेष्ठो यमान्तकसमप्रभः।
प्रविधूयासुरगणान्क्रव्यादानस्त्रतेजसा ॥ ५६
प्रययौ त्वरया युक्तो यत्र दृश्येत तद्बलम्
शूलपट्टिशशक्त्यृष्टिपिनाकपरिघायुधम् ॥५७
प्रमाथगणभूयिष्ठं बलं तदभवत्क्षितौ।
शैलमेघप्रतीकाशैर्नानारूपैर्भयानकैः
वाहनैः सहस्रशः सर्वे योधास्तत्रावतस्थिरे ॥५८
वातोद्धूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः।
शुशुभे तत्र बहुलैरनीकैर्दृढधन्विभिः।
मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिघैस्तथा ॥५९
अबाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम्।
ततः संकर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम् ॥ ६०
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदेतद्दृश्यते बलम्।
एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम ॥६१

अङ्गिरामुख्योऽग्निः ॥ ३४ ॥ यमान्तकनिभोपमैः यमनिभैः क्रूरैः अन्तकोपमैः प्राणहरैः ॥ ३७ ॥ स्थूणातुल्यो कर्णौ तिर्यक्फलके यस्य तेन स्थूणाकर्णेन ॥ ३८ ॥ ब्रवीत् अब्रवीत् ॥ ४३ ॥

१ ख. °नमुदैक्ष°। २ ख. °हायशाः। वि°। ३ ख. अवाद्यन्तस्ततः शी°। ४ ख. कृष्णास्त्विदमथाब्रा°। ५ ख. °स्यै रोचिष्म°।

श्रीकृष्ण उवाच ।

ममाप्येषैव संजाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम् ।
याभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसत्तमैः ॥
युद्ध्यतः प्राङ्मुखस्यास्तु सुपर्णो वै ममाग्रतः ।
सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान् ।
रक्षितव्यमथान्योन्यमस्मिन्घोरे महामृधे ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यमधिरूढाः खगोत्तमम् ।
गिरिशृङ्गनिभैर्घोरैर्गदामुसललाङ्गलैः ॥ ६४
युध्यतो रौहिणेयस्य रौद्रं रूपमभूत्तदा ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालस्येव दिधक्षतः ॥
आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेनावपोथयत् ।
चचारातिबलो रामो युद्धमार्गविशारदः ॥
प्रद्युम्नः शरजालैस्तान्समन्तात्पर्यवारयत् ।
दानवान्पुरुषव्याघ्रो युद्ध्यमानान्महाबलः ६७
स्निग्धाञ्जनचयप्रख्यः शंखचक्रगदाधरः ।
प्रध्माय बहुशः शङ्खमयुध्यत जनार्दनः ॥ ६८
पक्षप्रहारनिहता नखतुण्डाग्रदारिताः ।
नीता वैवस्वतपुरं वैनतेयेन धीमता ॥ ६९
तैर्हन्यमानं दैत्यानामनीकं भीमविक्रमम् ।
अभज्यत तदा संख्ये बाणवर्षसमाहतम् ॥ ७०
भज्यमानेष्वनीकेषु त्रातुकामः समभ्ययात् ।
ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ।
भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ।
नदन्मेघसहस्रेण तुल्यो निर्घातनिःस्वनः ॥ ७२
निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम् ।
नेत्राभ्यामाकुलं वक्त्रं मुहुः कुर्वन्भ्रमन्मुहुः ७३
संहृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसन् ।
हलायुधमभिक्रुद्धः साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥ ७४
किमेवं बलमत्तोऽसि न मां पश्यसि संयुगे ।
तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन्मोक्ष्यसे रणमूर्धनि ॥
इत्येवमुक्त्वा प्रहसन्हलायुधमुपाद्रवत् ।
युगान्ताग्निनिभैर्घोरैर्मुष्टिभिर्जनयन्भयम् ॥ ७६
चरतस्तत्र संग्रामे मण्डलानि सहस्रशः ।
रौहिणेयस्य शीघ्रेण नावस्थानमदृश्यत ॥ ७७
तस्य भस्म तदा क्षिप्तं ज्वरेणाप्रतिमौजसा ।
शैघ्र्याद्वक्षो निपतितं शरीरे पर्वतोपमे ॥ ७८
तद्भस्म वक्षसस्तस्य मेरोः शिखरमागमत् ।
प्रदीप्तं पतितं तत्र गिरिशृङ्गं व्यदारयत् ॥ ७९
शेषेण चापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वजः ।
निःश्वसञ्जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम् ८०
नेत्रयोराकुलत्वं च मुहुः कुर्वन्भ्रमंस्तथा ।
संहृष्टरोमा ग्लानाक्षः क्षिप्तचित्त इव श्वसन् ॥
ततो हलधरो भग्नः कृष्णमाह विचेतनः ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो प्रतीतोऽस्म्यभयं कुरु
दह्यामि सर्वतस्तात कथं शान्तिर्भवेन्मम ।
इत्येवमुक्ते वचने बलेनामिततेजसा ॥ ८३
प्रहस्य वचनं प्राह कृष्णः प्रहरतां वरः ।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा परिष्वक्तो हलायुधः
कृष्णेन परमस्नेहात्ततो दाहात्प्रमुच्यत ।
मोक्षयित्वा बलं तत्र दाहात्तु मधुसूदनः ॥ ८५
प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वरं तदा ।

श्रीभगवानुवाच ।

एह्येहि ज्वर युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे
यच्च ते पौरुषं सर्वं तद्दर्शयतु नो भवान् ।
सव्येतराभ्यां बाहुभ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा ॥
चिक्षेपैनं महद्भस्म ज्वालागर्भं महाबलः ।
ततः प्रदीप्तगात्रस्तु मुहूर्तमभवत्प्रभुः ॥ ८८
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः शमं चाग्निगतस्ततः ।
ततस्तैर्भुजगाकारैर्बाहुभिस्तु त्रिभिस्तदा ८९
जघान कृष्णं ग्रीवायां मुष्टिनैकेन चोरसि ।
स संप्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९०
ज्वरस्य तु महायुद्धे कृष्णस्य तु महौजसः
पर्वतेषु पतन्तीनामशनीनामिव स्वनः ॥ ९१
कृष्णज्वरभुजाघातैर्युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
नैवमेवं प्रहर्तव्यमिति तत्र महास्वनः ।
मुहूर्तमभवद्युद्धमन्योन्यं तु महात्मनोः ॥ ९२
ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषणं
न्यपीडयद्भुजवलयेन संयुगे ।
जगत्क्षयं समुपनयञ्जगत्पतिः
शरीरधृग्गगनचरं महामृधे ॥ ९३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णज्वरयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

१ ख. °य यतस्व च । स° । २ ख. °स्तदा । त° । ३ ख. °भिः प्रोच्छितस्त° । ४ ख. ° रुणे । नै° । ५ ख. °चरो म° ।

## ज्वरस्य पराजयो वरलाभश्च।

## १२३

वैशम्पायन उवाच।

मृतमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदनः।
कृष्णो भुजबलाभ्यां तु चिक्षेपाथ महीतले १
मुक्तमात्रः स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह।
अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमौजसः
स ह्याविष्टस्तथा तेन ज्वरेणाप्रतिमौजसा।
कृष्णः स्खलन्निव मुहुः क्षितौ गाढं व्यवर्तत ३
जृम्भते श्वसते चैव वल्गते च पुनः पुनः।
रोमाञ्चोत्थितगात्रश्च निद्रया चाभिभूयते ॥४
ततः स्थैर्यं समालम्ब्य कृष्णः परपुरंजयः।
विकुर्वीत महायोगी जृम्भमाणः पुनः पुनः॥५
ज्वराभिभूतमात्मानं विज्ञाय पुरुषोत्तमः
सोऽसृजज्ज्वरमन्यं तु पूर्वज्वरविनाशनम् ६
घोरं वैष्णवमत्युग्रं सर्वप्राणिभयंकरम्।
संसृष्टवान्स तेजस्वी तं ज्वरं भीमविक्रमम् ७
ज्वरः कृष्णविसृष्टस्तु गृहीत्वा तं ज्वरं बलात्
कृष्णाय हृष्टः प्रायच्छत्तं जग्राह ततो हरिः ८
ततस्तं परमक्रुद्धो वासुदेवो महाबलः।
स्वगात्रात्स्वज्वरेणैव निष्कासयत वीर्यवान् ९
आविध्य भूतले चैनं शतधा कर्तुमुद्यतः
व्याघोषत ज्वरस्तत्र भोः परित्रातुमर्हसि॥ १०
आविध्यमाने तस्मिंस्तु कृष्णेनामिततेजसा।
अशरीरा ततो वाणी ह्यन्तरिक्षादभाषत॥ ११
कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन।
मा वधीर्ज्वरमेनं तु रक्षणीयस्त्वयानघ ॥ १२
इत्येवमुक्ते वचने तं मुमोच हरिः स्वयम्।
भूतभव्यभविष्यस्य जगतः परमो गुरुः ॥ १३
कृष्णस्य पादयोर्मूर्ध्ना शरणं सोऽगमज्ज्वरः।
एवमुक्तो हृषीकेशं ज्वरो वाक्यमथाब्रवीत् १४
शृणुष्व मम गोविन्द विज्ञाप्यं यदुनन्दन।
यो मे मनोरथो देव तं त्वं कुरु महाभुज॥ १५
अहमेको ज्वरस्तात नान्यो लोके ज्वरो भवेत्
त्वत्प्रसादाद्धि देवेश वरमेनं वृणोम्यहम्॥ १६

देव उवाच।

एवं भवतु भद्रं ते यथा त्वं ज्वर काङ्क्षसे
वरार्थिनां वरो देयो भवांश्च शरणं गतः १७
एक एव ज्वरो लोके भवानस्तु यथा पुरा।
योऽयं मया ज्वरः सृष्टो मय्येवैष प्रलीयताम्

वैशम्पायन उवाच।

एवमुक्ते तु वचने ज्वरं प्रति महायशाः।
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः पुनर्वाक्यमुवाच ह। १९

वासुदेव उवाच।

शृणुष्व ज्वर संदेशं यथा लोके चरिष्यसि।
सर्वजातिषु विश्रब्धं यथा स्थावरजङ्गमे॥ २०
त्रिधा विभज्य चात्मानं मत्प्रियं यदि काङ्क्षसे।
चतुष्पादान्भजैकेन द्वितीयेन च स्थावरान् २१
तृतीयो यश्च ते भागो मानुषेषूपपत्स्यते।
त्रिधाभूतं वपुः कृत्वा पक्षिषु त्वं भव ज्वर २२
चतुर्थो यस्तृतीयस्य भविष्यति स ते ध्रुवम्।
एकान्तरस्तृतीयस्तु स वै चातुर्थिको ज्वरः॥
मानुषेष्वभिभेदेन वस त्वं प्रविभज्य वै।
जातिष्वथावशेषासु निवस त्वं शृणुष्व मे २४
वृक्षेषु कीटरूपेण तथा संकोचपत्रकः।
पाण्डुपत्रश्च विख्यातः फलेष्वातुर्यमेव च॥ २५
अपां तु नीलिका विद्याच्छिखोद्भेदेन बर्हिणाम्
पद्मिन्यादौ हिमो भूत्वा पृथिव्यामपि चोषरः
गैरिकः पर्वतेष्वेव मत्प्रसादाद्भविष्यसि।
गोष्वपस्मारको भूत्वा खोरकश्च भविष्यसि॥
एवं त्वं बहुरूपेण भविष्यसि महीतले।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि प्राणिनां वधमेष्यसि २८
ऋते देवमनुष्याणां नान्यस्त्वां विसहिष्यति।

वैशम्पायन उवाच।

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ज्वरो हृष्टमना ह्यभूत्
प्रोवाच वचनं किंचित्प्रणमित्वा कृताञ्जलिः।

---

१२३

**मृतमिति**॥१॥ त्रिधेति ॥ त्वं त्रिधाभूतं वपुः कृत्वा चतुष्पादादिषु भवेत्यध्याहृत्य योज्यम् ॥२१॥ तथा तृतीयस्य भागस्य चतुर्थांशः सपक्षिषु ध्रुवो भविष्यतीति योजना ॥ २३ ॥ आतुर्यम् एकप्रदेशे जालकेन संकोचः ॥ २५ ॥ अपस्मारकः भूतावेशः । खोरकश्चरणरोगः ॥ २७ ॥

---

१ ख. 'र्वते म' । २ ख. 'स्वी बलवान् भीमविक्रमः । ज्व°। ३ ख. °नुष्यांश्च ना°।

ज्वर उवाच ।

सर्वंजातिप्रभुत्वेन कृतो धन्योऽस्मि माधव
भूयश्च ते वचः कर्तुमिच्छामि पुरुषर्षभ ।
तदाज्ञापय गोविन्द किं करोमि महाभुज ३१

अहमसुरकुलप्रमाथिना
त्रिपुरहरेण हरेण निर्मितः ।
रणशिरसि विनिर्जितस्त्वया
प्रभुरसि देव तवाऽस्मि किंकरः ॥३२

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि
यत्त्वया मत्प्रियं कृतम् ।
आज्ञापय प्रियं किं ते
चक्रायुध करोम्यहम् ॥ ३३

वैशम्पायन उवाच ।

ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा वासुदेवोऽब्रवीद्वचः ।
अभिसंधिं शृणुष्वाद्य यत्त्वां वक्ष्यामि निश्चयात्

श्रीभगवानुवाच ।

महाहवे तव मम च द्वयोरिमं
पराक्रमं भुजबलकेवलाश्रयोः ।
प्रणम्य मामेकमनाः पठेत्तु यः
स वै भवेज्ज्वर विगतज्ज्वरो नरः३५

* त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा नवलोचनः ।
स मे प्रीतः सुखं दद्यात्सर्वामयपतिर्ज्वरः ३६

आद्यन्तवन्तः कवयः पुराणाः
सूक्ष्मा बृहन्तोऽप्यनुशासितारः ।
सर्वाञ्ज्वरान्घ्नन्तु ममानिरुद्ध-
प्रद्युम्नसङ्कर्षणवासुदेवाः ॥ ३७

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कृष्णेन ज्वरः साक्षान्महात्मना
प्रोवाच यदुशार्दूलमेवमेतद्भविष्यति ॥ ३८
वरं लब्ध्वा ज्वरो हृष्टः कृष्णाच्च समयं पुनः
प्रणम्य शिरसा कृष्णमपक्रान्तस्ततो रणात् ३९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि ज्वरकृष्णसंवादे
त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

## बाणसैन्यैः सहकृष्णस्य युद्धं,बाणसैन्यापयानं, रुद्रेण सह कृष्णयुद्धादिकीर्तनं च ।

## १२४

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते त्वरिताः सर्वे त्रयस्त्रय इवाग्नयः ।
वैनतेयमथारुह्य युध्यमाना रणे स्थिताः ॥१
ततः सर्वाण्यनीकानि बाणवर्षैरवाकिरन् ।
अर्दयन्वैनतेयस्था नदन्तोऽतिबलाद्रणे ॥ २
चक्रलाङ्गलपातैश्च बाणवर्षैश्च पीडितम् ।
संचुकोप महानीकं दानवानां दुरासदम् ॥ ३
कक्षेऽग्निरिव संवृद्धः शुष्केन्धनसमीरितः ।
कृष्णबाणाग्निरुद्भूतो विवृद्धिं परमां गतः ॥ ४
दानवानां सहस्राणि तस्मिन्समरमूर्धनि ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्दहमानो व्यराजत
तां दीप्यमानां महतीं नानाप्रहरणार्दिताम् ।

सेनां बाणः समासाद्य वारयन्वाक्यमब्रवीत्
लाघवं समुपागम्य किमर्थं भयविक्लवाः ।
दैत्यवंशसमुत्पन्नाः पलायध्वं महाहवात् ॥७

कवचासिगदाप्रास-
खड्गचर्मपरश्वधान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति
किं भवन्तोऽन्तरिक्षगाः ॥ ८

स्वजातिं चैव भावं च हरसंसर्गमेव च ।
मानयद्भिर्न गन्तव्यमेषो ह्यहमवस्थितः ॥ ९

एवमुच्चरितं वाक्यं शृण्वन्तस्तदचिन्तयन् ।
अपाक्रामन्त ते सर्वे दानवा भयमोहिताः१०

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

१२४

**तत इति** ॥१॥ अर्दयन् अपीडयन् । आडभाव आर्षः ॥२॥ दहमानः दहन् ॥५॥ अचिन्तयन् अचिन्तयन्त:१०

---

× त्रिपाद्भस्मेत्यारभ्य श्लोकद्वयं घपुस्तक एव वर्तते १ ख. °ह्यबलः । प्रो° । २ ख. °नां महात्मनाम् । क° ।

प्रमाथगणशेषं तु तदनीकमतिष्ठत ।
भग्नावशेषं युद्धाय पुनश्चक्रे मनस्तदा ॥ ११
कुम्भाण्डो नाम बाणस्य
सखाऽमात्यश्च वीर्यवान् ।
भग्नं स्वबलमालोक्य
इदं वचनमब्रवीत् ॥१२
एष बाणः स्थितो युद्धे शंकरोऽयं गुहस्तथा
किमर्थं बलमुत्सृज्य भवन्तो यान्ति मोहिताः
प्राणांस्त्यक्त्वा पलायन्ते सर्वे दानवपुङ्गवाः
एवं कुम्भाण्डवाक्यं ते शृण्वन्तो भयविह्वलाः
एकान्ते भयवित्रस्ताः सर्वे यान्ति दिशो दश
भग्नं बलं ततो दृष्ट्वा कृष्णेनामिततेजसा ।
संरक्तनयनः स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत ॥ १५
बाणसंरक्षणं कर्तुं रथमास्थाय सुप्रभम् ।
देवः कुमारश्च तथा रथेनाग्निसमेन वै ॥ १६
नन्दीश्वरसमायुक्तं रथमास्थाय वीर्यवान् ।
संदष्टौष्ठपुटो रुद्रः प्राधावत यतो हरिः॥१७
पिबन्निव तदाकाशं सिंहयुक्तो महास्वनः ।
रथो भाति घनोन्मुक्तः पौर्णमास्यां यथा शशी
ततो गणसहस्रैस्तु नानारूपैर्भयावहैः ।
नदद्भिर्विविधान्नादान्रथो देवस्य शोभयन्॥१९
केचित्सिंहमुखास्तत्र तथा व्याघ्रमुखाः परे ।
नागाश्वोष्ट्रमुखास्तत्र प्रवेपुरतिपीडिताः ॥ २०
व्यालयज्ञोपवीताश्च केचित्तत्र महाबलाः ।
खरोष्ट्रगजवक्त्राश्च अश्वग्रीवाश्च संस्थिताः ॥
छागमार्जारवक्त्राश्च मेषवक्त्रास्तथा परे ।
चीरिणः शिखिनश्चान्ये जटिलोर्ध्वशिरोरुहाः
लग्नाः परिपतन्ति स्म शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः
केचित्सौम्यमुखास्तत्र दिव्यैः शस्त्रैरलंकृताः
नानापुष्पकृतापीडा नानाप्रहरणायुधाः ।
वामना विकटाश्चैव सिंहव्याघ्रपरिच्छदाः ॥
रुधिरार्द्रैर्महावक्त्रैर्महादंष्ट्रा बलिप्रियाः ।
देवं संपरिवार्याथ महाशत्रुप्रमर्दनम् ॥ २५
लीलायमानास्तिष्ठन्ति
सङ्ग्रामाभिमुखोन्मुखाः ।

ततो दिव्यं रथं दृष्ट्वा
रुद्रस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ २६
कृष्णो गरुडमास्थाय ययौ रुद्राय संयुगे ।
वैनतेयस्थमास्यन्तमायान्तमग्रणीं हरिम् २७
विव्याध कुपितो बाणैर्नाराचानां शतेन सः ।
स शरैरर्दितस्तेन हरेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २८
हरिर्जग्राह कुपितो ह्यस्त्रं पार्जन्यमुत्तमम् ।
प्रचचाल ततो भूमिर्विष्णुरुद्रप्रपीडिता ॥२९
नागाश्चोर्ध्वमुखास्तत्र विचेलुरभिपीडिताः ।
पर्वताः पतितास्तत्र जलधाराभिराप्लुताः ॥
केचिन्मुमुचिरे तत्र शिखराणि समंततः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव भूमिराकाशमेव च ॥ ३१
प्रदीप्तानीव दृश्यन्ते स्थाणुकृष्णसमागमे ।
समंततश्च निर्घाताः पतन्ति धरणीतले ॥ ३२
शिवाश्चैवाशिवान्नादान्नदन्ते भीमदर्शनाः ।
वासवश्चानदन्घोरं रुधिरं चाप्यवर्षत ॥ ३३
उल्का च बाणसैन्यस्य पुच्छेनावृत्य तिष्ठति
प्रववौ मारुतश्चापि ज्योतींष्याकुलतामियुः ॥
प्रभाहीनास्तथौषध्यो न चरन्त्यन्तरिक्षगाः ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्वृतः ॥ ३५
त्रिपुरान्तकमुद्यन्तं ज्ञात्वा रुद्रमुपागमत् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षा विद्याधरास्तथा ॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च
पश्यन्तोऽथ दिवि स्थिताः ।
ततः पार्जन्यमस्त्रं तत्
क्षिप्तं रुद्राय विष्णुना ॥ ३७
ययौ ज्वलन्नथ तदा यतो रुद्रो रथस्थितः ।
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥३८
निपेतुः सर्वतो दिग्भ्यो यतो हररथस्थितः ।
अथाग्नेयं महारौद्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३९
मुमोच रुषितो रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततो विशीर्णदेहास्ते चत्वारोऽपि समंततः ॥
नादृश्यन्त शरैश्छन्ना दह्यमानाश्च वह्निना ।
सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्वे एवासुरोत्तमाः ॥ ४१

गणसहस्रैर्वृत इति शेषः । देवस्य रथः शोभयन् दिशः इति-शेषः॥१९॥जटिलाश्च ऊर्ध्वशिरोरुहाश्चेति द्वन्द्वः २२ लग्नाः अन्योन्यसंसक्ताः भूमाविति शेषः॥२३॥ आभिमुखाः सादराः उन्मुखाः शत्रोरन्तरिक्षस्थत्वात् अभिमुखाश्च ते उन्मुखाश्चेति विग्रहः ॥ २६ ॥ पुच्छेन पुच्छप्रदेशम् इयुः ईयुः ॥३४॥

१ ख. °स्य सोऽभ्ययात् । के° । २ ख. °रार्द्रमहादं । ष्ट्रा महामांसव° । ३ ख. °यान्तं चाग्रणीर्हरः । हरिं विव्याध कुपितो नारा° । ४ ख. °णामित्रकर्षिणा । ह° । ५ ख. °ताः प्रस्तुतास्त° । ६ ख. °ति । न व° । ७ ख. °मुद्यन्तं ज्ञा° । ८ ख. °ह्यमानाः शराग्निना । सिं°

हतोऽयमिति विज्ञाय आग्नेयास्त्रेण वै तदा।
ततस्तद्विसहित्वाऽजो ह्यस्त्रमस्त्रविदां वरः॥
जग्राह वारुणं सोऽस्त्रं वासुदेवः प्रतापवान्।
प्रत्युक्ते वासुदेवेन वारुणास्त्रेऽतितेजसि॥४३
आग्नेयं प्रशमं यातमस्त्रं वारुणतेजसा।
तस्मिन्प्रतिहते त्वस्त्रे वासुदेवेन संयुगे॥ ४४
पैशाचं राक्षसं रौद्रं तथैवाङ्गिरसं भवः।
मुमोचास्त्राणि चत्वारि युगान्ताग्निनिभानि वै
वायव्यमथ सावित्रं वासवं मोहनं तथा।
अस्त्राणां वारणार्थाय वासुदेवो व्यमुञ्चत॥
अस्त्रैश्चतुर्भिश्चत्वारि वारयित्वाशु माधवः।
मुमोच वैष्णवं सोऽस्त्रं व्यादितास्यान्तकोपमम्
वैष्णवास्त्रे प्रयुक्ते तु सर्व एवासुरोत्तमाः।
भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः॥ ४८
दिशः सर्वाः प्राद्रवन्त भयमोहेन विक्लवाः।
प्रमाथगणभूयिष्ठे दीर्णे सैन्ये महासुरः॥ ४९
निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन्।
भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्यैश्च सुमहाबलैः।
वृतो महारथैर्वीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः॥ ५०

वैशम्पायन उवाच।
जपैश्च होमैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः।
स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान्
बलेः सुतो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्
विराजते तेन यथा धनेशः।
सहस्रसूर्यो बहुकिंकिणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदरत्नचित्रः॥ ५२
सहस्रचन्द्रायुततारकश्च
रथो महानग्निरिवावभाति।
तमास्थितो दानवसंगृहीतं
महाध्वजं कार्मुकधृक्स बाणः॥
उद्वर्तयिष्यन्यदुपुङ्गवाना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
स मन्युमान्वीररथौघसंकुलो
विनिर्ययौ तान्प्रति दैत्यसागरः॥
वातप्रवृद्धस्तु तरङ्गसंकुलो
यथाऽर्णवो लोकविनाशनाय।
भीमानि संत्रासकरैर्वपुर्भि-
स्तान्यग्रतो भान्ति बलानि तस्य
महारथान्युच्छ्रितकार्मुकाणि
सपर्वतानीव वनानि राजन्।
विनिःसृतः सागरतोयवासा-
दत्यद्भुतश्चाहवदृष्टुकामः *॥ ५६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुद्रकृष्णयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४॥

## ब्रह्मवाक्यात्कृष्णबाणयोर्युद्धनिवृत्तिः पितामहजिज्ञासया मार्कण्डेयकर्तृकं हरिहरमाहात्म्यकीर्तनं स्तवकथनं च।

## १२५

वैशम्पायन उवाच।
अन्धकारीकृते लोके प्रदीप्ते त्र्यम्बके तथा
न नन्दी नापि च रथो न रुद्रः प्रत्यदृश्यत
द्विगुणं दीप्तदेहस्तु रोषेण च बलेन च।
त्रिपुरान्तकरो बाणं जग्राह स चतुर्मुखः॥ २

---

विनिःसृतो बाणः सागरतोयवासात् समुद्रनिकटस्थानात् स्वस्थानात्॥ ५६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२४

१२५

अन्धकारीति॥ १॥ सचतुर्मुखः ब्रह्मणा सहितः सचतुर्मुखमिति पाठे बाणविशेषणं चतुर्धा शल्योपेतमित्यर्थः॥ २॥

---

१ ख. °तस्तु विषह्याजावस्त्र°। २ ख. °स्त्रे महात्मना। आं°। ३ ख. °त्वा महाबलः। जग्राह वै°। ४ ख. दैत्येन्द्रैः सु°। ५ ख. °श्च मन्त्रैश्च त°। ६ ख. °हाभुजः का°। ७ ख. स वेगवान्वी°। * श्लोकार्धमिदं खपुस्तके नास्ति। ८ ख. °करं बा°।

संदधत्कार्मुकं चैव क्षेप्तुकामस्त्रिलोचनः।
विज्ञातो वासुदेवेन चित्तज्ञेन महात्मना ॥ ३
जृम्भणं नाम सोऽप्यस्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः।
हरं संजृम्भयामास क्षिप्रकारी महाबलः ॥ ४
सशरः सधनुश्चैव हरस्तेनाशु जृम्भितः।
संज्ञां न लेभे भगवान्विजेताऽसुररक्षसाम्।
सशरं सधनुष्कं च दृष्ट्वात्मानं विजृम्भितम् ॥
बलोन्मत्तोऽथ बाणोऽसौ शर्वं चोदयतेऽसकृत्
ततो ननाद भूतात्मा स्निग्धगम्भीरया गिरा
प्रध्मापयामास तदा कृष्णः शङ्खं महाबलः।
पाञ्चजन्यस्य घोषेण शार्ङ्गविस्फूर्जितेन च
देवं विजृम्भितं दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र रुद्रस्य पार्षदा रणे ॥ ८
मायायुद्धं समाश्रित्य प्रद्युम्नं पर्यवारयन्।
सर्वांस्तु निद्रावशगान्कृत्वा मकरकेतुमान् ॥
दानवान्नाशयत्तत्र शरजालेन वीर्यवान्।
प्रमाथगणभूयिष्ठांस्तत्र तत्र महाबलान् ॥ १०
ततस्तु जृम्भमाणस्य देवस्याक्लिष्टकर्मणः।
ज्वाला प्रादुरभूद्वक्त्राद्दहन्तीव दिशो दश ११
ततस्तु धरणी देवी पीड्यमाना महात्मभिः।
ब्रह्माणं विश्वधातारं वेपमानाऽभ्युपागमत् ॥

पृथिव्युवाच।

देवदेव महाबाहो पीड्यामि परमौजसा।
कृष्णरुद्रभराक्रान्ता भविष्यैकार्णवा पुनः ॥
अविषह्यमिमं भारं चिन्तयस्व पितामह।
लघ्वीभूता यथा देव धारयेयं चराचरम् ॥१४
ततस्तु काश्यपीं देवीं प्रत्युवाच पितामहः।
मुहूर्तं धारयात्मानमाशु लघ्वी भविष्यसि ॥

वैशम्पायन उवाच।

दृष्ट्वा तु भगवान्ब्रह्मा रुद्रं वचनमब्रवीत्।
सृष्टो महासुरवधः किं भूयः परिरक्ष्यसे ॥१६
न च युद्धं महाबाहो तव कृष्णेन रोचते।
न च बुध्यसि कृष्णं त्वमात्मानं तु द्विधा कृतम्
ततः शरीरयोगाद्धि भगवानव्ययः प्रभुः।
प्रविश्य पश्य ते कृत्स्नांस्त्रींल्लोकान्सचराचरान्
प्रविश्य योगं योगात्मा वरांस्ताननुचिन्तयन्
द्वारवत्यां यदुक्तं च तदनुस्मृत्य सर्वशः।
जगाद नोत्तरं किंचिन्निवृत्तोऽसौ भवत्तदा ॥
आत्मानं कृष्णयोनिस्थं पश्यत ह्येकयोनिजम् ॥
ततो निःसृत्य रुद्रस्तु न्यस्तवादोऽभवन्मृधे ॥
ब्रह्माणं चाब्रवीद्रुद्रो न योत्स्ये भगवन्निति।
कृष्णेन सह संग्रामे लघ्वी भवतु मेदिनी ॥
ततः कृष्णोऽथ रुद्रश्च परिष्वज्य परस्परम्
परां प्रीतिमुपागम्य संग्रामादपजग्मतुः ॥ २३
न च तौ पश्यते कश्चिद्योगिनौ योगमागतौ ॥
एको ब्रह्म तथा कृत्वा पश्यँल्लोकान्पितामहः ॥
उवाचैतत्समुद्दिश्य मार्कण्डेयं सनारदम्।
पार्श्वस्थं परिपप्रच्छ ज्ञात्वा वै दीर्घदर्शिनम्

पितामह उवाच।

मन्दरस्य गिरेः पार्श्वे नलिन्यां भवकेशवौ
रात्रौ स्वप्नान्तरे ब्रह्मन्मया दृष्टौ हराच्युतौ ॥
हरं च हरिरूपेण हरिं च हररूपिणम्।
शंखचक्रगदापाणिं पीताम्बरधरं हरम् ॥२६

---

आत्मानं रुद्ररूपिणम् ॥ ५ ॥ भूतात्मा कृष्णः ॥ ६ ॥ एकार्णवा भविष्ये संधिरार्षः ॥ १३ ॥ ततो ब्रह्मोपदेशानन्तरं भगवान् रुद्रः शरीरेऽन्तर्योगः प्राणिधानं तस्मात् ध्यानेनेत्यर्थः। प्रविश्य हार्दं ब्रह्मेति शेषः ॥ १८ ॥ कृष्णयोनिस्थं कृष्णस्य फलोपमस्य योनेः कारणं भूमिस्थानीयं शुद्धं परं ब्रह्म। कृष्णम् आत्मानं च शुद्धब्रह्मैकतां गतं युगपत् पश्यत उभयोरैक्ययोनित्वमपश्यत्। ततः स्वप्रत्ययगात्मना सह स्वस्य विरोधासंभवात् रुद्रो मृधे युद्धविषये न्यस्तवादोऽपास्तप्रतिज्ञो बभूव ॥ २० ॥ तदेवाह-**ब्रह्माणं चेति** ॥ २१ ॥ तथा कृत्वा रुद्रकृष्णयोर्योगं संपाद्य पश्यन्नवतस्थे इति शेषः ॥ २३ ॥ एतद्वक्ष्यमाणं हरिरुद्रयोरभेदमुवाच ॥ २४ ॥ **मन्दरस्येति**। अत्र द्वयोः सर्वोत्तमत्वायोगादन्यतरो जीव इतर ईश्वरस्तयोश्चाभेदः प्रतिपाद्यते। अन्योन्यलक्षणयोगित्वेनेति केचित्। तत्रापि हरिणा जितो हरो जीव इत्येके। हराल्लब्धवरो हरिर्हरं जितवानत्वैश्वर्यादित्यन्ये। मानुषनाट्यानुकारित्वेन हरमाराधयन्नपि ऐश्वर्यात्तं जेतुं समर्थः एवं कृष्ण इत्यपि कश्चित्। एतेषां पाखण्डापसदानां मुखभङ्गायेयं कथा प्रवृत्ता। ब्रह्मन्निति मार्कण्डेयस्य नारदस्य संबोधनम् ॥२५॥ **हरं चेति**। अत्र हरिहरयोस्तात्त्विकेऽभेदे सत्यपि नटमिव हरं हरिरूपेणापश्यदिति योजनायां ब्रह्मणः भ्रान्तत्वमायाति, अतः कायव्यूहयोगिशरीरयोगि-

---

१ ख. °क्ष्यते। न। २ ख. °तो ह्यभव°।

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मधरं हरिम् ।
गरुडस्थं चापि हरं हरिं च वृषभध्वजम् २७
विस्मयो मे महान्ब्रह्मन्दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ।
एतदाचक्ष्व भगवन्याथातथ्येन सुव्रत ॥ २८

मार्कण्डेय उवाच ।

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे
यथाऽन्तरं न पश्यामि तेन तौ दिशतः शिवम्
अनादिमध्यनिधनमेतदक्षरमव्ययम् ।
तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरिहरात्मकम् ॥ ३०
यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयंभुवः ।
अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः ॥
यथा जले जलं क्षिप्तं जलमेव तु तद्भवेत् ।
रुद्रं विष्णुः प्रविष्टस्तु तथा रुद्रमयो भवेत् ३३
अग्निमग्निः प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत् ।
तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत्
रुद्रमग्निमयं विद्याद्विष्णुः सोमात्मकः स्मृतः ।
अग्नीषोमात्मकं चैव जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३५
कर्तारौ चापहर्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु ।
जगतः शुभकर्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरौ ॥ ३६
कर्तृकारणकर्तारौ कर्तृकारणकारकौ ।
भूतभव्यभवौ देवौ नारायणमहेश्वरौ ॥ ३७
[ जगतः पालकावेतावेतौ सृष्टिकरौ स्मृतौ ]
एते चैव प्रवर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च
एतत्परतरं गुह्यं कथितं ते पितामह ॥ ३८
यश्चैनं पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयान्नरः ।
प्राप्नोति परमं स्थानं विष्णुरुद्रप्रसादजम् ॥
देवौ हरिहरौ स्तोष्ये ब्रह्मणा सह संगतौ ।
एतौ च परमौ देवौ जगतः प्रभवाप्ययौ ॥४०
रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः
एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः ४१
न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा ।
नमो रुद्राय कृष्णाय नमः संहतचारिणे ॥
नमः षडर्धनेत्राय सद्विनेत्राय वै नमः ।
नमः पिङ्गलनेत्राय पद्मनेत्राय वै नमः ॥ ४३
नमः कुमारगुरवे प्रद्युम्नगुरवे नमः ।
नमो धरणीधराय गङ्गाधराय वै नमः ॥ ४४
नमो मयूरपिच्छाय नमः केयूरधारिणे ।
नमः कपालमालाय वनमालाय वै नमः ॥४५
नमस्त्रिशूलहस्ताय चक्रहस्ताय वै नमः ।
नमः कनकदण्डाय नमस्ते ब्रह्मदण्डिने ॥ ४६
नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे ।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः४७
नमः खट्वांगधाराय नमो मुसलधारिणे ।
नमो भस्माङ्गरागाय नमः कृष्णाङ्गधारिणे ॥
नमः श्मशानवासाय नमः सागरवासिने ।
नमो वृषभवाहाय नमो गरुडवाहिने ॥ ४९
नमस्त्वनेकरूपाय बहुरूपाय वै नमः ।
नमः प्रलयकर्त्रे च नमस्त्रैलोक्यधारिणे ॥ ५०
नमोऽस्तु सौम्यरूपाय नमो भैरवरूपिणे ।
विरूपाक्षाय देवाय नमः सौम्येक्षणाय च ॥
दक्षयज्ञविनाशाय बलेर्नियमनाय च ।
नमः पर्वतवासाय नमः सागरवासिने ॥ ५२
नमः सुररिपुघ्नाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ।
नमोऽस्तु नरकघ्नाय नमः कामाङ्गनाशिने ५३
नमस्त्वन्धकनाशाय नमः कैटभनाशिने ।
नमः सहस्रहस्ताय नमोऽसंख्येयबाहवे ॥ ५४
नमः सहस्रशीर्षाय बहुशीर्षाय वै नमः ।
दामोदराय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः ॥ ५५
नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते भगवञ्छिव ।
नमस्ते भगवन् देव नमस्ते देवपूजित ॥ ५६
नमस्ते सामभिर्गीत नमस्ते यजुर्भिः सह ।
नमस्ते सुरशत्रुघ्न नमस्ते सुरपूजित ]
नमस्ते कर्मिणां कर्म नमोऽमितपराक्रम ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु स्वर्णकेश नमोऽस्तु ते

व्यवहारतो हरिहरसंज्ञयोर्देहयोर्भेदेऽपि तदभिमानिनि भेदो नास्ति । सर्वोत्तमद्वयायोगादित्यर्थः । व्यावहारिकभेदवतो- स्तद्देहयोरपि भेदं नापश्यमित्याह—शङ्खेति । य एव हरित्वेन प्रागवगतः स एव सद्यो हरत्वेन दृष्ट एवं पक्षा- न्तरेऽपीत्यर्थः ॥ २६ ॥ एतत् हरिहरयोरभेदम् आचक्ष्व लोके प्रकाशय ॥२८॥ दिशतः दिशानाम् ॥२९॥ अग्नी- षोमात्मकं भोक्तृभोज्यात्मकम् ॥ ३५ ॥ कर्ता हिरण्यगर्भः कारणानि महाभूतानि तेषां कारकौ तेषां कर्तारौ च ॥ ३७ ॥ एते ब्रह्मविष्णुरुद्राः प्रवर्षन्ति पर्जन्यरूपेण, वा- न्ति वायुरूपेण । भान्ति सूर्यरूपेण एतद्देवतात्रयात्मकम्

१ ख. °स्ते कर्मणां क° ।

इमं स्तवं यो रुद्रस्य विष्णोश्चैव महात्मनः
समेत्य ऋषिभिः सर्वैः स्तुतौ स्तौति महर्षिभिः
व्यासेन वेदविदुषा नारदेन च धीमता ।
भारद्वाजेन गर्गेण विश्वामित्रेण वै तथा ॥ ५९
अगस्त्येन पुलस्त्येन धौम्येन तु महात्मना ।
य इदं पठते नित्यं स्तोत्रं हरिहरात्मकम्॥६०
अरागा बलवांश्चैव जायते नात्र संशयः ।
श्रियं च लभते नित्यं न च स्वर्गान्निवर्तते ६१
अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ।
गुर्विणी शृणुते या तु वरं पुत्रं प्रसूयते ॥६२
राक्षसाश्च पिशाचाश्च विघ्नानि च विनायकः
भयं तत्र न कुर्वन्ति यत्रायं पठ्यते स्तवः ॥६३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हरिहरात्मकस्तवो नाम
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## कार्तिकेयापयानं, बाणबाहुच्छेदनं, बाणस्य हराद्वरलाभादिकीर्तनं च ।

## १२६

जनमेजय उवाच ।
अपयाते ततो देवे कृष्णे चैव महात्मनि ।
पुनश्चासीत्कथं युद्धं परेषां लोमहर्षणम् ॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच ।
कुम्भाण्डसंगृहीते तु रथे तिष्ठन्गुहस्तदा ।
अभिदुद्राव कृष्णं च बलं प्रद्युम्नमेव च ॥ २
ततः शरशतैरुग्रैस्तान्विव्याध रणे गुहः ।
अमर्षरोषसंक्रुद्धः कुमारः प्रवरो नदन् ॥ ३
शरसंवृतगात्रास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः ।
शोणितौघप्लुतैर्गात्रैः प्रायुध्यन्त गुहं ततः॥४
ततस्ते युद्धमार्गज्ञास्त्रयस्त्रिभिरनुत्तमैः ।
वायव्याग्नेयपार्जन्यैर्बिभिदुर्दीप्ततेजसः ॥ ५
[तानस्त्रान् त्रिभिरेवास्त्रैर्विनिवार्य स पावकिः]
शैलवारुणसावित्रैस्तान्स विव्याध कोपवान्
तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ६
शरौघानस्त्रमायाभिर्ग्रसन्ति स्म महात्मनः ।
यदा तदा गुहः क्रुद्धः प्रज्वलन्निव तेजसा ॥ ७
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम कालकल्पं दुरासदम् ।
संदष्टौष्ठपुटः संख्ये जगृहे पावकिः प्रभुः ॥ ८
प्रयुक्ते ब्रह्मशिरसि सहस्रांशुसमप्रभे ।
उग्रे परमदुर्धर्षे लोकक्षयकरे तथा ॥ ९
हाहाभूतेषु सर्वेषु प्रधावत्सु समंततः ।
[ अस्त्रतेजःप्रमूढे तु विषण्णे जगति प्रभुः ]
केशवः केशिमथनश्चक्रं जग्राह वीर्यवान् ॥१०
सर्वेषामस्त्रवीर्याणां वारणं घातनं तथा ।
चक्रमप्रतिचक्रस्य लोके ख्यातं महात्मनः॥११
अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तेन निष्प्रभं कृतमोजसा ।
घनैरिवातपापाये सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १२
ततो निष्प्रभतां याते नष्टवीर्ये महौजसि ।
तस्मिन्ब्रह्मशिरस्यस्त्रे क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३
गुहः प्रजज्वाल रणे हविषेवाग्निरुल्बणः ।
शत्रुघ्नीं ज्वलितां दिव्यां
शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ॥ १४
[ अमोघां दयितां घोरां सर्वलोकभयावहाम् ]
तां प्रदीप्तां महोल्काभां युगान्ताग्निसमप्रभाम्
घण्टामालाकुलां दिव्यां चिक्षेप रुषितो गुहः
ननाद बलवच्चापि नादं शत्रुभयंकरम् ॥ १५
सा च क्षिप्ता तदा तेन ब्रह्मण्येन महात्मना ।
जृम्भमाणेव गगने संप्रदीप्तमुखी तदा ॥ १६
आधावत महाशक्तिः कृष्णस्य वधकांक्षिणी ।
भृशं विषण्णः शक्रोऽपि सर्वामरगणैर्वृतः १७
शक्तिं प्रज्वलितां दृष्ट्वा दग्धः कृष्णेति चाब्रवीत्
तां समीपमनुप्राप्तां महाशक्तिं महामृधे ॥ १८
हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले ॥ १९

॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

१२६
अपयातेति ॥ १ ॥

१ ख. ॰ण वसिष्ठेन महात्मना । विश्वामित्रेणवात्स्येन तथा चैव सुमन्तुना अ॰ २ ख. ॰श्च भूतानि च वि॰ ।

पतितायां महाशक्त्यां साधुसाध्विति सर्वशः
सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्वे देवाः सवासवाः २०
ततो देवेषु नर्दत्सु वासुदेवः प्रतापवान्।
पुनश्चक्रं स जग्राह दैत्यान्तकरणं रणे ॥ २१
व्याविध्यमाने चक्रे तु कृष्णेनाप्रतिमौजसा।
कुमाररक्षणार्थाय बिभ्रती सुतनुं तदा ॥ २२
दिग्वासा देववचनात्प्रविष्टा तत्र कोटवी।
लम्बमाना महाभागा भागो देव्यास्तथाऽष्टमः
चित्रा कनकशक्तिस्तु सा च नग्ना स्थितान्तरे
अथान्तरात्कुमारस्य देवीं दृष्ट्वा महाभुजः।
पराङ्मुखस्ततो वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥२४

श्रीभगवानुवाच।

अपगच्छापगच्छ त्वं
धिक्त्वामिति वचोऽब्रवीत्।
किमेवं कुरुषे विघ्नं
निश्चितस्य वधं प्रति ॥ २५

वैशम्पायन उवाच।

श्रुत्वैवं वचनं तस्य कोटवी तु तदा विभोः
नैव वासः समाधत्त कुमारपरिरक्षणात् ॥२६

श्रीभगवानुवाच।

अपवाह्य गुहं शीघ्रमपयाहि रणाजिरात्।
स्वस्ति ह्येवं भवेदद्य योत्स्यतो योत्स्यता मया
तां च दृष्ट्वा स्थितां देवो हरिः संग्राममूर्धनि
संजहार ततश्चक्रं भगवान्वासवानुजः ॥ २८
एवं कृते तु कृष्णेन देवदेवेन धीमता।
अपवाह्य गुहं देवी हरसान्निध्यमागता ॥ २९
एतस्मिन्नन्तरे चैव वर्तमाने महाभये ।
कुमारे रक्षिते देव्या बाणस्तं देशमाययौ ३०
अपयान्तं गुहं दृष्ट्वा मुक्तं कृष्णेन संयुगात्।
बाणश्चिन्तयते तत्र स्वयं योत्स्यामि माधवम्

वैशम्पायन उवाच।

भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः।
दिशं प्रदुद्रुवुः सर्वे भयमोहितलोचनाः ॥ ३२
प्रमाथगणभूयिष्ठे सैन्ये दीर्णे महासुरः।
निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन्
भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्येन्द्रैः सुमहारथैः
महाबलैर्महावीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः ॥ ३४

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्त-
स्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः।
जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः ॥ ३५
ततस्तूर्यप्रणादैश्च भेरीणां तु महास्वनैः।
सिंहनादैश्च दैत्यानां बाणः कृष्णमभिद्रवत् ॥
दृष्ट्वा बाणं तु निर्यातं युद्धायैव व्यवस्थितम्।
आरुह्य गरुडं कृष्णो बाणायाभिमुखो ययौ ॥
आयान्तमथ तं दृष्ट्वा यदूनामृषभं रणे।
वैनतेयमथारूढं कृष्णमप्रतिमौजसम् ॥ ३८
अथ बाणस्तु तं दृष्ट्वा प्रमुखे प्रत्युपस्थितम् ।
उवाच वचनं क्रुद्धो वासुदेवं तरस्विनम् ॥ ३९

बाण उवाच।

तिष्ठ तिष्ठ न मेऽद्य त्वं जीवन्प्रतिगमिष्यसि
द्वारकां द्वारकास्थांश्च सुहृदो द्रक्ष्यसे न च४०
सुवर्णवर्णान्वृक्षाग्रानद्य द्रक्ष्यसि माधव।
मयाऽभिभूतः समरे मुमूर्षुः कालनोदितः ४१
अद्य बाहुसहस्रेण कथमष्टभुजो रणे।
मया सह समागम्य योत्स्यसे गरुडध्वज ४२
अद्य त्वं वै मया युद्धे निर्जितः सहबान्धवः।
द्वारकां शोणितपुरे निहतः संस्मरिष्यसि ॥४३
नानाप्रहरणोपेतं नानाङ्गदविभूषितम्।
अद्य बाहुसहस्रं मे कोटिभूतं निशामय ॥ ४४
गर्जतस्तस्य वाक्यौघा जलौघा इव सिन्धुतः
निश्चरन्ति महाघोरा वातोद्धूता इवोर्मयः ॥
रोषपर्याकुले चैव नेत्रे तस्य बभूवतुः।
जगद्दिधक्षन्निव खे महासूर्य इवोदितः ॥ ४६
तच्छ्रुत्वा नारदस्तस्य बाणस्यात्यूर्जितं वचः
जहास सुमहाहासं भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥
योगपट्टमुपाश्रित्य तस्थौ युद्धदिदृक्षया।
कौतूहलोत्फुल्लदृशः कुर्वन्पर्यटते मुनिः ॥ ४८

कृष्ण उवाच।

बाण किं गर्जसे मोहाच्छूराणां नास्ति गर्जितम्
एह्येहि युध्यस्व रणे किं वृथा गर्जितेन ते ॥
यदि युद्धानि वचनैः सिद्ध्येयुर्दितिनन्दन।
भवानेव जये नित्यं बहुबद्धं प्रजल्पति ॥ ५०

---

लम्बते पार्वत्या एवाष्टमांशाजाता बाणस्य माता जीवपुत्री-त्वमेव इति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ २३ ॥ रक्षणात् रक्षणार्थम् ॥ २६ ॥ मया सह योत्स्यतो युध्यतः एवं स्वस्ति भवेत् ॥२७॥ कोटिभूतं कोटिसंख्यातव्याप्तम् ॥ ४४ ॥

एह्येहि जय मां बाण जितो वा वसुधातले।
चिरायावाङ्मुखो दीनः पतितः शेष्यसेऽसुरैः
इत्येवमुक्त्वा बाणं तु मर्मभेदिभिराशुगैः।
निर्बिभेद तदा कृष्णस्तममोघैर्महाशरैः॥ ५२
विनिर्भिन्नस्तु कृष्णेन मार्गणैर्मर्मभेदिभिः।
स्मयन्बाणस्ततः कृष्णं शरवर्षैरवाकिरत्॥
ज्वलद्भिरिव संयुक्तं तस्मिन्युद्धे सुदारुणे।
ततः परिघनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः॥ ५४
मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास केशवम्।
स तु बाहुसहस्रेण गर्वितो दैत्यसत्तमः॥ ५५
योधयामास समरे द्विबाहुमथ लीलया।
लाघवात्तस्य कृष्णस्य बलिसूनू रुषान्वितः॥
ततोऽस्त्रं परमं दिव्यं तपसा निर्मितं महत्।
यदप्रतिहतं युद्धे सर्वामित्रविनाशनम्॥ ५७
ब्रह्मणा विहितं दिव्यं तन्मुमोच दितेः सुतः
तस्मिन्मुक्ते दिशः सर्वास्तमः पिहितमण्डलाः
प्रादुरासन्सहस्राणि सुघोराणि च सर्वशः।
तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन॥५९
साधु साध्विति बाणं तु पूजयन्ति स्म दानवाः
हा हा धिगिति देवानां श्रूयते वागुदीरिता॥
ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः।
घोररूपा महाघोरा निपेतुर्बाणवृष्टयः॥ ६१
नैव वाताः प्रवायन्ति न मेघाः संचरन्ति च।
अस्त्रे विसृष्टे बाणेन दह्यमाने च केशवे॥ ६२
ततोऽस्त्रं सुमहावेगं जग्राह मधुसूदनः।
पार्जन्यं नाम भगवान्कालान्तकनिभं रणे॥
ततो वितिमिरे लोके शराग्निः प्रशमं गतः।
दानवा मोघसंकल्पाः सर्वेऽभूवंस्तदा भृशम्
दानवास्त्रं प्रशान्तं तु पर्जन्यास्त्रेऽभिमन्त्रिते।
ततो देवगणाः सर्वे नदन्ति च हसन्ति च॥
हते शस्त्रे महाराज दैतेयः क्रोधमूर्छितः।
भूयः स छादयामास केशवं गरुडे स्थितम्॥
मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास केशवम्।
तस्य तां तरसा सर्वां बाणवृष्टिं समुद्यताम्॥
प्रहसन्वारयामास केशवः शत्रुसूदनः।
केशवस्य तु बाणेन वर्तमाने महाहवे॥ ६८

तस्य शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैरशनिसंनिभैः।
तिलशस्तद्रथं चक्रे साश्वध्वजपताकिनम्॥
चिच्छेद कवचं कायान्मुकुटं च महाप्रभम्।
कार्मुकं च महातेजा हस्तचापं च केशवः॥
विव्याध चैनमुरसि नाराचेन स्मयन्निव।
स मर्माभिहतः संख्ये प्रमुमोहाल्पचेतनः॥७१
तं दृष्ट्वा मूर्छितं बाणं प्रहारपरिपीडितम्।
प्रासादवरशृंगस्थो नारदो मुनिपुंगवः॥ ७२
उत्थायापश्यत तदा कक्ष्यास्फोटनतत्परः।
वादयानो नखांश्चैव दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत्
अहो मे सुफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्
दृष्टं मे यदिदं चित्रं दामोदरपराक्रमम्॥ ७४
जय बाणं महाबाहो दैतेयं देवकिल्बिषम्।
यदर्थमवतीर्णोऽसि तत्कर्म सफलीकुरु॥ ७५
एवं स्तुत्वा तदा देवं बाणैः खं द्योतयञ्छितैः
इतस्ततः संपतद्भिर्नारदो ह्यचरद्रणे॥ ७६
[ केशवस्य तु बाणेन वर्तमाने महाभये ]
प्रयुध्येतां ध्वजौ तत्र तावन्योन्यमभिद्रुतौ।
युद्धं त्वभूद्वाहनयोरुभयोर्देवदैत्ययोः॥ ७७
गरुडस्य च संग्रामो मयूरस्य च धीमता।
पक्षतुण्डप्रहारैस्तु चरणास्यनखैस्तथा॥ ७८
अन्योन्यं जघ्नतुः क्रुद्धौ मयूरगरुडावुभौ।
वैनतेयस्ततः क्रुद्धो मयूरं दीप्ततेजसम्॥ ७९
जग्राह शिरसि क्षिप्रं तुण्डेनाभिपतंस्तदा।
उत्क्षिप्य चैव पक्षाभ्यां निजघान महाबलः॥

पद्भ्यां पार्श्वाभिघाताभ्यां
कृत्वा घातान्यनेकशः।
आकृष्य चैनं तरसा
विकृष्य च महाबलः॥

निःसंज्ञं पातयामास गगनादिव भास्करम्।
मयूरे पतिते तस्मिन्पपाततिबलो भुवि॥ ८२
बाणः समरसंविग्नश्चिन्तयन्कार्यमात्मनः।
मयाऽतिबलमत्तेन न कृतं सुहृदां वचः॥ ८३
पश्यतां देवदैत्यानां प्राप्तोऽस्म्यापदमुत्तमाम्
तं दीनमनसं ज्ञात्वा रणे बाणं सुविक्लवम्॥

असुरैः सहेति शेषः॥ ५१॥

१ ख. ॰ष्यतेऽसुरैः। इ॰। २ ख. ॰तं पूर्वं त॰। ३ ख. ॰नां चरते वा॰। ४ ख. ॰हावेगा नि॰। ५ ख. ॰के स चाग्निः प्र॰ ६ ख. ॰यः संचोदया॰। ७ ख. ॰वपूजितम्। य॰।

चिन्तयद्भगवान्रुद्रो बाणरक्षणमातुरः ।
ततो नन्दीं महादेवः प्राह गम्भीरया गिरा ८५
नन्दिकेश्वर याहि त्वं यतो बाणो रणे स्थितः
रथेनानेन दिव्येन सिंहयुक्तेन भास्वता ॥ ८६
बाणे संयोजयाशु त्वमलं युद्धाय वाऽनघ ।
प्रमाथगणमध्येऽहं स्थास्यामि न हि मे मनः॥
योद्धुं वितरते ह्यद्य बाणं संरक्ष्य गम्यताम् ।
तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी रथेन रथिनां वरः८८
यतो बाणस्ततो गत्वा बाणमाह शनैरिदम् ।
दैत्याशु रथमातिष्ठ शीघ्रमेहि महाबल ॥ ८९
ततो युध्यस्व कृष्णं वै दानवान्तकरं रणे ।
आरुरोह रथं बाणो महादेवस्य धीमतः ॥ ९०
आरूढः स तु बाणश्च तं रथं ब्रह्मनिर्मितम् ।
तं स्यन्दनमधिष्ठाय भवस्यामिततेजसः॥ ९१
प्रादुश्चक्रे महारौद्रमस्त्रं सर्वास्त्रघातनम् ।
दीप्ते ब्रह्मशिरो नाम बाणः क्रुद्धोऽतिवीर्यवान्
प्रदीप्ते ब्रह्मशिरसि लोकः क्षोभमुपागमत् ।
लोकसंरक्षणार्थं वै तत्सृष्टं ब्रह्मयोनिना ॥ ९३
तच्चक्रेण निहत्यास्त्रं प्राह कृष्णस्तरस्विनम् ।
लोके प्रख्यातयशसं बाणमप्रतिमं रणे ॥ ९४
कथितानि क्व ते तात बाण किं न विकत्थसे ।
अयमस्मि स्थितो युद्धे युद्ध्यस्व पुरुषो भव ॥
कार्तवीर्यार्जुनो नाम पूर्वं बाहुसहस्रवान् ।
महाबलः स रामेण द्विबाहुः समरे कृतः ।
तथा तवापि दर्पोऽयं बाहूनां वीर्यसंभवः ९६
एष ते दर्पशमनं करोमि रणमूर्द्धनि ।
यावत्ते दर्पशमनं करोम्यद्य स्वबाहुना ॥ ९७
तिष्ठेदानीं न मेऽद्य त्वं मोक्ष्यसे रणमूर्द्धनि ।
अथ तद्दुर्लभं दृष्ट्वा युद्धं परमदारुणम् ॥ ९८
तत्र देवासुरसमे युद्धे नृत्यति नारदः ।
निर्जिताश्च गणाः सर्वे प्रद्युम्नेन महात्मना ९९
निक्षिप्तवादा युद्धस्य देवदेवं गताः पुनः ।
स तच्चक्रं सहस्रारं नदन्मेघ इवोष्णगे ॥ १००
जग्राह कृष्णस्त्वरितो बाणान्तकरणं रणे ।
तेजो यज्ज्योतिषां चैव तेजो वज्राशनेस्तथा१
सुरेशस्य च यत्तेजस्तच्चक्रे पर्यवस्थितम् ।
त्रेताग्नेश्चैव यत्तेजो यच्च वै ब्रह्मचारिणाम् ॥ २
ऋषीणां च ततो ज्ञानं तच्चक्रे समवस्थितम् ।
पतिव्रतानां यत्तेजः प्राणाश्च मृगपक्षिणाम् ३
यच्च चक्रधरेष्वस्ति तच्चक्रे संनिवेशितम् ।
नागराक्षसयक्षाणां गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ ४
त्रैलोक्यस्य च यत्प्राणं सर्वं चक्रे व्यवस्थितम्
तेजसा तेन संयुक्तं ज्वलन्निव च भास्करः ५
वपुषा तेज आधत्ते बाणस्य प्रमुखे स्थितम् ।
ज्ञात्वाऽतितेजसा चक्रं कृष्णेनाभ्युदितं रणे
अप्रमेयं ह्यविहतं रुद्राणी चाब्रवीच्छिवम् ।
अजेयमेतत् त्रैलोक्ये चक्रं कृष्णेन धार्यते ७
बाणं त्रायस्व देव त्वं यावच्चक्रं न मुञ्चति ।
ततस्त्र्यक्षो वचः श्रुत्वा देवीं लम्बामथाब्रवीत्
गच्छैहि लम्बे शीघ्रं त्वं बाणसंरक्षणं प्रति ।
ततो योगं समाधाय अदृश्या हिमवत्सुता ९
कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शन्ती पार्श्वमागता ।
चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा भगवन्तं रणाजिरे ॥ ११०
अन्तर्धानमुपागम्य त्यज्य सा वाससी पुनः ।
परित्राणाय बाणस्य विजयाधिष्ठिता ततः
प्रमुखे वासुदेवस्य दिग्वासाः कोटवी स्थिता
तां दृष्ट्वाऽथ पुनः प्राप्तां देवीं रुद्रस्य संमताम्
लम्बां द्वितीयां तिष्ठन्तीं कृष्णो वचनमब्रवीत्
भूयः सामर्षताम्राक्षी दिग्वस्त्रावस्थिता रणे
बाणसंरक्षणपरा हन्मि बाणं न संशयः ।
एवमुक्ता तु कृष्णेन भूयो देव्यब्रवीदिदम् ॥ १४
जाने त्वां सर्वभूतानां स्रष्टारं पुरुषोत्तमम् ।
महाभागं महादेवमनन्तं लीनमव्ययम् ॥ १५
पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसंभवम् ।
नार्हसे देव हन्तुं वै बाणमप्रतिमं रणे ॥ १६
प्रयच्छ ह्यभयं बाणे जीवपुत्रीत्वमेव च ।
मया दत्तवरो ह्येष भूयश्च परिरक्ष्यते ॥ १७
न मे मिथ्या समुद्योगं कर्तुमर्हसि माधव ।
एवमुक्ते तु वचने देव्या परपुरंजयः ॥ १८
कृष्णः प्रभाषते वाक्यं शृणु सत्यं तु भामिनि
बाणो बाहुसहस्रेण नर्दते दर्पमाश्रितः ॥ १९
एतेषां छेदनं त्वद्य कर्तव्यं नात्र संशयः ।
द्विबाहुना च बाणेन जीवपुत्री भविष्यसि ॥

प्राणं बलम् ॥ ५ ॥

१ ख. °द्धं प्रभवते ह्य° । २ ख. कत्थितानि क्व ते तानि बा° । ३ ख. °क्रे प्रतिष्ठित° । ४ ख. क्रुद्धः प्र° ।

आसुरं दर्पमाश्रित्य न च मां संश्रयिष्यति ।
एवमुक्ते तु वचने कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २१
प्रोवाच देवी बाणोऽयं देवदत्तो भवेदिति ।
अथ तां कार्तिकेयस्य मातरं सोऽभिभाष्य वै
[ततः क्रुद्धो महाबाहुः कृष्णः प्रवदतां वरः]
प्रोवाच बाणं समरे वदतां प्रवरः प्रभुः ।
युध्यतां युध्यतां संख्ये भवतां कोटवी स्थिता
अशक्तानामिव रणे धिग्बाण तव पौरुषम् ।
एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्तच्चक्रं परमात्मवान्
निमीलिताक्षो व्यसृजद्बाणं प्रति महाबलः
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यांति महामृध ।
तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥ २६
चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः ।
स मुष्णन्दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा २७
चिच्छेद बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः परमौजसा ।
अलातचक्रवत्तूर्णं भ्राम्यमाणं रणाजिरे ॥ २८
*क्षिप्तं तु वासुदेवेन बाणस्य रणमूर्द्धनि ।
विष्णुचक्रं भ्रमत्याशु शैघ्याद्रूपं न दृश्यते २९
तस्य बाहुसहस्रस्य पर्यायेण पुनः पुनः ।
बाणस्य च्छेदनं चक्रे तच्चक्रं रणमूर्द्धनि १३०
कृत्वा द्विबाहुं तं बाणं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।
पुनः कराग्रे कृष्णस्य चक्रं प्राप्तं सुदर्शनम् ३१

वैशम्पायन उवाच ।

कृतकृत्ये तु संप्राप्ते चक्रे दैत्यनिपातने ।
स्रवता तेन कायेन शोणितौघपरिप्लुतः ॥ ३२
अभवत्पर्वताकारश्छिन्नबाहुर्महासुरः ।
असृङ्मत्तश्च विविधान्नादान्मुञ्चन्घनो यथा
तस्य नादेन महता केशवो रिपुसूदनः ।
चक्रं भूयः क्षेप्तुकामो बाणनाशार्थमुद्यतः ।
तमुपेत्य महादेवः कुमारसहितोऽब्रवीत् ॥ ३४

ईश्वर उवाच ।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम्
मधुकैटभहन्तारं देवदेवं सनातनम् ॥ ३५
लोकानां त्वं गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत् ।
अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुरपन्नगैः ॥३६
तस्मात्संहर दिव्यं त्वमिदं चक्रं समुद्यतम् ।
अनिवार्यमसंहार्यं रणे शत्रुभयंकरम् ॥ ३७
बाणस्यास्याभयं दत्तं मया केशिनिषूदन ।
तन्मे न स्याद्वृथा वाक्यमतस्त्वां क्षामयाम्यहम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

जीवतां देव बाणोऽयमेतच्चक्रं निवर्तितम् ।
मान्यस्त्वं देवदेवानामसुराणां च सर्वशः
नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि यत्कार्यं तन्महेश्वर ।
न तावत्क्रियते तस्मान्मामनुज्ञातुमर्हसि १४०
एवमुक्त्वा महादेवं कृष्णस्तूर्णं महामनाः ।
जगाम तत्र यत्रास्ते प्राद्युम्निः सायकैश्चितः ॥
गते कृष्णे ततो नन्दी बाणमाह वचः शुभम् ।
गच्छ बाण प्रसन्नस्य देवदेवस्य चाग्रतः ॥ ४२
तच्छ्रुत्वा नन्दिवाक्यं तु बाणोऽगच्छत शीघ्रगः
छिन्नबाहुं ततो बाणं दृष्ट्वा नन्दी प्रतापवान् ॥
अपवाह्य रथेनैनं यतो देवस्ततो ययौ ।
ततो नन्दी पुनर्बाणं प्रागुवाचोत्तरं वचः ॥ ४४
बाण बाण प्रनृत्यस्व श्रेयस्तव भविष्यति ।
एष देवो महादेवः प्रसादसुमुखस्तव ॥ ४५
शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नन्दिवाक्यप्रचोदितः ।
जीवितार्थी ततो बाणः प्रमुखे शंकरस्य वै ॥
अनृत्यद्भयसंविग्नो दानवः स विचेतनः ।
तं दृष्ट्वा च प्रनृत्यन्तं भयोद्विग्नं पुनः पुनः ४७
नन्दिवाक्यप्रजवितं भक्तानुग्रहकृद्भवः ।
करुणावशमापन्नो महादेवोऽब्रवीद्वचः ॥ ४८

ईश्वर उवाच ।

वरं वृणीष्व बाण त्वं मनसा यदभीप्ससि
प्रसादसुमुखस्तेऽहं प्रियोऽसि मम दानव ॥४९

बाण उवाच ।

अजरश्चामरश्चैव भवेयं सततं विभो ।
एष मे प्रथमो देव वरोऽस्तु यदि मन्यसे ॥ ५०

देव उवाच ।

तुल्योऽसि दैवतैर्बाण न मृत्युस्तव विद्यते ।
अथापरं वृणीष्वाद्य अनुग्राह्योऽसि मे सदा ॥

---

भवतां रक्षणार्थम् ॥ २३ ॥ यत्कार्यं बाणवधाख्यं तन्न क्रियत इत्यन्वयः ॥ १४० ॥

---

* 'बाणस्य रथमार्गे च द्वितीय इव भास्करः' इत्यधिकं खे । १ ख. °र्थमच्युतः । त° । २ ख. °र्णं गरुत्मता । ज° ।

बाण उवाच।

यथाऽहं शोणितैर्दिग्धो भृशार्तो व्रणपीडितः

भक्तानां नृत्यतां देव पुत्रजन्म भवेद्भव॥ ५२

श्रीहर उवाच।

निराहाराः क्षमावन्तः सत्यार्जवसमाहिताः

मद्भक्ता येऽपि नृत्यन्ति तेषामेवं भविष्यति

तृतीयं त्वमथो बाण वरं वर मनोगतम्।

तद्विधास्यामि ते पुत्र सफलोऽस्तु भवानिह॥

बाण उवाच।

चक्रताडनजा घोरा रुजा तीव्रा हि मेऽनघ

वरेणासौ तृतीयेन शान्तिं गच्छतु मे भव ५५

श्रीरुद्र उवाच।

एवं भवतु भद्रं ते न रुजा प्रभविष्यति।

अक्षतं तव गात्रं तु स्वस्थावस्थं भविष्यति॥

चतुर्थं ते वरं दद्मि वृणीष्व यदि काङ्क्षसि।

न तेऽहं विमुखस्तात प्रसादसुमुखो ह्यहम्॥५७

बाण उवाच।

प्रमाथगणवंश्यस्य प्रथमः स्यामहं विभो।

महाकाल इति ख्यातिं गच्छेयं शाश्वती समाः

वैशम्पायन उवाच।

एवं भविष्यतीत्याह बाणं देवो महेश्वरः।

दिव्यरूपोऽक्षतो गात्रैर्नीरुजस्तु ममाश्रयात्॥

ममातिसर्गाद्बाण त्वं भव चैवाकुतोभयः।

भूयस्ते पञ्चमं दद्मि प्रख्यातबलपौरुषम्।

पुनर्वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते॥ १६०

बाण उवाच।

वैरूप्यमङ्गजं यन्मे मा भूद्देव कदाचन।

द्विबाहुरपि मे देहो न विरूपो भवेद्भव॥ ६१

श्रीहर उवाच।

भविता सर्वमेतत्ते यथेच्छसि महासुर।

भवत्येवं न चादेयं भक्तानां विद्यते मम॥

वैशम्पायन उवाच।

ततोऽब्रवीन्महादेवो बाणं स्थितमथान्तिके।

एवं भविष्यते सर्वं यत्त्वया समुदाहृतम्॥ ६३

एतावदुक्त्वा भगवांस्त्रिनेत्रो गणसंवृतः।

पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत॥ १६४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणे बाणासुरवरप्रदाने षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६॥

## अनिरुद्धस्य नागपाशमोचनम्, कृष्णस्य वरुणालयगमनम्, वरुणेन सह युद्धं, द्वारकाप्रत्यागमनं च।

## १२७

वैशम्पायन उवाच।

एवं वरान्बहून्प्राप्य बाणः प्रीतमनाऽभवत्।

जगाम सह रुद्रेण महाकालत्वमागतः॥ १

वासुदेवोऽपि बहुधा नारदं पर्यपृच्छत।

क्वानिरुद्धोऽस्ति भगवन्संयतो नागबन्धनैः॥२

श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन स्नेहक्लिन्नं हि मे मनः।

अनिरुद्धे हृते वीरे क्षुभिता द्वारका पुरी॥ ३

शीघ्रं तं मोक्षयिष्यामो यदर्थं वयमागताः।

अद्य तं नष्टशत्रुं वै द्रष्टुमिच्छामहे वयम्॥ ४

स प्रदेशस्तु भगवन्विदितस्तव सुव्रत।

एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदः प्रत्यभाषत॥ ५

कन्यापुरे कुमारोऽसौ बद्धो नागैश्च माधव।

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं चित्रलेखा ह्युपास्थिता॥६

बाणस्योत्तमशर्वस्य दैत्येन्द्रस्य महात्मनः

इदमन्तःपुरं देव प्रविशस्व यथासुखम्॥ ७

ततः प्रविष्टास्ते सर्वे ह्यनिरुद्धस्य मोक्षणे

बलः सुपर्णः कृष्णस्तु प्रद्युम्नो नारदस्तथा॥ ८

---

पुत्रजन्मेति। एवं नृत्यन्तः पुत्रं लभन्तामित्यर्थः॥५२॥ एवं पुत्रप्राप्तिरूपं फलम्॥५६॥ वरं वर वरं वृणु॥५४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६॥

१२७

एवमिति॥ १॥

---

१ ख. °तेऽनघ। वै°।

ततो दृष्ट्वैव गरुडं येऽनिरुद्धशरीरगाः।
शररूपा महासर्पा वेष्टयित्वा तनुं स्थिताः॥९
ते सर्वे सहसा देहात्तस्य निःसृत्य भोगिनः।
क्षितिं समभिवर्तित्वा प्रकृत्यावस्थिताःशराः
दृष्टः स्पृष्टश्च कृष्णेन सोऽनिरुद्धो महायशाः।
स्थितः प्रीतमना भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्

अनिरुद्ध उवाच।

देवदेव सदा युद्धे जेता त्वमसि केशव।
न शक्तः प्रमुखे स्थातुं साक्षादपि शतक्रतुः॥

[ भगवानुवाच ।

आरोह गरुडं तूर्णं गच्छाम द्वारकां पुरीम्।
एवमुक्तोऽनिरुद्धस्तु उषया सह कन्यया॥
स्थितः प्रीतमना भूत्वा ज्ञात्वा बाणं जितं रणे ]
ततो महाबलं देवं बलभद्रं यशस्विनम्।
अभिवादयते हृष्टः सोऽनिरुद्धो महामनाः॥१३
माधवं च महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
खगोत्तमं महावीर्यं सुपर्णमभिवाद्य च॥ १४
ततो मकरकेतुं च चित्रबाणधरं प्रभुम्।
पितरं सोऽभ्युपागम्य प्रद्युम्नमभिवादयत्॥१५
सखीगणवृता चैव सा चोषा भवने स्थिता।
बलं चातिबलं चैव वासुदेवं सुदुर्जयम्॥ १६
असंख्यातगतिं चैव सुपर्णमभिवाद्य च।
पुष्पबाणधरं चैव लज्जमानाऽभ्यवादयत्॥१७
ततः शक्रस्य वचनान्नारदः परमद्युतिः।
वासुदेवसमीपं स प्रहसन्पुनरागतः॥ १८
वर्द्धापयति तं देवं गोविन्दं शत्रुसूदनम्।
दिष्ट्या वर्द्धसि गोविन्द अनिरुद्धसमागमात्
ततोऽनिरुद्धसहिता नारदं प्रणताः स्थिताः
आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा च देवर्षिः कृष्णमब्रवीत्
अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियतां विभो
जम्बूलमाणिकां द्रष्टुं श्रद्धा हि मम जायते॥
ततः प्रहसिताः सर्वे नारदस्य वचःश्रवात्।
कृष्णः प्रोवाच भगवन्क्रियतामाशु मा चिरम्
एतस्मिन्नन्तरे तात कुम्भाण्डः समुपस्थितः।
वैवाहिकांस्तु संभारान्गृह्य कृष्णं नमस्य तु।

कुम्भाण्ड उवाच।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो भवत्वमभयप्रदः।
शरणागतोऽस्मि देवेश प्रसीदैषोऽञ्जलिस्तव॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वं प्रागेव चाच्युतः।
अभयं यच्छते तस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने२५
कुम्भाण्ड मन्त्रिणां श्रेष्ठ प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत
सुकृतं ते विजानामि राष्ट्रिकोऽस्तु भवानिह
सज्ञातिपक्षः सुसुखी निवृत्तोऽस्तु भवानिह॥
राज्यं च ते मया दत्तं चिरं जीव ममाश्रयात्
एवं दत्त्वा राज्यमस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने॥
विवाहमकरोत्तस्यानिरुद्धस्य जनार्दनः।
ततस्तु भगवान्वह्निस्तत्र स्वयमुपस्थितः॥ २८
स विवाहोऽनिरुद्धस्य नक्षत्रे च शुभेऽभवत्।
ततोऽप्सरोगणश्चैव कौतुकं कर्तुमुद्यतः॥ २९
स्नातस्त्वलंकृतस्तत्र सोऽनिरुद्धः सभार्यया।
ततः स्निग्धैः शुभैर्वाक्यैर्गन्धर्वाश्च जगुस्तदा
नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव विवाहमुपशोभयन्। ×
ततो निर्वर्तयित्वा तु विवाहं शत्रुसूदनः॥
अनिरुद्धस्य सुप्रज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः।
आमन्त्र्य वरदं[3] तत्र रुद्रं देवनमस्कृतम्॥ ३२
चकार गमने बुद्धिं कृष्णः परपुरंजयः
द्वारकाभिमुखं कृष्णं ज्ञात्वा शत्रुनिषूदनम् ३३
कुम्भाण्डो वचनं प्राह प्राञ्जलिर्मधुसूदनम्।
बाणस्य गावस्तिष्ठन्ति हस्ते तु वरुणस्य वै
यासाममृतकल्पं वै क्षीरं क्षरति माधव।
तत्पीत्वाऽतिबलश्चैव नरो भवति दुर्जयः॥ ३५
कुम्भाण्डेनैवमाख्याते हरिः प्रीतमनास्तदा।
गमनाय मतिं चक्रे गन्तव्यमिति निश्चयम्॥३६
ततस्तु भगवान्ब्रह्मा वर्धाप्य स तु केशवम्।
जगाम ब्रह्मलोकं स वृतः स्वभवनालये॥ ३७
इन्द्रो मरुद्गणयुतो द्वारकाभिमुखो ययौ।
यतः कृष्णस्ततः सर्वे गच्छन्ति जयकाङ्क्षिणः
वाहनेन मयूरेण सखीभिः परिवारिता।
द्वारकाभिमुखी ह्युषा देव्या प्रस्थापिता ययौ।
ततो बलश्च कृष्णश्च प्रद्युम्नश्च महाबलः ३९

---

वीर्यनिर्जितायाः विवाहो वीर्याख्यः जम्बूलमालिकां जम्बूलं वरपक्षीयस्त्रीणाम् उपहासवचनं तस्य मालिकां परम्परां द्रष्टुं श्रोतुम्॥२१॥ यच्छते ददाति प्रागेव २५ इह भूमौ राष्ट्रिको राष्ट्राधिपतिः शिवगणेषु बाणगमनात्२६भवत् अभवत् २९

---

१ ख. ॰वं चतुर्भुजम्। अ॰। २ ख. ॰त्वाऽभयं तस्मै कु॰। ३ ख. ॰रदं रुद्रं देवीं चैव गुहं च तम्। च॰।
× विद्याधरगणैश्चैव विवाहमुपशोभयन्। इति खपाठः।

आरूढवन्तो गरुडमनिरुद्धश्च वीर्यवान् ।
प्रस्थितश्च स तेजस्वी गरुडः पततां वरः ॥४०
उन्मूलयंस्तरुगणान्कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ।
आकुलाश्च दिशः सर्वा रेणुध्वस्तमिवाम्बरम्
गरुडे संप्रयातेऽभून्मन्दरश्मिर्दिवाकरः ।
ततस्ते दीर्घमध्वानं प्रययुः पुरुषर्षभाः ॥ ४१
आरुह्य गरुडं सर्वे जित्वा बाणं महौजसम् ।
ततोऽम्बरतलस्थास्ते वारुणीं दिशमास्थिताः ॥
अपश्यन्त महात्मानो गावो दिव्यपयःप्रदाः
वेलावनविचारिण्यो नानावर्णाः सहस्रशः ४४
अवज्ञाय तदा रूपं कुम्भाण्डवचनाश्रयात् ।
कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठस्तत्त्वतोऽर्थविशारदः॥ ४५
निशम्य बाणगावस्तु तासु चक्रे मनस्तदा ।
आस्थितो गरुडं प्राह स तु लोकादिरव्ययः ४६

श्रीकृष्ण उवाच ।

वैनतेय प्रयाहि त्वं यत्र बाणस्य गोधनम् ।
यासां पीत्वा किल क्षीरममृतत्वमवाप्नुयात्
आह मां सत्यभामा च बाणगावो ममानय ।
यासां पीत्वा किल क्षीरं न जीर्यन्ति महासुराः
विजराश्च जरां त्यक्त्वा भवन्ति किल जन्तवः
ता आनयस्व भद्रं ते यदि धर्मो न लुप्यते॥४९
अथवा कार्यलोपो वै मैव तासु मनः कृथाः ।
इति मामब्रवीत्सत्या ताश्चैता विदिता मम ॥

गरुड उवाच ।

दृश्यन्ते गाव एतास्ता दृष्ट्वा मां वरुणालयम्
विशन्ति सहसा सर्वाः कार्यमत्र विधीयताम्
इत्युक्त्वा चैव गरुडः पक्षवातेन सागरम् ।
सहसा क्षोभयित्वा च विवेश वरुणालयम् ॥
दृष्ट्वा जवेन गरुडं प्राप्तं वै वरुणालयम् ।
वारुणाश्च गणाः सर्वे विभ्रान्ताः प्राचलंस्तदा
ततस्तु वारुणं सैन्यमभिज्ञातुं सुदुर्जयम् ।
प्रमुखे वासुदेवस्य नानाप्रहरणोद्यतम् ।
तद्युद्धमभवद्घोरं वारुणैः पन्नगारिणा ॥ ५४
तेषामापततां संख्ये वारुणानां सहस्रशः ।
भग्नं बलमनाधृष्यं केशवेन महात्मना ॥ ५५
ततस्ते प्रद्रुता यान्ति तमेव वरुणालयम् ।
षष्टिं रथसहस्राणि षष्टिं रथशतानि च ॥ ५६
वारुणानि च युद्धानि दीप्तशस्त्राणि संयुगे ।
तद्बलं बलिभिः शूरैर्बलदेवजनार्दनैः ॥ ५७
प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन गरुडेन च सर्वशः ।
शरौघैर्विविधैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानं समंततः ५८
ततो भग्नं बलं दृष्ट्वा कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
वरुणस्त्वथ संक्रुद्धो निर्ययौ यत्र केशवः॥
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः ।
संस्तूयमानो बहुधा वरुणः प्रत्यदृश्यत ॥ ६०
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण वपुष्मता ।
सलिलस्राविणा श्रेष्ठं चापमुद्यम्य धिष्ठितः॥
अपां पतिरतिक्रुद्धः पुत्रपौत्रबलान्वितः ।
आह्वयन्निव युद्धाय विस्फारितमहाधनुः ६२
स तु प्राध्मापयच्छंखं वरुणः समधावत ।
हरिं हर इव क्रुद्धो बाणजालैः समावृणोत् ॥
ततः प्रध्माय जलजं पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
बाणजालैर्दिशः सर्वास्ततश्चक्रे महाबलः ॥ ६४
ततः शरौघैर्विमलैर्वरुणः पीडितो रणे ।
स्मयन्निव ततः कृष्णं वरुणः प्रत्ययुध्यत ॥ ६५
ततोऽस्त्रं वैष्णवं घोरमभिमन्त्र्याहवे स्थितः
वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं प्रमुखे तस्य धीमतः ६६
इदमस्त्रं महाघोरं वैष्णवं शत्रुसूदनम् ।
मयोद्यतं वधार्थं ते तिष्ठेदानीं स्थिरो भव ६७
ततोऽस्त्रं वरुणो देवो ह्यस्त्रं वैष्णवमुद्यतः ।
वारुणास्त्रेण संयोज्य विननाद महाबलः ॥ ६८
तस्यास्त्रे वितता ह्यापो वरुणस्य विनिःसृताः
वैष्णवास्त्रस्य शमने वर्तंते समितिंजय॥ ६९
आपस्तु वारुणास्तत्र क्षिप्ताः क्षिप्ता ज्वलन्ति वै
दह्यन्ते वारुणास्तत्र ततोऽस्त्रे ज्वालिते पुनः ॥
वैष्णवे तु महावीर्ये दिशो भीता विदुद्रुवुः ।
तद्बलं ज्वलितं दृष्ट्वा वरुणः कृष्णमब्रवीत् ॥ ७१
स्मर स्वप्रकृतिं पूर्वामव्यक्तां व्यक्तलक्षणाम्
तमो जहि महाभाग तमसा मुह्यसे कथम् ॥
सत्त्वस्थो नित्यमासीस्त्वं योगीश्वर महामते
पञ्चभूताश्रयान्दोषानहंकारं च वर्जय ॥ ७२

---

अपश्यन्त दृष्टवन्तः गावः गाः वेला समुद्रतीरप्रान्तस्तत्र वनं तत्र चारिण्यः ॥ ४४ ॥ न जीर्यन्ति न जरां प्राप्नुवन्ति ॥ ४८ ॥ कार्यम् उचितम् ॥ ५१ ॥

---

१ ख. °के जनार्दनः । त° । २ ख. °त्र क्षिप्त्वा ज्वलत वैष्णवम् । द° ।

या या ते वैष्णवी मूर्तिस्तस्या ज्येष्ठो ह्यहं तव
ज्येष्ठभावेन मान्यं तु किं मां त्वं दग्धुमिच्छसि
नाग्निर्विक्रमते ह्यग्नौ त्यज कोपं युधां वर
त्वयि न प्रभविष्यामि जगतः प्रभवो ह्यसि ॥
पूर्वं हि या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिका
धर्मिणी बीजभावेन पूर्वधर्मं समाश्रिता ॥
आग्नेयं वैष्णवं सौम्यं प्रकृत्यैवेदमादितः ।
त्वया सृष्टं जगदिदं स कथं मयि वर्तसे ॥७७
अजेयः शाश्वतो देवः स्वयंभूर्भूतभावनः ।
अक्षरं च क्षरं चैव भावाभावौ महाद्युते ॥७८
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं त्वयाऽनघ नमोऽस्तु ते
आदिकर्ताऽसि लोकानां त्वयैतद्बहुलीकृतम्
विक्रीडसि महादेव बालः क्रीडनकैरिव ।
न ह्ययं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृतिदूषकः ॥ ८०
प्रकृतिर्या विकारेषु वर्तते पुरुषर्षभ
तस्या विकारशमने वर्तसे त्वं महाद्युते ॥ ८१
विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघ
तानधर्मविदो मन्दान्भवान्विकुरुते सदा॥८२
इदं प्रकृतिजैर्दोषैस्तमसा मुह्यते यदा
रजसा वापि संस्पृष्टा तदा मोहः प्रवर्तते ॥
परावरज्ञः सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थितः ।
किं मोहयसि नः सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम्
वरुणेनैवमुक्तस्तु कृष्णो लोकपरायणः
भावज्ञः सर्वकृद्वीरस्ततः प्रीतमना ह्यभूत् ॥
इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ।

श्रीकृष्ण उवाच ॥

गावः प्रयच्छ मे वीर शान्त्यर्थं भीमविक्रम
इत्येवमुक्ते कृष्णेन वाक्यं वाक्यविशारदः
वरुणो ह्यब्रवीद्भूयः शृणु मे मधुसूदन ॥ ८७

वरुण उवाच ॥

बाणेन सार्धं समयो मया देव कृतः पुरा ।
कथं च समयं कृत्वा कुर्यां विफलमन्यथा ॥
त्वमेव वेद सर्वस्य यथा समयभेदकः ।
चारित्रं दुष्यते तेन न च सद्भिः प्रशस्यते ॥
धर्मभागीश्वरो नित्यं वर्ज्यते मधुसूदन ।
न च लोकानवाप्नोति पापः समयभेदकः ॥
प्रसीद धर्मलोपश्च मा भून्मे मधुसूदन ।
न मां समयभेदेन योक्तुमर्हसि माधव ॥ ९१
जीवन्नाहं प्रदास्यामि गावो वै वृषभेक्षण ।
हत्वा नयस्व मां गाव एष मे समयः पुरा ॥
एतच्च मे समाख्यातं समयं मधुसूदन ।
सत्यमेव महाबाहो न मिथ्या तु सुरेश्वर ॥
यद्येवाहमनुग्राह्यो रक्ष मां मधुसूदन ।
अथवा गोषु निर्बन्धो हत्वा नय महाभुज ॥

वैशम्पायन उवाच ।

वरुणेनैवमुक्तस्तु यदूनां वंशवर्धनः ।
अभेद्यं समयं मत्वा न्यस्तवादो गवां प्रति ॥
स प्रहस्य ततो वाक्यं व्याजहारार्थकोविदः
तस्मान्मुक्तोऽसि यद्येवं बाणेन समयः कृतः ॥
प्रश्रितैर्मधुरैर्वाक्यैस्तत्त्वार्थमधुभाषितैः ।
कथं पापं करिष्यामि वरुण त्वय्यहं प्रभो ।
गच्छ मुक्तोऽसि वरुण सत्यसंधोऽसि नो भवान्
त्वत्प्रियार्थं मया मुक्ता बाणगावो न संशयः ।
ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥
अर्घमादाय वरुणः केशवं प्रत्यपूजयत् ।
केशवोऽर्घं तदा गृह्य वरुणाद्यदुनन्दनः ॥ ९९
बलं चापूजयद्देवः कुशलीव समाहितः ।
वरुणायाभयं दत्त्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥

---

प्रकृतिर्माया विकृतं महदादिकार्यं तदात्मिका धर्मिणी परिणामिनी पूर्वधर्मं जायत इत्येवंरूपं त्वत्तो जन्म लभमानेत्यर्थः । बीजभावेन जगत्कारणत्वेन च उपेतेति शेषः ॥७६॥ त्वयैव स्वात्मनैव बहुलीकृतम् इदं दृश्यामिति शेषः ॥ ७९ ॥ प्रकृतिः कारणं तं त्वां द्वेष्टीति तादृशः प्रकृतिद्वेषी अहं न ॥८०॥ विकारेषु अहंकारादिषु या प्रकृतिः पूर्ववासनालोभद्वेषादिरूपा तस्याः विकारः स्तेयहिंसादिरूपस्तस्य शमनार्थं त्वं वर्तसे दुष्टनिग्रहार्थं तवावतार इत्यर्थः ॥८१॥ ते ते विकाराः क्रोधादयः विकाराणां दुष्टानां विकाराय विनाशाय न तु मन्दानपेक्ष्य भवान् विकुरुते। सर्वात्मनस्तव यद्यपि क्वचिदपि क्रोधो नास्ति तथापि क्रोधिन एव स्वदोषात्त्वां क्रोधवन्तं पश्यन्तीत्यर्थः॥८२॥ इदं जगत् तमसा देहात्मबुद्ध्या मोहो वैयग्र्यम् इदं मे भूयादिदं मे मा भूयादित्येवंरूपः ॥८३॥ समयोऽयं जीवन्नहमन्यस्मै तव न प्रदास्यामीत्येवं रूपो निश्चयः ॥८८॥ भेदकः न प्रशस्यते चारित्रं चास्य दुष्यत इत्यन्वयः ॥ ८९ ॥ मां हत्वा गावः गा नयस्व ॥९२॥ न्यस्तवादस्त्यक्तप्रतिज्ञः ॥९५॥ नोऽस्माकं संबन्धी भवान् ॥ ९७ ॥

द्वारकां प्रस्थितः शौरिः शचीपतिसहायवान्
तत्र देवाः समरुतः ससाध्याः सिद्धचारणाः
गन्धर्वाप्सरसश्चैव किंनराश्चान्तरिक्षगाः ।
अनुगच्छन्ति भूतेशं सर्वभूतादिमव्ययम् ॥ २
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यक्षराक्षसाः
विद्याधरगणाश्चैव ये चान्ये सिद्धचारणाः ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति यशसा विजयेन च ॥
नारदश्च महाभागः प्रस्थितो द्वारकां प्रति ।
तुष्टो बाणजयं दृष्ट्वा वरुणं च कृतप्रियम् ॥ ४
कैलासशिखरप्रख्यैः प्रासादैः कन्दरैः शुभैः ।
दूरान्निशम्य मधुहा द्वारकां द्वारमालिनीम् ॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं चक्रे चक्रगदाधरः ।
संज्ञां प्रयच्छते देवो द्वारकापुरवासिनाम् ॥६
देवानुयाननिर्घोषं पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ।
श्रुत्वा द्वारवतीं सर्वे प्रहर्षमतुलं गताः ॥ ७
पूर्णकुम्भैश्च लाजैश्च बहुविन्यस्तविस्तरैः ।
द्वारोपशोभितां कृत्वा सर्वां द्वारवतीं पुरीम् ॥
सुश्लिष्टरथ्यां सश्रीकां बहुरत्नोपशोभिताम्
विप्राश्चार्घं समादाय यथैव कुलनैगमाः
जयशब्दैश्च विविधैः पूजयन्ति स्म माधवम्
वैनतेये तमासीनं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ११०
ववन्दिरे तदा कृष्णं श्रिया परमया युतम् ।
तमानुपूर्व्या वर्णाश्च पूजयन्ति महाबलम् ११
अनन्तं केशिहन्तारं श्रेष्ठिपूर्वाश्च श्रेणयः ।
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैश्चारणैश्च समंततः ॥ १२
स्तूयते पुण्डरीकाक्षो द्वारकोपवने स्थितः ।
तदाश्चर्यमपश्यन्त दाशार्हगणसत्तमाः ॥ १३
प्रहर्षमतुलं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णं महाभुजम् ।
बाणं जित्वा महादेवमायान्तं पुरुषोत्तमम् ॥
द्वारकावासिनां वाचश्चरन्ति बहुधा तदा ।
प्राप्ते कृष्णे महाभागे यादवानां महारथे ॥ १५
गत्वा च दूरमध्वानं
सुपर्णो द्रुतमागतः ।
धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मो
येषां वै जगतः पिता ॥ १६

रक्षिता चैव गोप्ता च दीर्घबाहुर्महाभुजः ।
वैनतेये समारुह्य जित्वा बाणं सुदुर्जयम् ॥१७
प्राप्तोऽयं पुण्डरीकाक्षो मनांस्याह्लादयन्निव ।
एवं कथयतामेव द्वारकावासिनां तदा ॥ १८
वासुदेवगृहे देवा विविशुस्तं महारथाः
अवतीर्य सुपर्णात्तु वासुदेवो बलस्तदा॥१९
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च गृहान्प्रविविशुस्तदा ।
ततो देवविमानानि संचरन्ति तदा दिवम् ॥
अवस्थितानि दृश्यन्ते नानारूपाणि सर्वशः
हंसर्षभमृगैर्नागैर्वाजिसारसबर्हिणैः ।
भास्वन्ति तानि दृश्यन्ते विमानानि सहस्रशः
अथ कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं कुमारांस्तान्सहस्रशः
प्रद्युम्नादीन्समस्तांस्तु श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥
एते रुद्रास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि ।
साध्या देवास्तथान्ये च वन्दध्वं च यथाक्रमम्
सहस्राक्षं महाभागं दानवानां भयंकरम् ।
वन्दध्वं सहिताः शक्रं सगणं नागवाहनम् ॥
सप्तर्षयो महाभागा भृग्वाङ्गिरसमाश्रिताः
ऋषयश्च महात्मानो वन्दध्वं च यथासुखम् ॥
एते चक्रधराश्चैव तान्वन्दध्वं च सर्वशः
सागराश्च ह्रदाश्चैव मत्प्रियार्थमिहागताः ॥२६
दिशश्च विदिशश्चैव वन्दध्वं च यथाक्रमम् ।
वासुकिप्रमुखाश्चैव नागा वै सुमहाबलाः ॥
गावश्च मत्प्रियार्थं वै वन्दध्वं च यथाक्रमम्
ज्योतींषि सह नक्षत्रैर्यक्षराक्षसकिंनरैः ॥ २८
आगता मत्प्रियार्थं वै वन्दध्वं च यथाक्रमम् ।
वासुदेववचः श्रुत्वा कुमाराः प्रणताः स्थिताः
यथाक्रमेण सर्वेषां देवतानां महात्मनाम्
सर्वान्दिवौकसो दृष्ट्वा पौरा विस्मयमागताः
पूजार्थमथ संभारान्प्रगृह्य द्रुतमागताः
अहो सुमहदाश्चर्यं वासुदेवस्य संश्रयात् ॥ ३१
प्राप्यते यदिहास्माभिरिति वाचश्चरन्त्युत ।
ततश्चन्दनचूर्णैश्च गन्धपुष्पैश्च सर्वशः ॥ ३२
किरन्ति पौराः सर्वांस्तान्पूजयन्तो दिवौकसः
लाजैः प्रणामैर्धूपैश्च वाद्यध्वनियमैस्तथा ॥ ३३

यशसा कीर्त्यमानेन विजयेन आशास्यमानेन ॥ ३ ॥ शुभैः प्रासादैर्युक्तामिति शेषः । निशाम्यालोच्य ॥ ५ ॥ संज्ञां स्वागमनज्ञापनम् ॥ ६ ॥ गत्वा च दूरमित्यादि जनवाक्यम् ॥ १६ ॥ हंसादिभिर्युक्तानि ॥ २१ ॥ प्राप्यते देवानामपि दर्शनामिति शेषः ॥ ३२ ॥

१ ख. मंसृष्टर° । २ ख. °गे सात्वतानां म° । ३ ख. °थाक्रमम् । ए° ।

द्वारकावासिनः सर्वे पूजयन्ति दिवौकसः।
आहुकं वासुदेवं च साम्बं च यदुनन्दनम् ॥
सात्यकिं चोल्मुकं चैव विपृथुं च महाबलम्
अक्रूरं च महाभागं तथा निषधमेव च ॥ ३५
एतान्परिष्वज्य तदा मूर्ध्नि चाघ्राय वासवः
अथ शक्रो महाभागः समक्षं यदुमण्डले ॥३६
स्तुवन्तं केशिहन्तारं तत्रोवाचोत्तरं वचः।
सात्वतः सात्त्वतामेष सर्वेषां यदुनन्दनम् ॥
मोक्षयित्वा रणे चैव यशसा पौरुषेण च।
महादेवस्य मिषतो गुहस्य च महात्मनः ॥ ३८
एष बाणं रणे जित्वा द्वारकां पुनरागतः
सहस्रबाहो बाहूनां कृत्वा द्वयमनुत्तमम्॥ ३९
स्थापयित्वा द्विबाहुत्वे प्राप्तोऽयं स्वपुरं हरिः
यदर्थं जन्म कृष्णस्य मानुषेषु महात्मनः॥ ४०
तदप्यवसितं कार्यं नष्टशोका वयं कृताः
पिबतां मधु माध्वीकं भवतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
कालो यास्यत्यविरलं विषयेष्वेव त्यज्यताम्
बाहूनां संश्रयात्सर्वे वयमस्य महात्मनः ॥४२
प्रणष्टशोका रंस्यामः सर्वे एव यथासुखम्
एवं स्तुत्वा सहस्राक्षः केशवं दानवान्तकम् ॥
आपृच्छ्य तं महाभागः सर्वदेवगणैर्वृतः
ततः पुनः परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम्
पुरंदरो दिवं यातः सह देवमरुद्गणैः ॥ ४४
ऋषयश्च महात्मानो जयाशीर्भिर्महौजसम्
यथागतं पुनर्याता यक्षराक्षसकिंनराः ॥ ४५
पुरंदरे दिवं याते पद्मनाभो महाबलः।
अपृच्छत महाभागः सर्वान्कुशलमव्ययम् ४६
ततः किलकिलाशब्दं निर्वमन्तः सहस्रशः।
गच्छन्ति कौमुदीं द्रष्टुं सोऽनघः प्रीयते सदा
द्वारकां प्राप्य कृष्णस्तु रेमे यदुगणैः सह।
विविधान्सर्वकामार्थाञ्छ्रिया परमया युतः ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रत्यागमने सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

## उषया सहानिरुद्धस्य विवाहः, उषाहरणसमाप्तिश्च।

## १२८

वैशम्पायन उवाच।
अथाहुको महाबाहुः कृष्णं प्राह महाद्युतिः
हर्षादुत्फुल्लनयनः श्रूयतां यदुनन्दन ॥ १
एवं गतेऽनिरुद्धस्य क्रियतां महदुत्सवः
क्षेमात्प्रत्यागतं दृष्ट्वा सेव्यमानाः सहासते॥ २
उषापि च महाभागा सखीभिः परिवारिता
रमते परया प्रीत्या चानिरुद्धेन संगता ॥ ३
कुम्भाण्डदुहिता रामा उषायाः सखिमण्डले
प्रवेश्यतां महाभागा वैदर्भी वर्द्धयत्युत ॥ ४

---

सात्वतां सात्त्वतानाम् एष मुख्यः सात्त्वत इत्यर्थः। यदुनन्दनम् अनिरुद्धम् ॥ ३७ ॥ अविरलं संमुखं यथा स्यात्तथा। कालो यास्यत्यविरतामिति वा ॥४२॥ सहस्रशः युगपत् निर्वमन्तः मुखान्निःसारयन्तः। किलकिलाशब्दम्। आश्चर्यमाश्चर्यमिति वन्दत इत्यर्थः। कौमुदीमिव कौमुदीं कृष्णमुखचन्द्रप्रभां स कृष्णः अनघः शुद्धः प्रीयते तेषां भक्त्येति भावः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि टीकायां सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

१२८

**अथाहुक इति** ॥ १ ॥ यतोऽस्मदीयाः सर्वे सेव्यमानाः अप्सरःप्रभृतिभिः सह आसतेऽतोऽनिरुद्धस्य महदुत्सवः। क्रियतामिति योज्यम् ॥ २ ॥

---

१ ख. निशठमे०। २ ख. ०य वीर्यवान्। अ०। ३ ख. योजयि०।

साम्बाय दीयतां रामा कुम्भाण्डदुहिता शुभा
शेषाश्च कन्या न्यस्यन्तां कुमाराणां यथाक्रमम्
वर्तते सोत्सवस्तत्र अनिरुद्धस्य वेश्मनि।
गृहे श्रीधन्वनश्चैव शुभस्तत्र प्रवर्तते॥ ६
वादयन्ति पुरे तत्र नार्यो मदवशं गताः।
नृत्यन्ते चाप्सरास्तत्र गायन्ति च तथाऽपराः
काश्चित्प्रमुदितास्तत्र काश्चिदन्योन्यमब्रुवन्।
नानावर्णाम्बरधराः क्रीडमानास्ततस्ततः॥
अभियांति ततोऽन्योन्यं काश्चिन्मदवशात्स्वयं
क्रीडन्ति काश्चिदक्षैस्तु हर्षादुत्फुल्ललोचनाः

मायूरं रथमारुह्य सखीभिः परिवारिता।
उषा संप्रेषिता देव्या रुद्राण्या प्रतिगृह्यताम्
इयं चैव कुलश्लाघ्या नाम्नोषा सुन्दरी वरा।
बाणपुत्री तव वधूः प्रतिगृह्णीष्व भामिनीम्॥
ततः प्रतिगृहीता सा स्त्रीभिराचारमङ्गलैः।
प्रवेशिता च सा वेश्म अनिरुद्धस्य शोभना॥
देवकी रोहिणी चैव रुक्मिण्यथ विदर्भजा।
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं रोदन्त्यः स्नेहहर्षसमन्विताः॥
रेवती रुक्मिणी चैव गृहमुख्यं प्रवेशयत्।
वधूर्वर्धसि दिष्ट्या त्वमनिरुद्धस्य दर्शनात्॥
ततस्तूर्यप्रणादैस्ता वरनार्यः शुभाननाः।
क्रियामारेभिरे कर्तुमुषा च गृहसंस्थिता॥१५
ततो हर्म्यतलस्था सा वृष्णिपुङ्गवसंस्थिता।
रमते सर्वसदृशैरुपभोगैर्वरानना॥ १६
चित्रलेखा च सुश्रोणी अप्सरारूपधारिणी।
आपृच्छ्य च सखीवर्गमुषां च त्रिदिवं गता॥

गतासु तासु सर्वासु सखीष्वसुरसुन्दरी।
मायावत्या गृहं नीता प्रथमं सा निमन्त्रिता
सा तु प्रद्युम्नगृहिणी स्नुषां दृष्ट्वा सुमध्यमा।
वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास सुन्दरीम्॥१९
ततः क्रमेण सर्वास्ता वधूमूषां यदुस्त्रियः।
आचारमनुपश्यन्त्यः स्वधर्ममुपचक्रिरे॥ २०

वैशम्पायन उवाच।

एतत्ते सर्वमाख्यातं मया कुरुकुलोद्वह।
यथा बाणो जितः संख्ये जीवन्मुक्तश्च विष्णुना
द्वारकायां ततः कृष्णो रेमे यदुगणैर्वृतः।
अन्वशासन्महीं कृत्स्नां परया संयुतो मुदा॥
एवमेषोऽवतीर्णो वै पृथिवीं पृथिवीपते।
विष्णुर्यदुकुलश्रेष्ठो वासुदेवेति विश्रुतः॥२३
एतैश्च कारणैः श्रीमान्वसुदेवकुले प्रभुः।
जातो वृष्णिषु देवक्यां यन्मां त्वं परिपृच्छसि
निवृत्ते नारदप्रश्ने यन्मयोक्तं समासतः।
श्रुतास्ते विस्तराः सर्वे ये पूर्वं जनमेजय॥२५
विष्णोस्तु माथुरे कल्पे यत्र ते संशयो महान्
वासुदेवगतिश्चैव सा मया समुदाहृता॥ २६
आश्चर्यं चैव नान्यद्धि कृष्णश्चाश्चर्यसंनिधिः।
सर्वेष्वाश्चर्यकल्पेषु नास्त्याश्चर्यमवैष्णवम्।
एष धन्यो हि धन्यानां धन्यकृद्धन्यभावनः।
देवेषु तु सदैत्येषु नास्ति धन्यतरोऽच्युतात्॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा।
गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च॥२९
एष धाता विधाता च संहर्ता चैव नित्यशः
सत्यं धर्मस्तपश्चैव ब्रह्मा चैव[3] पितामहः॥ ३०
अनन्तश्चैव नागानां रुद्राणां शंकरः स्मृतः।
जङ्गमाजङ्गमं चैव जगन्नारायणोद्भवम्॥ ३१
एतस्माच्च जगत्सर्वं प्रसूयेत जनार्दनात्।
जगच्च सर्वं देवेशो तं नमस्कुरु भारत॥ ३२
पूज्यश्च सततं सर्वैर्देवैरेष सनातनः।

इत्युक्तं बाणयुद्धं ते माहात्म्यं केशवस्य तु॥
वंशप्रतिष्ठामतुलां श्रवणादेव लप्स्यसे।
ये चेदं धारयिष्यन्ति बाणयुद्धमनुत्तमम्॥ ३४
केशवस्य च माहात्म्यं नाधर्मस्तान्भजिष्यति
एषा तु वैष्णवी चर्या मया कार्त्स्न्येन कीर्तिता
पृच्छतस्तात यज्ञेऽस्मिन्निवृत्ते जनमेजय।
आश्चर्यपर्व निखिलं यो हीदं धारयेन्नृप॥ ३६

---

शकटभङ्गादिवरुणजयान्तैः॥ २४॥ निवृत्ते दत्तोत्तरत्वेन समाहिते नारदप्रश्ने आश्चर्यं को धन्य इत्येवंरूपे पूर्वमुक्ते इति शेषः॥ २५॥ माथुरे कल्पे यदुषु भवतोऽवतारे रुद्रजयेन निर्णीत इत्यर्थः। वासुदेवात्मिका गतिः परायणं वासुदेवगतिः सा प्रसिद्धा। "तद्विष्णोः परमं पदं, सा काष्ठा सा परा गतिः।" इत्याद्यागमेषु इत्यर्थः॥ २६॥ सर्वेष्विति। अन्यात्राप्याश्चर्यदर्शनं विष्णवनुप्रवेशादेवेत्यर्थः॥ २७॥ एष विष्णुः धनिनां धन्यकृत्स्वयं धन्य इत्यन्यं करोति। "एष ह्येवानन्दयति" इति श्रुतेः। धन्यानां मानुषनन्दादिहिरण्यगर्भान्तानामानन्दिनामानन्दभावनः॥२८॥

---

१ ख. ॰की रेवती चै॰। २ ख. ॰र्ता काल एव च। स॰। ३ ख. ॰व सनातनः। अ॰।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।
कल्य उत्थाय यो नित्यं कीर्तयेत्सुसमाहितः
न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ।
ब्राह्मणः सर्ववेदी स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत्
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः कामानवाप्नुयात्
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुर्लभेत सः॥ ३९

सौतिरुवाच ।

इति पारीक्षितो राजा वैशम्पायनभाषितम्
श्रुतवानचलो भूत्वा हरिवंशं द्विजोत्तमाः ॥

एवं शौनक संक्षेपाद्विस्तरेण तथैव च ।
प्रोक्ता वै सर्ववंशास्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणसमाप्तौ
अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

## समाप्तमिदं विष्णुपर्व २

---

हरिवंशे श्रुतवान् यतः अतो निर्मलो निष्पापोऽभूत् ।।३७।। इति श्रीमहाभारते खिलेषु विष्णुपर्वणि टीकायामष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२८।।

अतः परं भविष्यपर्व भविष्यति ।

तस्यायमाद्यः श्लोकः ।

शौनक उवाच—

जनमेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लोमहर्षणे ।
कस्मिन्प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥

॥ इति श्रीहरिवंशे विष्णुपर्व समाप्तम् ॥

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसार्वपृष्ठाप्तोर्यामयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुज-पण्डितरामचन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितः परिष्कृतश्च । भारती जयतु । शाके १८५७ ॥

महाभारते–

# हरिवंशः ।

## भविष्यपर्व

## –३–

### जनमेजयपुत्रनामकथने पाण्डववंशप्रतिष्ठाकीर्तनम् ।

१

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १

शौनक उवाच ।

जनमेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लोमहर्षणे ।
कस्मिन्प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनां
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
त्वत्तः कथयतः सर्वं वेदम्यहं तत परिस्फुटम्

सौतिरुवाच ।

परीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः
चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ३
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
जनमेजय इत्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥ ४
तेषां श्रेष्ठस्तु राजाऽऽसीत्पुरे वारणसाह्वये ।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ ५
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥६
तस्माद्वनगताद्गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मानिनी भ्रातृमालिनी ॥७
स तु जन्मनि गर्भस्य श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।
अन्वगच्छद्गतं पूर्वैर्महाप्रस्थानमच्युतम् ॥ ८
सा दृष्ट्वा संप्रयातं तं मानिनी पृष्ठतोऽन्वियात्
पथि सा सुषुवे सुभ्रूर्वने राजीवलोचनम् ॥ ९
कुमारं तं परित्यज भर्तारं चान्वगच्छत ।
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा पतीन् १०
स तु राजकुमारोऽसौ गिरिकुञ्जे रुरोद ह ।
छायार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्समन्ततः ११
श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः
दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तं प्रक्षालयतां जलैः ।
निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ

---

श्रीगणेशाय नमः ॥ जनमेजयस्येति ॥ १ ॥ अन्वगच्छत् गर्भिण्येवेत्यर्थः ॥८॥ निघृष्टौ कृतचिह्नौ ॥१२॥

अजश्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ
तथैव तु समारूढौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत् १३
ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह ।
स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः ॥
वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत्पुत्रकारणात् ।
वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः ।
स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां प्रतिष्ठितः
श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना
जरासंक्रमणे पूर्वं भृशं प्रीतेन धीमता ॥ १७
आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न संशयः ।
अपौरवा न तु मही भविष्यति कदाचन ॥१८

इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पाण्डववंशप्रतिष्ठाकीर्तने प्रथमोऽध्यायः ॥ १

## व्यासं प्रति राजसूयविषये जनमेजयप्रश्नः ।

### २

शौनक उवाच ।
उक्तोऽयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च
यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता
तत्कथ्यमानममितमितिहाससमन्वितम् ।
प्रीणात्यस्मानमृतवत्सर्वपापविनाशनम् ॥ २
सुखश्राव्यतया धीर मनोह्लादयतीव नः ।
जनमेजयस्तु नृपतिः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ।
सौते किमकरोत्पश्चात्सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ३
सौतिरुवाच ।
जनमेजयस्तु स नृपः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम्
यदारभत्तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ४
तस्मिन्सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा ।
यष्टुं स वाजिमेधेन संभारानुपचक्रमे ॥ ५
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यानाहूयेदमुवाच ह ।
यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हयमुत्सृज्यतामिति ॥ ६
ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षितं तदा
कृष्णो महात्मा सहसाऽऽजगाम ॥
पारीक्षितं द्रष्टुमदीनसत्त्वं
द्वैपायनः सर्वपरावरज्ञः ॥ ७
पारीक्षितस्तु नृपतिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ।
अर्घ्यपाद्यासनं दत्त्वा पूजयामास शास्त्रतः ॥८
तौ चोपविष्टावभितः सदस्यास्तस्य शौनक ।
कथा बहुविधाश्चित्राश्चक्राते वेदसंहिताः ॥ ९
ततः कथान्ते नृपतिर्नोदयामास तं मुनिम् ।
पितामहं पाण्डवानामात्मनः प्रपितामहम् १०
महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।
निमेषमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम् ॥ ११
विभूतिविस्तारकरं सर्वेषां वै यशस्करम् ।
त्वया सुविहितं ब्रह्मञ्शङ्खे क्षीरमिवाहितम् १२
अमृतेन तु तृप्तिः स्याद्यथा स्वर्गसुखेन च ।
तथा तृप्तिं न गच्छामि श्रुत्वेमां भारतीं कथाम्
अनुमान्य तु सर्वज्ञं पृच्छामि भगवन्नहम् ।
हेतुः कुरूणां नाशस्य राजसूयो मतो मम १४
दुःसहानां यथा ध्वंसो राजन्यानामुपप्लवे ।
राजसूयं तथा मन्ये युद्धार्थमुपकल्पितम् ॥ १५
राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः ।
तस्यान्ते सुमहद्युद्धमभवत्तारकामयम् ॥ १६
आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः ।
देवासुरं महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम् ॥ १७

---

अजः छागः तद्वत् श्यामौ समारूढौ तथैव कृष्णरूपवन्तौ वेदवृद्धिं प्राप्तौ ॥ १३ ॥ वेमको नाम स्वर्गस्थः कश्चिदृषिः तस्य शालायां गृहे द्विजाभ्यां कौशिकपिप्पलादाभ्याम् ॥ १४ ॥ तेषाम् अजपार्श्वपिप्पलादकौशिकानाम् ॥ १६ ॥ अत्र पुरुशेषविषये ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

उक्तोयमिति । वेदसंहिताः वेदनिबद्धाः ॥ ९ ॥ मे मम निमेषमात्रमपि संवत्सरोऽपि निमेषमात्रमिव गतः । अपरिवार्थे ॥ ११ ॥ दुःसहानाम् अजेयानाम् ॥ १५ ॥

हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत्।
तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम्॥१८
ततोऽनन्तरमार्गेण पाण्डवेनातिदुस्तरः।
महाभारत आरम्भः संभृतोऽग्निरिव क्रतुः॥१९
तदस्य मूलं युद्धस्य लोकक्षयकरस्य तु।
राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः॥२०
राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः
मिथ्या प्रणीते यज्ञाङ्गे प्रजानां संक्षयो ध्रुवः॥
भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां नः पितामहः।
अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः॥ २२
ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात्।
अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवाः॥

व्यास उवाच।

कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहः।
न मां भविष्यं पृच्छन्ति न चापृष्टो ब्रवीम्यहम्
सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने।
परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः
त्वया त्विदमहं पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तु भावि यत्
अतश्च बलवान्कालः श्रुत्वाऽपि न करिष्यसि
न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे
लेखा हि काललिखिताः सर्वथा दुरतिक्रमाः
अश्वमेधः क्रतुः श्रेष्ठः क्षत्रियाणां परिश्रुतः।
तेन भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति॥२८
यदि तच्छक्यते राजन्परिहर्तुं कथंचन।
दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च तं क्रतुम्॥ २९
न चापराधः शक्रस्य नोपाध्यायगणस्य ते।
तव वा यजमानस्य कालोऽत्र दुरतिक्रमः ३०
तस्य संस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः।
यथादृष्टं प्रजासर्गे गमिष्यति युगक्षये॥ ३१
तथा यज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः
तत्प्रणेयं निबोधस्व त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

जनमेजय उवाच।

निवृत्तावश्वमेधस्य किं निमित्तं भविष्यति
श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन्यदि मन्यसे॥३३

व्यास उवाच।

निमित्तं भविता तत्र ब्रह्मकोपकृतं प्रभो।
यतेथाः परिहर्तुं त्वमित्येतद्भद्रमस्तु ते॥ ३४
त्वया वृत्तं क्रतुं चैव वाजिमेधं परंतप।
क्षत्रियानाहरिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥

जनमेजय उवाच।

निवृत्तावश्वमेधस्य ब्रह्मशापाग्नितेजसा।
अहं निमित्तमिति मे भयं तीव्रं तु जायते॥ ३६
कथं ह्यकीर्त्या युज्येत सुकृती मद्विधो जनः।
लोकानुत्सहते गन्तुं खं सपाश इव द्विजः ३७
यथा ह्यनागतमिदं दृष्टमत्र प्रणाशनम्।
यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम्॥

व्यास उवाच।

उपात्तयज्ञो देवेषु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते।
तेजसा व्याहृतं तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते॥ ३९
औद्भिज्जो भविता कश्चि-
त्सेनानीः काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं कलियुगे
पुनः प्रत्याहरिष्यति॥ ४०
तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम्।
आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः॥४१
यथा बलं मनुष्याणां कर्तॄणां दास्यते फलम्।
युगान्तद्वारमृषिभिः संवृतं विचरिष्यति ४२
तदाप्रभृति हास्यन्ति नृणां प्राणाः पुराकृतीः
न निवर्तिष्यते लोके वृत्तान्तावर्तनेष्विह ४३

---

आडी जलचरः पक्षिविशेषः तद्रूपेण वसिष्ठः बकरूपेण विश्वामित्रश्च। ऋषित्त्वाल्लज्जया च प्राकट्येन युद्धं कर्तुमशक्तौ तयोर्युद्धमाडीबकं नाम तन्निमित्तम् उभयपक्षपातिनां क्षत्रियाणां नाशो वृत्त इत्यर्थः॥ १८॥ महाभारते भारतयुद्धनिमित्तम् आरभ्यत इत्यारम्भः॥ १९॥ असंहार्यः सर्वाङ्गोपेतः कर्तुमशक्यः॥२१॥ नेत्रा गुरुणा॥ २३॥ विहिता गतिः विहिताङ्गम्॥ २५॥ संरम्भात् भयात् आरम्भात् उत्साहात् पौरुषे पुरुषवंशे॥२७॥ तेन भावेन महत्त्वकारणेन बुद्धिपूर्वकद्वेषादित्यर्थः॥ २८॥ तस्य क्रतोः संस्था समाप्तिस्तदर्थं कृतमिदं भावि कालुष्यम्। कालस्य इच्छयेति शेषः॥३१॥ तत्प्रणेयं कालाधीनम्॥ ३२॥ द्विजः पक्षी॥ ३७॥ उपात्त उपसंहृतो यतोऽश्वमेधः देवादिषु ज्ञानरूपेणावस्थास्यति॥ ३९॥ उद्भिद्य जायत इत्यौद्भिज्जः भूबिलस्थो योगी खन्यमानायां भुवि प्रकटीभविष्यतीत्यर्थः॥ ४०॥ श्वेतग्रहमुत्पातविशेषम्। अन्तकः प्रलयकालः॥ ४१॥ बलं श्रद्धादिरूपं फलं दास्यते क्रतुरिति शेषः। संवृतं गोपितं विचरिष्यति जनः॥ ४२॥ तदाप्रभृति युगान्तमारभ्य प्राणा इन्द्रियाणि पुराकृतीः शिष्टाचारान्वर्तनेषु आचारेषु वृत्तान्तः पूर्ववृत्तं न नितरां वर्तिष्यते॥ ४३॥

---

१ ख. न च वा य०। २ ख. तदन्ते तत्कु०।

तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुस्तरो दानमूलवान् ।
चातुराश्रम्यशिथिलो धर्मः प्रविचलिष्यति ४४
तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यन्ति मानवाः
धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ४५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि जनमेजयप्रश्ने ।
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## व्यासोक्तं कलियुगभविष्यम् ।

### ३

जनमेजय उवाच ।

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे ।
तस्माद्द्वापरसंविद्धं युगान्तं स्पृहयाम्यहम् १
प्राप्ता वयं तु तत्कालमनया धर्मतृष्णया ।
आदद्यात्परमं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥ २

शौनक उवाच ।

सोसमुद्वेगकरणं युगान्तं समुपस्थितम् ।
प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि ॥ ३

सौतिरुवाच ।

पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन् ।
युगान्ते सर्वभूतानां भगवानब्रवीत्तदा ॥ ४

व्यास उवाच ।

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः
युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥ ५
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये॥ ६
काण्डे स्पृष्टाः श्रोत्रियाश्च
निष्क्रियाणि हवींष्यथ ।
एकपङ्क्त्यामशिष्यन्ति
युगान्ते जनमेजय ॥ ७
शिल्पवन्तोऽनृतपरा नरा मद्यामिषप्रियाः ।
मित्रभार्या भविष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥ ८
राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः
भृत्याश्चानिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥९
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ।
अकुत्सना च पतिते भविष्यन्ति युगक्षये॥१०
प्रनष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः ।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नराः सदा॥ ११
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये॥ १२
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः ।
शूद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये॥ १३
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ।
ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये॥ १४
शुक्लदन्ताऽञ्जिताक्षाश्च मुंडाः काषायवाससः
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः॥

---

सूक्ष्मोऽल्पोऽपि धर्मः महोदर्को महाफलः । दुस्तरो विघ्नबाहुल्यात् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

**आसन्नमिति**। आसन्नं यदि यस्मात् कालं मोक्षस्य न विद्महे तस्माद्द्वापरः धर्माधर्मसाम्यवान् संविद्धो अधर्माधिक्यात् दूषितो येन तं युगान्तं युगानाम् अन्ते भवं कलिं श्रोतुं स्पृहयामि ॥ १ ॥ तत्र स्पृहाहेतुमाह-**प्राप्ता इति**। अल्पायासेन महत्फलं भवतीति लोभादस्माभिः कलौ जन्म प्रार्थितामित्यर्थः । २ । काण्डस्पृष्टाः शस्त्रधराः क्षत्रवृत्तयो ब्राह्मणा इत्यर्थः । निष्क्रियाणि पञ्चयज्ञहीनानि ॥ ७ ॥ अकुत्सना अनिंदा ॥ १० ॥ चेतना धर्माधर्मस्वरूपबोधः । मुक्तकेशाः विधवाः विचूलिनः संन्यासिनः प्रजास्यन्ति अन्योऽन्यं मिथुनीभूय प्रजां जनयिष्यन्ति ॥ ११ ॥ अट्टशूलाः अन्नविक्रयिणः । शिवशूलाः वेदविक्रयिणः । केशशूलाः भगविक्रयिण्यः ॥ १२ ॥ सर्वे ब्रह्मवादच्छलेन कर्मभ्रष्टा भविष्यन्तीत्यर्थः । सर्वे वाजसनेयिनः शाखान्तरलोपात्। तेन वेदत्रयसाध्यो यज्ञ उत्सन्नो भविष्यतीति भावः । इदानीमेव पश्चिमदेशे तथा दर्शनात् । भो इति पूज्यवादो येषु ते भोवादिनः ॥ १३ ॥ शुक्लदन्ताः मांसाशनत्यागात् अन्यथा रक्तदन्तत्वं स्यात् । अञ्जिताक्षाः सूक्ष्मदृष्टयः । **शाक्यमतं बुद्धमतं चोपजीवन्ति** ते वेददूषका नास्तिका इत्यर्थः ॥ १५ ॥ श्वापदाः हिंस्राः

---

१ ख. प्रजास० । २ ख. ०करं यु०

श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः।
स्वादूनां विनिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे॥ १६
अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति
मध्याश्चान्तनिवासिनः।
यथा निम्नं प्रजाः सर्वा
गमिष्यन्ति युगक्षये॥ १७
तथा द्विहायना दम्यास्तथा पल्वलकर्षकाः।
चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति १८
सर्वे चौरकुले जाता-
श्चौरयानाः परस्परम्।
स्वल्पेनाढ्या भविष्यन्ति
यत्किंचित्प्राप्य दुर्गताः॥ १९
न ते धर्मं करिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे।
ऊषार्कबहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः २०
सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे।
पितृदत्तानि देयानि विभजन्ते सुतास्तदा।
हरणाय प्रपत्स्यन्ते लोभानृतविरोधिताः॥२१
सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षयं गते।
भविष्यन्ति युगान्ते च नार्यः केशैरलंकृताः॥
निर्विहारस्य भूतस्य गृहस्थस्य भविष्यति।
युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा गतिः॥
कुशीलानार्यभूयिष्ठं वृथारूपसमन्वितम्।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं तद्युगान्तस्य लक्षणम्॥ २४
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम्।
अविचार्य ग्रहीष्यन्ति दानं वर्णान्तरात्तथा २५
राजचौराग्निदण्डार्तो जनः क्षयमुपेष्यति।
सस्यनिष्पत्तिरफला तरुणा वृद्धशीलिनः।
ईहयाऽसुखिनो लोका भविष्यन्ति युगक्षये २६
वर्षासु वाताः परुषा नीचाः शर्करवर्षिणः
संदिग्धः परलोकश्च भविष्यति युगक्षये॥ २७
आत्मनश्च दुराचारा ब्रह्मदूषणतत्पराः
आत्मानं बहु मन्यन्ते मन्युरेवाभ्ययाद्द्विजान्
वैश्याचाराश्च राजन्या धनधान्योपजीविनः
युगापक्रमणे सर्वे भविष्यन्ति द्विजातयः॥ २९
अप्रवृत्ताः प्रपत्स्यन्ते समयाः शपथास्तथा।
ऋणं सविनयभ्रंशं युगे क्षीणे भविष्यति॥ ३०
भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम्।
अजाश्चैवोपरोत्स्यन्ते पयसोऽर्थे युगक्षये॥३१
अशास्त्रविदुषां पुंसामेवमेव स्वभावतः।
अप्रमाणं वदिष्यन्ति नीतिं पण्डितमानिनः॥
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति युगक्षये।
सर्वे सर्वं हि जानन्ति वृद्धाननुपसेव्य वै ३३
न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते।
न क्षत्राणि नियोक्ष्यन्ति विकर्मस्था द्विजातयः
चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते पर्युपस्थिते ३४
कुण्डावृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः।
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ति युगान्ते जनमेजय॥ ३५
अयाज्यान्याजयिष्यन्ति
तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिणः।
ब्राह्मणा धनतृष्णार्ता
युगान्ते समुपस्थिते॥ ३६
भोशब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति।
एकशङ्खास्तदा नार्यो गवेधुकपिनद्धकाः ३७

वृकव्याघ्रादयः। स्वादूनाम् उत्तमरसादीनाम्॥ १६॥ अन्त्याः म्लेच्छाः मध्याः कुरुपञ्चालाः तत्रस्थाश्च म्लेच्छदेशे वासं करिष्यन्तीत्यर्थः। यथेति। नीचमार्गानुसारिण्यः इत्यर्थः॥ १७॥ दम्याः हलशकटादिवहनयोग्याः चित्रवर्षी हले योजितस्य बलीवर्दस्य एकं शृङ्गमार्द्रमेकं शुष्कमित्येवं वर्षिष्यतीत्यर्थः॥ १८॥ चौरयानाः मुष्णन्तः यत्किंचिद्व्यसनदुर्गताः दरिद्राः॥ १९॥ ऊषार्कबहुला क्षारमृत्तिकया प्रस्वेदभूयिष्ठा बीजनाशिनीत्यर्थः। नगरान्तरा इति वनान्तरेषु चौरभयात् वक्रमार्गेऽपि नगराश्रयोपयोगैः पान्थैर्गन्तव्यामित्यर्थः॥ २०॥ देयानि अलंकारादीनि शास्त्रतः अविभाज्यान्यपि विभजन्ते। लोभानृताभ्यां विरोधिताः सविरोधाः॥ २१॥ सौकुमार्ये लावण्ये रत्ने अलंकारादौ॥२२॥ निर्विहारस्य स्रक्चन्दनदिव्यास्तरणादिभोगसामग्रीविहारस्तद्रहितस्य भूतस्य रूपमात्रेण स्थितस्य॥ २३॥ ईहया तृष्णया असुखिनः॥ २६॥ युगापक्रमणे धर्ममर्यादाभङ्गे भविष्यन्ति॥ २९॥ समयाः साङ्केतिका धर्माः सविनयभ्रंशम् उत्तमेभ्यो विभ्रंशो यस्य तथा भविष्यति किमुत नीचेभ्यः॥ ३०॥ स्वभावतः स्वेच्छया शास्त्रार्थं वदिष्यन्ति॥ ३२॥ द्विजातयः क्षत्राणि न नियोक्ष्यन्ति। धर्म इति शेषः। तत्र हेतुः चौरेति॥३४॥ कुण्डायाम् अमृते जीवति पत्यौ जारजातायां वृषाः रेतःसेक्तारः कुण्डावृषाः। नैकृतिकाः अनधिकारिणावपि जायापती यज्ञं करिष्यत इत्यर्थः। अभक्ष्यस्येति च्छेदः॥ ३५॥ गवेधुकः कुसुम्भबीजाकारस्तृणधान्यविशेषस्तन्मयाः पिनद्धका अलंकाराः यासां ताः। एतच्च गुञ्जादेरप्युपलक्षणम्॥ ३७॥

नक्षत्राणि वियोगीनि विपरीता दिशस्तथा।
संध्यारागोऽथ दिग्दाहो भविष्यत्यवरे युगे ॥

पितॄन्पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु।
वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरास्तथा ३९

वाक्छरैस्तर्जयिष्यन्ति
गुरूञ्छिष्यास्तथैव च।
मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति
प्रमत्ताश्च नरास्तदा ॥ ४०

अकृताग्राणि भोक्ष्यन्ति
नराश्चैवाग्निहोत्रिणः।
भिक्षां बलिमदत्त्वा च
भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् ॥ ४१
पतीन्सुप्तान्वञ्चयित्वा
गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः।
पुरुषाश्च प्रसुप्तासु
भार्यासु च परस्त्रियम् ॥ ४२
नाव्याधितो नाप्यरुजो जनः सर्वोऽभ्यसूयकः
न कृतिप्रतिकर्ता च काले क्षीणे भविष्यति ॥

इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कलियुगवर्णने
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## कलियुगवर्णनम्।

### ४

जनमेजय उवाच।
एवं विलुलिते लोके मनुष्याः केन पालिताः
निवत्स्यंति किमाचाराः किमाहारविहारिणः
किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणाः किमायुषः
कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम्
व्यास उवाच।
अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्ततः
शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ते ह्रासमायुषः ३
आयुर्हान्या बलग्लानिर्बलग्लान्या विवर्णता।
वैवर्ण्याद्व्याधिसंपीडा
निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥ ४
निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता।

एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम्
उद्देशतो धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः।
विमर्षशीलाः केचित्तु हेतुवादकुतूहलाः ॥ ६
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं चेति निश्चिताः।
प्रमाणैकं करिष्यन्ति नेति पण्डितमानिनः॥७
अप्रमाणं करिष्यन्ति वेदोक्तमपरे जनाः।
तदा सुखभगाश्चैव भविष्यन्ति स्त्रियोऽपराः८
नास्तिक्यपरमाश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः।
भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः
तदात्वमात्रे श्रद्धेयाः शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः।
दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति वादशीलकुतूहलाः

वियोगीनि यथाशास्त्रं तत्तद्ग्रहसंयोगहीनानि ॥ ३८ ॥ वियोनिषु पशुषु विभिन्नवर्णेषु वा ॥ ३९ ॥ अग्रं ग्रासचतुष्टयम् अकृतम् अदत्तम् अग्रं येषां तानि अन्नानि अकृताग्राणि ॥ ४१ ॥ अरुजो मनःपीडारहितः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

**एवमिति**। एवं विलुलिते कलुषीकृते ॥१॥ शीलव्यसनं धर्मनाशनम् ॥ ३ ॥ निर्वेदः दहादौ वैराग्यम् ॥ ४ ॥ आत्मसंबोधः विवेकादयः एव गत्वा धर्मशीलत्वात् चित्तशुद्धिज्ञानोत्पत्तिद्वारा परां काष्ठां मोक्षदं ज्ञानं तदैव सर्वपापनाशनात् कृतयुगम् ॥ ५ ॥ उद्देशतः लेशतः विमर्षो विवेकः हेतुवाद एव न तु क्रियया कौतूहलं येषां ते हेतुवादकुतूहलाः वृथापाण्डिताः ॥ ६ ॥ निश्चिताः सौगता वैशेषिकाश्च वेदस्य परतोऽपि प्रामाण्यं नेच्छन्ति। पूर्वे सतः प्रामाण्यमपरे प्रमाणैकमेकमेव प्रत्यक्षमेव प्रमाणमिति चार्वाका नेतीत्यस्य नान्यत्प्रमाणामित्यर्थः ॥ ७ ॥ तदात्वमात्रं वर्तमानकालिकं दृष्टार्थमात्रे श्रद्धेयाः श्रद्धावन्तः। वादे शीले च कुतूहलम् आश्चर्यं येषां ते। धर्मवादोऽपि दुर्लभः किमुत तदाचरणमित्यर्थः ॥ १० ॥ शेषधर्मपुर-

१ ख. सुगे क्षी०

तदा विचलिते धर्मे जनाः शेषपुरस्कृताः ।
शुभान्येवाचरिष्यन्ति दानसत्यसमन्विताः॥
सर्वभक्षो ह्यसंगुप्तो निर्गुणो निरपत्रपः ।
भविष्यति तदा लोकस्तत्कषायस्य लक्षणम्॥
विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरा जनाः
प्रतिपत्स्यन्ति वृत्त्यर्थं तत्कषायस्य लक्षणम् ॥
कषायोपप्लवे लोके ज्ञानविद्याप्रणाशने ।
सिद्धिं स्वल्पेन कालेन यास्यंति निरुपस्कृताः
महायुद्धं महानादं महावर्षं महाभयम् ।
भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम्॥
विप्ररूपाणि रक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः ।
पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥ १६
निःस्वाध्यायवषट्कारा अनेयाश्चाभिमानिनः
विप्राः क्रव्यादरूपेण सर्वभक्षा वृथाव्रताः १७
मूर्खाः स्वार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः
व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माच्च शाश्वतात्॥
हर्तारः पररत्नानां परदारापहारकाः ।
कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः
तेषु प्रभवमाणेषु तुल्यशीलेषु सर्वतः ।
अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः २०
उत्पन्ना ये कृतयुगे प्रधानपुरुषाश्रयाः
कथायोगेन तान्सार्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः ।
भक्ष्यभोज्यापहाराश्च करण्डानां च हारिणः
चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हर्तुर्भविष्यति ।
चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥२३
निःसारे क्षुभिते लोके निष्क्रिये व्यन्तरे स्थिते
नराः श्रयिष्यन्ति वनं करभारप्रपीडिताः२४
पितॄनाज्ञापयिष्यन्ति पुत्राः कर्माणि सर्वशः ।
स्नुषा श्वश्रूस्तथा चैव युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥
वाक्छरैरर्दयिष्यन्ति गुरूञ्शिष्याः समंततः
यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च ॥
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामर्थ्यं वापि बन्धुषु ।
उद्देशतो नरश्रेष्ठ भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २७
स्वयंपालाः स्वयंचौरा युगसंभारसंभृताः ।
मण्डलैः प्रचलिष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक्२८
स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः
नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥
तदा स्कन्धे समाधाय कुमारान्विद्रुता भयात्
कौशिकीं प्रतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः
अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च काश्मीरानथ मेकलान्
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः
कृत्स्नं वा हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः।
अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सह
नैव शून्या न चाशून्या भविष्यति वसुंधरा ।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्ति शस्त्रिणः ॥
मृगैर्मत्स्यैर्विहंगैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः ।
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ३४
चीरं पर्णं च बहुलं वल्कलान्यजिनानि च ।
स्वयंकृतानि वत्स्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा
बीजानामाकृतिं निम्नेष्वीहंतः काष्ठशङ्कुभिः
अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः ॥

स्कृताः अवशिष्टो विष्णुस्मरणादिर्यो धर्मस्तदनुसारिणः । शुभानि दयादीनि ॥ ११ ॥ असंगुप्तोऽजितेन्द्रियः कषायस्य कलुषस्य ॥ १२ ॥ शाश्वतीं वृत्तिं भिक्षाम् अवरः क्षत्रियादिः ॥१३॥ ज्ञानं शास्त्रीयो बोधः विद्या आत्मदर्शनं तयोर्नाशने निरुपस्कृताः निष्परिग्रहाः; त्यागमात्रेण स्वल्पेनापि कालेन सिद्धिं मोक्षं यास्यन्तीति कलेर्गुणः ॥ १४ ॥ कर्णवेदिनः पिशुनवाक्यतत्पराः ॥ १६ ॥ अनेयाः अशास्याः । अनया इति पाठे नीतिहीनाः ॥१७॥ व्यवहारे भोजनाच्छादनादावेव उपवृत्तास्तत्पराः ॥ १८ ॥ सोपधाः छलवन्तः ॥ १९ ॥ तेषु दुष्टेषु प्रभवमानेषु ऐश्वर्यवत्सु अभाविनः विनाशभाजः बहुरूपिणः चातुराश्रम्यभाजः ॥ २० ॥ प्रधानपुरुषः ईश्वरस्तदाश्रयास्तद्भक्ताः कथायोगेनैव न तु तादृशाचारेण ॥ २१ ॥ करण्डानां करीषाणामिति प्राञ्चः । स्नानसामग्रीभाजनानां वंशमयानामिति वा ॥ २२ ॥ निःसारे निर्धने निष्क्रिये संध्योपासनादिहीने व्यन्तरस्थिते सर्ववर्णसाम्येन स्थिते ॥२४॥ उद्देशतः स्वल्पतः ॥ २७ ॥ मण्डलैः संघशः ॥ २८ ॥ निम्नेषु गिरिदर्यादिषु स्थित्वा बीजानाम् । आकृतिं ग्राम्यारण्यधान्यानां स्वरूपं ज्ञातुं भोक्तुं च ईहन्त इच्छन्तः तत्र तत्प्रापणक्षमम् अजैडकं पालयिष्यन्ति । गन्धारकाश्मीरादौ स्थितास्तु खरोष्ट्रमिति भेदः ॥ ३६ ॥

१ ख. तथा वि° २ ख. °भक्षः स्वयंगु° । ३ ख. °वे काले ज्ञा° । ४ख. °हावातं म° । ५ख. कर्मवे° । ६ख. °हारप्रवृ° ७ ख. °र्वशः । अ° । ८ ख. °रो हर्ता ह° । ९ ख. ततः स्कन्धैः स°।

नदीस्रोतांसि रोत्स्यंति तोयार्थे कूलमाश्रिताः
पक्कान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥ ३७
तनूरुहैर्यथा जातैः समूलान्तरसंवृतैः ।
बहुपत्याः प्रजाहीनाः कुललक्षणवर्जिताः ॥
एवं भविष्यन्ति तदा मनुष्याः कालकारिताः
हीनाद्धीनं तदा धर्मं प्रजाः समनुवर्त्स्यंति ॥
आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति ।
दुर्बला विषयग्लाना रजसा समभिप्लुताः ॥
भविष्यति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः ।
आयुःप्रक्षयसंरोधाद्विषादः प्रभविष्यति ॥ ४१
शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः ।
सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात् ॥
भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः
करिष्यन्ति च संकोचं स्वपक्षक्षयपीडिताः ॥
एवं शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राणाभिरक्षणे ।
चतुष्पादः प्रवृत्तश्च धर्मः श्रेयोऽभिपत्स्यते ॥
तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् ।
स्वादु किं न्विति विज्ञाय धर्म एवं वदिष्यति
यथा हानिः क्रमात्प्राप्ता तथा वृद्धिः क्रमाद्गता
प्रगृहीते यतो धर्मे प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥
साधु वृत्तं कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते ।
एक एव तु कालः स हीनवर्णो यथा शशी ।
छन्नो हि तमसा सोमो यथा कलियुगे तथा ।
पूर्णश्च तमसा हीनो यथा कृतयुगे तथा ॥ ४८
अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति तं विदुः ।
अनिर्णिक्तमविज्ञातं दायाद्यमिव धार्यते ॥४९
इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थावरं कृतम् ।
गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणास्तथ्येन कर्मणा ॥
आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी ।
युगे युगे यथाकालमृषिभिः समुदाहृता ॥
इह धर्मार्थकामानां देवतानां प्रतिक्रिया ।
आशिषश्च शुभाः पुण्यास्तथैवायुर्युगे युगे ॥

यथा युगानां परिवर्तनानि
चिरं प्रवृत्तानि विधिस्वभावात् ।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥ ५३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कलियुगवर्णने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

**पक्केति** । अद्य प्रस्थौदनं गृहीत्वा श्वः सपादगुणं देहीति व्यवहरन्त इत्यर्थः ॥३७॥ समूलान्तरसंवृतैः मूलधनेन सहितस्य अंतरस्य कलाद्रव्यस्य संवृतानि संसरणानि अपलापास्तैः निमित्तभूतैः। यथा कान्तैस्तनूरुहैः कलहायमानाः व्यवहरन्ति तथोत्तमवर्णा धर्मेणापणन्त आसत इति पूर्वेणान्वयः ॥३८॥ संकोचं दुराचारस्येति शेषः॥४३॥ एवं शुश्रूषादिपादचतुष्टये प्रवृत्तः धर्मः। यतः श्रेयः प्रशस्ततरम् अहिंसादिधर्मं प्रपत्स्यते ॥४४॥ तेषां श्रेयःप्रपन्नानां लब्धानुमानानाम् अन्वयव्यतिरेकाभ्यां निर्ज्ञातधर्माधर्मफलानां मध्ये गुणेषु शब्दादिविषयेषु वा परिवर्तनं रमणं स्वादु किमुत धर्मे इति संदिह्य विज्ञाय तत्त्वं निश्चित्य एवं वक्ष्यमाणं जनो वदिष्यति ॥४५॥ तदेवाह—**यथेति** । यतः उक्तानिश्चयात् ॥४६॥ यथा शशीति दृष्टान्तं विवृणोति—**छन्न इति** । काल इत्यनुकृष्यते ॥ ४८॥ सकलशास्त्ररहस्यं संगृह्णाति—**अर्थेति** द्वाभ्याम् । परं ब्रह्म यत् तत् अर्थवादः सत्यस्यैवार्थस्य कथनं तत्त्वभूतस्य कीटभृङ्गन्यायेन ध्यानक्रियया भवनं तदेव च वेदार्थ इत्युक्तम् । तमिति विधेयापेक्षं पुंस्त्वम् । सिद्धस्यैवालाभे दृष्टान्तमाह—**अनिर्णिक्तमिति** । मलिनं पित्र्यं स्वर्णपिण्डं स्वर्णत्वेनाविज्ञाय दरिद्रोऽस्मीति मन्यते । तस्य मलापगमे तु धनवानहमिति निश्चिनोत्येवं ब्रह्मापि प्रत्यगनन्यत्वेनावधार्यते ॥ ४९ ॥ **इष्टेति** । तपो धर्मः वर्णाश्रमयोग्यः स च इष्टवादः स्वर्गाद्यभीष्टकथनं यतस्तपः स्थावरम् अनादि अव्यभिचारिफलकृत् शास्त्रे निश्चितम् । ततश्च गुणैः देहादिभिः कर्माभिनिर्वृत्तिः कर्मसिद्धिर्भवति। कर्मणा च तथ्येन सत्येन गुणाः देहादय इह कर्मभ्यो मुक्तिर्नास्ति। अतोऽशरीरं ब्रह्माश्रयेदित्यर्थः । द्वावेतौ पुष्करप्रादुर्भावस्य सूत्रभूतौ श्लोकौ ॥५०॥ आशीः एकस्मादेव कर्मणः फलप्राप्तिस्तत्तद्युगीयपुरुषाणां श्रद्धादितारतम्यात्तारतम्येन भवतीत्यर्थः ॥५१॥ इह भौमप्रतिक्रियाफलं तथैव तारतम्येनेत्यर्थः ॥ ५२ ॥ यथेति उत्तरार्धे तथेति पूरणीयम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीहरिवंशे टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

१ ख. °पत्या मृजा° । २ ख. °यसंबोधाद्धिंसा च न भाविष्य° ।

## जनमेजयाश्वमेधः इन्द्रस्य कापट्यं च ।

## ५

सूत उवाच ।

इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम् ।
अतीतानागतं वाक्यमृषेः परिषदा श्रुतम् ॥
अमृतस्येव संवाहः प्रभा चन्द्रमसो यथा ।
अतर्पयत्त तच्छ्रोत्रं महर्षेर्वाङ्मयो रसः ॥ २
धर्मकामार्थसंयुक्तं करुणं वीरहर्षणम् ।
रमणीयं तदाख्यानं कृत्स्नं परिषदा श्रुतम् ॥
केचिदश्रूणि मुमुचुः श्रुत्वा दध्युस्तथापरे ।
इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदर्शितम् ॥
सदस्यान्सोऽभ्यनुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणां
पुनर्द्रक्ष्याम इत्युक्त्वा जगाम भगवानृषिः ।
अनुजग्मुस्तदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम् ।
लोके प्रवदतां श्रेष्ठं ये विशिष्टास्तपोधनाः ॥ ६
याते भगवति व्यासे तदा ब्रह्मर्षिभिः सह ।
ऋत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥
पन्नगानां सुघोराणां कृतानां वैरयातनाम् ।
जगाम रोषमुत्सृज्य राजा विषमिवोरगः ॥ ८
होत्राग्निदीप्तशिरसं परित्राय च तक्षकम् ।
आस्तीकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः ९
राजाऽपि हास्तिनपुरं जगाम स्वजनावृतः ।
अन्वशासच्च मुदितस्तदा प्रमुदिताः प्रजाः १०
कस्यचित्त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः
दीक्षितो वाजिमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥
संज्ञप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या वपुष्टमा ।
संविवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १२
तां तु सर्वानवद्याङ्गीं चकमे वासवस्तदा ।
संज्ञप्तमश्वमाविश्य तया मिश्रीबभूव सः ॥१३
तस्मिन्विकारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत्।
असंज्ञप्तोऽयमश्वस्ते ध्वंसेत्यध्वर्युमब्रवीत् ॥१४
अध्वर्युर्ज्ञानसंपन्नस्तदिन्द्रस्य विचेष्टितम् ।
कथयामास राजर्षेः शशाप स पुरंदरम् ॥ १५

जनमेजय उवाच ।

यद्यस्ति मे यज्ञफलं तपो वा रक्षतः प्रजाः ।
फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम् ॥ १६
अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजितेन्द्रियमस्थिरम् ।
क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्यन्तीति शौनक १७
ऋत्विजश्चाब्रवीत्क्रुद्धः स राजा जनमेजयः ।
दौर्बल्यं भवतामेतद्यदयं धर्षितः क्रतुः ॥ १८
विषये मे न वस्तव्यं गच्छध्वं सह बान्धवैः ।
इत्युक्तास्तत्यजुर्विप्रास्तं नृपं जातमन्यवः॥१९
अमर्षादन्वशासच्च पत्नीशालागताः स्त्रियः ।
राजा परमधर्मज्ञस्तामसौ जनमेजयः ॥ २०
असतीं वपुष्टमामेतां निर्यातयत मे गृहात्।
यया मे चरणौ मूर्ध्नि पातितौ रेणुगुण्ठितौ २१
शौण्डीर्यं मेऽनया भग्नं यशो मानश्च दूषितः।
न चैनां द्रष्टुमिच्छामि परिक्लिष्टामिव स्रजम्॥
न स्वादु सोऽश्नाति नरः सुखं स्वपिति वा रहः
अन्वास्ते यः प्रियां भार्यां परेण मृदितामिह
पुनर्नैवोपभुञ्जन्ति श्वावलीढं हविर्यथा ।
एवमुच्चैः प्रभाषन्तं क्रुद्धं पारीक्षितं नृपम् ।
गन्धर्वराजः प्रोवाच विश्वावसुरिदं वचः २४

विश्वावसुरुवाच ।

त्रियज्ञशतयज्वानं वासवस्त्वां न मृष्यते
अप्सरास्तेन पत्नी ते विहितेयं वपुष्टमा॥ २५
रम्भानामाप्सरा देवी काशिराजसुता मता ।
सैषा योषिद्वरा राजन्रत्नभूतानुभूयताम्॥ २६
यज्ञे विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम् ॥२८
यज्वा ह्यसि कुरुश्रेष्ठ समृद्ध्या वासवोपमः ॥
बिभेत्यभिभवाच्छक्रस्तव क्रतुफलैर्नृप ।
तस्मादावर्तितश्चैव क्रतुरिन्द्रेण ते विभो २९
मायैषा वासवेनेह प्रयुक्ता विघ्नमिच्छता ।
क्रतोर्विवरमासाद्य संज्ञप्तं दृश्य वाजिनम् २८

---

५

**इत्येवमिति** ॥१॥ संवाहः प्रवाहः ॥२॥ आख्यानं भारतम् ॥ ३ ॥ दध्युः ध्यानं कृतवन्तः ॥ ४ ॥ होत्राणां संबन्धिनो धिष्ण्याग्नयस्तैर्दीप्तशिरसम् ॥ ९ ॥ संज्ञप्तं मारितं संविवेश तत्समीपे उपविष्टा ॥ १२ ॥ मिश्रीबभूव मिथुनीबभूव ॥ १३ ॥ असंज्ञप्तः मरणमप्राप्तः अब्रवीद्राजा ॥ १४ ॥ अन्वशासत् आज्ञप्तवान् ॥ २० ॥ आज्ञामेवाह—**असतीमिति** ॥ २१ ॥ शौण्डीर्यं माहात्म्यम् ॥ २२ ॥ आवर्तितः विघ्नितः ॥ २८ ॥

---

१ ख. °णा पाराशर्येण दर्शि° । २ ख. कृत्वा तां वैरया° । ३ ख. प्तं° विश्ववाजि° ।

रतिमिन्द्रेण रम्भायां मन्यसे यां वपुष्टमाम् ।
अथ ते गुरवः शप्तास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥ ३०
भ्रंशितस्त्वं च विप्राश्च
बलादिन्द्रसमादिह ।
त्वत्तश्चैव सुदुर्धर्षा-
स्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥ ३१
बिभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः
एकेन वै तद्भयं तीर्णं शक्रेण मायया ॥ ३२
स एष सुमहातेजा विजिगीषुः पुरंदरः ।
कथमन्यैरनाचीर्णं नप्तुर्दारानविक्रमेत् ॥ ३३
विश्वावसुरुवाच ।
यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः ।
यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरिवाहने ।
तथैव त्वयि दुर्धर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि ॥ ३४
मा वासवं मा च गुरुमात्मानं मा वपुष्टमाम् ।
गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दुरतिक्रमः ३५
ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः ॥
आनुकूल्येन देवस्य वर्तितव्यं सुखार्थिना ॥३६
दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्रोत इवाम्भसः ।
स्त्रीरत्नमुपभुङ्क्ष्वेमामपापं विगतज्वरः ॥३७
अपापास्त्यज्यमाना वै त्यजेयुरपि योषितः ।
अदुष्टास्तु स्त्रियो राजन्दिव्यास्तु सविशेषतः
भानोः प्रभा शिखा वह्नेर्वेदी होत्रे तथाहुतिः ।
परामृष्टाप्यसंसक्ता नोपदुष्यन्ति योषितः ३९
ग्राह्या लालयितव्याश्च पूज्याश्च सततं बुधैः ।
शीलवत्यो नमस्कार्याः पूज्याः श्रिय इव स्त्रियः

इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि विश्वावसुवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

## एतद्ग्रन्थश्रवणफलम् ।

६

सौतिरुवाच ।
एवं स विश्वावसुनाऽनुनीतः
प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः ।
चकार मिथ्या व्यतिशङ्कितात्मा
शान्तिं परां मानवधर्मदृष्टाम् ॥ १
श्रममभिविनिवर्त्यमानसं
स समभिलषञ्जनमेजयो यशः स्वम् ।
विषयमनुशशास धर्मबुद्धि-
र्मुदितमना रमयन्वपुष्टमां ताम् ॥ २
न हि विरमति विप्रपूजना-
न्न च विनिवर्तति यज्ञदानशीलात् ।
न विषयपरिरक्षणाच्च्युतोऽभू-
न्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च ॥ ३
विधिविहितमशक्यमन्यथा हि कर्तुं
यदृषिरचिन्त्यतया पुराऽब्रवीत्सः ।
इति स नृपतिरात्मवांस्तदासौ
तदनु विचिन्त्य बभूव वीतमन्युः ॥ ४
इदं महाकाव्यमृषेर्महात्मनः
पठन्नृणां पूज्यतमो भवेन्नरः ।
प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं
लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम् ॥ ५
शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं
पठन्निदं मुच्यति कल्मषान्नरः ।
तथैव कामान्विविधान्समश्नुते
ह्यवाप्तकामश्च चिराय नन्दति ॥ ६

ते त्वया ॥३०॥ नप्तुः पौत्रस्य । अविक्रमेदित्यत्राविरित्युपसर्गः । अ इति निपातो वा ॥ ३३ ॥ अदुष्टाः अल्पदोषा इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ परामृष्टाप्यसंसक्ता दूषिताप्यदूषितेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ इति हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

**सौतीति** । मिथ्याव्यतिशंकितात्मा निर्निमित्तं रुषिताचित्तः ॥१॥ विधिविहितमिति पादेऽक्षरत्रयाधिक्यमार्षम् ॥४॥

१ ख. °श्च फला° । २ ख. °नतिक्र° । ३ ख. °संस्का नो° । ४ ख. तायाः शा° । ५ ख. °मंजुष्टा° । ६ घ. °वर्तमा° । ७ ख. °न्त्यतपाः पु° ।

यथा हि पुष्पप्रभवं फलं द्रुमाः
फलात्प्रजायन्ति पुनश्च पादपाः ।
तथा महर्षिप्रभवा इमा गिरः
प्रवर्धयन्ते तमृषिं प्रवर्धिताः ॥ ७
पुत्रानपुत्रो लभते सुवर्चस-
श्च्युतः पुनर्विन्दति चात्मनः स्थितिम्
व्याधिं न चाप्नोति चिरं स बन्धनं
क्रियां च पुण्यां लभते गुणान्वितः ८
पतिमभिलभते च सत्सु कन्या
श्रवणमपेत्य शुभा मुनेस्तु वाचः ।
जनयति च सुतान्गुणैरुपेतान्-
स्वजनहिते द्विषतां प्रमर्दनं च ॥ ९
विजयति वसुधां च राजवृत्ति-
र्धनमतुलं लभते द्विषज्जयं च ।
विपुलमपि धनं लभेच्च वैश्यः
सुगतिमियाच्छ्रवणाच्च शूद्रजातिः१०
पुराणमेतच्चरितं महात्मना-
मधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम् ।
विहाय दुःखानि विमुक्तसङ्गः
स वीतरागो विचरेद्वसुंधराम् ॥ ११
इत्येतदाख्यानमुदाहृतं वै
प्रतिस्मरन्तो द्विजमण्डलेषु ।
स्थैर्येण धैर्येण पुनः स्मरन्तः
सुखं भवन्तोऽनुचरन्तु लोकम् ॥ १२
इति चरितमिदं महात्मना-
मृषिकृतमद्भुतवीर्यकर्मणाम् ।
कथितमिदं हि समासविस्तरैः
किमपरमिच्छसि किं ब्रवीमि ते १३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भविष्यान्तग्रन्थार्थप्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## पुष्करप्रादुर्भावः ।

### ७

जनमेजय उवाच ।
प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि । पुष्करे वै यथोद्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा १

वटादुत्पन्नं फलं वटान्तरं वधयाति तथा व्यासादुत्पन्नोऽयं ग्रन्थस्तु व्यासमेव वर्धयतीत्याश्चर्यमिति भावः ॥ ७ ॥ बन्धनं संसारं क्रमेण मुच्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥ इच्छसि श्रोतुमिति शेषः ॥ १३ ॥ **इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसगोविन्दसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे हरिवंशान्तर्गतभविष्यान्तग्रन्थार्थप्रकाशटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥**

७

**श्रीमद्गोपालमानम्य व्याकुर्वे पुष्करोद्भवम् । ख्यातश्चतुर्धरः शिक्षानयप्रणयसंयमैः ॥ १ ॥ उत्तानेषु न कोशविग्रहबलं पद्मेषु यत्र श्रितं गम्भीरेषु न सेतवो न विहिताः कूटा न न स्फोटिताः ॥ न च्छिन्ना न तमश्चरानततिभक्ता न नाह्लादिता नो दीनाश्च विभीषणा न विहिताः श्रीलक्ष्मणार्यश्रितैः ॥ २ ॥ कस्त्र्यम्बकमृते कालकूटाभं पुष्करोद्भवम् ॥ कण्ठे कर्तुं क्षमो लोके कामजित्पुरुषोत्तमः॥३** तत्र तावदिह " **वक्तुमर्हसि धर्मज्ञो यशो नारायणात्मकम्** " इति " न तस्येशे कश्चन यस्य नाम महद्यशः, तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् " इति श्रुतिप्रसिद्धस्य नारायणात्मकस्य यशःशब्दितस्य वक्तव्यत्वेनोपक्रमात् "अधीत्यसर्वमध्यात्मदेवलोके महीयते ।" इत्युपसंहारेण चास्य कृत्स्नस्य वाक्यसंदर्भस्य षड्विंशत्यध्यायसंमितस्य ब्रह्मपरत्वं निश्चीयते । यत्त्विह जगदुद्भवादिकमुक्तं तत् 'फलवत्संनिधावफलं तदङ्गम्' इति न्यायेन महावाक्यं प्रतिपाद्य ब्रह्माद्वैतप्रतिपत्त्यर्थमेवं । ये चात्र एकार्णववद्देवासुरादिशब्दा-

१ ख° °कसंशयः स वी° ।

**एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदां पते ।**
**शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरभिजायते ॥ २**
**कियन्तं चैव कालं वै शयिता पुरुषोत्तमः ।**
**किमर्थं शयते कालं तस्य कालस्य संभवः ३**
**कियता चैव कालेन प्रबुध्यति सुराधिप ।**
**कथमुत्थाय भगवानसृजन्निखिलं जगत् ॥ ४**

ष्नेऽपि यथा, "**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्, द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**" इत्यादिश्रुतिषु मेषीशकुन्यादिवृत्तान्तकथनमुखेन ब्रह्मत्वं निरूपितम् । तथा निर्विशेषचिन्मात्रशमकामादिचेतोवृत्तिविशेषपरतया व्याख्येयाः । "**सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवति**" "**द्वयाह प्राजापत्या दैवाश्चासुराश्च**" इत्यादिश्रुतिष्वपि अनयैव भङ्ग्या ब्रह्मतत्त्वनिरूपणदर्शनात् । एवं चैकार्णवादिशब्दानां सलिलादिश्रुतिसमानार्थत्वेन तयोर्मूलमूलिभावे संभवति खण्डप्रलयपरतया तद्व्याख्यानमसत्स्वप्याकाशादिषु जलधातुमात्रस्यसद्भावसंभवात्तत्पौर्वापर्यविरोधादुपेक्ष्यम् । एवं चात्र-

" एकार्णवं विशुद्धा चिद्विष्णुरव्याकृतं नभः ।
पुष्करं द्विविधं कार्यं शमकामौ सुरासुरौ ॥
अनयैव दिशाध्यात्ममाधिदैविकरूपकैः ।
निरूपितं पुराणेषु पूर्वेष्वपि न संशयः ॥
पुष्करं पुष्करप्रादुर्भावे तदिह दृश्यते ।
अतस्तद्व्याख्यया सर्वं पुराणं व्याकृतं भवेत् ॥
विद्याधिकारावगतावश्वमेधादिकेष्विह ।
इन्द्रवृत्रादयः शब्दा आत्ममोहपराः कृताः ॥
अत्रापि ब्रह्मणस्तद्वत्पारोक्ष्येण निरूपणम् ।
चक्रे दुर्जनचोरेभ्यस्तत्त्वरत्नं सुरक्षितुम् ॥
अनयैव दिशा वेदे ज्ञेयं वृत्रवधादिकम् ।
इत्याशयेन भगवान्व्याख्यत्पारोक्ष्यतत्परम् ॥ "

पुष्करप्रादुर्भावेऽध्यात्मविद्यास्वरूपेणाधिदैविकादिरूपकेण च दर्शितां यथामति व्याकुर्मः । तत्र पूर्वं भविष्ये संसारिणामत्युल्बणां गतिं श्रुत्वा अत्यन्तमुद्विग्नः '**तरति शोकमात्मवित्**' इति श्रुतेः "**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" इति श्रुतेश्चात्मज्ञानादन्यच्छ्रेयःसाधनमपश्यन् तदेव सविस्तरं जिज्ञासमानो जनमेजय उवाच-**प्रभावं पद्मनाभस्येत्यादि** ॥ पद्मनाभस्य प्रभावमाख्याहीति संबन्धः । पद्मं कृत्स्नकार्यप्रपञ्चः स नाभौ गर्भे यस्य सः मायोपाधिरीश्वरः । तस्य प्रभावं सृष्ट्यादिसामर्थ्यं कथयेत्यर्थः । किम्भूतस्य पद्मनाभस्य ? सागराम्भसि स्वपतः सागरवदनन्तमपारं च अम्भ इवाम्भः "**एकं रसं महद्भूतमनन्तमपारं, सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवति**" इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं ब्रह्म न तु प्राकृतसमुद्राम्भः । " नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले " इति वाक्यशेषे तत्कारणस्याग्न्यादेरपि नाशे तदवस्थानायोगात् । तस्मिन्सागराम्भसि "**शुद्धे ब्रह्मणि स्वपतः स्वपितो भवति । तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते**" इति स्वपितिनामनिर्वचनात् "**ईश्वरग्रासस्तुरीयतुरीयः, अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्म निष्फले संप्रलीयते ।**" इति श्रुतिस्मृत्योरीश्वराव्यक्तशब्दितस्य मायाविनः शुद्धे लयोपलम्भात्स्वं निजं मायातीतं रूपं पतति गच्छतीति स्वपन् तस्य स्वपत इति योगेन निष्कले ब्रह्मणि कैवल्ये समाधौ वा लीयमानस्य मायाविनः प्रभावं ब्रूहीति **मुख्यः प्रश्नः** । पुष्करे ब्रह्माण्डे देवा ऋषयश्च कथमुत्पन्ना इति वा । "व्योम पुष्करमम्बरम्" इति पुष्करशब्दस्य व्योमवाचित्वेन व्योमपर्यायाणां च प्रायेण, "**खं ब्रह्म अमृतं दिवि परमे व्योमन्**" इत्युपनिषत्स्वव्याकृताकाशे प्रसिद्धेः । पुष्कराख्ये तस्मिन्देवर्षयः इन्द्रियप्राणाः सूत्रात्मेति यावत्कथमुत्पन्न इति **द्वितीयः प्रश्नः** ॥ १ ॥ योगं सूत्रे संशुद्धानामधिगमोपायम् आख्याहीति **तृतीयः प्रश्नः** ॥ २ ॥ "**नो व्योमापरो यत, तस्माद्व्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम ।**" इति श्रुतिस्मृत्योर्विशेषणभूतमायातिरोधानप्रादुर्भावाभ्यां सृष्टेः प्रागूर्ध्वं च तद्धेतोर्मायाविनः स्थितिकालावधिं पृच्छति-**कियन्तमिति** । स्थित्वेति शेषः । शयितेति लुडन्तम् । शयनं करिष्यतीत्यर्थः । कियता चैव कालेन स शेते इति पाठे तु महानपि कालो भोगलुब्धानाम् अल्प एवेत्याभिप्रेत्य " वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा " इति शेते इति लट् प्रयुक्तः । तृतीयं पृष्ट्वा **चतुर्थं पृच्छति-किमर्थमिति** । कालस्य संभवो योनिः सन् काले किमर्थं शेते परिमितकालावेव सृष्टिप्रलयौ कुतः करोति । प्रवाहानित्यां वा सृष्टिं कुतो न करोतीत्यर्थः । कालमिति द्वितीयाऽत्यन्तसंयोगे । शयत इति शपोऽलुगार्षः । श्रयत इति पाठः स्वच्छः । स्वपते इति पाठे स्वपितीत्यर्थः । आत्मनेपदं चार्षम् ॥ ३ ॥ लयकालावधिं पृच्छति—**कियतेति** । एवं कियन्तमित्यादिना सार्धश्लोकेन स्वपत इति प्रथमश्लोकपदार्थं विविच्य पृष्ट्वा यथोद्भूता इत्यपि तथैव पृच्छति सार्धेन—**कथमिति** । कूटस्थस्य । द्वितीयस्य कथमु-

१ किमर्थं च तथा शेते कश्च कालस्य संभवः । इति क्वचित्पाठः । १ ख. °न सोत्तिष्ठति सुराधिप । कथं चोत्था° ।

के प्रजापतयस्तात आसन्पूर्वं महामुने।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोके सनातनः ॥ ५
एवमेकार्णवे लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे।
नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ६
नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥ ७
प्रभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः।
आस्ते सुरगुरुश्रेष्ठो विधिमादाय कं मुने ॥ ८
तन्मे त्वमुपपन्नाय ब्रह्मन्नेतदसंशयम्।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम् ॥ ९
प्रादुर्भावं पुरस्कृत्य भूतं भव्यं महात्मनः।
श्राद्धानामुपविष्टानां भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ १०

वैशम्पायन उवाच।

नारायणयशोज्ञाने या भवेद्भवतः स्पृहा।
त्वद्वंशानघपूतस्य कार्यं कुरुकुलर्षभ ! ११
शृणुष्वादिपुराणेभ्यो देवताभ्यो यथाश्रुति।
ब्राह्मणानां च वदतां श्रुतोऽस्माभिर्महात्मनाम्
तथा च तपसा दृष्टो बृहस्पतिसमद्युतिः।
पाराशर्यस्ततः श्रीमान्गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम्।
न विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण भारत १४

पादानत्वं युज्येतेत्यर्थः ॥ ४ ॥ एतदेवाह—सनातनः सर्वदैकरूपः कूटस्थ इत्यर्थः ॥ ५ ॥ अद्वितीयत्वमाह—**एवमिति द्वाभ्याम्**। एकार्णवे शुद्धचिन्मात्रे लोके। "**आत्मानमेव लोकमुपासीत**" इत्यात्मनि लोकशब्दस्य श्रौतप्रसिद्धेः। लोके नष्ट इत्यधिकरणे सप्तम्यौ। चिदात्मनि स्थावरादावदर्शनं गते सतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ एतेन योगमाख्याहीति तृतीयप्रश्ने योगशब्दार्थो विवृतः। एतदेवोपसंहरति—**केवलमिति**। गह्वरं नैघण्टुप्रसिद्ध्याकाशं न शून्यमिति तेन लक्ष्यते। गह्वरमिति त्रिविधभेदशून्यत्वाद्गह्वरीभूते इत्यभूततद्भावार्थस्य च्वेः प्रयोगः। शून्यतुलां दधत इत्युक्तं श्रीभागवते **वेदस्तुता**।महाभूतानि वियदादीनि तेषां विपर्ययः प्रलयो यस्मिंस्तस्मिन्नेकार्णवे सतीत्यर्थः ॥७॥ **प्रभुरिति**। प्रभुश्चिदात्मा कां विधिं नियतिम्। "भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" इति साहचर्याद्विधिशब्दस्य स्त्रीत्वम्। प्रभुः किमदृष्टरूपं सहायमादाय आश्रित्य महाभूतपतिर्वियदादिस्रष्टा ईशः, महातेजा इति समष्टिस्तैजसः सूत्रात्मा, महातितिरिति अत्यन्ताविस्तृतो विराट् च भूत्वा आस्ते। सुराः महदाद्यास्तेषां गुरुरीशः तस्यापि श्रेष्ठ इति विभोर्विशेषणम् ॥ ८ ॥ "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते।" इति न्यायमाश्रित्य हि ब्रह्माद्वैतं प्रसाध्यम्। तच्चाध्यारोपस्यैव दुर्वचनत्वादनुपपन्नम्। त्वया च असकृत्तदेवोपपादितमतः संशयाविष्टस्य मे निःसंशयं ज्ञानं यथा स्यात्तथा वक्तुमर्हसीत्याह—**तन्मे त्वमिति**। उपपन्नाय योग्याय। यशो नारायणात्मकम्। नरोऽविद्यावच्छिन्नं ब्रह्म, तेन स्वात्मनि कल्पितम्, ईशसूत्रविराडन्तं नारं तस्य समूलस्य अयनं स्थानं नारायणः शुद्धं वस्तु तदात्मकं यशः वैभवविलासः ईशादिघटान्तः तं वक्तुमर्हसीति संबन्धः। "अशोदेवने युट् च" इति अशेरसुन्प्रत्यये युट्। एतेन "**अनन्तरो बाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघनः।**" इति श्रुतिप्रसिद्धं सबाह्याभ्यन्तरं शुद्धं चिन्मात्रं नारायणरूपमिति सर्वत्र श्रुतं तदुपपत्तिपूर्वकं व्युत्पादयेति सूचितम् ॥ ९ ॥ भूतं विद्वद्दृष्ट्या नित्यसिद्धप्रादुर्भावम् अधिष्ठानातिरेकात् मूढदृष्ट्या भव्यम् उत्पद्यमानम्। श्रद्धा विद्यते येषां ते श्राद्धाः। "प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः" इति मत्वर्थीयो णः ॥ १० ॥ प्रष्टारं प्रोत्साहयन् वैशम्पायन उवाच—**नारायणेति**। हे अनघ! हे कुरुकुलर्षभ ! नारायणात्मकयशोज्ञाने या भवतः स्पृहा भवेत्सा त्वद्वंशा त्वद्वंशे उचिता। विभक्तधनेषु भ्रातृषु विभक्ता इतिवदुत्तरपदलोपः। सा स्पृहा पूतस्य यज्ञाद्यनुष्ठानस्य कार्यं फलम्। "**तमेवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन**" इति श्रुतेः। भूतस्येति पाठे लब्धजन्मन इदमेव कार्यं करणीयं यद्भगवद्विचारोऽन्यथा निष्फलं जन्मेत्यर्थः ॥ ११ ॥ श्रुतिम् उपनिषद्वाक्यम् अनतिक्रम्येति यथाश्रुति। श्रुतः पद्मनाभस्य प्रभाव इति पृष्टस्य विशेष्यस्यानुकर्षः ॥१२॥ तपसा पुण्येन दृष्टो मयेति शेषः। दृष्ट्वेति पाठे तपसा ध्यानेन दृष्ट्वा पद्मनाभस्य प्रभावमिति पूर्ववत् पृष्टानुकर्षः ॥१३॥ तत्तेऽहं यद्देवतादिभ्यः श्रुतं यच्च द्वैपायनेनोक्तं तद्बाहुल्यात् सर्वं बोद्धुमशक्यमित्याशयेनाह—**यथाप्रज्ञमिति**। यथाश्रुतं विज्ञातुं विशेषेण ज्ञातुं मया न शक्यम्। ऋषिर्मन्त्रद्रष्टा तन्मात्रेण। "**सोऽहं भगवतो मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित्**" इति छान्दोग्ये सनत्कुमारं प्रति वदता नारदेनेवेत्यर्थः ॥१४॥

१ ख. कथमे॰। २ ख. ॰वे घोरे न॰। ३ ख. ॰हाकृतिः। आ॰। ४ ख. ॰घभूत॰। ५ ख. ॰श्रुतः। ब्रा॰।

कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ।
विश्वात्मनोऽयं ब्रह्माऽपि न वेदयति तत्त्वतः
श्रुतं मे विश्वदेवानां यद्रहस्यं महर्षिणाम् ।
तदिदं सर्वदेवानां तत्त्वतस्तत्त्ववादिनाम् १६
तदध्यात्मविदां चिन्त्यं कारणं चैव कर्मिणाम्
अधिदैवं च यद्दैवं तद्दैवमिति संज्ञितम् ॥ १७
यद्भूतमधिभूतं च यत्परं च महर्षिणाम् ।
यत्सत्यं देवदृष्टं च यत्तद्वेदविदो विदुः ॥ १८
यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ।
प्रधानं पुरुषः शास्ता एकस्तदभिशब्द्यते ॥१९
कालः कालं स्वपयति द्रष्टा स्वाधीन एव च
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षय्य एव च ॥२०
उच्यते विविधैर्भावैस्तस्यैवानघ तत्परैः ।
स एव भगवान्सर्वं करोति विकरोति च ॥ २१
योऽस्मान्कारयते कर्म तेनास्म व्याकुलीकृताः
यजामहे तमेवेशं तमेवेच्छाम निर्वृताः ॥ २२

परं पुरुषं नारायणात्मकं शुद्धचिदात्मकं यं पुरुषं ब्रह्माऽपि वेदोऽपि विश्वात्मनः साकल्यात् सर्वात्मना मुख्यवृत्त्येति यावत्, न वेदयते। "**यतो वाचो निवर्तन्ते**" इति श्रुतेः। कार्त्स्न्येन न वेदयते किं तु भागलक्षणया तु वेदयत इवेत्यर्थः॥ १५॥ श्रुतं मे मया विश्वेषां देवानां महर्षिणां च। ह्रस्वत्वमार्षम्। यद्रहस्यं गोप्यं तत् इदम् इदमेव यत्त्वया पृष्टं नारायणात्मकं यशः। कीदृशानां विश्वेदेवानां तत्त्वतः अनारोपितरूपेण सर्वे देव आत्मैव येषां ते सर्वदेवास्तेषाम्। "**सर्वं खल्विदं ब्रह्मेदं सर्वं यदयमात्मा**" इति श्रुतेः। अत एव कृपया शिष्यान्प्रति तत्त्ववादिनां तत्त्वमेव वक्तुं शीलं येषां तेषाम्॥ १६॥ कारणं प्रवर्तकं यत्तद्दैवं देवानां विदुषामिदं दैवम् अधि अधिकं दैवं महाभाग्यं ज्ञानाख्यम्। "**यद्देवानां दैवं तदश्नवै तदाप्नवानिति; एषास्य परमा संपत्**" इति श्रुतेः। तद्वस्तु दैवमदृष्टमिति संज्ञितं सर्वेषां सुखकरं भाग्यम्। "**एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति**" इति श्रुतेः॥ १७॥ अध्यायशेषेण अनुवादमुखेन प्रश्नानां क्रमेण संक्षिप्योत्तराण्याह-**यद्भूतमित्यादिना**॥ भूतम् अनादि अनादित्वं व्यवहारे मायायामप्यस्तीत्यत उक्तम् अधिभूतं सर्वेषु तेषु सद्रूपेणानुस्यूतम्, अनन्तमित्यर्थः। जाड्यरूपेण मायाऽपि सर्वत्रानुस्यूतेत्यत उक्तं-**परमिति**। महर्षिणां महर्षीणां ज्ञेयतयेति शेषः। परमुत्कृष्टं जडस्य परत्वायोगात्, परत्वं मायोपाधिक्येऽप्यस्तीत्यत उक्तं-**सत्यमिति**। मायया बाधितत्वेन तस्यापि बाधितत्वादसत्यत्वं सत्यमप्याचिद्रूपं चेत्तत्राह-**देवदृष्टं** देवश्चक्षुरादि प्रत्यक्षं तस्यापि दृष्टं प्रत्यक्षम्। "**न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येः, प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः**" इत्यादिश्रुतेः। ज्ञानमात्रस्वरूपमित्यर्थः। वेदं "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**" इत्यादि विदन्ति ते वेदविदो विदुः। एतेन सागराम्भोरूपं शुद्धमुक्तम्॥१८॥ अस्य तटस्थलक्षणमाह-**य इति**॥ कर्ता वियदादेः। कारको हिरण्यगर्भद्वारा भौतिकस्य। बुद्धिर्मनः इति महदहंकाररूपत्वमुक्तम्। **क्षेत्रज्ञ इति**। साक्षिमात्रेण द्रष्टृत्वम्। एतेन पद्मनाभप्रभाव उक्तः। उक्तेऽर्थे-

"**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्।**"

इति श्रुतिं प्रमाणयन्योगमाह-**प्रधानमिति**। प्रधानं जडम्। पुरुषो जीवः। शास्ता ईशः। एतत्त्रितयम् एक एव परमात्मेति॥ १९॥ तृतीयं प्रश्नोत्तरं कियन्तमित्यादिना सार्धश्लोकेन ईश्वरस्य कालाधीनत्वं चोदितं तन्निराचष्टेऽर्धेन-**काल इति**॥ कालं स्वपयति स्वापयति कालस्यापि काल इत्यर्थः। अत एव स्वाधीनो न तु कालाधीनः। कथमुत्पाद्येत्यादिना साधन कार्यसृष्टिः पृष्टा तत्रोत्तरमाह-**प्राण इत्यादिना** सार्धद्वयेन॥ २०॥ हे अनघ! यत् ध्रुवम् अविनाशि अत एव अक्षयः ह्रासशून्यः स एव प्राणवृत्तिभेदेन पञ्चविधः। तत्परैः प्राणोपास्तिपरैः विविधैर्भावैः प्राणादिकार्यभेदैर्हेतुभिरुच्यते। स एव च सर्वं वियदादि करोत्युत्पादयति। किमुपादानान्तरमपेक्ष्य? नेत्याह-**विकरोति** च, माययैवात्मानं परिणमयतीत्यर्थः॥ २१॥ योऽस्मान् कर्म कारयते। "**एष ह्येव साधु कर्म कारयति**" इत्यादिश्रुतेः। तेनैव च वयं व्याकुलीकृताः विधिनिषेधगहने पातिताः सन्त आस्म आस्महे। "अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्" चक्षिङो ङित्करणात् ज्ञापकात्। तेन "आस उपवेशने" अस्मात्परस्मैपदेऽपि आस्मेति साधु। यतस्तेन व्याकुलीकृताः अतस्तमेव यजामहे यज्ञैः इच्छाम। प्रार्थनायां लोडुत्तमबहुवचनम्। निर्वृताः शान्ताः सन्तः॥ २२॥

१ ख. यदिज्यं स॰। २ ख. ॰र्य वेदद॰। ३ ख. ॰स्ता यः कश्चिद॰। ४ ख. ॰क्षरमेव च। ५ ख. ॰र्वृतिम्। यो॰

यो वक्ता यश्च वक्तव्यो यश्चाहं तद्ब्रवीमि वः ।
इदं शृणुत यच्छ्रेयो यच्चान्यत्परिजल्पथ॥ २३
याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ गह्वराः।
विश्वं विश्वपतिर्देवाः सर्वं नारायणात्मकम्

यत्सत्यं यदनृतमादिमक्षरं[1] वै
यद्भूतं भवति मिथश्च यद्भविष्यम्।
यत्किंचिच्चरमचराद्ययं त्रिलोके
तत्सर्वं पुरुषवरः प्रभुर्वरिष्ठः ॥ २५

इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## कृतादियुगपरिमाणम् ।

### ८

वैशम्पायन उवाच ।
चत्वार्याहुःसहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा जनमेजय॥ १
तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः ।
स्वधर्मनिरताः सन्तो यजन्ते चैव मानवाः २
स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा

सर्वं चिन्मात्रमेवेत्याह द्वाभ्याम्-**यो वक्तेति** ॥ वक्ता वाचः प्रवर्तकः वक्तव्योऽर्थः । अहं वक्तृत्वाभिमानी जीवः । यत् इदं शृणुत श्रवणक्रिया । यत् श्रेयो मोक्षः यच्चान्यत्स्वर्गादि प्रब्रूत नानाविकल्परूपम् ॥ २३ ॥ कथाः भूतार्थवादाः गह्वराः रहस्यप्रतिपादकाः, विश्वं पाल्यं, विश्वपतिः पालकः, देवाः करणानि, सर्वं तत् नारायणात्मकमिति वः युष्मान्प्रति ब्रवीमीति संबन्धः ॥२४॥एतदेवोपसंहरति-**यत्सत्यमिति**। सत्यानृते लौकिके, आदिमम् आदौ भवं कारणं क्षरं च कार्यं तदुभयात्मकं, भूतम् अतीतं, मिथश्च भवति परस्परजनकं, बीजांकुरादि, भविष्यमनागतं, चरं परिणामि अचरं कूटस्थं, वरिष्ठः नारायणः, वरीयान् ईशः, वरः समष्टिजीवः, अपरो व्यष्टिजीवः, कल्पितानेतानपेक्ष्य वरिष्ठत्वं शुद्धस्य प्रभोरिति भावः ॥ २५ ॥ इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां **पुष्करप्रादुर्भावप्रकाशो** सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

**ज्ञानसाधनवैराग्यसिद्धये पुत्रिकादिवत् ॥
ब्रह्मादेः क्षयितां वक्तुं युगमानमिहोच्यते ॥१॥**

**चत्वारीति**। तावच्छती चतुःशती द्विगुणा अष्टौ शतानि युगसंध्या। तस्यां पूर्वोत्तरयुगयोर्धर्मा मिश्रीभवन्तीत्यर्थः । एतानि देवमानेन अष्टशताधिकानि चत्वारि सहस्राणि सौरमानेन साष्टाविंशतिसहस्री सप्तदशलक्षी वत्सराणां भवति। सावनमानेन तु प्रत्यब्दं पञ्च दिनानि पञ्चदश घटिका एकत्रिंशत्पलानि त्रिंशदक्षराणि च वर्धन्ते। तान्यपि एकराशौ संवत्सरत्रयस्थ्राशि गुरौ लुप्तसंवत्सरैर्हीयन्ते ॥१॥ **तत्रेति** ॥ धर्मपादाः तपः शौचं दया सत्यं तैर्विग्रहो विरोधः स्मयसंगमदानृतपादवतो यस्य स पादविग्रहोऽधर्मः । धर्मेण निरुद्धपाद इत्यर्थः । यद्वा सर्वं युग चतुष्पादमपि संध्यांशे उत्तरयुगधर्मसंक्रमात्पञ्चपादं भवतीति ध्येयम् । तेनाधर्मः पादविग्रहः । " द्वाभ्यामधर्मपादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ॥ " इत्यादिग्रन्थः ऋज्वर्थ एव । एवमपि संध्याय पादार्धस्यैव संक्रमात्सर्वं युगं सार्धचतुष्पादं स्यात् । इदमपि युगं तत्संध्ययोः कालबहुत्वाल्पत्वाभ्यां न युक्तं पादाधिक्योक्तेः । पुराणान्तरविरोधादध्यात्मप्रकरणाच्चैवमिह प्रतीमः । फलाभिसंधिना रहितो हिंसाशून्यो धमः कृतम् । तत्साहितस्त्रेता । दम्भेन कृतो द्वापरम् । धर्मलोपः कलिः । तत्र आद्ये फलेच्छाभावेऽपि कृतो धर्मः । " **तद्यथा आम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गन्ध इत्यनुत्पद्येते,। एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूपद्यन्ते** " इत्यापस्तम्बोक्तेः फलं ददात्येव । तत्र च हीनसम्पत्पुरुषो बहुसम्पदमन्यं दृष्ट्वा स्वस्यानैश्वर्यं-मन्वानो दुःखभाग्भवतीति । कृतेऽप्यधर्मरूपं दुःखमस्तीत्युक्तं कृतेऽप्यधर्मः पादविग्रह इति कृत्स्नधर्माधर्मनिर्मूलनक्षमं तत्त्वज्ञानमेव संपादनीयमित्याशयेन ॥ २ ॥

[1] ख. °दमृतमादिम° ।

सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते।
सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ख्यायते च यत् ॥
एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत।
प्राणिनां धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम् ५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः
तत्र सत्यं च सत्त्वं च कृते सर्वं प्रवर्तते ॥ ७
त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः
चातुर्वर्ण्यस्य वै कृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रिताः
एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः।
द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ९
द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां कुरुसत्तम।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता
तत्राप्यर्थपरा विप्रा ज्ञानिनो रजसाऽऽवृताः
शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुपुङ्गव ११
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः
विपर्ययं शनैर्यान्ति कृते ये धर्मसेतवः ॥ १२
ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथास्तिक्यं विशीर्यते
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥ १३
तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते तथा।
सन्ध्यया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम्
तत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः।
कामनिष्ठास्तमश्छन्ना जायन्ते तत्र मानवाः
नैवोपवासकृत्कश्चिन्न च साधुर्न सत्यवाक् ॥
आस्तिको ब्रह्मवक्ता वा नरो भवति वै तदा ॥
अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबान्धवाः।
विप्राः शूद्रसमाचाराः शूद्रास्त्वाचारलक्षणाः
दूषकास्त्वाश्रमाणां च वर्णानां चैव संकराः
अगम्येष्वभिरंस्यन्ते वर्तन्त्येवं कलौ युगे १८
एवं द्वादशसाहस्रं तदेकं युगमुच्यते।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ १९
त्रय्यां चैव न संदेहो युगान्ते जनमेजय।
दिव्यं द्वादशसाहस्रं युगं तु कवयो विदुः।
एतत्सहस्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥ २०
ततोऽहनि गते तस्मिन्सर्वेषामेव देहिनाम्।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकः संहारबुद्धिमान् २१
देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते।
दैत्यानां मानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम् २२
देवर्षीणां ब्रह्मर्षीणां तथा राजर्षिणामपि।
किंनराणामप्सरसां भुजङ्गानां तथैव च २३
पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव भारत।
तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां मृगपक्षिणाम्
महाभूतपतिर्देवः पञ्चभूतानि भूतकृत्।
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥ २५
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो
भूत्वा वायुः संहरन्प्राणिजातम्।
भूत्वा वह्निर्दह्यते सर्वलोका-
न्मेघो भूत्वा भूय एवाभ्यवर्षत् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावप्रश्नोत्तरे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ख्यायते उपदिश्यतेऽन्येभ्यः ॥४॥ त्रीणीति षट्शताधिकत्रिसाहस्री त्रेतायुगमानम् ।एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ॥६॥ धर्मलौल्येन धर्मफलस्पृहया अत एव चातुर्वर्ण्यस्य चतुर्वर्णधर्मस्य वैकृत्यात् वैकल्यात् ॥ ८॥ द्वापरे युगपर्यये द्वापरान्ते कलिसांकर्याद्व्रतादि त्यज्यत इत्यर्थः ॥ १३ ॥ **मन्वन्तरमिति** । एतावता कालेनैको मनुर्नश्यतीत्यर्थः ॥१९॥ अत्र मानमाह—**त्रय्यामिति** । “ **तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते** ” इत्यादौ वेदेऽपि जनस्य स्थावरादिब्रह्मान्तस्य क्षयित्वं दृश्यत इत्यर्थः । न संदेहः “ यत्कृतकं तदनित्यम् ” इति व्याप्तेरित्यर्थः ॥२०॥ शरीरनिर्वृत्तिं शरीरसुखासक्तिम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मणो वेदस्य वेधसो वा । ब्राह्मणानां महीपते इति पाठः। ब्रह्मलोकस्थानां दहराद्युपास्यब्रह्मविदाम् ॥२२॥ भौतिकसंहारमुक्त्वा भूतसंहारमपि निश्चाययति—**महाभूतपतिरिति** । पञ्चभूतानि वियदादीनि जगद्भौतिकं च संहरणार्थायैव कुरुते न पुरुषार्थाय । मशकादिवत्सर्ववस्तुनाशायैव जायते न क्वाचित्किंचित्कस्यचित्सुखमस्तीत्यर्थः । अत एव महद्वैशसं बीभत्समेतदिति शेषः ॥२५॥ वैशसत्वमेवाह—**भूत्वेति** । दिनावसाने हि भगवान् सूर्यो भूत्वा लोकानां चक्षुरादीनि मुष्णाति । ततो वायुर्भूत्वा प्राणान्मुष्णाति । ततो वह्निर्भूत्वा शुष्ककर्पूरकल्पांस्तान्निःशेषीकरोति । ततो मेघो भूत्वा वृष्ट्वा चैकार्णवं संपद्यते । एवं भूलये सति जलादीन्यपि ब्राह्मलये स्वस्वयोनौ लीयन्त इति बोध्यम् । नष्टाकाश इत्याकाशान्तनाशस्योपक्रान्तत्वात् ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

१ ख. °न्ति धर्मलौ° । २ ख. नैकृति° । ३ ख. °हबन्धनाः । वि° । ४ ख. °हरन्प्रा° ।

# एकार्णवविधिः ।

## ९

वैशम्पायन उवाच ।

भूत्वा नारायणो योगी सप्तमूर्तिर्विभावसुः
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान्
पीत्वाऽर्णवांश्च सर्वान्स नदीः कूपांश्च सर्वशः
पर्वतानां च सलिलं सर्वं पीत्वा च रश्मिभिः
भित्त्वा सहस्रशश्चैव महीं नीत्वा रसातलम् ।
रसातलजलं कृत्स्नं पिबते रसमुत्तमम् ॥ ३
अप्सु सृजन्क्लेदमन्यद्ददाति प्राणिनां ध्रुवम् ।
तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४
वायुश्च बलवान्भूत्वा स विधूयाखिलं जगत्
प्राणोदयं सुराणां च वायुना कुरुते हरिः ।
ततो देवगणानां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ ५
ये चेन्द्रियगणाः सर्वे ये चान्ये च यतोद्भवाः
पूयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीमाश्रिता गुणाः
जिह्वा रसश्च क्लेदश्च संश्रिताः सलिलं गुणाः
रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः ७
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः
परमेष्ठिनं वरेण्यं च हृषीकेशं समाश्रिताः ॥८

---

९

सर्वं दृश्यं विनाशीति
ज्ञात्वा नाशविवर्जितम् ।
पदं नेतुं विनेयादि
तृतीये योग उच्यते ॥ १ ॥

**भूत्वेति** । योगी नारायणः शुद्धचिन्मात्र एव सन् विभावसुः वह्निरिवासङ्गोऽपि सप्तमूर्तिः महदहंकारपञ्चतन्मात्राशरीरो भूत्वा प्रदीप्ताभिश्चैतन्योद्दीपिताभिर्गभस्तिभी रश्मिरूपाभिस्तत्तदाकारवृत्तिभिः प्रकाशितान्सागरान्समुद्रवदनन्तान् रूपादीन् विषयान्संशोषयति स्वस्मिन्प्रविलापयति ॥ १ ॥ विराट्प्रविलापनमुक्त्वा सूत्रात्मनस्तदाह—**पीत्वेति** । नदीकूपसदृशान् मानसान्कामान् संशोषयतीत्यनुषज्यते । तद्वत्पर्वतानां पर्वततुल्यानां कामक्रोधादीनां सलिलं सामर्थ्यं रश्मिभिः परिणामैः पीत्वा विलाप्य ॥ २ ॥ एवं महीं स्थूलसूक्ष्मशरीरद्वयरूपां सहस्रशो भित्त्वा सर्वथा विलाप्य रसायास्तस्या एव तलमधिष्ठानकारणं ब्रह्म तत्प्रति तां नीत्वा तत्रत्यमपि जलम् अपहतपाप्मत्वादिसंकल्पान्तं गुणजातम् उत्तमं मानुषानन्दादिभ्य उत्कृष्टतमं पिबते संशोषयति ॥ ३ ॥ अप्सु कारणे ब्रह्माणि स्थितं क्लेदं[1] मनसो मृदूकरणम् आनन्दम् अन्यत् कार्यं सृजन् लक्ष्यन् प्राणिषु ध्रुवं ददाति । यत् सुखं कार्योपाधिषु निदधाति जीवनाय तदपि वृत्तिरूपत्वात्संहरतीत्यर्थः । तदेव स्पष्टीकरोति—**तत्सर्वमिति** ॥ ४ ॥ एवमुत्तमाधिकारिणां मनोमात्रसाधनं योगमभिधाय मध्यमानां वायुनिरोधपूर्वकं तमेवाह—**वायुश्चेति** । स योगी बलवान् मूलाधारादिसर्वचक्रभेदनसमर्थो भूत्वा अखिलं जगत्पादादिजानुपर्यन्तं भूस्थानमित्यादिना तन्त्रोक्तदिशा भावनया स्वशरीरमात्रीकृतं विधूय अधोधस्तनस्य उपर्युपरितने प्रविलापनप्रकारेण निरस्य । प्राणोदयं प्राणानां पञ्चानां सुराणामिन्द्रियाणां च उदयम् उत् ऊर्ध्वं सहस्रारे भ्रूमध्ये वा अपनयनं गमनं हरिर्योगी वायुना विजितेन कुरुते एतदेव विस्तरेणाह—**तत इत्यादिना** । देवगणानां च संघर्षजः पावकः निखिलान् लोकानदहदिति षष्ठेनान्वयः । ततो योगप्रवृत्त्यनन्तरं देवानामग्न्यादीनां च देहिनां जीवान्तराणाम् । एतेन मदन्यो मुमुक्षुर्नास्तीत्यपि योगिना चिन्तनीयम् । अन्यथा भेदस्याविलयान्मुक्त्यसिद्ध्यापत्तिः स्यात् ॥ ५ ॥ **ये चान्ये चेति** । यतोद्भवाः यत इन्द्रियाद्येषां विषयाणामुद्भवास्ते यतोद्भवाः संधिरार्षः । तान्येवेन्द्रियाणि तदुद्भूतांश्चाह—**पूयमिति** । पूयं गन्धाख्यो विषयः । रसादिसाहचर्यात् घ्राणमिन्द्रियं शरीरं स्थूलं च एते गुणाः गुणकार्यभूताः पृथिवीमाश्रिताः ॥ ६ ॥ रसश्चार्द्रः रसनेन्द्रियम् क्लेदः पृथिव्यवयवान्तः प्रवेशेन तस्याः शिथिलीकरणम् । विपाको विकृतिः ओदनादिरूपा ॥ ७ ॥ शब्दः श्रोत्रं छिद्रदानं चाकाशं संश्रिता गुणा इत्यपि द्रष्टव्यम् । त एते सर्वेऽपि परमेष्ठिनं सूत्रात्मानं वरेण्यम् अवश्यम् । उपास्यतया वरणीयं हृषीकेशं हृषीकाणामिन्द्रियाणाम् ईशितारं सम्यगाश्रिताः ॥ ८ ॥

---

१ ख. लगतं कृ० । २ ख. ०श्च स्नेहश्च सं० ।

ततो भगवता तत्र रश्मिभिः परिवारिताः
वायुना कृष्यमाणाश्च रूपान्योन्यसमाश्रयात्
तेषां संघर्षजोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन्।
अदहन्निखिलाँल्लोकानुग्रः संवर्तकोऽनलः॥ १०
सपर्वतांस्तरूनगुल्माँल्लतावल्लीस्तृणानि च।
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च
आश्रमांश्च तथा पुण्यान्दिव्यान्यायतनानि च
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत्
भस्मीभूतांस्ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः।
भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन कर्मणा॥ १३
सहस्रदृङ्महातेजा भूत्वा कृष्णो महाघनः।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम्॥

ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा।
शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम्॥ १५
ते नगा जलसंछन्नाः पयसः सर्वतोधराः।
एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्त्वविवर्जिताः॥ १६
महाभूतान्यपि च तं प्रविष्टान्यमितौजसम्।
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते॥ १७
संशोषयित्वा पीत्वा च
[ कल्पयित्वाच देहिनम्।
दग्ध्वा सन्तापयित्वा च ]
वसत्येकः सनातनः।
पौराणं रूपमास्थाय
किमप्यमितबुद्धिमान्॥

---

ततस्तं संप्राप्य भगवतान्तर्यामिणा कर्त्रा तत्र सूत्रे मिलिताः सन्तः रश्मिभिः सूक्ष्माभिर्वृत्तिभिः परिवारिताश्चैते देवगणेन्द्रियगणादयः वायुना करणेन कृष्यमाणाः। रूपेति लुप्तशेषं पदम्। रूपादयः अन्योन्यस्य एकीभावेनाश्रयात्॥९॥तेषां रूपादीनां संघर्षजश्चासौ उद्भूतश्च यः पावको जगत्कारणाद्वैतवस्तुप्रकाशाग्निर्निखिलाँल्लोकान् तत्तत्कर्मफलभूतानदहत् कर्मणामेव दाहात्॥१०॥स्वरूपेणापि लोकदाहमाह—**सपर्वतानित्यादिना**॥११॥ आश्रयणीयानि दहराद्युपास्यरूपाणि सर्वेषां मनोमात्रत्वात्तद्दाहेन दाह इति भावः। "**असतोऽधिमनोऽसृजत मनः प्रजापतिमसृजत प्रजापतिः प्रजा असृजत तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितं यदिदं किंच**" इति श्रुतेः॥१२॥ एवं समाधौ सकारणस्य कार्यस्य प्रलयमुक्त्वा व्युत्थाने तदुत्पत्तिमाह चतुर्भिः—**भस्मीभूतानित्यादिभिः**। हरिर्योगी निर्वापयामास भोक्त्रे भोग्यं कल्पितवान्। केन कर्मणा भोगायारब्धेन सञ्चितक्रियमाणयोर्दाहश्लेषस्य तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषाविति न्यायसिद्धत्वात्। जलयुक्तेन कारणीभूताविद्यासंस्कारशेषेण। भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरिति ज्ञानेऽपि यावद्देहपातं मायालेशानुवृत्तेर्दर्शनात्॥१३॥ विषयभेदात्सहस्रं दृष्यो यस्य स सहस्रदृक् महातेजाः परंज्योतिरूपः कृष्णः कर्षकः संहर्ता भूत्वा महाघन इव जगदङ्कुरस्रष्टाऽपि भवति। तदेवाह—दिव्येन तोयेन चिच्चन्द्रमण्डलात्प्रसृतेन भावनामृतेन हविषा विशुद्धेन तर्पयामास। मेदिनीं शरीरम्। व्युत्थाने आदौ शरीरं चेतनया व्याप्तमित्यर्थः॥ १४॥ क्षीर सत्यं स्वच्छत्वात् तन्निकाशेन चित्तसत्त्वाकारेण परमाम्भसा चैतन्यामृतेन महीशरीरद्वयं निर्वाणं शान्तिम् अगमत्। योगिनो हि स्थूलशरीरं निर्वाति।

"**न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः**
**प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्**"।

इति श्रुतेः। सूक्ष्ममपि निर्वाति। "**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः**" इति श्रुतेश्च॥१५॥ अस्य दृष्ट्या बाह्यमपि सर्वं चिन्मात्रमेवेत्याह—**ते नगा इति**। ये पूर्वं परमार्थत्वेन गृहीतास्ते नगाः पर्वतवृक्षादयः जलसंछन्नाश्चितावगुण्ठिताः। किं च सर्वतोऽन्तर्बहिश्च पयः साश्वित एव धराः धर्तारः सैन्धवघनवच्चिद्घना एवेत्यर्थः तदेवाह—**एकार्णवजला भूत्वेति**। अत एव सर्वसत्त्वविवर्जिताः सर्वस्य वियदादेः सत्त्वं सत्ता तद्रहिताः ब्रह्मसत्तैव सर्वत्रानुस्यूता न वियदादिषु पृथक्सत्ताऽस्तीत्यर्थः। जगत्पश्यन्नपि द्विचन्द्रवद्बाधितत्वेनैव पश्यतीति भावः॥ १६॥ योगस्य मुख्यं फलं शुद्धात्मदर्शनमाह त्रिभिः—**महाभूतानीति**। तं योगिनं सूक्ष्मे शुद्धे वस्तुनि स्थितमिति शेषः। कीदृशे सूक्ष्मे नष्टा अदर्शनं गता अर्कादयो यस्मिन्नष्टार्कपवनाकाशे। अत एव महाभूतानि तं प्रविष्टानि तत्रैव लीनानीत्यर्थः॥ १७॥ एवमुक्तप्रकारेण संशोषयित्वा विषयेषु प्रविभक्तं प्रज्ञानं प्रत्याहृत्य पीत्वा निर्विशेषे प्रविलाप्य। किमपीति वाङ्मनसातीतत्वं सूचितम्॥ १८॥

---

२ घ. सतो भ०।

एकार्णवजले ह्यासीद्योगी योगमुपागतः ।
अयुतानां सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि ।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥ १९
जनमेजय उवाच ॥
एकार्णवविधिः कोऽयं यश्चैव परिकीर्तितः
क एष पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान् ॥
वैशम्पायन उवाच ।
एतावन्तमसौ कालमेकार्णवविधिं प्रति ।
करिष्यतीमं भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥ २१
न वै माता न च द्रष्टा न ज्ञाता नैव पार्श्वगः[1]
ततोऽवज्ञायते कश्चिद्दते तं देवमीश्वरम् ॥ २२

नभः क्षितिं पवनमथ प्रकाशय-
न्प्रजापतिं भुवनचरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं[2]
शशास भूः शयनमरोचयत्प्रभुः ॥ २३

इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

तदेवाह-**एकार्णवेति** ॥ योगं दुःखसंयोगवियोगम् उपागतः प्राप्तः अयुतानाम् अपृथग्भूतानां रज्ज्वादिभ्य इवोरगादीनाम् आत्मन्यध्यस्तानां वियदादीनां सहस्राणि वृत्तिभेदादनन्तानि एकार्णवेऽम्भसि शुद्धे ब्रह्मणि गतानि प्राप्तानि विलीनानीत्यर्थः । नायं मृदि घटस्येव निवृत्तिरूपो लयः । किंतु रज्ज्वामहेरिवेति भावः । न चैनमिति व्यक्तमिति क्रियाविशेषणम् बुद्धिवृत्तेरपि लीनत्वादेनं प्रत्यञ्चं न कश्चिज्जानातीत्यर्थः ॥ १९ ॥ संक्षेपेण श्रुतं योगं विस्तरेण श्रोतुमिच्छुर्जनमेजय उवाच-**एकार्णवविधिरिति** । विधिरवधिः दैनंदिनादिप्रलयवदात्यन्तिकप्रलयस्यापि कश्चित्कालावधिरस्तीति प्रश्नः । सति तस्मिन् स्वत एव कैवल्यं सेत्स्यति किं साधनानुष्ठानैः संशोषदाहपानादिभिरिति भावः । **य एष इति** पूर्वोक्तं ज्ञानसाध्यं प्रलयं परामृशति। न प्राकृतं दैनंदिनं वा एक एव पुरुष एकार्णवो नाम । किंयोगः किंरूपोयं योगो जतुकाष्ठवत्सलिलसैन्धवखिल्यवद्रज्जूरगवद्वा । कश्च योगवान् जीवः ॥ संबन्धिनः संबन्धस्य च योगाख्यस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नत्रयं पूर्वेण सह चतुष्टयम् ॥२०॥ क्रमेणोत्तराणि वैशम्पायन उवाच-**एतावन्तमिति** । इमम् एकार्णवविधिम् एकार्णवानियतिम् एतावन्तं कालं प्रति प्रतीक्ष्य करिष्यति भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते । इतरवज्ज्ञानैकसाध्यस्य महाप्रलयस्य कालावधिर्नास्त्यतः साधनमनुष्ठेयमेवेत्यर्थः ॥ २१ ॥ एक एव पुरुषो नामेत्यस्योत्तरमाह--न माता प्रमाता अहंकारशून्यत्वात् साक्ष्यभावाच्च । न द्रष्टा साक्षी वृत्तेरपि विलयान्न ज्ञाता चरमान्तःकरणवृत्त्या ब्रह्मविद्याख्यया प्रत्यञ्चं विषयीकुर्वन् । अत एव न पार्श्वगो न तटस्थः प्रत्यगात्मत्वात् । किंरूपो योग इत्यस्योत्तरमाह—**तत इति** । ततस्तस्यामवस्थायां यथा जतुकाष्ठसंयोगेषु त्रयमपि पृथग्दृश्यते यथा वा जलसैन्धवरसौ एकलोलीभूतौ पृथक्त्वेनानुमीयेते तथा न तत्र तस्तेऽन्यत् ज्ञायते रज्ज्वामिव सर्पबोधतदतिरिक्तमित्यर्थः ॥ २२ ॥ कश्च योगवानित्यस्योत्तरमाह-**नभ इति**। यः प्रभुर्महामुनिं शशास स शयनमरोचयदिति यत्तदोरध्याहारेण योज्यम् । नभआदिरूपं देहेन्द्रियादिसंघातं प्रकाशयन् स्वचैतन्येन व्याप्नुवन् तत एव व्यापनाद्धेतोः प्रजापतिं प्रजायत इति प्रजा उपाधिस्तस्याः पतिम् अध्यक्षत्वाभिमानिनं भुवनचरं चक्षुरादिद्वारा सुरेश्वरम् इन्द्रियाणां प्रवृत्तिनिवृत्त्योः स्वतन्त्रम् एवंविधं जीवं सन्तं वस्तुवृत्तेन पितामहं कार्यस्य पिता कारणं तस्य पिता शुद्धचैतन्यम् अत एव श्रुतिनिलयं श्रुत्येकगम्यमपि महामुनिं मुमुक्षुजविरूपेण महान्तं मननशीलं शशास । शसु हिंसायाम् । स्वस्वरूपे प्रविलापितवान् यः स भूः भवत्यस्मादिति भूः ईशः शयनम् ईशतानिरोधम् अरोचयत् । शुद्ध एवोपाध्यभिमानाद्बद्धः सन्योगवान्योगाधिकारी भवतीत्यर्थः ॥ २३ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

[1] ख. °श्वतः । न स्म विज्ञायते किंचिद्° । [2] ख. निं महोदधौ शयनः

## एकार्णवे भगवन्मार्कण्डेयसंवादः ।

### १०

वैशम्पायन उवाच ।

एवमेकार्णवभूते शेते लोके महाश्रुतिः ।
प्रच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥१
महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै ।
विरजस्को महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदुः ॥ २
आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः ।
त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः
पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत्परं परिकीर्तितम् ।
यच्चान्यत्पुरुषाख्यं स्यात्सर्वं तत्पुरुषोत्तमः ४
ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः।
आत्मदेहात्पुराभूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तदा ॥ ५
ब्रह्माणं परमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम् ।
होतारथम चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः ॥ ६
ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वाच्च संप्रस्तारं च सर्वशः ।
तन्मित्रं वरुणं सृष्ट्वा प्रतिष्ठातारमेव च ॥ ७

१०

यज्ञरूपकृतो योगमुक्त्वा तुर्यं निगद्यते ॥
मार्कण्डेयसमाधिश्च तद्विप्रेषु निदर्शनम् ॥१॥

**एवमिति** । लोके शुद्धचिदात्मनि महाश्रुतिर्महायशाः ईशः सलिलकार्यं जगत्प्रच्छाद्य उपसंहृत्य शेते शुद्धचिन्मात्ररूपेणावतिष्ठत इत्यर्थः ॥ १ ॥ एतदुपपादयितुं ब्रह्मण एव बन्धप्रसक्तिमाह-**महत इत्यादिना** ॥ रजसः रजोगुणकार्यकर्मफलभूतस्य देहेन्द्रियादेर्मध्ये दुर्लंघ्यत्वान्महार्णवसमस्य ।विरजस्को देहादिधर्मास्पर्शी महान्तौ बाहू इव बाहू अक्षरब्रह्माख्यौ प्रणवतत्त्वमसिवाक्यरूपौ उपास्तिक्रियाप्रत्यक्तत्त्वसाक्षात्काराभ्यां जगदुद्धारक्षमौ विद्येते यस्य तथा ॥ २ ॥ **आत्मेति** । यं परं ब्रह्म विदुः सः समुद्रः परमात्मा सुष्वाप स्वरूपं विस्मृतवानिति संबन्धः । तत्र हेतुः । तपसा आलोचनेन मनोरथात्मकेन संवृतः तिरोहिताङ्गरूपः। कीदृशेन तपसा आत्मरूपप्रकाशेन चैतन्याभासेन । अत एव त्रिकं भूतभविष्यद्वर्तमानरूपेण त्रिविधं कालम् आस्थाय आधिष्ठाय सुष्वाप ॥ ३ ॥ एवं प्रभोरेव बन्धप्रसक्तिं प्रदर्श्य तन्निवृत्त्युपायं योगं यज्ञरूपकेण विधित्सुस्तत्प्राप्यं वस्त्वाह-**पुरुषो यज्ञ इति** । पुरुष इव पुरुषः शिरःपाण्यादिरूपकः यज्ञो योगयज्ञप्राप्यः "**यत्पुरुषाख्यं परं कीर्तितं, स उत्तमः पुरुषः** " इत्यादिश्रुतिषु यच्चान्यद्वियदादि पुरुषेण चिदात्मनैव ख्यायते प्रकाश्यते तत्सर्वं पुरुषोत्तमः चिन्मात्रमेव तत्राध्यस्तस्यान्यस्य तदनन्यत्वादित्यर्थः ॥ ४ ॥ एवं प्राप्यमुक्त्वा प्रापकमाह-**ये चेति** । यज्ञपरब्रह्मनिष्ठाः विप्रा इव विप्राः रागादिशून्याः ऋत्विजः ऋतौ कालात्मनि परस्मिन् यजन्ते संगतिं कुर्वते ऋत्विजास्त आदयः । यजेः संगतिकरणार्थात्। आत्मदेहात् । चित्पुरुषात् पुराभूताः । अनादौ संसारे पूर्वसिद्धाः यज्ञेभ्यः यज्ञार्थमेव भूताः न पश्वादिसाधारणविषयभोगार्थं यथैतत्तथा श्रूयतां मत्त इति शेषः ॥ ५ ॥ योगयज्ञार्हानृत्विजः प्रस्तौति-**ब्रह्माणमिति** । अत्र काठके "**विश्वसृजां सत्रे ब्रह्म ब्रह्माभवत् स्वयम्।अमृतमेभ्य उद्गायत्**" इति । ब्रह्मामृतशब्दाभ्यां वेदतदर्थौ उच्येते । तत्र परममिति विशेषणादुपनिषदेव ब्रह्म तत्साध्या वृत्तिरमृतसाधनत्वादमृतम् ते उभे ब्रह्मोद्गातृशब्दाभ्यामभिहोक्ते । वक्त्रप्रभवत्वेन च तयोरन्तरङ्गत्वमुक्तम् । "**होत्रध्वर्युसत्य॰ह होतैषामासीत्प्राणो अध्वर्युरभवत्**" इति श्रुत्युक्तौ सत्यप्राणौ ताभ्यां सत्योक्तिप्राणजयौ वक्त्रजावपि तदुपकारतया किंचिद्बहिरङ्गौ । एवमुत्तरत्र अक्षरयोजना स्पष्टा । ब्रह्मादिचतुष्टयं वक्त्रादसृजदित्युक्त्वा ब्राह्मणाच्छंस्यादिचतुष्कं बाहुभ्यामसृजदित्याह-बाहुभ्यामित्यादिसपादश्लोक एकं वाक्यम् ॥ ६ ॥ ब्राह्मणत्वाद्ब्रह्म वेदस्तदध्येतृत्वात् ब्राह्मणो ब्राह्मणाच्छंसी नाम संप्रस्तारं प्रस्तोतारं तन्मित्रं वरुणं मैत्रावरुणसंज्ञं प्रशास्तारं प्रतिष्ठातारं प्रतिप्रस्थातारम् एतैः "**अश॰स ब्रह्मणस्तेजः भूत ॰स प्रस्तोतैषामासीत ऋतमेषां प्रशास्तासीत् अपानो विद्वानावृतः प्रतिप्रातिष्ठदध्वरः**" इति श्रुत्युक्तास्ते तेजोभूत ऋतापानाख्यो धीबलपूर्वस्मृतिस्वधर्माचरणजयानुकूलापानाख्यमूलबन्धा विहिता ज्ञेयाः ॥ ७ ॥

१ ख. °हा द्युतिः । प्र° । २ ख. °माच्छाद्य का° । ३ ख. सप्र° । ४ ख. °न्मित्रावरुणं सृ° ।

उद्गातप्रतिहर्तारं पोतारं चैव भारत।
अच्छावाकमनोरूभ्यां नेष्टारं चैव भारत ॥ ८
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च यज्ञियम्।
ग्रावाणमथ बाहुभ्यामुन्नेतारं च यज्ञियम् ॥ ९
एवमेवैष भगवान्षोडशैताञ्जगत्पतिः।
प्रवक्तृन्सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान्॥
तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंमितः।
वेदाश्च तन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः ११
स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्तदा।
श्रूयते तद्यथा वृत्तं मार्कण्डेयो यदन्वभूत् ॥१२
जीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः।
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥ १३
इति तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरः।
आश्रमानपि पुण्यांश्च तीर्थान्यायतनानि च ॥
देशान्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च
जपहोमरतः क्षान्तस्तपो घोरं समाश्रितः १५
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्राद्विनिःसृतः।
निष्क्रामन्तं न चात्मानं जानीते देवमायया॥
निष्क्रान्तस्तस्य वदनादेकार्णवमथो गतः।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयो निरीक्षते ॥१७
तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं चागमत्परम् ॥ १८

"**प्रतिहर्तृपोत्रच्छावाकेनेष्टृशब्दैः भविष्यत्प्रति चाहरत, अपचितिः पोत्रियामयजत अच्छावाको भवद्यशः नेष्ट्रीयामयजात्त्विषिः**" इति श्रुत्युक्तेषु भविष्यत् भाव्यनुसंधानम् अपचितिर्देवतातिथिपूजनं यशः यशस्करमिति वदान्यत्वादि त्विषिस्तपस्तेजः ॥ ८ ॥ तथा आग्नीध्रसुब्रह्मण्यग्रावशब्दोक्तग्रावस्तुदुन्नेतृशब्दैः। "**आग्नीध्राद्विदुषीसत्यं श्रद्धा हैवायजत्स्वयं वागेषां तु ब्रह्मण्यासीत् ओजोभ्यष्टोद्ग्राव्णः ऊर्जानमुदवहत्**" इति श्रुत्युक्तेषु विदुषी शास्त्रार्थोपबृंहिका ऊहापोहकौशलवती श्रद्धा वाक् स्वाध्यायप्रवचने ओज इन्द्रियजये शौर्यम् ऊर्क् योगाङ्गानामूर्जितिरित्येते ग्राह्याः। **यज्ञेति**–ब्रह्मा ॥ १ ॥ उद्गाता ॥२॥ होता ॥३॥ अध्वर्युः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाच्छंसी ॥ ५ ॥ प्रस्तोता ॥ ६ ॥ मैत्रावरुणः ॥ ७ ॥ प्रतिप्रस्थाता ॥ ८ ॥ प्रतिहर्ता ॥ ९ ॥ पोता ॥ १० ॥ अच्छावाकः ॥ ११ ॥ नेष्टा ॥ १२ ॥ आग्नीध्रः ॥ १३ ॥ सुब्रह्मण्यः ॥ १४ ॥ ग्रावस्तोता ॥ १५ ॥ उन्नेता ॥१६॥ एते ऋत्विजः। एते योगे यथाक्रमं–प्रणवः ॥१॥ तदर्थभावनम् ॥२॥ सत्योक्तिः ॥ ३ ॥ प्राणजयः ॥ ४ ॥ धीतैक्ष्ण्यम् ॥ ५ ॥ पूर्वस्मृतिः ॥ ६ ॥ आचारः ॥ ७ ॥ अपानजयः ॥ ८ ॥ भाविदुःखचिन्ता ॥ ९ ॥ ईशपूजा ॥ १० ॥ दानम् ॥ ११ ॥ योगोत्साहः ॥ १२ ॥ सात्त्विकी श्रद्धा ॥ १३ ॥ वेदान्तश्रवणम् ॥ १४ ॥ इन्द्रियशौर्यम् ॥ १५ ॥ योगाङ्गानामूर्जितिः ॥ १६ ॥ च लक्ष्यन्ते ॥ ९ ॥ **एवमिति**। एतानुपनिषदादीन् सर्वयज्ञानां चत्वारः सबीजयोगाः पञ्चमो निर्बीजश्च वक्ष्यमाणास्तेषां सर्वेषां योगयज्ञानां प्रवक्तॄन् प्रापकान् "वज गतौ" इत्यस्मात्तृच् ॥१०॥ **तदेष इति**। स एष ऋत्विक् स्रष्टा भगवान् वेदमयो वेदप्रधानो वेदैकगम्यः। "**नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्**" इति श्रुतेः पुरुषः परमात्मा यज्ञेन योगेन सम्यक् मितः प्रमितोपरोक्षी। कुतः यज्ञसंमितः वेदाश्च तन्मयाः तस्यैव प्रतिपादकाः क्रियाश्च तन्मयास्तत्प्रापका इत्यनुषज्य योज्यम् ॥ ११ ॥ एवमुक्तसाधनकलापविशिष्टो योगी यदा एकार्णवे चिन्मात्रे स्वपिति प्रवेष्टुं यतते तदाश्चर्यम् : अभूत् भवति। तत् विश्वरूपदर्शनातीतानागतादिदर्शनं चेत्यादि श्रूयते। "**वेद सर्वं ह पश्यः पश्यति यद्यान्यदिच्छन्न लभते तदत्र गत्वा विन्दते**" इत्यादौ। अत्राख्यायिकामाह–**तद्यथावृत्तमित्यादिना** ॥१२॥ जीर्णः सर्वोपाधिप्रहाणेन प्रविलीनः। मार्कण्डेयं स्तौति सार्धद्वयेन–**बह्विति** ॥ १३ ॥ इति वक्ष्यमाणप्रकारेण तीर्थनिमित्तमेव सर्वतीर्थदर्शी न दाक्षिणाद्यर्थमित्यर्थः। आश्रमानित्यादीनां समाश्रित इत्यनेन संबन्धः ॥ १४ ॥ एवं चिन्मात्रे लीनोऽपि मार्कण्डेयः पुनर्विना व्युत्थानसंकल्पसुप्तवत्समाधेर्व्युदतिष्ठदित्याह–**मार्कण्डेय इति**। वक्त्रात्स्वलयस्थानात् ॥१६॥ एवं व्युत्थितोऽपि अथो पुनः एकार्णवं चिन्मात्रं गतः प्रवेष्टुं प्रयत्नं कृतवान्। तं च तमसा अज्ञानेनावरणविक्षेपशक्तिमता आच्छन्नं निरीक्षते। अयं भावः–चित्तसत्त्वं तत्त्वे प्रणिधित्सदपि तत्त्वस्य तमसा पिहितत्वात्तत्र विक्षेपरूपमैश्वर्यमेवावेक्षितवान् रज्ज्वामिव सर्पमिति ॥१७॥ भयं द्वैतदर्शनजम्। "**द्वितीयाद्वै भयं भवति**" इति श्रुतेः। आत्मजीविते स्वरूपस्थैर्ये किं निर्विशेषमेव स्वरूपं नित्यमुत सविशेषमिति संशयश्चोत्पन्नः। संशयच्छेदं विवेकबलेनैव कृतवानित्याह–**देवेति**। देवदर्शनं शुद्धसाक्षात्कारः तेन संहृष्टः प्राप्तानन्दः विस्मयं परं चागमत्। कारणाभावेऽप्याकस्मिकीमन्तःसृष्टिं दृष्ट्वेति भावः ॥१८॥

१ ख. °रं होता°। २ ख. °यो वेदसं °।

संचिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽतिशङ्कितः
किंस्विद्भवोदियं चिन्ता मोहः स्वप्नोऽनुभूयते॥
ध्यक्तमन्यतमो भावो ह्येतेषां भविता मम ।
न हीदृशमसंक्लिष्टमयुक्तं सत्यमर्हति ॥ २०
नष्टचन्द्रार्कपवने छन्नपर्वतभूतले ।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्ताव्यवस्थितः
अपश्यच्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम् ।
तोयाढ्यमिव जीमूतं मध्ये मग्नं महार्णवे ॥ २२
तपन्तमिव तेजोभिर्भास्वन्तमिव वर्चसा ।
जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम् २३
स देवं प्रष्टुमायाति को भवानिति विस्मयात्।
तथैव च शनैर्भूयो मुनिः कुक्षिं प्रवेशितः॥२४
स प्रविष्टः पुनः कुक्षौ मार्कण्डेयः सुनिश्चितः ।
तथैव चरते भूयो विजानन्स्वप्नदर्शनम् ॥ २५
स तथैव यथापूर्वं पृथिवीमटते पुनः ।
पुण्यतीर्थानि पूतानि निरैक्षद्दिवि भूतले ॥२६
क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणैः ।
पश्यते देवकुक्षिस्थान्यजिनयाज्ञ्छतशो द्विजान्
सद्वृत्तमाश्रिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ।
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टपदानुगाः २८
वर्षाणां शतसाहस्र्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ।
विचरन्पृथिवीं कृत्स्नां न च कुक्ष्यन्तमैक्षत २९
ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः ।
सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्षते ३०
यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे ।
अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥ ३१
स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।
बालमादित्यसंकाशं न शक्नोत्युपसर्पितुम् ३२
सोऽचिन्तयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ
पूर्वदृष्टमिदं नेति शङ्कितो देवमायया ॥ ३३
अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन्मुनिः ।
न शान्तिं लभते तत्र श्रमात्संत्रस्तविक्लवः ॥
तथैव भगवान्हंसो गतो योगेन बालताम् ।
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ॥ ३५

श्रीभगवानुवाच ।

मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि चान्तिकम्
मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ३६

मार्कण्डेय उवाच ।

को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन्मम
बहुवर्षसहस्रायुर्धर्षयंश्चैव मे वयः ॥ ३७
न ह्येषु समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः ।
मां ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भाषते॥

---

विवेकमेवाह--**सञ्चिन्तयतीति** । मध्यस्थः निर्विशेषान्यतरानिर्णयहीनः, चिन्ता मनोरथः, मोह इन्द्रजालादिजो भ्रमः, स्वप्नः प्रसिद्धः ॥ १९ ॥ एतेषामन्यतमोऽयं भावो मनोविकारो न वस्तुतत्त्वमित्यर्थः । तस्यैवासंभवमाह--**न हीति** । सत्यं पारमार्थिकम् अयुक्तम् असङ्गि असंक्लिष्टम् अविद्यादिसंक्लेशशून्यं सत् ईदृशं मनोरथादिरूपं भवितुमर्हति ॥२०॥ तत्र हेतुमाह--**नष्टेति** । महाभूतानां नाशेऽपि भासमानस्य चिन्तादिष्वन्यतमत्वस्यैव संभवात्कतमो लोकोऽयमिति चिन्तितवान् ॥ २१ ॥ स एवं तत्त्वनिश्चयाभावात् संदेहनिवृत्तिं कामयमानः स्वाराध्यां कारणोपाध्यभिमानिनीं देवतामपश्यत् । तया च प्रतिबोधितः कृतकृत्यो बभूवेत्याह-**अपश्यदित्यादिना** । तोयाढ्यमिति कृष्णत्वं सूचितम् । महार्णवे परमानन्दे ॥ २२ ॥ जाग्रन्तमित्यार्षो नुम् ॥२३॥ पुनः पूर्ववच्चिन्मात्रत्वं प्राप्त इत्याह--**स देवमिति** ॥ २४ ॥ स एवंभूतश्चिन्मात्रत्वमेवात्मतत्त्वं द्वैतं तु स्वप्नमात्रमिति संप्रज्ञातमेव निश्चितवानित्याह--**संप्रविष्ट इति** ॥२५॥ **स तथैवेति** । यथा व्युत्थाने तथैव संप्रज्ञाने घटनादिकं कृतवानित्यर्थः ॥ २६॥ देवकुक्षिस्थान् हार्दाकाशस्थान् ईक्षते स इति शेषः ॥ २७ ॥ तत्त्वनिश्चयस्य दुःसंपादकत्वं वक्तुं पुनर्मार्कण्डेयस्य मोहमाह--**ततः कदाचिदिति** । वक्त्रान्निःसृतः समाधेर्व्युत्थितः न्यग्रोधशाखायां न्यक् नीचैः रोहतीति न्यग्रोधः स्थूलः संसारवृक्षः। ऊर्ध्वमूलमधः शाखमित्युक्तेः। तस्यां शाखायाम् एकदेशे सुप्तमनाविष्कृतैश्वर्यं शान्तं बालं स्वाराध्यमीशं चिन्तयते कस्मिन्सति ॥ ३० ॥ **यथा चेति** । स्रष्टा चेत्यर्थः । एकार्णवजले शुद्धज्ञानसामर्थ्ये नीहारेणाज्ञानेन पूर्ववत्तिरोहिते सति तथा लोकेऽपि भूतविवर्जिते चतुर्विधभूतग्रामशून्ये । अत एवाव्यक्ते भीषणे च द्वितीयाभावात्, तस्मादेकाकी बिभेतीत्यविद्यावस्थायामेकाकिनं प्रति भयजनके सति भगवान् गुर्वादिरूपेणाविर्भूय भक्तानुगृह्णातीत्याह--**स भूय इत्यादिना** ॥ ३१ ॥ विस्मयाविष्टः समाधौ कृत्स्नस्य व्यावहारिकस्य तीर्थक्षेत्रादेर्दर्शनं व्युत्थाने च तद्दर्शनामिति विस्मयाविष्टः दिव्यैकाकिबालदर्शनाच्च कौतूहलसमन्वितः ॥ ३२ ॥ सोऽचिन्तयदित्यादिः स्पष्टार्थो ग्रन्थः ॥ ३३ ॥

कस्तपो घोरशिरसो
ममाद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मां प्रोक्त्वा
मृत्युमीक्षितुमिच्छति ॥ ३९

वैशम्पायन उवाच ।

एवमाभाषते क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः
अथैनं भगवान्भूयो बभाषे तत्परायणम् ॥ ४०

श्रीभगवानुवाच ।

अहं ते जनको वत्स! हृषीकेशः पिता गुरुः
आयुःप्रदाता पौराणः किमर्थं नोपसर्पति॥ ४१
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रमुपाश्रितः॥ ४२
ततस्त्वां घोरशिरसं दहनोपमतेजसम्।
दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम् ॥ ४३
तत्र नोत्सहते चान्यो यो न भूतो ममात्मकः
द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगधर्मिणम् ॥ ४४

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रसन्नवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥
नामगोत्रे ततः श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजितः।
अथाकरोन्नमस्कारं प्रणतः शिरसा प्रभुम्॥४६

मार्कण्डेय उवाच ।

इच्छेऽहं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ४७
किंसंज्ञः कश्च भगवाँल्लोके विज्ञायसेऽनघ।
तर्कये त्वां महाभूतं न भूतमिह तिष्ठति ॥ ४८

श्रीभगवानुवाच ।

अहं नारायणो ब्रह्मा संभवः सर्वदेहिनाम्
सर्वभूतोद्भवकरः सर्वभूतविनाशनः॥ ४९
अहमैन्द्रे पदे शक्र ऋतूनामपि वत्सरः।
अहं युगे युगाख्यश्च युगस्यावर्त एव च ॥ ५०
अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि च
भुजगानामहं शेषस्तार्क्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥
अहं सहस्रशीर्षा द्यौर्यैः पदैरभिसंवृतः।
आदित्यो यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः ।
अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः॥ ५२
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम्
बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते ५३
ज्ञानवान्दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ॥
अहं कर्म क्रिया जीवः सर्वेषां धर्मदर्शनः।
निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योतिः सनातनः
प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययः।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥५६
अहं हयशिरो देवः क्षीरोदे यो महार्णवे ।
ऋतं सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥ ५७
अहं सांख्यमहं योगमहं तत्परमं पदम् ॥
अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥

**क इति**। तपः परिभवन्निति शेषः ॥३९॥ एवं वयस्तपोभ्यां वृद्धमन्यम् ऐक्यात्म्यं बुबोधयिषया तस्य गर्व तावदपनेष्यन् श्रीभगवानुवाच–**अहं ते जनक इत्यादि**। नोपसर्पति भवान् मामिति शेषः ॥ ४१ ॥ अङ्गिरा हिरण्यगर्भः। "**एतं नु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां हि रसस्तेन**" इति श्रुत्या विश्वपितरि तैजसेऽङ्गिरःशब्दवृत्तेर्दर्शितत्वात् ॥४२॥ **घोरशिरसं** नाम्ना । मार्कण्डेय इति तु मृकण्डोरपत्यत्वान्नाम ॥ ४३ ॥ तत्र आवयोर्जन्यजनकभावे संबन्धे सति यो ममात्मको मदभिन्नो न भूतः सोऽन्योऽचेतनत्वात् एकार्णवगतं योगधर्मिणं मां द्रष्टुं नोत्सहत इति योजना । **अयं भावः**–जडाजडौ द्वौ पदार्थौ तत्र जडो नाजडं द्रष्टुमीष्टे, नाप्यजडो जडादन्यं, तस्यापि दृश्यत्वेन जडत्वापत्तेरत आवयोरैकात्म्यं निश्चितमिति ॥ ४४ ॥ इदमेव ऐकात्म्यं विस्तरेण वक्तुं प्रश्नमवतारयति—**तत इत्यादि** ॥ ४५ ॥ मायायास्तत्त्वं श्रीभगवानुवाच—**अहं नारायण इति**। योऽयमस्मत्प्रलयविषयः नारायणो नाराख्यकृत्स्नप्रपञ्चलयाधिष्ठानमुपाधिस्पर्शशून्यं तदेव मायया अन्यथा भाति। तत्त्वं तज्ज्ञानान्मायानिवृत्तिस्तदज्ञानाद्रज्जूरगवद्ब्रह्मादिरूपेण मायैव भातीत्यर्थः ॥ ४९ ॥ ऐकात्म्यग्रहणासमर्थानाम् उपास्त्यर्थं विभूतीराह–अहमैन्द्रे पदे इत्यादिना सार्धत्रयेण ॥५०॥ **यदिति**। तपसा स्वधर्मानुष्ठानेन भावितात्मनां शुद्धचेतसां मध्ये बहुषु जन्मसु निरुद्धात्मा निरुद्धचेता ब्राह्मणो ब्रह्मवित् यतिः संन्यासी। यदुच्यते "**ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति**" इति शास्त्रे यद्रूपत्वेनोच्यते तद्ब्रह्माहं मायया अनारोपितं रूपमहमिति पूर्वेण संबन्धः ॥ ५३ ॥ ऋतं श्रुत्युक्तानुष्ठानं कर्मादीनां सत्यं तत्प्राप्यं ब्रह्म ॥५७॥ सांख्यं वेदान्तविचारः। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । विद्याधिपो विद्याप्रदाता ॥ ५८ ॥

१ ख. °द्रानां ब्रह्मणोप्यातिरु° । २ ख. °मेसाधनम् । नि° । ३ ख. °गः पदं तत्परमं तथा । अ° ।

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः।
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश।
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ॥ ५९
क्षीरोदः सागरश्चाहं समुद्रो वडवामुखः।
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमहं रविः ६०
अहं पुराणं परमं तथैवेहं परायणम् ।
भविष्यं चैव सर्वत्र भविष्ये सर्वसंभवः ॥ ६१
यत्किंचित्पश्यसे चैव यच्छृणोषि च किंचन
यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामकं स्मृतम् ६२
विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेयं चाद्य पश्य माम्
युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्
तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय।
शुश्रूषुर्मम धर्मेप्सुः कुक्षौ चर सुखी भव ॥ ६४
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह।
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छापराजितम् ॥ ६५
अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव सर्वशः।
त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ॥ ६६

वैशम्पायन उवाच।

एवमेतत्पुराणेषु वेदान्ते च महामुनिः।
वक्त्रे व्याहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् ६७
प्रवेशयामास ततो जठरं विश्वरूपधृक्।
ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः।
रराम सुखमासाद्य शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ॥ ६८
तदक्षरं विविधमथाश्रितो वपु-
महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे
शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽ-
सृजज्जगद्विसृजति कालपर्यये ॥ ६९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे मार्कण्डेयदर्शने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## महापद्मोत्पत्तिः।

## ११

वैशम्पायन उवाच।

आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै तपः। छादयित्वाऽऽत्मनो देहमात्मना कुम्भसंभवः १

सागरो लवणोदकः। समुद्रः स्वादूदकादिः ॥६०॥ तत्सर्वं मामकं स्मृतं स्वरूपमिति शेषः ॥ ६२ ॥ मम धर्मेप्सुः ऐश्वर्येप्सुः कुक्षौ चर निर्विकल्पं समाधिमनुतिष्ठ। सुखी संसारदुःखशून्यः ॥ ६४ ॥ ब्रह्मादीन् प्रति स्वस्य तटस्थकारणत्वं मा भूत् किं तु अभिन्ननिमित्तोपादानस्वरूपं कारणत्वमेवेत्याह,—**मम ब्रह्मा शरीरस्थ इति**। कनककुण्डलवत् सर्वमिदं मय्येवोतं प्रोतं चेति भावः ॥ ६५ ॥ एकाक्षरः अकारः। "**अकारो वै सर्वा वाक्**" इति श्रुतेः। अक्षरः प्रणवः त्रिपदा गायत्री ॥ ६६ ॥ सर्ववेदान्तप्रसिद्धं महामुनिर्व्यासो बबन्धेत्याह वैशम्पायनः—**एवमिति**। आहृतवान् आनीतवान् मार्कण्डेयं मुखे प्रक्षेप्तुमिति शेषः ॥ ६७ ॥ हंसं परमात्मानं शुश्रूषुः निर्विकल्पकेन समाधिना आराधयितुमिच्छुः ॥ ६८ ॥ अध्यायार्थमुपसंहरति—**तदक्षरमिति**। हंससंज्ञितस्तदक्षरम् अविनाशि ब्रह्म कीदृशः विविधं वपुराश्रितः सन्नपि महार्णवे चिन्मात्रावस्थायां चन्द्रभास्करशब्दिततत्कारणमनश्चक्षुर्वर्जिते कार्यकारणप्रपञ्चशून्ये इत्यर्थः। शनैः भूमिजयक्रमेण चरन् कालपर्यये अविद्यालेशवशात्समाधिसुखविच्छेदकाले जगदसृजत् महाभूतमयं विसृजति विविधभौतिकं सृजति ॥ ६९ ॥ इति महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

**ब्रह्मैव ब्रह्मविदिति विस्पष्टयितुमापवात्। पञ्चमेऽथाहमादीनां जन्म संक्षिप्य वर्ण्यते॥**

**आपव इति**। स विभुर्हंसाख्य आपवो वसिष्ठाख्यो ब्रह्मर्षिर्भूत्वा योगाख्यं कारयामास कृतवान्। रामो राज्यमचीकरदितिवत्स्वार्थे णिच्। आत्मनः स्वस्य कुम्भसंभवदेहम् आत्मना समष्ट्यभिमानिनाच्छादयित्वा। स्थूलदेहतादात्म्यं त्यक्त्वेत्यर्थः। वसिष्ठस्य हि कुम्भाज्जन्म स्मर्यते। मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा सत्रे कुम्भे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठावाजायेतामिति ॥१॥

१ ख. °यमयं हविः। अ°। २ ख. वक्तुमाह°।

ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने
महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो ह्यचिन्तयत् २
तस्य चिन्तयतस्तत्र तपसा भावितात्मनः।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे ॥ ३
ईषत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः
सोऽनन्तरोर्मिणा सूक्ष्ममथ च्छिद्रमभूत्तदा ॥
तत्र शब्दगतिर्भूत्वा मारुतद्रवसंभवः।
स लब्ध्वाऽऽन्तरमक्षोभ्यो ह्यवर्धत समीरणः
[१]विवर्धता बलवता तेन संक्षोभितोऽर्णवः।
अन्योन्यवेगाभिहता ममन्थुश्चोर्मयो भृशम् ॥
महार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मथ्यति
कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरोऽर्चिमान् ७
तत्र संशोषयामास पावकः सलिलं बहु ।
क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवन्निःसृतं नभः ॥ ८
आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः।
आकाशं छिद्रसंभूतं वायुराकाशसंभवः ॥ ९
[२]आज्यसंघर्षणोद्भूतं पावकं चाज्यसंभवम्।
दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावनः ॥ १०

ततो देहाच्छादनान्महात्मा ईश्वरः सन् अत एवातिबलोऽनन्तशक्तिः लोकस्य भौतिकस्य तदुपादानभूतानामपि पञ्चसंख्यानां भूतानां वियदादीनां च सर्जने मतिं व्यचिन्तयत्। विश्वभूतो विश्वात्मा। एतेन "**स ऐक्षत इमाँल्लोकानुसृजै**" इति श्रुतेरर्थो दर्शितः ॥ २ ॥ तस्यैवं चिन्तयतस्तत्र तदा निराकाशे तोयमये चिन्मये सूक्ष्मे दुर्लक्ष्ये गह्वरे दुरधिगमे वस्तुनि जगति लीने सति तपसा ईक्षणबलेन भावितः संवर्द्धितः आत्माऽहङ्कारो येन स भावितात्मा तस्य ॥ ३ ॥ **ईषदिति**। सः भावितात्मा सलिले चिदात्मनि अधिष्ठाने स्थितोऽध्यस्तः सन्नर्णवं परं तत्त्वम् ईषत्संक्षोभयामास। शुद्धापि चितिः समष्टिरहंकारेण ईश्वरोऽस्मीति भावितवतीत्यर्थः। स ईश्वरोऽनन्तरेण द्वितीयेन ऊर्मिणा संकल्पेन सूक्ष्मम् इन्द्रियाग्राह्यं छिद्रमाकाशाख्यं स्वयमभूत्तदा ॥४॥ **तत्रेति**। तत्र छिद्रं सोऽनन्तरोर्मिणा शब्दगतिरभूदित्यनुषज्य योज्यम्। स ईश्वरः पुनः संकल्पान्तरेण तस्मिन्नाकाशे शब्दरूपेण गतिः परिस्पन्दः तत्प्रदत्वे अभूदित्यर्थः। किं कृत्वा मारुतद्रवसंभवो भूत्वा वायुवेगेनैव शब्दगतिरूपेण संभवः प्रादुर्भावो यस्य सः। वाय्वनुग्रहादेव संयोगविभागहेतुर्गतिर्जायते तावेव च शब्दाविर्भावे कारणमित्यर्थः। ननु क तदा वायुरित्यत आह—**स इति**। ईश्वरः अन्तरं छिद्रं लब्ध्वा लब्ध्वैव अक्षोभ्योऽपि सन्समीरणो भूत्वा व्यवर्द्धत। आकाशादनन्तरमेव उत्पन्नो वायुः शब्दगत्योः निमित्तत्वं प्रापेत्यर्थः ॥ ५ ॥ **विवर्धतेति**। आर्षस्तङ्भावः। अर्णवश्चिदात्मा तेन वायुना कथं संक्षोभित इत्यत आह—**अन्योन्येति**। इदानीं हि चिदहङ्काराकाशवायवः सन्ति। तत्र चित्ताहङ्कारस्य जाड्यमभिहितम्। इतरेण तस्याः शुद्धत्वं हृतम्। एवमहङ्कारव्यञ्जनेन वायोर्निःस्पन्दत्वं हृतं वायुनाऽप्यहङ्कारतरोर्निःस्पन्दत्वं हृतमित्यन्योन्याभिघातात्ते ऊर्मयः संकल्पभेदाः ममन्थुर्व्याकुलीचक्रुरर्णवमिति प्रकरणात् विपरिणामेनानुषज्य योज्यम् ॥ ६ ॥ मथ्यति मथ्यमाने अर्चिमान् आर्चिष्मान् ॥ ७ ॥ रूपवता तेजसा नीरूपस्य चिदात्मनो रूपत्वादनेन अत्यन्तं कालुष्यं संपादितमित्याह—**तत्रेति**। तेजः शुद्धं वस्तु नास्तीत्येवाकरोदित्यर्थः। **क्षयादिति**। उक्तक्रमेण जलनिधेः परमेश्वरस्य क्षयादैश्वर्याच्छिद्रमभवत् पूर्वोक्तं तदेव नभो निःसृतमिति ॥८॥ "**आत्मन आकाशः संभूतः**" इत्यादिश्रौतवादः। वस्तुतस्तु स एवाकाश इत्यर्थः। जलसृष्टिमाह—**आत्मेति**। तेजोद्भवा इति सान्धिरार्षः। **आत्मतेजोद्भवा इति**—श्लोकार्धक्षयाज्जलनिधेरित्यस्मात्पूर्वं बोध्यं तेजोजलयोर्मध्ये नभःसृष्टेरन्वयात्। **आकाशमिति**। आकाशम् ईश्वरः छिद्रसम्भूतं छिद्रभूताकाशे वायुरूपेण सम्भूतम् आविर्भूतमेव वायुः तथापि, आकाशाद्वायुरिति वेदवाद औपचारिकः। मूलकारणमेव आनन्त्यात्कार्यान्तर इव तत्तद्रूपेण भाति नात्र सृष्टिक्रमविवक्षाऽस्ति गगनद्रुम इवाङ्कुरादीनामिति भावः ॥ ९ ॥ **आज्येति**। आज्यमिव द्रवत्वादाज्यं जलं तस्य संघर्षणं दृढतराश्लेषः पृथिवीति यावत्। "**तद्यदपां शर आसीत्स समहत्यसौ पृथिव्यभवत्**" इति श्रुतेः। करकादिवद्दृढत्वं प्राप्ता आप एव पृथिवी। आज्यसंघर्षणं तस्यामुद्भूतम्। आविर्भूतं जाठरं पावकम् आज्यसम्भवं परम्परया जलोद्भूतं पार्थिवमाभिं भोक्तारमिति यावत्। शब्दादिगुणवन्ति महाभूतानि भोग्यानि भोक्तारं च जीवं दृष्ट्वा महाभूतानाम् आदिभूतम् अहङ्कारं महाभूतादीन् भावयति आत्मत्वेन कल्पयतीति महाभूतादिभावनोऽहङ्कारादिस्रष्टा देवः ईश्वरः प्रीतियुतोऽभवत्। अतः भौतिकान् हिरण्यगर्भादीन् स्रक्ष्यामीति ॥ १० ॥

१ ख. ॰द्रमसृजद्विश्वजित्तदा आ॰। २ ख. आज्यं संघ॰।

दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थतत्त्ववित् ।
ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो विचिन्वति ॥ ११
चतुर्युगादिसंख्यान्ते सहस्रयुगपर्यये ।
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ।
बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुत्तमः ।
ज्ञानवान्दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः
तं योगवन्तं विज्ञेयं संपूर्णैश्वर्यविक्रमम् ।
देवो ब्रह्मणि विश्वे च नियोजयति योगवित् ॥
ततस्तस्मिन्महातोये हविषो हरिरच्युतः ।
स्वपन्क्रीडंश्च विविधं मोदते चैष पावकिः १५
पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा ।
सहस्रपत्रं विरजो भास्कराभं हिरण्मयम् १६
हुताशनं ज्वलितशिखोज्ज्वलप्रभं
सुगन्धिनं शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चसं
महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे महापद्मोत्पत्तौ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## सर्वभूतोत्पत्तिः ।

## १२

वैशम्पायन उवाच ।

अथ योगविदां श्रेष्ठं सर्वभूतमनोमयम् । स्रष्टारं सर्वभूतानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥ १

तदेवाह—दृष्ट्वेति । लोकस्य सृष्टिः तस्या अर्थप्रयोजनं तत्त्वं च लोकादेर्वेत्ति इति लोकसृष्ट्यर्थं तत्त्ववित् स ईश्वरः ब्रह्मणो जन्म विचिन्वतीति चिन्तयती । विचिन्वतीति वर्तमानापदेशेन प्रवाहनित्योऽयमर्थ इति सूचितम् । प्रतिकल्पं सङ्कल्पमात्रेण ब्रह्माणं सृजतीत्यर्थः । कीदृशं जन्म ? हितं भौतिकस्रष्टृत्वाद्ब्रह्मणस्तज्जन्म ईश्वरस्य हि सृष्टिबाहुल्यमिच्छतो हितकरम् । कीदृशः ? बहुरूपः जीवेशः शुद्धरूपः ॥ ११ ॥ ब्रह्मणो जन्मकालमाह—चतुर्युगेति । अनेन दिनप्रमाणेन वर्षशतमुन्नेयम् ॥ १२ ॥ उत्पादितस्य ब्रह्मणः पूर्वं रूपमाह द्वाभ्याम्—यत्पृथिव्यामिति । यत् यः पृथिव्यां पूर्वस्मिन्कल्पे भूमौ यः द्विजेन्द्राणां मध्ये उत्तमः निरतिशयभावनावान् ब्रह्मणो विश्वरूपस्य उपासको ब्राह्मणः ॥ १३ ॥ अत एव दृष्टविश्वात्मा साक्षात्कृतसूत्रात्मभावः तं विज्ञेयं सर्वैरुपास्यं यतः संपूर्णैश्वर्यविक्रमं देवो विश्वेशः ब्रह्मणि विश्वे च वेदजगतोः सन्तत्यविच्छेदे विषये नियोजयति । सूत्रोपासकानां मध्ये यत्र भावनोत्कर्षविश्रान्तिःसोऽग्रिमकल्पे ब्रह्मा भवतीत्यर्थः ॥१४॥ तत इति । ततः ब्रह्मणो नियोगानन्तरं महातोये स्वस्वरूपे निर्विशेषे हरिरच्युतो भवति सृष्टिविक्षेपराहित्यात् । एष पावकिश्च नियुक्तस्तैजसो ब्रह्मा हविषः प्राणिकर्मवशाद्धेतोः स्वयं कर्मोपरमे विविधं क्रीडंश्च सर्वप्राणिकर्मोद्भवे एवं प्रकारेण ब्रह्माण्डाधिपतिर्भूत्वा मोदत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ ब्रह्मणः सदनभूतं ब्रह्माण्डरूपं पद्ममुपक्षिप्तसिंहावलोकनेन हरिं विशिनष्टि—पद्ममिति । तदा ब्रह्मजन्मकाले पद्ममेव स्तौति—नाभ्युद्भवमिति ।

" अधोनिष्ट्या वितस्त्यान्ते
नाभ्यामुपरि तिष्ठति ।
ज्वालमालाकुलं भाति
विश्वस्यायतनं महत् ॥ "

इति श्रुतिप्रसिद्धैवात्र नाभिर्ग्राह्या । आपवाख्यवसिष्ठसमाधेः प्रस्तुतत्वात् । सहस्रेति सहस्रं अनन्तानि पत्राणि भोगभूमयः प्राणिभ्रमरा यस्मिन् तत् तत् विरजः रजो रेणुः पार्थिवाप्यादिरेणुस्तद्रहितं भास्कराभं सर्वतः प्रद्योतमानं हिरण्मयं मनोहरणशीलं दिव्याम्रादिरत्नौघमयम् ॥ १६ ॥ हुतेति । वह्निज्वालावद्दीप्यमानाः शिखा इव शिखाः उज्ज्वलास्तेषां प्रभा यस्मिन् । तदा समाधिकाले सुगन्धिनं रम्यविषयास्वादयुक्तं पुंस्त्वमार्षम् । कमलं कस्य ब्रह्मणो मलम् आविधकं रूपं विराजते । यद्वा कं ब्रह्मैव अलम् अत्यर्थं विविधरूपेण राजते । आत्मन आपवस्य तनूरुहं तन्वां हार्दाकाशे वाभावे वा रोहितीत्येवंरूपं तनूरुहं च तच्चारुदर्शनं चेति समासः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१२

**लेशतोऽपि न भेदोऽस्ति बाह्याभ्यन्तरविश्वयोः इति वक्तुं मुनिः प्राह षष्ठे नाभ्यब्जसम्पदम् १**

अथेति । ब्रह्माणं तस्मिन्पद्मे आपवो योजयतीति व्यवहितकर्तृक्रियानुषङ्गेण श्लोकद्वयं सम्बन्धनीयम् । सर्वभूतमनोमयं जलाकाशवत्प्रातिव्यक्तिपरिसमाप्तं सूत्रात्मानमित्यर्थः । सर्वतोमुखमिति सर्वतः पाणिपादत्वादेरुपलक्षणम् । १

१ ख. °ष्ट्यर्थमव्ययः ब्र° । २ ख. तमात्मतत्त्वं वि° । ३ ख. °श्वेशो नि° ।

तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते ।
सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्युते ॥ २
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरुहमुत्तमम् ।
नारायणाङ्गसंभूतं प्रवदन्ति महर्षयः॥ ३
या तु पद्मासना देवी पृथिवीं तां प्रचक्षते ।
ये गर्भसाराङ्कुरतस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ४
हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च ।
कैलासं मुञ्जवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादनम्॥ ५
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च ।
उदयं कन्दरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ॥ ६
एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ।
आश्रमाः पुण्यशीलानां सर्वकामयुताद्रयः॥७
एतेषामितरो देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः ।
जम्बूद्वीपस्य संख्यानं याज्ञिया यत्र चक्रिरे॥८
गर्भाद्यत्स्रवते तोयं देवामृतरसोपमम् ।
दिव्यतीर्थशतापांग्यस्तादिव्याःसरितःस्मृताः

यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समंततः ।
असंख्याताः पृथिव्यां तु विश्वे ते धातुपर्वताः
यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्ध्वं नराधिप ।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः
यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्थं तानि भागशः ।
दैत्यानामुरगाणां च पातालं तन्महात्मनाम् ॥
तेषामधोगतं यत्तदुदकेत्यभिसंज्ञितम् ।
महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः॥१३
पद्मस्यान्ते कुशं यत्तदेकार्णवजलं महत् ।
प्रोक्तास्ते दिक्षु संघाताश्चत्वारो जलसागराः
ऋषेर्नारायणस्यायं महापुष्करसंभवः॥
प्रादुर्भावोऽव्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंभवः ।
एतस्मात्कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः ।
याज्ञियैर्वेददृष्टार्थैर्यज्ञे पद्मचिती कृतः ॥ १६
एवं भगवता पद्मे विश्वस्य परमो विधिः ।
पर्वतानां नदीनां च देवतानां च निर्मितः १७

---

तेजांसि सूर्यादीनि । गुणाः गन्धादयः । पार्थिवे मनोमयेऽपि सर्वस्थूलभूमिलक्षणैर्युक्ते ॥ २ ॥ पृथिवीरुहं च । " **यच्छरीरं सा पृथ्वी** " इति श्रुतेः । पृथिवी शरीरं तस्यां रोहतीति देहान्तस्थामित्यर्थः । अत्र हेतुः— नारायणाङ्गसम्भूतम् अन्तर्याम्यङ्गोद्भूतमन्तरेवाऽस्तीति भावः ॥ ३ ॥ पार्थिवैर्लक्षणैर्युत इति यदुक्तं .तत्र का पृथिवी कानि च तल्लक्षणानीत्यत आह—**या त्विति** । पद्मशब्देन तथासनं शरीरं तस्यासनं शरीरं तस्यासनं यत्र सा पृथिवी प्रसिद्धैव । ये गर्भे पाषाणमयत्वात्सारा दृढाः सन्तः अंकुरवदुच्छूनास्तान् प्रथमार्थे तासिः विशेषणं तु पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यविवक्षायाम् । पिण्डेऽपि काठिनांशोऽस्थ्यादिः पर्वतत्वेन ज्ञेय इत्येवमर्थः ॥ ४ ॥ युताश्च ते अद्रयश्चेति समासः ॥ ७ ॥ याज्ञियं देशमिच्छन्ति ते याज्ञियाः यत्र चक्रिरे यज्ञं जम्बुद्वीपमेव कर्मभूमिरित्यर्थः ॥ ८ ॥ यज्ञस्येत्युपस्थितं संबध्यते तथाहि--

" अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥ "

इति यज्ञोद्भवत्वं तोयस्य स्मरन्ति । तीर्थशतान्यपाङ्गो भ्रूभङ्गो यासां ताः दिव्या नद्यो गङ्गाद्याः ब्रह्माण्डं भित्त्वा मेरूपरि पतित्वा चतुर्दिक्षु प्रस्थिताः ॥ ९ ॥ उत् उत्कृष्टम् अकं दुःखं यत्र तदुदकेत्यभिसंज्ञितम् ॥१३॥ पद्मस्य मेरुकर्णिकावतो भूपद्मस्य अन्ते समन्ततः प्रान्ते कुशं कुः पृथिवी शेतेऽस्मिन्निति कुशं जलम् ॥ १४ ॥ **ऋषेरिति** । व्यावहारिकत्वादयं महापुष्करसंभवः योऽयं योगिहृदयदर्पणे प्रादुर्भावः स तस्मादेव संस्काररूपेण हृदये स्थितात्स्थूलाद्धेतोः नाम्ना पुष्करसंभव इत्युच्यते । प्रतिबिम्बचैत्रेऽपि चैत्रोऽयमिति व्यवहारस्य बाधादर्शनादेकनामत्वं द्वयोर्युक्तमिति भावः ॥ १५ ॥ व्यवहारमुक्त्वा वस्तुतत्त्वमाह—**एतस्मादिति** । एतस्मात् अव्यवहितात् प्रकरणवतः योगिकल्पितात्पुष्करसंभवात् महापुष्करसम्भवस्य बीजभूतात् यज्ञियैः कर्मयोगयज्ञार्हैः पद्माचिती पद्मरूपकेण चितं चयनम् इष्टकाभिरिति वदस्यास्तीति पद्मचिती स्थूलः पुष्करप्रादुर्भाव. कृतो विहितः यतो वेददृष्टार्थैरतः कृतः । वेदे लोके च सूक्ष्मस्यैव स्थूलत्वं दृष्टं न स्थूलस्य सूक्ष्मत्वम् । न हि बीजं वटो भवतीति वटोऽपि समासहस्रेण बीजीकर्तुं शक्योऽतो मानसादेव पुष्करात् स्थूलस्योत्पत्तिर्युक्तेति भावः ॥१६॥ **एवमिति** । परमो व्यावहारिकः ॥ १७ ॥

---

१ ख. ये तु गर्भाङ्कुराः सारास्तान्दिव्या॰ । २ ख. ॰सं क्रौञ्चव॰ । ३ ख. ॰षामन्तरो दे॰ । ४ ख. ॰वो व्ययस्तस्मा॰ । ५ ख. ॰श्चविधिः स्मृतः । ए॰ । ६ ख. च देशानां च विनिर्मि॰ ।

विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः
प्रभाकरो वै भगवान्महात्मा ।
स्वयं स्वयंभूः शयनेऽसृजत्तदा
जगन्मयं पद्मनिधिं महार्णवे ॥ १८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे सर्वभूतोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## मधुकैटभवरप्रदानम् ।

### १३

वैशम्पायन उवाच ।
चतुर्युगादिसंभूतौ सहस्रयुगपर्यये ।
विघ्नस्तमसि संभूतो मधुर्नाम महासुरः ॥ १
तस्यैव च सहायोऽन्यो भूतो रजसि कैटभः ।
तौ रजस्तमसाविष्टौ संभूतौ कामरूपिणौ २
एकार्णवजलं सर्वं क्षोभयन्तौ महासुरौ ।
कृष्णरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ ॥ ३
उभौ मदकटोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ ।
महाविकृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ ४
महच्छिरःसंहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ ।
नीलमेघाभ्रसंकाशावादित्यप्रतिमाननौ ॥ ५
विद्युदम्भोदताम्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ ।
पादसंचारवेगाभ्यामुत्क्षिपन्ताविवार्णवम् ॥६
कम्पयन्ताविव हरिं शयानमरिसूदनम् ।
तौ तत्र विहरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम्७
पश्यतां दीप्तवपुषं योगिनां श्रेष्ठमुत्तमम् ।
नारायणसमाज्ञप्तं सृजन्तमखिलाः प्रजाः ।
दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन्
ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ ।
दृप्तौ युयुत्सुकौ क्रुद्धौ रोषसंरक्तलोचनौ ॥ ९
कस्त्वं पुरुष मध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्मुखः ।
आवामगणयन्मोहादास्से त्वं विगतज्वरः १०
एह्यावयोर्बाहुयुद्धं प्रयच्छ कमलोद्भव ।
आवाभ्यामतिवीराभ्यां न शक्यं स्थातुमाहवे
कस्त्वं कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासीह चोदितः
कः स्रष्टा कश्च वै गोप्ता केन नाम्नाभिधीयसे

ब्रह्मोवाच ।
यः क इत्युच्यते लोके ह्यविज्ञातः सहस्रशः
तत्संभवं योगवन्तं किं मां नाभ्यवगच्छथः१४

मधुकैटभावूचतुः ।
नावयोः परमं लोके किंचिदस्ति महामते।
आवां छादयता विश्वं तमसा रजसा तथा १४
रजस्तमोमयावावां यतीनां दुःखलक्षणौ ।
छलकौ धर्मशीलानां दुस्तरौ सर्वदेहिनाम् ॥
आवाभ्यां मुह्यते लोक उच्छ्रिताभ्यां युगे युगे
आवामर्थश्च कामश्च यज्ञाः सर्वपरिग्रहाः १६

---

विभुरिति । तथैव परमस्तथैव शयने स्थूलदेहविस्मरणे पद्मानां निधिम् अनन्तानि पद्मानीत्यर्थः । महार्णवे परमात्मनि ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

**सप्तमे लयविक्षेपौ विघ्नौ तामसराजसौ ।**
**सत्त्वेन विष्णुना क्षेप्यौ मधुकैटभरूपकौ ॥१॥**

चतुर्युगादिः कृतं सात्त्विको योगधर्मः तत्रापि सम्भूतौ अधर्मपादस्य सत्त्वोक्तेः सहस्रयुगपर्यये अमिताविद्यारात्रिक्षयसमये चित्तसत्त्वं हि तत्त्वे प्रणिधीयमानं दैनंदिनलयाभ्यासात्तमसः प्राबल्ये सति लीयते स लयोऽत्र मधुनामा ॥ १ ॥ तथा रजःप्राबल्ये सति क्षणिकसत्त्वोत्कर्षात्सत्यपि क्षणं तत्त्वलाभे पुनः संसारप्रवणं भवति स विक्षेपो नाम विघ्नोऽत्र कैटभो नाम । योऽयं सत्त्वाविविक्तश्चिद्धातुः स जीवो ब्रह्मा नाम । तस्य हिंसां संसारसंकटे पातनं विष्णुः सत्त्वं तच्छरीरे सत्त्वे एव तयोर्नाशः अग्रिमकल्पेऽप्युत्थानं तत्र मधुकैटभयोः विष्णुपुत्रत्वं रजस्तमसोः सत्त्वं प्रत्युपसर्जनत्वम् ॥ २ ॥

---

१ ख. °हाबलौ । २ ख. किरीटमुकुटोद° । ३ ख. °हावृषभताम्रा° । ४ख. °स्त्वं पुष्करम° । ५ ख. आवान्नग° । ६ ख. आवाभ्यां छाद्यते वि° । ७ ख. °वाभ्यामर्थका° ।

सुखं यत्र मुदो यत्र यत्र श्रीः सन्निवृत्तयः।
एषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय
ब्रह्मोवाच।
यत्तद्योगवतां श्रेष्ठं यच्च सर्वं मयार्चितम्।
तत्समाधाय गुणवान्सत्त्वजोऽस्मि प्रतिष्ठितः
यत्परं योगयुक्तानामक्षरं सत्त्वमेव च।
रजसस्तमसश्चैव यत्स्रष्टा जीवसंभवः॥ १९
यतो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च
स एवं युक्तः समरे वशी वां शमयिष्यति २०
वैशम्पायन उवाच।
ततः शयानं श्रीमन्तं बहुयोजनविस्तृतम्।
पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणम्योवाच तावुभौ॥ २१
जानीवस्त्वां विश्वयोनिमेकं पुरुषसत्तमम्।
तवोपासनहेत्वर्थमिदं नौ विद्धि कारणम् २२
अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां विदुरीश्वरम्।
ततस्त्वामभितो देव काङ्क्षावः प्रतिवीक्षितुम्
तदिच्छावो वरं दत्तं त्वया ह्यावामरिंदम।
अमोघं दर्शनं देव नमस्तेऽस्त्वजितंजय॥ २४

श्रीभगवानुवाच।
कानिच्छतो द्रुतं ब्रूतं वरानसुरसत्तमौ।
दत्तायुषौ मया भूयस्त्वहो जीवितुमिच्छथः
तस्माद्यदेष वां यत्नस्तत्प्राप्नुतं महाबलौ।
वध्यौ भवन्तौ तु स्यातां तावित्येवाब्रवीद्धरिः
उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षतवर्जितौ॥
मधुकैटभावूचतुः।
यस्मिन्नकश्चिन्मृतवांस्तस्मिन्देशे विभो वधम्
इच्छावः पुत्रतां यातुं तव चैव सुराधिप॥
श्रीभगवानुवाच।
बाढं सुतौ मे प्रवरौ भविष्ये कल्पसंभवे।
भविष्यथो न संदेहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम्॥
वैशम्पायन उवाच।
वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां
सनातनो विश्ववरोत्तमो विभुः।
रजस्तमोभ्यां भवभावनोपमौ
ममन्थ तावूरुतले सुरारिहा॥ २९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि मधुकैटभवरप्रदाने त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

## ब्रह्मणो मानसपुत्राणामुत्पत्तिः।

### १४

वैशम्पायन उवाच।
स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। ऊर्ध्वबाहुर्महाबाहुस्तपो घोरं समाश्रितः॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

१४

**भवादिसंज्ञं विराडादित्रयं युक्त्यनुभूतितः विमुच्य सुस्थिताद्ब्रह्मो व्युत्थाने सृष्टिरष्टमे १**

**स्थित्वेति**। अत्र यथा स्फटिके जपाकुसुमसान्निध्याद्रक्तत्वाध्यासः, तत्रैव स्फटिकांशप्रमोषे पद्मरागत्वाध्यासः, तत्रैव निशि चन्द्रिकायामिन्द्रनीलत्वाध्यासः, एवं शुद्धायां चिति मायोपाधिसान्निध्यादीश्वरत्वाध्यासः, तत्रैव मायाबलतारतम्यात्सूत्रात्मविराट्त्वाध्यासौ स्तः। अत एव शास्त्रे प्रणवमात्राणामकारोकारमकारार्द्धमात्राणां प्रातिलोम्येनार्थाविद्योपाधिना जीवेन स्थूलदेहासङ्गेन क्रमात्पूर्वस्योत्तरोत्तरत्र प्रविलापनेन साक्षात्कर्तव्याः। अर्धमात्रायां स्वरूपमात्रप्रतिष्ठ आत्मनि भवति द्वैतादर्शनात्। सोऽयमात्मा आवरणविक्षेपशक्तिमत्या अविद्यया आश्रयस्तत्रावरणांशेन शुद्धरूपतिरोधानं विक्षेपांशेन ईशादिस्थूलदेहान्तानां प्रतिभासस्तत्रापि ईशादिषु उत्तरस्य पूर्वे पूर्वमावृत्तिरिति वस्तुस्थितिः। तत्रावरणांशस्य सांख्यानामविचारो विरोधी विक्षेपांशस्य तु योगेनैव निवृत्तिः सोपाधिकभूमस्य उपाधिनिवृत्तिमन्तरेण परोक्षज्ञानमात्रेण नाशायोगात्। एवं च योगिनः स्थूलदेहासङ्गे विराड्भावः स्फटिके इन्द्रनीलत्वाध्यासस्थानीयो भूतानामादिचिदाचिद्ग्रन्थिरूपतया

---

१ ख. सन्नतिर्नयः। ए० २ ख. ०ङ्क्षितं किंचितद्बुध्यस्व विचिन्तयन्। ब्र०। ३ ख. ०च्च पूर्वं म०। ४ ख. ०त्सत्त्वे चास्मि प्र० ५ ख. ०व युद्ध्या स०। ६ ख. ०स्त्वां विद्व ईश्व०। ७ ख. ०क्षत्रतत्परौ। म०।

ज्वलन्निव च तेजस्वी भाभिःस्वाभिस्तमोनुदः
बभासे सर्वधर्मस्थः[1] सहस्रांशुरिवांशुमान् ॥ २
अथान्यद्रूपमास्थाय
शंभुर्नारायणोऽव्ययः ।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनाऽऽत्मान-
मचिन्त्यात्मा सनातनः ॥ ३
आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः ।
सांख्याचार्यश्च मतिमान्कपिलो ब्राह्मणो वरः

देवर्षिभिस्तु तावेतौ ब्रह्म ब्रह्मविदां वरौ ।
उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षेत्रतत्परौ ॥ ५
तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् ।
परावरविशेषज्ञौ पूजितौ परमर्षिभिः ॥ ६
बहुत्वाद्दृढपादश्च विश्वात्मा जगतः स्थितिः
ग्रामणीः सर्वलोकानां ब्रह्मा लोकगुरुर्वरः ॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा तिस्रो व्याहृतयो जपन् ।
त्रीनिमान्कृतवाँल्लोकान्यथाह ब्राह्मणी श्रुतिः॥

ब्रह्मसंज्ञस्य मननिकल्पितः पुत्रः सांख्ययोगाभ्यां प्रतिबोधितः संनिवर्तते । ततः चन्द्रिकानिवृत्तौ स्फटिके पद्मरागत्वाध्यासोपमः सूत्रात्मा तस्यैव ब्रह्मणो मानसः पुत्रो भुवोनामा तथैव सांख्ययोगाभ्यां प्रतिबोधितः संनिवर्तते । तद्वत्स्फटिके लौहित्याध्यासोपमो ब्रह्मणो मानसः पुत्र ईशोऽपि भूर्भुवर्नामा पूर्ववत्प्रतिबोधान्निवर्तते ततः शुद्धा चितिरेवावशिष्यते। सोऽयमर्थोऽत्र ब्रह्मनारायणकपिलभूर्भुवाद्याधिदैविकवृत्तान्तरूपकेण निरूप्यते एकाविंशत्या श्लोकैः। ततः परं, न रराम ततो ब्रह्मेत्यादिनाऽध्यायशेषेण चिदात्मैव सन्योगी चिदात्मकमेव सर्वं जगत्सृष्टिसमये सृजतीत्युच्यते । अक्षरयोजना तु एवं ज्ञेया–**कमले** मानसे ब्रह्माण्डे ऊर्ध्वं प्रणवाख्यं ब्रह्म बाहुरिव बाहुरालम्बनं यस्य स **ऊर्ध्वबाहुः तपो** योगं **घोरं** सर्वप्रविलयरूपत्वात् ॥ १ ॥ भाभिश्चिद्दीप्तिभिः तमोनुदः अज्ञानध्वंसी सर्वधर्मस्थो योगधर्मस्थः ॥२॥ नारायणकपिलौ योगसांख्यशास्त्रयोराधिष्ठात्र्यौ देवते तयोः सांख्याचार्यो मतिमान् उपपत्तिप्रधानः ॥ ४ ॥ **देवर्षिभिरिति** । ब्रह्मविदां वरौ ब्रह्म ब्रह्माणं प्रति ऊचतुरित्युत्तरेणान्वयः । विचारश्चित्तनिग्रहश्च क्षेत्रतत्परौ पुरुषैकत्वानेकत्वप्रकृतिमिथ्यात्वामिथ्यात्ववादितया परस्य विरोधिनावपि योगमाहात्म्यादेव योगिनमुपतिष्ठन्त इति भावः ॥ ५ ॥ द्वावपि स्वस्वमते विरुद्धांशमपहायाविरुद्धांशे ऐकमत्यं गतौ तन्त्रेण ऊचतुः ॥ ६ ॥ **बहुत्वादिति** । तत्र योगाचार्यवाक्यबहुत्वाद्दृढपादश्चेति लोकगुरुः अविद्यादिभिः परामृष्टानां लोकानां गुरुः गुरुतरत्वात् वरः श्रेष्ठ इति तटस्थेश्वरोपन्यासः स च बहुत्वात् लोकानामिति समासान्तर्गतमपि बुद्ध्या निष्कृष्यते। बन्धमोक्षव्यवस्थाया आवश्यकत्वेन जीवानां बहुत्वाच्च नियन्ता सेनापतिवत्तटस्थोऽवश्यमेष्टव्य इत्यर्थः। दृढपादश्च पद्यन्ते गम्यन्ते भोगा यैस्ते पादा विषयेन्द्रियबुद्धयः दृढाः रज्जूरगादिवद्बाधायोग्याः किं तु वृत्तिनिरोधेन हेया एव व्यवहारानन्त्यात् सत्याः पादा यस्य स दृढपादः तेन विषयादेः सत्यत्वेन प्रकृतेरपि सत्यत्वमुक्तम् । सांख्याचार्यवचनं तु विश्वात्मा जगतः स्थितिरिति लोकगुरुर्विश्वात्मेति संबन्धः । विश्वं चेतनं सर्वं आत्मा स्वरूपं यस्य स तथा । ब्रह्मसमुद्रे जगज्जीवेश्वरतरङ्गाः कोटिशः उत्पद्यन्त इति भावः । कथं तर्हि बन्धमोक्षादिव्यवहारः ऐकात्म्ये एकमुक्त्यापत्तोरित्यत आह–**जगतः स्थितिरिति** । जलचन्द्रवदौपाधिकभेदेनापि बन्धमोक्षव्यवस्थोपपत्तेः परस्यापि निर्विशेषचिन्मात्ररूपाणां लक्षणभेदाभावेन भेदस्य वक्तुमशक्यत्वादेक एवात्मेति वक्तुं युक्तं तथा बहूनामलुप्तदृशां विभूनां पुंसां संनिहितं जगत्कथं कस्यचिद्दृश्यमदृश्यं च रज्जूरगतुल्यतामन्तरेण स्यादिति प्रकृतिसत्यत्वमप्युक्तम् । स्वप्नादिवदसत्यादपि चरमधातुविसर्गान्तव्यवहारोपपत्तिरिति भावः । उभयसंमतं वाक्यं ग्रामणीः सर्वलोकानामिति आस्तां मतभेदः । स मुक्तौ शिष्यमाणस्त्वेकल एव केवलो निर्विशेषः स एव मुख्य इत्यर्थः । ब्रह्मा ब्रह्मवित् वरो वरणीयोऽन्यत्सर्वं बुद्ध्यादिकं हेयमित्यर्थः ॥ ७ ॥ सर्वलोकानामित्युक्तं तत्र लोकस्वरूपमाह–**तयोरिति** । व्याहृतयो व्याहृतीः इमान् प्रत्यक्षान् विश्वतैजसप्राज्ञान् । अत्र प्रमाणमाह––**यथेति**। ब्राह्मणी ब्रह्मप्रतिपादिका। "**भूरित्येव ऋग्वेदादजायत**" इत्युपक्रम्य, "**तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकारः**" इति श्रुतेर्व्याहृतिसारस्य प्रणवस्य विश्वाद्यात्मकत्वात् भूरादिशब्दैर्विश्वाद्या एव ज्ञेयाः । अत्र सांख्यशब्देनौपनिषद एव ग्राह्यो न तु निरीश्वरः । ततश्च तस्य वाचकः प्रणव इति वदतो योगाचार्यस्यापि, "**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्**" इति श्रौतः प्रणवार्थ ऐकात्म्यरूपोऽभिमत इति तयोरविरोध इति भावः ॥ ८ ॥

[1] ख. °मज्ञः स° ।

यत्र भूसंज्ञकं चैव समुत्पादितवान्प्रभुः।
ततोऽग्रे तद्गतस्नेहो ब्रह्मा मानसमव्ययम् ॥ ९
सोत्पन्नस्त्वग्रे ब्रह्माणमुवाच मानसः सुतः।
करोमि किं ते साहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति ॥

ब्रह्मोवाच।

य एष कपिलो नाम ब्रह्मा नारायणस्तथा।
वदत वरदस्त्वां तु तत्कुरुष्व महामते ॥ ११

वैशम्पायन उवाच।

ब्रह्मणोक्तस्तदा भूयः संशयं समुपस्थितः॥
शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं कुर्मीति कृताञ्जलिः॥

परमेश्वरावूचतुः।

यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशनिधं स्मृतम्।
यत्सत्यममृतं चैव परं तत्समनुस्मर ॥ १३

वैशम्पायन उवाच।

एतद्वचो निशम्याथ स ययौ दिशमुत्तराम्।
गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानचक्षुषा ॥ १४
ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत्प्रभुः।
तं कल्पयित्वा मनसा मनसैव महामनाः १५
ततः सोऽप्यब्रवीद्वाक्यं किं कुर्वेति पितामहम्
पितामहसमाज्ञप्तो ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥ १६
ब्रह्मभ्यां सहितः सोऽथ भूयो भागवतीं गतः
प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः
तस्मिन्नपि गते पुत्रं तृतीयमसृजत्प्रभुः।
मोक्षोपायेतिकुशलं भूर्भुवं नाम तं विभुः १८
आससाद स तद्धर्मं तयोरेवागमद्गतिम्।
एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येते उक्ताः शंभोर्महात्मनः॥

---

तत्र तेषु लोकेषु स्रष्टव्येषु ततो भूसंज्ञात् वैश्वानरात्पूर्वं वा गतः सूक्ष्मं कारणं वा पश्चादागतः स्थूलं व्यष्टिशरीरं प्रतीतिः ततो गतागतः तत्र भूसंज्ञके स्थितः। मानसमिति काल्पितत्वमुक्तम्। अत एव अव्ययं रज्जूरगवदनुत्पन्नत्वादेव नाशराहितम् ॥ ९ ॥ सोत्पन्न इति पादपूरणार्थः सुलोपः। अग्रे स्थितः ॥ १० ॥ वदते अभिमन्त्रयते। "भासनोपसंभाषा" इत्यादिना तङ् ॥ ११ ॥ स मानसो भू मनःप्रधानात् मातृपितुरप्यन्यः को महानस्तीति संशयं समुपस्थितः प्राप्तः। कुर्मि करोमि ॥ १२ ॥ **यदिति**। सत्यं त्रैकालिकबाधरहितम्, अक्षरम् अपरिणामि अष्टादशनिधम्, अष्ट च दश च निधाः पाशा मतभेदेन यस्य तत् अष्टादशनिधम्। विधमिति पाठे अष्टादशबन्धप्रकारम्। विधिमिति पाठे तैर्विधीयते नियोज्यत इत्यर्थः। निधाः पाशाः "**पाशा वै निधिः**" इति श्रुतेः। सांख्यमते अष्टौ निधाः कर्मेन्द्रियाणि पञ्च ॥ १ ॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च ॥ २ ॥ मनआदिचतुष्कम् ॥ ३ ॥ प्राणपञ्चकम् ॥ ४ ॥ वियदादिपञ्चकम् ॥ ५ ॥ कामः ॥ ६ ॥ कर्म ॥ ७ ॥ अविद्या च तैः पुर्यष्टकम्। एतदेवाविद्यातिरिक्तप्रकृतिपुरुषाधिकेश्वरसहितं दशकं योगानां बन्धकम्। यद्यप्येतेषां प्राणादिपञ्चकसामान्यकारणत्वात्तिस्तथापि सामान्यविशेषभेदेनैव तस्य पृथक्त्वं ज्ञेयम्। स्वं स्वं मतमुपन्यस्य परमार्थमाहतुः-**यदिति**। सत् मूर्तं तेजोऽबन्नरूपं यत् वाय्वाकाशाद्यव्याकृतम् अमृतं प्रविलापनयितयामृतयोरधिष्ठानं च यत्परं वस्तु सर्वदाविशेषशून्यं चिदेकरसं स्मर चिन्तयाहमस्मीति विद्धीत्यर्थः ॥ १३ ॥ उत्तरां दिशं परां काष्ठां चिदेकरसाख्याम् ॥ १४ ॥ **तत इति**। भुवं सूत्रात्मानं महामना महान्ति सर्वसृष्टिसमर्थानि मनांसि अवान्तरोपाधिभूतानि यस्य स महामनाः अविद्योपाधिरीश्वरः मनसा मनसैवेति वीप्सायां द्विर्वचनम्। सर्वं मनः भुवर्नामानं स्रष्टुं समर्थमित्यर्थः ॥ १५ ॥ ततः स मनसः सुतः पितामहं मनसः पितरं महान्तं जीवं ब्रह्माणं ब्रह्माणौ सांख्ययोगाचार्यौ ॥ १६ ॥ **ब्रह्मभ्यामिति**। तयोः पार्श्वमुपागतः सन् ब्रह्मभ्यां सहितो भागवतीं पूर्वोक्तां परां काष्ठां गतः। योगविचारयोरपि तस्यां काष्ठायां लयो भवतीति भावः ॥ १७ ॥ **तस्मिन्निति**। विराट्सूत्रयोरपि जनकत्वान्मोक्षोपायेतिकुशलं भूर्भुवं नाम ईश्वरं शुद्धसत्त्वोपाधिम् ॥ १८ ॥ तद्धर्मं तयोः पूर्वयोर्धर्मं पराकाष्ठानुसारित्वम्, ईशोऽपि सांख्ययोगसंपत्त्या परस्यां काष्ठायाम्, "**पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः**।" इति श्रुतिप्रसिद्धायां प्रलयं गत इत्यर्थः। "**ईश्वरग्रासस्तुरीयतुरीयः**" इति तापनीये ईश्वरग्रासस्यापि स्पष्टश्रवणात्। एवमुक्तेन प्रकारेण त्रयोऽप्येते मनसः पुत्रा भूरादयः शंभोर्महात्मनः शंभुना महात्मना सांख्ययोगाचार्यरूपिणा उक्ता उपादिष्टाः। "**एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति**।" इति तयोर्वस्तुतत्त्वापेक्षया एकत्वादेकवचनशब्दत्वम् ॥ १९ ॥

---

१ ख. पुत्रं भू०। २ ख. ०ह्मणोक्ते तदा सोऽथ भूयशस्तावुपस्थि०। ३ ख. भुवर्नाम द्वि०। ४ ख. संकल्पयित्वा च पुनर्मन०। ५ ख. कुर्मीति पि०। ६ ख. तं विदुः आ०।

तान्गृहीत्वा सुतांस्तस्थे प्रययौ स्वां गतिं तथा
नारायणोऽथ भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः २०
यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तत्कालमेव तु।
तेपे घोरतरं भूयः स तपःसंशितव्रतः ॥ २१
न रराम ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्।
शरीरार्द्धमथो भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम्
तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च।
सदृशीमात्मनो भार्यां समर्थां लोकसर्जने २३
तया सह ततस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपोमयः।
सृजत्प्रजापतीन्सर्वान्
सागरान्सरितस्तथा ॥ २४
ततोऽसृजद्वै त्रिपदां गायत्रीं वेदमातरम्।
अकरोच्चैव चत्वारो वेदान्गायत्रिसंभवान्॥
आत्मार्थं चासृजत्पुत्राँल्लोककर्तॄन्पितामहः।
विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः
विश्वेशं प्रथमं नाम महातपसमात्मजम्।
सर्वाश्रमतमं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान्॥
दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम्॥ २८
अथर्वभूता इत्येते ख्याता ब्रह्ममहर्षयः।
त्रयोदशसुतानां तु ये वंशा वै महर्षिणाम् २९
अदितिर्दितिर्दनुः काला
ह्यनायुः सिंहिका मुनिः।
प्रबोधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रुरेव च ३०
दक्षस्यैता दुहितरः कन्या द्वादश भारत।
नक्षत्राणि च भद्रं ते सप्तविंशतिरूर्जिताः ३१
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः प्रभुः।
तस्मै कन्या द्वादशेमा दक्षस्ता अन्वमन्यत॥
नक्षत्राख्योन सोमाय वसवे दत्तवानृषिः।
रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि जनमेजय
लक्ष्मीः कीर्तिस्तथा साध्या
विश्वा कामानुगा शुभा।
देवी मरुत्वती चैव
ब्रह्मणा निर्मिता पुरा॥ ३४
एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय भारत।
दत्ता धर्माय भद्रं ते ब्रह्मणा दृष्टधर्मणा ॥ ३५
या रूपार्द्धमयी पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी।
सुरभिः सा तु गौर्भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता॥
ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः।
लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय भारत॥ ३७
जज्ञे चैकादश सुतान्विपुलान्धर्मसंहितान्।
रक्तसन्ध्याभ्रसदृशान्दहनोपमतेजसः ॥ ३८
ते रुदन्तो द्रवन्तश्च भगवन्तं पितामहम्।
रोदनाद्द्रावणाच्चैव ततो रुद्रा इति स्मृताः॥
निर्ऋतिश्चैव सर्पश्च तृतीयो ह्यज एकपात्।
मृगव्याधः पिनाकी च दहनोऽथेश्वरश्च वै॥
अहिर्बुध्न्यश्च भगवान्कपाली चापराजितः।
सेनानीश्च महातेजा रुद्रा एकादश स्मृताः
तस्यामेव सुरभ्यां तु जज्ञे गोवृषभस्तथा।
आकृष्टाश्च तथा माषाः सिकताः प्रश्रयोऽक्षताः
अजाश्चैवैकवंशाश्च तथैवामृतमुत्तमम्।
ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरभ्यां ताः समुत्थिताः
धर्माल्लक्ष्म्युद्भवः कामः
साध्या साध्यान्व्यजायत।
च्यवनं प्रभवं चैव-
मीशानं सुरभीं तथा॥ ४४
अरुन्धत्यारुणी चैव विश्वावसुबलध्रुवौ।
महिषं च तनूजं च विज्ञातमनसावपि॥ ४५
मत्सरं च विभूतिं च सर्वाः सुरभिसूनवः।
सुपर्वतं विषं नागं साध्या लोकनमस्कृता॥
वासवानुगता देवी जनयामास वै सुतान्।
धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम्॥ ४७
विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम्।
पञ्चमं पर्वतं चैव योगेन्द्रं तदनन्तरम्॥ ४८

ततः किमत आह—**तानिति**। यथा दाह्यं दग्ध्वा वह्निः स्वयोनौ उपशाम्यति एवं सांख्ययोगाख्यं ज्ञानं प्रविलाप्य भूरादित्रयं प्रविलाप्य स्वयमपि ब्रह्मणि लीनमित्यर्थः ॥ २० ॥ वेद्यलयात् घोरं वृत्तिलयात् घोरतरम् तयोर्निर्विकल्पं समाधिं प्राप्तमित्यर्थः ॥ २१ ॥ ततो व्युत्थानमाह-**न ररामेति**। **शरीरार्द्धमिति**। शुद्धे चिदात्मन्येव भोक्तृभोग्यरूपं प्रपंचं कल्पितवानित्यर्थः ॥ २२ ॥ अस्य योगैश्वर्यमाह-**तपसेति**। "**स एकधा भवति प्रदीपवदावेशः**" इति श्रुतिन्यायाभ्यां सौभर्यादिवत्तुल्यप्रभावा एव योगिनां कल्पिता देहा इति भार्यायास्तुल्यप्रभावत्वं पत्या युक्तमिति भावः ॥ २३ ॥

१ ख. °स्य प्रयातौ स्वार्जितां ग°। २ ख. °मपदं पु°। ३ ख. ख्याताश्चैव मह°। ४ ख. °का खसा। प्र° ५ घ. विधानमनवावपि। ६ ख. मरुं च प्र°।

सप्तमं च ततो वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम्।
धर्मस्यापत्यमित्येवं सुरभ्यां समजायत ॥४९
विश्वेदेवास्तु विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः
दक्षयज्ञो महाबाहुर्वसुश्च सुत एव च।
सुधर्मा च महाबाहुः शङ्खपाच्च महाबलः ॥५०
उत्कश्चैव महाबाहुर्वपुष्मांश्च तथैव च।
चाक्षुषस्य मनोरेते तथानन्तमहारणौ ॥ ५१
विश्वावसुसुपर्वाणौ विष्टरश्च महायशाः।
रुरुश्च ऋषिपुत्रो वै भास्करप्रतिमद्युतिः ॥ ५२
विश्वेदेवान्देवमाता विश्वेशाजनयत्सुतान्।
मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयच्छुभान् ॥ ५३
अग्निश्चक्षुर्हविर्ज्योतिः सावित्रो मित्र एव च।
अमरं शरवृष्टिं च संक्षयं च महाभुजम् ॥ ५४
विरजं चैव शुक्रं च विश्वावसुविभावसू।
अश्मन्तं चित्ररश्मिं च तथा निष्कुपितं नृपम्
नहुषं चाहुतिं चैव चारित्रं बहुपन्नगम्।
बृहन्तं च बृहद्रूपं तथैव परतापनम्
मरुत्वत्यां पुरा धर्माज्जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम् ॥५६
अदित्यां जज्ञिरे राजन्नादित्याः कश्यपादथ
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंऽशोऽर्यमा रविः
पूषा मित्रश्च वरदो मनुः पर्जन्य एव च।
इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः ५८
आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम्
रूपश्रेष्ठं बलश्रेष्ठं त्रिदिवे रूपिणां वरम् ॥ ५९
दनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्दैत्यान्व्यजायत।
कालानुकालकेयांश्च ह्यसुरान्राक्षसांस्तथा
अनायुषायास्तनया व्याधयश्चाधयस्तथा।
सिंहिका ग्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः ६१
प्रवोधाप्सरसां माता सुरसायां सरीसृपाः
क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव भारत ॥
तथा यक्षगणाश्चैव गुह्यकाश्च विशांपते।
चतुष्पदानि सर्वाणि ऋते गावस्तु सौरभाः
अरुणो गरुडश्चैव विनतायां व्यजायत।
महीधरान्सर्पनागान्देवी कद्रूर्व्यजायत ॥ ६४
एवं विवृद्धिमगमन्विश्वे लोकाः परस्परम्।
तदा पौष्करके राजन्प्रादुर्भावे महात्मनः ६५
पुराणं पौष्करे चैव मया द्वैपायनाच्छ्रुतम्।
कथितं तेन पूर्वेण यत्कृतं परमर्षिभिः ॥ ६६

> यश्चेदमग्र्यं प्रथमं पुराणं
> सदाऽप्रमत्तः पठते महात्मा
> अवाप्य कामानिह वीतशोकः
> परत्र स स्वर्गफलानि भुङ्क्ते ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे सर्वभूतोत्पत्तौ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## जनमेजयप्रश्नः।

### १५

जनमेजय उवाच।

श्रुतं नः परमं ब्रह्मन्स्ववंशचरितं महत्।
दिव्यमन्योन्यसंभूतं मानितं बहुभिर्गुणैः ॥ १
छन्दोभिर्वृत्तसंजातैः समासैश्च सविस्तरैः।
लघुभिर्मधुराभाषैर्ग्रथितं पदविग्रहैः ॥ २

---

इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

यत्सूचितं प्राक्छ्लोकाभ्यां
रहस्यं सांख्ययोगयोः ॥
तद्विस्तरार्थं नवमे
नृपतः प्रश्न ईर्यते ॥ १

---

१ ख. °त्रं साध्यायां वै व्यना°। २ घ. दक्षश्चैव महाबाहुर्व°। ३ घ. °थोत्तममहारणौ। ४ ख. °श्च खसा वै राक्ष°। ५ ख. °यश्चेतयस्त°।

त्रिवर्गेणाभिसंपन्न धर्मेणार्थेन भोगिनाम् ।
कामेन बहुरूपेण शरीरान्तर्गतेन च ॥ ३
ब्राह्मणानां प्रभावैश्च योधानां च पराक्रमैः ।
वैरनिर्यातनैश्चैव प्रतिज्ञानां च पारगैः ॥ ४
रिपुस्तवसुसंपन्नैर्नानुबन्धः प्रचोदितः ।
वंशयोर्निर्विनाशाय नृपेण द्विजविग्रहात् ॥ ५
ये च तस्मिन्महारौद्रे संग्रामे निहता नृपाः ।
तेषां सर्वाणि राष्ट्राणि पुत्राः सर्वे प्रपेदिरे ।
कौरवः प्रथितो राजा भगवच्छासनानुगः ६
धर्मश्च बहुधा प्रोक्तस्त्रयाणां वर्णसंपदाम् ।
शूराणामपि विख्यातः स्वर्गहेतुर्द्विजर्षभ ॥ ७
अनुग्रहार्थं भूतानां नोत्सेकाय कथंचन ।
चतुर्णां वर्णसंज्ञानां पृथक्पृथगनेकधा ॥
गर्भवासं पतन्तश्च भूतानां संप्रबोधितः ।
पृच्छतां दवसंचारः क्षीणे पुण्ये च कर्मणि॥९
दाने यज्ञादिसंयोगः स चापि बहुधा कृतः
द्वाभ्यां संयोगविहितो मधुवाग्वचनं तयोः॥
न तच्छक्यं मयाऽऽख्यातुं भारताध्ययनं महत्
एकाहेन महान्ब्रह्मन्नपि दिव्येन चक्षुषा ॥ ११
ब्रह्मणोऽह्नस्तु विस्तारं संक्षेपं च सुसंग्रहम् ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्महत्कौतूहलं हि मे १२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे जनमेजयवाक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## सांख्ययोगविचारः ।

### १६

वैशम्पायन उवाच ।
शृणुष्वैकमना राजन्पञ्चेन्द्रियसमाहितः ।
कथां कथयतो राजन्निर्विकारेण चेतसा ॥ १
ब्रह्मसम्बन्धसंबद्धमबद्धं कर्मभिर्नृप ।
पुरस्ताद्ब्रह्म संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम् ॥ २
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
निष्कलः पुरुषस्तस्मात्संबभूवात्मयोनिजः॥३
दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः ।
अचिन्त्यश्चाव्ययश्चैव युगानां प्रभवोऽव्ययः४
अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समतां गतः ।
अव्यक्तात्परमं यत्तन्नारायणविदो विदुः ॥ ५

---

**ब्रह्मणोऽह्न इति** । अहःशब्दः क्रतुवाची ब्रह्मसंबन्धी क्रतुर्ज्ञानयज्ञ इति यावत् । सम्यक् क्षिप्यते क्षेप्यं येन तं संक्षेपं सुसंग्रहं च विस्तरम् ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

**सांख्ययोगात्मको ब्रह्मयज्ञोऽथ दशमे मुनिः । सांख्यं ब्रह्मविचाराख्यं प्रस्तौति क्षिप्रसिद्धिदम्**

**शृणुष्वेति** ॥ १ ॥ ब्रह्मसंबन्धसंबद्धं वेदमूलकत्वेन संबद्धं तादृशमपि कर्म व्यावृत्तमित्याह—**बद्धमिति** । ब्रह्मैकविषय इत्यर्थः । यद्ब्रह्मणो ब्रह्मविदः पुरस्तादेव संपन्नं प्राक् सिद्धं प्रत्यग्रूपत्वात् अदाक्षिणं न कर्मप्राप्यं, **"न तत्र दक्षिणायन्ति"** इति श्रुतेः । तत् शृणु इत्यनुषज्यते ॥ २ ॥ तदेवाह—अव्यक्तं यत् नामतोऽर्थतश्च कारणं जगद्धेतुः सदसदात्मकं मूर्तामूर्तरूपं नित्यम् अविनाशि सांख्यप्रसिद्धं तत् निष्कलः पुरुषः निर्विशेषचिन्मात्रादात्मनो नातिरिच्यते तत्रैवाध्यस्तमित्यर्थः । तस्मात्पुरुषादात्मयोनिज आत्मैव योनिर्ज्ञापको यस्य नाहं जानामीत्यनुभूतिसिद्धम् अज्ञानं तस्माज्जातोऽहंकारः अहमिति प्रथमोऽध्यासः संबभूव ॥ ३ ॥ दिव्यः शुद्धसत्त्वमयत्वात् सर्वेषां भूतानां वियदादीनां पतिः जन्मनाशयोः स्वतन्त्रः विभुर्व्यापकः अचिन्त्यः सत्त्वेनाऽसत्त्वेन वाऽऽलोचयितुमशक्यः अत एव अव्ययः रज्जूरगवदनुत्पन्नत्वान्न व्येतीति युगानां तत्तद्युगधर्माणां शमकामदम्भाचाराणां प्रभवः । अहंकारादेव ते उत्पन्ना इत्यर्थः । अव्ययो नित्यो मूढानाम् ॥४॥ अचिन्त्यत्वं विभुत्वं च विवृणोति । अभूतः कालत्रयेऽपि न सिद्धः यस्मात् अजात अनुत्पन्नः एवंभूतोऽपि सर्वत्र समतां गतः सन् सद्रूपो नात्यसद्रूप इति चेत् किंरूप इत्यत आह । तत् अव्यक्तात् परं नारायणविदो विदुस्तदेव स इति योजना । समुद्रतरङ्गवत् अहंकारश्चिन्मात्ररूप एवेत्यर्थः ॥ ५ ॥

---

१ ख. ॰न योजितम् । का॰ । २ ख. ॰श्चापि सं॰ ।

सर्वतः पाणिपादं तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ६
असतश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम् ।
अव्यक्तो व्यक्तरूपस्थश्चरन्नपि न दृश्यते ॥ ७
विकारपुरुषोऽव्यक्तो ह्यरूपी रूपमाश्रितः ।
चरत्यचिन्त्यः सर्वेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥८
भूतभव्योद्भवो नाथः परमेष्ठी प्रजापतिः ।
प्रभुः सर्वस्य लोकस्य नाम चास्येति तत्त्वतः
अपदात्तु पदो जातस्तस्मान्नारायणोऽभवत् ।
अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कामतः १०
ब्रह्मभावे च तं विद्धि स शब्दं लब्धवान्प्रभुः ।
प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च ॥
अहं त्विति स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि भारत
प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः १२
स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाऽभवत् ।
अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत् १३
सर्वव्यापि निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः
एवं ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥१४
अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः क्रतुलक्षणैः ।
धारयन्ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं त्वरन्

---

अस्य विश्वरूपत्वमाह--**सर्वत इति** । लिङ्गव्यत्यय आर्षः ॥ ६ ॥ ननु समुद्रेऽपि वाय्वाद्यभिघातं विना तरङ्गो नोत्पद्यते कथं चिन्मात्रेऽद्वितीये द्वितीयमज्ञानं संबध्यते, यत अहंकारोत्पत्तिरित्याशङ्क्याह—**असत इति**। तत्राहंकारे असतः कारणस्य सतः कार्यस्य च कारणं कल्पकम् अविद्याऽस्ति अहंकारे स्थितैव चिदात्मन्यविद्या कल्प्यते । न तु चिदात्मनि तत्संबन्धो युज्यत इत्यर्थः । यदाहुर्वृद्धाः–

" अस्याविद्येत्यविद्यायामेवासित्वा प्रकल्प्यते ।
ब्रह्मद्वारा त्वविद्येयं न कथंचन युज्यते ॥ " इति ।

कुतश्चिदात्मन्यविद्या नास्तीत्यत आह–**अव्यक्त इति** । निर्विकल्पत्वात्तस्येत्यर्थः । तर्हि तत्सत्यत्वे किं मानमत आह–**व्यक्तरूपस्थश्चरन्निति** । मातृमानप्रमेयेष्वचिदात्मत्वेन दृश्येष्वनुस्यूततया चरन्नपि न दृश्यते,न चादृश्यत्वादेव तदसिद्धिः, मात्रादिः स्वेतरभास्यो दृश्यत्वात्संमतवदिति न्यायेन तत्सिद्धेरिति भावः ॥ ७ ॥ एतदेवाह–**विकारेति** । विकारपुरुषो मात्रादिर्व्यक्तः तं रूपं रूपवन्तं दृश्यम् अरूपी चिदात्मा आश्रितः सन् चरति दृश्यं प्रकाशयति । शेषं स्पष्टम् । दारुष्वग्निरिव मात्रादिषु पृथग्दृष्टोऽप्यात्मध्याननिर्मथनात्स्वाश्रयप्रासादाविर्भवतीति भावः ॥८॥ प्रासङ्गिकम् आत्मतत्त्वनिरूपणं समाप्य "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते" इति न्यायेन तत्प्रतिपत्त्युपायभूतं तस्मात्संबभूवात्मयोनिज इति प्रक्रान्तमध्यारोपमनुसरति–**भूतेति** । नाम चास्यास्तीति शेषः । **" सोऽहमित्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत् "** इति श्रुतिप्रसिद्धं वक्ष्यमाणम् इति तत्त्वतः ईदृग्रूपस्य । षष्ठ्यर्थे तसिः ॥ ९ ॥ ईदृग्रूपत्वमेव विशदयति–**अपदादिति** । अपद्यते प्रमाणतो गम्यते इत्यपदमज्ञानं तस्मात्पदः पद्यते इति पदोऽहंकारो जातः । नहि शुक्तौ रजतस्येव तत्कारणस्याज्ञानस्य ग्रहोऽस्ति । नारायण उद्भवो यस्य तस्माच्छुद्धेऽप्यनादिकालमारभ्याध्यस्तादित्यर्थः । अन्यथा मुक्तानामपि पुनर्बाधापत्तिः स्यात् । ननु सतः पदस्य कथमसतोऽपदाज्जनिः कथमसतः संजायेतेति तदसंभवाच्छ्रुतेरित्यत आह--अहंकारोऽप्यपद एव सन् ब्रह्मयोगेन अधिष्ठानसत्तानुवेधेन व्यक्तिं पदत्वं प्राप्तः । अत्र हेतुः–कामतः अनादिरागादिवासनावशात् भ्रमः तत्संस्कारधारानुवृत्तिरिति भावः ॥ १० ॥ **ब्रह्मेति** । तं पदाख्यमहंनामपुरुषं ब्रह्मभावे स्थितं विद्धि ।

" ज्ञानमप्रतिघं यद्वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहासिद्धं चतुष्टयम् ॥" इति स्मृतेः ।

ब्रह्मिष्ठं जानीहि अत एव सः ब्रह्मेतिशब्दं लब्धवान् प्रभुत्वादिमांश्च ॥११॥ **अहं त्विति** । **"स होवाचात्मनो नाम"** इति शेषहेतुः उदाहृतः श्रुतिप्रसिद्धेः सोऽहंनामाभवदित्यर्थः । **" स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि "** इति पूर्वानुषङ्गेण पूरणीयम् । **" स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रेमे "** इत्यादिश्रुतेरात्मज्ञोऽपि सोऽधिकारपरतन्त्रतया सृष्ट्यादिपरो बभूवेत्यर्थः ॥ १२ ॥ एतदेवाह–**स्वभावादिति** । स्वस्मिन्नहमर्थे भवतीति स्वभावः पूर्ववासना । अहमिति वासनाऽपि स्वभावादेवेत्याह--**अहंकार इति** ॥ १३ ॥ सर्वव्यापी समष्ट्यभिमानित्वात् निरालम्बः असङ्गत्वज्ञानात् अत एवाग्राह्यः अनभिभाव्यो ज्ञानेन जयो जयवान् ध्रुवः ध्रुवं ज्योतिरिवालिप्तः । ॥ १४ ॥ स ब्रह्मशब्दितः स्वरूपेणाव्यक्तोऽपि पञ्चभिर्भूतसूक्ष्मैः क्रतुलक्षणैः संकल्पमात्रभावैः उपाधिभिर्व्यक्तिं पुरुषाकृतिम् आपन्नः ब्रह्मणो वेदात् व्यक्तं सर्वं भौतिकं विविधं चिन्तितं संकल्पमात्रोत्थं त्वरन् धारयन् । **" पोषयितुं स मनसा वाचं मिथुन समभवत् "** इति श्रुतेर्वेदोक्तप्रकारेण सर्वं स्रष्टुं मूर्तिमादाय सलिलं ससर्जेति संबन्धः ॥ १५ ॥

अथ मूर्ति समाधाय स्वभावाद्ब्रह्मचोदितः।
ससर्ज सलिलं ब्रह्म येन सर्वमिदं ततम् ॥ १६
वायुं पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्धातृसत्तमः।
धारणाद्धातृशब्दं च लभते लोकसंज्ञितम् १७
तदेतद्वायुसंभूतं कृत्स्नं जगदभूत्पुरा।
एतद्दैवैरतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वति ॥ १८
पृथक्त्वं गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता।
घनत्वाच्च द्रवत्वाच्च निखिलेनोपलभ्यते ॥१९
फलत्वात्सीदमाना च सलिले सलिलोद्भवः।
व्याजहार शुभां वाणीं समन्तात्पूरयन्निव २०
उर्ध्वोऽहं स्थातुमिच्छामि संसीदाम्युद्धरस्व मां
गम्भीरे तोयविवरे मूर्तिविक्षोभितान्तरम् २१
ततो मूर्तिधरा देवी सर्वभूतप्ररोहिणी।
यथायोगेन संभूता सर्वत्र विषयैषिणी ॥ २२
श्रुत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च सुभाषिताम्
वराहरूपमास्थाय निपपात महार्णवे ॥ २३
उद्धृत्य सोऽवनिं तोयात्कृत्वा कर्म सुदुष्करम्
समाधौ प्रलयं गत्वा प्रलीनो न च दृश्यते २४
यत्तद्ब्रह्ममयं ज्योतिराकाशमिति संज्ञितम्।
तत्र ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वभूतपितामहः २५
अद्यापि मनसा धात्रा धार्यते[2] सर्वयोगिना।
ज्ञानयोगेन सूक्ष्मेण प्रजानां हितकाम्यया २६
भित्त्वा तु पृथिवीमध्यमुपयाति समुद्भवम्।
तपनस्तूर्ध्वमातिष्ठन्रश्मिभिः स हसन्निव ॥ २७
तस्य मण्डलमध्यात्तु निःसृतं सोममण्डलम्
स सनातनजो ब्रह्मा सौम्यं सोमत्वमन्वगात्
सोममण्डलपर्यन्तात्पवनः समजायत।
तदक्षरमयं ज्योतिस्तेजोभिरभिवर्द्धयन् ॥ २९
स तु योगमयाज्ज्ञानात्स्वभावाद्ब्रह्मसंभवात्[3]।
सृजते पुरुषं दिव्यं ब्रह्मयोनिं सनातनम्॥ ३०

---

**अथेति**। येन सर्वमिदं ततं तेन ब्रह्मणा स्वभावेन च चोदितः ॥ १६ ॥ **वायुमिति**। पूर्वं सलिलसृष्टेः प्राक् धातुरीश्वरस्य वशगानां धातॄणां मरीच्यादीनां मध्ये सत्तमः लोकसंज्ञितं लोकैः संकेतितं प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ १७ ॥ **तदेतदिति**। वायोः स्थूलादग्न्यादिक्रमेण संभूतम् एतजगत् पार्थिवमाप्यं च तैजसैर्देवैः शमादिमद्भिरतिक्रान्तम्। उत्तरोत्तरमुत्कृष्टमेव पदं तेऽधिरोहन्ति न मनुष्यत्वं यान्तीत्यर्थः। सरस्वति समुद्रे स्थितामिति शेषः ॥ १८॥ पृथिवीशब्दं पृथिवीशब्दार्थं भुवं लोकावस्थानार्थमिच्छता तोयं सामुद्रं पृथक्त्वं घनत्वाच्च धर्मभेदात् गमितं प्रापितम्। तदेतन्निखिलेन लोकेनोपलभ्यते भूजलयोः पृथक्त्वम् ॥ १९ ॥ फलत्वात् कार्यत्वात्सलिले स्वकारणे सीदमाना विशीर्यमाणा सलिलोद्भवो जलोद्भूतभूदेवताख्यः पुरुषो व्याजहार वचनव्यत्यय आर्षः ॥ २० ॥ **ऊर्ध्व इति**। गम्भीरे तोयविवरे मूर्तेः काठिन्यात् विक्षोभितमन्तरं यथा स्यात्तथा संसीदामीति संबन्धः। लोष्टपिण्डवद्विशीर्णा भवामीत्यर्थः॥२१॥ ततो मूर्तिधरा मूर्तिमती पृथ्वी विषयैषिणी स्थानैषिणी सर्वत्र संभूता जाता यथायोगेन यथोक्तेन योगेन विशीर्यमाणत्वेन हेतुना स्थैर्यार्थिनी सती सर्वदिगभिमुखं मामुद्धरस्वेत्याक्रोशं कृतवतीत्यर्थः ॥२२॥ **श्रुत्वा चेति**। हरिरिति शेषः ॥ २३ ॥ **उद्धृत्येति**। हरिरवतारकार्यं कृत्वा तिरोभूत इत्यर्थः ॥ २४ ॥ येन भूरुद्धृता तस्य रूपमाह—**यत्तदिति** ॥ २५ ॥ धात्रा तेनैव ईश्वरेणाद्यापि पृथिवी धार्यते शेषकूर्मादिरूपेणेत्याह—**अद्यापीति**। मनसा मनोमयेन ॥ २६ ॥ एवं धृताऽपि धरा शुष्कतटाकतलवद्विदीर्णाऽभूदित्याह—**भित्त्वेति**। समुद्भवं भूमिजनकं तोयम् इदमेव विवरं मेरुमूलप्रवेशस्थानमिति वक्ष्यति ॥ २७ ॥ एवमातिनापात् सूर्यमण्डलाज्जलमयं सोममण्डलमभूदित्याह—**तस्येति**। स सोममण्डलाभिमानी सनातनः परमात्मा ब्रह्मा ब्राह्मणवर्णः। "**ब्रह्म ब्राह्मण आत्मना**" इति श्रुतेः। आद्यत्वाच्च ब्राह्मणानां राजा "**सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा**" इति श्रुतेः सोमत्वम् उमा ब्रह्मविद्या तया सहित सोमः तस्य भावः सौम्यम् स उत्पन्नमात्रो ब्रह्मवित्त्वम् अन्वगादित्यर्थः॥२८॥ **सोमेति**। सोमस्योक्तरूपस्य मण्डलपर्यन्तान्मुखप्रदेशात्पवनो निःश्वासः समजायत। तत् स निःश्वासः अक्षरमयं वर्णात्मकं वेदरूपं ज्योतिः सर्वार्थप्रकाशकं जातामिति शेषः। "**निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः**" इत्यादिश्रुतेः॥२९ स तु सूर्यमण्डलान्तानामाधिदैविकानामर्थानां स्रष्टा सोमाख्यादीश्वराद्वेदं प्राप्य योगमयात् ज्ञानात् जन्मान्तरीययोगप्रभावोद्भूतप्रकाशात् वेदं तेजोभिः स्वबुद्धिबलेन वर्द्धयन्नपबृंहयन् वेदार्थालोचनपूर्वकं स्वभावात्पूर्ववासनारूपाद्ब्रह्मसंभवाद्ब्रह्मसत्तयोद्बोधिताद्दिव्यं द्योतमानमत एव ब्रह्मयोनिं वेदस्यास्पदभूतं सनातनं पूर्वकल्पकृतसंस्थानं पुरुषं शिरःपाण्यादिमन्तम् आध्यात्मिकं सृजते इति श्लोकद्वयसंबन्धः ॥ ३० ॥

---

१ घ. तेजोभू° । २ ख. ते ब्रह्मयो° । ३ ख. °वाज्ज्योतिरुद्भवात्। स° ।

**द्रवं यत्सलिलं तस्य घनं यत्पृथिवी भवत् ।**
**छिद्रं यच्च तदाकाशं ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत् ३१**
**वायुना स्पन्दते चैनं संघाताज्ज्योतिसंभवः**
**पुरुषात्पुरुषो भावः पञ्चभूतमयो महान् ३२**
**भूतात्मा वै समे तस्मिंस्तस्मिन्देहः सनातनः**
**गुहायां निहितं ज्ञानं योगाद्यज्ञः सनातनः ॥**
**तपनस्यैव तद्रूपं योऽग्निर्वसति देहिनाम् ।**
**शरीरे नित्यशो युक्तो धातुभिः सह संगतः ३४**
**स्वभावात्क्षयमायान्ति स्वभावाद्भयमेति च ।**
**स्वभावाद्विन्दते शान्तिं स्वभावाच्च न विंदति**
**इन्द्रियैरतिमूढात्मा मोहितो ब्रह्मणः पदे ।**
**संभवं निधनं चैव कर्मभिः प्रतिपद्यते ॥ ३६**
**यावत्तद्ब्रह्मविषयं नोपैयाति ह तत्त्वतः ।**
**तावत्संसारमाप्नोति संभवांश्च पुनः पुनः ३७**
**इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित् ।**
**तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रलयाग्रे प्रतिष्ठति ॥ ३८**
**प्रतिषिद्धममुं लोकं ब्रह्मवान्स भवत्युत ।**
**न च रागव्ययैर्याति न च सज्जति कर्हिचित्**
**आगतिं च गतिं चैव निधनं संभवं तथा ।**
**भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परां सिद्धिमुपागतः ४०**
**आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरे ।**
**पुरस्तात्कर्मनिर्वृत्तेः पदे ब्रह्मा प्रतिष्ठितः ।**
**चित्तग्रन्थींश्च मनसा रुन्ध्यात्पूर्वांश्च यातनाः**
**भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुभिन्नमिवार्णवम् ४२**
**पच्यते हृदयं नीलं परेभ्यो ज्ञानचक्षुषा ।**
**ब्रह्मप्रोक्तमिवात्मा वै विमुक्तो देहबन्धनात् ॥**

अस्य शरीरस्य पञ्चभूतमयत्वम्, " **अथ यल्लोहितं श्लेष्मा रेतस्ता आपः** " इत्यादिश्रुत्युदितं दर्शयाति द्वाभ्याम् । भवत् अडभाव आर्षः अभवादित्यर्थः ॥ ३१ ॥ पुरुषात् ईश्वरात्प्राप्तः पुरुषो भावः चैतन्यं कर्तृ एनं देहं वायुना करणेन स्पन्दते चालयते । संघातात् एवं पञ्चानां भूतानां संघातं प्राप्य तत्र ज्योतिसंभवः ज्योतिषाम् इन्द्रियाणां जाठरस्य च संभव उद्भवो भवति । "**अग्निर्वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्**" इत्यादिश्रुतेः । अत एव महान् कृत्स्नस्य ब्रह्माण्डस्यात्र प्रवेशात् योगिहृदयदर्पणे तदाभिव्यज्यत इत्यर्थः । ज्योतिसंभव इति स लोप आर्षः ॥ ३२ ॥ भूतात्मा जीवः समे पाञ्चभौतिकत्वात् न तिर्यगादितारतम्यरहिते तस्मिंस्तस्मिन्त्सर्वस्मिन्नस्ति सनातनोऽनादिकालमारभ्येत्यर्थः । गुहायां बुद्धौ निहितं ज्ञानं "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायाम्**" इति श्रुतिप्रसिद्धम् । किं तत् ज्ञानमित्यत आह–यज्ञः यस्य ज्ञो ज्ञाता यज्ज्ञः सनातन ईश्वरः । यस्य ज्ञानस्य ज्ञाता ईश्वरो भवतीत्यर्थः । एतेन "**परमे व्योमन्सोऽश्नुते सर्वान्कामान्त्सह**" इति श्रुत्यर्थो दर्शितः ॥ ३३ ॥ यः सनातनः स एव जीव इत्याह—**तपनस्येति** । तपनस्य प्रकाशकस्य अग्निरिवाग्निर्भोक्ता देहिनां देहाभिमानिनां मूढानां दृष्ट्या, यो भोक्ता स एव तत्त्वदृष्ट्या ईश्वर इत्यर्थः । तस्यानैश्वर्यं संततदेहाध्यासादित्याह–**शरीर इति** । धातुभिः पञ्चभूतः देहयोगाद्दासोऽपीति न्यायेन देहाभिमानात्परस्यापि ज्ञानैश्वर्यतिरोभाव इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ योऽयं धातुभिः सहसंगतः स्वभावात् पूर्वसंस्कारात् क्षयम् ऐश्वर्यभयम् अनैश्वर्यं चाप्नोति शान्तिसद्भावाभावाभ्यामित्याह–**स्वभावादिति** ॥ ३५ ॥ इन्द्रियकिङ्करस्य कर्मबन्धोऽस्ति ॥ ३६ ॥ यावत् ज्ञानेन ब्रह्माख्यम् आनन्दरूपं विषयं नाप्नोति तेन च संभवाख्य जन्ममालां प्राप्नोतीत्याह द्वाभ्याम् ॥ ३७ ॥ एवमशान्तस्य दुःखमुक्त्वा शान्तस्यानन्दावाप्तिमाह–**इन्द्रियैरिति** । योगबलेन इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तः प्रलयाग्रे इन्द्रियादिषु स्वरूपानन्दे प्रतिष्ठां प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ **प्रतीति** । अमुं सविकल्पानन्दाख्यं लोकं प्रतिषिद्धं कृत्वा ब्रह्मवान् निर्विकल्पपदभाक् । योगफलं रागादिजयं. सर्वज्ञत्वं चाह सार्द्धाभ्याम्–**रागव्ययैरिति** । रागव्ययै रागादिकृतैरपचयैः ॥ ३९ ॥ आगतिं गर्भे प्रवेशं गतिं गर्भान्निर्गमनं, निधनं मरणम्, भूतेभ्यो दृष्टेभ्यो वेत्ति । न तु स्वयमागत्यादीन् प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ४० ॥ **आत्मन इति** । गतयो मुक्त्युपायास्तान् जानीते तथा विषयगोचरम् अतीतानागतादिविषयं,पुरस्तात्कर्मनिवृत्तेः भावीनि,कर्मफलानि पदे परस्यां काष्ठायां, ब्रह्मा ब्रह्मवित् ॥ ४१ ॥ चित्तग्रन्थीन् चित्तं बध्नतः कामादीन्,यातनाः सुखदुःखसाक्षात्काराः, तत्स्मरणानि प्रलोभेन प्रबलेनः लोभेन विद्यमाना अनेकशाखाः वासनावलीर्निरुन्ध्यात् । वायुभिन्नमर्णवमिव याः पुरुषं क्षोभयन्तीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ **पच्यत इति** । एवं वासनादिरोधं कुर्वतः परेभ्यः कामादिभ्यः नीलं मलिनं हृदयं बुद्धिः पच्यते विशुद्धा भवति । इङ्गाल इवाग्निना सितभस्मशेषः । केन च पच्यते ज्ञानचक्षुषा चष्टेऽनेनेति चक्षुस्तेजः, ज्ञानाग्निनेत्यर्थः । किं तज्ज्ञानमत आह–ब्रह्मप्रोक्तं वेदप्रोक्तं येन ज्ञानेन इह जीवत्येव देहे । आत्मा जीवः । तद्यथाहि निलयिनि वल्मीके मृतापत्यस्त्वाशयीतैवमेवायमशरीरः, " **सचक्षुरचक्षुरिव समना अमना इव** " इत्यादिश्रुतिभ्यः सर्वबन्धनिर्मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

१ ख. °पजानाति त° । २ ख. °तिबुद्ध° । ३ ख. °र्मभिर्वृते प° ।

सृजेदपि परं लोकं संहरेदपि विद्यया ।
तेजोमूर्तिरिवाविद्धमिह लोकं च संसृजेत् ॥
तिर्यग्योनौ गतांश्चैव कर्मभिर्नियमोपमैः ।
तान्यपि प्रतिमुच्येत ब्रह्मयुक्तेन चेतसा ॥ ४५
अक्षरं च क्षरं चैव योगकर्माभिविद्यते ।
न क्षरं विद्यते तत्र यद्ब्रह्म कर्मभिर्ध्रुवम् ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## कर्मफलपरिच्छेदाय योगवर्णनम् ।

### १७

वैशम्पायन उवाच ।
पृथिव्यां यत्कृतं छिद्रं तपनेन विवर्धता ।
तस्मिन्न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः ॥ १
पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम् ।
अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः ॥ २
तस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णे नगस्य सुमहर्द्धिमान् ।
तस्मिंस्तु पुरुषो व्यक्तो वसति ज्योतिसंभवः
विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना ।
यत्तद्ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोऽन्तरे ।
तस्य ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम् ॥ ४

किं च **सृजेदिति** । परं हार्दाकाशस्थं परिपक्वयोगी तेजोमूर्तिः सूक्ष्मभूतमयशरीरः स्वप्राभिमानीव इह लोकं व्यावहारिकमपि लोकमविद्धमाच्छिद्रं साकल्येन विश्वामित्रादिवत्सम्यक् सृजते । भूतानामुत्पन्नत्वाद्भौतिकसर्गविषयमेव योगिनः सामर्थ्यमिति ज्ञेयम् । शास्त्रान्तरन्याये जगद्व्यापारवर्ज्यमित्युक्तेः ॥ ४४ ॥ **तिर्यगिति** । नियमोपमैः नियम्यते निगृह्यतेऽनेनेति व्युत्पत्तेर्नियमो निगडः तत्तुल्यैः । तानि कर्माणि अपिशब्दात्तिर्यग्योनिगतान् जीवान् प्रतिमुच्येत प्रतिमोचयेत्संकल्पसिद्धत्वात् ब्रह्मयुक्तेन ब्रह्मणि योजितेन ॥ ४५ ॥ **अक्षरमिति** । योगकर्म योगाख्यं कर्म अक्षरं मोक्षं क्षरं भोगं च अभिव्याप्य विद्यते । योगे एव कृत्स्नकर्मफलमप्यन्तर्भूतमित्यर्थः । "**एवं सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति**" इति श्रुतेः। नन्वेवं मोक्षेऽपि क्षरस्यान्वयः स्यात्तेन मुक्तेर्निर्विशेषत्वं भज्येतेत्याशङ्क्याह-**नेति** । यत् ध्रुवं ब्रह्म तत्र कर्मभिरुपलक्षितं क्षरं न विद्यते इति योजना । प्रारब्धकर्मणाऽवष्टब्धे देहे सत्येव योगिनि शरीरस्यान्वयो न विदेहकैवल्यावस्थायामिति भावः ॥ ४६ ॥ इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

**एकादशे कर्मफलपरिच्छेदाय योगभूः ॥**
**वर्णिताऽथाक्षरप्राप्त्यै योगश्चोक्तो यथाविधि-** ॥१॥ सोमोत्पत्तिप्रसक्तानुप्रसक्तं संक्षेपेण अन्तराले योगम् अभिधाय प्रकृतमध्यारोपमनुसरन्, भित्त्वा पृथिवीमध्यमित्यादि पूर्वमुक्तं भूमेः सच्छिद्रत्वमनूद्य तत्र छिद्रे मेरुमूलं निहितमित्याह-**पृथिव्यामिति** । मीनं हिंसितम् अकं दुःखं येस्ते मीनाकाः नित्यसुखिनो देवास्तेषामयं मैनाकः "मीञ् हिंसायाम्" अस्मात् "फेनमीनौ" इति निष्ठातस्य नत्वं निपात्यते। स्वभावेन संस्कारेण पूर्वोक्तसलिलादिवद्विहितः अत एवाचलः चित्तवता स्वभावस्य परिवर्तयितुमशक्यत्वात् ॥ १ ॥ एवं निर्दुःखत्वं तस्योक्त्वा सुखप्रदत्वमप्याह-**पर्वभिरिति**। पर्वाणि पूरयन्ति कामानिति चिन्तामणिकामधेनुकल्पद्रुमादीनि विद्यन्तेऽस्मिन्निति पर्वतः संज्ञितं संकेतितं योगरूढं पङ्कजादिपदवदित्यर्थः । अचलात् अचलनात् एवंविधोऽपि स्वभावात्कल्पनामात्रत्वान्मेरुरिव मित एव न तत्रात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः सुखप्राप्तिर्वास्तीत्यर्थः । उक्तहेतोरेव प्रक्षेप्तव्य एवेति चार्थः । "माङ् माने, मीञ् प्रक्षेपे" अस्मात् "वा मायोरुरिच्च" इति "वामियिभ्यां रुः" इति वा निष्पन्नस्य मेरुशब्दस्योक्तार्थत्वात् ॥ २ ॥ **तस्येति** । व्यक्तः शिरःपाण्यादिमान् ज्योतिःसंभवेत्युक्तार्थे तेनैव व्यक्तेनैव वस्तुवृत्त्या परमात्मना सता ॥३॥ इदमेवाह-**यत्तदिति** । शिरसोऽन्तरे सहस्रारे वेदान्तगर्भे वा पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यो विग्रहः संस्थानं यस्य तत् पुरुषविग्रहम् ॥ ४ ॥

वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा
चतुर्भिर्वदनैर्युक्तं चतुर्भिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५
वक्त्रं ब्रह्मसद्भूतं ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः ।
तदेव तन्महाभूतं पुनर्भावत्वमागतम् ॥ ६
उद्धृता पृथिवी देवी पुरस्तात्सलिलाशयात् ।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानादलोको लोकतां गतः ॥
पदसंधौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाऽभवत् ।
उच्छ्रितं योजनशतं सहस्रशतमेव च ८
एवमेव च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः ।
अथवा नैव संख्यातुं शक्यं भूतेन केनचित् ।
समाः सहस्रैर्बहुभिरपि दिव्येन तेजसा ॥ ९
चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभिसंवृतैः ।
नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारैः शतयोजनैः ॥
कोटिकोटीशतगुणैर्गुणितं ब्रह्मवादिभिः ।
योगयुक्तैः सदा सिद्धैर्नित्यं ब्रह्मपरायणैः ११
मरुद्भिः सह देवेन्द्रै रुद्रैर्वसुभिरेव च ।
आदित्यैर्विश्वसहितै ररक्ष वसुधाधिपान् १२
ररक्ष पृथिवीं चैव भगवान्विष्णुना सह ।
विवस्वद्वरुणाभ्यां च संघातं गमितं नृप ॥ १३
तेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत ।
यत्तद्विष्णुमयं तेजः सर्वत्र समतां गतम् १४
यत्तद्ब्रह्मेति वै प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
नियमैर्बहुभिः प्राप्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ १५
एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मेऽहनि समाहिताः
अहनि ब्रह्म चाऽव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥
ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेण प्रचोदितम् ।
प्रवर्तमानं भावेन शश्वदच्छलवादिनाम् ॥ १७

---

**वदनादिति** । तस्य वदनात् निष्क्रान्तं चतुर्वदनं विद्धीति शेषः । द्विजोत्तमैः सह निष्क्रान्तं द्विजानाम् उत्तमाः । "**मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च,ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, आसन्यं प्राणमूचुः**" इति ईश्वरमुखजत्वेन श्रुतिप्रसिद्धास्तैः सहेत्यर्थः ॥५॥ तेषु ब्राह्मणान् स्तौति—**वक्त्रमिति** । तस्येत्यनुवर्तते तस्य वक्त्रं ब्रह्म वेदः समुद्भूतो निःश्वसितरूपेण यस्मात्तथा ब्रह्मा तस्य वेदस्य धारको ब्राह्मणः। स ब्राह्मणानां ब्रह्मोद्भवानामग्न्यादीनां मध्ये मुख्यः। "**ब्रह्म ब्राह्मण आत्मना**" इति श्रुतेरर्थमाह—**तदेवेति** । भावत्वं पूज्यतमत्वं ब्राह्मणत्वमिति यावत् । "भावः पूज्यतमो लोके" इत्यनेकार्थमञ्जरी॥ ६॥ तदेवेत्युक्तं किं तन्मह उद्भूतमित्यत आह—**उद्धृतेति** । येनेति शेषः । ब्रह्मणः स्थानं मेरुपृष्ठं प्राप्य तदेवं ब्रह्मत्वं चतुर्मुखत्वं गतम्, एवमेव लोकोऽपि धरोद्धर्ता लोकतां व्यक्ततां गतः ॥ ७ ॥ **पदेति** । पदयोः सन्धौ मेरोः शृङ्गं ब्रह्मलोकं ब्रह्म परं वस्तु लोक्यते साक्षात्क्रियते यत्र स्थितैस्तद्ब्रह्मलोकं क्रममुक्तिस्थानमित्यर्थः । मेरोः कल्पनामात्रशरीरत्वान्मेरुमरीचिकावद्गांभीर्यस्येव नेयत्ताप्रमाणमस्तीत्याह—सार्धेन। **उच्छ्रितमिति** । तेजसा ज्ञानेन ॥८॥ उच्छ्रायविस्तारयोरिव परिधेरप्यनियममाह—**चतुर्भिरिति** । शिलाभिरुपष्टम्भकशैलस्थानीयैर्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैरभितः संवृतैः पार्श्वानां विस्तारैः ॥१०॥ पूर्वोक्तपरिणामैश्चतुर्भिर्गुणितश्चतुष्कोणो मेरुर्भवतीति बौद्धपक्षमुपाक्षिप्य मानसवत् परिमाणनियमो नास्तीत्याह सार्धेन—**नगस्येति** । गुणितं परिमाणमिति शेषः । ब्रह्मविद्भिर्मायाया अनन्तत्वादानन्त्येन निश्चितमित्यर्थः ॥ ११ ॥ मरुद्भिरित्यादि च त्रिभिः कालापकम्। भगवान् विष्णुना सह तेन ब्राह्मेण वपुषा वसुधाधिपान् पृथिवीं च ररक्षेति सम्बन्धः । शुद्धचिदात्मा मायोपाधिना रूपेण प्रकृतेन भेर्वधिपतेर्ब्रह्मणश्च रूपेण शरीराभिमानिनो जीवान् शरीरं च रक्षितवान् भोगमोक्षप्रदकर्मज्ञानोपदेशेनेत्यर्थः । किंभूतां पृथिवीं मरुदादिभिस्तत्रावयवदेवतादिभिः विवस्वद्वरुणाभ्यां तद्देवत्यतेजोजलाभ्यां च संघातं गमितां लिङ्गात्मविशिष्टां तेजोऽबन्नात्मिकामित्यर्थः । किंभूतेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्म निर्विशेषरूपं प्राप्तेन प्राप्तवता ॥ १२ ॥ किं तद्ब्रह्मेत्यत आह—**यत्तदिति** । न केवलं वेदपारगैरपि बहुभिर्नियमैः कर्तृभिः प्राप्तैस्त्युगतैः हठाकृष्टा न येषां नियमाः अपि तु दासभूतास्तादृशैर्ब्राह्मणैरित्यर्थः ॥ १४ ॥ **एवमिति** । एवम् अन्योन्याश्रयेण एते त्रयो लोक्यन्त इति लोकाः पृथिवीमरुदादिविष्णुशब्दिताः विराट्सूत्रान्तर्यामिणः ब्राह्मेऽहनि ब्रह्मप्रापके योगयज्ञे समाहिताः तत्रस्थत्वात्तत्रैवानुभूयन्त इत्यर्थः । तत्रैवाहनि अव्यक्तं ब्रह्म च यत्प्रतिष्ठितम् अनुभूयते योगिभिः तत्प्राणे प्राणाख्ये उपाधावप्यहमिति जीवरूपेण व्यक्तं सत् प्रतिष्ठितं शुद्धं ब्रह्म संसरतीत्यर्थः ॥ १६ ॥ अस्य मुक्त्युपायमुपदिशन् रक्षणमेवाध्यायशेषेणाह—**ब्रह्मण इति** । ब्रह्मण ईश्वरस्य प्रभावेण निःश्वसितमात्रेण वेदेन प्रचोदितं यत् नियतं नित्यं कर्म अकरणात्प्रत्यवायजनकम् एतद्धितमित्युत्तरेण सम्बन्धः। शश्वत् निरन्तरम् अच्छलवादिनां भावेन शुद्धचेतसा प्रवर्तमानं क्रियमाणं कर्म। येषां वाचाऽपि छलं कदाचिदपि नास्ति किमुत कर्मणा, तैः कृतं वेदोक्तं कर्म हितामित्यर्थः ॥१७॥

एतद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं गमितं पदम् ॥ १८
बहुत्वाद्विप्रभावानां विश्वशब्दः प्रयुज्यते ।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मभूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः ॥ १९
विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानयन् ।
एवं द्वन्द्वं स भगवान्प्रथमं मिथुनं सृजत् ॥ २०
स एव भगवान्विश्वो देव्या सह सनातनः ।
विधाय विपुलान्भोगान्ब्रह्मा चरति सानुगः ॥
स एष भगवान्ब्रह्मा नित्यं ब्रह्मविदां वरः ।
निर्वाणभयगन्तॄणामकिंचनपथैषिणाम् ॥ २२
सोमात्सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात् ।
यथाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः ॥ २३
अभिषिच्य च भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः ।
नदति स्म तदा नादं तेन सा ह्युच्यते नदी ॥
सा ब्रह्मलोकं संभाव्य अभिभूय सहस्रधा ।
गां गता गगनाद्देवी सप्तधा प्रससार च ॥ २५
सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः ।
इमं लोकममुं चैव भावयन्क्षरसंभवम् ॥ २६
ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च ।
ततः सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणाम् ॥
चतुर्भिर्वदनैस्तस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ।
तदाक्षरमयी सिद्धिर्दिशत्वं समुपागता ॥ २८
तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातम् ।
पतित्वेनाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः ॥ २९

आसक्तिं निषेद्धुं कर्मफलस्यैयत्तामाह—**यदेकमिति** । यत्पदं दिष्टत्वं गमितं कर्मजसुकृतफलत्वं प्रापितं तत् ब्रह्मणः पादं लेशमात्रं प्राहुः श्रुतयः, "**पादोऽस्य विश्वा भूतानि**" इत्याद्या इत्यर्थः ॥ १८ ॥ **बहुत्वादिति** । यस्य पादो विश्वं तद्ब्रह्म भूतात्मा नित्यसिद्ध आत्मा न तु कर्मप्राप्य इति भावः । एवंविधोऽपि विप्राणां ब्राह्मणानां भावश्चित्तवृत्तयस्तासां बहुत्वात् ब्राह्मणैर्विश्वे इन्द्रमित्रवरुणादयः शब्दाः यस्मिन्वाचकत्वेन प्रतिष्ठिता इति स विश्वशब्दः यज्ञेषु प्रकर्षेण युज्यते विनियुज्यते तैस्तैः शब्दैरित्यर्थः । तथा च श्रुतिः—"**तद्यदिदमाहुरमुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**" इत्यादिका । तस्मात्फलस्य तुच्छत्वान्निष्कामैरेव कर्मभिः परमात्मा आराधनीयो मुमुक्षुभिरिति भावः ॥ १९ ॥ एवं यष्टव्यदेवतारूपं ब्रह्मैवेत्युक्त्वा यजमानरूपमपि तदेवेत्याह—द्वाभ्याम् । विश्वरूपं स्थूलं मनोरूपं सूक्ष्मं द्वयमपि बुद्धिमात्ररूपमिति मानयन् जानन् एवं उक्तक्रमेण जानन् द्वन्द्वं स्त्रीपुंसात्मकं सृजत् असृजत् । अडभाव आर्षः ॥ २० ॥ यत्सृष्टं मिथुनं तदपि स्रष्टुरेव नटस्येव रूपान्तरमित्याह—**स एवेति** । विधाय वेदेन प्रकाश्य आचरति भोगार्थकर्माणि करोति । अनुगैः कश्यपादिभिः सहितः सानुगः ॥ २१ ॥ हविःस्वरूपमपि ब्रह्मैवेत्याह—**स एष इति** । यो नित्यमकिंचनपथैषिणां निर्वाणपदगन्तॄणां ब्रह्मविदां वरो ब्रह्म स एषः ॥ २२ ॥ सोमात् उमा ब्रह्मविद्या तया सहितात् नित्यमलुप्तज्ञानशक्तेः परमेश्वरात्सोमः चन्द्रः ओषधीशः समुत्पन्नः । किंभूतात्सोमात् धारा स्वर्गात् च्युतजलधारा तदेव विग्रहो मूर्तिर्यस्य तस्मात् । यया धारया ॥ २३ ॥ स्वभावतः निसर्गेणैव कर्म महेश्वरस्य भूताधिपत्यप्रदानरूपं कृत्वा नादं नदति पुनःपुनर्गर्जति । नादमिति णमुलन्तम्, नदित्वा नदित्वेत्यर्थः । अतः सा नदीत्युच्यते ॥ २४ ॥ संभाव्य महीकृत्य अभिभूय भित्त्वा मार्गरोधकान्पर्वतानिति शेषः । यतो गगनात् गां गता अतो गङ्गाऽभूदिति भावः । सप्तधा गोदावरीरूपेण सा हि समुद्रसंगमे सप्तधा भूतेति सिद्धम् ॥ २५ ॥ सहस्रधा जाह्नवीरूपेण इदमपि प्रसिद्धम् । बहुधा विभूतिभेदेन गङ्गा भगवती नदीत्यादितत्तत्तीर्थमाहात्म्यप्रसङ्गे गङ्गाया अनेकधा भावदर्शनात् । एवमोषधीशोत्पत्तिप्रसङ्गात् गङ्गायास्तत्कारणेश्वरात्मत्वमुक्त्वा चन्द्रोत्पत्तिप्रयोजनमाह—**इममिति** । इमं लोकम् ओषधीनामाप्यायनेन अमुं च लोकं "प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः" इत्यादिशास्त्रोक्तप्रकारेण च भावयन् वर्धयन् क्षरसंभवम् अविद्याप्रभवम् ॥ २६ ॥ ततः अस्य लोकस्य संवर्धनात् उद्भूतैर्बीजैः भूतानि जरायुजादीनि रोहन्ति वर्धन्ते । महाभूतानि पृथिव्यप्तेजांसि, तेषां फलानि तेजोऽबन्नात्मकानि व्रीह्यादीनि सर्वस्य आत्मकत्वात् । ततो व्रीह्यादिभ्यो मनुष्यादिभ्यश्च यथायोग्यं सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणां कामजेतॄणाम् ॥ २७ ॥ मन्त्रोऽपि ब्रह्मैवेत्याह—**चतुर्भिरिति** । वदनैरिव वदनैर्वेदैः । इत्थंभावे तृतीया । तस्येश्वरस्य मुखपद्माद्वेदरूपेण विनिःसृता अक्षरं ब्रह्म तन्मयी यत्प्राप्तिप्रधाना सिद्धिर्वेदाख्या दिशत्वम् उपदेशत्वम् "दिश अतिसर्जने" इगुपधलक्षणः कः ॥ २८ ॥ ऋत्विग्यजमानावपि ब्रह्मैवेत्याह—**तस्येति** । ज्ञानमयं चिन्मयं पुण्यं पुण्यकारणं यज्ञं चतुष्पादं चत्वार ऋत्विजो ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्यवः पादा यस्य तं सनातनम् अनादिं तस्य पतित्वेन ब्रह्मा ब्रह्मणः कर्मरूपस्य अनुष्ठाता एतत्सर्वं पितामहः शुद्धं ब्रह्मैव ॥ २९ ॥ धर्मपादरूपाश्चत्वार आश्रमाः

१ ग. पादं विश्वत्वं ग० । २ ख. ०णपथग० ।

पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यते जगत् ।
ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥ ३०
गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ।
इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः
न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धति मण्डले ।
ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्वेदा वर्तन्ति शाश्वताः ३२
गृहस्थानभिवाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।
ऋषयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः

नगस्य तस्य संपश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।
पद्भ्यां संपीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते ॥ ३४
ग्रीवां निगृह्य पृष्ठं च विनाम्य प्रहसन्निव ।
नाभिदेशे करौ न्यस्य सर्वशोऽङ्गानि संक्षिपन्
मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसाऽपि पितामहः ।
असृजन्मनसा विष्णुं योगाद्योगेश्वरस्य च ॥
व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्बिम्बाद्बिम्बमिवोद्धृतः
तेजोमूर्तिधरो देवो नभसीन्दुरिवोदितः ॥

अपि ब्रह्मैवेत्याह—**पादा इति द्वाभ्याम्** । व्यक्तेन स्वाध्यायरूपेण ध्यानरूपेण व्यक्तेन एकः पादः । गृहस्थेन गृहस्थाश्रमेण पावने गृहे स्थितेन च द्वितीयः पादः।समासैकदेशस्यापि गृहस्थविशेषणं पावने इति आर्षत्वात् ॥ ३० ॥ गुरुभावेन तपोभारगौरवेण च वानप्रस्थाश्रमेण तृतीयः पादः। वाक्येन तत्त्वमस्यादिना कीदृशेन गुह्यगामिना आत्मतत्त्वप्रतिपादकेन । तथा नगामिना नगमचलं कूटस्थं ब्रह्म, "संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानम्" इति स्मृतेर्मेरुपृष्ठं वा तत्तत्री आगमयति गमयतीति नगामि तेन नगामिना कूटस्थवस्तुप्रापकेण विचारध्यानाभ्यां वस्तुप्रतिपत्त्यर्थेन वाक्येन चतुर्थः पादो धर्मस्य भवतीत्यर्थः । स्वर्गो भोगापवर्गाख्यं सुखम् ॥३१॥ एवं यष्टव्यदेवतादिचातुराश्रम्यान्तानां ब्रह्मत्वं भावनार्थमुक्तम् । इदानीं तुर्याश्रमयोग्यं योगं प्रस्तोष्यन् तुर्याश्रमधर्ममेव स्तौति द्वाभ्याम्—**न्यायादिति** । न्यायात् वेदान्तन्यायोद्दलितश्रवणमननात्मकविचाराधिगमात् गुह्यधर्मो योगः तेन च मण्डले ब्रह्माण्डगोले सोमः चन्द्राधिष्ठेयं मनः विवर्धति । आध्यात्मिकपरिच्छेदाभिमानं त्यक्त्वा समष्ट्यभिमानं धत्ते इत्यर्थः । एवं ब्रह्मणो वेदादेव प्रमाणभूतात् ब्रह्मचरणं ब्रह्मचर्यायोगस्तस्मात् शाश्वता अपि वेदाः वर्तन्ति निवर्तन्ते गच्छन्ति बाध्यन्ते इत्यर्थः । अत्र "**पितापितेत्यादि लोका अलोका वेदा अवेदाः**" इति श्रुतेः वेदस्यापि बोधात्प्रागेव प्रामाण्यं सति तु बोधे बाध एवेत्यर्थः । वर्तन्ति नैघण्टुके गत्यर्थेऽप्युपपद्यते ॥ ३२ ॥ किंच वाक्येन पूर्वोक्तो गुह्येत्यादिविशेषणेन युक्तान् गृहस्थानपि अभिलक्ष्य पित्रादयस्तृप्यन्ति धर्मेण योगेन नगस्य मेरोः, एतेन योगधर्मे गृहस्थादेरप्यधिकारोऽस्तीति दर्शितम् । तथा च स्मृतिः—

"न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥
स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः सर्वैरप्येवमेव तु
द्रष्टव्यस्त्वथ श्रोतव्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः" ॥

इत्यादिका ॥ ३३ ॥ तदेवं यतेर्गृहस्थस्य च यथोक्तस्वाश्रमधर्माननुतिष्ठतः अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाख्या **यमाः**, शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानाख्या **नियमाश्च** स्वभावसिद्धा इति तानुक्त्वा आसनादीनि योगाङ्गानि विधित्सुः प्रथमं मेरुशिखराख्यब्रह्मलोक एव जेतव्य इत्याह—**नगस्येति** । उत्तमं क्रममुक्तिस्थानत्वात् आसनं विधत्ते सार्धेन—**पद्भ्यामिति** । यतः मेरोः शिखरं तैः ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्मसंपन्नैरृषिभिर्विचार्यते तत् पश्येति योजना । किं कुर्वन् वृषणौ पद्भ्यां संपीड्य—

मेढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यं गुल्फं तथोपरि ।
गुल्फान्तरं च विन्यस्य सिद्धासनमिदं भवेत् ॥

इत्युक्तलक्षणे सिद्धासने स्थित्वेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ग्रीवां निगृह्य जत्रुसंधौ चुबुकं संयोज्येत्यर्थः । पृष्ठं विनाम्य यथा वक्ष ईषदुन्नतं स्यात्तथा विनामयेत् पृष्ठं प्रहसन्निवेत्यस्य दन्तैर्दन्तान्न स्पृशेदित्यर्थः । नाभिदेशे करौ न्यस्येत्यञ्जलिमुद्रां वामोपरि दक्षिणं हस्तं कृत्वेत्यर्थः । संक्षिपन् निगृह्णन् ॥ ३५ ॥ आसनजयिनः परकृतिसरूपार्थवादमुखेन सफलं प्राणायाममाह—**मूर्ध्नीति** । योगेश्वरस्य योगात् पितामहः मनसा विष्णुम् असृजत् । किं कृत्वा ? मनसा मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्येति योजना । मनोरोधो हि योगः, स च प्राणरोधाधीन इति प्राणरोधो योगेश्वरः, तस्य योगादभ्यासात् पितामहोऽधिकारी मनसा मनःप्रधानेन प्राणेन ब्रह्म स्वात्मानं जीवं प्राणोपाधिं मूर्ध्नि भ्रूघ्राणमध्ये समुत्क्षिप्य सङ्क्रम्य मनसा सङ्कल्पेन विष्णुं विश्वरूपं असृजत् । एवं चोक्तरीत्या भ्रूघ्राणमध्यं प्रापय्य जीवस्य ऐश्वर्याविर्भावहेतुः प्राणायामोऽवश्यं कर्तव्य इत्यर्थः ॥३६॥ प्रत्याहारमाहात्म्यमाह—**व्यतिरिक्त इति** । व्यतिरिक्तानि विषयेभ्यो व्यावृत्तानि इन्द्रियाणि यस्य सः कृतप्रत्याहारो योगी सन्निहितमपि शब्दादिकमगृह्णन् सर्वात्मना परिच्छेदाभिमाननिवृत्तौ विष्णुर्व्यापक एव भवति । अयमत्र क्रमः—यथा घटोदरगता दीपप्रभा घटमात्रीभवति, सैव

**रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशुरिवापरः।**
**विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः॥ ३८**
**नोपलभ्यति मूढानां प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम्।**
**ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति ३९**
**ज्योतिश्चक्षुषि संबद्धं बिम्बं भास्करसोमयोः।**
**बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः**
**ब्राह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः।**
**नेतरे जातु पश्यंति अध्यात्मं नावबुध्यते ४१**
**हिंसायोगैरयोगात्मा सर्वप्राणचरैर्नृप।**
**भूतयो भुवि भूतेशो मोहप्राप्तेन चेतसा॥ ४२**
**कर्मभिः कुत्सितैरन्यैः सर्वप्राणिवधैषिणाम्।**
**नराणां योगमाधाय स्वेषु मात्रेषु भारत ४३**
**समाहितमना ब्रह्मन्मोक्षप्राप्तेन हेतुना।**
**चन्द्रमण्डलसंस्थानाज्ज्योतिश्चान्द्रं महत्तदा**
**प्रविश्य हृदयं क्षिप्रं गायत्र्या नयनान्तरे।**
**गर्भस्य संभवो यश्च चतुर्धा पुरुषात्मकः ४५**
**ब्रह्मतेजोमयो युक्तः शाश्वतोऽथ ध्रुवोऽव्ययः**
**न चेन्द्रियगुणैर्युक्तो युक्तस्तेजोगुणेन च॥ ४६**

घटच्छिद्राद्बहिर्गता कियन्तं भवनोदरगतं विषयं व्याप्नोति, सर्वात्मना घटाद्बहिर्गता सती कृत्स्नं भवनोदरं व्याप्नोति। एवं जीवचैतन्यं देहान्तर्गतं सत्तन्मात्रं व्याप्नोति, इन्द्रियद्वारा बहिर्गतं सत् तं तं विषयं व्याप्नोति, सर्वात्मना देहाद्बहिर्गता सती कृत्स्नं दृश्यं व्याप्नोति। अत एव तस्यामवस्थायां सार्वज्ञ्यं योगिनां भवतीति स्पष्टम्—**बिम्बादिति**। मूषोद्धृतप्रतिमावत्स्वरूपेणाविर्भवतीत्यर्थः। तेजोमूर्तिः चैतन्यज्योतिः॥ ३७॥ एतमेव स्तौति—**रराजेति**। ब्रह्मयोगेन देहादितादात्म्याध्यासकृतया ब्रह्मभावव्यावृत्त्या विराजन् विराजमानः नभसो हार्दाकाशस्य प्रभाभिश्चैतन्यज्योतिःप्रकाशैः। बहुवचनं समाधिप्रयोगभेदाभिप्रायम्। निर्विशेषचिन्मात्रमपि प्रत्याहारबलेनैव ज्ञेयमित्यर्थः॥ ३८॥ आक्रोशपूर्वकं देशबन्धश्चित्तस्य धारणेति प्रोक्तलक्षणां धारणामाह—**नोपेति**। उपलभ्यति प्राप्नोति ललाटमध्ये भ्रूघ्राणसन्धौ तिष्ठन्तं विष्णुं क्रियां नियमनक्रियां प्रति समुद्दिश्य द्विधाभूतं नियम्यनियामकरूपेणेत्यर्थः॥३९॥ धारणायाः प्रदेशमुक्त्वा विषयमाह—**ज्योतिरिति**। भास्करसोमयोः तद्दैवतयोरिडापिङ्गलयोर्मध्ये बिम्बभूतं ज्योतिर्धारणाविषय इत्यर्थः। किंभूतं बिम्बं चक्षुषि संबद्धं चक्षुरिन्द्रिये प्रतिबिम्बितं यत्कृतं चक्षुषि रूपप्रकाशनसमर्थं तस्मिन् चिज्ज्योतिषि भ्रूघ्राणमध्यस्थे चित्तं धार्यमित्यर्थः। **बुद्ध्येति**। पूर्वम् अध्यात्मविषये रताः सन्तः पश्चात् बुद्ध्या तं विषयं पश्यन्तीति योजना। आत्मनि शरीरे योगधारणाविषयः तत्र रताः पुनःपुण्येन तदेव चिन्तयन्तः। एतेनात्र प्रत्ययैकताध्यानमित्युपलक्षणं ध्यानमुक्तम्॥ ४०॥ **ब्राह्मणा इति**। नावबुध्यते इतरैरिति शेषः। अध्यात्मम् अध्यात्मशास्त्रमपि नावबुध्यते दूरे स्वरूपबोध इति भावः॥ ४१॥ इतरे के तानाह—**हिंसायोगैरिति द्वाभ्याम्**। यो भुवि भूतेशो भूतानां निग्रहानुग्रहसमर्थो योगी ऐश्वर्यकृतं मोहं प्राप्तेन चेतसा अयोगात्मा न योगे आत्मा चित्तं यस्य स योगं प्राप्य स्वरूपानन्दात् च्युतमनस्कः तं भूतयः ऐश्वर्याणि सर्वप्राणचरैः सर्वप्राणभक्षकैः हिंसायोगैरभिभवन्तीति शेषः॥४२॥ किं कृत्वा मोहयन्तीत्यत आह—**कर्मभिरिति**। सर्वप्राणिवधैषिणां नराणामन्यैः कुत्सितैः कर्मभिर्योगसम्बन्धम् आधाय प्रसञ्जयित्वा। केषु निमित्तेषु सत्सु स्वेषु स्वार्जितेषु मात्रेषु मीयन्ते ते मात्राः भोग्याः विषयाः, "**हृष्टो दृप्यति, दृप्तो धर्ममतिक्रामति**" इत्यापस्तम्बोक्तेर्योगार्थिषु न संतोषः कार्यः। किं तु विघ्नबुद्ध्या तास्त्यक्तव्या एवेति भावः॥ ४३॥ **समाहितेति**। यस्मादेवं योगे विघ्नाः सन्ति तस्मात् ब्रह्मन् ब्रह्मणि समाहितमनाः सम्यङ्निहितमना भवेत्। मोक्षस्य प्राप्तं प्राप्तिः। भावे क्तः। मोक्षप्राप्त्यर्थमित्यर्थः। किं कृत्वा चन्द्रमण्डलं मनः। "**चन्द्रमा मनो भूत्वा**" इति श्रुतेः। तस्य संस्थानं ईशादिरूपं तत्परित्यज्येत्यर्थः। संस्थानादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। ज्योतिर्द्योतमानं तेजश्चैतन्यं हृदयायतनं प्रविश्य॥ ४४॥ क्षिप्रविघ्नशङ्कया ऐश्वर्यास्वादमकुर्वन् गायत्र्याः, "**गायत्री वा इदं सर्वं भूतम्**" इति श्रुतिप्रसिद्धगायत्र्याख्यसगुणब्रह्मणोऽपि नयनं नयनवत् प्रकाशकं शुद्धं ज्योतिः तस्यान्तरे मध्ये आसीदिति शेषः। अन्तरस्वरूपमाह—**गर्भस्येति**। अव्यक्तस्य संभव उत्पत्तिः। य इति विधेयापेक्षं पुंस्त्वम्। चतुर्धा अकारोकारमकारार्धमात्रत्वेन॥ ४५॥ चतुर्धा भूतमेव पुरुषं स्तौति—**ब्रह्मेति सार्धेन**। ब्रह्म निरतिशयोत्कृष्टं तेजश्चैतन्यं तन्मयं तद्रूपः अव्यक्तः इन्द्रियाद्यगोचरः शाश्वतो नित्यः ध्रुवः कूटस्थः अत एव अव्ययः अपचयशून्यः इन्द्रियग्राह्यैः रूपादिगुणैर्न च युक्तः तेजोगुणेन मनोगुणेन दुःखादिना युक्तो मनस्तादात्म्याध्यासात्। चन्द्रेत्याह्लादकत्वं भ्राजिष्णुरिति सद्रूपेण स्फुरमाणत्वं वर्णेषु लोहितशुक्लकृष्णेषु तेजोऽबन्नेषु देहाकारपरिणतेषु स्थितः आविर्भूतः॥४६॥

चन्द्रांशुविमलप्रख्यो भ्राजिष्णुर्वर्णसंस्थितः।
नेत्राभ्यां जनयद्देवो ऋग्वेदं यजुषा सह ॥ ४७
सामवेदं च जिह्वाग्रादथर्वाणं च मूर्धतः।
जातमात्रास्तु ते वेदाः क्षेत्रं विन्दन्ति तत्त्वतः
तेन वेदत्वमापन्ना यस्माद्विन्दन्ति तत्पदम्।
ते सृजन्ति तदा वेदा ब्रह्म पूर्वं सनातनम् ॥
पुरुषं दिव्यरूपाभं स्वैः स्वैर्भावैर्मनोभवैः।
अथर्वणस्तु यो योगः शीर्षे यज्ञस्य तत्स्मृतम्
ग्रीवाबाह्वन्तरं चैव ऋग्भागः स भवेत्ततः
हृदयं चैव पार्श्वे च सामभागस्तु निर्मितः ॥
बस्ति शीर्षे कटीदेशं जङ्घोरुचरणैः सह।
एवमेष यजुर्भागः संघातो यज्ञकल्पितः।
पुरुषो दिव्यरूपाभः संभूतो ह्यमरात्पदात् ॥
स हि वेदमयो यज्ञः सर्वभूतसुखावहः
उभयोर्लोकयोस्तात हिंसावर्ज्यः सनातनः ॥
योगारम्भं कर्मसाध्यं ब्रह्मचर्यं[२] सनातनम्।
प्रभवः सर्वभूतानां यो विन्दति स वेदवित् ॥
स सिद्धः प्रोच्यते लोके सिद्धिरेव न संशयः
निर्मुक्तः सर्वकर्मभ्यो मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ ५५
वैष्णवं यज्ञमित्येवं ब्रुवते वेदपारगाः।
ब्राह्मणा नियमश्रान्ता वेदोपनिषदे पदे ॥ ५६

जनमेजय उवाच।

चेतसस्तूपलम्भं हि मनोग्राह्यस्य कामतः।
कारणं श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने

वैशम्पायन उवाच।

न ह्यस्य कारणं किंचिद्बाह्यं भवति भारत।
अन्तर्गतं कारणं तु शारीरं मानसं नृप ॥ ५८
येन वेद्यं विदुर्मर्त्या ब्राह्मणाः संशितव्रताः।
अवेद्यमपि वेद्यं च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा ॥ ५९

---

अस्य चतस्रो मूर्तीराह—**नेत्राभ्याम्** ऋग्यजुर्वेदौ क्रमेण विश्वतैजसौ त्रिपुटीरूपेण दृश्यत्वान्नेत्राभ्यामिवोत्पन्नौ ॥ ४७ ॥ सामवेदः प्राज्ञः शब्दमात्रगम्यत्वाज्जिह्वाग्रादिवोत्पन्नः। एतेभ्यो विलक्षणस्तुर्य ईश्वरोऽन्तर्यामी योगैकगम्यत्वादवाग्दशामगोचरत्वात् शुद्धसत्त्वमयत्वाच्च मूर्धत एवोत्पन्नः। आविर्भूतमात्रा एते स्वं स्वं क्षेत्रं प्रकाश्यमुपाधिं विन्दन्ति लभन्ते। तस्माद्वेदा वेदा उच्यन्त इत्याह—**जातमात्रा इति** ॥४८॥ तुर्यातीतस्त्वेतेष्वनुस्यूत इत्याह—**तेनेति** ॥४९॥ चत्वारोऽप्येते शुद्धस्योपाधितां गत्वा स्वैः स्वैर्गुणैर्विशिष्टेन रूपेण पुरुषं विश्वादिरूपं कुर्वन्तीत्यर्थः। एवं चतुर्विधं भ्रूघ्राणमध्यस्थस्य धारणाविषयस्य ब्रह्मणो रूपमुपन्यस्य देहावयवतारतम्येन तत्र तत्र धारणायास्तारतम्यं सूचयति—**अथर्वेत्यादिना** सार्धद्वयेन। तुर्यधारणाऽतिमुख्यत्वाच्छीर्षतुल्या। विश्वधारणा बाह्यत्वात् ग्रीवादितुल्या ॥ ५० ॥ प्राज्ञधारणान्तमुखत्वाद्धृदयतुल्या तैजसधारणा संसारमोक्षोभयव्यापित्वाच्छीर्षादिचरणान्तरूपा। यस्तु एतैर्दिव्यै रूपैराभाति स पुरुषः अमरात् अक्षरात्तुर्यात्पदात् उपलक्षणात् संभूतः एकीभावेनाधिगतो भवतीत्यर्थः ॥ ५२॥ अत्र द्विविधो योगः सबीजो निर्बीजश्च। आद्यश्चतुर्धा वितर्कविचारानन्दस्मितरूपः। तत्र बाह्यः प्रतिमादौ चित्तं यदा सन्नियम्यते तदा स वितर्कः सोऽत्र ऋक्छब्देनोक्तः। यदा तु स्वप्ने इवान्तःप्रज्ञैर्मनोमात्रकल्पिते प्रतिमादौ तदा स विचारः सोऽत्र यजुःशब्दितः। यदा त्वेनं परित्यज्य तुर्ये प्रविविक्षुर्मध्ये लीयते स प्रकृतिलीनोऽत्र सामशब्देनोक्तः। अयं च लयरूपत्वादयोगः तुर्ये प्राप्तोऽपि यदा सर्वैश्वर्यसार्वज्ञादिप्रावण्यं तदा स आनन्दः। यदा तु तमपहाय अस्मीत्येतावन्मात्रेणावस्थानं तदा स स्मितः; तदुभयमत्राथर्वशब्देनोच्यत इति। विस्तरस्तु **वेदस्तुतिटीकायां स्पष्टीकृतोऽस्मद्गुरुभिरित्युपरम्यते** ॥ ५३ ॥ योगमुक्त्वा तद्विदं स्तौति—**योगारम्भमिति**। इदं ब्रह्मचर्यं यो विन्दति स वेदवित्। य एतत्सर्वभूतानां प्रभवः तत्प्रापकत्वात्, "**योगो हि प्रभवाप्ययौ**" इति श्रुतेः। कीदृशं तत् योगेनैवारभ्यते न तु शुष्कविचारेण, कर्म मनःसंयमस्तेन साध्यम् ॥ ५४ ॥ **वैष्णवमिति**। विष्णुः शुद्धं वस्तु, तत्प्रापकं वैष्णवं, तस्मिन् वेदस्य उपनिषत् ब्रह्मविद्या तयाऽधिगम्य वेदोपनिषदे, पदे स्वाराज्ये निमित्ते सति ब्राह्मणाः ब्रह्मविदः नियमे मनोनिग्रहे श्रान्तास्ते ब्रुवते। अत्यन्तदुष्करमनोजयसाध्योऽयमित्यर्थः ॥ ५६ ॥ प्रसङ्गात्समाधौ प्रलीनस्य चेतसः कुतः पुनरुपलम्भ इत्याशङ्कते—**चेतस इति**। कामत इच्छया मनोग्राह्यस्य स्वेनैव स्वयं दग्धेन्धनानलवदुपशामितुं योग्यस्य ॥ ५७ शरीरेण कृतं शारीरं धर्माधर्मरूपं, मानसं मनसि भवतीति मानसम्। शरीरकृतं कर्म मनसि संस्काररूपेण स्थितं मनस उद्बोधकमित्यर्थः ॥५८॥ अस्यैव प्राबल्यमाह—**येनेति**। येन चैतन्येन सर्वं ज्ञायते तदात्मत्वादवेद्यमपि शास्त्राचार्योपदेशमनु लक्षणया वेद्यं भवत्येव तथापि कर्मणा न वेत्तुं शक्यमतः कर्मैव बलवत्प्रतिबन्धकमित्यर्थः ॥५९॥

---

१ ख. ह्यपरा॰। २ ग. घ. ॰चर्ये स॰।

ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा ।
सदा विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्महीपते ॥ ६०
सदा चैव शुचिर्भूत्वा नियतो ब्रह्मकर्मणा ।
उपतिष्ठेत स गुरुं बद्धाञ्जलिपुटो द्विजः ॥ ६१
सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत् ।
विनीतो ब्रह्मभावेन समाहितमतिर्मुनिः ॥ ६२
संप्रपद्येत मनसा वैष्णवं पदमुत्तमम् ।
ध्यायन्नेव प्रसीदेत समाहितमतिर्द्विजः ६३
गच्छते परमं ब्रह्म निर्विकारेण चेतसा ।
अपुनर्भवभावज्ञो निर्ममो भावबन्धनात् ॥ ६४

तदेवाक्षरमित्याहुर्यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
तर्हि तत्कर्मयोगेन विद्यायोगेन दर्शितम् ६५
ब्राह्मणानां विनीतानां वैष्णवे पदसञ्चये ।
सर्वद्रव्यातिरिक्तानां कामयोगविगर्हिणाम्
अपुनर्भाविनां लोकाः कर्मयोगप्रतिष्ठिताः
अनादानेन मनसा राजन्कर्माणि कर्माणि ॥ ६७
आदानाद्बध्यते जन्तुर्निरादानात्प्रमुच्यते ।
ब्राह्मणेभ्यः क्रियावाप्तिर्जन्तोः पूर्वाज्जनाधिप
मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्तश्च परमं पदम् ।
न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥ ६९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

तस्य च निवृत्तिरपि सत्कर्मणैवेत्याह-**ब्राह्मणेनेत्यादिभिश्चतुर्भिः**। ब्राह्मणेन वेदाध्यायिना विनीतेन विद्यामदहीनेन सदा ब्रह्मनिषेविणा ब्रह्मयज्ञादिपरेण सदा शास्त्राचार्येभ्य आत्मानात्मनोर्विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्मोक्षार्थं भावितव्यामिति शेषः ॥ ६० ॥ ब्रह्मकर्मणा ब्रह्मण्यर्पितेन कर्मणा नियतः शमादिमान् ॥ ६१ ॥ गुरुतत्त्वज्ञो भूत्वा मोक्षकर्मणि प्रोक्तान्यासनादिधारणान्तानि कारयेत् कुर्यात्। विनीतो योगप्राप्तिगर्वहीनः, ब्रह्मभावेन न तु सेव्यसेवकभावेन । "**अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्**" इति तन्निन्दाश्रुतेः ॥ ६२ ॥ "**मनसैवेदमाप्तव्यम्, दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या**" इत्यादिश्रुतेः वैष्णवम् उत्तमं पदं शुद्धं ब्रह्म मनोवृत्त्यैव वेद्यमित्यर्थः। ध्यायन्नेव न शुष्कं विवेकं कुर्वन् ।

मनसो हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥

इति श्रुतेर्मनोजय एव कर्मनिर्मूलने हेतुरित्यर्थः ॥ ६३ ॥ गच्छते । कर्मव्यतिहारे तङ् । यथा यथायं ब्रह्माभिमुखो भवति तथा तथैनं ब्रह्माप्यभिमुखं भवति । यथोक्तं वृद्धैः-

यावद्यावन्निरस्यायं देहादीन्प्रत्यगञ्चति ।
तावत्तावत्तदर्थोऽपि त्वमर्थं प्रविविक्षति ॥

इति ॥ ६४ ॥ **तदेवेति**। जीवरूपेण नित्यं वृद्धिह्रासभाक्त्वे न समानमपि ब्रह्म तर्हि तदेवम् अक्षरं ह्रासादिरहितं प्रादुर्यदैव कर्मयोगादिना दर्शितं भवतीति ॥ ६५ ॥ केषां तदक्षरं विदितमत आह—**ब्राह्मणानामिति** । पदसंचये पदनिश्चये निमित्त सर्वद्रव्येभ्योऽतिरिक्तानां त्यागवतां कामयोगं स्त्र्यादिसङ्गं विगर्हयन्ति तेषाम् ॥ ६६ ॥ **अपुनरिति**। कथं कर्मयोगेषु पुनर्भवराहित्यं प्रतिष्ठितमत आह—**अनादानेनेति** । फलस्येति शेषः । कर्मणीति द्विरुक्तिर्वीप्सार्था । सर्वस्मादपि कर्मणः फलाकाङ्क्षां न कुर्यात्। यथोक्तं भगवता-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ इति

॥ ६७ ॥ **आदानादिति** । तत्रादानं तत्सङ्गत्या पूर्वजन्मसंस्काराच्च भवति तेन क्रियाणामवाप्तिः प्राप्तिर्भवति । अन्यथा क्षुद्रफलोपधानेन व्यर्थं कर्म गच्छतीत्यर्थः ॥ ६८ ॥ अनादानस्यैव महाफलत्वमाह-**मुक्त इति**। "**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन**" इति श्रुतेर्विविदिषोत्पादनद्वारा कर्मैव मोक्षहेतुरित्यर्थः ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

१ ग. ॰पि तम॰ ।

# योगोपसर्गकथनम् ।

## १८

जनमेजय उवाच ।

उपसर्गं च योगं च ध्यातव्यं चैव यत्पदम्
न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ।
[सिद्धिसिद्धिगुणाश्चैव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः]

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया ।
उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा ॥ २
पञ्च सिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणो नृप ।
योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः ॥ ३
ब्रह्मणश्चिन्तयानस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम् ।
बहुरूपमनैश्वर्यात्प्रवर्तति निरोधनम् ॥ ४
पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत ।
कामक्रोधस्य लोभस्य सन्निरुद्धस्य मेधया ॥ ५
तेजसा मूर्ध्नि चाधाय धूमो दोधूयते महान् ।
नीललोहितवर्णाभैः पीतैः श्वेतैश्च धातुभिः ॥ ६
माञ्जिष्ठरागवर्णाभैः कपोतसदृशैस्तथा ।
शुद्धवैडूर्यवर्णाभैः पद्मवर्णदलप्रभैः ॥ ७
स्फाटिकैर्मणिवर्णाभैर्नागेन्द्रसदृशैस्तथा ।
इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ॥ ८
बहुवर्णैः सुधूमौघैरिन्द्रायुधसमप्रभैः ।
संपतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागमे ॥ ९
निरुध्यन्त इवाकाशे पक्षवद्भिरिवाद्रिभिः ।
ते धूमवर्णाः संघाता घनाः सलिलधारिणः ।
निर्वेमुश्चैव तोयौघान्विविशुर्वसुधातले ॥ १०
मूर्ध्नि चैव महानग्निर्मानसो धूयते प्रभुः ।
युक्तः परमयोगेन शतशोऽर्चिभिरावृतः ॥ ११
तस्यार्चिर्विस्फुलिङ्गानां सहस्राणि शतानि च
विसस्रुः सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव युगाग्नयः १२

---

१८

**योगोपसर्गा वर्ण्यन्तेऽथ त्रिभिः प्रश्नपूर्वकम्**
**तत्रापि द्वादशे योगमार्गे ये चिह्नतां गताः १**

पूर्वत्र हिंसायोगैरित्यनेन योगोपसर्गाः सूचिताः आसनादिधारणान्तानि च योगाङ्गानि उक्तानि । अवशिष्टं योगस्वरूपं ध्येयं ब्रह्म, योगसिद्धयश्च, तदेतच्चतुष्टयं जिज्ञासमानो जनमेजय उवाच--**उपसर्गं चेति** ॥ १ ॥ **शृण्विति** । ब्रह्मादीनां योगिनामनेकधा जायमानं योगोपसर्गादिकं यथा पृच्छसि तथा मेधायुक्तेन मनसा शृणु ॥ २ ॥ **पञ्चेति** । पंच सिद्धयो दूरश्रवणाद्यास्तासां गुणान् शब्दादीन् पंचेन्द्रियेषु निवसन्तीति पञ्चेन्द्रियैरेव कल्पितानित्यर्थः । तान् त्यक्त्वा योगयुक्तेन मनसा ब्राह्मणः पश्यतो ब्रह्मदर्शिनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य ब्रह्मैव यज्ञो ब्रह्मयज्ञो ब्रह्मैव तं चिन्तयानस्य अनैश्वर्यात् परवैराग्यबलाभावात् । निरुध्यतेऽनेन तन्निरोधनम् उपसर्गजातं प्रवर्तति प्रवर्तते ॥ ४ ॥ अपरवैराग्येण इन्द्रियादिनिरोधस्य सद्भावेऽपि परवैराग्याभावात् योगो निरुध्यत इत्याह-**पञ्चेति** । पञ्चेन्द्रियप्रधानस्य ग्रामस्य देहेन्द्रियप्राणसंघातस्य कामसहितस्य क्रोधस्य मेधया सन्निरुद्धस्य सद्भावेऽपीति शेषः ॥५॥ तानेव विघ्नानाह-**तेजसेति** । मूर्ध्नि भ्रूघ्राणमध्ये निहितेन तेजसा चक्षुःप्रणिधानेन आधाय चित्तं संयोज्य स्थितस्य योगिनः । मूर्ध्नीति हृदयपुण्डरीकादेरप्युपलक्षणम् । यत्र कुत्रचिदाधारे गुरूक्तयुक्त्या चित्तं प्रणिधित्सतो योगिनः धूमादिकं गोचरीभवति, यच्च मनोमर्कटेन निरोधक्षुब्धेन नाडीमार्गशाखाश्च क्रमतोऽनुभूयन्ते तच्च योगसिद्धिचिह्नम् । तथा च श्रुतिः- "**तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं च । एष पन्था ब्राह्मणानामुचितस्तेन**" इति "**ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तेजसश्च**" इति

**नीहारधूमार्कानलानिलानां**
**खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।**
**एतानि रूपाणि पुरःसराणि**
**ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे** । इति च ।

धातुभिः तुल्यवर्ण इति शेषः ॥६॥ **निरुध्यन्त इति** गाढत्वं दर्शितम् । एवं रजःसत्त्वतमःप्रधानासु नाडीषु संचरच्चित्तं पार्थिवैर्धूमादिरूपैरुपेतं भातीत्युक्तं तदेव किंचित्सत्त्वाधिकाः नाडीः प्राप्य अभास्वरशुक्लरूपेण गाढतमोवद्घनीभवति तदेतन्मेघधारादिरूपकेणाह—**ते इति** । निर्वेमुः वर्षितवन्तः वसुधातले देहान्तरे च न बहिः ॥१०॥ अत एवाभेर्विशेषणं **मानस इति** ॥११॥

---

१ ख. पञ्चेन्द्रियगु° । २ ख. प्रवक्ष्यामि निबोध तत् । पञ्चे° । ३ ख. °पद्मरागसमप्र° ।

यावन्त्यो वर्षधारास्तु
तावन्त्योऽर्च्योऽनलस्य च।
समेयुर्वारिधाराभि-
र्विपुले वसुधातले ॥ १३
वर्णाभ्यां युज्यमानस्य वायुर्दोधूयते महान्।
दिव्यासिद्धगुणोद्भूतः सूक्ष्मप्राणविवर्धनः ॥१४
वेगवान्भीमनिर्घोषो बलवान्प्राणगोचरः।
तैरेव चाग्निसंघातैर्धातुभिः सह संगतः ॥ १५
सहस्रशोऽथ शतशो मूर्तिं कृत्वा पृथग्विधाम्
अग्निर्वायुर्जलं भूमिर्धातवो ब्रह्मचोदिताः ॥१६
समवायत्वमापन्ना बीजभूता महीपते।
संघातं ब्रह्मवेगेन धातवो गमिता नृप ॥ १७
यद्ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरुषो विराट्।
तयोरन्यान्बहून्सूक्ष्मान्ससृजे पुरुषोत्तमः १८
स एव भगवान्विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
आधारः सर्वविद्यानां प्रलये प्रलयान्तकृत् १९
तं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं विशन्ति ब्रह्मचोदिताः।
तेऽन्तराः पुरुषाः सर्वे ज्ञातारः सुखदुःखयोः॥
अथ चेष्टितुमारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसंमिताः।
भित्त्वा च धरणीं देवीं प्रापद्यन्त दिशो दश॥
इत्येते पार्थवाः सर्वे ऋषयो ब्रह्मनिर्मिताः।
तत्रैव प्रलयं याता भूमित्वमुपयान्ति च ॥ २२
कर्मक्षयाद्विमुच्यन्ते धातुभिः कर्मबन्धनैः।
कर्मक्षयाद्विमुक्तत्वादिन्द्रियाणां च बन्धनात्॥
तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञतां कर्मगोचरैः
क्षरात्धूमक्षयं चैव अग्निगर्भास्तपोमयाः ॥ २४
येन तन्तुरिवाच्छिन्नो भावाभावः प्रवर्तते।
धूमादभ्रास्तु संभूता अभ्रात्तोयं सुनिर्मलम् २५

---

एवमग्रेऽपि तेजोजलादेर्मिश्रीभावः संकीर्णगुणवन्नाडीसंचाराद्बोध्यः। **यावन्त्य इति**। अर्च्यः अर्चिषः। ईकारान्तत्वमार्षम् ॥ १३ ॥ वर्णाभ्यां जलाग्निवर्णाभ्यां श्वेतलोहिताभ्याम्। इत्थंभावे तृतीया। तद्रूपेण परिणतस्य चित्तस्य सत्त्वोत्कर्षे सति नीरूपो वायुरूप आकाशो भवति। दिव्याः भित्त्यादिघ्नप्रतिघातात् सिद्धाः अनादयः ते च ते गुणाः शब्दतन्मात्रादयः तेभ्य उत्पन्नः स वायुर्न तु स्थूल इत्यर्थः। सूक्ष्मः प्राणः सूत्रात्मा तस्य विवर्धनः प्रकाशकः ॥ १४ ॥ **वेगेति**। स इति च्छेदः ह प्रसिद्धम्। तैरेव अग्निना संघातो दृढसंश्लेषो येषां तैः भूजलैः धातुभिः संगतः सन्प्राणगोचरः प्राणशब्दवाच्यः सूत्रात्मा भवतीत्यर्थः। वेगवान्मनसोऽपि जनकत्वात्। भीमनिर्घोषः स्थूलाकाशस्यापि जनकत्वात्। बलवान् ब्रह्माण्डभेदनसामर्थ्यवत्त्वात् ॥१५॥ सहस्रश इति धातवो मूर्तिं कृत्वा स्थिता इति शेषः ॥ १६ ॥ मूर्तिकरणप्रकारमाह—**समवायेति**। ब्रह्मवेगेन चिदनुप्रवेशेन संघातं गमिताः धातवः समवायत्वम् एककार्यकरणत्वम् आपन्ना गतवन्तः ॥ १७॥ **यदिति**। यद्ब्रह्म धारणाविषयः तदेव सूक्ष्मः तदेव च विराट्। तयोः सूक्ष्मविराजोः, ततोऽन्यान् तत्तुल्यान् ब्रह्मीभूतयोगी सृष्टवानित्यर्थः ॥ १८॥ स एव योग्यो भगवान् अतस्तस्य सूत्रादित्वष्ट्वं युक्तमित्यर्थः ॥१९॥ **तमिति**। तं योगिनं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं भ्रूघ्राणमध्ये सूत्रात्मत्वेन स्थितं ब्रह्मचोदिता ईशप्रेरिता इतरसुखादिभोक्तारो जीवाः प्रविशन्ति। स एव सर्वजीवसमष्टिरित्यर्थः ॥२०॥ **अथेति**। सूत्रात्मभाव्यसाक्षात्कारानन्तरम्, इदमेव कुत इत्यत आह—धरणीं भित्त्वा स्थूलदेहं विहाय ब्रह्मसंमिता ईशसाम्यं प्राप्ता मूर्तयः सूत्रविभूतयः चेष्टितुमारब्धाश्चेद्दश दिशः प्रपद्यन्ते। अस्यामवस्थायां योगी सार्वात्म्यात् सर्वविद्भवतीति भावः ॥ २१ ॥ **इतीति**। यतो विद्वान् सर्वात्मा इति हेतोः एते पार्थवाः पृथुभ्यो भूतेभ्यो जातत्वात् व्यावहारिकार्था ब्रह्मणा योगिनैव निर्मिताः व्युत्थाने संप्रज्ञाने च तत्रैव च लयं यान्ति। सुप्तौ समाधौ च भूमित्वं स्वोपादानत्वं पार्थिवो घट इव नाशे पृथिवीत्वमिति रूपकेणोक्तम् ॥ २२ ॥ कर्मक्षयाद्विमुच्यन्त इत्यनुषज्यते। कर्मक्षयाभावे पुनः पुनरुद्भवन्तीत्यर्थः ॥२३॥ कर्मभ्यो मुक्ताः क्व यान्तीत्यत आह—**तामेवेति**। कर्मगोचरास्तु क्षरात्कर्मणः हेतोः धूमक्षयं धूमादिमार्गगम्यस्थानं पुनरावृत्तिफलं यान्ति। तेऽपि यदि अग्निगर्भा अग्निहोत्रादिप्रधानाः तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि तन्मया वा भवन्ति, नान्यथा ॥२४॥ येन कर्मणा भावाभावसदसद्रूपसंसारः प्रवर्तते यथा तन्तुरिव अच्छिन्नस्ते धूमक्षयमेव यान्तीति पूर्वेणान्वयः। अच्छिन्नत्वमेवाह द्वाभ्याम्—**धूमादिति**। धूमादिमार्गेण पितृलोकं गताः कर्मक्षये ततश्च्युताः आकाशादिक्रमेण धूमत्वं प्राप्य मेघा भूत्वा वर्षधाराभिः पृथिव्यामन्नभूता रेतस्त्वं प्राप्य पुनर्भवन्तीत्यर्थः॥ २५॥

---

१ ख. °भिर्बद्धं वि° । २ ख. °राज्ञातं क्षरं चै° ।

जगती जलात्तु संभूता जगत्येव च यत्फलम्।
फलाद्रसस्तु संजज्ञे रसात्प्राणस्तु देहिनाम्२६
रसश्च तन्मयो जज्ञे यत्तद्ब्रह्म सनातनम्।
प्रधानं ब्रह्म चोद्दिष्टं बहुभिः कारणान्तरैः।
ब्राह्मणैस्तपसि श्रान्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ २७
अव्यक्ताद्व्यक्तिमापन्नं स्वेन भावेन भारत।
अन्तःस्थं सर्वभूतेषु चरन्तं विद्यया सह ॥ २८
कर्म कर्तेति राजेन्द्र विषयस्थमनेकधा।
नोपलभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषैः
उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
निःसृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमुक्त इवांशुमान्३०
चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वैर्निष्परिग्रहैः।
योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम्॥ ३१
प्रादुर्भावं क्षयं चैव भूतस्य निधनं तथा।
विधत्ते शतशो ब्रह्मा संक्षये च भवेत्तदा॥ ३२
कर्मणः कर्मयोगज्ञो भूतेभ्यो नात्र संशयः।
अविनाशाय लोकस्य धर्मस्याप्यायनेन च॥
युगं द्वादशसाहस्रं सहस्रयुगसंहितम्।
एतद्ब्रह्मयुगं नाम युगानां प्रथमं युगम्॥ ३४
सहस्रयुगयोरन्ते संहारः प्रलयान्तकृत्।
सूक्ष्मं भवति लोकानां निर्विकारमचेतनम् ३५
तथा प्रलयमापन्नं जगत्सर्वं सनातनम्।
ब्रह्म संपद्यते सूक्ष्मं निमित्तं कारणैर्गुणैः॥ ३६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

---

जलात् जलं प्राप्य सम्भूता संयुक्ता फलं व्रीह्यादि। जगत्येव पृथिव्येवेति तस्य चेतनत्वं निरस्यति ॥ २६ ॥ फलादुत्पन्नो रसो रेतः तन्मयं ब्रह्म चैतन्यं गर्भः ब्रह्मद्वारैव देहादेश्चैतन्यं न चेतनान्तरसद्भावकृतम्। '**नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा**'इति चेतनान्तरनिषेधात्। अत एव ब्रह्मैव प्रधानमित्याह—**प्रधानमिति**। कारणान्तरैः युक्त्यन्तरैः,यदि निर्विशेषाश्चेतनाः बहवः स्युस्तर्हि वैधर्म्याभावात्तेषां भेदासिद्धिः, यदि सविशेषास्तर्हि स्वाश्रयनाशमन्तरेण विशेषानाशान्मुक्तिसिद्धिरित्यादिभिः ॥ २७ ॥ कथं तर्हि निर्विशेषस्यापि संसारित्वमत आह—**अव्यक्तादिति**। अव्यक्तात् मायातः स्वेन भावेन अनादिसंस्कारेण विद्यया ब्रह्माकारचित्तवृत्त्या सह चरन्तं प्रकाशमानम् ॥ २८ ॥ कस्तर्हि कर्ता भोक्तेत्यत आह—**कर्मेति**। कर्म दृश्यं कर्ता साभासाहङ्कारः, इदं द्वयमपि विषयस्थमेव न त्वविषयचिदात्मस्थं, कर्तुरप्याभासरूपत्वेन दृश्यत्वात्। अनेकधा भासमानमपि चक्षुर्भ्यां नोपलभ्यते मायानगरमिव वीतचक्षुःपटलैरधिकारिभिः ॥२९॥ ज्ञानिभिस्तु तदेवोपलक्ष्यते कर्माद्यात्मना कनकमिव कुण्डलाद्यात्मना। तथा च वृद्धवचनम्—" सकलवाङ्मनसातिगता चितिः सकलवाङ्मनसव्यहारभाक्" इति। यद्वा चक्षुर्भ्यां भ्रुवोर्मध्ये योजिताभ्यां तस्मात् निःसृतमाविर्भूतं ब्रह्मोपलभ्यत इति योजना ॥ ३० ॥ पक्षिवदित्यसङ्गत्वं सूचितम् ॥ ३१॥ **प्रादुरिति**। भूतस्य भूतजातस्य प्रादुर्भावम् उत्पत्तिं क्षयम् ऐश्वर्यं कुर्वद्रूपतां, निधनं नाशं, संक्षये प्रलये, भवे सृष्टौ, ब्रह्मा ब्रह्मवित् ॥३२॥ जगज्जन्मादिहेतुत्वेन योगिन ऐश्वर्यमुक्त्वा कर्मफलविभाजकत्वेनापि तदाह—**कर्मण इति**। योगज्ञो भूतेभ्यः कर्मणो योगादेः सुखभाजकत्वं विभजत इति शेषः। धर्मस्याप्यायनेन लोकस्याविनाशायेति योज्यम्। अस्यैव प्रीत्यै धर्मः क्रियते अनेनैव प्रीतेन लोको रक्ष्यत इत्यर्थः ॥३३॥ **युगमिति**। कालमानमविवक्षितम्। हिंसाशून्ययोगजधर्म एव चतुष्पात् ब्रह्मप्रापकं युगं समयः। यदैव ईदृग्धर्मप्रवणं चित्तं तदेव कृतं प्रवृत्तमिति ज्ञेयमिति भावः ॥ ३४ ॥ अनेकैरेवंविधैः कृतैः प्रलयान्तकृत् कालस्याप्यन्तकर्ता संहारो महाप्रलयो मुक्त्याख्यो भवति। यथोक्तम्—"अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्।" इति। तदा हि लोकानां स्वरूपं सूक्ष्मं भवति सत्तामात्रमवशिष्यते। तदेव निर्विकारम् अचेतनं च चैतन्याभावात्। "**यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति**" इत्यविद्यावस्थायां चेतनामुक्त्वा "**यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्**" इति कैवल्ये द्रष्टृदृश्ययोर्लोपोपेतानि विशेषचिन्मात्रावशेषश्रुतेः ॥ ३५ ॥ कारणैः सत्त्वादिभिर्गुणैः निर्मितं जगदित्यन्वयः। तच्च सूक्ष्मं संपद्यते प्रलयमापन्नं सत् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

# सगुणब्रह्मविदो युगधर्मकीर्तनम् ।

## १९

जनमेजय उवाच ।
प्राग्वंशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने ।
आद्ययोर्युगयोर्ब्रह्मन्ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मां पृच्छसि मेधया
उपपन्नेन मनसा दैवप्रत्ययसाधिना ॥ २ ॥
ऋद्धिं प्राप्तस्तु भगवान्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ।
भूतानां बहुलत्वं च चकारेहेश्वरः प्रभुः ॥ ३
स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षिप्तः सहसा प्रभुः
अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत ॥ ४
रक्तश्च मोक्षविषये स च ज्ञानमये पदे ।
यस्मात्पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च ॥५
ब्रह्मयज्ञं तु यजते योगाद्वेदात्मकं सदा ।
ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥ ६
ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ।
ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितमिच्छता ॥ ७
तदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते ।
ब्रह्मणो ब्रह्मभूतस्य निर्विकारेण कर्मणा ॥ ८
तदाऽन्तरिक्षं संप्राप्तं निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम्
संहारः सर्वभूतानां नराणां ब्रह्मवादिनाम् ।
ध्रुवमैश्वर्ययोगानां प्रतिपद्यन्ति देहिनः ॥ ९
आकाशैश्वर्यभूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना ।
प्रवर्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च ।
विकारैर्बहुभिः प्राप्तैः संपतद्भिर्महाबलैः ॥ १०

---

१९

युगधर्मा युगैश्चैया ब्राह्मे प्रोक्तं कृते कृतम् ।
कृतं त्रेता द्वापरं च मुनिर्वक्ति त्रयोदशे ॥१॥

**प्राग्वंशमिति** । यद्यपि सर्वो योगी सत्त्वोत्कर्षे च मुक्तो भवति तथापि पूर्वं मधुकैटभाख्यायिकया योगिनस्तमोरजोभ्यामपि अभिभूयन्त इत्यस्य दर्शितत्वात्, "यया स्वप्नं भयं मोहं विषादं मदमेव च ।" इत्युक्तानां स्वप्नादीनां, "लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा" इत्युक्तानां लोभादीनां च तमोरजःकार्याणां योगेऽपि संभवात् शुद्धसत्त्वमयेऽपि धूमादेर्विघ्नस्य दर्शितत्वे इतरत्र तस्य कैमुत्येन सिद्धत्वाच्च पृच्छति--**प्राग्वंशमिति**। कृतस्योक्तत्वात् कलेर्वर्तमानत्वात् आद्ययोः त्रेताद्वापरयोः रजस्तमसोः प्राक् पराभूतं वंशकार्यं संततिं श्रोतुमिच्छामि । ब्रह्मप्राप्तस्य सगुणब्रह्मविदः ॥१॥ **शृणिवति** । दैवप्रत्ययसाधिना दिव्यज्ञानसाधनशीलेन ॥ २ ॥ योगैकानिष्ठाचित्तः योगात्मा ब्रह्मरूपेण संभव आविर्भावो यस्य स ब्रह्मसंभवः। **चकारेति**। भूतार्थो न विवक्षितः करोतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ उक्तेऽर्थे हेतुमाह--**स्थित इति** । यतः अचलेनैव भावेन ब्रह्मासने ब्रह्मरूपेऽधिष्ठाने स्थितोऽपि सहसा क्षिप्तो रजसेति शेषः । अतो भूतानां बहुलत्वं करोतीति संबन्धः ॥ ४ ॥ **रक्तश्चेति** । स च विक्षिप्तो मोक्षस्य विषयवत्प्रतिबन्धके पदे ज्ञानमये मनोरथमात्रे रक्तश्च भवति । यस्मात् भवन्ति उत्पद्यन्ते प्रभवन्ति स्वकार्यसामर्थ्यवन्ति।सौभरिशरीरादिवत्। अतस्तत्र रक्तत्वं घटत इति भावः ॥५॥ एतच्चैश्वर्यमप्रार्थितमपि प्रवर्तते इत्याह--**ब्रह्मयज्ञमिति** । यज्ञं सदा वेदात्मकं वेदसर्वस्वरूपं ब्राह्माख्यं यज्ञं विष्णुं यजते आराधयति योगाद्योगेन तस्य ब्रह्मणो ब्रह्मभावं प्राप्तस्य तस्मात्स्वयं प्रवृत्तमैश्वर्यं मुमुक्षुणा निरोद्धव्यमिति श्लोकद्वयभावः ॥ ६ ॥ एतच्चैश्वर्यं परोपकारे नियोजनीयं न स्वार्थमित्याह--**तत इति**। ब्रह्मणा ब्राह्मणेन युञ्जानेनेति संबन्धः ॥ ७ ॥ **तदेति** । निर्विकारेण रजस्तमोविकारशून्येन कर्मणा प्रत्याहारादिना युञ्जानो भवति । तदा आकाशमव्याकृतमैश्वर्यं प्रवर्तते न तु व्याकृतं विक्षेपकम् ॥ ८ ॥ ततोऽपि किमित्यत आह--**तदेति सार्धेन** । व्योम सच्चिद्रूपम् अन्तरिक्षमपि तदा निर्मलं निरवद्यं शुद्धं ब्रह्म प्राप्तं भवति । तदेव विशिनष्टि--**संहार इति** । सर्वेषां षष्ठ्यन्तानां संहारो लयस्थानं ध्रुवं कूटस्थमिति प्रतिपद्यन्ति प्रतिपद्यन्ते जानन्ति वेत्तारः वेदलोचनेनेति शेषः । देहिनः जीवस्य ॥ ९ ॥ सकामस्तु योगी वाय्वादिरूपेण भवतीत्याह--**आकाशेति** । संयुगे योगयज्ञे । "यान्येव संग्रामनामानि तानि यज्ञनामानि" इति नैघण्टुकप्रसिद्धेः । वादोऽर्थवादः स्तावकोऽस्यास्तीति वादी तेन वादिना आकाशैश्वर्यम् अव्याकृतैश्वर्यं तद्भावं प्राप्तेन आकाशैश्वर्यभूतेन प्रवर्तमानं ब्रह्म कर्तृ ऐश्वर्यं वायुभूतं करोति । ब्रह्मैश्वर्यवत्या व्योमसंविदा प्रवर्तमानो योगी योगकाले स्वात्मानं वाय्वादिरूपं करोतीत्यर्थः । विकारैः तेजआदिभिः सहेत्यध्याहारः ॥ १० ॥

एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्च समंततः ।
ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ११
शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति ।
निरालम्बो निरालम्बान्समालम्ब्य मनसा ततः
ऐश्वर्यभूतो भूतात्मा चरन्दिवि न दृश्यते ।
चक्षुर्भिर्बहुभिर्लोकैः पुरंदरसमैरपि ॥ १३
ओंकारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तमाः
विभक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते यं पश्यन्ति साधवः ॥
एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम्
अन्तश्चरन्ति भूतानां विद्धि चेतनया सह १५
एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्मसंभवः ।
वायुभूतोऽक्षरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः १६
अरूपी रूपसंपन्नो धातुभिः सह संगतः ।
अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी ॥ १७
एतत्पूर्वमनुध्याय मनसाऽऽपूरयन्निव ।
वेदात्मकं तदा यज्ञं चिन्तयन्तो मनीषिणः १८
ब्राह्मणाः शुचयो दान्ता यशो युञ्जंस्तदन्वयाः
ब्रह्मलोकं काङ्क्षमाणा वैष्णवं पदमुत्तमम् ॥
पदहेतोः क्रियाः सर्वाः कुर्वन्ति विगतज्वराः ॥
न ह्येते प्रसवादाने भवमिच्छन्ति भारत ॥ २०
त्रिभिर्माल्योपहारैश्च प्रतिभावैश्च वै द्विजाः ।
यजन्ति परमात्मानं विष्णुं सत्त्वपराक्रमम् ॥
यजनं विक्रमं चैव ब्रह्मपूर्वाः प्रचक्रिरे ।
ब्रह्मापि वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनैर्नृप ॥ २२
ब्राह्मणैर्ब्रह्मविद्भिश्च ब्रह्मज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः ।
शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२३
धातुभिर्मोक्षकाले च महात्मा संप्रदृश्यते ।
तदेव परमं ब्रह्म वैष्णवं परमाद्भुतम् ॥ २४
रसात्मकं तदैश्वर्यं विकारान्ते प्रदृश्यते ।
घोररूपा विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः ॥

संवृत्तैर्निष्पन्नैरपि विकारैर्निरुद्धैः ध्रुवमैश्वर्यं पूर्वोक्तं निर्मलं ब्रह्म ॥ ११ ॥ विकारनिरोधे तु कवचवत् स्थूलशरीरत्यागेन आकाशगमनमदृश्यत्वं चाप्नोतीत्याह द्वाभ्याम्-**शरीरादिति** । निरालम्बान् व्याघ्रादीन् । मनसेति स्वप्रसादश्यं दर्शितम् ॥ १२ ॥ **ओमिति**। यं योगिनं ते साधवः पश्यन्तीति योजना। ये ओंकारवाच्यं व्यस्तसमस्तरूपम् अउम् ओमित्येवंभूतं विराट्सूत्रान्तर्यामिशुद्धस्वरूपं पूर्वस्योत्तरत्र प्रविलापनेन अधीयन्ते प्राप्नुवन्ति । शब्विकरणस्य गत्यर्थस्य इङो रूपम् ॥ १४ ॥ एतत्प्रणवाख्यं ब्रह्म तत्प्रापकत्वात् । चेतनया चिद्भावविशिष्टवृत्त्या ॥ १५ ॥ ओंकारमेव स्तौति-**एष इति द्वाभ्याम्** । एष ओम् इति शब्दः महानादः सर्ववर्णानामभिव्यञ्जकः पुराणो नित्यः ब्रह्मणः संभव एकीभावो येनालम्बितेन स तथा । "**एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति**" इति श्रुतेः । अयमेव परा पश्यन्तीसंज्ञकशुद्धशबलब्रह्मात्मा सन् वायुभूतो मध्यमारूपः अक्षरम् अक्षरत्वं प्राप्तः मातृकामयवैखरीरूपो भवतीत्याहुर्ब्राह्मणाः ॥ १६ ॥ अरूपी रूपरहितोऽप्ययं प्रणवः रूपेण वैखर्यात्मकत्वेन संपन्नः । तत्र हेतुः-धातुभिः सह संगतः । "**अन्नमयं हि सोम्य मनः, आपोमयः प्राणः, तेजोमयी वाक्**" इति श्रुतेः । "मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।" इत्यादिशिक्षोक्तप्रकारेण तेजोबन्नयोगाच्छब्दोत्पत्तिदर्शनात् । अयमेवोपाधेः सौक्ष्म्याज्जीवरूपेण सूक्ष्मतरत्वाच्चान्तर्यामिरूपेणान्तर्देहान्तःस्थित्वा चरति विषयान्भुङ्क्ते। यतः कामकार इच्छा तत्करः स्वतन्त्रेच्छः, वशी असङ्गः ॥ १७ ॥ एतदिति एतत्प्रणवात्मकं ब्रह्म पूर्वं शास्त्राचार्योपदेशमनुचिन्तयित्वा वेदात्मकं श्रुतिसारभूतं यज्ञं योगं चिन्तयन्तो भावयन्तः मनसा संकल्पेन स्वोपाधिरूपेण आसमन्तात् आपूरयन्निव कृतवन्त इव व्यापकत्वं प्राप्ता इवेत्यर्थः । इवशब्दो व्याप्यभावसूचकः। तेन भित्तिचित्रवद्व्यापकत्वमपि नास्त्येवेत्यर्थः ॥ १८ ॥ यशो ब्रह्म तेन सह युञ्जते ऐक्यं प्राप्नुवन्ति यशोयुञ्जः। समासेऽपि च्छान्दसो नुम्। यतः तदन्वयाः ब्रह्मप्रसूताः सैन्धवखिल्यवत्स्वोपादान एव लीयन्ते इत्यर्थः । ब्रह्माख्यं लोकम् ॥१९॥ **पदेति**। प्रसवादाने जन्मग्रहणनिमित्तं भवं जन्म एते न हीच्छन्ति किंतु ज्ञानार्थमेव ॥२०॥ त्रिभिर्माल्योपहारैः-माल्यवद्विश्वतैजसप्राज्ञानाम् उपहारैः समर्पणैर्विलापनैरिति यावत्। प्रतिभावैः प्रतिभासमात्रैः। माल्यैरिति समासैकदेशस्यापि विशेषणम्॥२१॥ ब्रह्मपूर्वाः वेदप्रमाणमेव पूर्वं मुख्यं येषां ते यजनं योगं विक्रमं योगैश्वर्यं च चक्रिरे । यस्मात् ब्रह्मा ब्रह्मवित्, वैष्णवं तेजः ब्रह्मैव । तत्र प्रमाणम् । **वेदोक्तैरिति । "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"** इत्यादिभिः ॥२२॥ ब्राह्मणैर्यथोक्तविशेषणैः ॥२३॥ धातुभिस्तेजोबलात्मकैः शरीरद्वयेन मोक्षकाले यः परमात्मा संप्रदृश्यते तदेव रसात्मकम्। "**रसो वै सः**" इति श्रुतेः । परमानन्दात्मकम् ऐश्वर्यं, "**एषाऽस्य परमा संपत्**", इत्यादिश्रुत्या परमत्वेन स्तुतं विकारान्ते विकाराणां पूर्वोक्तानां राजसानां वाय्वादिरूपाणामन्ते विलये सति प्रकर्षेण दृश्यते योगिभिः । एवं लोभप्रवृत्त्यादिजनकानां राजसविकाराणामन्ते पुनः सत्त्वोत्कर्षादात्मदर्शनमुक्तम् । इदानीं तामसान् भयादीन्योगविघ्नान्विकारान्प्रस्तौति-**घोररूपा इत्यादिना** ॥२५॥

१ ख. सत्यप० । २ ग. ०जोबलयो० ।

संछाद्यातीव तोयेन क्षुभ्यमाणो विचेतनः
ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव शीतोष्णाभिर्विकारतः
महार्णवगतश्चैव दह्यते न च सज्जते।
मग्नश्चैव महानद्याः सलिले नैव सीदति ॥ २७
सीदमानश्च सलिले स शीते पात्यते बलात्।
आसनाच्छादनाच्चैव मुच्यमानो विचेतनः २८
श्वभ्रे प्रपद्यमानश्च तोयेन परिषिच्यते।
शुक्लवर्णेन बहुना स्रोतसा मूर्ध्नि सर्वशः २९
ऊर्ध्वं ज्योतिरवेक्षंश्च शुक्लैः पीतैश्च बाध्यते।
वारिपूर्णैः सुगम्भीरैर्विद्युद्भिरिव भासितैः॥
एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः।
ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ३१
रसात्मकं तदैश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम्।
सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुपागतम् ॥ ३२
रसांश्च विविधान्योगात्संसिद्धः सृजते प्रभुः
धात्वर्थं सर्वभूतानां योगप्राप्तेन हेतुना ॥ ३३
तेजसो रूपमैश्वर्यं विकारैः सह वर्धते।
आत्मनो विघ्नजननं स्वस्थो ब्राह्मणकारणे॥
उग्ररूपैर्विरूपैश्च हन्यते दण्डपाणिभिः।
घोररूपैः सुगम्भीरैः पिङ्गाक्षैर्नरविग्रहैः ॥ ३५
नेत्रं समुद्धरन्भीमं जिह्वाग्रं चास्य विन्दति।
नदन्ति युगपन्नादं जृम्भमाणाः पुनः पुनः॥
पुनरेव तदा भूत्वा वायुरूपस्तदाभवन्।
नृत्यमानाः प्रगायन्ति तर्पयन्तो विशेषतः ३७
स्त्रीभूताश्च ततः सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे।
कण्ठेषु बहुरूपत्वाद्विघ्नैश्चैव प्रलोभयन्॥ ३८
मधुरैरभिधानैश्च व्याहरन्ति न भीतवत्।
पतन्ति युगपत्सर्वे पादयोर्मूर्धभिर्युताः॥ ३९
प्रसादं कांक्षमाणाश्च योगस्यान्तरविघ्नतः।
बहुप्रकारं कथयन्नृत्यन्ति च तरन्ति च॥ ४०
एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः।
ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ४१
तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मयः।
तेजोरूपकमैश्वर्यं जनितास्तेजाबिन्दवः॥ ४२
ज्योतींषि चैव संवृत्ता आकाशे गुणसंवृताः
चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्॥
चन्द्रसूर्यात्मकं दिव्यं ज्योतिः सघनमुत्तमम्।
एतद्विभ्राजते लोके कालचक्रं ध्रुवं वरम् ४४
अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतुसंवत्सराण्यथ।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च कलाः काष्ठास्तथैव च॥
आहोरात्रप्रमाणं च निमिषोन्मेषणं तथा।
ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः॥ ४६

अथ पार्थिवमैश्वर्यं
विकारग्रहसंभवम्।
योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ता
यान्त्यन्ते ह्यचलासनात्॥ ४७

अलोभाच्छिद्यते सद्यो वेपमानोऽनुकीर्त्यते।
सीदते वसुधामध्ये भिद्यमानः पुनः पुनः॥४८
भूतानां बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभिः।
विषयैर्युज्यते क्षिप्रं संक्षेपात्समवरुध्यते॥ ४९
ततः पार्थिवमैश्वर्यं सेवमानश्च सर्वतः।
मूर्तिमद्भिश्च बहुधा धातुभिः स च हन्यते ५०
शक्तितोमरनिस्त्रिंशैर्गदाभिश्चाप्यनेकधा।
असिभिः पात्यते चैव क्षुरधारैः सहस्रशः ५१

---

विकारा व्यथयन्तीत्युक्तं तां व्यथामेवाह पञ्चभिः— **संछाद्येत्यादिभिः** ॥ २६ ॥ **एतैर्विकारैरिति**। व्याख्यातार्थः श्लोकः ॥ ३१ ॥ **रसात्मकमिति**। जिह्वाग्रशब्देन तत्साध्यो रसास्वादो लक्ष्यते ततोऽनेकविधमैश्वर्यं भवति ॥ ३२ ॥ धात्वर्थं शरीरभोगार्थं सर्वभूतानामैश्वर्यमिति पूर्वेणान्वयः ॥ ३३ ॥ तेजसैश्वर्यप्रयुक्तान् विघ्नानाह—**तेजस इति**। ब्राह्मणस्य ब्रह्मविदः कारणे मोक्षसाधने योगे स्वस्थः स्वस्थस्येति आत्मन इत्यस्य विशेषणम्। स्वशब्दपूर्वात्तिष्ठतेः क्विप्। ङसि "आतो धातोः" इत्यालोपः सोमपावत् ॥ ३४ ॥ जिह्वाग्रं विन्दति अवयवशो भिनत्तीत्यर्थः। "विदि अवयवे" अस्य रूपम् ॥ ३६ ॥ प्रलोभयन्। अडभावश्छान्दसः लोभयन्तीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ तरन्ति च योगिनं जयन्ति चेत्यर्थः ॥ ४० ॥ एतैरिति व्याख्यातम् ॥ ४१ ॥ **तदर्चिष इति**। तत्र तेजोरूपा अपि त एव जलबिन्दवो भवन्ति ॥ ४२ ॥ गुणैः सत्त्वादिभिः संवृताः योगिनः ज्योतींषि संवृत्ताः भवन्ति ॥ ४३ ॥ चन्द्रसूर्यात्मत्वं प्राप्य सघनं समेघमण्डलं कालचक्रं ध्रुवम् अभिलक्ष्य चरन् स एव भवति। स एव कालस्य प्रवर्तको भवतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ अर्धमासादिरूपश्चायमेव भवतीत्याह—**अर्धेति** ॥ ४५ ॥ **अथेति**। विकाराः रजस्तमोमयास्तेषां ग्रहः स्वीकारस्तत्संभवम् ॥ ४७ ॥ अलोभाच्छिद्यते ऐश्वर्यमिति शेषः। वेपमानो विघ्नात् भीतस्तु अनुकीर्त्यते वाच्यो निन्द्यो भवतीत्यर्थः॥४८॥ संक्षेपात् समवरुध्यत इत्यक्षराधिक्यमार्षम्॥४९

भिद्यते चैव बाणाग्रैः सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः ।
एभिर्विकारैर्निर्वृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ५२
ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ।
ततः पार्थिवमैश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारतः ५३
प्रादुर्भवति संजाते समाधौ प्रलयं गते ।
दिव्यं गन्धं समाघ्राय
दिव्यार्थांस्ताञ्छृणोति च ॥ ५४
दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते न च भिद्यते ।
गच्छन्त्सुकृतिनां चान्तः प्रधानात्मा क्षरन्निव

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## मनोधारणविचारः ।

### २०

वैशम्पायन उवाच ।

ततोऽन्यां धारणां गत्वा मनसा स पितामहः । ब्रह्मकर्मसमारम्भं निर्मुक्तेनान्तरात्मना ॥ १

एभिः भौमैः ॥ ५२ ॥ **तत इति** । विकारतो निर्मुक्तस्य पार्थिवमैश्वर्यमाविर्भवति॥५३॥समाधौ संजाते विकारे च प्रलयं गते सति दिव्यगन्धादिसंविदो भवन्तीत्याह–सार्धेन । दिव्यपुरुषैः मुक्तैः सह भिद्यते यावद्देहपातम् ऊर्ध्वं तु न भिद्यते कैवल्ये ऐकात्म्यप्राप्तेः ॥ ५४ ॥ अन्तः गच्छन् सुकृतिनामन्तःकरणमपि प्रविशति । यतः प्रधानात्मा प्रधानजयी क्षरन्निव प्रधानवत्परिणममाण इति सर्वान्तःकरणरूपो भवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

२०

**चतुर्दशे पृथग्भूतधारणा भीतिदा यतः ।**
**अतः सूत्रे मनो धार्यमभयायेति वर्ण्यते ॥ १**

**तत इति** । यतो भेददर्शनमयी एकैकभूतधारणा क्षुद्रफलदा योगविघ्नकरी च पूर्वोक्तरूपेण । ततो हेतोः अन्यां तद्विपरीताम् अहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते। "**स एवास्य परमो लोकः**" इति श्रुतिप्रसिद्धां समष्टिधारणां गत्वा प्राप्य ततो व्यापकः सर्वात्मा भवतीति शेषः। पितामहः उक्तरीत्या शुद्धचिन्मात्ररूपोऽपि सन्मनसा उपाधिनैव सार्वात्म्यं गतः न तु स्वतः । कीदृशेन मनसा ब्रह्मकर्म ब्रह्मप्रापकं कर्म उक्तविधम् आसनादिधारणान्तं समारम्भं सम्यगारभ्य । आरम्भमिति णमुलन्तम् । निर्मुक्तेन बाह्यरूपादिभ्यः व्यावृत्तेन अत एवान्तरात्मना अन्तरेव हार्दाकाशादौ आत्मा स्वरूपमस्यास्ति न बहिश्चक्षुरादिद्वारा रूपादौ। इदमत्र तत्त्वम्–

इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

इत्यादिस्मृतिभ्यः सर्वेभ्यः सूक्ष्मतमः परमात्मा । अर्थास्तु इंद्रियेभ्यः सूक्ष्मा अपि तैर्गृहीताः सन्तो लोचनोत्तेजनेन पुस्तकाक्षरवत् स्थूला एवावभासन्ते । तथा आत्मानतिरिक्ता अप्यतिरिक्तवद्भासन्ते स्वकर इव दर्पणेन बालस्य । अन्यथा योगिनः समाधौ सार्वज्ञं न स्यात् सर्वस्य स्वरूपादन्यत्वेन "**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति**" इत्येकविज्ञानात्सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाश्रुतेरुपरोधश्च स्यात् । योगिनां सार्वज्ञस्य सर्वसंमतत्वाच्च न तदपलापः कर्तुं शक्यः । तस्मादिंद्रियाणामुपसंहारे अर्थानां स्थूलत्वमनात्मत्वं चापगच्छतीति युक्तमुक्तमन्यधारणां गत्वा ततो व्याप्तो भवतीति । सूक्ष्मत्वं चात्र कालिकपरिमाणरहितम् । तथा हि कनकादेः कुण्डलादिर्धर्मपरिणामः स्वरूपाविनाशेऽपि रूपान्तरापत्तिरूपः, तथा कुण्डलाद्युत्पत्तेः प्रागूर्ध्वं चानागतत्वातीतत्वरूपौ उत्पन्नौ वर्तमानस्वरूपश्चेति त्रेधा लक्षणपरिणामः स्वरूपप्रच्यवाप्रच्यवासिद्धिरूपः,तथा उत्पन्नस्य नूतनत्वं पुराणत्वाद्यवस्थापरिणामः स्वरूपोपचयापचयलक्षणः । एतौ द्वावपि कालाधीनावेव । अत एव सूक्ष्मे उक्तरूपे सर्वं सर्वत्र सर्वदा सर्वावस्थमस्तीति तदवस्थानां योगिनां तस्यापरोक्षमिति प्रसिद्धम् । अतः समष्टिसूक्ष्मे चित्तधारणा श्रेयस्करी, धारणान्तरेषु भेददृष्टिगर्भितेषु भयादिदर्शनात्, "**यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति तत एवास्माकं भयं विहाय कस्माद्विभेष्यति द्वितीयाद्वै भयं भवति**" इति श्रुतेरेस्यान्तदर्शनाच्च ॥१॥

सर्वाङ्गधारणां कृत्वा मनसा प्रहसन्निव ।
ब्रह्मयोगेन च ब्रह्मा सृजते मनसा प्रजाः ॥ २
चक्षुषो रूपसंपन्ना ह्यप्सराः सृजते प्रभुः ।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुचित्राम्बरवाससः ३
तुम्बुरुप्रमुखान्सर्वाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
नृत्यवादित्रकुशलान्कुशलान्सामगीतिषु ॥ ४
ब्रह्मयोगेन योगज्ञः स्वयंभूर्भगवान्प्रभुः ।
चारुनेत्रां सुकेशान्तां सुभ्रूं चारुनिभाननाम् ॥५
पद्मेन शतपत्रेण चारुणा सुविराजिताम् ।
स्वक्षां शुचिगिरं सेव्यां
ब्राह्मीं मूर्तिमतीं श्रियम् ॥ ६
ससृजे मनसा ब्रह्मा सम्यक्प्रोक्तेन चेतसा ।
भावयोगेन भूतात्मा सर्वप्राणभृतां नृप ॥ ७
चक्षुषो रूपसंपन्नाः सृजन्सोऽप्सरसः प्रभुः ।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुवासः सुप्रवादितान्
गानप्रभाषं संचक्रे गन्धर्वाणामशेषतः ।
अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्म प्रभाषितम् ९
पञ्चांं सृजति भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च
नरकिंनरयक्षांश्च पिशाचोरगराक्षसान् ॥ १०
गजान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च मृगांश्चैव सहस्रशः ।
तृणजातींश्च बहुधा भावहेतोश्चतुष्पदान् ॥ ११
ये तु हस्तान्निखादन्ति कर्मप्राप्तेन हेतुना ।
हस्तेभ्यः कर्म ससृजे मन्तव्यं मनसा तथा
वायुना स विसर्गं च भूतानां सुखमिच्छता
उपतस्थे तदानन्दं पञ्चेन्द्रियसमाधिना ॥ १३
हृदयादसृजद्गावो बाहुभ्यां पक्षिणस्तथा ।
अन्यानि चैव सत्त्वानि तैस्तैर्वेषैः पृथग्विधैः
ऋषिं त्वङ्गिरसं चैव मुनिं ज्वलिततेजसम् ।
ब्रह्मवंशकरं दिव्यं व्यतिषिक्तषडिन्द्रियम् १५
भ्रुवोऽन्तरादजनयद्योगाद्योगेश्वरः प्रभुः ।
ब्रह्मवंशकरं दिव्यं भृगुं परमधार्मिकम् ॥ १६
ललाटमध्यादसृजन्नारदं प्रियविग्रहम् ।
सनत्कुमारं मूर्ध्नश्च महायोगी पितामहः १७
अभिषिक्तं तु सोमं च यौवराज्ये पितामहः ।
ब्राह्मणानां च राजानं शाश्वतं रजनीश्वरम्

---

**अस्याः फलमाह**—सर्वाङ्गधारणां सर्वम् अंगेष्वेवास्यास्ति स सर्वांगः सूत्रात्मा, प्रहसन्निव मौढ्यमाहात्म्येन विस्मयात् । मनसेत्यस्यावृत्त्या सूत्रात्मतायाः सृज्यस्य च कल्पितत्वमुक्तम् । ब्रह्मणि सूत्रे योगे ऐक्यं ब्रह्मयोगस्तेन ॥२॥ **चक्षुषेति** । अत्र अंगविशेषो न विवक्षितः सर्वस्याङ्गस्य सर्वात्मत्वेन सर्वोत्पत्तिहेतुत्वौचित्यात् । अप्सरा इति आकारान्तत्वमार्षम् "अप्सरासु च या मेघे" इति दर्शनाद्वा ॥ ३ ॥ स्वक्षां दिव्यलोचनरूपां शुचिगिरं निष्कलङ्कां वेदवाणीम् । "**सा हि श्रीर्ब्रह्मविदाम्, ऋचः सामानि यजूंषि, सा हि श्रीरमृता सताम्**" इति श्रुतेः ॥ ६ ॥ **ससृजे इति** । सृष्टिरत्र संप्रदायप्रवृत्तिमात्रं न त्वभिनवोत्पत्तिः वाचा विरूपनित्ययेति वेदस्य नित्यत्वश्रवणात् । अत एव प्रोक्तेनेति विशेषणम् ईश्वरप्रोक्तेनेत्यर्थः । "**यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै**" इति सिद्धप्रधानश्रवणात् अस्यैव सर्वेश्वरत्वात् । जीवानामाशयानुरोधेनायं सृजति न स्वस्य भोगार्थमित्याह—**भावेति** ॥ ७ ॥ गानं प्रभाष्यते व्युत्पाद्यतेऽनेनेति गानप्रभाषं गान्धर्वशास्त्रं तथा तथा ब्रह्मणि वेदे प्रभाषितं गानं सामाख्यम् । चक्षुष इति श्लोकद्वयं पूर्वोक्तस्यैव विवरणम् ॥ ९ ॥ ये तु हस्तात् हस्ते आदाय । ल्यब्लोपेऽधिकरणे पञ्चमी । हस्तेति पाठे विश्वा भूतानीतिवद्विभक्तेः पूर्वरूपमार्षम् । निखादन्ति भक्षयन्ति । कर्मप्राप्तेन कर्मलब्धेन हेतुना कारणेन अदृष्टेन ॥ १२ ॥ वायुना प्राणादिरूपेण विसर्गं विविधप्राणनादिकार्यं सृष्टिं ससृजे इति पूर्वेणान्वयः । एवं राजसीं सृष्टिं कुर्वतः कथं मुक्तिः स्यादित्याकुलमाश्वासयति । पञ्चेन्द्रियाणां समाधिः निरोधस्तेन हेतुना आनन्दं परमात्मानम् उपलक्ष्य तेन तस्थे स्थितं लीलया सृष्टिं कुर्वन्नपि ब्रह्मसामीप्यं प्राप्तत्वान्मुक्त एवेत्यर्थः ॥ १३ ॥ गावः गाः । प्रथमा द्वितीयार्थे । वेषैरेव नटवत् न तु परिणामैः।यदवोचं मूलकारणमेवाजन्त्यात्कार्यात्मनट इव तत्तद्रूपेण भातीति तदित एवोत्थितम् ॥ १४ ॥ व्यतिषिक्तानि श्रितानि षट् इन्द्रियाणि यस्य स व्यतिषिक्तषडिन्द्रियस्तम् । अस्माकं हि शब्दादयः श्रोत्रादीनां प्रतिनियताः विषयाः । सार्वात्म्यकाले तु सर्वमिन्द्रियं सर्वविषयग्राहकं भवति । यथोक्तं वासिष्ठे—

न सर्वात्मनि तु यत्रैव छाया तत्रैव चातपः ।
संभवति चेत्तत्स कथं सर्वात्मताभियात् ॥ इति ।

॥ १५ ॥ तमङ्गिरसं भ्रुवोरन्तरात् ॥ १६ ॥ भृगुः ललाटमध्यात् । नारदं सनत्कुमारं च मूर्ध्नः ॥ १७ ॥

---

१ ख. °तिरिक्त° ।

ससंक्षेपं सविस्तारं नियमैर्बहुभिश्चितम् ।
उपायैश्च कथितं क्रतुभिश्चैव शोभितम् ॥ २

वैशम्पायन उवाच ।

एतत्ते कथयिष्यामि यज्ञकर्मभिरर्चितम् ।
दानधर्मैश्च विविधैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥ ३
तेऽङ्गुष्ठमात्रा मुनय आदत्ताः सूर्यरश्मिभिः ।
मोक्षप्राप्तेन विधिना निराबाधेन कर्मणा ॥ ४
प्रवृत्ते चाप्रवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणाः ।
परायणस्य संगम्य ब्रह्मणस्तु महीपते ॥ ५
श्रीवृताः पावनाश्चैव ब्राह्मणाश्च महीपते ।
चरितब्रह्मचर्याश्च ब्रह्मज्ञानावबोधिताः ॥ ६
पूर्णे युगसहस्रान्ते प्रभावे प्रलयं गताः ।
ब्राह्मणा वित्तसंपन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिताः
व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसंभवः
दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः ।
अक्षराद्ब्राह्मणाः सौम्याः क्षरात्क्षत्रियबान्धवाः
वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूम्रविकारतः ९
श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः ।
अभिनिर्वर्तिता वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना१०
ततो वर्णत्वमापन्नाः प्रजा लोके चतुर्विधाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते
एकलिङ्गाः पृथग्धर्मा द्विपदाः परमाद्भुताः ।
यातनायाभिसंपन्ना गतिज्ञाः सर्वकर्मसु ॥ १२
त्रयाणां वर्णजातानां वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृताः
तेन ब्राह्मणयोगेन वैष्णवेन महीपते ॥ १३

---

यत्र सर्वधर्मफलान्तर्भावः।यथा "**कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेवैनं सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति**" इति कृताय निदर्शनेन श्रुत्या प्रोक्तः । क्षत्रस्य धर्मस्य "**तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः**" इति धर्मस्य मुख्यक्षत्रत्व श्रवणात् युगं युज्यते अनेन तद्युगं स्वर्गादिफलप्रदत्वलक्षण-माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ॥१॥ एतदेव विशिनष्टि-**संक्षेपमिति**॥२॥ **एतदिति**। एतत् धर्मस्य माहात्म्यं यज्ञकर्मभिः यज्ञात्मकमेव कर्म येषां न तूपास्त्यात्मकं ते यज्ञकर्माणः कर्मठाः तैरर्चितं पूजितं दानधर्मैः "**उच्चादिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सहते सूर्येण । हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोमप्रतिरन्त आयुः**" इतिश्रुतेर्दानजप्रभावैः प्रजाभिः "**यस्मिन् जातः एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव स तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति पुत्रकामाह्वाप्याख्यापयेरन् लभन्त हे पुत्रान्**" इति जातेष्टिशौनःशेपाख्यायनफलैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥ ३ ॥ **ते इति**। ते ब्राह्मणा वृत्तसंपन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिता भवन्तीति योजना । के ते ? य अङ्गुष्ठमात्रा इत्यल्पप्रमाणत्वेन उत्क्रान्त्यादियोग्याः। अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् इत्यारण्यकोक्तेः । न तु "**यः एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति**""**स इदं सर्वं भवति**" इति श्रुतिप्रसिद्धविद्याफलसार्वात्म्यभाजः । ते यज्ञकर्माणः विशिष्टधर्मेण सूर्यरश्मिभिरादत्ताः सूर्यमण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं गता अपीत्यर्थः। मोक्षप्राप्तेन मोक्षप्रत्यासन्नेन विधिना यथाशास्त्रम् ॥ ४ ॥ प्रवृत्ते यज्ञादौ अप्रवृत्ते शमादौ ब्रह्मपरायणाः वेदैकशरणाः परायणस्य ब्रह्मणः । कर्मणि षष्ठी । संगम्य ईश्वरप्रीतिमुद्दिश्य वेदोक्तकर्मपरा इत्यर्थः ॥ ५ ॥ श्रीवृताः श्रिया, "**ऋचः सामानि यजूꣳषि । सा हि श्रीरमृता सताम्**" इति श्रुत्या वृताः । ब्रह्मज्ञानेन परोक्षज्ञानेन ॥ ६ ॥ पद्मासनायुरवधि ब्रह्मलोके स्थित्वा पूर्वस्मिन् कल्पे ये लयं गतास्तेऽग्रिमकल्प उक्तविशेषणविशिष्टा ब्राह्मणा भवन्ति ॥ ७ ॥ **व्यतिरिक्तेति** । तेषां ब्राह्मणानां मध्ये यो योगात्मा सन् व्यतिरिक्तेन्द्रियो देहेन्द्रियासङ्गेन स्वप्न इवान्तःप्रज्ञो भूत्वा चतुर्भुजादिलक्षणं विष्णुम् आत्मत्वेनाभिमन्यते सोऽपि भेददर्शी, समष्ट्युपास्तिराहित्यात् ।

ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥

इति स्मृत्युक्तक्रममुक्त्यनधिकारादस्मिन्कल्पे ब्रह्मपुत्रो दक्षो भूत्वा प्रजाः सृजते ॥ ८ ॥ अक्षरं शुद्धसत्त्वमयत्वान्निष्कामो धर्मः श्वेतः सुधावत्। क्षरं सत्त्वरजोमयत्वादुभयमिश्रो धर्मः रक्तः । तदुभयसंघातवत् विकारो रजोमयत्वात्सकामो धर्मः पीतो हरिद्रावत् । धूमः तमोमयत्वाद्विधर्मः कृष्णः धूमवत् ॥ ९ ॥ **तत इति** । ततो गुणवर्णोपचारात् ॥ ११ ॥ एकलिङ्गाः तुल्याकृतयः यातनाय कर्मफलभोगाय संपन्नास्तेन तेन वर्णेन ॥ १२ ॥ येन कारणेन त्रयाणामेव वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृतास्तेन कारणेन वः युष्माकं त्रयाणां ब्राह्मणक्षत्रियविशामेव, वैष्णवेन योगेन ब्रह्मास्ति विष्णुभक्त्या वेदोऽस्तीति त्रैवर्णिकत्वं भगवत्कृपैकफललभ्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥

अज्ञया तेजसा योगात्तस्मात्प्राचेतसः प्रभुः।
विष्णुरेव महायोगी कर्मणामन्तरं गतः ॥१४
ततो निर्माणसंभूताः शूद्राः कर्मविवर्जिताः
तस्मान्नार्हन्ति संस्कारं न ह्यत्र ब्रह्म विद्यते१५
यथाग्नौ धूमसंघातो ह्यरण्या मथ्यमानया।
प्रादुर्भूतो विसर्पन्वै नोपयुञ्जन्ति कर्माणि ॥१६
एवं शूद्रा विसर्पन्तो भुवि कार्त्स्न्येन जन्मना
नासंस्कृतेन धर्मेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥ १७
ततोऽन्ये दक्षपुत्राश्च संभूता ब्रह्मयोनयः।
बलवन्तो महोत्साहा महावीर्या महौजसः१८
पित्रा प्रोक्ता महात्मानो दक्षिणा यज्ञकर्मणा
अन्तमिच्छाम्यहं श्रोतुं धात्र्याः पुत्रा बलो ह्यहम्
ततो विधास्ये तत्त्वज्ञाः प्रजानां विपुलं बलम्
विपुलत्वाद्धि क्षेत्राणां ममापि विपुलाः प्रजाः
न तेषां दर्शयद्देवी चक्षुषा रूपमात्मनः।
प्रजापतिसुतानां वै विपुलासारमिच्छताम् २१
आत्मनो भावनिर्वृत्ते भावे कृतयुगे तदा ।
जनित्री सर्वभूतानामण्डजानुद्भिजांस्तथा २२
संवेदजननी धात्री चेति मात्रा प्रचोदिता।
अणुतां तनुतां चैव जन्तूनां कर्मयोगिनाम्२३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

**अज्ञयेति**। तेजसा ऐश्वर्येण ज्ञानैश्वर्ययोगात् प्राचेतसो दक्षः प्रभुर्विष्णुरेव यस्मात्पूर्वोक्तव्यतिरिक्तषड्डिन्द्रियतादिविशिष्टस्तस्मात्। तथा च "**बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश**" इति श्रुतेः। बहुप्रजत्वाद्दक्षः संसार्येव स्यादिति न शङ्कनीयमिति भावः। कीदृशो दक्षः कर्मणामन्तरङ्गतः आधिकारप्रदकर्मपाशावगुण्ठितः सृष्टिं करोति न तु तस्याज्ञानमस्तीत्यर्थः। एतेन जीवन्मुक्तानामपि कर्मपाशानुवृत्तिर्दर्शिता ॥ १४ ॥ प्रकृतां सृष्टिमनुसराति। **तत इति**। निर्माणं शिल्पं त्रैवर्णिकसेवाकरणं वा तदर्थमेव संभूताः। संस्कारम् उपनयनं, ब्रह्म वेदः ॥ १५ ॥ असंस्कृतं संस्काराभावस्तेन हेतुना वेदप्रोक्तेन धर्मेण नोपयुञ्जन्तीति पूर्वश्लोकगतक्रिययाऽन्वयः ॥१७॥ ततोऽन्ये ब्रह्मणो वेदस्य योनयः स्थानभूता ब्राह्मणा इत्यर्थः ॥ १८ ॥ दक्षिणाः समर्थाः। भोः पुत्रा अहं भवतां मुखात् धात्र्याः युष्मच्छरीरजनित्र्याः अन्तं सिद्धान्तं श्रोतुमिच्छामि। अतो मह्यं धात्र्यन्तं कथयतेति भावः। यतोऽहं बलो बलवानस्मि धात्र्या अन्तं ज्ञातुं समर्थोऽस्मि तस्माद्भवद्भिरपि मादृशैर्भवितव्यमिति भावः ॥ १९ ॥ **तत इति**। युष्मत्तो धात्र्यन्तं श्रुत्वा भवदीयबलाबलतत्त्वं ज्ञात्वा बलत्वपक्षे भवतां विपुलं विधास्ये। तव कुत एतावद्बलमित्यत आह-क्षेत्रवैपुल्याद्बलवैपुल्यम्। अन्यथाल्पमिति मशकमतङ्गजशरीरे दृष्टम्। एवं बह्वीः प्रजाः सृजतो बहुलं मम बलमस्ति। तस्माद्धात्र्याः स्वरूपं ज्ञात्वा सृष्टौ प्रवर्तितव्यम्। अन्यथा सृष्टिसङ्गेन दुष्यत्येवेति भावः ॥ २० ॥ विपुलायाः मायायाः सारमिच्छतां तेषां दक्षपुत्राणां देवी धात्री आत्मनो रूपं चक्षुषा प्रमाणज्ञानेन न दर्शयत् न दर्शितवती। अडभाव आर्षः। न हि माया प्रमाणेन परीक्षितुं शक्या तम इव दीपेन। अनिरीक्ष्यमाणैव तेषां माया बाधिताऽभूदिति भावः ॥ २१ ॥ **आत्मन इति**। तेषां प्रजापतिसुतानां कृतयुगे भावे विशुद्धसत्त्वमये भावे धात्र्यवलोकने जाते सति मात्रा प्रमात्रा चेतनेन प्रचोदिता सती धात्री सर्वभूतानां जनित्री अभूत्। तथा अण्डजान् स्वेदजांश्च जनितवतीति परिणामेन योज्यम् ॥ २२ ॥ सम्यग्वेदनं संवेदः तस्यापि घटादिवृत्तेरपि जननी धात्र्येवाभवत् तथा कर्मभोगिनां कर्मफलभोगशालिनां जन्तूनाम् अणुतां सूक्ष्मत्वं तनुतां विस्तृतताम्। "तनु विस्तारे" अस्मादौणादिकः उः। अणुना साहचर्यात् विस्तृततां जनितवतीति पूर्ववत्। कीदृशे कृतयुगे भावे आत्मनो भावनिर्वृत्ते। आत्मनः प्रतिचयो भावः स्वभावः तेन निर्वृत्ते निष्पन्ने। विदुषां स्वभावसिद्ध एव कृतयुगधर्म इत्यर्थः। यथोक्तं विष्णुधर्मोत्तरे--

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्च मनुजेश्वर।
आत्मनो ब्रह्मभूतस्य नित्यमेव चतुष्टयम् ॥

इति। तस्मात्सर्वेषामुत्कृष्ज्ञानकर्मणामवश्यंभाविनी मुक्तिर्न त्ववरोहसंभावनाऽपि ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

१ ख. °ला मानामि°।

सर्वाङ्गधारणां कृत्वा मनसा प्रहसन्निव ।
ब्रह्मयोगेन च ब्रह्मा सृजते मनसा प्रजाः ॥ २
चक्षुषो रूपसंपन्ना ह्यप्सराः सृजते प्रभुः ।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुचित्राम्बरवाससः३
तुम्बुरुप्रमुखान्सर्वाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
नृत्यवादित्रकुशलान्कुशलान्सामगीतिषु ॥ ४
ब्रह्मयोगेन योगज्ञः स्वयंभूर्भगवान्प्रभुः ।
चारुनेत्रां सुकेशान्तां सुभ्रूं चारुनिभाननाम्॥५
पद्मेन शतपत्रेण चारुणा सुविराजिताम् ।
स्वक्षां शुचिगिरं सेव्यां
ब्राह्मीं मूर्तिमतीं श्रियम् ॥ ६
ससृजे मनसा ब्रह्मा सम्यक्प्रोक्तेन चेतसा ।
भावयोगेन भूतात्मा सर्वप्राणभृतां नृप ॥ ७
चक्षुषो रूपसंपन्नाः सृजन्सोऽप्सरसः प्रभुः ।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुवासः सुप्रवादितान्
गानप्रभाषं संचक्रे गन्धर्वाणामशेषतः ।
अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्म प्रभाषितम्९
पद्भ्यां सृजति भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च
नरकिंनरयक्षांश्च पिशाचोरगराक्षसान् ॥१०
गजान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च मृगांश्चैव सहस्रशः ।
तृणजातीश्च बहुधा भावहेतोश्चतुष्पदान्॥ ११
ये तु हस्तान्निखादन्ति कर्मप्राप्तेन हेतुना ।
हस्तेभ्यः कर्म ससृजे मन्तव्यं मनसा तथा
वायुना स विसर्गं च भूतानां सुखमिच्छता
उपतस्थे तदानन्दं पञ्चेन्द्रियसमाधिना ॥ १३
हृदयादसृजद्गावो बाहुभ्यां पक्षिणस्तथा ।
अन्यानि चैव सत्त्वानि तैस्तैर्वेषैः पृथग्विधैः
ऋषिं त्वङ्गिरसं चैव मुनिं ज्वलिततेजसम् ।
ब्रह्मवंशकरं दिव्यं व्यतिषिक्तषडिन्द्रियम् १५
भ्रुवोऽन्तरादजनयद्योगाद्योगेश्वरः प्रभुः ।
ब्रह्मवंशकरं दिव्यं भृगुं परमधार्मिकम् ॥ १६
ललाटमध्यादसृजन्नारदं प्रियविग्रहम् ।
सनत्कुमारं मूर्ध्नश्च महायोगी पितामहः १७
अभिषिक्तं तु सोमं च यौवराज्ये पितामहः ।
ब्राह्मणानां च राजानं शाश्वतं रजनीश्वरम्

**अस्याः फलमाह**—सर्वाङ्गधारणां सर्वम् अंगेष्वेवास्यास्ति स सर्वांगः सूत्रात्मा, प्रहसन्निव मौढ्यमाहात्म्येन विस्मयात् । मनसेत्यस्यावृत्त्या सूत्रात्मतायाः सृज्यस्य च कल्पितत्वमुक्तम् । ब्रह्मणि सूत्रे योगे ऐक्यं ब्रह्मयोगस्तेन ॥२॥ **चक्षुषेति** । अत्र अंगविशेषो न विवक्षितः सर्वस्याङ्गस्य सर्वात्मत्वेन सर्वोत्पत्तिहेतुत्वौचित्यात् । अप्सरा इति आकारान्तत्वमार्षम् " अप्सरासु च या मेघे " इति दर्शनाद्वा ॥ ३ ॥ स्वक्षां दिव्यलोचनरूपां शुचिगिरं निष्कलङ्कां वेदवाणीम् । "**सा हि श्रीर्ब्रह्मविदाम्, ऋचः सामानि यजूंषि, सा हि श्रीरमृता सताम्**" इति श्रुतेः ॥ ६ ॥ **ससृजे इति** । सृष्टिरत्र संप्रदायप्रवृत्तिमात्रं न त्वभिनवोत्पत्तिः वाचा विरूपनित्ययेति वेदस्य नित्यत्वश्रवणात् । अत एव प्रोक्तेनेति विशेषणम् ईश्वरप्रोक्तनेत्यर्थः । "**यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै**" इति सिद्धप्रधानश्रवणात् अस्यैव सर्वेश्वरत्वात् । जीवानामाशयानुरोधेनायं सृजति न स्वस्य भोगार्थमित्याह—**भावेति** ॥ ७ ॥ गानं प्रभाष्यते व्युत्पाद्यतेऽनेनेति गानप्रभाषं गान्धर्वशास्त्रं तथा तथा ब्रह्माणि वेदे प्रभाषितं गानं सामाख्यम् । चक्षुष इति श्लोकद्वयं पूर्वोक्तस्यैव विवरणम् ॥ ९ ॥ ये तु हस्तात् हस्ते आदाय । ल्यब्लोपेऽधिकरणे पञ्चमी । हस्तेति पाठे विश्वा भूतानीतिवद्विभक्तेः पूर्वरूपमार्षम् । निखादन्ति भक्षयन्ति । कर्मप्राप्तेन कर्मलब्धेन हेतुना कारणेन अदृष्टेन ॥ १२ ॥ वायुना प्राणादिरूपेण विसर्गं विविधप्राणनादिकार्यं सृष्टिं ससृजे इति पूर्वेणान्वयः । एवं राजसीं सृष्टिं कुर्वतः कथं मुक्तिः स्यादित्याकुलमाश्वासयति । पञ्चेन्द्रियाणां समाधिः निरोधस्तेन हेतुना आनन्दं परमात्मानम् उपलक्ष्य तेन तस्थे स्थितं लीलया सृष्टिं कुर्वन्नपि ब्रह्मसामीप्यं प्राप्तत्वान्मुक्त एवेत्यर्थः ॥ १३ ॥ गावः गाः । प्रथमा द्वितीयार्थे । वेषैरेव नटवत् न तु परिणामैः।यदवोचं मूलकारणमेवानन्त्यात्कार्यानिट इव तत्तद्रूपेण भातीति तदित एवोत्थितम् ॥ १४ ॥ व्यतिषिक्तानि श्रितानि षट् इन्द्रियाणि यस्य स व्यतिषिक्तषडिन्द्रियस्तम्[1] । अस्माकं हि शब्दादयः श्रोत्रादीनां प्रतिनियताः विषयाः । सार्वात्म्यकाले तु सर्वमिन्द्रियं सर्वविषयग्राहकं भवति । यथोक्तं वासिष्ठे—

न सर्वात्मनि तु यत्रैव छाया तत्रैव चातपः ।
संभवति चेत्तत्स कथं सर्वात्मताभियात् ॥ इति ।

॥ १५ ॥ तमङ्गिरसं भ्रुवोरन्तरात् ॥ १६ ॥ भृगुः ललाटमध्यात् । नारदं सनत्कुमारं च मूर्ध्नः ॥ १७ ॥

---

१ ख. °तिरिक्त° ।

तपसा महता युक्तो ग्रहैः सह निशाकरः ।
चचार नभसो मध्ये प्रभाभिर्भासयञ्जगत् ॥ १९
स गात्रैर्भगवान्योगान्मनसा सिद्धिमागतः
ससृजे सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥
तत्र स्थानानि भूतानां योगांश्चैव पृथग्विधान्
निधत्ते शतशो ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः ॥ २१
एष ब्रह्ममयो यज्ञो योगः सांख्यश्च तत्त्वतः ।
विज्ञानं च स्वभावं च क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च २२
एकत्वं च पृथक्त्वं च संभवो निधनं तथा ।
कालः कालक्षयश्चैव ज्ञेयो विज्ञानमेव च ॥२३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## कर्ममार्गकथनम् ।

## २१

जनमेजय उवाच ।

श्रुतं ब्रह्मयुगं ब्रह्मन्युगानां प्रथमं युगम् । क्षत्रस्यापि युगं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १

**तत्रेति** स्थानानि आदित्यादीनां द्युप्रभृतीनि । योगान् अहोरात्रादिनिवर्तनाद्यधिकान् ॥ २१॥ एष आत्मोपदानकसृष्ट्यादिप्रपञ्चेन आसनध्यानसमाधिविधानेन च प्रपञ्चितो ब्रह्मप्रापकत्वाद्ब्रह्ममयोऽयं ज्ञानयज्ञ उक्त इति शेषः । अयमेव योगो योगप्राप्यः सांख्यनामा वेदान्तजन्यं ज्ञानमप्ययमेव । ननु उक्तोऽनयोर्विरोधः पुरुषैकत्वानेकत्वप्रकृतिमिथ्यात्वामिथ्यात्वरूप इति चेन्न । योगैरपि गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमिच्छति यत्तु दृष्टिपथप्राप्तं तन्मायैव तुच्छकमिति दृश्यस्य भेदप्रकृत्यादेस्तुच्छत्वाभ्युपगमात् । अत्यल्पमिदमुच्यते । वेदबाह्या अपि विज्ञानवादिचार्वाकादयोऽपि नानेन सिद्धान्तेन विरुध्यन्ते सर्वेषां मोक्षस्यैकरूपत्वादित्याह—**विज्ञानं** विज्ञानवादिनां सिद्धान्तः । **स्वभावः** स्वभाववादिनां चार्वाकाणां सिद्धान्तः । क्षेत्रं प्रकृतिः । क्षेत्रज्ञः पुरुषः निरीश्वरसांख्यसिद्धान्तोऽप्ययमेवेत्यर्थः ॥ २२ ॥ एकत्वं पृथक्त्वं चेति ज्ञानाज्ञानसमयभेदेन वा जगन्मिथो भिन्नमभिन्नमीश्वरादिति कापालिकमतेन वा एतज्ज्ञेयम् । संभवो निधनं च योग एव एष ब्रह्ममयो यज्ञः अज्ञातश्चेज्जन्मप्रदः ज्ञातश्चेज्जन्महन्तेत्यर्थः । "योगो हि प्रभवाप्ययौ" इति स्मृतेः। कालविदां कालाख्य ईश्वरोऽप्ययमेव तत्प्रकाशत्वात् । कालस्य क्षयो यस्मिन्नस्ति भवति तादृशं विशिष्टम् अनुभवपर्यवसायि ज्ञानं विज्ञानम् आत्मानुभवोऽप्ययमेव ज्ञेय इति सर्वत्र संबन्धनीयम् । एतेन सर्वतन्त्रासिद्धान्तानां मुक्तावैकरूप्यं दर्शितम् । तथा च वीतहव्यसमाधिं प्रकृत्य बृहद्वासिष्ठे दर्शितम्—

यच्छून्यवादिनां शून्यं यद्ब्रह्म ब्रह्मवादिनाम् ।
विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलं पदम् ॥ १ ॥
पुरुषः सांख्यदृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम् ।
शिवः शैवमतस्थानां कालः कालैकवादिनाम् ॥ २ ॥
आत्मात्मनस्तद्विदुषां नैरात्म्यं तादृशात्मनाम् ।
मध्यं माध्यमिकानां च सर्वं सुसमचेतसाम् ॥ ३ ॥
यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तो यत्सर्वहृदयानुगम् ।
यत्सर्वं सर्वगं सर्वं यत्तत्सत्तदसौ स्थितः ॥४॥ इत्यन्तेन।

पाद्मे माघमाहात्म्येऽपि—

भूतयोगजचैतन्यं चार्वाकास्त्वामुपासते ।
सौगता ब्रुवते तर्कैस्त्वां बुद्धिं बोधलक्षणाम् ॥ १ ॥
शरीरपरिणामं त्वां मन्यन्ते जिनदेवताः ।
ध्यायन्ति पुरुषं सांख्यास्त्वामेव प्रकृतेः परम् ॥ २ ॥
जन्मादिरहितं पूर्णं सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
त्वामौपनिषदा ब्रह्म चिन्तयन्त्यनिशं विभो ॥ ३ ॥

इत्यादि । तस्मायोऽयमुक्तो योगयज्ञः स एव सर्वतन्त्रसिद्धान्त इति सर्वं रमणीयम् । **समाप्ता ब्रह्मविद्या**

अतः परं धर्मचर्चा भविष्यति ।

**परैरदर्शितः पन्थाः पौर्वापर्यबलान्मया ।**
**यथाकथंचिदुन्नीतः पण्डिताः शोधयन्तु तम् ॥**

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

**जीवन्मुक्त्यै ब्रह्मतत्त्वं चतुर्दशभिरीरितम् ।**
**अथ द्वादशभिर्धर्मं ब्रवीति क्रममुक्तये ॥१॥**
**तत्र पञ्चदशे ब्रह्मज्ञानहीना महत्तमैः ।**
**कर्मभिर्ब्रह्मलोकादप्यावर्तन्त इतीर्यते ॥ २ ॥**

**श्रुतमिति** । ब्रह्मयुगं ब्रह्मप्राप्तिहेतुत्वात्प्रथमं युगं कृतं,

१ ख. व्यधत्ते श० ।

सुसंक्षेपं सविस्तारं नियमैर्बहुभिश्चितम् ।
उपायैश्च कथितं क्रतुभिश्चैव शोभितम् ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
एतत्ते कथयिष्यामि यज्ञकर्मभिरर्चितम् ।
दानधर्मैश्च विविधैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥ ३
तेऽङ्गुष्ठमात्रा मुनय आदत्ताः सूर्यरश्मिभिः ।
मोक्षप्राप्तेन विधिना निराबाधेन कर्मणा ॥ ४
प्रवृत्ते चाप्रवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणाः ।
परायणस्य संगम्य ब्रह्मणस्तु महीपते ॥ ५
श्रीवृताः पावनाश्चैव ब्राह्मणाश्च महीपते ।
चरितब्रह्मचर्याश्च ब्रह्मज्ञानावबोधिताः ॥ ६
पूर्णे युगसहस्रान्ते प्रभावे प्रलयं गताः ।
ब्राह्मणा वित्तसंपन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिताः
व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसंभवः
दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः ।
अक्षराद्ब्राह्मणाः सौम्याः क्षरात्क्षत्रियबान्धवाः
वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूम्रविकारतः ९
श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः ।
अभिनिर्वर्तिता वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना १०
ततो वर्णत्वमापन्नाः प्रजा लोके चतुर्विधाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते
एकलिङ्गाः पृथग्धर्मा द्विपदाः परमाद्भुताः ।
यातनायाभिसंपन्ना गतिज्ञाः सर्वकर्मसु ॥ १२
त्रयाणां वर्णजातानां वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृताः
तेन ब्राह्मणयोगेन वैष्णवेन महीपते ॥ १३

---

यत्र सर्वधर्मफलान्तर्भावः। यथा "**कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेवैनं सर्वं तदभिसमैति यत्किं च प्रजाः साधु कुर्वन्ति**" इति कृताय निदर्शनेन श्रुत्या प्रोक्तः। क्षत्रस्य धर्मस्य "**तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः**" इति धर्मस्य मुख्यक्षत्रत्व श्रवणात् युगं युज्यते अनेन तद्युगं स्वर्गादिफलप्रदत्वलक्षणमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ॥१॥ एतदेव विशिनष्टि—**संक्षेपमिति**॥२॥ **एतदिति**। एतत् धर्मस्य माहात्म्यं यज्ञकर्मभिः यज्ञात्मकमेव कर्म येषां न तूपास्त्यात्मकं ते यज्ञकर्माणः कर्मठाः तैरार्चितं पूजितं दानधर्मैः "**उच्चादिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सहते सूर्येण। हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोमप्रतिरन्त आयुः**" इतिश्रुतेर्दानजप्रभावैः प्रजाभिः "**यस्मिन् जातः एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव स तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति पुत्रकामाद्वाप्याख्यापयेरन् लभन्त हे पुत्रान्**" इति जातोष्टिशौनःशेपाख्यायनफलैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥ ३ ॥ **ते इति**। ते ब्राह्मणा वृत्तसंपन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिता भवन्तीति योजना। के ते ? य अङ्गुष्ठमात्रा इत्यल्पप्रमाणत्वेन उत्क्रान्त्यादियोग्याः। अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् इत्यारण्यकोक्तेः। न तु "**यः एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति**" "**स इदं सर्वं भवति**" इति श्रुतिप्रसिद्धविद्याफलसार्वात्म्यभाजः। ते यज्ञकर्माणः विशिष्टधर्मेण सूर्यरश्मिभिरादत्ताः सूर्यमण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं गता अपीत्यर्थः। मोक्षप्राप्तेन मोक्षप्रत्यासन्नेन विधिना यथाशास्त्रम् ॥ ४ ॥ प्रवृत्ते यज्ञादौ अप्रवृत्ते शमादौ ब्रह्मपरायणाः वेदैकशरणाः परायणस्य ब्रह्मणः। कर्मणि षष्ठी। संगम्य ईश्वरप्रीतिमुद्दिश्य वेदोक्तकर्मपरा इत्यर्थः ॥ ५ ॥ श्रीवृताः श्रिया, "**ऋचः सामानि यजूꣳषि। सा हि श्रीरमृता सताम्**" इति श्रुत्या वृताः। ब्रह्मज्ञानेन परोक्षज्ञानेन ॥ ६ ॥ पद्मासनायुरवधि ब्रह्मलोके स्थित्वा पूर्वस्मिन् कल्पे ये लयं गतास्तेऽग्रिमकल्प उक्तविशेषणविशिष्टा ब्राह्मणा भवन्ति ॥ ७ ॥ **व्यतिरिक्तेति**। तेषां ब्राह्मणानां मध्ये यो योगात्मा सन् व्यतिरिक्तेन्द्रियो देहेन्द्रियासङ्गेन स्वप्ने इवान्तःप्रज्ञो भूत्वा चतुर्भुजादिलक्षणं विष्णुम् आत्मत्वेनाभिमन्यते सोऽपि भेददर्शी, समष्ट्युपास्तिराहित्यात्।

ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥

इति स्मृत्युक्तक्रममुक्त्यनधिकारादस्मिन्कल्पे ब्रह्मपुत्रो दक्षो भूत्वा प्रजाः सृजते ॥ ८ ॥ अक्षरं शुद्धसत्त्वमयत्वान्निष्कामो धर्मः श्वेतः सुधावत्। क्षरं सत्त्वरजोमयत्वादुभयमिश्रो धर्मः रक्तः। तदुभयसंघातवत् विकारो रजोमयत्वात्सकामो धर्मः पीतो हरिद्रावत्। धूमः तमोमयत्वाद्विधर्मः कृष्णः धूमवत् ॥ ९ ॥ **तत इति**। ततो गुणवर्णोपचारात् ॥ ११ ॥ एकलिङ्गाः तुल्याकृतयः यातनाय कर्मफलभोगाय संपन्नास्तेन तेन वर्णेन ॥ १२ ॥ येन कारणेन त्रयाणामेव वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृतास्तेन कारणेन वः युष्माकं त्रयाणां ब्राह्मणक्षत्रियविशामेव, वैष्णवेन योगेन ब्रह्मास्ति विष्णुभक्त्या वेदोऽस्तीति त्रैवर्णिकत्वं भगवत्कृपैकफललभ्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥

प्रज्ञया तेजसा योगात्तस्मात्प्राचेतसः प्रभुः।
विष्णुरेव महायोगी कर्मणामन्तरं गतः ॥१४
ततो निर्माणसंभूताः शूद्राः कर्मविवर्जिताः
तस्मान्नार्हन्ति संस्कारं न ह्यत्र ब्रह्म विद्यते१५
यथाग्नौ धूमसंघातो ह्यरण्या मथ्यमानया।
प्रादुर्भूतो विसर्पन्वै नोपयुञ्जन्ति कर्माणि ॥१६
एवं शूद्रा विसर्पन्तो भुवि कात्स्न्येंन जन्मना
नासंस्कृतेन धर्मेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा॥ १७
ततोऽन्ये दक्षपुत्राश्च संभूता ब्रह्मयोनयः।
बलवन्तो महोत्साहा महावीर्या महौजसः१८
पित्रा प्रोक्ता महात्मानो दक्षिणा यज्ञकर्मणा
अन्तमिच्छाम्यहं श्रोतुं धात्र्याःपुत्रा बलो ह्यहम्
ततो विधास्ये तत्त्वज्ञाः प्रजानां विपुलं बलम्
विपुलत्वाद्धि क्षेत्राणां ममापि विपुलाः प्रजाः
न तेषां दर्शयद्देवी चक्षुषा रूपमात्मनः।
प्रजापतिसुतानां वै विपुलासारमिच्छताम् २१
आत्मनो भावनिर्वृत्ते भावे कृतयुगे तदा।
जनित्री सर्वभूतानामण्डजानुद्भिजांस्तथा २२
संवेदजननी धात्री चेति मात्रा प्रचोदिता।
अणुतां तनुतां चैव जन्तूनां कर्मयोगिनाम्२३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

**प्रज्ञयेति**। तेजसा ऐश्वर्येण ज्ञानैश्वर्ययोगात् प्राचेतसो दक्षः प्रभुर्विष्णुरेव यस्मात्पूर्वोक्तव्यतिरिक्तषड्इन्द्रियतादिविशिष्टस्तस्मात्। तथा च "**बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश**" इति श्रुतेः। बहुप्रजत्वाद्दक्षः संसार्येव स्यादिति न शङ्कनीयमिति भावः। कीदृशो दक्षः कर्मणामन्तरङ्गतः अधिकारप्रदकर्मपाशावगुण्ठितः सृष्टिं करोति न तु तस्याज्ञानमस्तीत्यर्थः। एतेन जीवन्मुक्तानामपि कर्मपाशानुवृत्तिर्दर्शिता ॥ १४ ॥ प्रकृतां सृष्टिमनुसराति। **तत इति**। निर्माणं शिल्पं त्रैवर्णिकसेवाकरणं वा तदर्थमेव संभूताः। संस्कारम् उपनयनं, ब्रह्म वेदः ॥ १५ ॥ असंस्कृतं संस्काराभावस्तेन हेतुना वेदप्रोक्तेन धर्मेण नोपयुञ्जन्तीति पूर्वश्लोकगतक्रियायाऽन्वयः ॥१७॥ ततोऽन्ये ब्रह्मणो वेदस्य योनयः स्थानभूता ब्राह्मणा इत्यर्थः ॥ १८ ॥ दक्षिणाः समर्थाः। भोः पुत्रा अहं भवतां मुखात् धात्र्याः युष्मच्छरीरजनित्र्याः अन्तं सिद्धान्तं श्रोतुमिच्छामि। अतो मह्यं धात्र्यन्तं कथयतेति भावः। यतोऽहं बलो बलवानास्मि धात्र्या अन्तं ज्ञातुं समर्थोऽस्मि तस्माद्भवद्भिरपि मादृशैर्भवितव्यमिति भावः॥ १९ ॥ **तत इति**। युष्मत्तो धात्र्यन्तं श्रुत्वा भवदीयबलाबलतत्त्वं ज्ञात्वा बलत्वपक्षे भवतां विपुलं विधास्ये। तव कुत एतावद्बलमित्यत आह–क्षेत्रवैपुल्याद्बलवैपुल्यम्। अन्यथाल्पमिति मशकमतङ्गजशरीरे दृष्टम्। एवं बह्वीः प्रजाः सृजतो बहुलं मम बलमस्ति। तस्माद्धात्र्याः स्वरूपं ज्ञात्वा सृष्टौ प्रवर्तितव्यम्। अन्यथा सृष्टिसङ्गेन दुष्यत्येवेति भावः ॥ २० ॥ विपुलायाः मायायाः सारमिच्छतां तेषां दक्षपुत्राणां देवी धात्री आत्मनो रूपं चक्षुषा प्रमाणज्ञानेन न दर्शयत् न दर्शितवती। अडभाव आर्षः। न हि माया प्रमाणेन परीक्षितुं शक्या तम इव दीपेन। अनिरीक्ष्यमाणैव तेषां माया बाधिताऽभूदिति भावः॥ २१॥ **आत्मन इति**। तेषां प्रजापतिसुतानां कृतयुगे भावे विशुद्धसत्त्वमये भावे धात्र्यवलोकने जाते सति मात्रा प्रमात्रा चेतनेन प्रचोदिता सती धात्री सर्वभूतानां जनित्री अभूत्। तथा अण्डजान् स्वेदजांश्च जनितवतीति परिणामेन योज्यम् ॥ २२ ॥ सम्यग्वेदनां संवेदः तस्यापि घटादिवृत्तेरपि जननी धात्र्येवाभवत् तथा कर्मभोगिनां कर्मफलभोगशालिनां जन्तूनाम् अणुतां सूक्ष्मत्वं तनुतां विस्तृतताम्। "तनु विस्तारे" अस्मादौणादिकः उः। अणुना साहचर्यात् विस्तृततां जनितवतीति पूर्ववत्। कीदृशे कृतयुगे भावे आत्मनो भावनिर्वृत्ते। आत्मनः प्रतिचयो भावः स्वभावः तेन निर्वृत्ते निष्पन्ने। विदुषां स्वभावसिद्ध एव कृतयुगधर्म इत्यर्थः। यथोक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्च मनुजेश्वर।
आत्मनो ब्रह्मभूतस्य नित्यमेव चतुष्टयम् ॥

इति। तस्मात्सर्वेषामुत्कृष्टज्ञानकर्मणामवश्यंभाविनी मुक्तिर्न त्ववरोहसंभावनाऽपि ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१॥

---

१ ख. °ला मानामि°।

## प्रवृत्तिधर्मफलम् ।

२२

जनमेजय उवाच ।

साध्वहं श्रोतुमिच्छामि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तम
यज्ज्ञात्वा सर्वविद्यानां परं पश्येयमव्ययम् १
वैशम्पायन उवाच ।
दक्षस्तु पुनरालम्ब्य स्त्रीभावं पुरुषोत्तमः ।
योगाद्योगेश्वरात्मानं विषण्णो गिरिमूर्धनि २
सुजानुः पीनजघना सुभ्रूः पद्मनिभानना ।
रक्तान्तनयना कान्ता सर्वभूतमनोरमा ॥ ३
दक्षः प्राचेतसस्तस्यां कन्यायां जनयत्प्रभुः ।
देहार्धयोगविधिना कन्याः पद्मनिभाननाः ॥
दक्षः पुरुषरूपेण स्त्रीरूपमपहाय वै ।
दर्शने सर्वभूतानां कान्तः कान्ततरोऽभवत्५
ताः कन्याः प्रददौ दक्षः स्वयं प्राचेतसः प्रभुः
ब्रह्मदेयेन विधिना ब्रह्मप्राप्तेन भारत ॥ ६
प्रददौ दश धर्माय कश्यपाय त्रयादश ।
सप्तविंशति सोमाय पत्नीहुताः समाहिताः ७
दक्षो दत्त्वाऽथ ताः कन्या ब्रह्मक्षेत्रं प्रपद्य च ।
ब्रह्मणाऽध्युषितं पुण्यं समाहितमना मुनिः ॥८
तप्यमानो मृगैः सार्धं चचार वसुधां नृप ।
तृणमूलफलैर्वृद्धो वृद्धश्च तपसाऽसकृत् ॥ ९
मृगास्तु तस्य मोदन्ति फलं मोदान्ति ब्राह्मणाः
दीक्षिताः पुण्यकर्माणस्तपसादग्धकिल्बिषाः
संग्रामकाले कालज्ञः शरीरादिपतिर्मुनिः ।
कर्मयज्ञकृतां तत्र सिद्धिं पश्यति लक्षणाम् ११
दानमानप्रवीराश्च निरुद्वेगा निरामिषाः ।
मृगैः सह जरां यान्ति सपत्नीकाः सुपुत्रिणः
ब्राह्मणाः स्तोत्रसंसिद्धा जनित्रे प्रथमे पदे ।
ब्रह्मणाध्युषितत्वाच्च ब्रह्मक्षेत्रमिहोच्यते ॥ १३

---

२२

**सन्निवृत्तेः प्रवृत्त्याख्यधर्मस्य फलमीरितम् ।**
**प्रवृत्तिमात्रनिष्ठानां षोडशे स्थितिरीर्यते १**

**साध्वहमिति** । पूर्वं प्रवृत्ते च निवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणमित्युक्तलक्षणस्य धर्मस्य फलं श्रुतम् । इदानीं त्रेतायां केवलप्रवृत्त्यात्मकेयज्ञादिरूपे धर्मे यत्साधु समीचीनं तदेवाहं श्रोतुमिच्छामि । येन साधुना आचरितेन विद्यानां सांख्ययोगादीनां परं तात्पर्यप्रतिपाद्यम् अव्ययं ब्रह्म पश्येयं विविदिषाव्युत्पत्तिद्वारेत्यर्थः ॥ १ ॥ अस्योत्तरं प्रकृतिसरूपार्थवादमुखेनैवाह-**दक्षस्त्विति** । दक्षः देहार्धयोगविधिना स्त्रीभावम् आलम्ब्येति तृतीयेनान्वयः । "**स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् । तस्मादिदमर्धयुगलमिव स्वः**" इति श्रुतेः । कीदृशं स्त्रीभावं योगेश्वरस्य दक्षस्यैवात्मानम् आत्मभूतम् ॥२॥ कन्याः जनयत् अजनयत् । अडभाव आर्षः ॥ ४ ॥ **दक्ष इति** । स्त्रीरूपम् अपहाय पुरुषरूपेण स्थित इति शेषः ॥ ५ ॥ ब्रह्मदेयेन ब्राह्मणान दातुं योग्येन विधिना "**अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यादेष ब्राह्मो विवाहः**" इति स्मृत्युक्तेन ब्राह्मेण-विधिनेत्यर्थः ॥ ६ ॥ ब्रह्मक्षेत्रं प्रयागम् आध्यात्मिकम् ॥८॥ **तप्यमान इति** । एतावता त्रेताधर्मस्वरूपं दारसंग्रहोऽपत्योत्पादनम्, अपत्यसंविभागो वनं प्रति गमनं च केवलं प्रवृत्तिधर्मे रतस्य कर्तव्यमिति दक्षाख्यायिकामुखेन दर्शितमिति तात्पर्यं दर्शितम् ॥ ९ ॥ मृगास्तु तस्य तपसेत्यनुषज्यते । मोदन्ति मोदन्ते । अहिंसाप्रधानत्वात्तपस इति भावः । ब्राह्मणास्तु तस्य तपसः फलम् "**अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः**" इति योगशास्त्रोक्तं दृष्ट्वा मोदन्ते । दीक्षिताः इत्यादीनि ब्राह्मणानां विशेषणानि ॥ १० ॥ संग्रामः योगेन चित्तजयः तस्य काले शरीरादीनां पतिः यथेष्टं प्रविलापनपरिग्रहसमर्थः । अत एव सर्वज्ञत्वात् कर्मणां सिद्धिं फलप्राप्तिं स्वर्गनरकादिगत्यागतिरूपां पश्यति । लक्ष्यते सा लक्षणा तां परिमेयामित्यर्थः ॥११॥ एवं दक्षाख्यायिकया पत्नीमपास्य वनं प्रति गच्छेदित्युक्त्वा सपत्नीकस्यापि तदाह पुराकल्पसरूपार्थवादमुखेन—**दानेति** ॥ १२ ॥ स्तोत्रं वेदाध्ययनम् । "**यस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूपनित्यया। कृष्णे चोदस्व सुष्टु**" इति मन्त्रवर्णात् । तेन संसिद्धाः शुद्धसत्त्वाः जनित्रे प्रथमं पदं ब्रह्म तस्मिन्विषये ब्रह्मणा प्रणवेन इह अस्मिन्नेव जीवदेहे अध्युषिता अधिवासनिष्ठां प्रापितास्तेनायं देहो ब्रह्म क्षेत्रमित्युच्यते । वेदे ब्रह्मोपलब्धिस्थानत्वात् ॥ १३ ॥

१ ख. [illegible] ° । २ ख. शरीरिनाऽऽद्रियते मु° ।

यतिभिः कर्मभिर्मुक्तैर्जितक्रोधैर्जितेन्द्रियैः ।
चरद्भिर्वसुधां विप्रैरकिंचनपथैषिभिः ॥ १४
या प्रजा पूर्वमारूढा मानसी ब्रह्मचारिणी
सैवैषा व्यक्तिमापन्ना स्वभावदुरतिक्रमा ॥१५
अव्यक्ताऽव्यक्तमापन्ना स्वभावाद्दुरतिक्रमा ।
व्यक्ताव्यक्तगतिश्चैषा कालधर्मान्महीपते ॥१६
स्थावरा जङ्गमाश्चैव स्थूलसूक्ष्माश्च भारत ।
कालयोगेन कालज्ञा भवन्ति न भवन्ति च१७
एताश्चैताः प्रजाः सर्वा दक्षकन्यासु जज्ञिरे
कश्यपेनाव्ययेनेह संयुक्ताः कालधर्मणा ॥१८
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
नागाश्चानेकशिरसः साध्या वै पन्नगास्तथा
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षाः सुपर्णाश्च तथापरे ।
गरुत्मान्सह यक्षैश्च किन्नराश्च सुवाससः २०
गावः पशुगणैः सार्धं नराश्च वसुधाधिप ।
चराचराश्च वसुधाधर्तारश्च धराधराः ॥ २१
गजाः सिंहाश्च व्याघ्राश्च हयाः पक्षधरास्तथा
खड्गा विषाणिनश्चैव वृषभाश्च मृगास्तथा २२
चतुर्विषाणा नागेन्द्राः पद्माभा वर्णतः शुभाः
सर्वलक्षणसंपन्नाः प्राणिनः कामरूपिणः ॥२३
तेषां रूपैस्तथा गात्रैस्तैः शीलैस्तैः पराक्रमैः ।
मुनयः पुनरुद्भूता धर्मक्षेत्रे सनातने ॥ २४
क्षेत्रज्ञा मानसे लोके धर्मिणो वेदगोचराः
यत्रोद्भूताः सुराः सर्वे दिवि लोके प्रतिष्ठिताः
ये चान्ये तपसा सिद्धा गृहस्था मनुजाधिप
ब्रह्मचर्येण संसिद्धाः परिचर्यां गता गुरोः ॥२६
ये च योगगतिं प्राप्ताः सिद्धिहेतोर्महीपते ।
क्लेशाधिकैः कर्मजन्यैर्वृत्तिं लप्स्यन्ति वै द्विजाः
शिलोञ्छवृत्तयः ख्याताः सपत्नीका दृढव्रताः
सर्वे त्वेते दिविचरा भवन्ति चरितव्रताः २८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

यतिभिरुच्यते इति संबन्धः ॥ १४ ॥ एवं सपत्नीकानामपि वनस्थानं योगजा सिद्धिरस्तीत्युक्त्वा योगफलमाह--**या प्रजेति** । सर्वे सर्वात्मकत्वात् हार्दाकाशाख्यं ब्रह्म तदारूढा मानसी मनोमात्रकल्पिता ब्रह्मचारिणी ब्रह्मरूपेणैव गम्यमाना समाधिकाले दृष्टा सैव एषा लोकदृश्या बहिष्ठा स्वभावेन संस्कारेण प्रारब्धबलेन दुरतिक्रमा अतिक्रामितुमशक्या । समाधौ ब्रह्मभावं गतस्यापि प्रारब्धकर्मवशात्पुनः संसारभावनमवश्यंभावीत्यर्थः ॥ १५ ॥ **अव्यक्तेति** । स्वभावादेव समाधावव्यक्तं रूपमापन्ना प्रजा भवति व्युत्थाने । तत्र हेतुः । कालधर्माद्व्युत्थानसमाधिकालभेदलक्षणाद्धर्मात्प्रजा व्यक्ताव्यक्तरूपा भवति ॥ १६ ॥ एषा गतिः प्राणिमात्रसाधारणेत्याह--**स्थावरेति** । यतः स्थावराणामपि योगज्ञत्वं संभवति तस्मात्तदर्थं यतितव्यमिति भावः ॥ १७ ॥ एवं प्रसङ्गादपत्नीकसपत्नयोर्योगाधिकारमुक्त्वा प्रकृतां सृष्टिमनुसरति--**एताश्चेत्यादिभिः सार्धषड्भिः** । कश्यपेन निमित्तेन अव्ययेन स्वभावेन कालः धर्मो यस्य तेन॥१८॥ "**धाता यथापूर्वमकल्पयत्**" इति श्रुतेः पूर्वोक्तमपि सर्वं सर्वेषु कल्पेषु समाननामरूपाधिकारमेव प्रतिपत्तव्यमित्याह--**तेषां रूपैरिति** । मुनय इति सृज्यमात्रोपलक्षणम् । धर्मक्षेत्रे धर्मप्रमत्रभूमौ भारते वर्षे ॥ २४ ॥ क्षेत्रज्ञाः आत्मनिष्ठास्तु मानसे मनःकल्पिते बाह्ये आभ्यन्तरे वा पूर्वोक्तदिशाऽऽविर्भवन्ति । यत्रेति मानसे इत्यस्य विशेषणम् ॥ २५ ॥ गृहस्थादीनामप्युक्तविधयोगधर्मानुष्ठायिनां मुक्तिरस्तीत्याह त्रिभिः--**ये चेति** ॥ २६ ॥ शिलं कणिशादानम्, उञ्छः कणश आदानम् । दिविचराः हार्दाकाशचराः चरितव्रता यस्माद्भवन्ति तस्माद्व्रतचर्यैव मुख्या नाश्रमविशेषो मोक्षहेतुरिति भावः । अत एव याज्ञवल्क्यो गृहस्थस्यापि मोक्षमाह--

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥ इति ॥

॥२८॥ इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

# प्राणायामवर्णनम् ।

## २३

**वैशम्पायन उवाच ।**
**पितामहं पुरस्कृत्य मेरुपृष्ठे समाहिताः**
**जटाजिनधरा विप्रास्त्यक्तक्रोधा जितेन्द्रियाः**
**पर्वतान्तरसंसिद्धे बहुपादपसंवृते ।**
**धातुसंरञ्जितशिले समे निस्तृणकण्टके ॥ २**

**त्रयाणां ब्रह्मवेदानां पञ्चस्वरविराजिते ।**
**मन्त्रयज्ञपरा नित्यं नित्यं व्रतहिते रताः ॥ ३**
**एकमेवाग्निमाधाय सर्वे ब्राह्मणपुङ्गवाः**
**बिभिदुर्मन्त्रविषयैः सुसमाहितमानसाः ॥ ४ ॥**

२३

**द्युचर्या व्रतचर्योत्थेत्यूचे सप्तदशे व्रतम् ।**
**प्राणयज्ञं हविर्यज्ञसंज्ञं चित्तजयावहम् ॥१॥**

पूर्वाध्यायान्ते सर्वे त्वेते दिविचरा भवन्ति व्रतचारिण इत्युक्तं तत्र मनोजयाख्यं व्रतम् । एकादशे प्रोक्तमेवोत्तमाधिकारिणाम् । मध्यमाधमानां तु चित्तजयायारमविविदिषोत्पादनाय च तृतीयाध्याये सूचितं व्रतद्वयं प्राणरोधाख्यं हविर्यज्ञाख्यं च तदिह द्वयमभिधीयते, तयोराद्यमपि यज्ञरूपकेणैव विवक्षन् वैशम्पायन उवाच—**पितामहं पुरस्कृत्येत्यादि** । श्लोकत्रयोक्तविशेषणाः व्रतहिते रताः दिवि ब्रह्मणि चराः संचारिणो भवन्तीति पूर्वेणान्वयः । अत्र योगचिन्तामणौ सांख्ययोगे—

> चक्रमध्ये स्थिता नाड्यस्तिस्रस्तिस्रोऽत्र देवताः ।
> इडा च वैष्णवी नाडी पिङ्गला ब्रह्मदेवता ॥ १ ॥
> ऐश्वरी सा सुषुम्ना स्यान्मेरुमध्ये व्यवस्थिता ।
> नाडी मध्यगता ग्रन्थित्रययुक्ता त्रिवेणिका ॥ २ ॥
> उत्तरे वहते गङ्गा यमुना दक्षिणे स्मृता ।
> सरस्वती पश्चिमायामासां सङ्गः सदान्तरः ॥ ३ ॥

इत्युक्तेर्मेरुर्नासिका तस्याः पृष्ठं भ्रूघ्राणमध्यं तस्मिन् समाहिताः समाधिं गताः किं कृत्वा पितामहं कार्यस्य पिता कारणं तस्य पिता शुद्धं ब्रह्म तत् पुरस्कृत्य तत्प्राप्तिमाहत्य ॥१॥ **पर्वतेति** । पर्वतान्तरसंसिद्धे पर्वतानां पर्ववतामस्थ्नां नासावंशकपालास्थ्नोरन्तरे संसिद्धं नित्यसिद्धं तन्नाशेऽप्यविनाशि "**हार्दाकाशं प्रकृत्यवबधेनास्य हन्यते**" इति श्रुतेर्देहनाशेऽपि आत्मोपलब्धिचक्राणामनाशावगमात् । बहुपादपसंकुले बहुपादो नानायोगिगमनसाधनधर्माधर्मवानहंकारः तं पातीति तदुपाधिः प्राणो वायुस्तेन संकुले । धातुसंरञ्जितशिले धातवो वातपित्तकफाः मनःशिलादिधातुरूपा नाडीमार्गा वा तैः संकुला शिला इव शिला अस्थिरूपा यस्मिन् । समे समस्य ब्रह्मण उपलब्धिस्थाने तृणं बहिष्ठत्वाजरारोगादिदुःखं कण्टकः अन्तस्थत्वाच्छोकादिदुःखं देहद्वयधर्मरहितमित्यर्थः ॥२॥ **त्रयाणामिति** । त्रयो ये ब्रह्म वेदयन्ति तेषां त्रयाणां ब्रह्मवेदानाम् इडापिङ्गलासुषुम्नारूपाणां जीवोपाधिभूतप्राणमार्गाणां संबन्धिनः पञ्च स्वराः स्वर्यते गम्यते ब्रह्म यैस्ते स्वराः प्राणस्य वृत्तिभेदाः प्राणापानसमानव्यानोदानास्तैर्विराजिते । पञ्चानामपि वायूनामेकीभावस्थान इत्यर्थः । मन्त्रयज्ञपरा नित्यं मन्त्राः प्राणादीनां तु रेफादिप्रभृतीनि बीजानि तेषां यज्ञो जपः तत्पराः नित्यं व्रते वायुजये हिते आनन्दरूपे आत्मनि च रताः । अत्र पञ्चानामपि प्राणादीनां स्थानवर्णबीजान्तानि नकुलीशयोगपारायणे प्रोक्तानि वर्तन्त इति उक्तानि विशेषणानि मेरुपृष्ठे युज्यन्ते । तानि च—

> प्राणो घ्राणाग्रहन्नाभिपादाङ्गुष्ठान्तसंस्थितः ।
> नीलः सोङ्कारेफादिबीजेन विनियोजितः ॥ १ ॥
> कृष्णोऽपानः कृकाटिस्थः पृष्ठपृष्ठान्तपार्ष्णिगः ।
> सतारकवकारान्तबीजेन विनियोजितः ॥ २ ॥
> शक्रचापनिभो व्यानस्त्वगिन्द्रियनिकेतनः ।
> तारकोपेतपान्तश्च बीजतेजोविराजितः ॥ ३ ॥
> मूर्धस्थो मध्यताल्वग्रकण्ठहृद्यनलाश्रयः ।
> उदानो ह्यरुणच्छायस्तारकाकान्तयान्तयुक् ॥ ४ ॥
> श्वेतः समानो हृन्नाभिसर्वसंधिनिकेतनः ।
> प्रणवाक्रान्तलान्तेन बीजेनात्यन्तमुज्ज्वलः ॥ ५ ॥

इति । तत्रायं निकृष्टोऽर्थः—मेरुपृष्ठाख्यभ्रूघ्राणमध्योपलक्षिते ब्रह्मणि सर्वकारेण नित्यसिद्धजीवोपाधिनाऽनेकवर्णबीजवता नानावर्णनाडीत्रयसंचारिणा युते बाह्याभ्यन्तरदुःखशून्ये क्रोधादिजयिनो निर्ममाः प्राणजयद्वारा चित्तवृत्तिमेकाग्रां कुर्वन्ति निरोधाभ्यासेन निर्विशेषं ब्रह्म प्रतिपत्तुमिति ॥३॥ एकमेव प्राणाग्निम् आधाय आलम्ब्य मन्त्रविषयैः मन्त्राः उदाहृता रेफादिमुख्याः तेषां प्रतिपाद्या विषया प्राणनाद्याः प्रवृत्तिविशेषाः तैरुपाधिभिर्बिभिदुः पञ्चधा प्राणापानादिप्रकारेण विभिन्नं चक्रुः । यथोक्तं तत्रैव—

> कोष्ठयो वायुः प्राणनादिकर्मभेदाद्यथाक्रमम् ।
> प्राणोऽपानसमानादिनामान्तरमुपागतः ॥ इति ॥ ४ ॥

त्रिधा प्रणीतो ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः ।
अतस्ते तत्त्वमापन्ना यदेकस्त्रिविधः कृतः ॥ ५
एक एव महानग्निर्हविषा संप्रवर्तते ।
स्वधाकारेण मन्त्रज्ञ मन्त्राणां कार्यसिद्धये ६

स्वयं च दक्षसंप्राप्तो भगवान्भूतसत्कृतः ।
ब्रह्मा ब्राह्मणनिर्माता सर्वभूतपितामहः ॥ ७
दण्डी चर्मी शरी खड्गी शिखी पद्मनिभाननः ।
अभवन्न्यस्तसंतापो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ८

**त्रिधेति** । ज्वलनः प्राणाग्निः त्रिधा पूरककुम्भकरेचकरूपे प्रणीतो नाडीमार्गैः संचारितः अतः प्रणयनात्ते तत्त्वं प्राप्ताः पूरकाद्यभ्यासेनैव आत्मतत्त्वम् अधिगम्यत इति भावः ॥ ५ ॥ **एक एवेति** । एक एव प्राणाग्निः प्राणायामाभ्यासिनः हविषा ।

आदेयानि च वक्ष्यामि क्षिप्रं योगस्य सिद्धये ।
क्षीरं घृतं च मिष्टान्नं मिताहारश्च शस्यते ॥ इति

दत्तात्रेयोदितेन सम्यङ् निषेवितेन महान् भूत्वा सम्यक् योगिनो विक्षेपमकुर्वन् प्रवर्तते आरोहावरोहमार्गयोर्यथेष्टं संचरति । अयमर्थः—नासिकान्तो बहिरन्तश्च द्वादशद्वादशांगुलमानेन प्राणः संचरन् तूलपिण्डवत् घनभूतः कुम्भकाभ्यासेन तूलपिण्डमिव शिथिलावयवसंयोगं कुर्यात् । ततश्च बहिरन्तश्च षट्त्रिंशत्षट्त्रिंशदंगुलमानेन परमा प्राणस्य गतिर्भवति। स तदा सूक्ष्मोऽपि पुरोडाशवन्मथितो-महानित्युच्यते । एवंभूतस्य प्राणाग्नेः ।

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद् दृढम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽयमुच्यते ॥

इत्यादिना हठोक्तप्रकारेण वायोरारोहः प्रसिद्धः, भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्येति शास्त्रप्रसिद्ध एव । अवरोहोऽपि योगिना याज्ञवल्क्येनोक्तः—

संपूर्य कुम्भवद्वायुमंगुष्ठान्मूर्ध्नि मध्यतः ।
धारयत्यनिलं बुद्ध्या प्राणायामः प्रचोदितः ॥ १ ॥
व्योमरन्ध्रात्समाकृष्य ललाटे धारयेत्पुनः ।
ललाटाद्वायुमाकृष्य भ्रुवोर्मध्ये निरोधयेत् ॥ २ ॥
नेत्रात्प्राणं समाकृष्य नासामूले निरोधयेत् ।
नासामूलात्तु जिह्वाया मूले प्राणं निरोधयेत् ॥ ३ ॥
कण्ठकूपात्तु हृन्मध्ये हृन्मध्यान्नाभिमध्यमे ।
नाभिमध्यात्पुनर्मेढ्रे मेढ्राद्वह्न्यालये ततः ।
देहमध्याद्गुदे गार्गि गुदादूरौ ऊरुमूलके ॥ ४ ॥
ऊरुमूलात्तयोर्मध्ये तस्माज्जान्वोर्निरोधयेत् ।
बस्तिमूले ततस्तस्माज्जङ्घयोर्मध्यमे तथा ॥ ५ ॥
जङ्घां ततः समाकृष्य वायुं गुल्फे निरोधयेत् ।
स्थानात्स्थाने समाकृष्य यस्त्वेवं धारयेद्धिया ॥ ६ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा जीवेदाचन्द्रतारकम् ।

एतत्तु योगसिद्ध्यर्थमगस्त्येनापि कीर्तितम् ॥ ७ ॥ इति । **स्वधेति** । स्वस्मिन् शरीरे धानं विधानं देहे वायोर्धारणेति यावत्, तस्याः कारणेन हे मन्त्रज्ञ राजन् मन्त्राणां पूर्वोक्तानां रेफादिप्रभृतीनां प्रकाशत्वेन संबन्धि कार्यं तत्तद्भूतजयः तत्सिद्धयेऽग्निः संप्रवर्तत इत्यर्थः । तत्र धारणासिद्धयश्चोक्ता योगिना याज्ञवल्क्येन—

यमादिगुणयुक्तस्य मनसः स्थितिरात्मनि ।
धारणेत्युच्यते सद्भिः शास्त्रतात्पर्यवेदिभिः ॥ १ ॥
व्योमांशे मारुतांशे च धारणां कुर्वतः शुभाम् ।
त्रिदोषजनिता रोगा विनश्यन्ति न संशयः ॥ २ ॥

इत्यन्तेन ग्रन्थेन दर्शिताः। तत्र पादादिजान्वन्तं जान्वादिपाय्वन्तं पाय्वादिहृदयान्तं ततो भ्रूमध्यान्तं ततो मूर्द्धान्तं च क्रमेण भूम्यम्बुतेजोवाय्वाकाशस्थानानि ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवाधिष्ठितानि ल-व-र-य-ह-बीजयुतानि तेषु तेषु पञ्चपञ्चघटिकापर्यन्तं मनो धारयंस्तत्तद्भूतजयो भवति । तथा परमात्मनेव प्रणवेनादावन्ते धारणा मुख्या तथा तेजोऽबभ्रेषु धारणां कुर्वतः क्रमात् वातपित्तश्लेष्मजा रोगा नश्यन्तीति ज्ञेयम् । विस्तरभयात्तु न प्रपञ्चितम् ॥ ६ ॥ एवं त्रिधा प्रणीत इत्यादिना पूरककुम्भकरेचकाभ्यासेन विपुलीकृतो हविष्याशनाभ्यासमहिम्ना वशीकृतो यत्रकुत्रचिद्धारितः प्राणाग्निस्तत्तद्धारणाफलं प्रसूते इत्युक्तम्, तत्र प्रणवेन परमात्मन्येव धारितस्य प्राणस्य फलमुच्यते—**स्वयमिति** । दक्षते सर्वस्मिन्कार्ये संनह्यतीति दक्षः सूत्रात्मा तद्रूपेण संप्राप्तो भवति भगवान्सर्वैश्वर्यसंपन्नः भूतं नित्यसिद्धं च तत् सच्च कारणं तेन कृतः निर्मितः ।

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मन्थनाभ्यासात्पाशं दहति पण्डितः ॥

इति स्मृतेः प्रणवेनात्मनि चेतो युञ्जतः प्रथमम् उकारार्थभूतसूत्रात्मसाक्षात्कारो भवतीत्यर्थः । स एवंभूतो दक्षो मुख्यो ब्राह्मण इति ब्रह्मा ब्राह्मणस्य चतुर्मुखस्य निर्माता। अत एव सर्वेषां भूतानामस्मदादीनां पितामहः॥७॥ कोऽयं दक्ष इत्याशङ्क्य यः पूरकादिनाऽऽराधितः प्राणाग्निः स एवायमित्याह—**दण्डीति** । योऽयं पूर्वं पूरककाले नासिकानलिकया पूर्यमाणत्वाद्दण्डाकारामिव प्राप्त इति दण्डी

१ ख. °ण धर्मज्ञ म° ।

यजते पुष्करे ब्रह्मा मेधया सह संगतः ।
इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः
घृतं क्षीरं यवा व्रीहिः सर्वं परमकं हविः ।
वेदप्रोक्तं मखे न्यस्तं कल्पितं ब्रह्मणः पदे १०
निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् ।
स ब्रह्मा प्रथमं तस्मिन्नाग्निमन्यं प्रवर्तयत ११

न ह्यल्पं विहितं द्रव्यं यथाग्निर्यज्ञकर्मणि ।
प्रवर्तयेद्विभागैर्वा हुतद्रव्यमयं बलम् ॥ १२
फलानि तैः प्रयुक्तानि हवींषि विततेऽध्वरे ।
प्रयुञ्जते प्रयोगज्ञा मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ १३
षण्मासांश्चतुरो वेदान्संबभाषे बृहस्पतिः ।
ब्रह्मणो वितते यज्ञे परया ब्रह्मसम्पदा ॥ १४

जातः । स एव कुम्भकावस्थायां चर्मवाद्वितत इति चर्मीव रूपेण संवृत्तः । स एव पुनः रेचकावस्थायां दण्डरूपात्सूक्ष्मरूपेण शरकाण्डाकारत्वं पूर्ववत्प्राप्तः स एव स एष खड्गवत्तीक्ष्णधारः संसारवृक्षच्छेदनसमर्थः शिखी प्राणाग्निः । पद्मनिभानन इत्यनेन दक्षरूपेण प्रसन्न इति लक्ष्यते । अभवत् प्रसन्नभावेन न्यस्तसंतापो जितक्रोधो जितेन्द्रियश्च स्वभावतोऽभवत् । तत्र स्वाभाविकं वैराग्याद्याविर्भूतं न हठाकृष्टमित्यर्थः । यथोक्तं वृद्धैः—

उत्पन्नात्मप्रबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः ।
भवन्त्ययत्नतः सिद्धा न तु साधकरूपिणः इति ॥ ८ ॥

**यजत इति** । ब्रह्मा दक्षः पुष्करे आत्मतीर्थे मेधया शास्त्राचार्योपदेशप्राप्तया धीवृत्त्या सह संगतो यजते तन्निष्ठो भवति । यस्यामवस्थायाम् इन्द्र आत्मदर्शी तेन प्रोक्तानि सामानि, "**अहमन्नमहमन्नम्**" इत्यादीनि तैत्तिरीयप्रसिद्धानि, इदमदर्शमिति "**तस्मादिन्द्रो नामेदम् इन्द्रो ह वै नाम तमिदं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः**" इत्यैतरेयके च इन्द्रशब्दस्य आत्मदर्शिनि प्रवृत्तिनिमित्तं दर्शितम् ॥ ९ ॥ स समाहितो योगी पूर्वसंस्कारात्समाधेरप्रच्युतस्तत्र यज्ञमेव कल्पितवानित्याह—**घृतमिति** । मखे बाह्ययज्ञे न्यस्तं देवतोद्देशेन त्यक्तम् परमकम् अभौतिकत्वाच्छ्रेष्ठं कल्पितं मनसैव न कर्मतः ब्रह्मणः सूत्रात्मनः पदे स्थाने समाध्यवस्थायामित्यर्थः ॥ १० ॥ **निर्मथ्येति** । अग्नेः परमेश्वरस्य तिरोधानस्थानभूतारणिरिवारणिरविद्या तां निर्मथ्य विनाश्य शमीगर्भसमुत्थितं शं सुखम् ईयते गम्यतेऽनेनेति शमी देहः शमी वृक्षतुल्यो वा तस्य गर्भे सम्यगुत्थितम् आविर्भूतं प्रथमं कारणं ब्रह्मरूपमन्यमकल्पितमाग्निम् अन्तर्यामिणं प्रकर्षेण वर्तयत् । अडभाव आर्षः । शरीरे नित्याविर्भूतमपि देहाद्यभिमानवशात्तिरोहितैश्वर्यं सन्तं देहाभिमानत्यागात् स्वेनेश्वरेण रूपेणाविर्बभूवेत्यर्थः । ब्रह्मा ब्रह्मवित् तस्मिन् सूत्रात्मनि ॥ ११ ॥ ननु यथा सोमयागे अरण्यामग्निमन्थनं क्रियते यथा वा चातुर्मास्येषु तद्वदिहापि तावत्काल्पनिक एवायं निर्मन्थ्योऽग्निरस्तु किं सूत्रादन्यस्य कारणाग्नेः कल्पनेनेत्याशङ्क्याह—**न ह्यल्पमिति** । यथा यज्ञकर्मणि बाह्ये अग्निर्निर्मथ्य होम्यत्वेन विहितः अमृताहुतिरन्याहुतिः सैषा स्वर्ग्याहुतिर्यदन्याहुतिरिति प्रीतिपूर्वकं मानसे यज्ञे तथाऽत्र अग्न्याख्यम् अल्पं बाह्यं द्रव्यं विहितं न हि योगिना इत्थं यज्ञश्चिन्तनीय इति विधिरस्ति । किं तु यज्ञियसंस्कारदार्ढ्याद्योगेऽपि तादृशाः संकल्पा भवन्ति । अत एव श्रुतिः— "**स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति**" इति चिरपरिचितानां पित्रादीनामेव योगेन संप्रज्ञातावस्थायामुत्थानमाह । परिपक्वयोगिविषयं तु अदृष्टाश्रुतवस्तु दर्शनं समाधावति प्राकृतकर्मणोऽत्रानधिकारादन्योऽग्निरत्र प्रकृतसूत्रादानन्तर ईश्वर एव ग्राह्यः । यत् अल्पं द्रव्यम् उत आज्यपयःप्रभृति अग्नौ त्यागपूर्वकं प्रक्षिप्तं तद्विकारभूतं स्वर्गं दिव्यदेहादि तस्य बलम्, अत्र विभागैर्यथोच्चनीचस्थानं प्रवर्तयेन्न त्विह तथेत्यर्थः । अल्पद्रव्यसाध्येषु हि यज्ञेषु वित्तव्ययस्वरूपश्रद्धातारतम्येन फलतारतम्यमास्ति । आत्मयज्ञे तु नायं विभागः सर्वेषां कैवल्यरूपस्य फलस्यैकरूपत्वादिति भावः ॥ १२ ॥ तर्हि किमर्थं संप्रज्ञातं हविरादिकल्पनमुक्तमत आह—**फलानीति** । विततेऽध्वरे योगयज्ञे हवींषि यानि विहितानि तैर्हविर्भिः फलानि च प्रयुक्तानि भवन्ति । "**तं यथा यथोपासते तथा तथा प्रेत्य भवति**" इति श्रुतेः, यादृग्गुणविशिष्टमात्मानं चिन्तयति तादृक्फलभागी ब्रह्मलोके भवति । ये तु ब्रह्मवादिनः अत्रैव ब्रह्मसाक्षात्कारवन्तस्तेषां तानि फलानि अणिमाद्यैश्वर्याणि अत्रैव निग्रहानुग्रहप्रयोगज्ञाः प्रयुञ्जते प्रकाशयन्ति । तथा च काम्यमेव हविरादिकल्पनं न तात्त्विकमिति भावः ॥ १३ ॥ योगफलमेव भङ्ग्यन्तरेणाह—**षण्मासानिति** । बृहस्पतिः देवाचार्यः परया ब्रह्मसम्पदा । "**एषाऽस्य परमा सम्पत्**" इति श्रुतिः । निर्विशेषावस्थया ब्रह्मसंबन्धिनि यज्ञे योगे वितते

१ ख. ह्यन्यं वि° ।

शिक्षाक्षरसमेताया मधुरायाः समंततः ।
सानुस्वरितरामायाः सरस्वत्याः प्रभाषते १५
तेन ब्राह्मणशब्देन ब्रह्मप्रोक्तेन भारत ।
विभाति स मखो व्यक्तं ब्रह्मलोक इवापरः ॥
मखो ब्रह्ममुखोत्तीर्णो ब्रह्मशब्दैरनामयैः ।
प्रयोगैः संप्रयुक्तस्य जलपान्निव विवर्धते ॥ १७
समिद्भिः सोमकलशैः पात्रैश्चैव बर्हिः खलैः
यवैर्व्रीहिभिराज्यैश्च पूर्णैश्च जलभाजनैः ॥ १८
कर्मप्राप्तैश्च पशुभिः कर्मभिश्चापरान्वितैः ।
गोभिः पयस्विनीभिश्च परिवेशैश्च कोमलैः ॥
ब्रह्मवृद्धो वयोवृद्धस्तपोवृद्धश्च भारत ।
ब्रह्मज्ञानमयो देवो विद्यया सह संगतः ॥ २०
मानसैश्च क्रियामूर्तिर्ये च भूताः स्वयं नृप ।
ब्रह्मा जुहोति तांस्तस्मान्मरुद्भिः सहितस्तदा
तेजोमूर्तिधरै रूपैर्न च तत्कर्मणाऽस्पृशत् ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सर्वप्राणभृतां वर ॥ २२
निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् ।
क्रतुना यजते पूर्णमग्निष्टोमेन स प्रभुः ॥ २३
सदस्यैस्तत्सदो व्यक्तं शुशुभे यज्ञकर्मणि ।
जल्पन्ति मधुरा वाचः सानुसाराः क्रियास्तथा
कर्मभिश्च तपोयुक्तैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
सूर्येन्दुसदृशै राजन्विरराज महाक्रतुः ॥
ब्रह्मघोषेण महता ब्रह्मावास इवापरः ।
वसुधामिव संप्राप्तैः सर्वैरेव दिवौकसैः २६
वेदवेदाङ्गविद्भिश्च विनीतैर्ब्रह्मवादिभिः ।
गतागतैस्तपःश्रान्तैः स्वर्गलोके महीयते ॥ २७
ज्वलद्भिरिव विप्रैस्तैस्त्रिभिरेवाध्वरेऽग्निभिः
ब्रह्मलोक इवाभाति ब्रह्मणः स महाक्रतुः ॥ २८
इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गायन्ति ब्रह्मवादिनः
वचनानि प्रयुक्तानि यजूंषि विततेऽध्वरे॥ २९
तपःशान्ता ब्रह्मपराः सत्यव्रतसमाहिताः।
आययुर्मुनयः सर्वे मनोभिः श्रोत्रवादिभिः ३०

सति षण्मासान्—अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। मासषट्कम् आदरनैरन्तर्यदीर्घकालैः सम्यगभ्यस्ते सति चतुरो वेदान् बभाषे चतुर्भिर्वेदैः सह संवादं कृतवान्। वेदान् लब्धवानित्यर्थः। षण्मासादेव योगसिद्धिर्भवतीति भावः। तथा च मैत्रायणीयश्रुतिः—

षड्भिर्मासैस्तु युक्तस्य नित्ययुक्तस्य देहिनः।
आनन्दः परमो गुह्यः सम्यग्योगः प्रवर्तते ॥ इति ।

॥ १४ ॥ स लब्धवेदो बृहस्पतिर्वेदसंप्रदायं शिष्येषु प्रवर्तितवानित्याह—**शिक्षेति**। सः सरस्वत्याः। कर्मणि षष्ठी। सरस्वतीं प्रभाषते सर्वेभ्यो वेदमध्यापयतीत्यर्थः। सानु शिखरं वेदशिर उपनिषदिति यावत्। स्वरितं स्वर्गतिः तत्साधनं कर्म ताभ्यां रामाभिरामा तस्याः।ब्रह्मकर्मकाण्डाभ्यां रमणीयेत्यर्थः ॥१५॥ तेन वेदोपदेशेन ब्राह्मणानि कर्मचोदनवाक्यानि तैः शिक्षते इति ब्राह्मणः शब्दः तेन प्रवृत्तिप्रधानेनेत्यर्थः। ब्रह्मप्रोक्तेन वेदोदितेन मार्गेण विरच्यमानः स मखः याज्ञिकप्रसिद्धो यज्ञः ब्रह्मलोक इव आध्यात्मिकयोगयज्ञ इव विभाति ॥१६॥ मखमेव स्तौति—पदं विष्णुरजो ब्रह्मेत्यतः प्राक्तनेन संदर्भेण—**मख इति**। ब्रह्मशब्दैर्वेदशब्दैः अनामयैः अप्रामाण्यशङ्काशून्यैः प्रयोगैः यथाश्रुतं विनियुक्तः मन्त्रैः संप्रयुक्तस्य सादरस्य यजमानस्य मखो जल्पान्निव विवर्धते ॥ १७ ॥ सोमकलशैः सोमधारणार्थैः ग्रहचमसैः पात्रैः स्रुक्स्रुवादिभिः जलभाजनैः वसुनिचयैकधनैर्भाजनैः ॥१८॥ **कर्मेति**। कर्म यज्ञार्थं वर्धत इत्यनुषज्यते। प्राप्तैर्वसुभिः कनकादिभिः कर्मभिरिष्ट्यादिभिः परान्वितैः परस्मिन् ब्रह्मणि समर्पितैः वत्सैश्च परिप्राप्तैरिति संबन्धः। "छन्दसि परेऽपि, व्यवहिताश्च" इति धातूपसर्गयोः आर्षः संबन्धः। कोमलैः बालैः ॥ १९ ॥ ब्रह्मणा वेदघोषेण वृद्धः वयसा दक्षिणया वृद्धः। "**यज्ञ आयुष्मान्स दक्षिणाभिरायुष्मान्**" इति श्रुतेः पुष्कलदक्षिणावानित्यर्थः। तपसा ज्ञानेन वृद्धः ब्रह्मज्ञानमयस्तत्प्रधानस्तदर्थ इत्यर्थः। विद्यया कर्माङ्गावबद्धोद्गीथाद्युपासनया ॥ २० ॥ **मानसैरिति**। मनःकल्पितैः समिदादिभिः क्रियामूर्तिर्यज्ञात्मा ब्रह्मा ये च पदार्था अन्ये तस्माद्ब्रह्मणः स्वयं भूता विनाऽपि कल्पनास्वभावादेव वात्मन्यध्यस्तास्तान् घृतादीन् जुहोति ॥ २१ ॥ तेजोमूर्तिधरैः चिन्मयैः रूपैर्द्रव्यदेवतादिभिर्योगरूपैरुपेतं तद्ब्रह्मणो यजनं सर्वप्राणभृतां कर्मणां न अस्पृशत् न स्पर्शं प्राप सर्वाधिकः स यज्ञ इत्यर्थः ॥ २२ ॥ शम्याः गर्भे उत्पन्नो योऽश्वत्थस्तस्मादुद्भवो यस्यास्ताम् ॥ २३ ॥ अनुसाराः सहायाश्चमसाध्वर्य्वादयः तत्सहितः ॥ २४ ॥ दिवौकसैः छान्दसमकारान्तत्वम्॥२६॥गतैरागतैश्च महीयते क्रतुरित्यपकृष्यते। मनुष्यलोके तु सुतरां महीयत इति भावः ॥ २७ ॥ त्रिभिरेव ॥२८॥सामानि स्तोत्राणि वचनानि शास्त्राणि ॥२९॥ श्रोत्रवादिभिः श्रुतमात्रानुसारिभिर्मनोभिः संकल्पैः ॥३०॥

१ ख. °रागायाः स° । २ ख. °वर्तते । स° ।

होता चैवाभवद्राजन्ब्रह्मत्वे च बृहस्पतिः ।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः पुराणो ब्रह्मसंभवः ॥ ३१
यजमानश्च यज्ञान्ते विष्णोः पूजां प्रयुज्य च ।
आदित्याः पश्चिमे गर्भे तपसा संवृते नृप ॥ ३२
पदं विष्णुरजो ब्रह्मा निर्द्वन्द्वं निष्परिग्रहम् ।
यतः पदसहस्राणि भविष्यन्त्युद्भवन्ति च ३३
अवन्ध्यं चाप्रमेयं च व्यतिरिक्तं च कर्मभिः ।
आत्मापि यस्य मुनयो भवन्ति निष्परिग्रहाः ॥
परिग्रहाश्च विषया दोषप्राप्ता महीपते ।
दोषाश्च युगपत्सर्वे छादयन्ति मनोबलात् ॥ ३५
इन्द्रियग्रामविषये चरन्तो निष्परिग्रहाः ।
परिग्रहं शुभं धर्ममविद्यालक्षणं विदुः ॥ ३६
विद्यालक्षणसंयोगान्न मनश्छाद्यते नृप ।
यदि चेन्मुनिशब्देन गृह्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ३७
वेदविद्याव्रतस्नातैर्नियतैः कुरुसत्तम ।
दिवि लोकाः सतां स्थान
लोकानां लोक उच्यते ॥ ३८
यत्र देवा हव्यपुष्टा न क्षयं यान्ति भारत ।
यजमानश्च भोगैः स्वैः कर्मप्राप्तोदिते पदे ।
मोदते सह पत्नीभिर्विज्वरो वसुधाधिप ३९
यज्ञावसाने शैलेन्द्रं द्विजेभ्यः प्रददौ प्रभुः ।
दयया सर्वभूतानां निर्मलेनान्तरात्मना ॥ ४०
तं शैलं सर्वगात्राणि परस्परविशेषिणः ।
न शेकुः प्रविभागार्थं भेत्तुं सर्वोद्यमैरपि ॥ ४१

---

होता ब्रह्मा च बृहस्पतिरेव मूर्तिभेदं प्रकल्प्याभूदित्यर्थः ॥ ३१ ॥ विष्णोः पूजां विष्ण्वर्चनं प्रयुज्य कृत्वा क्रतुमहिम्ना यजमानोऽदित्या गर्भे जात इति शेषः । क्रतुभिर्देवत्वं प्राप्यमित्यर्थः ॥ ३२ ॥ एवं कर्मफलं देवताभवं सुखबहुलमुक्त्वा सुखदुःखस्पर्शशून्यम् **"ते ह वै शरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहातिरस्य शरीरं वाव सन्तं प्रियाप्रिये स्पृशतः"** इति श्रुतिप्रसिद्धं शरीरतालक्षणं मोक्षं विष्णुपदमाह—**पदमिति**। पदं विष्णुरिति सामानाधिकरण्येन **"तद्विष्णोः परमं पदम्"** इति षष्ठी राहोः शिरइतिवदौपचारिकभेदपरेति दर्शितम् । अजो न जायते ब्रह्मादिवदित्यजः कर्मप्राप्यः ब्रह्मा ब्रह्मवित् विष्ण्वाख्यं निर्द्वन्द्वं कर्मप्राप्यं पदमेतीत्यर्थः। निष्परिग्रहं निर्गतज्ञानतत्कार्यं पदमेव स्तौति—**यत इति** । इन्द्रादिपदसहस्राणीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ अवन्ध्यं सर्वकर्मफलगर्भितम् । अवध्यामिति पाठे त्वविनाशी इतरत्र तु विनाशीत्यर्थः । अज इत्यस्य व्याख्यानं-**व्यतिरिक्तमिति**। आत्माऽपि आत्मैव यस्य मुनयो भवन्तीति पदं विष्णोरभेदो व्याख्यातः ॥ ३४ ॥ परिग्रहाः परितो गृह्णन्ति बध्नन्तीति परिग्रहाः विषया रूपादयः दोषप्राप्ता रागादिदोषैरेव कल्पिताः । तथा चाक्षपादाचार्यप्रणीतं न्यायोपबृंहितं सूत्रं, "दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः" इति । बलात्पूर्वसंस्कारबलात् मनश्छादयन्ति । अतोऽत्यन्तावहितेन दोषा निग्राह्या इति भावः ॥ ३५ ॥ ननु रूपादिदर्शनं देहवतामपरिहार्यं तत्कथं निष्परिग्रहत्वं सेत्स्यतीत्याशङ्क्य अहंममेत्यविद्यैव परिग्रहो न दर्शनमात्रमित्याह-**इन्द्रियेति**। चरन्तोऽपि निष्परिग्रहा एव भवन्ति मुनय इति शेषः। ऐन्द्रजालिक्यां संपदि तत्त्वविदिव न सज्जत इति भावः । शुभं वेदबोधितं धर्ममपि अविद्यालक्षणं परिग्रहं बन्धकमेव विदुरतो निर्द्वंद्वमेव विष्णुपदं श्रेय इति भावः ॥ ३६ ॥ **विद्येति** । रागादिभिरिति शेषः । कदा न च्छाद्यत इत्यत आह-**यदीति** । ब्रह्मवादिभिर्यदि यदा मुनिशब्देन मुनित्वप्रतिपादकशब्देन तत्त्वमसिवाक्योपदेशेन प्रणवोपदेशेन वा गृह्यतेऽनुगृह्यते तदा तदर्थमननाज्ज्ञाततत्त्वो न रागादिभिश्छाद्यत इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ प्रासंगिकं विद्याफलादिकं समाप्य प्रकृतं कर्मफलमनुसरति-**वेदेति** । सतां लोकानां जनानां स्थानं यद्दिवि तदेव कर्मठवृद्धैर्लोक इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ स्थानमेव विशिनष्टि-**यत्रेत्यर्धेन** । कर्मप्राप्तोदिते कर्मभिः प्राप्ते अधिकारिभिश्च भुज्यैतत्पदामित्युदिते मोदते ॥ ३९ ॥ **यज्ञेति । "शैलं दिव्यं देहं पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं च"** इति श्रुतिप्रसिद्धं कर्मफलभूतं द्विजं द्विजेभ्यः त्रैवर्णिकेभ्यो यजमानेभ्यः प्रभुर्यज्ञफलदाता महाविष्णुः देवानां भूतपालकत्वाद्दययेति ॥ ४० ॥ **तं शैलमिति** । शैलं सर्वगात्राणीति सामानाधिकरण्यं वेदाः प्रमाणमितिवत् । सर्वगात्रात्मकक्षेत्ररूपं शैलं परस्परविशेषिणो भेददृष्ट्या मिथो ब्राह्मणत्वक्षत्रियत्वादिजात्यभिमानेन विशेषवन्तः भेत्तुम् आत्मनो व्यतिरेकेण निश्चेतुं न शेकुः । सर्वोद्यमैः कृत्स्नैरपि कर्मभिः । किमर्थं भेदनं प्रविभागार्थं प्रकर्षेण विद्यादिभ्य आत्यान्तिकव्यतिरेकस्तदर्थं मोक्षार्थमित्यर्थः । क्रतुकोट्याऽपि मोक्षो न लभ्यत इत्याशयः ॥ ४१ ॥

---

१ ख. °प्तोऽमृते प°।

ततस्ते ब्राह्मणगणा निषेदुर्वसुधातले ।
श्रमेणाभिहताः सर्वे विवर्णवदना नृप ॥ ४२
सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु वाग्मिर्मधुरभाषिता॥
अब्रवीत्प्रणतः सर्वाञ्छिरसा तान्द्विजोत्तमान्
न हि शक्यो बलाद्भेत्तुं युष्माभिरसुसङ्गिभिः
अपि वर्षशतैर्दिव्यैः परस्परविरोधिभिः ॥४४
एकीभूता यदा सर्वे भविष्यथ समाहिताः
अविरोधेन युगपद्विभजिष्यथ निर्वृताः ॥ ४५
बलं हि रागद्वेषाभ्यां वर्धते ब्रह्मसत्तमाः ।
विमुक्तं रागदोषाभ्यां ब्रह्म वर्धति शाश्वतम् ॥
यदाऽहं भेदयिष्यामि स्वर्गभिद्भिः शिलाशतैः
धातुभिश्च विसर्पद्भिः शिखरैश्चानुपातिभिः
विशीर्णैः पार्श्वविवरैर्नागैश्च गलितैर्भुवि ।
बहुभिर्व्यालरूपैश्च चोद्यमानो गुहाशयैः ॥ ४८
प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं शैलेन्द्रस्य सुभाषितम्
तूष्णीं बभूवुस्ते सर्वे तदा ब्राह्मणसत्तमाः ४९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## वर्णाश्रमधर्मपरिपालनम् ।

## २४

वैशम्पायन उवाच ।

बलिर्होमाश्च वर्धन्ते अहन्यहानि भारत । द्विजानां तपसाढ्यानां गृहधर्मेषु तिष्ठताम् १

**तत इति**। देवताभावेऽप्युच्चनीचभावदर्शनक्षोभेण श्रान्तास्ते निषेदुः वसुधातले पुनः संसारं प्रापुरित्यर्थः। विवर्णवदनाः स्वर्गे भृशं दुःखेन ॥४२॥ **सुपार्श्व इति** । शोभनं पार्श्वोपलक्षितं सामीप्यं यस्य स सुपार्श्वः सद्गुरुः गिरिमुख्यः "**गिरति ह वै द्विषन्तं पाप्मानम्**" इति श्रौतनिर्वचनात् पापच्छेत्तॄणां मुख्यः समूलाविद्योच्छेदकत्वात् । प्रणतः शान्तः तान्प्रति शिरसा वेदान्तवाक्येन "**ओमापोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्**" इति । अनेन वाय्वादीनां ब्रह्मभावप्रतिपादकेन अब्रवीत् ॥४२॥ **न हीति** । अयं देहाभिमानशैलः बलात् हठेन युक्त्या विना भेत्तुं न हि शक्यः । तत्र हेतुः असुसङ्गिभिः असुषु इन्द्रियेषु सङ्गशीलैः देहेन्द्रियादिष्वात्मधीमद्भिः ॥४४॥ भेदने उपायमाह—एकीभूताः समाहिताः समाधिमन्तौ यदि समाधौ ऐकात्म्यं प्राप्ताः। "**अत्र ह्येते सर्व एकं भवति**" इति श्रुतिप्रसिद्धं हि तत् अविरोधेन सर्वभूताभयदानेन निर्वृताः शान्ताः यदि भविष्यथ तर्ह्येवैनं विभजिष्यथ । समाधिरेव देहाहंधीभेदक इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ **बलमिति**। बलं स्वभावजयसामर्थ्यं रागस्तत्सहचरो द्वेषः ताभ्यां वर्धते छिद्यते चौरादिकस्य वृद्धेर्ध्विकिंचिद्भूय ब्रह्म ब्रह्मनिष्ठा वर्धति वर्धते । आर्षस्तङ्भावः ॥४६॥ **यदाहमिति** । अहं गुहाशयैश्चोद्यमानः एनं शैलं भेदयिष्यामि युष्मान् भेदने नियोक्ष्यामि । तदैव भेत्स्यथेति अध्याहृत्य श्लोकद्वयं योज्यम् । अहं गुरुः गुहायां बुद्धौ शेरते ते संस्कारास्तैः स्वर्गभिद्भिः स्वर्गात् पृथग्भूतैः ऐहिकामुष्मिकभोगविरक्तैः अत एव शिलाशितैः स्फाटिकशिलावदत्यच्छैर्धातवो देहारम्भकाणि तेजोऽबन्नानि तैस्तत्कार्याणि वाक्प्राणमनांसि । "**अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणास्तेजोमयी वाक्**" इति श्रुतेः । तेषां वागादीनां विसर्पणेन प्रवृत्तिलिङ्गेनेत्यर्थः । शिखरैः खेभ्यश्छिद्रेभ्य इन्द्रियैरनुपातिभिः खले-कपोतन्यायेन तत्त्वेन पतनशीलैः ॥ ४७ ॥ पार्श्वशब्देन समीपस्थास्त्र्यादयस्तान्येव विवराणि चित्ताहिप्रवेशबिलानि तैर्विशीर्णैः तथा नागैः श्वेतसर्पतुल्यैः शास्त्रादिव्यसनैः व्यालैः कृष्णसर्पतुल्यैः कामादिव्यसनैश्च विशीर्णैश्चोद्यमानः प्रेर्यमाणः एतैर्गुणैः प्रीतो गुरुर्यदा देहाद्यध्यासमपनिनीषेत्तदैव तन्नाशो नान्यथेत्यर्थः ॥४८॥ तूष्णीं बभूवुः वैराग्याद्यभावादात्मनः देहात्पृथक्करणव्यापारान्निवृत्ता इत्यर्थः॥४९॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः२३.

२४

**अष्टादशे वपुर्भेत्तुमशक्तेः कर्मभूतले ।**
**कर्तव्यं ब्रह्मसदने चित्तशुद्ध्यर्थमीर्यते ॥१॥**

**बलिरिति** । तेषां शैलभेदासमर्थानां ब्रह्मविदां कर्मविदां ब्रह्मवादिभिस्तादृशैः ऋत्विग्भिः सार्धं पृथिव्यां बल्यादिकं वर्धते । तथा देवता विष्णुः अर्च्या गुर्वादयः ते च पूज्यन्ते तदाप्रभृति शैलेन्द्रवचनप्रतिग्रहप्रभृतीति द्वयोः संबन्धः ॥ १ ॥

देवताचार्याश्च पूज्यन्ते तदाप्रभृति भारत।
तेषां ब्रह्मविदां राजन्पृथिव्यां ब्रह्मवादिभिः २
तत्रैव ब्रह्मसदने समे निस्तृणकण्टके।
प्राज्येन्धनतृणे देशे पुण्ये पर्वतरोधसि॥ ३
वासं यत्र प्रकुर्वन्ति दृष्ट्वा भगवतः क्रियाम्
तपोऽर्थिनो महाभागा ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ४
गृहस्थधर्मनिरता दानप्राप्तेन चेतसा।
यतयश्चापि काङ्क्षन्ति धर्मेणेह विकाङ्क्षिणः
वन्यैः कर्मफलैश्चैव रता ब्राह्मणपुङ्गवाः
अग्निहोत्रमतस्नाता जितक्रोधाः समाहिताः
दैवयुक्तेन वा युक्ताः कर्मणा ब्रह्मसत्तमाः।
चीरवल्कलसंवीता नियता नियतेन्द्रियाः॥७
चरन्तो ब्रह्मचर्यं च व्रतमास्थाय दारुणम्।
अनेन विधिना राजन्क्रमप्राप्तेन सर्वशः॥ ८

क्रमाद्वै वेदसंस्कारं पुण्यं प्राप्ता सनातनम्।
पूर्वैराचरितं राजन्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ ९
नावेदविद्वानागच्छेन्नापि रौद्रं व्रतं चरेत्।
न च त्यागेन गच्छेत गृहधर्मं न च त्यजेत् १०
नैव गच्छेत दुःस्थानमप्राप्तो वेदसंचयम्।
ऋचश्च संचयः पूर्वः सामगानां च भारत ११
ये चापि पुत्रिणो न स्युः श्रुत्वापि प्राप्नुयुः फलम्
ब्राह्मणास्तपसा श्रान्ता गुरोश्च परिचर्यया
यस्य नैव श्रुतं ब्रह्मन्न गृहीतं विशांपते।
कामं तं धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्
अथवा नैव विद्येत यद्ब्रह्म नाद्रियेद्द्विजः।
द्वाभ्यां तु श्रोत्रविषये मनः पूर्वं समाहितम्॥
एवं सर्वेन्द्रियारम्भान्वेदपूर्वान्समाचरेत्।
ब्राह्मणो भूतसंपन्नो य इच्छेद्भूतिमात्मनः १५

तत्रैव पृथिव्यामेव ब्रह्मसदने "**अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्**" इति श्रुतिप्रसिद्धे वाराणस्याख्ये अविमुक्ते। तत्रैवेति विशेषणम्। आध्यात्मिकभ्रूघ्राणसंध्याख्यब्रह्मसदननिवृत्त्यर्थं तदुपास्त्यनधिकारिणामेव प्रस्तुतत्वात् क्षेत्रमेवात्र ब्रह्मसदनशब्दार्थः। पर्वतस्य विन्ध्यस्य रोधः समीपे॥ ३॥ भगवतः क्रियां प्राणिनां गत्या गतिरूपां तपोऽर्थिनः। "तप आलोचने।" "**अत्र हि जन्तोः प्राणेषु क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे। येनासावमृती भूत्वा मोक्षीभवति**। इति श्रुतिप्रसिद्धमोक्षहेतुतत्त्वज्ञानार्थिन इत्यर्थः॥ ४॥ दानप्राप्तेन शुद्धिं प्राप्तेन। "दैप् शोधने" अस्य ल्युडन्तस्य रूपं दानमिति। यतत इति संन्यासिनां ग्रहणं चाप्यर्थे। यतयोऽपीह काङ्क्षन्ति वासमित्यनुषज्यते। तेषामपि, "अविमुक्ते प्रतिष्ठानां विहारो नैव विद्यते।" इति काशीतोऽन्यत्र गमननिषेधात् विकांक्षिणो विशेषेण कांक्षा इच्छा तद्वन्तः इह-वस्तुमित्यर्थः॥ ५॥ वानप्रस्था अपि एतदेव काङ्क्षन्तीत्याह-**वन्यैरिति द्वाभ्याम्**। एतेऽपीह वासं कांक्षन्तीत्यनुषज्यते॥ ६॥ दैवयुक्तेन अयाचितोपस्थितेन कर्मणा याच्ञादिना युक्ताः वृत्त्यर्थमिति शेषः॥ ७॥ ब्रह्मचर्यं ब्रह्मनिष्ठाम् अनेन आश्रमक्रमेण॥ ८॥ आचरितं संस्कारम्॥ ९॥ **नेति**। अवेदविद्वान् गृहधर्मं न आगच्छेत् कृत्स्नं वेदमप्राप्य गार्हस्थ्यं न कुर्यादित्यर्थः।

न च त्यागेन परिव्राजेन गच्छेत म्रियेत। एतच्च मनुनाप्युक्तम्—

"अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य सुतानपि।
अनिष्ट्वा शक्तितो यज्ञैर्मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः॥ इति

एतच्चाविरक्तविषयम्। "**ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्**" इति श्रुतिविरोधात्॥ १०॥ नापि वेदग्रहणात् प्राक् संन्यसेदित्याह-**नैवमिति**। दुःस्थितं स्थानम् अनिकेतत्वमित्यर्थः। वेदसंचयस्यापीयत्तामाह-**ऋच इति**। बह्वृचानां सामगानां चाध्वर्युवैदिनामप्यृच एव संचयः साम्नां यजुषां चाप्यृक्ष्वेवान्तर्भाव इत्यर्थः॥ ११॥ **ये चेति**। पुत्रिणो न स्युः गार्हस्थ्यं न चक्रुरित्यर्थः। श्रुत्वा वेदान्तानिति शेषः। फलं ज्ञानम्॥१२॥ **यस्येति**। श्रुतं कर्मब्रह्मणोः श्रवणं न गृहीतं नानुष्ठितं यस्य श्रवणमनुष्ठानं च नास्ति तं शूद्रतुल्यं राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्॥ १३॥ **अथवेति**। अथवेति पक्षान्तरे। यत् ब्राह्मणः सन् ब्रह्म वेदं नाद्रियेत् इति यत्तन्नैव विद्यते सर्वोऽपि ब्राह्मणो वेदवानेव अन्यथा ब्राह्मणत्वमेव तत्र नास्तीति भावः। तेन तस्य शूद्रसमीकरणं राज्ञामप्रसक्तमेव। द्वाभ्यां ब्रह्मचारिगृहस्थाभ्यां श्रोत्रविषये श्राव्ये धर्मे ब्रह्मणि च पूर्वमध्ययनाध्यापनकाले एव मनःसमाहितं कृतं तस्मान्न ब्राह्मणस्यावहेलना राज्ञा कर्तव्येति भावः॥ १४॥ उपसंहरति--**एवमिति**। यस्मादेवं तस्मात् भूतिं विद्याभूतिम् अपरोक्षज्ञानसंपदम्॥ १५॥

१ ख. श्रोत्रादीनामवि°। २ ख. °माहरेत्। ए°

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## ईशभक्तिमाहात्म्यम् ।

### २५

वैशम्पायन उवाच ।

ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुरस्कृताः
ब्राह्मणान्पूजयन्देवान्वसुभिर्ब्रह्मसंभवैः ॥ १
नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप ।
कुर्वन्ति सततं यज्ञे क्रमप्राप्तं पितामहम् ॥ २ ॥
वचोभिर्मधुराभाषैः पञ्चेन्द्रियनिवासिभिः ।
सर्वभूतप्रियकरैः सर्वभूतहितैषिभिः ॥ ३
स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पञ्चेन्द्रियसमाहितैः ।
प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत
ततः कश्यपमाभाष्य प्रोवाच भगवान्प्रभुः ।
भवानपि सुतैः सार्धं यक्ष्यते वसुधातले ॥ ५
क्रतुभिः परमप्राप्तैः संपूर्णवरदाक्षिणैः ।
यक्षाः सुराश्च ते सर्वे यथा प्रतिगुणैः प्रभो ६
वयं यक्ष्यामहे पूर्वं पूर्वं यक्ष्यामहे वयम् ।
एवमन्योन्यसंरम्भाद्विद्यन्ते बलदर्पिताः ॥ ७
दैतेयाश्चाप्यदैतेयाः परस्परजयैषिणः ।
युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुलौ भुजौ ॥ ८
निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः
अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ९
निवार्यमाणा युध्यन्ते वृषभा इव गोकुले ।
प्रयुद्धा युद्धसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयैषिणः १०
पश्यतां सर्वभूतानां मृत्योर्विषयमागताः ।
ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलः ११

---

इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

**एकोनविंशे श्रौतोऽपि यज्ञः कामादिविघ्नितः**
**तेनेशभक्तिरेवैका तमोहन्त्री निगद्यते ॥ १ ॥**

**ते त्विति** । द्वयोः संबन्धः । ते नारदादयो वैदिकमेव श्रेयस्करं तदकरणे राज्यदण्डश्चेति जानन्तः गोब्राह्मणाः गौर्वाक् वेदप्रधाना इत्यर्थः । नागाः नास्ति आगो विष्यपराधो येषु ते नागाः रजःप्रकृतिभावाः । समासान्तश्च टच् आर्षः । चन्द्रादित्याभ्यां कालो लक्ष्यते । दर्शपूर्णमासौ पुरस्कृत्येत्यर्थः । ब्राह्मणान् ब्रह्मप्रभावान् देवानृषींश्च पूजयन् अपूजयन् । अड्भाव आर्षः । वसुभिः हविर्दक्षिणाभिः ब्रह्मसंभवैरिति ब्रह्मैव ब्रह्मणाऽर्चितवन्त इत्यर्थः ॥ १ ॥ क्रमप्राप्तं ब्राह्मणपूजायाः क्रमेण पितामहं ब्रह्माणमपि अपूजन् । कुत्र? यज्ञे पुत्रयज्ञे, पुत्रपूजया पितुराह्लादो भवतीति तद्वत् ॥ २ ॥ पञ्चेन्द्रियाणि निवासयन्ति निश्चलीकुर्वन्ति तैः ॥ ३ ॥ पञ्चभिरिन्द्रियैः समाहितैरेकाग्रैः यज्ञं दृष्ट्वा ब्रह्माऽपि, दिष्ट्या भाग्येन । एवंविधा भवतां यज्ञे प्रवृत्तिरिति स्लाघ्यमिदं कर्मेत्यर्थः ॥ ४ ॥ भवान् यक्ष्यते यक्षाः सुराश्च यक्ष्यन्ते प्रतिगुणैः स्वस्वगुणाः सात्त्विकराजसतामसा वा प्रतिगुणास्तैः स्वस्वाभिप्रायेणेत्यर्थः ॥ ६ ॥ एवं क्रतौ प्रवृत्ते आध्यात्मिकाः देवासुराः शमकामादयो मिथः स्पर्धमाना आसन् तेषु शमादिभिस्तत्तदिन्द्रियकर्मणः स्तोत्रपाठादिनाऽसुरान् जेष्याम इत्यध्यवसितैः सुरैर्वागादिमनोन्तानि सर्वाणीन्द्रियाणि पापविद्धानि कृतानि । अत एव तेषां शुभाशुभविषयप्रकाशकत्वमविशेषेण दृश्यते । ततः प्राणाख्यं सूत्रात्मानं देवाः आश्रितवन्तस्तेन सर्वे कामादयो निहता इत्ययमर्थो **"द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च तत्र कनीयसा एव देवा ज्यायसोऽसुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त"** इत्यादिना बृहदारण्यके दर्शितस्तमुपबृंहयति—**वयमिति** ॥ ७ ॥ विप्रैर्निरोद्धुमशक्याः अपि द्विविधाः अपि वृत्तय इत्यर्थः ॥ ९ ॥ प्रयुद्धाः प्रकृष्टं युद्धं येषां ते ततो यज्ञं विहाय प्राणोपास्तौ प्रवृत्तेष्वपि तेषु सर्वे प्राणजयैषिणः अभूवन् । सर्वशुभाशुभेन्द्रियवृत्तिरूपाः सुरासुराः प्राणं सूत्रात्मानं जेतुमेषितवन्तः तावत्तैव सर्वेऽपि नष्टाः पषाणं प्राप्येव पांसुपिण्डाः ॥ १० ॥ **तत इति** । परं बाह्येन्द्रियवृत्तिसमूहं कृत्वा कर्तित्वा छित्त्वा स्यति मन इति शेषः । शब्देन शाब्दज्ञानजेन विवेकेन ॥ ११ ॥

रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः
चचाल वसुधा चैव पादाक्रान्ता च रोचिभिः
नौर्यथा पुरुषाक्रान्ता निषीदति महाजले ।
पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्दमाना गजा इव ॥ १३
चुक्षुभुश्च महानद्यस्ताडिता मातरिश्वना
ततः समभवद्युद्धं मधोर्विष्णोश्च भारत १४
युगान्तकरणं घोरं सर्वप्राणिभयंकरम् ।
प्रममाथ बलं विष्णुः समग्रं बलपौरुषम् ॥ १५
वह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा ।
तथा प्रशामितं तेन भगवत्यपकारिणा ॥ १६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## मोहविवेकयोर्युद्धम् ।

## २६

वैशम्पायन उवाच ।
बलवान्स तु दैतेयो मधुर्भीमपराक्रमः ।
बबन्ध पाशैर्निशितैर्महेन्द्रं पर्वतान्तरे ॥ १
तं वै प्रह्लादवचनाल्लक्षणश्च भारत ।
ऐश्वर्यमैन्द्रमाकाङ्क्षन्भविष्यं बुद्धिसंक्षयात
बद्ध्वेन्द्रं सहसा मध्ये पाशैर्मर्मविवर्जितैः ।
आयसैर्बहुभिश्चित्रैर्बलवद्भिर्विदारणैः ॥ ३
विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद्युद्धकोविदः ।
मध्ये गणानां सर्वेषां कालस्य वशमागतः ॥४
द्वैधीभूताः काश्यपेया मधोर्वशमुपागताः ।
युद्धार्थमभ्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदाः ॥ ५
गन्धर्वाः किंनराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदाः।
प्रनृत्यन्ति प्रगायन्ति प्रहसन्ति च सर्वशः ॥६
तन्त्रीभिः सुप्रयुक्ताभिर्मधुराभिः स्वभावतः ।
मनो मधोर्विधुन्वन्ति युध्यमानस्य रागिणः७
मधोर्बलार्थं मधुनो नियोगात्पद्मयोनिनः ।
एतान्विकारान्कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः
तत्र शक्तो हि गान्धर्वे तस्मिञ्छब्दे मधुर्मनः
दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन् ९
मधोश्च मन आक्षिप्य पश्यन्योगेन चक्षुषा
मन्दरं प्रयते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १०

---

बाहुभिर्वा तुल्यैर्वैराग्यादिभिः । तत्रापि पूर्वोक्तो रजस्तमोरूपो विघ्न उपस्थित इत्याह--**चचालेति** । वसुधा योगभूमिः सत्त्वापत्त्याख्या रोचिर्भिः विषयवासनाज्वालाभिः ॥१२॥ पर्वताः पर्वततुल्याः आसनबन्धादयः ॥ १३ ॥ नद्यो नाड्यः मातरिश्वना प्राणवायुना सूत्रभावादुत्थितो बभूवेत्यर्थः। **तत इति** । एवं विक्षिप्तं चित्तं पुनर्निरोध्यमानं सत् मधुनामानं लयं प्राप्नोति । स च सत्त्वाख्येन विष्णुना प्रतिहन्तव्य इत्यर्थः ॥ १४ ॥ युगान्तः संसारान्तः ॥ १५ ॥ बलं निद्रातन्द्राजाड्यकषायाङ्गमर्दादिः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

**तमसा देहनिगडे क्षिप्तमात्मानमुत्तमः ।**
**उद्धरेत्सत्त्वसामर्थ्यादिति विशे निरूप्यते**

**बलवानिति**।मधुः आसुरो भावः महे., पाशैर्वासनाख्यैः महेन्द्रम् आत्मानं पर्वान्तरे देहमध्ये॥१॥ **तमिति**।स तं बबन्धेति पूर्वेणान्वयः। प्रह्लादवचनात् प्रह्लादः प्रहर्षः तदनुसारित्वद्विषादाख्यस्य लयस्येति भावः।लक्षणं च योगिनः पूर्णसत्त्वराहित्यं तदभिज्ञश्च मोहः इन्द्रस्यात्मनो बुद्धिसंक्षयाद्भविष्यं द्वैतादर्शनरूपमैश्वर्यमाकांक्षन्सुषुप्तौ निर्विकल्पावस्थासदृशायां पातयिष्यन्नित्यर्थः ॥ २ ॥ **बद्ध्वेति** युग्मम्।मर्मविवर्जितैः भेदस्थानरहितैरभेद्यैरित्यर्थः । अत एव आयसैरिव दृढैः विदारणैरन्तर्दुःखदैः ॥ ३ ॥ **द्वैधीभूता इति** ॥ ५ ॥ द्वैधीभूता इति प्रोक्तं द्वयेन प्रजोत्पत्त्यार्थमाह-**गन्धर्वा इति** । गन्धर्वादयो रजःप्रधाना मधोर्मोहस्य मनो धुन्वन्ति विस्फारयन्ति॥६॥ मधुनस्तमसः पद्मस्य योनिर्ब्रह्मैवेत्यर्थः । रजस्यपि प्रकृतिस्तमोमूलिकैवेति भावः ॥८॥ **तत्रेति**। प्राणदन् मधुस्तत्र गान्धर्वे मनो दधाविति शेषः ॥९॥ आक्षिप्य आ समन्तात् विषयेषु क्षिप्त्वा स्वस्यापसरणे सत्त्वं प्रयते प्रगच्छति तिरोबभूवेत्यर्थः ॥ १० ॥

१ ख. रोचिभिः । नौ ।

ऋषयो दीप्तमनसं किंचिद्व्यथितमानसाः।
पितामहं पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत ॥ ११
विष्णुं सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो मधुर्मधुनिभेक्षणः।
भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात्पदम् ॥१२
विष्णुश्चाभ्यहनद्दैत्यं कराग्रेण स्तनान्तरे।
स पपात महीं तूर्णं जानुभ्यां रुधिरं वमन्१३
न चैनं पातितं हन्ति विष्णुर्युद्धविशारदः।
बाहुयुद्धे हि समयं मत्वाऽचिन्त्यपराक्रमः१४
इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठञ्जानुभ्यां स महीतलात्।
मधू रोषपरीतात्मा निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ १५
परुषाभिस्ततो वाग्भिरन्योन्यमभिगर्जतुः।
समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवधैषिणौ ॥ १६
उभौ तौ बाहुबलिनावुभौ युद्धविशारदौ।
उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ१७
दृढप्रहारिणौ वीरावन्योन्यं विचकर्षतुः।
शैलेन्द्राविव युद्ध्यन्तौ पक्षैः पाषाणसंनिभैः॥
विकर्षन्तौ वमन्तौ च अन्योन्यं वसुधातले।
गजाविव विषाणाग्रैर्नखाग्रैश्च विचेरतुः ॥१९
ततो व्रणमुखैश्चैव सुस्राव रुधिरं बहु।
ग्रीष्मान्ते धातुसंसृष्टं शैलेभ्य इव काञ्चनम्॥
संसिक्तौ रुधिरौघैश्च स्रवद्भिः समरञ्जितौ।
अथोद्यतैः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयतां महीम्२१
अभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा।
पतङ्गाविव युध्येतां पक्षाभ्यां मांसगृद्धिनौ२२
शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे।
सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः परया वर्णसम्पदा२३
स्तुतयो विष्णुसंयुक्ताः सत्याः सत्यपराक्रमे।
शरीरं धातुसंयुक्तं संयुक्तं चेतनेन च ॥ २४
तद्ब्रह्म इन्द्रियैर्युक्तं तेजोभूतं सनातनम्।
ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयतां गते २५
पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा।
प्रबोध्य भावं भूतानां त्रिषु लोकेषु कामदः॥
सुरूपो बहुरूपांस्ताँल्लोकान्संचरते वशी।
मानसीं तनुमास्थाय बहुभिः कारणान्तरैः॥
योगात्मा धारयन्नुर्वी नागात्मानं दिवंधरः
ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः ॥ २८
ब्राह्मेण विप्रान्वसति युद्धेनैव च क्षत्रियान्।
प्रदानकर्मणा वैश्याञ्छूद्रान्परिचरेण च ॥२९
गावः क्षीरप्रदानेन अश्वान्यज्ञेषु प्रोक्षणैः।
पितरश्चोष्मणा वेदहविर्भागेन देवताः ॥ ३०

ऋषयो मन्त्रास्तज्ज्ञानानि पितामहं परमात्मानम्, अन्तरधीयत अन्तर्हिता बभूवुः। एकवचनमार्षम् ॥ ११ ॥ विष्णुमित्यादिना विष्णुदैत्यरूपकेण विवेकमोहयोर्युद्धमाह एकादशभिः ॥ १२ ॥ **शुश्रुवुरिति**। अथ भूतानि पुष्करे ताः स्तुतीः शुश्रुवुः याः स्तुतयः विष्णुसंयुक्ताः परया वर्णसंपदा उपलक्षिताश्च सत्यपराक्रमे भगवति विषये सत्याः अबाधितार्थास्ताः शुश्रुवुरिति यत्तच्छब्दाध्याहारेण योज्यम् ॥ २३ ॥ **शरीरमिति**। अनात्मनि देहादावात्वाभिमानोऽविद्याख्यो मोहः तन्नाशायात्मानात्मनोर्विवेकाय स्थूलात् विविनक्ति धातवस्तेजोऽबन्नानि तेषां संयुक्तं संयोगः शरीरं तत्र मलपिण्डतुल्ये चैतन्यं न संभावितमिति ततः पृथग्भूतेन चेतनेनान्वितमिति वक्तव्यम्। तच्च चेतनं ब्रह्मैव तेजोभूतं चिन्मात्रम् इन्द्रियैर्युक्तं जीव इति शेषः ॥ २४ ॥ एवं जीवस्य ब्रह्मभावमुक्त्वा देहस्यापि तमाह—**ध्रुवमिति**। ते देहारम्भकाः भूते सूक्ष्मे कारणे ध्रुवं निश्चितं तिष्ठन्ति। प्रलयतां प्रलयाधिष्ठानतां गते पुनश्च सूक्ष्ममेवानेकधा बहुरूपं भूत्वा पुनश्चोद्भवति। अयं भावः—शुद्धं प्रत्यङ्मात्रमेव-[2]निर्वचनीयं मायामनइन्द्रियादिभिः सूक्ष्मस्थूलस्थूलतरैः शबलपराग्दृश्यरूपेण मुकुरैर्मुखमिव त्रेधावभाति। तत्रान्तस्योपाधेः पूर्वस्मिन् लये लोचनोत्तेजनाक्षरन्यायेन स्थूलतरं स्थूलरूपेणैवावशिष्यते। एवं स्थूलमपि सूक्ष्मरूपेण तदपि मायापगमे चिन्मात्रेणेति युक्तं सर्वस्य ब्रह्ममात्रत्वमिति ॥ २५ ॥ **प्रबोध्येति**। त्रिलोकेषु कारणसूक्ष्मस्थूलरूपेषु भूतानां भावं स्वरूपं प्रबोध्य तानेव लोकान्स्वरूपचैतन्येनाभिव्याप्य वशी असंग आत्मा चरते भुङ्क्ते। कर्मव्यतिहारे तङ्। लोकात्मानौ परस्परं भुञ्जाते पालयत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ **मानसीमिति**। सार्धश्लोक एकं वाक्यम् ॥ २७ ॥ ईश्वरः सूक्ष्मेण रूपेण आत्मानं धारयन् चरते इति पूर्वेणान्वयः। किं कृत्वा? बहुभिः कारणान्तरैः दुष्टनिग्रहसाधुसंरक्षणादिभिः निमित्तैः मानसीं तनं शेषकूर्मादिरूपमास्थाय। कीदृश ईश्वरः? योगात्मा। कीदृशमात्मानम्? शेषनागरूपं दिवंधरः द्युलोकस्य धर्ता, ब्रह्म वेदं, भूतं चतुर्विधं परं च पञ्चविधं भूतं धार्यं धारकश्चात्मैवेत्यर्थः ॥ २८ ॥ ब्राह्मेण वेदमयेन रूपेण विप्रानधिष्ठाय वसति सर्वत्र भगवानिति शेषः। शेषं स्पष्टम् ॥ २९ ॥ गाः अधिष्ठाय क्षीरप्रदानेन वः युष्मान्पान्ति यज्ञेषु अश्वान् यज्ञियद्रव्याणि अधिष्ठाय प्रोक्षणैः फलामृतसेकैश्च वः पान्ति। पितरः पितॄन् ऊष्मणा श्रप्यमाणहविर्बाष्पेण "**ऊष्मभागा हि पितरः**" इति श्रुतेः ॥ ३० ॥

१ ख. °ष्मणैवेह ह°। २ ग. °त्यग् दृङ्मात्र°।

चतुर्भिर्व्यतिरिक्ताङ्गैस्त्रिभिरन्यैश्च धातुभिः ।
सप्तभिः पितृभिर्नित्यैस्त्रील्लोकान्परिरक्षति ३१
चन्द्रसूर्यात्मकं नित्यं तद्रूपनिहितात्मकम् ।
प्रकाशं चाप्रकाशं च निगूढं स्वेन तेजसा ३२
त्रयस्तु पितरो नित्यं वर्धयन्ति दिवाकरम् ।
चतुर्भिः पितृभिश्चैव चन्द्रो वर्धति मण्डले ॥
त्रयः पितृगणा नित्यं पिण्डान्पश्चाददन्ति ते ।
चत्वारोऽन्ये पितृगणाः सिद्धाः पञ्चक आददे
त्वमेव पञ्च तान्धर्मांस्त्वमेवापश्च तान्विभो
सनातनमयो दिव्यः शाश्वतो ब्रह्मसंभवः ॥
तस्मात्तत्तेज आदत्ते अग्निर्वायुश्च सर्वशः ।
अतस्त्वं कर्मणा तेन आदित्यः समपद्यत ॥३६
यदादत्सि जगत्सर्वं रश्मिभिः प्रदहन्निव ।
युगान्तकाले संप्राप्ते परां सिद्धिमुपागतः ॥३७
पक्षसंधावमावास्यां लोकं चरसि मानुषम् ।
ऋषिभिः सह गूढात्मा सूर्येन्दुवसुसंभवैः ३८

सफलं कर्म कुर्वाणं यजतां पुष्टिवर्धनम् ।
हेतूनामविकाराय मा भूत्कर्मविपर्ययः ॥ ३९
वनस्पत्यौषधीश्चैव युगपत्प्रतिपद्यसे ।
बालभावाय वसुधां पक्षे पक्षे जनिस्तव ॥ ४०
भूतानां भुवि भूतेश भाव्यर्थे वसुधातले ।
वसु यद्भावि किंचिच्च सर्वं तत्त्वमयं विभो ४१
त्वमेव[1] विविधं धर्मं शाश्वतं वसुधातले ।
देवयज्ञं मन्त्रवाक्यमात्मयज्ञं समानुषम् ॥ ४२
द्विविधः स्वर्गमार्गश्च सूर्यश्चन्द्रश्च निर्मलः ।
चन्द्रमाः पितृयानश्च देवयानश्च भास्करः ४३
त्वमेव वसुधायुक्तो विश्वं चरसि[3] सीमया ।
एकीकृत्य गणान्सर्वान्संक्षिप्यामुत्र संभवः ४४
एकस्त्वमसि संभूतः पुराणपुरुषो विराट् ।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च कर्मकारकरो वशी ॥ ४५
मूर्तस्तेजसि संभूतो वायुः पर्येति खेचरः ।
सप्तभी रूपसंस्थानैर्नित्यमावृत्य तिष्ठति ४६

"यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पिता एकमस्य साधारणं द्वे देवानभाजयत् त्रीण्यात्मनेऽकुरुत पितृभ्य एकं प्रायच्छत्" इति सप्तान्नब्राह्मणार्थं संगृह्णाति—**चतुर्भिरिति**। धातुभिः दर्शपूर्णमासपितृयज्ञसाधारणान्तैः त्रिभिर्मनोवाक्प्राणैः एवं सप्तभिरन्नैः पितृभिः सह त्रील्लोकान्परिरक्षति। किंभूतैः सप्तभिः? नित्यैः अकरणे प्रत्यवायकरैः ॥३१॥ **चन्द्रेति**। एतत्सप्तकं चन्द्रसूर्यात्मकं यथात्मकं यथायोगं प्रकाशम् अर्चिरादिमार्गरूपम्, अप्रकाशं धूमादिमार्गरूपं निहतः संकटे पातित आत्मा येन तत्स्वेन तेजसा चित्प्रकाशेन निगूढं व्याप्तं च सप्तकम् ॥ ३२ ॥ एतदेव विभजते-त्रयो मनोवाक्प्राणाः पितर इत्यनेन स्रष्टृभेदमेषामाह, निगृहीता एतेनावृत्तिफलम् अर्चिरादिमार्गं वर्धयन्ति अन्योन्यामित्यर्थः ॥ ३३ ॥ एतदेवाह-**त्रय इति**। ते पूर्वोक्तास्त्रयः पितृगणा नित्यं नियमेन पश्चात्फलभोगान्ते पिण्डान् स्थूलसूक्ष्मकारणदेहान् अदन्ति संहरन्ति । "**मनो वाचं प्राणं तान्यात्मने कुरुते**" इति श्रुतेः। उपासिताः मनोवाक्प्राणाः अवश्यं क्रमेण आत्मनो मुक्त्यै भवन्तीत्यर्थः। अन्ये पितृगणास्तु उक्ता दर्शादयः सिद्धाः शरीराकारपरिणताः पञ्च विषयादयो भवन्ति। के ते? यान् कः प्रजापतिर्यजमानः आददे आत्मत्वेन स्वीकृतवान्। दर्शादिफलं देहान्तरप्राप्तिरेव नित्येत्यर्थः ॥३४॥ त्वमेव पञ्च तान् वियदादीन् धर्मान् कनकमिव कुण्डलादीन् ॥ ३५ ॥ **तस्मादिति** । आदीयतेऽन्यैरन्यादिभिः स्वप्रथनायेत्यादित्यः सूर्यवत्प्रकाशकः ॥ ३६ ॥ प्रकारान्तरेणादित्यपदार्थमाह—**यदिति**। आदानादादित्य इत्यर्थः-आदत्सीति परस्मैपदम्, आदातुः स्वर्गाभिफलाभावात् ॥ ३७ ॥ पक्षसन्धौ पूर्णिमायाम्, अमावास्याम् अमावास्यायाम् ॥ ३८ ॥ हेतूनां स्वर्गादिसाधनानां कर्मणाम् अविकाराय । तमेवाह-**मा भूदिति**। काललोपेन धर्मवैकल्यं मा भूदित्यर्थः ॥ ३९ ॥ **वनस्पतीति**। औषधीर्वनस्पतींश्च दर्शे वसुधां च पृथिवीं चन्द्ररूपेण प्रतिपद्यसे बालभावाय पुनरुत्पत्तये ॥ ४० ॥ भूतानामतीतानां भाविनाम् अनागतानां च अर्थे पुष्ट्यर्थे यत्किंचिद्वसु तत्सर्वं त्वन्मयमेव ॥ ४१ ॥ **त्वमेवेति**। देवयज्ञं देवयज्ञाद्यात्मकम्। कर्मविशेषणत्वात्क्लीबत्वम् ४२ **द्विविध इति**। चन्द्रसूर्यपदयोर्विवरणं **चन्द्रमा इति**॥४३॥**त्वमेवेति**। वसुधायुक्तो भौमप्राणिरूपेण चरसि विषयान्सेवसे समिया मर्यादया नियमेन। वसुधायुक्तत्वमेवाहैकीकृत्येति। गणान् इन्द्रियादीन् संक्षिप्य देहमात्ररूपेण। अमुत्र संभव इत्यगोचरत्वं दर्शितम् ॥ ४४ ॥ कर्मकारो लीला ॥ ४५ ॥ तेजसि रूपात्मना संभूतः अत एव मूर्तश्चक्षुर्ग्राह्यः। सप्तभिर्महदहंकारपञ्चतन्मात्राख्यैः ॥ ४६ ॥

१ ख. °पं नि° । २ ख. °व द्विवि° । ३ ख. °सि मायया । ए°

साधने चापि निर्माणे संहारे प्रलये तथा।
धाता धारणकाले च दिशश्चक्षुषि धारिणि ॥
सेव्यमानो मुनिगणैर्नित्यं विगतकिल्बिषैः।
कर्मभिः सत्यमापन्नैः समरागैर्जितेन्द्रियैः ४८
स्तूयमानैश्च विबुधैः सिद्धैर्मुनिवरैस्तथा।
सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान् ४९
कृत्वा वेदमयं रूपं सर्वदेवमयं वपुः।
शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा तु हृदये स्थितः॥
आदित्यरश्मयो बालाश्चक्षुषी शशिभास्करौ
जङ्घे तु वसवः साध्याः सर्वसंधिषु देवताः॥
जिह्वा वैश्वानरो देवः सत्या देवी सरस्वती
मरुतो वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवस्थिताः॥ ५२
एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत्।
असुरं पीडयामास क्रोधाद्रक्तान्तलोचनः ५३
मधोर्मेदोम्बुपूर्णा च पृथिवी समदृश्यत।
प्रमदेव घना चैव शुक्लांशुकनिवासिनी ॥ ५४
मेदिनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्या नरोत्तम।
नामासुरसहस्रेण धरण्यां संप्रतिष्ठितम् ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

## आत्मोपासनादिकथनम्।

## २७

वैशम्पायन उवाच।
मधोर्निपतनं दृष्ट्वा सर्वभूतानि पुष्करे।
प्रहृष्टानि प्रगायन्ति प्रनृत्यन्ति च सर्वशः ॥१
सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु काञ्चनैः शिखरोत्तमैः
बहुधातुविचित्रैश्च खं लिखन्निव चाबभौ ॥२
गिरयश्चाभिशोभन्ते धातुभिः समरञ्जिताः।
प्रांशुभिः शिखराग्रैश्च सविद्युत इवाम्बुदाः॥३

---

साधने शमादिसाधनकाले जीवरूपेण त्वमेवासि निर्वाणे शुद्धरूपेण संहारे दैनंदिनलये प्रलये ब्राह्मलये च रुद्ररूपेण धाता पालयिता विष्णुरूपेण दिशो वर्णाश्रममर्यादा तु त्वमेवासि धारिणि पोषके चक्षुषि इन्द्रिये च चिद्रूपेण प्रवर्तकत्वेन त्वमेवासि ॥४७॥ सत्यं ब्रह्म समरागैः शत्रौ मित्रे च तुल्यप्रीतिभिः सर्वस्यात्मत्वात्तेषां द्वेषो नास्त्येवात एव जितेन्द्रियैः नित्यतृप्तत्वात् ॥४८॥ एवं मधुविष्णुसंज्ञयोर्मोहविवेकयोर्युध्यतोः सतोः मधुना बद्धो महेन्द्राख्यो जीवः स्तुतिव्याजेन सिद्धैः सद्गुरुभिर्बोधितो हरिः स्वीयं विपुलं सर्वात्मकं देहं सस्मार यत् हयशिरःसंज्ञम् ॥४९॥ सत्या वेदवाणी सैवास्य सरस्वती देवी वाग्देवता ॥ ५२ ॥ एवं विश्वरूपाविर्भावेन असुरं मोहं पीडयामास मोहयामास ॥५३॥ **मधोरिति**। त्वगसृङ्मांसमज्जास्थिमेदःशुक्राख्यैर्धातुभिः रचितवपुष्ट्वेन रूपिते मोहे मेदोमात्रमवशिष्टं यदज्ञानलेशमिति प्रसिद्धं तेन अम्बुपूर्णा पृथिवी शरीरं समदृश्यत। यथा प्रमदा प्रकृष्टमदा युवती घना वक्षोजभारेण कठिना शुक्लाम्बरवती मनोनन्दिनी तथा मधुमोहस्य वपुरभिनवमिव भातीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—"**ब्रह्मविद् इव सौम्य ते मुखं भाति**" इति दर्शयति ॥५४॥ असुरस्य मोहस्य संबन्धितया सहैव पूर्यमाणमेव स्रवतीति सहस्रं पुद्गलं शरीरं तेन। "ञिमिदा स्नेहने" अस्य रूपं मेदिनीति। स्निग्धेत्यर्थः। अज्ञानलेशानुवृत्तिर्विद्वत्सु परोद्धारणकारुणिकत्वमायातं न चेत् ज्ञानसमकालमेव देहपातः स्यादिति भावः॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

२७

**सत्त्वेन निहते मोहे गुरुशास्त्रादिकं जगत्।**
**हार्दे ब्रह्मणि पश्यन्तीत्येकात्रिंशे समीर्यते १**

**मधोरिति**। पुष्करे परमव्योमाख्ये कारणे ब्रह्मणि। "व्योम पुष्करमम्बरम्" इत्यमरः। सर्वभूतानामिति तुल्यवद्देवर्षिमनुष्याणाम्। प्रनृत्यन्तीति वर्तमानापदेशेनेदानीं तत्प्राप्तानामस्मदादीनां च पुष्करप्रवेशेऽधिकारो दर्शितः॥ १॥ तथा च श्रुतम्—"**तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति**" इति सुपार्श्वव्याख्यानरीत्या गुरुः मेर्वाख्यो गिरिरेव वा ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमिति व्यवहितस्यापि ब्रह्मलोकादेर्विश्वरूपात्मनिदर्शनस्य शास्त्रप्रसिद्धत्वात् ॥२॥ समं सर्वत्र रञ्जिताः (समरञ्जिताः)॥३

पक्षवातोद्धतो रेणुश्चूर्णः साञ्जनवालुकैः ।
छादयन्पर्वताग्राणि महामेघ इवाबभौ ॥ ४
मेघसंश्लिष्टशिखरा पक्षविक्षिप्तपादपाः ।
काञ्चनोद्भेदबहुलाः खं तिष्ठन्तीव पर्वताः ॥ ५
पक्षवन्तः सशिखरा हेमधातुभिरञ्जिताः ।
पवनेन समुद्भूतास्त्रासयन्ति विहङ्गमान् ॥ ६
काञ्चनाः पर्वताः सर्वे स्फाटिकैर्मणिभिश्चिताः
सूर्यकान्तैश्च बहुभिश्चन्द्रकान्तैश्च निर्मलाः ७
हिमवांश्च महाशैलः श्वेतैर्धातुभिराचितः ।
काञ्चनैः शिखराग्रैश्च सूर्यपादप्रकाशितैः ॥ ८
मणिभिश्च प्रकाशद्भिः पक्षान्तरविनिःसृतैः ।
ताम्रपुष्पैश्च शिखरैर्दीप्यमानैः स्वतेजसा ॥ ९
मन्दरश्चोग्रशिखरः स्फाटिकैर्मणिभिश्चितः ।
वज्रगर्भो निरालम्बैः स्वर्गोपम इवाबभौ १०
सहस्रशृङ्गः कैलासः शिलाधातुविभूषितः ।
तोरणैश्चैव निबिडैः प्रांशुभिश्चैव पादपैः ॥११
प्रवादयद्भिर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः ।
देवकन्याङ्गरागैश्च प्रक्रीडाद्रिरिवाबभौ ॥ १२
मधुरैर्वाद्यगीतैश्च नृत्यैश्चाभिनयोद्धतैः ।
शृङ्गारैः साङ्गहारैश्च कैलासो मदनायते ॥१३
आदित्याभासिभिः शृङ्गैर्भिन्नाञ्जनचयोपमैः
विन्ध्यो नीलाम्बुदश्यामो विभिन्न इव तोयदः
धात्वर्थं सर्वभूतानां मेरुपृष्ठे महाबले ।
निर्वेमुर्विमलं तोयं मेघजालैरिवोत्तमैः ॥ १५
शिलाभिर्बहुचित्राभिर्धातुभिर्बहुरूपिभिः ।
प्रस्रवद्भिर्गुहाद्वारैः सलिलं स्फटिकप्रभम् १६
ग्रीष्मान्ते वायुसंगूढा घना इव सविद्युतः ।
चित्रैः पुष्पैस्तरुगणाः शोभन्त इव भूषिताः
नागाः कनकसंभूतैर्विचित्रैरिव भूषिताः ।
विहंगमाभिर्लीनाश्च लतास्तरुसमाश्रिताः १८
विलम्बन्त्यः सपुष्पाश्च नृत्यन्ते वायुघट्टिताः
पवनेन समुद्भूता महता माधवेऽहनि ॥ १९
मुमुचुः पुष्पसंघातं तोयं वेलेव वर्षति ।
बलवद्भिश्च विपुलैः शाखास्कन्धावरोहिभिः
पादपैर्वणबहुलैर्भ्रियेत च वसुंधरा ।
मधुप्रिया मधुकरा मधुमत्ता विहंगमाः ।
घोषयन्तीव गायन्तः कामस्यागमसंभवम् २१
विष्णुर्मधोर्निहन्ता च चकार मधुवाहिनीम् ।
नदीं प्रस्रवनिर्भेदां सुतीर्थां बहुलोदकाम् २२
अंगारवर्णसिकतां मधुतीर्थां मनोरमाम् ।
विमलैरम्बुभिः पूर्णां पुष्पसंचयवाहिनीम् २३
विवेश पुष्करं सा तु ब्रह्मणो वाक्यनोदिता ।
ऋषिभिश्चानुचरिता ब्रह्मतन्त्रानिषेविभिः २४
धात्री कपिलरूपेण गौर्भूत्वा क्षरते पयः ।
मधुरं वितते यज्ञे ब्रह्मणो वाक्यचोदिता ॥२५
शिरश्च पृथिवी भूतं संघातुं प्राप्तवान्महीम् ।
शुद्धं च भजते लोकं शाश्वतं परमाद्भुतम् ॥२६

खे हार्दाकाशे तिष्ठन्तीवेतीवशब्दो मानसत्वद्योतनार्थः ॥५॥ त्रासयन्ति पर्वताः ॥ ६ ॥ पक्षाणाम् अन्तरम् अन्तरालं, ततो विनिःसृतैर्मणिभिः ॥९ ॥ तोरणैर्निरालम्बैरस्तम्भैस्तोरणैरिव प्रांशुभिः पादपैः सौक्ष्म्याददृष्टदण्डैरुपरि परिणाहवद्भिश्चेत्यर्थः ॥ ११ ॥ मदनायते मदनवद्रसोद्दीपको भवति ॥ १३ ॥ आदित्येति युग्मम् । यथा नीलाम्बुदश्यामो विष्णुर्मेघैः पृथिव्यां तोयं वर्षति । एवं मेरुपृष्ठाख्ये भ्रूघ्राणमध्ये सर्वे पर्वताः नीलाञ्जनचयोपमैः आदित्येन आभास्यमानैः शृङ्गैस्तोयं* निर्वेमुः उद्गीर्णवन्त इत्यर्थः ॥१४॥ कीदृशः शृङ्गैः शिलाभिरिति ॥ १६ ॥ नागाः गजाः कनकसंभूतैरलंकारैः ॥ १८ ॥ वेलेव तोयं तटाविघातोच्छलद्बिन्दुरूपम् ॥ २० ॥ सत्त्वोत्कर्षवशाद्योगिनो भोगभूमयो मधुमत्यादयः दिव्यविषयवत्य उपतिष्ठन्त इत्याह—**विष्णुरिति** ॥ २२ ॥ सापि स्वप्नकल्पा मधुमती भूमिः । "**नेह नानास्ति किञ्चन**" इति श्रुत्या प्रबोधितस्य योगिनो हार्दाकाशे विलीनेत्यर्थः । ऋषिभिर्योगिभिः अनुचरिता आज्ञप्ताः अनुसृत्य विसृष्टेत्यर्थः २४ एवं योगोपसर्गेषु विलीनेषु ब्रह्मविद्यासंज्ञा अहं ब्रह्मास्मीतिवाक्यजन्या चरमान्तःकरणवृत्तिरुदेतीत्याह—**धात्रीति** । मूलप्रकृतिः कापिलं त्रिगुणात्मत्वान्मिश्रवर्णं तेन रूपेण गौः गच्छत्यधिगच्छत्यात्मवत्त्वामिति गौः विद्यावृत्तिर्भूत्वा पयः ब्रह्म क्षरते प्रकाशयाति मधुरम् । आनन्दमात्रत्वात् । यज्ञे योगे विशेषेण तते प्रथिते इति ब्रह्मणो वाक्यम् अहं ब्रह्मास्मीति तेन चोदिता प्रेरिता एवंविधा गौः ॥२५॥ वृत्तावपि प्रलीनानां शुद्धं चिन्मात्रमेवावशिष्यत इत्याह—**शिरश्चेति** । शीर्यत इति शिरः उत्तमाङ्गवच्छ्रेष्ठाऽपि प्रतिक्षणं परिणामिगुणकार्यत्वादपक्षयवती वृत्तिः पृथिवी जडा सती भूतं कूटस्थं वस्तु संधातुं समर्थाऽपि मही स्वोपादानं जलं प्रति प्राप्तवत् गतवती ततो योगी शुद्धं लोकम् आत्मानं भजते निर्विकल्पेन समाधिनेत्यर्थः ॥ २६ ॥

१ ख. °गर्भैर्निरा° । २ ख. °रैः सुप्रहारैः । ३ ख. धान्यार्थं स° । ४ ख. °भिलीनाश्च ल° । ५ ख. फलव° ।
* ग. °मानैः स्वप्रभातोयं नि° ।

सारस्वत्याः समुद्भूतं ब्रह्मक्षेत्रे तमोनुदम् ।
मरुतीर्थमतिक्रम्य पुष्करेषु विसर्पति ॥ २७
सुचारुरूपा धर्मज्ञा अजारूपेण छादयन् ।
रूपं कनकवर्णाभं तपोयुक्तेन चेतसा ॥ २८
अजगन्धकृतोन्मुक्तः संभूतः पर्वतो महान् ।
गुरुद्वारगुणप्राणः शाश्वतः सिद्धसेवितः २९
वेदिकाभिः सुचित्राभिः काञ्चनाभिर्विराजितः
पुष्कराणि परीतानि त्वष्ट्रा विपुलदक्षिणः ३०
महामेरोर्यथा रूपं पञ्चभिर्धातुभिर्वृतः ।
चेतनायाभिसंपन्नो रूपेणाद्भुतदर्शनः ॥ ३१
करिष्याम्यहमप्येतन्मनसा धर्मचारिणम् ।
रूपं बहुविधं लोके पार्थिवीं चेतनां तथा॥ ३२

ननु सर्वधर्मशून्यं निर्विकल्पकं चेच्छून्यमेव तत्स्यादित्याशङ्क्याह **सारस्वत्या इति**। सरस्वत्याः अस्तीत्येवोपलब्धव्य इति वेदवाचः सकाशात्समुद्भूतं सत्त्वेन प्रकटीभूतं तमोनुदम् अज्ञानविरोधितया ज्ञानमात्रं ब्रह्मक्षेत्रे भ्रूघ्राणमध्ये समुद्भूतं मरुतीर्थे मरुमरीचिकोदकतुल्यं ज्ञेयम् । अतिक्रम्य पुष्करेषु पुम्भेदाद्बहुवचनम् । त्रयाणां मिथुनत्वे तदेकैकस्य पृथक्पृथगिति शुद्धेशजगतां मध्ये ईशजगतोः प्रतिपुरुषं पृथक्त्वेन दर्शनात् पुष्करानेकत्वं युक्तम् । मायाशबले परमे व्योम्नि विसर्पति ।"**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्**" इतिव्योम्नस्तदाश्रयत्व श्रुतेः ॥२७॥ननु कुतो ज्ञेयस्य मरुतीर्थतुल्यत्वमत आह-**सुचार्विति**। अजा माया कनकवर्णाभं दिव्यरूपं ब्रह्मरूपेण रूप्यत इति व्युत्पत्त्या दृश्येनाहंकारादिना च्छादयत् छादितवती । अडभाव आर्षः । जवनिकाच्छादकस्य सत्यत्वं मा भूदतः छाद्यं विशिनष्टि-तपोयुक्तेन चेतसा रूपमिति । आलोचनवता चेतसैव यद्रूप्यते साक्षात्क्रियत इति रूपं साक्षात्कर्तव्यं भवति । भुजंगाच्छादिता रज्जुरालोचनेनैव साक्षात्क्रियते न तु राजदारवज्जवनिकारूपस्य कस्याचिद्वस्तुनोपसारणेन । तस्मात् ज्ञानमात्रनाश्यत्वेन रज्जूरगवदजा मृषैव। कीदृशी अजा? सुचारुरूपा, सुचारूणि रूपाणि लोहितशुक्लवर्णानि तेजोऽबन्नाख्यानि यस्याः सा तथा । कुतः साच्छादयति वस्तुतत्त्वमत आह- **धर्मज्ञेति**। अदृष्टवशादध्यासो भवतीत्यर्थः ॥ २८ ॥ नन्वालोचनेनैव मायाजवनिकापगमो यत्क्रियेतेत्येतदेव कुत इत्याशंक्याह—**अजेति** । यस्मादयं महान्पर्वत इवाभेद्योऽहमिति तृतीयेनान्वयः । अहं अहंकारादिः संसारः संभूतः सम्यक् स्थूलरूपे उद्भूततया दृश्यमानोऽपि अजगन्धकृतोन्मुक्तोऽस्ति अजं सन्मात्रं तस्य गन्धो लेशः तेन पूर्वं कृतः पश्चादुन्मुक्तः । अहंकारादिर्हि जाग्रदादौ सन्निव दृश्यते न तु सुप्त्यादौ । अतोऽस्य दुःखादिधर्मिणो नात्मरूपत्वं किं तु नित्याविर्भूतं स्वाधिष्ठाने एव कादाचित्कप्रतीतिविषयत्वेन रज्जूरगवन्मृषात्वमेवास्येति भावः । अयमहंकारपर्वतः गुरुद्वारः गुणप्राणश्च गुरूपदेशादेवास्य तत्त्वमधिगम्यते । गुणैरेव त्रिभिरयं जीवति तस्माद्गुरुमाराध्य गुणत्रयं त्यक्तव्यमित्यर्थः । शाश्वतोऽनादिः सिद्धसेवितः सिद्धैरपि सेवितः किमुत मूढैः ॥ २९ ॥ ननु सुषुप्त्यादौ मनःसंयोगाभावात्संसारी अहमर्थेन प्रकाशते । न च तावतास्यानात्मत्वं भवति । न हि त्यक्तवास्यस्तक्षाऽतक्षा भवतीत्याशंक्याह-**वेदिकाभिरिति** ।"तस्य त्रय अवस्थास्त्रयः स्वप्नाः" इति श्रुतेः । संसारिणःतिसृभिरेव क्रीडास्थानभूताभिर्वेदिकाभिरिव जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्याभिः परस्परवैलक्षण्यात् विचित्राभिरवस्थाभिर्विराजितो दृश्यते । तथापि अवस्थानां वैचित्र्यादवस्थान्तरगतस्य दुःखादेरवस्थान्तरे दर्शनाभावादसंगोऽपि यक्ष इव परशरीरसंचारी तत्तद्देहाभिमानात्तदा तदा दुःखं प्राप्नोति। तस्मात्तत्तदवस्थाभिमानकृत एवास्य संसारो न स्वाभाविक इत्यर्थः। नन्वभिमन्तृत्वमपि तात्त्विकमस्तीत्याशंक्य दृश्यत्वान्नेत्याह **-पुष्कराणीति**। अहंकाराद्युत्थानकारणानि मूलाज्ञानानि त्वष्ट्रेव त्वष्ट्रा विचित्रजगन्निर्माणशिल्पिना ईश्वरेण परीतानि व्याप्तानि न तु स इतरैरित्यर्थः। न हि चित्प्रकाश्यं चित्स्वभावत्वं भजत इति भावः । हे विपुलदक्षिण ॥ ३० ॥ उत्तरार्धमेव विवृणोति-**महामेरोरिति**। धातुभिर्महाभूतैः शरीराकारपरिणतैः वृतो व्याप्तोऽहंकारः रूपेणाद्भुतदर्शनः अनिर्वचनीयोऽपि या प्रसिद्धा चेतना तयाऽभिसंपन्नो भवति । न त्वयं स्वयं चेतनो येनाभिमन्तृत्वादिस्वभाव आत्मेत्यवसीयेतेति भावः ॥ ३१ ॥ इदानीं शास्त्रदृष्टब्रह्मभावनिवेशेनाहं मनुरभवं सूर्यश्चेति वामदेववत्, "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।" इति भगवानिवाहंकारावेशेनैव तत्त्वं निरूपयति—**करिष्यामीति**। अहमपि अहमेव एतत् एवं धर्मचारिणं देहं मनसा संकल्पमात्रेण करिष्यामि करोमि, न केवलं देहमात्रम् अपि तु लोके बहुविधं रूपं दृश्यं तदपि मनसैव करिष्यामि । तथा पार्थिवी[1] पृथिवी शरीरं तत्संबन्धां चेतनां बहुरूपां करिष्यामि। स्वदेहादिचेतनाचेतनं सर्वं मत्संकल्पमात्रोत्थं मत्तो नान्य इत्यर्थः। "**इदं सर्वं यदयमात्मा**" इति श्रुतेरिति भावः ॥३२॥

१ ख. °न वर्चसा । अ° ।

त्रींश्च लोकान्प्रपद्येयं पञ्चभिर्धातुलक्षणैः।
षष्ठेन च ससर्जेयं मनसा धर्मचारिणीम् ॥ ३३
सङ्गेषु भावमोहाभ्यां पश्यन्ति च समृद्धयः।
विमुक्ताः सर्वसङ्गेभ्यो धारयन्ति परिग्रहान्॥
न च विन्देत मां कश्चिन्मनसा कामरूपिणम्
पञ्चधातुनिबद्धश्च नानाभाषितचोदनः ॥ ३५
ये च विष्णुमधीयन्ते बहुधा कामविग्रहैः।
ते मां पश्येयुरव्यक्तं तपसा दग्धकिल्बिषाः३६
ये च मामभिरोहेयुर्नरा धर्मपथे स्थिताः।
तेऽपि स्वर्गजितः सन्तः पश्येयुर्मां गतक्लमाः
यश्चैव पर्वतः प्रांशुर्मेरुपृष्ठे व्यवस्थितः।
एतमारुह्य युध्येयुः प्राणत्यागे सुनिर्मलाः ३८
अप्सरोभिः समागम्य विचरेयुर्मनोजवाः।
नन्दनं वनमारुह्य काम्यकं च महद्वनम् ॥ ३९
इमां विद्यां समास्थाय मद्भक्ताः पुष्करेष्विह।
शरीरं क्षपयिष्यन्ति व्रतैर्बहुविधैः कृतैः ॥ ४०
सिद्धिं प्राप्य क्रमेयुस्ते कामैर्बहुविधैर्नराः।
इमं लोकममुं चैव संपतेयुर्यथासुखम् ॥ ४१
गौरीसिद्धेतिऽव्याख्याता त्रिषु लोकेषु विद्यया
प्रभावं तपसा वृत्तं दर्शयन्ती समाहिताः ॥४२
षण्णां ज्ञानाभिसंधीनामभिज्ञानात्ससंग्रहाः
भवेयुस्ते निरारंभा धातुनिर्मुक्तबन्धनाः ४३

सार्वात्म्यमुक्त्वा सार्वज्ञमप्याह—धातून् पृथिव्यादीन् लक्षयन्त्येतैस्तानि धातुलक्षणानीन्द्रियाणि तैः पञ्चभिः त्रीन् लोकान् प्रपद्येयं जानीयाम्। अनात्मभूतदृश्यज्ञानमुक्त्वाऽऽत्मज्ञत्वमप्याह—षष्ठेन मनसा च धर्मचारिणीम् आत्मसदृशीमसंगां चिदाकारां वृत्तिं सर्जेयं सृजेयं, विद्याविद्यारूपोऽप्ययमेव सः सोऽहं विद्याप्रदातापीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ ये दीयमानायां विद्यायामधिकारिणस्तानाह—**संगेष्विति**। ये समृद्धयः सम्यक् पुष्कला ऋद्धिः ऐश्वर्यं येषां ते समृद्धयः पुरुषाः संगेषु ऋद्धीनां योगेषु भावमोहाभ्याम्। इत्थंभावे तृतीया। संकल्पमात्रत्वेन भ्रमत्वेन च ऋद्धीः पश्यन्ति। एतेन विषयदोषदर्शनमुक्तम्। अत एव विमुक्ताः सर्वसङ्गेभ्य इति वैराग्यमुक्तम्। परिगृह्यन्ते विषयाः यैस्ते परिग्रहाः बुद्धीन्द्रियमनःप्राणाः तान् धारयन्ति निगृह्णन्ति। एतेनाभ्यासो दर्शितः। एतत्रयवन्तो विद्याधिकारिण इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ **न चेति**। यस्मात्पञ्चधातुमयेन देहेन निबद्धः नानाभाषितम्, "**अपाम सोममसृता अभूम**" इति नानार्थवादिकफलप्रेरिताः प्रायेण सर्वे तस्मात् मां कश्चिन्न विन्देतेति योजना ॥ ३५ ॥ **ये चेति**। कामविग्रहैः इच्छागृहीतैः रामकृष्णादिविग्रहैरुपलक्षितं विष्णुं ये अधीयन्ते प्रणवाद्युच्चारणेन स्मरन्ति ते व्यक्तद्वाराव्यक्तं मां पश्येयुः। अयमर्थः-पूर्वोक्तरीत्या स्फटिके रक्तत्वपद्मरागत्ववत् चिन्मात्र ईशे सूक्ष्मस्थूलान्यध्यस्तानि तत्र स्थूले श्रीगोपालप्रतिमादौ प्रणिधीयमानं चक्षुः प्रथमं प्रतिमायाः जाड्यतिरोधानेन चेतनत्वं गृह्णाति। रज्जूरग इव निहितमुरगतिरोधानेन रज्जुम्। अत एव भक्ताः स्वाराध्यैः सह व्यवहरन्तीति बहुलमुपाख्यायते। चेतनमूर्तावपि प्राणिहितं चक्षुस्तस्यास्तात्त्विकं वैश्वरूप्यमेव गृह्णाति। यदपश्यद्यशोदा कृष्णमुखेऽर्जुनो वा श्रीकृष्णविग्रहे। अस्यामवस्थायां योगी देहासङ्गात्स्वयमेव विश्वरूपो भूत्वा सार्वज्ञं प्राप्नोति। तदेतादृक्तकज प्रत्यक्षमभिप्रेत्योक्तं योगभाष्ये भगवता बादरायणेन—"तदेतत्परं प्रत्यक्षं तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्" इति। विश्वरूपेति प्रणिधीयमानं मनः तस्य तत्त्वं सन्मात्रं गृह्णदस्मितामात्रमवशिष्यते। तस्मिन्नपि लीने योगी स्वरूपानन्दे प्रतियुक्तमुक्तकामविग्रहद्वाराव्यक्तं पश्येयुरिति ॥ ३६ ॥ मां निर्गुणम् अभिरोहेयुरुक्तसोपानक्रमेण ॥३७॥ मेरुपृष्ठे भ्रूमध्ये पर्वतः समष्ट्यहंकारः। कदा युध्येयुरविद्यया सह इन्द्रियेषु प्राणत्यागेषु त्यक्तेषु स्वस्मिन् प्रविलापितेषु सत्सु ॥३८॥ वनं हेयमिति शेषः। योगोपसर्गत्वात्तद्योगस्य॥३९॥ कामैः क्रमेयुः इच्छया विषयान् प्राप्नुयुः इहलोकं च परलोकं च संपतेयुः ॥ ४१ ॥ **गौरीति**। यदा उक्तविधं प्रभावं तपःसकाशाद्वृत्तं निष्पन्नं समाहिताः योगिनो दर्शयन्ति तदा विद्यया शास्त्राचार्योपदेशजज्ञानेन निष्पन्ना गौरी परा ब्रह्मविद्या त्रिषु लोकेषु सिद्धा व्याख्याता। सत्यसंकल्पत्वाद्याविर्भाव एव विद्यासिद्धिस्तावक इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ **षण्णामिति**। ज्ञानं वृत्तिः तस्या आभिमुख्येन समित्येकीभावेनावधानं येषु ते ज्ञानाभिसंधयः संयमस्थानानि मूलाधारादीनि वा। कर्मांगं बाह्यमाभ्यन्तरं च द्वे भगवन्मूर्तिरूपे प्रतीके विराट्सूत्रान्तर्यामित्रयं चेति षट्, तेषाम् अभिज्ञानं साकल्येनानुभवः तस्मात् हेतोः ससंग्रहाः कामाभावात् अक्षीणयोगैश्वर्या अत एव निरारम्भाः धातुरूपं निर्मुक्तं बन्धनं यैस्ते तथा ॥ ४३ ॥

१ ख. °धा पादवि°। २ ग. °द्धिकारक इ°।

सहस्रगुणमप्यत्र दत्त्वा दानफलादिव ।
अवमानेन विप्राणां मनःशुद्धेन कर्मणा ॥ ४४
सर्वत्रैवाप्रमेयेण अत्यन्तं फलमाप्नुयुः ।
अमुष्मिँल्लोके धर्मज्ञाः सह सर्वकुलोद्भवैः ४५
येषामिह च सान्निध्यं यज्ञे ब्राह्मणसंकुले ॥ ।
ते भूयो यजमानाद्या अभिषिच्य पुनःपुनः ४६
तथा तां मन्यसे गौरीं मनसा धर्मचारिणीम्
अनुग्रहाय भूतानां तन्ममाग्रे तपोधने ॥ ४७
सत्य एष परो विद्ये भविता नात्र संशयः ।
नाफलो विद्यते धर्मश्चरितो धर्मचारिणा ४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## विष्णोस्तपश्चर्या परमैश्वर्यलाभश्च ।

## २८

वैशम्पायन उवाच ।
दिशं जिगमिषुर्दिव्यामुत्तरां सत्यसाधनः ।
तथा स धातुनिचये पुण्ये पर्वतरोधसि १
विष्णुः परमधर्मात्मा एकपादेन तिष्ठति ।
दशवर्षसहस्राणि पुष्करे पुष्करेक्षणः ॥ २
आत्मन्यात्मानमाधाय तपसा ब्रह्मसंभवः ।
घटते कर्मणोग्रेण लोकमुत्थानकारणात् ॥ ३
भासुरो भस्मनाच्छाद्य गात्राणि स्वयमात्मनः
अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रं च तपोधनः ॥ ४
तेजसा तेन ज्योतींषि विभाव्य ब्राह्मणर्षभः ।
तिष्ठते नभसो मध्ये योगात्मा भावयञ्जगत् ५

---

मुक्तबन्धत्वं दानेनैव भवतीति लौकिकदृष्टान्तेनाह--**सहस्रमिति** । यथात्र कश्चिदपराधी सहस्रगुणमपि राज्ञे करं दत्त्वा दानफलाद्राजप्रीतेर्मुच्यते । एवं विप्राणामवमानेन संमानेन मनःशुद्धेन कामरहितेन मनसा शुद्धेन दानकर्मणा ॥ ४४ ॥ अप्रमेयेणासंकुचितेन अत्यन्तं फलम् आत्यन्तिकदुःखपरिहारं परमेश्वरप्रीतेः ब्रह्मलोके पूर्वजैः सह प्राप्नुयुरिति श्लोकद्वयार्थः ॥ ४५ ॥ येषां यजमानर्त्विजां सान्निध्यं यज्ञाङ्गदेवतादौ चित्तैकाग्र्यं तेऽपि पुनःपुनरप्यभिषिच्य बहुयज्ञावभृथं प्राप्य पूर्वोक्तं फलमाप्नुयुरित्यर्थः ॥ ४६ ॥ **तथेति** । यथा दानयज्ञयोः सम्पदं मन्यसे तथा चेत् तां पूर्वोक्तां गौरीं ब्रह्मविद्यासम्पदं तपोधने समीपेऽग्रे स्थितां चेन्मन्यसे । राजन्निति शेषः । तर्हि तन्मम तत्रैव मन्तव्यं त्वयेत्यर्थः । कीदृशीं गौरीं भूतानामनुग्रहाय मनसा धर्मचारिणीम् । बाह्येन दानयज्ञादिना साध्या बाह्या संपत् परिमिता, इयं तु मानसत्वादनन्तेति भावः ॥ ४७ ॥ किमर्थं तर्हि दानादिकं कर्तव्यमत आह--**सत्य इति** । एष आत्मा गौरीलभ्यः सत्योऽबाधितः अविद्ये पुंसि परो दूरीभूतः भविता धर्मादपि आविर्भविष्यत्येव चित्तशुद्ध्यादिद्वारा यस्माद्धर्मचारिणा धर्माचरणशीलेन निष्कामेनेत्यर्थः । आचरितो धर्मः अफलो न विद्यते तस्माद्विद्यार्थं धर्मोऽनुष्ठेय एव । "**विविदिषन्ति यज्ञेन**" इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥४८॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

२८

**द्वाविंशे परमैश्वर्यं विष्णवाद्या योगगोचरात्**
**प्रापुरित्युच्यते सम्यग्योगश्रद्धाविवृद्धये ॥ १**

**दिशमिति** । उत्तरां दिशं परां काष्ठां मोक्षाख्यां, धातुनिचये शरीरे पर्वतरोधसि नासामूले भ्रुवोः संधौ ॥१॥ **विष्णुरिति** । पुष्करे हार्दाकाशे एकपादेन विश्वतैजसप्राज्ञातुरीयैश्चतुष्पादं ब्रह्म, तत्राद्यैश्चतुष्टयानुगतः परे क्रमात्रिद्वयेकैः । एकपादेन तुरीयेण, तुर्यात्मना निर्विकल्पकेन ॥२ **आत्मनीति** । आत्मनि शुद्धे आत्मानं मायोपाधिं शरीरम् आधाय प्रविलाप्य लोकं शिक्षयितुमिति शेषः । "उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।" इति भगवद्वचनात् । उत्थानकारणान्मोक्षहेतोः॥३॥ भासुरः सोमःसिद्धिमुपागत इति तृतीयेनान्वयः । अष्टौ सहस्रं चेति नव सहस्राणि ॥ ४ ॥ तेन प्रसिद्धेन ज्योतींषि ग्रहतारादीनि विभाव्य अभिभाव्य तिष्ठते प्रकाशते । "प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च" इति तङ् । विषयं बन्धकं शब्दादिम् ॥ ५ ॥

---

१ घ. °पुनरभिषि° २ ग. तत्रैवम° ।

सोमो विषयमाक्षिप्य मनसा धारयन्मनः।
युक्तः परमधर्मात्मा ब्राह्मीं सिद्धिमुपागतः॥ ६
संप्रदर्श्यत सर्वत्र दिवि भुव्यन्तरे तथा।
ज्योतिष्णु कर्म कुर्वाणो बहुरूपः स संपदा ७
महेश्वरोऽतिगूढात्मा वृषरूपेण तिष्ठति।
उद्धृत्य दक्षिणं पादं वायुभक्षः समाहितः॥८
अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रशतमेव च।
महायोगी महादेवो नियमाद्ब्रह्मसंभवः॥ ९
अथ वायुर्घनीभूतो अन्ते चरति गोपतेः।
फेनीभूतं समुद्गारैः पवनं निर्गिरन्मुखात्॥ १०
स निष्क्रान्तस्ततो वक्त्रात्प्राणेन परमात्मवान्।
निर्यासभूतः पतितो नैवार्द्रो नैव पार्थिवः ११
स फेनो वारिणाऽऽविश्य चचार वसुधातले।
नैवार्द्रो नैव शुष्कांगो वायुसंघातमागतः॥ १२
तत्कालफेनमुत्क्षिप्य पवनः सह वारिणा।
निरालम्बे निरालम्बस्त्वभ्राणि समपद्यत॥१३
ते क्षिपन्ति पयो भूमावात्मानं स्वेन घट्टिताः
नीलमेघारुणप्रख्या नैवार्द्रा नैव पार्थिवाः१४
ब्राह्मीं मूर्तिं समाधाय वायुः सर्वत्रगो वशी
समाः सहस्रं संपूर्णं चचार विपुलं तपः॥ १५
वह्निर्बहुजटी भूत्वा चीरवल्कलवासभृत्।
तपस्तप्यदनाहारो मौनमास्थाय पौष्करे १६
वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि चैकं च यत्नतः।
तस्याग्नेस्तेजःसंभूतो महानग्निः प्रवर्तते॥ १७
स्वर्गप्रकाशं कृत्वा च स्वर्गवासी तमोनुदः।
दिवि भूतप्रकाशाख्यस्तपसा ब्रह्मसंभवः॥१८
[ तपश्चरति धूमाग्निर्लोकानां भूतभावनः। ]
तत्तमो भुवि राजेन्द्र मानुषेषु प्रतिष्ठितम्।
भास्करस्तेजसंहारस्ततो भवति सत्तमः॥१९
मर्त्यानां सर्वभूतानां तेज आक्षिप्य वर्तते।
न तु योगबले राजन्ब्राह्मणस्य विशेषतः॥२०
तत्तमो नाशयेद्रात्रौ नाप्यह्नो भविताऽद्वयम्।
पुष्पमित्रो महातेजा यक्षः सर्वत्रगो वशी।
तपश्चरति धर्मात्मा पुष्करेषु समाहितः॥२१

विषयं बन्धकं शब्दादिम्। आक्षिप्याधिकृत्य चेत्यर्थः। युक्तो योगवान् मुक्त इति वा॥६॥ प्रदर्श्यत प्रादर्श्यत, ज्योतिष्णु कर्म प्रकाशनक्रियाम्। बहुरूपत्वं नानारसास्त्वौषधीष्वनुप्रवेशेन नानारसत्वम्। " सोमो भूत्वा रसात्मकः " इति सोमस्य रसात्मकत्वस्मृतेः॥ ७॥ बलीवर्दरूपकेण धर्मात्मानं महेश्वरं रूपयति। उद्धृत्य धर्मस्य अहिंसागर्भौ जपादिरूपौ निष्कामसकामौ दक्षिणौ पादौ, हिंसागर्भौ यज्ञादिरूपौ सकामनिष्कामौ उत्तरौ, तेषु निष्कामजपादिरूपं पादं पुरस्कृत्येत्यर्थः॥ ८॥ सैकशतं नवसहस्रं वर्षाणि॥ ९॥ योगजधर्मादेव विश्वहितामिति द्योतयन् वृषरूपाच्छङ्करान्मेघोत्पत्तिमाह–गोपतेः इन्द्रियनिग्राहकस्य अन्ते घनीभूतः निपीडिततूलपिण्डवत् कठिनीभूतः तं फेनीभूतं पवनं समुद्गारैः मुखाद्बहिः निर्गिरन् निर्गीर्णवान् गोपतिः॥ १०॥ प्राणेन उद्गारवायुना परं रूपान्तरं निर्यासः वृक्षमदः पार्थिवः पाषाणादिवच्छुष्कः॥ ११॥ सफेनश्चर्मकोशाकारो वारि जलम् आविश्य च गृहीत्वा चचार। वसुधा पृथ्वी रसातलम् अधोभागो यस्य तत् वसुधातलम् अन्तरिक्षं तस्मिन्॥ १२॥ पवनः वारिणा सह सहितं फेनमुत्क्षिप्य निरालम्बे गगने निरालम्बः आश्रयान्तरशून्यः। अभ्राणि अपो जलानि बिभ्रतीत्यभ्राणि मेघसंज्ञां समपद्यत॥ १३॥ आत्मानं पयोरूपं स्वेनैव रूपेण घट्टिताः घनत्वं प्राप्ताः करकावत् ते नीलमेघाः सन्तो अरुणेनारुणसारथिना सूर्येण घनीभूतं जलं द्रावयता प्रख्यायन्ते मेघत्वं न सेचनकर्तृत्वे इति नीलमेघारुणप्रख्याः॥१४॥ ब्राह्मीं मूर्तिं ब्राह्मणशरीरं समाधाय कृत्वा॥ १५ तपस्तप्यत् अतप्यत्। सार्धश्लोको वाक्यम्॥ १६॥ तस्य तपस्यतोऽग्नेः तेजसः समुद्भूतोऽग्निः स्वर्गप्रकाशकृत्कर्मोपयोगी गार्हपत्यादिः स्वर्गवासी चक्षुरनुग्राही सूर्यादिः॥ १७॥ स्वर्गवासीत्येतद्विवृणोति–**दिवीति**। ब्रह्माग्निः ब्राह्मणरूपोऽग्निः॥ १८॥ **उत्तम इति**। यः स्वर्गप्रकाशकृदग्निरुक्तस्तस्य तमो धूमः तदुपलक्षितो धूमादिमार्गः मानुषेषु वर्णाश्रमाभिमानिषु प्रतिष्ठितम्। तेजसामग्न्यादीनां संहर्ता भास्करस्तु ततः पूर्वात् वह्नेः सत्तम उत्कृष्टतमो भवति। गार्हपत्याद्याराधकाः पुनरावर्तन्ते सूर्यमण्डलान्तःस्थपुरुषाराधकास्तु नेति भावः॥ १९॥ भास्करं स्तौति–**मर्त्यानामिति सार्धेन**। योगबले सति तु तेज आक्षिप्य वर्तते अन्यस्यापि ब्राह्मणस्य तु सुतरां नेत्यर्थः॥ २०॥ **तत्तम इति**। स उक्तगुणो भास्करः तत्पूर्वोक्तं तमः रात्रौ नाशयन् रात्रावपि मृतस्य धूमादिगतिम् आराधितः सन्नाशयति किं तु सौरीमेव गतिं योगिने प्रयच्छतीत्यर्थः। तथा रात्रौ वर्तमानस्य दिवाऽपि मृतस्याह्नोऽर्चिरादिमार्गो न भविता। कीदृशम् अहः? अद्वयम् अद्वयपदप्रापकम्। उपासकस्य दिवा रात्रौ मृतस्यार्चिरादिगतिरेव भवति नान्या। एवं कर्मिणोऽपि दिवापि मृतस्य धूमादिगतिरेव नित्येति भावः। पुष्पमित्रो नाम यक्षो भाविकुबेरः॥ २१॥

१ ख. °श्यति स°। २ ख. °तिस्थः क°। ३ ख.°मासवा°। ४ घ. °घत्वेन सेचनकार्यत्व नील°।

महेन्द्रशिखराद्वारा यावन्त्यो यान्ति मेदिना
तावत्स्वरूपमास्थाय तिष्ठते निखिलाः समाः
जानुभ्यां पतितो भूमौ ज्योतिर्निभासि पश्यति
समाः सहस्रं निखिलं नेत्रैरनिमिषैर्जगत् ॥२३
नेत्राणि बहुधा तस्य नेत्रान्तैरभिनिःसृतः।
मध्यंदिनकरे प्राप्ते रश्मिवान्त्सपरिग्रहे ॥ २४
ते रश्मयः प्रभानेत्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
रराज तेजःसंयोगाद्विद्वाद्भिरिव पावकः २५
स विस्फुलिङ्गैर्नेत्रान्तैरादित्यमनुवर्तते।
कर्मणोऽन्ते युगान्ते वा जगतो बहुरूपिणः२६
बहुतापः पुनर्भूत्वा निषण्णो वसुधातले।
स यो रश्मिषु संपूर्णं तपस्तेपे सुदारुणम् २७
निगृहीतेन्द्रियो भूत्वा अप्सरोभिर्ललाम ह।
मेरोः शिखरमासाद्य कामं कामेन निर्वमन्
तपःकामः स यक्षस्तु कुबेरो नरवाहनः।
विष्णुरेव तपोऽध्यक्षस्तेजसोऽन्ते विजृम्भति
न हि कश्चित्पुमानस्ति य एवं तप आचरेत्।

त्रिषु लोकेषु राजेन्द्र ऋते विष्णुं सनातनम्
वासुकिर्बहुशीर्षस्तु नागेन्द्रो मौनमास्थितः
तप आचरते सम्यङ्निधाय मनसा मनः ३१
शेषः सत्यधृतिर्नागो बलवान्ब्रह्मसंभवः।
वृक्षमारुह्य धर्मात्मा अवाक्छीर्षोऽवलम्बते ॥
जिह्वाभिर्लेलिहानाभिर्गोत्रजं विषमुत्सृजन्।
समाः सहस्रं संपूर्णं निराहारस्तपोधनः ॥३३
कालकूटं विषं तद्धि सुमहत्समपद्यत।
येन लोको ह्यभिग्रस्तो न सुखं विन्दते नृप ॥
सर्वत्रानुगतं तीक्ष्णं भुजङ्गेषु महीपते।
जङ्गमं स्थावरं चैव सर्वत्रानुगतं विषम् ॥ ३५
परस्परविवृद्धेन हिंसायुक्तेन भारत।
नाशयत्यात्मनोऽङ्गानि तेन तीक्ष्णेन भारत ॥
अथ ब्रह्मा महाभागो भूतानां हितकाम्यया।
मन्त्रं विसृजते राजन्ब्रह्माक्षरमहिंसकम् ३७
गरुत्मान्विततैः पक्षैर्नखाग्रैः सलिलं महीम्
समाः सहस्रं संपूर्णं चूलाग्रेणावलम्बिना ३८

कायव्यूहेन तिष्ठते प्रकाशत इत्यर्थः। पूर्ववत्तङ् ॥२२॥ जानुभ्यां पतितो भूमावित्यनेन नमस्कारप्रियस्य सूर्यस्याराधनं सूचितम्। तत्फलं च सूर्यसंयमाद् भुवनज्ञानमिति योगैः सूचितम्। तदाह—ज्योतिः सूर्यमण्डलं तत्र यन्नभः मध्ये नभ इवाचभाति तत्र दर्पणोदरसरूपे नियोजितैः नेत्रैरनिमिषैः जगन्निखिलं पश्यति ॥ २३ ॥ एतदेवोपपादयति द्वाभ्याम्—**नेत्राणीति**। मध्यंदिनकरे दिनकरमण्डलमध्ये। स हि दिनकरः परिवेष इव रश्मिवान् मध्ये त्वादर्शतलतुल्य इत्यर्थः। तत्र तस्मिंश्च नेत्रान्तैः प्राप्ते लब्धे सति सूर्यप्रभामिश्रितैर्नेत्रैः सह ते प्रसिद्धा रश्मयो मण्डलमयूखास्ततोऽभिनिःसृताः सर्वत्र उपर्यधस्तिर्यङ्निर्गताः सन्तः तस्य धारणावतः शतशोऽथ सहस्रशो नेत्राणि भवन्ति। स तैरनेकैर्नेत्रैः विद्वाद्भिरर्त्विग्भिः यज्ञे पावक इव रराज। सूर्यमण्डलं प्राप्य मूर्च्छिताः चक्षूरश्मयः सूर्यरश्मिभिरेव सार्धं भुवनं व्याप्य प्रकाशयन्तीति भावः ॥ २४ ॥ **स इति**। स पुष्पमित्रः भाविकुबेरः विस्फुलिंगवद्भास्वरैः नेत्रान्तैर्द्वारभूतैरादित्यं प्राप्नोति। कदा कर्मणोऽन्ते देहारम्भककर्मक्षये धारणाबलेन चिरंजीवी भूत्वा जगतो युगान्ते जगत्प्रलयकाले वा ॥ २६ ॥ **बह्विति**। सः युगान्ते आदित्यं प्राप्नोति। रश्मिषु संपूर्णो नेत्रद्वारा जलतैलन्यायेन कृत्स्नमादित्यमयूखजालं व्याप्य स्थितः अत एव बहुतापः विवृद्धतपःप्रभावः। समाः सहस्रं संपूर्णमिति वा पाठः ॥२७॥ फलमाह—**निगृहीतेति**। ललाम रलयोरभेदात् रराम रेमे। निर्वमन् भोगेनैव कामम् उत्सृजन्। अतिभोगेन रसा भवन्तीति भावः ॥ २८ ॥ यस्तपःकामो यक्षः स कुबेरोऽभूदित्यर्थः। तेजसोऽन्ते तपसोऽन्ते ॥ २९ ॥ **न हीति** विष्णोरेवांशः कुबेर इति भावः ॥ ३० ॥ **वासुकिरिति**। मनो निधाय ब्रह्मणीति शेषः ॥ ३१ ॥ **शेष इति**। वृक्षमारुह्य तत्र पुच्छमासज्य धूमपानं चकारेत्यर्थः ॥ ३२ ॥ एतद्धि तामसं तपो लोकोद्वेजकमित्याह त्रिभिः—**जिह्वाभिरिति** ॥ ३३ ॥ स्थावरं वत्सनाभसोमलक्षारादि ॥ ३५ ॥ **परस्परेति**। परस्परप्राणग्राहिक्रोधरूपेण तामसं तपः परिणमत इति भावः ॥ ३६ ॥ अथ हिंसकविषोत्पत्त्यनन्तरं तत्प्रतीकाराय अहिंसकं विषघ्नं मन्त्रं ब्रह्माक्षरं वेदवर्णमयं ब्रह्मा सृजते स्म ॥ ३७ ॥ तमेव मन्त्रमाह श्लोकद्वयेन—**गरुत्मानिति**। गरुत्मान्त्सलिलं महीं च मम जीवनभूतं द्वन्द्वम्। पात्विति शेषः। यद्वा ब्रह्म प्रणवः अहिंसकमक्षरम् अमृतबीजमित्यर्थः। **गरुत्मानिति** यथापाठं विततैर्दीर्घैः पक्षैः स्वरैः युक्तेन वां बीजेनेत्यर्थः। नखाग्रैः पञ्चांगैः। तथा चायं प्रयोगः—'ओम् वां गरुत्मान् हृदयाय नमः अंगुष्ठयोः। ओम् वीं गरुत्मान् शिरसे स्वाहा तर्ज्जन्योः। ओम् वूं गरुत्मान् शिखायै वषट् मध्यमयोः। ओम् वें

१ ख. बहुधा तु पु॰। २ घ ॰त्वा विष॰। ३ ख. समाः सहस्रं सं॰। ४ ख. ॰त्वा नाप्स॰। ५ ख. ॰र्णं बला॰।

पर्णभारैश्च विकचैर्विस्तीर्णैर्वसुधातले ।
रराज वसुधा चैव पर्णैर्बहुविचित्रितैः ॥३९
येन वृत्तेन जीवेयुः सर्वभूतानि भारत ।
इह लोके मनुष्येन्द्र देवलोके च भारत ।
द्यौरिवाचितनक्षत्रा महीतलविसर्पिभिः ४०
हिमवान्हिमसंपाते भवत्येकचरो वशी ।
पुष्कराम्भसि धर्मात्मा मत्स्यो लिखितमूर्धजः
अथ सुतलमाक्रम्य पृथिवी प्रांशुदेहिनी ।
तपश्चरति धर्मात्मा बाहुमुद्यम्य दक्षिणम् ॥
साग्रं वर्षसहस्रं च शतमेकं च सुव्रत ।
तपश्चरति संयोगाद्वायुभक्षः समाहितः ॥४३
समाधियोगात्सङ्गाद्वा ब्रह्मयोगस्य भारत ।
येनेयं पृथिवी राजन्धार्यते ब्रह्मयोनिना ॥ ४४
अनाद्यन्तेन नित्येन सर्वत्र विषयैषिणा ॥
योऽसौविष्णुरगाधात्मापरमात्मा निराकृतिः
दिने निषण्णो भवति रात्रौ भवति वै स्थिरः
सत्यसन्धः स धर्मात्मा कामकारकरो भवेत्
तस्य यः सोद्यतः पाणिः पृथिव्यां पृथिवीसमः
रात्रौ स तपनो भवति मण्डलं विपुलं नभः
स चन्द्रविषयं राजञ्छमयामास रुन्धति ॥
ग्रहाणां गतयश्चैव ताराणां च विशेषतः ॥ ४८
तां छायामाक्षिपन्त्सोमात्स्ववह्निर्मण्डलेन वै
पृथिव्यां दक्षिणो हस्तो महायोगी महामनाः

---

गरुत्मान् कवचाय हुम् अनामिकयोः । ओम् वौं गरुत्मान् नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः । ओम् वः गरुत्मान् अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । एवं हृदयादिमूलमन्त्रमाह-सलिलं वं बीजं समासहस्रं समासः समनसहस्रं हकारसहस्रं ईकारसकाररेफानां कूटं ते वर्णाः संपूर्ण चरमः स्वरः चूला शिखा तस्या अग्रं वषट्पदं तेन अवलम्बनशीलेन पल्लवेन च । मन्त्रः वषडिति पञ्चाक्षरः । अस्य ऋषिर्ब्रह्मा । गायत्री च्छन्दः । गरुत्मान् देवता । वं बीजम् । हः शक्तिः । लं कीलकम् । विषनाशने विनियोगः । पर्णभारैरिति ध्यान-श्लोकः । पक्षभारैः कृत्स्नां पृथिवीं द्यां च व्याप्य स्थित-मित्यर्थः । विततैः पक्षैः नखाग्रैः अवलम्बिना चूलाग्रेण च । कीदृशं संविततैः पक्षैरित्यारभ्य सहस्रं संपूर्णं बाह्याभ्य-न्तरज्योतिर्भिः सूर्यवागादिभिः तत्प्रकाश्यं तद्व्याप्य स्थित-मित्यर्थः ॥ ३८ ॥ एतदेवाह-**पर्णभारैरिति** । यः वसु ब्रह्म धीयते यस्मिन् इति वसुधा शरीरं तस्य तले गर्भे विकचैर्विकाशिभिर्विस्तीर्णैः सर्वतो विप्रकीर्णैः पर्णभारैः पक्षैरिव पक्षैरिन्द्रियैस्तेषां भारैः कार्यसमूहै रराज योगिनां दृष्ट्येति भावः । यस्य च पर्णैस्तैरेव पक्षैर्बहुविचित्रितैर्विषयभेदात् वसुधा शरीरं च रराज । योऽन्तःशरीरे सर्वात्मरूपेण राजते शरीरं च येन राजते स इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ मन्त्रजप-फलमाह—**येनेति** । येन मन्त्रेण वृत्तेन सृष्टेन आवृत्तेन आवर्तितेन । येन च मन्त्रेण निर्विषा मही शरीरं तलवि-सर्पिभिरिन्द्रियाद्यैः आचितनक्षत्रा द्यौरिव रराजेत्यनुषंगः । सार्धश्लोको वाक्यम् ॥ ४० ॥ **हिमवानिति** । पुष्क-राम्भसि मायाशबलस्याश्रयभूते निर्विशेषचैतन्ये । मत्स्यो-ल्लिखितमूर्धजः मत्स्य इव मत्स्यः संसारनद्यां जाग्रत्स्वप्नाख्य-कूलद्वयसञ्चारी जीवः तेन उल्लिखितं संश्लिष्टं मूर्धजं सहस्रारं येन सः जीवात्मानं सहस्रारे निधाय निर्वि-शेषचिन्मात्रत्वं प्राप्त इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ **अथेति** । सुतलं मूलाधारं दक्षिणबाहूद्यमनेन दानादिकं बहु कृत्वेति लक्ष्यते । तेन विना चित्तशुद्ध्यभावाद्योगे प्रवृत्त्यनुप-पत्तेः ॥ ४२ ॥ संयोगात्समीचीनाद्योगात् ॥ ४३ ॥ एतदेव विवृणोति—ब्रह्मणा सह योगो येन निमित्तेन स ब्रह्मयोगः प्रणवः तस्य संयोगात् येन प्रणवेन वाच्यवाचक-योरभेदादीश्वरेण ब्रह्मयोनिना ब्रह्मोपलब्धिस्थानेन पृथ्वी शरीरं धार्यते ध्रियते ॥ ४४ ॥ विषयैषिणा जीवरूपेण विषयाभिलाषिणा । तस्य वास्तवं रूपमाह—**योऽसा-विति** । यो विष्णुस्तेन पृथिवी धार्यत इति पूर्वेणान्वयः ॥ ४५ ॥ दिने विद्यायां निषण्णः उपविष्टः विद्यैकलभ्य इत्यर्थः । रात्रावविद्यायां स्थिरो यस्मात् धर्मात्मा पुण्या-दिमान् । इदमपि कुतः । कामकारकरो लीलावशः लोक-वत्तु लीलाकैवल्यमिति न्यायेन भगवतः सृष्टौ प्रवृत्तिर्लील-यैवेत्यर्थः ॥ ४६ ॥ तदेवं ब्राह्मणम् एवंविधं प्रदर्श्य मुक्त्युपायमाह—**तस्येति** । तस्य विष्णोः यः स उद्यतः भक्तानुद्धर्तुमुद्गतः पाणिरिव पाणिर्धर्मः स पृथिव्या समो विधारकत्वाद्रात्रौ अविद्यायां तपनः प्रकाशको विवेकप्रदो धर्म एव भवति । मण्डलं राष्ट्रं विपुलं नभो हार्दं ब्रह्म । भोगापवर्गावपि धर्मप्राप्यावेवेत्यर्थः ॥ ४७ ॥ **स इति** । धर्मः चन्द्रस्य मनसो विषयं बन्धकं रागादिकषायं शमया-मास नाशयतीत्यर्थः । ग्रहादीनां क्षुद्रतारातुल्यानां चक्षु-रादीनां गतयो गतीः शमयति । शमं दमं च धर्मः ॥ ४८ ॥ प्रसङ्गाद्धर्मस्य मुक्त्युपायत्वमुक्त्वा प्रकृतं पृथि-व्यां कृतं योगमनुसरति—**तां छायामिति** । स पृथि-

---

१ ख. मघवान्हि° । २ ख. °द्यन्तमनि° ।

सैषा छाया शशीभूता शशिमण्डलमाविशत्।
अलिङ्गा पृथिवीलिङ्गाददद्भुतादक्षया दिवि ५०
अङ्गाङ्गान्युपगृह्यैव तपश्चरति निश्चयात् ।
प्रोक्ष्य पादौ तु सतलौ पृथिवी तपसि स्थिता
सूर्यार्चिभिः पीयमानादाक्षिप्यत महीतले ।
महीमिवाम्बुवसनां युगान्ते विष्णुतेजसा ५२
रराज सूर्यरश्मिभिर्व्यतिषिक्ता महानदी ।
स्फाटिकेव शुभा सैषा काञ्चनैर्धातुभिर्वृता ५३
आदित्येन समादत्ता रश्मितेजोभिसंभवैः ।
मण्डलान्तर्गता देवी चक्षुषा नोपलभ्यते ॥५४
रश्मिभिः पुनरुत्तीर्णा ततो योगेन धावति ।
आकाशगङ्गा संवृत्ता विपुलैरम्बुविग्रहैः ५५

शीतच्छायैश्च तरुभिर्लताभिश्च सुगंधिभिः ।
पद्मखण्डैश्च विविधैः शुशुभे दिव्यगन्धिभिः ॥
काञ्चनापीडजघना स्फाटिकान्तरमेखला ।
पद्मरेणुसिता पीता चक्रवाकावतंसिका ॥ ५७
नीलगर्भसुकेशान्ता पुष्पसंचयसंकुला ।
शोभते विप्रसर्पन्ती प्रमदेव विभूषिता ॥ ५८
सैषा गङ्गा फलं लेभे पुष्करेण समाहिता ।
सुतपा चन्द्रविहिता लोकानां धारणे रता ५९
सरस्वती स्वरैर्व्यक्तैरधीते ब्रह्मवादिनी ।
पृष्ठात्प्रयातां शैलेन्द्रे मन्दरे मन्दगामिनी ।
ऋङ्मयांश्चतुरो वेदान्पादैश्चतुर्भिरावृतान् ।
यजुर्भिः सामभिश्चैव ग्रथितांश्छिक्षया तदा ६१

व्यां दक्षिणो हस्तो धर्मः । महायोगी महान् योगी येन भवति स तथा । महत् ज्ञानोत्पत्तिक्षमं मनो येन स तथा योगदः चित्तशुद्धिदश्च भवतीत्यर्थः । किं कुर्वन्? सोमात्मवद्भिः पूर्वोक्तैः सप्तधा च सहस्रधाऽनेकधा च भूतैः मण्डलेन च सोमस्य धारणाविषयीकृतेन तां छायां रात्रिशब्दोक्तामविद्यामाक्षिपन् शिथिलीकुर्वन् । गंगासेवनं चन्द्रमण्डले धारणा च क्रमेणाविद्यां नाशयत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ महायोगी महामना इत्येतत्संक्षेपेण विवृणोति—**सैषेति** । सा एषा अविद्या रात्रिरूपा छाया अलिङ्गानिर्वचनीयत्वेन तत्त्ववेदकप्रमाणशून्या पृथिवीलिङ्गात् भूमिं निग्रहं प्राप्य शशीभूता वृत्त्यैकाम्येण चन्द्रीभूता सती चन्द्रमण्डलमाविशत् । अन्ते चन्द्रतादात्म्यं प्राप्येत्यर्थ । कुत्र ? दिवि आकाशे न तु मानसे । पृथिवीलिङ्गात् कीदृशात्? अद्भुतात् अनिर्वाच्यात् । कीदृशी छाया? अक्षया मिथ्यात्वादेवापचयशून्या मरीचिकाह्रदवत् ॥५०॥ पृथिव्याः शशीभवनप्रकारमाह—**अङ्गाङ्गानीति** । सर्वाङ्गान्युपसंहृत्येत्यर्थः । प्रोक्ष्येत्यनेनतीर्थस्नानादिकमपि कृत्वेति लक्ष्यते ॥५१॥ एवं जलघनीभावरूपचन्द्रीभूता पृथिवी पुनः सूर्यधारणाभ्यासाद्गङ्गात्वमापन्नेत्याह चतुर्भिः—**सूर्यार्चिभिरिति** । सूर्यार्चिभिः पीयमानाज्जलात् मही आक्षिप्यतेति सबन्धः । वह्निना कर्पूरशिलेवार्काशुभिः शोष्यमाणा पृथ्वी स्वसमीपं नीता सूर्यभावं प्राप्तेत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः—**महीमिति** । युगान्ते प्रलयकाले विष्णुतेजसाऽम्बुवसनां सजलां महीं स्ववशे कृतामिव तां पृथक् न पश्याम इति भावः ॥५२॥ **रराजेति** । सा भूः सूर्यरश्मिभिर्व्यतिषिक्ता मिश्रिता सती महानदीरूपेण बभूवेत्यर्थः ॥ ५३ ॥ रश्मितेजसाभिसंभवाः अभित एकीभावास्तैर्हेतुभिरादित्येन ग्रस्ता सती चक्षुरग्राह्याभूत् ॥ ५४ ॥ सैवार्करश्मिमार्गेणोत्तीर्णा खे जलात्मना धावतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥ **सैषेति** । सा एषा लोकानां धारणे रता पृथ्वी सुतपा शोभनं तपः कुर्वती पूर्वं चन्द्रविहिता चन्द्ररूपेण निष्पन्ना पश्चाद्गङ्गात्वं प्राप्ता पुष्करेण परमात्मना समाहिता एकीभूता सती फलम् अर्थात्तपसः लेभे । सार्वात्म्यं पावनत्वं च प्राप्तवतीत्यर्थः ॥ ५९ ॥ एषैव सार्वात्म्यात् वाग्देवतादिभावं प्राप्तेत्याह—**सरस्वतीत्यादिभिः** । तदा सरस्वती ऋषिभिः शिक्षया ग्रथितान् चतुरो वेदान् व्यक्तैः स्वरैरधीते इति त्रयाणां श्लोकानां संबन्धः । सा लोकधात्री गङ्गात्वं प्राप्य पुष्करेण सख्यकाले सरस्वती भूत्वा व्यक्तैः स्वरैः अकारोकारमकारैर्वादिनी सविशेषब्रह्मवदनशीला अधीते प्राप्नोति, किं ? ब्रह्म विराट्सूत्रेशरूपमित्यर्थः । कीदृशी सरस्वती ? पृष्ठात् मन्दरे प्रयाता पृष्ठं भ्रूघ्राणमध्यस्थं कारणं ब्रह्म मेरुपृष्ठाख्यं सर्वेन्द्रियदेवतावासभूतं ततो मन्दराख्यम् अर्वाचीनं स्थूलप्रपञ्चं वैखरीभावं प्रयातेत्यर्थः । यथोक्तं मन्त्रशास्त्रे योगपटले—

हेमरूपो भ्रुवोर्मध्ये मेरुस्तिष्ठति पर्वतः ।
तस्याभितो मही पार्श्वे पञ्चाशच्छतयोजना ॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलात्मभिः ।
सिन्धुभिः सप्तभिर्द्वीपैस्तत्संख्यैर्द्विगुणोत्तरैः ॥
मन्दरः पारियात्रश्च " इत्यादि ॥ ६० ॥

**ऋङ्मयानीति** । चतुरो वेदानकारोकारमकारार्धमात्राख्यान् प्रत्येकं चतुर्भिः पादैरावृतान् अत एव ऋङ्मयान् यजुर्भिः सामभिश्च ग्रथितान् तुरीयस्य सर्वत्र संततत्वादनुक्तिः । अयमर्थः—अकाराद्यर्थाः विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयाः प्रत्येकं विश्वादिचतुष्टयात्मकास्तापनीये प्रसिद्धाः । तेषामाद्यः विश्वविश्वः अन्त्यस्तुरीयस्तुरीयः, यं प्रकृत्य तत्रैवोक्तम्—"ईश्वरग्रासस्तुरीयतुरीयः" इति । तेन युक्तमुक्तं ऋङ्मयामित्यादि । विस्तरभयात्तु न तदिह प्रपञ्चितम् ॥ ६१ ॥

१ घ. °र्मिं विग्र° ।

ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः।
सुपार्श्वस्य गिरेः पादे परिदार्यैः सुपारणैः ६२
निःस्वनं सर्वभूतानि नियमैश्च न शृण्वते।
मन्दराग्रे विसर्पन्तं जगत्कृत्स्नमतीन्द्रियम् ॥
विरामनियमे प्राप्ते तूष्णींभूता बभूव ह।
न वाचमीरयेद्देवी नियमात्सत्यवादिनी ६४
अथ भूतानि सर्वाणि तूष्णींभूतानि सर्वशः।
न शेकुरभिधानार्थं व्याहर्तुं वदनैर्बलात्।
विभज्य योगं मनसा सर्वभूतेष्वनुग्रहम्।
सरस्वती तीरयुता व्याजहार महास्वनम् ॥
सरस्वत्या समायुक्तां शिक्षां गृह्णन्ति दोहनः
तस्मिन्नेवाथ ते सर्वे गानं गायन्ति शिक्षया
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विभिः सह
जटिलाश्चीरवसना मुञ्जमेखलधारिणः ॥ ६८
गन्धर्वाः किन्नराश्चैव सनागाः सह चाम्भसः
तपश्चरन्ति सहिताः पुष्करेषु मनीषिणः ६९
अपि कीटपतङ्गैश्च सह सर्वैः सरीसृपैः।
शोषयन्ति शरीराणि तपसोग्रेण यत्नतः ॥७०
विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नो देहान्तरविसृष्टवान्।
संरक्षति महायोगी सर्वांस्तान्सहचारिणः ७१
पुष्करे रमते विष्णुर्विष्णुरेव द्विधा कृतः।
दीप्यमानः स्वतजोभिर्विधूम इव पावकः ७२

कीदृशैर्ऋषिभिः? सुपार्श्वस्य स्थूलशरीराख्यगिरेः पादे एकदेशे भ्रूघ्राणमध्यादौ, यद्वा सुपार्श्वस्य गुरोः पादे चरणे परितो दीयते वित्त ब्रह्माख्यं येषां तैः परिदार्यैः सुपारणैः सुष्ठु शोभनं शिष्यान्पारयन्तीति सुपारणाः परोद्धारसमर्थास्तैः ॥ ६२ ॥ इदं सरस्वत्यास्तत्त्वं स्पष्टतरमपि दुर्ग्रहमित्याह-**निःस्वनमिति**। सर्वभूतानि इमं निःस्वनं नादं ब्रह्माख्यं नियमैरपि न शृण्वते यस्मादतीन्द्रियम्। ततस्त्वे किं मानमत आह— **मन्दराग्रे** स्थूलप्रपञ्चस्य अग्रे प्रथमम् अतिस्थूलत्वात् कृत्स्नं जगत् विसर्पन्तं व्याप्नुवन्तम्। योऽयं वैखरीशब्दः स एवायं, तथापि सूक्ष्मत्वाद्दुर्ग्राह्य इत्यर्थः। तथाच श्रुतिः- "**चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति**" इति ॥६३॥ **विरामेति**। विरमयत्यस्मिन्निति विरामस्तुरीयः तस्यापि नियमे निग्रहे तुरीयाख्ये षोडशे प्राप्ते सति वाक् तूष्णींभूता। "**यतो वाचो निवर्तन्ते**" इति तस्य वाग्विषयत्वात्। अत्र हेतुमाह-**सत्येति**। या सत्यवादिनी ब्रह्मप्रतिपादिका सा नियमात् नैव वाचमीरयेत्। "वाचोदितं तदनृतम्" इति स्मृतेः। "**त [1]ह्यवचनेनैव प्रोवाचेति त [1]ह द्वितीये वा तृतीये वा वचनेन प्रोवाच ब्रूमः खलु त्वं तु न विजानास्युपशान्तोऽयमात्मा**" इति श्रुतेश्च ॥ ६४ ॥ अथ सुप्तौ समाधौ वा तुर्यप्राप्त्यनन्तरम् ॥ ६५॥ कथं तद्वचनीयस्यापि प्रतिपत्तिरित्यत आह—**विभज्येति**। योगम् ऐकान्त्यं मनसा उपाधिना विभज्य बिम्बप्रतिबिम्बभेदेन द्विधा कृत्वा सर्वभूतेष्वज्ञानग्रस्तेष्वनुग्रहं तत्त्वकथनेन कर्तुं सरस्वती तीरयुता तीरमिव तीरं तटस्थं ब्रह्म शाखाचन्द्रन्यायेनोपलक्षणीभूतं तेन युता सती लक्षणया चन्द्रमिव शुद्धं व्याजहार—**महास्वनेति**। बहुप्रमाणोपष्टम्भमुक्तार्थे सूचयति। साक्षाद्वक्तुमसमर्थाऽपि वाक् लक्षणया ब्रह्म प्रतिपादयिष्यत्येवेति भावः ॥ ६६ ॥ तावतैव लोकशिक्षाऽपि भवतीत्याह—**सरस्वत्येति**। तस्मिन्नेव शब्दगम्ये शबले पदे स्थित्वा गायन्ति। "**एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतत्साम गायन्नास्ते हा ३ उ हा ३ उ हा ३ उ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्**" इत्यादि ॥ ६७ ॥ के गायन्ति तानेवाह-**आदित्या इति** ॥ ६८ ॥ अम्भसि भव आम्भसो वरुणः ॥६९॥ **अपीति**। कीटादीनामपि योग्यदेहप्राप्त्या तपस्यधिकारोऽस्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥ एवं शरीररूपा पृथिवी योगबलाज्जलादिभावेन परिणम्य शब्दाद्याकारेण सर्वलोकहिताय भवतीत्युक्तम्। तथा शरीराभिमानी च शब्दस्यैव चरमं रूपं पराख्यमित्युक्तम्। एवं वाच्यवाचकयोरभेदात्सर्वाद्वैतासिद्धौ मनउपाधिको भेदव्यवहार इत्यपि समाहितम्। तत्रैवं सति जीवादन्य ईश्वरो नास्तीति प्राप्तम्। तन्निषेद्धुम् ईशादन्य एव जीवो नास्तीत्याह-**विष्णुरिति**। विष्णुः परमात्मा विष्णुत्वं व्यापकत्वं प्राप्तोऽपि देहान्तरस्य चतुर्भुजस्य विसृष्टं विशेषणाविसर्जनं तद्वान्। व्यापकेन रूपेण। पालयितुमशक्तश्चतुर्भुजं विग्रहं यज्ञादिभोक्तारं सर्वभूतनियन्तारं चाश्रितवानित्यर्थः। तेन च तान् आदित्यादीन् रक्षति। रज्जूरगवत् अधिष्ठानाधिकमध्यस्तं नास्ति, अध्यस्तात्तु जीवादधिकोऽधिष्ठानभूत ईश्वरोऽस्तीति भावः ॥ ७१ ॥ एतदेवाह-**पुष्करे इति**। पुष्करे सर्वकार्यात्मके जगति विष्णुरेव नरनारायणादिरूपो भूत्वा रमते तपआदिलीलां करोति लोकशिक्षायै ॥७२॥

[1] ख. °यमेन च शृ°।

सोऽग्निर्मनःसमुद्भूतः पृथिवीं तापयन्निव ।
प्रधावति समं तेन मण्डलं दशयोजनम् ७३
विरराजार्चिभिर्दीप्तैः पृष्ठतश्चावलम्बिभिः ।
विशीर्णपार्थिविभवैर्मयूखैरिव दीपितः ॥ ७४
तस्याग्नेर्विस्फुलिङ्गानां न शेकुर्लङ्घने रताः ।
विप्रकीर्णस्य वसुधामर्यादामिव भास्करम् ॥
सोऽग्निर्दीप्य विभज्यांशून्विधूम इव पावकः ।
ऋत्विग्भिर्ज्वलनप्रख्यैर्विक्रीयत इवाध्वरे ७६
सोऽग्निर्धूमगतस्तत्र तिष्ठते विपुलं तदा ।
यावद्विष्णुः क्रमप्राप्तो नियमस्य समापनात्
रक्षां कृत्वा स्थितं विद्याद्विष्णुर्विष्णुपराक्रमः
भूत्वा शतशरीरो वै नागो बालाहकोऽभवत्
तमग्निमात्मसंसृष्टं लेलिहानं महामतिम् ।
प्रतिप्रवृत्तं तेजोभिर्भूतानां हितकाम्यया ७९
वारिणा सुखशीतेन प्राणिनां प्राणवर्धनः ।
न्यषिञ्चद्दहनं तत्र नागो बालाहकस्तदा ॥ ८०
ततः सिद्धगणैर्जुष्टः पुष्करे तप्यते तपः ।
संहृत्य मनसाऽऽत्मानं महायोगी महाबलः
पादगात्राणि संहृत्य मनो मूर्ध्नि विधारयन् ।
अचलं स्थानमासाद्य तूष्णींभूतो बभूव ह ८२
एष धर्मा हि धर्माणां नोपधानविकल्पितः ।
हितः सर्वेषु भूतेषु इह चामुत्र चोभयोः॥ ८३
अथ दैत्या हतास्तत्र समागम्योद्यतायुधाः ।
मायाप्राप्तैर्बहुविधैर्नगरैरभिसंवृताः ॥ ८४
अग्निं दैत्याः पर्वताग्रैरभिघ्नन्ति परंतप ।
ज्वलन्तं ज्वलनप्रख्या महाकाया महाबलाः
मेघीभूताश्च मायाभिर्वर्षन्ति बलदर्पिताः ।
तस्मिन्नेवाभिसंघाते ससंघातं महाबलम्॥८६

लीलामेवाह—**सोऽग्निरिति** । स विष्णुः मनः-कल्पितोऽग्निर्गार्हपत्यादिरूपो भूत्वा पृथिव्यभिमानिनं पृथिवीदेहमात्मन इच्छिति । पृथिवीवाचरन्वा पुरुषः पृथिवीति व्युत्पत्तेः । देहिनं तापयन् कनकवन्निर्दोषं कुर्वन् अग्निहोत्रादीनां ततश्च तेन पृथिव्या पुरुषेण समं दशयोजनं ब्रह्माण्डमण्डलं धावति तस्मै फलं ददातु । "**प्राज्ञेनात्मनासंपरिष्वक्त उत्सर्जन् याति**" इति जीवस्य लोकान्तरगमने तत्साहित्यश्रुतेः, स्वयमेव कर्मतदङ्गरूपो भूत्वा जीवेभ्यस्तल्लोकं गतिं प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ ७३ ॥ **विरराजेति** । पृष्ठतः चात्सर्वतः विशीर्णो नाशितः । पार्थिविः पृथिव्या अपत्यं पार्थिविर्देहात्मवादी तस्य भावः सामर्थ्यं यैस्तैः । मोहसामर्थ्यं दहद्भिरित्यर्थः । तैर्मयूखैर्दीपितोऽग्निर्विरराजेति ॥ ७४ ॥ **तस्येति** । अग्नेर्विष्णुरूपस्य रताः विषयासक्ताः यथा भास्करं लङ्घयितुं न समर्थाः तथा विस्फुलिङ्गानां ब्रह्मादिरूपाणां लंघने न शेकुः। कीदृशं भास्करम्? वसुधामर्यादां पृथिव्याः परिच्छेत्तारम् । भूचरैर्भुवः परिच्छेत्ता लङ्घयितुमशक्य इत्यर्थः ॥ ७५ ॥ सोऽग्निः दीप्य विपुलं प्रकाशकं कृत्वा अंशून् रश्मीन् विभज्य द्रव्यदेवतादिरूपेणानेकधा कृत्वा स्थितः सन् ऋत्विग्भिर्विक्रीयते विविधं क्रीयते सोमक्रयिभिः सोमरूपः सन् क्रीयते ॥ ७६ ॥ सोऽग्निः तत्र अध्वरे तिष्ठते द्रव्यदेवतादिरूपेण प्रकाशते । यावत् नियमस्य क्रतोः समापनं तावत् । धूमगतो धूमप्राप्तो निर्धूम इत्यर्थः । स एव चाग्निः फलरूपेण यावद्विष्णुक्रम पृथिव्यन्तरिक्षद्युपर्यन्तं प्राप्तो गतः । विष्णुरेव लोकहितार्थी सर्वक्रतुतदङ्गतत्फलरूपोऽभूदित्यर्थः ॥ ७७ ॥ **रक्षामिति** । तमेव रक्षां कृत्वा स्थितं विष्णुं न विद्यात् न कोऽपि जानाति । स तु विष्णुर्व्यापी तादृग्विभवश्च योगेन शतशरीरो भूत्वा बलाहके मेघे तिष्ठतीति बालाहको नाग ऐरावतो मेघानां भेत्ताऽभवत् । यज्ञफलं वृष्टिरूपमप्ययमेवेत्यर्थः ॥ ७८ ॥ **तमिति** । तं विष्णुम् अग्निं जाठरम् अत एवात्मसंसृष्टं देहान्तःस्थम् "अहं वैश्वानरो भूत्वा" इत्यादिस्मृतेः महामतिं दिव्यज्ञानप्रदं नागो वारिणा ववर्षेत्युत्तरेण संबन्धः ॥ ७९ ॥ दहनं जाठरं वारिणा वारिजेनान्नादिना । फलभोक्ता जीवोऽप्ययमेवेत्यर्थः ॥ ८० ॥ **तत इति** । भोक्तृत्वादेव कर्तृत्वाधिकारी सन् पुष्करे समष्टिब्रह्माणि आत्मानं व्यष्ट्यभिमानिनं संहृत्य प्रविलाप्य तपस्तप्यते । बलं वैराग्यम् ॥ ८१ ॥ पादगात्राणि पादादीनि गात्राणि पूर्वोक्तरीत्याधोधस्तनमुपर्युपरितने संहृत्य मूर्ध्नि सहस्रारे अचलं परमशिवाख्यम् ॥ ८२ ॥ **एष इति** । नोपधानविकल्पितः निरुपाधिः स्वभावसिद्ध इत्यर्थः ॥ ८३ ॥ अत्रापि योगोपसर्गा उपस्थिताः परिहर्तव्या इत्याह—**अथेत्यादिना** । दैत्याः कामादयः हताः पूर्वं योगारम्भात् प्राक् निर्जिताः अपि तत्र समाधिकाले उद्यतानि आयुधानि अस्त्रादीनि यैस्ते । नगरैः शरीरैः ॥ ८४ ॥ अग्निं योगिनं दैत्याः पर्वताग्रैः दिव्यवनितादिशरीरैः प्रदर्शितैः ज्वलन्तं चिन्मात्रं ज्वलनप्रख्याः चिन्मात्रा एव न तु भौतिकाः मानसा इत्यर्थः ॥ ८५ ॥ मेघीभूता इत्यादयः स्पष्टार्थाः श्लोकाः ॥ ८६ ॥

१ ख. °वाभिसं° ।

ते शैलास्त्वर्चिषा दग्धाः शतशोऽथ सहस्रशः
युगान्ते प्रभुरादित्यः प्रजा इव दिधक्षति ॥८७
न शेकुरग्निं दैत्यास्ते मायाभिर्मुखमुद्यतम् ।
आदित्य इव दीप्यन्ते नभः सूर्योदये यथा ८८
विहितैरुद्यमैः सर्वैर्दैत्या भग्नपराक्रमाः ।
गन्धमादनमासाद्य निषण्णा नगमूर्धनि ॥८९
स चाग्निर्वैष्णवैर्लोकैर्विद्युद्भिः सह संगतः ।
अन्तरिक्षचरान्दैत्यान्निर्दहन्विचरन्दिवि ॥९०
नागो बालाहकश्चैव मेघैः संघातमागतः ।
मुमोच सलिलं भूमौ पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥९१
मन्त्रैः संचोदितो नागो द्विजेभ्यो वदनोद्गतैः
मुमोच तोयसंघातं मानयान्विप्रजं जनम् ।९२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## देवासुराणां तपःसिद्धिः ।

## २९

जनमेजय उवाच ।
संयुज्य तपसा देवाः किमकुर्वस्ततः परम् ।
न हि तद्विद्यते लोके तपसा यन्न लभ्यते ॥१
वैशम्पायन उवाच ।
अथ दीक्षां समास्थाय सर्वे विष्णुमया गणाः
पुष्करादग्निमुद्धृत्य प्रणीय च यथाविधि॥ २
जुहुवुर्मन्त्रविधिना ब्राह्मणा मन्त्रचोदिताः ।
हविषा मन्त्रपूतेन यथा वै विधिरेव च ॥३
स चाग्निर्विधिवत्तत्र वर्धते ब्रह्मतेजसा ।
तेजोभिर्बहुलीभूतः प्रभुः पुरुषविग्रहः ॥ ४
ब्रह्मदण्ड इति ख्यातो वपुषा निर्दहन्निव ।
दिव्यरूपप्रहरणो ह्यसिचर्मधनुर्धरः ॥ ५
सगदो लाङ्गली चक्री शरी चर्मी परश्वधी ।
शूली वज्री खड्गपाणिः शक्तिमान्वरकार्मुकः
विष्णुश्चक्रधरः खड्गी मुसली लाङ्गलायुधः ।
नरो लाङ्गलमालम्ब्य मुसलं च महाबलः ७
वज्रमिन्द्रस्तपोयोगाच्छतपर्वाणमक्षिपत् ।
रुद्रः शूलं पिनाकं च मनसाऽधारयद्भुवि ॥ ८
मृत्युर्दण्डं पाशमापः कालः शक्तिमगृह्णत ।
जग्राह परशुं त्वष्टा कुबेरश्च परश्वधम् ॥ ९
निर्विकारैः समायुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
विश्वकर्मा च त्वष्टा च चक्राते ह्यायुधं बहु १०

---

**नाग इति** । एवं योगोपसर्गान् जित्वा स्थितं योगिनं पूर्वोक्तो यज्ञादिफलरूपो धर्मो वृष्ट्यादिद्वारेण यातीत्यर्थ ॥ ९१ ॥ नागो वृष्ट्यधिष्ठात्री देवता द्विजेभ्यो वदनद्वारा उत्कैर्मन्त्रैः प्रेरितः सन् विप्रजं जनं ब्राह्मणसंततिभूतलोकं विगतप्रजं वा नैष्ठिकम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भाविष्यपर्वणि टीकायामष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

**२९**

**योगविघ्नविघाताय कर्माण्येवाचरेदिति ।**
**त्रयोविंशे पुराकल्पमुखेनैतत्प्रसाध्यते॥१॥**

ततः "अचलं स्थानमासाद्य तूष्णींभूतो बभूव ह" इति प्राप्तप्राप्यस्य योगिनस्तूष्णीं भावः उक्तस्तेन प्रयोजनाभावात्सर्वप्रवृत्तिशून्यो योगी स्यादिति मन्वानो जनमेजय उवाच—**संयुज्येति** । तपसा योगेन ॥ १ ॥ प्रारब्धकर्मवेगेन तूष्णींभावो ह्यथापि योगी पूर्ववासनाकर्माण्येव यज्ञादीनि करोतीति पुरा सरूपार्थवादमुखेन दर्शयन्वैशम्पायन उवाच—**अथेति** । दीक्षामपरिच्छेदप्राप्तिलक्षणां रूपान्तरापत्तिम् । विष्णुमयाः ब्रह्म यथाग्निमित्युपलक्षणम् । सर्वमपि द्रव्यं यज्ञियं पुष्कराख्यं जगत्कारणमयमेवेति, "ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः" इति गीतोक्तदृष्ट्या सिद्धाः कर्माणि चक्रुरित्यर्थः । जुहुवुरित्यग्रिमेण संबन्धः ॥ २ ॥ मन्त्रैः प्रकाशितं प्रयोगकालेऽपि स्मारितं पूतं च ॥ ३ ॥ **स चेति** । चतुर्भिरष्टयोगध्यानम् ॥ ४ ॥ असिचर्मणी खड्गखेटके धनुश्च धारयन् ॥ ५ ॥ अस्यादिखड्गान्तैः षोडशभिरायुधैः षोडशभुजो नारायणः, लाङ्गलमुसलायुधो नरः ॥ ७ ॥ योगबलप्राप्तानि वज्रादीनीन्द्रादिभिरुत्कर्षकारणान्याह—**वज्रमिति** ॥ ८ ॥ आपः वरुणः ॥ ९ ॥ विश्वकर्मा त्वष्टुरेव मूर्तिभेदः ॥ १० ॥

१ ख. °ण्डं सपाशं च का° ।

इन्द्रायाग्निरथं प्रादात्सूर्याय च प्रतापिने ।
परमात्मा ददौ कृष्णो रुद्राय च महात्मने ॥
छन्दोभिरेव त्वष्टा च स चकाराथ वाहिनीम्
विश्वकर्मा विमानानि चकार बहुभिः क्रमैः ॥
शरीरांशं तमुत्पत्य विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
पुष्करात्पर्वणि वनात्पृतनार्थे प्रवर्तयन् ॥ १३
द्यां चैव सर्वऋक्षाणां वाचा वै समकल्पयत् ।
यया स पूज्यः संग्रामे शत्रून्निर्बिभिदे रणे ॥१४
स तं दण्डं समुचितं निर्विकारं समाहितम् ।
ब्रह्मा जग्राह विधिना अन्तर्धानगतः प्रभुः१५
स्वैः प्रभावैश्च विधिना सोऽस्त्रग्रामं चतुर्विधम्
ऐन्द्रमाग्नेयवायव्ये रौद्रं रौद्रेण वर्चसा ॥ १६
एभिर्विकारैः संयुक्ता दितेः पुत्रा महाबलाः
तपसा शिक्षया चैव स्वास्त्रैः प्रहरणैरपि ॥१७
बलेन चतुरङ्गेण वीर्येण सुसमाहिताः ।
अप्रधृष्या रणे सर्वे समपद्यन्त वै तदा ॥ १८
ते विहाय गुहामध्ये सभाण्डोपस्करे रथे ।
मन्दरस्य गिरेः पादे विचेरुर्वसुधातले ॥ १९
चतुरङ्गं बलं सर्वं संहृत्य तमसः प्रभुः ।
विष्णुरेव महायोगांश्चचार वसुधातले ॥ २०
भूयोऽन्यत्तप आसेदुश्चरन्तो ब्राह्मणैः सह ।
तैश्च सर्वैः सुरगणैर्धर्मचीरनिवासिभिः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## पृथुराज्याभिषेककथनादि ।

## ३०

जनमेजय उवाच ।
ब्रह्मन्खिले वर्तमाने निर्मर्यादे महाग्रहे ।
अविनाशे च भूतानां कथमासन्प्रजास्तदा ॥१

वैशम्पायन उवाच ।
अभ्यषिञ्चत्पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजापतिः ।
राज्याय ऋषिभिः सार्धं प्रजाधर्मपरायणः २

---

विष्णुरपि इन्द्राय सूर्याय रुद्राय च रथं प्रादात् । सर्वं योग-प्रभावकल्पितम् ॥ ११ ॥ छन्दोभिर्वेदैः प्रदर्शितरीत्या ॥ १२ ॥ वनादव्ययात् पुष्कराख्यात् शरीरांशं समुद्धृत्य पृतनाशब्दार्थे सेनाम् ॥ १३ ॥ सूर्यस्य ऋक्षाणां च स्थित्यै द्यामकल्पयत्, यथा दिवि पूज्यः इन्द्रः ॥ १४ ॥ **स इति** । प्रसिद्धो ब्रह्मरूपी विष्णुः तम् असुरेषु इन्द्रेण समाहितं निपातितं दण्डम् उचितं निर्विकारं यथा स्यात्तथा जग्राह अनुमेने तान्प्रति अन्तर्धानं च गतवान् ॥ १५ ॥ दितेः पुत्रा अपि तपसा शिक्षया च युक्ता अपि विकारैः कामादिभिः ॥ १७ ॥ अप्रधृष्याः समपद्यन्त संपन्नाः ॥ १८ ॥ ते दितेः पुत्राः गुहाः गुह्यानि सूत्राद्यात्मकानि स्वरूपाणि विहाय रथे रथे सभाण्डोपस्करे इति भोग्यवस्तु-सहितमध्ये निषण्णाः सन्तः मन्दरस्य स्थूलकार्यस्य पादे एकदेशे विचेरुः । पृथ्व्या ऊर्ध्वगतिं न लेभिरे इत्यर्थः ॥ १९ ॥ तमसः कार्यम् आसुरं बलं संहृत्य विष्णुरेव बलिष्ठ इत्यर्थः । आसुरं कर्म क्षययुक्तमिति भावः ॥ २० ॥ **भूय इति** । आसेदुरसुराः ब्राह्मणैः सुरैश्च सार्धम् । तदपि तमःकार्यत्वान्नश्वरमिति सात्विक एव धर्मो मुमुक्षुभिः आदर्तव्य इति भावः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

**प्रापुर्योगफलं मोक्षं सात्विका ननु तामसाः**
**तुल्यश्रमा अपीत्येतच्चतुर्विंशेऽभिधीयते ॥ १ ॥**
**मनः सिन्धुर्मतिः शैलः शमकामौ सुरासुरौ**
**अभ्यासो मन्थनं मुक्तिः सुधा धात्राह रूपकैः**

एवं तामसस्य जनस्य पुनःपुनः संसारप्राप्तिं श्रुत्वा दयया तेषां गतिं जिज्ञासमानो जनमेजय उवाच—**ब्रह्मन्निति** । खिले अयःशंकुतुल्ये महाग्रहे महत्यज्ञाने हृदयशल्ये सति अविनाशे निर्मोक्षे च कथं दुःखपरम्परामग्ना आसन्निति ॥ १ ॥ प्रश्नस्योत्तरं स्वधर्मे स्थापिताः प्रजाः क्रमेण चित्तशुद्धिं प्राप्य मुच्यन्त इति विवक्षुर्वैशम्पायन उवाच- **अभ्यषिञ्चत्** राज्ये राज्यभावे राज्याय राजकर्मणे प्रजानां धर्म एव पालनीयतया परायणं यस्य स तथा ॥ २ ॥

---

१ ख. °याऽभियुज्य सं° ।

एष नः परमो राजा सानुरागादजायत ।
त्रेतायां संप्रवृत्तायामन्योन्यमनुजल्पिरे ॥ ३
एष नो वृत्तिदाता च विप्राणां च प्रवर्तिता ।
निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्राप्तेन कर्मणा ॥ ४
एतस्मिन्नन्तरे देवा गन्धमादनसानुषु ।
बहुभिर्नियमैः श्रान्ता निषण्णा गिरिसानुषु ५
अथ गन्धं समासाद्य समन्ताद्देवदानवाः ।
माधवे समयं प्राप्ते तेन गन्धेन दर्पिताः ॥ ६
पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं मारुतेन विसर्पितम् ।
मनोग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम् ॥ ७
ते दैत्यास्तेन गन्धेन किंचिद्विस्मयमागताः ।
प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः ॥ ८
ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः ॥
पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत् ९
अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः ।
शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् ॥ १०
तस्माद्वयं पयोमध्ये ओषध्यो निर्मथामहे ।
मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा ॥ ११
समुद्रमभिसंरम्भान्मथ्नीमः सोमजं जलम् ।
पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिताः कामरूपिणः
विष्णुरेवाग्रणीस्तेषां भविष्यति महाबलः ।
दिवं च वसुधां चैव भोक्ष्यामः सह शत्रुभिः
समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः ।
सर्वे ग्रहांश्च गृह्णीमः सुधां च वसुधातले ॥ १४
उद्धृत्य गिरिपादेभ्यो गन्धमादनसानुजान् ।
प्रभाष्य वचनं दैत्या मन्दरस्य प्रकम्पने ॥ १५
समुद्धर्तुं प्रधावन्तः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम्
निश्चयेन महावीर्या बाहुभिः परिणाहिभिः १६
न शक्नुस्ते समुद्धर्तुं शैलेन्द्रं दनुवंशजाः ।
निपेतुर्जानुभिर्घृष्टा विपुले पर्वतान्तरे ॥ १७
समाधायात्मनात्मानं तपसा दग्धकिल्बिषाः
पितामहं प्रपद्यन्ते शिरोभिः कामरूपिभिः १८
तेषां मनोभिलषितं ब्रह्मा सर्वत्रगो वशी ।
ज्ञात्वा बहुविधैर्वाक्यैर्व्याजहार सरस्वतीम्
अशरीरां शरीरस्थः परया वर्णसम्पदा ।
सर्वलोकमतिर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया ॥

सत्यप्राप्तेन परमेश्वरेऽर्पितेन ईश्वरानुग्रहेणेत्यर्थः ॥ ४ ॥ स्वधर्मस्थास्वपि प्रजासु ये विष्णुभक्तास्त एव मुक्तिभाजो नान्ये योगशतेनापीत्यमृतमन्थनाख्यायिकामुखेनाह-**एतस्मिन्नित्यादिना** ॥ ५ ॥ गन्ध "कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिरिः" इति किंचित् क्षुद्रधारणाफलम् । माधवे वसन्ते ॥ ६ ॥ कर्मबुद्धयः धारणोत्थानि ज्ञानानि शुभानि मुक्त्यर्थानि, अशुभानि भोगार्थानि । बुद्धिप्राणेन बुद्धिबलेन ॥ १० ॥ **तस्मादिति** । यस्मात् योगफलमतिश्रेष्ठमित्यनुमानेन निश्चितं तस्मात् पयः अमृतसाधनं ज्ञानं, मध्ये समुद्रतुल्ये देहाभ्यन्तरे, ओषधीः ओषधीसंभवं देहं निक्षिप्य मन्दरेण विवेकेन साधयामहे ॥ ११ ॥ एतदेव विशदयति-**समुद्रमिति** । सोमजं जलम् अमृतं, तच्चामृतं पीत्वा सम्यगास्वाद्य कामरूपिणो भविष्याम इति शेषः। सहिताः सर्वे प्रस्थिता अविद्यानाशार्थम् उद्युक्ताः ॥ १२ ॥ **विष्णुरिति** । आराधितो विष्णुरेवास्माकम् अग्रणीर्योगमार्गे ततो भविष्यति तावता च दिवं वसुधां च भोक्ष्यामः शत्रुभिः कामादिभिः सह स्थिताः अपि सत्यसंकल्पाः सत्यकामाश्च भविष्याम इत्यर्थः ॥ १३ ॥ मूलं पित्रादयः । पत्रं भार्यादयः । शाखाः भ्रात्रादयः । पुष्पादिकम् अपत्यादि । तैः सहिताः सर्वे ग्रहान् ऐकात्म्यग्रहं सुधां मोक्षं च गृह्णीमः । वसुधातले इत्यनेन गत्यपेक्षतां वारयति । अत्रैवेत्यर्थः । तथा च श्रुतिः-"**न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति**" इति ॥ १४ ॥ दैत्याः मन्दरस्य प्रकम्पने वचनं वचः प्रभाष्य संकेतं कृत्वा गिरिपादेभ्यः गन्धमादनसानुजान् उद्धृत्येति योजना। गुरुशिष्यसंकेतपूर्वकं देहस्य प्रविलापने विषये उपदेशं प्राप्य ब्रह्माण्डान्तर्गततत्तद्विषयेषु निमग्ना वासनाश्चोद्धृत्य ॥ १५ ॥ समुद्धर्तुं मन्दररूपं देहमुन्मूलयितुं परिणाहिभिर्विशालैर्बाहुभिरिव बाहुभिः प्राणायामाद्यैः प्रभावन्तो मेदिनीं कृत्स्नं ब्रह्माण्डं कम्पयन्ति तदपि प्रविलापयितुं यतन्ते इत्यर्थः । कथापक्षे ऋजुरेवार्थः ॥ १६ ॥ न शक्नुः न शेकुः । प्रथमप्रयोगे हतोद्यमा बभूवुरित्यर्थः ॥ १७ ॥ **समाधायेति** । पितामहम् ईश्वरं शिरोभिः प्रपद्यन्ते शरणं गता इत्यर्थः । कामरूपिभिर्दिव्यैः । तथा च योगिनः ईश्वरं प्रणिधानफलमामनन्ति । ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्चेति ॥ १८ ॥ **तेषामिति** युग्मम् । अशरीरां सरस्वतीं प्रणवरूपां न तु देवतां शरीरस्थोऽन्तर्यामी परया वैखर्यादित्रिकात् परया निर्गुणया सह बहुविधैः "**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्**" इत्याद्यैकात्म्यप्रतिपादकैर्वाक्यैर्व्याजहार उपदिदेश ॥ १९ ॥

१ ख. °रागो व्य° । २ ख. च शिलानां च प्र° ।

आदित्यैर्वसुभिश्चैव रुद्रैश्च समरुद्गणैः
देवैर्यक्षैः सगन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः २१
समेत्य सहितैः सर्वैः शक्य उद्धरितुं गिरिः ।
अमृतार्थे महातेजा धातुभिः समरंजितः ॥२२
सुरासुरगणाः सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम् ।
हस्तारूढाः प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्रसम् ॥
एतच्छ्रुत्वा च वचनं सर्वेषामन्तिके तदा ।
दैतेया बाहुबलिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥२४
विक्रीडभूता बहुधा बभूवुर्लवणाम्भसः ।
यत्र पुष्करविन्यस्तः सहितैर्देवदानवैः ॥ २५
सुरासुरगणाः सव सहिता लवणाम्भसः ।
मन्दरं पुष्करं कृत्वा नेत्रं वासुकिमेव च ॥२६
समाः सहस्रं मथितं जलमौषधिभिः सह ।
क्षीरभूतं समायोगादमृतं समपद्यत ॥ २७
तज्जन्हुरसुराः पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना ।
[ तदा पश्चाज्जन्हुर्देवाः कामतेजोबलान्विताः]
धन्वन्तरिस्तथा मद्यं श्रीर्देवी कौस्तुभो मणिः
शशाङ्को विमलश्चापि समुत्तस्थुः समंततः ।
उच्चैःश्रवा हयो रम्यः पीयूषं तदनन्तरम् ॥२९
पश्चाद्देवास्तदा दातुमुद्यता राहुमब्रुवन् ।
न तु केचित्पिबान्ति स्म दैत्या नैव च दानवाः
चिच्छेदाथ हरिः संख्ये राहोश्चक्रेण कं तदा ।
अनिर्मुक्तं पितृगणैर्मुनिभिश्च सनातनैः ॥ ३१
तादिन्द्रहस्तादमृतं जहार पृथिवी स्वयम् ।
जगामाङ्कगता वेदी ब्रह्मवाक्यप्रचोदिता ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

व्याहृतमेवाह—**आदित्यैरिति त्रिभिः**। आदित्याद्यैः प्राणाद्यभिमानिभिः ॥ २१ ॥ समेत्य मनसि एकीभावं प्राप्य गिरिः शरीराख्य उद्धरितुम् उद्धर्तुं मूलत उच्छेत्तुं शक्यः धातुभिर्वातादिभिः समं सर्वत्र रञ्जितः ॥ २२ ॥ ते सुरासुरगणाः सर्वे मनुष्यादयोऽपि गिरिं समुत्पाट्य-हिमवतो रसं सारं देहिनां भोग्यं श्रेयस्तेनाभिमतं वीरुधो वीरुद्रूपेण वासनासन्ततिरूपेण पश्यन्ति देहासङ्गशून्याः हार्दाकाशे । कीदृश्यो वीरुधः ? हस्तारूढाः करतलामलकवदित्यर्थः ॥ २३ ॥ **एतदिति**—दैतेया अप्येतच्छ्रुत्वा श्रुतार्थानुष्ठाने प्रवृत्ता इति भावः ॥२४॥ तथाभूताश्च ये यत्र भ्रूघ्राणमध्यादौ चक्रे पुष्करस्य कृत्स्नकार्यस्य विन्यस्तं विन्यासोऽवस्थानं तत्रस्थस्य लवणाम्भस आक्रीडभूता बभुवुः । वैराग्याभावात् पूर्वोक्तैर्विघ्नैरभिभूतत्वात् सलिलेन इतस्ततो दोलायमाना बभूवुरित्यर्थः ॥ २५ ॥ **सुरासुरेति** । लवणाम्भसः जलम् अमृतं समपद्यत इति द्वयोर्योजना । सहिताः भूत्वेति शेषः । पुष्करं सनालविलसत्कमलसादृश्यान्मन्थनदण्डः । पुष्करं तत्स्थाने देहं कृत्वा मनःसमुद्रे वासनौषधीः संहृत्य तत्र तं देहं निक्षिप्य वासुकिं सर्पाकारां कुण्डलिनीं नेत्रं योगमार्गनयनक्षमं सहायं कृत्वा कुण्डलिनीमूलं बन्धेनोद्बोध्येत्यर्थः ॥ २६ ॥ एतावत्कृत्वाऽपि सहस्रं समा इत्यनेकजन्मसाध्यत्वं मथनस्य दर्शितम् । अथ वासुकिवत् श्वेतं शुद्धसत्त्वमयं धर्मं वा सहायं कृत्वा मथितं जलं मनः क्षीरीभूतं विशुद्धसत्त्वमयं भूतं सत् मायाया ऐकात्म्यवृत्तेर्योगादमृतं शुद्धचिन्मयमुक्तरूपं बभूवेत्यर्थः ॥ २७ ॥ तदित्यर्द्धम् । असुरा योगोपसर्गाः । जितोपसर्गस्य षड् योगसिद्धयो भवन्तीत्याह—**धन्वन्तरिरिति**। अत्र धन्वन्तरिशब्देन "लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च " इति स्मृतिप्रसिद्धा लघुत्वादयो लक्ष्यन्ते । मद्यशब्देन मधुमत्यादयो योगिचित्तोन्मादका भूमयो योगशास्त्रप्रसिद्धा लक्ष्यन्ते । श्रीर्देवीति ऋगादिरूपवेदविद्यास्फूर्तिर्लक्ष्यते । कौस्तुभवद्देहस्य भास्वरत्वम् ॥ २८ ॥ शशाङ्कवदद्वेष्टृत्वादिगुणैरितराह्लादकत्वम् । उच्चैःश्रव इति दूरश्रवणं दूरे दर्शनादिमत्त्वं च लक्ष्यते । पारिजातादिनाऽप्यन्यत्र दृष्टेन शुभगन्धादिमत्त्वं द्रष्टव्यम् । तेषामनन्तरं पीयूषं निर्विशेषकैवल्यम् । एतेषु मद्यमसुरान् प्रति गतम् । अन्यत्सुरान् प्रतीति पुराणान्तरात् द्रष्टव्यम् ॥२९॥ अथ राहोराख्यायिकामुखेन कपटविद्यार्थिनो विनाशमाह—**पश्चादिति** । कथापक्षे तु स्पष्ट एवार्थः । राहुमब्रुवन् राहुमुद्दिश्य परस्परं विचारितवन्तः । **न त्विति** । अयं तु पिबतीति भावः ॥ ३० ॥ राहोः कं शिरः इत्यर्थः । अनिमुक्त इति सार्धश्लोक एकं वाक्यम् ॥ ३१ ॥ **तदिति** । तदमृतं ज्ञानं पितृभिर्देवैर्मुनिभिश्चकारादन्यैश्च गन्धर्वादिभिरधिकारिभिः अनिर्मुक्तं नित्यसेवितम् इन्द्रहस्तात्प्रतर्दनादिशिष्योपशिष्यपरम्परया पृथिवी जहार । पृथिव्यां मानुषा अपि तत्तद्ग्रहणेऽधिकारिण इत्यर्थः । अङ्कगता शिष्यत्वं प्राप्ता ब्रह्मवाक्यं वेदवाक्यं तत्त्वमस्यादि तेन चोदिता प्रबोधिता ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

# हिरण्यकशिपो राजसूयवर्णनम् ।

## ३१

जनमेजय उवाच ।
निहते दैत्यसंघाते विष्णोश्चातिपराक्रमे ।
दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात् १
वैशम्पायन उवाच ।
दानवा राज्यमिच्छन्ति पराक्रम्य महाबलाः
तप इच्छन्ति सहिता देवाः सत्यपराक्रमाः॥२
जनमेजय उवाच ।
कथं कालस्य महतो हिरण्यकशिपुस्तदा
यजते ब्रह्मणः क्षेत्रे प्राप्तैश्वर्यः स कामदः ॥ ३
वैशम्पायन उवाच ।
यजेद्वहुसुवर्णेन राजसूयेन पार्थिवः ।
क्रतुना दानवश्रेष्ठो वसुधायां महाफलः ॥ ४
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद्विपुलं तपः ।
समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे ॥ ५
ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणाः ।
यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत ॥ ६
मुनयो वालखिल्याश्च धन्या धर्मेण शोभिताः
बहवो हि द्विजा मुख्या नित्या धर्मपरायणाः
ऋषयश्च महाभागा विप्रैः पूज्याः सहस्रशः ।
विपुलैरत्र विभवैर्ह्रियमाणैस्ततस्ततः ॥ ८
शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्यं याजयते प्रभुः ।
हिरण्यकशिपुं मध्ये गणानां प्रभवः प्रभुः ९
हिरण्यकशिपुश्चैव व्याजहार सरस्वतीम् ।
कामाद्वरं ददातीति तद्वै संप्रतिपद्यताम् ॥१०
विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां तां प्रतिगृह्णाति ।
हिरण्यकशिपोर्हस्ताद्द्वे पदे पदमेव च ॥ ११
ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
त्रींल्लोकान्मुनिभिः क्रान्तैर्दिव्यं वपुरधारयत्॥
हृतराज्याश्च दैतेयाः पातालविवरं ययुः ।
ससैन्यगणसंबद्धाः सप्रासाः सासितोमराः ॥
सयन्त्रलगुडाश्चैव सपताकारथध्वजाः ।
सचर्मवर्मकोशाश्च सायुधाः सपरश्वधाः ॥ १४
तथेन्द्रविष्णुसहिताः सद्यस्तेऽभ्युत्थिता गणाः
अभ्यषिञ्चन्प्रमुदिता लोकानामधिपे सुराः१५
स तान् स्वधामृतेनाशु पितृत्वे समतर्पयत् ।
ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति ।
अक्षयश्चाव्ययश्चैव संवृतस्तेन कर्मणा ॥ १६
ततः शङ्खमुपाध्मासीद्द्विषतां लोमहर्षणम् ।
पितामहकरोद्भूतं जनितप्रथमे पदे ॥ १७
तं श्रुत्वा शङ्खशब्दं तु त्रयो लोकाः समाहिताः
निवृत्तिं परमां प्राप्ता इन्द्रं नाथमवाप्य च॥१८

---

३१

**पञ्चविंशे कूटशिष्योऽप्येति कालेन साधुताम्**
**इति तद्दर्शयन्नाह हिरण्यकशिपोः क्रतुम् ॥ १॥**
**लक्ष्मीवान्माद्यतीत्यस्य वित्तं हरति केशवः ।**
**दययैवेति वक्तुं च तद्विभ्रंशोऽपि वर्ण्यते ॥२॥**

**निहत इति ।** मोक्षाभिरत्ता दैत्याः किं चक्रुरिति प्रश्नस्य राज्यं चक्रुरित्युक्ते तेषां पुनर्मोक्षोऽस्ति न वेति पृष्टे उत्तरं तेषामपि योगोऽस्तीति ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षेत्रं भूघ्राणमध्यं तदेव गंगायमुनयोर्मध्यम् ॥ ३ ॥ **हिरण्यकशिपुरिति** । आख्यायिकाया अविवक्षितत्वातेन शब्देन बलिरेव ग्राह्यः । तस्य हि "यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् ।" इति प्रतिजानता हरिणा कृपया ऐश्वर्यभ्रंशः कृतः सः अर्थ एवात्र विवक्षितः । तामसैर्प्याव्याप्तित ईश्वरः कालेनैश्वर्यपाशं छिनत्तीति हरिभक्त्युत्कर्षः प्रदश्यते । व्याजहार वामनं प्रतीत्यपकृष्यते ॥१० ॥ प्रतिगृह्णति प्रतिगृह्णाति, द्वे पदे पदं चेति त्रीणि पदानि ॥११॥ मुनिभिः प्रार्थ्यानिति शेषः । क्रान्तैः क्रमणैः पदविन्यासैः क्रमितुमारेभे क्रान्तवानित्यर्थः ॥ १२ ॥ एवमैश्वर्यमदे विष्णुना नाशिते दरिद्रस्य इतरे मदाः स्वयमेव नष्टा भवन्ति । ततो बलिम् ऐन्द्रे पदे तुरीयतुरीये प्रत्यगात्मनि कालान्तरे देवा अभ्यषिञ्चन् इत्याख्यायिकामनुसृत्य दर्शयति-**हृतराज्येत्यादिना** ॥ १३ ॥ लोकानामधिपे आधिपत्ये सुराः देवाः । बलिमिति शेषः ॥ १५ ॥ स बलिः तान् सुरान् ब्रह्मा वेदस्तदमृतं बलिना दत्तं हविः तेन बलिकृतेन संवृत इन्द्रः । सार्द्धश्लोकः ॥ १६ ॥ सत्यसंकल्पेन ब्रह्मविदा बलिना ब्रह्मबुद्धया भाविता देवादयस्तादृशा एव भवन्तीति ब्रह्मवित्सर्वोपकारीति तत इत्यादिश्लोकद्वयार्थः ॥ १७ ॥

---

१ ख. °श्च नानाध्र° । २ ख. °तां ज्वलनप्रभः । हि° ।

सर्वैः प्रहरणैश्चैव संयुक्ता वह्निसंभवैः। मन्दराग्रेषु विहितैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः॥ १९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

## दक्षयज्ञविनाशः।

### ३२

वैशम्पायन उवाच।

ततो महति वृत्तान्ते स्थिते राज्ये महोदये।
देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत्तदा॥ १
एकतः समधीयन्ति सहिताः प्ररुदन्ति च।
स्वयं च भागं गृह्णन्ति यज्ञकर्माणि भारत॥ २
प्राचेतसं ततो दक्षं दीक्षित्वा वै बृहस्पतिः।
वाजिमेधाय भगवानृषिभिः परिवारितः॥ ३
तस्मिन्मातामहे यज्ञं दक्षस्याविदितात्मनः।
शामित्रमकरोद्रुद्रो भागार्थं सह नन्दिना॥४
रुद्रस्यैव हि तद्रूपं द्विधाभूतं तदीप्सया।
जातः परमधर्मात्मा नन्दी पुरुषविग्रहः॥ ५
तेन योगेन राजेन्द्र यत्तद्ब्रह्म सनातनम्।
विहितं सत्यवचनैस्तेनैव परमात्मना॥ ६
स्वरूपैश्चाप्यरूपैश्च विरूपाक्षैर्घटोदरैः।
ऊर्ध्वनेत्रैर्महाकायैर्विकटैर्वामनैस्तथा॥ ७
शिखिभिर्जटिभिश्चैव त्र्यक्षैश्च शङ्कुकर्णिभिः।
चीरिभिश्चर्मिभिश्चैव कूटमुद्गरपाणिभिः॥ ८
सघण्टाधारिभिश्चैव मुञ्जमेखलधारिभिः।
सहस्तकटकैश्चैव स्वर्णकुण्डलधारिभिः॥ ९
सडिण्डिमैः सभेरीयैः समृदङ्गैः सवेणुभिः।
एतैः परिवृतो देवो मखं तं समुपारुजत्॥१०
सशङ्खमुरजैश्चापि सतालफलपाणिभिः।
उग्रायुधधरो देवः सपिनाक इवान्तकः॥ ११
विरराजार्चिभिर्दीप्तैर्मखे मखवतां वरः।
कालाग्निरिव दीप्तार्चिर्जगद्दग्धुमिवोद्यतः १२
नन्दी पिनाकपाणिश्च जघ्नतुर्मखमुत्तमम्।
युगान्त इव कालाग्निः क्षिप्रं दग्धुमिवोद्यतः
यूपमुत्क्षिप्य धावन्ति निशाचरगणास्तथा।
त्रासयन्मुनिसङ्घांश्च चीरचर्मनिवासिनः१४
हवींष्यन्ये पिबन्त्येव जिह्वाभिस्ताम्रलोचनाः
भक्षयन्ति पशूनन्ये रसनान्तावलम्बिभिः १५
मुमुचुश्चापरे यूपान्पशवः प्रहरन्ति च।
वह्निमध्ये प्रसिञ्चन्ति वारिभिः प्रशमाय च

---

**सर्वैरिति**। प्रकर्षेण हरन्ति विषयान् प्रति इति प्रहरणानि इन्द्रियाणि। वह्निसंभवैर्ब्रह्मतः उत्पन्नैश्चिन्मयैरित्यर्थः। मन्दराग्रे देहशैलस्याग्रे स्थितैः संयुक्ताः त्रयो लोकाः परां निर्वृतिं सुखं प्राप्ता इति पूर्वेणान्वयः॥ १९॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भाविष्यपर्वाणि टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

३२

**षड्विंशे द्रोहिणं दक्षं शंभुर्दण्डेन सत्पथे।
न्यवेशयत्कियन्तस्तु बलौ भक्तोऽप्यनुग्रहः १
ईश्वरद्रोहिणाप्येष कृतो धर्मो महाफलः।
इति संदर्शयन्नाह षड्विंशे दक्षनिग्रहम् २**

**तत इति**। ततः सर्वेषां निवृत्तिप्राप्त्यनन्तरम्। देवा मनुष्याश्च ब्रह्मवित्त्वेन तारतम्याभावात्सहैव वासं चक्रुरित्यर्थः॥ १॥ समधीयन्ति आत्मचर्या कुर्वन्ति प्ररुदन्ति च प्रेम्णा स्वयं देवाः, भागं मनुष्यैर्दत्तम्॥ २॥ एवं सर्वेषु विद्वत्सु सत्सु विद्वान् दक्षः प्रचेतसः पुत्रो बृहस्पतिनानुगृह्यते स्मेत्याह—**प्राचेतसमिति**॥ ३॥ मातामहे मातामहीये। दक्षदुहितॄणामेव सर्वे लोकाः संतानम्, अतः सर्वेषां मातामहः। अविदितात्मनः शून्यस्य, शामित्रं दक्षस्यैव पशुभूतस्य हिंसनम्॥ ४॥ सत्यवचनैर्वेदवाक्यैः विहितं प्रकाशितं तेनैव रुद्रेणैव॥६॥ सपिनाको देवः अन्तक इव उग्रायुधधरः सन् राज॥ ११॥ रसनान्तावलम्बिभिः रसनायाः अन्तं गजशुण्डावत् प्रान्तम् अवलम्बन्ते तादृग्रूपैः स्थितान् भक्षयन्ति॥१५॥ मुमुचुः उच्चिक्षिपुः। पशवः पशून्॥१६॥

---

१ ख. °क्षस्य वि°।

सोममन्ये जहुः केचिन्मन्त्रैस्ताञ्जपोपमैः ।
दर्भान्केचिद्विलुम्पन्ति हस्तैः पद्मदलप्रभैः॥१७
बभञ्जिरे च यूपाग्रा-
न्कलशांश्चापि चिक्षिपुः ।
चिच्छिदुः काञ्चनान्वृक्षा-
ञ्छोभार्थमुपकल्पितान् ॥ १८
बिभिदुश्चैव बाणैस्ते मुमुचुश्च हिरण्मयान् ।
लुलुपुश्चैव पात्राणि ममन्थुश्चारणीमपि ॥ १९
अरुजंश्चैव प्राग्वंशं लुलुपुश्च समाहिताः ।
चखादिरे पुरोडाशान्मखाग्नेश्चाववर्तिरे ॥ २०
एवं दिवा च रात्रौ च भिद्यमानो महामखः
चुक्रोश च महानादान्भिद्यमान इवार्णवः॥२१
धनुः सशरमादाय पूर्वदत्तं स्वयंभुवा ।
कृतं कीचकवेणुभ्यां समरे सुमहारथः॥ २२
प्रतिगृह्य महादेवः स शरैः समयोजयत् ।
धनुर्विगृह्य जानुभ्यां जघान स महाक्रतुम् २३
स विद्धस्तेन बाणेन खं समुत्पतितः क्रतुः ।
मृगो भूत्वा नर्दमानो ब्रह्माणमुपधावति ॥२४
शरेणाभिहतस्त्राणं न लेभे प्रशमं भुवि
शरणार्थी ह्ययं प्राप्तः शरेणान्तर्गतेन च ॥ २५
तमुवाच मृगं ब्रह्मा शुभं सानुनयं वचः ।
स्वरेणोत्तमवीर्येण गम्भीरेण सुभाषिणा ।
एवंरूपो नभसि त्वं भविष्यसि महामृगः २६
विजितश्च त्रिपर्वेण शरेणानतपर्वणा ।
तिष्ठस्नक्षत्रशिरसि सह रुद्रेण नित्यशः ॥ २७
सोमेन सह संयुक्तो ह्यक्षयेणाव्ययेन च ।
दिवि संचारभूतो वै ताराभिः सह संगतः२८
ज्योतिर्भूतो ज्योतिषां त्वं ध्रुवश्चैव महाध्रुवः
यच्चैतद्रुधिरं दिव्यं क्षतजादभिनिःसृतम् २९
नभस्युत्पतितं चैव प्रवेगेन प्रधावतः ।
क्षतजं बहुवर्णं च क्षेत्रं मण्डलसंज्ञितम् ।
निमित्तभूतं भूतानां वर्षे वर्षप्रदं तथा॥ ३०
सुखं दुःखं च भूतानां दर्शने संप्रवर्तते ।
इन्द्रियश्रवणाच्चैव नभसीन्द्रायुधोऽभवत् ३१
चक्षुषी मानुषे राजन्विस्मयात्समवैक्षत ।
अद्भुतं बहुचित्रं च मनसा संप्रकल्पितम् ॥ ३२
न तु रात्रौ प्रदृश्येत खे[1] सब्रह्माणि संज्ञितम् ।
दिनस्यैव सदा त्वग्रे महत्कार्यं प्रदृश्यते ॥ ३३
भूमावेव समुत्तिष्ठेदाकाशे तु विलीयते ।
शतशश्च समं सर्वे प्रधावन्ति प्रचेतसः ३४
भयाद्रुद्रस्य महतो धन्विनो बाणपाणयः
नन्दी रुद्रगणैः सार्द्धं पिनाकी समतिष्ठत ।
युगान्तकाले ज्वलितो ब्रह्मदण्ड इवोद्यतः ३५
विष्णुसंग्रामसंभूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः ।
प्रातिष्ठत महाबाहुः पाणिना चक्रमादधत् ३६
गदां सघण्टामन्येन खड्गमन्येन पाणिना ।
प्रगृह्य सोऽग्रतोऽतिष्ठद्रुद्रायोद्यतपाणये ॥३७

---

महामखो मूर्तो भूत्वा महानादांश्चुक्रोश ॥२१॥ **धनुरिति** विगृह्य विनम्य जानुभ्यां स्थित इति शेषः ॥२२॥ अन्तर्गतेन शरेण तुद्यमानः ॥२५॥ स मृगशीर्षसंज्ञं मृगरूपी यज्ञो सोमदैवत्यं नक्षत्रमभवदिति द्वाभ्यामाह-**एवमिति** ॥ २६ ॥ संचारभूतः प्राप्तसंचारः ॥२८॥ यच्चैतदित्यादिभिस्त्रिभिरिन्द्रधनुष उत्पत्तिमाह । वर्षे वर्षाकाले वर्षप्रदं वृष्टिप्रदाने चिह्नम् इन्द्रायुधम् **इन्द्रधनुरिति** लोके प्रसिद्धम् ॥३०॥ इन्द्रायुधमेव वर्णयति-**चक्षुषी इति त्रिभिः** । मनुष्यस्येमे मानुषे अवैक्षत अवेक्षताम् । मनसा संप्रकल्पितमिति कृत्स्नस्यापि प्रस्तुतार्थस्य विशेषणम् ॥ ३२ ॥ एतत्सर्वं स्वप्नवृत्तान्तवत्कथ्यमानं रात्रौ अविद्यायां देहादिष्वात्माभिमानरूपायां सत्यां न प्रदृश्यत इत्याह-**न त्विति** । अविद्यानिवृत्तौ तु हार्दाकाशे सब्रह्माणि शुद्धब्रह्मोपलब्धिस्थाने संज्ञितं वागालम्बनत्वेन विद्यमानम् । दिनस्यैवाग्रे अविद्यारात्रेरपगमे कार्यं सर्वं घटादिकं सदा अतीतानागतव्यवहितायवस्थायामपि प्रकर्षेण शब्दानुमानजसामान्यविषयज्ञानात् प्रकर्षेण विशेषार्थस्वरूपेण दृश्यते । यतस्तत्कार्यं महदेव ब्रह्मैवास्ति।नहि ब्रह्मणोऽतीतादित्वं संभाव्यत इति हार्दाकाशाख्ये कार्यं दर्शनं युक्तमिति भावः ॥ ३३ ॥ **भूमाविति** । इयमविद्यारात्रिः भूमौ शरीरे सत्येवोत्थिता न हि तदभावे सत्यासंभवोऽस्ति रज्ज्वभावे इव सर्पस्य । देहाभावे तु आकाशे शून्ये लीयते कालत्रयेऽपि बाधिता भवतीत्यर्थः । यस्मादेवं तस्मात्प्रचेतसः संबन्धिनो दक्षाः शतशश्च समं सर्वात्मकं ब्रह्म देहात्मबुद्धिरूपाविद्यानाशमात्रेणाभिलक्षितं प्रति धावन्ति उपतिष्ठन्ति । शब्दाभिलप्यप्रपञ्चादनन्तगुणितः प्रपञ्चो हार्दे दृश्यत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ पूर्वश्लोकस्य उत्तरार्धमुपजीव्य कथामनुसरति-**भयादित्यर्धेन**॥ ३५॥

---

[1] ख. खे तु सब्रण सं° ।

ततः शृङ्गाग्रसंभूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः ।
शार्ङ्गं चाप्रतिमं लोके शरांश्चानतपर्वणः ३८
विष्णुरग्रस्थितो भाति सबलः संहताञ्जलिः ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः सचन्द्र इव तोयदः ॥
आदित्या वसवश्चैव दिव्यैः प्रहरणैः सह ।
विष्णुमेवाभितः सर्वे तिष्ठन्ति ज्वलनप्रभाः ४०
मरुतश्चैव विश्वे च रुद्रमेवाभिपेदिरे ।
गन्धर्वाः किन्नराश्चैव नागा यक्षाः सपन्नगाः
ऋषयो न्यस्तदण्डाश्च उभयोः पक्षयोर्हिताः ।
जपन्ति शान्तये नित्यं लोकानां हितकाम्यया
रुद्रः शरेणाभ्यहनद्विष्णुमेवाग्रणी रणे ।
हृदि सर्वाङ्गसन्धीषु तीक्ष्णाग्रेण सुयन्त्रिणा ॥
न चकम्पे तदा विष्णुः सर्वात्मा ब्रह्मसंभवः ।
न च रोषमना नित्यं वृतः सर्वैः षडिन्द्रियैः
विष्णुश्च धनुरानम्य शरेण समयोजयत् ।
जत्रुदेशे मुमोचाशु ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥ ४५
स विद्धस्तेन बाणेन महादेवो न कम्पते ।
वज्रेण च महासन्धिर्मन्दरस्य न चाल्यते॥ ४६
ततः प्रसभमाप्लुत्य रुद्रं विष्णुः सनातनम् ।
कण्ठे जग्राह भगवान्नीलकण्ठस्ततोऽभवत् ॥
अनादिनिधनो देवो क्षमतां हि भवान्मम ।
सर्वभूतागमाचार्यमचलत्वाच्च कर्मणाम् ॥ ४८
कर्मणां चैव कर्ता च विकर्ता चैव भारत ।
अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः ॥ ४९
स्वयमेव हि यत्कर्म विधत्ते कर्मयोनिषु ।
तयोः शुभतमो राजन्स्वयमेव तथाऽकरोत्
अन्तरिक्षाच्छुभा वाचः श्रूयन्ते परमाद्भुताः
सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः सनातन नमोऽस्तु ते
नन्दी पिनाकमुद्यम्य बलवान्रुद्रसंभवः ।
मूर्द्धन्यभिजघानाजौ विष्णुं क्रोधेन मूर्छितः
ततः प्रहसितो विष्णुर्नन्दीं दृष्ट्वा सुरोत्तमः ।
स्तम्भयामास भगवान्सर्वभूतपतिर्हरिः ५३
विष्णुर्ब्रह्मसमो भूत्वा तेजसा प्रज्वलन्निव ।
क्षमया च समायुक्तः स्थितः स्थाणुरिवाचल

शृङ्गाग्रसंभूतं शाङ्गर्म् । धर्माधिष्ठात्री देवता महाविष्णुः ज्ञानाधिष्ठात्री देवता सदाशिवः, तयोः परस्परविरोधे आदित्यादयः विष्णुपक्षाः ज्ञानं द्विषन्ति । तथा च श्रुतिः— " **तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विदुः** " इति ॥ अक्षरयोजना स्पष्टा ॥ ३८ ॥ **रुद्र इति** ॥४३॥ यतः सर्वात्मा अतो न चकम्पे ॥४४॥ उद्यतं शरम् ॥४५॥ **स विद्ध इति** । वज्रेणेति व्यतिरेके दृष्टान्तः । यथा वज्रेण मन्दरस्य महासंधिर्मर्मस्थानं चाल्यते, तेनैव बाणेन रुद्रः न कम्पते। चालनं दूरापेतमिति भावः ॥४६॥ ततः रुद्रस्याकम्प्यत्वावगमानन्तरं, ततः यतो विष्णुः कृष्णवर्णः । महेशकण्ठे इन्द्रनीलमयग्रैवेयकत्वग्रस्ततो हेतोर्नीलकण्ठोऽभवत् । इदमत्र आख्यायिकातात्पर्यम्—यद्यपि स्वोत्पत्तये ज्ञानस्य धर्मापेक्षाऽस्ति उत्पन्नं च ज्ञानं धर्मं मूलत उच्छिनत्ति, तथापि विदुष एव धर्माधिकारात् ज्ञानस्यैव कण्ठे शिशुरिव धर्मो लग्नोऽस्तीति ॥ ४७ ॥ कथाप्रसङ्गाद्विज्ञानमेव स्तौति-**अनादीति** । दीव्यति प्रकाशयत्यर्थजातमिति चिन्मात्ररूप आत्मा देवः स च अनादिनिधनः, न हि ज्ञानेन परिच्छेद्यं सर्वज्ञानस्य आद्यन्तौ प्रकाशयितुं क्षमते । कुतः कर्मणां कर्मोत्पादितानां महदादीनामचलत्वात् पर्वतवज्जडत्वात् । न हि जडेनाजडं प्रकाशयितुं शक्यं न तस्याद्यन्ताविति भावः।यतोऽहं सर्वेषां भूतानाम् आगमानामाचार्यं ग्राहकं गुरुम्, " **ईशानः सर्वविद्यानाम्** " इति श्रुतिप्रसिद्धं त्वां वेद्मि । अतो भवान् ममापराधं क्षमतामिति योजना ॥ ४८ ॥ कर्मणां च कर्ता चिदात्मैव अहंकारादेः सत्ताप्रदत्वात् । विकर्ता विषमकर्ता अशेषत्वात् भूतानां दृश्यानामर्थानां शेषस्य शिष्यत इति शेषः कारणं तस्याज्ञानस्य कालत्रयेऽप्यभावात् सर्वेषु भूतेष चराचरेषु उत्तमो जीवेशापेक्षया निरुपाधित्वादुत्कृष्टतमो भवानेवेति शेषः ॥ ४९ ॥ **स्वयमिति**। कर्मयोनिषु कर्मणा लब्धनानाविधशरीरेषु स्थितः अन्तर्यामिरूपेण स्वयमेव कर्म विधत्ते करोति प्रयोजकतयेति यत् तत् तयोः कर्तृकारयित्रोरन्यः शुभतमो यः शुद्धरूपः स एव तथा नियमं पूर्वोक्तम् अकरोत् । निर्विशेषचिन्मात्रे एवं जीवेशादिकं कल्पितमिति भावः ॥ ५० ॥ कथामनुसृत्योक्तमर्थं स्तौति-**अन्तरिक्षादिति** ॥ ५१ ॥ नन्दीत्यादिश्लोकद्वयतात्पर्यं तु परमज्ञानं प्रत्यासन्नं महदध्यात्मज्ञानं नन्दितुल्यं तत् धर्मरूपस्य विष्णोर्न द्रावकं न हि तेन ज्ञानेनाविद्यामयेन कर्मक्षयः संभवति,प्रत्युत कर्मणैव चित्तशुद्ध्यतिशये तस्य ज्ञानस्य स्तम्भो भवतीति ॥ ५२ ॥ **विष्णुरिति** । विष्णुः परमो धर्मो योगाख्यः क्षुद्रज्ञानैरप्रकम्प्यः स ब्रह्मसमो ज्ञानेन समानो भूत्वा । " एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति । " इति भगवदुक्तेः ।

१ ख. ॰ण च पत्रि॰ ।

अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च ह्यजेयश्चाप्यरिंदमः।
युगान्ताग्निसमो भूत्वा शान्तात्मा हरिरव्ययः
प्रसन्नः कल्पयामास भागं रुद्राय धीमते।
विष्णुर्धर्मपरो नित्यं त्यक्तकामः सुरोत्तमः॥
विष्णुना चैव राजेन्द्र स यज्ञः संधितः पुनः
यथापक्षं च ते सर्वे गणास्त्वासन्महीपते।
तस्मिन्युद्धे महाघोरे विष्णू रुद्रस्य चैव ह॥
यथापक्षं भवेद्युद्धं दक्षयज्ञविनाशने।
विनाशश्चैव यज्ञस्य तदा लोके प्रतिष्ठितः॥
सर्वभूतेषु राजेन्द्र हितो यज्ञः सनातनः।
दक्षो यज्ञफलं चैव प्राप्तवान्स प्रजापतिः ५९

इमां चोदाहृतां दिव्यां कथामिति स बुद्धिमान्
श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः शुचिः प्रयतमानसः ६०
अधीत्य सर्वमध्यात्मं देवलोके महीयते।
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः॥
पुराणे पौष्करे चैव मया द्वैपायनेरितः।
यथावदनुपूर्वेण संस्कृतः परमर्षिभिः॥ ६२
यश्चैनमग्र्यं पुरुषं पुराणं
सदाऽप्रमत्तः शृणुयाद्यथोक्तम्।
अवाप्य कामानिह वीतशोकः
परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते॥ ६३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे पौष्करे भविष्यपर्वणि
द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

## वराहप्रादुर्भाववर्णनम्।

## ३३

जनमेजय उवाच।
प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतः॥१
न जानतेऽस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम्
न कर्म गुणवद्भावं न हेतुं न मनीषितम्॥ २

---

परमपुरुषार्थप्रदो भूत्वा तेजसः स्वरूपप्रकाशने क्षमया मोक्षमय्या मोक्षाख्यशान्त्या च समायुक्तः स्थाणुत्वादिविशेषवानभूदिति शेषः। सार्धश्लोको वाक्यम्॥ ५४॥ किं कृत्वा एवंविधोऽभूत्तदाह-**युगान्तेति**। सकार्यामविद्यां भस्मसात्कृत्वा स्वतः शान्तात्माऽव्ययः हरिः कर्मपाशहरश्च सन्नित्यर्थः॥ ५५॥ नन्वेवं योगेनैवेष्टसिद्धौ किं ज्ञानेनेत्याशङ्क्याह-**प्रसन्न इति**। रोदयतीति रुत् अज्ञानं सर्वानर्थमूलं द्रावयतीति रुद्रः ऐकात्म्यबोधः तस्य भागो द्वैतबोधः योगेनात्मदर्शनज्ञानेनात्मबोधश्चेति तयोर्विषयविभाग इति भावः॥ ५६॥ **विष्णुनेति**। स रुद्रविद्रावितोऽनात्मज्ञस्य दक्षस्य यज्ञः विष्णुना श्रद्धामयेन सत्त्वेन॥५७॥ **यथेति**। एवं सांख्ययोगयोः श्रवणासनादिसहाययोः मिथो विरोधे सत्यपि यज्ञविनाशो ज्ञानस्यैवाभिप्रेत उत्कर्षोऽभूदिति श्लोकद्वयार्थः॥ ५८॥ यद्यप्येवं तथापि ज्ञाने सन्निपत्योपकारित्वाद्यज्ञ एव हित इत्याह-**सर्वेति**। अन्यथा द्वारलोपात् ज्ञानमपि न सिध्येदिति भावः। तथानात्मनो दक्षोऽपि विष्ण्वनुग्रहादेव यज्ञफलपरम्परया तत्त्वज्ञानं प्राप्येत्याह-**दक्ष इति**। दक्षः प्रजापतिरिति समानाधिकरणे प्रथमे॥५९॥ यश्चैष इत्यर्थः। शेषः स्पष्टार्थः॥ ६०॥ **अधीत्येति**। इदं सर्वकथाछलेनोक्तं सर्वमपि अध्यात्ममानमधिकृत्यैव प्रवृत्तं शास्त्रं न वृथावादरूपम्। अधीत्य अर्थतः पाठतश्च देवलोके आत्मस्वरूपे महीयते सुप्रतिष्ठितो भवति कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः॥ ६१॥ **यश्चैनमित्यादि**। शेषः स्पष्टार्थः॥ ६३॥

**परैरदर्शितः पन्थाः पौर्वापर्येक्षया मया।**
**यथाकथंचिदुन्नीतः सुधियः शोधयन्तु तम् १**

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

### ३३

**प्रादुर्भाव इति**। अध्यात्मविद्यां समाप्य तत्प्राप्तिविघ्नविनाशाय ईश्वरः शरणीकरणीय इति विदधानस्तस्य रक्षोघ्नत्वं भक्तानुग्राहकत्वमाविष्करोति-**प्रादुर्भाव इति** त्रयेण। वराहादिप्रादुर्भावे प्रायेण विष्णोर्व्यापकस्यापि वह्नेरिव काष्ठेषु लोके प्रादुर्भावः सतां विदुषां वाराहः प्रथम इति शेषः॥ १॥ चरितं कार्यं विधिं प्रवर्तकं हेतुं कारणं कर्मणा लीलानां गुणवद्भावं लोकोपकारित्वं लक्षणं गुणवत्त्वम्॥२॥

किमात्मको वराहोऽसौ
का मूर्तिः काऽस्य देवता ।
किमाचारः किंप्रभावः
किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३

एतन्मे संशयत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ।
यज्ञार्थे च समेतानां द्विजातीनां महात्मनाम्

वैशम्पायन उवाच ।

एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसंमितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्तं कृष्णद्वैपायनेरितम् ।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ ५
यथा नारायणो राजन्वाराहं वपुरास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः ॥ ६
छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतः ।
शुचिः प्रयत्नवान्भूत्वा निबोध जनमेजय ७
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत् ८

पुराणमेतदखिलं
सांख्यं योगं तथैव च ।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं
योऽस्यार्थं ज्ञास्यते पुमान् ॥ ९

विश्वेदेवास्तथा साध्या
रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
प्रजानां पतयश्चैव
सप्त चैव महर्षयः ॥ १०

मनःसंकल्पजाश्चैव पूर्वजाश्च महर्षयः ।
वसवोऽप्सरसश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥ ११

दैत्याः पिशाचा नागाश्च
भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः
शूद्रा म्लेच्छादयो भुवि १२

चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिगतानि च ।
जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम्
पूर्णे युगसहस्रान्ते ब्राह्मेऽहनि तथाऽगते ।
निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥ १४
हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः
शिखाभिर्विविधाल्लँोकान्संशोषयति देहिनः
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरग्रतः ।
विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः १६
सांगोपनिषदा वेदा इतिहासपुरोगमाः ।
सर्वविद्याश्रयाश्चैव सत्यधर्मपरायणाः ॥ १७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा छन्दतो विश्वतोमुखम् ।
सर्वे देवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः ॥ १८
तस्मिन्नहनि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ।
प्रविशन्ति महायोगं हरिं नारायणं प्रभुम् १९
तेषां भूयः प्रविष्टानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमयाविह २०
पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते ।
तस्मिञ्जीवकृतं सर्वं निःशेषमवतिष्ठते ॥ २१
संहृत्य लोकान्सर्वान्स सदेवासुरपन्नगान् ।
कृत्वात्मगर्भे भगवानास्त एको जगद्गुरुः ।
यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥

---

किमात्मकः किं यज्ञमयो योगमयो वा का मूर्तिः शरीरं भौतिकं मायिकं वा अस्य वराहस्याधिष्ठात्री देवता किं हरिर्हरो वा । आचारप्रभावौ पूर्वं निषेधमुखेन पृष्टाविति पुनः प्रष्टुमनूद्यते ॥ ३ ॥ द्विजातीनां च श्रुतिविस्तरं कथाविस्तरमित्यावर्तते ॥ ४ ॥ चरितं तावत्संक्षेपेणाह–**दंष्ट्रयेति** ॥ ६ ॥ श्रुतिभिः, "**यस्य रूपं बिभ्रदिमामविन्दद्गुहां प्रविष्टां शरीरस्य मध्ये**" इति आधाने वराहसंभारेण विनियुक्तान्मन्त्रतस्तावत्प्रतायिते।यस्य वराहस्य रूपं बिभ्रदीश्वरः इमां पृथिवीं गुहां गूढस्थाने सलिलस्य मध्ये प्रविष्टाम् अविन्दत् लब्धवानित्यर्थः । कैर्वेदैः ॥ ७ ॥ **पुराणमिति** । अत्रैव उक्तवक्ष्यमाणरीत्या सांख्ययोगयोरन्तर्भावोऽस्ति कार्त्स्न्येन । तच्च विद्वत्तमैकोन्नेयम् । इतरे तु कथापलापमात्रोपजीविनः पण्डिताः पशव इति भावः ॥९॥ किमात्मक इत्यस्योत्तरं विश्वात्मकोऽसावित्याह–**विश्वेदेवा इत्यादिना** ॥ १० ॥ अस्य रूपस्य सूर्यवदस्तोदयावाह––**पूर्णे युगेत्यादिना** यावदध्यायसमाप्ति । निर्वाणे अदर्शने उत्पाताः वज्रपातनेत्रस्फुरणभूकम्पादयः ॥ १४ ॥ त्रिशिखः अग्निवायुसूर्यरूपास्तिस्रः शिखा यस्य स तेजोधातुर्हिरण्यगर्भः वृषाकपिः हरिहरात्मा । वर्षतीति वृषा कं जलं पिबतीति कपिः वर्षणशोषणयोः कर्तेति वा ॥ १५ ॥ हतार्चिरिति संधिरार्षः ॥१६॥ छन्दतः ईश्वरस्य इच्छातः छन्दजा इति पाठे तदिच्छातो जाताः ॥ १८ ॥ अहनि क्षयावसरे ॥१९॥ **तेषामिति** । यथा प्रदेशान्तरस्थो भानुरस्माभिरदृश्यमानोऽस्तं गत इत्युच्यते । एवं ब्रह्मदिनान्ते नारायणे लीनं जगन्नष्टमित्युच्यते । उपरिस्थैः मार्कण्डेयादीनां लयकाले तदुदरे तद्दर्शनादिति भावः ॥२०॥ निःशेषप्रलयहेतूनां वाय्वादीनामप्यभावात् अवतिष्ठते भोगं न प्रयच्छति ॥ २१ ॥ तस्य सृज्यमिति शेषः ॥ २३ ॥

नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्ररश्मिविवर्जिते ।
त्यक्तभूताग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥ २४
अपक्षिगणसंघाते सर्वप्राण्यचरे पथि ।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसा वृते ॥ २५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् ।
प्रशान्ते सर्वसंपाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥ २६
गते स्वभावसंस्थानं लोके नारायणात्मके ।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥ २७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः
शिखासहस्रविकचं जटाभारं समुद्वहन् ॥ २८
श्रीवत्सकलिलं पुण्यं रक्तचन्दनभूषितम् ।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव तोयदः २९
पुण्डरीकसहस्रस्य मालाऽस्य शुशुभे तदा ।
पत्नी चैव स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति॥३०
ततः स्वपिति धर्मात्मा सर्वलोकपितामहः ।
किमप्यमितविक्रान्तो निद्रायोगमुपागतः॥३१
ततो वर्षसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥ ३२
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ।
पितृदेवासुरनरान्पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ ३३
ततश्चिन्तयतः कार्यं देवेषु समितिंजयः ।
संभवं सर्वलोकस्य विदधाति स वाक्पतिः॥
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता च प्रजापतिः ।
धाता विधाता च तथा संयमो नियमो यमः
नारायणपरा देवा नारायणपराः क्रियाः ।
नारायणपरो यज्ञो नाराणयपरा श्रुतिः ॥ ३६
नारायणपरो मोक्षो नारायणपरा गतिः ।
नारायणपरो धर्मो नारायणपरः क्रतुः ॥ ३७
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरं तपः ।
नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम् ।
नारायणपरो देवो न भूतो न भविष्यति॥ ३८
स्वयंभूरिति विज्ञेयः स ब्रह्मा भुवनाधिपः ।
स वायुरिति विज्ञेय एष यज्ञः सनातनः ॥ ३९
सदसच्च स विज्ञेयः स यज्ञः स प्रजाकरः ।
यद्वेदितव्यं त्रिदशैस्तदेष परिविन्दति ॥ ४०
यच्च वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः ।
प्रजानां पतयः सप्त ऋषयश्च सहामरैः ॥ ४१
नास्यान्तमधिगच्छन्ति ततोऽनन्त इति श्रुतिः
यदस्य परमं रूपं तन्न पश्यन्ति देवताः ॥ ४२
प्रादुर्भावेषु संभूतं यत्तदर्चन्ति देवताः ।
यन्न दर्शितवान्देवः कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥ ४३
ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ।
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ॥ ४४
चतुराश्रमवर्णेषु चातुर्होत्रफलाशनः ।
चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगविवर्तकः ॥ ४५
तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः ।
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रिकम् ॥

सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणै-
र्महौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ।
प्रजापतिः श्रुतिधररक्षसां कुलं
तदाऽसृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ४७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे प्रादुर्भावे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## वराहकृतो धरोद्धारः ।

## ३४

वैशम्पायन उवाच ।

जगदण्डमिदं पूर्वमासीत्सर्वं हिरण्मयम् । प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ १

सर्वप्राणिनामचरे संचारहीने ॥ २५ ॥ संपाते शेषे ॥२६॥ कर्ता भूतानां, विकर्ता भौतिकानां विधिरूपेण स्रष्टा, धाता साधारणं कालादिरूपं विधाता विशेषकारणकर्मरूपाणाम्॥३५ परं चैतन्यज्योतिः ॥ ३८ ॥ त्रिदशैरिन्द्रियैर्यदप्रकाश्यं तद-नेनैव प्रकाश्यते अनेन यत्प्रकाश्यं स्वरूपं तदिन्द्रियाणि न गोचरयन्तीत्यर्थः ॥ ४० ॥ अग्निमारुतयोर्जाठरप्राणयोः गतिः गतिहेतुः ॥ ४४ ॥ संसारमुपसंहृत्य सृष्टिं स्रक्ष्यति-मुमोचेति ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्य-पर्वणि टीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

सूत्रितमर्थं विवृणोति—जगदिति द्वादशभिः । प्रजापतेः समष्टिजीवस्य मूर्तिमयशरीररूपम् अण्डम् ॥१॥

ततो वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः।
लोकसंजननार्थाय बिभेदाधोमुखं पुनः ॥ २
भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं प्रभुर्वै लोकयोनिकृत्।
चकार जगतश्चात्र विभागं सर्वभागवित् ॥ ३
यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं परा सुकृतिनां गतिः।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥ ४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकसिसृक्षया।
समन्तादष्टधा यानि च्छिद्राणि कृतवांस्तु सः
विदिशस्ता दिशः सर्वा मनसैवाकरोद्द्विधा।
नानारागविरागाणि यान्यण्डशकलानि वै ६
बहुवर्णधराश्चित्रा बभूवुस्ते बलाहकाः।
यदण्डमध्ये स्कन्नं तद्गतमासीत्समाहितम् ॥७
जातरूपं तदभवत्तत्सर्वं पृथिवीतले।
तस्य क्लेदार्णवौघेन प्राच्छादयत समंततः ॥ ८
पृथिवी निखिला राजन्युगान्ते सागरैरिव ॥९
यश्चाण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकचिकीर्षया।
तत्र तत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः
तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा।
अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यत्किंचिदन्तरम्
यत्र यत्र जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः।
शैलः समस्तैर्गहना विषमा मेदिनी भवत् ॥१२
तैः सपर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः।
पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताऽभवत् ॥
महीतले भूरि जलं दिव्यं नारायणात्मकम्।
हिरण्मयं समुद्दिष्टं तेजो विमलरूपितम् ॥१४
अशक्ता वै धारयितुमधः सा प्रविवेश ह।
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः॥
पृथिवीं विशतीं दृष्ट्वा तामधो मधुसूदनः।
उद्धारार्थं मनश्चक्रे लोकानां हितकाम्यया १६

श्रीभगवानुवाच।

मत्तेज एव बलवत्समासाद्य तपस्विनी।
रसातलं विशेद्देवी पङ्के गौरिव दुर्बला ॥१७

धरण्युवाच।

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय
महानृसिंहाय चतुर्भुजाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १८
त्वयाऽऽत्मना धार्यते वै त्वया संह्रियते जगत्
त्वं धारयसि भूतानां भुवनं त्वं बिभर्षि च
यत्त्वया धार्यते किंचित्तेजसा च बलेन च।
ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते ॥ २०
त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम्।
न हि तद्विद्यते रूपं यत्त्वया न तु धार्यते ॥२१
त्वमेव पुरुषो वीर नारायण युगे युगे।
मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥ २२
तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलं गताम्।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् २३
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥२४
तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम्
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥ २५

---

ऊर्ध्वमुखं बिभेद ब्रह्मरन्ध्रद्वारा ततः पूर्वमुत्पन्नामिति। एकः पुनःशब्दो वाक्यालंकारे। पुनरन्यच्छिद्रमपि तत्र च जनयामास इत्यर्थः ॥ २ ॥ **अष्टधेति**। वाक्पाणिपादाख्यच्छिद्रत्रयं, श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाख्यं छिद्रपञ्चकम्। उपस्थस्य त्वपान एवान्तर्भावः ॥३॥ एतेषां विभागमेवाह—**यदिति**। परा गतिर्ब्रह्मलोकप्रापिका यदधोद्वारद्वयं तद्रसायाः भूमेस्तलं नरकं तत्प्रापकम् ॥ ४ ॥ यदण्डं शरीरमकरोत् दिवो व्याकृतात् कारणात् तत्रैव च यानि च्छिद्राणि तानि ॥ ५ ॥ सर्वा विदिशः दिशन्ति स्वं विषयं ग्राहयन्तीति दिशः इन्द्रियाणि च तानि च मनसैवोपाधिना ऽकरोद्रूपादिदिदृक्षुरसृजत्। द्विधेति स्थूलसूक्ष्मविषयभेदात् ॥ ६ ॥ द्रवं गर्भोदकादन्यदण्डप्रस्वेदरूपं तस्य द्रवस्य क्लेदार्णवौघेन आर्द्रोदभारेण प्राच्छादयत प्रच्छन्ना ॥ ८ ॥ तस्यैव द्रवस्य वा कार्यमाह—**यच्चेति** ॥१०॥ एवं सृष्टिमुक्त्वा वाराहावतारबीजमाह—**तैरिति**। अयमर्थः—ब्रह्माण्डमुत्पाद्य तद्गर्भोदके समुद्ररूपे यो मण्डः क्षरतुल्यः सा पृथिवी। "**तद्यदपां शर[3] आसीत् समहन्यत सा पृथिव्यभवत्**" इति श्रुतेः। तस्यां यदण्डस्वेदोदकं पतितं तन्मेर्वादिरूपमभूत्तस्य भारेण पृथिवी निमज्जतीति ॥ १३ ॥ महीतले मह्या अधस्तात् हिरण्मयं स्वच्छम् ॥ १४ ॥ तेन द्रवणेन पर्वतादिना ॥ १५ ॥ रसातलस्यापि तलम् अधोभागः ॥ २३ ॥ ककुद्मिनं महा-

---

१ ख. दानवैस्तेज॰। २ घ. ॰ण्डः क्षीरद्रप्स तु॰। ३ घ. ॰पां सर आ॰।

श्रीभगवानुवाच ।
मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता
एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम् ॥
वैशम्पायन उवाच ।
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्
किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुंधराम् ॥
जले निमग्नां धरणीं येनाहं वै समुद्धरे ।
इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवस्तत्करणे मतिम् २८
जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं रूपमस्मरत् ।
हरिरुद्धरणे युक्तस्तदाऽभूदस्य भूमिभृत् ॥२९
अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंमितम् ।
दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम् ३०
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम् ॥ ३१
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।
पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम् ॥ ३२
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ॥ ३३
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥ ३४
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ ३५
आज्यनासः स्रुवातुण्डः सामघोषस्वरो महान्
सत्यधर्ममयः श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृतः ॥ ३६
क्रियासत्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः ।
उद्गात्रान्त्रो महालिङ्गो बीजौषधिमहाफलः ॥
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फृग्विक्रमः सोमशोणितः
वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरार्चितः।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ३९
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ।
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥४०
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ।
भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत्प्राविशद्गुरुः ॥४१
अद्भिः संछादितामुर्वीं स तामार्च्छत्प्रजापतिः
रसातलतले मग्नां पातालान्तरसंश्रयाम् ४२
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम् ।
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ॥
मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः ।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात्
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शंभवे ।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ४५
उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया ।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया
पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।
रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः ॥४७
ततो विभुः प्रवरवराहरूपधृ-
ग्वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया ।
समुद्धरद्धरणिमतुल्यविक्रमो
महायशाः सकलहितार्थमच्युतः ४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे पृथिव्युद्धरणे चतुर्स्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## महीवर्णनम् ।

## ३५

वैशम्पायन उवाच ।
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता । विततत्वात्तु देहस्य न ययौ संप्लवं मही ॥ १

---

स्कन्धवृषोपमम् ॥ २८ ॥ वेदपाद इत्यादिना यज्ञाख्यां तदधिष्ठात्रीं देवतामाह ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशीर्षः प्रणवशिराः वेदाङ्गश्रुतिभूषणः षडङ्गकुण्डलः ॥ ३५ ॥ क्रियामयानि सत्राणि गवामयनादीनि घोणो नासिका यस्य उद्गातैव आन्त्राणि यस्य ॥ ३७ ॥ उपाकर्म स्मार्तं वेदोपकरणं तदेव ओष्ठस्य रुचकम् भूषणं यस्य । आवर्तो नाभिः ॥ ४० ॥ समुद्धरत् समुद्दधार ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुर्स्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

तस्येति । तस्य संप्लवं मज्जनम् ॥ १ ॥

ततः स चिन्तयामास प्रविभागं क्षितेर्विभुः ।
समुच्छ्रयं च सर्वेषां पर्वतानां नदीषु च ॥ २
विलेखनं प्रमाणं च गतिं प्रस्रवमेव च ।
माहात्म्यं च विशेषं च नदीनामन्वचिन्तयत्
चतुरन्तां धरां कृत्वा तथा चैव महार्णवम् ।
मध्ये पृथिव्याः सौवर्णमकरोन्मेरुपर्वतम् ॥ ४
प्राचीं दिशमथो गत्वा चकारोदयपर्वतम् ।
शतयोजनविस्तारं सहस्रं च समुच्छ्रयम् ॥ ५
जातरूपमयैः शृङ्गैस्तरुणादित्यसन्निभैः ।
आत्मतेजोगुणमयैर्वेदिकाभोगकल्पितम् ॥ ६
विविधांश्च महास्कन्धान्काञ्चनान्पुष्करेक्षणः
नित्यपुष्पफलान्वृक्षान्कृतवांस्तत्र पर्वते ॥ ७
शतयोजनविस्तारं ततस्त्रिगुणमायतम् ।
चकार स महादेवः पुनः सौमनसं गिरिम् ॥८
नानारत्नसहस्राणां कृत्वा तत्र सुसंचयम् ।
वेदिकां बहुवर्णां च संध्याभ्राभामकल्पयत्
सहस्रशृङ्गं च गिरिं नानामणिशिलातलम् ।
कृतवान्वृक्षगहनं षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥ १०
आसनं तत्र परमं सर्वभूतनमस्कृतम् ।
कृतवानात्मनः स्थानं विश्वकर्मा प्रजापतिः ११
शिशिरं च महाशैलं तुषारचयसंनिभम् ।
चकार दुर्गगहनं कन्दरान्तरमण्डितम् ॥ १२
शिशिरप्रभवां चैव नदीं द्विजगणायुताम् ।
चकार पुलिनोपेतां वसुधारामिति श्रुतिः १३
सा नदी निखिलां प्राचीं
पुण्यां मुखशतैश्चिताम् ।
शोभयत्यमृतप्रख्यै-
र्मुक्ताशङ्खविभूषितैः ॥ १४
नित्यपुष्पफलोपेतैश्छादयद्भिः सुसंवृतैः ।
भूषिताभ्यधिकैः कान्तैः सा नदी तीरजैर्द्रुमैः
कृत्वा प्राचीविभागं च दक्षिणायामथो दिशि
चकार पर्वतं दिव्यं सर्वकाञ्चनराजतम् ॥ १६
एकतः सूर्यसंकाशमेकतः शशिसन्निभम् ।
स विभ्रच्छुशुभेऽतीव द्वौ वर्णौ पर्वतोत्तमः१७
तेजसा युगपद्व्याप्तं सूर्याचन्द्रमसाविव ।
वपुष्मन्तमथो तत्र भानुमन्तं महागिरिम् ॥ १८
सर्वकामफलैर्वृक्षैर्वृतं रम्यैर्मनोरमैः ।
चकार कुञ्जरं चैव कुञ्जरप्रतिमाकृतिम् ॥ १९
सर्वतः काञ्चनगुहं बहुयोजनविस्तृतम् ।
ऋषभप्रतिमं चैव ऋषभं नाम पर्वतम् ॥ २०
हेमकाञ्चनवृक्षाढ्यं पुष्पहासं स सृष्टवान् ।
महेन्द्रमथ शैलेन्द्रं शतयोजनमुच्छ्रितम् ॥ २१
जातरूपमयैः शृङ्गैः सपुष्पितमहाद्रुमम् ।
मेदिन्यां कृतवान्देवः प्रतिक्षोभमिवाचलम् २२
नानारत्नसमाकीर्णं सूर्येन्दुसदृशप्रभम् ।
चकार मलयं चाद्रिं चित्रपुष्पितपादपम् ॥२३
मैनाकं च महाशैलं शिलाजालसमावृतम् ।
दक्षिणस्यां दिशि शुभं चकाराचलमायतम् ॥
सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलताकुलम् ।
नदीं च विपुलावर्तां पुलिनश्रोणिभूषिताम् २५
क्षीरसंकाशसलिलां पयोधारामिति श्रुतिः ।
सुरम्यां तोयकलिलां विहितां दक्षिणां दिशम्
दिव्यां तीर्थशतोपेतां प्लावयन्तीं शुभाम्भसा
दिशं याम्यां प्रतिष्ठाप्य प्रतीचीं दिशमागमत्
अकरोत्तत्र शैलेन्द्रं शतयोजनमुच्छ्रितम् ।
शोभितं शिखरैश्चित्रैः सुप्रवृद्धैर्हिरण्मयैः ॥ २८
काञ्चनीभिः शिलाभिश्च गुहाभिश्च विभूषितम्
समाकुलं सूर्यनिभैः शालैस्तालैश्च भास्वरैः२९
शुशुभे जातरूपश्च श्रीमद्भिश्चित्रवेदिकैः ।
षष्टिं गिरिसहस्राणि तत्रासौ संन्यवेशयत् ३०
मेरुप्रतिमरूपाणि वपुषा प्रभया सह ।
सहस्रजलधारं च पर्वतं मेरुसन्निभम् ॥ ३१
पुण्यतीर्थगुणोपेतं भगवान्संन्यवेशयत् ।
षष्टियोजनविस्तारं तावदेव समुच्छ्रितम् ३२
आत्मरूपोपमं तत्र वाराहं नाम नामतः ।
निवेशयामास गिरिं दिव्यं वैडूर्यपर्वतम् ॥ ३३
राजताः काञ्चनाश्चैव यत्र दिव्याः शिलोच्चयाः
तत्रैव चक्रसदृशं चक्रवन्तं महाबलम् ॥ ३४
सहस्रकूटं विपुलं भगवान्संन्यवेशयत् ।
शङ्खप्रतिमरूपं च राजतं पर्वतोत्तमम् ॥ ३५

---

विलेखनं मार्गज्ञापनं लेखारूपेण प्रमाणं योजनतः गतिं प्राङ्मुखादिमाहात्म्यं पावनत्वं विशेषं फलतारतम्यम् ॥ ३ ॥ चतुरन्तां चतुर्दलपद्माकाराम्

भरताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
पत्राणि भूमिपद्मस्य मर्यादा शैलबाह्यतः ॥
इति पुराणान्तरोक्तेः ॥ ४ ॥ अकरोदिति । शैलेन्द्रम् अस्ताचलमित्यर्थः ॥ २८ ॥

---

१ ख. विचित्रां द० । २ ख. ०स विभुर्दिव्यं वै० ।

सितद्रुमसमाकीर्णं शङ्खं नाम न्यवेशयत् ।
सुवर्णं रत्नसंभूतं पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ३६
महतः पर्वतस्याग्रे पुष्पहासं न्यवेशयत् ।
शुभामतिरसां चैव घृतधारामिति श्रुतिः ॥ ३७
वराहः सरितं पुण्यां प्रतीच्यामकरोत्प्रभुः ।
प्रतीच्यां संविधिं कृत्वा
पर्वतान्काञ्चनोज्ज्वलान् ॥ ३८
गुणोत्तरानुत्तरस्यां संन्यवेशयदग्रतः ।
तत सौम्यगिरिं सौम्यमन्तरिक्षप्रमाणतः ३९
रुक्मधातुप्रतिच्छन्नमकरोद्भास्करोपमम् ।
स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते
तस्य लक्ष्म्याधिकं भाति तपसा रविणा यथा
सूक्ष्मलक्षणाविज्ञेयस्तपतीव दिवाकरः ॥ ४१
सहस्रशिखरं चैव नानातीर्थसमाकुलम् ।
चकार रत्नसंकीर्णं भूयोऽस्तं नाम पर्वतम् ४२
मनोहरगुणोपेतं मन्दरं चाचलोत्तमम् ।
उद्दामपुष्पगन्धं च पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ४३
चकार तस्य शृङ्गेषु सुवर्णरससंभवम् ।
जम्बूं जाम्बूनदमयीमनन्ताद्भुतदर्शनाम् ॥ ४४
गिरिं च शिखरं चैव तथा पुष्करपर्वतम् ।
शुभ्रं पाण्डुरमेघाभं कैलासं च नगोत्तमम् ४५
हिमवन्तं च शैलेन्द्रं दिव्यधातुविभूषितम् ।
निवेशयामास हरिर्वाराहीं तनुमास्थितः ॥ ४६
नदीं सर्वगुणोपेतामुत्तरस्यां दिशि प्रभुः ।
मधुधारां स कृतवान्दिव्यामृषिशताकुलाम् ॥
सर्वे चैव क्षितिधराः सपक्षाः कामरूपिणः ।
तदा कृता भगवता विचित्राः परमेष्ठिना ॥ ४८
स कृत्वा प्रविभागं तु पृथिव्या लोकभावनः ।
देवासुराणामुत्पत्तौ कृतवान्बुद्धिमक्षयाम् ॥ ४९
सर्वासु दिक्षु क्षतजोपमाक्ष-
श्चकार शैलान्विविधाभिधानान् ।
हिताय लोकस्य स लोकनाथः ।
पुण्याश्च नद्यः सलिलोपगूढाः ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## हिरण्यगर्भाद्युत्पत्तिकथनम् ।

### ३६

वैशम्पायन उवाच ।

जगत्स्रष्टुमना देवश्चिन्तयामास पूर्वजः ।
तस्य चिन्तयतो वक्त्रान्निःसृतः पुरुषः किल ॥ १
ततः स पुरुषो देवं किं करोमीत्युपस्थितः ।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ २
विभजात्मानमित्युक्त्वा गतोऽन्तर्धानमीश्वरः
अन्तर्हितस्य देवस्य सशरीरस्य भारत ॥ ३
प्रशान्तस्येव दीपस्य गतिस्तस्य न विद्यते ।
ततस्तेनेरितां वाणीं सोऽन्वचिन्तयत प्रभुः ४
हिरण्यगर्भो भगवान्य एष च्छन्दसि श्रुतः ।
एष प्रजापतिः पूर्वमभवद्भुवनाधिपः ॥ ५
तदा प्रभृति तस्याद्यो यज्ञभागो विधीयते ।

प्रजापतिरुवाच ।

विभजात्मानमित्युक्तस्तेनास्मि सुमहात्मना
कथमात्मा विभज्यः स्यात्संशयो ह्यत्र मे महान्
इति चिन्तयतस्तस्य ओमित्येवोत्थितः स्वरः
स भूमावन्तरिक्षे च नाके च कृतवांस्ततः ।
तं चैवाभ्यसतस्तस्य मनःसारमयः पुनः ॥ ८
हृदयाद्देवदेवस्य वषट्कारः समुत्थितः ।
भूम्यन्तरिक्षकानां च भूर्भवःसुवरात्मिकाः ९

---

स त्विति । विसूर्योऽपि रात्रावपि ॥ ४० ॥ लक्ष्म्याधिकं चन्द्रमण्डलं यथा तपसा रविणा भाति एवं रविस्तेन पर्वतेनेत्यर्थः । अत एवाहिमध्याह्नार्कसन्निधिस्थश्चन्द्र इव सूक्ष्मलक्षणो विज्ञेयः ॥ ४१ ॥ भूयोऽस्तं नामेति । भूयः पदात्पूर्वम् अकरोदित्यत्र स उक्त एवेत्यर्थः । अत्र पुनरुक्तिः पाश्चात्यजनाभिप्रायेण । पाश्चात्यानां हि दक्षिणस्यामुदयाचलः उत्तरस्यामस्ताचलः । एवं प्राच्यानाम् उत्तरे उदयाचलो दक्षिणतोऽस्ताचलः । तथा औदीच्यानां प्रतीच्याम् उदयः प्राच्यामस्त इति ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

**जगदिति** । जगदित्यादिना स्थावरजङ्गमसृष्टिमाह ॥ १ ॥

महास्मृतिमयाः पुण्या महाव्याहृतयोऽभवन्।
छन्दसां प्रवरा देवी चतुर्विंशाक्षराऽभवत्।
तत्पदं संस्मरन्दिव्यां सावित्रीमकरोत्प्रभुः १०
ऋक्सामाथर्वयजुषश्चतुरो भगवान्प्रभुः।
चकार निखिलान्वेदान्ब्रह्मयुक्तेन कर्मणा ॥११
ततस्तस्यैव मनसः सनः सनक एव च।
सनातनश्च भगवान्वरदश्च सनन्दनः॥ १२
सनत्कुमारश्च विभुस्तत्र जज्ञे सनातनः।
मानसाश्चैव पूर्वाद्या इत्येते षण्महर्षयः॥ १३
ब्रह्माणं कपिलं चैव षडेतांश्चैव योगिनः।
यतयो योगतन्त्रेषु यान्स्तुवन्ति द्विजातयः१४
ततो मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
भृगुमङ्गिरसं चैव मनुं चैव प्रजापतिम्॥ १५
पितॄंश्च सर्वभूतानां देवतासुररक्षसाम्।
महर्षीनसृजच्छंभुरष्टावेतांश्च मानसान्॥ १६
एते युगसहस्रान्ते याश्चैषामभवन्प्रजाः।
कल्पे निःशेषभुक्ते तु ततो गच्छन्ति निर्वृतिम्
भूयो वर्षसहस्रान्ते उत्पत्तिस्तु विधीयते।
एतेषामेव देवानां प्रजाकर्तृषु वै तदा॥ १८
किं तु कर्मविशेषेण देवतानां युगे युगे।
नामजन्मविशेषाश्च तथैव युगपर्यये॥ १९
अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्ष उत्पन्नो भगवानृषिः।
तस्यैव तु पुनर्भार्या वामाङ्गुष्ठादजायत ॥२०
तस्य तत्राभवन्कन्या विश्रुता लोकमातरः।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः प्रजाभिर्मनुजाधिप॥
अदितिं च दितिं कालामनायुं सिंहिकां मुनिम्
प्राधां क्रोधां च सुरभिं विनतां सुरसां तथा॥
दनुं कद्रुं च दुहितॄः प्रददौ कश्यपाय तु।
प्रजां संचिन्त्य मनसा गतिज्ञेनान्तरात्मना२३
अरुन्धतीं वसुं यामीं लम्बां भानुं मरुत्वतीम्
संकल्पां च मुहूर्तां च साध्यां विश्वां च भारत
मनवे ब्रह्मपुत्राय कन्या दक्षो ददौ दश।
ततः सर्वानवद्याङ्ग्यः कन्याः कमललोचनाः
पूर्णचन्द्रानना दिव्या गन्धवत्यो मनोरमाः।
कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं बुद्धिं मेधां क्षमां तथा
मतिं लज्जां वसुं चैव दक्षो धर्माय वै ददौ।
आत्रेयस्तु ततो भूतस्यस्य तोयात्मकः शशी॥
पुत्रो ग्रहाणामधिपः सहस्रांशुस्तमिस्रहा।
तस्मै नक्षत्रयोगिन्यः सप्तविंशतिरुत्तमाः ॥२८
रोहिणीप्रमुखाः कन्या दक्षः प्राचेतसो ददौ।
एतासां पुत्रपौत्रं च प्रोच्यमानं मया शृणु॥

कश्यपस्य मनोश्चैव धर्मस्य शशिनस्तथा।
अर्यमा वरुणो मित्रः पूषा धाता पुरंदरः ॥३०
त्वष्टा भगोंऽशुः सविता पर्जन्यश्चेति विश्रुताः
अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपाल्लोकभावनाः ॥
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्।
द्वावप्यमितविक्रान्तौ तपसा कश्यपोपमौ ३२
हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्चैव सुमहाबलाः।
प्रह्लादश्चैव संह्लादस्तथाऽनुह्लाद एव च॥ ३३
ह्रदश्चैव तु विक्रान्तः पञ्चमोऽनुह्रदस्तथा।
प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथा परः॥ ३४
प्रह्लादस्य त्रयः पुत्रा विक्रान्ताः सुमहाबलाः।
विरोचनश्च जम्भश्च सुजम्भश्चेति विश्रुताः ३५
बलिर्वैरोचनसुतो बाण एको बलेः सुतः।
बाणस्य चेन्द्रदमनः पुत्रः परपुरंजयः॥ ३६
दनोः पुत्रास्तु बहवो वंशे ख्याता महासुराः।
विप्रचित्तिः प्रथमजस्तेषां राजा बभूव ह॥३७
गणः प्रजज्ञे क्रोधायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम्।
रौद्राः क्रोधवशा नाम क्रूरकर्माण एव च ३८
सिंहिका सुषुवे राहुं ग्रहचन्द्रार्कमर्दनम्।
ग्रस्तारं चैव चन्द्रस्य सूर्यस्य च विनाशनम्
कालायाः कालकल्पस्तु गणः परमदारुणः।
अभवद्दीप्तसूर्याक्षो नीलमेघसमप्रभः ४०
सहस्रशीर्षा शेषश्च वासुकिस्तक्षकस्तथा।
बहूनां कद्रुपुत्राणामेते प्राधान्यमागताः ॥४१
धर्मात्मानो वेदविदः सदा प्राणिहिते रताः।
लोकतन्त्रधराश्चैव वरदाः कामरूपिणः ॥ ४२
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः।
अरुणिश्चारुणिश्चैव विनतायाः सुताः स्मृताः।
इमाश्चाप्सरसः पुण्या विविधाः पुण्यलक्षणाः
सुषुवेऽष्टौ महाभागा प्राधा देवर्षिपूजिता।
अनवद्यामनूकां च अनूनामरुणप्रियाम्।
अनुगां सुभगां भासीं स्त्रियः प्राधा व्यजायत
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा।
सुरूपा लक्षणा क्षेमा तथा रम्भा मनोरमा ४५
असिता च सुबाहुश्च सुवृत्ता सुमुखी तथा।
सुप्रिया च सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी
काश्या शारद्वती चैव मौनेयाप्सरसः स्मृताः
विश्वावसुर्भरण्यश्च गन्धर्वाश्चैव विश्रुताः ४७
मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला।
घृतस्थला घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा।

अनुम्लोचेत्यभिख्याता प्रम्लोचेति च ता दश
मनोवती चापि तथा वैदिक्योऽप्सरसस्तथा
प्रजापतेस्तु संकल्पात्संभूता भुवनप्रियाः ।
अमृतं ब्राह्मणा गावो रुद्राश्चेति चतुष्टयम् ५०
सुरभ्यपत्यमित्येतत्पुराणे निश्चयो महान् ।
एतद्वै कश्यपापत्यं मनोर्वंशं निबोध मे ॥५१
संक्षेपेणैव तत्सर्वं
कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः
साध्या साध्यान्व्यजायत ॥ ५२
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः
भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्तांश्च मुहूर्तजाः ५३
लम्बा घोषं विजज्ञेऽथ नागवीथी च जामिजा
पृथिव्यां विषमं सर्वं मरुत्वत्यामजायत ॥ ५४

संकल्पायास्तु कौरव्य जज्ञे संकल्प एव च ।
धर्मस्य पुत्रो लक्ष्म्यास्तु कामो जज्ञे जगत्प्रभुः
यशो हर्षश्च कामश्च रत्यां पुत्रद्वयं स्मृतम् ।
सोमस्य पुत्रो रोहिण्यां जज्ञे वर्चा महाप्रभः ॥
उदयन्नेव भगवान्वर्चस्वी येन जायते ।
पुरूरवाश्च भगवानुर्वशी येन युज्यते ॥ ५७
एवं पुत्रसहस्राणि स्त्रीणां चैव परस्परम् ।
एतावत्तु जगन्मूलं यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥
प्रजापतिस्तु भगवान्गुणतः प्रेक्ष्य देहिनः ।
आधिपत्येषु युक्तेषु नियोजयति योगवित् ५९
दिशो दश क्षितिमृषयोऽर्णवान्नगान्
द्रुमौषधीरुरगसरित्सुरासुरान् ।
प्रजापतिर्भुवनसृजो नभोभुवः
क्रियामखानथ कृतवान्गिरींश्च सः ६०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे जगत्सर्गे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६ ॥

## लोकानामाधिपत्यव्यवस्थापनम् ।

## ३७

वैशम्पायन उवाच ।
त्रयाणामपि लोकानामादित्यानां च भारत
चकार शक्रं राजानमादित्यसमतेजसम् ॥ १
स वज्री कवची विष्णु-
रादित्यामभिजज्ञिवान् ।
स्मृतेः सहायो द्युतिमा-
न्यथा सोऽध्वर्युभिः स्तुतः ॥ २
जातमात्रोऽथ भगवान्स कुशैर्ब्राह्मणैर्धृतः ।
तदाप्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥ ३
अभिषिच्याधिराज्ये तु सहस्राक्षं पुरंदरम् ।
ब्रह्मा क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ ४
यज्ञानां तपसां चैव ग्रहनक्षत्रयोस्तथा ।
द्विजानामौषधीनां तु सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्

दक्षं प्रजापतीनां तु अम्भसां वरुणं पतिम् ।
पितॄणां सर्वनिधनं कालं वैश्वानरं प्रभुम् ॥ ६
गन्धानां चैव सर्वेषां भूतानां च शरीरिणाम्
शब्दाकाशबलानां च वायुरीशस्तदा कृतः ७
सर्वभूतपिशाचानां मृत्यूनां च गवां तथा ।
उत्पातग्रहरोगाणां व्याधीनां तु तथैव च ॥८
व्रतानां चैव सर्वेषां महादेवः कृतः प्रभुः ।
यक्षाणां राक्षसानां च गुह्यकानां धनस्य च ९
रत्नानां चैव सर्वेषां कृतो वैश्रवणः प्रभुः ।
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषो नागानामथ वासुकिः१०
सरीसृपाणां सर्वेषां प्रभुर्वै तक्षकः कृतः ।
सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च ।
आदित्यानामवरजः पर्जन्योऽधिपतिः कृतः ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

त्रयाणामिति ।

१ ख. °ची जिष्णुर°। २ ख. °नां मातॄणां च म° ।

गन्धर्वाणामधिपतिस्तथा चित्ररथः कृतः।
सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवः प्रभुः कृतः॥
चतुष्पदानां सर्वेषां वाहनानां च सर्वशः।
महेश्वरध्वजः श्रीमान्गोवृषोऽधिपतिः कृतः॥
दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः
हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः १४
गणानां कालकेयानां महाकालः प्रभुः कृतः।
अनायुषायाः पुत्राणां वृत्रो राजा तदा कृतः॥
सिंहिकातनयो यस्तु राहुर्नाम महासुरः।
उत्पातानामनेकानामशुभानां प्रभुः कृतः॥१६
ऋतूनामथ सर्वेषां युगानां चैव भारत।
पक्षाणां चैव मासानां तथैव तिथिपर्वणाम्॥
कलाकाष्ठामुहूर्तानां गतेरयनयोस्तथा।
कृतः संवत्सरो राजा योगस्य गणितस्य च
पक्षिणां चैव सर्वेषां चक्षुषां च महाबलः।
सुपर्णो भोगिनां चैव गरुडोऽधिपतिः कृतः१९
अरुणो गरुडभ्राता जपापुष्पचयप्रभः।
योगानां चैव सर्वेषां साध्यानामाधिपः कृतः
पुत्रोऽस्य विरथो नाम कश्यपस्य प्रजापतेः।
राजा प्राच्यां दिशि तथा वासवेनाधिपः कृतः
आदित्यस्य विभोः पुत्रो धर्मराजो महायशाः
दक्षिणस्यां दिशि यमो महेन्द्रेणैव सत्कृतः॥
कश्यपस्यौरसः पुत्र सलिलान्तर्गतः सदा।
अम्बुराज्य इति ख्यातः प्रतीच्यां दिशि पार्थिवः
पुलस्त्यपुत्रो द्युतिमान्महेन्द्रप्रतिमः प्रभुः।
एकाक्षः पिङ्गलो नाम सौम्यायां दिशि पार्थिव
एवं विभज्य राज्यानि स्वयंभूर्लोकभावनः।
लोकांश्च त्रिदिवे दिव्यानददत्स पृथक्पृथक्
कस्यचित्सूर्यसंकाशान्कस्यचिद्वह्निसन्निभान्।
कस्यचित्सुष्ठु विद्योतान्कस्यचिच्चन्द्रनिर्मलान्
नानावर्णान्कामगमाननेकशतशो जनान्।
स तान्सुकृतिनां लोकान्पापदुष्कृतिदुर्लभान्
येषां भासो विभान्त्यग्रे सौम्यास्तारागणा इव
एते सुकृतिनां लोका ये जाताः पुण्यकर्मिणः
ये यजन्ति मखैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः।
स्वदारनिरताः शान्ता ऋजवः सत्यवादिनः
दीनानुग्रहकर्तारो ब्रह्मण्या लोभवर्जिताः।
संत्यक्तरजसः सन्तो यान्ति तत्र तपोऽमलाः
एवं नियुज्य तनयान्स्वयं लोकपितामहः
पुष्करं ब्रह्मसदनमारुरोह प्रजापतिः॥ ३१
सर्वे स्वयंभुदत्तेषु पालनेषु दिवौकसः।
रेमिरे स्वेषु लोकेषु महेन्द्रेणाभिपालिताः॥३२

स्वयंभुवा शक्रपुरःसराः सुराः
कृता यथार्हं प्रतिपालनेषु ते।
यशो दिवं च प्रतिपेदिरे शुभं
मुदं च जग्मुर्मखभागभोजिनः॥ ३३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहेऽधिपतिस्थापने सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

## देवासुरयुद्धोद्योगः, तद्युद्धवर्णनं च।

## ३८

वैशम्पायन उवाच।
कदाचित्तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः।
प्रस्थिता धरणीं त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया
तदासुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालितम्।
दिशं प्रतीचीमागत्य ह्रदेऽमज्जन्यथा गजाः॥
तत्रासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रयम्।
तच्छ्रुत्वाथासुराः सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम्॥ ३
क्रूरां च बुद्धिमतुलां पृथिवीहरणे रताः।
आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमविक्रमाः ४

अनायुषायाः त्वष्टुर्भार्यायाः॥ १५॥ चक्षुषां चक्षुष्मतां दूरदर्शनसमर्थानामित्यर्थः॥ १९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भाविष्यपर्वाणि टीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

३८

एवमाधिपत्यस्थापनानन्तरं यद्वृत्तं तदाह—**कदाचित्त्विति**। असुराणां सपक्षाः मित्राणि॥ १॥ सुराश्रयं।

१ ख. °थ मासानां यु°। २ ख. तपोन्विताः। ३ ख. °त्यं सुरालये। त°।

चक्राश्मनींस्तथा खड्गान्भुशुण्डीश्च धनूंषि च ।
प्रासान्पाशांश्च शक्तीश्च मुसलानि गदांस्तथा
केचित्कवचिनः सज्जा मत्तनागांस्तथा परे ।
केचिदश्वरथान्युक्ता अपरेऽश्वान्महासुराः ॥ ६
केचिदुष्ट्रांस्तथा खड्गान्महिषान्गर्दभानपि ।
स्वबाहुबलमास्थाय केचिच्चापि पदातयः ॥७
परिवार्य हिरण्याक्षं तलबद्धाः कलापिनः ।
इतश्चेतश्च निश्चेरुर्हृष्टाः सर्वे युयुत्सवः ॥ ८
ततो देवगणाः पश्चात्पुरंदरपुरोगमाः ।
दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥ ९
महता चतुरङ्गेण बलेन सुसमाहिताः ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणाः ॥
उग्रायुधधरा देवाः स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ।
ऐरावतगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृष्ठतः ॥ ११
ततस्तूर्यनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ।
अभ्यद्रवद्धिरण्याक्षो देवराजं पुरंदरम् ॥ १२
तीक्ष्णः परशुनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः ।
मुसलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास वासवम् ॥
ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः ।
घोररूपा महावेगा निपेतुर्बाणवृष्टयः ॥ १४
शिष्टाश्च दैत्या बलिनः सितधारैः परश्वधैः
परिघैरायसैः खड्गैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥ १५
गण्डशैलैश्च विविधै रश्मिभिश्चाद्रिसन्निभैः ।
घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्च विदारणैः ।
सर्वान्देवगणान्दैत्याः सन्निजघ्नुः सवासवान्
धूम्रकेशं हरिश्मश्रुं नानाप्रहरणायुधम् ।
रक्तसन्ध्याभ्रसंकाशं किरीटोत्तमधारिणम् १८
नीलपीताम्बरधरं शितदंष्ट्रोर्ध्वधारिणम् ।
आजानुबाहुं हर्यक्षं वैडूर्याभरणोज्ज्वलम् १९
समुद्यतायुधं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा ।
ते हिरण्याक्षमसुरं दैत्यानामग्रतः स्थितम् २०
युगान्तसमये भीमं स्थितं मृत्युमिवाग्रतः ।
प्रविव्यथुः सुराः सर्वे तदा शक्रपुरोगमाः २१
दृष्ट्वाऽऽयान्तं हिरण्याक्षं महाद्रिमिव जङ्गमम्
देवाः संविग्नमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥ २२
सहस्राक्षं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि ।
सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला २३
प्रवृद्धनक्षत्रगणा शारदी द्यौरिवामला ।
तेऽन्योन्यमपि संपेतुः पातयन्तः परस्परम्
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च व्यथितोरसः २५
विनिपेतुः पृथक्केचित्तथान्येऽपि विजघ्निरे ।
बभञ्जिरे रथान्केचित्केचित्संमर्दिता रथैः २६
संबाधमन्ये संप्राप्ता न शेकुश्चलितुं रथात् ।
दानवेन्द्रबलं तत्र देवानां च महद्बलम् ॥ २७
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ।
हिरण्याक्षस्तु बलवान्क्रुद्धः स दितिनन्दनः ॥
व्यवर्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ।
तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निश्चेरुरर्चिषः
[ साग्निधूमश्च पवनो ययौ तस्य समीपतः
शस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ।
सर्वमाकाशमावव्रे पर्वतैरुत्थितैरिव ॥ ३०
बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः ।
न शेकुश्चलितुं देवा हिरण्याक्षार्दिता युधि
सर्वे वित्रासिता देवा हिरण्याक्षेण संयुगे ।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यन्तं कर्तुं विचेतसः ३२
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितोऽस्त्रेण धीमता
ऐरावतगतः संख्ये नाशकच्चलितुं भयात् ३३
सर्वांश्च देवानखिलान्स पराजित्य दानवः ।
स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत् ॥
सतोयमेघप्रतिमोग्रनिःस्वनं
प्रभिन्नमातङ्गविलासविग्रहम् ।
धनुर्विधुन्वन्तमुदारवर्चसं
तदा सुरेन्द्रं ददृशुः सुराः स्थिताः ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे शक्रस्तम्भने अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

कनिष्ठाः सुरा आधिपत्यं कुर्वन्ति यस्य ज्येष्ठा अपि अनीश्वरा इति शशंसुरित्यर्थः । सर्वे हिरण्याक्षादयः ॥ ३ ॥ रश्मिभिस्तेजोयुक्तैर्ज्वालसदृशैश्चेति गण्डशैलविशेषणम् । भुशुण्डीरिति पाठे दण्डाग्रस्थितमुकुराकृतिफल्गुतोमरः फलशल्येन यन्त्रितः पाशी एकधारः खड्गः क्षेपणीयैर्दूरान्मुक्तैः घातनीभिर्गुर्वीभिरिति विशेषणद्वयं शतघ्नीनां शतघ्नीभिः शतं हन्त्रीभिर्गुर्वीभिरिति शालासंबन्धात् ॥ १६ ॥ युगैर्युगाकारैरस्त्रैः आग्नेयादिभिरस्त्रैः पाषाणवर्षिभिः ॥१७॥ धूम्रकेशत्वादिविशेषणम् हिरण्याक्षं दृष्ट्वा प्रविव्यथुरिति चतुर्णामन्वयः ॥१॥ महेन्द्राख्यं पर्वतमिव जङ्गमं चलम् । महाद्रिमिवेति वा पाठः॥२२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामष्टात्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

## हिरण्याक्षवधः।

## ३९

वैशम्पायन उवाच।

निष्प्रयत्ने सुरपतौ धर्षितेषु सुरेषु च।
हिरण्याक्षवधे बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः ॥१
वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः
स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तकृत् ॥ २
ततश्चन्द्रप्रतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम्।
सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसन्निभम् ॥
महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः।
पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः ॥ ४
सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा।
इज्यते यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः॥ ५
यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि।
विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञो यज्ञकर्मणाम् ६
मखे यस्य प्रसादेन भुवनस्था दिवौकसः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ७
यो गतिर्देवदैत्यानां यः सुराणां परा गतिः।
यः पवित्रं पवित्राणां स्वयंभूरव्ययो विभुः ॥८
यस्य चक्रप्रविष्टानि दानवानां युगे युगे।
कुलान्याकुलतां यान्ति यानि दृष्टानि वीर्यतः
ततो दैत्यद्रवकरं पौराणां शङ्खमुत्तमम्।
धमन्वक्त्रेण बलवानाक्षिपद्दैत्यजीवितम् ॥ १०
श्रुत्वा शङ्खस्वनं घोरमसुराणां भयावहम्।
क्षुभिता दानवाः सर्वे दिशो दश व्यलोकयन्
ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः।
कोऽयमित्यब्रवीद्रोषान्नारायणमुदैक्षत ॥ १२
वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम्।
शङ्खचक्रोद्यतकरं देवानामार्तिनाशनम् ॥ १३
रराज शङ्खचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः।
सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः ॥ १४
ततोऽसुरगणाः सर्वे हिरण्याक्षपुरोगमाः।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृप्ता देवमुपाद्रवन् ॥ १५
पीड्यमानोऽतिबलिभिर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः।
न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः ॥१६
ततः प्रज्वलितां शक्तिं वाराहोरसि दानवः।
हिरण्याक्षो महातेजाः पातयामास वीर्यवान्
तस्याः शक्त्याः प्रभावेण ब्रह्मा विस्मयमागतः
समीपमागतां दृष्ट्वा महाशक्तिं महाबलः ॥१८
हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले।
तस्यां प्रतिहतायां तु ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत्
यः प्रभुः सर्वभूतानां वराहस्तेन ताडितः।
ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसन्निभम् २०
पातितं दानवेन्द्रस्य शिरस्युत्तमकर्मणा।
ततः स्थितस्यैव शिरस्तस्य भूमौ पपात ह।
हिरण्मयं वज्रहतं मेरुशृङ्गमिवोत्तमम् ॥ २१
हिरण्याक्षे हते दैत्ये शेषा ये तत्र दानवाः।
सर्वे तस्य भयत्रस्ता जग्मुराशु दिशो दश २२
स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो
महाहवेष्वप्रतिमोग्रचक्रः।
बभौ वराहो युधि चक्रपाणिः
कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः ॥२३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भाविष्यपर्वाणि वाराहे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

३९

**निष्प्रयत्न इति** ॥ १ ॥ पर्वतो नाम पर्वाणि दर्शपूर्णमासादीनि अवयवत्वेन वर्तन्तेऽस्मिन्निति पर्वतो यज्ञतनुर्नामेत्यर्थः। य एषः वक्ष्यमाणगुणः स वराहो भूत्वेति संबन्धः ॥ २ ॥ त्रिधा हुतं हुतहूयमानप्रहुताख्यप्रकारत्रयेण **"हुता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रहुता ब्राह्मणभोजने"** इत्याश्वलायनव्याख्यातेन ॥ ७ ॥ अप्रतिचक्रम् अप्रातिहताज्ञं चक्रं यस्य सः ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

१ ख. °नि दृप्तानि वी°। २ ख. °भुः सर्वदेवानां व°।

## इन्द्रादीनां मोचनं तेषामाधिपत्यलाभश्च ।

### ४०

वैशम्पायन उवाच ।

विद्राव्य तु रणे सर्वानसुरान्पुरुषोत्तमः ।
मुमोच तत्र बद्धांस्तान्पुरंदरमुखान्सुरान् ॥ १
ततः प्रकृतिमापन्नाः सर्वे देवगणास्तथा ।
पुरंदरं पुरस्कृत्य नारायणमुपस्थिताः ॥ २

देवा ऊचुः ।

त्वत्प्रसादेन भगवं-
स्तव बाहुबलेन च ।
जीवामोऽद्य महाबाहो
निष्क्रान्ताश्चान्तकाननात् ॥ ३
त्वच्छासनाद्धि भगवन्किं कुर्वन्त्यादितेःसुताः
इच्छामः पादशुश्रूषां तव कर्तुं सनातन ॥ ४

वैशम्पायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां पुण्डरीकनिभेक्षणः ।
उवाच वचनं देवान्मुदा युक्तो हतद्विषः ॥ ५

श्रीभगवानुवाच ।

यो यस्य भवतो लोको मयैव विहितः पुरा।
पाल्यतां स तु यत्नेन नियोगश्च क्वचित्क्वचित् ६
ऐश्वर्यं प्रतिपन्नाः स्वं क्रतुभागपुरस्कृतम् ।
मयैव पूर्वं निर्दिष्टो नियोगः प्रतिपाल्यताम् ७
शक्रं चोवाच भगवान्वचनं दुन्दुभिस्वनः ।
इदं यथावत्कर्तव्यं सत्सु चासत्सु च त्वया॥८
गच्छन्तु तपसा स्वर्गं मुनयः शंसितव्रताः ।
तव लोकं सुरश्रेष्ठ सर्वकामदुघं सदा ।
यायजूकाश्च ये केचिद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः९
तेषां कामदुघा लोकाः स्वर्गमादिमनोहराः ।
यज्ञैरिष्ट्वा यायजूकाः फलं ते प्राप्नुवन्तु च १०
भावः सद्धर्मशीलानामभावः पापकर्मणाम् ।
सन्तः स्वर्गजितः सन्तु सर्वाश्रमनिवासिनः ॥
सत्यशूरा रणे शूरा दानशूराश्च ये नराः ।
ते नराः स्वर्गमश्नन्तु सदा ये चानसूयवः ॥१२
अश्रद्दधानाः पुरुषाः कामिनोऽर्थपराः शठाः
अब्रह्मण्या नास्तिकाश्च नरकं यान्तु मानवाः॥
एतावत्क्रियतां वाक्यं मयोक्तं त्रिदशेश्वराः ।
ततो मयि स्थिते सर्वान्बाधिष्यन्ते न चारयः॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो देवः शंखचक्रगदाधरः ।
देवतानां च सर्वेषामभवद्विस्मयो महान् ॥१५
एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा वाराहचरितं सुराः ।
नमस्कृत्य वराहाय नाकपृष्ठमितो गताः ॥ १६
ततः स्वान्याधिपत्यानि प्रतिपन्नानि दैवतैः ।
सर्वलोकाधिपत्ये च प्रतिष्ठां वासवो गतः१७
विमुक्ता दानवगणैः प्रकृतिं धरणी गता ।
स्थैर्यहेतोर्धरण्यास्तु ज्ञात्वा चागस्कृतान्गिरीन्
स्वेषु स्थानेषु संस्थाप्य पर्वतानां पुरंदरः ।
चिच्छेद भगवान्पक्षान्वज्रेण शतपर्वणा ॥१९
सर्वेषामेव पक्षा वै छिन्नाः शक्रेण धीमता ।
एकः सपक्षो मैनाकः सुरैस्तत्समयः कृतः॥२०
एष नारायणस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ।
वाराह इति विप्रेन्द्रैः पुराणे परिकीर्तितः २१
कृष्णद्वैपायनमतं नानाश्रुतिसमाहितम्।
नाशुचेर्न कृतघ्नाय न नृशंसाय कीर्तयेत् २२
न क्षुद्राय न नीचाय न गुरुद्वेषकारिणे ।
नाशिष्याय तथा राजन्न कृतघ्नाय चैव हि २३
आयुष्कामैर्यशः कामैर्महीकामैश्च मानवैः ।
जयैषिभिश्च श्रोतव्यो देवानामेष वै जयः ॥२४
पुराणवेदसंबद्धः शिवः स्वस्त्ययनो महान् ।
पावनः सर्वसत्त्वानां तत्कालविजयप्रदः ॥२५
एष कौरव्य तत्त्वेन कथितस्त्वनुपूर्वशः ।
वाराहस्य नृपश्रेष्ठ प्रादुर्भावो महात्मनः ॥२६

---

४०

विद्राव्येति॥१॥ लोकः स्थानम् । नियोगः आज्ञा वेदरूपा ॥ ६ ॥ चिच्छेद पूर्वं दानवोद्योगकरत्वेन सापराधानां पक्षान् चिच्छेद ॥ १९ ॥ सुरैः समयः मैनाकरक्षायै कृतः यथा समुद्रे स्थितस्य ते न पक्षच्छेदो भवितेति ॥ २० ॥

---

१ ख. यत्नेन नि° ।

ये यजन्ति मखैः पुण्यैर्दैवतानि पितॄनपि।
आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव जयन्ति ते॥
लोकायनाय त्रिदशायनाय
ब्रह्मायनायात्मभवायनाय।
नारायणायात्महितायनाय
महावराहाय नमस्कुरुष्व॥ २८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४०॥

## नृसिंहावतारः।

## ४१

वैशम्पायन उवाच।
वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः॥ १
पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः॥ २
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जलवासी समभवत्स्थानमौनव्रतस्थितः॥ ३
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च॥ ४
ततः स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र ह।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥ ५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः॥ ६
दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥ ७
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥ ८
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥ ९
ब्रह्मोवाच।
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥ १०
ततो हिरण्यकशिपुः प्रीतात्मा दानवोत्तमः।
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान्वचनं चेदमब्रवीत्॥ ११
हिरण्यकशिपुरुवाच।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः।
न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन १२
ऋषयो नैव मां क्रुद्धाः सर्वलोकपितामह।
शपेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया॥ १३
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन च।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्याच्च चान्येन मे वधः
न स्वर्गेऽप्यथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले
न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न चाप्यन्येन मे वधः१५
पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम्।
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश।
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः॥१७
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षाकपुरुषाधिपः।
मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्त्राणि महाहवे।
उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामह॥ १८
पितामह उवाच।
एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः
सर्वान्कामानलपभावात्प्राप्स्यसि त्वं न संशयः

---

अयनाय गतये॥ २८॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४०॥

४१

वराह एषः मृगेन्द्रेण नृसिंहेण भूत्वा आविर्भूय॥१॥ स्थातुं शीलमस्येति स्थानं स्थावरम् नन्द्यादिल्युप्रत्ययान्तः तद्वन्मौनं स्थानमौनम्॥ ३॥ दिग्भिः दिग्देवताभिः। एवमन्यत्रापि॥ ७॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव च ।
वैराज्यं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ २०
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभिः सह ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥ २१

देवा ऊचुः ।

वरेणानेन भगवान्वधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदस्व भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्

वैशम्पायन उवाच ।

भगवान्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्ध्रुवः २३
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान्सुशीतैर्वचनाम्बुभिः ॥
अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्ते स भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति
एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे
वाक्यं पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि
प्रतिजग्मुर्मुदान्विताः ॥ २६
लब्धमात्रे वरे तस्मिन्सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥ २७
आश्रमेषु मुनीन्सर्वान्ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ।
सत्यधर्मरतान्दान्तान्धर्षयामास वीर्यवान् २८
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः २९
यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यान्दैवतानप्ययज्ञियान् ॥ ३०
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ॥ ३१
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवं देवमयं यज्ञं ब्रह्म दैवं सनातनम् ॥ ३२
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रजालोकनमस्कृतम् ।

देवा ऊचुः ।

नारायण महाभाग देव त्वां शरणं गताः
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः
त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ॥
त्वं पद्मामलपत्राक्ष शत्रुपक्षभयावह ।
क्षयाय दितिवंशस्याक्षयाय भव नः प्रभो ३५
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ।

विष्णुरुवाच ।

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ३६
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ।
एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ॥ ३७
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदिवौकसः
वधं संकल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपोः प्रभुः ॥
सोऽचिरेणैव कालेन हिमवत्पार्श्वमागतः ।
किं नु रूपं समास्थाय निहन्म्यहं महासुरम्
यत्सिद्धिकरमाशु स्याद्वधाय विबुधद्विषः ।
अनुत्पन्नं ततश्चक्रे सोऽत्यन्तं रूपमास्थितः ४१
नारसिंहमनाधृष्यं दैत्यदानवरक्षसाम् ।
सहायं तु महाबाहुर्जग्राहोङ्कारमेव च ॥ ४२
अथोङ्कारसहायोऽसौ भगवान्विष्णुरव्ययः ।
हिरण्यकशिपोः स्थानं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥
तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः
नरस्य कृत्वाऽर्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं विभुः ४४
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।
ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम्
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम्
विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्धमुच्छ्रिताम् ॥
विहायसीं कामगमां पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम्
जराशोकक्लमत्यक्तां निष्प्रकम्पां शिवां शुभाम्
शुभासनवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा।
अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥ ४८
नीलपीतासितश्यामैः सितैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ॥ ४९
सिताभ्रघनसंकाशा प्लवन्तीवाप्सु दृश्यते ।
धन्यासनवती रम्या ज्वलन्ती इव तेजसा ॥
प्रभावती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ।
नासुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा

---

ओंकारसहायत्वम् ओंकारार्थस्य सार्वात्म्यस्यानुसंधानं तद्बलेनैव शमादिभिः रावणादीनां निहतत्वात् ॥ ४३ ॥ अध्यर्धं सार्धशतम् ॥ ४६ ॥ अवतानैः वितानप्रान्तेषु लम्बमानैः चित्रपटैः "झालर" इति प्रसिद्धैः । गुल्मैः तेष्वेव गुच्छाकारैरवयवैः ॥ ४९ ॥ प्रभा लावण्यं तद्वती भास्वरा दीप्तिमती ॥ ५१ ॥

न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति हि
नानारूपैर्विरचिता विचित्रैरतिभास्वरैः ५२
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैः शाश्वती चाक्षता च सा
अतिचन्द्रं च सूर्यं च पावकं च स्वयंप्रभा ॥
दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् ।
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः
रसवन्तः प्रभूताश्च भक्ष्यभोज्यं तथाऽक्षयम्
पुण्यगन्धाः स्रजस्तत्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ५५
उष्णे शीतानि तोयानि
शीते चोष्णानि सन्ति वै ।
पुष्पिताग्रान्महाशाखान्प्रवालाङ्कुरधारिणः
लतावितानसंछन्नान्सरित्सु च सरःसु च ।
मनोहरांश्च विविधान्ददर्श स तदा प्रभुः ५७
द्रुमान्बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे द्रुतम् ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च
तानि शीतानि तोयानि तत्र तत्र सरांसि च ।
अपश्यत्सर्वतीर्थानि सभायां शततो विभुः५९
नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः ।
रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संयुतानि च ॥ ६०
सकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैः सुरप्रियैः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च सारसैः कुररैरपि ॥ ६१
विमलस्फटिकाभानि पाण्डुराच्छदलानि च ।
कलहंसोपगीतानि सारिकाभिरुतानि च ६२
गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः ।
दृष्टवान्पादपाग्रेषु नानापुष्पधरा लताः ॥ ६३
केतकाशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः ।
चूता नीपा नागपुष्पाः कदम्बबकुला धवाः
प्रियङ्गुपाटलीवृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः
शालास्तालाः प्रियालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः
तथा चान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः
वैद्रुमाश्च द्रुमानीका दावाग्निज्वलितप्रभाः ६६
स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः ।
अञ्जनाशोकवर्णाभा भान्ति वञ्जुलका द्रुमाः
वरणा वत्सनाभाश्च पनसाश्चन्दनैः सह ।
नीलाः सुमनसश्चैव पीताम्लाश्वत्थतिन्दुकाः
प्राचीनामलका लोध्रा मल्लिका भद्रदारवः
आम्रातकास्तथा जम्बूलकुचाः शैलवालुकाः
सर्जार्जुनाः कन्दुरवाः पतङ्गाः कुटजास्तथा
रक्ताः कुरबकाश्चैव नीपाश्चागरुभिः सह ७०
कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमीबीजपूरकाः ।
कालीयका दुकूलाश्च हिङ्गवस्तैलपर्णिकाः ॥
खर्जूरा नालिकेराश्च पूगवृक्षा हरीतकी ।
मधूकाः सप्तपर्णाश्च बिल्वाः पारावतास्तथा
पनसाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः ।
लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः ७३
एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः ।
नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समंततः ॥
चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः ।
पुष्पितान्फलिताग्रांश्च संपतन्ति महाद्रुमान् ॥
रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगता द्विजाः ।
परस्परमवेक्षन्त प्रहृष्टा जीवजीवकाः ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे हिरण्यकश्यपुसभावर्णने-
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## हिरण्यकशिपुसभावर्णनम् ।

### ४२

वैशम्पायन उवाच ।
तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुः प्रभुः
आसीन आसने दिव्ये नल्वमात्रे प्रमाणतः १
दिवाकरनिभे रम्ये दिव्यास्तरणसंभृते ।
रराज सुचिरं राजञ्ज्वलत्काञ्चनकुण्डलः २

---

इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

तस्यामिति । नल्वो हस्तचतुःशतं तावन्मात्रे ॥१॥

तस्य दैत्यपतेर्मन्दं विरजस्कं समंततः।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुमुखो ववौ ॥ ३
तत्र देवाः सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः।
दिव्यतालेन दिव्यानि जगुर्गीतानि गायनाः४
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता।
दिव्या च सौरभेया च समीची पुञ्जिकस्थला
मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता
चारुनेत्रा घृताची च मेनका चोर्वशी तथा ६
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः।
उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं तदा ॥ ७
हिरण्यकशिपुस्तत्र विचित्राभरणाम्बरः।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतस्तस्थौ ज्वलितकुण्डलः॥८
तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
उपासन्ति दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवराः पुरा ९
बलिर्वैरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीजयः।
प्रह्रादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः ॥ १०
अहन्ता क्रोधहन्ता च सुमनाः सुमतिः खरः।
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा ॥ ११
विश्वरूपश्च रूपश्च विरूपश्च महाद्युतिः।
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महारवः ॥१२
कटाभो विकटाभश्च संह्रादश्चेन्द्रतापनः।
दैत्यदानवसंघाश्च सर्वे ज्वलितकुण्डलाः॥१३
स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सर्वे सुचरितव्रताः।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः॥१४
एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
उपासन्ते महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः१५
विमानैर्विविधैरग्र्यैर्भ्राजमानैरिवार्चिभिः।
स्रग्विणो भूषणधरा यान्ति चायान्ति हेलया
विचित्राभरणोपेता विचित्रवसनास्तथा।
विचित्रशस्त्रकवचा विचित्रध्वजवाहनाः॥१७
महेन्द्रचापसंकाशैर्विचित्रैरङ्गदैर्वरैः।
भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्ति नित्यशः॥
तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः।
हिरण्यमुकुटाः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ॥ १९

कनकमणिविचित्रवेदिकाया-
मुपहितरत्नसहस्रवीथिकायाम्।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां
सुरुचिरदन्तगवाक्षसंवृतायाम् ॥ २०
कनकविमलहारभूषिताङ्गं
दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श।
दिनकरकरप्रभं ज्वलन्त-
मसुरसहस्रगणैर्निषेव्यमाणम् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

## नृसिंहं दृष्ट्वा दानवानां विस्मयः, प्रह्लादवाक्यं च।

## ४३

वैशम्पायन उवाच।

ततो दृष्ट्वा महाबाहुं कालचक्रमिवागतम्।
नारसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम्॥ १
विकुञ्चितसटं तस्य नारसिंहस्य भारत।
रूपौदार्यं बभौ तत्र सहस्रशशिसंनिभम् ॥ २
अहो रूपमिदं चित्रं शङ्खकुन्देन्दुसंनिभम्।
अब्रुवन्दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३
एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम्।
नारसिंहेन चक्षुर्भ्यां चोदिताः कालधर्मणा ४
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्रादो नाम वीर्यवान्।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥ ५

मन्दं विरजस्कं च यथा स्यात्तथा वै वा ॥ ३ ॥ ददर्शेत्यत्र ददर्श इति स्वरभक्त्याक्षरपूर्णं ज्ञेयम्। दन्तगवाक्षाः 'झरोका' इति भाषायां प्रसिद्धाः ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

ततो दृष्ट्वा इति ॥ १ ॥ चोदितः चोदितानामिति षष्ठ्यर्थे प्रथमा ॥ ४ ॥

१ ख. चन्द्रहन्ता क्रोधह०।

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमास्थितम् ।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः

प्रह्लाद उवाच।

महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसंभव ।
न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः ॥ ७
अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम् ।
दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनांसि नः ॥ ८
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा
हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ॥ ९
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्याश्चाश्विनौ तथा।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥ १०
मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः ।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः
ब्रह्मदेवः पशुपतिर्ललाटस्था विभान्ति वै ।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च १२
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः ।
विमानशतसंकीर्णा तथाभ्यन्तरजा सभा ॥ १३
सर्वं त्रिभुवनं राजल्लोकधर्मश्च शाश्वतः ।
दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन्यथेन्दौ विमलं जगत् ॥

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा
ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च ।
उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च
रजश्च सत्त्वं च तपो दमश्च ॥ १५

सनत्कुमारश्च महानुभावो
विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः ।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो
दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥ १६

इत्येवमुक्त्वा स च दैत्यराजं
हिरण्यनामानमविस्मयेन ।
दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रं
महामतिः किंचिदधोमुखः प्राक् १७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे प्रह्लादवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## नृसिंहस्योपरि दैत्यानां शस्त्रास्त्रपातः ।

## ४४

वैशम्पायन उवाच ।

प्रह्लादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः ।
उवाच दानवान्सर्वान्सगणांश्च गणाधिपः
मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः ।
यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥ २
तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥ ३
सिंहनादं नदित्वा तु पुनः सिंहो महाबलः ।
बभञ्ज तां सभां रम्यां व्यादितास्य इवान्तकः
सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम्
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः
सर्वास्त्राणामथ श्रेष्ठं दण्डमस्त्रं सुभैरवम् ।
कालचक्रं तथाऽत्युग्रं विष्णुचक्रं तथैव च ॥ ६
धर्मचक्रं महच्चक्रमजितं नाम नामतः ।
चक्रमैन्द्रं तथा घोरमृषिचक्रं तथैव च ॥ ७
पैतामहं तथा चक्रं त्रैलोक्यमहितस्वनम् ।
विचित्रमशनीं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥ ८
रौद्रं तदुग्रं शूलं च कङ्कालं मुसलं तथा ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ॥ ९
ऐषीकमस्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं तथा ।
वायव्यं मथनं नाम कापालमथ किंकरम् १०
तथा चाप्रतिमां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ।
अस्त्रं हयशिरश्चैव सौम्यमस्त्रं तथैव च ॥ ११
पैशाचमस्त्रममितं सार्प्यमस्त्रं तथाऽद्भुतम् ।
मोहनं शोषणं चैव संतापनविलापने ॥ १२

---

यथा महादर्शकल्पे चन्द्रमण्डले चक्षुर्धारयतां कृत्स्नं जगद्दृष्टिगोचरीभवत्यस्येति योगिप्रसिद्धोऽयं दृष्टान्तः ॥ १४ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

प्रह्लादस्येति । शुष्का निर्मेघा आर्द्राः समेघाः ॥ ८ ॥

जृम्भणं प्रापणं चैव त्वाष्ट्रं चैव सुदारुणम् ।
कालमुद्गरमक्षोभ्यं क्षोभणं तु महाबलम् ॥१३
संवर्तनं मोहनं च तथा मायाधरं परम् ।
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् १४
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ।
अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥ १५
एतान्यस्त्राणि सर्वाणि हिण्यकशिपुस्तदा ।
चिक्षेप नारसिंहस्य दीप्तस्याग्नेर्यथाहुतिः ॥ १६
अस्त्रैः प्रज्वालितैः सिंहमावृणोदसुराधिपः ।
विवस्वान्घर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः ॥ १७
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः
क्षणेनाप्लावयत्सिंहं मैनाकमिव सागरः॥१८
प्रासैः पाशैस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैरशनिकल्पैश्च शिलाभिश्च महाद्रुमैः ॥१९
मुद्गरैः कूटपाशैश्च शूलोलूखलपर्वतैः ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः॥ २०
परिवार्य समन्तात्तु निघ्नन्त्स्त्रैर्हरिं तदा ।
स्वल्पमप्यस्य न क्षुण्णमूर्जितस्य महात्मनः२१

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः ।
समंततोऽभ्युद्यतबाहुशस्त्राः
स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्राः ॥ २२

सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा
नानाङ्गदाभोगपिनद्धगात्राः ।
मुक्तावलीदामविभूषिताङ्गा
हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥२३
तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै
केयूरमालावलयोत्कटानि ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति
प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २४
तैः प्रक्षिपद्भिर्ज्वलितानलोपमै-
र्महास्त्रपूगैः स समावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा संततवर्षिभिर्घनैः
कृतान्धकारोद्भुतकन्दरद्रुमः ॥ २५
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः
सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान्प्रतापवा-
न्स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः
संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा
दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धता यथा
महोर्मयः सागरवारिसंभवाः ॥ २७
शतैर्धनुर्भिः सुमहातिवेगा
युगान्तकालप्रतिमाञ्छरौघान् ।
एकायनस्था मुमुचुर्नृसिंहे
महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः ॥२८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## नृसिंहकृतो दैत्यमायानिरासः ।

## ४५

वैशम्पायन उवाच ।
खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः ।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहसदृशाननाः ॥ १
बालसूर्यमुखाश्चैव धूमकेतुमुखास्तथा ।
चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्राश्च प्रदीप्ताग्निमुखास्तथा२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः
पञ्चास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा३

विद्युज्जिह्वास्त्रिशीर्षाश्च
तथोल्कासन्निभाननाः ।
महाग्राहनिभाश्चान्ये
दानवा बलदर्पिताः ॥ ४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५
खरा इति । ईहामृगमुखाः वानरास्याः ॥ १ ॥

कैलासवपुषस्तस्य शरीरे शरवृष्टयः ।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे ॥ ५
एवं भूयोऽपरान्घोरानसृजन्दानवाः शरान् ।
मृगेन्द्रस्योरसि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः ६
ते दानवशरा घोरा मृगेन्द्राय समीरिताः ।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥ ७
ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः
मृगेन्द्रायाक्षिपन्त्याशु प्रज्वलन्तीव सर्वशः ८
तैरासीद्गगनं चक्रैः संपतद्भिः समावृतम् ।
युगान्ते संप्रकाशद्भिश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ९
तानि चक्राणि वदनं प्रविशन्ति विभान्ति वै
मेघोदरदरीं घोरां चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥ १०
तानि चक्राणि सर्वाणि मृगेन्द्रेण महात्मना ।
निगीर्णानि प्रदीप्तानि पावकार्चिःसमानि वै
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ।
शक्तिं प्रज्वलितां घोरां हुताशनसमप्रभाम् ॥
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुत्तमाम् ।
हुंकारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥ १३
रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले ।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव नभश्च्युता
नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य सृष्टा रेजे विदूरतः ।
नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना १५
गर्जित्वा तु यथाकामं विक्रम्य च यथासुखम्
तत्सैन्यमुत्सारितवांस्तृणाग्राणीव मारुतः ॥
ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिकूटैर्महाप्रभैः ॥
तदश्मवर्षं सिंहस्य गात्रे निपतितं महत् ।
दिशो दश प्रकीर्णं हि खद्योतप्रकरो यथा ॥
तदश्मौघैर्दितिसुतास्तदा सिंहमरिंदमम् ।
प्राच्छादयन्यथा मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा देवमास्थितम् ।
भीमवेगा बलश्रेष्ठं समुद्रा इव पर्वतम्॥ २०
ततोऽश्मवर्षे निहते जलवर्षमनन्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत्समंततः २१
नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः सहस्रशः।
आवृण्वन्सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा॥
धाराणां संनिपातेन वायोर्विस्फूर्जितेन च ।
वर्षता चैव वर्षेण न प्राज्ञायत किंचन ॥ २३
धारा दिवि च संसक्ता वसुधायां च सर्वशः ।
न स्पृशन्ति स्म तं तत्र निपतन्त्योऽनिशं भुवि
बाह्यतो ववृषे वर्षं नोपरिष्टात्तु तोयदः।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया २५
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
ससृजुर्दानवा मायामग्निं वायुं च सर्वशः॥२६
नभसः प्रच्युतश्चैव तिग्मवेगः समंततः ।
ज्वालामाली महारौद्रो दीप्ततेजाः समंततः ॥
स सृष्टः पावकस्तेन दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
न शशाक महातेजा दग्धुमप्रतिमौजसम् ॥२८
तमिन्द्रस्तोयदैः सार्धं सहस्राक्षोऽमितद्युतिः
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥ २९
तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवाः ।
ससृजुर्घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समंततः ॥ ३०
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु वै ।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ॥ ३१
त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे ।
ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हारिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५

## हिरण्यकशिपोः पराक्रमः ।

## ४६

वैशम्पायन उवाच ।

ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः । हिरण्यकशिपुं सर्वे विषण्णाः शरणं गताः॥ १

नगमात्रैः वृक्षप्रमाणैः ॥ १७ ॥ तदश्मेत्यादि ॥ १९ ॥ न स्पृशन्ति मध्ये एव शुष्यन्तीत्यर्थः ॥२४॥ मृगेन्द्रस्योपरिष्टान्न अन्यत्र तु अस्तीत्यर्थः ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

तत इति ॥ १ ॥

ततः प्रज्वलितः क्रोधात्प्रदहन्निव तेजसा।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चालयामास मेदिनीम् २
ततः प्रक्षुभिताः सर्वे सागराः सलिलाकराः।
चालिता गिरयः सर्वे सकाननवनद्रुमाः ॥ ३
तस्मिन्क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत्।
तमसा समभूच्छन्नं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४
आवहः प्रवहश्चैव विवहश्च समीरणः।
परावहः संवहश्च उद्वहश्च महाबलः ॥ ५
तथा परिवहः श्रीमान्मारुता भयशंसिनः।
इत्येते क्षुभिताः सप्त मारुता गगनेचराः ॥ ६
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै।
ते ग्रहा गगने दृष्टा विचरन्ति यथासुखम् ॥७
अयोगतश्च तारासु सर्वैर्ऋक्षेषु संगताः।
सग्रहं सहनक्षत्रं प्रजज्वाल नभो नृप ॥ ८
विवर्णत्वं च भगवान्गतो दिवि दिवाकरः।
कृष्णः कबन्धश्च महाँल्लक्ष्यते च नभस्तले ॥९
अमुञ्चच्चासितां सूर्यो धूमवर्तिं भयावहाम्।
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परितप्यते ॥ १०
सप्त धूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहा स्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ॥
वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती।
शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहितार्कसमद्युतिः १२
समं समभिरोहन्ति दुर्गाणि गगनेचराः।
शृङ्गाणि कनकैर्घोरा युगान्तावर्तका ग्रहाः॥
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैर्ग्रहैः सप्तभिरावृतः।
चराचरविनाशार्थं रोहिणी नाभ्यनन्दत॥ १४
गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते।
उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे प्रचेलुर्घोरदर्शनाः १५
देवानामपि यो देवः सोऽभ्यवर्षत शोणितम्।
अपतन्गगनादुल्का विद्युद्रूपाः सनिःस्वनाः॥१६
अकाले पादपाः सर्वे पुष्प्यन्ति च फलन्ति च
लताश्च सफलाः सर्वा याः प्राहुर्दैत्यनाशनम् ॥
फले फलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च
विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमयन्ति ज्वलन्ति च
प्रतिमाः सर्वदेवानां कथयन्ति युगक्षयम्॥ १९
आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः॥
चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगेन्द्रे समुपस्थिते ॥ २०
नद्यश्च प्रतिलोमा हि वहन्ति कलुषोदकाः।
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां क्षयकारके ॥ २१
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः।
वानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन २२
वायुवेगेन हन्यन्ते भिद्यन्ते प्रणुदन्ति च।
तदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ॥ २३
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां च युगक्षये।
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरिवेश्मनः ॥
भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु।
तथैव चायुधागारे धूमराजिरदृश्यत ॥ २५
स च दृष्ट्वा महोत्पातान्हिरण्यकशिपुस्तदा।
पुरोहितं तदा शुक्रं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २६
किमथ भगवन्नेते महोत्पाताः समुत्थिताः।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे २७
शुक्र उवाच।
शृणु राजन्नवहितो वचनं मे महासुर।
यदर्थमिह दृश्यन्ते महोत्पाता महाभयाः॥२८
यस्यैते संप्रदृश्यन्ते राज्ञो राष्ट्रे महासुर।
देशो वा ह्रियते तस्य राजा वा बन्धमर्हति२९
अतो बुद्ध्या समीक्षस्व यथा सर्वं प्रणश्यति।
बृहद्भयं हि न चिराद्भविष्यति न संशयः ३०
एतावदुक्त्वा शुक्रस्तु हिरण्यकशिपुं तदा।
स्वस्तीत्युक्त्वा तु दैत्येन्द्रं जगाम स्वं निवेशनम्
तस्मिन्गते स दैत्येन्द्रो ध्यातवान्सुचिरं तदा
आसांचक्रे सुदीनात्मा ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन्।
असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ३२

अयोगतः यथोक्तवृद्धिह्राससंबन्धं विनाऽतीव बुद्ध्याऽतीव ह्रासेन च नियतगतिरप्यनियतं जगाम ॥ ८ ॥ विवर्णत्वं निष्प्रभत्वं कबन्धो राहुरदृश्योपि दृश्यत्वं गत इत्यर्थः ॥९॥ सप्त ग्रहाः सोमस्य शृङ्गगा इति योजना ॥ ११ ॥ कनकैर्निर्मितानि शृङ्गाणि मेरोरित्यर्थात् ॥ १३ ॥ वानस्पत्याः चैत्यदेवताः ॥ २२ ॥ अपराह्णगतेऽपि सूर्ये छाया न परिवर्तते निष्प्रभत्वात्सूर्यस्येत्यर्थः ॥ २४ ॥ मधु क्षौद्रपटलम् ॥ २५ ॥

१ ख. ०व चक्षुषा। हि०। २ ख. ०तश्चात्यन्तयोगं दिवि निशाकरः। स०। ३ ख. ०गा सूर्य उ०।

दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः।
एते चान्ये च बहवो घोरा ह्युत्पातदर्शनाः ३३
दैत्येन्द्राणां विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः
ततो हिरण्यकशिपुर्गदामादाय सत्वरम् ॥३४
अभ्यद्रवत वेगेन धरणीमनुकम्पयन्।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो पदा संस्पृष्टवान्महीम् ३५
संदष्टौष्ठपुटः क्रोधाद्वराह इव पूर्वजः।
मेदिन्यां कम्प्यमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना॥
महीधरेभ्यो नागेन्द्रा निपेतुर्भयविक्लवाः।
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम्॥३७
चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ ॥ ३८
एलापत्रश्च कालीयो महापद्मश्च वीर्यवान्।
सहस्रशीर्षधृङ्नागो हेमतालध्वजः प्रभुः॥३९
शेषोऽनन्तो महीपालो दुष्प्रकम्पः प्रकम्पितः।
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च४०
तदा क्रुद्धेन दैत्येन कम्पितानि समंततः।
पातालतलचारिण्यो नागतेजोधराः शिवाः॥
आपश्च सहसा क्रुद्धा दुष्प्रकम्प्यरसाः शुभाः
नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा४२
यमुना चैव कावेरी कृष्णा वेणा तथैव च।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा४३
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः।
मेकलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ॥ ४४
सुस्रोता नर्मदा चैव तथा वेत्रवती नदी।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्णा सरस्वती॥
मही कालनदी चैव तमसा पुण्यवाहिनी।
सिता चेक्षुमती चैव देविका च महानदी ४६
जम्बूद्वीपं रत्नवन्तं सर्वरत्नोपशोभितम्।
सुवर्णकूटकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ॥ ४७
महानदश्च लौहित्यः शैलकाननशोभितः।
पत्तनं कौशिकारण्यं द्रविडं रजताकरम् ॥४८

मागधांश्च महाग्रामा-
नङ्गान्वङ्गांस्तथैव च।
सुह्मान्मल्लान्विदेहांश्च
मालवान्काशिकोसलान् ॥ ४९

भुवनं वैनतेयस्य सुवर्णस्य च कंपितम्।
कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा॥५०
रक्ततोयो भीमवेगो लौहित्यो नाम सागरः।
शुभः पाण्डुरमेघाभः क्षीरोदश्चैव सागरः ५१
उदयश्चैव राजेन्द्र उच्छ्रितः शतयोजनम्।
सुपर्णवेदिकः श्रीमान्नागपक्षिनिषेवितः ॥ ५२
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकाभिश्च पुष्पितैः॥
अयोमुखश्च विपुलः सर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥ ५४

सुराष्ट्राश्च सुबाह्लीकाः
शूराभीरास्तथैव च।
भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च
कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः ॥ ५५

तथैवान्ध्राश्च पुण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाः साप्सरोगणाः
अगस्तिभुवनं चैव यदगम्यं पुरा कृतम्।
सिद्धचारणसङ्घैश्च सेवितं सुमनोहरम्॥५७
विचित्रनागविहगं सुपुष्पितलताद्रुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणसेवितम् ॥ ५८
गिरिः पुष्पतकश्चैव लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः।
उत्थितः सागरं भित्त्वा वयस्यश्चन्द्रसूर्ययोः५९
रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव।
सूर्यचन्द्रांशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतः ॥ ६०
विद्युद्वान्पर्वतः श्रीमानायातः शतयोजनम्।
विद्युतां यत्र सम्पाता निपात्यन्ते नगोत्तमे६१
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थितः।
कुञ्जरः पर्वतश्चैव यत्रागस्त्यगृहं महत् ॥ ६२
विशाखरथ्या दुर्धर्षा सर्पाणामालया पुरी।
तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकंपिता ॥
महामेघगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः।
चक्रवांस्तु गिरिः श्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः॥
प्राग्ज्योतिषपुरं चैव जातरूपमयं शुभम्।
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥
मेरुश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः।
षष्टिं तत्र सहस्राणि पर्वतानां विशांपते ॥ ६६
तरुणादित्यसंकाशो महेन्द्रश्च महागिरिः।
देवावासः शुभः पुण्यो गिरिराजो दिवं गतः
हेमशृंगो महाशैलस्तथा मेघसखो गिरिः।
कैलासश्चापि दुष्कम्पो दानवेन्द्रेण कम्पितः

पृथिवीधरणानि दिग्गजादीनि ॥ ४० ॥ नागः शेषः तेजोधराः मणिगततेजोमूर्धानः ॥ ४१ ॥

यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः।
श्रीमान्मनोहरश्चैव नित्यं पुष्पितपादपः ६९
हेमपुष्करसंछन्नं तेन वैखानसं सरः।
कम्पितं मानसं चैव राजहंसैर्निषेवितम्॥ ७०
त्रिशृङ्गः पर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा।
तुषारचयसंकाशो मन्दरश्चैव पर्वतः॥ ७१
उशीरबीजश्च गिरी रुद्रोपस्थस्तथाद्रिराट्।
प्रजापतेश्च निलयस्तथा पुष्करपर्वतः॥ ७२
देवावृत्पर्वतश्चैव तथा वै वालुको गिरिः।
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूमवर्णश्च पर्वतः॥ ७३
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा।
नद्यश्च सागराश्चैव दानवेन्द्रेण कम्पिताः॥ ७४
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षश्चैव कम्पितः।
खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलवासिनः ७५
गणास्तथा परे रौद्रा मेघनादाङ्कुशायुधाः।
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ७६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

## हिरण्यकशिपोर्वधो ब्रह्मकृता नृसिंहस्तुतिश्च।

## ४७

वैशम्पायन उवाच।
तत्रादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च मरुतस्तथा
रुद्रा देवा महात्मानो वसवश्च महाबलाः॥ १
आगम्य ते मृगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः।
ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकक्षयार्दिताः २
जहि देव दितेः पुत्रं दानवं लोकनाशनम्।
दुर्वृत्तमसदाचारं सह सर्वैर्महासुरैः॥ ३
त्वं ह्येषामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यनाशन।
तन्नाशाय हितार्थाय लोकानां स्वस्ति वै कुरु
त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः
ऋते त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति॥ ५
तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसंभवः।
ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम्॥ ६
पाटितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना।
सिंहनादेन महता हृदयानि मनांसि च॥ ७
गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथा परः।
वेगश्च वैगलेयश्च सैंहिकेयश्च वीर्यवान्॥ ८
संह्रादीयो महानादो महावेगस्तथा परः।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः
खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिणः।
गणस्तथापरो रौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः १०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्मा कलोचनः।
वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः ११
जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेगवान्।
जीमूतघनसंनादो जीमूतसदृशद्युतिः।
दृष्ट्वैतैर्दैत्यगणैस्तुष्टो मृगेन्द्रेण महात्मना॥ १२
देवारिर्दितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत्
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः॥१३
तत्रोङ्कारसहायेन विदार्य निहतो युधि॥ १४
मही च लोकश्च शशी नभश्च
ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च
गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात्॥ १५
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम् १६
देवा ऊचुः।
यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः।
मृगेन्द्रत्वं च लोकेषु सर्वसत्त्वेषु वा विभो॥
गायन्ति त्वां च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः
त्वत्प्रसादात्स्वकं स्थानं प्रतिपन्नाः स्म वै विभो
एवमुक्तो देवसंघैर्नरसिंहो महामनाः।
ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णोः स्तोत्रमुदैरयत् १९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

४७

वैशम्पायन उवाच—तत्रेति॥१॥

ब्रह्मोवाच ।

भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् ।
कूटस्थमकृतं कर्तृ सनातनमनामयम् ॥ २०
सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता
तां भवान्वेद विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः
त्वं व्यक्तश्च तथाऽव्यक्तस्त्वत्तः सर्वमिदं जगत्
भवन्मया वयं देव भवानात्मा भवान्प्रभुः॥२२
चतुर्विभक्तमूर्तिस्त्वं सर्वलोकविभुर्गुरुः ।
चतुर्युगसहस्रेण सर्वलोकान्तकान्तकः ॥ २३
[ चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुरात्मा सनातनः ]
प्रतिष्ठा सर्वभूतानामनन्तबलपौरुषः ।
कपिलप्रभृतीनां च यतीनां परमा गतिः ॥२४
अनादिमध्यनिधनः सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ।
स्रष्टा त्वं त्वं च संहर्ता त्वमेको लोकभावनः
भवान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो वरुणो यमः ।
भवान्कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभुरव्ययः

परां च सिद्धिं परमं च देवं
परं च मन्त्रं परमं मनश्च ।
परं च धर्मं परमं यशश्च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ २७

परं च सत्यं परमं हविश्च
परं पवित्रं परमं च मार्गम् ।
परं च होत्रं परमं च यज्ञं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २८

परं शरीरं परमं च धाम
परं च योगं परमां च वाणीम् ।
परं रहस्यं परमां गतिं च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २९

परं परस्यापि परं च यत्परं
परं परस्यापि परं च देवम् ।
परं परस्यापि परं प्रभुं च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३०

परं परस्यापि परं प्रधानं
परं परस्यापि परं च तत्त्वम् ।
परं परस्यापि परं च धाता
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३१

परं परस्यापि परं रहस्यं
परं परस्यापि परं परं यत् ।
परं परस्यापि परं तपो य-
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३२

परं परस्यापि परं परायणं
परं च गुह्यं च परं च धाम ।
परं च योगं परमं प्रभुत्वं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३३

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवान्सर्वलोकपितामहः ।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥
ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥

---

चतुर्विभक्तमूर्तिः चतुर्धा विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयेण नृसिंहतापनीयाद्युपनिषत्प्रसिद्धेन प्रकारेण विभक्तस्वरूपः ॥२३॥ परां च सिद्धिमित्यादयः सप्त श्लोकाः पुनः पुनस्तमेवार्थं प्रकाशयन्तीति प्राञ्चः । नृसिंहतापनीयोपनिषदि तु विश्वादीनां चतुर्णां प्रत्येकं विश्वचतुष्टयगर्भितत्वेन षोडश भेदानुदाहृत्य ईश्वरग्रासस्तुरीय इति चतुर्थस्यापि चतुर्थः षोडशो नृसिंह इत्युक्तम् । तदनुसारेणात्रापि आद्य श्लोकत्रयं तेन विश्वादिषु त्रिष्वन्तर्भूतं यद्रूपं परं तदेव प्रकाश्यते । ततश्चतुर्भिः श्लोकैस्तुर्यस्य चत्वारो भेदाः ओतानुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्परूपा वर्ण्यन्ते इत्यपौनरुक्त्यम् । तत्राखण्डैकरसं चिन्मात्रं कृत्स्नं जगत् खण्डशर्करामयामिव सत्यं सिकतामात्रम् इत्येतद्द्रष्टाकारत्वमुपेत्य तस्य चिन्मात्रत्वमुक्तम् । अनुज्ञातृदृष्टौ तु स्वात्मजगद्द्वाकारस्य मिथ्यात्वमुपेत्य चिन्मात्रत्वमुक्तम् । अनुज्ञादृष्टौ तु शशशृंगादिवद्विकल्पमात्रत्वमाकारस्येत्यतितुच्छत्वमुक्तम् । अविकल्पे तु तुच्छत्वभानमपि नास्तीति सप्तानां श्लोकानां योजना । तत्र परशब्दाः पूर्वपूर्वापेक्षया आपेक्षिकाः । यथा—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ इति ।

इन्द्रियार्थमनोबुद्धिमहदव्यक्तपुरुषाणामुत्तरोत्तरं परत्वम् । इन्द्रियाणामपि परत्वं भगवता उक्तम्—"इन्द्रियाणि पराण्याहुः" इति॥ तद्वदत्रापि परम्परा ज्ञेया। इन्द्रियादीन्येव वा सप्त सप्तानामपि श्लोकानां क्रमेण प्रतिपाद्यानि सर्वथाऽपि नात्र पौनरुक्त्यदोषोऽस्तीति सर्वं ज्ञेयम् ॥ २७—३५ ॥ उत्तरं कूलं श्वेतद्वीपम् ॥ ३५ ॥

नारसिंहीं तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद्वपुः
पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः ॥ ३६
अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन शोभिना ।
अव्यक्तः प्रकृतिर्देवः संस्थानमगमत्प्रभुः ॥ ३७
एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तदा ।
देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहप्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुवधकथने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## वामनप्रादुर्भावे बलेरभिषेकः ।

## ४८

वैशम्पायन उवाच ।

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः ।
यत्र वामनमास्थाय रूपं रूपविदां वरः ॥ १
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिराक्रम्य त्रैलोक्यमखिलं हृतम् २
समुद्रवसना चोर्वी नानानगविभूषिता ।
हृत्वा दत्ता सुरेन्द्राय शक्राय प्रभविष्णुना ॥ ३

जनमेजय उवाच ।

अत्र मे संशयो ब्रह्मन्नत्र कौतूहलं महत् ।
कथं नारायणो देवो वामनत्वमुपागतः ॥ ४
यः पुराणे पुराणात्मा भूत्वा नारायणः प्रभुः ।
पद्मनाभो महाबाहुर्लोकानां प्रकृतिर्ध्रुवः
अनादिमध्यनिधनस्त्रैलोक्यादिः सनातनः ।
देवदेवः सुराध्यक्षः कृष्णो लोकनमस्कृतः ॥ ६
हव्यकव्यवहः श्रीमान्हव्यकव्यभुगव्ययः ।
अदित्या देवमातुश्च कथं गर्भेऽभवत्प्रभुः ।
स्रष्टा यो वासवस्यापि स कथं वासवानुजः ॥
प्रसूतो देवदेवेशो विष्णुत्वं प्राप्तवान्कथम् ।
एतदाचक्ष्व मे विप्र प्रादुर्भावं महात्मनः ॥ ८

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु राजन्कथां दिव्यामर्चितामृषिपुङ्गवैः ।
पुराणैः कविभिः प्रोक्तां ब्रह्मोक्तां ब्राह्मणेरिताम्

---

त्यक्त्वा अदृश्यां कृत्वा तद्वपुः तस्याः प्रतिमां पौराणं वैष्णवं चतुर्भुजादिलक्षणम् ॥ ३६ ॥ भूतयुक्तेन पञ्चमहाभूतघटितेन अष्टचक्रेण "अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः" इत्यादि श्रुतिप्रसिद्धशब्दश्रोत्रादिग्रहातिग्रहरूपैरनिशं चक्रवच्चाल्यमानेन देहेन साधनेन अव्यक्तप्रकृतिरप्यष्टाकृतिरहंकाराभिव्यक्तादेव आत्मा नृसिंहरूपी स्वस्थानं निर्विशेषचिन्मात्रं स्वरूपम् "तद्विष्णोः परमं पदम्" इति श्रुतिप्रसिद्धमगमत् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

**नृसिंह इति** ॥ १ ॥ **अत्र मे इति** । नारायण इति प्रख्याततरीला कृत्स्नब्रह्माण्डलयस्थानभूतब्रह्माण्डदेवासुरविभागमुपजीव्य देवानां पक्षपातेनासुरान् विध्वंसयतीत्युक्तं सर्वात्मनः स्वावयवेष्विव तेषु विषमबुद्धयोगादिति शङ्कार्थः ॥ ४ ॥ विष्णुत्वं वामनस्यापि कथं त्रैलोक्यव्यापकत्वं चेति भावः ॥ ८ ॥ उत्तरमाह—**शृणुवेति** । दिव्यां लौकिकदृष्टान्तागम्याम् अथापि ऋषिपुंगवैर्मन्त्रद्रष्टृप्रवरैरर्चितां कविभिर्ब्रह्मनिष्ठैः स्वानुभवप्रामाण्येन प्रकर्षेणोक्तां ब्रह्मोक्तां मन्त्रसूचितां ब्राह्मणे मन्त्रविवरणरूपेऽपि ईरिताम् । अयं भावः—"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" इत्यादिश्रुतौ एकस्यां मायायामसमवेतं बहुवचनं पाशन्यायेन तदवयवेषु सत्त्वरजस्तमःसु पर्यवस्यति । तत्र सत्त्वप्रधानानि रूपाणि देवतादीनि । रजःप्रधानानि यक्षरक्षःप्रभृतीनि । तमःप्रधानानि भूतप्रेतादीनि त्रिविधानीन्द्रस्य रूपाणि । तैः सत्त्वकार्यं कदाचिदुपकरोति कदाचिदुभयस्याप्यभिभवं करोति उभयेनाप्यभिभूयते च । तदेवं मूलगुणानां यथा विरोध एवं तत्प्रधानानां देवादीनामपि । तत्र यथा सलिलस्य माधुर्यम् इक्षुद्राक्षादौ बीजगुणादतिशयेनाविर्भवति । निम्बमरीचसादौ तु विपरीतेणावृतं भवति । औपाधिकं चाम्ल-

मारीचस्य सुरेशस्य कश्यपस्य प्रजापतेः ।
अदितिर्दितिश्च भार्ये भगिन्यौ जनमेजय ॥ १०
अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपस्य महात्मनः
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ ११
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा ।
तथैकादशमस्त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥ १२
दित्यां जातो हि बलवान्हिरण्यकशिपुः प्रभुः
तस्यानुजस्य दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान्
हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्च घोरपराक्रमाः ।
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च जम्भः संह्लाद एव च ॥ १४
विरोचनश्च प्राह्लादिस्तस्य पुत्रो बलिः स्मृतः ।
पुत्रपौत्रं च बलवत्तेषामक्षयमव्ययम् ॥ १५
तेजस्विनां सुरारीणां दैत्येन्द्राणां मनस्विनाम्
गणाः सुबहुशो राजन्देशे देशे सहस्रशः ॥ १६
ते दृष्ट्वा नारसिंहेन हिरण्यकशिपुं हतम् ।
दैत्या देववधार्थाय बलिमिन्द्रं प्रचक्रिरे ॥ १७
दृष्ट्वा धर्मपरं नित्यं सत्यवाक्यं जितेन्द्रियम् ।
शौर्याध्ययनसंपन्नं सर्वज्ञानविशारदम् ॥ १८
परावरगृहीतार्थं तत्त्वदर्शिनमव्ययम् ।
तेजस्विनं सुररिपुं हिरण्यकशिपुं यथा ॥ १९
अभिषेकेण दिव्येन बलिं वैरोचनिं तथा ।
दैत्याधिपत्ये दितिजास्तदा सर्वेऽभ्यपूजन् ॥ २०
अभिषिक्तस्तदा दैत्यैर्बलिर्बलवतां वरः ।
ब्रह्मणा चैव तुष्टेन हिरण्यकशिपोः पदे ॥ २१
अभिषिक्तोऽसुरगणैर्बलिर्वैरोचनिस्तदा ।
काञ्चनैः कलशैःस्फीतैः सर्वतीर्थाम्बुसंवृतैः ॥ २२
जयशब्दं ततश्चक्रुरभिषिक्तस्य दानवाः ।
बलेरतुलवीर्यस्य सिंहासनगतस्य वै ॥ २३
कृत्वेन्द्रं दानवाः सर्वे बलिं बलवतां वरम् ।
ततो विज्ञापयामासुः शिरोभिः पतिताः क्षितौ

दैत्या ऊचुः ।

विदितं तव दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपो यथा ।
त्रैलोक्यमासीदखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २५
पितामहं तु हत्वा ते सुरेश्वरनिषूदन ।
हृतं तदैव त्रैलोक्यं शक्रश्चैवाभिषेचितः ॥ २६
तत्पितामहराज्यं त्वं प्रत्याहर्तुमिहार्हसि ।
अस्माभिः सहितो नाथ त्रैलोक्यमिदमव्ययम्
प्रत्यानयस्व भद्रं ते राज्यं पैतामहं प्रभो ॥ २८
असुरगणसहस्रसंवृतस्त्वं
जय दिवि देवगणान्महानुभावान् ।
अमितबलपराक्रमोऽसि राज-
न्नतिशयसे स्वगुणैः पितामहं स्वम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने बलेरभिषेके
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

## त्रैलोक्यविजयार्थं बलेरुद्योगः, मयस्य युद्धाभिगमनं च ।

## ४९

वैशम्पायन उवाच ।

निशम्य तेषां वचनं महामति-
र्बलिस्तदा प्रीतमना महाबलः ।
आज्ञापयामास स दैत्यकोटिं
त्रैलोक्यमद्यैव जयाम सर्वम् ॥ १ ॥

---

कटुत्वादिकम् अतीव प्रकाशते । एवमिन्द्रस्य स्वरूपभूतं ज्ञानं सात्विकेषु देवतादिष्वाविर्भवति इतरेष्वनु तस्य तिरोभावः औपाधिकानां च कामक्रोधादीनामतिशयेनाविर्भावो भवति । इन्द्रस्यापि सविशेषरूपत्वतः स्वरूपप्रकाशहेतुत्वाद्देवेषु पक्षपातः । तत्तिरोधानहेतुत्वादितरेषु द्रोहश्च युज्यते। सति हीन्द्रस्य पञ्च रूपाणि भूबीजाङ्कुरतरुफलोपमानि शुद्धशबलसूत्रविराड्विष्णुसंज्ञानि । तत्र शुद्धं निर्विशेषम्। विष्णुस्तु सर्व विशेषयुक्तो राजवच्छिष्टेष्वनुग्रहं दुष्टेषु द्रोहं च करोतीति युज्यत एवं स्वाङ्गमपि "त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदष्टोऽङ्गुष्ठ इवाहिना ।" इति न्यायेन बाधितुं शक्यमेव । मायावित्वाच्चास्य वामनत्वं व्यापकत्वं च युज्यत इति सर्वमनवद्यम् ॥ ९ ॥ पुराणान्तरे हिरण्याक्षस्य ज्येष्ठत्वकथनं कल्पभेदाभिप्रायम् ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

४९.

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलेर्वैरोचनस्य तु ।
उद्योगं परमं चक्रुर्दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ २
महपद्मो निकुम्भश्च कुम्भकर्णश्च वीर्यवान् ।
काञ्चनाक्षः कपिस्कन्धो मैनाकः क्षितिकम्पनः
शितकेशोर्ध्ववक्त्रश्च वज्रनाभः शिखी जटी
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः प्रियदर्शनः ॥ ४
एकाक्ष एकपान्मुण्डो विद्युदक्षश्चतुर्भुजः ।
गजोदरो गजशिरा गजस्कन्धो गजेक्षणः ॥५
अष्टदंष्ट्रश्चतुर्वक्त्रो मेघनादी जलंधरः ।
करालो ज्वालजिह्वास्यः शताङ्गः शतलोचनः
सहस्रपादः सुमुखः कृष्णश्चैव महासुरः ।
रणोत्कटो दानपतिः शैलकम्पी कुलाकुलिः ७
समुद्रो रभसश्चण्डो धूम्रश्चैव महासुरः ।
गोत्रजो गोक्षुरो रौद्रो गोदन्तः स्वस्तिको ध्रुवः
मांसलो मांसभक्षश्च वेगवान्केतुमाञ्छिबिः
पङ्कदिग्धशरीरश्च बृहत्कीर्तिर्महाहनुः ॥ ९
समप्रभो विकुम्भाण्डो विरूपाक्षो महोदरः
श्वेतशीर्षश्चन्द्रहनुश्चन्द्रहा चन्द्रतापनः ॥ १०
विक्षरो दीर्घबाहुश्च मद्यपो मारुताशनः ।
तालजंघो महाभागः सरभः शलभः क्रथः ११
समुद्रमथनो नादी विततश्च महाबलः ।
प्रलम्बो नरको व्याली धेनुकः काललोचनः
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च भूतलोमा तथा विधुः ।
दुष्प्रसादः किरीटी च सूचीवक्त्रो महासुरः
सुबाहुः कञ्जबाहुश्च[2] करणः कलशोदरः ।
सोमपो देवयाजी च प्रवरो वीरमर्दनः ॥ १४
सुपथः खण्डमुक्तिश्च शिखिनेत्रः शिखिध्वजः
यथास्मृति मया प्रोक्ता मरीचेः कीर्तिवर्धनाः
एते चान्ये च बहवो नानाभूषणभूषिताः ।
रथौघैर्बहुसाहस्रैर्ययुर्योद्धुमरिंदमाः ॥ १६
दिव्याम्बरधरा दैत्या दिव्यमाल्यानुलेपनाः
दिव्यैश्च कवचैर्नद्धा दिव्यैश्चैवोच्छ्रितैर्ध्वजैः
दिव्यायुधधरा दैत्या गर्जमाना यथाम्बुदाः ।
बृहद्भी रथघोषैश्च चालयन्तो वसुंधराम् १८
महाबला दिव्यबलास्त्रधारिणो
भुजङ्गभोगप्रतिमैर्महाभुजैः ।
सुदुर्जया दैत्यवृषाः सुरारयो
दितिप्रिया लोहितलोहितेक्षणाः ॥१९
ते जग्मुरर्कज्वलनेन्द्रवीर्या[3]
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः ।
विवृत्तदंष्ट्रा हरिधूम्रकेशा
विवर्धमानाः शरदीव मेघाः ॥ २०
सहस्रबाहुर्बाणश्च बलेः पुत्रो महाबलः
रथातिरथकोट्या वै सन्नह्यत महाबल ॥ २१
सर्वे मायाधरा दैत्याः सर्वे दिव्यास्त्रयोधिनः
सर्वे मदबलोत्सिक्ताः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥
सर्वे काञ्चनशैलाभाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटोष्णीषमुकुटा दिव्यभूषणभूषिताः ॥२३
हिरण्यकवचाः सर्वे हिरण्यध्वजकेतवः ।
स्यन्दनस्था व्यराजन्त शारदा इव खे ग्रहाः
तापनीयैर्वरैर्निष्कैरनलज्वलितप्रभैः ।
हेमपर्वतशृङ्गस्थाः पुष्पिता इव किंशुकाः २५
तेषां मध्यगतो बाणः प्रावृषीवोत्थितो घनः ।
स्थितः शक्तिगदापाणिस्त्रिनल्वप्रतिमे रथे॥ २६
विचित्राश्वध्वजयुगे[4] चित्रभक्तिविराजिते ।
गदापरिघसंपूर्णे हेमजालविभूषिते ॥ २७
अन्वीयमानो दितिजैर्वालखिल्यैरिवांशुमान्
नानाप्रहरणैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैरिवोरगैः ॥ २८
पञ्च तस्य महावीर्या दानवा युद्धदुर्मदाः ।
ररक्षू रथमव्यग्रा व्यादितास्या भयावहाः २९
सुबाहुर्मेघनादश्च भीमगर्भश्च वीर्यवान् ।
तथा कनकमूर्धा[5] च वेगवान्केतुमानिति ॥ ३०

---

कनकरजतभक्तिचित्रपार्श्वे-
पतगपतिप्रतिमे रथे स्थितोऽभूत् ।
जलदनिनदतुल्यनेमिघोषे
सुरगणसैन्यवधाय दानवेन्द्रः ॥ ३१
अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः ।
वृतः शतसहस्रेण रथानां भीमवर्चसाम् ॥ ३२
युक्तमृक्षसहस्रेण रथमारुह्य वीर्यवान् ।
नीलायसमयं घोरं वायसाङ्कं सुदुर्जयम् ॥
नीलाम्बरधरः श्रीमान्वैदूर्याचलसन्निभः ।
महता रथवेगेन प्रययौ दानवस्तदा ॥ ३४
तत्रैकार्णवसंकाशे सैन्यमध्ये व्यराजत ।
प्रभातसमये श्रीमान्त्समुद्रस्थ इवांशुमान् ३५
सुतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्चसा
निशाकराकारतडिद्गुणाकरः ।
किरीटमुख्येन विभाति शोभिना
यथा गिरिः शृङ्गवरेण भास्वता ॥ ३६

---

१ ख. ०श्च पूर्णकुम्भश्च वी०। २ ख. श्च वरुणः क०। ३ ख. ०नेन्दुवी०। ४ख. चित्राक्षेशाश्व०। ५ ख. ०था गगनमू०।

षष्टी रथसहस्राणि नमुचेरसुरस्य वै ।
खरयुक्तानि सर्वाणि मेघतुल्यस्वाणि च ॥ ३७
नानाप्रहरणाः सर्वे सर्वे ते चित्रयोधिनः
महाभ्रघनसंकाशा वेगवन्तो महाबलाः ॥ ३८
रथो व्याघ्रसहस्रेण युक्तः परमवेगवान् ।
नमुचेरसुरेन्द्रस्य सर्वरत्नविभूषितः ॥ ३९
शार्दूलचिह्नः शुशुभे तस्य केतुर्हिरण्मयः ।
रथमध्ये सुरेशस्य मध्यंदिनरविर्यथा ॥ ४०
स भीमवेगश्च महाबलश्च
प्रगृह्य चापं हिमवानिव स्थितः ।
नीलाम्बरः काञ्चनपट्टनद्धो
दिशागजो यद्वदुपेतकक्षः ॥ ४१
किङ्किणीजालनिर्घोषं तपनीयविभूषितम् ।
सपताकध्वजोपेतं ससंध्यमिव तोयदम् ॥ ४२
चक्रैश्चतुर्भिः संयुक्तमष्टनल्वायतान्तरम्
हेमजालाकुलं दीप्तं कालचक्रमिवोदितम् ॥४३
नानायुधधरं घोरं व्याघ्रचर्मपरिष्कृतम् ।
ईहामृगगणाकीर्णं चित्रभक्तिविराजितम् ॥४४
तूणीरशरसंपूर्णं शक्तितोमरसंकुलम् ।
गदामुद्गरसंबाधं चापरत्नविभूषितम् ॥ ४५
युक्तमृक्षसहस्रेण लम्बकेसरवर्चसा ।
राजतेन विकीर्णेन शोभितं सिंहकेतुना ॥ ४६
स तेन शुशुभे दैत्यो मयो मायाविसर्पिणा ।
रथरत्ने स्थितः श्रीमानुदयस्थ इवांशुमान् ४७
विमलरजतबिन्दुशोभिताङ्गं
मणिकनकोज्ज्वलचारुभक्तिचित्रम् ।
अयुतशतसहस्रमूर्जितानां
मयमनुयाति तदा महारथानाम् ॥४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे मयस्य युद्धाभिगमने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## शम्बरादिदैत्यसन्नहनम् ।

## ५०

वैशम्पायन उवाच ।
पुलोमा तु महादैत्यस्तिमिराकारगह्वरम् ।
आरुरोहायसं घोरं रथं पररथारुजम् ॥ १
उत्कर्णपर्वताकारं लोहजालान्तरान्तरम् ।
नेमिघोषेण महता क्षुभ्यन्तमिव सागरम् ॥ २
गदापरिघनिस्त्रिंशैः सतोमरपरश्वधैः ।
शक्तिमुद्गरसंकीर्णं सतोयमिव तोयदम् ॥ ३
रथमुष्ट्रसहस्रेण संयुक्तं वायुवेगिना ।
पुलोमाऽऽरुह्य युद्धाय प्रस्थितो युद्धदुर्मदः॥४
षष्टी रथसहस्राणि पुलोमानं महारथम् ।
अन्वयुः सूर्यवर्णानि प्रदीप्तानीव तेजसा ॥ ५
खड्गध्वजेन महता तप्तकाञ्चनवर्चसा ।
भ्राजते रथमध्यस्थः पर्वतस्थ इवांशुमान् ॥ ६
सुचारुचामीकरपट्टनद्धां
महागदां कालनिभां महाबलः ।
प्रगृह्य बभ्राज स शत्रुमध्ये
कार्ष्णायसीं केतुरिवास्थितोऽर्याम् ७
हयग्रीवस्तु बलवान्हयग्रीवैर्महासुरैः ।
वृतः शतसहस्रेण रथानां रथिसत्तमः ॥ ८
धराधरनिभाकारं सपत्नानीकमर्दनम् ।
स्यन्दनं भीममास्थाय युद्धायाभिमुखः स्थितः
श्वेतशैलप्रतीकाशः श्वेतकुण्डलभूषणः ।
शुशुभे रथमध्यस्थः श्वेतश्रृङ्ग इवाचलः ॥ १०
महता सप्तशीर्षेण शोभितो नागकेतुना ।
वैडूर्यमणिचित्रेण प्रवालाङ्कुरशोभिना ॥११
अमितबलपराक्रमाकृतीनां
वररथिनामनुजग्मुरूर्जितानाम् ।
असुरगणशताभिगच्छमानं
त्रिदशगणा इव वासवं प्रयान्तम्॥१२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

१ ख. °तेनेव शैलेन शो° । २ ख. पर्वतोत्करसंकाशं लो° ।

प्रह्लादस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
सर्वमायाधरः श्रीमान् यष्टाक्रतुशतैरपि १३
समनह्यत तेजस्वी पावकार्चिःसमप्रभः ।
रथानीकेन महता दुर्दिनाम्भोदनादिना ॥ १४
शूरेणामितवीर्येण हेमकुण्डलधारिणा ।
वृतो दैत्यसहस्रेण देवैरिव पितामहः ॥ १५
स्ववीर्यादग्रणीर्दृप्तो मत्तवारणविक्रमः ।
सुरसैन्यस्य सर्वस्य प्रतिक्षोभ इव स्थितः १६
स्ववीर्येणोदधेस्तुल्यः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् ।
तेजसा भास्कराकारः क्षमया पृथिवीसमः ॥
तालध्वजेन दीप्तेन रथेनातिविराजता ।
तं यान्तमनुयान्ति स्म दानवाः शतसंघशः१८
सर्वे हिरण्यकवचाः सर्वे रत्नविभूषिताः ।
दिव्याङ्गरागाभरणाः समरेष्वनिवर्तिनः ॥१९
जाम्बूनदविचित्राङ्गा वैडूर्यविकृताङ्गदाः ।
दिव्यस्यन्दनमध्यस्थाः खस्था इव महाग्रहाः
आचारवांश्चैव जितेन्द्रियश्च
धर्मे रतः सत्यपरोऽनसूयः ।

स्थितोऽग्नितोयाम्बुदवायुकल्पो
रूपी यथा सर्वहरः कृतान्तः ॥ २१
शम्बरस्तु महामायो रथयूथपयूथपः ।
आरुरोह रथं दिव्यं सर्वयुद्धविशारदः ॥ २२
लोहिताक्षो महाबाहुः प्रतप्तोत्तमकुण्डलः ।
जीमूतघनसंकाशो दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ २३
विद्युज्ज्योतिर्निकाशेन मुकुटेनार्कवर्चसा ।
मणिरत्नविचित्रेण वैडूर्यवरशोभिना ॥ २४
तपनीयेन महता कवचेन विराजता ।
संध्याभ्रेणेव संच्छन्नः श्रीमानस्तशिलोच्चयः ॥
त्रिंशच्छतसहस्राणि दैत्यानां चित्रयोधिनाम् ।
बलिनां कालकल्पानामन्वयुः शम्बरं तदा ॥
युक्तं हयसहस्रेण शुक्लवर्णेन राजता ।
क्रौञ्चध्वजेन दीप्तेन रथेनाहवशोभिना ॥ २७
व्यासक्तवैडूर्यसुवर्णजालं
नानाविहङ्गैरपि भक्तिचित्रम् ।
विद्युत्प्रभं भीमरवं सुवेगं
रथं समारुह्य रराज दैत्यः ॥ २८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे शम्बरादिदैत्यसन्नहने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## सुरासुरयुद्धे बलेः स्वयमुद्योगवर्णनम् ।

## ५१

वैशम्पायन उवाच ।
अनुह्लादश्च तत्रैव दैत्यः परमदुर्जयः ।
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रययौ युद्धलालसः ॥ १
चतुश्चक्रेण यानेन त्रिनल्वप्रतिमेन तु ।
युक्तेनाश्वैर्महावीर्यैः सिंहवक्त्रैरजिह्मगैः ॥ २
भीमगम्भीरनादेन नेमिघोषेण वीर्यवान् ।
चालयन्वसुधां सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ ३
विनर्दमाना दैत्यौघा अनुह्लादं ययुः शुभाः ।
शतं शतसहस्राणां रथानां हेममालिनाम् ॥४
परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः ।
विविधायुधहस्तास्ते शूलमुद्गरपाणयः ॥ ५

सुवर्णजालनिर्मुक्तैर्वज्रैश्च समलंकृताः ।
रथैश्चित्रैश्च कवचैः सज्जमाना महासुराः ॥ ६
तदा विशालोच्छ्रितशैलरूपे
बभौ रथे काञ्चनचित्रिताङ्गे ।
दैत्याधिपः सत्त्वबलानुरूपे
समास्थितस्तत्प्रतिमे सुरूपे ॥ ७
विरोचनश्च बलवान्वैश्वानरसमद्युतिः ।
महता रथवंशेन सर्वास्त्रकुशलः शुचिः ॥ ८
व्यूहानां विनियोगज्ञो ज्ञानविज्ञानतत्त्ववित् ।
बलेः पिता सुरवरः सुराणामिव वासवः ॥९

---

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

१ ख. °यो दैत्यानां रथयूथपः । आ° ।

५१

अनुह्लादश्चेति ॥ १ ॥ त्रिनल्वा द्वादशशतहस्तोच्छ्राया प्रतिमा यस्य तेन ॥ २ ॥

सर्वायुधसमोपेतं किङ्किणीजालभूषितम् ।
युक्तानां वाजिमुख्यानां सहस्रेणाशुगामिनाम्
रथमारुह्य दैत्येन्द्रो बभौ मेरुरिवापरः ।
किङ्किणीजालपर्यन्तं गजेन्द्रध्वजशोभितम् ।
संध्याभ्रसमवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् ११

प्रवालजाम्बूनदभक्तिचित्रं
व्यालं विकारान्तरनेमिघोषम् ।
रथं समारुह्य किरीटमाली
ययौ स युद्धाय महासुरेन्द्रः ॥ १२

विरोचनानुजश्चैव कुजंभो नाम दानवः ।
स्यन्दनैर्बहुसाहस्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ १३
वृतो मदबलात्सिक्तैर्दैवारिभिररिंदमः ।
प्रासपाशगदाहस्तैर्दानवैर्युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ १४
स पर्वतनिभाकारो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ।
महता भ्राजमानेन किरीटेन सुवर्चसा ॥ १५
सर्वरत्नविचित्रेण कवचेन च संवृतः ।
महता दीप्तवपुषा रथेनेन्दुरिवांशुमान् ॥ १६
शातकौम्भेन महता तालवृक्षेण केतुना ।
रराज रथमध्यस्थो मेरुस्थ इव भास्करः १७

रणपटुरतिवीर्यसत्त्वबुद्धिः
सुरसमराभिमुखः प्रयाति तूर्णम् ।
असुरगणसमावृतः कुजम्भ-
स्त्रिदशगणैरिव वृत्रहामरेन्द्रः ॥ १८

असिलोमा च तत्रैव दानवः पर्वतायुधः ।
दारुणं वपुरास्थाय दारुणो दारुणाननः ॥ १९
रौद्रः शकटचक्राक्षो महाकायो महाबलः ।
कृष्णवासा महादंष्ट्रः किरीटी लोहिताननः ॥
वृतो दैत्यसहस्रैर्गिरिपादपयोधिभिः ।
नानारूपधरैर्दैत्यैस्त्रिदशशत्रुभिः ॥ २१

ते शूलहस्ता गगने चरन्त
इतस्ततस्तोयदवृन्दतुल्याः ।
खं छादयन्तस्तपनीयनिष्का
यथोन्नताः प्रावृषि कालमेघाः ॥ २२

अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः ।
देवशत्रुर्महाकायस्ताम्रास्यो निर्नतोदरः ॥ २३
दीप्तजिह्वो हरिश्मश्रुरूर्ध्वरोमा महाहनुः ।
नीलाङ्गो लोहितमुखः किरीटी लोहिताम्बरः॥
आजानुबाहुर्विकृतः श्वेतदंष्ट्रो विभीषणः ।
महामायाधरो भीमो हेमकेयूरभूषणः ॥ २५
महता मणिचित्रेण कवचेन तु संवृतः ।
हेममालाधरो रौद्रश्चक्रकेतुरमर्षणः ॥ २६
किंकिणीशतसंघुष्टं तपनीयविभूषितम् ।
युक्तं हयसहस्रेण रक्तध्वजपताकिनम् ॥ २७
रथानीकेन महता युद्धायाभिमुखो ययौ ।
दिव्यं स्यन्दनमास्थाय दैत्यानां नन्दिवर्धनः

तपितकनकबिंदुपिंगलाक्षो
दितितनयोऽसुरसैन्ययुद्धनेता ।
विकसितकमलाभचारुचक्षुः
सितदशनः शुशुभे रथासनस्थः ॥२९

एकचक्रस्तु तत्रैव सूर्यचक्र इवोदितः ।
कालचक्रसमो रौद्रश्चक्रायुध इवोद्यतः ।
सर्वायसमयं दिव्यं रथमास्थाय भासुरम् ॥ ३०
वृतो दैत्यगणैर्दृप्तैः कालायसशिलायुधैः ।
तस्याशीतिसहस्राणि रथिनां चित्रयोधिनाम्
सर्वे कालान्तकप्रख्या रुधिराक्षा महाबलाः ।
आयसैः काञ्चनैश्चैव सन्नद्धा वरवर्मिणः॥३२
व्यराजन्तान्तरिक्षस्था नीला इव पयोधराः।
[ संदष्टौष्ठपुटा घोरा महाकाया महासुराः ।
वधाय सुरसैन्यस्य सन्नह्यन्त महाबलाः ॥ ]
सर्वे कालान्तकप्रख्या धीराः समरदुर्जयाः३३
सागरोदरगम्भीरा नीलवक्त्रा दुरासदाः ।
रेजुर्यान्तोऽसुरवरा वेलातीता इवार्णवाः॥३४

ते भीममायाः सुसमृद्धकायाः
किरीटिनः काञ्चनभूषिताङ्गाः ।
ययुस्तदा स्वायुधदीप्तहस्ता
नभः सपक्षा इव पर्वतेन्द्राः ॥ ३५

संदिष्टो बलिपुत्रेण वृत्रभ्राता महासुरः ।
वधाय सुरसैन्यस्य संनह्यस्वेति वीर्यवान्॥३६
हेमताली महादंष्ट्रः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ।
रक्तमाल्याम्बरधरश्चण्डः समरदुर्जयः ॥ ३७
सुमहावृत्तनयनः स किरीटी धनुर्धरः ।
प्रभिन्न इव मातङ्गः शार्दूलसमविक्रमः ॥ ३८
महातालनिभं चापं तथा रुचिरसायकम् ।
विस्फारयन्महावेगं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम् ३९

भिन्नाञ्जनचयप्रभः कज्जलगुटिकागर्भवत् कृष्णः ॥ १५ ॥ तपनीयनिष्काः सुवर्णमयपदकालंकाराः ॥ २२ ॥

१ ख. °त्रं व्यालम्बिमुक्ताफलशोभितं च । रथं स° । २ ख. सर्वायुधमयं दि° । ३ ख. नेदुर्या° ।

रथेन खरयुक्तेन ध्वजेन भुजगेन ह ।
शुशुभे स्यन्दनस्थः स सन्ध्यागत इवांशुमान्
रथैस्तु बहुसाहस्रैर्हेमपट्टविभूषितैः ।
कूटमुद्गरसंपूर्णैर्जलपूर्णैरिवाम्बुदैः ।
स दैत्येन्द्रोऽभिचक्राम तस्मिन्युद्ध उपस्थिते
पवनसमगतिर्विशालवक्षा
विकसितपङ्कजचारुगर्भगौरः ।
प्रवररथगतो ययौ स तूर्णं
त्रिदशगणैरभिलक्षितप्रभावः ॥ ४२
सिंहिकातनयश्चैव राहुर्नाम महासुरः ।
विकटः पर्वताकारः शतशीर्षो शतोदरः ॥४३
पीतमाल्याम्बरधरो जाम्बूनदविभूषितः ।
स्निग्धवैडूर्यसंकाशः पद्मपत्रनिभेक्षणः ॥ ४४
सर्वकाञ्चनसंयुक्तं मणिजालपरिष्कृतम् ।
पताकाशतसंकीर्णं युक्तं परमवाजिभिः ॥ ४५
आरुरोह रथं दिव्यं दैत्यः परमवीर्यवान् ।
ननाद च महानादं कम्पयन्वसुधातलम् ॥४६
मयेन विहितो दिव्यस्तस्य केतुर्हिरण्मयः ।
मयूरपक्षसंकाशं कवचं चायसं महत् ॥ ४७
भीमवेगरवैश्चान्यै रथैर्दिव्यैः शुभासुरैः ।
नानाप्रहरणाकीर्णैः सेव्यमानो महाबलः ४८
असुरगणपतिर्गजेन्द्रगामी
अतिरभसगतिर्महासुराणाम् ।
अरिगणमभितो विभुः प्रयातो
गिरिवरमस्तमिवांशुमान्सुदीप्तः॥४९
विप्रचित्तिस्तु तत्रैव दनोर्वंशविवर्धनः ।
कश्यपस्यात्मजः श्रीमान्ब्रह्मणस्तेजसा समः॥
यष्टा क्रतुसहस्राणां वेदवित्तपसाऽन्वितः ।
स्वयंभुवा दत्तवरो वरदश्च स्वयंभुवः ।
ईशित्वं च महत्त्वं च वशित्वं च महाद्युतेः ५१
ऐश्वर्यगुणसंपन्नो ब्रह्मेव स्वयमूर्जितः
सार्धं पुत्रैश्च पौत्रैश्च सन्नह्यत महाबलः ॥ ५२
सर्वे मायाधराः शूराः कृतास्त्रा रणदुर्जयाः ।
सर्वे कमलवर्णाभा हेमकूटोच्छ्रयोच्छ्रयाः ५३
सर्वे रजतसंकाशाः कैलासशिखरोपमाः ।
मयेन निर्मितास्तेषां सर्वे मायामया रथाः ५४
विचरन्तो व्यराजन्त शारदा इव तोयदाः ।
सर्वे हंसध्वजाः श्वेताः श्वेतदण्डसमुच्छ्रयाः॥
श्वेताम्बरधरा दैत्याः श्वेतमाल्यविभूषिताः ।
श्वेतातपत्राः सर्वे ते श्वेतकुण्डलमण्डिताः ॥
मुक्ताहारवृतोरस्का भान्ति नाकेश्वरा इव
महाग्रहनिभाकाराः शत्रूणां लोमहर्षणाः ५७
रक्तचित्राम्बरधराश्चित्राभरणभूषिताः ।
त्रैलोक्यविजयं नाम रथमास्थाय वीर्यवान्
कैलासशिखराकारमष्टनल्वायतान्तरम् ।
युक्तं वाजिसहस्रेण सितेन शिववर्चसा ।
पताकाशतसंछन्नं नानायुधविकल्पितम् ॥५९
हिमांशुकुन्दप्रतिमं विशालं
सितातपत्रं दनुजेश्वरस्य ।
विभाति तस्योपरि धार्यमाणं
श्वेताद्रिमूर्धोपगतः शशाङ्कः ॥ ६०
केशी दानवमुख्यस्तु जिह्मस्ताम्राक्षदर्शनः ।
नीलमेघचयप्रख्यः कालः पुरुषविग्रहः ॥ ६१
महाग्रहनिभाकारः शत्रूणां लोमहर्षणः ।
चित्रमाल्याम्बरधरो रक्ताभरणभूषितः ॥ ६२
शताक्षः शतबाहुश्च हरिश्मश्रुर्महाबलः ।
शङ्कुकर्णो महानादो वपुषा घोरदर्शनः॥ ६३
युक्तं महिषकैर्दिव्यैर्घण्टाकोटिकृतस्वनम् ।
महावारिधराकारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ ६४
ध्वजेनोष्ट्रेण महता नीलकेसरवर्चसा ।
नानारागविचित्राभिः पताकाभिर्विभूषितम्
द्विपञ्चाशत्सहस्राणि रथानामुग्रवर्चसाम् ।
ययुस्तस्यासुरेन्द्रस्य प्रयातस्य सुरान्प्रति ॥६६
भान्ति भिन्नाञ्जननिभाः प्रयातस्य महात्मनः
दंष्ट्रार्धचन्द्रवदनाः सबलाका इवाम्बुदाः ६७
तत्तस्य वैडूर्यसुवर्णचित्रं
विद्युत्प्रभं भास्कररश्मितुल्यम् ।
किरीटमाभात्यसुरोत्तमस्य
दावाग्निदीप्तं शिखरं यथाद्रेः ॥ ६८
वृषपर्वाऽसुरश्चैव श्रीमांश्च सुरसूदनः ।
आरुरोह रथं दिव्यं मेरुशृङ्गमिवांशुमान् ॥ ६९
प्रवालजाम्बूनदचित्रकूबरं
महारथं भारसहं महार्हम् ।
स्वलंकृतं राजतहेमकुण्डलं
गभस्तिनक्षत्रतडिन्निकाशम् ॥ ७०

---

वरदश्च स्वयंभुवः ब्रह्मणोऽपि मान्य इत्यर्थः । लोकान्मा नाशयेति ब्रह्मणा प्रार्थितः सन् तस्मै वरद इत्यर्थः ॥५१॥ सन्नह्यत समनह्यत अडभावः ॥ ५२ ॥

---

१ ख. शूलमु० । २ ख. ०तनेमिम० ।

केयूरयुक्तांगदनद्धबाहुः
सहस्रतारेण च चर्मणा सः।
साङ्ग्रामिकैराभरणैश्च चित्रै-
र्मध्याह्नसूर्यप्रतिमो बभूव ॥ ७१

महाबलो बद्धतलाङ्गुलित्रो
बलोत्कटः किंशुकलोहिताक्षः।
प्रगृह्य चामीकरचारुचित्रं
चापं स्थितो वृत्तविशालनेत्रः ॥ ७२

महासुरेन्द्रश्च महासुरैर्वृतो
बलिस्तदा स्यन्दनमारुरोह।
वैडूर्यहेमोपचितं विशालं
विद्युत्प्रभं षोडशनल्वमात्रम् ॥ ७३

युक्तं सहस्रेण दितेः सुतानां
गजाननानां विकृताकृतीनाम्।
चामीकरोरःस्थलभूषितानां
प्रनर्दतां प्रावृषि चाम्बुदानाम् ॥ ७४

महारथं देवरथप्रकाशं
सहस्रमायेन मयेन सृष्टम्।
ईहामृगाक्रीडितभक्तिचित्रं
दिव्यं रथं दिव्यरथानुयातम् ॥ ७५

सकिङ्किणीकं विमलं सुविस्तृतं
हिरण्मयैः पद्मशतैरलंकृतम्।
अभ्याददे वैजयिकीं जयाय
स्रजं बलिर्हैमविचित्रपुष्पाम् ॥ ७६

आबध्य मालां प्रभया विचित्रां
बलिस्तदा भाति भुजैर्विशालैः।
रराज तैः सर्वसमृद्धियुक्तै-
र्महार्चिषा सूर्य इवाम्बरस्थः ॥ ७७

स्रजं तदाबध्यति चास्य दुर्गां
सर्वासुराणामिव हारभूताम्।
वैरोचनिः सर्वश्रियाऽभिजुष्टो
विभ्राजतेऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥ ७८

मेरोस्तटैर्वा ज्वलनप्रकाशै-
रादित्यसंयुक्तमिवाभ्रजालम्।
प्रासाश्च पाशाश्च हिरण्यबद्धा
वर्माणि खड्गाश्च परश्वधाश्च ॥ ७९

धनूंषि वज्रायुधसप्रभाणि
दिव्या गदा वज्रमुखाश्च शक्त्यः।
दिव्याश्च खड्गा विशिखाश्च दीप्ता
नाराचपूर्णा विविधाश्च तूणाः ॥ ८०

धृता रथे दैत्यवृषस्य तस्य
चकाशिरे प्रज्वलिता यथोल्काः।
ते चामरापीडधराः सुदंष्ट्राः
सुवर्णमुक्तामणिहेमचित्राः ॥ ८१

वीजयन्ति वालव्यजनैर्विनीता
महासुराः स्यन्दनवेदिकास्थाः।
अयःशिरा अश्वशिरा दुरापः
शिबिर्मतङ्गो विशिराः शताक्षः ॥ ८२

अयो निकुम्भः क्रथनश्च दानवो
ररक्षिरे ते दश दानवाधिपम्।
पुरश्चराश्चैव सहस्रशोऽसुराः
पदातयो दानवराजरक्षिणः ॥ ८३

शतघ्निचक्राशनिशक्तिपाणयः
प्रजग्मुरग्रेऽनिलतुल्यवेगिनः।
घण्टाः सुशब्दास्तपनीयबद्धा
आडम्बरा गर्गरडिण्डिमाश्च ॥ ८४

महारवा दुन्दुभयश्च नेदु
रथप्रयाणे दितिजेश्वरस्य।
तस्योत्थितः काञ्चनवेदिकाढ्यो
हिरण्मयो दिव्यमहापताकः ॥ ८५

महाध्वजो वै तपनीयनद्धो
रराज वीरस्य यथा विवस्वान्।
समुच्छ्रितं काञ्चनमातपत्रं
स्रक्काञ्चनी वक्षसि चास्य भाति ८६

समंततश्चाप्यसुराश्चरन्ति
दैत्यर्षयः प्राञ्जलयो जयन्ति।
पुरोहिताः शत्रुवधे समाहिता-
स्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः॥ ८७

जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः।
स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ८८

बलिर्द्विजेभ्यः प्रयतः प्रयच्छ-
न्विराजतेऽतीव यथा धनेशः।
सहस्रसूर्यो बहुकिङ्किणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ॥ ८९

सहस्रचन्द्रायुततारकश्च
रथो बलेरग्निरिवावभाति।
तमास्थितो दानवसंगृहीतं
महाबलः कार्मुकधृक् सबाणः॥ ९०

उद्वर्तयिष्यंस्त्रिदशेन्द्रसेना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
स वेगवान्वीररथौघसंकुलः
प्रयाति देवान्प्रति दैत्यसागरः ॥ ९१
महार्णवो वीचितरंगसंकुलो
यथा जलौघैर्युगसंशये तथा।
त्रैलोक्यवित्रासकरैर्वपुर्भि-
स्तान्यग्रतो यान्ति बले रथस्य।
महाबलान्युच्छ्रितकार्मुकाणि
सपर्वतानीव वनानि राजन्॥ ९२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने बलेरुद्योगे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## देवसैन्यानां युद्धोद्योगः।

## ५२

वैशम्पायन उवाच।
श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो जनमेजय।
भूयस्त्रिदशसैन्यस्य शृणु विस्तरमादितः ॥ १
सुराधिपस्तु भगवानाज्ञापयत वै सुरान्।
मरुद्गणांस्तथादित्यान्विश्वान्देवांश्च वासवः २
वसूनष्टौ भृशं सर्वान्यक्षरक्षोमहोरगान्।
विद्याधरगणान्सर्वान्गन्धर्वांश्च महाबलान् ३
महार्णवांश्च शैलांश्च तथा रुद्रान्महौजसः।
यमवैश्रवणौ चोभौ वरुणं च जनाधिपम् ॥ ४
ये तु सिद्धा महात्मानः पितरश्च मनस्विनः।
राजर्षयश्च शतशो योगसिद्धास्तथैव च ॥ ५
त्रिदशाज्ञापकः शक्र आज्ञापयति वीर्यवान्।
भवन्तो दैत्यनाशाय सन्नह्यन्तामिति प्रभुः॥६
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा ततः सर्वे दिवौकसः।
सन्नह्यन्त महात्मानः शक्रस्य समविक्रमाः॥ ७
नानाकवचिनः सर्वे विचित्रकवचध्वजाः।
नानायुधोद्यतकरा मत्ता इव महागजाः ॥ ८
केचिदारुरुहुर्व्याघ्रान्केचिदारुरुहुर्गजान्।
केचिदारुरुहुर्नागान्केचिदारुरुहुर्वृषान् ॥ ९
हरिनेत्रो हरिश्मश्रुर्हरिर्दैरावृतध्वजम्।
रथं हरिहयैर्युक्तं स प्रायात्समरं प्रति ॥ १०
आदित्यवर्णं विरजं सुधौतं
त्वष्ट्रा स्वयं निर्मितमीश्वरार्थम्।
जालैश्च जाम्बूनदभक्तिचित्रै-
रलंकृतं काञ्चनदामभिश्च ॥ ११
सकूबरोपस्करबन्धुरेषं
विद्युत्प्रभाभिः कृतमाभिताम्रम्।
कैलासशृङ्गोपममिन्द्रयानं
सुचारुचारुप्रतिचक्रचक्रम् ॥ १२
तारासहस्रैः खचितं ज्वलद्भि-
र्दैवाहेमाल्यार्चितसर्वदेहम्।
समुच्छ्रितं श्रीध्वजमक्षयाक्षं
प्रज्वाल्यमानं पुरुषोत्तमेन ॥ १३
आस्थाय तं भास्करमाशुवेगं
शचीपतिर्लोकपतिः सुरेशः।
वज्रस्य धर्ता भुवनस्य गोप्ता
ययौ महात्मा भगवान्महेन्द्रः ॥ १४
आमुच्य वर्माथ सहस्रतारं
हुताशनादित्यसमप्रभावम्।
सूर्यप्रभं चाममुचे किरीटं
मालां च जाम्बूनदवैजयन्तीम् ॥ १५
त्वष्ट्रा कृतं भास्कररश्मिदीप्तं
सुतीक्ष्णघोरामलतीव्रधारम्।
महासुराणां रुधिरार्द्रमुग्रं
प्रगृह्य वज्रं शतपर्वभीमम् ॥ १६

---

महाबलानि महान्ति सैन्यानि ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

**श्रुतस्त इति।** रथम् आरुरोहेति शेषः ॥१०॥आभिताम्रम् ईषत्सर्वतस्ताम्रं सुचारुभ्योऽपि चारु यानं रथं प्रतिचक्रम् वैरिसमूहस्यापि चक्रम् पातालं ज्ञापक गच्छतेत्येवमादि ॥१२॥ जाम्बूनदमयी चासौ वैजयन्ती आपादलम्बिनी तां जाम्बूनदवैजयन्तीम् ॥ १५ ।

महाशनी द्वे च महाग्रहाभे
दीप्तामभोघां च स शक्तिमुग्राम् ।
चक्रं तथैन्द्रं सुमहत्प्रतापं
प्रगृह्य शक्रः प्रययौ रणाय ॥ १७

सहस्रदृग्भूतपतिः सनातनः
सनातनानामपि यः सनातनः ।
खड्गं च देवाधिपतिर्महात्मा
वैयाघ्रमादाय च चर्म चित्रम् ॥ १८

क्षीरोदधिक्षोभसमुच्छ्रितानि
पुरामृतादुत्तमभूषणानि ।
देवासुराणां समनिर्जितानि
सोमार्कनक्षत्रतडित्प्रभाणि ॥ १९

दत्तान्यदित्या मणिकुण्डलानि
युद्धे प्रयातस्य सुरेश्वरस्य ।
तैर्भूषितो भाति सहस्रचक्षु-
रुद्द्योतयन्वै विदिशो दिशश्च ॥ २०

हरिः प्रभुर्नेत्रसहस्रचित्रो
विभाति युद्धाभिमुखः सुरेन्द्रः ।
यथा सितं शारदमभ्रकल्पं
नभस्तलं ह्यृक्षसहस्रचित्रम् ॥ २१

स्तुवन्ति यान्तं विपुलैर्वचोभि-
र्जयाशिषा चोर्जितसत्त्ववीर्यम् ।
अत्रिर्वसिष्ठो जमदग्निरुर्वौ
बृहस्पतिर्नारदपर्वतौ च ॥ २२

तमन्वयुर्देवगणा महेन्द्रं
प्रयान्तमादित्यसमानवर्चसम् ।
विश्वे च देवा मरुतस्तथैव
साध्यास्तथादित्यगणाश्च सर्वे ॥ २३

ते देवराजस्य पुरंदरस्य
हयाश्च ये मातलिसंगृहीताः ।
प्रयान्ति देवेश्वरमुद्वहन्तो
नभस्तलं पद्भिरिवाक्षिपन्तः ॥ २४

ब्रह्मर्षयश्चैव महर्षयश्च
राजर्षयश्चाक्षयपुण्यलोकाः ।
सर्वेऽनुजग्मुः सहसा ज्वलन्तं
तेजोन्वितं शक्रममित्रसाहम् ॥ २५

प्रगृह्य शूलांश्च परश्वधांश्च
दीप्तानि चापान्यशनीर्विचित्राः ।
चर्माणि चामुच्य हिरण्मयानि
प्रयान्ति सूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २६

तथा कुबेरोऽश्वसहस्रयुक्तं
श्रेष्ठं रथं सर्वसहं महार्हम् ।
दिव्यं समारुह्य रणाय यातो
धनेश्वरो दीप्तगदाग्रहस्तः ॥ २७

निशाचराः पावकधूमकाया
रक्षोवृषा रुद्रसखस्य तस्य ।
विशालनानायुधदीप्तहस्ता
यान्त्यग्रतो वैश्रवणस्य राज्ञः ॥ २८

ते लोहिताक्षाः परिवार्य देवं
व्रजन्ति भिन्नाञ्जनचूर्णवर्णाः ।
यक्षोत्तमा यक्षपतिं धनेशं
रक्षन्ति वै पाशगदासिहस्ताः ॥ २९

पुण्यः प्रभुः प्राणपतिर्जितात्मा
वैवस्वतो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
तडिद्गुणाभं शतवाजियुक्तं
रथं समारोहत सूर्यकल्पम् ॥ ३०

तं लोकपालं पितरोऽनुजग्मु-
र्विविक्तपापा ज्वलितास्तपोभिः ।
सर्वे च भूता भुवनप्रधाना
नानायुधव्यग्रकराः सुभीमाः ॥ ३१

दण्डं महास्त्रं परिगृह्य देवो
लोकाङ्कुशं निग्रहनिश्चितार्थम् ।
हिरण्मयानां कमलोत्पलानां
मालां मनोज्ञामवसज्य कण्ठे ॥ ३२

स्थितोऽस्थिमेदामिषलोहितार्द्रं
सर्वासुराणां निधनं विरूपम् ।
तेजोमयं मुद्गरमुग्ररूपं
विकर्षमाणोऽरुणधूम्रनेत्रः ॥ ३३

समन्वितो व्याधिशतैरनेकै-
र्यैर्याहरिश्मश्रुरुदारसत्त्वः ।
महासुराणां निधनाय बुद्धिं
चक्रे तदा व्याधिपतिः कृतान्तः ॥ ३४

---

विविक्तपापाः पृथग्दूरीकृतदोषाः॥ ३१ ॥

---

१ ख. श्रम° । २ ख. °तं विकांक्षन् । ते°

ततस्त्रिशीर्षैर्भुजगैर्बृहद्भि-
र्युक्तं रथं हेमचितं महात्मा ।
आस्थाय कुन्देन्दुनिभं जलेशो
ययौ रणायासुरदर्पहन्ता ॥ ३५

वैडूर्यमुक्तामणिभूषिताङ्ग-
स्तेजोमयः पाशगृहीतहस्तः ।
महासुराणां निधनाय देवः
प्रयाति रूप्याङ्गदबद्धबाहुः ॥ ३६

[ अन्वीयमानो जलदेवताभि-
र्निषेव्यमाणो जलजैश्च सत्त्वैः ।
संस्तूयमानश्च महर्षिवृन्दैः
संपूज्यमानश्च महाभुजङ्गैः ॥ ]

कैलासशृङ्गप्रतिमोऽप्रमेयः
समुद्रनाथोऽमृतपो महात्मा ।
महोरगैः स्वैस्तनयैः सुगुप्तो
ययौ रथेनार्कसमप्रभेण ॥ ३७

युद्धायतं यान्तमदीनसत्त्वं
नभस्तले चन्द्रमिवातिकान्तम् ।
पश्यन्ति भूतानि महानुभावं
संहृष्टरोमाणि कृताञ्जलीनि ॥ ३८

धातार्यमांशोऽथ भगो विवस्वा-
न्पर्जन्यमित्रौ च शशी च देवः ।
त्वष्टा तथैवोर्जितविश्वकर्मा
पूषा च साक्षाद्दिवि देवराजः ॥ ३९

सौरच्छदैः सध्वजकिङ्किणीकै-
र्वैडूर्यनिष्कैश्चितहेमकण्ठैः ।
हयैर्वरैः शक्ररथप्रकाशै-
र्युक्तान्रथानारुरुहुः सुरास्ते ॥ ४०

दिवाकराकारनिभानि केचि-
द्धुताशनार्चिःप्रतिमानि केचित् ।
निशाकरांशुप्रतिमानि केचि-
त्तडिद्गणोद्द्योतनिभानि केचित् ॥ ४१

नीलांशुमेघप्रतिमानि केचि-
त्कार्ष्णायसाकारनिभानि केचित् ।
वर्माणि दिव्यानि महाप्रभाणि
त्वष्ट्रा कृतान्युत्तमभानुमन्ति ॥ ४२

आमुच्य मालाश्च सुवर्णपुष्पाः
प्रयान्ति तोयानिलतुल्यवेगाः ।
द्वावश्विनौ चैव महानुभावौ
रूपोत्तमौ धर्मभृतां वरिष्ठौ ॥ ४३

रथं समारुह्य सुवर्णचित्रं
रणं गतौ काञ्चनतुल्यवर्णौ ।
भानोः सुता वै वसवश्च सर्वे
बलोत्कटा दैत्यवधाय देवाः ॥ ४४

रथांश्च नागांश्च महाप्रमाणा-
नास्थाय जग्मुः सुशुभास्त्रहस्ताः ।
रुद्राश्च सर्वेऽरुणधूमवर्णाः
श्वेतैर्युगैर्गोपतिभिर्बृहद्भिः ॥ ४५

महौजसः सर्वगुणोपपन्ना
दीप्तात्मनो भाभिरिव ज्वलन्तः ।
नानायुधव्यग्रकरैर्भुजैस्ते
लोकान्समस्तानिव निर्दहन्तः ॥ ४६

ययुः ससैन्यास्तपनीयनद्धाः
सविद्युतस्तोयधरा यथैव ।
विश्वे च देवास्तपसा ज्वलन्तो
वीर्योत्तमाः सूर्यमरीचिवर्णाः ॥ ४७

ययुः ससैन्या युधि दुर्निवार्या
बलोत्कटाः पद्मसहस्रमालाः ।
रथैः सुयुक्तैस्तपनीयवर्णै-
र्वैडूर्यमुक्तामणिदामचित्रैः ॥ ४८

नानाविधाकारसमाकुलास्ते
पारिप्लवैश्चैव सितातपत्रैः ।
तेजोमयैः काञ्चनचारुचित्रैः
सुनिर्मलैः पावकसंनिभास्ते ॥ ४९

उरश्छदैः सध्वजकिङ्किणीकै-
र्हयैश्च वायोः समवेगवद्भिः ।
दिशां गजैश्चैव महाबलैस्तैः
कैलासशृङ्गप्रतिमैर्महद्भिः ॥ ५०

ततस्त्रीति त्रयमेकवाक्यम् ॥ ३५ ॥ निभानि वर्माणीति अग्रिमेण संबन्धः ॥ ४१ ॥ उरः छादयन्ति तैः आरूढानां पुंसाम् अत्युच्छ्रितकंधरत्वेन वक्षस आच्छादकैः ॥ ५० ॥

१ ख. मनोः सु॰ । २ ख. ॰नजालार्चि॰ ।

प्रजग्मुरुग्रायुधचापहस्ता-
श्चतुर्युगान्ते ज्वलिता इवोल्काः ।
साध्याश्च देवाः सुमहाप्रभावाः
स्वाधीनचक्राः प्रतिदीप्तवक्त्राः ।
प्रयान्ति जाम्बूनदभूषिताङ्गा
गाङ्गौघमात्रैर्गगनैर्बलौघैः ॥ ५१

विद्योतयन्तो विदिशो दिशश्च
महाबलास्ते जयतां वरिष्ठाः ।
वरिष्ठपुष्टाष्ठभुजाः सुदृप्ता
वैश्वानरार्कप्रतिमप्रभावाः ॥ ५२

ते ब्रह्मविद्भिश्च समस्यमानाः
संपूज्यमानाश्च सुरैः सशक्रैः ।
गन्धर्वसंघैरनुगम्यमाना
वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥ ५३

वैडूर्यवज्रस्फटिकाग्रचित्रै-
र्ध्वजैः सुवर्णैश्च परिष्कृतानाम् ।
रूपं बभौ चोत्कटभूषणानां
दैत्येन्द्रनाशाय विभूषितानाम् ॥ ५४

आत्मप्रभाभिश्च रणोत्कटाभि-
र्वर्मप्रभाभिश्च तमोनुदाभिः ।
ध्वजोत्तमाभिः स्वशरीरभाभि-
र्महाप्रभाभिश्च महोज्ज्वलाभिः ॥ ५५

विभान्ति ते देववराः ससाध्याः
प्रध्मातशंखस्वनसिंहनादाः ॥ ५६

महारथस्थास्त्रिदिवौकसस्ते
महाबलाः शत्रुबलं प्रयान्ति ।
महास्त्रहस्ता ययुरुग्रकाया
महासुराणां निधनाय देवाः ॥ ५७

तथैव सर्वे महतोऽतिवीर्या
बलोत्कटास्ते समरं प्रतीताः ।
ययुर्महामेघसमानवर्णा-
श्चक्रायुधास्तोयदनादनादाः ॥ ५८

महेन्द्रकेतुप्रतिमा महाबलाः
प्रगृह्य सर्वासुरसूदनां गदाम् ।
रणोत्कटा लोहितचन्दनाक्ताः
सहेममाल्याम्बरभूषिताङ्गाः ॥ ५९

ते युद्धशौण्डाः सभुजास्त्रवीर्या
बलोत्कटाः क्रोधविलोडिताक्षाः ।
ययुः सजाम्बूनदपद्ममाला
यथेष्टनानाविधकामरूपाः ।
खड्गप्रभाश्यामलितांसपीठाः
पुरंदरं वै परिवार्य देवाः ॥ ६०

वैडूर्यचामीकरचारुरूपा-
ण्याबध्य गात्रेषु महाप्रभाणि ।
वर्माणि दैत्यास्त्रनिवारणानि
प्रयान्ति युद्धाय सपत्नसाहाः ॥ ६१

तैरुत्थितैः काञ्चनवेदिकाढ्यै-
र्वरध्वजैर्भास्कररश्मिवर्णैः ।
ययौ सुराणां पृतनोग्रभासा
समुन्नदन्ती युधि सिंहनादान् ॥ ६२

इत्येवमुक्तं त्रिदिवेश्वरस्य
सैन्यं तदासीत्सुमहत्प्रभावम् ।
युद्धं प्रयातस्य जयावहस्य
वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## देवासुरयुद्धाद्यारंभे सनकाद्यागमनम् ।

## ५३

वैशम्पायन उवाच ।
ततः प्रवृत्तोऽसुरदेवविग्रह-
स्तदद्भुतो भाति सुरासुराकुलः ।
वेलामतिक्रम्य युगान्तकाले
महार्णवान्योन्यमिवाश्रयन्तः ॥ १

स्वाधीनचक्रा आत्मायत्तसैन्याः । गगनैर्गगनवदनन्तैः । "गाध हसने" इत्यस्य वा धातोर्ल्युटि पृषोदरादित्वेन धकारलोपे रूपम् । हसद्भिरित्यर्थः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३

ततः महार्णवा इवेति योजना ॥ १ ॥

१ ख. "ष्टपुष्टाष्टभु" । २ ख. °र्वे मरुतोऽति° ।

नानायुधोद्द्योतविदीपिताङ्गा
महाबला व्यायतकार्मुकास्ते ।
रणोत्सुका वारणहस्तहस्ताः
सुदुर्जयास्तोयदनादनादाः ॥
विस्फारयन्तः सहसा धनूंषि
चक्राणि चादित्यसमप्रभाणि ।
समुत्क्षिपन्तो ह्यशनींश्च घोरान्
खड्गांश्च ते वज्रमुखाश्च शक्तीः ॥ ३
महागदाः काञ्चनपट्टनद्धा-
स्तथायसान्कार्मुकमुद्गरांश्च ।
शूलांश्च वृक्षांश्च विगृह्य दीप्ता-
न्नदन्ति शूराः शतशो रणस्थाः ॥ ४

वैशम्पायन उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिनिघ्नताम्
द्वन्द्वयुद्धान्यवर्त्तत देवानां दानवैः सह ॥ ५
मरुतां पञ्चमो यस्तु स बाणेनाभ्ययुध्यत ।
महाबलः सुरवरः सावित्र इति यं विदुः ॥ ६
अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः ।
सोऽयुध्यत रणेऽत्युग्रो ध्रुवेण वसुना सह ७
नमुचिश्चासुरश्रेष्ठो धरेण सह युध्यत ।
प्रवरौ विश्वकर्माणौ ख्यातौ देवासुरेश्वरौ ८
पुलोमा तु महादैत्यो वायुना सह युध्यत ।
ससैन्यः पर्वताकारो रणेऽयुध्यत दंशितः ॥९
हयग्रीवस्तु दितिजः सह पूष्णा त्वयुध्यत ।
शूरेणामितवीर्येण भास्कराकारवर्चसा ॥ १०
शम्बरस्तु महादैत्यो महामायो महासुरः ।
भगेनायुध्यत तदा सहितो युद्धदुर्मदः ॥ ११
शरभः शलभश्चैव दैत्यानां चन्द्रभास्करौ ।
प्रयुद्धौ सह सोमेन शैशिरास्त्रेण धीमता १२
विरोचनस्तु बलवान्बलैर्बलवतः पिता ।
विष्वक्सेनेन साध्येन देवेन च स युध्यत १३
कुजम्भस्तु महातेजा हिरण्यकशिपोः सुतः ।
अंशेनायुध्यत तदा प्रासप्रहरणेन वै ॥ १४
असिलोमा तु बलिना मारुतेन समं विभो ।
तदायुध्यत दीप्तास्यो विकृतः पर्वतायुधः १५
अनायुषाया पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः ।
अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां सह युध्यत संयुगे १६
एकचक्रस्तु दितिजश्चक्रहस्तो दुरासदः ।
बलस्तु मधुपिङ्गाक्षो वृत्रभ्राता महासुरः ।
मृगव्याधेन रुद्रेण सहायुध्यत वीर्यवान् ॥१८
राहुस्तु विकृताकारः शतशीर्षो महोदरः ।
अजैकपादेन रणे सहायुध्यत दंशितः ॥ १९
केशी तु दानवश्रेष्ठः प्रावृट्कालाम्बुदप्रभः ।
धनेश्वरेण भीमेन सहायुध्यत संयुगे ॥ २०
वृषपर्वा तु बलिना निकुम्भेन महारणे ।
विश्वेदेवेन विश्वेशः सहायुध्यत वीर्यवान् २१
प्रह्लादस्तु महावीर्यो वीरैः स्वैस्तनयैर्वृतः ।
युयुधे सह कालेन रणे काल इवापरः ॥ २२
अनुह्लादः कुबेरेण धनदेन महारणे ।
गदाहस्तेन युयुधे शोभयंस्त्रिपुवाहिनीम् ॥ २३
विप्रचित्तिस्तु दैतेयो वरुणेन महात्मना ।
प्रवृत्तो वै रणं कर्तुं दैत्यानां नन्दिवर्धनः ॥ २४
बलिस्तु सह शक्रेण सुरेशेन महात्मना ।
युयुधे देवराजेन बलिना बलवान्रणे ॥ २५
शेषा देवाश्च दैत्याश्च जघ्नुरन्योन्यमाहवे ।
विनर्दन्तो महानादान्प्रासासिशरशक्तिभिः॥
अदृश्यन्त महोत्पाता ये प्रोक्ता जगतः क्षये
मारुताः सप्त ते क्षुब्धा व्यशीर्यन्त महीधराः
सप्त चैवोत्थिताः सूर्याः शोषयन्तो महार्णवान्
बहुनाभिद्यत धरा वायुना मथिता यथा ॥ २८
व्युत्थिताश्च महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः।
प्रणेदुः सर्वभूतानि सर्वाः सतिमिरा दिशः ॥
देवानामजयो घोरो दृश्यते कालनिर्मितः ।
घोरोत्पातः समुद्भूतो युगान्तसमये यथा ३०
न ह्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमि-
र्न भास्करोऽदृश्यत रेणुजालैः ।
ववुश्च वातास्तुमुलाः सुधूम्रा
दिशश्च सर्वास्तिमिरोपगूढाः ॥ ३१
एते चान्ये च बहवो दृश्यन्ते देवनिर्मिताः ।
भूमौ तथाऽन्तरिक्षे च महोत्पाताः समंततः
तद्युद्धं देवदैत्यानां भीमानां भीमदर्शनम् ।
अपश्यत गुरुर्ब्रह्मा सर्वैरेव सुरैः सह ॥ ३३
वेदैश्चतुर्भिः साङ्गैश्च विद्याभिश्च सनातनः ।
पद्मयोनिर्वृतः श्रीमान्सिद्धैश्च परमर्षिभिः ३४
नानामणिस्तम्भसहस्रचित्र-
मारुह्य यानं ददृशे स्वयंभूः ।
सुभास्वरं भूतसहस्रयुक्तं
प्रदीप्यमानं वपुषा वरेण ॥ ३५

सुतप्तजाम्बूनदभक्तिचित्र-
मानन्दभेरीशतसंप्रणादम्।
नक्षत्रचण्डांशुभिरंशुमन्तं
वैडूर्यसोमार्कविभूषिताङ्गम्॥ ३६
तमात्मजो वै पुलहं पुलस्त्य-
स्तथा मरीचिर्भृगुरङ्गिराश्च।
ऋक्सामभिः सम्यगभिष्टुवन्तः
सेवन्ति देवं वरदं विमाने॥ ३७
तं पावका लोकगुरुं स्वयंभुवं
सांगाश्च वेदा मखदेवताश्च।
सेवन्ति देवं भुवनेश्वरेशं
भूतानि चान्यानि महानुभावम्॥३८

एते बभूवुश्च महर्षिसंघा
वैश्वानराः पावकयोनयश्च।
सर्वे ययुर्देवपुरोहिताश्च
युद्धोत्सुकाः सर्वसुरासुराणाम्॥३९
योगेश्वराः षट् च दिवाकराभा
विभूषणैर्भूषितसर्वदेहाः।
अन्तर्हिता वै ददृशुर्नभःस्था
नारायणश्चैव नरश्च देवाः॥ ४०
वक्त्रैश्चतुर्वेदधरैश्चतुर्भिः
संपूर्णचन्द्रप्रतिमैः सुकान्तैः।
सर्वा दिशो निस्तिमिराश्चकार
नवोदितोऽसौ शरदीव चन्द्रः॥ ४१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे
सनकादिकागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

## देवासुरयोस्तुमुलयुद्धस्य यज्ञरूपेण वर्णनम्।

## ५४

वैशम्पायन उवाच।

उभयोः सेनयो राजन्भूयो युद्धमवर्तत।
नादेन संचालयतां त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ १
गोमुखाडम्बराणां च भेरीणां मुरजैः सह।
झल्लरीडिण्डिमानां च व्यश्रूयन्त महास्वनाः
प्रवृत्तो युद्धयज्ञस्तु तुमुलो लोमहर्षणः।
रणमध्ये महानादः स्वर्गीयः शूरसंमतः॥ ३
युद्धयज्ञस्य नेताऽभूत्प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
विरोचनस्तथाऽध्वर्युर्युद्धयज्ञप्रवर्तकः॥ ४
होता चैवात्र नमुचिर्वृत्रः स्तोत्रोपकल्पकः।
मन्त्रा दैत्याः समाख्याता यज्ञकर्मणि तत्र वै५
अनुयातश्च पितृभिरधिको वा पराक्रमैः।
येष्टे तत्राभवद्बाणः संयुगे चोपतिष्ठते॥ ६
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं सुदुर्जयम्।
मन्त्रास्तत्राभ्यवर्तन्त साध्वनुह्रादयोजिताः
उद्गाता च मयः श्रीमान्स्थितः शत्रुभयंकरः।
विनदन्दितिजश्रेष्ठो देवानीकं व्यदारयत्॥ ८
बलिस्तु राजा द्युतिमान्स्वय तत्र महासुरः
जाप्यैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वमकरोत्प्रभुः॥ ९
रणाग्निर्ज्वलितो घोरो वैरेन्धनसमीरितः।
हूयते त्वसुरैस्तत्र देवो विष्णुः सुरैः सह॥१०
शङ्खशब्दैः सुतुमुलैर्भेरीणां च महास्वनैः।
उद्घुष्टं विमलं चैव ब्रह्मण्यं सुप्रयुज्यते॥ ११
बलश्च बलकश्चैव पुलोमा च महासुरः।
प्रशस्तं च समं कृत्वा सत्रं सम्यक्प्रचक्रिरे१२

षट् योगेश्वराः १ सनक-२ सनन्दन-३ सनातन-४ सनत्कुमार-५ कपिल-६ जैगीषव्याः॥ ४०॥ इति श्रीहरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

५४

उभयोरिति उभयोर्गोमुखादीनां नादेन प्रोत्साहितयोः सेनयोः॥ १॥ गोमुखादयस्तूर्यविशेषाः॥ २॥ स्तोत्रोपकल्पकः प्रस्तोता॥ ५॥

१ ख. यष्टा वै तत्र बाणस्तु सं°। २ ख. °रो रथवेयां सुसंस्कृतः। हु°।

कल्माषदण्डविमला विपुला रथपङ्क्तयः ।
यूपाश्च समकल्पन्त युद्धयज्ञे महाफले ॥ १३
कर्णनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहिकाः ।
तोमराः सोमकलशा विचित्राणि धनूंषि च ॥
अस्थीन्यत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च
आज्यं च रौद्रं रुधिरं तस्मिन्यज्ञेऽभिहूयते ॥
इध्माः परिधयस्तत्र प्रस्तारा विपुला गदाः ।
हयग्रीवोसिलोमा च राहुः केशी च दानवः॥
विरोचनश्च जम्भश्च कुजम्भश्च महाबलः ।
सदस्यास्तत्र तु मखे विप्रचित्तिस्तु वीर्यवान्
इषवस्तु स्रुवास्तत्र रथाक्षसदृशाः शुभाः ।
धनुष्कोट्यो धनुर्ज्याश्च स्रुवस्तत्र महामखे ॥
प्रतिप्रास्थानिकं कर्म वृषपर्वाऽकरोदिह ।
दीक्षितस्तत्र तु बलिस्तस्य पत्नी महाचमूः १९
शम्बरस्तत्र शामित्रमकरोद्दितिनन्दनः ।
अतिरात्रे महाबाहुर्वितते यज्ञकर्मणि ॥ २०
दक्षिणास्तस्य यज्ञस्य कालनेमिर्महासुरः।
वैताने कर्मणि विभोर्यः ख्यातो हव्यवाडिव॥
त्रिदशानां तु सैन्यस्य शरीरैर्गतजीवितैः ।
तस्मिन्यज्ञे तु सवनं वर्धते दैत्यनिर्मितम् ॥ २२
देवानां रुधिरं संख्ये पपुरुग्रा दितेः सुताः ।
नर्दमानाः प्रमुदिताः सोमपानं रणाध्वरे ॥२३
यदा बलिर्महादैत्यो विजेता समरे सुरान् ।
तदा ह्यवभृथो यज्ञे भविष्यति न संशयः ॥२४
महासुरेन्द्रपतया यजमानो भूरिदक्षिणाः ।
वेदवन्तो वृत्तवन्तः शूराः सर्वे तनुत्यजः॥२५
त्रैलोक्यहरणे सृष्टा युद्धयज्ञाय दीक्षिताः ।
बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे व्रतिनो मुञ्जधारिणः ॥
एकनिश्चयकार्याश्च त्रैलोक्यजयकाङ्क्षिणः ।
सुरदानवदैत्यानां शब्दः समभवन्महान् ॥२७
नानायुधविहस्तानां त्वरितानां प्रधावताम् ।
क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिनदैर्गजबृंहितनिःस्वनैः ॥ २८
रथनेमिस्वनैर्घोरैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
शंखदुन्दुभिनिर्घोषैर्हयहेषितनिःस्वनैः ॥ २९
हयानां हेषमाणानां दानवानां च गर्जताम् ।
क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिनदैः पाणिपादरवैस्तथा॥ ३०
दानवानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ।
समरे भीमकर्माणि सैन्यानि प्रचकाशिरे ॥३१
ततो नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यराजन्त मेघा इव सविद्युतः ३२
ऋष्टिशक्तिगदास्तीक्ष्णशूलशक्तिपरश्वधाः ।
चारु विभ्राजिरे तत्र तेष्वनीकेषु भागशः॥३३
रथा बहुविधाकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ।
हेमप्रच्छन्नशिखरा ज्वलन्त इव पावकाः ॥३४
दानवानां सुराणां च समालोक्यन्त सैनिकाः
काञ्चनैः कवचैः सर्वे ज्वलितार्कसमप्रभैः ३५
सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्योतींषि गगने यथा ।
उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः कलापिनः ॥
ऋषभाक्षाः सुरगणाश्चमूमुखगता बभुः । ३६
नानावर्णाः पताकाश्च ध्वजमालाश्च संयुगे ॥
युद्धयतां रणशौण्डानामीरयामास मारुतः ।
ध्वजालंकारवस्त्राणि कवचानि च रश्मिभिः
भासयामास सर्वाणि रश्मिवर्णानि रश्मिवान्
सर्वेषामप्रमेयाणां बलानां पादचारिणाम् ३९
रजः प्रच्छादयामास पत्रोर्णं पाण्डुरं दिशः ।
दिव्यायुधधराः सर्वे दीप्तायुधपरिच्छदाः ४०
प्रतितस्तस्मिरेऽन्योन्यमनीकं प्रत्यनीकतः ।
गिरिकूटोच्छ्रयाः सर्वे तदा ते देवदानवाः ४१
अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो रणस्थाश्चित्रयोधिनः।
[ उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः पताकिनः । ]
बाणैः सुरुचिरैस्तीक्ष्णैः पत्रवाजैर्दुरासदैः ४२
मुद्गरैर्मुसलैः शूलैरयस्तुण्डैरुलूखलैः ।
वज्रैरशनिकल्पैश्च खड्गवृक्षादिभिस्तथा ॥ ४३
तथा प्रवर्तिते तेषां विमर्देऽद्भुतविक्रमे ।
सावित्रस्य वधं प्रेप्सुर्बाणो जग्राह कार्मुकम्॥
शरजालेन दिव्येन च्छादयानः सुरोत्तमम् ।
मन्त्रैर्हुत इवार्चिष्मान्संप्रजज्वाल तेजसा ४५
सागराभां महासेनां देवानां दैत्यपुंगवः ।
संशोषयति बाणौघैरर्कोंशुभिरिवार्णवम् ॥४६
मारुतः सुमहावेगः सावित्रः-शक्तिमुत्तमाम् ।
चिक्षेप बलिपुत्राय शक्रोऽशनिमिवाद्रये ॥ ४७
आपतन्ती च सा शक्तिर्महोल्कज्वलिता इव।
द्विधा छिन्ना क्षुरप्रेण बाणेनाद्भुतकर्मणा ॥४८

इध्माः प्रस्ताराः शरपंक्तयः परिधयो गदा इति सम्बन्धः ॥ १६ ॥ ऊर्णा पाण्डुरा श्वेतोर्णावच्छुक्लम् । पत्रोर्णेति पाठे धौतकौशेयवच्छुक्लाः । "पत्रोर्णं धौतकौशेयम्" इत्यमरः ॥ ४० ॥ पत्रवाजैः शरपुंखवेगितैः ॥ ४२ ॥

हतायामथ शक्त्यां तु सावित्रो देवसत्तमः।
विश्वकर्मकृतं दिव्यं सुतीक्ष्णं दानवार्दनम् ४९
सुपीनधारं विमलं विपुलं चन्द्रवर्चसम्।
अगृह्णान्निशितं खड्गमाशीविषमिवोरगम् ॥ ५०
तं गृहीत्वा रणमुखे प्रज्वलन्तं महाप्रभम्।
बाणाभ्याशे महातेजाः खड्गपाणिरवस्थितः५१
स तं स्थितमथालक्ष्य सावित्रं बलिनन्दनः।
लोहिताक्षं महाकायं चिक्षेप च ननाद च५२
ततोऽर्ककिरणाकारानशनिप्रतिमाञ्छितान्
संदधे चाशु बाणौघानाशीविषशिलीमुखान्॥
रुक्मपुंखान्प्रदीप्ताग्रानुग्रवेगानलंकृतान्।
आकर्णपूरांश्चिक्षेप शरानुग्रान्त्समंततः॥ ५४
दृढचापप्रयुक्तास्ते शरा वैश्वानरप्रभाः।
सावित्रं छादयामासुः कैलासमिव तोयदाः॥
संछाद्यमानः शरौघैर्बाणेन बलिसूनुना।
पराङ्मुखः सुरवरःप्रयातः सरथध्वजः॥ ५६
पराजित्य स सावित्रं बाणः परमहर्षितः।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥ ५७
बलश्चाप्यसुरश्रेष्ठः प्रगृह्य महतीं गदाम्।
ध्रुवाय वसवे मूर्ध्नि रौद्रां चिक्षेप दानवः५८
तस्य निर्माथितं त्वंसे हेमचित्रं च वर्म वै।
गदावेगेन भीमेन ध्रुवस्य समरे तदा ॥ ५९
शेषाश्च वसवः सर्वे दिव्यास्त्रैर्घोरदर्शनैः।
प्राच्छादयन्रणे दैत्यमादित्यमिव तोयदाः ६०
ततः संमर्दितो बाणैर्बलो दानवसत्तमः।
अवातरद्रथात्तस्माद्गदामुद्यम्य वेगवान्॥६१
पातयामास शत्रूणां समाविध्य महासुरः।
दिशः प्राद्रावयत्सर्वास्त्रिदशान्त्सा महागदा॥
इंद्राशनिरिवेन्द्रेण प्रवृद्धाः सुमहास्वनाः ६२
तस्याः सविद्युद्घोषायास्तेन शब्देन वेपिताः
व्यद्रवन्त परिभ्रष्टा रथेभ्यो रथिनस्तदा।
तदुदीर्णं रथानीकं सूर्याभं मेघनिःस्वनम्॥६४
देवानां शरधाराभिः समन्तादभ्यवर्षत।
क्षुरकैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः॥६५
मुहुर्मुहुर्महातेजाः प्रत्यविध्यन्महासुरान्।
बलाकस्तु गदापाणिर्व्यादितास्य इवान्तकः॥
तडिद्गुणार्कसदृशो वैश्वानर इवापरः।
पिबन्निव शरौघांस्तान्देवचापसमुच्छ्रितान्॥
अभ्यद्रवत दैत्येन्द्रो महार्णव इवापरः॥
अवस्फूर्जन्दिशः सर्वाः स्वेन वीर्येण दानवः
अरुजंस्त्रिदशान्दैत्यः सिंधुवेगान्नगा इव।
समुद्रस्तरसा देवान्वायुर्वृक्षानिवौजसा॥६९
शमयंश्च महेष्वासान्वसुभ्यां समसज्जत।
आपश्चैवानिलश्चैव ववर्षतुररिंदमौ॥ ७०
शरवर्षाणि दीप्तानि मेघाविव परंतपौ।
क्षिप्तांस्तान्विशिखान्दीप्तानन्तरिक्षे स चिच्छिदे
अमृष्यमाणस्तत्कर्म ध्रुवस्तमभिदुद्रुवे।
तौ पृथक्छरवर्षाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ७२
उत्तमाभिजनौ शूरौ देवदैत्यौ यशस्करौ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ७३
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्।
निर्भिन्दन्तौ च गात्राणि विलिखन्तौच सायकैः
स्तंभयन्तौ च बलिनौ प्रतुदन्तौ स्थितौ रणे।
चरन्तौ विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः
मुद्गरैर्जघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमभिमानिनौ।
असिभ्यां चर्मणी दिव्ये विपुले च शरासने॥
निकृत्याचलसंकाशौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः।
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ७७
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव।
तयोरासीद्भुजाघातैर्निग्रहः प्रग्रहस्तथा॥ ७८
अतीव भीमः संह्रादो वज्रपर्वतयोरिव।
द्विपाविव विषाणाग्रैः शृंगैरिव महावृषौ ७९
अन्योन्यमभिसंरब्धौ मुहूर्तं पर्यकर्षताम्॥
ततः पराजितो देवो बलाकेन तथा ध्रुवः।
रथं त्यक्त्वा भयात्तस्य प्रनष्टः प्राङ्मुखो वसुः

इति श्रीमहाभारते [1]खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

बाणाभ्याशे बाणसमीपे ॥ ५१ ॥ सावित्रं चिक्षेप ॥ ५२ ॥ शत्रूणां शत्रुषु ॥ ६२ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

१ ख. क्षुरप्रैर्व॰।

## धरादिदेवैः सह नमुचिप्रभृतीनां घोरतरयुद्धम् ।

## ५५

वैशम्पायन उवाच ।
पुनरेव तु तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् ।
क्रुद्धस्य नमुचेश्चैव धरस्य च महात्मनः ॥ १
संरब्धौ च महाबाहू महेष्वासावरिंदमौ ।
परस्परमुदैक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ २
विस्फार्य च महाचापं हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
संरम्भात्स वसुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा प्राणानयुध्यत३
स सायकमयैर्जालैर्धरो दैत्यरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत्प्रभां
ततः प्रहस्य नमुचिर्धरस्य च शिलाशितान् ।
असृजत्सायकान्दीप्तान्भीमवेगान्दुरासदान्
महातेजा महाबाहुर्महावेगो महारथः ।
विव्याधातिबलो दैत्यो नवभिर्निशितैः शरैः६
स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः
अभ्यधावच्च संक्रुद्धो नमुचिं वसुसत्तमः ॥ ७
तमापतन्तं वेगेन संरम्भान्नमुची रणे ।
दैत्यः प्रत्यसरद्देवं मत्तो मत्तमिव द्विपम्
ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम्
विक्षोभ्य तद्बलं हर्षादुद्धूतार्णवसंप्रभम् ॥ ९
अश्वानृक्षसवर्णाभान्हंसवर्णैः सुवाजिभिः ।
मिश्रयन्त्समरे दैत्यो वसुं प्राच्छादयच्छरैः१०
समाश्लिष्टावथान्योन्यं वसुदानवयो रथौ ।
दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुस्त्रिदशानां महद्बलम् ॥ ११
क्रोधसंरम्भताम्राक्षौ प्रेक्षमाणौ मुहुर्मुहुः ।
गर्जन्ताविव शार्दूलौ प्रभिन्नाविव वारणौ१२
महामेघोपमं रौद्रमासीदायोधनं तयोः ।
रथाश्ववरसम्बाधं मत्तवारणसंकुलम् ॥ १३
समाजमिव तं दृष्ट्वा प्रेक्षमाणा महारथाः ।
आशंसन्तो जयं ताभ्यां योधा नैकत्रसंश्रयाः
तयोः प्रैक्षन्त संरम्भं सन्निकृष्टं महात्मयोः ।
सिद्धगन्धर्वमुनयो देवदानवयोस्तदा ॥ १५
तौ च्छादयन्तावन्योन्यं समरे निशितैः शरैः
शरजालावृतं व्योम चक्रतुश्च महाबलौ ॥ १६
तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ॥
प्रेक्षणीयतमावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ १७
सुवर्णविकृतान्बाणान्प्रमुञ्चन्तावरिंदमौ ।
भास्कराभं तदाकाशमुल्काभिरिव चक्रतुः
तयोः शराः प्रकाशन्ते देवदानवयोस्तदा ।
पङ्क्त्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे१९
त्रिदशाश्वगजानां हि शरीरैर्गतजीवितैः ।
क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ॥ २०
ततः क्षुधारं ज्वलितं सूर्यमण्डलसन्निभम् ।
धराय वसवे मुक्तं चक्रं नमुचिना रणे ।
पतता तेन चक्रेण धरस्य स्यन्दनोत्तमः ॥ २१
सध्वजः सायुधः साश्वो दग्धोऽर्ककिरणप्रभः
स त्यक्त्वा स्यन्दनं देवः प्रदीप्तं चक्रतेजसा ॥
भयात्तस्यासुरेन्द्रस्य गतः स्वगृहमुत्तमम् ।
पराजित्य सुरं दैत्यो नमुचिर्बलगर्वितः ॥
प्रयातः स्वेन सैन्येन भूयः सुरचमूं प्रति ।
यौ तौ मयश्च त्वष्टा च देवदैत्येषु विश्रुतौ २४
प्रवरौ विश्वकर्माणौ मायाशतविशारदौ ।
घोरस्तयोः संप्रहारः प्रावर्तत सुदारुणः ॥२५
अन्योन्यस्पर्द्धिनोस्तत्र चिरात्प्रभृति संयुगे ।
त्वष्टा तु निशितैर्बाणैर्दैत्यं तु बलदर्पितम् ॥२६
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिशतैः शरैः ।
मयस्तु प्रतिविव्याध त्वष्टारं निशितैः शरैः
सुघातैः सुप्रसन्नाग्रैः शातकुम्भविभूषितैः ।
ननाद दितिजश्रेष्ठो हतस्त्वष्टुः शरैर्मयः ॥२८
संक्रुद्धो दैत्यसैन्यस्य विचिन्वन्निव जीवितम्
शक्तिं कनकवैडूर्यचित्रदण्डां महाप्रभाम् ॥२९

५५

**पुनरेवेति** । प्रत्यसरत् अभिससार॥८॥ महामेघोपमं मेघा महान्तो यत्राकाश तदुपम संकीर्णमेघेन नभसा तुल्यमित्यर्थः ॥ आयोधनं युद्धभूमिः । यमदंष्ट्रोपममित्यपि पाठः ॥ १३ ॥ नैकसंश्रया उभयपक्षीयाः ताभ्यां निमित्तभूताभ्यां स्वजयमाशंसन्तः ॥ १४ ॥ देवदानवयोर्धरनमुच्योः ॥ १५ ॥ त्वष्टुः त्वष्टारम् ॥ २८ ॥

१ ख. यमदंष्ट्रोप०। २ ख. योधास्ते गणशः स्थिताः। त०।

देवो गृहीत्वा समरे दैत्येन्द्रं समपातयत्।
भीमां सर्वायसीं दृष्ट्वा पुरंदर इवाशनिम् ॥३०
तां त्वष्टुर्भुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम्।
मयश्चिच्छेद तीक्ष्णाग्रैस्तूर्णं सप्तभिराशुगैः ३१
ततः क्षुण्वन्निव प्राणांस्त्वष्टुः कोपान्महासुरः।
प्रेषयामास संरब्धः शरान्बार्हिणवाससः ॥ ३२
चिच्छेद बाणांस्त्वष्टा ताञ्ज्वलितैर्नतपर्वभिः
दैत्यस्य सुमहावेगैः सुवर्णविकृतैः शरैः ॥३३
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे।
शार्दूलाविव चान्योन्यं प्रसक्तावभिजघ्नतुः ३४
अन्योन्यं प्रतियुध्यन्तावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ क्रुद्धावाशीविषाविव ॥
महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम्।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ ३६
ततः सुविपुलां दीप्तां मयो रुक्माङ्गदो गदाम्
त्वष्टरि प्राहिणोत्क्रुद्धः सर्वप्राणहरां रणे ३७
तया जघानातिरथस्त्वष्टुरुत्तमवाजिनः।
गदया दानवः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ३८
ततः क्रुद्धो महादैत्यः क्षुराभ्यामथ संयुगे।
पुनर्द्वाभ्यां शराभ्यां तु निशिताभ्यां महारणे
ध्वजं त्वष्टुरथ च्छित्त्वा सूतं निन्ये यमक्षयम्।
महाबलान्महावेगान्सदश्वान्गदयाऽहनत् ४०
दृष्ट्वा त्वष्टा हतं सूतमश्वांश्च विनिपातितान्
हताश्वं रथमुत्सृज्य सूतं च पतितं भुवि ॥४१
विस्फारयन्महाचापं स्थितो भूमाविवाचलः
हताश्वसूतं विरथं दृष्ट्वा रिपुमवस्थितम्॥ ४२
जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवानलः।
मयः कालान्तकप्रख्यश्चापपाणिरदृश्यत ॥ ४३
प्रादहद्देवसैन्यानि दावाग्निरिव काननम्।
त्वष्टुः सोऽक्षिपतानुग्रान्नाराचांस्तिग्मतेजसः
चतुर्दश शिलाधौतान्सायकान्विविधाकृतीन्
ते पपुस्तस्य सैन्यस्य शोणितं रुक्मभूषणाः॥
आशीविषा इव क्रुद्धा भुजङ्गाः कालचोदिताः
ते क्षितिं समवर्तन्त शोभन्ते रुधिरोक्षिताः॥
अर्द्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः।
तं प्रत्यविध्यत्त्वष्टा तु जाम्बूनदविभूषितैः ४७
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरभिदारयन्।
ते तस्य दैत्यस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः
विदार्य विविशुर्भूमिं पन्नगा इव वेगतः।

ते प्रकाशन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम्
अस्तं गच्छन्तमादित्यं प्रविशन्त इवांशवः।
मयस्त्रिभिरथानर्च्छत्त्वष्टारं तु पतत्रिभिः॥५०
सुपर्णवेगैर्विकृतैर्ज्वलद्भिः प्राणनाशनैः।
त्वष्टाऽथ मयनिर्मुक्तैः सायकैरर्दितः प्रभुः ५१
अपयातो रणं हित्वा व्रीडयाभिसमन्वितः।
तं तत्र हतसूतं च भुजंग इव निर्विषम्॥ ५२
त्वष्टारं विरथं कृत्वा मुदितः स तु दानवः।
विस्फार्यमाणो रुचिरं चापं रुक्माङ्गदं दृढम्
रणे व्यतिष्ठद्दैत्येन्द्रो ज्वलन्निव हुताशनः।
पुलोमा तु बलश्लाघी दृप्तो दानवसत्तमः
रथे श्वेतहयेनेह सार्धं युद्ध्यति वायुना।
सर्वेषामेव भूतानां यः प्राणः कथ्यते द्विजैः॥
बलिना कालकल्पेन वायुना सह संगतः
पुलोम्नस्तत्र पवनः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम्
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम्।
दैत्यचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यन्त दिशो दश॥
रश्मिजालैरिवार्कस्य विततं साम्बरं जगत्।
स ताम्रनयनः क्रुद्धः श्वसन्निव महोरगः॥५८
वृतो दैत्यशतैर्वायू रश्मिवानिव भास्करः
दैत्यचापभुजोत्सृष्टाः शरा बार्हिणवाससः ५९
रुक्मपुङ्खाः प्रकाशन्ते हंसाः श्रेणीकृता इव
चापध्वजपताकाभ्यः शस्त्रा दीप्तमुखाश्च्युताः
प्राप्तवन्तश्च दृश्यन्ते दैत्यस्यापततः शराः।
एवं सुतीक्ष्णान्खचराञ्छलभानिव पावके ६१
सुवर्णविकृतांश्चित्रान्मुमोच दितिजः शरान्।
तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं स मारुतः॥ ६२
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध नवभिः शरैः
तस्य वेगमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुः सनातनः॥ ६३
उत्तमं जवमास्थाय व्यधमत्सायकव्रजान्।
तेजो विधम्य बलवाञ्छरजालानि मारुतः
विव्याध दैत्यं विंशत्या विशिखैर्नतपर्वभिः
मरुद्गणानां प्रवरा दश दिव्या महौजसः॥६६
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादं प्रचक्रिरे।
तस्मिन्त्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ६६

अभ्यधावन्त दितिजाः
पौलोमाः क्रोधमूर्च्छिताः।
ते समासाद्य पवनं
समावृण्वञ्छरोत्तमैः॥ ६७

---

शस्त्राः बाणाः च्युताः धनुष इत्यर्थः ॥६०॥ व्रजान् समूहान् ॥ ६४ ॥

पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ।
ते पीडयन्तः पवनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ६८
प्रजासंहरणे घोराः सोमं सप्त ग्रहा इव ।
ततो दक्षिणमक्षोभ्यं नानारत्नविभूषितम् ६९
करं गजकराकारमुद्यम्य युधि मारुतः ।
तेषां मूर्धसु दैत्यानां पातयामास वीर्यवान् ॥
निहिता वायुवेगेन तेन सप्त महारथाः ।
त्यक्त्वा प्राणान्पुलोमा तु विव्याध नवभिःशरैः
प्रदर्पितमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुं सनातनम् ।
असंचिन्त्य सुरौघांस्ताञ्ज्वलितांश्च पुलोमतः
तेषां विदार्य तेजांसि दानवानां महात्मनाम् ।
शोणिताक्तिस्रमुकुटा गैरिकाक्ता इवाद्रयः ७३
ते भिन्नवर्मास्थिभुजाः पतन्तो भान्ति दानवाः
मातङ्गयूथसंभग्नाः पुष्पिता इव पादपाः ॥ ७४
तेषां विदारितैर्देहैर्दानवानां महात्मनाम् ।
ततः प्रावर्तत नदी रौद्ररूपा भयावहा ॥ ७५
प्रस्रवन्ती रणे रक्तं भीरूणां भयवर्धिनी
देवदैत्यगजाश्वानां रुधिरौघपरिप्लुता ।
रणभूमिरभूद्रौद्रा तत्र तत्र सहस्रशः ॥ ७६
संभूता गतसत्त्वैश्च यक्षराक्षसखेचरैः ।
सानुगैः सपताकैश्च सोपासङ्गरथध्वजैः ॥ ७७
शीर्णकुम्भैस्तथा नागैर्घण्टाभिस्तु विभूषितैः
सुवर्णपुङ्खैर्ज्वलितैर्नाराचैस्तिग्मतेजसैः ॥ ७८
देवदानवनिर्मुक्तैः सविषैरुरगैरिव ।
प्रासतोमरनाराचैः शक्तिखड्गपरश्वधैः ॥ ७९
सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः ।
कनकाङ्गदकेयूरैर्मणिभिश्च सकुण्डलैः ॥ ८०
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च शोभनैः ।
हतैश्च दितिजैस्तत्र शस्त्रस्यन्दनवर्जितैः ॥ ८१
पतितैरपि विद्धैश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
निपातितध्वजरथो हतवाजिरथद्विपः ॥ ८२
विमर्दो देवदैत्यानां सदृशः कर्मणा बभौ ।
अथ दैत्यसहस्रेण पौलोमेन महासुरः ॥८३
संवृतः पवनः श्रीमान्गदामुसलपाणिना॥ ८४
ते जघ्नुः शतसाहस्राः पवनं दानवोत्तमाः ।
तैर्वध्यमानः स बभौ समन्तादर्पितैः शरैः॥८५
हत्वाऽष्टौ तत्र योधानां शतानि पवनः प्रभुः ।
कृत्वा मार्गं सुरश्रेष्ठो ननाद सुमहारथः ॥८६
अद्यापि च सुविस्तीर्णः पन्थाः संदृश्यते दिवि
नाम्ना वायुरथो नाम सिद्धाः पश्यन्ति तं दिवि

वैशम्पायन उवाच ।

हयग्रीवस्तु दितिजः पूषणं प्रति वीर्यवान् ।
ननाद सुमहानादः सिंहनादं महारथः ॥ ८८
विस्फार्य सुमहच्चापं हेमजालविभूषितम् ।
पूषणं दितिजोऽपश्यत्क्रुद्धो घोरेण चक्षुषा८९
भुजाभ्यामाददानस्य संदधानस्य वै शरान् ।
मुञ्चतः कर्षतो वापि ददृशुस्तत्र नान्तरम् ॥९०
अग्निचक्रोपमं दीप्तं मण्डलीकृतकार्मुकम् ।
तदासीद्दानवेन्द्रस्य सव्यदक्षिणमस्यतः ॥९१
रुक्मपुङ्खैस्ततस्तस्य चापमुक्तैः शितैः शरैः ।
प्राच्छाद्यन्त शिलाधौतैर्दिशः सूर्यस्य च प्रभाः
ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९३
नभश्चराणां नभसि दृश्यन्ते बहवो व्रजाः ।
गिरिकूटनिभाच्चापात्प्रभवन्तः शरोत्तमाः९४
श्रेणीभूताः प्रकाशन्ते यान्तः श्येना इवाम्बरे ।
गृध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान्
महावेगान्प्रशस्ताग्रान्मुमोच दितिजः शरान् ।
ततश्चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः९६
देहे समवकीर्यन्त पूष्णः सन्निहिताः शराः ।
ते व्योम्नि रुक्मविकृताः संप्रकाशन्त सर्वशः
खद्योता इव घर्मान्ते खे चरन्तः समंततः ।
शिलाधौताः प्रसन्नाग्राः पूषणं सिषिचुः शराः
पर्वतं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ।
ततः प्रच्छादयामास पूषणं शरवृष्टिभिः ॥९९
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ।
ततः सपूष्णोऽदेवस्य बलं वीर्यं पराक्रमम्१००
व्यवसायं च सर्वं च पश्यन्ति त्रिदशाद्भुतम्
तां समुद्रादिवोद्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम्१
नाचिन्तयत्तदा पूषा दैत्यं चाभ्यद्रवद्रणे ।
हेमपृष्ठं महानादं पूष्ण आसीन्महाधनुः ॥ २
विकृतं मण्डलीभूतं शक्राशनिमिवापरम् ।
ततः शराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ३
सुवर्णपुङ्खाः पूष्णस्ते प्रभवन्तः शरासनात् ।
मालेव रुक्मपुङ्खानां वितता व्योम्नि पत्रिणाम्

---

ननाद पवनः ॥८६॥ पूषणम् देवम् ॥८९॥ अग्निचक्रम् अलातचक्रम् ॥९१॥ संप्रकाशन्त । अडभाव आर्षः ॥ ९७ ॥
सपूष्णः पूष्णा युध्यमानस्य अदेवस्य असुरस्य ॥१००॥

प्रादुरासीन्महाघोरा बृहती पूषकार्मुकात् ।
ततो व्योम्नि विभक्तानि शरजालानि सर्वशः ५
आहतानि व्यशीर्यन्त शरैः सन्नतपर्वभिः ।
ततः कनकपुङ्खानां छिन्नानां कङ्कवाससाम् ६
पततां पात्यमानानां खमासीच्चावृतं रणे ।
पूषा प्रापूरयद्बाणैर्हयग्रीवं शिलाशितैः ॥ ७
नामाङ्कैरर्कसदृशैर्दिव्यहेमपरिष्कृतैः ।
ततो व्यसृजदुग्राणि शरजालानि दानवः ॥ ८
अमर्षी बलवान्क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।
पूष्णस्त्वाजौ ध्वजं चैव पताकां धनुरेव च ९
रश्मीन्योक्त्राणि चाश्वानां
हयग्रीवो रणेऽच्छिनत् ।
अथाप्यश्वान्पुनर्हत्वा
चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ११०
सारथिं सुमहातेजा रथोपस्थादपातयत् ।
कृतस्तु विरथः पूषा हयग्रीवेण संयुगे ॥ ११
पूषा तस्य रथाभ्यासात्स ययौ तेन वै जितः ।
गतः शक्ररथाभ्याशं मुक्तो मृत्युमुखादिव १२
तत्राद्भुतमिदं भूयो युद्धं वर्तत दारुणम् ।
कृतप्रातिकृतं घोरं शम्बरस्य भगस्य च ॥ १३
सप्तकिष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।
चापं चाशनिनिर्घोषं दृढज्यं भारसाधनम् ।
विक्षिपन्नक्षसदृशान्व्यसृजत्सायकान्बहून् ॥
क्रोधसंरक्तनयनः शम्बरः सर्वयोगवित् ।
तेन वित्रास्यमानानि देवसैन्यानि सर्वशः १५
समकम्पन्त भीतानि सिन्धोरिव महोर्मयः ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ १६
भगः प्रस्फुरमाणौष्ठस्त्वरमाणो व्यदारयत् ।
ततो भगो महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन्धनुः
अवाकिरन्दैत्यगणाञ्छरजालेन छादयन् ।
तमभ्यगाद्भगो दैत्यं तूर्णमस्यन्तमन्तिकात्
मातङ्गमिव मातङ्गो वृषं प्रति वृषो यथा ।
तौ प्रगृह्य महावेगौ धनुषी भारसाधने ॥ १९
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ रणे शरैः ।
तयोः सुतुमुलं युद्धमासीद्घोरं महारणे ॥ १२०
भगशम्बरयोर्भीममप्रमेयं महात्मनोः ।
अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१
व्यदारयेतामन्योन्यं कार्ष्णे निर्भिद्य चर्मणी ।
तौ तु विकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ॥ २२
संप्रेक्ष्यमाणौ रथिनावुभौ परमदुर्मदौ ।
तक्षमाणौ सितैर्बाणैर्न वीक्षितुमशक्नुताम् २३
अथ विद्याध समरे त्वरमाणोऽसुरो भगम् ।
नाराचैः क्रोधताम्राक्षः कालान्तकयमोपमः २४
गरुत्मानिव चाकाशे पोथयानो महोरगम् ।
नाराचा न्यपतन्देहे तूर्णं शम्बरचोदिताः ॥ २५
तानन्तरिक्षे नाराचान्भगश्चिच्छेद पत्रिभिः ।
ज्वलन्तमचलप्रेष्यं वैश्वानरसमप्रभम् ॥ २६
ततो भगं चतुःषष्ट्या विद्याधासुरसत्तमः ।
शिलीमुखैर्महावेगैर्जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २७
तदा तत्सुचिरं कालं युद्धं समभिवाभवत् ।
शम्बरस्य च मायाभिर्नादृश्यत ततोऽम्बरम् ॥
दोर्भ्यां चिक्षिपतश्चापं रणे विष्टभ्य तिष्ठतः ।
श्रूयते धनुषः शब्दो विस्फूर्जितमिवाशनेः २९
स भगस्य हयान्हत्वा सारथिं च महाहवे ।
अभ्यवर्षच्छरैरेनं पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १३०
न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ।
भगदेवस्य दैत्येन शम्बरेणास्त्रघातिना ॥ ३१
दैत्यस्य चाद्भुतं दिव्यमस्त्रमस्त्रेण धारयन् ।
मायायुद्धेन मायावी शम्बरोऽस्तमयोऽभवत्
अवध्नयद्भगं दैत्यो मायाभिर्लाघवेन च ।
भगस्तस्य रथं साश्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३
सहस्रमायो द्युतिमान्देवसेनां निषूदयन् ।
अदृश्यत शरैश्छन्नः शम्बरः शतशो रणे ॥ ३४
अदृश्यत्पातितो भूमौ गतचेता इवासुरः ।
अथ स्म युध्यते भूयः शतधा शैलसन्निभः ३५
दिशा गजेन्द्रमारूढो दृश्यते स पुनर्बली ।
प्रादेशमात्रश्च पुनः पुनर्भवति शैलवत् ॥ ३६
महामेघ इव श्रीमांस्तिर्यगूर्ध्वं च सोऽभवत् ।
पुनः कृत्वा विरूपाणि विकृतानि च सर्वशः ॥
सर्वा भीषयते सेनां देवानां भीमदर्शनः ।
ते भीताः प्रपलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ।
ततः सोऽन्यं वरं देहं कृत्वा प्रांशुतरं पुनः ३८
गच्छत्यूर्ध्वगतिं घोरो दिशः शब्देन पूरयन् ।
नभस्तलगतश्चापि वर्षते वासवो यथा ॥ ३९
संवर्तकाम्बुदप्रख्यः पूरयन्पृथिवीतलम् ।
संवर्तकोऽनलश्चैव भूत्वा भीमपराक्रमः १४०
शतवर्त्मा शतशिखो ददाह च पुनः सुरान् ।
मुहूर्ताच्च महाशैलः शतशीर्षा शतोदरः ॥ ४१
अदृश्यत दिवस्तम्भः शतशृङ्ग इवाचलः ।
येऽन्ये दैत्याश्च साध्याश्च ये च विश्वे च देवताः

क्षिपन्त्यस्त्राणि दिव्यानि तानि सोऽग्रसतासुरः
युद्धयमानश्च समरे सरथः सोऽसुरोत्तमः ॥४३
गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ।
ते भीताः समुदीक्षन्त त्रिदशा भीमविक्रमाः
सहस्रमायं समरे शम्बरं चित्रयोधिनम् ।
स भग्नो भयसंत्रस्तो दानवेन्द्रस्य संयुगे ॥४५
रथं त्यक्त्वा महाभागो महेन्द्रं शरणं गतः ।
पराजित्य तु तं देवं दानवेन्द्रः प्रतापवान्
गतो यत्र महातेजा जातवेदा महाप्रभः ।
स वह्निर्वाग्भिरुग्राभिः क्रुद्धस्तर्जयते बली ।
भवाम्येष हि ते मृत्युरित्युक्त्वाऽन्तरधीयत
वैशम्पायन उवाच ।
एतस्मिन्नन्तरे भूत्वा ब्राह्मणेन्द्रो महाबलः ।
जघान सोमः शीतास्त्रो दानवानां चमूं रणे॥
कैलासशिखराकारो द्युतिमद्भिर्गणैर्वृतः ।
अवधीद्दानवान्दृष्ट्वा दण्डपाणिरिवान्तकः ४
पोथयद्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि वै प्रभुः ।
दैत्येषु विचरञ्छ्रीमान्युगान्ते कालवद्बली १५०
सोऽमर्षाद्रथजालानि उरुवेगेन चन्द्रमाः ।
ददाह दानवान्सर्वान्दावाग्निरिव चोदितः॥
मृदन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः
शीतेन व्यधमत्सर्वान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
चन्द्रमाः सुमहातेजा दानवानां महाचमूम्
तदस्त्रमभवत्तस्य प्रदिग्धं शत्रुशोणितैः ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥
युगान्तकोपमः श्रीमान्दैत्येषु व्यचरद्बली ।
आवार्य महतीं सेनां प्राद्रवन्तीं पुनः पुनः ५५
चन्द्रं मृत्युमिवायान्तं दृष्ट्वा योधा विसिष्मियुः
यतो यतः प्रक्षिपति शिशिरास्त्रं तमोनुदः ५६
ततस्ततो व्यशीर्यन्त दैत्यसैन्यानि संयुगे ।
व्यदारयत्स सैन्यानि स्वबलेनाभिसंवृतः॥५७
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
तं तथा भीमकर्माणं गृहीतास्त्रं महाहवे ॥ ५८
दृष्ट्वा शशांकमायान्तं दैत्याभं चन्द्रभास्करौ ।
तालमात्राणि चापानि कर्षमाणौ महाबलौ ॥
छादयेतां शरैश्चन्द्रं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ।
अथ विस्फार्यमाणानां कार्मुकाणां सुरासुरैः
अभवत्सुमहाशब्दो दिशः सन्नादयन्निव ।
विनदद्भिर्महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ॥ ६१
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं सर्वतोऽभवत् ।
युयुत्सवस्ते संरब्धा जयगृद्धा यशस्विनः ६२
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महावृषाः ।
शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः६३
अश्मवृष्टिरिवाकाशे ह्यभवत्सेनयोस्तथा ।
कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजांसि च ॥
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्धनि ।
विशिखैर्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ॥ ६५
सहस्ताभरणैश्चान्यैर्विच्छिन्नै रुधिरोक्षितैः ।
कवचैरावृतैर्गात्रैरुरुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ ६६
मुखैश्च चन्द्रसंकाशैस्तप्तकुण्डलभूषणैः ।
गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैः समंततः॥६७
आसीत्सर्वा समाकीर्णा मुहूर्तेन वसुंधरा ।
चापमेघाश्च विपुलाः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनः ।
वाहनानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत्॥
स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ।
प्रावर्तत सुराणां च दानवानां च संयुगे १६९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

## देवासुरयुद्धे कुजम्भोत्कर्षवर्णनम् ।

### ५६

वैशम्पायन उवाच ।

तस्मिन्महाहवे रौद्रे तुमुले लोमहर्षणे । ववर्षुः शरवर्षाणि संरब्धा देवदानवाः ॥ १

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

१ घ. सहस्राभं ।

व्याक्रोशन्त गजास्तत्र शरघातप्रपीडिताः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ २
उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरवर्षप्रपीडिताः ।
देवानां दानवानां च गजाश्वरथिनां रणे ॥ ३
समरे तत्र शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ।
धनुषां तलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४
शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः ।
निजघ्नुर्महतीं सेनामन्योन्यस्य परंतप ॥ ५
बाहूनामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च संयुगे ।
राशयस्तत्र दृश्यन्ते देवदैत्यसमागमे ॥ ६
अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां च वरूथिनाम्
नान्तं समभिगच्छन्ति निहतानां सुरासुरैः ७
गदाभिरसिभिः प्रासैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
योधास्तत्राभ्यहन्यन्त हस्त्यश्वं चामितं बहु ८
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघा तरङ्गिणी ।
तदा मध्ये तु सैन्यानां केशशैवलशाड्वला ॥ ९
हाहाकारो महाशब्दो योधानामभवत्तदा ।
दानवैर्हन्यमानानां त्रिदशानां महारणे ॥ १०

वैशम्पायन उवाच ।

तेषां तदभवद्युद्धं देवानामसुरैः सह ।
विभीषणं महारौद्रं त्रिकृतं भीमदर्शनम् ॥ ११
विरोचनस्तु तत्रैव विष्वक्सेनं महाहवे ।
जघान रुधिराभाक्षं साध्यं परमधन्विनम् १२
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य विष्वक्सेनः सुरैर्वृतः ।
अमेयात्मा सुरश्रेष्ठः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे १३
साध्यस्य बाणाभिहतस्तोत्रार्पित इव द्विपः ।
विरोचनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवाध्वरे १४
स कार्मुकविनिर्मुक्तैः शरैर्दानवसत्तमः ।
विष्वक्सेनं बिभेदाजौ दीप्तैः सप्तभिराशुगैः॥
सोऽतिविद्धो बलवता दानवेन सुरोत्तमः ।
मूर्च्छामभिजगामाशु ध्वजं चाप्याश्रयत्प्रभुः॥
ततः स पुनराश्वस्य साध्यो युद्धे मनो दधे ।
विस्फार्य च महाचापं दैत्यमध्ये व्यवस्थितः॥
विरोचनस्तु बलवानभ्ययुध्यत सर्वशः ।
क्षोभयन्सुरसैन्यानि समन्तान्निशितैः शरैः ॥
ततस्तस्यासुरेन्द्रस्य युद्ध्यमानस्य संयुगे ।
श्रूयते तुमुलः शब्दो जीमूतस्येव गर्जतः ॥१९
जगर्ज च महाघोषो विनिघ्नन्देववाहिनीम् ।
चण्डवेगाश्मवर्षी च सविद्युत्स्तनयित्नुमान्
दिशो विद्रावयामास शरवर्षेण दानवः ।
सर्वसैन्यानि देवानामुद्यतास्त्रो महाहवे २१
ते प्राद्रवन्त वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः
श्रुत्वा कार्मुकनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः
सर्वसैन्यानि भीतानि निव्यलीयन्त संयुगे
विरोचनभयत्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ।
पदातीनां ययुः संघा यत्र देवः शचीपतिः २४
विष्वक्सेनस्य साध्यस्य सर्वतः सुमहाबलः ।
पादे रक्षःसहस्राणि निजघान चतुर्दश ॥ २५
अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः ।
पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन्प्रत्यदृश्यत २६
वितत्य श्येनवत्पक्षौ सर्वतः स वरूथिनीम् ।
भित्त्वा छित्त्वा महाबाहुः शिरांस्याजौ न्यकृंतत
सादिनश्च पदाताश्च हतशेषा रथास्तथा ।
विष्वक्सेनेन सहिता विरोचनमथाद्रवन् २८
तेऽसि-चर्म-गदा-शक्ति-परिघ-प्रास-तोमरैः
तमेकमभ्यधावन्तं सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ २९
ततः सोऽसिं समुद्यम्य जवमास्थाय दानवः ।
चकर्त रथिनामाजौ शिरांसि च धनूंषि च ॥
रथनागाश्ववृन्देषु बलवानरिसूदनः ।
विरोचनश्चरन्मार्गान्प्रकारानेकविंशतिम् ३१
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं युगम्
संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास दानवः ॥ ३२
केचिद्वरासिना रुग्णा दानवेन महात्मना ।
विनेदुश्छिन्नवर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ३३
छिन्नपृष्ठा हतारोहा दानवेन महात्मना ।
विद्रुताः स्वान्यनीकानि जघ्नुस्त्रिदशवारणाः
निपेतुरुर्व्यामाकाशे निकृता दृढधन्विना ।
विविधास्तोमराश्चापा महामात्रशिरांसि च॥
प्रतीपमाहरन्नागानश्वांश्च दृढविक्रमान् ।
आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः
सूतांश्चिच्छेद खड्गेन रथानपि च दानवः ।
मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥ ३७
मार्गांश्चरति वै चित्रान्विस्मयन्तस्ततोऽसुरान्
निजघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत्३०
खड्गेन चान्यांश्चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन्
ऊरुस्तम्भगृहीताश्च निपतन्त्यपरे भुवि ।
अपरे दैत्यमालोक्य भयात्प्राणानवासृजन्३९

१ ख. °राणां प्रवराणां तरस्विनाम् । २ ख. नदीम° । ३ ख. °नि व्यवालीयन्त स° । ४ ख. चकर्त रथि° ।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे महति दारुणे ।
रथौघगजपत्तीनां सुराणां च महाक्षये ॥ ४०
कुजम्भो दानवश्रेष्ठो ह्यंशमादित्यमाहवे ।
योधयामास समरे वृषः प्रतिवृषं यथा ॥ ४१
जघानाचलसंकाशो मत्तवारणविक्रमः ।
स्फुरद्भिर्निशितैस्तीक्ष्णशरैर्बहुभिराशुगैः ॥४२
देवसैन्यसहस्राणि सरथानि महाहवे ।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ४३
प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ।
देवानामजयः क्रूरः प्रत्यपद्यत दारुणः ॥ ४४
अंशस्तु दानवेन्द्रस्य जघानोत्तमविक्रमः ।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ४५
आपतन्तं गजानीकं कुजम्भो वीक्ष्य दानवः ।
गदापाणिरवारोहद्रथोपस्थादरिंदमः ॥ ४६
अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अभ्यद्रवद्गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः ४७
स गजान्गदया निघ्नन्व्यचरत्समरे बली ।
कुजम्भो दानवश्रेष्ठो गदापाणिर्बलाधिकः ४८
विशीर्णदन्तांश्च बहून्भिन्नकुम्भांश्च दारुणान् ।
अकरोद्दानवश्रेष्ठ उद्दिश्योद्दिश्य तान्बली ४९
विशीर्णदन्ता बहवो भिन्नकुम्भास्तथा परे ।
कुजम्भेनार्दिता नागा व्यद्रवन्त दिशो दश ॥
कुजम्भस्य च येऽमात्या दानवा घोरविक्रमाः
नाराचैर्विविधैस्तीक्ष्णैरपास्तगजयोधिनः ५१
क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पातैरञ्जलिकैः शितैः ।
चिच्छेद चोत्तमाङ्गानि कुजम्भो दानवोत्तमः
शिरोभिः प्रपतद्भिस्तु गगनं प्रत्यपूर्यत ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशे बहुभिश्च सहाङ्कुशैः ५३
कृत्तोत्तमांगाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः
अदृश्यन्त महाराज ताला विशिरसो यथा ५४
आपतन्तं महानागमंशस्यासुरसत्तमः ।
जघानैकेषुणा क्रुद्धस्ततः स विमुखोऽभवत्५५
विगाह्यैवं गजानीकं कुजम्भो दानवोत्तमः ।
विनिघ्नन्प्रवरान्सैन्यान्गदया बलिनां वरः ॥
एकप्रहाराभिहतान्कुजम्भेन महागजान् ।
अपश्यन्त सुराः सर्वे पर्वतानिव पातितान् ॥
कुजम्भस्य च मार्गेषु विशीर्णास्ते महागजाः
वज्राहता इवेन्द्रेण विशीर्णा इव पर्वताः॥ ५८
अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे मूर्तिमन्तमिवान्तकम् ।
गजास्तथा व्यदीर्यन्त सिंहस्येवेतरे मृगाः
स बभौ तां गदां बिभ्रत्प्रोक्षितां गणशोणितैः
व्यादितास्योऽनदत्क्रुद्धो रौद्ररूपो भयानकः
यथा हि भगवान्क्रुद्धः प्रजानां संक्षये पुरा ।
विक्रीडमानो गदया रणमध्ये महासुरः ॥ ६१
गोपाल इव दण्डेन कालयन्स महागजान् ।
क्रुद्धं कालमिवाकाले दण्डमुद्यम्य दानवम् ॥
अपश्यन्त सुराः सर्वे कुजम्भं भीमविक्रमम् ।
हतारोहास्तु तत्रान्ये प्रभिन्ना वारणोत्तमाः
ते हन्यमाना गदया बाणैश्च भृशविक्षताः ।
असहन्तः कुजम्भस्य गदावेगं महाहवे ॥ ६४
स्वान्यनीकानि गृह्णन्तः प्राद्रवन्त महागजाः
महावात इवाभ्राणि विधमन्गदया गजान् ।
अतिष्ठत्समरे दैत्यः कालः संवर्तको यथा ६५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे कुजम्भोत्कर्षवर्णने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## देवासुरयुद्धे वृत्रासुरोत्कर्षवर्णनम्

५७

वैशम्पायन उवाच ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि देवराजस्य शासनात् । अभ्यद्रवन्त दितिजान्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

१ ख. असन्यन्त सुराः स° ।

ते बलौघमपर्यन्तं देवानां सुदुरासदम् ।
रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ २
आपतन्तं सुदुष्पारं रजसा सर्वतोवृतम् ।
सैन्यसागरमक्षोभ्यं वेलेव मकरालयम् ॥ ३
तदाश्चर्यमपश्यन्त अश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
उदीर्णां पृतनां सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ॥ ४
आचार्यः समरेऽतिष्ठत्कुजम्भस्तरसा बली ।
सैन्यार्णवं देवतानां गिरिर्मेरुरिवाचलः ॥ ५
अनीकिनं कुजम्भस्तु गदया स न्यवारयत् ।
सा तथा वारिता सेना विह्वलाभून्निरुद्यमा ६
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संप्रहारे सुदारुणे ।
असिलोमा तु बलवान्दानवो दानवाधिपः ७
देवसैन्यस्य सर्वस्य धूमकेतुरिवोत्थितः ।
तमांस्यर्क इवापोह्यत्सुरसैन्यानि संयुगे ॥ ८
सहस्ररश्मिप्रतिमो दानवस्य रथोत्तमः ।
शरैर्मेघ इवावर्षद्देवानीकं प्रतापवान् ॥ ९
शरौघरश्मिभिर्दीप्तैः प्रतप्तो घोरविक्रमः ।
रौद्रः क्रूरो दुराधर्षो दुरापो ध्वजिनीमुखे ॥
युध्यते दैवतैः सार्धं ग्रसमान इव प्रभुः
उग्रेषुरुग्रवदनः समारुह्य महागजम् ॥ ११
सुराणामुत्तमाङ्गानि प्रचिनोति महाबलः ।
असन्दैवतसैन्यानि शरदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १२
असिजिह्वश्चक्रहस्तश्चापव्यात्ताननोऽसुरः ।
परश्वधनखः श्रीमान्मृदङ्गापूरितध्वनिः ॥ १३
तिष्ठते दानवश्रेष्ठः संयुगे व्याघ्रवद्बली ।
मौर्वीघोषः स्तनयितुः पृषत्कः प्रथतो महान् ॥
धनुर्विद्युद्गणश्चापो महामेघ इवापरः ।
ध्वजस्रसागरो घोरो बाहुग्राहो दुरासदः १५
कार्मुकोर्मितरङ्गैश्च बाणावर्तमहाह्रदः ।
गदासिमकरो रौद्रो ज्यावेलः शिक्षयोद्धतः ॥
पदातिमीनः सुमहान्गर्जितोत्क्रुष्टघोषवान् ।
हयान्गजान्पदातींश्च रथांश्च सहसा बहून् १७
न्यमज्जयत समरे परवीरान्महारथान् ।
आप्लावयत्स देवौघान्दारुणो दानवेश्वरः १८
प्रावर्तत युधि श्रीमान्युधि श्रेष्ठो युधिष्ठिरः ।
अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभम् ॥ १९
सन्नद्धं तत्र युध्यन्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २०
न शेकुः सर्वभूतानि दानवं प्रसमीक्षितुम् ।
यथा प्ररूढं घर्मान्ते दहेत्कक्षं हुताशनः ॥ २१
तथाऽसुरवरो दैत्यो दहति स्म सुतेजसा ।
देवानां दानवानां च बलं मर्दति दारुणम् २२
विरूढमभवत्सर्वमाकुलं च समंततः ।
शूराश्च ते बलोदग्रा हस्त्यश्वरथधूर्गताः ॥ २३
आर्यां बुद्धिं समास्थाय न त्यजन्ति महारणम्
तदुत्पिञ्जलकं युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ २४
देवदानवयोः संख्ये रुधिरस्रावकर्दमम् ।
न दिशः प्रत्यजानन्त भयग्राहनिपीडिताः २५
शस्त्रपातांश्च विविधान्दानवानां महारणे ।
अन्योन्यं मूढचित्तास्ते निजघ्नुर्व्याकुलीकृताः
स्वान्परांश्चाभिजानन्ति विमूढाः शस्त्रपाणयः
शिरोरुहेषु संगृह्य कश्चिच्छूरस्य संयुगे ।
शूरश्छिनत्ति मूर्धानं सन्दष्टौष्ठपुटाननम् ॥ २७
बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव वज्रकल्पैः सुदारुणैः ।
प्रहरन्ति रणे वीरा आत्तशस्त्राः परस्परम् २८
योधप्राणहरे रौद्रे स्वर्गद्वारेऽनपावृते ।
संकुले तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ॥ २९
हयो हयं गजो नागं वीरो वीरं महाहवे ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तो ह्यसमञ्जसमाहवे ।
असुराश्च सुराश्चैव विक्रमाढ्या महारथाः ३०
जुहुवुः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ।
मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः
हस्तैः पादैश्च युध्यन्ते दानवास्त्रिदशैः सह ।
हरिस्तु निशितं भल्लं प्रेषयामास संयुगे ॥ ३२
स तस्य धनुषः कोटिं छित्त्वा भूमावपातयत् ।
पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ॥ ३३
प्राहिणोत्सहसा तस्य दानवेन्द्रस्य संयुगे ॥
तस्य देहविमुक्तास्ते मारुतेन समीरिताः ३४
भग्नार्धकाया विविशुः पन्नगा इव पर्वते ।
स तैर्निपतितैर्गात्रैः क्षरद्भिरसृगावलीः ॥ ३५
बभौ दैत्यो महाबाहुर्मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ।
पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ३६

उत्पिञ्जलकम् आकुलत्वम् ॥ २४ ॥ देवदानवयोः देवदानवजात्योः ॥ २५ ॥

१ ख. °द्गणाटोपो म° ।

ततोऽसिलोमा संक्रुद्धः प्रगृह्यान्यन्महाधनुः ।
रुक्मपुङ्खांश्च निशितान्प्रेषयामास सायकान् ।
तैस्तु मर्मसु विव्याध सर्पानलविषोपमैः ।
गात्रं संछादयामास महाभ्रैरिव पर्वतम् ॥ ३८
भूयः संधाय च शरं मुमोचान्तकसंनिभम् ।
सुपुङ्खं सूर्यसंकाशं बाणमप्रतिमं रणे ॥ ३९
तेन बाणप्रहारेण संयुगे भीमकर्मणा ।
मुमोह सहसा देवो भूमौ चापि पपात ह ॥ ४०
ततो हाहाकृताः सर्वे देवे भूतलमाश्रिते ।
जगत्सदेवमाविग्नं यथाऽर्कपतनं तथा ॥ ४१
परिवारं तु समरे तस्य हत्वा महासुरः
एकत्रिंशत्सहस्राणि योधानां दानवोत्तमः ४२
जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवाचलः ।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥ ४३
तथैव तु महायुद्धे ससैन्यावश्विनावुभौ ।
प्रयुद्धौ सह वृत्रेण बलिना देवतारिणा ॥ ४४
बाणखड्गधनुष्पाणिः
समरे त्यक्तजीवितः ।
आसाद्य सोऽश्विनौ दैत्यः
स्थितो गिरिरिवाचलः ॥ ४५
ततः शंखमुपाध्माय द्विषतां लोमहर्षणम् ।
ज्याघोषतलशब्दैश्च सर्वभूतान्यवेजयत् ॥ ४६
ततः संहृष्टरोमाणः शंखशब्दं विशुश्रुवुः ।
यक्षराक्षसदेवौघा वृत्रस्यापि च निःस्वनम् ४७
गदा-तोमर-निस्त्रिंश-शूल-शक्ति-परश्वधाः
प्रगृहीता व्यराजन्त यक्षराक्षसबाहुभिः ॥ ४८
तैः प्रमुक्तान्महाकायैः शूलशक्तिपरश्वधान् ।
भल्लैर्वृत्रपरिच्छेदभीमवेगरवैस्तथा ॥ ४९
अन्तरिक्षचराणां च भूमिस्थानां च गर्जताम् ।
शरैर्विव्याध गात्राणि देवानां प्रियदर्शिनाम् ॥
वृत्रासुरभुजोत्सृष्टैर्बहुधा यक्षरक्षसाम् ।
निकृत्तान्येव दृश्यन्ते शरीराणि शिरांसि च
अथ रक्तमहावृष्टिरभ्यवर्षत मेदिनीम् ।
गदापरिघभिन्नानां देवानां गात्रसंभवा ॥ ५२
प्रच्छादयन्तं बाणौघैर्वृत्रं भीमपराक्रमम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि भानुमन्तमिवांशुभिः ॥ ५३
तीक्ष्णरश्मिरिवादित्यः प्रतपन्सर्वदेवताः ।
अश्विनोर्बलवान् क्रुद्धः सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ५४
नदतो विविधान्नादानर्दितस्यापि सायकैः ।
न मोहमसुरेन्द्रस्य ददृशुस्त्रिदशा रणे ॥ ५५
तेऽसिचर्मगदाभिश्च परिघप्रासतोमरैः ।
परश्वधैश्च शूलैश्च प्रववर्षुर्महारथाः ॥ ५६
ततो वृत्रः सुसंक्रुद्धस्तैस्तदाऽभ्यर्दितो बली ।
अभ्यवर्षच्छितैर्बाणैस्तान्सर्वान्सत्यविक्रमः ॥
तेन वित्रासिता देवा विप्रकीर्णमहायुधाः ।
घोरमार्तस्वरं चक्रुर्वृत्रासुरभयार्दिताः ॥ ५८
उत्सृज्य ते गदाशक्तिशूलर्ष्टिपरिघाशनीन् ।
उत्तरां दिशमाजग्मुस्त्रासिता दृढधन्विना ॥
शूलशक्तिगदापाणिर्व्यूढोरस्को महाभुजः ।
प्रावर्तत रणे वृत्रस्त्रासयानश्चराचरान् ॥ ६०
तत्रैकस्तु महाबाहुरसिशूलधरः प्रभुः ।
अभ्यधावत दैत्येन्द्रं वृत्रमप्रतिमं रणे ॥ ६१
[गृहीतचापो वेगेन प्रभिन्न इव वारणः] ।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य निर्भिन्नमिव वारणम् ॥
वत्सदन्तैस्त्रिभिः पार्श्वे विव्याध सुरसत्तमम्
सोऽतिविद्धो महेष्वासः शरैरमितविक्रमः ।
गदां जग्राह बलवान्गदायुद्धविशारदः ॥ ६३
तां प्रगृह्य महाभीमामयःसारमयीं दृढाम् ।
आश्विनौ सहसाऽऽगम्य ताडयामास वीर्यवान्
दीप्यमानं ततः शूलमश्वी सुविपुलं दृढम् ।
प्रासृजद्वृत्रदैत्याय सहसा रोमहर्षणम् ॥ ६५
भङ्क्त्वा शूलं गदाग्रेण गदायुद्धविशारदः ।
अश्विनं सहसाऽभ्यर्च्य गरुत्मानिव पन्नगम् ॥
सोऽन्तरिक्षात्समुत्पत्य विधूय महतीं गदाम्
नासत्योपरि चिक्षेप गिरिशृङ्गोपमां बली ६७
गदयाऽभिहतः सोऽश्वि-
स्त्यक्त्वा शूलमनुत्तमम् ।
प्रयातः सहसा तत्र
यत्र युध्यति वासवः ॥ ६८
पराजित्य तु संग्रामे अश्विनं भीमविक्रमम् ।
जयश्रिया सेव्यमानो वृत्रो युद्धे व्यवस्थितः ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे वृत्रासुरोत्कर्षवर्णने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

---

अवेजयत् अकम्पयत् ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तपञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

१ ख. °त्वा गदां भी° ।

# देवासुरयुद्धे केशिरुद्रयोस्तुमुलयुद्धम् ।

## ५८

वैशम्पायन उवाच ।
तत्रैव तु महायुद्धे रणाजिद्देवसत्तमः ।
युध्यते सह दैत्येन एकचक्रेण धीमता ॥ १
प्रच्छाद्य रथपन्थानमुत्क्रोशंश्च महाबलः ।
एकचक्रस्य सैन्यं तच्छरवर्षैरवाकिरत् ॥ २
महासुरा महावीर्या महापट्टिशयोधिनः ।
शूलानि च भुशुण्डीश्च क्षिपन्ति स्म महारणे
तच्छूलवर्षं सुमहद्गदाशक्तिसमाकुलम् ।
अविशद्दितिजैर्मुक्तं दुर्निवार्यं चराचरैः ॥ ४
अन्योन्यमभिवर्तन्ते देवासुरगणा युधि ।
महाद्रिशिखराकारा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥५
तुरङ्गमाणां तु शतं युक्तं तस्य महारथे ।
महासुरवरस्येव हिरण्यकशिपोर्युधि ॥ ६
तेषां चरणपातेन चक्रनेमिस्वनेन च ।
तस्य बाणनिपातैश्च हता वै शतशः सुराः ७
ततः स लघुभिश्चित्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सायुधानच्छिनत्क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ८
बध्यमानाः शरैस्तीक्ष्णै रथाद्विरदवाजिनः ।
गमिताः प्रक्षयं केचित् त्रिदशैर्दानवा रणे ॥९
ततः प्रक्षीयमाणांस्तानुपप्रेक्ष्य दितेः सुताः ।
त्यक्त्वा बाणान्व्यवर्तन्त प्रगृहीतवरायुधाः
ते दिशो विदिशश्चैव प्रतियुद्धप्रहारिणः ।
अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्देवान्दितिसुता रणे ११
रणाद्विचलितं घोरं परमं तिग्मतेजसम् ।
मुमोचास्त्रं महाबाहुमथनं नाम संयुगे ॥ १२
ततः शस्त्राणि शूलानि निशितानि सहस्रशः
अतिवीर्येण महता दितिजः संप्रचिच्छिदे १३
छित्वा शूलेन तान्सर्वानेकचक्रो महासुरः ।
अभ्याविध्यत तं साध्यं दशभिर्निशितैः शरैः ॥
अस्त्रवेगेन हत्वैव सोऽस्त्रैस्तस्यानुसैनिकान् ।
ज्वलितैरपरैः शीघ्रैस्तानविध्यत्सहस्रशः ॥१५

तेषां छिन्नानि गात्राणि
विसृजन्ति स्म शोणितम् ।
प्रावृषीवाम्बुवृष्टीनि
शृङ्गाणि धरणीभृताम् ॥ १६
इन्द्राशनिसमस्पर्शैर्निपतद्भिरजिह्मगैः ।
दितिजैर्वध्यमानास्ते वित्रेसुः सुरसत्तमाः ॥१७
एकचक्रे रथे तिष्ठन्नपश्यद्गजयूथपम् ।
वराभरणनिर्ह्रादान्त्समुद्रस्वननिःस्वनान् ॥ १८
मत्तान्सुविहितान्दृप्तान्महामात्रैरधिष्ठितान् ।
कुलीनान्वीर्यसंपन्नान्प्रतिद्विरदघातिनः ॥ १९
शिक्षितान्गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ।
व्यहनत्सुरसैन्यस्य गजान्गज इवासुरः ॥ २०
विक्षरन्तो महानागान्भीमवेगांस्त्रिधा मदम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषान्महाद्रीनिव चोत्थितान् ।
सहस्रसंमितान्दिव्याञ्जाम्बूनदपरिष्कृतान् ।
सुवर्णजालैर्विततांस्तरुणादित्यवर्चसः ॥ २२
एकचक्रो गदापाणिर्बलवान्गदिनां वरः ।
उत्सारयामास गजान्महाभ्राणीव मारुतः ॥
निहत्य गदया सर्वांस्तान्गजान्गजमर्दनः ।
भूयोऽश्वसंघान्त्स बली निरैक्षत महासुरः २४
शुकवर्णानृष्यवर्णान्मयूरसदृशांस्तथा ।
पारावतसवर्णांश्च हंसवर्णांस्तथैव च ॥ २५
मल्लिकाक्षान्विरूपाक्षान्क्रौञ्चवर्णान्मनोजवान्
अश्वसैन्यं महाबाहुस्तदप्रतिमपौरुषः ॥ २६
निषूदयामास बली गदया भीमविक्रमः ।
रणाजिद्व्यस्य समरे सर्वान्दृष्ट्वा सुरद्विषः ॥२७
अचिन्त्यविक्रमः श्रीमानभ्ययाद्देववाहिनीम् ।
गदायुद्धेषु कुशलो रथेन रथयूथपः ॥ २८
हृष्टसैन्यो महाबाहुः प्रस्थितः शक्रसंनिधौ ।
त्रिंशच्छतसहस्राणि[२] रथानां विनिहत्य सः २९

५८

तत्रैवेति । रणाजिः साध्यविशेषः ॥ १ ॥ त्रिधा कण्ठकरकुम्भदेशेषु मदं क्षरन्तः । द्वितीयार्थे प्रथमा ॥ २१ ॥ ऋष्यः धूसरो मृगविशेषस्तद्वर्णान् ॥ २५ ॥ व्यस्य त्यक्त्वा २७

१ ख. °मान्स युद्धाद्विरराम ह । ग° । २ ख°णि प्राणिनां वि° ।

रणेऽतिष्ठत दैत्येन्द्रो विधूम इव पावकः ।
तस्मिन्नेव तु संग्रामे बलदृप्तो महासुरः ॥ ३०
मृगव्याधं महात्मानं योधयत्याजितं रणे ।
मृगव्याधस्य रुद्रस्य महापारिषदास्तथा ॥३१
समुत्पेतुर्बलं दृष्ट्वा हुताग्निसमतेजसः ।
गजैर्मत्तै रथैर्दिव्यैर्वाजिभिश्च महाजवैः ॥ ३२
अस्त्रैश्च निशितैर्बाणैः शरैश्चानलसन्निभैः ।
ददृशुस्तं ततो वीरा दीप्यमानं महासुरम् ॥३३
रश्मिवन्तमिवोद्यन्तं सुतेजोरश्मिमालिनम्
संग्रामस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम् ॥ ३४
महामतिं महोत्साहं महाकायं महारथम् ।
समीक्ष्य तं महायोधं दिक्षु सर्वास्ववस्थितम्
ततः प्रहरणैर्घोरैरभिपेतुः समंततः ।
तस्य सर्वायसास्तीक्ष्णाः शराःपीतमुखाःशिताः
शिरस्यद्रिप्रतीकाशे मृगव्याधेन पातिताः ।
तैश्च सप्तभिराविष्टः शरैः शिरसि चार्पितैः ॥
उत्पपात तदा व्योम्नि दिशो दश विनादयन्
ततस्तं त्रिदशो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः ॥३८
अनुवव्राज संहृष्टः खे तदा स महाबलः ।
असुरं छादयामास तं व्योम्नि शरवृष्टिभिः ३९
वृष्टिमानिव जीमूतो निदाघान्ते धराधरम् ।
अर्द्यमानस्ततस्तेन मृगव्याधेन दानवः ॥ ४०
चकार निनदं घोरमम्बरे जलदो यथा ।
स दूरं सहसोत्पत्य मृगव्याधरथं प्रति ॥ ४१
निपपात महावेगः पक्षवातैर्गिरिर्यथा ।
बभञ्ज च ततो दैत्यो भग्नेषाकूबरं रथम् ॥ ४२
मृगव्याधः परित्यज्य स्थितो भूमौ महाबलः
विरथं प्रेक्ष्य रुद्रं तु तस्य पारिषदाः शुभाः ४३
उत्थिता घोररक्ताक्षा व्योम्नि मुद्गरपाणयः ।
स तु तैः सहसोत्थाय वेष्टितो विमलेऽम्बरे ॥
मुद्गरैरार्दितो भीमैर्वृक्षः परशुभिर्यथा ।
तेषां वेगवतां वेगं निहत्य स महारथः ॥ ४५
निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः ।
स शालवृक्षमुत्पाट्य महाशाखं महाबलः ४६
सर्वान्पारिषदान्संख्ये सूदयामास दानवः ।
स तैर्विजितदेहस्तु रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ४७
शुशुभे दानवश्रेष्ठो बालसूर्य इवोदितः ।
अथोत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ४८
जघान तान्पारिषदान्समरे दानवेश्वरः ।

ततस्तेषु च भग्नेषु महापारिषदेषु वै ॥ ४९
बलं तदवशेषं तु नाशयामास वीर्यवान् ।
अश्वैरश्वान्गजैर्नागान्योधान्योधै रथान्रथैः५०
दानवः सूदयामास युगान्तेऽन्तकवत्प्रजाः ।
हतैरश्वैश्च नागैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः ॥ ५१
त्रिदशैश्चाभवद्भूमी रुद्धमार्गा समंततः ।
एवं बलः स दैत्येन्द्रो मृगव्याधश्च वीर्यवान्
युधि प्रवृद्धौ बलिनौ प्रभिन्नाविव वारणौ५३

वैशम्पायन उवाच ।

तत्रैव युध्यते रुद्रो द्वितीयो राहुणा सह ।
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु क्रोधात्मा ह्यज एकपात्
तद्यथा सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
आसीत्प्रतिभयं रौद्रं वीराणां जयमिच्छताम्
देवदानवदेहैस्तु दुस्तरा केशशाड्वला ।
शरीरसंघातवहा प्रसृता लोहितापगा ॥ ५६
आजघानाथ संक्रुद्धो रुद्रो रौद्राकृतिः प्रभुः
राहुः शतमुखं युद्धे शत्रुसैन्यनिवारणम् ॥५७
तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम्
जघान समरे श्रीमान्क्रुद्धो दैत्यस्य सायकैः ॥
तस्य पारिषदस्त्वेकः शरशक्त्या महाबलः ।
बिभेद समरे हृष्टो दानवं तं स्तनान्तरे ॥५९
स भिन्नगात्रो रुद्रेण तथा पारिषदैरपि ।
रुद्रस्य रथमायान्तं स राहुर्दानवोत्तमः ॥ ६०
प्रममाथ तलेनाशु सहसा क्रोधमूर्च्छितः ।
भिन्ननागं शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ६१
हतैर्दानवमुख्यैस्तु रुद्रेणामिततेजसा ।
रुद्रपारिषदान्सर्वान्निजघान महासुरः ॥ ६२
[ सृजन्तं शरवर्षाणि दानवं घोरदर्शनम् ।
बिभेद समरे रुद्रो बाणैः सन्नतपर्वभिः ] ॥
वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।
रुधिरौघा महावेगा महानद्यः प्रसुस्रुवुः ॥ ६३
दानवं समरे रुद्रा नीलाञ्जनचयोपमम् ।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ॥६४
हतैर्दानवमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः ।
पतितैः पर्वताभैश्च दानवैः कामरूपिभिः ॥६५
वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।
विरेजुस्ते तदा दैत्याः पुष्पिता इव किंशुकाः
महाभेरी मृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः ६६

१ ख. ग. तैर्वितते॰ ।

शङ्खवेणुस्वनोन्मिश्रः संबभूवाद्भुतोपमः ।
हतानां स्वनतां तत्र दैत्यानां चापि निःस्वनः
देवानां च तथा तत्र शुश्रुवे दारुणो महान् ।
तुरङ्गमखुरोत्कीर्णं रथनेमिसमुत्थितम् ॥ ६८
रुरोध मार्गं योधानां चक्षूंषि च धरारजः ।
शस्त्रपुष्पोपहारा सा तत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥ ६९
दुर्दर्शा दुर्विगाह्या च मांसशोणितकर्दमा ।
भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमरपाट्टिशैः ॥ ७०
अपविद्धैश्च भग्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हतैः ।
निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा त्रिदशदानवैः ॥ ७१
चक्राक्षयुगशस्त्रैश्च भग्नैरवनिपातितैः ।
बभूवायोधनं घोरं पिशिताशनसंकुलम् ॥ ७२
उत्पेतुश्च कबन्धानि दिक्षु सर्वासु संयुगे ।
अन्योन्यबद्धवैराणां दैत्यानां जयगृद्धिनाम् ॥
संप्रहारस्तथा युद्धे वर्ततेऽतिभयंकरः ।
सैन्यानां संप्रयुद्धानां शूराणामनिवर्तिनाम्
अजस्य चैकपादस्य राहोश्चैव महात्मनः ।
तेषां तु तत्र पततां क्रुद्धानामीतिनिःस्वनः ७५
उद्धर्त इव भूतानां समुद्राणां तु शुश्रुवे ।
तत्रैकस्तु सहस्राक्षः श्रीमान्रुद्रो मुनीश्वरः ॥
बिभेद केशिनं शक्त्या गदापरिघशूलभृत् ।
नानाप्रहरणा घोरा भीमाख्या भीमविक्रमाः॥
निष्पेतू रुद्रदयिता महापारिषदास्तथा ।
रथमास्थाय च श्रीमांस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ७८
दानवैः संवृतः केशी युध्यते युद्धदुर्जयैः ।
तस्य संग्रामशौण्डस्य संग्रामेषु युयुत्सतः ७९
निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात् ।
स तु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ८०
महाजलदसंकाशो मृदङ्गध्वनिनिःस्वनः ।
तस्य निष्पतमानस्य दानवैः संवृतस्य च ८१
बभूव सुमहानादः क्षोभयंस्त्रिदिवं यथा ।
तेन शब्देन वित्रस्ता त्रिदशानां महाचमूः॥८२
द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुमेवाभ्यवर्तत ।
तेषां च देवदैत्यानां युयुत्सूनां परस्परम् ।
सन्निपातः सुतुमुलो रौद्रो लोकभयावहः ८३
तेषां युद्धं महाघोरं संजज्ञे लोमहर्षणम् ।
देवदानवसंघानां प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ।
सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसंनिभाः ८४
सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे सर्वायुधोद्यताः ।
त्रिदशा दानवाश्चैव परस्परजिघांसवः ।
तेषां वै नदतां शब्दः संयुगे मेघनिःस्वनः ८५
शुश्रुवेऽतिमहाघोरश्चरस्थावरकम्पनः ।
रेणुश्चारुणसंकाशो भीमः स समपद्यत ॥ ८६
उद्धूतो देवदैत्यौघैः संरुरोध दिशो दश ।
अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयारुणपाण्डुना ८७
संवृता बहुरूपेण ददृशुर्न च किंचन ।
न ध्वजो न पताकाश्च न वर्म तुरगोऽपि वा
आयुधं स्यन्दनो वापि दृश्यते नैव सारथिः
स शब्दस्तुमुलस्तेषामन्योन्यं समधावताम् ॥
निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात् ।
स तु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ९०
तस्य निष्पतमानस्य दानवैः संवृतस्य च ।
श्रूयते तुमुलः शब्दो न रूपाणि चकाशिरे ९१
दानवास्तत्र संक्रुद्धा दानवानेव जघ्निरे ।
त्रिदशास्त्रिदशांश्चैव निजघ्नुस्तुमुले तदा ९२
न परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च युद्धे महासुरान्
रुधिरार्द्रां तथा चक्रुर्मेदिनीं च महासुराः ९३
ततस्तु रुधिरौघेण संसिक्तमुदितं रजः ।
शरीरशतसंकीर्णं बभूव धरणीतलम् ॥ ९४
शूल-शक्ति-गदा-खड्ग-परिघ-प्रास-तोमरैः।
त्रिदशा दानवाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ९५
बाहुभिः परिघाकारैर्निघ्नतः परिघैस्तथा ।
रुद्रपारिषदान्सर्वान्सूदयन्ति स्म दानवाः ।
रुद्रपारिषदाश्चैव महाद्रुममहाश्मभिः ॥ ९६
व्यदारयन्नतिक्रम्य शस्त्रैश्चादित्यसंनिभैः ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः केशी दानवसत्तमः ॥ ९७
संग्राममर्षी घोरः स स्वान्यनीकानि हर्षयन्
तेषां परमसंक्रुद्धो वज्रमस्त्रमुदीरयत् ॥ ९८
वज्रेणास्त्रेण दिव्येन शस्त्रेण च महात्मना ।
महापारिषदाः सर्वे निहता युधि दुर्जयाः ९९
वज्रास्त्रपीडिता भ्रान्ता रुद्रपारिषदा युधि ।
विप्रकीर्णद्रुमाः पेतुः शैला वज्रहता इव॥१००
एवं सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
केशिनः सह रुद्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे केशिरुद्रयुद्धकथने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

१ ख. शङ्खानां पटहानां च संबभूव महास्वनः । ह॰ । २ ख. भल्लैः ख॰ । ३ ख. ॰माक्षा भी॰ ।

# देवासुरयुद्धे कालप्रह्लादयोर्युद्धम् ।

## ५९

वैशम्पायन उवाच ।
वृषपर्वा तु दैत्येन्द्रो विश्वमद्भुतदर्शनम् ।
निष्कुम्भं योधयामास लोहितार्कसमद्युतिम् १
क्रोधमूर्छितवक्त्रस्तु धुन्वन्परमकार्मुकम् ।
धनूंषि प्रेक्ष्य शत्रूणां सारथिं त्वरितोऽब्रवीत्
अत्रैव तावत्त्वरितं नय मे सारथे रथम् ।
एते देवाश्च सहिता घ्नन्ति नः समरे बलम् ३
एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो रणे ।
एतैर्हि दानवानीकं कृतच्छिद्रमिदं महत् ॥ ४
ततः प्रजविताऽश्वेन रथेन रथिनां वरः ।
अरीनभ्यहनत्क्रुद्धः शरजालैर्महासुरः ॥ ५
न स्थातुं देवताः शक्ताः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
वृषपर्वेषुनिर्भिन्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ ६
तान्मृत्युवशमापन्नान्वैवस्वतवशं गतान् ।
समीक्ष्य निहताञ्ज्ञातीनवतस्थे महासुरः ॥७
दृष्ट्वा तं तत्र निष्कुम्भं सर्वे ते त्रिदशोत्तमाः ।
समेत्य सहिताः सर्वे द्रुतं तं पर्यवारयन् ॥ ८
व्यवस्थितं तु निष्कुम्भं दृष्ट्वा त्रिदशसत्तमम्
बभूवुर्बलवन्तो वै तस्यास्त्रबलतेजसा ॥ ९
वृषपर्वा तु शैलाभं निष्कुम्भं समरे स्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १०
अचिन्तयित्वा तु शराञ्छरीरे पतितान्बहून्
स्थितश्च प्रमुखे श्रीमान्स्वसैन्यः स महाबलः
संप्रहस्य महातेजा वृषपर्वाणमाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥१२
तस्य त्वाधावमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १३
रथं त्यक्त्वा महातेजाः सक्रोधः समपद्यत ।
वृक्षमुत्पाटयामास महातालं महोच्छ्रयम् १४
ततश्चिक्षेप तं वृक्षं निष्कुम्भो वृषपर्वणः ।
तं गृहीत्वा महावृक्षं पाणिनैकेन दानवः ॥ १५
विनद्य सुमहानादं भ्रामयित्वा च वीर्यवान् ।
सगजान्सगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ॥ १६
जघान दानवस्तेन शाखिना त्रिदशांस्तदा ।
तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ॥ १७
वृषपर्वाणमासाद्य त्रिदशा विप्रदुद्रुवुः ।
तमापतन्तं संक्रुद्धं त्रिदशानां भयावहम् १८
आलोक्य धन्वी निष्कुम्भश्चुक्रोध च ननाद च
स तत्र निशितैर्बाणैस्त्रिशद्भिर्मर्मभेदिभिः ॥१९
निर्बिभेद महावीर्यो निष्कुम्भो दानवाधिपम्
शरशक्तिभिरुग्राभिर्दैत्यानामधिपं प्रभुम् ॥ २०
विद्धः समरमध्यस्थो रुधिरं प्रास्रवद्बहु ।
उद्विग्ना मुक्तकेशास्ते भग्नदर्पाः पराजिताः२१
श्वसन्तो दुद्रुवुः सर्वे भयाद्वै वृषपर्वणः ।
अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते त्रासिता वृषपर्वणा २२
पृष्ठवक्त्राः सुसंविग्नाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ।
त्यक्तप्रहरणाः सर्वे कृतास्ते वृषपर्वणा ॥ २३
संग्रामे युद्धशौण्डेन तदा निष्कुम्भसैनिकाः ।
तत्रैव तु महावीर्यः प्रह्लादः कालमाहवे ॥ २४
योधयामास रक्ताक्षो हिरण्यकशिपोः सुतः ।
तस्य दानववीरस्य युद्धकाले जयक्रियाः २५
चकार त्वरया युक्तो भार्गवो विजयावहाः ।
हुताशनं तर्पयतो ब्राह्मणांश्च नमस्यतः ॥ २६
आज्यगन्धप्रतिवहो मारुतः सुरभिर्ववौ ।
स्रजश्च विविधाश्चित्रा जयार्थमभिमन्त्रिताः ॥
प्रह्लादस्य शुभे मूर्धन्याबबन्धोशनाः स्वयम् ।
कालेन सह संग्रामे प्रयुद्धस्य महात्मनः २८
प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य शान्तिं चक्रे स भार्गवः
दश शिष्यसहस्राणि भार्गवस्य महात्मनः २९
यानि दानववीराणां जेपुः शान्तिमनुत्तमाम् ।
अथर्वाणमथो दिव्यं ब्रह्मसंस्तवचोदितम् ॥ ३०
रणप्रवेशसदृशं कर्म वैजयिकं कृतम् ।
ततः सर्वास्त्रविदुषः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ३१
विद्यया तपसा युक्ताः कृतस्वस्त्ययनक्रियाः ।
धनुर्हस्ताः कवचिनो वेगनाप्लुत्य दानवाः ।
बलिमभ्यर्च्य राजानं प्रह्लादं पर्यवारयन् ॥ ३२

५९

वृषपर्वा विश्वं विश्वेदेवान्तर्गतं निष्कुम्भं नामतः ॥१॥

१ ख. °धाकारा ज° ।

आस्थाय परमं दिव्यं रथं पररथारुजम् ।
नानाप्रहरणाकीर्णं सवज्रमिव पर्वतम् ॥ ३३
तद्बभूव मुहूर्तेन क्ष्वेडितास्फोटिताकुलम् ।
मेरोः शिखरमाकीर्णं द्यौरिवाम्बुधरागमे ३४
स्रजः पद्मपलाशानामामुच्य सुविभूषिताः ।
बान्धवान्संपरित्यज्य निपतन्ति रणप्रियाः ॥
महायुधधरः श्रीमाञ्छुभवर्मधरः प्रभुः ।
शिरस्त्राणतनुत्राणि धन्वी परमदुर्जयः ॥ ३६
सिंहशार्दूलदर्पाणां गदतां किङ्किणीकिनाम् ।
तस्य दैत्यसहस्राणि प्रयान्त्यग्रे महारणे ॥ ३७
सैन्यपक्षहतास्तस्य रथाः परमदुर्जयाः ॥
सप्ततिर्वै सहस्राणि गजास्तावन्त एव च ३८
मध्ये व्यूहोदरस्थस्तु कालनेमिर्महासुरः ।
धनुर्विस्फारयामास ननाद प्रजहास च ३९
तस्मिञ्छतसहस्राणि पुरो यान्ति महाद्युतेः ।
दानवानां बलवतां शक्रप्रतिमतेजसाम् ॥ ४०
स समं वर्तमानस्तु पक्षाभ्यां विस्तृतो महान्
अभवद्दानवव्यूहो दुर्भेद्यः सर्वदैवतैः ॥ ४१
षष्टी रथसहस्राणि दानवानां धनुर्भृताम् ।
नानाप्रहरणानां च परिमाणं न विद्यते ॥ ४२
गदापरिघनिस्त्रिंशैः शूलमुद्गरपट्टिशैः ।
प्रगृहीतैर्व्यराजन्त दानवाः पर्वतोपमाः ॥ ४३
गर्जन्तो निनदन्तश्च विक्रोशन्तः पुनः पुनः ।
अयुध्यन्त महावीर्याः समरेष्वनिवर्तिनः ४४
तत्र तूर्यसहस्राणि भेरीशङ्खरवाणि च ।
हयानां च गजानां च गर्जतामतिवेगिनाम् ४५
दुन्दुभीनां च निर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च पटहानां च निःस्वनः ॥
तेन शङ्खनिनादेन भेरीतूर्यरवेण च
निर्घोषेण रथानां च क्रोशतीव नभस्तलम् ॥
सागरप्रतिमौघेन बलेन महता वृतः ।
प्रह्लादोऽयुध्यत रणे कालान्तकयमोपमः ४८
तस्य नादेन रौद्रेण घोरेणाप्रतिमौजसः ।
विनेदुः सर्वभूतानि त्रैलोक्यनिकृतैः स्वनैः ॥
अन्तरिक्षात्परं त्यक्त्वा वायुश्च परुषो ववौ ।
वमन्त्यः पावकं घोरं शिवाश्चैव ववाशिरे ५०
प्रह्लादस्तु महावीर्यः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ।
उवाच वचनं श्रीमांस्तत्कालक्षममुत्तमम् ॥ ५१
अद्याहं दर्शयिष्यामि स्वबाहुबलमूर्जितम् ।
अद्य मद्बाणनिहतान्देवान्द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ ५२
बान्धवा निहता येषां त्रिदशैरिह संयुगे ।
अद्य निर्वर्तयिष्यन्ति शत्रुमांसानि दानवाः ॥
इममद्य समुद्भूतं रेणुं समरमूर्धनि ।
अहं तु शमयिष्यामि शत्रुशोणितविस्रवैः ५४
तिमिरौघहतार्कं तु सैन्यरेणवरुणीकृतम् ।
आकाशं संपतिष्यन्ति खद्योता इव मे शराः
दृष्ट्वा संपरिमोदध्वं देवेभ्यस्त्यज्यतां भयम् ।
अद्याहं निहनिष्यामि कालेन्द्रं धनुषा रणे ५६
तोषयिष्यामि राजानं बलिं बलवतां रणे ।
त्रिदशान्सगणान्हत्वा रणे चान्तकमान्तिकात्
अक्षयाः सन्ति मे तूणाः शराश्चाशीविषोपमाः
स्थातुं मे पुरतः शक्ताः के रणे जीवितेप्सवः ॥
हत्वा रिपुगणांस्तुष्टिरनुरागश्च राजसु ।
हतस्य त्रिदिवे वासो नास्ति युद्धसमा गतिः
तद्भयं पृष्ठतः कृत्वा रणे दानवसत्तमः ।
निहत्येमानरीन्सर्वान्मोदध्वं नन्दने वने ॥
एवमुक्त्वा महत्सैन्यं प्रह्लादो दानवोत्तमाः ।
कालसैन्यं महारौद्रं तरसाऽमर्दतासुरः ॥ ६१
सर्वास्त्रविद्वान्वीरश्च नित्यं चाप्यपराजितः ।
युद्धे ह्यभिमुखो नित्यं स्वबाहुबलदर्पितः ॥ ६२
षष्टिं रथसहस्राणि विविधायुधधारिणाम् ।
प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य ते तस्य तनया निजाः ॥
तैस्तु क्रतुशतैरिष्टं विपुलैराप्तदक्षिणैः ।
क्षान्ता धर्मपरा नित्यं सत्यव्रतपरायणाः । ६४
दातारः प्रियवक्तारो वक्तारः शास्त्रवस्तुषु ।
स्वदारनिरता दान्ता ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गराः ॥
यष्टारः क्रतुभिर्नित्यं नित्यं चाध्ययने रताः ।
इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे बहुशो दृढविक्रमाः ६६
मत्तवारणविक्रान्ताः शत्रुसैन्यप्रमर्दकाः ।
दारयन्तः पदाक्षेपैः सुघोरान्वातरेचकान् ६७

'निर्वर्तयिष्यन्ति हतानां देवभावं गतानामर्थे शत्रुमांसानि' शत्रुरूपाणां पशूनां हृदयाद्यङ्गानि निर्वर्तयिष्यन्ति इदममुष्मै इति तत्तदुद्देशपूर्वकं कल्पयिष्यन्ति ॥ ५३ ॥ कालश्चासाविन्द्रश्च कालेन्द्रो यमः ॥ ५६ ॥ वातरेचकान् व्यजनीकृतान् वृक्षादीन् ईरयन्तः ॥ ६७ ॥

१ ख. °मापूर्णं द्यौ° । २ ख. सतनुत्रशिरस्त्राणो ध° । ३ ख. वर्धमान° ।

युद्धोत्सुकधिया नित्यं क्रोधरञ्जितलोचनाः।
संदष्टौष्ठपुटा दैत्या विनेदुर्भीमविक्रमाः।
क्ष्वेडितास्फोटितरवैरन्योन्यं समहर्षयन्। ६८
वेणुशंखरवैश्चैव सिंहनादैश्च पुष्कलैः।
आप्लुत्याप्लुत्य सहसा रणे बभुरनेकशः ६९
तालमात्राणि चापानि विकृष्य सुमहाबलाः।
अमृष्यमाणाः सहसा दानवाश्चापपाणयः॥७०
सुराद्युरैरप्यजितं योधयन्ति रणेऽन्तकम्।
प्रतप्तहेमाभरणाः सर्वे ते श्वेतवाससः ७१
दानवा मानिनः सर्वे सर्वे स्वर्गाभिकाङ्क्षिणः।
सर्वे जयैषिणो वीराः सर्वे शत्रुवधोद्यताः ७२
शुशुभे सा चमूर्दीप्ता पताकाध्वजमालिनी।
गजाश्वरथसंबाधा स्वर्गमार्गाभिकाङ्क्षिणी॥
ततः कालः सुनिर्यातो भीमो भीमपराक्रमः
निनदन्सुमहाकायो व्याधिभिर्बहुभिर्वृतः ७४
ददर्श महतीं सेनां दानवानां बलीयसाम्।
अभिसंजातदर्पाणां कालं समभिगर्जताम्॥
तदायान्तं तदानीकं दानवानां तरस्विनाम्।
प्रतिलोमं चकाराशु व्याधिभिःसहितोऽन्तकः
प्रविश्य ध्वजिनीं चैषां पातयामास दानवान्।
कालो रुधिररक्ताक्षः स्वेनानीकेन संवृतः ७७
प्रल्हादबलमत्युग्रं प्रल्हादं च महाबलम्।
आजघान रणे कालो दण्डमुद्गरपट्टिशैः॥७८
शरशक्त्यृष्टिखड्गांश्च शूलानि मुसलानि च
गदाश्च परिघाश्चैव विचित्राश्च परश्वधाः ७९
धनूंषि च विचित्राणि शतघ्नीश्च स्थिरायसीः।
पात्यन्ते व्याधिभिर्युद्धे दानवानां चमूमुखे॥
बहवो व्याधयो युद्ध बहूनसुरपुङ्गवान्।
व्याधीनपि च दैत्यौघा निजघ्नुर्बहवो बहून्॥
शूलैः प्रमथिताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः
परिघैराहताः केचित्केचिच्च परमायुधैः।
केचिद्द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि
व्याधयो दानवैरेव नानाशस्त्रैर्विदारिताः।
ते चापि व्याधिभिः सर्वे विविधैरायुधोत्तमैः
खड्गैश्च मुसलैस्तीक्ष्णैः प्रासतोमरमुद्गरैः।
भिन्नाश्च दानवाः सर्वे निकृत्ताश्च परश्वधैः॥
मुद्गरैः पट्टिशैश्चैव व्याधिभिश्च महाबलैः।
कृत्वा शस्त्रैरनेकैश्च मुष्टिभिश्च हता भृशम् ८५
वेमुः शोणितमन्योन्यं विष्टब्धदशनेक्षणाः।
आर्तस्वरं च नदतां सिंहनादं च गर्जताम्। ८६
बभूव तुमुलः शब्दः संग्रामे लोमहर्षणे।
मुष्टिभिश्चोत्तमाङ्गानि तलैर्गात्राणि चासकृत्॥
सादितानि महीं जग्मुस्तिष्ठतामेव संयुगे।
अस्रफेना ध्वजावर्ता छिन्नबाहुमहोरगा। ८८
शूलशक्तिमहामत्स्या चापग्राहसमाकुला।
रथेषूपलसंबन्धा ध्वजद्रुमलतावृता॥ ८९
सशब्दघोरविस्तारा लोहितोदाऽभवन्नदी।
स्वधनुःशक्रधनुषौ काञ्चनाङ्गदविद्युतौ॥९०
तौ दैत्यकालजलदौ शरधारां व्यमुञ्चताम्।
तौ महामेघसंकाशौ रथनागगतौ तदा। ९१
बभूवतुरभिक्रुद्धौ साम्बुगर्भाविवाम्बुदौ।
तप्तकाञ्चनसन्नाहौ दिव्यहारविभूषितौ। ९२
तौ विरेजतुरायत्तौ सूर्यवैश्वानरोपमौ।
तौ महाबलसंकाशावन्योन्यस्य चमूमुखे ९३
शक्राशनिसमस्पर्शैर्बाणैर्जघ्नतुराहवे।
परस्परं समासाद्य तयोर्युधि दुरासदम्॥ ९४
नाशंसन्त तदा योधा जीवितान्यपि संयुगे।
शरैर्विभिन्नसर्वाङ्गा युधि प्रक्षीणबान्धवाः
निपेतुर्योधमुख्यास्तु रुधिरोक्षितवक्षसः ९५
पतितैर्निष्पतद्भिश्च पात्यमानैश्च संयुगे।
बभूव भूः समाकीर्णा योधैरुद्गतजीवितैः ९६
अगृह्णन्त शरान्घोरांस्ते च सन्दधतोस्तयोः
अन्तरं ददृशे कश्चित्प्रयत्नादपि संयुगे ९७
लघुत्वाच्च महाबाहू युद्धशौण्डौ महाबलौ।
मण्डलीभूतधनुषौ सकृदेव बभूवतुः। ९८
प्रह्लादस्य च बाणौघैर्दुद्रावान्तकवाहिनी।
उह्यमाना बलवता वायुनेवाभ्रमण्डलम् ९९
हतदर्पं तु विज्ञाय प्रह्लादः कालमाहवे।
अपयातं च समरे द्विषन्तं संप्रतर्क्य तम्॥१००
मत्वा वशगतं चैव प्रह्लादो युद्धदुर्मदः
तत्रैवान्यां चमूं भूयः संममर्द महासुरः॥ १
कालप्रह्लादयोर्युद्धमभवद्यादृशं पुरा
तादृशं सर्वलोकेषु न भूतं न भविष्यति। २
एवमद्भुतवीर्यौजा महारणकृतव्रणः।
प्रह्लादस्तथ वृद्धोऽत्र कालस्त्वपसृतो रणात्।

१ ख. °स वीर्यवा°।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने देवासुरयुद्धे कालप्रह्लादयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

## देवासुरयुद्धे कुबेरानुह्लादयोर्युद्धम्।

६०

वैशम्पायन उवाच।

धनाध्यक्षमनुह्लादः प्रह्लादस्यानुजो बली।
ससैन्यं योधयामास क्षोभयन्यक्षवाहिनीम् १
महता च बलौघेन त्वनुह्लादोऽसुरोत्तमः।
अर्दयामास संक्रुद्धो धनाध्यक्षं प्रतापवान् २
अमृष्यमाणांस्त्रिदशानाहस्थानुदायुधान्।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्महासुरः ॥ ३
आवर्त इव संजज्ञे बलस्य महतो महान्।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव संप्लवः ॥ ४
त्रिदशानां शरीरैस्तु दानवानां च मेदिनी।
बभूव निचिता घोरैः पर्वतैरिव संप्लवे ॥ ५
मेरुपृष्ठं तु रक्तेन रञ्जितं संप्रकाशते।
सर्वतो माधवे मासि पुष्पितैरिव किंशुकैः ६
हतैर्वीरैर्गजैरश्वैः प्रावर्तत महानदी।
शोणितौघा महाघोरा यमराष्ट्रविवर्धिनी ॥ ७
शकृन्मेदोमहापङ्का संप्रकीर्णान्त्रशैवला।
छिन्नकायशिरोमीना अङ्गावयवशाड्वला॥ ८
गृध्रहंससमाकीर्णा कंकसारसनादिता।
वसाफेनसमाकीर्णा प्रोत्कृष्टस्तनितस्वरा॥ ९
तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमौ महानदीम्।
नदीमिवातपापाये हंससंघोपशोभिताम्॥ १०
त्रिदशा दानवाश्चैव तेरुस्ते दुस्तरां नदीम्।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ११
ततः सृजन्तं बाणौघाननुह्लादं रथे स्थितम्
ददर्श तरसा देवो निघ्नन्तं यक्षवाहिनीम् १२
क्रुद्धस्ततो दैत्यबलं सूदयामास वित्तपः।
विक्षिपन्निव खे वायुर्महाभ्रपटलं बलात्॥ १३
समीक्ष्य तुमुलं युद्धमनुह्लादश्च वीर्यवान्।
रथेनादित्यवर्णेन कुबेरमभिदुद्रुवे ॥ १४
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य रणमूर्धनि।
उत्ससर्ज शितान्बाणान्वित्तेशस्य महात्मनः
कुबेरं प्राप्य ते बाणा निर्भिद्य सुसमाहिताः ॥
अपरान्पृष्ठतो जघ्नुर्व्यासक्तान्यक्षराक्षसान् ॥
देवः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः
अनुह्लादं प्रत्युदियात्संक्रुद्धः परमाहवे ॥ १७
ततो वैश्रवणो राजा क्रुद्धो यक्षगणैः सह।
ववर्ष शरवर्षाणि दानवं प्रति वीर्यवान् ॥१८
तद्यथा शारदं वर्षं गोवृषः शीघ्रमागतम्।
अपारयन्वारयितुं प्रतिगृह्णन्निमीलितः ॥ १९
एवमेव कुबेरस्य शरवर्षं महासुरः।
निमीलिताक्षः सहसा दैत्यः सहति दारुणम्॥
रोषितः शरवर्षेण धनदेन महासुरः।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशमभितोऽपश्यत द्रुमम् २१
प्रवृद्धशाखाविटपं तरुणाङ्कुरपल्लवम्।
उत्पाट्य कुपितो दैत्यस्तरुं फलसमान्वितम् ॥
निजघान हयाञ्छ्रेष्ठान्कुबेरस्य महात्मनः।
तस्य कर्म महाघोरं दृष्ट्वा सर्वे महासुराः ॥२३
सिंहनादं नदन्ति स्म अनुह्लादप्रहर्षिताः।
तयोस्तु तुमुलं युद्धं संजज्ञे देवदैत्ययोः ॥ २४
ततस्तौ क्रोधरक्ताक्षावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ
अन्योन्यं विविधैः शस्त्रैर्घोरैर्जघ्नतुराहवे ॥ २५
त्रिदशा दानवान्सर्वे मथित्वा प्राणदस्तदा
दानवैस्त्रिदशाश्चापि क्रुद्धैर्भुवि निपातिताः॥
दानवास्त्वथ संक्रुद्धास्त्रिदशान्निशितैः शरैः
विव्यधुर्वज्रसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ २७
विदार्यमाणा दैत्यौघैस्त्रिदशास्तु महाबलाः।
अमर्षिततराश्चक्रुर्युद्धकर्माण्यभीतवत् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

ते गदाभिः सुभीमाभिः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः ।
परिघैश्च सुतीक्ष्णाग्रैर्दानवाः पीडिताः शरैः
शरनिर्भिन्नगात्राश्च खड्गविच्छिन्नवक्षसः ।
जगृहुस्ते शिलाश्चैव द्रुमांश्चासुरसत्तमाः ॥ ३०
ते भीमसङ्गा दितिजा नर्दमानाः पुनः पुनः ।
ममन्थुस्त्रिदशान्वीर्याच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥
ततस्तु तुमुलं युद्धं तेषां समभिवर्तत ।
शिलाभिर्विपुलाभिश्च शतशश्चैव पादपैः ॥ ३२
परिघैः पट्टिशैर्भल्लैर्भिण्डिपालैः परश्वधैः ।
केचिन्निवृत्तशिरसः केचिच्च विदलीकृताः ३३
केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्राः सुरासुराः ।
केचिद्रणाजिरान्नष्टाः परस्परवधार्दिताः ३४
विभिन्नहृदयाः केचिच्छिन्नपादाश्च शेरते ।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचित्तत्र गतासवः ३५
तत्सुभीमं महद्युद्धं देवदानवसंकुलम् ।
बभूव तुमुलं युद्धं शिलापादपसंकुलम् ॥ ३६
धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम्
आर्तस्तनितघोषाढ्यं युद्धं गान्धर्वमाबभौ ३७
कुबेरः स धनुष्पाणिर्दानवाग्रणमूर्धनि ।
दिशो विद्रावयामास संक्रुद्धः शरवृष्टिभिः ॥
कुबेरेणार्दितं सैन्यं विद्रुतं प्रेक्ष्य दानवः ।
अभ्यद्रवदनुह्लादः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ ३९
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास कुबेरस्य रथोत्तमे॥ ४०
आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ ४१
सचक्रकूबरहयं सध्वजं सशरासनम् ।
भङ्क्त्वा रथोत्तमं तस्य निपपात शिला भुवि
विमथ्य तु कुबेरस्य प्रह्लादस्यानुजो रथम् ।
शूराणां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ४३
निर्भिन्नशिरसो भग्नास्त्रिदशाः शोणितोक्षिताः
द्रुमप्रव्यथिताङ्गाश्च निपेतुर्धरणीतले ॥ ४४
विद्राव्य विपुलं सैन्यमनुह्लादो महासुरः ।
गिरिशृङ्गं गृहीत्वा तु कुबेरमभिदुद्रुवे ॥ ४५
तमापतन्तं धनदो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनादित्वाऽऽह्वयामास दानवेन्द्रं महाबलम्
तस्य दैत्यस्य संक्रुद्धो गदां तां बहुकण्टकाम्
न्यपातयत वित्तेशो दानवस्योरसि प्रभो ४७
दैत्यः सक्रोधताम्राक्षस्तं प्रहारमचिन्तयत् ।
वित्तेशस्योपरि तदा गिरिशृङ्गमपातयत् ॥
स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ।
पपात सहसा भूमौ विशीर्ण इव पर्वतः ॥ ४९
वित्तेशं विह्वलं दृष्ट्वा सर्वे ते यक्षराक्षसाः ।
परिवार्य महात्मानं ररक्षुर्भीमविक्रमाः ॥ ५०
मुहूर्तं विह्वलो भूत्वा पुनर्विश्रवसः सुतः
उपतस्थे च सहसा धनदः क्रोधमूर्छितः ५१
स ननाद महानादं त्रैलोक्यमभिनादयन् ।
जनयन्निव निर्घोषं विधमन्निव पर्वतान् । ५२
तमवध्यं तु विज्ञाय निहन्तुं पुनरुत्थितम् ।
प्रेक्ष्य पिङ्गाक्षमायान्तं दानवा विप्रदुद्रुवुः ॥
तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वाऽनुह्लादोह्यसुरोऽब्रवीत् ।
कालनेमिं दानवं च वीर्यदर्पसमन्वितम् ॥ ५४
आत्मानं चैव वीर्यं च विस्मृत्याभिजनं तथा
क्व गच्छथ भयत्रस्ताः प्राकृता इव दानवाः ।
निवर्तध्वं महावीर्याः किं प्राणान्परिरक्षथ ।
नालं युद्धाय यक्षोऽयं महतीयं विभीषिका
एतां विभीषिकामद्य दानवानां समुत्थिताम्
विक्रम्य विधमिष्यामि निवर्तध्वं महासुराः
तेऽसुराः सन्निवृत्ताश्च समदा इव कुञ्जराः
निजघ्नुः परमक्रुद्धा देवसैन्यं महासुराः ५८
क्षीणप्रहरणाः केचिन्महामेघनिभस्वनाः
दर्पोत्कटा भुजैरेव संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ५९
प्रांशुभिश्चैव काष्ठैश्च शिलाभिश्च महाबलाः
बाहुभिश्च तथान्योन्यमाक्षिपन्ति स्म वेगिताः
मुष्टिभिश्च तलैश्चैव नखपातैर्महाबलाः ।
पादपैश्च महाशाखैरयुध्यन्त रणाजिरे । ६१
अनुह्लादस्तु संक्रुद्धो देवतानां महाचमूम्।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ ६२
रुधिरार्द्रास्तु बहवः शेरते योधसत्तमाः ।
विकृताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ।
अनुह्लादश्च विक्रान्तो देवांस्तवाशीविषोपमान्
युध्यमानस्य समरे व्यसृजन्निशिताञ्छरान् ।
धनाधिपेन विद्धस्य अनुह्लादस्य संयुगे ।
अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ६५
अथ बाणसहस्रेण वित्तेशं दानवोत्तमः ।
विव्याध स शरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः

१ ख. उत्थितः सहसा देवः पिङ्गलाक्षो महाबलः । स न० । २ ख. कालनेमिं सुनेमिं च महानेमिं च दानवम् । ०आ ।

कुबेरस्तु शरैर्भिन्नः समन्तात्क्षतजोक्षितः।
रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ६७
लब्ध्वा स तु पुनः संज्ञां रोषरक्तेक्षणः सुरः।
गदामथ समासाद्य भीमां भीमपराक्रमः।
चिक्षेप दैत्यमुद्दिश्य बलात्क्रोधेन मूर्छितः ६८
अप्राप्तामन्तरे सोऽथ तां गदां गदयाऽसुरः।
बभञ्ज विनदन्क्रुद्धस्तदाश्चर्यमभूत्तदा ॥ ६९
प्रगृह्य तु गदां भूयो ह्यभिदुद्राव दानवम्।
तमापतन्तं दृष्ट्वैव अनुह्रादो महाबलः ॥ ७०
गिरिशृङ्गमिवोत्पाट्य कैलासाचलसन्निभम् ॥
धनाधिपं प्रदुद्राव व्यादितास्य इवान्तकः ॥७१
तमन्तकमिवायान्तमजेयं सकलैः सुरैः
ग्रसन्तमिव तं दैत्यं त्रैलोक्यमखिलं रुषा ॥७२
तमालोक्य तथा भूतं धनाध्यक्षो रणं भयात्
अपहाय ययौ तत्र यत्र शक्रः सुराधिपः ॥७३
तस्य चापि महत्कर्म दृष्ट्वा वित्तपतिस्तदा।
जगाम भयसंत्रस्तो यत्र देवः शचीपतिः ॥७४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अनुह्रादकुबेरयुद्धवर्णने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## देवासुरयुद्धे विप्रचित्तिवरुणयोर्युद्धम्।

## ६१

वैशम्पायन उवाच।
विप्रचित्तिस्तु वरुणं दैत्यानामादिरव्ययम्
जघानेषुगणैः क्रुद्धो दीप्तैरिव महोरगः। १
स दह्यमानो दैत्येन दीप्तः शरगभस्तिभिः।
नाभ्यजानत कर्तव्यं संग्रामे स जलेश्वरः। २
सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतिः।
न शक्नोत्यग्रतः स्थातुं विप्रचित्तेर्जलाधिपः।
वज्रो नाम महाव्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः।
तं व्यूह्य प्रत्ययुध्यन्त दानवा देववाहिनीम्। ४
वह्निज्वालासमं तत्र रविमण्डलसन्निभम्।
मुखमाभाति दैत्यस्य विप्रचित्तेर्महात्मनः ।५
वरुणस्तु महातेजा विप्रचित्तिं महासुरम्।
प्रदहन्निव तेजोभिर्जिगीषुः प्रत्यवैक्षत ॥ ६
स्रग्दाममालाभरणः केयूराङ्गदभूषणः।
जग्राह परिघं दैत्याः कैलासशिखरोपमम्। ७
पिनद्धं काञ्चनैः पट्टैर्हेममालिनमायसम्।
यमदण्डोपमं घोरं दैत्यानां भयनाशनम् ॥ ८
भ्रामयामास संक्रुद्धो महाशक्रध्वजोपमम्।
विननाद विवृत्तास्यो विप्रचित्तिर्महासुरः ९
स कण्ठस्थेन निष्केण भुजस्थैरपि चाङ्गदैः
कुण्डलाभ्यां विचित्राभ्यां भ्राजत्काञ्चनस्रजा
दानवो भूषणैर्भाति परिघेणायसेन च।
यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ११
प्रस्फुरत्परिघास्त्रेण वातस्कन्धान्महास्वनः।
जज्वाल च सधूमार्चिः साङ्कर्षण इवानलः ।१२
विद्याधरगणैः सार्धं गन्धर्वनगरैरपि।
सह चैवामरावत्या सिद्धलोकैस्तथा सह ।१३
ग्रहनक्षत्ररचितं सार्कचन्द्रविभूषितम्।
दैत्येन्द्रपरिघोद्धूतं भ्रमतीव नभस्तलम्।
दुरासदः सुसंजज्ञे परिघाभरणक्षमः।
सुरेन्धनोऽसुरेन्द्राग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥

६०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

वातस्कन्धान् वातमयान् स्कन्धावारान् परिधीनित्यर्थः ॥ १२ ॥

त्रिदशा वरुणश्चैव न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
तत्रासीन्निर्भयस्त्वेकः कौशिको वासवः प्रभुः
भास्करप्रतिमं घोरं परिघं रौद्रदर्शनम् ॥१६
पातयामास सेनायां जलेशस्य स दानवः ।
पतता तेन संग्रामे जलेशस्य महात्मनः ॥ १७
भूतानां शतसाहस्रं परिघेण समाहतम् ।
तेषां गात्राणि चासाद्य व्यशीर्यन्त सहस्रशः ।
विशीर्यमाणं विबभावुल्काशतमिवाम्बरे ।
भूयश्चैनं तदाऽऽभ्राम्य वरुणाय न्यपातयत् ।
पात्यमाने तदा तस्मिञ्छरीरे वारुणे तदा ।
स भिन्नः परिघो घोरो देवगात्रे व्यशीर्यत ।
शीर्यमाणस्य चूर्णानि खद्योता इव चाम्बरे ।
स तु तेन प्रहारेण न चचाल जलाधिपः २१
परिघेण हतः संख्ये यथा वज्रहतोऽचलः ।
स्वसैन्येष्वपि भग्नेषु भिन्नदेहेषु चाहवे ॥ २२
मुहूर्तमभवत्क्षोभ्यमपांपतिरमर्षणः ।
सोऽमर्षं च समापन्नो वरुणोऽमितविक्रमः २३
सर्वसंहारमकरोत्स्वपक्षस्यारिमर्दनः ।
स सागरैश्चतुर्भिश्च वृतो दीप्तैश्च पन्नगैः ॥ २४
शङ्खमुक्तामणिचितो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ।
पाण्डुरोद्धूतवसनो नानारत्नविभूषितः ॥ २५
वरुणः पाशधृक्छ्रीमान्कूर्ममीनसमाकुलः ।
वरुणस्तु तदा क्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य स्वसैनिकान्
उवाच दृष्ट्वा युध्यध्वं दानवानां जिघांसया ।
अहमेनं हनिष्यामि भयं मुक्त्वा तु युध्यत ॥
ततस्ते पन्नगाः सर्वे महार्णवजलाश्रयाः ।
जघ्नुर्दैत्यान्रणमुखे नदन्तो जयगृद्धिनः ॥२८
ते तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
अभ्यघ्नन्दानवान्हृष्टा मुदिता वरुणानुगाः २९
विप्रचित्तिस्तु संक्रुद्धो महाबलपराक्रमः ।
पन्नगानां शरीराणि व्यधमद्युद्धदुर्मदः ॥ ३०
गरुडेनापि चास्त्रेण पन्नगान्दानवोत्तमः ।
समरे घातयामास गरुडः पन्नगाशनैः ॥ ३१
स शरः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषितैः ।
पन्नगान्समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयान् ३२
समरे भिन्नगात्रास्ते पन्नगाः शरपीडिताः ।
पेतुर्मथितसर्वाङ्गा गजा इव महागजैः ॥३३
तपन्तं तमिवादित्यं दीप्तैर्बाणगभस्तिभिः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः समरे वरुणः प्रभुः ॥ ३४
ततस्तु दानवास्तत्र भिन्नदेहाः सहस्रशः ।
व्यथिता विद्रवन्ति स्म दिशो दश विचेतसः
इन्द्रस्यार्थे पराक्रम्य वरुणस्त्यक्तजीवितः ।
विनर्दमानो युयुधे समरे पाशभृद्वरः ॥ ३६
वरुणः पन्नगाश्चैव मुष्टिभिः समरोत्कटाः ।
अभ्यवर्तन्त समरे विप्रचित्तिं महासुरम् ॥ ३७
ततोऽस्त्रैश्च शिलाभिश्च प्राहरन्स बलोत्कटः ।
व्यपोहत महातेजा विप्रचित्तिर्महासुरः ॥३८
ततः पावकसंकाशैः स मुक्तैः शीघ्रगामिभिः
वरुणस्य महावेगान्बिभेद समरे हयान् ।
कर्मणा तेन महता विप्रचित्तेर्महात्मनः ।
अग्नेराज्याहुतस्येव तेजः समभिवर्धत ॥ ४०
स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ।
वारुणीं तां महासेनां निर्ममन्थ महाबलः ४१

क्षीणास्त्रां सायकाक्रान्तां
शरजालेन मोहिताम् ।
शूलशक्त्यृष्टिभिन्नां च
चकार रुधिरोक्षिताम्॥ ४२

स शरैर्वह्निसंकाशैः सुमुक्तैर्नतपर्वभिः ।
वरुणस्य महावेगान्बिभेद समरे हयान् ॥ ४३
अभिद्रुतोऽथ दैत्येन ससैन्यः सलिलाधिपः ।
महेन्द्रं शरणं प्राप्तो विप्रचित्तेर्भयार्दितः ॥४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने विप्रचित्तियुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

---

सर्वसंहारं सर्वेषामेकीकरणम् ॥ २४ ॥ व्यपोहत निराकृतवान् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

१ ख. °णिनिभो बि° ।

## बृहस्पतिकृतोऽग्निस्तवः ।

## ६२

वैशम्पायन उवाच ।
पराजयं तु देवानां दृष्ट्वाऽग्निर्देवसत्तमः ।
चकार बुद्धिं दैत्यानां वधे ब्रह्मर्षिभिः स्तुतः १
स्वयंप्रभायाः शाण्डिल्या यः पुत्रो हव्यवाहनः
हिरण्यरेताः पिङ्गाक्षो देवदूतो हुताशनः ॥ २
रोहितो लोहितग्रीवो हर्ता दाता हविः कविः
पावको विश्वभुग्देवः सर्वदेवाननः प्रभुः ॥ ३
सुब्रह्मात्मा सुवर्चस्कः सहस्रार्चिर्विभावसुः ।
कृष्णवर्त्मा चित्रभानुर्देवानामपि देवराट् ॥ ४
लोकसाक्षी द्विजहुतः सदर्चिष्मान्वषट्कृतः
हव्यभक्षः शमीगर्भस्त्वयोनिः सर्वकर्मकृत् ॥ ५
पावनः सर्वभूतानां त्रिदशानां तपोनिधिः ।
शमनः सर्वपापानां लेलिहानस्तपोमयः ॥ ६
प्रदक्षिणावर्तशिखः शुचिरोमा मखाकृतिः ।
हव्यभुग्भूतभव्येशो यज्ञभागहरो हरिः ॥ ७
सोमपः सुमहातेजा भूतेशः सुमहातपाः
अधृष्यः पावको भूतिर्भूतात्मा वै स्वधाधिपः
स्वाहापतिःसामगीतः सोमपूताशनोऽद्रिध्रुक्
देवदेवो महाक्रोधो रुद्रात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ ९
लोहिताश्वं वायुचक्रं रथमास्थाय भूतधृक् ।
धूमकेतुर्धूमशिखो नीलवासाः सुरोत्तमः ॥१०
उद्यम्य दिव्यमाग्नेयं शस्त्रं देवो रणे महान् ।
दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ११
ददाह भगवान्वह्निः संक्रुद्धः प्रलये यथा ।
प्राणो यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति पञ्चधा १२
यन्ता यश्च हुताशश्च सखा च प्रभुरीश्वरः ।
प्रभञ्जनो यो लोकानां युगान्ते सर्वनाशनः १३
सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीर्भिरुदीर्यते ।
यो ह्याकाशमयो देवो दूरगः सर्वसंभवः ॥१४
यश्च कर्ता विकर्ता च गतिर्गतिमतां प्रभुः ।
वेदकर्ता समो लोके ब्रह्मणा यः सनातनः १५
अमूर्तिमन्तं यं प्राहुर्महाभूतं महत्तरम् ।
सोऽग्निं समीरयामास शमीगर्भं समीरणः ॥
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश ।
दानवानामभावाय युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥
मेदोमज्जामहापङ्कां केशशैवलशालिनीम् ।
योधशीर्षोपलवनां भूतद्विपतटोत्कटाम् ॥१८
शोणितोदां रणे दृष्ट्वा संग्रामसरितं विभुः ।
वह्निः प्रस्कन्दयामास दैत्यानां भयवर्धनः १९
ततोऽग्निर्दितिजान्सर्वान्प्रह्लादप्रमुखांस्तथा ।
पराजयानः स विभुः क्रोशमानो महामृधे ॥
केचित्प्रदीप्तैर्मुकुटैः केचिद्दीप्तैः शिरोरुहैः ।
केचित्प्रदीप्तवसनैः केचिद्दीप्तैर्भुजाननैः । २१
केचित्प्रदीप्तैरुरुभिः केचिच्छत्रैर्ध्वजै रथैः ।
असुरास्तत्र दृश्यन्ते प्रदीप्तेनाग्निना वृताः ।२२

त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि
सध्वजांश्च रथोत्तमान् ।
प्रयान्ति समरे भीताः
पावकेन पराजिताः ॥ २३

न च पश्यन्ति ते वह्निं प्रदीप्तध्वजिनीमुखे ।
दिशः खङ्गांश्च मेघांश्च दीप्तान्पश्यन्ति दानवाः
ध्रुवः स्वयंभुवा सृष्टो युगान्तस्तोययोनिना ।
इत्येवं दानवाः सर्वे मेनिरे त्रस्तचेतसः २५

---

६२

सुब्रह्मात्मा शोभनयज्ञस्वरूपः वेदस्वरूपो वा । सुवर्चस्कः शोभनं वर्चः विद्यातपोजन्यं तेजः यस्मात्स तथा ॥ ४ ॥ अर्चिष्मान् शमीगर्भोऽश्वत्थः स एव स्वस्य योनिर्यस्यासौ शमीगर्भस्त्वयोनिः ॥ ५ ॥ शुचिरोमा पावनधूमः ॥ ७ ॥ सोमपूताशनः अभिषुतं सोममश्नातीत्यर्थः । अद्रिध्रुक् सोमाभिषवार्थं आवाणो भ्रियन्ते स्म इत्यद्रिध्रुक् ॥ ९ ॥ यस्य वायोर्योनिराकाशः । सप्तस्वरगता नादब्रह्मप्राप्ता यत्र नादात्मकं ब्रह्म सर्ववेदकारणमाविर्भवतीत्यर्थः । अत एवाकाशमयः ॥ १४ ॥ वेदकर्ता वागुच्चारणहेतूनां स्थानकरणादीनां च हेतुत्वात् । ब्रह्मणा चतुर्मुखेन ॥ १५ ॥ सरितं प्रस्कन्दयामास प्रवाहयामास ॥ १९ ॥ तोयं योनिः स्थानं यस्य तेन जलशायिना नारायणेन तोययोनिना वह्निना वा ॥ २५ ॥

मयश्च शम्बरश्चैव महामायाधरौ तदा ।
पार्जन्यवारुणी माये सृजतां वारिविक्षरे ॥२६
ताभ्यां वह्निः स मायाभ्यां सिच्यमानःसमंततः
तोयौघैः पर्वतनिभैर्मृद्वर्चिरभवद्रणे । २७
शम्यमाने तु समरे पावके दैत्यनाशिनि ।
बृहत्कीर्तिर्बृहत्तेजा वह्निमाह बृहस्पतिः ॥२८

गुरुरुवाच।

हिरण्यरेतः सुमुख ज्वलनाह्वय सर्वभुक् ।
सप्तजिह्वाननक्षाम लेलिहान महाबल । २९
आत्मा वायुस्तव विभो शरीरंसर्ववीरुधः ।
योनिरापश्च ते प्रोक्ता योनिस्त्वमसि चाम्भसः
ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति संचरन्ति च पार्श्वतः।
अर्चिषस्ते महाभाग सर्वतः प्रभवन्ति च ३१
त्वमेवाग्ने सर्वमसि त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥
त्वमग्ने हव्यवाडेकस्त्वमेव परमं हविः
यजन्ति च सदा सन्तस्त्वामेव परमाध्वरे।
त्वमन्नं प्राणिनां भुङ्क्षे जग्धपीतासि त्वं प्रभो
त्वयि प्रवृत्तोविजयस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः
सर्वाँल्लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह
प्राप्ते काले त्वं पचस्येव दीप्तः ।
त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो
नान्यस्त्वत्तो विद्यते गोषु देव ३५
वृषाकपिः सिन्धुपतिस्त्वमग्ने
महामखेष्वश्यहरस्त्वमेव ।
विश्वस्य भूतस्त्वमसि प्रसूति-
स्त्वं च प्रतिष्ठा भगवत्प्रजानाम्।३६
सृजस्यपो रश्मिभिर्जातवेद-
स्तथौषधीरोषधीनां रसांश्च ।
विश्वं त्वमादाय युगान्तकाले
स्रष्टा भवस्यानल सर्गकाले॥ ३७
त्वमग्ने सर्वभूतानां योनिर्वेदेषु गीयसे ।
त्वया देवहितार्थाय निहता दानवा रणे ।
स्वयोनिस्ते महातेजस्तोयं मखशनार्जितम् ।
तां स्वयोनिं समासाद्य किं विषीदसि पावक
त्रायस्व समरे देवान्दैत्येभ्यः सुरसत्तम ।
पिंगाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन्हुताशन॥४०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनेऽग्निस्तवे
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## बलिं प्रति प्रह्लादवाक्यम् ।

## ६३

वैशम्पायन उवाच ।

बृहस्पतेस्तु वचनं श्रुत्वा सत्यं समीरितम्
भूयः प्रजज्वाल रणे हविषेव महामखे ॥ १
हतास्तु माया दैत्यानां प्रदीप्तेनाग्निना रणे।
हतमाया हतबला बलिं ते समुपस्थिताः । २
पराजितेषु दैत्येषु वह्निनाऽद्भुतकर्मणा।
प्रह्लादस्तूत्तरं वाक्यमाह दैत्यपतिं बलिम्। ३
भवानग्निश्च वायुश्च भास्करः सलिलं शशी
नक्षत्राणि दिशो व्योम भूश्च दानवसत्तम ॥४

वारिविक्षरे जलवार्षिणी ॥ २६ ॥ तपसेऽर्करूपी सन् गोषु रश्मिषु मण्डले इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ वर्षणात् कस्य जलस्य पानाच्च वृषाकपिः । "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" इति दीर्घः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

बृहस्पतेस्त्विति ॥ १ ॥

भविष्यं चैव भूतं च भवच्चासुरसत्तम ।
दत्तं चैतद्भगवता वरदेन स्वयंभुवा । ५
इन्द्रत्वं चामरत्वं च युद्धे चाप्यपराजयः
ईशित्वं च वशित्वं च बलं चैवामितं शुभम्
सर्वभूतेश्वरत्वं च दैत्यराज सदा तव ।
महायोगीश्वरत्वं च शूरत्वं च महामृधे ॥ ७
अणिमालाघिमाचैव ये चान्ये सात्त्विकागुणाः
तत्पराजित्य दैत्येन्द्र देवान्सर्वांश्च सानुगान्
यथोक्तं ब्रह्मणा राजंस्तत्तथा न तदन्यथा ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रह्लादस्य महात्मनः ।
बलिः परमसंहृष्टः प्रायाच्छक्ररथं प्रति । ९
ततः प्रयान्तं त्रिदशेन्द्रसन्निधौ
महासुरेन्द्रं बलिमुत्तमश्रियम् ।
तमञ्जसा जग्मुरभिप्रदक्षिणं
द्विजाश्च पुण्याः पशवश्च सत्तमाः १०
महाजटाभारधरास्तपस्विन-
स्तदा तमाहुर्विधिमन्त्रमङ्गलैः ।
अभिष्टुवन्तः कवयः स्वलङ्कृतं
बलिं प्रयान्तं रणमूर्धनि स्थिताः ११
प्रतप्तजाम्बूनदचित्रभूषणै-
र्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैरलङ्कृताः ।
विराजमानः परमेण वर्चसा
रणे विभात्यग्निशिखेव दानवः । १२
स वै तदा शत्रुबलार्दितं बलं
बलिर्ददर्शोत्तमसत्त्ववीर्यवान् ।
जलागमे श्रीमदिवाभ्रमण्डलं
विशीर्यमाणं नभसीव वायुना १३
ततो ददर्शाथ बलानि सर्वतो
रणे प्रगुप्तानि हुताशनेन वै ।
समुच्छ्रितान्युग्रतराणि तत्र वै
समुद्रवेगानिव पर्वसन्धिषु ॥ १४
सशूलशक्त्यृष्टिगदासिसायका-
न्क्षिपान्त्रिपूर्णा समरे महात्मनां
ननाद सिंहर्षभमत्तनागव-
ज्जलागमे तोयदवच्च वीर्यवान् ॥ १५
दिव्यास्त्रधूमः सुभुजोग्रवायु-
र्महाबलः पौरुषविक्रमेन्धनः ।
प्रजा दिधक्षन्निव कालवह्निः
सुघोररूपो विबभौ रणे बलिः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## बलिवासवयोर्युद्धं वासवस्य पराजयश्च ।

## ६४

वैशम्पायन उवाच ।
बलिना तु सुराः सर्वे वर्जयित्वा सुराधिपम्
रणे शरशतैर्भिन्नाः ससैन्या वै पराजिताः १
विमुखा याति दैत्येन्द्रैर्वध्यमाना महाचमूः ।
जितास्तु बलिना देवाः शक्रमाहुर्महाबलम् ।

देवा ऊचुः ।
भवानिन्द्रश्च धाता च लोकानां प्रभुरव्ययः
त्वमप्रतिमकर्मा च तथैवानुपमद्युतिः ॥ ३
विद्रुतानीह सैन्यानि सहास्माभिः सुरेश्वर ।
रथचक्रध्वजाक्षाणि विभिन्नानि महासुरैः ।

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

रथहस्त्यश्वयोधाश्च पदाताश्च सहस्रशः ।
भिन्नाश्छिन्नाश्च शतशो गदामुशलपट्टिशैः ॥ ५
महाभैरवरूपं हि दैत्येन्द्रेण कृतं रणे ।
किमुपेक्षसि दैत्येन्द्रैर्हन्यमानां महाचमूम् ॥ ६
त्रायस्व त्रिदशश्रेष्ठ शरण्यः शरणागतान् ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां देवानाममराधिपः ॥ ७
संवर्ताग्निसमक्रुद्धः सर्वान्दहति दानवान् ।
दिवाकरकराकारं किरीटं धारयन्प्रभुः ॥ ८
वैडूर्यवर्णसंकाशो नानारत्नाचिताङ्गदः ।
मयूररोमा रक्ताक्षः शतबाहुः सहस्रदृक् ॥ ९
हरिरेको हरिश्मश्रुर्नानाकेतुर्महाबलः ।
वज्रप्रहरणः श्रीमान्योगी शतशिरोधरः ॥ १०
सधनुर्बद्धसन्नाहः शतादित्यसमप्रभः ।
देवगन्धर्वयक्षैश्चैरनुयातः सहस्रशः ॥ ११
सामगैश्च जपैश्चापि स्तूयमानो महर्षिभिः ।
शतपर्वं महारौद्रं स्फोटनं सर्वतोमुखम् ॥ १२
प्रगृह्य रुचिरं वज्रं दीप्तं रौद्राट्टहासिनम् ।
दैत्यानयोधयत्सर्वान्महेन्द्रः पाकशासनः १३
अधृष्यः सर्वभूतानामादित्या दयितः सुतः ।
ततः प्रवृत्तः संग्रामो बलिवासवयोस्तदा १४
उभाभ्यां देवदैत्याभ्यामचिरान्महदद्भुतः ।
अतिवीर्यबलोदग्रस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १५
प्रह्लादेन स्तुतिशतैः कर्मभिर्जयसंमतैः ।
प्रबोधितो दैत्यपतिरग्निरिद्ध इवाबभौ ॥ १६
सुरासुरेन्द्रयोर्दृष्ट्वा संग्रामं लोमहर्षणम् ।
देवानां दानवानां च भूयो युद्धमभूत्तदा ॥ १७
ततोऽविध्यन्महेन्द्रस्तं बलिमस्त्रैर्महाबलम् ।
तान्यस्त्राणि महाबाहुश्चिच्छेद शतधा रणे १८
ततः क्रुद्धः पुनस्तत्र निजघ्ने दानवं महत् ।
आग्नेयमथ शत्रुघ्नं चिक्षेपेन्द्रो महाबलः ।

तं दृष्ट्वा खे समागच्छत्प्रलयानलसन्निभम् १९
पातयामास तच्चैन्द्रं वारुणास्त्रेण धीमता ।
संक्रुद्धो मघवा वज्रमगृह्णात्पर्वतोपमम् ॥ २०
हन्तुकामो रणश्लाघी बलिं दैत्याधिपं रणे ।
ततः शुश्राव देवेन्द्रः कौशिको हरिवाहनः २१
अशरीरां शुभां वाणीं तस्मिन्महति वैशसे ।
निवर्तस्व महाबाहो सुराणां नन्दिवर्धन ॥ २२
पुरंदर सुरश्रेष्ठ न जेष्यसि रणे बलिम् ।
तपसाऽप्युत्तमो दैत्यो वरदानेन चाधिकः २३
स्वयंभूपरितोषाच्च सत्यधर्माच्च वासव ।
नैष शक्यस्त्वया जेतुं त्रिदशैर्वा सुरेश्वर ॥ २४
यो ह्यस्य जेता भगवांस्तं शृणुष्व समाहितः
ब्रह्मणः स हि सर्वस्वं देवानां चैव सा गतिः
परं रहस्यं धर्मस्य परस्य च परा गतिः ।
परात्परतरः श्रीमान्परावरगतिः प्रभुः ॥ २६
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः सुरारिहा ॥
जेताऽजेयो जयः श्रीमा-
न्सोऽस्य जेता भविष्यति ।
श्रुत्वा दिव्यां तु मधुरां
वाणीं तामशरीरिणीम् ॥ २८
अपयातो रणाच्छक्रः सार्धं सर्वैः सुरोत्तमैः
अपयाते तु देवेन्द्रे कौशिके हरिवाहने ॥ २९
सिंहनादो महानासीद्दानवानां महामृधे ।
ततः किलाकिलाशब्दः क्ष्वेडितास्फोटितस्वनः
शंखानां निनदश्चात्र योधानां वल्गितस्वनः
वादित्राणां च निर्घोषस्तुमुलश्चाभवत्तदा ॥ ३१
जयशब्दरवाश्चैव देवानां तु पराजये ।
ससैन्यो दैत्यराजस्तु स्तूयमानः सुहृद्गणैः ।
बलीन्द्रो विबभौ दैत्यो हिरण्यकशिपुर्यथा ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने देवासुरसंग्रामे शक्रापयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## बलेर्विजये श्रियः स्वयमागमनकथनम्।

## ६५

वैशम्पायन उवाच।
निष्प्रयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यपालिते।
जये बलेर्बलवतो मयशम्बरयोस्तथा ॥ १
सुधासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि।
अपवृत्ते चन्द्रमसि अयनस्थे दिवाकरे ॥ २
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि।
दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ॥ ३
दैत्येषु मखशोभाश्च स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च।
प्रकृतिस्थे तदा लोके वर्तमाने च सत्पथे ॥ ४
अभावे सर्वपापानां भावे चैव तथा स्थिते।
भावे तपसि सिद्धानां सर्वत्राश्रमरक्षिषु ॥ ५
चतुष्पादे स्थिते धर्मे अधर्मे पादविग्रहे।
प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥ ६
स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु सर्वाश्रमनिवासिषु।
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराजो बलिस्तदा ७
हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च।
अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बालिं पद्मासने स्थिता ॥८
पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुरमोहिनी।
श्रीरुवाच।
बले बलवतां श्रेष्ठ महाराज महाद्युते ॥ ९
प्रीताऽस्मि तव भद्रं ते देवतानां पराजये।
यस्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः॥
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता।
नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥ ११
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम्।
विशेषतस्त्वया राजन्दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ॥
येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम्।
विशेषतस्तव विभो सर्वे धर्मपथे स्थिताः १३
तेन त्रैलोक्यमुख्येन भोक्ष्यस्यमितविक्रम।
एवमुक्त्वा हि सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यपतिं बलिम्
प्रविष्टा वरदा सौम्या सर्वभूतमनोरमा।
शिष्टाश्च देव्यः प्रवरा ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव ॥
प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्नीतिर्विद्या दया स्मृतिः
क्रान्तिर्लज्जा तथा मेधा लक्ष्मीरीहा गतिस्तथा
श्रुतिः प्रीतिरिला कीर्तिः
शान्तिः पुष्टिः क्रियास्तथा।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या
नृत्य-गीतविशारदाः ॥ १७
पतिं प्राप्ताः सुदैतेयं त्रैलोक्ये सचराचरे।
प्राप्तमैश्वर्यममितं बलिना ब्रह्मवादिना ॥ १८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## देवगणैः सह कश्यपादित्योर्ब्रह्मसदनगमनकथनम्।

## ६६

जनमेजय उवाच।
पराजिताः सुरा दैत्यैः किमकुर्वत वै मुने।
कथं च त्रिदिवं लब्धं भूयो देवैर्द्विजोत्तम ॥१
वैशम्पायन उवाच।
श्रुत्वा वाणीं तु तां दिव्यां सह देवैः सुराधिपः
प्राग्दिशं प्रस्थितः श्रीमानदित्यालयमुत्तमम्॥
प्राप्यादित्यालयं शक्रः कथयामास तां गिरम्
अदित्यां सा यथा युद्धे तेन वाणी पुरा श्रुता
अदितिरुवाच।
यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः ॥ ४

---

६५
निष्प्रयत्नेष्विति ॥१॥ सुधासु अमृतमयीषु अपवृत्ते उद्धरिते ॥ २ ॥ अभावे पापानां भावानां भावे पुण्यानामित्यर्थः ॥ ५ ॥ इला श्रौतक्रिया पूर्तादिका ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

सहस्रशिरसा हन्तुं केवलं शक्यतेऽसुरः।
तेनैकेन सहस्राक्ष न ह्यन्येन शतक्रतो ॥ ५
तद्वः पृच्छस्व पितरं कश्यपं सत्यवादिनम्।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ॥६
ततोऽदित्या सह सुराः
संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम्।
अपश्यन्कश्यपं तत्र
मुनिं दिव्यतपोनिधिम् ॥ ७
आद्यं देवं गुरुं दिव्यं क्लिन्नं त्रिषवणाम्बुभिः
तेजसा भास्कराकारं गौरमग्निशिखाप्रभम् ८
न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनोत्तरम्।
वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ॥ ९
हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यमन्त्रपुरस्कृतम्।
स्वाध्यायनिरतं शान्तं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥
तं ब्रह्मवादिनां श्रेष्ठं सुरासुरगुरुं प्रभुम्।
प्रतपन्तमिवादित्यं मारीचं दीप्ततेजसम् ॥ ११
यः स्रष्टा सर्वभूतानां प्रजानां पतिरुत्तमः।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः १२
ततः प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः १३
तच्छ्रुतं युधि शक्रेण सरस्वत्या समीरितम्।
अजेयस्त्रिदशैः सर्वैर्बलिर्दानवसत्तमः ॥ १४
श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपस्तदा
चकार गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् १५
कश्यप उवाच।
गच्छाम ब्रह्मसदनं ब्रह्मघोषनिनादितम्।
यथाश्रुतं च तत्रैव ब्रह्मणे वदतानघाः ॥ १६
वैशम्पायन उवाच।
ततोऽदित्या सह सुरा यान्तं कश्यपमन्वयुः
प्रस्थितं ब्रह्मसदनं देवर्षिगणसेवितम् ॥ १७
ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं दिवौकसः।
दिव्यैः कामगमैर्यानैर्महार्हैः सुमनोहरैः ॥ १८
दिदृक्षवस्ते ब्रह्माणं तपसो राशिमव्ययम्।
अभ्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम्
षट्पदोद्गीतनिनदां सामगीतविमिश्रिताम्
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुर्मुदा ॥ २०
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः।
ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः
शब्दनिर्वचनार्थं च प्रेर्यमाणपदाक्षराः ॥ २१
शुश्रुवुस्तेऽमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु।
यज्ञवेदाङ्गविदुषां पदक्रमविदां तथा ॥ २२
घोषेण परमर्षीणां सा बभूव निनादिता
यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः
शब्दनिर्वचनार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः।
मीमांसाहितवाक्यज्ञैः सर्ववादविशारदैः ॥२४
हृष्टपुष्टस्वरैस्तत्र द्विजेन्द्रैर्वल्गुवादिभिः।
नादितं ब्रह्मसदनं प्रवरं देवसद्मवत् ॥ २५
ते तत्र समनुप्राप्य शृण्वन्तो वै ध्वनिं सुराः।
पूतान्यात्मशरीराणि मेनिरे तु न संशयः २६
तूष्णींभूता एकचित्ता ब्रह्मण्यगतमानसाः।
विस्मयोत्फुल्लनयना निरीक्षन्तः परस्परम् ॥
नमस्कुर्वन्ति च पुनर्गुरुं लोकगुरुं प्रभुम्।
मनसैव सुरश्रेष्ठाः पुरस्कृत्य तु कश्यपम् ॥ २८
पुनः संपूज्य परमं वेदोच्चारणनिःस्वनम्।
गम्भीरोदारमधुरं सुस्वरं हंसगद्गदम् ॥ २९
ऐक्यनानात्वसंयोगसमवायविशारदैः।
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वनमीरितम् ॥
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान्संशितव्रतान्।
जपहोमपरान्मुख्यान्ददृशुः कश्यपात्मजाः ॥
तस्यां सभायामास्ते स्म ब्रह्मा लोकपितामहः
सुरासुरगुरुः श्रीमान्विधिवद्देवमायया ॥ ३२
उपासते च तत्रैनं प्रजानां पतयः प्रभुम्।
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः ॥
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा।
मनुर्द्यौरन्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ३५

---

६६

**य इति**। उत्तम इति चतुर्मुख उक्तः। तस्य "**आत्मा वै पुत्रनामासि**" इति श्रुत्यावगतः पुत्रे मरीचौ आत्मभावः एवं परंपरया पौत्रेऽपि साधारण्ये- नात्मभावप्राप्तावाह **आत्मभावविशेषेणेति**। पुत्रापेक्ष- या पौत्रे आत्मभावो विशेषतोऽस्ति। अत एव प्रह्लादगुणाः वैष्णवत्वादयः पौत्रे बलौ कार्त्स्न्येनाभिव्यक्ता न तु पुत्रे विरोचने। अत एव दाक्षिणात्याः पौत्रं पितामहनाम्ना योजयन्ति ॥ १२ ॥ लोकायतिकमुख्यैः शास्त्रविद्भिः सह देवाः शुश्रुवुरिति संबन्धः। न च लोकायतानां देहात्मवा- दिनां वेदद्रोहिणां ब्रह्मलोके गतिः संभवतीति शंकनीयम्। अत्र लोकायतशब्दस्य तच्छास्त्राभिमानिदेवतापरत्वात्। तत्र मूर्तिमतां वेदानां सामगानां शास्त्राणां च सर्वेषां सद्भावस्य कथनादि त्यूह्यम् ॥ ३० ॥

शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।
प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत्कारणं महत् ३५
साङ्गोपाङ्गाश्चतुर्वेदाः सरहस्यपदक्रमाः।
क्रियाश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च ३६
एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः।
अर्थो धर्मश्च कामश्च द्वेषो दर्पश्च नित्यदा ३७
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तो बुध एव च।
शनैश्चरोऽथ राहुश्च ग्रहाः सर्वे ह्यशेषतः ॥३८
मरुतो विश्वकर्मा च नक्षत्राणि च भारत।
दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं समुपासते।
सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा।
सर्वाणि श्रुतिशास्त्राणि गाथाश्च नियमास्तथा।
भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहवन्ति विशांपते।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च दिवा रात्रिश्च भारत।
अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् तथैव च।
संवत्सराश्चतुर्युगं मासा रात्रिश्चतुर्विधा ४१
कालचक्रं च यद्दिव्यमनित्यं ध्रुवमव्ययम्।
एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः। ४२
ते प्रविष्टाः सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम्
कश्यपस्त्रिदशैः सार्धं पुत्रैर्धर्मविशारदैः ॥ ४३
सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम्।
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानमचिन्त्यं विगतक्लमम्
ब्रह्माणं वीक्ष्य ते सर्वे आसीनं परमासने।
जग्मुर्मूर्ध्ना शुभौ पादौ ब्रह्मणस्ते दिवौकसः
शिरोभिः स्पृश्य चरणौ तस्य ते परमेष्ठिनः
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः
दृष्ट्वा तु तान्सुरान्सर्वान्कश्यपेन सहागतान्
आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ४७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे ब्रह्मलोकगमने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## कश्यपादीन्प्रति ब्रह्मवाक्यम् क्षीरोदस्योत्तरे तीरे कश्यपादेर्गमनं, तपश्चर्या च।

## ६७

ब्रह्मोवाच।
यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि।
विजानाम्यहमव्यग्र एतत्सर्वं महाबलाः।
भविष्यति च वःसोऽर्थःकांक्षितो यःसुरोत्तमाः
बलेर्दानवमुख्यस्य यो विजेता भविष्यति २
न खल्वसुरसंघानामेको जेता स विश्वकृत्।
त्रैलोक्यस्यापि जेताऽसौ देवानामपि चोत्तमः
धाता चैव हि लोकानां विश्वयोनिः सनातनः
पूर्वदेहं सदा प्राहुर्हेमगर्भनिदर्शनम्। ४
आत्मा देवेन विभुना कृतोऽजेयो महात्मनः
बलेरसुरमुख्यस्य विश्वस्य जगतस्तथा ५
प्रभवः स हि सर्वेषामस्माकमपि पूर्वजः।
अचिन्त्यः स हि विश्वात्मा योगयुक्तः परंतपः
तं देवापि महात्मानं न विदुःकोऽप्यसाविति।
वेदात्मानं च विश्वं च सदेवः पुरुषोत्तमः॥ ७
तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्येऽहं परां गतिम्।
यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम्। ८
क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः।
भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा संशितव्रताः॥ ९
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम्।
तत्र श्रोष्यथ विस्पष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम्
उष्णगे तोयपूर्णस्य तोयदस्य समस्वनाम्।
युक्ताक्षरपदां स्निग्धां रम्यामभयदां शिवाम् ११
वाणीं परमसंस्कारां वरदां ब्रह्मवादिनीम्।
दिव्यां सरस्वतीं सत्यां सर्वकिल्बिषनाशिनीम्
सर्वदेवाधिदेवस्य भाषितां भावितात्मनः।
तस्य व्रतसमाप्तौ तु यावद्व्रतविसर्जनम् ॥
अमोघस्य तु देवस्य विश्वेदेवा महात्मनः।
स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्सकाशे व्यवस्थिताः

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

यदर्थमिति ॥१॥ हेमगर्भनिदर्शनं हिरण्यगर्भो निदर्शनं प्रतिमा पुत्रो यस्य स तथा तं मम पितरमित्यर्थः। वयमित्यन्वयः ॥ ४ ॥ विश्वस्याजेयमित्यर्थः ॥ ५ ॥ उष्णगे उष्णो ग्रीष्मः गतो नीतो यत्र तस्मिन्नुष्णगे ॥११॥ अमोघः स्वो यस्य। सुखेति पाठेऽपि स्व एव लक्ष्यः ॥ १४ ॥

कस्य किं वा वरं देवा ददामि वरदः स्थितः
तं कश्यपोऽदितिश्चैव वरं गृह्णीत वै ततः ।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै योगात्मने तदा ।
भवानेव च नः पुत्रो भवत्विति न संशयः ।
उक्तश्च परया भक्त्या
तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति ।
देवा ब्रुवन्तु तं सर्वे भ्राता नस्त्वं भवेति ह ।
तथास्त्विति च स श्रीमान्वक्ष्यते सर्वलोककृत्
तस्मादेवं गृहीत्वा तु वरं त्रिदशसत्तमाः ।
कृतकृत्याः पुनः सर्वे गच्छध्वं स्वं स्वमालयम्
तथास्त्विति सुराः सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च
वन्दित्वा ब्रह्मचरणौ गताः सौम्यां दिशं प्रति।
तेऽचिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदस्योत्तरं तटम् ।
यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना २१
तेऽतीत्य सागरान्सर्वान्पर्वतांश्च बहून्क्षणात्॥
नद्यश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां सुरसत्तमाः
पश्यन्ति च सुघोरां वै सर्वसत्त्वविवर्जिताम्।
अभास्करामममर्यादां तमसा संवृतां दिशम्।
अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन सुरैः सह ।२३
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् ।
प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते ।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय धीमते । २४
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च।
दमेन च सुराः सर्वे तपो दुश्चरमास्थिताः २५
कश्यपस्तत्र भगवान्प्रसादार्थं महात्मनः ।
उदीरयति वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् । २६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
सप्तषष्टितमोऽध्यायः । ६७ ॥

## कश्यपकृता परब्रह्मस्तुतिः ।

### ६८

कश्यप उवाच।

नमोऽस्तु देवदेवेश एकशृङ्ग वराह वृषार्चिष वृषसिन्धो वृषाकपे सुरवृषभ सुरनिर्मित अनिर्मित भद्रकपिल विष्वक्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुण्ठ त्रेतावर्त अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः अग्निज वृष्णिज अज अजयामृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुत् ककुद्मिन् दुन्दुभे महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ विरिञ्च वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूपाक्षयाक्षर सत्याक्षर हंसाक्षर हव्यभुक् खण्डपरशो शुक्र मुञ्जकेश हंस महदक्षर हृषीकेश सूक्ष्म परसूक्ष्म तुराषाट् विश्वमूर्ते सुराग्रज नील निस्तमो विरजस्तमोरजःसत्त्वधाम सर्वलोकप्रतिष्ठ शिपिविष्ट सुतपस्तपोग्र अग्र अग्रज धर्मनाभ गभस्तिनाभ धर्मनेम सत्यधाम सत्याक्षर गभस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ त्वमेव समुद्रवासाः अजैकपात् सहस्रशीर्ष सहस्रसंमित महाशीर्ष सहस्रदृक् सहस्रपात् अधोमुख महामुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्ते सहस्रास्य सहस्राक्ष सहस्रभुज सहस्रभुव सहस्रशस्त्वामाहुर्वेदाः ॥ १

विश्वेदेव विश्वसंभव सर्वेषामेव देवानां सौभग आदौ गतिः विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वामाहुः पुष्पहास परमवरद स्त्वमेव वौषट् ओंकार वषट्कारं त्वामेकमाहुरग्र्यं मखभागप्राशिनम् ॥ २

सुरेशाय सुरेशस्य॥२४॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

नमोऽस्त्विति । वृषार्चिष धर्ममयूख वृषसिन्धो [illegible] त्रेतावर्त त्रिविक्रमे कर्मणा त्रेतावर्तते नाभिमुखो भवतीति त्रेतावर्त । अग्निज कार्तिकेय । त्रिककुत् धर्मज्ञानवैराग्यस्कन्ध । दुन्दुभे विजयावहध्वने । हंसाक्षर अजपामन्त्र । चन्द्ररथसमष्टिमनोऽधिरूढ विराडात्मन्नित्यर्थः ॥ १ ॥

विश्वेदेवेति । आदौ गतिः धर्मरूपः ॥ २ ॥

शतधार सहस्रधार भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवःस्वर्द त्वमेव भूतं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मेशय ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव ॥ ३

द्यौरसि पृथिव्यसि पूषासि मातरिश्वासि धर्मोऽसि मघवासि होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता परात्परस्त्वं होम्यहोता त्वमेव ॥ ४

आपोऽसि विश्ववाक् धात्रा परमेण धाम्ना त्वमेव दिग्भ्यः स्रुक् स्रुग्भाण्ड त्वं गण इष्टोऽसि इज्योऽसि ईड्योऽसि त्वष्टा त्वमसि समिद्धस्त्वमेव गतिर्गतिमतामसि मोक्षोऽसि योगोऽसि गुह्योऽसि सिद्धोऽसि धन्योऽसि धाताऽसि परमोऽसि यज्ञोऽसि सोमोऽसि यूपोऽसि दक्षिणाऽसि दीक्षाऽसि विश्वमसि॥

स्थविष्ठ स्थविर विश्व तुराषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणान्तर नृणामयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव पद्मनाभ पद्मेशय पद्माक्ष पद्मगर्भ हिरण्याग्रकेश शुक्लविश्वदेव विश्वतेमुख विश्वाक्ष विश्वसंभव विश्वभुक्त्वमेव ॥ ६

भूरिविक्रम चक्रक्रम त्रिभुवन सुविक्रम स्व विक्रम स्वर्विक्रम बभ्रुः सुविभुः प्रभाकरः शंभुः स्वयंभूश्च भूतादिः भूतात्मन् महाभूत विश्वभुक्त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि विश्वंभर पवित्रमसि हाविर्विशारद हविःकर्मा अमृतेन्धन सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् पूतात्मन् अमृतेश दिवःस्पृक् विश्वस्य पते घृताच्यसि अनन्तकर्मन् द्रुह्मनवंश स्ववंश विश्वपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्रायस्वेति ॥ ७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे महापुरुषस्तवे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## कश्यपादीन्प्रति महाविष्णोर्वरप्रदानकथावतारः।

## ६९

वैशम्पायन उवाच।

नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैतत्परमं स्तवम्।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥ १
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषजीमूतस्वननिःस्वनम्।
मनसा प्रीतियुक्तेन विबुधानां महात्मनाम् २
उवाच वचनं सम्यग्घृष्टपुष्टपदाक्षरम्।
आकाशाच्छुश्रुवे शब्दो दर्शनं नोपलभ्यते।
श्रीमान्प्रीतमना देवः प्रोवाच प्रभुरीश्वरः ॥ ३

विष्णुरुवाच।

प्रीतोऽस्मि वः सुरश्रेष्ठाः सर्वे मत्तो विनिश्चयम्
वरं वृणुत भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः ॥४

कश्यप उवाच।

यदैव भगवान्प्रीतः सर्वेषाममरोत्तमः।
तदैव कृतकृत्याः स्म त्वं हि नः परमा गतिः
यदि प्रसन्नो भगवान्दातव्यो वा वरो यदि।
वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धनः
अदित्यां वामनः श्रीमान्भगवानस्तु वः सुरः।

वैशम्पायन उवाच।

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम्।
पुत्रार्थे वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी ॥ ७

अदितिरुवाच।

याचे त्वां पुत्रकामा वै भवान्पुत्रो भवत्विति
निःश्रेयसाय सर्वेषां देवानां हि महात्मनाम्॥

देवा ऊचुः।

भ्राता भर्ता च दाता च शरणं च भवस्व नः
अदित्याः पुत्रतां याते त्वयि देवाः सवासवाः
देवशब्दं वहिष्यन्ति कश्यपस्यात्मजो भव ९

---

**शतधार इति** शतधारः सोमः। एवं सहस्रधारः ॥३ ॥४॥ धात्रा परमेण यज्ञेन हेतुना धाम्नोऽभेर्हेतोर्दिग्भ्यः समाहृता स्रुक् त्वमेव स्रुक् भाण्डः स्रुगादिर्यज्ञोपस्करः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ऊर्ध्वकर्मन् ऊर्ध्वगतिप्रदानि कर्माणि यस्य। घृताची जुहूपभृत् ध्रुवा च । द्रुह्मनवृक्षवत् घनदेहः ॥ ७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

१ ग. धाम्नस्त्वमे॰। २ ख. ॰न् शुश्रुवुर्महा॰।

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान्कश्यपमेव च ।
एवं भवतु भद्रं वो यथेष्टं काममाप्नुत ।
सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः १०
मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः ।
हत्वाऽसुरगणान्सर्वान्ये चान्ये देवशत्रवः ॥
करिष्ये देवताः सर्वा यज्ञभागाग्रभोजिनः ।
हव्यादांश्च सुरान्सर्वान्कव्यादांश्च पितॄनपि ॥
करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।
यथागतेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः ॥ १३
देवमातुस्तथादित्याः कश्यपस्यामितात्मनः ।
यथामनीषितं कर्ता गच्छध्वं स्वं स्वमालयम्

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्ते तु वचने विष्णुना प्रभविष्णुना ।
देवाः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥ १५
विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च ।
साध्या मरुद्गणाश्चैव शक्रश्चैव महाबलः ।
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसे ॥ १६
प्रयाताः प्राग्दिशं दिव्यं विपुलं कश्यपाश्रमम्
गत्वा ते आश्रमं तत्र ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।
चेरुः स्वाध्यायनियता अदित्या गर्भमीप्सवः
अदितिर्देवमाता च गर्भं दध्रेऽतितेजसम् ।
भूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ।
सुराणां शरणं देवमसुराणां विनाशनम् ॥ १९
गर्भस्थेन तु देवेन परित्राताः सुरास्तदा ।
आददानेन तेजांसि त्रैलोक्यस्य महात्मना २०
तस्मिञ्जाते तु देवेश त्रैलोक्यस्य सुखावहे ।
भयदे दैत्यसंघानां सुराणां नन्दिवर्धने ॥ २१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

## वामनप्रादुर्भावः ।

### ७०

वैशम्पायन उवाच ।

प्रजानां पतयः सप्त सप्त चैव महर्षयः ।
तस्य देवस्य जातस्य नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ १
भारद्वाजः कश्यपो गौतमश्च
विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः ।
यश्चोदितो भास्करे संप्रनष्टे
सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥ २
मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षप्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ ३
और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च ।
कपीवानकपीवांश्च दत्तो निश्च्यवनस्तथा ॥ ४
वसिष्ठपुत्राः सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ।
हिरण्यगर्भस्य सुताः पूर्वजाताः सुतेजसः ॥५
गार्ग्यः पृथुस्तथैवान्यो जन्यो वामन एव च ।
देवबाहुर्यदुध्रश्च पर्जन्यश्चैव सोमजः ॥ ६
हिरण्यरोमा वेदशिराः सप्तनेत्रस्तथैव च ।
विश्वोऽतिविश्वच्यवनः सुधामा विरजास्तथा
अतिनामा सहिष्णुश्च नमस्कारमकुर्वत ।
उद्द्योतमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिताः ॥ ८
उपनृत्यन्ति देवेशं विष्णुमप्सरसां वराः ।
ततो गन्धर्वतूर्येषु प्रणदत्सु विहायसि ९
बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायत च तुम्बुरुः ।
महाश्रुतिश्चित्रशिरा ऊर्णायुरनघस्तथा ॥ १०
गोमायुः सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च सप्तमः ।
युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्च त्रिशिरास्तथा ॥
त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ।
कलिः पञ्चदशश्चात्र तत्रैव तु महीपते ॥ १२
दश पंच त्विमे प्रोक्ता नारदश्चैव षोडशः ।
हाहा हूहूश्च गन्धर्वौ हंसश्चैव महाद्युतिः ॥१३

---

६९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९॥

७०

**प्रजानामिति** । प्रजानां पतयः सप्त मरीच्यादयः ॥१॥ भास्करत्वकर्ता त्रिरप्याजगामेत्याह—**यश्चेति** ॥ २ ॥

१ ख. ते कश्यपाश्रमं गत्वा मह॰ ।

सर्वे ते देवगन्धर्वा उपगायन्ति केशवम् ।
तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालङ्कारभूषिताः
वपुष्मन्तः सुजघनाः सर्वाङ्गशुभदर्शनाः ।
ननृतुश्च महाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥ १५
सुमध्याश्चारुमध्याश्च प्रियमुख्यो वराननाः ।
अनूकाथ तथा जामी मिश्रकेशी त्वलम्बुषा ॥
मरीचिः शुचिकाश्चैव विद्युत्पूर्णा तिलोत्तमा ।
अद्रिका लक्षणा चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा॥१७
असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया सुभगा तथा ।
उर्वशी चित्रलेखा च सुग्रीवा च सुलोचना ॥
पुण्डरीका सुगन्धा च सुरथा च प्रमाथिनी ।
नन्दा शारद्वती चैव तथान्यास्तत्र संघशः ॥
मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला ।
एताश्चाप्सरसोऽन्याश्च प्रनृत्यन्ति सहस्रशः२०
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा च सविता तथा
कथितो विष्णुरित्येवं काश्यपेयो गणस्तथा ।
इत्येते द्वादशादित्या ज्वलन्तः सूर्यवर्चसः२२
चक्रुस्तस्य सुरेशस्य नमस्कारं महात्मनः ।
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महाबलः ॥ २३
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ।
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशांपते ॥ २४
स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रास्तत्रावतस्थिरे ।
अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः ॥ २५
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्य प्राञ्जलयः स्थिताः
शेषानुजा महाभागा वासुकिप्रमुखास्तथा॥२६
कच्छपश्चापहर्ता च तक्षकश्च महाबलः ।
अधृष्टास्तेजसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः२७
एते नागा महात्मानस्तस्मै प्राञ्जलयः स्थिताः*
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः ॥ २८
अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया ह्युपस्थिताः ।
पितामहश्च भगवान्स्वयमागम्य लोककृत् ।
प्राह चैवं गुरुः श्रीमान्सह सर्वैर्महात्मभिः २९

ब्रह्मोवाच ।

यस्मात्प्रसूयते लोकः प्रभविष्णुः सनातनः
तस्माल्लोकेश्वरः श्रीमान्विष्णुरेव भवत्वयम्३०
एवमुक्त्वा तु भगवान्सार्धं देवर्षिभिः प्रभुः ।
नमस्कृत्वा सुरेशाय जगाम त्रिदिवं पुनः॥ ३१
स तु जातः सुरेशानः कश्यपस्यात्मजः प्रभुः
नवदुर्दिनमेघाभो रक्ताक्षो वामनाकृतिः ॥ ३२
श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान्रोमजातेन राजता ।
उत्फुल्ललोचनाः सर्वाः पश्यन्त्यप्सरसस्तदा ॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासा तस्य महात्मनः
सुरर्षिप्रतिमः श्रीमान्भूर्भुवो भूतभावनः ।
शुचिरोमा महास्कन्धः सर्वतेजोमयः प्रभुः॥३५
या गतिः पुण्यकीर्तीनामगतिः पापकर्मणाम् ।
योगसिद्धा महात्मानो यं विदुर्योगमुत्तमम् ॥
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम् ।
यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकाङ्क्षिणः
जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यन्ते भवभीरवः
यदेतत्तप इत्याहुः सर्वाश्रमनिवासिनः ॥ ३८
सेवन्ते यं यताहारा दुश्चरं व्रतमास्थिताः ।
योऽनन्त इति नागेषु सेव्यते सर्वभोगिभिः॥
सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः ।
यो यज्ञ इति विप्रेन्द्रैरिज्यते स्वर्गलिप्सुभिः४०
नानास्थानगतः श्रीमानेकः कविरनुत्तमः ।
यं वेदा गान्ति वेत्तारं यज्ञभागप्रदायिनम् ४१
वृषार्चिश्चन्द्रसूर्याक्षं देवमाकाशविग्रहम् ।
स प्राह त्रिदशान्सर्वान्वाचा वै परया विभुः॥
जानन्नपि महातेजा गतो योगेन बालताम् ।
किं करोमि सुरश्रेष्ठाः कं वरं च ददामि वः ॥
यत्काङ्क्षितं वै सर्वेषां तद्वै ब्रूत मुदा युताः ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महात्मनः ॥
सर्वे ते हृष्टमनसो देवाः कश्यपनन्दनम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयो विष्णुं सुराः शक्रपुरोगमाः ॥
ब्रह्मणो वरदानेन हृतं नो निखिलं जगत् ।
तपसा महता चैव विक्रमेण दमेन च ॥ ४६
बालिना दैत्यमुख्येन सर्वज्ञेन महात्मना ।
अवध्यः किल सोऽस्माकं सर्वेषां देवसत्तम ॥
भवान्प्रभवते तस्य नान्यः कश्चन सुव्रत ।
यत्प्रपद्यामहे सर्वे भवन्तं शरणार्थिनः ।
शरण्यं वरदं देवं सवदेवभयापहम् ॥ ४८

रोमजातेन रोमावर्तेन ॥ ३३ ॥ यज्ञवाटं यज्ञस्थानम् ॥ ५८ ॥

१ ख. °नूका च त° । * एते चान्ये च बहवो नागास्तस्य महात्मनः । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ इति पद्यं खपुस्तकेऽधिकम् ।

ऋषीणां च हितार्थाय लोकानां च सुरेश्वर ।
प्रियार्थं च तथादित्याः कश्यपस्य तथैव च ॥
कव्यं पितृणामुचितं सुराणां हव्यमुत्तमम् ।
प्रवर्तेत महाबाहो यथापूर्वं सुरोत्तम ॥ ५०
आनृण्यार्थं सुरेशस्य वासवस्य महात्मनः ।
प्रत्यानय महेन्द्रस्य त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ५१
क्रतुना वाजिमेधेन यजते स हि दानवः ।
यत्प्रत्यानयने युक्तं लोकानां तद्विचिन्तय ॥५२
वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्तस्तदा देवैर्विष्णुर्वामनरूपधृक् ।
महर्षयन्नुवाचाथ सर्वान्देवानिदं वचः ॥ ५३
विष्णुरुवाच ।
तस्य यज्ञसकाशं मां महर्षिर्वेदपारगः ।
बृहस्पतिर्महातेजा नयत्वङ्गिरसः सुतः ॥ ५४
तस्याहं समनुप्राप्तो यज्ञवाटं सुरोत्तमाः ।
विचारिष्ये यथायुक्तं त्रैलोक्यहरणाय वै ॥५५
वैशम्पायन उवाच ।
ततो बृहस्पतिर्धीमाननयद्वामनं प्रभुम् ।
यज्ञवाटं महातेजा दानवेन्द्रस्य धीमतः ॥ ५६
मौञ्जी यज्ञोपवीती च छत्त्री दण्डी ध्वजी तथा
वामनो धूम्ररक्ताक्षो भगवान्बालरूपधृक् ५७
तं गत्वा यज्ञवाटं च ब्रह्मर्षिगणसंकुलम् ।
आत्मना चैव भगवान्वर्णयामास तं क्रतुम् ॥५८
लोकेश्वरेश्वरः श्रीमान्सुरैर्ब्रह्मपुरोगमैः ।
अध्यास्यमानो भगवानवृद्धोऽप्यथ वृद्धवत् ५९
दानवाधिपतेस्तस्य बलेर्वैरोचनस्य च ।
यज्ञवाटमाचिन्त्यात्मा जगाम सुरसत्तमः ॥ ६०
पालितोऽपि हि दैतेयः सांग्रामिकपरिच्छदैः
द्वारे दानवसंबाधे सहसैव विवेश ह ॥ ६१
ऋषिभिश्चैव मन्त्राद्यैः सर्वतः परिवारितम् ।
दैत्यदानवराजेन्द्रमुपतस्थे बलिं बली ॥ ६२
वर्णयित्वा यथान्यायं यज्ञं यज्ञः सनातनः ।
विस्तरेण नरश्रेष्ठ प्रयोगैर्विविधैस्तथा ॥ ६३
शुक्रादीनृत्विजश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणान् ।
सर्वानेव निजग्राह चकार च निरुत्तरान् ॥
आराद्थ बलेस्तस्य ऋत्विजामभितस्तथा ।
यज्ञमात्मानमेवासौ हेतुभिः कारणं विभुः ६५
वैदिकैरप्रकाशैश्च पुनरप्यथ भारत ।
प्रत्यक्षमृषिसङ्घानां वर्णयामास चित्रगुः ६६
ततो निरुत्तरान्दृष्ट्वा सोपाध्यायानृषींश्च तान्
अवृद्धेनापि वृद्धांस्तान्वामनेन महौजसा ॥६७
अद्भुतं चापि मेने स विरोचनसुतो बली ।
मूर्ध्नि कृताञ्जलिश्चेदमब्रवीद्विस्मितो वचः ६८
कुतस्त्वं कोऽसि कस्यासि
किं तेहास्ति प्रयोजनम् ।
नैवंविधः परिज्ञातो
दृष्टपूर्वो मया द्विजः ॥ ६९
बालो मतिमतां श्रेष्ठो ज्ञानविज्ञानकोविदः ।
शिष्टवाग्रूपसंपन्नो मनोज्ञः प्रियदर्शनः ॥ ७०
नेदृशाः सन्ति देवानामृषीणामपि सूनवः ।
न नागानां न यक्षाणां नासुराणां न रक्षसाम्
न पितॄणां न सिद्धानां
गन्धर्वाणां तथैव च ।
योऽसि सोऽसि नमस्तेऽस्तु
ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ७२
वैशम्पायन उवाच ।
उक्त एवं ह्यचिन्त्यात्मा बलिना वामनस्तदा
प्रोवाचोपायतत्त्वज्ञः स्मितपूर्वमिदं वचः ॥७३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

## वामनस्य बलियज्ञे गमनम्, त्रिपादभूमिलाभः, त्रिविक्रममूर्तिधारणं च ।

## ७१

विष्णुरुवाच ।
अहो यज्ञोऽसुरेशस्य बहुभक्ष्यः सुसंस्कृतः । पितामहस्येव पुरा यजतः परमेष्ठिनः ॥ १

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

सुरेशस्य च शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च ।
विशेषितस्त्वया यज्ञो दानवेन्द्र महाबल ॥ २
यजता वाजिमेधेन क्रतूनां प्रवरेण तु ।
सर्वपापविनाशाय त्वया स्वर्गप्रदर्शिना ॥ ३
सर्वकाममयो ह्येष संमतो ब्रह्मवादिनाम् ।
क्रतूनां प्रवरः श्रीमानश्वमेध इति श्रुतिः ॥४
सुवर्णशृङ्गो हि महानुभावो
लोहक्षुरो वायुजवो महारयः।
स्वर्गेक्षणः काञ्चनगर्भगौरः
स विश्वयोनिः परमो हि मेध्यः ॥ ५
आस्थाय वै वाजिनमश्वमेध-
मिष्ट्वा नरा दुष्कृतमुत्तरन्ति ।
आहुश्च यं वेदविदो द्विजेन्द्रा
वैश्वानरं वाजिनमश्वमेधम् ॥ ६
यथाऽऽश्रमाणां प्रवरो गृहाश्रमो
यथा नराणां प्रवरा द्विजातयः ।
यथाऽसुराणां प्रवरो भवानिह
तथा क्रतूनां प्रवरोऽश्वमेधः ॥ ७
वैशम्पायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वामनेन समीरितम् ।
मुदा परमया युक्तः प्राह दैत्यपतिर्बलिः ॥ ८
बलिरुवाच ।
कस्यासि ब्राह्मणश्रेष्ठ किमिच्छासि ददामि ते
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ९
वामन उवाच ।
न राज्यं न च यानानि
न रत्नानि न च स्त्रियः ।
कामये यदि तुष्टोऽसि
धर्मं च यदि ते मतिः ॥ १०
गुर्वर्थं मे प्रयच्छस्व पदानि त्रीणि दानव ।
त्वमग्निशरणार्थाय एष मे प्रवरो वरः।
वामनस्य वचः श्रुत्वा प्राह दैत्यपतिर्बलिः ११
बलिरुवाच ।
त्रिभिः किं तव विप्रेन्द्र पदैः प्रवदतां वर ।
शतं शतसहस्राणां पदानां मागतां भवान् १२

शुक्र उवाच ।
मा ददस्व महाबाहो न त्वं वेत्सि महासुर
एष मायाप्रतिच्छन्नो भगवान्प्रवरो हरिः ॥१३
वामनं रूपमास्थाय शक्रप्रियहितेप्सया ।
त्वां वञ्चयितुमायातो बहुरूपधरो विभुः ॥१४
एवमुक्तः स शुक्रेण चिरं संचिन्त्य वै बलिः ।
प्रहर्षेण समायुक्तः किमतः पात्रमिष्यते ॥ १५
प्रगृह्य हस्ते संभ्रान्तो भृङ्गारं कनकोद्भवम् ।
बलिरुवाच ।
विप्रेन्द्र प्राङ्मुखस्तिष्ठ स्थितोऽस्मि कमलेक्षण
प्रतीच्छ देहि किं भूमिं किं मात्रा भोः पदत्रयम्
दत्तं च पातय जलं नैव मिथ्या भवेद्गुरुः॥१७
शुक्र उवाच ।
भो न देयं कुतो दैत्य विज्ञातोऽयं मया ध्रुवम्
कोऽयं विष्णुरहो प्रीतिर्वञ्चितस्त्वं न वञ्चितः
बलिरुवाच ।
कथं स नाथोऽयं विष्णुर्यज्ञे स्वयमुपास्थितः
दास्यामि देवदेवाय यद्यदिच्छत्ययं विभुः१९
को वान्यः पात्रभूतोऽस्माद्विष्णोः परतरो भवेत्
एवमुक्त्वा बलिः शीघ्रं पातयामास वै जलम्
वामन उवाच ।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र पर्याप्तानि ममानघ ।
यन्मया पूर्वमुक्तं हि तत्तथा न तदन्यथा ॥ २१
वैशम्पायन उवाच ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महौजसः ।
कृष्णाजिनोत्तरीयं स कृत्वा वैरोचनिस्तदा ॥
एवमस्त्विति दैत्येशो वाक्यमुक्त्वाऽरिसूदनः
ततो वारिसमापूर्णं भृङ्गारं स परामृशत् २३
वामनो ह्यसुरेन्द्रस्य चिकीर्षुः कदनं महत् ।
क्षिप्रं प्रसारयामास दैत्यक्षयकरं करम् ॥ २४
प्राङ्मुखश्चापि दैत्येशस्तस्मै सुमनसा जलम्
दातुकामः करे यावत्तावत्तं प्रत्यषेधयत ॥ २५
तस्य तद्रूपमालोक्य ह्यचिन्त्यं च महात्मनः
अभूतपूर्वं च हरेर्जिहीर्षोः श्रियमासुरीम् ॥२६



वञ्चितस्त्वमिति शुक्रः । न वञ्चित इति बलिरित्यादि यथायोगमूह्यम् ॥ १८ ॥

१ ख. तु दैत्येन्द्रो वा° ।

इङ्गितज्ञोऽग्रतः स्थित्वा प्रह्लादस्त्वब्रवीद्वचः।
प्रह्लाद उवाच।
मा ददस्व जलं हस्ते बटोर्वामनरूपिणः २७
स त्वसौ येन ते पूर्वं निहतः प्रपितामहः।
विष्णुरेष महाप्राज्ञस्त्वां वञ्चयितुमागतः २८
बलिरुवाच।
हन्त तस्मै प्रदास्यामि देवायेमं प्रतिग्रहम्।
अनुग्रहकरं देवमीदृशं जगतः प्रभुम् ॥ २९
ब्रह्मणोऽपि गरीयांसं पात्रं लप्स्यामहे वयम्
अवश्यं चासुरश्रेष्ठ दातव्यं दीक्षितेन वै ॥ ३०
इत्युक्त्वाऽसुरसंघानां मध्ये वैरोचनिस्तदा।
देवाय प्रददौ तस्मै पदानि त्रीणि विष्णवे ३१
प्रह्लाद उवाच।
दानवेश्वर मा दास्त्वं विप्रायास्मै प्रतिग्रहम्
नेमं विप्रशिशुं मन्ये नेदृशो भवति द्विजः ३२
रूपेणानेन दैत्येन्द्र सत्यमेव ब्रवीमि ते।
नारसिंहमहं मन्ये तमेव पुनरागतम् ॥ ३३
एवमुक्तस्तदा तेन प्रह्लादेनामितौजसा।
प्रह्लादमब्रवीद्वाक्यमिदं निर्भर्त्सयन्निव ॥ ३४
बलिरुवाच।
देहीति याचते यो हि प्रत्याख्याति च योऽसुर
उभयोरप्यलक्ष्म्या वै भागस्तं विशते नरम् ॥
प्रतिज्ञाय तु यो विप्रे न ददाति प्रतिग्रहम्।
स याति नरकं पापी मित्रगोत्रसमन्वितः ॥
अलक्ष्मीभयभीतोऽहं ददाम्यस्मै वसुंधराम्
प्रतिग्रहीता चाप्यन्यः कश्चिदस्माद्द्विजोऽथ वै
नाधिको विद्यते यस्मात्तद्ददामि वसुंधराम्
हृदयस्य च मे तुष्टिः परा भवति दानव ॥ ३८
दृष्ट्वा वामनरूपेण याचन्तं द्विजपुङ्गवम्।
एष तस्मात्प्रदास्यामि न स्थास्यामि निवारितः
भूयश्च प्राब्रवीदेवं वामनं विप्ररूपिणम्
स्वल्पैः स्वल्पमते किं ते पदैस्त्रिभिरनुत्तमम् ॥
कृत्स्नां ददामि ते विप्र पृथिवीं सागरैर्वृताम्
वामन उवाच।
न पृथ्वीं कामये कृत्स्नां संतुष्टोऽस्मि पदैस्त्रिभिः
एष एव हि ईप्सितो मे वरो दानवसत्तम ४१
वैशम्पायन उवाच।
तथाऽस्त्विति बलिः प्रोच्य
स्पर्शयामास दानवः।
पदानि त्रीणि देवाय
विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ४२
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास वै विभुः ॥ ४३
भूः पादौ, द्यौः शिरश्चास्य,
चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी, ।
पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च,
हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः, ॥ ४४
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः
यक्षा नखेषु संभूता लेखाश्चाप्सरसस्तथा च।
तडिद्दृष्टिः सुविपुला केशाः सूर्यांशवस्तथा।
तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः॥४६
बाहवा विदिशश्चास्य दिशः श्रोत्रे तथैव च
अश्विनौ श्रवणौ चास्य नासा वायुर्महाबलः
प्रसादश्चन्द्रमाश्चैव मनो धर्मस्तथैव च।
सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ।
ग्रीवा दितिर्महादेवी तालुः सूर्यश्च दीप्तिमान्।
द्वारं स्वर्गस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा च वै भ्रुवौ
मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः।
हृदयं भगवान्ब्रह्मा पुंस्त्वं वै विश्वतो मुनिः ॥
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः पादसन्धिषु।
सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमलाः प्रभाः
ऊरू रुद्रो महादेवो धैर्यं चास्य महार्णवः।
उदरे चास्य गन्धर्वा भुजगाश्च महाबलाः ५२
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः
सर्वविद्या च वै कटिः
ललाटमस्य परम-
स्थानं च परमात्मनः ॥ ५३
सर्वज्योतींषि यानीह तपः शक्रस्तु देवराट्।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजो ह्याहुर्महात्मनः ५४
स्तनौ कक्षौ च वेदाश्च
ओष्ठौ चास्य मखाः स्थिताः
इष्टयः पशुबन्धाश्च
द्विजानां चेष्टितानि च ॥ ५५
तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महासुराः।
अभ्यसर्पन्त संक्रुद्धाः पतङ्गा इव पावकम् ५६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे विश्वरूपप्रकाशे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

# विष्णोरादेशात् बलेः पातालप्रवेशः, तत्कृतविष्णुस्तवः बलिं, प्रति गरुडस्य उक्तिप्रत्युक्ती, वामनस्तवफलकथनं च ।

## ७२

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु नामानि सर्वेषां रूपाण्यभिजनानि च
आयुधानि च मुख्यानि दानवानां महात्मनाम्
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च
अयःशिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् २
वेगवान्केतुमानुग्रः सोग्रव्यग्रो महासुरः ।
पुष्करः पुष्कलश्चैव साश्वोऽश्वपतिरेव च । ३
प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहरौ वाराहः संहरो रुजः। ४
वृषपर्वा विरूपाक्षो अतिचन्द्रः सुलोचनः
निष्प्रभः सुप्रभः श्रीमांस्तथैव च निरुदरः । ५
एकवक्त्रो महावक्त्रो द्विवक्त्रः कालसंनिभः
शरभः शलभश्चैव कुणपः कुलपः क्रथः । ६
बृहत्कीर्तिर्महागर्भः शङ्कुकर्णो महाध्वनिः ।
दीर्घजिह्वोऽर्कवदनो मृदुबाहुर्मृदुप्रियः । ७
वायुर्गविष्ठो नमुचिः शम्बरो विक्षरो महान्।
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ८
कालकः कालकाक्षश्च वृत्रः क्रोधो विमोक्षणः
गविष्ठश्च हविष्ठश्च प्रलम्बो नरकः पृथुः । ९
चन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ।
असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः॥
शृगालवदनश्चैव करालः केशिरेव च ।
एकाक्षश्चैकबाहुश्च तुहुण्डः सृमलः सृपः । ११
एते चान्ये च बहवः क्रममाणं त्रिविक्रमम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं विष्णुं दैत्यगणास्तदा १२
• प्रासोद्यतकराः केचि-
द्दृथादितास्याः खरस्वनाः ।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च
वज्रहस्तास्तथा परे । १३
खड्गपट्टिशहस्ताश्च परश्वधधराः परे ।
प्रासमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः १४
महाशनिव्यग्रकरा मौशलास्तु महाबलाः ।
महावृक्षोद्यतकरास्तथैव च धनुर्धराः । १५
गदाभुशुण्डिहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे ।
महापट्टिशहस्ताश्च तथा परिघपाणयः १६
असिकम्पनहस्ताश्च दानवा युद्धदुर्मदाः ।
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाबलाः ।१७
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च हस्तिवक्त्रास्तथा परे ।
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा: १८
भीमा मकरवक्त्राश्च शिशुमारमुखास्तथा ।
मार्जारशूकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः ।
गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ।
अश्ववक्त्रा बभ्रुवक्त्रा घोरा मृगमुखास्तथा ।
उष्ट्रशल्यकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः ।
नकुलस्येव वक्त्राश्च पारावतमुखास्तथा ।२१
चक्रवाकमुखाश्चैव गोधवक्त्रास्तथा परे ।
तथा मृगाननाः शूरा गोजादिमहिषाननाः २२
कृकलासमुखाश्चैव व्याघ्रवक्त्रास्तथा परे ।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च सिंहवक्त्रास्तथा परे। २३
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।
चीरसंवृतगात्राश्च तथा फलकवाससः। २४
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः
नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ।
स्वान्यायुधानि दीप्तानि प्रगृह्यासुरसत्तमाः२६
क्रममाणं हृषीकेशमुपातिष्ठन्त दानवाः ।
प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैः प्रभुः* २७
रूपं कृत्वा महाकायं जहाराशु स मेदिनीम्
त्रैलोक्यं क्रममाणस्य द्युतिरादित्यसंभवा २८
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभः प्रक्रममाणस्य सक्थिदेशे व्यवस्थितौ ।
परं विक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ ॥२९
विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ।
जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान्
ददौ शक्राय वसुधां हरिर्लोकनमस्कृतः ।
सुतलं नाम पातालमधस्ताद्वसुधातले ॥ ३१
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ।
तदवाप्यासुरश्रेष्ठश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ ३२
रसातलतले वासमकरोदसुराधिपः ।
तत्रस्थश्च महातेजा ध्यानं परममास्थितः ।।३३
उवाच वचनं धीमान्विष्णुं लोकनमस्कृतम् ।
किं मया देव कर्तव्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः ।
ततो दैत्याधिपं प्राह देवो विष्णुः सुरोत्तमः ॥

* ' जहार त्रिदिवं देवस्त्रिभिर्विक्रमणैर्हरिः ' इत्यधिकः पाठः खपुस्तके ।

विष्णुरुवाच ।

ददामि ते महाभाग परितुष्टोऽस्मि तेऽसुर ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ३५
मा च शक्रस्य वचनं प्रतिहासीः कथंचन ।
अहमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैवमवाप्स्यसि ३६
अथ दैत्याधिपं प्राह विष्णुर्देवाधिपानुजः ।
वाचा परमया देवो वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥३७
यत्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया ।
तस्मात्ते दैत्य देवेभ्यो नास्ति जातु भयं क्वचित्
सुतलं नाम पातालं तत्र त्वं सानुगो वस ।
सर्वदैत्यगणैः सार्धं मत्प्रसादान्महासुर ॥ ३९
न च ते देवदेवस्य शक्रस्यामिततेजसः ।
शासनं प्रतिहन्तव्यं स्मरता शासनं मम ॥४०
देवताश्चापि ते सर्वाः पूज्या एव महासुर ।
भोगांश्च विविधान्सम्यग्यज्ञांश्च सहदक्षिणान्
प्राप्स्यसे च महाभाग
दिव्यान्कामान्यथेप्सितान् ।
इह चामुत्र चाक्षय्यान्विविधांश्च परिच्छदान्
दैत्याधिपत्यं च सदा मत्प्रसादादवाप्स्यसि ।
यदा च तां मया प्रोक्तां मर्यादां चालयिष्यसि
बोधिष्यन्ति तदा हि त्वां नागपाशैर्महाबलाः ॥
नमस्कार्याश्च ते नित्यं महेन्द्राद्या दिवौकसः ।
मम ज्येष्ठः सुरश्रेष्ठ शासनं प्रतिगृह्यताम् ॥४४

बलिरुवाच ।

देवदेव महाभाग शंखचक्रगदाधर ।
सुरासुरगुरो श्रेष्ठ सर्वलोकमहेश्वर ।
तत्रासतो मे पाताले भागं ब्रूहि सुरोत्तम ॥ ४५
ममात्मशनं देव प्राशनार्थमरिंदम ।
तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ तृप्तिर्येन ममाक्षया ॥ ४६

श्रीभगवानुवाच ।

अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रत-
मदक्षिणं यज्ञमनृत्विजा हुतम् ।
अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हवि-
रेते प्रदत्तास्तव दैत्य भागाः ॥ ४७
पुण्यं मद्द्वेषिणां यच्च मद्भक्तद्वेषिणां तथा ।
क्रयविक्रयसक्तानां पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम् ४८
अश्रद्धया च यद्दानं ददतां यजतां तथा ।
तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥४९

वैशम्पायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं बलिर्विष्णोर्महात्मनः ।
एवमस्त्विति तं प्रोक्त्वा पातालमसुरोत्तमः
प्रविवेश महानादो देवाज्ञां प्रतिपालयन् ।
एतस्मिन्नन्तरे चापि विष्णुस्त्रिदशपूजितः
भगवानपि राज्यानां प्रविभागांश्चकार ह ५१
ददौ पूर्वां दिशं चैन्द्रीं शक्रायामिततेजसे ।
याम्यां यमाय देवाय पितृराज्ञे महात्मने ॥५२
पश्चिमां तु दिशं प्रादाद्वरुणाय महात्मने ।
उत्तरां च कुबेराय यक्षाधिपतये दिशम् ॥ ५३
अधःस्थां नागराजाय सोमायोर्ध्वां दिशं ददौ
एवं विभज्य त्रैलोक्यं विष्णुर्बलवतां वरः ॥५४
जगाम त्रिदिवं देवः पूज्यमानो महर्षिभिः ।
वामनः सर्वभूतेशः प्रतिष्ठाप्य च वासवम् ॥५५
तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे वामनेऽमिततेजसि ।
सर्वे मुमुदिरे देवाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ५६

वैशम्पायन उवाच ।

गते तु त्रिदिवं कृष्णे बद्ध्वा वैरोचनिं बलिम्
नागैः सप्तशिरोभिश्च कम्बलाश्वतरादिभिः ५७
नागबन्धनदुःखार्तं बलिं वैरोचनिं ततः ।
यदृच्छयाऽसौ देवर्षिर्नारदः प्रत्यपद्यत ॥ ५८
स तं कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कृपयाभिपरिप्लुतः ।
उवाच दानवश्रेष्ठं मोक्षोपायं ददामि ते ॥ ५९
स्तवं देवाधिदेवस्य वासुदेवस्य धीमतः ।
अनादिनिधनस्यास्य अक्षयस्याव्ययस्य च ६०
तमधीष्वाथ दैत्येन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना ।
तद्गतस्तन्मना भूत्वा द्रुतं मोक्षमवाप्स्यसि ॥६१
ततो विरोचनसुतः प्रयतः प्राञ्जलिः शुचिः ।
मोक्षविंशकमव्यग्रो नारदात्समधीतवान् ॥६२
तमधीत्य स्तवं दिव्यं नारदेन समीरितम् ।
पृथिवी चोद्धृता येन तं जजाप महासुरः । ६३
ॐ नमोऽस्त्वनन्तपतये अक्षयाय महात्मने ।
जलेशयाय देवाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥ ६४
सप्तसूर्यवपुः कृत्वा त्रींल्लोकान्क्रान्तवानसि ।
भगवन्कालकालस्त्वं तेन सत्येन मोक्षय ॥६५
नष्टचन्द्रार्कगगने क्षीणयज्ञतपःक्रिये ।
पुनश्चिन्तयसे लोकांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥६६
ब्रह्मरुद्रेन्द्रवाय्वग्निसरिद्भुजगपर्वताः
त्वत्स्था दृष्ट्वा द्विजेन्द्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥६७

१ प्र तिहासीः मा त्यज ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेन पुरा कल्पे प्रविश्य जठरं तव ।
चराचरगतं दृष्टं तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६८
एको विद्यासहायस्त्वं योगी योगमुपागतः ।
पुनस्त्रैलोक्यमुत्सृज्य तेन सत्येन मोक्षय । ६९
जलशय्यामुपासीनो योगनिद्रामुपागतः ।
लोकांश्चिन्तयसे भूयस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७०
वाराहं रूपमास्थाय वेदयज्ञपुरस्कृतम् ।
धरा जलोद्धृता येन तेन सत्येन मोक्षय ॥७१
उद्धृत्य दंष्ट्रया यज्ञांस्त्रीन्पिण्डान्कृतवानसि ।
त्वं पितॄणामपि हरे तेन सत्येन मोक्षय ॥७२
प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे हिरण्याक्षभयार्दिताः ।
परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥७३
दीर्घवक्त्रेण रूपेण हिरण्याक्षस्य संयुगे ।
शिरो जहार चक्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥७४
भग्नमूर्धास्थिमस्तिष्को हिरण्यकशिपुः पुरा ।
हुंकारेण हतो दैत्यस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७५
दानवाभ्यां हृता वेदा ब्रह्मणः पश्यतः पुरा ।
परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥७६
कृत्वा हयशिरोरूपं हत्वा तु मधुकैटभौ ।
ब्रह्मणे तेऽर्पिता वेदास्तेन सत्येन मोक्षय ॥७७
देवदानवगन्धर्वा यक्षसिद्धमहोरगाः ।
अन्तं तव न पश्यन्ति तेन सत्येन मोक्षय॥७८
अपान्तरतमा नाम जातो देवस्य वै सुतः ।
कृताश्च तेन वेदार्थास्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७९
वेदयज्ञाग्निहोत्राणि पितृयज्ञहवींषि च ।
रहस्यं तव देवस्य तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८०
ऋषिर्दीर्घतमा नाम जात्यन्धो गुरुशापतः ।
त्वत्प्रसादाच्च चक्षुष्मांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च दीनं मृत्युवशं गतम् ।
भक्तं मोक्षितवांस्त्वं हि तेन सत्येन मोक्षय ॥
अक्षयश्चाव्ययश्च त्वं ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ।
उच्छ्रितानां नियन्तासि तेन सत्येन मोक्षय ॥
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं गरुडमेव च ।
प्रसादयामि शिरसा ते बन्धान्मोक्षयन्तु माम्
शङ्खचक्रगदातूणशार्ङ्गं च गरुडादयः ।
प्रसादयामासुर्हरिं बलिं मोक्षय बन्धनात् ॥८५
ततः प्रसन्नो भगवानादिदेश खगेश्वरम् ।
गरुडं नागहन्तारं बलिं मोक्षय बन्धनात् ॥८६
ततो विक्षिप्य गरुडः पक्षावतुलविक्रमः ।
जगाम वसुधामूलं यत्रास्ते संयतो बलिः॥८७
आगमं तस्य विज्ञाय नागा मुक्त्वा महासुरम् ।
ययुः पुरीं भोगवतीं वैनतेयभयार्दिताः ॥ ८८
मुक्तं कृष्णप्रसादेन चिन्तयानमधोमुखम् ।
भ्रष्टश्रियमुवाचेदं गरुत्मान्पन्नगाशनः ॥ ८९

गरुड उवाच ।

दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्वामब्रवीत्प्रभुः
मुक्तो निवस पाताले सपुत्रजनबान्धवः ॥ ९०
इतस्त्वया न गन्तव्यं गव्यूतिमपि दानव ।
समयं यदि भिन्द्यास्त्वं मूर्धा ते शतधा भवेत्।
पक्षीन्द्रवचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रोऽब्रवीदिदम् ।
स्थितोऽस्मि समये तस्य अनन्तस्य महात्मनः
जीव्योपायं तु भगवान्मम किंचित्करोतु सः
इहस्थोऽहं सुखासीनो येनाप्याये खगेश्वर ९३
बलेस्तु वचनं श्रुत्वा गरुत्मानिदमब्रवीत् ।
पूर्वमेव कृतस्तेन जीव्योपायो महात्मना ॥९४
वर्तयिष्यन्ति ये यज्ञा विधिहीना न ऋत्विजः
प्रायश्चित्तमजानन्तो यज्ञभागस्ततस्तव ॥ ९५
न तेषां यज्ञभागं वै प्रतिगृह्णन्ति देवताः ।
अनेनाप्यायितबलः सुखमात्र निवत्स्यसि॥९६

वैशम्पायन उवाच

संदेशमेतं भगवान्दत्तवान्कश्यपात्मजः ।
दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्रैलोक्यभावनः९७
इमं स्तवमनन्तस्य सर्वपापप्रमोचनम् ।
यः पठेत नरो भक्त्या तस्य नश्यति किल्बिषम्
गोहत्यायाः प्रमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्महत्यया ।
अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चैवेप्सितं पतिम् ९९
सद्यो गर्भात्प्रमुच्येत
गर्भिणी जनयेत्सुतम् ।
ये च मोक्षैषिणो लोके
योगिनः साङ्ख्यकापिलाः ॥ १००
स्तवेनानेन गच्छन्ति श्वेतद्विपमकल्मषाः ।
सर्वकामप्रदो ह्येष स्तवोऽनन्तस्य कीर्त्यते ॥ १
यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः
एष वै वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
वेदविद्भिर्द्विजैरेव पठ्यते वैष्णवं यशः ॥ ३
यस्त्विमं वामनं दिव्यं प्रादुर्भावं महात्मनः ।
शृणुयान्नियतो भक्त्या सदा पर्वसु पर्वसु ॥४
परान्विजयते राजा यथा विष्णुर्महाबलः ।
यशो विमलमाप्नोति विपुलं चाप्नुते वसु ॥ ५

प्रियो भवति भूतानां सर्वेषां वामनो यथा ।
पुत्रपौत्राश्च वर्धन्ते आरोग्यं गुणसंपदः ॥ ६

प्रीयते पठतश्चास्य देवदेवो जनार्दनः ।
सर्वकामयुतश्चैव कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १०७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

## कृष्णं प्रति रुक्मिण्याः पुत्रप्रार्थनाकथनम् ।

### ७३

जनमेजय उवाच ।

किमर्थं भगवान्विष्णुर्देवदेवो जनार्दनः ।
गतः कैलासशिखरमालयं शंकरस्य च ॥ १
नारदाद्यैस्तपोवृद्धैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
तत्र दृष्टो महादेवः शंकरो नीललोहितः ॥ २
केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम् ।
आर्चितो देवदेवेन शंकरश्चेति नः श्रुतम् ॥ ३
देवौ तत्र जगन्नाथौ दृष्टवन्तौ पुरातनौ ।
अर्चयांचक्रिरे देवा इन्द्राद्याः शंकरं हरिम् ॥ ४
तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ ।
एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ ॥ ५
परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ ।
तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ६
ऋषयः किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ ।
एतत्सर्वमशेषेण वक्तुमर्हसि सत्तम ॥ ७
यथा गतो हरिर्विष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः
तथा च शंकरः साक्षात्कृतवान्नागभूषणः ।
एतत्सर्वं विप्रवर्य ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः ॥ ८

---

अत्र नमोस्त्वनन्त एतय इत्यादिस्तवः बन्धमोक्षार्थं जप्यः ॥ १०७ ॥ इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञानमर्यादाधुरंधर—चतुर्धरवंशावतंसगोविन्दसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां वामनप्रादुर्भावान्तर्ग्रन्थार्थप्रकाशो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

[ समाप्तोऽयं वामनप्रादुर्भावः ]

७३

**किमर्थमिति** । अथ धन्योपाख्यानमारभ्य बाणयुद्धे रुद्रजयान्तं विष्णोरुत्कर्षो वर्णितः । प्रादुर्भावेषु च तस्यैव निर्गुणं सगुणं च स्वरूपं व्याख्याय तद्गुणकथनपरं भारतं च श्रवणफलश्रुतिप्रदर्शनान्तं समापितम् । तत्र बाणयुद्धे च हरिहरयोर्भेद उक्तः । स च ममात्मा भद्रसेन इतिवत् औपचारिक इति भवेत्कस्यचित् अत्यन्ताभेदे शास्तृशास्यभावासंभवं मन्वानस्य मन्दमतेर्मतिः तामपनिनीषुः कैलासयात्रादित्रिपुरवधान्तं प्रत्यभासत । तयोः सर्वत्र प्रत्येकं सर्वोत्तमत्वेन कीर्त्यमानयोः कायव्यूहे योगिन इव देहभेदेऽप्यैकात्म्यं सिद्ध्यति । न तु देहभेदाद्व्यक्तिभेदः सर्वोत्तमद्वयायोगात् इति । तत्रानुशासनिके पर्वणि कृष्णः शंकराराधनार्थं कैलासं गत इति संक्षेपेणोक्तं तद्विस्तरेण बुभुत्सुरमुं वदति-**किमर्थं भगवान् विष्णुरित्यादिना** । देवानां ब्रह्मादीनां देवोऽपि जनैः अर्द्यते गम्यते प्रलयकाले याचते इष्टसिद्ध्यर्थं स्थितिकाल इति जनार्दनोऽपि सन्कथमन्यं पूजयितुं गतः कथं च तदन्यस्य शंकरत्वम् । पूर्णानन्दरूपस्वरूपोऽपि कथमल्पसुखलिप्सयान्यं प्रति गत इत्यर्थः ॥ १ ॥ एवं पूज्यपूजकभावेनावगतयोः कथमेकात्मत्वमित्याह-**देवाविति** ॥ ४ ॥ एक आत्मा स्वरूपं ययोस्तादृशावपि कार्यभेदाद्भिन्नशरीरौ सिद्धौ इव भासेते इत्येतदपि कथमित्यर्थः ॥ ५ ॥ **परस्परेति** । अग्नावग्निरिव जले जलमिव चान्योन्यस्मिन्नैक्यं गतावित्युक्तं तदपि कथं किमर्थम् ॥ ६ ॥ ऐक्यं गतौ दृष्ट्वा ऋषयः किमचेष्टन्त । तत्कथं तयोस्तत्त्वं व्याख्यातवन्त इत्यर्थः ॥ ७ ॥ गतः शिवम् अभेदेनेति शेषः । साक्षात् कृतवान् हरिं प्रत्यगात्मत्वेनेति शेषः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वावहितो राजन्यथा कृष्णो गतो नगम्
यथा च दृष्टो देवेशः शंकरो वृषवाहनः ॥ ९
यथा चचार स तपो यथा ते मुनयो गताः ।
एवं तयोर्यथा वृत्तं तथा शृणु नरोत्तम ॥ १०
द्वैपायनोऽथ भगवान्यथा प्रोवाच मां तथा ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशवं खगवाहनम् ॥ ११
यथाशक्ति यथाप्रज्ञं शृणु यत्नेन सुव्रत ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं नृशंसायातपस्विने ॥ १२
नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवतां सदा
स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं च बुद्धिशुद्धिकरं सदा ॥ १३
ध्येयं पुण्यात्मनां नित्यमिदं वेदार्थनिश्चितम् ।
अनेकारण्यसंयुक्तं सेवन्ते नित्यमीदृशम् ॥ १४
मुनयो वेदनिरता नारदाद्यास्तपोधनाः ।
अत्यद्भुतं महापुण्यं वृत्तं कैलासपर्वते ॥ १५
शिवयोर्देवयोस्तत्र हरेश्चैव भवस्य ह ।
हतेष्वसुरसङ्घेषु नरकादिषु भूमिपः ॥ १६
हतेष्वथ नृपेष्वेवं किंचिच्छिष्टेषु शत्रुषु ।
शासति स्म सदा विष्णुः पृथिवीं पुरुषोत्तमः ॥
द्वारवत्यां जगन्नाथो वसन्वृष्णिभिरीश्वरः ।
रुक्मिण्या संगतो देवो वसंस्तत्र पुरे हरिः १८
कदाचिच्च तया सार्धं शेते रात्रौ जगत्पतिः ।
विहरंश्च यथायोगं प्रीतः प्रीतियुजा तया १९
अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा ।
पुत्रमिच्छामि देवेश त्वत्तो माधव नन्दनम् २०
बलिनं रूपसंपन्नं त्वयैव सदृशं प्रभो ।
वृष्णीनामपि नेतारं वीर्यवन्तं तपोनिधिम् ॥
सर्वशास्त्रार्थकुशलं राजविद्यापुरस्कृतम् ।
एवमादिगुणैर्युक्तं दातुमर्हसि सत्तम ॥ २२
त्वयि सर्वस्य दातृत्वं नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ।
त्वं हि सर्वस्य कर्ता च दाता भोक्ता जगत्पतिः
विशेषतस्तु भृत्यानां शुश्रूषानियतात्मनाम् ।
वक्तव्यं किमु देवेश यदि भक्तोऽस्मि केशव ॥
अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते ।
दातुमर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन ॥ २५

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया ।
तया महिष्या रुक्मिण्या रुक्मिशत्रुर्यदूद्वहः ॥
प्रोवाच वचनं काले रुक्मिणीं यादवेश्वरः ।
दातास्मि तादृशं पुत्रं यं त्वमिच्छसि भामिनि
नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा
अवश्यं तव दास्यामि पुत्रं शत्रुनिबर्हणम् ॥ २८
पुत्रेण लोकाञ्जयति सतां कामदुघा हि ये ।
नरकं पुदिति ख्यातं दुःखं च नरकं विदुः ॥ २९
पुदस्त्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छति परत्र च ।
अनन्ताः पुत्रिणो लोकाः पुरुषस्य प्रिये शुभाः
पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥
पुत्रवन्तं बिभेतीन्द्रः किं नु ते नाशितं भवेत् ।
नापुत्रो विन्दते लोकान्कुपुत्राद्वन्ध्यता वरा ३२
कुपुत्रो नरके यस्मात्सुपुत्रात्स्वर्ग एव हि ।
तस्माद्विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दयापरम् ॥ ३३
विद्यया विनयो यस्माद्विद्यायुक्तं सुधार्मिकम् ।
इच्छेत्पुत्रं पुत्रकामः पुरुषो यत्नवान्बुधः ॥ ३४

---

नगं कैलासम् ॥ ९ ॥ नन्वयं योगिविदेक एवेश्वरोऽनेकदेवतात्मा चेत् किं हरिहराद्वैतप्रतिपादनेनेत्याशङ्क्याह– **ध्येयमिति** । पुण्यात्मनां ध्येयम् आलोचनीयमिदं हरिहरयोरैक्यं वेदार्थत्वेन निश्चितं यतः अनेकैरारण्यैः आरण्यकैः उपानिषद्भिः संयुक्तं तात्पर्यवत्तया समाहितम् । नित्यं ब्राह्मणस्यावश्यकं नित्यम् अनवरतं सेवन्ते चिन्तयन्ति । **अयमर्थः**–बीजाङ्कुरवन्मिथः कार्यकारणभावं गतयोर्हरिहरयोः पर्यायेण जीवेशभावमापादयितुमिदमुच्यते । तथा हि–यदा जीवः शिव ईश्वरो विष्णुर्यदा विपरीतं वा तदा ईश्वरं जीवो जले जलमिवाम्भावामिरिव विलीयत इति सर्ववेदान्तसिद्धान्तः । तत्र केषुचित्पुराणेष्वाद्यः पक्ष उपादीयते, केषुचित् द्वितीयः । सर्वथापि जीवेशयोरभेदः सर्वस्य शास्त्रस्यार्थः । देवतान्तराणि तु समष्टिजीवस्यावयवभूतानीति अकृत्स्नः कृत्स्नेनः परब्रह्मणात्यन्तमैक्यमश्नुवत इति **खिले ग्रन्थेऽस्मिन् सर्वपुराणार्थसंग्रह** इति प्राक् शिवो जीवो विष्णुरीश इत्युक्तम् । इदानीं विष्णुर्जीवः शिव ईश्वर इति प्रतिपाद्यते । तेन सर्वेषां पुराणानां मिथो विरुद्धार्थत्वेऽपि तत्त्वतो न विरोधगन्धोऽपीति प्रतिपादितमुपोद्घातेऽपीति शिवम् ॥ १४ ॥ शासति शास्ति । मौवादित्वमार्षम् ॥ १७ ॥ राजविद्या ब्रह्मविद्या तद्वतां मध्ये पुरस्कृतम् ॥ २२ ॥ आत्मन एव द्वितीयं स्वरूपं पुत्र इत्यत्र श्रुतिं पठति–'**पतिर्जायाम्' इति** ॥ ३ ॥ १पुत्रवन्तं दृष्ट्वेति शेषः । पुत्रवान् इन्द्रपदमपि जयतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ नरके पातयतीति शेषः । यस्माद्विद्यायुक्तम् ॥ ३३ ॥

तस्माद्दास्यामि ते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मिकम्।
एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम्॥३५
तत्रोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम्।
ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद्भूतहिते रतात् ३६
तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शंकरमव्ययम्।
तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम्॥
गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शंकरमव्ययम्।
स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया॥३८
तत्र गत्वा महादेवं नमस्कृत्य सहोमया।
प्रविश्य बदरीं पुण्यां मुनिजुष्टां तपोमयीम् ३९
अग्निहोत्राकुलां दिव्यां गङ्गाम्बुप्लावितां सदा।
मृगपक्षिसमायुक्तां सिंहद्विपशताकुलाम्॥४०
बदरीफलसंपूर्णां वानरक्षोभितद्रुमाम्।
वेत्रारूढमहावृक्षां कदलीखण्डमण्डिताम्॥
मुनिभिर्वेदतत्त्वार्थविचारनिपुणैः सदा।
वेदनिश्चिततत्त्वार्थैः प्रमाणकुशलैर्युताम्॥४२
इदमेकमिदं तत्त्वमिति निश्चितमानसैः।
उपास्यमानामन्यत्र सिद्धैः सिद्धार्थतत्परैः॥
इतिहासपुराणज्ञैः सेव्यमानां महर्षिभिः।
गच्छद्भिः स्वर्गनिलयं परित्यज्य कलेवरम्॥
प्रसिद्धां महतीं देवीं यास्यामि सुकृतालयाम्
इत्युक्त्वा विररामैव देवदेवो जनार्दनः ४५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

## श्रीकृष्णस्य कैलासगमनविचारः।

## ७४

वैशम्पायन उवाच।
प्रभातायां तु शर्वर्यां गन्तुमैच्छज्जनार्दनः।
हुताग्निः कृतकल्याणः समाप्तवरदक्षिणः॥ १
गाश्च दत्त्वाथ विप्रेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमान्
आस्थानमण्डपं कृष्णः प्रविवेश जगत्पतिः २
आसनं महदास्थाय वृष्णीनाहूय सर्वशः।
बलभद्रं शिनेः पुत्रं हार्दिक्यं शुकसारणौ॥ ३
उग्रसेनं महाबुद्धिमुद्धवं नीतिमत्तरम्।
यस्य बुद्धिं समाश्रित्य जीवन्ते यादवाः सुखम्
नेता च यदुवृष्णीनां स तु धर्मपरः सदा
यस्य बिभ्यति देवाश्च नीतेस्तस्य महात्मनः।
यस्य बुद्धिवशाद्विष्णुः शशास पृथिवीं सदा।
तं च वृष्णिवरं वीरमुद्धवं देवसुप्रभम्॥ ६
अन्यानपि यदून्सर्वानुवाच भगवान्हरिः।
शृण्वन्तु मम वाक्यानि यादवाः सर्व एव हि
शृणु चापि वचो मह्यं पितुरुद्धव मे सखे॥ ७
बाल्यात्प्रभृति यो यत्नो मम दुष्टनिबर्हणे।
प्रत्यक्षं भवता दृष्टं पूतनानिधनं नृप॥ ८
केशी च निहतो बाल्ये मया बालेन यादवाः
गोवर्धनो धृतः शैलो गावश्च परिपालिताः९
अभिषिक्तोऽस्मि शक्रेण देवानामग्रतः स्थितः
कंसोऽपि निधनं नीतो मया चाणूरमुष्टिकौ
उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च कृता द्वारवती मया
अन्ये चापि नृपा राजन्बलिनो निहता मया
योऽपि वीरो जरासन्धो निगृहीतो बलान्मया
भीमेन बलिना राजन्नयने मम यादवाः॥१२

---

वेत्रैः आरूढाः महावृक्षाः यस्यां ताम्॥ ४१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

७४

प्रभातायामिति॥ १॥ देववत्सुप्रभम्॥ ६॥ मह्यं मम पितुः सखे॥ ७॥ भीमेन भीमद्वारा॥ १२॥

शृगालो निहतः संख्ये गोमन्ताद्गच्छता मया ।
योऽपि वीरो दुरात्मासौ दानवो नरको हतः
निष्कण्टकमिमं लोकं कृतवान्राजसत्तमाः ।
किंतु वीरो नृपो जज्ञे सखा भौमस्य यादवाः
पौण्ड्रो वीर्यवतां नेता द्वेष्टा चासौ सदा मम ।
शिष्यो द्रोणस्य राजेन्द्रो बली ब्रह्मास्त्रवित्कृती
शास्त्रज्ञो नीतिमान्साक्षान्नेता सर्वस्य यत्नवान्
योद्धा युद्धप्रियो राजा जामदग्न्य इवापरः १६
एकान्तशत्रुरस्माकं छिद्रान्वेषी सदा मम ।
बाधिष्यते पुरीं योद्धा छिद्रं यदि लभेत सः॥
न ह्यल्पसाध्यो बलवान्पुण्ड्रस्येशो नृपोत्तमाः
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु प्रगृहीतशरासनाः ॥१८
यथा न बाधते राजा पुरीं यदुकुलाश्रयाम् ।
अहं तु यास्ये कैलासं कुतश्चित्कारणान्नृपाः॥
शङ्करं द्रष्टुकामोऽस्मि भूतभावनभावनम् ।
यावदागमनं मह्यं तावद्यत्ता भवन्त्विह ॥ २०
मया विरहितां चेमां यदि जानाति पुण्ड्रकः
आगमिष्यति राजेन्द्रो योत्स्यते च पुरीमिमाम्
इमां निर्यादवां तु शक्नोतीति च मे मतिः ।
यत्ता भवत राजेन्द्राः खड्गैः पाशैः परश्वधैः॥
पाषाणैः कर्षणीयैश्च सन्नद्धा भवत स्वकैः ।
पिधाय च कपाटानि महाद्वाराणि यत्नतः २३
एक एव महाद्वारो गमनागमने सदा ।
मुद्रया सह गच्छन्तु राज्ञो ये गन्तुमीप्सवः ॥
न चामुद्रः प्रवेष्टव्यो द्वारपालस्य पश्यतः ।
यावदागमनं मह्यं तावदेवं भविष्यति ॥ २५
मृगया नात्र कर्तव्या न च क्रीडा बहिः पुरात्
ज्ञातव्याश्च परे स्वे च गमनागमने सदा ॥ २६
एवमादिक्रिया कार्या यावदागमनं मम ।
इत्युक्त्वा यादवान्सर्वान्सात्यकिं पुनराह च

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

## द्वारवतीरक्षणे यादवान् प्रति श्रीकृष्णस्य वचनम् ।

## ७५

श्रीभगवानुवाच ।
सात्यके शृणु मद्वाक्यं यत्तो भव युधांवर
त्वं तु खड्गी गदी भूत्वा चापपाणिस्तनुत्रवान्
तिष्ठ यत्नेन रक्षस्व पुरीं बहुनृपाश्रयाम् ।
न च निद्रा त्वया कार्या रात्रौ यदुवृष प्रभो २
न च व्याख्या त्वया कार्या
शास्त्राणां शास्त्रतत्पर ।
न च वादस्त्वया कार्यो
वादिभिः सह वृष्णिप ॥ ३
त्वं हि योद्धा बलिर्ज्ञाता धनुर्वेदाख्यवेदवित् ।
तथा कुरु यथा वीर नोपहास्या भवेदियम्॥४
सात्यकिरुवाच ।
करिष्यामि वचस्तुभ्यं यथाशक्ति जनार्दन ।
आज्ञा तव जगन्नाथ धार्या यत्नेन मे सदा ॥५
भृत्यवत्प्रचरिष्यामि कामपालस्य माधव ।
यावदागमनं तुभ्यं तावत्स्थास्यामि यत्नतः ॥६
प्रसादस्तव गोविन्द यदि स्यान्मयि माधव
किं नाम मे च दुःसाध्यं शत्रूणां निग्रहे रणे॥७
यदि शक्रं यमं वापि कुबेरमपि पाशिनम् ।
सर्वानेतान्विजेष्यामि किमु पौण्ड्रं नृपोत्तमम्
गच्छ कार्यं कुरुष्वेदं यत्तोऽहं सततं हरे ।
उद्धवं पुनराहेदं कृष्णः पद्मनिभेक्षणः ॥ ९
शृणूद्धव त्वं वाक्यं मे कुर्यास्त्वेतत्प्रयत्नवान्।
रक्ष्या नयेन राजेन्द्र पुरी द्वारवती त्वया १०
यत्तो भव सदा तात कुरु साहाय्यमत्र नः ।
लज्जा मम समुत्पन्ना वदतस्तव साम्प्रतम् ॥ ११

---

भूतभावनभावनं वियदादिकारणस्याव्यक्तस्यापि कारणम् । 'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम' इति अव्यक्तस्यापि साक्षित्वस्मरणात् ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

७५

**सात्यके इति** ॥१॥ कामपालस्य बलरामस्य ॥६॥ पाशिनं वरुणम् ॥८॥

त्वं हि नेता समस्तस्य विद्यापारस्य सर्वतः
को नु शक्ष्यति मेधावी वक्तुं विद्यावतः पुरः
यत्कार्यं तद्भवान्वेत्ति ह्यकार्यं वापि सर्वतः
अतोऽहं विरमे तात वक्तुं संप्रति वृष्णिप ॥१३

उद्धव उवाच

किमिदं तव गोविन्द वर्तते मां प्रति प्रभो
अहो प्रसन्नता मह्यं किंतु प्रीतिरियं तव ॥ १४
जानाम्यहं जगन्नाथ प्रसादस्यैष विस्तरः।
यस्य प्रसन्नो भवति तस्य किं नास्ति केशवः
त्वं हि सर्वस्य जगतः कर्ता हर्ता प्रधानतः।
प्रभवः सर्वकार्याणां वक्ता श्रोता प्रमाणवित्॥
ध्याता ध्यानमयो ध्येय इति ब्रह्मविदो विदुः
जेता देवरिपूणां च गोप्ता नाकसदां भवान्।
त्वन्नाथा वयमेवेति जीवामो निहतद्विषः।
इयं नीतिरहं मन्ये नेता नीतेर्यतो भवान्॥
को नु नाम नयो वेद त्वां विना सांप्रतं वद।
नीतिस्त्वं सर्वकार्याणामिति मे निश्चिता मतिः
दुर्गाढो नयमार्गोऽयमित्याहुस्तद्विदो जनाः।
चतुर्धा प्रोच्यते नीतिः सामदाने जनार्दन ॥
दण्डो भेदो मनुष्याणां विग्रहावग्रहे सदा।
दण्ड्येषु दण्डमिच्छन्ति समान्यं तु नये हरे॥
बलवत्स्वथ दानं तु त्रयाणामप्यगोचरे।
प्रयोक्तव्यो महाभेद इति नीतिमतां मतम्॥२२
तेषु तेष्वथ सर्वेषु प्रमाणं त्वां विदुर्बुधाः।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं त्वयि समर्पितम् ॥ २३

वैशम्पायन उवाच।

इत्युक्त्वा विरराभैव उद्धवो नीतिमत्तरः।
ततः स भगवान्विष्णुरेवमेव नृपोत्तम ॥ २४
कामपालं महाबाहुमुवाच यदुसंसदि।
उग्रसेनं नृपं राजंस्तथा हार्दिक्यमेव च ॥ २५
कामपालं पुनर्विष्णुरिदं प्रोवाच तत्त्ववित्।
न प्रमादस्त्वया कार्यः सर्वदा यत्नवान्भव ॥
स्थिते त्वयि महाबाहो का पीडा जगतो भवेत्
गदी भव सदा त्वार्य न क्रीडा सर्वदा भवेत्२७
रक्ष त्वं सर्वदा यत्नात्पुरीं द्वारवतीं प्रभो।
नोपहास्या यथा स्याम तथा कुरु गदी भव
उत्साहः सर्वदा कार्यो निरुत्साहो न यत्नतः
बाढमित्यब्रवीद्रामः कृष्णं वृष्णिकुलोद्भवम्२९
वृष्णयः सर्व एवैते स्वं स्वं सद्म समाययुः।
गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः कैलासं पर्वतोत्तमम्॥३०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

## श्रीकृष्णस्य बदरिकाश्रमगमनम्।

### ७६

वैशम्पायन उवाच।

ततः संचिन्तयामास गरुडं पक्षिपुङ्गवम्।
आगच्छ त्वरितं तार्क्ष्य इति विष्णुर्जगत्पतिः
ततः स भगवांस्तार्क्ष्यो वेदराशिरिति स्मृतः
बलवान्विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरूद्वह ॥२
यज्ञमूर्तिः पुराणात्मा साममूर्धा च पावनः
ऋग्वेदपक्षवान्पक्षी पिङ्गलो जटिलाकृतिः॥ ३
ताम्रतुण्डः सोमहरः शक्रजेता महाशिराः।
पन्नगारिः पद्मनेत्रः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥ ४

---

किमिदं वाक्यम्॥१४॥हे वेद मन्त्रमूर्ते नीतिः नीतिप्रदर्शकः ॥१९॥निग्रहावग्रहे क्रमेण स्वस्य अन्येन रोधे स्वेन वान्यस्य रोधे सिद्धे सति दण्ड्येषु दुर्बलेषु नयसमतायां सामान्यं सामैव ॥२१॥ बलवत्सु दानं त्रयाणामप्यगोचरे अविषये शत्रौ भेदः प्रयोक्तव्यः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥

७६

ततः समिति ॥ १ ॥

वाहनं देवदेवस्य दानवीगर्भकृन्तनः।
राक्षसासुरसङ्घानां जेता पक्षबलेन यः ५
प्रादुरासीन्महावीर्यः केशवस्याग्रतस्तदा।
जानुभ्यामपतद्भूमौ नमो विष्णो जगत्पते॥ ६
नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन्।
पस्पर्श पाणिना कृष्णः स्वागतं ताक्ष्यपुङ्गवम्
इत्युवाच तदा ताक्ष्यं यास्ये कैलासपर्वतम्।
शूलिनं द्रष्टुमिच्छामि शङ्करं शाश्वतं शिवम् ८
बाढमित्यब्रवीत्ताक्ष्यं आरुह्यैनं जनार्दनः।
तिष्ठध्वमिति होवाच यादवान्पार्श्ववर्तिनः ९
ततो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागुत्तरां हरिः।
रवेण महता ताक्ष्यस्त्रैलोक्यं समकम्पयत् १०
सागरं क्षोभयामास पद्भ्यां पक्षी व्रजंस्तदा।
पक्षेण पर्वतान्सर्वान्वहन्देवं जनार्दनम्॥ ११
ततो देवाः सगन्धर्वा आकाशेऽधिष्ठितास्तदा
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरीश्वरम्॥
जय देव जगन्नाथ जय विष्णो जगत्पते।
जयाजेय नमो देव भूतभावनभावन॥ १३
नमः परमसिंहाय दैत्यदानवनाशन।
जयाजेय हरे देव योगिध्येय परागत॥ १४
नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
आदिकर्तः पुराणात्मन्ब्रह्मयोने सनातन॥ १५
नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने।
भक्तिप्रियाय भक्ताय नमो दानवनाशन॥१६
अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर।
इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्भिरीशानमव्ययम्॥
तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः।
शृण्वन्नेवं जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च
ययौ सार्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः।
यत्र पूर्वं स्वयं विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम्॥ १९
लोकवृद्धिकरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया।
वर्षायुतं तपस्तप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २०
यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।
द्विधाऽकरोत्स्वमात्मानं नरनारायणाख्यया
गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धावति पावनी।
यत्र शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्त्वगम्॥
ब्रह्महत्याविनाशार्थं
तपो वर्षायुतं चरत्।
यत्र सिद्धाश्च सिद्धाः स्यु-
र्ध्यात्वा देवं जनार्दनम्॥ २३
यत्र हत्वा रणे रामो रावणं लोकरावणम्।
एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत॥ २४
देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धिं यान्ति शुचिव्रताः
यत्र नित्यं जगन्नाथः साक्षाद्वसति केशवः २५
यत्र यज्ञाः प्रवर्तन्ते नित्यं मुनिगणैः सह।
यस्याः स्मरणमात्रेण नरः स्वर्गं गमिष्यति २६
स्वर्गसोपानमिच्छन्ति यां पुण्यां मुनिसत्तमाः
शत्रवो मित्रतां यान्ति यत्र नित्यं नृपोत्तम॥
यामाहुः पुण्यशीलानां स्थानमुत्तमधर्मिणाम्।
यत्र विष्णुं समाराध्य देवाः स्वर्गं समाययुः॥
सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः।
विशालां बदरीं विष्णुस्तां द्रष्टुं सकलेश्वरः॥
सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम्॥ ३०
अग्निहोत्राकुले काले पक्षिव्याहारसंकुले।
नीडस्थेषु विहङ्गेषु दुह्यमानासु गोषु च॥ ३१
ऋषिष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिवीरेषु सर्वतः।
समाधिस्थेषु सिद्धेषु चिन्तयत्सु जनार्दनम्॥
अधिश्रितेषु हविषु ज्वाल्यमानेषु चाग्निषु।
हूयमानेषु तत्रैव पावकेषु समंततः॥ ३३
अतिथौ पूज्यमाने च संध्याविष्टे जगन्मये।
स तस्यामथ वेलायां देवैः सह जनार्दनः॥३४
विवेश बदरीं विष्णुर्मुनिजुष्टां तपोमयीम्।
आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरीश्वरः॥३५
गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा।
प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत्सहामरैः॥३६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां षट्सप्ततिमोऽध्यायः॥७६॥

---

दानवीगर्भकृन्तनः यद्दर्शनमात्राद्दानवानां गर्भा नश्यन्तीत्यर्थः॥ ५॥ पक्षेण पक्षवातेन पर्वतान् क्षोभयामासेत्यनुषज्यते॥ ११॥ परागत "सा काष्ठा सा परा गतिः" इति श्रुत्युक्तपरगतिस्वरूप। दैर्घ्यमार्षम्!॥ १४॥ यत्र बदरिकाश्रमे॥ २१॥ एतत् शासनम् एतां शास्राज्ञां शक्रेण कृतां निर्गुणमपि ब्राह्मणं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेदित्येवं इच्छन्पालयितुमिति शेषः॥ २४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

## श्रीकृष्णस्य बदरिकाश्रमे आतिथ्यस्वीकारः ।

### ७७

वैशम्पायन उवाच ।

ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपस्थितम् ।
समाप्य चाग्निहोत्राणि संपूज्यातिथिसत्तमान् ॥ १
मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृतनिश्चयाः ।
जटिना मुण्डिनः केचिच्छिराधमनिसंततताः २
निर्मांसा नीरसाः केचिद्वैताला इव केचन ।
अश्मकुट्टाशनपराः पर्णभक्षास्तथा परे ॥ ३
वेदविद्याव्रतस्नाता निराहारा महातपाः
स्मरन्तः सर्वदा विष्णुं तद्भक्तास्तत्परायणाः॥
आसन्नमुक्तयः केचित्केचिद्ध्यानैकतत्पराः ।
ध्यानेन मनसा विष्णुं दृष्टवन्तस्तपोधनाः ॥ ५
संवत्सराशिनः केचित्केचिज्जलविचारिणः ।
शक्रस्य भयदातारः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ६
वसिष्ठो वामदेवश्च रैभ्यो धूम्रस्तथैव च ।
जाबालिः कश्यपः कण्वो भरद्वाजोऽथ गौतमः
अत्रिरश्वशिरा भद्रः शङ्खः शङ्खनिधिः कुणिः ।
पाराशर्यः पवित्राक्षो याज्ञवल्क्यो महामनाः ॥
कक्षीवानङ्गिराश्चैव मुनिर्दीप्ततपास्तथा ।
असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः ॥
एते चान्ये च मुनयो द्रष्टुमीश्वरमव्ययम् ।
आदायार्घ्यं यथायोगमुटजात्स्वात्समाययुः॥१०
ते च गत्वा हरिं कृष्णं विष्णुमीशं जनार्दनम्
भक्तिनम्रास्तदा देवं प्रणेमुर्भक्तवत्सलम् ॥ ११
नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देवदेवेति केशवम् ।
प्रणतात्मञ्जगन्नाथ नताः स्म शिरसा हरे ॥ १२
कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति च सर्वदा ।
प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम्॥१३
इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च ।
कृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो नो जगत्पतिः१४
किं कुर्मः किं नु नः कृत्यं कश्चिद्दोषः प्रभो हरे
इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहुर्देवस्य पश्यतः ॥ १५
कृष्णोऽपि तद्यथायोगमुपयुज्य सहामरैः ।
कृतं सर्वं मुनिवरा वर्धतां तप उत्तमम् ॥ १६
इति ब्रुवन्पुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता ।
आसनं लम्भयामास रात्रौ देवो जनार्दनः १७
कुशलं पृष्टवान्भूयो मुनीनां भवितात्मनाम् ।
अग्निहोत्रेषु तपसि तथा भृत्येषु सर्वतः ॥ १८
एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा ।
सर्वत्र कुशलं तेऽत्र ब्रूयुः कृष्णस्य सर्वतः॥१९
आतिथ्यं चक्रिरे ते तु नीवारैः फलमूलकैः ।
देवानामथ सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः
आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः २०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७॥

## श्रीकृष्णस्य समाधिः कोलाहलश्च ।

### ७८

वैशम्पायन उवाच ।

ततः स भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः । तत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः ॥ १

७७

**तत इति** । जलविचारिणः जलवासपराः जलमात्राहारा वा ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८

**तत इति** ॥ १ ॥

१ ख. जाजलिः क० । २ ख. ०श्चिद्दोषः प्र० ।

गङ्गायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः ।
स्वयमेव हरिः साक्षात्प्रविवेश तपोवनम् ॥२
प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम्
निषसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यवर्धनः ॥ ३
समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः ।
किमप्येष जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः स्थितः
स्थिते देवगुरौ तत्र समाधौ दीपवद्धरौ ।
तत्र शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत्समंततः ॥ ५
खाद खादत मोदेत यात यात मृगानिमान् ।
प्रेषयेह पुनः सर्वान्प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ॥ ६
एष विष्णुरयं कृष्णो हरिरीश इतोऽच्युतः ।
नमोऽस्तु विष्णो देवेश स्वामिन्माधव केशव
इत्यादिशब्दः सुमहानाविरासीत्तदा निशि ।
ततश्च सुमहानादः सिंहानां मृगविद्विषाम् ८
धावतां च शुनां राजन्मृगाननु विनर्दताम्
मृगाणां भीतियुक्तानामृक्षाणां द्वीपिनां तथा
गजानां नदतां राजन्बृंहितं च ततस्ततः ।
महावातसमुद्भूतक्षुभितस्येव वारिधेः ॥१०
नादस्त्रैलोक्यवित्रासः प्रादुरासीत्तदा निशि ।
श्रुत्वा शब्दं हरिर्देवस्तादृशं तत्र धिष्ठितः ॥११
समाधिक्षोभमासाद्य विश्वस्य च जगत्पतिः ।
ततः संचिन्तयामास कोऽयमेष महास्वनः १२
कस्यायमीदृशः शब्दः स्तुतियुक्तो मम त्विति ।
अहोऽस्मिन्मृगयाशब्दः शुनां संचरतां वने ॥
मृगाणामथ सर्वेषां नादश्च सुमहानयम् ।
व्यामिश्रस्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिर्मम समंततः ॥

इति संचिन्त्य मनसा दिशो विप्रेक्ष्य सर्वतः
तत आस्ते हरिस्तत्र ज्ञातुं तस्य समुद्भवम् ॥
ततो मृगाः समाधावन्यत्र तिष्ठति केशवः ।
तांश्चैवानुचरो राजन्सगणः समपद्यत ॥ १६
अथ वै दीपिका राजञ्छतशोऽथ सहस्रशः
ततस्तमोऽपि व्यनशद्दिवेव समपद्यत ॥ १७
ततोनु भूतसङ्घाश्च समदृश्यन्त तत्र ह ।
पिशाचाश्च महाघोरा नदन्तो बहु विस्वनम्
भक्षयन्तोऽथ पिशितं पिबन्तो रुधिरं बहु ।
प्रादुरासन्महाघोराः पिशाचा विकृताननाः॥
हन्यमाना हता राजन्पतन्तः पतिता मृगाः ।
इतश्चेतश्च धावन्तो बाणैर्विद्धा मृगा द्विपाः ॥
ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत ।
यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र याता निरन्तरम्॥२१
अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम ।
पिशाच्यो विकृताकाराः करालारोमहर्षणाः॥
पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्र तिष्ठति केशवः ।
श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरत्येवं ततस्ततः ॥ २३
ततः स भगवान्विष्णुः सर्वमालोक्य विष्ठितः॥
विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः ॥

कस्यैष विस्तृतो नादः
कस्य वायं जनोऽपतत् ।
को नु मां स्तौति भक्त्या वै
भविष्ये प्रीतिमानहम् ॥ २५

कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते मयि सुदुर्लभा ।
इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्धरिः॥२६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

## पिशाचागमनम् ।

### ७९

वैशम्पायन उवाच ।

तेषामनु महाघोरौ पिशाचौ विकृताननौ । प्रांशू पिङ्गलरोमाणौ दीर्घजिह्वौ महाहनू ॥ १

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नीलकण्ठकृते भारतभावदीपे टीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८

७९

तेषामन्विति ।

१ ख. ०हान्मृगाननुविनर्दताम् । मृगाणां भी० । २ ख. ०जन्श्वग० । ३ घ. ०क्य वेष्टि० ।

लम्बकेशौ विरूपाक्षौ हीहीं हा हेति वादिनौ
खादन्तौ मांसपिटकं पिबन्तौ रुधिरं बहु ॥ २
अन्त्रवेष्टितसर्वाङ्गौ दीर्घौ कृशकृतोदरौ ।
लम्बमानमहाप्रान्तशूलप्रोतशिरोधरौ ॥ ३
कर्षन्तौ शवयूथानि बाहुभ्यां तत्र तत्र ह ।
हसन्तौ विविधं हासं स्वजातिसदृशं नृप ॥४
वदन्तौ बहुरूपाणि वचांसि प्राकृतानि च ।
कम्पयन्तौ महावृक्षानूरुपादप्रघट्टनैः ॥ ५
सृक्किणी लेलिहन्तौ च दन्तान्कटकटायिनौ ।
अस्थिस्नायुसमाकीर्णौ धमनीरज्जुसंततौ ॥ ६
वदन्तौ कृष्ण कृष्णेति माधवेति च संततम् ।
कदा नु द्रक्ष्यते विष्णुः स इदानीं क्व तिष्ठति ७
स्वामिनः कुत्र वसतिः कुतो द्रष्टुं यतामहे ।
अत्र वा कुत्र देवेशः कुतो नु स्थास्यते हरिः ॥
कुतः पद्मपलाशाक्षः साक्षादिन्द्रानुजो हरिः
यमाहुः पुण्डरीकाक्षं ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥९
तमजं पुरुषं विष्णुं द्रष्टुमभ्युद्यता वयम् ।
अन्तकाले जगन्नाथं प्रविवेश जगत्त्रयम् ॥१०
तमजं विश्वकर्तारं कुतो द्रक्ष्याम सांप्रतम् ।
यस्य विस्तार एवैष लोकः प्राणिनिवासिनः॥
तं द्रष्टुं देवमीशानं यतामः सांप्रतं हरिम् ।
दशा घोरतमा लोके विद्विष्टा सर्वजन्तुभिः ॥
पैशाचीयं समुत्पन्ना कथं नौ प्राविशद्बलात् ।
नरमांसास्थिकलुषा सर्वभीतिप्रदायिनी ॥१३
अहो नौ दुष्कृतं कर्म प्राक्तने कर्मसंचये ।
अत्रैव महती प्रीतिर्वर्तते सर्वदा तथा ॥ १४
यावन्नौ दुष्कृतं कर्म तावत्स्थास्यति तादृशी ।
दशा सा सर्वविद्विष्टा प्राणिपीडनकारिणी ॥
सर्वथा दुष्कृतं कर्म बहुभिर्जन्मसंचयैः ।
तथाहि तत्फलं घोरमद्यापि न निवर्तते ॥ १६
यतावः स्म प्राणिनो हन्तुं श्वगणैः सह सांप्रतम्
तथाहि प्राणिनो लोके बाल्यमादौ समास्थिताः
अज्ञानावृतचित्ताश्च कृत्याकृत्यं न जानते ।
तथा यौवनिनो भ्रान्ता विषयैर्बहुलीकृताः ॥
यतन्ते श्रेयसे नैव ततो विषयसंस्थिताः ।
विषयाविष्टचित्ता हि मनुष्या न विजानते॥१९
तथा च वृद्धभावे तु व्याधिभिर्बहुभिर्वृताः
ज्वरादिभिर्महाघोरैर्नानादुःखविधायिभिः ॥
यतन्ते न हि वै श्रेयो विनष्टेन्द्रियगोचराः ।
ततो मृता गर्भवासे वसन्ति सततं नराः ॥२१
विण्मूत्रकलिले घोरे दुःखैर्बहुभिराचिताः ।
च्यवन्ते तु ततो घोराद्गर्भात्संसारमण्डले ॥२२
परस्परं विहिंसन्तः कुर्वन्तः कर्मसंचयम् ।
महत्येवं सदा घोरे संसारे दुःखसंकुले ॥ २३
पापानि बहुरूपाणि कुर्वतेऽज्ञानतस्तदा ।
संसारस्यैष महिमा विस्तृतः सर्वजन्तुषु ॥ २४
अच्छेद्यः शस्त्रसंपातैरुपायैर्बहुभिः सदा ।
एतस्माच्च निवर्तन्ते मर्त्याः प्राकृतबुद्धयः ॥ २५
इमं हत्वा मनुष्येन्द्रमिदमस्माद्धराम्यहम् ।
चोरयित्वा धनमिदं हरिष्याम्याददाम्यहम्२६
निर्भर्त्स्यैनमिमं शान्तं हरिष्यामि धनं बली ।
इत्यादिव्याकुला मूर्खा यतन्ते प्राणिपीडनम्॥
अस्यैव दुःखमूलस्य संसारस्य सदा हरिः ।
भेषजं सर्वथा देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २८
आदिदेवः पुराणात्मा आत्मा ब्रह्मविदां सदा
ते वयं सर्वयत्नेन द्रक्ष्यामः सर्वथा हरिम् ।
इत्थं पिशाचौ भाषन्तौ प्रादुरास्तां हरेः पुरः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

---

मांसस्य पिटकं मञ्जूषामिव परस्य शरीरमित्यर्थः ॥२॥ लम्बमानं च महाप्रान्तं च तत् शूलं च तत्र प्रोतानि शिरोधराणि याभ्यां तौ । नृमुण्डमालासंयुक्तशूलधारिणावित्यर्थः ॥ ३ ॥ श्रेयः श्रेयसे । विनष्टेन्द्रियगोचराः इतस्ततो भ्रममाणानामिन्द्रियाणां वशगा इत्यर्थः ॥ २१ ॥ प्राकृतबुद्धयः देहात्मवादिनः ॥२५॥ पीडनं कर्तुम् ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

## घण्टाकर्णकृता विष्णुस्तवप्रार्थना तस्य समाधिलाभश्च ।

### ८०

वैशम्पायन उवाच ।

ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचौ मांसभक्षकौ
ददर्शाथ महाघोरौ दीपिकाधारिणौ हरिः ॥१
विलोकयांचक्रतुस्तौ पिशाचौ देवकीसुतम् ।
स्थितं सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम् ॥
तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाचौ केशवस्य ह
ततस्तावूचतुर्विष्णुमन्तरीकृत्य केशवम् ॥ ३
को भवान्कस्य वा मर्त्यः कुतश्चागम्यते त्वया ।
किमर्थमिह संप्राप्तो वने घोरे मृगाकुले ॥४
निर्मनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते ।
श्वापदैः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले ॥५
सुकुमारोऽनवद्याङ्गः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ।
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः पद्माभः श्रीपतिः स्वयम्६
अस्मत्प्रीतिकरः साक्षात्प्राप्तो विष्णुरिवापरः
देवो वा यदि वा यक्षो गन्धर्वः किन्नरोऽपि वा
इन्द्रो वा धनदो वापि यमोऽथ वरुणोऽपि वा
एकाकी विपिने घोरे ध्यानार्पितमना इव ॥ ८
ब्रूहि मर्त्य यथातत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद ।
एवं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुरुक्रमः॥ ९
क्षत्रियोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः
यदुवंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठितः ॥ १०
लोकानामथ पाताऽस्मि शास्ता दुष्टस्य सर्वदा
कैलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम्॥
इत्येवं मम वृत्तान्तः कथ्यतां कौ युवामिति ।
युवामिह समायातौ किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम् ॥
एषा हि महती पुण्या नानाविप्रनिषेविता ।
बदरीयं समाख्याता न क्षुद्रैराश्रिता क्वचित्॥
तपस्विभिस्तपोयुक्तैर्जुष्टा सिद्धनिषेविता ।
श्वगणा नात्र दृश्यन्ते पिशाचा मांसभोजनाः
न हन्तव्या मृगाश्चात्र मृगया नात्र वर्तते ॥
न तु क्षुद्रैः प्रवेष्टव्या न कृतघ्नैर्न नास्तिकैः॥१५
अहमस्य तु देशस्य रक्षिता नात्र संशयः।
व्यतिक्रमो यदि भवेत्तस्य शास्ताऽस्मि यत्नतः
कौ भवन्तौ क नु युवां कस्येयं महती चमूः ।
नातः परं प्रवेष्टव्यमृषयस्त्वत्र संस्थिताः ॥ १७
विघ्नस्तत्र प्रवर्तेत तपःसु च तपस्विनाम् ।
इहैव स्थीयतां तावद्वक्तव्यं च ततः सुखम्
अन्यथाहं निषेद्धा स्यां बलाद्वाक्यैस्तथैव च ।

वैशम्पायन उवाच ।

एवं पृष्टौ पिशाचौ तु वक्तुमेवोपचक्रतुः १९
तयोरेको महाघोरः पिशाचो दीर्घबाहुकः ।
उवाच वचनं तत्र यथा हृदि समर्पितम् ॥ २०

पिशाच उवाच ।

श्रूयतामभिधास्यामि समाहितमना भव ।
नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं कृष्णं जगत्पतिम् ।
आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
वक्ष्यामि सकलं यद्वत्तया श्रृणु यदीच्छसि २२
घण्टाकर्णोऽस्मि नाम्नाहं पिशाचो घोरदर्शनः
मांसादो विकृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः
धनदस्यानुगन्ताहं साक्षाद्रुद्रसखस्य च ।
ममायमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्यहम् ॥
मृगयेयं सुमहती विष्णोः पूजार्थमित्युत ।
ममेयं वर्तते सेना श्वगणोऽपि ममैव तु ॥ २५
आगतोऽहं महाशैलात्कैलासाद्भूतसेवितात्
अहं पिशाचवेषेण संविष्टः पापकर्मकृत् ॥ २६
सततं दूषयन्विष्णुं घण्टामाबध्य कर्णयोः ।
मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन्
अहं कैलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम् ॥
आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम् २८
ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः ।
ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ २९
मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ।
मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥ ३०

---

८०

तत इति । दीपिकाधारिणौ तदानीं रात्रेः सत्त्वात् ॥१॥ अन्तरीकृत्य केशवमप्यकेशवीकृत्य ॥३॥ हे मर्त्येति संबोधनम् । अन्तरीकृतत्वादेव ॥९॥ अनुगन्ता अनुचरः २४

तस्माद्गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम् ।
मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायणाश्रमे ३१
इत्युक्तो देवदेवेन शूलिना ज्ञातवानहम् ।
तमेव परमं मत्वा गोविन्दं गरुडध्वजम् ३२
तस्मात्प्रार्थयमानः सन्मुक्तिदेशममुं गतः ।
अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव ३३
पुरी द्वारवती नाम पश्चिमस्योदधेस्तटे ।
यदुवृष्णिसमाकीर्णा सागरोर्मिसमाकुलाम् ॥
अध्यास्ते स हरिर्विष्णुस्तां पुरीं पुरुषोत्तमः ।
द्रष्टुं लोकहितार्थाय वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ३५
निर्गतः सांप्रतं मर्त्यं वयमेतैः सहानुगैः ।
विष्णुः सर्वेश्वरः साक्षाद्द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै
लोकानां प्रभवः पाता कर्ता हर्ता जगत्पतिः
आदिः स हि समस्तस्य प्रभवः कारणं हरिः

कर्ता समस्तस्य हरिः पुरातनः
प्रभुः प्रभूणामपि यः सदात्मकः ।
तमादिदेवं वरदं वरेण्यं
द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ३८
यस्य प्रसादाज्जगदेवमासी-
त्सप्राणिगन्धर्वमहोरगौघम् ।
देवं जगद्योनिमजं जनार्दनं
द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ३९
यस्योदयाद्विश्वमिदं प्रभूतं
लयं च तस्मिन्समुपैति कल्पे ।
तस्यैव साक्षाद्वशवर्ति विश्वं
द्रक्ष्याम देवं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ४०
स्रष्टा च योऽसौ सकलस्य देव
पाता च हर्ता च हरिः स एव ।
द्रक्ष्याम नित्यं भुवनेश्वरं हरिं
पुराणमाद्यं प्रभविष्णुमव्ययम्॥ ४१
अजस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता
भुवश्च कर्ता हरिरेक एव ।
तं योगिनो योगविशुद्धबुद्धिं
लभेम तेनैव मतिः समाकुला ॥ ४२

निगीर्य विश्वं सकलं जगत्पतिः
शेते शिशुत्वं समवाप्य साक्षात् ।
वटस्य पत्रे जगतां निवासः
पादौ च विक्षिप्य करौ विधुन्वन् ॥
यस्योदरे देवमुनिः पुरातनो
ददर्श लोकानखिलान्स मायया ४३
प्रविश्य विश्वं सकलं यथाव-
द्वहिर्यथा भूतमभूदिदं महत् ॥ ४४
निगीर्य विश्वं जगदादिकाले
शेते महात्मा जलधेर्जलौघे ।
देव्या श्रिया चामरलोलहस्तया
निषेव्यमाणः पुरुषोत्तमस्तदा ॥ ४५
नाभेश्च यस्याविरभूत्सपत्रं
पद्मं महत्काञ्चनसप्रभं प्रभोः ।
जन्मास्पदं लोकगुरोर्यदासी-
द्विस्तारि पद्मं जगदादिसृष्टौ ॥ ४६
दधार यो भूतपतिर्महान्महीं
दंष्ट्राग्रसंस्थापितरूढमूलाम् ।
नदन्महामेघ इवादिकाले
कुर्वन्वराहो मुनिगीतमूर्तिः ॥ ४७
हरिः पुराणः पुरुषोत्तमः प्रभुः
कर्ता समस्तस्य समस्तसाक्षी ।
यज्ञात्मको यज्ञपतिर्जगत्पति-
र्द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४८
केचिद्बहुत्वेन वदन्ति देव-
मेकात्मना केचिदिमं पुराणम् ।
वेदान्तसंस्थापितसत्त्वयुक्तं
द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४९
अनेकमेके बहुधा वदन्ति
श्रुतिस्मृतिन्यायनिविष्टचित्ताः ।
आहुर्यमात्मानमजं पुराविदो
द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ५०

---

तेनैव दूषितेन विष्णुना हेतुभूतेन तस्य द्वेषादेव मे मतिः समाकुला जातेत्यर्थः ॥ ४२ ॥ देवमुनिर्मार्कण्डेयः ॥४४॥ केचित् याज्ञिकाः बहुत्वेन इन्द्रादिरूपेण एकात्मना ऐक्येन उपासकाः । वयं तु प्रत्यगभेदेन द्रष्टुमिच्छाम इत्यर्थः ॥४९॥

४१ झ. ०दशाद्वि० ।

यं प्राहुरीड्यं वरदं वरेण्य-
मेकान्ततत्त्वं मुनयः पुरातनाः ।
यं सर्वगं देवमजं जनार्दनं
द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ५१
यस्मिन्विश्वमिदं प्रोतमादिकाले जगत्पिता ।
तं द्रष्टुमभिसंवृत्ताः किं नु वक्ष्याम सांप्रतम्
गच्छामो वयमन्यत्र गच्छ त्वं काममन्यतः ।
नियमोऽप्यस्ति नो मर्त्य यथेष्टं गच्छ सांप्रतम्
रात्रिमध्यमनुप्राप्तं नात्र कार्या विचारणा ।
इत्युक्त्वा घोररूपोसौ पिशाचो विकृताननः
तस्मिन्नेव समे देशे पीत्वा च रुधिरं बहु ।
भक्षयित्वा यथाकामं मांसराशिं विचक्षणः
अपः संस्पृश्य तत्रैव पार्श्वे संस्थाप्य साधनम्
अन्त्रपाशं महाघोरं संस्थाप्य विपुलं महत् ५६
आसनं कुशसंयुक्तं कृत्वा चाभ्युक्ष्य वारिणा
उत्सार्य श्वगणान्सर्वान्यत्नेन महता तदा ५७
सुखासनं समास्थाय समाधौ यतते श्वपः ।
एकचित्तस्तदा भूत्वा नमस्कृत्य च केशवम् ।
इमं मन्त्रं पठन्घोरः पिशाचो भक्तवत्सलम् ॥
नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे ।
नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ॥ ५९
ओं नमो नारायणाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
मम भूयान्मनःशुद्धिः कीर्तनात्तव केशव ॥
जन्मेदमीदृशं घोरं मा भून्मम दुरासदम् ।
देवदूतो भविष्यामि स्मरणात्तव गोपते ॥ ६१
तव चक्रप्रहारेण कायो नश्यतु मामकः ।
मम भूयो भवो मा भूदेषा मे प्रार्थना विभो ॥
अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता सर्वस्य सर्वदा ।
यत्र यत्र भवेज्जन्म यत्र तत्र भवान्हृदि ॥ ६३
वर्ततां मम देवेश प्रार्थनैषा ममापरा ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं भवत्वेवं सदा मम ॥६४
निर्विघ्ना प्रार्थना देव नमस्तेऽस्तु सदा मम
यदा मे मरणं भूयात्तदा मा भूत्स्मृतिभ्रमः ६५
दिने दिने क्षणं चित्तं त्वयि संस्थं भवत्विति ।
एवं प्रेरय मां देव माभूत्ते चित्तमीदृशम् ॥ ६६
नृशंसोऽयं पिशाचोऽयं दयास्मिन्का भवेदिति
एवं चिन्तय मां देव भूयो मह्यमिति प्रभो ॥
परपीडा न मत्तोऽस्तु नमस्ते भगवन्प्रभो ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु मा भूवन्सांप्रतं हि मे
अन्तकाले ममाप्येवं प्रसादात्तव केशव ।
पृथिवी यातु मे घ्राणं रसनां यातु मे पयः ॥६९
सूर्यश्च यातु मे चक्षुः स्पर्शो यातु च मारुतः ।
श्रोत्रमाकाशमप्येतु मनः प्राणं च गच्छतु ॥७०
जलं मां रक्षतां नित्यं पृथिवी रक्षतां हरे ।
सूर्यो मां रक्षतां विष्णो नमस्ते सूर्यतेजसे ॥७१
वायुर्मां रक्षतां दुःखादाकाशं च जनार्दन ।
न मनः सर्वगं देव रक्षतां विषयान्तरे ॥ ७२
मनो विपर्यये घोरे पुरुषान्हन्ति नित्यशः ।
पापेषु योजयेत्पुंसः परपीडात्मकेषु च ॥ ७३
मनस्तद्रक्षतां देव भूयो भूयो जनार्दन ।
माभून्मनसि कालुष्यं मनो मे निर्मलं भवेत् ॥
कलुषं तस्य यच्चित्तं नरके पातयत्यमुम् ।
बाह्यानि निर्मलान्येवमिन्द्रियाणि भवन्त्युत
न तानि कार्यवन्तीह मनश्चेत्कलुषं भवेत् ।
नाङ्गानि मुण्डिनामेध्यं गृहीत्वा यो व्यवस्थितः
बहिः प्रक्षालनं कुर्वन्किं भवेत्तस्य केशव ।
व्यर्थो हि केवलं तस्य प्रग्रहो बाह्यगोचरः ॥७७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चित्तं रक्ष जनार्दन ।
बलवानिन्द्रियग्रामो वारयैनं जनार्दन ॥ ७८
परीवादाज्जगन्नाथ वाचं रक्षदुरुद्ग्रहाम् ।
परद्रव्यान्मनो रक्ष परदाराज्जनार्दन ।
सर्वत्र मे दया भूयात्प्रसादात्तव केशव ॥ ७९
त्वय्येव भक्तिरचला भूयाद्भूतेषु मे दया ।
बहुनात्र किमुक्तेन शृणुष्वेदं वचो मम ॥ ८०
सुखे दुःखे च रागे च भोजने गमने तथा ।
जाग्रत्स्वप्नेषु सर्वत्र त्वय्येव रमतां मनः ॥८१
मामकं देवदेवेश नमस्तेऽस्तु जनार्दन ।
इति ब्रुवन्घोरतमो जात्या हीनो न चित्ततः
पिशाचो भगवद्भक्तः समाधिं समपद्यत ।
दृढं बद्ध्वात्मनः कायमान्त्रपाशेन मांसपः ८३
निश्चलेनैव मनसा सुखमास्ते स्म संयतः ।
ध्यायन्हरिं जगद्योनिं विष्णुं पीताम्बरं शिवम्

इन्द्रियार्थेषु शब्दादिषु प्रसक्तानीति शेषः ॥६८॥ सर्वगं परमात्मगतं मम मनः कर्तृ, । विषयान्तरे विषयः शब्दादिः अन्तरः भेदः ते उभे कर्मणी न रक्षतां विषयप्रवणं भेदबुद्धिहरं च मनो मा भूदित्यर्थः ॥७२॥ अन्यथा दोष-माह—**मन इति** । विपर्यये विषयादिप्रावण्ये ॥ ७३ ॥ नाङ्गानीति सार्धः ॥ ७६ ॥ प्रग्रहः शुद्धयर्थमाग्रहः ॥७७॥ मांसपः मांसभक्षकः । पिबतिरत्र भक्षणार्थः ॥ ८३ ॥

१ °तः । यदि ते रोचते मर्त्य य° ।

मुकुन्दमादिपुरुषमेकाकारमनामयम् ।
नित्यं शुद्धं ज्ञानगम्यं कारणं सर्वदेहिनाम् ८५
नासिकाग्रं समालोक्य पठन्ब्रह्म सनातनम् ।
निर्वातस्थो यथा दीपः प्रोच्चरन्प्रणतः सदा ॥
प्रणवं वाचकं मत्वा वाच्यं ब्रह्मेति निश्चितः ।
एकाग्रं सततं कृत्वा चित्तं विष्णौ समर्पितम् ॥
विकल्परहितं चित्तं हृदि मध्ये न्यवेशयत् ।
पुण्डरीके शुभदले समाविश्य जगत्पतिम् ॥८८
आस्ते सुखं महायोगी पिशिताशस्तदा महान्
त्रिधामानं जपंस्तत्र स्मरन्विष्णुं सनातनम्८९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णचित्तसमाधौ अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

## घण्टाकर्णस्य विष्णुसाक्षात्कारलाभः ।

## ८१

वैशम्पायन उवाच ।

ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचं दृष्टवांस्तदा
चिन्तयन्तं स्वमात्मानं शुद्धिबुद्धिसमन्वितम् ॥
आत्मन्यवस्थितं साक्षात्पठन्तं प्रणवं सकृत् ।
प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकान्ते नियतं हरिः ॥२
अचिन्तयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये ।
ध्यात्वा तु सुचिरं विष्णुः कारणं पुण्यकर्मणः
धनदस्योपदेशेन पठन्सुबहुशः क्षितौ ।
वासुदेवेति कृष्णेति माधवेति च मां सदा ॥४
जनार्दन हरे विष्णो भूतभावनभावन ।
नराकार जगन्नाथ नारायण परायण ॥ ५
इतिमां नामभिर्नित्यं पठत्येव दिवानिशम् ।
स्वपञ्जाग्रंस्तथा तिष्ठन्भुञ्जन्गच्छंस्तथा वदन् ॥
भक्षयन्मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा ।
बाधमानं च सुचिरं हत्वा चापि मृगान्बहून् ॥
हनने भोजने चैव जाग्रत्स्वप्ने तथैव च ।
सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्ताहमिति मन्यते ॥ ८
एतस्य कर्मणः पाक एष घोरस्य कर्मणः ।
निश्चित्यैवं जगन्नाथः प्रीतस्तस्य बभूव ह ॥ ९
अदर्शयत्स्वमात्मानमनन्यस्य जगत्पतिः ।
शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप ॥
स च घोरः पिशाचोपि ददर्शात्मनि केशवम्
पीतकौशेयवसनं पद्माक्षं श्यामलं हरिम् ॥११
शङ्खिनं चक्रिणं विष्णुं स्रग्विणं गदिनं विभुम्
किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साच्छादितोरसम्
नीलमेघनिभं कान्तं गरुडस्थं प्रभञ्जनम् ।
चतुर्भुजं शुभगिरं निश्चलं सर्वगं शिवम् ॥ १३
अनादिनिधनं नित्यं मायाविनममायिनम् ।
सत्ययुक्तं सदा शुद्धं बुद्धिगम्यं सदाऽमलम् ॥
मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा ।
अनुन्मील्यैव नयने कृतार्थोऽस्मीत्यमन्यत ॥
अथ दृष्टो हरिर्विष्णुः साक्षात्सर्वत्रगः शुभः ।
प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान्हरिम् ॥१६
सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे
ग्रन्थयो मम निर्भिन्ना वश्यान्येवेन्द्रियाणि मे
प्रायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ ।
दूषणा च निरस्ता मे प्रसन्नोऽहं तथाऽभवम् ॥
एतेभ्योऽपि पिशाचेभ्यो निर्मुक्तः सांप्रतं तथा
योऽसौ ममानुजः साक्षात्स च भक्तस्तथा हरौ
कालेन चैव निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्
इत्येवं चिन्तयित्वा स आन्त्रपाशं विभिद्य च ।
क्रमेण प्राणानुन्मुच्य विलोक्य च दिशस्तथा ।
शरीरं सुगमं कृत्वा प्राविशत्स सुखेन ह ॥२१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भाविष्यपर्वणि टीकायाम् अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

तत इति ॥ १ ॥ आत्मनि हृदयपङ्कजे ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैला० पिशाचस्य विष्णुसाक्षात्कारे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## घण्टाकर्णकृतो विष्णुस्तवः।

८२

वैशम्पायन उवाच
पिशिताशो जगन्नाथं ददर्शाथ जगद्गुरुम्।
समाधौ च यथादृष्टं भूमौ चापि तथा हरिम् ॥
अयं विष्णुरयं विष्णुरित्यूचे पिशिताशनः।
समाधौ च यथा दृष्टः सोऽयमत्रापि दृश्यते।
इत्युक्त्वा च पुनर्ब्रूते नृत्यन्निव हसन्निव ॥ २
अयं स चक्री शरशार्ङ्गधन्वा
गदी रथी सध्वजतूणपाणिः।
सहस्रमूर्धा सकलामरेशो
जगत्प्रसूतिर्जगतां निवासः ॥ ३
विष्णुर्जिष्णुर्जगन्नाथः पुराणः पुरुषोत्तमः ॥
विश्वात्मा विश्वकर्ता यः सोऽयमेष सनातनः
अस्यैव देवस्य हरेः स्तनान्तरे
विराजते कौस्तुभरत्नदीपः।
यस्य प्रसादाज्जगदेतदादौ
विराजते चन्द्रमसेव रात्रिः ॥ ५
योऽसौ पृथ्वीं दधाराशु दंष्ट्रया जलसंचयात्।
योऽयमेव हरिः साक्षाद्वाराहं वपुरास्थितः
बद्ध्वा तथा दानवमुग्रपौरुषं
ददौ च शक्राय ततोऽनुराज्यम्।
बलिं बलादेष हरिः स वामनः
स्तुतश्च भक्त्या मुनिभिः पुरातनैः ॥७
दंष्ट्राकरालः सुमहान्हत्वा यो दानवान्रणे।
निःशोकमखिलं लोकं चकारासौ जनार्दनः ॥
आदौ दधारैकभुजेन मन्दरं
निर्जित्य सर्वानसुरान्महार्णवे।
ददौ च शक्राय सुधामयं महा-
न्स एष साक्षादिह मामवस्थितः॥ ९
यः शेते जलधौ नागे देव्या लक्ष्म्या सुखावहः
हत्वा तौ दानवौ घोरौ मधुकैटभसंज्ञितौ ॥१०
यमाहुराद्यं विबुधा जगत्पतिं
सर्वस्य धातारमजं जनित्रम्।
अणोरणीयांसमतिप्रमाणं
स्थूलात्स्थविष्ठं हरिमेव विष्णुम्॥ ११
यत्र स्थितमिदं सर्वं प्राप्ते लोकस्य नाशने।
आदौ यस्मात्समुत्पन्नं सोऽयं विष्णुरितिस्थितः
यस्येच्छया सर्वमिदं प्रवृत्तं
प्रवर्तते चापि जनार्दनस्य।
अयं स विष्णुः पुरुषोत्तमः शिवः
प्रवर्तते मामिह यादवेश्वरः॥ १३
भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्य इति श्रुतः।
शिष्यत्वं समवाप्यैव मृगव्याधस्य यः स्थितः
जघान वीर्याद्बलिनं महारणे
कुठारशस्त्रेण गिरीशशिष्यः।
सहस्रबाहुं कृतवीर्यसंभवं
हयैर्गजैश्चैव रथैश्च निर्गतम्॥ १५
कुरुक्षेत्रं समासाद्य यश्चकार पितृक्रियाम्।
निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः॥ १६
रघोरथ कुले जातो रामो नाम जनार्दनः।
सीतया च श्रिया युक्तो लक्ष्मणानुचरः कृती ॥
कृत्वा च सेतुं जलधौ जनार्दनो
हत्वा च रक्षःपतिमाशुगैः शरैः
दत्त्वा च राज्यं स विभीषणाय
दशाश्वमेधैरयजच्च योऽसौ ॥ १८

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

८२

पिशिताशेति १ जनित्रं जनयितारम्॥१०॥ पितृक्रियां पितृतर्पणं रुधिरेणेति शेषः ॥ १६ ॥

वसुदेवकुले जातो वासुदेवेति शब्दितः।
गोकुले क्रीडते योऽसौ संकर्षणसहायवान् ॥
उत्तानशायी शिशुरूपधारी
पीत्वा स्तनं पूतनिकाप्रदत्तम्।
व्यसुं चकाराशु जनार्दनस्तदा
दनोः सुतां तामवसत्सुखं हरिः २०
पयःपानं तथा कुर्वन्भक्षयन्दधिपिण्डकम्।
दाम्ना बद्धोदरो विष्णुर्मात्रा रुषितया दृढम्
ततश्च दाम्ना सुदृढेन बद्धो
जघान योऽसौ यमलार्जुनौ च
क्रीडन्हरिर्गोकुलवासवासी
गोपीभिरास्वाद्य मुखं स्तनं च ॥ २२
वृन्दावने वसन्विष्णुर्गोपैर्गोकुलवासिभिः
तत्र हत्वा हयं राजान्वरराजांशुमानिव ॥ २३
यः क्रीडते नागफणौ जनार्दनो
निषेव्यमाणः सह गोपदारकैः।
महाह्रदे नागपतिं जगत्पति-
र्ममर्द वीर्यातिशयं प्रदर्शयन् ॥ २४
यो धेनुकं तालवने तत्फलैः सममच्छिनत्।
हत्वा दानवमुग्रं तं गोपान्विस्मापयत्यसौ ॥
दधार यो गोधरमुग्रपौरुषा-
न्महामतिर्भयमागमे सति।
विडम्बयञ्छक्रबलं प्रमोदयन्
गोपांश्च गोपीश्च स गोकुलं हरिः ॥
गोपीनां स्तनमध्ये तु क्रीडते काममीश्वरः।
योऽसौ पिबंस्तदधरं मायामानुषदेहवान् ॥२७
गोपीभिरास्वाद्य मुखं विविक्ते
शेते स्म रात्रौ सुखमेव केशवः।
स्तनान्तरेष्वेव तदा च तासां
कामीव कान्ताधरपल्लवं पिबन् ॥ २८
अक्रूरेण समाहूतस्तेन गच्छान्हि यामुने।
जले यो दर्शितस्तेन नागलोके स एव हि ॥
ततश्च गच्छन्बलवाञ्जनार्दनो
हत्वा तमुग्रं रजकं बलात्पथि।
हृत्वा च वस्त्राणि यथेष्टमीश्वरो
ययौ सरामो मथुरां पुरीं हरिः ॥ ३०

लब्ध्वा च दामानि बहूनि कामदो
दत्वा वरं माल्यकृते महान्तम्।
लब्ध्वानुलेपं सुरभिं च यादवः
कुब्जां चकाराशु महार्हरूपाम् ॥ ३१
योऽसौ चापं समादाय मध्ये छित्वा महद्धनुः
सिंहनादं महांश्चक्रे कल्पान्ते जलदो यथा ॥ ३२
हत्वा गजं घोरमुदग्ररूपं
विषाणमादाय ततोऽनु केशवः।
ननर्त रङ्गे बहुरूपमीश्वरः
कंसस्य दत्वा भयमुग्रवीर्यः ॥ ३३
योऽसौ हत्वा महामल्लं चाणूरं निहतद्विषम्।
यादवेभ्यो ददौ प्रीतिं कंसस्यैव तु पश्यतः ॥
जघान कंसं रिपुपक्षघातिनं
पितृद्विषं यादवनामधेयम्।
संस्थाप्य राज्ये हरिरुग्रसेनं
सांदीपनं काश्यमुपागतो यः ॥ ३५
विद्यामवाप्य सकलां दत्वा पुत्रं महामुनेः।
साग्रजोऽथ जगामाशु मथुरां यादवीं पुरीम् ॥
हत्वा निशुम्भं नरकं महामतिः
कृत्वा स घोरं कदनं जनार्दनः।
ररक्ष विप्रान्मुनिवीरसंघा-
न्देवांश्च सर्वाञ्जगतो जगत्पतिः॥ ३७
स एष भगवान्विष्णुरद्य दृष्टो जनार्दनः।
कृतकृत्योऽस्मि संजातः सायुज्यं प्राप्तवानहम्
येन दृष्टो हरिः साक्षात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता
सोऽयमेष हरिः साक्षात्प्रत्यक्षमिह वर्तते ॥
नूनं जन्मान्तरे पूर्वं धर्मः संचित एव मे।
यस्य पाकः समुत्पन्नो येनासौ दृश्यते मया ॥
सर्वथा पुण्यवानास्मि नष्टसंसारबन्धनः।
किमस्मै दीयते वस्तु किं न वक्ष्यामि सांप्रतम्
करिष्ये किमहं विष्णो वदस्वाद्य यथेप्सितम् ॥
वैशम्पायन उवाच।
इत्युक्त्वा विस्तरं नादं ननर्द बहुशस्तदा।
जहास विकृतं भूयो ननर्त पिशिताशनः ॥४२
नमो नमो हरे कृष्ण यादवेश्वर केशव ।।
प्रत्यक्षं च हरेस्तत्र ननर्त विविधं नृप ॥ ४३

फणावाक्रम्येति शेषः। "फणा द्वयोः" इत्यमरः। पुंसि द्विवचनमिदम् ॥ २४ ॥ गोधरं शैलम् ॥२६॥ स्तनमध्ये हृदये ॥ २७ ॥ दामानि पुष्पमालाः, माल्यकृते मालाकाराय ॥ ३१ ॥ गजं कुवलयापीडं, विषाणं दन्तम् ॥ ३३ ॥ यादवनामधेयं न तु यादवं द्रुमिलजत्वात् ॥ ३५ ॥ पुत्रं नष्टमिति शेषः ॥ ३६ ॥ केशवेत्यन्तं पठन् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णस्तुतौ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

## घण्टाकर्णस्य मुक्तिः ।

### ८३

वैशम्पायन उवाच ।
विहस्य विकृतं भूयः प्रनृत्य च यथाबलम् ।
ब्राह्मणस्य हतस्याथ शवमादाय सत्वरः ॥ १
द्विधाकृत्य महाघोरं पिशितं केशशाड्वलम् ।
ततः खण्डं समादाय अद्भिरभ्युक्ष्य यत्नतः
विधाय पात्रे सुशुभे नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
इदं प्रोवाच देवेशं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥३
गृहाण मे जगन्नाथ भक्ष्यं योग्यं तव प्रभो ।
भवादृशैर्जगन्नाथ ग्राह्यं सर्वात्मना हरे ॥ ४
भक्तिनम्रा वयं विष्णो नात्र कार्या विचारणा
दत्तं यद्भक्तिनम्रेण ग्राह्यं तत्स्वामिना हरे ॥ ५
नवं सुसंस्कृतं भक्ष्यं ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् ।
अस्माकं पिशिताशानां शास्त्रे नियतमेव हि ॥
तस्माद्गृहाण भगवन्यदि दोषो न विद्यते ।
इत्युक्त्वा विकृतं भूयो विहस्य स तु कामतः ॥
दातुमैच्छत्तदा खण्डमस्पृश्यं तु शवस्य ह ।
ततः प्रीतोऽभवत्तस्मै मनसाऽपूजयच्च तम् ॥
अहोऽस्य स्नेहकारुण्यं मयि सर्वत्र वर्तते ।
इति संचिन्त्य मनसा प्रोवाच यदुपुङ्गवः ॥ ९
अलमेतेन सर्वत्र पिशाच पिशिताशन ।
अस्पृश्यं मादृशैरेतद् ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् ॥ १०
ब्राह्मणः सर्वथा पूज्यो जन्तुभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः ।
पिशाचा घोरकर्माणो यतन्ते ब्रह्महिंसने ॥ ११
न हन्तव्याः सदा विप्रास्तद्धिंसा नरकावहा
तस्मादस्पृश्यमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा ॥
भक्त्या प्रीतोऽस्मि भद्रं ते मनो निर्मलता मया
मनःशुद्धिं यदा यत्तं ततः प्रीतोऽस्मि मांसप ॥

अस्मत्संकीर्तनाच्छश्वच्छुद्धं हि करणं तव ।
अतीव मनसा प्रीत इत्युक्त्वा भगवान्हरिः ॥
पस्पर्शाङ्गं तदा विष्णुः पिशाचस्याथ सर्वतः ।
करेण मृदुना देवः पापान्निर्मोचयद्धरिः ॥१५
ततस्तस्याभवद्रूपं कामरूपसमप्रभम् ।
दीर्घकुञ्चितकेशाढ्यो दीर्घबाहुः सुलोचनः ॥
समाङ्गुलिः समनखः समवक्त्रः समुन्नसः ।
पद्माक्षः पद्मवर्णाभः पद्मकेशरभूषणः ॥ १७
केयूरी चाङ्गदी चैव कौशेयवसनस्तदा ।
ज्ञानवान्सत्त्वसंपन्नः साक्षादिन्द्र इवापरः ॥
गन्धर्व इव गायंस्तु सिद्धः सिद्ध इव स्वयम् ।
साक्षात्स्पृष्टं तदा विष्णोः करेण मृदुपूर्वकम् ॥
न नूनं तादृशं रूपमासीत्कालान्तरेष्वपि ।
अद्यापि नैव मुनयो लभन्ते तादृशं वपुः ॥ २०
कृत्वा सुबहुशो घोरं तपः परमदारुणम् ।
यच्च लब्धं तदा तेन पिशाचेन नृपोत्तम ॥२१
को नु नाम जगन्नाथमाश्रितः सीदते नृप ।
स हि सर्वत्र कल्याणो यो हि नित्यं जनार्दनम्
ध्यायन्पठञ्जपन्वापि तस्य किं नास्ति भूपते ।
ततः प्रोवाच भगवान्स्थितं काममिवापरम्
अक्षयः स्वर्गवासस्ते यावदिन्द्रो वसिष्यति ।
तावत्स्वर्गी भवानस्तु शासनान्मम नान्यतः ॥
नष्टे शक्रे ततः स्वर्गात्सायुज्यं मम गच्छतु ।
योऽयं भ्राता तव स्वर्गी यावदिन्द्रो भवेत्तदा ॥
वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ।
दाताऽस्मि सर्वं सर्वत्र नात्र कार्या विचारणा

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

८३

**गृहाणेति** ॥ १ ॥ यथेयं "यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः॥" इति श्रुतेरित्याशयः॥४॥**करणम्** अन्तःकरणम् ॥ १४ ॥ पद्माक्षः सनिमेषदृष्टिः । पिशाचानां प्राक् तदभावात् ॥ १७ ॥

घण्टाकर्ण उवाच
यश्चेमं संगमं देव संस्मरन्नियतात्मवान् ।
भक्तिस्तस्याचला देव त्वयि भूयाज्जनार्दन ॥
मनःशुद्धिर्भवेत्तस्य मा भूत्कलुषता हरे ।
कालुष्यं मनसस्तस्य मा भूदेष वरो मम ॥२८
एवमस्त्विति देवेशः स्वर्गं गच्छेति केशवः ।
इन्द्रातिथिर्भवानस्तु त्वां प्रतीक्ष्य हरिः स्थितः
इत्युक्त्वा भगवान्कृष्ण उत्थाप्य ब्राह्मणं तदा
तेन स्तुतो जगन्नाथः पूजयित्वा च तं द्विजम् ॥
ततो विसृज्य गोविंदस्तस्माद्देशादुपागमत् ।
यत्र ते मुनयः सिद्धा अग्निहोत्रसमन्विताः ॥
स च स्वर्गी ततः स्वर्गमाज्ञया केशवस्य ह ।
तस्मात्पठ सदा राजन्मनःशुद्धिं यदीच्छसि
मनश्च शुद्धं भवति पठतस्ते जगत्पते ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि घण्टाकर्णमुक्तिप्रदाने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

## श्रीकृष्णतपोवर्णनम् ।

### ८४

वैशम्पायन उवाच ।
ततः स भगवान्विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः।
कथयामास यद्वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः ॥१
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः ।
अहोऽस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनादिति ॥
अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः
ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति
आरुह्य गरुडं विष्णुर्ययौ कैलासमुत्तमम् ।
भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान्
यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यतव्रताः।
यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं सदा ॥ ५
यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत् ।
यत्र भृङ्गी रिटिर्देवमुपास्ते शंकरं शिवम् ॥६
गाणपत्यमवाप्याथ हरपार्श्वचरः सदा ।
यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगैः सह ॥ ७
क्रीडन्ति वन्यरतयः परस्परहिते रताः ।
यत्र नद्यः समुत्पन्ना गङ्गाद्याः सागरंगमाः ॥
यत्र विश्वेश्वरः शम्भुरच्छिनद्ब्रह्मणः शिरः ।
यत्रोत्पन्ना महावेत्रा भूतानां दण्डतां ययुः ॥९
उमया यत्र सहितः शंकरो नीललोहितः ।
ऋषिभिः प्रार्थितः पूर्वं ददौ यत्र गिरिः सुताम्
शंकराय जगद्धात्रे शिवाय जगतीपते ।
यत्र लेभे हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिर्दिनैः ॥ ११
पुष्करैः शतपत्रैश्च नेत्रेण च जगत्पतिम् ।
गुहां यत्र समाश्रित्य क्रीडन्ते सिद्धकिन्नराः ॥
प्रियाभिः सह मोदन्ते पिबन्ते मधु चोत्तमम् ।
यमुद्धृत्य भुजैः सर्वैः पौलस्त्यो विरराम ह ॥
तमारुह्य महाशैलं देवकीनन्दनो हरिः ।
मानसस्योत्तरं तीरं जगाम यदुनन्दनः ॥ १५
तपश्चर्तुं किल हरिर्विष्णुः सर्वेश्वरः शिवः ।
जटी चीरी जगन्नाथो मानुषं वपुराश्रितः ॥
तपसे धृतचित्तस्तु शुचौ भूमावुपाविशत् ।
अवरुह्य ततो यानाद्गरुडाद्वेदसंमितात् ॥ १६
द्वादशाब्दं तपश्चर्तुं मनो दध्रे ततो हरिः ।
फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे जगत्पतिः ॥१७
शाकभक्षो कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः ।
किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानवः ॥ १८
तं न विघ्नो यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिन्तना ।
तपस्यति तदा विष्णौ पर्वते भूतसेविते ॥ १९
गरुडः कश्यपसुत इन्धनानि समाचिनोत् ।
होमार्थं वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम् ॥ २०
चक्रराजोऽथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः ।
दिक्षु सर्वासु सर्वत्र ररक्ष जलदस्तदा ॥ २१
खड्ग आहृत्य यत्नेन कुशान्सुबहुशस्तदा ।
गदा कौमोदकी चैव परिचर्यां चकार ह॥ २२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

धनुःप्रवरमत्युग्रं शार्ङ्गं दानवभीषणम् ।
स्थितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं भृत्यवत्स्वयम् ॥
जुहोति भगवान्विष्णुरेधोभिर्बहुभिः सदा ।
आज्यादिभिस्तदा हव्यैरग्निं संपूज्य माधवः ॥
सप्तार्चिषः समाप्तिं च समस्तव्यस्ततः कृती
एकस्मिन्नेकदा मासे भुञ्जानो नियतात्मवान् ॥
द्वितीये त्वथ पर्याये भुञ्जन्नेकेन केशवः ।
एकस्मिन्वत्सरे भुञ्जंस्तथैवैकेन केनचित् ॥२६
समाप्य तत्तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः ।
द्वादशाब्दे तथा पूर्णे ऊनमासे जगत्पतिः ॥
जुह्वन्नग्निं समास्थाय पठन्मन्त्रं जनार्दनः ।
आरण्यकं पठन्विष्णुः साक्षात्सर्वेश्वरो हरिः
आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन्प्रणवमुत्तमम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्णतपोवर्णने चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

## श्रीकृष्णसमीपे इन्द्रादिदेवानामागमनम् ।

## ८५

वैशम्पायन उवाच ।

तत इन्द्रः स्वयं तत्र आरुह्य गजमुत्तमम् ।
द्रष्टुं सर्वेश्वरं विष्णुं तपस्यन्तं समाययौ ॥ १
ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम् ।
किंकरैश्च स्वयं साक्षादाययौ नगमुत्तमम् ॥२
प्रचेता हंसमारुह्य वारुणैश्च समन्वितः ।
श्वेतच्छत्रसमायुक्तः श्वेतव्यजनवीजितः ॥ ३
ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा ।
अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्तथा
रुद्राश्चैव तथा राजन्द्रष्टुं केशवमाययुः ।
सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिंनराः ॥ ५
सर्वाश्चाप्सरसो राजन्नृत्यगीतविशारदाः
ततो देवगणाः सर्वे कैलासं समपद्यत ॥ ६
पर्वतो नारदश्चैव तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः ।
विस्मयस्थितलोलाक्षाः सर्वदेवगणास्तथा ॥७
आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति ।
योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुःस्वयम्
को न्वत्र समयो भूयादिति ते मेनिरे गणाः
ततः समाप्ते सकले जगत्पते-
र्व्रते समूले सकलेश्वरः शिवः ।
द्रष्टुं हरिं लोकहितैषिणं प्रभुं
ययौ भवान्या सह भूतसङ्घैः ॥ ९
सार्धं कुबेरेण सगुह्यकेन
सख्या प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः ।
स्वयं जटी भूतपिशाचसंवृतः
शरी च खड्गी शशिखण्डशेखरः १०
करेण बिभ्रत्सह दर्भकुण्डिकां
करेण साक्षादपरेण दीपिकाम् ।
अन्येन बिभ्रन्महतीं स डिण्डिमां
शूलं च बिभ्रन्नपरेण बाहुना ॥ ११
गुणान्स रुद्राक्षकृतान्समुद्वह-
ञ्जटाभिरापिंगलताम्रमूर्तिः ।
विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो
वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः ॥ १२
उमास्तनद्वन्द्वसमार्पितानन-
स्तया समाश्लिष्य निपीडिताधरः ।
गङ्गाम्बुविक्षालितचन्द्रशेखर-
स्तां चापि वीक्षन्बहुशस्तदा शिवः ॥

---

८४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

तत इति ॥ १ ॥

भस्माङ्गरागैरनुलेपिताननो
महोरगैर्बद्धजटः सनातनः ।
शिरःकपालैः परिशोभितस्तदा
द्रष्टुं हरिं केशवमभ्ययाच्छिवः ॥ १४
यमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं
पुरातनं सांख्यनिबद्धदृष्टयः।
यस्यापि देवस्य गुणान्समग्रां-
स्तत्त्वांश्चतुर्विंशतिमाहुरेके ॥ १५
यमाहुरेकं पुरुषं पुरातनं
कणादनामानमजं महेश्वरम् ।
दक्षस्य यज्ञं विनिहत्य यो वै
विनाश्य देवानसुरान्सनातनः ॥ १६
यं विदुर्भूततत्त्वज्ञं भूतेशं भूतभावनम् ।
वामदेवं विरूपाक्षमाहुस्तत्त्वविदो जनाः १७
महादेवं सहस्राक्षं कालमूर्तिं चतुर्भुजम् ।
रुद्रं रोदननामानमाहुर्विश्वेश्वरं शिवम् ॥ १८
अप्रमेयमनाधारमाहुर्माहेश्वरा जनाः ।
नग्नं नग्नपरीतं तु नागिनं त्वग्निवर्चसम् ॥ १९
आहुर्विश्वेश्वरं शान्तं शिवमादिं सनातनम् ।
तस्य मूर्तिरिमाः सर्वा धराद्याः सकला नृप ॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं सूर्यश्च तथा शशी ।
अग्निश्च यजमानश्च प्रकृतिश्चैवमष्टधा ॥ २१
महादेवो महायोगी गिरीशो नीललोहितः ।
आदिकर्ता महाभर्ता शूलपाणिरुमापतिः ।
द्रष्टुं विश्वेश्वरं विष्णुं भूतसंघैः समाययौ ॥२२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवगमनकथने पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

## श्रीकृष्णसमीपे शिवागमनम् ।

### ८६

वैशम्पायन उवाच ।

तस्याग्रे समपद्यन्त भूतसंघाः सहस्रशः ।
घण्टाकर्णो विरूपाक्षः कुण्डधारः कुमुद्वहः ॥
दीर्घरोमा दीर्घभुजो दीर्घबाहुर्निरञ्जनः ।
उरुनेत्रः शतमुखः शतग्रीवः शतोदरः ॥ २
कुण्डोदरो महाग्रीवः स्थूलजिह्वो द्विबाहुकः ।
पार्श्ववक्त्रः सिंहमुख उन्नतांसो महाहनुः ॥ ३
त्रिबाहुः पञ्चबाहुश्च व्याघ्रवक्त्रः सिताननः ।
एते चान्ये च बहवो दीर्घास्या दीर्घलोचनाः॥
नृत्यन्तः प्रहसन्तश्च स्फोटयन्तः परस्परम् ।
तथाऽन्ये घोररूपाश्च तथाऽन्ये विकृताननाः॥
प्रेतभक्षाः प्रेतवाहा मांसशोणितभोजनाः।
शवानि सुबहून्याशु भक्षयन्तस्ततस्ततः ॥ ६
पिबन्तो रुधिरं घोरं खण्डयन्तः शवान्बहून् ।
कराला वितता दीर्घा धमनिस्नायुसंतताः ॥७
नानाविधाः सुवीराश्च शूलाग्रप्रोतमानुषाः ।
शिलामालावृताः केचिदान्त्रपाशावपाशिताः॥
डिण्डिमैरट्टहासैश्च नादयन्तो वसुन्धराम् ।
कपालिनो भैरवाश्च जटिला मुण्डिनस्तथा ॥
एवं बहुविधा घोराः पिशाचा विकृताननाः ।
तथाऽन्ये मुनिवीराश्च ध्यायन्तः परमेश्वरम् ॥
पठन्तो वेदवाक्यानि साङ्गानि विविधानि च ।
कुण्डिकास्थकराः केचित्केचित्कुशविचारिणः
कौपीनवसनाः केचित्केचित्कार्पाससंवृताः ।
स्तुवन्तः शंकरं भक्त्या स्तोत्रैर्माहेश्वरैस्तथा ॥
एकत्र ते मुनिगणा अपरत्र गणास्तथा ।
अन्यत्र सिद्धगन्धर्वाः प्रियाभिः सह संगताः॥
नृत्यन्ति नृत्यकुशला गायन्ति रमं च कन्यकाः
विद्याधरास्तथाऽन्यत्र स्तुवन्तः शंकरं शिवम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां टीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

तस्याग्र इति ॥ १ ॥

ननृतुस्तस्य पुरतो गच्छन्तोऽप्सरसां गणाः ।
एवमेतैर्महाघोरैः पिशाचैर्भूतकिंनरैः॥ १५
मुनिभिश्चैव प्रमथैः समं शर्वः समाययौ ।
यत्र विश्वेश्वरो विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥
यत्र ते लोकपालाश्च तिष्ठन्ति स्म दिदृक्षया ।
उमया लोकभाविन्या गङ्गया चन्द्रशेखरः ॥
स सर्वलोकप्रभवो भवो विभु-
र्जटी च साक्षात्प्रणवात्मकः कृती ।
द्रष्टुं हरिं विष्णुमुदारविक्रमो
ययौ यथेष्टं पिशिताशनैर्वृतः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां महादेवागमने षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

## श्रीविष्णुकृता शिवस्तुतिः ।

## ८७

वैशम्पायन उवाच ।

एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह ।
आगत्य भगवान्रुद्रः शंकरो वृषवाहनः ॥ १
ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्तं तप उत्तमम् ।
जुह्वानमग्निं विधिवद्द्रव्यैर्मेध्यैर्जगत्पतिम् ॥ २
गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम् ।
चक्रेणानीतकुसुमं खड्गानीतकुशं तथा ॥ ३
गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम् ॥
इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह ॥ ४
अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम्
अवरुह्य वृषाच्छर्वो भगवान्भूतभावनः ॥ ५
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष उमापतिः ।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा
मुनयो विप्रवर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे ।
जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन ॥ ७
जय विष्णो हृषीकेश नारायण परायण ।
जय रुद्र पुराणात्मञ्जय देव हरेश्वर ॥ ८
आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन ।
जय कौस्तुभदीप्ताङ्ग जय भस्मविराजित ॥ ९
जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन ।
जय मौक्तिकदीप्ताङ्ग जय नागविभूषण॥ १०
इति ते मुनयः सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम् ।
तत उत्थाय भगवान्दृष्ट्वा देवमवस्थितम् ॥
वृषध्वजं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितम् ।
ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे ।
नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥ १३
नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गदिने हर ।
नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे ॥ ॥ १४
अमूर्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने ।
नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे ॥
नमस्तुष्टाय तुण्डाय नमस्तुटितुटाय च ।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः
नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय च
नमोऽघोराय घोराय घोरघोरप्रियाय च॥१७
नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च ।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७

**एवमिति** । शितिकण्ठाय शितिर्विषमेव कृष्णवर्णत्वात् कण्ठे यस्य तस्मै । अत एव नीलकण्ठाय । शोचिषे दीप्तिमते ॥१३॥ कूपाय कूपवासिने ॥ १५ ॥ तुण्डाय मुखाय सर्वभक्षकायेत्यर्थः । तुष्टाय तुष्टिमते तुटितुटाय हिंसाय ॥ १६ ॥ हिप्राय हिनोति प्रापयति चेति हिप्रः । रेचकः पूरकश्च तदुभयरूपाय ॥ १७ ॥ अघंटाय घंटाय घण्टावते घटीघटाय घट्यतां स्रष्टॄणामपि स्रष्टे ॥ १८ ॥

नमो विरूपरूपाय पुराय पुरहारिणे ।
नम आद्याय बीजाय शुचयेऽष्टस्वरूपिणे ॥१९
नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे ।
नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥
नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्तये ।
हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे ॥ २१
भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने ।
नमोऽभ्रमूर्तये देव जगन्मूर्तिधराय च ॥ २२
नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः ।
नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः ॥ २३
करालाय च मुण्डाय विकृताय कपर्दिने ।
अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन ॥ २४
नमोऽस्तु हरिकेशाय पिंगलाय नमो नमः ।
नमस्तेऽभीषुहस्ताय भीरुभीरुहराय च ॥ २५
हराय भीतिरूपाय घोराणां भीतिदायिने ।
नमो दक्षमखघ्नाय भगनेत्रापहारिणे ॥ २६
उमापते नमस्तुभ्यं कैलासनिलयाय च ।
आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे ॥ २७
नमः कपालहस्ताय नमोऽजमथनाय च ।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च ॥
वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर ।
नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कृशाय च ॥ २९
नमस्ते शक्तियुक्ताय नगपाशप्रियाय च
विरूपाय सुरूपाय मद्यपानप्रियाय च ॥ ३०
श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च
खरप्रियाय खर्वाय खराय खररूपिणे ॥ ३१
भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च ।
विरूपाय सुरूपाय महाघोराय ते नमः ॥ ३२
घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषणभूषिणे ।
तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च ॥ ३३
नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूपप्रियाय च ।
भूतावास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमो नमः ॥
नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक ।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥ ३५
का नु वाक्स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रभुः क्रुयात् ।
कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर ॥
क्षमस्व भगवन्देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर ।
सर्वात्मन्सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥ ३७
रक्ष देव जगन्नाथ लोकान्सर्वात्मना हर ।
त्राहि भक्तान्सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां विष्णुकृतेश्वरस्तुतौ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## श्रीशिवकृता विष्णुस्तुतिः ।

### ८८

वैशम्पायन उवाच ।
ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः
करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह ॥ १
प्रोवाच भगवान्रुद्रः केशवं गरुडध्वजम् ।
शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २

पुराय क्षेत्ररूपाय । अष्टौ पृथिव्यादीनि स्वरूपाणि यस्य तस्मै अष्टस्वरूपिणे ॥ १९ ॥ हरिकेशाय हरयो रश्मयः इन्द्रियाणि वा केशा इव स्वरूपान्तर्गता बाहेर्भूताश्च यस्येति हरिकेशः । यं परमेश्वरस्य सितकृष्णकेशौ रामकृष्णावत्युक्तः कृष्णावतारः केशो यस्यावतारिणो महेश्वरस्येति वा हरिकेशस्तस्मै । अभीषुहस्ताय अर्जुनसारथये । भीरुभीरुश्चासौ हरश्च तस्मै भीरुभीरुहराय अतिभीतायातिसंहर्त्रे इत्यर्थः ॥ २५ ॥ अजमथनाय ब्रह्मशिरोहर्त्रे ॥ २८ ॥ भद्रेति पाठेऽतिमद्यमेव भद्रम् ॥ ३० ॥ खराय कर्कशाय ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

तत इति ॥ १ ॥

१ घ. च, कुशा° । २ ख. मद्रपा° ।

किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन ।
तपश्चर्या किमर्थं ते प्रार्थना तव का विभो ॥ ३
स्वयं विष्णुर्भवान्नित्यस्तपस्त्वं तपसां हरे ।
पुत्रार्थं यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ॥ ४
पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते
शृणु तत्रापि भगवन्कारण कारणात्मक ॥ ५
तपश्चर्तुं प्रवृत्ताऽहं कुतश्चित्कारणाद्धरे ।
वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा ॥६
भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाऽभवत् ।
पित्रा नियुक्ता देवेश उमैषा वरवर्णिनी ॥ ७
भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रैषयत्तदा ।
मधुना सह संयुक्तो मारो मामागतस्तदा ॥ ८
लक्ष्यं मामकरोत्तत्र बाणस्य प्रेषितस्य ह ।
एषा मां सेवते तत्र दानात्पुष्पादिनां हरे ॥ ९
ततः क्रुद्धोऽहमभवं दृष्ट्वा मारं तथाविधम् ।
क्रुद्धयतो मम देवेश नेत्रादग्निः पपात ह ॥
सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात्कृतवान्हरे ।
अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम्
ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति वर्तत ।
ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तत्र जनार्दन ॥
नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते ।
ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः ॥ १३
स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा
इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव ॥
मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः
अञ्जलिं संपुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः १५
उमया सार्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत ।
हरे कुर्वति तत्रैवमञ्जलिं कुरुसत्तम ॥ १६
मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सहकिन्नराः ।
अञ्जलिं चक्रिरे विष्णोर्देवदेवेश्वरे हरौ ॥ १७

महेश्वर उवाच ।

यत्तत्कारणमाहुस्तत्सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम्
ततो महान्समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥
त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम् ।
सत्त्वं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दनः ॥
तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् ।
तद्रूपेण भवान्विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥
तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् ।
स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः ॥
अहंकारात्प्रभो देव कारणानि महान्ति च ।
तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवन्त्युत २२
तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥
चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च ।
मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥ २४
कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन ।
त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥
स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे ।
निवेशयसि देवेश याग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥
यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान् ।
यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥
यदा त्वं तमसाऽऽक्रुष्टस्तदा संहरसे जगत् ।
त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने ॥ २८
वर्तसे त्रिविधां भूतिमादाय नियतात्मवान् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥
प्राणिनामुपभोगार्थमन्तः स्थित्वा जगद्गुरो ।
तस्मात्सर्वत्र भूतेषु वर्तते सर्वभोगवान् ॥ ३०
ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो
संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च
एताः प्रकृतयो देव भिन्नाः सर्वत्र ते हरे ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्
सहस्रधारः साहस्री सहस्रात्मा दिवस्पतिः
भूमिं सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपांससागराम् ।
अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
त्वमेवेदं जगत्सर्वं यद्भूतं यच्च भविष्यति ।
त्वत्तो विराट् प्रादुरभूत्तस्माट् चैव जनार्दन
तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः ।
प्रादुरासीत्पुराणात्मन्षट्कर्मनिरतः सदा ॥
राजन्यस्तु तथा बाह्वोरासीत्संरक्षणे रतः ।
ऊर्वोर्वैश्यस्तथा विष्णोः पादाच्छूद्र उदाहृतः
एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन ।
मनसस्तव देवेश चन्द्रमाः समपद्यत ॥ ३८
सुखकृत्सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः ।
अक्ष्णोः सूर्यः समुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः
यस्य भासा जगत्सर्वं भासते भानुमानसौ ।
मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥४०
नाभेरभूदन्तरिक्षं तव देव जनार्दन ।
द्यौरासीत्तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते ॥४१
पद्भ्यां भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते।
एवं सृष्ट्वा जगत्सर्वं व्याप्य सर्वं व्यवस्थितः

व्याप्य सर्वानिमाँल्लोकान्स्थितः सर्वत्र केशव
ततश्च विष्णुनामाऽसि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात्
नारा आपः समाख्यातास्तासामयनमादितः ।
यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायणशब्दितः ॥
हरसि प्राणिनो देव ततो हरिरिति स्मृतः
शंकरोऽसि सदा देव ततः शंकरतां गतः ॥
बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च तस्माद्ब्रह्मेति शब्दितः ।
मधुरिन्द्रियनामेति ततो मधुनिषूदनः ॥ ४६
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान्
हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव ॥
क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।
आवां तवाङ्गसंभूतौ तस्मात्केशवनामवान् ॥
मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान्
तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः
गौरेषा तु यतो वाणी तां च वेद यतो भवान् ।
गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥
त्रिरित्येव त्रयो वेदाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः ।
क्रमते तांस्तथा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः ॥
अणुर्वामननामाऽसि यतस्त्वं वामनाख्यया ।
मननान्मुनिरेवासि यमनाद्यातिरुच्यसे ॥ ५२
तपश्चरसि यस्मात्त्वं तपस्वीति च शब्दितः ।
वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ।
ईशस्त्वं सर्वभूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे ।
प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री छन्दसां प्रभो ॥
अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः ।
रुद्राणामहमेवासि वसूनां पावको भवान् ॥
अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा लोकगुरुर्भवान् ।
मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ॥
दानवानां भवान्दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः
सर्पाणामेव सर्वेषां भवान्वासुकिसंज्ञितः ॥
गुह्यकानां च सर्वेषां भवान्धनद एव च ।
वरुणो यादसां राजा गङ्गा त्रिपथभाग्भवान् ॥
आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान् ।
त्वत्तः समभवद्विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥५९
अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन ।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ ६०
नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥
त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्तु मम गोपते ।
यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥
त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः ।
न तदस्ति विना देव यत्ते विरहितं हरे । ६३
यदासीद्वर्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते ।
सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया न हि ॥
स्तुवन्ति देवाः सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो ।
ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥
किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन ।
नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ॥
नमस्करोमि सर्वात्मन्नमस्तेऽस्तु सदा हरे ।
नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ॥ ६७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतौ अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

---

## महादेवेन कृष्णस्वरूपवर्णनम् ।

### ८९

वैशम्पायन उवाच ।
इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः
एवं जानीत हे विप्रा ये भक्ता द्रष्टुमागताः १
एतदेव परं वस्तु नैतस्मात्परमस्ति वः ।
एतदेव विजानीध्वमेतद्वः परमं तपः ॥ २

---

धातोः "विष्लृ व्याप्तौ" इत्यस्य व्याप्त्यर्थस्य दर्शनात् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि शिवकृतविष्णुस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

इत्युक्त्वेति ॥ १ ॥ एतदित्यङ्गुल्या कृष्णं दर्शयति । तपः तपःफलम् ॥ २ ॥

एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः।
एतद्वः परमं श्रेय एतद्वः परमं धनम् ॥ ३
एतद्वो जन्मनः कृत्यमेतद्वस्तपसः फलम्।
एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः ॥ ४
एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः।
एष पुण्यप्रदः साक्षादेतद्वः कर्मणां फलम् ॥ ५
एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः।
एष त्रयीगतिर्विप्राः प्रार्थ्यो ब्रह्मविदां सदा ६
एतदेव प्रशंसन्ति सांख्ययोगसमाश्रिताः ।
एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः ७
एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा ।
हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः
नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणात्परः
ओमित्येवं सदा विप्रा पठत ध्यात केशवम् ९
ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः।
एवं ध्यातो हरिः साक्षात्प्रसन्नो वो भविष्यति
भवनाशमयं देवः करिष्यति दृढं हरिः।
सदा ध्यात हरिं विप्रा यदीच्छा प्राप्तुमच्युतम्
एष संसारविभवं विनाशयति वो गुरुः।
स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणम् १२
मनःसंयमनं विप्राः कुरुध्वं यत्नतः सदा।
शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुः प्रसीदति तपोधनाः
ध्यात्वा मां सर्वयत्नेन
ततो जानीत केशवम्।
उपास्योऽहं सदा विप्रा
उपास्येऽस्मिन्हरौ स्मृतः ॥ १४
उपायोऽयं मया प्रोक्तो नात्र संदेह इत्यपि।
अथ मायी सदा विप्रा यतध्वमघनाशने ॥ १५
यथा वो बुद्धिरखिला शुद्धा भवति यत्नतः।
तथा कुरुत विप्रेन्द्रा यथा देवः प्रसीदति १६

वैशम्पायन उवाच।

एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशीलिनः।
यथावदुपगृह्णाना निरसन्संशयं नृप १७
एवमेवेति तं विप्राः
प्राहुः प्राञ्जलयो हरम्।
छिन्नो नः संशयः सर्वो
गृहीतोऽर्थः स तादृशः ॥ १८
एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम्।
संगमाद्युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह १९
यथा वदसि देवेश तथा नः श्रेयसे परम्।
यथाऽऽह भगवान्रुद्रो यतामः सततं हरौ।
इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम् २०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां ऋष्युपदेशे नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

## पुनरपि शिवकृता विष्णुस्तुतिः।

## ९०

वैशम्पायन उवाच ।

ततः स भगवान्रुद्रः सर्वान्विस्मापयन्निव।
स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम्
अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा

महेश्वर उवाच।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय श्रीमते।
यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत २
नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः।
यः शीतयति शीतांशुर्लोकान्सर्वानिमान्विभुः

---

सततमानसैः आवीच्छिन्नाचित्तवृत्तिभिः ॥ ३ ॥ फलम् ऐकाग्र्यम् ॥ ४ ॥ त्रयीगतिः कर्मकाण्डप्राप्यः ॥ ६ ॥ संसारस्य विभवः नानारूपेण भवनं यस्याः सकाशात् सा मूलाविद्या तां त्रिशरीरिणं ब्रह्मादित्रयदेहम् ॥ १२ ॥ **ध्यात्वेति**। स्वस्य सगुणब्रह्मभावं जानीतेति केशवस्य निर्गुणब्रह्मभावनं च सूचयति। उपास्यः चिन्तनीयः। उपास्य उपगत्यं प्राप्यः ॥ १४ ॥ निरसन् निरस्तवन्तः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

**ततः स इति** ॥ १ ॥

नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ।
यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः
नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे ।
यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत्सदा ५
दधार वेदान्सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ।
सर्वान्संहरते यस्तु संहारे विश्वहक्सदा ॥ ६
क्रोधात्माऽसि विरूपोऽसि
तुभ्यं रुद्रात्मने नमः ।
सृष्टौ स्रष्टा समस्तानां
प्राणिनां प्राणदायिने ॥ ७
अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः ।
आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥८
नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः ।
पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे ९
दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः ।
अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे ॥ १०
नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः ।
तेजसा भास्करो यस्तु घृणी जन्तुहितः सदा
तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे ।
वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः ॥
नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मन हरे ।
आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रानिवेशनः
नमस्ते भगवन्विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः ।
यो दधार जगत्सर्वं मायामानुषदेहवान् १४
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने ।
नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने १५
अचिन्त्याय सुचिन्त्याय
तस्मै चिन्त्यात्मने नमः ।
हराय हरिरूपाय
ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने ॥१६
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥ १७
नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च ।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥
विश्वचक्रे नमो नित्यं भूतावास नमो नमः ।
इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे ॥१९

नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे ।
अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः २०
सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः ।
नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥
[नमो वषट्कृते तुभ्यं स्वाहास्वधास्वरूपिणे]
नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ।
नमः स्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥ २२
नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च ।
वेदाय वेदरूपाय शास्त्रिणे शास्त्ररूपिणे ॥ २३
गदिने खड्गिने तुभ्यं शंखिने चक्रिणे नमः ।
शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः २४
बुद्धिप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च ।
हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरो ॥२५
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः ।
नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर ॥ २६
नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे
नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते २७
नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः ।
नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकाञ्जनार्दन ॥
इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान् ।
इदं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम् २९
शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति ।
य चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम् ॥
तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः ।
श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा
अवश्यं मनसा ध्यात्वा केशवं भक्तवत्सलम् ।
श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः
इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः ३३
नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमाययुः ।
तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम् ।
विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ३४
लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं मुदा
जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम
आरुह्य भगवान्विष्णुर्गरुडं पक्षिपुङ्गवम् ।
शङ्खी चक्री गदी खड्गी शार्ङ्गी तूणी तनुत्रवान्

घृणः घृणया रश्मयस्तद्वान् सूर्यः । घुणिरिति पाठः स्वच्छः ॥ ११ ॥ ब्रह्मब्रह्मात्मने वेदयज्ञस्वरूपाय ॥ १७ ॥
कृष्णाय नामतः कृष्णाय वर्णतः ॥ २८ ॥

१ ख. °र्णो तलम्बवा° ।

यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु।
सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेविताम्
तत्र गत्वा यथायोगं विनम्य हरिरीश्वरः।
अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने ३८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्णप्रत्यागमने नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

## पौण्ड्रकवृत्तान्तारम्भः।

## ९१

वैशम्पायन उवाच।
एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरोत्तमः।
बलवान्सत्त्वसंपन्नो योद्धा विपुलविक्रमः १
वृष्णिशत्रुस्तदा राजा कृष्णद्वेषी बलात्तदा।
नृपान्सर्वान्समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि ॥ २
जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः
वृष्णयस्ते बलोन्मत्ताः कृष्णमाश्रित्य गर्विताः
दास्यन्ति मे करं सर्वे न हि ते कृष्णसंश्रयात्
स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति ॥ ४
अहं चक्रीति गर्वोऽभूत्तस्य गोपस्य सर्वदा।
शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान्
एवमादिर्महागर्वस्तस्य संप्रति वर्तते।
लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥६
अगृह्णान्मम तन्नाम गोपो मदबलान्वितः।
तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत् ७
गर्वहन्तृ सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम्।
सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम् ॥८
अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः।
ममाप्येतद्धनुर्दिव्यं शार्ङ्गं नाम महारवम् ॥ ९
गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा।
कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया ॥ १०
खड्गो नन्दकनामासौ ममायं विपुलो दृढः
अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य खड्गस्य नाशकः
तत्रायं च गदी खड्गी शंखी चक्री तनुत्रवान्।
युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा॥
मां च ब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा।
शंखिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः ॥
वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम्।
एकोऽहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥
सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः।
मां तथा यदि न ब्रूते दण्ड्या भारशतैः शतम्
सुवर्णस्य च निष्कस्य धान्यस्य बहुशस्तदा।
तथा भवति राजेन्द्रे मनसा दुस्सहं यथा ॥१६
केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः।
रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप ॥१७
अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः।
अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशवं रणे ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकोक्तौ एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

बाणयुद्धे यदुक्तं हरिहराद्वैतं तदेव कैलासयात्रायां हरेः शिवाराधनकत्वेन शिवस्य विष्णुस्तावकत्वेन च दृढीकृतम्। तेन शास्तृशास्ययोर्जीवेशयोरविकृतब्रह्मभावः। कृत्स्नस्य शास्त्रस्यार्थ उक्तः। अथावरकृत्यशेषं व्याचष्टे-**एतस्मिन्नेव काले** इत्यादिना ॥ १ ॥ चक्रस्य नाशकमिति शेषः ॥७॥ अनेकं बहुविग्रहम् अहतम् अप्रतिहतं तादृशं ममापीति भावः ॥९॥ "भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः" तेषां भाराणां शतैः शतम् अयुतमित्यर्थः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

१ घ. मां संब्रू०।

## पौण्ड्रकनारदसंवादः ।

### ९२

वैशम्पायन उवाच ।

ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः ।
नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥ १
अवतीर्य नभोभागात्प्रत्यागम्य नरोत्तमम् ।
द्वाःस्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ २
अर्घादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः ।
निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥३
कुशलं पृष्टवान्भूयो नृपः स मुनिसत्तमम् ।
उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः ॥ ४
भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः ।
प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु ॥ ५
सर्वत्रगो निराबाधो गत्वा सर्वत्र सर्वदा ।
अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे न हि किंचन ॥
नारदेदं वद त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान् ।
तत्र तत्र तपःसिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान् ।
पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः
शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान्
विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा ॥
भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद्बली
अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य च ॥९
योऽद्य गोपकनामाऽसौ वासुदेवोति शब्दितः ।
तस्य वीर्यबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे॥
स हि गोपो वृथा बाल्याद्धारयत्येव नाम मे ।
इदं निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम्॥११
वासुदेवो जगत्यस्मि-
न्निर्जित्य बलिनं यदुम् ।
वृष्णीन्सर्वान्बलात्क्षिप्त्वा
निहानिष्ये च तां पुरीम् ॥ १२
द्वारकां विष्णुनिलयां योद्धा चाहं महामते ।
एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः ॥
अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम ।
नानामन्त्राः सहस्रं च गजा नियुतमेव च ॥
एतेनाहं बलेनाजौ हनिष्ये केशवं रणे ।
तस्मादेवं सदा विप्र वद ब्रह्मन्पुरे मम ॥ १५
इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद सांप्रतम् ।
प्रार्थनैषा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन ॥

नारद उवाच ।

सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद्ब्रह्माण्डसंस्थितिः
आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप ॥ १७
किंतु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम ।
महीं शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥
विष्णौ सर्वत्रगे देवे दुष्टान्हत्वा सबान्धवान् ।
वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन्हराविति ॥
को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमतीं ।
अज्ञानाद्वक्तुमेवं च समर्था प्राकृता जनाः ॥
हरिः सर्वत्रगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति ।
अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः
आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति ।
हास्यमेतन्महाराज यच्च व तत्र संस्थितम् ॥
शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन्महाघोरं न दाप्यते ।
अतीव हासकालोऽयं तव संप्रति वर्तते ॥ २३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

---

९२

तत इति ॥१॥ वद पौण्ड्रक एव वासुदेवशब्दित इति ख्यापयेत्यर्थः ॥७॥ आचार्यः शरणाकरणीयः । पाठान्तरे गमने आचार्य इति योज्यम् ॥१७॥ को नाम धारयेदिति शेषः ॥१९॥ गोमती सूर्यकिरणसंपर्कवती द्वे भवन द्युभूनाम्नी शासति पालयति इदं वक्तुं को नाम समर्थः स्यात् । न कोऽपीत्यर्थः । प्राकृतास्त्वादृशाः मूढाः ॥ २० ॥ तच्च शार्ङ्गादिकं तत्र विष्णौ स्थितं न दाप्यते त्वदीयेन शार्ङ्गादिना न च्छेद्येत इत्यर्थः "दा प्लवने" इत्यस्य रूपम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पौण्ड्रनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

---

1 ख. उग्रा मत्ताः सह° ।

## पौण्ड्रकस्य द्वारकावरोधः।

### ९३

वैशम्पायन उवाच।

ततः क्रुद्धो महाराज पौण्ड्रो मदबलान्वितः
नारदं विप्रवर्यं तं प्रोवाच नृपसंसदि॥ १
किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाऽहं च द्विजैः सह।
गच्छ त्वं काममथ वा मुने शापप्रदः सदा॥२
भीतस्त्वत्तो महाबुद्धे गच्छ त्वं काममद्य हि।
इत्युक्तो नृपवीर्येण तूष्णीमेव स नारदः॥ ३
जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशवः।
स गत्वा विष्णुसंकाशं विष्णोः सर्वं शशंस ह
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्यथेष्टं वदतामिति।
दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्तम॥ ५
इत्युक्त्वा विरराामैव तस्मिन्बदरिकाश्रमे।
ततः पौण्ड्रो महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वरः॥६
अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वितः।
शस्त्रकोटिसमायुक्तः स राजा सत्यसंगरः॥७
अनेकशतसाहस्रैः पत्तिभिश्च समन्वितः।
एकलव्यप्रभृतिभी राजभिश्च समंततः॥ ८
अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा।
अर्बुदं पत्तिसङ्घानां तद्बलं समपद्यत॥ ९
एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन्नृपसत्तमः।
विरराज महाराज उदयस्थो महारविः॥ १०
स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु।
पत्तयो दीपिकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे॥
ययुर्विविधशस्त्रौघा संपतन्तो महाबलाः।
द्वारकां वीर्यसंपन्नां महाघोरां नृपोत्तमाः॥
रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समावृतम्।
पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम्॥ १३
शक्तितोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम्।
किङ्किणीजालसंयुक्तं शरासिप्राससंयुतम्॥
महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम्।
धनुर्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत्॥ १५
अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु।
गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान्बलवान्नृप॥
हन्तुमैच्छज्जगन्नाथं वृष्णींश्चैव समंततः।
आकर्षन्बलमुख्यांस्तान्राज्ञः सर्वान्महाद्युतिः॥
पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः।
इदं प्रोवाच राजा तु नृपान्सर्वानवस्थितान्॥
ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम्।
युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम्॥
आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीरसत्तरः।
हन्तुकामः समग्रान्वः कृष्णबाहुबलाश्रयान्॥
इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान्बहून्
दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते बहवः शतसहस्रशः॥
इतश्चेतश्च राजानो युध्यन्ते युद्धलालसाः।
पुरीं ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तदा॥२२
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः।
कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः॥
कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च
कुतो नु बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः।
इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते॥२४
आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः
शरांश्च चापानि बहूनि सर्वे।
युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययु-
र्हरेः पुरीं द्वारवतीं नृपोत्तमाः॥ २५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकस्य द्वारकागमने त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

---

९३

**तत इति**॥ १॥ महवाद्योपमं महामेघगर्जिततुल्यध्वनिं महत् महान्तं रथम्॥१५॥ सूचकान्बाह्यान्तरवृत्तान्तज्ञान् यादवभटान्। सूर्यकान् इति पाठे सूर्यप्रकाशितुल्यान् यदून्॥ २१॥ निबद्धानिव इति निबद्धशः सर्वे सन्नाहनिबद्धा इत्यर्थः॥ २५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

---

१ ख. °हामेघोप°।

## यादवानां युद्धोद्योगः ।

## १४

वैशम्पायन उवाच ।
ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम् ।
रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम् ॥१
महावातसमुद्भूतं कल्पान्ते सम‍रोपमम् ।
सन्नद्धाः समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसाः ॥
गृहीतदीपिकाः सर्वे यादवाः शस्त्रयोधिनः ।
सत्याकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा ॥३
उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबलः ।
अन्ये च यादवाः सर्वे कवचग्रहे रताः ॥ ४
समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः ।
शस्त्रिणः खड्गिनश्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुलाः ॥५
युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिनः ।
रथिनो गदिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा॥६
नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमाः ।
निर्ययुर्नगरात्तूर्णं दीपिकाभिः समंततः ॥ ७
कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्तः सर्वसात्वताः ।
दीपिकादीपितो देशो निस्तमाः समपद्यत ॥८
ततो वितिमिरो देशः समन्तात्प्रत्यपद्यत ।
युद्धं समभवद्घोरं वृष्णिभिः शत्रुभिः सह ॥९
ततो महान्समभवत्सन्नादो रोमहर्षणः ।
हया हयैः समायुक्ता गजाश्च गजयूथपैः १०
रथा रथैः समायुक्ताः सादिभिः सादिनस्तथा ।
खड्गिनः खड्गिभिः सार्धं गदिभिर्गदिनस्तथा ॥
परस्परव्यतीकारो रण आसीत्सुदारुणः ।
महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम् ॥
धावन्तः प्रहरन्त्येतान्हन्त्येतान्सर्वतो नृपान् ।
अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान् ॥१३
अयमेष शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः ।
गदी चायं महावीर्यः सर्वान्नो बाधते नृपः ॥
अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान् ।
यादृशः सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं बली ॥१५
अयमत्र महाशूली संश्रितः सर्वतोदिशम् ।
गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सवतः प्रति॥१६
अतिसर्वत्रगः शूरो वेगवान्वातसन्निभः ।
शराञ्छरैः समाहन्ति दण्डान्दण्डैर्जगत्पते
कुन्तान्कुन्तैः समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा ।
परिघान्परिघैः सार्धं शूलाञ्छूलैः समंततः ।
एवं तेषां महाराज कुर्वतां रणमुत्तमम् ।
संग्रामः सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत् ॥
भूतानि सुबहून्याजौ शब्दवन्ति महान्ति च ।
प्रादुरासन्सहस्राणि शङ्खानां भीमनिःस्वनः ॥
रात्रौ प्रादुरभूच्छब्दः संग्रामे रोमहर्षणः ।
वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीनां चैव तैः सह ॥२१
केचिद्ग्रस्ताः समापेतुः पृथिव्यां पृथिवीक्षितः
केचित्पतितश्लिष्टाश्च विप्रकीर्णशिरोधराः ॥
पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजानः शस्त्रपाणयः ।
केचित्तु भिन्नवर्माणः समापेतुः सहस्रधा ॥२३
परस्परं समाश्रित्य परस्परवधैषिणः ।
न्यस्तशस्त्रा महात्मानः समन्तात्क्षतविग्रहाः ॥
पेतुर्गतासवः केचिद्यमराष्ट्रविवर्धनाः ।
एवं ते निहता राजन्योधिताः सर्व एव तु ॥
एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादपः ।
धनुर्गृह्य महाघोरं कालान्तकयमोपमः ॥ २६
शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामास यादवान् ।
परःशतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः॥ २७
वृष्णीनां च बलं सर्वं पोथयामास सर्वतः ।
युद्ध्यतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान्वीर्यवत्तरान् ॥
निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ।
सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः
उग्रसेनं नवत्याशु वसुदेवं च सप्तभिः ।
उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ॥ ३०
एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः ।
विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान्
"एकलव्यो यदुवृषान्वीर्यवान्बलवानहम् ।
इदानीं सात्यकिर्वीरः क्व यास्यति महाबलः ॥
मदमत्तो हली साक्षात्क्व यातीह गदाधरः"
इत्याह सिंहनादेन सिंहान्विस्मापयन्निव ॥ ३३

---

[1] ख. पक्षिशी स० ।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे रात्रियुद्धे चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

## सात्यकिपौण्ड्रकयोः संवादः

## ९५

वैशम्पायन उवाच।

निवृत्तेष्वथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि।
भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः ॥ १
दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः
जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीनां बलमुत्तमम् ॥
ततः पौण्ड्रो महावीर्यो
बभाषे सैनिकान्स्वकान्।
शीघ्रं गच्छत राजेन्द्रा-
ष्टङ्कैः कुन्तैः पुरीमिमाम् ॥ ३
कुठारैः कुन्तलैश्चैव पाषाणैः सर्वतोदिशम्।
कर्षणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः ॥
भिद्यन्तां प्राकारचया प्रासादाश्च समंततः।
गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समंततः
गृह्यन्तां वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ।
ते तथेति महात्मानो राजानः सर्व एव तु ॥६
कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदुः पौण्ड्रकाज्ञया।
प्राकारांश्चैव सर्वत्र प्रासादान्नरसंचयान् ॥ ७
अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत्समंततः।
टङ्केषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः ॥ ८
पूर्वद्वारे महाराज
भिन्नाः प्राकारसंचयाः।
श्रुत्वा शब्दं महाघोरं
सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितम् ॥ ९
"मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वरः
गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥ १०
अवश्यं हि मया रक्ष्या पुरी द्वारवती त्वियम्"
इति संचिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम् ॥
रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः।
पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि ॥
धनुर्महत्तदादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
आमुच्य कवचं घोरं शस्त्रसंपातदुःसहम् ॥१३
अङ्गदी कुण्डली तूणी शरी चापी गदासिमान्
ययौ युद्धाय शैनेयः संस्मरन्केशवं वचः ॥ १४
दीपिकादीपिते देशे ययौ सात्यकिरुत्तमः।
तथैव बलदेवोऽपि रथमारुह्य भास्वरम् ॥ १५
गदी शरी महावीर्यः प्रायाद्रणचिकीर्षया।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो मुञ्चन्तो भैरवं रवम् ॥१६
उद्धवोऽपि बली साक्षाद्गजमारुह्य सत्वरम्।
मत्तं महारवं घोरं संग्रामे नीतिमत्तरम् ॥ १७
ययौ नीतिं विचिन्वानः परां प्रीतिं महाबलः
अन्ये च वृष्णयः सर्वे ययुः संग्रामलालसाः ॥
रथान्गजान्समारुह्य हार्दिक्यप्रमुखास्तथा।
दीपिकाभिश्च सर्वत्र पुरोवृत्ताभिरीश्वराः ॥
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः स्मरन्तः केशवं वचः।
पूर्वद्वारं समागम्य वृष्णयो युद्धलालसाः ॥
ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः।
स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि ॥
शिनिवीरः शरी चापी गदी तूणीरवान्विभो
वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम् ॥
आकर्णपूर्णमाकृष्य धनुः प्रवरमुत्तमम्।
मुमोच परसैन्येषु शिनिवीरः प्रतापवान् ॥
वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः।
विजिता ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥

---

९४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

९५

निवृत्तेष्विति ॥१॥ वसुमुख्यानि रत्नानि ॥ ६ ॥

तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्धूता वातरंहसा ।
यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजसत्तमाः ॥
तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरमादाय सत्वरम् ।
निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा ॥
क इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः
स्थितोऽस्ति व्यवसायेन शरी चापी महाबलः
यदि द्रष्टा दुरात्मानं
ततो हन्ता नृपाधमम् ।
भृत्योऽस्मि केशवस्याहं
जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः ॥ २८
छित्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः
बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरात्मनः
को नाम ईदृशं कर्म चौरवच्च समाचरेत् ।
सुप्तेषु निशि सर्वत्र यादवेषु महात्मसु ॥ ३०
चौरोऽयं सर्वथा राजा न हि राजा बलान्वितः
यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपाधमः ॥
अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकार्यं प्रकुर्वतः ।
सर्वथागमनं तस्य न हि पश्यामि सांप्रतम् ॥

इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः
विस्फार्य सुदृढं चापं संदधे कार्मुके शरम् ॥
आकर्ण्य वचनं वीरःसात्यकेस्तस्य धीमतः
क नु कृष्णः क गोपालः कुतः सोऽथ प्रवर्तते
स्त्रीहन्ता पशुहन्ता च क च स्वामीति सेवितः
स इदानीं क वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत् ॥
हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मनः ।
ममैव तात युद्धेऽस्मिन्हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥
गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धुं न क्षमते भवान् ।
अथ वा तिष्ठ किंचित्तु ततो द्रष्टाऽसि मे बलम्
शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः ।
हतस्य तव वीरेह भूमिः पास्यति शोणितम् ॥
श्रोष्यते स तथा गोपो हतः सात्यकिरित्यपि ।
यो गर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥
विनश्यति स तु क्षिप्रं हते त्वयि यदूत्तम ।
त्वयि रक्षां समादिश्य गोपः कैलासपर्वतम् ॥
गत इत्येवमस्माभिः श्रुतं पूर्वं महामते ।
शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके ।
इत्युक्त्वा बाणमादाय ययौ योद्धुं व्यवस्थितः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे रात्रियुद्धे सात्यकिपौण्ड्रकभाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

## सात्यकिपौण्ड्रकयोर्युद्धम् ।

### ९६

वैशम्पायन उवाच ।

ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुङ्गवः ।
उवाच वचनं राजन्वासुदेवं स्मरन्निव ॥ १
अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः ।
को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः
मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः
जिह्वा ते शतधा दीर्यात्द्वदतस्तादृशं वचः ॥ ३
एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक ।
यन्नाम वासुदेवेति तव संप्रति वर्तते ॥ ४

यावत्पतति कायात्ते शिरस्तावत्प्रवर्तते ।
स एव श्वो न भगवान्वासुदेवो भविष्यसि ॥
एक एव जगन्नाथः कर्ता सर्वस्य सर्वगः ।
दुरात्मन्सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः ॥
एष तेऽहं शिरः कायात्पातयिष्यामि राजक ।
यदसौ भगवान्विष्णुर्नागमिष्यति सांप्रतम् ॥
अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय सांप्रतम् ।
नातः परतरं राजन्वीर्यं च तव वर्तते ॥ ८

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पौण्ड्रकवधे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

९६

तत इति॥१॥प्रवर्तते तव नामेति शेषः । स एव त्वं श्वो न भविष्यसि मरिष्यसि ॥५॥ राजन्‌ कुत्सितराजन्‌ ॥८॥

सर्वं दशार्थं यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान् ।
शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाहमुपस्थितः ॥ ९
नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।
सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम्
तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक
इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः
आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम् ।
स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान्
वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान्नृपोत्तम ।
ततश्चुक्रोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ॥
नवभिर्दशभिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।
विव्याध सात्यकिं राजा नदंश्च बहुधा किल ॥
ततो नाराचमादाय निशितं यमसंनिभम् ।
धनुराकृष्य भगवान्वासुदेवो नृपोत्तम ॥ १५
विव्याध सात्यकिं भूयो निशि प्रह्लादयन्स्वकान्
नाराचेन समाविद्धः सात्यकिः सत्यसङ्गरः
ललाटे सुदृढं वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा ।
निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तमः ॥ १७
ततः स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगैः
सारथिं पञ्चविंशत्या हयांश्च चतुरो नृप ॥ १८
ते हया रुधिराक्ताङ्गाः सारथिश्च समंततः ।
विह्वलाः समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यतः ॥
वासुदेवो रथे चापि सिंहनादं समादधे ।
तेन नादेन तत्राभूद्विबुद्धः सात्यकिर्नृप ॥२०
विद्धान्हयांस्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम्
शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तमः ॥ २१
अलं द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे ।
विव्याध तेन बाणेन वक्षस्येनं महाबलः ॥२२
ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह ।
सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप ॥
रथोपस्थे पपाताशु निःश्वसन्नुरगो यथा ।
कृत्यं चापि न जानाति केवलं निषसाद ह
सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः
हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथिमेव च ।
युयुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः
सारथेश्च शिरः कायादहरत्स रथात्तदा ।
रथग्रन्थिं च चिच्छेद हयाश्च व्यसवोऽभवन् ॥
चक्रं च तिलशः कृत्वा बाणैर्दशभिरञ्जसा ।
जहास विपुलं राजन्वासुदेवं महाबलः ॥ २८
ततः परं महत्प्रायं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः ।
शब्दं कृत्वा बली साक्षात्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः
शरैः सप्ततिसंख्याकैरर्दयामास सत्वरम् ।
ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा ॥
शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा ।
केवलं धैर्यनिचयस्तृषार्तः शरवान्यथा ॥ ३१
यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः ।
ततश्चुक्रोध बलवान्वासुदेवः प्रतापवान् ॥
अर्धचन्द्रं समादाय विव्याध युधि सात्यकिम् ।
विद्ध्वा सप्तभिरायान्तं क्रोधेन प्रस्फुरन्निव ॥
विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः ।
चापं चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदत् ॥
वासुदेवो गदां गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम् ।
त्वरितं पातयामास सात्यकेर्वक्षसि प्रभो ॥
सव्येन तां समाकृष्य करेण यदुनन्दनः ।
शरं प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौण्ड्रकम्
तमन्तरे गृहीत्वाशु वासुदेवः प्रतापवान् ।
शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकिं निजघान ह ॥
ताभिर्विद्धो रणे वीरः सात्यकिः सत्यसंगरः
अपास्य धनुरन्यत्तद्धनुरादाय सत्वरम् ।
आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृपः ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकसात्यकियुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

---

नायासीः नागतोऽभूः तर्हि नैतद्ब्रवीमि यदायातः आगतोऽसि अतः सत्यमेव मम वचनमित्यर्थः ॥१०॥ शरवान्सर्वतः शरैः सह ॥ ३१ ॥ मनस्वी उदारः रिक्तः निर्धनः । सत्पात्र आगत इति शेषः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

---

१ ख. °भिरंह° ।

## सात्यकिपौण्ड्रकयोर्युद्धम् ।

### ९७

वैशम्पायन उवाच ।
ततः क्रुद्धो गदापाणिः सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः
वासुदेवं जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप ॥ १
सात्यकिं वासुदेवस्तु गदयाऽभ्यहनद्बली ।
तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ ॥२
दृप्तौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ ।
ततः स सात्यकिः क्रुद्धः सव्यं मण्डलमागमत्
दक्षिणं वासुदेवस्तु तं जघान स्तनान्तरे ।
युयुधानोऽथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत् ॥४
दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद्भुवि ।
तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद्गदाम् ॥५
विषण्णः किंचिदाश्वाय तत उत्थाय सत्वरम् ।
गदयाभ्यहनद्वीरः सात्यकिः पौण्ड्रसत्तमम् ॥
वासुदेवो बलिर्वीरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ।
जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ७
स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया ।
आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरङ्कगतो यथा ॥ ८
संज्ञां पुनः समालम्ब्य पाणिभ्यां दृढमेव च ।
गदां तस्य महाराज गृहीत्वा प्रग्रहेण ह ॥ ९
द्विधा कृत्वा महागुर्वीं गदां कालायसीं शुभाम्
उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥
तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबलः
सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह ॥११
मुष्टिं कृत्वा महाघोरां वासुदेवः प्रतापवान् ।
ताडयामास मध्ये तु स्तनयोः सात्यकेर्नृप ॥
शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम् ।
तलेनाभ्यहनद्वीरो वासुदेवं रणाजिरे ॥ १३
तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यसंगरम् ।
तयोरेवं महाघोरं तलयुद्धं प्रवर्तत ॥ १५
जानुभ्यां मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्यां शिरसा तदा
उरसोरः समाहत्य जानुभ्यां जानुनी तथा
कराभ्यां करमाहत्य तौ युद्धं संप्रचक्रतुः ।
तालयोस्तत्र राजेन्द्र वृक्षयोः संनिकर्षयोः १६
वने यथा निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वनः ।
तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी
निशि स्तिमितमूकायां शस्त्रं त्यक्त्वा महाबलौ
युयुधाते महारङ्गे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ ॥ १८
उभे सेने महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा ।
किं नु स्यात्सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति
आहोस्विद्वासुदेवस्तु हतस्तेन महात्मना ।
अथ वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ ॥ २०
युध्यमानौ महावीरौ तदा स्वर्गं गमिष्यतः
अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद्वीरौ सुनिश्चितौ ॥
अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्बलशालिनोः ।
एतौ महाबलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ ॥ २२
नैवं युद्धं महाघोरमासीद्देवासुरेष्वपि ।
न श्रुतो न च वा दृष्टः संग्रामोऽयं कदाचन ॥
एते वै सैनिका ब्रूयुः सेनयोरुभयोरपि ।
रात्रौ निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम् ॥
अथ तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा ।
दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं तदा ॥
पञ्चभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः
तयोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान् ।
प्रादुरासीत्तु सर्वत्र सर्वान्विस्मापयन्निव ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकसात्यकियुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

---

९७

**तत इति** ॥१॥ अङ्कगतः समीपं गतः ॥८॥ प्रग्रहेण परप्रयुक्ताया उत्प्लुत्य प्रग्रहणं प्रग्रहस्तेन ॥९॥ द्विधा कृत्वा वेणुवत् भङ्क्त्वा ॥१०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

१ ख. गै नरौ स°।

## एकलव्यसैन्यवधः ।

## ९८

वैशम्पायन उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः ।
बलभद्रमभिक्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम् ॥ १
नाराचैर्दशभिर्विद्ध्वा बाणैश्च दशभिः परैः ।
चिच्छेद धनुरथ तत्सर्वं क्षत्रस्य पश्यतः ॥ २
सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषादस्य जगत्पतिः ॥
ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसंमतः ।
दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ॥ ४
कामपालं शरेणाशु जघान जनमध्यतः ।
बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ॥ ५
दशभिस्तद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्बलः ।
चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माधवो माधवाग्रजः ६
एकलव्यो निषादेशः खड्गमादाय सत्वरः।
प्राहिणोद्बलमादाय निशितं घोरविग्रहम् ७
तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान् ।
तिलशः पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः ॥ ८
ततोऽपरं महत्खड्गं सर्वकालायसं शुभम् ।
प्राहिणोत्सारथेः कायमालोक्याथ निषादजः
तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः ।
बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्बिभेद महारणे ॥ १०
ततः शक्तिं समादाय घण्टामालाकुलां नृपः ।
निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥११
सिंहनादं महाघोरमकरोत्स निषादपः ।
सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागतम्१२
उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान् ।
आदायाथ निषादेशं सर्वान्विस्मापयन्निव ॥
तथैव तं जघानाशु वक्षोदेशे च माधवः ।
स तया ताडितो वीरः स्वशक्त्याथ निषादपः
विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले ।
प्राणसंशयमापन्नो निषादो रामताडितः ॥ १५
निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रशः
अष्टाशीतिसहस्राणि निषादास्तस्य योधिनः
गदिनः खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः ।
शरैरनेकसाहस्रैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥ १७
गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिघैः प्रासतोमरैः ।
कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवानां महौजसाम् ॥
शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमानं हुताशनम् ।
ते शरैः पातयांचक्रू रामं राममिवापरम्॥ १९
केचित्कुठारैराजघ्नुः केचित्कुन्तैः परश्वधैः ।
गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे
निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा
ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम् ॥
सर्वानाकर्षयामास मुसलेन हि पीडयन् ।
ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः
निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः ।
क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान्महाबलान् ॥
सिंहवद्व्यनदंस्तत्र तस्थौ रामो महाबलः ।
ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः
आकृष्य मांसयूथानि भक्षयन्तः समासते ।
पिबन्तः शोणितं कोष्ठात्संछिद्य च शवं बहु ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

---

९८

**एतस्मिन्निति** ॥ १ ॥ दशतालप्रमाणतः दशप्रादेशसंमितम् ॥ ४ ॥ माधवो मधुवंश्यः माधवाग्रजो लक्ष्मीपतेर्ज्येष्ठभ्राता ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

१ ख. शरेण त॰ ।

## पौण्ड्रकयुद्धम् ।

### ९९

वैशम्पायन उवाच ।
क्रव्यादाः सर्व एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम्
हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम् ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु ।
आशिखं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः
नृत्यन्ति स्म तदा राजन्नगर्यां रणतोषिताः ।
काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा
भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः ।
एतस्मिन्नन्तरे वीरो निषादो लब्धसंज्ञकः
हतान्सर्वान्समालोक्य निषादान्नगचारिणः ।
गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह ॥ ५
जघान गदया राजंश्छत्रदेशे निषादपः ।
ततो रामो गदी राजन्निषादं बाहुशालिनम् ॥
आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः ।
तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्तत ॥ ७
आकाशे शब्द आसीत्तु तयोर्युद्धे महाभुज ।
समुद्राणां यथा घोषः सर्वेषां सन्निगच्छताम् ॥
कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् ।
क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः
पृथिवी चान्तरिक्षं च
सर्वं शब्दमयं बभौ ।
ततः स पौण्ड्रको राजा
सात्यकिं वृष्णिनन्दनम् ॥ १०
गदयैव जघानाशु सत्वरं रणकोविदः ।
युयुधानो बली राजन्वासुदेवं जघान ह ॥
तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे ।
चतुर्णां युध्यतां राजन्परस्परवधैषिणाम् ॥ १२
ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत्सुदारुणः
ततो रजः प्रादुरभूत्तस्मिन्संग्राममूर्धनि ॥ १३
तारका निष्प्रभा राजंस्तमस्येवं क्षयं गते ।
उषसि प्रतिबुद्धायां ततो निःशेषतां ययौ ॥
उदितो भगवान्सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ ।
तयोर्युद्धं प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम् ।
देवासुरसमं राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

## द्वारकायां प्रत्यागतस्य श्रीकृष्णस्य पौण्ड्रकेण सह युद्धम् ।

### १००

वैशम्पायन उवाच ।
ततः प्रभाते विमले भगवान्देवकीसुतः ।
गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः पुरं बदरिकाश्रमात् ॥१
नमस्कृत्य मुनीन्सर्वान्ययौ द्वारवतीं नृप ।
आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन महता प्रभुः ॥ २
सुमहाञ्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम् ।
गच्छता देवदेवेन पुरीं द्वारवतीं नृप ॥
अचिन्तयज्जगन्नाथः को न्वयं शब्द उत्थितः
संग्रामसंभवो घोर आर्यशैनेयसंयुतः ॥ ४

---

९९

क्रव्यादा इति । शवं शवजातीयम् ॥ १ ॥ आशिखं शिखामपि केशानप्यपि न त्यजन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥ छत्रदेशे ॥ ६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

१००

तत इति ॥ १ ॥

व्यक्तमागतवान्पौण्ड्रो नगरीं द्वारकामनु।
तेन युद्धं समभवत्पौण्ड्रकेण दुरात्मना ॥ ५
यदूनां वृष्णिवीराणां युद्ध्यतामितरेतरम्।
शब्दोऽयं सुमहान्व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा
इत्येवं चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्खं महारवम्
पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात्प्रीणयन्वृष्णिपुङ्गवान्
रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः।
यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शङ्खस्य ते रवम्॥८
व्यक्तमायाति भगवान्पाञ्चजन्यरवो ह्ययम्।
इति ते मेनिरे राजन्वृष्णयो यादवास्तथा ॥९
निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते ।
तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पततां वरः १०
ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टस्तैर्यादवेश्वरः।
सूताश्च मागधाश्चैव पुरो यान्ति जगत्पतेः ११
स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम्।
गताश्च यादवाः सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम् ॥ १२
कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्वं नाकमुत्तमम्
इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः
दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो।
स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ॥१४
रथोऽयं भगवन्देव किमतः कृत्यमस्ति मे।
इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः
गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम्।
यत्र युद्धं समभवत्तत्र याति स्म केशवः ॥१६
तत्र गत्वा महाराज युध्यतां च महात्मनाम्।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ यदुवृषोत्तमः १७
पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम्
सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् १८
क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन्
वारयामास पौण्ड्रकम्।
न गन्तव्यमितो राज-
न्नेष धर्मः सनातनः ॥ १९
जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे।
क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके
एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे।
इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः
पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह
अवज्ञाय शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥२२
निर्भर्त्स्य सहसा भूयः
सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः।
गदया प्राहरत्पौण्ड्रं
वासुदेवस्य पश्यतः ॥ २३
यथाप्राणं यथायोगं सात्यकिः सत्यविक्रमः।
दृष्ट्वाऽथ भगवानेवं सात्यकिः प्रशशंस ह २४
निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसौ
उपारमद्यथायोगं सात्यकिः कृष्णवारितः २५
स ततः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह।
भो भो यादव गोपाल इदानीं क गतो भवान्
त्वां द्रष्टुमथ संप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि सांप्रतम्
हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वितः ॥२७
अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले।
यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥ २८
अनेन[1] तव चक्रेण पीडितोऽस्मि च तद्रणे।
चक्रमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव सांप्रतम् ॥
नाशयिष्यामि तत्सर्वं
सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
शार्ङ्गीति मां विजानीहि
न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यते ॥ ३०
शंखी चाहं गदी चाहं चक्री चाहं जनार्दन ३१
मामेव हि सदा ब्रूयु-
र्जानन्तो वीर्यशालिनः।
आदौ त्वं बलवद्वृद्धा-
न्हत्वा स्त्रीबालकान्बहून् ॥ ३२
गाश्च हत्वा महागर्वस्तव संप्रति वर्तते।
तत्तेऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः॥
शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थितः।
इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे जगत्पतेः
एतद्वचनमाकर्ण्य वासुदेवेन भाषितम्।
स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम्
कामं वद नृप त्वं हि पातक्यस्मि सदा नृप
गोघाती बालघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप

---

स्तुतं तैरेव सूतादिभिः ॥ १२ ॥ क्रियतां करोतु ॥ २५ ॥ पीडितोऽस्मि त्वदीयस्य चक्रस्य नाशादिति भावः ॥ २९ ॥ गोघाती वृषभासुरवधात् बालघाती षड्गर्भाणां कंसद्वारा घातनात् ॥ ३६ ॥ मह्यं मम ॥ ३७ ॥

---

[1] ख °न मम च°।

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव ।
नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो ॥ ३७
शार्ङ्गी चक्री गदी शंखीत्येवमादि वृथा मम ।
किं तु वक्ष्यामि किंचित्तु शृणुष्व यदि मन्यसे
क्षत्रिया बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ
तथाऽनुब्रुवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो ।
यत्ते चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत् ॥ ३९
तत्तुल्यं मम चक्रं तु वृत्ततो न तु वीर्यतः ।
आयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते ४०
गोपोऽहं सर्वदा राजन्प्राणिनां प्राणदः सदा ।
गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥
कत्थनं सर्वकार्यं हि जित्वा शत्रून्नृपाधम ।
अजित्वा किं भवान्ब्रूते स्थिते मयि च शास्त्रिणि

हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र
यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक ।
स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य
रथी चापी गदासिमान् ॥ ४३

रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद ।
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कृष्णपौण्ड्रकयुद्धे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

## पौण्ड्रकवधः ।

### १०१

वैशम्पायन उवाच ।
ततः शरं समादाय वासुदेवः प्रतापवान् ।
पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह ॥ १
पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः ।
वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम् ॥
दारुकं पञ्चविंशत्या हयान्दशभिरेव च ।
सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः ॥ ३
ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः केशिसूदनः ।
धृष्टोऽसाविति मनसा संपूज्य यदुनन्दनः ॥४
आकृष्य शार्ङ्गं बलवान्संधाय रिपुसूदनः ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः ॥
सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदुनन्दनः ।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः
रथं राज्ञः समाहत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी ।
चक्रं च तिलशः कृत्वा हसन्किंचिदिव स्थितः
पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः ।
आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत्केशवाय सः
स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीच्च केशवः
ततः परं महाघोरं परिघं कालसंमितम् ॥ ९
गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेवं प्रतापवान् ।
प्राहिणोद्वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः१०
तद्द्विधं जगतां नाथश्चकार यदुनन्दनः ।
ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥ ११
त्रिशङ्गारसमायुक्तमायसास्यममित्रहा ।
आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥
पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम् ।
अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर ॥ १३
अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद्दुरासदम् १४
यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेदं महास्पदम् ॥
इत्युक्त्वा तच्छतगुणं भ्रामयित्वा महाबलः

---

वृत्ततः वर्तुलत्वेन ॥४०॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां कृष्णपौण्ड्रकयुद्धे शततमोऽध्यायः ॥१००॥

१०१

तत इति ॥१॥ आयसास्यम् आयसं लोहमयं तच्च तत् आस्यं क्षेप्यं तत् आयस्यास्यम् ॥ १२ ॥

चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तमः ।
अवप्लुत्य ततो देशात्तदुत्सृज्य महाबलः ॥१६
सिंहनादं महाघोरं व्यनदद्वीर्यवांस्तदा ।
ततो विस्मयमापन्नो भगवान्देवकीसुतः ॥१७
अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दुःसहम् ।
इति मत्वा जगन्नाथ उत्थितश्च रथोत्तमात् ॥
ततः शिलां समादाय प्रेषयामास केशवम् ।
तां शिलां प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्वहः ॥१९
पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान्हरिः
ततश्चक्रं समादाय निशितं रक्तभोजनम् ॥ २०
दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम् ।
शातकुम्भमयं घोरं दैत्यदानवनाशनम् ॥ २१
सहस्रारं शतारं तदद्भुतं दैत्यभीषणम् ।
ऐश्वर्यवर्म परमं नित्यं सुरगणार्चितम्॥ २२
विष्णुः कृष्णस्तथा शार्ङ्गी नित्ययुक्तः सदा हरिः
जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥
तस्य देहं विदार्याशु चक्रं पिशितभोजनम् ।
कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥
ततः स पौण्ड्रको राजा गतासुः प्रापतद्भुवि ।
निहत्य भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ।
प्रतिपेदे सुधर्मां तु यादवैः पूजितो हरिः २५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवासुदेववधे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## एकलव्यनिर्याणम् ।

## १०२

वैशम्पायन उवाच ।
निषादेशं ततो रामः शक्त्या वीर्यवतां वरः
आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनादं व्यनीनदत् ॥१
ततः क्रुद्धो निषादेशो रामं मत्तं महाबलम् ।
गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ॥
आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबलः ।
उभाभ्यां चैव रामस्तु कराभ्यां वृष्णिपुङ्गवः ॥
गदां गृह्य महाघोरामायान्तीं प्राणहारिणीम्
दुद्रावाथ निषादेशः समुद्रं मकरालयम् ॥ ४
धावत्येवं तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे
धावत्येवं च रामोऽपि यत्र यातो निषादपः
सागरं स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् ।
भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादपः ॥ ६
कंचिद्द्वीपान्तरं राजन्प्रविश्य न्यवसत्तदा ।
ततो रामो निषादेशं जिगाय यदुनन्दनः ॥७
तां सभां मणिरत्नाढ्यां प्रविवेश हलायुधः ।
सात्यकिर्युद्धसंसक्तस्तां सभां प्रविवेश ह ॥८
अन्ये च यादवा राजन्यथायोगमुपस्थिताः ।
आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः ॥ ९
अभिवाद्य यथायोगं वृष्णीन्सर्वांश्च केशवः ।
उवाच वचनं काले भगवान्देवकीसुतः ॥ १०
दृष्टं कैलासशिखरं शंकरो नीललोहितः ।
स तु मह्यं यदुवरः प्रीतिमांश्च ददौ वरम् ॥११
तत्र देवाः समायाता मुनयश्च तपोधनाः ।
दृष्ट्वा मां शंकरश्चैव प्रीतः स्तुत्वा समाययौ ॥
अत्यद्भुतं मया दृष्टं रात्रा यादवसत्तमाः ।
पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिकां कथाम्
मृगयां चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मां सदा ।
दृष्ट्वा मां तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ

---

अवप्लुत्य चक्रं वञ्चितवान् इत्यर्थः ॥ १६ ॥ तां प्रेषयामास निवर्तयामासेत्यर्थः ॥ १९ ॥ सहस्रारं शतारमिति कार्यभेदात् रूपभेदः ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायामेकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१०२

**निषादेशमिति** । निषादेशम् एकलव्यम् ॥ १ ॥ प्राणहा रिणीं ज्ञात्वा दुद्राव ॥ ४ ॥

भक्तिनम्रौ महात्मानौ प्रणामं चक्रतुस्तदा ।
ततोऽहं सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम्
तोषयित्वा महादेव मया चाद्य समागतम् ।
वैशम्पायन उवाच ।
ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे ॥१६
सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः
यादवाः सर्व एवैते स्वं स्वं जग्मुर्यथालयम् ॥
अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।
रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाऽभवत्
ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं केशवस्य विचेष्टितम् १९

शशास पृथिवीं कृत्स्नां
दुष्टान् हत्वा महाबलान् ।
नरकं घोरकर्माणं
पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २०
हयग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ ।
ररक्ष विप्रान्देवेशो मुनीन्मुनिवरार्चितः ॥ २१
विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्त्वा स केशवः
अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् ॥ २२
मुनींश्च ब्रह्मचर्येण देवान्यज्ञैरनेकधा ।
स्वधया च पितॄन्सर्वान्प्रीणयन्नेव सर्वदा॥ २३
तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो
सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## वैशम्पायनं प्रति जनमेजयप्रश्नः ।

## १०३

जनमेजय उवाच ।
भूय एव द्विजश्रेष्ठ शङ्खचक्रगदाभृतः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ १
न हि ते तृप्तिरस्तीह शृण्वतः कैशवीं कथाम्
को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ २
शृण्वंस्तथा रमन्वाऽपि
तृप्तिं याति दिवानिशम् ।
पुरुषार्थोऽयमेवैको
यत्कथाश्रवणं हरेः ॥ ३
कथमासीज्जगद्वेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च ।
सामितिः सर्वभूतानां सदा विस्मयदायिनी
विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः ।

स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ५
तौ सुतौ वीर्यसंपन्नौ शिष्यौ भृगुसुतस्य ह
सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ हरेर्लब्धवरौ किल ॥ ६
संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा।
तयोश्च नृपयोर्विप्र केशवस्य जगत्पतेः ॥ ७
कस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ यथाभूद्विग्रहो महान् ।
अष्टाशीतिसहस्राणि दानवानां तरस्विनाम्
बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च ।
आसन्युद्धे महाराज दानवस्य महात्मनः ॥ ९
यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूनां युद्धकाङ्क्षया ।
देवासुरे महायुद्धे देवाञ्जयति दुर्धरः ।
तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशवः ॥ १०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने जनमेजयवाक्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

---

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

१०३

भूय इति ॥१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

---

१ ख. °स्य जयैषिणः । च°।

## हंसडिम्भकोत्पत्तिः।

### १०४

वैशम्पायन उवाच।

आसीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः
नाम्ना राजन्स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः॥ १
पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः।
ब्रह्मविद्वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः॥ २
तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते।
बभूवतुः सुसंपन्ने अनपत्ये नृपोत्तम॥ ३
स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे।
नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद्द्विजोत्तमः
तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः।
अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह ५
स राजा सहितस्ताभ्यामर्चयामास शंकरम्।
पुत्रार्थं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधीः॥६
स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थे समयोजयत्।
आर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः ७
आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत्।
प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय सुव्रत॥ ८
अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव।
पुत्रौ मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः ९
अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः।
सोऽपि मित्रसहो विद्वान्देवं केशवमव्ययम्॥
पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः।
अर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः॥ ११
पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः।
ते भार्ये गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह १२
विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत्।
महिष्यौ ते महावीर्यौ पुत्रौ शंकरनिर्मितौ १३
असूयेतां महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह।
स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः
चकार विधिवत्सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम्।
स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान्
साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप।
जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह १६
तौ कुमारावयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन्।
वेदानधीत्य ते सर्वाऽकृत्वा चान्वीक्षिकीं तथा
धनुर्वेदे तथाऽस्त्रे च
निपुणास्तेऽभवंस्तदा।
हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो
डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत्॥ १८
स च विप्रसुतो राजञ्जनार्दन इति स्मृतः।
अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोत्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

## हंसडिम्भकयोर्वरलाभः।

### १०५

वैशम्पायन उवाच।

हंसश्च डिम्भकश्चैवं तपश्चर्तुं महामती। मनश्चक्रतुरात्मांशौ शंकरस्य नृपोत्तम॥ १

---

१०४

**आसीदिति**॥ १॥ ताभ्यां स्त्रीभ्यां सह॥ ६॥
**स इति**। तेन वैष्णवसत्रेण शंकरस्यार्चनं विष्णुशंकरयोर्वास्तवाभेदाभिप्रायेण॥७॥इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

१०५

**हंसश्चेति**॥ १॥

---

१ ख. °स्य जयैषिणः। य°।

गत्वा तु हिमवत्पार्श्वे तपश्चक्रतुरञ्जसा ।
उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम् ॥ २
वीर्यास्त्रे चैव नौ स्यातामित्याधाय तु मानसे
एकाग्रौ प्रयतौ भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनौ नृप ३
नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम् ।
हर शर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते ॥ ४
वृषध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगतां पते ।
भक्तप्रिय गिरीशेश वासुदेव शिवाच्युत ॥ ५
सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय ।
भूतभावन देवेश प्रणवात्मन्सदाशिव ॥ ६
इत्यादिनामभिर्नित्यं स्तुवन्तौ शंकरं भवम् ।
हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरञ्जसा ॥ ७
निर्ममौ निरहंकारौ मौनव्रतसमास्थितौ ।
वर्षाणीह तदा राजन्पञ्च चक्रतुरोजसा ॥ ८
ततः प्रीतोऽभवच्छर्वस्ताभ्यां संयमनेन च ।
स ददौ दर्शनं नैजं व्याघ्रचर्माम्बरो हरः ॥ ९
त्रियक्षः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः ।
अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ।
तौ दृष्ट्वा प्रीतिमनसौ नमश्चक्रतुरञ्जसा ॥ १०

श्रीभगवानुवाच ।

वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वां तथास्तु वै ।
तावूचतुस्तदा राजन्प्रीतस्त्वं भगवन्यदि ॥११
देवासुरचमूमुख्यैर्यक्षगन्धर्वदानवैः ।
आवामजय्यौ सर्वात्मन्नेष नौ प्रथमो वरः ॥
द्वितीयो नौ विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः
माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ॥
अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम् ।
परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च ॥ १४
सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम् ।
एवमस्त्विति देवेश आह भृङ्गिरिटी हरः ॥
कुण्डोदरं विरूपाक्षं सर्वप्राणिहिते रतम् ।
युवामथ च भूतेशौ सहायौ सततं रणे ॥ १६
संग्रामं गच्छतां घोरमेतयोर्बलशालिनोः ।
इत्युक्त्वा भगवाञ्छर्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततस्तौ वीर्यसंपन्नौ हंसो डिम्भक एव च ।
कृतास्त्रौ शस्त्रसंपन्नौ चापिनौ वीर्यवत्तरौ ॥
आमुक्तकवचौ वीरावजय्यौ देवदानवैः ।
अत्यन्तभक्तौ देवेश शंकरे नीललोहिते ॥१९
नित्योत्सवकरौ देवे भस्मोद्धूलनशोभिनौ ।
कृतत्रिपुण्ड्रकौ नित्यं जटायुक्तशिरोधरौ ॥
रुद्राक्षार्पितसर्वाङ्गौ व्याघ्रचर्माम्बरावृतौ ।
नमः शिवाय शान्ताय महादेवाय धीमते॥२१
इत्यादिभिर्महादेवं स्तुवन्तौ नामभिः शिवम् ।
साक्षादिव महादेवौ रेजतुर्जलधारिणौ ॥ २२
ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादावगृह्णताम् ।
पितुश्च सख्युर्बलिनौ मातुश्च चरणौ तदा ॥
जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप ।
विद्यापारं महाबुद्धिर्युक्तेनासावुपेयिवान् ॥२४
स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम् ।
ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रियः ॥
हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारौ बभूवतुः ।
जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥
सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा ।
स्वदारनिरताः सर्वे गुरुशुश्रूषणे रताः ।
धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥ २७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

---

त्रियक्षःत्रिभिर्वेदैः इज्यत इति त्रियक्षः यज्ञेशः ॥ १० ॥ वरय वरयतम् ॥ ११ ॥ भृङ्गिरिटी भृङ्गि रिटिं च ॥ १५ ॥ पितुर्ब्रह्मदत्तस्य सख्युः मित्रसहस्य ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

---

१ ख. °त्रियज्ञः शं

## हंसडिम्भकयोर्मृगया।

### १०६

वैशम्पायन उवाच।

ततः कदाचित्तौ वीरौ मृगयामटतुः किल
जनार्दनेन सहितौ रथैरश्वगजैरपि ॥ १
वनं गत्वा तु तौ वीरौ सिंहव्याघ्रांश्च जघ्नतुः
शितैर्बाणैर्महाराज वराहानथ सर्वशः ॥ २
व्यालानन्यान्मृगान् हिंस्रा-
न्रुरूनभिश्च सहितौ नृप।
एष आयाति विपुलो
वराहो दीर्घलोचनः ॥ ३
एनं बाणेन संछिन्धि याति चायं मृगाधिपः
अयमन्योऽथ महिषः शृङ्गप्रोतसरीसृपः ॥ ४
एते खलु मृगाः सार्धं शावैर्बाधन्ति सर्वशः।
एतद्भ्रमति सर्वत्र भीतं शशकुलं महत् ॥ ५
शावं स्तनं पिबत्साधु न हन्तव्यमिदं शुभम्।
ग्रहीतव्यमिदं सर्वं निरुध्य श्वगणैरिह ॥ ६
इत्यादिशब्दः सुमहान्मृगयां कुर्वतां नृप।
क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ व्याधानां चैव धावताम् ॥
हत्वा मृगान्सुबहुशो व्याघ्रान् सिंहान्नृपोत्तमौ
श्रमं च जग्मतुर्वीरौ मध्यं याते दिवाकरे ॥ ८
अलं हि मृगयास्माकं श्रमः समुपजायते।
इत्यूचतुर्महाराज पुष्करं जग्मतुः सरः ॥ ९
सरःसमीपमागम्य मुनिसिद्धनिषेवितम्।
वीजन्मारुतसानूपं श्रमात्तत्र सुखस्थितौ ॥ १०
ततो जनाः सरः सर्वे विगाह्य श्रमकर्षिताः।
बिसान्प्रवालान्पद्मानां भक्षयामासुरार्तवत् ॥
जनार्दनेन सहितौ हंसो डिम्भक एव च।
सरः क्वचित्समाश्रित्य श्रमं संत्यज्य तिष्ठतः
विश्रम्य सरसस्तीरे तदाऽऽसाते सुखं नृपौ।
अशृणुतां परं ब्रह्म मुनिमुख्यैः समीरितम् ॥
मध्यंदिनं तथा सर्वैः सवनं सस्वरं नृपौ।
ततः प्रीतौ नृपौ भूत्वा श्रुत्वा वेदध्वनिं तदा
ऐच्छेतां तौ तदा द्रष्टुं यज्ञं मुनिकृतं तदा।
स्थापयित्वा ततः सेनां सर्वां मृगसमन्विताम्
आदाय च महाचापे शरान्कांश्चिदेव च।
जनार्दनस्तदा वीरो हंसो डिम्भक एव च ॥
पदातिनौ महाराज जग्मतुश्चाश्रमं किल।
महर्षेः काश्यपस्याथ सत्रं वैष्णवसंज्ञकम्।
यजन्तो मुनिभिः सार्धं जपहोमपरायणैः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने मृगयावर्णने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## दुर्वासोदर्शनम्।

### १०७

वैशम्पायन उवाच।

जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च
सदः प्रविश्य सत्रस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥ १
तानागतान्महात्मानो मुनयः शिष्यसंयुताः।
अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजां प्रयत्नतः ॥ २

---

१०६

तत इति ॥ १ ॥ बाधन्ति बाधामनुभवन्ति शावैः पोतैः सहिताः ॥ ५ ॥ अनूपं सजलप्रदेशस्तेन सहितं सानूपं वीजन्मारुतवताऽऽत्मना सानूपं चेति विग्रहः ॥ १० ॥ सत्रं यजतः अनुतिष्ठतः ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

जनार्दन इति। सदः यज्ञमण्डपम् ॥ १ ॥

तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः सपर्यां प्रतिगृह्य च ।
प्रीतात्मानो महात्मान आसते ससुखं नृप ३
ततो हंसो बभाषे तान्मुनीन्संयतवाङ् नृप
पिता हि नौ मुनिश्रेष्ठा यष्टुमैच्छत्ससाधनम्
गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः
राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥ ५
याजयिष्याम हे विप्राः
पितरं धार्मिकं नृपम्।
आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः
सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥ ६
वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम् ।
शक्ता वयमिहैवैतत्कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥ ७
आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः ।
कैलासनिलयाद्देवाद्वरं लब्धाः स्म यत्नतः ॥ ८
अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च
इत्युक्त्वा विररामैव हंसो मदबलान्वितः ९

मुनय ऊचुः ।
यदि स्यात्तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम
आस्महे वान्यथा राजन्नित्यूचुः किलः तापसाः

वैशम्पायन उवाच ।
ततो देशान्महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ।
पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति ॥ ११
यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः ।
ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्थालोकतत्पराः ॥ १२
निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः ।
तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम्
ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम् ।
वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम् १४
नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारमनामयम् ।
ध्यायन्तं सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम् १५
दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम् ।
तर्कनिश्चिततत्त्वार्था ज्ञाननिर्मलचेतसः ॥ १६
हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो ।
गत्वा तत्र महात्मानौ तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम्
दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम् ।
क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान्क्षमः
देवा अपि च यं द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा ।
रोषमूर्तिः सदा यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक्
रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च ।
दृष्ट्वैनं च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥ २०
को नामाऽसौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः
कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥
गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः ।
गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥ २२
गृहस्थश्च सदा माता प्राणिनां जीवनं सदा ।
तं विनाऽन्येन रूपेण वर्तते योऽतिमूर्खवत् ॥
उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मूर्ख एव च ।
ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वञ्चयिताऽपि वा
किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन ।
वयमेतान्दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥२५
स्थापयिष्यामहे सर्वान्मन्दबुद्धीनिमान्गृहे ।
बलादेव द्विजानेतान्मूढविज्ञानतत्परान् ॥ २६
असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान्दुर्मतीनिमान् ।
एषां शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ।
धर्म्ये वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतौ ।
इति संचिन्त्य तौ वीरौ विप्रेण सहितौ नृप
जनार्दनेन राजानौ मोहाद्भाग्यक्षयान्नृप ।
समीपं तस्य राजेन्द्र यतेः संयतचेतसः ॥२९
गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम् ।
यतींश्च नियतान्क्रुद्धौ राजानौ राजसत्तम ३०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

---

सपरिच्छदाः आग्निहोत्रादिसामग्रीसहिताः॥६॥अद्वयं हयसामग्रीरहितं यथा स्यात्तथा केवलं सैनिकः पुरुषैः सह एवं दिग्विजयाख्यं कार्यं कर्तुं शक्ताविति योजना ॥ ७ ॥ वरं लब्धाः अजेयाः स्मेति योजना ॥ ८ ॥ यदि स्याद्राजसूयः तर्हि तत्र गच्छामोऽन्यथाऽत्रैवास्महे ॥१०॥ एवं कर्मनिष्ठैः संवादं कृत्वा नैष्कर्म्यनिष्ठायुक्तान् उच्छेत्तुं प्रवृत्ता इत्याह-ततो देशानित्यादिना ॥ ११ ॥ मन्त्रब्रह्म मन्त्रमयं ब्रह्म प्रणवरूपं, ब्रह्मसूत्रं " ब्रह्मविदाप्नोति परम् " इत्यादि, तत्र निर्दिष्टं यत्पदं पदनीयं वस्तु तत्र सक्ताः तत्प्राप्त्यर्थं यतमानाः ॥ १२ ॥ वर्णावित्तमः वर्णविभागविदां श्रेष्ठ इत्युपहासः । सर्ववर्णबहिष्कृत् इत्याशयः ॥ २१ ॥ संस्थाप्य एषां शास्तारमित्यर्थात् ॥ २८ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## संन्यासधर्मनिन्दा ।

### १०८

हंसडिम्भकावूचतुः ।

ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन्किं ते व्यवसितं द्विज
कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः १
गृहमेधं परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम्
दम्भ एव भवान्व्यक्तं शङ्के नास्त्यत्र कारणम्
लोकांश्चेमान्सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः
एतान्सर्वान्विनेताऽसि नरके पातयिष्यसि
स्वयं नष्टः परान्मूर्ख नाशयिष्यसि यत्नतः ।
अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज
सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः
त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ।
पञ्च यज्ञान्सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव ।
ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गे हि सुमहत्सुखम्
एष श्रेयःपथो विप्र जीविते चेत्स्पृहा तव ।
इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः
उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनीतवत् ।
मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दतेजसौ
अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि ।
को वस्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत्सबान्धवः
सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः
समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम् १०
एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥
ऋते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रवन् ।
सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥
चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥
तेषामग्र्यश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः ।
आस्ते तस्मिन्महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः
नोपासिता भवद्भ्यां च वृद्धाःसम्यग्विनीतवत्
ज्ञानं नाप्तं तपस्विभ्यस्तथा चैवं वदेत कः ॥
अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप ।
किं करिष्यामि मन्दात्मन्मित्रत्वाद्भवतो नृप

ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुभ्य-
स्तदत्र दुःखाय हि केवलं नृप ।
ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं
बलाद्विपापस्य विधातृरूपम् ॥ १७

युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम् ।
पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु ॥१८
आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः
इत्युक्त्वा विललापैवं मा ब्रूतमिति तौ वदन्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां हंसडिम्भकोपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

## दुर्वाससो भाषणम् ।

### १०९

वैशम्पायन उवाच ।

ततः क्रुद्धोऽथ दुर्वासा धक्ष्यन्निव तयोरसून् । एकेनाक्ष्णाऽथ दुर्वासा रौद्रेणाग्नियुजा सदा ॥

---

१०८

**ज्ञानलेशादिति** ॥१॥ दम्भः दम्भमूर्तिः ॥ २ ॥ त्वद्विनेता तव शिक्षकः ॥ ५॥ अग्रः अग्र्यः ॥ १४ ॥ अन्यस्य ज्ञानं धर्मप्रभावं धर्मस्य फलम् । युवयोर्ज्ञानं तु पापस्य विधातृरूपं पापोत्पत्तिहेतु ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां हंसडिम्भकोपाख्याने टीकायामष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

**ततः क्रुद्ध इति** ॥ १ ॥

१ ख. °यः परो वि° ।

पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः
कुर्वन्निव तदा लोकान्भस्मभूतानिमान्नृप॥ २
ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन्सौम्येनान्येन केवलम्।
उवाच वचनं राजन्ध्वंसत ध्वंसतेति च ॥ ३
इतो गच्छत राजानौ किं विलम्बत मा चिरम्
न वां वचनसंभूतं रोषं धारयितुं क्षमे ॥ ४
अन्यथा वो महीपालान्सर्वान्दग्धुमहं क्षमः।
किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्पुरः॥
दर्पं वां लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः।
व्यपनेष्यति मन्दज्ञौ किं वो वक्ष्यामि सांप्रतम्
तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद्यतीश्वरः।
ततो निषेद्धुं हंसस्तं यतते स्म यतीश्वरम् ॥ ७
तस्य बाहुं समादाय हंसो नृपवरोत्तमः।
कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम ॥८
यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः।
कष्टं हेति वदन्विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥ ९
न्यवारयद्यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति।
दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः॥
मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च।
शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ॥
तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम्।
यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपनेष्यति।
लोके तस्मिन्यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पतौ ॥१३
युवयोः सर्वथा जीवः सञ्जीव इति मे मतिः।
जरासन्धोऽपि वां बंधुः स च वक्तुं न चेच्छति
ईदृशं लोकविद्विष्टं स हि धर्मपथे सदा।
एतावता स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति॥
विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः।
श्रुत्वेदं घोररूपं तु स हि बन्धुः सहेत चेत्॥१६
धर्मनाशो भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा।
इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः
जनार्दनमुवाचेदं दुर्वासा यतिसत्तमः।
स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्दने॥
संगतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः।
अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेवः सदा भवान्॥
न हि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि
गच्छ सर्वं पितुर्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्तं यथाखिलम्॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासोभाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

## यतीनां द्वारकागमनम्।

## ११०

वैशम्पायन उवाच।

ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ। शिक्यं कमण्डलुं चैव द्विदलं दारुमेव च ॥१॥

---

ब्राह्मणं जनार्दनम्। इतरान् स्वीयान्प्रति ध्वंसत। इतः शीघ्रं प्रस्थानं कुर्वन्त्विति वचनम् उवाचेत्यर्थः ॥ ३ ॥ तदाह-**इतो गच्छतेति**। भो राजानावित्यादिवाक्यान्तम् ॥ ४ ॥ मन्दज्ञौ मन्दफलं गार्हस्थ्यमेव जानन्तौ ॥ ६ ॥ गन्तुं देशान्तरं निषेद्धुं संन्यासधर्मादपाक्रष्टुम् ॥ ७ ॥ हा इतीति च्छेदः ॥ ९ ॥ युवयोः वां सञ्जीवः सादिति मृत्युना स्वर्गमलाभादिति भावः ॥ १४ ॥ एतावता संन्यासिद्रोहेण जरासन्धो बन्धुत्वं युवयोस्त्यक्ष्यतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ वां युवाभ्याम् ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासोभाषणं नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

---

११०

**ततस्ताविति**। द्विदलं दारु-गोकर्णाकारं भोजनपात्रम्। दारुमिति पुंस्त्वमार्षम् ॥ १ ॥

दंडान्पात्रविशेषांश्च छित्त्वा भित्त्वा च सर्वशः
तस्मिन्देशे महाराज व्याधैर्मांसान्यदीदहन् ॥
भक्षयित्वा ततो देशात्स्वपुरीं तौ प्रजग्मतुः ।
जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुययौ तयोः ॥३
नष्टाविमाविति तदा स मेने दुःखितः परम् ।
गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तमः ॥ ४
पलायनपरान्सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान् ।
इतो देशाद्विनिर्गत्य पुष्करात्पुण्यसंयुतात् ॥ ५
मन्दं मन्दं समाश्वस्य विश्रम्य च ततस्ततः ।
प्रविश्य द्वारकां देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ६
दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः ।
स हि रक्षञ्जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः ॥
आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यतात्मा तत्त्वविित्प्रियः
उद्धृत्य कण्टकान्सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम्
स च पापान्महाघोरान्सर्वान्पापकृतान्प्रभुः ।
रक्षेन्नः सकलान्सर्वाञ्ज्ञानेषु नियतात्मनः ।

इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम् ।
साहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमाः
एतत्सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम् ।
तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ॥
छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा
द्विदलं कर्पटं चैव कौपीनमथ वल्कलम् १२
कमण्डलुं तथा राजन्नर्धप्रोतकपालकम् ।
एतानन्यान्समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः ॥ १३
पञ्च चैव सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनीन् ।
दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मसंभवम् १४
अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् ।
ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशाः केशवर्जिताः
प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः
स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा १६
द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं कण्टकोद्धृतितत्परम् ।
एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम् १७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतीनां द्वारकागमने दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## श्रीकृष्णं प्रति दुर्वाससो वाक्यम् ।

### १११

वैशम्पायन उवाच ।
अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिंजल्कलोचनः
श्यामः पीताम्बरः श्रीमान्प्रलम्बाम्बरभूषणः
किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्धजः
अव्यक्तः शाश्वतो देवः सकलो निष्कलः शिवः

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः ।
कुमारैरपरैः सार्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप ॥ ३
गोलक्रीडां सुधर्मायां मध्ये यादवसत्तमः ।
चकार प्रियकृत्कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥ ४

---

पात्रविशेषान् शालग्रामसंपुटादीन् ॥ २ ॥ पापकृतान्पापजन्मभाजः ज्ञानेषु ज्ञानसाधनेषु अमानित्वादिषु ॥ ९ ॥ यानं प्रयाणम् ॥१०॥ कर्पटं काषायवासः ॥१२॥ अर्धप्रोतकपालकम् अलाबूफलस्य मूलादप्रान्तं द्विधा कृतस्यैकदेशः ॥१३॥ लोमशाः गलादधः केशवर्जिताः उपरि केशवर्जिता वा ॥१५ ॥ एकरूपं मुख्यविग्रहं श्रीकृष्णम् ॥१७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

११०

अथेति । पद्मकिंजल्कलोचनः किंजल्कपदं तद्वत्त्वात्पत्रेऽत्र ज्ञेयं तेन पद्मपत्रनेत्र इत्यर्थः ॥ १ ॥ गोलक्रीडां गोलाकारैरक्षैर्द्यूतक्रीडाम् ॥ ४ ॥

ममायं प्रथमो गोलस्तव पश्चाद्भविष्यति ।
इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः
पार्श्वस्था यादवास्तस्य वासुदेवपुरोगमाः ।
उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदत्र वै ॥ ६
अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः ।
विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥ ७
मध्यंदिने महाविष्णुः शैनेयेन सहाच्युतः ।
विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत्स यादवः ८
द्वास्थेन वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः
इदमन्तरमित्येव विविशुस्तां सभां नृप ॥ ९
यतयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम् ।
दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादवेश्वरम् ॥१०
गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम् ।
पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम् ॥
एकेनाक्ष्णा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम् ।
यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः ॥ १२
वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षं सात्यकिर्बलभद्रकः ।
वसुदेवस्तथाऽक्रूर उग्रसेनस्तथा नृप ॥ १३
अन्ये च यादवाः सर्वे संभ्रमं प्रतिपेदिरे ।
इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन् १४
पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्तं जगत्त्रयम् ।
अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् १५
अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम् ।
अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम् १६
नेत्रोत्थितमहावह्निं प्रेक्षन्तं यादवेश्वरम् ।
दुर्वाससं ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमाः ॥१७
किं करिष्यत्यसौ क्रुद्धः किं वा वक्ष्यति नः प्रभुः
इति प्राञ्जलयः सर्वे यादवाः प्रतिपेदिरे ॥ १८
इदमासनमित्येवं किंचिदूचुश्च वृष्णयः ।
ततः कृष्णो हृषीकेशः किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुरः
इदमासनमित्येवं
स्थीयतामिह निर्वृतः ।
अहमद्य स्थितो विप्र
किं करोऽस्मीति चाब्रवीत् ॥ २०
ततः किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रहः

आसने संस्थिते तस्मिन्यतयो वीतमत्सराः
आसनानि यथायोगं भेजिरे निर्वृताः किल ।
अर्घ्यादिसमुदाचारं चक्रे कृष्णः किरीटभृत् ॥
आह भूयो हृषीकेशो यतिं दुर्वाससं प्रभुम् ।
किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन्प्रत्यागमो हि वः
दृष्टं वा ह्यथवा किंचित्कारणं चास्ति वो महत्
संन्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यूयं विगतकल्मषाः ॥
निःस्पृहाश्च सदा यूयमस्मत्तो द्विजपुङ्गवाः ।
प्राप्यं नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यतः
स्पृहाप्रेरितकर्माणः क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः
निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न दृश्यते २६
न जाने कारणं ब्रह्मन्युष्मदागमनं प्रति ।
एतावता चानुमेयं किंचित्कारणमस्ति वै २७
तद्ब्रूहि यदि विप्रेत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम्
इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥२८
तस्यापि राजन्विप्रस्य भूयः कोपो महानभूत्
तस्मादभ्यधिकः पूर्वात्कोपः संजायते महान्
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन्भक्षयन्निव पश्यतः ।
रोषरक्तेक्षणः क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव ॥ ३०
उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः
न जाने इति कस्मात्त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर ॥३१
जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे ।
पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥ ३२
यथाहि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान् ।
निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते ॥ ३३
सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तवैतत्परमं पदम् ।
यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाता वयं पुरा ॥
यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत्परमं पदम् ।
यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥
पुराविदोऽथ विश्वेश तदेतत्परमं वपुः ।
कर्मणा प्राप्यते यत्तु यत्स्तुत्वा निर्वृता वयम्॥
प्रत्यक्षमपि यद्रूपं नैव जानन्ति मानुषाः ।
न हि मूढधियो देव न वयं तादृशा हरे ॥ ३७
न जाने इति यद्ब्रूषे किमतः साहसं वचः ।
ये हि मूलं विजानन्ति तेषां तु प्रविवेचनम् ॥

---

विविशुस्तापसा इति शेषः ॥९॥ ह्लादयन्तं मुनीन् । गोलकं पश्यन्तम् ॥१२॥ हंसेन राज्ञा आसादितकल्मषं प्रापितदुःखम् ॥१६॥ अस्मिन् स्थाने ॥२३॥ किंचिद्दृष्टं वा द्वयम् उभयत्र यथाक्रमं योज्यम् ॥२४॥ पश्यतः पुरुषान् ॥३०॥ निगूहसे आत्मानम् । नोऽस्मान्प्रति ॥ ३३ ॥ ज्ञाताः ज्ञानवन्तः ॥ ३४ ॥ प्रविवेचनं विचारम् ॥३८॥

कुर्वतः किं फलं देव तव केशिनिषूदन ।
वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते ॥ ३९
ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः ।
पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेदं वपुः प्रभो ॥
वेदैर्यद्गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै ।
तदेवेदं विजानेऽहं रूपमैश्वरमेव च ॥ ४१
वैष्णवं परमं तेज इति वेदेषु पठ्यते ।
अवगच्छाम्यहं विष्णो तदेवेदं वपुस्तव ॥ ४२
य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते ।
स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद
परोक्षं यदि किंचित्स्यात्तव वक्तुं प्रयुज्यते ।
न जाने इति गोविन्द मा वादीः साहसं हरे ॥
विश्वं यदा प्रादुरासीद्यस्मिँल्लीनं क्षये सति ।
इदं तदैश्वरं तेजस्त्ववगच्छामि केशव ॥ ४५
कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि ।
यद्यद्रूपं स्मरेन्नित्यं तत्तदेवासि मे हृदि ४६
वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः
तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥
आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः
तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो
पृथिवी विष्णुरित्येतत्कदाचिद्धीयते मतिः ।
तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम ॥
रसोऽग्र्य देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया ।
तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो
यदा त्वां तेज इत्येवं स्मर्ता स्यां पुरुषोत्तम ।
तदा तद्रूपसंपन्नः प्रतिभासि सदा हृदि ५१
चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपुः ।
निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव ।
यदा सौरं वपुरिति स्मर्ता स्यां जगतीपते ।
तदा तद्भावनायोगात्सूर्य एव विराजसे ॥ ५३
तस्मात्सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी ।
अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन ॥
इत्यर्थे संस्थितो विष्णो पीडां नो नैव चिन्त्यसे
अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः
ईदृशीयमवस्था नो नैतां स्मरसि केशव ।
एतत्पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥ ५६
मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो
कौचित्क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगर्वितौ ॥
नाम्ना हंसडिम्भकौ च बाधेते नो जनार्दन ।
गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥
इतस्ततश्च धावन्तौ वदन्तौ बहु किल्बिषम् ।
अयुक्तं बहु भाषन्तौ धर्षयन्तौ च नः सदा ॥
इदमन्यत्कृतं देव असह्यं पापमुच्यते ।
पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः॥ ६०
शिक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान्वेणुकान्बहून् ।
इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥ ६१
कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकं महद्धनम् ।
कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥ ६२
त्वं तु नो रक्षसे नित्यं क्षात्रं वै व्रतमास्थितः ।
चित्रं चित्रमिदं देव रक्षस्यसि सदानिशम् ॥

किं करिष्यामि मन्दात्मा
मन्दभाग्या वयं विभो ।
किन्नः शरणमद्यैव
तद्ब्रूहि जगतां पते ॥ ६४

जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः
न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः
अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृप ।
न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः
न चभीष्मो न वा राजा बाह्लीको भीमविक्रमः
यो हि वीरो जरासन्धः क्षत्रियाणां भयंकरः
नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः ।
तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसङ्गिनोः ॥
तस्मात्त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान्प्रभो
अन्यथा रक्षसीत्येवं व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते॥
बहुनात्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् ।
इत्युक्त्वा विररामैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासःसमागमे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

यद्यदिति । यत्र वस्तुनि धारणा क्रियते तत्रैवाविर्भवसीत्यर्थः ॥ ४६ ॥ तदेवाह—वायुरित्यादि ॥ ४७ ॥ चिन्त्यसे चिन्तयसे । अकारलोप आर्षः ॥ ५५ ॥ त्वं सदा असि रक्षसि च अथाप्येतत् चित्रम् आश्चर्यं यदस्माकमीदृशी अवस्थेति ॥ ६३ ॥ जरासन्धोऽपि तयोः पुरः स्थातुं न शक्त इति द्वयोः सम्बन्धः ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

१ ख. °सोऽयं दे° ।

# कृष्णस्य हंसडिम्भकवधप्रतिज्ञा, यतिभोजनं च ।

## ११२

वैशम्पायन उवाच ।
यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशवः ।
दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः ॥ १
क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एव ममैव हि ।
शृणु वाक्यं ममैतत्तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव ॥
जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च ।
गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा
यमो वा वरुणो वापि ब्रह्मा वाथ चतुर्मुखः ।
सबलौ सानुजौ हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम्
सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव ।
रक्षां वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ
जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ
श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति ६
अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ ।
नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासन्धहितैषिणौ ॥ ७
प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येव न संशयः ।
जरासन्धो महीपालो विना तौ जयते महीम्
जये तयोर्विप्रवर्य
तत्र श्रेयो भवेत्ततः ।
यत्र यत्र तु तौ गत्वा
स्थिताविन्त्यनुशुश्रुम ॥ ९
तत्र तत्र च हन्ताऽहं नात्र कार्या विचारणा
गच्छध्वं यतयः स्वैरं निजकार्यपरायणाः १०
अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवौ ।
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह सः
स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगतां स्वस्ति कुर्वते
किन्नु नाम जगन्नाथ दुःसाध्यं तव केशव ॥
त्रिलोकेश त्रिधामासि सर्वसंहारकारकः ।
देवानामपि देवेश सर्वत्र समदर्शनः १३
विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये ।
नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च १४
शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल ।
अज्ञानादथवा ज्ञानाद्यन्मयोक्तं क्षमस्व तत् ॥
त्वमेवाहं जगन्नाथ नावयोरन्तरं पृथक् ।
अतः क्षमस्व भगवन्क्षमासारा हि साधवः १६
श्रीभगवानुवाच ।
क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा
संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां परं बलम्
क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज ।
क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः
क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥
प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः ।
य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाऽद्य वै २०
भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि
तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन्हरेर्गृहे २१
ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।
चतुर्विधं तथाहारं कारयित्वा यथाविधि २२
भोजयामास तान्सर्वान्यतीन्यतिवरार्चितः ।
छित्त्वाछित्त्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः
ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय ।
ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः २४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतिभोजने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

---

११२

यतेरिति ॥ १ ॥ भोक्तव्याः भोजनीयाः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

## हंसडिम्भकयोर्दूतप्रेषणम् ।

## ११३

वैशम्पायन उवाच ।

दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना।
चिन्तयन्ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥ १
भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासममन्यत।
ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन्काले महीपतिम्
ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् ।
प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनसंसदि ३
राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः ।
अस्मिन्मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये ॥ ४
आवां तेऽद्य महाराज दिशां विजयतत्परौ ।
यातिष्यावो बलैः सार्धं गजैरश्वैरथैरपि ॥ ५
संभारा यज्ञसिद्ध्यर्थमानेतव्या नृपोत्तम ।
तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत्तदा ६
जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ ।
अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ७
शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान्
आयुष्मन्साहसं कर्तुमुद्यतोऽसि नृपोत्तम ॥ ८
स्थिते भीष्मे जरासन्धे बाह्लीके च नृपोत्तमे।
किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम॥ ९
भीष्मो हि बलवान्वृद्धः सत्यसंधो जितेन्द्रियः
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः॥
तं युद्धे जितवान्भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
जरासन्धस्य यद्वीर्यं तद्भवान्वेत्ति संयुगे ॥
वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा ॥
जरासंधेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः ।
प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन्नृपोत्तमः ॥
बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद्बली ।
लोकानिमान्समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥
तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ।
तथाऽन्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिता
अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह ।
दुर्वासा यतिभिः सार्धं गतो द्रष्टुं स केशवम्
इति श्रुतं नृपश्रेष्ठ
ब्राह्मणाद्वोक्तुमागतात् ।
तथा सति यथा सिद्ध्ये-
त्तथा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः ॥ १७
ततः पश्चाद्विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम् ।

हंस उवाच ।

को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा
आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः
यादवा इति चित्रं नः शक्ताः स्थातुं रणे द्विज
कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः ।
शैनेयश्चापि विप्रेन्द्र स्थातुं न इति चिन्तय ॥
जरासन्धस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम ।
गच्छ विप्र यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात्त्वरन् ॥ २१
दीयतां करसर्वस्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु ।
लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥
आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम्
इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः ॥ २३
न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे।
मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः
इति संचोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत ।
मित्रभावात्तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय ॥२५
जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः ।
अद्य श्वो वा परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः
देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शङ्ख-चक्र-गदाधरम् ।
एक एव च धर्मात्मा हयमारुह्य सत्वरम्॥२७
प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः ।
हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन्द्विजः॥२८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

---

११३

दुर्वास इति ॥ १ ॥ जनार्दनः ऋषिपुत्रः ॥७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

# जनार्दनाख्यदूतस्य द्वारावतीप्रयाणम् ।

## ११४

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः
हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरितं स ययौ नृप ॥ १
यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः ।
पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरितं तत्पिपासया ॥
धावत्येव तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः ।
गच्छन्स चिन्तयामास चोदयन्हयमुत्तमम् ॥३
हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात्प्रियहितं मम ।
तथाहि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यहं प्रभुम् ॥ ४
अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको न हि ।
यतो द्रक्ष्याम्यहं विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ५
सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम् ।
कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी ॥ ६
मुखमुन्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम् ।
द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिणः शार्ङ्गधन्वनः ॥ ७
वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदलच्छविः ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥ ८
नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ।
पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदुःखोऽस्मि निर्वृतः

अपि द्रक्ष्यति योगात्मा
सौम्येनैव स्वचक्षुषा ।
अपि वा मत्प्रियं ब्रूया-
त्स्वास्ति चेति च वा वदेत् ॥

द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म तत्त्रैलोक्यसन्निभम् ।
पादाब्जं चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः ॥
वक्षःस्थलं सदा विष्णोः स्फुरद्रत्नप्रभायुतम् ।
पश्यन्निव च गच्छामि स्मरंश्चानिशमीश्वरम् ॥
पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् ।
ईषत्स्मिताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥
स्मरतश्च हरे रूपं रोमहर्षोऽयमीदृशः ।
गच्छतश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान् ॥
यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः ।
एषोऽयमिति मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥
इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति मद्वचः ।
इदं तत्साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः ॥ १६
हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः
तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताऽहं किल निर्दयः
मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन् ।
करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥ १८
लवणानि बहून्याशु दातव्यानि करात्मना ।
इति वक्तुं न मे युक्तं पुरतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥
तथापि मित्रभावात्तु वक्तव्यं घोरमीदृशम् ।
कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम्
अथवा सर्वविद्विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।
जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ॥
तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम् ।
सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे ॥ २२
द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्धजम् ।
कम्बुग्रीवधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम्
स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम् ।
द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥
अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ।
आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥
कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः ।
अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद्दृष्टवतो हरिम् ॥
अद्य मे सफला यज्ञाः साक्षात्कृतवतो हरिम् ।
नेत्रे मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्मयम् ॥
प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मणः ।
उन्मिषन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम् २८
आमूलमसकृद्विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ।
पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥
धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम् ।
ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गो हि तद्रजः ॥
मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम् ।
पादाब्जं चक्रिणो विष्णोःपश्यामि च जगत्पतेः

---

११४

तत इति ॥१॥ वर्ष्म वपु ॥११॥ यतस्य मे यतन्तं माम् ॥ २२ ॥ जगति रक्षा यस्मात्तं जगद्रक्षम् ॥ २५ ॥

पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ।
हरेरिदं जगद्रूपं पश्यामीव च सर्वतः ॥ ३२
प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः ।
आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ॥ ३३
स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् ।
सव्ये द्योतन्महाशंखं रश्मिजालविराजितम् ॥
प्रोद्यद्भास्करवर्णाभं चक्रज्वालाविराजितम् ।
प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुतं तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् ३५
पीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कमच्युतम् ।
कदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवाऽन्यदा ॥
सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्वपुर्द्रष्टुमुद्यतः ।
नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टुमहं हरिम् ॥
उद्यतोऽस्मि जगन्नाथं बलभद्रकृतास्पदम् ।
द्रक्ष्याम्यवश्यमद्यैव जिष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम् ॥

श्रीकौस्तुभोद्भवरुचिं स्फुरितोरुवक्षः
पीताम्बरं मकरकुण्डलपङ्कजाक्षम् ।
कृष्णं किरीटवरचक्रगदोध्वहस्तं
तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै ॥ ३९
वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे
निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने ।
उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्यं
नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि वाद्य ॥
ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं
स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम् ।
ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्य-
मक्ष्णोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम्
चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारवतीं पुरीम्
मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन्हयमुत्तमम् ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

## दूतस्य संदेशनिवेदनम् ।

## ११५

वैशम्पायन उवाच ।

स निवेदितसर्वस्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः
अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः॥
अपश्यद्देवदेवेशं सुधर्माकृतिसंस्थितम् ।
बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम् ॥ २
अग्रतःस्थितशैनेयं पार्श्वतः स्थितनारदम् ।
दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥ ३
गायद्गन्धर्वमुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः ।
सेव्यमानं महाराज सूतमागधबन्दिभिः ॥ ४
उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम् ।
उद्गीयमानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम् ।
दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छविः ॥ ५
नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः
बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ६
दूतोऽस्मि देवदेवेश हंसस्य डिम्भकस्य च ।
इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः ॥ ७
आस्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद्ब्रूहि प्रयोजनम् ।
तथेति चाब्रवीद्विप्रो महदासनमास्थितः ॥८
वाचा संपूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत्कुशलं हरिः ।
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च ॥९
श्रुतं चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज ।
अपि वा कुशलं विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥१०

---

प्रपिबामि सादरं पश्यामि ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे नैलकण्ठीये चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

११५

स इति। सः निवेदितम् ईश्वरेऽर्पितं सर्वस्वं येन तादृशो द्वाःस्थेन द्वारा प्रविश्य सुधर्मां सभाम् अपश्यत् ॥ १ ॥ सुधर्मः योगधर्मो साक्षात्तदाकारेण संस्थितिः संस्थानं यस्य तं सुधर्माकृतिसंस्थितम् ॥ २ ॥

जनार्दन उवाच ।
कुशलं ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव ।
तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ ११
श्रीभगवानुवाच ।
किमाहतुर्महीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ ।
ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शङ्का द्विजोत्तम ॥ १२
वाच्यं वाऽप्यथवाऽवाच्यं कर्तव्यमथ चेतरत्
श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूपं द्विजोत्तम ॥
दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना
यत्कर्मकारानिर्दिष्टं तद्वाच्यं दूतजन्मना ॥ १४
नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च ।
अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन ॥
केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः ।
अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥
न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत ।
सर्वं हि मनसा पश्यन्किं त्वमात्थ वदेति माम्
विद्वद्भिर्गीयसे विष्णो त्वमेव जगतीपते ।
इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥ १८
त्वमेवेदं जगत्सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति ।
न त्वया रहितो लोकः पदार्थः सचराचरः ॥
नास्ति किंचिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते ।
त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत् ॥
रक्षिताऽसि सदा विष्णुःसर्वलोकस्य माधव ।
संसारस्य भवान्स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेतिमाम्
विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव ।
प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥२२
शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ।
तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्थ वदेति माम् ।
तथापि शृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया ।
वदेत्यसकृदेवैतत्तस्माद्वक्ष्यामि माधव ॥ २४

राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते ।
तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च ॥२५
करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि ।
लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव ॥ २६
इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया ।
इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं शृणु जगत्पते ॥ २७
लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान् ।
आगच्छतु तयो राज्ञोः सेयं केशव वाग्विभो ॥
इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे दूते तत्र तयोर्नृप ।
प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः ॥२९
शृणु दूत वचो मह्यं युक्तमुक्तं द्विजोत्तम ।
करं ददामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृप ॥
धाष्टर्यमेतत्तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रहः ॥
अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यं तयोः क्षत्रियबीजयोः
इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रहः ।
इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादवान् ॥
हास्यमेतद्यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रहः ।
यष्टाऽसौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥३३
तौ तु याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च ।
वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मनः
करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः
हास्यं हास्यमिदं भूयः शृणुध्वं यादवा वचः ॥
इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः
यादवाः सर्व एवैते हासाय समवस्थिताः ॥
करदः कृष्ण इत्येवं ब्रुवन्तः सर्वसात्वताः ।
हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्वा परस्परम् ॥ ३७
तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत् ।
स च विप्रो नृपश्रेष्ठ नन्दयन्मित्रमात्मनः ॥ ३८
अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत्कृतवानहम् ।
इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने वासुदेववाक्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

---

इति श्रीनीलकण्ठकृतौ भारतभावदीपे खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने वासुदेववाक्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

## श्रीकृष्णस्य प्रतिसंदेशः ।

### ११६

वैशम्पायन उवाच

हासं कुर्वत्सु तेष्वेवं केशवः केशिसूदनः ।
उवाच वचनं दूतं गच्छ मद्वचनाद्द्विज ॥ १
तावित्थं हंसडिम्भकौ
ब्रूहि त्वरितविक्रमः ।
बाणैर्दास्यामि निशितैः
शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ २
असिना वाथ दास्यामि निशितेन महात्मनोः
शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम् ॥
यो वरं दत्तवान्रुद्रो
युवयोर्धार्ष्ट्यकारणम् ।
स एव रक्षिता वां स्या-
त्तं जित्वा वां निहन्म्यहम् ॥ ४
देशो यं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत् ।
तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः॥५
भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ ।
पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ६
तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा ।
अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ॥ ७
न शक्यं यत्त्वया वक्तुं
तच्च वक्ष्यति सात्यकिः ।
त्वया सह ततो गत्वा
साक्षिभूतो भव द्विज ॥ ८
इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मम सदा त्वयि[1] ।
तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले ।
मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन ॥ ९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

## हंसवाक्यम् ।

### ११७

वैशम्पायन उवाच ।

इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः
गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्वचनात्तयोः ।
यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः ।
यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात्तदा ॥ २
धनुरादाय गच्छ त्वं बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥ ३
सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम्
गन्तुमैच्छत्ततो राजन्नसहायः स सात्यकिः
जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः ।
अहो धार्ष्ट्यमहो धार्ष्ट्यमित्युवाच जनार्दनः
नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम् ।
स ययौ शाल्वनगरं शैनेयेन समन्वितः ॥ ६
ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।
आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवे पुनः ॥ ७
आस्ते सुखं यदा विप्रः शैनेयेन समन्वितः
अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम् ८

---

११६

**हासमिति** ॥ १ ॥ युवयोः वां वां युवाम् ॥ ४ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७

**इतीति** ॥१॥ प्रविश्य गृहमिति शेषः । यादवे सात्य-किनिमित्तं पुनः आसनं विसृज्य समर्प्य ॥ ७ ॥
विप्रः जनार्दनः हंसडिम्भयोरन्यद्वारा आह ॥ ८ ॥

---

[1] ख. °खं सदा वि° ।

दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥९
श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ।
धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे शस्त्रे तथैव च॥ १०
निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम।
अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नौ विदधात्यसौ
कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः।
कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥१२
तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः।
ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः
अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम्
वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥ १४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवाक्ये सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

## सात्यकिवाक्यम्।

## ११८

वैशम्पायन उवाच।
इत्युक्तवति हंसे च धर्मात्माथ जनार्दनः।
उवाच प्रहसन्वीरः स्तुवन्नारायणं सदा॥ १
अद्राक्षमद्राक्षमहं जनार्दनं
हस्तस्थशंखं वरचक्रधारिणम्।
आतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गदं
स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम्॥ २
अद्राक्षमेनं यदुभिः पुरातनैः
संसेव्यमानं मुनिवृन्दमुख्यैः।
संस्तूयमानं प्रभुभिः समागधैः
स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम्॥ ३
अद्राक्षमेनं कविभिः पुरातनै-
र्विविच्य वेद्यं विधिवत्सहामरैः।
प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितं श्रिया
विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम्॥
भूयोऽहमद्राक्षमजं जगद्गुरुं
प्रमोदयन्तं वचनेन यादवान्।
निरूपयन्तं विधिवन्मुनीश्वरैः
प्रवृत्तवेदार्थविधिं पुरातनैः॥ ५
अद्राक्षमद्राक्षमहं पुनः पुनः
समस्तलोकैकहितैषिणं हरिम्।
वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय
जगन्मयं तान्परिभूय शत्रून्॥ ६
भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरै-
र्विक्रीड्यमानं च विहारकाले।
रमन्तमीड्यं रमयन्तमीश्वरा-
न्यदूत्तमान्यादवमुख्यमीश्वरम्॥ ७
भूयोऽप्यपश्यं सरसीरुहेक्षणं
समेतया भीष्मतनूजया हरिम्।
वसन्तमम्भोनिधिशायिनं विभुं
भक्तप्रियं भक्तजनास्पदं शिवम्॥ ८
अद्राक्षमद्राक्षमहं सुनिर्वृतः
पिबन्पिबंस्तस्य वपुः पुरातनम्।
नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं
धन्योऽहमस्मीति तदाऽभ्यचिन्तयम्९
अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं
प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम्।
आद्यं ककुद्मानमुरुं विभावसुं
संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः १०
अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम्।
वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां नीलकण्ठकृतौ भारतभावदीपे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

११८

इतीति॥१॥ विविच्य देहादिभिः पृथक्कृत्य॥४॥ भूयोऽप्यद्राक्ष मित्यनुषङ्गः॥७॥ मीलद्विवरेण आच्छिद्रेण॥९॥ ककुद्मानं माहात्म्यवन्तं विभावसुं भास्वन्तम्॥१०

युवां विद्वषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम् ।
स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्व चैवं क्व च वेत्ति कः ॥
क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ।
ध्यायन्तामित्थं देवेशं करे शत्रुवहं सदा ॥ १३
हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम् ।
वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे ॥ १४
ब्रह्मसूत्रपदां वाणीं दापयन्तं मुनीश्वरम् ।
दृष्ट्वाऽहं तं हरिं देवं पुनः पुनरचिन्तयम् ॥१५
असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम ।
नारब्धव्यमिदं कार्यमितःप्रभृति भूमिप ॥ १६
निवृत्ता सा कथा हंसाचिन्तयद्ग्रहणं तव ।
तद्वृत्तमखिलं सर्वं वदिष्यति हि सात्यकिः ।
एतद्वचनमाकर्ण्य हंसः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ ७

हंस उवाच ।

अरे ब्राह्मणदायाद का नाम तव वागियम्
आवयोः पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतोः
मायया त्वां भ्रामयति कृष्णो लीलाविधानवित्
तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव संजायते महान् ॥ १९
शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-वनमालाविभूषितम् ।
वृष्णिवीरं समावेश्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥
सूतमागधसंस्तावप्रकटद्वारबाहुकम् ।
अत्यद्भुतयशोराशिं विक्रमाल्लोकमण्डनम् ॥२१
चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसंमतम् ।
अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात्तस्य चक्रिणः ॥२२
इदानीं च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः ।
त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि या ॥
चापल्यमिदमेवैतत्तव विप्र भ्रमोद्भवम् ।
अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥
अहमेव त्वया विप्र मर्षये प्रोदितं वचः ।
सखिभावाद्द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम्
गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं सांप्रतं तव ।
द्विज गच्छ यथेष्टं त्वं पृथिवीं पृथिवी तव ॥२६
जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान्बहून् ।
एष नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान्
गच्छ गच्छेति विप्र त्वं धृष्टं परुषवादिनम् ।
शत्रुपक्षस्तुतिपरं सह युक्त्वा सदा मया ॥२८
न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि सर्वतः ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ।
भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह ।
किमब्रवीन्नन्दसुतः किं वाऽसौ मेऽदिशत्करम्

सात्यकिरुवाच ।

इदं सत्यं वचो हंस शङ्खचक्रगदाभृतः ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥
दास्यामि करसर्वस्वमसिना निशितेन ते ।
शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम्
धाष्टर्यं हि तव मन्दात्मन्किमतोऽपि नृपाधम
देवदेवाज्जगन्नाथात्करमिच्छति यो नृपः ३३
तस्यैष करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदो नराधम ।
तस्य शाङ्गरवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः ॥
को नाम जीवितं काङ्क्षेत्तिष्ठेदानीं त्वमद्य वै ।
गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥ ३५
सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः ।

प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः ३६
कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली ।
पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः ॥ ३७
सप्तमस्तारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः ।
अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा ॥ ३८
दशमश्चोद्धवो धीमान्वयमेते बलान्विताः ।

त एते पुरतो गोप्तुः शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ ३९
देवदेवस्य युद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवानिशम् ।
यौ हि वीरौ सुतौ तस्य नासत्यसदृशौ बले ।
तावेव वां क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ ।
यो गिरीशो गिरा देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति ॥
युवां द्विकिंबलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः ।
गृहीत्वा शत्रुभिः सार्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतौ ॥
ईदृशेष्वथ भृत्येषु युद्धं कुर्वत्सु शत्रुभिः ।
त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात्करमिच्छन्व्रजेत कः ॥

---

युवां स्मरन्तमद्राक्षमित्यन्वयः । क्व देशे तौ वर्तेते क्व च वा काले तौ द्रक्ष्यामीति स्मरन्तमित्यर्थः ॥ १२ ॥ कुतः केनोपायेन मत्पुरोगतौ तौ स्याताम् इति शेषः ॥ १३ ॥ दापयन्तं शिष्येभ्यः पाठयितुमनुज्ञां प्रयच्छन्तं मुनीश्वरं दुर्वाससम् ॥ १५ ॥ अचिन्तयमित्युक्त्वा स्वचिन्तनमेवाह—**असाध्यमिति**। इदं राजसूयाख्यं कर्म॥१६॥ सा कथा कृष्णात्करो ग्राह्य इति । इयं कृष्णप्रशंसात्मिका ॥ १७ ॥ एष भ्रमः आत्मस्वशक्ततावुद्धिः । माययेत्यादि- वाक्यं निन्दापरतया भासमानमपि वाग्देवताभिप्रायेण यथार्थमेव । स्पष्टमेव हि मायावित्वं चतुर्भुजादिकत्वं च भगवतः शास्त्रे इति दिक् ॥ १९ ॥

हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति ।
शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन केवलम् ॥४४
क नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः ।
पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्धने गिरौ ॥ ४५
मथुरायां प्रयागे वा दर्शयन्तो बलानि मे ।
शङ्खचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे ॥ ४६
राजसूयं महायज्ञं
कर्तुमिच्छति कः स्वयम् ।
वदन्वा स्वस्तिमान्मर्त्य
स्त्वां विना को व्रजेत्सुखम् ॥ * ४७
इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले ।
इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिवाक्ये अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## सात्यकिप्रतिप्रयाणम् ।

### ११९

वैशम्पायन उवाच ।
ततः क्रुद्धो महाराज हंसो डिम्भक एव च
इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥ १
दिधक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान्वीक्ष्य नृपोत्तमान्
करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत् ॥
क नु क वा नन्दसूनुः क वा रामो बलोत्कटः
इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥
अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः ।
इतो निर्गच्छ मन्दात्मन्दूतस्त्वमसि सांप्रतम्
अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन्परुषं वचः ।
सत्यं निर्लज्ज एवासि यद्ब्रूया ईदृशं वचः ५
आवामिदं जगत्सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ ।
को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥६
हत्वा गोपालकान्सर्वान्बद्ध्वा यादवकान्बहून्
गृह्णीमः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम ॥ ७
अवध्यो दूततां प्राप्तो बह्वबद्धं प्रभाषसे ।
ईश्वरो नौ वरं दाता ह्यस्त्राणामपि च प्रभुः ॥
रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ ।
पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे ॥
एते प्रोक्ता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते ।
हत्वा तान्सबलान्युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम् ॥
संहतैव्या महासेना प्रगृहीतशरासना ।
गृहीतप्रासमुशला गृहीतकवचा सदा ॥ ११
आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसंकुला ।
सुप्रभूतेन्धनवती प्रभूतबलसाधना ॥ १२
चाल्यतां वाहिनी घोरा बलाध्यक्षा समन्ततः
अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥
संग्रामः पुष्करेऽस्माकं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ।
ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च ।
ये त्वयोक्ता नृपाः संख्ये तेषामपि च यद्बलम् ॥
सात्यकिरुवाच
हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप
अद्यैव हि मया वध्यौ न चेद्दूतो भवाम्यहम् ॥
नहि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ ।
दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम् ॥
अन्यथाऽहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम्
स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन्वां नृपाधमौ ॥ १७

---

इति श्रीनीलकण्ठकृतौ भारतभावदीपे खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्यानेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

**ततः क्रुद्ध इति** ॥ १ ॥ क नु द्वौ कौ भ्रान्तत्वं सूचयतः । नन्दसूनुरिति गोपत्वव्यञ्जकम् ॥ ३ ॥ कः करदो नैव जीवति अपि तु सर्वः करदो जीवति । कृष्णयस्त्वकरदत्वान्न जीविष्यन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥ एतदेवाह— **हत्वेति** ॥ ७ ॥ न हि जीविष्यथेति शेषः ॥ १६ ॥

---

* 'इदं जाड्यमिदं मौढ्यमिदमत्यद्भुतं वचः' इति 'ग' पुस्तकेऽधिकः पाठः । १ ख. °च्चा एष ग° ।

शङ्खचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत् ।
नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥
स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान् ।
दैत्यदानवहन्ताऽसौ योगिध्येयः पुरातनः ॥
पद्मकिञ्जल्कनयनः[1] श्यामलः सिंहविक्रमः ।
सृष्टिस्थितिलयेष्वेकः कर्ता त्रिजगतो गुरुः ॥२०
शरेण निशितेनाजौ दर्पं वां व्यपनेष्यति ।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भको० सात्यकिप्रतिप्रयाणे एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

## श्रीकृष्णस्य पुष्करं प्रति गमनम् ।

## १२०

वैशम्पायन उवाच ।
प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुङ्गवः
आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथा वृत्तं तयोस्तथा १
ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः ।
बलाध्यक्षानुवाचेदं[2] चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ २
संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत् ।
अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥ ३
सध्वजं सपताकं च सालंकारपरिच्छदम् ।
ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वं चक्रुरधीनगाः ॥४
आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः ।
अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः ॥ ५
सात्यकिश्च तथा राजन्प्रगृहीतशरासनः ।
बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाग्रे महाबलः॥
अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः ।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः ॥ ७
हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह ।
शार्ङ्गभारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥ ८
चक्रपाणिस्तदा शंखी गदाशरवरासिमान्[3] ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः ॥९
पद्ममालावृतोरस्को नवजीमूतसन्निभः ।
ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितैः ॥
सूतैर्मागधपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः ।
आनीय सेनां सकलां ययौ काष्ठामथोत्तराम् ॥
पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः।
दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणां भयवर्धनम् ॥ १२
आध्मातस्तेन हरिणा स चक्रे शंखराड् ध्रुवम् ।
रवः स रोदसी राजन्पूरयामास सर्वतः ॥ १३
तस्मिञ्छंखे तथाऽऽध्माते दध्मुः शङ्खान्सहस्रशः
भेर्यश्चापि समाध्माता मृदङ्गा बहवो नृप ॥१४
नेदुरत्यर्थमतुलं घर्मान्ते जलदा यथा ।
अथाययुर्महाराज पुष्करं पुण्यवर्धनम् ॥ १५
सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमाः ।
प्रतीक्ष्य हंसडिम्भकौ युद्धाय समवास्थिताः
निवेशं कारयामासुर्यादवाः सर्व एव हि ।
स्वं स्वं ययुः सुखं राजन्प्रगृहीतकुटीमठम् १७
भगवानपि गोविन्दः सरो दृष्ट्वा सुशोभनम् ।
उपस्पृश्य जले तस्मिन्प्रणम्य यतिपुङ्गवान् ॥१८
तयोरागमनं लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम् ।
शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणानां समन्ततः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

**प्रविश्येति** ॥१॥ स शंखजः ॥१३॥ दध्मुः ध्मातवन्तः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

१ ख. °ल्कवदनः श्या° । २ ख. °दं कृतमङ्गलतत्परः । सं° । ३ ख. °दाशूलशरासि° ।

## उभयसैन्ययोः पुष्करतीर्थप्रवेशः ।

### १२१

वैशम्पायन उवाच ।
अथ तौ हंसडिम्भकौ जग्मतुः पुष्करं प्रति
प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप ॥ १
पुरःसरमहाभूतौ संहरन्ताविवोल्बणौ ।
प्रकुर्वन्तौ सिंहरवं भस्मना परिलेपितौ ॥ २
त्रिपुण्ड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ ।
अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसंहारकारकौ ॥
ततोऽनुजग्मुः शतशः सैन्यानि नृपसत्तम ।
अक्षौहिण्यो दशैवासंस्तयोरथ समागताः ॥४
विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसन्निभः ।
तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनोः ॥ ५
शक्रो यस्य पुरःसरः स्थातुं शक्तो न वज्रभृत् ।
यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥ ६
देवान्निघ्नंस्तथा राजन्देवेन्द्रमजयन्महान् ।
अकरोच्च पुरा युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ७
यो हि द्वारवतीं प्राप्य बबाधे यदुपुङ्गवान् ।
स तदानीं महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥८
अनेकशतसाहस्रैर्दानवैः परिघायुधैः ।
वृतः समभवद्दैत्यो वृष्णिद्वेषान्नृपोत्तम ॥ ९
हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्यं कर्तुमुद्यतः ।
विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥
अतीव मित्रतां यातो दद्यात्प्राणांश्च संयति ।
राक्षसैरपरैः सार्धं शिलाशूलासिपाणिभिः ॥
ययौ तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादपः ।
अष्टाशीति सहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन् ॥
अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः ।
तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशवं प्रति
मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः ।
अत्यद्भुतं महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम् ॥ १४
दैत्येन सहितौ तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति ।
तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशवमञ्जसा ॥ १५
ततः श्रुत्वा जरासन्धो विग्रहं यदुभिः सह
नाकरोन्नृपसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥ १६
गच्छतोः समितिं राजन्हंसस्य डिम्भकस्य च ।
अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति ॥
सिंहनादं विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम् ।
अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥ १८
इत्यब्रुवन्नृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति ।
संप्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्धनम् ॥
मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम् ।
अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥ २०
पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव किल्बिषच्छेदिनौ नृप ॥
पुष्करं पुण्डरीकाक्षौ द्वावेव नृपसत्तम ।
सेव्यमानौ मुनिश्रेष्ठैरमरैश्चैर्महात्मभिः ॥ २२
द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकौ ।
तावुभौ यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥२३
दृष्टवन्तौ हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम् ।
पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् २४
ताभ्यां कुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम ।
अहो निःशेषमभवत्तत्र भूयो न संशयः ॥ २५
सैन्यं तत्र च संप्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम् ।
अनेकभेरी-पणव-झर्झरी-डिण्डिमाकुलम् २६
नानापणवसंमिश्रं रक्षोनादविनादितम् ।
प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशांपते ।
दर्शयामास देवेशं युद्धाय समुपस्थितम् २७

---

१२१

**अथेति** ॥ १ ॥ पुरःसरौ च तौ महाभूतौ चेति विग्रहः ॥ २ ॥ पुरःसरः पुरोगामी । विसर्गलोपः पूर्वपदे आर्षः ॥ ६ ॥ यो हि पुरा वृतः समभवत्स एव विचक्रः तस्य विचक्रस्य वृतस्य मित्रतां यातो हिडिम्बो नाम राक्षसेश्वर इति योजना ॥ १० ॥ दैत्येन विचक्रेण तेन हिडिम्बेन ॥ १५ ॥ नृपसाहाय्यं हंसडिम्भकयोः सहाय्यं विग्रहमपि ताभ्यां सह च शापः परासक्तः परेण हन्तव्य इति शास्त्रातिक्रमजो दोषः ॥ १६ ॥ "**ताभ्यां कुरु नमस्कारम्**" इति वैशम्पायनदिव्यदृष्ट्या तमप्यर्थं वर्तमानवत्पश्यन् जनमेजयं प्रेरयति । जनमेजये तादृशं शब्दजन्य परोक्षं ज्ञानं संभावयन् कथामेवानुसंधत्ते—**सैन्यमिति** । सैन्यं कर्तृ । देवेशं दर्शयामास । अयं कृष्णोऽयं कृष्ण इत्यन्योन्यं दर्शयामासेत्यर्थः । द्वयोः संबन्धः ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि० हंसडिम्भ० युद्धार्थं हंसडिम्भसैन्यानां पुष्करागमने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

## संकुलयुद्धम् ।

### १२२

वैशम्पायन उवाच ।
द्वे सेने संगते राजन्सध्वजे सपरिच्छदे ।
महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले ॥ १
भेरीझर्झरसंपूर्णे डिण्डिमारावसंकुले ।
प्रगृहीतमहाशस्त्रे शूलासिवरकार्मुके ॥ २
परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम् ।
ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणाम् ॥
शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः ।
भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥
स्फुरन्तश्च तथा राजञ्छिरांस्याहत्य खं ययुः ।
परिघाश्च तथा राज्ञां बाहुभिः परिचोदिताः ॥
तिलशश्चक्रुरतुलं शरीरं नृपरक्षसाम् ।
दैत्यानां कुर्वतां नादमन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥
दैत्या रक्षांसि राजेन्द्र राजानश्च समन्ततः ।
अन्योन्यं परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥
शरैश्च भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबलाः ।
राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमाः ॥८
अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैर्महाशरैः ।
नागा नागैर्महाराज हया अश्वैः समन्ततः ॥
रथा रथैः समाजग्मुः सादिनः सादिभिस्तथा ।
पट्टिशासिशरव्रातैः कुन्तैः सायककर्षणैः ॥१०
सशक्ति-परिघ-प्रास-परश्वध-समाकुलैः ।
भिन्दिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ११
अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैः शिलाशितैः
राक्षसा दानवा राजन्क्षत्रियाश्च समन्ततः ।
इतश्चेतश्च धावन्तः कुर्वन्तो विस्वरं रवम् ॥
हताः केचिन्महाराज पेतुरुर्व्यां महासिभिः ।
केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥
भिन्नग्रीवा महाराज परिघैः परिघायुधैः ।
यमराष्ट्रं गताः केचित्केचित्स्वर्गं समाययुः ॥
अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वकलेवरम् ।
केचित्स्वांश्च परांश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन् ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजञ्छङ्खा भेर्यः सहस्रशः ।
सस्वनुः सर्वतः सैन्ये मृदङ्गा बहवस्तथा ॥
मध्यंदिनगते सूर्ये तापं दधाति घोरवत् ।
ततः पिशाचा विकृताःकरालविततोदराः॥१७
राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाद्वलम् ।
मुदिता भक्षयामासुः पिबन्तः शोणितं बहु ॥
संचितानि शवान्यासन्कबन्धाः खड्गपातिताः
विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवाशिनः ॥
अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे ।
तुण्डैः शवान्विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्ततः॥
सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम ।
त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता हयसत्तमाः ॥ २१
हतं लक्षं महाराज
रथानां रथिभिः सह ।
त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र
सादिनः सायुधा भृशम् ॥ २२
मध्यंदिनगते सूर्ये हताः केचन निर्गताः ।
केचिच्च तृषिता राजन्विविशुः पुष्करं सरः ॥
केचिद्भूमिं समालिङ्ग्य भीता इत्यब्रुवन्रणे ।
मुक्तकेशाः पतन्ति स्म रथान्संत्यज्य केचन ॥
संदष्टौष्ठपुटाः केचित्सादिनः पुरतो हताः ।
अत्यद्भुतं महायुद्धमासीत्पुष्करतीर्थके ।
यथा देवासुरं युद्धमासीत्पूर्वं नृपोत्तम ॥ २५

---

॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

१२२

द्वे इति ॥ १ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने संकुलयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## विचक्रवधः ।

### १२३

वैशम्पायन उवाच ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ।
विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥१
बलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुरुषादकः ॥ २
शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनगाः ।
वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ३
शरैर्निशितधाराग्रैर्विस्मयं दर्शयन्रणे ।
दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च ॥ ४
शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम् ।
जघान स्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः ॥ ५
तेन विद्धोऽथ भगवान्वक्षोदेशे जनार्दनः ।
अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः ६
ततः क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरप्रेणाहनद्ध्वजम् ।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथिं च शरैस्त्रिभिः७
ततो दध्मौ महाशङ्खं यथा तारामये रणे ।
रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोधमूर्च्छितः ८
गदां गृह्य महाघोरां दुःसहां वीर्यशालिनीम्
तया जघान दैत्येन्द्रः किरीटे केशवस्य ह ॥ ९
ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंहनादं व्यनीनदत् ।
ततः शिलां च महतीं प्रगृह्य दनुजः किल १०
भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत्केशवोरसि ।
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशवः ११
जघान च तया दैत्यं स पपातार्दितः क्षितौ ।
गतासुरिव संजज्ञे श्वसन्निव पपात ह ॥ १२
प्राप्य संज्ञां ततो दैत्यः क्रोधाद्द्विगुणमाबभौ
आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥ १३
अनेन तव गोविन्द दर्पजातं निहन्म्यहम्
विक्रमज्ञस्तदा चासि मम देवासुरे रणे ॥ १४
तावेव विपुलौ बाहू स एवास्मि जनार्दन ।
तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम्
वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनिःसृतम् ।
इत्युक्त्वा देवदेवेशं शङ्ख-चक्र-गदा-धरम् ।
चिक्षेप दैत्यो लोकेशं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥
तं गृह्य बाहुना कृष्णो हतोऽसीति वदन् हरिः
खण्डशः कारयामास खड्गेन निशितेन ह १७
उत्पाट्य वृक्षं दैत्येशः शतशाखं महाशिखम्
तेन संपोथयामास विष्टरश्रवसं विभुम् ॥ १८
छित्वा तं चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह
विक्रीड्य सुचिरं विष्णुस्तेन दैत्येन माधवः ॥
हन्तुमैच्छत्तदा दैत्यमादाय निशितं शरम् ।
आग्नेयास्त्रेण संयोज्य जघानैनं महान् हरिः ॥
संदह्य स शरो दैत्यं सर्वलोकस्य पश्यतः ।
यथापूर्वं जगामाशु करं भगवतः पुनः ॥ २१
हतशिष्टास्ततो दैत्याः पलायन्तो दिशो दश
अद्यापि न निवर्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम्

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

१२३

**एतस्मिन्निति** ॥ १ ॥ तारामये बृहस्पतिभार्याप्रधाने, तन्निमित्त इत्यर्थः ॥ ८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

## हंसबलभद्रयोर्युद्धम् ।

### १२४

वैशम्पायन उवाच ।

बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम् ।
जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वरः ॥ १
तं प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः ।
तानन्तरे हली छित्त्वा नाराचैर्दशभिः पुनः २
नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा ।
दृढं पतन्स नाराचस्तस्य संज्ञां समाददे ।
रथोपस्थे चिरं स्थित्वा तूणाद्वाणं समाददे ३
लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्ध्वा तेन यदूत्तमम्
सिंहवन्ननदद्धंसो देवान्विस्मापयन्रणे ॥ ४
ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः ।
वमञ्छोणितमत्युष्णं विश्वसंश्च रणाजिरे ॥ ५
लोहिताविष्टगात्रस्तु कुङ्कुमार्द्र इवाभवत् ।
नाराचैः शतसाहस्रैरर्दयामास माधवः ॥ ६
हंसं हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः ।
ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुवाजिनः
रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणीद्वये नृप ।
पतिताः सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा ददुः
ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः ।
शरेण हालिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित्
शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपं ददौ ।
ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे १०
आपपात महाबाहुर्हंसं शेष इव श्वसन् ।
तया रथं ध्वजं चक्रमश्वान्सूतं हलायुधः ।
बभञ्ज तिलशः सर्वं ननाद च पुनः पुनः ॥ ११
भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल ।
सोऽपि हंसो गदां गृह्य रथात्तस्मादवापतत् ॥१२
ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते महारणे ।
महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ ॥ १३
अत्यद्भुतं सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ ।
कृतश्रमौ महायुद्धे हंसविक्रान्तगामिनौ ॥ १४
यथा देवासुरे युद्धे शक्रवृत्रौ पुराऽम्बरे ।
उभौ संसक्तसर्वाङ्गौ शोणितेन महारणे ॥ १५
अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह ।
ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽन्वगच्छत ॥१६
सव्यं तु हंसो राजेन्द्रो ह्यगृह्णात्स्वयमेव हि ।
पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ ॥ १७
यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ ।
अतिप्रवृद्धं संग्रामं देवासुररणोपमम् ॥ १८
विदधाते महारङ्गे पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ।
देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे ॥ १९
अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम् ।
इत्यूचुर्विस्मयवशाद्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ २०
परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ।
अथ हंसो महारङ्गे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः २१
ह्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान्बलः ।
निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम् ।
रणे रणविदां श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम्२२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसबलभद्रयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

१२४

**बलदेव इति** ॥ १ ॥ सुवाजिनः सुपक्षाः ॥ ७ ॥ हंसं चिक्षेप प्रजहार । बली बलरामः ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

## सात्यकिडिम्भकयोर्युद्धम् ।

## १२५

वैशम्पायन उवाच ।
युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी ।
तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च
कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ ।
सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम्॥ २
अविध्यन्निशितैर्बाणैस्तेन वक्त्रे तथोरसि ।
स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः
नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः ।
तानन्तरे वृष्णिवीरो निषिद्धन्निनदन्ब्रुवन् ॥४
अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभिराशुगैः ।
पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥५
सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो
धनुश्चिच्छेद तस्य तत् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन
डिम्भकस्य स यादवः ॥ ६
आजघ्ने डिम्भको वीरश्चापमादाय चापरम् ।
क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी ॥ ७
स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृप ।
अतीव शुशुभे राजन्वसन्ते किंशुको यथा ॥ ८
धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत्पुरा धनुः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥९
जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
स धनुः पुनरत्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥
शरेण तीक्ष्णपुङ्खेन डिम्भकस्य दुरात्मनः ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ॥ ११
धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः ।
एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥
छित्त्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।
धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥
खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ ।
तौ हि खड्गविदांश्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी॥
दौःशासनिर्महाभागः सौमदत्तिस्तथैव च ।
अभिमन्युश्च विक्रान्तो नकुलश्च तथैव च ॥ १५
एते खड्गविदांश्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः ।
एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठौ षट्सु वै नृपसत्तम ॥ १६
तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बाहुनिःसृतम् ॥
आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम् ।
संकोचितं कुलाचितं सव्यजानु विजानु च ॥
आह्निकं चित्रकं क्षिप्तं कुसुम्बं लम्बनं धृतम् ।
सर्वबाहु विनिर्बाहु सव्येतरमथोत्तरम् ॥ १९
त्रिबाहुस्तुङ्गबाहुश्च सव्योन्नतमुदासि च ।
पृष्ठतः प्रथितं चैव यौधिकं प्रथितं तथा ॥ २०
इति प्रकारान्द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ ।
पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः ॥ २१
पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ ।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥
तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ ।
अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनोः ॥ २३
एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ ।
एकः शिष्योगिरीशस्य द्रोणस्यान्योहि धीमत
अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः ।
त्रय एते महाराज प्रथिताः सङ्गरे सदा ॥२५
डिम्भकः शक्तिभृच्छवरस्त्रय एते महारथाः ।
प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च ॥ २६
इति ते देवगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः ।
दिविस्थिताः समं ब्रूयुर्युद्धदर्शनलालसाः २७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिडिम्भकयुद्धे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

---

१२५

युद्धमिति ॥१॥ निषिद्धन् खण्डयन्। निनदन् गर्जन्। ब्रुवन् गर्जितशब्देनैव तेषां निषेधं चकारेत्यर्थः ॥ ४ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमित्यादयो द्वात्रिंशत्खड्गभेदा यथायथमुह्याः खड्गशास्त्रे वाऽन्वेषणीयाः ॥ १७ ॥ शक्तिभृत् कार्तिकेयः ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

---

१ ख. °तं यत्पुनर्महत्। त°।

## हिडिम्बेन सार्कं वसुदेवोग्रसेनयोर्युद्धम् । बलभद्रेण हिडिम्बपराभवश्च ।

### १२६

वैशम्पायन उवाच ।
वसुदेवोग्रसेनौ च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृतौ ।
जराजरितसर्वाङ्गौ पलिताङ्गशिरोरुहौ ॥ १
ज्ञानविज्ञानसंपन्नौ राजमार्गविशारदौ ।
युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना ॥ २
शरैरनेकसाहस्रैर्दयामासतू रणे ।
राक्षसेन्द्रं दुरात्मानं हिडिम्बं पुरुषादकम् ॥ ३
हिडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भक्षयन्सर्वतो नरान् ।
अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः ॥ ४
लम्बोदरो विरूपाक्षः पिंगकेशो विलोचनः ।
श्येननासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः ॥ ५
पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः ।
लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा ॥ ६
उत्तुङ्गांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः ।
भक्षयन्मांसपिटकं पिबञ्शोणितसंचयम् ॥ ७
गजान्नागैः समाहत्य हयैरश्वान्नृपोत्तम ।
रथान्रथैः समाहत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥
मनुष्यान्स पुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः ।
कांश्चिद्धत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः
भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः ।
यान्पश्यन्पुरतो रक्षस्ताञ्जघान विरूपधृक् ॥
भक्षयन्नपरान्वृष्णीन्यादवान्राक्षसेश्वरः ।
चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥
अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप ।
क्षणेनैकेन सर्वांस्तान्भक्षयामास राक्षसः १२
केचिद्भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ।
केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुङ्गवाः ॥
कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ।
×निश्शेषं वृष्णिसैन्यं तु स्थितं चित्रपटे यथा
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुंगवौ ।
धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ ॥
यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव ।
व्यादायास्यं महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥
चिखादिषुर्विरूपाक्षः पातालतलसंनिभः ।
ततो रक्षः पर्यधावत्खादत्खात्कलेवरम् ॥
पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्युद्धवृषौ नृप ।
हिडिम्बस्य महाघोरं व्यादितास्यमिवान्तकम्
सर्वांस्तान्वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक् ।
धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्यं भयानकम्
तयोर्गृहीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम् ।
बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृताननः ॥
वसुदेवं महीपालं राजानं वृद्धसेविनम् ।
ग्रहीतुं राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसंसदि ॥ २१
हिडिम्ब उवाच ।
एष वां भक्षयिष्यामि वसुदेवं त्वया सह
उग्रसेन किमर्थं त्वं तिष्ठसे मत्पुरोगमः ॥ २२
आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतौ तु वां मम ।
विधिना निर्मितौ वृद्धो वसुदेवो हरेः पिता ॥
बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः ।
सम्मुखान्मेष गच्छेतां प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥
युवयोः शोणितं पीत्वा
तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः ।
खादामि च पुनर्मांसं
वृद्धयोर्युवयोः सुखम् ॥ २५
इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यं महाहनुः ।
धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः
वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विप्रेक्ष्य सर्वतः ।
दिशोऽभ्यभजतां राजन्निःशस्त्रौ वृष्णिपुङ्गवौ
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वा च तौ तथाभूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ ॥ २८

---

१२६

वसुदेव इति ॥ १ ॥ राजमार्गः क्षत्रधर्मो युद्धाख्यः तत्र विशारदौ ॥ २ ॥ विलोचनः विरूपनेत्रः ॥ ५ ॥ नास्यग्रासं नासया अत्तुं योग्यं नास्यामिव प्रसित्वेति नास्यग्रासम् । श्वासोच्छ्वासेन महिषो मशकानिव नासामार्गेण मनुष्यान्संजहारेत्यर्थः ॥ ९ ॥

---

१ खं. ०वं नृपाधम । उग्र० । । ×घ-निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः ।

वासुदेवे समादिश्य हंसं युध्यन्तमीश्वरे ।
निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥
मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्चैतौ राजसत्तमौ ।
स्थितोऽस्मि युध्यतां रक्षो मया शत्रुजिघांसता
अहमेव हनिष्ये त्वां का चेयं तव भीषिका ।
इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥
महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः ।
विदार्य पूर्ववद्वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥ ३२
विसृज्य सशरं चापं राक्षसस्य पुरः स्थितः ।
मुष्टिं प्रगृह्य बलवान्स्फोटयन्बाहुमुत्तमम् ॥३३
हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा
मुष्टिं कृत्वा भयानकम् ।
जघान वक्षो रामस्य
व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३४
क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः
जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः ३५
मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः ।
युद्ध्यतोर्युद्धरङ्गेऽथ नरराक्षससिंहयोः ॥ ३६
तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद्भयानकः ।
अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥ ३७
जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः ।
अथ रामो बली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः
हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम् ।
तलाभ्यामथ रामस्तु वक्त्रे हत्वा स राक्षसम्
आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ गतासुर्वीरराक्षसः ॥ ४०
तत उत्पत्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम्
आदाय बहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात्पदम् ४१
व्याविध्यत्सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम्
उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः॥
गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्धलायुधः ।
गतासू राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराक्रमत् ॥४३
ये केचिद्राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे ।
बलभद्रात्ततो भीता जग्मुश्चैव दिशो दश ४४
अथांशुमाली भगवान् दिनेशः
संहृत्य तेजांसि सहस्ररश्मिः ।
अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजाना-
मीषत्तमश्चापि समाविवेश ॥ ४५
तस्मिन्प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं
प्रजापतौ विश्वमुखे जगद्गुरौ ।
नक्षत्रनाथः समुपाजगाम
संध्यातमोऽपि व्यनशन्नृपोत्तम ॥४६
प्रभातकाले नृपसत्तमो रणो
गोवर्धने किन्नरगीतनादिते ।
इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा
व्युपारमंस्तत्र रणोत्सवे नृप ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हारिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हिडिम्बपराभवे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

## श्रीकृष्णहंसयोर्युद्धम् ।

## १२७

वैशम्पायन उवाच ।
उभौ तौ हंसडिम्भकौ रात्रावेव महागिरिम् । जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्धनमथो नृप ॥ १

गतासुः प्राप्तसंज्ञः निराक्रमत् निर्गतः ॥ ४३ ॥ हे नृप! प्रभातकाले गोवर्धने रणः सत्तमः इति ब्रुवन्त इत्यन्वयः । पुष्करदेशादपक्रम्य गोवर्धनं देशं प्रतिपलायिता इत्यर्थः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने हिडिम्बपराभवे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

१२७

उभौ ताविति ॥ १ ॥

ख. ०य बाहु० ।

अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ।
गोवर्धनं जगामाशु केशवः केशिसूदनः ॥ २
शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥३
जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्धनमथो गिरिम्
गोधनैरथ सैन्यैश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ४
तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं संप्राप्य यादवाः ।
निकषा यमुनां राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५
विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः ।
सारणः पञ्चविंशत्या दशभिः कङ्क एव च ॥
हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः ।
उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ७
विराटस्त्रिंशता राजन्सात्यकिश्चापि सप्तभिः
अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभिः शरैः
प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन्साम्बश्चापि च सप्तभिः ।
अनाधृष्टिस्त्वेकषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ९
एवं ते सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत् ।
अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि ॥१०
चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः ।
सर्वानपि महाराज यादवान्बलदर्पितान् ११
तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम्
प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा बाणैर्निशितकोमलैः
जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान् ।
व्यथिताः सर्व एवैते वमन्तः शोणितं बहु १३
माधवे किंशुका राजन्पुष्पिता इव ते बभुः ।
भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥१४
एतास्मन्नन्तरे राजन्वसुदेवात्मजो नृप ।
वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनौ तयोः ॥
चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ।
तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥
विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम् ।
ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप१७
शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनोस्तयोः ।
हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥ १८
रामश्च डिम्भकश्चैव संयुक्तौ युद्धकाङ्क्षया ।
विशून्याः सर्व एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले ॥
शङ्खान्दध्मुः पृथग्वादं
स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः ।
अथ कृष्णो हृषीकेशः
पाञ्चजन्यं महारवम् । १९
दध्मौ पद्मपलाशाक्षः सर्वान्विस्मापयन्निव ।
अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ ॥ २१
दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम् ।
शूलेन पोथयां राजञ्चक्रतुर्यादवेश्वरम् ॥ २२
ताभ्यां समाहतो विष्णुर्देवगन्धर्वसंनिधौ ।
ईषत्स्मिताधरो देवः किंचिदुत्प्लुत्य सत्वरम्
रथाद्रथिवरश्रेष्ठस्तौ प्रगृह्य जनार्दनः ।
भ्रामयित्वा शतगुणमलातमिव केशवः ॥ २४
कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः ।
तावुपेत्य गिरेः शृङ्गं कैलासस्य महामते ॥
दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतुः परम् ।
हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः ॥ २६
उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ।
किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥
ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतोः ।
करं दिश यथायोगं यदि प्राणान्हि रक्षसि ॥
अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा परं बहु ।
ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरुः ॥
ईश्वरोऽहं सदा राज्ञां देवानामिव शूलभृत् ।
एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥ ३०
इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप ।
आकृष्य च यथाप्राणं नाराचेन च केशवम् ॥
ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत् ।
उवाच सात्यकिं कृष्णो रथं वाहय मे प्रभो ॥
दारुकं पृष्ठवाहं तं कृत्वा देशं तमीश्वरः ।
अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन्रथम् ॥
मण्डलानि बहून्याजौ दर्शयामास सत्वरम् ।
अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वरः ॥ ३४
आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरं कस्मिंश्चिदव्ययः ।
उवाच हंसं राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन्रणे ॥
अनेन त्वां दहे पाप यदि शक्तोऽसि वारय ।
अलं ते बहुबद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥ ३६
मत्तश्चेत्करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् ।
यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया ॥
शास्ता त्वं खलु विप्राणां स्थिते मयि नराधम
स्थिते मयि जगन्नाथ हत्वा क्षत्रियकण्टकान् ॥

---

सर्वज्ञो गोविन्दोऽपि सद्यस्तत्र गत गत्याह—**अथेति** ॥ २ ॥ यमुनां निकषा यमुनायाः समीपे ॥ ५ ॥

---

१ ख. विक्रान्ताः स० । २ ख. पतयो बा० ।

शास्तास्म्यथो सतां लोके
दुष्टानां ब्रह्मविद्विषाम् ।
शापेन यतिमुख्यानां
हत एव नराधम ॥ ३९
मृत्यवे त्वां निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् ।
इति ब्रुवंस्तदस्त्रं तु मुमोच युधि केशवः ४०
तदस्त्रं वारुणेनाथ हंसोऽपि प्रत्यषेधयत ।
वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि हंसके ॥
तदस्त्रं वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तमः ।
अथ माहेश्वरं कृष्णो मुमोचास्त्रमुग्रमाहवे ॥४२
रौद्रेण तत्ततो हंसो वारयामास तत्क्षणात् ।
गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचमथ केशवः॥ ४३
ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुरं याम्यमेव च ।
चत्वार्येतानि हंसस्तु मुमोच युधि सत्वरम् ॥
वारणार्थं तदस्त्राणां चतुर्णां माधवस्य ह ।
अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्रं विनाशकम्
मुमोच हंसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दनः ।
योजयामास तद्धंसे महाघोरपराक्रमम् ॥ ४६
अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तमः ।
हंसोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास तं शरम् ॥
यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दनः ।
अस्त्रं वैष्णवमादाय शरे स निशिते हरिः ॥
योजयामास भूतात्मा भूतभावनभावनः ।
येन देवा रणे हत्वा राज्यमापुः पुरा सुरान्
तदस्त्रं योजयामास वधार्थं तस्य भूपते ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

## हंसवधः ।

## १२८

वैशम्पायन उवाच ।
अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तम
हंसो राजा महाराज निश्चेष्ट इव संबभौ ॥ १
उत्प्लुत्य स रथात्तस्माद्यमुनामभ्यधावत ।
यत्र कृष्णो हृषीकेशः कालियाहिं ममर्द ह ।
महाह्रदं महारौद्रं यावत्पातालसंस्थितम् ।
तावद्दीर्घं महानीलं कालाञ्जननिभं हि यत् ३
तस्मिन्ह्रदे महाघोरे पपाताथ स हंसकः ।
हंसे पतति तस्मिंस्तु महाम्रावो बभूव ह॥ ४
गिरीणां पात्यमानानां समुद्र इव वज्रिणा ।
रथादुत्प्लुत्य कृष्णोऽपि तस्योपरि पपात ह ॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्विस्मापयन्निव ।
आहरत्तं महाबाहुः पादाभ्यमथ केशवः ॥ ६
पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम ।
ममार च नृपश्रेष्ठ केचिदेवं वदन्ति हि ॥ ७
अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरिति ।
अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्यनुशुश्रुम ॥ ८
यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान् ।
हते तस्मिन्महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९
अकरोद्राजसूयं च तव पूर्वपितामहः ।
यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति तं क्रतुम् ॥
स च सर्वास्त्रविन्नित्थं रुद्राल्लब्धवरः प्रभो ।
क्षणादेव महाराज वार्तेयं गामगाहत ॥ ११
हतो हंसो हतो हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना ।
जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवानिशम् ॥ १२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

१२८

अथेति ॥ १ ॥ ह्रदमिति । क्लीबत्वमार्षम् ॥ ३ ॥ को नमस्यति कः पूजयेन्न कोऽपीत्यर्थः ॥ १० ॥ इयं वार्ता हंसमरणकथा गां पृथ्वीं अगाहत आक्रान्तवती ॥ ११ ॥

कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना । यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहत इत्यपि ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवधे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

## डिम्भकस्यात्मत्यागः ।

## १२९

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम् ।
बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥ १

डिम्भको वीर्यसंपन्नो यमुनामनुजग्मिवान् ।
तमन्वधावद्वेगेन बलभद्रो हलायुधः ॥ २

हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह ।
यमुनायां महाराज विलोड्य जलसंचयम् ॥ ३

अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु ।
उन्मज्योन्मज्य सहसा निमज्य च पुनः पुनः ॥

नाददर्श तदा राजन्भ्रातरं वीर्यशालिनम् ।
उन्मज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च ५

उवाच वचनं राजन्डिम्भको वीर्यवत्तमः ।
अरे गोपकदायाद क्वासौ हंस इति स्थितः ६

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनां पृच्छ राजक ।
इत्यब्रवीत्प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ७

तच्छ्रुत्वा यमुनां भूयः प्रविश्य डिम्भकः किल ।
बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ ८

विललाप ततो राजा डिम्भको भ्रान्तमानसः ।
क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम् ॥

कुतो भ्रातरितो गच्छेः परित्यज्यैव मामिह ।
विलप्यैवं नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सलः

आत्मत्यागे मनः कुर्वन्यमुनाया महाह्रदे ।
निमज्योन्मज्य सहसा मरणे कृतनिश्चयः

हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च ।
ततः समूलामाकृष्य जिह्वां साहसकृत्स्वयम्

ममार्रान्तर्जले राजन्डिम्भको नरकाय वै ।
एवं तु निहते हंसे डिम्भके वीर्यशालिनि

आगमत्पुण्डरीकाक्षो भूतान्विस्मापयन्निव ।
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ।

गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलभद्रसहायवान् ।
कांचित्कालं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह ॥ १५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकमरणे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

## नन्दयशोदयोर्गोवर्धने श्रीकृष्णदर्शनम् ।

## १३०

वैशम्पायन उवाच ।

यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ । गोवर्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ १ ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवधेऽष्टाविंशत्यधिकसततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

१२९

श्रुत्वेति । अथेति पादपूरणार्थः ॥ ४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां हंसडिम्भकोपाख्याने हंसडिम्भकवधो नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

१३०

यशोदेति ॥ १ ॥

नवनीतं च दधि च पायसं कृसरं तथा।
वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च ॥ २
बल्लवैरपरैः सार्धं गोपिभिश्च समन्ततः।
जग्मतुः सहसा प्रीतौ गोवर्धनमथो नृप ॥ ३
क्वचिद्वृक्षे समासक्तं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम्।
ददर्शतुर्महाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ ४
प्रणेमतुः सुसंहृष्टौ तत्र दृष्ट्वा महाबलौ।
दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति च ॥ ५
तात मातर्व्रजे गोष्ठे कुशलं वा स्वगोधनम्
अपि गावः क्षीरवत्यो वत्सा वत्सतराः पितः
अपि वा सुशुभं क्षीरमपि गावः सुशोभनाः।
अपि वा दारका मातर्वत्सपालाः पिबन्ति च
बहूनि चापि दामानि कीलका अपि वा बहु।
तृणानि बहुरूपाणि किं वा सन्ति पितः सदा
शकटानि सुगन्धीनि किं वा सन्ति पितर्ध्रुवम्
अपि गोप्यः पुत्रवत्यो दारकान्किमजीजनन् ॥
घटाः किं बहवो मातरभिन्नाः सर्वतो व्रजे।
किं गावः क्षीरमतुलं स्रवन्त्यहरहः पितः १०
हैयङ्गवीनं क्षीराणि दधि वा किमजीजनन्।
गोधनं सर्वमेवेदं नीरोगं प्रतिपद्यते ॥ ११

नन्द उवाच।

सर्वमेतद्यदुश्रेष्ठ नीरोगं बहुशः प्रभो।
कुशलं गोधनस्यैव सर्वकालेषु केशव ॥ १२
रक्षणात्तव देवेश सदा कुशलिनो वयम्।
सगोधनाः सवत्साश्च नीरोगा इव केशव ॥ १३
एकमेव सदा दुःखं न त्वां द्रक्ष्यामि केशव।
यदेतत्केवलं दुःखमिति धीः शीर्यते सदा ॥

वैशम्पायन उवाच।

एवमादि विलप्यन्तं गच्छेत्याह स केशवः।
यशोदां पुनराहेदं मातर्गच्छ गृहं प्रति ॥ १५
ये च त्वां कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः
ये केचित्त्वां नमस्यन्ति ते मे प्रियतराः सदा॥
मङ्गलाः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च तां हरिः
इत्युक्त्वा पितरौ देवो वासुदेवः सनातनः॥
गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतौ प्रेषयामास केशवः।
यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतुः स्वगृहं प्रति ॥
ततः कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः
गन्तुमैच्छत्तदा विष्णुः पुरीं द्वारवतीं किल ॥
य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः
पुत्रवान्धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि यशोदानन्दगोपबलभद्रकृष्णसमागमे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

## श्रीकृष्णस्य द्वारावतीगमनम्।

## १३१

वैशम्पायन उवाच।

गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः।
अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुष्करस्थान्नृपोत्तम ॥
ते समेत्य महादेवमृषयो वीतमत्सराः।
अर्घादिसमुदाचारं कृत्वैनं यादवोत्तमम् ॥ २
प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम्।
अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन ॥ ३
येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिम्भक एव च।
यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः ॥ ४

मयूराङ्गदं मयूरपिच्छमयं बाहुभूषणम् ॥ २ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

१३१

गच्छन्निति। गच्छन् यादवैः सहेति शेषः ॥ १ ॥

संगरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः ।
क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ॥ ५
निष्कल्मषा भविष्याम-
स्तव संस्मरणाद्धरे ।
त्वं हि सर्वस्य दुःखस्य
हर्ता त्वां ध्यायतां सदा ॥ ६
त्वदनुस्मरणं जन्तोः सदा पुण्यप्रदं प्रभो ।
त्वं हि नः सततं धाता विधाता तपसो हरेः
त्वमोंकारो वषट्कारस्त्वं यज्ञस्त्वं पितामहः
त्वं ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्वं ब्रह्मा रुद्र एव च
प्राणस्त्वं सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते ।
उपास्यः सर्वभूतानां यज्ञैर्दानैर्जगत्पते ॥ ९
नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वमूर्तये ।
पाहि लोकमिमं देव हत्वा ब्रह्मद्विषः सदा ॥
स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवतीं पुरीम्
अवसद्वृष्णिभिः सार्धं स्तूयमानः समागधैः
इयं च देवदेवस्य चेष्टा हि जनमेजय ।
प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वारकायां कृष्णस्य प्रत्यागमने एकात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

## पारायणपर्वक्रमेण महाभारतश्रवणफलम् ।

## १३२

जनमेजय उवाच ।
भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह
देयं समाप्ते भगवन्किं च पर्वणि पर्वणि ।
वाचकः कीदृशश्चात्र यष्टव्यस्तद्ब्रवीहि मे ॥ २
वैशम्पायन उवाच ।
शृणु राजन्विधिमिमं फलं यच्छति भारतात्
श्रुताद्भवन्ति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३
दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः ।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४
हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः
ऋषीणां देवतानां च संभवं वसुधातले ॥ ५
अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा ।
सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः कात्यायनो वरः
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः ।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत्सर्वं सुरासुरम् ।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९
तेषां श्रुतिप्रतिष्ठानां नामकर्मानुकीर्तनात् ।
कृत्वाऽपि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः
इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः ।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥
तेषां शृणु त्वं श्राद्धानि श्रुत्वा भारत भारतम्
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च ।
गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः

---

धाता प्रवर्तकः विधाता फलप्रदः ॥ ७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायामेकात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

१३२

भगवन्निति । यद्यपि भारतं स्वर्गारोहणान्तमवसाति तथापि शतपर्वगणनायां हरिवंशस्यान्तर्भावकथनाद् हरिवंशान्तमेव भारतमिति स्पष्टयितुम् अत्र भारतश्रवणविधिः कीर्त्यते । पारणेषु समाप्तिषु । एतेन असकृन्निरन्तरं भारतं श्रोतव्यं पठितव्यं चेति दर्शितम् ॥ १ ॥ दिवीति देवाः स्वर्गादित्यत्र क्रीडित्वा दिवं गता इति. मुनिराहेति योज्यम् ॥ ४ ॥ एतदेव विवृणोति—हन्तेति ॥ ५ ॥ तेषामिति । यतोऽत्र महता यत्नेन एतच्छ्रवणात् पापनाशो भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥ तेषां भारतयुद्धे मृतानां भीष्मादीनाम् ॥ १२ ॥

व्यासं चैव सपत्नीकं पूजयेच्च यथाविधि ।
लक्ष्मीनारायणं देवं पूजितं तच्च पूजयेत् ॥
वाचकं पूजयेद्यस्तु भूमिवस्त्रसुधेनुभिः ।
विष्णुः संपूजितस्तेन स साक्षाद्देवकीसुतः ॥
पारणे पारणे राजन्यथावद्भरतर्षभ ।
समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ।
शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ॥
अर्चयेत्तं यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक्
संहितापुस्तकान्राजन्प्रयतः शिष्टसंमतः ॥ ७९
भक्ष्यैर्मांसैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः ।
हिरण्यं गां च वस्त्रं च दक्षिणामथ दापयेत् ॥
सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रणतात्मना ।
तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ॥
यद्यदेवात्मनोऽभीष्टं तत्तद्देयं द्विजातये ।
सर्वथा तोषयेद्भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः ।
देवताः कीर्तयेत्सर्वा नरनारायणौ तथा ॥
ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृतद्विजोत्तमान् ।
तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८४
वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः ।
भविष्यं श्रावयेद्विप्रान्भारतं भरतर्षभ ॥ ८५
भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत्संप्रदापयेत् ।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥
वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ।
ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८७
ततो हि भरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ ।
सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥

इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर ।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥
भारतश्रवणे राजन्पारणे च नृपोत्तम ।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥
भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् ।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥९१
भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः ।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत् ॥ ९२
भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ।
भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥
महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम् ।
ब्राह्मणं केशवं चापि कीर्तयन्नावसीदति ॥९४
वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥
यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः ।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९६
एतत्पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम् ।
एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥९७
क्रियतेऽसारसंसारे वाञ्छितस्यैव कारणम्
हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
यत्फलं प्राप्यते पुंभिस्तद्धरेर्वंशपारणात् ॥९९
अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ।
निरुपममनुमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात्

---

तदर्धमिति । " प्रभुः प्रथमकल्पस्य यो नु कल्पेन वर्तयेत् । स नाप्नोति फलं तस्य " इति वाचनात् सर्वथा पादोनपलात् न्यूनं न देयमित्यर्थः । पादः त्रिपलचतुर्थो भागः स एव शेषोऽन्तिमः । पक्षे यत्र तत्पादशेषः ॥ ८१ ॥ **अतिरात्रस्येति** । पारणाभावेऽपि बोद्धव्यम् । अल्पल्पपर्वश्रवणे क्षुद्रक्रतुफलम् ॥ ८९ ॥ यत्नवता ब्रह्मचर्यादिनियमवता ॥ ९० ॥ भारतं भवने पुस्तकरूपम् ॥ ९१ ॥ विनापि भारतं केवलो हरिवंश एव श्रोतव्य इत्याशनेनाह—**क्रियत इति** । क्रियते शिष्टैरिति शेषः । असारेतिच्छेदः । वाञ्छितस्यैव कारणम् इष्टप्रदम् ॥ ९८ ॥ पारणात् नियमपूर्वकसमापनात् ॥ ९९ ॥ भारतप्रतिपाद्यां देवतां प्रणमति—**अजरमिति** ॥ १०० ॥ भारतसमाप्तौ, " शं नो मित्रः शं वरुणः " इत्यादिवत् शान्तिं पठति । सर्वस्तरत्विति ॥ १०१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि [ सर्वपर्वानुकीर्तने ] श्रवणफलकथने द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

## त्रिपुरवधवृत्तान्तः।

## १३३

जनमेजय उवाच।
त्र्यक्षाद्वधमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः
त्रयाणां पुरसंज्ञानां खेचराणां समासतः ॥ १
वैशम्पायन उवाच ।
शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नैधनम्
दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधिनाम् ॥
शंकरेण वधं राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः।
कृतं पुराऽसुरेन्द्राणां सर्वभूतवधैषिणाम् ॥३
त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र बृहद्धातुसमीरितम्।
विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम् ॥४
प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता।
मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च तोरणैः ॥ ५
बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलन्।
गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं परम् ॥

---

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां श्रवणफलं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

१३३

**त्र्यक्षादिति** । प्रश्नस्योत्थानमपि न संभवति भारतभावसमापनेन ज्ञातव्यानशेषात्। पूर्वमुक्तमपि दार्ढ्याय पुनः पृच्छतीत्युत्तरमिह न साधु अतिप्रसङ्गात्। इतरेषामपि अर्थानां प्रष्टव्यत्वापत्तेः। शिवोत्कर्षज्ञापनार्थमित्यपि न हरिहराद्वैतस्य भूयसा प्रबन्धेन साधितत्वात्। वक्तृविवक्षामात्रमित्यपि न निष्प्रयोजनाया महतां विवक्षाया असंभवात्। अथ "कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः" इति न्यायेन छान्दोग्ये यथा, "कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानः" इत्यादिना, "न च पुनरावर्तते" इत्यन्तेन भोगमोक्षोभयोपभोगतया गार्हस्थ्यायत्तत्वेनोपसंहारो दर्शितः; न तु मोक्षमात्रोपयोगिना भोगविरोधिनाऽऽश्रमान्तरेणैव, तद्वत् इहापि, "यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम्" इति वदता विष्णोरुपास्तिर्भोगविरोधिनी मोक्षैकफलानां समाप्त्या रुद्रोपास्त्या उभयफलया उपसंहारः। तेन संन्यासगार्हस्थ्ययोरिव हरिहरोपास्त्योरवान्तरफलभेदो ज्ञेय इति मतम्। तदपि नातीव रमणीयम्। एकैकोपास्तेः प्रत्येकं कार्त्स्न्येन फलप्रदत्वस्य सर्वशास्त्रसिद्धत्वात् विकल्पो विशिष्टफलत्वादित्यविशिष्टफलत्वेनोपासनानां विकल्पाभिधानाच्च। तस्मादन्यदिह प्रश्नकारणं वक्तव्यम्। तच्च ससाधनां ब्रह्मविद्यां समाप्यान्ते उक्तम्—

"यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता"

इति विष्णुकथानां श्रुतीनां च श्रवणमात्रात्परमपदप्राप्तिरुक्ता। तत्रासंभावनावान्पृच्छतीति। त्र्यक्षात् त्रीणि श्रवणमनननिदिध्यासनानि अक्षवदिन्द्रियवत् दर्शनसाधनानि यस्य स त्र्यक्षः विद्वान् श्रवणादिसमुदायवान् त्र्यक्षः तस्मात् त्रयाणां स्थूलसूक्ष्मकारणदेहानां वधः समूलोच्छेदः कथं स्यात्? मनननिदिध्यासनाभ्यां फलोपकार्यङ्गाभ्यां सहिताद्वेदान्तमहावाक्यश्रवणात्कथं संसारस्यात्यन्तोच्छेदः स्यात्? न हि ज्ञानमात्रात्कस्य चिदर्थस्य उच्छेद इष्ट इति भावः॥ १ ॥ "**द्वयाह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च तत्र कानीयसा एव देवा ज्यायांसोऽसुराः**" इत्यादिना बृहदारण्यकोक्तरीत्याऽध्यात्मविद्यायामत्र शमादयो देवाः कामक्रोधादयोऽसुरा इत्यभिप्रेत्य समाधत्ते—**शृण्विति** । दैत्यानां कामादीनां नैधनं निरन्वयोच्छेदविधिम् ॥ २ ॥ शंकरेण परमानन्दं प्रपित्सुना बाधनं त्रिभिः शूलैः श्रवणादिभिः साधनैः कृतम् ।असुरेन्द्राणां वधं शृण्वित्यनुषज्यते ॥ ३ ॥ त्रिपुरं पुरत्रयं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याभिमानिभिर्विश्वतैजसप्राज्ञैर्भोगार्थं बहुभिर्धातुनिर्मायाकार्यैर्गुणैः समीरितम्। पाठान्तरे बृहद्धातुर्मुख्यप्राणस्तेन समीरितं नभसि स्वे कारणे आकाशे घनपटलमिवाकस्मादुत्थितम् ॥ ४ ॥ प्रकारेण अन्नमयपिण्डेन काञ्चनेन भोगमोक्षोपयोगितया रमणीयेन मणिभिः इन्द्रियैरित्यादि यथायथं नगरसाम्यमूह्यं पिण्डस्य ॥ ५॥ कर्मणा यज्ञादिना। गन्धर्वाणां पुरमिवेति मिथ्यात्वे दृष्टान्तः ॥ ६ ॥

वाजिनः पक्षसंयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः ।
पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामबृंहणैः ॥ ७
धावन्ति ह्रेषमाणास्ते विक्रमैः प्राणसंभृतैः ।
आह्वयन्त इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः ॥ ८
वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम् ।
असुराः समदृश्यन्त चक्षुर्भिर्विदितात्मभिः ९
ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ।
गीतवादित्रबहुलं गन्धर्वनगरोपमम् ॥ १०
चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकप्रभैः ।
भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः ॥ ११
देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति ।
प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः ॥१२
शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम् ।
वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम् ॥ १३
प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो ।
क्ष्वेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादविनादितम् ॥
बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा ।
समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम् ॥
रराज त्रिपुरं राजन्महाविद्युदिवाम्बरे ।
सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत ॥ १६
तथाऽन्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः
ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना ॥१७
पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत ।
तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥ १८
दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे ।
पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥ १९
ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा ।
विवर्णवदना दीनाश्छिन्नेव गतिकर्मणि ॥ २०
अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्तनिनादिना ।
हन्यामहे शत्रुगणैर्भागोच्छेदेन भागद ॥ २१
तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर ।
ये ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥
सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः ।
शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥
अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम् ।
प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च॥२४
भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत ।
विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥

वाजिनः इन्द्रियाश्वाः मनोवृत्तिभिः प्रवर्तिकाभिः पुरं देहं वहन्ति श्रेष्ठं स्थानं प्रापयन्ति ॥ ७ ॥ विक्रमैः उत्तरोत्तरवासनावृद्ध्या परात्परं धावन्तः कामबृंहणैस्तृष्णायाः पोषकैर्वाजिभिः । प्राणसंभृतैरिति पाठे मुख्यप्राणेन सम्यक् चालितः ॥ ८ ॥ चतुर्भिर्दर्शनसाधनैः दृश्यप्रकाशेन लिङ्गेनेत्यर्थः । विदितात्मभिः अनुमानेन आज्ञातैः वेगैर्वेगवद्भिस्तैर्वाजिभिरसुरा अम्बरं कारणं ब्रह्म कालयन्त इव अपलायने ग्रसन्त इव समदृश्यन्त । असुराः कामादयः ॥ ९ ॥ **ऋषिभिरिति** । अदग्धकिल्बिषैः अविनाशितदुष्प्रवृत्तैर्वाजिभिरेव उपेतं गन्धर्वनगरोपमं पुरं तत् शुशुभे इत्युत्तरेणान्वयः ॥ १० ॥ भवनैश्चित्तप्रवेशस्थानैः स्त्र्यादिभिः आयुधानि कामोद्दीपनानि स्रगादीनि कटाक्षादीनि वा तैः समाकीर्णैः ॥ ११ ॥ देवेन्द्रभवनाकारैः साक्षात्स्वर्गरूपैरित्यर्थः । प्रासादाग्रैः गृहोपरिगृहैः,तद्वदत्र संसारपुरोपरि मनोरथपुरम् । बहुत्वम् आनन्त्यात्तेषाम् ॥ १२ ॥ अक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमाः इति ताभ्यां सूर्यो नाभा यस्येति व्युत्पत्त्या सूर्यजनकं चक्षुः । चक्षुः सूर्यनाभ एव, चन्द्रनाभो मनः । तावुभौ पुराध्यक्षौ तदनुगाश्च सर्वे कामादय इति । तावेवं दैत्येन्द्रौ अन्ये च मदमत्सरादयो दानवाः ॥ १६ ॥ ते सर्वे देवयानपितृयानमार्गप्रापकौ कर्मोपासनामार्गौ विनाशितवन्त इत्यर्थः ॥ १७ ॥ प्रगृहीतशरासनैः स्रक्चन्दनद्यूतपानादिव्यसनैः ॥ १८ ॥ वह्निबलोपेते देवयाने पितृबलोपेते पितृयाने चापहृते श्रद्धादिराहित्येन सर्वस्मिन्कर्मणि रक्षोभिरपहृते सतीत्यर्थः ॥ १९ ॥ ब्रह्माणम् ईश्वरं दीनाः मार्गद्वयभ्रष्टत्वादत्यन्तं शोकाकुलाः ॥ २० ॥ हन्यामहे हताः स्मः, भागोच्छेदेन पुण्यलोकप्राप्त्यभावेन ॥ २१ ॥ शत्रुप्रतिकृतिं प्रतीकारं, परां शत्रूणां निरन्वयोच्छेदकराम् ॥ २३ ॥ ऋते शंकरं सुखकरं बोधं विना कामादीनां निरन्वयोच्छेदो न भवति । **अव्ययमिति** । तद्धेतोर्मूलाज्ञानस्यैवोच्छेदात् ॥ २४ ॥ तेन पुनरपि कारणकर्मभूमौ उग्रेण तपसा प्राणैः सह शंकरं शरणं गता इत्याह-**भूमाविति** द्वाभ्याम् । तपश्चान्द्रायणादि वानप्रस्थधर्मः । योगो निष्कामकर्मानुष्ठानं गृहस्थधर्मः । जपो वेदाभ्यासो ब्रह्मचारिधर्मः । ब्रह्मसंहितां प्रणवम् इति उभयोः संबन्धः ॥२५॥

१ ख. चयाद्य° ।

तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन् ।
काश्यपेयं हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥
येषां च परदाराणामभवद्वन्ध्यता जने ।
विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूषणम् ॥२७
परिधानानि चर्माणि मृदूनि च शुभानि च ।
स्वयं मृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥
गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम् ।
अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया वृताः ॥२९
हरालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः ।
प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ३०
शुद्धव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः ।
हविर्दत्तमाविज्ञानाद्भस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥ ३१
वरदानं वृथाऽस्मासु भगवन्विमुखे त्वयि ।
यथादेशं यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥३२

यदुक्तं देवदेवेन खेचराणां समीपतः ।
एवं देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वैभवात् ३३
समनह्यन्महादेवो देवैः सह सवासवैः ।
आदित्यपथमास्थाय सन्नद्धाः समलंकृताः ३४
सर्वे काञ्चनवर्णाभा बभुर्दीप्ता इवाग्नयः ।
रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ॥ ३५
सन्नद्धाः कुशलाः सर्वे प्रांशवः पर्वता इव ।
विश्वे विश्वेन वपुषा बलिनः कामरूपिणः ३६
समनह्यन्महात्मानो दानवान्तं विधित्सवः ।
एभिः सह धनाध्यक्षैः समन्तात्परिवारितः ॥७
त्रिपुरं योधयत्त्र्यक्षः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
अथ दैत्या भिन्नदेहाः पुराट्टालं गता इव ॥३८
न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वताः ।
अतिविद्धाः सुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप ॥३९

तेषां तपोयोगजैश्वर्यं प्रार्थयमानानां संबन्धिनः परदाराः कामादिपरिग्रहास्तृष्णादयः तासां जने वन्ध्यता निष्फलता वैराग्यहेतुरभूत् । ततस्ते तृष्णादयोऽत्यन्तं दुर्बला अभूवन्निति रूपकेणाह—**विन्यस्तेति** । दर्भनिचये तृणमये कटे शेरते इत्यर्थः ॥ २७ ॥ शुभानि व्याघ्राजिनादीनि ॥ २८ ॥ वनचारिणां मृगाणां देहेभ्यो गृहीतानि विमुक्तानि परिहितानि । त एवं कामादयोऽत्यन्तदारिद्र्यग्रस्ताः इतः अदर्शनं गता इत्याह-**अन्तरिक्षमिति** । इत उत्पन्ना अपि योगपरिपाककाले बाधितुम् अन्तरिक्षे हृदयाकाशे सूक्ष्मवासनारूपेण निलीना इत्यर्थः ॥ २९ ॥ योगजये क्षीणासु भोगवासनासु उपासनायाम् अधिकारिणः संसारादुद्विग्नाः सन्तः प्रवर्तन्त इत्याह-**हरालयमिति** । हरति संसारमिति हरो निर्गुणं ब्रह्म तस्यालयं तदुपलब्धिस्थानं हार्दाकाशाख्यं सगुणं ब्रह्म तदुपासितुं जग्मुः सुराः शान्त्यादयः विशेषेण आघ्राति विषयान् आस्वादयतीति व्याघ्रो भोक्ता तस्य चर्मवदावरकं देहं वासना इत्यर्थः। भगवन्तम् ईश्वरं प्रणिपत्य उपास्य ॥ ३० ॥ हरं शुद्धं प्रभाषन्त । अडभाव आर्षः । शुद्धं ब्रह्मास्मीति परोक्षनिश्चयं कृत्वा लोकेऽपि अवदन्नित्यर्थः—हरमदृष्ट्वा भगवन्तमेव प्रार्थयन्ते । **हविरिति** सार्धेन । यथा भस्मच्छन्नेषु अग्निषु हविर्निष्फलम् एवमस्मासु मलिनचित्तेषु॥ ३१॥ वरदानं श्रेष्ठस्य आत्मवस्तुज्ञानस्य प्रदानं हरज्ञानं प्राप्तमपि निष्फलमतस्त्वमेवानुग्रहं कृत्वा यथा ब्रह्मणो वचो वेदवाक्यं, "**यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः**" इति तत्प्रसादफलख्यापकं तत् यथादेशं यथाकालं कुरुष्व क्रियताम् । अस्मासु प्रसन्नो भूत्वा तत्त्वम् आत्मतत्त्वं प्रकाशयेति भावः ॥ ३२ ॥ खे हार्दाकाशे चरतामुपासकानां समीपे, यदुक्तम्—

" सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ "

इत्यादिरूपं वचनम् । इतरदेववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वैभवाच्च महादेव ईश्वरः समनह्यत् अविद्यामुच्छेत्तुं सज्जो बभूव । साधकानुग्रहं कर्तुमभिमुखोऽभूदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ तत्रादित्यपथाख्यमुपासनामार्गमेवाह । देवैः शमादिभिः सह प्रकटीचकार इत्याह— **समनह्यदिति** ॥ ३४ ॥ रुद्रेण ध्यातेन ईश्वरेण सहिताः रुद्रा उपासका उपासनाबलादत्यन्तमशोभन्तेत्यर्थः ॥३५॥ विश्वे विश्वेन वपुषा तपोयोगबलेन सर्वे सर्वात्मका जाता इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ केनोपायेन कामरूपिणोऽभवन्नित्यत आह—**समनह्यन्निति** । महात्मानः वैराग्यादियुक्ता दानवानां कामादीनाम् उच्छेदं विधित्सवः एभिः साधनैः धनाध्यक्षैः श्रद्धावित्तम् अध्यक्षो मुख्यो येषु तैः शमाद्यैः परिवारितो वृतः शरणीकृतः ॥ ३७ ॥ त्र्यक्षो विद्वान् त्रिपुरं योधयत् कोशभङ्गं कर्तुमुद्युक्तः । तत्र सशरं धनुः प्रगृह्य "**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा**" इति श्रुतेः प्रणवे चेतः संयोज्येत्यर्थः । अथ योगारम्भानन्तरं दैत्याः कामादयो भिन्नदेहाः भिन्नाः प्रविलापिनः स्थूलदेहा आश्रयभूता येषां ते तथा ध्यानबलेन स्थूलदेहाध्यासनिवृत्तौ कामाद्याः भिन्नदेहाः नष्टमूर्तयोऽभवन् । विशेषणान्तराणि कथाशोभार्थानि ॥ ३८ ॥

न्यपतन्दैत्यसंघाता वज्रेणेव हता नगाः ।
असिभिश्च हता देवैः शक्तिचक्रपरश्वधैः ॥४०
बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रा युद्धगोचरे ।
प्रपेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नपक्षा इवाचलाः ४१
तत्र संज्ञां विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा ।
एवं तेऽन्योन्यसंबाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ४२
नोपालभ्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुषा ।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे ।
छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले ॥ ४३
अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशायां निशितैः शरैः
विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवाः ॥ ४४
जयप्राप्त्यासुराश्चैव तेऽन्योन्यमभिजल्पिरे ।
आसितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकाङ्क्षिणः ॥
अस्माभिर्बलसंपन्नैः सह प्रासासितोमरैः ।
विरेजुश्च जयं प्राप्ता उशनोहृद्यबोधिताः ॥
समरे बलसंपन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः ।
सुरैश्च सहिताः सर्वे रथमास्थाय शंकरः ॥४७
दर्पितान्निनदन्दैत्यान्प्रदहन्निव तेजसा ।
युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन् ॥
सर्वभूतानि भूताश्यः प्रलये समुपस्थिते ।
स रथो वाजिभिः शीघ्रैरुह्यमानो मनोजवैः ॥
विबभौ नभसो मध्यं सविद्युदिव तोयदः ।
वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥ ५०
भाति स्म स रथो राजन्सेन्द्रायुध इवाम्बुदः
ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम् ॥५१
कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा ।
ऋषयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥५२
अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गान्धर्वेण स्वरेण वै ॥५३
प्रहृष्टवदनाः सौम्याः पैत्र्ये स्थानान्तरे नृप ।
चयाट्टालकसंपन्ने शतघ्नीशतसंकुले ॥ ५४
तस्मिंस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे ।
ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवाः ॥ ५५
सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्ततः ।
शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लैः शूलैश्च भारत ॥

---

**तत्रेति** । इयमत्र प्रक्रिया—"विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि" इति पातञ्जलसूत्रात् एकादशेन्द्रियाणि स्थूलभूतानि च विशेषाः, अहंकारः पञ्चतन्मात्राणि चाविशेषाः, महत्तत्त्वं लिङ्गमात्रम् अलिङ्गं प्रधानं, तत्र विशेषादविशेषं प्रविविक्षतो योगिनः मध्ये लयविक्षेपाख्यौ योगविघ्नौ आगच्छतः । एवमविशेषालिङ्गमात्रतश्च पुरुषं च प्राविविक्षतस्तौ आगच्छत इति । तत्र योगिनो विशेषाख्यस्थूलदेहवियोगे दैनंदिनलयाभ्यासात्प्रथमं लयोऽभ्येतीत्याह—**तत्रेति** । तत्र तस्याम् अवस्थायां कामादयः योगिनां बलेन निरुध्यमानाः सन्तः दुष्टाश्च वदन्तीव प्रदीप्यन्ते । ततः कषायेण जडीभूय लयं प्राप्नुवन्ति । तादिदमुक्तं—**दीप्यमानेन तेजसेति** । एवं कर्तुः करणेन अन्योन्यसंबाधे संकटे सति उभयेऽपि क्षीयन्ते क्षयकर्मणा अन्योन्यविरोधेन ॥ ४२ ॥ अत एव नोपालभ्यन्त अव्यक्तभावं गतत्वादित्यर्थः । ये हि व्यक्ताः सन्तो दुर्लक्ष्याः परमाण्वादयस्ते दिव्यचक्षुर्ग्राह्या न लेत इति भावः । दिनकरे बोधे निशामुखे लये च प्राप्ते सति सुरेन्द्राः शमादयोऽपि छिन्ना भिन्नरूपाः निलीना एवेत्यर्थः ॥ ४३ ॥ अथ सौषुप्तेन तमसा सर्वेषां नाशे सुषुप्तौ स्वप्नरूपो विक्षेप उत्पन्न इत्याह—**अथेति** । तदानीमेव कामादयो लब्धवृत्तयोऽभूवन् । निशायाम् अविद्यास्वरूपायां स्थिताः सन्तः शमादीनजयन्नित्यर्थः । शरैः सूक्ष्मैः विषयैः ॥४४॥ **उशनोहृद्यबोधिताः इति** । "**बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वेन्द्रस्याभयायासुरेभ्यः क्षयायेमामविद्यामसृजत**" इति मैत्रायणीयश्रुतेः । उशनसा कल्पिताः ये वेदविरोधिनो मार्गास्तन्निषेवणादत्यन्तमलिन इत्यर्थः ॥४६॥ एवं त्यक्तस्थूलदेहानामपि योगिनां सूक्ष्मदेहप्रवेशादर्वाक् लयविक्षेपाख्यं सूक्ष्मं व्याप्यमहत्तत्त्वापरपर्यायलिंगमात्रे अस्मितारूपं प्रपित्सूनपि लयविक्षेपबाधा भवतीति प्रपञ्चयिष्यन्सूक्ष्मं प्रति गमनं तावदाह—**सुरैश्चेत्यादिना** । सुरैः शमादिभिः सहायैः शंकरो योगी रथं सूक्ष्मशरीरम् आस्थाय सम्यगधिष्ठाय ॥ ४७ ॥ विदेहलयदशामाह—**दर्पितानिति** । युगान्ताग्निर्लोकानिव कामादीन्प्रदहन्नित्यर्थः ॥ ४८ ॥ वाजिभिर्वासनामयैः सूक्ष्मैरिन्द्रियैः ॥ ४९ ॥ वृषभेण योगजधर्मेण ध्वजाग्रेण ध्वजाप्रवदत्युच्छ्रितेन ॥ ५० ॥ तमेनं दर्पाक्रान्तं सुस्थितमन्यं योगिनम् आरूढभूमिस्थैर्देवादिभिः स्तूयमानं पुनर्विघ्न आविवेशेत्याह—**तप इत्यादिना** ॥ ५१ ॥ पैत्र्यं पित्रा ईश्वरेण सृष्टं स्थानान्तरं स्थूलदेहादन्यत्र सूक्ष्मदेहास्थितमिति शेषः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्मध्यमे ॥ ५५ ॥ सुराणामुपरीति शेषः । मध्ये स्थितानां लिङ्गदेहस्याः शुभवासनाः सर्वा योगोपसर्गभूतैः कामादिभिर्मग्नमत्यां भूमौ स्थित्वा निवारिता इत्यर्थः ॥ ५६ ॥

ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदाः ।
गदाभिश्च गदां जघ्नुर्मल्लैर्मल्लांश्च चिच्छिदुः ॥
अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्त मायां मायाभिरेव च ।
ततोऽपरे समुद्यम्य शरशक्तिपरश्वधान् ॥ ५८
अशनींश्च महाघोरान्मुक्ताञ्छतसहस्रशः ।
असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे ॥ ५९
ते वध्यमाना विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः ।
गन्धर्वनगराकारः सोऽसीद्दत्सहरो रथः ॥६०
हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः ।
तैश्च दैत्यप्रहरणैर्गुरुभिर्भारसाहिभिः ।
चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः॥ ६१
ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते ।
ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥ ६२
स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठितः ।
अजेयो जय्यतां प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः६३
तस्मिन्निपतिते राजन्रथानां प्रवरे रथे ।
निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप ॥६४
विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महाद्रुमाः ।
विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश॥६५
वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम् ।
यत्तद्ब्रह्ममयं तेजः सर्वत्र विजयैषिणाम् ॥ ६६
शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परत्र च ।
समाधायात्मनाऽऽत्मानं योगप्राप्तेन हेतुना ॥६७
रथन्तरेण साम्नाऽथ ब्रह्मभूतेन भारत ।
तेजसा ज्वलयन्विष्णोस्त्र्यक्षस्य च महात्मनः
सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम् ।
ऋषीणां तपसाऽऽढ्यानां वसतां विजने वने॥६९
अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोदृश्य तत्त्वतः ।
वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम् ॥७०
समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः ।
बलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महाबलः ।
ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥ ७१
तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान् ।
ननाद बलवान्नादं समुद्र इव पर्वणि ॥ ७२
ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः ।
पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधुः सुमहाबलाः ॥ ७३

---

अशनिः अशनयः मृत्योरज्ञानसंबन्धिनि विषयगोचरे शब्दादिपारवश्येऽवस्थिता इति संबन्धः ॥ ५९ ॥ एव सूक्ष्मदेहस्थस्य विक्षेपरूपं विघ्नमुक्त्वा लयरूपमपि तमाह—**गन्धर्वेति** । मनोमयं सूक्ष्मशरीरं ध्येयेश्वरेणापि सहितं विलीनमित्यर्थः ॥ ६० ॥ शचीपतिर्योगी अतिष्ठत कुण्ठितः महान्धकारमग्नत्वात् ॥ ६१ ॥ अस्यावस्थामन्ययोगिमुखेनानुवदति—**ततो मध्य इत्यादिना** श्लोकचतुष्टयेन ॥ ६२ ॥ एवं विघ्नैर्भूतपन्नेषु सन्तः स्वस्त्ययनानि कुर्वन्तीत्याह—**वृद्धा इति** । तत्फलमाह—**यत्तदित्यादिना** सार्धचतुष्टयेन। ब्रह्ममयं वेदप्रधानं यत् तत्तेजः सर्वभूतानां शान्त्यर्थम् आत्मना समाधाय योगबलेन वृषरूपधर्मस्वरूपमाश्रित्य रथन्तरेण साम्ना रथोत्तमम् उज्जहारेत्यन्वयः ॥ ६६ ॥ इह जीवन्मुक्तिलाभार्थं परत्र विदेहमुक्तिलाभार्थमित्यर्थः । योगप्राप्तेन हेतुना बलेन ॥ ६७ ॥ रथं लिङ्गशरीरं तरत्यनेनेति रथन्तरं प्रणवाख्यं प्रतर्कि तेन साम्ना साधुना ब्रह्मभूतेन शब्दब्रह्मरूपेण । पुनः कीदृशेन । साम्ना विष्ण्वादीनां तेजसा सारभूतेन ॥ ६८ ॥ किं तत्तेजो यत् रथमुज्जहारेत्यत आह—**अथ विष्णुरिति** । अथोपायान्तराभावनिश्चयानन्तरं सर्वतोदृश्य तत्त्वतः सर्वान् इन्द्रादीनकिंचित्करानवेक्ष्य धर्म एव तमसि मग्नस्य जीवस्योद्धर्तेत्यर्थः ॥ ७० ॥ एतदेवाह—**समाक्रान्तमिति** । तं चेतोरथं देवैः शमादिभिराक्रान्तं वृषरूपी धर्मः विषाणाभ्यां हेतुभ्यां देवयानप्रयाणार्थं पितृयानप्रयाणार्थं वा तोलयित्वा तमो हृदयसकाशादुद्धृत्य ननाद गर्जति स्म प्राणयोगेन बलवत्त्वेन ॥७१॥ एवं लिङ्गशरीररूपामविशेषाख्यां भूमिं विजित्य लिङ्गमात्रापरपर्यायां महत्तत्त्वाख्याम् अस्मितामात्रप्रत्ययां योगभूमिं धर्मः वृष एव प्रापयतीत्याह—**तृतीयमिति** । वायुविषयं निष्प्रदेशं तत्र विषयदर्शनाभावेन शुद्धसत्त्वपदार्थमात्रस्याभावात् । विषाणवान् धर्मस्तामपि भूमिमेनं प्राप्य गर्जति स्मेत्यर्थः ॥ ७२ ॥ ततो लिङ्गमात्रात् शुद्धं वस्तु प्रपित्सोरपि योगिनः पुनर्लयविक्षेपौ भवत इत्याह द्वाभ्याम्—**ततो नादेनेति** । नादेन धर्म एष गर्जनेन । यद्यप्यत्र लयो नोक्तस्तथापि सोऽपि बोध्यः । अत एव चात्र प्रथमो लीनः सुषुप्त एवोच्यते । द्वितीयो लीनो विदेह इत्युच्यते स्थूलशरीरस्य त्यागात् । अथ तृतीयो लीनस्तु प्रकृतिलय इत्युच्यते योगिभिस्तस्मादत्रापि लयोऽस्तीति ज्ञेयम् ॥ ७३ ॥

सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः।
सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः॥ ७४
आग्नं संधाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम्।
ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः
मुमोच दैत्यनगरं त्रिधामात्रानुसंज्ञितम्॥७५
तं बाणं त्रिविधं वीर्यात्संधाय मनसा प्रभुः।
सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत॥ ७६
मुमोच दैत्यनगरे सर्वप्राणहराञ्छरान्।
दीप्तान्कनकवर्णाभान्सुवर्णांश्च सुनिर्मलान्॥
मुक्त्वा वरशरान्घोरान्सविषानिव पन्नगान्
सुप्रदीप्तैस्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदारितम्॥७७
शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत।
गोपुराणि पुरैः सार्धं व्यशीर्यन्त नराधिप ।×
अग्निना संप्रदीप्तानि वह्निगर्भाणि भारत।
धरणीं संप्रपद्यन्त पुराणि वसुधाधिप॥ ८०
तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव।
शंकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन्नृप॥ ८१
हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षातिकिलेरिताः।
सर्वाञ्जहीति शत्रूंस्त्वं प्रवृद्धान्पुरुषोत्तम॥ ८२
विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव।
स्तूयते ब्रह्मसदृशैर्ऋषिभिः शंकरेण च।
ब्रह्मणा सहितैर्देवैः संपन्नबलपौरुषैः॥ ८३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिपुरवधे
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३३॥

**आग्निमिति**। अग्निदेवतात्वादाग्निं तत्त्वमस्यादि महावाक्यं धनुषि प्रणवे संधाय तयोरैक्यं भावयित्वा यः प्रणवार्थः स एव महावाक्यार्थः "**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्**" "**सर्वं ह्येतद्ब्रह्म परमात्मा ब्रह्म**" इति चानुसंधायेत्यर्थः। शितं बाणं सुयन्त्रितं सूक्ष्मया बुद्ध्या सुयन्त्रितं स्वार्थे स्थापितं वाक्यतात्पर्यभ्रमरहितं यथा स्यात्तथेत्यर्थः। सूक्ष्मीकृते चेतसि वाक्यार्थानुसंधानजन्या च परमा वृत्तिर्ब्रह्मविद्या नाम सैव ब्रह्मास्त्रं तेन ब्रह्मदण्डं ब्रह्मणा नानायोनिपातनेन दण्डयितारं चिदाभाससंज्ञे जीवं संयोज्य तृतीये दैत्यनगरे मूलाज्ञाने मुमोच। कः? अव्ययः शिवः। अयमर्थः–वाक्यजन्यवृत्त्या संगतश्चिदाभासः स्वात्मना सह मूलाज्ञानं नाशयति ततश्चाव्ययश्चतुर्थ एवावशिष्यत इति। कीदृशं ब्रह्मदण्डं त्रिधामात्रानुसंज्ञितं, त्रिधा प्रकारत्रयेण मात्राभिरकारोकारमकाररूपाभिरनुसंज्ञितं विश्वतैजसप्राज्ञेतिसंज्ञावन्तं त्रिधाशब्देनेति पाठे तु शब्देन प्रणवेन त्रिधा भेदेन संज्ञितमिति स एवार्थः। सार्धश्लोकः॥७५॥ एतदेव स्पष्टयति--**तं बाणमिति**। सूक्ष्मधीरेव स्थौल्यदशायां जाग्रदादिभेदेन त्रिविधाप्यासीदिति मनसाभिनिश्चित्य शास्त्रतो युक्तितस्ततो वीर्यात् ध्यानबलेन उग्रेण तपसा मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तप इत्येकाग्रतारूपेणालोचनेन ततः सत्येनाबाधितेन जीवस्य ब्रह्मयोगेन ब्रह्माभेदेनानन्तं धीबाणं मुमोच ध्याता। कुत्र मुमोच? अथ दैत्यनगरे मूलाज्ञाने। धीवृत्तौ नष्टायां मूलाज्ञानस्य निरन्वयोच्छेदो भवतीति भावः॥७६॥ सर्वप्राणहरानित्यादिश्लोकाः काव्यशोभार्थकाः॥७७॥ त्र्यक्षाद्वधमित्यादौ पृष्टं कथं ज्ञानमात्रेण सत्यस्य वस्तुनो नाश इति तत्राह—**अग्निनेति**। अग्निर्विज्ञानधातुर्वाग्वा। 'यादृशो यक्षस्तादृशो बलिः' इति न्यायेन धीमयानि पुराणि धियैव रज्जूरगवन्नष्टानीत्यर्थः। यद्वा—शब्दमात्राणि तानि शब्देनैव नष्टानि नाश्यनाशकयोर्द्वयोरपि मिथ्यात्वादिति भावः। धरणीमित्यादि कथाशोभा॥ ८०॥ एवं शंकरेण कल्याणकारिणा जीवेन ब्रह्मविद्यास्त्रेण त्रीणि पुराणि जाग्रदादीनि प्रदग्धानि॥ ८१॥ अत्र त्रिपुरदाहे मुख्यं कारणं धर्म एवेति तत्स्तुतिमाह—**हते चेति**। हे पुरुषोत्तम! हे धर्मरूपिन्महाविष्णो॥ ८२॥ विष्णुर्धर्मः योगेन साम्यबुद्ध्यानुष्ठितः सन् प्रस्मयन् आश्चर्यमिव स्तूयते। अविद्यामुपजीव्य प्रवृत्तोऽपि तामेव मूलत उच्छिनत्तीत्याश्चर्यम्। तदेव मनेनाध्यायेन कृत्स्नस्य भारतस्य तात्पर्यं वर्णितं धर्मबलेनैव विद्योत्पत्तावविद्योच्छेदात्परमानन्दाभिव्यक्तिरिति शिवम्॥ ८३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां त्रिपुरवधो नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३३॥

१ ख. °रं त्रिधा शब्देन संज्ञितम्। तं बा°। × विशीर्यन्त इवाभान्ति मनुजेन्द्र धराधराः इति खपाठः।

# हरिवंशवृत्तान्तसंग्रहः।

## १३४

### [ १ ]

वैशम्पायन उवाच।

हरिवंशेऽत्र वृत्तान्ताः प्रकीर्त्यन्ते क्रमोदिताः
तत्राद्यमादिसर्गस्तु भूतसर्गस्ततः परः॥ १
पृथोर्वैन्यस्य चाख्यानं मनूनां कीर्तनं तथा।
वैवस्वतकुलोत्पत्तिर्धुन्धुमारकथा तथा॥ २
गालवोत्पत्तिरिक्ष्वाकुवंशस्याप्यनुकीर्तनम्।
पितृकल्पस्तथोत्पत्तिः सोमस्य च बुधस्य च
अमावसोरन्वयस्य कीर्तनं कीर्तिवर्धनम्।
च्युतिर्प्रतिष्ठे शक्रस्य प्रसवः क्षत्रवृद्धजः॥ ४
दिवोदासप्रतिष्ठा च त्रिशङ्कोः क्षत्रियस्य च।
ययातिचरितं चैव पुरुवंशस्य कीर्तनम्॥ ५
कीर्तनं कृष्णसंभूतेः
स्यमन्तकमणेस्तथा।
संक्षेपात्कीर्तिता विष्णोः
प्रादुर्भावास्ततः परम्॥ ६
तारकामययुद्धं च ब्रह्मलोकस्य वर्णनम्।
योगनिद्रासमुत्थानं विष्णोर्वाक्यं च वेधसः७
पृथ्वीवाक्यं च देवानामंशावतरणं तथा।

### [ २ ]

ततो नारदवाक्यं च स्वप्नगर्भविधिस्तथा॥ ८
आर्यास्तवः पुनः कृष्णसमुत्पत्तिः प्रपञ्चतः।
गोव्रजे गमनं विष्णोः शकटस्य निवर्तनम् ९
पूतनाया वधो भङ्गो यमलार्जुनयोरपि।
वृकसंदर्शनं चैव वृन्दावननिवेशनम्॥ १०
प्रावृषो वर्णनं चापि यमुनाह्रददर्शनम्।
कालियस्यापि दमनं धेनुकस्य च भञ्जनम्॥
प्रलम्बनिधनं चैव शरद्वर्णनमेव च।
गिरियज्ञप्रवृत्तिश्च गोवर्धनविधारणम्॥ १२
गोविन्दस्याभिषेकं च गोपीसंक्रीडनं तथा
रिष्टासुरस्य निधनमक्रूरप्रेषणं तथा॥ १३
अन्धकस्य च वाक्यानि केशिनो निधनं तथा
अक्रूरागमनं चैव नागलोकस्य दर्शनम्॥ १४
धनुर्भङ्गस्य कथनं कंसवाक्यमतः परम्।
कुवलयापीडवधश्चाणूरान्ध्रवधस्तथा॥ १५
कंसस्य निधनं चापि विलापः कंसयोषिताम्
उग्रसेनाभिषेकश्च यादवाश्वासनं तथा॥ १६
प्रत्यागतिर्गुरुकुलादथोक्ता रामकृष्णयोः।
मथुरायाश्चोपरोधो जरासन्धनिवर्तनम्॥ १७
विकद्रुवाक्यं रामस्य दर्शनं भाषणं तथा।
गोमन्तारोहणं चापि जरासन्धगतिस्तथा॥
गोमन्तस्य गिरेर्दाहः करवीरपुरे गतिः।
शृगालस्य वधस्तत्र मथुरागमनं ततः॥ १९
यमुनाकर्षणं चैव मथुरापक्रमस्तथा।
उपायेन वधः कालयवनस्य प्रकीर्तितः॥ २०
निर्माणं द्वारवत्यास्तु रुक्मिणीहरणं तथा।
विवाहश्चैव रुक्मिण्या रुक्मिणो निधनं तथा
बलदेवाह्निकं पुण्यं बलमाहात्म्यमेव च।
नरकस्य वधः पारिजातस्य हरणं तथा॥ २२
द्वारवत्या विशेषेण पुनर्निर्माणकीर्तनम्।
द्वारकायां प्रवेशश्च सभायां च प्रवेशनम्॥
नारदस्य च वाक्यानि वृष्णिवंशानुकीर्तनम्
षट्पुरस्य वधाख्यानं मेध्यकस्य निबर्हणम्॥
समुद्रयात्रा कृष्णस्य जलक्रीडाकुतूहलम्।
तथा भैमप्रवीराणां मधुपानप्रवर्तकम्॥ २५
ततश्छालिक्यगान्धर्वसमुदाहरणं हरेः।
भानोश्च दुहितुर्भानुमत्या हरणकीर्तनम्॥२६
शम्बरस्य वधश्चैव धन्योपाख्यानमेव च।
वासुदेवस्य माहात्म्यं बाणयुद्धं प्रपञ्चितम्॥

### [ ३ ]

भविष्यं पुष्करं चैव प्रपञ्चेनैव कीर्तितम्।
वराहं नारसिंहं च वामनं बहुविस्तरम्॥ २८
कैलासयात्रा कृष्णस्य पौण्ड्रकस्य वधस्ततः
हंसस्य डिम्भकस्यैव वधश्चैव प्रकाततः॥२९।
पुरत्रयस्य संहार इति वृत्तान्तसंग्रहः।
कथितो नृपशार्दूल सर्वपापप्रणाशनः॥ ३०
वृत्तान्तं शृणुयाद्यस्तु सायं प्रातः समाहितः
स याति वैष्णवं धाम लब्धकामः कुरूद्वह।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥३१

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वृत्तान्तसंग्रहे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

## हरिवंशश्रवणफलं महाभारतसमाप्तिश्च ।

### १३५

जनमेजय उवाच ।
हरिवंशे पुराणे तु श्रुते मुनिवरोत्तम ।
किं फलं किं च देयं वै तद्ब्रूहि त्वं ममाग्रतः॥१
वैशम्पायन उवाच ।
हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भरतोत्तम ।
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ॥
तत्सर्वं नाशमायाति हिमं सूर्योदये यथा ।
अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत् ॥ ३
तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा हरिवंशसमुद्भवम् ॥
शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णवं पदमाप्नुयुः ।
जम्बुद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ
भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम्
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः
दक्षिणा चात्र देया वै निष्कत्रयसुवर्णकम् ।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥
स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंयुताम्
वाचकाय प्रदद्याद्वै आत्मनः श्रेयकाङ्क्षया ॥८
अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ।
कर्णस्याभरणं दद्याद्यानं च सविशेषतः ॥ ९
भूमिदानं समादद्याद्ब्राह्मणाय नराधिप ।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०
शृणोति श्रावयेद्वापि हरिवंशं तु यो नरः ।
सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥११
पितॄनुद्धरते सर्वानेकादश समुद्भवान् ।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥ १२
दशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप ।
इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥ १३
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात् ॥१४
नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ।
तत्फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्धरेः ॥ १५
ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
सकृत्पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥१६
इदं मया ते परिकीर्तितं मह-
च्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ।
शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात्फलं
यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५ ॥

---

१३४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां वृत्तान्तसंग्रहो नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि टीकायां श्रवणफलकथनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरंधरचतुर्धरवंशावतंसश्रीगोविंदसूरिसूनोर्नीलकण्ठस्य कृतौ भारतभावदीपे हरिवंशान्तग्रन्थार्थप्रकाशः समाप्तिमगमत् ।

अयं ग्रन्थः श्रीकिञ्जवडेकरकुलकमलदिवाकरसार्वपृष्ठाप्तोर्यामयाजिदत्तात्रेयदीक्षिततनुजपण्डितरामचन्द्रशास्त्रिणा परिशोधितः परिष्कृतश्च । भारती जयतु । शाके १८५७ ॥

# महाभारते

# हरिवंशः।

## परिशिष्टरूपः

### सन्तानगोपालमन्त्रविधिः।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ सन्तानगोपालमन्त्रानुष्ठानविधिः ॥ अस्य श्रीसन्तानगोपालमन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीकृष्णो देवता। ग्लौं बीजम्। नमः शक्तिः। पुत्रार्थे जपे विनियोगः॥ देवकीसुत गोविन्द हृदयाय नमः॥ वासुदेव जगत्पते शिरसे स्वाहा॥ देहि मे तनयं कृष्ण शिखायै वषट्॥ त्वामहं शरणं गतः कवचाय हुम्॥ ॐ नमः अस्त्राय फट्॥ "वैकुण्ठादागतं कृष्णं रथस्थं करुणानिधिम्। किरीटिसारथिं पुत्रानानयन्तं परात्परम्॥१॥ आदाय तांञ्जलस्थांश्च गुरवे वैदिकाय च। अर्पयन्तं महाभागं ध्यायेत्पुत्रार्थमच्युतम्॥२॥" "ॐ श्रीं ह्रीं क्लैं ग्लौं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः"॥ अथ सन्तानगोपालमन्त्रान्तरमप्यत्र लिख्यते। ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, क्लीं बीजम्, नमः शक्तिः। पुत्रार्थे जपे विनियोगः। ग्लौं क्लीं शिरः० इत्याद्यङ्गानि॥ अथ ध्यानम्। शङ्खचक्रगदापद्मं दधानं सूतिकागृहे। अङ्के शयानं देवक्याः कृष्णं वन्दे विमुक्तये॥ "ॐ नमो भगवते जगदात्मसूतये नमः" अथ सन्तानगोपालमन्त्रप्रसङ्गात्सनत्कुमारोक्तसन्तानगोपालमन्त्रोऽप्यत्रोच्यते। श्रीनारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, ग्लौं हृ० क्लीं शिर० इत्याद्यङ्गानि अथवा-देवकीसुत गोविन्द हृद०। वासुदेव जगत्पते शिर०। देहि मे तनयं कृष्ण शिखा०। त्वामहं शरणं गतः कवचाय०। समस्तपदैरस्त्राय०॥ ध्यानम्। शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम्। अङ्के शयानं देवक्याः सूतिकामन्दिरे शुभे। एवंरूपं सदा कृष्णं सुतार्थं भावयेत्सुधीः॥ ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ मन्त्रत्रयस्यापि त्रिलक्षं जपेत्। अथास्यैव सन्तानगोपालमन्त्रस्य पूजादिकं सनत्कुमारोक्तप्रकारेणोच्यते। वैष्णवपीठे समावाह्य समर्चयेत्। अंगः प्रथमावृत्तिः, इन्द्रादिभिर्द्वितीया, वज्रादिभिस्तृतीया। "दशम्यपररात्रौ तु शुक्लपक्षेऽर्चयेद्धरिम्। पूजार्थं स्वस्तिकं न्यस्य शरावं घृतसंयुतम्॥१॥ कर्पूरवर्तिं संन्यस्य ज्वालयेद्दीपमुत्तमम्॥ पद्ममष्टदलं कृत्वा तत्रस्थं कृष्णमर्चयेत्॥२॥ सर्वोपचारसंयुक्तं (परिवारिवृक्षकषायेण) सम्पूर्य कलशद्वयम्। तत्रावाह्याच्युतं भक्त्या प्रोक्तवत्पूजयेत्पुनः। संस्पृश्य कलशद्वन्द्वमष्टोत्तरसहस्रकम्। अष्टोत्तरशतं वापि जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। द्वादश्या-

मथ गोविन्दं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्। शाल्यन्नं पायसं स्वादु गोसर्पिर्गुडमिश्रितम्। पक्वान्नं फलवत्सर्वं ससूपं च सतण्डुलम्। स्वादूपदंशं सुस्निग्धं कपिलादधिखण्डवत्। निवेदयेत्स्वर्णपात्रे पात्रभूताय विष्णवे। सुशीतलैश्च कर्पूरैः पाटलैः सुरभीकृतम्। वस्त्रपूतं स्वच्छतरं पानीयं च निवेदयेत्। स्ववित्तशक्त्या गोविन्दं बुद्ध्या श्रद्धाय शुद्धया। द्विजेभ्यो भोजनं दद्यात्सर्वकामसमृद्धये। संस्कृते चानले विष्णुमावाह्यार्घ्यादिभिर्यजेत्। हविरष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा। हुत्वा शेषं काचिद्द्रव्यं घृतेनाष्टशतं हुनेत्। सम्पात्य कलशद्वन्द्वे निषिच्येमौ च दम्पती। अभिषिच्य पुनस्ताभ्यां ध्यायंस्तोयमयं हरिम्। अष्टोत्तरशतं जप्त्वा हविःशेषं प्रदापयेत्। कृष्णं ध्यात्वा तु तत्पत्नी तमादाय सुखासने॥ आसीना प्राङ्मुखी भूत्वा एवं कृष्णं प्रभक्षयेत्[1]। सुभुक्तान्ब्राह्मणवरांस्ताम्बूलैर्मोदकादिभिः। प्रतर्प्याथ नमस्कृत्य विष्णुं ध्यात्वाथ तद्द्विजान्। ततस्ताभ्यामिष्टसिद्धिर्युवयोरस्त्विति द्विजाः॥ ब्रूयुस्तौ च सुसंहृष्टौ फलितं नोऽभिवाञ्छितम्। इति स्मरन्तावनघौ भुञ्जीयातामनन्तरम्॥ एवं यः कुरुते विप्रो वित्तशाठ्यविवर्जितः। विष्णुभक्त्या विशिष्टोऽयं द्वादश्यां सितपक्षके॥ सोऽचिराल्लभते पुत्रमायुष्मन्तं सुवर्चसम्। सन्ततेश्चापि कर्तारं विष्णुभक्तं महामतिम्॥ दरिद्रः कर्तुमेवं यो न शक्नोति द्विजोत्तमः। जपेद्वा तर्पयेद्वापि सोपि पुत्रमवाप्नुयात्॥" अथ सन्तानगोपालमन्त्रप्रसङ्गात् अस्यैव मन्त्रसारोक्तं सन्तानकरं यन्त्रं लिख्यते॥ कामं मध्ये स्वरयुगललसत्केसरेष्वष्टपत्रेष्वालिख्यैवं जलनिधिमितान्मन्त्रवर्णान्क्रमेण। भूयो हलिभिः परिवृतमिदं भूपुरस्थं तदेतद्यन्त्रं सद्यो वितरति नृणां पुत्रपौत्रादिवृद्धिम्॥ अस्यार्थः—प्रथमं पद्मं विलिख्य तत्कर्णिकायाम् क्लीं इति कामबीजं विलिख्य तन्मध्ये साध्यपत्नीपतिनामाद्यन्वितं लिखेत्। पुनः अष्टपत्रकेसरेषु अकारादिषोडशस्वरान् द्वौ द्वौ विलिखेत्। पुनर्दलमध्ये सन्तानगोपालमन्त्रवर्णांश्चतुरश्चतुरो विलिखेत्। पुनस्तद्बहिर्वृत्तं विलिख्य तस्मिन्कादिवर्णैर्वेष्टयेत्। पुनस्तद्बहिश्चतुरस्रं विलिखेत्। एवं नवनीते वा सूक्ष्मस्वर्णादिपत्रे[2] वा विलिख्य नारी उपयुंज्यात्[3]। तस्मात्पुत्रं प्रसूते॥ इति शारदातिलकोक्तसन्तानगोपालमन्त्रानुष्ठानविधिः समाप्तः॥

१ एतद्द्वारा जठरगतं भावयेत् इति तात्पर्यम्। २ भाषायां वर्ख इति ख्याते। ३ उपयुञ्ज्यात् भुञ्ज्यात् इत्यर्थः।

# सन्तानकरं यन्त्रम् ।

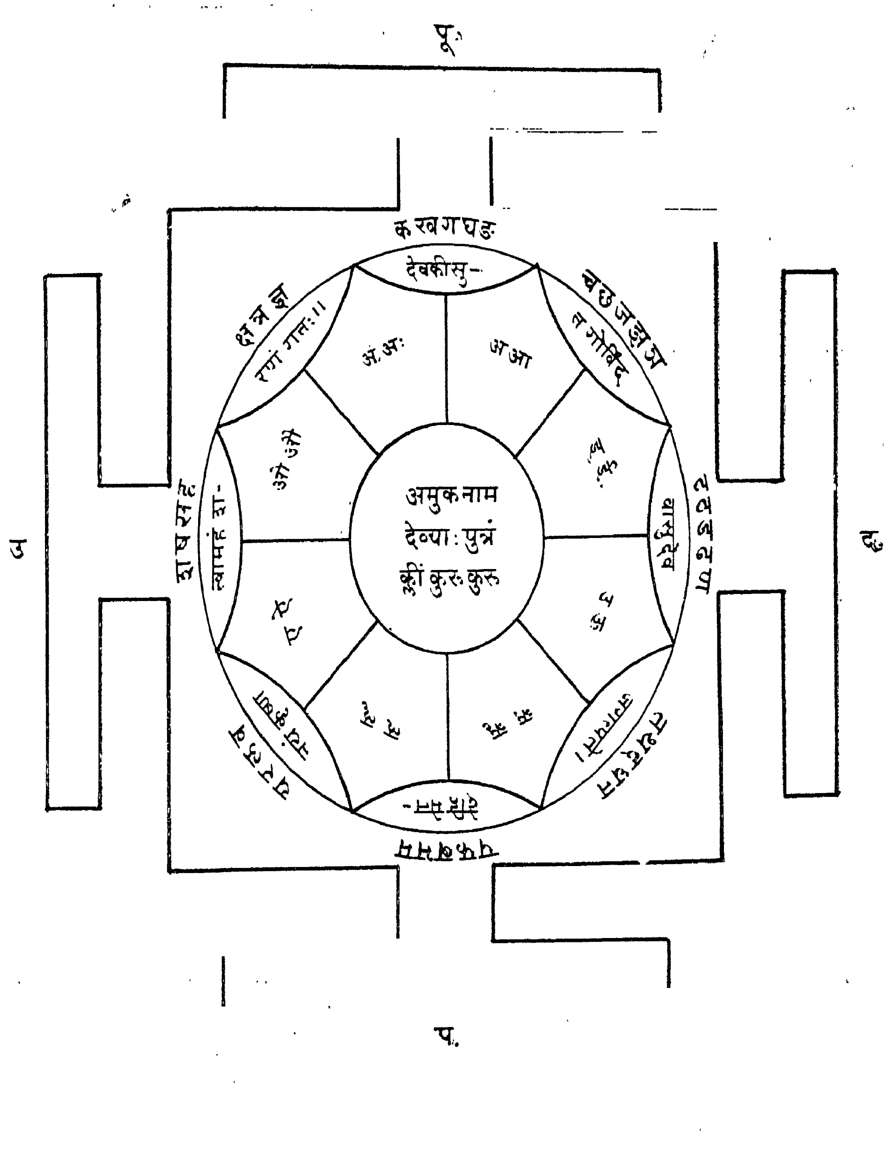

बालकृष्णः

# वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं सन्तानगोपालमन्त्रविधिः ।

॥अथ वंध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालविधानम् ॥ मंत्रसारे-आदौ शरीरशुद्ध्यर्थं कर्माधिकारार्थं जन्मान्तरीयसंततिप्रतिबंधकदुरदृष्टजनितदोषपरिहारार्थं कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं द्वादशाब्दषडब्दत्र्यब्दसार्द्धाब्दादीनि यथाशक्त्यनुसारेण प्रायश्चित्तानि दद्यात् "प्रायःपापं विजानीयाच्चित्तं तस्य विशोधनम् कृत्वा शुद्धिं तु देहस्य ततः कर्माणि कारयेत्" इति नियमात् ॥ अर्घादिप्रायश्चित्तलक्षणं तु महार्णवादावुक्तम्-"त्रिंशद्भिश्च तथा गोभिरर्धं तु मुनिभिः स्मृतम्" इत्यादिना द्रष्टव्यम् । उक्तविधानेन प्रायश्चित्ते कृते वंध्यात्वनिरासार्थं महार्णवोक्तं सुवर्णधेनुदानं, तथा षोडशशूर्पसौभाग्यद्रव्यं वस्त्रालंकारसहितयज्ञोपवीतदानं च विधेयम्॥ उक्तं च—" वंध्यात्वस्य निरासार्थं धेनुं दद्याच्च हेमजाम् ॥ तथा यज्ञोपवीतं तु दद्याद्धेममयं शुभम् ॥ षोडशानि च शूर्पाणि फलयुक्तानि दापयेत् ॥ एवं कृते विधानेन वंध्यत्वात्प्रतिमुच्यते ॥ सत्पुत्रं लभते नूनमेतत्कर्म प्रयोजयेत् ॥ " इति नियमात् ॥ अथ प्रयोगः--आचार्य्यहस्तेन देयमिति नियमात् तस्मादादौ आचार्य्यवरणं कार्यं " सर्वमाचार्य्यः प्रतिजानीत " इति नियमात् ॥ तत्र धेनुमानमाह-सूर्यार्णवे--" धेनुं निष्कचतुष्कस्य तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धकम् ॥ तदर्द्धस्य च वा तत्र चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥" इति हेमाद्रिवचनानुसारेण विदध्यात् ॥ एवं यज्ञोपवीतमपि देयम् ॥ सोमो धेनुमिति मंत्रेण होमाचरणं कुर्यात्।तद्विशेषविधानं महार्णवादौ द्रष्टव्यम्॥ एवं पूर्वोक्तमादौ निर्वर्त्य प्रायश्चित्तोत्तरं पूर्वाणि दशस्नानानि कृत्वा तत्प्रोक्तानि गोदानानि दत्त्वा पञ्चगव्यं प्राश्य तद्दिने उपोषणं कार्यम् । अशक्तश्चेत् हविष्यान्नं भुंजीत। ततः सुदिने चन्द्रतारानुकूल्ये पुरुषनक्षत्रे सन्तानगोपालविधानं कार्यम् ॥ अथ विधानम् ॥ पुरश्चरणस्य लक्षसंख्या नियमः तत्रापि कलौ चतुर्गुणं कार्यं तदुक्तम् " कलौ चतुर्गुणः प्रोक्तः पुरश्चरणके विधिः ॥ " इति वचनात् ॥ तत्रादौ ऋत्विग्वरणं तत्र मूलमन्त्रजपार्थमष्टौ ब्राह्मणान्वृणुयाच्चतुरो वा । तत्र सर्वकर्माधिकारार्थं शांतं तद्विधिज्ञमाचार्यं वृणुयात् ततः तदङ्गत्वेन चतुर्विधवंध्यात्वदोषपरिहारार्थं च लक्षसंख्याकपार्थिवलिङ्गपूजनं च शतचण्डीपाठं मन्युसूक्तजपं नवग्रहजपं रुद्राध्यायजपं हरिवंशश्रवणं च कुर्यात् । तत्र ऋत्विजः स्वशक्त्यनुसारेण जपं कुर्य्युरेवं मन्युसूक्तजपं लक्षसंख्याकं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा कुर्यात् । नित्यं तद्दशभिर्मंत्रितदशघटैः जलपूर्णैः दम्पती स्नायाताम्॥देवकीसुत गोविन्द अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥ वासुदेव जगत्पते तर्जनीभ्यां नमः ॥ देहि मे तनयं कृष्ण मध्यमाभ्यां नमः । त्वामहं शरणं गतः अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥ देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयादिन्यासः ॥ एवं न्यासं विधाय मूलेन त्रिव्यापकं कुर्यात् ॥ अथ ध्यानम् ॥ शान्तं सम्मुखसन्निषण्णममलं रक्ताम्बुजे बालकं माणिक्योज्ज्वलमालभूषणलसत्संतप्तहेमद्युतिम् ॥ प्रेम्णालिंग्य मुहुर्मुहुः सुखवशात्संभावितं स्वात्मना ध्यायेत्पुत्रतया पुराणपुरुषं पुत्राभिलाषी पुमान् ॥ एवं ध्यात्वा यथोक्तजपं कुर्यात् ॥ जपान्ते दशांशहोमं कुर्यात् । तर्पणं ब्राह्मणभोजनं च सम्पाद्य दानान्तं कृत्वा कुण्डं पूजयित्वा पुनर्मंडलदेवतानि सम्पूज्य ( तत्र योनिकुण्डं मुख्यम् ) एवं कुण्डमण्डपादि निर्वर्त्य गणेशादिलोकपालादिवास्तुयोगिनीनवग्रहमातृकाणां स्थापनं मूलदेवतास्थापनं मण्डलदेवतास्थापनं तोरणद्वारध्वजपताकानां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैः तत्तत्स्थाने सम्पूज्य कुण्डसंस्कारं कृत्वा अग्निं प्रतिष्ठाप्य दशांशेन हुत्वा तर्पणं ब्राह्मणभोजनं मार्जनं मण्डलदेवतास्थापनं लोकपालानां नवग्रहादिमण्डलचतुष्टयदेवतानां च यथाशक्त्या हेमप्रतिमाः कृत्वा मूलदेवताप्रतिमां च निष्काष्टकेन वा निष्कत्रयेण सम्पाद्य अग्न्युत्तारणं कृत्वा अधिवासनादि विसर्जनान्तं पूजयित्वा आचार्य्याय निवेद्य दक्षिणां दद्यात् ॥ शक्तश्चेत् कृष्णविग्रहः कर्तव्यः ॥ पद्मोपरि निविष्टो बालकरूपेण सुवर्णनिष्काष्टकस्य सुवर्णादिनिर्मितकलशे देवतानां प्रतिकलशं

विनार्थं शुद्धपाठे चेदुत्तमेन समं भवेत् ।
नवाहमुत्तमं प्रोक्तमेकविंशाहं मध्यमम् ॥ २२
निकृष्टमेकत्रिंशाहं सुखसाध्यं समाचरेत् ।
बहुभिर्दिवसै राजन्साध्यानां साधनं कलौ
तेन पारायणं साध्यं प्रोक्तं नारायणात्मना ।
नवाहो गर्जति कलौ चैकविंशाहिकस्तथा ॥
एकत्रिंशाहिको यज्ञो वंध्यादोषविनाशकः ।
गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेण च २५
श्रवणारम्भणे राजन्यथावत्कथयामि ते ।
अवसायान्तपर्यन्तं कार्यं मासव्रतं शुभम् ॥२६

चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय स्त्रिया हृष्टेन चेतसा ।
गोव्रतं नियतं कार्यं निराहारं निरुदकम् २७
सूर्यास्तकालपर्यन्तं
यावद्ग्रामागमो भवेत् ।
आगतां च सवत्सां हि
पूजयित्वा यथाविधि ॥ २८
यवसं पुष्कलं दत्त्वा यवान्नं कुरुते स्वयम् ।
एवं मासे चतुर्थ्यां सा शुक्लायां व्रतमाचरेत् ॥
स्त्रीव्रतं कथितं राजन्पुरुषस्य तथैव च ।
एवं मासव्रतं कृत्वा सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥ ३०

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## २

वैशम्पायन उवाच ।
अथ ते संप्रवक्ष्यामि नवाहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्बहुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिस्त्वयम्
दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छय यत्नतः ।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्प्य च २
नभस्यश्चाश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभः ।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां कामसूचकाः३
सहायाश्च त एवात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ।
देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः ४
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः
देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः
तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ।
सतां समाजो भविता नवरात्रं सुदुर्लभः ॥ ६
आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ।
तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं स्मृतम्
विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ।
शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ ८
गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीस्तम्भमण्डितः
फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्तोरणेन विराजितः १०
ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताधः परिकल्पयेत् ।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै ॥

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥
उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तथा
प्राङ्मुखोऽथ भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तथा
विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशारदः ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः
वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥
अथान्यजनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः ।
नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी १६
अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्तेनाः पाखण्डवादिनः ।
धर्मशास्त्रकथोच्चारैस्त्याज्यास्ते यदि पंडिताः
वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः १८
वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ।
वक्तुः श्रोतुश्चन्द्रशुद्धौ दम्पत्योः शुभतारके१९
अरुणोदये विनिर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत्
नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं प्रयतस्ततः ॥
सुक्षालितपाणिपादः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम् ॥ २१
स्वीयशक्त्यनुसारेण पूजनं सर्वमाचरेत् ।
कथाविघ्नविनाशाय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २२
स लक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत्ततः ।
निर्विघ्नेनैव सिद्ध्यर्थं देवपूजनपूर्वकम् ॥ २३

संकल्पं कुर्यात्—

अद्येहेत्यादिदेशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशर्मणो मम जन्मनि जन्मनि सञ्चितमहापातकपटलनाशपूर्वकं तेन पापसञ्चयेन कृतसन्तानबाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि संतानोत्पत्तिहेतवे तस्य संतानस्य शरदां शतमायुषो वृद्ध्यर्थमात्मनश्च सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीरशुद्ध्यर्थं परत्र चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकश्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पावधितल्लोकगमनतत्रवासपूर्वकतत्स्वरूपावाप्तिहेतवे श्रीमद्धरिवंशपुराणश्रवणं कर्तृकतया करिष्यावहे । अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये इत्येव संकल्पः। इति कृत्वा तु संकल्पं वक्तारं वृणुयात्ततः । श्रुताध्ययनसंपन्नं पूजयित्वा यथाविधि ॥२४ सुवर्णमुद्रिकां गृह्य कुण्डले च विशेषतः । धौतवस्त्रं सोत्तरीयं चोष्णीषेण समन्वितम् ॥ २५ ॥ सुवर्णषोडशपलं पुष्पताम्बूलसंयुतम् । पूगीफलं चाक्षतान्वै गृहीत्वा शुद्धमानसः ॥ २६ ॥ ( संकल्पः—अद्येहेत्यादि अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिश्चन्दनताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवंशश्रवणे वाचकत्वेनावां दम्पती त्वां वृणीवहे । वृतोऽस्मीति तेनोक्ते—"व्रतेन दीक्षामाप्नोति" इति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणकरमूले रक्षाबन्धनं कार्यम्। ब्राह्मणेन श्रोतृणां रक्षाबन्धनं कार्यम्॥ चन्दनाद्युपचारैस्तु वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा । हेमालंकरणैः पूगैः फलैर्ऋतुसमुद्भवैः॥ २७॥ पुराणपूजनं प्रोक्तं विधिना षोडशेन तु । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठाः श्रवणं फलदं स्मृतम् तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं विधिपूर्वकम् । अथ व्यासं नमस्कुर्युर्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२९॥ नमस्ते भगवन्व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद । ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत ॥ ३० ॥ इति व्यासं नमस्कृत्य शुभदेशे कुशासने । उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत्प्रीतमानसः ॥३१॥ बालो युवाऽथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्बलोऽपि वा। पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ ३२ ॥ नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन । यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ३३ ॥ गुरवः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये । तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ ३४ ॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदति । यो ददाति पुण्यवार्त्तां कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ ३५ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तोऽपि जितमत्सरः । साधुः कारुण्यवान्वाग्मी वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥३६॥ व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः । आ समाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३७ ॥ ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः। तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत्कथाम् ॥ ३८ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते । देशे नापूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३९ ॥ सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये । पुण्ये नदनदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ४० ॥ ईदृशाद्वाचकाद्राजञ्छ्रुत्वा फलमवाप्नुयात् । ऐहिकामुष्मिकं शर्म पुण्यं पुत्रादिसिद्धिदम्॥४१ महापापादिशमनं पुराणं हरिवंशकम् । योऽयं पुत्रादिसिद्ध्यर्थं हरिवंशं जितेन्द्रियैः॥४२ शृणुयात्सर्वभावेन पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥४३

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्यश्रवणादिविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ३

वैशम्पायन उवाच ।

जपाद्धि श्रवणं प्रोक्तं हरिवंशस्य सूरिभिः। पितॄन्संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ १ सुमण्डपं च कर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा । कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात्

प्रदक्षिणानमस्कारान्पूजान्ते स्तुतिमाचरेत्
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ ३
कर्मग्राहगृहीतोऽहं मामुद्धर भवार्णवात् ।
ततः श्रीहरिवंशस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ४
विधिना षोडशेनैव धूपदीपसमन्विता ।
ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ५
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ पुत्रार्थं भवसागरे ६
मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥ ७
एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत्
व्यासरूपप्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ९
तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ।
नवरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि
वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ११
सन्तानगोपालमन्त्रो महारुद्रजपस्तथा ।
पूजनं पार्थिवस्यैव गणनाथमनोर्जपः ॥ १२
ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत्
लोकवित्तधनागारसर्वचिन्ताच्युदस्य च ।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम्
दम्पती शुद्धमनसौ श्रद्धाभक्तिसमान्वितौ ।
श्रद्धैव सर्वधर्माणां मातेव हितकारिणी १५
श्रद्धैव च नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः ।
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलाऽपि फलदायिनी
मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति ज्ञानदः
श्रद्धया भजतो मन्त्रस्त्वसद्योऽपि फलप्रदः
श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि वरप्रदः ।
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम् १८
सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्धुतरोरिव ।
सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः ॥
परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते ।
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥ २०
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।
अतो भावमयं विश्वं पुण्यपापं च भावतः २१
ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन ।
तस्मात्सर्वात्मना राजञ्छ्रद्धाभक्ती समाश्रयेत्
आसूर्योदयमारभ्य सार्धं त्रिप्रहरार्धकम् ।
वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ॥
कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम्
तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनैश्च परैस्तदा २४
एवं श्रुत्वा विधानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् २५

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## ४

वैशम्पायन उवाच ।
नवाहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्शृणु सत्तम ।
एककालाशनश्चैव अधःशायी भवेन्नरः ॥ १
स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण यावद्ग्रन्थः समाप्यते ।
हरिवंशे तथा राजन्पायसं चरुभोजनम् ॥ २
पारणे पारणे यातं यथावद्भरतर्षभ ।
मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ ३
हविष्यान्नेन कर्तव्यमेकवारं कथार्थिना ।
अपोष्य नवरात्रं वा शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ४
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात्सुखम् ।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ५
सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ।
भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ६
नोपवासो वरः प्रोक्तो कथाविघ्नकरो यदि ।
शृणुयाद्यः शुचिस्तिष्ठन्नेकचित्ततया सदा ७
प्रातःस्नानादिकं कृत्वा पुत्रदारसमन्वितः ।
पुराणश्रवणं कुर्यात्कृष्णपूजनपूर्वकम् ॥ ८
पुष्पधूपफलैः सम्यङ्नैवेद्यैः श्रद्धयोद्धृतैः ।
गुरोः शुश्रूषणं तेन कर्तव्यं फलकांक्षिणा ९
श्रुत्वा यथेच्छया शौचं कार्यं पुण्येन वर्त्मना
सायंकाले गुरुश्रेष्ठं तोषयित्वा सबान्धवः १०

स्वपरिग्रहसङ्गेन सुखं स्वपिति वै तदा ।
नियमादि प्रकर्तव्यं पापानां विनिवर्तने ११
यथासुखं व्यवहरेन्नित्यं विष्णुपरायणः ।
शुचिः शुद्धमनास्तिष्ठन्पत्रावल्यां च भोजनम्
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।
द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ १३
भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ।
वृन्ताकं च कलिङ्गं च दग्धमन्नं मसूरिकाम् ॥
निष्पावानामिषाद्यं च वर्जयेच्च कथाव्रती ।
पलाण्डुं लशुनं हिंगुं मूलकं गृञ्जनं तथा १५
नालिकामूलकूष्माण्डं नैवाद्याच्च कथाव्रती ।
कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च १६
दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ।
वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ १७
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेच्च कथाव्रती ।
रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितात्रतकैः सह १८
द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेच्च कथाव्रती ।
सत्यं शौचं दया मौनमार्जवं विनयं तथा १९
उदारं मानसं तद्वत्कुर्यादेव कथाव्रती ।
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः
श्रोतारः पुण्यभागिनः ।
अभक्त्या ये कथां पुण्यां
शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ २१
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि
पुराणं ये तु संपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ २२
शृण्वन्ति च कथां भक्त्या
दरिद्राः स्युर्न पापिनः ।
कथायां कीर्त्यमानायां
ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ २३
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति
तेषां दाराश्च सम्पदः ।
सोष्णीषमस्तका ये च
कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ २४
ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वंति पावनीम्
स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः ।
नार्या रजस्वलायाश्च योनितुल्यं मुखं भवेत् ।
ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दांभिकाः
अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवंत्येव वायसाः
ये च वीरासनारूढा ये च शय्यासनस्थिताः
शृण्वंति तत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः २८
असंप्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति ते ।
तथा शयानाः शृण्वंतो भवन्त्यजगरा नराः
यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनमास्थितः
गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत् ॥ ३०
ये निन्दन्ति पुराणज्ञान्कथां वा पापहारिणीम्
ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः सम्भवंति च
कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ।
ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ३२
कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः
ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनशूकराः
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः
कोट्यब्दान्नरकान्भुक्त्वा भवंति ग्रामसूकराः
मध्ये वार्तां न कुर्वीत चेत्कुर्यान्निरयं व्रजेत् ।
कथायां श्रूयमाणायां न कुर्याच्छिशुलालनम्॥
नर्मवादान्वदेन्नैव स्त्रिया सम्भाषणं तथा ।
न कर्तव्यं प्रयत्नेन कथाविच्छेदकारणम् ॥३६
विच्छेदेन कथायास्तु ब्रह्महत्यासमं त्वघम् ।
प्राप्नोति मुनिशार्दूल कथाविच्छेदकः पुमान्॥
न कुर्यात्तु कथामध्ये त्वन्यवार्ताः प्रयत्नतः ।
नारी वा पुरुषो वापि कुर्यान्निरयमाप्नुयात् ॥
इतिहासं वदाम्यत्र शृणुष्वैकं हि मानद ।
यं श्रुत्वा न वदेद्वार्तां कथामध्ये कदाचन ॥३९

---

जनस्थाने पुरा कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः ।
धर्मशास्त्रेऽतिनिपुणः सदाचारपरायणः ॥४०
गङ्गास्नानं विधायादौ कृत्वा माध्याह्निकं तथा
कृत्वा देवार्चनं चैव श्रवणे तत्परोऽभवत्॥४१
तस्य भार्याऽतिदुष्टा च कर्कशा कलहप्रिया ।
असत्यालापनिपुणा परद्वेषपरायणा ॥४२॥
कृत्वा चक्रे धनस्यापि संग्रहं पापनिश्चया ।
दधि दुग्धं समानीय शर्करागुडमेव च ॥४३
घृतं च नवनीतं च स्वयमानीय सर्वदा ।
एकान्ते भक्षणं चक्रे भर्तयन्नं प्रशुष्ककम्॥४४
दुराग्रहा दुष्टमनाः पतिनिन्दापरायणा ।
बहुपापप्रकर्त्री च परवेश्मोपवेशिनी ॥४५॥
सुभाषणं वदेन्नैव द्विषः क्षेम विधायिनी ।
पंक्तिभेदं प्रकुर्वाणा सदा निष्ठुरभाषिणी ॥४६
अतिथिषु सदा वैरकारिणी धर्मनाशिनी ।
सज्जनोऽपि गुणी सौम्यस्तस्या भर्ता सुपूजितः
यदा भर्ता पुराणस्य श्रवणाय हि संस्थितः ।
प्रत्यहं तत्र गत्वा तु तस्य निन्दां चकार ह ॥

संन्यासिवत्कथं तत्र श्रवणे व्यासवत्कृतम् ।
समुत्पन्ननिरुद्योग किं कर्तव्यं मया वद ॥४९॥
शिशवो मां पीडयन्ति भक्षणाय दिने दिने ।
किं तेषां च प्रकर्तव्यं भक्षणार्थं मया वद॥५०
नास्त्येवान्नं गृहे किञ्चिद्वस्त्रं वाप्यथ वा धनम्
किं मया च प्रकर्तव्यं कुत्र गन्तव्यमेव च॥५१
कथं विलिखितं दृष्टं धात्रा पापेन मां पुरा ।
मूर्खश्चालस्यसंयुक्तो दरिद्रो निष्ठुरस्तथा॥५२
स्नेहहीनः कुटुम्बे च कथायाः श्रवणे रतः ।
एतादृशः पतिर्मह्यं धात्रा दत्तो दुरात्मना ५३
पृथिव्यां दुर्भगैकाहं दरिद्रगृहमागता ।
उदरपूर्तिमानं हि नान्नं मे भक्षितं कदा ॥५४॥

सौभाग्यास्ताः स्त्रियो लोके
यासामुद्योगशालिनः ।
पतयो धनधान्यादि-
समृद्धिपरिशोभिताः ॥ ५५ ॥

ते वै स्त्रीणां वाक्यकराः शिशुपालनतत्पराः
नित्यं गृहेषु तिष्ठन्ति स्त्रीणां संतोषकारकाः॥
सदन्नभक्षणात्पुष्टा भार्याज्ञापरिपालकाः ।
व्यवसायं च भार्याणां कुर्वन्ति बुद्धिशालिनः
अयं मूर्खश्च जडधीरुपेक्षां कुरुते गृहे ।
अद्य तैलं गृहे नास्ति चेन्धनं लवणं तथा॥५८
शाकश्च मम नास्त्येव धान्यलेशो न मद्गृहे ।
किं मया तु प्रकर्तव्यं पतिरेतादृशो मम ॥५९
कथायां श्रूयमाणायां पत्या सन्मार्गमूर्तिना ।
धान्यादौ विद्यमानेऽपि मिथ्याभाषणतत्परा॥
कथाविघ्नं चकारासौ कर्कशा सा दिने दिने
ततः कालेन मरणं प्राप्ता सा दुष्टमानसा॥६१
यमदूतैस्तु बद्धा सा नीता च यममन्दिरे ।
ततो यमाज्ञया तैस्तु नरके पातिता चिरम् ॥
पश्चात्सा राक्षसी जाता भैरवे जलवर्जिते ।
अरण्ये क्षुत्तृषायुक्ता पूर्वपापप्रभावतः ॥६३॥
तस्माद्विघ्नं न कर्तव्यं भार्यया पुरुषेण वा ।
श्रीहरेः सत्कथायास्तु तव सत्यं वदाम्यहम्॥

मृच्चालिनो महिषहंसबकस्वभावा
मार्जारकाकवरकंकजलौकतुल्याः ।
सच्छिद्रकुम्भजलसिन्धुशिलोपमाश्च
तेऽश्रावकाश्च सुचतुर्दशधा भवन्ति

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयात्स कथामिमाम्॥
अपुष्पा काकवन्ध्या च वंध्या या च मृतार्भका
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥
सुपुत्रं लभते राजन्व्यासस्य वचनं यथा ।
सर्वान्कामानवाप्नोति कथां श्रुत्वा हरेरिमाम्

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## ५

वैशम्पायन उवाच ।
एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ।
तद्वदुद्यापनं कार्यं भक्तिमद्भिः फलार्थिभिः॥१
अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनग्रहः ।
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥२
एवं नवाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः
प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ।
मृदङ्गताललसितं कीर्तनं कीर्त्यतां ततः ॥४॥
जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दश्च गीयताम् ।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम्॥
श्रवणान्ते हरेर्मूर्तिः सश्रीकस्य प्रदीयताम् ।
सुवर्णस्य कृता सम्यग्लक्ष्म्यंका पलमानतः ॥
समाप्तौ विधिवद्वस्त्रं क्षौमं दद्याच्च वाचके ।
विशेषोऽयं समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ७
समाप्य सर्वं प्रयतः संहिताशास्त्रकोविदः ।
शुभे दिने निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥८
शुक्लाम्बरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ।
अर्चयत्तु यथान्याय गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक्॥९
संहितापुस्तकं तत्र प्रयतः सुसमाहितः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्चापूपैश्च कौतुकैर्विविधैः शुभैः १०

हिरण्यमन्यद्द्रव्यं च दक्षिणां तत्र दापयेत् ।
ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम्
कल्पकोटिशतं साग्रं यान्ति ते ब्रह्मणः पदे ।
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥
कम्बलाजिनवासांसि
मञ्चाफलकमेव च ।
स्वर्गलोकं समासाद्य
भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥१३॥
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम्
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये सूत्रवसनं नवम् ॥१४
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ।
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ १५ ॥
पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ।
हरिवंशं लिखित्वा यो वाचकाय प्रदापयेत् ॥
यत्फलं भूमिदानस्य तत्फलं लभते हि सः ।
राजसूयेन तेनेष्टमश्वमेधेन वै नृप ॥ १७
दत्तानि सर्वदानानि हरिवंशे श्रुतेऽखिले ।
राजसूयाश्वमेधाद्या यज्ञाश्चैव युगे युगे ॥१८॥
श्रवणं हरिवंशस्य कलौ यज्ञफलप्रदम् ।
श्रद्धावानास्तिको दान्तो हरिवंशं यदारभेत्॥
पातकानि प्रकम्पन्ते प्रत्यूहानि ज्वलन्ति च ।
समारभ्य नयेत्पारं हरिवंशं य आदितः ॥२०
स्पर्शनाद्दर्शनात्तस्य विष्णुर्दृष्टो भवेन्नृप ।
जन्मत्रयस्य निकषं पातकस्य क्षयो ध्रुवम् ॥
फलाप्तिश्च समाप्तौ च हरिवंशस्य बुद्ध्यते ॥
भारतश्रोतुर्विज्ञेयं पूर्वं सुकृतिलक्षणम् ॥ २२ ॥
येन सञ्जायते बुद्धिर्हरिवंशावधारणे ।
सर्वाणि च पुराणानि वेदाश्च स्मृतयस्तथा २३
हरिवंशेन बद्धार्था व्यासेन च महर्षिणा ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां निन्दकेभ्यः कथञ्चन २४

पापिभ्यश्च महाराज श्रावयेन्नैव वाचकः ।
श्रुत्वा तुष्टेन मनसा वाचकं परिपूजयेत् २५
दान्तं यशस्विनं कान्तं शुचिस्पष्टाक्षरं ब्रुवन् ।
त्रिशुक्लमाचारपरमक्रोधनमवादिनम् ॥ २६
ग्रामं दद्यात्सुवसितं कुण्डलोष्णीषमालिकाम्
पादुकोपानहौ छत्रं सवितानं मसूरिकाम् २७
एवं कृत्वा तु विधिवद्वाचकाय प्रदापयेत् ।
यानं वर्षं हयगजौ क्षौमं मणिमयासनम् ॥ २८
पण्डभाण्डाश्रिताम्रस्य
ताम्रस्यैवाम्बुजाजिनम् ।
सकुटुम्बं च सस्त्रीकं
वाचकं परया मुदा ॥ २९
विभूषणैरलंकृत्य परिधाप्य सुवाससी ।
कृष्णद्वैपायनं ध्यायन्नमस्कुर्वीत भावतः॥ ३०
वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं हरिवंशफलेप्सुभिः ३१
प्रदेया गौः शुभा चैका सवत्सा हेमपूरिता ।
पलेन च पलार्धेन तदर्धं वाथ वा पुनः ॥ ३२
वाचकं येन केनापि तोषयेत्सुसमाहितः ।
तुष्टे तु वाचके राजंस्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥
तुष्टेषु सर्वदेवेषु कार्यं तु सफलं भवेत् ।
हरिवंशे समाप्ते तु वाचके परिपूजिते ॥ ३४
ऋणत्रयेण मुक्ताः स्युस्ते नरा जनमेजय ।
मोदन्ते पितरस्तेषां लोकान्प्राप्याक्षयान्नृप ॥
हरिवंशस्य प्रारम्भे समाप्तौ चैव तैः सह ।
सर्वान्कामानवाप्नोति विपाप्मा जायते नरः
एवं कृते विधाने तु प्रजां प्राप्नोति मानवः ।
धनमारोग्यमायुष्यं सौभाग्यं गुणगौरवम् ३७
प्राप्नोति मनुजः सम्यङ्नात्र कार्या विचारणा

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ६

जनमेजय उवाच ।

प्रारम्भस्तु कथं कार्यः कथं पूजाविधिः स्मृतः
कथं विसर्जयेद्व्यासं कथं सम्यक्फलं लभेत् १
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम ।

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु राजन्यथा वन्ध्या संततिं लभते ध्रुवम् २

वैशाखे माघ ऊर्जे च अन्यस्मिञ्छुभमासके।
शुक्लपक्षे तिथौ पूर्णानन्दाभद्राजयासु च ॥ ३
वारे गुरौ तथा शुक्रे चन्द्रे चन्द्रात्मजे तथा
नक्षत्रे श्रवणे हस्ते पुष्ये मूले पुनर्वसौ ॥ ४
वासवे तुहिनांशौ च पौष्णे च हयतारके।
सौभाग्यादिषु योगेषु करणे विष्टिवर्जिते ॥ ५
श्रोतुश्चाथापि वक्तुश्च चन्द्रे च बलशालिनि।
पूर्वाह्णे चापि मध्याह्ने प्रारंभः क्रियते बुधैः॥६
आदौ लम्बोदरः पूज्यः कलशस्तु ततः परम्।
श्रीखण्डागरुकर्पूरकुङ्कुमामोदलेपनैः ॥ ७
पङ्कजैश्चम्पकैरन्यैर्जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः।
तुलसीबिल्वधात्रीणां पत्रैरन्यैर्नवांकुरैः ॥ ८
धूपैर्दीपैश्च विविधैर्नारिकेलफलादिभिः।
ताम्बूलैर्मुखवासैश्चाखण्डितैः शुक्लतण्डुलैः ९
चामरैर्व्यजनैश्चैव घण्टावाद्यादिभिस्तथा।
प्रत्यहं पूजयेद्देवं यावद्ग्रन्थः समाप्यते ॥ १०
लग्नादिदोषरहिते वारे च शुभसंज्ञके।
समर्पयेत्पुराणं तु ततः पूजां समाचरेत् ॥ ११
प्रारम्भे च यथा पूजा तथा कार्या विसर्जने।
चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमैर्गन्धकादिभिः ॥ १२
गीतवादित्रनृत्यैश्च राजन्कार्यो महोत्सवः।
ततः पुराणपूजायां यथा दानं तथा शृणु॥१३
अष्टादशशतं दानं पुराणाय समर्पयेत्।
अभावे द्वादशशतं पूजा वै जनमेजय ॥ १४
तदभावेऽपि राजेन्द्र षट्शतं परिकीर्तितम्।
उत्तमं मध्यमं दानमधमं च प्रकीर्तितम् ॥ १५
सपत्नीकं ततो व्यासं दुकूलैरंशुकैर्नवैः।
पूजयेत्सर्वभावेन स सम्यक्फलमश्नुते ॥ १६
परिधाप्यानि देयानि कुण्डलानि शुभानि च
मुकुटाद्यैरलंकृत्य केयूराङ्गदभूषणैः ॥ १७
गावस्तु कपिला देयाः सवत्सा गर्भसंयुताः।
यानमश्वादिकं राजन्दासीदासान्समर्पयेत् ॥
आसनं पुरुषव्याघ्र धूपदीपादिभाजनम्।
शय्यातूलादिकं सर्वं सोपधानं सलड्डुकम्
स्थालीपीठादिकं राजञ्जलपात्रं तथैव च।
अन्नं च बहु दातव्यं लवणं जनमेजय ॥ २०
घृततैलादिकं राजन्यावद्वर्षं समाप्यते।
एतत्सर्वं द्विजेन्द्राय व्यासासनगताय च॥२१
मनोऽभीष्टवरं लब्ध्वा ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम्
पारणान्तेन राजेन्द्र द्विजेन्द्रं रुद्रजापिनम् ॥
वस्त्रादिभिरलंकृत्य मुद्रिकाभिस्तथैव च।
नवीनं कम्बलं शुभ्रं ताम्रपात्रं तथैव च ॥ २३
द्विजं द्विजं समुद्दिश्य दातव्या दक्षिणा बहु।
ततोऽभिषेकसंयुक्तं गुरुं चैव पुरोधसम् ॥ २४
वस्त्रादिभिरलंकृत्य
दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
ततोऽन्यान्ब्राह्मणान्सर्वा-
न्दक्षिणाभिः समर्चयेत् ॥ २५
हवनं च तथा राजन्कर्तव्यं कर्मशान्तये।
प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्दशांशेनैव वा पुनः॥ २६
पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम्।
अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥२७
तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्यास्य तत्त्वतः।
होमाशक्तौ बुधो हेम दद्यात्तत्फलसिद्धये २८
नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः
दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ २९
तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः
भोजयेन्मिथुनान्येव चतुर्विंशतिमादरात् ३०
ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान्
तोषयेद्दक्षिणाहेमैर्धान्यै रत्नादिभिस्तथा ३१
भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत्समया च तान्।
वाचकं भारतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ३२
सपत्नीकं च संतोष्य वस्त्रालङ्करणादिभिः।
ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥ ३३
वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥ ३४
शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्य लिखितं ललिताक्षरम्
संपूज्यावाहनाद्यैश्च उपचारैः सदक्षिणैः।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय महात्मने ॥ ३६
आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः।
एवं कृतविधानेन सर्वपापनिवारणे ॥ ३७
फलदं स्यात्पुराणं तु सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
अनेन विधिना राजन्यः पुराणं समापयेत्३८
तस्य स्त्री लभते गर्भं मासेनैकेन भारत।
अनेन विधिना राजन्व्यासं यस्तु समर्चयेत्॥
पूजयेद्दानमानाभ्यां तस्य स्त्री गर्भिणी भवेत्।
यन्मया त्रिविधं प्रोक्तं भक्तिपूजादिकं पुनः ॥
तत्कृत्वा लभते नारी पुत्रं भास्करतेजसम्।
तथा वंध्या लभेद्गर्भं व्यासस्य वचनं यथा ॥

विप्ररत्नापहारी च सोऽनपत्यः प्रजायते।
तेन कायविशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम्॥ ४३
पारीक्षितो राजा श्रद्धायुक्तेन चेतसा।
भवता सत्ययुक्तेन चैकाग्रमनसा तथा॥ ४३
श्रुत्वान्ते निश्चयं कृत्वा दम्भशाठ्यविवर्जितः
श्रुत्वेमं हरिवंशं वै व्यासं संपूज्य भक्तितः ४४
दानं च बहुलं कृत्वा व्यासाशीर्गृह्य भारत।
प्रसन्नवदनो भूत्वा रमते रमणीयुतः॥ ४५
प्राग्जन्मजनिते पापे क्षीणे वै जनमेजय।
ऋतावाद्ये तु संधत्ते गर्भं तस्य कुलाङ्गना ४६
द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थे मासि वै पुनः।
पञ्चमे वाऽपि षष्ठे वा सप्तमे अष्टमेऽपि वा४७
नवमे दशमे मासि दोहदं निश्चयं भवेत्।
व्यासेनोक्तमिदं पुण्यं वन्ध्यागर्भस्य लक्षणम्
पितॄनुद्धरते सर्वान्दश पूर्वान्दशापरान्।
हरिवंशं नरः श्रुत्वा सेतिहासं पुरातनम् ४९
इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५०
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति ह्यधनो धनमाप्नुयात्।
नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ५१
तत्फलं लभते सर्वं पुराणश्रवणाद्धरेः।
ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः।
सकृत्पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा।
इदं मया ते परिकीर्तितं मह-
च्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम्।
शृण्वन्पठन्नाशु समाप्तवान्फलं
यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत्॥ ५२

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणविधौ दानविधानकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इति सविधि हरिवंशमाहात्म्यं समाप्तम्॥

श्रीविष्णुः

चित्रशाळा प्रेस पुणे.

# अथ विष्णुशतनामस्तोत्रम् ।

नारद उवाच ॥

ॐ वासुदेवं हृषीकेशं वामनं जलशायिनम् ॥
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवत्सं गरुडध्वजम् ॥१॥
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम् ॥
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमजमव्ययम् ॥ २ ॥
नारायणं गदाध्यक्षं गोन्विदं कीर्तिभाजनम् ॥
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम् ॥ ३
वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम् ॥
चक्रपाणिं गदापाणिं शंखपाणिं नरोत्तमम् ॥ ४ ॥
वैकुंठं दुष्टदमनं भूगर्भं पीतवाससम् ॥
त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नंदकेश्वरम् ॥ ५ ॥
रामं रामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम् ॥
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मंगलं मंगलायुधम् ॥ ६ ॥
दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम् ॥
वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वसुदेवजम् ॥ ७ ॥
हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥
सकलं निष्कलं शुद्धं निर्गुणं गुणशाश्वतम् ॥ ८ ॥
हिरण्यतनुसंकाशं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥
मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम् ॥ ९ ॥
ज्योतीरूपमरूपं च स्वरूपं रूपसंस्थितम् ॥
सर्वज्ञं सर्वरूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम् ॥ १० ॥
ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम् ॥
योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम् ॥ ११ ॥
ईश्वरं सर्वभूतानां वंदे भूतमयं प्रभुम् ।
इति नामशतं दिव्यं वैष्णवं खलु पापहम् ॥ १२ ॥
व्यासेन कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय स भवेद्वैष्णवो नरः ॥ १३ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥
चांद्रायणसहस्राणि कन्यादानशतानि च ॥ १४ ॥
गवां लक्षसहस्राणि मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥
अश्वमेधायुतं पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीविष्णुमहापुराणोक्तं विष्णुशतनामस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

# भारत सावित्री ।

संपादकः

पण्डित रामचन्द्रशास्त्री किञ्जवडेकर

# Bhārat Sāvitri

Edited By

Pandit Ramchandrashastri Kinjawadekar

मुद्रकः प्रकाशकश्च

श्री. शंकर नरहर जोशी, चित्रशाळा प्रेस, १०२६ सदाशिव पेठ, पुणें २

१८५७

Printed & Published by

S. N. Joshi, at Chitrashala Press, Sadashiv peth, Poona 2

1936

# प्राक्कथनम् ।

अयि ! विपश्चिदपश्चिमाः प्रियपाठकप्रवराः किंचिदिदं कर्णे कुरुत । यत्–इदं भारतसावित्र्यभिधं स्तोत्रं बहोः किल कालादारभ्य श्रद्धालूनां पठणपाठणयोर्वरीवर्ति । कुत्रचन शास्त्रप्रमाणितमतिभिर्ग्रन्थकारैरधुनातनैः स्वीये ग्रन्थेऽनुपदमस्योल्लेखः प्रमाणत्वेन कृतो दृश्यते* । अस्मिंश्च सकलमहाभारतस्य निर्गलितः सारतरोच्चयः प्रकामं दृग्गोचरो भवति । इत्यादिकारणकदम्बैः प्रेरिता वयमस्यानेकैरादर्शैः संशोधनमकार्ष्म । ते च आदर्शा यथा—

'क' संज्ञकः पुण्यपत्तनस्थानंदाश्रमस्थो २८८२ क्रमाङ्काङ्कितो (Size -7×4½ inches). लिखितस्त्रिनवतिश्लोकात्मकः शके १७३८ तमे वत्सरे लिखित एकोनविंशातिपत्रमयः ।

'ख' संज्ञकः पुण्यपत्तनस्थानंदाश्रमस्थः ५७३४ क्रमाङ्काङ्कितः (Size-8×5 inches). चतुष्षष्टिश्लोकात्मको लिखितस्त्रयोदशपत्रघटितः ।

'ग' संज्ञितः अस्मदीयमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वण अन्तिमे भागे समागतः पञ्चश्लोकात्मको भागः ।

एतेषु सकलादर्शेषु यत्र यत्र विभिन्नता, श्लोकाधिक्यं, मतान्तरं वा दृष्टं तत्तत्सावधानतया टिप्पणीरूपेण यथायथं प्रदर्शितम् । मन्ये चैतेन परिष्कृतेन भारतसावित्र्याः प्रथममुद्रणेन महाभारतार्थसंशोधकानामनल्पो लाभः स्यादिति । अन्ते च–अस्मिन्कार्येऽस्ति कश्चिद्दोषकदम्बश्चेत् 'भ्रान्तिः पुरुषधर्मत्वम्' इति समाकलय्योदारमतिभिर्भवदयासागरैर्विद्वद्भिरयं जनः क्षन्तव्य इति विज्ञाप्य विरमति—

फा. सुदि ११, शाके १८५७.
भुवनभारतीग्रंथशाला, पुण्यपत्तनम् ।

विदुषां वशंवदः
**किञ्जवडेकरोपाह्वो रामचन्द्रशास्त्री ।**

---

* विद्यानिधि–सिद्धेश्वरशास्त्रि[illegible]कृतो भारतवर्षीय–प्राचीनचरित्रकोशः, विद्वत्कुलशेखर–चिन्तामणि–विनायक–वैद्यकृताश्च महाभारतसंबन्धिनो ग्रंथा द्रष्टव्याः ।

॥ श्रीभारती जयतु ॥

# भारतसावित्री ।

व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥ १ ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे ।
नमो वै ब्रह्मनिधये वसिष्ठाय नमो नमः ॥ २ ॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः
अभाललोचनः शंभुर्भगवान्बादरायणः ॥ ३ ॥
मुनिं स्निग्धाम्बुजाभासं वेदव्यासमकल्मषम् ।
वेदव्यासं सरस्वत्या वासं व्यासं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

संजय उवाच[3] ।

द्वारावत्यां स्थितं कृष्णं चिन्तयामास वै पुरा ।
संध्यर्थं प्रेषयामास कुरूणां पाण्डवैः सह × ॥५॥
पाण्डवानां हितार्थाय शीघ्रं कृष्णेन गम्यताम् ।
श्रीकृष्णो रथवेगेन गत्वा वै हस्तिनापुरीम् ॥ ६ ॥
विदुरस्य गृहं गत्वा दृष्टस्तेन जनार्दनः * ।
विदुरश्चागतं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

विदुर उवाच ।

भवद्दर्शनमात्रेण कृतकृत्योऽस्म्यहं प्रभो ।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।
अद्य मे पितरस्तुष्टा गोविन्दे गृहमागते ॥ ८ ॥
अद्याष्टमी च नवमी च चतुर्दशी च
अद्यायनं च विषुवं च दिनत्रयं च ।
अद्यैव पिण्डपितृयज्ञमखस्य कालो
दामोदरेण सहसा गृहमागतेन ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

साधु साधु महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
तुष्टोऽस्मि च वरं ब्रूहि दास्यामि कुरुनन्दन १०

विदुर उवाच ।

भोजनं विप्रसंकीर्णं बन्धुसंकीर्णमन्दिरम् ।
शयनं सुतसंकीर्णं देहि मे मधुसूदन ॥ ११ ॥

---

१–' क ' पुस्तके–श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीकुलदेवतायै नमः ॥ श्रीगुरवे नमः इति लेखनकर्तुर्मंगलं दृश्यते ।

२ ' क ' पुस्तके–सरस्वत्या व्यासं वासं न०

३ ' ख ' पुस्तके–श्रीगणेशाय नमः ॥ व्यास उवाच ॥ द्वारा० । ( आदिमं श्लोकचतुष्टयमस्मिन् पुस्तके नास्ति )

× एतच्छ्लोकार्धं ' ख ' पुस्तके नास्ति ।

४ ' क ' पुस्तके–०घ्रं कृष्ण सुगम्य०

५ ' ख ' पुस्तके–०नापुरम् ।

* ' ख ' पुस्तके–एतत्पद्यार्धं नास्ति ।

६ ' ख ' पुस्तके विदुरो दृष्टवान् कृष्णं स्वागतं वै महाप्रभो ॥ २ ॥ भवद्दर्श०

७ ' ख ' पुस्तके–०कृत्योऽस्मि सर्वदा । अद्य मे स०

८ ' ख ' पुस्तके–०न्म सुप्रभाता च मे निशा ॥ ३ ॥ अ०

९ ' ख ' पुस्तके–०ज्ञ सर्वज्ञानविशारद । तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि ददामि कु०

१० ' ख ' पुस्तके–आसनं बन्धुसंकीर्णं विप्रसंकीर्णमन्दि०

संजय उवाच ¶ ।

कृष्णस्यागमनं श्रुत्वा राजराजः सुयोधनः ।
विदुरस्य गृहं गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

दुर्योधन उवाच ।

भीष्मद्रोणौ[11] परित्यज्य मां चैव मधुसूदन ।
किमर्थं पुण्डरीकाक्ष ! कृतं वृषलिभोजनम् ॥ १३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः ।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने ॥ १४ ॥
शुद्धं भागवतस्यान्नं शुद्धं भागीरथीजलम् ।
शुद्धं विष्णुपदं दिव्यं शुद्धमेकादशीव्रतम् ॥ १५ ॥
चाण्डालं मम भक्तं वा नावमन्येत बुद्धिमान् ।
योऽवमन्येत मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १६ ॥
कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः
व्यसनं कैर्न संप्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् § ॥ १७ ॥
भोजनं पृच्छसे[12] राजन्नादरं किं न पृच्छसि ।
भोजनं गतजीर्णं स्यादादरस्त्वजरामरः ॥ १८ ॥
आदरेणोपनीतानि शाकान्नानि सुयोधन !
प्रीणन्ति मम गात्राणि नामृतं मानवर्जितम् * ॥ १९ ॥
संप्रीतिभोज्यान्यन्नानि[13] आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न च संप्रीयसे राजन्न वै चापद्गता वयम् ॥ २० ॥
द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत् ।
पाण्डवान्द्वेक्षि[14] भो राजन् ! मम प्राणा हि पाण्डवाः ॥
मम वाक्यं कुरुश्रेष्ठ शान्तिमिच्छ सुयोधन ।
राज्यं तेषां समं दत्त्वा यूयं पञ्चोत्तरं शतम् ॥ २२ ॥
गोत्रक्षयो न कर्तव्यो राज्ञां बन्धुजनैः सह ।
कुर्वन्तो ते हितं वाक्यं मम बोधं विबोधय ॥ २३ ॥
वने द्वादश वर्षाणि अज्ञातं[16] च त्रयोदशम् ।
पञ्च[17] ग्रामार्थिनो राजन् पाण्डवा धर्मचारिणः ॥ २४ ॥

दुर्योधन उवाच[18] ।

यन्त्रस्य गुणदोषोऽस्ति यन्त्रिणः पुरुषोत्तम ।
अहं यन्त्रो भवान् यन्त्री मम दोषो न विद्यते ॥ २५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इन्द्रप्रस्थं यमप्रस्थमवन्ती वारुणापुरी ।
देहि मे चतुरो ग्रामान्पञ्चमं हस्तिनापुरम् ॥ २६ ॥

दुर्योधन उवाच ।

इन्द्रप्रस्थं गुरोर्दत्तं यमप्रस्थं कृपस्य च ।
वारुणावतकं भीष्मे अवन्ती सूर्यनन्दने ॥ २७ ॥
हस्तिनापुरमस्माकं[19] पञ्च ग्रामाननुक्रमात् ।
एवं[20] व्यवस्थितान्ग्रामान् शृणु देवकिनन्दन ॥ २८ ॥
सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन यावद्भिद्यति मेदिनी ।
तावन्न[21] हि प्रदास्यामि विना युद्धेन केशव ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

द्वाविमौ पुरुषौ मूर्खौ दुर्योधनदशाननौ ।
गोग्रहं वनभङ्गं च दृष्ट्वा युद्धं पुनःपुनः † ॥ ३० ॥

---

¶ 'ख' पुस्तके-व्यास उवाच । दुर्लभा विप्रगोष्ठी च गङ्गास्नानं च दुर्लभम् ॥ दुर्लभं विष्णुपादाब्जं दुर्लभा भारती कथा ॥ ७ ॥ °कृष्णस्याग°

११ 'ख' पुस्तके-भीष्मं द्रोणं प°

§ 'ख' पुस्तके-'न शूद्रेत्याद्यारभ्य...निरन्तरम्' इत्यन्तो ग्रन्थो नास्ति ।

१२ 'क' पुस्तके-पृच्छसि रा°

* 'ख' पुस्तके-अयं श्लोको नास्ति ।

१३ 'ख' पुस्तके-'प्रीतिभोज्यानि चान्नानि तथैवापद्गतानि च । न ते प्रीतिश्च राजेन्द्र न चैवापद्गता वयम्' इति पाठान्तरम् ।

१४ 'क' पुस्तके-°वान्द्वेषते रा°

१५ 'ख' पुस्तकेऽयं श्लोको नास्ति ।

१६ 'क' पुस्तके-आज्ञा°

१७ 'ख' पुस्तके-'पञ्चग्रामार्थिनो राजा पाण्डवानां युधिष्ठिरः' इति पाठान्तरम् ।

१८ 'ख' पुस्तके-'दुर्योधन उवाच' तथा-यन्त्रस्येत्यादिपद्यं च नास्ति ।

१९ 'ख' पुस्तके-नागसाह्वयमस्मा°

२० 'ख' पुस्तके-'एवं हि वेष्टितान् ग्रामान् शृणु त्वं देवकीसुत' इति पाठान्तरम् ।

२१ 'ख' पुस्तके-तामहं न प्रदा°

† 'ख' पुस्तके-इदं पद्यं नास्ति ।

यदा यदा पश्यति वानरध्वजं
धनुर्धरं पाण्डवमध्यमं रणे ।
गदाप्रहारं बलिनं वृकोदरं[22]
तदा तदा दास्यसि सर्वमेदिनीम्॥३१॥

यदा यदा द्रोणविकर्णकर्णैः
संक्षिप्तमात्रे खलु भीष्मशल्यौ ।
कृपश्च योधाः पतिता रणाङ्गणे
तदा तदा दास्यसि सर्वमेदिनीम् ‡ ३२

दुर्योधन उवाच ।

हिरण्यवर्णं परिपूर्णगात्रं
मेरोन्नतं मत्तगजेन्द्रतुल्यम् ।
आदित्यपुत्रं बहुशत्रुनाशं
पश्यामि कर्णं रथमारुहन्तम् ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

नरे चतुष्कं तुरगे च षोडशं
गजे शतं पञ्चशतं रथेषु ।
दृष्ट्वाऽर्जुनो मुञ्चति बाणवर्षं
स्वातीगतः शुक्र इवातिवृष्टिम्[23] ॥३४॥

एकधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा ।
[24]रणे पार्थशरा वृष्टिर्दानं ब्रह्मविदो यथा ॥ ३५ ॥

किं कर्णेन सहस्रेण दुर्योधनशतैरपि ।
शरगर्जितमेघेन वृथा कर्णेन गर्जितम् ॥ ३६ ॥
एकाकी पादचारेण यदि नायासि कौरव ।
धर्मशास्त्रप्रवक्तारो[25] मन्वाद्या मद्यपायिनः ॥ ३७ ॥

---

धृतराष्ट्र उवाच ।

ब्रूहि संजय यद्वृत्तं युद्धे[26] तेषां महात्मनाम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च[27] संप्रवृत्ते महाक्षये ॥ ३८ ॥
के तत्र प्रमुखा योधाः के च[28] तत्र महारथाः ।
महाबलाश्च के तत्र कथं ते विनिपातिताः ॥३९॥
भीष्मद्रोणौ[29] कथं भग्नौ कर्णशल्यौ कथं हतौ ।
कथं दुर्योधनो राजा भीमसेनेन पातितः ॥ ४० ॥

संजय उवाच ।

मेदिनीभारनिर्हारं[30] पार्थसारथिमच्युतम् ।
प्रणमामि हृषीकेशं दुर्लभं चक्रपाणिनम् ॥ ४१ ॥
दुर्लभा विप्रगोष्ठी च दुर्लभा भारती कथा ।
दुर्लभा हरिभक्तिश्च गङ्गास्नानं च दुर्लभम् ४२
सद्भिश्च सहवासेन जाह्नव्या दर्शनेन च ।
विष्णोः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते* ॥४३॥
अर्जुनः सात्यकिश्चैव धृष्टद्युम्नो घटोत्कचः ।
शिखण्डिश्चाभिमन्युश्च वायुपुत्रो[31] महाबलः ॥ ४४॥

---

२२ 'ख' **पुस्तके**-गदाप्रहस्तन्त्रमणं वृ॰

‡ 'ख' **पुस्तके**-एतत्पद्यं नास्ति ।

२३ 'ख' **पुस्तके**-॰तिवृष्टम् । 'क' **पुस्तके**-॰गतं शुक्रमिवाम्बुवृष्टिः ।

२४ 'ख' **पुस्तके**-' रणे पार्थशरैर्वृष्टिर्दानं ब्रह्मपोर्जितम् ' इ. पाठः

२५ 'क' **पुस्तके**-वक्तारो धर्मशास्त्राणि इ. पा. 'ख' **पुस्तके**-एकाकीत्यादिपद्यं संजयवाक्यत्वेन वर्तते। तथा च-द्वा विमौ पुरुषौ मूर्खौ दुर्योधनदशाननौ॥ गोग्रहं वनभङ्ग च दृष्ट्वा युद्धं पुनः पुनः इति पद्यमाधिकम् ।

२६ 'क' **पुस्तके**-॰त्तं युद्धं ते॰ ।

२७ 'क' **पुस्तके**-च संसवर्तौ महाक्षयः । के त॰

२८ 'क' **पुस्तके**-केचित्तत्र म॰ ।

२९ 'ख' **पुस्तके**-भीष्मद्रोणौ कथमित्यादिश्लोकार्धं नास्ति ।

३० 'ख' **पुस्तके**-॰रनिर्हासं पा॰ ।

* 'ख' **पुस्तके**-दुर्लभा विप्रेत्याद्यारभ्य...प्रमुच्ये इत्यन्तं पद्यद्वयं नास्ति ।

३१ 'ख' **पुस्तके**-॰पुत्रस्तथैव च । न॰ ।

नकुलः सहदेवश्च धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विराटश्चोत्तरश्चैवं[32] द्रुपदश्च महारथः ॥ ४५ ॥
पाण्डवानां बले योधाः सर्वे विष्णुपराक्रमाः ।
कौरवाणां बले योधाः सर्वे संकर्षणप्रभाः ॥ ४६ ॥
शकुनिः सौबलो भीष्मः कृतवर्मा जयद्रथः ।
भूरिश्रवाश्च[33] बाह्लीको भगदत्तस्तथैव च ॥ ४७ ॥
उलूकः सोमदत्तश्च शशिबिन्दुश्च पार्थिवः ।
द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यो वृषसेनो हलायुधः॥४८
वैकर्तनो[34] विकर्णश्च कलिङ्गस्तु तथैव च ।
दुःशासनश्च[35] कर्णश्च राजा दुर्योधनस्तथा ॥४९॥
एते द्वाविंशतिः प्रोक्ता भारतेषु महारथाः ।
कौरवाः पाण्डवाश्चैव एते युद्धविशारदाः+ ॥५०॥

भीष्म उवाच ।

अर्जुनः सह पुत्रेण द्रोणः सह सुतेन च ।
अहं भूरिश्रवाश्चैव षडेतेऽतिरथाः स्मृताः ॥५१॥
कृपश्च कृतवर्मा च मद्रराजो युधिष्ठिरः ।
विराटो भीमसेनश्च षडेते च महारथाः ॥५२॥
सात्यकिश्च शिखण्डिश्च धृष्टद्युम्नो विराटजः ।
शकुनी राजपुत्रश्च एते समरथाः स्मृताः ॥५३॥
दुःशासनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽपि सैन्धवः ।
नकुलः सहदेवश्च षडेतेऽर्धरथाः स्मृताः ॥५४॥
अहमेकं त्रिभिर्द्रोणः पञ्चभिः सूर्यनन्दनः ।
निमेषं द्रोणपुत्रस्तु निमिषार्धं धनञ्जयः ॥५५॥
चतुर्विंशतिरेते वै ( वीरा ) [36]भारतसत्तमाः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः= ॥ ५६ ॥

---

आदिपर्व सभापर्व पर्व आरण्यकं तथा ।
विराटपर्व विज्ञेयं चतुर्थं तदनन्तरम् ॥ ५७ ॥
उद्योगं पञ्चमं पर्व भीष्मपर्व अतःपरम् ।
सप्तमं द्रोणपर्व तु कर्णपर्व अथाष्टमम् ॥ ५८ ॥
नवमं शल्यपर्व च गदापर्व अतःपरम् ।
सौप्तिकं[37] तदा पर्व गर्भपातनमेव च ॥ ५९ ॥
त्रयोदशं तु स्त्रीपर्व[38] प्रदानमुदकस्य च
शान्तिपर्व[39] अतः प्रोक्तमाश्वमेधिकमेव च ॥६०॥
स्वर्गारोहणपर्व तु हरिवंशस्तथैव च ।
इत्यष्टादशपर्वाणि संख्या द्वैपायनेन तु[40] ॥ ६१ ॥

---

भाति सर्वेषु वेदेषु रतिः सर्वेषु जन्तुषु
तरणं सर्वपापानां यस्माद्भारतमुच्यते ॥ ६२ ॥
भारतस्य समुद्रस्य मेरोर्नारायणस्य च ।
अप्रमेयाणि चत्वारि पुण्यं तोयं गुहागुणाः $ ६३

---

हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी[41] ।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम् ॥ ६४ ॥
फाल्गुन्यां[42] निहतो भीष्मः कृष्णपक्षे च सप्तमी ।
अष्टम्यां चैव सौभद्रो नवम्यां च जयद्रथः॥६५॥
दशम्यां भगदत्तस्तु महायुद्धे निपातितः ।
एकादश्यामर्धरात्रौ हतो वीरो घटोत्कचः ॥६६॥

---

३२ ' ख ' पुस्तके-°व सर्व एव महारथाः । पा°
३३ ' क ' पुस्तके-°वास्तु बा°
३४ ' क ' पुस्तके-°कर्तनो विकर्तश्च क° ।
३५ ' ख ' पुस्तके-°सनो विचित्रश्च रा° ।
+ ' ख ' पुस्तके-एतत्पद्यार्धं नास्ति ।
३६ ' क ' पुस्तके-°थस° ।
= ' ख ' पुस्तके-भीष्म उवाचेत्यारभ्य...युद्धविशारदाः इत्यन्तं श्लोकषट्कं नास्ति ।
३७ ' ख ' पुस्तके-वृषतं तु ततः प्रोक्तं गर्भ° ।
३८ ' क ' पुस्तके-स्त्रीपर्व यदुवंशस्तथैव च इति ।
३९ ' क ' पुस्तके-अश्वमेधादिकं पर्व शान्तिपर्व तु षोडशम् । हरिवंशस्तथा पर्व स्वर्गारोहणकं तथा । इति पाठान्तरम् ।
४० ' क ' पुस्तके-°नेन च ।
$ ' ख ' पुस्तके-' भाति सर्वेषु ' इत्यारभ्य 'गुहागुणाः ' इत्यन्तः श्लोकद्वयात्मको ग्रन्थो नास्ति ।
४१ ' क ' पुस्तके-°दशी । प्र° ।
४२ ' क ' पुस्तके-फल्गुनेन हतो भी° ।

ततः प्रभातसमये विराटद्रुपदौ हतौ ।
द्वादश्यां चैव मध्याह्ने द्रोणाचार्यो रणे हतः॥६७
त्रयोदश्यां तु मध्याह्ने वृषसेनो निपातितः ।
चतुर्दश्यां तु पूर्वाह्ने रणे दुःशासनो हतः ॥६८॥
तस्मिन्नेव महायुद्धे वर्तमाने चतुर्दशी ।
धनंजयेन मध्याह्ने कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ ६९॥

निःशब्दतूर्यं हतयोधवीरं
प्रशान्तदर्पं धृतराष्ट्रसैन्यम् ।
न शोभते सूर्यसुतेन हीनं
वृन्दं ग्रहाणामिव चन्द्रहीनम् ॥ ७० ॥

मुखं कमलपत्राक्षं यथा श्रवणवर्जितम् ।
तथा तत्कौरवं सैन्यं कर्णहीनं न शोभते ॥७१॥

* व्यूढोरस्कं विमलवसनं तप्तहेमावभासं
पुत्रं दृष्ट्वा भुवनतिलकं पार्थबाणावसक्तम् ।
पांसुग्रस्तं मलिनवसनं पुत्रमन्वीक्ष्य तं च
मन्दं मन्दं मृदितवदनं मेदिनी मन्दराशिः ७२

त्व (या) मया च कुन्त्या च धरण्या वासवेन च।
जामदग्न्येन रामेण षड्भिः कर्णो निपातितः ७३
+ अमायां धर्मपुत्रेण शल्यो मद्राधिपो हतः ।
उलूकः शकुनिश्चैव यमाभ्यां विनिपातितौ ॥ ७४
अमायामर्धरात्रे तु राजा दुर्योधनो हतः ।
भीमसेनस्य गदया ताडितो विनिपातितः ॥७५॥
अभवत्तादृशं युद्धं क्षत्रियाणां मनस्विनाम् ।
अन्यथा भाषितं युद्धं कर्मणा कृतमन्यथा ॥७६॥
अमायामेव यामिन्यां द्रौणिना निहतस्तदा ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥
अष्टौ रथसहस्राणि नव दंतिशतानि च ।
राजपुत्रसहस्रं च अश्वत्थामा निवर्तते ॥७८॥
दिनानि दश भीष्मेण भारद्वाजेन पञ्च च ।
दिनद्वये तु कर्णेन शल्येनार्धं दिनं तथा ॥७९॥
दिनार्धं तु गदायुद्धमेतद्भारतमुच्यते ।
एवमष्टादशं हन्ति अक्षौहिण्यां दिनक्रमात् ॥८०
+ धर्मक्षेत्रे क्षयक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे महात्मना ।
पार्थेनारोहयन्स्वर्गं राजपुत्रा यशस्विनः ॥ ८१ ॥
नवनागसहस्रेषु नागे नागे शतं रथाः ।
रथे रथे शतं चाश्वा अश्वे अश्वे शतं नराः ॥८२
रणयज्ञे महीयज्ञे दीक्षितोऽयं युधिष्ठिरः ।
वेदिं कृत्वा कुरुक्षेत्रं यूपं कृत्वा जनार्दनम् ॥८३॥
होतारमर्जुनं कृत्वा यजमानो युधिष्ठिरः ।
पाञ्चालिमरणिं कृत्वा वह्निं कृत्वा वृकोदरम् ॥८४॥
आज्यं कृत्वाऽर्कतनयं जयद्रथमुखान्नृपान् ।
दुर्योधनं पशुं कृत्वा भीष्मद्रौणौ महाहविः ॥८५॥
अयाज्ञिकमिदं द्रव्यं भयमोहविवर्जितम् ।
गाण्डीवेन स्रुवेणैव हूयमानेषु राजसु ॥ ८६ ॥

---

४३ 'क' पुस्तके-°श्यां तु पूर्वाह्ने वृ° ।

४४ 'ख' पुस्तके-वृषसेनो हतो युधि । तस्मिन्ने-व म° ।

४५ 'ख' पुस्तके-चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने कर्णवै-कर्तनो हतः । निःशब्द° ।

* व्यूढोरस्कमित्यारभ्य 'कर्णो निपातितः' इत्यन्तः पद्यद्वयात्मको ग्रन्थः 'ख' पुस्तके नास्ति ।

+ 'ख' पुस्तके-शकुनी लोकराजस्तु सहदेवेन पातितः । अमायां तु हतः शल्यो मद्रराजो बलोद्धतः ॥ अमायामूर्ध्वभागे तु राजा दुर्योधनस्तथा । कथं दुर्योधनो राजा भीमसेनेन पातितः । गदया ताडितः शक्त्या भीम-सेनेन मन्त्रिणा । न भवेत्ता° । इति पाठान्तरम् ।

४६ 'ख' पुस्तके-न भवेत्तादृशं युद्धं क्षात्रियाणां यशस्विनाम् । अन्यथा भाषितं युद्धं छद्मना कृत° ।

४७ 'ख' पुस्तके-एतत्पद्यार्धं नास्ति ।

४८ 'ख' पुस्तके-एतत्पद्यं नास्ति।

+ 'क' पुस्तके-सर्वशत्रुक्षयकरे कुरुक्षेत्रे महा-त्मनाम् । पार्थौ नारोपितं स्वर्गं राजपुत्रयशस्विनः । इति पाठान्तरम् ।

४९ 'क' पुस्तके-°तं तथा । र° ।

५० 'ख' पुस्तके-एतत्पद्यार्धं नास्ति ।